दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 12 अंक : 4 ❑ जुलाई-अगस्त, 2020

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

लघु-मध्यम उद्यमों की परिभाषा की कवायद

एक लंबे समय से लघु उद्योगों की परिभाषा का विषय विवाद का कारण बना हुआ है। 1998 में जब अटल बिहारी वाजपेयी ने सत्ता का सूत्र संभाला था, उससे ठीक पहले तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने लघु उद्योगों की परिभाषा में आमूलचूल परिवर्तन किया था। उससे पूर्व वे उद्योग जिनमें प्लांट और मशीनरी की लागत 60 लाख रूपए या उससे कम थी, लघु उद्योग कहलाते थे। लेकिन तत्कालीन सरकार ने इस सीमा को 60 लाख से बढ़ाकर अचानक 3 करोड़ (5 गुणा) कर दिया था। चुनाव से पूर्व वाजपेयी ने उसे अनुचित बताया था और उनकी सरकार आने पर उसे बदलकर 1 करोड़ करने का वादा किया था। इस वादे को निभाते हुए वाजपेयी सरकार ने लघु उद्योगों की परिभाषा को पुन: बदलते हुए, उसमें प्लांट और मशीनरी की लागत की सीमा को घटाकर 1 करोड़ कर दिया। लंबे समय तक यह विवाद थमा रहा। इस बीच वर्ष 2006 में एमएसएमई अधिनियम लागू किया गया, जिसके अनुसार एस.एस.आई (लघु पैमाने के उद्योगों) के स्थान पर एक नई परिभाषा एमएसएमई (माइक्रो, स्माल, मीडियम एंटरप्राइज) लागू हो गई। इसमें दो प्रमुख बदलाव आए।

एक, उद्योग के स्थान पर उद्यम शब्द का उपयोग प्रारंभ किया गया और दूसरा लघु के साथ-साथ मध्यम श्रेणी के उद्यम नाम का एक और वर्ग इसमें शामिल किया गया। तर्क यह था कि लघु उद्यमों को मिलने वाले लाभ जैसे सरकारी खरीद में प्राथमिकता, वित्त में रियायत आदि का लाभ छिन जाने के भय से लघु उद्यमों को विस्तार करने में झिझक होती थी। मध्यम श्रेणी के उद्यमों को भी परिभाषा में शामिल करने पर यह झिझक समाप्त हो जाएगी। नई परिभाषा के अनुसार सूक्ष्म (माइक्रो) उद्यम में प्लांट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 25 लाख, लघु उद्यम में यह सीमा 5 करोड़ और मध्यम श्रेणी के उद्यम में प्लांट एवं मशीनरी में निवेश की सीमा 10 करोड़ रखी गई।

यह परिभाषा अभी तक लागू रही है। लेकिन केन्द्र में नरेन्द्र मोदी सरकार के कार्यभार ग्रहण करने के बाद इस परिभाषा में बदलाव की कवायद चल रही थी। इस बीच एक नए एमएसएमई एक्ट हेतु तैयारी शुरू हुई। इस हेतु विधेयक अभी संसद में प्रस्तावित है। सरकार ने एमएसएमई की परिभाषा को बदलकर, सीमा को प्लांट एवं मशीनरी से बदल कर 'टर्न ओवर' के आधार पर करने का प्रस्ताव काफी दिनों से आधिकारिक हलकों से चल रहा था। लेकिन इसके विरोध के चलते, सरकार ने परिभाषा प्लांट एवं मशीनरी में निवेश और 'टर्न-ओवर' दोनों के आधार पर करना तय किया और इस हेतु 1 जून 2020 को एक अध्यादेश जारी कर सूक्ष्म, लघु और माध्यम उद्यमों के लिए निम्न परिभाषा निश्चित की है।

1. सूक्ष्म उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में एक करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार पांच करोड़ से अधिक नहीं होता है।
2. लघु उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में पांच करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार 50 करोड़ से अधिक नहीं होता है।

मध्यम उद्यम वह है जिसमें संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में 50 करोड़ रूपए से अधिक का निवेश नहीं होता है, तथा उसका करोबार 250 करोड़ से अधिक नहीं होता है।

इस अधिसूचना को 1 जुलाई 2020 से लागू कर दिया गया है।

चूंकि कई उद्यम ऐसे रहते हैं, जहां संयंत्र, मशीनरी एवं उपस्कर तो कम होते हैं, लेकिन उनकी टर्नओवर काफी ज्यादा होती है। ऐसे में इस प्रकार के भारी कारोबार करने वाले उद्यम भी एमएसएमई की श्रेणी में आ जाते थे। इसलिए 'निवेश' और 'कारोबार' दोनों के समिश्रण से उस समस्या का समाधान तो हो गया है। लेकिन वर्तमान अध्यादेश के अन्य प्रावधानों के चलते यह विवादों के घेरे में है। लघु उद्योगों के कई संगठन इस अध्यादेश का पुरजोर विरोध भी कर रहे हैं।

इन संगठनों की पहली आपत्ति इस बात को लेकर है कि एमएसएमई की इस परिभाषा में विदेशी पूंजी प्राप्त उद्योगों को अलग नहीं किया गया है। देशीय लघु उद्यमों का मानना है कि ऐसे में बड़े विदेशी निवेशक लघु उद्यमों का स्थान हस्तगत कर लेंगे। उदाहरण के लिए यदि कोई विदेशी उद्यमी 50 करोड़ रुपए तक के निवेश और 250 करोड़ तक कारोबार के साथ मध्यम श्रेणी के उद्यम के लाभ हस्तगत कर सकेंगे और भारतीय उद्यमों को नुकसान होगा। उनका यह भी कहना है कि पूर्व की परिभाषा के अनुसार मात्र 0.007 प्रतिशत उद्यम ही मध्यम श्रेणी में थे। नई परिभाषा में तो लघु उद्यम कहलाएंगे क्योंकि 10 करोड़ से कम निवेश है। अब जो भी मध्यम लगेंगे वह सब नये लगेंगे। इसलिए वर्तमान के मध्यम दर्जे के उद्यमों को तो कोई लाभ नहीं मिलेगा, लेकिन बड़ी पूंजी के साथ नए उद्यमों को ही नई परिभाषा का लाभ होगा।

नए अध्यादेश पर दूसरी आपत्ति यह है कि इस अध्यादेश में पूर्व के एमएसएमई अधिनियम (2006) के अनुरूप मैन्युफैक्चरिंग और सेवा उद्यमों में भेद नहीं किया गया है। गौरतलब है कि एमएसएमई अधिनियम, 2006 के अनुसार सूक्ष्म उद्यमों में सेवा क्षेत्र में संलग्न उद्यमों की निवेश की सीमा मात्र 10 लाख रूपए थी, जबकि मैन्युफैक्चरिंगमें यह 25 लाख रूपए थी। लघु सेवा उद्यमों में निवेश की सीमा 2 करोड़ रूपए, मध्यम सेवा उद्यमों में यह 5 करोड़ रूपए ही थी। समझना होगा कि लघु मैन्युफैक्चरिंग उद्यम उनमें रोजगार सृजन के अवसरों के नाते जाने जाते हैं।समझना होगा कि सेवा क्षेत्र में रोजगार सृजन की संभावनाएं मैन्युफैक्चरिंग से बहुत कम होती है। इसलिए जब विषय रोजगार के लिए मैन्युफैक्चरिंग को बढ़ावा देने का हो तो सेवा क्षेत्र के उद्यमों को मैन्युफैक्चरिंग के समकक्ष रखना सही नहीं होगा। इसलिए ट्रेडिंग और असेम्बलिंग आदि सेवाओं को मैन्युफैक्चरिंग से भिन्न माना जाना ही सही होगा, अन्यथा मैन्युफैक्चरिंग के लिए प्रोत्साहन घटेगा।

नए अध्यादेश के संदर्भ में तीसरी अपत्ति यह है सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों की परिभाषा को बदलने के संदर्भ में जहां लघु उद्यमों में निवेश (संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में निवेश) की सीमा को 5 करोड़ से दुगना कर 10 करोड़ रूपए की गई है, लेकिन मध्यम श्रेणी के उद्यमों के लिए यह 10 करोड़ से बढ़ाकर 50 करोड़ (5 गुणा अधिक) कर दी गई है। यानि ऐसा प्रतीत होता है कि बड़े उद्यमों को भी एमएसएमई की श्रेणी में लाने का यह प्रयास है। इससे अभी तक के एमएसएमई का लाभ अब अपेक्षाकृत बहुत बड़े उद्यमों को भी मिलने वाला है। यह कुछ अटपटा और अजीब तो लगता ही है, वास्तवकि रूप से बड़ों को लाभ देने वाला है, क्योंकि वित्त, सरकारी खरीद आदि में अब बड़े उद्यमों की हिस्सेदारी बढ़ जाएगी, हालांकि कुछ मध्यम श्रेणी के उद्यमों की संख्या कुल उद्यमों का मात्र 0.007 प्रतिशत ही है।

इस अध्यादेश का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू जो ध्यान में आ रहा है कि एमएसएमई में विदेशी निवेश प्राप्त उद्यमों को भी शामिल रखा गया है। लघु उद्यम संगठनों का मानना है कि 50 करोड़ रूपए के बड़े निवेश वाले तथाकथित मध्यम श्रेणी के उद्यम, एमएसएमई के समस्त लाभों को हस्तगत कर लेंगे। इसलिए इन संगठनों की मांग है कि विदेशी निवेश प्राप्त उद्यमों को एमएसएमई परिभाषा शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

एक अन्य आपत्ति यह है कि जब 'टर्न ओवर' यानि कारोबार का प्रश्न आता है तो उसमें से निर्यात के कारोबार को हटाकर देखा जाएगा। इस बात का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि यदि कोई बड़ा उद्यमी (या निर्यातक) जिसका संयंत्र और मशीनरी अथवा उपस्कर में तो निवेश कम है, लेकिन बड़ी मात्रा में निर्यात करता है तो वह देश के एमएसएमई के समकक्ष आ सकता है। उदाहरण के लिए यदि कोई फर्म 1000 करोड़ रूपए का निर्यात करती है और 250 करोड़ रूपए का कारोबार देश में करती है, लेकिन संयंत्र और मशीनरी में निवेश 50 करोड़ रूपए या कम है तो भी वह एमएसएमई की परिभाषा में आ जाएगी। यह अत्यंत अटपटा है।

हमें देखना होगा कि फर्मों को उसके आकार और कुल कारोबार के अनुसार ही वर्गीकृत किया जाना चाहिए। किसी भी हालत में निर्यात अथवा किसी और बहाने से बड़ी फर्मों को एमएसएमई की श्रेणी में लाया जाना, लघु उद्यमों को प्रश्रय देने के औचित्य को ही समाप्त कर देगा।

यानि कहा जा सकता है कि सरकार को वर्तमान नोटिफिकेशन पर नए सिरे से विचार कर सूक्ष्म, लघु और मध्यम दर्जे के उद्यमों को सही प्रकार से परिभाषित करना चाहिए, ताकि लघु उद्यमों को बढ़ावा देकर देश में रोजगार, वितरण में समानता, विकेन्द्रीकरण आदि के लक्ष्यों को भलीभांति प्राप्त किया जा सकता है।

संपादक

इस अंक में

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में छोटानागपुर प्रमण्डल के आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के विद्रोह में योगदान: एक संक्षिप्त अवलोकन–डॉ० रवि शंकर 1
भारत में निगमित अभिशासन: विकास, चुनौतियाँ एवं सुझाव–डॉ० अमरनाथ पासवान; मनीष चन्द्रा 7
वर्तमान परिवेश में वृद्धजनों की समस्याएं: एक विश्लेषण–डॉ० कंचन; डॉ० सतीश चन्द्र जैसल 13
युवकों को स्वामी विवेकानन्द का सन्देश–डॉ० जय प्रकाश यादव 17
कन्या भ्रूण हत्या: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० सतीश चन्द्र जैसल; डॉ० कंचन 21
भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों की भूमिका–डॉ० अमिय कुमार 24
भूदान-आन्दोलन का राजनीतिक यथार्थ: 'विश्रामपुर का संत'–डॉ० शिप्रा शर्मा 27
मिथिलेश्वर के उपन्यास 'माटी कहे कुम्हार से' में नारी संघर्ष–डॉ० शैल कुमारी वर्मा 32
भारत के स्वतंत्रता संग्राम में चंपारण सत्याग्रह की भूमिका–राकेश कुमार बैठा; मो. असलम 37
जैन धर्म तथा बौद्ध धर्मों के सामाजिक आयाम की ऐतिहासिकता–डॉ० उदय कुमार पासवान 41
भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या–डॉ० चन्द्रशेखर आजाद 45
संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा का प्रावधान–डॉ० आरती कुमारी सिंह 49
भारत में पंचायती राज और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण–आशुतोष सिंह जेलियाँग 54
भारतीय संविधान की विशेषताएँ–डॉ० अशोक कुमार 59
मातृ स्वास्थ्य में थायरॉयड की समस्या–डॉ० कुमारी सुनीता 67
भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ–डॉ० नमिता कुमारी 73
भारतीय दृष्टिकोण और प्रथम विश्वयुद्ध–डॉ० पूर्णनाथ कुमार 78
भारत में जनजातियों का भौगोलिक वितरण: एक अवलोकन–डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा 84
बिहार का निर्माण एवं राष्ट्रवादी भावना का विकास–डॉ० राज भूषण उपाध्याय 89
भारत की परमाणु नीति–राजीव रंजन कुमार 95
समाजशास्त्रीय अध्ययन की परंपरा और हिन्दी साहित्य–डॉ० संजय कुमार सिंह 100
भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता–डॉ० संजय कुमार 104
राष्ट्रीय सुरक्षा और भारत–डॉ० श्रीनिवास पांडेय 109
भारत में प्रजातियों का वर्गीकरण विशेषत: बी० एस० गुहा के विचारों का अवलोकन–डॉ० विजय मिस्त्री 114
मानवाधिकार की अवधारणा-एक अध्ययन–डॉ० दिलीप कुमार 119
प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का इजरायल का ऐतिहासिक यात्रा–डॉ० उपेन्द्र कुमार सिंह 122
एक आदर्श शासक के रुप में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम–डॉ० बिपिन दूबे 125
भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों के अलगाववाद को कम करने में म्यांमार की भूमिका–डॉ० पप्पु कुमार 131
सूरदास की रचना में वात्सल्य–चन्द्रकान्त 137

दृष्टिकोण

सूर का भ्रमरगीत: एक उपालम्भ काव्य–लालबाबू 142

समावेशी विकाश में मनरेगा की भूमिका: गोपालगंज जिले के संदर्भ में–डॉ० नरेश कुमार 147

वित्तसहित तथा वित्तरहित डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्य-संतोष का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० बैरिस्टर यादव 151

शुक्रनीति एक संक्षिप्त अध्ययन–प्रो० जितेन्द्र कुमार द्विवेदी 154

स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता में सहसम्बन्ध का अध्ययन–सर्जुन कुमार; डॉ० आशाराम 158

बिहार में नक्सलवाद "एक चुनौती एवं समाधान"–डॉ० अंशु कुमार मल्लिक 169

महामारी के दौर में आत्मालोचन करती कविताएँ–शीतांशु 173

कोविड-19 "लॉकडाउन-उत्तर लॉकडाउन": एक मनोसामाजिक दृष्टिकोण–डॉ० ओ०पी० चौधरी; डॉ० उषा चौधरी 177

यूरेशियन समुदाय का पृथकीकरण और उनकी औपनिवेशिक समाज में परिस्थिति: अठारहवीं सती के अंत में ब्रिटिश नस्लवादी नीति के विशेष सन्दर्भ में–विवेक मोहन 181

जातिगत चेतना और दलित आंदोलन पर गांधी व अम्बेदकर के विचारों का मूल्यांकन–डॉ० राजकिशोर राम 185

पश्चिमी चम्पारण जिला का भूमि उपयोग: एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० राजू कुमार 189

अति-पिछड़ों और निजी क्षेत्र में आरक्षण का सवाल: एक अध्ययन–डॉ० गणेश सहनी 194

व्यापक और गहन होता हुआ भारतीय लोकतंत्र: एक अवलोकन–डॉ० मो० आले नबी 199

महात्मा गाँधी के 'अहिंसा'–डॉ० मधु सिंह 203

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० शादाब नवाज 206

'स्वामी विवेकानंद का सामाजिक विचारधारा'–डॉ० मनोज कुमार सिंह 212

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय लोक सेवकों का प्रशिक्षण: प्रशिक्षण-प्रबंधन की समस्याएं एवं सुधार की आवश्यकता–डॉ० मो० रेयाज़ अहमद 215

मनमोहन सहगल के उपन्यास 'समझौते से पहले' में राजनीतिक यथार्थ बोध–ब्रह्मलता 223

भारत में बाल अपराध की समस्या और सुझाव–माला मेश्राम; मनीष चन्द्रा 227

वाणिज्य प्रबन्धन और वस्त्र उद्योग: बौद्धसाहित्य के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० अजय कुमार सिंह 233

द्वितीय लोकतांत्रिक लहर और उपाश्रित वर्ग का उदय: लोक सभा में तथाकथित दलित प्रतिनिधित्व का केस अध्ययन–मोहन कुमार 237

प्राचीन भारत की वाणिज्यिक सम्पदा (आदिकाल से बुद्धकाल तक)–डॉ० शिवजी सिंह 243

1857: क्रांतिकारियों की राजनीतिक दृष्टि–विवेक कुमार शर्मा 246

ग्राम कचहरी की न्यायिक व्यवस्था: बिहार संदर्भ में एक अध्ययन–डॉ० सुमन्त कुमार 249

मनसबदारी व्यवस्था: एक ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० मो० मंजर अली 256

ऑनलाइन कक्षाओं का बालकों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव–अर्पणा सिन्हा 259

हिंदी कथा साहित्य में खेल और नारायण सिंह की कहानियाँ–जैनेन्द्र कुमार 264

'मैला आँचल' और यथार्थवाद : कुछ नोट्स–पीयूष राज 268

झारखण्ड के प्राकृतिक संसाधन: वन और पर्यावरण–डॉ० मेरी मराण्डी 273

प्राचीन भारत में श्रम की अवधारणा एवं श्रमिक समुदाय का स्वरूप: एक विश्लेषण–आशीष फोगाट 281

श्रम एवं पारिश्रमिक का ऐतिहासिक मूल्यांकन–डॉ० कुमारी रिचा 286
नवादा जिला (बिहार) के कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप (1981-2011): एक भैगोलिक विश्लेषण–डॉ० अमर कुमार 291
रोहतास जिला का मानव संसाधन: एक भौगोलिक अध्ययन–अनिल कुमार 300
पोषण एवं व्यक्तित्व विशेषताएँ: एक अध्ययन–डॉ० नीलम कुमारी 306
दलित-मुस्लिम एकता की राजनीति: एक आकलन–डॉ० स्वदेश सिंह 310
हिन्दुत्व में राम का केंद्रीयकरण: 19वीं सदी के उत्तरार्ध व 20वीं सदी के प्रारंभ में–डॉ० बिपिन कुमार 316
यात्रीजीक साहित्यमे युगबोधक स्वर–डॉ० रश्मि कुमारी 319
मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना–अनुज प्रकाश 323
उदय प्रकाश की कहानियों में जनवादी चेतना–चन्द्र भूषण रजक 326
औपनिवेशिक पुलिस व्यवस्था की वर्त्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता–डॉ० मधुकर आनंद 329
बौद्ध दर्शन के चार आर्यसत्य: एक समीक्षात्मक अध्ययन–नीरज कुमार 332
भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में इच्छा मृत्यु का स्वरूप–डॉ० नीतीश कुमार 337
नाट्य कला की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' का समग्र विश्लेषण–डॉ० पाण्डव कुमार 341
भक्ति आंदोलन व कबीर: एक विश्लेषण–प्रदीप कुमार 347
भारत चीन संबंध के आधार–नरेंद्र ठाकुर 355
चोल कालीन स्थापत्य कला एवं उसकी विशेषताएँ–राजीव कुमार 361
महात्मा गाँधी और बुनियादी शिक्षा–डॉ० अभिषेक कुमार 365
महिला एवं मानवाधिकार के विभिन्न पहलू–डॉ० राकेश कुमार पासवान 369
मुगलकालीन भू-राजस्व व्यवस्था: एक अध्ययन–डॉ० संजय कुमार आजाद 373
नए भारत में कौशल विकास की उभरती संभावनाएं एवं चुनौतियां (हरियाणा राज्य के संदर्भ में)–नीशू 378
1857 का विद्रोह और मगध क्षेत्र–डॉ० नीतीश कुमार विमल 385
अस्पृश्यता आन्दोलन एवं महात्मा गांधी–डॉ० दिनेश व्यास; डॉ० अभय विक्रम सिंह 388
भारतीय राजनीति में बढ़ता आपराधीकरण–अजय कुमार 397
भारत में साम्प्रदायिकता के कारण और दुष्परिणाम–अमृता कुमारी 399
युवाओं में मानसिक अस्वस्थता–डॉ० राजीव रंजन 403
गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था: एक समीक्षा–डॉ० सैय्यद मुर्शिद फैज 409
भारत में संघीय व्यवस्था का सामाजिक एवं ऐतिहासिक अवलोकन–डॉ० सुनील कुमार यादव 413
बीसवीं शताब्दी के पूर्व बिहार में प्रेस का विकास–डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह 421
कृषि विविधिकरण की उभरती प्रवृतियाँ एवं किसानों के आय पर इसका प्रभाव–मुकेश कुमार 426
गुरु रविदास जी के काव्य में दार्शनिकता–सोमा देवी 430
मानवतावाद का ऐतिहासिक विश्लेषण–डॉ० महेन्द्र पासवान 434
बौद्धधर्म में चरम साध्य–डॉ० ओम प्रकाश प्रभाकर 440
महिला-शिक्षा की महत्ता: गांधीवादी विश्लेषण–डॉ० पूनम डागर 444
छोटे और मध्यम किसानों पर हरित क्रांति का प्रभाव–रानी कुमारी 448
राजा राम मोहन राय: एक महान समाज सुधारक–पल्लवी 456

दलित महिलाओं की परिस्थिति पर मनरेगा का प्रभाव मध्य प्रदेश के गांवों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण–डॉ० पवन कुमार मिश्र 461
मध्यकालीन भारत में दास प्रथा–डॉ० राकेश रंजन सिन्हा 471
भारतीय संघवाद का उभरता स्वरूप: केंद्रीय संघवाद से वास्तविक संघवाद की ओर–डॉ० धनंजय झा 475
कन्नौज के लिए हुए त्रिदलीय संघर्ष: एक समीक्षा–डॉ० मोहम्मद तसद्दुक 479
तुलसी का रामराज्य और लोकतंत्र–डॉ० संजीव कुमार 482
भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी की भूमिका–डॉ० दीपक कुमार 485
किरातार्जुनीय के काव्य-द्रव्य–डॉ० गंगेश गुंजन 489
गरुड़पुराण में भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति–डॉ० नलिनी श्रीवास्तव 497
बी.आर. अम्बेडकर पर बुद्ध के वैचारिक प्रभावों का अध्ययन–डॉ० सुबोध कुमार चौधरी 502
मौर्य साम्राज्य में कृषि एवं भू-राजस्व व्यवस्था का विश्लेषनात्मक अध्ययन–शंभू कुमार गुप्ता 506
उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का समालोचनात्मक अध्ययन–डॉ० बृजराज सिंह 509
सोशल मीडिया का बच्चों एंव युवा वर्ग पर प्रभाव–वर्षा रानी 515
हंसराजक कथामे नारीक स्थान–कुमकुम कुमारी 519
गाँधी और अम्बेदकर: वैचारिक जमीन–चंद्रमौली कुमार 523
महात्मा गांधी और आत्मनिर्भर भारत–प्रेम शंकर गोंड 529
गाँधी सागर बाँध का पर्यावरण पर प्रभाव (एक भौगोलिक विश्लेषण)–राकेश राजोरा; डॉ० एम०जेड०ए० खाँन 534
गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन (1804-1815 ई.): गढ़वाल के विशेष सन्दर्भ में–सत्येन्द्र धर्म्वाण; देवेश सिंह गर्ब्याल 544
लोहिया स्वच्छ अभियान एंव महिलाओं की भूमिका–डॉ० रिंकी कुमारी 549
मानव जीवन में मानवाधिकार का महत्व: एक ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० शिव कुमार पासवान 554
मार्कण्डेय पुराण वर्णित श्रीमदालसा चरितस्य आख्यान–डॉ० जय प्रभा कुमारी 558
मत्स्य उद्योग में बिहार सरकार की भूमिका–उमेश कुमार सिंह 561
भारत में लोक शिकायत निवारण तंत्र की उपादेयता का एक अध्ययन–नंदन कुमार भारती 564
मेघदूत में प्रयुक्त उपमालंकार-विवेचन–डॉ० दीनबन्धु माँझी 568
गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पहलू (एक समीक्षात्मक अध्ययन)–मिथिलेश कुमार 571
शेखर जोशी की कहानियों में निम्न-मध्यवर्गीय चेतना: 'बच्चे का सपना' कहानी के विशेष सन्दर्भ में–विजय सिंह 576
महात्मा गाँधी का राष्ट्रवादी दर्शन: एक अध्ययन–नीरज कुमार 581
मैथिली कथा संसारमे राजकमल चौधरीक 'ललका पाग' कथाक महत्त्व–प्रीति कुमारी 585
अनुसूचित जाति महिलाएँ एवं राजनीतिक सशक्तता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सीकर जिले के संदर्भ में)–अनिल सैनी 588
राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विषमताएं: एक चुनौती–डॉ० श्रवण राज 594
पर्यावरण संरक्षण का संहितागत व्यवस्था–सुभाष कुमार 602
जनजाति विकास में ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण–पियुष कुमार सिंह 606

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन: राष्ट्रवादी इतिहास लेखन–प्रभात कुमार 611
नागरिक समाज और भारतीय लोकतंत्र: एक अध्ययन–डॉ० प्रियंका कुमारी 615
वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्तावाद संस्कृति का किशोरों पर पड़ता प्रभाव–पुजा कुमारी 621
औपनिवेशिक भारत में शहरी हस्तशिल्पों और ग्रामोद्योगों का ह्रास–डॉ० रजनीश कुमार 624
बिहार राज्य में कृषि समस्याएँ: एक भौगोलिक अध्ययन–राम कुमार सिंह 630
सामाजिक विज्ञान शिक्षण में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि की भूमिका (सागर नगर, मध्य प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)–हरिओम मद्धेशिया 635
उत्तराखण्ड क्रांति दल की क्षेत्रीय राजनीति में भूमिका–रीना रांगड़ 641
मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान का अध्ययन–राम किशन पाल; डॉ० अखिलेश कुमार श्रीवास्तव 648
बिहार में असहयोग आन्दोलन: बढ़ता दायरा–डॉ० रीतेश कुमार 654
बिहार में सक्रिय राष्ट्रीय आंदोलन एवं साम्प्रदायिक सद्भाव–डॉ० रूमा कुमारी 659
वर्त्तमान परिदृश्य में जैविक खेती: अवसर और चुनौतियाँ–संतोष कुमार 664
जनजातीय हस्तशिल्प पर कोविड-19 का आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव: छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष संदर्भ में–शिव कुमार सिंघल 669
कृषि आय पर कर का औचित्य: ग्रामीणों के विकास के संदर्भ में–रवि शंकर गुप्ता 676
कर्पूरी ठाकुर और जगदेव प्रसाद के नेतृत्व में बिहार में सामाजिक परिवर्तन–सोनी कुमारी 680
बैंकिंग सेक्टर में सुधार–डॉ० कुमार सुधांशु 684
गाँधी और अम्बेडकर के बीच संबंध–डॉ० सुकान्त शेखर 689
प्राचीन ग्रंथों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण की वर्तमान में प्रासंगिकता–डॉ० सुनील कुमार 693
मानव जीवन में शाकाहारी और मांसाहारी आहार का जीवन पर प्रभाव–डॉ० मंजुश्री 704
स्वामी विद्यानंद और किसान आंदोलन–डॉ० सरोज कुमार सिंह 708
शेक्सपीयर के नाटकों का भारतेंदु पर प्रभाव–डॉ० मनोज 'विद्यासागर' 710
भारतीय राजनीति का आधुनिकीकरण: केंद्र और परिधि का प्रश्न–डॉ० विकास कुमार 713
कोरोना वायरस महामारी और बिहार की अर्थव्यवस्था: एक विश्लेषण–प्रोफेसर (डॉ०) संजय कुमार झा 717
अनामदास का पोथा: औपनिषदिक आख्यान–डॉ० पल्लवी 723
बी.एड. अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन –डॉ० श्रीमती शैलजा गुप्ता; सुरेन्द्र यादव 727
विजय नगर साम्राज्यवाद और कृष्णदेव राय–प्रज्ञा शिखा 732
भाषा और समाज–डॉ० माधवी 737
आत्मनिर्भर भारत अभियान: नए कलेवर में गाँधी का सपना–लक्ष्मी कुमारी 739
आदिवासी संस्कृति एवं पर्यावरण चेतना–दीपक कुमार खरवार 744
उच्च शिक्षा में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० प्रगति 749
ब्रिटिश शासन में भूमि व्यवस्था और उसके कुप्रभाव: एक समीक्षा–डॉ० प्रियंका कुमारी 753
"भारत-चीन संबंध: सीमा विवाद के परिपेक्ष्य में वर्तमान विवेचन"–डॉ० अमित कुमार उपाध्याय; डॉ० पंकज तिवारी 759

कोरोना (कोविड-19) के विरुद्ध शारीरिक प्रतिरोध क्षमता का विकास (योग के संदर्भ में)–मृत्युंजय कुमार सिंह 764
रवीन्द्रनाथ और महादेवी के काव्य में मानववादी चिंतन–अंजू सिंह 770
आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर प्रभाव–डॉ० प्रियंका चतुर्वेदी 775
सार्वजनिक उपक्रमों का भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान–डॉ० मो० इमरान आलम 781
भारत में प्राचीनकाल में पंचायतीराज व्यवस्था: एक विश्लेषण–अमोद कुमार दास 786
हिन्दी साहित्य में प्रगतिशीलता: चेतना और स्वरूप–सत्यनारायण कुमार 791
दलित स्कूली छात्राओं की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० संगीता कुमारी 798
कोविड-19: शिक्षा के लिए ई-लर्निंग एक चुनौती या एक वरदान–श्रीमती प्रियंका साहू; डॉ० अंजूलता 802
राजस्थान के खनिज संसाधन: भौगोलिक वितरण एवं उत्पादन–डॉ० धमेन्द्र पाटीदार 807
इतिहास के परिप्रेक्ष्य में बाल मजदूर: एक दृष्टिकोण–डॉ० अरूण प्रसाद अमन 817
भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० गणेश राय 822
वस्तु एवं सेवा कर का विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० पूनम कुमारी 827
वैश्विक घटनाओं का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (1914-1917) पर प्रभाव–डॉ० सुरेन्द्र कुमार सिंह 834
"कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में लोकभाषा"–कपिल देव पँवार 838
भारत में महिलाओं की शिक्षा–डॉ० कुमारी पूजा 843
महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत का पहला सत्याग्रह–कुन्दन कुमार 847
कांकेर जिले में जनजातीय महिलाओं पर शिक्षा का प्रभाव (रोजगार-व्यावसायिक परिवर्तन का एक अध्ययन)
–सुरेश कुमार 851
ग्रामीण विकास की कतिपय प्रमुख योजनाओं का वित्तीय समावेषन की दृष्टि से मूल्यांकन
–ममता कुमारी; डॉ० उदय प्रकाश सिन्हा 863
भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उदारवादी राष्ट्रवाद का योगदान–अरविन्द कुमार सिंह; डॉ० ओम प्रकाश राय 866
बिहार में नक्सली आंदोलन: जाति/वर्ग के फ्रेमवर्क में (1960-1980 का दशक)–अखिलेश कुमार 870
कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में पूर्वप्रत्यय प्रयोग–देवानन्द सिंह; डॉ० जीत सिंह 877
हमारी संस्कृति-हमारी पहचान–प्रियंका सिंह 884
दादूपंथी नारायणदास के साहित्य में नारी-विमर्श–डॉ० रेखा शेखावत 887
समय के साथ कृषि का बदलता स्वरूप: राजस्थान के सीकर जिले के संदर्भ में–पप्पू सैनी 892
सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण : आधुनिक सिंचाई एवं कृषि यंत्रों का योगदान–डॉ० संजय परिहार; पप्पू सैनी 901
हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना
–शिव शंकर यादव; डॉ० जीतेन्द्र प्रताप 910
भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के सामाजिक और आर्थिक पहलू: एक अध्ययन–डॉ० रुमा कुमारी 915
सहजानन्द सरस्वती के प्रारम्भिक जीवन से किसान आन्दोलन: एक ऐतिहासिक विश्लेषण
(1889-1950)–डॉ० गोपाल कुमार 919
वर्तमान दृष्किोण से बदलते राजनीतिक परिवेश में भारत नेपाल संबंध–संतोष कुमार 930
अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्व–डॉ० नागेन्द्र तिवारी 934
ठाकुर का कुआं: अछूत समस्या के प्रति प्रेमचंद का जुड़ाव और प्रतिबद्धता–डॉ० नीलू अग्रवाल 939

भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोविड-19 का प्रभाव–डॉ० मणि भूषण कुमार 943
हरिराम मीणा की कविता का कथ्य–डॉ० नरेन्द्र प्रताप सिंह 949
भारतीय कला में 'रसो वैसः' की अनुभूति–डॉ० अयोध्या नाथ झा; स्तुति कुमारी 958
महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा की वर्त्तमान में प्रासंगिकता–अभिषेक कुमार 964
सिंधुधाटी सभ्यता : नगर निर्माण का वैज्ञानिक और ज्यामितिय विश्लेषण–डॉ० रूबी कुमारी 968
पैसिव रेजिस्टेंस एवं सत्याग्रह का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० अर्चना कुमारी 973
प्राचीन भारत में शिक्षा के विविध आयाम–डॉ० प्रतिभा किरण 979
आचार्य भरत से पूर्व रस शब्द की महत्ता एवम् अर्थगाम्भीर्य–डॉ० राजेश कुमार सिंह 982
भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की पृष्ठभूमि: एक अध्ययन–सत्यम कुमार केसरी 987
आधुनिक भारत में स्त्री शिक्षा के लिए किए गए शासकीय अथवा व्यक्तिगत प्रयास: एक अध्ययन–डॉ० संतोष कुमार 994
आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के विकास में भगिनी निवेदिता का योगदान–संगीता कुमारी 999
भारत का औपनिवेशीकरण एवं पारिस्थिति की तंत्र पर उसका प्रभाव–प्रिंस कुमार 1006
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर चंपारण सत्याग्रह का प्रभाव: एक अध्ययन–दिलीप कुमार 1012
भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का दक्षिण-पूर्व एशिया पर प्रभाव: एक अध्ययन–डॉ० अरुण कुमार निराला 1017
महात्मा गांधी का खादी-दर्शन एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता–डॉ० अनामिका ब्रजवंशी 1021
आधुनिक भारत की जनोन्मुखी वैज्ञानिक नीति एवं गांधी विचार का संदर्भ (1900-1950 ई0)–डॉ० वेदवती 1025
इंजीनियर्स ऑक्यूपेशनल स्ट्रेस: ए कम्पेरिजन–अदनान अहमद 1030
मेहरुन्निसा परवेज का "समरांगण" उपन्यास में चित्रित नारी अस्मिता–डॉ० पठान रहीम खान 1033
गांधीवाद का दिव्य संदेश–डॉ० दिवाकर कुमार कश्यप 1037
आदि शंकराचार्य और भक्ति आंदोलन–बलजीत बिहारी 1040
गुणाऽलंकारतत्त्वविवेचनम्–डॉ० पवन कुमार राउत 1043
गांधीजी के विचारों का प्रभाव–संध्या कुमारी 1046
भारतीय शिक्षा प्रणाली और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार–डॉ० सुशील कुमार 1049
भारत के ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर एवं चुनौतियाँ: एक विश्लेषण–डॉ० राजीव रंजन सिंह 1052
बिहार के रोहतास जिला के कृषि संबंधी समस्या: एक भौगोलिक अध्ययन–कुमार पुरुषोत्तम सुमन 1057
भारत का राजधर्म और प्रवासन का सभ्यतायी विमर्श: उपनिवेशवादी दृष्टि बनाम हिन्दू दृष्टि–डॉ० अनुज कुमार मिश्रा 1061
कोरोना काल और प्रवसन: समस्या या संसाधन?–डॉ० अपर्णा 1068
संस्कृति की बुनियाद पर आत्म निर्भर भारत का संकल्प: कोरोना संकट के विशेष संदर्भ में–डॉ० आदित्य कुमार मिश्रा 1073
कोविड-19 संकट एवं पलायन: चुनौतियां एवं संभावनाएं–हंसिका श्रीवास्तव 1080
एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में पलायन–नमो नारायण 1085
कोविद संकट और पलायन में मास मीडिया की भूमिका–शालिनी प्रसाद 1089
कोविड-19 और प्रवासी मजदूरों की सामाजिक आर्थिक समस्याएं: मध्य प्रदेश एवं बुंदेलखंड के संदर्भ में–स्नेहा खरे 1094
भारत के संदर्भ में कोविड संकट और प्रवासन: मुद्दे एवं चुनौतियाँ–बेबी तबस्सुम 1098
कोविड संकट एवं प्रवासन: चुनौतियां एवं संभावनाएं–डॉ० सुरेखा पिपलानी 1105
समकालीन भारत एवं नेपाल में पलायन एवं चुनौतियां–किशलय कीर्ति 1111

दृष्टिकोण

कोविड.19 : श्रमिकों का विस्थापन.आत्मनिर्भर भारत का नवद्वार–डॉ० कुलवीर सिंह चौहान 1115

महासंकट में प्रवासन और स्वदेशी लहर–डॉ० युवराज कुमार 1121

मुन्नी मोबाइल: एक आलोचनात्मक अध्ययन–रेणु चौधरी 1129

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का वस्तुवादी दृष्टिकोण: विद्यापति का साहित्य–डॉ० प्रियंका कुमारी 1132

विकासात्मक मनोविज्ञान और जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत–अर्चना कुमारी 1138

समकालीन हिन्दी कविता में चित्रित स्त्री-संवेदना–डॉ० प्रीति बैश्य 1143

भारत का क्षेत्रीय/भाषाई डायस्पोरा: सांस्कृतिक गतिशीलता का इतिहास–मुन्नालाल गुप्ता 1148

बेगूसराय जिला से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएं–डॉ० सुशान्त कुमार 1155

बिहार में वामपंथी दलों की वैचारिक कश्मकश और पिछड़े वर्ग की राजनीति का उभार–डॉ० आशुतोष कुमार 1160

गुजराती सिनेमा का विविध कालखंड और फिल्मों का बदलता विषय–डॉ० मनीष कुमार जैसल 1164

जाति, संस्कृति और जेंडर के बीच परस्पर सम्बन्ध : ग्रामीण भोजपुर क्षेत्र का अध्ययन–डॉ० चिंटू; डॉ० आशुतोष कुमार 1173

ग्रामीण महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण में सरकारी योजनाओं की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–सुनीता चौहान 1178

गोरख पाण्डेय की रचनाओं में जन-संघर्ष–राकेश कुमार कश्यप 1186

प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग तथा क्षेत्र के प्रभाव का अध्ययन –योगेश कुमार पाल; डॉ० राजेश पालीवाल 1190

नारी समस्या और चेतना विशेष संदर्भ 'वह लड़की' उपन्यास–अनिता देवी 1195

वैश्विक महामारी कोरोना के कारण पर्यावरण में आए बदलाव का अध्ययन–विकाश कुमार 1200

समाज में सकारात्मक ऊर्जा के संचार में मीडिया की भूमिका–डॉ० प्रमोद कुमार 1204

मिचिंग जनजाति का सांस्कृतिक अवलोकन–डॉ० जशोधरा बोरा 1211

ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान-विश्लेषणात्मक अध्ययन (वाशीम जिले के संदर्भ में) –डॉ० प्रमोदकुमार केशव नंदेश्वर 1218

ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक काल का सामाजिक जीवन में परिवर्तन–बिरेन्द्र कुमार सिंह 1226

मौर्योत्तर काल में भारत का वैश्विक संबंध–डॉ० सोनी भगत 1230

भारत-पाक सन्दर्भ में अमेरिकी नीति: एक अध्ययन–डॉ० प्रीति कुमारी 1235

मध्यकालीन भारत में मुगल-राजपूत संघर्ष: विवेचनात्मक अध्ययन–डॉ० आशीष कुमार 1239

रूढ़िवादी हिन्दू और डॉ० भीमराव अम्बेडकर का संघर्ष: एक ऐतिहासिक विवेचन–डॉ० प्रणीता कुमारी 1242

महिला हिंसा एवं कानून व्यवस्था–डॉ० निखिल कुमार 1245

पटना के हरित क्षेत्र पर शहरीकरण के प्रभाव का विश्लेषण भू-स्थानिक तकनीक का उपयोग करके–अल्पना कुमारी 1248

अनुसूचित जाति और सामाजिक परिवर्तन–पल्लवी कुमारी 1257

समकालीनता की अवधारणा–अरमान आनंद 1259

अलाउद्दीन खिलजी का बाजार नियंत्रण नीति : एक आलोचनात्मक अध्ययन–डॉ० मो० इन्तेखाब आलम 1263

वाल्मीकि रामायण की प्रासंगिक कथाओं में आधुनिक स्त्री की समस्याएं एवं समाधान–डॉ० अमृत कौशल 1268

आधुनिक मिथिला में सामाजिक सुधार आन्दोलन का ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० प्रमोद गाँधी; डॉ० बेबी कुमारी 1274

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में छत्तीसगढ़ की महिलाओं की भूमिका: एक ऐतिहासिक अध्ययन
—डॉ० सबा मसउद; डॉ० जाहिद अली 1284
भारत में महिला स्वास्थ्य: मातृत्व समस्याएँ एवं समाधान—आरती कुरील 1292
स्वतंत्रता आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका—डॉ० दीपक कुमार 1297
धर्म और नैतिकता का स्वरूपात्मक अध्ययन—सिमरन शर्मा 1300
बहुसंस्कृतिवाद भारतीय संदर्भ में—डॉ० विजय प्रताप सिंह 1304
सार्क और भारत—शिप्रा भारती 1307
ललित-विस्तर का कुलशुद्धिपरिवर्त (बोधिसत्त्व के अवतरण की महागाथा)—डॉ० रिंकु कुमारी 1312
मैथिल निबन्धकार वर्धमान उपाध्याय का दण्ड विमर्श—डॉ० संजय कुमार 1318
राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन:
राजस्थान राज्य के संदर्भ में—डॉ० अमित कुमार सिंह 1325
आलोचक अज्ञेय के निबंधों में छिपा आलोक—डॉ० अनिल कुमार 1329
सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा—डॉ० कुमार आलोक रंजन 1332
मैथिली महाकाव्य में सीता—डॉ० रीता कुमारी 1340
रहीम की नीति और भक्ति के दोहे और श्रीकृष्ण—डॉ० शालिनी मिश्रा 1344
बंजर एवं चारागाह भूमि-एक भौगोलिक अध्ययन—डॉ० संजय कुमार 1348
मानवाधिकार और हमारा समाज—डॉ० संतोष कुमार राय 1352
गाँधी जी और उनके रचनात्मक कार्यक्रम—डॉ० सोनी कुमारी 1355
भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक समस्याएँ—डॉ० सुमन कुमार पोद्दार 1359
कुन्दमाला नाटक में रसों की अवस्थिति: एक विश्लेषण—डॉ० विश्वजीत 1365
भवभूतिनाट्यसाहित्ये लोकधर्म:—डॉ० गीता झा 1369
नेपाली के गीतों में उनकी प्रगतिशील-चेतना—डॉ० आर्य सिन्धु 1372
जाट राजा सूरजमल और प्रथम अफगान अभियान: एक ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० कुलराज व्यास 1376
हिन्दी कथा साहित्य में किन्नरविमर्श की प्रासंगिकता—अजीत कुमार सिंह 1379
भारतीय संस्कृति में नाट्यकला: एक अध्ययन—कृष्ण कुमार 1383
विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र—कुमार गौरव 1389
वेदों के द्वारा मानव कल्याण—सुनिता सारस्वत 1393
उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र—राजपाल सिंह यादव 1397
शिक्षक ही समाज का शिल्पकार और मार्गदर्शक—डॉ० परमानन्द त्रिपाठी 1400
ग्रामिण महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, स्वयं सहायता समूह एवं संवैधानिक सुरक्षा
—प्रगति ओझा; डॉ० विजय लक्ष्मी 1404
नगरीय परिवार में पारिवारिक विलगाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० शम्भू कुमार साहु 1408

दृष्टिकोण

बिहार में असहयोग आंदोलन और शिक्षा–रश्मि रूपम	1411
राष्ट्रवाद के विकास में पंडित मोतीलाल नेहरू का योगदान–डॉ० रणजीत कुमार	1415
भारत में गरीबी के बदलते आयाम : एक अध्ययन–राकेश कुमार	1420
बदलते मूल्य एवं भारतीय दर्शन–सत्यप्रकाश तिवारी	1425
स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षणिक दर्शन के वर्तमान सन्दर्भ में समालोचनात्मक अध्ययन–शालू तिवारी	1429
आजाद हिन्द फौज: नेताजी, अंतर्राष्ट्रीय संबंध और सहयोग–पूजा शर्मा; डॉ० डी०एन० खुटे	1432
पत्रकारिता, राष्ट्रवाद तथा पंडित मोतीलाल नेहरू–डॉ० रणजीत कुमार	1439
जयप्रकाश नारायण और समाजवाद–डॉ० कुमार आलोक रंजन	1445
मोदलता की रचनाओं में व्यक्त दार्शनिकता का अध्ययन–डॉ० दिलीप कुमार झा	1451
नैषधीयचरितम् महाकाव्य में नल के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० अमृत कौशल	1459
भीड़ का मनोविज्ञान: हिंसा, हिंसक भीड़ और सोशल मीडिया–डॉ० मनोज कुमार सिंह	1464
अज्ञेय की साहित्यिक अवधारणाएँ–डॉ० अनिल कुमार	1467
संसदीय व्यवस्था, हिन्द स्वराज और गाँधी–डॉ० कुमारी विजेता	1471
गांधी का राज्य–डॉ० सुनील कुमार	1480
राजनीति में भ्रष्टाचार–डॉ० प्रज्ञा कुमारी	1484
बिहार में असहयोग आंदोलन और किसान: सन्दर्भ और मुद्दे–डॉ० नेहा कुमारी	1489
गुप्तकालीन विदेशी व्यापार: एक विश्लेषण–डॉ० रेखा चौधरी	1493
सविनय अवज्ञा आंदोलन और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद–डॉ० विवेक कुमार	1498
समस्तीपुर शहरी क्षेत्र में गली व फुटपाथ के 10-14 वर्ष के बच्चों की संवेगात्मक स्थिति का एक अध्ययन–डॉ० पूनम कुमारी	1503
समकालीन हिन्दी कहानी की मूल प्रवृत्तियाँ–डॉ० विनय कुमार	1507
भारतीय दार्शनिक परंपरा में पर्यावरण–डॉ० बिरेन्द्र कुमार सिंह	1510
नैषधीयचरितम् महाकाव्य में प्रयुक्त विशिष्ट क्रियापद–डॉ० विवेक शर्मा	1513
अशोक एक महान सम्राट (268-232 B.C.)–डॉ० शिवेंदु आलोक	1522
दलितविमर्श: डॉ. अंबेडकर एक अध्ययन–डॉ० बाबुल कुमार	1528
बिहार की गोंड जनजाति पर आधुनिकीकरण का प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० राकेश कुमार गोंड	1533
मधुबनी (मिथिला) से प्राप्त सूर्य की प्राचीन मूर्तियाँ: एक अध्ययन–डॉ० अखिलेश कुमार सिंह	1539
बाँका जिला में ग्रामीण बस्तियों का चरणबद्ध उद्भव–डॉ० मनोज कुमार सुमन	1542
श्रमिक संत कवि रविदास : सामाजिक चेतना के प्रणेता–डॉ० रवि कुमार	1548
पिछड़ी जाति के प्रवासी मजदूरों में बेरोजगारी की समस्या एवं सामाधान (गया जिले के ग्रामीण क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० संध्या कुमारी	1553

बिहार के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व की प्रासंगिकता–संजीत कुमार 1556

बौद्ध धर्म में भिक्षु एवं भिक्षुणी की भूमिका: एक अध्ययन–डॉ० उपेन्द्र कुमार 1559

नगरीय प्रसार: पटना नगर के संदर्भ में–डॉ० विकाश महतो 1563

प्राचीन बिहार में प्रचलित रोग एवं उनके उपचार: एक अध्ययन–डिम्पल 1568

नालंदा के प्रमुख अभिलेख और उसके विविध आयाम–डॉ० कृपा शंकर प्रसाद 1575

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में परिवार की टूटती-बनती अवधारणा–डॉ० प्रेम कुमार 1580

प्राचीन बौद्ध युगीन वाणिज्य एवं व्यापारिक केन्द्र के रूप में चम्पा का योगदान–डॉ० प्रीति कुमारी 1586

निर्गुणधारा के कवियों की स्त्री-संबंधी धारणाएँ–राजेश कुमार राजन 1590

कोरोना काल और एचआईवी/एड्स मरीजों की समस्याओं का अध्ययन–डॉ० अरूणा कुमारी 1595

वैदिककालीन आर्थिक जीवन : एक अध्ययन–राजेश कुमार सिंह 1598

ललितक उपन्यासमे चित्रित समाज–डॉ० गोपाल कुमार 1601

मिथिला का धार्मिक जीवन–डॉ० गुड़िया कुमारी 1606

कौटिल्य का कण्टक शोधन न्यायालय: एक अध्ययन–राम अवधेश कुमार यादव 1609

बिरसा मुंडा-एक करिश्माई विद्रोही और आदिवासी जननायक–बासुदेव शाह 1614

मध्यकालीन इतिहास में महिलाओ का स्थान–डॉ० मंजुली कुमारी 1617

संस्कृत साहित्य में परमात्मा की अवधारणा–डॉ० इंदु कुमारी 1624

बुढ़ापा और स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी आवश्यकताएं–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 1627

नई शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० जया 1631

व्यापार पूर्वानुमान : अर्थ, परिभाषा, प्रकार, आवश्यकता–डॉ० राकेश कुमार 1636

भारत छोड़ों आंदोलन का बिहार के समाचार पत्रों में अंकन–डॉ० अंगुरी बेगम 1639

भारतीय राजनीति में क्षेत्रियतावाद एवं भाषा का प्रश्न : एक अध्ययन–डॉ० सुधीर कुमार 1646

मातृ-शिशु-मृत्यु के कारण, निदान एवं इससे सम्बद्ध कल्याणकारी योजनाएं–डॉ० अस्मिता सिंह 1650

भारत छोड़ों आंदोलन: पृष्ठभूमि, प्रकृति एवं प्रभाव–डॉ० संजीव कुमार 1656

उपन्यासकार राजेन्द्र यादव–सुशील कुमार मंडल 1662

विद्यापति-पदावली में लोक-चेतना और भक्ति–डॉ० शोभा कुमारी 1664

मित्रो-मरजानी : स्त्री-संवेदना का उत्कर्ष–रूपाली यादव 1668

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-चेतना–डॉ० कुमारी निश्चय 1672

निराला और भारतीय संस्कृति–डॉ० शर्मिला कुमारी 1676

भारतीय सामन्तवाद की पृष्ठभूमि की तैयारी में प्रारंभिक भक्ति आंदोलन की भूमिका–सुरजीत कुमार सिंह 1679

भारत विभाजन पर आधारित हिंदी उपन्यास: एक अवलोकन–शरिफुज जामान; डॉ० रीतामणि वैश्य 1682

प्रेमन्द के साहित्य में जातीय एवं धार्मिक शोषण का स्वरूप–अंकिता कुमारी 1687

दृष्टिकोण

भारतेन्दु और उनका युग–भोला प्रसाद यादव 1690

आधुनिक भारत, वैश्विक सम्बन्ध और सांस्कृतिक बदलाव–डॉ० सुनील कुमार 1695

शैलेंद्र शंकर के गीतों में जनक्रांति का उद्घघोष–डॉ० मनीषा मिश्रा 1698

श्रम के सौन्दर्य की अवधारणा और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य–डॉ० कंचन गुप्ता 1702

उत्तर बिहार में बाढ़ से होने वाले क्षति का भौगोलिक अध्ययन–अमिता चन्दन 1707

अर्थशास्त्र मे वर्णित अंतरराज्यीय संबंध एवं गुप्तचर व्यवस्था–शिव कुमार सिंह 1712

बिहार में उद्योग और परिस्थितियां–डॉ० नवीन कुमार 1715

श्रीमदभगवतपुराण में ब्रह्मतत्त्व का अध्ययन–डॉ० वेद प्रकाश मिश्र; मधुमिता धाड.गडामाझी 1717

नवतुरियाक पृष्ठभूमिमे पारो–दीपक कुमार पटेल 1720

आधुनिक युग में सामाजिक पुनर्जागरण की प्रक्रिया–डॉ० प्रदीप कुमार सिंह 1724

वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना–डॉ० विजय शंकर मिश्र 1735

समाजवादी परंपरा के अनुसार राज्य के स्वरूप के सिद्धांत–डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव 1738

राज्य का औचित्य और उद्देश्य–डॉ० कुमार रंजीत 1742

राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा भागीदारी के स्वरूप–डॉ० सरिता कुमारी 1746

प्रजातान्त्रिक भागीदारी–एक विवेचना–डॉ० सीता कुमारी 1749

उन्माद–सोनल कुमारी 1756

केन्द्र और राज्यों में बहुदलीय सरकारें–चंद्र विजय प्रकाश यादव 1760

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का लिंगभेद के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन –अजय कुमार यादव; डॉ० आशाराम 1765

शिक्षक एवं भाषा सृजनशीलता का अध्ययन–प्रज्ञा सिंह 1772

गाँधी दर्शन में ग्रामराज्य–दीक्षा 1777

हिन्दी साहित्य में सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में राष्ट्रीय भावना–डॉ० आर०पी० वर्मा 1780

शैक्षिक पर्यवेक्षण, निरीक्षण, परिवीक्षण एवं मूल्यांकन के रूप में प्राचार्य की भूमिका–रत्नेश कुमार जैन 1783

गाँधीवादी अहिंसक विचारधारा और विश्वशान्ति–डॉ० अनुजा रानी गर्ग 1793

सूफी मत: परम्परा एवं सिद्धान्त–डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी 1798

ममता कालिया का उपन्यास 'नरक दर नरक': समसामयिक सामाजिक सन्दर्भों का दस्तावेज–डॉ० सुधा 1801

ममता कालिया के उपन्यासों में स्त्रीवादी आन्दोलन की अनुगूँज–डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय 1805

विरह वेदना की कवयित्री- महादेवी वर्मा–डॉ० रश्मि कुमारी 1811

ममता कालिया के कथा - साहित्य में नारी-चित्रण–डॉ० नम्रता जैन 1815

तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–सुरेन्द्र कुमार; प्रो॰ (डॉ॰) आरती श्योकन्द 1822

गणेश शंकर विद्यार्थी - पत्रकारिता और स्वाधीनता संघर्ष–डॉ॰ अनीता प्रकाश 1826

व्यावसायिक शिक्षा और महात्मा गांधी–डॉ॰ बृजेश कुमार पाण्डेय 1830

इंटरनेट पर गोपनीयता का अधिकार: साइबर खतरों के संदर्भ में एक अध्ययन–दीपेन्द्र नाथ पाठक 1834

पंचायती राज व्यवस्था में उभरता ग्रामीण नेतृत्व: जिला गाजियाबाद के विशेष संदर्भ में–अमित कुमार 1841

पंचायती राज व्यवस्था में उभरता ग्रामीण नेतृत्व: जिला गाजियाबाद का सांख्यिकीय अध्ययन–अमित कुमार 1847

जन आंदोलन के कवि: नागार्जुन–डॉ॰ ललिता कौशल 1854

राम की शक्ति पूजा: एक सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक प्रासंगिक रचना–डॉ॰ रामलिंग भोसले 1860

'जंगल के फूल': संपोषित विकास की सहज दिशा–डॉ॰ सुजाता चतुर्वेदी 1864

लिंगभेद के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण: एक वर्णनात्मक अध्ययन–प्रो॰ पी॰ एस॰ त्यागी; सतीश बाबू 1871

ग्रामीण विकास कार्यक्रम और इंदिरा आवास योजना का योगदान: भरतपुर जिले के सन्दर्भ में–नवीन कुमार पहाड़िया 1877

ग्रामिण क्षेत्र के विविध वर्ग की महिलाओं का शिक्षा में सहभागिता - धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन–संजय बी॰ घोडसे 1883

पर्यटन उद्योग में रोजगार के अवसर - एक अध्ययन–डॉ॰ विजय ग्रेवाल; दीपिका यादव 1888

कविता के प्रतिमान और रामविलास शर्मा–आलोक कुमार सिंह 1892

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन–बृजेश कुमार यादव; डॉ॰ बीना सिंह 1896

वर्तमान युग में योग का महत्त्व–डॉ॰ रीटा खन्ना 1900

स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य में सुधार : एक सांकेतिक अध्ययन–शिवानी 1906

हरियाणा का साहित्य और 'महाराणा प्रताप'–डॉ॰ अनु शर्मा 1916

वर्तमान विश्व परिदृश्य में गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता–डॉ॰ विवेक कुमार राय 1923

महबुलिया: बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति–अमित कुमार सिंह 1928

प्रगतिशीलता के संदर्भ में शमशेर बहादुर सिंह काव्य–डॉ॰ वाचस्पति यादव 1931

संसदीय लोक लेखा समिति की कार्यप्रणाली: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–रजनी; प्रो॰ (डॉ॰) अंजना गर्ग 1938

स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न–डॉ॰ मनीषा साव 1943

भारत में तेजी से बढ़ रही ई-कॉमर्स प्रवृत्तियों का अवलोकन–डॉ॰ वीरेन्द्र सिंह; डॉ॰ संदीप श्रीवास्तव 1945

दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण के उपाय–डॉ॰ आरती गहरवार 1951

माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन–अमित कुमार; डॉ॰ श्रीमती अनुभा शुक्ला 1954

वैश्वीकरण और भूमिहीन ग्रामीण मजदूर: एक सामाजिक अध्ययन–डॉ॰ प्रेमलता 1964

दृष्टिकोण

लोकसाहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण–पूनम रानी; डॉ० सुरेश कड़वासरा	1969
जनमानस के जीवन में बदलाव लाते सामुदायिक रेडियो–हर्षवर्धन पाण्डे	1975
महाकवि कल्हण कृत राजतरङ्गिणी में शान्त रस की स्थिति–डॉ० शालिनी अग्रवाल	1983
भारतीय विदेश नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की रणनीति–अभिषेक कुमार	1989
भारत में सामाजिक न्याय: एक अवलोकन–अजीत कुमार शर्मा	1993
हिंदी एवं कन्नड़ नाटकों का अवलोकन–डॉ० श्रीधर हेगडे; श्रीमती सविता पी०पी०	1998
पंत के काव्य में विविध दर्शन का प्रभाव–गीता पोस्ते	2004
मीडिया का वर्तमान स्वरूप : दशा एवं दिशा–डॉ० निकेता; प्रीति देवी	2011
देवदासी प्रथा: उत्तराखण्ड में महिलाओं के शोषण की दासता का ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० शिवानी रावत	2015
सिन्धु सभ्यता का पतन–सुनील कुमार	2020
प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित आश्रम व्यवस्था और उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता–विश्वजीत भारद्वाज	2024
भारत में दलबदल की राजनीति और दलबदल कानून: एक अध्ययन–डॉ० यतेन्द्र सिंह	2028
भारत में उच्च शिक्षा का प्रसार और सूचना प्रौद्योगिकी–डॉ० अल्पना राय	2033
महादेवी वर्मा की कविता और स्त्री विमर्श–डॉ० नगीना बानों	2037
गुड़गाँव में बढ़ते अपराध: एक अध्ययन–लक्ष्मी शर्मा; ले०. डा०. मीनाक्षी लोहानी	2042
मथुरा में जैन प्रतिमा का निर्माण–रवींद्र सिंह	2046
प्रवास और अवैध प्रवास भारत के लिए समस्या–डॉ० सच्चिदा नन्द राम	2050
ईरान और सऊदी अरब प्रतिद्वंदिता–डॉ० अरूण कुमार दीक्षित	2054
भारत में आर्थिक विकास, योजना और सामाजिक परिवर्तन–प्रा. डॉ० एल. जी. पाटील	2058
रोहिणी अग्रवाल के कहानी संग्रह - "आओ माँ हम परी हो जाएँ" में पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री प्रश्न–रश्मि	2061
हिंदी उपन्यास: साम्प्रदायिकता और समभाव–कुसुम वर्मा	2064
यशपाल की साहित्यिक मान्यताएँ–डॉ० अंजू बाला	2069
21 वीं सदी में महिलाओं का समाज में दृष्टिकोण–डॉ० रीना डोगरा	2077
आधुनिक युग में विश्व के पर्यावरण अवबोध एवं गुणवत्ता–डॉ० शीशराम यादव; डॉ० ललिता यादव	2080
अवध के अन्तिम शासक बादशाह वाजिद अली शाह एवं उनका शासन: एक दृष्टि–डॉ० अनूप पांडे	2082
भारतीय न्यायपालिका और पर्यावरण का संरक्षण–सुनीता महतो	2086
गोलमेज सम्मेलन एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन–डॉ० बिन्दु	2092
भारत में महिलाओं की विधिक प्रास्थिति–डॉ० राजश्री सक्सेना; परमानन्द	2097
शैलेश मटियानी की कहानियों में संघर्ष चेतना–डॉ० हिमांशु कुमार	2101

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन: एक अवलोकन–राहुल दूबे 2105

अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित दलित काव्य–संगीता; डॉ० यशवन्त वीरोदय 2110

मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में बढ़ता प्रदूषण का प्रकोप: उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में–हंसा वर्मा; डॉ० सरोज वर्मा 2116

वनस्पति और वन्य जन्तुओं के विकास का अध्ययन: कुमाऊँ हिमालय के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ के सन्दर्भ में–बबीता भट्ट 2121

शिवमंगल सिंह सुमन के काव्य में वर्णित सपूतों एवं संस्कृति पुरूषों का गौरव गान–मुकेश कुमारी 2129

भारत में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विकास हेतू प्रमुख संवैधानिक व्यवस्थाएँ–आशा रानी 2135

भारत में महिला विकास में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की भूमिका का विश्लेषण–मनीषा 2141

आचार्य देवकीनंदन भट्ट विरचित गंगाशतकम् में रस–योजना–नीलम 2144

समाज वैज्ञानिक शोध में सूचना या तथ्यों के प्रकार और स्त्रोत–डॉ० हरबीर सिंह डागुर 2148

हरियाणा में लिंगानुपात और साक्षरता दर के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति–संदीप सेन 2155

भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया में महिला भागीदारी–डॉ० अनिल कुमार पारीक 2160

संथाल विद्रोह में महिलाओं का योगदान: संक्षिप्त अवलोकन–डॉ० स्वर्ण मणि 2166

भारत और सिंगापुर के सांस्कृतिक संबंधों में सामाजिक - आर्थिक संगठनों का योगदान
–आशा कुमारी सिन्हा; डॉ० सुनीता शर्मा 2169

वर्तमान भारतीय विधि में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा–अरविन्द कुमार गुप्ता 2176

भारत में शरणार्थियों की समस्या का राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव–डॉ० केवल कृष्ण 2180

भारत में ग्रामीण विकास: एक विश्लेषण–रवि शंकर दयाल 2185

बाबा साहेब अम्बेडकर और भारत का विभाजन–डॉ० पूनम 2191

न्यायिक सक्रियता अवधारणा–डॉ० मुकेश कुमार मालवीय; रणविजय सिंह 2195

चरित्रोपाख्यान: साहित्यिक सौन्दर्य–डॉ० ज्योति कौर 2205

आतंकवाद के कारक के रूप में भूमंडलीकरण: एक अवलोकन–डॉ० आलोक वर्मा 2213

विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर जीवन शैली के प्रभाव का अध्ययन–प्रोफसर रमाकांती साहू 2217

भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज: समस्याएँ और चुनौतियाँ–डॉ० अनिल कुमार यादव 2222

भीष्म साहनी की कहानियों में सामाजिक चित्रण–सुमन्त कुमार 2230

अग्निपुराण में प्रतिपादित लोकोपयोगी सामग्री–डॉ० बृजेन्द्र सिंह गुर्जर 2235

शारीरिक शिक्षा में योग शिक्षा का महत्व–डॉ० प्रेम सिंह मीणा 2239

मुरादाबाद शहर में माध्यमिक स्तर पर शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की आध्यात्मिकता
के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० कल्पना जैन 2243

नागार्जुन की काव्यगत विशेषताएँ–प्रो० प्रदीप श्रीधर 2247

भूमंडलीकरण के दौर में नारी की स्थिति–डॉ० विनय कुमार 2251

भारत निर्माण योजना से हुए सामाजिक परिवर्तन - अध्ययन–विवेकानन्द 2253

स्त्री मुक्ति का स्वप्न और ज्योतिबा फूले–सरिता 2256

रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षिक चिंतन एवं इसकी वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता—डॉ० अग्निदेव 2259
कृष्ण काव्य के अप्रतिम सर्जक सूरदास और उनका दार्शनिक सिद्धांत—निरंजन सहाय 2263
बंगाल-विभाजन विरोधी आंदोलन : आधुनिक भारतीय इतिहास मे नवीन चेतना का उदय—डॉ० जाकिर हुसैन 2269
राही मासूम रजा के उपन्यासों में नारी समस्याएँ—डॉ० चतुर सिंह 2276
संस्कृत नाटिकाओं की कथावस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन—डॉ० आशा सिंह रावत 2281
अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत जानकीजीवनम् महाकाव्य में रस-योजना—डॉ० बाबूलाल मीना 2285
बिहार की राजनीति में महिलाओं की भूमिका (1952 से 2014 तक) एक अध्ययन—डॉ० अनिल कुमार सिंह 2290
भारतीय जन नाट्य संघ और नेमिचंद्र जैन—डॉ० विनय कुमार 2293
प्रधानमंत्री जन-धन योजना : वित्तीय समावेशन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम—डॉ० अनिल रायपुरिया 2298
पंजाब-हरियाणा में फसल अवशेषों का दहन: एक बढ़ती पर्यावरणीय समस्या—अशोक कुमार 2303
महिला सशक्तीकरण में जनसंचार की भूमिका—उमेश सिंह 2306
शिक्षा और समायोजन—विकास सिंह 2309
संस्कृत नाटको में प्रतिबिम्बित वर्ण-व्यवस्था—डॉ० सुमित कुमार मंडन 2312
शिशुपालवधम्: एक राजनैतिक अवलोकन—पिंकी निशा; डॉ० किरणमाला 2318
अपराध और दण्ड के सिद्धान्त—हरिओम गुप्ता 2321
हिंदी दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदनानाएं: एक अध्ययन—भानु प्रताप 2324
उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण व शिक्षा—आरती कनौजिया 2329
प्राथमिक शिक्षा के अधिकार के संबंध में संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान: नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के विशेष सदर्भ में—उग्रसेन वर्मा 2334
दलित जीवन की दास्ताँ 'मुक्तिपर्व'—अमनदीप कौर 2341
भारत की सामाजिक समस्यायें—डॉ० सविता नागर 2344
पाटीदार नो इतिहास—पटेल हसमुखभाई भीखाभाई 2354
बिहार में आरक्षण लागू होने के बाद सामाजिक और राजनीतिक पहलूओं पर क्रांतिकारी परिवर्तन: एक अध्ययन—प्रदीप कुमार 2357
नगद भुगतान और सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० रेनू सिंह राणा 2360
पंचायती राज एवं अफसरतंत्र—शालिनी सिंह 2368
प्राचीन भारतीय समाज में परिवार का आदर्शरूप: वर्तमान की आवश्यकता—गोपाल लाल सालवी 2371
भारतीय समाज और संस्कृति में आश्रम व्यवस्था: स्वरूप एवं महत्व—डॉ० ममता सिंघल 2375
मध्यवर्गीय समाज की संवेदना—सत्यप्रकाश 2379
अभिराजराजेन्द्रविरचितम् वामनावतरणम् के आलोक में नारी-विमर्श—रोहणी तिवारी; डॉ० सुकेश शर्मा 2382
राजपूतों का उद्भव एवं विकास—पंकज कुमार गुप्ता 2388
रघुवीर सहाय की कहानियाँ: एक सम्पूर्ण आदमी की तलाश—अनुज्ञा यादव 2392
राष्ट्रीय उग्रवाद आन्दोलन में विपिनचन्द्र पाल का योगदान—डॉ० सिद्धेश्वर नारायण उपाध्याय 2395
जायसी के रहस्यवाद का मूल तत्व प्रेम—डॉ० वेदवती सिंह 2398
गाँधी जी के नई तालीम का अध्ययन करना—संजीव कुमार शुक्ल; डॉ० कल्पना सिंह 2402

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन का अध्ययन
—निमेश कुमार सिंह; डॉ० निशात परवीन 2411

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्रों और छात्राओं की शैक्षिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन
—पशुपति नाथ सिंह; डॉ० कल्पना सिंह 2419

भारत भूटान सम्बन्ध: एक दृष्टि—रामपत 2427

जिला भोजपुर में साक्षरता दर के परिवर्तनशील स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण—अनिल कुमार शर्मा 2431

प्राचीन भारत में राज्य का स्वरूप एवं प्रकृति—प्रभु दयाल जयंत 2437

हरियाणा के प्रसिद्ध सांगी चंद्रलाल भाट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डॉ० मुकेश; रेखा 2448

डॉ० बाबासाहेब के शिक्षाप्रद विचार—डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर 2451

शिक्षा में ईश्वर भाई पटेल समिति की भूमिका—डॉ० हरजिंदर कौर 2454

जैन परम्परा में आध्यात्मिक शिक्षा—डॉ० दुधनाथ चौधरी 2459

उच्च-माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया एवं शैक्षिक उपलब्धि पर ऑनलाइन शिक्षा का प्रभाव
—तुलसीराम; डॉ० चंद्रकांत शर्मा 2464

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय रूढ़-मान्यताओं की चाक में पिसती स्त्री—शिल्पी यादव 2470

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में शासन प्रणाली का स्वरूप—डॉ० गौरव कुमार 2474

प्राचीन काल में शैक्षणिक प्रणाली: बिहार के संदर्भ में—डॉ० राजीव कुमार 2481

अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' का विशेष अध्ययन—प्रीति प्रकाश 2485

ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव: एक अध्ययन—डॉ० सौम्या शंकर; रितेश सिंह 2492

पर्यावरणीय राजनीति: कुछ अवधारणात्मक मुद्दे—निखिल कुमार 2502

हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग के समक्ष उभरती चुनौतियाँ—कृष्ण कुमार 2507

गांधीजी के आर्थिक विचार आज के संदर्भ में—नीरु यादव 2512

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था—डॉ० राजीव कुमार 2515

स्वामी विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारणा—डॉ. अनुराधा जायसवाल 2519

बिहार में महात्मा गाँधी (1917)—डॉ. जीतेन्द्र प्रसाद 2525

अधीतकालीन अर्थ संयोजन (ई.पू. 600—ई.पू. 200 तक)—सुनील कुमार 2530

ब्राह्मणवाद के विरूद्ध प्राचीन भारत में विद्रोह एवं बौद्ध धर्म का उत्थान—डॉ. शेखर सिंह 2539

उत्तर वैदिककालीन सामाजिक संरचना—डॉ. सपना वर्मा 2544

प्रथम विश्व युद्ध तक भारत में आर्थिक चिंतन—डॉ. राम किशोर सिंह 2549

भारतीय राजनीति में नेहरू का उदय—डॉ. अभय कुमार1 एवं सुबोध कुमार2 2554

मगध साम्राज्य का उत्थान एवं उस काल की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति—इंदु शेखर नारायण सिंह 2559

मौर्यों के केंद्रीय शासन का संगठन—पुष्पा दासगुप्ता 2565

मुगल अर्थव्यवस्था की सीमाऐं—रेणु कुमारी 2570

मौर्य शासन में राजकीय आय-व्यय का लेखा-जोखा—डॉ. सुनील कुमार 2574

हिन्दी कविता पर लोक साहित्य का प्रभाव—प्रवीण कुमारी 2579

दृष्टिकोण

'कफन' कहानी : समीक्षा–डॉ० मीना कुमारी 2582

हिन्दी साहित्य में बुद्ध की प्रासंगिकता–डॉ० वर्षा रानी 2585

छत्तीसगढ़ शासन की नरवा गरूवा, घुरूवा और बाड़ी योजना का राज्य के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में योगदान का एक राजनैतिक अध्ययन–डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी; आकांक्षा साहू 2589

उरांव जनजाति के युवाओं में बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ- जिला-जशपुर) –डॉ० अनिता कुर्रे; खोगेन्द्र साहू 2593

समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में)–डॉ० अनिता कुर्रे; आशुकृत कुमार साहू 2598

पंचायती राज व्यवस्था में जनसमस्या के निवारण में ग्राम सभा की भूमिका का अध्ययन (दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में) –डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर; डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी; सुभाष कुमार सोनी 2603

छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत में महिला आरक्षण के प्रभाव का एक राजनैतिक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विषेष संदर्भ में)–डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी; खोरबहरा प्रसाद 2607

दुर्ग जिले के अहिवारा विधान सभा क्षेत्र के विकास में अनुसूचित जाति के जनप्रतिनिधियों के योगदान का राजनीतिक अध्ययन–डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी; संदीप कुमार 2611

मिथिलाभाषा रामायणमे समसामयिकता चित्रण–डॉ० अरूण कुमार ठाकुर 2615

प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली और उच्च शिक्षा विभाग कर्मचारी संतुष्टि पर इसका प्रभाव –डॉ० आशीष कुमार शुक्ला; अनुज कुमार सिंह 2620

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान में चुनौतियां (बेरोजगारी के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० शकुन्तला मीना 2625

हिन्दुओं तथा मुसलमानों के प्रति अंग्रेजी शासन की नीति (प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (1857) के सन्दर्भ में) –डॉ० भूप सिंह बल्हारा 2632

मार्क्सवाद पर राम मनोहर लोहिया के विचार: एक अन्वेषण–डॉ० शक्ति सिंह शेखावत 2635

भारत में खादी एवं ग्रामोद्योग: ऐतिहासिक परिपेक्ष्य–डॉ० पंकज गुप्ता 2640

अंगदेश का इतिहास–डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार 2648

भारत - नेपाल के राजनैतिक और व्यापारिक संबंधों पर चीन का प्रभाव: एक विश्लेषण–सिम्पी कुमारी गुप्ता 2651

जंभवाणी और अल्पाहार–प्रवीण कुमार रामावत 2656

हिंदी साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति–डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय 2658

वर्तमान परिवेश में गुणवत्तापूर्ण उच्च-शिक्षा की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान: एक आकलन–डॉ० अरविन्द कुमार सिंह 2663

भारत के कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों में उपयोग की जाने वाली प्रमुख डेटाबेस सेवाएँ–डॉ० कन्हैया लाल शर्मा 2670

प्रेमचंद युगीन राजनीतिक परिस्थितियाँ–डॉ० सुमित्रा कुमारी 2675

यशपाल की कहानियों में नारी संचेतना : एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० हेमन्त पाल घृतलहरे 2679

संत कबीर कृतियों एवं संगीत का अंतर्सम्बंध–राकेश; प्रो० (डॉ०) विमल 2683

"गणेश शंकर विद्यार्थी की धार्मिक व सांस्कृतिक चेतना: एक मूल्यांकन"–आदित्य पाठक 2686

गीतांजली 'श्री' कृत 'रेत समाधि' उपन्यास में नारी संघर्ष की सामाजिक चेतना–राखी 2689

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में त्रिलोचन, धूमिल और रविंद्र कालिया–अनुपमा; प्रो० विजय कुमार 2695

आधुनिक कहानियों में नवीन अवधारणाओं का परिवेश–डॉ० राजश्री पी. मोरे 2698

दरभंगा सदर प्रखण्ड: अनुसूचित जातीय जनांकिकी–डॉ० रतन कुमार झा; मृत्युंजय कुमार 2700
भारत में ई-शासन: अवसर एवं चुनौतियाँ–ऋतेश भारद्वाज एवं दिव्या 2706
उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर अध्ययन –डॉ० रेखा नरेन्द्र जिभकाटे नवखरे; हेमन्त कुमार खटकर 2712
कालेजियम प्रणाली और न्यायिक सुधार–डॉ० श्रीमती माया यादव; ऋषि कुमार चन्द्रा 2717
सौन्दर्य मीमांसा की भारतीय अवधारणा–डॉ० लता शर्मा 2724
अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता–डॉ० अमित कुमार सिंह कुशवाहा 2727
जनपद, जनपदीयता और साहित्य–डॉ० रामाशंकर कुशवाहा 2731
उपेन्द्र दोषीक मनोज दासक कथा ओ कहिनीक विश्लेषण–भोगेन्द्र प्रसाद सिंह 2735
धीरेश्वर झा धीरेन्द्रक उपन्यासमे स्त्री विमर्श–रमण जी 2738
समान नागरिक संहिता: एक वैज्ञानिक अध्ययन–ऋषि कुमार चन्द्रा; डॉ० माया यादव 2740
मानस में चिन्तन–डॉ० हीरालाल शर्मा 2746
स्वास्थ्य पत्रकारिता की आवश्यकता एवं चुनौतियों का अध्ययन–डॉ० अमृत कुमार 2748
महाभारत के शान्ति पर्व में वैराग्य–रणधीर सिंह 2752
आधुनिक गीतकारों की साहित्य दृष्टि–डॉ० आरती प्रसाद 2756
पर्यावरणीय शिक्षा के प्रचार, प्रसार में अध्यापक की भूमिका–कुसुम देवी 2759
पूर्व माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिरुचि में समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन –संजय कुमार वर्मा 2768
मगरमुंहा' उपन्यास में आंतरिक व बाह्य जगत के संघर्ष की अनेक परतों के मध्य व्यक्ति और समाज के संबंधों की पड़ताल–डॉ० बिभा कुमारी 2773
भगवद्गीता का मानवीय दर्शन: एक नई दृष्टि–डॉ० विश्वामित्र पांडेय 2776
वर्तमान परिवेश में मूल्य एवं मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता: शिक्षा एवं शिक्षक के संदर्भ में–ज्योति बाला राय 2781
छत्तीसगढ़ के शैल चित्रों की प्रासंगिकता- ऐतिहासिक दृष्टिकोण–डॉ० देवनारायण बंजारे 2785
नागरिक समाज का भारतीय लोकतंत्र में महत्व एवं योगदान–राखी भारती; रामकुमारी 2788
भ्रष्टाचार- एक समस्या: समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० दिलीप कुमार सोनी 2792
समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की भूमिका–अशोक कुमार 2800
हिंदी ग़ज़ल-लेखन परम्परा और बिहार के ग़ज़लकार–अविनाश भारती; प्रो० राजेन्द्र साह 2803
भारतीय राजनीतिक संस्कृति पर सोशल मीडिया का प्रभाव–बिजेन्द्र कुमार 2809
श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये अलंकारतत्त्वविमर्श:–सुनीलकुमार: 2814
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता–रमेश कुमार गुप्ता 2818
उत्तम अभिशासन तथा उसके समक्ष चुनौतियाँ–डॉ० आभा तिवारी 2822
वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कालिदास एवं भवभूति की नाट्यसूक्तियों की प्रासंगिकता–डॉ० श्याम बाबू शर्मा 2826
स्त्री मुक्ति आन्दोलन और दलित नारी चिंतन: एक विश्लेषण–डॉ० देवेंद्र शुक्ल 2830
राष्ट्रवाद: भारतीय संदर्भ–राकेश कुमार 2839

दृष्टिकोण

मानव स्वास्थ्य में एनीमिया का महत्व–रूमा कुमारी 2842

'महाप्रस्थान' में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना–डॉ० धर्मा रावत 2850

पक्षियों का प्रवास एक विकट समस्या: एक विश्लेषण–तबस्सुम आरा 2854

स्वतंत्रता संग्राम और डॉ. हेडगेवार–राकेश कुमार सिंह 2860

हिन्दी कविता में दलित मर्म: एक विश्लेषण–डॉ० अनिता 2867

चेखव की कहानियाँ: तात्कालिकता और शाश्वतता का द्वंद्व–रूपाली सिन्हा 2870

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण–डॉ० रत्नेश कुमार सिंह 2874

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी स्वर–डॉ० प्रणव कुमार ठाकुर 2879

महिलाओं के प्रति हिंसा एवं न्यायालय की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० प्रवीण कुमार मिश्र 2883

आधुनिक जन-जीवन में सन्त काव्य की प्रासंगिकता–डॉ० सुनीता रानी 2887

उद्भिज्ज-परिषत् में वर्णित "अश्वत्थो हृषीकेश"–डॉ० नीलम गौड़ 2891

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी का स्थान–डॉ० राजकुमार एस. नाईक 2896

भारत में कृषि विपणन की समस्यायें एवं उनका समाधान: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० श्याम कुमार मधुकर 2898

मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में प्रेम: शोषण का एक माध्यम–डॉ० अपराजिता राय 2906

प्रवासी मजदूरों के पलायनात्मक चुनौतियों और प्राप्त अवसरों का अन्वेणात्मक पर्यालोचन–डॉ० शिवेन्द्र सिंह 2914

पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों में आर्थिक समावेशन–डॉ० पंकज कुमार सिंह 2919

संस्कृतवाङ्मय पर्यावरण चेतना: एक विश्लेषण–अनुज कुमार 2923

व्याहृति और महाव्याहृति के प्रतिपादन में सवितृ ऋक् की भूमिका–रोहित 2929

मूलाधार चक्र विमर्श: प्राचीन संस्कृत साहित्य के संदर्भ में–पुरूषोत्तम पाण्डेय 2933

महाभारतस्य शान्तिपर्वणि समुपलब्धराजधर्मस्य विमर्शात्मकमध्ययनम्–ताराकान्त मित्र 2937

अद्वैतवादी (वेदान्त, बौद्ध और त्रिक) दर्शनों में निहित सत् का स्वरूप–ईश्वर सिंह शेखावत 2942

प्रेम दर्शन–साहित्य के आलोक से'–डॉ० रोशनी मिश्रा 2952

गृहस्थाश्रम में नारी का महत्व–डॉ० प्रेरणा माथुर 2957

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्ति व समाज सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण–डॉ० प्रेम सिंह 2964

वाक्यपदीय: व्याकरण शृंखला का मुख्य दार्शनिक ग्रन्थ–डॉ० सुषमा भारद्वाज 2970

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) का खाद्य प्रबंधन में योगदान–हिना कुमारी 2973

हरियाणा के रेवाड़ी और भिवानी जिलों में छतरियों की स्थापत्य, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत: एक तुलनात्मक अध्ययन–संदीप कुमार; प्रो० भूप सिंह गुलिया 2978

भारत की सुरक्षा के संदर्भ मे परमाणु हथियारों का महत्व: एक समीक्षा–डॉ० रंजीत कुमार 2986

ब्रिटिश भारत में अकाल और अकाल आयोग–नीरज कुमार 2988

पाबना विद्रोह: एक ऐतिहासिक अवलोकन–सुषमा कुमारी 2994

भगवानदास मोरवाल के साहित्य में 'उपेक्षित समाज एक अनुशीलन'–दीपाली आर्या 2998

विचारधारा की अवधारणा का विकास–डॉ० शुभा तिवारी 3002
नागरिकों को सशक्त बनाने में आर.टी.आई. एक महत्वपूर्ण उपकरण–डॉ० अरूणा टाक 3006
गुप्तकालीन कृषि एवं जल प्रौद्योगिकी–प्रवीण कुमार तिवारी 3010
नारी सशक्तिकरण और आर्थिक स्वावलंबन–प्रिया यादव 3015

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में छोटानागपुर प्रमण्डल के आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के विद्रोह में योगदानः एक संक्षिप्त अवलोकन

डॉ० रवि शंकर

जवाहर नवोदय विद्यालय, बेगुसराय

सामान्य सारांश

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में छोटानागपुर प्रमंडल के आदिवासियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के विद्रोह में किये गए संघर्षो का एक अपना अलग हीं स्थान रहा है। छोटानागपुर प्रमंडल (बिहार अब झारखंड) का बरा हीं महत्व है जिसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। 1835 व 1919 का जंगल कानून किस तरह आफिवासियोंके जीवन को तहस-नहस कर के रख दिया यहविचार करने का विषय हैं। किस प्रकार जंगल कानून तथा आदिवासियों के जीवन में अनावश्यक कम्पनी शासन के छेर-छार ने निर्दोष आदिवसियों को अपने समाज, संस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक तथा पूर्वजों के धन सम्पदा को बचाने के लिए उद्वेलित किया तथा उन्हें विद्रोह के लिए उठ खरे होने के लिए मजबूर किया। यद्यपि ये भोले-भाले आदिवासी सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक रूप से पिछरे हुए थे। किन्तु, अपनी मातृभूमि को अंग्रेजी शासन से मुक्त करने की चाह उनके अन्दर कूट-कूटकर भरी हुई थी जो अंग्रेजी शासन के लिए कांटे की किलसिद्ध हुई, जो 1857 के आदिवासियों के विद्रोह का कारण बनी तथा सम्पूर्ण बिदेशी ताकत को अन्दर से हिला के रख दिया। प्रस्तुत लेख में छोटानागपुर परमंडल (झारखण्ड) के आदिवासियों द्वारा किया गए अतुलनीय कार्यों को दर्शाने का भरसक प्रयास किया गया है जिसे अभी तक किसी भी शोध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया। आदिवसियों द्वारा अपनी मातृभूमि को आजाद करने की चाहत था औपनिवेशिक शासन से मुक्ति ऐसे ज्वलंत मुद्दे थे जिसने उन्हें आगे बढ़ने तथा घोर आन्दोलन पे उतारू होने को विवश किया जिसकी चर्चा मुख्य रूप से यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

परिप्रेक्ष्य

जैसा की सर्वविदित है कि 1857 के विद्रोह में आदिवासियों द्वारा अंग्रेजी शासन से मुक्ति के लिए छोटानागपुरप्रमंडल (झारखण्ड) में किये गए आन्दोलन का भारतीय इतिहास में अपना अलग ही महत्व रहा है। आदिवासीयों द्वारा किये गए आन्दोलन को जानने के लिए हमें उनके जीवन का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विश्लेषण करना आवश्यक है। यूं तो ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से हीं प्रारम्भ होता है, भारत (मुख्यतः छोटानागपुर प्रमंडल का आदिवासी क्षेत्र) का आर्थिक दोहन जिसने कृषि तथा उद्योग को अपने फायेदे के लिए बर्बाद कर दिया तथा भारतीय श्रमिकोंका सामान्य जीवन छिन्न–भिन्न करके रख दिया। नये कृषि कानून दमनकारी प्रभाव के तहद सभी किसान तथा श्रमिक अपने-अपने जमीन से मालिकाना हक खो बैठे।

जमीन का भूराजस्व दर इतना बढा दिया गया कि आम आदमी उसे भुगतान करने में समर्थ नहीं था। अगर कोई भी व्यक्ति लगान देने में चूक जाता तो उसे अपने जमीन से मालिकाना हक खोना परता था इस तरह औपनिवेशिक शासन ने अपना बाजार तैयार करने तथा सामान बेचने के लिए भारतीय बाणिज्य व व्यापर को ध्वस्त करना शूरू कर दिया।

इतना ही नहीं अंग्रेजो ने भोले-भाले आदिवासियों को क्रिस्चन धर्म, भाषा तथा संस्कृति अपनाने के लिए मजबूर करना शुरू कर दिया ताकि औपनिवेशिक व्यापार का विस्तार किया जा सके। इस तरह की दखल अंदाजी भलाये आदिवासी कैसे और कब तक बर्दास्त कर पाते? यही वो ज्वाला थी जो 1857 के विद्रोह में आदिवासियों के रगों में परिलक्षित हुई। यद्यपि आदिवासियों के द्वारा शुरु किये गए 1857 का विद्रोह बरेही निर्ममता से कुचल दिया गयातथा 1858 में सम्पूर्ण भारत ब्रिटिश प्रशासन के अधीन सम्मिलितकर दिया गया और भारत का नाम 'ब्रिटिश भारत' रख दिया गया। परन्तु, आदिवासियों को अपनी मातृभूमि को आजाद करने की चाह और अंग्रेजोंको दूर देश भगाने की उत्कट अभिलाषा को कोई दबा नहीं पाया।

जहां तक 1857 के छोटानागपुर प्रमण्डल में विद्रोह का प्रश्न है तो हमें सर्वप्रथम वहाँके सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा आर्थिक स्वरूपों का अध्यन करना आवश्यक है। दक्षिणी बिहार का छोटानागपुर क्षेत्र जंगलों एवं पहरियों से भरा परा है। यह मूलतः आदिवासी बहुल क्षेत्र रहा है तथा सन् 2000 ई0 में इसे झारखण्ड के नाम से अलग राज्य बनाया गया है। यहाँ के जनजाति लोग सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक रूप से अन्य क्षेत्रों के लोगो से काफी भिन्नता रखते थे और इनकी आबादी बिहार की कुल अवादी का लगभग 7.66%थी। ये अवादी कृषि के अलावा आखेट कर या जंगल के उत्पादों की बिक्री से अपना जीवन यापन करते थे।

ऐतिहासिक तौर पे अविभाजित बिहार के इस जनजातीय क्षेत्र पर अंग्रेजों द्वारा 1793 ई0 में प्रथम बंगाल रेगुलेशन एक्ट के माध्यम से नियंत्रण स्थापित किया। सिर्फ दमिन-"कोह के क्षेत्र को इससे अलग रखा गया। अंग्रेजों द्वारा यह व्यवस्था की गयी की इन आदिवासी क्षेत्रों के लगान में वृद्धि नहीं की जाएगी और कोई नविन पद्धतियों को इस क्षेत्र में लागू नहीं की जाएगी प्वहांप्रत्येक गाँवकेलिए एक पटवारी की व्यवस्था की गयीपसिर्फ रामगढ़ के जंगली महालों को इससे पृथक्क रखा गया और पूर्व की तरह उन्हें अपने समाज के प्रधानों के साथ समंध बनायेरखने का अधिकार प्रदान किया गया। लेकिन, 1835 ई0 के जंगल कानून के बाद जंगलों की बंदोबस्ती प्रारम्भ हुई और 1919 ई0 में समस्त जमीनी अधिकार सरकार के अधीन चला गया। इसप्रकार, जंगल और जंगल के उत्पादों का स्वेच्छापूर्वक उपयोग करने से ये आदिवासी वंचित हो गयेप्इसके अलावा समय-समय पर कई प्रकार के कानून बनाकर अंग्रेजों द्वारा उनपर नियंत्रण स्थापित किया गया।

इन आदिवासियों की सामाजिक संरचना अन्य क्षेत्रों की सामाजिक संरचना से भिन्न होती है। इनका परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक संगठन होता है प्परिवार के ऊपर गाँव और कई गावों को मिलकर एक पाहन होता है। पाहनका एक प्रधान भी होता है। इस तरह उनके धार्मिक मान्यताएं, रीति-रिवाज, सांस्कृतिक पहचान आदि अन्यलोगों से भिन्न होता है, वल्कि बिभिन्न जनजातियों में भी अलग-अलग रूप में पाई जाती है।

जिस समय अंग्रेजों द्वारा इस क्षेत्र पर नियंत्रण किया गया, वहाँ सुदृढ़ प्रशासनिक व्यस्था का सर्वथा अभाव था। छोटानागपुर और रामगढ़ में राजतन्त्र कायम था। इन राजाओं का भी इन क्षेत्र के लोगों पर पूर्ण नियंत्रण नहीं था। इस तरह ये आदिवासी न सिर्फ राजनीतिक दृष्टि से वल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक या अन्य दृष्टियों से भी स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते थे। प्रारंभ से भी सिर्फ पूर्वजों या प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थेपकिन्तु, हिन्दू धर्म के प्रभाव के अंतर्गत वे ईश्वर एवं अन्य देवी देवताओं की पूजा करने लगे। इसीतरह, इनकी शैक्षनिक मान्यताएं भी सामान्यमान्यता से भिन्न है।

जनजातियों में शिक्षा का मूल उद्देश्य नविन पीढ़ी को सामाजिक जीवन एवं व्यवहारों से अवगत करना था ताकि वे सामुदायिक जीवन में अपना योगदान दे सके।

आदिवासियों का मुख्य पेशा कृषि रहा है और ये जंगलों को साफ कर उस पर खेती करते थे। ऐसे आदिवासी जो पहली बार जंगल साफ कर खेती प्रारम्भ करते थे मुइंहर कहलाते थे। उस भूमि पर उनका नियंत्रण माना जाता था और वंशानुगत आधार पर उनका उत्तराधिकार कायम रहता था। जब अंग्रेजो का नियंत्रण बिहार और बंगाल पर हुआ तो उन्होंने इस आदिवासी बहुल क्षेत्र पर हीं धीरे-धीरे अपना नियंत्रण स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। उन क्षेत्रों पर राजा का नियंत्रण नाम मात्र के बराबर था जिसे अंग्रेज प्रशासनिक दृष्टि से सही नहीं मानते थे। अत: इस क्षेत्र पे न सिर्फ भूमि की लगानबढ़ानी प्रारंभ की गयी, बल्कि कई प्रकार के नए कर लगाये गए जिससे कंपनी शासन को कालांतरमें काफी लाभ प्राप्त हुआ। अंग्रेजों के द्वारा इस क्षेत्र में नविन प्रशासनिक व्यवस्था की भी शरुआत की गयी जिससे इन आदिवासियों का अपने समाज के प्रधानों के परम्परागत संबंधों में भी व्यवधान प्रारंभ हुआ प्अंग्रेजों को इतने से ही संतोष नहीं मिला। बरी संख्या में ईसाई मिशनरियों के लोग इस क्षेत्र में आकर आदिवासियों को ईसाई धर्मावलम्बी बनाने लगे, ताकिये अंग्रेजी हुकूमत के प्रति निष्ठां रख सके। इस तरह अंग्रेजी शासन द्वारा इन आदिवासी क्षेत्र में न केवल आर्थिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में बल्कि उनके सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी हस्तछेप प्रारंभ हुआ जिसके फलस्वरूप ये आदिवासी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह पे उतारू हो गए।

भारतीय इतिहास में इस तरह के विद्रोह का विशेष महत्व इतिहासकारों द्वारा नहीं दिया गया है। उन्होंने 1857 ई0के विद्रोह को हीं स्वतंत्रताके लिए किये गए प्रथम संघर्ष के रूप में स्वीकृति प्रदान की है। लेकिन 1857 से पूर्व और उसके बाद भी समय-समय पर इस आदिवासी बहुल क्षेत्र के लोगों द्वारा अपनी संस्कृति एवं स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संघर्ष कियेगयेंहैंप्इस प्रकार के विद्रोहों का मूल कारण अंग्रेजों की दमनकारी व अत्याचारी नीतिका बिरोध तथाआदिवासियों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हस्तछेप माना जा सकता है।

1857 ई. से पहले अपनी स्वतंत्रता और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए जो कुछ विरोध हुए उनमे कोल विद्रोह और पोटपविद्रोह का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ये दोनों ही विद्रोह इस क्षेत्र में कंपनी शासन की शोषण वादी नीतियों एवं कार्यक्रम के विरुद्ध हुआ था, ताकि आदिवासियों की स्वतंत्रता एवं संस्कृति की रक्षा की जा सके। इन विद्रोहों का सामना कंपनी शासन द्वारा बरी निर्दयतापूर्वक किया गया और उसे कुचल भी दिया गया, लेकिन इस क्षेत्र के लिए कतिपय प्रशासनिक सुधार करने के लिए अंग्रेजों को बाध्य होना परा जिसमे सांस्कृतिक क्षेत्र में हस्तछेप की समाप्ति, भभूसर्वेछन, लगान की व्यवस्था में परिवर्तन आदि महत्वपूर्ण थे।

1857 ई. के विद्रोह के बाद ब्रिटिश संसद ने भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया और भारत के लिए कई प्रशासनिक व्यवस्था की शुरुआत की। राजाओं एवं महाराजाओं के राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की नीति बदल गयी और उसके स्थान पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण की व्यवस्था की गयी प्लेकिन आदिवासी जनजाति क्षेत्र में विद्रोह की ज्वाला शांत नहीं हो सकी पहिन्दू धर्म में फैलाये गए पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आन्दोलन का प्रभाव भी इनपर परा और बीरसामुंडा आन्दोलन तथा टाना भगत आन्दोलन इसी का परिणाम माना जाता है। बीरसा मुंडा द्वारा यह आन्दोलन मूलत: पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार के लिए संचालित आन्दोलन था। मुंडा जनजाति की आत्म् शुद्धि के लिए इस आन्दोलन की शुरुआत बीरसा मुंडा द्वारा की गयी जिसके अंतर्गत एक ही देवता की पूजा, बलिप्रदान प्रथा का विरोध, मांस-मछली का परित्याग, मदिरापान का परित्याग आदि परबल दिया गया था। बरी संख्या में लोग बीरसा की तरफ आकर्षित हुएप्उनकी लोकप्रियता से घबराकर उसे कैद कर लिया गया। कालांतर में उसे मुक्त किया गया तो उसने पूर्ण निष्ठां के साथ इस आन्दोलन को आगे बढाया। उसे यह विश्वास हो गया था की मुंडा जनजाति की दयनीय स्थिति के लिए मूलत: अंग्रेजहीं उत्तरदायी हैप्अत: उसने विद्रोह का नेतृत्व किया। बलपूर्वक अंग्रेजों द्वारा इस आन्दोलन को कुचल दिया गया। लेकिन इसके दूरगामी परिणाम हुए। जैसे कूट कुटी जमीन पर आदिवसियों के वंशानुगत अधिकार की स्वीकृति दे दी गयी। उनके जमीन के खरीद-बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया दिया गया।

इसी क्रम में विदेशी प्रशासन के विरुद्ध संचालित संथालों का सिद्धू-कान्हू के नेतृत्व में चलाया गया आन्दोलन भी उल्लेखनीय है प्इस आन्दोलन को भी कुचल दिया गया और पुरे क्षेत्र पे सेना का नियंत्रण कायम रखा गयाप्इसी तरह का विद्रोह भागलपुर में सिमित क्षेत्र में तिलका मांझी द्वारा चलाया गया प्परन्तु, इन सबों से भिन्न टपना भगत आन्दोलन था, जिसनेउराँव जनजाति में पुनर्जागरण के लिए आन्दोलन का संचालन किया। यह आन्दोलन भी काफी तेजी से फैला और अंग्रेजों द्वारा इस पर भी नियंत्रण के कई उपाय किये गए, लेकिन 1919 ई. के आते आते यह टपना भगत आन्दोलन महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय आन्दोलन बन गया।

इस तरह इन आदिवासी क्षेत्र में विभिन्न जनजतियों द्वारा अपनी मातृभूमि की स्वत्रंत्रता और सांस्कृतिक विरासत के लिए समय-समय पर आन्दोलन किये गए जिसका दूरगामी प्रभाव ब्रिटिश प्रशासन परपरा। इस प्रकार के आन्दोलन का मूल कारण ब्रिटिश उपनिवेशवादी शक्ति की दमनकारीनीति, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अंग्रेजों का हस्तछेप मन जाता है। इसप्रकार के आन्दोलन का महत्व इसलिय और बढ़ जाता है क्योकि उस समय तक भारतवर्ष में सुदृढ़ राष्ट्रीय नेतृत्व और राष्ट्रीयता का आभाव था। उस समय अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए असभ्य माने जानेवाले इन आदिवासियों के द्वारा विदेशी हुकूमत के विरुद्ध ये विद्रोह किये गए थे। मूलत:वेआदिवासी विद्रोह जिसने 1857 के विद्रोह के लिए एक भूमिका तैयार किया उसमे मुख्य रूप से हम सन्यासी विद्रोह, तिलका मांझी विद्रोह, संभलपुर विद्रोह, खेरवार विद्रोह संथाल विद्रोह मुंडा विद्रोह टपना भगतविद्रोह, कोल विद्रोह को मान सकते है जिनके अथक प्रयास से यह विद्रोह अंग्रेजों को सोचने व स्वदेश लौटने के लिए मजबूर किया। क्रमश: सन्यासी विद्रोह जो 1757 ई. में बंगाल में कर बढ़ोतरी तथा किसानों के निरंतर शोषण केकारण हुआ था। फकीर तथा सन्यासियों ने बंगाल में 1770 के अकाल के लिए मुख्य रूप से अंग्रेजों को ही उत्तरदायी माना व विद्रोह किया। तिलका मांझी निहायत हीं एक ऐसे जुझारू क्रन्तिकारी थे जिन्होंने शाशस्त्र दलका गठन किया तथा अँगरेज कमिश्नर पे हमला बोल के अंग्रेजी शासन की नीव हिला दी थी प्अंतत: ओ भागलपुर में पकरे गए व फंसी पे लटका दिए गए प्इसी तरह का एक बिद्रोह उड़ीसा मेंसूर्यसेनराय के नेतृत्व में संभलपुर विद्रोह के रूप में जाना जाता हैजो अपने साथियों के साथ अंग्रेजों का मुकाबला करते हुए शहीद हो गएप्

1874 में खेरवार विद्रोह आदिवासिओं का एक अलग तरह का विद्रोह था जिसे संथाल जनजाति का बिहार में पूर्ण सहयोग मिला तथा हजारों की संख्या में गाँव-गाँव जाकर लोगो को अंग्रेजों के खिलाफ अपने अधिकार के लिए उठ खरे होने के लिए प्रेरित किया प्संथाल विद्रोह जो मुख्यत: औपनिवेशिक शासन एवं जमींदारो के खिलाफ आन्दोलन था जिनसे जबरदस्ती उनकी जमीन छीन ली गयी थी जो वर्षो से उनकी थीप्इन चार मोरमु भाइयों-सिद्धू, कान्हू, चाँद व भैरव संथाल जनजाति के खिलाफ गुर्रिल्ला युद्ध तथा तीर-धनुष, भाले, ग्रासेसे अंग्रेजों का मुकाबला किया। यद्"पीअंग्रेजों ने गोला बारूद का प्रयोग किया, 1500 लोग मारे गए, 10 गाँव बर्बाद कर दिए गए, परन्तुसिद्धू-कान्हू ने हिम्मत नहीं हारी व लरते-लरते युद्ध भूमि में शहीद हो गये।

बीरसा मुंडाएक धीर-बीर व्यक्ति थे जिन्होंने आदिवसियों के मुक्ति के लिए ही मुंडा परिवार में जन्म लिया था तभी तो अपने जीवन की परवाह किये बिनास्वतंत्रता की बलि बेदी पे अपने प्राण अंग्रेजों से लरते-लरते न्योछावर कर दियाप्सामंती व्यवस्था के खिलाफ उन्होंने लोगों को इकठ्ठा किया। बीरसा के नेतृत्व में जनसैलाब देख करघबराहट में अंग्रेजों ने उन्हें हिरासत में ले लिया जहाँ 19000ई0 में जेल में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

टपना भगत आन्दोलन एक छोटे से आदिवासी समुदाय के ओराँवसंत-जात्रा भगत तथा तुरिया भगत के नेतृत्व में झारखण्ड में चलाया गया था प्अंग्रेजों द्वारा अत्यधिक लगानबढ़ाने के कारण 1914 में एक सविनय अवज्ञा आन्दोलन अंग्रेजो, जमींदारों तथामिशनरियों के खिलाफ चलाया गया था। इसी तरह 1831-32 के कोल विद्रोह छोटानागपुर प्रमंडल में लार्ड कोर्नवालिस के द्वारा चलाये गए भूमि सुधारो जो छोटानागपुर और पलामू क्षेत्र पे चलाये गए, के कारण हुआ था। मुख्यत: नील की खेती अनिवार्य करने

के कारण ये विद्रोह तेजी से पुरे जनजातिय क्षेत्रों में फैल गयाप्यद्यपि विद्रोह को दवा दिया गया लेकिन उनके आक्रोश को रोकने के लिए कई प्रशासनिक सुधार किये गए जैसे शोषण पे रोक, मुंडा और मानकी जनजातियों को जमीनी मालिकाना हक देना, नील की खेती समाप्त करना, कर अदा न करने परदास बनाने की प्रथा पे रोक आदि।

पोटो विद्रोह विद्रोह का मूल कारण अंग्रेजों का 'फुट डालो और राज करो' की नीति इस क्षेत्र पे1857 में होने का थाप्अंग्रेजों द्वारा हो जनजाति के प्रधानों को लाभ का दर्जा देने व उन्हें लाभ प्रदान करने की योजना बनायीं गयी, ताकि उनके माध्यम से इन जनजातियों पे शासन किया जा सके। लेकिन 'हो' जनजाति के लोग अंग्रेजों के इस चाल में नहीं आ सके और कोल्हान के जनजातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दियाप्पोटो विद्रोह को कुचल दिया गया, परन्तु आदिवासिओं के मन में बदले की ज्वाला घर कर गयीऔर 1857 ई0 की क्रांति के समय एक बार पुनः दिखाई पराप्परिणाम यह हुआ की कंपनी शासन भारत में समाप्त हो गयाप्नए भूमिसर्वेक्षणकराये गएप्आदिवासियों के जमीनकी खरीद विक्री पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिए गएप्कई कानून अलग से बनाये गएप्इस प्रकार के निष्कर्षो पर पहुँचाने के लिए इससे जुरे अनेक प्रश्नों का उत्तर ढूढने की कोशिश की गयी है। जैसे भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के समय छोटानागपुर क्षेत्र की ऐतिहासिक स्थिति कैसी थी? उस क्षेत्र में निवास करनेवाले आदिवासियों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएं किस प्रकार की थी? क्या इन आंदोलनों के लिए अंग्रेजों के शोषण वादी नीति मूलतः उत्तरदाई थी?क्या अंग्रेजों द्वारा उनके धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में हस्तछेप इसके लिए उत्तरदाई थे?इस आन्दोलन का भारतीय समाज पे क्या प्रभाव परा? आदि। इन प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ने के क्रम में प्रस्तुत आलेख इस परिकल्पना के साथ प्रारंभ होता है कि-भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का क्रमबद्ध इतिहास यद्पि 1885 से प्रारंभ होता, लेकिनछोटानागपुर क्षेत्र में यह आन्दोलन मूलतः उससे पूर्व ही प्रारंभ हो चूका था और उसका मुलभुत कारण छोटानागपुर क्षेत्र में ब्रिटिश उपनिवेशवादी काल की शोषणकारी वदमनकारी नीति हीमानी जा सकती है।

सन्दर्भ

1. झा.जे.सी., "द कोल इन्सरेक्तनआफ छोटानागपुर"।
2. मजुमदार, आर. सी., "द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडिया"।
3. मेहता पी.सी., "दट्राइबल ऑफ बिहार"।
4. दत्ताके.के., ''द हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल इन बिहार"।
5. जगदीश टी, "मुन्द्लोककथये"।
6. सिंह के. स., "बिरसा मुंडा एंड हिज मूवमेंट"
7. अहमद जे., "द ट्राइबल ऑफ बिहार"
8. चक्रवर्ती वी.वी., "छोटानागपुर अ ब्रीफ स्कोप"
9. दिवाकर आर. आर., "बिहारथ्रो द एजेस"
10. जहानाबदी, येन, "आदिवासी लाइफ एंड लिटरेचर"।
11. किट्ट्स एच ., "रिपोर्टओंन छोटानागपुर 1854"।
12. महतों, एस., "ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ छोटानागपुर"।
13. पल एस. सी., "दैमेंसन ऑफ ट्राइबल बिहार"।
14. विधारती एल.पी., "कल्चरलटाइम्स इन ट्राइबल बिहार"।

15. वर्मा ऊ. के., "ट्राइबल लाइफ स्टाइल ऑफ बिहार"।
16. क्लास आठ एन सी इ आर टी बुक हिस्ट्री चौप्टर, "ट्राइबल दिकुस एंड द विजन ऑफ ए गोल्डन एज"।
17. मुखर्जी रुद्रन्सू एंड कपूर परमोद, "डेटलाइन-1857 रूरिवोल्ट अगेंस्ट थे राज"।
18. झा सशी प्रभा एंड रॉय श्रबोनी, "फारेस्ट सोसाइटी एंड कोलोनिअलिस्म"।
19. तिजाना एंड बल्दिज्जोने गिंनी, "हिडन ट्राइब्स ऑफ इंडिया ''I (चेप्टर 4, फिग्स 1, 2, 3, 5, 6, 7)
20. बार्ले सी. ए., एड., "येन इलस्ट्रेटेड हिस्ट्री ऑफ मॉडर्नइंडिया", 1600-1947 I (चेप्टर 1. फिग्स. 1., चेप्टर 2. फिग्स 5, 12 य चेप्टर 3.फिग्स 1.)

भारत में निगमित अभिशासनः विकास, चुनौतियाँ एवं सुझाव

डॉ० अमरनाथ पासवान

असिस्टेंट प्रोफेसर सह-असिस्टेंट डायरेक्टर सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मनीष चन्द्रा

सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रस्तावना

निगमित अभिशासन नैगम प्रशासन के क्षेत्र में अनुशासन, भागीदारी तथा पारदर्शिता को बढ़ावा देने की पहल है। भारत में निगमित अभिशासन की दिशा में प्रयास की शुरूआत 1990 के दशक के आखिर में भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा प्रकाशित स्वैच्छिक संहिता के साथ हुई जिसका समय के साथ-साथ विकास होता गया। तीसरी दुनिया का देश होने के बावजूद हमारे देश में निगमित अभिशासन के विकसित कानूनी ढाँचे की उपस्थिति इस दिशा में हमारी प्रतिबद्धता का स्पष्ट प्रमाण है। हालांकि सत्यम जैसे घोटालों से लेकर तमाम बड़ी कंपनियों की वित्तीय स्थिति में आए अप्रत्याशित बदलावों, जिनके पीछे तथ्यों को छुपाना भी एक वजह हो सकती है, इस बात को स्थापित करते हैं कि भारत में निगमित अभिशासन के क्षेत्र में सुधार की संभावना निरंतर बनी हुई है। यह आलेख भारत में निगमित अभिशासन के विकास, इसके बारे में विद्यमान कानूनी प्रावधानों, निगमित अभिशासन के सम्मुख उपस्थित चुनौतियों तथा उन चुनौतियों का सामना करने हेतु दिए जा सकने वाले सुझावों को प्रस्तुत करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारत में निगमित अभिशासन का विकास, उपलब्धियों, चुनौतियों एवं संभावनाओं की मिली-जुली तस्वीर प्रस्तुत करता है। इस आलेख का मुख्य उद्देश्य भारत में निगमित अभिशासन के विकास, निगमित अभिशासन से संबंधित कानूनी प्रावधानों, इसके सम्मुख उपस्थित चुनौतियों तथा इस संबंध में सुझावों को प्रस्तुत करना है।

उपकल्पना

जैसा कि रिग्स ने अपने प्रिज्मैटिक साला मॉडल में विकासशील देशों में प्रशासन के चरित्र को उद्घाटित करते हुए बताया है, भारत में भी निगमित अभिशासन को लेकर सिद्धांत और व्यवहार में अंतर होगा, जिसके इससे अभिष्ट को पूर्ण रूप से प्राप्त करने में समस्याएँ होगी।

पद्धतिशास्त्र

इस अध्ययन में मुख्य रूप से द्वितीयक स्त्रोतों यथा विभिन्न पुस्तकों, विभिन्न शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेखों तथा वेब आधारित प्रमाणिक सामग्रियों आदि का प्रयोग किया गया है।

भारत में निगमित अभिशासन

भारत में निगमित अभिशासन की पृष्ठभूमि को 1990 के दशक में छायी आर्थिक मंदी से निपटने के लिए किये गए सुधारों के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। आर्थिक सुधारों के नतीजे में निजी उद्यमों की अर्थव्यवस्था में बढ़ी भागीदारी और इसके साथ ही निवेशकों के हितों की सुरक्षा समेत निजी उद्यमों के कामकाज के तौर तरीकों में पारदर्शिता लाने की बढ़ी जरूरतों के मद्देनजर भारत में निगमित अभिशासन की जरुरत महसूस की गयी।[1] भारत में निगमित अभिशासन की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा उठाया गया जिसने 1998 में 'डिजायरेबल कॉर्पोरेट गवर्नेंस: ए कोड' के नाम से निगमित अभिशासन के संबंध में एक स्वैच्छिक संहिता प्रकाशित की। इसमें परिसंघ ने मुख्य रूप से गैर कार्यकारी निदेशकों की संख्या, बोर्ड की संपूर्ण सदस्य संख्या का न्यूनतम 30 प्रतिशत तक करने, एक व्यक्ति के द्वारा अधिकतम 10 कंपनियों का निदेशक बनने का प्रावधान करने, गैर कार्यकारी निदेशकों के दायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने, प्रत्येक बोर्ड को कार्य योजना की स्पष्ट जानकारी देने तथा न्यूनतम तीन गैर कार्यकारी निदेशकों के साथ लेखा परीक्षा समिति का गठन करने जैसी बातों का समावेश किया।[2] भारतीय उद्योग परिसंघ की यह स्वैच्छिक संहिता वैसे तो भारत में एक नए युग का प्रारंभ करने वाली थी किन्तु भारतीय परिस्थितियों में स्वैच्छिक संहिता की अपनी सीमाओं के कारण वैधानिक संहिता लाने के उद्देश्य से भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड ने 1999 में उद्योगपति कुमार मंगलम बिड़ला के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया। बिड़ला समिति ने अपनी रिपोर्ट में बोर्ड की सिफारिशों की चर्चा में स्वतंत्र निदेशकों की भूमिका पर बल देने, क्रियान्वयन और निगरानी संबंधी कार्यों को अलग करने, अंकेक्षण समितियों की महत्ता को मान्यता देने तथा वेतन समिति की स्थापना समेत अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की। सेबी ने बिड़ला समिति की अहम सिफारिशों को सन 2000 में स्वीकार और प्रमाणित करते हुए इसे स्टॉक एक्सचेंज के सूचीकरण समझौते के खंड - 49 में शामिल कर लिया।[3] यह भारत में निगमित अभिशासन की दिशा में पहला महत्वपूर्ण वैधानिक प्रयास था। निगमित अभिशासन की दिशा में अगली महत्वपूर्ण पहल कॉर्पोरेट कार्य मंत्रालय ने की और सन 2002 में मंत्रालय के अधीन नरेश चंद्र समिति की स्थापना की गयी। समिति ने 2002 के अंत में ही सौंपी गई अपनी रिपोर्ट में लेखा परीक्षकों की नियुक्ति, लेखा परीक्षण कार्यों के लिए अयोग्यताएँ, प्रतिबंधित गैर लेखा परीक्षण सेवाओं की सूची, अनिवार्य लेखा परीक्षण भागीदार चक्रानुक्रम, स्वतंत्र गुणवत्ता समीक्षा बोर्ड का गठन, स्वतंत्र निदेशकों की परिभाषा सूचीबद्ध कंपनियों के मंडल के न्यूनतम आकार एवं उनकी बैठकों की अवधि, गैर कार्यपालक निदेशकों का पारिश्रमिक तथा उन्हें कुछ विशिष्ट दायित्वों से छूट आदि से संबंधित सिफारिशें की।[4] इसी वर्ष भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड ने भी विद्यमान निगमित अभिशासन व्यवहारों की पर्याप्तता का मूल्यांकन करने तथा इन व्यवहारों में और सुधार लाने के लिए इंफोसिस के अध्यक्ष तथा मुख्य परामर्शदाता एन.आर. नारायणमूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। नारायमूर्ति समिति ने खंड-49 की समीक्षा करते हुए निगमित शासन मानकों में सुधार हेतु अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की। इन सिफारिशों को समिति ने अधिदेशात्मक तथा गैर-अधिदेशात्मक अनुशंसाओं में विभाजित करते हुए लेखा परीक्षा समितियों के उत्तरदायित्वों को सुदृढ़ करने, वित्तीय प्रकटनों की गुणवत्ता में सुधार लाने, बोर्डों पर औपचारिक आचार संहिताएँ अपनाने, नामिती निदेशकों के पद का सृजन करने, गैर कार्यपालक निदेशकों को अदा की गई क्षतिपूर्ति के संबंध में बेहतर प्रकटन तथा स्टाक धारक अनुमोदन (सभी अधिदेशात्मक) समेत बोर्ड सदस्यों के प्रशिक्षण प्रणाली की स्थापना तथा उनके निष्पादन मूल्यांकन की व्यवस्था (गैर अधिदेशात्मक) आदि के बारे में विस्तृत अनुशंसाएँ प्रस्तुत की।[5] इस बीच भारत में हो रहे आर्थिक सुधारों के साथ कदमताल करते हुए एक अधिक सरल, समग्र और प्रभावी कंपनी कानून की जरूरत लगातार महसूस की जा रही थी, जो कि 1956 के कंपनी कानून में समय-समय पर हुए संशोधनों और सामाजिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए ऐसे वैधानिक ढ़ाँचे की स्थापना कर सके जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को और अधिक गति प्राप्त हो सके। इस संदर्भ में भारत सरकार ने पहल करते हुए 2004 में जे.जे. ईरानी की अध्यक्षता में समिति गठित की। ईरानी समिति ने कंपनी कानून से जुड़े तमाम पक्षों के गहराई से अध्ययन के पश्चात मई 2005 में सरकार को अपनी रिपोर्ट सौप दी। समिति ने अपनी रिपोर्ट में प्रबंधन और बोर्ड प्रशासन, संबंधित पार्टी लेनदेन, अल्पसंख्यक हितों, निदेशकों की शिक्षा और सरंक्षण, पूँजी, खातों और लेखा परीक्षा तक पहुँच, विलय तथा एकीकरण, अपराध और दंड तथा पुर्नगंठन और परिसमापन से संबंधित अनेक सिफारिशें की।[6] ईरानी समिति की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने नए कंपनी कानून का मसौदा 2008 में संसद के सम्मुख रखा जिसे 2013 में संसद की मंजूरी मिली।[7] इस अंतराल में एक अन्य समिति की रिपोर्ट भी भारत में निगमित अभिशासन में सुधार को लेकर प्रस्तुत हुई जिसका उल्लेख करना प्रासंगिक है। गौरतलब है कि ईरानी समिति की सिफारिशों पर केंद्र सरकार द्वारा 2008 में कंपनी विधेयक प्रस्तुत करने के कुछ ही समय बाद भारत में हुए सत्यम घोटाले ने कॉरपोरेट

अभिशासन की स्थिति को लेकर एक बड़ी बहस छेड़ दी। इस पूरे घटनाक्रम की पृष्ठभूमि में सीआईआई ने फरवरी 2009 में नरेश चंद्रा की अध्यक्षता में निगमित अभिशासन के स्तर और अभ्यास दोनों को बेहतर बनाने के लिए सुझाव देने हेतु समिति गठित की। चंद्रा समिति ने अपनी रिपोर्ट में निदेशक मंडल, लेखा परीक्षकों की भूमिका, नियामकीय एजेंसियों की भूमिका तथा बाह्य एजेंसियों की भूमिका की गहन समीक्षा करते हुए अति नियमन और मजबूत निगमित अभिशासन के मध्य संतुलन साधने की वकालत करते हुए अनेक स्वैच्छिक सुधारों को अपनाने की सिफारिश की।[8]

इस तरह भारत में निगमित अभिशासन के विकास क्रम पर नजर दौड़ाएँ तो हम पाते है कि भारत में निगमित अभिशासन को निरंतर बेहतर और मजबूत बनाने की कोशिश जारी है। इसमें स्वैच्छिक और कानूनी दोनों ही संहिताओं की अहम भूमिका देखी जा सकती है।

भारत में निगमित अभिशासन को बढ़ावा देने वाले कारक

भारत में निगमित अभिशासन से जुड़ी विभिन्न वैधानिक व्यवस्थाओं को अमल में लाना और इसके दायरे में ज्यादा से ज्यादा उद्यमों का आना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हमारे देश में निगमित अभिशासन की दिशा में निरंतर प्रगति हो रही है। इस प्रगति को जिन कारकों ने प्रोत्साहित किया है या गति प्रदान की है उनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत हैं[9] -

1. 1990 के दशक में लागू की गई एलपीजी नीतियों के नतीजे में भारतीय बाजार को अधिक प्रतिस्पर्द्धी बनाने की आवश्यकता।
2. 1990 के दशक में नई आर्थिक नीतियों के सूत्रपात के साथ बाजार में आए नए औद्योगिक घरानों के कामकाज के पेशेवर तौर तरीके और निगमित अभिशासन के प्रति प्रतिबद्धता।
3. विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा अधिक पारदर्शिता की मांग और निगमित अभिशासन को अभ्यास में लाने वाली कंपनियों में निवेश।
4. भारत में मीडिया, विशेषकर वित्तीय मीडिया की बढ़ती उपस्थिति के कारण कंपनियों के क्रियाकलापों, प्रदर्शन और अन्य वित्तीय विषयों को लेकर लोगों तक जानकारी के प्रवाह में वृद्धि)।
5. बेहतर प्रबंधन का समर्थन करने वाले बैकिंग तथा वित्तीय संस्थानों के कंपनी पर प्रभाव में अनवरत वृद्धि)।
6. विदेशी पूँजी बाजार में प्रवेश दिलाने और बाह्य स्त्रोंतों से वित्त की उगाही में बेहतर निगमित अभिशासन और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत लेखा परीक्षा की सहायक भूमिका।

भारत में निगमित अभिशासन का कानूनी ढ़ांचा

संपूर्ण नैगम संरचना को विनियमित करने तथा कंपनियों में शासन के विभिन्न पहलुओं संबंधी संव्यवहार करने के लिए महत्वपूर्ण विधान कंपनी अधिनियम, 1956 तथा इसके संशोधित विधान हैं, जबकि प्रतिभूति बाजारों में निवेशकों के हितों को संरक्षण करने तथा साथ ही देश में कॉर्पोरेट अभिशासन के मानकों का अनुरक्षण करने के लिए भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड द्वारा प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956, भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड अधिनियम 1992 तथा निक्षेपागार अधिनियम, 1996 को प्रवृत्त किया गया है। इनका संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत है-[10,11,12]

1. कंपनी अधिनियम, 1956 - कंपनी अधिनियम, 1956 भारत में केंद्रीय विधान है जो केंद्रीय सरकार को कंपनियो के गठन, वित्तपोषण, कार्यकरण तथा परिसमापन को विनियमित करने की शक्तियां देता हैं। यह संपूर्ण भारत पर तथा सभी प्रकार की कंपनियों पर प्रयोज्य है, चाहे वे इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत हो या किसी पूर्ववर्ती अधिनियम के तहत पंजीकृत हो। यह निदेशकों तथा प्रबंधकों की शक्तियों तथा उत्तरदायित्व, पूंजी जुटाने, कंपनी की बैठकों का आयोजन करने, कंपनी लेखों के अनुरक्षण तथा लेखापरीक्षा, निरीक्षण की शक्तियों, इत्यादि की व्यस्था करता है।
2. प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 - इस अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूतियों में लेन देन के व्यवसाय को विनियमित करके उनमें अवांछित सौदों को रोकने तथा उनमें सट्टेबाजी पर रोक लगाने के लिए किया गया था। कोई भी स्टॉक एक्सचेंज, जो मान्यता प्राप्त करने का इच्छुक है, निर्धारित तरीके से केन्द्र सरकार को आवेदन कर सकता है।
3. भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड अधिनियम, 1992 - इस अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूतियों में निवेशकों के हितों

का संरक्षण करने तथा प्रतिभूति बाजार के विकास का संवर्धन करने तथा उसे विनियमित करने तथा उससे संबधित या आनुशंगिक मामलों के लिए किया गया था। इस प्रयोजनार्थ, सेबी (बोर्ड) विनियमन द्वारा निम्न को विनिर्दिष्ट करता है–

- पूंजी के निर्गम, प्रतिभूतियों के अंतरण संबंधी मामले तथा उससे आनुशंगिक अन्य मामले, तथा
- तरीका जिससे ऐसे मामलों का प्रकटन कंपनियों द्वारा किया जाएगा।

4. निक्षेपागार अधिनियम, 1996 – इस अधिनियम का अधिनियमन प्रतिभूतियों में निक्षेपागारों के विनियमन की व्यवस्था करने तथा उससे जुड़े या उसके आनुशंगिक मामलो के लिए किया गया था। इससे स्क्रिपरहित कारोबार प्रणाली तथा निपटान की शुरूआत की व्यवस्था की गई है जिसे प्रतिभूति बाजारों के प्रभावी कार्यकरण के लिए आवश्यक समझा गया है। अधिनियम के अनुसार, शब्द 'निक्षेपागार' का अर्थ है – कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत निर्मित तथा पंजीकृत कंपनी, जिसे भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड अधिनियम 1992 की धारा 12 की उपधारा (1 क) के तहत पंजीकरण प्रमाण पत्र प्रदान किया गया है।

भारत में निगमित अभिशासन सुधार से जुड़ी अहम चुनौतियाँ

भारत में 1990 के दशक में निगमित अभिशासन के लिए पहल की शुरुआत से लेकर अब तक निरंतर इस दिशा में सुधार की कोशिश होती रही है। वक्त जरुरत को ध्यान में रखते हुए, विगत अनुभवों से सीख लेते हुए और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले बदलावों को मद्देनजर रखते हुए भारत में निगमित अभिशासन के क्षेत्र में संरचनात्मक और नीतिगत सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गए हैं जिसके अच्छे परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं। बावजूद इसके भारत में निगमित अभिशासन के क्षेत्र में सुधार से जुड़ी अनेक चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। इनमें से कुछ अहम चुनौतियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है –

1. लोक क्षेत्रक उपक्रम के अध्यक्ष तथा बोर्ड सदस्य की नियुक्ति संबंधित मंत्रालयों द्वारा की जाती है जिनका नेतृत्व पेशेवर प्रबंधकों की बजाय प्राय: नौकरशाहों के हाथ में होता है। इसका इन उपक्रमों के कामकाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[13]
2. लोक क्षेत्रक उपक्रमों में अनेक रणनीतिक फैसले मंत्रीय स्तर पर लिए जाते हैं जिनमें व्यापारिक फैसलों के साथ राजनीतिक निहितार्थ भी शामिल हो सकते है।[14]
3. भारत में कंपनी के मुख्य शेयरधारकों द्वारा मजबूत स्थिति का इस्तेमाल करते हुए कंपनी के अधिकांश संसाधनों का एकाधिकारी रूप से अपने हित में और अपनी जरूरतों के लिए प्रयोग किया जाता है।[15]
4. शेयरधारकों के अधीन और बहुसंख्यक शेयरधारकों की इच्छानुसार संचालित होने के कारण भारतीय व्यापारिक संस्कृति में बोर्ड की हैसियत कतिपय पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कमजोर होती है।[16]
5. पारिवारिक व्यापारिक तथा व्यापारिक समूहों में निगमित अभिशासन के मामलों का विश्लेषण अत्यंत जटिल कार्य होता है।[17]
6. भारत में निगरानी व्यवस्था कमजोर तथा गैर पारदर्शी है।[18] यहाँ बाह्य निगरानी व्यवस्था अभी भी अविकसित स्थिति में है।[19]
7. वास्तविक अर्थों में स्वत्रंत निदेशकों की, जो अपने काम को प्रभावी तरीके से अंजाम दे सकें, भारत में कमी है।[20]
8. निगमित अभिशासन को बढ़ावा देने हेतु कंपनियों को प्रोत्साहन के संबंध में कमियाँ देखने को मिलती है।[21]
9. भारत में ज्यादातर परिवार संचालित कंपनियों, जिनमें भारत की कई शीर्षस्थ कंपनियाँ भी शामिल हैं, में स्वामित्व तथा प्रबंधन का विभाजन एक बड़ी चुनौती है।[22]
10. भारत में कई परिवार समूहों द्वारा अपने समूह के अंतर्गत विभिन्न बोड्र्स में एक ही व्यक्ति की नियुक्ति तथा उसे लंबे समय तक सेवा विस्तार देने की प्रवृत्ति ऐसे व्यक्तियों की, अल्पसंख्यक शेयरधारकों के हितों के प्रभावी तरीके से प्रतिनिधित्व करने की क्षमता को लेकर चिंता उत्पन्न करती है।[23]
11. भारत में ढ़ीले प्रगति प्रतिवेदन मानदंड तथा भेदिया कारोबार ने अल्पसंख्यक शेयरधारकों के हितों को नजरअंदाज करने में अहम भूमिका निभाई है।[24]

12. भारत में निष्पक्ष और तथ्यपरक लेखा परीक्षा के संबंध में अनेक कमियां रहीं हैं जो भारत में निगमित अभिशासन के सम्मुख एक बड़ी चुनौती है।[25]

भारत में निगमित अभिशासन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु सुझाव

विगत तीन दशकों में निगमित अभिशासन के अभ्यास को बेहतर बनाने हेतु भारत में किए जाने वाले अनवरत प्रयासों के बावजूद अभी भी इस संबंध में सुधार की पर्याप्त गुंजाईश है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण सुझावों को निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत दर्शाया जा सकता है-

1. कंपनियों के अभिशासन में 'स्टीवर्डशिप सिद्धांत' पर तत्काल और विशेष रूप से ध्यान दिया जाए।[26]
2. निगमित अभिशासन के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु शेयर धारकों, निदेशकों तथा स्वतंत्र निदेशकों के मध्य शक्तियों के न्यायसंगत वितरण पर ध्यान दिया जाना चाहिए।[27]
3. निगमित अभिशासन सिर्फ वैधानिक प्रावधानों के माध्यम से नहीं सुनिश्चित किया जा सकता। इसके लिए कंपनी और उसके पारितंत्र में सच्चरित्रता तथा नैतिक मूल्यों को और अधिक बढ़ाये जाने की जरुरत है।[28]
4. निगमित अभिशासन के प्रभावी अभ्यास हेतु बोर्ड सदस्यों के प्रदर्शन के निष्पक्ष तथा स्वतंत्र मूल्यांकन की प्रक्रिया को बढ़ावा देने की जरुरत है।[29]
5. एक ही व्यक्ति को कंपनी समूह के विभिन्न निदेशक मंडल में नियुक्त करने और उसे सेवा विस्तार देते जाने की प्रवृत्ति को तत्काल बंद करने की जरूरत है।
6. लोक क्षेत्रक उपक्रमों को उपक्रम के कार्यकरण से लेकर निर्णयन तक में सरकारी कार्य संस्कृति की बजाय पेशेवर नजरिये और प्रतिबद्धता पर ध्यान देना चाहिए।
7. निगमित अभिशासन के प्रभावी अभ्यास हेतु उसके सभी पण्यधारकों तक सूचना का निर्बाध प्रवाह होना आवश्यक है ताकि वे सुविज्ञ निर्णय लेने की स्थिति में हों।
8. विंडो ड्रेसिंग के मामलों को देखते हुए लेखा परीक्षा की निष्पक्षता को सुनिश्चित करने और लेखों में हेर फेर को रोकने हेतु सख्त कदम उठाये जाने की जरुरत है।
9. परिवार संचालित कंपनियों में स्वामित्व तथा प्रबंधन के विभाजन को वास्तविक अर्थों में सुनिश्चित करने और ऐसा करने में नाकाम रहने वाली कंपनियों को दण्डित करने की प्रभावी और निष्पक्ष व्यवस्था को लागू करने पर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए।

उपसंहार

भारत में निगमित अभिशासन पहल को अस्तित्व में आए दो दशक से अधिक का समय हो चुका है। इस दौरान हमने इस क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की है और निगमों के कामकाज में इसे एक मानक अभ्यास के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी है जिसके अनेक सकारात्मक नतीजे देखने को मिल रहे हैं। हालांकि इसके साथ ही विगत वर्षों में अनेक ऐसे मामले भी सामने आए हैं जो यह दिखाते है कि निगमित अभिशासन के अभ्यास में कुछ स्पष्ट कमियाँ है जिन्हें दूर किया जाना आवश्यक है। खुशी की बात यह है कि इन कमियों को दूर करने हेतु प्रयास निरंतर जारी है जिनसे निकट भविष्य में निगमित अभिशासन को और भी बेहतर बनाने में मदद मिलने की उम्मीद है।

References

1. Pandey, Santosh, Kaushik, Kshama, V., Study on the State of Corporate Governance in India: Evolution, Issues and Challenges for the Future,http://iica.in/images/Evolution_of_Corporate Governance_in_India.pdf,pp.4-5
2. Dubey, Ashok, Kumar (2013) Ikkisavin Sadee mein Lok Prashasan, TMH Publishing Company Ltd.,p.149
3. Pandey, Santosh, Kaushik, Kshama, V., Study on the State of Corporate…..,op.cit.,pp.5-6

4. https://archive.india.gov.in/business/hindi/corporate_governance/mca.php
5. https://archive.india.gov.in/business/hindi/corporate_governance/narayana_murthy.php
6. Meaning and concept of corporate governance, evolution of corporate governance in India and other parts of world. Need and essence of corporate governance and role of CAG in this regard , http://rtiallahabad.cag.gov.in/rti-website/rti-allahabad/downloads/material/Background%20 training %20materail%20on%20corporate%20governance.pdf
7. Pandey, Santosh, Kaushik, Kshama, V., Study on the State of Corporate…..,op.cit.,p.8
8. Report of the CII Task Force on Corporate Governance, http://www.mca.gov.in/ Ministry/latestnews/ Draft_Report_NareshChandra_CII.pdf
9. Fernando, A.C.(2012) Corporate Governance: Principles, Policies and Practices, Pearson Education India,pp.533-534
10. https://archive.india.gov.in/business/hindi/corporate_governance/legal_framework.php
11. http://hi.vikaspedia.in/e-governance/online-legal-services/908-93594d92f93e92a93e930-938947-91c941947-91593e928942928-935-90592793f92893f92f92e/91592e 94d200d9 2a928940-90592793f92893f92f92e
12. https://www.india.gov.in/hi/topics/industries/corporate-governance
13. Rajharia,Poonam & Sharma, Bhawana (Dr.) Corporate Governance In India Evolution, Issues And Challenges For The Future, International Journal of Scientific Research and Management (IJSRM), Volume-2, Issue-12, 2014,p.1820
14. Ibid
15. Kaushik, Kshama,V., Dutta, Kaushik (2012) India Means Business: How the elephant earned its stripes, Oxford University Press, Google Books
16. Pandey, Santosh, Kaushik, Kshama, V., Study on the State of Corporate Governance in India: Evolution, Issues and Challenges for the Future, http://iica.in/images/Evolution_of Corporate_Governance_in_India.pdf, p.21
17. Kaushik, kshama,V., Dutta, kaushik (2012) India Means Business: How the elephant earned its stripes….,op.cit.,Google Books
18. Meenu, Need of Effective Corporate Governance and Its Challenges in India, IJCEM International Journal of Computational Engineering & Management, Vol. 15 Issue 6, November 2012, p.54
19. Rajharia, Poonam, Sharma,Bhawana (Dr.) Corporate Governance In India Evolution, Issues And Challenges For The Future,International Journal of Scientific Research and Management, Volume: 2, Issue: 12, December 2014,p. 1822
20. Independent directors or toothless tigers? The Hindu Business Line, May 4, 2016 http:// www.thehindubusinessline.com/ opinion/independent-directors-or-toothless-tigers/article8557029 .ece
21. Rajharia, Poonam, Sharma,Bhawana (Dr.) Corporate Governance In India Evolution …., op.cit.,p.1822
22. MSCI report points out weak corporate governance practices in India, The Economic Times, April 1, 2017, https:// economictimes.indiatimes.com/news/company/corporate-trends/msci-report-points - out-weak-corporate-governance-practices-in-india/articleshow/57961913.cms
23. Ibid
24. The fight for corporate governance in India, Live Mint, Nov.27, 2013, http://www.livemint.com/Opinion/ hxFqnfbyCG5fRWD6PuiGfP/The-fight-for-corporate-gover nance-in-India.html
25. Bhasin, Madan, Lal, satyam's manipulative accounting methodology unveiled: an experience of an asian economy, international journal of business and social research,Vol.-6,Issue-12,2016,pp.35-54
26. Sebi mulls 'out of the box' approach for effective corporate governance, Business Standard, Nov.9,2017
27. Ibid
28. The State of Corporate Governance in India: 2008: A Poll, KPMG in India, Audit Committee Institute,https:// www.in.kpmg.com/SecureData/ACI/Files/CG_Survey_ Report.pdf, p.16
29. Ibid,p.17

वर्तमान परिवेश में वृद्धजनों की समस्याएं: एक विश्लेषण

डॉ० कंचन

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय पी.जी. कॉलेज, नैनी, प्रयागराज

डॉ० सतीश चन्द्र जैसल

असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार, उ.प्र. राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

भारत वर्ष में वृद्ध व्यक्तियों को आदर एवं सम्मान से देखा जाता है वृद्धावस्था में व्यक्ति अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा समााजिक क्षेत्र में शिथिल पड़ जाता है। उसकी शारीरिक क्षमता कमजोर हो जाती है। व्यक्ति हठ और मानसिक अतिरक्षाओं के प्रयोग की ओर झुक जाता है। वह आर्थिक प्रयासों में अक्षम होने लगता है और अर्थोपार्जन के लिए आपेक्षित शक्ति के अभाव में आर्थिक कठिनाईयों का शिकार हो जाता है। वृद्धावस्था की समस्या आज एक सामाजिक-आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में मौजूद है। वृद्ध जनों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित अध्ययन को जेरिएट्रिक्स (Geriatrics) तथा वृद्धजन अध्ययन शास्त्र को जेरॉण्टोलॉजी (Gerontology) कहा जाता है। वृद्ध व्यक्तियों का स्थान समाज में उच्च और आदरपूर्ण रहा है सामान्यत: इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति ओर देखभाल परिवार में होती रही है। क्योंकि परिवार की यह एक महत्वपूर्ण भूमिका और उत्तरदायित्व का आवश्यक अंग समझा गया है। आधुनिक वैश्वीकरण एवं उपभोक्तावादी युग में वृद्धों की समस्याएं बढ़ती जा रही है। संयुक्त परिवार के टूटन ने बुजर्गों की सुरक्षा को और अधिक गम्भीर बना दिया है।

हिन्दू संयुक्त परिवार प्रणाली उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती थी तथा इनकी पूरी देखभाल करती थी वे परिवार के अध्यक्ष थे तथा निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे ग्रामीण कृषि समाज में वे घर कि बड़े बुजुर्ग कहे जाते थे वे परिवार के बजट पर नियंत्रण रखते थे तथा न केवल परिवार के द्वारा पारिवारिक मामलों में उनका परामर्श लिया जाता था अपितु गांवों के मामलों में भी समुदाय द्वारा परामर्श लिया जाता था क्योंकि उन्हें ज्ञान, बुद्धि, अनुभव एवं दूरदर्शिता का प्रकाश स्तम्भ समझा जाता था। परन्तु आज स्थिति में तेजी से परिवर्तन आ रहा है।

औद्योगिकरण नगरीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता के कारण उत्पन्न समााजिक मूल्यों, सामाजिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन प्रारम्भ हो गया। दरिद्रता, बेकारी, अर्धबेरोजगारी एवं मूल्यों में वृद्धि के कारण परिवार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार करने की स्थिति में नहीं है तथा परिवार के सदस्यों के वृद्धों के प्रति अपने दायित्व पूरा करने में अयोग्य बना दिया है। पीढ़ी का फासला बढ़ता जा रहा है युवाओं का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी बनता जा रहा है तथा वृद्धों के प्रति उनका आदर भाव कम होता जा रहा है।

विकसित देशों में सामाजिक सुरक्षा इतनी व्यापक है कि वहां वृद्धता की समस्या गम्भीर नहीं है किन्तु भारत जैसे विकासशील देशों में वृद्धों के लिये सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं नगण्य है। भारतीय समाज में वृद्धजनों की समस्या का स्वरूप निम्न है -

- देश में निर्धनता के कारण वृद्धावस्था के लिये धनसंचय संभावना समाप्त हो रही है।
- सामाजिक सुरक्षा के नाम पर संयुक्त परिवार नामक परम्परागत व्यवस्था का भी विघटन हो रहा है।
- एकाकी परिवारों के चलन ने इस समस्या को गंभीर बना दिया है।

आधुनिक समाज युवा अभिमुखीकृत होता है जहां उपयोगिता, उत्पादक क्षमता, स्वास्थ्य, स्वतंत्र उपलब्धि, व्यक्तिवाद आदि मूल्य महत्वपूर्ण हो रहे हैं जिनके बीच वृद्ध वर्ग स्वयं को असहाय एवं निरर्थक सा अनुभव कर रहा है। परिवार में वृद्धों की दयनीय स्थिति को भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' सही रूप से उजागर करती है।

वृद्धों की समस्याएं

वृद्धावस्था मानव जीवन की एक स्वाभाविक स्थिति है अत: वृद्धावस्था और उससे जुड़ी समस्याएं विश्व में मानव जीवन एवं सभ्यता के प्रारंभिक काल से अस्तित्व में रही है। वृद्धावस्था एवं मानसिक दुर्बलता के साथ-साथ व्यक्ति को परिवार एवं समुदाय के साथ सामंजस्य एकाकीपन, अलगाव, खाली समय के सदुपयोग तथा अपर्याप्त आय आदि अनेकानेक समस्याएं घेरे रहती है। वर्तमान समय में भारत में वृद्धों की बढ़ती आबादी के साथ ही उनसे सम्बन्धित कुछ पारिवारिक और सामाजिक समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं जिसने वृद्धों की समस्याओं में वृद्धी की है। इसमें सबसे बड़ी समस्या वृद्धों के एकाकीपन की है। वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमें परिवार के सहयोग एवं भावनात्मक सहारे की आवश्यकता बढ़ जाती है। जब उन्हें यह सहारा नहीं मिलता है एवं इसके विपरीत परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार उनके प्रति उपेक्षापूर्ण हो जाता है, तो उनकी स्थिति अत्यन्त ही दयनीय हो जाती है। वृद्धों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा मधुमेह, वृद्धष्टि-दोष, आर्थराइट्सि, रक्तचाप और तनाव जैसी बीमारियों का शिकार रहता है। इनमें उपचार के साथ-2 देखभाल करने वालों की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें जब घर में इस प्रकार की देखभाल नहीं मिलती जो उनकी स्थिति अत्यन्त ही कष्टप्रद हो जाती है। यह बेबसी और लाचारी की स्थिति वृद्धों के लिए अत्यन्त दु:खद होती है।

वृद्धावस्था में आर्थिक सुरक्षा समस्याओं को और अधिक बढ़ा देती है। आर्थिक तंगी वृद्धों की पराश्रितता को और अधिक बढ़ा देती है। फलस्वरूप वृद्धजन सम्मान पूर्ण तरीके से जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। परिजनों या दूसरों पर आश्रित रहने वाले वृद्धजनों को अक्सर अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ता है। आर्थिक अभाव के कारण वे अच्छे उपचार और समुचित देखभाल से वंचित रह जाते हैं अध्ययनों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार शहरी क्षेत्रों में 64 प्रतिशत वृद्ध महिलाएं तथा 46 प्रतिशत वृद्ध पुरूष अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए पूरी तरह दूसरों पर आश्रित रहते हैं। वृद्धावस्था में ससम्मान जीवन व्यतीत करने के लिए आर्थिक मजबूती बहुत आवश्यक होती है, जिसका हमारे देश में नितान्त अभाव है। संयुक्त राष्ट्र भी वृद्धों की आर्थिक असुरक्षा पर चिंता व्यक्त कर चुका है।

जनगणना-2011 के अनुसार भारत में 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की संख्या 10.38 करोड़ है और ये भारत की कुल आबादी में 8.58 प्रतिशत है। वर्ष 1951 में इनकी संख्या 1.98 करोड़ थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 7.6 करोड़ हो गई थी। इससे स्पष्ट है कि वृद्ध लोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यह एक प्रकार से सकारात्मक लक्षण है, क्योंकि यह जीवन प्रत्याशा में वृद्धि का संकेत है, परन्तु यह भी सच है कि इनकी संस्था में वृद्धि के साथ ही इनसे जुड़ी समस्याओं में बढ़ोत्तरी हो रही है। वर्तमान में तेजी से बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक परिस्थितियों की वजह से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं जिसके कारण एकल परिवारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। भारतीय समाज के परम्परागत मूल्यों में होने वाले बदलाव ने इसकी स्थिति को और भी विकट बना दिया है।

समाज में वृद्धों की समस्याओं के निम्न स्वरूपों पर ध्यान केन्द्रित कर पारिवारिक, सामाजिक एवं सरकारी स्तर पर उचित समाधान हेतु प्रयास किया जा सकता है -

- शारीरिक दुर्बलता एवं रोग
- पारिवारिक एवं भावनात्मक समस्याएं

- आर्थिक अथवा वित्तीय समस्याएं
- सामाजिक समस्याएं
- संवेगात्मक समस्याएं
- आवासीय समस्या
- एकाकीपन एवं अलगाव
- खाली समय के सदुपयोग की समस्या
- वृद्धजनों में वंचना की समस्या
- सामाजिक सुरक्षा के साधनों में कमी

वृद्धों का कल्याण

वृद्धों की समस्याओं की व्यापकता, गंभीरता और जटिलता को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह वर्तमान युग की महत्वपूर्ण समस्या है। समय के साथ-2 जैसे-2 रहन-सहन के स्तर में उन्नति ओर सुधार हो रहा है अधिकाधिक वृद्धों की अधिक समय तक जीवित रहने की संभावना बढ़ती जा रही है। अतः दिन प्रतिदिन वृद्धों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

वृद्धों की समस्याओं का निवारण उनको आवश्यक कल्याण सुविधाएं प्रदान कर यदि समाप्त नहीं किया जा सकता तो कम अवश्य किया जा सकता है। भारत सरकार अनेक सहायता कार्यक्रम एवं कल्याण सुविधाओं के द्वारा वृद्धों के कल्याण की दिशा में प्रयास कर रही हैं।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम का आरम्भ 15 अगस्त, 1995 को हुआ था। यह संविधान के अनुच्छेद 41 एवं 42 के नीति-निर्देशक तत्वों के अनुपालन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कार्यक्रम गरीब परिवारों में वृद्धावस्था, जीविकोपार्जन करने वाले मुख्य सदस्य की मृत्यु तथा मातृत्व जैसी स्थितियों में लाभ पहुंचाने के लिए सामाजिक सहायता की एक राष्ट्रीय नीति प्रस्तुत करता है। इस कार्यक्रम के तीन अंग हैं, जिनके नाम हैं-

1. राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (NOAPS)
2. राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना (NFBS)
3. राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (NMBS)

राष्ट्रीय वृद्धजन परिषद (NCOA- National Counsil for old ageing) केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2005 में वृद्ध व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय वृद्धजन परिषद का पुनर्गठन किया गया जो वृद्धजनों के बारे में नीतियों और कार्यक्रमों के विकास के लिए सरकार को सलाह और सहायता देती है।

विकासशील देशों में वृद्धावस्था से संबंधित वैश्विक आयोग (Global Commission on Ageing in Developing Countries)

चीन के बीजिंग में विकासशील देशों में वृद्धावस्था से संबंधित वैश्विक आयोग की स्थापना हुई है। आयोग का लक्ष्य लिंग समानता और विकास में भागीदारी (PPD- Partners in population and Development) सहित विकासशील देशो में वृद्धों के रहन-सहन को सुधारेगा। सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर वृद्धजनों के कल्याण के लिए अनेक राष्टव्यापी प्रयास किये गये हैं किन्तु स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा की गयी कुछ पहल महत्वपूर्ण हैं, जिनमें बुजुर्गो के स्वास्थ्य के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम के तहत अभी तक 21 राज्यों के सौ जिलों में आठ क्षेत्रीय बुजुर्ग चिकित्सा विज्ञान केन्द्र खोले जा चुके हैं। इस महत्वाकांक्षी योजना के लिए 12वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के लिए 1,710 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है।

अन्य वृद्ध कल्याण सेवाएं

वृद्ध एवं अशक्त आश्रम बंगलौर, 'फ्रेण्ड इन नीड' 1840, डेविड सेन्सम असाइलम (पूणे), किसान पेंशन योजना, हेल्प ऐज इंडिया, एज केयर इण्डिया, वृद्धायु आवास गृह आदि।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय-समय पर वृद्धों से संबंधित निम्नलिखित निर्देशों तथा संस्तुतियों को प्रस्तावित किया गया-

1. वृद्धों के विकास की क्षमता एवं मानवीय आवश्यकताओं के समुचित रूप से समाधान को सुनिश्चित करने के लिये राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना की जाय तथा इसे सषक्त किया जाये।
2. वृद्धों के आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, जनांकिकीय एवं रोग संबंधी पक्षों पर शोध के क्षेत्र को व्यापक बनाया जाय।
3. संस्थागत अथवा सामुदायिक देखभाल प्रणाली की स्थापना की जाय अथवा उसका विस्तार किया जाय ताकि वृद्ध व्यक्तियों को समुचित स्वास्थ्य एवं सामाजिक सेवाएं उपलब्ध हो सके।
4. वृद्धों के ऐसे संगठनों को विकास कार्यक्रमों एवं नीति निर्माण में उनकी क्रियात्मक सहभागिता को सुनिश्चित करते हैं, को प्रोत्साहित किया जाये।
5. नीति-निर्माताओं, अन्वेशकों एवं कार्यकर्ताओं को वृद्ध विज्ञान में प्रशिक्षण दिया जाय ताकि उन्हें वृद्धावस्था सम्बन्धी मामलों का समुचित ज्ञान हो सके।

भारत सरकार द्वारा वृद्धजनों के कल्याण की दिशा में वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007 एवं नई राष्ट्रीय वृद्धजन नीति 2011 को लागू करना एक बड़ी कानूनी उपलब्धि अवश्य ही कहा जा सकता है, परन्तु अभी तक इसका प्रवर्तन अत्यन्त कमजोर ही रहा है। अतः इसका ठोस क्रियान्वयन किये जाने की आवश्यकता है, जो समाज एवं सरकार दोनों स्तरों पर दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा संवेदनशील रहकर किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. सिंह जे0पी0, 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : 21वीं सदी में भार' द्वितीय संस्करण, अशोक के0 घोष, पी0एच0आई0 लर्निंग प्रा0लि0 दिल्ली, 2016
2. विवेक एस0 राज, 'समकालीन भारतीय मुद्दे (समस्या एवं समाधान) भाग-1 सिविल सर्विसेज टाइम्स, सी-75, पर्यावरण कॉम्पलेक्स, मैदानगढ़ी रोड, नई दिल्ली, 2015-16
3. शर्मा जी0एल0, 'सामाजिक मुद्दे' रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर, 2015
4. राजोरा, सुरेश चन्द्र, 'समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएं' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अदादमी जयपुर, 2006 आहूजा राम, 'भारत में सामाजिक समस्याएं', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000

युवकों को स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

डॉ० जय प्रकाश यादव

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में, नयी पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्ता उसमें से आयेंगे। सिंहों की भाँति वे समस्त समस्या का हल निकालेंगे। मैंने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है, और उसके लिए अपना समस्त जीवन दे दिया है। यदि मुझे सफलता नहीं मिलती, तो मेरे बाद कोई अधिक उपयुक्त व्यक्ति आयेगा और इस काम को सँभालेगा, और मैं अपना सन्तोष प्रयत्न करने में ही मानूँगा।

चरित्रवान्, बुद्धिमान, दूसरों के लिए सर्वस्व त्यागी तथा आज्ञाकारी युवकों पर ही मेरे भविष्य का कार्य निर्भर है। उन्हीं पर मुझे भरोसा है, जो मेरे भावों को जीवन में परिणत कर अपना और देश का कल्याण करने में जीवनदान कर सकेंगे। नहीं, तो झुण्ड के झुण्ड कितने ही लड़के आ रहे हैं और आयेंगे, पर उनके मुख का भाव तमपूर्ण है: हृदय में उद्यम की आकांक्षा नहीं, नचिकेता की तरह श्रद्धावान् दस-बारह लड़के पाने पर मैं देश की चिन्तन-धारा और प्रयत्न को नवीन पथ पर परिचालित कर सकता हूँ।[1]

युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र, मेधा वाली और उत्साहयुक्त ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं। तुम्हारा भविष्य निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किए हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाए जाते हैं, और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, देर न करों, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाशा आदि से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने में तथा इससे भी ऊँची अभिलाशा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो।

जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसीलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान् जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए संसार में बार-बार आविर्भूत होते है, वे ही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दे एवं हमारो उद्देष्य की सिद्धि में सहायक हों।[2]

तेरे भीतर अदम्य शक्ति है। तू तो ''मैं कुछ नहीं'' सोच-सोच कर वीर्यविहीन बना जा रहा है। तू ही क्यों? -सारी जाति ही ऐसी बन गयी है। जा एक बार घूम आ, देखेगा भारत के बाहर लोगों का 'जीवन-प्रवाह' कैसे आनन्द से सरलता से, प्रबल वेग के साथ बहता जा रहा है और तुम लोग क्या कर रहे हो? इतनी विद्या सीख कर दूसरों के दरवाजे पर भिखारी की तरह 'नौकरी दो, नौकरी दो' कहकर चिल्ला रहे हो। दूसरों की ठोकरें खाते हुए गुलामी करके भी तुम लोग क्या अब मनुष्य रह गए हो? तुम लोगों का मूल्य एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। ऐसी सुजला-सुफला भूमि में, जहाँ पर प्रकृति अन्य सभी देशों से करोड़ो गुना अधिक धन-धान्य पैदा कर रही है, जन्म लेकर भी तुम लोगों के पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं। जिस देश के धन-धान्य ने पृथ्वी के अन्य सभी देशों में सभ्यता का विस्तार किया है, उसी अन्नपूर्णा के देश में तुम लोगों की ऐसी दुर्दशा! तुम लोग घृणित कुत्तों से भी बदतर हो गए हो। और फिर भी अपने वेद-वेदान्त और दूसरों के मुँह की ओर ताक कर ही जीवन व्यतीत कर रहे हो, उस राष्ट्र का यह गर्व! धर्म-कर्म को तिलांजलि देकर पहले जीवन-संग्राम में कूद पड़ो। भारत में कितनी चीजें पैदा होती हैं। विदेशी लोग उसी कच्चे माल के द्वारा सोना पैदा कर रहे हैं और तुम लोग भारवाही गधों की तरह उनका माल ढोते-ढोते मरे जा रहे हो। भारत में जो चीजें उत्पन्न

होती हैं, विदेशी उन्हीं को ले जाकर अपनी बुद्धि से अनेक प्रकार की चीजें बनाकर सम्पत्तिशाली बन गए और तुम लोग! अपनी बुद्धि सन्दूक में बन्द करके घर का धन दूसरों को देकर 'हा अन्न, हा अन्न' करके भटक रहे हो।[3]

मैंने दुनिया में घूमकर देखा है कि इस भारत की तरह इतने अधिक तामसिक प्रकृति के लोग पृथ्वी में और कहीं भी नहीं, बाहर सात्विकता का ढोंग, पर अन्दर बिल्कुल ईंट-पत्थर की तरह जड़ - इनसे जगत का क्या काम होगा? इस प्रकार अकर्मण्य, आलसी, घोर विषयी जाति दुनिया में और कितने दिन जीवित रह सकेगी? पाश्चात्य देशों में घूमकर पहले एक बार देखा आ, फिर मेरे इस कथन का प्रतिवाद करना। उनका जीवन कितना उद्यमशील हैं, उनमें कितनी कर्मतत्परता है, कितना उत्साह है, रजोगुण का कितना विकास है। तुम्हारे देश के लोगों का खून मानो हृदय में जम गया है नसों में मानों रक्त का प्रवाह ही रुक गया है। सर्वांग पक्षाघात के कारण शिथिल सा हो गया है। इसीलिए मैं रजोगुण की वृद्धि कर कर्मतत्परता के द्वारा इस देश के लोगों को पहले इहलौकिक जीवन संग्राम के लिए समर्थ बनाना चाहता हूँ। देह में शक्ति नहीं, हृदय में उत्साह नहीं, मस्तिष्क में प्रतिभा नहीं। क्या होगा रे इन जड़ पिण्डों से? मैं हिला-डुलाकर इनमें स्पन्दन लाना चाहता हूँ। इसलिए मैंने प्राणान्त प्रण किया है- वेदान्त के अमोघ मन्त्र के बल से इन्हें जगाऊँगा। उतिष्ठत जाग्रत इस अभय वाणी को सुनाने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। तुम लोग इस काम में मेरे सहायक बनो। जा, गाँव-गाँव में, देश-देश में यह अभय वाणी चण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी को सुना आ। सभी को पकड़ कर जाकर कह दे- 'तुम लोग अमित वीर्यवान हो अमृत के अधिकारी हो।' इसी प्रकार पहले रज:शक्ति की उद्दीपना कर, जीवन संग्राम के लिए सबको कार्यक्षम बना, इसके पश्चात् उन्हें परजन्म में मुक्ति प्राप्त करने की बात सुना। पहले भीतर की शक्ति को जाग्रत करके देश के लोगों को अपने पैरों पर खड़ा कर अच्छे भोजन वस्त्र तथा उत्तम भोग आदि करना वे पहले सीखे। इसके बाद उन्हें उपाय बता दें कि किस प्रकार के भोग बन्धनों से वे मुक्त हो सकेंगे।[4]

इच्छाशक्ति संसार में अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह भगवान् साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यों का प्रचार करो, संसार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षो से लोगों को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। शताब्दियों से इस प्रकार डराए जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब-करीब पशुत्व को प्राप्त हो गए हैं। उन्हें कभी आत्मतत्व के विषय सुनने का मौका नहीं दिया गया। अब उनको आत्मतत्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है- वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हें अपने में विश्वास करने दो। आखिरकार अंग्रेजों में और तुममें किसलिए इतना अन्तर है? उन्हें अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अंग्रेज हूँ तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है और तब उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने में समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आए हैं, तुम्हें सिखाते आए है कि तुम कुछ भी नहीं हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गए हो।[5]

हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस मांस-पेशियों और मजबूत स्नायु वाले शरीरों की। आवश्यकता है इस तरह के दृढ़ इच्छाशक्ति सम्पन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने में समर्थ न हो। आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिए अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरत से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा।[6]

पहले है हृदय की अनुभव शक्ति। बुद्धि या विचार शक्ति में क्या है? यह तो कुछ दूर जाती है और बस वहीं रुक जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा स्रोत है? प्रेम असम्भव द्वारों को भी उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यों का द्वार है।[7]

शिक्षा, ग्रहणार्थ हमें सबके पैरों तले बैठना चाहिए, क्योंकि ध्यान इस बात पर देना आवश्यक है कि सभी हमें महान् शिक्षा दे सकते हैं। हमारे महान् श्रेष्ठ स्मृतिकार मनु महाराज की उक्ति है, नीच जातियों से भी श्रद्धा के साथ हितकारी विद्या ग्रहण करनी चाहिए, और निम्नतम अन्त्यज ही क्यों न हो, सेवा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।[8]

त्याग ही असली बात है। त्यागी हुए बिना कोई दूसरों के लिए सोलह आना प्राण देकर काम नहीं कर सकता। त्यागी सभी को समभाव से देखता है, सभी की सेवा में लगा रहता है। वेदान्त में भी तो पढ़ा है कि समभाव से देखो तो फिर एक स्त्री और कुछ बच्चों को अधिक अपना समझकर क्यों मानेगा? तेरे दरवाजे पर स्वयं नारायण दरिद्र के भेष में आकर अनाहार से मृतप्राय होकर पड़े हैं। उन्हें कुछ न देकर केवल अपना और अपने स्त्री-पुत्रों का पेट भाँति-भाँति के व्यंजनों से भरना तो पशुओं का काम है।[9]

मैं कहता हूँ जितनी शक्ति है, पहले उतना ही कार्य कर। धन के अभाव से यदि कुछ नहीं दे सकता तो न सही, पर एक मीठी बात या एक-दो सदुपदेश तो उन्हें दे सकता है। क्या इसमें भी धन लगता है?[10]

काम सधे या प्राण ही जायें फल की ओर आँख रखे बिना साधना में मग्न हो जाओ। निर्भीक होकर इस प्रकार दिन-रात साधना करने पर छः महीने के भीतर ही तुम एक सिद्ध योगी हो सकते हो, परन्तु दूसरे, जो थोड़ी थोड़ी साधना करते हैं, सब विषयों को जरा-जरा चखते हैं, वे कभी कोई बड़ी उक्ति नहीं कर सकते। केवल उपदेश सुनने में कोई फल नहीं होता। जो लोग तमोगुणी हैं, जो केवल थोड़े से मजे के अन्वेशण में हैं, उनके लिए धर्म और दर्शन केवल मनोरंजन के विषय हैं। जो सिर्फ थोड़े से आमोद-प्रमोद के लिए धर्म करते आए हैं, वे साधना अध्यवसायहीन हैं। वे धर्म की बातें सुनकर सोचते हैं, वाह ये तो अच्छी बातें हैं, पर इसके बाद घर पहुँचते ही सारी बातें भूल जाते हैं। सिद्ध होना हो तो प्रबल अध्यवसाय चाहिए, मन का अपरिमित बल चाहिए। अध्यवसायशील साधक कहता है, "मैं चुल्लू से समुद्र पी जाऊँगा। मेरी इच्छा मात्र से पर्वत चूर-चूर हो जाएँगें।" इस प्रकार का तेज, इस प्रकार का दृढ़ संकल्प लेकर कठोर साधना करो और तुम ध्येय को अवश्य प्राप्त करोगे।[11]

आपके वास्ते यह नितान्त आवश्यक है कि अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट करने और अक्सर निरर्थक बातें बनाने के स्थान पर, आप अंग्रेजों से नेताओं की आज्ञा का तुरन्त पालन, ईर्ष्याहीनता, अथक लगन और अटूट आत्मविश्वास की शिक्षा प्राप्त करें। जब वह किसी काम के लिए एक नेता बना लेता है, तो अंग्रेज हार-जीत में सदा उसका साथ देता है और उसकी आज्ञा पालन करता है।[12]

यहाँ भारत में प्रत्येक व्यक्ति नेता बनना चाहता है, आज्ञा-पालन करने वाला कोई भी नहीं है। आज्ञा देने की क्षमता प्राप्त करने से पहले प्रत्येक व्यक्ति को आज्ञा-पालन करना सीखना चाहिए। हमारी ईर्ष्याओं का कहीं अन्त नहीं है, और जो हिन्दू जितना अधिक महत्वपूर्ण है, वह उतना ही अधिक ईर्ष्यालु है। जब तक हिन्दू ईर्ष्या से बचना और नेताओं की आज्ञा का पालन करना नहीं सीखता, उसमें संगठन की क्षमता नहीं आयेगी। हम उस समय तक आज की तरह अत्यन्त अव्यवस्थित भीड़ बने रहेंगे।[13]

आलस्य का त्याग करो, इहलोक और परलोक के सुख-भोग को दूर हटाओ। आग में कूद पड़ो और लोगों को परमात्मा की ओर ले आओ। मेरे भीतर जो आग जल रही है, वही तुम्हारे भीतर जल उठे, तुम अत्यन्त निष्कपट बनो, संसार के रणक्षेत्र में तुम्हे वीरगति प्राप्त हो- यही मेरी निरन्तर प्रार्थना है।[14]

अतः काम करो, मेरे बालकों, काम करो। कार्य का कठिन भाग बहुत कुछ हल हो चुका है। अब यह प्रतिवर्ष धीरे-धीरे स्वयं ही अग्रसर होता जाएगा और यदि तुम लोग सिर्फ मेरे भारत लौटने तक भलीभाँति उसकी देख-भाल कर सको, तो फिर अत्यन्त द्रुतता के साथ उसकी वृद्धि होती रहेगी। तुम लोग इतना सब कुछ कर चुके हो, यही सोचकर आनन्द करो कि पिछले एक वर्ष में कितना कार्य हुआ। किस तरह, नगण्यता से निकलकर आज हम देख रहे हैं कि दुनियाभर की नजर हम लोगों पर टिकी हुई है। केवल भारत ही नहीं, बाहरी दुनिया भी हम लोगों से बड़े-बड़े कामों की उम्मीदें रखती है।[15]

मैं चाहता हूँ कि हममें किसी प्रकार की कपटता, कोई मक्कारी, कोई दुष्टता न रहे। मैं सदैव प्रभु पर निर्भर रहा हूँ, सत्य पर निर्भर रहा हूँ, जो कि दिन के प्रकाश की भाँति उज्ज्वल है। मरते समय मेरी विवेक-बुद्धि पर यह धब्बा न रहे कि मैंने नाम या यश पाने के लिए, यहाँ तक कि परोपकार करने के लिए दुरंगी चालों से काम किया था। दुराचार की गन्ध या बदनियती का नाम तक न रहने पाए।

सभी कार्यों में हार-जीत अवश्यम्भावी है, किन्तु मेरा विश्वास है कि कायर मरकर निश्चित ही कृतिकीट बनता है। युग-युग तपस्या करने पर भी कायरों का उद्धार नहीं हो सकता। क्या तुझे अन्त में कृमिकीट होकर जन्म लेना पड़ेगा? मेरी दृष्टि में यह संसार एक खेल के सिवाय और कुछ नहीं है और सदैव यह ऐसा ही रहेगा। सांसारिक मान-अपमान लाभ-हानि को लेकर क्या छः मास तक सोचते रहना पड़ेगा।[16]

'हे वीर, स्वप्न को त्याग कर जाग्रत हो, मृत्यु सिर पर खड़ी है... यह तुम्हें भयभीत न करे।, जो मैने कभी नहीं किया है, रण में पीठ नहीं दिखाई है, क्या आज वही होगा? हारने के भय से क्या मैं युद्धक्षेत्र से पीछे हटूँगा? हार तो वीर के अंग का आभूषण है, किन्तु क्या बिना लड़े ही हार मान लूँ? तारा! माँ!।[17]

Footnotes

1. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 195
2. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -5, पृ0 197
3. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 104
4. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 154-155
5. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -5, पृ0 118-119
6. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -5, पृ0 86
7. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -5, पृ0 120
8. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -5, पृ0 166
9. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 129-30
10. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 130
11. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -1, पृ0 90
12. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -4, पृ0 255
13. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -4, पृ0 255
14. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -3, पृ0 371
15. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -2, पृ0 396
16. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -3, पृ0 384
17. विवेकानन्द साहित्य खण्ड -6, पृ0 384

कन्या भ्रूण हत्याः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० सतीश चन्द्र जैसल

असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार,
उ.प्र. राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ० कंचन

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा राजकीय पी.जी. कॉलेज,
नैनी, प्रयागराज

भारत में एक प्रचलित सूक्ति वाक्य है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता भी निवास करते हैं। लेकिन इस सूक्ति वाक्य का उद्घोष करने वाले भारत देश में स्त्री-पुरुष जनसंख्या के अनुपात में काफी अन्तर है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात के अन्तर्गत 1000 पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या मात्र 933 है। इस तरह पिछले 4 वर्षों में स्थित और भी बिगड़ी है।

विकास की दौर में चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में नित नये प्रयोगों और अनुसंधानों के माध्यम में जहां एक ओर असाध्य समझी जाने वाली अनेक बिमारियों से लाखों करोड़ों लोगों की मुक्ति के द्वारा खोले हैं वहीं दूसरी ओर कुछ संकुचित प्रवृत्ति के लोगों के बीच प्रकृति के विरुद्ध घिनौनी छेड़-छाड़ करने की होड लगी हुई है। इन्हीं में से एक प्रयोग ''बालिका भ्रूण हत्या'' का है जिसमें अल्ट्रासोनोग्राफी एम्निओसेंटेसिस तथा अन्य चिकित्सकीय तकनीकों के जरीये गर्भस्थ शिशु के लिंग का पता करके, बालिका भ्रूण पाये जाने पर गर्भपात के जरिये उसकी हत्या किये जाने का गैर कानूनी सिलसिला बड़ी तेजी से पूरे देश में फैल रहा है। जिसकी पुष्टि विभिन्न समाचार पत्रों यथा-दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान, राष्ट्रीय सहारा, पायनियर, नव भारत टाईम्स, आदि ने मादा भ्रूण हत्या के विषय में समय-समय पर समाज का ध्यान आकृष्ट करके किया है। सन् 2001 की राष्ट्रीय जनगणना के आकड़ों पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होता है कि 1991 की तुलना में देश का लिंगानुपात 1000/927 से बढ़कर 1000/933 हो गया इसी अवधि में देश की सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश उत्तर प्रदेश में यह आकड़ा 1000/876 से बढ़कर 1000/898 हो गया है, जो कि एक सुखद संकेत है, इसके विपरीत आकड़े यह भी बताते हैं कि देश में जो जिले विकास में जितने ही आगे हैं तथा वहां के लोगों का जीवन जितना ही उच्च है वहां कन्या भ्रूण हत्या की कुप्रथा सबसे अधिक है। पंजाब और हरियाणा इसके उदाहरण हैं तथा राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली भी इस राह पर अग्रसर है।

पूर्वोत्तर राज्यों के पांच, जम्मू कश्मीर के तीन और छत्तीसगढ़ के दो जिले ऐसे हैं जहां विकास की किरणे अभी तक नहीं पहुचीं हैं, इसलिए वहां लड़कियों की जन्म से पहले हत्या करने की कुप्रथा भी नहीं पहुंची है। भारत के महापंजीयक द्वारा जारी जनगणना के आकड़ों के अनुसार इन्हें देश के अच्छे बालिका अनुपात वाले जिले माना गया है। अच्छे बालिका अनुपात वाले शीर्ष 10 जिलों में दक्षिण सिक्किम जिला सबसे ऊपर हैं जहां 0-6 आयु वर्ग में प्रति एक हजार बालकों पर बालिकाओं की संख्या 1038 है जो देश में सर्वाधिक है।

कानूनी प्रावधान

गर्भावस्था में भ्रूण की जांच के बढ़ते हुए दुरुपयोग की घटनाओं पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा प्रसव पूर्व परीक्षण तकनीक अधिनियम 1994 बनाया गया है जो 20 दिसम्बर 1994 को पारित हुआ। इसे 1 जनवरी 1996 से पूरे देश में लागू किया गया।

इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है –

- ऐसे प्रत्येक परामर्श केन्द्र, प्रयोगशाला तथा क्लीनिक का पंजीकरण अनिवार्य जहां प्रसव पूर्व परीक्षण सुविधा उपलब्ध हो।
- चिकित्सक के पास निर्धारित योग्यता अनिवार्य ।
- परीक्षण केवल निर्धारित बीमारियों के लिए ही प्रयोग किये जाएँगे।
- इन परीक्षणों का उपयोग तभी किया जा सकता है जब गर्भवती महिला की आयु 35 वर्ष से अधिक है या जिसके कम से कम दो गर्भपात हो चुके है अथवा उसके या उसके परिवार में शारीरिक या मानसिक विकलांगता की पृष्ठभूमि आदि रही है।
- निर्धारित उद्देश्यों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन हेतु इन परीक्षणों के प्रयोग हेतु गर्भवती महिला का पति या कोई रिश्तेदार उसे प्रोत्साहित नहीं करेगा और न ही परीक्षण कराएगा।
- गर्भवती महिला की लिखित सहमति होनी आवश्यक है तथा इन परीक्षणों को करने वाले व्यक्ति द्वारा किसी को भ्रूण के लिंग के बारे में किसी भी प्रकार बताया नहीं जाएगा।
- भ्रूण लिंग की जांच सम्बन्धी इश्तहार/प्रकाशन प्रतिबंधित ।
- कोई भी क्लीनिक, प्रयोगशाला कर्मी, डॉक्टर आदि तथा कोई भी व्यक्ति जो निर्धारित कारणों के अतिरिक्त इन परीक्षणों के लिए उत्तरदायी होगा, उसे कानून का उलंघन करने पर कारावास तथा जुर्माने का दण्ड प्रावधानित है।
- ऐसे सभी पंजीकृत केन्द्रों पर सभी केसों से सम्बन्धित सभी कागजात/रिपोर्ट आदि 2 वर्ष तक तथा जिनसे सम्बन्धित कानूनी कार्यवाही चल रही हो, उनके कार्यवाही समाप्त होने तक सुरक्षित रखा जाना अनिवार्य होगा।
- ऐसे प्रत्येक केन्द्र के मुख्य स्थान पर भ्रूण के लिंग की जांच कराना कानूनी रुप से प्रतिबंधित है तथा उन को अंग्रेजी तथा स्थानीय, दोनों भाषाओं में जन सामान्य के लिए नोटिस लगाना अनिवार्य है।
- इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसी सभी प्रयोगशालाओं, परीक्षण केन्द्रों तथा परामर्श केन्द्रों आदि का पंजीकरण कराना अनिवार्य तो बनाया गया है लेकिन कई राज्यों में अभी तक ऐसे अनेक केन्द्र पंजीकृत नहीं है और वे गैर कानूनी धंधे के सबसे ज्यादा लिप्त है।

इस अधिनियम को गंभीरता पूर्वक लागू नहीं किये जाने के कारण यह अपने निर्धारित उद्देष्यों को पूरा करने में बुरी तरह असफल रहा है। मेडिकल काउन्सिल ऑफ इण्डिया की ताजा रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में देश में कम से कम 50 लाख बालिका भ्रूणों की हत्या प्रतिवर्ष की जा रही है। इससे ऐसा स्वत: आभास हो जाता है कि जिन राज्यों में बालिका प्रतिशत तुलनात्मक रुप से कम है, वहां 'प्रसव पूर्व परीक्षण तकनीक अधिनियम' का सही प्रकार से प्रयोग नहीं हो पाया है। देश में स्त्री-पुरुष अनुपात में निरंतर कमी को ध्यान में रखते हुए गर्भावस्था में भ्रूण की जांच के बढ़ते हुए दुरुपयोग की घटनाओं पर नियन्त्रण करने के उद्देश्य से ही यह प्रावधान किया गया, लेकिन सरकारी उदासीनता के चलते इसका उचित कार्यान्वयन अभी नहीं हो पाया है।

इस अनुपात के असंतुलित होने के कारणो पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो सर्व प्रथम दृष्टि उस सनातन मानसिकता पर जाती है जिसके अनुसार बेटा ही वंश का नाम चलाता है और बिना बेटे के श्राद्ध, पिण्डदान, तर्पण आदि कार्य किये माता-पिता की आत्मा को मुक्ति नहीं मिलती। दिन पर दिन बढ़ती दहेज की समस्या भी इस असंतुलन का बहुत बड़ा कारण है, बेटी पैदा हुई है तो साथ में दहेज की समस्या भी लाई है। इस चिंता के कारण उनको जन्म से पहले गर्भ में ही मार दिया जाता है और यदि वह पैदा हो जाती है तो उसका पालन पोषण सही ढंग से नहीं किया जाता है जिसके कारण कुपोषण व रोग असमय ही कन्याओं को काल के गाल में ढकेल देते हैं, भले ही आज लड़कियों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विजय का परचम क्यों न लहराया हो। उनकी स्थिति काफी चिन्तिनीय है।

इस प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से शोधार्थी यह प्रयास करना चाहती है कि समाज में बढ़ रही कन्या भ्रूण हत्या के दूरगामी प्रभावों से समाज के सदस्यों को अवगत करा सके और लोग इस असामाजिक एवं जघन्य अपराध को जड़ से समाप्त करने हेतु प्रेरित हो सके। अतः शोधार्थी के प्रस्तुत शोध पत्र का मूल मंतब्य लोगों के समक्ष कन्या भ्रूण हत्या से सम्बन्धित तमाम तथ्यों को उजागर करने के साथ ही साथ इस समस्या के समाधान हेतु महत्वपूर्ण व्यवहारिक सुझाव प्रस्तुत करना भी है।

इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी आवश्यकता भारतीय समाज को इस दिशा में शिक्षित करने की है कि बेटे द्वारा श्राद्ध से नहीं वरन् बेटे या बेटी किसी के भी द्वारा किये गये सत्कर्मों से माता पिता की आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में नयी वैज्ञानिक मान्यताओं को स्थापित किया जाये जिसमें पुत्र एवं पुत्री के सांस्कारिक कार्यों में किसी प्रकार का सामाजिक भेद-भाव न रखा जाय ।

जहां तक दहेज का प्रश्न है तो इसकी समाप्ति हेतु मध्यम उच्च वर्ग को पहल करनी होगी। मध्यम एवं निम्नवर्ग सदैव अपने से उच्च वर्ग की नकल करता है, यदि मध्यम उच्च वर्ग वास्तविक रुप से दहेज प्रथा समाप्ति की ओर कदम बढ़ाये और बिना तड़क-भड़क के विवाह समारोह आयोजित करने की पहल करें तो इस प्रथा पर अंकुश लग सकता है। नारी को साक्षर के साथ-साथ शिक्षित बनाने की भी आवश्यकता है, समाज में यह धारणा विकसित करनी होगी कि नारी का गौरव मां बनने में है न कि बेटे या बेटी को जन्म देने में। सृष्टि चक्र बिना नारी के चलना सम्भव ही नहीं।

समाज को इसके लिए स्वयं जागृत होना पडेगा और इसके लिए ठोस पहल स्वयं नारी को ही करनी होगी। सरकार को भी इनके कल्याण के लिए बालिका समृद्धि योजना, किशोरी शक्ति जैसी अन्य कई योजनाओं को तैयार कर संचालित किये जाने तथा उसको विशेष सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए विशेष कदम उठाये जाने चाहिए। इसके साथ ही नारी को अपनी आन्तरिक शक्ति पहचान कर नारियों की अस्मिता की रक्षा के लिए स्वयं आगे आना होगा वरना सृष्टि कैसे चलेगी, यह कोयी सुपर कम्प्यूटर भी नहीं बता सकेगा। अतः वर्तमान समाज में व्याप्त इस कुप्रथा की समाप्ति के बगैर स्वस्थ्य एवं गतिशील समाज की कल्पना नहीं की जा सकेगी।

सन्दर्भ

1. अरिहन्त समसामयिकी महा सागर जून, 2007.
2. नारी चेतना और सामाजिक विधान, डॉ० मिनाक्षी व्यास, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर 2008.
3. कुरुक्षेत्र, मार्च, 2008.
4. प्रसव पूर्व परीक्षण तकनीक अधिनियम, 1994.
5. पी0एन0डी0टी0, 2003 (एक्ट)।
6. दैनिक हिन्दुस्तान, वाराणसी।
7. वात्सल्य पत्रिका, इन्दिरा नगर, लखनऊ।
8. प्रतियोगिता दर्पण, 2009
9. प्रतियोगिता विकास, 2009
10. टाईम्स ऑफ इण्डिया।
11. योजना, नवम्बर, 2002.
12. पायनियर।
13. अमर उजाला, वाराणसी।
14. दैनिक जागरण, वाराणसी।
15. हेल्थ ऐज इण्डिया न्यूज, जुलाई - अगस्त, सितम्बर, 2002, नई दिल्ली।

भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों की भूमिका

डॉ० अमिय कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग,
दी.द.उ. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज

सदन में बहुमत जुटाने के लिए दो या दो से अधिक दलों के बीच आपसी समझौते से गठबंधन सरकार का जन्म होता है ऐसा समझौता चुनावपूर्व या चुनाव पश्चात हो सकता है। रोजर स्क्रटन के अनुसार विभिन्न दलों या राजनीतिक पहचान रखने वाले व्यक्तियों के बीच आपसी समझौता गठबंधन कहलाता है। जनता ने किसी एक विरोधी दल को विश्वास देने के स्थान पर विभिन्न विरोधी दलों मे अपने विश्वास को बाँट दिया था, परिणामस्वरूप एकदलीय सरकार के स्थान पर गठबंधन सरकारें स्थापित हुई। ये गठबंधन सरकारें वैचारिक साम्यता पर आधारित होने के बजाय बेमेल अवसरवादी गठबंधन थी। भारतीय राजनीति में 90 का दशक काफी उतार-चढ़ाव का दशक रहा है। इस दशक में केन्द्र सहित कई राज्यों में अनेक सरकारें बनी और बिगड़ी। दशक के प्रारम्भ में आया गठबंधन सरकार शब्द अब एक वास्तविक बन गया है। कभी गठबंधन से दूर रहने वाले कांग्रेस भी अब आवश्यकतानुसार राज्यों में गठबंधन कर रही है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख्य उद्देश्य यह है कि गठबंधन सरकार के धनात्मक एवं ऋणात्मक पक्षों पर प्रकाश डालना। वर्त्तमान राजनीतिक परिदृश्य के आधार पर यह स्पष्ट करना कि गठबंधन सरकार के पीछे मूलभूत कारण कौन से है? तथा यह विचार करना की भारत मे किस प्रकार की गठबंधन सरकार सफल हो सकती है।

विश्लेषण

एक संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बिन्दु मंत्रिमण्डल होता है। बहुमत प्राप्त दल द्वारा गठित मंत्रिमंण्डल को एकदलीय मंत्रिमण्डल कहा जाता है। क्योंकि इसमें सारे सदस्य या मंत्री केवल एक ही दल बहुमत प्राप्त दल के होते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है या हो सकता है कि विधानमण्डल में किसी भी राजनीतिक दल एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संगठित हो जाते है और इस तरह बहुमत का निर्माण तथा मंत्रिमण्डल का गठन करते है। एक से अधिक राजनीतिक दलों को मिलकर जो मंत्रिमण्डल या सरकार बनती है उसे गठबंधन या मिला-जुला सरकार कहते है। ऐसे मंत्रिमण्डल मे सामान्यत: उन सभी-राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व दिया जात है जो कुछ सामान्य सिद्धांतों के आधार पर संगठित हुए है। यह स्मरणीय है कि मिले-जुले मंत्रिमण्डल में जो घटक-राजनीतिक दल होते है वह सरकार बनाने के उद्देश्य से संगठित होने के बाद भी अपने पृथक दलीय अस्तित्व को बनाये रखते है अर्थात् उन सभी राजनीतिक दलों की पहचान बनी रहती है। इन अर्थो में गठबंधन सरकार का गठन करने वाले राजनीतिक दलों का विलय नहीं होता है। सरकर का गठन चार प्रकार से हो सकता है। प्रथम जब कोई दल स्पष्ट बहुमत से जीतकर आए। द्वितीय जब किसी एक विचारधारा से सम्बध दल समूह स्पष्ट बहुमत की स्थिति मे रहे जैसा केरल में वाम लोकतांत्रिक मोर्चा, पं बंगाल व त्रिपुरा में

साम्यवादी दल। जैसा कि 1977 की जनता पार्टी 1999 में NDA तथा 2004 में U.P.A. के साथ हुआ। चतुर्थ जब चुनाव के बाद किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने पर राजनीतिक दल सरकार बनाने के लिए मोर्चा या गठबंधन करे। राजनीतिक विश्लेषक तीसरी तथा चौथी प्रक्रिया के अन्तर्गत गठित सरकारों को गठबंधन सरकार के अन्तर्गत परिभाषित करते हैं।

1967 के पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का भारतीय राजनीति में एकाधिकार था। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस को स्वतंत्रता संग्राम में उसकी भूमिका तथा उसके नेताओं के आदर्शों का लाभ मिला परन्तु नेहरू का चमत्कारिता आभामंडल भी कांग्रेस के स्थायी एकाधिकार को सुनिश्चित नहीं कर सका। जैसे–जैसे भारत में सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना जागृत हुई। भारत जैसे विशाल देश एक राजनीतिक वर्ण क्रम में नहीं समा सका क्योंकि उसके पास धर्मों और क्षेत्रों, जातियों, भाषाई और सांस्कृतिक पहचानों की विविध असमानताएँ विद्यमान थी। फिर सत्तारूढ़ दल क्षेत्रीयता को समाप्त करने में विफल रहा और क्षेत्रीय मुद्दों की उसने उपेक्षा भी की। जिसके कारण क्षेत्रीय मुद्दों को लेकर क्षेत्रीय पार्टियाँ विभिन्न प्रदेशों में बनी। चूँकि क्षेत्रीय मुद्दें जनता से सीधे तौर पर गहरे से जुड़े रहते हैं। इसी कारण क्षेत्रीय दलों ने चुनाव में सफलताएँ भी प्राप्त की। कावेरी जल विवाद इसका प्रमुख उदाहरण है जो वर्षों तक तमिलनाडु और कर्नाटक की राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाता रहा इसके साथ ही कांग्रेस से लोगों का मोह भंग होने के कारण एक राजनीतिक निर्वात की उत्पत्ति हुई। चूँकि कोई विपक्षी राष्ट्रीय पार्टी उस समय इतनी सशक्त नहीं थी जो उस निर्वात को भर सके फलतः उस निर्वात को क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा भर दिया गया। मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद जातिवाद में वृद्धि हुई और प्रत्येक राज्य में जातिगत समीकरणों के आधार पर छोटे-छोट राजनीतिक दल बनने लगे। यद्यपि गठबंधन सरकार समय और परिस्थितयों की अनिवार्यता के कारण अस्तित्व में आती है, किन्तु इसके कई सकारात्मक पक्ष भी है। जैसे–यह सरकार अनेक प्रकार के मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करती है। गठबंधन सरकार में विभिन्न विचारधाराओं वाली पार्टियाँ शामिल होती है इस कारण उसमें मतदाताओं के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व रहता है। गठबंधन सरकार में विभिन्न दलों के बीच आपसी समझ-बुझ का विकास होता है। चूँकि गठबन्धन सरकार में विभिन्न दलों के बीच साझा कार्यक्रम बनाया जाता है इस कारण इसमें विभिन्न दलों के बीच समन्वय होता है। गठबंधन सरकार में दलों के बीच समन्वय होता है। गठबंधन सरकार में क्षेत्रीय मुद्दों पर भी ध्यान दिया जाता है। एक दलीय शासन में उपेक्षित पड़े क्षेत्रीय मुद्दें गठबंधन सरकार में प्रधानता पा जाते हैं तथा क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान भी गठबंधन सरकार में निकल आता है। वस्तुतः क्षेत्रीय समस्याओं में क्षेत्रीय दलों और उनके वोट बैंक का बड़ा हाथ रहता है किन्तु जब एक या एक से अधिक क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय दल के साथ या आपस में गठबंधन करते हैं तो वे दलीय स्वार्थ से ऊपर उठकर क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही गठबंधन सरकार साझा कार्यक्रम बनाती है और उसका सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। इस सरकार द्वारा लिए गए निर्णय विभिन्न घटक राजनीतिक दलों के निर्णय माने जाते हैं। इसलिए कोई भी निर्णय लेने से पहले घटक दल विचार विमर्श करते हैं इस प्रकार इन निर्णयों में जनता के हित का अधिक ध्यान रखा जाता है।

गठबंधन सरकार का सबसे कमजोर पहलू इसकी अस्थिरता है। किसी भी मुख्य दल के सरकार से समर्थन वापस लेने पर सरकार गिर सकती है। इस कारण से सरकार को घटक दलों द्वारा "ब्लैकमेल' भी किया जाता है। गठबंधन सरकार में प्र. मंत्री की स्थिति काफी दयनीय रही है। प्र. मंत्री को गठबंधन अथवा सरकार में सम्मिलित छोटी से छोटी पार्टी की भी माँग को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। न तो प्रधानमंत्री अपनी कैबिनेट का चयन अपनी इच्छानुसार कर सकता है और न ही उसमें कोई परिवर्त्तन सहयोगी पार्टियों के परामर्श के बिना कर सकता है। गठबंधन सरकार का एक दुष्प्रभाव यह भी होता है कि इससे विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच तनाव भी फैलता है। जिला अथवा ग्राम स्तर पर सरकार में सम्मिलित दलों के कार्यकर्त्ताओं को कभी-कभी अपने दल के नीतियों की विरोधी नीति का समर्थन करने और जनता को संतुष्ट करने में कठिनाई होती है जिससे उनके मनोबल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गठबंधन सरकार पार्टी के अनुशासन को प्रभावित करती है। चुनाव पूर्व जिसके विरोध में प्रत्याशी खड़े होते हैं वही साझा सरकार में उनके सहयोगी बन जाते हैं। इस स्थिति का संतोषप्रद उत्तर मतदाताओं को दे पाना कठिन होता है। साझा सरकार में विभिन्न दलों को मंत्रीमंडल में स्थान देने के कारण मंत्रीमंडल बड़ा हो जाता था। मंत्रियों पर प्र. मंत्री के ढीले नियंत्रण से भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक मामले पर घटक दलों की सलाह की अनिवार्यता के कारण काम की गति धीमी रहती है तथा कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों की उपेक्षा केवल इसलिए कर दी जाती है क्योंकि वे सरकार में शामिल किसी घटक दल के वोट बैंक के लिए

हानिकारक होते हैं। अनेक राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि छोटे-छोटे क्षेत्रीय दलों के उभार से भारतीय संघ में क्षेत्रीयता, अलगाववादी जैसी विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिल रहा है।

भारत में गठबंधन सरकार

जहाँ तक भारत में गठबंधन सरकार का प्रश्न है तो इस अवधारणा से भारतीय बहुत पहले से परिचित है किंतु इसका यहाँ अधिक प्रचलन न होने के कारण भारत में साझा सरकार को एक नई अवधारणा मान लिया गया है। भारत में साझा सरकार के गठन की प्रक्रिया स्वतंत्रता के पूर्व ही आरंभ हो गयी थी। भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तगर्त हुए चुनावों में काँग्रेस ने 05 प्रांतों में सरकार बनाई जबकि मुम्बई में वह दो-तीन दलों के समर्थन से सरकार बनाने की स्थिति में थी तथा असम एवं उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में वह सबसे बड़े दल के रूप में उभरीं इन प्रान्तों में भी गठबंधन सरकारें बनीं।

स्वतंत्रता के बाद पहली गैर कांग्रेसी सरकार का गठन केरल के पहले आम चुनाव 1955 ई. में एस. नम्बूदिरीपाद के नेतृत्व में हो गया था। वह साम्यवादी सरकार सही मामलों में गठबंधन सरकार नहीं थी। भारत में गठबंधन की शुरूआत 1967 में चौथें आम चुनाव से मानी जाती है। इस चुनाव में कांग्रेसी आधिपत्य को पहली बार झटका लगा इस चुनाव में बंगाल, उ.प्र., उड़ीसा, बिहार, म. प्र, तमिलनाडु, हरियाणा और पंजाब में काँग्रेस बुरी तरह परास्त हुई और यहाँ गैर कांग्रेसी संविद सरकारें गठित हुई। सभी गठबंधन सरकारें भी उ. प्र. में इस गठबंधन सरकार की प्रथम बागडोर चौधरी चरण सिंह ने सम्हाली। आपात्काल (जून 1975 से अप्रैल 1977) के बाद जनता पार्टी का गठन हुआ। यह कई राजनीतिक दलों जैसे – जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी तथा कांग्रेस फार डेमोक्रेसी का उत्तर समूह थी। इसने 1977 के आम चुनावों में भारी जीत हासिल कर केन्द्रीय स्तर पर प्रथम गठबंधन सरकार बनाई। 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार, भाजपा तथा वाम मोर्चा के समर्थन पर बनी। 1996-97 में पहले देवगौड़ा फिर इन्द्रकुमार गुजराल की सरकारें कई पार्टियों के संयुक्त मोर्चे के गठन से बनीं जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया। 1998 में 13 पार्टियों संयुक्त मोर्चा के गठन से बनीं जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया। 1998 में 13 पार्टियों के गठबंधन से बनी बाजपेयी सरकार 13 महीने चली। 1999 में पुन: बाजपेयी के नेतृत्व में 24 पार्टियों वाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सत्ता में आया। पुन: मई 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन केन्द्र में सरकार बनाने में सफल रहा।

भारत मे जो भी गठबंधन बनते हैं वे किसी आदर्श की नींव पर नहीं बनाते बल्कि अवसरवादिता के सिद्धांत की बुनियाद पर बनते हैं। 1970 और 1980 के दशक में जो भी राजनैतिक गठबंधन बनते थे उनका उद्देश्य कांग्रेस को हटाना था। आज जो गठबंधन बन रहे हैं उनका एक ही उद्देश्य है सत्ता की प्राप्ति। यही कारण है कि इन गठबंधनों को कोई भविष्य नहीं होता। इन गठबंधनों में परस्पर विरोधी विचारधारा वाली पार्टियाँ शामिल होती हैं। संयोगवश वे कुछ कारणों से एक होती है। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में वामपंथी पार्टियाँ भी शामिल हैं जबकि प. बंगाल और केरल में कांग्रेस के ये घोर विरोधी हैं। अत: आज का गठबंधन कोई सिद्धान्त नहीं है बल्कि यह अवसरवादिता पर आधारित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

(1) दि इंडियन पोलिटिकल सिस्टम–नार्मन डी पामर।
(2) गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स ऑफ इंडिया–डब्ल्यू एच. मोरिस जोंस।
(3) भारतीय राजनीति व्यवस्था–एस. एम. सईद।
(4) इंडियन गवर्नमेंन्ट एण्ड पोलिटिक्स–डी. सी. गुप्ता।
(5) भारतीय संविधान : एक परिचय–दुर्गादास बसु।
(6) दल-बदल की राजनीति–डॉ. सुभाष कश्यप।
(7) भारतीय शासन एवं राजनीति–डॉ. रुपा मंगलानी।
(8) पोलिटिकल इन इंडिया–रजनी कोठारी।
(9) इंडियन गर्वमेंट एण्ड पोलिटिक्ल–जे. आर. स्वीच।

भूदान-आन्दोलन का राजनीतिक यथार्थः 'विश्रामपुर का संत'

डॉ० शिप्रा शर्मा

'विश्रामपुर का संत' एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने समकालीन राजनीति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। आजादी के बाद देश में जिस तरह की ओछी राजनीति का उदय हुआ है और आज के राजनेता सत्ता में उच्च पद पाने के लिए राजनीति में जो दांव-पेंच अपनाते हैं उसका जीता जागता चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

उपन्यास का एक बड़ा हिस्सा भूदान आन्दोलन की राजनीति और उसके विमर्श से जुड़ा हुआ है। साथ ही इसमें स्वातंत्रोयोत्तर भारतीय समाज के सामंत वर्ग की महत्वाकांक्षा का भी यथार्थ चित्रण है।

स्वाधीनता संग्राम के दिनों में जिस प्रकार अनेक सामंतों ने कांग्रेस में शामिल होकर सत्याग्रह किया, जेल गए और देशभक्त कहलाकर स्वाधीन सरकार के साथ सुख भोगने के हकदार बन गए, उसी प्रकार स्वतंत्रता मिलने के बाद अनेक सामंत भूदान आन्दोलन में शरीक होकर समाज और राजनीति में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर, अपनी शासकीय एव राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति कर सकने की योग्यता अर्जित कर लिए।

उपन्यास के प्रमुख पात्र कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का चरित्र ऐसे ही एक सामंत का है, जिसने भूदान यज्ञ में कुछ पहाड़ी भूमि दान कर अपने लिए राजनीति में जगह बना ली। भूदान के कुछ ही दिनों बाद वे राष्ट्रसंघ के लिए भारतीय प्रतिनिधि मंडल में शामिल कर ले जाते है और बाद में राज्यपाल भी नियुक्त कर दिए जाते हैं। जिन दो गांवों को जयंती प्रसाद सिंह ने भूदान आन्दोलन में दान दिया था, उन गांवो की आधी से ज्यादा जमीन बंजर थी। भूदान आन्दोलन का इतिहास भी यही बताता है कि भूदान के समय भूदान ख्रयज्ञ में मिली हुई अधिकतर भूमि बंजर और अनुर्वर ही थी।

विनोबा भावे ने 1950-51 में भूदान आन्दोलन शुरू किया था। विनोबा भावे भारत के हर प्रान्त में घूम घूम कर भूमि संग्रह का कार्य कर रहे थे। भूदान यज्ञ का उद्देश्य था अहिंसक तरीके से भारत की भूमि की समस्या का समाधान करना। विनोबा भावे भूस्वामियों से कहते थे कि, "जैसे हवा और धूप एक की नहीं, सबकी है वैसे ही जमीन भी।"[1] धरती हमारी माँ है और जिस प्रकार माँ की संपत्ति का उसकी संतानों के बीच किसी प्रकार के भेदभाव के बिना वितरण किया जाता है, उसी प्रकार जमीन का भी वितरण किया जाना चाहिए। वे प्रत्येक भूमिधर से उसकी जमीन का शष्टाँश मांगते थे, जिससे भूमिहीनों के बीच उसका वितरण कर उसके जीवन को सुखी बनाया जा सके और लोगों के बीच फैली आर्थिक विषमता कम से कम हो सके। आचार्य विनोबा भावे के निवेदन पर प्रत्येक राज्य के भूमिपति, भूमिहीनों के लिए भूमिदान करने लगे।

कुँवर जयंती प्रसाद सिंह ने भूदान यज्ञ में अपना दो गांव विनोबा भावे को दान कर दिया था। "दो गांवों को मैं भूदान यज्ञ में अर्पित करता हूँ यह भूदान नहीं है, उन गावों के सभी किसानों की ओर से और खुद मेरी ओर से यह ग्रामदान है।"[2] इस दान के पीछे कुँवर साहब का दिल साफ नहीं था। अपने त्याग की धाक जमाने के लिए ही उन्होंने दान दिया था।

आजादी के बाद सत्ता की राजनीति में भूदानियों, गाँधीवादियों की जितनी भागीदारी रही है, उसका असर आज भी दिखाई देता है। जयंती प्रसाद सिंह जैसे चरित्र इस यथार्थ के साक्ष्य हैं, जो भूदानी का जामा पहनकर प्रदेश के राजभवनों का सुख दोनो हाथों से लूट रहे हैं। "आज देश की राजनीति का यथार्थ यह है कि कोई गांधीवादी बनकर देश का राष्टरपति, कोई प्रधानमंत्री पद की शोभा बढ़ा रहा है, तो कोई लोहियावादी बनकर जातिवादी राजनीति में फंसकर सूबे से लेकर केन्द्रीय सरकार की राजनीति को

नियंत्रित करने में मशगूल है, कोई साधारण आदमी की औसत आमदनी बढ़ाने और जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने का लालच देकर देश में पूंजीवादी राष्ट्रों को आर्थिक उदारीकरण के नाम पर न्योता देकर देश में पूंजीवादी किले को और मजबूत कर रहा है।"[3]

श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास के माध्यम से देश का राजनीतिक व आर्थिक यथार्थ दिखाया है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे इस देश की राजनीतिक विचारधाराएं आज भी पाखंड की शक्ल में राजनेताओं के संसार में फलफूल रही हैं। इसलिए इस उपन्यास में भूदान आन्दोलन की विफलता की धज्जियाँ तो उड़ाई ही गई हैं, मुख्य बात यह भी दिखाया गया है कि कल के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में किए गए प्रयोग किस प्रकार आज की राजनीति में राजनेताओं के लिए अमोघ अस्त्र बन गए हैं।

भूदान-आन्दोलन, जयंती प्रसाद सिंह जैसे पाखंडी राजनेताओं के लिए राजनीति का एक अमोघ हथियार बन गया। अपने मिशन से भटकी और बिक चुकी हमारी पत्रकारिता उसे रातों- रात 'विस्रामपुर का संत' घोषित कर डालती है।

भूदान-आन्दोलन के प्रणेता विनोबा भावे ने देश भर में पदयात्री बनकर जिस तरह राजे-रजवाड़ों, ताल्लुकेदारों, जमींदारों से भूमि दान करवाया और सनातन सर्वोदयी होने का गांधी के समानान्तर संत का खिताब पाया उससे गाँधी बनाम विनोबा के वैचारिक संघर्ष की टकराहट इस उपन्यास में वामपंथी सोचवाले युवक विवेक के वक्तव्य में देखा जा सकता है, "आचार्य विनोबा भावे मामूली संत नहीं हैं। उन्होंने भूदान आन्दोलन नाम के हथियार की ईजाद की है। उसके पहले ही वार में एक तरफ तेलंगाना में साम्यवाद अधमरा होकर रह गया, तो दूसरी तरफ बिहार और उत्तर प्रदेश में गाँधीवाद के हाथ-पाँव टूट गए।"[4] कुंवर जयंती परसाद सिंह के वामपंथी बेटे विवेक का भूदान आन्दोलन में थोड़ा भी विश्वास नहीं है। वह कहता है, "जिस देश में सुई की नोक भर जमीन के लिए महाभारत का युद्द हुआ हो वहाँ सद्भाव और हृदयपरिवर्तन की बात भावुकता भर है। सामूहिक हृदय परिवर्तन इतनी आसानी से नहीं होते, उसके लिए रूस जैसी व्यापक क्रान्ति की जरूरत होती है।"[5] भूदान आन्दोलन की विफलता पर वह कायम रहता है। इस आन्दोलन को वह दुधारी तलवार बताता है। वह कहता है कि, "मुझे लगता है कि भूदान जैसे दाता और दान ग्रहीता वाले आन्दोलन ने किसान की इस गाँधीवादी अवधारणा पर वैसी ही चोट की है जैसी साम्यवादी संघर्ष पर।"[6]

जयंती प्रसाद सिंह का चरित्र इस उपन्यास में एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि राजनीतिक समुदाय का है। आजादी के बाद देश में एक ऐसा समय आया था जब, "राजनीति में चमकने के लिए अब जेलयात्रा का प्रमाण पत्र जरूरी न था, आभिजात्य का बोलबाला था। ऊंचे नेताओं, बड़े औद्योगिक घरानों और महत्वपूर्ण अफसरशाहों की घनिष्ठता क स्वतंत्र मूल्य बन चुकी थी।"[7] यह एक अलग ही वर्ग था भारत भाग्य विधाताओं का। कुंवर जयंती प्रसाद सिंह उन्हीं में से एक है, जिसकी जिन्दगी की अंतिम परिणति ऊब, अकेलेपन और अवसाद में होती है।

श्रीलाल शुक्ल ने कुँवर जयंती प्रसाद सिंह को पूंजीवादी राजनीति के पुराने दौर के चरित्र के रूप में उपस्थित किया है। वृद्धावस्था में भी उसमें असीम महत्वाकांक्षा है और बगुला भगत की सी चालाकी भी है। विस्रामपुर जाकर बसने का निर्णय किसी वैराग्य के कारण नहीं करते हैं बल्कि जब सत्ता में कोई पद मिलने की उम्मीद नहीं दिखाई पड़ती है और प्रधानमंत्री द्वारा अपने भविष्य के लिए कोई बढ़िया संकेत न पाकर विस्रामपुर जाने का निर्णय कर लेते हैं। उन्हे लगता है कि उनके इस व्यवहार से प्रधानमंत्री को चोट पहुंचेगी और उन्हें बुलाकर कोई उच्च पद दे देंगे। "उन्हें इत्मीनान था कि उनकी जैसी दुर्लभ योग्यता वाले आदमी के लिए एक न एक ऊंची कुर्सी हर वक्त खाली रहेगी।"[8] क्योंकि "अपनी समझ में उन्होंने कई मौकों पर इस राज्य की खतरनाक राजनीति में प्रधानमंत्री को बहुत बड़े असमंजस से उबारा था। उन्हें विश्वास था कि प्रधानमंत्री उन्हें कभी नही भूलेंगे।"[9] कुंवर जयंती प्रसाद सिंह को यह भी भरोसा था कि, "प्रधानमंत्री उनके विस्तीर्ण अनुभव का इस्तेमाल उन्हें किसी बड़े देश में राजदूत बनाकर या कोई वैसा ही दूसरा ओहदा देकर करने वाले है।"[10] इन सबके बावजूद प्रधानमंत्री का ध्यान जयंती प्रसाद सिंह पर नहीं जाता है। प्रधानमंत्री की कृतघ्नता पर गुस्सा भी आता है लेकिन उम्मीद छोड़ना नहीं चाहते हैं। "वे जानते थे कि यह एक भारी भरकम निर्णय होगा, सत्तातंत्र में इसकी व्यापक चर्चा होगी, शायद यह ऐसे कई लोगों को झकझोरेगा जो अभी तक उनको पूरी गंभीरता से नहीं समझ रहे हैं।"[11]

विस्रामपुर गांव आचार्य विनोबा भावे को भूदान यज्ञ में ग्रामदान के रूप में अर्पित हुआ था। इस गांव में किसानों को एकजुट करके सहकारी खेती की एक परियोजना बनाई गई थी। ऐसा लगा था कि यह परियोजना देश में खेत की हैसियत और किसानों के भाग्य को पलट देगी। लेकिन सारी परियोजना मिट्टी में मिल जाती है। स्थानीय नेता इस बारे में कहता है कि "हमारा समाज कुछ सही ढंग का होता तो उनकी शक्ति पूरी तौर से विकास की योजनाओं में लगती और तब इस क्षेत्र की शक्ल कुछ और ही होती।"[12]

आज देश की यह हालत है कि सिर्फ योजनाएं बनाई जाती हैं लेकिन कोई भी योजना सफल नहीं होती है। सभी योजनाओं का जो हाल होता है, वही हाल इस योजना का भी हुआ।

सहकारी फार्म की योजना भी शुरू की जाती है लेकिन बीस साल से वहां भी वैसी ही है बंजर जमीना "फार्म नहीं, यह फार्म का इरादा भर है। यहां न जाने कैसे- कैसे प्रयोग होते रहते हैं बीच-बीच में कभी कोई इमारत बनती है, कोई टूटती है। कभी ग्रामीण दस्तकारों की ट्रेनिंग शुरू होती है, कभी इंडस्ट्रियल इस्टेट की बात उठती है। होने को बहुत कुछ होता है पर कुछ होता हुआ नहीं दिख पड़ता।"[13] सहकारी फार्म खत्म हो चुका था, लेकिन सहकारी फार्म के नाम पर सरकार से अनुदान मिलना कम नहीं हुआ था। कभी बंजर सुधार के नाम पर, कभी सिंचाई के साधन के नाम पर और कभी हाउस के निर्माण या कृषि यंत्रों की खरीद के नाम पर बराबर सरकारी अनुदान आते रहते थे "फार्म चौपट था, किसान मजदूर बन चुके थे, पर परियोजना फल फूल रही थी।"[14] क्योंकि "सरकार की निगाह में यह ऐसा प्रयोग था जिसे सफल बनाना उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न था।"[15] यही समकालीन राजनीति का जीता-जागता उदाहरण है जहां योजना के नाम पर लाखों रूपए आते तो हैं लेकिन उसका प्रयोग कहां होता है कोई नहीं जानता। योजना पड़ी रह जाती है, लेकिन योजना के नाम पर अनुदान कम नहीं होता है।

भूदान-आन्दोलन की सटीक समीक्षा के तौर पर इस उपन्यास में रामलोटन की समस्या है, जिसकी जमीन दूबे के कब्जे में चली गई थी। फर्जी रेहन की समस्या, सरकार के पास फरियाद, चिट्ठी-पत्री, मुकदमा भी किया जाता है लेकिन उससे भी कुछ होता नहीं है। समाधान तभी होता है जब रामलोटन जैसे और अन्य किसान संघर्ष के तहत खेतों पर चढ़ जाते हैं दूबे महाराज और किसानों के बीच मारपीट हो जाती है।

श्रीलाल शुक्ल ने भूदान-आन्दोलन की विफलता का सटीक चित्र खींचा है। इतिहास की यह कैसी विडंबना है कि सारा आन्दोलन जिस बिन्दु से शुरू हुआ था उसी बिन्दु पर आ गया है। जहां से तेलंगाना में क्रान्ति की शुरुआत हुई थी वहीं ग्रामदान के बाद विस्रामपुर के किसानों ने अपनी जोत के लिए हथियार उठा लिए हैं। भूदान आन्दोलन की असलियत खोलते हुए श्रीलाल शुक्ल ने लिखा है, "जिन जमींदारों ने अपने किसानों के अंगूठे लगवा कर यह भूमि दान में दी थी, वे ही कई सालों से सहकारी फार्म के अध्यक्ष बने हुए हैं। इसके बाद कहने को क्या रह जाता है? हिन्दी पट्टी में कायदे से भूमि सुधार नहीं हुआ है।"[16]

विकास और सुधार के नाम पर परियोजनाएं चल रही हैं। गरीबी हटाने की बातें की जा रही हैं। लेकिन समाज गरीबी, अशिक्षा और निराशा से जूझ रहा है यहां राजनीतिक लड़ाइयां ओहदे और डालर के लिए हो रही हैं। अब राजनीति में कुंवर जयंती प्रसाद सिंह जैसे व्यक्ति भी अनुपयोगी और बोझ बन गए हैं। "उनकी जगह चुस्त पोशाक पहनने वाले नए प्रबंध विशेषज्ञ आ गए हैं। वे बंबई कलकत्ता के सेठों तक ही चुनाव चंदे को सीमित नहीं रखते, वे विदेशी वाणिज्य-व्यापार में लूट की संभावनाओं का अनुसंधान कर रहे हैं। वे स्मार्ट हैं। वे पार्टी को और खुद अपने को सरसब्ज कर रहे हैं ध्रुव प्रदेशों और रेगिस्तानों तक से पैसा निचोड़ने की नयी प्राविधिकी वे आविष्कार कर रहे हैं एक-एक दांव में करोड़ो डालर बटोर कर वे राजनीति को एक अत्याधुनिक और खतरनाक हथियार बना चुके हैं। कुछ बचे-खुचे संपानीनुमा बूढ़े हैं जिन्हें भुलाया जा चुका है या सिर्फ बर्दाश्त किया जा रहा है। कुछ बूढ़े अब भी असरदार हैं, उन्हें भारी भरकम नामवाले निरर्थक राजनीतिक ओहदे देकर ऐसी जगह बैठा दिया गया है जो एक चमकदार कूड़ेदान के सिवा और कुछ नहीं है।"[17]

डॉ० पुष्पिता लिखती हैं, "विस्रामपुर का संत का परिवेश यों तो विस्रामपुर तक ही सीमित है परंतु उसकी चेतना का विस्तार भौगोलिक हदों को तोड़ते हुए व्यापक रूप से स्वतंत्रता के बाद उपजी हमारी सामाजिक मानसिकता के इस छोर से जा टकराता है जो मूल्य-मूढ़ता की खाद पर पनपी है। उच्च कोटि की दुर्लभ सर्जनात्मकता और लेखकीय दृष्टि की व्यापकता का परिवेश ही रचना को इतने व्यापक धरातल पर उठाते हुए हमारी मूल्यहीनता और चारित्रिक विघटन की संपूर्ण मानसिकता को अंतर्मुक्त कर सकता है। सदी के उत्तरार्ध में हिन्दी के शायद ही किसी उपन्यास ने हमारी अवांछनीय शक्तियों के उदय तथा नपुंसक, पलायनवादी और ह्रासोन्मुखी बौद्धिकता की इतनी यथार्थवादी और मुकम्मल पड़ताल की हो। जीवन यथार्थ के समानान्तर अपने परिवेश की यह कृति निर्मम व्याख्या करती है।"[18] नया सत्तातंत्र नए खून की मांग कर रहा है। कई ताकतवर बूढ़े हैं जो बरसों से देश के थैलीशाहों की निगाहों में सत्ता के प्रतीक बन रहे थे। वे अचानक थैलियां वसूलने की राजनीति के बावजूद, थैलीशाही का विस्तार होने पर भी, निरर्थक होते जा रहे हैं। 'विस्रामपुर का संत' उपन्यास में एक ओर भूदान-आन्दोलन का इतिहास है, जिसमें उसके गुण और दोष पात्रों के द्वारा विश्लेषित हैं, दूसरी ओर भूदान-आन्दोलन संबंधी कार्यों के बीच से ही सर्वोदयी, गाँधीवादी और भूदान-आन्दोलन कार्यो के 'लाइफ कल्चर' की भी 'ट्रूथ एनलिलिस' है। कुँवर जयंती प्रसाद सिंह के द्वारा एक प्रौढ़ विलासी पुरुष मन के मनोभावों और

मनोविकारों की जटिलताओं का सरल विश्लेषण है। जयश्री, सुंदरी और सुशीला के द्वारा उनके मन के अंतरंग आत्मसंघर्ष और अतृप्त भोगेषणाओं को भी मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है जिसके द्वारा लेखक ने एक ओर तो विस्रामपुर के संत का जीवन रहस्य और कार्यनिष्ठा को उजागर किया है तो दूसरी ओर उपन्यास की सरसता और प्रभावशीलता को बचाया है।

कहना न होगा, कि आजादी के बाद एक मात्र आन्दोलन... भूदान-आन्दोलन के रेशे-रेशे को उधेड़ने के साथ-साथ मानव मन की कुंठाओं और जटिलताओं को भी जागर किया है। इस तरह से दोनो भावभूमियों की कथाएं एक साथ ...समानान्तर विकसित होती हैं। घोर यथार्थवादियों के समर्थकों ने भी 'सुररियलिज्म' की जिस सीमा का निर्वाह किया है, अपनी बेबाक अभिव्यक्ति से श्रीलाल शुक्ल जी ने इसका निर्वाह साधा है। विस्रामपुर पर दृष्टि टिकाकर सारे देश में भूदान-आन्दोलन की क्रिया-प्रतिक्रिया तथा उससे जुड़े लोगों का चरित्रान्वेषण और उद्घाटन इस उपन्यास का लक्ष्य है। आजादी के बाद सामंती व्यवस्था तो खत्म हुई, किन्तु हमारी पारंपरिक सामंती प्रवृत्ति का अंत नहीं हुआ। आज सत्ता के विकेन्द्रीकरण के नाम पर जहां कहीं भी सत्ता और शक्ति का केन्द्र है, वह भूदान आन्दोलन हो या कोई भी गांधीवादी आन्दोलन उसका प्रभाव प्राय: जटिल और कुटिल है। श्रीलाल शुक्ल इस संकट की राजनीति का पूर्ण सामाजिक इतिहास और भूगोल चिह्नित करते हैं 'राग दरबारी' के लेखक ने जहाँ आजादी के बाद गाँवों के अविकसित रहने के कारणों को खोला-परखा है, 'विस्रामपुर का संत' भूदान-आन्दोलन की नाकामयाबी के कारणों को खोजता-तलाशता है। सामंतशाही का सरकारी संस्करण अफसरशाही है। मंत्री, नेता, राज्यपाल और आन्दोलनकारी कोई किसी से कम नहीं है।"[19]

खगेन्द्र ठाकुर के शब्दों में, "प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य शिल्पगत विशेषता यह है कि इसकी कथा घटना ख्रप्रधान या विवरण-प्रधान नहीं है कथा समाज में घटित होती दिखाई पड़ती है और उसमें समाज और राजनीति के कई खास पक्षों का साक्षात्कार होता है, फिर भी ध्यान में रखने की बात यह है कि घटनाओं और चरित्रों के साक्षात्कार का क्षेत्र है कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का मानस, उनकी चेतना, उनके सपनों की भूमि यानी, मनोभूमि यथार्थवादी कथानक और चेतना-प्रवाह की शैली का अद्‌भुत समन्वय इस कथा में हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि लेखक ने कोई चरित्र या प्रसंग अपनी चेतना या सपने या सिद्धांत के साँचे में गढ़ा नहीं है गतिशील यथार्थ का प्रवाह कुँवर जी की स्मृतिधारा के साथ एकमेक होकर चलता रहता है। घटनाएं और अनेक माध्यम कुंवर जी हों या निर्मल भाई, सुन्दरी हो या सुशीला, आश्रम के मंत्री हों या विवेक, राव साहब हों या दूबे महाराज, सभी जीवन- यथार्थ के प्रतिनिधि हैं और उनका जीवन स्वातंत्रयोत्तर भारत के समाज के अंग हैं।"[20]

इस उपन्यास की भाषा हिन्दी गद्य की ताकत और ऊंचाई का एहसास कराती है। भाषा में सहजता और सरलता के बावजूद बेहद व्यंजकता है। व्यंजक भाषा का प्रयोग देखिए, "हुआ यह कि विस्रामपुर पहुंचने पर उनका पहला साक्षात्कार - या उनके नितंबों का पहला साक्षात्कार कमोड से हुआ।"[21] यह एक अनुच्छेद का पहला वाक्य है, इसी से स्पष्ट है कि स्वयं लेखक की चेतना में इस कथन का व्यंग्य क्या और कितना महत्वपूर्ण है। सर्वोदय के आश्रम में संत बनकर रहने गए कुँवर जी की जीवन-पद्धति कैसी होने वाली है, पुरानी जीवन-पद्धति को वे कितना छोड़ने वाले हैं, उन्होंने अपना कितना जीवन दान किया है, कितना सर्वोदयीकरण किया है, इन सारे प्रश्नों का उत्तर उपर्युक्त कथन में मिल जाता है।

उपन्यास में भाषा कहीं भी लचर या ढीली-ढाली नहीं है। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि इस उपन्यास में कथ्य से अधि क उल्लेखनीय भाषा शिल्प है।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल श्रीलाल, विस्रामपुर का संत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1998, पृष्ठ-22
2. उपर्युक्त, पृष्ठ-24
3. त्रिपाठी अरविन्द, विस्रामपुर के संत की पतनगाथा, नामवर सिंह (सं.), श्रीलाल शुक्ल जीवन ही जीवन, संस्करण, 2005, श्रीलाल शुक्ल अमृत महोत्सव समिति, हौज खास, नई दिल्ली, पृष्ठ-86
4. उपर्युक्त, पृष्ठ-87
5. शुक्ल श्रीलाल, विस्रामपुर का संत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1998, पृष्ठ-173
6. उपर्युक्त, पृष्ठ-176

7. उपर्युक्त, पृष्ठ–85
8. उपर्युक्त, पृष्ठ–64
9. उपर्युक्त, पृष्ठ–64
10. उपर्युक्त, पृष्ठ–65
11. उपर्युक्त, पृष्ठ–80
12. उपर्युक्त, पृष्ठ–31
13. उपर्युक्त, पृष्ठ–34
14. उपर्युक्त, पृष्ठ–123
15. उपर्युक्त, पृष्ठ–123
16. शंभुनाथ, राजनीति में मनुष्य की वापसी एक स्वप्न है, नामवर सिंह (सं.) श्रीलाल शुक्ल जीवन ही जीवन, संस्करण 2005
17. शुक्ल श्रीलाल, विस्रामपुर का संत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1998, पृष्ठ–86
18. 'उत्तर प्रदेश', लखनऊ, जनवरी 1999, डॉ. पुष्पिता का लेख, पृष्ठ–13
19. 'उत्तर प्रदेश', लखनऊ, जनवरी 1999, डॉ. पुष्पिता का लेख, पृष्ठ–14
20. 'उत्तर प्रदेश', लखनऊ, जनवरी 1999, डॉ. खगेन्द्र ठाकुर का लेख, पृष्ठ–23
21. शुक्ल श्रीलाल, विस्रामपुर का संत, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1998, पृष्ठ–81

मिथिलेश्वर के उपन्यास 'माटी कहे कुम्हार से' में नारी संघर्ष

डॉ० शैल कुमारी वर्मा

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, महारानी जानकी कुंवर महाविद्यालय, बेतिया (प० चम्पारण)
बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

व्यक्ति स्वयं अपने विचारों, मान्यताओं, आदर्शों और रीतियों द्वारा समाज व्यवस्था का नियमन करता है, लेकिन परिवर्तन की प्रक्रिया में एक समय में बने नियम आने वाले समय में रूढ़ सिद्ध हो जाते हैं और परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति स्वयं निर्मित नियमों को तोड़कर नये आदर्शों, विचारों, मान्यताओं, रीतियों-नीतियों को अपनाता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पुरुष प्रधान समाज होने के नाते परिवार में जितने नियम नारी के लिए बने हैं उतने पुरुष के लिए नहीं। नारी भी मूक भाव से इन नियमों का पालन करना अपना धर्म समझती है। कोल्हू के बैल की तरह पिस जाती है पर ऊ तक नहीं करती। वर्तमान हिन्दी आलोचना और साहित्य में समाज की उन जड़-परम्पराओं का विरोध किया है जिनसे नारियों का विकास अवरुद्ध होता है।

'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास में भी लेखक (मिथिलेश्वर) ने 'मुनिला' के माध्यम से यह सत्य उजागर किया है कि पुरुष द्वारा शोषण को मूक भाव से सहने का अर्थ इसे बढ़ावा देना है। उपन्यास का आरम्भ मुनिला की माँ 'कलावती' से होता है। वह एक ऐसी नारी है जो देखने में बहुत सुन्दर है परन्तु वह गूँगी है वह स्वयं जाति से ब्राह्मण थी लेकिन वह यदुवंशी बिसुनदेव से प्यार करती है। उसके पिता उसकी शादी के लिए परेशान थे। वह अच्छा दहेज देकर उसकी शादी किसी अच्छे घर में करना चाहते हैं पर अनेक प्रयत्नों के बाद भी यह सम्भव नहीं हो पा रहा था। कलावती बिसुनदेव से प्यार करती थी चूँकि कलावती गूँगी थी इसलिए कुछ कह नहीं पाती। उनका प्यार इस सीमा तक पहुँच चुका था कि उन दोनों में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि कलावती गर्भवती हो जाती है। इस बात का पता जब कलावती के घरवालों को चलता है तो वह बिसुनदेव को दोषी मानते हैं। इसी बीच बिसुनदेव कलावती को घर से भगाकर नरही की झोंपड़ी में ले जाता है। उसी झोपड़पट्टी में बैशाख की एक रात कलावती ने एक बच्ची को जन्म दिया उस बच्ची का नाम था 'मुनिला'।

बच्ची के जन्म के बाद कलावती भी बिसुनदेव के साथ खेतों में काम करने जाती थी परन्तु एक दिन सड़क पर जाते दो गुण्डे जागा और तेगा कलावती को गोली मार उसकी मृत्यु कर देते हैं। छोटी बच्ची मुनिला अब अपनी बूढ़ी दादी और पिता के पास रह गई थी। कुछ समय बाद पिता भी उसे छोड़ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं अब बच्ची (मुनिला) का इस दुनिया में एक मात्र सहारा दादी रह गई थी। परन्तु जाड़े की एक रात बुढ़िया दादी को तेज बुखार आया और वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गई। मुन्नी (मुनिला) इस दुनिया में अकेली रह गयी थी। जब उसकी माँ की मृत्यु हुई तब वह बहुत छोटी थी। पिता का मरना भी उसने सिर्फ सुना ही था। लेकिन बुढ़िया दादी को मरते हुए अपनी आँखों से देखा था। अब मुनिला इस दुनिया में अकेली रह गई थी। उसके जीवन के संघर्ष की शुरूआत हो गई थी। वह अकेली इस बस्ती में रहती थी। सुबह जल्दी उठकर काम पर चली जाती।

शाम को घर आकर खाना बनाती और खाकर सो जाती। एक दिन उसकी मुलाकात मुनीलाल से होती है। मुनीलाल से उसकी मुलाकात उसकी बस्ती में होती है। वह देखती है कि रात के समय बाहर से भागता एक व्यक्ति उसके दरवाजे आ खड़ा होता है वह मुनिला से याचना करता है "मेरे दुश्मन पीछा कर रहे हैं क्षणभर के लिए छिप जाने दो। तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।"[1]

इसके बाद वह दोनों एक दूसरे से मिलते रहते हैं अत: दोनों शादी के पवित्र बन्धन में बंध जाते हैं। मुनिला अकेली ही रहती थी। मुनीलाल अपने काम के सिलसिले में बाहर ही रहता था। कुछ दिनों बाद वह गाँव छोड़कर 'झाबुआ' गाँव आ गये। यहाँ पहुँच अपने फरारी जीवन को उन्होंने विराम दे दिया मुनिला ने भी अपनी सहमति जतायी "इहाँ हमें कोई नहीं देखेगा इहाँ हम खप जाएँगे। ई गाँव तो अपनी बस्ती जइसी है।"[2] इस गाँव में पहुँच मुनिला एक स्कूल में खाना बनाने का काम करने लगती है। यह गाँव उन्हें सारी खुशियाँ देने लगता है। मुनीलाल को भी रिजावन सेठ के घर काम मिल जाता है। मुनिला की जिन्दगी सही मार्ग पर चलने लगती है।

मुनिला अपने जीवन के दुखों को भूलकर अपनी जिन्दगी को नयी दिशा से शुरू करना चाहती है परन्तु भाग्य का खेल कुछ और ही था। जिस गाँव में मुनिला और मुनीलाल रहते थे उसी गाँव में फूलकेसरी भी रहती थी। वह हमारे सामने एक ऐसी स्त्री के रूप में आती है जो दहेज के लिए परिवार (ससुराल) से शोषित की जाती है। उसके ससुराल वाले उसके मायके वालो से दहेज की माँग करते हैं। वह फूलकेसरी को घर से निकाल देते हैं परन्तु मुनिला परिस्थिति को समझ फूलकेसरी का सही मार्गदर्शन करती है। इस घटना से पता चलता है कि मुनिला परिस्थिति को समझ उसका सामना करने के लिए तैयार रहती है।

मुनिला का जीवन आरम्भ से ही मुश्किलों से घिरा रहा था परन्तु यह घटना उसके जीवन की सबसे दुखद घटना थी। मुनीलाल रिजावन सेठ के घर काम करता था सेठ के बेटे का अपहरण कुछ गुण्डे करते हैं। बेटे को बचाने की कोशिश में मुनीलाल की जान चली जाती है। इस घटना से मुनिला पूरी तरह टूट जाती है। वह अपने सपनों को टूटा हुआ देखती है। उसी गाँव के अध्यापक रमन उसकी स्थिति को समझ उसे अपने दादा की देखभाल के लिए नौकरानी के काम पर रख लेते हैं। उनका सारा परिवार शहर में रहता था। मुनिला पूरे लगन से अपना काम करती है परन्तु रमन के दादा मुनिला के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। दोनों में शरीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिससे मुनिला गर्भवती हो जाती है। समाज में इज्जत के भय से उन्हें सीने में दर्द होता है और उनकी मृत्यु हो जाती है।

मुनिला का जीवन संघर्ष एक बार फिर हमारे सामने आता है। मुनिला अपना गर्भपात कर देती है। उसका यह कदम उसकी आत्मशक्ति का संकेत करता है। वह अपने निर्णय पर अटल रहती है। वह अपनी जिन्दगी नये सिरे से शुरू करने का फैसला लेती है। वह शहर में "डॉ० रजिया रेहान" के घर काम करना शुरू कर देती है। इस घर में उसे एक नया दृष्टिकोण देखने को मिलता है कि किस प्रकार लोगों में इन्सानियत का अन्त हो रहा है। लोग पैसे के लिए अपनी आत्मा को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु मुनिला एक ऐसी नारी के रूप में हमारे सामने आती है जो अपनी आत्मा को मार नहीं सकती है। वह न्याय के लिए लड़ने के लिए तैयार रहती है। वह अपने अधिकारों को भी प्राप्त करने का पूरा प्रयास करती है। डॉ. रजिया रेहान के घर उसे वेतन से अधािक काम लिया जाता था इसलिए वह इस घर में भी काम छोड़ देती है।

इस घटना के बाद मुनिया 'रामप्रसाद' के घर काम करने लगती है। इस घर में भी बेटे-बेटी में भेदभाव को देखकर मुनिला का हृदय काफी दुखी होता। वह इस घर में देखती है कि बेटे को खाना पहनना आदि अधिक दिया जाता है जबकि लड़की को यह कहा जाता है कि वह लड़की है उसे खाकर दूसरे घर ही जाना है। अत: मुनिला अपनी आत्मा की आवाज को दबा नहीं सकती है। वह चाहकर भी लड़की के लिए कुछ नहीं कर पाती है इसलिए वह इस घर में भी काम छोड़ देती है।

मुनिला एक ऐसी नारी है जो अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरुक है। वह चाहती है जिस प्रकार पुरुष अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास करता है उसी प्रकार नारी भी अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न करे क्योंकि जब नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होगी तभी वह पुरुष के सामान अधिकार प्राप्त कर पायेगी।

अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुन अब वह 'मिसिराइन' के घर काम करने लगती है। परन्तु इस घर में भी वह देखती है कि किस प्रकार नारी ही नारी का शोषण करती है। मिसिराइन चाहती है कि हमारे घर बेटा हो जो उनके परिवार का नाम आगे बढ़ाए परन्तु बेटी के जन्म पर सारा घर खामोश हो जाता है। घर में मातम सा छा जाता है। इस स्थिति को देख लगता है कि आज जब जमारे समाज में स्त्री-पुरुष समानता की बात की जाती है परन्तु यह स्थिति भी हमारे समाज में विद्यमान है। मनिला इस स्थिति को देख बहुत दुखी होती है। वह अपनी आत्मा की आवाज को मार नहीं सकती। इस नारी अत्याचार के कारण मुनिला यह निर्णय लेती

है कि वह ऐसे घर में काम नहीं करेगी। इसलिए वह इस घर में भी काम छोड़ देती है। अब मुनिला एक ऐसे घर में काम करने लगती है जो संयुक्त परिवार था 'मुकुलनिवास'।

इस घर के मुखिया मुकुलबाबू थे जब तक वह जीवित थे उनका परिवार संयुक्त रहा परन्तु उनकी मृत्यु होते ही परिवार का विघटन हो जाता है। मुनिला इस घर को अपना घर मानती थी। वह इस घर के लिए परिवार का ही सदस्य समझी जाती थी परन्तु घर का टूटता हुआ देखकर मुनिला इस घर में भी काम छोड़ देती है।

अब मुनिला 'अमीरचंद सेठ' के यहाँ काम करने लगी थी। उसे सेठ के यहाँ काम उसकी खोली की एक दाई ने दिलाया था। सेठ का घर बहुत अच्छा था। वह एक आलीशान कोठी थी। काम मिलने के बाद मुनिला इस घर में बहुत खुश थी। परन्तु इस घर में भी मुनिला के साथ एक घटना घटित होती है। सेठ के बेटे का अपहरण 'जयनाथ' नाम का गुण्डा कर लेता है। वह अपहरण मुनिला का सहारा लेकर करता है। मुनिला न चाहते हुए भी उनका निशाना बन जाती है। परन्तु सेठ और सेठानी को मुनिला पर पूरा विश्वास था। वह जैसे ही पुलिस की सहायता लेते हैं गुण्डा उनके बेटे की हत्या कर देता है। इस घटना के बाद सेठानी अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। मुनिला इस घटना का दोषी स्वयं को मानती है। इसलिए यह निर्णय लेती है कि वह इस घर में काम नहीं करेगी। मुनिला अपने मन आत्मा की आवाज को सबसे ऊपर मानती है क्योंकि उसका मानना है कि अन्याय करने वाले से सहने वाला अधिक दोषी होता है।

मुनिला अपने जीवन के उतार चढ़ाव से बहुत थक चुकी थी। इसलिए वह कुछ दिन आराम करना चाहती थी। सेठ कें घर काम छोड़ने के बाद उन्होंने कुछ दिन किसी भी घर में काम नहीं किया। लगभग तीन सप्ताह बाद मुनिला ने अपने मन के निर्णय पर एक इंजीनियर साहब के यहाँ उसने काम पकड़ा। अब मुनिला को अपनी जान की कोई परवाह नहीं रही थी। इस घटना ने मुनिला के व्यक्तित्व को और विद्रोही बना दिया था। इस स्थिति में वह किसी भी घर अधिक समय के लिए नहीं टिक पाती किसी घर में छह महीने तो किसी घर में आठ माह तो किसी के घर एक साल, इस घटना के बाद वह अनेक घरों में काम कर चुकी थी।

इन सभी घरों में काम करने के बाद मुनिला 'एस.के. सिंह' के घर काम करने लगती है। यह घर बहुत अच्छा था। इस घर में काम उसकी खोली की एक काकी ने दिलाया था। मुनिला मन में यह संकल्प लेती है कि वह पूरी ईमानदारी से इस घर में काम करेगी। वह इस घर में देखती है कि धन का कोई अभाव नहीं था। लेकिन काम करने वाले केवल एस.के. सिंह ही थे। घर का खर्च देख मुनिला यह सोचने के लिए विवश हो जाती है कि आखिर इतना पैसा आया कहाँ से, परन्तु जल्दी ही उसे पता चलता है साहब जो सरकारी नौकर हैं वह सरकारी धन का दोनों हाथों से लूट रहे हैं।

मुनिला इस बात की पक्की जानकारी घर के नौकर शामू से प्राप्त करती है। वह मुनिला को बताता है कि घर का पूजारूम में भी सरकारी धन छिपाया हुआ है जो गमले है उनके नीचे भी सोना है। मुनिला यह सब देखकर हैरान हो जाती है। वह इतने बड़े अन्याय को कैसे सहन कर पाती इसलिए वह इस रहस्य से पर्दा उठाने का प्रयास करने लगती है इसी बीच घर के मालिक को नौकर शामू पर सन्देह होने लगता है वह उसे रास्ते से हटाने के लिए उसे गायब कर उसकी मृत्यु करवा देते हैं परन्तु मुनिला उनकी चाल पूरी तरह समझ जाती है। वह मन में यह निर्णय लेती है कि वह नौकर शामू की हत्या का बदला जरूर लेगी अत: मुनिला इस घर में भी काम छोड़ने का निर्णय ले लेती है "मुनिला नहीं मालकिन अब हम इहाँ काम नहीं कर सकती।"[3] इस पर मालकिन कहती है कि "तो अइसे ही बीच में काम छोड़ देगी तू तो जानती है हम जल्दी किसी को नहीं रखते। मैना के कहन पर तुझे रखा था। तू अब हमारे घर की जानकार हो गयी है...। यहाँ का सब कुछ तेरा देखा-सुना है। हम बीच में दाई नहीं बदलते। इस तरह तुझे बीच में नहीं जाने देंगे।"[4] इस पर मुनिला भी तैश में आ जाती है कहती है जब तक मन किया तो इस घर में काम करती रही परन्तु अब मेरा मन नहीं है इसलिए अब मैं इस घर में काम नहीं करूंगी। परन्तु बहुत सोचने के बाद वह इस घर में रुक जाती है लेकिन इस घर के प्रति उसकी दिनचर्या और रवैये में अब काफी बदलाव आ गया था। अब वह इस घर में आती तो जल्दी-जल्दी काम निपटाकर भागने के फिराक में रहती जैसे वह घर उसे काटने दौड़ रहा हो। वहाँ से लौटते हुए अब खाना भी नहीं ले जाती कह देती "अधिक तेल-मसाले का खाना हमको नहीं पचता।"[5] इस पर मालकिन कहती मुनिला आजकल तू बहुत जल्दी में रहती है क्या बात है। इस पर मुनिला कहती है कि इस घर का सारा काम निपटाकर ही जाती हूँ। खाली बैठना मुझे अच्छा नहीं लगता है बाकी अपनी खोली में भी काफी काम रहता है।

मुनिला को इस घर से पिंड छुड़ाने का अवसर भी मिल ही गया। मुनिला को देर तक इस अन्तर्द्वन्द्व में नहीं रहना पड़ा। एस.के. सिंह के विरोधियों को इनकी लूट की भनक लग गयी थी। एस.के. सिंह अगर अपनी लूट को अपनी अफसरशाही के दायरे में ही सीमित रखते तो किसी का भी ध्यान उनकी ओर नहीं जाता लेकिन सरकारी मन्त्रियों के सहयोग और संकेत पर यह सब कर वे फँस गये थे। उनकी विपक्षी पार्टी थी 'जनहित सेवादल।'

इस पार्टी के हाथ एस.के. सिंह के खिलाफ सुराग हाथ लग गया था। सुराग पाते ही अपने प्रभाव एवं सम्पर्कों से उनके घर छापेमारी करा दी जाती है जिसमें एस.के. सिंह के पूजा घर के खजाने और गमलों के सोने तक का रहस्य सामने आ जाता है। इस घटना के बाद मुनिला इस घर से भी काम छोड़ देती है। मुनिला जिन घरों में काम छोड़ती थी फिर लौटकर वहां नहीं जाती थी। उन घरों से छूटते ही सीधे अपनी खोली भागती थी फिर पाँच-सात दिनों तक कहीं कोई काम भी नहीं पकड़ती। जब उसका मन शान्त सहज हो जाता तभी कोई नया काम हाथ में लेती। लेकिन एस.के. सिंह का यह पहला घर था जहाँ से छूटकर वह अपनी खोली नहीं पहुँची। सीधे 'जनहित सेवादल' चली गई। वह आवेश और आवेग में थी। उसने पहुँचते ही वहाँ उपस्थित लोगों से पूछा "गगन बिहारी जी कहँवा है बहुत जरूरी काम है।"[6] मुनिला गगनबिहारी से मिलकर एस.के. सिंह की सारी सच्चाई बता देना चाहती थी और हुआ भी वैसा ही। मुनिला ने सारी सच्चाई पार्टी सुप्रीमो गगन बिहारी को दे दी। एस.के. सिंह और धीरज को गिरफ्तार कर लिया गया। अब मुनिला अपनी खोली लौट जाना चाहती थी परन्तु पार्टी के लोगों ने उनसे कहा अध्यक्षजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम आपको उनके पास लेने आए हैं।

दूसरे दिन सुबह मुनिला पहले वाली मुनिला नहीं रह गई थी। मीडिया ने मुनिला को रातों-रात स्टार बना दिया था। इस घटना के बाद गगन बिहारी ने मुनिला को अपनी पार्टी में शामिल कर लिया। नौकरानी मुनिला ने अपनी बहादुरी से लोकतंत्र में लूट मचाने वाले व्यक्तियों को बेनकाब किया। इन खबरों से अवगत पार्टी सदस्य और जिज्ञासा नागरिक मुनिला को देखने और उससे मिलने पार्टी के आवासीय परिसर पर जुटने लगे। लोगों के सामने मुनिला बहादुरी की मिसाल थी। मुनिला न चाहते हुए भी पार्टी में शामिल हो गई। पार्टी में उसे शारदा दीदी का साथ मिला। वह उसे हर कदम पर सही गलत की पहचान कराती। मुनिला अब पार्टी की सदस्य बन चुकी थी। उसे इस ऐशो-आराम में अपने पिछले जीवन की सारी बातें याद आने लगती हैं। उसके बाद जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आता है मुनिला की गतिविधियां बढ़ती जा रही थी। मुनिला ने पार्टी में जान फूक दी थी। मुनिला का सपना एक बेहतर समाज की स्थापना थी। मुनिला राजनीति में आना नहीं चाहती थी।

परिस्थितियों से विवश होकर उसे राजनीति में आना पड़ता है। परेशानी में मुनिला को शिवबचन काका की यह बात याद आने लगती है "तुम चाहकर तो राजनीति में आयी नहीं हो। अन्याय का विरोध के लिए तुझे यहाँ आना पड़ा है। लेकिन जब यहाँ आ गयी हो तो यहाँ रहते हुए लगातार अन्याय के खिलाफ लड़ते जाने में ही तुम्हारी सार्थकता है। तुम यहाँ से भाग जाओगी तो उन लोगों के मन को धक्का लगेगा जिनका विश्वास तुझ पर कायम हो गया है।"[7]

मुनिला पार्टी प्रचार के लिए अनेक सभाओं में भाग लेती है। उसके अनेक भाषण भी होते हैं। मुनिला राजनीति की डोर पकड़ लेती है। राजनीति की पहली बात जाति और धर्म को मानती है। रविवार के दिन 3.00 बजे शहीद चौक की सभा में वह मंच पर आई ही थी। मुनिला ने एक वाक्य भी पूरा नहीं किया था कि भीड़ के बीच से सनसनाती आयी दो गोलियों ने धायँ-धायँ की आवाज़ के साथ पलक झपकते ही उसे मंच पर ढेर कर दिया। मुनिला खून से लथपथ थी। मुनिला अब गुजर चुकी थी। मुनिला की हत्या के बाद केवल वही लोग उसके पास रह गए थे जिन्हें सही शब्दों में मुनिला से हमदर्दी थी। उसमें प्रमुख थे वे लोग जो मुनिला को अपने नियमों के अनुसार ठीक लगे। अब विपक्षी पार्टियों ने भी अलग-अलग प्रैस वक्तव्य जारी कर इस बात का खुलासा किया था कि स्वयं गगनबिहारी ने ही मुनिला की हत्या करायी है। वह मुनिला को अपने लिए खतरा महसूस कर रहा था इसलिए उन्होंने मुनिला को अपने रास्ते से हटा दिया। विपक्षी पार्टियों ने इस घटना की जाँच सी.बी.आई. से करने की माँग करते हैं। शिवबचन काका कहते हैं समाज ने करवट ले ली है इससे पहले भी ऐसी हत्याएँ होती थीं परन्तु उन हत्याओं के विरोध में इतनी भीड़ नहीं उभरती थी। यह अचानक और ऐसे ही नहीं हुआ था। बदलाव का यह साफ संकेत था समाज के लिए जो मर जाते हैं। मुनिला ने तो इसे अब चरम पर पहुँचा दिया था। मुनिला की यह घटना सामान्य घटना नहीं थी। यह घटना समाज को बदलने की शुरूआत थी। अब

मुनिला अनेक रूपों में सामने आने लगी थी। मुनिला का मतलब 'विद्रोह', मुनिला का मतलब 'निर्भीक्ता', मुनिला का मतलब 'साहसपुंज', मुनिला का मतलब 'बदलाव की नयी हवा', मुनिला का मतलब 'दलित और पिछड़े वर्ग का जागरण', मुनिला का मतलब 'धर्म-निरपेक्षता की ताकत'।

जमीनी संघर्षों की उपज मुनिला का जीवन अब समाप्त हो गया था। जीवन में कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए भी वह कभी हार नहीं मानती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 26
2. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 81
3. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 404
4. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 404
5. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 405
6. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 412
7. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ० - 496

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में चंपारण सत्याग्रह की भूमिका

राकेश कुमार बैठा

पीएचडी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

मो. असलम

पीएचडी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

1917 ई. भारतीय इतिहास का सृजनात्मक एवं चमत्कारी काल माना जाता है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य ने सदैव अन्याय के विरूद्ध आवाज उठायी है। 1917 ई. की रूसी क्रान्ति ने विश्व में विभिन्न स्थानों पर हो रहे अत्याचारों व शोषक प्रवृतियों के विरूद्ध संधर्षरत जनसमुहों की आवाज को और भी सशस्त बनाया। भारतीय जनता ने भी इससे प्रेरित होकर उनपर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठायी। भारतीयों ने इस समय अपना विरोध प्रकट करने के लिए पारम्परिक तरीकों का चयन किया। इस समय तक भारतीय राजनीतिक नभमंडल पर महात्मा गाँधी का आर्विभाव हो चुका था तथा उन्होंने भारतीयों को विरोध प्रदर्शित करने का एक नवीन मार्ग सुक्षाया। यह मार्ग था ''सत्याग्रह''।

इसके द्वारा ही महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रिका में अपने उदेश्यों में सफलता प्राप्त की थी। यह पूर्णतया 'अहिंसात्मक' तरीका था। 'सत्याग्रह' को परिभाषित करते हुए स्वयं गाँधी ने कहा था ''सत्य पर अटल रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह असत्य को सत्य से व हिंसा को अहिंसा से जीतने का नैतिक अश्त्रा है। इसका उदेश्य धैर्यपूर्वक, कष्ट सहकर, अहिंसात्मक एवं उचित तरीके से सत्य को प्रकट करना, भूलों को सुधारना एवं भूल करने वालों का हृदय परिर्वतन करना हैं, सत्याग्रह एक सरल किन्तु अचूक उपाय है।''

गाँधीजी अपने राजनीतिक गुरू गोपालकृष्ण गोखले की प्रेरणा से प्रेरित होकर ''ठहरो'' स्थिति का अध्ययन करो और आगे बढो'' की नीति अपनाते हुए उन्होंने तत्कालीन राजनीति का सुक्ष्म अध्ययन किया और वे देश के कोने-कोने में गए ताकि लोगों की सही आर्थिक, सामाजिक एवं राजनितिक स्थिति जान सकें।

दक्षिण अफ्रिका में प्राप्त की गई सफलताओं ने गाँधी के भावी जीवन का मार्ग प्रशस्त किया। इसी संधर्ष की अवधि में उन्होने सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर आधारित 'सत्याग्रह' नामक नवीन संधर्ष प्रणाली का विकास किया। उनके विचार में सत्याग्रह एवं ऐसा आध्यात्मिक सिधान्त है जो मानव-मात्र से प्रेम पर आधारित है। इसमें विरोधियों के प्रति घृणा का भाव नहीं है। एक आदर्श सत्याग्रही सत्य एवं शांति का प्रेमी होता है वह बुराई से घृणा करता है, बुरों से नहीं।

गाँधी सत्य के समान अहिंसा पर भी बल देते थे। इनका मानना था कि अहिंसा में सभी समस्याओं के निराकरण करने की अद्भुत क्षमता है। उन्होंने अहिंसा कायरता और दुर्बलता का नहीं बल्कि वीरता, दृढ़ता और निड़रता का प्रतीक बताया।

गाँधीजी साधनों की पवित्रता एवं श्रेष्टता में विश्वास करते थे। इनका मानना था कि लक्ष्य तो उच्च होना ही चाहिए लेकिन साधन का भी उच्च होना आवश्यक है। उनका यह भी मानना था कि उच्च साध्य की प्राप्ति के लिए साधन भी श्रेष्ठ होना चाहिए।

इन्हीं अवधारणाओं को महात्मा गाँधी ने अपने जीवन का अमोध अस्त्र बना कर भारतीय राजनीति में अपना अंगद कदम रखा और 'सत्याग्रह' जैसे अस्त्र का प्रयोग करते हुए चम्पारण की ओर 1917 ई. में कूच करने का प्रण लिया।

चम्पारण में नील की खेती क्यों ?

नीलहे गोरों ने चम्पारण को नील की खेती के लिए क्यों चुना यह एक प्रासांगिक प्रश्न है?

चूंकि देहातों में यह पूर्व कहावत है "धन देश (ईलाका) मझौवा (प्रगाना) जहाँ भात न पूछे कौवा"।

यह कहावत इसलिए प्रासांगिक है कि चम्पारण की धरती अपनी उर्वरता के लिए लोक प्रसिद्ध है। यहां की मिट्‌टी में इतनी उर्वरक शक्ति है कि यह सोना उगलती है। यहाँ धान की खेती, गेहूं की खेती, गन्ने की खेती, रवी की खेती होती है और अपने अच्छी उपज के लिए लोक प्रसिद्ध है।

जब अंग्रेजो ने चम्पारण की उर्वरक मिट्‌टी की बखान को सुना तो वे अपने आपको इधर आने से रोक न सकें। आने के बाद यहां की शस्य श्यामला मुग्धकारी, मनुहारी भूमि पर बस गए तथा अपनी जमीनदारियां स्थापित की और अपनी सामन्तवादी पद्धति को लागू कर अपनी कोठियां स्थापित की।

चूंकि औद्योगिक क्रान्ति का तुफान इग्लैण्ड में चल चूका था। मैनचेस्टर की फैक्ट्रियों के लिए अंग्रजों को कच्चेमालों की आवश्यकता थी। अस्तु इन अंग्रजों ने अपने कपड़ों की फैक्ट्रियों के लिए रंग की आवश्यकता महसूस की। नील उनके लिए काफी उपयुक्त नजर आया और इन लोगों ने चम्पारण में नील की खेती करना आवश्यक समझा। चूँकि चम्पारण की उपजाऊ भूमि प्राप्त हुयी। सिंचाई की सुविधा में भी उन्हें प्रकृति द्वारा प्रदत छोटी नदियाँ, नाले, आहर प्राप्त हो गए जिससे बिना किसी तरह के खर्च के सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो गयी। जिससे नील के पौधों की सिंचाई भी होने लगी। अत: कम खर्च में नील की खेती होने लगी और अधिक मात्रा में उत्पादन होने लगा। इनकी जमीनदारियों में बसने वाली जनता इनका गुलाम बन जाती थी। जिन्हें कम मजदूरी देकर ये अपने खेतों में काम जबरन कराते थे। साथ ही अधिक समय तक काम लेकर कम मजदूरी देना वे अपना नैतिक दायित्व समझते थे।

19वी. सदी के प्रारम्भ में गोरे बगान मालिकों ने किसानों से एक अनुबन्ध किया जिसके अनुसार किसानों को अपनी जमीन के 3/20वें हिस्से में नील की खेती करना अनिवार्य था। इसे 'तिनकठिया' पद्धति कहा जाता था। इसके तहत उन्हें जबरन अपनी जमीन में नील की खेती करना पड़ता था। जिससे अन्य फसल उगाने में वे मजबूर हो जाते थे।

गोरे बगान मालिकों का आदेश नहीं मानने वाले निरिह जनता पर उनके द्वारा कोड़े बरसाये जाते थे, घोड़े के पैर में बांध कर उन्हें मीलों घसिटा जाता था तथा स्वर्निमित जेलो में भूखे-प्यासे रखा जाता था, तथा लोहे की गर्म सलाखों से दागा भी जाता था। इस तरह एक तरफ उन्हें अपनी जमीन में अन्य फसल नहीं उपजाने के कारण उनके परिवार का भरण-पोषण होना नामुमकिन हो जाता साथ उनके खेतों में उपजी नील का सही मूल्य भी नहीं मिल पाता था।

अपनी जमीन में खेती करने के लिए उन्हें मालिकों को लगान की दर भी काफी अधिक देनी पड़ती थी। लगान की दर नहीं अदा करने पर अपनी जमीन मालिकों को दे देने पर मजबूर होना पड़ता था। जिससे किसानों की स्थिति इतनी दारूण हो गयी कि वे आह से अपनी भूख और आँसुओं से अपनी प्यास बुझा लेते थे।

पं. राजकुमार शुक्ल द्वारा गाँधीजी को चम्पारण आने हेतु आमंत्रण

पं. राजकुमार शुक्ल चम्पारण की धरती के सच्चे सपूत और नीलहे आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। इनका निवास स्थान चनपटिया प्रखण्ड के सतवारिया ग्राम में था। वे स्वयं एक किसान थे जो चम्पारण की जनता पर नीलहे गोरों द्वारा किए जा रहे अत्याचार से काफी दु:खी रहा करते थे। परन्तु इन्हें इस विपत्ति से त्राण दिलाने का कोई विकल्प नजर नहीं आता था।

पं. राजकुमार शुक्ल जी को जब यह ज्ञात हुआ कि गाँधीजी नाम का एक भारत का महान सपूत दक्षिण अफ्रिका में अंग्रेजों के जुल्म से भारतीयों को राहत दिलवाया है, तो उनके मन में यह जिज्ञासा हुयी कि शायद इसी महान सपूत से हम चम्पारण वासियों को अंग्रेजों के इस जुल्म से त्राण दिलवायेंगे। जब उन्हें यह सूचना प्राप्त हुयी कि गाँधीजी जैसा भारत का महान सपूत भारत लौटा है और कांग्रेस में शामिल हो गया है, तो उन्हें यह आशा जगी कि इसी महान सपूत से चम्पारण की जनता को अंग्रेजो के अत्याचार से राहत मिल सकेगी। पं. राजकुमार शुक्ल जी को यह पता चला कि दिसम्बर 1916 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में होने जा

रहा है जिसमें गाँधीजी भी शामिल होगें, तो उन्हें अधेरे में एक चिराग टिमटिमता नजर आने लगा। वे लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में गाँधीजी से मिलने और चम्पारण की दुर्दशा सुनाने का प्रण लिया।

वे इस कांग्रेस अधिवेशन में गाँधीजी से मिलने गए और किसानों के प्रति अंग्रेजो द्वारा किए गए कठोर व्यवहार और अत्याचार की चर्चा की। साथ ही गाँधीजी से चम्पारण की दुर्दशा देखने और उससे त्रण दिलाने हेतु अनुनय-विनय किया एवं चम्पारण आने का आमंत्रण दिया। साथ ही 'तिनकठिया' पद्धति से मुक्ति दिलाने का विनय किया। इसे सुनकर गाँधी जी को काफी दु:ख हुआ और इससे मुक्ति दिलाने का आश्वासन दिया।

चम्पारण के इस महान सपूत किसान पं. राजकुमार शुक्ल के अनुरोध पर गाँधी जी 1917 में चम्पारण पहुँचे। चम्पारण पहुँच कर गाँधीजी ने नील-किसानों की समस्या को सुना एवं सही पाया। जांच के क्रम में गाँधीजी को चम्पारण से चले जाने की सरकारी नोटिश दी गयी।

सरकारी आदेश की अवहेलना के कारण उनपर मुकदमा भी चलाया गया। गाँधीजी के प्रयासों से सरकार ने चम्पारण के किसानों की जांच हेतु एक आयोग नियुक्त किया। गाँधीजी को भी आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया। अन्तत: गाँधीजी की जीत हुयी। आयोग ने चम्पारण से 'तिनकठिया' पद्धति को समाप्त कर दिया और अंग्रेजो को अवैध वसूली का 25 प्रतिशत वापस करना पड़ा। इस प्रकार चम्पारण के रैयतों की समस्याओं का एक सीमा तक अन्त हो गया। 1917 ई. तक का अधिकांश समय महात्मा गाँधी को चम्पारण के किसानों के लिए काश्तकारी की सुरक्षा के साथ-साथ अपनी पसन्द की फसल उपजाने की आजादी दिलाने में बीता। यह अंग्रेजो पर भारत वासियों की पहली विजय का प्रतीक माना जाता है, जिसकी प्रारम्भ चम्पारण से माना जाता है।

उपसंहार

चम्पारण सदियों से इतिहास की पृष्ठभूमि का आधार स्तंभ रहा है, उपेक्षाओं का शिकार है। चम्पारण की यह भूमि महार्षि बाल्मिकी की तपोभूमि रही है जिन्हें अंगुली माल डाकू से महर्षि बनाया। अयोध्या के राजा श्रीराम के दोनों पुत्र क्रमश: लव और कुश की जन्मभूमि बाल्मीकी नगर के जंगलो में बाल्मीकी महर्षि के आश्रम में हुआ। जनक नन्दनी सीता की शरणस्थली इसी महर्षि के आश्रम में रही है, इससे स्पष्ट होता है कि विदेह राजा जनक की राज्य सीमा चम्पारण की सीमाओं को छूती थी। यद्यपि यह शोध का विषय है। चम्पारण नन्दवंश के राजाओं के साम्राज्य को पल्लवित एवं पुष्पित होने का अवसर प्रदान किया। परन्तु निरंकुशता को प्रकठा पर पहुँचते देखकर उसका अन्त करने में पूर्णत: सहयोग भी किया। जिसका प्रमाण लौरिया का नन्दनगढ़ है।

यह भूमि महान राजनीतिज्ञ और राजनीति के मर्मज्ञ चाणक्य की कर्मभूमि भी रही है जिसने चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे भारत के सम्राट को पैदा किया जिसकी जन्मभूमि संभवत: चम्पारण में ही रही है। यद्यपि अभी तक इसका ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है और यह शोध का विषय बना हुआ है। महान सम्राट विक्रमादित्य का भी साम्राज्य यहाँ रहा है और अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में तपस्या एवं शांति के लिए चम्पारण के जंगलों में ही रहे है। भारत के सम्राट अशोक के साम्राज्य की सीमा चम्पारण तक रही है जिसके प्रमाणिक प्रतीक के रूप में लौरिया का अशोक स्तंभ है।

महात्मा गाँधी को भी भारत का राष्ट्रपिता कहलवाने का श्रेय शायद चम्पारण को ही जाता है जहाँ से गाँधीजी अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर भारत को अंग्रेजी साम्राज्य से आजाद कराने का स्वप्न देखे थे।

आज भी सभी पार्टियों के नेता चम्पारण से ही अपनी राजनीतिक यात्रा प्रारम्भ कर भारत के विभिन्न पदों को सुशोभित होते है।

इन संदर्भो के सिहांवलोकन से स्पष्ट होता है कि चम्पारण एक पारस पत्थर के रूप में है जो सबों को सोना तो बना ही देता है स्वयं पत्थर का पत्थर ही रह गया।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय बिहार सरकार, पटना
2. Bihar district Gazetteer, Champaran. P.C. Roy Chaudhary – Secretariate press, Patna.
3. बिहार राज्य विधायिका सभा वादवृत (सरकारी रिपोर्ट राजकीय मुद्रणालय, बिहार, पटना)
4. The Journals of Bihar March & June 1933
5. जब गाँधीजी चम्पारण आये- डॉ. डी.जी. तेन्दुलकर की पुस्तक- Gandhi in Champarna का हिन्दी रूपान्तरण राजभाषा विभाग, पटना।
6. बिहार स्वंतत्रता संग्राम से जुटे हुए बिहार के कुछ ऐतिहासिक स्थल के विवरण- मंत्रीमंडल सचिवालय एवं समन्वय विभाग, पटना (बिहार)
7. बिहार विधानसभा वादवृत रिपोर्ट (सरकारी रिपोर्ट).
8. असरफ कादरी- राष्ट्रीय आन्दोलन और चम्पारण के स्वंतत्रता सेनानी।
9. राधा गोविन्द प्रसाद & Secretariate Patna 1976.
10. National Movement in India – Dr. Rajendra Prasad.

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्मों के सामाजिक आयाम की ऐतिहासिकता

डॉ० उदय कुमार पासवान

पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, अल्लमा इक़बाल कॉलेज, बिहारशरीफ (नालंदा) बिहार

परिचय

छठी शताब्दी ई. पू. में भारत वर्ष की धार्मिक एवं वैचारिक मान्यताओं में महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। वैदिककालीन जटिल, कर्मकाण्डों एवं ब्रहाणों की धार्मिक एवं सामाजिक सर्वोच्चता एवं जटिलता के खिलाफ कई धर्मो एवं पंथों का उदय हुआ, जिनकी मान्यताएँ तत्कालीन, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तनों के अनुकूल थी। वैदिकोत्तर काल में समाज स्पष्टतः चार वर्णो में विभाजित था-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हर वर्ण के कर्त्तव्य अलग-अलग निर्धारित थे और ऊपर के दो वर्णो को कुछ विशेषाधिकार दिये गए थे।

ये समाज में अपना स्थान सबसे ऊँचा होने का दावा करते थे। वर्णक्रम में क्षत्रियों का स्थान दूसरा था। वैश्य का स्थान तीसरा जो पशुपालन और व्यापार करते थे। शूद्रों का स्थान वर्णक्रम में सबसे नीचा था जो उन तीनों वर्णो की सेवा करते थे। यह स्वभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण-विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा हो। इन्हीं वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध एक प्रकार धार्मिक आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इन धार्मिक आंदोलन में जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म को अधिक लोकप्रियता मिली।

उद्धेश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमुख उद्वेश्य नये धार्मिक विचारों के उद्भव की पृष्ठभूमि, जैनधर्म तथा बौद्ध धर्म के सिद्धांतो की चर्चा करना, इन धर्मो का तात्कालीन सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव परे तथा इन दोनों धर्मो के सामाजिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

विश्लेषण

छठी शताब्दी ई. पू. में मध्य गंगा घाटी के लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की नयी विशेषताएँ वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञ से मेल नहीं खाती थीं। यज्ञ और कर्मकाण्ड पशुधन के अंधाधुंध विनाश के कारण वन गये थे, जबकि पशुधन ही हलों से की जानेवाली नयी खेती का मुख्य आधार था।

वैदिक धार्मिक विचार उदीयमान सामाजिक समूहों की प्रगति में बाधक बन रहे थे। अतः छठी शताब्दी ई. पू. में ऐसे धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों की आवश्यकता महसूस हुई जो लोगों के भौतिक जीवन में आये बुनियादी परिवर्त्तनों से मेल खाते हों। इस आवश्यकता की पूर्त्ति हेतु कई धार्मिक शिक्षक आगे आये। छठी शताब्दी ई. पू. में बौद्ध श्रोतों में 62 धार्मिक सम्प्रदायों का और जैन पाठों में तो 363 सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है। इनमें से अनेक क्षेत्रीय रीति-रिवाजों तथा कर्मकाण्डों पर आधारित थे, लेकिन उनमें से कुछ ने दार्शनिक विचारों को जन्म दिया।

पूरण काश्यप नामक आचार्य घोर अक्रियावादी था। उसका मत था कि चोरी, डकैती, हत्या, झूठ आदि पाप नहीं है और दान, जप, तप, सत्य से किसी प्रकार का पुण्य प्राप्त नहीं होता है अर्थात कर्मो का कोई फल नहीं होता है। मक्खलि गोशाल नामक आचार्य

ने आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की थी। गोशाल की शिक्षा का मुख्य आधार नियतिवाद था। उसके अनुसार सभी प्राणी भाग्य अथवा नियति के अधीन है। उसमें न बल है और न पराक्रम। उनका मत है कि पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु से शरीर निर्मित है। मृत्यु के बाद कुछ शेष नहीं बचता है। पाप-पुण्य तथा सत्य-असत्य की कल्पना झूठी है। पकुध कात्यायन नामक आचार्य पुर्नजन्म एवं कर्म की महत्ता को नहीं मानता था। उसके अनुसार जिस प्रकार मिटी, जल, वायु और प्रकाश शाश्वत है उसी प्रकार दु:ख, सुख और जीवन भी शाश्वत है तथा इनका विनाश नहीं हो सकता है। इनका सिद्धांत नितांत भौतिवादी है।

संजय वेलट्ठिपुत्र अनिश्चयवादी था। उनके अनुसार न यही कहा जा सकता है कि परलोक है और न यह कि परलोक नहीं है। जीवन संबंधी किसी भी प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर संभव नहीं है। छठी शताब्दी की इस अनीश्वरवादी धार्मिक उथल-पुथल ने समाज पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी किन्तु तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को सबसे अधिक वर्द्धमान महावीर एवं गौतम बुद्ध की शिक्षाओं ने प्रभावित किया। इनके द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म ही भारत में स्वतंत्र धर्म के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रख सका।

जैन धर्म

जैन परम्परा के अनुसार इस धर्म में 24 तीर्थंकर हुए है। इनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे किन्तु 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को छोड़कर पूर्ववर्त्ती तीर्थकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। वर्द्धमान महावीर का जन्म 540 ई. पू. में वैशाली के निकट कुंडग्राम में ज्ञातृक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ इस गणराज्य के प्रमुख थे तथा इनकी माता लिच्छवि राजकुमारी त्रिशला थी जो लिच्छवि गणराज्य प्रमुख चेटक की बहन थीं। वर्द्धमान के जन्म पर देवताओं की भविष्यवाणी हुई कि ये भविष्य में या तो चक्रवर्ती राजा होंगे या परम ज्ञानी भिक्षु।

स्वाभाविक रूप से वर्द्धमान का प्रारंभिक जीवन सुख-सुविधापूर्ण था। बड़े होने पर उनका विवाह यशोदा नामक एक राजकुमारी से हुआ और उससे उन्हें प्रियदर्शना नामक एक पुत्री पैदा हुई। जब वर्द्धमान तीस वर्ष के हुए, तब उनके पिता सिद्धार्थ की मृत्यु हो गई और वर्द्धमान के बड़े भाई नंदिवर्धन राजा हुए। वर्द्धमान प्रारंभ से ही चिन्तनशील स्वभाव के थे। अब उनमें त्याग की भावना पूर्णत: जागृत हो चुकी थी। अन्तत: अपने बड़े भाई से आज्ञा लेकर घर त्याग दिया और निर्ग्रन्थ भिक्षु का जीवन धारण कर तपस्या में लीन हुए। ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की। एक वर्ष एक महीने के बाद उन्होंने वस्त्र त्याग दिया और नग्न अवस्था में ही तपस्या करने लगे। 12 वर्ष तक शरीर की चिंता नहीं करके वे हर प्रकार के कष्ट सहते रहे। बारह वर्ष की घोर तपस्या के बाद 42 वर्ष की उम्र में उन्हें जुम्भिय ग्राम के समीप ऋजुपालिका नदी के तट पर कैवल्य की प्राप्ति हुई।

जैन धर्म के सिद्धांत

जैन धर्म में संसार दु:खमूलक माना गया है। मनुष्य जरा तथा मृत्यु से ग्रस्त है। व्यक्ति को सांसारिक जीवन की तृष्णाएँ घेरे रहती है। सम्पति संचय के साथ ही मनुष्य की कामना रूपी पिपासा बढ़ती जाती है, जिसका कोई अंत नहीं है। काम-भोग, विष के समान है जो अंतत: दु:ख को ही उत्पन्न करते हैं। संसार त्याग तथा सन्यास ही मनुष्य को सच्चे सुख की ओर ले जा सकते है। जैन धर्म के अनुसार सृष्टि के रचयिता ईश्वर नहीं है, किन्तु संसार को एक वास्तविक तथ्य माना गया है, जो अनादि काल से विद्यमान है।

संसार के सभी प्राणी अपने अपने संचित कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं तथा कर्मफल भोगते हैं। कर्मफल ही जन्म तथा मृत्यु का कारण है। जैनधर्म में सांसारिक तृष्णा बंधन से मुक्ति को 'निर्वाण' कहा गया है। कर्मफल से छुटकारा पाकर ही व्यक्ति निर्वाण की ओर अग्रसर हो सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि पूर्व जन्म के संचित कर्म को समाप्त किया जाय और वर्त्तमान जीवन में कर्मफल के संग्रह से व्यक्ति विमुख हो। कर्मफल से छुटकारा पाने के लिए त्रिरत्न का अनुशीलन आवश्यक है।

- जैनधर्म के त्रिरत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् आचरण।
- जैनधर्म के पाँच महाव्रत–

  क) अहिंसा,

ख) सत्य,

ग) अस्तेय,

घ) अपरिग्रह,

ण) ब्रह्मचर्य।

➢ कायाक्लेश–जैनधर्म में तप पर अधिक बल दिया गया है।

जैन धर्म में ही सबसे पहले वर्णव्यवस्था तथा वैदिक कर्मकाण्ड की बुराईयों को रोकने के लिए गंभीर प्रयास किया। अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए जैनियों ने ब्राह्मनों की भाषा संस्कृत का नहीं बल्कि सामान्य जन की भाषा प्राकृत का सहारा लिया। उन्होंने अर्द्धमागधी में भी अपने धार्मिक ग्रंथ लिखे। इसी से आगे चलकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में उदय में सहायता मिली।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। उनके पिता का नाम शुद्धोदन था जो कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य के प्रमुख थे। उनकी माता का नाम महामाया था। 563 ई. पू. में कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी में आम्र कुंज में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। 16 वर्ष की आयु में इनका विवाह यशोधरा से हुआ। इनको राहुल नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, किन्तु बचपन से ही सिद्धार्थ चिन्तनशील रहा करते थे।

सांसारिक सुख उन्हें आकर्षित नहीं कर पाता था। संसार के दु:ख को देखकर वे इससे मुक्ति का उपाय ढुँढ़ा करते थे। चार दृश्य देखने के बाद इनके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। ये दृश्य थे–वृद्ध, रोगी, मृत व्यक्ति तथा आनंदित सन्यासी। सच्चे ज्ञान की खोज के लिए सिद्धार्थ ने 29 वर्ष की आयु में गृह त्याग दिया। सात वर्षो तक वे ज्ञान की खोज में विभिन्न आचार्यो के पास भटकते रहे। अन्त में उन्हें 35 वर्ष की उम्र में गया में पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्होंने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया। इसे धर्मचक प्रवर्तन कहते हैं। वे आजीवन अपने धर्म का प्रचार करते रहे।

बौद्ध धर्म के सिद्धांत

बौद्ध धर्म का मूल आधार चार आर्य सत्य है। ये चार आर्य सत्य है– दु:ख, दु:ख समुदाय, दु:ख निरोध तथा दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा अर्थात अष्टांगिक मार्ग। बुद्ध के अनुसार मनुष्य का सारा जीवन दु:ख से भरा हुआ है। जन्म दु:ख है, व्याधि दु:ख है, मरण दु:ख है, अप्रिय मिलन दु:ख है तथा प्रिय वियोग भी दु:ख है। इस दु:ख का मूल कारण तृष्णा है। दु:ख के उन्मूलन हेतु तृष्णा को खत्म करना आवश्यक है। अष्टांगिक मार्ग ही दु:ख को समाप्त करने का मार्ग है। ये आठ मार्ग है।

(i) सम्यक् दृष्टि।

(ii) सम्यक् संकल्प।

(iii) सम्यक् वाणी।

(iv) सम्यक् कर्म।

(v) सम्यक् आजीव।

(vi) सम्यक् व्यायाम।

(vii) स्म्यक् स्मृति।

(viii) सम्यक् समाधि।

इस आष्टांगिक मार्ग के अनुशीलन से व्यक्ति निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। बुद्ध ने आष्टांगिक मार्ग के अंतर्गत अधिक सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करना या अत्यधिक काया क्लेश में संलग्न होनी–दोनों को वर्जित किया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में मध्यम प्रतिपदा का उपदेश दिया है।

छठी शताब्दी ई. पू. में पूर्वोत्तर भारत के लोगों के समक्ष जो समस्याएँ खड़ी थीं, बौद्ध धर्म ने उनको सुलझाने का प्रयास किया। लोहे के फालवाले हल से चली खेती तथा व्यापार और सिक्कों के प्रचलन से कुछ लोगों को धन संचित करने का मौका मिला। इस कारणों के चलते समाज में बड़े पैमाने पर सामाजिक एवं धार्मिक असमानता पैदा हुई। इस तनाव को दुर करने के लिए बौद्ध धर्म ने घोषणा की कि धनसंचय नहीं करना चाहिए।

इस धर्म के अनुसार दरिद्रता से घृणा, क्रुरता और हिंसा की उत्पत्ति होती है। इन बुराईयों को दूर करने के लिए बुद्ध ने उपदेश दिया कि किसानों को बीज और अन्य सुविधाएँ मिलनी चाहिए, व्यापारियों को धन मिलना चाहिए तथा श्रमिकों को मजदूरी मिलनी चाहिए। बौद्ध धर्म यह भी उपदेश देता है कि जो भी दरिद्र व्यक्ति भिक्षुओं को भीख देगा वह अगले जन्म में धनवान होगा। बौद्ध धर्म ने स्त्रियों और शूद्रों के लिए अपने द्वार खोलकर समाज पर गहरा प्रभाव जमाया। बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेने पर स्त्रियों तथा शूद्रों को इस सामाजिक अधिकार हीनता से मुक्ति मिल जाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(i) The culture and civilization of Ancient India An Historical outline - D.D. Kosambi.

(ii) Material culture and social formations in Ancient India - R.S. Sharma.

(iii) Indian Buddhism - A.K.Warder.

(iv) A History of India, Volume one pengum books Great Britain, 1981 - Romila Thapar.

(v) Ancient India an Introductory outline, peoples publishing house, New Delhi, 1990 - D.N. Jha.

(vi) The History and Culture of the Indian People - R.C. Majumdar.

(vii) प्राचीन भारत (कक्षा-11) - एन. सी. ई. आर. टी.।

(viii) प्राचीन भारत का इतिहास - द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली।

(ix) उद्‌भूत भारत - ए. एल. बाशम।

(x) प्राचीन भारत का इतिहास - डॉ. सत्यनारायण।

(xi) प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव।

(xii) प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास - डॉ. जयशंकर मिश्र।

(xiii) प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था - डॉ. ओम प्रकाश प्रसाद।

भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या

डॉ० चन्द्रशेखर आजाद

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, के०पी० कॉलेज, मुरलीगंज,
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)

वर्तमान समय में प्रशासन में भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी घटना है और यह प्राय: विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में पाया जाता है, परन्तु भारत में जिस रूप में प्रशासनिक भ्रष्टाचार व्याप्त है उसे देखते हुए यह आसानी से कहा जा सकता है कि यहाँ भ्रष्टाचार अन्य देशों की तुलना में अधिक गंभीर एवं व्यापक पैमाने पर पाया जाता है। भारत में प्रशासनिक भ्रष्टाचार के राजनीतिक भ्रष्टाचार से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होने के चलते स्थिति और बिगड़ गई है। भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारणों का पता लगाने तथा उन्हें दूर करने के उपाय सुझाने के लिए इतने जाँच आयोगों को गठित किया जा चुका है कि उन्हें देखकर आसानी से भ्रष्टाचार के विस्तार का अंदाजा लगाया जा सकता है।

लोक प्रशासन में प्रशासनिक अधिकारियों को अपने दायित्वों के निर्वाह हेतु सत्ता एवं विवेक की शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं, ये शक्तियाँ इन शासकीय अधिकारियों में से कुछ में ऐसी प्रवृत्तियों को जन्म देती है जो उन्हें इनके दुरुपयोग की ओर अग्रसर करती हैं, यही से भ्रष्टाचार का जन्म होता है। भ्रष्टाचार की समस्या की पृष्ठभूमि में जाने के पूर्व इसे परिभाषिक संदर्भ में जान लेना समीचीन होगा। पारिभाषिक दृष्टि से भ्रष्टाचार के दो रूप हैं- संकीर्ण एवं व्यापक। संकीर्ण अर्थ में भ्रष्टाचार का तात्पर्य है- अपने निर्धारित कर्त्तव्यों के बदले, निर्धारित पारिश्रमिक के अतिरिक्त घूस अथवा रिश्वत स्वीकार करना अथवा मौद्रिक लाभ के लालच के बदले अपनी अधिकार परिधि के बाहर जाकर किसी को उपकृत करने हेतु कार्य करना। व्यापक अर्थों में भ्रष्टाचार से अभिप्राय है अपने निजी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपने सार्वजनिक पद अथवा सत्ता का दुरुपयोग करना, अपनी हैसियत का अपने निजी स्वार्थ हेतु उपयोग करना।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अनुसार, "जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिवत् पारिश्रमिक से अधिक कुछ धन (घूस) लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने का प्रयत्न करता है।

इसी प्रकार किसी कार्य को करने अथवा न करने के उपहारस्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार अथवा विधानमण्डल या किसी लोक सेवा के सन्दर्भ में करता है तो उसे तीन वर्ष के कारवास या अर्थ दण्ड अथवा दोनों दिए जा सकेंगे।"

इसी तरह भ्रष्टाचार उनमूलन अधिनियम 1947 के तहत लोक सेवाओं में लोक सेवकों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार को अपराधिक दुराचरण बताया गया है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने भ्रष्टाचार के निम्न 27 स्वरूप बताए हैं –

1. निम्न स्तरीय वस्तुओं या कार्य को स्वीकार करना।
2. सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरुपयोग करना।
3. जिन व्यक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर के सम्बन्ध हैं उनके आर्थिक दायित्वों का वहन करना।
4. ठेकेदारों या फर्मों का रियायतें देना।
5. ऐसे ठकेदारों अथवा फर्मो से कर्ज लेना जिनसे उनके कार्यालय स्तरीय सम्बन्ध हैं।
6. झूठे भत्ते, दौरे अथवा गृह किराए का दावा करना।

7. अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना।
8. बिना पूर्व सूचना या पूर्व अनुमति के अचल सम्पत्ति अर्जित करना।
9. प्रमाद या अन्य कारण से शासन को हानि पहुँचाना।
10. शासकीय पद या सत्ता का दुरुपयोग।
11. भर्ती, नियुक्ति, स्थानांतरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर-कानूनी रूप से धन लेना।
12. शासकीय कर्मियों को व्यक्तिगत कार्य में प्रयोग करना।
13. जन्म-तिथि एवं जाति-सम्बन्धी जाली प्रमाण-पत्र जारी करना।
14. रेल एवं वायुयान में सीट आरक्षण में अनियमितता।
15. मनीआर्डर, बीमा एवं मूल्य देय पार्सलों को न देना।
16. नए डाक टिकटों को हटाकर पुराने डाक टिकट लगाना।
17. आयात-निर्यात लाइसेंस जारी करने में अनियमितता।
18. शासकीय कर्मचारी की जानकारी एवं सहयोग से विभिन्न फर्मों द्वारा आयातित एवं निर्धारित कोटे का दुरुपयोग करना।
19. टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता।
20. अनैतिक आचरण।
21. उपहार ग्रहण करना।
22. आर्थिक लाभ के लिए आयकर, सम्पत्ति कर का कम मूल्यांकन प्रस्तुत करना।
23. स्कूटर एवं कार खरीदने के लिए अग्रिम धन राशियों का दुरुपयोग।
24. विस्थापितों के दावे निपटाने में अनुचित विलम्ब।
25. आवासीय भूमि के हिस्सों में कम विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना।
26. विस्थापितों के दावे का गलत मूल्यांकन करना।
27. शासकीय आवासों पर अनाधिकृत कब्जा एवं उन्हें अनाधिकृत रूप से किराए पर उठाना।

भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा भ्रष्टाचार के कारण :

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि भ्रष्टाचार भारतीय राजव्यवस्था की सर्वकालिक समस्या रही है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दौरान कम्पनी कर्मिकों में बख्शीश उपहार का प्रचलन था। इसके बावजूद इस प्रथा को भ्रष्टाचार के रूप में महसूस किया जाता था। इसलिए 1906 के भ्रष्टाचार उन्मूलन कानून द्वारा कम्पनी कर्मिकों के लिए यह अपराध माना गया था। इसके अनुसार, यदि वे "अपने पद की सामर्थ्य से कोई कार्य करने अथवा उसे होने से रोकने के बदले बख्शीश के रूप में किसी प्रकार की भेंट आदि स्वीकार करें अथवा किसी व्यक्ति का अपने पद की सामर्थ्य के कारण पक्षपात अथवा विरोध करें, तो यह अपराध माना जाएगा। ब्रिटिश शासन काल में विभागों को पर्याप्त 'स्वविवेकी शक्तियाँ' (Discretionary Powers) प्राप्त थीं। इन स्वविवेकी शक्तियों ने लोक प्रशासन के निम्न स्तरीय ढाँचे को भ्रष्ट होने का अवसर दिया। औपचारिक रूप से भारतीय लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार 'द्वितीय विश्व युद्ध' से आरम्भ हुआ जब इस युद्ध के दौरान सरकार का प्रमुख लक्ष्य युद्ध में साधनों के औचित्य पर विचार किए बगैर विजय प्राप्त करना था। हर कार्य को युद्ध से गौण माना गया। युद्ध में करोड़ों रुपए व्यय हो रहा था। धन की इस कमी को पूरा करने के लिए अनुचित तरीके से धन एकत्रित करने के मार्ग खोजे गए। इससे प्रशासकीय नियमों एवं कानूनों का खुलकर उल्लंघन हुआ तथा मध्य एवं निम्नस्तरीय लोक सेवकों द्वारा शासकीय धन एवं सत्ता का दुरुपयोग किया गया। इसी प्रकार जब सरकार द्वारा युद्ध में सेना को भारी मात्रा में अनाज व अन्य युद्ध-सामग्री खरीदी जाने लगी, तो हमारे व्यापारियों ने सरकारी माल आपूर्ति के ठेके प्राप्त करने के लिए अधिकारियों को रिश्वतें दीं। दूसरी ओर विभिन्न वस्तुओं का अभाव हो जाने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में इनकी राशनिंग-प्रणाली लागू की गई जिसके लाइसेंस एवं परमिट प्राप्त करने के लिए भ्रष्टाचार को लोक प्रशासन में प्रोत्साहन मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जहाँ एक ओर रियासतों का एकीकरण हुआ वहीं दूसरी ओर देश का विभाजन तथा जनसंख्या का स्थानांतरण हुआ। देश में साम्प्रदायिक दंगे हुए, विधि का शासन खण्डित हुआ, जिससे निपटने के लिए लोकसेवकों को असीमित अधिकार दिए गए। इसके साथ ही उच्चस्तरीय लोक प्रशासकों के इंगलैण्ड वापस चले जाने एवं मुस्लिम प्रशासकों के पाकिस्तान चले जाने के कारण, लोक प्रशासन में इनकी कमी महसूस की गई जिसे पूरा करने क लिए, इन उच्चस्तरीय प्रशासनिक पदों पर निर्धारित अर्हताओं को शिथिल करते हुए उन निम्नस्तरीय लोक सेवकों से भर्ती की गई जो लोक सेवा की सुस्थापित उच्च परम्परा से अनभिज्ञ थे एवं जिनमें प्रशासन व समाज के प्रति उदारता एवं निष्ठा का अभाव था।

स्वतंत्र्योत्तर भारत की चुनौतियों को स्वीकार करने एवं विकास के लक्ष्य को हासिल करने के निमित्त, समाजवाद, पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, पंचायती राज जैसे समाजोत्थानिक लक्ष्यपूर्ण कार्यक्रम राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लोक प्रशासन को सौंपे गए, इनके क्रियान्वयन के लिए लोक सेवकों को असीमित अधिकार प्रदत्त किए गए। उचित नियंत्रण एवं पारदर्शी व्यवस्था के अभाव में लोक प्रशासकों द्वारा इन अधिकारों व सत्ता का उपयोग राज्य व समाज के हित में न कर निजी हित में किया गया। यहीं से भ्रष्टाचार के पौधे ने भारतीय प्रशासन में वटवृक्ष का रूप धारण किया। 17 वर्ष तक देश की राजनीति में एक ही दल के वर्चस्व के चलते केन्द्र एवं राज्य के मंत्रीगणों, सांसदों, विधायकों का एक वर्ग इन भ्रष्ट लोक सेवकों से मिल गया जो हमारे निर्वाचित जनप्रतिनिधि नैतिकता एवं वैतिक के संरक्षक थे, व स्वयं ही भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक पक्षपात के दलदल में फंस गए।

उपर्युक्त के अलावा वर्तमान में भारतीय लोक प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के निम्न कारण बताए जाते हैं –

1. जटिल कार्यकालीन संरचना अथवा शासकीय पद्धति जिसमें सरकारी फाइलें कई स्तरों से होकर गुजरती है। विभिन्न स्तरों पर यह रिश्वत का आधार तैयार करता है। रिश्वत देने वाला शीघ्र निर्णय एवं फाइलें आगे बढ़ जाने के लिए रिश्वत देता है।
2. विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था एवं उद्योगीकरण।
3. रिश्वत लेने व देनेवालों के मध्य गठजोड़ तथा रिश्वत के पुख्ता साक्ष्यों का अभाव।
4. लोक सेवाओं का राजनीतिकरण, प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप व संरक्षण।
5. सरकारी कार्मिकों की गोपनीय रिपोर्ट।
6. लोक सवकों को प्राप्त स्वविवेकी अधिकार, जिन्हें सरकारी कार्यों में हो रही निरन्तर वृद्धि के चलते समाप्त नहीं किया जा सकता।

भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में अभी तक किए गए प्रयास :

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमें भ्रष्टाचार रूपी महामारी से दो चार होना पड़ा तथा समय-समय पर सके निदान खोजने पड़े। लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में सर्वप्रथम कदम 'भ्रष्टाचार निरोधक कानून 1947' द्वारा उठाया गया इसके तहत् भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं 31, 165 एवं 165ए को Cognizable offence बनाते हुए उपपुलिस अधीक्षक स्तर के अधिकारी को भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्तियों को संदेह के आधार पर गिरफ्तार करने का अधिकार दिया गया।
2. 1946 में दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान की स्थापना की गई जिसे 1963 में स्थापित केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (ब्ठण्ण्) के अन्तर्गत भ्रष्टाचार निरोधी सम्भाग का दर्जा दिया गया।
3. 1951 में पूर्व आई०सी०एस० अधिकारी श्री ए०डी० गोरवाला की अध्यक्षता में एक प्रशासनिक सुधार समिति बनाई गई, समिति ने अपने प्रतवेदन में एक पूरा अध्याय लोक सेवकों में सत्यनिष्ठा पर लिखा, जिसमें कहा गया कि राजनीतिक नेतृत्व स्वच्छ प्रशासन की स्थापना करने में असमर्थ रहा है, क्योंकि उनमें से कुछ में स्वयं निष्ठा का अभाव रहा है। समिति ने सुझाव दिया कि नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार की शिकायतों की सुनवाई हेतु केन्द्र एवं राज्य स्तर पर एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए।
4. 1955 में भ्रष्टाचार की शिकायतों की जाँच हेतु केन्द्रीय गृह मंत्रालय में सतर्कता विभाग (Vigilance Department) एवं अन्य मंत्रालयों में सतर्कता इकाइयों (Vigilance Units) की स्थापना की गई। इसी वर्ष भ्रष्टाचार निरोधक कानून 1947 को और अधिक कठोर बना दिया गया।

5. लोक प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या पर विचार करने के लिए 1962 में श्री के. संकानम की अध्यक्षता में एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की गई जिसमें पाँच सदस्य व दो गृह मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी थे।
8. 1966 में स्व. मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में 'प्रशासनिक सुधार आयोग' का गठन किया गया।

उपर्युक्त के अलावा संसद में 1971, 1975, 1977, 1985, 1989 एवं 2001 में संसद में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया गया, जो कई राजनीतिक कारणों के कारण पास नहीं हो सका। हाल ही के वर्षों में जिस प्रकार- बोफोर्स घोटाला, पनडुब्बी घोटाला, यूरिया घोटाला, चारा घोटाला, प्रतिभूति घोटाला, हवाला काण्ड, ताबूत काण्ड, तहलका काण्ड तथा अभी हाल में हमारे माननीय सांसदों को प्रश्न पूछने के बदले रिश्वत माँगते टी वी कैमरे में कैद किया जाना आदि ऐसे भारतीय राजनीति एवं प्रशासन के दृष्टांत हैं जो इस ओर इंगित करते हैं कि भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में शासकीय स्तर पर किए गए उपर्युक्त प्रयास नाकाम सिद्ध हुए हैं। अतः वर्तमान युग में, जबकि नौकरशाही के कानून व्यवस्था की स्थापना के साथ ही राज्य के क्षेत्र में विस्तार के कारण इनके सामाजिक आर्थिक विकास दायित्वों में वृद्धि हो रही है। चूँकि प्रशासनिक अधिकारियों की स्वविवेकी शक्तियों को समाप्त नही किया जा सकता, लेकिन यदि भारतीय लोक प्रशासन से वास्तविक अर्थों में भ्रष्टाचार का उन्मूलन करना है, तो निम्न उपायों पर विचार किया जाना चाहिए।

भ्रष्टाचार कम करने के सुझाव

1. संघीय स्तर पर सतर्कता आयोग जैसे संगठन को ही संविधान संशोधन द्वारा लोकपाल आयोग का स्वरूप प्रदान किया जाए, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश को अध्यक्ष बनाने का प्रावधान किया जाए। आयोग के जाँच दायरे में मंत्रियो, सांसदों तथा संघीय अधिकारियों के अलावा उच्च व उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों व पत्रकारों को भी शामिल किया जाए।
2. लोकपाल/लोकायुक्त को भ्रष्टाचार की शिकायतों पर निर्भर न रहकर अपने स्वतंत्र स्रोतों से भ्रष्टाचार की जानकारी प्राप्त करने तथा उसका अन्वेषण करने अभियोजन दायर करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।
3. लोकपाल/लाकायुक्त द्वारा किसी सरकारी अधिकारी जिस जाँच में भ्रष्ट पाया गया है के विरुद्ध अभियोजन दायर करने हेतु वरिष्ठ अधिकारियों/सरकार से पूर्व अनुमति प्राप्त करने की वैधानिक अनिवार्यता समाप्त की जानी चाहिए।
4. संघीय स्तर पर लोकपाल आयोग के अधीन भ्रष्टाचार की जाँच हेतु केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के भ्रष्टाचार उन्मूलन संभाग का दायित्व सौंपने का प्रावधान किया जाए। इसी प्रकार राज्य स्तर पर लोकायुक्त की भाँति लोकायुक्त पुलिस संगठन भी स्वतंत्र हो।
5. भ्रष्टाचार के मामलों में लोकपाल/लोकायुक्त की सलाह सम्बन्धित सरकारों के लिए बाध्यकारी हों।
6. भ्रष्टाचार के मामले साबित होने की दिशा में मृत्यु दण्ड का वैधानिक प्रावधान हो।

उपर्युक्त सुझावों के अमल में लाए जाने पर भ्रष्टाचार से भारतीय लोक प्रशासन को पूर्णतः मुक्त कर वास्तविक अर्थों में संवेदनशील, लोक-कल्याणकारी राज्य के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. कौर इन्द्रजीत- लोक प्रशासन, साहित्य भवन, आगरा
2. डॉ. अवस्थी एवं माहेश्वरी- लोक प्रशासन
3. डॉ. भाम्मरी चन्द्र प्रकाश- लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार
4. डॉ. फाड़िया, बी०एल०- लोक प्रशासन,
5. प्रतियोगिता दर्पण।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा का प्रावधान

डॉ० आरती कुमारी सिंह

एम०ए०, पी-एच०डी० (राजनीति विज्ञान), महिला महाविद्यालय, नवीनगर, औरंगाबाद, बिहार

शोध आलेख का सार

विश्व समाज में सामूहिक सुरक्षा महत्वपूर्ण विषय रहा है तथा इसी आवश्यकता को लेकर समाज, राज्य, सरकार अथवा सभी प्रकार के संगठनों का निर्माण हुआ है। सामाजिक विज्ञान में सिद्धान्तों के प्रतिपादन का केन्द्रीय विषय भी सुरक्षा को बताया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामूहिक सुरक्षा को केन्द्रीय विषय बताया जाता है। राष्ट्रीय सुरक्षा की तुलना में सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा नवीन है तथा इसे आधुनिक कहा जाता है। सामूहिक सुरक्षा का अवधारणा आधुनिक होने के साथ-साथ गतिशील है अर्थात् विभिन्न पर्यावरणीय कारकों से यह प्रभावित होती रही है। 19वीं शताब्दी के अंत तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की जोरदार माँग शुरू हो गई। वस्तुत: अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के गठन के आलोक में सामूहिक सुरक्षा के महत्व में भी उतरोत्तर वृद्धि हुई है। प्रथम विश्व युद्ध तथा द्वितीय विश्व युद्ध के समय में भी सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की उपस्थिति और अनिवार्यता पर बल दिया गया। शीत युद्ध, नवीन शीत युद्ध तथा उत्तर शीत युद्ध के काल में भी सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की सार्थकता कायम है। आज 21वीं शताब्दी में भी सामूहिक सुरक्षा की आवश्यकता एवं सार्थकता को स्वीकार किया जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को प्रभावशाली ढंग से कायम रखने के लिए सामूहिक सुरक्षा शक्ति प्रबन्धन का एक आधुनिक साधन है। सामूहिक सुरक्षा राज्यों के बीच एक व्यवस्था है, जो परस्पर शांति को कायम करता है तथा शीत युद्ध की संभावना को दूर करता है। पामर अैर पार्किन्स ने ठीक ही कहा है कि सामूहिक सुरक्षा का स्पष्ट अर्थ है- शांति के खतरों से निपटने के लिए सामूहिक सुरक्षा का कार्यकारी व्यवस्था में सुरक्षा की समस्या किसी अकेले राष्ट्र की समस्या नहीं होती, वरन् उन सभी राष्ट्रों की समस्या होती है जो इस व्यवस्था के अंतर्गत आपस में बंधे होते हैं। इसमें एक सबकी और सब एक को (one for all and all for one) वाले सामान्य सामाजिक जीवन के सिद्धान्त का अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उतारना बताया गया है। इसलिए, जहाँ किसी एक पर आक्रमण सभी पर आक्रमण करना माना गया है, वहाँ एक-दूसरे की रक्षा में सहयोग प्रत्येक राष्ट्र का उत्तरदायित्व समझा गया है। इस प्रकार की सामूहिक सुरक्षा के विचार में शक्ति-संतुलन का मूल भाव भी विद्यमान है।

मूल शब्द: राष्ट्रीय हित, सामूहिक सुरक्षा, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, आर्थिक सम्बन्ध, घोषणा-पत्र, सामाजिक प्रगति, सद्भावना, विश्व शांति।

प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र के छ: अंग है: (i) महासभा, (ii) सुरक्षा परिषद्, (iii) सामाजिक-आर्थिक परिषद्, (iv) न्याय परिषद्, (v) सचिवालय और (vi) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। इन छ: प्रमुख अंगों में सामूहिक सुरक्षा की दिशा में सुरक्षा परिषद् को सबसे महत्वपूर्ण दायित्व प्रदान की गई है। चार्टर निर्माताओं ने सुरक्षा परिषद् को ही सामूहिक सुरक्षा के लिए अन्तिम रूप में जबावदेह बनाया

है। इन पाँच अंगों के अतिरिक्त संगठन के कई विशिष्ट अभिकरण हैं, जिनके द्वारा भी सामूहिक सुरक्षा की स्थापना में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भूमिका की अपेक्षा है।

संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं ने यह स्वीकार किया कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को प्राप्त करने के लिए सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था शक्ति सन्तुलन में एक उपयुक्त रास्ता था। राष्ट्र संघ (10 जनवरी, 1920 को स्थापित) के प्रतिज्ञापत्र में दी गई सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की असफलता का मुख्य कारण व्यवस्था की कठोरता तथा संरचना में बहुत से दोष थे। सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था अपने आप में दोषपूर्ण नहीं थी। इसलिए इसे राष्ट्र संघ की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था के अधिक व्यावहारिक बना कर फिर से अपना लिया गया। इसके अतिरिक्त दूसरे विश्व युद्ध के दौरान तथा अन्त में, जब अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा से अधिक वास्ता पड़ा तो राजनेताओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे राष्ट्रों के सामूहिक प्रयत्नों के शांति तथा सुरक्षा को प्राप्त करने की आवश्यकता की ओर विशेष ध्यान दें। प्रत्येक राष्ट्र के राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में सुरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा तथा शान्ति के बीच पूर्ण अन्तर्निर्भरता के अनुभव ने, "एक के लिए सब, सबके लिए एक" के सिद्धान्त को और भी सुदृढ़ समर्थन देने में सहायता की। परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के अन्दर एक व्यावहारिक सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था देने के प्रबल प्रयत्न किए गये।

संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करते हुए अन्ततः 24 अक्टूबर, 1945 को की गई। संयुक्त राष्ट्र संघ का संविधान 'चार्टर' के नाम से जाना जाता है, जिसमें कुल अनुच्छेदों की संख्या 111 है। चार्टर के प्रस्तावना एवं उद्देश्यों में भी सामूहिक सुरक्षा की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। ऐसे चार्टर के अनुच्छेद-39 से 51 के बीच सामूहिक सुरक्षा विषयक व्यापक प्रावधान किये गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की प्रस्तावना में कहा गया है, "हम संयुक्त राष्ट्र के लोग, भावी पीढ़ियों को युद्ध के विनाश से बचाने के लिए जिसने हमारे जीवन काल में दो बार मानव जाति को अकथनीय कष्ट पहुँचाया है तथा मौलिक मानवीय अधिकारों में, मानव की प्रतिष्ठा तथा मूल्य, छोटे तथा बड़े सभी राष्ट्र के पुरूषों व महिलाओं के समान अधिकारों में अपनी आस्था संपुष्ट करने तथा ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करने के लिए जिनके अधीन संधि में व अन्तराष्ट्रीय कानून के अन्य स्रोतों में से उत्पन्न होने वाले दायित्वों के प्रति न्याय व सम्मान की रक्षा की जा सके, तथा अधिक स्वतंत्रतापूर्वक प्रगति व जीवन के बेहतर स्तरों को बढ़ावा देने तथा इन लक्ष्यों के लिए सहनशीलता रखने एवं एक-दूसरे के साथ अच्छे पड़ोसियों की तरह शांतिपूर्वक रहने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाए रखने के लिए अपनी शक्ति को एक जुट करने तथा इन सिद्धान्तों व विधियों की संस्थानों की मान्यता द्वारा यह सुनिश्चित करने की सामान्य हित के अतिरिक्त शस्त्र बल का प्रयोग नहीं किया जाएगा, तथा सभी देशों की जनता की आर्थिक व सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ का प्रयोग करने के लिए कृत संकल्प है। तदनुसार हमारी अपनी-अपनी सरकारें सैन फ्रांसिस्को के नगर में एकत्रित अपने प्रतिनिधियों, जिन्होंने अच्छे व उचित रूप में अपनी समस्त शक्तियाँ का प्रदर्शन किया है, के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र के चार्टर को स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ नाम अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं।"[1]

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद-1 में संगठन के उद्देश्यों को प्रस्तुत किया गया है। चार्टर के प्रथम अनुच्छेद में, संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के बारे में बताते हुए, अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संयुक्त राष्ट्र की मुख्य प्राथमिकता बताया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा कायम रखना तथा इसके लिए प्रभावपूर्ण सामूहिक प्रयत्नों द्वारा शान्ति के संकटों को रोकना और समाप्त करना तथा आक्रमण को एवं शान्ति-भंग की अन्य चेष्टाओं को दबाना" एक अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य है।[2]

सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र (U.N. Charter) के सातवें अध्याय में लिखी गई है तथा इसका शीर्षक, "शांति के प्रति धमकियों, शांति-भंग की स्थितियों तथा आक्रमण के कार्यो के बारे में कार्यवाही" है।[3] इसमें 39 के अधीन सुरक्षा-परिषद् का यह उत्तरदायित्व है कि "वह यह निर्णय करें कि शांति को धमकी दी गई है, शांति भंग की गई है या आक्रमण हुआ।"[4] इसके लिए वह "सिफारिश करेगी या निश्चित करेगी कि अनुच्छेद 41-42 के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने अथवा पुनः प्राप्त करने के लिए कौन-सी कार्यवाहियां की जायेगी।"[5]

अनुच्छेद-40, 41 तथा 42 में यह लिखा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने तथा उसे दुबारा प्राप्त करने के लिए सुरक्षा-परिषद् कौन-सा कदम उठा सकती है।[6] अनुच्छेद-40 के अनुसार, "अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को भंग करने वाली

या इसे धमकी देने वाली स्थितियों में वृद्धि होने की सूरत में पहले कदम के रूप में सुरक्षा परिषद् अस्थायी कार्यवाहियाँ (Provisional Measures) कर सकती है तथा सम्बन्धित देश को इन अस्थायी कार्यवाहियों के अनुसार काम करने के लिए कह सकती है जिन्हें यह आवश्यक समझती है।"[7]

अनुच्छेद-41 में प्रवर्तक कार्यवाहियों के बारे में बताया गया है जो सामूहिक सैन्य कार्यवाही से अलग होती हैं। सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को इनकी सिफारिश करेगी ताकि सम्बन्धित देश शांति तथा सुरक्षा के अतिक्रमण को समाप्त कर दें। इस अनुच्छेद के अनुसार, "सुरक्षा परिषद् अपने निर्णयों को लागू करने के लिए ऐसी कदमों के विषय में भी निर्णय कर सकती है, जिनमें सशस्त्र बल का प्रयोग न हो और वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों को इन कदमों का अनुपालन करने के लिए कह सकती है। इन कदमों के द्वारा, "आर्थिक सम्बन्धों तथा रेल, समुद्र, वायु, डाकतार, रेडियो एवं संचार व्यवस्था के अन्य साधनों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से प्रतिबन्धित किया जा सकता है और राजनीतिक सम्बन्ध भी तोड़े जा सकते हैं।[8]

अनुच्छेद-42 सुरक्षा परिषद् को अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने तथा सुरक्षित करने के लिए शक्ति देता है। इस अनुच्छेद के अनुसार, "यदि सुरक्षा परिषद् यह समझे कि अनुच्छेद-41 में वर्णित कदम अपर्याप्त होंगे अथवा अपर्याप्त सिद्ध हुए हों तो अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने अथवा पुनः स्थापित करने के लिए सुरक्षा परिषद् वायु, समुद्र तथा स्थल सेनाओं की सहायता से आवश्यक कार्यवाही कर सकती है। इस तरह की कार्यवाहियों में, प्रदर्शन, नाकाबन्दी तथा सयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की वायु, जल तथा स्थल सेनाओं को सैनिक कार्यवाही शामिल हो सकती है।"[9]

अनुच्छेद-43 के अनुसार यह संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों का उत्तरदायित्व है कि वह सुरक्षा परिषद् की अनुच्छेद-42 के अधीन किसी के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने के लिए सामूहिक सुरक्षा सेना को इकट्ठा करने के लिए अपने समर्थन, प्रयत्नों, साधनों तथा सेना में सहायता करें।[10]

अनुच्छेद-44 से अनुच्छेद-47 तक के अगले चार अनुच्छेदों में उस प्रक्रिया के बारे में लिखा है जिसके अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ शांति बनाए रखने वाले सामूहिक सुरक्षा सेना को इकट्ठा रखना तथा इनका प्रयोग करना होता है।[11] अनुच्छेद-48 के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को कायम रखने हेतु सुरक्षा परिषद् के निर्णयों को लागू करने के लिए जो कार्यवाही आवश्यक होगी उसके विषय में सुरक्षा परिषद् निर्धारित करेगी कि वे संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों द्वारा होगी या उनमें से कुछ के द्वारा इसके अतिरिक्त 'संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य स्वतन्त्र रूप से तथा उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के वे सदस्य हैं उनमें कार्यवाही द्वारा इन निर्णयों को लागू करेंगे।[12]

अनुच्छेद-49 में स्पष्ट रूप में लिखा गया है, "सुरक्षा परिषद् द्वारा निर्धारित कार्यवाही को लागू करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य एक-दूसरे को सहयोग देंगे।"[13] अनुच्छेद-50 तथा 51, क्रमानुसार, उन सम्भव तरीकों की व्याख्या करते हैं जिनके अनुसार गैर सदस्य राज्य तथा सदस्य राज्य अपनी नीतियों तथा कार्यवाहियों में उस निर्णय के मुताबिक सामंजस्य पैदा करसकें जिन्हें सुरक्षा परिषद् अनुच्छेद-41 अथवा 42 के अनुसार लेती है। तथापित अनुच्छेद-51 राज्यों इस अधिकार को स्वीकार करता है कि, "यदि किसी राज्य के विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण होता है तो उसे तब तक व्यक्तिगत या सामूहिक आत्म-रक्षा का अधिकार है जब तक सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठा लेती।"[14]

इन सभी धाराओं के साथ-साथ राष्ट्र संघ घाोषणा पत्र के सातवें अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने तथा पुनः प्राप्त करने के लिए कार्यात्मक सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की गई है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा के प्रावधानों का अवलोकन है। इस शोध आलेख का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सामूहिक सुरक्षा के दृष्टिकोण की परिवर्तित स्वरूप को भी स्पष्ट करना है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा का प्रावधान" है। संयुक्त राष्ट्र घोषणा-पत्र में लिखी जाने वाली सामूहिक सुरक्षा अवधारणा की दो अन्तर्निहित सीमाएं हैं। पहले स्थान पर यह स्वीकार किया गया है कि अपनी

सुरक्षा के लिए किसी आक्रमण की धमकी के विरुद्ध युद्ध की आत्मरक्षा को साधन मानकर चलना राष्ट्र का अधिकार है। दूसरे स्थान पर यह अवधारणा अनुच्छेद-51 के अंतर्गत राष्ट्रों को अपनी सुरक्षा करने के लिए क्षेत्रीय प्रतिरक्षा व्यवस्था कायम करने का अधिकार देती है। सुरक्षा परिषद् द्वारा इराक के विरुद्ध आर्थिक नाकाबन्दी, इराक के विरुद्ध सामूहिक सुरक्षा युद्ध का निर्णय लेते हुए 26 देशों की सैनिक टुकड़ियों को इकट्ठा करके एक संयुक्त राष्ट्रीय सेना का गठन किया। इसके साथ हीं खाड़ी युद्ध सहित आतंकवाद तथा चीन की विस्तारवाद को सामूहिक सुरक्षा के मार्ग में बाधा बता सकते हैं।

साहित्य सर्वेक्षण

"संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में सामूहिक सुरक्षा का प्रावधान: एक अवलोकन" पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्यन सम्पन्न हुए हैं। इस विषय पर अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख-लेखन को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण का अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता का ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण है:

1. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
2. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
3. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
4. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
5. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991 राष्ट्रीय

शोध प्रवृधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है।

निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता के पीछे विद्यमान तत्वों-संयुक्त राज्य अमरीका का उत्साह, भू०पू० सोवियत संघ की कमजोर स्थिति, शीत युद्ध की समाप्ति, इराक की आक्रामक कार्यवाही का सभी द्वारा विरोध, अरब देशों की इराक की विरोधता आदि को भी हमें ध्यान में रखना चाहिए। दुनिया के 20 अलग-अलग भागों में राष्ट्र संघ के तत्वाधीन में विश्व शांति की सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र शांति सेनाओं द्वारा की जाने वाली कार्यवाही महत्वपूर्ण रहा है। उत्तर शीत काल युग में संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में विश्व शांति की सुरक्षा के लिए सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को चलाने सम्बन्धी निर्णय-निर्माण प्रक्रिया अब सरल और सम्भव हो गई है। अत: आज यह व्यवस्था दृढ़ होती दिखाई दे रही है। आज आतंकवाद और विस्तारवाद के विरुद्ध विश्व जनमत बन रहा है तथा सामूहिक सुरक्षा के व्यापक स्वरूप की खोज हो रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मदोदर रावत, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, रावत पब्लिकेशन, हरियाणा, पृष्ठ-49
2. संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का प्रस्तावना
3. संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर, ।
4. तथैव, अनुच्छेद-39
5. तथैव, अनुच्छेद-39

6. यू०आर० घई, अन्तर्राष्टीय राजनीति : सिद्धान्त और व्यवहार, पृष्ठ-341
7. संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर, अनुच्छेद-40
8. तथैव, अनुच्छेद-41
9. तथैव, अनुच्छेद-42
10. तथैव, अनुच्छेद-42
11. यू०आर० घई, अन्तर्राष्टीय राजनीति : सिद्धान्त और व्यवहार, पृष्ठ-341
12. संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर, अनुच्छेद-48
13. तथैव, अनुच्छेद-49
14. तथैव, अनुच्छेद-51

भारत में पंचायती राज और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

आशुतोष सिंह जेलियाँग

शोध प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सार

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। इसलिए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को यहाँ अधिकाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में स्थानीय प्रशासन को महत्वपूर्ण बताया जा सकता है, जो ग्रामीण स्थानीय प्रशासन (पंचायती राज व्यवस्था) तथा नगरीय स्थानीय प्रशासन (नगरपालिकाएँ) के रूप में दृष्टिगोचर होती है। स्थानीय प्रशासन की ग्रामीण व्यवस्था को पंचायती राज व्यवस्था कहा जाता है, जो लोकतंत्र का आधारभूत रूप है। इसीलिए इसे 'ग्रासरूट डेमोक्रेसी' भी कहा जाता है तथा यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अर्थात् राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के लिए भी आवश्यक प्रतीत होता है। भारत में ब्रिटिश शासन के समय से ही पंचायतें स्थानीय शासन के रूप में कार्य करती रही है। परन्तु यह कार्य सरकारी नियंत्रण में होता था ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों और शहरों में नगरपालिकाओं द्वारा स्थानीय स्वशासन का कार्य किया जाता था। स्वतंत्र भारत में इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया और भारतीय संविधान के अनुच्छेद-40 ने इसकी पुष्टि इस प्रकार से की है- राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो, परंतु इस प्रयास में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लोकतांत्रिक स्वरूप पर धयान नहीं दिया गया। इन कमियों को राजीव गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में उजागर किया गया और पुन: इसके संवैधानिक समाधान के लिए प्रयास किया गया भारतीय संसद द्वारा पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के लिए ऐतिहासिक कदम उठाते हुए भारतीय संविधान में 73वाँ तथा 74वाँ संशोधन 1992 में किया गया। संविधान का 73वाँ संशोधन अधिनियम 25 अप्रैल, 1993 से तथा 74वाँ संशोधन अधिनियम 1 जून, 1993 से लागू हो गया है। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज तथा नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है।

मूल शब्द: पंचायत, स्थानीय शासन, नगरपालिका, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, सामाजिक न्याय, नारीवाद, सम्पोषित विकास।

प्रस्तावना

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का इतिहास प्राचीन है। यहाँ वैदिक काल में भी पंचायत सदृश्य व्यवस्था की झलक मिलती है। उस काल में सभा आयोजित होती थी, जिसमें राजा के कार्यों का मूल्यांकन किया जाता था। महाकाव्य काल के साथ-साथ बौद्ध काल में भी पंचायती व्यवस्था के सम्बन्ध में जातक कथाओं से पता चलता है। कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में भी ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख मिलता है तो गुप्तकालीन व्यवस्था में भी ग्राम पंचायतों का अत्यधिक महत्त्व था। मुगलकाल में मुस्लिम शासकों ने पंचायती व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। भारत में अँग्रेजी उपनिवेशवाद के समय से ही स्थानीय शासन के महत्व को समझा जाने लगा था। प्रशासन की इकाई जिला स्थापित की गई थी। जिला स्तर पर प्रशासन की व्यवस्था जिला अधिकारी के अधीन थी। जिला अधिकारी को कल्कटर, जिलाधीश इत्यादि नामों से भी पुकारा जाता था। जिले में कानून तथा शान्ति की व्यवस्था करना, राजस्व इकट्ठा करना तथाविकासीय कार्यों को करना, तीनों ही क्षेत्र जिला अधिकारी के अधीन थे। जिला अधिकारी सामान्यत: भारतीय प्रशासनिक सेवा का अफसर हुआ करता था। वर्ष 1882

में लार्ड रिपन के शासन के कार्यकाल में स्थानीय स्तर पर प्रशासन में लोगों को सम्मिलित करने के कुछ प्रयास आरम्भ हुए। इसके लिए जिला स्तर पर जिला बोर्डों की स्थापना की गई। इनमें स्थानीय लोगों को मनोनीत किया जाता था। भारत के गाँवों में सदियों प्रचलित पंचायत व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के प्रति भी कुछ कदम उठाए गए।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत में पंचायतों की परम्परा को छोटे गणराज्य कहा कर उनकी प्रशंसा की जाती थी। महात्मा गाँधी विशेष रूप से पंचायतों के प्रशंसक थे। भारतीयों में स्वशासन शक्ति की कमी की ब्रिटिश आलोचना के विरुद्ध पंचायतों के उदाहरण को भारत में स्वशासन की अत्यन्त पुरानी परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इसलिए गाँधीजी की यह धारणा भी थी कि स्वतंत्र भारत का आधार गाँवों से ही आरम्भ होगा। हर गाँव, उन मामलों को छोड़कर जहाँ अन्यों के साथ निर्भरता आवश्यक है, अपने आप में स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा महतव दिए जाने के कारण तथा स्वयं ब्रिटिश शासन द्वारा लोगों को अपने प्रशासन में सम्मिलित करने के लिए अनेक प्रान्तों में पंचायती राज लागू करने के कुछ कानून बनाए गए। स्वाभाविक रूप से यह सीमित तथा अपर्याप्त थे।

ब्रिटिश काल में पंचायती व्यवस्था शुरू में विपरीत रूप में जरूर प्रभावित हुई, परन्तु वर्ष 1882 में लार्ड रिपन ने ग्रामीण क्षेत्रों में बोर्ड अथवा मण्डलों की स्थापना का सुझाव दिया। 1919 ई० में मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुझावों के आधार पर भारत में पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया, लेकिन राजनैतिक हस्तक्षेप, धनाभाव एवं प्रशासनिक उदासीनता के कारण इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। 1919 के अधिनियम का परिणाम यह हुआ कि 1925 तक आठ राज्यों में पंचायत अधिनियम, 1919; बिहार स्वायत्त शासन अधिनियम, 1920; उत्तर प्रदेश ग्राम पंचायत अधिनियम, 1925 पास किए गए। इसके अतिरिक्त 1919 के अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता का श्री गणेश हुआ। भारत शासन अधिनियम, 1935 के तहत 1937 में प्रान्तों में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का गठन हुआ और उन्होंने स्थानीय संस्थाओं को जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बनाने के लिए कुछ कानून बनाये, दुर्भाग्यवश 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से स्थानीय निकायों के प्रति मंत्रियों का उत्साह ठंडा पड़ गया। पंचायती राज व्यवस्था के इतिहास में यह (1939-1946) अवधि को अंधकार युग माना जाता है, क्योंकि राजनीतिक उथल-पुथल से भरे स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में राष्ट्रीय नेतृत्व स्वशासन के विषय पर विशेष ध्यान नहीं दे पाया।

भारत सन् 1947 में स्वतन्त्र हुआ और इसके बाद पंचायती राज, ग्रामीण विकास की दिशा में उल्लेखनीय कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। भारतीय संविधान में इसे गाँधीवादी मान्यताओं के प्रभाव में भाग-4, राज्य के नीति के निदेशक तत्वों के अंतर्गत, अनुच्देद 40 में स्थान दिया गया है। वर्ष 1952 में सामुदायिक कार्यक्रम की शुरूआत की गई। 1956 में बलवन्त राय मेहता समिति का गठन हुआ, जिसने वर्ष 1957 में अपना प्रतिवेदन दिया। उसी प्रतिवेदन में त्रि-स्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया था, जिसे 73वाँ संविधान संशोधन, 1992 में अपनाया भी गया। वर्ष 1959 में राजस्थान के नागौर जिला में पंडित जवाहल लाल नेहरू ने पंचायती राज की दिशा में उद्घाटन कर वास्तविक कदम उठाया। वर्ष 1977 में अशोक मेहता का प्रतिवेदन प्रस्तुत हुआ, जिसमें द्वि-स्तरीय पंचायती व्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया गया। यह उल्लेखनीय है कि अशोक मेहता समिति की अनुशंसाओं को सरकार ने आंशिक रूप में ही स्वीकार किया, हालांकि कालान्तर में कर्नाटक में हेगड़े सरकार (1984-85) ने अशोक मेहता की अनुशंसाओं के अनुसार अपना पंचायती राज पुनर्गठित किया जो पर्याप्त रूप से सफल भी रहा है। कर्नाटक ही वह प्रथम राज्य है जिसने सन् 1987 में जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों को जिला परिषद् में विलय किया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचायती राज व्यवस्था के विकास में सी०एच० हनुमन्ता राव कार्यदल (जिला आयोजन तंत्र पर विशेष) का गठन वर्ष 1982-84 में हुआ। डा० एल० एम० सिंधवी समिति (1986), पी०के० थुंगन समिति (1988), जिला कलक्टर्स कार्यशालाएँ (1987-88) तथा 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक 1989 (असफल) सदृश प्रयास/कार्य की भूमिका भी इस दिशा में महत्वपूर्ण रही है।

राज्यों के संदेह तथा विरोधी दलों के विरोध के कारण 64वाँ संशोधन विधेयक पारित नहीं हो सका, परन्तु इस समय तक पंचायती राज के पुनर्जीवन की आवश्यकता तथा इसको महत्वपूर्ण बनाने की आकांक्षाएँ आम चर्चा का विषय बन चुकी थी। 1989 के चुनावों में लगभग सभी राजनीतिक दलों ने अपने घोषणा पत्रों में इसके लिए उचित कदम उठाने की बात कही। अत: राष्ट्रीय मोर्चे के सत्ता में आने से एक उचित विधि बनने की आशा बनी राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने संशोधन बिल में कुछ परिवर्तन किए। इनके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का कार्य काल पाँच वर्ष के लिए सुनिश्चित किया गया। इनकी स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। चुनाव करवाने का अधिकार तथा कार्य केन्द्रीय चुनाव आयोग के स्थान पर राज्य चुनाव आयोग को सौंपा गया। इसी प्रकार लेखा परीक्षा की शक्ति राज्य लेखा परीक्षक को सौंपी गई। महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए साधारण सदस्यता के

अतिरिक्त अध्यक्ष पद के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। नये संशोधन बिल को राज्य सरकारें तथा विरोधी राजनीतिक दलों के साथ विचार विमर्श के पश्चात् 2 सितम्बर, 1990 को लोक सभा में 74वें संविधान संशोधन बिल के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस बिल पर चर्चा आरम्भ होने से पहले ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया तथा बाद में लोक सभा विघटित हो गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि विधेयक का अस्तित्व समाप्त हो गया।

श्री पी०वी० नरसिम्हा राव के नेतृत्व में वर्ष 1991 में चुनाव के पश्चात् पुनः काँग्रेस की सरकार बनी। अपने स्पष्ट बहुमत की कमी तथा देश में बन चुके वातावरण के कारण इस सरकार को भी सर्वमान्य कानून बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः अनेक दलों से विचार विमर्श करके नया संशोधन विधेयक 16 सितम्बर, 1991 को लोक सभा में पेश किया गया। सदन में गहन विचार के लिए इस बिल को संसद के 30 सदस्यों की संयुक्त समिति को समर्पित कर दिया गया था। संसद के दोनों सदनों तथा विभिन्न दलों के सदस्यों से गठित इस समिति के विचार तथा सुझावों के पश्चात् 22 दिसम्बर, 1992 को संविधान संशोधन (73वाँ) विधेयक लगभग पूर्ण सहमति से पारित हो गया। इस पर शीघ्र ही राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए तथा 20 अप्रैल, 1993 को अधिसूचना निदेशित होने पर देश में संवैधानिक रूप से स्थापित नई पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गई। संविधान के 73वें संशोधन से स्थापित पंचायती राज व्यवस्था के मूल प्रावधान अग्रलिखित है: (i) पंचायती राज की स्थापना के लिए संविधान में नए अनुच्छेद 243ए से 243डी तथा एक नई अनुसूची-11 जोड़ी गई है। इन अनुच्छेदों तथा अनुसूची द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के गठन, प्रक्रिया तथा शक्तियों का वर्णन किया गया है। (ii) सभी राज्यों में पंचायती राज का स्वरूप एक समान होगा। यह तीन स्तरीय व्यवस्था पर आधारित होगा। (iii) तीन स्तरों के सदस्यों के चुनाव सीधे प्रत्यक्ष वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे। जिला तथा ब्लाक स्तर पर अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होगा। चुनाव अनिवार्य तथा निश्चित पाँच वर्ष के कार्यकाल के लिए होंगे। यदि निर्धारित व्यवस्था के अनुसार किसी स्तर को पाँच वर्ष से पहले भंग किया जाता है तो 6 महीने के अन्दर-अन्दर दुबारा चुनाव कराए जायेंगे। (iv) अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के अनुपात में स्थान सुरक्षित होंगे। कम से कम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। आरक्षित स्थानों के लिए चुनाव क्षेत्रों को समय-समय पर बदला जा सकता है। अध्यक्ष पद तथा अन्य पदों के लिए भी इन वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था होगी। (v) संविधान की 11वीं सूची में वर्णित शक्तियों तथा अधिकारों के अतिरिक्त आर्थिक नियोजन तथा विकास और सामाजिक न्याय इत्यादि संबंधित योजनाएँ बनाने और उन्हें लागू करने के अन्य अधिकार भी राज्य की विधायिका कानून बनाकर पंचायती राज संस्थाओं को दे सकती है। (vi) राज्य विधायिका को शक्ति दी गई है कि वह कानून द्वारा पंचायती राज्य संस्थाओं को कर, टोल इत्यादि लगाने, उन्हें एकत्रित करने तथा इस्तेमाल करने का अधिकार दें। राज्य सरकारें इन संस्थाओं को अनुदान भी दे सकती है। यह व्यवस्था भी की गई है कि प्रत्येक राज्य हर पाँच वर्ष या उससे पहले एक वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वशासन सस्थाओं में संशोधनों के तवरण के बारे में सुझाव देगा। (vii) पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य चुनाव आयाग के द्वारा करवाये जायेंगे। इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं के हिसाब-किताब की जांच राज्य लेखा परीक्षक के द्वारा की जाएगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना में निर्णायक कदम 73वाँ संविधान संशोधन, 1992 को माना जा सकता है, जिसके परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़ी गई। उक्त अनुसूची में कुल विषय-वस्तु की संख्या 29 है। यह उल्लेखनीय है कि 20 अप्रैल, 1993 को 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम लागू हुआ, जिसने पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक अस्तित्व प्रदान किया। 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के प्रावधान के परिप्रेक्ष्य में राज्यों ने पंचायती राज अधि नियम को पारित किया है। 73वाँ संविधान संशाधन के बाद भी स्थानीय प्रशासन और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में लगातार प्रयास होते रहे हैं जैसे दिलीप सिंह भूरिया समिति (1994-95), पंचायत अधिनियम (1996), ग्रामीण स्थानीय प्रशासन पर मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन (1997), ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज मंत्रियों का सम्मेलन (1998), पंचायती राज मंत्रियों का सम्मेलन (2001), पंचायती राज सशक्तिकरण हेतु केन्द्रीय कार्यबल (2001), पंचायत अध्यक्षों का राष्ट्रीय सम्मेलन (2002), पंचायती राज मंत्रियों का गोलमेज सम्मेलन (2004), टी० आर० रघुनन्दन कार्यबल (2004), पंचायती राज मंत्रालय का गठन (2004) तथा पंचायत में 50 प्रतिशत महिला आरक्षण (2009)। स्पष्टतः भारत में पंचायती राज व्यवस्था का वास्तविक विकास 73वाँ संविधान संशोधन, 1992 के बाद ही हुआ है। वर्ष 2014 से एन०डी०ए० की सरकार नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में चल रही है। इससे सरकारी संघवाद, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का स्वरूप भी आंशिक रूप में प्रभावित हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारत गाँवों का देश है, गाँवों का विकास ही इस देश के विकास को सही अर्थों में परिलक्षित करेगा। इसके लिए आवश्यक है कि विकेन्द्रीकृत ग्रामीण स्वायत्त शासन की संस्थाओं जिसे आज के सन्दर्भ में पंचायती राज व्यवस्था और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नाम से जानते हैं, के क्रमिक ऐतिहासिक प्रगति का सूक्ष्मावलोकन किया जाए ताकि समय विशेष एवं क्षेत्र विशेष के सन्दर्भ में विकेन्द्रीकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु पंचायती राज व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने की दिशा में सकारात्मक एवं सार्थक प्रयास किया जा सके।

परिकल्पना

शोध आलेख का लेखन निम्नलिखित परिकल्पनाओं पर आधारित होगा:

1. वर्त्तमान पंचायती राज व्यवस्था, पूर्व की अवधारणाओं का ऐतिहासिक क्रमिक विकास है।
2. पंचायती राज संस्थाएँ संवैधानिक प्राधिकार के बावजूद राज्य सरकारों की दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में नियोजन की क्षमता एवं जन-सहभागिता के दृष्टिकोण से अपेक्षा के अनुरूप प्रभावी नहीं हो सकीं।
3. क्या पंचायती राज व्यवस्था का क्रियान्वयन व्यापक विकास, महिला सशक्तिकरण तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है?
4. भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य क्या है तथा दिशा क्या है? इसका सूक्ष्म व यथार्थ अवलोकन भी अपेक्षित है।
5. भारत में वर्ष 2014 से नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में छक। की की सरकार बनी है तथा सहकारी संघवाद पर सैद्धान्तिक बल है। ऐसी स्थिति में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का भी अवलोकन एवं विश्लेषण अपेक्षित प्रतीत होता है।

साहित्य सर्वेक्षण

भारत में राजनीतिक सहभागिता और महिला विषय पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए है। इस विषय पर महत्वपूर्ण अधययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन भी अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए हमने निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. डॉ० अमरजीत सिंह नारंग की पुस्तक 'भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998
2. डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर०के० पुखार, भारतीय शासन और राजनीति, विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1988
3. डॉ० जयप्रकाश शर्मा, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000 ई०
4. मदोदर रावत, भारत की राजनीति और महिला, रावत पब्लिकेशन्स हरियाणा, 2001
5. डॉ० सुभाष काश्यप और विश्व प्रकाश गुप्त, संसद का इतिहास, भाग-1 और भाग-2, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, नवीन संस्करण, 2009

शोध की पद्धति

भारत में पंचायती राज व्यवस्था के विकास तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पृष्ठभूमि तथा वर्तमान स्वरूप के विवेचन हेतु ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग उपयुक्त है। प्रस्तुत शोध आलेख में ऐतिहासिक पद्धति के अतिरिक्त तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग है।

निष्कर्ष

लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं को भारतीय संविधान में स्वशासन को इकाई की अवध ारणा का उल्लेख एक सही कदम है, किन्तु ध्यान देने की बात है कि यह इकाई राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक इकाई भी है।

इस संदर्भ में ग्राम सभा को एक कृषि औद्योगिक समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है। जी०वी०के० राव समिति को रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि विकास कार्यों में गाँव के लोगों का स्वैच्छिक सहयोग स्वालम्बन की दिशा में पहला कदम होगा राज्यों के पंचायत अधिनियमों में ऐसा प्रावधान है कि ग्राम सभा को इस जिम्मेदारी को निभाना है कि ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम में श्रमदान हेतु लोगों को प्रेरित किया जाए। नि:सन्देह इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं के स्तर पर एक गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता होगी। सभी राज्यों की पंचायती राज संस्थाओं को कार्यकारिणी में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। कुछ राज्यों में महिलाओं के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान लागू है। ग्राम सभा की बैठकों में पुरूषों की तुलना में आम महिलाओं की भागीदारी बेहद कम होती है। यह असमानता महिला सशक्तिकरण की दृष्टि के एक गलत संदेश देती है, आज महिलाओं द्वारा गठित स्वयं सहायता समूहों का व्यापक स्तर पर विकास हुआ है। किंतु यह अब तक स़ जाहिर नहीं होता है कि पंचायती राज संस्थाओं से इन समूहों का संबंध बन पाया है या नहीं। यदि ग्राम सभा के स्तर पर इन समूहों को महिलाओं की उपस्थिति सुनिश्चित की जाए तो ग्राम सभा में आम महिलाओं की भी भागीदारी बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त आम महिलाओं को स्वयं सहायता समूह बनाने की प्रेरणा मिलेगी और यह महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से एक सराहनीय कदम होगा। यह खेदजनक है कि अधिकतर ग्राम पंचायत क्षेत्रों में इनका कोई पंचायत भवन नहीं है जहाँ इन संस्थाओं की बैठक हो सके हर ग्राम पंचायत के कार्यालय और एक बड़े सभा कक्ष की आवश्यकता होगी, किंतु इनके निर्माण हेतु कितनी भूमि की आवश्यकता होगी, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. बी० के० शर्मा, भारतीय संविधान : एक परिचय, पी०एच० आई, नौवां संस्करण, 2012, पृ०-49
2. कटारिया, सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, पृ०-20-21
3. तथैव, पृ०-21
4. तथैव, पृ०-22
5. तथैव, पृ०-22
6. तथैव, पृ०-23
7. तथैव, पृ०-23
8. चतुर्वेदी, टी० एन०, तुलनात्मक लोक प्रशासन, पृ०-54 .

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

डॉ० अशोक कुमार

एम०ए० (राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन), पी०एच-डी०, पी०यू०

शोध आलेख का सार

भारतीय संविधान की संरचनात्मक, कार्यात्मक, अवधारणात्मक, प्रक्रियात्मक तथा विशिष्ट विशेषताएँ हैं, जिन्हें लिखित-निर्मित संविधान, संसार का सबसे विशाल संविधान, जन सम्प्रभुता पर आधारित संविधान, समाजवादी राज्य, लोकतांत्रिक गणराज्य, कठोर एवं लचीले संविधान का सम्मिश्रण, संघात्मक तथा एकात्मक प्रणाली का सम्मिश्रण, संसदीय प्रजातंत्र, लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना, संविधान की सर्वोच्चता, वयस्क मताधिकार, एकल नागरिकता, मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का समावेश, राज्य की नीति निर्देशक तत्व, स्वतंत्र न्यायपालिका, सामाजिक न्याय, आपातकालीन प्रावधान, धर्मनिरपेक्ष राज्य तथा विश्व शांति का समर्थक के रूप में देखा जा सकता है। भारतीय संविधान की विशेषता इसकी विशालता भी है। सम्पूर्ण विश्व में भारत का संविधान सबसे विशाल है, जिनमें कुल अनुच्छेदों की संख्या-395 है। भारतीय संविधान की विशालता का मूल कारण एकल संविधान तथा भारत की बहुल संस्कृति का होना महत्वपूर्ण है। भारत ब्रिटेन के साम्राज्यवाद के अन्तर्गत एकात्मक शासन की प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर भी एकल संविधान, एकल नागरिकता, एकल न्यायिक व्यवस्था सहित कई प्रावधानों को स्वीकार करता है। भारत में संघवाद है, परन्तु भारत का संघवाद अमरीका तथा कनाडा से प्रभावित होकर भी उनका नकल नहीं है। अमरीका में तो संघ तथा राज्यों का अपना अलग-अलग संविधान है, जिसे भारत स्वीकार नहीं करता। भारतीय संघवाद अपने-आप में विलक्षण है, तभी तो डी०डी० बसु ने कहा है कि भारतीय संविधान ने संघात्मकता तथा एकात्मकता का सम्मिश्रण है। भारत का संविधान दुनिया के दूसरे देशों के संविधान से अलग एवं विलक्षण है।

मूल शब्दः सामाजिक न्याय, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता, संसदीय शासन, संघवाद, न्यायिक पुनर्वालोकन, गणतंत्र, लोकतंत्र ।

प्रस्तावना

अमरीकी संविधान के समान भारत का संविधान भी लिखित एवं निर्मित है। निर्मित संविधान इसलिए कि भारत के संविधान का निर्माण एक विशेष समय और निश्चित योजना के अनुसार संविधान सभा द्वारा किया गया है। लिखित इसलिए कहा जाता है कि इसमें सरकार के संगठन, उसके प्रमुख अंगों यथा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का गठन व शक्तियों तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों, कर्तव्यों आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। भारत का संविधान विश्व के अन्य संविधानों की तुलना में अत्यधिक व्यापक और विस्तृत संविधान है।[1] इसका मुख्य कारण इसमें 395 अनुच्छेद, 22 अध्याय एवं 12 अनुसूचियाँ हैं, जबकि इसकी तुलना में संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में मात्र 7 अनुच्छेद, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128, कनाडा के संविधान में 147, चीन के संविधान में 106 अनुच्छेद हैं।[2] भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इस संविधान को भारत की जनता ने बनाया है और इसमें अन्तिम शक्ति जनता को प्रदान की गई है। इस प्रकार भारतीय संविधान सन् 1935 के भारतीय शासन अधिनियम की तरह ब्रिटिश संसद या अन्य किसी बाहरी शक्ति की कृति नहीं, वरन् जनता द्वारा निर्मित अधिनियम और अंगीकृत है। सन् 1976 के 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द जोड़ा गया है।[3] 'समाजवाद राज्य' का अर्थ है कि समस्त नागरिकों को अपनी उन्नति और विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होंगे तथा उत्पादन एवं वितरण आदि पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होगा।

धर्मनिरपेक्षवाद का विचार संविधान की आधार संरचना में देखा जा सकता है, जिसके प्राथमिक प्रमाण हमें प्राक्कथन (Preamble) में जिसका विस्तृत दिग्दर्शन समानता व धर्म संबंधी विभिन्न मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) के प्रावधानों में मिलता है। भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षवाद की धारणा उन सिद्धान्तों पर आधारित है जिनका गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस दल ने दृढ़ता से वरण किया। यह स्थिति दिखाती है कि भारतीय संविधान ने देश को विभाजित करने वाले जिन्ना के द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के पाप को धोने का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है। अस्तु, एक वरिष्ठ सदस्य अनन्तसायनम आयंगार ने 7 दिसम्बर, 1948 को संविधान सभा में कहा, 'हम राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाने के लिए कृत-संकल्पित हैं। मेरा 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द से तात्पर्य किसी भी धर्म को न मानने और दैनिक जीवन में उससे कोई सम्बन्ध न रखने से नहीं है। इसका अर्थ केवल यह है कि राज्य या सरकार किसी भी धर्म की सहायता नहीं करेगी या किसी धर्म को अन्य वर्गों के विरुद्ध प्राथमिकता नहीं देगी। अत: शासन अपनी प्रकृति से पूर्णतया धर्मनरिपेक्ष ही रहेगा।' संविधान की धर्मनिरपेक्षता के प्रमाण अग्रलिखित उपबन्धों में दृष्टिगोचर होते हैं: (i) प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है तथा यह सभी नागरिकों की विभिन्न स्वतन्त्रताओं (जैसे विश्वास, आस्था एवं उपासना की स्वतन्त्रता) के बारे में प्रतिभूत करता है; (ii) भारतीय संविधान के अनु० 14 के अनुसार, राज्य भारत की सीमाओं के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता तथा कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा; (iii) भारतीय संविधान के अनु० 15 के अनुसार, राज्य किसी व्यक्ति के साथ उसकी नस्ल, धर्म व जाति के आधार पर विभेद नहीं करेगा। आगे यह प्रावधान भी किया गया है कि धर्म, जाति व नस्ल आदि के आधारों पर किसी भी नागरिक को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, जलपानगृहों, मनोरंजन स्थलों आदि में प्रवेश करने पर या राज्य के कोष द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त, कुओं, तालाबों, सड़कों व सार्वजनिक विश्रामस्थलों के उपयोग पर कोई बाध्यता या अयोग्यता लागू नहीं की जा सकेगी; (iv) भारतीय संविधान के अनु० 16 के अनुसार किसी नागरिक को धर्म, जाति या नस्ल के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं के लिए आयोग्य व अपात्र घोषित नहीं किया जाएगा और नहीं राज्य द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश से वंचित किया जाएगा। (v) भारतीय संविधान के अनु०-17 के अनुसार, छुआछूत समाप्त कर दी गई है और किसी भी रूप में इसका पालन वर्जित है। अस्पृश्यता के आधार पर किसी प्रकार की अयोग्यता को लागू करना कानून के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध होगा। (vi) भारतीय संविधान के अनु० 25 के अनुसार, सभी व्यक्ति समान तौर से विश्वास या धर्म की स्वतंत्रता के अधिकारी हैं और उन्हें अपनी पसंद के किसी धर्म के पालन, आचरण, व शान्तिपूर्ण तरीकों से उसका प्रचार करने का अधिकार है। (vii) भारतीय संविधान के अनु० 26 के अनुसार, प्रत्येक धार्मिक समुदाय व उसका कोई सम्प्रदाय धर्म व कल्यण संबंधी कार्यों के लिए अपनी संस्थाओं की स्थापना व संचालन करने का अधिकारी है व धार्मिक कार्यों को स्वयं संचालित करने, उसकी चल व अचल सम्पत्ति के स्वामित्व व अधिग्रहण करने तथा कानून के अनुसार अधिशासित करने के अधिकारी है। (viii) भारतीय संविधान के अनु० 27 के अनुसार, कोई व्यक्ति ऐसे करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनसे प्राप्त आय किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिए विनियुक्त है। (ix) भारतीय संविधान अनु० 28 के अनुसार, राज्य द्वारा आंशिक या पूर्णरूप से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से नहीं दी जाएगी। (x) भारतीय संविधान के अनु० 29 के अनुसार, राज्य किसी समुदाय या सम्प्रदाय की संस्तुति के अतिरिक्त उस पर अन्य संस्कृति नहीं थोपेगा और सभी समुदायों या सम्प्रदायों को स्वेच्छा से अपनी शिक्षण संस्था स्थापित करने व उन्हें संचालित करने का अधिकार होगा। शैक्षिक संस्थानों को अनुदान देने में राज्य किसी विद्यालय के प्रति इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह संस्था किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित की जा रही है, जो किसी धार्मिक सम्प्रदाय के प्रबन्ध के अन्तर्गत ही है।

भारतीय संविधान के उपर्युक्त सभी प्रावधान दृढ़तापूर्वक यह घोषित करते हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। जैसा बसु ने कहा है, उपर्युक्त प्रावधान समग्र रूप से भारतीय राज्य को संयुक्त राज्य अमरीका से भी अधिक धर्मनिरपेक्ष बनाते हैं।[4] राजनीति के धर्म से ज्ञानत: विलग होने के सिद्धान्त पर भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद आधारित है।[5]

भारतीय संविधान की विशेषता समाजवादी मान्यताओं की स्वीकृति भी है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत समाजवादी मूल्यों को अपनाया गया था, परन्तु प्रस्तावना के अन्तर्गत समाजवाद का उल्लेख नहीं था। 42वें संविधान संशोधन के द्वारा समाजवाद शब्द जोड़ा गया। भारतीय संविधान में जो निहित समझा जाता था, 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा दो नए शब्दों 'समाजवादी' व 'धर्मनिरपेक्ष' के प्राक्कथन में जुड़ जाने से प्रयत्क्ष हो गया है 'राष्ट्र की एकता' के साथ 'राष्ट्र की अखण्डता' को जोड़ दिया गया है। एक अंग्रेजी शब्दकोष (व्गवितक क्पबजपवदंतल) के अनुसार, समाजवाद 'सामाजिक संगठन का ऐसा सिद्धान्त या नीति

है जो उत्पादन के साधनों, पूँजी, जमीन, सम्पत्ति आदि का सम्पूर्ण समुदाय द्वारा नियंत्रण व स्वामित्व का समर्थन करता है व सभी के हितों हेतु वितरण व प्रशासन की व्यवस्था करता है।' यहाँ यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि प्रस्तावना में 'समाजवादी' राष्ट्र लिखे जाने के बावजूद, हमारा मौलिक विधान इस विवादास्पद व संशयात्मक शब्द की नेहरू द्वारा परिभाषित भावना का ही अनुगमन करता रहा है। इसे प्रजातान्त्रिक समाजवाद की भावना के सन्दर्भ में ही समझना चाहिए। इसका सहज तात्पर्य यह है कि राज्य ने स्वयं अपने ऊपर यह दायित्व लिया है कि वह गरीबी मिटाने, उत्पादन बढ़ाने के लिए भावी कदमों का उपयोग करने, हमारी आर्थिक व्यवस्था को आधुनिक बनाने के लिए प्रमुख आधुनिक उद्योगों की स्थापना करने, सभी आर्थिक गतिविधियों में सामाजिक लक्ष्यों का क्रियान्वयन करने, विभिन्न वर्गों व क्षेत्रों की एतिहासिक विषमता को मिटाने व असमानता को कम करने और एकाधिकार के विकास रोकने व नियंत्रण करने का प्रयास करेगा। जैसा सरदार स्वर्ण सिंह ने बंगलौर में आयोजित हनुमनतैया न्यास भाषण माला (21 अगस्त, 1976) में कहा कि 'समाजवादी' शब्द को लिखने का उद्देश्य सरकार को उसकी नीति निर्धारण में सकारात्मक मार्ग दर्शन करना है। सामाजिक व आर्थिक न्याय का उद्देश्य व क्रियान्वयन देश को सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में दूरगामी परिवर्तन लाने का आधार है, जिसके लिए हम प्रतिबद्ध हैं। जैसा कि प्रस्तावित है, राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों को हमारे मौलिक अधिकारों से प्राथमिकता देनी चाहिए जिससे समाजवादी कार्यक्रमों व आदर्शों को क्रियान्वित करने में गति प्रदान की जा सके।[6] भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। प्रत्येक संविधान का परिवर्तनशील अथवा अपरिवर्तनशील होना उसकी संवैधानिक प्रक्रिया है, जिसके सन्दर्भ में उसे अपरिवर्तनशील या कठोर संविधान अथवा लचीला संविधान कहते हैं। यदि संविधान में संशोधन के लिए कोई विशेष या कठिन प्रक्रिया है तो उसे अपरिवर्तनशील अथवा कठोर संविधान कहते हैं। यदि संविधान संशोधन प्रक्रिया आसान है तो उसे लचीला संविधान कहते हैं। भारतीय संविधान में संशोधन न तो अमरीका जैसा कठोर है और न ही ब्रिटेन जैसा अधिक लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया मध्यमार्गी है। संघवाद कठोर संविधान की मांग करता है, इसीलिए अमरीकी संविधान कठोर संविधान है। ब्रिटिश संविधान संसदीय शासन प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में लचीला संविधान है। चूँकि भारत में संघवाद और संसदीय शासन प्रणाली के बीच समन्वय किया गया है, इसीलिए भारतीय संविधान में संशोधन की मध्यमार्गी प्रक्रिया को अपनाया गया है तथा यह भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक विशेषता है।[7] भारत में संघवाद के अनुरूप दोहरी सरकार, संघ तथा राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन, लिखित-निर्मित संविधान तथा स्वतंत्र न्यायपालिका को अपनाया गया है। दूसरी ओर भारतीय संविधान में अनेकानेक एकात्मक शासन के लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे- एकल नागरिकता, एकहरी न्यायपालिका, आपातकाल, अवशिष्ट शक्ति, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति इत्यादि। चूँकि भारत में संघात्मक के साथ-साथ एकात्मक राज्य की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, इसलिए भारतीय संविधान एम० बी० पायली के शब्दों में, "शरीर से संघात्मक, परन्तु आत्मा से एकात्मक है।"[8] स्पष्टत: भारतीय संविधान की एक विशेषता इसका संघात्मक होते हुए भी एकात्मक होना है। भारतीय संविधान संसदीय शासन प्रणाली की विशेषताओं को अपनाता है। संसदीय शासन प्रणाली के अनुरूप भारत में दोहरी कार्यपालिका अर्थात् औपचारिक एवं वास्तविक कार्यपालिका, विधायिका और कार्यपालिका में समन्वय, विधायिका के प्रति कार्यपालिका का उत्तरदायित्व होना, राजनीतिक सजातीयता का सिद्धान्त तथा संविधान की सर्वोच्ता में संसदीय विशेषाधिकार के सिद्धान्त को अपनाया गया है। स्पष्टत: भारत में संसदीय प्रजातंत्र की उपस्थिति है, जो भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भारत लोकतांत्रिक व्यवस्था ही नहीं, गणतंत्रात्मक व्यवस्था को भी अपनाता है, तभी तो भारतीय संविधान दुनिया का एक महान लोकतांत्रिक संविधान है। गणतंत्र के अनुरूप भारत में राष्ट्राध्यक्ष जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में ही सही निर्वाचित किया जाता है। भारतीय संविधान में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को स्वीकार किया गया है, जिसके द्वारा अपने नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास तथा धार्मिक मामलों में भी स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान लोक कल्याणकारी राज्य के साथ-साथ जन संप्रभुता आधारित राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था को स्वीकार करता है, जो भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता मानी जा सकती है।

भारत में संघवाद के अनुरूप न तो न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अमरीका के समान अपनाया गया है और न ही ब्रिटेन के समान संसदीय शासन प्रणाली के सन्दर्भ में संसद की सर्वोच्चता को ही अपनाया गया है। भारत में संघवाद और संसदीय प्रजातंत्र के समन्वय के परिप्रेक्ष्य में संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। संविधान की सर्वोच्चता भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भारत में भले ही संविधान निर्माताओं

ने संविधान की सर्वोच्चता को सिद्धान्त को स्वीकार किया था, परन्तु यहाँ की न्यायपालिका के कार्यकरण में न्यायिक सर्वोच्चता दृष्टिगोचर हो रही है। ऐसे भी मूल भारतीय संविधान में न्यायपालिका को एकीकृत तथा पृथक् करके न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार देना उसे सर्वोच्चता की ओर अग्रसर करने जैसा ही रहा है, तभी तो भारत की न्यायपालिका 'सर्वोच्च न्यायालय' ने केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य वाद में वर्ष 1973 में मूल 'संविधान के ढाँचा के सिद्धान्त' ('Doctorine of Basic Structure of the Constitution') को प्रतिपादित कर भारत की राजनीतिक व्यवस्था में अपनी सवोच्चता को स्थापित किया है, जो बाद के कालक्रमों में 'न्यायिक सक्रियता' के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है।[9] भारतीय संविधान के अंतर्गत वयस्क मताधिकार का उपबन्ध अनुच्छेद-326 के अन्तर्गत किया गया है, जिसे भारतीय संविधान की एक विशेषता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत वयस्क मताधिकार को अपनाया गया है जिसके अनुसार सभी स्त्री-पुरुष (दिवालिया, पागल और अपराधियों को छोड़कर) को निर्वाचन में मत देने का अधिकार प्रदान किया गया है। मतदान में वयस्कता की आयु सन् 1988 के 61वें संविधान संशोधन द्वारा 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है।[10] अब प्रत्येक स्त्री-पुरुष नागरिक जिसकी आयु 18 वर्ष या अधिक है, मतदान में भाग ले सकता है। लोक सभा तथा विधान सभाओं और स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर ही होते हैं। भारतीय संविधान में समस्त नागरिकों के लिए इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। यहाँ सभी व्यक्ति भारत के नागरिक हैं, पृथक्-पृथक् राज्यों के नागरिक नहीं। भारत में अमरीका के समान दोहरी नागरिकता नहीं है; जैसे- भारत के किसी भी प्रान्त में रहने वाला व्यक्ति भारत का ही नागरिक होगा, न कि उस प्रान्त का। भारतीय संविधान एक लोकतांत्रिक संविधान है। इस परिप्रेक्ष्य में संविधान की विशेषता मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का उपबंध होना है।

संविधान के भाग-3, अनुच्छेद 12-35 के बीच सात प्रकार के मौलिक अधिकारों को उपबंधित था। वर्तमान समय में छः प्रकार के मौलिक अधिकार भाग-3 में उपबंधित रह गये हैं, क्योंकि 44वें संविधान संशोधन, 1978 के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को भाग-12, अनुच्छेद-300(क) के अन्तर्गत वैधानिक अधिकार बना दिया गया है।[11] भारतीय संविधान की एक विशेषता संविधान के अन्तर्गत व्यापक रूप से मौलिक अधिकारों का उपबन्ध होना है। संविधान के भाग-ष्प्, अनु० 12 से 35 के बीच मौलिक अधिकारों का उपबन्ध है। भारत में मौलिक अधिकार की माँग सबसे पहले 1895 में की गई थी। भारतीयों ने अंग्रेजों के बराबर अधिकारों की माँग किया। इसके पश्चात् ऐनी बेसेन्ट ने कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल 1925 में तथा मोतीलाल नेहरू कमेटी रिपोर्ट 1928 में भी यह माँग की गई कि भारतीयों को भी मौलिक अधिकार दिए जाएँ। इसके पश्चात् 1930 के कराची अधिवेशन में भी कांग्रेस पार्टी ने इस माँग को दोहराया था और दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में महात्मा गाँधी ने भी यह माँग को दोहराया था और दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में महात्मा गाँधी ने भी यह माँग उठायी थी, परन्तु 1934 में संयुक्त संसदीय समिति ने इस माँग की स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इसी कारण मौलिक अधिकारों को भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में इनके लिए कोई भी व्यवस्था नहीं की गई।

भारत सरकार के अधिनियम 1935 के आंशिक रूप से लागू किए जाने पश्चात् दूसरा विश्व युद्ध आरम्भ हो गया और भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण सारे कांग्रेसी नेताओं को जेल में बन्द कर दिया गया। इसके पश्चात् भारत के संविधान से संबंधित सप्रू रिपोर्ट जो 1945 के अन्त में प्रकाशित की गई थी, उसमें भी मौलिक अधिकारों को शामिल करने की बात कही गई थी।

भारतीय संविधान में जिन मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है उनकी अग्रलिखित विशेषताएँ हैं।[12] (i) मौलिक अधिकारों पर युक्तियुक्त बन्धन लगाए गए हैं, ताकि व्यक्तिगत अधिकारों को जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए सीमित किया जा सकें। लगाए गए बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं, इस बात का निर्णय अदालत करेगी। (ii) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 तथा 21 में दिए गए मौलिक अधिकारों को छोड़कर जो व्यक्ति को उस समय तक सजा देने से जब तक कि दोष सिद्ध नहीं हो जाता (अनुच्छेद 20) तथा उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना वंचित करने से रोकते हैं (अनुच्छेद 21), अन्य सभी अधिकारों को आपातकाल के समय निलम्बित किया जा सकता है (अनुच्छेद 359)। आपातकाल में अनुच्छेद 19 में दिए गए अधिकार आपातकाल की घोषणा के साथ स्वयं ही निलम्बित हो जाते हैं, परन्तु अन्य अधिकारों को निलम्बित करने के लिए राष्ट्रपति के आदेश की आवश्यकता होती है। ये अधिकार उस समय तक निलम्बित रह सकते हैं जब तक कि आपातकाल की घोषणा जारी रहती है, परन्तु आपातकाल की घोषणा से समाप्त होने से पहले इनके निलम्बन से संबंधित आदेश को राष्ट्रपति वापिस ले सकता है। (iii) मौलिक अधिकारों को निलम्बित तो किया जा सकता है, परन्तु उन्हें संविधान से निकाला नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसा करने से संविधान का उल्लंघन होता है। (iv) कुछ मौलिक अधिकार नकारात्मक हैं, क्योंकि वे राज्य की शक्तियों को सीमित करते

हैं, परन्तु कुछ मौलिक अधिकार सकारात्मक हैं; क्योंकि वे नागरिकों को कुछ स्वतंत्रताएँ देते हैं। उदाहरणतया अनुच्छेद 15 राज्य को भेदभाव करने से रोकता है, परन्तु अनच्छेद 19 बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है। (v) कुछ मौलिक अधिकार ऐसे हैं जो केवल नागरिकों को ही दिए गए हैं, परन्तु कुछ अधिकार ऐसे भी हैं जो नागरिकों के अतिरिक्त सभी व्यक्तियों को भी दिए गए हैं। उदाहरणतया, बोलने तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल नागरिकों को ही दी गई है, परन्तु कानून के समक्ष समता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है, चाहे वह नागरिक हो या न हो। (vi) कुछ अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध दिए गए हैं, परन्तु कुछ अधिकार केवल व्यक्तियों के विरुद्ध दिए गए हैं। उदाहरणतया, राज्य-धर्म व नस्ल के आधार पर व्यक्तियों में भेदभाव नहीं कर सकता। लेकिन व्यक्तियों को बेगार लेने तथा मानव के साथ दुर्व्यवहार करने की आज्ञा नहीं है। (vii) यदि किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन हो तो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, क्योंकि इन अधिकारों को लागू करना न्यायालय का कर्तव्य है। (viii) कुछ मौलिक अधिकार ऐसे हैं जो सैनिकों को नहीं दिए गए हैं, लेकिन ऐसे कौन-से अधिकार है जो सैनिकों को नहीं दिए गए हैं, वे ऐसे अधिकार होंगे जिनके बारे में संसद कानून पास करेगी।

यदि मौलिक अधिकारों का वर्गीकरण किया जाए तो उन्हें छः श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जो इस प्रकार हैं[13]–

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
2. स्वतंत्रता तथा प्राण और दैहिक संरक्षण का अधिकार (अुनच्छेद-19-22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
5. संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

भारतीय संविधान की यह भी एक प्रमुख विशेषता है कि समाजवादी मान्यता के प्रभाव में सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से हटाकर वैधानिक अधिकार बना दिया गया है। भारतीय संविधान में दिए गए मूल अधिकारों में सबसे अधिक विवाद सम्पत्ति के अधिकार के संबंध में रहा है और इस अधिकार को लेकर अनेक संवैधानिक मामले न्यायालय के सामने उठाए गए। 1971 के बाद के मूल अधिकारों और विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार को सीमित करने के बराबर प्रयत्न किए जाते रहे जिसका अंत 1978 के 44वें संशोधन पर हुआ। इस संशोधन के द्वारा मूल अधिकार के रूप में एक लम्बा इतिहास है, जिसका अध्ययन करना मूल अधिकारों के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए आवश्यक है। मूल भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 में संपत्ति अर्जित करने, रखने तथा बेचने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी, जबकि अनुच्छेद 31 में संपत्ति के विषय में राज्य तथा नागरिकों के सम्बन्धों को तथा व्यक्तिगत संपत्ति में राज्य द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की परिस्थितियों तथा सीमाओं को निर्धारित किया गया है। अनुच्छेद 31 का जो मूल स्वरूप संविधान में निश्चित किया गया था वह बाद में संशोधनों द्वारा धीरे-धीरे परिवर्तित होता रहा। अब सम्पत्ति का अधिकार संविधान के भाग 12, अनुच्छेद 300 (क) में वैधानिक अधिकार है। आयरलैंड के संविधान की तरह भारत के संविधान में भी राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसे भी भारतीय संविधान की विशेषता माना जा सकता है। राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों को न्यायालय द्वारा लागू तो नहीं किया जा सकता, परन्तु देश के शासन के लिए ये बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और विधि बनाते समय राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इन तत्त्वों को लागू करने की व्यवस्था करें। जहाँ पर मौलिक अधिकारों के अध्याय का उद्देश्य राजनैतिक प्रजातन्त्र स्थापित करना है, वहाँ पर राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों का उद्देश्य आर्थिक न्याय पर आधारित प्रजातंत्र स्थापित करना है। इसलिए इस अध्याय का संविधान में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यदि जनता को आर्थिक न्याय नहीं मिलेगा तो राजनैतिक प्रजातंत्र को खतरा हो सकता है। राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों का एकमात्र उद्देश्य जनता के शोषण को खत्म करके उसे आर्थिक न्याय दिलाना है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व सकारात्मक हैं और मौलिक अधिकार नकारात्मक। इस अध्याय का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करना है।[14]

भारतीय संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों का शामिल करना समाजवादी प्रभाव है तथा एक महत्त्वपूर्ण विशेषता भी है। भारतीय संविधान के 42वें संशोधन 1976 के द्वारा संविधान में मूल कर्त्तव्यों को भाग 4 (क) अनुच्छेद 51 (क) में शामिल कर दिया गया है। इस अध्याय के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक के दस कर्त्तव्य हैं। उनमें से संविधान का पालन करना, उसके आदर्शों,

संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करना, भारत की एकता, प्रभुता और अखण्डता की रक्षा करना, देश की रक्षा करना, मातृभाषा की भावना का निर्माण करना, सार्वजनिक सम्पत्ति, प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना, इत्यादि मुख्य कर्त्तव्य हैं, जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। 86वें संविधान संशोधन, 2002 द्वारा एक और मौलिक कर्त्तव्य जोड़ दिया गया है। इस प्रकार अब 11 मौलिक कर्त्तव्य हो गए हैं।[15]

भारत एक महान लोकतांत्रिक देश है तथा भारतीय संविधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता लौकिक सम्प्रभुता सिद्धान्त की स्वीकृति हैं। भारतीय संविधान लोकप्रिय प्रभुता पर आधारित संविधान है अर्थात यह भारतीय जनता द्वारा निर्मित संविधान है और इस संविधान द्वारा अंतिम शक्ति भारतीय जनता को ही प्रदान की गई है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि, ''हम भारत के लोग दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 ई० को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के द्वारा यह घोषित किया गया कि 15 अगस्त, 1947 से भारत ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं रहा। ब्रिटिश सरकार और संसद का भारत के प्रशासन के लिए उत्तरदायित्व समाप्त कर दिया गया और भारत एक प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बन गया। इस प्रकार, भारत का संविधान ब्रिटिश संसद की देन नहीं है, वरन भारत के लोगों ने एक प्रभुता सम्पन्न संविधान सभा में समवेत अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से इसे स्वीकार किया है। भारतीय संविधान में अंतिम शक्ति जनता को प्रदान की गई है अर्थात् प्रभुसत्ता जनता में निहित है किसी व्यक्ति विशेष में नहीं। प्रभुता सम्पन्न का तात्पर्य यह है कि संप्रभु राष्ट्र बाह्य अथवा आंतरिक दबाव के कारण किसी अंतर्राष्ट्रीय संधि या समझौते को स्वीकार करने या न करने के लिए बाध्य नहीं होगा।

भारतीय संविधान की महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका लोकतांत्रिक स्वीकार है। संविधान द्वारा भारत में एक लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है। 'लोकतंत्रात्मक' शब्द का अभिप्राय यह है कि सरकार की शक्ति का स्रोत जनता में निहित है, क्योंकि लोकतंत्रात्मक सरकार जनता की, जनता के लिए, जनता द्वारा स्थापित होती है। सरकार की स्थापना जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होती है और प्रतिनिधियों का चुनाव जनता संविधान द्वारा प्रदत्त वयस्क मताधिकार द्वारा करती है। गणराज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से हैं, जहाँ शासनाध्यक्ष वंशानुगत न होकर जनता द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। अमरीका जैसे विश्व के कुछ ऐसे लोकतंत्रात्मक राज्य होने के साथ-साथ एक गणराज्य भी है। भारतीय संविधान की विशेषता इसका गणतंत्रात्मक स्वरूप होना भी है।

मूल भारतीय संविधान में भले ही मौलिक कर्तव्यों का उपबंध नहीं किया गया था, परन्तु 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा भाग-4(क), अनुच्छेद-51(क) के अन्तर्गत मौलिक कर्तव्यों का समावेश कर दिया गया है।[16] स्पष्टत: वर्तमान भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण विशेषता मौलिक अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्तव्यों का उपबंध होना है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत आयरलैंड के संविधान से प्रभावित होकर भाग-4, अनुच्छेद-36 से 51 के बीच राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों का उपबंध किया गया है, जो गाँधीवादी, समाजवादी तथा उदारवादी विचारधारा से प्रभावित एवं निर्मित है। स्पष्टत: नीति-निर्देशक तत्वों का उपबंध भारत को निर्देशित करने से सम्बिन्धित है तथा इसकी महत्वपूर्ण विशेषता भी है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की गयी है। भारतीय न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाये रखने के लिए कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका को अनुचित दबाव से मुक्त रखा गया है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का रक्षक बनाया गया है तथा अमरीकी संविधान से प्रभावित होकर भारतीय न्यायपालिका को भी न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार दिया गया है। स्पष्टत: स्वतंत्र न्यायपालिका तथा न्यायिक पुनरावलोकन का उपबंध भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत सामाजिक न्याय के अवधारणा को अपनाया गया है तथा इस परिप्रेक्ष्य में समाज के कमजोर लोगों को विशेष सुविधा व लाभ प्रदान करना लक्ष्य रखा गया है। संविधान अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यकों एवं पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में विशेष उपबंध करता है। स्पष्टत: सामाजिक न्याय भारतीय संविधान का मूल ढाँचा बन गया है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता भी है। धर्मनिरपेक्षता को न केवल राज्य से संबद्ध किया गया है, बल्कि इसे प्रत्येक व्यक्ति से जोड़ा गया है। भारत के प्रत्येक नागरिक को विधि के समक्ष समानता यानि विधि के शासन के सन्दर्भ में अधिकार प्राप्त है, चाहे उसकी जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र इत्यादि कुछ भी हो।

भारतीय संविधान की एक विशेषता भारत में विधि का शासन तथा विधि का समान संरक्षण के सिद्धान्त का होना है। हम यह

जानते हैं कि ब्रिटिश विधि-शास्त्र से प्रभावित होकर भारत में ए० बी० डायसी के द्वारा प्रतिपादित 'विधि के शासन के सिद्धान्त' को अपनाया गया है, तो दूसरी ओर भारतीय संविधान के अन्तर्गत अमरीकी विधिशास्त्र से प्रभावित होकर 'कानून के समान संरक्षण के सिद्धान्त' को भी अपनाया गया है।[17] स्पष्टत: भारतीय संविधान में इन दोनों अवधारणाओं को समन्वित करके विशिष्टता को प्राप्त किया है। भारत में ग्राम पंचायत विषयक उपबंध भाग-4, अनुच्छेद-40 के अन्तर्गत किया गया है, हालांकि 73वाँ संविधान संशोधन, 1992 यहाँ ग्रामीण स्थानीय प्रशासन यानि पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाता है। यह उल्लेखनीय है कि 74वाँ संविधान संशोध न, 1992 नगरीय स्थानीय प्रशासन यानि नगरपालिकाओं को प्रभावी बनाने से सम्बन्धित है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान के अन्तर्गत क्रमश: 11वीं अनुसूची (कुल विषयों की संख्या-29) तथा 12वीं अनुसूची (कुल विषयों की संख्या-18) का उपबंध किया गया है।[18] स्पष्टत: भारतीय संविधान की एक विशेषता स्थानीय प्रशासन का उपबंध होना है। भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विश्व-शांति, सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना पर बल दिया गया है। संविधान में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में यह स्पष्ट उल्लेख है कि "राज्य अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की उन्नति और राष्ट्रों के मध्य न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रबन्ध करेगा।" भारत सरकार ने अपने संविधान के अनुसार यथासम्भव अपने आदर्शो का पालन किया है और स्वयं को गुटों और सैनिक सन्धियों से पृथक् ही रखा है। भारत आज भी नि:शस्त्रीकरण के पक्ष में निरन्तर वातावरण बना रहा है। वह दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध विश्व जनमत तैयार कर अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारतीय संविधान की मौलिक विशेषताओं को स्पष्ट करना है। इस आलेख का उद्देश्य भारतीय संविधान की मूल आधार के रूप में संघवाद तथा संसदीय शासन प्रणाली के स्वरूप को भी स्पष्ट करना है। संविधान की विशेषताओं के अध्ययन से इसका स्वरूप भी स्पष्ट होता है। स्पष्टत: प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य संविधान की मौलिक स्वरूप को स्पष्ट करना भी है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक भारतीय संविधान की विशेषताएँ हैं। इस शीर्षक की परिकल्पना इसके स्वरूप, अस्तित्व, कार्यकरण व औचित्य से सम्बद्ध किया जा सकता है। भारतीय संविधान की विशेषताओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भविष्य में संसदीय शासन प्रणाली की तुलना में संघवादी स्वरूप अधिक सशक्त होगा। नागरिकता तथा आपातकाल जैसे अनेक एकात्मक प्रावधानों से शक्तिशाली केन्द्र सरकार की संभावना भविष्य में अपेक्षित है। नक्सलवाद, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता तथा आतंकवाद जैसी गतिविधियों से भविष्य में भारतीय शासन का स्वरूप अधिकाधिक सशक्त होगा तथा इससे संविधान का कार्यकरण भी प्रभावित होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

भारतीय संविधान की विशेषता पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इस विषय पर साहित्य सर्वेक्षण का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित प्रमुख साहित्य सर्वेक्षण किया है:

1. भारतीय संविधान- एक परिचय 'ब्रजकिशोर शर्मा, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, प्रकाशन वर्ष 2015 (11वाँ संस्करण)।
2. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० अमरजीत सिंह नारंग, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 1998
3. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर०के० पूर्वार, विकास पब्लिकेशन, जालंधर एवं नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1988
4. भारत का संविधान, बसंती लाल बाबेल, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण, वर्ष 2019
5. भारतीय राज व्यवस्था, डॉ० जयप्रकाश शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 2000

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

अबतक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारत का संविधान स्वयं में एक विलक्षण संविधान है। भारत में संघवाद तथा संसदीय शासन प्रणाली क्रमशः अमरीका तथा ब्रिटेन से प्रभावित होकर स्वीकार किया गया है, परन्तु हमारा संघवाद अमरीकी संघवाद अथवा कनाडा के संघवाद का नकल नहीं है। यह तो संघवाद के साथ-साथ एकात्मकता की ओर भी झुका हुआ है। तभी तो डी०डी० बसु ने कहा है कि भारतीय संविधान संघात्मकता तथा एकात्मकता का समिश्रण है। भारत में संघवाद के बाद भी एकल नागरिकता को स्वीकार किया गया है। भारत का संविधान समाजवाद, पंथनिरपेक्षता तथा गणतंत्र की अवधारणा को स्वीकार करता है। भारत का लोकतंत्र गणतंत्र से जोड़कर दुनिया के महान प्रजातांत्रिक देश बन जाता है। संविधान संशोधन में भी भारतीय संविधान मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है। न्यायपालिका अमरीका से प्रभावित होकर न्यायिक पुनरावलोकन की अवधारणा को स्वीकार करती है, परन्तु यहाँ तो संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। स्पष्टतः भारतीय संविधान संरचना, प्रक्रिया, कार्यकरण, सिद्धान्त आदि के सम्बन्ध में विशिष्ट विलक्षण एवं महत्वपूर्ण है। इसकी विशालता अपने आप में संपूर्ण दुनिया में प्रथम, प्राथमिक और महत्वपूर्ण बनाती है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ० अशोक कुमार, लोक प्रशासन, प्रतियोगिता सन्दर्भ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं०-22 तथा 23
2. पुरूषोत्तम नारंग, न्यू रिपब्लिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं०-83
3. तथैव, पृष्ठ सं०-84 एवं 85
4. डी०डी० बसु, इन्ट्रोक्डशन टू दि कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, टवसण.टप्प्ए पृष्ठ-112
5. डी० एन० बनर्जी, ऑवर फंडामेन्टल राईटस, पृष्ठ-273
6. सोशलिस्ट इंडिया, न्यू दिल्ली, नवम्बर-1976, पृष्ठ-14
7. 42वाँ संशोधन, 1976 भारत 2014, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
8. डॉ० अशोक कुमार, भारतीय शासन और राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, पी० एण्ड डी०, आगरा, पृष्ठ-139
9. के शांतनम्, यूनियन-स्टेट रिलेशन इन इंडिया, 1960 पी० पी०- 50
10. डॉ० अशोक कुमार, भारतीय शासन और राजनीति, पृष्ठ-142
11. 61वाँ संविधान संशोधन, 1988
12. डॉ० अशोक कुमार, भारतीय शासन और राजनीति, पृष्ठ-97
13. तथैव
14. तथैव, पृष्ठ-199
15. शिवाच, जे०आर०, भारतीय राज व्यवस्था, पष्ठ-763
16. 44वाँ संविधान संशोधन, 1978
17. 42वाँ संविधान संशोधन, 1976
18. डॉ० अशोक कुमार, भारतीय शासन और राजनीति, पृष्ठ-134

मातृ स्वास्थ्य में थायरॉयड की समस्या

डॉ० कुमारी सुनीता

एम०ए० (गृह विज्ञान), पी०एच०-डी, गेस्ट शिक्षिका, जयप्रकाश महिला महाविद्यालय, छपरा, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सार

निरोग व्यक्ति से समाज में शांति, विकास एवं सौहार्द की स्थापना होती है तथा राष्ट्र–निर्माण को आधार प्राप्त होता है। समाज में सभी स्त्री–पुरूष को स्वास्थ्य रहने के लिए वातावरण व पर्यावरण भी उत्तरदायी है, हालांकि वर्तमान परिवेश में स्वास्थ्य की अनेकानेक समस्याएँ पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होकर जन्म ले रही है। वर्तमान परिवेश में महिलाओं में थायरॉयड की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। पुरूषों में भी थायरॉयड की समस्या है, परन्तु महिलाओं में उसका दर अधिक है। इसका कारण समाज में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति द्वितीयक दृष्टिकोण तथा उनकी पोषण का असंतुलित व अनियमित होना भी है। विश्व थायरॉयड दिवस 25 मई को आयोजित किया जाता है तथा इस समस्या समाधान के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा की जाती है, विशेषतः महिलाओं की जागरूकता पर बल दिया जाता है। इसके बाद भी भारत की महिलाओं में थायरॉयड की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। इसका मूल कारण महिलाओं की अशिक्षा, गरीबी, पुरूषीय प्रभुत्व तथा स्वयं महिलाओं का अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही को बताया जा सकता है। वर्तमान में समाज में पर्यावरणीय समस्याएँ बढ़ती जा रही है तथा परिवार में अनेकानेक समस्याएँ भी जन्म ले रही हैं। इनके कारण भी वर्तमान परिवेश में महिलाओं में थायरॉयड की समस्या बढ़ती जा रही है। इस समस्या से महिला समाज को बचाने के लिए उनमें जागरूकता लाने की आवश्यकता है तथा जागरूकता हेतु उन्हें शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। थायरॉयड महिलाओं में हाने वाला रोग है। हार्मोन्स के असंतुलन के कारण यह रोग होता है। थायरॉयड का कम ज्यादा होना ही इस बीमारी का कारण है। हार्मोन कम हाने लगता है तो हमारे शरीर का मेटाबोलिज्म बहुत तेज हो जाता है और हमारी ऊर्जा बहुत जल्दी खर्च हो जाती है। यदि बढ़ जाए तो शरीर की मेटोबोलिज्म प्रक्रिया धीमी हो जाती है। ऐसे में शरीर में ऊर्जा बननी कम हो जाती है और थकान तथा सुस्ती बढ़ जाती है।

मूल शब्दः वातावरण, हार्मोन असंतुलन, पर्यावरण, पोषण, मातृ मनोवृति, मानसिक अवसाद, सामाजिक सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

वर्तमान परिवेश में मातृ स्वास्थ्य के सामने थायरॉयड एक ऐसी समस्या है, जिसने विश्व के सभी देशों के लोगों का प्रभावित किया है। भारत में थायरॉयड की समस्या लोगों में तेजी से बढ़ रही है। महिलाओं में यह बीमारी पुरूषों की तुलना में अधिक हो रही है। इस की सबसे बड़ी समस्या पोषण की अनियमितता तथा असंतुलित स्वरूप का होना है। थायरॉयड एक साइलेंट किल कंडीशन है जिसमें लक्षण धीरे–धीरे दिखाई देता है। थायरॉयड ग्लैंड हमारे गले के निचले हिस्से में स्थित होता है। इससे खास तरह के हार्मोन टी–3, टी–4 और टी०एस०एस० (थायरॉयड रिटम्नयुलेटिंग हार्मोन) का स्त्राव होता है, जिसकी मात्रा के असंतुलन का हमारी सेहत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शरीर की सभी कोशिकाएँ सही ढंग से काम कर सकें, इसके लिए इन हार्मोस की जरूरत होती है। इसके अलावा मेटाबॉलिज्म की प्रक्रिया को नियंत्रित करने में भी टी–3 और टी–4 हार्मोन का बहुत बड़ा योगदान होता है इसलिए इनकी सिक्रीशन में कमी या अधिकता का सीधा असर व्यक्ति की भूख, वजन, नींद और मनोदशा पर दृष्टिगोचर होता है।

सामान्यतः दो प्रकार की थायरॉयड संबंधी समस्याएं दिखती है– एक समस्या को हाइपोथाइरायडिज्म कहा जाता है, इसमें थायरॉयड ग्लैंड धीमी गति से काम करने लगता है और यह शरीर के लिए आवश्यक हार्मोन टी–3, टी–4 का निर्माण नहीं कर

पाता, लेकिन शरीर में टीएसएच का स्तर बढ़ जाता है। दूसरी हाइपरथाराईडस है। उस स्थिति में थायरॉयड ग्लैंड बहुत ज्यादा सक्रिय हो जाता है। इससे टी-3 और टी-4 हार्मोन अधिक मात्रा में निकल कर रक्त में घुलनशील हो जाता है और टीएसएच स्तर कम हो जाता है। यह उल्लेखनीय है कि शोध से ज्ञात हुआ है कि किसी भी देश की कुल आबादी में से 4 से 10 प्रतिशत लोगों को हाइपोथायरॉयडिज्म और मात्र 1 प्रतिशत लोगों को हाइपरथायरॉयडिज्म की समस्या होती है। ये दोनों ही स्थितियाँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

थायरॉयड की समस्या के कुछ अग्रलिाित कारण बताएँ जा सकते हैं: (i) वर्तमान में अधिकतम लोगों को तनाव और खान-पान में अनियमितता के कारण समस्याएँ बढ़ रही है; (ii) केमिकलयुक्त प्रदूषण और हार्मोन में बदलाव के कारण भी समस्याएँ बढ़ रही है; (iii) भोजन में आयोडिन की कमी से या बहुत अधिक प्रयोग करने से थायरॉयड हो जाता है; (iv) यदि परिवार में पहले से किसी को थायरॉयड हो तो भी इसके होने की संभावना बढ़ जाती है; (v) महिलाओं में पीरियड शुरू होने के बाद कई तरह के हार्मोन परिवर्तन होते हैं। कई बार इसी हार्मोन चेंज की वजह से थायरॉयड की समस्या हो जाती है; (vi) गर्भावस्था के दौरान महिला के शरीर में कई बड़े परिवर्तन होते हैं और कई महिलाएं ऐसी स्थिति में अधिक तनाव में रहती हैं, जिस तरह से कई बार थायरॉयड हो जाता है; (vii) कई बार दवाओं के प्रतिकूल प्रभाव से भी थायरॉयड की समस्या हो जाती है। कई बार सोयाबीन प्रोडक्ट्स के अधिक प्रयोग से भी थायरॉयड हो जाता है।

थायरॉयड के दो प्रकार प्रमुख है:

(1) **हाइपोथायरायडिज्म (Hypothyroidism):** थायरोक्सिन हार्मोन के कम मात्रा में उत्पादन को हाइपोथायरायिडज्म कहा जाता है। हाइपोथायरायडिज्म का मतलब है कि थायरॉइड ग्रंथि अंडर एक्टिव है।

(2) **हाइपरथायराइडिज्म (hyperthyroidism):** हाइपरथायराइडिज्म किसी को भी हो सकता है। पुरूषों की तुलना में महिलाओं में ये स्थिति आठ गुना अधिक होती है। यह 30 की उम्र की शुरूआत में ही विकसित होने लगती है। लेकिन इसके लक्षण 60 से अधिक महिलाओं में ज्यादा सामान्य है और कई तरह के संकेत हाइपरथायराइडिज्म के लक्षणों को बताते हैं जैसे- वजन का घटना, अनियमित दिल की धड़कन, घबराहट अत्यधिक पसीना मासिक धर्म चक्र में बदलाव, गर्दन के आधार पर सूजन, थकान, मांसपेशियों की कमजोरी और सोने में कठिनाई महसूस होना आदि शामिल है। हाइपरथायराइडिज्म के कई लक्षण अन्य स्थितियों के लिए भी बहुत आम है। इसलिए समस्या को तुरन्त पहचानना थोड़ा कठिन होता है।

थायरॉइड के चरण (Stage of Thyroid)

थायरॉइड कम होने के चरण निम्नलिखित है:

(1) **उप-क्लिनिकल हाइपोथायरिज्म (Subclinical Hypathyroidism):** उप-क्लिनिकल हाइपो थायराडिज्म में TSH (Thyroid Stimulating Harmone) का स्तर 3mu/L से 5.5 उस तक बढ़ जाता है। अगर थायरोक्सिन का सामान्य स्तर के भीतर हो तो यह संदर्भ उप-क्लिनिकल हाइपोथायरायिडज्म की तरफ संकित करते हैं।

(2) **हल्के हहाइपोथारायडिज्म:** TSH के स्तर को 5.5 से 10mlu/L तक बढ़ाया जा सकता है और थायरोक्सिन का स्तर कम किया जा सकता है, इससे ज्यादातर मरीजों का ही टी-4 स्तर सामान्य स्तर पर आ जाता है। टी-3 का स्तर आगे नहीं गिरता जब तक बीमारी उच्च तरीके से विकसित ना हो इसका कारण ये है कि TSH के स्तर का बढ़ाना। थायरॉइड को अधिक टी-3 जारी करने के लिए उत्तेजित करने लगता है। इसके उत्कृष्ट निष्कर्ष तब दिखते हैं जब टी-3 का स्तर गिरने लगता है। हल्के हाइपोथाययडिज्म संभवत: (Mild Hypothyroidism) ऑटोइम्यून थायराइटिस के कारण होते हैं, जिनके लक्षण थकान, वजन बढ़ना, तरल अवरोधन आदि के रूप में देखने को मिलते हैं।

(3) **मध्यम हायपोथायरायडिज्म:** किसी व्यक्ति को माध्यम हाइपोथायरायडिज्म TSH का स्तर 10 से 20उसनधस् की सीमा के भीतर हो और अब उनका T-3 और T-4 निम्न स्तर में हो हल्के और मध्यम हाइपोथायरायडिज्म महिलाओं में जल्दी होने की संभावना रहती है। महिलाओं के मामले में यह बहुत जरूरी होता है कि हाइपोथायरायडिज्म कि जाँच करके इसको ठीक किया जाए, क्योंकि इससे महिलाओं में गर्भपात और भ्रूण मृत्यु जैसे जोखिम बढ़ जाते हैं।

(4) **मैक्सिडेमा कोमाः** अगर हाइपोथायरायडिज्म का समय पर उपचार ना किया जाए तो बढ़ कर मैक्सिडेमा कोमा का रूप धारण कर सकता है। मैक्सिडेमा कोमा एक बहुत ही खतरनाक स्थिति होती है, थायरॉइड हार्मोन का बहुत ही कम उत्पादन इसकी विशेषता होती है। शरीर इस स्थिति में तनाव, ठंडा, मौसम और शल्य चिकित्सा आदि स्थितियों का सामना करने में असमर्थ हो जाता है। मरीज इस स्थिति में सामान्य महसूस नहीं करता एवं उसे शारीरिक कमजोरी, उलझन, शरीर में सूजन इत्यादि की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

थायरॉइड बढ़ने के लक्षण

थायरॉइड बढ़ने के लक्षण हैं T-4, T-3 या दोनों हार्मोन की ज्यादा मात्रा अत्यधिक उच्च चयापचय दर का कारण हो सकती है। इसे हाइपरमेटाबॉलिक अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में हृदय की दर में तेजी, उच्च रक्तचाप और हाथों में झटकों का अनुभव हो सकता है। अधिक पसीना आ सकता है और सभी के प्रति कम सहिष्णुता हो सकती है। हाइपरथाियरायडिज्म आतों की अधिक गतिशीलता, वजन घटना और महिलाओं में अनियमित मासिक धर्म चक्र उत्पन्न कर सकता है।

थायरॉइड ग्रंथि स्वयं भी सूज कर गोइटर बन सकती है। आंखें भी काफी बाहर निकली हुई दिखाई दे सकती है, जो एक्सो फथैल्मोस (Exophthalmos) का एक लक्षण है और ग्रेव्स (Graves Discases) बीमारी से संबंधित है।

1. **हाइपरथायरायडिज्म के अन्य लक्षणः** हाइपरथायरायडिज्म के अन्य लक्षण अग्रलिखित हैं- भूख में वृद्धि, घबराहट, बेचैनी, ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थता, दुर्बलता, अनियमित दिल की धड़कन, नींद आने में कठिनाई, नाजुक बाल, खुजली, बाल झड़ना, मतली और उल्टी।
2. **अग्रलिखित लक्षणों को तत्काल चिकित्सा की आवश्यकता होती हैः** चक्कर आना, साँस लेने में कठिनाई, बेहोशी, तेज या अनियमित हृदय की गति।
3. **थायरॉइड कम होने के लक्षणः** हाइपोथायरायडिज्म के लक्षण और संकेत मूल रूप से थायरॉइड हार्मोन उत्पादन में होने वाली कमी और उसकी गंभीरता पर आधारित होते हैं, पर सामान्य तौर देखा जाए तो इससे जुड़ी कई परेशानियां होती है जो हमारे अंदर सालों से पनपती चली आ रही होती है। पहली बार हाइपोथायरायडिज्म के लक्षणों में थकावट और वजन बढ़ने जैसी परेशानियों को महसूस कर सकते हैं मगर जब चयापचय के काम करने की गति धीमी होने लगती है, तब और स्पष्ट संकित देख सकते हैं। जैसे- थकान, ज्यादा ठंड महसूस होना, सूखी त्वचा, वजन का बढ़ना, चेहरे पर सूजन, आवाज का बैठ जाना, मांसपेशियों में कमजोरी, रक्त में कोलेस्ट्रॉल का स्तर बढ़ना, मांसपेशियों का दर्द कोमलता और ध ड़कन, बाल झड़ना, जोड़ों में अकड़न और सूजन के साथ दर्द, दिल की गति धीमी होना, अनियमित दिनचर्या, गलत डायट, व्यायाम न करना।

यदि हाइपोथायराडिज्म का उपचार ना किया जाए तो उसके लक्षण और संकेत धीरे-धीरे और बढ़ते चले जाते हैं और थायरॉइड हार्मोन अधिक जारी होने लगते हैं जिससे थायरॉइड का आकार बढ़ने जैसी परेशानियां हो सकती है। इसके साथ-साथ विस्मृत विकास हो सकते हैं, सोचने-समझने की शक्ति कम हो सकती है और अवसादग्रस्त भी महसूस कर सकते हैं।

मैक्सिडेमा कोमा : एक अग्रवर्ती हाइपोथायरायडिज्म को मैक्सिडेमा के नाम से पहचाना जाता है, यह काफी दुर्लभ होता है। मगर हो जाने पर यह जीवन के लिए काफी खतरनाक साबित हो सकता है। इसके संकेत व लक्षणों में रक्त दबाव में कमी, सांस लेने में कमी होना, शरीर का तापमान कम होना, यहाँ तक की कोमा भी इसके लक्षणों में शामिल है।

थायरॉइड के कारण

थायरॉइड बढ़ने (हाइपरथायराडिज्म) के कारणः विभिन्न स्थितियों के कारण हाइपरथायरायडिज्म हो सकता है। यह बीमारी, हाइपरथायरायडिज्म को सबसे आम कारण है। यह एंटीबॉडिज (Antibodies) थायरॉइड को बहुत अधिक हार्मोन बनाने के लिए उत्तेजित करता है। यह बीमारी पुरूषों की तुलना में महिलाओं में अधिक होती है। यह बीमारी परिवारों आनुवंशिक होती है। यदि रिश्तेदारों को यह बीमारी है तो डॉक्टर को बतायें।

थायरॉइड कम होने (हाइपोथायरायडिज्म) के कारणः हाइपोथायरायडिज्म एक बहुत ही सामान्य स्थिति है। कुल आबादी में अनुमानित 3 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक की जनसंख्या में हाइपोथायरायडिज्म के कई रूप देखे जाते हैं। हाइपोथायरायडिज्म पुरूषों से ज्यादा महिलाओं में सामान्य है और इसका जोखिम उनकी उम्र के साथ बढ़ता रहा है।

वयस्कों में होने वाले हाइपोथायरायडिज्म के कुछ सामान्य कारण अग्रलिखित है: (i) हाशिमोटो थायरोडिटिस (Hashimoto's Thyroidities); (ii) लिम्फोसाइटिक थायरोडिटिस जो हाइपोथायरायडिज्म के बाद (Hashimoto's Thyroidities) हो सकता है; (iii) थायरॉइड खंडन (रेडियोधर्मी आयोडीन और सर्जरी के कारण); (iv) पिटयूटरी या हापपोथेलैमस रोग (Pituitary or Hypothalamic disease); (v) दवाएँ तथा (vi) आयोडीन में गंभीर कमी।

थायरॉइड से बचाव (Prevention of Thyroid)

थायरॉइड बढ़ने (हाइपरथायराडिज्म) से बचाव: ग्रेव्स रोग के कारण होने वाला एक अनुवांशिक बीमारी जिससे बचा नहीं जा सकता। हालांकि धूम्रपान करने से ग्रेत्स रोग और ग्रेव्स ऑप-थेलनोपथी होने का जोखिम बढ़ जाता है।

थायरॉइड कम होन (हाइपोथारायडिज्म) को रोकने के तरीके : सभी थायरॉइड रोगों का ईलाज उसके सामानय लक्षणों और चिन्ह को देखते हुए किया जा सकता है हालांकि थायरॉइड की सामान्य स्थिति बनाए रखने के लिए दवाईयों की जरूरत भी पड़ सकती है। हालांकि थायरॉइड से संबंधित कैंसर का ईलाज मिल चुका है लेकिन सामान्य तौर पर हाइपोथायरायडिज्म के ईलाज के लिए हार्मोन प्रतिस्थापन की जरूरत पड़ती है। जीवनचर्चा में कुछ बदलाव लाकर भी हाइपोथारायडिज्म की रोकथाम की जा सकती है। जैसे- धुम्रपान करना बंद कर दे; तनाव कम करे; रोज व्यायाम करें और अपना स्वस्थ वजन बनाए रहते; फिल्टर किया हुआ पानी पींए क्योंकि पानी में प्लोराइड होता है, जो थायरॉइड के जोखिम को बढ़ाता है; अधिक वसायुक्त भोजन न खाएं; आयोडीन युक्त आहार का सेवन सीमित मात्रा में होना चाहिए इसके अधिक सेवन से अन्य स्वास्थ्य से जुड़ी परेशानियां भी हो सकती है।

थायरॉइड के जोखिम और जटिलताएँ

1. *हृदय की समस्याएँ:* हाइपरथायरायडिज्म की सबसे गंभीर जटिलताओं में से एक है- हृदय की समस्याएँ जैसे-हृदय की गति में तीव्रता, आर्टरियल प्रिब्रिलेशन और कंजेस्टिव दिल की विफलता। ऐसी स्थिति में दिल शरीर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त रक्त प्रसारित नहीं कर पाता है। ये जटिलताएं आमतौर पर उपर्युक्त उपचार के साथ ठीक हो सकती है।

2ण *हड्यिों की कमजोरी:* अनुपचारित हाइपरथायरायडिज्म से हड्डियों की कमजोरी (ऑस्टयोपोरोसिस) भी हो सकती है। हड्डियों की ताक कैल्शियम और अन्य खनिजों की मात्रा पर निर्भर करती है। बहुत ज्यादा थायरॉइड हार्मोन शरीर की हड्डियों में कैल्शियम रहने की क्षमता के साथ हस्तक्षेप करता है।

3. *नेत्र समस्याएँ:* ग्रेव्स ऑपथेलनोपयी से ग्रस्त लोगों को आँखों की समस्याएँ होती है जिसे आँखों का उभरापन, लाल या सूजी हुई, आँखें प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता और धुंधली या दोहरी दृष्टि। अनुपचारित गंभीर नेत्र समस्याओं से आँखों की रोशनी भी जा सकती है।

4. *लाली और त्वचा की सूजन:* कुछ दुर्लभ मामलों में ग्रेव्स रोग से ग्रस्त लोगों को ग्रेव्स डर्मोपेथी होता है। जो त्वचा को प्रभावित करता है। जिसमें त्वचा में लाली और सूजन होती है।

5. *थायरोटॉक्सिक क्राइसिस:* हाइपरथ्रीायरायडिज्हम से थायरोटॉक्सिक क्राइसिस भी हो सकता है जिससे लक्षणों में तीव्रता अचानक बढ़ जाती है। जिससे बुखार, नब्ज की तेजी और यहाँ तक की उन्माद भी हो सकता है। यदि ऐसा होता है तत्काल चिकित्सा ले।

हाइपोथायरायडिज्म की जटिलताएँ क्या हो सकती है? अगर हाइपोथायरायडिज्म का उपचार ना किया जाए तो यह कई स्वास्थ्य से जुड़ी परेशानियाँ का कारण बन सकता है। जैसे- गोइटर, हृदय की समस्या तथा मानसिक समस्या आदि।

थायरॉइड का ईलाज

1. *रेडियोएक्टिव आयोडीन ट्रीटमेंट:* थायरॉइड के मरीज के रेडियोऐक्टिव आयोडीन दवाई गोली या लिक्विड के द्वारा दिया जाता है। इस उपचार के द्वारा थायरॉइड की ज्यादा सक्रिय ग्रंथि को काटकर अलग किया जाता है। इसमें जो आयोडीन दिया जाता है वह आयोडीन स्कन से अलग होता है।

2. *सर्जरी:* सर्जरी के द्वारा आंशिक रूप से थाइरॉइड ग्रंथि को निकाल दिया जाता है जो कि बहुत सामान्य तरीका है। थाइरॉइड के मरीजों में सर्जरी के द्वारा उसके शरीर से थाइपराईड के उत्तकों को निकाला जाता है जो सर्जरी से आसपास के ऊतकों पर भी प्रभाव पड़ता है।
3. *एंटीथायरॉइड गोलिया:* थाइरॉइड में सामान्य समस्याएं जैसे-बुखर, गले में खरास जैसी समस्याएँ होती है। यह छोटी थायरॉइड की वजह से हो सकती है। इसलिए दवाईयाँ लेने से जांच करानी चाहिए थायरॉइड के मरीज को चिकित्सक से सलाह के एंटीथायरॉइड की गोलियाँ हानिकारक हो सकती है।

थायरॉइड संबंधी सभी समस्याओं से बचना तो आसान नहीं लेकिन खान-पान के द्वारा इससे हाने वाली समस्याओं को नियंत्रित किया जा सकता है। सी-फूड और आयोडीन युक्त नमक आदि का सेवन करना चाहिए। थायरॉइड ग्रथि को उचित आयोडीन आहार से ठीक रखा जा सकता है। इसके साथ ही बहुत अधिक वो खाना से बचे जिससे घेंघा होने की संभावना हो। पता गोभी, फूल गोभी और शलगम आदि से दूर ही रहे, क्योंकि इसके घंघा बनने की संभावना रहती है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य थायरॉइड नाम की बीमारी के सभी पक्षों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना है जो वर्तमान परिवेश में महिलाओं में अधिक हो रहा है। भारत में इस बीमारी के बढ़ने के कारणों का पता लगाना भी प्रस्तुत आलेख का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। स्पष्टत: शोध आलेख का उद्देश्य सर्वविदित है।

साहित्य सर्वेक्षण

मैंने अपने इस रिसर्च आर्टिकल को तैयार करने के लिए थॉयराइड विषय पर अनेक सामग्रियों का अध्ययन किया है। तथ्यगत सामग्री के कारण फूटनोट देना मुझे अधिक उचित नहीं लगा है। प्रस्तुत आलेख की तैयारी के पूर्व कुछ प्रमुख साहित्य का अवलोकन किया गया है:

1. परिवार एवं सामुदायिक विज्ञान, डॉ० बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
2. मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, डॉ० बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
3. गृह प्रबंधन, माधुरी देशमुख, गौरव बुक्स कानपुर, यू०पी०, 2016
4. होम मैनेजमेंट, रामा यादव, अलफा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, फर्स्ट पब्लिश, 2009

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

थायरॉइड एक ऐसी समस्या है, जिसे पूरा विश्व में बहुत सारे लोग प्रभावित है। थायरॉइड की समस्या लोगों में तेजी से बढ़ रही है। ये बीमारी पुरूषों से ज्यादा महिलाओं में देखी जा रही है। इसकी सबसे बड़ी वजह खान-पान में अनियमितता है। इसके अतिरिक्त तनावयुक्त जीवन, वजन में वृद्धि तथा नकारात्मक मनोवृत्ति भी थायरॉइड के बढ़ने का कारण है। इस समस्या के समाधान हेतु महिलाओं को शिक्षित, प्रशिक्षित एवं जागरूक होने की आवश्यकता है। महिलाओं को आर्थिक रूप में आत्म निर्भर बनाना होगा, ताकि वे अपने स्वास्थ्य पर खर्च कर सके। थायरॉइड की समस्या के समाधान हेतु सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर ईमानदारी और प्रतिबद्ध प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. अब्राहम आर, मुरूगन, वी.एस. पुखझवनथेन पी, सेन एस.के. पुडुचेरी की महिलाओं में थायरॉइड विकार। भारतीय जे क्लिन बायोकेम। 2009 : 24:52–91
2. देसाई पीएम। भारत में थायरॉइड ग्रंथि के विकार Indian J Pediatr 1997; 64:11-20 प्रकाशित।
3. उषा मेनन वी, सुदरम के.आर., उन्नीकष्णन एजी, जयकुमार आर.वी, नायर वी, कुमार एच.। एक आयोडीन पर्याप्त वयस्क दक्षिण भारतीय आबादी में अवांछनीय थायरॉइड विकारों के उच्च प्रसार। जे इंडियन मेड अशोक। 2009:107:72–71 प्रकाशित।
4. डॉ० मदोदर रावत, भारत में नारी स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन, हरियाणा।
5. दैनिक जागरण, जोराअंक में थायरॉइड पर विशेष अंग
6. नेट व गूगल पर उपलब्ध जानकारी

भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

डॉ० नमिता कुमारी

एम०ए० (राजनीति विज्ञान), पी०यू०, पी-एच०डी०, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखंड

शोध आलेख का सार

भारतीय प्रशासन की सामान्य विशेषताओं में ब्रिटिश विरासत, प्रशासन का कानूनी स्वरूप, संघीय एवं संसदीय शासन प्रणाली के बीच समन्वय, लोकतांत्रिक लोककल्याणकारी मूल्यों की स्थापना, विकासोन्मुख प्रशासन, जवाबदेय प्रशासन तथा नौकरशाही आधारित व्यवस्था पर बल महत्वपूर्ण है। संविधान आधुनिक शासन व्यवस्थाओं की आत्मा है, जो नागरिकों की आकांक्षाओं का प्रतीक तथा अधिकारों का स्रोत भी होता है। 26 जनवरी, 1950 को प्रवर्तित भारत (भारत गणराज्य) का संविधान देश को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतांत्रिक, पंथ निरपेक्ष तथा समाजवादी गणराज्य घोषित करता है जो नागरिकों की समानता, न्याय, बंधुत्व तथा कल्याण को समर्पित है। किसी भी देश का संविधान वहाँ के प्रशासन तंत्र को मार्गदर्शन तथा नियंत्रण प्रदान करने का मुख्य साधन माना जाता है। पॉल एच० एपलबी के शब्दों में, "प्रशासन के सभी परिवर्तनों के मूल में देश की संवैधानिक व्यवस्था के सिद्धान्त ही होते हैं, जो राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्था तथा अन्ततः उसकी प्रक्रियाओं में स्थापित किए जाते हैं। भारत में अमरीकी संघीय व्यवस्था की भाँति केन्द्र एवं राज्यों के पृथक्-पृथक् संविधान नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण देश का एक ही संविधान है जो विश्व का सबसे बड़ा और विस्तृत संविधान माना जाता है। इस संविधान में अमरीका से मूल अधिकार, ब्रिटेन से संसदीय प्रणाली, आयरलैण्ड से राज्य के नीति-निर्देशक तत्व तथा जर्मनी से आपातकालीन उपबंध लेकर सम्मिलित किए गए हैं। इस संविधान में अमरीका से मूल अधिकार, ब्रिटेन से संसदीय प्रणाली, आयरलैण्ड से राज्य के नीति-निर्देशक तत्व तथा जर्मनी से आपातकालीन उपबंध लेकर सम्मिलित किए गए हैं।

मूल शब्दः केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण, सामाजिक न्याय, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता, संसदीय शासन, संघवाद, न्यायिक पुनर्वालोकन, गणतंत्र, लोकतंत्र, पदसोपान ।

प्रस्तावना

भारत के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है– "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, पंथ, निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छः विक्रमी) को एकतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित तथा आत्मार्पित करते हैं।"[1] वर्त्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश शासन की विरासत मानी जाती है, क्योंकि 1947 ई० में सत्ता हस्तान्तरण के समय हमने ब्रिटिश प्रशासनिक ढाँचे को यथावत् स्वीकार किया था जिसमें बहुत कम संशोधन या परिवर्तन किए गए हैं। प्रो० अशोक शर्मा का मत है कि "किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के लक्ष्य वर्त्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित हो सकते हैं किन्तु प्रशासनिक संरचनाएँ, प्रक्रियाएँ एवं परम्पराएँ, पद्धतियाँ तथा संस्कृति उस प्रशासनिक व्यवस्था का निकटतम अतीत उसके वर्त्तमान को सर्वाधिक प्रभावित करता है।" ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश कानूनों से नियंत्रित भारतीय प्रशासन लगभग 200 वर्ष तक निरन्तर विकसित तथा परिवर्तित किया जाता रहा। इस दौरान जो प्रक्रियाएँ या परम्पराएँ विकसित हुई उनका प्रभाव आज भी भारतीय प्रशासनिक तंत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत

में प्रशासन संचालित करने के लिए 'इण्डियन सिविल सर्विस', 'इण्डिया पुलिस' तथा अन्य अखिल भारतीय लोक सेवाओं की शुरूआत की गई थी। आज भी इन सेवाओं के अधिकारी भारत में कहीं भी नियुक्त किए जा सकते हैं। प्राधिकार की दृष्टि से भी ये अधिकारी अधिक सुदृढ़ हैं। विशेषज्ञ सेवाओं तथा राज्य सेवाओं के अधिकारी इनके अधीन कार्य करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भी अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था जारी रखी गई तथा वर्त्तमान में तीन अखिल भारतीय सेवाएँ– भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS), तथा भारतीय वन सेवा (IFS), कार्यरत हैं। अनेक चिन्तकों का मत है कि ब्रिटिश शासन के कारण भारत को विश्व में एक पृथक् पहचान मिली तथा विभिन्न रियासतों में बिखरा हुआ भारत एक सूत्र में बँध सका। निश्चित तौर पर लोक सेवाओं ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। स्टील फ्रेम अर्थात् इस्पात के समान मजबूत कवच के नाम से प्रसिद्ध आई०ए०एस० के अतिरिक्त अन्य लोक सेवाओं का विकास भी ब्रिटिश शासन की देन है। लोक सेवाओं में राजपत्रित (Gazetted) तथा अराजपत्रित का भेद, योग्यता आधारित भर्ती, चार वर्गो में कार्मिक का वर्गीकरण, वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट, उच्च अधिकारी को अधिक वेतन तथा सुविधाएँ एवं उच्च लोक सेवाओं में शहरी तथा उच्च जातियों को प्रमुखता इत्यादि ब्रिटिश परम्पराओं का परिणाम है। उच्च अधिकारियों की आवासीय कालोनी आम जनता के आवासों से दूर 'सिविल लाइन्स' के रूप में बसाने की परम्परा अंग्रेज द्वारा विकसित की हुई है।[2] सचिवालय वह उच्च प्रशासनिक संगठन है, जिसमें राजनीतिक मंत्री या सचिव (विभाग का प्रशासनिक अधिकारी) तथा उसके अन्य कार्मिक पदस्थापित रहते हैं। सचिव+आलय अर्थात् सचिवों का घर नामक यह व्यवस्था संघीय स्तर पर केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य सचिवालय के रूप में प्रवर्तित है। अंग्रेजी शासनकाल में विकसित सचिवालय आज भी नीति, कानून तथा कार्यक्रम निर्माण एवं नियंत्रण का महत्वपूर्ण अंग है जो मुख्यत: मंत्रियों को उनके कार्यों में परामर्श देने के लिए बनाया गया है। सचिवालय द्वारा निर्मित नीति एवं कानूनों को व्यावहारिक स्तर पर क्रियान्वित करने हेतु अन्य कई प्रकार के कार्यकारी संगठन, जैसे-निदेशालय, बोर्ड, आयोग तथा निगम इत्यादि संगठित किये गये हैं।[3]

प्रशासनिक कृत्यों की पूर्ति हेतु कानूनों, नियमों तथा प्रक्रियाओं की कठोर कार्यप्रणाली और 'फाइल व्यवस्था' की शुरुआत ब्रिटिशकाल में हुई। चूँकि अंग्रेज अधिकारी आम भारतीय को असभ्य व्यक्ति कहकर प्रताड़ित करते थे। अत: प्रत्येक प्रशासनिक कार्य में लम्बे-चौड़े फार्म, शपथ-पत्र, चरित्र प्रमाण-पत्र तथा राजपत्रित अधिकारी (Gazetted Officer) से प्रमाण-पत्र लेने इत्यादि की प्रक्रियाएँ निर्धारित की गई थी जो आज भी भारतीय लोक प्रशासन में यथावत् जारी है। जहाँ तक गजट के प्रकाशन का प्रश्न है, यह प्रक्रिया सर्वप्रथम 18 जनवरी, 1864 ई० को प्रकाशित गजट से शुरू हुई। गजट से मिलता-जुलता शब्द गजेटियर्स (Gazetteers) भी है जो किसी स्थान, संस्कृति, नाम तथा पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी का दस्तावेज होता है। लोक सेवकों में जनता से श्रेष्ठ, पृथक् तथा स्वामी समझने की प्रवृत्ति अंग्रेजी प्रशासन का परिणाम कही जाती है। स्वतंत्र भारत में इस गुलाम मानसिकता के अतिरिक्त नौकरशाही में अन्य कई दोष विद्यमान है। 'साहब संस्कृति' तथा 'बाबूराज' की शुरुआत भी ब्रिटिश प्रशासन की ही देन है जो सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन की विशिष्ट पहचान बन चुकी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजों ने विशाल भारत को एकसूत्र में पिरोने का सफल प्रयास किया था। इस प्रयास में एक समान कानून, कठोर अनुशासन, सामाजिक सुधार तथा अखिल भारतीय सेवाएँ इत्यादि सहायक रहे हैं। शासन संचालन को केन्द्र तथा प्रांतीय स्तर पर विभक्त करके संघीय ढाँचे की शुरूआत ब्रिटिश शासन में हो चुकी थी। इसी प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा तथा एकता के महत्वपूर्ण कार्य, जैसे- सेना, वैदेशिक सम्बन्ध, रेलवे, डाकतार एवं दूरसंचार इत्यादि केन्द्र सरकार को सौंपे गये थे ताकि प्रांतीय स्तर पर असमानता के कारण खतरा उत्पन्न न हो।

प्रशासनिक कार्यों या विषयों को संघीय, प्रांतीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है जो सन् 1935 ई० के अधिनियम से प्रभावित है। यद्यपि भारत संघीय शासन व्यवस्था वाला देश है फिर भी इकहरी नागरिकता, राज्यपाल का केन्द्र द्वारा मनोनयन तथा केन्द्र के अधिक अधिकार विचित्र संघीय व्यवस्था को सिद्ध करते हैं।[4] लोक प्रशासन में निष्पादित होने वाला कोई भी कर्मचारी या अधिकारी का निजी कार्य नहीं बल्कि सरकार का कार्य होता है। अत: अनामता का सिद्धान्त प्रचलित है। लोक सेवक न तो सरकारी सम्पत्ति को अपना समझते हैं और न ही पद से अधिक स्वयं के नाम को महत्व दे सकते हैं। अंग्रजों द्वारा प्रतिपादित इस प्रशासनिक अनामता के अतिरिक्त प्रशासनिक गोपनीयता भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सन् 1923 ई० में निर्मित 'शासकीय गुप्त बात अधिनियम' के अन्तर्गत सरकारी सूचनाएँ तथा तथ्य आम जनता के मध्य उजागर नहीं किये जा सकते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था 'भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872' के अन्तर्गत की गई है जिसके अनुसार सरकारी कार्मिक को शासकीय सूचनाएँ आम जनता में उजागर न करने का अधिकार है।[5] भारत में शासकीय और प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने, जाँच करने, संशोधन तथा अनुशंसाएँ सुझाने इत्यादि कार्यों के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों से युक्त कामेटी बनाने की प्रणाली ब्रिटिश परम्पराओं का

परिणाम है। संसद तथा राज्य विधानमंडलों, मंत्रिमंडलों, मंत्रालयों, कार्यालयों तथा संगठनों में आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी, स्थायी या अस्थायी समितियाँ गठित की जाती है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल में शाह आलम से दीवानी अधिकार प्राप्त करते ही राजस्व एकत्रण की ओर ध्यान केन्द्रित किया। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंगस ने सन् 1772 में बंगाल में कलक्टर (संग्रह करने वाला) पद सृजित किया जिसे सन् 1773 में समाप्त कर सन् 1781 में पुनर्जीवित किया। सन् 1787 में राजस्व एकत्रणकर्ता कलक्टर को दण्डनायक शक्तियाँ भी प्रदान कर दी गई। धीरे-धीरे जिला कलक्टर का पद भारतीय लोक प्रशासन में महत्वपूर्ण हो गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् जिला लोक प्रशासनिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई बन गया जो विकास, शांति एवं व्यवस्था, विभागीय सेवाओं, संसदीय क्षेत्र (लगभग) तथा तहसील एवं राज्य सरकार के मध्य मुख्य समन्वयक इकाई के रूप में निर्णायक भूमिका निभाता है। केन्द्र एवं राज्य सरकार के सभी जनोपयोगी विभागों के कार्यालय जिला स्तर पर कार्यरत हैं जो न केवल विकेन्द्रीकृत प्रशासन के पर्याय हैं बल्कि प्रशासनिक कृत्यों के निर्वहन की मूलभूत व्यावहारिक इकाईयाँ भी हैं।[6] प्रशासनिक तंत्र को संचालित करने के लिए 'वित्त' महत्वपूर्ण संसाधन है। अत: सरकार द्वारा आरोपित राजस्व (कर) को संग्रहीत करने तथा राजस्व प्रशासन को संचालित करने के लिए अंग्रेजों ने सर्वप्रथम भूमि एवं कृषि से संबंधित राजस्व एकत्रण की व्यवस्था संचालित की। सन् 1786 में सर्वप्रथम बंगाल में राजस्व मण्डल (Revenue Board) की स्थापना हुई। स्वतन्त्रता के पश्चात् अधिकांश राज्यों में राजस्व मण्डल वैधानिक एवं स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्यरत हैं। जिला कलक्टर, तहसीलदार, कानूनगो तथा पटवारी के माध्यम से भू-राजस्व एकत्रण तथा भूमि कानूनों का क्रियान्वयन किया जाता है। अन्य प्रकार के राजस्व जैसे-आयकर, बिक्रीकर तथा सीमा शुल्क इत्यादि की प्रशासनिक संरचनाएँ पृथक् से कार्यरत हैं जो ब्रिटिश शासन के दौरान गठित संगठनों का परिवर्तित एवं विकसित स्वरूप कही जा सकती है।[7] अंग्रेजों द्वारा भारत पर शासन के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथमत: भारत में राजस्व एवं कच्चा माल संगृहीत कर इंग्लैंड भेजना तथा दूसरा भारत पर शासन करने के लिए शांति व्यवस्था बनाए रखना। अत: सन् 1808 ई० में पुलिस अधीक्षक का पद सृजित किया गया। सन् 1860 ई० के पुलिस आयोग की अनुशंसा पर 'पुलिस अधिनियम, 1861' पारित हुआ। सेना एवं पुलिस के कार्यों में आज भी यह प्रवृत्तियाँ एवं प्रावधान दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

भारत एक गुटनिरपेक्ष और विकासशील देश है और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने देश की प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के लिए समय-समय पर उचित कदम उठाए हैं। प्रबोधन और उपदेशात्मक स्तर पर अनेक नियोजन देखने को मिले हैं। विभिन्न आयोगों और समितियों के अध्ययन प्रशासनिक परिवर्तन की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं एवं सेवीवर्ग के मूल्यों और अपेक्षित परिवर्तनों को दर्शाते हैं। इन विभिन्न सिफारिशों पर अमल हुआ है, लेकिन व्यवहार में आज भी प्रशासनिक व्यवस्था और समाज में पर्याप्त दूरी बनी हुई है। दोनों के बीच खाई को पाटा नहीं जा सका है। विकासशील राजनीतिक व्यवस्था की माँग है कि प्रशासन को आधुनिकीकरण के साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाए। यदि इस माँग की पूर्ति करनी है तो प्रशासन की व्यवस्था और कार्य प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना करते समय इस स्थिति को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया था, लेकिन प्रबुद्ध राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में निराशा है कि आयोग की सिफारिशों में आधारभूत परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब देखने को नहीं मिलता है।

विकासशील व्यवस्था के लिए प्रशासन का आधुनिकीकरण करने हेतु इन प्रश्नों पर रचनात्मक सिफारिशों की आवश्यकता है। प्रशासन में क्या परिवर्तन किए जाएँ, नवीन परिवर्तनों और चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशासन को सक्षम कैसे बनाया जाए आदि? अब तक जो सिफारिशें सामने आई हैं उनमें ऐसे प्रश्नों पर विचार किया गया, लेकिन अपेक्षित रूप से ये सन्तोषजनक नहीं है। कुछ विकासात्मक परिवर्तन प्रशासनिक स्तर पर संगठनों में अवश्य देखे जा सकते हैं, जैसे- लघु स्तरीय उद्योग, लोक निगम, सरकारी कंपनी, पदोन्नति गठन आदि। 'स्टफिंग' के नए स्वरूप देखने में आए हैं और ऐसे प्रयत्न किए गए हैं कि विकास तथा परिवर्तन की अनुकूल दिशा में बढ़ने के लिए विशेषज्ञ तथा व्यावसायिक सेवाओं को विशिष्टता प्रदान की जा सके। परम्परागत नौकरशाही को बदलने के कंचित प्रयास किए गए हैं। प्रशासन को एक नया दर्शन दिया गया है और यह आग्रह रहा है कि प्रशासक स्वयं को समाज-सेवक समझें और जनसाधारण के निकटतर आएँ। प्रशासन क्रियात्मक स्वायत्तता प्राप्त करे, वह राजनीतिक दबाव से परे रहे-इन दिशाओं में अनेक प्रयास किए गए हैं। विभिन्न प्रशासकीय संगठनों में शक्ति हस्तान्तरित की गई है। प्रशासन और जनता दोनों की मनोवृत्ति सरलता से नहीं दबायी जा सकती। इसमें सेवीवर्ग सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन का विशेष महत्व है, क्योंकि सभी परिवर्तनों की सफलता इसी वर्ग की दक्षता पर निर्भर करती है। यह नितान्त आवश्यक है कि प्रशासन की सेवीवर्ग सम्बन्धी

नीतियाँ प्रेरक और सन्तोषजनक हों ताकि यह वर्ग विकासशील समाज की माँगों के प्रति अधिकाधिक जागरूक, संवेदनशील एवं पारदर्शी बने।[8]

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध आलेख का उद्देश्य भारतीय प्रशासन की सामान्य विशेषताओं को स्पष्ट करना है। इसके साथ ही साथ इस आलेख का उद्देश्य राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था के परस्पर संबंध को स्पष्ट करना भी है। भारतीय प्रशासन के विकास में इतिहास का क्या योगदान है? इस बात की जानकारी भी प्रस्तुत शोध आलेख से प्राप्त हो जाती है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक भारतीय प्रशासन की सामान्य विशेषताएँ हैं। इसलिए इसकी परिकल्पना भारतीय प्रशासन की स्वरूप, कार्यकरण एवं प्रभाव से संबंधित होंगी। भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजनीतिक व्यवस्था से प्रभावित होता रहा है। भविष्य में भी ऐसी ही संभावना की परिकल्पना की जा सकती है। भारतीय प्रशासन में नक्सलवाद, क्षेत्रवाद तथा आतंकवाद से केन्द्रीकरण की प्रवृति को बल मिल रहा है तथा भविष्य में भी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति और भी सशक्त रूप में दृष्टिगोचर होंगी।

साहित्य सर्वेक्षण

भारतीय प्रशासन की विशेषता पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इस विषय पर साहित्य सर्वेक्षण का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है। हमने भी प्रस्तुत शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित प्रमुख साहित्य सर्वेक्षण किया है:

1. लोक प्रशासन, डॉ० अशोक कुमार, प्रतियोगिता संदर्भ प्रकाशन, पटना एवं नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, वर्ष 2019
2. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० अमरजीत सिंह नारंग, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 1998
3. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर०के० पूर्वार, विकास पब्लिकेशन, जालंधर एवं नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1988
4. भारत का संविधान, बसंती लाल बाबेल, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण, वर्ष 2019
5. भारतीय राज व्यवस्था, डॉ० जयप्रकाश शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 2000
6. भारतीय संविधान- एक परिचय 'ब्रजकिशोर शर्मा, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, प्रकाशन वर्ष 2015 (11वाँ संस्करण)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के नीति निर्माताओं ने औपनिवेशिक विरासत में प्राप्त प्रशासनिक ढाँचे को बरकरार रखने का एक सजग निर्णय इस तथ्य के बावजूद लिया था कि संविधान में व्यक्त एक स्वतंत्र देश की इच्छाएँ व आकांक्षाएँ औपनिवेशिक शासन के मूलभूत प्रतिमानों से भिन्न थी। स्वतन्त्रता के समय, जैसा जे० सी० मोहंती ने बताया है, भारतीय शासन को पाँच आधारभूत चुनौतियों से निपटना था– लोकतंत्र की चुनौतियाँ, विकास की चुनौतियाँ, विकेन्द्रीकरण की चुनौतियाँ, संस्थाओं के निर्माण की चुनौतियाँ और बढ़ती जनाकंक्षाओं की चुनौतियाँ। स्वतन्त्र्योत्तर प्रथम अर्द्धांश में लोक प्रशासन के साहित्य में इन चुनौतियों से निबटने हेतु औपनिवेशिक प्रशासन की प्रवृत्तियों में बदलाव लाने वाले आलेखों का अंबार है। इनमें विद्वानों के संदेहवाद व निराशावाद से

लेकर आशावादिता तक सभी तरह के विचारों को देखा जा सकता है। लोक सेवकों की प्रतिबद्धता व तटस्थता के मुद्दे, प्रशासन में सामान्यज्ञों व विशेषज्ञों के मुद्दे, लोक सेवक व राजनेता के बीच के संबंधों, विकास के नए मुद्दों का सामना करने में लोक सेवाओं की योग्यता (विशेषत: व्यवहार व प्रदर्शन के संबंध में) आदि जैसे अनेक मसले इस काल के लेखों का विषय होते थे। पिछले दो दशकों में शासन के प्रतिमान में स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस, अर्थव्यवस्था का उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण, जनता का सबलीकरण, निर्णय निर्धारण में महिलाओं की हिस्सेदारी (पंचायती राज में एक तिहाई महिला आरक्षण), पारदर्शिता, उत्तरदायित्व व प्रशासन जवाबदेही (सूचना के अधिकारों के जरिए) आदि कुछ नई चिंताएँ हैं। दूसरी तरफ लोक प्रशासन संस्थाओं की प्रवृत्तियों व संरचना की पुनर्स्थापना व पुनर्खोज (Reinventing) हेतु नए आविष्कारों का क्रम संचालित रहा है। स्पष्टत: भारत में लोक प्रशासन में नवीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. बी० के० शर्मा, भारतीय संविधान : एक परिचय, पी०एच० आई, नौवां संस्करण, 2012, पृ०-49
2. कटारिया, सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, पृ०-20-21
3. तथैव, पृ०-21
4. तथैव, पृ०-22
5. तथैव, पृ०-22
6. तथैव, पृ०-23
7. तथैव, पृ०-23
8. चतुर्वेदी, टी० एन०, तुलनात्मक लोक प्रशासन, पृ०-54 .

भारतीय दृष्टिकोण और प्रथम विश्वयुद्ध

डॉ० पूर्णनाथ कुमार

एम०ए०, पी-एच०डी० (इतिहास), वरीय शोधप्रज्ञ, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रथम विश्वयुद्ध का चरित्र हालाँकि एक साम्राज्यवादी युद्ध का था। यह युद्ध साम्राज्यवादी देशों के अपने आर्थिक स्वार्थों के बीच जन्में अन्तर्विरोध का परिणाम था। भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने इस युद्ध को आजादी के लिए लड़ाई समझा और अपना समर्थन ब्रिटिश राज को दिया। युद्ध ने राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं को ब्रिटिश राज की आलोचना का अवसर जरूर दिया मगर 5 अगस्त 1914 को जब ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तब राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने इसका पुरजोर समर्थन किया और ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी वफादारी का ऐलान किया। उनकी समझ थी कि आजादी के लिए लड़ा जाने वाला यह युद्ध अपनी विजय के पश्चात् भारत की आजादी के प्रति ब्रिटिश सरकार को सकारात्मक रुख अपनाने और भारत को आजादी देने के लिए बाध्य करेगा। इसी गलत उम्मीद में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने ब्रिटेन के प्रति वफादारी का ऐलान किया। देशी राजाओं ने भी अपनी राय प्रकट करते हुए इंग्लैंड के साथ पूर्ण समर्थन का इहजार किया और इस भावना को सार्वजनिक बनाने के लिए वर्द्धमान के महाराजाधिराज की अध्यक्षता में कलकत्ता के टाउन हौल में एक बैठक हुई। अध्यक्षीय भाषण देते हुए महाराज ने सभी उपलब्ध साधनों से ब्रिटेन की मदद करने का आह्वान किया। उन्होंने कहा "ग्रेट ब्रिटेन का हित हमारा हित है, उसका खतरा हमारा खतरा है, उसका गौरव हमारा गौरव है।" अत: मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप केवल ब्रिटिश सरकार की सेवा करने के लिए या राज सत्ता के प्रति केवल अपनी वफादारी दिखलाने के लिए उत्साह नहीं दिखलावें, बल्कि यदि ईश्वर न करे, यदि दुश्मन भारतवर्ष पर आक्रमण करता है, तो हम सबों को यूनियन जैक के नीचे मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ना चाहिए और इंग्लैंड को दिखला देना चाहिए कि भारत जानता है कि कृतज्ञ कैसे हुआ जा सकता है।[1] नटेसन ने भी इसकी पुष्टि निम्नलिखित शब्दों में की है–"देश को एक से ज्याद बार इस बात का भान हो चुका है कि सभ्यता के साथ भारत का राजनीतिक अभ्युदय ब्रिटेन की श्रेष्ठता और साम्राज्य की अखण्डता पर निर्भर करता है।"[2] एनीबेसेन्ट ने भी ब्रिटिश सरकार की इस भावना का समर्थन किया और कहा कि जर्मनी की सफलता साम्राज्य की शक्ति का प्रतीक है जबकि ब्रिटेन की सफलता का अर्थ केवल साम्राज्य या स्वतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रमंडल की सफलता नहीं है। इसका अर्थ है संवैधानिक राजसत्ता को कड़ी के रूप में स्वीकार करना। इसमें बुद्धिजीवियों ने भी अपनी पीड़ा को भूलकर सरकार का साथ दिया।[3] ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के सम्बन्ध में जो तर्क दिए उससे तत्कालीन भारतीय नेता काफी प्रभावित थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस की दोनों विचारधाराओं के नेताओं ने (गरम और नरम दलीय) ब्रिटिश सरकार की सहानुभूति में खड़े हो गए। वायसराय को लिखे पत्रों एवं भेजे गए टेलीग्रामों से ऐसा पता चलता है कि उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ की नीति छोड़ दी थी। इसका प्रमाण दादाभाई नौरोजी का टाइम्स में लिखे गए एक पत्र जिसमें उन्होंने जोर देकर कहा कि "सम्पूर्ण जीवन में मैं भारत में ब्रिटिश शासन की प्रशंसा करने के बजाए आलोचक रहा हूँ और मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि मैंने समय-समय पर कठोर भाषा का इस्तेमाल किया है। लेकिन मैं पूरी निष्पक्षता और इमानदारी से कहना चाहता हूँ कि ब्रिटिश सरकार का चरित्र क्या है और विश्व-सभ्यता ब्रिटिश प्रतिभा का कितना ऋणी है और हम भारतीय वर्तमान लाभ एवं भविष्य में होने वाले लाभ के लिए ब्रिटिश जनता के कितना ऋणी हैं। मुझे यह कहने में शंका नहीं है कि भारत वर्ष का प्रत्येक व्यक्ति हृदय से चाहता है अपनी पूरी योग्यता एवं ताकत से न्याय, स्वतंत्रता, सम्मान और सौभाग्य संवृद्धि के लिए अंग्रेजों की मदद करें। भारत में राजकुमारों एवं जनता ने अपने आप सहायता करने की इच्छा प्रकट की है। भारतीय जनता को युद्ध में साम्राज्य की मदद करने के अलावा कुछ सोचना भी नहीं चाहिए।[4] इस तरह उन्होंने ब्रिटिश सत्ता की जोरदार वकालत की।

बम्बई की एक आम सभा में फीरोजशाह मेहता ने भी इसी दृष्टिकोण को प्रकट किया और कहा कि इस पवित्र अवसर पर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि जिस सत्ता के अधीन एक सदी से ज्यादा समय व्यतीत किया उसकी मदद करना हमारा सौभाग्य है। जिसके नेतृत्व में विवेक, सौभाग्य, कल्याण, सुख-संवृद्धि और देश का कल्याण हासिल किया, उस सत्ता का समर्थन करना हमारा परम कर्त्तव्य एवं दायित्व है।[5] मदन मोहन मालवीय सहित अनेक भारतीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार के सिद्धान्तों की रक्षा की। उन्होंने इलाहाबाद की एक सार्वजनिक सभा में कहा "हमारा भाग्य ब्रिटेन के भाग्य से बँधा हुआ है। यदि ब्रिटेन को कोई नुकसान पहुँचता है तो उसका अर्थ है भारत को नुकसान पहुँचना। ख़्ख़ यह कथन कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं होती कि मैं ब्रिटिश सत्ता के प्रति वफादार हूँ एवं मैं अपने देश से प्यार करता हूँ।[6]

कांग्रेस के एक अन्य नेता महहरूल हक ने पटना में मुसलमानों को सम्बोधित किया "हमलोग मुसलमान हैं और भारतीय भी। हमारा कर्त्तव्य है कि दुहरे कर्त्तव्य की पूर्ति करें। हमें प्रसन्नता है कि हमारे हित आपस में टकराते नहीं हैं और एक तरह के हैं। ख़्ख़ हमारी मातृभूमि आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ युद्ध में है और हमारा यह परम् कर्त्तव्य है कि हम अपने पवित्र ब्रिटिश सत्ता के समर्थन में उठ खड़े हों।"[7] मजहरूल हक का भाषण साम्प्रदायिक एकता को, जिसे ब्रिटिश सरकार हमेशा भंग करने का प्रयास करती रही थी, बनाने और एकताबद्ध होकर साम्राज्य की मदद करने की भावना वाला था। मजहरूल हक ने उस भाषण ने बिहार के लोगों को जबरदस्त प्रभावित किया और ब्रिटेन की जीत के प्रति आश्वासन दिया। कांग्रेस की वह कमिटी जो प्रशासनिक सुध ारों की मांग को लेकर लंदन गई थी ने एक पत्र के जरिये ब्रिटिश सत्ता के प्रति अपनी गहरी वफादारी दिखलायी। उन्होंने स्पष्टत: कहा कि हम यह समझते हैं कि शान्तिपूर्ण समय में आन्तरिक प्रशासन की जो भी स्थिति हो किन्तु बाहरी आक्रमण के समय भारतीय जनता की एकमात्र इच्छा ब्रिटिश सत्ता का समर्थन करना होता है। इससे ब्रिटिश सत्ता की शीघ्र विजय की सम्भावना होती है।[8]

महात्मा गाँधी के प्रयास से इंग्लैंड में 50 से ज्यादा प्रवासी भारतीयों ने भारत के अवर सचिव को अपना पूर्ण समर्थन देने के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। ब्रिटिश सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया एवं गाँधीजी सहित 80 स्वयं सेवियों ने भारतीय एम्बुलेन्स फोरम्स की स्थापना की। विदित है कि गाँधीजी ने संकट की इस घड़ी में इंग्लैंड की आवश्यकताओं को प्रधानता दी। अपने जीवन-चरित्र में उन्होंने लिखा है, "मैंने सोचा कि इंग्लैंड की आवश्यकताओं को अवसर का मुद्दा नहीं बनाना चाहिए। और जब तक युद्ध जारी है यह दूरन्देशी का तकाजा है कि हमें अपनी माँगों पर जोर नहीं डालना चाहिए। इसलिए मैं अपने वचन पर कायम रहा और उन लोगों से सहायता की माँग की जो स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं।"[9]

कांग्रेस ने सांगठनिक तौर पर भी युद्ध का समर्थन किया और दिसम्बर 1914 के अन्तिम सप्ताह में अपनी बैठक, जो भूपेन्द्र नाथ बसु की अध्यक्षता में हुई, उसमें इसी आशय का फैसला किया। अध्यक्ष श्री बसु ने कहा "मुख्य मुद्दे अभी आकाश में हैं क्योंकि ब्रिटिश और हमारे भारतीय भाई स्वतंत्रता और न्याय के लिए यूरोप के युद्ध-क्षेत्र में संघर्ष कर रहे हैं।[10] कांग्रेस ने सत्ता के प्रति वफादारी का परिचय दिया और किसी भी कीमत पर ब्रिटिश साम्राज्य को मदद करने का आश्वासन दिया।[11] एक दूसरे प्रस्ताव में इसने साम्राज्य के हितों के लिए कंधे से कंधा मिलाकर अधिकार और न्याय की रक्षा करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया।[12] इसी तरह के कई प्रस्ताव कांग्रेस की ओर से समय-समय पर पारित किये गये। यद्यपि तिलक और उनके समर्थक 1916 ई० में पुन: कांग्रेस में शामिल हुए। किन्तु कांग्रेस के युद्ध सम्बन्धी सहयोग की नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ।

भारत की रियासतों ने अपना पूर्ण समर्थन ग्रेट ब्रिटेन को युद्ध सम्बन्धी कार्यों में दिया। बाहरी मुल्कों में युद्ध की कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए 27 भारतीय रियासतों ने प्रारम्भिक काल में अपनी सेना ब्रिटिश सरकार को सौंप दी। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अश्व सेना, पदाति सेना, पर्वतीय तोपखाना और सैयर्स ट्रान्सपोर्ट एवं डिस्पैच राइडर्स ने अपनी इच्छा से ब्रिटेन का साथ दिया। अलवर, भावनगर, भोपाल, ग्वालियर, हैदराबाद, इंदौर, जोधपुर, कश्मीर, मैसूर, नवानगर, पटियाला, रामपुर और उदयपुर रियासतों की ओर से अश्व सेना ब्रिटिश सरकार को पेश की गयी। अलवर, बहावलपुर, भरतपुर, ग्वालियर, जिन्द, कपूरथला, कश्मीर, खैरपुर, नामा, पटियाला, रामपुर, रियासतों की फौज में पदाति सेना ब्रिटिश सरकार को पेश की गयी। इसी तरह कश्मीर से पर्वतीय तोपखाना और बीकानेर से अश्व सेना प्रस्तुत की गयी। फरीदकोट, माटूकोटले, सिरमूर और टेहरी रियासतों की ओर से सैर्यस तथा बहावलपुर, भरतपुर, ग्वालियर, इन्दौर, जयपुर, खैरपुर और मैसूर रियासतों की ओर से परिवहन तथा इंदौर तथा रतलाम रियासतों की ओर से डिस्पैच राइडर्स, ब्रिटिश सरकार को प्रदान किय गये।[13] इन सेनाओं को फ्रांस, मेसोपोटामिया, मिस्र, पूर्वी अफ्रीका, उत्तर पश्चिम सीमान्त क्षेत्र और भारत में युद्ध के लिए भेजे गये।[14] भारतीय प्रयासों का समर्थन करते हुए श्री आर०बी० विलियम ने लिखा "31 मार्च 1917 को समाप्त होने वाले वर्ष में देशी रियासतों ने भारत सरकार और भारतीय सेना को लड़ाई लड़ने वाले 9,000 रंगरूट,

30 जून, 1918 को समाप्त होने वाले वर्ष में 33,000 सैनिक और 5000 गैर-सैनिक उपलब्ध कराये। इसके अतिरिक्त जिन राज्यों में ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष शासन था वहाँ से भी सैनिक भर्ती किये गये। 30 जून 1918 तक समाप्त होने वाले वर्ष में सभी राज्यों से 50,000 युवक लड़ाई में शामिल किये गये। यदि युद्ध से आरम्भ होने वाले दिन से इसकी कुल संख्या जोड़ी जाय तो सैनिकों की कुल संख्या एक लाख से कम नहीं होगी।"[15] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आम भारतीय ब्रिटिश युद्ध प्रयासों से प्रभावित थे और उन लोगों ने युद्ध में मदद दी।

बीकानेर, पटियाला, किशनगढ़, जोधपुर के महाराजा, रतलाम के राजा, जावरा, सचिन और भोपाल के नवाब और मलिक उमर हयात को अभियान दलों का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने गये।[16] जमीन्दारों ने भी युद्ध प्रयासों में अपना पूर्ण समर्थन देने का आश्वासन दिया। इंग्लैंड के प्रधानमंत्री भारत के वायसराय और सम्राट ने युद्ध में भारतीय योगदान की प्रशंसा अपने संदेश में की।[17] कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उन लोगों ने वादा किया कि भारत के राजनीतिक भविष्य पर गौर किया जायेगा और दूरगामी दृष्टिकोण से कोई निर्णय लिया जायेगा।[18] सरकार की उक्त संयुक्त घोषणा का स्वागत राष्ट्रवादी नेताओं ने भी किया।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री, सम्राट और वायसराय का रुख देखते हुए सरकारी अधिकारियों ने प्रजातंत्र और आजादी की रक्षा के लिए सभी तरह की मदद देने के लिए लोगों का आह्वान किया। इस मदद में आर्थिक एवं फौज में भर्ती होने वाली मदद भी शामिल थी। लोगों ने ब्रिटिश प्रशासन को सभी तरह से मदद प्रदान की।

भारत द्वारा सैनिक, आर्थिक और अन्य तमाम प्रकार की सहायता के कारण ब्रिटेन को सहायता तो मिली ही भारतीय सैनिकों ने अपनी बहादुरी से जंग की दिशा को मोड़कर अपना सिक्का दुनिया पर जमा दिया।[19] व्हाइट हेड ने भारतीय फौज की प्रशंसा करते हुए लिखा है "ख्ख्आगामी सैकड़ों वर्षों के लिए विश्व सभ्यता की प्रगति का निर्णय इस युद्ध में हो जायेगा।"[20] युद्ध में भारतीय अवदानों की चर्चा करते हुए 14 मार्च 1917 को भारत के सचिव श्री आस्टिन चेम्बरलेन ने कहा कि "सदन फ्रांस में अक्तूबर 1914 को नेवेचापेल्ले पर पुनर्कब्जा के लिए किए गए भारतीय फौज के अवदान को नहीं भूलेगा।ख्ख्ख्47वें सिक्ख बटालियन के 289 में 178 सैनिक मारे गये, 20वें और 21वें सैयर्स एवं माइनर्स कम्पनी में 300 में से 119 सैनिक मारे गए एवं वे, 10 मार्च को गढ़वाल ब्रिगेड के आक्रमण को भी नहीं भूलेंगे।[21] चालीस अस्पताल, 35 स्थायी अस्पताल, 18 सामान्य अस्पताल, 9 एक्स-रे विभाग, 8 सफाई विभाग, 7 अग्रिम डिपो और एक जेनरल मेडिकल स्टोर देश से बाहर युद्ध में सहायता के लिए भेजे गये। इसमें शाही सेना मेडिकल कार्प्स में 258 अधिकारी, भारतीय चिकित्सा सेवा के 704 अधिकारी, 10 महिला नर्स, 475 सहायक सर्जन, 720 ब्रिटिश नर्सिंग अर्दली, 2840 भारतीय अधिकारी और 20,000 समर्थक शामिल थे।[22]

होटनीमैन ने युद्ध में भारत के आश्चर्यजनक योगदान की चर्चा करते हुए लिखा, "अस्पतालों एवं दूसरे समाजिक कार्यों के लिए काफी बड़ी रकम का संग्रह किया गया। लगभग 15 लाख भारतीयों ने अपन रक्त यूरोप, अफ्रीका, रसिया और यहाँ तक कि तुर्कों के खिलाफ भी युद्ध के मैदान में बहाया।"[23] इसी बीच युद्ध में तुर्की भी शामिल हो गया। इस देश में बहुसंख्यक आबादी मुसलमानों की है। भारतीय मुसलमानों के समक्ष दुविधा की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यह टर्की के सुल्तान का साथ दे या ब्रिटिश सरकार का, यह विचारणीय विषय हो गया। ब्रिटिश सरकार को भय हुआ कि कहीं मुसलमान टर्की का साथ नहीं दे। इस सम्बन्ध में मजुमदार ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार भारतीय मुसलमानों की दुविधा को समझती थी। परिणामत: सरकार ने युद्ध के अन्त में तुर्की के साथ सहानुभूतिपूर्ण विचार करने का आश्वासन दिया।[24] इस सम्बन्ध में भारतीय मुसलमानों का समर्थन हासिल करने का भारत सरकार ने एक घोषणा-पत्र में कहा, "कुछ उपद्रवकारी तत्व जर्मनी और आस्ट्रिया के लाभ के लिए इंग्लैंड के खिलाफ टर्की को युद्ध में उतार रहे हैं।"[25] "इस युद्ध में इस्लाम खतरे में नहीं है। टर्की की तलवार एक अपवित्र कार्य के लिए उठायी गयी है।"

हिन्दुस्तान की मुस्लिम रियासतों ने भी ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। हैदराबाद के निजाम ने एक घोषणा-पत्र में लिखा, "अन्तत: मैं आशा व्यक्त करता हूँ कि पूर्वजों के पथ का अनुसरण करते हुए मैं अपने राज्य के सेना, तमाम संसाधन सहित ब्रिटेन की सेवा के लिए तत्पर हूँ और भारतीय मुसलमान भी विशेषकर हमारी प्रिय प्रजा हार्दिक रूप से उसका समर्थन करेगी।[26] इसी तरह की भावनाओं का प्रदर्शन भोपाल की महिला मुसलमान शासक, रामपुर के नवाब, टोंक और पालनपुर के शासकों ने किया। उनलोगों ने अपनी प्रजा को ब्रिटेन के प्रति वफादारी दिखलाने का आदेश दिया।[27]

सेडिशन कमिटी[28] ने अपने प्रतिवेदन में स्वीकार किया है कि भारतीय मुसलमान टर्की के साथ अवश्य हो गये थे, किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रिटेन अरबिया एवं मेसोपोटामिया के पवित्र स्थलों पर तब तक बमबारी नहीं करेगा जब तक भारतीय तीर्थयात्रियों की पवित्रता सुरक्षित रहती है, तब वे ब्रिटिश सत्ता के पक्ष में हो गये।

आम तौर पर उन दिनों अधिकांश भारतीय मुसलमान युद्ध में ब्रिटेन के पक्ष में थे। बम्बई प्रेसीडेन्सी मुस्लिम लीग ने निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सभा आयोजित की[29]:-

1. ब्रिटिश सत्ता के प्रति भारतीय मुसलमानों की अकाट्य एवं गहरी वफादारी
2. महामहिम वायसराय द्वारा जारी 'घोषणा-पत्र' को जनता के सामने विश्लेषण करना।
3. ऐसी सरकार के बारे में जनता को जिसमें मुहम्मद ने कहा है कि जो सरकार पवित्र मुस्लिम स्थलों की सुरक्षा कर सके एवं जिसमें धार्मिक सहिष्णुता हो।

12 जनवरी 1915 को भारतीय विधायिका परिषद् को सम्बोधित करते हुए लार्ड हार्डिंग ने आश्वासन दिया कि मेसोपोटामिया और अरबिया के पवित्र स्थानों को आक्रमण से मुक्त रखा जायेगा और ब्रिटिश सरकार विदेशी आक्रमणकारियों से हर हालत में रक्षा करेंगी।[30] ब्रिटिश प्रशासन भारतीय मुसलमानों को संदेह की पुष्टि से देखने लगा। संदेह के कई कारण थे–प्रथम, यह कि टर्की के सुल्तान मुसलमानों के खलीफ थे और दोनों में धार्मिक सम्बन्ध थे। द्वितीय, इटली और बाल्कन युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन के रुख से भारतीय मुस्लिम क्षुब्ध थे। तृतीय यह कि उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की सीमा पार कर वहाबी जेहाद की शिक्षा देते थे। जेहाद-ए-इस्लाम के माध्यम से टर्की का प्रभाव था। इससे मार्च 1914 में तुर्की भाषा में एक समाचार पत्र प्रकाशित होने लगा। कई अरबी और हिन्दी भाषा में इसके अनुवाद प्रशिक्षित किये गये। समाचार-पत्र गुप्त रूप से भारत लाये गये और सम्पूर्ण देश में इसे वितरित किया गया। इसमें ईसाई विरोधी लेख थें।[31] प्रथम कारण के संबंध में भार्गव ने लिखा, ख्रख्र"एक समय ऐसा महसूस किया गया कि कहीं भारतीय मुसलमान भावना वश ब्रिटेन के खिलाफ हो जाय।"[32] तृतीय कारण के संबंध में बताया गया कि वहाबी अपने धर्मानुयायियों को इस्लाम के प्रचार के लिए ब्रिटिश विरोधी भावनाओं को भड़काने के लिए भारत भेजने लगे।[33] जहान-ए-इस्लाम के 20 नवम्बर 1914 के अंक में अनवर पाशा का एक भाषण छपा। अपने भाषण में उन्होंने 32 करोड़ हिन्दू-मुसलमानों को 2 लाख अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए जेहाद छेड़ने का आह्वान किया। टर्की ने भारतीय मुसलमानों से एक अपील में आग्रह किया कि वे अंग्रेजों को निकाल फेंके। एक जगह अपील में कहा गया–"....अपने परिवार एवं बच्चों की चिन्ता नहीं करें। यदि अंग्रेज उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं तो वे सीधे स्वर्ग जायेंगे क्योंकि खुदा का कहना है कि जो मारे जाते हैं, वे शहीद होते हैं, एवं वे खुदा के पास रहकर हर सुख-सुविधा का उपयोग करते हैं।"[34] पाँचवा कारा यह था कि बाल्कन युद्ध के दौरान जो रेड क्रेसेन्ट सोसायटी के सदस्य के रूप में टर्की गये थे, वे 1914 के अन्त में युवा तुर्क पार्टी के सदस्य के रूप में भारत आ गये थे।[35] इन लोगों ने भारत गुप्त सोसायटी स्थापित करने का निर्णय लिया। आशय यह निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ काम करने के लिए टर्की ने भारतीय मुसलमानों को प्रोत्साहित किया। किन्तु, इसमें सफलता का प्रतिशत अत्यंत कम था। हालिद एहिब ने इस सम्बन्ध में कहा, "जब भारतीय हित एवं धार्मिक भावना का प्रश्न हो, तो निश्चय ही भारतीय हित को प्रधानता दी जायेगी।"[36] मुस्लिम प्रेस ने भी ग्रेट ब्रिटेन के हित को प्रधानता दी। हबलल मैटिन (कलकत्ता) और पाशा अकबर (लाहौर) ने ब्रिटिश मत का समर्थन करते हुए लिखा है "हमें ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन करना चाहिए, क्योंकि यह स्वतंत्रता और सम्मान के लिए युद्ध कर रहा है।"[37] आगा खाँ ने युद्ध के दौरान न केवल ब्रिटेन की आर्थिक सहायता की, बल्कि अपने लोगों को भी साम्राज्य की सेवा के लिए अर्पित किया।[38] आगा खाँ ने ब्रिटिश साम्राज्य में रह रहे तमाम मुसलमानों को युद्ध में ब्रिटेन का साथ देने के लिए अनुरोध किया। उनका तर्क था कि इस्लाम खतरे में नहीं है।[39] युद्ध में ब्रिटेन को समर्थन देने के प्रश्न पर भारतीय मानस पूर्णत: एकताबद्ध नहीं था, कई तबके ऐसे थे जो इस युद्ध को स्वतंत्रता संग्राम को आगे बढ़ाने तथा जब ब्रिटेन संकट में था, तब उस संकट का इस्तेमाल आजादी के संघर्ष को तेज करने के अवसर के रूप में इस्तेमाल करना चाहते थे। फिर भी यह सत्य है कि स्वतंत्रता संग्राम की गति धीमी हो गयी थी, किन्तु स्वतंत्रता के लिए चाहत कम नहीं हुई थी। देश की अच्छी संख्या आजादी के लिए इस अवसर का लाभ उठाने के पक्ष में थी। एक जगह इण्डियन नेशनल पार्टी ने लिखा है कि "अन्याय पर आधारित यह विदेशी सत्ता झूठ का पुलिन्दा है। उसे बदल देना चाहिए और राष्ट्रीय शासन की स्थापना करनी चाहिए।"[40]

इस तरह यह कहा जा सकता है कि प्रथम विश्वयुद्ध ने विदेश में रह रहे क्रान्तिकारियों को स्वर्ण अवसर प्रदान किया। उनलोगों ने सोचा कि कभी न कभी भारतीय फौजों को दुनिया के विभिन्न कोनों में भेजा जायेगा और इस तरह भारत की आजादी के लिए क्रान्तिकारी अभियान में मदद मिलेगी। इस सम्बन्ध में वे विदेशी सहायता की भी अपेक्षा कर रहे थे। बर्नहार्डी[41] के अनुसार भारतीय

क्रान्तिकारी जर्मनी से सहयोग की अपेक्षा कर रहे थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हर दयाल गदर पार्टी की स्थापना कर चुके थे। हर दयाल 1911 ई० से पूर्व अमेरिका में जर्मनों एवं यूरोप के भारतीय क्रान्तिकारियों की सहयोग से कैलिफोर्निया, ओरेगाँव और वाशिंगटन में गदर क्रान्तिकारी पार्टी के माध्यम से क्रांतिकारी आन्दोलन के लिए तैयारी कर रहे थे। वे इस बात पर जोर दे रहे थे कि जर्मनी इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध शीघ्र प्रारम्भ करेगा। 31 दिसम्बर 1913 को सेक्रामेन्टो की एक बैठक में हर दयाल ने बताया कि “जर्मनी इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार हो रहा है और यह उचित समय है कि हमें क्रान्ति में शामिल होने के लिए भारत प्रस्थान करने के लिए तैयार रहना चाहिए।”[42]

संदर्भ

1. द बंगाली, अगस्त 15, 1914.
2. नटेशन जी०ए०, ‘इण्डिया एण्ड द वार’ द इण्डियन रिव्यू वार बुक, 1995, पृ०–5
3. बेसेन्ट ए०, ‘इण्डिया : बाण्ड या फ्री’ ? पृष्ठ सं०–165.
4. द टाइम्स, सितम्बर 5, 1914.
5. जी०जे० राय, जे०आर०बी० (सं०) सम अनपब्लिश्ड लेटर, स्पीचेज एण्ड राइटिंग ऑफ द ऑन सर फिरोज शाह मेहता, पृ०–467.
6. भार्गव में वर्णित, ए०बी०ए०, इण्डियाज सर्विसेज एण्ड ए वार, पृ०–43.
7. वही
8. एण्ड्रूज एण्ड मुखर्जी, पुर्वानुसार, पृ०–241.
9. गाँधी एम०के०, ‘ऐन ओटोबायोग्राफी’ या ‘द स्टोरी आ माय एक्सपेरिमेंट विथ द ट्रूथ’, पृ०–425.
10. रिपोर्ट ऑफ द ट्वेन्टी नाइन्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस (मद्रास : द मिनर्वा प्रेस, 1915), पृ०–23.
11. वही
12. वही
13. रसब्रुक विलियम्स, एल०एफ० इण्डिया इन द इयर्स 1917–18, पृ०–11
14. वही.
15. वही.
16. ‘द टाइम्स’, सितम्बर 10, 1914.
17. ‘प्रोसेडिंग्स आ काउन्सिल ऑफ द गवर्नर जेनरल ऑफ इण्डिया’, खण्ड– स् 3, पृ०–3
18. चिरोल वेलेन्टाइन, ‘इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू’, पृ०–141
19. झा एल०एस० हिन्दुस्तानी, ‘सिपाहियों की वीरता’, सरस्वती (हिन्दी)
20. ह्वाइट हेड, ‘इण्डिया आफ्टर द वार’ सेल्फ गवर्नमेंट फार इण्डिया’ द इण्डियन रिव्यू, सितम्बर, 1916 पृ०–649.
21. द टामठस ऑफ इण्डिया, 16 मार्च, 1917. पार्लियामेंटरी डिबेट्स (एच०सी०) खण्ड–ग्स्, 1917.
22. होटनीमैन, बी०जी०, ‘अमृतसर एण्ड आवर ड्यूटी टू इण्डिया’ (लन्दन, 1920), पृ०–22.
23. मजुमदार आर०सी०, 'हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया', खण्ड–प्प्, पृ०–53.
24. वही.
25. गृह विभाग प्रगति सं०–382, अक्तूबर 1917.
26. वही, पृ०–424–25.
27. भार्गव, पूर्वानुसार, पृ०–145.
28. द सेडिशन कमिटी रिपोर्ट, पृ०–174.
29. द बंगाली नवम्बर 5, 1914.
30. ‘प्रोसीडिंग्स ऑफ काउन्सिल ऑफ द गवर्नर जेनरल ऑफ इण्डिया’, खण्ड–L 3, पृ०–232.

31. द सेडिशन कमिटी रिपोर्ट, पृ०–169.
32. भार्गव, पूर्वानुसार, पृ०–139.
33. द सेडिशन कमिटी रिपोर्ट, पृ०–174.
34. चौधरी एल०के० द्वारा 'इण्डिया और टर्की' (शोध प्रबंध) में वर्णित
35. भार्गव, पूर्वानुसार, पृ०–142.
36. एहिब एच०, 'इनसाइड इण्डिया', पृ०–317.
37. 'द मुस्लिम वर्ल्ड', जनवरी 1915, पृ०–16.
38. वही.
39. दि एसियाटिक रिभ्यू, नवम्बर 1914, पृ० 423–24.
40. इण्डियन नेशन पार्टी, इण्डियाज लॉआयल्टी टू इंग्लैंड, पृ०–6.
41. सिडेशन कमिटी रिपोर्ट, पृ०–119, जर्मनी एण्ड द नेक्स्ट वार, बर्नहार्डी.
42. सिडेशन कमिटी रिपोर्ट, पृ०–119.

भारत में जनजातियों का भौगोलिक वितरणः एक अवलोकन

डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)

शोध पत्र का सार

भारत में भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधता व्याप्त है। भारतीय समाज में प्राचीन जनजाति के लोग सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक रूप में अन्य लोगों से अलग दिखते हैं। इन्हें देश का मूल निवासी भी कहा जाता है। एल्विन नाम के वैज्ञानिक ने तो इन्हें ही राष्ट्र का मूल निवासी बताया है। भारत के जनजातियों में से जिनका राष्ट्रपति के आदेश से एक अनुसूची में सूचीबद्ध कर दिया गया है, उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि भारत की सभी जनजातियों को अनुसूचित जनजाति (ST) में शामिल नहीं किया गया है। भारत सरकार की कल्याणकारी कार्यक्रम अनुसूचित जनजाति तथा जनजाति के निर्धारित एवं क्रियान्वित किये जाते रहे हैं। भारतीय संविधान में भी अनुसूचित जाति तथा जनजाति समाज के कल्याण एवं विकास में अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं। भारत की संघीय तथा राज्य विधायिका में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए स्थान सुरक्षित किया गया है अर्थात् आरक्षण का प्रावधान है। भारत में जनजातियों का जीवनयापन परम्परागत, जंगली तथा नैसर्गिक स्वरूप का है। भारत की जनजातियों की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन शेष समाज के लोगों से अलग प्रकार का होता है तथा सामान्यतः जनजाति समाज के लोग शहर से दूर ग्रामीण और जंगली क्षेत्रों में निवास करते हैं तथा उसी आधार पर इनका भौगोलिक वितरण दृष्टिगोचर होता है। भारतीय जनजातियों का वितरण उत्तरी, उत्तरी-पूर्वी, मध्यवर्ती तथा दक्षिणी प्रदेश में देखने को मिलता है। असम, झारखण्ड, उड़ीसा, अरूणाचल प्रदेश, नगालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, बिहार, पश्चिम बंगाल, सिक्कम तथा तमिलनाडु जैसे राज्यों में अलग-अलग जनजातियों का निवास है।

मूल शब्दः जनजाति, अनुसूचित जनजाति, भागोलिक और सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक न्याय, सामाजिक सशक्तिकरण, सांस्कृतिक वातावरण, नगरीकरण, सांस्कृतिकरण, सभ्यता एवं संस्कृति आदि।

प्रस्तावना

भारत की अनुसूचित जनजातियों के लोग इस देश के आदिवासी या देशी लोग माने जाते हैं। ये लोग क्रमशः पश्चिम, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूरब से आने वाले द्राविड़ों, भारतीय आर्यो और मंगोलों के आक्रमण से अपनी रक्षा न करने के कारण धीरे-धीरे पीछे हटने के लिए बाध्य हो गये, क्योंकि आक्रमणकारी न केवल संख्या में सबसे अधिक रहे हैं, बल्कि हथियारों की शक्ति में भी उनसे अधिक सशक्त साबित हुए हैं। अतः इन आदिवासियों को पहाड़ी भागों और घने जंगलों में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा जहाँ आज भी वे बड़ी संख्या में निवास करते हैं। इनमें से जो मैदानी क्षेत्रों में रह गये हैं, वे धीरे-धीरे बाहर से आने वाली जातियों में घुल-मिल गये हैं अथवा सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण लुप्त हो गये। जनजातियाँ भारतीय मानव के पुरखों में इतनी अधिक रम गयी हैं कि अब यह भारतीय जजनसंख्या का ही एक सम्मिश्रण बन गया है।[1]

भूगोलवेता सर हरबर्ट रिजले, लेसी, अलविन, ए०वी० ठक्कर ने इन्हें आदिवासी नाम दिया है। ग्रियर्सन ने उन्हें पहाड़ी जनजातियाँ और जंगली आदिवासी कहा है और शूबर्ट ने उन्हें आदिवासी कहा है। टैलेण्ट्स, सैजविक और मार्टिन ने उन्हें प्रतवादी माना है और डॉ० हट्टन ने उन्हें प्रचानी जनजाति अथवा जंगल निवासी कहा है। एल्विन ने बैगा लोगों को देश का आदि-स्वामी बतलाया है।

प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री डॉ० घुरिये ने उन्हें पिछड़ा हिन्दू कहा है। इधर कुछ समय से इन वर्गो को आदिवासी (आदि = प्रारम्भिक, वासी = निवासी), वन्य जाति, अरण्य वासी गिरिजन नाम से पुकारा जाने लगा है।[2] भारतीय संविधान की धारा-342 का सम्बन्ध अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित एक विशेष व्यवस्था से है। उसमें अनुसूचित जनजातियों की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि इनमें वे "जनजातियाँ, जनजातीय सम्प्रदाय या जनजाति और जनजातीय समुदायों के समूह या वर्ग शामिल होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा घोषित करेंगे।"

भारत की लगभग 900 जनजातियों में से लगभग 600 जनजातियों को अबतक राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित किया गया है। उन्हें ही अनुसूचित जनजातियाँ कहते हैं। अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगातार बढ़ती रही है तथा उनकी समस्याओं का समाधान भी लगातार हो रहा है। इसके बाद भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अबतक अनुसूची जातियों के विभिन्न समस्याएँ अभी भी दृष्टिगोचर हो रही है। मोदी सरकार के द्वारा इस दिशा में कल्याणकारी कार्यों का निष्पादन हो रहा है, परन्तु इसे और भी प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों के लिए आरक्षण प्रदान किया गया है। लोक सभा तथा विधान सभाओं में भी इन्हें इनके जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण दिया गया है। ताकि यह समाज निर्माण की दिशा में बराबर की स्थिति में खड़े हों। आज स्वैच्छिक संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा भी इनके कल्याण एवं विकास में कार्य किये जा रहे है।

भारत की अनुसूचित जातियों के मूल स्रोत की खोज करने पर जानकारी मिलती है कि वे प्रोटो-आस्ट्रेलायड जैसी प्रजातियों से निकली हैं जो कभी सारे भारत में छाई हुई थी। इनका दूसरा स्रोत मंगाल प्रजाति के लोगों को माना जाता है जो अब भी असम में पाये जाते हैं। इनका तीसरा स्रोत नीग्रीटो या हब्शी प्रजाति को माना जाता है। भारत की जनजातियाँ अनेक उपजातियों में विभाजित हैं जो स्वयं अपने आप में परिपूर्ण है। इनमें से प्रत्येक की ऐसी उपजातियाँ हैं जिनके अपने रीति-रिवाज हैं किन्तु इन सभी जनजातियों में कुछ सामान्य विशेषताएँ अलग पाई जाती हैं। ये जनजातियाँ एक भौगोलिक प्रदेश में, सभ्य जगत से दूर, एकाकी जीवन व्यतीत करती है जिनका निवास-स्थान मुख्यत: वनों तथा पहाड़ी भागों में है जहाँ सामान्यत: पहुँचना कठिन होता है। ये परम्परागत हिन्दू जाति के संगठन क्रम में सम्मिलित नहीं की जाती वरन् ये अपने आपको एक अर्द्ध-राष्ट्रीय इकाई का समूह मानती हैं, जिनके अपने विश्वास, रीति-रिवाज, नीति, आचार-विचार हैं और जो ऐसे प्राचीन धर्म को मानती है, जिसे जीववाद कहा जाता है। इनके विचार में ईश्वर एक है, परन्तु देवताओं की संख्या बहुत अधिक है। इन आदिवासी समाज के लोगों को आत्मा में विश्वास है तथा ये पहाड़ों, पौधों, पत्थरों आदि की पूजा करते हैं। इनको तो जादू-टोना, भूत-प्रेत इत्यादि में भी विश्वास है। अब ऐसे जनजाति समाज के लोग अधिकाधिक ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिए हैं तथा कुछ लोग बौद्ध धर्म को भी मानने लगे हैं। हिन्दू धर्म में इनकी आस्था लगातार कम हो रही है। हालांकि इनके पूर्वज अधिकाधिक हिन्दू समाज से ही जुड़े रहे हैं। ये लोग भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर अलग-अलग भाषा और संस्कृति को अपना रहे हैं तथा उसी परिप्रेक्ष्य में इनका धार्मिक दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो रहा है। ये पुराने ढंग की आर्थिक क्रियाओं से जीवन-यापन करते हैं-वनों से कन्द-मूल-फल एकत्रित करना, नदियों से मछलियाँ पकड़ना अथवा घने वनों से पशुओं का शिकार करना, प्राचीन ढंग से सरकती हुई खेती करना या कहीं-कहीं आधुनिक ढंग के औजारों से खेती करना। बिरहोर, खरिया, हिल-मारिया, मालापत्रम, कड़ार और पनियान शिकार और वन जन्तुओं संग्रहण करते हैं। भूमिया, जुआंग, खोंड, नागा, बैगा और पौटी जनजातियाँ सरकती हुई खेती करती है। हो, संथालल, ओराँव (उराँव), भील, गरासिया, गोंड, बैगा, मुँडा, मझवार एवं करवार एक स्थान पर स्थायी खेती करते हैं। अब संथाल, गोंड, भील, खोंड मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा और राजस्थान में खानों में भी काम करने लगे हैं। ये अधिकांशत: माँसाहारी होते हैं जो बन्दर, चूहे, खरगोश, गिलहरी और चिड़ियों का माँस खाते हैं; किन्तु मिलने पर मोटे अनाज, चावल, कंदमूल फल, बेर, वृक्षों की पत्तियाँ, शहर का भी उपयोग करते हैं। जो जनजातियाँ भीतरी क्षेत्रों में रहती हैं, वे आज भी प्राय: नग्न या अर्द्ध-नग्न अवस्था में रहती है और केवल अपने गुप्तांगों को अथवा वृक्षस्थल को वृक्षों के चौड़े पत्तों, छालों से ढक लेते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से ये एक ही जनजातीय भाषा बोलती हैं जिनका सम्बन्ध ऑस्ट्रोएशियाटिक, द्राविड़ियन-आदिवासी या तिब्बती-चीनी भाषा परिवार से हैं। ये प्राय: खानाबदोश होते हैं जो अपने पशुओं के झुण्डों के साथ घास के लिए घूमते रहते है। गद्दी, बंजारा, कुरूम्बा, कुरूबान, गारो आदि ऐसी ही प्रजातियाँ हैं।

भारतीय जनजातियाँ मुख्य रूप से वनों और पहाड़ों के ऐसे भागों में रहती है जो बंजर है या बहुत ही कम बसे हैं। ये क्षेत्र सम्पूर्ण पूर्वी सतपुड़ा पर्वत में फैले हैं और गुजरात की पूर्वी सीमा से होते हुए मध्य भारतीय पठार के दक्षिण से होते हुए विन्ध्याचल पर्वत से पूरब और पश्चिम की ओर चले गये हैं। दूसरा बड़ा क्षेत्र, जहाँ ये बड़ी संख्या में पायी जाती है, असम के बाहर की ओर फैली

पहाड़ियाँ और वह पहाड़ी प्रदेश है जो असम को बर्मा से अलग करता है। भारतीय जनजातियों का वितरण तीन मुख्य प्रदेशों/क्षेत्रों में केन्द्रित पाया जाता हैं:

1. उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी प्रदेश: इस प्रदेश में हिमालय के उप-प्रदेश तथा भारत की पूर्वी और उत्तरी-पूर्वी सीमान्त की पहाड़ियाँ, तिस्ता घाटी और ब्रह्मपुत्र नदी का जमुना-पद्मा वाला भाग सम्मिलित होता है जो पश्चिम में लगभग 31°7" और 35° उत्तरी अक्षांश तथा पूरब में 23°30" और 28°O' उत्तरी अक्षांश और 77°33' और पूर्वी और 97°'0' पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला है। इस प्रदेष्ठा की जनजातियाँ, असम, अरुणाचल प्रदेश, नगालैण्ड, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर और त्रिपुरा राज्यों में केन्द्रित पायी जाती है। पश्चिम की ओर जनजातीय क्षेत्र पूर्वी कश्मीर से लगाकर हिमाचल प्रदेश होता हुआ उत्तर प्रदेश की तराई तक फैला है।

असम, अरुणाचल प्रदेश और तिब्बत के निकटवर्ती भागों में ये प्रमुख जनजातियाँ निवास करती है[4]: (i) सुबनसिरी नदी के पश्चिम में आका, डफला, मीरी, गुरूंग और अपात्तानी। (ii) दिहांग नदी की घाटी में गलोंग, मिनीपांग, पासी, पदम और पांगी। (iii) दिहांग और लोहित नदियों की घाटियों में मिश्मी जनजातियाँ। (iv) पूर्वी क्षेत्रों में डिगारी और मेजू तथा पश्चिमी क्षेत्रों में चुलीकाटा और बेलजियास। (v) सुदूरपूर्व में खामती और सिंगपो। (vi) इन सबके भी आगे पटकोई श्रेणियों की घाटियों में अनेक नागा जातियाँ पायी जाती हैं। इनमें 5 मुख्य समूह है: (a) उत्तरी भाग में रंगपान और कोनायक; (b) पश्चिमी भाग में रेंगमा, सेमा और अंगामी; (c) मध्यवर्ती भाग में फोम ल्होटा, नागा, चांग, संताम और यिमसुंगर; (d) दक्षिणी भाग में कबुई और कच्छा; तथा (e) पूर्वी भाग में तुंगकुल और कोल्यो कैंगू।

नागा पहाड़ियों के दक्षिण में मणिपुर, मेघालय राज्यों वाले क्षेत्र में कूकी, लुशाई, लखेर, चिन, खासी और गारो जनजातियाँ रहती हैं जिनमें से अनेक पूर्वी सीमान्त की ओर से आयी हैं। उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी प्रदेश की जनजातियाँ मुख्यत: मंगोलॉयड प्रजातियों के अवशेष हैं। इनमें इन्हीं के शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं। मातृसत्तात्मक परिवारों की अधिकता है। हिमालय के उप-प्रदेश में सिक्किम और दार्जिलिंग के उत्तरी भागों में अनेक जनजातियाँ पायी जाती है, जिनमें लैपचा सबसे अधिक उल्लेखनीय है। तराई क्षेत्र में पारू, भोकसा, खासों, भोटिया, भुइया, मांझी, चेरी, राजी, बेजर और खरंधार जनजातियाँ मिलती हैं।

2. मध्यवर्ती प्रदेश: यह प्रदेश उत्तरी-पूर्वी प्रदेश से गारो और राजमहल की पहाड़ियों द्वारा पृथक हो गया है। इसके अन्तर्गत प्रायद्वीपीय भारत के पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं जो उत्तर में गंगा और नर्मदा नदी तथा दक्षिण में कृष्णा नदी के बीच में फैले हैं। यह प्रदेश 20°O' उत्तर से 25°O' उत्तर अक्षांष्ठा और 73°O' से 90°O' पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। इस प्रदेश में जनजातियों के क्षेत्र मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, झारखण्ड और उड़ीसा में फैले हैं। दक्षिणी गुजरात और बस्तर इस क्षेत्र की बाहरी सीमा बनाते हैं। इस क्षेत्र को सबसे महत्वपूर्ण जनजातियाँ घाट से लेकर उड़ीसा की पहाड़ियों तक निवास करती है। (i) उड़ीसा की पहाड़ियों में जुआँग, हड़िया, खोरे, भूमिज, अबर, भूईयाँ जनजाति रहती ह ।
(ii) उड़ीसा के गंजाम जिले में सवारा, गड़ावा और बोडो जनजाति के लोग निवास करते हैं। (iii) छोटानागपुर के पठारों पर मुण्डा, संस्थाल, ओड़ाव, अवर, बिड़होर जैसी जनजातियाँ निवास करती है। (iv) आंध्र प्रदेश तथा छतीसगढ़ में गोड जैसे जनजाति का निवास है। (v) पश्चिम की ओर विन्ध्यमाचल की पहाड़ियों में कोल, कटकारी, भील जनजाति के लोग निवास करते हैं। इनका प्रसार अरावली की पहाड़ियों तक है। (vi) बस्तर क्षेत्र में भारत की सबसे अनोखी किस्म की जनजाति निवास करती है, जो शारीरिक रूप में भी अन्य जनजातियों से अलग दिखती है। ऐसे जनजातियों को मूरिया, पहाड़ी, विसनहार्न कहा जाता है।

3. दक्षिणी प्रदेश: जनजातियों का तीसरा प्रमुख वर्ग पश्चिमी घाट के सबसे दक्षिणी भाग में पाया जाता है। यह क्षेत्र वायनाड से कन्याकुमारी तक 8° से 20° उत्तरी अक्षांश और 75° से 85° पूर्वी देशान्तरों के बीच में फैला है। ये लोग आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु राज्यों में रहते हैं। इनका सीमान्त प्रदेशों पर रहना ही इस बात का प्रमाण है कि ये भारत के प्राचीनतम निवासी है जिन्हें अधिक सभ्य और उन्नत प्रजातियों ने पीछे हटाकर वर्तमान स्थान पर रहने के लिए बाध्य कर दिया। इन स्थानों पर उन्हें सुरक्षा और शरण प्राप्त हुई। (a) उत्तर-पूर्व में आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के पार नल्लामलाई पहाड़ियों के अर्द्धगोलाकार भाग में चेंचू जनजाति रहती है। (b) पश्चिमी घाट के सहारे दक्षिण कन्नड़, कुर्ग की पहाड़ियों के निचले ढालू इलाके में युरूवा और टोडा रहते हैं। (c) वायनाड में इरूला, चेंचू, पनियान और कुरुम्बा जनजातियाँ पायी जाती है। (d) केरल और वानकोर की पहाड़ी श्रेणियों से लगाकर कन्याकुमारी तक के सम्पूर्ण पहाड़ी भागों में भारत की कुछ प्राचीनतम जनजातियाँ मिलती है जिनमें कड़ार, कन्निकट,

मुथूवान, शेलीगा, यूराली, मालवदान, मालकुरवान और मामलापात्रम् मुख्य है। यूराली, कड़ार, पनियान और इरूला जनजातियों में नीग्रिटो प्रजाति के अंश है।

4. अण्डमान निकोबार द्वीपों का एकाकी प्रदेश: उपरोक्त तीन भौगोलिक क्षेत्रों के अतिरिक्त एक छोटा एकाकी क्षेत्र और है जिसके अन्तर्गत अण्डमान-निकोबार द्वीप सम्मिलित किये जाते हैं। इस क्षेत्र में ओंग, जरावा उत्तरी सण्टीली, अण्डमानी और निकोबारी जनजातियाँ रहती है। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से ये भारत के प्रमुख आदिवासियों से पृथक् है किन्तु जनजातीय विशेषताओं के दृष्टिकोण से ये भारत की प्रमुख जनजातियों से ही सम्बन्धित है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस रिसर्च आर्टिकल्स का उद्देश्य भारत में जनजाति की स्थिति तथा भौगोलिक वितरण का अवलोकन करना है। भारत में जनजाति समाज के सभी वर्गों को अनुसूचित जनजाति नहीं माना गया है। इस बात को भी स्पष्ट करना प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। स्पष्टत: प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के अध्ययन का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट और सर्वविदित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल का शीर्षक "भारत में जनजातियों का भौगोलिक वितरण: एक अवलोकन" है। इसके अनतर्गत भारत के जनजातियों के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी तथा भौगोलिक वितरण का वर्णन अपेक्षित है। इस रिसर्च आर्टिकल में यह परिकल्पना निर्धारित किया जाता है कि भविष्य में भारतीय समान में जनजातियों की विशिष्ट पहचान एवं संस्कृति विलुप्त हो जायेगी। 21वीं शताब्दी के मध्य तक भारत में जनजातियों के जीवन स्तर में अपार सुधार होगा तथा उनका सामाजिक स्तरीकरण भी उच्च हो जायेगी।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध अध्ययन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुख्यत: प्राथमिक आँकड़ों का सहारा लिया गया है तथा कुछ द्वितीयक आँकड़ों का भी उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण स्वावलोकन किया गया है। साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों का नाम प्रमुख है:

1. भारत का भूगोल, डॉ० चतुर्भज मामोरिया व जे०पी० मिश्रा, साहित्य भवन, आगरा।
2. मानवी व आर्थिक भूगोल, सिद्धार्थ सोनवर्ण, अथर्व पब्लिकेशन, महाराष्ट्र।
3. भारत लोग और अर्थव्यवस्था, छब्म्त्ज्
4. पर्यावरण भूगोल, डॉ० रतन जोशी, साहित्य भवन, आगरा
5. इंडिया, ए० कम्प्रीहैन्सीव ज्योग्राफी, डी० आर० खुल्लर, इंडियामार्ट

शोध की पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख का विषय भारत में जनजातियों का भौगोलिक वितरण: एक अवलोकन' है। इससे संबंधित पृष्ठभूमि तथा वर्तमान स्वरूप के विवेचन हेतु ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग उपयुक्त है। प्रस्तुत शोध आलेख में ऐतिहासिक पद्धति के अतिरिक्त तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक पद्धति का प्रयोग है।

निष्कर्ष

बाह्य सम्पर्क एवं आधुनिकीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप जनजातियों की सामाजिक संरचना और संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुए हैं। बिहार के मुशार एवं भुइया, पालामऊ की पहाड़ी, दीनाजपुर और जलपाईगुड़ी के कूब; बिहार के पोलिया; उत्तर प्रदेश की थारू; छोटा नागपुर की मुण्डा और कोल जाति-व्यवस्था में सम्मिलित हुई है। ये जनजातियों सत्यनारायण की कथा एवं हनुमान चालीसा का पाठ करती हैं। शराब पीना एवं गौ-माँसा खाना छोड़ चुकी हैं तथा ग्रहण के समय पुरोहित की सेवाओं का उपयोग करती है। अब ये हिन्दुओं के त्योहारों एवं उत्सवों जैसे दीवाली, होली, दशहरा आदि मनाती है। विवाह के समय हवन करती है। एकादशी, पूर्णिमा, शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि का व्रत रखती है। कई जनजातियों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया है। इनमें नागा, गारो,

भील, गोंड एवं छोटा नागपुर था उत्तर-पूर्वी सीमा प्रान्तों की अनेक जनजातियाँ हैं। हिन्दुओं एवं ईसाइयों से सम्पर्क के कारण इनकी परिवार, विवाह, गोत्र एवं नातेदारी संस्थाओं में परिवर्तन हुए हैं। कई क्षेत्रों की जनजातियाँ बहु-विवाही प्रथा के स्थान पर एक-विवाह को अपना रही हैं। संयुक्त परिवार प्रथा का पालन करने वाली जनजातियाँ एकाकी परिवार प्रणाली अपना रही है। इनकी गोत्र व्यवस्था शिथिल हो रही है। पहले गोत्र संगठन ही जनजातियों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक जीवन का आधार था, परन्तु अब गोत्र का अपने सदस्यों पर नियन्त्रण शिथिल होता जा रहा है। नातेदारी व्यवस्था आज भी अपनी भूमिका निभा रही है, यद्यपि ऐसे सम्बन्धों में शिथिलता एवं औपचारिकता आने लगी है। हठ विवाह, पलायन विवाह, क्रय विवाह, विनिमय विवाह, परीक्षा विवाह एवं परिवीक्षा विवाह की प्रथाओं में परिवर्तन आ रहा है और इस प्रकार के विवाहों की संख्या दिनोंदिन कम होती जा रही है साथ हीं जनजातीय सामाजिक स्तरीकरण में भी परिवर्तन हुआ है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. एल० पी० विद्यार्थी और बी०के० राज, ट्राइवल क्लचर इन इंडिया, 1977, पृष्ठ-29
2. सी०बी० मेमेरिया, इंडियाज पोपुलेशन पोब्लेज, 1981, पृष्ठ-193
3. तथैव, पृष्ठ-185
4. तथैव, पृष्ठ-201-203

बिहार का निर्माण एवं राष्ट्रवादी भावना का विकास

डॉ० राज भूषण उपाध्याय

एम०ए०, पी-एच०डी०, यू०जी०सी०, नेट (इतिहास)

भारत के इतिहास में बिहार का स्थान अद्वितीय है। बिहार भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की क्रीड़ा भूमि रहा है। युगों के अंतराल में मानव प्रतिभा यहाँ अभिनव रूपों में व्यक्त होती रही है, जिससे सारा विश्व लाभान्वित हुआ है। इसी भूमि ने दुनिया को सबसे पहला गणतंत्र दिया और सत्ता में जनता की भूमिका को उजागर किया। इसी धरती पर भारत का पहला सम्राज्य स्थापित हुआ, जिसके नेतृत्व में पूरे देश के एकीकरण का सफल प्रयास हुआ। बिहार ने प्रारंभ से ही रूढ़ीवादिता एवं शोषण के खिलाफ सघर्ष किया। आधुनिक काल में ब्रिटिश साम्राज्य के शोषणकारी नीतियों का विरोध करने में इसने अग्रणी भूमिका निभाई। वास्तव में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सबसे पहला चुनौती बंगाल के अपदस्थ नबाव मीरकासिम से मिला। मीरकासिम पटना के लोहानीपुर मुहल्ला का रहने वाला था।[1]

बिहार प्राचीन काल से ही सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक चेतना का केन्द्र-बिन्दु रहा है। चन्द्रगुप्त, अशोक जैसे महान शासक, गुरू गोविन्द सरीखे धर्मगुरू का सीधा संबंध बिहार की मिट्टी से रहा है। गौतम बुद्ध तथा महावीर को ज्ञान दीप्ति बिहार से ही मिली, जिसके फलस्वरूप उनका धर्म दुनिया के कोने-कोने तक पहुँचा। शिक्षा के क्षेत्र में नालन्दा और विक्रमशीला जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालय बिहार में ही थी।

मध्यकाल में बिहार मुगल सत्ता के विरुद्ध अफगानों की चुनौती का केन्द्र रहा। महान शासक शेरशाह की कर्मभूमि बिहार में ही थी। यह क्षेत्र उसके प्रशासनिक सुधारों का प्रयोगशाला रहा। उन दिनों बिहार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र भी था। इसे पूर्वी हिन्दुस्तान की कुंजी समझा जाता था। अकबर के प्रशासनिक पुनर्गठन में बिहार को 'सूबा' का दर्जा मिला था जिसमें सात सरकारें तथा 199 परगना था। उत्तरवर्ती मुगल शासकों ने बिहार के लिए पृथक 'नयाब-नाजिम' की नियुक्ति की थी जो दिल्ली दरबार के प्रति उत्तरदायी होते हुए, प्रांतीय प्रशासन की देखभाल करता था। परन्तु 1764 ई० की बक्सर की लड़ाई के बार दिल्ली के एक कमजोर बादशाह शाह आलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी, फिर भी बिहार के लिए एक नायाब-नाजिम बहाल होता रहा।

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1600 ई० में हुई। अंग्रेजों ने बंगाल में अपनी प्रथम कोठी (गोदाम) की स्थापना 1651 ई० में शाहशुजा की अनुमति के उपरान्त की।[2] उन दिनों बिहार बंगाल का हिस्सा हुआ करता था। शीघ्र ही अंग्रेजों ने कासिम बाजार, पटना तथा अन्य स्थानों पर कोठिया बना लीं। फिर 1717 ई० में सम्राट फर्रूखसियर ने पुराने सुबदारों द्वारा दी गई व्यापारिक रियासतों की पुन: पुष्टि कर दी तथा उन्हें कलकत्ता के आस-पास के अन्य क्षेत्रों को भी किराए पर लेने की अनुमति दे दी।[3] इस प्रकार हम पाते हैं कि अंग्रेजों की व्यापारिक गतिविधियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और आनेवाले दिनों में यह भारत के शासन का प्रमुख बन बैठा। यह अंग्रजों की कुटनीतिज्ञ चाल का परिणाम था। हालांकि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति का विरोध प्रारम्भ से ही होने लगा था। विभिन्न शोधों से ज्ञात होता है कि भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् ही बिहार में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय भावना निरंतर जागृत होती रही। 1764 ई० की बक्सर की लड़ाई के बाद दिल्ली के सम्राट शाह आलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी। बिहार ईस्ट इंडिया कम्पनी से कभी भी सामंजस्य नहीं कर सका और कम्पनी के शासन के विरुद्ध छिटपुट विद्रोह अक्सर होते रहे। इन विद्रोहों में 1781-82 में संथाल परगना जिले (महेशपुर) के सुल्तानाबाद की रानी

सर्वेश्वरी का विद्रोह, 1820-21 ई० का होज विद्रोह, 1831-33 का कोल विद्रोह, 1855-56 का संथाल विद्रोह, 1857 ई० की क्रांति, वहाबी आन्दोलन तथा बिरसा आन्दोलन महत्वपूर्ण हैं। इन सभी विद्रोहों का मुख्य कारण लगान की बढ़ोतरी, बेगारी तथा महाजनों द्वारा मनमाने सूद की वसूली थी। राजनीतिक चेतना के विकास में छोटानागपुर के बिरसा आन्दोलन ने काफी योगदान दिया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का बल मिला। अंग्रेजी भाषा जब शिक्षा का माध्यम बन गई, तब भारत के सभी प्रांतों में भाषा-विभिन्नता लुप्त हो गई और भारतीयों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से विचार-विनिमय करने की सुगता प्राप्त हुई। भारतीयों में विदेशी पुस्तकों के अध्ययन के प्रति जागरूकता आयी, जिससे लोगों को विदेशी गतिविधियों एवं उन सब की संस्कृति की जानकार हुई। इसी समय राजाराम मोहरन राय ने बंगाल में ब्रह्म समाज आन्दोलन प्रारंभ किया जिससे लोग देश और समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य समझने लगे। उन्हीं दिनों राजा राममोहन राय मुस्लिम धर्म-ग्रंथों के अध्ययन हेतु पटना आये थे। राजा राममोहन राय आधुनिक भारत के अग्रदूत थे।[4] उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज की कई शाखाएँ भारत के कई भागों में खुल चुकी थी। परन्तु बिहार में ब्रह्म समाज का जोरदार प्रसार 1868 ई० से शुरू हुआ, जब केशवचन्द्र सेन मुंगेर आये। ब्रह्म समाज के अनुयायियों ने पाश्चात्य शिक्षा पर भी जोर दिया, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे बिहार में विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थापना होने लगी। उन दिनों बिहार में उच्च शिक्षा का केन्द्र पटना कॉलेज ही था, जिसकी स्थापना 1863 ई० में हुई। पटना कॉलेज बिहार में राजनीतिक गतिविधियों का भी केन्द्र रहा है। इस कॉलेज के प्रांगन में कई सभाओं का आयोजन किया गया था जो राजनीतिक गतिवधियों को एक नई दिशा प्रदान की। 1880 ई० के बाद टी०एन०जे० कॉलेज (भागलपुर), जी०बी०बी० कॉलेज (मुजफ्फरपुर), बी०एन० कॉलेज (पटना), आर०डी० एण्ड जे० कॉलेज (मुंगेर) तथा संता कोलम्बस कॉलेज (हजारीबाग) खोले गये। अधोर कामिनी देवी ने पटना में 1891 ई० में प्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना की। इस प्रकार लोगों का ध्यान शिक्षा प्राप्ति के प्रति जागृत होने लगी। ब्रह्म समाज से प्रभावित होकर बिहार के कायस्थ तथा भूमिहर जाति के लोग सर्वप्रथम अंग्रेजी शिक्षा के सम्पर्क में आये, जिसके फलस्वरूप उनमें समाज सुधार की भावना जगी। उन्हीं दिनों शाहाबाद में मुंशी प्यारे लाल का समाज-सुधार आन्दोलन भी जोरों पर चल रहा था। मुंशी प्यारे लाल ने तिलक-दहेज की प्रथा का अन्त करने के लिए 'सदर अंजुमन-ए-हिन्द' नाम एक संस्था की स्थापना की थी, जिसकी शाखाएँ शाहाबाद, पटना, गया, सारण, चम्पारण, मुजफ्फरपुर आदि स्थानों में स्थापित हो गई थी। विभिन्न स्रोतों से ज्ञात होता है कि इस संस्था में सभी जाति के सदस्य थे, फिर भी कायस्थों की संख्या सबसे अधिक थी। 1889 में प्रथम कायस्थ सम्मेलन हुआ और 1889 ई० में प्रथम भूमिहर सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इन सम्मेलनों का उद्देश्यों लोगों को आधुनिक राजनीतिक चेतना के प्रति आकर्षित करना था। साथ ही इन सम्मेलनों ने समाज-सुधार की दिशा में भी काफी पहल की।[5]

1885 ई० से भारत के इतिहास में एक नया युग का आरम्भ होता है, जब भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के नाम से एक अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था का जन्म हुआ। तब से भारतीयों के मन में राजनीतिक जागरण अधिकाधिक उभरता चला गया।[6] बिहारवासियों में भी राजनीतिक चेतना प्रबल होती गई। जैसा कि ज्ञात होता है कि काँग्रेस के कार्यकलापों में बिहार के लोग काफी दिलचस्पी लेने लगे तथा प्रतिवर्ष काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में बिहार का भी प्रतिनिधित्व होता रहा। फिर भी बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा का गठबन्धन बिहार के प्रगति के लिए बाधक सिद्ध हुआ। उन दिनों राष्ट्रीयता का केन्द्र बंगाल हुआ करता था और काँग्रेस की गतिवधियों का संचालन भी वही से हो रहा था। अत: आगे चलकर बंगाल विभाजन की घोषणा के साथ ही बिहारियों ने बिहार बंगाल से अलग करने की माँग कर दी और जिसकी अन्तिम परिणति 1912 में हुई। पृथक बिहार की माँग आन्दोलन के नायक महेश नारायण, सच्चिदानन्द सिन्हा, नन्द किशोर लाल, कृष्णा सहाय ने इस आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए बिहार टाइम्स नाम पत्र निकालना आरम्भ किया।[7] बिहार टाइम्स के प्रकाशन के साथ ही बिहार पृथक्करण आन्दोलन की गति भी तीव्र हो गई। इस संबंध में अनेक लेख छपे, जिसमें लोगों को बतलाया गया कि बिहार और बंगाल का गठबंधन बिहार के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक प्रगति के मार्ग में बाधक है। बिहार हेराल्ड के सम्पादक गुरू प्रसाद सेन ने बिहार के पृथक्करण के विरूद्ध अनेक लेख लिखें।

1894 ई० में जब सरकारी अधिकारियों के बीच बंगाल के विभाजन की बात चल रही थी, तब बिहारी नेताओं ने सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अगर प्रशासकीय दृष्टिकोण से बंगाल का विभाजन आवश्यक हो तो बिहार को ही बंगाल से अलग कर दिया जाय। इसी समय बंगाल के उप राज्यपाल अलेक्जेण्डर मैकेन्जी को एक ज्ञापन सौंपा गया, जिसमें बिहार को बंगाल से अलग करने की माँग को अस्वीकार कर दिया फिर भी बिहार नेताओं के प्रयास जारी रहे।

सच्चिदानन्द सिन्हा ने फरवरी, 1904 ई० के हिन्दुस्तान रिव्यू में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था, 'दि पार्टिशन ऑफ दि लोअर प्रोविन्सेज : ऐन अल्टरनेटिव प्रोपोजल'। इसी शीर्षक से दूसरा लेख अगस्त, 1905 ई० के हिन्दुस्तान रिव्यू में महेश नारायण

ने लिखा। दोनों लेखों को मिलाकर जनवरी, 1906 ई० में एक पुस्तक प्रकाशित की गई जिसका नाम 'पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरेशन ऑफ बिहार' रखा गया। इस पुस्तक में इन्होंने यह प्रमाणित किया कि बंगाल और बिहार ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई, जीवनशैली, खान-पान, सामाजिक रीति-रिवाज आदि दृष्टिकोणों से एक-दूसरे से अलग है।

1905 ई० में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया, तब बिहारी नेताओं ने बंग-भंग के विरूद्ध चल रहे आन्दोलन में भाग नहीं लिया, क्योंकि वे समझते थे कि वैसा करने पर उनकी माँग कमजोर पड़ जायेगी। 1906 ई० में पहला बिहारी छात्र सम्मेलन पटना कॉलेज में पटना के प्रमुख बैरिस्टर शर्फुद्दीन के सभापतित्व में हुआ। इसमें बिहार के सभी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के छात्र सम्मिलित हुए। बिहारी छात्र सम्मेलन ने बिहार में एक नया जागरण ला दिया। इस सम्मेलन ने सच्चिदानन्द तथा महेश नारायण के सपनों को साकार बनाने में गति प्रदान की। बिहार प्रदेश काँग्रेस कमिटी के अधिवेशनों में भी बिहार को अलग प्रान्त बनाने की माँग दुहराई जाती रही। बिहार की आकांक्षा उस समय पुरी हुई, जब 1908 में अली इमाम को कलकत्ता उच्च न्यायालय में भारत सरकार के स्थायी विधि परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया गया। पृथक बिहार आन्दोलन में उच्चवर्गीय शिक्षित मुसलमान जैसे सैयद अली इमाम, हसन इमाम, मो० फखरूद्दीन और मजरूल हक आदि जुड़ गए।

12 दिसम्बर, 1911 ई० को जब दिल्ली में शाही दरबार का आयोजन इंगलैंड के सम्राट जार्ज पंचम् एवं महारानी मेरी के स्वागत में किया गया तब ब्रिटिश सम्राट ने बिहार और उड़ीसा को मिलाकर एक नए प्रान्त बनाने की घोषणा की। 22 मार्च, 1912 ई० को ब्रिटेन में यह विधेयक पारित कर दिया गया और 1 अप्रैल, 1912 ई० को विधिवत बिहार का अस्तित्व नए प्रदेश के रूप में कायम हो गया।

नए प्रांत के रूप में गठन के बाद बिहार में आधुनिक राजनीतिक चेतना का विकास काफी तीव्र गति से होने लगा। अलग प्रान्त के अस्तित्व में आते ही यहाँ काँग्रेस की गतिवधियों में काफी बढ़ोत्तरी हुई तथा राष्ट्रीय संचेतनाका विकास हुआ। इसमें कोई शक नहीं है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का पृष्ठाधार तैयार करने में बिहार के कई लोकप्रिय विद्रोहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन लोकप्रिय विद्रोहों में कोल विद्रोह[8], संथाल विद्रोह[9], वहाबी आन्दोलन[10] एवं 1857 में वीर कुँवर[11] के नेतृत्व में चलाए गए आन्दोलन प्रमुख माना जा सकता है। ये आन्दोलन निश्चित रूप से ब्रिटिश शासन तंत्र, जमींदार साहुकार, सूदखोर एवं गुमाश्तों के शोषण के खिलाफ थे। इनमें ब्रिटिश राज्य को भारत से उखाड़ फेंकने की राजनीतिक चेतना परिपक्व नहीं हुई थी, लेकिन धीरे-धीरे विद्रोहियों में यह चेतना पैदा होने लगी थी कि उनके शोषण के जड़ में किसी न किसी रूप में ब्रिटिश राज्य की संलिप्तता है।

1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। इसके संस्थापकों का उद्देश्य ब्रिटिश राज के साथ सहयोग करके भारत के लोगों के लिए अधिकाधिक सुविधा प्राप्त करना था। प्रारंभिक नेतागण प्रार्थना-पत्र एवं स्मार-पत्र के माध्यम से ब्रिटिश सरकार का ध्यान भारत के लोगों की समस्याओं की ओर आकर्षित करना चाहते थे और उनका समाधान संवैधानिक ढंग से करना चाहते थे। शीघ्र ही काँग्रेस के अन्दर ही ब्रिटिश राज के साथ सहयोग करने की नीति पर मतभेद पैदा हुआ और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में जुझरू राष्ट्रवाद का जन्म हुआ, फिर भी काँग्रेस अपने कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए सड़कों पर उतरना शुरू नहीं किया था। काँग्रेस के स्वर धीरे-धीरे तेज हो रहे थे, लेकिन काँग्रेस के साथ जन साधारण का जुड़ाव नहीं हो पाया था। काँग्रेस को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने तथा इसे जनसाधारण के बीच ले जाने का श्रेय महात्मा गाँधी को दिया जाता है।

बिहार लम्बे समय तक बंगाल सूबा का अभिन्न अंग बना रहा था। बिहार का अपना स्वतंत्र अस्तित्व मिट सा गया था। बिहार के प्रशासनिक एवं अन्य ऊँचे पदों पर बंगाल के लोग काबिज थे। बिहार पुनर्जागरण के दौर से गुजार नहीं पाया था और यहाँ कोई ऐसा प्रतीक नहीं था, जिसके इर्द-गिर्द सारे बिहार के लोग एकजूट हो पाते और उनमें बिहारीपन की भावना पैदा हो पाती। जाति व्यवस्था यहाँ की सबसे बड़ी सामाजिक विशेषता थी और साथ ही साथ सबसे बड़ी सच्चाई भी। बिहार क्षेत्रवाद के नाम पर, जातिवादी के नाम पर एवं धर्म के नाम पर विभिन्न इकाइयों में बिखंडित था। सर्वत्र निराशा एवं जड़ता का वातावरण था। ऐसे ही निराशाजनक वातावरण में बिहार के मध्यमवर्गीय लोगों ने अंग्रेजी शिक्षा को अपनाया। दूर-दराज के क्षेत्रों में जाकर अपनी शिक्षा पूरी की और वहीं पर नौकरी करने के लिए विवश हुए, क्योंकि उनके लिए अपने प्रान्त में कोई नौकरी नहीं थी, क्योंकि उनका प्रान्त कोई एक स्वतंत्र इकाई नहीं था। कुछ सीमांत जमींदारों ने भी आधुनिक शिक्षा को अपनाया और उनमें भी यह ललक पैदा हुई कि वे अपने बच्चों को सरकारी नौकरियों के लिए तैयार करें। इस तरह मध्यम व्यावसायिक वर्ग एवं सीमांत जमींदारों के बीच एक प्रगाढ़

संबंध कायम हुआ और उन्होंने मिलकर बड़े जमींदारों के खिलाफ वातावरण तैयार किया। उन्हें लगा कि बिहार को अपना स्वतंत्र हैसियत मिलना ही चाहिए और इसके लिए सच्चिदानन्द सिन्हा, महेश नारायण, सर अली इमाम जैसे प्रबुद्ध लोगों के नेतृत्व में अलग बिहार प्रान्त बनाओ आन्दोलन की शुरूआत हुई।[12]

नये बिहार प्रान्त के गठन का आन्दोलन ने बिहार के लोगों को पहली बार एक प्लेटफार्म पर आने का मौका प्रदान किया। बिहार के लोग अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी से भी जुड़े रहे। ब्रजकिशोर प्रसाद, सच्चिदानन्द सिन्हा, मौलाना मजहरूल हक, हसन इमाम सरीखे नेतागण काँग्रेस में सक्रिय भूमिका निभाते रहे, लेकिन उनकी गतिविधि अपने लिए एक अलग प्रांत बनाने पर ज्यादा थी। बिहार में इस समय एक नई सामाजिक चेतना ने जन्म लेना शुरू कर दिया था। कायस्थों ने सबसे पहले कायस्थ महासभा की स्थापना की और अपनी जाति के बच्चों को शिक्षित करने के लिए पाठशालाओं की स्थापन की। निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी, बिना दहेज लिए शादी करने पर जोर दिया गया। कायस्थों की देखादेखी भूमिहार ब्राह्मणों ने, राजपूतों ने, मैथिल ब्राह्मणाों ने भी अपने संगठन कायम किये और अपनी जाति के अन्तर्गत व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। पिछड़ी जातियों विशेषकर कुर्मी, कोयरी, ग्वालों एवं दुसाधों में भी जातिगत चेतना का उभार देखने को मिला। उनके बीच भी समाज सुधार आन्दोलन एवं शैक्षिक आन्दोलन जोर पकड़ने लगे। जातिगत संगठन सामाजिक हैसियत के साथ-साथ राजनीतिक भागीदारी के भी पर्याय बने। जातिगत मतभेदों के बावजूद जाति के नेताओं में आधुनिक राजनीतिक संचेतना का भी विकास होने लगे जो आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन को संबल प्रदान किया।

बंग-भंग आन्दोलन के दौरान बिहार में पृथक्करण आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। बिहार के सभी जिलों में सभा की गई तथा इसमें बिहार को बंगाल से पृथक् करने का प्रस्ताव पास किया गया। कई लोगों ने 16 अक्टूबर, 1905 को इस माँग पर प्रकाश डालने के लिए खाना तक नहीं खाया। इस आन्दोलन के दौरान बिहार के नेताओं ने बिहारियों के नाम एक अपील की थी, जिसमें बिहार के भूतपूर्व गौरव का ध्यान दिलाते हुए कहा गया था कि जिस बिहार ने अतीत में पूरे देश को अपने ज्ञान-प्रकाश से आलोकित किया था, वही आज उपेक्षित है तथा बंगाल के अनुसरण से अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। अत: बिहारियों का आह्वान किया गया था कि बिहार को बंगाल से पृथक कर पुन: इसके अतीत के गौरव के पद पर आसीन करें। इसमें बिहार के अज्ञान के अंधकार से अलग करने के लिए अथक परिश्रम करने की अपील भी की गई।

बंग-भंग के दौरान ही अंग्रेजों द्वारा कुछ ऐसे लाभ बिहारियों को मिले जिससे पृथक् बिहार को बल मिला। इसके साथ बिहार के पृथक्करण आन्दोलन को एक आधार भी मिला। सर्फुद्दीन 1907 ई० में हाईकोर्ट के न्यायाधीश नियुक्त हुए। 1908 ई० में कलकत्ता हाईकोर्ट में अली इमाम को भारत सरकार के स्थायी परामर्शदाता नियुक्त किया गया। इन नियुक्तियों से बिहाररियों में आत्मसम्मान का विकास हुआ। यह नियुक्ति बिहारियों को पहली बार नसीब हुई थी। इस बात का भी संकेत था कि अंग्रेज का बंगालियों से मोहभंग होना शुरू हो गया है तथा बिहारियों के प्रति उनकी सोंच में परिवर्तन आने लगा है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द सिन्हा इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में बंगाल के लेजिस्लेटिभ कौंसिल के प्रतिनिधि चुने गए। इसी दौरान अली इमाम लार्ड एस०पी० सिन्हा के बदले भारत सरकार के विधि सदस्य चुने गए।

राज्यपाल को बिहारी नेताओं ने एक ज्ञापन सौंपा। इसमें बिहार लैंड होल्डर्स एसोसिएशन, बिहार प्रान्तीय संघ, बिहार प्रान्तीय मुस्लिम आदि थे।[13] इसमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि यह प्रतिनधिमंडल नम्र तथा वफादार होने के साथ-साथ सभी धर्म, जाति, वर्ग तथा समुदाय का प्रतिनधित्व करती है। इस ज्ञापन को पुरे बिहार की हार्दिक अभिव्यक्ति के रूप में माना जाना चाहिए। इसमें मुख्य रूप से बिहार में शिक्षा, स्वस्थ्य, विधि सेवा आदि में बंगालियों की अपेक्षा बिहारियों के प्रतिनिधित्व पर बल दिया गया। सरकारी नौकरियों में बिहारियों के उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने की बात कही गई थी।

राज्यपाल ने बिहारियों को हार्दिक धन्यवाद देते हुए यह स्वीकार किया कि कुछ दिनों तक बिहार में रहकर बिहारियों के कष्टों और व्यथाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे। इन्होंने स्वीकार किया कि राजकीय पदों की नियुक्ति में बिहारियों का प्रतिनिधित्व काफी असंतोषजनक है। इसके लिए वे प्रयत्नशील रहेंगे। राज्यपाल ने यह आवश्वासन दिया कि बिहारी डाक्टरों तथा इंजीनियरों को बिहार में नियुक्तियाँ की जाएगी। इन्होंने पुन: कहा कि लोक सेवा की वर्तमान स्थिति बिहार के हितों के लिए अन्यायपूर्ण तथा घातक है।

सरकार को अपने समक्ष बिहार में बिहारियों की लोक सेवा के निर्माण का उद्देश्य रखकर कार्य करना चाहिए तथा यदि कोई बिहारी अन्य लोगों के समतुल्य योग्यता रखता हो तो राजकीय सेवाओं में उसे ही प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

राज्यपाल ने कहा कि बिहार में नियुक्ति पाने के लिए अन्य योग्यताओं के साथ-साथ बिहारी होना भी एक योग्यता होना चाहिए। क्योंकि एक योग्य न्यायाधीश, निपुण कार्यपालिका पदाधिकारी, सफल शिक्षक होने में स्थानीय भाषा की जानकारी काफी सहायक सिद्ध होती है।[14]

राज्यपाल के प्रत्युत्तर ने बिहार को बंगाल से पृथक् करने के आन्दोलन को एक आधार प्रदान किया। यह पहला अवसर था जब राज्यपाल जैसे सरकारी पदाधिकारी ने सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया कि बिहार की भलाई तथा आवश्यकताएँ की सरकार ने अभी तक उपेक्षा की है। सरकार की इसी उपेक्षित नीतियों के कारण जहाँ एक ओर बंगाल राजनैतिक, बौद्धिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में पीछे होते गया है। इसका संपूर्ण दायित्व सरकार पर है तथा बिहार के हितों की यह उपेक्षापूर्ण नीति "अन्यायपूर्ण तथा घातक" है। राज्यपाल की इसी स्वीकारोक्ति में सरकार का यह दर्द भी छिपा था कि कहीं बिहारी छात्र भी बंगाली छात्रों की तरह राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा न बन जाए। परन्तु यह चिंता बिहार को बंगाल से पृथक् होने में काफी प्रमुख आधार साबित हुआ।

बंगाल के राज्यपाल ने बिहारियों द्वारा प्रेषित अभिवेदन तथा उसके प्रत्युत्तर को केन्द्रीय सरकार के पास भेज दिया।[15] केन्द्रीय सरकार ने इस अभिवेदन को अत्यंत ही महत्वपूर्ण और सारगर्भित बतलाया। केन्द्रीय सरकार ने इस आशयक का एक पत्र बंगाल सरकार के पास भेजा। इतना ही नहीं इसकी एक प्रतिलिपि सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पास लंदन भेज दी गई।[16]

इस दौरान बिहार में बंगाल से अलग होने का आन्दोलन और जोर पकड़ने लगा। बंगालियों ने इसे सरकार की संकीर्णता का द्योतक माना। इनका मानना था कि बिहार और बंगाल दोनों ही एक राष्ट्र के अभिन्न अंग है तथा वृहत्तर राष्ट्र की उपेक्षा कर प्रान्तीय स्तर पर सोचना सरकार की संकीर्णता मानसिकता को प्रदर्शित करता है। इनका यह भी कहना था कि पूर्वी एवं पश्चिमी बंगाल के रूप में बंगाल का विभाजन सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक शोकजनक एवं अशोभनीय कार्य था।

इस प्रकार बिहार का पृथक्करण आन्दोलन जोर पकड़ता गया। बिहारियों द्वारा बंगालियों के प्रति पक्षपात का आरोप लगातार लगते रहा। भागलपुर के जिला दंडाधिकारी हैमन्ड पर अभियोग लगाया जाता था कि वे सुयोग्य एवं दक्ष बिहारी उम्मीदवारों के रहते हुए भी बंगालियों के प्रभाव में आकर उन्हीं की नियुक्तियाँ करते हैं। इनके कार्यकलाप से ऐसा प्रतीत होता था कि ये जन्मजात बंगाली प्रेमी तथा बिहार-विरोधी है। इनके कार्यों से जिले के सभी बिहारी क्षुब्ध थे।[17]

बिहारियों के साथ भेदभाव कई अन्य तरीकों से भी किया जाता था। सरकारी मुकदमें की वकालत करने में भी सरकार पक्षपात दिखाती थी। योग्य बिहारी वकीलों को न लेकर बंगाली वकीलों को ही अधिकांश मुकदमें दिए जाते थे। इसके लिए बिहार के लोगों में बेहद क्षोभ था।[18]

बिहार के नेताओं द्वारा जैसे-जैसे बंगाल से बिहार को अलग करने का आन्दोलन तेज किया जा रहा वैसे-वैसे बंगालियां ने भी इसे कमजोर करने का प्रयास किया जा रहा था। सरकार को भी यह खतरा सताने लगा था कि अगर बिहार को बंगाल से अलग न किया गया तो हो सकता है कि 1857 से ज्यादा भयानक विद्रोह बिहार में शुरू हो जाए। एक बार बिहार पुनः विद्रोह की राह पकड़ लगा तो स्वाधीनता आन्दोलन यहाँ और जोर पकड़ लेगा। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर 1911 तक सरकार ने बिहार को एक अलग प्रांत के रूप में गठन कर निर्णय ले लिया। अगस्त 1911 में सरकार ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखा कि बिहार के लोग अत्यंत ही बलिष्ट और राजभक्त हैं। ये लोग किसी भी कीमत पर बंगाल से अलग होना चाहत हैं। ये लोग किसी भी कीमत पर बंगाल से अलग होना चाहते हैं। बंग-भंग आन्दोलन में भी इन्होंने भाग नहीं लिया ताकि इनका आंदोलन कमजोर न पड़े। अतः बिहार को बंगाल से अलग कर इन्हें अपना विकास करने का अवसर दिया जाना चाहिए।[19]

भारत सरकार के इस पत्र का इंगलैंड में काफी प्रभाव हुआ तथा इसकी स्वीकृति मिल गई। 12 दिसम्बर, 1911 के दिल्ली दरबार से सरकार ने घोषणा की कि बिहार, उड़ीसा तथा छोटानागपुर को बंगाल से पृथक् किया जाता है। पहली अप्रैल 1912 ई० से भारत के मानचित्र पर बिहार नामक एक पृथक् प्रांत अस्तित्व में आ गया। इस प्रकार बिहार को बंगाल से अलग करने का आन्दोलन समाप्त हुआ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. दास, प्रमोदानन्द, बिहार का इतिहास, सुमित्रा प्रकाशन, पटना, 1993, पृष्ठ-1
2. वर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत 1540-1761, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, भाग-2, पृष्ठ-703
3. वही, पृष्ठ-707
4. सिन्हा, एस०एन०पी०, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 19998, पृष्ठ 1-5
5. वही, पृष्ठ 5-6
6. ग्रोवर, बी०एल०, आधुनिक भारत का इतिहास, एस चाँद एण्ड संस, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ-290
7. हिन्दुस्तान रिव्यू, अगस्त 1907, पृष्ठ-79
8. झा, जे०सी०, कोल इनटेरेक्शन इन छोटानागपुर, कलकत्ता, 1964 ई०, पृष्ठ-81
9. दत्त, के०के०, दि संथाल इनसेरेक्शन, कलकत्ता, 1965, पृष्ठ-16
10. अहमद, क्यामुद्दीन, दि वहाबी मूवमेंट इन इंडिया, कलकत्ता, 1966, पृष्ठ-62
11. दत्त, के०के०, बायोग्राफी ऑफ वीर कुंअर सिंह एण्ड अमर सिंह, कलकत्ता, 1967, पृष्ठ-79
12. चौधरी, भी०सी०पी०, क्रियेशन ऑफ मार्डन बिहार, पटना, 1966, पृष्ठ-70
13. बंगाल के राज्यपाल को दिनांक-14 अगस्त, 1908 के अभिवेदन में।
14. राज्यपाल का प्रत्युत्तर, दिनांक-14 अगस्त, 1908
15. केन्द्रीय सरकार का पत्र बंगाल सरकार के नाम, 23 सितम्बर, 1908
16. केन्द्रीय सरकार का पत्र सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के नाम, 1 अक्टूबर, 1908
17. 'बिहारी' दिनांक-14 अप्रैल, 1911
18. बिहारी, दिनांक-23 नवम्बर, 1911
19. सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को 25 अगस्त, 1911 में इस आशय का पत्र भारतीय ब्रिटिश सरकार ने लिखा।

भारत की परमाणु नीति

राजीव रंजन कुमार

शोध प्रज्ञ, एम०ए०, राजनीति विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)

शोध आलेख का सार

भारत एक महान लोकतांत्रिक देश रहा है, जो हमेशा ही विश्वशृांति, सहयोग एवं सौहार्द का समर्थन करता रहा है। भारत की वैदेशिक नीति में अंतर्राष्ट्रीयतावाद, सामूहिक सुरक्षा, नि:शस्त्रीकरण, लोकतंत्रीकरण तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रयोग का समर्थन किया गया है। भारत 'शस्त्र नियंत्रण' से आगे बढ़कर पूर्णत: हथियारों की समाप्ति अर्थात् नि:शस्त्रीकरण का समर्थक है। वर्ष 1974 में भारत के द्वारा अघोषित परमाणु परीक्षण किया गया, जिसका उद्देश्य सकारात्मक था। वर्ष 1998 में भारत में घोषित परमाणु परीक्षण किया तथा राष्ट्र को एक परमाणु संपन्न देश बना लिया। अभी भारत के पास लगभग 130 से अधिक परमाणु बम है, परन्तु इसे विश्व के लिए तथा मानव जीवन के लिए सही नहीं मानता है। भारत का मानना है कि कालबद्ध रूप में दुनिया के सभी परमाणु सम्पन्न देशों में इस बात पर सहमति होनी चाहिए कि परमाणु बम को समाप्त कर दिया जाए। भारत परमाणु बम बना लिया है, लेकिन वह इसका आत्मरक्षा में प्रयोग करेगा। नॉट फस्ट यूज के सिद्धान्त पर भारत चलता है। भारत की परमाणु नीति शांति, आत्मरक्षा तथा विश्व में सुरक्षा की भावना को अपने में समेटे हुए है। सार रूप में, भारत की परमाणु नीति के अवलोकन से यह सभी बातें बिल्कुल स्पष्ट हो जाएंगी।

मूल शब्द: उपनिवेशवाद, सामूहिक सुरक्षा, आतंकवाद, वैदेशिक नीति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, सामरिक रणनीति, क्षेत्रीय संगठन, कूटनीति, पड़ोसी नीति, गुजराल डॉक्टरीन

प्रस्तावना

भारत ने मई 1974 में राजस्थान की मरुभूमि में पोखरण के नजदीक अपना प्रथम 'शांतिपूर्ण' सफल परमाणु परीक्षण किया। इस परीक्षण ने फिर परमाणु यंत्र पर वैज्ञानिकों के कार्य के चरम बिंदु तथा एक अनुमोदक राजनीतिक परिवेश को दर्शाया। यह भारत की सुरक्षा परिस्थिति में किसी क्षय के प्रति एक निकटवर्ती प्रतिक्रिया नहीं थी। वास्तव में, परमाणु परीक्षण से पूर्व की अवधि में भारत की अवस्थिति में कुछ सुधार जरूर दृष्टिगोचर हो रहा था। सन् 1971 में पाकिस्तान के साथ एक युद्ध, जिसके प्रतिफल में बांग्लादेश (पूर्वी पाकिस्तान) को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तथा 'भारत इस महाद्वीप में एक प्रभावी शक्ति के रूप में विश्व समाज के सामने आया।[1] दूसरी ओर पाकिस्तान की प्रलयंकारी पराजय ने उसे उत्तेजित किया कि वह अपने बम की खोज को तेजी प्रदान करे।

भारत वर्ष 1962 तथा 1965 के चीन और पाकिस्तान के आक्रमण से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति गम्भीर एवं चिन्तित था ही कि वर्ष 1971 में बांग्लादेश के मुद्दे पर पाकिस्तान ने पुन: भारत के सामने युद्ध को लाकर खड़ा कर दिया। अब भला भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को कैसे अनदेखा कर सकता था? भारत ने राष्ट्रीय सुरक्षा के पाकिस्तानी चुनौती को स्वीकार किया और पाकिस्तान को हार का सामना करना पड़ा। अब भारत के परमाणु निर्णयन को बहुत बल मिला। दूसरी ओर 1971 के युद्ध में भारत की विजय इंदिरा गाँधी के लिए राजनीतिक रूप से लाभप्रद थी तथा इस विजय ने दृढ़-निश्चयी नेता की छवि को भी प्रोत्साहित किया, जो शक्ति के समेकन की उनकी लोक लुभावन रणनीति को सार्थक करती थी। इन्दिरा गाँधी ने स्पष्ट रूप से सन् 1972 में परमाणु परीक्षण हेतु राजनीतिक निर्णय ले लिया था; यह निर्णय, उनकी सरकार द्वारा लिए गए कई निर्णयों की भांति, गोपनीयता के साथ लिया गया था, जिसमें परमाणु वैज्ञानिकों तथा कुछ विश्वासी राजनीतिक सलाहकारों का परामर्श शामिल था, जबकि सेना तक को इसकी सूचना से बाहर रखा गया था।[2]

भारत धीरे-धीरे ही प्रथम पोखरण परीक्षण तक पहुँचा तथा 'परमाणु बनाने की प्रदर्शनीय क्षमता के साथ उभरा, किंतु आगे बढ़ने तथा ऐसा करने हेतु बिना किसी नीति के साथ'।[3] इसके बाद भी भारत के पास परमाणु योजना का कोई वैज्ञानिक रूप रेखा निर्धारित नहीं हो पाया था।

वर्ष 1974 को भारत के कार्यक्रम में प्रथम क्रांतिकारी कदम कहा जा सकता है। इस वर्ष परमाणु परीक्षण के निर्णय ने नैतिक परमाणु नीति ने संशयशील परमाणु नीति को व्यावहारिक राजनीति की ओर उन्मुख कर दिया।[4]

भारत की राजनीतिक व्यवस्था वर्ष 1975 से 1980 तक राजनीतिक अस्थिरता और अन्य कई चुनौतियों से प्रभावित होती रही। इंदिरा गाँधी ने राजनीतिक नेतृत्व की समस्या से जुझते हुए समस्याओं के निदान के लिए राष्ट्रीय आपात की उद्घोषणा भी कर दिया।[5] वर्ष 1971 में जनता पार्टी की सरकार अस्तित्व में आई, जो मोरारजी देसाई तथा चौधरी चरण सिंह के प्रधानमंत्रित्व में अस्थिरता से जुझती रही तथा पुन: वर्ष 1980 में इंदिरा गाँधी को स्थापित कर दिया। इंदिरा गाँधी ने पुन: वर्ष 1980 से वर्ष 1984 तक काँग्रसी सरकार का नेतृत्व किया। इस काल में एक पहेली बनी हुई है कि भारत ने इन्दिरा के नेतृत्व में एक और परमाणु परीक्षण नहीं किया, इस बात के मद्देनजर कि परमाणु वैज्ञानिकों ने ऐसा करने हेतु स्पष्ट रूप से अनुमति की मांग की थी तथापि उन्होंने 'बैलिस्टिक प्रक्षेपशास्त्रों के विकास, परीक्षण तथा उत्पादन के एक महत्वकांक्षी कार्यक्रम की स्वीकृति दी थी'।[6] उनके नेतृत्व तथा राजीव गाँधी (1984-89) के नेतृत्व ने नई क्षेत्रीय सुरक्षा चिंताओं का मुकाबला किया।

भारत के लिए वर्ष 1980 के बाद अनेक चुनौतियाँ थी तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भी व्यापक रूप में परिवर्तित हो रही थी। वस्तुत: 1980 के दशक के अंत तक भारतीय क्षमताएँ ऐसा बिंदु पर पहुँच रही थीं कि नई दिल्ली के पास एक संकलित तैयार शस्त्रगार नहीं था, दक्षिण एशिया के भीतर तथा बाहर, दोनों में यह आम समझ थी कि पाकिस्तान के साथ संघर्ष में परमाणु अस्त्र एक प्रमुख स्थान ले सकता है। सापेक्षिक शांति की अवधि के उपरांत, दोनों देशों के संबंध लगातार बिगड़ने लगे। जब भारत को कश्मीर में एक देशीय विद्रोह का सामना करना पड़ा, जिसे पाकिस्तान ने अपने प्रतिद्वंद्वी के धीरे-धीरे दर्द का अनुभव करवाने तथा अपने संशोधनवादी उद्देश्यों को उन्नत करने हेतु उकसाया था। कश्मीरी विद्रोह प्रथम तौर पर देश में ही उपजा था, बाद में इस्लामाबाद ने सक्रियता से इसका समर्थन आरंभ करने के अवसर'[7] के रूप में किया। पाकिस्तान का यह भी मानना था कि उसकी अपनी उत्पन्न होने वाली परमाणु क्षमता भारत को कोई भी गंभीर सैन्य प्रतिक्रिया के आरोहण से विरत करेगी तथा अंततोगत्वा 'भारत तथा अंतराष्ट्रीय समुदाय को कश्मीर विवाद पर दोबारा चर्चा करने हेतु अग्रसर करेगी'।[8]

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 1990 का दशक उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण से प्रभावित रहा, जहाँ विश्व के देशों की सामरिक और राजनीतिक आवश्यकता से आर्थिक आवश्यकताएँ अधिक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक हो गई। भारत भी इसका अपवाद नहीं थी। 1990 के दशक के मध्य में, छच्ञ् की एक समीक्षा हुई, जो क्लिंटन प्रशासन की अगुआई में एक नवीन अप्रसार संधि के प्रोत्साहन का हिस्सा थी। क्लिंटन की एक अन्य प्राथमिकता के संबंध में, व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) की सफलता जिस पर लंबे समय तक वाद-विवाद चला।[9] कई भारतीयों ने इसे अमरीकी-नेतृत्व वाले उस अंतर्राष्ट्रीय प्रयास के रूप में देखा जो 'भारत के परमाणु विकल्प पर स्थायी रूप से रोक लगाने' हेतु था।[10] जैसा यह देखा गया है कि बम के प्रति भारतीय मनोभाव नैतिकतावादी विरोध की वकालत तक रहा है। भारत में एक मनोभाव जो हमेशा पूरे राजनीतिक वर्णक्रम भर में रहा है, वह है वैश्विक अप्रसार व्यवस्था में सन्निहित भेदभावपूर्ण सिद्धान्तों के प्रति असहिष्णुता। जब यह भेदभाव एक बार फिर से परमाणु विकल्प पर भारत के वाद-विवाद का सबसे प्रमुख मुद्दा बना, 'भारतीय सामरिक समुदाय में नए गठबंधनों तथा साझेदारियों का निर्माण हुआ'।[11] यहाँ एक प्रसंग महत्वपूर्ण है जो भारत के राजनेता जॉर्ज फर्नांडिस से जुड़ी हुई है। फर्नांडिस वामपंथी श्रमिक संघ के एक भूतपूर्व नेता थे सन् 1974 के परमाणु परीक्षणों के कठोर आलोचक थे, भारत के सबसे मुखर आक्रमणशीलों में से एक में रूपान्तरिक हुए तथा जिन्होंने अंतत: उस भारत सरकार में रक्षा मंत्री का पदभार संभाला, जिसने सन् 1998 में परमाणु परीक्षण किए।

11 मई, 1998 को, वाजपेयी ने 'संक्षेप में यह घोषणा किया भारत ने तीन परमाणु परीक्षण किए हैं, जिनमें एक में ताप-नाभिकीय यंत्र का विस्फोट शामिल था।[12] जिसकी उत्पादन क्षमता सन् 1974 के परीक्षण की तुलना में बहुत से अधिक थी। दो दिनों के बाद, जब तक अमरीका यह समझने का प्रयास कर रहा था कि उनसे परीक्षण हेतु भारत की तैयारी कैसे छूट गई, भारत ने दो और विस्फोट किए। पाकिस्तान ने अपने परमाणु परीक्षणों के साथ उत्तर दिया। अमरीका, चीन, जापान तथा अन्य देशों ने पाकिस्तान तथा भारत के इस परीक्षण की आलोचना किया।

मई, 2019 में भारत ने एक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त किया है। अमरीका, रूस और चीन के बाद भारत चौथा अंतरिक्ष की शक्ति बन गया है। भारत ने राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु अंतरिक्ष में 300 किलोमीटर दूर लो अर्थ ऑर्बिट (एलइओ) सेटलाइट को मार गिराया है। यह भारत की सामरिक शक्ति का परिचायक है। भारत ने भले ही राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु विस्फोट किया, परन्तु वह हमेशा ही विश्व शांति अर्थात् सामूहिक सुरक्षा के प्रति चिन्तित रहा। इस बात की जानकारी हमें भारत की परमाणु नीति में देखने को मिलती है।

27 मई, 1998 को संसद में घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें निम्नलिखित परमाणु नीति की घोषणा की गई।[13]

(i) 1998 में पोखरन में जो विस्फोट हुआ, वह हमारी परमाणु नीति की निरंतरता का द्योतक है। इससे भारत आत्मनिर्भर होगा और उसकी सोच में स्वतंत्रता आयेगी।

(ii) 1990 से 1998 तक हमारे सुरक्षा पर्यावरण में बहुत गिरावट आयी। भारत के दोनों ओर परमाणु और मिसाइल व्यवस्थाएँ बढ़ रही थी। उसके अतिरिक्त भारत बाहर की सहायता से होने वाले अघोषित युद्ध को भी सहन कर रहा था।

(iii) विश्व के सन्दर्भ में परमाणु अप्रसार सन्धि (N.P.T.) पर हस्ताक्षर करने के बाद भी परमाणु सज्जित राष्ट्रों ने कोई ऐसा निर्णय नहीं किया जिससे यह साबित होता कि हम लोग किसी नि:शस्त्रीकरण के सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं।

(iv) इस वातावरण में अपने राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे को सामने रखने के अतिरिक्त भारत के पास कोई उपाय नहीं था।

(v) भारत नि:संदेह एक परमाणु सुज्जित राष्ट्र है। यह दर्जा हमको किसी राष्ट्र ने नहीं दिया अपितु हमारे वैज्ञानिकों ने ही हमें गौरवान्ति किया है।

(vi) भारत के परमाणु अस्त्र केवल स्वत: सुरक्षा (Self Defence) में काम आयेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि हम किसी प्रकार की परमाणु धमकी या दबाव में न आयेंगे और न शस्त्रों की होड़ में पड़ेंगे।

(vii) भारत की परमाणु नीति अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में संयम और खुलेपन का अपने आप में ही एक अद्वितीय उदाहरण है। यह शक्ति संयम किसी तरह की अनिश्चय, दुविधा में उत्पन्न नहीं होगा।

(viii) इस तरह का कदम उठाने के बाद सरकार ने अपनी ओर से ही यह घोषणा भी कर दिया है कि इस कार्यक्रम को यहीं स्थगित किया जाता है।

(ix) भारत सरकार सभी तरह के परमाणु नि:शस्त्रीकरण की वार्ता एवं सम्मेलन में शामिल होने को तैयार है। भारतीय विदेश नीति का नि:शस्त्रीकरण एक विशेष तत्व है और भारत सरकार अब भी उसका प्रतिपादन करती है।

(x) भारत के लोगों ने और विदेश में रहने वाले भारतीयों (छत्) ने एक स्वर में और जोरदार ढंग से भारत सरकार की परमाणु विस्फोट का स्वागत किया। इस निर्णायक कार्य में राष्ट्र भी एकमत एवं एकजूट है।

भारत के द्वारा 11 और 13 मई, 1998 को परमाणु सफल विस्फोट किया गया, जिसे द्वितीय पोखरन कहा जाता है। अब भारत दुनिया के सामने घोषित परमाणु बम सम्पन्न देश बन गया है। इसके बाद अगस्त, 1999 में देश में परमाणु नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया गया, जिसमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें कही गई है:

(i) भारत का परमाणु बल विश्वसनीय न्यूनतम प्रतिरोधक क्षमता का अवधारणा के अनुरूप प्रभावी, स्थायी, लचीला, उद्देश्यपरक तथा विभिन्नता के स्तर पर निर्धारित किया जायेगा।

(ii) राष्ट्र पर परमाणु हमले की चेतावनी और नुकसान के आंकलन की जानकारी देने वाला अंतरिक्ष आधारित सूचना तंत्र एवं अन्य प्रणालियों को विकसित किया जायेगा।

(iii) भारत का परमाणु बल ऐसा होगा जो जमीन, आकाश और समुद्र तीनों जगह से मार करने में सक्षम होगा, इसके लिए विमानों, जमीन और चलायमान प्रक्षेपास्त्रों और समुद्र में पनडुब्बियों पर आणविक अस्त्रों को कार्य में शामिल किया जायेगा अर्थात् इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित किया जायेगा।

(iv) भारत अपनी ओर से किसी देश के खिलाफ परमाणु हमला तो नहीं करेगा, लेकिन संयम टूटने की स्थिति में आक्रमणकारी देश को मुँहतोड़ जबाव दिया जायेगा। परमाणु शक्ति का राष्ट्रीय सुरक्षा में प्रयोग संभव है।

(v) भारत किसी भी ऐसे देश पर परमाणु हथियारों का इस्तेमाल नहीं करेगा, जिसके पास परमाणु हथियार न हो। इसके साथ ही जो किसी परमाणु हथियार सम्पन्न ताकत से जुड़ा न हो उस पर भी भारत हमला नहीं करेगा।

(vi) परमाणु बल को इस ढंग से तैनात किया जायेगा कि दुश्मन ने अचानक हमले की स्थिति में वह पूरी तरह सुरक्षित रहे। देश पर परमाणु हमले की स्थिति में दुश्मन को इन बलों के द्वारा अविलम्ब मुँहतोड़ जबाव दिया जायेगा।

(vii) भारत का परमाणु संयम सिद्धान्त मूलतः पाँच बिन्दुओं पर आधारित है।[14]

(क) भारत न्यूनतम परमाणु प्रतिरोधक क्षमता के तहत पर्याप्त और कार्रवाई के लिए परमाणु बम तैयार रखेगा।

(ख) एक सशक्त कमान और नियंत्रण कायम की जायेगी। परमाणु अस्त्रों के प्रयोग का आदेश देने का अधिकार प्रधानमंत्री या उनके द्वारा नाभिक पदाधिकारी के पास होगा। इस प्रकार आण्विक हथियारों का अंतिम नियंत्रण प्रधानमंत्री के पास रहेगा।

(ग) प्रभावी खुफिया और पूर्व चेतावनी हमला का अध्ययन किया जाता रहेगा।

(घ) कार्रवाई के लिए व्यापक योजना और प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी।

(ङ) परमाणु बम और हथियारों की तैनाती के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय दिया जायेगा।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत की परमाणु नीति की तथ्यगत जानकारी प्राप्त करना तथा नि:शस्त्रीकरण पर भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करना है। इस शोध आलेख में भारत की परमाणु नीति में जो परिवर्तन आया है, उसको भी स्पष्ट करना इसका उद्देश्य है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक भारत की परमाणु नीति है। इसमें भारतीय परमाणु विषयक परिवर्तनशील नीतियों को विवेचित किया गया है तथा इस सम्बन्ध में यह परिकल्पना की जाती है कि भारत की परमाणु नीति अपने मौलिक सिद्धान्तों को हमेशा ही केन्द्र में रखकर कार्य करती है। अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में कुछ परिवर्तन जरूर हुए हैं, परन्तु वह आंशिक है। भारत की परमाणु नीति भविष्य में भी शांतिपूर्ण कार्यों को समर्थन करती रहेगी। आत्मरक्षा में भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग कर सकता है, परन्तु यह पहले प्रयोग न करने का शपथ लेता है तथा भविष्य में इसी प्रकार की अपेक्षा की जायेंगी।

साहित्य सर्वेक्षण

इस विषय पर सम्पन्न अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुतः शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध-आलेख के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

अबतक के विवेचन एवं विशद् अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत सर्वदा अपने राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति चिन्तित रहा है, परन्तु इसके साथ ही साथ विश्व शांति एवं सौहार्द को भी महत्वपूर्ण माना है। वस्तुत: भारत के द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को पृथक् न मानकर उसे सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा से जोड़ा गया है। भारत का नि:शस्त्रीकरण पर उचित दृष्टिकोण है तथा हमेशा यह विश्व शांति के लिए गठित एवं कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को सहयोग दिया है। वर्ष 1998 के बाद भले ही इसने परमाणु बम बना लिया है, परन्तु अभी भी पूर्णत: नि:शस्त्रीकरण की जोरदार माँग करता है। भारत की परमाणु नीति में भी सामूहिक सुरक्षा और विश्व शांति की भावना सन्निहित हैं, यह अलग बात है कि राष्ट्रीय सुरक्षा की भी उसमें चिन्ता है। ऐसी चिन्ता स्वाभाविक भी है। भारत विश्व का एक लोकतांत्रिक एवं उत्तरदायी देश है तथा इस बात की झलक भारत की सामरिक रणनीति और परमाणु नीति में भी दृष्टिगोचर होती है।

सन्दर्भ-सूची

1. सुमित गाँगुली (2002), कनफ्लिक्ट अनएन्डिंग : इण्डिया-पाकिस्तान टेंशन्स सिन्स 1947 (नई दिल्ली : ऑक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृष्ठ 71
2. पर्कोविच, 'वॉट मेक्स द इण्डियन बॉम्ब टिक्क?', पृष्ठ 177-78
3. पर्कोविच, 'वॉट मेक्स द इण्डियन बॉम्ब टिक्क?', पृष्ठ 34
4. भरत कर्नाड (2002), न्यूक्लियर विपन्स एंड इण्डियन सिक्यूरिटी : द रियलिस्ट फाउन्डेशन्स ऑफ स्ट्रैटजी (नई दिल्ली : मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड), पृष्ठ-गगगपप
5. अनुच्छेद-352, भाग-18 भारतीय संविधान
6. पर्कोविच के अनुसार, सन् 1982 में इंदिरा गाँधी ने वैज्ञानिकों के निवेदन पर एक परमाणु परीक्षण को अधिकृत किया, किंतु 24 घंटों के भीतर उन्होंने अपने निर्णय को बिना किसी स्पष्टीकरण के पलट दिया; 'वॉट मेक्स द इण्डियन बॉम्ब टिक्क?' पृष्ठ 36
7. एस० पॉल कपूर (2007), डेन्जरस डिटर्रेन्ट: न्यूक्लियर विपन्न प्रोलिफरेशन एंड कनफ्लिक्ट इन साउथ एशिया (स्टैनफोर्ड, कैलिफोर्निया: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृष्ठ-99
8. तथैव
9. दिनशॉ मिस्त्री (2003) 'द अनरियलाइज्ड प्रॉमिस ऑफ इंटरनैशनल इंस्टीटयूशन्स : द टेस्ट बैन ट्रीटी एंड इण्डियाज न्यूक्लियर ब्रेकआउट', सिक्यूरिटी स्टडीज, 12(4), पृष्ठ 116-51
10. कोहेन, इण्डिया, पृष्ठ 173
11. तथैव, पृष्ठ 174
12. ऐशली जे० टेल्लिस (2003), 'टुवॉर्ड्स अ "फर्स-इन-बीइंग": द लॉजिक, स्ट्रक्चयर एंड युटिलिटी ऑफ इण्डियाज इमर्जिंग न्यूक्लियर पोश्चर', सुमित गाँगुली (सं०), इण्डिया एज़ इन इमर्जिंग पावर (लंदन:फ्रैन्क कैस पब्लिशर्स) में, पृष्ठ 61-108
13. डॉ० पुष्पेश पंत, श्रीपाल जैन एवं राखी पंचौली, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृष्ठ 402 और 403
14. तथैव

समाजशास्त्रीय अध्ययन की परंपरा और हिन्दी साहित्य

डॉ० संजय कुमार सिंह

पी०एच०-डी० (JNU)

साहित्य में समाजशास्त्रीय अध्ययन की शुरुआत बीसवीं शताब्दी में हुई। ऐसा नहीं है कि इसके पहले साहित्य का संबंध समाज से नहीं था किंतु समाजशास्त्रीय अध्ययन जैसी कोई परंपरा नहीं थी। 'साहित्य का समाजशास्त्र' के संस्थापक के रुप में एलिजाबेथ टायबर्न्स ने फ्रेंच विदुशी 'मैडम द स्टेल' का नाम प्रस्तुत किया है। मैडम ने सर्वप्रथम साहित्य पर धर्म और कानून के प्रभाव का निरीक्षण किया था। मैडम द स्टेल के बाद एच. तेन पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने समाजशास्त्र और आलोचना को संबद्ध करने का प्रयास किया। वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में साहित्य का समाजशास्त्र एक पृथक शाखा के रुप में अस्तित्व ग्रहण कर अपने स्वरुप और प्रकृति निर्धारण हेतु प्रयत्नशील हुआ। यहीं से साहित्यिक मूल्यांकन का आधार बाह्य कारकों से हटकर कृति और उसकी संरचना के अध्ययन पर केन्द्रित हो गया। यहीं से आलोचना को एक वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ। इसी के आसपास से हिन्दी साहित्य में भी समाजशास्त्रीय आलोचना के उत्स दिखाई देने लगे थे। यह अलग बात है कि इसका विस्तार काफी देर से हुआ।

किसी भी समाज में परिवर्तन सामाजिक चेतना के आने से आता है और सामाजिक चेतना नवीन विचारधाराओं, प्रवृत्तियों एवं संस्कृतियों के संपर्क में आने पर आती है। ''उनमें नैतिक प्रवृत्तियों के विकास, अवसान और संघर्ष के द्वन्द्व से सामाजिक चेतना की अक्षुण्ण धारा निरंतर प्रवाहमान होती रहती है। इस विकास क्रम में व्यक्ति की सत्ता और उसकी चेतना घुल-मिलकर अजस्र सामूहिकता का रुप धारण कर लेती है।''[1] सामाजिक चेतना का मूल कार्य रूढ़िग्रस्त समाज और कुंठाग्रस्त लोगों के जीवन में आशा, प्रेरणा, जिजीविषा का संचार करना है। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज 'सामाजिक चेतना' संपन्न रहा है। वहां प्रत्येक व्यक्ति का कार्य 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' की भावना से प्रेरित होता था। चेतना का अर्थ ही है, जो जड़ नहीं, परिवर्तनशील एवं गतिमान हैं। चेतना का एक अन्य अर्थ ज्ञान के संदर्भ में है। जब व्यक्ति किसी सामाजिक उद्देश्य के लिए ज्ञान का संचय करता है, तब यह जागृत भाव सामाजिक चेतना कहलाती है। इस चेतना को जागृत करने में मत, वाद, सिद्धांत, साहित्यिक कृति, घटना विशेष का मुख्य योगदान रहता है।

साहित्य कभी भी समाज में हो रहे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धाार्मिक संघर्ष से अछूता नहीं रह सकता। जिस संघर्ष को रचनाकार स्वयं प्रतिपल भोग रहा होता है, उसे वह अपनी संवेदना से दूर कैसे रख सकता है। अतः साहित्यकार प्रयासपूर्वक सामाजिक चेतना से समन्वित रचनाओं का निर्माण नहीं करता, बल्कि वह अनायास सहज रुप से रचना का अंग बन जाती है। 'साहित्य व्यक्ति की अभिव्यक्ति है, समष्टि के लिए। वह किसी आदेश पर लाखों हाथों का एक हाथ की तरह उठ जाना नहीं है, वह तो किसी अन्तःकरण का हजारों लाखों अन्तःकरण में एक हो जाना है।'[2]

चूंकि साहित्य समाज के उत्थान-पतन की गाथा है। समाज की विकास प्रक्रिया साहित्य की समस्त विधाओं में अंकित होती है। अतः युगचेता साहित्यकार जनसाधारण के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को आधार बनाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि प्रत्येक घटना या समस्या का विश्लेषण सामाजिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में करती है तथा वह घटनाओं और समस्याओं के पारस्परिक संबंधों के फलस्वरुप होने वाले परिवर्तनों पर भी नजर रखती है।

हालांकि प्रत्येक संबंध को सामाजिक संबंध नहीं माना जा सकता। किन्तु पारस्परिक प्रतीक से जो क्रिया-प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, उससे सामाजिक संबंधों का उद्भव होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि इन्हीं सामाजिक संबंधों तथा समाज में होने वाली क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, परिवर्तनों, प्रकार्यों आदि का विवेचन-विश्लेषण करती है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि साहित्यिक समीक्षा का एक रुप है। इसके अन्तर्गत कला नियमों को वरीयता दी जाती है तथा इस बात पर बल दिया जाता है कि साहित्य को एक सामाजिक निर्मिति के रुप में देखा-परखा जाए। इस संबंध में डॉ. नामवर सिंह का कथन दृष्टव्य है- ''साहित्य के इतिहास में भौतिकवाद का प्रयोग करते समय ऐतिहासिकत्र भौतिकवाद की पहली चेतावनी यह है कि विज्ञान, दर्शन, संगीत, चित्रकला की भांति साहित्य के भी अपने नियम हैं। इसलिए उन नियमों की जानकारी पहले होनी चाहिए।''[3] समाजशास्त्रीय अध्ययन दृष्टि साहित्य एवं कला के सौन्दर्य का विश्लेषण समूची ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंतर्गत करती है। यह दृष्टि साहित्य को मात्र आस्वाद अथवा उपभोग की वस्तु न मानकर एक सामाजिक कर्म मानती है और इसे इसी रुप में देखने दिखाने का प्रयास करती है। संक्षेप में साहित्य एवं कला-सौन्दर्य दोनों ही जीवन सापेक्ष है और समाजशास्त्रीय दृष्टि उन्हें इसी रुप में विश्लेषित करती है।

वस्तुत: साहित्य बाह्य जीवन से प्रेरित एवं संचालित होता है। उसकी समाजबद्धता और जीवन सापेक्षता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार साहित्य का समग्र विश्लेशण करने वाली समाजशास्त्रीय दृष्टि साहित्य को साहित्य के भीतर से विश्लेषित करने वाली एकांगी दृष्टि का निषेध करती है। साहित्य की स्वयत्तता के साथ-साथ यह कला नियमों को वरीयता प्रदान करती है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का कथन दृष्टव्य है- ''जो लोग साहित्य के केवल सौन्दर्यात्मक, मनोवैज्ञानिक पक्ष को चरम मानकर चलते हैं, वे समूची मानव सत्ता के प्रति अनुभूति न रख सकने के अपराधी तो हैं ही, साहित्य के मूलभूत तत्व उनके मानवीय अभिप्राय तथा मानव विकास में उनके ऐतिहासिक योगदान, अर्थात् दूसरे शब्दों में, साहित्य के स्वरुप विश्लेषण तथा मूल्यांकन न कर पाने के भी अपराधी हैं।''[4] इसी के साथ उन्होंने दूसरे पक्ष को भी सावधान किया है कि 'मात्र ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय परिवेश को महत्व देकर साहित्य के सौन्दर्यात्मक- मनोवैज्ञानिक पक्ष की अवहेलना करना एक तरह की एकांगिकता या अतिवाद है। वस्तुत: साहित्य-विश्लेषण एक ही प्रकार का हो सकता है और इसलिए जरुरी है कि साहित्य-विश्लेषण के समाजशास्त्रीय दृष्टि को कुत्सित समाजशास्त्र की दिशा में बढ़ने से रोका जाए। उसकी परिधि में ही साहित्य तथा कला के स्वायत्त संसार तथा कला नियमों की आवश्यकता को अन्तर्भूत किया जाए। इस प्रकार उसे वह रुप दिया जाए जो उसका वास्तविक स्वरुप है।''[5]

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि साहित्य विश्लेषण की यह समाजशास्त्रीय दृष्टि आज तक स्वतंत्र सौन्दर्यशास्त्र के रुप में स्थापित हो चुकी है। इसमें इतिहास बोध तथा समाज-बोध के साथ साहित्य की कलात्मक सत्ता की भी खरी पहचान है। इसकी अहम उपलब्धि यह है कि इसने जीवनमूल्यों के बीच की खाई को पाट दिया है। इसी कारण यह परम्परागत तथा समकालीन दूसरी सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणाओं से इसी मायने में विशिष्ट है।

वर्तमान हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में मुख्यत: चार समीक्षा पद्धतियां प्रचलित हैं-व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, रुपवादी और समाजशास्त्रीय। व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी और रुपवादी समीक्षा की अनुगूंज साहित्य में यत्र-तत्र सुनाई देती रही है। लेकिन इनमें समग्रता का अभाव है, जिसके कारण इनको बहुत अधिक महत्व नहीं मिला। एक समय विशेष के बाद इनका प्रभाव क्रमश: घटने लगा। लेकिन समाजशास्त्रीय समीक्षा अपनी व्यापक एवं संतुलित दृष्टि के कारण साहित्य की सम्पूर्ण सत्ता का बोधा कराने में सक्षम रही है। जिसके कारण इसका महत्व निरंतर बढ़ रहा है। असल में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के विश्लेषण के अभाव में किसी भी रचना के अन्त:स्वरुप का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। जब यह कहा जाता है कि साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है तो समीक्षक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसका तटस्थ हो मूल्यांकन करे। सही गलत की पहचान वास्तविक जीवन के संवेदनात्मक स्तरों से जुड़कर समीक्षा को ऊँचा उठाती है और यह पहचान जीवन के वास्तविक अनुभवों की गहराई में उतरे बिना संभव नहीं है। सबसे पहले यह कार्य 'मार्क्सवादी साहित्य और कला चिंतकों ने किया। उन्होंने पहली बार साहित्य एवं कला को समस्त लोकोत्तर प्रभावों और व्याख्याओं से मुक्त करके मानवीय और लौकिक संदर्भो में विश्लेषित करने का प्रयास किया। साहित्य एवं कला को विशुद्ध मानवीय सृजन स्वीकार करते हुए, उसकी निर्मिति एवं उपकरणों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने-दिखाने का प्रयास किया। साहित्य एवं कला के मूल्यांकन के सामाजिक प्रतिमान प्रामाणिक अनुभव पर आधारित हैं। संक्षेप में समाजशास्त्रीय विश्लेषण को पुष्पित-पल्लवित करने वाले समस्त सूत्र मार्क्सवादी साहित्य चिंतन में समाहित हैं।'[6]

अब सवाल यह उत्पन्न होता है कि साहित्य-समीक्षा के विशुद्ध साहित्यिक प्रतिमान साहित्य को उसकी समग्रता में उसकी अर्थवत्ता को उद्घाटित करने में कहां तक समर्थ हैं। धर्म, दर्शन, राजनीति, नैतिकता आदि को विजातीय घोषित कर विशुद्ध साहित्यिक

प्रतिमानों पर बल देने वाली समीक्षा पद्धति इसका सटीक उत्तर नहीं दे पाती है। इस सिद्धांत में निर्मला जैन कहती हैं कि, ''स्पष्ट है कि साहित्य में सौन्दर्य बोध का निर्णय भी भावबोध और संदर्भ पर निर्भर है। ऐसी स्थिति में साहित्य को समस्त अनुषंगों से काटकर, शुद्ध साहित्यिक मूल्यों के आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन करने का दावा विडंबना ही है।''[7] इसी प्रसंग में डॉ० नामवर सिंह का मत है कि ये नितांत शुद्ध कलावादी धाारणाएं एक विशेष प्रकार की अर्थव्यवस्था की देन हैं और एक निश्चित समाज-व्यवस्था के नियमों के अंतर्गत उत्पन्न और प्रचलित हुई हैं।'[8] विशुद्ध साहित्यिक मूल्यों पर आधारित समीक्षा पद्धति के अक्षम होने का मूल कारण यह है कि उसने स्वयं को एक सीमित दायरे में आबद्ध कर लिया था। समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य को इस सीमित दायरे से मुक्त कर सामाजिक जीवन के व्यापक संदर्भों से जोड़ता है। साहित्य की सही समझ के लिए हमें समाज में खड़े होकर देखने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति समाजशास्त्रीय आलोचना करती है जो अपने व्यापक और वैज्ञानिक दृष्टि के कारण विशुद्ध साहित्यिक समीक्षा-पद्धतियों से भिन्न हो जाती हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन अपनी क्रमबद्ध और समग्र दृष्टि के कारण साहित्य और उसके सामाजिक स्रोतों, उसकी सूक्ष्म सामाजिक अन्तर्वस्तु को उद्घाटित करता है।

समाजशास्त्रीय अध्ययन की अनेक भ्रामक व्यवस्थाओं के कारण उस पर कई निराधार आरोप लगाए गए हैं। इनमें से प्रमुख हैं कि साहित्यिक समीक्षा की यह समाजशास्त्रीय दृष्टि कला और साहित्य की स्वायत्तता और उसके आंतरिक नियमों की अवमानना करती है, लेकिन वास्तविकता यह है कि समाजशास्त्रीय विश्लेषण साहित्य की स्वायत्तता को मद्देनज़र रखते हुए कला-नियमों को वरीयता प्रदान करते हुए इस बात पर बल देते हैं कि साहित्य को एक सामाजिक निर्मिति के रुप में देखा-परखा जाए।

यहां डॉ० नामवर सिंह की चेतावनी स्मरणीय है कि विज्ञान, दर्शन, संगीत, चित्रकला की भांति साहित्य के भी अपने नियम हैं, जिनकी जानकारी पहले होनी चाहिए। अत: स्पष्ट है कि साहित्य एवं कला की स्वायत्तता को समाजशास्त्रीय दृष्टि पूरी तरह स्वीकारती है परंतु वह इस स्वायत्तता को जीवन निरपेक्ष न मानकर जीवन सापेक्ष मानती है। चूंकि साहित्य जीवन से प्रेरित और संचालित होता है, इसलिए उसकी समाज सम्बद्धता और जीवन सापेक्षता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साथ ही मुक्तिबोध ने समाजशास्त्र के सिद्धांतों पर बल न देकर सामाजिक जीवन के संदर्भ में कृति के मूल्यांकन पर अधिक बल दिया है। उन्होंने समाजशास्त्रीय अध्ययन को समाजशास्त्र के रूढ़ नियमों से मुक्त कर, उसे सामाजिक जीवन की गहराई में उतार कर साहित्य के स्रोतों और समूचे मानव परिवेश के उद्घाटन पर बल दिया है। वस्तुत: साहित्य के विवेचन विश्लेषण के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति की आवश्यकता है, न कि समाजशास्त्र के सिद्धांतों की।

समाजशास्त्रीय अध्ययन ने आलोचना के क्षेत्र में नवीन वैज्ञानिक दृष्टि, नवीन सौन्दर्यबोध, एवं नवीन सामाजिक संवेदनशीलता का समावेश किया है। ज्यों-ज्यों साहित्य में जीवन का आग्रह बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि अधि क व्यापक होती जा रही है। समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य को उदात्त लोकमंगल की भावना से समन्वित कर सामाजिक जीवन की भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन रचना के सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन पर विशेष बल देता है। यही कारण है कि आज अधिकांश समाजशास्त्रियों का यह मत है कि साहित्य का अध्ययन सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों के परिवेश में होना चाहिए, क्योंकि साहित्य बा]य परिस्थितियों के संश्लिष्ट प्रभाव की प्रतिक्रिया है।

वस्तुत: समाजशास्त्रीय अध्ययन उस केन्द्रीय बिंदु पर पहुंच कर अपनी सार्थकता सिद्ध करता है जिसमें कथा वस्तु की सर्जना सामाजिक जीवन के विविध राग-रंगों से हुई हो तथा इसकी सटीक परख सामाजिक प्रतिमानों में ही हो सकती है। कुल मिलाकर विकास के लम्बे और कठिन दौर से गुजरते हुए साहित्य विश्लेषण की यही पद्धति आज एक भरे-पूरे सौन्दर्यशास्त्र में रुपायित हो गई है, जो परंपरागत अथवा समकालीन दूसरी सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणाओं से इस मायने में विशिष्ट है कि इसमें इतिहासबोध तथा समाज बोध के साथ साहित्य की कलात्मक सत्ता की भी खरी पहचान है।'[9] साहित्य एवं कला की जीवन्त परख सही ढंग से सामाजिक संदर्भों में ही हो सकती है और समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति इसी तथ्य की पूर्ति करती है। जिस प्रकार मानव जीवन विविधता का समुच्चय है, उसी प्रकार समाजशास्त्रीय आलोचना का क्षेत्रभी अत्यंत व्यापक है। इसीलिए समाजशास्त्रीय अध्ययन के अनेक सूक्ष्म पक्ष हो सकते हैं। सामाजिक जीवन की तरह इस पद्धति की सुनिश्चित रेखा निर्धाारित नहीं की जा सकती। इसलिए सामाजिक जीवन के जितने पहलू संभव हो सकते हैं, उतने ही इस पद्धति के भी संभव हैं।

सन्दर्भ-सूची

1. हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ० रत्नाकर पाण्डेय, पृष्ठ–159
2. साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया – सच्चिदानन्द वात्स्यायन, पृष्ठ–83
3. इतिहास और आलोचना – डॉ० नामवर सिंह, पृष्ठ–183
4. नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – गजानन माधव 'मुक्तिबोध' – पृष्ठ–112
5. वही, पृष्ठ–140
6. रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन – डॉ० जोगेन्द्र वर्मा, पृष्ठ–53
7. आलोचना (पत्रिका) – डॉ० निर्मला जैन, जुलाई–सितम्बर, 1971
8. वही, अक्टूबर–दिसम्बर–74, पृष्ठ–4
9. साहित्य और सामाजिक संदर्भ – डॉ० शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ–28

भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता

डॉ० संजय कुमार

एम०ए०, पी-एच०डी० (राजनीति विज्ञान), गेस्ट फैक्लिटी, राजनीति विज्ञान विभाग,
पटना कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सार

भारत का संविधान भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करता है। भारतीय संविधान के भाग-3, अनुच्छेद-25 से 28 द्वारा सभी व्यक्तियों को, वे चाहे विदेशी हों या भारतीय हों, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-35 के अनुसार, प्रत्येक को अपने अन्त:करण एवं मान्यता के अनुसार किसी भी धर्म को अबाध रूप में मानने, उपासना करने और उसके प्रचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-26 के द्वारा सभी धर्मों के अनुयायियों को धार्मिक एवं दान देने वाली संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन, धार्मिक मामलों के प्रबन्धन, धार्मिक संस्थाओं द्वारा चल एवं अचल सम्पत्ति अर्जित करके राज्य के कानून के अनुसार प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई हैं। भारतीय संविध ान के अनुच्छेद-27 के अनुसार, कोई धर्म विशेष की उन्नति के लिए कर या चन्दा देने के लिए स्वतंत्र है, परन्तु किसी नागरिक को कर देने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-28 के द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया जाता है, जो धार्मिक क्षेत्र में निष्पक्ष रहता है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि किसी राजकीय शिक्षण संस्था में किसी ध र्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती है, परन्तु सरकार द्वारा मान्यता एवं सहायता प्राप्त व्यक्तिगत शिक्षण संस्थाएँ, जो गैर-सरकारी ध न से स्थापित हुई हैं, में धार्मिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है, परन्तु ऐसी संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को उस धार्मिक शिक्षा या उपासना-प्रार्थना में भाग लेने के लिए के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। भारतीय संविधान भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करता है, परन्तु धार्मिक कट्टरता एवं धार्मिक संकुचन की भावना को प्रतिबंधित करने हेतु राष्ट्रीय एकता के उद्देश्य से सार्वजनिक हित में सरकार द्वारा इस अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है तथा आर्थिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार के सार्वजनिक हित की दृष्टि से राज्य धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत धर्मनिरपेक्षतावाद की अवधारणा को स्वीकार किया गया है इस अवधारणा को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा प्रस्तावना के अन्तर्गत तीन शब्दों में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द को जोड़ दिया गया है। स्पष्टत: मूल भारतीय संविधान में भी भारत में धर्मनिरपेक्ष अवधारणा को स्वीकार किया गया था और बाद के दिनों में भी इस मान्यता को अधिक प्रभावी बनाने के लिए 'पंथनिरपेक्ष' शब्द को स्वीकार किया गया है।

मूल शब्द: सामाजिक न्याय, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, धर्मनिरपेक्षता, संसदीय शासन, संघवाद, न्यायिक पुनर्वालोकन, गणतंत्र, लोकतंत्र।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान की एक आधारभूत मान्यता धर्मनिरपेक्षता है। भारत प्रजातांत्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य है। 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को प्रभावी बनाने के लिए पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग किया गया। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को भारतीय संविधान में बेहतर रूप में समझा जाए, उसके पूर्व इसके तात्पर्य को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। 'धर्म निरपेक्ष' (Secular) शब्द का अर्थ उससे है, जो 'आध्यात्म से विलग हो, धार्मिक या आध्यात्मिक विषयों से असम्बद्ध हो या कोई भी ऐसी वस्तु हो जो धार्मिक वस्तुओं से पृथक् हो या आध्यात्मिक या धर्म संबंधी

मामलों के विपरीत सांसारिक हो।' ऐरिक एस० वाटरहाऊस (Eric S. Waterhouse) के अनुसार, ''धर्मनिरपेक्षवाद (Secularism) धर्म द्वारा प्रस्तुत धारणाओं के विपरीत, जीवन व आचरण की धारणा का दर्शन है।" एक इंग्लिश शब्दकोश (A New English Dictionary) के अनुसार, 'धर्म निरपेक्षता से आशय धर्म के साथ किसी भी प्रकार के संबंधों से अभाव है।' धर्म निरपेक्ष साहित्य का तात्पर्य ऐसे साहित्य से है, जो धार्मिक उपासना से असंबंधित अथवा उसके प्रति असमर्पित हो, इसी प्रकार धर्मनिरपेक्ष शिक्षा से तात्पर्य ऐसे पाठ्यक्रम से है, जिसमें धार्मिक शिक्षा न हो, और एक धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण वह है जहाँ सामान्य जन-जीवन के प्रमुख क्षेत्रों से धर्म को पृथक् करने की प्रगतिशील चेष्टा हो। सरल व सहज शब्दों में, "धर्मनिरपेक्षता का अभिप्राय राज्य व धर्म का पृथक्करण है।" स्पष्ट रूप में "यह विचार अपनी प्रवृत्ति से भौतिकवादी है और यह प्रतिपादित करता है कि मानव का विकास केवल भौतिक साधनों द्वारा संभव है।" स्मिथ ने इसकी यह परिभाषा दी है, "धर्मनिरपेक्ष राज्य ऐसा राज्य है जो व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से धर्म स्वतन्त्रता की सुरक्षा करता है, व्यक्ति को किसी धार्मिक भेदभाव के बिना एक नागरिक के रूप में देखता है, संवैधानिक दृष्टि से किसी धर्म विशेष से असंयुक्त रहता है। यह किसी धर्म के प्रसार में सहायक या बाधक नहीं होता। सूक्ष्म परीक्षण से यह देखा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य की धारणा में तीन विभिन्न, परन्तु अन्तः सम्बन्धित सम्बन्धों के स्तर-राज्य, धर्म एवं व्यक्ति-निहित है।"

धर्मनिरपेक्षवाद का विचार संविधान की आधार संरचना में देखा जा सकता है। इसका प्राथमिक प्रमाण हमें प्रस्तावना (Preamble) में देखने को मिलता है, जिसका विस्तृत दिग्दर्शन समानता व धर्म संबंधी विभिन्न मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) के प्रावधानों में भी मिलता है। भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षवाद की धारणा उन सिद्धान्तों पर आधारित है जिनका गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस दल ने दृढ़ता से वरण किया। यह स्थिति दिखाती है कि भारतीय संविधान ने देश को विभाजित करने वाले जिन्ना के द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के पाप को धोने का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है। अस्तु, एक वरिष्ठ सदस्य आयंगार ने 7 दिसम्बर, 1948 को संविधान सभा में कहा, 'हम राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाने के लिए कृत-संकल्पित हैं। मेरा 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द से तात्पर्य किसी भी धर्म को न मानने और दैनिक जीवन में उससे कोई सम्बन्ध न रखने से नहीं है। इसका अर्थ केवल यह है कि राज्य या सरकार किसी भी धर्म की सहायता नहीं करेगी या किसी धर्म को अन्य वर्गों के विरुद्ध प्राथमिकता नहीं देगी। अतः शासन अपनी प्रकृति से पूर्णतया धर्मनरिपेक्ष ही रहेगा।' संविधान की धर्मनिरपेक्षता के प्रमाण निम्नलिखित उपबन्धों में दृष्टिगोचर होते हैं:

1. प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है तथा यह सभी नागरिकों की विभिन्न स्वतन्त्रताओं (जैसे विश्वास, आस्था एवं उपासना की स्वतन्त्रता) के सम्बन्ध में प्रतिभूत करता है।
2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 के अनुसार, राज्य भारत की सीमाओं के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता तथा कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।
3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-15 के अनुसार, राज्य किसी व्यक्ति के साथ उसकी नस्ल, धर्म व जाति के आधार पर विभेद नहीं करेगा। आगे यह प्रावधान भी किया गया है कि धर्म, जाति व नस्ल आदि के आधारों पर किसी भी नागरिक को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, जलपानगृहों, मनोरंजन स्थलों आदि में प्रवेश करने पर या राज्य के कोष द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त, कुओं, तालाबों, सड़कों व सार्वजनिक विश्राम स्थलों के उपयोग पर कोई बाध्यता या अयोग्यता लागू नहीं की जा सकेगी।
4. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-16 के अनुसार किसी नागरिक को धर्म, जाति या नस्ल के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं के लिए आयोग्य व अपात्र घोषित नहीं किया जाएगा और नहीं राज्य द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त किसी शैक्षिक संस्था में प्रवेश से वंचित किया जाएगा।
5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-17 के अनुसार, छुआछूत समाप्त कर दी गई है और किसी भी रूप में इसका पालन वर्जित है। अस्पृश्यता के आधार पर किसी प्रकार की अयोग्यता को लागू करना कानून के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध होगा।
6. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-25 के अनुसार, सभी व्यक्ति समान तौर से विश्वास या धर्म की स्वतंत्रता के अधिकारी हैं और उन्हें अपनी पसंद के किसी धर्म के पालन, आचरण, व शान्तिपूर्ण तरीकों से उसका प्रचार करने का अधिकार है।
7. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-26 के अनुसार, प्रत्येक धार्मिक समुदाय व उसका कोई सम्प्रदाय धर्म व कल्याण संबंधी कार्यों के लिए अपनी संस्थाओं की स्थापना व संचालन करने का अधिकारी है व धार्मिक कार्यों को स्वयं संचालित करने,

उसकी चल व अचल सम्पत्ति के स्वामित्व व अधिग्रहण करने तथा कानून के अनुसार अधिशासित करने के अधिकारी है।

8. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-27 के अनुसार, कोई व्यक्ति ऐसे करों का भुगतान करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनसे प्राप्त आय किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय की उन्नति या पोषण में व्यय करने के लिए विनियुक्त है।
9. भारतीय संविधान अनुच्छेद-28 के अनुसार, राज्य द्वारा आंशिक या पूर्णरूप से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से नहीं दी जाएगी।
10. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-29 के अनुसार, राज्य किसी समुदाय या सम्प्रदाय की संस्तुति के अतिरिक्त उस पर अन्य संस्कृति नहीं थोपेगा और सभी समुदायों या सम्प्रदायों को स्वेच्छा से अपनी शिक्षण संस्था स्थापित करने व उन्हें संचालित करने का अधिकार होगा। शैक्षिक संस्थानों को अनुदान देने में राज्य किसी विद्यालय के प्रति इस आधार पर भेद नहीं करेगा कि वह संस्था किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित हो रही है व किसी धार्मिक सम्प्रदाय के प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित है।

भारतीय संविधान के उपर्युक्त सभी प्रावधान दृढ़तापूर्वक यह घोषित करते हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। जैसा डी०डी० बसु ने कहा है, उपर्युक्त प्रावधान समग्र रूप से भारतीय राज्य को संयुक्त राज्य अमरीका से भी अधिक धर्मनिरपेक्ष बनाते हैं।

राजनीति के धर्म से स्पष्टत: विलग होने के सिद्धान्त पर भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद आधारित है, फिर भी, गहन अध्ययन करने पर इसकी तीन महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित रूप में दृष्टिगोचर होती है:

1. यह उदारवादी है, जबकि भारत एक मुख्यत: हिन्दू देश है, संविधान द्वारा सभी लोगों को न केवल धार्मिक स्वतंत्रता और समानता प्रदान की गई है, वरन् विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के आवश्यक अधिकारों और विशेषाधिकारों को भी संरक्षित किया गया है। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान के भाग-3, अनुच्छेद-25 में यह कहा गया है कि व्यक्ति किसी धर्म का पालन या आचरण व उसका प्रचार कर सकता है। ईसाई समाज के लिए 'प्रचार' शब्द का बहुत महत्त्व है जो इसमें विश्वास रखते हैं। धर्मान्तरण के लिए मिशन द्वारा चलाए जाने वाले आन्दोलन राज्य द्वारा बाधित नहीं होंगे। अत: संविधान में यह स्वीकार कर लिया गया है कि जब तक धर्म, धर्म है, अपनी अन्तरात्मा की आवाज से धर्मान्तरण करने की मान्यता भी है। इसी प्रकार, कृपाण का धारण करना व साथ रखना सिख धर्म के पालन का एक अंग माना जाएगा।
2. भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद निर्बाध नहीं है। धार्मिक स्वतंत्रता सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और जन स्वास्थ्य की दृष्टि से परिसीमित की जा सकती है। अनुच्छेद -25 के अनुसार, "सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा जन-स्वास्थ्य के नियमों के अधीन रहते हुए सभी नागरिकों को अन्त:करण तथा धर्म को अबाध मानने, आचरण तथा प्रचार करने की पूर्ण स्वतन्त्र होगी।" भारतीय धर्म निरपेक्षवाद के सिद्धान्त में लोगों की बढ़ती सामाजिक व नैतिक जागरूकता के अनुसार परिवर्तन होना चाहिए। दूसरी ओर, यह निर्धारित करने का अधिकार न्यायपालिका पर छोड़ दिया गया है कि वह देखे कि राज्य द्वारा अनुच्छेद-25 के अनुसार आत्मा की स्वतंत्रता पर जो प्रतिबन्ध लगाए हैं वे संविधान में निहित धर्मनिरपेक्ष धारणा के अनुकूल है अथवा नहीं।
3. भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद धर्म को राज्य के क्षेत्र से पृथक् ही नहीं करता, वरन् साम्प्रदायिकता से मुकाबला करने के लिए वह आगे भी बढ़ा है। इसीलिए, भारतीय संविधान के अनु०-17 द्वारा किसी भी प्रकार से अस्पृश्यता के आचरण पर पाबन्दी लगी है। इस उपलब्धि को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए 1955 में सरकार द्वारा अस्पृश्यता अपराध अधिनियम (Untouchability Offences Act) बनाया गया। यद्यपि संविधान या किसी अधिनियम में कहीं भी 'अस्पृश्यता' शब्द की व्याख्या नहीं की गई है, फिर भी सामान्य तौर पर इस शब्द का आशय ऐसी सामाजिक परम्परा से हैं, जिनमें कुछ दलित वर्गों को उनके जन्म के आधार पर नीचा देखा जाता है और उन्हें तथाकथित ऊँची जातियों या वर्गों से किसी प्रकार के सम्बन्ध रखने से वंचित किया जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अस्पृश्यता का व्यवहार अग्रलिखित स्थितियों में माना जाता है, जैसे सार्वजनिक संस्थाओं में किसी के प्रवेश पर निषेध, सार्वजनिक पूजागृहों में पूजा या प्रार्थना करने से किसी को रोकना, और किसी व्यक्ति को किसी दुकान, सार्वजनिक भोजनालय, होटल या मनोरंजन केन्द्र में जाने से रोकना। इस कानून के अनुसार, अस्पृश्यता को एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। इस गतिशील धर्मनिरपेक्षतावादी व्यवस्था के कारण भारत में न केवल सार्वजनिक संस्थाओं के प्रवेश में पिछड़े व दलित वर्गों के लोगों के लिए विशेष स्थानों को सुरक्षित रखा जाता है, वरन् सार्वजनिक नौकरियों व निर्वाचन में भी स्थान सुरक्षित कर दिए जाते हैं। भारत में कमजोर

वर्गों के विकास के लिए विशेष सुविधायें दी जाती है। केन्द्रीय व राज्यों के मंत्रीमण्डलों में अल्पसंख्यक समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है। भारत की व्यवस्थापिका सभाओं व न्यायिक संस्थाओं में भी इसी प्रवृत्ति का पालन होता है।

भारतीय धर्म-निरपेक्षवाद का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि हमारे धर्मनिरपेक्षवाद का नमुना मध्य युग में पाए जाने वाले सनातनी नमूने से भिन्न है अर्थात् हमारी व्यवस्था किसी ऐसे नमूने से बहुत भिन्न है जिसमें राज्य सभी धर्मों के प्रति पूर्णतया तटस्थता व निष्पक्षता का दृष्टिकोण रखता है। पुराने विचारों के अनुसार, एक धर्मनिरपेक्ष राज्य इस विचार पर अधारित है कि 'व्यक्ति और भगवान का संबंध व्यक्तिगत अन्तरात्मा का मामला है।' पाश्चात्य विचारक जो धर्मनिरपेक्षवाद को मध्यकालीन चश्मे से देखते हैं, भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद की वास्तविक प्रकृति को समझने में असफल रहे हैं। इसलिए, वे भारत को 'एक विशुद्ध धर्मनिरपेक्ष राज्य नहीं मानते हैं।'

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता तथा पंथनिरपेक्षता के मौलिक उद्देश्य एवं स्वरूप को स्पष्ट करना है। इस आलेख में धर्मनिरपेक्षता को संवैधानिक एवं वैधानिक दोनों रूपों में देखा गया है तथा इसके व्यापक परिप्रेक्ष्य एवं प्रभाव को अध्ययन का विषय बनाया गया है। शोध आलेख का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट व सर्वविदित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक 'भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता' है। भारत दुनिया का एक महान लोकतंत्र इसलिए है कि यह गणतंत्रात्मक है तथा यहाँ धर्मनिरपेक्षता को राज्य ही नहीं व्यक्ति तक स्वीकार करने की संविधानवादी मांग सामने रखी गई है। राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिबद्धता धर्मनिरपेक्षता के प्रति रही है। शासन के द्वारा भी धर्मनिरपेक्षता को प्रभावी बनाने के लिए संविधान में संशोधन किया गया है तथा न्यायपालिका के द्वारा दिये गये निर्णय के अनुरूप यह अवधारणा संविधान की मूल ढांचा के अंतर्गत शामिल हो चुकी है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है तथा यह भविष्य में भी धर्मनिरपेक्ष बना रहे। शासन के वर्तमान कार्यों से धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर किसी प्रकार की चोट नहीं दिख रही है तथा वर्तमान शासन वास्तविक अर्थ में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को प्रभावी बना रही है।

साहित्य सर्वेक्षण

भारतीय संविधान में प्रस्तावना पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इस विषय पर साहित्य सर्वेक्षण का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित प्रमुख साहित्य सर्वेक्षण किया है:

1. भारतीय संविधान- एक परिचय 'ब्रजकिशोर शर्मा, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, प्रकाशन वर्ष 2015 (11वाँ संस्करण)।
2. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० अमरजीत सिंह नारंग, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 1998
3. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर०के० पूर्वार, विकास पब्लिकेशन, जालंधर एवं नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1988
4. भारत का संविधान, बसंती लाल बाबेल, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण, वर्ष 2019
5. भारतीय राज व्यवस्था, डॉ० जयप्रकाश शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 2000
6. राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ० अशोक कुमार, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारतीय धर्मनिरपेक्षवाद प्रगतिशील राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए एक गतिशील व्यवस्था है। यह सामान्य काल में, न केवल धर्म और राजनीति को एक दूसरे से विलग रखती है, बल्कि असाधारण परिस्थितियों में सामाजिक सुधारों की आवश्यकता के लिए धर्म को राजनीति के अधीन भी बना देती है। संविधान साम्प्रदायिकता का हर स्तर पर, चाहे वह धार्मिक, जातिगत या प्रजातिगत या अन्य किसी रूप में हो, मुकाबला करने में सक्षम है। भारत की धर्मनिरपेक्षता के प्रगतिशील व गतिशील रुझान के प्रति सदस्यों द्वारा व्यक्त संदेह व भय को निराधार बताते हुए डॉ० अम्बेडकर ने संविधान सभा में बड़ी स्पष्टता से कहा कि "यह किसी के लिए सोचना असंभव है कि किसी सम्प्रदाय के निजी कानून राज्य के अधिकार क्षेत्र से बाहर होंगे। अतः, राज्य का कोई समुदाय यह न सोचे कि वह संसद की सम्प्रभु सत्ता की सीमा से बाहर है।"

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डी०डी० बसु, इन्ट्रोडक्शन टू द कॉन्सीट्यूशन ऑफ इंडिया, वॉल्यूम-टप्प्प पृ०-112
2. डी०एन० बनर्जी : आवर फंडामेन्टल राइट्स, पृ० 273
3. तथैव, पृष्ठ-275
4. डी०डी० बसु, भारतीय संविधान, पृष्ठ-90
5. बसु, पूर्वोद्धृत, पृ०-108
6. अर्नेस्ट बार्कर, प्रिंसिपल ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी, पृ०-77

राष्ट्रीय सुरक्षा और भारत

डॉ० श्रीनिवास पांडेय

एम०ए०, पी०एच०-डी० (राजनीति विज्ञान), जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सार

राष्ट्र-राज्य की अवधारणा के आगमन के साथ ही प्रत्येक राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा महत्वपूर्ण एवं मार्मिक राष्ट्रीय हित के रूप में स्वीकृत रही है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन के अन्तर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा केन्द्रीय विषय रहा है तथा वैश्विक सन्दर्भ में अन्य राष्ट्रों की भाँति भारत में भी यह राजनीतिक व कूटनीतिक रणनीति की केन्द्रीय विषय बना रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने वाले कारकों में राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय हित की अवधारणा पूरक रूप में सर्वोपरि हो गई है। विभिन्न राष्ट्रों तथा राष्ट्र-समूहों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक एवं सामरिक, शक्ति-संतुलन तथा शस्त्रीकरण की प्रक्रिया के राष्ट्रीय सुरक्षा एक महत्वपूर्ण उपागम की तरह है। भारत की वैदेशिक नीति, आन्तरिक रणनीति तथा सभी संगठनात्मक गतिविधियों में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रथम, अनिवार्य एवं प्राथमिक माना जाता है।

मूल शब्दः सामूहिक सुरक्षा, आतंकवाद, उपनिवेशवाद, वैदेशिक नीति, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, सामरिक रणनीति, क्षेत्रीय संगठन, कूटनीति, पड़ोसी नीति, गुजराल डॉक्टरीन

प्रस्तावना

राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा प्रत्येक काल व परिस्थिति में महत्वपूर्ण रही है, हालांकि प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) और द्वितीय विश्व (1939-45) के समय इसे गंभीरता से स्वीकार किया गया है। शीत युद्ध काल तथा उत्तर शीतयुद्ध काल में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा विश्व समाज के सामने विचारणीय प्रश्न बन गया, जब परमाणु शस्त्रीकरण के कारण परमाणु युद्ध और तृतीय विश्व युद्ध की संभावना व्यक्त की जाने लगी। यह चिन्ता और भी बढ़ गई थी, जब वर्ष 1979 में पूर्व सोवियत संघ का अफगानिस्तान में हस्तक्षेप हुआ तथा नवीन शीत युद्ध का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 1990 के बाद सोवियत संघ के विघटनोपरान्त एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमरीकी प्रभुत्त्व ने भले ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सामरिक पक्षों को कमजोर तथा आर्थिक पक्षों को महत्वपूर्ण बना दिया है, परन्तु अब भी राष्ट्रीय सुरुक्षा की चिन्ता समाप्त नहीं हुई है। हाल के वर्षों में तो आतंकवाद ने भारत की ही नहीं, विश्व के अन्य शक्तिशाली देशों के सामने भी राष्ट्रीय सुरक्षा के सामने कई चुनौतियों को खड़ा कर दिया है।

भारत के लिए राष्ट्रीय हित में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा महत्वपूर्ण है, जैसा कि अन्य देशों के लिए यह अवधारणा महत्वपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक प्रसिद्ध विद्वान आर०ई० ओसगर ने राष्ट्रीय हित और राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को पूरक तथा पयार्यवाची तक बताया है। उन्होंने राष्ट्रीय हित की प्राप्ति को ही राष्ट्रीय सुरक्षा मानते हुए कहा है कि "अनिवार्यतः प्रत्येक कीमत पर राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित करने के दश्ढ़ संकल्प को ही राष्ट्रीय सुरक्षा कहते हैं। राष्ट्रीय हितों में निहित राष्ट्र की प्रादेशिक अखंडता, राजनैतिक स्वतंत्रता और सरकार की मूल संस्थाओं जैसे तत्वों में न केवल राष्ट्र की उत्तरजीविता अपितु उसकी सामर्थ्य भी समाविष्ट होती है।" राष्ट्रीय सुरक्षा शासकीय रणनीति का महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय विषय होता है तथा प्रत्येक राष्ट्र के समान भारत भी अपनी वैदेशिक नीति व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से इस अनिवार्यता को सुरक्षित रखना चाहता है। वस्तुतः राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य रणनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा को ही केन्द्रीय रूप में देखा जा सकता है। स्पष्टतः राष्ट्रीय सुरक्षा

के सुदृढ़ ढाँचा (framework) के निर्माण हेतु सर्वप्रथम राष्ट्र की मार्मिक मूल्यों की पहचान तथा बाद में आंतरिक व बाह्य सुरक्षा के विभिन्न खतरों के स्वरूप एवं प्रकृति का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा कारक एक-दूसरे से सम्बद्ध होने के साथ-साथ एक दूसरे को प्रभावित (interact) भी करते हैं। जहाँ एक ओर विभिन्न बाह्य राजनैतिक, आर्थिक व सैनिक दबाव राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं, वहीं विभिन्न आंतरिक समस्याएँ बाह्य खतरों को जन्म देती है। यही कारण है कि सुदृढ़ सुरक्षा ढाँचें के निर्माण में सुदृढ़ अर्थ तंत्र, सैन्य क्षमता, राजनैतिक स्थिरता, सामाजिक सशक्ति तथा सुदृढ़ सांस्थानिक ढाँचा आदि कारक प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हैं।[1]

राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को निर्धारित एवं प्रभावित करने वाले कारकों में विचारधारा, राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय मनोबल, सैनिक शक्ति आदि कारक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा में भले ही विचारधारा को द्वितीयक बताया जाये, परन्तु गुटनिरपेक्षता, पंचशील, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व भी एक प्रकार की विचारधारा ही है। कार, जिर्मन, बेकर, रसेल और शॅटबेल जैसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वानों ने विश्व शांति एवं अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को ही विचारधारा माना है, जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण होता है।[2] राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सुदृढ़ सैनिक तंत्र की स्थापना में विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान होता है।[3] वास्तविकता तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का यह यथार्थ विचारधारा ही केन्द्रीय विषय है जो राष्ट्र के नागरिकों को एक-दूसरे के निकट लाने, एकता की भावनाओं को सुदृढ़ करने तथा राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु सब कुछ न्योछावर करने की भावनायें जागृत करती है। जबकि स्पष्ट विचारधारा के अभाव में किसी राष्ट्र की सुरक्षा नीति व विदेश नीति का कोई ठोस आधार निर्मित ही नहीं हो सकता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों में विचारधारा के साथ-साथ राष्ट्रीय चरित्र को भी महत्वूपर्ण कारक बताया जा सकता है। वस्तुतः राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण मानवीय कारक है। प्रो० मार्गेन्थो के शब्दों में "राष्ट्रीय सुरक्षा व शक्ति पर राष्ट्रीय चरित्र की अनिवार्यतः प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जो भी व्यक्ति युद्ध तथा शान्ति में राष्ट्र की ओर से कार्य करते हैं, चुनते हैं अथवा चुने जाते हैं, जनमत पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं तथा उत्पादन और खपत में वृद्धि करते हैं। ये सभी लोग अधिक या कम स्तर पर उन बौद्धिक तथा नैतिक गुणों की छाप से युक्त रहते हैं, जो राष्ट्रीय चरित्र को निर्मित करते हैं।[4] प्रत्येक राष्ट्र के निवासियों में कुछ विशिष्ट गुण, कुछ सामान्य गुण तथा कुछ अवगुण अवश्य पाये जाते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से राष्ट्रीय चरित्र के नाम से जाना जाता है। यह राष्ट्रीय चरित्र का ही परिणाम है कि जहाँ एक ओर अमरीका व ब्रिटेन अपने राष्ट्रीय चरित्र के कारण सैनिकवाद व अनिवार्य सैन्य-पद्धति के विरोधी है, वहीं जर्मनी व रूस सैन्यीकरण पर आधारित विदेश नीतियों के सरलता से निर्धारित कर सकते हैं। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, शान्ति, अहिंसा व पंचशील का समर्थक भारत मूलतः शान्ति का पक्षधर है किन्तु राष्ट्रीय संकट की घड़ी में यहाँ का जन-मानस बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहता है। उधर पाकिस्तान अपनी युद्ध प्रिय प्रवृत्ति के कारण सतत् रक्षा तैयारी एवं युद्ध के वातारवरण के निर्माण व संचालन को श्रेयस्कर मानता है। यह राष्ट्रीय चरित्र का ही परिणाम है कि जर्मनी, जापान व इजराइल आदि देश शान्तिकाल में भी अपने राष्ट्रीय संसाधनों का एक बड़ा भाग रक्षा तैयारियों पर लगाने हेतु उद्यत रहते हैं।

मनोबल, राष्ट्रीय सुरक्षा का ऐसा अमूर्त तत्व है जो अपनी विशिष्ट निष्ठा, साहस, विश्वास, व्यक्तित्व तथा गरिमा को सुरक्षित रखने की भावना से प्रेरित होता है।[5] राष्ट्र का सम्पूर्ण औद्योगिक व कृति उत्पादन, कूटनीतिक सेवाएँ तथा सैन्य तैयारियाँ इसमें समाहित होती है। वास्तव में, यह एक ऐसा अदृश्य महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके अभाव में कोई सरकार अपनी नीतियों को प्रभावी ढंग से संचालित नहीं कर सकती। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में तो मनोबल सम्पूर्ण राष्ट्र का ऐसा विकसित सामूहिक दृष्टिकोण है जिस पर राष्ट्र की आंतरिक व बाह्य नीतियों की स्रुलता निर्भर करती है। सैन्य-सक्रियताओं में तो मनोबल का विशेष महत्व होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा को निर्धारित, प्रभावी एवं सक्रिय बनाने में विभिन्न भौगोलिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक व सामाजिक पहलुओं की महत्वपूर्ण भूमिका होता है। इसके बाद भी राष्ट्रीय सुरक्षा व शक्ति का मूल्यांकन मूलतः सशस्त्र सैन्य शक्ति से ही किया जाता है। सैन्य शक्ति ही वह महत्वपूर्ण निर्धारक है जो राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न होने वाले खतरों का मुँहतोड़ जबाव देने के साथ-साथ न केवल आंतरिक सुरक्षा को स्थायित्व प्रदान करती है, बल्कि क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उस राष्ट्र की भूमिका व महत्व को स्थापित करती है। अपने पड़ोसी राज्यों से द्विपक्षीय संबंधों के निर्धारण व क्षेत्रीय शान्ति की स्थापना में सैन्य शक्ति की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण तथा निर्णायक होती है। एशिया में चीन के विशाल आण्विक भण्डार, पाकिस्तान के शस्त्रोन्मुख आण्विक कार्यक्रमों एवं चीन-पाक आण्विक सहयोग के दूरगामी प्रभावों व परिणामों से चिन्तित होकर भी भारत न केवल विदेशी दबावों की परवाह किये

बिना अपने मिसाइल कार्यक्रम को जारी रखे हुये हैं, अपितु अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान में रखकर वर्ष 1998 में द्वितीय पोखरण यानी परमाणु परीक्षण का निर्णय लिया।

राष्ट्रीय सुरक्षा की स्थापना में राष्ट्र के नेतृत्वकर्त्ता की सोंच, रणनीति एवं व्यक्तित्व को भी महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। आधुनिक सन्दर्भों में सफल राष्ट्रीय सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा नीति के निर्धारण में राजनैतिक स्थिरता एवं प्रशासनिक कुशलता भी एक महत्वपूर्ण कारक है। राष्ट्र की बौद्धिक अभिक्षमता के विकास, मजबूत वैदेशिक नीति के निर्धारण, आन्तरिक समस्याओं के सही समाधान, राष्ट्रीय मनोबल का विकास तथा जन-भावनाओं की संतुष्टि कुशल नेतृत्व के द्वारा ही पंडित जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी तथा नरेन्द्र मोदी का नेतृत्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र के स्वरूप को निर्धारित किया है तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को प्रभावित भी किया है। यहाँ यह कहना गलत नहीं है कि पिछले कुछ वर्षो से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को एक मजबूत देश माना जा रहा है, जिसके मूल में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व की अहम् भूमिका रही है। इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो रहा है तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को भी बल मिला है। आज भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती आतंकवाद को दुर्बल करने में राष्ट्र को मोदी का नेतृत्व निर्णायक माना जा रहा है।

वर्तमान परिस्थिति में "सुरक्षा तथा विदेश नीति के मध्य अटूट सम्बन्ध है, जिसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।"[6] सच तो यह है कि राष्ट्रीय सुरक्षा एवं विदेश नीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक राष्ट्र अन्तिम हथियार के रूप में युद्धों का सहारा लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि युद्ध व विदेश नीति एक-दूसरे के ऊपर आश्रित हैं। विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय हितों को सुरक्षा प्रदान किया जाये, यदि उसके पीछे पर्याप्त सैन्य शक्ति नहीं है तो वह सफल नहीं हो सकती है। इसीलिए कहा गया है कि युद्ध एक रक्तरंजित संघर्ष है और राजनीति एक अरक्तरंजित युद्ध जिन्हें एक-दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। "किसी भी राष्ट्र की युद्ध नीति राजनीति की शाखा मात्र है-वह साधन है, साध्य नहीं, लेकिन दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर हैं और ये दोनों ही भौगोलिक तना की दो शाखाओं के समान है।"[7] वस्तुत: किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति का मूल्यांकन राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में किया जाता है। वर्तमान में तो राष्ट्रीय शक्ति के बिना राष्ट्रीय सुरक्षा की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इस सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वानों ने लिखा है कि "कूटनीति एवं सैनिक शक्ति, राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रमुख तत्व है।"[8]

भारत की विदेश नीति की यह मान्यता है कि शान्ति, सुरक्षा और विश्व व्यवस्था के लिए संयुक्त राष्ट्र मानवता की आशा है। भारत के संविधान में निर्देश दिया गया है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शांति को प्रोत्साहन देगी और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का प्रयास करेगी।[9] भारत इस महत्वपूर्ण आदर्श के अनुसार आचरण करने का प्रयास करता है। संयुक्त राष्ट्र, संप्रभुता-सम्पन्न देशों का संगठन है जो विश्व शान्ति के लिए समर्पित है तथा यह अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान और मानव समाज को युद्धों से रक्षा के लिए कार्यरत है। संयुक्त राष्ट्र में विश्वास और इस विश्व संगठन के साथ सहयोग, भारत की विदेश नीति का प्रमुख स्तम्भ माना जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जब भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक पराधीन देश था, उस समय भारत राष्ट्र संघ (League of Nations) का सदस्य बन गया। भारत परतंत्र था, इसलिए स्वतन्त्र रूप से निर्णय नहीं ले सकता था। उसका प्रतिनिधि वही कहता था जो ब्रिटिश सरकार आदेश देती थी। जब द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों ने, राष्ट्र संघ को पुनर्जीवित करने के स्थान पर एक नए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निर्णय लिया, उस समय भी भारत स्वाधीन नहीं था। इसके बाद भी सैन फांसिस्को में, अप्रैल-जून, 1945 में आयोजित सम्मेलन में भारत को अपना प्रतिनिधि मंडल भेजने के लिए आमंत्रित किया गया। इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर को अन्तिम रूप देकर अंगीकृत किया गया। 15 अगस्त, 1947 को भारत एक स्वतंत्र एवं सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में दुनिया के सामने आने के बाद स्वयं को गुटीय राजनीति से अलग रखा तथा स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं सक्रिय वैदेशिक नीति के रूप में गुटनिरपेक्षता को अपनाया।

विदेश नीति का निर्माण वास्तव में राष्ट्रीय हित और राष्ट्रीय सुरक्षा के साध्य और साधन के चयन से आरम्भ होता है। भारत ने स्वतंत्रता के तुरन्त बाद जो आदर्श स्वीकार किए वे थे, अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा, सभी नस्ल एवं जातियों की समानता, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष ताकि पराधीन देशों को स्वतन्त्र कराया जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान एक अन्य प्रमुख उद्देश्य था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारत के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा, देश का तेजी से आर्थिक

विकास और हमारी संप्रभुता तथा प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा भी आवश्यक थे। भारतीय दर्शन और परम्परा के अनुसार तथा गाँधी जी के नैतिक सिद्धान्तों के प्रभाव में नेहरू सरकार ने यह तय किया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए केवल पवित्र साधनों का प्रयोग किया जायेगा। इसलिए भारत ने शांतिपूर्ण साधनों पर बल दिया। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नेहरू सरकार ने कुछ सिद्धांतों की रूपरेखा तैयार की थी। उनके उत्तराधिकारियों ने आमतौर पर इन सिद्धान्तों के अनुसार ही आचरण किया है। गुटनिरपेक्षता भारत की विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है। शक्ति गुटों से दूर रहने और शीतयुद्ध से बचने के आज इस सिद्धान्त को 120 देशों ने अपनाया है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध आलेख का उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के सभी पक्षों के साथ-साथ वैदेशिक नीति और कूटनीति के पक्षों को स्पष्ट करना है। प्रस्तुत आलेख में इस बात को भी देखा जाएगा कि भारत वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर किस रणनीतिक और कूटनीतिक गतिवधियों को सम्पन्न कर रहा है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक 'राष्ट्रीय सुरक्षा और भारत' है। इस शोध आलेख में निम्नलिखित परिकल्पनाएँ की गई है:

1. भारत की वैदेशिक नीति के मूल में राष्ट्रीय सुरक्षा हमेशा ही निहित रहा है तथा भविष्य में भी इसी प्रकार की स्थिति कायम रहेंगी।
2. राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर वर्तमान की नरेन्द्र मोदी सरकार पूर्व की तुलना में अधिक सशक्त रणनीतिक एवं कूटनीतिक पक्षों को महत्व दे रही है।
3. राष्ट्रीय सुरक्षा विषय वर्तमान में महत्वपूर्ण है तथा विभिन्न प्रकार की चुनौतियों की सामना कर रही है। भविष्य में भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति अधिक सशक्त होगा तथा समस्याओं का समाधान भी हो जाएगा।

साहित्य सर्वेक्षण

इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

निष्कर्ष

भारत दुनिया का एक महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक देश है; विकासशील देश है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं न्यायपूर्ण आचरण का समर्थन करता है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान चाहता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत की सक्रिय भूमिका का वास्तविक उद्देश्य सामूहिक सुरक्षा में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राप्त करना रहा है। भारत, राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति हमेशा ही प्रतिबद्ध रहा है तथा मोदी सरकार तो इस दिशा में अधिक प्रतिबद्धता का परिचय दे रही है।

सन्दर्भ सूची

1. रणनीतिक विश्लेषण (अंग्रेजी में), नवम्बर, 1987, वोल्यूम-ग्प, नं०-8, पृष्ठ-888
2. मदोदर राव, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ-89
3. एच० जे० मार्गेन्थो, पोलिटिक्स अमंग नेशन्स, पृष्ठ-130
4. तथैव, पृष्ठ-130
5. मदोदर राव, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ-93
6. के० एम० पन्निकर, पॉब्लेम ऑफ इंडियन डिफेन्स, पृष्ठ-115
7. मेजर आर० सी० कुलश्रेष्ठ : युद्ध के साधान और साध्य, पृष्ठ-4
8. एल० सी० पेल्टीयर तथा जी० ई० पीयरी, मेलेट्री ज्योग्राफी, पृष्ठ-8
9. भारतीय संविधान, भाग-4, अनुच्छेद-51

भारत में प्रजातियों का वर्गीकरण विशेषतः बी० एस० गुहा के विचारों का अवलोकन

डॉ० विजय मिस्त्री

एम०ए०, पी-एच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध पत्र का सार

भारत विविधताओं का देश है, यहाँ सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा अन्य रूप में विविधताएँ दृष्टिगोचर होती है। भारत में प्रागैतिहासिक काल से ऐतिहासिक काल तक विविधताएँ विशेषतः प्रजातियों के मामलों में दिखता रहा है। एशिया भूखण्ड के सुदूर दक्षिण में हिन्द महासागर पर स्थित उत्तर, उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में पर्वतमालाओं द्वारा आवेष्ठित और दक्षिण में समुद्रों द्वारा विलग भारत भौगोलिक दृष्टि से एक ऐसी सुरक्षित इकाई है जिसमें यदि कोई प्रवेश करना चाहे तो वह केवल पर्वतीय दर्रों द्वारा अथवा तटीय भागों से ही कर सकता है। इन भू-अवस्थाओं के फलस्वरूप भारत में काफी समय पूरब और दक्षिण-पूरब की ओर हटती गयी और इस प्रकार पहााड़ियों और वन क्षेत्रों ने बड़े परिमाण में जनजातियों को अपने अंक में स्थान देकर उन्हें सर्वनाश से बचाये रखा है। भारत की जनसंख्या में मानव की समस्त प्रमुख प्रजातियों के वे तत्व मौजूद हैं।

मूल शब्दः आर्य, प्रजातिवाद, नस्लवाद, भू-राजनीति, सवर्ण, अवर्ण, द्रविड़, संस्कृतिकरण, सामाजिकरण, नगरीकरण।

प्रस्तावना

शोध आलेख के अन्तर्गत भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण अपेक्षित है तथा इसमें गुहा के द्वारा प्रस्तुत भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण विशेषतः किया जायेगा। भारत में मानवशास्त्र के अन्तर्गत सर्वप्रथम भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण वर्ष 1901 के जनगणना के अनुसार किया गया।[1] सर हरबर्ट रिजले ही वह प्रथम वैज्ञानिक थे, जिन्होंने बहुत ही व्यवस्थित रूप में भारतीय प्रजातियों का वर्गीकरण किया तथा उन्होंने 1901 के जनगणना को आधार बनाया। इनके अतिरिक्त भारत की प्रजातियों का वर्गीकरण अन्य कई विद्वानों के द्वारा किया गया है, जिनमें ग्यूफ्रीडा (Giuffrida), हैडन (Haddon), ईक्सटैड (Eicktedt), गुहा (Guha), हट्टन (Hutton) का नाम लिया जा सकता है। गुहा के भारतीय प्रजातियों के वर्गीकरण में सभी विद्वानों के विचारों की मौलिक बातों का समन्वय दिखता है। इसलिए प्रस्तुत आलेख में गुहा के वर्गीकरण को ही अध्ययन किया गया है। सर हरबर्ट रिजले ने भारतीय जनसंख्या में विभिन्न मानव प्रजातियों के सात अग्रलिखित वर्गीकरण किया गया है।[2] रिजले के अनुसार भारतीय प्रजातियों में द्राविड़, भारतीय आर्य, मंगोल, आर्य-द्राविड़, मंगोल-द्राविड़, सीथो द्राविड़, द्राविड़ तथा तुर्क ईरानी। ग्यूफ्रीडा ने नीग्रिटो आदि द्राविड़, टोडा और कड़ार प्रजातियों की चर्चा किया है। ईक्सटैड ने प्राचीन भारतीय, काले भारतीय, नवीन भारतीय और पूर्व मंगोल भारतीय की चर्चा किया है। सबसे मुख्य और सर्वमान्य वर्गीकरण डॉ० बी०एस० गुहा द्वारा (1931 की जनगणना रिपोर्ट में) प्रस्तुत किया गया है।[3]

(1) नीग्रिटो (Negritos): भारतीय जनसंख्या में नीग्रिटो तत्व का समावेश एक संदिग्ध और विवादास्पद विषय है। वास्तविक नीग्रिटो प्रजाति फिलीपाइन, न्यूगिनी, अण्डमान द्वीप और मलेशिया प्रायद्वीप के सेमांग और सकाई लोगों के रूप में मिलती है। भारत में इन लोगों की उपस्थिति के बारे में निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। लैपीक के अनुसार भारत में नीग्रिटो जाति का अंश दक्षिण भारत के आदिवासियों में पाया जाता है। ट्रावनकोर-केरल के कडार और पनियान और और वायनाड की प्राचीन जनजाति

इरूला लोगों के सिर पर प्राय: ऊन जैसे बाल देखे जाते हैं जो नृतत्वशास्त्र के दृष्टिकोण से नीग्रो को इंगित करते हैं किन्तु थर्स्टन महोदय ने उपरोक्त मत का खण्डन किया है। इसके विपरीत ग्यूफ्रीडा रूजीरी का विचार है कि दक्षिण भारत की जनजातियों में पाये जाने वाले नीग्रिटो आज भी विद्यमान है। प्रजातीय दृष्टि से ये लोग श्रीलंका के वेद्दा, सुमात्रा के वाटिन और सुलाबेसी के तोला लोगों से सम्बन्धित हैं।[4] इस मत को हैडन ने भी स्वीकार किया है कि यद्यपि दक्षिण में नीग्रिटो प्रजाति होने की शंका की जाती है किन्तु इसकी वास्तविक सत्यता अभी ज्ञात नहीं है।[5]

डॉ० हट्टन ने नीग्रिटो समस्या पर विशेष ध्यान दिया है। उनके अनुसार भारत के पूर्वी सीमान्त की जनसंख्या में नीग्रिटो तत्व पाया जाता है। उन्होंने मणिपुर और कछार की पहाड़ियों के कुछ अंगामी नागाओं से विशेष ऊन से बाल देखे हैं।[6] डॉ० गुहा के कडार और अन्य पहाड़ी जातियों में नीग्रिटों तत्व को स्वीकार किया है। डॉ० सरकार के अनुसार राजमहल पहाड़ियों की आदिम जातियों में घुँघराले बाल पाये जाते है। डॉ० हट्टन ने इन सब तथ्यों पर विचार करने के उपरान्त लिखा है कि भारतीय प्रायद्वीप के सबसे पूर्व के निवासी सम्भवत: नीग्रो जाति के ही थे किन्तु बाद में उनका शीघ्रता से ह्रास होता चला गया। यद्यपि वे अण्डमान द्वीप में आज भी विद्यमान हैं परन्तु भारतीय भूमि पर उनके बहुत कम अंश शेष हैं। सुदूर दक्षिण के वनों के कडार और यूराली लोगों में यदाकदा छोटे कद, घुँघराले बाल और नीग्रो आकृति के लोग देखे जाते हैं जो वास्तव में भारत में नीग्रिटो प्रजाति के अवशेष को स्पष्ट करते हैं।[7] ग्यूफ्रीडा भारत और फारस की खाड़ी के बीच नीग्रिटो लोगों की उपस्थिति ऐतिहासिक काल के पूर्व मानते हैं।

बंगाल की खाड़ी, मलेशिया प्रायद्वीप, फिजी द्वीपसमूह, न्यूगिनी, दक्षिण भारत और दक्षिणी अरब में नीग्रिटो अथवा आंशिक नीग्रो लोगों की उपस्थिति यह मान लेने को प्रेरित करती है कि किसी पूर्व-ऐतिहासिक काल में नीग्रिटो लोग एशिया मालद्वीप के बहुत बड़े भाग विशेषकर दक्षिणी भाग को घेरे हुए थे। बाद में पूर्व-द्राविड़ों और द्राविड़ों के आने पर (जो उनसे अधिक शक्तिशाली थे) इन लोगों की समाप्ति हो गयी अथवा वे उनमें विलीन हो गये। वर्तमान समय में ये लोग कहीं-कहीं पर अवशेष रूप में ही पाये जाते हैं।

नीग्रिटो तत्व मुख्यत: अण्डमान द्वीपवासियों में मिलता है।[8] इनके अन्य प्रतिनिधि इरूला, कडार, पुलायन, मुथुवान और कन्नीकर आदि हैं। प्रो० कीन्स कडार, मुथुवान, पनियान, सेमांग, उराँव और ऑस्ट्रेलियाई आदिवासियों को उन लोगों की सन्तान मानते हैं जो किसी समय सम्पूर्ण भारत में निवास करते थे।[9] ये लोग ही सबसे पहले मलेशिया से भारत की ओर बंगाल की खाड़ी के द्वार से घुसे और उत्तर हिमालय की तलहटी तथा दक्षिण में प्रायद्वीप पर फैल गये।[6] इन लोगों की मुख्य विशेषता यह है कि ये कद में बहुत छोटे होते हैं। इनका सिर छोटा किन्तु ललाट उभरा हुआ होता है। इनके बाल सुन्दर और ऊन जेसे छल्लेदार (Pepper Corn) होते हैं। ये रंग में काले होते हैं। सिर की बनावट गोल से लगाकर म्बी अथवा मध्यम होती है। इनके हाथ-पैर कोमल होते हैं। चेहरा छोटा, नाम चपटी और चौड़ी, माथा आगे की ओर निकला हुआ, भौं की हड्डियाँ सपाट और दाढ़ी छोटी और होंठ मोटे और मुड़े हुए होते हैं।

नीग्रिटो लोगों की सभ्यता बहुत अविकसित दशा में थी। ये पूर्व-पाषाण युग की सभ्यता लेकर भारत में आये थे। पत्थर, हड्डी के अनगढ हथियार तथा तीर-कमान के सिवाय इन्हें किसी अन्य हथियार का ज्ञान न था। ये लोग गुफाएँ बनाकर रहते थे और भोजन के लिए वस्तुएँ एकत्रित करने का काम करते थे। खेती करना इन्हें न आता था किन्तु ये लोग वट वृक्ष (पिबने जतमम) की पूजा करते थे। इस पूजा का उद्देश्य सन्तान प्राप्त करना तथा मृतकों की सद्गति प्रदान करना था। भारतीय संस्कृति में वट-पूजा का चलन एवं गुफाओं का निर्मा इन्हीं लोगों की देन है।

(2) प्रोटो-ऑस्ट्रलॉइड (Proto-Australoids): सम्भवत: भारत में आने वाली दूसरी प्रजाति आदि-द्राविड़ थी। यद्यपि इनके आदि-पूर्वज फिलीस्तीन में देखे जा सकते हैं परन्तु भारत में ये कब और कैसे आये यह अभी भी ज्ञात नहीं है किन्तु भारत की वर्तमान जनजातियों में इस प्रजाति का अंश ही सर्वाधिक है। इन लोगों में श्रीलंका के वेद्दा, ऑस्ट्रेलियाई और मलेशियाई लोगों के रंग, चेहरे और बालों आदि में इतनी समानता पायी जाती है कि उससे यह स्पष्ट है कि ये चारों एक प्रजाति के वंशज हैं। भारत में ये लोग बाहर से आये हैं अथवा भारत से ही ये बाहर के देशों में पहुँचे हैं, यह अभी भी वावादास्पद है। ये ऑस्ट्रेलियाई लोगों से बहुत मिलते-जुलते हैं। अत: इन्हें आदि-द्राविड़ नाम दिया गया है। वास्तविक ऑस्ट्रेलियाई लोगों की नाक चेहरे से चिपकी हुई, छाती मजबूत और शरीर पर घने बाल होते हैं जो भारतीय जनजातियों में प्राय: नहीं देखे जाते किन्तु दक्षिण भारत के चेंचू, मलायन,

कुरूम्बा, यरूबा, मुण्डा, कोल, संथाल और भील समूहों में ऐसे बहुत से लोग पाये जाते हैं जिनमें उपरोक्त विशेषताएँ हैं। अनुसूचित जातियाँ प्रधानतः इस प्रजाति से बनी हुई मानी जाती है। ये लाग कद में नाटे और गहरे, भूरे अथवा काले रंग के होते हैं। इनका सिर लम्बा और नाक चौड़ी, चपटी या पिचकी हुई होती है। इनके बाल घुँघराले और होंठ मुड़े और मांसल (Fleshy) होते हैं।

(3) मंगोलॉइड (Mongoloids): प्रजाति का आदि-स्थान इरावदी नदी की घाटी, चीन, तिब्बत और मंगोलिया को माना जाता है। यहीं से ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य ये लोग भारत में आये और धीरे-धीरे उत्तरी-पूर्वी बंगाल के मैदान और असम की पहाहड़यों तथा मैदान में घुसते चले गये। यद्यपि उत्तर और उत्तर-पूरब के कठिन स्थल-मार्गों ने उनके यहाँ बड़ी मात्रा में प्रवेश में रोड़े अटकाये परन्तु फिर भी वे निरन्तर आगे बढ़ते रहे। यही कारण है कि भारत के उत्तरी-पूर्वी भागों में नेपाल, असम और पूर्वी कश्मीर में तीन प्रकार के मंगोल लोग पाये जाते हैं। मंगोल प्रजाति अन्य प्रजातियों से इन बातों में भिन्न है-इनका मुँह चपटा और गाल की हड्डियाँ उभरी हुई होती है। आँखें बादाम की आकृति की हाती है। चेहरे और शरीर पर बाल कम होते हैं। इनका कद छोटे मध्यम तक तथा सिर चौड़ा और रंग पीलापन लिए होता है। मंगोल समूह में निम्नलिखित तीन प्रजातियाँ हैं:

(क) *पूर्व मंगोलॉइड (Palaeo-Mongoloids):* बहुत ही प्राचीन प्रजाति है। यह शीघ्रता से पहचानी नहीं जाती। सिर की बनावट, नाक और रंग से ही इन्हें पहचाना जा सकता है। यह दो श्रेणियों में बँटी है-(1) लम्बे सिर, मध्यम आँखें, छोटा और चपटा मुँह तथा हल्के-भूरे रंग वाली मंगोल प्रजाति लम्बे सिर वाली होती है। ये उप-हिमालय प्रदेश, असम और बर्मा की सीमा पर रहने वाले आदि लोगों (जैसे-नागा) में बहुत अधिक पायी जाती है। (2) इस समूह की दूसरी प्रजाति चौड़े सिर वाली (Broad-headed Type) है। बंगला देश में चिटगाद्दव पर्वतीय जनजाति (जैसे-चकमास) इसी श्रेणी के हैं। कलिम्पोंग की लैपचा जनजाति भी इसी समूह में सम्मिलित की जाती है। इनका सिर चौड़ा, रंग काला और नाक मध्यम आकार की होती है। चेहरा छोटा और चपटा होता है। सिर के बाल सीधे परन्तु कुछ घुँघराली प्रवृत्ति लिये होते हैं।

(ख) तिब्बती मंगोलॉइड लोग लम्बे कद, चौड़े सिर और हल्के रंग के होते हैं। चौड़ी चपटी नाक, लम्बा चपटा मुँह और शरीर पर बालों का अभाव इनकी अन्य विशेषताएँ हैं। ये लोग सिक्किम और भूटान में पाये जाते हैं। ये तिब्बत की ओर से भारत में आये माने जाते हैं।

मंगोल प्रजाति ने भारत की संस्कृति पर बड़ा प्रभाव डाला है। दूध, चाय, चावल, कागज सुपारी की खेतरी, सामूहिक घरों की प्रथा, सीढ़ीनुमा खेती, शेर का शिकार करना आदि का प्रयोग इन्हीं लोगों की देन है।

(4) भूमध्यसागरीय या द्राविड़ प्रजाति (Mediterraneans or Dravidians): भारत के आदिवासियों में तीन प्रमुख प्रजातियों (नीग्रिटो, पूर्व-द्राविड़ और मंगोल) के तत्व ही अधिक हैं। इनके अतिरिक्त साधारण जनसंख्या मुख्यतः भूमध्यसागरीय, एल्पो-दिनारिक और नार्डिक प्रजातियों से बनी है। इनमें भूमध्यसागरीय समूह सबसे बड़ा है। यह प्रजाति उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और मालाबार तट पर पायी जाती है। इस प्रजाति की कोई एक किस्म नहीं वरन् अनेक किस्में हैं जो लम्बे सिर, काले रंग और नहीं वरन् अनेक किस्में हैं जो लम्बे सिर, काले रंग और नहीं वरन् अनेक किस्में हैं जो लम्बे सिर, काले रंग और अपनी ऊँचाई द्वारा पहचानी जाती है।

भारतीय संस्कृति को इनकी देन बहुत अधिक है। मिट्टी के बर्तन बनाना, तीर-कमान चलाना, देशी नावें बनाना, मोर, घोड़े, टट्टू आदि पशुओं को पालना, गन्ने के रस से शक्कर बनाना, कौड़ी के अनुसार प्रत्येक वस्तुओं को बीस की संख्या में गिनना, विवाह आदि अवसर पर कुमकुम और हल्दी का प्रयोग करना भी इन्होंने ही भारत को दिया है। पाषाण युग कीस्मृति को बनाये रखने के लिए पत्थर को देवता मानकर उनकी पूजा करना, उसे सिन्दूर और चन्दन लगाना, उसके सम्मुख धूप-दीप जलाना, घण्टा-घड़ियाल बजाना, उसके समक्ष नाच-गान करना, मूर्ति को भोग लगाना और उस पर चढे भोग को प्रसाद के रूप में बाँटना। ये सभी भारत के इन लोगों की ही देन है। इनके साथ स्त्रियाँ कम थीं अतः इन्होंने यहाँ की स्त्रियों से विवाह कर उनकी संस्कृति को भी अपना लिया। शिवलिंग की पूजा भी आरम्भ हो गयी। योग क्रियाएँ, दवाइयों का उपयोग, नगर निर्माण की सभ्यता, उच्च श्रेणी की खेती करने के ढंग, सुधरे ढंग की नावें, युद्ध में प्रवीणता, वस्त्र बुनना एवं कातना, औजारों का निपुणता सेप्रयोग, सर्प और पशुओं एवं वृक्षों की आत्माओं की पूजा, मातृ शक्ति का आदर, विवाह के रीति-रिवाज भी इन्हीं लोगों की देन हैं।

(5) पश्चिमी चौड़े सिर वाली (The Western Brachy-Cephals): प्रजाति भारत में मध्य एशियाई पर्वतों से पश्चिम की

आरे से आयी है। इनको एल्पोनॉइड, दिनारिक और आरमोनॉयड तीन भागों में विभक्त किया गया है। इनके ये नाम यूरोप में जिस प्रदेश से ये सम्बन्धित है उस आधार पर रखे गये हैं:

(क) एल्पोनॉइड (Alponoids) प्रजाति के मूल लोग यूरोप के मध्य में आल्प्स पर्वत के आसपास बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। यह लोग मध्यम छोटे कद के होते हैं। इनके कन्धे चौड़े, छाती गहरी, टाँगें लम्बी और चौड़ी तथा अँगुलियाँ छोटी होती है। इनका सिर और चेहरा गोल तथा नाक पतली और नुकीली होती है। रंग भूमध्यसागरीय लोगों से हल्का और शरीर मोटा और मजबूत बना होता है। शरीर और चेहरे पर बाल बहुतायत से होते हैं। सम्भवत: यह लोग दक्षिणी बलूचिस्तान से सिन्ध, सौराष्ट्र, गुजरात और महाराष्ट होकर कर्नाटक, तमिलनाडु, श्रीलंका और गंगा के सहारे बंगाल में पहुँचे हैं। यह प्रजाति सौराष्ट्र (काठी), गुजरात (बनिया), पश्चिम बंगा (कायस्थ), महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, बिहार और गंगा के डेल्टा में पूर्वी उत्तर प्रदेश में पायी जाती है।

(ख) दिनारिक (Dinaric) प्रजाति का आदि-स्थान आल्पस है। ये लोग लम्बे कद और काले रंग के होते हैं। सिर बहुत छोटा परन्तु अधिक चौड़ा नहीं होता। नाक लम्बी और प्राय: नतोदर होती है। गठीला शरीर, भारी और लम्बी टाँगें, मोटी गर्दन, होंठ अधिक चौड़े, त्वचा का रंग हल्का, आँखें हल्के भूरे रंग की, बाल काले, भूरे और घुँघराले होते हैं। यह प्रजाति पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु, गुजरात (सौराष्ट्र) और कर्नाटक (कन्नड़) प्रदेश में भूमध्यसागरीय लोगों के साथ मिली हुई पायी जाती है।

(ग) आरमिनॉइड (Armenoids) लोग गोरी चमड़ी और छोटे अथवा मध्यम कद के होते हैं। इनका सिर चौड़ा और नाक पतली होती है। मुम्बई के पारसी लोग इनके मुख्य प्रतिनिधि हैं। बंगाली कायस्थ और वेद्दा लोगों में भी इस प्रजाति के लोग पाये जाते हैं।

(6) नॉर्डिक (The Nordics or Indo-Aryans): प्रजाति के लोग भारत में सबसे अन्त में आये। ये अपने निवास-स्थान उत्तरी स्टेपी प्रदेश को छोड़कर धीरे-धीरे दक्षिण-पश्चिम की ओर खिसकने लगे और ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में भारत के उत्तरी भाग में घुस आये। ये लोग पहले पंजाब में आकर बसे, फिर यमुना और गंगा की घाटी में रहने लगे। बाद में ये सारे भारत में फैल गये। इन्होंने यहाँ आकर द्राविड़ों को अधिक दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। इन्हें ये दस्यु कहते थे। धीरे-धीरे इन्होंने द्राविड़ सभ्यता को भी आत्मसात कर लिया। आर्यो की सभ्यता वैदिक थी। इनके देवता इन्द्र, वरूण और पूषा थे। ये यज्ञ-हवन करते थे तथा संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। बाद में ये शिव, विष्णु, उमा, गणेश, हनुमान, शीतला आदि द्राविड़ देवताओं को भी पूजने लगे। द्राविड़ों की पूजा विधि, शिवलिंग पूजा, मूर्ति पूजा, घण्टा-घड़ियाल बजाना, भोग लगाना, तुलसी को पवित्र मानना, वट-वृक्ष की पूजा करना आदि सभी बातें इन्होंने ग्रहण कर लीं। वैदिक लोग दूध पीते, मक्खन खाते और जौ का प्रयोग करते थे किन्तु यहाँ आकर गेहूँ, दाल, घी और तेल, सूती वस्त्र आदि का उपयोग करने लगे। भाषाशास्त्रियों के अनुसार भारत की वर्तमान संस्कृति में 25% ही वैदिक अंश है और 75% अवैदिक अंश है। वर्तमान काल में आर्य लोग उत्तरी भारत में पाये जाते हैं विशेषकर समाज की उच्च श्रेणी में। राजपूत, सिक्ख आदि मुख्य प्रतिनिधि है जो काफी बलिष्ठ है। भारतीय संस्कृति को इन लोगों का बड़ा योग मिला है। ये लोग घोड़े, अच्छे किस्म के गेहूँ, लोहे का उपयोग, दूध, मद्य पदार्थों का उपयोग, जुआ खेलना, रथ दोड़, पैतृक कुटुम्ब प्रणाली और आर्य भाषा अपने साथ लाये थे। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय साहित्य भारतीय दर्शन और भारतीय कला की उज्जवलत के कारण भी ये लोग हैं।

भारत की वर्तमान जनसंख्या आधुनिक विश्व की लगभग समस्त मानव प्रजातियों का सम्मिलित रूप है। इसमें जो कुछ थोड़ी-बहुत प्रतिकूलताएँ दिखाई पड़ती हैं वे यहाँ की जलवायु और वातावरण के प्रभाव का ही प्रतिफल है। यद्यपि नेतृत्व विज्ञान की दृष्टि से भारत प्रजाति विशेष को प्रमुखता के आधार पर कई क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है किन्तु यह एक स्पष्ट तथ्य है कि प्रजातियों का आपस में मेल-जोल इतना अधिक हुआ है कि प्रजातियों को आपस में मेल-जोल इतना अधिक हुआ है कि सही रूप में उनको पृथक् करना संभव नहीं है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य भारत की प्रजातियों के स्वरूप तथा वर्गीकरण का अवलोकन करना है। इस शोध आलेख में गुहा के द्वारा भारतीय प्रजातियों के वर्गीकरण को स्पष्ट करना है।

परिकल्पना

शोध आलेख में अग्रलिखित परिकल्पनाएँ निर्धारित की गई है:

1. भारतीय प्रजातियों की मौलिक विशेषताएँ वर्तमान में भी देखी जा रही है और भविष्य में भी इसकी आंशिक उपस्थिति रहेंगी।
2. भारतीय समाज में प्रजातियों का स्वरूप शहरीकरण और आधुनिकीकरण से प्रभावित होकर लगभग समानता की ओर जा रहा है।
3. भारत में प्रजातियों का वर्गीकरण शैक्षणिक अध्ययन का विषय बना रहेगा, लेकिन व्यवहार में इसमें कमी आयेंगी।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध अध्ययन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुख्यत: प्राथमिक आँकड़ों का सहारा लिया गया है तथा कुछ द्वितीयक आँकड़ों का भी उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण स्वावलोकन किया गया है। साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों का नाम प्रमुख है:

1. भारत का भूगोल, डॉ० चतुर्भज मामोरिया व जे०पी० मिश्रा, साहित्य भवन, आगरा।
2. मानवी व आर्थिक भूगोल, सिद्धार्थ सोनवर्ण, अथर्व पब्लिकेशन, महाराष्ट्र।
3. भारत लोग और अर्थव्यवस्था, NCERT
4. पर्यावरण भूगोल, डॉ० रतन जोशी, साहित्य भवन, आगरा
5. इंडिया, ए० कम्प्रीहैन्सीव ज्योग्राफी, डी० आर० खुल्लर, इंडियामार्ट

शोध की पद्धति

भारत में प्रजातियों का वर्गीकरण से संबंधित पृष्ठभूमि तथा वर्तमान स्वरूप के विवेचन हेतु ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग उपयुक्त है। प्रस्तुत शोध आलेख में ऐतिहासिक पद्धति के अतिरिक्त तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक पद्धति का प्रयोग है।

निष्कर्ष

भारत की वर्तमान जनसंख्या आधुनिक विश्व की लगभग समस्त मानव प्रजातियों का सम्मिलित रूप है। इसमें जो कुछ थोड़ी-बहुत प्रतिकूलताएँ दिखाई पड़ती हैं वे यहाँ की जलवायु और वातावरण के प्रभाव का ही प्रतिफल है। यद्यपि नेतृत्व विज्ञान की दृष्टि से भारत प्रजाति विशेष को प्रमुखता के आधार पर कई क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है किन्तु यह एक स्पष्ट तथ्य है कि प्रजातियों को आपस में मेल-जोल इतना अधिक हुआ है कि सही रूप में उनको पृथक् करना संभव नहीं है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. एच० एच० रिजले, पिपुल्स ऑफ इंडिया, 1968, पृष्ठ-36
2. तथैव, 37
3. बी०एस० गुहा, रेसियल एलिमेन्टस इन इंडियन पोपुलेशन, 1944, सेनसस 1935, Vol.-I, P-III.
4. जे०रापसोन, कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, Vol.-I, P-36.
5. ए०सी० हैडन, रेसेज ऑफ मैन, पृष्ठ-107
6. जे० एन० हट्टन, मैन इन इंडिया, 1927, पृष्ठ-7
7. जे०एच० हट्टन, सेन्सस ऑफ इंडिया रिपोर्ट, Vol.-I, 1931, P-460.
8. आर० एच० लोवि, प्रिमीटिव सोसाईटी, पृष्ठ-303
9. ए० केइनी, मैन-पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट

मानवाधिकार की अवधारणा-एक अध्ययन

डॉ० दिलीप कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकेल्टी) , राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एस. कॉलेज, मोतिहारी

शोधसार- प्रथम विश्वयुद्ध के साथ ही मानवाधिकारो का हनन शुरु हुआ और इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी स्थापना हुई। अमेंरिकी राष्ट्रपति रुजबेल्ट की अध्यक्षता में इस आयोग की स्थापना 1948 में हुई। राष्ट्र निर्माण के साथ नीति निर्माण हेतु पुरे विश्व में शिक्षक छात्रों एवं नीति निर्माताओं का ध्यान मनवाधिकारो पर केन्द्रित हुआ है। ब्रिटेन में 15 जून 1215 ई0 में मैग्नाकर्टा के रुप में मानवाधिकारो के धोषणा-पत्र की शुरुआत होती है जो आज के समय में सभी व्यक्तियों के सर्वागींण विकास के लिए आवश्यक हो गया है। आज मानवाधिकार आयोग के कारण ही सभी देशों के नागरिक उत्पीड़न के शिकार होने से बच रहे है।

शब्द संकेत- मैग्नाकर्टा, उत्पीड़न, अनुसंधानकर्त्ता, समष्टिपरक, समीक्षा, सम्पादन, अगड़ीजाति, दोजून, दीवार, पतली

देश में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय शांति भंग करने के साथ-साथ

मानवाधिकारों का हनन भी हुआ, जिसे रोकने के लिए सर्वप्रथम राष्ट्रसंघ की स्थापना की गग्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की स्थापना काप्रथम दस्तावेज संयुक्त राष्ट्र के चार्टर को माना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति कीस्थापना और विवादों के हल के लिए बनी इस संस्था की मौजूदगी के बादभी द्वितीय विश्व युद्ध लड़ा गया, जिसमें गंभीर रूप से मानवाधिकारों का हनन हुआ। वर्ष 1945 में सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में भी मानवाधिकारों के रक्षाकी बात उठायी गयी, जिसमें कहा गया कि विश्व के सभी देशों के नागरिकोंके समान अधिकार, सम्मान और गरिमा प्रदान की जानी चाहिए। इन्हीं कोशिशों के बाबजूद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्रसंघ नामक संस्था की स्थापना की गयी। 1946 में एलोनोर रूजबेल्ट की अध्यक्षता में मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गयी 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी, जिस घोषणा पत्र द्वारा रूजबेल्ट ने कहा था कि ''विश्व के अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित हैं, जिन्हें विश्व व्यक्ति के परम्परागत अधिकारों के रूप में स्वीकार कर चुका है और इनके बिना कोई भी सम्मान एवं स्वतन्त्रता के साथ नहीं रह सकता।'' इसके बाद वर्ष 1950 में एक प्रस्ताव पारित कर 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मानने का निश्चय किया गया। वास्तव में सामाजिक परिस्थितियों ही मनुष्य के दूरशितापूर्ण एवं बद्धिवादी प्रक्रिया के निर्माण को प्रभावित करती है। मानव पर सामाजिक परम्पराओं एवं प्रथाओं का पूर्ण प्रभाव होता है एक विचारक के अनुसार मनुष्य नें उच्च और महान जीवन जाने की बहुत ही भावनात्मक क्षमता है। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि वे इसके लिए विकसित भारत में बदलने के लिए एक स्वच्छ, साफ सुथरे एवं पारदर्शी प्रशासन की स्थापना को पहली शर्त माना जाय। 'मानवाधिकार' सामयिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण शब्द है। मानवाधिकार अन्तरात्मा में गसे हुए जीवन मूल्यों से जुड़ा है। मानवाधिकारों की संकल्पना सार्वजनिक मानवीय मूल्यों से उपजी विचारधारा है। परिवर्तनशील समय के सापेक्ष विकसित विविध प्रकार की अन्य विचारधाराओं के संदर्भ में मानवाधिकारों का ध्येय बदल जाता है। यदि उदारवादी विचारधारा में मानवाधिकार का ध्येय व्यक्ति की स्वार्थपूर्ति है तो मार्क्सवादी चिारधारा में इसका अन्तिम ध्येय 'प्रभूत्वशाली वर्ग का हित साधन' है। इसी तरह नारीवादी दृष्टिकोण से इसका ध्येय स्त्रियों के हितों की सिद्धि है। इसकी संकल्पना व्यवस्था एवं अव्यवस्था के अनसुलझे रिश्तो की देन है। व्यवस्था के सुविधा अधिकार और कर्त्तव्य सन्निहित है। इसके विपरीत अव्यवस्था में इनका हनन और इनकी उपेक्षा सामाहित है। इसलिए टकराहट स्वभाविक है। ऐसी परिस्थिति में मानव-अधिकारों की आवश्यकता बढ़ जाती है।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों को हमेशा इन बातों को याद रखनी चाहिए किआज भी अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों पर भारत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। एक प्रतिवेदन के अनुसार विश्व के 177 देशों में भारत का 126 वीं स्थान है। इसके पूर्व वर्ष 2005 में भारत का स्थान 127 वीं और वर्ष 2000 में 128 वीं रहा है।

अगले 20 वर्षों में भी भारत 126 वीं या 125 वीं स्थान से उपर नहीं खिसक पाएगा ऐसा अनुमान है। जबतक उत्तर प्रदेश बिहार जैसे सामाजिक विकास में पिछड़े राज्यों की स्थिति में सुधार नहीं हो जाता। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में मानवाधिकार के महत्व के मुद्दों पर दुनिया भर के नीति-निर्माताओं, शिक्षकों एवं छात्रों का इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। आज भाषा एवं धर्म सम्बन्धी अशांति, स्त्री-पुरूष भेदभाव, जातीय भेदभाव, पुलिस -अत्याचार, मौलिक अधिकारों का उल्लंघन आदि इस तरह के मामले है, जो चिंतन का विषय बना हुआ है। 20 वीं सदी के आरंभ के साथ ही मानव मात्र होने के नाते काफी सम्मान दिया जाने लगा है। विद्वानों के अध्ययन का दृष्टिकोण समष्टिपरक न होकर व्यक्तिपरक होने लगा है। इसी विषय परिस्थिति में मानवाधिकार आंदोलन का उद्‌भव हुआ।

सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव के साथ व्यक्तिगत स्तर पर लोगों के जीवन तथा समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाने लगा। मानवाधिकार शब्द का साधारण अर्थ यह बताया जा सकता है कि मानव अधिकार मनुष्य के वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मानव को मानव मात्र होने के नाते प्राप्त होनी चाहिए। चाहे गरीब हो या अमीर, अगड़ी जाति का हो या पिछड़ी जाति का, गोरा हो या काला उन सबों के साथ किसी भी तरह का भेदभाव किए बिना ही सबों को गरिमा एवं सम्मान प्राप्त हो। सामान्यत: एक व्यक्ति को सम्मानपूर्वक जीवनयापन जिन परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। उन सभी परिस्थितियों को मानवाधिकारों में शामिल किया गया है।

मानवाधिकार वह अधिकार है जो मनुष्य को सिर्फ इस आधार पर मिलना चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य है। ये अधिकार हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है, जिसके बिना हम मानवरूप में जीवित नहीं रह सकते। एक विचारक के अनुसार मानवाधिकार सर्वोच्च है, तथा सभी नैतिक मान्यताओं के केन्द्र में स्थित है, क्योंकि ये अधिकार सभी मनुष्यों के लिए मूलभूत है। इसके विना मानवीय कार्यो सम्पदन असंभव है।

भारत में मानवाधिकार को पारिभाषित करते हुए कहा गया है कि मानवाधिकारों का तात्पर्य जीवन स्वतंत्रता, समानता एवं सम्मान से संबंधित वे अधिकार है, जिनकी गारंटी संविधान द्वारा दी गई है तथा भारतीय न्यायालयों द्वारा क्रियान्वित होते है।

इस प्रकार मानवाधिकार की संक्षिप्त परिभाषा के बाद उपरोक्त सभी विद्वानों द्वारा दिए गए विचारों की समीक्षा के उपरान्त साधारण अर्थों में इसे व्यक्त करते हुए कहा जा सकता है कि मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति के प्राप्त वे अधिकार एवं सुविधाएँ हैं, जो उसे मानव समाज का हिस्सा होने के नाते स्वत: एव अभिन्न रूप से प्राप्त होता है।

इस प्रकार मानवाधिकारों की अवधारणा की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सार्वभौमिकता है। सभी वर्ण, जाति उम्र एवं लिंगभेद के व्यक्तियों को भेदभाव के बिना प्राप्त होना चाहिए, सरकार को यह भी देखना चाहिए कि उसके समस्त नागरिकों को समस्त अधिकार प्राप्त हो रहे हैं या नहीं। उसे कानूनी, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढ़ाँचा इतना बनाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व के विकास की आवश्यक परिस्थितियाँ प्राप्त हो सके। ये मनुष्यों के पवित्र अधिकार है। मानवाधिकारों के पक्ष में आवाज उठाने की आवश्यकता तब और बढ़ जाती है जब सर्वत्र बाजारीकरण और भौतिकवाद का बोलबाला हो। इस दौर में पूंजीपति ग्राहक या अन्य व्यक्ति तथा समाज के अन्य सभी वर्ग अधिकतम लाभ के लिए काम करते हैं। बाजारीकरण के इस दौर में शासन का यह भी दायित्व है कि वह यह आवश्यक रुप से इस बात का ख्याल रखे कि गरिमामय जीवन के अधिकार की किसी भी परिस्थिति में सुनिश्चित किया जाय। बाजारीकरण एवं निजीकरण की प्रक्रिया ने अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को और गहरा करने का काम किया है, जिससे वर्ग-विभेद एवं जन असंतोष में वृद्धि हुई। इस पर एक विचारक का मत है कि खेत उपजाउ है, लेकिन भुखमरी के शिकार लोग सड़को पर दो जून की रोटी की तलाश में भटक रहे है। सरकार के पास अन्नके भंण्डार पड़े है। सरकार को ये बातें याद रखनी चाहिए कि भूख एवं विद्रोह के बीच की दीवार अत्यंत पतली होती है।

मानवाधिकार 20 वीं सदी की देन है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1 जनवरी 1942 को 26 मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों द्वारा की गयी संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में किया गया इस घोषणा पत्र में संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया कि शांति स्थापना के साथ-साथ मानवाधिकारों के संरक्षण संवर्द्धन और सबों के लिए मूलमूत स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विस्तार करना संयुक्त राष्ट्र संघ का लक्ष्य होगा।

इसके पूर्व मानवाधिकारों की पहचान मौलिक अधिकारों के रूप में 13 वी सदी में 15 जून 1215 ई० को मैग्ना कार्य के रुप में प्रथम लिखित रूप में की गयी थी जब 1215 में ब्रिटेन में सम्राट जॉन के द्वारा नागरिकों की स्वतंत्रता संबंधी प्रपत्र स्वीकार किया गया।

यद्यपि सीमित स्वरूप में अधिकारों का अस्तित्व ग्रीक एवं रोमन सम्यताओं तथा प्राचीन एशियाई सभ्यताओं में विधमान था लेकिन आधुनिक अर्थो में अधिकारों का सर्वप्रथम उल्लेख मैगना कार्य में हुआ। उसी आधार पर बाद में ब्रिटेन के संसद द्वारा 1689 में बिल ऑफ राइट्स स्वीकार किया गया, जिसमें प्राकृतिक/अर्मूत अधिकारों को मानवीय सकारात्मक अधिकारों के रूप में स्वीकार किया गया, जिसे बाद में बर्किनिया बिल ऑफ राइट्स में इसे और पुष्ट बनाया।

निष्कर्ष- वर्तमान समय एवं परिस्थिति के लिए प्रस्तुत आलेख विल्कुल समाचीन है क्योंकि अभी भी बहुत से लोगों को मानवाधिकार क्या है? इसके अधिकार एवं कर्तव्य क्या है? इसके बारे में पूर्ण जानकारी नहीं रहने के कारण अपने अधिकारों से वंचित रह जाते है। लेख का सीमित दायरा रहने के कारण इसे और विस्तृत नहीं किया जा सकता। इस पर विशेष रुप से शोधकार्य करने की आवश्यकता है। जिससे आनेवाले समय में समीक्षकों, शोधर्थियों एवं अनुसंधानकत्ताओं को एक नयी दिशा मिल सकती है, यही उम्मीद की जाती है।

श्रोत एवं संदर्भ

1. डॉ0 सुजीत श्री वास्तव -मानवाधिकार एवं सुशासन, नई दिल्ली 2012, पृ.-40- 41
2. उपर्युकत-पृ.- 41
3. पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम विजन 2020 के अनुसार
4. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट 2010 के अनुसार
5. मानवाधिकार और सुशासन उपर्युक्त-पृ.-02
6. एलेन गेवर्थ-व्युमन राइट्स-1970 पृ.-50
7. मानवाधिकारी संरक्षण अधिनियम 1993 के अनुच्छेद 2 के अनुसार
8. मेंरिस केस्टन-प्वांट आर हयुमन राइट्स न्यूयार्क 1964 पृ.-18
9. डी0पी0 लालवनी-व्युमन-विश्वभारती प्रकाशन 1968 पृ.-50
10. आरद्द चक्रवर्मी हयुमन राइट्स एण्ड सुनाईटेड नेशन्स कलकचा 1958, पृ.-102
11. जी हार्गोपालन-हयुमन राइट्स रिमेंनिंग मुंबई 1992, पृ.-28

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का इजरायल का ऐतिहासिक यात्रा

डॉ० उपेन्द्र कुमार सिंह

स्नात्कोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोधसार:-देश के आजादी मिलने के लगभग 70 वर्षो के बाद भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी पहले प्रधानमंत्री हैं जो इजरायल का ऐतिहासिक यात्रा किये। इजरायल ने जिस प्रकार अमेरिका के राष्ट्रपति और ईसाई के सर्वोच्च धर्मगुरू पोप का स्वागत करता है वैसा ही भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का भव्य स्वागत किया। उससे भारत का मान-सम्मान पूरे विश्व में बहुत बढ़ा। शुरू से हीं भारतीय जनता पार्टी इजरायल के साथ संबंधों को मजबूत करने की पक्षधर रही है। 2014 ई0 में भारतीय जनता को सत्तासीन होने के बाद तय था कि अब दोनों देशों के संबंधों में नए अध्याय लिखे जाएगें। भारतीय जनता पार्टी मानती है कि मजबुत संबंध स्थापित होने से दोनों देशों को भला होगा। दोनों देशों की सत्तासीन पार्टियॉ यहॉ भारतीय जनता पार्टी और वहा की लिकूड़ पार्टी में राष्ट्रवाद के सवाल पर एक ही राय है, यानी दोनों में विचारधारा के स्तर पर अनेकों समानताएँ है। इसके कारण ही अब दोनों देशों के आपसी संबंधों का विस्तार मिलना तय है। अनेको युद्धों में सामरिक सहयोग एवं शस्त्रों को प्रदान कर इजरायल ने भारत के साथ बहुत अच्छे संबंध स्थापित किये हैं। इजरायल ने 1962 ई0, 1965 ई0, 1971 ई0 और 1999 ई0 के लड़ाई में जो सहयोग किया इससे सिद्ध होता है कि इजरायल भारत का सबसे विश्वसनीय प्रिय मित्र है। जब कारगिल के लड़ाई के समय भारत ने अमेरिका से सटेलाईट की सहायता माँगी तब अमेरिका ने सहायता देने से एकदम मना कर दिया और इजरायल को भी भारत को सेटेलाईट सहायता देने से मना कर दिया। इजरायल ने अमेरिका के क्षत्रछाया में रहते हुए भी अपनी हितों का चिंता किये बिना अमेरिका के बातों को ठुकराकर भारत को सेटेलाईट सहायता प्रदान किया। जिससे पाकिस्तान पर भारत का विजय प्राप्त हुआ। ऐसे सच्चे मित्र से अच्छे संबंध होने हीं चाहिए। कई समस्या भारत-इजरायल के एक समान है। इस्लामिक आतंकवाद, अलगाववाद, से दोनों देश त्रस्त हैं। इजरायल से अंतरिक्ष, कृषि, जल संरक्षण जैसा महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग के लिए सात समझौता हुए। जिससे भारत को लाभ हुआ है। भारत इजरायल के साथ दोस्ताना संबंध पाकर एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरा है।

शब्द संकेतः- कूटनितीक, कटुततापूर्ण, प्रोटोकॉल, सर्वोच्च धर्मगुरू, गुरियन एयरपोर्ट, संयुक्त वक्तव्य, वैश्विक, पूर्वाग्रहों, इस्लामिक, सत्तासीन, राष्ट्रवाद, नवप्रर्वतन, प्रणोदन निर्माण, यरुशलम, फिलिस्तीन।

भारत इजरायल का संबंध शदीयों पुराना है। इजरायल के साथ व्यपारिक एवं सांस्कृति संबंध भारत का पूर्व से रहा है, परन्तु काँग्रेस पार्टी जो स्वतंत्र भारत की सत्तासीन पार्टी थी। उसने इजरायल के साथ संबंध को महत्व नहीं दिया। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी इजरायल गए। उनकी यह यात्रा कई अर्थो में ऐतिहासिक रहा। 25 साल के कूटनीतिक संबंधों का परिणाम है कि यह किसी भारतीय प्रधानमंत्री की पहली इजरायल यात्रा है। इससे पहले तक आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारणों के चलते भारत का कोई भी प्रधानमंत्री इस देश की यात्रा करने की साहस नहीं कर पाया था। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण इजरायल के अरब देशों से कटुतापूर्ण संबंध और भारत की उन्हीं अरब देशों पर पेट्रोलियम पदार्थों के लिए निर्भरता है। इसके आलावा भारत के नेताओं में इजरायल के निकट जाने और संबंध बढ़ाने से देश के मुस्लिम मतों की नाराजगी का भी डर बना रहता था। कही ना कहीं ऐसे नेताओं को अपनी सत्ता की चिन्ता ज्यादा रही। देश की चिन्ता कम लेकिन। 2017 में जब इजरायल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को आमंत्रित किया तो उन्होने इसे तुरंत सहर्ष स्वीकार कर लिया। नरेन्द्र मोदी की पार्टी इजरायल के साथ अच्छे संबंधों की पक्षधर रही है। इसलिए नरेन्द्र मोदी ने इजरायल यात्रा की स्वीकृति दी।[1]

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी का गौरवमयी स्वागत प्रोटोकॉल तोड़कर नेतन्हू ने किया था। नरेन्द्र मोदी जी का स्वगत करने के लिए इजरायली पीएम नेतन्याहू प्रोटोकॉल तोडकर प्रधानमंत्री मोदी जी का स्वागत करने पहूँचे। इजरायल में इस तरह की अभूतर्पूव अगवानी अमेरिकी राष्ट्रपति और इसाई धर्मगुरू पोप के लिए ही की जाती रही है। गुरियन एयरपोर्ट पर इजरायली पीएम बेंजामिन नेतन्याहू ने मोदी का गर्मजोशी से स्वागत किया। नेतन्याहू के स्वागत ने यह स्पष्ट कर दिया के वह भारत के साथ किस प्रकार का दोस्ताना संबंध चाहता है। भारत और इजरायल जो सदियों से एक जैसे समस्या से लड़ रहे हैं उन्हें अब एक दूसरे के लिए सहारा मिल रहा था। इस लिए इजरायल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने सभी औपचारिकताओं को दरकिनार करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी से मिले और मोदी जी के स्वागत में वहाँ भारतीय राष्ट्रगान बजाया गया। साथ हीं इजरायली पीएम ने मोदी जी का हिन्दी भाषा में स्वागत हेतु कहा ''आपका स्वागत है मेरे दोस्त'' और भारतीय लोकत्रंत की प्रशंसा करते हुए नेतन्याहू ने मोदी के स्वागत संबोधन में कहा ''प्रधानमंत्री मोदी ऐतिहासिक यात्रा पर इजरायल आये हैं। हम आपके इतिहास एवं लोकतंत्र से प्रभावित है।'' बता दें कि 70 साल में पहली बार कोई भारतीय प्रधानमंत्री येरूशलम पहूँचा है क्योंकि इसके पूर्व काँग्रेसी प्रधानमंत्री इजरायल से मदद चाहते थे, परन्तु उसकी यात्रा नहीं करते थे।[2]

इजरायल यात्रा से ठीक पहले और बाद में मोदी फिलीस्तीन नहीं गयें। यह निर्णय भारत की पहले के नीति से विपरित है। इससे पहले यह परंपरा थी कि भारतीय राजनेता दोनों देशों का यात्रा करते थे। यह भारत का इजरायल के साथ अपने संबंधों को पारदर्शी स्वीकार करने जैसा है। दोनों हीं देश एक-दूसरे के हितों का अंतराष्ट्रीय मंच पर सभी जानकारी दिये हैं। दोनों देशों के लोकप्रिय प्रधानमंत्रीयों द्वारा संयुक्त मंच साझा किया गया।[3]

श्री नेतन्याहू ने श्री मोदी का गर्मजोशी से स्वागत करते हुए कहा कि भारत इजरायल संबंध स्वर्ग में बना एक विवाह था, लेकिन इस पृथ्वी पर लागू किया गया। इससे नेतन्याहू ने भारत के अन्तराष्ट्रीय जगत में बढ़ते प्रभाव को स्वीकार किया और भारत को अपनी सहमती दी। इजरायल जैसे देश से मदद मिलना और स्वागत भारत के लिए सुखद ही नहीं बल्कि एक सफलता भी है।

अपने संबोधन में भारतीय प्रधानमंत्री मोदी का स्वागत करते हुए नेतन्याहू ने कहा कि भारत-इजरायल संबंधों में जहाँ तक आकाश की सीमा है वहाँ तक हमारे संबंध है क्योंकि दोनों देशों के अंतरिक कार्यक्रम से अधिक उँचाईयों को प्राप्त करने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं।[4] नेतन्याहू के व्यवहार से ऐसा लग रहा था कि इजरायल भारत के साथ दोस्ताना संबंध स्थापित करने के लिए कितना लालायित है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वहाँ के नेताओं से मुलाकात के रूप में इजरायल के राष्ट्रपति रेवेन रिवलिन को गले लगाया बाद में दोनों देशों के बीच संबंधों को बढ़ाने के लिए उन्होंने बेंजमिन नेतन्याहू से मुलाकात की। दोनों प्रधानमंत्रियों ने एक संयुक्त वक्तव्य के लिए मीडिया को संबोधित किया। जिसमें युद्ध से लड़ने के लिए वैश्विक सहयोग का आह्वान किया गया। इससे दोनों देशों के सामरिक समझौते को बल मिला और दोनों के संबंध सुधरे।[5]

भारतीयों के लिए यह गर्व का क्षण था कि देश के ध्वज को इजरायल की संसदीय छत के उपर इजरायल के झंडे के बगल में फहरता हुआ देंखे। इससे बड़ा सम्मान और कोई सम्मान नहीं हो सकता जो किसी दूसरे देश और उसके नेता को दिखाया जाए। इजरायल के द्वारा इस प्रकार से भारत को महत्व देना भारत के विदेश नीति के एक मजबूत पक्ष को संकेत करता है। भारत आज इन संबंधों के कारण विश्वशक्ति के रूप में उभर रहा हैं इजरायल जैसे शक्ति सम्पन्न राष्ट्र द्वारा भारत को प्रतिष्ठा प्रदान करना भारत के गौरव के लिए चार चाँद लगने जैसा है। इसलिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की इजरायल यात्रा कई मायनों में अधिक महत्वपूर्ण रही।

यह अकेले इजरायल के प्रधानमंत्री नहीं हैं, बल्कि बहुसंख्यक भारतीय हैं जो विशेष रूप से 1965 ई0 के बाद भारत-इजरायल के मजबूत संबंधों की माँग कर रहें हैं। जब भी अरब देशों और मुस्लिम बहुमत वाले देशों ने पाकिस्तान के साथ अपनी एकजुटता व्यक्त की भारत के नेता मौन रहे। फिर भी राजनीतिक मजबूरियों और व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों के कारण भारत ने सार्वजनिक मंचों पर इजरायल का विरोध करने का विकल्प चुना और अरब जगत को खुश करने के लिए इजरायल के साथ राजनैतिक संबंध स्थापित करने से इन्कार कर दिया। इजरायल के साथ मजबूत संबंधों की यह माँग वर्षो से बढ़ रही है, क्योंकि अधिकांश भारतीय, जो स्लामिक आतंक के शिकार हैं, वे इजरायली नीति की सराहना करते हैं। दांत के लिए दांत नहीं बल्कि दांत के लिए जबड़ो की जरूरत पड़ती है।[6] इजरायल भारत के लिए इस समय एवं परिस्थितियों में ढ़ाल बनकर आया है। इसलिए इजरायल के इस यात्रा में मिले उपहार पर प्रधानमंत्री मोदी ने इजरायल में के फार्म डैनजिगर ''डैन'' का दौरा किया। मोदी के आने की खुशी में इजरायली प्रधानमंत्री ने उन्हें सम्मान दिया, वहीं पीएम मोदी ने भी बेंजामिन को एक खास तोहफा दिया। इजरायल ने अपने एक बेहद खास

फूल का नाम प्रधानमंत्री मोदी के नाम पर रख दिया। इजरायल में पाया जाने वाला क्रिसैं थेमम फूल अब मोदी के नाम से जाना जाएगा। इस प्रकार इजरायल द्वारा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का जोरदार स्वागत किया जाना एक अभूतपूर्व संकेत है।

अपनी इस यात्रा में पीएम मोदी भी नेतन्याहू के लिए खास तोहफा लेकर गए। मोदी ने उन्हें केरल से लाई गई अवशेषों की कृतियाँ भेंट कीं। ये कृतियाँ इजरायल के एक धरोहर के रूप में देखी जाती है तथा इससे इजरायल के संबंध होने तथा इन्हें यहूदियों के भारत में लम्बे इतिहास की मुख्य कलाकृति के रूप में देखा जाता है। पीएम द्वारा किए ट्वीर के अनुसार यह दो अलग-अलग तांबे की प्लेट्स थी। जिन्हें 9-10 वीं सदी मे लिखा गया था। पहली प्लेट कोचीन यहूदियों की अवशेष हैं वहीं दूसरा सेंट भारत के साथ यहूदी व्यपार का दास्तवेज हैं।[7] यह सभी दस्तावेज यह स्पष्ट करते हैं कि इजरायलवासी भारतीयों के अपने संबंधी रहें होंगे। इसलिए केन्द्र में भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार के 2014 में सत्तासीन होने के बाद तय था कि अब दोनों देशों के रिश्तों में नई अध्याय लिखे जायेगें। भारतीय जनता पार्टी यह मानती रही है कि इजरायल से मजबूत संबंध स्थापित होने से दोनों का भला होगा। दोनों देशों की सत्तासीन पार्टियाँ, यहा कि भारतीय जनता पार्टी और वहाँ की लिकूड पार्टी में राष्ट्रवाद के सवाल पर एक हीं रूप है यानी दोनों देशों में विचारधारा के स्तर पर अनेकों सामानताएँ हैं। इसके कारण हीं अब दोनों देशों के आपसी संबंधों को विस्तार मिलना तय है।[8] ये संबंध भारत इजरायल के रिस्तों के लिए एक मील का पत्थर साबित होंगे।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने इजरायली समकक्ष बेंजामिन नेतन्याहू के साथ गहन वार्ता के बाद भारत और इजरायल ने अंतरिक्ष कृषि और जल संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के लिए सात समझौता पर हस्ताक्षर किए। भारत-इजरायल औधोगिक अनुसंधान और विकास (आर एंड डी) और तकनीकी नवप्रवर्तन निधि के लिए 40 मिलियन अमेरीकी डालर की लागत के समझौता ज्ञापन (एम ओयू) पर हस्ताक्षर किए गए। प्रधानमंत्री मोदी ने कहा ''हम एक दृष्टिकोण से हैं कि हमारे वैज्ञानिक और शोधकर्ता मिलकर हर क्षेत्र में पारस्परिक रूप से लाभकारी समाधानों का विकास निर्माण और कार्यान्वयन करेंगे। इसके अलावा GEO-LEO ऑप्टिकल लिंक में सहयोग और छोटे उपग्रहों के लिए इलेक्ट्रिक प्रणोदन में सहयोग पर अलग-अलग समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए। मोदी ने यह भी कहा कि अपनी बातचीत के दौरान वह और नेतन्याहू अपने सामरिक हितों की रक्षा के लिए आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए एक साथ और अधिक काम करने के लिए सहमत हुए। इस प्रकार भारत इजरायल संबंध अब ऊँचाईयों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो चुका है।[9]

निष्कर्ष

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के इस ऐतिहासिक यात्रा से उस मित्र देशों को भारत गले लगाया है, जिस मित्र देश को काँग्रेसी सरकार समय-समय पर विरोध किया। जिसका मुख्य उद्देश्य मुस्लिम मत का लालच था। फिर भी इजरायल ने भारत को समय-समय पर सहायता की जैसे 1962 ई0, 1965 ई0, 1971 ई0 और 1999 ई0 के युद्ध उदाहरण हैं। ऐसे मित्र देश से राष्ट्रहित के लिए भारतीय जनता पार्टी शुरू से हीं अच्छे संबंध की पक्षधर रही जिसका कारण है। आज आजादी के 70 वर्ष के बाद भारत के पहले प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने यात्रा किये यह राष्ट्र हित के लिए नितांत आवश्यक था। इससे भारत इजरायल के संबंधों में सुधार होगा तथा भारत को सामरिक क्षेत्र में अनेक लाभ प्राप्त होंगे। जिससे भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरकर विश्वपटल पर छा जायेगा।

संदर्भ सूची

1. https://satyagrah.scroll.in 05 Jul 2017
2. नवभारतटाइम्स.कॉम (http://navbharattimes.indiatimes.com) 04 जूलाई 2017
3. जनसत्ता ऑनलाईन(http://www.jansatta.com) 05 जुलाई 2017
4. The Hindu 06 Jul 2017
5. द इंडियन एक्सप्रेस (indianexpress.com) 06 Jul 2017
6. Diplomatic, Square(http://www.diplomaticsquare.com) 06 Jul 2017
7. M.gagran.com (http://www.jagran.com) 05 Jul 2017
8. Ichowk.in RK sinha.Official 03 Jul 2017
9. Indian Express (indianexpress.com) 05 July 2017

एक आदर्श शासक के रुप में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम

डॉ० बिपिन दूबे

सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, मुंशी सिंह महाविद्यालय, मोतीहारी
(बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

शोध सारांश:- आज शासन के लिए एक आदर्श शासक के रुप में राजा राम को याद किया जाता है। राजा राम के शासन के प्रति, शासन के लिए एवं शासन के क्षेत्र में कौन-कौन से काम किये गये, जिससे राम को एक आदर्श शासक के रुप में याद किया जाता है। यही इस शोधपत्र का मुख्य विषय है। प्राचीनकाल में समाज धर्म सत्ता के लिए जो राम ने किया। वह आज भी शासकों के लिए अनुकरणीय है और उसी के पथ पर वे अग्रसर होते तो निश्चितरुप से एक आदर्श शासक के रुप में जाने जायेंगे। इस शोधपत्र में राजा राम के गुणों एवं नीतियों का उल्लेख है जो उन्हे एक आदर्श शासक बनाता है।

आदि कवि महर्षि वाल्मिकि ने मर्यादा पुरुषोतम राम को महाराज रामचन्द्र माना है। राजा के क्या गुण हो? राजा का क्या धर्म हो? राजा को कैसा व्यवहार करना चाहिए? इन सभी विषयों पर महर्षि वाल्मीकि ने बहत कुछ लिखा है। राम के नीति धर्म, गुण का उन्होने इतना विषद् वर्णन किया है कि राम एक महापुरुष एवं महामानव के रुप में हमारे सामने प्रस्तुत होते है। राम में क्रोध एवं क्षमा दोनों ही समानरुप से विद्यमान है। राम किसी को क्षमा योग्य होने पर अवश्य क्षमा कर देते है परन्तु कोई अपराधि अपने अपराधों के कारण हनन- योग्य है तो वे बिना उसे मारे नहीं छोड़े है। इतना ही नही अवध्य के उपर उनकी आंखे लाल नहीं होती है।[1]

नास्य क्रोध प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वाध्यानवध्येषु न कुप्यति।।

राम का शील मधुर था। वे सदा दान करते थे तथा कभी किसी से कोई प्रतिग्रह नहीं लेते थे। राम कभी भी अप्रिय नहीं बोलते थे। जो राजा का एक आदर्शगुण है। प्रियवचन बोलनेवाला राजा ही प्रजा का सही हितैषी एवं लोकप्रिय होता है। साधारण स्थिती की बात नही बल्कि प्राण संकट में होने पर भी राम अपने आदर्श का परित्याग नही करते थे। उपने कुटुम्बियों के प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल था। इसका प्रमाण निम्न श्लोक से प्राप्त होता है:-

स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यात् आश्रितेत्यानृशंस्यत:।
पत्नी नष्टेतो शेकेन प्रियेति मदनेने च ।।[2]

इस प्रकार प्रजा स्नेही राम अपनों के प्रति भी दयालु थे। ऐसे शासक हमेंशा यश प्राप्त करते है तथा प्रजा उनका बहुत सम्मान करती है। वाल्मीकि की दृष्टि में मानवजीवन में सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है चरित्र और इसी चरित्र से युक्त व्यक्ति की खोज करने पर नारद जी ने वाल्मीकि को इच्क्ष्वाकुवंशीय रामचन्द्र को सबसे आदर्श मानव बतलाया है। मानव समाज, मानव व्यवहार तथा मानव-सद्गुणों की पराकाष्ठा का पूर्ण निर्वाह हम राम के जीवन में पाते है। राम शारीरिक सुन्दरता तथा मनासिक सौन्दर्य दोनों के जीते-जागते प्रतीक थे।

राम हमेंशा शान्तचित रहते थे। शान्तचित रहना भी एक आदर्श शासक के गुण है, क्योंकि शान्तचित रहने वाला शासक के द्वारा ही यह निर्णय लिया जा सकता है कि वह कैसा कदम प्रजा के लिए उठा रहा है तथा उसके द्वारा किये गये कार्यो से प्रजा को

नुकसान होगा या फायदा। इसलिए शान्तचित व्यक्ति द्वारा ही उचित समय पर उचित निर्णय लिया जा सकता है। राम बड़ी कोमल तथा मृदुता के साथ बोलते थे। उनसे कोई कितना भी रुखा क्यों न बोले, वे कभी भी कड़ा एवं रुखा उतर नही देते नहीं देते थे। किसी प्रकार किये गये एक भी उपकार से वह तुष्ट हो जाते थे, परन्तु सैकड़ो भी दुसरे पराये उपकारो को वे कभी संस्मरण नही करते थे। किसी से भेट होने पर वही पहले बेलते थे और सदा मीठा बोलते थे। हमेंशा मृदुभाषि व्यक्ति या शासक लोकप्रिय होता है तथा प्रजा उससें खुश रहती है। राम अत्यन्त वीर्यवान थे, परन्तु इसके कारण उन्हें कभी गर्व नही होता था। *'रामो द्विर्नाभिभाषते'* राम कभी दो बात नही कहते थे यानी किसी बात को कह कर मुकर जाना राम की आदत नहीं थी। राम ने एक बार जो कह दिया सो कह दिया। चाहे वह अमीर हो या गरीब सबका पालन उनके जीवन का व्रत बन गया था। प्रजाओं के साथ उनका सम्बनध बड़ा मीठा था। आसक्ति उभयमार्गी थी। राम का अनुराग प्रजा के लिए वैसा ही था जैसा प्रजा का राम के लिए अनुराग था। यानी राजा प्रजा से प्रेम करता था जो प्रजा राम से प्रेम करती थी।

इन गुणो का अनुशीलन किसी भी व्यक्ति को मानवता के ऊँचे पद पर ले जाने तथा प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है। व्यक्ति के लिए मृदुभाषि होना, सत्यवादी होना तो आवश्यक है ही परन्तु राम में वाल्मीकि ने एक विलक्षणगुण की सत्ता बतलायी है। वह है उपकार की स्मृति तथा अपकार की विस्मृति। रामचन्द्र के इस उदार हृदय, विशाल चित तथा महनीय आशय का पूर्ण परिचय उसी एक वाक्य से पता चलता है। जिसे उन्होंने सीता की सुधि लेनेवाले अलौकिक उपकार करनेवाले हनुमान जी से कहा था। जनकनन्दिनी का संदेश सुनकर विह्वलचीत राम ने निम्नश्लोक के माध्यम से कहा था–

मययेव जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं हरे।
नरः प्रत्सुपकारार्थी विपन्तिममिकाङ्ऽक्षति।।

रावण से युद्ध के समय रामचन्द्र की शैर्य भावना पूर्णतया अभिव्यक्ति पाती है। वे रावण की भर्त्सना इन शब्दो में करते है:–

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराममर्शक।
कृत्वा का पुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यस।।
भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवास्थित।
दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्सये।।

राम रावण को बताते है कि शूरता का सही अर्थ है– स्त्रियों का आदर या मर्यादा पालना निर्लज्जा कार्य–कलापों से परम तथा शुभ चरित्र का व्यवस्थित रुप से पालन। रावण में इन सबका एकदम अभाव था। इसलिये तो वह अन्याय तथा अधर्म का प्रतीक माना जाता है। पराक्रमी शत्रु से चित्र–विचित्र युद्ध का परिणामरुप ही राम ने रावण पर विजय पाया। रावण कोई सामान्य मानव नही था। इसी कारण रावण राम का कोई साधारण शत्रु नहीं था। कैलासपर्वत को उखाड़नेवाला और ब्रह्मा को परास्त करने वाला था तथा देवताओं से अपना सेवा कराने वाला था। संसार को अपने घोर कार्यो से रुलाने के कारण ही उसका नाम 'रावण' पड़ा था। ऐसे शत्रु को मार कर राम ने उसके साथ सद्व्यवहार का ही काम किया था। यह घटना वीरों के इतिहास से असाधारण थी। रावण की मृत्यु होने पर विभीषण ने ठीक ही कहा था कि–

गतः सेतुः सुनीतानां प्रतों धर्मस्य विग्रहः।
गतः सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता।।
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्त्यवसायों निरुद्यमः।
अस्मिन् निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रमृतां वरे।।[3]

आज शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ इस वीर रावण के धराशायी हाने से सुन्दर नीतिपर चलनेवाले लोगों की मर्यादा टूट गयी, धर्म का मूर्तिमान विग्रह चला गया, सत्व (बल) के संग्रह का स्थान नष्ट हो गया। सुन्दर हाथ चलानेवाले वीरों का सहारा चला गया, सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा, चन्द्रमा अंधेरे में डूब गया, प्रज्वलित आग बुझ गया और सारा उत्साह निरर्थक हो गया।

इससे रावण के बल पराक्रम और स्थिति का पता चलता है और ऐसे प्रतापी रावण को मार कर राम ने जो पुण्य अर्जित किया वह असंभव था। रावण के द्वारा भेजे हुए शुक और सारण दोनों गुप्तचर रावण के पास आते है तो वे राम का परिचय जिन शब्दों

में रावण को देते है। उससे भी राम की वीरता एवं पराक्रम की सही जानकारी प्राप्त होती है। शुक एवं सारणी दोनो रावण को बताते है कि-

एकस्थानगता यत्र चत्वार: पुरुषर्षया।।28।।

लोकपाल सभा शूरा: कृतास्त्रा दृढ़विक्रमा:।

श्रामोदाशरथि: श्रीमाल्लैक्ष्म्मणश्च विभीषण:।।29।।

सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रम:।

एते शक्ता: पुरी लंका सप्राकारां सतोरणात्।।30।।

उत्पाटय संकामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानरा:।।[4]

दशरथनन्दन श्रीराम, श्रीमान लक्ष्मण, विभिषण तथा महेन्द्रतुल्य पराक्रमी महातेजस्वी सुग्रीव- ये चारों वीर लोकपालों के समान शौर्यशाली, दृढ़ पराक्रमी और अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता है। जहां ये चारों पुरुष प्रवर एक जगह एकत्र हो गये हैं, वहाँ विजय निश्चित है और सब वानर अलग-अलग रहे तो भी ये चार ही परकोटे और दरवाजो के सहित सारी लंकापुरी उखाड़कर फेक सकते हैं।

यादृशं तद्धि रामस्य रुपं प्रहरणानि च।।

वधिष्यति पुरीं लंड़क्मेकस्तिष्टन्तु ते त्रय:।

श्री रामचन्द्रजी का जैसा रुप है और जैसे उनके अस्त्र-शस्त्र है, उनमें तो सही मालुम होता है कि वे अकेले ही सारी लंकापुरी का वध कर डालेंगे। भले ही वे बाकी तीन वीर भी बैठे ही रहें।

वेद-वेदग्य पुरुषोतम श्रीराम का अवतार संसार के समस्त जीवों के कल्याण के लिए हुआ था। रामराज्य मे जाति या वर्ग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता था। जो लोग यह सोचते है कि श्रीराम केवल ब्राह्मण एवं अन्य उच्चवर्ग के लोगों का ही हित करते थे और शुद्रों के प्रति उनका व्यवहार अच्छा नही था वह अज्ञातवाश ऐसा कहते है। श्रीराम के राज्य में अधम से अधम श्वानों को भी न्याय सुलभ था। इसलिए श्रीराम के सत्यनिष्ठा तथा निष्पक्षता को संदेह की दृष्टि से देखना निसंदेह अर्धम है। एक बार की धटना है कि एक कुता न्याय माँगने के लिए राम के दरबार में पहुँचा था। कुता राम के प्रभाव को जानता था। इसलिए वह कहा कि-

प्रवेष्टुं नात्र शक्ष्यामि धर्मो विग्रहवान नृप:।

सत्यवदी रणपटु: सर्वसत्वहिते रत:।।[5]

कुते ने कहा मैं इस राजभवन में प्रवेश नहीं कर सकूंगा, क्योंकि राजा श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरुप है। वे सत्यवादी संग्रामकुशल और समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाले हैं।

शाडमुण्यस्य पदं वेत्ति नीतिकर्त्ता स राधव:।

सर्वज्ञ: सर्वदर्शी च रामों रमयतां वर:।।

वे संधिविग्रह आदि छहों गुणों के प्रयोग के अवसरो को जानते हैं। श्रीरधुनाथ जी न्याय करनेवाले हैं। वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। श्रीराम दूसरों के मन को रमानेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ हैं।

स साम: स च मृत्युश्च स यमो धनदस्तथा।

वहि्न: शतक्रतुश्चैव सूर्यो वै वरुणस्तथा।।

वे ही चन्द्रमा हैं, वे ही मृत्यु हैं, वे ही यम, कुबेर, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, और वरुण हैं। इतना कहने के बाद वह कुता अपना संदेश श्रीराम तक लक्ष्मण जी से भेजवाया और श्रीराम के आज्ञा पाने पर ही वह दरबार में उपस्थित हुआ। इस प्रकार श्रीराम के राज्य में छोटे से छोटे व्यक्ति को भी न्याय सुलभ था। राजा जब तक न्यायी नहीं होता है तक तक उसके राज्य में शान्ति व्यवस्था कायम नही होती है। इसलिए राजा को न्यायप्रिय होना चाहिए। रामराज्य में न्याय किसी का मुख देखकर नही किया जाता था। जो न्याय संगत होता था। वही न्याय किया जाता था। राम के राज्य में केवल वही कार्य होता था जो उचित होता था। श्रीराम ने अपनी अनुकम्पा का आधार जाति को नही भक्ति को बनाया था।

सहज सनेही विबस रधुराई।

श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन पतितोद्धार, दलितोद्धार तथा अछुतोद्धार में बीता। इस संदर्भ में अहिल्या पर प्रभु की कृपा ध्यानदेने योग्य है। जनश्रुति है कि महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या पापचरण के कारण शिला में परिवर्तित हो गयी थी और श्रीराम के चरणों के पावन स्पर्श के बाद ही उनका जीवन सार्थक हुआ। इस संबंध में अनेक ग्रन्थ मतभेद प्रकट करते है परन्तु आश्रम में श्रीराम के प्रवेश से ही अहल्या को एक नवदिव्य जीवन प्राप्त हुआ। श्रीराम का शील लोकोतर था। अगर सच्चे हृदय से कोई अपराधी भी अपनी क्षमा याचना करता था तो श्रीराम उन्हें क्षमा कर देते थे। वाल्मीकी रामायण के अनुसार श्रीराम तथा लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया।

राधवौ तु सदा तस्या पादौ जगृहतुर्मुदा।[6]

उपरोक्त घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि पापी से पापी व्यक्ति भी यदि भगवान की शरण में चला जाता है, तो वे उस पर अनुग्रह करते है। उनकी कृपा का आधार जाति, लिंग रंग, वर्ण या संप्रदाय विशेष नहीं प्रत्युत निश्छल प्रेम है। उनके लिए सभी प्राणी समान है तथा सभी को समान अधिकार है। राम के कुछ और भी कार्य निम्नलिखित है जो उन्हें एक आदर्श शासक के रुप में प्रस्तुत करता है।

केवट प्रसंगः– रामायण में केवट प्रसंग वनगमन के समय आता है। जिससे वे जंगलो से होते हुए अपने मित्र निषादराज के पास पहुचते हैं और उन्हें गले लगाते है। राम में अगर जाति भावना रहती तो निषाद को अपना मित्र नही बनाते तथा उसे गले नही लगाते। इतना ही नहीं केवट गंगा नदी पार करने से पहले श्रीराम के चरणों को पखारने की जिद करता है और वह श्रीराम के प्रभाव को जानता है कि मुझ शुद्र पर श्रीराम क्रोध नही करेगें और मेरा तिरस्कार भी नही करेंगे। इसलिए उसने कहा–

बरुतीर मारहुं लखनु पै जब लगनि पाय पखाररिहौ।
तब लगिन तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौ।।[7]

इस प्रकार वे दीनहीनों पर दया भी करते थे तथा उन्हें अपनाते भी थे। यह एक आदर्श शासक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अछूतोदारः– श्री राम के लिए समाज में कोई अछूत नही था। वह सभी से प्रेम करते थे। इसके उदाहरण रुप मे हम निषादराज एवं सबरी को पाते है। इतना ही नहीं वानर जाति के राजा सुग्रीव को वे अपना मित्र बनाते है। बाल्मीकी रामायण में तो निषादराज के लिए के लिए 'रामसखा' का प्रयोग हुआ है। रामसखा निषादराज ऐसे जाति का है जिसकी छाया पड़ने पर लोग गंगाजल से स्नान कर पवित्र होते थे। जब लक्ष्मण और सीता के साथ राम श्रृगवेरपुर पहुचे तो निषाद अपने बन्धु-बान्धओं के साथ राम से गले मिला तथा राम ने उसे अपने पास बैठाया।

नाथ कुसल पद पंकज देखे, भयंउ भाग भाजन जन लेखे।
देव धरनि धनु धाम तुम्हारा, मै जनम नीचु सहित परिवारा।।[8]

निषादराज गुह इसलिए निम्नजाति का कहा जा सकता है क्योकि वह एक बार स्वयं महर्षि वशिष्ठ को दूर से ही प्रणाम किया। अगर वह निम्नजाति का नही होता तो ऐसा नहीं करता। जो निम्न चौपाई से स्पष्ट होता है–

देखी दूर ते कहि निज नामू।
कीन्ह मुनी सहि दण्ड प्रणामू।।

परन्तु श्रीराम इतने उदार थे कि उसी निषादराज गुह को गले लगाया तथा उसने जो भांति-भांति के भोज्य-पदार्थ को श्रीराम के सेवा में अर्पित किया था उसे ग्रहण भी किया। इतना ही नहीं श्रीराम और लक्ष्मण माता सबरी के आश्रम में पहुँचते है तो वह अपने श्रीराम प्रभु को जुठे बैर खिलाती है और श्रीराम उसे ग्रहण करते है, क्योंकि सबरी भी एक निम्नजाति की थी और वह प्रेमविवश होकर श्रीराम को मिठे फल खिलाने हेतु बैर को चखकर ही दिया था। इसलिए श्रीराम किसी भी जाति या व्यक्ति से कोई भेदभाव नहीं करते थे। उनके लिए सभी जाति एवं धर्म के लोग प्रिय थे और अपने थे।

परिवाररिक मूल्यों की रक्षा एवं एक आदर्श व्यवहार की प्रस्तुतिः– श्री राम बाल्यकाल से ही एक आदर्श व्यवहार को अपनाकर मानव मूल्यों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। आज बचपन में बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाय तो बच्चे निश्चित रुप से आज्ञाकारी एवं आदर्श बालक बनेगे। इस प्रकार बाल्यकाल से ही श्रीराम एक आदर्श स्थापित कर रहे है जो वर्तमान में अपनाकर समाज को आगे बढ़ाया जा सकता है। आज समाज में इस प्रकार की शिक्षा की कमी है, क्योंकि आज के बच्चे ऐसे संस्कार विहिन

हो गये है जो अपने माता-पिता की सेवा करना भूल गये है तथा इनकी कुप्रवृति तो तब दिखती है जब ये अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में रख देते है। इसलिए हमें बच्चें को बचपन से ही संस्कारवान बनने की जरुरत है। श्रीराम बचपन से ही माता-पिता और गुरुजनों को देवतुल्य मानते थे। इस सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है-

प्रात:काल उठि के रधुनाथा।

गुरु पितामातु नवावहि माथा।।

इतनी ही नहीं भरत को प्रेमवश हर्षित होकर राज्य चलाने की आज्ञा दी तथा भरत भी कितने आदर्श पुरुष थे कि वे श्रीराम के चरणपादुका को लाकर राज्य किया। ऐसा प्रसंग आज के समय में दूलर्भ है। पिता के मात्र कहने पर चौदह वर्ष बन में रहने के लिए तैयार हो गये एवं हर्षित मन से वन के कष्टों को सहन किया। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर भ्रातित्व प्रेम में उन्होने कहा कि कि मुझे मालुम होता कि बन में भाई से अलगाव होगा तो मैं वन में नही जाता और न पिता का आदेश मानता। श्रीराम में अपने स्वजनों के प्रति इतना प्रेम था कि वह केकई को कभी भी अपने से अलग नही माना। जितना सम्मान वे कौशल्या का करते थे। उतना ही सम्मान वे कैकई को देते थे। जबकि कैकई ने ही राम के वनगमन की मांग की थी।

भेदभावरहित:- श्रीराम में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था। वे सभी को एक समान देखते थे। उनके नजरों में कोई छोटा या बड़ा नही था। किसी भी जाति का हो वे सभी से प्रेम करते थे। इसलिए उन्होंने सुग्रीव को मित्र बनाया जो वानरजाति के थे तथा विभिषण को अपनाया जो राक्षसकुल से थे। सबरी का जुठा बैर भी खाया जो प्रेम से वंशीभूत होकर मिठे फल के रुप में बैर को चखकर श्रीराम को खिला रही थी। राजा होने पर अपनी पत्नी सीता का परित्याग इसलिए कर दिया, क्योकि प्रजा में सीता के प्रति जो अभी भी घृणा थी कि वह रावण के महल में रहकर आयी है पवित्र नहीं होगी। इस प्रकार एक आदर्श शासक के कर्त्तव्यों का जो पालन राम ने किया वह आज अन्य शासको या जनता के प्रतिनिधियों में नहीं पाया जाता है।

रामराज्य की विशेषता:- रामराज्य में सभी प्रजा सुखी सम्पन्न रहती थी। किसी भी प्रजा को कोई दुख नही होता था। प्रजा शान्ति एवं सुख का अनुभव करती थी। पृथ्वी पर सभी प्राणी अपने जीवन में सुखमय आनंद की अनुभूति करते थे। राम का अधिकांश समय धर्म-पालन में व्यतित हो रहा था। रामायण में इसका उल्लेख महर्षि वाल्मीकि में किया है कि:

एवं स काल: सुमहान् राज्य स्थस्य महात्मन:।

धर्मे प्रयतमानस्य व्यतीयाद् राधवस्य च।।[9]

श्री राम के राज्य की स्थिति यह थी कि मानव एवं पशु तक शासन के अनुरुप थे। यानी शासन की व्यवस्था ऐसी थी कि किसी भी प्राणि को अनाचार कुव्यवहार या अन्य गलत आचरण की कोई विशेष छुट नहीं थी। आज के समय में तो इसका सर्वत्र अभाव दिखता है। किसी समाज या देश में अक्सर ऐसा देखा जा रहा है कि वहाँ का शासक अपने लिए संविधान में अलग से व्यवस्था करा रखा है और उसे कोई गलत काम के लिए दण्डित नही कर सकता। परन्तु राम के राज्य में पत्नी या भाई ही राजा का क्यों न हो गलत के निए उन्हें दण्ड अवश्य मिला है। महर्षि वाल्मीकि ने उल्लेख किया है कि-

ऋक्षवानररर्क्षंसि स्थिता रामस्य शासने।

अनुरज्जन्ति राजानों हयहन्यहनि राधावम्।[10]

श्री राम के राज्य में रीछ, वानर, राक्षर, सभी राजा के अधिन रहते थे तथा राजा के आज्ञा का पालन करना ही उनका धर्म था। राम के राज्य की स्थिति अत्यन्त सुखद थी।

काले वर्षतिपर्जन्य: सुमिक्षं विमनादिश:।

ह: पुष्टजनाकीर्ण पुरं जनपदास्तया।।

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधि: प्राणिनां तथा।

नानर्थे विद्यते कश्चिद् रामें राज्यं प्रशासति।।

यानी राम के राज्य में समय पर वर्षा होती थी। अकाल नहीं पड़ता था। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न दिखती थी तथा नगर और जनपद के सभी निवासी हृष्ट-पुष्ट दिखते थे। श्रीराम के शासन का प्रभाव ऐसा था कि किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी तथा किसी

को कोई रोग नहीं होता था। नही किसी प्रकार का कोई उपद्रव कही देखने को मिलता था। इस प्रकार श्रीराम का राज्य शान्ति, समृद्धि एवं सुख का केन्द्र था।

निष्कर्ष:- मैं निष्कर्ष स्वरुप यह कह सकता हूँ कि श्रीराम जैसा आदर्श शासक न आजतक इस पृथवी पर हुआ है न होगा। श्रीराम के शासन में जो व्यवस्था थी वह आदर्श शासक के प्रभाव के कारण ही थी। आज वर्तमान समय में आरक्षण एवं विभिन्न आयोगों को इसलिए बनाया गया है कि वे वंचितों की सेवा करेगे एवं उनका उत्थान करेगे। जबकि श्रीराम के राज्य में स्वयं शासक इसे दुर कर के दिखा दिया था कि प्रजा में कोई भेदभाव नहीं होनी चाहिए। राम के शासन में सबसे बड़ी विशेषता यह देखने को मिलती है कि राजा अपनी पत्नी को वन में भेज देते है तथा आज्ञा के उल्लंधन में अपने भाई लक्षमण को राज्य से निकाल देते है। यह एक आदर्श शासक ही कर सकता है। वात्सल्य एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति है। उनको जनता सबसे प्रिय मानती है तो निश्चित रुप से लोकप्रिय शासक रहे होगे। इसलिए इस शोधपत्र के द्वारा एक आदर्श शासक की खोज में श्रीराम को चिन्हीत किया गया है। इसलिए इस शोधपत्र से राजनीति विज्ञान, लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र जैसे विषयों में लाभ मिलेगा तथा उनके अध्ययन में इस शोधपत्र से सहयोग प्राप्त होगा।

संदर्भ सूची :-

1. वाल्मीकी रामायण 2/4/61।
2. वही 5/15/49।
3. युद्धकाण्ड, नवाधिकशततम् सर्गः, बाल्मीकी रामायण, श्लोक 6-7।।
4. युद्धकाण्ड, पच्चविंश सर्ग, श्लोक 28-30।
5. उत्तरकाण्ड, प्रक्षिप्तृसर्गः, वाल्मीकी रामायण श्लोक-22।
6. वाल्मीकी रामायण, बालकाण्ड 49/17/ ।
7. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड-100 ।
8. वही, अयोध्याकाण्ड-51
9. वाल्मीकीयरामायण, उत्तरकाण्ड, एकोनशततम् सर्गः श्लोक 11।
10. वही, श्लोक 12

भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों के अलगाववाद को कम करने में म्यांमार की भूमिका

डॉ० पप्पु कुमार

स्नात्तकोतर राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध सार:- भारत के उतरपूर्वी भागो में अलगाववाद ने एक भयानक रुप ले लिया है और यह समस्या कई वर्षो से भारत के लिए एक अभिशाप बन गयी है। इससे भारत के राष्ट्रीय एकता को खतरा है तथा भारत की शांति में यह समस्या एक प्रमुख बाधा है। इससे बचने एवं इसके निदान हेतु भारत सरकार द्वारा निरन्तर प्रयास किये जा रहे है। जिससे इस समस्या को दूर किया जा सके। इसे क्षेत्र में म्यांमार का सहयोग भारत को मिला है तथा म्यांमार भी भारत से संबंध सुधारने कि दिशा में वह हर क्षेत्र में भारत को मदद करने के लिए तैयार है।

भारत के उत्तर पूर्वी हिस्से में 8 राज्य हैं। प्रत्येक राज्य की अपनी खास संस्कृति एंव परंपरा है। भारत के इस हिस्से को अलगवादी आन्दोलन को पैदा करने वाले हिस्से के रूप में दर्शाया जाता है। चारो ओर जमीन से घिरे इस क्षेत्र में 30 विद्रोही संगठन फल-फूल रहे हैं। ये विद्रोही सगंठन नई दिल्ली से स्वासत्तता यास्व-शासन की माँग के लिये संघर्षरत हैं। नेपाल, भुटान, तिब्बत, बर्मा और बंगलादेश से घिरे इस क्षेत्र का भारत के साथ जुड़ाव, भारतीय सीमा रेखा के 3% हिस्से के जरिये ही हो पाता है।

भारतीय संघ ने इस क्षेत्र को दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व एशिया में एक व्यापारिक क्षेत्र के रूप में विकसित करने के लिये बहुत-सी योजनाओं एवं प्रस्तावों का मसौदा तैयार किया है। नई दिल्ली की 'पूर्व की ओर देखो नीती', इस क्षेत्र के मूलवासियों को आर्थिक लाभ देने की नीति है। बर्मा के पश्चिमी समुद्री किनारा स्थित अराकान में सिन्वे बंदरगाह को विकसित करने के लिये भारत ने करोड़ों अमरीकी डालर की एक कालादान परियोजना को लागू करने का निश्चय किया है। यह पश्चिमी बर्मा को मिजोरम से जोड़ेगा। इसके साथ ही भारत-बर्मा पाइप लाईन भी उत्तर-पूर्व के आर्थिक हितों के एक बड़े अवसर के रूप में प्रचारित किया गया।

भारत के लिये परिस्थिति तब तक अनुकूल चल रही थी, लेकिन बर्मा में अचानक जनविद्रोह भड़क उठा। भारत सरकार द्वारा सैनिक शासकों को खुश करने की नीति की अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों जिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं यूरोपीय संघ शामिल हैं, ने आलोचना की लेकिन भारत के लिये असली चुनौती उन अलगाववादी क्षेत्रों से आ रही है जहाँ आम सभाओं, रैलियों तथा अन्य पहलों को अच्छा समर्थन हासिल हो रहा है। इसके माध्यम से इस क्षेत्र की जनता बर्मा में जारी जनविद्रोह का समर्थन कर रही है तथा बर्मा के जनतंत्र समर्थक महानायिका डाउ आँग-सू-की के पक्ष में खड़ी थी।

वर्मा की सीमा से सटे उत्तर पूर्व के राज्य मणिपुर में हाल में आयोजित एक सम्मेलन सर्वसम्मति से बर्मा की जनता द्वारा जनतंत्र को लागू करने के संघर्ष को समर्थन देने का निर्णय लिया। "मानव-अधिकारों की रक्षा के लिये नागा जनआन्दोलन" की ओर से 13 अक्टूबर 2012 को उखरूल में इस सम्मेलन का आयोलना किया गया। इसमें विभिन्न सामाजिक संगठनों, गिरजाघरों के प्रतिनिधियों, गैर सरकारी संगठनों एवं अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस सम्मेलन ने बर्मा की सैनिक सत्ता का आह्वान करते हुए कहा कि बर्मा की लम्बे समय से उलझी समस्याओं को शांतिपूर्ण जनतांत्रिक ढंग से सुलझाई जाय।

इसके पूर्व इस राज्य में 2 अक्टूबर 2012 को एक एकजुटता बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक ने मजबूती से भारत सरकार से आग्रह किया कि वह सैनिक जनता के साथ अपने सभी संबंधों को खत्म करें। प्रमुख कानून निर्माताओं, शांति के लिये कार्यरत कार्य-कर्ताओं, मानवधिकार कार्यकर्त्ताओं, शांति के लिये कार्यरत कार्य-कार्ताओं तथा अन्य लोगों ने बैठक में शिरक्त की। बैठक ने अपने प्रस्ताव के जरिये बर्मा के जनतांत्रिक आन्दोलन को बिना शर्त समर्थन करने की घोषणा की।

अभी हाल में मणीपुर में हजारों ईसाइयों ने एक प्रार्थना अभियान में शामिल होकर बर्मा में जनतंत्र एवं स्वतंत्रता का समर्थन किया। 21 अक्टूबर 2012 को म्यांमार ईसाई फेलोशिप जिसमें बर्मा के प्रवासी ईसाई भी शामिल हैं, ने आँग-शान-सू-की के प्रति अपनी एकजुटता प्रदर्शित करते हुए, सर्वशक्तिमान भगवान से प्रार्थना कारते हुए माँग की कि बर्मा के सभी राजनैतिक बंदियों को रिहा किया जाय रिसमें बर्मा की महानायिका भी शामिल हैं। इसके पूर्व 6 अक्टूबर को मेघालय, नागालैंड, असम के नागरिक समाज ने स्वतंत्र बर्मा के पक्ष में विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से वैश्विक आन्दोलन दिवस के रूप में मनाया। इसी दिन इन राज्यों में आयोजित प्रदर्शनों के जनिये बर्मा के शांतिपूर्ण ढंग से संघर्षरत भिक्षुओं, जिन्हें बर्मा की सत्ता ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया, के प्रति समान रूप से अपनी चिंता प्रकट की गई। शिलागं के पास माउफ्लांग मे करीब 20 हजार लोग इकट्ठे हुए और केन्द्र से अनुरोघ किया कि वह बर्मा में उत्पन्न संकट में हस्तक्षेप करें तथा सैनिक शासन पर राजनयिक दबाव डालकर उसे जनतांत्रिक शक्तियों से वार्ता के लिये राजी करें।

बर्मा की सीमा से सटे दूसरे राज्य नागालैंड में वहाँ के मूल निवासियों ने एक रैली के जरिये संयुक्त राष्ट्रसंघ से तत्काल हस्तक्षेप की माँग करते हुए कहा कि बर्मा की सेना के अधिकारी समूह के खिलाफ सख्त कार्रवाइयाँ की जाय तथा वहाँ लम्बे समय से चले आ रहे संकट को सुलझाया जाय। नागा हो-हो, नागा छात्र फेडरेशन, नागा पीपुल्स मूवमेन्ट फार ह्यूमेन राइट्स ''नागालैंड बैपटिस्टचर्च" तथा अन्य प्रभावी नागनिक सामाजिक समूहों द्वारा आयोजित इस रैली में ''हाथ में लिये हुए पट्टी के माध्यम से" शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर हमला बंद करो", बर्मा की जनता को सैनिक शासन से मुक्त करो ''तथा 1988 की हत्याकांड मत दुहराओ" आदि नारे प्रदर्शनकारियों लगा रहे थे।

इसी तरह असम में मोमबत्ती जलाकर सैकड़ो लोगों ने बर्मा की संघर्षरत जनता के प्रति एकजुटता प्रदर्षित की। उत्तर-पूर्व जनता की पहल द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सैंकड़ों लोग शामिल हुए। इसके माध्यम से नोबेल विजेता आँग-शान सू-की के प्रति समर्थन व्यक्त करते हुए इस संदेश को दूर-दूर तक फैलाया गया।

इसके पूर्व 4 अक्टूबर 2012 को गुवाहाटी में नागरिकों की एक बैठक में केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया कि बर्मा की सैनिक सत्ता पर राजनयिक दबाव डाला जाय और उसे हिदायत दी जाय कि जनतांत्रिक आंदोलन से जुड़े लोंगो के खिलाफ कोई दमनात्मक कार्यवाई न की जाय। असम के जरिये भारत सरकार से कहा गया कि अपने पड़ोसी देश में घट रही घटनाओं के प्रति वह मूकदर्शक न हो तथा अपनी क्षमता के अनुरूप वहाँ जनतंत्र के शांतिपूर्व रूपान्तरण का रास्ता प्रशस्त करें।

इसी तरह "बर्मा में जनतंत्र के लिये मिजोरम कमिटी" ने नई दिल्ली की सरकार को बर्मा की सैनिक सत्ता को अपना संविधान बदलने तथा जनतांत्रिक व्यवस्था कायम करने के लिये राजी करने में सक्रिय भूमिका निभाने की अपील की 20 अक्टूबर 2012 को अजबैल में एक पत्रकार सम्मेलन में कमिटी ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि वह बर्मा में जनतंत्र चाहती है। इस कमिटी में नागरिक समाज मानव अधिकार कार्यकर्ता-बुद्विजीवी तथा मिजोरम की चेतनशील जनता शामिल थी। इस कमिटी ने जोर देते हुए कहा कि केन्द्र सरकार बर्मा के वर्तमान राजनैतिक संकट में हस्तक्षेप करें। इसके पूर्व 4 अक्टूबर 2012 को बर्मा की सीमा से सटे राज्य में एक एकजुटता बैठक के जरिये माँग की गई कि नई दिल्ली बर्मा की सैनिक सत्ता के साथ अपने सभी संबंध तबतक तोड ले जबतक कि बर्मा में जनतंत्र की पुनर्स्थापना न हो जाय । मिजोरम में आयोजित बर्मा की सैनिक सत्ता के खिलाफ बैठक का महत्व इस अर्थ में बहुत ज्यादा है क्योंकि इस छोटे से राज्य में बर्मा से आए हुए करीब 40 हजार चीन शरणार्था हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के उच्चायुक्त द्वारा अभी भी शरणार्थी का दर्जा देना बाकी है । 1988 में बर्मा में हुए जनविद्रोह के दौरान हुए दमन के बाद विभिन्न समूहों में भारत के अन्दर प्रवेश किया। वे मिजोरम में अपने को सुरक्षित समझते हैं क्योंकि मीजो एवं चिनी आदिवासी के बीच भाषाई समानता है तथा सामाजिक एवं धार्मिक नैतिकता भी एक ही तरह की है।

बर्मा के सैनिक शासन के साथ अपने राजनैतिक संबंधों को लेकर आलोचना का शिकार होने के बावजुद नई दिल्ली अपने कदम को लगातार सही करार दे रही है। इसके तर्क है कि वह सैनिक जनता को अलग-अलग करने के बजाय उसके साथ बातचीत कर रही है। उत्तर पूर्व के दौरे पर अभी हाल में आये विदेश मंत्री ने इस बात को दुहराया कि नई दिल्ली म्यांमार के साथ बहुत-सी परियोजनाओं में शामिल है। विभिन्न क्षेत्रों की परियोजनाएँ जैसे पथ निर्माण, रेल, दूर संचार, सूचना तकनीक, विज्ञान एवं तकनीक, ऊर्जा इसमें प्रमुख है। गुवहाटी में ''पूर्व की ओर देखो" नीति पर बोलते हुए प्रणव मुखर्जी ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि एक मित्र पड़ोसी के रूप में भारत एक शान्तिपूर्ण, सर्मद्धशाली एवं स्थिर, म्यांमार देखाना चाहता है, जहाँ सभी तबकों के लोग राष्ट्रीय सहमति एवं राजनैतिक सुधार की विस्तृत आधार वाली प्रक्रिया में शामिल हों।

1990 के दशक के शुरूआती दौर तथा भारत ने बर्मा के जनतांत्रिक आन्दोलन का समर्थन किया था लेकिन उस देश में चीन के बढ़ते प्रभाव से भारत चिन्तित है। भारत ने बर्मा के बारे में अपनी नीतियों में बदलाव लाया तथा बर्मा के बारे साथ बड़े आर्थिक सहयोग के रास्ते पर चलने लगा। भारत की दूसरी सबसे बडी चिन्ता उत्तर-पूर्व के क्षेत्र में बढ़ती विद्रोही गतिविधियाँ है। सशस्त्र विद्रोही समूह उत्तर बर्मा के घने जंगलों का इस्तेमाल अस्त्र-शस्त्र के प्रशिक्षण केन्द्रों के रूप में कर रहे हैं। भारत का तर्क है कि वह सैनिक सत्ता के प्रति आँखें नहीं मूँद सकता है क्योंकि वह भारत-बर्मा से जुड़े 1600 कि. मी. लम्बे खुले सीमा पर चल रहे विद्रोही गतिविधियों पर काबू पाने में मदद कर रहा था।

लेकिन जमीनी सच्चाई यही है कि नई दिल्ली के खिलाफ उत्तर पूर्व के लोगों में बहुत ज्यादा क्षोभ व्याप्त है। यहाँ के मूल निवासियों की यह समझ है कि केन्द्र सरकार इस क्षेत्र के तेल, कोयला, चाय, जंगल जैसे संसाधनों का दोहन करती है लेकिन उत्तर-पूर्व राज्यों की शाश्वत समस्याओं के प्रति बहरी बनी रहती है। अलग-थलग पड़े उत्तर पूर्व क्षेत्र के निवासियों के बढ़ते गुस्से का सामना करना, भारत सरकार के लिये एक बड़ी चुनौती है। हालांकि इसमें कोई शंका नहीं है कि उत्तर पूर्व के लोग अस्थिर बर्मा के चलते इसके महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। जहाँ एक ओर यह क्षेत्र बर्मा से आने वाले शरणार्थियों की शरण स्थली बना हुआ है वहीं इसके निवासी अवैध नशीले पदर्थों के व्यापार, अस्त्र-शस्त्र के अवैध कारोबार को अपने सामने होते देखते रहते हैं। अत: इस क्षेत्र के गरीब लोग इस कारोबार से जुड़ जाते हैं। उत्तर पूर्व के लोगों के बीच एच.आई.वी. एड्स चिन्ताजनक स्तर पर पहुँच चुका है।

हमारे देश के खेलों के लिये बड़े-बड़े खिलाड़ियों का निर्माण करने वाला राज्य आज एच.आई.वी. संक्रमित सबसे बड़े राज्य में बदल गया है। इस क्षेत्र के प्रतिभाशाली एवं क्षमतावान युवा नशे के दलदल में फंस रहे हैं। बर्मा से नशीले पदार्थों के अवैध आपूर्ति के चलते जिससे दूसरी खतरनाक बीमारियाँ भी पैदा हो सकती है। प्रश्न उठता है कि क्या नई दिल्ली को इन तमाम घटना विकासों के प्रति उदासीन नही रहना चाहिये। जो इन क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है। वस्तुत: यह उत्तर पूर्व की समस्याओं को हल करने हल के सिलसिले में वहाँ की परिस्थितियों को सही तरीके से समझना चाहिये। उस क्षेत्र में स्वाधीनता के बाद से ही भारत विरोधी आवाजें उठती रही है । उत्तर-पूर्व के लोगों में अगर बर्मा के सैनिक शासकों के खिलाफ क्षोभ बढ़ेगा तो इसके चलते भारत सरकार की मुश्किलें आने वाले समय में बढ़ेंगी ।

पिछले कुछ दिनों में बर्मा के सैनिक शासन द्वारा शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों तथा बौद्ध भिक्षुओं के खिलाफ की गई क्रूरतापूर्ण कार्रवाइयों के चलते हुए बौद्ध भिक्षुओं की संभावित मृत्यु की अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बड़ी आलोचनाएँ हुई हैं। जनतंत्र पक्षी कार्यकर्त्ताओं ने सैनिक शासन के खिलाफ अपना संघर्ष तेज कर दिया है। अत: म्यांमार की परिस्थिति का उत्तर पूर्व के राज्यों पर क्या असर पड़ रहा है, इसकी जाँच आवश्यक है। हमें अभी इस संबंध में तमाम पहलुओं पर नजर डालनी होगी। सीमा व्यापार, बर्मा और उत्तर पूर्व की जनता के बीच आपसी संबंघ का अभाव तथा भारत के पूर्व की ओर देखो नीति के निर्धारण में उत्तर पूर्व के राज्यों का प्रभाव आदि।

उत्तर पूर्व राज्य म्यांमार से लगातार जुड़ा हुआ है जो करीब 1600 किमी. की सीमा तक फैला हुआ है। दोनों क्षेत्रों के बीच सीमा व्यापार महत्वपूर्ण स्थान रखता है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के कुछ जगहों पर ही यह सीमित है। बर्मा के सैनिक शासकों द्वारा म्यांमार से जुड़े सीमा पर सेनाओं की बड़े पैमाने पर आवाजाही के चलते इस व्यापार में कमी आई है। इस तरह के भड़काऊ उपस्थिति में व्यापारी लोग कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते हैं।

माण्डले और यागोन के बाजार बंद कर दिये गये हैं तथा नामधा लॉग स्थित सीमा व्यापार चौकी भी बंद कर दी गयी है। इस बात पर गौर करना महत्वपूर्ण है कि म्यांमार के साथ व्यापार के लिये मणीपुर एवं मिजोरम राज्यों के पास विशेष नीतियाँ हैं। ये नीतियाँ भारत सरकार की नीतियों से मेल नहीं खाती है। भारतवर्ष की बर्मा के सम्बन्ध में नीति ऊर्जा एवं रणनैतिक हितों से जुड़ी हुई है।

तेजी से विकसित हो रहे दक्षिण पूर्व एशियाई मुल्कों कें साथ उत्तर पूर्व के जुड़ाव में बर्मा प्रधान बाधा के रूप में है। अगर दक्षिण पूर्व एशिया के साथ उत्तर-पूर्व क्षेत्र का जुड़ाव हो जाय तो यह समृद्ध आर्थिक गतिविधि के केन्द्र के रूप में उभरेगा और इससे बड़े स्तर पर क्षेत्रीय जुड़ाव होगा। उत्तर पूर्वी क्षेत्र के विद्रोहियों के प्रशिक्षण शिविर म्यांमार में तभी तक फले फूलेंगे जबतक वहाँ सैनिक शासन रहता है क्योंकि इस गतिविधि से म्यांमार के सैनिक सत्ता को भारत के खिलाफ लाभ की स्थिति बनी रहती है। बर्मा के सैनिक शासन के साथ भारत का खुल्लम-खुल्ला संबंध पूरी तरह गलत है और भारत इस बात को समझ नहीं पा रहा है कि बर्मा में जनतंत्र के फलने फूलने से इस क्षेत्र की क्षमता का पूरा दोहन हो सकेगा तथा यह इस क्षेत्र और भारत के राष्ट्रीय हितों में

होगा। ऊपरी असम के डिब्रूगढ़ के मनकोट्ठा रोड पर असम की जनता अपनी प्रतिदिन की गतिविधियों के लिये आती जाती रहती है। यह विडंबना ही है कि इसका नाम ब्रिटिश शासन के समय उत्तर पूर्व भारत पर हमला करने वाले बर्मावासियों के नाम पर रखा गया है। हमलावर बर्मियों द्वारा उत्तर-पूर्व के लोगों पर किये गये अत्याचारों की कहानियाँ आज भी लोगों की यादों का हिस्सा बनी हुई है। इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में उत्तर पूर्व की जनता का म्यांमार के साथ संबंध को लेकर एक मनोवैज्ञानिक दुराव एवं घृणा की भावना है। पीढ़ियों के गुजरने के साथ-साथ अब यह बात खत्म हो चुकी है। आज क्षेत्रीय सहयोग एवं एक-दूसरे के लाभ की बात हो रही है।

यह भी एक महत्वपूर्ण बात है कि अहोम जाति के लोगों को ही बर्मा के शासकों ने सबसे पहले निर्वासित किया था और वे लम्बा रास्ता तय कर असम में 1228 ए.डी. में आकर बसे। मूलत: वे दक्षिणी बर्मा में रह रहे शान आदिवासी समुदाय से आते थे जिन्होंने 600 वर्षों तक असम पर शासन किया था। इस ऐतिहासिक मेलमिलाप के बावजूद आज इस वैश्विक दुनियाँ में आम जनों के बीच का रिश्ता टूट गया है। इसका कारण भारत एवं बर्मा की नीतियाँ हैं जिसने बर्मा और उत्तर पूर्व की जनता के बीच एक बनावटी दीवार खड़ी कर दी है ।

उत्तर पूर्व के लोगों एवं म्यांमार के लोगों के बीच आपसी संबंघ कायम करने की बात भारत सरकार के कार्यक्रम का हिस्सा नहीं है। म्यांमार के साथ एक संवेदनशील नीति अपनाये जाने के लिए इस तरह की आपसी बातचीत बहुत आवश्यक है। भारत-एशियानार रैली की सफलता के बावजुद सीमा को खोला नहीं गया है। इस क्षेत्र की जनता ने इस कार्यक्रम का बहुत ही उत्साह एवं आशा से स्वीकार किया। कोलकता की मजबूत लॉबी इस तरह के कार्यक्रम को आगे बढ़ने से रोकती रही है क्योंकि म्यांमार के साथ होने वाला व्यापार कोलकाता के माध्यम से होता है। शुरूआती दौर में प्रस्तावित कालादान गैस पाइप लाईन परियोजना भी उत्तर-पूर्व राज्यों को छोड़कर बंगलादेश से होकर गुजरना था। उत्तर-पूर्व राज्यों को इस तरह अलग-थलग करने की नीति से वहाँ विकास का अभाव है और इसके विद्रोही गतिविधियाँ बढ़ रही है। उत्तर पूर्व राज्यों के पास वह राजनैतिक शक्ति नहीं है जिसके आधार पर एक ही झटके में केन्द्रीय सरकार की नीतियों को बदल दे और यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत अभी तक नीतियों में इस तरह के बदलाव से होने वाले लाभों के प्रति जागरूक नहीं है।

उत्तर पूर्व भारत की जनता तथा म्यांमार द्वारा बड़े पैमाने पर निर्वासित जनता के बीच बड़ा समर्थन है। भारत को अपनी अवसरवादी एवं बनावटी नीतियों को त्यागकर इस भावना के साथ पूरी तरह जुड़ना चाहिये। यह कोई संकीर्ण उप-राष्ट्रीयता का हित नहीं है बल्कि स्वाभाविक जुड़ाव है जिसकी क्षमता का उपयोग कर इस क्षेत्र का सर्वांगीण विकास किया जाना चाहीये और इस बनावटी बंटवारे के आर-पार के लोगों की आशाओं को पूरा करना चाहिये। जैसे अगर एक कौवा गुवाहाटी के आसमान में उड़ता है तो यह दिल्ली की अपेक्षा हमोई के ज्यादा निकट है।

उत्तर-पूर्व की विद्रोही गतिविधियों पर काबू पाने के लिए म्यांमार के साथ समझौता

अपने पड़ोसी देश की जमीन से सक्रिय विद्रोही समूहों की गतिविधियों पर काबू परने के लिये भारत ने दोनो पक्षों के लिये कानूनी सहायता समझौता पर हस्ताक्षर किया है जिसके तहत म्यांमार में पकड़े जाने वाले भारतीय विद्रोह लड़ाके, भारत भेजे जा सकें जिससे उनके खिलाफ भारतीय कानून के अन्तर्गत कार्रवाई की जा सके।

भारत, म्यांमार के साथ इस तरह के सतझौते के लिये पिछले ढ़ाई दशकों से कोशिश कर रहा था। म्यांमार की सैनिक सरकार के प्रधान थानस्वे की भारत यात्रा के दौरान 25 एवं 26 जुलाई 2012 को इस समझौते पर हस्ताक्षर हुआ।

इस समझौते से भारत को सीमा के आर-पार होने वाले संगठित अपराधों, आतंकवादी गतिविधियों, नशीली दवाओं के अवैध व्यापार, रूपयों की कालाबाजारी, नकली नोटों के कारोबार तथा अस्त्र-शस्त्रों के अवैध व्यपार जैसी समस्याओं से निबटने में सहायता मिलेगी। भारत के गृह मंत्रालय के अनुसार म्यांमार में पकड़े जाने वाले भारतीय विद्रोहियों को भारत सरकार के हाथों सौंप दिया जायेगा। विदेश मंत्री के एक अनाम अधिकारी के अनुसार तब उन विद्रोहियों के खिलाफ भारतीय कानूनों के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जायेगा। दोनों अधिकारियों ने अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर उपरोक्त बातें कहीं।

भारत, म्यांमार के बीच 1600 कि.मी. का बिना बाड़ की सीमा है। उत्तर-पूर्व के आदिवासी एवं आदिम आदिवासी समुदायों के भारतीय विद्रोही इस खुली सीमा का उपयोग करते हुए भारतीय क्षेत्र के अन्दर आकर "मारो और भाग जाऔ" की रणनीति का इस्तेमाल करते रहे है।

उत्तर-पूर्व के आदिवासी एवं आदिम आदिवासी समूह ज्यादा स्वायत्तता या स्वाधीनता के लिये संघर्षरत हैं। कम-से-कम इस तरह के आधे दर्जन संगठन जिसमें असम का युनाइटेड् लिबरेशन फ्रंट (उल्फा), नेशनलिस्ट कौंसिल ऑफ नागालैंड, खापलोंग गुट के बारे में कहा जाता है कि उत्तर म्यांमार के अन्दर इनके प्रशिक्षण शिविर हैं। हालाँकि वे अपनी गतिविधियों को भूटान, बंगला देश और नेपाल से भी चलाते हैं और अपनी जगह बदलते रहते हैं।

उत्तर-पूर्व राज्य मणीपुर के पूर्व राज्यपाल वेद मरवाह का कहना है कि इस समझौते से भारत को विद्रोही गतिविधियों से लड़ने का एक महत्वपूर्ण हथियार मिला है। मणीपुर, म्यांमार की सीमा से जुड़ा हुआ है।

इस समझौते से विद्रोहियों को यह साफ संदेश भेजा गया है कि पड़ोसी भूमि से वे अपनी गतिविधियाँ चलाने में अब उतने सुरक्षित एवं निश्चित नहीं है जितना वो समझते है। भारत की आन्तरिक सुरक्षा से जुड़े गृहमंत्रालय के पूर्व अधिकारी वेद परवाह का ऐसा कहना है।

विदेश मंत्रालय के एक दूसरे अधिकारी ने कहा कि जनतंत्र का अभाव एवं मानव अधिकारों के बारे में बहुत बुरे इतिहास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय आलोचनाओं एवं प्रतिबंधों का सामना कर रहे म्यांमार ने इस तरह के समझौते पर किसी देश के साथ हस्ताक्षर किया है।

अपना नाम गुप्त रखने के आधार पर उन्होंने कहा कि इस तरह की सहायता के लिये हम 80 के दशक से ही जोर लगाते रहे हैं। भारत के अपराधियों की सूची में शामिल बहुत से लोग म्यांमार के जेलों में बंद हैं।

1980 एवं 90 के दशकों में भारत ने आँग-शान-सूकी के नेतृत्व में चलने वाले जनतंत्रपक्षी संघर्ष को अपना भरपूर समर्थन दिया। लेकिन उत्तर-पूर्व के विद्रोही समूहों द्वारा म्यांमार के अन्दर से चलाये जा रहे गतिविधियों को देखते हुए इसने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया।

उस समय से भारत ने सैनिक सरकार के साथ अपना संबंध कायम कर लिया है। भारत ने म्यांमार के आधारभूत संरचनाओं के विकास, तेल एंव गैस की खोज तथा कर्ज देकर अपना निवेश बढ़ाया है ।

थानस्वे के भारत आगमन पर भारत ने म्यामार में पथ निर्माण, कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी तथा बिजली संचरण लाइनों एवं रेलवे के विकास के लिये 2000 मीलियन अमरीकी डॉलर (करीब 930 करोड़ रूपयों) देने का आश्वासन दिया है। विदेशी मामलों के समीक्षकों की राय है कि इस समझौते से दोनों को लाभ मिलेगा।

दुनिया में कुछ ही देश हैं, उनमें भारत एक है जो म्यांमार से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में विदेशी मामलों के अध्ययन से जुड़ी प्राध्यापिका मनमोहनी कौल का कहना है कि भारत, म्यांमार में चीन के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करना चाहता है जो दुनिया का सबसे बड़ा जनतांत्रिक देश एवं आर्थिक शक्ति है। भारत ने इस तरह के कानुनी सहायता आधारित समझौते 30 देशों के साथ किये हैं जिसमें नेपाल, बांगलादेश, अमेरिका, ब्रिटेन, रूस तथा संयुक्त अरब अमिरात शमिल हैं ऐसा गृह मंत्रालय का कहना है। बंगलादेश द्वारा उल्फा आतंकवादियों जिसमें संगठन के उच्च पदस्थ नेता अरविन्द राज खोबा तथा सेना संचालन से जुड़े उप प्रधान राजू बरूआ को भारत के हाथों सौपे जाने से इस समझौते का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

दूसरे अधिकारी के अनुसार इस तरह का सहयोग, राजनैतिक इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जब बहुत से देश एक-दूसरे की सहायता करने से इन्कार कर देते हैं जबकि उनके साथ ऐसा समझौता है।

उदाहरण के लिये सार्क देशों (क्षेत्रीय सहयोग के लिये दक्षिण पूर्व देशों का संघ) के बीच आतंकवाद पर एक सहमति है जिसके तहत सभी सदस्य देशों को आतंकवाद के खिलाफ एक-दूसरे की सहायता करनी है। लेकिन कुछ कानूनी समस्याओं एवं अन्य कठिनाइयों का हवला देकर कोई रास्ता निकाल लेते हैं, ऐसा एक अधिकारी ने अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर कहा। लेकिन बंगलादेश की सरकार एक ऐसा उदाहरण है जिसने खूंखार आतंकवादियों के बारे में जारकारी दी और उसे भारत के हाथों सुपूर्द कर दिया।

बाद में यागोन के सैनिक शासन के ''राजकीय शान्ति एवं विकास परिषद के उपाध्यक्ष माँग आर के नेतृत्व में 16 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल नवंबर 2000 में भारत आया और यात्रा के दौरान सीमा के आर-पार परिवहन, संचार के आधारभूत संरचना की स्थापना के लिये आापसी सहयोग को बढ़ाने पर सहमति जताई जिससे व्यापार एवं लेन-देन के संबंध में बढ़ोतरी हो। एक संयुक्त वक्तव्य

के माध्यम से दोनों देशों में आतंकवादी गतिविधियों पर काबू पाने तथा आर्थिक संबंधों को सीमा के पास आगे बढ़ाने के लिये कदम उठाने पर सहमति बनी।

उत्तर-पूर्व सीमा पर स्थित मणीपुर राज्य के शहर मोरेह से म्यांमार के चिन्दविन नदी के पास कलेवा को जोड़ते हुए ऐतिहासिक भारत-म्यांमार पथ का निर्माण भारतीय सेना ने की जिसका उद्घाटन 13 फरवरी, 2001 को हुआ। दोनों ओर के समाचार माध्यमों से इस अवसर का स्वागत करते हुए इसे भिन्नता के नये युग की शुरूआत बताई। दोनों देशों को जोड़ने वाले पथों का खुलना दोनों के राजनैतिक आर्थिक एवं रणनैतिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है। एशियाई उच्च पथ को युरोपीय महादेश से जोड़ने में यह पथ प्रमुख भूमिका निभायेगा।

उसके बाद से दोनों देशों के व्यापारिक रिश्तों में बहुत विस्तार हुआ है। आज भारत, चीन सिगाचुर, थाइलैंड के बाद म्यांमार का चौथा बड़ा व्यापारिक साझीदार है। 1994 से शुरू हुआ तीन निर्धारित बिन्दुओं से सीमा व्यामार जो मणीपुर, मिजोरम एवं नागालैंड़ की सीमाओं पर अवस्थित है, में तीव्रता आई है। हालाँकि व्यापार का लाइसेंस प्राप्त करने तथा विभिन्न विद्रोही समूहों द्वारा डराने एवं पैसे की माँग करने से कठिनाइयाँ बरकरार हैं।

अब यागोन इस बात पर राजी हो चुका है कि अगर भारत और म्यांमार काम करें तो एक-दूसरे की समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। म्यांमार की नीति विद्रोही गतिविधियों वाले सीमा क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं के विकास के साथ उन जगहों को केन्द्र से जोड़ने पर विशेष जोर है। अब जबकि पश्चिमी देशों के आर्थिक प्रतिबंधों के चलते अन्तर्राष्ट्रीय जगत में म्यांमार अलग-थलग पड़ गया है उस परिस्थिति में भारत के साथ म्यांमार को संबंध को सुधारने की दिशा में काम करना अति आवश्यक हो गया है।

निष्कर्षः- भारत की शुरु से ही एक शांतिप्रिय राष्ट्र की नीति एवं राज्यों की स्वायतता के कारण भारत को कुछ समस्याओं का भी सामना करना पड़ा है। विरोधी देशों को उकसाने पर भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों में कुछ अलगाववादियों द्वारा निरन्तर भारत के प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर हमले किये जाते रहे है जो एक विकट समस्या का रुप ले किया है परन्तु हाल के वर्षो में म्यांमार ने भारत के साथ संबंध सुधारने की दिशा में सहयोग देने के लिए हाथ बढ़ाया है। जो भारत के विदेश नीति का एक सफल एवं सुन्दर संयोग बनते हुए दिख रहा है। भारत शुरु से ही अपने पड़ोसी देशो के साथ एक अच्छे संबंध का पक्षधर रहा है। म्यांमार एवं एशियान देशों के साथ भारत को अपना व्यापारिक एवं विकास से जुड़े संबंध को म्यांमार के सत्ता परिवर्तन के प्रभाव से अलग करना तथा इसे थाइलैंड एवं अन्य एशियान देशों के साथ ऐसी रणनीति विकसित करने कि आवश्यकता है जिससे यह वास्तविक रूप से साकार हो सके। यह भारत का प्रमुख लक्ष्य यही रहा है। जैसा कि बंगलादेश में अवामी लीग जैसी मित्रवत् सरकार है, भारत को बांग्लादेश के माध्यम से वैकल्पिक सड़क एवं समुद्री रास्ता खोलना जिससे उत्तर-पूर्व में व्यापार और उद्योग के विकास का रस्ता खुल सके। इस दिशा में भारत निरन्तर काम कर रहा है।

संदर्भ सूची

1. भारत की म्यांमार नीति, (हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र)
2. उत्तर-पूर्व विद्रोहियों पर म्यांमार का प्रभाव बी.बी. शर्मा, उत्तर पूर्व इण्डिया न्यूज।
3. वहि।
4. वहि।
5. वहि।
6. वहि।
7. वहि।
8. म्यांमार-म्यांमार का घटना विकास एवं उत्तर-पूर्व की समीक्षा, कर्नल आर. हरिहरण डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. दक्षिण एशिया विश्लेषण संगठन।
9. वहि।
10. वहि।

सूरदास की रचना में वात्सल्य

चन्द्रकान्त

नेट उत्तीर्ण (हिन्दी), स्नात्कोत्तर हिन्दी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोधसार:- महाकवि सूरदास ने सूर सागर में वात्सल्य के क्षेत्र में रचनात्मक एक नया अध्याय उद्‌धाटित किया है। हिन्दी साहित्य में ही नहीं वरन्‌ विश्व साहित्य में वात्सल्य को ऐसा मर्मस्पर्शी वर्णन देखने को नही मिलता है। किंचित इसके साक्ष्य में यह तथ्य काफी है कि सूरसागर के वात्सल्य वर्णन को लेकर काव्यशास्त्र में भी वात्सल्य रस को एक नया अध्याय जुड़ा। आचार्य शुक्ल सूर सागर की समीक्षा करते हुए यह कहते हैं कि सूर वात्सल्य और श्रृंगार दोनों क्षेत्रों के अप्रतिम सम्राट हैं वह मात्र हृदय का कोना-कोना झांक आए हैं। वस्तुत: वह जिस प्रकार माँ के हृदय में गहरे उतरकर प्रत्येक भाव की भंगी को पकड़ते हैं, उसी प्रकार बाल चेष्टाओं को भी बड़ी कुशलता के साथ उद्‌धाटित करते हैं। वात्सल्य 'वत्स' से व्युत्पादित शब्द है। यह संतान विषयक स्नेह का वाचक है। संतान माता-पिता का आत्मांश है: 'आत्मानां जायते पुत्र:।' माता-पिता के सहल स्नेह की जो अभिव्यक्ति होती है, वही वात्सल्य है। वात्सल्य भाव है, रस नहीं। यह वत्सल रस का स्थायी भाव है। प्राचीन आचार्यो ने 'वत्सल रस' की गणना रस के रुप में नहीं थी। भोजराज (11 वीं सदी) ने पहली बार वत्सल रस को स्वीकार करते हुए रसों की संख्या दस मानी है: 'श्रृंगार वीर करुणाद्‌भुत रौद्र हास्य वीभत्स भयानक शान्त नाम्न:' (श्रृंगार प्रकाश :1:6)। वत्सल रस में माता-पिता आश्रय हैं और संतान है आलम्बन। आचार्य विश्वनाथ (14वीं शताबदी पूर्वार्द्ध) के 'साहित्य दर्पण' में इसके उद्दीपन अनुभाव और संचारी भाव की व्यवस्था दी है। बच्चे की बाल-क्रीड़ा, चुतरता, वीरता विद्या आदि उद्दीपन हैं, उसके दर्शन, स्पर्श चुम्बन, आलिंगन आदि अनुभाव हैं तथा हर्ष, गर्व, आवेग एवं अनिष्ट की आशंका संचारी भाव है।[1] वात्सल्य के दो भेद हैं- संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य। देवकी और वासुदेव कृष्ण को जन्म देते हैं, नन्द-यशोदा उन्हें पालते हैं। देवकी-वसुदेव का संयोग वात्सल्यक्षणिक है तथा वियोग वात्सल्य दीर्धकालिक, जबकि नंद-यशोदा के संयोग-वियोग वात्सल्य-दोनों दीर्धकालिक हैं। संयोग-वियोग वात्सल्य- दोनों दीर्धकालिक हैं। संयोग वात्सल्य की कई अन्तर्दशाएँ हैं- संतान की रुपछवि, निरखना, संतान की लीलाओं, चेष्टाओं से आनन्दित होना, माता-पिता की ममता और कर्त्तव्य का प्रकाशन आदि। गोकुल में यशोदा कृष्ण को पुत्ररुप में पाकर इतनी आनन्दित है कि गद्‌गद्‌ कंठ बोल नही आवे।' उनके सौन्दर्य को देखकर नंद और यशोदा का वर्णनातीत सुख की अनुभूति हुई।[2]

आवहु कंठ, देव परसन भए, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाई।

दौरि नंद गए, सुख मुख देख्यौ, सो सुख मोपे बरनि न जाई।[3]

शब्द संकेत:- वात्सल्य, अभिलाषा, लौकिकता, मनमोहन, माखन, चोटी, संयोग, वियोग, बालक्रीड़ा, हलरावै, दुलराई, मल्हावै, अधर, सैन

वात्सलय श्रृंगार काव्य तथा शांत रसों का जितना अधिक उद्‌धाटन सूर ने अपनी बंद आँखो से किया है, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। इन्हें रस शिरोमणि कवि इसी आधार पर माना जाता है।[4]

सोभित कर नवनीत लिये

घुटुअन चलत रेनु तनु मंडित मुख लेप किये।[5]

सरीखे पदों में श्री कृष्ण की बाल लीला वर्णित है। इसी में वात्सल्य का भी निरुपम हुआ है। डॉ० गोबिन्दराम शर्मा की मान्यता है-

वात्सल्य स्नेह मानव मात्र की एक सहत प्रवृति है। सूर ने इस संतति मोह को कृष्णोन्मुख करके इसे अत्यंत परिष्कृत रुप दे दिया है। बाल लीला संबंधी पदो में यशोदा और नंद के संतति-स्नेह के रुप में वात्सल्य की अभिव्यक्ति सुंदर ढंग से हुई है। गोकुल

में कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा गमन तक के अनेक प्रसंगों और घटनाओं के चित्रण में नंद और यशोदा के वात्सल्य भाव की व्यंजना हुई है। सूर ने बचपन की विविध दशाओं के स्वभाविक एवं मनोवैनिक चित्रण के साथ-साथ ममतालु मातृ हृदय की अभिलाषा आशंका, चिंता, अकुलाहट, उत्सुकतता आदि विविध भावों की व्यंजना भी बड़े कौशल के साथ की है।[6]

वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्र में सूर की वृत्ति विशेष रुप से रमी है। ये उनके प्रिय विषय रहे हैं और इनके चित्रण में ही उनकी ख्याति का मूलाधार अवस्थित है। यह सही है कि कृष्ण की विविध बाल क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए सूर जब तब अपने पाठकों को कृष्ण के ईश्वरीय रुप का बोध करा देते हैं किंतु कृष्ण पर पड़े, इस ईश्वरिय आवरण को तनिक हटाकर देखें, तो क्या ये लीलाएँ अधिक सहज और अधिक स्वभाविक रुप में हमारे आकर्षण का विषय नहीं बनती।[7]

'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो'[8]

जैसे ढ़ेरों पदों में अभिव्यक्ति पाने वाली कृष्ण की छवि क्या अपनी मानवीयता और लौकिकता में हमें अपनी ओर नहीं खीचती? क्या जरुरी है कि इन पदों का आस्वादन करते हुए कृष्ण के ईश्वरीय रुप का ध्यान रखा जाय या इन्हें गाते समय सूर के मन में कृष्ण के ईश्वरीय रुप की छाप थी? सच पूछा जाए तो अपने माननीय तथा लौकिक संदर्भो में ही ये लीलाएँ सूर के काव्य की स्थायी निधि हैं और इनकी इस मानवीय तथा लौकिक आकृति के संदर्भ में ही उनके अंतर्गत निहित तथा व्यंजित सूर काव्य की विशिष्टता को उभारा जा सकता है।[9]

श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहां तक और कोई किसी कवि की नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत अधिक विस्तार दिया सही, पर उसमें बाल सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आयी, उसमें रुप वर्णन की ही प्रचुरता रही। बालक चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कही नहीं।ङ्10ऋ जैसे

सोभित कर नवनीत लिए।

धुटरुन चलन रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।[11]

X X X

पाहुनि करै दै तनकमह्यौ।

आरि करै मनमोहन मेरो, अंचलआनि गहयौ

व्याकुल मथत मथनियाँ रीति, दधि भवैं दरकि रहयौ।[12]

सूरदास ने अपने आराध्य कृष्ण की लीलाओं को काव्य पर आधार बनाया है। 'वात्सल्य' के पद कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं के सुंदर चित्र हैं। कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं को इतने सजीव और मार्मिक रुप में अभिव्यक्ति मिली है कि सहृदय निस्संकोच भाव से सूर को दाद देते नही थकते हैं। वात्सल्य वर्णन मे सूर ने बाल-मनोविज्ञान पर अपने असाधारण अधिकार का परिचय दिया है। बालकों की एक-एक चेष्टा, छोटे से छोटा भाव, अनुभाव सूर की दृष्टि से ओझल नहीं होता है।ङ्13ऋ एक उदाहरण यशोदा का कृष्ण को पालने में झुलाने का बहुत ही मनोरम पद है-

जसोदा हरि पालनै झुलावैं।

हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावौ,

मेरे लाल कौ आउ निंदरिया का है न आनि सुबावै।

तु काहै नहिं वेगहिं आवै तोकौ कान्ह बुलावै

कबहुं पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।

सोवत जानि मौन छ्वै कै रहि करि करि सैन बताबै।।

इहि अंतर अकुलाई उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।

जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नंद भामिनि पावै।।[14]

बालको के स्वाभाविक भावों का व्यंजना के न जाने कितने सुंदर पर भरे पड़े हैं। 'स्पर्धा' का बहुत ही सुंदर पद इस प्रकार है-

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी!
कितिक बार मोंहि दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी।।
तू जो कहती 'बल' की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।।[15]

इसी प्रकार खेल में सुदामा कृष्ण को फटकारता है-

खेलत में को काको गोसैयाँ?
जाति-पाँति हम ते कछु नाहिं, न बसत तुम्हारी छैया।।
अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे है। कछु गैयाँ।।[16]

इसी प्रकार, बलदेव की छेड़छाड़ की कृष्ण शिकायत करते है।-

मैया, मोहि दाउ बहुत खिझायौ
मों सों कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ।।[17]

बच्चे के लिए परिवार और समाज में माँ सबसे निकटतम और प्रियतम होती है। उसकी नजर में वही वह अदालत है जहाँ उसकी हर फरियाद सुनी जा सकती है। उसकी दृष्टि में वही सर्वज्ञ है जो उसके हर प्रश्न का उत्तर दे सकती है। कृष्ण फरमाइस भी करते हैं तो यशोदा से: *'मैया, मै तो चंद खिलौना लैहो':* अपनी रुची का इजहार भी करते हैं तो उसी से: *'मैया री, मोहि माखन भावै'*। माँ बच्चे की कामनापूर्ति का मंदिर है। मनोवैज्ञानिक शब्दावली में वह उसके प्रत्येक उद्दीपन की सार्थक प्रतिक्रिया है। सूर ने वात्सल्य के विपुल चित्रों के जरिये यशोदा को अधिक मान दिया है। उसके मातृत्व को सराहकर उसके नारीत्व को सम्मानित किया है। जिस मध्ययुगीन समाज में नारी की कोई सामाजिक-आर्थिक हैसियत नहीं हो, जहाँ वह रुढ़ियों, मर्यादाओं एवं गुमनामी की कैद भुगतती रही हो, वहाँ सूर ने बालरुप भगवान कृष्ण के प्रेम का सबसे बड़ा भागीदार यशोदा को बनाकर नारी की अस्मिता पर युगों-युगों से समय की पड़ी हुई धूल को झाड़ने का काम किया है। कृष्ण भक्त कवियों में ही नहीं, समस्त मध्य युग में वे तनहा कवि हैं, जिन्होने सबसे अधिक प्रतिभा और उर्जा वात्सल्य के चित्रों पर खर्च की है और यह अकारण नहीं है। जहां नारी की अपनी कोई पहचान नहीं है, जो सिर्फ संबंधो के जारिए जानी जाती हो- विवाह के पूर्व किसी की पुत्री के रुप में, विवाह के बाद किसी की पत्नी के रुप में और पति के मर जाने पर किसी की माता के रुप में जो बुढ़ापा तक पहुचते-पहुचते मां-बाप द्वारा दिए नाम को भी भूल जाती हो, उसे सूर ने बार बार 'यशोदा' जैसे नामोल्लेख के जरिए एक स्वतंत्र पहचान देने की कोशिश की है।[18]

सूर के भाव चित्रण में वात्सल्य भाव को श्रेष्ठतम कहा जाता है। बाल-भाव और वात्सल्य से सने मातृ-हृदय के प्रेम भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते। बालक की विविध चेष्टाओं और विनोदों के क्रीड़ा स्थल मातृह्रदय की अभिलाषाओं, उत्कंठाओं और भावनाओं के वर्णन में सूरदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ट कवि ठहरते है। वात्सल्य भाव के पदो की विशेषता यह है कि उनको पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को भूल कर उनमें मग्न हो जाता है।[19]

सूरदास के गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें लीलागायन की प्रेरणा दी। उनके पुष्टि सम्प्रदाय में ईश्वर कृष्ण का बालपन ही आराध्य माना जाता है, किंचित इस तथ्य को लेकर कुछ आचार्यो ने सूर के वात्सल्य वर्णन पर सवालिया भी लगाए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर की रचना धर्मिता पुष्टि मार्गीय सीमाओं से आबद्ध है, लेकिन कालान्तर के आचार्यो ने यह सिद्ध कर दिया कि सूर के रचना संसार में पुष्टिमार्गी मान्यताएँ कहीं गहरे विद्यमान हो तो हों लेकिन उनकी रचना के जिस रुप से मुखातिब होते हैं उसमें साम्प्रदायिकता की कोई छाप नहीं है और यदि सूर अपनी उर्वर सृजनात्मकता के सहारे पुष्टिमार्ग मान्यताओं का भी विस्तार कर सके हैं तो यह किंचित रस भंग की स्थिति अथवा व्यतिक्रम की स्थिति नहीं लाता है।

सूरसागर में वात्सल्य सम्बन्धी 580 पद हैं। जिनमें जन्म से सम्बन्धित उपालभ्य के 82 पद मातृहृदय के 195 पद तथा वियोग वात्सल्य के 89 पद हैं इस विवरण से भी प्रमाणित हो जाता है कि सूर ने सबसे अधिक ध्यान माँ के ह्दय पर दिया है और उसके पश्चात बालक की चेष्टाओं पर। सूर अपनी सिद्ध रचना शिल्प से बालक की एक-एक चेष्टा का तथा माँ की एक-एक भाव-भंगिमा का फोटोग्राफिक चित्र खींचते हैं। यशोदा समूची नारी जाति के मातृत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं और वात्सल्य से सम्बन्धित रति लीला के घरातल पर व्यापक होकर मानवीय प्रेम की अघोर सीमाओं को स्पर्श करने लगती हैं। शास्त्रीय दृष्टि से वात्सल्य के दो भेद माने गये हैं। संयोग वात्सल्य वियोग वात्सल्य

संयोग वात्सल्य- रुप सौन्दये का वर्णन
कहाँ लौ करनौं सुन्दरताई
खेलत कंवर कनक आंगन
नैन निरखि छवि पाई।

बालक्रीड़ा- किलकत कान्ह घुघुरुवन आवत
मनिमय कनक नन्द के आंगन
मुख प्रतिबिम्ब पकरिबै घावत

अभिलाशा- जसुमति मन अभिलाश करै,
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगे
कब घरनी पग द्वैक धरैं।

बाललीला- ख्याल परै ये सखा सवैमिलि
मेरे मुख लपठायों

मातृ आशंका- ललनवरी या मुख पर
माई मेरी दीति न लागै
तासै मसि दियो मुख्य पर।

वियोग वात्सल्य- कृष्ण का मथुरा गमन-
कब वह मुख बहुरौ देखो
X X X
कब ऐसो सखु पइहों।

उद्वेग- नन्द ब्रज लीजौ ठोंक बजाइ
देह विदा मिलि जाइ मधुपुरी
जहं गोकुल के राइ

उन्माद- जसुमति अति ही भई बेहाल
धरनि गिरति भई अति आकुल।
X X X

इसके अलावा गुण कथन व्याधि मरण आदि दशाएँ भी सांगोपांग उपस्थित हो गयी हैं। आचार्य शुक्ल सूर के श्रृंगार के सम्बन्ध में जो यह कहते हैं कि उन्होने गोपियों की इतनी भाव दशाओं का वर्णन किया है कि मनोविज्ञान में उनका नामकरण तक संभव नहीं है। यह कथन सूर के वात्सल्य वर्णन के साथ हू-ब-हू लागू होता है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण के दशवें स्कंद के आधार पर अपने 'सूर सागर' के पदों की रचना की। इसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं को काव्यमय विस्तार देकर बाललीलाओं के चित्रण में उनकी मति में व्यापक विस्तार और निखार आया है। उनके विविधता भरे पदों में वात्सल्य वर्णन के कारण विद्वानों ने वात्सल्यरस की पूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय संत सूरदास जी को ही दिया है।

निष्कर्षतः- कह सकते हैं कि सूर अपने वात्सल्य वर्णन में भावनाओं के उर्वर प्रदेश में ले जाते हैं। उनकी सर्जनात्मक सम्बन्धों की गरिमा, प्रेम और कर्त्तव्य के अकूत विस्तार, रसमग्न हृदय की अनुभूतिशीलता को रमणीय प्रतिपादक शब्दों में बाँधकर मूर्तिमान कर देती है। संतान के साथ मात-पिता के मधुर एवं अनौपचारिक रिश्ते को सूर ने मध्ययुगीन पारिवारिक-सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक अवबोधों के साथ रुपायित किया है। यशोदा कृष्ण की अपनी माँ नहीं है, किन्तु उनके मातृत्व के सामने किसी भी माँ का मातृत्व तुच्छ और उपेक्षणीय लगता है। कृष्ण प्रेम में यशोदा के मातृत्व का विस्तार हुआ है। ऐसा ही मातृत्व अपना और विस्तार

करता हुआ विश्वजनीन हो जाता है। सूर को जीवन की सरसता से प्रेम है। मानव जीवन मार्मिक क्षणों और सुखद घटनाओं को वे तन्मयता से चित्रित करते हैं। उनकी कविता हृदय को सीधे छूती है क्योंकि व्यापक जन-जीवन से उसका गहरा परिचय है। सूर का वात्सल्य वर्णन शास्त्रीय माँगों की परिपूर्ति करते हुए एक तरफ रचनात्मकता के क्षेत्र में भावदशा और रस से सम्बन्धित नवीन कसौटी की स्थापना कर सका है। लोकहृदय को मुक्त करने वाला सूर का वात्सल्य मानो प्रकारान्तर से राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा में मातृत्व का अर्थ साकार करती है।

संदर्भ सूची

1. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दपुर कालोनी, इलाहाबाद पुनमुद्रण 2007 पृ0-27
2. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दपुर कालोनी, इलाहाबाद पुनमुद्रण 2007 पृ0-28
3. वही-पृ0-28
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक हुकुमचंद राजपाल, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0 576, मस्जिद रोड, जंगपुरा, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997, पृ0-192
5. वही पृ-192
6. वही पृ-192
7. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, लेखक शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, बी-31, गोविन्दपुर कॉलोनी, इलाहाबाद परिवर्तित संस्करण: 2005, पृ0 सं0-132-133।
8. वही पृ-132
9. वही पृ-132
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रकाशन संस्थान 4268-बी0-3, अंसारी रोड, दरियागंज, नईदिल्ली, पृष्ठ सं0-134
11. वही, पृ0 सं0-134
12. वही, पृ0 सं0-134
13. एम0एच0डी0-1 (आदिकाव्य, भक्ति काव्य, रीति काव्य) संकलन एवं संपादनः-डॉ सत्यकाम, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा बांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0-101
14. वही, पृ0 सं0-103
15. वही, पृ0 सं0-135
16. वही, पृ0 सं0-135
17. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, लेखक-डॉ बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली पृ0 सं0-123
18. सूर की काव्य-चेतना, लेखक-बलराम तिवारी, अभिव्यक्ति, प्रकाशन, बी-31, गोविन्दपुर कालोनी, इलाहाबाद, पृ0सं0 30-31
19. हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक-डॉ नागेन्द्र, डॉ0 हरदयाल नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2135 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली पृ0सं0-189

सूर का भ्रमरगीतः एक उपालम्भ काव्य

लालबाबू

एमफिल अध्येता, बी0आर0ए0, बिहार विश्वविद्यालय

शोधसारः- सूर जीवनोत्सव के कवि है। सूर के यहाँ जीवन उत्सव से कम नही है। उपालम्भ में प्रतिदान पाने की अपेक्षा होती है। यह प्रेमी के कपटी आचरण पर कही गई ऐसी कटूक्ति है जिसमें उसे अनुकूल बनाने की आकांक्षा ध्वनित होती है। इसे केवल उलाहना समझना भूल है। इसमें शिकायत या निदा का स्वर वास्तविक नही नाटकीय होता है। यह सच्ची शिकायत से दूर की चीज है। इसमें जो तिक्तता उभरती है उसका सम्बन्ध जिगर से नही जुबान से होता है।[1] वाग्वैदग्ध्य के साथ प्रणय-भावो की अभिव्यक्ति की उपालम्भ है। दीर्धकालिक वियोग की दशा में प्रेमी-प्रेमिका मर्माहत हो जाते है। वह कभी निरे एकांत में और कभी प्रिय के किसी अंतरंग की उपस्थिति में प्रिय पर ताने कसते है। लेकिन खास बात यह है कि प्रिय की दशा को उपहासास्पद बनाने की प्रवृत्ति के साथ-साथ यहाँ बीच-बीच में उनकी मिलनोत्कंठा झाँकती रहती है।[2]

शब्द संकेतः- उपालम्भ, उलाहना, एकनिष्ठा, योग, निगुर्ण, सगुण, विरहानुभूति, प्रगल्भ, सहृदय, भ्रमरगीत, विक्तता, वाग्वैदाध्य, वियोग, मर्माहत, उपहासास्पद, मिलनोत्कंठा

प्रतिकूल हो चुके प्रिय पात्र को अनुकूल बनाने के लिए उसे जो उलाहना दी जाती है वही उपालम्भ है। इसमें प्रिय से दूर होने की नही बल्कि मिलने की ही इक्ष्छा होती है। यह उलाहना माँ, बहन, भाई या किसी को भी दी जा सकती है लेकिन भ्रमरगीत में इसे श्रृंगार तक ही सीमित रखा गया है। कृष्ण के वियोग में तिल-तिल टूटने वाली गोपियाँ जब उधो द्वारा कृष्ण के निर्गुण और योग के संदेश सुनती है तो तिलमिला उठती है वे कृष्ण को व्यंग्य एवं उलाहना का विषय बनाती हुई कहती है

''निरमोहिया सों प्रीति कीन्ही काहे न दुख होय,
कपट करि-करि प्रीति कपटी लै गयो मन गोय।
मेरे जिय की सोई जानै जाहि बीती होय।[3]

उपालम्भ एवं व्यंग्य का विषय वे लोग भी बनाए जाते है जो प्रिय पात्र को प्रतिकूल बनाने में लगे रहते है, गोपियों को सारे मथुरावासी खोटे लगते हैं, जिनके साथ श्रीकृष्ण ने योग सीखा

सब खोटे मधुवन के लोग
जिनके संग श्याम सुन्दर सखि सीखे है अपयोग।
आये है ब्रज के हित उधौ, जुवतिनि कौ ले जोग।।[4]

गोपियाँ उधो का भी मजाक उड़ाती है उनकी नजर में उधो ठग व्यापारी है जो खोटा योग देकर अनमोल प्रेम लेना चाहता है-

आयो धोष बड़ो व्यापारी
लादि खेप गुन-जोग की ब्रज में आन उतारी।।
नाटक दै कर हाटक माँगत भौरै निपट जुधारी।।[5]

जब उधो योग और ज्ञान की रट लगाना नहीं छोड़ते तक उन्हे खरी-खोटी भी सुनाती है वे उन्हे और श्रीकृष्ण को स्वार्थी बताती है-

अपने स्वारथ को सब कोउ।
चुप करि रहौ, मधुप रस लंपट! तुम देख अरु वोऊ।[6]

सूर के उपालम्भ की विशेषता यह है कि खीझ एवं झुझलाहट में भी प्रेम अलक्षित नहीं रहता गोपियाँ कृष्ण के प्रति उलाहना देती हुई कहती है-

उधो! सब स्वारथ के लोग।
आपनु केलि करत कुब्जा संग, हमहिं सिखावत जोग।
भ्रमि बन जात साँवरी मूरति देखहिं वहरुप।[7]

सूर की गोपियाँ अपनी आन्तरिक पीड़ा को विनोदशीलता एवं भोलपन के साथ प्रस्तुत करती है यह उनके उपालम्भ की महत्वपूर्ण विशेषता है वे व्यंग्य करती हुई, उधो से निगुर्ण का अता-पता पूछती है-

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय सौंह दें बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।।[8]
X X X X X X X X X X X X X X X X X
कहा करौ निरगुन लैके हौ, जीवहु कान्ह हमारे।
तहां यह उपदेश दीजै जहाँ निरगुन ज्ञान।
ये (निरगुन) बत्तियाँ सुनि रुखी।[9]

गोपियाँ जब कृष्ण को लक्षित कर कहती है 'एक वास की लाज निबहियों' तब यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि तमाम उलाहने के बावजूद कृष्ण के प्रति उनका प्रेम तनिक भी कम नही हुआ है। उनकी एकनिष्ठता अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई है तभी तो वे उधो से कहती है-

उधो! मन नाही दस बीस।
एक हुतो सो गयो हरि के संग को अराध तुव ईस?[10]

गोपियों की प्रेम निष्ठा देख उधो भी योग और निगुर्ण छोड़ सगुण-प्रेम रंग में रम जाते है। वे कहते है-

अब अति पंगु भयों मन मेरो
गयो तहाँ कहिबे निगुर्ण को भयो सगुण को चेरो।।[11]

गोपियो का उपालम्भ कृष्ण के प्रति उनके अथाह प्रेम का सूचक है। उनकी नजर में कृष्ण छली है। आँख का किनारा दबाकर उन्होने उनका मन हर लिया है। गोपियों ने बड़ी मुश्किल से उन्हें हृदय के भीतर प्रेमभावों के बन्धन में बाँध रखा था, पर मुस्कुराहट की घूस ने वह भी बेकार कर दिया।

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मै चपल नैन की कोर।
गए छँडाय छोरि सब बंधन दे गए हँसनि अंकोर।।[12]

कभी इस बात को लेकर संतोष करती है कि चलो इतनी भाग्यशालिनि वे है कि उन्होंने उन उ)व को देखा जो कृष्ण को देखकर और उनसे मिलकर आए है:-

उधौ हम आजु भई बड़भागी
जिन अंखियन तुम स्याम बिलोके ते अँखियाँ हमलागि।[13]

ग्रामीण गोपकाओं के तर्क भी अपने ढ़ंग से बड़े दिलचस्व है कि उद्धव उन्हे काट नहीं पाते। उद्धव से गोपिकाएँ कहती है-कृष्ण की जिस मूर्ति की तुम हमारे ह्रदय से निकलकर ब्रह्म या निर्गुण की प्रतिष्ठा करना चाहते हो वह मूर्ति निकले भी तो कैसे। कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा ह्रदय में बसी है। सीधी सादी मूर्ति होती तो सरलता से बाहर आ जाती किंतु वह तो हृदय में तिरछी होकर अड़ी है, कैसे निकले:-

इहिं उर माखन चोर गड़े

अब कैसे निकसत सुनि उधौ, तिरछै हैं जु अड़े।।[14]

गोपियाँ कभी ठिठोली करते हुए राधा से कहती है कि कृष्ण के जिस रुप को तुम अंचए बैठी हो वह बाहर निकालो-कृष्ण ने अपना रुप मांगा है-

मोहन मांग्यौ अपने रुप

इहि ब्रजबसत अँचै तुम बैठी ता बिनु उहाँ निरुप।[15]

भक्ति में कृपा की प्राप्ति का साधन उन्होनें प्रेम को माना। बाद में प्रेमभक्ति को अपना कर उन्होने भगवत्प्रेम को ही भक्ति का मेरुदंड मान लिया और प्रेम की परिपूर्णता के लिए बिरह को आवश्यक मान कर विरह के महत्व को इन शब्दों में प्रकट किया:

उधौ बिरहौ प्रेम करें।

ज्यों बिनुपुट पर गहत न रंग को रंगन रसै परै।

ज्यों घर इहै बीज अंकुर गिरि तो सत फरनि फरै।[16]

सूरदास के बारे में शुक्लजी ने लिखा है कि ''सूर की रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होन वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठी मालूम पड़ती है।[17] मथुरा जाकर कृष्ण का वर्ग चरित्र बदल गया है। वे अहीर से यदुवंशी क्षत्रिय हो गये है। इसका उल्लेख उनेक बार हुआ है।

हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।

समुझी बात कहत मधुकर जो? समाचार कुछ पाए?[18]

सूरदास की काव्यात्मक उपलब्धि का चरम भ्रमरगीत है। इसमें भक्त कवि ने एक ओर सगुण की निगुण पर विजय दिखलाई है, जो दूसरी ओर गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य भाव व्यंजित किया है। विरहानुभूति की तीव्रता इसमें द्रष्टव्य है। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपर्ण अंश भ्रमरगीत को माना हैं इसमें गोपिकाएँ कृष्ण वियोग में निरंतर पीड़ित रहती है, रात-दिन रोती रहती है। 'निसदिन बरसत नैन हमारे' भ्रमरगीत प्रसंग में विरह चरमोत्कर्ष पर है।[19]

उपालम्भ काव्य एक प्रकार का संदेश काव्य है। वियोग की भूमि पर यह अधिक व्यंजनागर्भित हो जाता है। इसमें नायिका अपने प्रवासी प्रियतम को किसी न किसी बहाने पूनर्मिलन का सन्देश देती है किन्तु उसकी उपेक्षा या कठोरता पर व्यंग्य करना नही भूलती। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से उपालम्भ काव्य को र्सिफ श्रृंगार तक सीतिम नहीं किया जा सकता। किसी का किसी के प्रति उलाहना उपालम्भ है। इसका अभीष्ट है-साहचर्य की सह अनुभूति। नारी हमेंशा अपना सर्वस्व समर्पित करके पुरुष से प्रवंचना पाती रही है। पुरुष ने अपनी बनाई हुई प्रेमाचार संहिता लादकर नारी की भावनाओं का बराबर दोहन किया है। एक से तृप्त होकर दूसरी की ओर अभिमुख होना उसका स्वभाव है। इसलिए कवियों ने प्राय: पुरुष की प्रकृति में लोलुप, भ्रमर की वृत्ति देखी है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के काव्यों में भी पुरुषो को इस भ्रमरवृत्ति पर व्यंग मिल जाता है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम में दुष्यंत की एक रानी हंसपदिका एक अन्य रानी वसुमति में अनुरक्त दुष्यंत को भ्रमर के माध्यम से उपालम्भ देती है। भ्रमर के व्याज से उपालम्भ देने की परम्परा यही से शुरु होती है। श्रीमदभागवत में 'भ्रमरगीत' को दार्शनिक आयाम दिया गया है। अपभ्रंश के 'पउम चरित' (स्वयंभू) के बाद विद्यापति ने 'पदावली' में इसका उल्लेख किया है। भ्रमरगीत परम्परा को व्यवस्थित रुप देने का श्रेय सूर को है। उन्होने 'भ्रमरगीत' के लिए 'श्रीमदभगवत' के 'भ्रमरगीत' से ही प्रेरणा ली है, लेकिन यहाँ दार्शनिक नही भावात्मक आधार प्रमुख है। उनके 'भ्रमरगीत' की सफलता के बाद तो कृष्ण काव्य में अचानक भौरे प्रमुख हो गए। भ्रमरगीत' 'भँवरगीत' आदि की कड़ी से कड़ी जुड़ती गई।

सूर के 'भ्रमरगीत' में भ्रमर के जरिए गोपियों की दर्दभरी टीस ही क्षोभ बनकर मुखर हुई है। गोपियाँ देह है और राधा है उनकी आत्मा: 'राधा जीव सब देह'।[20] उनमें है गहन एकत्व। तभी तो राधा समेंत सभी गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती हैं और परस्पर कोई ईर्ष्या नही पालती। 'भ्रमरगीत' में वे एक ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी उक्तियों में पैनापन है। वे पीड़ा के परिवेश में उमड़ते-धुमड़ते हुए भाव को मारक क्षमता से लैंस कर देती है। वचनवक्रता के साथ उनकी मर्मभेदी पीड़ा कई रुपों में उपालम्भ में ढ़लकर आई है 'ऐसेई जन दूत कहावत' 'हरि काहे को अन्तरयामी' आदि उक्तियाँ गोपियों की खीज झुँझलाहट एवं व्यंग्य की ही अभिव्यक्ति है।[21]

सूर के भ्रमरगीत में उपलक्षित चित्र भरे पड़े है। गोपियाँ एक स्थल पर श्रीकृष्ण की उस प्रेम प्रवचना के प्रति अपनी मानसिक पीड़ा की अभिव्यक्ति जिस सादृश्य विधान के द्वारा करती है वह कितना मार्मिक है और कितना सहजता लिये हुए है:-

प्रीति करि दीन्ही गरे छुरी
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी।।
मुरली मधुर चोप करि कांपा मोरचन्द्र ठटवारी'
बंक बिलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहि सम्हारी।।[22]

प्रसिद्व आलोचक डॉ० राम स्वरुप चतुर्वेदी कहते है कि मध्यदेशीय जो जीवन होता है। वहाँ एक प्रकार की नीरवता का वातावरण होता है। जहाँ नीखता होगी वहाँ शांति होगी जहाँ शांति होगी वहाँ प्रेम होगा जहाँ प्रेम होगा जहाँ प्रेम होगा वहाँ के जीवन में ठहराव नहीं बल्कि हलचल होगा। डॉ चतुर्वेदी आगे कहते है कि किसी भी काल में किसी भी समाज में दो प्रकार का जीवन होता है। (क) आभिजात्य जीवन (ख) लोक जीवन। समय के प्रवाह के साथ साथ ऐसा हो सकता है कि अभिजात्य जीवन में एक ठहराव आ जाए एक प्रकार की शिथिलता आ जाए लेकिन लोक जीवन में जीवन की गति हमेंशा बनी रहती है यह जो जीवन की गति है यह उसी प्रेम के कारण है। अभिजात्य जीवन में संवेदना के स्तर पर शून्यता होने के कारण प्रेम का अभाव होता है, जबकि लोक जीवन में सवेदनात्मक अधिक होने के कारण प्रेम, स्नेह, राग एवं भाईचारे की नातेदारी बड़ी प्रबल होती है।

सूरदास की गोपियों में आंतरिक पीड़ा का उद्वेग कुछ अधिक ही है। वे उद्धव के समक्ष इस आन्तरिक पीड़ा को विनोद शीलता एवं भोलेपन के साथ प्रस्तुत करती है। ''निरगुन कौन देस को वासी?'' में वे निर्गुण के प्रति केवल अनभिज्ञता ही प्रकट नही करती बल्कि निर्गुण का अता-पता पूछकर उद्वव और उनके निगुर्ण को उपहास का विषय बना देती है। वे उद्वव से मजाक ही कर रही है, किन्तु यह कहकर कि यह मजाक नहीं है-बूझति साँच, न हांसि'। इससे मजाक और चुटीला बन गया है। भ्रमरगीत में उपालम्भ रुढ़ि के अनुपालन के लिए नही आया है। गोपिया उपाल्भय की मुद्रा मे तब आती है जब उन्हे लग जाता है कि उद्वव के पास एक तो उनके काम की बातें नही है, दूसरे उद्वव उनका मन बगैर पढ़े उनके मन में निगुर्ण ज्ञान अँटा देने की कसम खाए हुए है। गोपियाँ सहृदय है। वे दुःखी तो है, पर हँसना भूली नहीं है। यह उनकी परिहासप्रियता का ही परिणाम है कि जब उद्वव पर व्यंग करती है तक हास्य की सहज सृष्टि होती है, लेकिन यह हास्य मर्यादा का कही अतिक्रमण नहीं करता। उपालम्भ की सरसता और मधुरता का यही कारण है।

निष्कर्ष:- यह कहा जा सकता है कि उपालम्भ भाव की जमीन से लगा हुआ एक शाब्दिक हमला है। यह गोपियों के उद्विग्न मानस का प्रतिबिम्ब है। जब गोपियाँ कृष्ण समेत उद्वव, अक्रुर, कुब्जा एवं समस्त मधुरावासियों को खरी-खोटी सुना लेती है तो उनका तनाव शिथिल हो जाता है। लिहाजा यह उपालम्भ एक उपचार है तनावग्रस्तता का।[23] भ्रमरगीत में मुख्य जो विषय है वह गोपी उधौ संवाद है एक निगुर्ण को मानता है दूसरा सगुण को एक निराकार ब्रह्म में विश्वास करता है तो दूसरा साकार ईश्वर में उधौ को ब्रज भेजने के पीछे कृष्ण की दो ही मंशा थी एक तो गोपियों की मंशा को जान लिया जाए और दूसरी उधौ को जो ज्ञान का अहंकार है वह गोपियों के प्रेम के आगे चूर-चूर हो जाए। सूर ने इस रचना में कथन की जितनी भी भंगिमांए हो सकती है उनका बड़ा ही सधा हुआ प्रयोग किया है। सूर की बाते कहि हृदय की अतल गहराईयों में उतरती चली जाती है तो कभी बक्रोक्ति के माध्यम से हृदय को विदग्ध भी कर देती है। इन तमाम चीजों के बीच सूर की काव्यात्मक दुनिया को निचोड़ते हुए डॉ० राम स्वरुप चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि वात्सलय की गहराई, भक्ति की गरमाई और संमपर्ण की उँचाई का नाम सूर है।

सन्दर्भ सूची

1. सूर की काव्य चेतना, लेखक बलराम तिवारी, अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दपुर, कॉलोनी इलाहाबाद पुनर्मुद्रण 2007 पृ0-67।
2. वही पृ0 - 67
3. भ्रमरगीत सार लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कृष्णादास पोरबाल एण्ड कम्पनी दुकान नं0 22 दुलहिननजी रोड वाराणसी चतुर्थ संस्करण 1997-98 पृ0-81
4. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी, अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दापुर कॉलोनी इलाहाबाद पुनर्मुद्रण 2007 पृ0-68
5. सूरदास और भ्रमरगीत लेखक डा0 किशोरी लाल अभिव्यक्ति प्रकाशन पुनर्मुद्रण 2006 पृ0-80

6. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन पुनर्मुद्रण 2007 पृ0-69 सूरदास और भ्रमरगीत लेखक डॉ0 किशोरी लाल अभिव्यक्ति प्रकाशन पुनर्मुद्रण 2006 पृ0-98
7. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद पुनर्मुद्रण 2007 पृ0-69
8. भ्रमरगीत सार लेखक आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल कृष्णदास पोरवाल एझड कम्पनी दुकान संख्या 22 दुलहिन जी रोड वाराणसी चतुर्थ संस्करण 1997-98 पृ-75
9. हिन्दी काव्य विवेचना एम0एच0डर0-01 हिन्दी काव्य-01 संकलन और सम्पादन डॉ0 सत्यकाम पुनर्मुद्रण 2009 इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय 2002 पृ-182
10. भ्रमरगीत सार लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृष्णा दास पोरवाल एण्ड कम्पनी दुकान नं0 22 दुलहिनजी रोडवाराणसी चतुर्थ संस्करण 1997-98 पृ0-112
11. वही पृ-159
12. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी, अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दपुर कॉलोनी इलाहाबाद पुनर्मुद्रण 2007 पृ0-69
13. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य लेखक शिवकुमार मिश्र अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद परिवर्ि्त संस्करण : 2005 पृ0-149
14. वही पृ-150
15. वही पृ-150
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखक डॉ नागेन्द्र एवं डा0 हरदयाल मयूर पेपर बैक्स ए-95 सेक्टर-5 नौएडा अड़तालीसवां, उन्नचासवा पुनर्मुद्रण संस्करण : 2015 पृ-191
17. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास लेखक डॉ0 बच्चन सिंह राधा कृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग दरियागंज नई दिल्ली सं-2008 पृ-119
18. वही पृ-126
19. हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखक हुकुमचेद राजपाल विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0 576 मस्जिद रोड जंगपुरा नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997 पृ0-193
20. सूर की काव्य चेतना बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन बी-31 गोविन्दापुर कॉलोनी इलाहाबाद पुनमुद्रण 2007 पृ0-67
21. वही पृ0-68
22. सूरदास और भ्रमरगीत लेखक डा0 किशोरी लाल अभिव्यक्ति प्रकाशन पुनर्मुद्रण 2006 पृ0-47
23. सूर की काव्य चेतना लेखक बलराम तिवारी अभिव्यक्ति प्रकाशन पुनर्मुद्रण 2007 पृ-69

समावेशी विकास में मनरेगा की भूमिकाः गोपालगंज जिले के संदर्भ में

डॉ० नरेश कुमार

असि० प्रोफेसर समाज शास्त्र विभाग, एस० एम० डी० डिग्री महाविद्यालय एम० एन० जे० गोपालगंज (बिहार)

शोध-सार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही केद्र की सरकारो के सामने भारत के ग्रामीण क्षेत्रे में रहने वाले लोगो में आर्थिक असमानता के साथ-साथ समाजिक असमानता को कैसे पाटा जाय एक यक्ष्य प्रश्न के रुप में आकर खड़ा हा गया। इन समस्याओ को दूर करने हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी योजनाओ को लाया गया। परन्तु कोई भी योजना अपनी सफलता का प्रमाण नही दे पाया। जैसे जे० आर० वाई०, एस० जी० एस० वाई०, एस० जी० आर० वाई०, आइ० एस० जी० एस० वाई० आर० एस० जी० एस० वाई० डी० पी०, सी० एस० आर० ई० इत्यादि। इन योजनाओ से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पिछड़ा वर्ग, दलित वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग एवं समान्य वर्ग में गरीबी रेखा से निचे जीवन बसर कर रहे बेरोजगार लोगे के आर्थिक एवं समाजिक स्थिति में कोइ परिर्वतन नही आ पाया। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह दिखा कि इन योजनाओ को लागु करने में सरकारे असफल रही।

एक लोकतांत्रिक देश के सफलता का पैमाना इस आधार पर किया जा सकता है कि उसने अपने देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से निचे रहने वाले लोगो के जीवन स्तर को उपर उठाने के लिए कितनी ईमानदारी से काम किया। समाज के अंतिम पैदान पर खड़े व्यक्ति को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए कौन सी राह दिखाई। मनरेगा को सच्चे अर्थो में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धान और बेरोजगार लोगो की समाजिक आर्थिक प्रगति के सम्वाहक के रुप में देखा जाता है। इसी सोच के आधार पर 2 अक्टूबर 2005 को तत्कालिन यूपीए सरकार द्वारा राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) नाम से एक लोक कल्यणकारी अधिनियम बनाया। इसे देष के 200 जिलो में लागु किया गया तत्पश्चात 31 दिसम्बर 2009 को इस अधिनियम में महात्मा गाँधी का नाम जोड़ कर, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) कर दिया गया। मनरेगा की इस सोच को यू० एन० डी० पी० ग्लोबल ह्यूमन डेबलपमेंट रिपोर्ट 2005 से भी पहचान मिली।

नेशनल काउन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक्स रिसर्च की रिपोर्ट के मुताबिक भारत की 42% ग्रामीण जनसंख्या गरीबी रेखा से निचे जिवन बसर करती थी। मनरेगा के लागु होने के पश्चात ग्रामीण क्षेत्रो के गरीबी रेखा से निचे जी रहे 30% लोगो की भागीदारी मनरेगा में देखा गया। इस प्रकार नेशनल काउन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक्स रिसर्च के रिपोर्ट को देखा जाए तो भारतिय ग्रामीण क्षेत्रे के गरीब, समाजिक रुप से कमजोर जैसे दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग, मजदूर वर्ग एवं सिमांत किसान की गरीबी की खाई को बहुत हद तक कम करने में मनरेगा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मनरेगा के कार्य

मनरेगा ने ग्रामीण क्षेत्रे के गरीबी रेखा से निचे जीवन जी रहे लोगो के लिए एक वरदान बन कर आया जिसने साल मे कम से कम 100 दिन कार्य की गारंटी दिया। यह कार्य अपने ग्रामिण परिवेश में रह कर करना होता है। इस कार्य को करनें के लिए इच्छुक लोगो को मनरेगा के कार्यालय मे आवेदन देना होता है आवेदन के 15 दिन के अन्दर आवेदक को रोजगार मुहैया कराना कार्यालय को सुनिश्चित करना होता है। अगर रोजगार नही हो तो आवेदक को बेरोजगारी भत्ता देय होगा। इस प्रकार आवेदक के मजदूरी का भूगतान नगद न कर बैंक या डाकघर के माधयम से किया जाता है। इस प्रकार मनरेगा के अर्न्तगत काम करने वाले

लोगो को श्रम की गरीमा के साथ 100 दिन के श्रम की गारंटी भी मिलती है। यह विश्व में पहला एसा अधिनियम है जो अपने नागरीको को श्रम की गारंटी देता है। मनरेगा में काम करने वालो में महिलाओ की भागीदारी एक तिहाई सुनिश्चित की गई है साथ ही अकेली महिलाओ एवं बिकलांग लोगो को रोजगार देने के लिए प्रथमिकता में रखा गया है।

मनरेगा की अलोचनात्मक स्फलता

भारतीय ग्रामीण लोगो को श्रम की गरिमा से परिचित कराने वाला, रोजगार की कानुनी स्तर पर गारंटी देने वाला और विश्व का सबसे बड़ा समाजिक कल्याणकारी योजना मनरेगा है। यह भारतीय ग्रामीण लोग जो अकुशल श्रम करने के इच्छुक व्यस्क सदस्यों को 100 दिन की गारंटी युक्त रोजगार देता है साथ ही रोजगार न देने की स्थिति में बेरोजगारी भत्ता भी देता है। इस प्रकार जनजातिय क्षेत्रे में एवं सुखाग्रस्त क्षेत्रे में मनरेगा के अर्न्तगत 150 दिनो का रोजगार का प्रावधाान है। मनरेगा को वर्तमान में लगभग भारत के सभी जिलो में लागू किया गया है। इस प्रकार मनरेगा एक रास्ट्रव्यापी कार्यक्रम है। मनरेगा से वही जिले वंचीत है जो पूर्ण रुप से शहरी क्षेत्र है।

एक तरफ सरकारी आकड़े मनरेगा की सफलता के गुण गाते नही थकते वही दूसरे तरफ ऐसे तथ्य भी है जो मनरेगा के सफलता पर प्रश्न खड़ा करते है। नेशनल काउन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक्स रिसर्च की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि मनरेगा में काम करने वाले ग्रामीण लोगो की भागीदारी 30% है अर्थात 70% गरीब मनरेगा में रोजगार से वंचीत है। सी० ए० जी० की रिपोर्ट से यह पता चलता है कि मनरेगा में बड़े पैमाने पर भ्रस्टाचार और अनियमितता का बोलबाला है। इतना ही नही मजदुरो के पारिश्रमिक भुगतान में विल्मब, फर्जी हाजिरी रजिस्टर बनाकर फण्ड की निकासी में धांधली इत्यादि प्रकाश में आया है।

मनरेगाः गोपालगंज जिला

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) लागू होने के पहले जिले से जो प्रवासी मजदूर बाहर जाया करते थे उनमें मनरेगा के लागू होने के उपरांत बाहर जाने की संख्या में कमी आने लगी। उन्हे अपने ग्रामीण माहौल में ही मनरेगा के तहत रोजगार मिलने लगा। जिससे समाजिक संरचना में परिर्वतन दिखाई देने लगा। हालाकि बिहार सरकार ने मध्यप्रदेश और राजस्थान के समान मनरेगा के अधिन कराए जा रहे कार्यो के स्थान पर ठेकेदारो द्वारा कराए गए कार्यो पर अधिक विश्वास किया जैसे ग्रामीण सड़को के निर्माण में नाला निर्माण इत्यादि कार्यो के लिए मनरेगा के अकुशल कामगारो के स्थान पर ठेकेदारो से काम कराना बिहार सरकार की प्राथमिकता में है।

मनरेगा का प्रभाव उसबात पर निर्भर करता है कि किस काम को कितनी प्रथमिकता दी जाती है। केन्द्र सरकार ने राज्य की सरकारो को यह छुट दी है कि मनरेगा के तहत कौन से कार्य कराए एवं कौन से कार्य कौनट्रैक्टर से कराए। मनरेगा के तहत जनवरी 2011 में दिए गए रोजगार के आधाार पर निम्नलिखित डाटा से समझा जा सकता है :-

तालिका 01: *रोजगार पहचानपत्र का वितरण*

अनुसूचित जाति	104093
अनुसूचित जनजाति	10886
अल्पसंख्यक	223068
कुल	338067
रोजगार की मांग करने वाले परिवार	49449
रोजगार बजट के आधाार पर	650538
महिला	48353
कुल	2089678

''डी० डी० सी० ऑफिस गोपालगंज 2010-11 का रिपोर्ट''

उपयुक्त तालिका 01 से स्पस्ट होता है कि रोजगार की मांग करने वाले परिवार 49449 है। जिनका बजट 650538 है। इस प्रकार 16000 परिवारो को रोजगार की आवश्यकता है जिसे मनरेगा पुरा नही कर पाता है। इस तालिका से यह भी सिद्ध होता है कि मनरेगा

अन्य पिछड़े वर्ग एवं गरीब लोगो को भी रोजगार मुहैया कराने में असफल रहा है। सोचनिय स्थिति महिलाओं की है जिनकी भागीदारी 48353 है।

तालिका 02: *विभिन्न प्रखण्डो में दिए गए 100 दिन के रोजगार*

प्रखण्ड		100 दिन कार्य करने वाले परिवार की संख्या
1.	गोपालगंल	71
2.	माँझा	85
3.	बरौली	226
4.	सिधावलिया	385
5.	बैकुठपुर	40
6.	कुचायकोट	289
7.	थावे	105
8.	हथुआ	179
9.	उँचकागाँव	25
10.	फुलवरिया	105
11.	भोरे	63
12.	विजयीपुर	65
13.	कटेया	118
14.	पंचदेवरी	48
	कुल	1804

''मनरेगा रिपोर्ट डी० डी० सी० ऑफिस गोपालगंज 2010-11 का रिपोर्ट''

उपयुक्त तालिका 02 से पता चलता है कि मनरेगा का गोपालगंज जिले में प्रभाव बहुत ही कम है। केवल 1804 परिवारों को ही मनरेगा से रोजगार मिल पाया है। सम्पूर्ण जिले के केवल सिधवलिया (385), कुचायकोट (289) और बरौली (226) परिवारों को मनरेगा से लाभ पहुँचा है। सबसे खराब स्थिति उँचकागाँव और बैकुंठपुर प्रखण्डो की रही जिसमे क्रमश: 25 और 40 परिवारो को ही 100 दिन का रोजगार मिल पाया।

तालिका 3: *कुल रकम का विवरण (लाख में)*

केन्द्रीय रकम	4402.980
राज्य रकम	113.319
कुल	5349.014
अनुमानित व्यय	21523.330

उपयुक्त तालिका 03 से स्पस्ट हाता है कि बहुत बड़ा अंतर अनुमानित व्यय में और 100 दिन का रोजगार पाने वाले परिवारों को किये गये भुगतान में है। केन्द्र द्वारा किये गये व्यय का 25% राज्य सरकार को वहन करना होता है। इस तरह मनरेगा का कार्य गोपालगंज जिले में संतोषजनक दिखाई नही पड़ता है। पैसे की प्रचुर मात्रा में होने के बाद भी लाभुको को रोजगार मुहैया नही कराना प्रशासनीक विफलता का जिताजागता प्रमाण है। इस तरह गोपालगंज जिले में मनरेगा को लागू करने में अनेक समस्याएं है। जैसे रोजगार का पंजीकरण, रोजगार कार्ड का गलत आवंटन, जौब कार्ड के वितरण में धांधली, रोजगार आवेदन पर पैसो का दोहन इत्यादि समस्याओ के कारण मनरेगा के लाभ लाभुको तक नहीं पहुंच पा रहा है।

निष्कर्ष

मनरेगा और कृषि के बिच समन्वय बनाने के लिए दृढ़ प्रशासनिक इक्षाशक्ति के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रो में मनरेगा से सम्बंधित नियमों के बारे मे लोगो को जगरुक करने पर ही मनरेगा का समुचित लाभ मिल सकता है। केन्द्र सरकार ने मनरेगा के माध्यम से प्रधानमंत्री सिंचाई योजना के तहत 5,00,000 से अधिक कुओं और तलाबों की खुदाई का लक्ष्य रखा गया है। जैविक कृषि को बढावा देने के लिए मनरेगा के माधयम से ग्रामीण क्षेत्रों में वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए 10,00,000 गढ्ढे बनाने का प्रस्ताव है। भुगतान में विलम्ब की समस्या को दूर करने के लिए अब राज्यो द्वारा कोश अंतरण आदेस जेनेरेट करने के 48 घंटे के अंदर ग्रामीण विकाश मंत्रालय द्वारा धन राशी राज्य रोजगार गारंटी कोश को निर्गत करने का प्रावधान रखा गया है। मनरेगा ने गरीबी उन्मूलन, रोजगार श्रृजन, ग्रामीण श्रम बाजार में मजदुरी में वृद्धि, श्रमिको की सौदेबाजी क्षमता में वृद्धि को सुनिश्चित कर समावेशी विकाश में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यदि मनरेगा को लागू करने में ठोस कदम उठाए जाए तो मनरेगा एक कल्याणकारी योजना के साथ ही ग्रामीण भारत के समाजिक आर्थिक विकाश का एक सशक्त माध्यम बन सकता है।

सन्दर्भ

1. Based Survey Report
2. Report of Union Ministery of Rural Development Nov. 2006.
3. Office of DDC Gopalganj.
4. Bihar government: Report of Rural Development Ministry.
5. MGNREGA Report, DRDA Office gopalganj.
6. Archana G. Gualti ; Role of ICTs in Rule Development.
7. Dr. Raju Narayan Swamy ; Open Learning as a Tool to Promrote Gender Equqlity in Rule India.
8. Anupam Hazra ; ICT- A Catalytic Intervention for Empowering Rural India.
9. रविन्द्र नाथ मुखर्जीः समाजिक अनुसंधान, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली, नया संस्करण वर्ष- 2005
10. भारतीय महिलाएँः दशा एवं दिशा, सुभाष शर्मा, शताब्दी प्रकाशन, नई दिल्ली

वित्तसहित तथा वित्तरहित डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्य-संतोष का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० बैरिस्टर यादव

असि० प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, एस० एम० डी० डिग्री महाविद्यालय,
मठिया नेचुआ जलालपुर, गोपालगंज (बिहार)

प्रस्तुत शोध-पत्र के उद्देश्य जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा के विभिन्न वित्तरहित डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्य संतोष का अध्ययन किया है। इसलिए यह परिकल्पना लिया गया है कि वित्तरहित शिक्षकों तथा वित्तसहित शिक्षकों में शैक्षिक, मानसिक तथा आर्थिक रूप से सार्थक अन्तर पाया गया या नहीं। परिकल्पना के परीक्षण हेतु छपरा के 25 शिक्षक रामजयपाल महाविद्यालय, छपरा से वित्तसहित (अंगीभूत) तथा 25 शिक्षक वित्तरहित (सम्बद्धता) पी० एन० सिंह डिग्री कॉलेज, छपरा, डिग्री महाविद्यालयों से चयन अप्रसभ्भात्यता के अंतर्गत उद्देश्यानुसार प्रतिचयन किया गया है। चयनित प्रतिदर्श पर कार्यसंतोष मापनी डॉ० अमर सिंह एवं डॉ० टी० आर० शर्मा प्रयुक्त की गई है। समूहों के मध्य सार्थकता की जाँच के लिए 'टी' परीक्षण प्रयुक्त किया गया है। परिणामत: सम्बद्ध महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों तथा अंगीभूत महाविद्यालयों के शिक्षकों में कार्य-संतोष में अन्तर पाया गया है।

प्रस्तावना

वर्तमान परिपेक्ष्य में वित्तरहित शिक्षकों तथा वित्तसहित शिक्षकों में सार्थकता में अन्तर पाया गया है। वित्तरहित शिक्षकों को परेशानी झेलना पड़ता है जबकि वित्तसहित शिक्षकों को परेशानी कम झेलना पड़ता है। वित्तरहित शिक्षकों को संवेगात्मक स्थिरता की कमी तथा चिन्ता (Anxiety) की अधिकता पायी जाती है क्योंकि वित्तरहित शिक्षक आर्थिक संकट से जूझ रहे होते हैं। बिहार सरकार भी इन शिक्षकों पर धयान नहीं दे रही है। इन वित्तरहित शिक्षकों का भरण-पोषण की जिम्मेदारी महाविद्यालय प्रबंधन भी नहीं ले रही है। यह व्यवस्था बिहार सरकार की गलत नीतियों के कारण है। यह वित्तरहित नीति 40 वर्षों से बिहार में चल रही है। वित्तरहित शिक्षकों का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं समाजिक शोषण 40 वर्षों से होता आ रहा है। ऐसी बातें वित्तसहित शिक्षकों के साथ नहीं है। वित्तसहित शिक्षकों को नियमानुसार वेतन तथा समय-समय पर महँगाई भत्ता भी मिलता रहता है। जिससे उसे कार्य करने में संतुष्टी मिलती रहती है। संकीर्ण अर्थ में कार्य-संतोष कार्य के विभिन्न पहलुओं के प्रति सामान्य मनोवृति पर निर्भर करता है, परन्तु विकसित अर्थ में कार्य-संतोष में जीवन के अन्य दूसरे संबंधित पहलुओं के प्रति विकसित मनोवृति भी शामिल होती है। Covid-19 के समय से अभी तक सैकड़ों वित्तरहित शिक्षक एवं शिक्षकेतर कर्मचारी अनुदान के अभाव में स्वर्ग सिधार गये, लेकिन बिहार सरकार 9 वर्षो का अनुदान नहीं दे सकी। उलम तथा नेलन (1984) कार्यसंतोष किसी कर्मचारी द्वारा कार्य, अन्य दूसरे संबंधित कारक तथा सामान्य जिन्दगी के प्रति विभिन्न मनोवृत्तियों का परिणाम होता है। अर्नोल्ड तथा फेल्डमेन (1986)- व्यक्तियों के द्वारा अपने कार्यों के प्रति समग्र धनात्मक भाव की मात्र को कार्य-संतोष कहा जाता है। कार्य-संतोष व्यक्ति में एक ऐसी सुखद और धनात्मक सर्वाधिक अनुभूति होती है, जो स्वयं व्यक्ति को अपने ही व्यवसाय अथवा व्यावसायिक अनुभवों के मूल्यांक से प्राप्त होती है।

उद्देश्य

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार) के वित्तरहित तथा वित्तसहित डिग्री महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्य-संतोष का अध्ययन।

न्यादर्श

तालिका नं0- 01

व्यवसाय	समूह		योग
	वित्तरहित शिक्षक	वित्तसहित शिक्षक	
शैक्षिक	25	25	50

परिकल्पना

महाविद्यालयों में वितरहित शिक्षकों तथा वितसहित शिक्षकों में कार्य-संतोष में सार्थक अन्तर नहीं होगा।

प्रयुक्त परीक्षण

कार्य-संतोष मापनी' डॉ० अमर सिंह एवं डॉ० टी० आर० शर्मा द्वारा मापनी का इस परीक्षण में उपयोग किया गया है। जो कार्य-संतोष का विश्वसनीयता माना जाता है।

विधि

न्यादर्श में चयनित जयप्रकाश विश्वविद्यालय के वितरहित तथा वितसहित महाविद्यालयों के शिक्षकों पर कार्य-संतोष मापनी का व्यक्तिगत रूप से प्रयोग किया गया है। फलांकन के उपरांत 'टी' परीक्षण के माध्यम से दोनों समूहों के कार्य-संतोष के माध्यम से दोनों समूहों के कार्य-संतोष के मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से अन्तर की सार्थकता ज्ञात की गई है।

परिणाम

शैक्षिक व्यवसाय में कार्यरत वितरहित तथा वितसहित शिक्षकों के कार्य-संतोष संबंधी परिणाम।

तालिका नं0- 02

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	'टी' मान	सार्थकता
वित्तरहित शिक्षक	25	78.6	13.11	3.31	0.01 स्तर पर सार्थक अंतर है।
वित्तसहित शिक्षक	25	71.2	9.58		

नोट : 0.05 स्तर पर सार्थकता हेतू मान 2.01
0.01 स्तर पर सार्थकता हेतू मान 2.68

विश्लेषण

परिणामों से स्पष्ट होता है वित्तसहित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों तथा वित्तरहित महाविद्यालयों के कार्यरत शिक्षकों की अपेक्षा अधिक कार्य-संतोष पाया गया। यहाँ निराकरणीय परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। दोनों समूहों के साथ कार्य-संतोष के

मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर है। अतः वितरहित महाविद्यालयों के शिक्षकों के बीच समस्या ही समस्या है जिसके फलस्वरूप उनमें शारीरिक तथा मानसिक थकान होते है जो उनके कार्य-संतोष को प्रभावित करता है। यह परिणाम घोष एवं शुक्ला (1967) कार्यसंतुष्टि वैयक्तिक कारकों से ज्यादा, कार्य अवस्था से सम्बन्ध कारकों से प्रभावित होती है।

महत्त्व

वित्तरहित डिग्री महाविद्यालय बिहार में 224 है। यह वित्तरहित डिग्री महाविद्यालय हर वर्ष लाखों की संख्या में गरीब बच्चों की स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान कर रहा है। इस प्रकार के वित्तरहित डिग्री महाविद्यालय नहीं रहता तो गरीब लोग पैसे के अभाव में दूर शहर में अपने बच्चों को उच्च शिक्षा (स्नातक स्तर के) प्राप्त नहीं करा सकते। क्योंकि गरीब अभिभावक पहले रोटी के बारे में सोचते तब दूर शहरी क्षेत्र में अपने बच्चों की पढ़ाई के बारे में सोचते। वित्तरहित महाविद्यालय जनता के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में अपना भूमि, पैसे लगाकर खोला गया है। इस महाविद्यालय से गरीब के बच्चे अपने घर रहकर कम खर्च में स्नातक तक डिग्री हासिल कर लेते हैं।

सुझाव

1. वित्तरहित शिक्षाकर्मियों में वेतन नहीं मिलने से असंतोष पाया जाता है साथ ही प्रबंध समिति द्वारा शोषण किया जाता है।
2. वित्तरहित शिक्षकों की बहाली मानक के अनुसार होनी चाहिए। मानक के अनुसार नहीं होने से उनका बेहत्तर प्रदर्शन नहीं होता है।
3. वित्तरहित शिक्षकों का सरकार स्क्रीनिंग द्वारा योग्य शिक्षकों को वतेन या अन्य बेहतर लाभ दे सकती है। साथ ही इन स्क्रीनिंग शिक्षकों को अन्य जिम्मेवारियाँ भी दी जा सकती है।
4. वित्तरहित महाविद्यालयों में आय-व्यय पर सरकार का नियंत्रण आवश्यक है। प्रबंधन से जुड़े लोगों के आय-व्यय का अंकेक्षण होने के साथ ही इनके व्यक्तिगत खातों की नियमित जाँच होनी चाहिए।
5. वित्तरहित कर्मियों को प्रबंधक द्वारा नियमित वेतन भुगतान तथा सेवा समाप्ति के उपरान्त सेवा लाभ हेतू अंशदान की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. वित्तरहित शिक्षक एवं शिक्षकेतर कर्मचारियों का अनुदान उसके खाते में सरकार द्वारा देना चाहिए, ताकि प्रबंधन द्वारा अनुदान का बन्दरबाँट रोका जा सके।

निष्कर्ष

जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार) के वित्तरहित तथा वित्तसहित महाविद्यालय में कार्यरत शिक्षकों के कार्य-संतोष में सार्थक अंतर पाया गया है।

संदर्भग्रंथ

1. कापिल, डॉ० एच० के अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव: अगरा-4, 1999.
2. डे. रश्मि, व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव: आगरा 1999.
3. सिंह, डॉ० अरूण कुमार, औधोगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान भारतीभवन: पटना, 1999
4. ओझा, आर० के० औधोगिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा- 2.
5. भाटिया, डॉ० तारेश, आधुनिक मनोविज्ञान सांख्यिकी लावण्य प्रकाशन डरई 2003.
6. कोचर, दिनेश चन्द्र, औधोगिक एवं संगठन मनोविज्ञान सिद्धान्त और समीक्षा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 1989.
7. अलपोर्ट, जी० डब्बलु: दी साईकोलोजी ऑफ पार्टीसिपेंट, साईकोलोजी रिभीयु, 1947, 52, 117-132.
8. हॉकमैन, जे० आर० एण्ड लेवीयर ई० ई०: इम्पलाई रियेक्शन टु जब कैरेक्टीरिटिक्स ए कन्टक्टीव रिपब्लीकेशन जर्नल ऑफ एप्लायड़ साईकोलोजी 1971-55, 259-286.
9. लोघल टी० एम० एण्ड केजनर, एम०: दी डिफिनिशन एण्ड मेजरमेन्ट ऑॅफ जब इनवल्भमेंट, जर्नल ऑफ अप्लायड साइकॉलोजी 1965, 40, 2433.

शुक्रनीति एक संक्षिप्त अध्ययन

प्रो० जितेन्द्र कुमार द्विवेदी

आर्चाय-सह-संस्कृत विभागाध्यक्ष, कमलाराय महा विद्यालय, गोपालगंज

शोधसार- शुक्रनीति अपने समय की एक प्रमुख पुस्तक रही होगी जैसा कि इसके अध्ययन से हमें ज्ञात होता है। शुक्रनीति कि विषयवस्तु अत्सन्त सारगर्भित है। इस पुस्तक में ज्ञान के अनेक कोष प्राप्त होते है। राजनीति का एक विशद ज्ञान है तो समाज एवं स्थाप्यकला पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार शुक्रनीति वर्तमान समय में एक अध्ययन की विषयवस्तु है तो ज्ञानकोष से पूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर शुक्रनीति की विशिष्टता और महता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसके अध्ययन से तत्कालीन भारतीय समाज उसके चिन्तन और उसकी प्रवृति पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। राजनीति सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञान जो सामान्यत: सार्वजनीक कहा जा सकता है हमें इस ग्रन्थ से मिलता है। इस ग्रन्थ की अपनी विशिष्ट गरिमा है। परम्परागत चिन्तक इसे शुक्रार्चाय की रचना मानते हैं। जहाँ तक अंत: साक्ष्य का प्रश्न है तो शुक्रनीतिसार के चतुर्थ अध्याय के कुछ श्लोक द्रष्टव्य है।

''न कवे: सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते।

काव्यैव नीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणाम्''।। (4/428)[1]

''व्यवहारधुरं वोढुं स शक्तो नृपतिर्भवेत्''।।(4/427)[2]

आधुनिक विचारको ने यह भी कहा है कि कौटिल्य आदि के द्वारा उल्लिखित औशनस सिद्धान्त इस शुक्रनीति में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। प्रमाणपुष्ट इन तीन पक्षों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहूँच सकते हैं कि शुक्रनीति में वर्णित विषय शुक्रार्चाय द्वारा किया गया संक्षित संस्करण तो हो ही सकता है क्योंकि इस संदर्भ में शुक्रनीति के प्रारंभिक प्रतिज्ञापरक श्लोक द्रष्टव्य है। 'वशिष्ठादि हम सब ऋषियों ने मनुष्य की बुद्धिकामना से शुक्रनीति के सारांश का संग्रह किया जो संक्षिप्त होते हुए भी तर्कपूर्ण और आधुनिक अल्पजीवी राजा तथा व्यवहार के लिए उपयुक्त है'' इससे शुक्रनीति की उपलब्धाता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह ज्ञान के स्रोत के रुप में हमें प्रतीत होती है।

''स्वयम्भूर्भगवांल्लोकहितार्थ सड्ग्रहेण बै।

तत्सारं तु वसिष्ठा घैरा स्माभिर्वृद्धिहेतवे''।।(शु0नी0 (3/3-4)[3]

शुक्रनीति के रचनाकाल पर अनेक इतिहासकारो एक मत नही है उन्होने साक्ष्य के आधाार पर अपने-अपने मत प्रकट किये है जिससे कुछ संशय बनता है।

''अल्पायुर्भू भृदाधार्थं सड़क्षिप्तं तर्कविस्तृतम्''।

कुछ इतिहासकारों ने इसे गुप्तोत्तर एवं हर्षपूर्णकाल की रचना सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु ऐसा प्रयास समय सापेक्ष तो होता है पर उसकी तुलना देश-काल की स्थिति, तत्कालीन भाषा, अभिव्यक्ति की शैली तथा सामाजिक स्वरुप को आधार मानकर की जाती है। इन विषयों पर जब ध्यान जाता है तो तारतम्य का कोई सूत्र या तुलनात्मक स्थिति का कोई विशिष्ट स्वरुप हाथ नहीं आता। गुप्तकाल के जो भी अभिलेख इतिहास के संग्रहालय में उपलब्ध हैं उसकी प्रांजल भाषा, स्पष्ट शैली, सुन्दर अभिव्यक्ति एवं सश्लिष्ट शब्द-संयोजन के शुक्रनीति की भाषा में कही दर्शन नहीं होते। प्रत्युत शुक्रनीति में आर्ष-प्रयोगों की भरमार इसे गुप्तकाल से बहुत पीछे ढकेल देता है क्योंकि गुप्तयुग की गाथा बतानेवाली 'प्रयाग-प्रशस्ति' में हरिसेन की भाषा और शुक्रनीति की भाषा में कोई तुलना ही नहीं है। प्रांजल, स्फीत अर्थच्छवि को अपने में समेटे गुप्तकालीन भाषा का नमूना प्रयाग-प्रशस्ति में देखा जा सकता है- यथा-

'यस्य प्रज्ञानुषड़्गोचित सुखमनसः शास्त्रतत्त्वार्थभर्तुः।

X X X X X X X X

''अध्येयः सूक्तमार्गः कविमतिविभवोत्सारणं चापिकाव्यम्।

इस भाषा और शैली का शुक्रनीति में दर्शन दुलर्भ है। बची बात हर्षपूर्व की तो हर्षकालीन प्रशस्ति, अभिलेख और शिलालेख इस बात के प्रमाण है कि शुक्र के आर्ष प्रयोग से पाणिनि द्वारा परिष्कृत भाषा का ही इस काल में सुन्दर प्रयोग हुआ था। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में सुन्दर प्रयोग हुआ था। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में युधिष्ठिर-मीमांसक ने पाणिनि का जो काल निर्धारण किया है (6 वीं शती ईसापूर्व से 4 थीं शती ई0पूर्व) उससे भी ऐतिहासिकों का तर्क स्वतः खण्डित हो जाता है क्योंकि शुक्रनीति में प्रायः पग-पग पर अपाणिनिय प्रयोग है। इन सभी तथ्यों के प्रयोग से कम परम्परागत मान्यता का समर्थन करते हुए शुक्रनीति के रचयिता भार्गव शुक्र को ही मानते हैं। इस तथ्य के कई प्रमाण उपलब्ध है कि महर्षि भार्गव शुक्र ही शुक्रनीति के रचनाकार थे। परन्तु इसके रचनाकाल पर कुछ मतभेद विद्वानों में देखने को मिलते है।

शुक्रनीति एवं उसका रचनाकाल

शुक्रनीति में वर्णित जाति व्यवस्था, आचार- विचार तथा वैवाहिक सम्बन्ध की स्थिति से, स्थापत्य कला, मूर्ति निर्माण कला तथा अन्य कला के विशद संस्थाओं के संकेत से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह रचना गुप्तकाल से पूर्व की है। जहाँ तक वर्णव्यवस्था का प्रश्न है तो ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में 'ब्राह्मणोऽस्थ-मुखमासीत्' से ही वर्णव्यवस्था परिलक्षित है। शुक्राचार्य तो एक क्रांतिकारी इस व्यवस्था के विरुद्ध अपना निर्णय स्थिर रखते हैं। उन्होंने इस जाति प्रथा का जमकर खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में सुगति और दुर्गति के प्रति कर्म ही कारण होता है। इस संसार में जन्म से कोई ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्व, शूद्र या म्लेच्छ नही होता है। वस्तुतः गुण और कर्म के भेद से ही ये वर्णभेद होते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति तो ब्रह्मा से ही है, जो क्या फिर सभी ब्राह्मण नहीं है? क्योंकि वर्ण से या पिता से ब्रह्मतेज नहीं आ सकता। प्रत्युत ब्राह्मण तो वह है जो ज्ञान, कर्म, उपासना में प्रकाण्ड विद्वान होते हुए देवाराधन में लीन, शांतचित, इन्द्रियों को दमन करने वाला दयालु होता है-

''ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं ब्राह्मणाः।

न वर्णतो न जनकाद् ब्राह्मतेजः प्रपद्यते''।।(शु0नी0 1/39)[4]

X X X X X X X X

''ज्ञानकर्मोपासनाभिर्देवताराधने रतः।

शान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणश्च गुणैः कृतः''।।(शु0नी0 1/40)

इसी तरह उनका क्रांतिकारी दृष्टिकोण जनता की भली भाँति रक्षा करने में चुतर, वीर, जितेन्द्रिय पराक्रमी तथा दुष्टों को दमन करनेवाला ही क्षत्रिय हो सकता है और यह स्थिति निश्चित रुप से ईसा पूर्व लगभग छठी शताब्दी के पास रुद्रदमन जैसे सम्राटों को दृष्टि में रखकर ही लिखी जा सकती है। गुप्तकाल या गुप्तोतर काल तो ब्राह्मणधर्मी प्रतीत होता है, जिसके विरुद्ध तो सम्पूर्ण बौद्धधर्म का आयाम है। अतः शुक्रनीति का रचनाकाल बुद्ध के बाद किसी भी तरह निश्चित नहीं किया जा सकता है।

जहाँ तक आचार-विचार का प्रश्न है तो शुक्र की दृष्टि में इसका प्रेरक राजा होता है। यही कारण है कि उन्होंने काल का भी कारण राजा को माना है और यही काल ही व्यक्ति के आचार-विचार में प्रमाण माना जाय तो उसके करने वालों में धर्म कहाँ से हो? कहने का तात्पर्य यह है कि शुक्र ने समाज का धर्माचरण आचार-विचार के प्रति सम्पूर्ण दायित्व राजा में समर्पित किया है-

''आचारप्रेरको राजाह्यंतत्कालस्य कारणम्।

यदि कालः प्रभाषं हि कस्ताद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु''।।(शु0नी0 1/22)

राजा का यह दायित्व उपनिषद् काल में ही प्रतीत होता है कि उसे क्या करना है। उसका धार्म क्या है। उसके प्रमुख कार्य क्या है? उसकी प्राथमिकता क्या होनी चाहिए?

शुक्र ने भवन निर्माण एवं मंदिर निर्माण की ऊंचाई, मंजिल, द्वार, मंडप, कमरे आदि का जो निर्देष किया है, वह भी गुप्तकाल से पूर्व का ही प्रतीत होता है। शुक्र के अनुसार देवगृह की भित्ति की ऊंचाई पीठ से 10 हाथ अधिक तथा देव मंदिर के ऊपर की

भूमि द्वार से दुगुनी ऊंची होनी चाहिए और प्रसाद का शिखर ऊंचाई के अनुकूल द्विगुण या त्रिगुण बनाना चाहिए। मंदसौर के शिवमंदिर तथा पल्लवों के द्वारा निर्मित भवन या मंदिर से मेल खाते हैं। डॉ० विसेंट स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'Early History of India' के प्रथम संस्करण में अपनी सहमति प्रकट की है कि पल्लव लोग 'Persian' अथवा पाशियन मूल के थे।[5] डॉ० राइस ने लिखा है कि दक्षिण भारत के पल्लव नरेशों का समीकरण पल्लवों के साथ किया जाना चाहिए, जिनका उत्पादन गौतमीपुत्र शातकर्णी ने शको और यौवनो के साथ की डॉ० एल० राईस ने चालुक्यों की उत्पत्ति के विशय में अपना जो मत बताया है वह पल्लवों के मूल की समस्या से जुड़ा है। पल्लवों के अभिलेख भी प्राप्त है। इन सबों के तुलनात्मक अधययन करने पर 325 से 350ई० का ही हमें बोध कराता है। इससे भिन्न जहां तक मूर्तिकला का प्रश्न है तो शुक्र ने इस पर भी जमकर विचार किया है। मूर्ति कैसी हो लाखों में कोई एक प्रतिमा सबो के लिए सर्वांग सुंदर बनती है, किंतु शास्त्र के मतानुसार जो सुंदर हो, वही प्रतिमा सुंदर कहलाती है। इस संदर्भ में शुक्र के अन्य आचार्यो के मतों का भी उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार जिसका मन जिस प्रतिमा में लग जाता है उसके लिए वही सुंदर है। फिर इससे आगे मूर्ति की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, आकृति, मोटाई आदि का विषद वर्णन शुक्र ने किया है-

''चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ हयृङ्गुष्ठो द्वयङ्गुलो मतः।
सार्द्धद्वयाङ्गु लोङ्गुष्ठस्तन्मिता वा प्रदेशिनी।
प्रदेशिनी द्वयङ्गुला तु सार्धाङ्गु जमथेतराः''।।
(शु0नी0 4)[6]

और ऐसी प्रतिमाएँ है जो आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में उपलब्ध है। अतः कुछ विचारकों ने शुक्रनीति की रचना को गुप्तकाल से लेकर हर्षकाल तक के बीच घसीटने की जो दुश्चेष्टा की है, वह अनैतिहासिक ही नहीं अनर्गल भी है। कहाँ शुक्र की आर्य भाषा और कहां हर्षकालीन परिष्कृत लौकिक संस्कृत। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

''श्रीहर्षदेवाभिभूतों श्रीवलभीपतित्रणोपजातः भ्रमददभ्रवि भ्रमयषोवितानुः श्रीद्दः'' (Ref:- Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Society Vol. VI P I and Idian antiquary Vol. B 1884 PP 70-81)

बची बात गण, संघ, नियम या श्रेणी की तो गुप्तेतर काल के संगठनों के ही यह नाम नहीं है। प्राचीन काल में भी यह श्रेणियां भिन्न-भिन्न व्यापारिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती थीं क्योंकि इतिहास के प्रसिद्ध लेखक ओमप्रकाश निश्चयात्मक रूप से मान लिया है कि सिन्धु निवासी ने व्यापार या उद्योग हेतु अपने आप को संगठित कर लिया था और उनके संगठनों को श्रेणियों का पूर्वरूप माना जा सकता है। श्री आर. सी. मजूमदार और श्री राधा कुमुद मुखर्जी की यह धारणा है कि उत्तरवैदिक काल तक संगठित आर्थिक संस्थाओं का उदय हो चुका था। इन विद्वानों ने गण, श्रेणी, पणि आदि शब्दों का आधार पर निर्णय लिया था कि उस समय भी व्यापारियों के अपने संधा थे। ई0पू0 छठी ई0 में श्रेणियों के संगठन के विषय में हमें भी जातकों से भी जानकारी मिलती है। प्रत्येक व्यवसाय के लोग श्रेणी के रूप में अपना संगठन करके अपने नेता का चुनाव करते थे।[7]

इस प्रकार इन ऐतिहासिक प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष तक पहुंचते हैं कि शुक्रनीति की रचना ईसा से पूर्व में छठी शताब्दी के लगभग हुई है। यह बात अलग है कि उसका परिष्करण और परिवर्द्धन आगे चलकर होता गया है जो डॉ0 अल्तेकर के भ्रम का कारण बना है।

औषनस आचार्य शुक्र की कतिपय अन्य रचनाओं का उल्लेख अन्य अनेक ग्रंथों का उदाहरण के रूप में उपलब्ध है। विज्ञानेश्वर एवं कौटिल्य ने औषनस 'अर्थशास्त्र' की यथावसर जमकर चर्चा की है। प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र को यदि समानार्थक मान लिया जाय तो फिर महाभारत में उल्लेखित राजनीतिशास्त्र विज्ञानेश्वर द्वारा निर्देषित अर्थशास्त्र की एकात्मकता सिद्ध हो जाती है। महाकवि दण्डी ने भी अपने 'दशकुमारचरित' में राजनीतिशास्त्रकारों की नामावली में बड़े ही सम्मान क साथ प्राथमिकता देकर उल्लेख किया है-

'येऽपि मन्त्रकर्कशाः शास्त्रतन्त्रकाराः शुक्राङ्रिसविलाशाक्ष
बहुदन्तीपुत्र-पराशर प्रमृतयः।
(द0कु0च0उ0पी08)

इसी तरह अश्वधाोश ने भी अपने बुद्धचरित में ससम्मान राजनीतिशास्त्र रचयिता के रुप में स्मरण किया है। जैसे

'यद्राजशास्त्रं भृगुरडिङ्गरा च न चक्रतुर्वंशकरावृषितौ।
तयो: सुतौ तौ च ससजतुस्तत्कालेन शुक्रश्य वृहस्पतिश्च'।
(बुद्धचरित 146)

इसी तरह महाकवि कालिदास ने भी शुक्र की राजनीति की सगर्व चर्चा की है कि इससे यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ कालिदास के पूर्व में प्रचलित एवं प्रयोग में था।

'अध्यापितस्योशनसाऽपि नीति प्रयुक्त राग प्रणिधिद्विषस्ते।।
(कु0सं0 3/460)

इसलिए हम कह सकते है कि शुक्रनीति की रचना कालिदास के पूर्व में हो चुकी थी और इसका अध्ययन उक्त काल में विषयवस्तु का केन्द्र होता था। इसीलिए कालिदास ने भी अपने ग्रन्थों में इसके कुछ अंश को रखा है। मनु ने सुप्रसिद्ध मीमांसक मेंधा तिथि ने औषनसी राजनीति के दो श्लोकों को उधृत किया है। कुछ आलोचकों ने इन्हें स्मृतिकार के रुप में भी स्मरण किया है। मिताक्षरा 3/360 तथा मन्वर्थमुक्तावली 10/47 में भी आचार्य शुक्र को स्मृतिकार के रुप में स्मरण किया गया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि मनु याज्ञवक्ल की तरह शुक्र की भी कोई स्मृति अवश्य होगी, जो अभी अनुपलब्ध है बैंकन कॉलेज संग्रहालय में दो तथा जीवानंद संग्रहालय एवं आनंद आश्रम संग्रहालय में भी औशनस धर्मशास्त्र उपलब्ध है। महामहोपाध्याय 'काणे' ने औशनस स्मृति का उल्लेख किया है। अत: यह कहना आयुक्तिकर नहीं है कि शुक्राचार्य ने राजनीति के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों की रचना की है।

निष्कर्ष:-संस्कृत साहित्य में अनेक पुस्तकें हमारे प्राचीन संस्कृति पर प्रकाश डालती है, परन्तु शुक्रनीति एक एकसी पुस्तक है जिसके अध्ययन से हमें एक स्वच्छ एवं समृद्ध राजनीति का ज्ञान होता है तथा प्राचीन समृद्धि से हमें अवगत होने का एक मौका मिलता है। इसके रचनाकाल पर भी संशय तो विद्वानों में होता है परन्तु यह उसी काल की अवश्य रचना है जिस समय संस्कृत भारत में फल-फुल रहा था। इस ग्रन्थ में शासन सत्ता के अलावा भवनों आदि का विशद वर्णन मिलता है किवे कैसे हो तथा उसकी स्थापना या आधारशीला कैसी हो। इससे स्थापत्यकला का भी विशउ् वर्णन प्राप्त होता है। इसके विषय वस्तु के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इसके रचनाकार एक उच्चकोटी के विद्वान रहे होगे। इसलिए आज के समय में इसका अध्ययन समाचीन है जिससे हमें अनेक उपलब्धियाँ हासिल हो सकती है इसलिए यह शोधापत्र एक मील का पत्थर साबित होगा।

संदर्भ सूची

1. महर्षि शुक्रार्चाय विरचिता 'शुक्रनीति' प्रकाशक चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संसकरण-1998
2. वही, अध्ययन-4
3. वही, अध्याय-प्रथम
4. वही, अध्याय-प्रथम
5. Early History of India-डॉ0 विसेन्ट स्मिथ
6. शुक्रनीति, अध्याय-4
7. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थ्रिक इतिहास-डॉ0 महावीर सिंह त्यागी, प्रकाशक-राजीव प्रकाशक, मेरठ

स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता में सहसम्बन्ध का अध्ययन

सर्जुन कुमार

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

डॉ० आशाराम

एसो० प्रोफेसर, सेवानिवृत्त, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता का अध्ययन किया गया तदोपरान्त शोधार्थी द्वारा जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति व पर्यावरण जागरूकता सहसम्बन्ध का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शोध के चरों पर आधारित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्त पोषित महाविद्यालयों से स्नातक (जीव विज्ञान वर्ग) की प्रथम वर्ष से कुल 200 विद्यार्थियों (100 छात्र व 100 छात्राऐं) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मापन हेतु स्वनिर्मित परीक्षण एवं पर्यावरण जागरूकता के मापन हेतु डॉ0 प्रवीण कुमार झा द्वारा निर्मित प्रमापीकृत पर्यावरण जागरूकता मापनी का प्रयोग किया गया है। सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण व पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया गया है, जिसमें जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के संदर्भ में छात्राऐं, छात्रों की तुलना में अधिक सकारात्मक व प्रबल पायी गयी है। इसी प्रकार छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता में सार्थक अन्तर पाया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता में सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया है।

1.1 प्रस्तावना

आज पर्यावरण जागरूकता की आवश्यकता सभी देशों के लिए समान रूप से है, क्योंकि विश्व के सभी देश आज किसी न किसी प्रकार के पर्यावरणीय संकट से ग्रस्त हैं। विकासशील देश और विकसित देश अपनी भिन्न-भिन्न समस्याओं के बावजूद इस बात पर एकमत हैं कि जितनी तेजी से आज पर्यावरण की समस्यायें उठ रही हैं, चाहे वह जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभावों के कारण हों या औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप हों या कोई अन्य कारण से उसको सरकार या जनता अथवा दोनों ही सुधार कर भी अपने

पिछले रूप में नहीं ला सकतीं। प्राकृतिक संसाधनों का जिस दुर्दान्त रूप में शोषण हो रहा है और उससे जो प्रकृति के संचित कोष रिक्त हो रहे हैं, उसे वापस पूरा नहीं किया जा सकता।

पर्यावरण की गुणवत्ता एवं संसाधन भण्डार में अनवरत हो रहे क्षय तथा अवनयन ने पर्यावरण वैज्ञानिकों, प्रविधि विशेषज्ञों, राजनीतिज्ञों, समाज-सेवियों, शिक्षाविदों, दार्शनिकों एवं विकास नियोजकों को सजग कर दिया है। पर्यावरण एवं पारिस्थैतिकी के प्रति चेतना अब जन-जन तक विभिन्न संचार माध्यमों से पहुँचायी जा रही है। ग्रामीण कृषक भी अब सजग होने लगे हैं किन्तु व्यापक जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न आवश्यकताओं की पूर्ति तभी सम्भव है जब जीव मण्डल के अन्य जीवों का आहार छीना जाय। यद्यपि प्रकृति ने प्रत्येक निवास्य क्षेत्र में एक निश्चित पोषण क्षमता तय कर रखा है जिसके अतिक्रमण होने से प्राकृतिक व्यवस्था तन्त्र अव्यवस्थित हो जाता है। विश्व स्तर पर समसामयिक पारिस्थैतिक समस्याओं पर सामान्य दृष्टिपात के उपरान्त यह इंगित कर देना आवश्यक होगा कि विकसित एवं धनी राष्ट्रों या समाजों की तुलना में विकासोन्मुख एवं गरीब देशों या समाजों की पारिस्थैतिक समस्यायें कुछ भिन्न है।

जीव विज्ञान की विषय-वस्तु की वर्तमान में मानव जाति व पर्यावरण में प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा जीव विज्ञान के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर हुए शोध अध्ययन का विश्लेषण किया गया जिसका संक्षिप्त साहित्य सर्वेक्षण को निम्नवत् इंगित किया गया है।

फॉरीयो (2019) द्वारा बताया गया कि उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के मध्य जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है एवं जीव विज्ञान के प्रति मनोवृत्ति व शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य सकारात्मक व सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया है।

हुसैनी (2015) द्वारा बताया गया कि पर्याप्त शिक्षण उपागम व सहायक सामग्री, प्रयोगात्मक कार्यशाला व शिक्षण विधि विद्यार्थियों की जीव विज्ञान के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति को बढ़ावा देती है।

शेखर (2013) द्वारा बताया गया कि छात्र-छात्राओं के मध्य विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में सार्थक अन्तर पाया गया है जिसमें छात्राओं की विज्ञान अभिवृत्ति छात्रों की विज्ञान अभिवृत्ति की तुलना में उच्च पायी गयी है।

शोधार्थी द्वारा जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता पर आधारित पूर्व में हुए शोध अध्ययनों का गहन विश्लेषण किया गया जिसमें विश्लेषण से यह विधित होता है कि विद्यार्थियों की जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता बहुत कम शोध अध्ययन पाये गये है, जबकि जीव विज्ञान मानव व पर्यावरण के मध्य संतुलन पर प्रकाश डालती है एवं पर्यावरण जागरूकता भारत व विश्व के सामने एक ज्वलंत विषय है अत: शोध की महत्ता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा "स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन" को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

1.2 अध्ययन के उद्देश्य

1. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता का अध्ययन करना।
3. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

1.3 अध्ययन की परिकल्पनाऐं

1. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
2. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
3. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।

1.4 न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्त पोषित महाविद्यालयों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। तदोपरान्त प्रत्येक महाविद्यालय से स्नातक (जीव विज्ञान वर्ग) की प्रथम वर्ष से 10-10 छात्र-छात्राओं अर्थात् कुल 200 विद्यार्थियों (100 छात्र व 100 छात्रायें) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा जीव विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मापन हेतु स्वनिर्मित परीक्षण का निर्माण किया गया जिसमें कुल 25 कथनों को सम्मिलित किया गया जिसके अन्तर्गत जीव विज्ञान विषय में रूचि, अध्ययन एकाग्रता, विषय की सार्थकता एवं मूल्य, व्यवसाय के रूप जीव विज्ञान का महत्व, विषय का कठिनाई स्तर, विषय का व्यकितगत, सामाजिक एवं पर्यावरणीय मूल्य, आदि के संदर्भ में अभिवृत्ति का मूल्यांकन किया गया है एवं पर्यावरण जागरूकता के मापन हेतु डॉ0 प्रवीण कुमार झा द्वारा निर्मित प्रमापीकृत पर्यावरण जागरूकता मापनी का प्रयोग किया गया।

1.6 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण व पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है।

1.7 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

तालिका 01: *जीव विज्ञान विषय के प्रति छात्र-छात्राओं की अभिवृत्ति के लिए मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात*

अध्ययन चर	लिंग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
जीव विज्ञान वि'ाय के प्रति अभिवृŸिा	छात्र	100	78.61	6.15	2.03	198	0.05 पर सार्थक
	छात्रा	100	80.54	7.20			

उपरोक्त तालिका 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जीव विज्ञान विषय के प्रति छात्र व छात्राओं की अभिवृत्ति से सम्बन्धित आँकड़ों का मध्यमान क्रमषः 78.61 व 80.54 प्राप्त हुआ एवं सम्बन्धित मानक विचलन का मान क्रमषः 6.15 व 7.20 प्राप्त हुआ है। जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में छात्राओं का मध्यमान छात्रों के मध्यमान से अधिक पाया गया। शोधार्थी द्वारा छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में प्राप्त मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर के क्रान्तिक अनुपात का मान 2.03 प्राप्त हुआ जो कि 198 स्वतंत्रता अंश व 0.05 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक मान है। अतः जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में छात्र व छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है। तालिका सं. 01 में प्रदर्षित जीव विज्ञान विषय के प्रति छात्र व छात्राओं की अभिवृत्ति से सम्बन्धित मध्यमानों को निम्न दण्डारेख 01 द्वारा प्रदर्षित किया गया है।

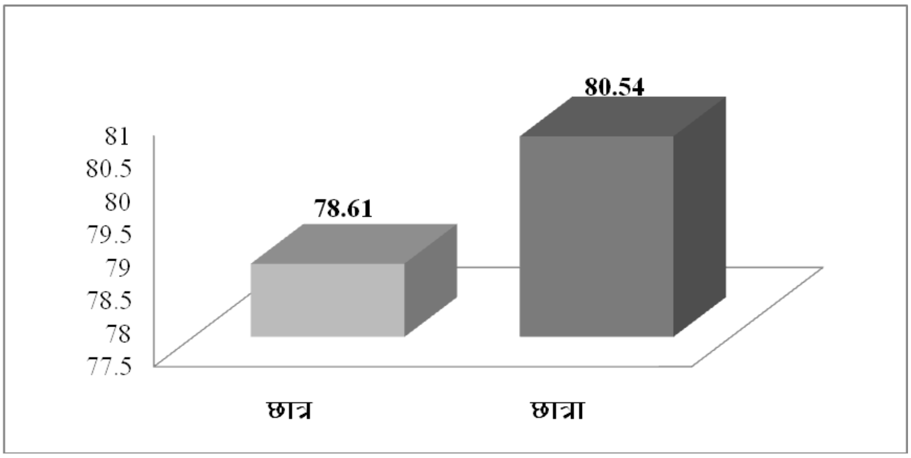

दण्डारेख 01 जीव विज्ञान विषय के प्रति छात्र व छात्राओं की अभिवृत्ति से सम्बन्धित मध्यमान

2. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता का अध्ययन करना।

तालिका 02 जीव विज्ञान विषय के प्रति छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के लिए मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात

अध्ययन चर	लिंग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता	छात्र	100	41.74	2.89	3.90	198	0.01 पर सार्थक
	छात्रा	100	43.38	3.04			

उपरोक्त तालिका 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता का मध्यमान क्रमश: 41.74 व 43.38 पाया गया है एवं उक्त के संदर्भ में मानक-विचलन क्रमश: 2.89 व 3.04 पाया गया है। शोधार्थी द्वारा छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर के लिये क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं क्रान्तिक अनुपात का मान 3.90 पाया गया। जो कि 198 स्वतंत्रता अंश व 0.01 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक मान है। तालिका 02 में अंकित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को दण्डारेख 02 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

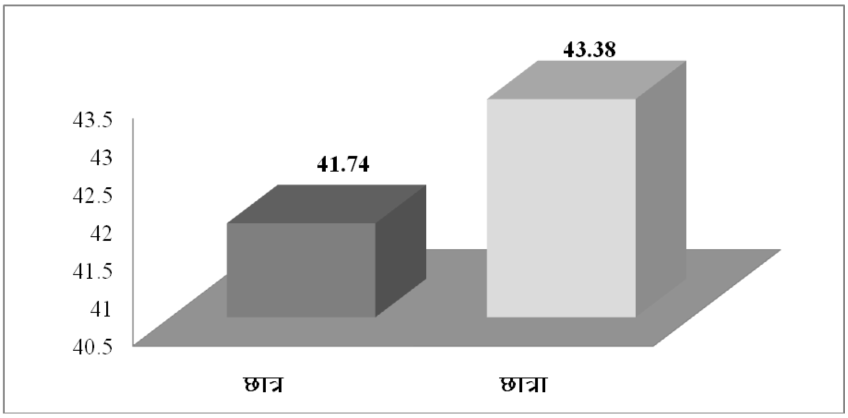

दण्डारेख 02 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता से सम्बन्धित मध्यमान

पुन: शोधार्थी द्वारा स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रत्येक आयामों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए वर्णनात्मक व अनुमानात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों की सहायता से विश्लेषण किया गया।

(क) पर्यावरण जागरूकता के प्रथम आयाम ''प्रदूषण के कारणों के प्रति छात्र व छात्राओं की जागरूकता'' का अध्ययन

तालिक 03: *जागरूकता के प्रथम आयाम ''प्रदूषण के कारणों के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए सांख्यिकीय मान (¼M, S.D, CR-value)*

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	मुक्तांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता (प्रथम आयाम)	छात्र	100	7.46	0.98	1.79	198	0.05 पर असार्थक
	छात्राऐं	100	7.72	1.07			

उपरोक्त तालिका 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण जागरूकता के प्रथम आयाम ''प्रदूषण के कारणों के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं की प्रतिक्रिया से आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त मध्यमान क्रमश: 7.46 व 7.72 पाया गया एवं मानक विचलन क्रमश: 0.98 व 1.07 पाया गया। पर्यावरण जागरूकता के प्रथम आयाम ''प्रदूषण के कारणों के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्राओं का समूह, छात्रों के समूह की तुलना में अधिक जागरूक पाया गया। पुन: छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.79 पाया गया एवं क्रान्तिक अनुपात का प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर व 198 मुक्तांश पर असार्थक है जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण जागरूकता के प्रथम आयाम ''प्रदूषण के कारणों के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के समूह के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका 03 में अंकित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को दण्डारेख 03 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

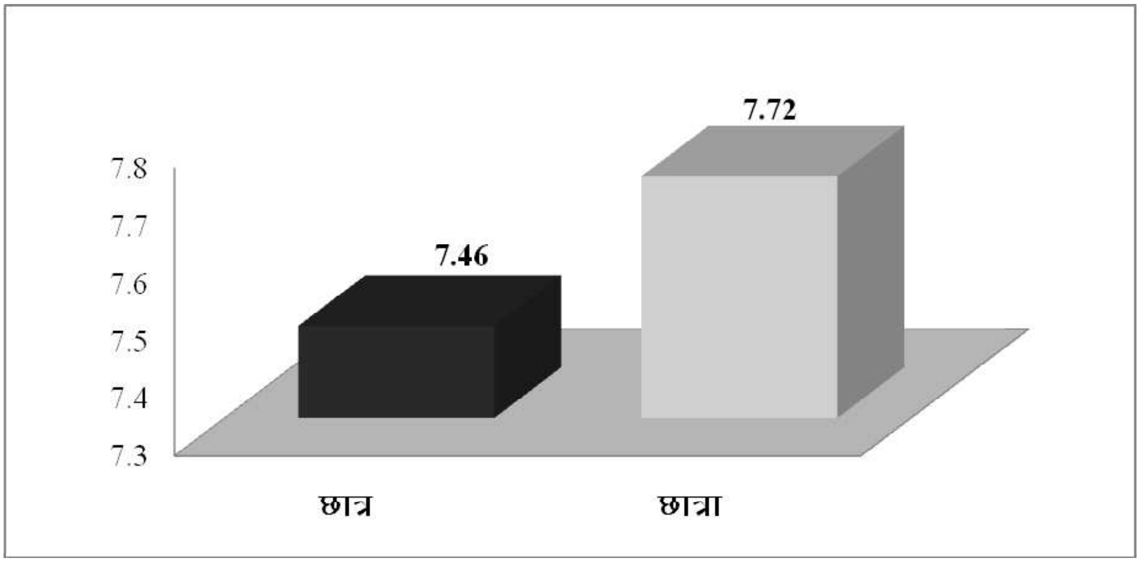

दण्डारेख 03 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता द्धप्रथम आयामत्र्क से सम्बन्धित मध्यमान

(ख) पर्यावरण जागरूकता के द्वितीय आयाम 'वायु, वन, मृदा आदि का संरक्षण के प्रति प्रति छात्र व छात्राओं की जागरूकता' का अध्ययन

तालिक 04: *पर्यावरण जागरूकता के द्वितीय आयाम 'वायु, वन, मृदा आदि का संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए सांख्यिकीय मान (M, S.D, CR-value)*

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता ½द्वितीय आयाम½	छात्र	100	8.34	1.19	1.58	198	0.05 पर असार्थक
	छात्राऐं	100	8.60	1.14			

उपरोक्त तालिका 04 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण जागरूकता के द्वितीय आयाम 'वायु, वन, मृदा आदि का संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं की प्रतिक्रिया के आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त मध्यमान क्रमशः 8.34 व 8.60 पाया गया एवं मानक विचलन क्रमशः 1.19 व 1.14 पाया गया। पर्यावरण जागरूकता के द्वितीय आयाम 'वायु, वन, मृदा आदि का संरक्षण के प्रति जागरूकताह के सन्दर्भ में छात्राओं का समूह, छात्रों के समूह की तुलना में अधिक जागरूक पाया गया छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.58 पाया गया एवं क्रांन्तिक अनुपात का प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर व 198 मुद्रांश पर असार्थक है जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण जागरूकता के द्वितीय आयाम ह्वायु, वन, मृदा आदि का संरक्षण के प्रति जागरूकताह के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के समूह के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। शोधार्थी द्वारा तालिका 04 में अंकित सांख्यिकीय मानों द्धमध्यमानऋ को दण्डारेख 04 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

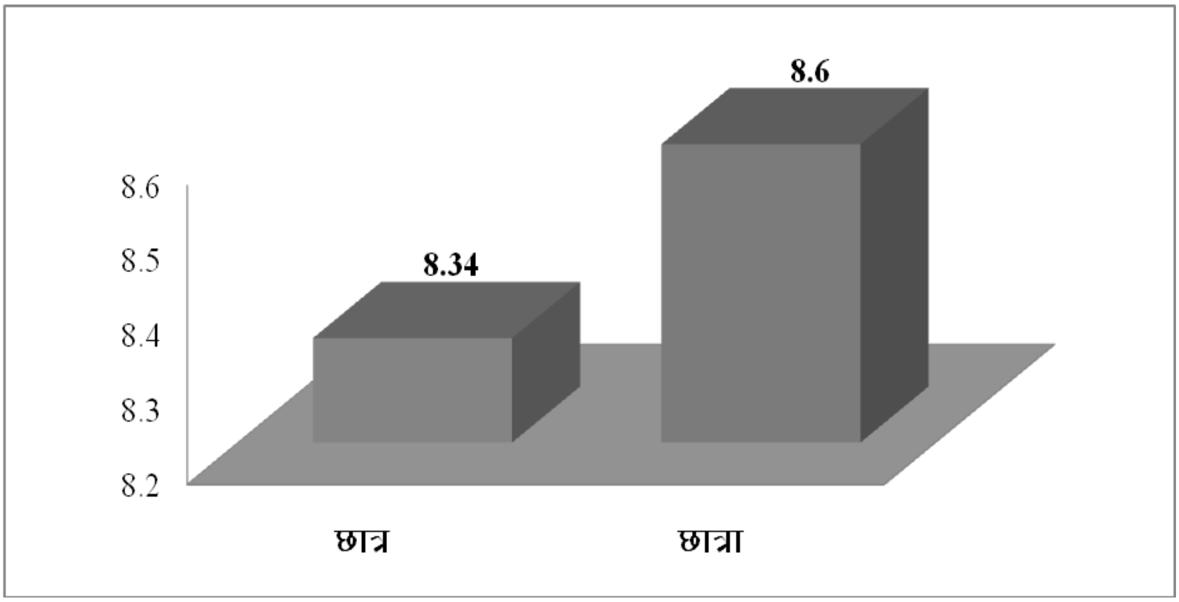

दण्डारेख 04 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता (द्वितीय आयाम) से सम्बन्धित मध्यमान

(ग) पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम हऊर्जा संरक्षण के प्रति छात्र व छात्राओं की जागरूकताह का अध्ययन

तालिक 05: *पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम 'ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए सांख्यिकीय मान (M, S.D, CR-value)*

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता ¼तृतीय आयाम½	छात्र	100	8.07	1.16	1.83	198	0.05 पर असार्थक
	छात्राऐं	100	8.34	0.91			

उपरोक्त तालिका 05 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम 'ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं की प्रतिक्रिया के आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त मध्यमान क्रमश: 8.07 व 8.34 पाया गया एवं मानक विचलन क्रमश: 1.16 व 0.91 पाया गया। पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम 'ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्राओं का समूह, छात्रों के समूह की तुलना में अधिक जागरूक पाया गया परन्तु दोनों समूहों के प्राप्त मध्यमानों में अन्तर नगण्य है। पुन: शोधार्थी द्वारा पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम 'ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 1.83 पाया गया एवं क्रांतिक अनुपात का प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर व 198 मुक्तांश पर असार्थक है जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण जागरूकता के तृतीय आयाम 'ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के समूह के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका 05 में अंकित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को दण्डारेख 05 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

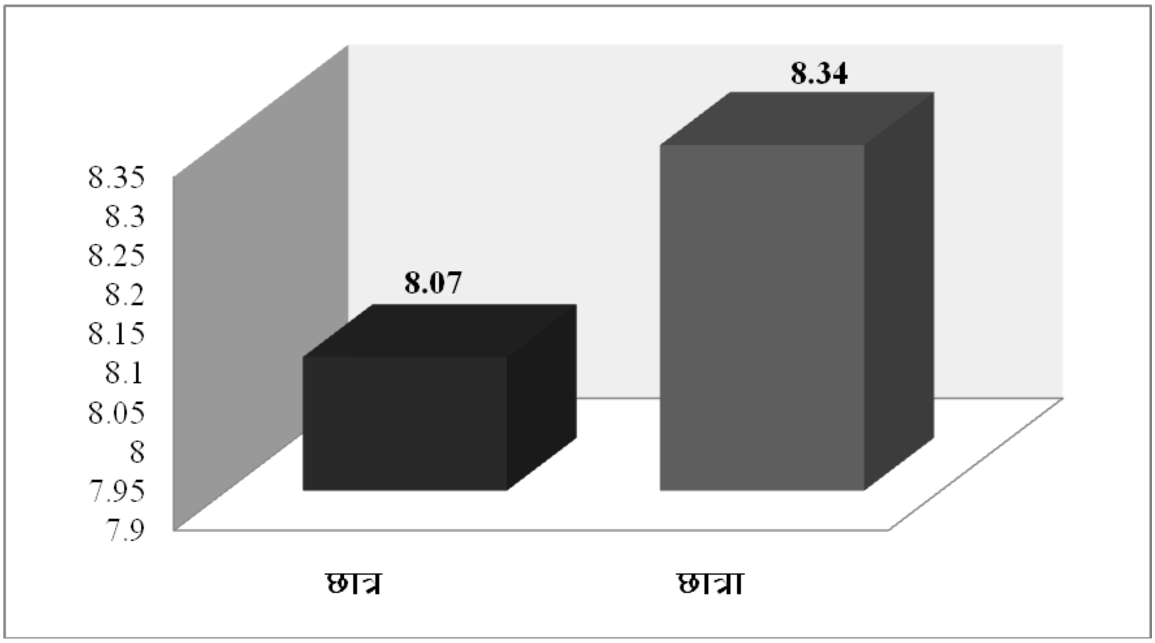

दण्डारेख 05 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता (तृतीय आयाम) से सम्बन्धित मध्यमान

(घ) पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ''मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति छात्र व छात्राओं की जागरूकता'' का अध्ययन

तालिक 06: *पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ''मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए सांख्यिकीय मान (M, S.D, CR-value)*

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता ¼चतुर्थ आयाम½	छात्र	100	12.71	1.17	3.14	198	0.01 पर सार्थक
	छात्राऐं	100	13.21	1.08			

उपरोक्त तालिका 06 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ह्मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकताह् के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं की प्रतिक्रिया के आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त मध्यमान क्रमशः 12.71 व 13.21 पाया गया एवं मानक विचलन क्रमशः 1.17 व 1.08 पाया गया। पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ''मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्राओं का समूह, छात्रों के समूह की तुलना में अधिक जागरूक पाया गया। पुनः शोधार्थी द्वारा पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ''मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 3.14 पाया गया एवं क्रांन्तिक अनुपात का प्राप्त मान 0.05 सार्थकता स्तर व 198 मुक्तांश पर सार्थक है जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम ''मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के समूह के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। तालिका 06 में अंकित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को दण्डारेख 06 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

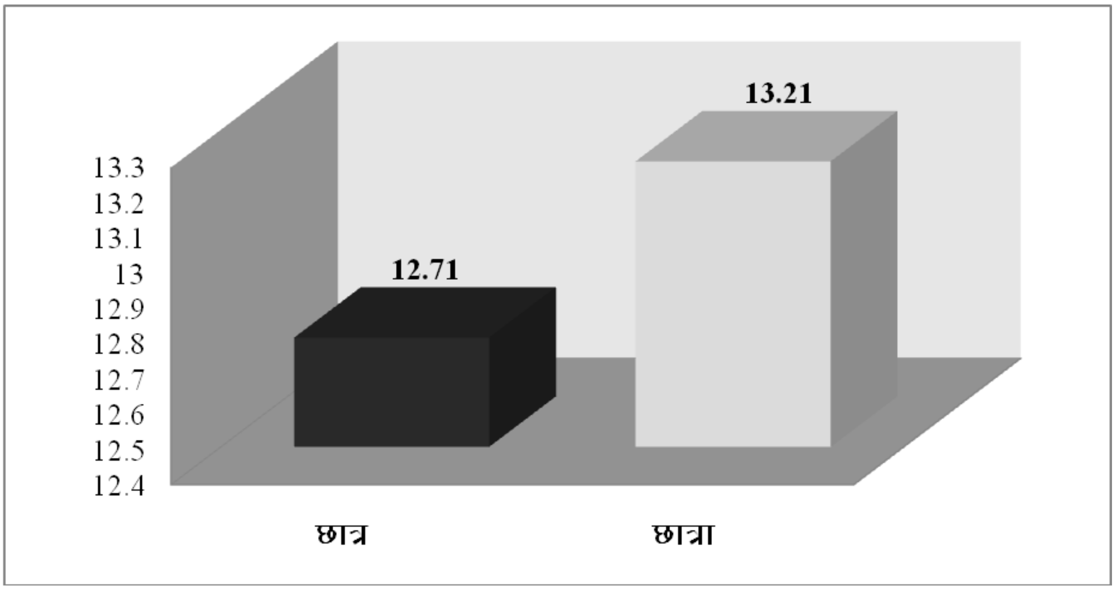

दण्डारेख 06 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता (चतुर्थ आयाम) से सम्बन्धित मध्यमान

(ङ) पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति छात्र व छात्राओं की जागरूकता'' का अध्ययन

तालिक 07: *पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर के लिए सांख्यिकीय मान (M, S.D, CR-value)*

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	Øान्तिक अनुपात	मुäांश	सार्थकता स्तर
पर्यावरण जागरूकता (पंचम आयाम)	छात्र	100	5.16	0.97	2.74	198	0.01 पर सार्थक
	छात्रायें	100	5.51	0.83			

उपरोक्त तालिका 07 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं की प्रतिक्रिया के आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त मध्यमान क्रमश: 5.16 व 5.51 पाया गया एवं मानक विचलन क्रमश: 0.97 व 0.83 पाया गया। पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्राओं का समूह, छात्रों के समूह की तुलना में अधिक जागरूक पाया गया। पुन: शोधार्थी द्वारा पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात का मान 2.74 पाया गया एवं क्रांन्तिक अनुपात का प्राप्त मान 0.01 सार्थकता स्तर व 198 मुक्तांश पर सार्थक है जो यह दर्शाता है कि पर्यावरण जागरूकता के पंचम आयाम ''वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि का संरक्षण के प्रति जागरूकता'' के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के समूह के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। तालिका 07 में अंकित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को दण्डारेख 07 की सहायता से निम्नवत् प्रदर्शित किया गया है।

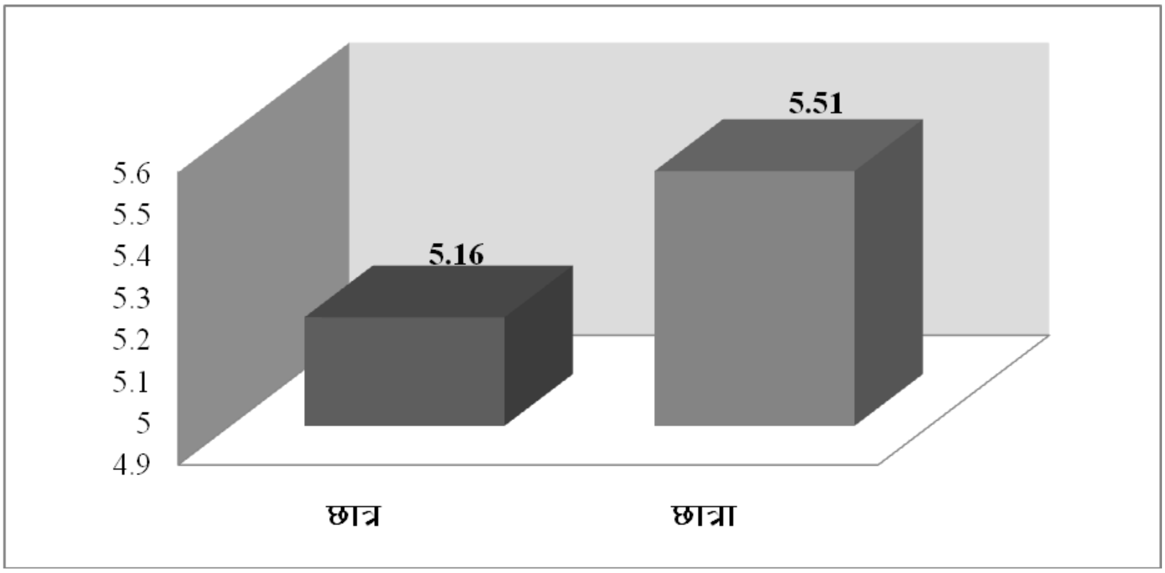

दण्डारेख 07 जीव विज्ञान विषय के छात्र व छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता (पंचम आयाम) से सम्बन्धित मध्यमान

3. स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

तालिक 07: *जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक*

अध्ययन चर	सहसम्बन्ध गुणांक का मान	मुक्तांश	सार्थकता स्तर
जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति	0.148	198	**0.05** पर सार्थक
पर्यावरण जागरूकता			

उपरोक्त तालिका 07 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.148 पाया गया है जो कि 198 मुक्तांश व 0.05 विश्वसनीय स्तर पर सार्थक मान है। अत: कहा जा सकता है कि जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य धनात्मक व सार्थक सहसम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् जिन विद्यार्थियों में जीव विज्ञान विषय के प्रति उच्च व सकारात्मक अभिवृत्ति पायी जाती है उनकी पर्यावरण जागरूकता उच्च होती है।

1.8 परिकल्पनाओं का परीक्षण

परिकल्पना 01: ''स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।'' को 0.05 स्तर पर अस्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना 02: ''स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।'' को 0.01 स्तर पर अस्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना 03: ''स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं की जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।'' को 0.05 स्तर पर अस्वीकृत किया जाता है।

1.9 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में पाया गया है कि स्नातक स्तर पर जीव विज्ञान विषय में छात्र-छात्राओं ने जीव विज्ञान विषय के प्रति मध्यम स्तरीय अभिवृत्ति पायी गयी। जबकि जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के संदर्भ में छात्रायें, छात्रों की तुलना में अधिक सकारात्मक पायी गयी एवं दोनों समूहों के मध्य जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति के संदर्भ में सार्थक अन्तर पाया गया है। पर्यावरण जागरूकता के संदर्भ में छात्राओं का मध्यमान छात्रों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया है एवं प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर को दर्शाता है। पर्यावरण जागरूकता के प्रथम आयाम (प्रदूषण के कारणों के प्रति जागरूकता), द्वितीय आयाम (वायु, वन, मृदा, आदि संरक्षण के प्रति जागरूकता) एवं तृतीय आयाम (ऊर्जा संरक्षण के प्रति जागरूकता) के संदर्भ में छात्राओं का मध्यमान छात्रों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया है परन्तु प्राप्त क्रान्तिक अनुपात के मान छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर को नहीं दर्शाते है। इसी प्रकार पर्यावरण जागरूकता के चतुर्थ आयाम (मानव स्वास्थ्य का संरक्षण के प्रति जागरूकता) एवं पंचम आयाम (वन्य जीव-जन्तु एवं कृषि संरक्षक के प्रति जागरूकता) के संदर्भ में छात्राओं का मध्यमान छात्रों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया है एवं प्राप्त क्रान्तिक अनुपात के मान छात्र-छात्राओं के मध्य सार्थक अन्तर को दर्शाते है। जीव विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति एवं पर्यावरण जागरूकता के मध्य धनात्मक व सार्थक सहसम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् जिन विद्यार्थियों में जीव विज्ञान विषय के प्रति उच्च व सकारात्मक अभिवृत्ति पायी जाती है उनकी पर्यावरण जागरूकता उच्च होती है।

सन्दर्भ सूची

हुसैनी, इल्यासू (2015): एटीट्यूड ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेंस टूवर्ड्स बायोलॉजी एज ए स्कूल सब्जेक्ट इन नाईजीरिया। इंटरनेशन जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड रिव्यू, वॉल्यूम-2 (10), पेज नं. 596-600

शेखर, मनी (2013): साइंस एटीट्यूड ऑफ हायर सेकेण्डरी बायोलॉजी स्टूडेंस। जर्नल ऑफ अप्लाइड रिसर्च वॉल्यूम-3 (9), पेज नं. 178-179

फॉरीयो, डोरकॉस (2019): स्टडी एटीट्यूड एण्ड एकेडमिक अचीवमेंट इन बायोलॉजी एट सेकेण्डरी स्कूल। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ साइंटिफिक एण्ड रिसर्च पब्लिकेशन, वॉल्यूम-9 (8), पेज नं. 333-340

websites

http://lasusterg.okebsf.org/papers-for-review/group-5/socio-culturalfactors-affecting-the-interest-and-achievement-of-nigerian-pupils-inscience/

https://www.ied.edu.hk/apfslt/v9_issue1/aktamis/

http://repository.up.ac.za/bitstream/handle/2263/24239/dissertation.pdf?seque nce=1

http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/

http://web.stclair.k12.il.us/splashd/Experimt.htm.

http://www.eduresearch.dauniv.ac.in

बिहार में नक्सलवाद "एक चुनौती एवं समाधान"

डॉ० अंशु कुमार मल्लिक

असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, एस०एम०डी० डिग्री कॉलेज मठिया नेचुआ जलालपुर, गोपालगंज

सैद्धांतिक रूप सेनक्सलवाद एक राजनीतिक विचारधाारा है जो मार्क्सवाद लेनिनवाद और माओ-त्से-तुंग विचारधाारा से संचालित तथा अनुशासित है। माना जाता है कि नक्सली सच्चे, ईमानदार, साहसी और आत्मबलिदानी होते हैं। व्यापक भ्रष्टाचार के प्रति प्रतिरोध नि:स्वार्थता अत्यंत ही दलित-महादलित पीड़ित तबके के साथ भी पूरी तरह घुल मिल जाने की क्षमता उनकी बेजोड़ होती है। परन्तु व्यवहारिक दृष्टिकोण से नक्सली राजनीतिक व्यवहार में पूर्णत: इन्हीं मापदंडों पर आधाारित रही है,यह कहना वास्तविकता से मुँह मोड़ना होगा। वर्तमान समय में नक्सली राजनीतिक भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था की मुख्यधारा अलग होती जा रही है। यद्यपि पिछले 51 वर्षो से नक्सली आंदोलन का लगातार विस्तार हुआ है और इसने दबे-कुचले तबके को चेतनशील भी बनाया है। तथापि सिद्धांत एवं अध्ययन के प्रति समर्पित और अनुशासन की ऊँची भावना से ओत-प्रोत नेतृत्वकारी कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण यह आंदोलन पर्याप्त भीड़ जुटाने की क्षमता रखने के वाबजुद दिगभ्रमित हो गया है जिससे पूरे बिहार में इसके संघर्ष घिसाव और हताश की स्थिति में पहुँच गए है। आज स्थिति यह है कि महज तीन वर्षो के अंदर ही उसके आठ विधायक में से पाँच विधायक ने तो पार्टी को धत्ता बताकर अलग हो गए।

समाज के विभिन्न तबकों के बीच और एक बहुत बड़ी आबादी तक फैलाव के बावजूद इसे सिर्फ मात्रात्मक उपलब्धियाँ हासिल हो सकी है, गुणात्मक नहीं जिसके कारण ये बौद्धिक समाज तथा मानव कल्याण ही विरक्त होगये है। इस लिए जब चुनाव का समय आता हैं तब "बुथलुट'' का बहाना इन्हें बनाना पड़ता है जबकि सच्चाई यह है कि बूथ सभी कब्जा करते हैं। अगर हार-जीत सिर्फ इसी कारण हो तो सत्ता परिवर्त्तन कदापि संभव नहीं हैं। इसके साथ दरअसल होता यह हैं कि बहुत से स्वार्थी तत्व (भूमिपति, सामन्त, पूँजीपति, लम्पट) ऐन चुनाव के वक्त अपना पासा बदल लेते हैं क्योंकि उनका स्वार्थ इस आंदोलन को नुकसान पहुँचाने में ही निहित हैं। गौरतलब तो यह हैं कि नक्सलियो ने खुद अपने कार्यक्रमों में मध्यम या उच्च मध्यम वर्ग के सदस्यों के अलावा राष्ट्रीय पूँजीपतियों को भी गोलबंद करने की नीति बनायी है। उनका मानना हैं कि मुक्ति आंदोलन में ये शक्तियाँ भी सहायक हो सकती हैं। आज वर्त्तमान परिवेश में समाज के सकारात्मक विकास में नक्सली राजनीति नकारात्मक सिद्ध हो रही है। काश ये शक्तियाँदलित वर्ग के उत्थान में मुख्य धारा के अंर्तगत सकरात्मक भुमिका निभाती तो आज इस समाज की दशा और दिशा बेहतर होती। यह विडम्बना ही कही जा सकती हैं कि तब उनके संघर्ष का निशाना कौन होगा। रही बात कमजोर वर्ग के लोगों की तो वे चुनाव को बहुत ज्यादा महत्व नहीं दे पाते है। ऐसा संभव भी नहीं दिख पड़ता हैं क्योंकि शिक्षा की अनदेखी करके उनके बच्चे-बच्चियों के हाथों में झंडे एवं परंपरागत हथियार पकड़ाकर तथा बड़े नेताओ लाडलों के हाथो में पब्लिक स्कूलों की किताबे थमाकर कितने दिनों तक उन्हें बरगलाया जा रहा है "लाडों पढ़ने के लिए, पढ़ो लड़ने के लिए'' के सूत्र वाक्य को कम से कम उन्हें तो अवश्य ही कबूल करना चाहिए था। पर तथाकथित बड़े नेताओ को यह नक्सली राजनीति की सबसे बड़ी भूल शिक्षा और कौशल विकास की अवहेलना करना है। हाथों में पुस्तक के बजाय झंडे पकड़ाकर अपनी निम्न एवं स्वार्थपूर्ण सोच का परिचय देते गँवारा नहीं क्योंकि इसमें उनके अस्तित्व का संकट दिख रहा होता हैं। यह भी घोर आश्चर्यजनक बात है कि नक्सली संगठनों का नेतृत्व प्राय: ब्राह्मणों ने ही संभाल रखी हैं। ये इतने वर्षो से एक भी पिछड़ा, आदिवासी, दलित या महादलित अपने संगठनो को तैयार नहीं कर पाये हैं?

नक्सलवाद की कमजोरी

जनसमुदाय को इस संगठन की जनता और हमारी जनता के रूप में बाँटकर देखना नक्सलियों का एक संकीर्ण विचार है। हमेशा दूसरे संगठनों की कमियाँ देखना एक गलत दृष्टिकोण है। अपनी कमियाँ भी देखी जानी चाहिए तथा तदनुरूप संघर्ष नीति में बदलाव लाया जाना चाहिए। मजदूर नेता शंकर गुहा नियोगी को तो उग्र नक्सलियों ने "सुधारवादी" ग्रास रूटर्स सिद्धांत के प्रवक्ता तथा "गैर पार्टी क्रांतिवाद का भारतीय प्रतीक कहा पर आज जबकि नियोगी मजदूर आंदोलनो के बीच सशरीर नहीं रहे नक्सलवाद की सभी शाखाएँ उन्हे मजदूर आंदोलन का नक्सलवादी प्रतीक मानने में कोई संकोच नहीं बरत रही हैं जब नक्सली स्वंय ही उनके गुट-उपगुट में बँटे हैं और लिबरेशन तथा "पार्टी युनिटी" ने पटना, भोजपुर, गया, जहानावाद, कैमूर, औरंगाबाद आरा, छपरा, जमूई आदि जिलो में कई बार आपसी विवाद में हथियार उठाये है, एक दूसरे का अपहरण किया है तथा अनगिनत हत्याएँ की हैं आज इन्हीं कुकृत्यों के चलते नक्सलवादी राजनीति आंतकवाद का पर्याय बन गयी है और अपने मुख्य उद्देश्य से भटककर गरीब समाज में भी भय का पर्याय बना गयी है। तब किसे सच्चा नक्सली माना जाए यह चिंतनीय विषय है। क्या स्वार्थ एवं नेतृत्व की भूख नक्सलियों की एकता में बाधक नहीं हैं? नक्सली आंदोलन का यह नकरात्मक पक्ष रहा है कि इसका विकास एक बड़ी धारा के रूप में नहीं हो पाया है। इस अभाव के कारण ही देश के कई हिस्सों में कई तरह की विकृतियाँ लिए बुनियादी परिवर्त्तनों की आकांक्षा रखनेवाले आंदोलन का जन्म हुआ है। यह खुद के नेताओं की संकीर्णताओं का कुठाराघात सहने को मजबूर हो गया हैं। बहरहाल नक्सलियों के विभिन्न गुटो में एकता स्थापित करने के लिए ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता हैं जो धैर्यवान हो,दूसरों के बताये सूझाव को सुनने के लिए तैयार हो, अनुभवों के नतीजे निकालने में सक्षम हो तथा आत्म आलोचना कर सके। इंडियन पीपुल्स फ्रंट, बिहार के अधयक्ष रवीन्द्र सिंह मानते हैं कि मुट्ठी भर पार्टी और क्रांति के ठेकेदारों का जय-जयकार न करने के कारण वे विभिन्न तरह की धामकियाँ देते हैं। (संपत्ति जब्त करने तथा जनरल डायर की तरह समाप्त करने) कुछ लोगों की तो उन्होनें हत्या तक भी कर दी हैं और इन्हीं तथ्यों के चलते नक्सलवादी राजनीति केन्द्र एवं राज्य सरकार के द्वारा प्रदान विभिन्न तरह के विकासात्मक संसाधनों का प्रयोग नहीं होने देते सड़क, पुल पुलिया, बिजली नल नाली और कंपनियों की स्थापना में ये लोग विधवांसक विरोध प्रकट करते हैं। जिनके चलते नक्सलवादी क्षेत्र विकास से वंचित हो गया और एक अपमान जनक जीवन जीने को विवश हो गया। वे किसी प्रकार के विरोधा को न सहन कर पाते हैं और न ही अपने अंदर पार्टी की केद्रीय समिति, पालित ब्यूरो, के सदस्य से लेकर सक्रिय कार्यकर्ताओ की एक बहु-संख्या पार्टी छोड़ने को विवश हुई है?

समीक्षा

नक्सलवाद का भटकाव

सितम्बर 1992 में भोजपुर जिलान्तर्गत सहार प्रखंड के नवादा गाँव में पिछड़ी जाति के एक ही परिवार के तीन सदस्यों की जिस बेहयायी(कायरता तथा बरबरतापूर्ण ढंग से हत्या की गई, उससे पंजाब एवं कश्मीर के आतंकवादी भी मात खा गए। धार्तता की हद तो तब हुई जब ''लिबरेशन'' ने अपनी गलती स्वीकारते हुए एक पर्चा बाँटा पर्चा पढने पर लगा कि क्रांतिकारी शब्दावली और लफ्फाजी का इस्तेमाल करके वे आम जनता को निम्न स्तर के दिमागवाला मानते है और भारतीय राजनीतिक दलों की तमाम बुराईयों से भी वे ओत-प्रोत हैं। प्रभावित निम्न मधयमवर्गीय परिवार के मिठी के घर मे लगे गोलियों के निशान, खुन के धाब्बे, घर के अन्य सदस्यों की देह परबरसी सैकड़ों लाठियाँ तथा एक दस वर्ष्रो के बच्ची के पीठ में लगे बीसों छर्रे के जख्म किसी भी सभ्य व्यक्ति को आहत कर देगी। प्रश्न यह उठता है कि जब घर के सभी पुरूष्रों को राजनीतिक वार्त्ता के बहाने दालान पर बुला-चौपाल लगा दिया गया, घरवालों ने उनके सामने चाय के कप रख दिये तब घर में अबोधा विधावाओं बच्चों पर गोलियाँ क्यों बरसायी जा रही थी ? शायद इसलिए ताकि अनाथ विधावाओं के घर में उन्हें स्थायी चारागाह मिल जाये और आतंक का माहौल कायम करके "सत्ता का जन्म ही बंदुक की नोंक से होता है" की नीति को चरितार्थ किया जा सके। मेरे जानने में ''राष्ट्रीय विकल्प'' प्रस्तुत करने वाली पार्टी के कमांडर की आजतक एक भी घोषित और रक्षा कवच से पिरे शत्रु के विरूद्ध बगैर प्रतिरोध के राइफलें नहीं गरजी होगी जब कि नवादा गांव में साधारण सा परिवार पर उनका सफाया अभियान पूर्णत: सफल रहा। इसके बावजूद पार्टी नेतृत्व को यह बतलाना चाहिए कि विगत 15 वर्षो में बिहार राज्य में उनकी पार्टी ने अभी तक कितनी गंभीर गलतियाँ की है और वैसेसमय सामाज की स्थापना शिक्षा कौशल, अहिंसा सत्य और ईमानदारी पर आधारित होता है न कि बारूद, बंदुक, बेईमानी और हिंसा पर, जबकि नक्सलवादी राजनीति बन्दुक, बेईमानी और हिंसा को वर्ग चरित्र बना लिया है। नक्सली नेता से पुछा गया कि आपने वर्मा जी पर

आपने व्यक्तिगत रंजिश के कारण गोली तो नही चलाई थी तो उन्होनें अपने मृदु स्वभाव से कहा था'' नहीं, अगर ऐसी बात होती तो क्या अपने बहनोई की हत्या का बदला नहीं ले लेता। एक बार बम से घायल अवस्था में उनसे बातचीत हुई। बड़े दुखी मन से उन्होनें कहा था "जब कभी भी जेल से रिहा होऊँगा तो बम से प्रहार करने वाले युवक से जानने का प्रयत्न करूँगा कि क्या गलती/खता थी मेरी।" मैनें वर्मा जी से चुनाव लड़नें की आग्रह की? उनके द्वारा मिला जवाब कि नहीं "प्रश्न यह कि क्या उनके जैसे कार्यकर्त्ता के भरोसे क्या लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। (क्यों नहीं वैसे लोगों की संख्या अति न्युन हो) या स्वार्थी एवं लम्पट भीड़ के द्वारा समर्थकों की संख्या और गुण-दोश की परख किये बिना अंधा-धुंध संख्या बढ़ाने के चक्कर में सर्वत्र अराजकता का माहौल कायम है। केवल क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आज फासीवाद को अपने बलबुते परास्त करने की स्थिति में नहीं है। ऐसी परिस्थिति में विरोधी दलों के मोर्चे के बजाय सिर्फ आई0पी0एफ0 को राष्ट्रीय विकल्प के बतौर वकालत करने की नक्सली नीति "इंका'' और भाजपा'' की राजनीतिक आवश्यकता की पूर्ति करती रही है।

उपसंहार

संपूर्ण तथ्यों का कुशल विश्लेषण यह प्रमाणित करता कि आज के नक्सलवाद के परिपेक्ष्य में अभी का पूरा नक्सली आंदोलन घृणा पर आधारित नकारात्मक आंदोलन है। जिसका वैज्ञानिक समाजवाद से कोई लेना-देना नहीं है। इनका भी कुलीन नेतृत्व है जो वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध आंदोलन नहीं चला सकते है। साम्यवाद को लाने में पूंजीवाद एवं सामंतवाद इतनी बड़ी रूकावट नहीं है, जितनी बड़ी रूकावट सिंद्धात विहिन साम्यवादी और नक्सलवादी बने हुये हैं।

इसी प्रकार तमाम तरह की विकृतियाँ इनके जनसंघर्षो में पायी जाती है। इन लोगों ने लघु किसानों की भी हत्याएं की है। जबकि सैकड़ों एकड़ भुमि रखने वाले रातों रात एक प्रगतिशील किसान बन गए हैं। विकृतियों तथा विसंगतियों भरा संगठन अब ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकता अगर इसे चलाने की ही परम्परा है तो तमाम साजिश पूर्ण कमियों को दुर करना होगा, अन्यथा इसकी धाार को कुंद होने से नहीं रोका जा सकता।

समाधान पहल

ऑपरेशन 'समाधान' भारत में नक्सली समस्या को हल करने के लिए गृह मंत्रलय द्वारा शुरू की गई एक पहल हैं। समाधान से तात्पर्य हैं ।

1. कुशल नेतृत्व (smart leadership)
2. आक्रामक रणनीति (Aggressive strategy)
3. अभिप्रेरणा एंव प्रषिक्षण (Motivation and training)
4. अभियोज्य गुप्तचर व्यवस्था (Actionavle intelligence)
5. कार्ययोजना आधारित प्रदर्शन सूचनांक एंव परिणामोन्मुखी क्षेत्र (Dashbord vased key permomance indicaters and key result area)
6. कारगर प्रौद्योगिकी (Harnessing technology)
7. प्रत्येक रणनीति की कार्ययोजना (Action plan for each threat)
8. नक्सलियों के वित पोषण को किल करने की रणनीति (No access to financing)

नक्सल समस्या के समाधान में आनेवाली चुनौतियाँ

1. दरअसल नक्सलवाद सामाजिक-आर्थिक कारणों से उपजा था। आदिवासी गरीबी और बेरोजगारी के कारण एक नीचले स्तर की जीवनशैली जीने को मजबूर है। स्वास्थ्य-सुविधा के आभाव में गंभीर बीमारियों से जूझते इन क्षेत्रों में असमाजिक मौत कोई आश्चर्य की बात नहीं होती।
2. आदिवासियों का विकास करने के बजाय, उन्हें शिक्षा, चिकित्सा सेवा और रोजगार देने के बजाय उन्हें परेशान करने के लिए नयें-नयें कानून बनाए जाते हैं।

3. आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, खेती की दुर्दशा अभी भी जस की तस बनी हुई है। यकिनन इस तरह की समस्याओं में हमेशा असंतोष के बीच होते है।, जिनमें विद्रोह करने की क्षमता होती है।
4. इन्हीं असंतोषों की वजह से ही नक्सलवादी सोच की बढ़ावा मिल रहा है। इसमें बड़ी विडम्बना ये है कि सरकार शायद इस समस्या के सभी संभावित पहलुओं पर विचार नहीं कर रही है।
5. इसके साथ ही बुनियादी ढ़ाँचे का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव संसाधानों और संचार सुविधााओं की कमी है।
6. नक्सलियों द्वारा अंतर्राज्जीय सीमा का लाभ उठाया जाना तथा केन्द्र और राज्यों तथा अन्य राज्यों के बीच आपसी समन्वय का अभाव तथा अन्य राज्यों के बीच आपसी समन्वय का अभाव।

आगे की सोच

1. एक तरह जहां इस समस्या की कारण आर्थिक और सामाजिक असमानता समझी जाती रही है। वहीं दुसरी ओर इसे अब एक राजनीतिक समस्या भी समझा जाने लगा है। यही कारण है कि जानकारों की नजर में नक्सलवाद सियासी दलों का एक चुनावी मुद्दा है जिसको मौका पाते ही रोटी सेकने के प्रयास होने लगता है।
2. पाँचवी अनुसुची के तहत अनुसूचित क्षेत्रों में (Tribes Advisory Council) की स्थापना की बात की गई। दरअसल इन क्षेत्रों में Advisory Council एक तरह की पंचायत है जो आदिवासियों को अपने क्षेत्रों में प्रशासन करने का अधिकार देती है। इस कौसिंल में अधिकतम 20 सदस्य होते है। जिनके तीन चौथाई सदस्य वे होते है जो संबधित राज्य की विद्यान सभा में अनुसुचित क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते है।
3. ऐसा इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि कि हमारी सरकारे लगातार संविधान की पाँचवी अनुसूची को तरजीह देने से कतराती रही है। गौरतलब है कि इस अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण से जुडे मामले आते है।
4. यह सार्वभौमिक सत्य है कि हिंसा से प्राप्त की हुई व्यवस्था ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाती और अंतत: टूट जाती है। दूसरी ओर सरकार को भी कानून व्यवस्था की समस्या से ऊपर उठकर इनकी मुलभुत समस्याओं को दूर करने का प्रयास करने चाहिए।

संदर्भ सूची

1. सच्चिदानन्द पाण्डेय:- नक्सल वायलेंस:- ए सोसियों पॉलिटिकल स्टड़ी, दिल्ली चाणक्य प्रकाशन, 1985
2. आज, पटना, 26 अक्टुबर,1992, पृ0 12
3. विश्वामित्र - मार्क्सवाद बनाम मिथ्यावाद, भारत कम्युनिस्ट पार्टी (मा0ले0),पृ0-10-11
4. महाराज सिंह भारती- समाजवाद, दर्शन और आचरण, उत्तर प्रदेश अर्जक संघ, पृ0 67-68
5. वाल्टर होजर - सहजानन्द से चारू और अब, वाराणसी: सहजानन्द अध्ययन शोध प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ - 254
6. हिन्दुस्तान, पटना, 19 जुन 1993, पृ0 2
7. द विजन

महामारी के दौर में आत्मालोचन करती कविताएँ

शीतांशु

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, दीफू परिसर, दीफू, असम

कोरोना का दौर हिन्दुस्तान में अभी तीन-चार महीने का है जबकि एक अच्छी कविता लिखने में कई बार काफी लंबा वक्त लग जाता है। मुक्तिबोध की कुछ कविताएँ तो कई वर्षों में लिखी गईं। कवियों को किसी स्थिति को आत्मसात करने में समय लग सकता है। इसलिए इस दौर की कविताओं पर कोई टिप्पणी लिखते या पढ़ते वक्त इस सीमा का ध्यान रखना चाहिए कि अभी भी कई संवेदनशील कवियों ने इन स्थितियों पर अपनी कविताएँ पूरी नहीं की हैं। इनमें से कुछ भविष्य में प्रकाशित होंगी। कई वरिष्ठ कवि प्रक्रिया में हैं लेकिन अपनी कविताओं को अन्तिम रूप नहीं दे पाए हैं। इसलिए सीमित मात्रा में जो साहित्य उपलब्ध है उसी पर बातचीत हो सकती है। इसके साथ ही, प्रकाशन-मुद्रण का काम धीमे पड़ जाने के कारण ये कविताएँ प्रामाणिक ढंग से प्रकाशित होकर अभी सामने नहीं आई हैं। सोशल मीडिया के माध्यमों पर उपलब्ध कविताओं पर ही बात हो सकती है, जिनका रूप कवि प्रकाशन के समय तक परिवर्तित कर सकता है। उसमें कई बदलाव हो सकते हैं और नई अर्थ छवियाँ संप्रेषित हो सकती हैं। इसलिए संभावना बनती है बस कुछ रुझानों पर चर्चा की। कहना न होगा कि समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, विभिन्न सीमाओं से बँधी सीमित दौर की इन कविताओं पर की गई इस टिप्पणी से न संप्रेषित हो सकती है न निर्धारित।

इस महामारी ने जो स्थितियाँ पैदा की हैं उसने नव-उदारवादी आक्रामकता के साथ जन-समुदाय को घोर पीड़ा और कष्ट में धकेल दिया है। लेकिन जब भी ऐसी स्थितियाँ आती हैं, युग के साहित्य के स्वरूप में कुछ सार्थक बदलाव रेखांकित होता है। समाज को व्याप्त रही असंवेदनशीलता का उद्घाटन तो इस दौर की कविताएँ करती हैं लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह है कि तमाम लोगों के भीतर संवेदनशीलता का विस्तार भी हुआ है। इस विपत्ति ने निस्संदेह समकालीन कविता की परिभूमि को विस्तृत करने का कार्य किया है। ऐसे बहुत सारे लोगों ने कविताएँ लिखीं इस बीच जिनका कविता से कोई सीध संबंध नहीं था। विद्यार्थियों, आलोचकों, पुलिस कर्मियों, नेताओं, अभिनेताओं, यहाँ तक कि ऐसे लोगों ने भी कविताएँ लिखीं जो निष्ठुरता और निरंकुशता के प्रतिमान बन चुके हैं। हालांकि, यह भी वास्तविकता है कि इनमें से ढेर सारे लोग वैचारिक स्तर पर इतने परिपक्व नहीं हैं कि वर्तमान यथार्थ के बहुआयामी चरित्र में प्रवेश कर पाएँ। कई तो नव-उदारवादी प्रचार-तंत्र के शिकार हैं। ऐसे में, जब इस दौर के परिदृश्य से धुँधलका हटेगा तो उसमें सिर्फ पूँजीवादी सूचना-तंत्र से फैलाया गया धूल नहीं होगा बल्कि प्रगतिविरोधी सामन्य लोगों द्वारा की गई अभिव्यक्तियों की भी हिस्सेदारी होगी। लेकिन अंत में जो कविताएँ निकल कर आएंगी उनमें निश्चय ही काफी कुछ सार्थक और सुखद होगा।

पिछले तीन महीने की प्रतिनिधि कविताएँ घनीभूत पीड़ा, वेदना के दृश्यों, अपराधबोध, कुछ न कर पाने के दुख से अटी पड़ी हैं। वैश्वीकरण और सोशल मीडिया के माध्यमों ने जिस तरह लोगों में तुरंत स्थापित हो जाने की होड़ को जन्म दिया है, जिस तरह कविता के परिदृश्य में मूल्यविहीन गतिविधियों की आवाजाही बढ़ी है, उससे हटकर कई संवेदनशील युवाओं का ध्यान सीधे अपेक्षित की ओर गया है। इस भावना की ओर कि एक कवि होने से पहले मनुष्य होना महत्वपूर्ण है और कविता लिखना जितना महत्वपूर्ण कर्म है, मनुष्यता का विकास उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी। इसीलिए ऐसी अनेक कविताएँ पिछले तीन महीने में ऐसी दीख जाती हैं जिनमें कवियों को इन परिस्थितियों में लोगों के लिए कुछ न कर पाने की पीड़ा सता रही है। बोधिसत्व लिखते हैं कि 'यही एक बात परेशान कर रही है मुझे इन दिनों/आदमी के दुख का अनुमान भी नहीं मिल पाता/कल भी शायद न पता चले की कौन लोग

थे जो व्यथा से भर कर/रोते रहे आज रात भर/...पूर्णिमा हो या अमावस/सबका रंग क्षीण हो गया है/ प्रकाश होने ने होने से/ बहुत अंतर नहीं पड़ता मन पर।' (अभी इसी समय) यह कविता आत्म की विवशता और कुछ न कर पाने के अपराधबोध से शुरू होती है, फिर एक गहरे आत्मालोचन के गह्वर में उतरती है और अंत में पूरे युग पर व्याप्त गई असंवेदनशीलता और चेतनशून्यता की प्रेतछाया की ओर चलने लगती है। दिन पर दिन हमारे मूल्यों का क्षरण हो रहा है, उसकी हत्या हो रही है, सारे प्रतिमान ध्वस्त हो रहे हैं, लेकिन संवेदनाएँ जैसे किसी ने कहीं कैद कर ली हैं। मदन कश्यप लिखते हैं कि 'नई सदी में ताकतवर और हृष्ट-पुष्ट ईश्वर/ अचानक कितना निरीह दिखने लगा है इस समय में/ मैं मरने से पहले/ ईश्वर को मरता हुआ देखना चाहता हूँ।' न जीवन की सुन्दरता बच रही है, न मूल्य, न उल्लास। वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी एक ठहराव के साथ कहते हैं कि 'उम्मीद किसी कचरे के छूट गए हिस्से की तरह/ किसी कोने में दुबकी पड़ी है।' बच रही हैं तो ऐसी चीजें जो मनुष्यता का सिर शर्मसार करने वाली हैं। अतीत में करती आई हैं। कुछ न बचा पाने की पीड़ा कवियों के भीतर घर करती जा रही है। यह इतने अंदर तक पैठती जा रही है कि कविताओं के स्वर में कुछ न कर पाने के आक्रोश से उपजी बेचौनी और झुंझलाहट बार-बार दिखाई देती है। लेकिन ऐसी कविताएँ भी लिखी जा रही हैं जो यह कह रही हों जैसे, कि हम तब तक मनुष्य के सुन्दरतम को बचाने की कोशिश करेंगे, अपनी आवाज तब तक ऊँची रखेंगे, जब तक हमारी भी हत्या नहीं हो जाती। अमित एस. परिहार लिखते हैं, 'अभी भी बचा है बहुत कुछ/ बचा है आठ माह से गर्भवती स्त्री का गर्भ/ हजारों हजार किमी की यात्रा में पैदल चल रहे लोगों के तलुओं में/ बचे हैं समय के घाव/ पती पत्नी और बच्चे में बच गया है बच्चा/ ट्रेन की पटरियों में बची है रोड/ रोड में बचा है पिघलता तारकोल/ तारकोल में बचे हैं जले हुए पाँव/ जले हुए पाँवों में बचा है घर पहुँचने का जुनून/ देश की सेनाएँ बची हैं/ सरहद बची है सरहद में बचे हैं दुश्मन/ दुश्मन बचे हैं तो बचे हैं महाराज/ आप भी। (महाराज अब आप कुछ भी न कहें)

कोरोना दौर के कवि लॉकडॉउन और उसके बाद हुई समस्याओं का शिकार हुए लोगों के बीच मौजूद नहीं हो सकते थे लेकिन सोशल मीडिया और टेलीविजन के पटल से जो भी हृदय विदारक सूचना या दृश्य उन तक पहुँचा उसे शब्दों में बाँध लेने की सशक्त कोशिश उन्होंने की। रेलवे स्टेशन पर एक मर चुकी माँ को जगाने की कोशिश कर रहे बच्चे का दृश्य हो या रेल की पटरियों से कट कर मर गए लोगों का दृश्य या एक गर्भवती हथिनी के मारे जाने का दृश्य- कवि इन दृश्यों से उद्वेलित हैं। पंकज चतुर्वेदी की कविता है, 'कोरोना काल में/ रेलवे प्लेटफॉर्म पर/ सबको भयभीत करता हुआ/ एक माँ का शव पड़ा था/ उसका बच्चा/ माँ का आँचल खींचकर/ उसे जगा रहा है/ बच्चा मृत्यु को नहीं जानता/ सिर्फ अपनी माँ को जानता है।' (रेलवे प्लेटफॉर्म पर) शंकरानंद अपनी कविता 'रोटी की तस्वीर' में लिखते हैं कि 'यूँ तो रोटी किसी भी रूप में हो/ सुंदर लगती है/उसका दिखना उम्मीद की तरह चमक जाता है/ लेकिन यह कितना दर्दनाक है कि/ रोटी पटरी पर है और/ उसे खाने वाले टुकड़ों में बिखर गए हैं।' और संदीप प्रसाद चाँद के तमाम रूपों में एक नया आयाम देकर हमारी हिंसक होती जा रही संस्कृति का बिम्ब रचते हैं- 'रेल की पटरियों के बीच/ बिखरी है खून से सनी रक्तिम रोटी/ लाल चाँद सी।' (लाल चाँद) इस दौर की कविता घर, जंगल, गाँव, घर जाने वाली सड़क, रेल की पटरी, रास्ते की रोटी, सामान, नदी आदि ऐसे ही चित्रों से अटी पड़ी है जो कि शहर में काम की जगह और गाँव के घर के बीच में मौजूद हैं।

आधुनिकता के आवरण में हमने जो ढकोसला तैयार कर रखा है, इन तीन महीनों की कविता उनसे मुक्त होना चाहती है। ये गगनचुम्बी इमारतें, ब्रिज, हवाई जहाज, टेलीविजन आदि, जो सभ्यता की प्रतीक बनी हुई हैं, वे किस काम की हैं अगर हमारे मजदूरों की यह दुर्दशा है। मध्यवर्गीय चिन्ताओं, आशाओं-आकांक्षाओं में डूबती-उतराती साहित्यिक दुनिया की नजर उस वर्ग की ओर गई है जिनसे पूँजीवादी आधुनिकता ने इतना कुछ छीन लिया है कि साहित्य भी उनके लिए लक्जरी ही है। पूँजीवादी आधुनिकता के ऐसे छलावों को रेखांकित करती हुई अदनान कफील दरवेश की यह कविता देखिए- 'हमने कुएँ खोदे, नहरे निकालीं/ जिनका पानी हम पर ही हराम हुआ/ हमने सड़कें बनायीं जिसने दुनिया की हर आबादी को एक दूसरे से जोड़ दिया/ लेकिन सर्द अफसोस कि आज वबा के इस दौर में हमारा/ वफादार कोई साबित न हुआ/ हवाओं ने भी नश्तर बनकर हमारे टूटते सीनों को छलनी किया/ वे काली सड़कें भी जो अमूमन घरों तक जाती थीं/ हमें दर्दनाक मौत के हादसों तक ले गईं/ ये मेरा आखिरी बयान है/ इसे अदल-ओ-इंसाफ की अदालत में दर्ज किया जाए।' (एक मुर्दा मजदूर का बयान)

जहाँ युवा कवि उद्वेलित मन के साथ अपनी परिस्थितियों में डूब-उतरा रहे हैं वहीं कई वरिष्ठ कवियों के स्वर में गहरी चिन्ता से ओत-प्रोत सभ्यता समीक्षा दिखाई दे रही है। बीसवीं सदी की पीड़ाओं से अभी वे उबर नहीं पाए थे कि इक्कीसवीं सदी की दिशा उन्हें परेशान कर रही है। लोग घरों में कैद हैं और कवि दोहरे स्तर पर कैद है। उसकी चिन्ता है कि लॉकडाउन खत्म होते

होते न जाने हम क्या-क्या खो चुके होंगे। अशोक वाजपेयी, राजेश जोशी, अष्टभुजा शुक्ल, लाल्टू, गुलजार, देवीप्रसाद मिश्र आदि कई महत्वपूर्ण कवियों की संवेदना इस दौर में सभ्यता समीक्षा की ओर ज्यादा है। राजेश जोशी की ये पंक्तियाँ कि 'यह सभ्यताओं के सबसे बड़े संकट का समय है/ सारी सड़कों पर पसरा है सन्नाटा/ घरों के दरवाजे बंद हैं/ एक भयानक पागलपन पल रहा है दरवाजों के पीछे/ जो दीवार फोड़कर निकल आएगा।' हमारे समय पर बराबर लागू होती है।

उपेक्षित अस्मिताओं के लिहाज से भी इस दौर की कविता महत्वपूर्ण है। वैश्वीकरण के प्रभाव के संबंध में दलित विमर्शकारों में स्पष्टत: दो धड़े रहे हैं। दलित बुद्धिजीवियों में कई वैश्वीकरण के पक्ष में खड़े हैं और कुछ इसके विरोध में खड़े हैं। दोनों ही पक्षों में काफी वाद विवाद हो चुका है। व्यक्तिगत तौर पर मेरे लिए यह दुखद था कि प्रतिरोध के ऐसे साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों में भी इतने लोग साम्राज्यवादी वैश्वीकरण के पक्ष में जाकर खड़े हो गए हैं। लेकिन यह भी समझना होगा कि इसके पीछे कुछ कारण हैं। कारण यह है कि पारिवेशिकता से मुक्ति और अन्याय, अवमानना और असमानता से भरी दुनिया में अपने लिए अवसर तलाशने के लिए दलित समाज और साहित्यकार संघर्षरत रहे हैं और इसी वजह से एक बड़े तबके में वैश्वीकरण की ओर यह झुकाव आया। सुखद यह है कि दूसरी ओर एक धड़ा शिद्दत से वैश्वीकरण से उपजी खतरनाक परिस्थितियों के खिलाफ खड़ा भी रहा।

अब इन तीन महीनों में जो घटनाएँ घटी हैं उसने चिन्तन को सार्थक दिशा में बदला है। वैश्वीकरण की धूरी शहर हैं और इन शहरों में दलितों, मजदूरों, स्त्रियों और आदिवासियों की जो दुर्दशा हुई है उससे अब यह समझना कठिन नहीं है कि कौन सा पक्ष सही था। इन स्थितियों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शहर को सार्वभौमिकता और मुक्ति का प्रतीक समझकर हम गाँवों को वैसे ही नहीं छोड़ सकते जैसे कि वे हैं। अब जब शहर ने धेखा दिया है और लोग गाँव की ओर लौट रहे हैं तो उनके बारे में कौन सोचेगा। हिन्दुस्तान की सत्तर प्रतिशत आबादी गाँवों में बसती है, उनके बारे में कौन सोचेगा। कोरोना दौर की कविता यह स्पष्ट करती है गाँव और शहर दोनो ही जगह सामाजिक चेतना तैयार करनी होगी। शहर हो या गाँव, हर जगह को रहने योग्य बनाना होगा। इतने लोग जो अपने गाँवों की ओर लौटे, उनकी मुक्ति तभी संभव है जब सिर्फ शहर में हम मुक्ति न ढूँढें बल्कि गाँवों को भी जकड़नों से मुक्त करें, रहने योग्य बनाएँ। तो, यह सही है कि गाँव में असमानता और अवमानना है लेकिन स्पष्ट है कि शहर भी खतरनाक है, इसलिए गाँवों में इस अवमानना और ऐसी पारिवेशिकता के बावजूद कोरोना दौर की कविता सचेत है और शहर के छलावे को समानान्तर उद्घाटित कर रही है। जसिंता केरकेट्टा आदिवासी जीवन की ऐसी ही विडंबना की ओर ध्यान दिलाती हैं- पुलिस जंगल की भाषा नहीं समझती/ आदिवासी पुलिस की भाषा नहीं समझते/... कोई भी भाषा जंगल के आदमी को/ किसी भी अत्याचार से क्यों नहीं बचा पाती/ वे दिन रात यही सोचते हैं/ पर आज वे समझते हैं/ दरअसल शहर की भाषा जानना या नहीं जानना/ जंगल में बचे रहने की शर्त नहीं है/ जंगल में लोगों के मारे जाने के लिए/ जंगल में उनका होना भर काफी है (मारे जाने के लिए- जसिंता केरकेट्टा)

यह रुझान सबसे महत्वपूर्ण इस लिहाज से है कि समकालीन कवियों ने यह समझा है कि कोई भी लड़ाई सफल तब है जब उसमें सबकी मुक्ति हो। सिर्फ शहर में रहने वालों की मुक्ति होगी तो लड़ाई सार्थक कैसे होगी। सिर्फ दलितों, सिर्फ स्त्रियों, सिर्फ मजदूरों की मुक्ति नहीं चाहिए। न ही यह संभव है। हमें एक ऐसी व्यवस्था चाहिए जिसमें सबकी मुक्ति हो। साथ ही इस दौर ने यह भी समझाया कि मजदूरों की लड़ाई में भी विभिन्न अस्मिताओं को शिरकत करना होगा। अगर सारी अस्मिताएँ मात्र अपनी लड़ाई लड़ेंगी तो मजदूरों की लड़ाई कौन लड़ेगा। इस लिहाज से कोरोना काल की कविताएँ सार्थक भूमिका निभा रही हैं। अलग अलग अस्मिताओं से आने वाले रचनाकारों ने अपने से इतर अस्मिता या वर्ग के प्रश्नों को बहुत ही सार्थकता के साथ उठाया है। पुरुषों ने स्त्रियों के, गैर आदिवासियों ने आदिवासियों के, हिन्दुओं ने मुस्लिमों के, स्त्रियों ने पुरुष के रूप में, दलितों ने गैरदलितों के और गैरदलितों ने दलितों के, आदि आदि।

पिछले कुछ दशकों में हमने देखा है कि कविता की संप्रेषणीयता, पठनीयता, पाठकों के साथ इसके संबंध, राजनीतिक खेमेबाजी और उसका कविता की संवेदना और शिल्प पर प्रभाव, छंदों के प्रयोग, आदि को लेकर तरह-तरह के सवाल उठते रहे हैं। यह वास्तविकता है कि संवेदनारहित गद्यात्मक गद्य में ढेर सारी कविताएँ आई। काव्यात्मक गद्य नहीं गद्यात्मक गद्य। ढेर सारे संवेदनशून्य व्यक्तियों ने जिन्हें कवि कहा जाता है शब्दों में ट्रेनिंग पा ली है और उससे खेलना सीख लिया है। रीतिकाल में एक कवि ने इसी प्रवृत्ति से दुखी होकर लिखा था कि 'डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कबित्त कीबो खेलि करि जानो है।' बाजारवाद और सोशल मीडिया ने ऐसी स्थिति कर दी है कि कुछ 'कवियों' का ध्यान कविता से हटकर, भावनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति में समर्थ एक संवेदनशील मनुष्य बनने से हटकर राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, ब्रह्माण्डीय बनने की ओर ज्यादा है। यह भी अकारण नहीं हुआ

है। इसका एक प्रमुख कारण वैश्वीकरण के दौर में पल्लवित-पुष्पित हुआ प्रचार का महत्व, व्यक्तिवाद, दिखावा, उपभोक्तावाद और बाजारवाद है। इस स्थिति ने निस्संदेह कविता के शिल्प को भी बहुत प्रभावित किया है। दूसरा प्रमुख कारण है, अपने साहित्य, संस्कृति, परंपरा, भारतीयता के वास्तविक अर्थ, संवैधानिक मूल्यों को समझने से पहले सोशल मीडिया के प्रति आकर्षण। ढेरों कवि वहीं हैं, लोक के बीच होने की बात तो भूल ही जाइए। ऐसा नहीं है कि यह दूसरी विधओं के साथ नहीं हुआ। आलोचना के साथ भी हुआ है। लेकिन दिक्कत यह है कि इस स्थिति को उद्घाटित करने का दायित्व आलोचना पर ही है। आलोचना का दायित्व ऐसे उत्तर-सत्य के समय में काफी बढ़ गया है क्योंकि अच्छी और खराब रचना के बीच के फासले को पहचानने न देने के उपकरणों का विकास बहुत तीव्र ढंग से हुआ है और भ्रम की निर्मितियों का दायरा अब कहीं व्यापक हो चुका है।

मुझे यह उम्मीद है कि उक्त स्थितियाँ पूरे परिदृश्य के एक हिस्से पर लागू होती हैं और भविष्य में ये कविताएँ जो धूल की तरह ऊपर छाई हुई हैं, समय के साथ छँट जाएंगी। कोरोना दौर की कविताओं ने इस उम्मीद को और प्रबल बनाया है। इस दौर में मुक्त छंद हों, गजलें हों, गीत हों, सबमें कविताएँ लिखी गई। लाल्टू ने काव्यात्मक गद्य में सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। मृत्युंजय ने अलग-अलग छन्दों में आधुनिक चेतना पिरोई है। वशिष्ठ अनूप, कैलाश मनहर, महेश कटारे, ओम निश्चल आदि कई कवियों ने गजलों को समृद्ध किया है। कैलाश मनहर की यह गजल देखिए- शूल राहों के बहुत तेज-ओ-नुकीले दिक्खे/ आजकल साहब के तेवर जरा ढीले दिक्खे/ चाल षडयन्त्र की फिर सोच रहे हैं शायद/ इन दिनों उनके बयानात लचीले दिक्खे। महेश कटारे की यह पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं- 'जाकर मंदिक को चाटो तुम या मस्जिद को चूमो अब/ काम धम सब बंद हो चुके ईश्वर अल्लाह पूजो अब/ जीवन से भी धर्म बड़ा है यह जब तुमने मान लिया/ बेशक जीवन मर जाने दो धर्म बचाने घूमो अब।' वर्तमान स्थितियों ने विषय -वस्तु को ही नहीं अभिव्यक्ति के स्वरूप को भी गहरे प्रभावित किया है। ये कविताएँ अधिकांशत: संप्रेषणीय हैं, संवेदनाओं से ओत-प्रोत काव्यात्मकता ज्यादा गहन है, भाषा में सहजता आई है और व्यंग्य और लय में एक बदलाव आया है। व्यंग्ययुक्त पीड़ा ने एक खास लय पैदा की है। यह लय इस दौर की समकालीन कविता की पहचान रहेगी। लय में व्यंग्य और तीव्र हो जाता है और अनेक कवियों ने इस दृष्टि से कविता को समृद्ध किया है। पर समकालीन कवियों को सतर्क रहना होगा कि इन सबके नकारात्मक पक्ष भी हैं। सहजता पाने का अर्थ अभिधत्मकता न बन जाए और व्यंजना और ध्वन्यार्थ की ओर से ध्यान ही हट जाए। संप्रेषणीयता का यह मतलब नहीं कि संवेदनाओं को परिपक्व होने से पहले ही प्रकट कर दिया जाए। और अतिशय व्यंग्य कई बार घृणा से पैदा होता है, कविता उससे कमजोर होती है। कवि को उदात्त होना चाहिए। उसे ध्यान रखना चाहिए कि उसका प्राथमिक मूल्य उदात्तता है, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और उससे उपजा व्यंग्य नहीं। व्यंग्य सार्थक मूल्यों के विकास के लिए आना चाहिए, अगर वह मूल प्रवृत्ति हो गई तो कविता नष्ट हो जाएगी।

इस आलेख में कोरोना दौर की कविताओं की राजनीति और दूसरे कई अन्य पहलुओं पर चर्चा नहीं की गई है। इस आलेख की अगली कड़ी में उन पर चर्चा होगी। यहाँ इतना संप्रेषित करने का प्रयास किया गया है कि क्रूर होती जा रही परिस्थितियों और कविता की सिकुड़ती दुनिया के बीच कोरोना दौर की कविताओं ने उम्मीद जगाई है। इस दौर की कविताएँ प्रमाण हैं कि कविता से हम सिर्फ एकान्त का आनन्द नहीं ग्रहण करते बल्कि सत्ता के चरित्र, पूँजी की आक्रामकता, आम जनों की स्थिति की भी पहचान करते हैं। वर्तमान समय में व्याप्त असहायता, लोगों में व्याप्त भय, चुप्पी, खामोशी और इन सबके साथ कभी भी फूट पड़ने को तैयार आकांक्षा और आत्मविश्वास कोरोना दौर की कविताओं में प्रत्यक्ष है।

संदर्भ-

1. https://samalochan.blogspot.com/2020/04/blog-post_16.html?m=1
2. https://samalochan.blogspot.com/2020/06/blog-post_8.html?m=1

(**नोट:** इस आलेख में उद्धृत अधिकांश कविताएँ सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों, विशेषकर फेसबुक से ली गई हैं। पाठक मूल देखने के लिए अभी उन्हीं का उपयोग कर सकते हैं क्योंकि अधिकांशत: कविताएँ अभी अप्रकाशित हैं।)

कोविड-19 “लॉकडाउन-उत्तर लॉकडाउन”: एक मनोसामाजिक दृष्टिकोण

डॉ॰ ओ॰पी॰ चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन कन्या पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

डॉ॰ उषा चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग (प्र.व्य.), श्री अग्रसेन कन्या पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

सारांश

वैश्विक महामारी कोविड-19 सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। कोरोना वायरस मानव इतिहास की एक बहुत बड़ी घटना है। अकस्मात आई इस विपदा से निजात पाने की अनिश्चितता विश्व के समस्त देशों में है। व्यवसाय-व्यापार, नौकरी छूट जाने, निर्माण कार्य बन्द हो जाने से सामाजिक-आर्थिक स्थिति परिवर्तित हुई है। लोगों में लॉकडाउन के कारण अलगाव व विवशता बढ़ी है। हमारे सामाजिक व मानसिक दृष्टिकोण परिवर्तित हुए है। सोच का दायरा, रहन-सहन, जीवनशैली, आचरण, व्यवहार में परिवर्तन आया है। घर में लगातार पड़े रहने से लोगों में अवसाद व उत्तेजना बढ़ रही है। कोरोना वायरस से जो बेबसी और निराशा उभरी है, उससे हमारा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। हम इस समय सामाजिक परिवर्तन से गुजर रहे हैं, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक मान्यताएँ, मापदण्ड परिवर्तित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारा शारीरिक व मनोसामाजिक दृष्टिकोण प्रभावित हुआ है।

कोरोना वायरस चीन (कोविड-19 से संक्रमित पहला मरीज 17 नवम्बर, 2019 को हुबेई, वुहान में संज्ञान में आया था) से शुरू होकर इस समय विश्व के लगभग समस्त देशों को आच्छादित कर लिया है व एक करोड़ सत्तर लाख से भी अधिक आबादी को अपनी गिरफ्त में ले रखा है और मृतकों की संख्या साढ़े छः लाख को पार कर चुकी है, लगभग डेढ़ करोड़ से अधिक लोग स्वस्थ भी हो चुके हैं। अपने देश भारत में भी तेजी से बढ़ रहा है, अब तक साढ़े पन्द्रह लाख से भी अधिक लोग इस वायरस के शिकार हो चुके हैं जिनमें पैंतीस हजार से भी अधिक लोग काल कवलित हो चुके हैं, लगभग दस लाख से भी अधिक लोग इस संक्रमण से मुक्त भी हो चुके हैं, यह संख्या हमारे लिखे जाने तक है, अभी आगे यह महामारी कितने हजार/लाख को अपना शिकार बनायेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता है। मानव के इतिहास में अभी तक ऐसी भयंकर त्रासदी पहले कभी नहीं देखी गयी। ऐसे में लॉकडाउन के अतिरिक्त कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ रहा था। परन्तु 4 लॉकडाउन (कुल 69 दिन) के कारण अनिश्चय के दौर में सामाजिक अलगाव, सामाजिक दूरी व आर्थिक परेशानी का अनुभव बहुत से लोगों में चिन्ता, भय व थकान को बढ़ा रहा है। अभी भी पूरी तरह से कार्य व व्यवसाय शुरू नहीं हो सका है। इस दौरान हमारा रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार, सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक स्थिति, जीवनशैली प्रभावित हुई है। इस अदृश्य महामारी के शिकार हम कब, कहाँ और कैसे हो जायेंगे, एक अज्ञात भय और चिन्ता ने हमें परेशानी में डाल दिया है। लोगों का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ रहा है वे चिन्ता और अवसाद का शिकार हो जा रहे हैं। लेकिन इसी भय और निराशा से ही आशा और विश्वास की किरण भी फूटती है यह कहा गया है कि ‘हमारी हार-जीत हमारी मन:स्थिति’ से तय होती है। एक ही परिस्थिति को विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरीके से ग्रहण करते हैं, लेकिन जिनका चिन्तन सकारात्मक होता है वही अनिश्चितता को निश्चितता में, अंधेरे को उजाले में, दु:ख को सुख में, विपरीत को

अनुकूलता में, अशांति को शांति में परिवर्तित करने में साफल हो सकते हैं। इसलिए हमें सकारात्मक सोच और आत्मविश्वास के साथ इस महामारी का मुकाबला पूरी मजबूती के साथ करना चाहिए। हमें मानसिक रूप से मजबूत रहना है। साथ ही नकारात्मकता से बचना है। जॉन एच मिलर ने ठीक ही लिखा है कि चिन्ता से बच नहीं सकते, परन्तु यदि उसके प्रति अपनी मानसिकता बदल ली जाये, तो उसे दूर भगाया जा सकता है। वास्तव में मनुष्य ऊर्जा का पुंज होता है, उसे सकारात्मक दिशा में प्रवाहित करने की आवश्यकता है। इस सामाजिक और मानसिक तनाव से हम तभी मुक्ति पा सकते हैं, जब हम अपने अन्दर समायोजन व अनुकूलन की क्षमता विकसित कर लें। हमें आजकल परिवार में समय व्यतीत करने का पर्याप्त समय व अवसर मिला है, जो हमें हमेशा सुरक्षा की भावना, सहयोग, आत्मिक लगाव, अपनत्व की भावना उपलब्ध कराता है जिससे हमारा मनोबल ऊँचा रहता है। सामाजिक सुरक्षा भी मिलती है।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री जी के आह्वान पर हम सभी देशवासियों ने कोरोना योद्धाओं के प्रति सम्मान व इस महमारी से सामूहिक रूप से लड़ने का एलान अपने घर से शंखनाद करके कर ही दिया था। हमारे स्वास्थ्य कर्मी, डॉक्टर्स, स्वच्छता कर्मी, पुलिस के लोग, प्रशासनिक अधिकरीगण लगातार बिना रुके, बिना थके इस संकट की घड़ी में अहर्निश कोरोना से जंग लड़ने में हमारी सहायता कर रहे हैं, निःसंदेह वह सराहनीय है। अध्यापकों के योगदान को भी कमतर नहीं आँका जा सकता है जो विद्यार्थियों को ई-अधिगम के माध्यम से न केवल उनकी पाठ्यक्रम संबंधी कठिनाइयों को दूर कर रहे हैं, अपितु उनकी मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं का भी समाधान कर रहे हैं। हम नागरिकों का कर्त्तव्य है कि सरकार द्वारा समय-समय पर निर्गत दिशा-निर्देशों व नियमों का पालन करते हुए कोरोना योद्धाओं का उत्साहवर्द्धन करते रहें। हम सभी को जीवन रक्षा के कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए जन स्वास्थ्य के प्रति सजग रहना है।

सरकार यद्यपि कोरोना से बचने व उसके निदान तथा उपचार के विभिन्न उपाय कर रही है फिर भी कोविड-19 के खतरे से जो बेबशी और निराशा उभरी है, वह स्वस्थ लोगों में भी चिन्ता, तनाव व अवसाद बढ़ा दे रही है, जिससे लोगों में गुस्सा, चिड़चिड़ापन, माइग्रेन, एकाग्रता में कमी, मोटापा, अनिद्रा की समस्या उत्पन्न हो रही है। विगत दिनों रोजगार के फेर में गये कामगार महानगरों से पैदल ही कई सौ किलोमीटर की यात्रा करके अपने-अपने घरों को लौटने को बेताब सड़कों पर दिखे। इनमें से कुछ बदनसीब ऐसे भी थे जिनका यह अखिरी सफर साबित हुआ, अपने प्राण गवाँ दिये। अपने गाँव-गिरांव की मिट्टी भी नसीब नहीं हुई। इनका रोजगार खत्म हो गया साथ में पैसा नहीं था, रोटी का ठिकाना नहीं था। विगत 8 मई को ही महाराष्ट्र के औरंगाबाद में करमाड स्टेशन के पास लम्बी पैदल यात्रा के कारण हुई थकान के चलते रेलवे पटरी पर ही सो रहे मजदूरों की मालगाड़ी की चपेट में आ जाने से दर्दनाक मौत हो गयी। खून से सनी रोटियाँ ट्रैक के बीच पड़ी थी, इन्हीं रोटियों की खातिर वे कामगार इतनी दूर गये थे और इन्हीं रोटियों के सहारे पैदल ही सैकड़ों किलोमीटर दूर अपने गाँव लौट रहे थे। इससे एक दिन पूर्व ही लखनऊ में छत्तीसगढ़ के कृष्णा साहू, मेहनत मजदूरी कर जिन्दगी पालने वाले, काम-धंधा बन्द होने के कारण बदहाली से तंग आकर अपनी पत्नी व दोनों बच्चों को साईकिल पर बिठाकर सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा पर निकल पड़े लेकिन पीछे से आ रहे तेज रफ्तार वाहन ने उन्हें रौंद दिया, पति-पत्नी वहीं परलोक सिधार गये, दोनों बच्चे हॉस्पिटल में भर्ती करा दिये गये, पल भर में अनाथ हो गये उनके भविष्य का क्या होगा, सोचकर ही मन सिहर उठता है। एक किशोरी ज्योति पासवान अपने पिता को साईकिल पर बिठाकर 1500 किलोमीटर का सफर तय कर दरभंगा तक पहुँच गई जिसकी प्रशंसा अमेरिका के राष्ट्रपति की बेटी ने भी किया। पिछले महीने एक टीवी चैनल ने गलती से यह सूचना प्रसारित कर दी कि रेल सेवा बहाल हो गयी है। मुम्बई के एक रेलवे स्टेशन पर कई हजार लोगों की भीड़ एकत्र हो गयी। पुनः निराश होकर वे अपनी जगह लौट गये, कुछ को सरकार ने व्यवस्थित किया। ये वो लोग हैं जो हजारों किलोमीटर दूर से आकर महानगरों में अपना जीवनयापन परिवार के साथ कर रहे थे। अन्ततः वे निराश होकर पैदल ही चल दिये। क्योंकि अधिकतर दिहाड़ी मजदूर थे जो रोज कमाते और खाते थे, उनके समक्ष रोटी का संकट था, बच्चों के पालन-पोषण की चिन्ता थी, जीवन का संकट था। लखनऊ के कृष्णा साहू, औरंगाबाद, मुम्बई या देश के अन्य भागों में इन अभागों की कहानी समान है। कोरोना संक्रमण ने अभी तक अनेक खट्टे-मीठे अनुभव दिये हैं। हम भीतर से हिल गये हैं, लेकिन इनकी सहायता में सरकार के साथ ही अनेक गैर-सरकारी संगठन व सामाजिक संस्थाएँ शिद्दत से लगी हैं जो हमारी भारतीय संस्कृति अनुपम विशेषता है कि असहाय व मजबूर की मदद की जाय। जहाँ विश्व के बहुत से सम्पन्न देश हताश और निराश हैं, वहीं कई अभावों के बीच भी भारतीय समाज में उतनी बेचैनी नहीं दिखती है, तो इसकी वजह यहाँ का सामाजिक ताना-बाना है, संस्कृति है, तमाम गिले-शिकवे के बाद भी हम भारत के लोग आधी रोटी मिल-बाँटकर खाने में भरोसा रखते हैं।

कोविड-19 से जो डर और भय व्यक्ति के अन्दर समा गया है, उससे जो बेबसी और निराशा उभरी है वह स्वस्थ लोगों के भी मानसिक स्वास्थ्य को गड़बड़ा सकती है। एक अध्ययन के अनुसार लॉकडाउन के दौरान लगभग 20 प्रतिशत अधिक लोगों में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। ऐसे में आत्महत्या की घटनाओं में वृद्धि हुई है। लोगों में लगातार घर में रहने के परिणामस्वरूप ऊब, नीरसता और सामाजिक-आर्थिक कठिनाई व्यक्ति के तनाव में वृद्धि कर सकती है, उनमें अप्रत्याशित व्यवहार के लक्षण उभर सकते हैं। लेकिन हमें ऐसी स्थिति में लोगों से सम्पर्क बनाये रहना चाहिए, अन्त:क्रियात्मक व्यवहार जारी रखना चाहिए। अलगाव या दूरी की जो बात है वह शारीरिक या भौतिक है, सामाजिक दूरी नहीं है, इसलिए अपने मित्रों, रिश्तेदारों आदि के सम्पर्क में ईमेल, फोन, सोशल मीडिया से जुड़े रहना चाहिए। लोगों के सम्पर्क में रहकर बातचीत करके तनाव को कम किया जा सकता है। तनाव व अवसाद से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा तरीका बातचीत करते रहना है लेकिन दुर्भाग्य से इसके महत्व को हम स्वीकार तो करते हैं लेकिन उतना महत्व नहीं देते हैं। एक नियमित दिनचर्या जिसमें व्यायाम, प्राणायाम, योगासन या किसी भी तरह का शारीरिक श्रम जरूरी है, अध्ययन, कहानी, कविता, उपन्यास, धार्मिक ग्रंथ अर्थात अपने रुचि का साहित्य, नृत्य, संगीत, बागवानी, पेंटिंग, क्राफ्ट वर्क आदि या रुचि का अन्य कार्य को घर में पृथकवास में रहते हुए करना चाहिए। कोरोना वायरस के प्रतिदिन बढ़ते आँकड़ों से सहमी दुनियाँ को यह स्वीकार करना होगा कि उसे अभी इस विषाणु के साथ ही जीना है। इसके लिए हमें महात्मा गाँधी के बताये मार्ग प्रकृति के निकट रहने और स्वच्छता का विशेष ध्यान देना होगा। यत्र-तत्र कूड़ा-कचरा, गन्दगी फैलाने वाली अपनी पुरानी आदत का परित्याग करना होगा। शासन-प्रशासन एक सीमित अवधि तक ही सख्ती बरत सकता है, अन्तत: हमें स्वयं ही कायदे-कानून को बनाये रखना होगा। तभी हम लॉकडाउन के पश्चात् अत: उत्तर कोरोना काल में होने वाली सामाजिक व मानसिक समस्याओं से छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे।

मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों का कहना है कि नियमित व्यायाम करने से भी तनाव कम किया जा सकता है, इसलिए टहलना, योगासन, प्राणायाम, जॉगिंग, सीढ़ी चढ़ना-उतरना, खेलना आदि हमें प्रतिदिन 30 से 40 मिनट तक कम से कम जरूर करना चाहिए। निश्चित रूप से अपनी सकारात्मक सोच, नियमित दिनचर्या, उचित आहार-विहार से हम इस महामारी से तथा उससे उत्पन्न बाद की समस्याओं से निजात पा सकते हैं। उम्मीद की किरण हमारे अन्दर उत्साह का संचार करती है। सुबह-शाम नियमित रूप से व्यायाम करें। यदि घर में जगह हो तो गृह वाटिका में बागवानी करें अन्यथा गमलों में ही पौधरोपण करें, यह व्यस्तता व व्यायाम अवसाद कम करने का सबसे अच्छा तरीका है। बच्चों के साथ समय व्यतीत करें, खेलें व अपनी परम्परा, रीति-रिवाज, संस्कृति व सामाजिक सरोकारों से परिचित करायें। अपनी सुरक्षा के साथ औरों की भी सुरक्षा आवश्यक है, जिसके लिए साबुन से हाथ धोते रहना, मास्क और 2 गज की दूरी जरूरी है। इन सभी का ध्यान रखते हुए सामाजिक रूप से एक दूसरे से मानसिक निकटता (भौतिक दूरी बनाकर) बनाये रखते हुए, हम सभी एक-दूसरे से आपस में जुड़े रहकर, सहयोग कर, मनोभावों, संवेगों, संवेदनशीलता, निजता का सम्मान करते उचित आहार-विहार, जीवनशैली अपनाते हुए, योग और प्राणायाम के अभ्यास से कोविड-19 से जंग जीत सकते हैं और एक स्वस्थ समाज राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं।

इस वैश्विक महामारी का हमारे जीवनशैली व सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ा है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था सभी प्रभावित हुआ है। नव विकसित तकनीकी ने हमारी संवाद शैली को परिवर्तित कर दिया है, जिसका स्पष्ट प्रभाव हमारी परम्परागत सामाजिक व्यवस्था पर दिखाई पड़ रहा है। हमारे जीवन में तकनीकी का व्यापक प्रवेश हुआ है, शिक्षा का क्षेत्र तो पूरी तरह इसी पर आधारित हो गया है। 'वर्क फ्रॉम होम' की संस्कृति विकसित हुई, जिसके कारण हम पूरी तरह से तकनीकी पर आश्रित हो गये हैं, लोग नेट के चक्कर में रात भर जागकर काम करने को विवश हैं, जिससे हमारा पारिवारिक व सामाजिक ताना-बाना प्रभावित हुआ है। शिक्षण, स्वास्थ्य, बाजार सभी ऑनलाइन होते जा रहे हैं। समाज एक नवीन दिशा की ओर बढ़ रहा है। नैतिकता, मूल्य, विश्वास परिवर्तित हो रहे हैं। नये सामाजिक मानक स्थापित हो रहे हैं। हमारे सम्प्रेषण का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है, अब हम आमने-सामने (प्रत्यक्ष संवाद) नहीं अपितु ऑनलाइन एक दूसरे के सम्पर्क में रह गये हैं, भावनाओं, संवेदनाओं, संवेगों का प्रस्फुटन संकुचित हुआ है, जिससे अनेक व्यवहार संबंधी समस्याएँ पैदा हो रही हैं, जो हमें नये सामाजिक परिवर्तन की ओर ले जा रहा है। फलस्वरूप समाज में सामूहिकता की भावना का ह्रास होगा, व्यक्तिवादिता का विस्तार होगा, यह सब कोविड-19 का पश्चात प्रभाव है। 'वर्चुअल सोसाइटी' का प्रभाव बढ़ने से हमारी मूलभूत जरूरतें रोटी, कपड़ा और मकान की अवधारणा में परिवर्तन हुआ है, अब उसमें संचार तकनीकी/डिजिटल संस्कृति भी जुड़ गई है, जिसका व्यापक प्रभाव हमारे सामाजिक व्यवहार व संरचना पर पड़ेगा और एक नवीन सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का सृजन होगा।

सन्दर्भ

1. हिन्दुस्तान समाचार-पत्र : 1,11,28 अप्रैल, 2020; 4,6,7,9 मई, 2020; 16,17 जून, 2020।
2. जनसत्ता : 19 अप्रैल, 22 जून, 2020।
3. लोकमत : 17 अप्रैल, 2020।
4. धारा न्यूज, मेरठ।
5. शान्ति मौर्या, अयोधया, लखनऊ।
6. रणभेरी, वाराणसी।
7. आदित्य टाइम्स, अम्बेडकरनगर।
8. गुप्ता, सीमा एवं खन्ना, पूजा (स), 'कोरोना संक्रमण : एक व्यवहारिक दृष्टिकोण', ओ पी चौधरी : कोविड-19 : सामाजिक एवं मानसिक दृष्टिकोण, मेरठ, अनु बुक्स, 2020।
9. विकिपीडिया।

यूरेशियन समुदाय का पृथकीकरण और उनकी औपनिवेशिक समाज में परिस्थिति: अठारहवीं सती के अंत में ब्रिटिश नस्लवादी नीति के विशेष सन्दर्भ में

विवेक मोहन

सहायक प्रवक्ता, इतिहास विभाग दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स,
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

एंग्लो-इंडियन शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए एक लिए किया जाता था जिसकी माता या पिता यूरोपीय मूल के थे। मिश्रित नस्लीय पहचान, रंग, परम्पराओं, भाषा और अन्य सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण ब्रिटिश और कभी-कभी भारतीय या तो तिरस्कृत करते थे या उन्हें निष्कृष्ट मानते थे। उन्हें 'द्वितीय श्रेणी के ब्रिटिश नागरिक', 'अर्ध-जाति के भारतीय' या 'हाफ-कास्ट', 'हाईब्रिड', 'हाफ-ब्रिड', 'मिश्रित-रक्त' और 'यूरेशियन' के रूप में माना जाता था तथा उन्हें निम्न दर्जे के पदों पर रखा जाता था। प्रस्तुत लेख में अठारहवी शताब्दी में कुछ ऐसे नियमों और कानूनों का विश्लेषण किया गया है, जिनसे एक विलग और विशिष्ट समुदाय, जो कि यूरोपीय या भारतीय किसी में भी फिट नही बैठता था। सत्ता पर काबिज होने के आरंभिक काल से ही, विशेष रूप से विलियम जोंस के प्राच्यवाद के समय में जहाँ एक और इंडो-यूरोपियन अंतर्संबंधों को उद्धघाटित किया गया वहीं दूसरी और 'मिश्रित नस्ली' प्रारूपों को सभ्यता के लिए नुकसानदेह माना गया। यूरेशियन समुदाय को लगातार हाशिये पर रखने के प्रयास किये गए जिसने इस समुदाय को संगठित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत में नस्लवादी अध्ययन मुख्य रूप से ब्रिटिश-इंडियन युग्मक पर अवस्थित रहे है। परन्तु यूरेशियन पहचान पर लहदी भाषा में शोध-कार्य सीमित मात्र में उपलब्ध है। यूरेशियन लोगों के तिरस्कार का प्रतिरूप या पैटर्न 1780 के मध्य से आरम्भ हुआ जो 1947 नीति या व्यवहार में कायम रहा और अन्त: स्वतंत्रता के पश्चात् इन्हें अल्पसंख्यक के रूप में मान्यता मिली और कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये गए।

संकेत-शब्द: नस्लवाद, यूरेशियन, ब्रिटिश नीतियाँ, निष्कृष्टता।

भूमिका

औपनिवेशिक शक्तियों ने विश्व के विभिन्न हिस्सों में अपने नियंत्रण को मजबूत और चिरस्थाई बनाने के लिए अनेक सांस्कृतिक-साम्राज्यवादी 'तकनीकों' का प्रयोग किया जिनमे 'सेल्फ' (स्वयं) और 'अदर' (अन्य) का निर्माण और उनके साथ कुछ विशिष्ट गुणों-अवगुणों को भी जोड़ा गया। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजी शासन नस्लवादी घमंड, सैन्य-बल के साथ साथ प्रबल और परिवर्तनीय विचारधारात्मक सत्ता के अवयवों के मिश्रण पर आधारित था जिसने इसे निरन्तर बल और वैधता प्रदान करने का कार्य किया। ज्ञान-सत्ता और स्थानीय स्तर पर देशज वर्गों और व्यक्तियों के सह:संबंध भी मील के पत्थर साबित हुए। साथ ही तत्कालीन नृविज्ञान, कपाल-विज्ञान, छद्म विज्ञान, चिकित्सीय खोजों, इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि ने 'उच्च' और 'निम्न' मनुष्यों के अंदर आने वाली अनेकों नस्लों को परिभषित, निर्मित और सुदृढ़ किया जो वैश्विक स्तर पर समुदायों के बीच जल-विभाजक

के रूप में सामने आए। अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शती में 'नस्ल' का प्रश्न और इससे सम्बंधित प्रश्न अकादमिक और लोकप्रिय दोनों विमर्शों के केन्द्रीय विषय बन गये थे। प्राच्यवादियों, इवानजेलिकल, उपियोगितावादियों और पैतृकवादियों ने लगातार शुद्धता-प्रदुषण, नस्लीय पदानुक्रम, नस्लों की मिलावट जैसे मुद्दों पर अनेक विमर्शों को उत्पन्न किया और सांस्क्रतिक साम्राज्यवाद को पोषित किया जिसमे उच्च जाति के भारतीय पुरुषों ने भी सहयोग दिया।

वास्को-द-गामा एक आने के बाद 1510 में अलबुकर्क के गोवा पर अधिकार के बाद भारतीय महिलाओं और पुर्तगाली पुरुषों के मध्य वैवाहिक संबंधों से लुसो-इंडियन समुदाय अस्तित्व में आया। हालांकि सत्रहवी एवं अठारहवी शताब्दी के मध्य तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने कर्मचारियों को भारतीय महिलाओं के साथ वैवाहिक मुजफ्फरपुर के लिए प्रोत्साहित किया परन्तु अठारवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश से इस नीति का परित्याग कर दिया गया। 1730-1780 के मध्य की उदारवादी नीति अब कठोर होने लगी क्योंकि अकादमिक, प्रशासनिक और लोकप्रिय विमर्शों में यूरेशियन वर्णसंकरता (hybridity) एक गंभीर समस्या बन गई थी। यही समय था जब ब्रिटिश साम्राज्य अपनी जड़ें मजबूत बना रहा था और उसे भारत में लगातार सफलता भी मील रही थी। साम्राज्य की प्रतिष्ठा इस बात पर निर्भर करती थी कि उसके बारे में जनता कैसी राय रखती है जिसे जोसाफ सरामेक "एम्पायर ऑफ़ ओपिनियन"[1] की संज्ञा देते है। समस्त साम्राज्य के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में उच्च-वर्गीय, अभिजात्यता और प्रतिष्ठा सर्वोपरि थे जिनकी उपेक्षा करना असंभव माना जाता था। 1780 के दशक से भारतीय जनता के समक्ष ब्रिटिश प्रतिष्ठा और आदर्शों को अक्षुण्ण रखना भी कंपनी राज में ही नहीं शाही सत्ता के काल में भी महत्वपूर्ण था। औपनिवेशिक परिस्थितियों में यही पक्ष सत्ता और सत्ताहीन के बीच सबसे बड़ा अंतर था जो इसे वैधता भी प्रदान कर रहा था।

इसी कड़ी में 'श्वेत व्यक्ति पर भार' और 'सभ्यता का मिशन' जैसे प्रभावी घोषों ने भारत में ब्रिटिश राज को स्थापित और सुदृढ़ करने में अत्यंत प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन किया। इस प्रकार 'शुद्ध' ब्रिटिश मनुष्यों में उच्चता जातीय गौरव का अहंकार और भारतीयों में 'हीनता की भावना' के साथ साथ अधीनस्थता की मनोग्रंथि को स्थापित किया गया। ब्रिटिश साम्राज्य के दीर्घकाल के लिए यह एक प्रमुख आधार था। साम्राज्य में ऐसी परंपरागत नीतियाँ प्रसिद्ध सांसद एड्मुर्क बर्क का भी प्रभाव माना जा सकती है जिन्होंने निजी और सार्वजानिक स्तर पर शुचिता, प्रतिष्ठा, नैतिकता, शासन में रूढ़िवादिता पर बल जबकि रेडिकल विचारों के प्रसार को सही नहीं माना। ब्रिटिश शासन के आरंभिक काल में भी प्राचीन इतिहास और परमपराओं पर ही बल दिया गया। आंग्ल-वादी विद्वानों यथा विलियम जोंस, कोलेब्रूक, हाल्हेड और विल्किंस आदि ने भी अतीत के आधार पर आधुनिक के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया और इसी विचारधारा का पोषण भी किया। इंडो-यूरोपीय भाषाई सह-संबंध, आर्यानिकरण और नस्लवादी प्रश्न और सिद्धांतों ने ब्रिटिश शासन में सदैव केन्द्रीय भूमिका में बने रहे। अंग्रेज, 'आर्य' और उच्च-जाति के हिन्दू सर्वोच्च समझे जाने लगे जबकि अन्य समुदाय जैसे यहूदी, अश्वेत, मुस्लिम और निम्न-जातीय भारतीय नस्लीय आधार पर निष्कृष्ट कहे जाते थे। उच्च वर्गीय/वर्णीय और निम्न वर्गीय/वर्णीय प्रारूपों के मध्य वैवाहिक संबंध अतीत में उच्च-नस्लीय पतन का कारण बने अत: इनके बीच आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर को न्यायसंगत और वैध ठहराया जाता रहा। इन विमर्शों ने लगातार नस्लीय अंतर को गहरा किया और प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर जैसे, सेना, न्यायिक-व्यवस्था और दिन-प्रतिदिन के मुद्दों में भी इसे फैलाया।[2] ब्रिटिश राज की अक्षुण्णता के लिए नस्लीय सर्वोच्चता एक आवश्यक प्रारंभिक बिंदु था जो जिसका नस्लवाद सिर्फ 'श्वेत हीरो और अश्वेत शैतान'[3] तक ही सीमित नहीं था बल्कि श्श्वेतों में भी अनेक विभेदों पर बल दिया गया था। अश्वेत भी अपने ऐतिहासिक कारकों की वजह से मानव पदानुक्रम में सर्वोच्चता और निम्नता के विभिन्न श्रेणियों में सारणीबद्ध किए गये।

फ्रैंक एंथनी ने दर्शाया है कि 1780 के बाद यूरेशियन कैसे एक भारतीय अल्पसंख्यक के रूप में सामने आए।[4] इस समुदाय को भी लगातार नस्लीय भेदभाव का सामना करना पड़ा। वस्तुत: नस्ल का प्रश्न, रंग और अनुवांशिकी से गहरे तौर पर जुड़ गया था। अब नस्ल न सिर्फ रंग, व्यवहार, उत्पत्ति, अतीत और वर्तमान में श्रेणी-स्थान, चरित्र, अभिक्षमता, नैतिकता, पदानुक्रम, योग्यता से ही नहीं बल्कि बुद्धिमता और जीवन मूल्यों के परिमाण से जुड़ गया। अठारहवी शती के अंत से पर्यावरणवादी विचार भी अब केंद्र में आने लगे जिन्होंने भारत की उष्ण और उपोष्ण जलवायु को दुर्बलतादाई मानते हुए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि यूरोपीय भी यहाँ रहकर अपने 'उच्च' और विशिष्ट लक्षणों को खो बैठते है और उनके उच्च और विशिष्ट लक्षणों का ह्रास हो रहा है। इस तरह भारतीयों के साथ वैवाहिक संबंध के कारण भारतीय-यूरोपियन माता पिता की संतान वर्ण-व्यवस्था के वर्ण-संकर की भांति अशुद्ध समझी जाती थी और सर्वश्रेठ नस्लों के पतन का सबसे सटीक कारण थी। भारत की आधुनिक समय में पतनशीलता का सबसे बड़ा

कारण प्राचीन और मध्यकाल में आर्यों का निम्न जाति और समुदायों के साथ संबंध माना गया। पर्यावरणीय-निर्धारणवाद के साथ पतन की इस संकल्पना ने बड़े पैमाने पर यूरेशियन बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था को यूरोप में ही संचालित करने पर बल दिया जिससे इस तरह के नुकसान की क्षतिपूर्ति यूरोप में हो जाए। ऐसे कदम यूँ तो बड़े सीमित स्तर पर लागू किये गए थे परन्तु प्रशासनिक विमर्शों में इसका बड़े जोर शोर से प्रचार किया गया था अत: समानता के सन्दर्भ में ये अत्यंत नाकाफी थे। ऐसा मत था कि यूरोप में शिक्षा और वहां की अनुकूल जलवायु के प्रभाव से इन बालकों का उन्नयन हो सकेगा। ये रियायते शीघ्र ही 1780 के दशक से छीन ली गई और ब्रिटिश शासन नस्लीय प्रारूपों को सीमित, संरक्षित और प्रचारित करने का एक बड़ा माध्यम बन गया और यूरेशियन को मिलने वाली सुविधाएँ न केवल समाप्त कर दी गई अपितु उन्हें एक अशुद्ध और निम्न नस्ल माना गया बड़ी तेज़ी से उन्हें प्रशासन और उच्च पदों से बाहर करने के प्रयास किये गये। हालाँकि बाद में डाल्वन और गेल्टन (1850 के बाद) ने नस्लीय संशोधन के विभिन्न सिद्धांत सामने रखे परन्तु यूरेशियन के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया यूरोपीय और भारतीय समाज के नीति-व्यवहार और विधि-व्यवस्था का अभिन्न अंग बने रहे और आज तक निर्धारक की भूमिका में है।

केनेथ बालहैटचेट ने दर्शाया है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को वैधता और यूरोपीय सर्वोच्चता बनाए रखना जरुरी था तो इसके लिए निम्न वर्गीय नेटिव और यूरोपीयनो के बीच "ब्रिज" या सेतु भीं बनने से रोकना था।[5] क्योंकि यूरोपियन और एंग्लो-यूरोपियन के बीच समानता भारतीय लोगों को भी समतावादी व्यवस्था के लिए प्रेरित कर सकती थी अत: ऐसे संबंधों को किसी भी कीमत पर रोकना जरुरी समझा गया।[6] वलेरी एंडरसन इंगित करते है कि 1780 के दशक से यूरेशियन 'एक विलग, विवादित और निश्चित पहचान' बन गई थी। यूरेशियन और यूरोपियन बीच समानता की समाप्ति के लिए 1786 में एक नियम के तहत यूरेशियन अनाथ बच्चों को शिक्षा के लिए ब्रिटेन में जाने की मनाही स्थापित कर दी गई। कारण स्पष्ट थे कि यूरोपीय और यूरेशियन बच्चों के बीच शिक्षा की खाई को गहरा करना था और 'होम-नस्ल' (ब्रिटिश) और 'कंट्री-नस्ल' (यूरेशियन) में शैक्षणिक अंतर पैदा करके केवल शुद्ध यूरोपियन को ही विशेषाधिकार प्रदान करना था। अब यह मान लिया गया कि उच्च और आधुनिक यूरोपीय शिक्षा, पर्यावरण और जीवन-शैली का अनुकरण यूरेशियन नस्ल में सुधार करने में अक्षम था क्योंकि जन्मजात और अनुवांशिक गुणों में परिवर्तन लगभग संभव ही था जो ब्रिटिश नस्लीय नीतियों का केन्द्रीय बिंदु था।

यह स्पष्ट है कि लार्ड कार्नवालिस के समय से लगातार प्रशासनिक स्तर पर केन्द्रीयकरण के प्रयास किये गए जिसने प्रशासनिक स्तर पर एंग्लो-इंडियन की साफाई पर अत्यधिक बल दिया। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी में उन पर और भी अधिक प्रतिबन्ध लाद दिए गए जिससे ब्रिटिश और यूरेशियन समुदायों के बीच कभी न खत्म होने वाला अंतर पैदा हो गया। कलकत्ता और मद्रास जैसे इलाकों में इन्होने अपनी अनेक सभाएं बना ली थी जिन्होंने यूरेशियन लोगों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सहायता, धर्म-कर्म जैसे कार्यो में योगदान दिया और एक एकीकृत और संगठित समुदाय के निर्माण में सहायता प्रदान की। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यह स्थापित हो गया था कि अब धर्म, अतीत और भाषाई विशेषताएँ किसी 'नस्ल' की प्रधन अभिलक्षण नही था परन्तु आधुनिक विज्ञान ने रक्त की शुद्दता को भी महत्वपूर्ण माना। नृजातिविज्ञानी भी इस आधार पर अशुद्ध और शुद्ध समुदायों के बीच वैवाहिक संबंधो को उच्च मानव मूल्यों के विरुद्ध मानते थे। लिनेउस से लेकर डेनियल पीके, गोबिनेऊ, चार्ल्स वाइट, स्पेंसर, डाल्वन, हंटर और रिसले तक लगातार इन नस्लीय मान्यताओं पर बल दिया गया। ब्रिटिश भारत में यूरेशियन की प्रस्थिति अन्य देशों में रहने वाले यूरेशियनों से निष्कृट थी।[7] इसका सबसे प्रमुख कारण भारत में स्थित भाषाई, संस्कृतिक और सामुदायिक विविधता का होना था। उनका 'मैं कौन हूँ'? (Who am I)[8] का प्रश्न औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक भारत में सदैव महत्वपूर्ण बना रहा और उनकी पहचान के मुद्दे को बारंबार रेखांकित करता रहा।

अंतर-नस्लीय संबंध प्रशासनिक संदेह, घृणा और विवाद को जनम देते थे क्योंकि यह विश्वास किया जाता था कि 'अवैध यूरेशियन बालक उभरते हुए औपनिवेशिक शासन की नैतिक सत्ता के लिए एक बड़ा खतरा थे। समस्त संसार में नस्लवाद का इतिहास निर्णय लेने के अधिकार और निर्णय न लेने की अधिकार की वंचिता के साथ सम्मिलितिकरण और अस्वीकरण से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है जिनकों रुदिबद्ध करने का कार्य लगातार शासक वर्ग और अन्य प्रभुत्वशाली समूहों ने किया। ब्रिटिश नस्लवाद 1780 के दशक से ही स्पष्ट रूप में सामने आ गया था। यह वो काल था जब ब्रिटिश भारतवासियों के साथ नस्लीय संबंध का रहस्य उद्घाटित कर रहे थे वहीं दूसरी और 'अर्ध-यूरोपीय' पहचानों के प्रतिउपेक्षित भाव उत्पन्न कर रहे थे और कुछ ही वर्षो में यह विचारधारा औपनिवेशिक समाज पर भी लागू हुई।

निष्कर्ष

इस प्रकार उन्नीसवीं शती के मध्य तक यह स्पष्ट हो गया था कि ब्रिटिश न केवल भारतीय-यूरोपीय बल्कि अंतर-यूरोपीय के बीच भी नस्लवादी सांस्कृतिक खाई स्थापित करना चाहती थे जिसमे उन्हें बड़ी सफलता भी मिली। यूरेशियन समुदाय के अशुद्ध रक्त और निम्नतर प्रारूप होने के कारण उनका यूरोपीय समुदाय में आत्मसातीकरण नही हो पाया जिसने उनकी एक विशिष्ट पहचान को सुनिश्चित किया। लार्ड कार्नवालिस के काल में यूरेशियन समुदाय पर नस्लीय दबाव अत्यधिक बढ़ गये थे जिसमे उन्हें लगातार हाशियाकृत करने के प्रयास किये गये। 1830 के दशक में ब्रिटिश संसद में जॉन रिकेट्स जैसे लोगों ने उनके लिए 'ईस्ट-इंडियन' शब्द प्रयोग करने पर बल दिया। 1857 के संग्राम के बाद यह समुदाय अपने सक्रिय संगठनों और राजनैतिक गतिविधियों के बल पर कुछ अधिकार भी अर्जित किए परन्तु उन्हें कभी भी ब्रिटिश समकक्ष नही माना गया। उन्होंने न केवल ब्रिटिश अपितु भारतीयों से भी लम्बा संघर्ष किया और अंततः उन्हें 1949 एक अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्यता मिली और उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शैक्षणिक सहायता और आरक्षण की व्यवस्था अनुच्छेद 331 और 332, 338 (ब) के जरिये सुनिश्चित की गई।

सन्दर्भ

1. सरामेक, जोसाफ (2011) जेंडर: मोर्टलिटी एंड रेस इन कंपनी इंडिया, 1765-1858, पालग्रेव, न्यूयॅर्क, पृष्ठ 06.
2. बेलनटाईन, टोनी (2002) ओरिएंटलिस्म एंड रेस, पालग्रेव, न्यूयॅर्क, 173.
3. भाभा, होमी (1996) 'द अदर क्युश्चन: डिफरेंस, डिफरेंशियेन्स एंड थे डिस्कोर्स ऑफ़ कोलोनियलिज्म' बेकर ए. हॅस्टन एवं अन्य (संपादित) ब्लैक ब्रिटिश कोलोनियल स्टडीज, यूनिवर्सिटी वॉ शिकागो,लन्दन एंड शिकागो, पृष्ठ 100.
4. एंथनी, फ्रैंक (1962) ब्रिटेन्स बिट्रेयल इन इंडिया: द स्टोरी ऑफ़ द एंग्लो-इंडियन कम्युनिटी, अलाइड पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 2-3.
5. बालहैटचेट, केनेथ (1980) रेस, सेक्स एंड क्लास अंडर द राज: इम्पीरियल एटीटड्स एंड पॅलिटिक्स एंड देयर क्रिटिकस, नीलसन, लन्दन, पृष्ठ 131.
6. एंडरसन, वलेरी (2015) रेस एंड पॅवर इन ब्रिटिश इंडिया, आई. बी. टोरस एंड कंपनी लिमिटेड, लन्दन, पृष्ठ 4.
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ 18-19.
8. बालहैटचेट, केनेथ (1980) रेस, सेक्स एंड क्लास अंडर द राज: इम्पीरियल एटीटड्स एंड पॅलिटिक्स एंड देयर क्रिटिकस, नीलसन, लन्दन, पृष्ठ 96
9. कनिष्का सिंह (3 अगस्त 2017) 'पोस्ट-1947, द मिक्स्ड फार्च्यून ऑफ़ द मिक्स्ड रेस एंग्लो-इंडियन्स', द इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली।
10. कार्टन, एड्रिअन (2012) मिक्स्ड-रेस एंड मॅडर्नटी इन कोलोनियल इंडिया, रौटलेज, लन्दन, पृष्ठ 31-32.

जातिगत चेतना और दलित आंदोलन पर गांधी व अम्बेदकर के विचारों का मूल्यांकन

डॉ० राजकिशोर राम

+2 शिक्षक (इतिहास) राज इंटर कॉलेज,
बेतिया पश्चिमी चंपारण

शोध सारांश

जाति भारतीय समाज की एक सच्चाई है, इस बात से इन्कार नहीं है। दलितों की भूमिहीनता और गरीबी यहाँ तक कि अशिक्षा के मूल में भी जति का चिन्तन है। जाति ब्रह्मणवादी, सामंती व्यवस्था का मुख्य आधार है। इसी आधार पर दलित, सामाजिक और आर्थिक शोषण के शिकार हुऐ है, लेकिन इस बुनियाद पर गरीबी के सवाल छोड़ दिये जाए और वर्ग चेतना को नकार दिया जाये तो क्या ऐसा करना वर्तमान समाज के यथार्थ को झुठलाना नहीं होगा? इसमें संदेह नहीं है कि वर्ण व्यवस्था के कारण ही सामाजिक और आर्थिक आर्थिक दासता दलितों को मिली है, वर्ण व्यवस्था पर चोट करके सामाजिक समता हासिल की जा सकती है या सामाजिक समता के लिए वर्ण व्यवस्था पर प्रहार, परन्तु यह आर्थिक समता का भी निदान है, यह समझना भूल होगी। आर्थिक मुक्ति के लिए भूमि की राष्ट्रीयकरण की जरूरत है, शिक्षा और औद्यौगिक क्षेत्र में राष्ट्रीय समाजवाद की जरूरत है। ये सवाल भारत की अर्थव्यवस्था के सवाल है। ये समाजशास्त्र के नहीं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सवाल है। जब तक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पर चोट नहीं की जायेगी, उसे सुरक्षा दे रहे सामन्तवाद से नहीं लड़ा जायेगा, तब तक आर्थिक समाजवाद सिर्फ एक स्वप्न ही बना रहेगा। डॉ. अम्बेदकर इस आर्थिक समाजवाद क प्रबल समर्थक थे और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कटु आलोचक थे। उनके आर्थिक विचार मूल वामपंथी दर्शन के विरूद्ध नहीं है बल्कि उससे सहमति रखते हैं। सिर्फ जाति के समाजशास्त्र तक सीमित रहने वाले दलित आलोचकों को डॉ. अम्बेदकर के 'भारत में जातियाँ, 'राज्य और अल्पसंख्यक' तथा मजदूर और संसदीय लोकतंत्र जैसी पुस्तकों और वार्ताओं को गहराई से पढ़ने और समझने की जरूरत है। यह अम्बेदकर ही थे जिन्होंने लिखा कि 'व्यक्ति ही समाज बनाते हैं' यह कथन अक्षरशः सत्य है। बर्गो के मिलने से समाज बनता है। वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन यह सच है कि समाज के भीतर ही वर्ग है। उनका मत था कि जातियाँ वर्गो के बाद ही अस्तित्व में आयी है। पहले वर्ग ही थे और प्राचीन हिन्दू समाज भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता। डॉ. अम्बेदकर जाति व्यवस्था के खात्मे के लिए वर्णव्यवस्था का अन्त चाहते थे।पर उनका यह आर्थिक दर्शन भी था जिसे वह आर्थिक समाजवाद के लिए बहुधा जरूरी समझते थे। उनका मत था कि आर्थिक विषमता सच्चे लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर सकती। ऐसा लोकतंत्र शासक वर्ग का तन्त्र ही हो सकता है। यद्यपि डॉ. अम्बेदकर इस मत से सहमत नहीं थे कि मनुष्य सिर्फ एक आर्थिक प्राणी है, परन्तु वह यह भी मानते थे कि यह दलित-मजदूर वर्ग का सामाजिक सच भी है। वे इस कदर आर्थिक विषमता के शिकार व भूखे है कि रोटी उनकी पहली जरूरत बन जाती है। दूसरी चीजों पर वे बाद में सोचते है। इसलिए जनतंत्र में अपनी भूमिका का अर्थ नहीं जानते और सिर्फ कुछ सेर चावल के बदले अपने स्वाभिमान तक बेच देते हैं। इन आर्थिक सवालों को हल किये बिना आर्थिक मुक्ति और सही लोकतंत्र की स्थापना कैसे सम्भव है? दलितों के लिए गौरतलब सवाल यह होना चाहिए किवे जाति चेतना को खत्म करना चाहते हैं या सुरक्षित रखना चाहते हैं? यदि वे खत्म करना चाहते हैं तो दलितों के सामाजिक और आर्थिक मुक्ति दोनो जरूरी है। यदि हमारा लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति का है तो दलित राजनीति के माध्यम से ही हासिल कर सकते हैं।

मुख्य शब्दः वर्णव्यवस्था, समाजवाद, वर्णाश्रम, हरिजन, द्वितीय गोलमेलन, जाति चेतना, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था

अम्बेदकर और गाँधी

अम्बेदकर और गाँधी आज भी दूर खड़े हैं। अपने नेता से बढ़कर उनके अनुयायी होने का दावा करने वाले लोगों का मानना है कि इन दोनों का मेल-मिलाप असम्भव है। एक तरह से यह कथन गलत भी नहीं नजर आता। इन दोनों महापुरुषों के स्वभाव, आस्थाओं, विचारां, संवाद शैली और कार्यप्रणाली में इतनी विभिन्ताएँ रही है कि समानता के कोई सून्न नजर नहीं आते। कहाँ गाँधी और कहाँ अम्बेदकर, इनके व्यक्तित्व भिन्न, इनके संघर्ष शैलियाँ भिन्न। इनमें समन्वय का क्या काम? फिर अनेक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों तथा प्रसंगों पर दोनों में न सिर्फ मतभेद रहे बल्कि संघर्ष भी हुआ। इन सब ऐतिहासिक प्रसंगो को नजरअंदाज कर कोई गाँधी और अम्बेदकर में समन्वय करना चाहें तो कर ले, किन्तु वह वास्तविक नहीं महज एक खुशफहमी रहेगी "गाँधी अपने व्यवहारिक आदर्शवादी मानते थे। यह उनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता है। व्यवहारिक आदर्शवादी एक-एक कदम सोच समझकर उठता है। उसे अपने देश, समाज और अनुयायियों का ध्यान रखना पड़ता है। भारत जैसे देश में तो और ज्यादा जहाँ रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास और कई प्रकार की विषमताएँ हावी थी, आज भी हावी है। इन परिस्थितियों में सबको साथ लेकर चले बिना स्वराजय की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती थी। इस विवशता से गाँधी बहुत हद तक परम्परावादी प्रतीत होते थे। यहाँ तक कि जीवन के आखिरी दौर को छोड़कर वे आजीवन वर्णव्यवस्था का समर्थन करते रहे। कहते रहे कि 'वर्णाश्रम धर्म और अस्पृश्यता में कोई संबंध नहीं है।' समाज परिवर्तन की बात भी उन्होंने मुहावरे में ही कही है। उन्होंने अस्पृश्यों के लिए सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों का संधर्ष छेड़ने के बजाय सवर्णो में पाप बोध जगाने और उसके प्रायश्चित पर जोर दिया। 1931 में नासिक के कलाराम मंदिर में अस्पृश्यों के प्रवेश के लिए सत्याग्रह के बारे में भी गाँधी का यह मत था कि यह सत्याग्रह अछूतों को नहीं अस्पृश्यों को करना चाहिए। 'पारम्परिक प्रतीकों को नया अर्थ देने में कुशल गांधी जी ने भारतीय समाज के पददलितों को 'दलित' कहने के बजाय 'हरिजन कहा।' भारतीय दलितोद्धार के इतिहास के एक नायक महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता को हटाकर दलितों को न्याय, समता, प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए जो-जो किया उससे उन्होंने दलितों को कभी उकसाने का प्रयास नहीं किया। शान्ति और प्रेम से लोगों का हृदय परिवर्तन हो, यही उनका लक्ष्य था। महात्मा गाँधी ने अंग्रेजों के जातिगत निर्णय के विरोध में किये गये अनशन से अंग्रेजों को दलितों के लिए स्वतंत्र मतदान संघ का निर्णय बदलने के लिए विवश किया। महात्मा गाँधी ने 'हरिजन सेवक संघ', की स्थापना की और स्वयं को दलितोद्धार के लिए समर्पित किया। इसके लिए उन्होंने 'हरिजन' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक शुरू किया जो फरवरी सन् 1933 ई. से प्रकाशित होना शुरू हुआ। इन तमाम कार्यो के बावजूद गाँधी का दलितोद्धार कार्यक्रम काफी विवादास्पद रहा। दलित आन्दोलन के आगे की पंक्ति के दो बड़े नेताओं डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेदकर एवं पी.के. अत्रे ने महात्मा गाँधी के अछूतोद्धार को ढोंग माना। इस सन्दर्भ में डॉ. अम्बेदकर जी ने माना कि माना कि कांग्रेस और महात्मा गाँधी ने दलितोद्धार का कुछ भी कार्य नहीं किया जिसका गवाह खुद गाँधी का मौका दिया इसलिए आज भी दलितोद्धार की इनकी नीयत पर लोग संदेह करते हैं। उन्होंन स्वयं को कट्टर सनातनी, वर्णाश्रम धर्म का समर्थक और जन्मगत पेशे अपनाने के प्रति प्रबल आग्रह दिखाया। कट्टर सनातनी होने की उनकी उद्घोषणा और अछूतोद्धार आन्दोलन परस्पर अन्तर्विरोधी है। दूरगामी दृष्टि से देखा जाय तो ये दोनों आग्रह मिलकर लोकतंत्र और समाज की धारणा के विपरीत प्रतीत होते हैं। गोलमेज सम्मेलन में गांधी जी ने दावा किया था कि अगर वोट डलवाये जाये तो उन्हें ही सर्वाधिक वोट अछूतों के मिलेंगे। पूना समझौता आते-आते अछूतों की ओर से हस्ताक्षर करने का अधिकार अम्बेदकर को मिला। इस प्रकार गाँधी के हाथ से अछूतों का नेतृत्व लगातार फिसलता ही गया।

दलित, गाँधी और अम्बेदकर

गाँधी और अम्बेदकर के विचारों का आंकलन करते समय गोलमेज सम्मेलन, अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन मण्डल की अम्बेदकर की मांग, यरवदा जेल में गाँधी के उपवास और समझौते दोनों में कुछ समय तक सहयोग और विरोध ही गांधी और अम्बेदकर के बीच रानीतिक विवाद का कारण बना। अम्बेदकर ने गोलमेज सभा में दलितों की समस्या को उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर दलित आन्दोलन का आगाज किया था। वहीं गांधी जी ने द्वितीय गोलमेलन (1931) में पृथक निर्वाचन मण्डल का विरोध करते हुए कहा था- 'क्या अछूत बने रहेंगे? छुआछूत बनी रहे, इसके बेहतर है कि हिन्दू धर्म मर जाय। मैं अम्बेदकर एवं अछूतों के उद्धार की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति पूरा सम्मान रखते हुए कहना चाहता हूँ शायद उनके अपने जीवन के कटु अनुभवों ने इस क्षण उनके निर्णय को गलत दिशा मोड़ दिया है। मुझे यह कहने में पीड़ा हो रही है पर यदि मैं यह न कहूँ तो यह अछूतों जो मुझे जान की तहर प्रिय है, के प्रति बेईमानी होगी। पृथक निर्वाचन मण्डल में हिन्दू धर्म में विभाजन पैदा हो जायेगा। इसलिए

मैं पूरी दृढ़ता के साथ कहना चाहता हूँ कि यदि मेरे रोके यह रूक सकता है तो अपनी जान की बाजी लगाकर भी मैं इसे रोकने की कोशिश करूंगा। पर अम्बेदकर का मानना था कि हिन्दू समाज अपने आप अछूतों को उनका हक दे देगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। वे गाँधी को स्वेच्छा से असहमत होते हुए कहते हैं कि, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि चातुवर्ण व्यवस्था आधारित असमानता समाप्त हो जायेगी या हिन्दू लोग इसे समाप्त करने की कोशिश करेंगे। यह असंभव है, अम्बेदकर का यह कहना था कि बिना अलग से राजनीतिक अधिकार हासिल किये दलितों को हिन्दू समाज में अपनी हीन स्थिति से छुटकारा नहीं मिल सकता है। इसी सोच के तहत पृथक निर्वाचन मण्डल की मांग पर डटे रहे और अन्तत (1932 में अंग्रेजी हुकूमत ने इसे मान लिया। गांधी अपने संकल्प के मुताबिक इस तथाकथित 'कम्यूनल अवार्ड' के खिलाफ आमरण अनशन पर चले गये। यह अत्यन्त विरोधभासी चीज लगती है कि 'हरिजनों' के उद्धार के लिए अपनी सारी शक्ति झोंकने वाले गांधी इस हद तक उनके रजनीतिक अधिकार के खिलाफ क्यों चले गये। शायद इसका कारण राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की मूल चिन्ता थी।' जब गांधी ने पृथक निर्वाचन-मण्डल के खिलाफ आमरण अनशन कर दिया तो 26 दिसम्बर 1932 को अम्बेदकर के साथ इस मुद्दे पर उनका समझौत हुआ, जो पूना पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते के बाद अम्बेदकर ने जो बयान दिया वह गांधी के बारे में स्पष्ट तौर पर उनके भावों को उजागर करता है 'मुझे खुशी है कि सबके सहयोग से महात्मा गाँधी की जान बचाना है और साथ ही दलित वर्गों के लिए भविष्य में जरूरी संरक्षण प्राप्त करना संभव हो सका। मेरा ख्याल पूरे विचार-विमर्श का बहुत बड़ा श्रेय महात्मा गाँधी को दिया जाना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे गांधी से मिलकर बहुत ताज्जुब हुआ कि उनमें और मुझमें बहुत कुछ समान है।' वास्तव में गांधी और अम्बेदकर के बीच बहुत कुछ समान था और यह भी सच है कि आजाद भारत के प्रथम मंत्रिमण्डल में अम्बेदकर को शामिल करने की जोरदार वकालत गांधी ने ही की थी। उन्हें कांग्रेस से बाहर का बताकर विरोध करने वालों से गाँधी ने कहा कि 'आजादी देश के लिए आयी है कंग्रेस के लिए नहीं।' अम्बेदकर के प्रति गांधी का यह लगाव महज निजी सम्मान नहीं था, बल्कि उनके संघर्ष की भूमिका का भी व्यापक स्वीकार था। छुआछूत के विरूद्ध अपने अविचल संधर्ष एवं अम्बेदकर के दलित चिन्तन एवं कर्म से अन्त (क्रिया के दौरान 1945 तक आते-आते गांधी चातुवर्ण व्यवस्था की अपनी पुरानी अवधारणा से ऊपर उठ गये और आगे बढ़े। 20 फरवरी 1947 को उन्होने कहा कि एक जातिविहीन समाज में वर्ण आधारित पेशे की कोई जगह नहीं होगी। इस जाति संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन की तार्किक परिणति के 14 जून 1947 के भाषण में गाँधी जी ने कहा कि 'अवर्ण और सवर्ण' का फर्क मिट जाना चाहिए। अम्बेदकर ने दलितों के प्रति गाँधी के हित चिंता को नये सिरे ये देखना भी शुरू कर दिया था और 6 सितम्बर 1954 को राज्यसभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि 'दलित गांधी के अत्यन्त प्रिय थे।' जाति-प्रथा के समूल नाश की अम्बेदकर की अवधारणा गांधी के भीतर अपने विशेष अन्दाज में उतरी थी। शायद यह बात उतनी अधिक जानी नहीं जाती कि गांधी ने विवाह के बारे में आश्रम में एक नियम बना रखा था वे उसी जोड़े के विवाह में जाते थे और अपना आशीर्वाद देते थे जिनमें एक सवर्ण एवं दूसरा दलित हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी और अम्बेदकर आजाद भारत की अपनी सुन्दर तस्वीर गढ़ने की कोशिश में लगे थे, भले ही उनकी कूचियों में अन्तर हो। दोनों समकालीन भारत की बेचैन आत्मा के प्रतिनिधि थे। बेचैनी गांधी को अन्तत इस निष्कर्ष पर ले गयी कि आने वाले वर्षो में दलितों को उस दल-दल से निकालने के लिए कानून बनाने पड़ेंगे जिसमें पूंजीपतियों, जमींदारों, तथाकथित ऊँची जातियों एवं उसवके बाद ब्रिटिश शासकों ने उन्हें डूबो दिया है। मौजूदा समया में उनके पास जमीन नहीं है, वे पूरी तरह तथाकथित ऊँची जातियों पर दया कर रहे हैं और राज्य की दया पर रह रहे हैं। गांधी जी की ये पंक्तियाँ समाज के सबसे उपेक्षित वर्गों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता का इजहार कर रही है। उन्हें दलित-विरोधी बताने की कोशिश न के केवल तथ्यात्मक रूप से गलत है बल्कि दलित आंदोलन के हित में भी नहीं है। वस्तुत: गाँधी और अम्बेदकर की साझी विरासत के सहारे ही भारतीय समाज के क्रांतिकारी रूपांतर की उम्मीद की जा सकती है।

भारतीय समाज दलितों को हिन्दू धर्म में सम्मान के साथ जीने देता है और न हिंदू धर्म की दहलीज को लांघने देता है। ऐसे में दलित करे तो क्या करें? अब मूल प्रश्न यह है कि हिन्दूवाद का कहर दलितों पर ही क्यों टूटता है? सबसे पहले तो गौर करने की बात यह है कि दलित कोई विशेष जाति या समुदाय नहीं है बल्कि दलित शब्द उन लोगों का प्रतिक है जो सदियों से दबाये और कुचलें जाते रहे हैं जो अभाओ से जूझते हुये सदियों से धरती पर स्वर्ग का निर्माण करते आ रहे हैं ये मेहनतकश लोग हैं। बस दुर्भाग्य यह है कि समाज इनको घटिया समझकर नकारता तो रहा है परन्तु इन्हें अपनाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया है। इस जातीय आतंकवाद के कुहरे में आज समूचा दलित समुदाय के सामने मुख्य समस्या यह है कि कट्टर हिंदूवादी आतंक से कैसे मुक्ति

मिले। इसके लिए दो विकल्प है एक तो यह कि हम हिंदू धर्म की सीमाओं को लांघकर अन्य धर्मो के बीच में जाकर सम्मान खोजें। इसी वजह से अनेक दशकों से दलितों का धर्मान्तरण हो रहा है परन्तु धर्मान्तरण ही दलितों का एकमात्र विकल्प है इस पर दलित चिंतक एक मत नहीं है। दलितों के मसीहा बाबू जगजीवन राम का मनना है कि धर्मान्तरण कायरतापूर्ण कदम है। हरिजन जिस धर्म में जायेंगे उनका हरिजन होने का अभिशाप भी उनके साथ-साथ जायेगा। इसलिए दलित उद्धार के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रांति का आह्वान करना चाहिए। 'दलित टूडे' के सम्पादक दलितों का उद्धार धर्मान्तरण से नहीं बल्कि शिक्षा से मानते हैं। इसी मत को स्वीकार करते हुए डॉ. सूरजमल सितम शिक्षा को धर्म से ज्यादा जरूरी मानते हैं क्योंकि शिक्षा हीवह माध्यम है जिसके द्वारा मनुषय जहाँ अपना सम्मानजनक रास्ता निर्धारित करता है तो दूसरी ओर दूसरों को भी अच्छे रास्ते पर चलने की प्रेरणा देता है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम दलित उत्पीड़न रोकने के लिए चुनौतियों से डटकर मुकाबला करना जरूरी मानते हैं तो रूपचंद गौतम विचार परिवर्तन को व्यवस्था परिवर्तन का धरदार हथियार मानते हैं। इस सबसे इस बात की पुष्टि होती है कि धर्मान्तरण मात्र वैचारिक शुद्धता के लिए है न कि हिंदू कट्टरवाद के आतंक से बचने के लिए दलितों का सुरक्षा कवच।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व दलित चेतना का आंदोलन परस्पर विरोधाभासी विचारों के बीच धीरे-धीरे आकार ले रहा था दलितोद्धार का प्रश्न विपरीत एवं विरोधी वातावरण से होकर गुजर रहा था। इस तरह की संक्रमणकालीन परिस्थितियों में पूर्ण सामाजिक परिवर्तन आसान नहीं था रूढ़िवादी, पोंगापंथी, शेषणकारी, अत्याचारी एवं समर्थ वर्ग पर चोट करने के लिए उनमें से ही गाँधी और अम्बेदकर जैसे विचारक तथा समाजसुधारक आगे आये जिंहोंने दलितों के शेषण के लिए उच्च जातियों पर करारा प्रहार करते हुए उन्हें कसकर फटकारा, उनकी तीव्र आलोचना की तथा दलितों में उनके अधिकारों के प्रति एक चेतना जागृत की। अत: आज उन पहलुओं को अपनाने की आवश्यकता है जिससे वर्तमान परिवेश में हम अपने अस्तित्व की सूरक्षा कर सके। इसके लिए सबसे पहले हमें शिक्षा को अपनाना होगाा क्योंकि अशिक्षित दुनिया की तमाम उपलब्धियों से हमेशा अलग-अलग रहता है। शिक्षा तमाम समस्याओं की एक सफल कुंजी है।

संदर्भ-सूची

* संदर्भ, हंस, अंक सिम्बर 2002, पृष्ठ 63
* य.दि. फड़के, अम्बेदकरी चलवल, पृष्ठ 34
* हरिजन से दलित, सं. राजकिशोर, पृष्ठ 113
* अम्बेदकर और गाँधी: गणेश मंत्री, राष्ट्रिय सहारा, संपादकिय, 28 मार्च 1998
* गाँधी, अम्बेदकर और दलित, पृष्ठ 2,3
* दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओम प्रकाश बाल्मीकि, पृष्ठ 48, 49
* दलित समाज दशा और दिशा, डॉ. राजविर सिंह 'कमल' पृष्ठ 125
* युद्धरत आम आदमी, रमणिका गुप्ता, अंक 41-42, 1998 पृष्ठ 6

पश्चिमी चम्पारण जिला का भूमि उपयोगः एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० राजू कुमार

पोस्ट रिसर्च स्कॉलर, भूगाोल विभाग,
बाबा साहेब भीम राव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुज्जफरपुर

निबंध सार

भूमि एक ऐसा प्राकृतिक भौतिक संसाधन है जिसका उपयोग मानव न सिर्फ अपनी सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है, बल्कि यह प्रत्यक्षतः पर्यावरण को भी प्रभावित करता है। सभ्यता के शैशव काल में कम जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्र के बीच कोई नियोजित अंतर्सम्बंध नहीं था, परन्तु आज के वैश्विक संदर्भ में जनसंख्या में अप्रत्याशित अभिवृद्धि और विकासपरक मानवीय क्रियाओं ने पृथ्वी पर भूमि-क्षेत्र को अपेक्षाकृत परिसीमित कर दिया है, क्योंकि मानवीय आवश्यकताओं की परिमाणात्मक वृद्धि के साथ भूमि के रूप में प्राप्त सीमित संसाधन का विस्तार नहीं हो सकता। इस नूतन वैश्विक परिदृश्य में इस संसाधन के अधिकतम उपयोग द्वारा वृद्धिरत मानवीय आवश्यकताओं को तुष्ट करना एक महती कार्य है और इस दिशा में संभावनाओं को तलाशने में भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन और विश्लेषण सकारात्मक परिणाम देता है। इसका अध्ययन जनसंख्या विस्तार और मानवीय क्रियाओं की अभिवृद्धि के फलस्वरूप भू-संसाधन पर पड़ने वाले दबावों के आकलन के लिये भी अनिवार्य है।

भौगोलिक विशिष्टताओं और प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से गंगा का मैदानी क्षेत्र विश्व के उन गिने-चुने क्षेत्रों में से एक है, जो अपनी पर्यावरणिक स्थिति और महत्व के लिये भूगोलविदों के लिए आकर्षण और अनुशीलन के केंद्र हैं। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि अपनी इसी विशिष्टता के कारण जनसंख्या की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक सघन है, क्योंकि उन्नत कृषि उत्पादन वाले इस क्षेत्र में न सिर्फ मानव-क्षुध को तृप्त करने की क्षमता है, बल्कि कृषि क्षेत्र में रोजगार के व्यापक अवसर ने भी इस क्षेत्र को सघन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परन्तु क्षेत्र में जनसंख्या की बढ़ती सघनता से मानवीय आवश्यकतायें और क्रियायें भी बढ़ी हैं और इसका सीधा प्रभाव क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप पर पड़ा है।

मुख्य शब्दः स्थाई चारागाह, शुद्ध बोया गया क्षेत्र, प्राथमिक आँकड़े, चम्पा, मझौलिया

विधि तंत्र

शोध कार्य व्यक्तिगत अवलोकन, परिभ्रमण, प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के संग्रह, आंकड़ों के सरणीकरण, मानचित्रण एवं आलेख के निर्माण तथा विश्लेषण पर आधारित है। चयनित जिला पश्चिमी चम्पारण के विभिन्न प्रखंडों के क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा संग्रह किए गए प्राथमिक आँकड़े तथा जिला एवं राज्य स्तर पर संग्रह किए गए द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

पश्चिमी चम्पारण जिला की स्थिति, विस्तार

वर्तमान पश्चिमी चम्पारण जिला बिहार राज्य के उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित हैं। इस का अंक्षाशीय विस्तार 26°40'15" उत्तरी अंक्षाश से लेकर 27°32' 15" उत्तर अंक्षाश तथा 83°50'30" पूर्वी देशान्तर से लेकर 85°45' 30" पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत

हैं। इस का क्षेत्रफल 5228 वर्ग किलोमीटर हैं। इस के उत्तर में नेपाल का पर्वतीय क्षेत्र, पूर्व में पूर्वी चम्पारण, उत्तर पश्चिम में उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण-पश्चिम में गडंक नदी स्थित है। इस जिला के अन्तर्गत 18 ब्लॉक हैं जिसमें 5 ब्लॉक के अन्तर्गत नगरीय क्षेत्र शामिल है अन्य ब्लॉक तुलनात्मक दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्र हैं। इस जिला के अंतर्गत 1483 आवासीय गाँव है।

पश्चिम चम्पारण जिला की उत्पत्ति का इतिहास हिन्दु सभ्यता के अंतर्गत अद्वितीय हैं। अतीत काल में यहाँ चम्पा नामक अरण्य था जिसमें चम्पा नामक वृक्षों की बहुलता थी कलान्तर में विकास कार्यो के परिणाम स्वरूप चम्पा नामक अरण्य समाप्त हो गया और इस क्षेत्रका नाम चम्पारण पड़ा। चम्पारण दो शब्दों के मेल से बना हैं। चम्पा और अरण्य (चम्पा+अरण्य) चम्पारण! चम्पा नाम के वृक्षों के बहुलता के कारण ही क्षेत्रका नाम चम्पारण पड़ा। पश्चिम चम्पारण पहले सारण और पूर्वी चम्पारण का अंग था लेकिन 10 अक्टूबर 1973 को प्रशासनिक जटिलता के कारण इसे पूर्वीचम्पारण से अलग कर नया जिला पश्चिम चम्पारण बनाया गया।

पश्चिमी चम्पारण जिला की अवस्थिति

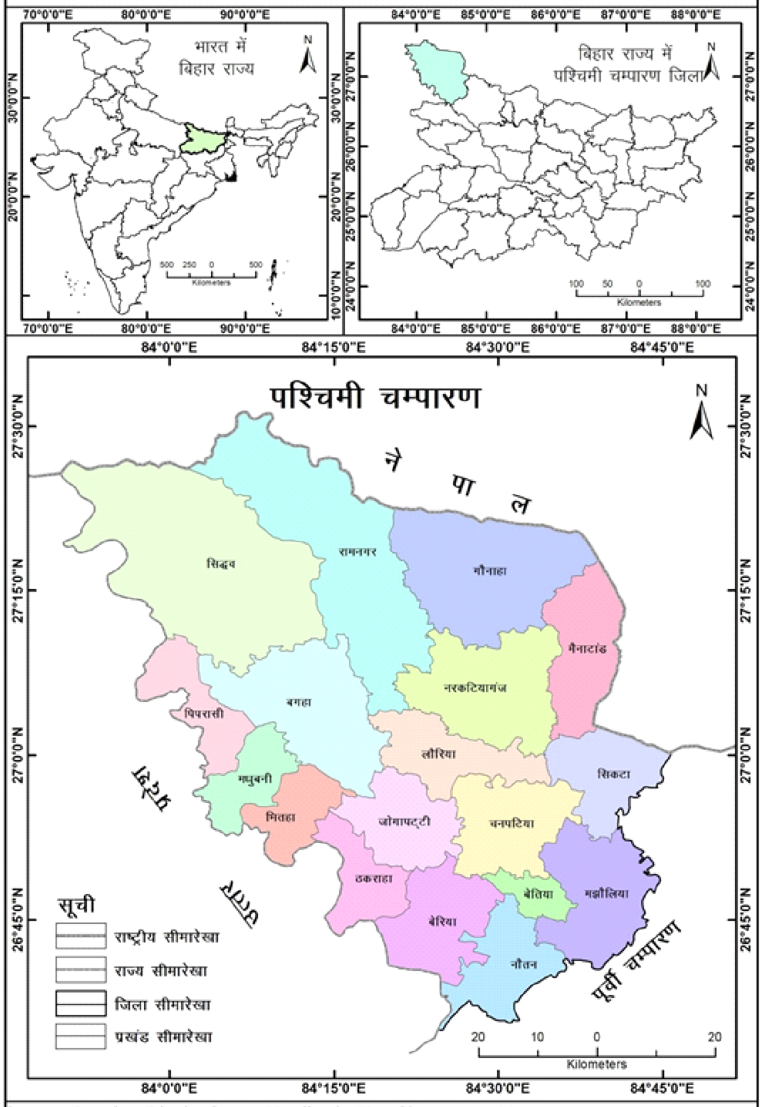

Source : Based on District Census Handbook, West Champaran : 2011

पश्चिमी चम्पारण जिला का भूमि उपयोग

भूमि एक प्राकृतिक संसाधन है। कृषि प्रधान देशों एवं प्रदेशों में इस का महत्व और अधिक बढ़ जाता हैं। भूमि का ठीक-ठीक उपयोग करने से न केवल कृषि-उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि बाढ़, सूखा तथा बंजर भूमि की समस्याएँ भी कम हो जाती है। अत: भूमि का समुचित उपयोग आवश्यक है। अध्ययन क्षेत्रपश्चिमी चम्पारण जिले के भूमि-उपयोग पर इसके स्थल रूप, जलवायु, मिट्टी और मानव प्रयत्नों का प्रभाव पड़ा है। जिले के सर्वाधिक भूमि, कृषि कार्य के अंतर्गत आती है। गैर कृषि कार्यो में लगी भूमि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु चारागाह क्षेत्र तथा वन क्षेत्र की कमी है। अध्ययन क्षेत्र पश्चिमी चम्पारण जिले में उपजाऊँ समतल जलोढ़ मिट्टी पाई जाती है इसलिए इस के अधिकांश क्षेत्रफल पर कृषि कार्य किये जा रहे है। पर्याप्त वर्षा तथा सदावाहिनी नदियों के कारण यहाँ सतही तथा भूमिगत जल संसाधन में प्रर्याप्त मात्र में उपलब्ध है। अध्ययन क्षेत्र पश्चिमी चम्पारण जिला की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। जिसके कारण कृषि कार्य तेजी से बढ़ रही है जिसके कारण कृषि कार्य के अतिरिक्त यहाँ गैर कृषि क्षेत्र में जैसे मकान, सड़क, रेलमार्ग, छोटे-छोटे उद्योग में भूमि का उपयोग तेजी से बढ़ा है। इस के उत्तर-पश्चिम भाग में संकीर्ण पर्वतीय भाग है वहाँ कृषि कार्य के बदले वन तथा चारागाह के अंतर्गत भूमि का उपयोग हो रहा है। पश्चिमी चम्पारण जिले का एक बड़ा भाग बाढ़ प्रभावित क्षेत्र के अंतर्गत भी आता है।

तालिका-1: अध्ययन क्षेत्र-पश्चिमी चम्पारण जिला का भूमि उपयोग वर्ष-2015-2016

क्र0 संख्या	भूमि उपयोग	क्षेत्र एकड़ में	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
1.	वन	157163.22	13.13
2.	ऊसर और गैर कृषि योग्य भूमि	4297.90	0.35
3.	गैर कृषि कार्यो में लगी भूमि	170684.06	14.26
4.	कृषि योग्य बंजर भूमि	3022.23	0.25
5.	स्थाई चारागाह	2882.9	0.24
6.	अन्य परती भूमि	1398.81	0.11
7.	विविध (पेड़ पौध आदि)	14938	1.25
8.	चालू परती भूमि	20371.86	1.70
9.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	767269.98	63.88
10.	एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र	86680.24	5.57
	कुल भूमि	**11966347**	**100 प्रतिशत**

स्त्रोत: जिला स्टैटिस्कल विभाग पश्चिमी चम्पारण वर्ष: 2015-2016

वन: वर्ष 2015-2016 में वन के अंतर्गत पश्चिमी चम्पारण जिला का 157163 एकड़ है। जो पश्चिमी चम्पारण जिला के कुल क्षेत्रफल का 13.13 प्रतिशत है। भारतीय वन नीति के अनुसार पर्यावरण संतुलन के लिए 33 प्रतिशत भूमि पर वन होना आवश्यक है। इस लिए वन के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़ाने की जरूरत है। क्योंकि यह वर्षा को आर्कषित करता है मिट्टी को संरक्षण प्रदान करता है। इससे अनेक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष लाभ है। वर्तमान समय में पश्चिमी-चम्पारण के बेतिया, मझौलिया, योगापट्टी, नरकटियागंज, लौरिया, सिकटा, बगहा, मधुबनी, ठकराहा में वन नहीं है सिद्धव प्रखंड में सर्वाधिक वन है इस के बाद क्रमश: मैनाटॉड़, गौनाहा का स्थान आता है, चम्पारण में वनों के अंतर्गत भूमि, संर्कीण पहाड़ी क्षेत्रें में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त गंडक के तटवर्ती भाग में भी वन का विस्तार है।

ऊसर और गैर कृषि योग्य भूमि: ऊसर और गैर कृषि योग्य भूमि अंतर्गत पश्चिमी चम्पारण जिला के 4297 एकड़ भूमि है। यह पश्चिमी चम्पारण जिला के कुल क्षेत्रफल का 0.35 प्रतिशत है। इस प्रकार की भूमि के अंतर्गत वे सभी भूमि आती है जो

व्यावहारिक दृष्टि से कृषि के लिए अनुपयोगी तथा बेकार है। इसके अंतर्गत पथरीली या बलुई, बंजर भूमि आती है। इसके अंतर्गत लौरिया प्रखंड में सर्वाधिक भूमि पाई जाती है यह एकड़ में 3070 है। इसके बाद क्रमश गौनाहा, नरकटियागंज का स्थान आता है। गैर कृषि कार्यो में लगी भूमि-पश्चिमी चम्पारण जिला के अंतर्गत गैर कृषि क्षेत्र में 170687.06 भूमि लगी है। यह जिले के कुल क्षेत्रफल का 14.26 प्रतिशत है। गैर कृषि कार्यो में लगी भूमि के अंतर्गत, बस्तियाँ, नगर, तालाब, नहर, सड़क, रेलमार्ग, मंदिर, मस्जिद, औद्योगिक प्रतिष्ठान आते हैं। कृषि क्षेत्र के बाद पश्चिमी चम्पारण का सर्वाधिक भूमि गैर कृषि कार्य में लगी है। गैर कृषि के अंतर्गत सर्वाधिक भूमि क्रमशः मझौलिया और योगापट्‌टी प्रखंड के अंतर्गत है जबकि सबसे कम गौनाहा प्रखंड के अंतर्गत है।

कृषि योग्य बंजर भूमिः कृषि योग्य बंजर भूमि कृषि योग्य है लेकिन कुछ समस्याओं के कारण ये बंजर बनी हुई है इनमें जंगली घास, पौधे तथा बाढ़ का पानी पहुँच गया है जल निकासी की सुविधा कम है। इसके अंतर्गत पश्चिमी चम्पारण का कुल क्षेत्रफल का 0.25 प्रतिशत भूमि है। कृषि योग्य सर्वाधिक बंजर भूमि नरकटियागंज प्रखंड में है।

स्थाई चारागाहः स्थाई चारागाह के अंतर्गत पश्चिमी चम्पारण जिला का 82.95 एकड़ भूमि है जो जिला के कुल क्षेत्रफल का 0.24 प्रतिशत भूमि है। चारागाह के अंतर्गत सर्वाधिक भूमि गौनाहा प्रखंड के अंतर्गत 495 एकड़ भूमि पर चारागाह उपलब्ध है। सबसे कम बैरिया प्रखंड में 18.25 एकड़ भूमि चारागाह के अंतर्गत है।

अन्य परती भूमिः अन्य परती भूमि पश्चिमी चम्पारण जिला के कुल क्षेत्रफल का 0.11 प्रतिशत है। अन्य परती भूमि के अंतर्गत दो से पाँच वर्षो तक के परती भूमि को सलंग्न की जाती है। यह भूमि एक से अधिक और पाँच से कम वर्षो तक विभिन्न कारणों से परती छोड़ जाती है। अन्य परती भूमि की उपलब्धता विभिन्न प्रखंडों में अलग-अलग है। अन्य परती भूमि लौरिया प्रखंड के सर्वाधिक 698.41 एकड़ है।

विविधः इसके अंतर्गत उन सभी कृषि-योग्य भूमि को सम्मिलित किया जाता है। जो किसी न किसी प्रकार की खेती के प्रयोग में लायी जाती है। परन्तु इनकी गणना शुद्ध बोये गये क्षेत्रें में नहीं होती है इसके अंतर्गत रोपण कृषि या बगानी कृषि आता है। जिनमें आम, महुआ, लीची, अमरूद, केला इत्यादि आते है। विविध कृषि के अंतर्गत चम्पारण जिला का कुल क्षेत्रफल का 1.25 प्रतिशत भूमिआते है। विविध के अंतर्गत सर्वाधिक भूमि पिपरासी में 2020 एकड़ तथा मझौलिया प्रखंउ में 1906 एकड़ है इस का बाद योगापट्‌टी 1380 एकड़ तथा चनपटिया का 1280 एकड़ भूमि संलग्न है। सबसे कम रामनगर में 51.81 एकड़ है।

चालू परती भूमिः चालू परती भूमि की परिभाषाएँ भारत के विभिन्न भागों में असमान है। पंजाब में उस भूमि को चालू परती कहा जाता है। जिसमें दो वर्षो से कम की अवधि तक खेती नहीं हुई है। बिहार में चालू परती भूमि के अंतर्गत वैसी भूमि आती है जो सर्वेक्षण के समय कृषि के अंतर्गत नहीं रही हो, किन्तु जिसमें इससे पिछले वर्षो में खेती हुई हो। चालू परती भूमि के अंतर्गत पश्चिमी चम्पारण जिला के कुल क्षेत्रफल का 1.70 प्रतिशत भूमि संलग्न है। चालू परती भूमि ठकराहाँ और नरकटियागंज में सर्वाधिक है। शुद्ध बोया गया क्षेत्रशुद्ध बोया गया क्षेत्र का तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है, जो कृषि के अंतर्गत है। पश्चिमी चम्पारण एक कृषि प्रधान जिला है, जिसके अधिकांश लोग की अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर है। पश्चिमी चम्पारण जिला का समतल मैदानी भाग, उपजाऊ मिट्‌टी, धरातलीय एवं भूमिगत जलसंसाधन की सम्पन्नता इत्यादि के कारण अधिकांश भाग श्शुद्ध बोया हुआ है।

शुद्ध बोया गया क्षेत्रः शुद्ध बोया गया क्षेत्र पश्चिमी चम्पारण जिला के अंतर्गत सबसे बड़ा क्षेत्र है। पश्चिमी चम्पारण जिला का कुल क्षेत्रफल का 63.88 प्रतिशत भूमि शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अंतर्गत है।

एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्रः पश्चिमी चम्पारण जिला के कुल क्षेत्रफल का 5.57 प्रतिशत एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र है। यह वैसा क्षेत्र है जो पथरीली है साथ ही यहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है।

उपर्युक्त भूमि उपयोग को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है। कृषित और आकषित कृषित के अंतर्गत शुद्ध बोया गया क्षेत्र एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र चालू एवं अन्य परती भूमि एवं विविध को रखा जा सकता है। शेष सभी भूमि को आकृषित वर्ग में रखा जा सकता है।

निष्कर्ष

जनसंख्या वृद्धि से भूमि उपयोग में परिवर्तन होता जा रहा है। जहाँ प्रारंभ में कृषि में खाद्यान्न की प्राथमिकता थी, वहीं धीरे-धीरे मानव अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बागानी कृषि, व्यापारिक और नकदी फसल पर अधिक जोर देने लगा है। मानव की सुविधा विस्तार के लिए सड़के, रेल, डाक-तार, आवास निर्माण, शहर एवं आवासीय कोलोनियों के विकास के लिए नयी भूमि की मांग

बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरूप भूमि उपयोग में परिवर्तन होता जा रहा है। मानव के प्रयासों से अनुपजाऊ भूमि उपयोग में भी परिवर्तन होता जा रहा है। चारागाह, परती व बागान के अंतर्गत आनेवाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए तथा कृषि का प्रयोग दूसरी आवश्यकताओं के लिए हो रहा है।

संदर्भ-सूची

· Chatterjee, S.P (1999) : India : A Physical Geography Publications Division Government of India, New Delhi.

· Geddess, A . (1960) TheA lluvial morphology of the Indo- Gangentic Pains Transcation and papers I.B.G Vol- 28, pp- 262-63

· Randhawa, M.S (1947): The Birth of the Himalays

· Robinson, H (1967) Mon soonA sia : A Geographical survey

. Singh L.R (1965): The Tarari Resion of U.P: A Study of Human Geography Ram Narayan Beni PrasadA llahabad.

· Valdoya, K.S (1977) : Structural set up of the kumau Lessor Himalaya In : Himalaya Science de la tera UN. R.s Paris 268, pp-448-62

· Wadia. D.N. Mehar (1993) Geography of India, MC Grawhill New Delhi.

· Khullar D.R. (2000) A Comprehensive Geography Kalyani Publication Ludhiyana, New Delhi Page-59

· Bharti Radhakant (2004) Rivers of India (Trabslated by andeep sinha) National book Trust, India New Delhi.

* अताउल्लाह, मोहम्मद (2002), बिहार का भूगोल, बिलियन्ट पब्लिकेशन्स पटना, पृष्ठ संख्या-15
* सिन्हा प्र0 विश्वनाथ, नाजिम मोहम्मद, पाठक चन्द्रशंखर, अहमद प्रिंस फिरोज: (2014) बिहार का भूगोल पृष्ठ संख्या-17
* मेमोरिया चतुर्भुज एवं जैन: एस सी (2003) भारत का भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, पेज 57, 59, 82, 94, 85
* गौतम अलका: (2008) भारत का वृहद भूगोल, शारद पुस्तक भवन इलाहाबाद-2 पेज- 56, 7

अति-पिछड़ों और निजी क्षेत्र में आरक्षण का सवाल: एक अध्ययन

डॉ० गणेश सहनी

एम.ए., पीएच.डी, राजनीति विज्ञान,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नब्बे के दशक की शुरूआत में हुए आरक्षण विरोधी आंदोलन के बाद इस संबंध में विवादों की दूसरी लहर उस समय आई जब सन् 2006 में केंद्र की संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार में मानव संसाधन मंत्री और वरिष्ठ कांग्रेसी नेता अर्जुन सिंह ने उच्च शिक्षा के संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 फीसदी सीटों के आरक्षण का प्रस्ताव किया। दिल्ली के मेडिकल छात्रों ने इसका कड़ा विरोध किया और मई के मध्य भाग से जून के पहले हफ्ते तक आरक्षण विरोधी आंदोलन चलाते रहे। यह आंदोलन मंडल सिफारिशों के खिलाफ चले पहले आंदोलन की तरह व्यापक आधार वाला नहीं था। हालाँकि समाचार माध्यमों के आरक्षण विरोधी पूर्वग्रह ने इसे लगातार सुर्खियों में बनाए रखा, पर देश के विभिन्न भागों से इस छिटपुट समर्थन ही मिला। सरकार ने आंदोलनकारियों की चिंताओं को समझते हुए बीच का रास्ता निकाला और करीब आठ हजार करोड़ रूपए खर्च करने का प्रावधान करते हुए शिक्षा संस्थानों में सीटें बढ़ाने का निर्णय ले लिया। आरक्षण विरोधी मेडिकल छात्रों ने इसका भी विरोध किया। संभवत: उन्हें लग रहा होगा कि जब इन संस्थानों में सीटें बढ़ जाएँगी, तो आरक्षित छात्र और सामान्य श्रेणी के छात्रों समेत प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और प्रबंधन में प्रशिक्षितों की संख्या बढ़ जाएगी। नौकरियों के लिए प्रतियोगिता और सघन हो जाएगी। आरक्षण विरोधी छात्रों का यह अंदेशा गलत भी साबित हो सकता है और सही भी। यह गलत इसलिए साबित हो सकता है कि जब तक नये प्रशिक्षित लोगों की खेप बाजार में आएगी, उस समय तक बाजार की प्रक्रियाएँ भी अवसरो को बढ़ा चुकी होगी। यह सही इसलिए साबित हो सकता है कि तब तक निजी क्षेत्र में भी आरक्षण के प्रावधान हस्तक्षेप कर चुके होंगें।

दरअसल आरक्षण विरोधियों का पाखंड और छल इतना नंगा हो चुका है कि उसे अंधा भी देख सकता है। पहले जब नौकरियों में आरक्षण दिया गया था तो उनका तर्क था कि इसके बजाय पिछड़ों को शिक्षा में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। आज जब उन्हें शिक्षा में प्रोत्साहन का प्रस्ताव रखा जा रहा है, तो पहले दिए जाने वाले इस तर्क को पूरी तरह भुला दिया गया है। आरक्षण विरोधी पैरोकार आईआईटी और आईआईएम की साख के साथ देश की साख जोड़ते हैं, पर वे बहुत सुविधाजनक तरीके से भारतीय सामाजिक यथार्थ के उन पहलुओं की तरफ से आँखें बंद कर लेते हैं जिसके तहत जातिगत विभेद समाज के बहुत बड़े हिस्से को समान नागरिकता के अधिकारों का उपभोग करने लायक ही नहीं छोड़ते। ऐसे आरक्षण विरोधी तो इतने दृष्टिहीन हैं कि सिर पर मैला ढोने वाली कुप्रथा की तरफ से भी आँखें बंद कर लेते हैं, जैसे कि इस प्रथा से देश की साख अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर हो रही हो। जाहिर है कि आरक्षण पर चल रही मौजूदा बहस आरक्षण विरोधियों के पाखंड और राजनीतिक दाँवपेच की संकीर्णताओं के कारण बेहद विकृत हो गई है। इसकी विकृति की सीमा यहाँ तक बढ़ गई है कि ओबीसी की संविधानसम्मत श्रेणी के अस्तित्व पर ही चालाकी से प्रश्न चिह्न लगाए जाने लगे हैं। इस बहस को सकारात्मक बनाने के लिए नागरिक समाज की शक्तियों को अलग से पहलकदमी ले कर कुछ विशिष्ट हस्तक्षेप करना होगा ताकि समातामूलक समाज बनाने का एजेंडा जड़ता का शिकार न हो जाए।[1]

आरक्षण के सवाल पर विवादों के ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा ठीक वैसा ही है जैसा उस समय निकला था जब पहली बार मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करने का फैसला किया गया था। ठीक पहले की ही तरह सामाजिक-आर्थिक रूप से स्थापित अभिजनों की तरफ से आरक्षण नीति की वैधता उपयोगिता पर सवाल उठाए जा रहे है, और ठीक पहले की ही तरह राजनीतिक ताकतें इस नीति का लाभ उठा कर अपनी गोटी लाल करने की फिराक में हैं। समतामूलक समाज बनाने के लिए अपनायी जाने

वाली संविधानसम्मक और न्यायिक दृष्टि से निर्विवाद इस नीति के साथ जो बदसलूकी नब्बे क दशक के शुरूआत मे की जा रही थी, वैसी ही स्थिति एक बार फिर बनती हुई दिख रही है। एक तरफ मैरिट के नाम पर आरक्षण को प्रगति-विरोधी विचार के रूप में पेश किया जा रहा है, दूसरी ओर राजनीतिक दाँव है जो समान अवसरों और समान नागरिकता की संभावनाएँ साकार करने के बजाय ज्यादा से ज्यादा राजनीतिक फायदे हड़पने के चक्कर में है। अभिजनों को लग रहा है कि अगर आईआईटी और आईआईएम संस्थानों में पिछड़ों वर्गों के लिए आरक्षण बिना विरोध के स्वीकार कर लिया गया तो अगला नंबर निजी क्षेत्र में आरक्षण की पेशकश का होगा। आरक्षण विरोधी मोर्चेबंदी के पीछे यही अंदेश काम कर रहा है।[2]

दूसरे आरक्षण विरोधी आंदोलन के थक कर खत्म हो जाने का मतलब यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि अब इस तरह हा आंदोलन दोबारा नहीं होगा। आरक्षण विरोधी मेडिकल छात्रों और उनके समर्थकों के सरोकारों से साफ था कि वे सामाजिक न्याय के सिद्धांत के बंधनों में बाजार की शक्तियों को बाँधने की किसी भी पेशबंदी को भाँप गए हैं। वे समझ गए हैं कि सरकारी क्षेत्र में आरक्षण जितना हो सकता था, उतना हो चुका है। अब निजी क्षेत्र की बारी है। सरकार और निजी क्षेत्र के बीच इसकी चर्चा शुरू हो चुकी है।

खास बात यह है कि इस बहस से अभी तक कोई कारगर नीतिगत प्रस्ताव निकल कर नहीं आ पाया है। सरकार बीच-बीच में जिस नीति के कार्यान्वयन के दावे करती रहती है, कोई नहीं जानता कि वह नीति दरअसल क्या है। कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार के चुनावी वायदों में यह शामिल था और न्यूनतम कार्यक्रम में भी निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू करने का जिक्र है। लगता है सरकार यह मान कर चल रही है कि कोई नयी नीति बनाने की जरूरत नहीं है और केवल पहले से चली आ रही नीति को ही निजी क्षेत्र में कार्यान्वित किया जाना काफी होगा। आरक्षण के निजी क्षेत्र में विस्तार की माँग करने वाले दबाव समूहों का रवैया भी इसी किस्म का है। उन्हें तो लगता है कि सिर्फ रानीतिक इच्छा शक्ति की कमी है, वरना आरक्षण के मौजूदा प्रावधान निजी क्षेत्र से मनवाना कठिन नहीं होगा। दूसरी तरफ बाजार की ताकतों पर भरोसा करने वाले वे जड़ उदारतावादी हैं जो सब कुछ कारपोरेट सेक्टर की सदिच्छा पर ही छोड़ देना चाहते हैं। इसके लिए कारपोरेट सेक्टर की सदिच्छा पर ही छोड़ देना चाहते हैं। इसके लिए कारपोरेट सेक्टर की सदिच्छा पर ही छोड़ देना चाहते हैं। इसके लिए कारपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी के सिद्धांत का सहारा लिया जा रहा है, लेकिन जिसका निजी क्षेत्र के व्यवहार और आचरण में कीहं कोई प्रमाण नहीं मिल रहा है। ये उदारतावादी चाहते हैं कि विशेष अवसरों के सिद्धांत पर क्षेत्रवार अमल की कोई नीति न बनाई जाए और उसे अलग-अलग कारपोरेट फर्मों की इच्छा पर छोड़ दिया जाए। इस तरह की नीति का परिणाम यह हसेगा कि इस नीति के कार्यान्वयन की निगरानी करने की जिम्मेदारी किसी को नहीं दी जाएगी। विभिन्न उद्योग संघ भी इस सिलसिले में केवल आँकड़े और अन्य जानकारी जमा करने के केंद्र बन कर रह जाएँगे। कुछ कंपनियाँ सामाजिक न्याय और डायवर्सिटी लागू करने की शोकेस बन कर रह जाएँगी, और ज्यादातर कंपनियाँ कर्मचारियों की भर्ती के मामले में अपनी पुरानी और भाई-भतीजावादी नीतियों पर चलती रहेंगी। दरअसल, उदारतावादियों की यह दलील अपने आप में एक हथकंडे की तरह है ताकि निजी क्षेत्र सामाजिक न्याय की लफाजी करता रहे, पर उसे एक सुसंगत नीति का रूप न लेने दिया जाए।[3]

इस हालत का फायदा सरकार भी उठा रही है, और निजी क्षेत्र को भी इसका लाभ हो रहा है। दोनों ने मिल कर निजी क्षेत्र में आरक्षण के प्रश्न को 'अनिर्णय बनाए रखने की सक्रिय नीति' के दायरे में धकेल दिया है। पार्टियाँ निजी क्षेत्र की अनिच्छा पर दोष मढ़ कर इस मुद्दे को राजनीतिक रूप से भुनाने की मंशा से ठंडे बस्ते में डाले हुए हैं। निजी क्षेत्र सोचता है कि इसमें जितनी देर हो उतना अच्छा है। चूँकि सरकार पुरानी नीति को ही निजी क्षेत्र में लागू करना चाहती है, इसलिए आरक्षण विरोधियों को एक बार फिर बदले हुए भूमंडलीय आर्थिक संदर्भ में विशेष अवसरों के सिद्धांत की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाने का मौका मिल गया है।

वस्तुस्थिति यह है कि आरक्षण का सिद्धांत एक है, पर सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र में उसे लागू करने के लिए दो अलग-अलग नीतियाँ अपनानी होंगी। दोनों नीतियों के बीच फर्क करने के तीन मानक हो सकते हैं। पहला, निजी क्षेत्र में आरक्षण को न्यायसंगत ठहराने के लिए एक नए परिप्रेक्ष्य का विकास (दूसरा, नीतिगत कार्यान्वयन के आयामों का निर्धारण) और तीसरा, लाभार्थियों की शिनाख्त करने का तरीका। अगर सरकारी क्षेत्र में आरक्षण का सवाल राज्य द्वारा समाज में हो रही प्रतियोगिता के परिणामों में हस्तक्षेप से जुड़ा हुआ है, तो लिजी क्षेत्र में इसका मतलब दूसरा है। वहाँ सामाजिक न्याय का अर्थ उदारतावादी लोकतंत्र के तर्क के मुताबिक लगाया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र में आरक्षण का अर्थ होना चाहिए आर्थिक होड़ में सबके लिए समतल मैदान तैयार करना ताकि विभिन्न सामाजिक पृष्ठ भूमियों से आए लोगों के साथ किसी तरह का भेदभाव न होने की गारंटी की जा सके।[4]

इस संदर्भ में उदारतावादी लोकतंत्र की खामी यह है कि उसका पलड़ा अघोषित रूप से स्पर्द्धा में शामिल प्रतियोगितों के बीच से मजबूत प्रतियोगी के पक्ष मे झुका रहता है। वह पहले से ताकतवर प्रतियोगी के उस फायदे को नजरअंदाज कर रहता है। वह पहले से ताकतवर प्रतितयोगी के उस फायदे को नजरअंदाज कर देता है जिसके तहत उसे स्पर्द्धा में बढ़त के साथ प्रवेश करने में कामयाबी मिलती है। उदारतावादी लोकतांत्रिक व्यवस्था जीवन के हर क्षेत्र में मुट्ठी भर अभिजनों का बोलबाला मानती है जिसके कारण वे अपनी श्रेष्ठतर समझी जाने वाली नैतिकता और शक्ति के दम पर स्पर्द्धा के नियमों को ही अपने मक्ष मे कर लेते हैं। अभिजनों का दावा होता है कि यह सब वे क्रियाविधि संबंधी पारदर्शिता बनाए रखने के लिए कर रहे हैं। इस तरह राज्य के दायरे के बाहर के क्षेत्रों में मौजूद आर्थिक, सांस्कृतिक और सौंदर्याभिरूचि संबंधी असमानताएँ अभिजनों के पक्ष में ही काम करती रहती हैं। दरअसल, उदारतावादी लोकतांत्रिक सिद्धांत के पास राज्य की राजनीतिक ताकत और राज्य के दायरे से बाहर की ताकतों के बीच संबंध का कोई संतोषतनक फार्मूला नहीं है। इन राज्येतर ताकतों को न केवल उदारतावादी राज्य मान्यता देता है, बल्कि उन्हें प्रोत्साहित भी करता है। यही है वह वजह जिसके कारण निजी क्षेत्र में आरक्षण के लिए कोई बेहतर 'लोकतांत्रिक आधार' अभी तक नहीं बन पाया है। लेकिन, यह भी एक हकीकत है कि इस कमी के बावजूद उदारतावादी सिद्धांत सरकार को ऐसी नीतियाँ बनाने से नहीं रोकता जिसके तहत निजी क्षेत्र में भर्ती के लिए समतल मैदान की गारंटी की जा सके।

राजकीय क्षेत्र के मुकाबले निजी क्षेत्र में कहीं अधिक विविधता है। सैकड़ों-हजारों विभिन्न तरह के आर्थिक संगठन हैं। न केवल उनकी आकार भिन्न है, बल्कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और नीतिगत आयाम भी अलग-अलग हैं। ऐसे विविधता संपन्न क्षेत्र के लिए कोई लागू करने लायक नीति तैयार कर पाना, उसके कार्यान्वयन की निगरानी और समीक्षा करना किसी भी तरह से आसान काम नहीं कहा जा सकता। जाहिर है कि एसी परिस्थिति में कोटा निर्धारित करने और लाभान्वितों की शिनाख्त करने वाली सबके लिए एक नीति बनाने से काम नहीं चल सकता। इसके लिए तो एक मार्गनिर्देशिका तैयार करनी होगी जिसके साथ-साथ विभिन्न तरह के लाभार्थियों की एक सामान्य सूची इस संदर्भ के साथ होगी कि एक खास इकाई कितने और कैसे लाभार्थियों को सामाजिक न्याय के सिद्धांत के तहत अपने यहाँ भर्ती कर सकती है। यानी सेवायोजक इकाई को कुछ गुंजाइश देनी होगी ताकि वह आपतौर से मार्गनिर्देशिका और सामान्य सूची के आधार पर अपने हिसाब से लाभार्थियों की संख्या और किस्म तय कर सके। लेकिन, जहाँ तक मार्गनिर्देशिका और सामान्य सूची के निर्माण और उसके कार्यान्वयन की देख-रेख का सवाल है, राज्य को यह जिम्मेदारी उठानी होगी। यह जरूर है कि इस प्रक्रिया में उसे व्यापार जगत के प्रतिनिधियों और राज्येतर क्षेत्र के लोगों को बाकायदा शामिल करना होगा।[5]

दूसरा सवाल है कि निजी क्षेत्र में आरक्षण का लाभार्थी कैसे तय होगा। यह काम भी सरकारी क्षेत्र के तर्ज पर नहीं हो सकता। इसका सबसे पहला कारण यह है कि कर्मकांडीय आधार पर राजसत्ता से विभिन्न समुदायों को तो ऐतिहासिक रूप से दूर रखा गया है, पर आर्थिक क्षेत्र से उन समुदायों को उस तरह बहिर्वेशित नहीं किया गया है। दूसरे, आर्थिक क्षेत्र मे सामाजिक न्याया की अवधरण समुदायों की उन कमजोरियों पर ध्यान दे सकती है जो गैर-पारंपरिक किस्म की और नयी हैं। यानी आर्थिक क्षेत्र में भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ-साथ स्त्रियों और विकलांगों की समुदायगत वंजनाओं का परिष्कार हो सकता है। चूँकि निजी क्षेत्र में आरक्षण के लाभार्थियों का प्रश्न एक से अधिक श्रेणियों से जुड़ा हुआ है, इसलिए कार्यान्वयन के तरीके भी एक से अधिक होंगे। लाभार्थियों की शिनाख्त अलग-अलग और विभिन्न स्थानीय संदर्भों में करनी होगी। लाभार्थी तय करते समय विषमता के ऐतिहासिक पहलुओं को भी ध्यान में रखना होगा, और भेदभाव के समकालीन आयामों को भी ध्यान में रखना होगा, और भेदभाव के समाकालीन आयामों को भी। अर्थात सामाजिक न्याय के पहलू और डायवर्सिटी के पहलू मिला कर ही निजी क्षेत्र की आरक्षण नीति बन सकती है। एक तरफ तो सेवायोजक इकाई को लाभार्थियों की कुछ निश्चिनत श्रेणियों और किसी निर्धारित कोटे से नहीं बाँध जा सकता, दूसरी ओर सरकार को यह सुनिश्चित करना ही होगा कि यह नीति लक्ष्य आधारित हो और कुल मिला कर निजी क्षेत्र सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को वेधता नजर आए।[6]

अगर दलितों के उदाहरण पर गौर किया जाए तो साफ हो जाता है कि निजी क्षेत्र छुआछूत के शिकार रह चुके समुदायों की शिनाख्त सामाजिक न्याय के तर्क के आधार पर कर सकता है। वह खास तौर से उन दलित समुदायों को अपना लाभार्थी बना सकता है जिन्हें अभी तक सामाजिक प्रगति नसीब नहीं हो पाई है। ध्यान रहे कि पारंपरिक रूप से दलित समुदाय जातिप्रथा से बाहर रहे हैं। उन्हें समाज के उत्पादन और सेवाक्षेत्र में कोई तयशुदा भूमिका नहीं दी गई थी। जीवित रहने के लिए उन्हें स्थायी रूप से एसे काम करने पड़े जो उन समुदायों द्वारा भी अस्वच्छ और निकृष्ट माने जाते हैं जो जातिप्रथा के लिचले पायदान पर पड़े हुए हैं। इसी

तर्क के आधार पर जनजातियों को भी निजी क्षेत्र लाभार्थी बना सकता है। आदिवासी दलितों की भाँति कर्मकांडीय और सांस्कृतिक निकृटता के तो शिकार नहीं हैं, पर समाज ने उन्हें शारीरिक अलगाव में डाल रखा है। आधुनिक आर्थिक इकाइयों को चाहिए कि वे पहले आर्थिक और प्रौद्योगिकीय सहायता कार्यक्रमों के जरिए आदिवासियों तक पहुँचें, और फिर उन्हें सेवायोजन के जरिए अपने दायरे में ले लें।[7]

जहाँ तक अन्य पिछड़े वर्गों का सवाल है, सरकारी क्षेत्र की ही भाँति निजी क्षेत्र में भी यह श्रेणी सैद्धांतिक और व्यावहारकि रूप से कुछ दिक्कततलब है। सिद्धांत: यह कहा जा सकता है कि पिछड़े वर्ग समझे जाने वाले खेतिहार और कारीगर समुदाय आर्थिक रूप से अलगाव में पड़े हुए समुदाय नहीं समझे जा सकते। यह सही है कि द्विजों के वर्चस्व के कारण वे कर्मकांडीय और सामाजिक रूप से अलगाव में पड़े रहे, पर जातिप्रथा के आर्थिक पहलुओं का आधार यही समुदाय थे। प्राथमिक उत्पादन से जहुड़े पिछड़े वर्गों के कई समुदाय विभिन्न कोषलों में पारंगत होने के कारण ऐसी सामाजिक पूँजी से सम्पन्न थे जिसके आधार पर आधुनिक अर्थव्यवस्था में जगह बनाना और इस प्रकार मध्यवर्ग में प्रवेश करना उनके लिए अपेक्षाकृत आसान हो सकता है। भारत के प्रत्येक राजय में ऐसी शूद्र जातियाँ हैं जो व्यापार की दुनिया में अपनी कामयाब उपस्थिति दर्ज करा चुकी हैं। इन शूद्र जातियों ने प्रगतिशील बड़े किसानों, भवन निर्माताओं, होटल संचालकों और छोटे-बड़े उद्यमियों के रूप में पैर जमा लिए हैं। गुजरात के पंचाल, दक्षिण भारत के चारी और भंडारी ऐसे उदाहरणों के रूप में देखे जा सकते हैं। दूसरी तरफ, यह भी सही है कि बहुत सी शूद्र जातियाँ अपने पारंपरिक कौशलों से वंचित हो कर भूमिहीन मजदूरी के चक्र में फँस गई हैं। ऐसे समुदायों के लिए निजी क्षेत्र को आदिवासियों की ही भाँति आर्थिक और प्रौद्योगिकीय सहायता कार्यक्रमों का सहारा लेना पड़ सकता है। जाहिर है कि दलितों और आदिवासियों के मुकाबले पिछड़े वर्गों के बीच से आरक्षित सेवायोजना करते समय लाभार्थियों की शिनाख्त करने के मामले में निजी क्षेत्र को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।[8]

कुल मिला कर निजी क्षेत्र में आरक्षण का प्रश्न हल करने के लिए सरकार और कारपोरेट क्षेत्र इन आठ सुझावों पर गौर कर सकता है:

1. निजी क्षेत्र के लिए सामाजिक न्याय का सिद्धांत लागू करने हेतु नए चिंतन की आवश्यकता है। सरकारी क्षेत्र के लिए इस्तेमाल की जाने वाली पद्धति यहाँ नहीं चलेगी। नया चिंतन इस तर्ज पर होना चाहिए कि निजी क्षेत्र के लिए लाभकारी और समुचित नीतियों की सूत्रीकरण उदारतावादी लोकतंत्र के संस्थागत तर्क के दायरे में हो सके।
2. अगर सरकारी क्षेत्र के आरक्षण को ही निजी क्षेत्र में लागू कर दिया गया तो बहुत बड़ा नुकसान होगा। न केवल अर्थव्यवस्था को चोट पहुँचेगी, बल्कि सामाजिक न्याय की स्थापित नीति की साख भी गिरेगी।
3. निजी क्षेत्र के लिए लाभार्थियों की श्रेणियों को फिर से रचना होगा। लाभार्थियों की शिनाख्त करते समय सामाजिक न्याय के पहलू भी ध्यान में रखने होंगे और डायवर्सिटी के भी। यानी पारंपरिक रूप से वंचित समुदाय (जैसे, दलित और आदिवासी) भी शामिल करने होंगे और सांस्कृतिक-राजनीतिक रूप से हाशिए पर पड़े भाषाई व धार्मिक अल्पसंख्यक भी।
4. नीति का कार्यान्वयन करते समय सामाजिक, जनसंख्यामूलक और सांस्कृतिक विभेदों के प्रति संवेदनशील रहना होगा। मसलन, कोई समुदाय किसी इलाके में अल्पसंख्यक हो सकता है, पर किसी दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में उसकी उपस्थिति बहुसंख्यक हो सकती है। स्थानीय और क्षेत्रीय पहलुओं का ध्यान रखने से किसी फर्म को सेवायोजन के अपने लक्ष्य निर्धारित करने में मदद मिल सकती है।
5. यह सही है कि कार्यान्वयन के स्तर पर नीति पूरे एकसार ढंग से लागू नहीं हो सकती, पर उसे राज्य द्वारा कानून बना कर पूरे क्षेत्र के लिए घोषित किया जाना चाहिए, ताकि विभिन्न रूपों में और विभिन्न स्तरों पर पूरा क्षेत्र उसे लागू करने के लिए बाध्य हो।
6. नीति का जोर लाभ पहुँचाने पर होना चाहिए, न कि लाभार्थियों की स्थिर श्रेणी बनाने पर। नीति के तहत निजी क्षेत्र को ऐसी पहलकदमियाँ लेने के लिए प्रोत्साहित होना चाहिए जिससे आर्थिक और प्रौद्योगिकीय सहायता कार्यक्रम चला कर लाभार्थियों को सेवायोजन के योग्य बनाया जा सके और उनकी उद्यमशीलता बढ़ाई जा सके। नीति को इस दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए कि उसके जरिए सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से वंचित समुदाय आधुनिक अर्थव्यवस्था का अंग बन सकेंगे। साथ ही यह नीति निजी क्षेत्र की बहुत सी इकाइयों द्वारा अपनाए जाने वाले भेदभावपूर्ण और पुराने पड़ चुके सेवायोजन संबंधी

रवैये को दुरूस्त करने की दृष्टि से भी देखी जानी चाहिए। मसलन, विभिन्न कंपनियों को चाहिए कि वे लाभार्थियों के लिए अधिकारी प्रशिक्षण के विशेष कार्यक्रम चलाएँ ताकि आवश्यक स्तर की डायवर्सिटी हासिल की जा सके।

7. निजी क्षेत्र की प्रकृति को देखते हुए यह नीति स्थायी रूप से निर्धारित लाभार्थी श्रेणियों को प्रतिनिधित्व देने की नहीं हो सकती, पर इसका मतलब यही नहीं निकाला जाना चाहिए कि राज्य निजी क्षेत्र की हर सेवायोजक इकाई में सांस्कृतिक विविधता की गारंटी न करे।
8. जरूरी नहीं कि इस नीति का रूप आरक्षण जैसा ही हो, पर इसका सामाजिक न्याय वाला चरित्र कमजोर नहीं किया जाना चाहिए। न ही राज्य को इस संबंध में अपनी जिम्मेदारी त्यागनी चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. सेठ, धीरूभाई, 2009, *सत्ता और समाज,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. उपरोक्त।
3. पानंडिकर, वी.ए.पाई. (सं), 1997, पॉलिटिक्स ऑफ बैकवर्डनेस: रिजर्वेशन पॉलिसी इन इंडिया, कोणार्क पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
4. उपरोक्त।
5. दुबे, अभय कुमार (सं), 2002, आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, सी.एस.डी.एस., नई दिल्ली।
6. सेठ, धीरूभाई, 2009
7. मेहता, प्रताप भानु, 2013, द *बर्डेन ऑफ डेमोक्रेसी,* पेनग्यून, न्यू दिल्ली।
8. फ्रैंकल, फ्रेंसीन एवं अन्य (सं), 2000, *ट्रांसाफॉर्मिंग इंडिया: सोशल एण्ड पालिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी,* ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

व्यापक और गहन होता हुआ भारतीय लोकतंत्रः एक अवलोकन

डॉ० मो० आले नबी

एम.ए., पीएच.डी., राजनीति विज्ञान
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

शीत युद्ध खत्म होने के बाद उदारतावादी लोकतंत्र का विमर्श लगातार संकीर्ण होता जा रहा है और भारतीय राज्य आर्थिक-राजनीतिक सत्ता की स्तंभीय भूमंडलीय संरचनाओं के साथ जुड़ने की कोशिश में लगा है, लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि पहले दिनों भारत में क्षत्रीय और स्थानीय राजनीति के स्तर पर इस प्रतिसंतुलित करने वाली मजबूत ताकतें उभरी हैं। आर्थक गतिविधियाँ और संगठन केंद्रीकृत सरकारी नियोजन की जकड़ से छूटते जा रहे हैं। अर्थव्यवस्था में पूँजी का प्रवाह बढ़ने से उसका क्षैतिज प्रसार हुआ है। समाज में नयी ऊर्जा आयी है जो अब तक नौकरशाह समाजवाद की सरकारी विचारधारा के कारण गतिरूद्ध पड़ी हुई थी। दूसरी तरफ नये बाजारों और सस्ती उत्पादन सुविधाओं की तलाश में अंतर्राष्ट्रीय पूँजी और बहुराष्ट्रीय निगमों ने क्षेत्रीय और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं में घुसपैठ की है। नतीजे के तौर पर इन ताकतों का सत्ता की पारंपरिक और स्थानीय संरचनाओं से आमना-सामना हो रहा है। नये सामाजिक आंदोलन भी अंतर्राष्ट्रीय पूँजी के बरक्स खड़े हुए हैं।

भारतीय राजनीति में जमीनी स्तर पर सक्रिय नये सामाजिक आंदोलन पिछले तीन दशकों से स्थानीय जनता की समस्याओं के लिए भारतीय राज्य और सत्ता की स्थानीय संरचनाओं से संघर्ष करते रहे हैं। राजनीतिक पार्टियों की दिलचस्पी केवल चुनाव लड़ने में रह गयी है इसलिए उनके द्वारा छोड़ी गयी जगह को इन्हीं सामाजिक आंदोलनों ने भरा है। यही आंदोलन इस समय भूमंडलीय आर्थिक और राजनीतिक आंदोलनों ने भरा है। यही आंदोलन इस समय भूमंडलीय आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाली ताकतों से संघर्षरत हैं। अंतर्राष्ट्रीय ताकतें स्थानीय दायरों पर कुछ इस तरह से हावी हुई हैं कि उन्हें नियंति और विनियमित करने में नियोजन और नौकरशाही की सरकारी संसथाओं की कोई भूमिका ही नहीं रह गयी है। अंतर्राष्ट्रीय ताकतों ने कुछ दूसरे ही किस्म के स्थानीय संगठनों को जन्म दिया है जो या तो उनके साथ गठजोड़ में हैं या उनके साथ काम कर रही हैं। इनमें अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के लिए समर्थन जुटाने वाली संस्थाएँ भी हैं। परिणामस्वरूप स्थानीय राजनीति के परिदृश्य में टकराव ही टकराव दिखयी देता है। कोई भूमंडलीय संरचनाओं के साथ गठजोड़ में है तो कोई सरकारी संस्थाओं के साथ। कारगिल फूड कंपनी का उदाहरण लिया जा सकता है। दक्षिण भारत में बाजार के लिए खेती करने वाले किसानों के आंदोलन के कारण इस कंपनी को अपने पैर वापस खींचने पड़े थे। दूसरी तरफ पेप्सी फूड्स ने पंजाब में ऐसे ही किसानों की तरफ से मिले समर्थन के कारण अपने पैर जमा लेने में कामयाबी हासिल की।[1]

जाहिर है कि आर्थिक गतिविधियों के प्रसार से स्थानीय स्तर पर राजनीतिक कार्रवाई के लिए नयी गुंजाइशें बनी हैं और पार्टियों के सिर्फ चुनाव तक सीमित रहने के कारण खाली हुई जगह को नाना प्रकार की राजनीतिक संरचनाओं ने भरा है। इनमें गैर-सरकारी वैकासिक संगठन, मानवाधिकार संगठन, महिलाओं और बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने वाले संगठन, बंधुओ मजदूरों को मुक्त कराने वाले आंदोलन, वनवासियों, मछुआरों, कारीगरों, छोटे और सीमांत किसानों के पक्ष में उनकी संस्कृति और आजीविका बचाने के लिए सक्रिय संगठन और आंदोलन जनता के जिन तबकों और समुदायों को संगठित करते हैं उनका अस्तित्व दाँव पर लगा हुआ है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था एक तरफ उनकी आर्थिक गतिविधियों को तेजी से हड़पे ले रही है और दूसरी तरफ खुद को उत्तरोत्तर आंतर्राष्ट्रीय ताकतों के हवाले किये दे रही है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बहुत ही कम लोग और समुदाय बच पाते हैं। स्थानीय

जनता को अपनी जमीन से उखड़ कर मजबूरन अपनी जिंदगी को फटाफट एक नये दायरे में बसाना पड़ता है। यह नया दायरा उजरती मजदूरी और उपभोग की तेजी से फैलती हुई जन-संस्कृति का दायरा होता है। इसमें कुछ लोग ही टिक पाते हैं, बाकी किनारों पर खदेड़ दिये जाने के लिए अभिशप्त होते हैं। जिनके पास जमीन, सामाजिक हैसियत और शिक्षा जैसी सुविधाएँ हैं वे सामाजिक प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ पाते हैं। पर जिनके पास ऐसी पृष्ठभूमि नहीं है उन्हें सामाजिक-आर्थिक वंचितों का जीवन गुजारना पड़ता है।[2]

चाहे कोई भी भौगोलिक और सांस्कृतिक माहौल हो, इस मामले में लोगों का तजुर्बा एक सा है। नये सामाजिक आंदोलन और संगठन इसी समस्या से जूझ रहे हैं। इनका नेतृत्व नये किस्म के राजनीतिक तत्त्वों के हाथ में है। भारतीय राजनीति के जमीनी स्तर पर काम करने वाले इन तत्त्वों ने अपने शहरी निम्नमध्य और मध्यवर्गीय स्त्रोत के बावजूद गाँवों और आदिवासी इलाकों को अपने काम का केंद्र बनाया है। इनमें से कई ने नौकरियाँ छोड़ कर या राजनीतिक दलों को त्याग कर जनता के संगठनों की स्थापना की है या उसके हित में चलाये जा रहे आंदोलनों को अपनाया है। वे छोटे-छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में लंबे अरसे तक काम करते हैं और अपने काम को जनता के सशक्तीकरण की संज्ञा देते हैं। इस प्रक्रिया में वे राजनीतिक मुद्दों को सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पुन:परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। इन तत्त्वों की राजनीति आमतौर पर दलगत और चुनावी दायरे के बाहर रहती है। यानी वे मुद्दा आधारित राजनीति करते हैं और उनके मुद्दों का स्थानय समुदायों के लिए गहरा महत्त्व होता है। राजनीतिक दल इन मुद्दों की इसलिए परवाह नहीं करते क्योंकि उनका असर बड़े राजनीतिक दायरे पर नहीं पड़ता। नतीजतन, चुनाव के गणित के लिए इन मुद्दों का कोई महत्तव नहीं होता।[3]

आमतौर पर क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर कार्यरत इन नये राजनीतिक तत्त्वों द्वारा अपनाये जाने वाले सांगठनिक रूपों के बारे में जानना हो तो ग्रासरूट्स राजनीति से संबंधित साहित्य देखना चाहिए जिसमें इस राजनीतिक गतिविधि को 'गैरपार्टी राजनीतिक संरचनाओं', 'छोटे स्तर पर चलाये जाने वाले आंदोलनों' या 'सामाजिक कार्यकर्ताओं के आंदोलनकारी समूहों' की संज्ञा दी जाती है। ममें इन लोगों को आंदोलनकारी समूह कहना पसंद करूँगा। इन्हें प्रतिबद्ध सामाजिक कार्यकर्ताओं के ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सचेत रूप से किसी खास इलाके या समुदाय के हितों के लिए काफी शिद्दत से काम करते हैं और वहाँ के सामाजिक और राजनीतिक रूपांतरण की सचेत कोशिश करते हैं। इन आंदोलनकारी समूहों का दीर्घकालीन लक्ष्य कहीं ज्यादा बड़ा है। वे चाहते हैं कि राजनीतिक के स्थानीय से लेकर सभी स्तरों पर आम लोगों का सबलीकरण हो। इसी मकसद के लिए वे लोकतंत्र को पुन:परिभाषित और पुनर्रचित करना चाहते हैं ताकि उसे अधिक सहभागी, जनता की आकांक्षाओं के प्रति अधिक चिंतित और उसके प्रति सीधे जवाबदेह बनाया जा सके। वे उपने काम की शुरूआत जन-जीवन को सीधे प्रभावित करने वाले मुद्दों के आस-पास जन-गोलबंदी से करते हैं। उनका प्रयास होता है कि सामाजिक ऊर्जा को जमाकरके उसका इस्तेमाल समाज में सत्ता के मुजफ्फरपुर को बदलने में किया जाये।

ये आंदोलनकारी समूह साझा बेहतर राजनीतिक सरोकारों और अपनी एक जैसी स्थानीयता के बावजूद एक-दूसरे से काफी अलग-अलग होते हैं। अपने कार्य-क्षेत्र के सांस्कृतिक माहौल में रचे-बसे होने के कारण हर समूह की अपनी अलग सांगठनिक और कार्यक्रमगत पहचान होती है। इसके साथ ही वे बड़े राजनीतिक नेटवर्कों, गठजोड़ों, और कुछ ऐसे मुद्दों पर संयुक्त कार्रवाइयों में भी भागीदारी करते हैं जिनकी प्रकृति स्थानीय सीमाओं से परे जाती है और जो विभिन्न इलाकों की जनता के लिए चिंता का विषय होते हैं। अभी तक ऐसे आंदोलनकारी समूहों का व्यवस्थित सर्वेक्षण नहीं किया गया है पर जानकारों द्वारा किये गये आकलन के अनुसार ऐसे पच्चीस से पचास हजार आंदोलनकारी समूह देश भर में सक्रिय हैं।[4]

स्थानीयता से परे जाकर इन समूहों को आपस में जोड़ने वाले मुद्दों में सरकार और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा बनायी गयी विशाल वैकासिक परियोजनाओं (जैसे कि बड़े बाँधों का निर्माण), फौजी इस्तेमाल के लिए सरकार द्वारा जमीन के अधिग्रहण (रॉकेट परीक्षण रेंज बनाना) या एटमी संयत्र की स्थापना का विरोध शामिल है। इन मुद्दों में सामुदायिक संपत्ति, गैरमजरुआ जमीन और जंगलात की संपत्ति गाँव को वापस करने के संघर्ष भी शामिल हैं। आंदोलनकारी समूहों की आमतौर पर सीधी कार्रवाई वाला संघर्ष होता है। वे स्थानीय जनता, सामाजिक कार्यकर्ताओं और दूसरे इलाकों के लोगों की मदद से सामूहिक सत्याग्रह आयोजित करते हैं। हमदर्द व्यावसायिक समूहों, समाचार माध्यमों और बुद्धिजीवियों का समर्थन हासिल करने की कोशिश की जाती है। जन-कार्रवाई के जरिये मुद्दे को उठाने के बाद ये समूह अपने वैकल्पिक प्रस्तावों पर समर्थन जुटाने में लग जाते हैं। इससे होता यह है कि स्थानीय जनता की निर्णयकारी प्रक्रिया में सहभागिता का आग्रह उभर आता है। बहस इस बात पर होने लगती है कि जन-जीवन को प्रभावित करने वाली परियोजनाओं के विषय में फैसला लेते समय जनता की सहभागिता क्यों नहीं होनी चाहिए। साथ ही ये आंदोलनकारी कोशिशें परियोजनाओं के पारिस्थितिकीय और आर्थिक औचित्य पर भी सवाल खड़ा करती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि आंदोलन समूहों और उनके सिद्धांतकारों द्वारा लोकतंत्र के दायरों को बढ़ाने की संभावनाओं की तलाश सक्रिय रूप से की जा रही है। इसमें नई विश्व व्यवस्था के चैम्पियनों द्वारा प्रवर्तित विमर्श या देश में भूमंडलीकरण के पैरोकारों की बजाय सामाजिक रूपांतरण को अराजनीतिक गतिविधि की तरह न लेकर एक जीवंत राजनीतिक कार्यसूची के रूप में देखते हैं और इस कार्यसूची में सामाजिक चेतना और संगठन के सभी रूपों के लोकतांत्रिकीकरण को प्राथमिकता दी जाती है। ये संगठन चुनाव, पार्टियों और विधायिकाओं के सीमांत पर सक्रिय रहते हुए खुद को सरकारी दायरों से बाहर रखते हैं। इस प्रकार उनमें राजतंत्र और समाज एवं आधुनिकता और परंपरा के बीच एक सूत्र बन जाने की क्षमता पैदा हो जाती है। वे चाहते हैं कि लोगों का इतना सबलीकरण हो कि वे अपने भाग्य के विधाता स्वयं बन सकें। इस प्रक्रिया के दौरान भारत में लोकतंत्र से संबंधित विमर्श के आधार बदल सकते हैं।[5]

आंदोलनकारी समूहों की राजनीति की खास बात यह है कि वे लोकतंत्र से संबंधित ऐसे नये विमर्श को अपने सतत् राजनीतिक आचरण के जरिये व्यक्त करना चाहते हैं। राजनीति प्रतिनिधित्व की संस्थागत संरचनाओं को यह आंदोलनकारी समूह आलोचना-भाव से देखते हैं। उनकी मान्यता है कि इन संरचनाओं ने समाज के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को रोक दिया है। लेकिन उनकी इस आलोचना का आधार सैद्धांतिक न होकर जमीनी स्तर पर हुए दैनंदिन राजनीतिक संघर्ष के परिणामों से निकलता है। वे चाहते हैं कि छोटे-छोटे आंदोलनों के प्रसार के जरिये लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया में आयी जड़ता टूटने का रास्ता निकले। उन्हें यकीन होता है कि लोगों को राजनीतिक सहभागिता की गहराई में ले जाकर उनकी सामाजिक चेतना बढ़ायी जा सकती है, स्थानीय तौर पर ऐसा राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय माहौल बनाया जा सकता है जिसमें जीवन-स्थितियाँ खुद लोगों के हाथ में ही हों। इन आंदोलनकारियों के ही शब्दों में सारी कोशिशों का सार 'जनता को उसका लोकतंत्र वापस देना' ही है।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आंदोलनकारी स्थानीय मुद्दों को भूमंडलीय के बजाय स्थानिकता से परे जाने वाली भाषा में परिभाषित करते हैं। पारिस्थितिकी, मानवाधिकार और महिलाओं और बच्चों के अधिकारों पर राजनीतिक मुहिम चलाने वाले गठजोरों और संयुक्त कार्रवाइयों के आयोजनों से यह स्पष्ट हो जाता है। स्थानीय जनता की स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता बढ़ाने वाली राजनीति करते-करते ये समूह आंदोलनों की व्यासपक राजनीति से जुड़ जाते हैं। आम जनता के विभिन्न तबकों की इस प्रक्रिया में आंदोलनकारी सहभागिता होती है। यह राजनीति स्थानीय जरुर है पर यह स्वशासी संस्थाओं की पारंपरिक राजनीति से भिन्न है। यह सत्ता और विचारधारा की संरचनाओं से स्तंभीय सूत्र में बँधी हुई नहीं है। न यह राष्ट्र-राज्य की पैरोकार है और न ही नयी विश्व-व्यवस्था की। यह राजनीति प्रांतीय और क्षेत्रीय संकीर्णता को भी प्रोत्साहन नहीं देती। नाना प्रकार के भौगोलिक क्षेत्रों और सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल में रहने वाले समुदायों के बीच इन आंदोलनों का क्षैतिज विस्तार होता चला जाता है। ध्यान रहे कि ये सभी समुदाय समान समस्याओं से पीड़ित होते हैं: अप-विकास के कारण अधिकारों से वंचित इन समुदायों से सरकारी मदद तो हमेशा दूर रहती है पर सरकारी दमन उन्हें उत्पीड़ित करने के लिए हमेशा तैयार रहता है।[6]

इन बातों का यह मलतब हरगिज नहं निकाल लेना चाहिए कि ये आंदोलनकारी समूह अपनी राजनीति को भारतीय लोकतंत्र के संस्थागत ढांचे के विरोध में परिभाषित कर रहे हैं। इस गलतफहमी के उलट वे तो अपनी समांतर राजनीति के लिए संस्थागत लोकतंत्र को अनिवार्य लेकिन अपर्याप्त शर्त मानते मानते हैं। एक तरह से उनकी कोशिश होती है कि वे उदारतावादी लोकतंत्र के प्रचलित ढांचे से सीधा टकराव न मोल लेकर उसके इर्द-गिर्द काम करते हुए उसके परे चले जाएँ और समाज में सत्ता की वर्चस्वी संरचनाओं के लोकतंत्रीकरण के लिए सामाजिक चेतना उन्नत करें। ये आंदोलन राजसत्ता पर तो कब्जा नहीं करना चाहते, पर उनका दीर्घकालीन कार्यक्रम आंदोलनकारी प्रक्रिया के जरिए राज्य के चरित्र में बदलाव लाना और उसकी पुनर्रचना करना जरुर है।[7]

निष्कर्ष

जाहिर है कि साठ और सत्तर के दशकों में प्रचलित स्थानीय राजनीति को देखने का नजरिया अब पुराना पड़ चुका है। उस समय माना जाता था कि स्थानीय राजनीति राज्य सरकार के प्रशासन के सबसे निचले स्तर का निर्माण करती है और उसे राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं की अधिसंरचना का दर्जा दिया जाता था। आज की स्थानीय राजनीति बदल चुकी है। अब वह पंचायतों, सहकारी संस्थाओं, विकास-खंड के प्रशासन और चुनाव लड़ने के मकसद से बनाये गये राजनीतिक दलों के संगठनों तक ही सीमित नहीं रह गयी है। आज की स्थानीय राजनति में ऐसे नये-नये मुद्दे उभरते हैं और उसमें ऐसे तत्व सक्रिय रहते हैं कि उन्हें इन प्रशासनिक और चुनावी सीमाओं में कैद नहीं किया जा सकता। यहाँ एक बार फिर ध्यान रखने की जरुरत है। कि इसका

मतलब स्वशासी संस्थाओं का कम महत्वपूर्ण हो जाना नहीं है। ये संस्थाएँ स्थानीय राजनीति का जरुरी आयाम बनी हुई हैं। नये पंचायती राज कानून ने उन्हें अधिक अधिकार संपन्न करके उनकी राजनीतिक प्रासंगिकता बढ़ा दी है। दिक्कत यह है कि वे उदारतावादी राज्य की स्तंभीय सत्ता-संरचना के सबसे निचले हिस्से का ही अंग हैं। इसके विपरीत आंदोलनकारी करना यह चाहते हैं कि स्वशासी संस्थाओं की राजनीति का दायरा बढ़े, उसे और स्वायत्त संदर्भों में परिभाषित किया जाए, उसे स्थानीय सीमाओं से निकाल कर समाज की राज्य पर निर्भरता को प्रोत्साहित करने वाली स्तंभीय संरचना के बाहर स्थित किया जाए।

जब तक छोटे-छोटे आंदोलनों की यह राजनीति अपना क्षैतिज प्रसार करते हुए सत्ता की वर्चस्वी सरंचनाओं और विचारधाराओं को चुनौती देती रहेगी, तब तक भारतीय लोकतंत्र में एक नयी अर्थवत्ता का समावेश होता रहेगा और लोकतंत्र की गहनता बढ़ती रहेगी। अगर ऐसा होता रहा तो आगे चलकर उदारतावादी लोकतंत्र की उन भूमंडलीय संस्थागत संरचनाओं के चरित्र में भी परिवर्तन आ सकता है जो आजकल समाज और जनता को अधिकार-वंचित करने वाली सत्ता को ही मजबूत करने में लगी हुई है।

संदर्भ सूची

1. डिसूजा, पीटर (सं), 1999, कंटेम्परारी इंडिया, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. उपरोक्त।
3. जयाल, नीरीजा गोपाल (सं), 2001, डेमोक्रेसी इन इंडिया, ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
4. कविराज, सुदीप्त (सं), 1997, पॉलिटिकल इन इंडिया, ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।
5. कोहली, अतुल, 1987, स्टेट एंड पावर्टी इन इंडिया: पॉलिटिक्स ऑफ रिफॉर्म, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
6. उपरोक्त।
7. आलम, जावीद, 2006, लोकतंत्र के तलबगार? (अनुवाद: अभय कुमार दुबे), वाणी प्रकाशन, सी.एस.डी.एस., नई दिल्ली।

महात्मा गाँधी के 'अहिंसा'

डॉ० मधु सिंह

अतिथि शिक्षक (दर्शनशास्त्र)
आर.बी.एस. कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार

'महात्मा गाँधी' जिन्हें पूरा विश्व 'राष्ट्रपिता' के नाम से संबोधित करता है, वे देश की स्वतंत्रता के लिए अहिंसा शांतिपूर्ण संघर्ष के लिए विश्वभर में वन्दनीय रहे। गाँधी जी ने अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए अंग्रेजों को चुनौती दी और वह उसमें सफल भी हुए। उन्होंने देश में घूम-घूमकर जनता को अपनी भूमि, अपनी भाषा और सादा जीवन के प्रति प्रेम का पाठ पढ़ाया। नीच और सुरक्षित समाज की सेवा करना ही उनका पहला कर्तव्य था। गाँधी जी ने सत्य, अहिंसा के आदर्शो को सामने रखते हुए रामराज्य की कल्ल्पना को साकार रूप देने के लिए स्वयं को समर्पित किया। इसी कारण वे जन-जन के लोकप्रिय नेता बने और 'महात्मा' कहलाये।

अहिंसा शब्द का प्रयोग वैदिक काल से प्रयुक्त होता रहा है बुद्ध और महावीर ने तो अहिंसा को सर्वोपरी स्थान दिया है। वैष्णव संतो ने भी अहिंसा को धर्म को माना है। योग दर्शन के प्रणेता ने आत्मशुद्धि की साधना के पाँच नियमों में अहिंसा को पहला स्थान दिया। गाँधी जी ने उपरोक्त भारतीय परम्परा से, बाइबिल के प्रवचन से तथा टालस्टॉय के ग्रंथों से अहिंसा के सिद्धांत को ग्रहण किया, लेकिन गाँधी जी अहिंसा परम्परागत अहिंसा से पूर्णत: अलग है वे अहिंसा को एक विशेष अर्थ में लेते है। उनके अनुसार अहिंसा किसी को हानि नहीं पहुंचाना तथा मन और वचन से समाज सेवा, निर्भयता, आत्मा, त्याग, सन्यास आदि है। इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी प्राणी को कष्ट नहीं पहुंचाना अहिंसा का अंग है किंतु इसकी न्यूनतम अभिव्यक्ति है। अहिंसा का सिद्धांत प्रत्येक अशुभ विचार अनुचित शीघ्रता, झूठ बोलने, घृणा करने, किसी भी व्यक्ति की बुराई की इच्छा करने से खंडित होता है। यह उस वस्तु को जिसकी संसार की अपेक्षा है बाधित करने में भी भंग होता है। उन्होंने कहा था– "अहिंसा कायरों के लिए नहीं है, वीर योद्धाओं के लिए। अंग्रेजी शासन ने एक बार भारत को कायर करार दिया था। इस बार गाँधी ने कहा, एक बार पराजित करने का तात्पर्य यह नहीं है कि भारत हमेशा के लिए कायर हो गया है, अधिकांश यही होता है कि जो व्यक्ति आपके आपको जैसा समझता है, वह एक दिन वैसा ही बन जाता है। कोई यह कहता है कि मैं बस काम को नहीं कर सकता तो वह सचमुच उस काम को करने में असफल साबित होगा, लेकिन अगर उसमें आत्मविश्वास है, वह आत्मविश्वास के साथ किसी काम को करने की धारणा बना ले तो वह उस काम में सफलता पा सकता है। भले ही वह कमजोर हो इसमें कोई संदेह नहीं है, वह उस काम को करके ही रहेगा"।[1]

साधारणतया अहिंसा की नीति का पालन करने वाला को लोग निर्बल समझते हैं लेकिन ऐसी बात नहीं है। अहिंसा में अमोद्य शक्ति है। अहिंसा कार्यरता नहीं है। बल्कि एक वीरतापूर्ण कार्य है। अहिंसा में जो आन्तरिक सामर्थ्य निहित है वह किसी दूसरी वस्तु में नहीं। बुराईयाँ से लड़ना, शत्रु के साथ सद्व्यवहार करना तथा उसके ह्रदय का परिवर्तन करना, ऐसे कार्यो से आत्मबल में ह्रदय का वृद्धि होती है। सच्चा वीर वह है जो दूसरो के उपकार के लिए अपना बलिदान कर देता है, जो व्यक्ति मृत्यु से डरता है। वह सच्चा अहिंसक नहीं हो सकता है।

गाँधीजी ने कहा है "अहिंसा नहीं हो सकता है। अहिंसा के जो मेरे सिद्धा़ंत है वे अत्यंत सक्रिय हैं इसमें भय और निर्बलता का तनिक भी समावेश नहीं है। हिंसा के लिए इसमें कुछ स्थान नहीं है। मैंने कई बार दोहराया है कि यदि हम अपने को महिलाओं को धार्मिक पूजा के संस्थाओं की रक्षा करना नहीं जानते हैं तो हमें अहिंसा का पथ अपनाना चाहिये। जिससे की उनकी रक्षा हो सके।"[2]

गाँधी जी अहिंसा का अर्थ बुराइयों के विरूद्ध संघर्ष करना मानते हैं लेकिन वह संघर्ष प्रतिशोध की भावना नहीं रखती क्योंकि प्रतिशोध की भावना से बुराइयों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। गाँधी ने स्पष्ट रूप से कहा "मैं उन्हें अनैतिकताओं के प्रति मानसिक एवं नैतिक रूप से विरोद्ध करता हूँ। मैं अत्याचारियों के तलवार के तीक्ष्ण वार की शारीरिक रूप से विरोध नहीं करता बल्कि मानसिक रूप से उनका विरोध करता हूँ, जिससे कि उसमें निराशा छा जाती है। अत्याचारी यह आशा करता है कि मैं उनकी तलवार के तीक्ष्ण वार का शारीरिक रूप से विरोध करूँगा, परंतु ऐसा मेरे नहीं करने से वह लाचार हो जाता है और मेरे प्रति क्रोध, प्रेम व श्रद्धा में बदल जाता है। इसके फलस्वरूप हृदय में मेरा स्थान ऊँचा हो जाता है"।[3]

इस तरह गाँधी जी बदले की भावना में विश्वास नहीं करते है बल्कि शत्रु के नैतिक परिवर्तन की लालश रखते हैं। वे बुराई के रास्ते का विरोध करते है। वे कभी भी बुरे कर्म वाले व्यक्ति को किसी प्रकार कष्ट देने का विचार नहीं रखते बल्कि वे हमेशा उसे सन्मार्ग पर अग्रसर करना चाहते हैं। वे आत्म शुद्धि एवं मानसिक पवित्रता के द्वारा शत्रु में आमूल परिवर्तन लाना चाहते हैं। उनका कहना है कि "अहिंसा का उपासक वह व्यक्ति है जो व्यक्तियों में हो रहे झगड़े को समाप्त कराता है और उन दोनों को दुबारा मिलाने के लिए अपनी जान की परवाह नहीं करता है। अहिंसक व्यक्ति की वीरता हिंसक व्यक्ति की वीरता से महान और श्रेष्ठ होती है। उसकी वीरता का कभी अंत नहीं होता है"।[4]

अहिंसा का अर्थ केवल जीव को मारना नहीं है क्रोध उनका स्वार्थ के वशीभूत किसी व्यक्ति अस्तित्व करने के संकल्प से अथवा उसे दुख देने से उसकी देह को नष्ट करने का नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है। गाँधी जी का कथन है कि "दुनिया केवल तर्क से नहीं चलती जीवन में किसी हद तक हिंसा है इसलिए हमें न्यूनतम हिंसा का रास्ता अपनाना पड़ेगा, जिसे हम सत्य समझते है उसके लिए हम लड़ेंगे पर कमजोर कायरता और आराम तलवी के कारण हिंसा से बचने की कोशिश नहीं करेंगे"।[5]

गाँधी जी के अनुसार "अहिंसा विजय का घोतक है, पराजय का नहीं। आस्तिक को ही अहिसां उपलब्ध होती है जो व्यक्ति या राष्ट्र अहिंसा का प्रेमी है उसे आत्मा सम्मानहीन व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है। अहिंसा को प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्र अपना सकता है। इसमें विश्वव्यापकता की गुंज निहित है। प्रमुखता इस बात की है कि राष्ट्र एवं व्यक्ति को परमात्मा में पूर्ण विश्वास होना चाहिए"।[6]

गाँधी जी का विश्वास है कि मनुष्य हमेशा अपूर्ण है सिर्फ सत्य एवं ईश्वर ही पूर्ण है। सत्य ही सर्वभौम से उपर है और वही शुद्ध अहिंसा है। मनुष्य अपूर्ण है। इसलिए उसे सत्य और ईश्वर की उपलब्धि के लिए अथक प्रयास करना है। उसके सभी विचार, कार्य अभिलाषाएँ, इच्छाएँ अहिंसा के सूचक हो और उसमें अहिंसा का समावेश है। गाँधी जी इस संबंध में कहते हैं "अहिंसा की सच्ची परीक्षा तो उसी वक्त होती है, जब उसका वास्ता उसे तिरस्कार करनेवालों से पड़ता है।"[7]

सत्य और अहिंसा एक दूसरे से निकटतम रूप से संबंबित है। दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सत्य का पालन करनेवाले जीवन हिंसा पर आधारित रहता है। गाँधी का कथन है कि "यह सर्वविदित है कि अहिंसा के बिना सत्य की खोज और प्राप्ति करना असंभव है। वे एक सिक्का के दो पहलू है पर कौन कहता है कि इस सिक्का का कौन भाग सीध है और कौन उल्टा। यह कहा जाता है कि अहिंसा एक मार्ग है और सत्य एक लक्ष्य"।

गाँधी जी अहिंसा के केवल नई धारणा ही नहीं बल्कि अहिंसक समाज परिवर्तन की नवीन विचार भी रखा। इस तरह उन्होंने क्रांति की कल्पना में ही क्रांति उपस्थित की। क्रांति जो आज तक हिंसा और हत्या, क्रूरता और नृशंसता का पर्यायवाची रही है। उसे गाँधी ने क्रांति मानने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि क्रांति का अर्थ यदि मान्यता, आकांक्षा और जीवन के मूल्यों में आधारभूत परिवर्तन करता है तो यहाँ प्रयोग का स्थान ही नहीं है। इसलिए जितना ही बल प्रयोग और जबरदस्ती होगी उतना ही अधिक विपरित प्रतिक्रिया होगा। अहिंसा का मार्ग कष्ट मार्ग है। इसमें असीम धैर्य और सहनशक्ति की जरूरत है। अनेक कष्ट प्राप्त करने पर भी सत्य के पालन से मन में शांति उत्पन्न होती है। मन में इसे अपनी कर्तव्य को पहचानने की शक्ति प्राप्त होती है। इससे मनुष्य के अंदर अहम की भावना का नाश होता है और अपने अंदर में जो बुराई रहती है उसका भी ह्रास होता है। स्वभाव में नम्रता आ जाती है और मानसिक दुर्बलता दूर हो जाती है।

अहिंसा एक विकासशील धारणा है। अत: नये-नये युगों में इसके अर्थ बदल सकते हैं और इसके क्षेत्र का विकास हो सकता है। गाँधी के अनुसार अहिंसा का पूर्ण रूपेण पालन शरीरधरी मानवों से असंभव है।

गाँधी अहिंसा के पालन में शुभ संकल्प और अभिप्राय पर विशेष बल देता है, परिणाम पर नहीं। इसलिए वे एक कदम मेरे लिए पर्याप्त है या पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है में विश्वास करते है। यदि सभी भावात्मक गुणों को एक में मिलाया जाय तो अहिंसा का अर्थ सर्वव्यापक और असीम प्रेम है।

यद्यपि गाँधी ने अहिंसा व्रत के पालन का निर्देश आश्रम वासियों और सत्यग्राहियों के लिए व्यक्तिगत जीवन में उतारने की दृष्टि से दिया है, परंतु उनका यह दृढ विश्वास है कि इस व्रत का पालन व्यक्ति, संस्था, समान और राष्ट्र सभी लाभांवित हो सकते है। उनके अनुसार अहिंसा के पालन से क्षणिक शाश्वत का ज्ञात होने लगता है। सारे अहंकार समाप्त हो जाते है। काफी विनम्रता आ जाती है। संसारिक वस्तुओं से राग समाप्त हो जाता है और दीन प्रतिदिन बुराईयों का अंत होता जाता है। आत्मवत् सर्वभूतेषू का वह अनुभव करने लगता है।

निष्कर्षता

अत: हम गाँधी जी के अहिंसा मार्ग को अपनाकर सत्य की लक्ष्य को अपना सकते हैं और अपने जीवन में प्रेम की भावना उत्पन्न कर अपने को और समाज में शांति कायम कर सकते है और अहिंसा से विजय प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लेखक विनोद तिवारी, राजा पॉकेट बुक्स, पेज नं. -92-93
2. यंग इंडिया, 04.11.1926, पृष्ठ-340
3. यंग इंडिया- 11.06.1921 जून पृष्ठ-196
4. राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, पेज नं0-94
5. यंग इंडिया, 29 सितंबर 1927, पृष्ठ-196
6. यंग इंडिया, 29 सितंबर 1927, पृष्ठ-247
7. द मॉर्डन रिमाडंग, अक्टूबर 1996 पृष्ठ-419
8. इन सर्च ऑफ द सुप्रीम, भाग-2, पृष्ठ-27

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० शादाब नवाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. एस.पी. सिंह कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन, लक्ष्मीपुर, तरकौलिया, पूर्वी चम्पारण (बिहार)

प्रस्तावना

'संस्कृति एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। तथा कुछ तत्व उसमें सनातन रहते है और कुछ काल क्रमानुसार या समय व परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते है। यह तो स्पष्ट है कि भारत जैसे महान देश की प्राचीन संस्कृति का निर्माण किसी एक जाति, धर्म या परम्परा से नही हुआ है। कितने ही आचार, विचार और मान्यताओं की कितनी ही नदियाँ इस महासागर में अपना योगदान करती रही है। अन्य संस्कृतियों में भी न जाने कितने शाश्वत गुण समाहित होते गये। आर्यो के आने से पहले यहां अनेक निग्रेंटो, प्रोटो, आस्ट्रोलॉस्टिक, द्रविड आदि जातियों की एक सम्पन्न संस्कृति थी।[1]

आर्यो के आने के बाद भी बहुत समय तक सांस्कृतिक दृष्टि में कोई अलगाव यहां नही दिखायी दिया। आर्यो की कुछ बातों को अनार्यो ने भी अपना लिया था और अनार्यो की कितनी ही बातों ने आर्यो पर अपनी छाप छोड़ी। आर्यावत और दक्षिणावत देश के दो मुख्य भाग थे, लेकिन यह विभाजन भौगोलिक दृष्टि से था। आर्य कोई वंश या वर्ण नहीं था वेदों में कही पर भी वंश या वर्ण के अर्थ हेतु आर्य शब्द का उपयोग नहीं हुआ है। अग्नि पूजा और यज्ञ संस्था को प्रमाण मानने वाला एक पराकर्मी वर्ग आर्य कहलाता था आर्यो में असुर भी और असुर भी थे। यज्ञ वेद विरोधी अनार्यो से उनका लम्बे समय तक संघर्ष चलता रहा और धीरे-धीरे वे हावी होते रहे। इन प्राचीन आर्यो का समाजशास्त्र विश्व के सारे समाजशास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ था। यहां के समाज को संगठित और एकता के सूत्र में बंधने का अथक प्रयास आर्यो ने किया।[2] 600 से 700 ई. पूर्व तक का काल इस दृष्टि से स्वर्ण युग माना गया। कालान्तर में धर्म संबंधी मान्यताऐं और समाज संबंधी रचनाओं पर कर्मकाण्डों, क्षुद्रबुद्धि धर्ममार्तडों का प्रभाव स्थापित होता गया और फिर क्रमशः हिन्दू समाज के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गई। किसी समय जहाँ सामाजिक विकास के लिये पूरी स्वतंन्त्रता थी वहाँ अब धर्म, जाति और वर्ण के नाम पर भेदों की अनेकों दीवारें खडी हो गई है। शूद्र वर्ण को अत्यन्त हीन और अस्पृश्य मानकर धर्म मार्तड़ों के नये सामाजिक आचारों की रचना की। नारी और शूद्र पशुओं से भी निम्न हो गये। स्त्री, श्वान, शूद्र और कृष्णपक्षी अमंगल है प्रवज्या देते समय गुरू उनका दर्शन न करें (शतपथ ब्राह्मण) 'समावर्तन' के बाद स्त्री, शूद्र, प्रेत, कृष्णपक्षी, श्वान का (शतपथ ब्राह्मण) दर्शन न करे, न उनसे कोई वार्तालाप करे। (परासर गुहा सूत्र)। स्त्री और शूद्र कोई सत्कृत्य नही कर सकते। (मनुस्मृति) जैसी अनेक मान्यताओं का जन्म हुआ। न तो वे वेदों को पढ़ सकते थे, और न ही सामाजिक सम्पत्ति पर उनका कोई अधिकार था। ऊपर के तीन वर्गो की सेवा के अतिरिक्त व्यक्ति और समाज के तौर पर उनका कोई अस्तित्व नही रहा।[3] ज्ञान और अनुमान से प्राप्त खोजें यह बताती है कि स्त्री समेत शूद्रों को अनेकों बंधनों में जकड़कर तथा उन्हें सामाजिक गतिविधियों से बाहर निकाल कर धर्म मार्तड़ों ने भारतीय संस्कृति की असीमित हानि की है। इस संस्कृति के निर्माण में जितना योगदान ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का है उतना ही योगदान शूद्रों का भी है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचता जिस पर शूद्र समझे जाने वाले लोगों ने या जातियों ने अपनी छाप न छोड़ी हो जिस पर धर्म का भी प्रभाव रहा। क्योंकि धर्म भारतीय जीवन की आधारशिला है। इस आधारशिला को स्थापित करने में केवल ब्राह्मणों का ही नहीं, क्षत्रियों और शूद्रों का भी सहयोग था और क्षत्रियों की तुलना में शूद्रों का कही अधिक था। ब्राह्मणवेताओं राजाओं में कांशी नरेश अजात शत्रु, राजा प्रवाहण, राजा अश्वपति और राजा जनक के नाम उल्लेखनीय है।[4] गाड़ीवन से संवर्ग विध प्राप्त करने वाले राजा ज्ञानश्रुति स्वंय शुद्र ही थे। ऐतरेय ब्राह्मण के रचियता महीदास,

महाभारत के रचियता वेदव्यास धीवर कन्या सत्यवती के पुत्र थे, धर्म क्षेत्र में शूद्रों का ऐसा अपरंम्पार कर्तव्य किसी एक काल में या किसी एक भू-भाग पर नहीं, सभी कालों में सर्वत्र प्रकट होता रहा है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल कबीर के बारे में कहा करते थे कि चम्पा-चम्पा धरती उसकी किरणों की गर्मी पाकर कला, साहित्य और धर्म, जीवन के कितने ही रूपों को जन्म देती है, उस कबीर के निर्गुण पंथ में अधिकतर सन्त शूद्र ही थे।[5] कबीर, जुलाहें दादू धुनिया, मलूकदास कक्कड, रैदास चमार आदि व्यक्ति शूद्र एवं दलित ही थे। प्राचीन काल के ये उदाहरण कि धर्म क्षेत्र में शूद्रों के लिये आगम्य कुछ नही था। वे ब्राह्मण वर्ग के समान वेद विद्या के क्षेत्र में निरंकुश संचार कर सकते थे। ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गो के वे सफल पाथस्य थे और आधुनिक काल में भी उनकी गति अवरूद्ध नही हुई है। शूद्र जातियों में जन्म लेकर भी धर्म के क्षेत्र में प्रचंड क्रान्ति करने वाले दो महापुरुष आधुनिक काल में हुए। एक महात्मा ज्योतिराकुलें और दूसरे डा0 भीमराव अम्बेडकर। ज्योतिराकुलें का सत्य शोधक समाज का आन्दोलन आदमी को आदमी से जोड़ने वाला आन्दोलन था। जिस प्रकार धार्मिक ढकोसलों को तोडने के लिये कबीर से हिन्दू, मुसलमान के धर्मो पर करारे आघात किये उसी तरह ब्राह्मण परम्परा को दकियानूसी और अत्याचारों को तोडने के लिये ज्योतिराकुले ने बुद्धि का कृपाण उठाया था। विशेषतः कास्तकारों की और से खुलेआम लडाई छेडने वाले वे प्रथम समाज सेवी थे और लगभग एक हजार वर्षो से रूका हुआ बौद्धधर्मचक्र डा0 अम्बेडकर जी के कारण गतिमान हुआ।[6] आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें धर्मवेत्ता के रूप में जानेगी। स्वतन्त्र चिन्तन, तत्व दर्शन, मौलिक खोज, अकाटय तर्क और प्रखर पांडित्य से युक्त उनके साहित्य ने सदियों से दबे हुऐं दलित समाज में आत्म सम्मान की ज्योति जगा दी। लेकिन इन्हीं महान व्यक्तियों के साथ-साथ महिलाओं के योगदान का भी वर्णन किया जा सकता है क्योंकि स्त्री परम्परा से शूद्र मानी गई। भक्ति मार्ग का श्रेष्ठ संत भी नारी निंदा से नही चुका। लेकिन इन्हीं शूद्र नारियों ने वेदों की अनेक शूक्तियों का प्रणयन किया। ये ब्राह्मण वादिनी भी थी। तत्व चर्चा में हिस्सा लेती थी। श्रेष्ठ ब्राह्मण पंडितों को धर्म संबंधी वाद चर्चा में परास्त करना उनके लिये सहज था। अपाला, रूचि, अदिति, अत्रियी, विश्ववारा, श्रृद्धा, वैवस्वती, यमी, वाग्दिवी, गार्गी, मैत्रेयी आदि महिलाओं के नाम वैदिक साहित्य के जगमगाते रत्न है जो कि पुरुष प्रधान समाज के होते हुए भी समाज की स्त्रियों के लिये एक आदर्श बनी तथा दलितों में चेतना जागृत करने में इन महापुरुषों के साथ-साथ अन्य लेखकों द्वारा रचित साहित्य का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है।[7]

अम्बेडकर का जीवन परिचय

डा0 भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य प्रदेश के रत्नगिरी जिले में मऊ नामक गांव में हुआ था। जब रामजी सूबेदार की फौजी टुकड़ी मध्य प्रदेश स्थित महू की छावनी में थी तब 14 अप्रैल 1891 को भीमाबाई को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उस नवजात शिशु का नाम भीम रखा गया। परिवारजन उसे 'भीवा' कहकर पुकारा करते थे। एक दो साल बाद रामजी सेना से सेवानिवृत्त हुए और उन्होंने रत्नागिरि तहसील में कापदापोली गांव में अन्य सेवानिवृत्त सैनिकों के साथ स्थायी रूप से रहने के लिए प्रस्थान किया।

सन् 1894 के आसपास दापोली नगर परिषद की पाठशालाओं में अस्पृश्य विद्यार्थियों का प्रवेश निशेध था। उसके विरूद्ध अस्पृश्य पेंशनरों ने जिलाधीश के पास अर्जी पेश की। अपनी अर्जी में रामजी सूबेदार ने अपने रहने के लिए जगह की भी मांग की। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि दापोली में अपने बच्चों को पाठशाला में भर्ती कराना संभव नहीं है रामजी सूबेदार अपने परिवार सहित मुंबई में आ बसे। वहां से उन्होंने सेना के अधिकारियों को निवेदन पत्र भेजे और फलस्वरूप सतारा पी. डब्ल्यू. के दफ्तर में स्टोर-कीपर की नौकरी प्राप्त की। सतारा की फौजी छावनी में बसे कोंकणवासी महार पेंशनर परिवारों के साथ रहते हुए भीम का बचपन बीता। उनकी प्राथमिक शिक्षा भी यहीं सम्पन्न हुई।

बचपन में भीम बहुत ही शरारती था। पास के वटवृक्ष पर रोज ही 'सूरपाब्या' खेल खेलने और झगड़े मोल लेने, मारपीट करने, ऊधम मचाने और बखेड़े खड़े करने के मारे, घर के लोगों को भी भीम के इन झमेलों को सुलझाते-सुलझाते मुसीबत हो जाती थी। जब भीम छह साल का हुआ तो मां की मृत्यु हो जाने से वह ममता की छत्रछाया से वंचित हो गया। उसके बाद अपंग बुआ मीराबाई ने ही भीम का लालन पालन किया।

सूबेदार रामजी कबीर पंथी थे। वे रोज अपने बच्चों से भजन, अभंग और दोहों का पाठ करवाते थे। सुबह उठकर वे बच्चों से उनका अभ्यास करवा लेते, इसलिए भीमराव के मन पर धार्मिक शिक्षा के संस्कारों की भी गहरी छाप पड़ी थी।

अम्बेडकर और कांग्रेस तथा भारतीय राजनीति

"कांग्रेस का प्रस्ताव सारे देश को अस्त व्यस्तता की परिस्थिति में डालकर अराजकता पैदा कर देगा। इसलिये यह देश की व्यवस्था के लिए एक चुनौती है।" यह प्रस्ताव वायसराय की काउंसिल ने पास किया। सारे देश में तुरंत कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारियां शुरू हो गई। कार्यकर्ता जेल में ठूंसे जाने लगे। देश भर में सरकार का दमनचक्र शुरू हो गया।

श्रम मंत्री बनने के बाद डा. आंबेडकर का पहला सत्कार समारोह दिल्ली में 23 अगस्त, 1943 को 'दलित वर्ग हितकारिणी' संस्था की ओर से सम्पन्न हुआ। मंत्रिपरिषद में शामिल होने के अपने हेतु को समझाने हुए उन्होंने कहा, "अस्पृश्य समाज की बराबरी का दर्जा दिलवाने में सफलता पाना ही मेरी उपलब्धि है। आप लोग दूसरों के गुलाम न रहें, इसके लिए शासन की बागडोर अपने हाथों में लेनी होगी। यदि हमारे समाज का भविष्य सुधारने के मेरे प्रयत्न सफल न हो पाने का मुझे तनिक भी संदेह हुआ तो मैं इस अधिकारी पद से चिपका नहीं रहूंगा वरन् तुरन्त त्याग पत्र देकर बाहर आ जाऊंगा।"

उन्होंने नागपुर के री एस.एन. कोसारे को पत्र लिखकर उन्हें यह राय दी कि वे कांग्रेस द्वारा प्रेरित मजदूर संगठन के अधिवेशन में भाग न लें। डा. आंबेडकर ने 13 नवंबर, 1942 को आल इंडिया रेडियो के मुंबई केंद्र से "भारतीय मजदूर और दूसरा महायुद्ध" विषय पर एक वार्ता प्रसारित की। "यह महायुद्ध इंसान के साथ एक देश का दूसरे देश के साथ कैसा रिश्ता होना चाहिए, इसे दर्शाता है। यदि नाजियों की विजय हुई तो स्वतंत्रता का गला घुट जायेगा। समता अस्वीकार कर दी जायेगी। केवल स्वराज्य पाकर भी उसका कुछ उपयोग नहीं हो पायेगा। मजदूर वर्ग को "भारत छोड़ो", नारे की जगह 'नवभारत का निर्माण करो' की मांग करनी चाहिए। हिंसा के आगे नतमस्तक होकर पाई हुई शांति कभी भी सच्ची शांति नही हो सकती। यदि युद्ध को सदा के लिए समाप्त करना हो तो युद्ध जीतकर सही विराम संधि प्रस्थापित करनी होगी।" उन्होंने अपना यह मत प्रतिपादित किया था।

हिंदू कोड बिल पर नाराजगी

जब आंबेडकर ने सितंबर 1951 में कैबिनेट से इस्तीफा देते हुए विस्तार से अपने इस्तीफे के कारण गिनाए. वो सरकार के अनुसूचित जातियों की उपेक्षा से नाराज थे। आखिरकार वो चीज जिसने उन्हें इस्तीफे के लिए बाध्य किया वो था हिंदू कोड बिल के साथ सरकार का बर्ताव। यह विधेयक 1947 में सदन में पेश किया गया था लेकिन बिना किसी चर्चा के जमींदोज हो गया। उनका मानना था कि यह इस देश की विधायिका का किया सबसे बड़ा सामाजिक सुधार होता। आंबेडकर ने कहा कि प्रधानमंत्री के आश्वासन के बावजूद ये बिल संसद में गिरा दिया गया। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा, 'अगर मुझे यह नहीं लगता कि प्रधानमंत्री के वादे और काम के बीच अंतर होना चाहिए, तो निश्चित ही गलती मेरी नहीं है।'

नेहरू ने आंबेडकर के प्रति अपनी नापसंदगी नहीं छुपाई इसके बाद भी कांग्रेस से आंबेडकर विरोध जारी रखा। साल 1952 में आंबेडकर उत्तर मुंबई लोकसभा सीट से लड़े। लेकिन कांग्रेस ने आंबेडकर के ही पूर्व सहयोगी एनएस काजोलकर को टिकट दिया और आंबेडकर चुनाव हार गए। कांग्रेस ने कहा कि आंबेडकर सोशल पार्टी के साथ थे इसलिए उसके पास, उनका विरोध करने के अलावा कोई और विकल्प नहीं था। नेहरू दो बार निर्वाचन क्षेत्र का दौरा किया और आखिर में आंबेडकर 15 हजार वोटों से चुनाव हार गए। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हुई, आंबेडकर को 1954 में कांग्रेस ने बंडारा लोकसभा उपचुनाव में एक बार फिर हराया। ये घटनाएं साबित करती हैं कि कांग्रेस और उसके नेता खासकर नेहरू कभी आंबेडकर पर भरोसा नहीं करते थे और उन्होंने अपनी नापसंदगी को छिपाने का प्रयास भी कभी नहीं किया।

हिन्दू कोड बिल और आंबेडकर

बाबा साहेब आंबेडकर एक काबिल वकील थे, उन्हें कानून बनाने की प्रक्रिया के बारे में कोई गलतफहमी नहीं थी। स्वतंत्र भारत के कानून मंत्री के रूप में उन्होंने "हिंदू कोड बिल" पर महीनों काम किया। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था में महिलाओं को दबा कर रखा जाता है, और इसलिए उनकी सबसे बड़ी चिंता यही थी कि हिंदू कोड बिल को ऐसा बनाया जाए जिसमें महिलाओं को बराबर का अधिकार हो। उन्होंने अपने बिल में महिलाओं को तलाक देने के प्रस्ताव के अलावा विधवा और बेटी को संपत्ति में अधिकार देने का प्रस्ताव रखा था। संविधान सभा ने इसमें अंड़गा डाल दिया (1947 से 1951 तक) और बाद में तो इसे रोक ही दिया गया।

इतिहासकार होने वाले डॉ. आंबेडकर ने हिंदू समाज को एक जबरदस्त धक्का दिया। क्योंकि उन्हें मालूम था कि हिंदुओं के अन्य धर्मों में जाने से हिंदुस्तान को बड़े आघात पहुंचे थे। मुस्लिमों का हिंदुस्तान में राज्य स्थापित करने के लिए अतीतकाल में भ्रष्ट हिंदू ही लड़े थे। धर्मान्तरण के इस आंदोलन के छह वर्षों के बाद मुसलमान नेता जिन्ना ने लुई फिशर नामक अमरीकी लेखक को बताया कि भारतीय मुसलमानों में से 75 प्रतिशत मुसलमान पूर्वश्रमी के हिंदू ही थे। नेहरू जी ने तो धर्मनिरपेक्ष उत्साह के साथ उन भ्रष्टों का आँकड़ा 95 प्रतिशत तक पहुँचा दिया। इससे आंबेडकर की धर्मान्तरण की घोषणा विचारक हिंदू नेताओं को आसमान की कुल्हाड़ी क्यों लगी, ग्रह स्पष्ट होता है। हिंदुओं की आत्मघाती उदासीनता और अस्पृश्य लोगों की ओर देखने की इंसानियत-विहीन दृष्टि के कारण राष्ट्र की शक्ति का पतन हो रहा है, यह उन विचारक हिंदू नेताओं को मालूम हो चुका था।

जो काँग्रेस हिंदुओं की संख्या और सामर्थ्य बल पर पुष्ट हुई, उसने हिंदुओं के धर्मान्तरण की ओर ध्यान न देने से पंजाब और त्रवणकोर प्रान्त में हिंदुओं की वैसी दुर्गति हुई है, यह आगे दिए गए आंकड़ों से दिखाई देगा। उससे शिवाजी, दयानंद, श्रद्धानंद, भाई परमानंद और वीर सावरकर भ्रष्ट हिंदुओं को हिंदू धर्म में लेने के लिए निरंतर संघर्ष क्यों कर रहे थे, इसकी कल्पना स्पष्ट आ जाती है। डॉ. मुंजे और डॉ. कूर्तकोटि आंबेडकर से अनुरोध करते हुए इनके पीछे क्यों घूम रहे थे, इसका भी स्पष्टीकरण हो जाता है। क्योंकि अस्पृश्यों के धर्मान्तरण से उन्हें हिंदुओं के एकमेव देश को बचाना था।

ईस्वी सन् 1901 में असम में प्रति 10,000 जनसंख्या में हिंदू 5578 थे, मुसलमान 2189 और ईसाई 23 थे। 1941 में वह हिंदुओं की संख्या प्रति 10,000 में 4129 तक गिर गया। मुसलमानों की संख्या 3373 ईसाइयों की संख्या 35 तक बढ़ गयी। पंजाब में मुसलमानेतरों की कुल जनसंख्या 53 प्रतिशत थी। मुसलमान 47 प्रतिशत थे। 1941 में मुसलमानेतरों की मात्र 47 प्रतिशत तक नीचे गिर गयी। मुसलमानों की मात्र 53 प्रतिशत तक बढ़ गयी। त्रवणकोर में 1920 में हिंदू कुल जनसंख्या के 83 प्रतिशत थे, ईसाई 12. 4 प्रतिशत थे। 1941 में हिन्दु 60.5 प्रतिशत तक आए, तो ईसाई 32.3 प्रतिशत तक बढ़ गए।

अस्पृश्यों में से अधिक से अधिक लोग येशु के चरणारविंद में अर्पण कैसे किए जाए, इस संबंध में विवेचन करते हुए 'अस्पृश्यों का शोध' (अनटचेबल्स क्वेस्ट) ग्रन्थ के रचियता गॉडफ्रे एडवर्ड फिलिप्स बड़े ठाठ से कहते हैं कि, हिंदू समाज के ईसाइयों में से 70 ईसाई मूल अस्पृश्य वर्ग में से थे। प्रस्तुत ग्रन्थकर्ता और लिखते हैं कि, '1931 में समाप्त हुऐ दशक में ईसाई समाज में हर महीने अपने आप ही 5000 से भी अधिक ईसाइयो की वृद्धि होती थी और हर महीने ग्रामीण इलाके में 7000 लोग ईसाई धर्म की दीक्षा लेते थे।'

हिंदुओं के इस्लाम धर्म की दीक्षा देने का इस्लाम नेताओं का ध्येय मुसलमानों में पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा था। इसी कारण से जनगणना के समय अस्पृश्यों का हिंदू के रूप में पंजीकरण न हो। इस तरह का आक्षेप मुसलमानों ने लिया था और काँग्रेस दल के व्यासपीठ से मौलाना महंमद अल्ली ने अस्पृश्य वर्ग का हिंदू और मुसलमानों में समसमान बंटवारा कर लेने की अपवित्र इच्छा स्पष्टतया व्यक्त की थी। उस समय राष्ट्रसभा के हिंदू नेता कौरव सभा में बैठे हुए पाण्डवों की तरह गर्दन नीचे करके बैठे थे।

'जातियों का निर्मूलन' नामक आंबेडकर के प्रबंध पर सारे भारत में उलट-पलट चर्चा। आलोचना चल रही थी। किसी ने निंदा की, किसी ने स्तुति। अपनी अपनी क्षमता के अनुसार प्रत्येक विचारी नेता ने आंबेडकर के प्रबंध का खंडन या मंडन करने का प्रयास किया। सावरकर और आंबेडकर का अस्पृश्यता निवारण के बारे में काफी मतैक्य था। परन्तु हिंदुओं का इतिहास एक अखंड पराजय की मालिका है इस विधान का उन्होंने हिंदुओं के वैभवशाली समय की और अँगुली निर्देश कर उत्तर दिया। आंबेडकर का विधान बौद्धिक दृष्टि से जितना छेड़ने वाला, प्रक्षो-प्रवर्तक था सावरकर का उत्तर उतना ही समर्थनवादी लेकिन समर्पक!

अस्पृश्यों के धर्मान्तरण को विरोध दर्शाकर आंबेडकर को गांधीजी ने उत्तर दिया। आंबेडकर के आरोपों को उतर देते समय गांधीजी ने प्रतिद्वंद्वी को स्तुतिसुमन से युक्त ताना कसने की अपनी अतुलनीय शैली में कहा, 'आंबेडकर आगे कोई भी नाम धारण करें। एक बात सही है कि, वे अपना नाम तुरन्त विस्मृति में सहज रूप में पड़ने नहीं देंगे। अपने आनुवंशिक घंधों का अनुकरण कर आजीविका करने की सीख वर्णव्यवस्था हिंदुओं को प्रदान करती है। आंबेडकर की नाप-तौल की जाए, तो सभी धर्म अधूरे दिखाई देंगे, तुच्छ ठहरेंगे। जिस धर्म ने चौतन्य, ज्ञानदेर, तुकाराम, रामकृष्ण परमहंस, तिरुवलुवर राजा राममोहन रॉय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानंद जैसे महान नररत्न निर्माण किए 'वह धर्म आंबेडकर कहते हैं उतना तुच्छ निश्चय ही नहीं!' अंत में गांधीजी ने कहा, 'तथापि, समाज सुधारकों का आंबेडकर के इस प्रबंध की ओर आनाकानी करना नहीं चलेगा। आंबेडकर हिंदू धर्म को प्राप्त हुआ एक आवाह्न है।'

इस पर उत्तर देते समय आंबेडकर ने कहा कि, 'जातियों का निर्मूलन' प्रबंध प्रसिद्धि की लालसा से मैने छापा, ऐसा गांधीजी ने कहा है, जिसके बारे में हमें उन पर दया आती है। महात्मा सरीखे जो लोग काँचघर में रहते हैं, वे दूसरों पर पत्थरबाजी न करे तो ही ठीक होगा! 'नैसर्गिक प्रवृत्ति के खिलाफ आनुवंशिक व्यवसाय के गांधी प्रणीत तत्व और चातुर्वण्य में कोई फर्क नहीं। गांधीजी को आनुवंशिक तत्व के अनुसार तराजू न पकड़ते हुए बैरिस्टर बनकर अधूरा संयासी और अधूरा राजनीतिज्ञ नहीं बनना चाहिए था, ऐसा मर्मभेदक सवाल आंबेडकर ने गांधीजी से किया। गांधीजी द्वारा उल्लेखित संतमालिका निर्देश करते हुए उन्होंने कहा कि, 'उन संतों ने जातिभेद के खिलाफ आंदोलन नहीं किया था। उनके पवित्र जीवन का और उनकी उदात्त सीख का जनमानस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। शास्त्र के खिलाफ उनका कुछ भी नहीं चल सका।' उन्होंने अपने पत्र के अंत में गांधीजी से पूछा, अहो, ऐसे पुरुषोत्तम हाथ की उंगलियों पर गिने जा सके इतने कम क्यों? और बुरे ज्यादा क्यों? हिन्दू धर्म और हिंदुओं के साथ मेरा जो संघर्ष है, वह उनके दोषास्पद सामाजिक बर्ताव के बारे में नहीं, उनके ध्येय के बारे में है। वे ध्येय मेरी समझ के अनुसार गलत है।' किस धर्म ने युगों-युगों से पुरुषोत्तमों की मालिका निर्माण की इसके बारे में आंबेडकर ने कुछ भी नहीं कहा।

निष्कर्ष

डा0 अम्बेडकर के संघर्ष के फलस्वरूप भारतीय संविधान में निहित प्रावधानों के तहत आरक्षण व्यवस्था के लाभ से शोषित समाज के कुछ लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया। परन्तु सामाजिक दायित्व के प्रति उनकी चेतना में सुधार नहीं आ सका तथा सामाजिक दायित्व के प्रति उनकी चेतना कम ही रही।

सर्वप्रथम अप्रैल 1971 में पूना में स्थित खड़की उपनगर के एक मद्रासी स्कूल में कांशीराम ने एक सभा आयोजित की। जिसमें मनोहर आटे सहित 50-60 कर्मचारी उपस्थित थे। सभा को संबंधित करते हुए कांशीराम ने कहा कि आज देश भर में अनुसूचित जाति-जनजाति के करीब 17 लाख शिक्षित कर्मचारी है। यदि इन्हें एक झण्ड़े के नीचे लाया जाए तो एक देशव्यापी गैर-राजनीतिक संगठन बनाया जा सकता है, और उसके माध्यम से डा0 अम्बेडकर के सपनों को पूरा किया जा सकता है।

डा0 अम्बेडकर ने अपने अथक प्रयासों द्वारा जो आरक्षण दलित वर्ग को दिलाया था, उस आरक्षण के बल पर ही जिन लोगों ने पढ़-लिखकर दलित समाज में उन्नति की उन्हीं पढ़े-लिखे लोगों ने अपना एक सामाजिक वर्ग बना लिया और अम्बेडकर तथा अम्बेडकर के विचारों को अस्वीकार भी किया। ऐसे क्या कारण रहे होंगे जिनके कारण पढ़ा-लिखा दलित वर्ग अम्बेडकर से दूर होता चला गया। 18 मार्च, 1956 को आगरा में डा0 अम्बेडकर द्वारा दलित-शोषित समाज से संबंधित पढ़े-लिखे कर्मचारियों के बारे में व्यक्त विचारों से उनके हृदय में गहरी पीड़ा पहुंची। उन्हें ऐसा लगा कि डा0 अम्बेडकर ने इन पढ़े-लिखे सरकारी कर्मचारियों को स्वार्थी बनने के कारण, अपने समाज से ही अलग होकर, एक अलग वर्ग बना लिये जाने के कारण फटकार लगायी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अम्बेडकर बी0आर0– 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट ए रिप्लाई टू महात्मा गाँधी, डा0 बाबा साहेब अम्बेडकर राईटिंग एंड स्पीचेज', वाल्यू-1, बाम्बे गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, 1979, पृष्ठ-112
2. अम्बेडकर बी0आर0– 'अछूत कौन और कैसे'? भदन्त आनन्द कौसत्यापन (अनु0) लखनऊ, कल्चरल पब्लिशर्स, 1990, पृष्ठ-82
3. अम्बेडकर बी0आर0– 'द अन्टचेबल्स', भारतीय बौद्धशिक्षा परिषद, द्वितीय संस्करण, 1969, पृष्ठ-2
4. अम्बेडकर बी0आर0– 'हू वर द शूद्रा हाऊ देय कम टू बी फोर्थ वर्ण इन द इंडो आर्यन सोसायटी'? बॉम्बे, ठक्कर एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 1946, पृष्ठ-20
5. अम्बेडकर बी0आर0– 'अन्टेचबल्स हू आर दे एंड व्हाइ दे बी कम अन्टेचेबल्स', न्यू देहली, अमृत बुक कं0, 1948, पृष्ठ-38
6. बाली एल0आर0– 'अम्बेडकर बनाम गाँधी' अलीगढ़, आनन्द साहित्य सदन, 1994, पृष्ठ-21
7. बेग नसीरूल्ला जे0– 'राइट्स ऑफ माइनारिटिज अंडर द इण्डियन कांस्टीटयूशन', लखनऊ, बुद्ध विहार, 1976, पृष्ठ-19
8. बघेल डी0एस0– कर्चुली टी0पी0 सिंह - 'राजनैतिक समाजशास्त्र', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर दिल्ली, 2007, पृष्ठ-330
9. बाल्मीकि ओमप्रकाश– 'सदियों का संताप', गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ-45
10. चंचरीक के0एल0– 'भारत में दलित आन्दोलन एक मूल्यांकन', प्रकाशन, सृष्टि बुक डिपो, 1993, पृष्ठ-53
11. चन्द्रा आर0, चंचरीक कन्हैया लाल– 'आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन', यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ-355

12. सी0पी0आई.– 'डाक्यूमेन्टस ऑफ हिस्ट्री ऑफ दी कम्यूनिष्ट पार्टी ऑफ इंडिया', खण्ड-8 (1951-1956), पृष्ठ-915
13. चंचरीक के0एल0, सिंह धीर– 'भारतीय दलित आन्दोलन की रूपरेखा', यूनिवसिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-373
14. धुर्ये जी0एस0– 'कास्ट, क्लास एंड आक्यूपेशन', पापुलर बुक डिपो, बाम्बे, 1961, पृष्ठ-215
15. फाड़िया बी0एल0– 'राजनैतिक सिद्धान्त', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृष्ठ-180
16. फाड़िया बी0एल0– 'लोक प्रशासन के तत्व', साहित्य भवन, पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृष्ठ-122
17. फाडिया बी0एल0– 'भारतीय शासन एवं राजनीति', साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृष्ठ-810
18. गोस्वामी एम0सी0– 'कास्ट एंड आक्यूपेंशन इन असामीज विलेज, मैन इन इंडिया', वॉ-46, नं0-3, 1966, पृष्ठ-166
19. गोपाल राम– 'भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1970, पृष्ठ-45

Footnotes

1. महीप सिंह एवं चंद्रकांत बांदिवडेकर, साहित्य और दलित चेतना, द्वितीय संस्करण-2000, प्रकाशक-अभिव्यंजना, काम्पलैक्स लारेंस, दिल्ली-110035, पृष्ठ-16
2. तदैव पृष्ठ-18
3. पूरण मल– 'अस्पृश्यता एवं दलित चेतना', पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर-302003 (राजस्थान), पृष्ठ-43 से 46 तक, 2007
4. पी0के0 श्रीवास्तव, आर0एस0 श्रीवास्तव– 'राजस्थान वार्षिकी'-1990, उदयपुर, अरविन्द प्रकाशन, 1990, पृष्ठ-18
5. तदैव, पृष्ठ-23
6. के0एस0 राजपुरोहित– 'स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहूतियां', (1805-1947), जोधपुर, साइन्टिफिक पब्लिशर्स, पृष्ठ-193
7. डी0 वेंकटेश्वरलू– 'हरिजन-अपर क्लास कनफिलक्टस, न्यू देहली, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, 1990, पृष्ठ-5

‘स्वामी विवेकानंद का सामाजिक विचारधारा’

डॉ० मनोज कुमार सिंह

पटना

सारांश: स्वामी विवेकानंद आधुनिक भारतीय इतिहास के एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रगतिशील विचार धारा के संत थे। उन्होंने गांधीजी की भांति भारतीय जन-जीवन के हर पहलुओं पर अपना खुलकर विचार व्यक्त किया। 1893 के शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेकर, जहां उन्होंने भारतीय वेदांत दर्शन की एक खूबसूरत व्याख्या किया, पश्चिमी जगत में काफी अधिक लोकप्रिय हो गए थे। इसी सम्मेलन में आयरलैंड की महिला मार्गरेट एलिजाबेथ नोबेल भी उपस्थित थी जिनका बहुत सारे अध्यात्मिक उलझन का समाधान मिल गया था। वह धीरे धीरे स्वामी जी के विचारों से प्रभावित होकर उनकी अनेकों इंग्लैंड दौरे की सहायिका बनी। आगे आने वाले समय में 1899 से 1911के मृत्यु पर्यंत व भारत में रही तथा स्वामी जी के साथ रामकृष्ण मिशन के सिद्धांतों व धर्म तथा दर्शन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। स्वामी जी ने राज्य तथा व्यक्तिगत विचार धारा, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किया। हालांकि आध्यात्मिक, धर्म तथा दर्शन तथा सांस्कृतिक एक महिलाओं की स्थिति इत्यादि अनेकानेक पहलुओं पर उन्होंने खुलकर अपना विचार व्यक्त किया। महापुरुषों एवं महान व्यक्तियों के पत्रों से उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं के जीवन दर्शन से हम अवगत होते हैं। इस दृष्टिकोण से स्वामी विवेकानंद का पात्र उनके संपूर्ण व्यक्तित्व तथा प्रतिभा संपन्न जीवन पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपने पत्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और धर्म के कलेवर में नव चौतन्य का संचार किया था। स्वामी जी ने अपने अल्प जीवन काल में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र तथा प्रगतिशील समाज की परिकल्पना की थी। हालांकि स्वामी जी मूल रूप से एक अध्यात्मवादी और हिंदू धर्म के उदाहरण तथा व्याख्याता के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन इसके साथ ही साथ सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने जो चिंतन व मरण कर अपने विचार प्रकट किए उनकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने अपने विचारों में संकीर्ण जातिवादी विचारधारा का खंडन किया क्योंकि भारतीय प्राचीन संस्कृति के महान पुजारी माने जाते थे। उन्होंने गांधीजी की भांति भारतीय समाज में लंबे समय से जारी अस्पृश्यता की निंदा की तथा स्पष्ट शब्दों में विचार व्यक्त किया कि अछूतों को भी ऊंचा जातियों की तरह सम्मान अधिकार मिलना चाहिए। स्वामी जी को भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था थी। उन्होंने सामाजिक एकता पर भी आवश्यकता से अधिक बल दिया। वे भारत की अधिकांश जनता को गरीबी के मूल कारण में आलसी तथा भाग्यवादी विचारधारा को जिम्मेवार मानते थे। इसलिए वे भारतीयों में कार्य करने की संस्कृति का विकास करना चाहते थे। वे भारतीय स्त्रियों के दिन-हीन दशा पर काफी अधिक चिंतित थे तथा स्त्रियों के उत्थान में विश्वास रखते थे। पश्चिमीकरण तथा आधुनिकीकरण के अंतर को भी समझते थे तथा भारतीय परिपेक्ष में इसे बिना- जांचे- परखे बिना अपनाना बेवकूफी मानते थे।

परिचय: भारतीय पुनर्जागरण के उग्र दूतों में राजा राममोहन राय की भांति स्वामी विवेकानंद का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनका जन्म 12 जनवरी सन 1863 मैं कलकत्ता के एक सम्मानित परिवार में हुआ था। उनकी माता आध्यात्मिक विचारधारा से ओतप्रोत थी परंतु उनके पिता स्वतंत्र विचार के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व थे। उनके बचपन का नाम नरेंद्र नाथ दत्त था तथा यह शारीरिक दृष्टि से हिष्ट-पुष्ट तथा सौर्यवान थे। उनका शारीरिक गठन तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। रामकृष्ण के शिष्यता ग्रहण करने से पूर्व में कुश्ती, मुक्केबाजी, घुड़सवारी तथा तैरने आदि में काफी दक्षता प्राप्त कर लिए थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे जो पाश्चात्य दर्शन में भी ढले हुए थे। क्योंकि वह पश्चिमी जगत के अनेकों दर्शन निको दार्शनिकों तथा राजनीतिक चिंतकों के रचनाओं को गहनता से अध्ययन किया था इसलिए इन अध्ययनों के कारण उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक हो गया था। प्रारंभ में वे ब्रह्मसमाज की इच्छाओं से प्रभावित थे, लेकिन वैज्ञानिक अध्ययनों के

कारण उनका ईश्वर से विश्वास नष्ट हो गया था। बहुत लंबे समय तक वे नास्तिक बने रहे और कलकत्ता शहर में एक गुरु की खोज में घूमते रहे जो उनके ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान करा सके। जिस समय में अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस से मिले उस समय उनकी आयु 25 वर्ष की थी। इनको अपने गुरु से मुलाकात मानव प्राचीन तथा नवीन विचारधारा का मिलना था। परमहंस की अध्यात्मिक विचारधारा ने विवेकानंद को विशेष रूप से प्रभावित किया। अपने गुरु से मिलने पर विवेकानंद ने अपने रोढ प्रश्न कर अपने मन की उलझन को दूर किया तथा स्वामी जी के मन की चेतना जाग उठी। अब उनका आकर्षण परमहंस के दिन- प्रतिदिन बढ़ने लगी। अब उन्होंने रामकृष्ण के आगे अपने आप को पूर्णरूपेण अर्पित कर दिया और उनके से शिष्य बन गए। उन दिनों पश्चिमी विचारक हिंदू धर्म की कड़ी आलोचना किया करते थे जिससे स्वामी जी के हृदय को गहरा आघात लगता था। इन आलोचनाओं का उत्तर देने के लिए स्वामी जी ने निश्चय किया कि संसार के सामने भारत की आवाज बुलंद किया जाए। 31 मई सन 1893 मैं वे अमेरिका गए और 11 सितंबर 1893 शिकागो में उन्होंने ''विश्व धर्म संसद'' में अत्यंत सारगर्भित भाषण दिया। उनका यह भाषण संकीर्णता से परे सर्वदेभिकता और मानवता से ओतप्रोत था। वहां की जनता उनकी वाणी को सुनकर मंत्रमुग्ध हो गई। उनके शब्दों में-श्जिस प्रकार सारी धाराएं अपने जल को सागर में लाकर मिला देती है उसी प्रकार मनुष्य के सारे धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं। ''इनकी प्रशंसा में न्यूयॉर्क क्रिटिक ने लिखा- 'वे ईश्वरीय शक्ति प्राप्त वक्त है, उनके सत्य वचनों की तुलना में उनका सुंदर बुद्धिमतापूर्ण चेहरा गैरिक वस्त्र में लिप्त आपका आकर्षण नहीं। 'न्यूयॉर्क हेराल्ड ने भी इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि-विवेकानंद निश्चय ही विश्व धर्म परिषद में एक महान व्यक्तित्व है। उनकी प्रवचन सुनने के पश्चात हम अनुभव करते हैं कि इस प्रकार विद्वान देश को मिशनरी योजना हमारा कितना मूर्खतापूर्ण कार्य है। विवेकानंद के व्याख्यानों के सार पर टिप्पणी करते हुए रोमयांरोला ने लिखा- संसार में कोई भी धर्म मनुष्यता की गरिमा को इतने ऊंचे स्वर में सामने नहीं लाता जितना हिंदू धर्म में लाता है। प्रो० राइट ने तो उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि इनके ज्ञान की तुलना विश्व विद्यालय के समस्त प्रोफेसरों के एकत्र ज्ञान से भी नहीं की जा सकती।

अध्ययन का उद्देश्य: हमारा भारतीय समाज प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेकानेक बदलाव तथा परिवर्तन का साक्षी रहा है। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक सिंधु- घाटी की सभ्यता का हमारा समाज वर्ण तथा वर्ग विहीन समाज था। भारत में आर्यो के आगमन के साथ वर्ण व्यवस्था का आगमन हुआ, तथा कालांतर में अनेक वर्णसंकर जातियों का उदय हुआ प्रारंभ में वर्ण का आधार कर्म था, लेकिन समय के साथ यह जन्म के आधार में परिवर्तित हो गया तथा इसमें जटिलताएं आनी शुरू हो गई। इन्हें जटिलताओं के बीच कुछ ऐसी सामाजिक कुरीतियों का जन्म हुआ जो मध्यकालीन भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन को पार कर आज आधुनिक युग तक कायम है। आधुनिक औपनिवेशिक काल में सती प्रथा, मानव बलि प्रथा, बाल विवाह, ठगी प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को सख्ती के साथ समाप्त किया गया। ऐसी घोर अमानवीय प्रथा थी जो मध्यकालीन अनेक शासकों के प्रयास के बावजूद समाप्त नहीं किया जा सका लेकिन 1829 में इसे राजा राममोहन राय तथा लॉर्ड विलियम वेंटिक के प्रयास से इसे सख्ती से समाप्त किया जा सका। स्वतंत्रोत्तर भारत में नारी शक्ति करण के इस दौर में भी अनेक सामाजिक कुरीतियां कायम है, जैसे:-अस्पृश्यता, छुआ-छूत की भावना, बाल विवाह, जाति-पाति की भावना, नारियों की स्थिति, लोगों में गरीबी तथा अशिक्षा की स्थिति जैसी समस्याओं के समाधान की दिशा में स्वामी विवेकानंद के विचार आज ज्यादा प्रासंगिक है क्योंकि भारत में गरीबी तथा अशिक्षा की स्थिति में कार्य करने की संस्कृति का अथाव प्रमुख कारण मानते थे। वे नारी सम्मान तथा स्वतंत्रता के हिमायती थे। वे अछूतों तथा मुख्यधारा से कटे हुए लोगों को भी उच्च वर्ण के लोगों के सम्मान अधिकार चाहते थे। इसलिए आज के इस दौर में स्वामी जी के विचार ज्यादा प्रासंगिक हो गए हैं।

स्वामी विवेकानंद के सामाजिक विचारधारा: सामान्य तौर पर स्वामी विवेकानंद एक अध्यात्मिक हिंदू धर्म के उदाहरण तथा व्याख्याता के रूप में जाने जाते हैं, इसके साथ ही साथ सामाजिक क्षेत्र में भी काफी चिंतन-मनन कर अपना विचार प्रकट किया। प्राचीन भारतीय संस्कृति के एक महान पुजारी थे और उनका मजबूती से प्रचार भी करते थे इसके साथ ही उन्होंने प्रचलित रूढ़िवादिता और संकीर्णता के विरुद्ध जोरदार संघर्ष भी किया था। वे जाति व्यवस्था के बहुत बड़े आलोचक थे। वे मानते थे कि आधुनिक युग में वर्ण-व्यवस्था सामाजिक अत्याचारों को बढ़ावा देने वाली है। यह वर्ग तथा जाति व्यवस्था में भारतीय समाज को खोखला कर दिया है। वे ब्रह्मचर्य वर्ग के एकाधिकारवाद पर भी आघात किया। गांधीजी तथा अंबेडकर की तरह अस्पृश्यता को भारतीय समाज का कोढ मानते थे। वे इसे अत्यंत निंदनीय तथा कुर मानते थे क्योंकि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान है। वे भारतीय संस्कृति के महान पुजारी होने के नाते देश के बुद्धिजीवियों को पाश्चात्य संस्कृति की चमक-दमक में भारतीय संस्कृति को

नहीं भूल जाना चाहिए वे भारतीय समाज के सभी वर्गों तथा धर्म के लोगों के बीच सामाजिक एकता को कायम बनाए रखने के हिमायती थे। स्वामी जी ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अपने भ्रमण के दौरान लोगों में गरीबी तथा शिक्षा का प्रमुख कारण कार्य करने की संस्कृति (work culture) का अभाव को बताया। स्त्रियों के दिन-हीन स्थिति से भी काफी दुखी थे इसलिए इनके सुधार के लिए भी अपना आवाज बुलंद किया। उनका मानना था कि वैदिक काल में भारतीय स्त्रियां पुरुषों के समक्ष समस्त अधिकारों का उपयोग करती थी तथा उन्हें प्रत्येक प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी। लेकिन दुख की बात यह है कि आज भारत की नारी केवल उपभोग की वस्तु बनकर रह गई है। वे मानते थे कि इनकी दशा सुधारी बिना किसी भी देश का कल्याण संभव नहीं है वे आधुनिकीकरण तथा पश्चिमीकरण में आधुनिकीकरण के पक्षधर थे तथा पश्चिमीकरण को भारतीय संदर्भ में बिना जांचे-परखे अपनाने के पक्ष में नहीं थे। वे कहा करते थे कि हमें अपने प्रकृति तथा स्वभाव के अनुसार विकसित होना चाहिए तथा विदेशी समाजों के कार्य प्रणाली को अपनाना व्यर्थ है। भारतवासियों में एक नवीन उत्साह तथा चेतना का संचार करके राष्ट्रीय जागरण में योगदान किया जो हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। राष्ट्रकवि दिनकर भी मानते थे कि उन्होंने हिंदू धर्म तथा भारतीय संस्कृति की जो सेवा की उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। संसार के सम्मुख भारतीय संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठता की सवीच्यता के शिखर पर ले जाने का श्रेय विवेकानंद को ही जाता है। अपनी ओजस्वी वाणी के द्वारा सोए हुए हिंदुओं में स्वाभिमान तथा आत्मगौरव की भावना का संचार किया उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

निष्कर्ष: इस तरह उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्वामी विवेकानंद एक अत्याधुनिक हिंदू धर्म के उद्धारक और व्याख्याता के रूप में जाने जाते हैं, इसके साथ ही साथ उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में विद्वान सामाजिक कुरीतियों से भी वे लगाव रखते थे तथा इसके समाधान के लिए हमेशा चिंतन-मनन किया करते थे। उनका भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से गहरा लगाव था इसलिए इसमें संकीर्णता के तत्वों से वे काफी क्षुब्ध थे। वे आधुनिक वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था तथा ब्राह्मण वर्ग के एकाधिकार को वह हमारी सभ्यता तथा संस्कृति को खोखला करने वाले तत्व मानते थे। उनका मानना था कि ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्य एक समान है तो फिर मानव मात्र की इसमें भेद करने तथा इसमें छुआ-छूत की अवधारणा सैलानी का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। वे देश के बुद्धिजीवियों को पश्चिमी दमक-चमक से अलग रहने के लिए भी चेताया। वे देश के विभिन्न भागों का वर्णन कर देश में फैली गरीबी तथा अशिक्षा का प्रमुख कारण कार्य करने की संस्कृति का अभाव बताया। वे तत्कालीन भारतीय स्त्रियों के दीन-हीन स्थिति से भी काफी दुखी थे क्योंकि उनका मानना था कि प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक सभ्यता में उन्हें काफी सम्मान और अधिकार प्राप्त थे लेकिन आज वे उपभोग की वस्तु बनकर रह गई है। वे अपने सम्मेलन में विश्व को भारतीय धर्म तथा दर्शन से अवगत कराया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ० मनोज कुमार सिंह-THE REVOLUTIONARY HUMANISM AND THE Socio-POLITICAL IDEAS OF SWAMI VIVEKANANDA-THESIS
2- SURYA R-LALL-EDUCATION PUBLISHER'S-MEERUTH
3. डॉक्टर प्रभुदत्त शर्मा-आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास
4- Swami Vivekananda books online
5- Swami Vivekananda books pdf

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय लोक सेवकों का प्रशिक्षण: प्रशिक्षण-प्रबंधन की समस्याएं एवं सुधार की आवश्यकता

डॉ० मो० रेयाज़ अहमद

रिसर्च एसोसिएट, सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन-केंद्र
एवं सह-संयोजक, लोक प्रशासन विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

भूमंडलीकरण के दो दशकों बाद भारतीय लोकसेवाकों का स्वरूप, इसकी प्रकृति एवं कार्यप्रणाली में परिवर्तन तो हुआ है परन्तु जन आकांक्षाओं के अनुरूप भारतीय लोकसेवक अपने आप को जनता के सेवक के रूप में स्थापित करने में नितंत रूप से असफल रहे है। स्वतंत्रता के 74-75 वर्षो बाद भी स्थानीय स्तर अर्थात जिला व ब्लॉक स्तर पर 'हम भारत के लोग' .... जिलाधिकारी अथवा अन्य अधिकारियों को आज भी.......... माई-बाप, जी-हुजूर, सरकार व मालिक कह कर सम्बोधिक किया जा रहा है जिससे स्पष्ट होता है कि जिस अधिकारीतन्त्र को लोक सेवक बन कर 'हम भारत के लोग' की सेवा करनी थी वह नही हो पाई है तथा वही जन-आकांक्षा बेहतर अथवा सुशासन, पादर्शिता, कानून का शासन, बेहतर व सुचारू सेवा तथा जवाबदेह व संवेदनशील लोक सेवक चाहती है। इस सन्दर्भ में कार्मिक प्रशासन, समग्र लोक प्रशासन का केंद्र-बिन्दु बन गया है। इसी कार्मिक प्रशासन का एक प्रमुख अव्यव/आयाम है- प्रशिक्षण। प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है जो कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में सामयिक अभिवृत्ति करती है। वर्तमान प्रशासनिक तथा औपचारिक संगठनों में विशेषज्ञ या विशिष्ट कौशल से परिपूर्ण लोक सेवकों का विशेष महत्व है।

प्रस्तुत अध्ययन में, भारतीय लोक सेवकों के प्रशिक्षण-व्यवस्था को समझना व आंकलन करना तथा भारत सरकार द्वारा निर्मित प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति-1996 तथा द्वितीय राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति-2012 को विश्लेषित करना तथा इसका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना एवं साथ ही साथ द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की 10वीं रिपोर्ट 'कार्मिक प्रशासन का पुनर्गठन: नई ऊचाइयाँ' को समझना तथा प्रशिक्षण संबंधी उनकी अनुशंसाओं को व्याख्यित करना। विशेष रूप से भारतीय लोक सेवकों के प्रशिक्षण की समस्या/रूकावटों को समझना तथा कार्मिक प्रशासन के सन्दर्भ में प्रशिक्षण-प्रबन्धन से संबंधित वांक्षित सुझाव प्रस्तुत करना।

संकेत-शब्द: लोक कार्मिक प्रबन्धन, कार्यनिर्वाह-क्षमता, प्रशासनिक सुधार, लोक सेवक कार्यक्षेत्र (डोमेन), राष्ट्रीय प्रशिक्षा नीति, प्रशासनिक सुधार।

परिचय

वर्तमान विश्व की किसी भी शासन-व्यवस्था में लोक सेवकों के बिना, शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के संचालन की संकल्पना तक नही की जा सकती है। विकसित देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्रियाएं परिवक्वता तथा आधुनिकता के स्तर पर पहुँच चुकी है और इन क्रियाओं के सन्दर्भ में वहाँ का लोक प्रशासन व लोक सेवक भी परिपक्व व दक्ष

हो चुका है परन्तु भारत जैसे, विकासशील देश जहाँ औपनिवेशिक काल में विकसित हुई लोक सेवा अनेकानेक विसंगतियों के बावजूद भी विकास के सपने साकार करने में महती भूमिका रखती है, क्योंकि समस्त प्रकार के संसाधनों में मानव-श्रमशक्ति अर्थात कर्मचारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस संबंध में हरमन फाइनर का कहना है-'लोक प्रशासन में सेवीवर्ग अर्थात लोक सेवक को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।' आधुनिक प्रशासकीय राज्यों के कर्तव्यों के निर्वहन हेतु सुसंगठित एवं कार्यकुशल लोक सेवकों का होना आवश्यक है इस सन्दर्भ में कार्मिक प्रशासन, समग्र लोक प्रशासन का केंद्र-बिन्दु बन गया है। कार्मिक प्रशासन (पर्सोनेल एडमिस्ट्रेशन) को सेवीवर्गीय या स्टाफ-प्रबन्धन, जनशक्ति प्रबन्धन के नामों से भी जाना जाता है। इसी कार्मिक प्रशासन का एक प्रमुख अव्यव/आयाम है-प्रशिक्षण। प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है जो कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में सामयिक अभिवृत्ति करती है। वर्तमान प्रशासनिक तथा औपचारिक संगठनों में विशेषज्ञ या विशिष्ट कौशल से परिपूर्ण लोक सेवकों का विशेष महत्व है। आज कार्मिक विकास के लिए प्रशिक्षण की अवधारणा के रूप में भलीभाति समझी जा रही है तथा यह एक निरंतर चलते वाली प्रक्रिया है।

भूमंडलीकरण के दो दशकों बाद भारतीय लोकसेवाकों का स्वरूप, इसकी प्रक्रति एवं कार्यप्रणाली में परिवर्तन तो हुआ है परन्तु जन-आकांक्षाओं के अनुरूप भारतीय लोकसेवक अपने आप को जनता के सेवक के रूप में स्थापित करने में नितांत रूप से असफल रहे है। स्वतंत्रता के 74-75 वर्षो बाद भी स्थानीय स्तर अर्थात जिला व ब्लॉक स्तर पर 'हम भारत के लोग' .... जिलाधिकारी अथवा अन्य अधिकारियों को आज भी.......... माई-बाप, जी-हुजूर, सरकार व मालिक कह कर सम्बोधित किया जा रहा है जिससे स्पष्ट होता है कि जिस अधिकारीतन्त्र को लोक सेवक बन कर 'हम भारत के लोग' की सेवा करना था वह नही हो पा रहा है तथा वही जन-आकांक्षा बेहतर अथवा सुशासन, पादर्शिता, कानून का शासन, बेहतर व सुचारू सेवा तथा जवाबदेह लोक सेवक चाहती है।

समस्या का कथन

भारतीय लोक सेवकों का प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का अभिन्न अंग तो है ही परन्तु क्या इसे भारत में प्रशिक्षण प्रबंधन की प्रक्रिया में महत्व दिया गया? तथा क्या इसे कार्मिक प्रशासन से इतर मानते हुए स्वतन्त्र रूप से इसमें सुधारात्मक कदम उठाए गए? क्या राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति ने भी प्रशिक्षण को एकांगी रूप में ही प्रस्तुत किया? क्या प्रशिक्षण पर प्रभावकारी सुधारात्मक उपाय/समाधान किए जा सके है अथवा नही?

अध्ययन का उद्देश्य

1. भारतीय लोक सेवकों के प्रशिक्षण-व्यवस्था को समझना व आंकलन करना।
2. भारत सरकार द्वारा निर्मित प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति-1996 तथा द्वितीय राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति- 2012 को विश्लेषित करना तथा इसका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना।
3. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की 10वीं रिपोर्ट 'कार्मिक प्रशासन का पुनर्गठन : नई ऊचाइयाँ' का अध्ययन करना तथा प्रशिक्षण संबंधी उनकी अनुशंसाओं को व्याख्यायित करना।
4. भारतीय लोक सेवकों के प्रशिक्षण की समस्या/रूकावटों को समझना तथा कार्मिक प्रशासन के सन्दर्भ में प्रशिक्षण-प्रबन्धन से संबंधित वांक्षित सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन की पद्वाति (मेथडोलॉजी): यह अध्ययन मुख्य रूप से अध्ययन के द्वितीयक स्रोत यथा पुस्तकें, शोध-पत्र/आलेख विभिन्न कमेटी/कमीशन की रिपोर्ट आदि होंगे।

अध्ययन का विश्लेषण: प्रशिक्षण, कार्मिक प्रशासन/प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण अव्यव है। विलियम जी टोर्पे के अनुसार - 'यह कर्मचारियों में चतुर्थता, आदतें, ज्ञान तथा दृष्टिकोण विकसित करने की एक प्रक्रिया है जिससे कर्मचारियों की वर्तमान शासकीय स्थिति प्रभावशाली हो सके तथा कर्मचारियों को भावी सरकारी स्थिति (पद) के लिए तैयार किया जा सके।'

वस्तुत: शिक्षण तथा प्रशिक्षण में अन्तर है शिक्षण से तात्पर्य 'व्यक्ति का बाल्यकाल से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण पोषण, चरित्र, आदतों, तरीकों तथा बौद्विक एवं शारीरिक क्षमता के निर्माण से है।' शिक्षा मुख्य रूप से ज्ञान देती है जबकि प्रशिक्षण, एक विशिष्ट

प्रकार का शिक्षण है। उदाहरण स्वरूप बाबर के युद्धों के बारे में बताना, केवल ज्ञान देना है अर्थात यह शिक्षण है जबकि किसी व्यक्ति को युद्व कला सिखाना ष्प्रशिक्षणष है। प्रशिक्षण में निम्न तत्व सम्मिलित है–

1. प्रशिक्षण से ज्ञान प्राप्त होता है। (नॉलेज)
2. प्रशिक्षण से विशिष्ट कौशल पैदा होता है। (स्किल)
3. प्रशिक्षण से किसी काम को करने की अभिवृत्ति पैदा होती है। (एटीच्यूट)
4. प्रशिक्षण से उस काम को व्यवहार में करने की क्षमता आती है। (प्रैक्टिस)

निर्विवाद रूप से, किसी भी प्रशासन, संगठन की कार्यकुशलता तथा उपादेयता उसमें कार्यरत कर्मचारियों की क्षमताओं से प्रभावित होती है। भारत में प्रशासनिक तथा तकनीति प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों के अधीन लगभग पाँच हजार प्रशिक्षण संस्थाएं कार्यरत हैं। जबकि उच्चतर लोकसेवा के प्रशिक्षण हेतु मुख्य रूप से लगभग 32 संस्थानों के अतिरिक्त राज्स स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाएं भी कार्यरत है।

स्वतन्त्रता उपरान्त लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु अनेकानेक कदम उठाए गए है। भारत सरकार एवं विभिन्न राज्स सरकारों ने समय-समय पर प्रशिक्षण को लेकर आवश्यक कदम उठाया है। कई कमेटियों/कमीशनों का गठन भी किया गया है तथा सन् 1996 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति भी बनाई गई है जो लोकसेवकों के प्रशिक्षण जरूरतों से संबंधित है। इसमें कहा गया है कि-'इसकी (प्रशिक्षण), तीव्र प्रद्यौगिकीय परिवर्तनों और साथ ही देश में हो रहे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के संदर्भ में जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में लोक सेवकों के बीच आवश्यक नेतृत्व व विश्वास कायम करने के संबंध में और अधिक संगतता हो गई है।' राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति मार्गनिर्देशों में 'निष्पादन-संवर्धन और साथ ही कार्मिकों के ज्ञान और दक्षताओं के उन्नयन के लिए भी एक प्रभावी व जचें हुए साधनों के रूप में प्रशिक्षण के महत्व पर भी बल दिया गया है। संगठनात्मक अभिप्रेरण और मनोबल, जैसा कि अभिवृत्तियों और प्रशासनिक संस्कृति में परिलक्षित है, प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से संगत और तीव्र रूप से संकेन्द्रित हो जाते है। उभरती राजनीतिक और सामाजिक चिंताओं के प्रति संवेदनशीलता, विचारधारा में आधुनिकता तथा प्रशासनिक पद्धतियों के पुनर्गठन के लिए विशिष्ट रूप से संकेद्रित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की जरूरत होगी ताकि उनका प्रसार पूरी प्रशासनिक प्रणाली में हो जाए।' नीति के अन्तर्गत इस बात को स्वीकारा गया है कि प्रशिक्षण निष्पादन, संवर्धन और साथ ही कार्मिकों के ज्ञान और दक्षताओं के उन्नयन के लिए भी एक प्रभावी और जंचा हुआ साधन है। इसमें कहा गया है कि प्रशिक्षण :

क. व्यक्ति और संगठनों के बेहतर निष्पादन के लिए आवश्यक व्यवसायिक ज्ञान दक्षताओं को और बढाने वाला और अद्यतन होना चाहिए,

ख. व्यवसायिक आवश्यकताओं की बेहतर समझ-बूझ को प्रोत्साहित करने वाला और किए जाने वाले कार्यो में समाजार्थिक और राजनीतिक परिवेश के प्रति संवेदनशील भी होना चाहिए, और

ग. उससे ही अभिवृत्तिमूलक अनुस्थापन कायम होना चाहिए।

संक्षेप में, इस प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति में प्रतिक्रियाशीलता, प्रतिबद्वता, जागरूकता तथा जवाबदेहिता को सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है। साथ ही प्रशिक्षण के महत्व को समझते हुए इस नीति में 1.5 प्रतिशत कर्मचारियों के वेतन की राशि प्रशिक्षण के ऊपर व्यय करने हेतु सिफारिश की गई थी।

भारत सरकार द्वारा गठित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी 10वीं रिपोर्ट

'कार्मिक प्रशासन का पुर्नगठन : नई ऊचाइयाँ' में अन्य कार्मिक प्रशासनिक मुद्दों के साथ-साथ प्रशिक्षण को महत्वपूर्ण मानते हुए प्रसांगिक व उपयोगी निम्न सुझाव दिए है–

1. प्रत्येक सरकारी सेवक को प्रारम्भिक स्तर पर अनिवार्य और उसकी सेवा-अवधि के दौरान समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। इन प्रशिक्षणों को सफलतापूर्वक पूरा करना सेवा में स्थायीकरण और आगामी पदोन्नतियों की एक न्यूनतम आवश्यक शर्त होनी चाहिए।
2. राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति-1996 के परिपालन पर नजर रखने के लिए एक मानीटरन पद्वति कायम की जानी चाहिए।

3. सभी समूह 'क' सेवाओं के लिए-सामान्य, विशेषज्ञ और तकनीकि-एक 'एकसमान फाउंडेशन पाठ्यक्रम' की पद्वति जारी रखनी चाहिए। समूह 'ख' और 'ग' सेवाओं के लिए, सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबन्धन संस्थान को विकसित कर एक नोडल ऐजेन्सी के रूप में जिम्मेदारी देनी चाहिए।
4. सभी लोकसेवकों को प्रत्येक पदोन्नति के पहले अनिवार्य प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए और प्रत्येक प्रशिक्षण कार्यक्रम के बाद प्रत्येक अधिकारी का आंकलन किया जाना चाहिए।
5. कैरियर-मध्य प्रशिक्षण का उद्देश्य, अधिकारी के बदलते कार्य प्रोफ़ाइल के लिए अपेक्षित कार्य-क्षेत्र के ज्ञान और दक्षता का विकास करना चाहिए।
6. सरकारी सेवकों को उच्चतर शैक्षणिक अर्हताएं प्राप्त करने और विख्यात तथा अधिकृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए पत्र लिखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. लोकसेवकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए केंद्रीय व राज स्तरों पर प्रशिक्षण संस्थानों का एक मजबूत नेटवर्क कायम किया जाना चाहिए। हालाकि संसाधनों को बडी संख्या में संस्थानों के बीच फैलाने के बजाए, कुछ एक संस्थानों का चयन कर क्षमता निर्माण और स्तरोन्नयन हेतु किया जाना चाहिए।
8. राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थानों जैसे कि लाल बहादुर शास्त्री एकेडमी, सरदार बंलभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय विदेशी मामले और राज्य प्रशासनिक शिक्षण संस्थानों के शासी निकायों के गठन का उनमें प्रख्यात विशेषज्ञ शामिल करके विस्तार किया जाना चाहिए। शासी निकायों को पर्याप्त रूप से सशक्त बनाना चाहिए ताकि वे अपने कायों का सुचारू ढंग से निष्पादन कर सकें।
9. किसी एक विद्यमान राष्ट्रीय/राज्य संस्थान का स्तरोन्नयन करके एक राष्ट्रीय उत्तम शासन संस्थान कायम किया जा सकता है यह संस्थान सर्वोत्तम पद्वतियों का विनिर्धारण, प्रलेखन और प्रसार करेगा तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करेगा।

भारत सरकार ने द्वितीय राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति-2012 बनाई है। जिसमें प्रशिक्षण का उद्देश्य- 'एक ऐसी लोकसेवा को विकसित करना जो, व्यवसायिक, निर्वयक्तिक एवं कार्यकुशल हो, साथ ही साथ जनता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला तथा जवाब देह हो।' और ऐसा करने में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सत्यनिष्ठा, कार्य के प्रति प्रतिबद्वता के साथ-साथ समाज के कमजोर तबकों यथा-दिव्यांगजनों, वरिष्ठ नागरिकों, अनुसूचित जाति/जनजाति का विशेष ध्यान दिया जाए। प्रशिक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि लोकसेवकों के निष्पादन में वास्तविक वृद्वि कितनी हुई।

मंत्रालयों/विभागों की भूमिका

प्रत्येक मंत्रालय/विभाग एक व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाते हुए निम्नलिखित कार्य करेंगे :

1. प्रशिक्षण प्रबंधक - की नियुक्ति करेंगे जो कि प्रशिक्षण के सभी कार्यो को क्रियान्वित करेगा तथा नोडल अधिकारी होगा।
2. एक प्रशिक्षण कक्ष (ट्रेनिंग सेल) की स्थापना की जाए जिसमें मानव संसाधन एवं क्षमता विकास के विशेषज्ञ होंगे तथा प्रशिक्षण प्रबंधक को सहायता करेंगे।
3. सभी पदों को कार्य-विवरण एवं कार्यनिर्वाह-क्षमता के आधार पर वर्गीकृत किया जाए।
4. आवश्यक कार्यनिर्वाह-क्षमता एवं प्रशिक्षण आवश्यकताओं के आधार पर संवर्गीय प्रशिक्षण योजना का निर्माण किया जाएगा।
5. प्रशिक्षण एवं लोक सेवाओं के कार्यनिर्वाह-क्षमता के विकास को जीवन-वृत्ति से जोड दिया जाए तथा जहाँ आवश्यकता हो संबंधित प्रशासनिक नियम/विनियम आदि में संघोशन कर दिया जाए।
6. कर्मचारियों के पर्यवेक्षक को कर्मचारियों के प्रशिक्षण के संबंध में जवाबदेह बनाया जाए।
7. जहाँ सम्भव हो, वहाँ प्रशिक्षण संस्थानों से संवर्गीय प्रशिक्षण योजना बनाने में सलाहकारी सेवा ली जाए।
8. अपने नियंत्रण में सभी संवर्गो हेतु वार्षिक प्रशिक्षण योजना को बनाना।
9. प्रशिक्षण व्यय के लिए समुचित धनराशि को आवंटित करना।

10. एक पृथक प्रभाग (डिवीजन) की स्थापना की जाए जो वार्षिक प्रशिक्षण योजना एवं चालू वर्ष में किए गए क्षमता विकास के क्रियाओं/कार्यक्रमों की रिपोर्ट बनाकर मंत्रालय/विभाग को प्रस्तुत करे।
11. कार्य पर प्रशिक्षण या विभागीय प्रशिक्षण को संचालित करे।

प्रशिक्षण संस्थाओं की भूमिका

प्रशिक्षण संस्थाएं, प्रशिक्षण व्यवस्थाओं का मेरूदंड है, वास्तव में, यह अपने-अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ ज्ञान और क्षमता विकास का भंडारगृह है। संस्थान की गुणवत्ता और उनके विशेषज्ञ व व्यवयायिक गुणों के आधार पर ही यह निर्भर करता है कि वे प्रशिक्षु पर क्या प्रभाव डाल रहे है तथा प्रशिक्षु क्या प्राप्त कर रहा है। यह संस्थान ही की मुख्य भूमिका होगी लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए तथा यह अपने-अपने क्षेत्र विशेष में प्रशिक्षण कला मे निपुण एवं नेतृत्वकर्ता होंगे तथा इन्हें चाहिए कि :

1. यह संस्थान आवश्यकतानुसार कर्मचारी अध:संरचना एवं पर्याप्त वित्त की व्यवस्था उनके पास होनी चाहिए ताकि वे अपने काम सुचारू ढंग से कर सकें।
2. अपने क्षेत्र विशेष में 'उत्कृष्ट केंद्र' के रूप में अपने को विकसित करे, प्रशिक्षण की गुणवत्ता को स्वमूल्यांकन की प्रक्रिया द्वारा बढाते रहे।
3. वार्षिक प्रशिक्षण योजना बनाने में मंत्रालय/विभागों को आवश्यकतानुसार तकनीकि व सलाहकारी सुझाव प्रदान करे।
4. कार्य-विवरण व कार्यनिर्वाह-क्षमता फ्रेमवर्क को विकसित करने में यह संस्था मुख्य भूमिकाएं निभाए।
5. अपने चालू कार्यक्रमों को दूरस्थ शिक्षा एवं ई-शिक्षा के माध्यम से समृद्ध करते रहे।
6. अपने क्षेत्र/कार्यविशेष में शोध/क्षेत्र-अध्ययन आदि द्वारा ज्ञान को समृद्व करें।
7. अन्य संस्थानों के साथ नेटवर्किंग किया जाए ताकि अर्जित क्षमता, विशेषज्ञता और अनुभव का आदान-प्रदान होता रहे।
8. विशष्ट कार्यक्षेत्र के लिए विशेष प्रशिक्षकों को विकसित करते हुए उनके कार्यकाल की सुरक्षा एवं फेकल्टी विकास का उचित प्रबन्ध करें।
9. प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण (टीओटी) की व्यवस्था करें।
10. प्रशिक्षण के काम आने वाली मानव संसाधनों का एक डेटा-बैंक तैयार करें ताकि भविष्य में काम आए।
11. व्यवहारिक व अभिवृत्ति प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए।

प्रशिक्षक निर्माण/विकास

प्रशिक्षक संवर्ग के विकास में प्रशिक्षक विकास कार्यक्रम (टीडीपी) सीखने/सिखाने की प्रक्रिया का अत्यंत ही सफल पद्वति रही है। 'एक बार प्रशिक्षक-सदैव के लिए प्रशिक्षक' अवधारणा का प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति 1996 के द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यद्यपि प्रशिक्षक विकास कार्यक्रम का पाठ्यक्रम व विषय-वस्तु तीन दशक पुराना हो चुका है जबकि प्रशिक्षण के नवीन तकनीकों व पद्वतियों का विकास हो चुका है विशेषकर सूचना/संचार की नई तकनीकि/प्रविघि के उपयोग से और अधिक व्यक्तियों तक इसकी पहुँच भी है इसी लिए वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षण की तकनीकों व दक्षताओं की पहचान कर तथा नवीन तकनीकों/पद्वतियों के आधार पर एक कुशल 'प्रशिक्षक संवर्ग' का निर्माण जल्द से जल्द किया जाना आवश्यक है। साथ ही साथ प्रशिक्षण संसाधन केंद्र की स्थापना भी लोक-निजी सहयोग (पीपीपी) के आधार पर विकसित किया जाए जिससे एक सतत देशीय क्षमता का भी निर्माण किया जा सके। प्रशिक्षकों का प्रमाणीकरण भी प्रशिक्षक विकास कार्यक्रमों द्वारा ही इस आधार पर किया जाए कि उन्होने कितने प्रशिक्षण दिए एवं अपनी क्षमता में विकास हेतु क्या-क्या किया। यद्यपि प्रशिक्षक प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षक विकास कार्यक्रम का विकास तो समय के साथ हुआ परन्तु इन प्रशिक्षकों की कार्यक्षमता (डोमेन) का निर्धारण कर संवर्ग निर्धारण नही हो पाया है सरकार के अनेकानेक क्षेत्र/कार्य को देखते हुए प्रत्येक क्षेत्र विशेष हेतु एक प्रशिक्षक संवर्ग का निर्माण किया जाना आवश्यक है इस ओर सभी मंत्रालय/विभागों को ध्यान देना चाहिए। छठे वेतन आयोग ने भी केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थानों के प्रशिक्षकों के लिए 30 प्रतिशत प्रशिक्षण भत्ता मुत आवास आदि की व्यवस्थाएं की थी। इसी प्रकार राज्य सरकारों को अपने प्रशिक्षण संस्थानों में भी व्यवस्थाएं करनी चाहिए।

विदेशी प्रशिक्षण

विश्व के प्रसिद्व संस्थानों के विभिन्न विषयों पर नवीन सोंच/तकनीकों का लाभ अपने अधिकारियों को विदेशी प्रशिक्षण द्वारा दिया जाना चाहिए। सन् 2001 से विदेशी प्रशिक्षण हेतु घरेलू वित्त-व्यवस्था (डीएफएफटी) के अन्तर्गत उपलब्ध कराई जा रही है जिससे विभिन्न देशों के अनुभवों व नवचारों आदि को हमारे लोकसेवकों को सीखने का अवसर प्रदान होता है। डीएफएफटी स्कीम के समान मिलते जुलते अन्य स्कीमों का भी संचालन किया जाना चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा हमारे उच्चस्तरीय लोक सेवक जो नीति निर्माण आदि से जुडे है को अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों व नवीन तकनीकों/पद्वतियों से अवगत कराया जा सके परन्तु यहॉं ध्यान देना आवश्यक है कि अधिकारियों को कार्यक्षेत्र (डोमेन) के अनुसार ही संवर्ग निर्माण पर बल देना होगा।

वित्त-व्यवस्था

प्रत्येक मंत्रालय/विभागों को प्रशिक्षण आवश्यकताओं हेतु पर्याप्त वित्त-व्यवस्था का प्रबन्ध करेगा। प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति के द्वारा यह अनुशांसा की गई थी कि प्रत्येक विभाग अपने अधिकारियों/कर्मचारियों के वेतन का 1.5 प्रतिशत भाग प्रशिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करेगा। कार्यक्षमता-निर्वाह (कॉम्पीटेन्सी) आधारित व्यवस्था के लागू होने से प्रशिक्षण व्यय बढ सकता है अत: प्रत्येक मंत्रालय/विभाग 2.5 प्रतिशत वेतन का प्रशिक्षण व्यय के रूप में अपने बजट में पृथक रूप से आवंटित करेगा।

प्रशिक्षण का समन्वय एवं क्रियान्वयन

एक 'राष्ट्रीय प्रशिक्षण परिषद' की स्थापना की जाएगी। जिसका अध्यक्ष कार्मिक/ जन-शिकायतें एवं पेशन मंत्रालय के मंत्री होंगे तथा इस नीति के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक दिशानिर्देश आदि देंगे।

राष्ट्रीय प्रशिक्षण के क्रियान्वयन की निगरानी हेतु एक समिति स्थापित की जाएगी जिसका अध्यक्ष कार्मिक, जन-शिकायतें एवं पेशन मंत्रालय का सचिव होगा तथा अन्य महत्वपूर्ण मंत्रालय के सचिव इसके सदस्य होंगे। यह समिति वर्ष में दो बार अपनी बैठक कर राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति की समीक्षा करेगी एवं नीति के क्रियान्वयन में आने वाली रूकावटें, समस्या पर समुचित निर्णय लेंगी। कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का प्रशिक्षण प्रभाग (डिवीज़न) इस नीति के क्रियान्वयन हेतु नोडल ऐजेन्सी के रूप में कार्य करेगी तथा क्रियान्वयन हेतु आवश्यक दिशा निर्देश आदि जारी करेगी।

कार्यनिर्वाह-क्षमता (कम्पेटेन्सी) के फेमवर्क का विकास

प्रशिक्षण एवं मानव संसाधन विकास के प्रबंधन में कम्पेटेन्सी आधारित फेमवर्क के विकास हेतु 'प्रशिक्षण डिवीजन' स्वयं अपनी क्षमता का विकास करने के लिए (अपने कर्मचारियों की कम्पेटेन्सी) कार्य करेगी ताकि वह मंत्रालय/विभागों का उचित नेतृत्व कर सके तथा कम्पेटेन्सी की गुणवत्तापूर्ण स्तरों का निर्धारण के लिए मिशन-मोड में कार्य करेगा। मंत्रालय/विभागों में प्रशिक्षण प्रबंधकों के कम्पेटेन्सी आधारित क्षमता विकास के लिए प्रशिक्षण डिवीजन नेतृत्व करेगा ताकि यह प्रशिक्षण प्रबंघक अपने मंत्रालय/विभाग में क्षमता विकास की स्कीम अथवा प्रशिक्षण से संबंधित अन्य कार्य सुचारू रूप से कर सके। प्रशिक्षण डिवीजन मंत्रालय के साथ-साथ राज्यों के प्रशिक्षण संबंधित मामले में भी सलाहकारी अथवा तकनीकि सहायता आदि प्रदान करेगा। विभिन्न राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थान अच्छी हालत में है और उन्हें बेहतर बनाने में यह डिवीजन अपना सहयोग व समन्वय स्थापित करेगा।

दूरस्थ एवं ई-लर्निंग: दूरस्थ शिक्षण/प्रशिक्षण की पहुँच गांव, कस्बों व शहर के बहुत बडे तबके तक है इस मामले में प्रशिक्षण आवश्यकता के अनुसार इसका प्रयोग किया जाएगा तथा प्रशिक्षण डिवीजन, इस संबंध में इग्नू से सहयोग लेकर विभिन्न विषयों/कोर्सो का निर्माण करेगा साथ ही साथ प्रशिक्षण से संबंधित एक पोर्टल के जरिए यह डिवीजन डेटा-बैंक के रूप में कार्य करेगा जैसे : नए कोर्स/विषयों पर स्टडी-मटीरियल की उपलब्धता, विभिन्न संस्थानों द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण का वार्षिक कैलेन्डर, विभिन्न विषयों पर उपलब्ध, दक्ष फैकेन्टी व प्रशिक्षक से संबंधित आंकडे आदि।

प्रशिक्षण-प्रबंधन की समस्याएं एवं सुझावात्मक निष्कर्ष

उपरोक्त से स्पष्ट है कि प्रशिक्षण के संबंध में भारत सरकार ने समय-समय पर उचित नीतिगत निर्णय लिया है तथा स्वतन्त्रता उपरान्त भारत को ब्रिटिश विरासत से मिली लोकसेवक प्रणाली में अमूलचूल सुधार किया है परन्तु लोक सेवाएं की कार्मिक प्रबन्धन

को गम्भीरतापूर्वक उसके सभी अव्ययवों/आयामों को यथा : भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, पद-स्थापन आदि पर सुधारात्मक उपचारस्वरूप टुकडे-टुकडे में कदम उठाया गया है जबकि आवश्यकता यह है कि कार्मिक प्रशासन के उपरोक्त सभी अव्यव आपस में अन्तर्संबंधित एवं अन्तरनिर्भर है। प्रशिक्षण में यही हुआ है कि उसे कार्मिक प्रशासन के अन्य अव्यवों के साथ जोड़कर गम्भीरता पूर्वक एकीकृत रूप से सुधारात्मक उपाय नही किए गए है। प्रशिक्षण, आज के विश्व में, एक अत्यंत ही विशेषीकृत और लोक सेवकों के कुशलता व दक्षतापूर्ण कार्य निष्पादन के लिए अपरिहार्य है। यह सबसे बडी और प्रथम गम्भीर समस्या है।

दूसरी समस्या यह है कि हमारे लोक सेवक, प्रशिक्षण के प्रति गम्भीर नही होते तथा अपनी कार्य संस्कृति में इसकी महत्ता को स्वीकार नही करते तथा इसे पिकनिक समझते है साथ ही विभागाध्यक्ष अथवा नियंत्रणकर्ता अधिकारी भी प्रशिक्षण के प्रति अक्सर संवेदनशील नही होते तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद कार्य करने में प्रशिक्ष्ज्ञण द्वारा प्राप्त दक्षता व निपुणता का आंकलन भी समान रूप से नही किया जाता है जिससे प्रशिक्षण के प्रति वांक्षित संवेदनशीलता व गम्भीरता का अभाव रहता है वहीं इस विषय पर शोध यह स्पष्ट करता है कि विदेशी प्रशिक्षण के प्रति यही लोकसेवक लालायित रहते है और विदेश जाने के लिए एडी चोटी का जोर लगा देते है।

तीसरी समस्या नीतिगत कमियों को लेकर है। भारत सरकार द्वारा सन् 1996 में प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति का निर्माण किया गया परन्तु वांक्षित सफलता प्राप्त नही की जा सकी, सन् 2012 में द्वितीय राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति का निर्माण हुआ जो अपने स्वरूप में व्यापक एवं गंभीर दिखता है परन्तु इसमें भी संगठनात्मक कमियां है इस नीति के क्रियान्वयन एवं निगरानी की जिम्मेदारी प्रशिक्षण प्रभाग को दी गई है जो कार्मिक, जन-शिकायतें एवं पेंशन मंत्रालय के अधीन है इसने कार्यनिर्वाह-क्षमता (कम्पेटेन्सी) आधारित प्रशिक्षण पर जोर देता है उल्लेखनीय है तथा चौथी मुख्य समस्या यह है कि भारतीय लोक सेवाओं का पद-वर्गीकरण रैंक आधारित है जबकि कार्यनिर्वाह-क्षमता आधारित प्रशिक्षण पर नीति में जोर दिया गया है जिससे कर्तव्य (डयूटी) आधारित पद-वर्गीकरण की आवश्यकता होगी जोकि कार्मिक प्रशासन का एक वृहद व गम्भीर कार्य है, जिसे प्रशिक्षण प्रभाग पर छोड दिया है। दूसरी ओर प्रशिक्षण प्रभाग स्वयं कार्यनिर्वाह-क्षमता आधारित नही है इसी लिए इस क्षेत्र में यह संदेह पैदा होता है कि प्रशिक्षण प्रभाग अपनी जिम्मेदारियों का सफलतापूर्वक व सुचारूपूर्वक निर्वहन कर सके। पांचवी समस्या यह है कि शासन-प्रशासन का स्वरूप विगत वर्षो में अत्यंत ही परिवर्तित हो चुका है। राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति में बेहतर होता यदि प्रशिक्षण परिषद एवं प्रशिक्षण समिति में निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों के साथ-साथ नागरिक समाज के अपने कार्यक्षेत्र के दक्ष व्यक्तियों को सम्मिलित करते तो शायद यह हमारे लोक सेवकों को लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील व विशेषीकृत हो सकती थी। लोक सेवकों का प्रशिक्षण, लोक सेवकों पर ही छोड देना वर्तमान समय के सापेक्ष उचित नही प्रतीत होता है। वास्तव में भारत जैसे विशाल देश में संगठनात्मक समन्वय बनाना अत्यंत ही गूढ विषय है। छठी समस्या यह है कि राष्ट्रीय नीति, समन्य स्थापित करने पर अपेक्षित जोर नही देता। हजारों प्रशिक्षण संस्थान केंद्र व राज्य सरकारों के है जो अपने-अपने क्षेत्र विशेष में प्रशिक्षण कार्यक्रम चला रहे है इन्हें समन्वय व तकनीकि/विशेषज्ञ नवाचार से एकीकृत करना आवश्यक है जो कि राष्ट्रीय नीति में नही है। सातवीं महत्वपूर्ण समस्या प्रशिक्षण हेतु पर्याप्त वित्त-व्यवस्था की है वैसे प्रथम राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति में कर्मचारियों के वेतन का 1.5 प्रतिशत राशि प्रशिक्षण हेतु घोषित किया गया था परन्तु यह राशि भी प्रशिक्षण हेतु सरकार उपलब्ध नही करा सकी और लगभग एक प्रतिशत वेतन की राशि प्रशिक्षण पर वर्तमान में व्यय हो रहा है। दूसरी राष्ट्रीय प्रशिक्षा नीति ने भी प्रशिक्षण की महत्ता को स्वीकार करते हुए अनुशंसा किया है कि कम से कम 2.5 प्रतिशत कर्मचारियों के वेतन का प्रशिक्षण पर व्यय किया जाए। पर अनुभव ये बताता है कि बजट में जब कटौती करनी पडती है तो इस राशि को व्यर्थ समझते हुए इसे सरकार उपलब्ध नही करा पाती है यह अत्यंत ही गंभीर विषय है।

आठवी समस्या, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोक सेवकों के कार्यो की विभिन्नता अत्यधिक है और भारतीय लोक सेवकों का कोई विशेष कार्यक्षेत्र (डोमेन) निर्धारित नही किया जाता है जिस कारण वह एक सामान्य प्रशासक की ओर उन्मुख होते है जो एक परम्परावादी सोच है, समय बदल चुका है अब कार्य करने के लिए विशेषज्ञता व दक्षता की अनिवार्यता है इसी सन्दर्भ में प्रशिक्षण के पाठयक्रम/मॉडयूल निर्णारण की समस्या आती है किस लोकसेवकों को कैसा प्रशिक्षण देना है इसकी अवधि पर भी एक राय नही है यह अत्यंत ही गूढ विषय जिसे सम्पूर्ण कार्मिक प्रशासन के पुनर्गठन करने की अवश्यकता होगी।

नौवी समस्या यह है कि प्रशिक्षण उपरान्त प्रशिक्ष्ज्ञण प्राप्त लोक सेवकों ने क्या सीखा इसके मूल्यांकन की है। समान धारणा के अनुसार प्रशिक्षण के अन्तिम दिवस पर प्रशिक्षुओं से प्रश्न ावली द्वारा ज्ञात किया जाता है कि प्रशिक्षण कितना प्रभावी था तथा

उनके क्या विचार है वास्तव में- होना यह चाहिए कि प्रशिक्षण प्राप्त लोक सेवकों को उनके कार्य में/पर प्रशिक्षण से प्राप्त दक्षता का मूल्यांकन किया जाए तभी प्रशिक्षण के प्रभावी होने का सही मूल्यांकन किया जा सकता है जिसका अभाव है।

दसवी समस्या प्रशिक्षकों के विकास अथवा निर्माण की है जिस पर द्वितीय रष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति ने जोर दिया है पर विगत आठ वर्षो के अनुभव यह बताते हैं कि प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण (टीओटी) को गम्भीरता से नही लिया जाता। प्रशिक्षक निर्माण एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण आयाम है जिसे प्रशिक्षण-प्रबंधन में कमी दिखती है। ग्यारहवी समस्या यह है कि प्रत्येक क्षेत्र विषेष के लिए पृथक-पृथक एक दीर्घकालीन प्रशिक्षण का निर्माण किया जाए बजाए राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति के जो कि बहुत ही सामान्य व दिशानिर्देशक मात्र प्रतीत होता है। प्रशिक्षण एक बेहद गूढ विषय है- कार्यो की विभिन्नता अथवा अनेकता के कारण कार्य/क्षेत्र विशेष के पृथक-पृथक प्रशिक्षण कार्यक्रम योजना बनानी चाहिए।

वास्तव में प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का अत्यंत ही महत्वपूर्ण अव्यव है तथा इसे कार्मिक प्रशासन के अन्य अव्यवों के साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता है सम्भवत: द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने इस समस्या को समझते हुए सम्पूर्ण लोक कार्मिक प्रशासन का पुनर्गठन करना चाहती थी उसे नई ऊचाइयाँ प्रदान करने हेतु महत्वपूर्ण व प्रासांगिक अनुशंसाएं अपनी दसवी रिपोर्ट 'कार्मिक प्रशासन का पुनर्गठन-नई ऊचाइयाँ' में की है जिसे वर्तमान सरकार द्वारा अपने पूर्ववर्ती सरकार के अनुसार ही टुकडे-टुकडे में सुधार कर रही है जो कि एक भयंकर भूल है। आवश्यकता है समेकित व समन्वयित रूप से सम्पूर्ण कार्मिक प्रशासन के सुधार की तभी भारतीय लोक सेवक एक कार्यकुशल व दक्ष, प्रतिबद्ध तथा जनता के प्रति जवाबदेह व संवेदनशील होंगे।

संदर्भ

1. *National Training Policy*- 1996, Government of India.
2. *National Training Policy*- 2012, Ministry of Personnel, Public Grievances and Pensions, Department of Personnel and Training, Training Division, Government of India.
3. Katariya Surendra, 2000,*Bhartiye Lok Prashasan,* Rajasthan Hindi Granth Akademi, Jaipur.
4. Ahmad, M. R, 2007, *Civil Services Training and Reforms in India,* Serials Publications, New Delhi.
5. Maheshwari, Shriram,2001, *Bhartiye Prashasan,* Orient Longman Limited, New Delhi.
6. Arora, k. R and Goyal, R, *Indian Public Administration; Institutions and issues,* New Age International Publishers,2013.
7. Chakrabarty. B, *reinventing Public Administration; The indian Experience, Orient BlackSwan,*2007
8. Fadia Kuldeep, *Reforming India's higher Civil Services: Agenda for 21st Century Reforms,* Indian journal of Public Administration, Vol. IX, No.1, January-March 2014,Pp. 61-62.
9. *Refurbishing of Personnel Administration – Scaling New Heights*, Second Administrative Reforms Commission, Tenth Report, Department of Administrative Reforms and Public Grievances, Ministry of Personnel, Public Grievances & Pensions, Government of India, November 2008.
10. M R Ahmad, *International Journal of Multidisciplinary Approach and Studies,* Volume 03, N o.4, July- August 2016

मनमोहन सहगल के उपन्यास 'समझौते से पहले' में राजनीतिक यथार्थ बोध

ब्रह्मलता

शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सारांश

देश की राजनीति के बारे में जानकारी ही राजनीतिक यथार्थ बोध कहलाती है। जब लोग देश के हित व अहित के बारे में सोचने लगते हैं, तो इसे राजनीति में भाग लेने लगते हैं, तो समझो कि जो राजनीतिक रूप से जागृत हो चुके है। राजनीति में रूचि लेकर ही आम जनता राजनीति के उतार-चढ़ाव के बारे में जानती है। डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यास 'समझौते से पहले' में हमें राजनीति के व्यापक रूप के बारे में जानकारी मिलती है। इस उपन्यास से लेखक ने राजनीति के क्षेत्र, व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्डरवर्ल्ड की राजनीति में भूमिका, राजनीतिक दलों के शड़यन्त्रें, वर्तमान पुलिस की भूमिका आदि का चित्रण किया है। वर्तमान राजनीति के स्वरूप, राजनीति क्षेत्र में आई विसंगतियों को उजागर करना ही इस शोध पत्र का उदेश्य है।

राजनीति

राजनीति एक ऐसी व्यवस्था है जो राज्य और समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। राजनीति दो शब्दों के योग से बना है राज+नीति। राज का अर्थ है राज्य तथा नीति का अर्थ नियम से है। इस प्रकार राजनीति का मतलब है राज्य की नीति। इस नीति में पूरे राज्य को चलाने के लिए नियम होते हैं। नियमों के बिना कोई भी व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल सकती। राजनीति के बिना सारे देश में अषाँति व अराजकता फैल जाती है और जनसाधारण का जीवन कष्टमय तथा खण्डित हो जाता है। हमारे जीवन का हर पहलू राजनीति से प्रभावित होता है। "व्यक्ति, समाज, राजनीति एक दूसरे से अविच्छिन रूप से जुड़े हुए हैं। राजनीति समाज की दिशा निर्धारित करती है, समाज राजनीति की। इस भाँति दोनों ही एक-दूसरे से प्राण-रस ग्रहण करते हैं।"[1] अत: राजनीति से व्यक्ति, समाज पूर्ण रूप से जुड़े हुए हैं। राजनीति ही समाज को दिशा दिखाती है। राजनीति के संबंध में गाँधी जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि - "राजनीति वर्तमान समय में हमें साँप की तरह चारों ओर से घेरे हुए है, जिसके चंगुल से बचने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें, किन्तु उससे बाहर नहीं निकल सकते।"[2]

अत: गाँधी जी के विचारानुसार राजनीति व्यक्ति के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है, चाहकर भी हम राजनीति से पृथक नहीं रह सकते। इस प्रकार राजनीति पूरे देश व राज्य को चलाने के नियम हैं।

राजनीतिक यथार्थ बोध

देश की राजनीति के बारे में जानकारी ही राजनीति यथार्थ बोध कहलाती है। राजनीति को जब लोग अपने देश, समाज, राज्य के हित-अहित के बारे में सोचते हैं तो उसे राजनीतिक चेतना कहा जाता है। जब शासन+व्यवस्था के द्वारा निर्धारित नीतियाँ, नीतियों को जब अधिकारी क्रियान्वित करते हैं तथा अधिकरियों के आचार-व्यवहार के प्रति लोगों का जागृत होना ही राजनीतिक यथार्थ कहलाता है।

राजनीतिक यथार्थ पर प्रकाश डालते हुए प्रकाषचन्द्र गुप्त लिखते हैं - "राजनीति जनता के हितों की रक्षा करती है और साहित्य में भी उसी का स्वर देती है। यह दुनिया में विशेष रूप से भारत में शक्ति जनतंत्र, करने वाले कला और साहित्य आज की परिस्थिति

में प्रगतिशील कला और साहित्य हैं।"[3] समाज को चलाने के लिए राजनीतिक यथार्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज राजनीति वैयक्तिक जीवन का अंग बन चुकी है। डॉ. पुश्पपाल सिंह के मतानुसार, "आज के लेखक राजनीति को अपने लेखन से अलग करके इसलिए नहीं देख सकता क्योंकि उसके जीवन यथार्थ की स्थितियों को गढ़ने में राजनीति का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए राजनीतिक जीवन के छल छन्द को कथा साहित्य में अभिव्यक्ति मिलती है।"[4]

वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्था

आज हमारी राजनीतिक व्यवस्था इतनी दूषित हो गई है कि कोई भी सभ्य व्यक्ति इसका नाम लेने से भी कतराने लगा है। आज हम हमारी संसद के प्रतिनिधियों की बायोग्राफी पर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं तो अधिकत्तर राजनीतिज्ञ 'जनप्रतिनिधी' अपराधिक मामलों में फँसे नजर आएँगे। आज की राजनीति का अभिप्राय धोखाधड़ी, स्वार्थ, चापलूसी, बेईमानी है। आज की राजनीतिक व्यवस्था में नैतिकता कहीं पर भी नजर नहीं आती। नागरिक सुरक्षा, जनहित तथा देशहित की बात करना, तो अजीब ही लगता है। आज का राजनीतिक परिवेश भ्रष्ट तथा अत्यंत विषैला नजर आने लगा है। आज के राजनीतिज्ञ बेरोजगारी, महंगाई, आंतकवाद, भ्रष्टाचार आदि की समस्याओं को पैदा करके, अपने स्वार्थों की पूर्ति की तरफ प्रवृत्त होते नजर आ रहे हैं। देश की आजादी के बाद भारतीय जनता ने सोचा था कि उनके दिन बदल जाएँगे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। पहले अंग्रेजों द्वारा जनता को शोषण होता था, लेकिन वर्तमान अब व्यवस्था द्वारा उनका शोषण होता है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, धर्म के नाम पर भेदभाव, भाई-भतीजावाद आदि समस्याएँ तो आम हो गई हैं। पुलिस प्रशासन भी आम जनता को सुरक्षा देने में असफल रहा है। वह पूरी तरह से राजनेताओं के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया है। उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यासों में वर्तमान राजनीति व्यवस्था का चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यास 'समझौते से पहले' में वर्तमान राजनीति की लगभग सभी समस्याओं पर दृष्टिपात किया है। इस उपन्यास में हमें राजनीति के वर्तमान स्वरूप के बारे में गहराई से जानने का अवसर मिलता है। लेखक ने राजनीति के विचित्र रूप का यथार्थ चित्रण करते हुए बताया है कि – "राजनीति का यह मायावी क्षेत्र। वर्चस्व का जल बढ़ने लगता है, तो नेतापन का कमल खिलकर अगजग को आकर्षित करने लगता है, किन्तु जहाँ राहु की कुटिल दृष्टि पड़ी, वर्चस्व का जल सूखा, वहीं नेतापन का कमल घटे या न घटे, वहीं मुरझा जरूर जाता है। जहाँ जय-जय और हाय-हाय में बड़ा झीना अन्तर होता है। जो जनता दो दिन पूर्व राजनेताओं की जय-जयकार करती है, वही लोग परिस्थिति बदलने पर उसकी हाय-हाय के नारे लगाते नहीं अघाते।"[5] इन पंक्तियों में लेखक ने राजनीति के स्वरूप के बारे में अपने विचार प्रकट किए हैं। उन्होंने बताया है कि राजनीति का क्षेत्र ऐसा है कि इसमें भले ही कोई व्यक्ति राजनीति चलाने के लिए अपनी पार्टी को शिखर पर पहुँचाने के लिए दिन रात एक कर दे, लेकिन राजनेता किसी के सगे नहीं होते। उन्हें जब किसी भी पार्टी कार्यकर्ता में थोड़ी भी कमी दिखाई देती है, तो वे उसे दूध में से मक्खी की तरह निकालकर बाहर फेंक देते है। उन्हें उस व्यक्ति के द्वारा पार्टी के लिए दिए गए योगदान का कोई ध्यान ही नहीं रहता। इसी कारण लेखक ने राजनीति के क्षेत्र को मायावी बताया। राजनीति में कब क्या हो जाए, किसी को पता ही नहीं चलता।

लेखक ने आज की राजनीति को केवल वोटों पर आधारित माना है, वे राजनीति वास्तविक रूप से परिचित दिखाई देते हैं। वर्तमान राजनीति में राजनेता भोली-भाली जनता को बहला-फुसला कर अपना वोट बैंक पक्का करते हैं ताकि उनकी सत्ता बनी रहे। यहाँ पर लेखक ने वोट की राजनीति का वर्णन करते हुए कहा है कि – "हाँ अगर पर्दे के पीछे रहकर वोटर खरीदे जा सकते हैं, जे0जे0 कॉलोनियों के वोट एक साथ कौंडकर साहब को दिलवाए जा सकते हैं, तो यही कीजिए। इस कार्य में आपके आदमी न तो पकड़े जाने चाहिए न कहीं कुछ प्रकट होना चाहिए। बताइए इस कार्य के लिए आपको कितनी रकम दरकार होगी।"[6] इन पंक्तियों के माध्यम से लेखक ने राजनेताओं के लिए वोटों के महत्त्व को बताया है। राजनेता चुनाव में जीत हासिल करने के लिए उचित-अनुचित सभी तरह के साधनों का प्रयोग करते हैं। यहाँ लेखक ने बताया है कि राजनेता लोग गरीब लोगों की गरीबी का लाभ उठाकर उन्हें पैसे का लालच दिखाकर उनकी वोटों को खरीद लेते हैं तथा चुनाव में अपनी पकड़ को मजबूत बनाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने राजनेताओं की पारस्परिक शात्रुता तथा प्रतिद्वन्द्विता को दर्षाया है। वे अपने दल की सरकार बनाने के लिए एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं तथा राजनीतिक वातावरण को दूशित करते है। यहाँ तक कि वे एक-दूसरे के परिवार के सदस्यों का अपहरण तक करवा देते हैं ताकि वे एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाकर चुनाव में अपनी स्थिति मजबूत बना सकें। वे यह सब पर्दे मे रहकर करवातें ताकि जनता के सामने उनकी छवि धूमिल न हो। इसी का चित्रण लेखक ने इन पंक्तियों के द्वारा किया है – "साँप के मुँह छछुन्दर,

छोड़े कोढ़ निगले तो कलंकी। कौंडकर फँस गया। लड़की को छोड़ दे तो सारे काँड का भण्डा चौराहे पे फूटेगा, उसका लोक-जीवन सदा के लिए समाप्त होगा। मरवा दे तो शाक की सुई सदैव उसी को ओर रहेगी – कोई प्रतिक्रिया भी हो सकती है। खिसियानी स्थिति में मुआमला गैंग के बोस पर ही छोड़ बैठा। बस ध्यान रहे, लड़की कौंडकर के विरूद्ध बयान न दे पाए। यों भी उसे मालूम न होगा कि उसके अपहरण के पीछे किसका हाथ है।"[7]

यहाँ लेखक ने राजनेताओं की विकृत मानसिकता को प्रकट किया है। वे चुनाव में जीत हासिल करने के लिए कोई भी घिनौना कार्य करने से भी नहीं हिचकिचाते। इसके लिए वे गुण्डे, बदमाषों की गैंग रखते हैं ताकि अपने कुकृत्य को अंजाम तक पहुँचा सके तथा उनके राजनीतिक स्वरूप पर भी आँच न आए। लेखक ने वर्तमान राजनीति में अण्डरवर्ल्ड की भूमिका का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है। उन्होंने बताया है कि आज की राजनीति में अण्डरवर्ल्ड की भूमिका भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना वर्तमान नेता लोगों का काम ही नहीं चलता इसी का वर्णन करते हुए लेखक ने बताया है कि – "देखो जी, अण्डरवर्ल्ड न हो तो आपकी राजनीति लंगडी हो जाए। धन की बैसाखी तो चुनावों को वहीं से मिलती है। फिर हम तो सदा से छिपे हैं, बाहर कोई हमें अण्डरवर्ल्ड का व्यक्ति नहीं कहता। पुलिस तक में हमारा कहीं नाम नही। जरा यू0पी0 और बिहार के मंत्रीमण्डलों को तो देखो मन्त्रियों के ऊपर हत्या और डकैती के केस मौजूद हैं। हम तो पाक-साफ हैं और फिर कौंडकर साहब के कादार भी हैं।"[8] यहाँ पर लेखक ने अण्डरवर्ल्ड की पर्दे के पीछे छिपी भूमिका वर्णन किया है। इसी के द्वारा नेता लोग अपने स्वार्थों की सिद्धि करते हैं तथा अपनी सफेद पोषी को बनाए रखते हैं।

उपन्यासकार ने राजनीति में विरोधी दल की भूमिका का भी यथार्थ चित्रण किया है। विरोधी दल चुनाव के समय एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं तथा अपने दल को जनता की नजरों में योग्य सिद्ध करने की भरपूर कोशिश करते हैं। इसी का चित्रण लेखक ने इन पंक्तियों द्वारा किया है – "अब तक अपनी पार्टी के गुण, लक्ष्य और कार्य उन्हें जबानी याद हो गए थे। विरोधी दल के दोश और अयोग्यताएँ भी उन्हें जिह्वाग्र थी। वे फर्राटे के साथ रैलियों में अपना गुणगान करते और विरोधियों की अच्छाइयों का भी अवमूल्यन करते थे, इसीलिए उनकी रैलियां सफल होती थी।"[9] लेखक ने वर्तमान राजनीति में फैले भ्रष्टाचार का भी यथार्थ चित्रण अपने इस उपन्यास में किया है। राजनेता लोग भ्रष्ट प्रवृत्ति के होते हैं तथा अपने स्वार्थ के लिए वे अपने अधीन अधिकारियों को भी इसमें शामिल करते है। वर्तमान राजनेताओं को भ्रष्ट रूप को चित्रण करते हुए लेखक ने कहा है कि – "प्राय: राजनीति की बिसात पर गोंटे जमाने वाला कोई किसी का सगा नहीं होता, ऐसी मान्यता है। मुझे खुशी है कि मैंने आपको पहचाने में भूल नहीं की इसीलिए मैंने सबसे पहले आप ही को पत्र भेजा है। मैं जानता हूँ कि वर्तमान लोक-निर्माण मंत्री न खुद ईमानदार है, न दूसरों की ईमानदारी उसे पचती है।"[10]

लेखक ने हमारी पुलिस व्यवस्था के यथार्थ रूप का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। उनका कहना है कि आज हमारी पुलिस भी बड़े अधिकारियों के हाथों की कठपुतली बनी हुई है। ये बड़े अधिकारी राजनेताओं के चम्मचे होते है। आज की पुलिस जनता की रक्षक की अपेक्षा भक्षक की भूमिका अदा करती दिखाई दे रही है। आम नागरिक को सुरक्षा प्रदान करने की बजाय उसी को शोषण करने पर उतारू है। इसी का चित्रण लेखक ने करते हुए कहा है कि – "मैने पुलिस की ज्यादती के विरूद्ध एफ.आई.आर. रजिस्टर करवानी चाही, तो किसी ने भी पल्लू नहीं पकड़ाया। ए.सी.पी. कार्यालय में भी कोई सुनवाई नहीं हुई मेरी। हमारी दशा समाज से तिरस्कृत व्यक्तियों तथा पिटे कुत्ते के समान हो गई है। हमें अपनापन कहीं नहीं मिला, न ही न्याय और सहानुभूति की किसी ने आषा दिलाई। क्या एक प्रजातंत्र में एक सामान्य नागरिक की यही कीमत है।"[11] यहाँ पर लेखक आम आदमी की दशा का वर्णन किया है, जब पुलिस उसकी रक्षा करने की स्थान पर उसका शोषण करती है। वर्तमान शासन व्यवस्था में पुलिस भी राजनेताओं की हाथों की कठपुतली बनी हुई है। आम आदमी का जीवन दूभर हो गया है।

निष्कर्ष

उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास 'समझौते से पहले' में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण किया है। इसमें लेखक ने राजनीति के प्रतिदिन बदलते स्वरूप, वोट की राजनीति, भ्रष्टाचार, राजनीतिक शड्यन्त्र तथा हमारी पुलिस व्यवस्था का बहुत ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ सूची

1. सुशमा शार्मा, उपन्यास व राजनीति, पृष्ठ 8
2. प्रभात कुमार, भट्टाचार्य, गाँधी दर्शन, पृष्ठ 27
3. डॉ. प्रकाश चन्द्र गुप्त, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 202
4. डॉ. पुश्पपाल सिँह, समकालीन कहानी, युगबोध का संदर्भ, पृष्ठ 99
5. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 652
6. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 581
7. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 420
8. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 568
9. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 569
10. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 495
11. मनमोहन सहगल रचनावली - 4, समझौते से पहले, पृष्ठ 461

भारत में बाल अपराध की समस्या और सुझाव

माला मेश्राम

स्नातकोत्तर (समाज कार्य) गुरू घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिलासपुर

मनीष चन्द्रा

कार्यकारी संपादक, बहिष्कृत भारत

सारांशिका

विगत कुछ वर्षो से बाल अपराध का विषय लगातार हमारे राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बना हुआ है। यह एक संवेदनशील प्रकृति का विषय है जिस पर गंभीरता के साथ विचार करने की जरूरत है। बच्चों का अपराध में लिप्त होना कहीं न कहीं हमारी सामाजिक मूल्य व्यवस्था के ह्रास व व्यवस्थागत विफलताओं, जिसमें परिवार से लेकर समाज और शासन तक प्रत्येक स्तर की व्यवस्था शामिल है, का सूचक है। वैसे तो बाल अपराध कोई नई घटना नहीं हैं लेकिन हाल फिलहाल के समय में इसकी प्रकृति में आने वाला बदलाव, जो बच्चों की, गंभीर किस्म के अपराध में बढ़ती संलिप्तता, को दिखा रहा है खतरे का संकेत है। इस बदलाव के पीछे के कारण और समग्र रूप से बाल अपराध के कारणों पर विचार करना समय की मांग है। भारत में बाल अपराध को लेकर विगत दो दशकों में कानूनी स्तर पर अनेक प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों को और आगे बढ़ाने की जरूरत है। इस आलेख में न सिर्फ बाल अपराध की अवधारणा, बाल अपराध के प्रकार, भारत में बाल अपराध की स्थिति तथा इससे जुड़े कानूनों आदि की चर्चा की गयी है बल्कि इस गंभीर समस्या से निपटने हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किये गए हैं।

कुंजी शब्द: बाल अपराध, समाज, शासन, परिवार

बाल अपराध: अवधारणा एवं परिभाषा

बाल अपराध को परिभाषित करना अत्यंत जटिल कार्य है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, समाज विज्ञानियों तथा विधि संहिताओं द्वारा बाल अपराध की जो परिभाषा दी गयी है उनमें काफी विरोधाभाष व अंतर पाया जाता है। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि सभी ने इसे परिभाषित करने के लिए अलग अलग उपागम या आधार का उपयोग किया है। बाल अपराध को तकनीकी दृष्टि से परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "एक अल्पवयस्क या नाबालिग बालक जो 18 वर्ष की आयु से कम है, जो समाज की सुविधाओं का प्रयोग तो करता है किन्तु समाज द्वारा जिस व्यवहार की उससे आशा की जाती है, वह नहीं करता, ऐसे बालक को हम बालापराधी या बाल अपराधी कहते हैं।"[1] विधि शब्दकोश में दी गयी परिभाषा के अनुसार "बाल अपराध एक नाबालिग बच्चे द्वारा प्रदर्शित वह व्यवहार है जो आपराधिक गतिविधियों, निरंतर असामाजिक व्यवहार या अवज्ञा से चिन्हित होता है जिसे उसके माता पिता नियंत्रित करने में असमर्थ होते हैं।"[2] फ्रेडलैण्डर ने बाल अपराध को एक ऐसे बाल दुराचार के रूप में परिभाषित किया है जिसके संबंध में कार्यवाही कानून के अंतर्गत की जा सकती है।[3] वहीं, संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस की द्वितीय रिपोर्ट में इसे कुछ इस तरह से परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि "बाल अपराध का अर्थ ऐसे कार्य के करने से समझा जाना चाहिए जो यदि एक प्रौढ़ द्वारा किया जाए तो अपराध माना जाएगा।"[4] इन सभी परिभाषाओं में बाल अपराध के दायरे और प्रकृति को लेकर अलग अलग बात कि गयी है

लेकिन इन सभी को समग्र रूप से देखे तो बाल अपराध की एक व्यापक परिभाषा तय की जा सकती है जिसके अनुसार बाल अपराध न सिर्फ नाबालिगों द्वारा दंड संहिता के उल्लंघन से जुड़ा व्यवहार है बल्कि ऐसे व्यवहार संरूपों के अनुसरण से भी संबंधित है जो बच्चों और कम आयु के किशोरों के लिए अनुचित माने जाते हैं। यहाँ एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि 'किशोर या बालक कौन है' इसका निर्धारण अलग अलग देशों ने अलग अलग आयु वर्ग को मानक मान कर किया है। भारत में बाल न्याय कानून के अनुसार किशोर की परिभाषा में 7-18 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे आते हैं जिनकी आयु 7 वर्ष से कम और 18 वर्ष की नहीं हो।[5]

बाल अपराध के प्रकार

आचरण या व्यवहार के तरीकों तथा संरूपों के अपने सामाजिक सन्दर्भ या कारण, के आधार पर बाल अपराध को भिन्न भिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। हारवर्ड बेकर ने अपने अध्ययन में बाल अपराधों के चार प्रकार बताये हैं। यह चार प्रकार निम्नवत हैं[6]-

1. **व्यक्तिगत बाल अपराध:** इस तरह के बाल अपराध में एक ही व्यक्ति बाल अपराध को अंजाम देता है, जिसके लिए उसका व्यक्तित्व उत्तरदायी होता है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तिगत बाल अपराध का विश्लेषण करते हुए यह तर्क दिया है कि ऐसे अपराध मुख्यत: मनोवैज्ञानिक समस्याओं का परिणाम होते हैं जिसके लिए दोषपूर्ण, अनुचित, रोगात्मक, पारिवारिक अन्त:क्रिया के संरूप उत्तरदायी हैं।

2. **समूह द्वारा समर्थित अपराध:** दूसरों की संगति में किये जाने वाले इन अपराधों का कारण व्यक्ति के घर और पड़ोस की संस्कृति में निहित होता है। थ्रेशर एवं शॅ तथा मैके ने इस तरह के अपराधों से जुड़े अपने अध्ययनों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि बाल अपराध की मुख्य वजह किशोरों का अपराधियों के संपर्क और संगति में आना है।

3. **संगठित बाल अपराध:** इसमें बालक औपचारिक रूप से संगठित गुटों के सदस्य के रूप में अपराध करते हैं। इस तरह के अपराधों में गुट या समूह के मूल्यों व संस्कृति के प्रभाव तथा नियंत्रण में आकर बच्चे अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं।

4. **परिस्थितिवश बाल अपराध:** इस प्रकार के अपराध परिस्थितियों से प्रभावित तथा प्रेरित होते हैं। परिस्थितिवश बाल अपराध की यह मान्यता है कि एक बालक, अपराध के प्रति गहरी प्रतिबद्धता के बिना, मुख्यत: कमजोर मनोवेग नियंत्रण या/तथा कमजोर पारिवारिक नियंत्रण के कारण परिस्थितियों के प्रभाव में आकर अपराध करता है।

भारत में बाल अपराध

भारत में बाल अपराध को लेकर विगत कुछ वर्षों में लोगों की दिलचस्पी और जागरूकता बढ़ी है। अब इस विषय को लेकर समाज से लेकर शासन और मीडिया तक की सक्रियता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। लेकिन भारत में बाल अपराध की वास्तविक स्थिति को समझने के लिए हमें कुछ गंभीर प्रयास करने की जरूरत है ताकि हम अपने निष्कर्षों की प्रमाणिकता और विश्वसनीयता को लेकर आश्वस्त हो सकें। इसके लिए हमें राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के उन आंकड़ों को देखने, परखने और विश्लेषित करने की जरूरत है जो बाल अपराध को लेकर सबसे व्यापक और प्रामाणिक माने जा सकते हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के 2014 के आँकड़ों के अनुसार भारत में बाल अपराध के कुल 42,566 मामले दर्ज किए गए जिनमें 48,230 बच्चों को पकड़ा गया। पकड़े गए बच्चों में 372 बच्चे 7 से 12 आयु वर्ष के, 11,220 बच्चे 12 से 16 आयु वर्ष वर्ग के तथा 36,138 बच्चे 16-18 आयु वर्ग के थे। इनमें बालक और बालिकाओं की कुल संख्या क्रमश: 46638 तथा 1592 दर्ज की गयी। हालांकि अलग अलग आयु समूह में बाल अपराध के मामलों में अलग अलग अपराधों की प्रधानता दिखती है लेकिन समग्र रूप से देखें तो इस दौरान दर्ज किए गए बाल अपराध के कुल मामलों में सर्वाधिक 20 प्रतिषत मामले चोरी के, 5.4 प्रतिशत बलात्कार के जबकि 2.5 प्रतिशत मामले हत्या के सामने आए। आँकड़ों के अनुसार भारत में बाल अपराध में पकड़े गए बच्चों में से 90 प्रतिशत ने मैट्रिक तक की पढ़ाई भी नहीं की थी। इन 48,230 गिरफ्तार बच्चों में से 38,693 अपने माता पिता के साथ जबकि 7905 अपने अभिभावकों के साथ रहते थे। 1632 बच्चे ऐसे थे जो बिना घर बार के थे। परिवार की आर्थिक स्थिति की बात करें तो बाल अपराध में पकड़े गए बच्चों में से 90 प्रतिशत की वार्षिक पारिवारिक आय 1 लाख रूपय से भी कम थी। इनमें से भी आधे से अधिक यानि 26,809 की वार्षिक

पारिवारिक आय तो महज 25,000 रूपय तक थी। बाल अपराध के मामलों में गिरफ्तार कुल 48,230 बच्चों में सिर्फ 1215 बच्चे उच्च व उच्च मध्य आय वर्ग वाले परिवार से आते थे। आम अवधारणा के विपरित आँकड़ों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि भारत में विगत एक दशकों में बाल अपराध की दर, कुल अपराध का 1 प्रतिशत (2004) से 1.2 प्रतिशत (2014) के बीच ही रही है। इसमें भी अपराध दोहरने वाले बच्चों की संख्या लगातार कम हो रही है और 2011 के 11.5 प्रतिशत की तुलना में 2014 में ऐसे बालकों की संख्या घटकर 5.4 प्रतिशत रह गयी है। भारत में बाल अपराध के मामलों के विश्लेषण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि देश में ऐसे मामलों के पीछे मुख्यत: वंचनाजनित कारक जिम्मेदार हैं और ज्यादातर बच्चें गरीबी, गलत संगति, माता पिता द्वारा पर्याप्त ध्यान न देने, उचित मार्गदर्शन की कमी तथा शिक्षा के अभाव में सही गलत का बोध नहीं होने के कारण अपराध के रास्ते पर चल पड़ते हैं।[7,8]

भारत में बाल अपराध से संबंधित कानून

भारत में बाल अपराध से संबंधित विधानों का इतिहास हम औपनिवेशिक सरकार के दौर में तलाश कर सकते हैं। यह अंग्रेजी सरकार ही थी जिसके समय में सर्वप्रथम बाल अपराध से जुड़े विषयों को लेकर वैधानिक प्रावधन किये गए और बच्चों के अपराध को वयस्कों के अपराध से भिन्न मानकर इससे संबंधित प्रावधन किये गए। सन 1947 में जब हमने स्वतंत्रता अर्जित की तब भी हमने बाल अपराध को लेकर पूर्ववर्ती औपनिवेशिक सरकार के विधानों को ही आधार मानकर आगे प्रयास जारी रखा। भारत में स्वतंत्रता पूर्व और उसके पश्चात बने बाल अपराध से संबंधित कानूनों में कुछेक प्रमुख कानून निम्नवत हैं -

1. **शिक्षु अधिनियम, 1850:** भारत में प्रथम किशोर विधान के रूप में जाने जाने वाले इस अधिनियम द्वारा दण्डनायकों को बच्चों को नियोक्ताओं के पास प्रशिक्षु के रूप में रखने तथा नियोक्ता एवं प्रशिक्षुओं के मध्य मुजफ्फरपुर को नियंत्रित करने की व्यवस्था की गई। इसमें छोटे मोटे अपराधों में संलिप्त बच्चों से संबंधित प्रावधन भी किये गए थे। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि बच्चों को गलत रास्तों से हटाकर अच्छे जीवन हेतु कोई कौशल सीखने का मौका दिया जाए।[9]

2. **भारतीय दंड संहिता, 1860:** इसमें बाल अपराध से संबंधित दो मुख्य प्रावधन किये गए जिनके द्वारा सात वर्ष तक के बच्चों को सभी आपराधिक दायित्वों से मुक्ति तथा सात से बारह वर्ष तक के वैसे बच्चों को सभी आपराधिक दायित्वों से मुक्त रखने की व्यवस्था की गयी है जो न्यायाधीश के अनुसार इतने परिपक्व नहीं हैं कि अपने ख़त्यों की प्रकृति तथा परिणामों को समझ सकें।[10]

3. **सुधारालय अधिनियम, 1897:** इस कानून के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि बाल अपराधियों के मामलों की सुनवाई करने वाली अदालतें ऐसे अपराधियों को तीन से सात वर्षों के लिए जेल की बजाय सुधारालय में भेज सकती हैं बशर्ते सुधारालय जाते समय बाल अपराधी की आयु पंद्रह वर्ष से अधिक न हो क्योंकि किसी भी बाल अपराधी को अठारह वर्ष पूरा करने के बाद इन सुधारालयों में नहीं रखा जा सकता है।[11]

4. **अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958:** यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों, जिन्हें कारावास (किन्तु आजीवन कारावास नहीं) से दंडनीय किसी अपराध में दोशी पाया जाता है, अपराध की प्रकृति तथा चरित्र को ध्यान में रखते हुए न्यायालय द्वारा परिवीक्षा पर मुक्त करने का प्रावधन करता है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य गलती से या किसी खास परिस्थितिवश पहली बार अपराध करने वाले युवा होते व्यक्तियों को सुधार का एक मौका देना है।[12]

5. **बाल न्याय अधिनियम, 1986:** बाल न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों (बीजिंग नियम, 1985) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 1986 ई. में उपेक्षित और अपराधी किशोरों की देखभाल, संरक्षण, उपचार, विकास तथा पुनर्वास हेतु बाल न्याय अधिनियम 1986 को प्रवर्तित किया। इस अधिनियम की एक मुख्य विशेषता इसमें अपराधी बच्चों के विपरीत उपेक्षित बच्चों के लिए, जिनके अपने जीवन के दु:खद और दुर्भाग्यपूर्ण अनुभवों के कारण आगे चलकर अपराध में लिप्त होने की आशंका है, कानूनी तौर पर विशेष सहायता की व्यवस्था की है। साथ ही इसमें यह व्यवस्था भी की गई है कि अपराध करने वाले बालक बालिकाओं (आयु क्रमश: 16 वर्ष तथा 18 वर्ष) को न सिर्फ बाल अधिनियम के अंतर्गत दण्डित करना होगा बल्कि ऐसे बाल अपराधियों को किसी भी परिस्थिति में कारागार में अन्य कैदियों के साथ नहीं रखा जायेगा।[13]

6. **किशोर न्याय अधिनियम, 2000:** बाल अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन, बीजिंग नियम, अपनी स्वतंत्रता से वंचित किशोर की सुरक्षा के लिए बने संयुक्त राष्ट्र नियम और दूसरे तमाम राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय प्रणालियों जो बच्चों को साफ तौर पर 18

वर्ष तक की उम्र का व्यक्ति परिभाषित करते हैं, के सिद्धांतों पर आधारित है। यह कानून भारतीय संविधान और संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार कन्वेंशन के चार बड़े अधिकारों 1. जीवन का अधिकार, 2. सुरक्षा का अधिकार, 3. विकास का अधिकार तथा 4. सहभागिता का अधिकार, को मान्यता प्रदान करता है।[14]

7. बाल न्याय (संशोधन) अधिनियम, 2006: यह संशोधन अधिनियम, कानून के अस्तित्व में आने के एक वर्ष के भीतर राज्य सरकारों द्वारा सभी जिलों में बाल न्याय मंडल तथा बाल कल्याण समितियों की अनिवार्य रूप से स्थापना की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम में कानून के साथ संघर्षरत किशोरों को पुलिस अभिरक्षा या लॅाक-अप में रखने को प्रतिबंधित कर उन्हें 24 घंटे के अंदर बाल न्याय परिषद के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रावधान किया गया है। इस अधिनयम के द्वारा विधि विरूद्ध बच्चों या किशोरों की निजता को सुरक्षित रखने हेतु उनकी पहचान को गोपनीय रखने की सख्त हिदायत दी गयी है। इसमें मामलों के त्वरित निष्पादन हेतु हर छः माह पर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी/मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा लंबित मामलों की समीक्षा के साथ साथ बच्चों की देखभाल और संरक्षण से जुड़ी सभी संस्थाओं (चाहें वे राज्य सरकार द्वारा संचालित की जा रही हों या किसी स्वैछिक संगठन द्वारा) के लिए कानून के पास होने के छः माह के अंदर अनिवार्य पंजीकरण की व्यवस्था को भी शामिल किया गया है।[15]

8. किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015: किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 बेहतर ढंग से बच्चों की देखभाल और कानून के साथ विवाद की स्थिति में उनके हितों का संरक्षण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से लाया गया विधान है। इसके कुछ मुख्य प्रावधानों में शामिल हैं- अधिनियम में 'किशोर' शब्द से जुड़े कई नकारात्मक संकेतार्थ को खत्म करने के लिए 'किशोर' शब्द से 'बच्चे' शब्द की नामावली में परिवर्तन, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों की नई परिभाषाएँ, बच्चों के छोटे, गंभीर और जघन्य अपराधों में भेद, किशोर न्याय बोर्ड (जेजेबी) व बाल कल्याण समिति (सीडब्ल्यूसी) के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों में स्पष्टीकरण, 16 साल से ऊपर के बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की स्थिति में विशेष प्रावधन, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों को गोद लेने संबंधी नियमों पर अलग नया अध्याय तथा बाल कल्याण व देखभाल संस्थानों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाना। इस अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत 16-18 साल की उम्र के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों को लेकर विशेष प्रावधन किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों को प्रारंभिक आकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।[16]

बाल अपराध की समस्या से निपटने हेतु सुझाव

भारत में बाल श्रम की समस्या लगातार विकराल रूप धारण करती जा रही है। बच्चों के द्वारा किए जाने वाले अपराधों की प्रकृति को देखे तो शायद ही ऐसा जघन्य अपराध होगा जो बालकों ने नहीं किया हो। भौतिकतावादी जीवन शैली, टी.वी., इंटरनेट आदि का प्रभाव तथा पारिवारिक सामाजिक विघटन ने बाल अपराधों की संख्या और जघन्यता को कई गुणा बढ़ा दिया है। इस स्थिति से निपटने हेतु हमे एक साथ कई मोर्चों पर पहल करनी होगी। इनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत हैं -

1. भारत में बाल अपराध के 90 प्रतिशत मामलों में हिरासत में लिए गए बच्चों ने मैट्रिक तक की भी पढ़ाई नहीं की है। इसका मतलब स्पष्ट है कि ये बच्चे किसी न किसी कारण से विद्यालय शिक्षा हासिल नहीं कर सके हैं। अगर हम देश में सिर्फ अनिवार्य सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था भी अमल में लाने में कामयाब हो जाते हैं तो बाल अपराध की दर काफी हद तक कम हो सकती है।
2. भारत में 2011 से लगातार वैसे बाल अपराधियों का प्रतिशत जो अपराध दोहराते हैं, निरंतर कम होता जा रहा है। इसका अर्थ यह है कि बच्चे इरादतन अपराधी नहीं हैं। वे किसी तात्कालिक परिस्थिति या आवश्यकतावष अपराध करते हैं। विशेषकर बाल अपराध के सर्वाधिक 20 प्रतिशत मामले, जो चोरी से संबंधित हैं, वे ज्यादातर उनकी मामूली जरूरतों की पूर्ति भी नहीं हो पाने का नतीजा है। हमें बच्चों की इन छोटी छोटी आवश्यकताओं पर ध्यान देना होगा।
3. ज्यादातर बच्चे बड़ो की संगति में अपराध सीखते हैं। खास तौर पर मलिन और बदनाम बस्तियों में जहां बच्चों के लिए कोई सुविधा नहीं होती और सामाजिक वातावरण दूशित होता है, बच्चे लगातार उस माहौल में रहते हुए गलत आदत व आपराधिक प्रवृत्तियाँ विकसित कर लेते हैं या कर सकते हैं। इन बच्चों को इस माहौल से दूर रखने हेतु सरकार तथा एनजीओ के द्वारा विद्यालय क्रीडांगन, स्वस्थ मनोरंजन सुविधा समेत समय-समय पर काउंसिलिंग की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

4. कार्य स्थल पर बाल श्रमिक न सिर्फ शोषण का शिकार होते हैं बल्कि उनके मालिकों एवं अधिक उम्र के सहकर्मियों द्वारा नषे व अपराध की लत भी लगा दी जाती है। यह बेहद खतरनाक स्थिति है लिहाजा सरकार को बाल श्रम पर प्रभावी नियंत्रण लगाने के साथ साथ ऐसे बच्चों के पुनर्वास की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।
5. समय के साथ साथ हमारे विद्यालय शिक्षण केंद्र के स्थान पर व्यवसाय केंद्र बनते जा रहे हैं। हम बच्चों को डिग्रियाँ तो बांट रहे हैं लेकिन वे नैतिक रूप से किस धरातल पर खड़े हैं यह हमारी चिंता और चिंतन का विषय नहीं रह गया है। परिवार में भी बच्चे दादा दादी की नैतिक शिक्षा युक्त कहानियों की जगह ऐसे कार्टून और वीडियो गेम को देखते व खेलते हुए बड़े हो रहे हैं जिनका उनके बाल-मन पर दूषित प्रभाव पड़ता है। यह स्थिति बदलने की जरूरत है। हमें पूर्व की भांति विद्यालयों में नैतिक शिक्षा देने के साथ ही घर पर भी बच्चों के लिए नैतिक शिक्षा युक्त स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करनी होगी।
6. एक बालक समाजिकता का पहला पाठ माँ के चुंबन और पिता के दुलार के साथ सिखता है, मगर आज की भौतिकतावादी और भाग-दौड़ की दुनिया में माता पिता चाह कर भी अपने बच्चों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते, इससे बच्चों में जो अनुशासन और संवेदना विकसित होनी चाहिए वह नहीं हो पाती। ऊपर से माता पिता द्वारा अपनी ईच्छा के अनुसार बच्चों की पढ़ाई-लिखाई से लेकर कैरियर तक के निर्धारण की जिद उन्हें अनावश्यक दबाव में लाकर विद्रोही बना देती है। इसके लिए माता पिता और बच्चों की काउंसिलिंग करने की जरूरत है ताकि बच्चे न तो बिल्कुल नियंत्रणहीन हो और न ही उन पर इनता कठोर नियंत्रण हो कि उनकी अपनी आजादी और पहल शक्ति ही पूर्णत: समाप्त हो जाए।

निष्कर्ष

कोई भी व्यक्ति जन्म से अपराधी नहीं होता। वह जो कुछ भी अच्छा बुरा, सही गलत सीखता है, समाज में ही सीखता है, जिसके उसके व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। बाल मन कच्ची मिट्टी की तरह होता है जिसे हम किसी भी रूप में ढ़ाल सकते हैं, लिहाजा बच्चों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत होती है। बाल अपराध की घटनाएँ बच्चों से कहीं अधिक उनके माता पिता, परिवार, पड़ोस, समाज, विद्यालय तथा शासन द्वारा अपनी जिम्मेदारियों को पूरा कर पाने में किलता का परिणाम होती हैं। भारत में भी बाल अपराध के मामलों में उपरोक्त कारणों की भूमिका को देखा जा सकता है। हालांकि भारत में बाल अपराध को लेकर विकसित कानून मौजूद है लेकिन सिर्फ कानून के होने भर से बाल अपराध पर प्रभावी अंकुश नहीं लगाया जा सकता। बाल अपराध को रोकने हेतु समाज, राज्य और परिवार सबको समग्र और समन्वित प्रयास करने की जरूरत है। जब तक हम ऐसा नहीं करते बाल अपराध की समस्या से निजात मिलना संभव नहीं है।

References

1. Prasad, Rajendra et al. (2016) Bal Aparadh: Aswasth Shareer ewam Aswasth Samaj ka Bhavishya, In Paswan, Amaranth, Chandra, Manish(Eds.) Bharateey Loktantra ka Samajik aur Rajneetik Riprekshya, New Delhi, Victorious Publishers, pp.112-113
2. Juvenile Deliquency, Retrieved from https://Legaldictionary.net/juvenile-deliquency/
3. Friedlander, Walter, A. (1957) Introduction to Social Welfare, New York, Prentice Hall,p.44
4. Report of the Second United Nations Congress on the Prevention of Crime and Treatment of Offenders,
5. Kishor kaun hai? Retrieved from http://hi.vikaspedia.in/education/child-rights/92c93e932-93894193091594d93793e-914930-91593f93694b930-92894d92f93e92f-93594d92f93593894d 92593e/91593f93694b930-91594c928-939948
6. Ahuja, Ram (2004) Samajik Samasyayen, Jaipur, Delhi, Rawat Publications, pp.344-346
7. CRIME- Statistical Year Book India 2017, Retrieved from http://www.mospi.gov.in/statistical-year-book-india/2017/206
8. Nair, Shalini, Tiwary, Deeptiman (2015, Dec. 23) Juvenile crime share static: Govt's own data contradicts Maneka Gandhi's claim, The Indian Express, Retrieved from https://indianexpress. com/article/india/india-news-india/juvenile-crime-share-static-govts-own-data-contradicts-minister-manekas-claim/

9. (Dr.) Panda, Prativa (2016) Legislation and juvenile justice system in India- An Analysis, International Journal of Academic Research and Development, Vol. 1, Issue 4, April,p.16
10. ibid
11. Madan, G.R. (2002) Bharateey Samajik Samasyayen, Delhi, Vivek Prakashan,p.95
12. Aparadhi Pariviksha Adhiniyam 1958, Retrieved from http://www.legislative.gov.in/sites/default /files/H195820.pdf
13. Narrain, Arvind & Manoharan, Arlene (2003) The Juvenile Justice Act 1986, The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act 2000 and The Karnataka Rules under the same, in the light of Relevant International Standards: A Comparative Table, Centre for Child and the Law, National Law School of India University, Banglore, Retrieved from https://www.nls.ac.in /ccl/jjdocuments/juvenilejusticeact1986.pdf
14. Kishor Nyay (Bachchon ki Dekhbhal ewam Suraksha Adhiniyam) 2000, Retrieved from http://hi.vikaspedia.in/education/child-rights/92c93e932-93894193091594d93793e-914930-91593f93694b930-92894d92f93e92f-93594d92f93593894d92593e/92694791693094791 6-90f902935-93890293091594d937923-915947-91c93094293092492e902926-92c91a94d91a94b902-915947-93293f90f/91593f93694b930-92894d92f93e92f-92c91a94d91a94b902-915947-92694791692d93e932-90f935902-93894193091594d93793e-90692793f92893f92f92e-2000
15. (Dr.) Panda, Prativa (2016) Legislation and juvenile justice system in India,op.cit.,p.
16. Kishor Nyay (Bachchon ki Dekhbhal ewam Sanrakshan) Adhiniyam 2015 aaj se lagu, 15 January 2016, PIB Retrieved from http://pib.nic.in/newsite/hindirelease.aspx?relid=44346

वाणिज्य प्रबन्धन और वस्त्र उद्योगः बौद्धसाहित्य के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० अजय कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (प्रा० इतिहास) ठा० मातिवर सिंह पी०जी० कालेज, जमालापुर, जौनपुर

प्रबन्ध संसार का सूर्य है। जिस प्रकार बिना सूर्य के पृथ्वी पर जीव का रह पाना संभव नहीं है, उसी प्रकार बिना प्रबन्ध के मनुष्य का जीवित रह पाना दुष्कर है। प्रबन्ध को एक सामाजिक प्रक्रिया कहा गया है क्योंकि इसका संबंध मनुष्यों से है। बौद्धधर्म ने अपने कुशल प्रबन्धन से भारतीय संस्कृति की श्री सम्पन्नता में वृद्धि की। भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि विभिन्न अंगों पर बौद्धधर्म ने अपने प्रबन्धन की छाप छोड़ी एवं उनके विकास को बौद्धधर्म ने प्रभावित किया। मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान को प्राथमिकता के आधार पर उन्होंने अपना चिन्तन प्रदान किया और मानव जीवन की शान्ति के लिए इसकी पूर्ति की आवश्यकता को अनुभव किया। मानव समाज के निर्माण क्रममें भोजन के बाद मनुष्य को दूसरी आवश्यकता वस्त्र की प्रतीत हुई होगी। उस समय उसने वन्य पेड़-पौधें के पत्तों और छाल से और बाद में पशुओं की खाल से अपने अंगों को ढ़का होगा, क्योंकि वन्य जीवन में ये दो ही वस्तुएं सुलभ थीं। वन्य और घुमन्तू जीवन से आगे चलकर लोग धीरे-धीरे घर बना कर रहने लगे। यहीं से उसने खेती करना शुरू किया। शनै शनैः इसी ग्राम्य जीवन से नगर जीवन विकसित हुआ। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सिन्धु सभ्यता भारत में प्रथम नगरीय सभ्यता मानी जाती है। उसके बाद एक लम्बे अन्तराल के पश्चात बुद्ध और महावीर स्वामी (छठवीं और पांचवी शताब्दी इ0पू0) में द्वितीय नगरीय सभ्यता के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इस युग में नगर और महानगर स्थापित हो चुके थे। बौद्धयुग मेंवस्त्र उद्योग को जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और जिस प्रकार यह देश-विदेश में विकसित हुआ यह बौद्धसाहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है। उनके वाणिज्यिक प्रबन्धन का ही प्रतिफल था कि समाजिक विकास के साथ-साथ वस्त्र उद्योग भी विकसित होता गया।स्वभावतः वस्त्र उद्योग भी विकसित हुआ। खाल,छाल और पत्तों से शरीर ढ़कने के स्थान पर, मानव ने कपड़ों का प्रयोग करना शुरू कर दिया, जिसके लिये कच्चा माल आवश्यक था। कपड़ा बनाने के लिये किस कच्चे माल का सर्व प्रथम प्रयोग किया गया, कहना कठिन है। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि कपड़ा बुनने के लिये सबसे पहले कपास का प्रयोग हुआ होगा। फिर भी यह गवेष्णा का विषय है। बुद्ध युगीन साहित्य के अनुशीलन से केवल इतना ही पता चलता है कि उस समय वस्त्र उद्योग अति उन्नतिशील दशा में था। यहाँ सुलभ स्रोत सामाग्री के आधार पर बुद्ध युगीन वस्त्र उद्योग का गवेष्णात्मक विवरण प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

टी0डब्ल्यू0 रीज डेविड्स ने लिखा है कि बुद्ध युग में शिल्पकारों ने अपने-अपने धन्धें को अलग-अगल शिल्पी संघों में संगठित कर लिया था। ऐसे संघों (श्रेणियों) की संख्या 18 थी (अष्टादश श्रेणियाँ)[1]। विनय पिटक के अध्ययन से यह पता चलता है कि वस्त्र उद्योग में दो श्रेणियों का विशेष योगदान होता था जिनमें एक कर्पासिक श्रेणी[2] और दूसरी तन्तुवाय श्रेणी थी।[3] प्रथम श्रेणी कपास उगाकर कच्चा माल, रूई तैयार करती थी और दूसरी उससे सूत (तन्तु) तैयार कर वस्त्र बनाती थी।

वस्त्र की श्रेणियों का प्रबन्धन

बौद्धवाणिज्य प्रबन्धन के माध्यम से वस्त्रों की कई श्रेणियाँ प्रकाश में आयीं। वस्त्रें को श्रेणियों में विभाजित कर उसकी खपत को बढ़ाया गया। वस्त्र उद्योग एक बड़ा उद्योग था। इसकी पूर्णता के लिये कच्चे माल से लेकर रूई साफ करने, सूत कातने,क़पड़ा बुनने और कपड़ों को विविध रंगों से रंगने के लिये अगल-अगल श्रेणियाँ बन चुकी थीं। इससे इस उद्योग की महत्ता ही सिद्ध होती है कि विभिन्न प्रकार के सूती, रेशम,ऊनी आदि कपड़े बनाने की अगल-अगल श्रेणियाँ स्थापित थीं। सूती कपड़ों की श्रेणी को

सामान्य रूप से कार्पासिक श्रेणी[4] कहते थे। इसी प्रकार कौशिवि[5] श्रेणी,रेशमी कपड़े और ऊर्णावायक[6] श्रेणी, ऊनी कपड़े तैयार करती थीं।

विभिन्न रंगों से रंगकर कपड़े तैयार करने का कार्य रंकार श्रेणी[7] करती थी। रंगे कपड़ों में नीले कपड़े(नीलकानि), पीले (पीतकानि),लाल (लोहितकानि),मंजीठिया (मजितकानि),काले कपड़े (कण्हानि) तैयार किये जाते थे।[8] उल्लेखनीय है कि बौद्धभिक्षुओं के वस्त्र काशाय रंग के होते थे। रंकार को रजक[9] भी कहा गया है। यद्यपि रजक श्रेणी का प्रमुख कार्य कपड़े धेना था तथापि वह कपड़े रंगने का भी कार्य करती थी।[10] कपड़े रंगने की एक स्वतंत्र श्रेणी रंकार (रंगरेज)[11]का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

महावग्ग में कपड़े रंगने की पूरी प्रक्रिय वर्णित है और वह तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निर्देशित भी है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से पता चलता है कि पहले गौतम बुद्ध भिक्षु गोबर (छकणेन) तथा पीली मिट्टी (पण्डुमत्तिकाय) से चीवर रंग लेते थे जो देखने में भद्दा, गन्दा तथा कुरूप लगता था। यह जानकर शाक्यमुनि बुद्ध ने जड़ से निकले रंग से, स्कन्ध से निकले रंग से, छाल से निकले रंग से, पत्ते से निकले रंग से, पुष्प से निकले रंग से और फल से निकले रंग से चीवर रंगने की अनुज्ञा प्रदान[12] की। रंग कच्चे होने के कारण जल्दी छूट जाते थे। जब यह बात तथागत से बतलाई गई तो उन्होंने रंग पकाकर चीवर रंगने की विधि बतलाई और उसका सामान भी विहार में रखने की आज्ञा दी। रंग पकाने के लिये, विहार में एक विशेष बर्तन उत्तरालुम्प[13] होता था। रंगने के पहले कपड़े को भिगोया जाता था और गर्म पानी में गर्माया जाता था। जिसके लिए चूल्हा (चुल्ल) तथा हंडिया (रजनकुम्भि)[14] होती थी। कुम्भि (हंडिया) मिट्टी की होती थी। अत: कभी फूट जाती थी। अस्तु रंग के लिये बड़ी नाद (रजेतुलुंक) कूँडा-थाली की तरह का बर्तन (थालक) तथा गर्म पानी में कपड़े को चलाते रहने अर्थात् उलटते-पलटते रहने के लिए डंडा (दण्डक)[15] की व्यवस्था की गई। कपड़े पर रंग कहीं कम कहीं ज्यादा न लगे, इसके लिए कपड़ों को रंग में डालकर (पाणिना आकोटेतु)[16] उलटते-पलटते रहते थे (उदके ओसारेतु)[17] रंगने के बाद कपड़े को जमीन पर फैलाकर सुखाया जाता था जिससे कपड़ों में मिट्टी लग जाती थी और वे गन्दे हो जाते थे। अस्तु उससे बचने के लिए गीले कपड़े सुखाने के लिये बॉस और रस्सी की व्यवस्था की गई, जिन्हे 'चीवर रज्जु'[18] कहा जाता था।

कपड़े रंगने के लिये रंग पेड़ों के फल-फूल, पत्ते-छाल आदि को पानी में उबाल कर तैयार किये जाते थे।[19] रंग को पक्का करने के लिए उसमें हर्रा मिलाया जाता था। रंग पक्का हो गया है या नहीं इसका परीक्षण पानी में (उदके) या नाखून (नखपट्टिकाय)[20] पर एक बूँद डालकर किया जाता था। कपड़े रंगने के लिये रंगरेजों (रजक) की रजक शाला भी होती थी। स्पष्टत: महावग्ग से उक्त 'चीवर रजन कथा' से तत्कालीन वस्त्र रंगने की पूरी प्रक्रिया सामने आ जाती है।

कपड़ा बनाने के लिए कच्चा माल का प्रबन्धन

बुद्ध युग में समाज पूर्ण रूपेण विकसित हो चुका था और लोग नागर जीवन व्यतीत करते थे। बौद्ध-साहित्य में उस प्रबन्धन का उल्लेख मिलता है जिससे कच्चे माल की आपूर्ति होती रही। क्योंकि किसी भी उद्योग का विकास उसमें लगने वाले कच्चे माल की आपूर्ति पर ही निर्भर था, जो कुशल प्रबन्धन के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। स्वभावत: वस्त्र उद्योग भी विकसित हुआ जैसा कि विविध सामग्री से निर्मित कपड़ों के नामोल्लेख से ज्ञात होता है। वस्त्र उद्योग के लिये सर्वाधिक कच्चा माल कपास (कप्पास) थी।इसकी खेती करने वाले को कार्पासिक (कप्पासिक) कहा जाता था।उस समय कपास का उत्पादन इतना अधिक होता था कि यह कहावत ही बन गई थी कि देवता कपास की वर्षा करते हैं (कर्पासमेव देवो वर्शतु)[21] ऊन (उश्ण)[22], रेशम (कोसेफ्य)[23] के अलावा सन (साण)[24] और असली (खोमं) के पौधे की छाल से भी कपड़ा बनाया जाता था।[25] विनय पिटक के चुल्लवग्ग में ताड़ के पत्तों (चिमिलक)[26] से भी कपड़ा बनाने का उल्लेख मिलता है। वस्त्र इतनी उन्नत दशा में था कि लोग कपड़ा बनाने के लिये कुश (एक प्रकार की घास), फलों के रेशों, बाल (केस), उल्लू पंक्षी के पंखे (उलूक पक्खं), मृगचर्म के कतरन् (अजिनक्खिपं), अकौड़ा (अक्क), टाट (पोत्थक) का भी प्रयोग करते थे।[27]

कपड़ा बनाने की सामाग्री और विधि का प्रबन्धन

बौद्धसाहित्य में हमें कपड़ा बनाने की सामग्री और उसकी विधि से जुड़े प्रबन्धन का पूर्ण परिचय मिलता है। कपड़ा बनाने की श्रेणी, तत्तुवाय श्रेणी[28] थी। कपास की खेती होती थी। कपास का क्रय-विक्रय गलियों में भी होता था (वीथी गत्वा कर्पास: क्रीत:)[29]। कपास को सबसे पहले साफ किया जाता था (परिकर्मयित्वा)[30] साफ कपास को सुलझाया जाता था। उसे साफ और सुलझी हुई

रूई (लक्ष्णं) से सूत काता जाता था (सूत्र कर्तितम)[31] सूत से (सूत्रण)[32] कपड़ा बुना जाता था।उस समय वस्त्र उद्योग इतनी उन्नत अवस्था में था कि मानों देवता (बादल) वस्त्रों की ही वर्षा करते हों (वस्त्रण्येव देवो वर्शतु)[33] साधारण बनुकर को कुविन्द (आधुनिक कोरी)[34] कहते थे। सूत से कपड़ा कर्घा (तन्त) द्वारा बुना जाता था (वस्त्रं वायितु)। जिसके लिये वैं (वेमक), झापं (वट्ट या कवाटं), तकुवा (सलाका) तथा कर्घे के अन्य समान (तन्तं भण्डक)[35] की आवश्यकता होती थी।

बुद्ध युगीन निर्मित कपड़ों के प्रकारों पर महावग्ग और चुल्लवग्ग पालि ग्रन्थों से विशेष प्रकाश पड़ता है। कपास के बने हुए कपड़े को कप्पासिक[36] कहा जाता था। रेशमी कपड़े कोसेफ्यं, ऊन, से बने उण्णिं, सन से बनाये गये कपड़े साण, भाग के पौधें की छाल से निर्मित कपड़े भंग, अलसी के पौधें की छाल से निर्मित कपड़े खोम[37] कहलाते थे। चिमिलक[38] कपड़ा ताड़ से तैयार किया जाता था।[39] इसी प्रकार कुशचार[40], कुश नामक घास से तथा फलक चीर[41] फलों के रेशों से बनाया जाता था। पेड़ो की छाल से निर्मित कपड़ों को बक्कल चीर[42] (वाक् चीर) कहते थे। इस प्रकार उल्लू पंक्षी के पंखों (उलूक पक्ष्खं) का अकौड़ा या मदार (अक्क नाल) का तथा टाट (पोत्थक) का भी कपड़ा बनाया जाता था।[43] ऊन के अलावा अन्य बालों से बने कपड़े को कदाचित केश कम्बल[44] कहते थे। उस समय उल्लू जैसे पंक्षी के पंखों से भी वस्त्र बनाने का उल्लेख आश्चर्य चकित ही कर देता था।[45]

टिप्पणी: संभव है ऐसे वस्त्रों पर उल्लू के पंख टांक कर उन्हें तैयार किया जाता हो। उपर्युक्त कपड़ों में से कुशचीर, बल्कल चीर, फलक चीर, केश कम्बल, उल्लू के पंखों के बने कपड़े, मृग चर्म, मदार और टाट के बने कपड़े पहनने के लिये गौतम बुद्ध ने भिक्षुओं को निषिद्ध बतलाया था।[46]

वस्त्र उद्योग के प्रमुख केंद्रों के विकास में प्रबन्धन: बौद्धों ने उद्योग के प्रमुख केंद्रों के विकास में अपने प्रबन्धन का प्रयोग कर उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त करायी। इसका उल्लेख बौद्धसाहित्य में हम पाते हैं। सूती, ऊनी, रेशमी आदि वस्त्रों के निर्माण के लिये कुछ विशिष्ट और प्रसिद्ध केंद्र थे। जैसे रेशमी वस्त्रों के लिये काशी नगर या जनपद प्रसिद्ध था और आज भी उसके लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के निर्मित रेशमी वस्त्रों को काशिकानि वस्त्रणि[47] तथा काशिकांशु[48] कहा जाता था। यहाँ के रेशमी वस्त्रें-विशेषकर साड़ियों की दोनों किनारियाँ विशिष्ट कला कृतियों से सजाई जाती थी (दूकूलमय शोभन वस्त्रणि)[49]। सारनाथ के धमेक स्पूत के विविध चित्रांकित प्रस्तर खण्डों के मनमोहक चित्रांकन को देखकर यही प्रतीत होता है कि धमेक स्तूप के चित्रांकन में बनारस (काशी) के रेशमी वस्त्रों की विविध कला को ही इस स्तूप की कला में उतार दिया गया है।

चम्पा (वर्तमान भागलपुर) के एक बुनकर (कुविन्द) यमली नामक कपड़े के एक जोड़े थान को छाते की डंडी में रखकर (यमली छत्रदण्डे प्रक्षिफ्य)[50] वह राजगृह गया था। मगध देश वस्त्रों के लिये इतना प्रसिद्ध था कि यहाँ का शासक बिम्बिसार (गौतम बुद्ध का समकालीन और अनुयायी) को 'वस्त्रधिपति'[51] भी कहा गया है। इसी प्रकार सौवीर देश दुशालों के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ के बने दुशाले सौवीरी दुशाले (सोवेफ्यक दुस्स) कहलाते थे।[52] चोल देश के बने कपड़े चोलक कहलाते थे।[53]

इस प्रकार पालि बौद्धसाहित्य से ज्ञात होता है कि भारत में छठवी तथा पांचवी शताब्दी ई. पूर्व में बुद्ध और महावीर स्वामी के समय वस्त्र उद्योग अतीव उन्नत अवस्था में था। इस उद्योग में कार्पासिक, तन्तुवाय तथा रंकार श्रेणियाँ लगी हुई थीं जो सूती, ऊनी रेशमी तथा सन, अलसी आदि के कपड़े तैयार करती थी जिनका प्रयोग समाज में नर-नारी, साधू सन्त, श्रमण, भिक्षु-सन्यासी सभी करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्धसाहित्य में वाणिज्यिक प्रबन्धकीय कुशलता का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

सन्दर्भ: ग्रन्थ सूची

1. बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ 60, लन्दन 1926.
2. महावग्ग पालि, पृष्ठ 55/23, भिक्खु जगदीस कस्सप, सिरिनव नालन्दा महाविहार संस्करण, 1956.
3. चुल्लवग्ग पालि, पृष्ठ 225, भिक्खु जगदीस कस्सप, सिरिनव नालन्दा महाविहार संस्करण, 1956.
4. महावस्तु, वा. 3, पृष्ठ 55/23.
5. महावस्तु, वा. 3, पृष्ठ 113, सेनार्ट द्वारा सम्पादित
6. वही, वा0 3, पृष्ठ 113.
7. शास्त्री, वहावग्ग, पृष्ठ 439 सम्पादक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 1988 ई.
8. वही, पृष्ठ 413
9. महावस्तु, वा-3/113.

10. सरमोनियर विलियन्स, संस्कृत इग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ 3.
11. शास्त्री, महावग्ग, पृष्ठ 463.
12. वही, पृष्ठ 263: अनुजानामि भिक्खवे, छरजनानि-मूल रजनं, स्कन्धं रंजनं, तचं रजनं, पत्त रजनं, पुरुष रजनं फल रजनं
13. शास्त्री, महावग्ग, पृष्ठ 463
14. वही, पृष्ठ 463.
15. वही, पृष्ठ 464.
16. वही, पृष्ठ 464.
17. वही, पृष्ठ 464.
18. वही, पृष्ठ 464.
19. शास्त्री, महावग्ग, पृष्ठ 463.
20. महावस्तु, वा-2 पृष्ठ 464.
21. महावग्ग पालि, पृष्ठ 55.
22. दिव्या, पृष्ठ 32.
23. महावग्ग पालि, पृष्ठ 55.
24. वही, पृष्ठ 55.
25. वही, पृष्ठ 55.
26. चुल्लग्ग, पृष्ठ 243.
27. शास्त्री, महावग्ग, पृष्ठ 492.
28. विनय पिटक, पृष्ठ 454, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ 1935 ई.
29. दिव्या, 170/32, सम्पादक पी.एल.वैद्य, मिथिला, विद्यापीठ, दरभंगा, 1959 ई.
30. वही, पृष्ठ 370/32.
31. वही पृष्ठ 132.5, पृष्ठ 170-71.
32. वही, पृष्ठ 132/3-6.
33. वही, पृष्ठ 132/8-9.
34. वही, पृष्ठ 52/30.
35. चुल्लवग्ग पालि, पृष्ठ 225.
36. महावग्ग, पालि, पृष्ठ 55.
37. वही, पृष्ठ 55.
38. चुल्ल, पृष्ठ 243/16.
39. विनय पिटक, पृष्ठ 454.
40. शास्त्री, महावग्ग पृष्ठ 492.
41. वही, पृष्ठ 492.
42. विनय पिटक, पृष्ठ 293.
43. शास्त्री, महावग्गा, पृष्ठ 492.
44. वही, पृष्ठ 492
45. वही, पृष्ठ 492
46. विनयपिटक, पृष्ठ 293-94
47. महावस्तु, वा02 पु0 528, दिव्या पृष्ठ 250/9
48. दिव्या, पृष्ठ 196/13.
49. वही, पृष्ठ 194/14.
50. वही, पृष्ठ 271/5.
51. वही, पृष्ठ 194/24.
52. वहावग्गा पालि, पृष्ठ 295/20.
53. विनय पिटक, पृष्ठ 454.

द्वित्तीय लोकतांत्रिक लहर और उपाश्रित वर्ग का उदय: लोक सभा में तथाकथित दलित प्रतिनिधित्व का केस अध्ययन

मोहन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, भगिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय राजनीति का कांग्रेस प्रणाली से एक अलग व्यवस्था में जाना न तो बहुत व्यवस्थित ढंग से हुआ और ना ही किसी खास प्रवृत्ति के अनुसार। यह लगातार इटको हिचकोलों की शक्ल में आता चला गया। यह सिर्फ सत्ता की राजनीति के सिपाहियो या रजनीतिक दल का बदल जाना भर नहीं था। राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता के तौर-तरीके और मुद्दे इस दौर में एकदम मौलिक और बड़े थे शुरू में कांग्रेस का पराभव एक संकट जैसा लगा पर यह लोकतांत्रिक राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता में नई जान भरने और ज्यादा वास्तविक मुद्दे लाने का अवसर भी बन गया। योगेन्द्र यादव अपने लेख में इस प्रवृति के लिए 'द्वित्तीय लोकतांत्रिक लहर' की बात करते हैं, जिसका अर्थ लोकतांत्रिक भागीदारी में बढ़ोतरी से है। उनका मानना है कि भारत का लोकतंत्र अन्य देशों से अलग है क्योंकि यहाँ निचली जातियों व गरीबों के वोट अमीर या उच्च जातियों की अपेक्षा अधिक है और 1990 के दशक में जिस प्रकार से निचली जातियों की भागीदारी बढ़ी है उससे लोकतांत्रीकरण की प्रवृति में इजाफा हुआ। लेकिन क्या इससे विधायी संस्थाओं में विभिन्न वर्ग, जातीय समुदायों, नस्लो आदि का प्रतिनिधित्व बढ़ा? यह जान लेना उचित होगा।

द्वित्तीय लोकतांत्रिक लहर और उपाश्रित वर्ग का उदय

प्रथम तीन लोकसभा चुनाव 1952, 1957 तथा 1962 में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला, जिससे अन्य पार्टियाँ केवल दबाव समूह के रूप में ही नजर आयी जिसके कारण रजनी कोठारी ने इस व्यवस्था को कांग्रेस प्रणाली कहकर पुकारा लेकिन चौथे आम चुनाव 1967 तक भारतीय राजनीति में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ चुके थे, क्योंकि राज्य स्तर पर विभिन्न पार्टियों की पकड़ मजबूत हो गई थी, कांग्रेस पार्टी के भीतर अपनी आंतरिक समस्याएँ भी सामने आ रही थी, जिसे प्रथम लोकतांत्रिक लहर समझा जाने लगा लेकिन 1990 के दशक में जो आमूलचूल परिवर्तन हुए उसने बड़े व्यापक स्तर पर भारतीय दलीय व्यवस्था तथा राजनीति को परिवर्तित कर दिया।

1989 के बाद की राजनीति का इतिहास तीन परस्पर टकराते ढांचो 'मंदिर', 'मंडल', और 'मार्केट' का इतिहास है। दलीय व्यवस्था के अंतर्गत इस दौर को प्रो.एम.पी. सिंह और प्रो. रेखा सक्सेना बहु-दलीय गठबंधन की राजनीति कहकर पुकारा हैं। यदि हम भारतीय दलीय व्यवस्था में अनुसुचित जाति या पिछड़ों के प्रतिनिधित्व पर प्रकाश डाले तो भारतीय राजनीति में इसका इतिहास काफी पुराना है। दक्षिण भारत के राज्यों में पिछड़े वर्गों का उभार तो साठ के दशक में ही हो चुका था। पर उत्तर भारत और राष्ट्रीय स्तर पर पिछड़ों के उभार का बहुत प्रबल विरोध् हुआ। समाज के इन समूहों की आकांक्षाओं की परवाह न करना कांग्रेस को 1977-78 की अवधि में काफी महंगा पड़ा था- राष्ट्रीय स्तर पर भी और खास तौर से उत्तर भारत में। फिर भी पार्टी ने मंडल आयोग की सिफारिशों को न लागू करने का रास्ता चुना और इसके बाद उत्तर भारत में पिछड़ों की राजनीति प्रतीक के रूप में मंडल आयोग को ही केन्द्र में रखकर मजबूत हुई। जब वी.पी.सिंह की सरकार ने इन सुझावों को मान लिया तो उत्तर भारत में अगड़ों और पिछड़ों के बीच हिंसक टकराव तक हुए। कांग्रेस और भाजपा, दोनों ने ही अगड़ों की नाराजगी का राजनैतिक लाभ लेने की कोशिश की परन्तू उस समय तक पिछड़ो की राजनीति पर्याप्त दमदार हो चुकी थी। उत्तर प्रदेश और बिहार में उनका प्रतिनिधित्व करने वाले

रजनीतिक दलो ने भारी चुनावी जीत दर्ज की और यह मुद्दा न केवल पिछड़ी जातियों के 'पिछड़ेपन' और नौकरियों में आरक्षण तक सीमित नहीं रह गया, अब मंडल आयोग सत्ता पर कब्जा और उसमें पर्याप्त हिस्सेदारी के सवाल का प्रतीक बन गया।

मंडल सिफारिशो ने उत्तर भारत की राजनीति में जाति के सवाल को केन्द्र में ला दिया। इसने सारी चर्चा सामाजिक न्याय के सवाल पर ला दी और यह कमजोर निम्न तबके के उभार का प्रतीक बन गया और यह उभार सिर्फ पिछड़ी जातियों तक सीमित नहीं रहा। कांशीराम के नेतृत्व वाली 'बहुजन समाज पार्टी' ने अपना कार्यक्षेत्र पंजाब और हरियाणा से हटाकर मुख्यत: उत्तर प्रदेश को बनाया और मंदिर तथा मंडल के उथल-पुथल के बीच ही बड़ी-बड़ी और चौकाउ सफलताएँ हासिल करनी शुरू की। उत्तर प्रदेश की राजनीति जैसे ही अगड़ों के राजनैतिक नियंत्रण से निकली, बसपा ने इस उथल-पुथल का लाभ लिया और अपने लिए अच्छी जगह बनाई। 1993 चुनाव में उसने समाजवादी पार्टी से गठजोड़ किया और फिर मंदिर मसले के असली उफान वाले दौर में उत्तर प्रदेश में भाजपा को चित करके सबको चौका दिया। इस चुनाव के बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति सदा के लिए एकदम बदल गई। मंडल ने पूरे भारत में असर नहीं डाला और न ही कोई नया राजनैतिक दल या गठबंधन बनाने में सफलता पाई पर दलितों और पिछड़ो का उभार उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे कई राज्यों में काफी सफल रहा और उसने वहाँ स्पष्ट ध्रुवीकरण किए। पर यह वहाँ दलित-पिछड़ा एकता सुनिश्चित नहीं कर सका। इसकी जगह इसने विभिन्न पिछड़ी और दलित जातियों में जातिगत और राजनैतिक चेतना बढ़ाई। मंडल की असली सफलता विभिन्न दलों के नेतृत्व वाले समूह की सामाजिक संरचना बदलना है। मंडल के दौर के बाद सभी प्रमुख राजनैतिक दलों ने अपने प्रांतीय और राष्ट्रीय नेतृत्व वाले समूह में पिछड़ी जातियों के नेताओं को जगह दी। विड़बना यह भी रही कि मंडल की इस सफलता से इसके जो कर्ताधर्ता थे सभी पिछड़ी जातियों का नेता बनने का सपना देखने लगे थे वे मोटे तौर पर अपने-अपने प्रदेशों तक ही सीमित रह गए और केन्द्र की राजनीति में केवल सहयोगी भूमिका ही पा सके। पिछड़ों की तुलना में दलितों की उपलब्धि ज्यादा ठोस रही। उत्तर प्रदेश में बसपा के उभार ने अंतत: मायावती के हाथ में पूरी सत्ता ही नहीं पकड़ाई, शुरू से आम दलित भी सीना तानकर चलने की स्थिति में आ गए और उसके दैनंदिन जीवन मे भी बदलाव हुआ। इन सभी उपलब्धियों को गिनवाने के बावजूद यह कहना होगा कि मंडल वाला ढांचा अपने मुख्य लक्ष्य को हासिल नहीं कर पाया और यह दलित-पिछड़ा उभार के आधार पर कोई अखिल भारतीय आंदोलन या दल बनाने जैसी उपलब्धि से दूर ही रहा।

मंदिर आंदोलन की सफलता और उसका शोर, दोनों ही मंडल की तुलना में ज्यादा स्पष्ट दिखते है। कुछ कमियों के बावजूद मंदिर आंदोलन तीन मामलों मे सफल रहा। पहला, यह पढ़े-लिखे मध्यवर्ग के मन को छूने में सफल रहा दूसरा, समुदाय के आधार पर मुहिम चलाने से इसका प्रभाव उन इलाकों तक भी पहली बार पहुँचा, जहाँ तक पहले बिल्कुल भी पहुँच नहीं थी। तीसरी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता यह थी कि मंदिर मुहिम ने पुरे राजनैतिक आख्यान को बदल डाला। बाजार इन तीनों परियोजनाओं में सबसे कम चर्चा या हंगामे मे रहा है पर अपने लक्ष्य को पाने में यही सम्भवत: सबसे ज्यादा सफल हुआ है। नब्बे के दशक मे और उसके बाद सरकार जिस दल की बनी या जो वित मंत्री बने आर्थिक नीतियों के मामले में आश्चर्यजनक ढंग से एकरूपता बनी रही और बाजार अपनी परियोजना को सफलतापूर्वक लागू करने में जूटा रहा। बाजार ने न सिर्फ भारतीय और वैश्विक पूँजीवादियों का गठजोड़ कराया, बल्कि इसने भारतीय पूंजीवादियों और तेजी से फल-फूल रहे देशी मध्य वर्ग की भी दोस्ती करवा दी। इस प्रकार बाजार की परियोजना खुद को और अर्थनीति को पार्टी प्रतिद्वंद्विता के नतीजों से आजाद कर पाने में सफल नहीं रही, बाजार की परियोजना की इस सफलता के पीछे कई और ऐसे परिणाम छिपे हुए थे, जो बिना इसकी मंशा के भी निकल आए। ऐसा पहले देखा गया है, समाज में अमीर-गरीब का फासला बढ़ा है, मजदूरों के लिए काम करने की स्थितियाँ बदल गई जिसका उनकी गोलबंदी पर भी प्रभाव पड़ा है मध्य वर्ग की सामाजिक स्थिति गरीब तबके से काफी अलग हुई है, गरीबी और लोगों की पीड़ा के प्रति समाज की सहानुभूति कम हुई है। ऐसे और भी काफी बदलाव हुए हैं। इन बदलावों ने दीर्घकालिक स्तर पर राजनीति की स्थितियों और तौर तरीकों को भी बदल दिया है। नई आर्थिक नीतियों पर हर दल की सहमति ने पार्टी प्रणाली में भी एक बदलाव ला दिया है। चुनावी प्रतिद्वंद्विता का स्वरूप चाहे जो हो, और पार्टी प्रणाली के दो आयामी नक्शे पर राज्यों की अवस्थिति जो हो राजनैतिक विकल्पों के मामले मे हर राज्य का सूचकांक नीचे की तरफ खिसका। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1990 के दशक में मंडल, मंदिर और मार्केट के विचारों ने न केवल राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता को बढ़ाया बल्कि राज्यों की अपनी विशिष्ट पहचान को गंभीर बनाया और साथ ही साथ इसने राजनीति मे एक नए वर्ग के रूप में पिछड़े तथा दलित को पहचान दिलाई, योगेन्द्र यादव ने 'Second Democratic Upsurge' के अंतर्गत लोकतांत्रिकरण की प्रवृति में इजाफा होने की बात करते है। लेकिन इसके बावजूद

यह जान लेना भी श्रेष्ठतर होगा कि 1990 के दशक के बाद से क्योंकि दलित तथा पिछड़ी जातियों का समीकरण बदला है, इससे क्या भारत के प्रमुख विधायी निकाय संस्थाओं में उन वर्गो या समुहों का प्रतिनिधित्व भी बढ़ा है? यह अध्ययन उचित होगा।

उपाश्रित वर्ग कौन है? समाज में उनकी क्या भूमिका है? और इस वर्ग के उन्थान के लिए सही कदम क्या हो सकते है? इस संबंध में चिंतको की राय अलग-अलग हैं रणजीत गुहा और पार्थ चटर्जी 'Political Society' में गैर कानूनी तरीके से सरकारी जमीन पर और गंदी वस्ती में रहने वाले लोग को उपाश्रित वर्ग में रखते है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने सामाजिक विषमता, लैंगिक असमानता, जाति, अस्पृश्यता, सामप्रदायिक्ता और रंगभेद के आधर पर महिला शुद्र, हरिजन, मुस्लिम और आदिवासी इन पाँच वर्गो को उपाश्रित वर्ग के रूप में पहचान करते है। उपाश्रित वर्ग की पहचान चाहे किसी भी रूप में किया गया हो, लेकिन यह स्पष्ट है, कि प्राचीन काल से ही समाज में एक ऐसा तबका है जो शोषित रहा है, हो सकता है कि उसके पैमाने या मानदंड समय व काल के अनुसार परिवर्तित हुआ हो, और इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि उस वर्ग के उत्थान के लिए प्राचीन काल से प्रयास किये जाते रहे है, चाहे उनमे वैचारिक मतभेद क्यों न हो इसी संदर्भ में द्वित्तीय लोकतांत्रिक लहर को भी शामिल किया जा सकता हैं जो कई प्रयासो का परिणाम था। उपाश्रित वर्ग के उत्थान से संबंधित विद्वानों के दर्शन व स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में किये गये प्रयास, आदि के कारण क्या स्थिति सुधरी हैं? यह एक शोध् का विषय है। यहाँ पर मैं 1990 के दशक में योगेन्द्र यादव द्वारा प्रयोग किये गये द्वित्तीय लोकतांत्रिक लहर के संदर्भ में लोकसभा जो भारत का सर्वोच्च विधायी निकाय है इसके अंतर्गत तथाकथित दलित के प्रतिनिधित्व में क्या बद्लाव आया हैं उसका वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर रहा हूं।

भारत में स्वतंत्रता उपरांत जो बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण पद थे चाहे राजनीतिक या प्रशासनिक पद हो इन सब पर अभिजन वर्ग के लोगों का नियंत्रण था। 1960-70 के दशक के दौरान दलित वर्ग की आवाज सबसे पहले दक्षिण भारत में सुनाई दी इसके विपरीत उत्तर भारत में अभी भी जाति की अवधारणा बहुत ज्यादा प्रचलित थी। 1980-90 के दशक में अधिकारों के लिए संघर्ष करना शुरू किया और इसके साथ-साथ सरकारी नीतियों ने अप्रत्यक्ष रूप से इन वर्गो को लामबंद किया जैसे सुदीप्त कविराज कहते हैं कि 1971 में इंदिरा गाँधी द्वारा 'गरीबी हटाओं' का नारा दिया गया, इससे क्या गरीबी हटी? नहीं! लेकिन इससे एक साकारात्मक प्रभाव यह पड़ा कि एक बहुत बड़ा तबका अपने अधिकारों के प्रति सजग हुआ और अपनी माँगों को लेकर संघर्ष करना शुरू किया, जिससे वे अपनी राजनीतिकरण करने में सक्षम हुआ।

लोक सभा में दलित प्रतिनिधित्व का सैद्धांतिक पक्ष

किसी भी देश का प्रशासनिक या राजनीतिक आकलन करने के लिए उस देश की राजनीतिक संस्थाओं की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, भारत में औपनिवेशिक काल से चली आ रही राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव आजाद भारत की राजनीतिक व्यवस्था पर काफी हद तक रहा है। B.L.Shankar और Rodrigues की पुस्तक "The Indian Parliament" में औपनिवेशिक काल के दौरान संवैधानिक विकास की प्रक्रिया, राष्ट्रीय आंदोलनों में संसदीय व्यवस्था के उद्भव तथा सार्वजनिक जीवन में राष्ट्र के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में इसका विवरण मिलता है। संविधान सभा की संवैधानिक असेम्बली डिबेट मे संसदीय और अध्यक्षीय शासन के रूप में अपनाने के लिए विचार व तर्क दिये जा रहे थे। कई सारे तर्क संसदीय व्यवस्था के पक्ष में थे इनमें से एक डॉ. अम्बेडकर ने भी संसदीय व्यवस्था के पक्ष में बोला। Prof. Rekha Saxena, D.D. Dua, M.P. Singh की पुस्तक "The Indian Parliament" में A. S. Narang के द्वारा भी इसी बात को दर्शाया गया कि संविधान सभा द्वारा देश के लिए सरकार के रूप पर चर्चा हुई डॉ. अम्बेड़कर ने ''लोकतात्रिक कार्यकालिका'' को मुख्य बताया तथा इसके लिए दो स्थिति बताई- पहला, स्थिरता (Stability) और दूसरे, उत्तरदायित्व (Responsibility) सौभाग्यवश उन्होंने बताया कि इन दोनों का संसदीय व्यवस्था में समान आकलन हो यह संभव नहीं था। उन्होंने उदाहरण के तौर पर दिखाया कि अमेरिकन तथा स्वीस व्यवस्था में स्थायित्व है परन्तु उत्तरदायित्व (Accountability) कम है, जबकि ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में उत्तरदायित्व पर ज्यादा जोर दिया जाता है।

B.L. Shankar and Rodrigues और Narang दोनों ने दिखाया कि किस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने भारत की विविधताओं को समझते हुये, इन बहुल विविधता को समायोजित करने के लिए संसदीय व्यवस्था को भारत के लिए उचित बताया। आस्टिन ने लिखा कि संसदीय प्रणाली में लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधित्वो की भागीदारी निर्णय प्रक्रिया मे शामिल होगी, जिससे प्रतिनिधित्व का उत्तरदायित्व

यह दर्शाता है कि जनता की सर्वोच्चता है। भारतीय संसद में प्रतिनिधित्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है जो कि अपने आरंभिक तौर से लेकर अब तक किस प्रकार इसमें बदलाव आया उसको नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। नीरजा गोपाल जयाल ने सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक असमानता जो जाति जनजाति और धार्मिक पहचान को परिभाषित करता है, इनके प्रतिनिधित्व की बात की है, जयाल ने राजनीतिक पार्टी तथा दलीय व्यवस्था का परीक्षण करते हुए तीन मुख्य संस्थाओं में किस प्रकार वास्तविक प्रतिनिधित्व उभरा है को बताते है ये तीन संस्थाएँ है- 1. लोक सभा, 2. केन्द्रीय मंत्रीमंडल और 3. अखिल भारतीय सेवा। जयाल तर्क देते हैं कि लोकसभा में SCs और STs के लिए जो आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान किया गया और जो अपेक्षाएँ थी इनके प्रतिनिधित्व को लेकर उसमें सफलता नहीं मिली जो इनके लिए सीटें आरक्षित थी उससे ज्यादा प्रतिनिधित्व कभी भी देखने को नहीं मिला। वही दूसरी तरफ OBCs का प्रतिनिधित्व प्रथम चरण 1947 से 1990 की अपेक्षा दूसरे चरण 1991 के बाद में दुगुना हो गया।

योगेन्द्र यादव ने द्वितीय लोकतांत्रिक लहर के संबंध में जो तर्क दिये उसका सीधा सा आशय था कि इससे भारतीय राजनीति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, लेकिन उसका प्रभाव क्या लोक सभा में दलित प्रतिनिधित्व पर पड़ा? इसे जानने के लिए तुलनात्मक अध्ययन श्रेष्ठतर होगा अर्थात 1990 से पहले और 1990 के बाद लोक सभा में दलित का प्रतिनिधित्व किस प्रकार बदला यह देखना उचित होगा।

1990 से पहले लोकसभा में दलित प्रतिनिधित्व

संविधान निर्माताओं ने सामाजिक न्याय तथा समानता और पिछड़े वर्गो को मुख्यधारा में लाने के लिए एक विवादास्पद कार्य किया जो आरक्षण के रूप में हमारे सामने है। संविधान में अनुच्छेद 330 के अंतर्गत व्यवस्था है कि लोकसभा में (क) अनुसूचित जातियों के लिए (ख) अनुसूचित जन जाति सिवाय असम के स्वशासित जिलों की अनुसूचित जनजाति को छोड़कर (ग) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। प्रत्येक राज्य में आरक्षण का नियतांश उस राज्य की अनुसूचित जाति की जनसंख्या पर आधरित है। यह भी ज्ञातव्य है कि आरक्षण का यह प्रावधान केवल 10 वर्षो के लिए था क्योंकि आरक्षण मिलने के कारण जब अनुसूचित जाति एवं जनजाति मुख्यधारा में आ जायेंगे तो आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं होगी। लेकिन आज भी आरक्षण को हटाया नहीं गया है, इसका आशय है, कि समाज में आज भी समानता या सामाजिक न्याय हासिल नहीं हो पाया है, इसी संदर्भ में 1950 के बाद से 1989 तक लोकसभा में दलित प्रतिनिधित्व पर अध्ययन किया जा रहा है, इसके बाद 1991 से लेकर अब तक दलित प्रतिनिधित्व का अध्ययन अगले भाग में किया जाएगा।

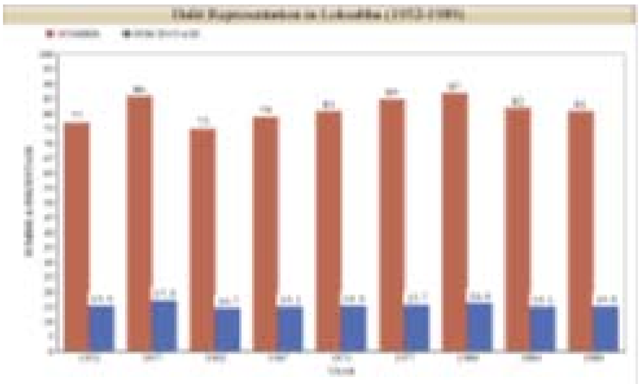

पहली लोक सभा में अन्य उच्च जातियों और ब्राहम्मण जो कि भारत की कुल जनसंख्या के 15 % आबादी थी उनका प्रतिनिधित्व कुल 49.2 % थी वही मध्यम जातियों और निचली जातियों जिनका प्रतिशत कुल जनसंख्या का लगभग 40% थी उनका प्रतिनिधित्व केवल 11.8% थी वही दलित जातियों के लिए जो आरक्षण की व्यवस्था की गई थी इसके कारण उनका प्रनिनिधित्व लोकसभा के कुल प्रतिशत का 15.5 % था। अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के पास उन्नत शैक्षित योग्यता थी, और ज्यादातर जो विशेषाध्कृित समुदाय के लोग थे, उसमें से ऐसा कोई भी सदस्य नहीं थे, जो विदेशी शिक्षा प्राप्त नहीं किये हुये थे। दूसरे और तीसरे लोक सभा में अनुसूचित जाति की संरचना में ज्यादा बदलाव नहीं आया बल्कि स्थिरता बनी रही। 1960 के दशक के बाद कई ऐसे कारक थे, जैसे कृषक आंदोलन श्रमिक आंदोलन आदि ने राजनीति को काफी हद तक प्रभावित किया, 1960 के दशक में

क्योंकि कांग्रेस को सामाजिक उच्च जातियों और निचली जातियों का समर्थन मिला था, इसके कारण वह एकाधिकार बना पाने में सफल हो रही थी। 1970 में जे. पी. आंदोलन तथा क्षेत्रीय पार्टी के उद्‌भव आदि के कारण ओ.बी.सी. तथा नगरीय उच्च वर्गो ने कांग्रेस को ज्यादा समर्थन नही दिया, इसके कारण आपातकाल के बाद 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी जो विभिन्न वर्गो या समुदायों तथा जातियों का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

लोक सभा के अंतर्गत यदि जाति संरचना को देखे तो 1971 में एक नाममात्र या आंशिक बदलाव ही देखने को मिलता है। क्योंकि अभी भी ब्राह्मण और अन्य उच्च जातियों का प्रतिनिधित्व 47.6% था। वही पिछडे वर्गो का प्रतिनिधित्व सोचनीय ही रहा। 1977 में लोक सभा का जातिगत संरचना में व्यापक बदलाव हुआ क्योंकि पिछड़े वर्गो का प्रतिनिधित्व एकदम से बढ़ गया लेकिन अनुसूचित जाति व जनजाति के प्रतिनिधित्व में कोई ज्यादा बदलाव नहीं आया। 1952-1989 के आंकड़ों को देखें तो अनुसूचित जाति के लिए जो संविधान के अंतर्गत जो आरक्षण की व्यवस्था की गई थी उसका वास्तविक प्रतिनिधित्व भी उसी के इर्द-गिर्द घुमती रही अर्थात् स्थायी रूप से बनी रही उनमें कुछ ज्यादा फर्क नहीं आया। 1990 के दशक में हुये आमूलचुल परिवर्तन तथा मंडल, मंदिर और मार्केट के संदर्भ में राजनीतिक प्रतिद्वद्विता के कारण लोक सभा में दलित के प्रतिनिधित्व पर क्या प्रभाव पड़ा इसका अध्ययन भी आवश्यक है।

1990 के बाद लोकसभा में दलित प्रतिनिधित्व

भारत में 1990 का दशक कई मायनों में अहम है, यह वही समय है, जब मंडल, मंदिर, मार्केट महत्त्वपूर्ण स्वर बना और नई उदारवादी विचारों का सूत्रपात हुआ और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि इसी दौरान भारत में पूर्ण तरीके से केंद्रीय स्तर पर गठबंधन सरकार की शुरूआत भी हुई क्योंकि इस दौरान देश भर में कई क्षेत्रीय दल सरकार बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण बन गई थी। दलित के परिप्रेक्ष्य में देखे तो बसपा पार्टी का उदय व दलित वोट बैंक की राजनीति का भी सूत्रापत हो चुका था, अर्थात् यह कहा जा सकता है कि 1990 के दशक में भारत की राजनीति में एक व्यापक बदलाव आया इस बदलाव ने विधायी संस्थाओं मे दलित के प्रतिनिधित्व को कितना बदला या क्या इस परिवर्तन का कोई प्रभाव दलित प्रतिनिधित्व पर नहीं पड़ा इसका अध्ययन हम यहाँ कर रहे हैं।

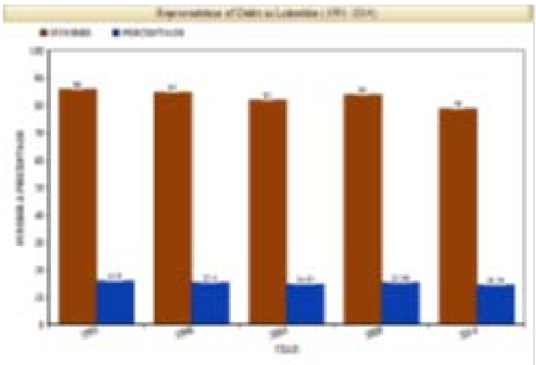

1984 में कांग्रेस ने अपनी पकड़ अन्य उच्च जातियों, ब्राहमण और अनुसूचित जाति और जनजाति के तहत कायम की थी और उसी दौरान भारतीय जनता पार्टी ने हिन्दूत्व को च्तवरमबज किया तो ब्राहमण तथा उच्च जातियाँ भी इसमें शामिल हो गई, जिसके कारण किसी भी पार्टी को पूर्ण बहुमत में आने की समस्या अर्थात् भारत में गठबंधन सरकार की शुरूआत हुयी। 1990 मे कई पार्टियों के उभार जैसे बी.एस.पी. दलित पार्टी के रूप में आया तथा ओ.बी.सी. के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण बदलाव आया और कई हिस्सों में हुये आंदोलनों तथा हिन्दूत्व की विचारधारा आदि ने एक महत्त्वपूर्ण बदलाव किया। नब्बे के दशक में स्थिति ऐसी बन गई की काफी छोटी क्षेत्रिय पार्टियां भी बहुमत बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण बन गई। यह वह समय था जब गठबंधन सरकार की शुरूआत हुई। क्योंकि कांग्रेस ने जिस सामाजिक संरचना के आधर पर अपना प्रभुत्व बनाने में कामयाब होता रहा था, वहीं इनके बिखराव ने एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया था।

1990 के बाद लोक सभा मे जातिगत संरचना को देखें तो पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व बढ़ा वहीं ब्राह्मण का प्रतिनिधित्व कम हो गया। 1990 के पहले दो लोक सभा 1991 और 1996 में ओ.बी.सी. का प्रतिनिधित्व पहले की तरह ही बना रहा, वही ब्राह्मण जातियो का प्रतिनिधित्व कुछ कम लेकिन संतुलित ही रहा वही अन्य उच्च जातियो का प्रतिनिधित्व ज्यादा रहा। 14वीं लोकसभा

तक आते–आते ओ.बी.सी.के प्रतिनिधित्व में काफी बद्लाव आ गया था वही अन्य उच्च जातियो का प्रतिनिधित्व कम हुआ। दलित लामबंदी का प्रभाव भी लोकसभा के अंतर्गत दिखा लेकिन दलित प्रतिनिधित्व में स्थिरता बनी रही और इसका कुछ ज्यादा प्रभाव इस क्षेत्र में नहीं हो सका।

मूल्यांकन

लक्ष्य यह नहीं होना चाहिए कि इतिहास के अन्याय का हम बदला कैसे ले? बल्कि यह होना चाहिए कि मानव–मुक्ति का मार्ग कैसे प्रशस्त हो। उपर्युक्त तथ्य के आधर पर हम यह कह सकते है कि भारतीय राजनीति में समय व परिस्थितियों के अनुसार जो परिवर्तन हुये उसने भारतीय दलील व्यवस्था व राजनीतिक प्रतिद्वद्विता को काफी हद तक प्रभावित किया। और यह भी सही है कि 1990 के दशक में हुये व्यापक परिवर्तन जिसे योगेन्द्र यादव ने द्वितीय लोकतांत्रिक लहर की संज्ञा दी है उसने समाज व राजनीति को काफी हद तक बदल डाला लेकिन इसके बावजूद् लोकसभा जैसे विधायी निकाय में दलित प्रतिनिधित्व में स्थिरता ही बनी रही, इसमें कोई मुख्य परिवर्तन नहीं देखा गया। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि आरक्षण की पुन: व्याख्या की जाए, दलित वर्गो में चेतना का विकास किया जाए ताकि विधायी संस्थाओं में उसकी भागीदारी बढ़े तभी अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की संकल्पना को प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा वह एक सैद्धांतिक विमर्श ही बनकर रह जाएगी।

References

- Amin, Samir (2010) Globla History: A view from the South. Pambazuka press.
- Bhatt, Anil (2010) 'Caste an political mobilisation in a Gujarat District' in Rajni Kothari (eds), Caste in Indian Politics, PP. 283-322. New Delhi : Orient Longman.
- Burke, Edmund. (1949), works politics, R.J.S. Hoffmann and P.Levake (eds) Naff Newyork.
- Chatterjee, Partha (2011) Lineages of political society: Studies in Postcolonial Democracy. New York: Columbia University press.
- Desouza, P.R. and E. Sridharan (2006), India's Political Parties, Sage, New Delhi.
- Dua, B.D. , M.P. Singh and Rekha Saxena (2014), The Indian Parliament, Manohar Publishers & Distributors, , P.P. 283-294.
- Gramsci, Antonio (1971). Sections from the prison Note books. intl. pub.
- Guha, Ranjit (1997). A Subaltern Studies Reader 1986-1995. Minneapolis: University of Minnesota press.
- Hobbes, Thomas (1651) Leviathan, C.B. Macpherson (eds) Penguin Classics Paperback.
- Jaffrelot, Christophe (2003). Indian Silent Revolution: The Rise of Lower Caste in North Indian Politics. New York: Columbia University Press.
- Jones, W.H. Morris.(1964), The Government and Politics of India, Hutchinson University London.
- Kashyap, Subhash C. (1989), Parliament - An Introduction to the Parliament of India, National Book Trust
- Kashyap, Subhash C. (1994), Our Constitutions - An Introduction to India's Constitution and Constitutional Law, NBT, New Delhi, National Book Trust
- Kothari, Rajni (1970) Politics in India . New Delhi:Orient Blackswan.
- Kothari, Rajni (ed) 1970b. Caste in Indian Politics New Delhi: Orient Longman.
- Pitkin, H.F.(1967). The Concepts of Representation. Berkely: University of California Press.
- Rousseau, J.J. (1978), The Social Contract (1762), R.D. Masters (eds) St. Martin's New York.
- Sarkar, Sumit (1997). Writing Social History. New Delhi Oxford University press.
- Shankar, B.L. and Valerian Rodrigues (2011) "The Indian Parliament A Democracy, At Work, Oxford University Press.
- Sriniwas, M.N (2002), village, Caste, Gender and Method: Essays in Indian Social Anthropology, Oxford University Press, New Delhi.
- Yadav, Yogendra (2000) Understanding the Second Democratic Upsurge: trends of Bahujan participation in electoral politics in the 1990s, Transforming India Social & Polical Dynamics of Democracy, OUP, New Delhi P.P.-120-145.
- Yadav, Yogendra (2014) The Paradox of Political representation in B.D. Dua, M.P. Singh and Rekha Saxena(eds), The Indian Parliament , P.P 283-294 Manohar Publisher and Distributors.

प्राचीन भारत की वाणिज्यिक सम्पदा (आदिकाल से बुद्धकाल तक)

डॉ० शिवजी सिंह

इतिहास विभाग, बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सभ्यता के विकास साथ ही मानव अनाज उत्पादन एवं उसका रखरखाव हेतु निरंतर प्रयत्नशील था। यह सभी भारत में नवपाषाण काल से संबंधित रहा ह। जैसे–जैसे लोग चाक, पहिया, अग्नि आदि का खोज करते गये लोग खाद्यान्न उत्पादन में और मजबूत होते गये इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू आद्य ऐतिहासिक काल में दिखाई देने लगता है। भारतीय संदर्भ में आद्य ऐतिहासिक काल से संबंधित हमारी जानकारी केवल पुरातात्विक क्षेत्र अनुसंधान तथा उससे संबंध व्याख्यात्मक अनुसंधान पर आधारित है। प्राचीन भारत में अधिशेष उत्पादन से अनेक वाणिज्यिक फसले एवं स्थलों का उद्‌भव हुआ, जिसने वाणिज्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैसे बलुचिस्तान और वृहत सिंधुघाटी की आरम्भिक बस्तियाँ। ऐसे बहुत सारी बस्तियों का समन्वेषण और उत्खनन हुआ मुख्यतः बलूचिस्तान, उत्तर पश्चिम की गोभल घाटी, पंजाब के मैदान (पश्चिमी पंजाब) सिंध, बहावलपुर (पश्चिमी पाकिस्तान) की धग्गर घाटी, राजस्थान और हरियणा में। परिवर्त्ती काल में सिन्धु सभ्यता इस समूचे क्षेत्र में विकसित हुई जो गुजरात तथा गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी भाग तक फैल गई। ये विकसित सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण स्थल वाणिज्य हेतु महत्वपूर्ण केन्द्र हो गए। उदाहरणार्थ सिन्धु सभ्यता के लोग ताँबा राजस्थान के खेती खानों से मंगाते थे।1 वाह्य व्यापार-वाणिज्य अधिक स्पष्ट हैं सिंधु सभ्यता के प्राप्त मोहरों एवमनकों से स्पष्ट है कि फारस की खाड़ी मेसोपोटामिया (उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों) ऋगानिस्तान और सोवियत दक्षिणी तर्कमेनियाँ से वाणिज्यिक संबंध थे, फिराजा, लाजवर्दभणि, हरिताश्य और टिन आदि वाह्य-व्यापार वाणिज्य का वस्तु था। मेसोपोटामिया के लेखों में में भी 'मेलूहा' (सिन्धु घाटी) का उल्लेख मिलता है। ताँबा राजस्थान से सोना कर्नाटक से आदि महत्वपूर्ण घरेलू वाणिज्यिक स्थल थे। उल्लेखनीय है कि सिन्धु सभ्यता वाणिज्य के दृष्टि से काफी परिपक्व सभ्यता थी।

वैदिक काल में भी अनेक ऐसे शब्दों का उल्लेख मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि यह काल वाणिज्यिक रूप से सभ्रांत नही था। घरेलू व्यापार के रूप में यहाँ पणि (व्यापारी) वैश्य आदि वर्गो का उल्लेख वैदिक साहित्यों में मिलता है। ये लोग घरेलू व्यापार से ही संबंधित रहे। पुरातात्विक उत्खननों प्राप्त मृदभाण्डों OCP एवं PGW से अनेक स्थलों का महत्व प्राप्त होता, लेकिन स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होना अभी बाकी है। परवर्ती वैदिक काल में प्राप्त मुद्राओं (कर्शापण) व्यापार-वाणिज्य के विकास का द्योतक है। परवर्ती काल में व्यापार एवं वाणिज्य खास कर बुद्ध काल में काफी संगत हो चुका था, इस समय देश का प्रायः सारा व्यापार गृहपति (गृहपति वैश्य) लोगों के हाथ में था।

राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, चम्पा, वैशाली, तक्षशिला, भद्रवती, मिथिला और आपण जैसे नगरों में अनेक धनी सेठ उस समय थे, जिनका सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। जनपदों में भी ऐसे ही सेठ होते थे, जिन्हें 'जनपद' सेट्‌िक कहा जाता था। ये व्यापार का काम करते थे और लेन देन का काम भी। घम्मपदट्‌ठकथा में कहा गया है कि राजा प्रसेनजित्‌ के राज्य में कोई बड़ा सेठ नहीं था। इसलिए उसकी प्रार्थना पर मगधराज बिम्बिसार ने अपने राज्य के प्रसिद्ध सेठ धनंजय आरम्भ किया।[2] बुद्धकालीन भारत में अन्तर्देशीय व्यापार का विचार करने पर सर्वप्रथम चित्र जो हमारे सामने आता है, वह है, माल (भण्डं) से भरी हुई 500 गाड़ियों (पञ्चम-त्तनि सकटसतानि) के काफिलों (शकट-सार्थ) को लिए हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने को जाने वाले व्यापारियों का।[3] इस प्रकार हम सूनापरान्त जनपद (ठाणा और सूरत के जिलों-का अंश) के दो व्यापारी भाईयों को क्रमशः 500-500 गाड़ियाँ लेकर श्रावस्ती व्यापार्थ जाते देखते थे।[4]

500 गाड़ियों को ही साथ लेकर जाता हुआ पुक्कुस मल्लपुत्र व्यापारी भगवान् को पावा और कुसिनारा के बीच रास्ते पर मिला था। भगवान् पावा से कुसिनारा की ओर जा रहे थे और वह कुसिनारा से पावा की ओर जा रहा था।[5]

श्रावस्ती का प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डक राजगृह अपने किसी व्यापारिक कार्य से 500 गाड़ियों को साथ लेकर गया था। इसी समय प्रथम वार उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे।

विनय-टिपक में हम वेलट्ठ कच्चान नामक व्यापारी को गुड़ के घड़ों से भरी 500 गाड़ियों के साथ राजगृह से अंधकविन्द, ग्राम की ओर जाने वाले रास्ते पर जाते देखते हैं।[6]

तपस्यु और भाल्लिक नामक व्यापारी, जिन्होंने भगवान बुद्धत्व को बुद्ध-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम आहार दिया था, 500 गाड़ियों के साथ उत्कल जनपद से मध्य देश में व्यापरार्थ ही आ रहे थे।[7]

वलाहस्स जातक में वाराणसी के 500 व्यापारियों को तम्बपण्णि (ताम्रपर्णिलंका) के सिरिसवत्थु नामक नगर में पहुँचते देखते थे।

इसी जातक में तम्बपण्णि दीप की कल्याणी नदी का भी उल्लेख किया गया है।

इससे प्रकट होता है कि लंका के साथ समुद्री मार्ग संबंध, भारत के जातक-काल में थें। सुप्पारक जातक में मरूकच्छ के व्यापारियों का 600 यात्रियों से भेरे एक विशाल जहाज को लेकर एक लम्बी यात्रा पर जाना वर्णित है, जिसमें उन्हें खुरमाल, अग्निमाल आदि छह समुद्र पड़े थे।

इन पहचानों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के व्यापारिक संबंध समुद्री मार्ग के द्वारा बेबीलान, अरब मिश्र, यूनान और भूमध्यसागर के कतिपय देशों के साथ थे।[8] इधर दक्षिण में ताम्रपर्णि द्वीप के साथ तो भरूकच्छ और सुप्पारम के व्यापारियों को समुद्री मार्ग द्वारा धनिष्ठ सम्पर्क था ही, हम भरूकच्छ के व्यापारियों को, सुसन्धि जातक में, सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) तक जाते देखते हैं।[9]

बुद्धकाल में स्थानीय और समुद्री दोनों प्रकार का व्यापार अत्यन्त विकसित और संधबद्ध अवस्था था।

स्थल-पथ के द्वारा व्यापार का कार्य करने वाले व्यारी 'थलपथकाम्मिका' और जल मार्ग के द्वारा व्यापार करने वाले 'जलपथ-कम्मिका' कहलाते थे।

शिल्पकारों के समान व्यापारियों (वाणिजा) के भी संघ थे। उनका प्रधान 'जेट्ठक' या सेट्ठ्कि कहलाता था।

वाणिक्-संघों का वह एक प्रकार से प्रतिनिधि होता था जिसे एक उच्च पदाधिकारी के रूप में राजा के पास भी इस संबंध में जाना पड़ता था। सेठ या सेट्ठि का पद प्राय: पितृक्रमागत होता था। अनेक जातक कथाओं में इस प्राकर के वर्णन मिलते है। "सो सेट्ठिनो अच्चयेन-तस्मि नगरे सेट्ठिट्ठानं लाभि" अर्थात सेठ के मरने के बाद उसने उस नगर में सेठ का स्थान प्राप्त किया। समाज में सेठ के पद का बड़ा सम्मान होता था और एक जातक-कथा में उसे 'राजपूजितों नगर जनपद-पूजितो' कहा गया है।[10]

बुद्धकाल में मार्ग दुर्गम थे, चेदि देश से वाराणसी जाने वाले और श्रावस्ती से साकेत तथा राजगृह जोने वाले जैसे मार्गों में चारो ओर लुटेरों का भय रहता था। अनेक जातक कथाओं में चोरो और लुटेरों के भय का वर्णन। सतपन्त जातक में 500 लुटेरों के एक गिरोह का वर्णन है। इस प्रकार का वर्णन सत्तिगुम्ब जातक में भी है। इन चोरों से बचने के लिए किये भिन्न-2 शकटशार्थों के नेता एक संयुक्त जेट्ठक की अधीनता में चलते थे और अपने साथ चौकीदारों का भी प्रबन्ध रखते थे।

भारतीय व्यापारी सामुद्रिक व्यापार के द्वारा भारत में विदेशों से किन वस्तुओं का आयात करते थें, इसका कोई, निर्देश पालि विवरणों में नहीं मिलता। हमें उन्हें विदेशों से सोना लाते ही देखते हैं। सुप्पारक जातक से पता चलता है कि समुद्रों से रत्न और मुँगे आदि भी भारतीय व्यापरी खोजकर लाते थे। जिन वस्तुओं का वे इन देशों से निर्यात करते थे, उनमें बहुमूल्य वस्त्रों का एक मुख्य स्थान था। काशी के वस्त्र ये व्यापारी विदेशों में ले जाते थे और उनका प्रभूत मूल्य वसूल करते थे। इसी प्रकार गन्धर के कम्बलों, सिवि देश के दुशालों, दाशार्ण जनपद की छुरियों और तलवारों तथा ऐसी ही अन्य वस्तुओं का भी ये व्यापारी निर्यात करते थे। मोर और अन्य चिड़ियों के विदेशों में ले जाने के उदाहरण भी जातक में मिलाते हैं।[11]

सधारणतः रेशमी कपड़े, मलमल, हाथी दाँत की चीजें ओर सोने के आभूषण आदि भारत से विदेशों के लिए निर्यात किये जाते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में वाणिज्य परवर्ती काल में काफी विकसित हो चुका था।

सन्दर्भ-सूची

1. झा एवं श्रीमाली-प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 97
2. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ 356
3. बुद्धचर्या, पृष्ठ 376 पद-सकेत 3
4. महापरिनिब्बाण - सुन्त (दीघ, 213)
5. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 103 (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)
6. विनय पिटक (हि. अनु.) पृष्ठ 236
7. धम्मपददट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ 429
8. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ 523
9. मिलाइये राधकुमुद मुकजीः हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग-पृष्ठ 82
10. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ 188
11. वही पृष्ठ 154-155, 415

1857: क्रांतिकारियों की राजनीतिक दृष्टि

विवेक कुमार शर्मा

(पटना)

सारांश

1857 की क्रांति के बारे में उपनिवेशवादी पश्चिमी ताकतों ने हर जगह सच को झूठलाने का कार्य किया है। यहां तक की प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इस महासागर को भी अंग्रेजों ने सिर्फ सिपाही विद्रोह, धर्म युद्ध, इस्लाम और ईसाईयों के बीच संघर्ष जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया। कुछ औपनिवेशिक विद्वानों ने भी समकालीन दस्तावेजों का अध्ययन जरूर किया, लेकिन सब कुछ जानकार भी सच पर पर्दा डालने का काम किया। सभी भारतीय इतिहासकारों ने अंग्रेजों के उपयुक्त बात की पुष्टि नहीं किया है। सिर्फ एम. हुसैन जैसे अपवादस्वरूप इतिहासकारों ने अंग्रेजों के जेहाद के नारों के पक्ष में सिर्फ एक विचार दिया है जिसमें कहा गया है कि अंग्रेजों ने लाल किला के कुछ हिस्सों को इसलिए क्षति पहुंचाई ताकि मुसलमानों की भावनाओं को ठेस पहुंच सके। हालांकि इस तरह के इनके विचार बिल्कुल निरर्थक है क्योंकि लाल किला से सिर्फ मुसलमानों से ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय जनमानस की भावनाएं जुटी हुई थी। वास्तव में 1857 के क्रांतिकारियों की राजनीतिक दृष्टि की महत्वपूर्ण जानकारी दिल्ली पर अधिकार करने तथा बहादुरशाह जफर को पूरे भारतीय विद्रोहियों के नेता चुने जाने के पश्चात दिल्ली में स्थापित व्यवस्था से स्पष्ट होती है। इसी व्यवस्था के अंतर्गत क्रांतिकारियों ने दिल्ली में एक सुप्रीम कौंसिल की स्थापना की थी जिसे कोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन के नाम से भी जाना जाता था। इसके अंतर्गत देश की जनता से अपील की गई थी कि अंग्रेजों से सत्तासीन जाने के पश्चात प्रशासन तथा वित्त विभागों में क्या-क्या कार्य किए जाएंगे। जमींदारों से अपील किया गया थकी उनके राजस्व की दर घटा दी जाएगी तथा उन्हें सरकारी जहाज है तथा भाप से चलने वाले वाहनों को निशुल्क अधिकार कर सकेंगे। सभी सरकारी पदों पर केवल भारतीयों को नियुक्ति होगी तथा सिपाहियों के लिए उचित दैनिक वेतन भी व्यवस्था होगी। कारीगरों को राजे- महाराजे तथा धनी लोग रोजगार मुहैया कराएंगेपंडित तो फकीरों और विद्वानों को काफी जमीन दी जाएगी। इन व्यवस्थाओं से स्पष्ट है कि क्रांतिकारी क्रांति ने माध्यम से एक संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। इससे यह भी स्पष्ट होता है की क्रांतिकारियों के पास प्रतिभा और दृष्टि थी और उनका संगठन सिर्फ पुराने राजवाड़े या राजाओं की वापसी नहीं चाहता था। अंततः हम यह भी देखते हैं कि युद्ध कि मजबूरियों ने कोर्ट को बहुत भारी कर लगाने पर मजबूर कर दिया, लेकिन यह कर उन्हीं वर्गों पर लगाए गए थे, जो कर चुका सकते थे ना कि आम लोगों पर।

परिचय

1857 की क्रांति ब्रिटिश शासक के खिलाफ एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। 10 मई 1857 को मेरठ से शुरू हुई या विद्रोह धीरे-धीरे कानपुर, बरेली, झांसी, दिल्ली, अवध आदि स्थानों पर फैल गई। हाला की क्रांति की शुरुआत एक सैन्य विद्रोह के रूप में हुए, लेकिन समय के साथ उनका स्वरूप बदल गया और यह ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जन आंदोलन का रूप ले लिया जिसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन कहा जाता है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध के प्रारंभ तक ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भारत के बड़े हिस्से पर हो गया था। जैसे-जैसे ब्रिटिश सत्ता का विस्तार हुआ वैसे-वैसे इस शोषणकारी, दमनकारी तथा भेदभाव पूर्ण शासन के खिलाफ लोगों का असंतोष बढ़ता गया। असंतोष की यह ज्वाला इस महान क्रांति से पूर्व कई छोटे-छोटे विद्रोह के रूप में दिखाई देती है। 19वीं सदी के पहले पांच दशकों में कई जनजातीय विद्रोह हुए, लेकिन इन आंदोलनों का प्रभाव क्षेत्र बहुत सीमित था।

इस महान क्रांति के प्रमुख राजनीतिक कारणों में डलहौजी की हड़प नीति (गोद निषेध प्रथा) महत्वपूर्ण मानी जाती है और इसी नीति के तहत ब्रिटिश शासन ने सातारा, नागपुर व झांसी को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। इसी के तहत बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन रोक दी गई। कुशासन के नाम पर लॉर्ड डलहौजी ने अवध का दिलय करा लिया जिससे बड़ी संस्था में बुद्धिजीवी, अधिकारी एवं सैनिक बेरोजगार हो गए। आग में घी डालने का काम उस घटना ने की आजाब बहादुर शाह द्वितीय के वंशजों को लाल किले में रहने पर पाबंदी लगा दी गई। अंग्रेजी शासन के सामाजिक तथा धार्मिक सुधार कार्यक्रमों से भी रूढ़िवादी भारतीय समाज में असंतोष फैला। ब्रिटिश के आर्थिक शोषणकारी नीतियों ने भी भारतीय जनमानस में और संतोष पैदा किया जिसके अंतर्गत वर्तमान सरकार भारत को एक ऐसी मंडी बना देना चाहती थी जहां से कच्चे माल प्राप्त होसके तथा इंग्लैंड से उत्पादित वस्तुओं को भारतीय बाजार तक पहुंचाया जा सके। भारत में ब्रिटिश सेना में 87 फीसदी से ज्यादा भारतीय सैनिक थे जिनको ब्रिटिश सैनिकों के मुकाबले कमतर आंका जाता था। इससे भारतीय सैनिकों में असंतोष फैला और मार्च 1857 में मंगल पांडे की घटना तथा 10 मई को मेरठ से इस विद्रोह की शुरुआत हुई। हालांकि उपरोक्त परिस्थितियों ने गोला बारूद तैयार कर दिया तथा इसमें तिली का कार्य कारतूस वाली घटना ने पूरा कर दिया। हालांकि अंततः ब्रिटिश सरकार ने अपनी पूरी ताकत लगाकर इस विद्रोह को दबा दिया लेकिन इस विद्रोह के दुर्गा में परिणाम काफी महत्वपूर्ण रहा।

अध्ययन का उद्देश्य

इस आलेख को लिखने का प्रमुख उद्देश्य देश के इस प्रथम महान क्रांति के क्रांतिकारियों के राजनीतिक उद्देश्य को भारतीय जनमानस को अवगत कराना है जिस पर ब्रिटिश सरकार ने इस सत्य को जानते हुए भी कूटनीति के तहत इसपर पर्दा डालने की कोशिश की है। हालांकि तत्कालीन उपलब्ध दस्तावेज में क्रांतिकारियों के राजनीतिक दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक मिलती है। लेकिन भारतीय इतिहासकारों ने अंग्रेजों के इस कुटिल नीति को सफल होने नहीं दिया। मई से सितंबर 1857 तक विद्रोहियों द्वारा दिल्ली में कोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन के माध्यम से जो व्यवस्था कायम किया उससे उनकी राजनीतिक दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक मिलती है। इस व्यवस्था के दृष्टिकोण से क्रांतिकारियों द्वारा एक संवैधानिक राजतंत्र कायम करने का प्रयास किया गया जिसके अंतर्गत सभी वर्ग तथा धर्म के लोगों के साथ एक लोकतांत्रिक व्यवहार कायम करने का प्रयास किया गया था।

1857: क्रांतिकारियों की राजनीतिक दृष्टि

इस आलेख के माध्यम से इस महान क्रांति के बागी सिपाहियों के नेतृत्व का राजनीतिक दृष्टि से मूल्यांकन किया है क्योंकि अनेक इतिहासकार अब यह मानने लगे हैं कि विद्रोह के नेताओं द्वारा स्वीकृत काउंसिल जो निर्वाचित होती थी और जिस के फैसलों पर बहादुर शाह जफर को अनिवार्यतः अपनी स्वीकृति देनी होती थी, उस काउंसिल के निर्माण के पीछे संवैधानिक राजतंत्र की विचारधारा काम कर रही थी। मुझे इसमें यह विषय चुनने का मुख्य मकसद है इस प्रश्न का जवाब ढूंढना, जिसे ब्रिटिश और अन्य विद्वानों ने क्रांतिकारियों की राजनीतिक हस्ति और क्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगाकर उनके विचार, संस्था, संगठन और मानसिकता पर अधिक ध्यान नहीं दिया तथा इसे एक सिपाही विद्रोह वाह जेहाद बताया है। इसलिए इसमें समकालीन उर्दू तथा फर्जी दस्तावेजों के प्रकाश में क्रांतिकारियों की राजनीतिक विचारधारा, प्रशासनिक व्यवस्था तथा मानसिकता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। जैसे ही क्रांति शुरू हुई बगैर किसी हिचक के बहादुर शाह जफर को बादशाह और इस क्रांति का महान नेता चुना गया। इनकी नजर में संप्रभुता ईश्वर से मिली एक मजबूत नियमत है जिस पर किसी विश्वासघाती का अधिकार नहीं होना चाहिए। समकालीन दस्तावेजों में संप्रभुता और क्रांतिकारियों की देशभक्ति की भावना को अच्छी तरह दर्शाया गया है। इनके द्वारा दिल्ली में स्थापित कोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन मे सदस्यों का चुनाव धर्म और वरिष्ठता को आधार न मानकर योग्यता को मुख्य कसौटी माना जाता था। इसके द्वारा किए गए सारे फैसलों को बादशाह की स्वीकृति से लागू कराया जाता था तथा बादशाह की स्वीकृति नहीं मिलने पर कोर्ट को उस पर पुनः विचार करना होता था। इसमें देश की जनता के विभिन्न वर्गों से अपील की गई है कि अंग्रेजों से सत्ता छीने जाने के बाद प्रशासन और वित्त विभाग में क्या-क्या कार्य किए जाएंगे। जमींदारों को कम दर पर राजस्व वसूल करने और उनके क्षेत्रों में अधिकार बनाए रखने की बात कही गई थी। इसमें सभी व्यापारिक गतिविधियां भारतीयों के लिए आरक्षित करने तथा सरकारी जहाजों और भाप से चलने वाले वाहनों का इस्तेमाल निरूशुल्क करने दिया जाएगा। सभी सरकारी पदों पर भारतीयों की नियुक्ति करने तथा सिपाहियों के लिए उचित व्यवस्था करने की बात कही गई है। इसमें यह भी कहा गया था कि कारीगरों को राजे- महाराजे तथा

धनी लोग रोजगार मुहैया कराएंगे। पंडित तो फकीरों तथा विद्वानों को काफी जमीन दी जाएगी। इससे आधुनिक वर्गों को पहचानने में क्रांतिकारियों की दृष्टि का पता चलता है। युद्ध को मजबूरियों ने कोर्ट को बहुत भारी कर लगाने पर मजबूर कर दिया, लेकिन ये कर उन्हें वर्गों पर लगाए गए थे जो कर चुका सकते थे ना कि आम लोगों पर। क्रांतिकारियों की एक और महान उपलब्धि यह थी कि उन्होंने हिंदुओं मुसलमानों तथा सभी वर्गों की एक सम्मिलित ताकत खड़ी करने का सफल प्रयास किया था। इतना ही नहीं, समकालीन दस्तावेजों में साफ दिखता है कि दिल्ली में क्रांतिकारियों के शीर्ष नेतृत्व में हिंदू तथा मुसलमान दोनों वर्गों का समान प्रतिनिधित्व था। इस बगावत के दौरान एक घटना बड़ा रोचक लगती है की बांग्ला के दैनिक अखबार समाचार सुधावर्शण में बहादुर शाह जफर द्वारा अंग्रेजों को देश से बाहर करने का फरमान छपा था। लॉर्ड कैनिंग प्रेस एक्ट लागू कर अखबार के संपादक श्यामसुंदर सेन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। जजों के सामने सेन साहब ने आकर एक नई समस्या खड़ी कर दी। उन्होंने कहा कि जिस भाषा के फरमान के जरिए ईस्ट इंडिया कंपनी को दीवानी अधिकार मिला था उसे बादशाह के फरमान को गैरकानूनी घोषित कैसे किया जा सकता है। इस तरह से इनके खिलाफ अंग्रेजों को कोई कार्यवाही करना सम्भव नहीं हो सका। इस तरह की राजनीतिक दृष्टि और प्रशासनिक व्यवस्था कोई क्षेत्रीय क्रांतिकारियों के दस्तावेजों में भी मिलती है, जिस पर शोध करने की अति आवश्यकता है।

निष्कर्ष

इस तरह इस आलेख के माध्यम से निष्कर्ष के रूप में यह बताने का प्रयास किया गया है कि देश के इस महान क्रांति के क्रांतिकारियों का दृष्टिकोण काफी व्यापक था जिसमें संकीर्णता नाम की कोई चीज नहीं थी जिसे अंग्रेजों ने झूठ लाने का प्रयास किया था, जबकि समकालीन सभी दस्तावेजों में इनकी राजनीतिक दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती है। इसके शीर्ष नेतृत्व के लिए बहादुर शाह जफर को ही चुना जाना उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त इस विद्रोह के शीर्ष नेतृत्व में हिंदू तथा मुस्लिम दोनों वर्गों का समान प्रतिनिधित्व दिखाई देता है। क्रांतिकारियों द्वारा दिल्ली में स्थापित कोर्ट औफ एडमिनिस्ट्रेशन के क्रिया-कलापों के माध्यम से क्रांतिकारियों के संवैधानिक राजतंत्र कायम करने का स्पष्ट विचार दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका - अनमै सांचा।
2. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह- 1857 बगावत का दौर।
3. सुभाष कश्यप- स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास।
4. प्रहलाद भारती- 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम।
5. ओम प्रकाश हुडला - प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम।

ग्राम कचहरी की न्यायिक व्यवस्था: बिहार संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ० सुमन्त कुमार

अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एस.एस. कॉलेज सुपौल, बीएनएमयू, मधेपुरा
प्रवक्ता, एडवोकेट ऑफ जेएसडी, बिहार

शोध सार

पंचायत से भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेष अभिव्यक्ति हैं। यह भारतीय मानस के स्वतंत्रता स्वावलंबन एवं स्वशासन के प्रति सहज व स्वभाविक झुकाव का घोतक हैं। पंचायत का मतलब है पाँच लोगों की सभा। इस सभा की स्थापना शुरू-शुरू में गांव स्तर पर आपसी झगड़ों या समस्याओं का अपने स्तर पर ही निदान करने के लिए की गई। पंचायत के इस क्रिया-कलाप को लोग पंचायती कहते हैं। इस प्रकार पंचयती से जुड़ा पंचायत का संकुचित स्वरूप स्वशासन और विकास से जुड़कर व्यापक हो गया। शुरु-शुरु में गांव के सभी वर्गों के पांच बुजुर्ग जो समुदाय के अनुभवी लोग होते थे तटस्थ रहकर समस्याओं एवं झगड़ों का निष्पादन सभी पक्षों की संतुष्टि को ध्यान में रखकर करते थे। उनका उद्देश्य झगड़ों का मात्र निपटारा करना ही नहीं बल्कि झगड़ने वालों के बीच फिर से एकता और मेल-मिलाप पैदा करना होता था। परन्तु समय बीतने के साथ पंचों की तटस्थता एंव उद्देश्य में कमी आने लगी। इसके कारण पंचायत के सामाजिक आधार एंव व्यवस्था में बदलाव आने लगा। इसके अलावा पंच हमेशा पुरुष ही होते थे जो ज्यादातर ऊँची जातियों और भूस्वामियों वर्ग के लोग होते थे। इस कारण भी अक्सर पंचायत में महिलाओं गरीबों दलितों तथा दूसरे पिछड़े वर्गों के साथ समुचित न्याय नहीं हो पाता था। इन अनुभवों की पृष्ठ भूमि में बिहार पंचायत राज अधिनियम 1947 में ग्राम कचहरी की परिकल्पना एवं व्यवस्था की गई जिसको 1948 में लागू किया गया। पूरे देश में ग्राम पंचायत के साथ ग्राम कचहरी की व्यवस्था केवल बिहार में ही की गई। बाद में कुछ राज्यों में ग्राम कचहरी की स्थापना किन्ही अन्य रूपों में की गई। पर ग्राम पंचायत के समान उतनी ही संख्या में जनता द्वारा ग्राम कचहरी के लिए सरपंच और पंचों के निर्वाचन का प्रावधान केवल बिहार में है। बिहार सरकार ने प्रत्येक ग्राम पंचायत में ग्राम कचहरी का प्रावधान करके जनता को बिना खर्च न्याय दिलाने का प्रभावकारी कदम उठाया है। ग्राम कचहरी बिहार सरकार की अपनी लोगों की न्यायिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता की एक विशिष्ट पहचान है।

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र के लिए ग्राम कचहरी की न्यायिक व्यवस्था: बिहार संदर्भ में एक अध्ययन के साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने राजनीतिक सामाजिक व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है सरपंचसस्ता और सुलभ न्याय जैसे विषयों पर इस शोध पत्र में प्रकाश डालेंगे।

शोध सामग्री

शोध सामग्री को द्वितीय स्त्रोंतों से ग्रहण किया गया है। जैसे इस विषय पर लिखी पुस्तक, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, वेबसाइटें इत्यादि का प्रयोग किया गया।

प्रमुख बिंदू

- बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006।
- अधिनियम की धारा 90 से धारा 122।
- ग्राम न्याय की स्थापना बिहार के संदर्भ में।

मुख्य शब्द: ग्राम कचहरी, न्याय, सरपंच, पंचायत।

परिचय

भारतीय लोकमानस तो पंच को परमेश्वर तक मानता रहा है। पंचायत और पंचायती (फैसला) पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। महान कथाकार मुंशी प्रेमचन्द्र ने पंचों के न्याय पर विख्यात कहानी पंच परमेश्वर लिखी। पंचों की निष्पक्षता और न्यायशीलता असंदिग्ध रही है। यह न्याय व्यवस्था तब की हमारी आत्मनिर्भर और स्वावलंबी ग्राम –इकाइयों की व्यवस्था के बिल्कुल अनुकूल, बल्कि पूरक थी। बाद में पांच लोगों की इस सभा को लोगों ने वर्ग या जाति के स्तर पर भी अपनाया जिसे जाति पंचायत के नाम से जाने लगा। उसी प्रकार वनांचलों में आदिवासी पंचायतें कायम हुई। किंतु वर्ण स्तर की पंचायतें गांव के स्तर की पंचायतें से थोड़ी भिन्न थीं। आपसी झगड़ो एवं समस्याओं के हल के अलावा अपनी जाति के सामाजिक जीवन पर नियंत्रण एंव विकास करना भी इनका उद्देश्य बन गया। आगे चलकर गांव स्तर पर भी पंचायत को इन जिम्मेदारियों से जोड़ दिया गया। पंचायत से उसकी न्यायिक भूमिका का जुड़ाव इतना सघन और अभिन्न है कि अभी भी लोग पंचायत का अर्थ फैसला करना ही मानते हैं। इसीलिए मुखिया को लोग न्यायकर्त्ता मानते हैं, बल्कि मुखिया भी स्वयं को उसी रूप में देखा जाना पंसद करते हैं।

लड़ना-झगड़ना मनुष्यों ही नहीं पशु-पक्षियों में भी आम बात है लेकिन झगड़ना मनुष्यों का स्थाई स्वभाव नहीं है। प्रेम और सदभाव कहीं ज्यादा शक्तिशाली भावनाएं हैं। हम अंततः शान्ति और सुरक्षा चाहते हैं इसलिए झगड़ा होने के बाद झगड़ा निपटाना हमारी परम आवश्यकता बन जाती है। यह दो व्यक्तियों के लिए ही नहीं, दो समुदायों और दो राष्ट्रों के लिए लिए उतना ही सच और वास्तविकता है। हजारों साल पहले हमारे पूर्वजों ने इसके लिए एक अनोखा तरीका विकसित किया था 'पंचायती' का इसमें न्यायकर्त्ता सर्वसुलभ तथा न्यायकर्त्ता का निर्णय बाध्यकारी था, वादी और प्रतिवादी का पंच या न्यायकर्त्ता की न्यायशीलता में पूरा भरोसा था, तथा झगड़ा या वाद निपटने के साथ ही वादी और प्रतिवादी के बीच परस्पर मित्रता सदभावना विकसित करने की कोशिश की जाती थी।

साहित्य की समीक्षा–पंचायत की इसी ऐतिहासिक भूमिका के परिपेक्ष्य में बिहार पंचायत राज अधिनियम 1947 में ग्राम कचहरी व्यवस्था का प्रावधान कर उसे कानूनी रूप दिया गया। भारतीय दंड संहिता 1860 की कई धाराओं (दफाओं) को इसमें शामिल कर इसे कानूनी मान्यता प्रदान करने के साथ इसकी व्यापकता को बढ़ाया गया। प्रत्येक ग्राम पंचायत में न्यायिक प्रणाली (ग्राम कचहरी) का चुनाव, ग्राम पंचायत चुनाव के साथ होता रहा है। इस अधिनियम के तहत बिहार ग्राम कचहरी नियमावली, 1962 बनी जो ग्राम कचहरीयानि न्यायिक प्रक्रिया से सम्बन्धित थी। यह व्यवस्था 1948 से फरवरी 1997 तक अनवरत कार्य करती रही और इसने ग्रामीण न्यायिक व्यवस्था का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया।

बिहार राज्य में ग्राम पंचायत के साथ ग्राम कचहरी का चुनाव वर्ष 1952, 1955, 1958, 1962, 1965, 1972 तथा 1978 में हुआ। यह व्यवस्था 24 फरवरी 1997 तक कार्यरत रही। इस अवधि में ग्राम कचहरी द्वारा हजारों मामले आपसी मेल मिलाप हुआ सौहार्दपूर्ण समझौते के माध्यम से निपटाए गए। बिना खर्च केकम समय में लोगों को सुलभ न्याय घर बैठे मिलता रहा। ग्राम कचहरी में किए गए फैसले इतने तथ्य आधारित एंव तर्कसंगत थे कि माननीय उच्च न्यायालय में दायर अधिकांश अपीलों में ग्राम कचहरी का फैसला बहाल रहा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-40 में यह वर्णित है कि राज्य सरकार पंचायत का गठन करेगी एवं पंचायत को स्वायत्ता इकाई के रूप में कार्य करने हेतु शक्ति एवं अधिकार प्रदान करेगी। संविधान निर्माताओं के इस अभिलाषा को साकार करने हेतु बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 में ग्राम कचहरी व्यवस्था को व्यापक एवं विशेष स्वरुप प्रदान करने की चेष्टा की गई। इसका प्रावधान अधिनियम की धारा 90 से धारा 122 तक में किया गया। धारा 102 के अनुसार ग्राम कचहरी एक न्याय पीठ है जिसका मुख्य

उद्देश्य "पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण समझौता कराने का प्रयास है"। अपने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ग्राम कचहरी के लिए वाद या मामले का और उसके गुणा-गुण पर प्रभाव डालने वाली सभी बातों का और उसके सही समाधान का अन्वेषण (खोज) करने का प्रावधान किया गया है। बिहार में ग्राम पंचायतों के बराबर ग्राम कचहरी की संख्या 8,463 है। इसके पदों के लिए भी महिलाओं अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग (अत्यंत) के लिए 50 प्रतिशत तक आरक्षण का प्रावधान किया गया है। धारा-91 के तहत आरक्षित किए गए हैं। इसका मुख्य उद्देश्य समाज के दबेकुचले उपेक्षित एवे अवसरहीनता के शिकार लोगों को मुख्य धारा में लाना है एवं समाज के अन्तिम पायदान पर बैठे लोगों को यह एहसास दिलाना है कि सरकार में उनकी भागीदारी की अहम भूमिका है। महिलाओं को भी मुख्य धारा से जोड़ने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। ग्रामीण न्याय व्यवस्था में इसके पहले महिलाओं का प्रतिनिधित्व बिल्कुल नहीं था। इस प्रकार बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 ने देश क्या सारे विश्व में एक नया इतिहास रचकर न्याय प्रणाली में एक नये युग का आरंभ किया है। अब ग्राम कचहरी की न्यायपीठ में महिलाएं सरपंच और पंच के रूप में भारी संख्या में भाग लेकर वादों एंव विवादों का समाधान करेंगी।

कार्यप्रणाली

ग्राम कचहरी का गठन बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 की धारा 90 के अनुसार प्रत्येक ग्राम पंचायत में जनता की सुलभ एवं सुगम न्याय के लिए एक ग्राम कचहरी की स्थापना की गई जिसमें एक निर्वाचित सरपंच होता है तथा प्रत्येक ग्राम पंचायत क्षेत्र में लगभग 500 की आबादी पर एक पंच होता है। पंचों का निर्वाचन प्रादेशिक निर्वाचन हेतु ग्राम पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन के अनुरूप होता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र एक पंच का निर्वाचन विहित रीति से प्रत्यक्ष रूप से करता है। प्रत्येक ग्राम कचहरी के गठन के पश्चात उसे जिला गजट में प्रकाशित किया जाता है तथा ग्राम कचहरी की प्रथम बैठक की नियत तारीख से ग्राम कचहरी प्रभावी होता है।

ग्राम कचहरी की अवधि

बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 की धारा 92 के अनुसार प्रत्येक ग्राम कचहरी की अवधि 5 वर्षो की होगी बशर्ते (अगर) उसे तत्समय प्रवृत किसी विधि के अधीन समय से पूर्व विघटित नहीं किया जाता है। पाँच वर्षो की अवधि की गणना ग्राम-कचहरी की प्रथम बैठक के लिए निर्धारित तिथि से की जायेगी। ग्राम कचहरी की अवधि पाँच वर्षो से अधिक की नहीं होगी। ग्राम कचहरी का गठन करने के लिए निम्नलिखित रूप से निर्वाचित पूरा किया जायेगा-उपधारा (i) में विनिदिष्ट उसकी कार्य अवधि समाप्त हाने के पूर्व कार्य अवधि पूर्व विघटन होने की स्थिति में यदि ग्राम-कचहरी का कार्यकाल छः महीना से अधिक यदि बच रहा हो तो निर्वाचन द्वारा ग्राम-कचहरी का गठन किया जायेगापरन्तु छः महीने से कम अवधि बचा (शेष) रहने पर निर्वाचन आवश्यक (अनिवार्य) नहीं होगा।

कार्य अवधि के पूर्व यदि ग्राम कचहरी का निब्राचन द्वारा पुनः गठन होता है तो गठित ग्राम कचहरी का कार्यकाल शेष बचे अवधि के लिए ही प्रभावी होगा, अर्थात् प्रथम बार गठित ग्राम कचहरी का पूर्ण कार्यकाल जब समाप्त होता है (यदि विघटित नहीं होता) उसी तिथि तक नई गठित ग्राम कचहरी प्रभावी रहेगा।

ग्राम कचहरी में एक सचिव की नियुक्ति की जाएगी एवं ग्राम कचहरी अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सहायता के लिए न्याय मित्र की नियुक्ति करेगा जो विधि स्नातक होंगे। सरपंच उप-सरपंच एवं पंचों को सरकार की ओर से प्रशिक्षण की व्यवस्था धारा-94 के तहत की जाएगी।

सरपंच ग्राम कचहरी का अध्यक्ष होगा। किसी भी व्यक्ति के आवेदन एवं पुलिस रिपोर्ट पर केस एवं मामला दर्ज होगा। ग्राम कचहरी पक्षकार एवं गवाह की उपस्थिति उसी तरीके से करायेगा, जिस तरीके से न्यायालय करती है।

सरपंच तथा उप-सरपंच को तथाकथित अनियमितता बरतने पर हटाये जाने का भी प्रावधान है ताकि परिस्थिति विशेष में वे निरंकुश न हो जायें एवं कानून की मान्यताओं के खिलाफ कार्य करना शुरू न कर दें। अविश्वास प्रस्ताव द्वारा भी सरपंच को हटाने का प्रावधान धारा-96 में किया गया है। ग्राम कचहरी का कोई भी पंच अपने पद का त्याग कर सकता है। आकस्मिक रिक्ति को भी पूरा किए जाने को प्रावधान है।

सरपंच और उपसरपंच की शक्तियाँ एवं कार्य (धारा-96)

(क) सरपंच मुख्य रूप से ग्राम कचहरी तथा न्यायपीठ का अध्यक्ष होगा।

(ख) पक्षकारों के आवेदन और पुलिस के रिपोर्ट पर वाद या मामला दर्ज करेगा।

(ग) पक्षकारों और गवाहो की उपस्थिति के लिए कारवाई करेगा दस्तावेजों लिखितों को ग्राम कचहरी न्यायपीठ के सामने प्रस्तुत करने के लिए भी कारवाई करेगा तथा ऐसा कार्य करने के लिए वह सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करेगा।

इसकी अनुपस्थिति की दशा में सरपंच के सारे कार्यो काकर्तव्यों की एवं सारे अधिकारों का प्रयोग उपसरपंच करेगा तथा किसी अन्य शक्ति अथवा कर्तव्यों का भी प्रयोग अथवा निष्पादन करेगा जो कि विधि संगत होगा।

ग्राम कचहरी के दिवानी मामलों का दायर किया जाना एवं ट्रायल– कोई भी केस या मामला सरपंच के समक्ष दायर किया जाएगा एवं संबंधित पक्षकार को भी ग्राम कचहरी के पंचों में से दो पंच चुनने का अधिकार है ऐसी व्यवस्था इसलिए की गई है कि अपने चुने गये पंच के माध्यम से न्याय की प्राप्ति हो सकें एवं न्यायिक प्रक्रिया में ग्राम वासियों की आस्था बनी रहें।

बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 की धारा-101 के अनुसार दिवानी वादों का दायर किया जाना एवं सुनवाई- इस अधिनियम के अधीन दायर किया जानेवाला मामला या वाद सरपंच के समक्ष ही दायर किया जायेगा और जहाँ सरपंच की सेवा उपलब्ध नहीं रहने पर उक्त किसी भी प्रकार का मामला या वाद उपसरपंच के समक्ष दायर किया जायेगा और उक्त मामला या वाद का सुनवाई ग्राम कचहरी के ऐसे न्यायपीठ के द्वारा सुना जायेगा जिसमें सरपंच द्वारा विहित रीति से चुना गया दो पंच, एवं पक्षकारों द्वारा नामित दो पंच जो कि ग्राम कचहरी के पंच होगें एवं सरपंच स्वयं भी होगे। धारा 102 के अनुसार विवादों की सौहार्दपूर्ण समझौता कराने के लिए ग्राम कचहरी न्यायपीठ इस अधिनियम के अधीन वादों की सुनवाई करते समय, पक्षकारों को यथोचित रीति से नोटिस देने के बाद पक्षकारों को समझा बुझाकर दोनों पक्षों के बीच सौहार्दपूर्णरूप से समझौता कराने का प्रयास करेगी और इस प्रयोजनार्थ न्यायपीठ यथोचित रीति से तुरन्त, वाद या मामले की सही समाधान का अन्वेंषण करेगी तथा ऐसी करने में सभी विधिपूर्ण बातें करेगी जो वह उचित समझे और पक्षों को सौहर्दपूर्ण समझौता के लिए उत्प्रेरित करने के प्रयोजनार्थ उचित समझो और जहाँ ऐसा समझौता हो जाय वहाँ न्यायपीठ उसे अभिलिखित करेगी या उसके बाद निर्णय देगी। सौहार्दपूर्ण समझौता न होने की दशा में ग्राम कचहरी न्यायपीठ द्वारा वैसी साक्ष्य लेगी और अपना निर्णय देगी यदि उक्त मामले के निर्णय में सदस्यों के बीच किसी तरह की असहमति होता है जो वैसी परिस्थिति में बहुमत का निर्णय ही अभिभावी होगा। परन्तु, इसमें इसके पूर्व अन्तर्विष्ट कोइ भी बात न्यायपीठ के किसी सदस्य को ऐसे निर्णय के विरूद अपनी विमति टिप्पणी अभिलिखित करने से रोकने वाले बात नहीं समझी जायेगी।

धारा 104 के अनुसार ग्राम कचहरी न्यायपीठ वाली अपनायी जाने वाली प्रक्रिया-इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन सरकार द्वारा बदले गये किसी भी नियम या निर्देशों के अधीन ग्राम कचहरी की किसी न्यायपीठ द्वारा अपनायी जाने वाली प्रकिया ऐसा होगी जो वह उचित तथा सुविधाजनक समझे और न्यायपीठ इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन विहित प्रकिया से भिन्न किन्हीं अन्य साक्ष्य विधियों या प्रकिया का पालन के लिए बाध्य नहीं होगी।

ग्राम कचहरी को दो तरह की अधिकारिता दी गई है। धारा-106 एवं 107 के तहत दाण्डिक अधिकारिता दी गई है एवं इस बात को मद्देनजर रखते हुए कि वर्त्तमान न्यायिक व्यवस्था में न्यायालय वादों के निष्पादन में वर्षो बरस लगा रहा है, ग्राम कचहरी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा-140, 142, 143, 144, 145, 147, 151, 153, 160, 172, 174, 178, 179, 269, 277, 283, 285, 286, 289, 290, 294, 294(,), 332, 334, 336, 341, 352, 356, 357, 374, 403, 426, 428, 430, 447, 448, 502, 504, 506, एवं 510 के तहत किए गए अपराधों के संबंधित मामले को भी सुनने एंव निर्णय देने का अधिकार ग्राम कचहरी को दिया गया है।

धारा-107 के तहत ग्राम कचहरी को एक हजार रूपये तक जुर्माना करने की शक्ति दी गई है। ग्राम कचहरी निंकुश न हो जाये इसकें लिए यह प्रावधान किया गया है कि ग्राम कचहरी को करावास की सजा देने का कोई अधिकार नहीं है।

धारा 110 के अनुसार ग्राम कचहरी की न्यायपीठ की विशिष्ट सिविल अधिकारिता- उपधारा (1) बंगालआगरा और असम सिविल न्यायलय अधिनियम 1887 (131883) प्रान्तीय लधु हेतु न्यायालय अधिनियम 1887 (91887) और सिविल प्रक्रिया संहिता

1908 (51908) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी तथा इस अधिनियम के प्रावधानों के अध्याधीन ग्राम कचहरी की न्यायापीठ को निम्नलिखित श्रेणी के वादों को सुनने और अवधारित करने की अधिकार होगा।

ग्राम कचहरी अपनी सिविल अधिकारिता के तहत धारा-110 के अनुसार दस हजार रूपये से कम सम्पत्ति लगान की वसूलीचल संपत्ति को क्षति पहुँचाने पशु अतिचार एवं बँटवारा के मामला से सम्बंधित होगा। बँटवार के सभी मामले सुने जायेगे। धारा-111 के तहत कुछ प्रतिबंध भी लगाये गये है ताकि न्यायालय की अक्षुण्णता एवं गरिमा भी बनी रहे।

ग्राम कचहरी की न्यायपीठ के निर्णय के खिलाफ 30 दिनों के भीतर ग्राम कचहरी की पूर्ण पीठ के समक्ष अपील दायर किये जाने का प्रावधान धारा-112 के तहत है। पूर्ण पीठ की सुनवाई 7 पंचों के द्वारा की जाएगी।

ग्राम कचहरी की पूर्ण पीठ के निर्णय के विरूद्ध अपील 30 दिनों के भीतर सिविल मामले में अवर न्यायधीश के समक्ष एवं आपराधिक मामले में जिला एवं सत्र न्यायधीश के समक्ष दायर की जायेगी।

धारा-113 के तहत किसी थाना के प्रभारी पदाधिकारी को भी ग्राम कचहरी के द्वारा विचारणीय कोई भी अपराध के सूचना दिये जाने को प्रावधान है।

धारा-114 के तहत जब कभी भी किसी न्यायालय को ऐसा प्रतीत हो कि मामला ग्राम कचहरी के द्वारा विचारणीय है तो मामला उसकी अधिकारिता को अंतरित कर देगा।

धारा-115 के तहत न्यायालय स्वत: या सूचना प्राप्त हाने पर ग्राम कचहरी के द्वारा विचाराधीन मामले को वापस कर देगा।

धारा-116 के तहत ग्राम कचहरी में विधि व्यवसायी को उपस्थित होने, बहस करने एवं कार्य करने से रोक लगा दिया गया है। लेकिन।

धारा-117 के तहत पक्षकार स्वयं या कुटुम्ब, मित्र या अन्य व्यक्तियों के माध्यम से उपस्थित हो सकेंगे। न्यायालय कभी भी ग्राम कचहरी के अभिलेख को मांग कर देख सकता है। मामले का स्थानांतरण कर सकता है। किसी कार्यवाही को रद्द कर सकता है। पूर्ण विचारण हेतु लौटा सकता है। रिपोर्ट मांग सकता है। यह प्रावधान धारा-118 के तहत इसलिए किया गया कि ग्राम कचहरी के उपर न्यायालय का नियंत्रण बना रहे। ग्राम कचहरी को वारंट जारी करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी अभियुक्त का उपस्थित कराने में ग्राम कचहरी असमर्थ हो जाय, तो वैसी परिस्थिति में जमानती वारंट न्यायिक दण्डाधिकारी के पास अग्रसारित किया जायेगा, जो वारंट को प्रतिहस्ताक्षर कर उस थाना प्रभारी के पास अग्रसारित कर देगा। इसके अलावे यदि सिविल मामले में ग्राम कचहरी डिग्री को निष्पादित करने में असमर्थ हो तो निष्पादन हेतु मुन्सिफ के पास भेज देगा। यह व्यवस्था घारा-119 के तहत की गई है।

धारा-120 के तहत तीन वर्ष की समाप्ति के बाद किसी वाद पर विचार नहीं किया जायेगा। ऐसा प्रावधान लिमिटेशन एक्ट को ध्यान में रख कर किया गया है।

धारा-122 के तहत जिला न्यायाधीश ग्र्राम कचहरी की कार्यवाहियों एवं अभिलेखें के निरीक्षण करने में सक्षम है।

विचार-विमर्श

ग्राम कचहरी बिहार राज्य की अपने आप में अनोखी पहल है। उत्तर एवं पश्चिम बंगाल आदि कुछ राज्यों में पंचायतों को न्यायिक प्रक्रियाओं से जोड़ने का प्रयास किया गया है। किन्तु इस प्रकार पंचायतराज को भूमि-स्तर से जोड़कर न्यायिक संस्था के रूप में ग्राम कचहरी का गठन अपने आप में एक अनूठी प्रस्तुति है। इस प्रकार आरक्षण के आधार पर लगभग आधी से अधिक महिलाएं जिन्हें साक्षर होने का सौभाग्य भी नहीं प्राप्त हुआ हैवे सरपंच एवं पंच के रूप में अपनी व्यावहारिकता बुद्धि एवं विवेक के बल पर वादों के निबटारा करेंगी यह कल्पना ही रोमांचित करने वाली है।

वैसे तो सरकार की ओर से सचिव एंव न्याय मित्र की व्यवस्था की गई है पर फैसला तो न्यायपीठ को ही करना होता है। वैसे तथ्यों के आधार पर बहस चलाने से तर्क संगत युक्ति संगत एवं औचित्य सिद्ध करने वाले फैसले लिए जायेंगें इसका विश्वास जरूर करना चाहिए। फैसले हर स्थिति में न्यायिक सिद्धांतों पर आधारित होने चाहिए। ग्राम पंचायत को अपनी विकास संबधी भूमिका निभाने के लिए यही चाहिए भी क्योंकि आपसी झगड़ों से वैमनस्य बढ़ता है और वैमनस्य बढ़ने से पूरा सामजिक वातावरण दूषित हो जाता है।

अत: 2006 के पंचायत निर्वाचन के बाद कई मूलभूत प्रश्नों के बहुत करीब से देखते हुए उनके सही उत्तर को ढूँढना है। उनमें से एक प्रश्न है ग्राम पंचायत और ग्राम कचहरी के बीच परस्पर सम्बन्ध एंव ताल-मेल। इसकी स्पष्टता जरूरी है और एवं उसके लिए निति निर्धारण जितनी जल्दी हो जाए उतना अच्छा होगा।

क्योंकि जिस भूमिका से मुखिया के पद का स्वरुप निखरता तथा एवं वर्चस्व बनता था वह अब सरपंच के आस है। पर संरपंच को संस्थागत आधार (दफ्तरनिधि एवं अधिकार क्षेत्र) नहीं मिला पाया हा। इसलिए समय-समय पर टकराव की स्थिति पैदा होना स्वाभाविक है।

सरपंच के लिए न्यायपीठ के गठन से लेकर वाद निपटाने तक न तो किसी भी प्रकार के खर्च करने का प्रावधान है और न ही उसके लिए निधि की व्यवस्था। और तो औरप्रावधान के अनुसार दंड के रूप में वसूले गये जुर्माने को भी ग्राम पंचायत की निधि में जमा करना हैजिसकी निकासी एवं खर्च ग्राम पंचायत सचिव एवं मुखिया के हस्ताक्षर से होगी। सरपंच के लिए यह पाने को 'छोटा' यह 'असहाय' पदधारक महसूस करने की स्थिति है। जिस भूमिका में सरपंच है, उसमें कम से कम एक निधि की व्यवस्था हो, उसमें दंड स्वरूप वसूली गयी राशि आदि को जमा करना तथा न्याय सचिव के साथ सरपंच का संयुक्त खाता संचालन उनका मनोबल एवं प्रतिबद्धता बढ़ाने वाला कदम साबित होगा।

इसके अतिरिक्त ग्राम रक्षा दल को भी ग्राम कचहरी के किसी कार्यकलाप से जोड़कर नहीं देखा गया है। जिस काम को सरपंच मुन्सिफ मजिस्ट्रेट के माध्यम से थाना की मदद से करेंगे उसे तो आसानी से ग्राम रक्षादल की सहायता से विहित तरीके से निबटने का प्रावधान बनाया जा सकता है।

इन दो छोटे-छोटे सुधारों से पंचायत को अपनी न्यायिक भूमिका निभाने और उसे प्रभावी बनाने में सहूलियत होगी साथ हीग्राम कचहरी को एक संस्थागत आधार भी मिल जायेगा। संभव है कि प्रस्तावित बिहार ग्राम कचहरी नियमावली के निर्माण के दौरान इन बिदुओं पर कोई सकारात्मक उपबन्ध हो।

निष्कर्ष

भारत गाँवों का देश है। देश की अधिकांश जनता गाँवों में बसती है। ग्रामवासी अशिक्षा एवं गरीबी के शिकार हैं। ग्रामीण विकास हेतु सरकार कटिबद्ध है। ग्राम वासियों का सुलभ एवं सस्ता न्याय प्रदान करने हेतु बिहार पंचायत राज अधिनियम 2006 के तहत ग्राम कचहरी की स्थापना का प्रावधान किया गया है।

इसके तहत मुख्य उद्देश्य यह है कि ग्राम वासियों को अपने विश्वास एवं वोट से चुने गये जन प्रतिनिधियों के द्वारा उनके दरवाजे पर ही अगर कोई विवाद उत्पन्न होता है तो बिना किसी उलझन एवं परेशानी के बिना किसी अनावश्यक खर्च के न्याय प्राप्त हो सके। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने यह सपना संजोया था।

ग्राम कचहरी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ग्राम वासियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाये रखना है। यह अनिवार्य रूप से स्थापित किया गया है कि ग्राम कचहरी की न्यायपीठ किसी भी मामले की सुनवाई करते समय पक्षकारो के बीच सौहार्दपूर्ण समझौता कराने का प्रयास करेगी। गाँवों में शिक्षा की कमी एवं गरीबी के कारण आये दिन कोई-न-कोई विवाद हुआ करते हैं एवं ग्राम वासी जटिल कानूनी प्रक्रिया के चक्कर मं फँस जाते हैं एवं बाद में चाहते हुए भी आपस में समझौता न कर पाते है। इसलिए इन मुद्दों को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम यह प्रावधान किया गया कि किसी भी मुद्दे या विवाद को सामने आने पर ग्राम कचहरी का दायित्व होगा कि पक्षकारें के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार कर समझौता कराए ताकि ग्राम वासियों की मेहनत की कमाई का पैसा उनके विकास पर खर्च हो न कि कानून की जटिल प्रक्रियाओं पर।

यदि ग्राम कचहरी समझौता कराने में पूर्णत: विफल रहती हैतो वैसी स्थिति में ग्राम कचहरी में हीजो ग्राम वासियों के समीप में ही होता है कानूनी प्रक्रियाओं का पालन करते हुए पूरे मामले की जाँच कर अपना निर्णय देगा। निर्णय लिखित रूप में होगा एवं इस पर सभी सदस्यों का हस्ताक्षर होगा।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि तुच्छ या परेशान करने वाले मुकदमो में भी ग्राम वासी सुबह से शाम तक अपने ग्राम से कोसों दूर कानूनी उल्झनों में अपने आप को वयस्त रखते है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति भी खराब होती चली जाती है क्योंकि दिनभर घर से बाहर रहने पर जीवकोपार्जन एवं खेती गृहस्थी का कार्य भी प्रभावित होता है एवं शहर में जाने पर फिजुल खर्ची के कारण

आर्थिक तंगी का शिकार होना पड़ता है। संविधान निर्माताओं ने ग्राम वासियों का कानून की जटिबल प्रक्रियाओं से निजात दिलाने के लिए इस बात की कल्पना की थी कि उन्हें कानून की जटिलतम प्रक्रियाओं से मुक्ति दिलाने का एक ही माध्यम है और वह है ग्राम कचहरीजहाँ अपने द्वारा चुने गये पंचसरपंच एवं उप-सरपंच के द्वारा सौहार्दपूर्ण वातावरण में उनकी शिकायतों एवं वादों का निपवटारा कम-से-कम समय में पूर्ण आस्था एवं निष्ठा के साथ किया जा सके।

वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में सरकार संविधान निर्माताओं के अभिलाषओं को साकार करने हेतु कृत संकल्प है एवं यथा संभव सहायता सरकार के द्वारा उपलब्ध कराई जा सके ताकि न्याय सर्वसुलभ हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- बिहार पंचायत राज अधिनियम (बिहार पंचायत राज एक्ट 2006)।
- "भारत में पंचायती राज, संपादक, अनामिका पब्लिशंस एवं डिस्ट्रीब्यूर्टस प्रावेट लि.।
- अंजली वर्मा, भारत में पंचायती राज, ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
- Dainiknavajyoti Dailyhunt, भारत में पंचायती राज व्यवस्था एक परिचय।

  http://www.sansarlochon:in/Panchayti-rajhindi
  https://hi-wikipedia.org/wiki/panchayti-raj
  https://M.dailyhunt.in/new/hindi/dainiknavajyoti-epaper
  https://khabar-ndtv.com/topic/gfj;k.kkiapk;r
  http://www/deshbandhu.com.in/vichar/haryana-panchayti-raj-act 1994- amended- 53-44-2

मनसबदारी व्यवस्था: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० मो० मंजर अली

व्याख्याता, इतिहास विभाग, अल-हफीज़ कॉलेज, आरा (बिहार)

शोध-सारांश

मनसबदारी व्यवस्था मुगल सैनिक व्यवस्था का मूलाधार थी, जो मंगोलों की 'दशमलव पद्धति' पर आधारित थी। इसकी प्रेरणा 'खलीफा अब्बासईद' द्वारा आरंभ की गई, जो चंगेज खाँ एवं तैमूर द्वारा अपनाई गई व्यवस्था से प्राप्त की थी। मनसब का अर्थ 'पद' या 'श्रेणी' से था। इसके दो भाग 'जात' एवं 'सवार' थे। अकबर के अपने शासन में 11वें वर्ष में पहली बार मनसब प्रदान किए जाने का संकेत मिला है। मनसबदारी व्यवस्था जात एवं सवार यानी सेना और घुड़सवारी की संख्या से थी। अकबर ने अपने सम्पूर्ण मनसब को 66 श्रेणियों में विभाजित किया, किन्तु अबुल फजल ने 33 श्रेणियों का उल्लेख किया है। जहांगीर ने मनसबदारी व्यवस्था से दु-अस्पा और सिंह-अस्पा व्यवस्था की शुरूआत की। शाहजहाँ ने मासिक वेतन की शुरूआत की, जबकि औरंगजेब के समय मनसबदारों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि जागीर नहीं बचा। औरंगजेब के शासककाल में हिन्दू मनसबदारों की संख्या 33 प्रतिशत बढ़ गयी, जो अन्य मुगल शासकों से ज्यादा थी। मनसब अनुवांशिक नहीं था।

Keywords% मनसब, पद, जात, सवार, दाग प्रथा, तसहीहा (चेहरा)

मनसबदारी व्यवस्था एक विशिष्ट प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिसका प्रचलन मुगल शासक अकबर द्वारा किया गया था।[1] अकबर द्वारा प्रारंभ की गई प्रशासनिक व्यवस्था की यह अनुपम विशेषता थी।[2] मनसब फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'पद' या 'श्रेणी' है। इसके दो भाग थे– जात एवं सवार। जात का तात्पर्य व्यक्तिगत पद (सेना) से था, जबकि सवार का तात्पर्य घुड़सवारी की संख्या से था। 'मनसबदार' शब्द पदाधिकारी के लिए प्रयोग होता था और इस पूरी व्यवस्था को मनसबदारी व्यवस्था कहा जाता था। यह मंगोलों की दशमलव पद्धति पर आधारित थी। मनसबदारी प्रथा की उत्पत्ति मध्य एशिया से हुई। उसका मूल चंगेज खाँ की व्यवस्था से देखा जा सकता है, जिसने दशमलव प्रणाली पर अपनी सेना का गठन किया था। मनसबदारी व्यवस्था की प्रेरणा 'खलीफा अब्बासईद' द्वारा आरंभ की गयी, जो चंगेज खाँ एवं तैमूर द्वारा अपनाई गई व्यवस्था से प्राप्त की गई थी।[3]

अकबर

अकबर द्वारा अपने शासन के 11वें वर्ष में पहली बार मनसब प्रदान किए जाने का संदर्भ मिलता है। मनसब व्यवस्था का मूलभूत तत्त्वों में अध्ययन कार्य पहली बार मोरलैंड तथा अब्दुल अजीज ने किया था।[4] अकबर ने अपने सम्पूर्ण मनसब को 'अल्लाह' शब्द की गणना के योग अर्थात् 1 + 30 + 30 + 5 = 66 श्रेणियों में विभाजित किया था, किन्तु अबुल फजल ने केवल 33 श्रेणियों का ही उल्लेख किया है।

अकबर के समय सबसे छोटा मनसब 10 का तथा सबसे बड़ा 10,000 का होता था।[5] सर्वोच्च मनसब शहजादा सलीम को दिया गया था, जिसे बाद में बढ़ाकर अकबर ने 12,000 कर दिया था। 5000 से ऊपर के मनसब केवल शाहजादों तथा राजवंश के लोगों के लिए सुरक्षित होते थे। बाद में अकबर ने मिर्जा अजीज को चार तथा मानसिंह को सात-सात हजार का मनसब प्रदान किया था।

जहांगीर और शाहजहाँ के काल में सरदारों को 8000 तक के मनसब तथा शहजादों को 40,000 के मनसब दिए जाने लगे, जिसकी संख्या उत्तर मुगलकाल में 50000 तक पहुँच गई। मनसबदारों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा गया था–

10 से 500 के नीचे तक 'मनसबदार', 500 जात से अधिक किन्तु 2500 से कम 'अमीर', 2500 जात तथा उनसे अधिक पर 'अमीर-ए-उम्दा' या 'अमीर-ए-आजम या 'उमरा' कहा जाता था। सबसे ऊँची सैनिक उपाधि 'खाने जमाँ' थी, उसके पश्चात् 'खान-ए-खाना'। किन्तु ये दोनों पद सामान्यतः एक ही व्यक्ति को दिया जाता था।

1595 ई. में अकबर के समय मनसबदारों की कुल संख्या 1803 थी, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल (1707 ई.) में उनकी संख्या बढ़कर 14,449 हो गई थी। सिद्धांत रूप में सभी मनसबदारों की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी, जो सैनिक सेवा में वीरता तथा योग्यताक्रम के आधार पर उन्हें पदोन्नतियाँ भी प्रदान करता था।[6]

मुगलकाल में जो सरकारी विभाग में कार्यरत थे, परन्तु मनसबदार नहीं थे, उन्हें 'रोजनदार' कहा जाता था। इन्हें दैनिक वेतन दिया जाता था, जबकि मनसबदारों को 'नकद' व 'जागीर' के रूप में वेतन मिलता था। किन्तु जागीर से उसे केवल राजस्व प्राप्ति का ही अधिकार होता था। भूमि पर प्रशासनिक अधिकार नहीं होता था।

मनसबदारों के वेतन का निर्धारण सामान्यतया 05 महीने से कम तथा 10 महीने से अधिक अवधि की नहीं रखी जाती थी। प्रारंभ में मनसबदारों को 240 रुपये वार्षिक प्रति सवार वेतन मिलता था, किन्तु जहांगीर के काल में यह राशि घटाकर 200 रुपये वार्षिक कर दिया गया था। मनसबदारों का वेतन रुपयों के रूप में निश्चित किया जाता था, किन्तु उसकी अदायगी 'जागीर' के रूप में दी जाती थी। 'मनसब' अनुवांशिक नहीं होते थे। मनसबदार की मृत्यु या पदच्युति के बाद यह स्वतः समाप्त हो जाता था।[7]

अकबर ने 1577 ई. में जात व्यवस्था की शुरुआत की। उसने अपने शासनकाल के 40वें वर्ष में मनसबदारी व्यवस्था में 'सवार' पद आरंभ किया। जात एवं सवार के संबंध में इतिहासकारों में विभिन्न मत हैं। ब्लॅकमैन के अनुसार, जात का अर्थ सैनिक पद से तथा सवार का अर्थ घुड़सवारी की संख्या से था, जो मनसबदार को रखनी पड़ती थी। प्रत्येक मनसबदार को एक साथ जात और सवार के पद प्रदान किए गए, जैसे– 5000/5000 अथवा 2000/2000 आदि। इसमें जोड़े का पहला अंक जात मनसब तथा दूसरा अंक सवार मनसब कहलाता था। जात मनसब द्वारा किसी व्यक्ति का अधिकारियों के बीच स्थान या उसकी वरीयता का निर्धारण होता था।[8]

सवार पद के आधार पर 5000 और उससे नीचे के मनसबदारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

1. **प्रथम श्रेणी** के मनसबदार को 'जात' पद के बराबर 'सवार' (घुड़सवार सैनिकों की संख्या) पद दिया जाता था, जैसे– 5000 जात/5000 सवार।
2. **द्वितीय श्रेणी** के मनसबदारों को अपने 'जात' पद से कुछ कम या आधे घुड़सवार सैनिक रखने पड़ते थे, जैसे– 5000 जात/3000 घुड़सवार।
3. **तृतीय श्रेणी** के मनसबदारों को अपने 'जात' पद के आधे से भी कम घुड़सवार सैनिक रखने होते थे, जैसे– 5000 जात/2000 घुड़सवार।[9]

अकबर ने सेना की कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए दहबिस्ती (10-20) का नियम निर्धारित किया था। उसके अनुसार प्रत्येक दस सैनिक पर बीस घोड़े अनिवार्य रूप से रखने होते थे, ताकि आवश्यकता पड़ने पर सैनिकों के लिए घोड़े उपलब्ध रहें।

1579 ई. में अपने शासन के 18वें वर्ष में अकबर ने 'दाग' व 'तसहीहा' (चेहरा) प्रथा का प्रारंभ किया। दाग प्रथा के अन्तर्गत घोड़ों पर शाही मुहर का चिन्ह और एक मनसबदार का निशान दागा जाता था। प्रत्येक मनसबदार का निशान अलग-अलग तरह का दिया जाता था, जिससे वे एक-दूसरे में घोड़े को तब्दील न कर सकें। इसके लिए अकबर ने एक पृथक विभाग 'दाग महाली' की स्थापना की।

'तसहीहा' (चेहरा) के अन्तर्गत प्रत्येक सैनिक का हुलिया रखा जाता था। अकबर के शासनकाल में प्रत्येक वर्ष घोड़े को साजो-सामान के लिए मनसबदार के वेतन में से एक माह का वेतन काट लिया जाता था। शाहजहाँ तथा औरंगजेब के काल में 'खुराक-ए-दब्बाब' या 'रसद-ए-खुरासी' के नाम से वेतन में कटौती की जाती थी।[10]

जहांगीर

अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने मनसबदारी व्यवस्था में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। जहांगीर ने **'दु-अस्पा'** एवं **'सिंह-अस्पा'** नामक नवीन व्यवस्था की शुरुआत की। 'दु-अस्पा' में मनसबदारों को अपने 'सवार' पद के दुगुने घोड़े रखने पड़ते थे, जबकि 'सिंह-अस्पा' में मनसबदारों को अपने 'सवार' पद के तीन गुने घोड़े रखने होते थे।

जहांगीर ने सर्वप्रथम यह पद महावत खाँ को दिया। इसके अन्तर्गत सवार मनसब के निर्धारण अंक में वृद्धि किए बिना उसके अधीन सैनिकों की संख्या में वृद्धि की जाती थी।[11]

शाहजहाँ

शाहजहाँ ने मनसबदारी व्यवस्था में मासिक वेतन की शुरुआत की। कम-से-कम चार महीने एवं अधिकतम आठ महीने में वेतन दिया जाने लगा। शाहजहाँ के समय पूरे मुगलकाल में सबसे बड़ा मनसब दारा शिकोह को 60,000 का दिया गया। शाहजहाँ के समय दो नई जागीर **शिशमहा** एवं **सीमाहा** प्रचलित हुई। शिशमहा जागीर से निर्धारित आय की 50 प्रतिशत वसूली होती थी, जबकि सीमाहा से 25 प्रतिशत की वसूली होती थी।

शाहजहाँ के समय में जिन मनसबदारों को अपनी नियुक्ति के स्थान पर जागीर मिली होती थी, उन्हें अपने 'सवार' मनसब का 1/3 घुड़सवार सैनिक, जिनकी नियुक्ति स्थान से बाहर सूबे में जागीर मिली थी, उन्हें 1/4 घुड़सवार सैनिक तथा भारत से बाहर अथवा उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत में मनसबदारों को 1/5 घुड़सवार सैनिक रखने होते थे।

औरंगजेब

औरंगजेब ने मनसबदारी व्यवस्था में 'मशरूत' की शुरुआत की। इसके तहत 'सवार' में आकस्मिक वृद्धि की जाती थी। यह कुछ शर्तों पर आधारित थी। औरंगजेब के काल में जब किसी मनसबदार को किसी महत्त्वपूर्ण पद (जैसे–फौजदार या किलेदार) पर नियुक्त किया जाता था या किसी महत्त्वपूर्ण अभियान पर जाते समय उसके 'सवार' पद में अतिरिक्त वृद्धि का एक और माध्यम निकाला गया, जिसे 'मशरूत' कहा जाता था।[12]

औरंगजेब के शासनकाल में हिन्दू मनसबदारों की सर्वाधिक संख्या 33 प्रतिशत थी। हिन्दू मनसबदारों की संख्या अकबर के काल में 22.4 प्रतिशत, जहांगीर के समय 13.03 प्रतिशत, शाहजहाँ के समय 24 प्रतिशत थी। सबसे ज्यादा हिन्दू मनसबदारों की संख्या (33 प्रतिशत) औरंगजेब के समय में हुई। औरंगजेब के समय मनसबदारों की संख्या में इतनी वृद्धि हुई कि उन्हें देने के लिए जागीर नहीं बची। उस काल को 'बोजागीरी' कहा गया।[13]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनसबदारी व्यवस्था मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का मेरुदंड था। इसके द्वारा राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में एकरूपता आयी, जिससे राजनैतिक एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सन्दर्भ

1. ख्वान्द मीर, कानूने हुमायूँनी, संपादक एम. हिदायत हुसैन, विब इंडिया, कलकत्ता, 1840, पृष्ठ 41
2. भारतीय इतिहास, प्रतियोगिता साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2006, पृष्ठ 291
3. एस. के. पाण्डेय, मध्यकालीन भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2010-11, पृष्ठ 574
4. के. के. त्रिवेदी, मध्यकालीन भारत, भाग 2, द्वितीय संस्करण, 1993, पृष्ठ 116
5. नागेन्द्र प्रताप सिंह, किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 137
6. भारतीय इतिहास, प्रतियोगिता साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2006, पृष्ठ 292
7. नागेन्द्र प्रताप सिंह, किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 137
8. एस. के. पाण्डेय, मध्यकालीन भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2010-11, पृष्ठ 575
9. नागेन्द्र प्रताप सिंह, किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 137
10. एस. के. पाण्डेय, मध्यकालीन भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2010-11, पृष्ठ 575-76
11. वही, पृष्ठ 576
12. नागेन्द्र प्रताप सिंह, किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 137
13. एस. के. पाण्डेय, मध्यकालीन भारत, प्रयाग एकेडमी, इलाहाबाद, 2010-11, पृष्ठ 576

ऑनलाइन कक्षाओं का बालकों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

अर्पणा सिन्हा

शोधार्थी, मगध महिला कॉलेज, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, बिहार

सारांश:- प्रस्तुत शोध में ऑनलाइन शिक्षा का बालकों के स्वास्थ्य एवं उनकी शिक्षा पर पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन दर्शाया गया है। अध्ययन के लिए सैंपल नोट्रे डैम अकादमी एवं लोयोला हाई स्कूल ,पटना में अध्ययनरत बालकों एवं बालिकाओं का लिया गया है जिनका चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया है एवं आंकड़ों का संग्रहण साक्षात्कार विधि द्वारा एवं उनका विश्लेषण प्रतिशत के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन के उत्तरदाता थे स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे एवं उनकी माताएं ,जिनसे यह अपेक्षित था कि घरों में रहकर ऑनलाइन पढ़ाई होने से वे लोग संतुष्ट होंगे एवं स्कूल के बहुत व्यस्त दिनचर्या से दूर रहकर उनके स्वास्थ्य में प्रभावी सुधार हो रहा होगा परन्तु ऐसा बिलकुल भी नहीं था , क्योंकि बालक ऑनलाइन पढ़ाई करने में असुविधा का अनुभव कर रहे थे तथा ऑनलाइन पढ़ाई की वजह से उनका स्वास्थ्य अच्छा होने की बजाय नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा था। इस अध्ययन को करने से प्राप्त सुझावों द्वारा बालकों को दी जाने वाली ऑनलाइन शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न समस्याओं को समझकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा सकता है।

शब्द कुंजी :- ऑनलाइन शिक्षा, स्वास्थ्य, कोरोना काल, मानसिक स्वास्थ्य

प्रस्तावना :- आज पूरी दुनिया कोरोना वायरस की वजह से लॉकडाउन जैसे हालातों से जूझ रही है। लॉकडाउन का अर्थ है तालाबंदी। हमारे देश में इस प्रकार की स्थिति पहली बार आयी है अत: इसके लिए लोगों के मन में बहुत दर व्याप्त था। कफी लोग इसे कर्फ्यू समझ रहे थे पर यह कर्फ्यू से अलग ही था। लॉकडाउन आपातकाल से निबटने हेतु की गयी एक प्रकार व्यवस्था होती है जिसे किसी प्रकार की महामारी अथवा आपदा के वक्त लागू किया जाता है। जिन क्षेत्रों में लॉकडाउन लगाया जाता है वहां के लोगों को घर से निकलने की अनुमति नहीं होती है। परन्तु आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी हेतु वे घर से बहार जा सकते हैं जैसे - दवा, खाने -पीने की चीजें आदि के लिए घर से निकलने की अनुमति होती है। पर अनावश्यक कार्यो के लिए सड़कों पर इधर-उधर नहीं निकल सकते हैं। कोरोना वायरस चूँकि व्यक्तिगत संपर्क से प्रसारित होने वाला रोग है अत: न्यूनतम व्यक्तिगत संपर्क को सुनिश्चित करने के लिए ही लॉकडाउन किया गया था। इस दौरान सभी सरकारी -प्राइवेट दफ्तर जो गैर जरुरी श्रेणी में आते हैं,को बंद कर दिया गया था। पूरे विश्व में सभी स्कूलों एवं कॉलेजों को भी बंद कर दिया गया था। कोरोना वायरस पर नियंत्रण हेतु भारत में सम्पूर्ण लॉकडाउन भी किया गया था जिसके बाद सभी लोग अपने -अपने घरों में कैद हो गए थे। जो लोग जरुरी कार्यो में संलग्न थे जैसे - चिकित्साकर्मी, पुलिस इत्यादि, ये लोग तो बहुत ही एहतियात के साथ घरों से बाहर निकले एवं अपनी संभाली परन्तु गैर जरुरी कार्यो से सम्बंधित लोगों का तो घरों से निकलना करीब-करीब बंद ही हो गया। शुरुआत में तो सभी लोगों को यह लॉकडाउन बहुत ही अच्छा लगा क्योंकि रोज के थका देने वाले दिनचर्या से उन्हें पहली बार ऐसी मुक्ति मिली थी परन्तु धीरे -धीरे घरों में बंद लोगों में अवसाद, तनाव,घबराहट, चिंता आदि बढ़ने लगी। लोग घरों में तो बंद थे फिर भी कहीं न कहीं उन्हें बीमारी की चिंता लगी ही रहती थी। लॉकडाउन के बाद की आने वाली स्थितियों के लिए भी लोग चिंता से ग्रस्त थे क्योंकि लोगों सामने नौकरी, रोजगार एवं वित्तीय संकट आ गया था।

कोरोना ने मानव जीवन में न सिर्फ स्वास्थ्य को ही अनियंत्रित किया है बल्कि देश का भविष्य कहे जाने वाले बच्चों की दिनचर्या पर भी अत्यंत गहरा प्रभाव डाला है। कोरोना वायरस की वजह से हुए लॉकडाउन के बाद अचानक मानो जीवन की गति को विराम

लग गया। जो जहाँ थे वहीं घर के अंदर बंद होकर रह गए। बीमारी इतनी भयावह है कि घर में बंद रहकर भी बड़े बूढ़े सभी बहुत तनाव में रहने लगे जिसका सीधा प्रभाव बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर पड़ा तथा यह प्रभाव समाज में हर वर्ग के बच्चों पर पड़ा है। हर उम्र के बच्चों की सभी प्रकार की गतिविधियों पर ब्रेक सा लग गया है। माता पिता एवं बड़े बूढ़े तो अपना सामाजिक कर्तृतव्य समझकर संयमित जीवन गुजारने लगे तथा बच्चों को कोरोना संक्रमण से बचने हेतु उन्हें घरों में कैद सा कर दिया गया। अचानक से बहार जाकर उनका खेलना बंद हो गया ,पार्क,जिम जाना बंद हो गया ,बहार घूमना फिरना बंद हो गया ,सभी प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन बंद हो गया , क्लासमेट से कोई परस्पर अंत:क्रिया नहीं रही ,फास्टफूड का मिलना बिलकुल बंद हो गया ,बिना किसी सूचना के परीक्षाएं स्थगित हो गयीं। बच्चों में कोरोना बीमारी तो बहुत कम ही देखी गयी परन्तु उसके साइड इफ़ेक्ट ने बच्चों को गहरे तौर पर प्रभावित किया है। स्कूल-कॉलेज अनिश्चितकाल के लिए बंद हो गए तो पढ़ाई जारी रखने हेतु ऑनलाइन शिक्षा शुरू किया गया जिससे कुछ समय तक के लिए तो बच्चे तो बच्चे उसमें व्यस्त हो गए परन्तु ऐसा कब तक चलेगा? यह प्रश्न बच्चों में डर पैदा कर रहा है। साथ ही कब कोरोना खत्म होगा और कब सब कुछ सामान्य होगा या सामान्य होगा भी या नहीं आदि प्रश्नों की चिंता से उनमे चिड़चिड़ापन आता जा रहा है।

आज कोरोना काल में जब दुनिया के अधिकांश काम घर पर रहकर ही किये जा रहे हैं, स्कूल-कॉलेज लम्बे समय से बंद हैं तो समय की नजाकत को देखते हुए ऑनलाइन शिक्षा का विकल्प ही नजर आता है। नए सत्र की शुरुआत के साथ ही स्कूलों ने ऑनलाइन शिक्षण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। शुरू-शुरू में तो माता पिता भी बहुत खुश हुए की बच्चों का साल खराब नहीं होगा, समय बर्बाद नहीं होगा और उनके बच्चों की पढ़ाई निर्विघ्न चलती रहेगी तथा बच्चे भी बहुत ज्यादा उत्साहित थे की स्कूल नहीं जाना पड़ेगा एवं घर पर रहकर ही पढ़ाई चलती रहेगी परन्तु आज जब दोस्तों से मिलना जुलना बिलकुल बंद है, खेलना कूदना बंद है इस स्थिति में स्कूली माहौल से बिलकुल अलग वातावरण में ऑनलाइन पढ़ाई बच्चों एवं माता पिता दोनों के लिए ही तनाव देने वाला है। आज के इस तनावपूर्ण जिंदगी में बच्चों का भविष्य इसके लिए उनकी शिक्षा की निरंतरता को बनाये रखना अत्यंत आवश्यक है तथा बीमारी के इस संक्रमण काल में ऑनलाइन शिक्षा ही एकमात्र रास्ता नजर आता है परन्तु यह अधिक प्रभावी तभी होगा जब हम इस विधि से दी जाने वाली शिक्षा के सिर्फ सकारात्मक ही नहीं बल्कि नकारात्मक पहलुओं पर भी ध्यान केंद्रित करें। अन्यथा इस प्रकार की शिक्षा द्वारा बालकों को लाभ मिलने की बजाये हानियां अधिक होंगी। इस अध्ययन द्वारा ऑनलाइन शिक्षा के बालकों के स्वास्थ्य तथा शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी मिल सकेगी जिससे आगे भी बच्चों को इस से सम्बंधित आने वाली विभिन्न समस्याओं का सफलता पूर्वक समाधान किया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य :-

(1) लॉकडाउन के कारण बालकों पर पड़ने वाले शारीरिक एवं मानसिक प्रभावों का अध्ययन करना,

(2) लॉकडाउन के दौरान बालकों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना,

(3) लॉकडाउन के कारण बालकों की माताओं पर पड़ने वाले प्रभाव को जानना।

शोध प्रविधि:- प्रस्तुत शोध के लिए नोट्रे डेम अकादमी एवं लोयोला हाई स्कूल के कक्षा सातवीं से दसवीं तक के 70 छात्रों - छात्राओं का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया है एवं अंत में उनकी माताओं से भी प्रश्न पूछे गए हैं।

तालिका -1

बालकों पर पड़ने वाले शारीरिक एवं मानसिक प्रभाव की जानकारी (N=70)

प्रभाव	*जवाब*				*कुल*	
	हाँ	*प्रतिशत*	*नहीं*	*प्रतिशत*	*संख्या*	*प्रतिशत*
आँखों पर नकारात्मक प्रभाव	52	74.28	18	25.72	70	100
कान पर नकारात्मक प्रभाव	46	65.71	24	34.29	70	100
सिरदर्द	49	70	21	30	70	100
थकावट	36	51.42	34	48.58	70	100

मोटापा	58	82.85	12	17.15	70	100
चिड़चिड़ापन	59	84.28	11	15.72	70	100
आलस एवं सुस्ती	55	78.58	25	35.72	70	100
पीठ एवं गर्दन दर्द	44	62.85	26	37.15	70	100

ऑनलाइन शिक्षा का बालकों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन में पता चलता है कि 74. 28 प्रतिशत बच्चों की आँखों पर ऑनलाइन पढ़ाई के कारण नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। जैसे – आँखों में सूखापन ,जलन होना इत्यादि , 65. 71 प्रतिशत बच्चे कानों से सम्बंधित समस्याओं से परेशान हैं। लगातार कक्षा चलते रहने से या तो वे पूरे समय कानों पर हेड्फोन लगाकर रखते हैं या अगर लैपटॉप अथवा मोबाइल के स्पीकर से सुनते हैं तो आवाज साफ़ एवं स्पष्ट नहीं होती है जिससे इनकी सुनने की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। 70 प्रतिशत बच्चों ने यह माना कि उन्हें अक्सर ही सिरदर्द शिकायत रहने लगी है। एक तो लगातार लैपटॉप या मोबाइल की स्क्रीन देखते रहना तथा साथ ही कानों में हेड्फोन ,ये सब उनके सिरदर्द को बढ़ा रहा है। 82.85 प्रतिशत बच्चों ने कहा कि लगातार बैठे रहकर कक्षा की पढ़ाई करते रहने से एवं शारीरिक गतिविधयों के बिलकुल खत्म हो जाने के कारण लगातार वजन बढ़ रहा है और वे मोटापे के शिकार हो रहे हैं। 84.28 प्रतिशत बच्चों ने माना की आजकल उनमें चिड़चिड़ापन बढ़ता जा रहा है और वे छोटी –छोटी बात पर गुस्सा करने लगे हैं। 78.58 प्रतिशत बच्चों का मानना था ककि शारीरिक गतिविधयों के कम हो जाने के कारण उनके शरीर की गतिशीलता काम होती जा रही है एवं वे हमेशा आलस एवं सुस्ती महसूस करते हैं साथ ही 62.85 प्रतिशत बच्चों ने माना कि लगातार एक ही जगह बैठे रहने की वजह से उनकी पीठ एवं गर्दन में हमेशा दर्द भी रहने लगा है।

तालिका - 2

बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव (N=70)

प्रभाव	*जवाब*				*कुल*	
	हाँ	*प्रतिशत*	*नहीं*	*प्रतिशत*	*संख्या*	*प्रतिशत*
एकाग्रता की कमी	45	64.28	25	35.71	70	100
शंकाओं का समाधान	30	42.85	40	57.14	70	100
चिंतन का अभाव	41	58.57	29	41.42	70	100
पढ़ाई में मन नहीं लगना	27	38.57	43	61.42	70	100
प्रायोगिक कक्षाओं का अभाव	32	45.71	38	54.28	70	100
सीधे संपर्क का अभाव	48	68.57	22	31.42	70	100

ऑनलाइन शिक्षा द्वारा बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन द्वारा पता चलता है कि 64.28 प्रतिशत बच्चों ने यह माना कि स्क्रीन के सामने बैठकर पढ़ाई करने के कारण पढ़ाई में जो एकाग्रता बननी चाहिए वो नहीं बन पाती है। वे यह मानते हैं कि जब शिक्षक उनके सामने होते हैं तो उनका पूरा ध्यान उनकी पढ़ाई पर ही होता है जबकि अभी घर से पढ़ाई होने के कारण एकाग्रता की कमी होती है। 42.85 प्रतिशत बच्चों ने माना कि स्कूल में कक्षा में कोई शंका आने पर उसका तुरंत ही समाधान हो जाता है जबकि ऑनलाइन कक्षा होने के कारण ये संभव नहीं हो पाता है ,58.57 प्रतिशत बच्चों ने माना कि किसी भी विषय पर चिंतन करना आवश्यक होता है जिससे वो आपके दिमाग में साफ़ एवं स्पष्ट हो जाये पर ऑनलाइन कक्षा में वे चिंतन बिलकुल नहीं करते हैं। इसी प्रकार 38.57 प्रतिशत बच्चों का मानना है कि स्क्रीन के सामने बैठकर पढ़ाई करने में मन बिलकुल नहीं लगता है तथा उन्होंने यह भी माना कि वे कक्षा के लिए स्क्रीन ऑन करके या तो गेम खेलते हैं या कोई दूसरा काम करते रहते हैं जैसे –गेम खेलना, किसी अन्य विषय का गृहकार्य करना इत्यादि। 45. 71 प्रतिशत बच्चों ने माना कि विज्ञान एवं कंप्यूटर जैसे विषय की प्रायोगिक कक्षाएं नहीं हो रही हैं जिससे वो बहुत अच्छे से समझ नहीं आ रहा है क्योंकि अगर सैद्धांतिक रूप से पढ़ने पर उन्हें कभी कोई शंका होती है तो वो प्रायोगिक कक्षाओं में दूर हो जाती हैं परन्तु अभी प्रायोगिक कक्षाएं नहीं चल रही हैं तो बहुत सारी शंकाएं बानी ही रह जाती हैं। 65.87 प्रतिशत बच्चों का यह मानना है कि कक्षाओं में जाकर पढ़ाई करने से छात्रों का अपने शिक्षकों से सीधा संपर्क होता है जिससे बच्चों का पढ़ाई में ध्यान बना रहता है, तुरंत शंकाओं का समाधान हो जाता है एवं एकाग्रता बानी रहती है परन्तु ऑनलाइन कक्षाओं में इन सब चीजों का सर्वथा अभाव बना रहता है।

तालिका - 3
बालकों की माताओं पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (N=70)

प्रभाव	*जवाब*				*कुल*	
	हा	*प्रतिशत*	*नहीं*	*प्रतिशत*	*संख्या*	*प्रतिशत*
शारीरिक प्रभाव	62	88.57	8	11.43	70	100
मानसिक प्रभाव	44	62.85	26	37.15	70	100
अतिरिक्त कार्यभार	53	75.71	17	24.29	70	100
घर के माहौल पर प्रभाव	42	60	28	40	70	100
चिड़चिड़ापन	39	55.71	41	44.29	70	100
अनावश्यक व्यस्तता	48	68.57	22	31.43	70	100

ऑनलाइन कक्षाओं के चलने के कारण बालकों की माताओं पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने से पता चला कि 88. 57 प्रतिशत माताओं ने माना कि उन पर प्रतिकूल शारीरिक प्रभाव पड़ रहा है जैसे - थकान रहना, अक्सर सिरदर्द रहना, नींद पूरी न होना इत्यादि, 62.85 प्रतिशत माताओं ने माना कि ऑनलाइन कक्षाओं के चलने से उनपर मानसिक प्रभाव भी पड़ रहा है जैसे - हर समय व्यस्त रहने से काम करने का मन नहीं करना, उनके खुद के लिए बिलकुल भी समय नहीं निकल पाना जिससे उनमे अवसाद एवं तनाव बढ़ रहा है। 75.71 प्रतिशत माताओं का मानना था कि उनपर ऑनलाइन कक्षाओं के कारण बहुत ज्यादा अतिरैत कार्यभार बढ़ गया है। अन्य सभी कार्यो के साथ -साथ पूरे समय यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि बच्चा पढ़ रहा है या नहीं, इंटरनेट सही चल रहा है या नहीं आदि। काम तो वे घर के निपटा रही होती हैं परन्तु मानसिक रूप से वे बच्चे की पढ़ाई पर ही केंद्रित रहती हैं जिससे वो अत्यधिक कार्यभार महसूस करती हैं। 60 प्रतिशत माताओं ने माना की इन सभी बातों का उनके घर के माहौल पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। घर का माहौल पहले के दिनों की तरह खुशनुमा नहीं रहता है बल्कि हमेशा कुछ न कुछ खींचतान चलती रहती है, लड़ाई झगडे भी बढ़ गए हैं। 55.71 प्रतिशत माताओं ने माना कि उनमें चिड़चिड़ापन एवं तनाव ने घर कर लिया है। अपने लिए कुछ भी करने का वक्त नहीं मिलता है तथा आराम करने का भी बिलकुल समय नहीं मिलता है। 68.57 प्रतिशत माताओं ने माना कि इन ऑनलाइन कक्षाओं की वजह से उनकी अनावश्यक व्यस्तता बढ़ी है।

परिणाम एवं निष्कर्ष :- आज के इस कोरोना काल ने मानव की जिंदगी को बिलकुल ही बदल कर रख दिया है। लोगों का घर से निकलना बंद है एवं सभी कार्य घर से ही किये जा रहे हैं। इस स्थिति में बच्चों की शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ना लाजिमी ही है। बच्चों का साल खराब न हो तथा बच्चे लगातार पढ़ाई से जुड़े रहें एवं उनकी पढ़ाई बिना रुकावट चलती रहे इसके लिए ही ऑनलाइन कक्षाओं की शुरुआत की गयी। परन्तु पहली बार अस्तित्व में आयी इस शैक्षिक प)ति के ़ायदे के ही साथ -साथ कई नुकसान भी बच्चों एवं उसके माता -पिता को झेलने पड़ रहे हैं जिसका इन सभी के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पड़ रहा है। जहाँ एक ओर बच्चों को पढ़ाई से जोड़े रखने के लिए ही ऑनलाइन शिक्षा आरम्भ की गयी थी वहीँ दूसरी ओर इसके कई दुष्प्रभाव भी सामने आ रहे हैं जो सचमुच अत्यंत ही चिंताजनक हैं। एक ओर तो बच्चों का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है जिससे उनमें सिरदर्द ,थकान ,मोटापा ,आंख एवं कान सम्बन्धी समस्याएं इत्यादि देखि जा रही हैं तथा दूसरी ओर उनका मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है तथा उनमे चिंता , अवसाद ,भय ,चिड़चिड़ापन इत्यादि हावी होता जा रहा है। इस स्थिति में सोचने की बात यह है कि जब अपने पारम्परिक तरीके से स्कूलों में बच्चों की पढ़ाई शुरू होगी तब तक क्या वो शारीरिक एवं मानसिक तौर पर इतने स्वस्थ बने रहेंगे की वो पहले की तरह से सामान्य रूप से पढ़ाई कर सकें। इसी प्रकार ऑनलाइन कक्षाएं चलने से बच्चों की माताएं भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रह पाई हैं। उनमें भी शारीरिक एवं मानसिक विभिन्न समस्याएं देखि जा रही हैं जिसका प्रभाव घर के माहौल को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है।

सुझाव :-

(1) जितनी देर कक्षाएं चलती हैं उसके अलावा बच्चों को स्क्रीन से दूर ही रखना चाहिए जिससे उनकी समस्याएं बढे नहीं।

(2) बच्चों को कुछ रचनात्मक कार्य करने हेतु प्रेरित करते रहना चाहिए।

(3) माता पिता बच्चों में आये बदलावों को नोटिस करें तथा उनमें चिड़चिड़ापन,नींद की कमी अथवा अधिकता ,ध्यान न लगना, उदासी इत्यादि लक्षण दिखें तो बच्चे का विशेष ध्यान रखें।

(4) बच्चों को शारीरिक क्रियात्मक कार्यों हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए ताकि उनकी सक्रियता बानी रहे।

(5) मोबाइल की जगह हो सके तो लैपटॉप का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि स्क्रीन बड़ी होती है तो आँखों पर जोर कम पड़ता है।

(6) बच्चे जिस जगह बैठकर पढ़ते हो वो जगह सही हो। बच्चे एवं स्क्रीन का लेवल बराबर का होना चाहिए।

(7) हर कक्षा के खत्म होने के बाद कम से कम 10 -15 मिनट ऑखें बंद करके आराम करना चाहिए।

(8) सबसे महत्वपूर्ण बात की माताओं को चाहिए की बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार कार्यों को सबके बीच विभाजित कर दे जिससे उनका कार्यभार भी हल्का होगा साथ ही बच्चों की क्रियाशीलता बनी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1) आर्य, अलका, बच्चों पर मंडराते संकट के बादल, www.tehelkahindi. com

2) कुमारी, जया, बच्चों पर मोबाइल फोन के हानिकारक प्रभाव, hindiparenting. Firstcry.comèarticles

3) रंजन, आलोक, सत्याग्रह, satyagrah. Scroll. in

4) चौधरी, रीता, ऑनलाइन क्लासेज का बच्चों पर फायदे एवं नुकसान, www. herzindagi. com

5) ली.जॉइस, मेन्टल हेल्थ इफेक्ट्स ऑफ स्कूल क्लोजर्स डड्रिंग कोविड -19, www.thelancet.com

6) रॉब्सन, डेविड, हाऊ कोविड 19 इज चेंजिंग द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन, www.bbc.com èfuture èarticle

हिंदी कथा साहित्य में खेल और नारायण सिंह की कहानियाँ

जैनेन्द्र कुमार

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

हिंदी कथा साहित्य अपने लगभग डेढ़ सौ साल की यात्रा में लगातार समृद्ध होता रहा। उसमें समाज का विस्तृत चेहरा नजर आया। शुरू के वर्षों में तिलिस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों का चलन था। प्रेमचंद और उसके बाद के रचनाकारों ने समाज और परिवार की जमीनी सच्चाई को छुआ। बाद के वर्षों में अलग से दलित जीवन, आदिवासी जीवन और कुछ विज्ञान कथा का हिंदी साहित्य में प्रवेश हुआ। इसके बावजूद भी बहुत सारे क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ तक रचनाकारों की कलम ठीक से नहीं पहुँची है। इसे अपने रचनाकारों का सीमित दायरा कहें या कुछ और लेकिन इतना तय है कि हमें समाज के हरेक कोने पर नजर डालनी होगी। बहुत सारे ऐसे क्षेत्र हैं जिनका हमारे समाज पर सीधा प्रभाव तो नहीं पड़ता लेकिन प्रभावित जरुर करता है। खेल जगत ऐसा ही एक क्षेत्र है जहाँ हम करीब तक नहीं पहुँच पाए हैं। लेकिन समय के साथ हिंदी के रचनाकारों ने इसके महत्व को भी समझा। खेल और साहित्य की समझ का एक साथ होना कठिन संयोग है लेकिन नारायण सिंह हिंदी के विलक्षण रचनाकार हैं जो दोनों की समझ रखते हैं। खेल के मैदान पर बिताये अपने समय और उससे प्राप्त अनुभव के आधार पर वे खेल जगत के अन्दर चल रहे 'खेल' का रहस्योद्घाटन करते हैं।

खेल सिर्फ खेल नहीं होकर समाज को समझने का एक जरिया भी है। किसी खिलाड़ी को देखकर हम उसके परिवार और समाज के बारे में भी बहुत कुछ जान सकते हैं। इस बारे में खेल लेखक सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी कहते हैं "वह एक जीवन शैली है और खिलाड़ी के खेल को देखकर हम उसके परिवेश व चरित्र के बारे में जान सकते हैं। दरअसल उसकी पूरी जीवन शैली उसकी खेल शैली में झलकती है। वह साहसी है अथवा संकोची या डरपोक यह हम उसके खेलने के तौर तरीके से जान सकते हैं।"(1) खेल भी समाज को समझने में हमें मदद करता है। इसकी भूमिका यही तक सीमित नहीं है। इस सम्बन्ध में हिंदी से प्रसिद्ध संपादक और खेल लेखक प्रभाष जोशी कहते हैं "खेल को महज एक मनोरंजन या शारीरिक व्यायाम मैं नहीं मानता। खेल मनुष्य का चरित्र बनाता है लेकिन उससे भी ज्यादा खेल में मनुष्य का चरित्र व्यक्त और प्रकट होता है। खेल सचमुच एक अनुशासन है जो मनुष्य को पूरा बनाता और प्रकट करता है।"(2) वे आगे लिखते हैं "खेल के जरिये आप खेलने वाले के चरित्र, उसके लोगों की ताकत और कमजोरियाँ समझ सकते हैं द्य इसलिए साहित्य और ज्ञान-विज्ञान से खेल को अपन ने कभी छोटा नहीं माना।"(3)

साहित्य में खेल उन अनछुए पहलुओं में से है जिसको केन्द्र में रखकर कहानियाँ कम लिखी गयीं हैं। खेल कहानी की अगर बात करें तोइसकी शुरुआत प्रेमचंद ने कर दी थी। प्रेमचंद की 'क्रिकेट मैच' 'गुल्ली-डंडा' 'परीक्षा' और 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी कहानी खेल पर आधारित हैं। मेरी जानकारी में इसके बाद एक लंबा अंतराल रहा जब कोई खेल कहानी सामने आयी। उसके बाद अमरकांत की एक कहानी आयी 'कबड्डी', जिसके अंत में खिलाडियों और खेल के प्रति बनी बनाई धारणा टूटती है। अभिषेक कश्यप की एक कहानी हंस में छपी 'खेल' जिसकी राजेंद्र यादव ने काफी प्रशंसा की थी और इस तरह की कहानियों का स्वागत किया था। इसके अतिरिक्त मनमोहन भाटिया की कहानी 'क्रिकेट मैच' आकांक्षा पारे काशिव की कहानी 'क्रिकेट' अनुज की कहानी 'बाउंड्री लाइन' क्रिकेट को केन्द्र में रख कर लिखी गयी ह। अनुज ने तीरंदाज दीपिका कुमारी के जीवन को आधार बना कर भी एक कहानी लिखी 'टार्गेट'। संजीव की तीन कहानी खेल ऊपर है जो इसके अंदर की दुनियां में ले जाती है। हिन्दी में दो उपन्यास

भी खेल पर आधारित है। पहला 2002 में सोना चौधरी का 'पायदान' साहित्य उपक्रम से छपा और दूसरा रमेश दवे का 'खेल गुरु' सामयिक प्रकाशन से 2011 में प्रकाशित हुआ। इन दोनों उपन्यास में महिला खिलाड़ी का 'पुरुषों के खेल जगत' में हस्तक्षेप है। 'पायदान' उपन्यास की नायिका तो लड़कों का खेल माने जाने वाले फुटबाल में पैर आजमा कर उनको चुनौती देती है।

इसी क्रम में नारायण सिंह ने भारत में धर्म घोषित हो चुके क्रिकेट की वास्तविकताओं से हिंदी साहित्य का परिचय कराते हुए तीन कहानियाँ लिखी, 'गुगली', 'स्कोरर', और 'वह मरा नहीं है'। क्रिकेट पिछले तीन दशक से भारत में धर्म के साथ साथ एकमात्र ऐसा खेल है जिसपर पूरा देश जान लुटाता हैद्य किसी को कहते सुना कि आशीष नंदी यहाँ तक कहते हैं कि "यह भारत का ही खेल था गलती से इसका जन्म इंग्लैंड में हो गया"। कपिल के नेतृत्व में 1983 के विश्वकप की जीत से लेकर धोनी की कप्तानी में जीते गए दो- दो विश्वकप ने इसे भारत में और लोकप्रिय बनाया। आईपीएल ने तो खिलाडियों के लिए अवसर के द्वार खोल दिए। ये अलग बात है कि इसका उद्देश्य क्रिकेट के बजाय पैसा हो गया। नारायण सिंह ने ये तीनों कहानियाँ 1990-94 के बीच लिखी। जाहिर है इस समय तक भारतीय क्रिकेट का वही स्वरुप नहीं था जो हम आज देख रहे हैं। अब तो मंझोले शहर के लड़कों का चयन भारतीय टीम में हो रहा है पर एक समय तो ऐसा था कि छोटे शहर से खिलाडियों का राष्ट्रीय टीम में पहुंचना बहुत मुश्किल था। उस पर से अगर खिलाड़ी 'मैदान के बाहर अच्छा खिलाड़ी' नहीं हुआ तो समझ लीजिए की उसकी सारी मेहनत पानी में जा रही है।

खेल का भी एक वर्ग चरित्र होता है, खासकर क्रिकेट जैसे खेल मेंद्य क्रिकेट के शुरुआती दौर में जाएँ तो हम देखते हैं कि मुख्य रूप से यह मालिक और गुलामों का खेल था। इसमें मालिक मालिक बल्लेबाजी करता था और गुलाम गेंदबाजी और क्षेत्ररक्षण। आम तौर पर मालिक रन दौड़ने के लिए भागने की जहमत भी नही उठाता था सिर्फ चौके या छक्के से ही स्कोर को बढाता था। इस पूरे खेल की संरचना पर गौर करे तो पायेंगे कि इसमें फुटबाल या हॉकी जैसे खेलों की तरह विशेष दमखम की जरुरत भी नहीं है। बल्लेबाजी, गेंदबाजी, और क्षेत्ररक्षण तीनो क्षेत्र में चलते खेल के बीच सुस्ता लेने का स्कोप है। यह एक ऐसा खेल है जो सुस्त और कम दमखम वाले खिलाडियों के लिए भी जगह रखता है। इसी कारण भारतीय क्रिकेट टीम के शुरूआती दौर में टीम का कप्तान कोई राजा हुआ करता था। टीम की जीत के लिए हर समय हर खिलाड़ी की सक्रियता जरुरी नहीं ह। क्रिकेट खिलाड़ियों की पृष्टभूमि बताती है कि कुछेक अपवादों को छोड़ दिया जाय तो इसमें निचले तबके के लड़कों के लिए कोई जगह नहीं है। अगर जगह बनती भी है तो गेंदबाजी के लिए। बल्लेबाजी पर अभिजात्य वर्ग कब्जा अब भी बरकरार है। बालू पालवनकर से लेकर एकनाथ सोलकर, वीनू माकंड, कपिलदेव, मुनाफ पटेल, इरफान पठान, वरुण उरांव, रविन्द्र जडेजा, उमेश यादव तक सब के सब आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों से आते हैं। बल्लेबाजों की परम्परा पर गौर करें तो महराजा रणजीत सिंह, दिलीप सिंह, पटौदी, सुनील गावस्कर, मांजरेकर, अजय जडेजा, सचिन, सौरभ गांगुली, लक्ष्मण, युवराज, चेतेश्वर पुजारा, गंभीर सब के सब खाते पीते और समृद्ध परिवार से आते हैं। इन सब में कुछेक अपवादों से मेरा इंकार नहीं है। टाटा और कुछेक कम्पनियाँ के कारण जमशेदपुर और रांची जैसे शहरों में क्रिकेट फलने-फूलने का मौका मिला परन्तु उसका वर्ग चरित्र यहाँ भी कायम रहा।

नारायण सिंह की तीनों कहानी में आर्थिक और पिछड़े परिवार के लड़के की कहानी है जो इस वर्चस्ववादी खेल में पिछड़ जाता है। इस खेल के दरवाजे इन तबकों के लिए बंद हैं। इसकी घोषणा इनकी तीनों कहानी करती है। पहली कहानी 'गुगली' एक गुगली गेंदबाज छोटे की संघर्ष गाथा है। गुगली क्रिकेट में लेग स्पिनर गेंदबाज द्वारा फेंकी गयी ऐसी गेंद होती है जो परंपरागत लेग स्पिन ना होकर उसके ठीक उल्टा व्यवहार करती है। लेग स्पिन में गेंद दायें हाथ के बल्लेबाज के बायीं ओर गिरकर दायीं ओर निकल जाती है जबकि गुगली में इसके ठीक उल्टा होता है। इसमें गेंद दायीं ओर गिरकर बायीं और निकलती है। इसी गेंद की प्रैक्टिस छोटे करता है और ऐसा ही गेंदबाज वह बनना चाहता है। लेकिन पिता से रंजिश के कारण सेलेक्टर उसका चयन नहीं करते। जिस गुगली गेंद को लेकर वह दिन रात की प्रैक्टिस करता है उसी में नुख्स बताकर उसे टीम से बाहर कर दिया जाता है। उसके गुगली के बारे में सलेक्शन कमिटी का चेयरमैन कहता है "लेग स्पिनर के लिए ना पढ़ी जा सकने वाली गुगली जरुर होती है पर उसकी गुगली तो बस ऑफ स्पिन बनकर रह जाती है।"(4) वैसे मुख्य रूप से इस कहानी में खेल प्रमुखता से नहीं आया है परन्तु इतना जरुर साबित कर जाता है कि क्रिकेट टीम में चयन का आधार सिर्फ मेहनत और प्रदर्शन नहीं है। चयन की पारदर्शिता पर इस कहानी में प्रश्न चिन्ह है।

दूसरी कहानी 'स्कोरर' भी एक असफल खिलाड़ी संजय की कहानी है जो संसाधन के अभाव में क्रिकेटर ना बनकर स्कोरर बन जाता है। कहानी का अंत इस घटना से होता है कि मैदान पर एक बैनिफिट मैच चल रहा होता है और स्कोरर संजय स्कोर करना बंद करके कुछ देर के लिए मैच को रुकने पर मजबूर कर देता है। यह घटना प्रतीकात्मक तौर पर आम जनता की ताकत को दर्शाती है जिसके कारण आज क्रिकेट यहाँ तक पहुंचा है। आम जनता की उपेक्षा क्रिकेट के लिए घातक है। जो जनता उसे ऊंचाई पर ले जा सकती है वही उसे गिरा भी सकती है। यह कहानी आज ज्यादा प्रासंगिक है क्योंकि आज का खेल प्रशासन खेल को सिर्फ धन कमाने का जरिया समझ रहे हैं। आज क्रिकेट के नाम पर कुछ भी बेचा जा सकता है और इसी का फायदा वे लोग उठा रहे हैं। उनके खिलाफ कोई आवाज उठा नहीं सकता। जो ऐसी हिम्मत करता है उसको इसकी कीमत भुगतनी पर रही है। खेल की दुनिया में आम आदमी की सुविधा का कोई ख्याल नहीं रखा जाता जबकि उनके कारण ही खेल की दुनिया इतनी बड़ी है। 'स्कोरर' कहानी के द्वारा नारायण सिंह उसी आदम आदमी की ताकत का अहसास कराते हैं। कहानी का अंत इन पंक्तियों के साथ होता है "स्कोर बोर्ड अब भी रुका था। साथ में खेल भी। शोर बढ़ता है तो बढे। अब इन्हें स्कोरर की सही औकात मालूम हो जाएगी। मैं नेपथ्य में नहीं बल्कि ठेठ समर भूमि में उतरना चाहता था। थोड़ी देर के लिए ही सही पर मैं अब अभिमन्यु बन कर जीने, लड़ने, और मरने की इच्छा करने लगा था।"(5)

तीसरी कहानी 'वह मरा नहीं है' खेल जगत के ऊपर उनकी सबसे अच्छी कहानी है। खेल की दुनिया उसमें भी खासकर क्रिकेट में साधारण परिवार का लड़का अपने को एडजस्ट नहीं कर पाता। कहानी में मुमताज कहता है "प्रोफेशन! किसके लिए डे दा? ऊँचे परिवार से आए चिकने-चुपड़े कुछ गिने चुने इन लड़कों के लिए? कितने क्लब रजिस्टर्ड हैं आपको पता है? पैंतालीस। हर क्लब से औसत सोलह लड़के ही ले लीजिये तो सात सौ हुए। फिर लगभग पंद्रह स्कूल। कुल मिलाकर नौ सौ। पर खेल के आधार पर कितनों को नौकरी मिलती है? आई.ए.एस. में भी हर साल चार पांच सौ जगहें खली हो जाया करती है पर यहाँ? देश भर में वही बीस पच्चीस खिलाड़ी सालों तक जगह घेरे रहते हैं। यह कैसा प्रोफेशन है जिसके लिए स्टेट भर के बीस हजार लड़के पागलों की तरह सर्दी गर्मी बरसात में पसीना बहाते हैं और सेलेक्शन होता है मात्र पंद्रह का। अब यदि लड़का खाते पीते घर का हुआ तो ठीक अन्यथा अपनी उमर के सबसे मूल्यवान क्षणों को इस धूप-शीत में जलाते ये गरीब बच्चे... हताशा और कुंठा के बीच कौन सा रास्ता चुनेंगे इसका अंदाजा है आपको?"(6)

यह कहानी चरण-दर-चरण इस बात को उजागर करती है कि कैसे एक आम घर का लड़का इस प्रक्रिया में शामिल होता है। मुमताज इस कहानी में एक कोच की भूमिका में है जो अपने जमाने में एक अच्छा खिलाड़ी था परन्तु वहाँ तक नहीं पहुँच सका जहाँ तक पहुंचना चाहता था। इसकी कसक उसके मन में दबी रह जाती है। जब वह अभिमन्यु में प्रतिभा देखता है तो उसकी तमन्नाएं जग जाती है और वह उसके माध्यम से उसे पूरा करना चाहता है। अपनी कुर्सी को दाँव पर लगाकर वह अभिमन्यु के लिए अंतिम साँस तक लड़ता है परन्तु दोनों को निराशा हाथ लगती है। अगर इसी विषय पर कोई हिंदी फिल्म बने तो उसमे अभिमन्यु वह सब कुछ पा लेता जो मुमताज को नहीं मिल पाया परन्तु हकीकत इससे कोसों दूर है। मुमताज मुसलमान होने के कारण तो प्रताड़ित हो ही रहा है साथ ही ईमानदार होने के कारण भी। कहानी में तरुण नाम के एक सम्पन्न घर के लड़के के साथ अभिमन्यु की प्रतिस्पर्धा है। जिन्दगी की हकीकत के अनुरूप ही तरुण जीत जाता है। इस संघर्ष में अभिमन्यु अपने प्यार को भी नहीं पा पाता है। अपने पिता और अपने कोच की तरह वह भी अंतत असफल होता है। माँ की आशंका सही साबित होती है। कुल मिलाकर यह कहानी ऐसे लोगों की कहानी है जो अपने सीमा से बाहर जाकर कुछ करने की कोशिश करते हैं पर दो- दो पीढ़ी इसमें असफल हो जाती है। अब तो उसकी तीसरी पीढ़ी भी इसमें लगी है पर कौन जाने उसका क्या होगा?

उदारीकरण और ग्लोबोलाइजेशन के बाद भारत में पूंजी का बोलबाला बढ़ा। खेल का भी इसी क्रम में विकास हुआ। इसी दौर में खेल में अकूत पैसा आया। कभी बटुए में सिक्के डाल कर मैच फीस दिए जाते थे ताकि रकम कम दमदार लगे लेकिन इस दौर में खिलाडियों का मैच फीस खास कर क्रिकेट में लाखों-करोड़ों में पहुँच गया। आधुनिक खेल वैसे भी अपनी संरचना में साधनविहीनों के लिए नहीं है और अगर उस पर से बात क्रिकेट की हो तो और भी मुश्किल। पूंजी और बाजार के खेल ने क्रिकेट को अब भी अमीरों का खेल ही बनाये रखा। वैसे पिछले कुछ सालों से कुछ अपवाद जरुर सामने आये हैं पर उसकी मूल संरचना वैसी की वैसी है। नारायण सिंह की कहनियाँ हमें बार बार एहसास कराती है खेल की दुनिया का दरवाजा अब भी पूरी तरह से खुला नहीं है। वहाँ एक खास तरह का ताला लगा है जो खास चाबी से ही खुलता है। लेकिन नारायण सिंह इसके बाबजूद खेल के रहनुमाओं चेताते हुए कहते हैं जिसकी झलक वे स्कोरर कहानी में भी दे चुके हैं "आप देख रहे हैं यह भीड़। क्या आप सोचते

हैं यह भीड़ हमारे कारण है? क्या वह अपने शौक और अहं को तुष्ट करने के ख्याल से राजनीतिक और आर्थिक वैभव की ताकत पर खेल की दुनिया में पिकनिक मनाने आए सिंधियाओं, कलमाडियों और दासमुंशियों की वजह से लगी है? नहीं सर नहीं। लोग इन मैचों में अपने देश और अपने प्रदेश की मिट्टी से जुड़े रहने की अपनी भावना के चलते खींचे चले आते हैं।"[7] नारायण सिंह की तीनों कहानी खेल जगत के अलोकतांत्रिक परिदृश्य को पूरी तरह बेनकाब करती है।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, सूर्यप्रकाश। विश्व क्रिकेट और भारत, पेज 6
2. जोशी, प्रभाष। खेल सिर्फ खेल नहीं है, पेज 21
3. वही, पेज 24
4. कहानी 'गुगली' का एक अंश। कतार (पत्रिका) 1990 अंक
5. कहानी 'स्कोरर' का एक अंश। सृजन परिवेश 1991 अंक
6. कहानी 'वह मरा नहीं' का एक अंश। हंस, फरवरी 1994 अंक
7. वही

‘मैला आँचल’ और यथार्थवाद : कुछ नोट्स

पीयूष राज

अतिथि शिक्षक, हिन्दी विभाग, बी.एन. कॉलेज

फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित ‘मैला आँचल’ हिंदी उपन्यास परंपरा में अपने ढंग का पहला और अनूठा उपन्यास है। इसका प्रथम प्रकाशन पटना के एक साधारण से प्रकाशन संस्था ‘समता प्रकाशन’ से 1954 ई0 में हुआ। प्रकाशन के तुरंत बाद समीक्षकों की प्रशंसा से प्रभावित होकर राजकमल प्रकाशन ने ‘समता प्रकाशन’ से इसकी सभी प्रतियाँ खरीद ली और 1954 ई0 में ही राजकमल प्रकाशन से इसका नए कलेवर में पुनःप्रकाशन किया गया। वैसे तो प्रकाशन के साथ ही कई समीक्षकों ने इस उपन्यास की प्रशंसा की, लेकिन ‘आलोचना’ पत्रिका (वर्ष 4, अंक 3, अप्रैल 1955) में नलिन विलोचन शर्मा की समीक्षा ने हिंदी जगत का ध्यान इसकी को आकर्षित किया। नलिनविलोचन शर्मा ने घोषणा की – ‘‘मैं अपने श्रेष्ठ उपन्यासों की सूची से गोदान को छोड़कर किसी रचना को मैला आंचल के लिए अपदस्थ कर सकता हूँ।’’ उन्होंने आगे लिखा कि – ‘‘यह ऐसा सौभाग्यशाली उपन्यास है जो लेखक की प्रथम कृति होने पर भी उसे ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त करा दे कि चाहे तो फिर कुछ भी न लिखे।’’

‘मैला आँचल’ की विशेषता

‘मैला आँचल’ की मूल विशेषता इसका आंचलिक उपन्यास होना है। कथ्य और शिल्प की नवीनता इसके आंचलिकता में छिपी हुई है। रेणु ने हिंदी उपन्यास का अनूठा कथ्य और शिल्प ‘मैला आँचल’ के माध्यम से प्रस्तुत किया। आंचलिकता की शुरुआत हिंदी में ‘मैला आँचल’ से ही होती है। स्वयं रेणु ने ‘मैला आँचल’ की भूमिका में इसे आंचलिक उपन्यास कहा है और आंचलिक उपन्यास की विशेषता भी गढ़ने की कोशिश की है – ‘‘यह है ‘मैला आँचल’, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला हैय इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा-रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को-पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर – इस उपन्यास-कथा का क्षेत्र बनाया है।

इसमें फूल भी हैं, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी – मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।

कथा की सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दलहीज पर आ खड़ा हुआ हूँ; पता नहीं अच्छा किया या बुरा। जो भी हो, अपनी निष्ठा में कमी महसूस नहीं करता।’’

रेणु की इस भूमिका से ‘मैला आँचल’ की दो प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट है –

1 उपन्यास में अभिव्यक्त आंचलिकता

2 नए तरह के यथार्थ की अभिव्यक्ति

हालाँकि दोनों विशेषताएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। फिर भी हम इन विशेषताओं की चर्चा अलग-अलग करेंगे।

‘मैला आँचल’ और आंचलिकता

आंचलिक उपन्यास की किसी एक परिभाषा पर हिंदी के विद्वान एकमत नहीं हैं, लेकिन किसी उपन्यास की आंचलिकता को निर्धारित करने के लिए कुछ सामान्य और मूल तत्त्व इस प्रकार हैं –

1. **कथा नायक का अभाव –** आंचलिक उपन्यास में अंचल विशेष ही नायक होता है। यहाँ परम्परागत नायक का अभाव होता है। वस्तुत: आंचलिकता में क्षेत्र विशेष को समग्रता में देखने का आग्रह रहता है। उदाहरण के लिए 'मैला आँचल' का मूल नायक कौन है? इसका निर्धारण करना कठिन है। पूरा मेरीगंज ही पाठक के सामने जीवंत रहता है।
2. **अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति का तथ्यपरक चित्रण**
3. **अंचल का पिछड़ा होना –** 'मैला आँचल' का मेरीगंज पिछड़े गाँवों का प्रतीक है।
4. **अंचल की लोक संस्कृति का निरूपण**-लोककथाओं, लोकगीतों और लोक-परम्पराओं का 'मैला आँचल' में विशद् वर्णन है। आंचलिकता में सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा के प्रति आग्रह होता है।
5. **अंचल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का निरूपण**
6. **लोक-भाषा का प्रयोग –** आंचलिक भाषा कैसी होनी चाहिए यह 'मैला आँचल' से पता चलता है। 'मैला आंचल' में न तो जनपदीय बोलियों की अधिकता है और न ही साहित्यिक शब्दों की। गाँव की भाषा मुहावरेदार होती है और 'मैला आँचल' में कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग मिलता है। जैसे– रोटिया गवाह, बाप का नाम दुर्गादास और बेटा काटे घोड़ा घास, जब गुड़ गंजन भये तब मिश्री नाम धराये इत्यादि।

आंचलिक उपन्यास की उपर्युक्त विशेषताओं पर 'मैला आँचल' पूरी तरह खरा उतरता है।

अभी तक हमने 'मैला आँचल' की मूलभूत विशेषताओं का एक सामान्य परिचय प्राप्त किया। आंचलिकता के अतिरिक्त 'मैला आँचल' जिस तत्त्व के लिए सबसे अधिक चर्चा हुई वह है इसमें व्यक्त 'यथार्थवाद'। जैसा की 'मैला आँचल' की भूमिका से ही स्पष्ट है, इस उपन्यास में नए तरह के यथार्थ का चित्रण हुआ है। इस कारण 'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' आलोचकों के बीच बहस का मुख्य मुद्दा रहा है। 'मैला आँचल' में व्यक्त यथार्थवाद पर बात करने से पहले 'यथार्थवाद' के अलग-अलग स्वरूपों चर्चा करना आवश्यक है।

यथार्थवाद एक सामान्य परिचय

साहित्य में 'यथार्थवाद', 'रोमांटिसिज्म' के विरोध में उत्पन्न हुआ। साहित्य में यथार्थ चित्रण को मुख्यत: तीन प्रकार में बाँटा जा सकता है–

1. **प्रकृतवाद या नग्न यथार्थवाद**
2. **सामाजिक यथार्थवाद या आलोचनात्मक यथार्थवाद**
3. **समाजवादी यथार्थवाद**

'प्रकृतवाद' का साहित्य में उदय 19 वीं सदी में फ्रांस में हुआ। इसके प्रवर्तक एमिल जोला थे। प्रकृतवादी यथार्थ में सामाजिक बुराइयों का खुला और बेबाक चित्रण किया जाता है। मनुष्य और समाज के कुरूपताओं को उजागर करना, इस तरह के यथार्थ का मूल उद्देश्य होता है। सामाजिक समस्यायों की मूल वजहों से इनका कोई सरोकार नहीं होता। 'प्रकृतवादी' रचनाकार सिर्फ समस्याओं के खुले वर्णन तक ही सीमित रहते हैं। इस तरह की रचनाओं में खासकर विवाहेत्तर सेक्स संबंधों का खुला वर्णन मिलता है। यहाँ यथार्थ का अतिरंजनापूर्ण वर्णन मिलता है। प्रकृतवादी चित्रण में यथार्थ के कारणों की तह में जाने की बजाए सिर्फ यथार्थ को पाठकों के सामने प्रकट करना होता है।

'सामाजिक यथार्थवाद 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' में लेखक सामाजिक बुराइयों के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों की आलोचनात्मक विवेचना करता है। इस तरह का यथार्थवाद व्यवस्था की खामियों को उजागर करता है परन्तु सामाजिक बुराइयों को व्यक्तिगत ढंग से विश्लेषित करता है। इस तरह के यथार्थ चित्रण का केंद्र समाज की जगह व्यक्ति विशेष होता है। यहाँ सामाजिक यथार्थ के मूल में व्यक्ति होता है, सत्ता या व्यवस्था नहीं। व्यक्ति के बदलाव को ऐसे लेखक प्रमुखता देते हैं। तोलस्तॉय और प्रेमचंद के साहित्य में व्यक्त यथार्थवाद को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

'समाजवादी यथार्थवाद' में मूलत: सत्ताध्व्यवस्था और जनता के अंतर्विरोधों को वर्गीय दृष्टिकोण से दिखाया जाता है। सामाजिक समस्याओं के मूल कारणों को आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक यथार्थ के चित्रण द्वारा प्रकट किया जाता है। यह यथार्थवाद मूलत: मार्क्सवाद से प्रेरित है। इस यथार्थवाद में रूप की जगह अंतर्वस्तु के यथार्थ का प्रकाशन किया जाता है।

'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' पर प्रमुख आलोचकों के मत

'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' पर कई आलोचकों ने अपनी राय रखी है, परन्तु इस सन्दर्भ में तीन आलोचकों – रामविलास शर्मा, निर्मल वर्मा और सुरेन्द्र चौधरी के विचार प्रमुख हैं।

'मैला आँचल' में व्यक्त यथार्थवाद के बारे में सबसे पहली बार रामविलास शर्मा ने अपने लेख 'प्रेमचंद की परंपरा और आंचलिकता' में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं – ''उसकी (मैला आँचल) चित्रण-पद्धति यथार्थवाद से अधिक प्रकृतवाद के निकट है। गतिशील यथार्थ में कौन-से तत्त्व अधिक प्रगतिशील हैं, कौन-से मरणशील, किन पर व्यंग्य करना चाहिए, किनका चित्रण अधिक सहानुभूति से करना चाहिए, वातावरण, घटनाओं आदि के चित्रण और वर्णन में कितनी बातें छोड़ देनी चाहिए और कितनी का उल्लेख होना चाहिए – कथाशिल्प की इन विशेषताओं में 'मैला आँचल' का लेखक प्रेमचंद की परम्परा से दूर जा पड़ा है।

फिर भी 'मैला आँचल' का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो उसे प्रेमचंद की परम्परा से जोड़ता है। बहुत कम उपन्यासों में पिछड़े हुए गाँवों के वर्ग-संघर्ष, वर्ग-शोषण और वर्ग-अत्याचारों का ऐसा जीता-जागता चित्रण मिलेगा। यह उसका सबल पक्ष है।''

'मैला आँचल' में व्यक्त यथार्थवाद के बारे में निर्मल वर्मा 'ऋणजल-धनजल' की भूमिका में लिखते हैं – ''एक अद्‌भुत ड्रामा हुआ! शायद ही किसी हिंदी उपन्यासकार ने उपन्यास की 'नैरेटिव' परंपरा को झिंझोड़कर उसे प्रेमचंदीय ढाँचे से बाहर निकालकर इतना नाटकीय, इतना लचीला, इतना काव्यात्मक बनाया था जितना रेणु ने! और यह नाटकीयता, यह कविता अलंकारमय और कृत्रिम नहीं थी, क्योंकि परम्पराग्रस्त किसान और आधुनिक ऐतिहासिक आन्दोलन के बीच जिस मुठभेड़ को रेणु ने अपना विषय बनाया था उसके पहले से ही बारूदी नाटकीय (?) ढेर वर्तमान थे। उनमें सिर्फ दियासलाई लगाने की देर थी।''

वे अपने मत को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं – ''रेणु ने जिस तीली से उदास, धूल-धूसरित क्षितिज में छिपी नाटकीयता को आलोकित किया था, उसी तीली से परम्परागत यथार्थवादी उपन्यास के ढांचे को भी एकाएक ढहा दिया था। यह रेणु की एक अविस्मरणीय दें और उपलब्धि है। 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' महज उत्कृष्ट आंचलिक उपन्यास नहीं हैं, ये भारतीय साहित्य के पहले उपन्यास हैं जिनमें अपनी अमित ढंग से झिझकते हुए भारतीय उपन्यास को नई दिशा दिखाई थी, जो यथार्थवादी ढाँचे से बिल्कुल भिन्न थी। उन्होंने उपन्यास की नैरेटिव परम्परा को तोड़ा – उसे अलग-अलग एपिसोड में बाँटा था, जिन्हें जोड़नेवाला धागा कथा-सूत्र नहीं, परिवेश का ऐसा लैंडस्केप है जो अपनी आत्यंतिक लय में उपन्यास को रूप और फॉर्म देता है।''

साहित्य अकादेमी द्वारा 'भारतीय साहित्य के निर्माता' नामक श्रृंखला से फणीश्वरनाथ रेणु पर प्रकाशित मोनोग्राफ में इसके लेखक और आलोचक सुरेन्द्र चौधरी ने 'मैला आँचल' में व्यक्त यथार्थवाद पर विस्तार से विचार किया है। सुरेन्द्र चौधरी रेणु के यथार्थवाद के बारे में कहते हैं – ''रेणु के उपन्यासों के साथ बृहत्तर भारतीय यथार्थ की एक नई संभावना उत्पन्न हुई थी। यह यथार्थ भारत का समकालीन यथार्थ था जो गाँव-शहर के विभाजन को तोड़ कर उभरा था। इस यथार्थ का चरित्र संश्लिष्ट था।''

अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं – ''लोक-जीवन और यथार्थ की इस संश्लिष्टता को निकटतम इतिहास में शायद पहली बार नया आधार प्राप्त हुआ था। यह आधार, अंतर्विरोधों के बावजूद, प्रेमचंद और उनके युगीन यथार्थ से भिन्न था।''

उपर्युक्त मतों के आधार पर 'मैला आँचल' में व्यक्त यथार्थवाद संबंधी विचारों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत सूत्रबद्ध किया जा सकता है–

1. तीनों आलोचकों का मत से रेणु का यथार्थध्यथार्थवाद प्रेमचंद के यथार्थवाद से भिन्न है और प्रेमचंद की परम्परा में रेणु कुछ जोड़ा है और बहुत कुछ तोड़ा है।
2. रेणु के यथार्थवाद का मूल स्रोत उनके उपन्यासों में व्यक्त आंचलिकता में निहित है।
3. रामविलास शर्मा रेणु के यथार्थ को 'प्रकृतवाद' की संज्ञा देते हैं।
4. निर्मल वर्मा के अनुसार रेणु के यथार्थ का स्रोत 'नाटकीयता' में सन्निहित है, जो परम्परागत उपन्यासों में व्यक्त नैरेटिव परंपरा के यथार्थवाद से भिन्न है।
5. निर्मल वर्मा के अनुसार रेणु के यहाँ परम्परागत यथार्थवाद की जगह आधुनिकता, रूप और फॉर्म की प्रधानता हैं।
6. सुरेन्द्र चौधरी के अनुसार रेणु का यथार्थ बृहत्तर भारतीय यथार्थ का प्रतीक है और इसका चरित्र संश्लिष्ट है। यह समकालीन यथार्थ था जो शहर और गाँव के विभाजन को तोड़कर आकार ले रहा था।

'मैला आँचल' के कथानक का ग्रामीण परिवेश होने के कारण यह स्वाभाविक था कि सभी आलोचकों ने इसकी तुलना प्रेमचंद के उपन्यासों से की। रेणु को प्रेमचंद की तुलना में अत्यंत ही निम्न कोटि का रचनाकार साबित करने वाले रामविलास शर्मा ने भी रेणु की विशेषता या सबलता ग्रामीण यथार्थ की प्रस्तुति को माना है। हालाँकि वे रेणु को यथार्थवादी की जगह 'प्रकृतवादी' रचनाकर मानते हैं। संभवत: उनकी यह धारणा इसलिए है कि रेणु ने आदर्शवाद के बगैर किसी दबाब के मुक्त भाव से यथार्थ का चित्रण करते हैं। ग्रामीण जीवन में व्यक्त नैतिक भ्रष्टाचार और अंधविश्वासों का प्रेमचंद की तुलना में रेणु ने अधिक खुलकर वर्णन किया। 'मैला आँचल' में विवाहेत्तर काम संबंधों का खुला चित्रण है। यहाँ करीबन हरेक पात्र के इस तरह के संबंधों का जिक्र है जबकि 'गोदान' में यह कुछ पात्रों तक ही सीमित है। रामविलास शर्मा शायद इसीलिए रेणु को 'प्रकृतवादी' लेखक मानते हैं।

यहाँ रोचक प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में रेणु 'प्रकृतवादी' हैं? मेरे दृष्टिकोण में रेणु को समझने की यह संकीर्ण दृष्टि है। 'प्रकृतवाद' में लेखक सिर्फ जीवन की वीभत्सता और कुरूपता का ही वर्णन करता है। जीवन के सौर्न्दय का उद्घाटन उसका उद्देश्य नहीं होता है। प्रश्न यह है कि क्या 'मैला आँचल' में जीवन का सौन्दर्य नहीं उद्घाटित किया गया है? क्या सिर्फ यथातथ्य वर्णन ही रेणु का साध्य है? क्या वे जान-बूझकर, रस ले-लेकर, कामुकता के घृणित प्रसंगों का वर्णन करते हैं? रेणु का कोई भी संवेदनशील पाठक महसूस करता है कि जीवन के अनछुए, अँधेरे पक्ष को रेणु विशेष उद्देश्य से टटोलते हैं और जीवन के सौन्दर्य को उसी भाव से भी व्यक्त करते हैं। 'मैला आँचल' की भूमिका से ही यह स्पष्ट है –''इसमें फूल भी हैं, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी – मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''

किसी यथार्थ का समग्र और मुक्त भाव से चित्रण हमेशा 'प्रकृतवाद' नहीं होता है। जीवन के गतिशीलता और सौन्दर्य के वर्णन के आधार पर ही इसका निर्धारण किया जा सकता है।

निर्मल वर्मा रेणु के यथार्थ को यथार्थवाद की कोटि से बाहर करके देखा है। उनके अनुसार रेणु के यहाँ परिवेश महत्त्वपूर्ण है और उपन्यास के 'नैरेटिव' परंपरा के अभाव के कारण 'मैला आँचल' में यथार्थवाद भी नहीं है। यह सही है कि रेणु ने परम्परागत उपन्यास के फॉर्म को तोड़ा और 'नाटकीयता' उनकी विशेषता है। यह भी सही है कि 'मैला आँचल' की कथा कई स्तरों में विभाजित है लेकिन यह कहना कि इन कथाओं को जोड़ने वाला कोई सूत्र नहीं है, रेणु के साथ अन्याय है। दरअसल 'मैला आँचल' में रेणु ने प्रेम-कथाओं, लोक-कथाओं, किवदंतियों, विश्वासों और जनश्रुतियों के माध्यम से जातीय संभावनाओं की नई तलाश की है। यहाँ 'नाटकीयता' का एक स्रोत सामाजिक आधार भी है।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि 'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' न तो 'प्रकृतवाद' है, न ही 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और न ही 'समाजवादी यथार्थवाद'। 'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' को किसी परम्परागत यथार्थवादी खांके के भीतर नहीं फिट किया जा सकता, लेकिन इस वजह 'मैला आँचल' में यथार्थवाद का अभाव कहना या इसके विशिष्ट यथार्थ वर्णन को विकृत 'यथार्थवाद' के श्रेणी में डालना, 'मैला आँचल' की विशिष्टता के साथ न्यायपूर्ण नहीं होगा। इस सन्दर्भ में सुरेन्द्र चौधरी का मत सबसे सटीक और समीचीन है। उन्होंने 'मैला आँचल' में व्यक्त 'यथार्थवाद' को 'समकालीन यथार्थवाद' की संज्ञा दी है। 'समकालीन यथार्थवाद' की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं – ''मेरी दृष्टि में समकालीन यथार्थवाद का अर्थ दो रूपों में अपने को प्रकट करता हैय एक जनता और व्यवस्था के नए अंतर्विरोधों के रूप में और दूसरा, जनता के बीच के अंतर्विरोधों के रूप में। ये दोनों ही प्रकार के नए अंतर्विरोध हमारे समाज में आजादी के बाद प्रकट होते हुए एक नया सामाजिक अस्तित्व धारण कर लेते हैं।''

'मैला आँचल' में आजादी के बाद उत्पन्न हुई जनता की आकांक्षाओं का वर्णन है। आजादी से पहले भारतीय जनता का मुख्य अंतर्विरोध ब्रिटिश साम्राज्यवाद से था। उन्हें इस शासन से कोई उम्मीद नहीं थी लेकिन आजादी मिलते ही सदियों पुरानी दबी आकांक्षाएँ उभर कर सामने आ गई। एक बृहत्तर भारतीय यथार्थ के लिए 'मैला आँचल' से जमीन तैयार होती है। यह यथार्थ प्रेमचंदयुगीन यथार्थ से भिन्न था। वास्तव में रेणु की जड़ें दूर तक गाँव की जिंदगी में पैठी हुई हैं – भारतीय गाँव, छोटे-बड़े कस्बानुमा। कभी-कभी शहर भी गाँव का आभास देता है। रेणु के समकालीन गाँव एक लंबे और कष्टकारी दौर से गुजर रहे थे। आजादी ने कम-से-कम इस कष्टकारी दौर को जनभावना के भीतर समाप्त कर दिया था। गाँवों में यह भावना जन-आंदोलनों के माध्यम से पैदा हुई थी। अपने समकालीन ग्राम-समुदायों की निरीहता के बावजूद रेणु ने उन्हें जड़ नहीं पाया था, 'रेणु के साहित्य में गाँव जीवित हैं – धड़कते हुए और प्रतिक्रिया करते हुए'।

आजादी के बाद जिन जनआकांक्षाओं का उदय हुआ उसने सत्ता और जनता के बीच के अंर्तविरोधों के साथ-साथ जनता के आपसी अंतंविरोधों को भी जन्म दिया। उदाहरण के लिए 'मैला आँचल' में जमीन पर अधिकार संबंधित घटनाओं के वर्णन को ही

लिया जा सकता है। कालीचरण, वासुदेव जैसे निम्न मध्यवर्गीय किसान कम्युनिस्ट पार्टी 'जमीन किसकी जो जोते उसकी' नारे से प्रभावित होते हैं क्योंकि वे खुद जमींदारों से शोषित हैं। लेकिन जब जमीन संथालों को देने की बात आती है तो ये धनी किसानों के साथ खड़े हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त 'मैला आँचल' में जनता के अन्य आपसी अंतर्विरोधों का भी वर्णन हैं। व्यवस्था के अंतर्विरोध जिस तेजी से बढ़ते हैं, उससे ज्यादा तेजी से जनता के अंतर्विरोध बढ़ते हैं। रेणु के यहाँ 'नाटकीयता' का स्रोत इसी अंतर्विरोध में सन्निहित है। यह 'नाटकीयता' इतिहास की शक्तियों की टकराहट से उत्पन्न हुई है जो अतीत की निरंतरता और वर्तमान अंतर्विरोधों के सन्दर्भ में नाटकीय बनती है।

रेणु समकालीन यथार्थवाद के लिए न तो कोई रूपक गढ़ते हैं और न किसी अतिरंजना की सहायता लेते हैं। हालाँकि इस नए यथार्थ को पुराने कथ्य-शिल्प के सहारे प्रकट करना संभव नहीं था। इस कारण रेणु ने एक नए तरह के कथ्य-शिल्प का प्रयोग किया जिसे उन्होंने आंचलिकता कहा। यह आंचलिकता रेणु की कमजोरी नहीं थी बल्कि नए तरह के यथार्थ को प्रकट करने के लिए अपनाई गई एक शैली थी। जिस तरह प्रेमचंद का 'गोदान' अवध के एक गाँव की कहानी कहते हुए पूरे औपनिवेशिक भारत के यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता है, उसी तरह रेणु का 'मैला आँचल' में एक अंचल विशेष की कहानी कहते हुए तुरंत आजाद हुए भारत के पिछड़े क्षेत्रों की इच्छा-आकांक्षाओं के यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गोपाल राय, उपन्यास की पहचान मैला आँचल, अनुपम प्रकाशन पटना, द्वितीय संस्करण : 2004
2. फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिये का मर्म, संपादक: भारत यायावर, विपक्ष प्रकाशन, हजारीबाग, प्रथम संस्करण : 1991
3. 'मैला आँचल' पुनर्पाठ/पुनर्मूल्यांकन, संपादक : परमानन्द श्रीवास्तव, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2001
4. सुरेन्द्र चौधरी, भारतीय साहित्य के निर्माता फणीश्वरनाथ रेणु, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, संशोधित संस्करण : 2008
5. सुवास कुमार, आंचलिकता, यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु, साहित्य सहकार, दिल्ली, संस्करण : 1998

झारखण्ड के प्राकृतिक संसाधन: वन और पर्यावरण

डॉ० मेरी मराण्डी

अतिथि व्याख्याता, एम. जे. एम. महिला कॉलेज कटिहार, राजनीति विज्ञान विभाग
पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ

सारांश

जल, जंगल, पहाड़ एवं नदिया झारखण्ड की विरासत रही है। अभ्रक, तांबा, यूरेनियम, यूरेनियम, बाक्साइट और कोयले जैसे खनिज संपदा इस राज्य की पहचान रही है। एक आंकड़े के मुताबिक देश का 40 प्रतिशत खनिज झारखण्ड से ही प्राप्त होता है। प्राकृतिक संपदा से भरपूर झारखण्ड के लोगों के रोजगार के साधन एवं टिकाऊ विकास इसी में दिखता है। आदिवासियों एवं वनों का घनिष्ट सम्बंध रहा है। वन एवं वन्य जीवों को यहाँ के जनजातियों द्वारा अपने परिवार का अंग माना गया। आदिवासियाँ की रोजी रोटी का एक मात्र साधन वन संपदा रही है। प्राकृतिक संसाधनों का नीतिगत उपयोग नहीं होने के कारण पर्यावरण और आर्थिक दोनों रुपों में नुकसान उठाना पड़ रहा है। वही आदिवासियों की भी रोजी-रोटी पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। एक तरफ जहाँ वनों का ह्रास हो रहा है वहीं दूसरी ओर आदिवासियों से उनकी जमीन छिनती जा रही है। अत: प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन, संरक्षण, आदर्श उपयोग तथा नियोजन अत्यंत आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास साथ-साथ चलना चाहिए।

मुख्य बिन्दु: प्राकृतिक संसाधन, जनजातीय समाज, पर्यावरण, संरक्षण, प्रदूषण, सुनियोजित विकास

भूमिका

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था में संसाधनो की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। संसाधन नानवीय सुख, समृद्धि एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हुए विकास के कई अवसर उपलब्ध कराता है। तभी तो कहा गया-"संसाधन, सुरक्षा और अपार संपदा दोनों के ही आधार हैं। वे शक्ति और संपदा के भी मूल हैं।" (जिमर मैन)। किसी भी क्षेत्र की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति उसके प्राकृतिक संसाधनों की प्राप्यता और उनके समुचित उपयोग पर निर्भर करती है। सतत् विकास संसाधनों का नियोजन कर मानव समाज को वर्तमान संतुष्टि देते हुए भविष्य के लिए संरक्षण और उपभोग पर बल देता है। आज के इस विज्ञान और तकनीकी युग में संसाधनों का समुचित उपयोग काफी महत्त्व रखता है, विशेषकर प्राकृतिक संसाधनों का क्योंकि अधिकांश प्राकृतिक संसाधन निकट भविष्य में समाप्त होने वाले हैं।[1]

प्राकृतिक संसाधन, प्राकृतिक वातावरण के तत्व तथा तत्वसमुच्चय है जो मनुष्य के लिए उपयोगी होते है। किसी भी क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधन उसकी आर्थिक धुरी होते हैं। किन्तु आर्थिक विकास के लिए जिस गति से प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय विदोहन तथा अविचारित शोषण हो रहा है। उससे पारिस्थितिकी असंतुलन की समस्या एंव प्राकृतिक वातावरण की गुणवत्ता का ह्रास हो रहा हैं। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों का मूल्यांकन, संरक्षण, आदर्श उपयोग तथा नियोजन प्रत्येक राष्ट्र के लिए वांछनीय हो गया है। अत: आधुनिक भूगोलविद के साथ-साथ अब राजनीतिज्ञ भी प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन में विशेष रुचि ले रहे हैं।

प्राकृति ने जो संसाधन प्रदान किए हैं, वे सभ्य जीवन व्यतीत करने के लिए अत्यावश्यक है। इसलिए इनका उपयोग अंधधुंध हो रहा है। इसका एक कारण तो तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, और दूसरा कारण है कि लोग नहीं समझ पाते कि ये संसाधन एक

दिन खत्म हो जायेंगे। विश्वव्यापी औद्योगिक विकास और प्रौद्योगिकी की प्रगति ने इन सभी संसाधनों के उपयोग दर को बढ़ा दिया है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सदियों से विकासशील राज्यों के संसाधनों का कच्चा माल के रुप में प्रभावशाली अथवा साम्राज्यवादी देशों को निर्याता किया जाता रहा है। भारत सहीत अभी भी गरीब देश कुछ बहुमूल्य खनियों का निर्यात उन्हीं देशों को करने के लिए मजबूर हैं जो अब विकसित देश कहलाते हैं। अगर आने वाले समय में खनिज भंडार समाप्त हो जाता है तो भारत को भी खुद ऊँची कीमत पर इसे आयात करने के लिए बाधय होना पड़ सकता है। इसलिए यह जानना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधन क्या हैं, इनकी उपयोगिता क्या है और इसे कितने विवेकपूर्ण ढंग से इनको काम में ला सकते है। इसमें कोई संदेह नहीं हैं कि सावधनीपूर्वक एवं योजनाब) ढंग से इस्तेमाल करने पर इन संसाधनों का लम्बे समय तक उपयोग कर सकेंगे। इसके लिए यह जरुरी है कि प्राकृतिक संसाधनों की खोज करें और उनके आरक्षित भंडारों का सही अनुमान लगाएँ। आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण प्राकृतिक संसाधनों की वैज्ञानिक खोज संभव हो सकी है। मूल रुप से संसाधन दो प्रकार के है–नवीकरणीय और गैर नवीकरणीय।

पृथ्वी के कुछ संसाधनों में प्राकृतिक रुप से वृद्धि होने के कारण समय-समय पर उनकी पूर्ती होती रहती है, उदाहरण के लिए वनस्पति। दूसरे शब्दों में ये संसाधन कभी न खत्म होने वाले हैं और इसीलिए इन्हें नवीकरणीय संसाधन कहते है। वन, चारागाह, वन्यजीवन और जलीय जीवन नवीकरणीय संसाधन है। पानी भी एक नवीकरणीय संसाधन है, क्योंकि काम में लाये जाने पर भी यह खत्म नहीं होता, इसका पुनः चक्रण होता रहता है। खनिज जैसे कुछ दूसरे संसाधन है जो एक बार इस्तेमाल होने पर हमेशा के लिए समाप्त हो जाते है। उनकी पुनरुत्पत्ति नहीं हो सकती। खनिज निक्षेपों के भण्डार लाखों वर्षो में धीर-धीरे बने थे। एक बार इस्तेमाल होने पर जलकर खत्म हो जाता है और फिर इसे वापस नहीं पाया जा सकता है। इसलिए इन्हें गैर-नवीकरणीय संसाधन कहा जाता है। इसी प्रकार मिट्टी का बनना एक बहुत धीमी और दीर्घकालिक प्रक्रिया है और इसमें करोड़ो साल लगते है। इसलिए मनुष्य की अनेक पीढ़ियों के जीवनकाल में भी इसका नवीकरण नहीं हो सकता है। इसलिए यह भी एक गैर-नवीकरणीय संसाधन है।

आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधन से ही सम्भव है। आदिवासियों द्वारा वनों में स्वंत्रापूर्कक रहकर वहीं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए सदैव वनों को संरक्षित करने का कार्य किया है। वे आदिवासी जो वनों एवं वन्यजीवों के स्वाभाविक मित्र थे, उन्हें वन का विरोधी मानते हुए उनके परम्परागत अधिकारों में कटौती की गई। हालाँकि आदिवासियों और अन्य वन निवासियों के समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा के मद्देनजर भारत की संसद ने अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 लागू किया है। यह कानून कहता है कि एक निश्चित् तारीख (दिसम्बर 2005) के पहले वन भूमि पर कब्जा करके खेती करने वाले आदिवासियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों के व्यक्तिगत और सामुदायिक अधिकारों को मान्यता दी जाएगी। कानून कहता है, औपनिवेशिक काल के दौरान तथा स्वतंत्र भारत में राज्य वनों को समेकित करते समय उनकी पैतृक भूमि पर वन अधिकारों और उनके निवास को पर्याप्त रुप से मान्यता नहीं दी गई थी, जिसके परिणामस्वरुप वन में निवास करने वाली उन अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों के प्रति ऐतिहासिक अन्याय हुआ है, जो वन पारिस्थितिकी प्रणाली को बचाने और बनाए रखने के लिए अभिन्न अंग है।' लेकिन इस कानून के क्रियान्वयन के 13 सालों का अनुभव बताता है कि कानून में की गई इस स्वीकारोंक्ति की भावनाओं को राज्य व्यवस्था ने महसूस नहीं किया है। जो मकसद था, वह पूरा नहीं हो रहा है।

शोध-प्रविधि

प्रस्तुत आलेख विश्लेषण एवं वर्णात्मक प्रवृति का है। शोध आलेख के लिए मुख्यतः द्वितीयक श्रोतों को आधार बनाया गया है। इसके लिये मुखयतः प्रकाशित ग्रन्थ, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेख, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोधकार्य इत्यादि को आधार बनाया गया है।

तथ्य विश्लेषण

छोटानागपुर का पठारी भाग तथा इसके आसपास का इलाका प्राचीन काल से ही 'झारखण्ड' के रुप में जाना जाता है। इस क्षेत्र में झारखण्ड शब्द का एक विशेष अर्थ है। इससे इस भू-भाग की विशेषताओं का बोध होता है। जंगल और पहाड़ों से समृद्ध भू-भाग। इस क्षेत्र की एक अलग पहचान है, अपनी सास्कृतिक एकता है। जल थल और आकाश मिलकर पर्यावरण को बनाते हैं। लोगों ने

अपनी सुविधा के लिए प्रकृति के इन वरदानों का दोहन किया, लेकिन भूल गए कि इसका क्या नतीजा होगा? पर्यावरण विनाश के कुफलों से चिंतित मनुष्य अपनी गलती सुधारने की कोशिश में है। जितने अधिक वन होंगे पर्यावरण उतना ही अधिक सुरक्षित होगा। वनों के बगैर आज मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। वन संसाधनों और इनके संरक्षण के मामले में झारखण्ड धनी है। हालांकि यह भी सत्य है कि पिछले कुछ दशकों के दौरान अनियंत्रित औधेगित विकास के कराण वनों को काफी क्षति पहुँची है लेकिन इधर हाल के वर्षो में जागरुकता बढ़ी है और वनों की कीमत पर विकास की परंपरा थमी है। झारखण्ड में विकास गतिविधियों में इजाफे के बावजूद वन बढ़ी है। इसलिए झारखण्ड के कदमें का राष्ट्र स्तर पर भी मान्यता मिल रही है। प्राकृतिक पर्यावरणीय प्रणाली के प्रति संवेदनशीलता झारखण्डी सभ्यता का एक विशेष गुण रहा है और यहाँ के स्थानीय समुदाय प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग की सीमा के प्रति हमेशा संवेदनशील रहे हैं।

वन संसाधन

राज्य की आर्थिक स्थिति में वनों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। झारखण्ड में वनों का विस्तार 23147.4 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में है और यह राज्य के कुल भू-क्षेत्रफल का 23.81 प्रतिशत है। यद्यपि 20 वीं शताब्दी तक राज्य में वन-विस्तार बहुत अधिक था, जो वैध-अवैध कटावों से कम होता चला गया है। राज्य में सन 1909 में ही वन संरक्षण समिति की स्थापना हो चुकी थी और सन् 1948 में यह पूर्णतया विशेष विधेयक द्वारा राजकीय संरक्षण में ले लिये गए थे, लेकिन फिर भी समुचित नीति-नियमन के अभाव में इनका ह्रास नहीं रोका जा सका। अस्सी के दशक में केंद्र सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम लागू किया, जिससे वनों के अवैध और अनावश्यक कटाव में कमी आई।

राज्य में वनों को दो वर्गों में सुरक्षित और संरक्षित में रखा गया है। इसमें राज्य का 19 प्रतिशत वन क्षेत्र (4359 वर्ग कि.मी.) सुरक्षित और शेष 81 प्रतिशत क्षेत्र संरक्षित वन की श्रेणी में आता है।[2] सारा राज्य वनों से आच्छादित है, लेकिन गिरिडीह, हजारीबाग, सरायकेला, चतरा, पलामू, गढ़वा और सिंहभूम के तीन-चौथाई भाग पर वनों का विस्तार है। वनों से राज्य को अनेक लाभ होते हैं। वनात्पादों में इमारती और जलावन लकड़ी के अलावा बाँस, लाह, गोंद, शहद, तेंदूपत्ता, कत्था, महुआ, अंजन और पशुओं के लिए चारा भी मिलता है। राज्य में वनों की लकड़ी की उत्पादता कुछ कम है, फिर भी छह लाख घन मीटर लकड़ी प्रतिवर्ष प्राप्त हो जाती है। इन लकड़ियों में शीषम, साल, महुआ, आम, कटहल, अजन, सेमल, कुसुम आदि प्रमुख है।

लाह इन वनों का मुख्य उत्पाद है, जो मुलायम डालों में रहने वाले लाह के कीड़ों के शरीर से निकले चिकने और चिपचिपे पदार्थ से मिलता है। प्रतिवर्ष लाह को चार बार एकत्र किया जाता है। मौसम के आधार पर ज्येष्ठ, आषढ़, कार्तिक और अगहन में यह मिलता है। गरम मौसम में लाह का उत्पादन लगभग 82 प्रशित होता है, जबकि सर्दियों में 18 प्रतिशत लाह को शुद्ध करने के लिए राज्य में लगभग 37 कारखाने हैं। लाह का प्रयोग वार्निश, चमड़ा उद्योग, दवाओं, बरतन, विद्युत-निरोधक वस्तुओं आदि को बनाने में किया जाता है जनजातीय जनसंख्या ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग लाह एकत्र करने के कार्य में जुटा है।

इमारत और जलावन लकड़ी के अतिरिक्त वनों से प्राप्त लकड़ी से बहुत से मानवोपयोगी सामान बनाने में काम आती है। सेमल की लकड़ी से तख्ते, पेटियाँ आदि बनाई जाती हैं तो कुसुम की लकड़ी से औजारों के टिकाऊ दस्ते बनाए जाते हैं। बाँस का प्रयोग कागज के उत्पादन और अन्य बहुत से कार्यों में होता है। व्यापार और औषधि के लिए कत्था, गोंद, सबुआ व तेदू के पत्ते उपयोगी होते हैं।

राज्य के आरंभ से ही वनों का ह्रास होता रहा है। जनजातियों की झूम कृषि से वनों का अंधधुंध कटाव किया है और फिर बढ़ती जनसंख्या ने आवासीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन वनों पर प्रहार किए। इसके साथ ही पशुओं की बढ़ती संख्या ने इन वन क्षेत्रों को पूर्ति न होने वाली क्षति पहुँचाई। आज राज्य में लगभग 75 लाख मवेशी है, जो चारागाहों के अभाव में इन वनों पर आश्रित हैं और जो केवल 25 लाख मवेशियों को चारा देने की क्षमता रखते हैं। इसके बाद बेरोजगारी, ईंधन की ज्यादा खपत और तस्करी ने इन वनों को बहुत हानि पहुँचाई है। कीमती लकड़ियों की तस्करी रोके नहीं रुक रही। इसके अलावा राज्य में कई रेलवे लाइनों, उद्योग-धंधें सड़कों और आवासीय आवश्यकताओं ने भी इन वनों का पतन किया है। एक आँकड़े के अनुसार कभी राँची जिले में 2281 वर्ग मील का विस्तार था जो घटते-घटते 1278 वर्ग मील रह गया है। राज्य सरकार ने वन नीति में आवश्यक सुधार करने के प्रयासों को गति अवश्य दी है, लेकिन अभी यह धीमी है।

वन्यजीव संसाधन

जैविक संसाधन के अन्तर्गत वनस्पति के बाद वन्यजीव का स्थान है। वन्यजीव पारिस्थितिकी संतुलन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व के है। पारिस्थितिकी संतुलन पर ही मानव जातियों का स्थायी और मजबूत विकास निर्भर करता है। वन्यजीव संसाधन पारिस्थितिकी संतुलन के साथ-साथ आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के साधन प्राप्ति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, अर्थात् इनसे उपर्युक्त उन्नति के साधन भी प्राप्त होते है।3 मानव विकास के इतिहास से स्पष्ट होता है कि मानव जीवन में भोजन, वस्त्र, परिवहन और संस्कृति के साथ वन्यजीवों का गहरा संबंध है। आज भले ही अनेक वन्यजीवों को मानव ने पालतू बना लिया है, पर मांस, चमड़ा, शहद औषधि आदि सामग्री के लिए बहुत हद तक आज भी वन्यजीव पर ही निर्भर करते है।[4] अतः इस दृष्टि से झारखण्ड राज्य के वन्यजीव संसाधन का अध्ययन भी अपरिहार्य है।

झारखण्ड के वन क्षेत्रों में निवास करने वाले वन्यजीवों की संख्या में गिरावट देखी जा रही है। जैसा कि स्वयं के सर्वे, वन विभाग के कर्मचारियों, वनवासियों आदि से प्राप्त जानकारी से स्पष्ट होता है। किन्तु इसके कारणों की गहराई से जानने हेतु शोधकर्ता ने वन अधिकारियों, लम्बे दिनों से कार्यरत वन विभाग के कर्मचारियों वनवासियों, बुद्धिजीयों आदि से सम्पर्क किया तो पाया कि वन्यजीवों की संख्या में निरन्तर गिरावट के पीछे निम्नलिखित कारक जिम्मेदार है।

1. वनों की अन्धधुंध कटाई।
2. वनवासी एवं वन के ठीक बाहर रहने वाले ग्रामीणों में वन तथा वन्यजीवों के महत्त्व की जानकारी का अभाव।
3. वनवासियों में व्याप्त गरीबी एवं बेरोजगारी।
4. तस्करों का उच्च अधिकारियों से लकेर निम्न स्तर के कर्मचारियों पर प्रभाव।
5. सूखा।
6. उचित वन प्रबन्धन का अभाव।
7. वन विभाग के कर्मचारियों तथा सरकार की लापरवाही।
8. वनों में जल प्रबन्धन का अभाव।
9. वन्यजीवों के अस्थिपंजर को देश तथा विदेश में औषधिक के रुप में मांग।
10. वन्यजीवों के उचित देखभाल का अभाव।
11. वन कर्मचारियों का कम पढ़ालिखा तथा अप्रशिक्षित होना।
12. वन कर्मचारियों को कार्य, जोखिम आदि की तुलना में कम वेतन मिलना।
13. वनों एवं वन्य प्राणियों के रख-रखाव हेतु पर्याप्त धन का अभाव।
14. वन्यजीवों एवं वनों की संवृद्धि, संरक्षण आदि हेतु स्थानीय स्तर पर नियोजन का अभाव
15. वन एवं वन्यजीवों को आग, महामारी, सूखा आदि से निपटने हेतु आधुनिक उपकरणों का अभाव।
16. वन एवं अभयारण्य क्षेत्रों से रेलमार्ग, राष्ट्रीय राज-मार्ग आदि गुजरना।
17. वनवासियों का बिचौलियों, महाजनों आदि द्वारा आर्थिक शोषण।
18. वनवासियों में व्याप्त अशिक्षा।
19. रोजगार का अभाव।
20. वन विभाग तथा उसके कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार।
21. कृषि क्षेत्रों में विस्तार

खनिज संसाधन

खनिज संसाधन विश्व के मूल्यवान संसाधनों में से सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। विशेषकर तब जब विश्व तीव्र औद्योगीकरण एवं विकास के दौर में हैं। खनिज के अभाव में कोई देश न तो औद्योगिक विकास कर सकता है और न ही स्वस्थ रह सकता हैं। नमक,

आयोडीन, "लुओरीन, आयरन जैसे खनिज तो मानव के भोजन के जीवन रक्षक तत्व हैं। इसके बिना कोई भी मानव समाज लम्बे दिनों तक स्वस्थ जीवन नहीं जी सकता। सौभाग्यवश झारखण्ड धत्विक और अधत्विक खनिज सम्पदा के दृष्टिकोण से न केवल भारत में वरन् विश्व के मानचित्र पर एक अहम स्थान रखता है। इस राज्य के गर्भ में भारत का लगभग 40 प्रतिशत खनिज भंडार संचित हैं देश का 47 प्रतिशत अभ्रक, 8.33 प्रतिशत कायनाइट, 28 प्रतिशत कोयला, 25 प्रतिशत ताँबा, 33 प्रतिशत ग्रेफाइट, 3. 65 प्रतिशत बॉक्साइट, 23 प्रतिशत लौह अयस्क एवं 95 प्रतिशत पायराइट उत्पादन करता है। इसके अलावा मैगनीज, क्रोमियम, चूना पत्थर, चीनी मिटट्री, फायर-क्ले, चाँदी, डोलो माइट, एवरेस्ट, यूरेनियम, गंधक, आदि भी पाये जाते है। मूल्य की दृष्टि से भारत के कुल खनिज उत्पादन का 26 प्रतिशत और उत्पादन की दृष्टि से देश के कुल उत्पादन का 36 प्रतिशत झारखण्ड में उत्खनित किया जाता है।

खनिज के क्षेत्र में राज्य सरकार ने खनिजों के खोज के लिए विशेष योजना बनाई है। जिसके अन्तर्गत खनिज पत्थर डोलोमाईट, बाक्साईट, सोना, प्लेटिनम, ग्रेफाईट, काईनाईट आदि के अन्वेषण और वास्तविक भण्डार का पता लगाया जायेगा।[5] इसके अतिरिक्त साहेबगंज, गोड्डा, पाकुड़ दुमका, कोडरमा, चतरा, हजारीबाग, गिरीडीह और सिंहभूम जिलों में बहुमूल्य रत्नों की भी खोज करने की योजना बनाई गई है। वर्तमान में झारखण्ड राज्य में मात्र एक प्रयोग शाला हजारीबाग में स्थित है और इसकी एक छोटी शाखा चाईबासा में अवस्थित है।[6] इन दोनों के उपकरण 30 वर्ष पुराने हैं जिसके कारण राज्य सरकार ने उसके आधुनिकीकरण की योजना बनाई है।

खनिज संसाधन किसी प्रदेश का सर्वप्रमुख प्राकृतिक संसाधन होता है। इसका उपयोग कृषि, आखेट, पशुपालन, उद्योग, कृषि उपकरण, औद्योगिक उपकरण, यातायात के साधन तथा घरेलू अपकरण आदि में तो होता ही है इसके अतिरिक्त गृह निर्माण, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण आदि में भी होता है। आधुनिक युग में औद्योगिक संस्कृति का विकास खनिज एवं ऊर्जा-संसाधन के दोहन और विस्तृत उपयोग के कारण हुआ है। यही कारण है कि कल के जनविहीन मरुस्थल एवं वन क्षेत्र खनिज प्राप्ति के बाद आज के विकासित क्षेत्र बन गये हैं। झारखण्ड प्रदेश की भी कमोवेश यही स्थिति है। यह संयोग ही है कि झारखण्ड उस खनिज पठार का अंग है जिसे "भारत का रुर" कहा जाता है। भारत की "अभ्रक राजधानी" के रुप में प्रसिद्ध कोडरमा जनपद में अभ्रक, गार्नेट, क्वार्टज, फेल्डस्पार सोप स्टोन, बेरील, डोलेराइट जैसे बहुपयोगी एवं कीमती खनिज पाये जाते हैं।

वन और पर्यावरण

आधुनिक समय में वनों, वनस्पतियों तथा वृक्षों के निरंतर विनाश से पर्यावरण के प्रदूषित होने की समस्या दिनोंदिन गगन को छू रही है। वनों को विधवंस करने के फलस्वरुप संसार का 25 प्रतिशत भाग रेगिस्तान के रुप में परिवर्तित हो गया है। वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, मत्स्य और जंगली पशु-पक्षी नष्ट होते है, धरती की उर्वरता विदा हो जाती है। एक तरफ वन विनाश से पर्यावरण अशुद्ध होता है तो दूसरी तरफ लकड़ी-दहन से वायुमंडल में कार्बनडाइ-ऑक्साइड की वृद्धि होती है।[7]

पर्यावरणीय संकट मानव जीवन के लिये एक विकट समस्या बन गयी है। जिससे मानव जीवन का विकास अवरुद्ध हो गया है। प्राकृतिक पर्यावरणीय संकट पर्यावरण की वह स्थितियाँ है जिनसे अनजाने ही मानव जीवन को हानि होती है और विविध प्रकार की स्थाई अथवा अस्थाई सम्पत्ति की क्षति होती है। पर्यावरण प्रदूषण विश्व की सर्वाधिक चर्चित एवं गम्भीर समस्या है क्योंकि वर्तमान समय में इसने इतना विकराल रुप धारण कर लिया है कि सम्पूर्ण मानव जगत खतरे में पड़ गया है। पर्यावरण के स्वस्थ स्वरुप के बिना स्वस्थ जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। बिना उचित एवं उपयुक्त परिवेश के कोई भी व्यवस्था विकास नहीं कर सकती। शिक्षित व्यक्ति की जागरुकता निश्चित रुप से एक बड़े क्षेत्र को प्रभावित करती है यदि निम्न कार्यों को राज्य सरकार और भी व्यापक रुप से संचालित करें तो निश्चित रुप से पर्यावरण सुरक्षा कार्य में द्रुतगति लाई जा सकती है।

वन-नाशन कमोबेश एक विश्वव्यापी परिघटना है, जिससे अधिकतर विकासशील देश प्रभावित हैं। जनसंख्या वृद्धि तथा उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार इसके प्रमुख कारण हैं। एक अन्य मुख्य कारण है-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास, जिसने मानव को अनेक विकल्प प्रदान कर बेहतर वस्तुओं को पाने की कामनाओं को उकसाया है, जिसके कारण विविध रुपों तथा आकारों में वस्तुओं का उत्पादन होता है। रेल, सड़क तथा वायुयान सरीखे परिवहन के साधनों के क्षेत्र में जबरदस्त उन्नति ने लोगों का अपने मनपसन्द स्थानों पर जाना सुगम बना दिया है। इससे निश्चित रुप से जन-प्रवजन को बढ़ावा मिला है। सुलभ यातायात साधन उपलब्ध

होने से, लोग सदैव अपनी पसन्द के एक बेहतर स्थान पर जाना चाहते हैं, किन्तु इस वजह से कम सौभाग्यशाली लोग हाशिए पर आ गए। स्वाभाविक रुप से उन्होंने अपनी खोई जीवन-शैली को पुनर्स्थापित करने के लिए नए स्थानों, खासकर नदी-तट तथा वनभूमि के निकट, जाना प्रारम्भ कर दिया।

झारखण्ड में उपर्युक्त कारणों के अलावा राजनीतिक-अस्थिरता भी वनों के बेतहाशा विनाश का एक बड़ा कारण है। यहाँ के पठारी भागों में भोजन तथा घरेलू उपभोग की अन्य वस्तुओं की कभी कोई कमी नहीं रही। स्थानीय लोग शान्तिपूर्वक रहते थे। आज से यही कोई 50-60 वर्ष पूर्व तक, जन साप्ताहिक हाट से कुछ लीटर कैरोसिन तेल तथा सामान्य नमक खरीदने के अलावा, लगभग आदिम जीवन ही व्यतीत करते थे। उनकी आवश्कताएँ सीमित थीं। वे सरकंडों, घास-फूस तथा मिट्टी से बनीं झोपड़ियों में रहते थे। ऐसे जीवन के लिए बहुत सीमित वन-संसाधनों की आवश्यकता थी फिर भी, इस दौरान बहुत से परिवर्तन हुए हैं। पहला बॉग्लादेशीय तथा अन्य विदेशियों का निरंतर प्रवेश, जिसके परिणामस्वरुप बाहर से आने वाले इन लोगों ने झारखण्ड के खाली पड़े क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। पूर्वोतर का सीमान्त प्रान्त होने के कारण झारखण्ड को यह घुसपैठ झेलनी पड़ी। इस वजह से पिछले दो दशकों में, इस प्रान्त की जनसंखया में अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। बाहरी लोग सीधे वन प्रदेशों में ही दाखिल नहीं हुए बल्कि उन्होंने सीधे आकर पहाड़ी तथा मैदानी भाग के निर्जन खाली क्षेत्रों पर कब्जा जमा लिया। यहाँ के मूल निवासी झारखण्ड के स्थानीय लोगों-विशेषकर आदिवासियों में स्थान बदल-बदल कर खेती करने का रिवाज़ है। एक स्थान पर मिट्टी की उर्वरता घटते ही, वे उपजाऊ ज़मीन की खोज में अन्य स्थान पर चले जाते हैं। सुगमता धन-धन्य से परिपूर्ण भूमि पर वे एक यायावर-जनसमूह का जीवन जीते हैं। यह भी स्वाभाविक है कि ऐसा अस्थिर जीवन कभी स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकता। उन्हें अपनी भूमि पर जनसंख्या के दबाव का आभास होने लगा।[16]

अतः उनमें से कुछ ने स्थायी रुप से निवास करने का निर्णय किया, जबकि बाकी लोग धन-धन्य से प्रचुर भूमि की तलाश में स्थान बदलते रहे। इस प्रकार वन क्षेत्रों में कमी होने लगी और पर्यावरण प्रभावित होने लगा।

वन किसी भी देश की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं। इनसे न केवल उसकी जलवायु प्रभावित होती है वरन् देश के लिए कच्चा माल व अनेक साधन मुख्य व गौण उत्पादन उपलब्ध होते हैं। वनों का संरक्षण इस के लिए तो महत्वपूर्ण है ही, लेकिन समूचे क्षेत्र, प्रदेश में तापमान वर्षा आर्द्रता व परिस्थितिकी सन्तुलन रखने की दृष्टि से भी विशेष महत्त्वपूर्णहें अतः अब विश्व के विभिन्न देशों में वनो के नष्ट करने पर रोक लगाई गई है तथा कानून बनाये गये हैं जिनका पालन कड़ाई से किया भी जाता है। फिर भी विश्व के स्वल्प विकसित देशों में वनो को निरन्तर बेरहमी से काटा जाता रहा है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या व आर्थिक विकास के कारण झारखण्ड में कई पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इस के पीछे शहरीकरण व औद्योगीकरण में अनियंत्रित वृद्धि, बड़े पैमाने पर कृषि का विस्तार तथा जंगल का नष्ट होना है। झारखण्ड में अवैज्ञानिक तरीके से की जाने वाली खनन प्रक्रियाऐं तथा पत्थर निकालने वाली मशीनें सभी प्रकृति के लिए अभिशाप बन रही है। इमारती लकड़ी का निष्कर्षण वनों के विनाश का एक प्रमुख कारण है। झारखण्ड के कई राज्यों में प्रचुर मात्र में खनिज पदार्थों का खनन किया जाता है। झारखण्ड के जंगल में लौह तथा अलौह खनिजों का पर्याप्त भण्डार है। इन पदार्थों की अधिकांश खाने वनों के आस-पास वनों में ही स्थित है। इनके खनन व अन्य प्रकार से उत्पन्न मलबा वनों को प्रतिकूल रुप से प्रभावित करते हैं। प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दे में वन और कृषि-भूमिक्षरण, संसाधन रिक्तीकरण (पानी, खनिज, वन, रेत, पत्थर आदि) पर्यावरण संरक्षण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव विविधता में कमी, पारिस्थितिकी प्रणालियों में लचीले की कमी, गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा शामिल है। झारखण्ड में पर्यावरण संरक्षण और वन्य जीवन के अस्तित्व की रक्षा के लिए वनों एवं पेड़ पौधें की महत्ता को प्रारंभ से ही स्वीकार किया है सरकार ने जनोन्मुखी नीति भी बनाई है।

छोटा नागपुर संथाल परगना से लेकर सारंडा तक फैले शाल के जंगलों के बीच बसे एक संपूर्ण जंगली और गैर-जंगली बस्तियों में सारी चीजें इन्हीं जंगली परिस्थितियों से निकली हैं, ऊंची-नीची पहाडियों, गहरी खाइयों, पठारों के साथ जंगल, जलवायु की दशाओं में परिवर्तन और उनके साथ बदलती मानवीय बस्तियों में भी जंगल के तत्व ढूंढे जा सकते हैं कल-कल बहती नदी, नालों

के बीच पशु, पक्षी, हाथियों के अनेकों झुंड एक ऐसे पारि-तंत्र निर्माण करते है, जिसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच निकटतम संभावित संबंध देखने को मिला है। गांवों में बसे स्थानीय समुदाओं का जीवन उसी तरह छल-प्रपंच से दूर है, जिस तरह प्रकृति की निश्छलता। झारखण्ड के घने जंगल दो दशक पहले तक दुनिया भर के शोधकर्ताओं, वैज्ञानिक सैलानियों में जिज्ञासा का भाव पैदा करते थे। एक ओर जहां रांची से लेकर नेतरहाट की पहाडियां सालभर हरियाली की चादर ओढ़े रहती थी, तो वहीं दूसरी ओर सारंडा के घने जंगल में हाथियों के झुंड। प्रकृति के अद्‌भूत और विहंगम दृश्य में जंगल लगा कर पर्यावरण बचानेवाली सरकार सारंडा के जंगल का औद्योगीकरण कर रही है। 15 नवंबर 2000 से अब तक झारखण्ड सरकार ने बड़ी-बड़ी कारपोरेट कंपनियों के साथ लगभग 104 समझौते दस्तखत किए हैं। सेंसेक्स की बढ़ती ऊंचाइयों में याद भी नहीं रहता कि आज भी जंगलों में रहनेवाले लोग बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। कोयले की अंधधुंध खनन ने आज नॉर्थ कर्णपुरा, साउथ कर्णपुरा, इस्ट बोकारो, वेस्ट बोकारो, झरिया, डाल्टेनगंज के जंगलों को तबाही के मुहाने पर ला खड़ा किया है। यही स्थिति पश्चिमी सिंहभूम के सारंडा में लौह अयस्क खनन से हुई है। नवामुंडी और जामदा से लेकर चाईबासा तक अयस्क खनन का असर स्थान, आबादी और जंगलों को देख कर महसूस किया जा सकता है खनन करने वाली छोटी-बड़ी कंपनियों ने गैर-कानूनी रुप से सघन सारंडा को भीतर ही भीतर खोखला कर दिया है। नेतरहाट की पहाडियां बॉक्साइट खनन से अपनी सुंदरता को खोने लगी है। लोहरदगा के इलाके भी बॉक्साइट खनन से तबाह हो रहे हैं। सारंडा की नहीं, बल्कि झारखण्ड तमाम जंगलों और जंगल में रहने वाले लोगों की स्थिति दयनीय है। इन इलाकों के वनवासी पीने के पानी से लेकर भोजन, स्वास्थ्य, रोजगार, हर काम के लिए जंगल पर ही निर्भर रहे है। और आज भी सरकार भले ही अपने स्तर से जंगल के इन गांवों में सुविधाएं पहुंचाने में नाकाम रही है। लेकिन इन वनवासियों को उजाड़ने का पूरा मसौदा जरुर तैयार कर रखा है। नक्सलग्रस्त घोषित इन इलाकों की सुध अगर सरकार ने पहले ही ली होती तो स्थिति आज इतनी दुखदायी न होती। आज किसी भी सरकारी गैर-सरकारी संस्था के पास ऐसा कोई आंकड़ा नहीं है, जिसे इस इलाके में जंगल और जंगलवासियों के संदर्भ में हुई तबाही का सही-सही आकलन किया जाए।

निष्कर्ष

झारखण्ड के जंगलों को केवल पर्यावरण की दृष्टि से देखना उचित नहीं है। झारखण्ड के जंगलों में अभी भी सजीवता का महौल है, जिसमें न सिर्फ जंगली पेड़, पौधे, बल्कि मनुष्य तक एक सा मिलकर रहते हैं। झारखंड जैसे विकासशील राज्य के लिये पर्यावरण संरक्षण एक अनिवार्यता है। उत्पादन की निरंतरता के लिये प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण भी आवश्यक है। जंगल सदियों से बड़ी संख्या में लोगों की आजीविका के साथ साथ औद्योगिक गति का मुख्य आधार रहे हैं झारखण्ड के जंगलों को बचाने के लिए वनाधिकार कानून 2006 को अच्छे से लागू करना होगा तथा सरकार को आदिवासियों की परंपराओं, संस्कृति को ध्यान में रखते हुए कानून का निर्माण करना हो। वन आधारित उद्योग, रेशम कीट पालन, मधुमक्खी पालन, फूलों एवं जड़ी बूटी की खेती मछली पालन आदि कामों में ग्रामीणों को शामिल कर उनके जीवन स्तर में सुधार किया जा सकता है तथा पर्यावरण का संरक्षण भी किया जा सकता है।

झारखंड के आदिवासी चाहते हैं कि जंगल के संरक्षण एवं संवर्घन के लिये ग्राम सभाओं को पूरी जिम्मेदारी मिलनी चाहिये झारखण्ड में वन क्षेत्र का नया नक्शा बनना चाहिये ताकि आम लोगों को पता चल सके कि किस गाँव में कहाँ कितने जंगल हैं। इस तरह की और भी कई महत्वपूर्ण और गौरतलब बातें हैं, जिन शर्तो पर लोग सरकार के साथ मिलकर इस मुद्दे पर काम करना चाहते हैं, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। परिणामत! जंगल का विनाश जारी है, जिससे आदिवासी समाज का जीवन अस्त व्यस्त हो गया है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि झारखण्ड का पर्यावरण असंतुलन का शिकार हो रही है और इस असंतुलन को सबसे ज्यादा सहन करना पड़ रहा है राज्य के आदिवासियों को। प्रकृति से आदिवासियों के विशेष रिश्ते को नकारना मुश्किल है। इसलिये पर्यावरण को बचाना है तो किसी भी कार्यक्रम में आदिवासियों की भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी।

संदर्भ सूची

1. विकास यात्रा, फॉरेस्ट इनवारमेंट डिपार्टमेंट ऑफ झारखण्ड, (2011), पृ 6-7
2. डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. एफ. एस आई, ओ आर जी. इन/कॉवर 2011/, झारखंड पीडी एफ
3. उमेश कुमार वर्मा और उदय प्रताप सिंह, (2011), औद्योगिक विकास और पर्यावरण संरक्षण, मार्च, पृ 33
4. अग्रवाल, अनिल एण्ड नारायण सुनिता, (1998), इडीएस, डाईग विजडम: राईज, फॉल एण्ड पोटेन्शिटाल ऑफ इंडियाज ट्रेडिसनल वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम, सीएसई, नई दिल्ली, पृष्ठ 123-124
5. पूर्वोक्त, (2016), झारखण्ड के खनिज संपदा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ 90
6. दामोदर शर्मा, हरिशचन्द्र व्यास, (2007), आधुनिक जीवन और पर्यावरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 292-294
7. शुक्रदेव प्रसाद, (2006), पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 45-46
8. सिंह एम. के. (2007), झारखंण्ड विकास एवं राजनीति: संभावनाएँ और चुनौतियाँ, गगनदीप पब्लिकेशन्स, दिल्ली
9. रघुवंशी कमलेश (2013), (संपादक), दैनिक जागरण और कितना वक्त चाहिये झारखण्ड को, प्रभात प्रकाशन दिल्ली
10. अनुपम मिश्रा, (2001), भूमि, जल, वन और हमारा पर्यावरण, नवचेतन प्रकाशन, वराणसी, पृष्ठ 62-63

प्राचीन भारत में श्रम की अवधारणा एवं श्रमिक समुदाय का स्वरूप: एक विश्लेषण

आशीष फोगाट

सहायक आचार्य, इतिहास, राजकीय कन्या महाविद्यालय, होद (सीकर)

श्रम ने मानव सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मानव सभ्यता प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान तक जिस विकसित अवस्था में पहुँची है उसके पीछे मानवीय श्रम की महत्ती भूमिका रही है। सनातन भारतीय परम्परा में कर्म को यज्ञ की संज्ञा दी गयी है-''**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**''[1]

सनातन भारतीय परम्परा में श्रम को व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन दोनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकृति मिली है। धर्मशास्त्रों में व्यक्ति की कर्त्तव्य पालन की अवधारणा को परलोक के साथ मिलाकर व्यक्ति को कर्त्तव्य पालन के प्रति रुचिवान रखने का प्रयास किया गया है। क्योंकि कर्त्तव्य विहीन व्यक्ति केवल अपने जीवन को ही निरूद्देश्य नहीं बनाता बल्कि समाज में भी निराशा का भाव उत्पन्न करता है।

धर्मशास्त्रों में वर्णित वर्ण विभाजन श्रम विभाजन का ही एक रूप है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के लिए कर्म विधान के निर्धारण में गफण और कर्म को आधार बनाया गया है। ''**चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः**''[2] गीता चारों वर्णों की सृष्टि में गुण और कर्म की महत्ता को हमारे सामने रखती है। प्राचीन व्यवस्थाकारों द्वारा वर्णित वर्ण विभाजन का मुख्य उद्देश्य योग्यतानुसार कार्य विभाजन करके समाज को सुदृढ़ता प्रदान करना था।

ऋग्वेद[3] महाभारत[4] विष्णु पुराण[5] मत्स्य पुराण[6] वायु पुराण[7] में वर्णों की दैवी उत्पत्ति को स्वीकार किया गया है। वर्ण व्यवस्था को दैवी बनाने का भारतीय धर्म शास्त्रकारों का उद्देश्य यही था कि सभी वर्ण ईश्वर के भय से अपने-अपने वर्ण के अन्तर्गत रहते हुए अपने विहित दायित्वों का निर्वहन करें और वर्ण व्यवस्था को आघात पहुँचाने का प्रयास ना करें। वर्ण व्यवस्था का स्वरूप बहुत कुछ गुणों के आधार पर भी निर्धारित हुआ।

हिन्दू सामाजिक विभाजन में कर्म का सिद्धान्त विशेष महत्त्व रखता है। भारतीय धर्म शास्त्रकारों द्वारा कर्म के आधार पर ही वर्णों का वर्गीकरण किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी का कार्य विभाग किया गया था। ये सभी स्व स्व विभाजित कार्यों को करके जीविकावृति को अपनाते थे। इन्हीं वर्णगत कर्मों को वर्ण-धर्म भी कहा गया है जो प्रमुख रूप उनके कर्त्तव्य से सम्बद्ध था। भारतीय अवधारणा मार्क्सवादी विचारकों से भिन्न है। भारतीय अवधारणा के अनुसार सामाजिक जरूरतों, व्यक्तिगत क्षमताओं और सामाजिक संबंधों के चलते स्वतः ही सामाजिक वर्ग विभेद बनते चले गये। पुरातन व्यवस्थाकार सदैव इस बात के लिए प्रयासरत रहे कि वर्ग विभेद पारस्परिक जातिगत विद्वेष में परिवर्तित न हो। अतः उन्होंने ऐसी सामाजिक संरचना को स्वीकार किया जिसमें सभी की एक सुनिश्चित सहभागिता हो और प्रत्येक वर्ग बिना किसी हीन-भावना के अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते रहें।

श्रमिक समुदाय का स्वरूप

कौटिल्य ने श्रमिकों को न्यायिक तथा सामाजिक अधिकार प्रदान कर उनकी दशा को सुधारने का प्रयत्न किया। वो स्वामियों को अपने भृत्यों को प्रताड़ित करने तथा सड़ी-गली वस्तुऐं उनसे फेंकवानें का अधिकार नहीं देते। [8] मौर्य काल से पूर्व तक शूद्रों की गणना आर्यो में नहीं होती थी। कौटिल्य शूद्रों को आर्य मानते हैं, उनके अनुसार शूद्रों की उत्पत्ति भी एक ही जगह से हुई है और धोबी, बुनकर आदि श्रमिक जातियाँ समाज का अभिन्न अंग होने के कारण आर्य हैं। [9] आर्य होने के कारण वे अपने बच्चों

का दासता के निमित्त विक्रय नहीं कर सकते थे। [10] कौटिल्य प्रयत्नरत रहे कि शूद्रों का उच्च जातियों के साथ संबंध स्थापित हो। कौटिल्य शूद्रों को अन्याय के विरूद्ध न्यायालय में अपील करने का अधिकार देते हैं। [11] कुशल श्रमिकों को सम्मानित तथा पुरस्कृत करने का भी प्रावधान था। शिल्पकारों को क्षति पहुँचाने वाले के लिए मृत्युदण्ड का विधान था। [12]

बीमारी या अन्य किसी वजह से यदि श्रमिक कार्य सम्पादित करने में असमर्थ होता था तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। श्रमिकों के लिये छुट्टियों का भी प्रावधान था। जो श्रमिक छुट्टी के दिन श्रम करते थे, उन्हें अतिरिक्त वेतन देने का भी प्रावधान था। [13] कुछ कानूनी असमानताऐं अशोक द्वारा समाप्त की गईं। अशोक ने सभी जातियों को समान कानूनी अधिकार दिये थे। [14] अशोक ने ग्यारहवें और तेरहवें शिलालेख में स्वामियों को श्रमिकों और भृत्यों के प्रति उचित व्यवहार के लिये निर्देशित किया है। [15] उपरोक्त तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि मौर्य काल में श्रमिकों की स्थिति अच्छी थी। और उन्हें कानूनी संरक्षण प्राप्त था। मौर्योत्तर काल में शूद्रों और वैश्यों के मध्य सामाजिक भेदभाव मिलते जा रहे थे। परन्तु शूद्र समुदाय प्रधानत: पृथक-पृथक भूस्वामियों के खेतों में कृषि से संबंधित श्रमजीवी खेतीहर श्रमिक कार्य सम्पादित किया करता था। [16] पहले की अपेक्षा अब शिल्पी अधिक स्वतंत्र होकर अपना कार्य सम्पादित करते थे। यद्यपि शूद्र श्रमिकों के रहन सहन में कोई विशेष परिवर्तन द्रष्टव्य नहीं होता।

अन्त:प्रवेशी घरेलू सेवकों पर मालिक अधिक विश्वास किया करते थे। अत: मनु के अनुसार योग्य गवाह के अभाव में सेवक भी साक्षी हो सकता है। [17] मनु विशेषकर दीवानी मामलों में जिन श्रमिकों को गवाह बनाने के लिए उपयुक्त मानते हैं, वे हैं शिल्पकार, कलाकार और नृतक। [18] जन्मजात दास गवाह नहीं बन सकते थे। [19] मनु के अनुसार शूद्रों को शिल्पियों का व्यवसाय तभी अपनाना चाहिए जब द्विजातियों की सेवा से जीविकोपार्जन नहीं होता हो। [20]

तत्कालीन समाज में दासों और भृत्य श्रमिकों को सामान्य नागरिकों की तरह अधिकार सम्पन्नता नहीं दी गई थी। कुछ श्रमिकों की सामाजिक स्थिति उच्च वर्णों के समकक्ष नहीं थी। मनु के अनुसार स्नातक को लौहकार, निषाद, अभिनेता, स्वर्णकार, टोकरी निर्माता, शिकारी कुत्ते पालने वाला, शौण्डिक, धोबी और रंगरेज का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। [21] मनु यह भी मानते है कि स्नातक को चाण्डालों, पुक्कुसों, मूर्खों और अन्त्यजों के सानिध्य से बचना चाहिए। [22] यहां यह ध्यातव्य है कि स्नातक जो सामान्यत: ब्राह्मण ब्रह्मचारी होता था के लिए उक्त बात कही गई है जिससे उसके अन्दर किसी प्रकार का दुर्गुण उत्पन्न नहीं हो अन्यथा वह स्नातक अपने स्नातक धर्म से च्युत हो सकता था।

पूर्व की अपेक्षा इस समय बड़े पैमाने पर शिल्पियों के संघ निर्मित हुए थे। महावस्तु ने एकादश प्रकार के शिल्पियों की चर्चा की है यथा-मालाकर, कुंभकार, बढ़ई, धोबी, रंगरेज, पात्र निर्माता, स्वर्णकार, जौहरी, शंखपीसी, वस्तु-निर्माता, आयुधिक और रसोइये ये सभी अपने अपने प्रधानों के निर्देशन में कार्य सम्पादित करते थे। कर्मकार तथा दास भोजनार्थ तथा वसनार्थ ही कार्य करते थे। परन्तु शिल्पी अपना कार्य भृति के लिए सम्पादित करते थे। [23]याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति और अन्यान्य साहित्यों के तथ्यों के आधार पर श्रमिकों की तात्कालिक स्थितियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। [24]

नारद और बृहस्पति ने भृतिप्राप्त श्रमजीवियों को तीन भेदों में आवंटित किया है। 1. सैन्य कार्य करने वाले 2. कृषि कार्य सम्पादित करने वाले 3. भार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोकर ले जाने वाले। [25] इनमें प्रथम को उत्तम, द्वितीय को मध्यम और तृतीय को अधम कर्मकर माना जाता था। [26] कुली और भार ढोने वाले वाहकों की गणना अधम कोटि के श्रमिकों में होती थी किन्तु फिर भी सामाजिक व्यवस्था में उनका अपना महत्व था। बृहस्पति श्रमिकों के अधिकारों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि यदि स्वामी श्रमिक को भृति प्रदान नहीं करे तो वह राजा द्वारा दण्डित होना चाहिए। [27] इस संबंध में नारद का कथन है कि भृति नहीं देने की स्थिति में स्वामी को बाध्य किया जाना चाहिए की वह श्रमिक को ब्याज सहित भृति का भुगतान करे। [28] याज्ञवल्क्य कहते हैं कि उम्मीद से अधिक कार्य सम्पादित करने वाले श्रमिक को अधिक पारिश्रमिक का भुगतान होना चाहिए। [29] नारद व्यवस्था देते हैं कि ब्राह्मण द्वारा चोरी का कृत्य कारित किये जाने पर उसके अपराध को शूद्र के अपराध से बड़ा मानना चाहिए। [30] कात्यायन भी नारद के विचारों से सहमति रखते हुए व्यवस्था देते हैं कि एक क्षत्रिय और ब्राह्मण को शूद्र से द्विगुणित दण्ड मिलना चाहिये। [31] उक्त साक्ष्य इस बात का प्रमाण हैं कि गुप्तकाल में न्यायिक क्षेत्र में निम्न जातियों के प्रति सहानुभूति का भाव रखा जाता था।

शूद्रक के अनुसार चर्मकार तथा नापित भी योग्यतानुकूल सेना में नायक के पद पर नियुक्ति पाते थे। [32] गुप्तकाल में शिल्प शूद्रों के लिए सामान्य व्यवसास बन गया था। यद्यपि गुप्तकाल से पूर्व शूद्रों को हस्तकला अपनाने का अधिकार उसी स्थिति में दिया गया था जब पैतृक कार्य से जीवन यापन करना उनके लिए सम्भव नहीं होता था। [33] अमरकोश में वर्णित है कि माली, धोबी, बुनकर

आदि समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।[34] 446 ईस्वी के पल्लव अभिलेख में वर्णित है कि लौहकार, चर्मकार, तन्तुवाय और नापित राजा को कर का भुगतान करते थे।[35] इससे यह विदित होता है कि श्रमजीवी उस समय सम्पन्न स्थिति में थे। कर का भुगतान करना सम्पन्नता का द्योतक है।

वैष्णव और शैव सम्प्रदाय तथा तांत्रिकों का समाज में प्रभाव बढ़ने का एक सकारात्मक प्रभाव यह पड़ा की इसके फलस्वरूप श्रमिक जातियों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान मिला। वैष्णव सम्प्रदाय के एक ग्रन्थ के अनुसार यदि शूद्र महिला कृष्ण, नारायण और वासुदेव की अर्चना करे तो वह आत्मिक और अलौकिक मुक्ति प्राप्त कर सकती है।[36] गीता में कृष्ण ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि स्त्री, शूद्र और वैश्य सभी मुक्ति के अधिकारी हैं। **यथा-''स्त्रियो वैश्या तथा शूद्रा तेश्र्षपियान्ति परां गतिम्''**। गीता में ही एकत्र कृष्ण इससे भी बड़ी बात कहते हैं कि कोई कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो पर अनन्य भक्ति के निश्चय से उसे भी मुक्ति की प्राप्ति होती है **यथा-''अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्य भाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यगव्यवसितो हि सः''**। अश्वमेधिका पुराण के अनुसार वह चाण्डाल भी निन्दा योग्य नहीं है जो विष्णु को मानता है।[37] भागवत पुराण में उल्लिखित है कि विश्वास के साथ भगवान की पूजा करने वाला स्वपाक (चाण्डाल) भी ऐसे ब्राह्मण से श्रेष्ठ है जो भगवान को नहीं मानता।[38]

गुप्तकाल के पश्चात् भी श्रमिक जातियों को उच्च पद प्रदान करने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। ब्राह्मण और शूद्रों के बीच विवाह सम्बन्ध इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि सामाजिक संबंधों में भेदभाव मिलते जा रहे थे। उच्च और निम्न जातियों में शारीरिक सम्बन्ध स्वीकार्य थे। बाण के अच्छे सम्बन्ध नीची जाति के लोगों से थे यद्यपि वे एक रूढ़िवादी परिवार से संबंधित थे।[39] यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि हर्ष के समय में भी श्रमिकों की स्थिति अच्छी थी।

पूर्व मध्य युग में शूद्र श्रमिकों के धार्मिक और सामाजिक अधिकारों में कमी का संकेत मिलता है। एक स्मृतिकार के अनुसार धर्म क्रिया सम्पादित करने के दौरान यदि शूद्र दिखाई दे जाये तो तुरन्त प्रभाव से उस धर्म क्रिया को रोक देना चाहिए और यदि शूद्र के शरीर से सम्पर्क हो जाये तो तुरन्त स्नान करना चाहिए।[40] पराशर के अनुसार तेजस्वी पुरुष यदि शूद्र के यहां भोजन कर लेता है, उसके साथ सम्पर्क रखता है शूद्र द्वारा उपयोग किए गये आसन पर बैठता है और शूद्र से शिक्षा प्राप्त करता है तो वह पतित हो जाता है।[41] इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस काल में शूद्र को पूर्णतया अस्पृश्य माना जाता था। शूद्र श्रमिकों का सामाजिक सम्मान धार्मिकता के आधार पर न्यून था। इस काल में भी वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन उनके लिए निषिद्ध रहा।[42] इस काल में अनेक शूद्र पूर्व की तरह केवल द्विजातियों के दास या भृत्य न रहकर स्वतंत्र किसान बन गये। मेधातिथि के अनुसार उच्च वर्णों की सेवा में नियोजित रहना शूद्रों का अनिवार्य कर्त्यव्य नहीं है। यदि वह चाहे तो इससे मुक्ति प्राप्त कर सकता है।[43] मेधातिथि शूद्रों की जो स्थिति वर्णित करते हैं इससे संकेत मिलता है कि शूद्रों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ यद्यपि स्मृतिकारों ने उन्हें अस्पृश्य घोषित करके उनकी स्थिति को गिराने का पूर्ण प्रयास किया।

आठवीं शताब्दी से श्रमजीवी वर्ग को सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विचारों से उच्च स्थिति प्राप्त होने लगी। बौद्ध राहुल भद्र के प्रयासों से उत्तर एवं पूर्व भारत में सामाजिक समानता एवं न्याय के लिए एक नवीन धार्मिक आन्दोलन आरम्भ हुआ इसके अन्तर्गत शूद्रों को उच्च जातियों के समान अधिकार दिये जाने पर बल दिया गया।[44]

धोई नामक बुनकर लक्ष्मण सेन के दरबार में राजकवि के पद पर नियुक्त था।[45] पूर्व मध्यकाल में चर्मकारों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होना आरम्भ हो गया था। उन्हें सेना में सेनापति का पद प्राप्त हुआ।[46] नापित भी सेनापति के पद तक पहुंच गया था।[47] कल्हण ने नापित क्षेम का वर्णन किया है जो अनन्तदेव के शासनकाल में मुख्य कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुआ था।[48] पूर्व मध्यकाल में ब्राह्मण कुम्भकार द्वारा निर्मित भोजन ग्रहण करने लगे, यह पूर्व मध्यकाल में श्रमिकों की स्थिति में सुधार का संकेत देता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में प्राचीन भारतीय वर्ण व्यवस्था एक वैज्ञानिक व्यवस्था थी, जिसमें प्रत्येक वर्ग की परस्पर आत्मनिर्भरता थी और प्रत्येक वर्ग खुशी-खुशी अपने कर्मों को अपना धर्म समझ कर अपनी शक्ति का सर्वस्व प्रदान करता था और मानसिक व शारीरिक रूप से प्रसन्न रहता था। केवल बाह्य आवरण के आधार पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था का सम्यक विश्लेषण सम्भव नहीं है। श्रमिक वर्गों के स्वरूप में भी समय के साथ परिवर्तन के चिन्ह दृष्टि गोचर होते हैं।

सन्दर्भ

1. शतपथ ब्राह्मण, 1, 7, 1, 5
2. गीता, 4, 13
3. ऋग्वेद, 10, 90, 12
4. महाभारत, शांतिपर्व, 122, 4-5
5. विष्णु पुराण, 1, 12, 63-64
6. मत्स्य पुराण, 4, 28
7. वायु पुराण, 9, 113
8. अर्थशास्त्र 3, 13
9. वही, 3, 13,
10. वही, 3, 13,
11. वही, 3, 7
12. अर्थशास्त्र 3, 19, बुद्ध प्रकाश, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, 1962, पृ. 160
13. जैन, पी.सी., लेबर इन एंशियेन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1971, पृ. 13-14
14. फोर्थ पीलर इडिक्ट, दिल्ली-टोपरा, कॉर्पस इंस्क्रिप्शन-ओरम इंडिकेरम, वॉल्यूम 1, पृ. 125
15. बुद्ध प्रकाश, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, 1962, पृ. 199-200, शास्त्री, के.ए.एन., दी एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज, 1952, पृ. 235
16. शर्मा, रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, पटना, 1992, पृ. 184
17. मनुस्मृति, 8, 78
18. वही, 8, 65
19. वही, 8, 66
20. वही, 10, 99-100
21. वही, 4, 215-16
22. वही, 4, 79
23. महावस्तु, 2, पृ. 463-70
24. शर्मा, रामशरण, शूद्राज इन एंशियेट इण्डिया, 1958, पृ. 221
25. नारद स्मृति, 5, 23, बृहस्पति स्मृति, 15, 12-13
26. नारद स्मृति, 5, 23, बृहस्पति स्मृति, 15, 12-13
27. बृहस्पति स्मृति, 16, 11
28. नारद स्मृति, 6, 7, 11
29. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2, 195
30. नारद अपेन्डिक्स वर्सेस, 51-52
31. कात्यायन, 485
32. मच्छकटिकम्, 6, 22-23
33. बृहस्पति स्मृति, 530
34. अमरकोश, 2, 10, 5-10
35. एपिग्राफिया इण्डिका, 24, 43 भाग-2, 18-19
36. भगवत पुराण, 7, 7, 54-55
37. अश्वमेधिका पुराण, 116, 21-22

38. भगवत पुराण, 3, 33, 7
39. मुखर्जी, आर.के., हर्ष, 1959, पृ. 173-74
40. अपरार्क टीका, याज्ञवल्क्य, 3, 292
41. संस्कारप्रकाश, 513
42. संस्कारप्रकाश, 525, स्मृतिचंद्रिका, 1, 13
43. मेधातिथि टीका, मनु, 419
44. दोहा, कोष (सरहपाद), पृ. 26 बुद्धप्रकाश, आस्पेक्ट ऑफ इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, 1965, पृ. 266
45. प्रबन्ध चिन्तामणि, 2, 27
46. जैन, पी.सी., लेबर इन एंशियेन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1971, पृ. 18
47. राजतरंगिणी, 7, 201
48. वही

श्रम एवं पारिश्रमिक का ऐतिहासिक मूल्यांकन

डॉ० कुमारी रिचा

विश्वविद्यालय प्राचीन, भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला, विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

भारतीय इतिहास में श्रमिक वर्गों की उत्पत्ति का इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव जीवन के प्रारंभ से ही श्रम का सम्बन्ध एक दूसरे के साथ चोली-दामन की तरह रहा है। लेकिन जहाँ तक श्रमिक प्रथा की शुरूआत का प्रश्न है, यह वैदिक काल में वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था की ही प्रतिफल कहना युक्तिसंगत कहा जा सकता है। जब मानव इस धरातल पर अवतरित हुआ तब वह एकमात्र घुमन्तुक की तरह जीवन यापन करता रहा। लेकिन ज्यों-ज्यों उनमें विकसित भावना एवं ज्ञान का आभास हुआ, तब वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इधर-उधर धूमकर व श्रम कर इसका निदान ढूंढने का प्रयास किया।[1]

वैदिक सूक्तों में श्रम की प्रशंसा की गयी है, क्योंकि विजय और कठिन श्रम दोनों की एक दूसरों का साथी माना गया है। श्रमिक वर्गों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के पहले वैदिक कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था अवलोकन के पश्चात् श्रमिक प्रथा की शुरूआत की सही-सही आंकलन स्पष्ट हो जाता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था के तहत चतुर्वर्ण की उत्पत्ति के विषय में प्राचीनतम अनुमान ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में वर्णित सृष्टि सम्बन्धी पुराकथा में पाया जाता है। समझा जाता है कि इस संहिता के दशम मंडल में यह विषय बाद में अंतर्वेशित किया गया है। लेकिन उत्तरवैदिक साहित्य, गाथाकाव्य, पुराण तथा धर्मशास्त्र की अनुश्रुतियों में भी इसे कुछ हेरफेर के साथ प्रस्तुत किया गया है।[2]

इसमें कहा गया है कि ब्राह्मण की उत्पति आदिमानव (ब्रह्मा) के मुंह से, क्षत्रिय की उनकी भुजाओं से, वैश्य की उनकी जांघों से और शूद्र की उनके पैरों से हुई थी। इससे स्पष्ट होता है कि शूद्र और अन्य तीन वर्ण एक ही वंश के थे और इसके फलस्वरूप वे आर्य समुदाय के अंग के रूप में माने गये। इन तीन उच्च वर्णो की सेवा करने वाले समाजिक वर्ण के रूप में शूद्रों का सर्वप्रथम उल्लेख कब किया गया है? यह इतिहास में विवाद का प्रश्न बना हआ है कि यदि ब्रह्मा के अंगों से इन चारों वर्णों का आगमन हुआ तो आखिर इन शुद्रों को ही श्रमिक क्यों माना गया?[3]

लेकिन ऋग्वैदिक कालीन समाज में कुछ दास-दासियां होती थी, जो घरेलू नौकर के रूप में काम करती थीं पर उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि इन्हें दास कहा जाय। इससे ऐसा आभास मिलता है कि वर्ण-व्यवस्था के ही चलते समाज को अपने कर्मो के आधार पर एक दूसरे से अलग किया गया और यही एक वंशीय आर्य अनार्य (दास) कहलाने लगे। स्पष्ट है कि श्रमिक प्रथा के विकास की पहली शुरूआत ऋग्वैदिक काल को मानना यथार्थ होगा।

समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने मानव को श्रम करने के लिए बाध्य किया और उन्होंने अन्ततः अपनी स्थिति एवं योग्यता के मुताबिक भिन्न-भिन्न कालों एवं परिवेश में अपने हाथों से कार्य कर जीवन को स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया। प्रारम्भ में कोई भी व्यवसाय अधम नहीं माना जाता था। शिल्पों और व्यावसायों के अतिरिक्त भूमिहीन गरीब वर्ग भी थे जो संभवतः दास थे।[4]

दासों के बारे में कुछ प्रत्यक्ष जानकारी धर्म सूत्रें से, थोड़ी बहुत प्राचीन पालि ग्रंथों से और उससे भी कम जैन ग्रंथों से मिलत है। प्रायः इतनी अल्प जानकारी के कारण ही पिक ने तर्क प्रस्तुत किया है कि केवल सैद्धांतिक विवादों को छोड़कर प्राचीन पालि ग्रंथों में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे सिद्ध होता हो कि दास चतुर्थ वर्ण के रूप में वस्तुतः विद्यमान थे। प्रसिद्ध विद्वान ओल्डनवर्ग ने भी इस विचार से सहमति व्यक्त की है। ऐसा लगता है कि किसी व्यक्ति की स्थिति या हैसियत उसके कर्म के आधार

पर ही सुनिश्चित किये जाते थे और इस आधार पर श्रमिकों को एक अलग वर्ग की संज्ञा दी जाती थी। इसीलिए तो बौद्ध ग्रंथों में दासों को समाज का एक वर्ग माना गया है, यद्यपि इन ग्रंथों में उनके स्थान और कृत्यों को उतना स्पष्ट नहीं किया गया है, जितना ब्राह्मण (कर्मकाण्ड) विधियों को।[5]

श्रम किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है। श्रम सामान्यत: उत्पादन कार्य में शारीरिक एवं मानसिक योगदान है। वैदिक युग से ही इसकी महत्ता स्वीकार की गई है। चार्तुवर्ण श्रम विभाजन का ही पयार्य है। पूर्वत: यह क्रमानुसार निर्धारित होता था, पर कालांतर में यह जात्याधारित हो गया और कार्यो में विशिष्टता के साथ अनेक रूढ़ियों का जनक सिद्ध हुआ। वैदिक काल के अनेक श्रमाधारित कर्म स्मृतियों में हेय दृष्टि से देखे जाने लगे, ऱलत: श्रमजीवियों का सामाजिक महत्व घट गया और अनेक सामाजिक वैषम्य की सृष्टि हुई।

प्रस्तुत शोध आलेख को तीन खण्डों में विवेचित किया जायेगा, यथा–[6]

1. श्रमिक
2. दास मजदूर
3. विष्टि या बेगार

1. श्रमिक

श्रम का उत्पादन एक महत्वपूर्ण साधन है। अर्थशास्त्र में श्रम से मनुष्य के उन सभी शारीरिक एवं मानसिक प्रयत्नों का बोध होता है जो धनोत्पादन की दृष्टि से किये जाते है। राष्ट्रीय आय का वह भाग जो श्रम को उत्पादन किया में सहयोग प्रदान करने के बदले में दिया जाता है, उसे पारिश्रमिक कहते हैं।

प्रो० बेन्हम ने पारिश्रमिक की संकुचित परिभाषा दी है तदनुसार मजदूरी मुद्रा के रूप में वह भुगतान है, जो समझौते के अनुसार एक स्वामी अपने सेवक को उसकी सेवाओं के बदले में देता है। उसके अनुसार मजदूरी की श्रेणी में केवल वे ही भुगतान आयेगे जो मुद्रा के रूप में दिये गये हो। किन्तु अर्थशास्त्र में मजदूरी शब्द का प्रयोग बहुत विस्तृत अर्थ में किया जाता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन कार्य में श्रम के सहयोग के बदले जो पुरष्कार मिलता है, उसे पारिश्रमिक कहते है।

मनु ने श्रमकार के रूप में शूद्र को ही माना है। श्रमिकों के पारिश्रमिक निर्धारण में मनु ने कहा है कि उसकी वृत्ति (पारिश्रमिक) निश्चित होनी चाहिए। पारिश्रमिक निर्धारण में उसकी शक्ति, उत्साह और परिवार के निर्वाह पर विचार करना आवश्यक माना है।[7] ऐसा करने से श्रमिकों के कार्य करने का उत्साह एवं मनोबल बना रहेगा अन्यथा श्रमिक निरूत्साहित ढ़ंग से कार्य करेगा।?

मनुस्मृति में पारिश्रमिक का सीधा प्रसंग बहुत कम आया हैं प्रासंगिक रूप से इसकी विवेचना मिलती है। मनु से गोरखवाला को वेतन के रूप में दूध देने की अनुशंसा की है। लेकिन दूध के स्थान पर धन देने का प्रावधान था। जो गोरक्षक कार्यो के स्वामी से वेतन के स्थान में धन न देकर दूध ही देता हो, वह दस गायों में एक अच्छी गौ चुनकर वेतन के बदले उसी का दूध लिया करें। ऐसा मनु ने कहा है। यही गौरक्षक का पारिश्रमिक हुआ।[8] गोरक्षक की जबावदेही की विवेचना करते हुए मनुस्मृति ने व्यवस्था दी है कि स्वामी द्वारा रखवाला को सौंपे गये पशुओं की जबावदेही होती लेकिन रात्रि में अगर वह स्वामी के घर पशु छोड़ देक तो रखवाले की जबावदेही नहीं होती।[9]

कृषि श्रमिक को उपज का अंश दिया जाता था जो उपज का पाँचवा भाग होता था, वैसी स्थिति में जब भोजन और वस्त्र भी उसे दिया जाता हो। लेकिन जब मात्र पारिश्रमिक ही दिया जाता हो तो उपज का एक तिहाई देने का प्रावधान वृहस्पति ने संकेतित किया है।[10] लुई रैनों का कथन है कि राजकीय कृषि में बिना पारिश्रमिक के श्रम लिया जाता था।[11]

स्मृतियों में द्विजों की सेवा शूद्रों का कर्त्तव्य बताया गया है। अत: यह स्वाभाविक परिणाम है कि शूद्रों को द्विजों के क्षेत्र में ही रहना चाहिए। द्विजों की सेवा करते हुए उन्हें अपनी जीविका अर्जित करनी चाहिए क्योंकि शूद्र द्विजों पर आश्रित है। नौवीं शताब्दी में मनुस्मृति के भाष्कार मेघातिथि ने उच्च वर्णो पर शूद्रों की निर्भरता के सिद्धान्त की पुनरावृत्ति की है। इसी सिद्धांत के आधार पर शूद्रों को अपने स्वामियों के ही क्षेत्र में रहने पर बल दिया है। इसका स्वाभाविक तात्पर्य यह था कि उनके प्रवास पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे। जिस कारण कृशक और अन्य कारीगर पराधीन रहने को विवश थे।[12]

नारदस्मृतिकार ने श्रमिक की परिभाषा दी है कि जो परिवार की सम्पति की व्यवस्था एवं परिवार के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है, उसे श्रमिक कहते है। नारद ने उसे कौटुम्बिक कहा है।[13] नारद ने सामान्य कार्य करने वाले श्रमिक को शुभकर्मकर कहा गया है तथा तीन प्रकार के वेतन भोगी सेवक की गणना की गई है,

यथा-

1. उत्तम-सैनिक
2. मध्यम-कृषक और
3. अधम-भारवाह

इसे क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कर्म में भी रखा जा सकता है। जो श्रमिक बेगार प्रथा लेते है उनसे अतिरिक्त श्रम लेने का मनु ने निषेध किया है। मनु का आदेश है कि आपतिकाल में भी शूद्र, बढ़ई एवं अन्य कारीगरों से कोई कर न ली जाय क्योंकि वे तो काम बेगार द्वारा ही राजा का उपकार करते है। मनु ने श्रम की महत्ता स्वीकार करते हुए शिल्पियों के हाथ को सदैव पवित्र माना है जो उनके आदर भाव का द्योतक है।

2. दास-मजदूर

प्रकार-जहाँ तक दास-मजदूर की बात है इनके विभिन्न कारणों का ज्ञान स्मृतियों, धर्मशास्त्रों तथा बौद्ध ग्रंथों से होता है।[14] इस आधार पर दास-मजदूरों को निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है-

1. **बंदी दास**-युद्ध में बंदी किए गए लोगों को विजेता अपने यहाँ दास के रूप में रखता था।[15] जैसा महाभारत में युद्ध का विधान था।[16] विनयपिटक में भी तीन प्रकार के दासों में इसका उल्लेख है।[17]
2. **वंशानुगत दास**-स्वामी के यहाँ रहने वाला दास स्वामी के बाद उसके उत्तराधिकारी को हस्तांतरित किया गया हो। मनु ने इसे पैतृक दास तथा नारद ने दायगत दास कहा है।
3. **उद्‌भूत दास**-दासी पुत्र भी दास ही होता था। विनयपिटक में इसे अन्तोजातो तथा मनु ने गृहज उदरदास कहा है। विदुर अपने को इसी कोटि का मानते है।[18]
4. **क्रीत दास**-यह पैसे से खरीदकर बनाया गया दास होता था। जातकों में एक दास का मूल्य 100 पण बताया गया है।[19] तथा दास और उसकी पत्नी का 700 पण।[20]
5. **बंधुआ दास**-इसमें ऋणी बंधक के रूप में ऋण के भुगतान तक ऋणदाता स्वामी अथवा उसके उत्तराधिकारी के पास रहता था।
6. **उपहार दिए गए दास**-ये अत्यल्प थे। मनु तथा नारद ने इनको स्वीकार किया है। बैसन्तर जातक में एक वनवासी राजकुमार के द्वारा अपनी पत्नी तथा पुत्र को उनके प्रेमियों को उपहार देने का वर्ण है।
7. **दण्ड दास**-ऋण के भुगतान न करने पर न्यायालय द्वारा दण्डित ऋणी ऋणदाता के पास दास के रूप में त तक रहता था जब तक उसके द्वारा अर्जित धनप से ऋण को भुगतान नहीं हो जाता था।
8. **भुक्त या उदर दास**-मनु और नारद के अनुसार उदर पूर्ति के लिए कभी-कभी लोग दास बन जाते थे। यह दासता अकाल और भुखमरी के समय होती थी।
9. **ऋण दास**-ऋणी अपने ऋण के ब्याज के भुगतान के लिए ऋणदाता के यहाँ स्वयं स्वेच्छा से या उसके दबाव में सेवा करते थे।[21]
10. **धर्मदास**-धर्म त्याग करने के आरोप में कभी-कभी राजा दासता का आदेश देते थे। इसकी स्वीकृति नारायण और नन्द पण्डित ने दी है।[22] किन्तु ऐसे उदाहरण नही के बराबर उपलब्ध है।
11. **स्वेच्छया दास**-सुमंगल विलासिनी[23] विदुर पण्डित जातक, अर्थशास्त्र, नारद आदि के अनुसार अनेक कारणों से प्राण रक्षा जैसे अन्य कार्य के लिए लोग अपने को स्वेच्छापूर्वक दास बना देते थे।

12. **द्यूत दास**–जुआ के दांव पर दासता की शर्त लगाकर परिवार के लोगों को रखने पर हारने वाला दास जैसा द्रौपदी के प्रसंग से स्पष्ट है।[24]

दास प्रथा को मनु ने एक स्थायी संस्था मान लिया था। स्वामी के द्वारा छोड़ा गया शूद्र भी दासत्व से छुटकारा नहीं पा सकता है क्योंकि दासत्व उसका स्वाभाविक धर्म है। दासत्व से मुक्ति के संबंध में याज्ञवल्क्य स्मृति ज्यादा उदार प्रतीत होती है। याज्ञवल्क्य ने निम्न स्थितियों में दास को मुक्त कराने की अनुशंसा की है।[25]

यथा–

1. राजा बलात् दास बनाये जाने तथा चोर के द्वारा अपहृत कर बेचे जाने की स्थिति में वैसे दास की मुक्त करावें।
2. जब कोई दास अपने स्वामी को प्राण-संशय से बचाने, उसे मुक्त किया जा सकता है।
3. कोई भक्त दास अपने स्वामी को प्राण जो मात्र भोजन के लिए दासत्व स्वीकार किया हो, उसे उसके द्वारा वह राशि चुकाने पर मुक्त किया जा सकता है।

प्रवज्या की दासमुक्ति के साधन के रूप में याज्ञवल्क्य ने भर्त्सना की हैं उनका कथन है कि भिखारी जो प्रव्रजित हो वह मृत्योपरान्त ही दासत्व से मुक्ति पा सकता था।

3. विष्टि या बेगार

कौटिल्य के अर्थशास्त्र, स्मृतियों, पुराणों, बौद्ध ग्रंथों, सूत्रकारों, निबन्धग्रन्थों तथा अभिलेखों के अध्ययन से एक ऐसी प्रथा का ज्ञान मिलता है जिसको विष्टि (बेगार) कहा गया है। इसमें मजदूर तथा कमजोर कारीगर वर्ग के लोगों पर दबाव डालकर या कर न देने के बदले राजकीय तथा सार्वजनिक कार्यों में बिना भुगतान किए उनका श्रम लिया जाता था।

कौटिल्य ने लिखा है कि शूद्र, मजदूर, शिल्पी और दास कर न देकर उसके बदले राज्य के लिए अपने शरीर से मेहनत करें।[26] इस प्रकार कर की तरही विष्टि भी आय का स्रोत रहा है क्योंकि इसके द्वारा राज्य का वह व्यय बच जाता था जो मजदूरों को मजदूरी देकर काम कराता। यह कर का एक माध्यम प्रतीत होता है जिसमें निर्धनों से कर का धन लेकर उसके बदले उनसे मेहनत करवाया जाता था। मनु ने कहा–

कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पनस्तथा।[27]

शूद्र, कारीगर, शिल्पी लोग कार्य द्वारा ही अपना कर चुकाते हैं। इसका कारण मनु के उपर्युक्त श्लोक पर कुल्लूक की इस टीका से लगता है कि बुरे समय में शूद्रों पर कर नहीं लगाया जाना चाहिए।

वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में यह बेगारी प्रथा सहज स्वाभाविक ढ़ंग से चलती थी लेकिन कालांतर में यह सामंतों के हाथ में शोषण का साधन सिद्ध हुआ। डॉ० एन० झा ने इसे सामन्ती व्यवस्था की निरंकुशता की पृष्ठभूमि कहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. राणा उदय प्रताप सिंह-प्राचीन भारत में श्रम, जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण 1998 पटना, पृ0-73
2. उपर्युक्त, पृ0-वही
3. उपर्युक्त, पृ0-वही
4. उपर्युक्त, पृ0-74
5. उपर्युक्त, पृ0-वही
6. प्रभु नारायण विधार्थी-स्मृतियों में प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2002 पटना, पृ0-119
7. अथर्ववेद, 6/46/3
8. डॉ0 विश्वनाथ प्र0 सिन्हा-वैदिक राजनीति शास्त्र, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना, पृ0-28
9. मनुस्मृति, 8/140
10. मनुस्मृति, 8/14

11. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/37
12. मनुस्मृति, 8/157
13. प्रभु नारायण विधार्थी–स्मृतियों में प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था, जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2002 पटना, पृ0–120
14. अर्थशास्त्र, 2/7
15. अर्थशास्त्र, 3/13
16. महाभारत, 4/93/59
17. विनयपिटक, 1/2/1
18. जातक, 6/285
19. जातक, 1/224
20. जातक, 3/343
21. जातक, 5/33
22. जातक, 5/152
23. सुमंगल विलासनी, 1/168
24. महाभारत, 1/16/20
25. प्रभ नारायण विद्यार्थी–स्मृतियों में प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002 पटना, पृ0–121–22
26. अर्थशास्त्र, 2/4
27. मनुस्मृति, 10/120

नवादा जिला (बिहार) के कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप (1981-2011): एक भैगोलिक विश्लेषण

डॉ० अमर कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), भूगोल विभाग, सी0 एम0 जे0 कॉलेज,दोनवारीहाट खुटौना, मधुबनी

निबंध सार

कृषि एक प्रमुख मानवीय आर्थिक व्यवसाय है जिसके अंतर्गत भूमि से न्सल उत्पादन क्रिया सम्मिलित है। यह मनुष्य की सर्वप्रमुख प्राथमिक क्रिया तथा ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की मौलिक विशेषता है। आज के विकासशील मानव-समाज में तकनीकी विकास ने कृषि-व्यवसाय को समृद्ध किया है और यह प्राथमिक क्षेत्र, वृद्धिरत जनसख्ंया की आवश्यकताओं के अनुरूप अन्न उत्पादन की दिशा में आगे बढ़ रहा है। वस्तुत: आज मानव समाज कृषि क्षेत्र में भोजन-संग्राहक की अवस्था से बहुत आगे निकल कर अन्नोत्पादक अवस्था में पहुँच गया है। यायावर जीवन से मुक्त आज का मानव समाज बस्तियों का निर्माण कर एक स्थिर और स्थायी निवास का अभ्यस्त बन गया है। कृषि उत्पादन उसकी क्षुधा के लिए खाद्यान्न संभरण का एकमात्र स्रोत है। इस स्रोत को सुदुढ़ करने के निरंतर प्रयास विश्वभर में हो रहे हैं, क्योंकि जनसंख्या की अभिवृद्धि के साथ कृषि-उत्पादन को संतुलित करना मानव-समाज की पहली प्राथमिकता है। कृषि के लिये प्राकृतिक संसाधनों की सीमित उपलब्धता वृद्धिरत जनसंख्या और उसकी आवश्यकताओं की तुष्टि के मार्ग के एक बड़ी चुनौती है और इस चुनौती के प्रतिकार के लिये विश्व-भर में कृषि वैज्ञानिक तरह-तरह के शोध और अन्वेषण कार्यो में लगे हैं।

मुख्य शब्द- स्थलाकृति, कृषि भूमि, जल-संसाधन, कौवाकोल चारागाह, खाद्यान्न-संभरण

परिकल्पना- 1981 से कृषि भूमि का क्षेत्र निरन्तर कम होता जा रहा है।

विधितंत्र

शोध कार्य व्यक्तिगत अवलोकन, परिभ्रमण प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के संग्रह, आंकड़ों के सरणीकरण, मानचित्रण एवं विश्लेषण पर आधारित है। चयनित जिला नवादा के विभिन्न प्रखंडों के क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा संग्रह किए गए प्राथमिक आँकड़े तथा जिला एवं राज्य स्तर पर संग्रह किए गए द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

परिचय

किसी भी विशिष्ट प्रदेश या क्षेत्र की कृषि-स्थिति के अनुशीलन से पूर्व उसे प्रभावित करने वाले कारकों को समझना आवश्यक है। किसी भी क्षेत्र की कृषि को प्रभावित करने वाले मूलत: दो प्रकार के कारक होते हैं, प्रथम प्राकृतिक कारक जिसके अंतर्गत क्षेत्र की स्थलाकृति, जलवायु, मिट्टी और जल संसाधन आते हैं और द्वितीय मानवीय कारक जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारकों का समुच्च है। स्थलाकृति की दृष्टि से मैदानी से मैदानी क्षेत्र कृषि के लिए उत्कृष्ट क्षेत्र माना जाता है जो

नदियों के निक्षेपों द्वारा निर्मित जलोढ़ सर्वोपरि माना जाता है। ऐसा क्षेत्र मानव-निवास की दृष्टि से भी सर्वोपरि माना जाता है। व्यवहारत: ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व भी अधिक पाया जाता है। तटीय क्षेत्रों में भी सागरीय लहरों के अपरदन तथा निक्षेपण क्रियाओं से निर्मित मैदान या नदियों अथवा झीलों के सूख जाने के परिमणाम स्वरूप जो मैदान बनते हैं, कृषि और बसाव की दृष्टि से वो भी उत्कृष्ट माने जाते हैं, परन्तु ठीक इसके विपरीत पहाड़ियों और पठार की स्थलाकृति वाले क्षेत्र कृषि और आवास दोनों ही मानकों पर अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं। यद्यपि पठारी क्षेत्र में समतल पृष्ठ वाला भू-क्षेत्र कृषि उपयोगी होता है परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों की अधिकांश भूमि ढालयुक्त तथा ऊँची-नीची होती है और यहाँ समतल भूमि का सर्वथा अभाव होता है। पहाड़ियों के बीच की घाटियों कहीं समतल है भी तो कठोर चट्टानों के ऊपर मिट्टी की इतनी पतली परत होती है कि उनमें पौधों गहराई तक नहीं जा पाते। जल, जलवायु और मिट्टी अन्य प्राकृतिक कारक हैं जो न र्सिफ क्षेत्र की कृषि को प्रभावित करते हैं बल्कि उसकी वास-योग्यता के भी निर्धारक हैं। विभिन्न ›सलों के उगने से लेकर उनके बढ़ने तक की प्रक्रिया में विभिन्न मात्र मे इन तत्वों की आवश्यकता होती है और इनकी अपेक्षित मात्रा के बगैर क्षेत्र में कृषि उत्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वर्षा, आर्द्रता, तापमान आदि किसी क्षेत्र में वनस्पति के विकास के लिए अपरिहार्य है।

कृषि को प्रभावित करने में सामाजिक-कारकों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप के अंतर्गत स्थानीय प्राथमिकता, जोतों के आकार, कृषि-तकनीकी और इन सभी में सर्वोपरि आर्थिक पहलू मुख्य रूप से अभिप्रेरक होते हैं। कृषि भूमि उपयोग के आधुनिक मानदंड के अनुसार भौतिक तथा आर्थिक दशायें क्षेत्र में ›सल उत्पादन या कृषि की सीमायें निर्धारित करती है। Can Thuen (1826) एवं अर्थशास्त्री O. Jonasson (1925) के कृषि भूमि उपयोग सिद्धांत के नियोजित कृषि भूमि उपयोग की परिकल्पना से इतर आज के कृषि शास्त्रियों ने कृषि भूमि उपयोग के दो सि)ांतों पर अपनी सहमति दी है, प्रथम अनुकूलतम भौतिक दशाओं और सीमाओं का सिद्धांत तथा दूसरा अनुकूलतम आर्थिक दशाओं और सीमाओं का सिद्धांत। प्रथम सिद्धांत के अंतर्गत भूमि की अनुकूलतम भौतिक दशा यथा- जल, जलवायु मिट्टी आर्द्रता कृषि फसल के निर्धारक होते हैं, जबकि आर्थिक तत्व यथा-परिवहन व्यवस्था, कृषि उत्पादों की मांग, बाजार की उपलब्धता, कृषि सामग्री की कीमत और कृषि तथा आर्थिक नीतियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कृषि-भूमि उपयोग के स्वरूप को निर्धरित करने में महत्वपूर्ण योगदान करते है।

भारतीय कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप इन्हीं दो सिद्धांतों से अभिप्रेरित है जिसमें अनुकूलतम भौतिक दशा को अत्यधिक प्रभावी रूप में देखा जाता है। जनसंख्या में निरन्तर अभिवृद्धि के कारण अपेक्षित खाद्य-संभरण से जूझती देश की कृषि-व्यवस्था की प्राथमिकता कृषि-भूमि के अधिकतम उपयोग द्वारा अन्य उत्पादन को विस्तारित करना है। जनसंख्या वृद्धि के साथ मूल कृषि संसाधन के रूप में प्राप्त भूमि के उपविभाजन से जोतों के आकार में निरंतर ह्रास इस लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बड़ी बाधा है, क्योंकि भूमि-आकार की उत्तरोत्तर बढ़ती संकीर्णता किसानों की आर्थिक-दशा के अवनयन का सूचक है जिसमें कृषि कार्य में तकनीक, वैज्ञानिकता और उन्नत कृषि विधि का प्रयोग की संभावनायें शिथिल होती जा रही हैं। कृषि-भूमि पर दबाव बढ़ता जा रहा है और कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं।

अध्ययन क्षेत्र का चयन

नवादा जिला बिहार के विशाल गंगा के मैदान के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका फैलाव 2494 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। इसकी भौगोलिक स्थिति $24^{0}88'$ उत्तरी अक्षांश तथा $88^{0}53'$ पूर्वी देशांतर पर है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 80 मीटर है। जिले का अधिकांश भाग मैदानी है। जबकि दक्षिणी भाग (मेसकौर और नरहट) पठारी है। प्रमुख नदियाँ सकरी, पंचाने, खुशी तथा तिलैया है। यह उत्तर में नालंदा एवं शेखपुरा जिला, पूरब में जमुई जिला पश्चिम में गया जिला तथा दक्षिण में झारखंड द्वारा घिरा हुआ है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्टी पायी जाती है। यह बिहार राज्य का एक उपजाऊ कृषि क्षेत्र है। जिले के 63 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ की आबादी अत्यंत सघन है। अत: खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए सघन कृषि कार्य किया जाता है। यह जिला मुख्य रूप से कृषि प्रधान है यहाँ की जलवायु मानसूनी है। प्रमुख मिट्टियाँ-बांगर (केवाल मिट्टी) और बल्थर (लाल-पीली मिट्टी) है। यहाँ मुख्य रूप से आम, सखुआ, बरगद, पीपल, शीशम नीम वनस्पति के रूप में पायी जाती

है। जिले के कृषि भूमि के लिये सिंचाई का प्रधान स्त्रोत नहरें एवं नलकूप है। जिले के उत्तरी भू-भाग में सिंचाई सुविधाओं का अधिक विस्तार है। यह सम्पूर्ण जिला खरीफ, रबी और गरमा ˜सलों के लिये काफी उपयुक्त है। प्रमुख फसल धान, गेहूँ, मक्का, मूंग, चना, मटर, मसूर , सरसो, सूर्यमुखी एवं पान है।

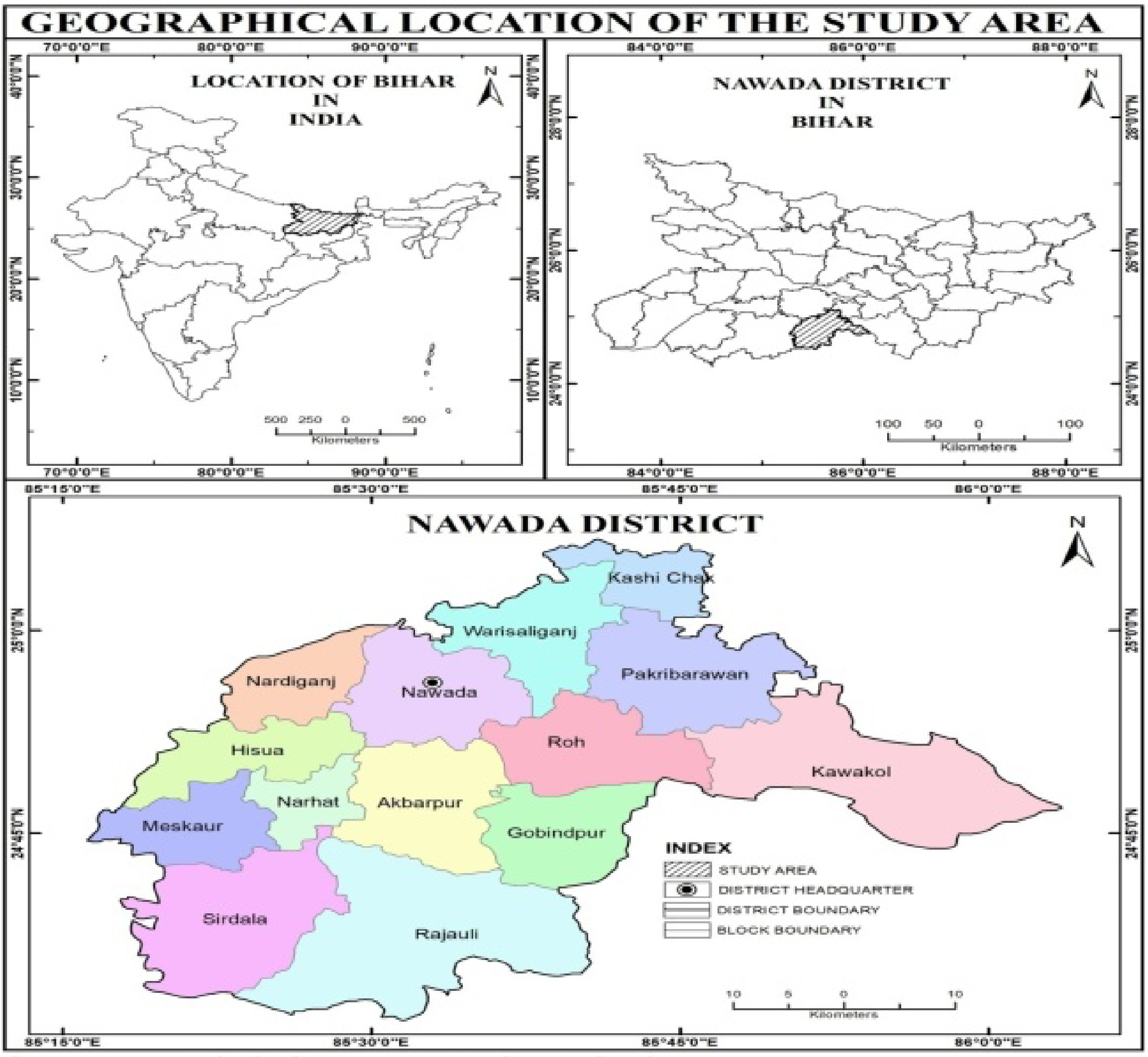

Source : Nawada District Census Handbook, Census of India, 2011

कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप

अध्ययन क्षेत्र नवादा जिले में कृषि भूमि उपयोग के प्रतिरूप में, पिछले दशकों में आये परिवर्तन के अनुशीलन से यह स्पष्ट हुआ है कि राष्ट्रीय संदर्भ में उपर्युक्त चिन्हित कारक जिले की कृषि व्यवस्था पर भी प्रभावी हैं। 1981 में जिले की कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप को तालिका -01 में स्पष्ट किया गया है।

तालिका-01: नवादा जिला: कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप 1981 (हेक्टेयर में)

क्रम	प्रखंड	कुल भूमि	वन	कृषि योग्य परती भूमि	विविध पेड़ एवं बगीचा	चारागाह	अन्य परती भूमि	चालू परती भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्र
1	नारदीगंज	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
2	नवादा	23620	–	225	38	165	4022	598	12437
	प्रतिशत			0.95	0.16	0.69	17.02	2.5	52.72
3	वारिसलीगंज	19820	–	55	10	549	4028	432	9554
	प्रतिशत			0.28	0.05	2.80	20.32	2.18	48.17
4	काशीचक	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
5	पकरीबरावाँ	24580	–	129	26	1069	3812	608	13561
	प्रतिशत			0.52	0.11	4.35	15.51	2.47	55.18
6	कौआकोल	33530	19715	36	15	396	1394	160	8016
	प्रतिशत		58.79	0.10	0.04	1.18	5.76	0.48	23.90
7	रोह	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
8	गोविन्दपुर	27250	7230	102	55	495	3839	191	10698
	प्रतिशत		26.53	0.37	0.20	1.82	14.08	0.70	39.27
9	अकबरपुर	19800	3423	54	13	293	1987	59	10974
	प्रतिशत		1917.29	0.27	0.06	1.48	10.03	0.30	55.43
10	हिसुआ	18270	2204	47	24	338	1374	55	12330
	प्रतिशत		12.06	0.26	0.13	1.85	7.52	0.30	67.49
11	नरहट	12690	2830	55	15	66	968	52	7162
	प्रतिशत		22.30	0.43	10.11	0.52	7.62	0.40	56.48
12	मेसकोर	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
13	सिरदला	31820	6712	81	28	165	3784	287	16759
	प्रतिशत		21.09	0.25	0.08	0.51	11.89	0.90	52.71
14	रजौली	38020	23029	114	25	200	1162	402	10440
	प्रतिशत		60.57	0.30	0.06	0.53	3.07	1.05	27.46
	कुल	249400	65143	898	294	3716	26910	2844	111931
	प्रतिशत		26.12	0.36	0.10	1.49	10.79	1.14	44.88

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा से प्राप्त तथ्यों पर आधारित

आलोच्य काल में वर्त्तमान जिले के कुल क्षेत्रफल 249400 हेक्टेयर में प्रायः 44.88 प्रतिशत भू-क्षेत्र जिले में शुद्ध बोया क्षेत्र था जबकि अन्य एवं चालू परती भूमि कुल क्षेत्रफल में प्रतिशत 11.93 (अर्थात 29754 हेक्टेयर) था इसी तरह जिले के कुल वन क्षेत्र की कुल क्षेत्रफल में हिस्सेदारी 26.12 प्रतिशत की थी जो जिले के कौवाकोल, गोविन्दपुर, अकबरपुर, हिसुआ, नरहट, सिरदला एवं रजौली प्रखंडों में स्थित था। चारागाह और विविध पेड़ एवं बगीचे की स्थिति जिले में बिल्कुल नगण्य अर्थात 0.10 प्रतिशत थी और असिंचित बंजर भूमि क्षेत्र जिले के पूर्ण क्षेत्रफल का प्रायः 4.93 प्रतिशत था जिसका अधिकांश भाग सिरदला, कौवाकोल, रजौली और हिसुआ पहाड़ियों की तलहटी में स्थित था।

1991 में जिले में प्रखंडवार कृषि भूमि उपयोग की स्थिति को तालिका-02 के अंतर्गत देखा जा सकता है। इस तालिका से स्पष्ट है कि जिले में कृषि भूमि-उपयोग प्रतिरूप में जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हआ है वह है वन क्षेत्र में 0.08 प्रतिशत का मामूली ह्रास के साथ जिले के कुल बोये क्षेत्र और गैर कृषि कार्य हेतु भूमि क्षेत्र में विस्तार किया है।

तालिका-02: *नवादा जिला : कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप 1991 (हेक्टेयर में)*

क्रम	प्रखंड	कुल भूमि	वन	कृषि योग्य परती भूमि	विविध पेड़ एवं बगीचा	चारागाह	अन्य परती भूमि	चालू परती भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्र
1	नारदीगंज	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
2	नवादा	23620	–	243	60	112	3564	613	12294
	प्रतिशत			1.03	0.25	0.47	15.09	2.59	52.05
3	वारिसलीगंज	19820	–	60	17	372	1797	443	11464
	प्रतिशत			0.30	0.08	1.88	9.06	2.23	57.84
4	काशीचक	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
5	पकरीबरावाँ	24580	–	140	41	725	3378	624	14539
	प्रतिशत			0.57	0.18	2.95	13.74	2.53	59.15
6	कौआकोल	33530	19678	39	25	268	2821	164	6774
	प्रतिशत		58.68	0.11	0.07	0.79	0.84	0.48	20.20
7	रोह	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
8	गोविन्दपुर	27250	7201	111	88	333	3401	56	11140
	प्रतिशत		26.42	0.40	0.32	1.22	12.48	0.20	40.88
9	अकबरपुर	19800	3583	58	22	198	2761	61	10083
	प्रतिशत		18.39	0.29	0.11	1.00	1.39	0.30	50.92
10	हिसुआ	18270	2267	50	39	229	1217	57	12132
	प्रतिशत		12.50	0.27	0.21	1.25	6.70	0.31	66.40
11	नरहट	12690	2547	59	24	45	804	53	7132
	प्रतिशत		20.07	0.46	0.18	0.35	6.33	0.41	56.20
12	मेसकोर	–	–	–	–	–	–	–	–
	प्रतिशत								
13	सिरदला	31820	6700	93	44	112	3299	295	15877
	प्रतिशत		21.05	0.29	0.14	0.35	10.37	0.93	49.90
14	रजौली	38020	22968	120	39	125	801	552	10694
	प्रतिशत		60.41	0.31	0.10	0.32	2.10	1.45	28.11
	कुल	249400	64944	973	399	2519	23843	2918	112129
	प्रतिशत		26.04	0.39	10.16	1.01	9056	1017	44.96

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा से प्राप्त तथ्यों पर आधारित

तालिका 03 से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2001 में अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 112778 हेक्टेयर (45.22 प्रतिशत) है जबकि 1991 में यह तालिका-02 में 112129 हेक्टेयर (44.96 प्रतिशत) था अर्थात 649 हेक्टेयर क्षेत्र की बढ़ोतरी हुई है। चारागाह भूमि वर्ष 1991 की अपेक्षा 2001 में 324 हेक्टेयर क्षेत्रफल की कमी हुई है। हालांकि विविध पेड़ एवं बगीचा वाले भूमि में वर्ष 2001 में 1991 की अपेक्षा 1945 हेक्टेयर की व्यापक परिवर्तन हुआ।

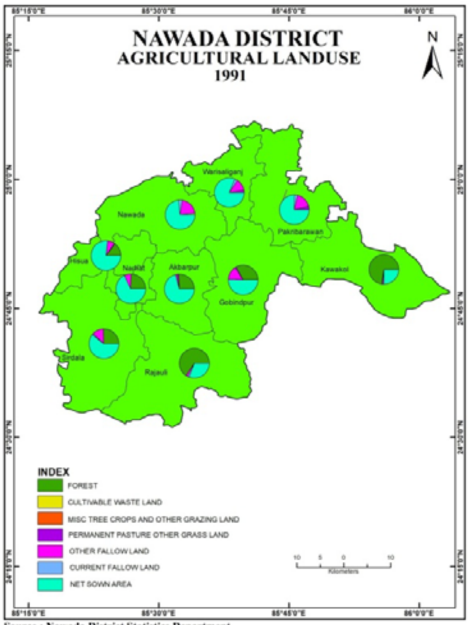

Source : Nawada District Statistics Department

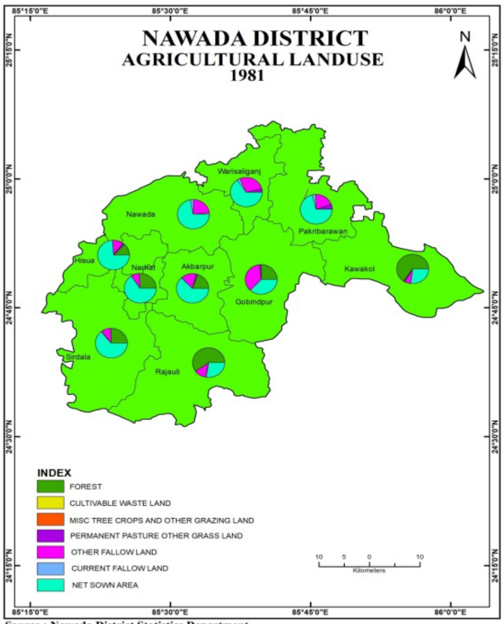

Source : Nawada District Statistics Department

तालिका 03: *नवादा जिला : कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप 2001 (हेक्टेयर में)*

Øम	प्रखंड	कुल भूमि	वन	कृषि योग्य परती भूमि	विविध पेड़ एवं बगीचा	चारागाह	अन्य परती भूमि	चालू परती भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्र
1	नारदीगंज	10443	–	69	94	44	1690	188	6451
	प्रतिशत			0.66	0.90	0.42	16.18	1.81	61.77
2	नवादा	16921	–	193	258	54	1989	367	9016
	प्रतिशत			1.17	1.52	0.31	11.75	2.17	53.28
3	वारिसलीगंज	15315	–	65	97	324	1855	401	8989
	प्रतिशत			0.42	0.63	2.11	12.11	2.64	58.56
4	काशीचक	8672	–	69	84	319	1282	275	4338
	प्रतिशत			0.79	0.6	3.67	14.78	3.20	50.02
5	पकरीबरावाँ	20101	–	82	157	312	2205	291	13257
	प्रतिशत			0.40	0.84	1.55	10.97	1.44	65.95
6	कौआकोल	32256	19200	42	144	234	1769	149	7437
	प्रतिशत		59.52	0.13	0.44	0.72	5.48	0.46	23.08
7	रोह	16722	1997	53	221	163	2050	132	9426
	प्रतिशत		11.94	0.31	1.32	0.97	12.26	0.81	56.37
8	गोविन्दपुर	15353	6215	66	295	126	1462	46	4809
	प्रतिशत		40.48	0.43	1.92	0.82	9.52	0.29	31.34
9	अकबरपुर	19803	3462	63	131	173	1817	55	11053
	प्रतिशत		17.48	0.31	0.66	0.87	9.17	0.28	55.84
10	हिसुआ	11383	2478	54	228	200	1256	53	5088
	प्रतिशत		21.78	0.47	2.00	1.76	11.03	0.46	44.70
11	नरहट	9123	1100	63	141	39	884	52	5362
	प्रतिशत		12.05	6.90	1.55	0.92	9.68	0.56	58.77
12	मेसकोर	11750	3788	59	122	29	1384	50	4585
	प्रतिशत		32.23	0.50	1.03	0.25	11.78	0.42	39.06
13	सिरदला	24685	8098	36	138	68	2076	218	10695
	प्रतिशत		32.81	0.14	0.55	0.27	8.41	0.88	43.35
14	रजौली	36873	16411	134	234	110	2513	367	12292
	प्रतिशत		44.50	0.36	0.63	0.29	6.81	0.99	34.56
	कुल	249400	62749	1048	2344	2195	24616	2644	112778
	प्रतिशत		25.16	10.42	0.94	0.88	9.87	1.06	45.22

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा से प्राप्त तथ्यों पर आधारित

2011 में जिले में प्रखंडवार कृषि भूमि उपयोग की स्थिति को तालिका-04 के अंतर्गत देखा जा सकता है। वर्तमान समय में जिले में शु) बोया गया क्षेत्र 114800 हेक्टेयर (46.03 प्रतिशत) है जो कि सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र पर स्थित है उसके बाद 63800 हेक्टेयर (25.60 प्रतिशत) क्षेत्र पर वन भूमि स्थित है सबसे कम क्षेत्र पर विविध पेड़ एवं बगीचा मात्र 700 हेक्टेयर (0.28 प्रतिशत) भूमि पर स्थित है।

तालिका-04: *नवादा जिला : कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप 2011 (हेक्टेयर में)*

Øम	प्रखंड	कुल भूमि	वन	कृषि योग्य परती भूमि	विविध पेड़ एवं बगीचा	चारागाह	अन्य परती भूमि	चालू परती भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्र
1	नारदीगंज	10443	–	72	28	18	1318	185	67.06
	प्रतिशत			0.69	0.26	0.17	12.62	1.77	64.24
2	नवादा	16921	–	203	77	22	1552	362	9003
	प्रतिशत			1.20	0.46	0.13	9..17	2.14	53.20
3	वारिसलीगंज	15315	–	68	29	133	1447	398	9164
	प्रतिशत			0.44	0.18	0.87	9.44	2.60	59.99
4	काशीचक	8672	–	72	25	131	1000	270	4629
	प्रतिशत			0.83	0.28	1.51	11.53	3.11	53.41
5	पकरीबरावाँ	20101	–	86	47	128	1720	286	13537
	प्रतिशत			0.43	0.23	0.63	8.55	1.42	67.38
6	कौआकोल	32256	19880	44	43	96	1380	147	6868
	प्रतिशत		61.63	0.13	0.13	0.29	4.27	0.45	22.00
7	रोह	16722	2041	56	66	67	1599	130	9721
	प्रतिशत		12.21	0.33	0.39	0.40	9.56	0.77	58.16
8	गोविन्दपुर	15353	6120	0.44	69	88	52	1140	45
	प्रतिशत		39.86	0.33	0.57	0.33	7.42	0.94	35.62
9	अकबरपुर	19803	3500	66	39	71	1418	54	11213
	प्रतिशत		17.67	0.33	0.19	0.35	7.16	0.27	56.66
10	हिसुआ	11383	2502	57	68	82	980	51	5356
	प्रतिशत		21.98	0.50	0.59	0.72	8.60	0.44	47.09
11	नरहट	9123	1124	67	42	16	690	48	5432
	प्रतिशत		12.32	0.73	0.46	0.17	7.56	0.52	59.58
12	मेसकोर	11750	3892	62	37	12	1080	49	4665
	प्रतिशत		33.12	0.52	0.31	0.10	9.19	0.41	39.74
13	सिरदला	24685	8348	38	41	28	1620	214	10617
	प्रतिशत		33.82	0.15	0.16	0.11	6.56	0.86	43.05
14	रजौली	36873	16393	140	70	44	2256	361	12688
	प्रतिशत		44.45	0.38	0.19	0.65	6.12	0.98	33.88
	कुल	249400	63800	1100	700	900	19200	2600	114800
	प्रतिशत		25.60	0.44	0.28	0.36	7.69	1.04	46.03

स्त्रोत- जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा से प्राप्त तथ्यों पर आधारित

आलोच्य वर्ष 2011 में जिले में कुल क्षेत्रल का प्रायः 46.03 प्रतिशत भूमि शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। इस वर्ग की सर्वाधिक भूमि अध्ययन क्षेत्र के पकरीबरावाँ, रजौली, अकबरपुर तथा सिरदला प्रखंड में है जो अपने भूमि का क्रमशः 67.38, 33.88, 56.66 एवं 43.05 प्रतिशत है। यह जिले का वह क्षेत्र है जो खाद्यान्न उत्पादन के लिए उपयुक्त मिट्टी और मैदानी क्षेत्र है। नवादा, नारदीगंज, वारिसलीगंज तथा हिसुआ प्रखंडों में सिंचाई के लिए नहरों की सुविधा उपलब्ध है। इन चारों प्रखंडों में उनके क्षेत्रफल का क्रमशः 53.20, 64.24, 59.99 तथा 47.09 प्रतिशत भूमि शुद्ध बोया क्षेत्र है। अन्य प्रखंडों में रोह (58.16 प्रतिशत), सिरदला (43.05 प्रतिशत) नरहट (59.58 प्रतिशत) तथा काशीचक (53.41 प्रतिशत) शुद्ध बोया गया क्षेत्र की संतोषजनक क्षेत्र उपलब्ध है। मेसकौर तथा कौवाकोल, अपनी विषम भू-संरचना के कारण इस दृष्टि से पीछे है। इन प्रखंडों में शुद्ध बोये गये क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल में प्रतिशत क्रमशः 39.74 तथा 22 है।

कौवाकोल की भू-संरचना की विशिष्टता यह है कि इस प्रखंड के दक्षिण-पूर्व में कौवाकोल के पहाड़ियों की एक लम्बी श्रृंखला और वन प्रदेश है जो प्रखंड के प्राय: 61.63 प्रतिशत भू-क्षेत्र में अर्थात 19880 हेक्टेयर में फैला है। प्रखंड की यह भू-संरचनात्मक स्थिति यहाँ के शुद्ध बोये गये क्षेत्र की वृद्धि की संभावना को परिसीमित करती है। लगभग यही स्थिति मेसकौर प्रखंडों की भी है। यहाँ की लगभग 33.12 प्रतिशत भू-भाग पर वन पाये जाते है तथा प्रखंड का दक्षिणी भाग पठारी क्षेत्रों के अंतर्गत आते है।

1981-2011 वर्ष में जिले में कृषि भूमि उपयोग के आंकड़ों से विविध उपयोग में तीस वर्षो की स्थिति निम्नलिखित रूप में पायी जाती है:-

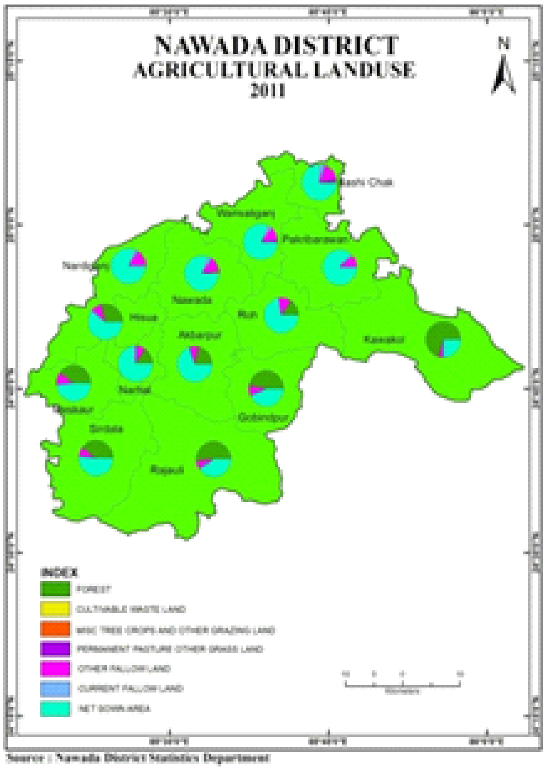

Source : Nawada District Statistics Department

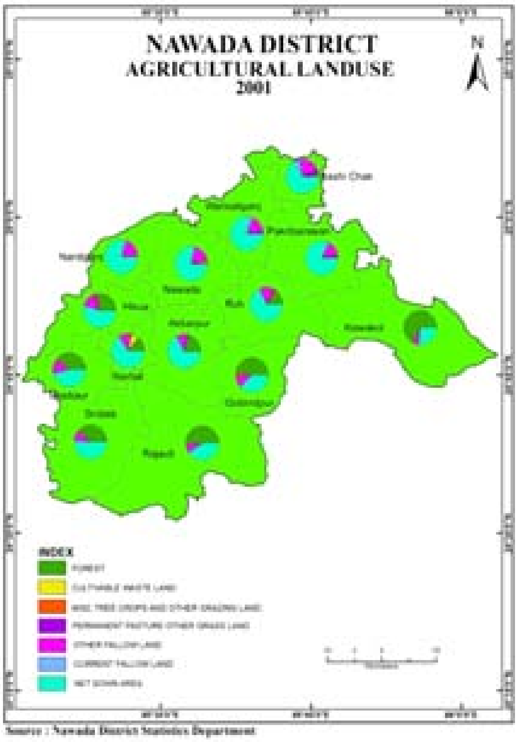

Source : Nawada District Statistics Department

तालिका-05: नवादा जिला : कृषि भूमि उपयोग प्रतिरूप में अंतर (1981-2011)

Ø0 संख्या	भूमि उपयोग वर्ग	1981 हेक्टेयर में	प्रतिशत	2011 हेक्टेयर में	प्रतिशत	अंतर प्रतिशत में
1.	वन	65143	26.12	63800	25.60	-0.52
2.	कृषि योग्य परती भूमि	898	0.36	1100	0.44	+0.08
3.	विविधा पेड़ एवं बगीचा	249	0.10	700	0.28	-3.10
4.	चरागाह	3716	1.49	900	0.36	-0.01
5.	अन्य परती भूमि	26910	10.79	19200	7.69	-1.13
6.	चालू परती भूमि	2844	1.14	2600	1.04	+0.18
7.	शुद्ध बोया गया क्षेत्र	111931	44.88	114800	46.03	+1.15

स्त्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय, नवादा

1981-2011 के बीच की उपर्युक्त तीस वर्षीय अवधि कृषि भूमि उपयोग में एक व्यापक और प्रभावकारी परिवर्त्तन का समय अध्ययन क्षेत्र के लिए रहा। इस तीस वर्षो में जिला के वन क्षेत्र में मामूली 0.52 प्रतिशत का ह्रास हुआ। वृक्षों की व्यापक कटाई से 1343 हेक्टेयर भूमि वनाच्छादन से मुक्त हुआ और इससे जिले के शु) बोये क्षेत्र का अप्रत्याशित विस्तार मिला। यह विस्तारित क्षेत्र मुख्य रूप में अकबरपुर और रजौली प्रखंडों में हैं। सन् 2011 के कृषि भूमि उपयोग के अन्य वर्गो में सामान्य परिवर्तन के साथ शु) बोये क्षेत्र में 1981 की अपेक्षा 2869 हेक्टेयर की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न एवं गैर-कृषि की बढ़ती मांग के कारण कृषि भूमि पर निरंतर दबाब बढ़ता जा रहा है। इसका सीधा प्रभाव कृषि भूमि उपयोग प्रारूप पर पड़ रहा है। दूसरी तरफ, अकुशल प्रबंधन और अवैज्ञानिक कृषि तकनीक कृषि ऊपज को भी सीमित कर रहा है। अधिक से अधिक उत्पादन तथा कृषि भूमि के विस्तार के कारण वन क्षेत्र सिकुड़ता जा रहा है। प्राकृतिक तर भूमि नष्ट हो गई है। दूसरे शब्दों में एक प्रकार की पर्यायवरणीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इस सबका प्रभाव वर्षा वितरण और भू-जलधारण क्षमता पर भी पड़ रहा है। ↗लत: पारिस्थतिकी प्रणालियों में इस बिगड़ते संतुलन का प्रभाव कृषि प्रारूप एवं भूमि उपयोग पर पड़ रहा है।

संदर्भ-सूची

- Hussain, M. (1979), Agricultural Geography, Inter India Publicatios New Delhi.
- Taylorm James (1967), Weather & Agriculture, Oxford Pergamon .
- Whittelsey, D. (1936) “Major Agricultural Region of the Earth Annals of the association of Amercian Geographer, 26, 199-240
- Coppock, J,T (1968)'The Geography of Africulture, Journal of Agricultural Economics 19, 153-175
- Jones, G.E (1966). The Landuse and Agriculture Regions in South Amerrica, Geographical Review.
- Dayal P.(1950), Agricultural Region of Bihar, IGI, Vol.25, pp-3-4
- Siddiqui, M.F and Ahmad, A. (1967), “Crop Association Pattern in the Luni Basin”, Geographical Review of India , Vol- 14, pp 69-88
- Amani, K.Z (1968), The Land Use and Cropping Pattern of Harnarainpur and Golhani Village of Aligarh Distt-Geographical Review of India, Vol- 31
- Vaidya, B.C. (1997) ‘Agricultural Land Une In India (A study in yashoda Basin) Mank Publication Pvt. Ltd.
- कुमार, एन. (2009): गया जिला में कृषि के विकास एवं संभावनाएँ ज्यॉग्रफीकल पर्सपेक्टिव Vol 10, पृष्ठ 90-94
- तिवारी, आर.सी. एवं सिंह ब्रम्हानंद, (1994): ‘कृषि भूगोल’, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद पृष्ठ 67
- कुमार, एन. (2009): गया जिला में कृषि के विकास एवं संभावनाएँ ज्यॉग्रफीकल पर्सपेक्टिव Vol 10, पृष्ठ 90-94

रोहतास जिला का मानव संसाधनः एक भौगोलिक अध्ययन

अनिल कुमार

शोधकर्त्ता, भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

शोध सारांश

मानव विकास संसाधन का उद्देश्य जीवन की एक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है जो व्यक्तियों को अपने योग्यता, प्रतिभा के अनुसार सार्थक एवं सृजनात्मक जीवन जी सकने में सहायक हों। मानव विकास का संबंध उन सभी अवसरों के विस्तार से है जिसका लाभ मानव उठा सकता है। इससे मनुष्य की क्षमताएँ निर्मित होती है।, जैसे एक दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करना, शिक्षा सूचना एवं ज्ञान प्राप्त करना, जीविकापार्जन के अवसरों का उपलब्ध होना, जीवन-यापन के अच्छे स्तर के लिए प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच होना, व्यक्तित्व तथा सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करना, मानव अधिकारों का उपयोग कर पाना सामुदायिक जीवन में सहभागिता को बढ़ाना साथ ही अच्छे सरकार तथा अच्छे प्रशासन का होना। मानव संसाधन विकास का उद्देश्य मानव के अवसरों तथा क्षमताओं के विस्तार से है।

मुख्य शब्द : मानव संसाधन,सामुदायिक जीवन, प्रकृतिक संसाधन, क्षेत्र आधारित नीति, शैक्षिक सूचकांक

अध्ययन विधि

प्रस्तुतशोध में व्यक्तिगत सर्वेक्षण, प्रारम्भिक सूचनायें, प्रकाशनों के आंकड़े, सरकारी आंकडों के आधार पर शोध पत्र का विश्लेषण किया गया है।

शोध का उद्देश्य

भारत जैसे विशाल देश में भौगोलिक पर्यावरण की विभिन्नताओं की भाँति विभिन्न क्षेत्रों में मानव संसाधन विकास तथा जनसंख्या संबंधी विशेषताएँ भी भिन्न होती है, फलतः देश के लघु प्रदेश की जनसंख्या तथा विकसित मानव संसाधन के विविध पक्षों के समय के अध्ययन वहाँ के भौतिक परिवेश में करना उपर्युक्त एवं तर्क संगत प्रतीत होता है इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए रोहतास जिला के मानव संसाधन के विकास को प्रस्तुत शोध में विषय बनाया गया है।

1. इस शोध का उद्देश्य मानव संसाधन का वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।
2. मानव संसाधन के विकास हेतु उपर्युक्त सुझाव का वर्णन करना तथा विकास हेतु प्रभावी कारको का विश्लेषण करना है।
3. इसशोध का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र के मानव संसाधन विकास के स्तर को मापना है। तथा स्थानिक भिन्नता का विश्लेषण करना है।

शोध का महत्व

प्रस्तुत शोध का महत्व न केवल अकादमिक क्षेत्र के लिए है बल्कि यह आर्थिक एवं सामाजिक विकासके लिए भी महत्वपूर्ण है। इस शोध के माध्यम से नीति निर्माताओं को क्षेत्र आधारित नीति बनाने में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त क्षेत्र में मानव संसाधन विकासके लिए आधारभूत संरचना को विकसित करने में मदद मिलेगी। इससे आर्थिक तथा सामाजिक विकासकी गति त्वरित होगी।

शोधपरिकल्पना :

परिकल्पना में किसी तथ्य को मान लिया जाता है इसकी पुष्टि फिल्ड सर्वे से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर किया जाता है। रोहतास जिला में मानव संसाधन विकास में क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है।

(प) मानव संसाधन विकास दर प्रति व्यक्ति आय ,साक्षरता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं पर निर्भर करता है।

रोहतास जिला की स्थिति एवं विस्तार

बिहार राज्य के दक्षिण-पश्चिमी भाग में अवस्थित रोहतास जिला पटना प्रमंडल के अंतर्गत आता है। इसका विस्तार 2431' से 2520' उत्तरी अक्षांश तथा 8330' पूर्वी देशांतर से 8426' पूर्वी देशांतर के बीच है। इसके उत्तरी सीमा पर भोजपुर और बक्सर जिले, पूर्वी सीमा पर जहानाबाद, औरंगाबाद तथा दक्षिणी सीमा पर झारखण्ड राज्य के पलामू और गढ़वा तथा पश्चिमी भाग में कैमूर जिला एवं उत्तर प्रदेश का कुछ भाग स्थित है। इस जिले के दक्षिणी पश्चिमी भाग से उत्तर पूर्व की ओर सोन नदी गुजरती है, जो कि इसके लिए प्राकृतिक सीमा का निर्माण करती है। रोहतास जिला का विस्तार 3881 वर्ग किलोमीटर है जो बिहार के कुल क्षेत्रल का 2.2 है। जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार यहाँ 1543546 पुरूष एवं 1416372 महिलाओं के साथ कुल 2959918 व्यक्ति थे, जिसमें कि 2532153 व्यक्ति द्ध85.54 प्रतिशतऋ गाँवों में बसते है। इस प्रकार इसकी अधिवासीय प्रवृति ग्रामीण प्रकार की है। जिले की कुल जनसंख्या का 18.57 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा 1.07 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत आता है। इस जिले का सामान्य जनसंख्या घनत्व 763 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है जो राज्य के सामान्य औसत घनत्व द्ध1106 व्यक्ति प्रति वर्ग किमीऋ से कम है।

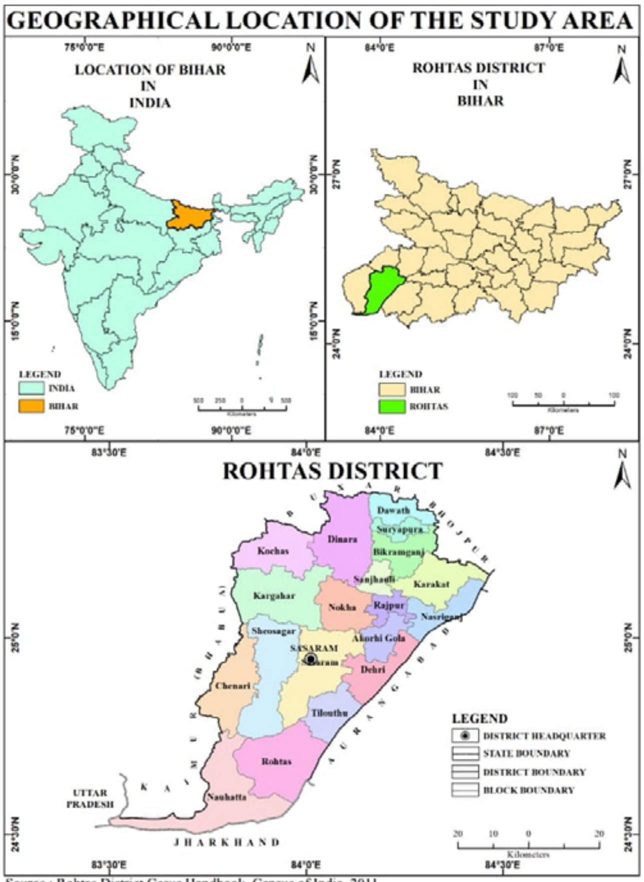

Source : Rohtas District Cesus Handbook, Census of India, 2011

परिचय

मानव संसाधन विकास वर्त्तमान विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि इससे किसी भी समाज, राज्य और राष्ट्र का समावेशी विकास संभव हो पाता है वस्तुत: किसी भी समाज या राष्ट्र का विकास इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उसके पास कितना विकसित मानव संसाधन है। किसी भी राष्ट्र का समाज तथा अर्थव्यवस्था वहाँ के विकसित मानव संसाधन के कुशल उपयोग और प्रबन्धन पर निर्भर करता है। कोई राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्था को उसस्तर तक ही विकसित कर पाता है, जहाँ तक उसके पास कौशल उपलब्) है। यदि विकसित मानव संसाधनों का कुशल उपयोग किया जाय तो राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ अन्य संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग हो सकता है लेकिन इसके त्रुटिपूर्ण उपयोग होने पर राष्ट्र की अर्थव्यवस्था मिट्टी में मिल सकती है। वस्तुत: प्रकृतिक संसाधन और मानव संसाधन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिनका किसी देश, राष्ट्र एवं समाज की अर्थव्यवस्था के विकासके लिए अनिवार्य है। महान अर्थशास्त्री 'अर्थर लूईस' का कहना है ''आर्थिक विकास मानवीय प्रयत्नों का परिणाम है। वर्त्तमान शताब्दी में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण हो रहा है और इसका आधार विकसित मानव संसाधन है। मानव संसाधन जनसंख्या के बारे में बताता है। इस वजह से मानव संसाधन विकास मानव की दक्षता, शैक्षणिक गुण, उत्पादकता तथा संगठनात्मक क्षमता के विकास में मदद् करता है, विकास जितना जनसंख्या को प्रभावित करता है। उतना ही जनसंख्या विकास को प्रभावित करता है। मनुष्य आर्थिक क्रिया का उत्पादक और साधन है। मानव संसाधन विकास एक ढांचा है, जो संगठन के या राष्ट्र के उद्देश्यों को संतोषजनक ढंग से पूरा करने के साथ ही व्यक्ति विशेष के विकास की अनुमति देता है। व्यक्ति के विकास से व्यक्ति विशेष, राष्ट्र और उसके नागरिकों को लाभ होता है। भूगोल मानव संसाधन विकास को एक सम्पत्ति के रूप में देखता है इसलिए मानव संसाधन को विकसित करने के लिए क्षमता और कौशल विकास पर जोर देता है। मानव संसाधन विकास जनसंख्या को अर्थव्यवस्था पर बोझ से अधिक परिसम्पति के रूप में देखता है शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण, अभियंत्रण, चिकित्सा सेवा में निवेश के परिणाम स्वरूप जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में बदल जाती है। मानव संसाधन उत्पादन में प्रयुक्त होनेवाली पूँजी है। यह मानव पूँजी कौशल और उनमें निहित उत्पादन के ज्ञान कोश है। यह योग्य और काम पर लगे हुए लोगों के सफलता को पहचानने का सूत्र है। मानव संसाधन विकास का उद्देश्य समग्र नीतियों तथा शिक्षण, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य तथा रोजगार द्वारा मानव संसाधन क्षमता में वृद्धि करना है। मानव विकास सामाजिक विकास का एक मूल तत्व है। विकास के दिशा मानव केन्द्रित है। इसका संबंध उनकी कल्याण, भलाई, आवश्यकताओं प्राथमिकताओं तथा आकांक्षाओं से होता है।

मानव संसाधन विकास की अवधारणा

मानव संसाधन कृषि कार्य शुरू होने से पहले ही व्यवसाय तथा संगठनों का हिस्सा रहा है। सन् 1900 के प्रारंभ से ही उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के उपायों पर ध्यानों देने के साथ ही मानव संसाधन की आधुनिक अवधारणा सामने आई। अमेरिका में कारखानों में उसके पहले मानव को कल-पूर्जो के समान ही बदले जाने की प्रवृति थी लेकिन नई अवधारणा के बाद इसतथ्य पर जोर दिया जाने लगा के मानव को कल-पूर्जो के समान बदला नहीं जाय बल्कि उनके कार्यिक क्षमता में वृद्धि किया जाय । 1960 के बाद अमेरिका सहित विश्व के अन्य देशों में मानव संसाधन विकासपर जोर दिया जाने लगा। जनसंख्या भूगोल भौगोलिक अध्ययन की एक नवीन एवं विकासोमुखशाखा है जिसमें जनसंख्या की जनांकिकीय विशेषताओं (प्रजनन, जन्म, मृत्यु, स्थानांतरण, यौन अनुपात, साक्षरता आदि) के साथ-साथ जनसंख्या के जिवीयसामाजिक, आर्थिक गुणों एवं संसाधनात्मक विशेषताओं का अध्ययन काल एवं स्थान के संदर्भ में किया जाता है, वर्त्तमान समय में विकसित एवं विकासशील देशों में बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के निदानार्थ अन्य विषय विशेषज्ञों के साथ-साथ भूगोलविद् भी जनसंख्या अध्ययन की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए है। विगत तीन दशकों में जनसंख्या भूगोल के अध्ययन में तीव्रता आयी है जिसके कारण जनसंख्या भूगोल एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में विकसित हुआ है। मानव संसाधन की अवधरणा विविध अर्थ रखता है। जनशक्ति और मानव संसाधन दोनों जनसंख्या की ओर ही इंगित करते है। उत्पादन के कारक के रूप में मानव संसाधन को श्रम के रूप में समझा जा सकता है या तो फिर मानव संसाधन को उसी प्रकार एक प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना जा सकता है। जैसे-खनिज, वन आदि। डॉ0 जे0 पी0 सिंह ने मानव संसाधन को ज्ञान का सम्यक भंडार के रूप में परिभाषित किया है। यदि अपेक्षाकृत व्यापक

दृष्टिकोण से देखा जाय तो मानव की संसाधनता के अंतर्गत उत्प्रेरणा, कार्य करने की दक्षता, अभिरूचियों एवं दृष्टिकोण जैसे मानवीय गुणों का समावेश होता है। जो आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में सहायक होता है। डॉ0 काशीनाथ सिंह का निम्न कथन जनसंख्या भी संसाधनता की ओर इंगित करता ही है साथ ही मानव संसाधन की अवधारणा को भी पुष्ट करता है।

वस्तुत: मानव संसाधन विकास का तात्पर्य किसी समाज या राष्ट्र में अधिवासित मानव समूहों को गुणवत्ता युक्त शिक्षा तथा तकनीकी कौशल का प्रशिक्षण देकर उनके कार्य क्षमता एवं कार्य दक्षता में वृद्धि से है।

मानव विकास सूचकांक का परिचय

प्रारंभ में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को ही किसी देश के विकास का मुख्य मापक माना जाता था। इसके थोड़े संशोधित रूप को विश्व बैंक ने भी आधार बनाया। लेकिन यह विधि काफी संकीर्ण है क्योंकि अनेक देश ऐसे है जिनका प्रति व्यक्ति आय तो बहुत अधिक है किन्तु वहाँ के लोग सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से काफी रूढ़िवादी हैं जैसे ओपेक देश अत: बाद में यह माना जाने लगा कि अगर किसी देश का आर्थिक कल्याण अर्थात् वहाँ के लोगों के जीवन की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार हो तो उसे आर्थिक विकास कहा जाना चाहिए। आर्थिक विकास के सूचकों के निर्धारण के लिए समय-समय पर अनेक प्रयास हुये जो अंतत: मानव विकास सूचकांक के रूप में फलीभूत हुआ। मानव विकास सूचकांक को पाकिस्तानी अर्थशास्त्री स्वर्गीय महबूब-उल हक द्वारा विकसित किया गया। प्रोफेसर अमर्त्य सेन इसके विकास में सहायक के रूप में थे। यह सूचकांक सयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 में पहली बार प्रयोग में लाया गया। मानव विकास सूचकांक के अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न देशों में मानव विकास के क्षेत्र में प्राप्त होने वाली उपलब्धियों का आकलन करना एवं इस संदर्भ में दिशा-निर्देशन करना है। इस सूचकांक में प्रति-व्यक्ति आय के साथ-साथ जीवन प्रत्याशा साक्षरता एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ जैसे सूचक रखे गये हैं। मानव विकास के सूचकांक के निर्माण के लिए निम्नलिखित तीन संकेत कों को जोड़ा जाता है:

1. दीघार्यु, जिसके लिए जीवन-प्रत्याशा के आकड़ों का प्रयोग किया जाता है
2. शैक्षणिक उपलब्धियाँ, जिसमें प्रौढ़ साक्षरता एवं शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर होने वाले दाखिलों की संख्या जोड़। जाता हैं। प्रौढ़ साक्षरता को दो तिहाई भार एवं दाखिलों की संख्या को एक तिहाई भार दिया जाता है तथा
3. रहन-सहन का स्तर जिसके लिए प्रति व्यक्ति आय का माप न किया जाता है।

मानव विकास सूचकांक HDI के निर्माण के लिए सभी संकेतकों कान्यूनतम एवं उच्चतम माप दंड निर्धारित कर दिये गये हैं।

न्यूनतम मापदंड उच्चतम मापदंड

जीवन प्रत्याशा 25 वर्ष 85 वर्ष

प्रौढ़ साक्षरता 0 प्रतिशत 100 प्रतिशत

वास्तविक प्रति व्यक्ति आय 100 4000 वार्षिक

चयनित गाँव का मानव विकास सूचकांक

HDI के परिकलन में प्रर्युक्त तीनों संकेतकों का सूचकांक निम्नलिखित समीकरण के आधार पर तैयार किया जाता है।

मानव संसाधन विकास सूचकांक = वास्तविक मूल्य – न्यूनतम मूल्य

उच्चतममूल्य – न्यूनतम मूल्य

1. प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित मापदंडों को अपनाया गया है। शिक्षा संबंधी संकेतकों में गाँव के सर्वे के दौरान प्राप्त प्रौढ़ शिक्षितों/साक्षरों की संख्या/ प्रतिशत को आधार बनाया गया है।
2. जीवन प्रत्याशा के लिए शोध के दौरान सर्वेक्षण के समय परिवार के बुजूर्ग सदस्यों के आयु को पूछा गया तथा उसका औसत निकालकर जीवन प्रत्याशा के संकेतक के रूप में प्रयोग किया गया है।
3. आय का आकलन परिवार के पास उपलब्ध सम्पत्ति, रोजगार एवं सुविधाओं के आधार पर किया गया है।

उपर्युक्त संकेतकों का प्रयोग करते हुए 06 गाँव के मानव विकास का अध्ययन किया गया है।

तालिका-01: चयनित गाँव का शैक्षिक सूचकांक, जीवन प्रत्याशा, प्रति व्यक्ति आय सूचकांक, मानव विकास सूचकांक

क्र0 सं0	*ब्लॉक का नाम*	*गाँव का नाम*	*शैक्षिक उपलब्धि सूचकांक*	*जीवन प्रत्याशा सूचकांक*	*प्रति व्यक्ति आय उपलब्धि सूचकांक*	*मानवविकास सूचकांक*
1	कोचस	अदिलापुर	0.46	0.56	0.70	0.68
2	दावथ	अनवरही	0.30	0.49	0.52	0.53
3	काराकट	अधौरा	0.58	0.51	0.60	0.59
4	राजपुर	अमरपुर	0.38	0.48	0.62	0.46
5	नोखा	डेरा	0.48	0.49	0.39	0.36
6	चेनारी	बैरिया	0.51	0.53	0.47	0.45

स्त्रोत- सर्वे पर आधरित 2018-2019

सर्वे के आधार पर उपरोक्त टेबुल का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि अध्ययन किये गये दो अदिलापुर तथा अधौरा गाँव का मानव संसाधन विकास मध्यम विकास स्तर के श्रेणी में जबकि चार गाँव डेरा, बैरिया, अमरपुर तथा अनवरही निम्न गाँव का मानव संसाधन विकास स्तर के श्रेणी में है। भारत मानव संसाधन विकास की दृष्टि से मध्यम श्रेणी में है। इसी प्रकार 2015 में बिहार का मानव विकास सूचकांक 0.53 है। इसी प्रकार सिंह एवं केसरी (2016) के अध्ययन में रोहतास का मानव विकास सूचकांक 0.547 बताया गया है इस अध्ययन के आधार पर देखा जाय तो अदिलापुर तथा अधौरा गाँव का मानव विकास सूचकांक क्रमशः 0.68 तथा 0.59 है जो पूर्व के रोहतास के मानव विकास सूचकांक तथा बिहार के मानव विकास सूचकांक से बेहतर है। इसी प्रकार अनवरही का मानव विकास सूचकांक (0.53) बिहार के मानव विकास सूचकांक (2015) के बराबर तथा रोहतास (2016) के मानव विकास सूचकांक से निम्न स्थिति में है। अन्य तीन गाँव डेरा, अमरपुर तथा बैरिया रोहतास (2016) तथा बिहार (2015) के सूचकांक से निम्न स्तर में है। (उपरोक्त विवरण-01) सर्वेक्षित अदिलापुर तथा अधौरा गाँव का मानव विकास सूचकांक का अधिक होने के कारण वहाँ की साक्षरता दर, जीवन प्रत्याशा, तथा प्रति व्यक्ति आय का अधिक होना है। पुनः वहाँ के लोगों में विकास के प्रति जागरूकता है। यहाँ के लोग शिक्षा स्वास्थ्य तथा आय के प्रति ज्यादा जागरूक है। अदिलापुर गाँव शिक्षा तथा नौकरी के लिए पुरे प्रखंड में जाना जाता है। इस गाँव के शिक्षा का प्रभाव इसके आस-पास के गाँव पर भी पड़ा है। इस गाँव में लगभग सभी घरों में नौकरी तथा व्यवसाय में लगे लोग है जो अपने लक्ष्य के प्रति ज्यादा जागरूक है। सर्वेक्षित गाँव डेरा, बैरिया, अमरपुर तथा अनवरही के मानव विकास सूचकांक निम्न स्तर का है। यहाँ मानव विकास सूचकांक के निम्न स्तर के होने को कारण यहाँ के लोगों में शिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव है। पुनः आर्थिक संसाधन भी यहाँ कम उपलब्ध है। यहाँ ज्यादा से ज्यादा परिवार अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही सारी उर्जा खर्च कर देते है। पुनः इन गाँवों की सामाजिक तथा भौगोलिक स्थिति भी मानव संसाधन विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा है। जैसे डेरा गाँव दियारा भूमि के रूप में है। यहाँ के लोगों की जीविका का मुख्य साधन कृषि है लेकिन यहाँ बाढ़ की समस्या हर वर्ष रहती है जिसके कारण यहाँ आर्थिक गतिविधियों का कम विकास हो पाया है। पुनः जिला मुख्यालय से दूर होने के कारण यहाँ के लोग उच्च शिक्षा कम ग्रहण कर पाते है। साथ ही स्वास्थ्य से संबंधित सुविधाएँ भी इन्हें कम प्राप्त होती है। बैरिया, अमरपुर तथा अनवरही में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या अधिक है जिसके कारण ये बाहर से कम ही आकर्षित होते है। इनके पास आर्थिक संसाधन का अभाव है। पुनः अपनी आय का अधिकांश भाग परिवार का आकार बड़ा होने के कारण उपभोग पर ही खर्च कर देते है। यहाँ स्वास्थ्य सुविधाएँ कम है। लोग अभी भी यहाँ जादू-टोना तथा ओझा के द्वारा अपनी बीमारियों का ईलाज कराते है। जिसके कारण स्वास्थ्य की स्थिति ठीक नहीं है। शिक्षा से संबंधित आधारभूत सुविधाएँ भी यहाँ नहीं के बराबर है जो शैक्षणिक सुविधाएँ है वह प्राथमिक तथा मिडिल स्तर तक के ही है। जिला मुख्यालय से लगभग 30 किलोमीटर दूर होने के कारण उच्च शिक्षा से लोग यहाँ लगभग वंचित है। महिला शिक्षा तथा स्वास्थ्य की स्थिति और खराब है डेरा गाँव तराई क्षेत्र में बसा है जिसके कारण इस क्षेत्र का विकास नहीं हो सका है पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा कुछ विकास कार्य किये गये है लेकिन अभी यह प्रारंभिक अवस्था में है। पुनः यहाँ जनता के लिए जो विकासात्मक योजनाएँ आती है उसके बारे में उन्हें जानकारी नहीं हो पाती है। यही कारण है कि इस गाँव का मानव विकास सूचकांक निम्न स्तर का है।

संदर्भ-सूची

- सिंह U.P.(1980), जनसंख्या संसाधन संतुलन सलेमपुर तहसील (देवरिया) शोध प्रबंध अप्रकाशित गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
- कोटिल्य अर्थशास्त्र वैसिलय, मिशन प्रेस मेसुर सिटी, 1936 पृष्ठ संख्या-209।
- नेडलर LED, 1984 मानव संसाधन के विकास में पुस्तिका जौन विले एवं रूम्स न्यूयार्क
- मैक्सील G.N, उष्मान गनी, A.M & Cho (Eds) राष्ट्रीय नीति के रूप में मानव संसाधन विकास, मानव संसाधन विकास में अग्रणी अगस्त (2004) 6, 3 ।
- एलवुड एक होल्टों द्वितीय, जेम्स डस्लुड्रोट जुनियर, 1996 एक व्यावसायिक शिक्षा और मानव संसाधन विकास की ओर बढ़ता सम्मान, व्यवसायिक और तकनीक शिक्षा पत्रिका Vol No-02, P-7
- शर्मा, एस0 के0 (2003) भारत लोग और अर्थव्यवस्था, NCERT नई दिल्ली।
- यादव, हीरा लाल एवं सिन्हा, सविता मानव भूगोल के मूल सिद्धांत NCERT नई दिल्ली। (2003) नई दिल्ली।
- धीगरा, ईश्वर (2002) भारत का आर्थिक विकास, सुल्तानचन्द एंड सन्स, नई दिल्ली।
- चौबे, पी. के. (2002) भारत का आर्थिक विकास, NCERT नई दिल्ली।
- दत्त, रूद्र सुन्दरम के.पी.एम. (2004) इंडियन इकोनॉमी, एस. चान्द प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मानव विकास प्रतिवेदन 2005 ओक्स्फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- वर्णवाल महेश (2010) भारत का भूगोल कस्मौस पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- HTTPè1 www-1è10 Clark J.I. (1965) : Population Geography, Preman Press, Oxford.
- Chandana , R.C Sindhu, M.S (1980) Intrudction to population Geography, Kalyani Publication New Delhi p.2
- जनगणना विभाग, पटना, बिहार
- सांख्यिकी विभाग, रोहतास

पोषण एवं व्यक्तित्व विशेषताएँ: एक अध्ययन

डॉ० नीलम कुमारी

पोस्ट रिसर्च स्कॉलर, गृह-विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश- पोषण का अर्थ डी. एक. टर्नर ने इस प्रकार दिया है- "पोषण उन प्रतिक्रियाओं का संयोजन है जिनके द्वारा जीवित प्राणी क्रियाशीलता को बनाये रखने के लिए तथा अपने अंगों की वृद्धि एवं उनके पुन: निर्माण हेतू आवश्यक पदार्थ प्राप्त करता है और उनका उचित उपयोग करता है।"[1] पोषण एक प्रक्रिया के साथ-साथ विज्ञान भी है। भोजन में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्वों का सम्मिश्रित रूप में शारीरिक क्रियाओं तथा शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग पोषण कहलाता है।'[2] पोषण एक विज्ञान है, जिसके अंतर्गत आयु, स्वास्थ्य एवं रोग की विभिन्न परिस्थितियों में भोजन के विभिन्न प्रकार व उनकी मात्र से शरीर में उत्पन्न रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि भोजन केवल जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक उत्तम स्वास्थ्य, शरीर का निर्माण, वर्धन, सुगठन, क्षतिग्रस्त अवयवों एवं उनकी कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति एवं ऊर्जा तथा ऊष्मा प्राप्ति के लिए आवश्यक है। जो भोजन हम खाते हैं उसी से हमारा शरीर बनता है, उसी से हमें काम करने की शक्ति प्राप्त होती है और उसी से हमारा स्वभाव व हमारी चित्रवृति प्रभावित होती है।

मुख्य शब्द: कार्बनिक यौगिक, घुलनशील विटामिन, कैलसिफ़िरोल ,समाजिकता, पारा-एमीनो बेनजोइक एसिड, पोषण विज्ञान

प्रस्तावना

पोषण विज्ञान का लक्ष्य मनुष्य को केवल जीवित रखना ही नहीं, उसे निरोग रखना भी है। पोषक तत्व तथा उनके प्राप्ति स्त्रोत:- भोज्य पदार्थो में अनेक पोषक तत्व पाये जाते हैं, जो शरीर का निर्माण करते हैं, शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं, तथा शरीर को स्वस्थ रखते हैं। ये तत्व पोषक तत्व कहलाते हैं क्योंकि उनसे हमारे शरीर का पोषण होता है। ये पोषक तत्व निम्नलिखित हैं -

कार्बोहाइड्रेट :- कार्बोहाइड्रेट कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का रासायनिक यौगिक है। इन तीनों तत्वों के संयोजन से शर्करा इकाईयों का निर्माण होता है। इन इकाईयों से कार्बोहाइड्रेट्स के अणुओं की रचना होती है। प्राप्ति के स्त्रोत :-

खाद्यान्न:- सभी अनाज जैसे - गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, साबूदाना, डबलरोटी, बिस्कुट इत्यादि।

मीठे खाद्य:- मधु, गन्ना, चीनी, आम, गुड़, खजूर, अंगुर, चुकन्दर, शकरकन्द, मिश्रीकन्द एवं अन्य फल इत्यादि।

कंद व मूल:- चुकन्दर, आलू, शकरकन्द, शलजम, अरबी, गन्ना इत्यादि।

प्रोटीन:- यह एक कार्बनिक यौगिक है, जो कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के अतिरिक्त गंधक नाइट्रोजन और कुछ अन्य तत्वों से बना होता है। प्रोटिन में 22 यौगिक होते हैं। इन्हें एमिनो एसिड कहते हैं।

प्राप्ति के स्त्रोत

पशुजन्य प्रोटीन:- यह जंतु जगत से प्राप्त प्रोटीन है तथा यह उच्च श्रेणी के होते हैं। उनके स्त्रोत दूध, दूध से बने पदार्थ, माँस, मछली, अण्डा इत्यादि।

वानस्पतिक प्रोटीन:- पेड़-पौधों से प्राप्त प्रोटीन वानस्पतिक प्रोटीन कहलाता है। सोयाबीन, मटर, दाल, गेहूँ, चावल, बाजरा इत्यादि।

वसा:- वसा कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन का रासायनिक मिश्रण है। वसा के दहन से शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न होती है। वसा चर्बीदार अम्ल और ग्लिसरीन का मिश्रण होती है। एक ग्राम वसा से 9 कैलोरी ऊर्जा मिलती है।

वसा प्राप्ति के स्त्रोत

वनस्पति से :- सरसों, नारियल, मूंगफली, तिल, बादाम, सूखे मेवे इत्यादि।

पशुजन्य पदार्थों से :- मछली, चर्बी, अंडा, घी, मक्खन आदि।

विटामिन :- विटामिन एक प्रकार के रासायनिक तत्व होते हैं जो शरीर में बहुत अल्प मात्रा में पाये जाते हैं। यद्यपि विटामिन मात्रा में कम होते हैं, फिर भी सामान्य कार्य, अच्छे स्वास्थ्य के संरक्षण और शारीरिक विकास के लिए अत्यंत अनिवार्य हैं। इनके अभाव से शरीर रोगग्रस्त होने लगता है। विटामिन को दो वर्गों में बाँटा गया है -

- जल में घुलनशील विटामिन - विटामिन 'बी', विटामिन 'सी'
- वसा में घुलनशील विटामिन- विटामिन 'ए', विटामिन 'डी', विटामिन 'ई' औरं विटामिन 'के'।

जल में घुलनशील विटामिन शरीर में स्वनिर्मित नहीं हो सकते उन्हें भोजन के द्वारा प्राप्त करना अनिवार्य है। जल में घुलनशील होने के कारण इसकी अतिरिक्त मात्रा शरीर सेजल के साथ निकल जाती है। अत: ये शरीर में संचित नहीं होते हैं। वसा में घुलनशील विटामिन शरीर में कुछ मात्रा में स्वनिर्मित होते रहते हैं। इनकी अतिरिक्त मात्रा शरीर में संचित हो जाती है। यदि भोजन से आवश्यक विटामिन कुछ समय तक प्राप्त नहीं भी होते हैं तो शरीर में संचित विटामिन काम आते रहते हैं।

जल में धुलनशील विटामिन

विटामिन 'बी' :- यह केवल एक विटामिन न होकर, कई विटामिनों का एक समूह है। इन विटामिनों की रासायनिक संरचनाओं में अंतर होता है तथा इनके कार्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रारंभ में इसे विटामिन 'बी' कहा जाता था परन्तु धीरे-धीरे यह ज्ञात हुआ कि विटामिन 'बी' एक ही पदार्थ न होकर कुछ यौगिकों का समूह है। अत: इसे विटामिन 'बी' कॉम्प्लेक्स का नाम दिया गया। विटामिन 'बी' समूह के सभी विटामिनों के नाम इस प्रकार हैं -

- विटामिन बी-1 या थाइमिन (दूध, अंकुरित अनाज, मूंगफली, संतरा, साग, टमाटर, अंडा, यकृत)
- विटामिन बी-2 या राइबोफ्लेविन (दूध, कलेजी, मछली, वृक्क, अनाज, अंकुरित दाल, हरी पत्तेदार सब्जी)
- नियासिन (मछली, माँस, कलेजी, ईस्ट, गेहूँ का आटा, उसना चावल, दाल, मकई, मूंगफली)
- विटामिन बी-6 या पाइरिडॉक्सिन (कलेजी, गुर्दा, माँस, दूध, गेहूँ के अंकुर, अनाज के दाने)
- पेन्टोथीनिक एसिड
- फॉलिक एसिड
- बॉयटिन
- कोलीन
- पारा-एमीनो बेनजोइक एसिड
- इनोसिटाल
- विटामिन बी-12 या सियानोकोबाल्मीन (यकृत, माँस, अण्डा, दूध)
- विटामिन 'सी' :- विटामिन 'सी' सफेद रवे के आकार का पानी में अति घुलनशील विटामिन है। शुष्क अवस्था में ताप, वायु, रोशनी धूप में यह स्थिर रहता है परन्तु तरल अवस्था में यह शीघ्र नष्ट होता है। भोजन पकाने की क्रिया में यह शीघ्र नष्ट होता है।

प्राप्ति के साधन :- आँवला, अमरूद, नीबू, नारंगी, टमाटर, आम, अनानास, पोदीना, हरी पत्तीदार सब्जियाँ (चौलाई साग, पत्तागोभी, धनिया की पत्ती, सहजन की पत्तियाँ), अँकुरित अनाज एवं दाल इत्यादि।

वसा में घुलनशील विटामिन

विटामिन 'ए' :- विटामिन 'ए' की खोज का श्रेय डॉ0 मैकालम को है। कई प्रयोगों द्वारा यह जाना गया कि लाल और पीले रंग के सभी पदार्थों में विटामिन 'ए' पाया जाता है। शरीर की आवश्यकता से अधिक विटामिन 'ए' की ग्रहण की गई मात्रा यकृत में इकट्ठी हो जाती है।

प्राप्ति के स्त्रोत

पशुजन्य स्त्रोत :- मक्खन, घी, दूध, अण्डा, लिवर, मछली वनस्पति जगत से प्राप्त - अनाज, अखरोट, सोयाबीन, चना, बादाम, मकई, पालक, मेथी, मूली के पत्ते, पपीता, आम, गाजर, सीताफल इत्यादि। **विटामिन 'डी' :-** विटामिन 'डी' को अस्थि विकृति नाशक विटामिन भी कहते हैं। इंगलैंड के मॉलानवाय ने इसकी खोज की। इसे कैलसिफिरोल भी कहते है।[3] यह कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के रासायनिक संयोग से बनता है। यह एक मिश्रित विटामिन है और लगभग 16 विटामिनों का समूह है जो चिकनाई में घुलनशील है।

प्राप्ति के स्त्रोत :- मछली का तेल, यकृत का तेल, दूध, मक्खन, अण्डे की जर्दी, सूर्य की किरण।

विटामिन 'ई' :- यह भी वसा में घुलनशील विटामिन है। विटामिन 'ई' एक पीले विस्कासी तेल के रूप में होता है, यह ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में अम्ल और ऊष्मा में काफी स्थायी होता है, परन्तु पराबैंगनी किरणों, क्षारों, ऑक्सीजन की तीव्रता से नष्ट हो जाता है।

प्राप्ति के स्त्रोत :- गेहूँ के अंकुर, पत्तेदार तथा अन्य सब्जियाँ, घी, मक्खन, दूध, गाजर, अंगुर, मूंगफली, अंकुरित अनाज इत्यादि।

विटामिन 'के' :- यह पीले रंग का विटामिन है जो ऊष्मा में स्थायी होता है और क्षार, तेज, अम्लों, ऑक्सीकरण और प्रकाश में अस्थायी होता है। यह विटामिन रक्तस्कन्द के लिए आवश्यक है।

प्राप्ति के साधन :- पालक, पत्तागोभी, लहसुन पत्ता, करमकल्ला, अन्य सब्जियाँ, फूलगोभी, गेहूँ का अँकुर इत्यादि।

व्यक्तित्व

परिभाषा :- आलपोर्ट (1937) के अनुसार "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।"[4] आइजेंक (1952) के अनुसार "व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्रप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्ण समायोजन का निर्धारण करता है।"[5] निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व में भिन्न-भिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढ़ंग का अर्थात् अपूर्व होता है।

विशेषताएँ

- इसकी मुख्य विशेषताँए साधारणतया समय के साथ बदलती नहीं हैं।
- इसके अर्न्तगत शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही घटक होते हैं।
- किसी व्यक्ति विशिष्ट में व्यवहार के रूप में इसकी अभिव्यक्ति पर्याप्त रूप से अनन्य होती है।
- यह इस अर्थ में गत्यात्मक होता है कि इसकी कुछ विशेषताँए बाहय अथवा आन्तरिक स्थितिपरक माँगों के कारण बदल सकती है। अत: व्यक्तित्व स्थितियों हेतु अनुकूलनशील होता है।

व्यक्तित्व के कुछ प्रमुख विशेषकों का उल्लेख निम्नलिखित है :-

प्रभुत्व-अधीनता :- "प्रभुत्व-अधीनता" व्यक्तित्व के एक प्रमुख विशेषक के रूप में मानी जाती है। जब कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति या समुदाय पर अपना प्रभाव या अधिकार दिखाता है, तो उसे प्रभुत्व के रूप में समझा जाता है। ठीक इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति किसी की अधीनता स्वीकार कर लेता है, तब उसे "अधीनता" कहते हैं। आमतौर पर यह देखा गया है कि कुछ बच्चे दूसरों पर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं, खेल में काफी सक्रिय भाग लेते हैं तथा नेतृत्व करने को अग्रसर हो जाते हैं। इसके विपरीत,

कुछ बच्चे आदेश का पालन करने, समर्थन करने तथा अनुगमन करने को तैयार हो जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह विशेषता बच्चों के जीवन के प्रारंभिक भाग से ही देखी जाती है।

अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता :- यह व्यक्तित्व के प्रमुख विशेषक है, जिनसे यह ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति किस प्रकार के वातावरण के साथ अपना अभियोजन स्थापित करता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति 'अहम्' को प्रधानता अधिक देते हैं और स्पष्टत: उनका व्यवहार कुछ ऐसा होता है जैसे बाहय जगत की प्रधानता अपेक्षाकृत कम हो। लेकिन बहिर्मुखी व्यक्ति स्वभावत: वस्तुनिष्ठ रूप से चिन्तन तथा कार्य करते हैं। ये विशेषक बाल्यावस्था में बचपन से ही देखने को मिलते हैं।

दृढ़ता :- व्यक्तित्व-विशेषकों में 'दृढ़ता' का काफी महत्व है। कुछ व्यक्तियों में यह विशिष्ट व्यवहार देखा जाता है कि विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए अपने कार्य का संपादन करके ही दम लेते हैं। यही उनकी दृढ़ता होती है। जबकि कुछ बच्चे लगन के साथ कार्य नहीं करते और बाधा से घबराकर कार्य को अधूरा छोड़ देते हैं। ऐसे बच्चों में दृढ़ता की कमी रहती है।

समाजिकता :- बच्चों के सामाजिक व्यवहार के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कुछ बच्चों में 'समाजिकता' अपेक्षाकृत अधिक देखी जाती है। अन्य बच्चों के साथ खेलने, अपने खिलौने देने तथा दूसरों के खिलौने लेने में नहीं हिचकते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं, जो अन्य बच्चों से मिलने या साथ खेलने में सक्रिय भाग नहीं लेते हैं। इस विशेषता के कारण ऐसे व्यक्ति सामाजिक संस्थाओं में खुलकर भाग लेते हैं तथा नेता भी बनते हैं। जिन व्यक्तियों में इसका अभाव रहता है, वे लज्जालु, तटस्थ तथा शांत होते हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि पोषण एवं व्यक्तित्व हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। अगर किसी बच्चे को शैषवकाल से ही संतुलित एवं पौष्टिक आहार प्राप्त हो तो उसका विकास एवं वृद्धि सही ढंग से होता है तथा वह बच्चा बड़ा होकर एक स्वस्थ एवं विकसित नागरिक बनेगा। साथ ही साथ इससे उसका व्यक्तित्व भी निखरेगा और वह एक विकसित राष्ट्र के निर्माण में अपना अभूतपूर्व योगदान दे सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आहार एवं पोषण विज्ञान - डा0 प्रमिला वर्मा, डा0 कान्ति पाण्डेय पृष्ठ सं0 - 47
- उच्च माध्यमिक गृह विज्ञान -डा0 प्रमिला वर्मा, डा0 कान्ति पाण्डेय पृष्ठ सं0 - 92
- वही- पृष्ठ सं0 - 123
- उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह पृष्ठ सं0 - 112

दलित-मुस्लिम एकता की राजनीतिः एक आकलन

डॉ० स्वदेश सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका

29 जनवरी, 2020 को देश में नागरिकता संशोधन कानून (सीएए), 2019 के विरोध में भारत मुक्ति मोर्चा का (भामुमो) बंद था। भामुमो दलितों और बहुजन का एक संगठन हाल के वर्षों में बना है जिसके कर्ताधर्ता बामन मेश्राम हैं जो कि बामसेफ का काम भी देखते हैं। इसे बंद को ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड सहित कई मुस्लिम संगठनों का भी सहयोग था। देश के कई राजनीतिक दल जो अपनी जमीन तलाशने मे लगे हैं उन्होंने भी इसे समर्थन दे रखा था। बंद पूरी तरीके से असफल रहा और कहीं भी कोई अप्रिय घटना या तालाबंदी की खबर सामने नहीं आई।

इस पृष्ठभूमि में अगर विचार करें एक ऐसे मुद्दे पर जिसका देश के आम नागरिकों और विशेषकर दलितों और अन्य पिछड़े समाज के लोगों का कोई लेना देना नहीं था तो उस भारत बंद का आवाहन भामुमो की तरफ से क्यों हुआ या अन्य संगठन उसका समर्थन क्यों कर रहे थे। ये किस तरीके की दलित-मुस्लिम एकता की बात हो रही है। मुस्लिम संगठन जिस मुद्दे को पिछले कुछ दिनों से उठा रहे हैं उसी मुद्दे को एक बहुजन संगठन से उठवाने के क्या मायने हैं। और इस मुहिम का इस तरीके से असफल हो जाना भी किस तरफ इशारा करता है। इस लेख के माध्यम से मुस्लिम-दलित एकता के इतिहास, उसकी सैद्धांतिक भूमिका, वर्तमान परिदृश्य को समझने की कोशिश की गई है।

पृष्ठभूमि

1857 के बाद अंग्रेजों ने भारतीय समाज को तोड़ने के लिए कई विभाजक रेखाएं खींचीं जिसमें से जाति, धर्म, आर्य-द्रविड़ और भाषा प्रमुख था। अंग्रेजों ने भारतीय समाज में कई स्तर पर विभाजन पर काम करना शुरू किया। इन विभाजक रेखाओं (फॉल्टलाइन्स) में चार प्रमुख कहीं जा सकती हैं - जाति, धर्म, आर्य-द्रविड़ और भाषा। 1857 के बाद से ही अंग्रेजों ने मुसलमानों को अलग-अलग स्तर पर प्रश्रय देना शुरू किया। उन्हें तमाम उपाधियां और जागीरें दी गईं। स्कूल खोलने के लिए वित्तीय सहायता दी गई। सर सैयद अहमद ने मुस्लिम ऐंग्लो स्कूल बनाया जो आगे चलकर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना और भारत के विभाजन का मुख्य केंद्र भी। देश का विभाजन हुआ तो 1947 में लेकिन इसकी पूर्वपीठिका 1905 में ही लिख दी गई जब धर्म के आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया गया। 1906 में मुस्लिम लीग का गठन हुआ और 1909 में उन्हें पृथक निर्वाचन मंडल दे दिया गया। आगे जो हुआ हम जानते हैं।

कुछ इसी तरह का राजनीतिकरण जाति का भी हुआ। 1881 में देश में पहली जनगणना हुई जिसमें जाति लिखना अनिवार्य था। इन जातियों के आधार पर पहले अंग्रेज सरकार और बाद में रियासतों ने लोगों को सरकारी सुविधा देना शुरू किया। जाति की पहचान मजबूत होती गई। पहले एमसी राजा ने जाति के आधार पर जस्टिस पार्टी का गठन किया फिर आगे डॉ अंबेडकर इस तरह के आंदोलन का नेतृत्व करते रहे। जस्टिस पार्टी के समर्थक कहा करते थे कि हम दो तरह के साम्राज्यवाद से एक साथ लड़ रहे हैं - ब्रिटिश साम्राज्यवाद और ब्राहमणवादी साम्राज्यवाद। वो तो गांधी और अंबेडकर के अंदर की आध्यात्मिक थी जिसने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल के प्रस्ताव पर मुहर नहीं लगने थी। इसी प्रकार से आर्य-द्रविड़ के सिद्धांत भी ब्रिटिश इतिहासकारों ने

गढ़े कि ये दोनों अलग नस्लें (रेस) हैं। अंग्रेजों का कहना था कि आर्य तीन हजार साल पहले आए और उन्होंने शासन किया। तुर्क-मुगल 800 साल पहले आए और शासन किया तो वे अगर तीन सौ साल पहले आए और शासन करने लगे तो क्या गलत किया। इसलिए उन्होंने 'आर्य बाहर से आए' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

अंग्रेजों ने मुस्लिम और दलित-पिछड़े समाज की एकता के प्रयास किए उन्हें भारत और हिंदू धर्म के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की। 1920 से 9134 तक ये मुहिम अपने चरम पर थी। जिन्ना और अंबेडकर को साथ लाने की कोशिश हुई लेकिन ये सारे प्रयास मूर्त रूप नहीं ले सके और सिद्धांत से आगे नहीं बढ़ पाए।

डॉ अंबेडकर और मुस्लिम

अंग्रेजों ने एक बड़ा दांव विदेश से पढ़कर लौटे डॉ भीमराव अंबेडकर पर भी चला। अगर ये दांव सफल हो जाता तो इस देश के लिए बड़ी त्रासदी होती। डॉ अंबेडकर ने दलित समाज के उत्थान के लिए अंग्रेजों के साथ मिलकर कई बार काम किए। वॉयसरॉय की काउन्सिल तक में रहे लेकिन हमें डॉ अंबेडकर का ऋणी होना चाहिए क्योंकि जब भी कोई अहम मौका आया तो वे देश और धर्म के साथ खड़े हुए। शायद उनके अंदर सदियों से चले आ रही ऋषि परंपरा का आध्यात्म भाव था जिसने उन्हें देश-धर्म विरोधी कोई रेडिकल कदम उठाने से रोक लिया।

1932 में डॉ. अंबेडकर ने महात्मा गांधी की पहल पर पंडित मदन मोहन मालवीय के साथ पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर करके देश को एक और विभाजन और हिंदू धर्म को टूटने से बचा लिया। उस समझौते के अनुसार ही दलितों को आरक्षण की व्यवस्था हुई। आजादी के बाद उन्होंने कभी भी दलितों को पाकिस्तान जाने के लिए प्रेरित नहीं किया। उनके अनुसार दलितों के हित हिंदू धर्म और भारत देश में ही सुरक्षित थे। भारतीय संविधान बनाते समय उन्होने भारत में सृजित धर्मों के दलितों को तो आरक्षण दिया लेकिन मुस्लिम या ईसाई धर्म में परिवर्तित होने वाले दलितों के लिए आरक्षण का निषेध किया। उनका साफ मानना था कि भारत में सृजित धर्मों का आध्यात्म भाव एक ही है। एक बार जो मुस्लिम या ईसाई बन गया उसकी निष्ठा बदल सकती है जैसा कि विभाजन के दौरान हुआ।

जब उन्होंने धर्म परिवर्तन की सोची तब सभी धर्मों के अध्ययन के बाद भी भारत में सृजित बौद्ध धर्म का रास्ता अपनाया ना कि इस्लाम या ईसाइयत का। उन्होंने इस देश के दलितों के लिए बौद्ध धर्म को सही रास्ता माना ना कि इस्लाम को। हालांकि आज के राजनेता तो दलित-मुस्लिम राजनीति खड़ी करनी की बात कह रहे हैं वो डॉ अंबेडकर को अपने पक्ष में खड़ा करने की कोशिश करते हैं जो अपने आप में पूरी तरीके से गलत है। डॉ अंबेडकर ने अपनी पुस्तक पाकिस्तान या भारत का विभाजन में मुस्लिम कट्टरता और उनकी राजनीति के बारे में लिखते हुए विभाजन का पुरजोर विरोध किया।

आजादी के बाद दलित-मुस्लिम एकता

दलित मुस्लिम एकता की बात जिन व्यक्ति ने सबसे पहले पूरे जोर से कही और लंबे समय तक कहते रहे उनका नाम था श्याम सुंदर। श्याम सुंदर, डॉ अंबेडकर के द्वारा चलाए जा रहे संगठन डिप्रेस्ड क्लास ऐसोशिएसन के नेता थे। इन्होंने निजाम की सरपरस्ती में काम किया था और उनका प्रतिनिधित्व करने सुरक्षा परिषद में भी गए थे। उन्होंने 1941 में दलित-मुस्लिम एकता के लिए आंदोलन की शुरुआत महाराष्ट्र के परभणी से की थी जो तब औरंगाबाद में आता था। 1956 में उन्होंने हैदराबाद में आल इंडिया फेडरेशल ऐसोशिएशन ऑफ माइनॉरिटीज की स्थापना की थी। 1968 में लखनऊ में एक अधिवेशन में बहुजनों को संगठित होने का आवाहन किया जिसमें अल्पसंख्यक भी शामिल थे। उनका कहना था कि दलितों को अपने सारे पारंपरिक काम छोड़ मुसलमानों को साथ लेकर जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करना चाहिए।

कांग्रेस के शासन काल में दलित-मुस्लिम एक साथ ही वोट कर रहे थे लेकिन नेतृत्व मूल रूप से ब्राहमणों के हाथ में था। कांग्रेस ब्राहमण-दलित-मुस्लिम के सामाजिक फार्मूले पर काम कर रही थी। 1990 के बाद ये फार्मूला टूट गया। मुसलमान अलग-अलग क्षेत्रीय दलों को वोट करने लगे। कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी के रूप में दलितों की अपनी पार्टी बनाई जिसने उत्तर प्रदेश में बड़ी सफलताएं हासिल कीं। बिहार में राम बिलास पासवान और महाराष्ट्र में आरपीआई ने भी दलित-मुस्लिम गठजोड़ बनाने का प्रयास किया। पहले कांग्रेस प्रतीक रूप में दलितों और मुसलमानों के लिए थोड़ा बहुत कर देती थी लेकिन नेतृत्व उनके हाथ कभी नहीं देती थी। दलित और मुस्लिम वोट कांग्रेस को ही पड़ते रहे। लेकिन, यहां दलित और मुस्लिम पैट्रन (मालिक) नहीं थे, बल्कि क्लाइंट मात्र थे। जहां वो खुद के लिए कुछ नहीं कर सकते थे, बल्कि कांग्रेसी नेतृत्व के मोहताज भर थे।

बसपा की राजनीति

बसपा बनाने वाले कांशीराम 'सोशल इंजीनियरिंग फ्रॉम एबव' की बात करते थे और कहा करते थे कि दलितों की लगातार चुनाव में हिस्सेदारी होती रहनी चाहिए। उनका मानना था कि जब देश का 18-20 फीसदी दलित उनके साथ हो जाएगा तो सभी दल उनसे गठबंधन करना चाहेंगे और बाकी जातियों के लोग भी उनसे समर्थन और टिकट मांगेगे। ऐसा कर पाने में वो और मायावती पूरी देश में तो सफल नहीं हो पाए लेकिन उत्तर प्रदेश में जरूर सफल हुए। बसपा में नेतृत्व दलित के हाथ आया और उन्होने मुसलमानों से समर्थन लेना शुरू किया। मायावती ने नसीमुद्दीन जैसा नेता खड़ा किया और दर्जनों सीट पर मुसलमान प्रत्याशी देने लगीं। बाद में भाईचारा सम्मेलन करके मायावती ने दूसरी अगड़ी जातियों विशेषकर ब्राह्मणों को समर्थन हासिल किया और वही समीकरण बनाने में कामयाब रहीं जो एक जमाने में कांग्रेस बनाती थी लेकिन इसबार नेतृत्व ब्राह्मण नहीं दलित के हाथ था।

ऐसा इसलिए हो पाया क्योंकि कांशीराम और मायावती के रूप में दलित नेतृत्व स्पष्ट था। सारा होमवर्क दलित नेता कांशीराम की तरफ से हुआ था। इस गठबंधन के सहारे ही देश की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री बनी जिनके नंबर दो और तीन सलाहकार सतीश मिश्र और नसीमुद्दीन थे। लेकिन मायावती उस विरासत को आगे नहीं ले जा पाई जिसकी शुरुआत कांशीराम ने की थी। परिणाम ये हुआ कि 2014 के लोकसभा चुनाव में मायावती को शून्य सीट और 2017 के विधानसभा चुनाव में मायावती को 20 सीटें मिलीं और बाकी राज्यों में भी बसपा काफी कमजोर हो गई। अब मायावती का सामाजिक न्याय का विमर्श पुराना पड़ गया था जिसे उन्होंने नया स्वरूप नहीं दिया। दलित समाज की जरूरतें बदल गई थीं। सम्मान के साथ, उसे उच्च शिक्षा, रोजगार और उद्योग भी चाहिए था जिसके बारे में बात करती मायावती नजर नहीं आई। कहना ना होगा कि 1980 के दशक में जिस दलित समाज ने कांग्रेस को छोड़ बसपा का दामन थामा था, कांशीराम को अपना नेता माना था, उसमें एक बड़ी रिक्तता आ गई।

कांशीराम की कमी कई जगह महसूस हुई। वो आजाद भारत के सबसे बड़े दलित नेता थे। उन्होंने जो जमीन तैयार की उस पर मायावती ने अच्छी फसल काटी लेकिन उनके पास बताने को कुछ नया ना था। इसीलिए जब 2017 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव हुए तो मायावती दलित-मुस्लिम एकता का स्लोगन लेकर चुनाव में उतरीं। चुनाव परिणाम जल्द ही सामने आया और मायावती की बुरी हार हुई।

उसी दौरान किए गए एक पीएचडी शोध में सामने आया कि दरअसल 2016-2017 में मीडिया में उत्तर प्रदेश में दलित उत्पीड़न की जो घटनाएं सामने आई उनमें से आधे से अधिक में दोषी पाये जाने वाले मुस्लिम थे। जब धरातल पर दो समाजों में संघर्ष इतना अधिक था तो ऐसा कोई राजनीतिक गठजोड़ बनना संभव नहीं था। हां, अगर अन्य मुद्दों के साथ यह भी एक संदेश होता तो शायद बात बन जाती लेकिन ये मुद्दा सफल होता नहीं दिखा।

संघ और दलित

आज संघ ने समाज के हर तबके में अपना काम खड़ा किया है। संघ परिवार ने हिंदुत्व के भाव को संगठन, आंदोलन और सेवा के माध्यम से आम लोगों के बीच ले जाने का प्रयास किया है। संघ परिवार के 50 से अधिक संगठनों की शाखाएं देश भर में है। इनमें से कई के आंदोलनों जैसे कश्मीर का एकीकरण, गौहत्या निषेध, आपातकाल, रामसेतु और सबसे प्रमुख राम जन्मभूमि आंदोलन के कारण एक संस्कृति बोध, राष्ट्र बोध, इतिहास बोध लोगों में जाग्रत हुआ है। शिशु मंदिर, एकल विद्यालय, बस्ती सेवा प्रकल्पों आदि ने भी बड़ी भूमिका निभाई है। संघ के प्रयासों के कारण समाज के कमजोर तबके और पिछड़ी और दलित जातियों का एक बड़ा वर्ग देश की मुख्य धारा में शामिल हुआ है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, बाजारवादी व्यवस्था ने भी इसमें बड़ी भूमिका निभाई है। एक भी एक बड़ा कारण है कि दलित समाज के एक बड़े तबके ने पिछले चुनावों में बीजेपी के समर्थन में मतदान किया।

अन्य प्रयोग

वहीं 2015 में ही जय भीम-जय मीम के नारे के साथ मजलिसे-इत्तिहाद-उल-मुसलमीन के नेता असद्दूदीन ओवैसी ने भी उत्तर प्रदेश चुनाव में ताल ठोंकी। उन्हें कोई सफलता नहीं मिली और उन्हें पूरे प्रदेश में करीब दो लाख मत आए। बिहार में ऐसा ही प्रयोग रामबिलास पासवान ने लोक जनशक्ति पार्टी बनाकर किया और मुसलमानों का समर्थन लेने की कोशिश की लेकिन वो भी बहुत

अधिक नहीं कर पाए। अन्य राज्यों में भी दलित और मुस्लिम साथ तो वोट करने लगे लेकिन उस तरीके से नहीं जैसा कांग्रेस के साथ होता था। पिछले कुछ वर्षों में दलित समाज में बीजेपी के प्रति समर्थन बढ़ा है। 34 फीसदी दलितों ने पिछले लोकसभा चुनाव में बीजेपी को वोट दिया जिसका श्रेय नरेंद्र मोदी की कुछ नीतियों, उनके व्यक्तित्व, विकल्पहीनता की स्थिति और संघ के प्रयासों को दिया जा सकता है। शहरी नव मध्यवर्ग का हिस्सा बन चुका दलित धीरे-धीरे बीजेपी के फोल्ड में आया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों में दलित राजनीति में एक बिखराव देखने को मिला है। ये बिखराव विचारधारा, नेतृत्व और संगठन तीनों के स्तर पर दिखाई पड़ता है।

दलितों में बिखराव

दलितों में संगठन, नेतृत्व और विचार का जो बिखराव आया है उसका लाभ लेने की कोशिश देश विरोधी ताकतें कर रही हैं और जिस सामाजिक गठबंधन का नेतृत्व पहले अगड़ी जातियों और बाद में दलितों ने खुद किया अब मुसलमानों में से राजनीतिक और अराजनीतिक नेतृत्व खड़ा हो रहा है जो उनका नेतृत्व करना चाह रहा है। शिक्षा के प्रसार और शहरीकरण के कारण एक और युवा दलितों का वर्ग उभर रहा है जिसे अभी भी लगता है कि दलित होने के कारण उसके साथ अन्याय होता है। इसलिए वो भी किसी तरह की नई राजनीति से जुड़ने में ही अपना हित समझ रहा है ना कि पुराने किसी विकल्प के साथ जाने में।

दलित-मुस्लिम एकता करीब सौ साल पुरानी सोच है। इसे फिर से जिंदा करने की कोशिश की जा रही है। ओवैसी उसी का राजनीतिक चेहरा हैं लेकिन अराजनीतिक रूप से भी कई प्रयास चल रहे हैं। इसकी सैद्धांतिकी फिर से तैयार की गई है। इनके बीच समन्वय कैसे हो इस पर बातचीत चल रही है। सारा खेल अंक गणित का है कि देश में करीब बीस फीसदी दलित जनसंख्या और पंद्रह फीसदी मुस्लिम जनसंख्या है जो अगर एक साथ खड़ी हो जाए तो एक ताकत बन सकती है। इससे बीजेपी तो कमजोर होगी ही साथ ही कोई सरकार इनके बिना नहीं बन पाएगी। कागज पर ये गणित आसान दिखाई देता है लेकिन पूरे देश में ऐसा कोई राजनीतिक गठबंधन बना पाना कठिन दिखता है। महाराष्ट्र चुनाव में ओवैसी और प्रकाश अंबेडकर ने प्रयास किया और पहली बार ओवैसी को हैदराबाद के बाहर दो सीट आई। बिहार के किशनगंज में हुए एक उप चुनाव में भी उन्हें एक सीट आ गई है।

असहज मुसलमान - नेतृत्व रहित दलित

आज देश में ऐसा वातावरण निर्माण हुआ है जिसमें यहां का मुसलमान रहने का आदी नहीं है। कांग्रेस का नेतृत्व भी कमजोर हुआ है और उनकी वैसी तरफदारी भी नहीं कर रहा जैसे पहले करता था। उनका प्रतिनिधित्व भी राजनीतिक संस्थाओं में घटा है। इन सब कारणों से देश का मुसलमान असजह और आक्रोशित है। वह असुरक्षित महसूस कर रहा है या उसे कराया जा रहा है। साथ ही, दलित समाज भी नेतृत्व, संगठन और विचारधारा विहीन है। ऐसे में दोनों तरफ के चिंतक, विचारक दलित-मुस्लमों के देश व्यापी गठजोड़ का प्रयास करते दिख रहे हैं। ऐसे किसी प्रयास को राजनीतिक रूप से हाल फिलहाल कोई बड़ी चुनावी सफलता मिलना तो कठिन है। लेकिन हां देश में अराजकता का वातावरण बनाना, मोदी सरकार को वैचारिक हानि पहुंचाना, हिंदू धर्म पर लांछन लगाना, भारत को देश के अंदर और बाहर बदनाम करना, लेख, किताब के लिए सहयोग मिलना, मीडिया और सोशल मीडिया में विमर्श को प्रभावित करने का पूरा दम इस मुहिम में मौजूद है।

नए उभरते गठजोड़

अराजनीतिक स्तर पर दलित-मुस्लिम एकता के तरह-तरह के कई प्रयास हो रहे हैं। बैंगलुरु में दलित-मुस्लिम संवाद के नाम से कार्यक्रम हुआ जिसका आयोजन पापुलर फ्रंट ऑफ इंडिया ने किया था। इसमें दलितों और मुसलमानों की तरफ से कई प्रमुख लोग शामिल हुए। इस सम्मेलन में दो प्रस्ताव पारित हुए। पहला, दलितों और मुसलमानों के बीच जमीनी स्तर पर गठबंधन बनाना। दूसरा, विभिन्न मुद्दों को लेकर आपसी समझ पैदा करना और साझा प्रयास करना। इनका मानना था कि दलित और मुस्लिम आजादी के बाद से इस देश में समान रूप से प्रताड़ित हुए है और दोनों के साथ समान रूप से भेदभाव होता है। पीएफआई, एसडीपीआई जैसे मुस्लिम संगठनों के नेता सहित इसमें कई दलित विचारक शामिल थे। वहां इस बात पर भी सहमति बनी कि सीएए, एनआरसी से दलित और मुसलमानों दोनों का नुकसान होगा। कर्नाटक में कांग्रेस सरकार के दौरान दलित चिंतकों, विचारकों का बड़ा जमावड़ा किया गया जिसमें मार्टिन लूथर किंग के पोते के साथ-साथ राहुल गांधी शामिल हुए थे।

उत्तर प्रदेश चुनाव के तुरंत बाद सहारनपुर में दलितों और राजपूतों के बीच जातीय संघर्ष हुआ जिसमें से एक नया संगठन और नेता निकला जिसका नाम है भीम आर्मी और चंद्र शेखर रावण। चंद्र शेखर रावण युवा दलितों के बीच अपनी पहचान बना रहे हैं और साथ ही मुसलमानों के साथ गठजोड़ की बात करते हुए मायावती की विरासत हथियाने का प्रयास कर रहे हैं। 2016 में गुजरात के उना में दलितों को पीटे जाने की घटना को भी काफी सुर्खियों में रखने की कोशिश हुई। उसे एक आंदोलन का रूप देकर मोदी सरकार और गुजरात सरकार के खिलाफ विधानसभा चुनाव से पहले पेश किया गया। इस आंदोलन से एक और नेता निकला जो कांग्रेस के समर्थन से विधायक भी बन गया। उसका नाम है जिग्नेश मेवानी। अप्रैल, 2018 में जब दलित उत्पीड़न बिल के विरोध में दलित युवा सड़क पर उतरे थे तो उन्हें समर्थन देने के लिए मुस्लिम संगठन भी सड़क पर आए। असम में एआईयूडीएफ के नेता बदरुद्दीन अजमल के साथ उनकी पार्टी से एक दलित सांसद भी जीता है। केरला में मुस्लिम लीग भी दलितों का समर्थन लेती है।

दलित मुस्लिम एकता या मुस्लिम राजनीति

दरअसल दलित-मुस्लिम एकता के नाम पर देश में फिर से एक मुस्लिम राजनीति खड़ी करने का प्रयास जोरों पर है जैसे ठीक सौ साल पहले हो रहा था। उस समय कांग्रेस को हिंदू पार्टी घोषित कर दिया गया था। दलितों को हिंदुओं से अलग करने और मुसलमानों के साथ जोड़ने के प्रयास हुए थे। दलितों के शुरु में साथ होने से मुसलमानों को लेजीटिमेसी मिलती रही और उनकी संख्या भी ज्यादा और विविध दिखी। वामपंथी, उदारवादी और प्रबुद्ध समाज का एक बड़ा वर्ग भी इनके साथ खड़ा रहा। लेकिन एजेंडा मुसलमानों का रहा। अंग्रेज इसे पीछे से चलाते रहे। 1920 में महात्मा गांधी ने जब खिलाफत का समर्थन किया तब बिल्कुल नहीं लगता था कि देश में विभाजन होगा लेकिन अगले पच्चीस साल में ऐसी स्थिति बन गई कि देश विभाजन के कगार पर पंहुच गया।

निष्कर्ष

इस देश में मोहम्मद अली जिन्ना के बाद राष्ट्रीय स्तर पर कोई मुस्लिम राजनीति खड़ी नहीं हुई। मुस्लिम पहले कुछ दशकों में विभाजन के आरोप के कारण कांग्रेस की शरण में पड़े रहे। कांग्रेस उन्हें थोड़ा बहुत प्रतिनिधित्व देती रही। 1970 में तेल के दाम बढ़ने के कारण पूरी दूनिया में पेट्रो-डॉलर पहुंचे। फिल्म इंडस्ट्री में शाहरुख, सलमान, आमिर खान जैसे आइकन खड़े हुए। नहीं तो एक समय ऐसा था कि युसुफ खान भी दिलीप कुमार के नाम से अभिनय किया करते थे। समय के साथ मुस्लिम राजनीति भी आक्रामक हुई। कांग्रेस के अंदर और बाहर एआर अंतुले, सीके जाफर शरीफ, बनातवाला, आजम खान, शरीफुरहमान बर्क जैसे नेता खड़े हुए। ये नेता जितने भी आक्रमक हों लेकिन इनके ऊपर हिंदू समाज के नेता थे।

पिछले दशक में देश के अलग-अलग हिस्सों में एक मुस्लिम राजनीति खड़ी करने के प्रयास किए गए हैं। कश्मीर में पीडीपी, यूपी में डॉ अयूब की पीस पार्टी, असम में बदरुद्दीन अजमल की एआईयूडीएफ, हैदराबाद में एमआईएम, केरल में मुस्लिम लीग के साथ-साथ एसडीपीआई कुछ ऐसे ही राजनीतिक दल हैं। गैर-चुनावी मुस्लिम राजनीतिक संगठनों की संख्या दर्जनों में है जो दूसरे समूहों के साथ मिलकर काम करना शुरू कर चुके हैं। इन्हें जेएनयू, जामिया, एएमयू, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय जैसे स्थानों से वैचारिक मदद मिल रही है।

इस पृष्ठभूमि में अगर बात करें तो आज फौरी तौर पर मुस्लिमों के नेतृत्व वाला कोई दलित-मुस्लिम एकता का आंदोलन कोई बड़ा राजनैतिक विकल्प खड़ा करती नजर नहीं आ रहा कि उन्हें बड़ी सीटें मिल जाएंगी और वे सरकार बना लेंगे। लेकिन इस राजनीतिक स्थिरता के माहौल में अगर वो अराजकता का माहौल खड़ा कर सकें और नई पीढ़ी को अपनी बात पहुंचा सके कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है, अन्याय हो रहा है तो उनकी बड़ी सफलता होगी।

यहां ध्यान देना होगा कि 1937 के चुनाव में भी कांग्रेस को बड़ी सफलता मिली थी और मुस्लिम लीग और दूसरी दलित और मुस्लिम पार्टियां चुनाव बुरी तरीके से हार गई थीं। मुस्लिम बाहुल्य इलाके से भी कांग्रेस जीती थी लेकिन अगले चार-पांच साल में ही जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग बलवती होती चली गई थी और उसके अगले पांच साल में पाकिस्तान एक सच्चाई बन गया था।

केंद्र में बहुमत वाली भाजपा सरकार बनने से देश के अंदर के मुस्लिम तबके में बड़ा रोष घर कर गया है। उन्हें लगता है कि उनकी धार्मिक पहचान को खत्म करने की कोशिश हो रही है। कश्मीर, तीन तलाक, राम मंदिर और सीएए इसके बड़े उदाहरण हैं। नेतृत्व, संगठन और विचारधारा विहीन दलित समाज का एक पढ़ा लिखा तबका भी उनके साथ जुड़ रहा है। अभी ये गठजोड़ एक वैचारिक स्तर पर है लेकिन उसे धरातल पर उतारने के विभिन्न प्रयोग समय-समय पर होते रहते हैं। कहना ना होगा कि आने वाले समय में मुसलमानों के नेतृत्व वाला ये दलित-मुस्लिम गठजोड़ काफी घातक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ

Ambedkar, BR (1946) Pakistan Or the Partition of India, https://mea.gov.in/Images/attach/amb/Volume_08.pdf

Anderson, Walter, Shridhar Damle (2018) The RSS: A View to the Inside, Penguin Random House, New Delhi

Bhartiya, Santosh (2008) Dalit And Minority Empowerment, Rajkamal Prakashan, New Delhi

Jangam, Chinnaiah (2017) Dalits and the Making of Modern India, Oxford University Press, New Delhi

kanungo, Pralay (2002) RSS's Tryst with Politics, From Hedgewar to Sudarshan, manohar Publishes, New Delhi

Malhotra, Rajiv, Aravintan_ Nilakantan (2011) Breaking India, Western Interventions in Dravidian and Dalit Faultlines, Amaryllis, New Delhi

Mandal, Jogendranath (2018) The Decline of the Caste Question, Jogendranath Mandal and the Defeat of Dalit Politics in Bengal, Cambridge University Press, New Delhi

Rehman, Abdur (2019) Denial and Deprivation, Indian Muslims After the Sachar Committee and Rangnath Mishra Commission Reports, Taylor & Francis, New Delhi

Sikand,Yoginder (2004) Islam, Caste, and Dalit-Muslim Relations in India, Global Media Publications, New Delhi

Sikand, Yoginder (2004) Muslims in India Since 1947, Islamic Perspectives on Inter-Faith Relations, Taylor & Francis, New Delhi

Sadangi, Himanshu Chandra (2008) Dalit, The Downtrodden of India, Isha Publications, New Delhi

Teltumbde, Anand (2020) Hindutva and Dalits, Perspectives for Understanding Communal Praxis, Sage Publications, New Delhi

Yengde, Suraj (2019) Caste Matters, Penguine Random House Publications, New Delhi

Is a Dalit-Muslim alliance possible? https://www.thehindu.com/opinion/lead/Is-a-Dalit-Muslim-alliance-possible/article14598312.ece

Ambedkar is at the Centre of my Dream For Dalit-Muslim Unity: Owaisi https://www.news18.com/news/india/ambedkar-is-at-the-centre-of-my-dream-for-dalit-muslim-unity-owaisi-1373409.html

'Jai Meem Jai Bheem' slogan, conspiracy to neutralize Muslim votes in UP: political analysts https://archive.siasat.com/news/jai-meem-jai-bheem-slogan-conspiracy-neutralize-muslim-votes-political-analysts-939591/

Ahead of Bihar Assembly Elections, Owaisi and Bhim Army Forge Dalit-Muslim Unity https://thewire.in/politics/bihar-elections-owaisi-bhim-army

Bhim Army Chief Stresses On Dalit-Muslim Unity Ahead Of 2019 https://www.ndtv.com/india-news/bhim-army-chief-stresses-on-dalit-muslim-unity-ahead-of-2019-1955537

Dalit-Muslim Unity https://www.greaterkashmir.com/news/opinion/dalit-muslim-unity/

Dalit-Muslim Dialogue to strengthen social alliance building efforts https://www.siasat.com/dalit-muslim-dialogue-strengthen-social-alliance-building-efforts-1693480/

Fatima Sheikh https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AB%E0%A4%BC%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%AE%E0%A4%BE_%E0%A4%B6%E0%A5%87%E0%A4%96%E0%A4%BC

Two days 'Idea of India' conclave organised to mark one year of Modi govt http://twocircles.net/2015may17/1431876317.html

हिन्दुत्व में राम का केंद्रीयकरण: 19वीं सदी के उत्तरार्ध व 20वीं सदी के प्रारंभ में

डॉ० बिपिन कुमार

सहायक अतिथि व्याख्याता, इतिहास विभाग एम.डी.डी.एम. कॉलेज, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

हिन्दू से हिन्दुत्व तक के संबंध व विकास को देखें तो इस प्रक्रिया में आज स्वयं को व दूसरे द्वारा 'हिन्दू' के रूप में देखे जाने वाले व्यक्ति को न केवल हिन्दुत्व की अधिकारिक भावना व उसके प्रतीक रूप में राम से जुड़ना होगा अपितु कुछ तय राजनीतिक व सांस्कृतिक दावेदारों जैसे संघपरिवार को भी स्वीकारना होगा। उपभोक्तावादी काल में आधुनिक तकनीक के सहयोग से तय अलगाववादी दायरे कितने महत्वपूर्ण हैं व 'योद्धा' हो या 'लला' राम की छवि किस प्रकार व रूप में हिन्दुत्व का किस हद तक आधार बनी व हिन्दुत्व का यह विकास कितना निर्णायक है इसे महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश के संदर्भ में देखना होगा।

महाराष्ट्र का हिन्दुत्व की विचारधारा व संगठन की रचना की दृष्टि से केंद्रबिन्दु होना महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ बम्बई को छोड़कर मुस्लिम आबादी नहीं के बराबर थी व उनसे किसी तरह का खतरा नहीं था। इस क्षेत्र में तीसरे दशक के आरंभ से कोई दंगा भी नहीं हुआ था। फिर भी यहाँ सावरकर द्वारा नागपुर में स्थापित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का तत्व निर्णायक है। 19वीं सदी में 8वें दशक से महाराष्ट्र पिछड़ी जातियों द्वारा चलाये गए ब्राह्मण विरोधी शक्तिशाली आंदोलन साक्षी रहा था। नागपुर दलितों व अम्बेदकर के महार आंदोलन का केंद्र रहा था। अत: महाराष्ट्र में सदी के शुरूआत में हिन्दुत्व के लिए अभियान 1990-91 के समान ही स्वर्ण जातियों विशेषकर चितपावन ब्राह्मणों के वर्चस्व को बनाए रखने का प्रयास था।

आधुनिक हिन्दुत्व का वास्तविक रूप बी.डी. सावरकर द्वारा 1923 में Hindustani 'Who is Hindu' नामक पम्पलेट में दी परिभाषा में दिखता है जिसमें हिन्दू वह व्यक्ति है जो सिन्धु नदी से लेकर समुद्रों तक भारतवर्ष की भूमि को अपनी पितृभूमि के साथ-साथ अपनी पूज्य भूमि अपने धर्म का उद्गम स्थल भी समझता है। यहाँ राष्ट्रवादी विचार तो है पर जन्मभूमि को पूज्य भूमि का दर्जा देना धर्म को ला देता है। यद्यपि आजादी व पितृ भूमि हेतु प्यार को पवित्र माना गया है। पर सावरकर की परिभाषा भारतीय मुस्लिमों व इसाईयों की देशभक्ति को हमेशा के लिए संदेहपूर्ण बना देती है।

सावरकर के लिए अद्वैतवादी, एकेश्वरवादी, बहुदेववादी, निरीश्वरवादी, सिख, आर्य समाजी व सनातन धर्मी सब अच्छे हिन्दू हैं। यह सब अन्तर व भेद छिपाकर कृत्रिम पहचान बनाने का प्रयास है। अगर जातिगत भेद व हिन्दू एकता ही वह बात है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जाति पर देखें तो सावरकर स्वयं समर्पित हिन्दू के रूप में जाति सुधार व शैक्षिक कार्यक्रमों में लगे थ। पर उच्च जाति, सुधारक की भाषा ही बोल रहे थे। यह विवेकानन्द जैसे से विपरीत तत्त्व जो जाति को महत्वपूर्ण मान दूर करने पर जोर दे रहे थे। सावरकर असहयोग आंदोलन में चल रही हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात को भी चिन्ताजनक मान रहे थे।

इसी क्षेत्र में दो वर्ष बाद ही 1925 में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' डा. के.वी. हेडगेवार के नेतृत्व में संस्कृति को सत्य का मूल मानते हुए अंतहीन अनुशासन के साथ पनपा। आज राजनीति, संस्कृति वह भारतीय समाज के लगभग हर क्षेत्र में किसी-न-किसी रूप में सक्रिय इस संगठन के 95 वर्ष के इतिहास में 80 वर्ष से अधिक नेतृत्व चितपावन ब्राह्मणों के हाथ में रहना स्वयं बहुत कुछ स्पष्ट करता है।

एक तीसरे क्षेत्र उत्तर भारत विशेषकर उत्तरप्रदेश का मूल्यांकन करें तो यहाँ शिल्पकारों, बुनकरों, छोटे व्यापारियों व अभिजात वर्ग के रूप में पर्याप्त मुस्लिम आबादी रही है। यहाँ हिन्दुत्व की लहर अल्पसंख्यकों के राजनैतिक व आर्थिक प्रमुख को हटाने के

लिए हावी हुई। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में कायस्थ वर्ग तथा काश्मीरी ब्राह्मण उभर रहा था। इस समय यहाँ दो प्रकार के संगठन पनप रहे थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब आर्य समाज का केंद्र बन रहा था जिसमें जाति विरोध, मूर्ति पूजा का विरोध के साथ-साथ सुधारवादी स्वरूप भी था। स्वामी श्रद्धानंद ने हिन्दू जनसंख्या में कमी को दूर करने हेतु 'शुद्धिकरण' के उपाय किये पर यह मुद्दे उच्च व मध्य वर्ग ही उठा रहे थे। आर्य समाज के सुधार के कारण 20वीं सदी तक हिन्दू एकता की भावना बढ़ी जो इसाईयों, सिखों और मुसलमानों के विरूद्ध एकता की प्रतीक थी।

इस समय इस क्षेत्र में मुस्लिमों को शत्रु छवि के साथ हिन्दुत्व की पहचान हावी हो रही थी। उसके तीन रूप थे–

1. भाषा व लिपि
2. गौरक्षा का मुद्दा
3. राम का प्रयोग।

भाषा में उर्दू व देवनागरी का विवाद था जिसके माध्यम से सम्प्रदायवाद ने एक अखिल भारतीय आयाम धारण कर लिया। भाषा व लिपि को धार्मिक नैतिक कर्त्तव्यों से जोड़ा गया। 1880 के पहले मूल अन्तर लिपि का ही था। पर जल्द ही दो लिपियाँ, दो भाषाएँ मान ली गयीं और यह दो भाषाएँ दो अलग-अलग धर्मों की थी। यह एक नये अभिजन के उदय की देन थी जो नागरी में शिक्षित होकर उसका प्रयोग चाहता था। 1835 के बाद अधिकारिक भाषा के रूप में उर्दू आयी जिसकी लिपि पारसी ही थी। परन्तु 1880 से माँग उठने लगी कि सरकारी नौकरी में नागरी भाषा का ही प्रयोग हो। यह निर्णायक विकास रहा। यह आधुनिक शिक्षा के बढ़ते महत्व के साथ स्थिति व हित बदल रहे थे। क्षेत्रीय अभिजन एक नई भाषा-शैली जिसे खड़ी बोलो का संस्कृतिकरण कह सकते हैं विकसित कर रहा था। इसका सर्वोच्च स्वरूप 1893 में "नागरी प्रचारिणी सभा" की स्थापना की। 1910 के सरस्वती पत्रिका से स्पष्ट है कि अब उर्दू को मात्र मुस्लिम भाषा ही नहीं विदेशी भाषा मानकर हिन्दू और मुस्लिम के बीच एक आक्रामक पहचान बनी।

दूसरा महत्वपूर्ण तत्व गौरक्षा का मुद्दा था जिसे 1880-90 से सनातन धर्म समूह उठा रहे थे। यह मुद्दा यूरोपीय सैनिक छावनियों में हो रहे गौ-वध के विरूद्ध नहीं था अपितु मुस्लिमों के विरूद्ध केन्द्रित था। सनातन धर्म व आर्य समाज द्वारा निर्मित गौ-रक्षिणी सभाएँ 1893 से अधिक उग्र होती चली गई।

इस क्षेत्र में सबसे व्यापक और आज के संदर्भ में, जबकि अयोध्या में राम मंदिर का भूमि पूजन हो चुका है। राम का प्रयोग है। इसका संकेंद्रण अयोध्या ही है और संघ परिवार और विश्व हिन्दू परिषद द्वारा एक बहुत समृद्ध व सहनशील धार्मिक परंपरा द्वारा लागू किय गया। 1890 तक राम या अयोध्या का इतना धार्मिक महत्व या उल्लेख नहीं था। पर आधुनिक परिवेश में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जगह एक योद्धा राम की छवि लाई गई जो पूर्ण क्षत्रिय वेश-भूषा में मार्शल स्वरूप हैं। महत्वपूर्ण है कि वैष्णव परम्परा में अहिंसा, दया व शान्ति के प्रतीक राम शायद ही इतने आक्रामक छवि पाए हों। परन्तु आज वनवासी की जगह क्षत्रिय राम ही निर्णायक हैं। जबकि बाबर और उनके वंशज रावण व राक्षसों के स्थान पर रखे गये।

फिर राम इतने व्यापक कैसे हो गए इसको रामचरित मानस के प्रचार से समझा जा सकता है। Philip Instglandort us Rama story in Shiva's city नामक लेख में दर्शाया कि मानस के प्रचार स्वचालित रूप में नहीं था फिर इतना व्यापक कैसे हुआ व किसके द्वारा। कोई भी ग्रंथ तीन रूपों में जाने जानते हैं–

1. निजी रूप से पढ़कर जो शिक्षितों की संख्या के अनुसार सीमित है।
2. पाठ द्वारा गाकर व्याख्या करना।
3. राम-लीला के साथ प्रस्तुत महान छवि का प्रचार जो रामनगर राम-लीला में है।

दूसरा उदाहरण रामनंदी साधुओं ने लोकप्रिय किया पर मानस व राम गाथा को वास्तविक आधार बनारस पर मानस के उदय के साथ मिला। यहाँ मुस्लिमों के विरोध के बावजूद भूमिहार, ब्राह्मण परिवार सत्ता स्थापित करने में सफल रहा तथा स्वयं को राम का प्रतीक माना। अब यहीं से रामराज्य की परिकल्पना व राम के योद्धा छवि द्वारा वैचारिक उपयोगिता बढ़ाई जा रही थी। 1790 से शुरू होकर रामनगर रामलीला के आयोजन तक ही सीमित न रहा अपितु उदित नारायण सिंह के काल में यह संरक्षण, छपाई आदि के रूप में अपने चरर्मोत्कर्ष पर पहुँचा। जैसे–जैसे राज अंग्रेजों के हाथ में कठपुतली बनता गया वैसे-वैसे वह स्वयं को राम जैसी छवि को अपने आप में जोड़ रहा था। अब जमींदार भी बनारस राज के कदमों पर चल रहे थे।

भाषा, 'मानस' दोनों को पं. मदन मोहन मालवीय का साथ मिला। 1920 से मानस व्यवस्थित रूप से प्रचार पाने लगी। मानस की प्रतियाँ अब अलग-अलग व्याख्याओं के साथ बाँटी जाने लगी। भू-स्वामी तत्वों का आजादी के साथ पतन हुआ तो व्यापारिक घरानों जैसे बिरला परिवार का समर्थन मिला और मानस प्रचार का कार्य स्थानीय से राष्ट्रीय हो गया।

संदर्भ सूची

1. इ. जे. हॉब्सबॉन - इनोवेशन ऑफ ट्रेडिशन।
2. सुमित सरकार, तनिका सरकार, तपन वसु - खाकी नेकर भगवा झंडे।
3. फिलिप लुटग्लेनडार्ट - रामा स्टोरी इन शिवाज सिटी
4. एम.एस. गोलवलकर -(पम्पलेट)- बी. आर. आवर नेशनहुड डिफाइन्ड।
5. वी. डी. सावरकर - हिन्दू राष्ट्र दर्शन।

यात्रीजीक साहित्यमे युगबोधक स्वर

डॉ० रश्मि कुमारी

अतिथि शिक्षक मैथिली विभाग, टी.पी. कॉलेज,
भू0ना0मंडल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा

यात्रीजी युगद्रष्टा ओ युगश्रष्टा छथि जकर स्वरूप हिनक रचनाक कण-कणमेपर्याप्त रूपमे भेटैत अछि। यात्रीजीक प्रत्येक रचना युगबोधसँ आच्छादित अछि। हिननकरचनामे मिथिलाक लोकजीवनक यथार्थ असन्तोष ओ तकर निवारणार्थ चलैत संघर्षक सूक्ष्म निदर्शन भेटैत अछि। चन्दाझाक छद्‌म प्रगतिवादक चिनगी हिनक रचना सभमे धधकैत बुझना जाइत अछि। सामाजिक साहित्यक मार्गक दिशानिर्देशनपरक युगबोधसँ हिनक रचना सभ ओत-प्रोत छनि। परम्पराक पाकल गूड सभकेँइ चीरि-फाड़िके निष्णात वैद्य जकाँ साफ करैत रहलाहआ मिथिलाक विशिष्ट रूपँ तथा भारतवर्षक सामान्य रूपँ स्वस्थ सामाजिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवनक संचरण हेतु व्यग्र रहलाह।[1]

साहित्य मनुष्यक आत्मिक भावक स्वभाविक उद्‌गार थिक। मनुष्य जाहि परिवार, समाज ओ जाहि पारिवारिक-सामाजिक परिवेशमे एहि जीवनक छोट-पैघ घटना-दुर्घटनाके देखैत अछि आ ओहिसँ सीदित-स्पन्दित होइछ तकरे सुन्दरसँ सुन्दर भाव ओ शब्द संयोजन द्वारा साहित्यमे अभिव्यक्त करैछ। साहित्यश्रष्टा परिवार आ समाजहिमे रहयवला ओ जीवनक समस्त क्रिया व्यापारसँ स्पंदित, आन्दोलित होयएबला मनुष्य होइछ, तेँ स्वभाविक रूपसँ साहित्य मनुष्यक आत्मिक, सामाजिक सब अनुभुतिक अभिव्यक्ति होइत अछि।[2]

साहित्य आ इतिहास दुनूके एक दोहराक पूरक कहल गेलैक अछि। साहित्यके कोनहुँ समाजक दर्पण कहल गेलैक अछि। मुदा साहित्यके दर्पण कहयबाक क्षमता तखने प्राप्त भऽ सकतैक जखन लेखक यथार्थक ठोस धरातल पर ठाढ़ भऽ कऽ लिखताह। तथापि दर्पणमे तँ कोनहु वस्तुक मात्र बाह्ये छवि प्रतिबिम्बित होइत अछि। ओकर आभ्यान्तरिक छवि अदृश्ये रहि जाइत छैक। एहि दृष्टिएँ साहित्यरूपी दर्पण एहि भौतिक दर्पणक तुलनामे बेसी क्षमतावानहोइत अछि। एकरामे अपना समयक समाजक आभ्यान्तरिक छविके सेहो प्रतिबिम्बित करवाक क्षमता रहैत छैक। साहित्य अपन समाजक दिशा-निर्देशक सेहो होइत अछि। अतएव ओकर कर्त्तव्य मात्र सामाजिक यथार्थक स्थूल चित्रण करबे धरि सीमित नहि रहि जाइत छैक प्रत्युत कोनहुँ सामाजिक कुरीति, कुप्रथा, अन्याय, अत्याचारक विरोधमे जे लोकक मोनमे भावना उमड़ैत-घुमड़ैत रहैत छैक तकरो दर्शन करायब ओकर कर्त्तव्य होइत छैक। सामाजिक अन्यायक प्रतिकार देखायब साहित्यक आदर्श पक्ष थिक। ई आदर्श जाहि रूपे साहित्यमे वर्णित होइत अछि ठीक ताहि रूपे ओ अपना जमीनपर अपना समयमेघटित नहि होइत अछि, प्रत्युत लेखक एकरा अपन लेखनीसँ साहित्यक जमीनपर घटित होइत देखबैत छथि जाहिसँ साहित्य समाजक मार्गनिर्देशक होयबाक अपन उत्तरदायित्वक पूर्ति करैत अछि।[3]

वैधनाथ मिश्र यात्री जे कि अपन उपन्यास तथा कविता में सामाजिक दायित्व के प्राथमिकता देलनि, साहित्य समाजक दर्पणो थिक आसामाजिक परिवर्तनक माध्यमो थिक ताहि दृष्टिसँ सोद्येश्य लेखन कहवनि ते हिनक साहित्य जहिया लिखल गेल तहिया समकालिन इतिहास छल आ अवधि बितलाक उपरान्त आब ओ आधुनिक इतिहासक श्रोत सामग्री थिक।[4]

ज्योतिरिश्वर-विद्यापति युग सँ अविच्छिन्न रूपँ प्रवाहित होइत मैथिली काव्याधरामे महत्वपूर्ण मोड़ दैनिहारमे मनबोध, चन्दा झा, सीताराम झा प्रभुति अनेक महाकविक नाम लेल जाइछ किन्तु ओकर गतिके तीव्रतम कऽ ओकरा आधुनिक युगक कोनो अन्य समृद्ध भाषाक काव्य प्रवाहक समानांतर लऽ अनबाक श्रेय जाहि एकमात्र कविके देन जाइछ ओ थिकाह 'यात्री'क नाम सँ विख्यात श्री वैधनाथ मिश्र हिनक लेखनीसँ नि:सृत मैथिली कविता अपन ओहन सुच्चा सुवाससँ वातावरणकें महमहा देलक जकर सुगन्ध लेबाक लेल दूर-दूरक लोक स्वत: आकृष्ट भऽ गेल। वस्तुत: आकृष्ट करऽवला हिनक व्यक्तित्वो अछि-अपन गाम ङरक भारसँ अपनाकेँ

सतत कात रखबाक चेष्टामे रत रहऽवला, फक्कड़व्यक्तित्व सतत भ्रमणशील, समाज-संसारक रग-रगकँ परखऽवला पारखी व्यक्तित्वरूढ़िभंजक, श्रमशक्तिक पूजक, व्यवस्थापक विद्रोही, नवीन पीढ़ीक प्रति आबेसी व्यक्तित्व। अपन जीवने जकाँ मैथिली कविताकँ इ संकीर्ण छन्दक बन्धनसँ मुक्त कऽ सर्वहाराक प्रशस्त बाटपर उनमुक्त विचरण करबाक हेतु छोड़ि देलनि।[5]

डा० शैलेन्द्रमोहन झाक शब्दमे "यात्रीजीक कवितामे एक विचित्र विविधताक दर्शन होयतअछि। रूढ़ि जर्जर एवं आत्मविश्वाससँ ग्रसित जीवन, शोषण उत्पीड़नक दारूण ज्वालामेदग्ध होइत जनताक दु:ख दर्द, समाजमें अन्तर्निहित वर्ग संघर्षक भावना, जीवनक सरल सात्विक वर्णन, प्रकृतिक एक सँ एक रमणगर रूपक अतिरिक्त प्राचीन, मध्यकालीन आ आधुनिक मिथिलाक माटि पानिके हर जनकँ-कोसी लखिमाकँ नहि बिसरी सकलाह अछि।"[6]

यात्रीजी मिथिलाक जनजीवनमे होइत एहि युगबोधक प्रवक्ताक रूपमे समक्ष अयलाह।[7]

मैथिलीमे हिनक द्विगोट काव्य संकलन बेस चर्चित भेल अछि – 'चित्रा' आ 'पत्रहीन नग्न गाछ' जाहिमे युगबोधक स्वरूप दृष्टिगोचर होइत अछि। ओ जनकवि छथि आ जगतक चिन्ता हिनक कवितामें अभिन्न तत्व जेकाँप्रकट होइत अछि।[8]

कविताके राजप्रसाद किंवा सुखी सम्पन्नक आँगन दलानसँ उठाकँ ई गरीबक आँठीक कोर धरि पहुँचा देलनि आ ई जे स्वप्न देखलनि से आय प्रत्यक्ष भऽ रहल अछि जकर पुष्टी चित्रमे संकलित 'कविक स्वप्न' शीर्षक कविताक निम्न पाँति करैत अछि।

तोहर मन दौड़ैत छहु कोठाक दिश
पैड-पैडधनीक दिश दरबार दिश
गरीबक दिश ककर जाइत अछि नजरि
के तकइ अछि हमर नोरक धर दिश?

के रहल छे अपन प्रतिभा खर्च तो
ताहि व्यक्तिक सुखद स्वागत गानमे
जकररैयति ठोहि पारि कनैत छइ
घर आंगन खेत ओखरिहानमें

अन्न ने छै केंचा ने छै कौड़ी ने छै
गरीबक नेना कोना पढतैक रे?
उठह कवि तों दहक ललकार कने
गिरी शिखर पर पथिक दल चढतैक रे।[9]

स्वतंत्रताक प्रति जनआकांक्षाके ध्यानमे राखि कवि जे कविता लिखलनि से चित्रक 'वंदना' शीर्षक कवितामे द्रष्टव्य थिक-खएता ने अयाची आब साग।

ककरो खसतैक किएक पाग?
केओ आब कथी लए मूर्ख रहत?
केओ आब कथी लए कष्ट सहत
केओ किअएहएतभूखँ तबाह?
केओ किअए हएत फिकरँ बताह?
नहि पड़ल रहत भेटतैक काज।
सभ करत मौज सभ करत राज।
पढ़ताह गुनता करताह पास
जुगल कामति, छीतन खबास

जे काजुल से भरि पेट खएत
ककरो नहि बड़का धेधि हएत
कहबओता अजुका महाराज
केवल कामेश्वरसिंह काल्हि
हमरालोकनि जे खाइत छी
खएता ओहो से भात-दालि।[10]

स्वतांत्रेत्तर भारतमे राजनीतिक समीकरण अवश्य बदललैक परंच व्यवस्थामे कुनूटा परिवर्तन नै एलैक जाहि आमूल् परिवर्तनक लोक आशा कयने छल से क्रमशः धुमील होइत चलि गेलैक। जमींदारक जाहि सामंतवादी मनोवृत्तिसँ लोक त्रण पाबय चाहैत छल से नहि भऽ कऽ ओकर स्थान नेता लऽ लेलकन्हि जे अपन स्वार्थक पूर्तीक लेल किछु करबालेल तत्पर भऽ उठलाह जाहिपर चोट करैत यात्रीजी केहेन यथार्थ चित्रकँ चित्रक 'देश-दशाष्टक' शीर्षक कवितामे चित्रित कयने छथि से द्रष्टव्य–

बनिया लीडर अफसर तीन त्रिमूर्ति
क रहला अछि अपन मनोरथ पूर्ति
अपना लए सभ अबका हेतु बौ़र
तइपरफाटैन्हि रहि रहि कते बुकौर

भाय-भातीजक साढ़ुक सारक लेल
अपनहिचढिकँ,तोड़थिझोझका बेल
धन्न भाग जे चानि ने छन्हि उघाड़
नहि तँ कोना पचबितथि सौसें पहाड़।[11]

बाल विवाह ओ बहु विवाह जे मिथिलाकलेल अभिषाप छल ताहि पर कवि जे चोट केलैन्ह अछि से 'बूढ वर' कविताक निम्न पाँति सँ स्पष्ट भऽ जाइत अछि–

"जो रे राक्षस, जो रे पुरुषक जाति!
तोरे मारनि हम सभ मरि रहलि छी
किकिया रहलि छी, कुहरि रहल छी
मोल नइ छै हमरा तों टका द 'क'
कनबई छैबाप भ 'क', काका भ 'क'
जाइ अछि पानी जकाँ दिन हमर
जीवन भेल केहेन कठिन हमर
ककरा कि कहबइ, सुनत के आइ
फाट' हे धरती, समा हम जाइ।"[12]

हिनकफेकनी ओ गोठबिछनी शीर्षक कवितामे यथार्थवादी काव्यक तत्वक बडु विलक्षण समावेश भेल अछि जे युगबोधकँ चरितार्थ करैत अछि जाहि लेल 'गोठबिछनी' शीर्षक कविताक निम्न पाँति द्रष्टव्य थिक–

मैल पुरान पचहथ्थी नूआ
सेहो फाटल चेफड़ी लागल
देहक रंग जमुनिआ, तइपर
मुँह माइक गोटीसँ दागल

बगड़ा जेना लगवए खोता
तेहने रूच्छ केस छउ तोहर
दू छर हारी मात्र गराँमे
केहेन विचित्र भेस छउ तोहर।[13]

चित्राक युगधर्म शीर्षकमे युगबोधक केहेन समीचीन स्वरूप दृष्टिगोचर होइत अछि से दृष्टिगोचरथिक–

नहि मानइ अछि बात ओहिना अपनो बेटा-नाति
मास-मास पर गहन लगइ अछि पल-पल पर संकराँति
बदलि रहल अछि छन-छन दुनियाँ किछु नहि क्यों नहि धीर
भ गेलाह बाबा कपिलेसर आन्हर आर बहीर।[14]

मैथिली काव्य परिदृश्यमे 'यात्री' क आविर्भाव वास्तविक अर्थमे एकटा नव प्रस्थान बिन्दु भेल तँ युगप्रर्वतक आ युगान्तकारी आधुनिक कविक रूपमे जँ ककरो नाम लेल जा सकैत अछि तँ से यात्री।[15]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लोक साहित्य ओ शब्द संपदा- डा॰ योगानन्द झा, प्रकाशक-मिथिला रिसर्च सोसाइटी, कबिलपुर, लहेरियासराय, दरभंगा-846001, पृष्ठ-96
2. प्रस्तावना- ललितेश मिश्र, प्रकाशक-किसुन संकल्प लोक किसुन कटीर, सुपौल-85213, बिहार, पृष्ठ-77
3. मैथिली प्रवाहिका वर्ष-5, जनवरी-फरवरी 2012, सम्पादक-मनीष कुमार झा, प्रकाशक-125/50, पंचमुखी हनुमान मंदिर के पास, बंधवापारा, पुरानी बस्ती रायपुर (छ॰ग॰) 492001, पृष्ठ-74
4. तत्रैव, पृष्ठ-75
5. परिचायिका, लेखक-भीमनाथ झा, प्रकाशक-भवानी प्रकाशन, मुसल्लहपुर, पटना-800006, पृष्ठ-107
6. तत्रैव, पृष्ठ-107
7. लोक साहित्य ओ शब्द संपदा, डा॰ योगानन्द झा, पृष्ठ-97
8. पाठान्तर (समीक्षात्मक निबंध)- महेन्द्र, प्रकाशक-किसुन संकल्प लोक संस्करण-2019, पृष्ठ-51
9. चित्र, कवि-बैधनाथ मिश्र यात्री, पृष्ठ- 7-9
10. तत्रैव, पृष्ठ-66-67
11. तत्रैव, पृष्ठ-76-77
12. तत्रैव, पृष्ठ-15
13. तत्रैव, पृष्ठ-86-87
14. तत्रैव, पृष्ठ-74
15. अंतिका पृष्ठ-45

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना

अनुज प्रकाश

यू.जी.सी. नेट (हिन्दी)

प्रस्तावना

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि हैं। उन्हें 'उपन्यास सम्राट', 'कलम का जादूगर' व 'कलम का मजदूर' आदि उपाधियों से विभूशित किया गया है। उन्होंने तीन सौ से भी अधिक कहानियों की रचना की है। उनकी कहानियों में तत्कालीन समाज की परिस्थितियों का अत्यंत ही मार्मिक व यथार्थ वर्णन मिलता है। उन्होंने समाज के हर प्रकार के शोषित वर्ग की समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। उन्होंने किसानों, मजदूरों, दलितों व स्त्रियों के उत्पीड़न व कुंठा को अभिव्यक्ति प्रदान की। समाज की प्रमुख समस्याओं में से मानव की संकीर्ण मानसिकता व निर्दयता का परिचय देती है-जातिवाद की समस्या। प्रेमचंद जी ने अपनी कहानियों में अछूत व दलित समझे जाने वाले वर्ग की दयनीय स्थिति का सजीव चित्रण किया है। उनके द्वारा लिखित ठाकुर का कुआँ, मंदिर, मंत्र, सद्गति, कफन, घासवाली, सौभाग्य के कोड़े, व विध्वंस आदि कहानियाँ दलित समाज के शोषण, दुख व पीड़ा को प्रदर्शित करती है।

जातिगत भेदभाव की उत्पत्ति

वेद व पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों में जाति तथा वर्ण भेद की उत्पत्ति के साक्ष्य मिलते हैं। कहीं पर इसका आरम्भ ब्रह्म के विभिन्न अंगों से उत्पन्न होना बताया गया है तो कहीं पर मानव के व्यवसाय को इसका आधार माना गया है। प्राचीन समय में इस जाति भेद का कारण जो भी रहा हो किंतु वर्तमान समय में जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर किया जाता है। अगर कोई मनुष्य सवर्ण जाति में उत्पन्न होता है तो उसे पवित्र माना जाता है और इसके विपरित निम्न जाति में पैदा होने वाले मानव को अछूत व दलित समझा जाता है। यह हमारे देश की धार्मिक विडम्बंना है कि एक तरफ तो ये माना जाता है कि संपूर्ण सृष्टि की रचना ईश्वर ने की है। वहीं दूसरी तरफ उसी ईश्वर की रचना में धर्म के नाम पर भेदभाव किया जाता है। प्रेमचंद ने दलितों के प्रति समाज के इस निकृष्ट दृष्टिकोण को अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है।

दलित पुरुष और स्त्रियों का शोषण व उत्पीड़न

परिवार के आर्थिक जीवनयापन का आधार पुरुष को माना जाता है। पुरुष धन कमाकर लाता है व स्त्री उस धन से भोजन बनाकर अपने परिवार का पालन-पोषण करती है। धीरे-धीरे इस सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आ रहा है। स्त्री भी अब हर प्रकार के व्यवसाय में अपनी पहचान बना चुकी है। परंतु हमारे देश में व्यापक स्तर पर अभी भी यही व्यवस्था सर्वमान्य है। दलित व अछूत माने जाने वाले परूशों को आर्थिक रूप से निम्न वर्ग पर निर्भर रहना पड़ा है। उन्हें धर्म के दांव-पेंच में इस प्रकार फंसा दिया गया कि वे अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर उठने की कल्पना भी ना कर सकें। उन्हें केवल साफ-साफाई, मजदूरी व जमींदार के खेतों की देखभाल जैसे निम्न श्रेणी के कार्यों तक ही सीमित रखा गया। उन्हें इस हद तक प्रताड़ित किया गया कि वे अपनी अंतरात्मा से स्वयं को दीन-हीन व तुच्छ मान लें। उनके स्वाभिमान रूपी बीज को इतना गला दिया गया कि वह कभी प्रस्फुटित ही ना हो सके। 'सद्गति' कहानी का अछुत पात्र दुखी अपनी बेटी की सगाई के शुभ शगुन के लिए पंडित घासी राम को बुलाने के लिए जाता है। पंडित साथ चलने के बदले उससे झाड़ू लगाने, गोबर लेपने, भूसा लाने व लकड़ी काटने के लिए कहता है। वह बेचारा दिनभन भूखे पेट ये सारे काम निपटाने की कोशिश करता है। जब वह थककर चूर हो जाता है तो वह चिल्लम जलाने के लिए

आग मांगने पंडित के द्वार पर चला जाता है। पंडिताइन एक अछूत के द्वारा घर अशुद्ध किये जाने पर पंडित को खरी-खोटी सुनाते हुए कहती है, "तुम्हें तो जैसे पोथी-पत्रसों के फेर में धरम-करम किसी बात की सुधि ही नहीं रही। चमार हो, धेबी हो, पासी हो मुँह उठाये घर में चला आये। हिन्दू का घर ना हुआ, कोई सराये हुई।"[1] वह बेचारा ये सब बातें सुनकर स्वयं ही अपने आप को दुत्कारनें लगता है, मानों उससे कोई महाअपराध हो गया हो। वह विनम्र होकर पंडिताइन से कहता है- "पंडिताइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई कि घर में चला आया। चमार की अक्ल ही तो ठहरी। इतने मूर्ख ना होते, तों लात क्यों खाते।"[2] कहानी के अंत में वह बेचारा लकड़ी काटते-काटते मर जाता है और उसकी लाश को खेत में फेंक दिया जाता है। इससे साफ प्रदर्शित होता है कि पिछड़े व अछूत वर्ग को कितनी अमानवीयता व निर्दयता से प्रताड़ित किया गया। उनके अंदर स्वाभिमान के भाव के स्थान पर दीनता का भाव भर दिया गया।

दलितों को मंदिर में प्रवेश, ब्राह्मण आदि उच्च जाति के द्वार पर जाने, उनके कुएं से पानी पीने जैसे सभी कार्यों की अनुमति नहीं थी। उनकी इस उपेक्षित स्थिति की एक झाँकी हमें प्रेमचंद जी की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' में दिखाई देती है। इस कहानी में बीमार जोखू प्यास लगने पर गंदा पानी पीने के लिए मजबूर है, क्योंकि दलितों के कुएँ में कोई जानवर मर गया है। गाँव के बाकी दो कुओं में से एक ठाकुर का है और दूसरा साहू का है। जब उसकी पत्नी गंगी उसे गंदा पानी पीने से मना करती है और कहती है कि, वह उसके लिए ठाकुर के कुएँ से पानी ले आएगी। तब जोखू उसे मना करते हुए कहता है," हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण-देवता आषीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता हैं। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंध देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे?"[3] जीवन की अन्य सुविधाओं से वंचित होने के साथ-साथ उन्हें भगवान के मंदिर में प्रवेश से भी वंचित रखा गया। 'मंदिर' कहानी में एक विधवा व गरीब दुखी माँ, अपने बच्चे की सकुशलता के लिए प्रार्थना करने मंदिर में नहीं जा पाती। वह भगवान की पूजा सामग्री जुटाने के लिए, अपने चाँदी के कड़े बेच देती है, पुजारी से प्रार्थना करती है और यहाँ तक कि चोरी मंदिर में प्रवेश की कोशिश भी करती है। कहानी के अंत में उसे व उसके बच्चे को भीड़ द्वारा मारा जाता है, जिससे उसके पुत्र की मृत्यु हो जाती है और वह भी अपने प्राण त्याग देती है। प्रेमचंद जी की यह कहानी पीछड़े वर्ग की करूणा व वेदना तथा उच्च वर्ग की निर्ममता को प्रदर्शित करती है।

अछूतों व दलितों पर ये आरोप लगाया जाता है, कि वे मांस खाते है, मदिरा पान करतें हैं और अशिक्षित हैं। इन सभी कारणों से वे अपवित्र व अछूत हैं। अगर वे किसी पवित्र स्थान पर प्रवेश करेंगे तो उनके स्पर्श से वह स्थान अपवित्र हो जाएगा। वहीं दूसरी तरफ ब्राह्मण समाज में ये सब व्यसन करने वाले भी पवित्र बनें रहते हैं, क्योंकि वर्ण भेद; शियों नें किया है व उसे कोई नहीं मिटा सकता। उच्च वर्ण की ये सोच उनके स्वार्थ, क्रुरता व घिनौनेपन को चित्रित करती है। 'मन्त्र' कहानी में पंडित लीलाधर द्वारा अछूतोद्धार की बातें करने के कारण उन्हें अन्य ब्राह्मणों द्वारा घायल कर दिया जाता है। अछूत बस्ती के लोग तन मन से उसकी सेवा कर उसे जीवनदान देते हैं। इसके बाद पंडित सोचता है कि, "मैं जिन लोगों को नीच समझता था और जिनके उद्धार का बीड़ा उठाकर आया था, वे मुझसे कहीं ऊँचे हैं।"[4] इस कहानी से अछूत समझे जाने वाले लोगों की नि:स्वार्थ सेवा व भक्ति का परिचय मिलता है।

प्रेमचंद की कहानियों से पता चलता है, कि अछूतों को सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्तर पर इतना प्रताड़ित किया गया कि उन्होंने इस अत्याचार को सहन करना अपनी नियति मान लिया। उनकी सारी जिदंगी साहूकारों व महंतो का कर्ज चुकाते-चुकाते बीत जाती है, पर उनका कर्ज नहीं खत्म होता। उनकी मृत्यु के बाद ये कर्ज उनकी आने वाली पीढ़ियाँ चुकाती हैं। इसी प्रकार यह परंपरा चलती रहती है। वे प्यास व बीमारी से अपनी जान गवां देते हैं, किंतु उन्हें मंहतों के कुएं से पानी पीने की अनुमति नहीं मिलती। वे मंदिर के द्वार पर भी नहीं जा सकते क्योंकि इससे भगवान अपवित्र हो जाएंगे। इस प्रताड़ना व अत्याचार को सहन करते हुए कभी-कभी उनके मन में कर्म व खुशहाल जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। जिसका वर्णन 'कफन' कहानी में किया गया है। यह कहानी आलोचना की दृष्टि से बहुत ही चर्चित रही है। इस कहानी के आधार पर प्रेमचंद पर आरोप लगाया जाता है, कि वे दलितों के सच्चे समर्थक नहीं हैं। इस कहानी में घीसू और माधव गरीब व कामचोर पिता-पुत्र है, जो कि पूरे गाँव में बदनाम हैं। वे दोनो आलू खाते रहते हैं और माधव की पत्नी प्रसव पीड़ा के कारण मर जाती है। उसके कफन के लिए इकट्ठे किये गये पैसों से वे भरपेट भोजन करतें हैं। माधव ने कभी भरपेट स्वादिष्ट भोजन नहीं किया है, और घीसू ने बीस साल पहले किसी बारात में भरपेट खाना खाया था। कहीं ना कहीं, उनकी बेकारी व कामचोरी का मूल कारण पक्षपात व अन्याय है। इसलिए मुशी प्रेमचंद

जी ने घीसू और माधव के विषय में कहा है, कि, "जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न भी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।"[5]

हमारे समाज में स्त्री होना चुनौतीपूर्ण व अभिशाप के समान है। स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज में संघर्शमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। दलित स्त्री को, स्त्री होने के साथ, दलित व गरीब होने के कारण हर तरफ से अत्याचार व शोषण को सहन करना पड़ता है। प्रेमचंद जी ने दलित स्त्री की दयनीय व करूणापूर्ण स्थिति का मार्मिक चित्रण अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। 'मंदिर' कहानी में अछूत सुखिया अपने पुत्र की मंगलकामना के लिए मंदिर में प्रवेश की हरसंभव कोशिश करती है। लोगों द्वारा मारे जाने पर जब उसके बीमार पुत्र की मृत्यु हो जाती है। तब वह ममतामयी माँ क्रोध से भरकर भीशण भीड़ को दुत्कारते हुए कहती है, "पापियो, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो? मेरे छू लेने से ठाकुरजी को छूत लग गई। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो जाता।"[6] यह कहते हुए वह अपने प्राण त्याग देती है। इसी प्रकार से 'ठाकुर का कुआँ' कहानी में दलित स्त्री गंगी अपने आप को जोखिम में डालकर अपने पति के लिए ठाकुर के कुएं से पानी भरने जाती है। एक तरफ से तो दलित स्त्री को अछूत समझा जाता है, वहीं दूसरी तरफ उन्हें भोग व विलास की वस्तु समझकर, उनका दैहिक शोषण भी किया जाता है। ठाकुरों की इसी मानसिकता को प्रदर्षित करते हुए गंगी कहती है, "कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रस-भरी आँखो से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।"[7] 'घासवाली' कहानी में ठाकुर चैनसिंह मुलिया के सौंदर्य पर मुग्ध है। वह उसे भोग की वस्तु समझता है, इसलिए वह सोचता है, "नीची जातों में रूप-माधुर्य को इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊँची जातवालों का खिलौना बने।"[8] जब वह मुलिया के सामने अपना प्रेम प्रस्ताव रखता है, तो मुलिया उसे जली-कटी सुनाती है। मुलिया के स्वाभिमान व अभिमान के समक्ष उसका अहंकार नष्ट हो जाता है। उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है और उसके मन में नीची श्रेणी के लोगों के प्रति श्रुद्धा व स्नेह के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। प्रेमचंद ने दलित स्त्री के शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न का मार्मिक वर्णन अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। अहिंसा व अन्याय सहन करते हुए भी वह अपने हर प्रकार के कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से करती है।

निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में दलित समाज की तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया गया है। अभावों व उपेक्षाओं से निर्मित उनका दैनिक जीवन दारूणता व करूणा से भरा हुआ है। उनकी कहानियों के सभी पात्र वास्तविक जीवन से मेल खाते हैं। कहीं भी बोझिलता व बनावटीपन प्रदर्षित नहीं होता। ये कहानियाँ पढ़ने के बाद सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि पिछड़ी जाति को अछूत मानकर जो अत्याचार किया गया, वह कितना अमानवीय व घृणित है। प्रेमचंद जी दलितों के सच्चे समर्थक थे। अगर उनके मन में ये भावना ना होती तो, वे अपनी रचनाओं में दलितों की यथार्थ स्थिति का इतना सटीक व मार्मिक चित्रण ना कर पाते। अपनी कहानियों के द्वारा उन्होंने दलितों पर होने वाले हर प्रकार के अत्याचार को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

सन्दर्भ सूची

1. सद्गति (कहानी), सर्च-राज्य संसाधन केंद्र, हरियाणा 124001, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या-11
2. वही पृष्ठ संख्या-42
3. मानसरोवर भाग-1, सरस्वती प्रेस बनारस, छठवां संस्करण 1947, पृष्ठ संख्या-134
4. मानसरोवर भाग-5, सरस्वती प्रेस बनारस, पहला संस्करण 1946, पृष्ठ संख्या-47
5. कफन (कहानी), डायमंड पॉकेट बुक्स, न्यू दिल्ली 110020, प्रकाशित वर्ष 2011, पृष्ठ संख्या-51
6. मानसरोवर भाग-5, सरस्वती प्रेस बनारस, पहला संस्करण 1946, पृष्ठ संख्या-8
7. मानसरोवर भाग-1, सरस्वती प्रेस बनारस, छठवां संस्करण 1947, पृष्ठ संख्या-135
8. मानसरोवर भाग-1, सरस्वती प्रेस बनारस, छठवां संस्करण 1947, पृष्ठ संख्या-292

उदय प्रकाश की कहानियों में जनवादी चेतना

चन्द्र भूषण रजक

ग्राम+पो. - पिपरा, भाया- चौपड़ाराम नगर, जिला - पूर्णियाँ, बिहार

समकालीन साहित्य-जगत के उदय प्रकाश एक प्रतिनिधि कथाकांर हैं। उन्होंने देशी विदेशी दोनों तरह के साहित्यों का गहरा अध्ययन किया है। उदय प्रकाश एक जनवादी लेखक हैं उनकी कहानियाँ "जनवादी चेतना" से ओत-प्रोत है।

डॉ॰ नामवर सिंह कहते हैं–"...लेखक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को साहित्य का रूप देता है। जो लेखक समाज के प्रति कुछ जागरूक हैं, वे इस तथ्य को स्वीकार करते हैं (लेकिन कुछ लेखक इतने फक्कड़ होते हैं कि अपने व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति समझते हैं ...साहित्य रचना की भावकुलता में लेखक अक्सर सब कुछ भूल जाता है। उसके भीतर प्रसव-वेदना की तरह केवल एक ही अनुभूति उमड़ती रहती है कि अपने को यथासम्मन पूरा-का पूरा अभिव्यक्ति कर दे। रचना के समय वह केवल इतना ही सोचता है कि भीतर जो कुछ घुमड़ रहा है, वह सब-का सब बाहर आ जाये। इसलिए लिख चुकने के बाद उसे एक प्रकार की राहत-सी मिलती है।"[1]

'दरियाई घोड़ा' का 'पाठक-मंच कहता है–"उदय प्रकाश की कहानियों में मौजूदा वर्गीय समाज की विकृतियों, वर्जनाओं, विसंगतियों की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। लेखक समकालीन जीवन के अन्त-विरोधों की पहचान करते-कराते हुए पढ़ने वालों को रूमानी दुनिया के लिजलिजेपन से उबार कर मुक्ताकामी संघर्ष और आस्था के वातावरण में पहुँचाता है। ऐसा इसलिए मुमाकिन हो सका है कि उदय प्रकाश व्यक्त करने के लिए बेचैन कर देने वालों अनुभवों को पहले अपने विचारों के संग आभ्यंतीकृत करते हैं, फिर उसे कलात्मक औजारों के जरिए भाषा-रूप देते हैं।"[2]

समकालीन, समाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विसंगतियों को उभारना आज के रचनाकारों की रचनाशीलता का एक गुण है। साहित्य हमेशा से अपने समाज का दर्पण रहा है। इस दर्पण में हम आज के यथार्थ को बड़ी स्वच्छता के साथ देख सकते है।

डॉ॰ शांतिस्वरूप गुप्त लिखते हैं–"आज की कहानी आधुनिक जीवन की बड़ी ही तीखी यथार्थ चेतना है, क्योंकि कहानीकार जीवन के प्रति ईमानदार है।"[3]

सुधीश पचौरी के विचार से–"समकालीन कहानियों में चीजें जैसी हैं, उनके वस्तुपरक वजुद को पूरी रंजकता, जिज्ञासा और कौतूहल के साथ शब्दों में उतारा जाता है।"[4]

उदय प्रकाश एक जनवादी लेखक हैं उनकी कहानियाँ "जनवादी चेतना" से ओत-प्रोत है।

'जनवादी चेतना' के संबंध में डॉ॰ नरेन्द्र सिंह के विचार हैं–"जनवादी चेतना एक तरफ मुक्ति आन्दोलन और मुक्ति के लिए निर्णयाक युद्ध के संदर्भ में साहित्य एवं साहित्कारों को उसमें अपनी भागीदारी तथा दायित्वों से सम्बध मनाती है। तो दुसरी ओर साहित्य रचना के कुछ ऐसे आधारभूत सवालों का समाधान भी करती है, जिसके तहत ही पूंजीवादी बुद्धिजीवियों की साहित्य तथा कला संबंधी प्रक्रियावादी समझ का काट करते हुए एक ऐसी नयी बौद्धिक समझ का विकास करती है, जो जनहित में हो।"[5]

उदय प्रकाश की नजर सदा बदलते हुये समय और उसके परिपेक्ष्य घटने वाली विभिन्न घटनाओं पर ही है। इनकी कहानियाँ आज के यथार्थ का एक दस्तावेज कहा जा सकता है। 'दद्दू तिवारी: गणनाधिकारी', 'टेपचु', 'ज्ञ जेड', अलिफ, जगतपती और कर्फ्यु ('छप्पन तोले का करधन', 'हिन्दुस्तानी इवान दानिसोविच की जिन्दगी का एक दिन', 'राम सजीवन की प्रेम कथा, 'हरियाली

का भूत', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'वॉरेन हेस्टिंगस का सॉड', 'थर्ड डिग्री', ... और अंत में प्रार्थना', पिली छतरीवाली लड़की, 'दिल्ली की दीवार', 'असत्य का भौतिक प्रमाण', 'अरेबा-परेबा', आदि कहानियों में समकालीन बिडम्बनाओं तथा विसंगतियों को बखूबी उभारा गया है।

'तिरिछ' में विचारों का कैनवास अत्यंत ही विकसित है। वर्तमान शासन-तंत्र या नगर संस्कृति का प्रतीक 'तिरिछ' उस जहरीले विषखापड़ के समान है, जिसकी नजर एक बार किसी पर पड़ जाये तो फिर वह उसे कभी नहीं छोड़ता। इसका काटा व्यक्ति बच भी नहीं सकता है। आज चतुर्दिक विकसित हो रहे इस नगरीय-संस्कृति में कोई आम आदमी कितना सुरक्षित है, इसका यहाँ सजीव चित्रण है, जिसमें तिरिछ काटा हुआ पिता एक जरूरी कार्य से शहर जाता है, परंतु उस अजनबी और चमकते हुए शहर में अपना रास्ता भूल जाता है। लोग उन्हें पागल समझ कर मारते-पीटते है और अन्नत: विक्षप्त होकर वे वहीं मारे जाते हैं। वापस अपने गाँव नहीं लौट पाते।

डॉ॰ अरविन्द त्रिपाठी का मानना है–"यह तिरिछ एक ऐसे तिरिछ की कहानी है, जो आज के हमारे महानगरों में भरे पड़े हैं। इस कहानी का पूरा अर्थ-संकेत शहरों की क्रमश: अमानवीय होती जा रही संस्कृति के विरुद्ध एक तीखी-चोट है।"[6]

'माई का सत्याग्रह' में भी आज के समाज में अपराधी तथा गैरकानूनी तत्वों के खिलाफ अपने आदर्शों और सिद्धांतों के लिए लड़ी गई एक लड़ाई है, जिसमें एक सच्चा आदमी शोषण और अत्याचार का शिकार होता है।

आज का उपभोक्तावाद और बाजारवाद ने अपना विशाल मुँह इस कदर फैला लिया है कि इसमें न सिर्फ देश और समाज बल्कि हमारे परिवार के आपसी रिश्ते भी समा गये है। आज हर रिश्ते की बुनियाद पैसा है। इसके आभाव में हर रिश्ते को कुचला जा रहा है। एक सोने के करधन के लिए दीदी के साथ किये जा रहे दुर्व्यवहार हमारी आज की खोखली परिवार-संस्कृति का पोल खोलता है 'छप्पन तोले का करधन'।

आज के यथार्थ में पैसा ही सब कुछ है। इसके लिए उच्च-से-उच्च सरकारी अधिकारी से लेकर निम्न मजदूर, शोषित-वर्ग तक बिकने के लिए तैयार है। कहानी 'थर्ड-डिग्री' में चोरी एक रिक्शेवाला करता है, परंतु चोरी का मान शासन और रक्षा-तंत्र के कई अधिकारियों के घर की शोभा बनता है। चोरी का सोना मंत्री के घर लाया जाता है। अत: निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि आज के भ्रष्ट शासनतंत्र पर भी उदय प्रकाश की पैनी नजर है।

'पीली छतरी वाली लड़की' पर ब्राह्मणवाद और चरित्रहीनता की भी कई आरोप मढ़े गये हैं। हिन्दी लेखन में चरित्रहीनता के संदर्भ में डॉ॰ भगवान सिंह का कहना है– "यह सोचना गलत नहीं लगता है कि व्यक्तिनिष्ठ कहानियों पर बहस के पीछे 'पीली छतरी वाली लड़की' के आहत ब्राह्मणवाद का भी कुछ हाथ है। उसमें उस विद्रुप और क्रूर यथार्थ पर तीखा प्रहार है, जिसका एक सिरा बाजारवाद से जुड़ता है और दूसरा ब्राह्मणवाद से और किसी विचित्र तर्क से दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन जाते हैं। ...वर्णवाद ब्राह्मणवाद का ही दूसरा नाम है और इसका चरित्र फासीवादी है ...उदय प्रकाश ने वर्णवादी फासिज्म पर सीधी चोट की है। उनकी व्यक्ति-केन्द्रित कहानियों में जीवन के विद्रुप प्रेम के महात्वकांक्षा से जुड़े विद्रुपताया पीड़ा का वर्णन तो है पर उसे चरित्रहनन ही कहा सकता है।"[7]

ग्रामीण-संस्कृति तथा मानव-मुजफ्फरपुर को लेकर भी उदय प्रकाश विचारशील रहे हैं। ग्रामीण-संस्कृति में हो रहे बदलाव, उसमें टूटता हुआ मानव संबंध, टूटती हुई आस्था और विश्वास की झलक इनके आत्मकथ्यों में देखा जा सकता है। इन्होंने 'मूँगा', धगा और आम का बौर', 'मौसाजी' 'दद्दू तिवारी: गणनाधिकारी', 'दरियाई घोड़ा', 'नेलकटर', 'डिबिया', 'अपराध', 'छप्पन तोले का करधन', आदि कहानियों में ग्रामीण जन-जीवन तथा मानव-जीवन तथा मानव मुजफ्फरपुर का विश्लेषण किया है।

अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण उदय प्रकाश का समाज के प्रति विशेष झुकाव दिखता है। सामाजिक संदर्भों पर आधारित कहानियों में इन्होंने कई ज्वलंत सामाजिक समस्याओं को उठाया है। 'अपराध', 'छप्पन के तोले का करधन', 'ज्ञ, जेड', अलिफ, जगतपती और कर्फ्यू' '...और अंत में प्रार्थना', 'थर्ड-डिग्री', 'अरेबा-परेबा', 'दिल्ली की दीवार', 'पीली छतरी वाली लड़की' आदि इनकी सामाजिक संदर्भ से ली हुई कहानियाँ है।

लेखक की प्रतिबद्धता भाषा-शिल्प से अधिक समाज तथा यथार्थ में निहित विडम्बना से है। वह 'थर्ड-डिग्री' कहानी के अंत में कहता है– "लेकिन मुझे फिलहाल इस कहानी की भाषा, ढाँचे और पाठ के घटिया या निकृष्ट होने की चिंता नहीं है। मेरी चिंता यह है कि इस व्यवस्था में जहाँ एक रिक्शेवाला चोरी करता है, और सोना कानून मंत्री के घर में गलता है, वह व्यवस्था अपने

ढाँचे में कैसी है? ...क्या यहाँ हमरी सबकी पराजय नहीं है कि हमने तो कहानी का ढ़ाँचा बदल पा रहे हैं और न ही इस व्यवस्था को। ...क्या यही सच है कि दोनों अपरिवर्तनीय हैं?"[8]

इनके कुछ 'आत्मकथ्य' तथा भाव-परक कहानियाँ हैं, जो पाठकों में संवेदना के बीज अंकुरित करती है। बावजूद इसके उनमें कई वैचारणीय केंद्र-बिन्दु हैं, जो हमें आज के यथार्थ में प्रबुद्ध तथा संघर्षशील बनाता है। जैसे–'नेलकटर', 'दरियाई घोड़ा', 'डिबिया' 'दोपहर', 'अरेबा-परेबा', आदि।

निष्कर्ष

रूप में यहा कहा जा सकता है कि उदय प्रकाश की कहानियाँ समकालीन संदर्भों में आज के यथार्थ पर टिकी हुई हैं, जिसके केंद्र में उत्तर-आधुनिकतावाद, बाजारवाद उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, आतंकवाद, मानवतावाद, अपराध, संस्कृति, भाषा और साहित्य है। अतः इस सभी दृष्टियों से यह कहानियाँ आज के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक परिपेक्ष्यय में विचारों तथा प्रबुद्धता से पुष्ट एवं समृद्ध है।

संदर्भ-सूची

1. इतिहास और आलोचनाः नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 42-43
2. साक्षात्कार, अप्रैल-मई, 1986, पृष्ठ 151
3. साहित्यिक निबन्धः डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, पृष्ठ 330
4. पल-प्रतिपल, मार्च-जून, 1998, पृष्ठ 87
5. आधुनिक साहित्य चिन्तन और कुछ विशिष्ट साहित्कार, डॉ. नरेन्द्र सिंह (वाणी प्रकाशन) नई दिल्ली, पृष्ठ 74
6. जनसत्ता, 18 नवम्बर, 1990
7. हिन्दुस्तान, 13 मई, 2001, पृष्ठ 8
8. वर्तमान साहित्य, मई, 1988 पृष्ठ 50

औपनिवेशिक पुलिस व्यवस्था की वर्त्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता

डॉ० मधुकर आनंद

नेट, पी.एच.डी., इतिहास विभाग
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

किसी भी राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास में शांति, सुरक्षा एवं संरक्षा का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। इनमें से किसी एक तत्त्व की कमी अन्य तत्वों का क्षरण करती है जो अंतोगत्वा विकास के लिए बाघक सिद्ध होता है। प्राचीन शासन व्यवस्था में नगरपाल, नगर रक्षक, दण्डाधिकारी, दण्डपाल, ग्रामिक, गोप, स्थानिक जैसे पदों तथा मध्यकालीन शासन व्यवस्था में चौकीदार, फौजदार, कोतवाल जैसे पदों, का उल्लेख तत्कालीन पुलिस व्यवस्था के अंतर्गत मिलता है। औपनिवेशिक पुलिस व्यवस्था का आरंभ हम 1765 ई. से मान सकते है जब अंग्रेजो ने बंगाल की दीवानी हथिया ली तथा जनता का दायित्व उनपर आया।

1774 ई. में वारेन हेस्टिंगस द्वारा पहली बार पुलिस व्यवस्था को सांगठनिक स्वरूप दिए जाने का प्रयास किया गया। 1775 ई. में 26 फौजदारी थानों का गठन ब्रिटिश भारत में किया गया। मुहम्मद रजा खान के अधीक्षण में मुर्शिदाबाद में केंद्रीय पुलिस कार्यालय की स्थापना की गई। लार्ड कार्नवालिस के प्रयास से देश में दारोगा व्यवस्था लागू हुई। मूलतः लार्ड कार्नवालिस ही वर्त्तमान पुलिस शासन की रूपरेखा का जन्मदाता भी था। लार्ड कार्नवालिस को यह विश्वास था कि अपराधियों की रोकथाम के निमित एक वेतन भोगी एवं स्थायी पुलिस दल की स्थापना आवश्यक है। इसके तहत जनपदीय मजिस्ट्रेटों को आदेश दिया गया कि प्रत्येक जनपद को अनेक पुलिस क्षेत्रों में विभक्त किया जाए और प्रत्येक पुलिस क्षेत्र दारोगा नामक अधिकारी के निरीक्षण में सौंपा जाए।

1806 ई. में मद्रास के गवर्नर लार्ड विलियम बैटिंक ने लार्ड वेलेजली की रिपोर्ट पर पुलिस व्यवस्था में सुधार के लिए एक समिति का गठन किया। समिति के रिपोर्ट के आधार पर कलकत्ता, ढ़ाका एवं मुर्शिदाबाद तीन पुलिस प्रभागों की स्थापना की गई। इन प्रभागों के अधीक्षक को पुलिस अधीक्षक कहा गया। बाद में पटना, बनारस एवं बरेली मे भी पुलिस अधीक्षक का कार्यालय खोला गया। इसी काल में ग्रामीण चौकीदारों को दारोगा का पद देकर उन्हें वेतनभोगी बना दिया गया।

1861 ई. में सम्पूर्ण ब्रिटिश राज में एक समान पुलिस व्यवस्था लागू करने हेतु पुलिस अधिनियम बनाया गया जिसे 1902 ई. में संशोधित किया गया। 1861 ई. के पुलिस एक्ट के आधार पर पुलिस शासन प्रत्येक प्रदेश में स्थापित किया गया। इसके तहत प्रदेश में महानिरीक्षक की अध्यक्षता में और उप महानिरीक्षकों के निरीक्षण में जनपदीय पुलिस शासन स्थापित की गई। प्रत्येक जनपद में सुपरिटेंडेंट पुलिस के संचालन में पुलिस कार्य की व्यवस्था की गई। 1861 ई. के एक्ट के अनुसार जिलाधीश को जनपद के अपराध संबंधी शासन का प्रमुख तथा इस रूप में जनपदीय पुलिस के कार्यो का निर्देशक माना गया।

वास्तव में 1861 ई. में गठित पुलिस व्यवस्था का तात्कालिक कारण 1857 ई. का विद्रोह था। 1857 ई. की बगावत के सदमें से अंग्रेज कभी उबर नहीं सके। भारतीयों के दमन और अपने औपनिवेशिक लक्ष्यों को पूरा करने के उद्देश्य से उन्होंने पुलिस एक्ट 1861 बनाया। उनका मुख्य उद्देश्य स्थानीय स्तर पर पुलिस व्यवस्था मजबूत करना था ताकि 1857 ई. की तरह का विद्रोह पुनः न होने पाये। इस व्यवस्था का समाज से हो रहे अपराधों से कोई वास्ता नहीं था। इसका एकमात्र उद्देश्य एक ऐसे वर्ग की स्थापना था जो ब्रिटिश प्रशासन व्यवस्था के सुचास संचालन में सहायक हो सके।

1861 ई. का पुलिस एक्ट वर्त्तमान पुलिस प्रणाली का आधार है परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में इसे एक आदर्श मॉडल मान लेना पुरी तरह से अनैतिहासिक होगा। इसमें दो राय नहीं की ब्रिटिश पुलिस ने आधुनिक दंड-संहिता के आधार पर कानून व्यवस्था

बनाए रखी और समाज को एक हद तक स्थिरता प्रदान की। लेकिन ब्रिटिश पुलिस और भारतीय जनमानस के संबंध कई स्तर पर उलझन भरे रहे है।

फिलिप मेसन ने अपनी पुस्तक 'द मेन हू रूल्ड इंडिया' में 20वीं सदी के दूसरे दशक में डाकू सुल्ताना को अंग्रेज पुलिस अधिकारी फ्रेडी यंग द्वारा पकड़ लिए जाने और फिर फाँसी दिए जाने के संदर्भ में आम जन समाज की प्रतिक्रियाओं का दिलचस्प विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है: "सुल्ताना को फ्रेडी यंग नाम के एक पुलिस कर्मी ने पकड़ा था। उत्तर भारत के मेलो में एक बहुत पसंद किया जाने वाला नाटक होता था, सुल्तान डाकू, उसमें पहले-पहल फ्रेडी यंग एक बदला लेनेवाला नायक था और जब वह खलनायक सुल्ताना को पकड़ता था, तब भीड़ खूब उत्साहित हो जाती थी। लेकिन जैसे-तैसे साल दर साल इसे बार-बार किया जाने लगा, कुछ भूमिकाएं उलट गयी। फिर सुल्ताना एक बहादुर नायक था, जो रॉबिनहुड की तरह अंग्रेजो को लूटता था और गरीबो का दोस्त था। वहीं फ्रेडी यंग एक मोटा, डरपोक और हंसोड़ खलनायक बन गया जो लगातार व्हिस्की मागता रहता था।"

उपरोक्त उद्धरणों से औपनिवेशिक शासको और उनसे प्रशासित होने वाली आम जनता के बीच की मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक उलझणों पर प्रकाश डालता है। 1857 ई. के विद्रोह के बाद 1861 ई. में जो पुलिस व्यवस्था ब्रिटिश ने हमे दिया उसमें उनकी साम्राज्यवादी मंसूबो, नस्ली श्रेष्ठता और औपनिवेशिक जरूरतो की छाया साफ देखी जा सकती है। उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में मौजूद विघटनकारी तत्वों को पहचानकर उस दरार को चौड़ा करना था ताकि आसानी से अपने औपनिवेशिक लक्ष्यो को पा सके। इसका प्रमाण है अवध और तत्कालीन उत्तर-पश्चिम प्रांत (वर्त्तमान उत्तर प्रदेश) की पुलिस प्रशासन रिपोर्ट 1872 है जिसमें कहा गया है कि निचले पदो पर पुलिस की नियुक्तियों में जाति का ध्यान रखा जाए। इसमें 23 जातियों को यथा संभव दूर रखने तथा कुछ जातियों को प्रमुखता देने की बात थी। इसमें मुसलमानों को कुल भर्ती से एक तिहाई से अधिक नहीं रखने और आर्म्ड पुलिस में 10% सिक्ख, गोरखा एवं पहाड़ी को रखने की बात थी। इसके अलावा 1861 ई. के एक्ट में सामाजिक सामंती व्यवस्था को प्रशासन में भी बनाये रखा गया। इस एक्ट के अनुसार पुलिस का पहला कर्त्तव्य विधि पुर्ण तरीके से और सक्षम प्रधिकारी द्वारा जारी सभी आदेशों का पालन करना, दुसरा कर्त्तव्य गुप्त सूचनाओं का संग्रह करना तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य अपराधे को रोकने को तीसरे कर्त्तव्य में रखा गया।

वस्तुत: 1861 ई. के इस अधिनियम की संरचना कुछ इस तरह की गई है कि उससे जनता के प्रति पुलिस की न जवाबदेही सुनिश्चित होती है और न ही पुलिस अपराधिक न्यायतंत्र में बिना किसी बाहरी दबाव के समुचित स्वायत्तता के साथ स्वतंत्र खड़ी दिखती है। 1947 ई. में स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में पुलिस व्यवस्था को अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया। संविधान की सातवीं अनुसूची में पुलिस विषय की प्रविष्टि लोक व्यवस्था, जेल, न्याय प्रशासन के साथ रखते हुए इसे राज्य सूची के विषय में प्रदर्शित किया गया है। यहाँ पर ध्यान रखना होगा कि समाज के इस अनिवार्य अंग के लिए स्वतंत्रता के बाद कोई अधिनियम नहीं पारित किया गया। इसे 1861 के अंतर्गत उसी स्वरूप में रखा गया जबकि बदली हुई परिस्थितियों में एक नए अधिनियम की तत्काल आवश्यकता थी। पुलिस सुधारो की दिशा में 1861 ई. का पुलिस एक्ट एक बहुत बड़ी बाध रहा है। इस एक्ट को बदलने और इसके स्थान पर नई लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को व्यक्त करनेवाली विधयन की मांग समय-समय पर होती रही है।

1977 से 1981 के मध्य राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस को अधिक जवाबदेह बनाने और उसे अधिक कार्यकारी शक्तिया प्रदान करने के लिए सिफारिश प्रस्तुत की। इसके बाद रिबेरो कमेटी (1998), पद्मनभैया कमेटी (2000), मलिमथ कमेटी (2003), सोली सोराबजी की अध्यक्षता। में गठित मॉडल पुलिस एक्ट ड्राफ्टिंग कमेटी (2005) एवं द्वितीय प्रशासनीक सुधार आयोग (2007) में सामान्य रूप से इस बात पर सहमति जताई गई कि पुलिस की संरचना में मुख्य रूप से बड़ी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में बुनियादी बदलाव की जरूरत है। 2006 ई. सोली सोराबाजी की अघ्यक्षता में गठित कमेटी ने 1861 के पुलिस एक्ट को प्रतिस्थापित करने के उद्देश्य से एक 'मॉडल पुलिस एक्ट' प्रस्तावित किया जिसके आधार पर देश के 17 राज्यों ने नया पुलिस रेगुलेशन बनाया है। पुलिस के विरूद्ध शिकायते प्राप्त होने पर उनपर कार्यवाही के लिए प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ में सर्वोच्य न्यायालय ने हर स्तर पर पुलिस शिकायत प्राधिकरण बनाने का निर्देश दिया है ताकि ऐसी शिकायतों का निष्पक्षतापूर्वक निराकरण किया जा सके।

पुलिस व्यवस्था में आज भी असंवेदनशीलता, अक्षमता तथा जन सामान्य से तालमेल की कमी दिखाई देती है। वस्तुत: इस व्यवस्था में जवाबदेही और कार्यकारी स्वायत्तता में संतुलन की खोज एक ऐसा प्रश्न रहा है जिसपर समय-समय पर सरकारो से लेकर माननीय न्यायालयों ने बड़ी गहराई से विचार किया है। कानून का शासन किसी भी आधुनिक समाज का आधार स्तंभ होता है। पुलिस

को औपनिवेशिक कालखंड के कानूनो और उस दौर के वैचारिक सोच से बाहर खींच कर लाना आसान नहीं है। कानून के राज्य की संकल्पना की जड़ में मूल धारणा निहित है कि कानून का पहिया बिना किसी की 'हैसियत' देखे समान रूप से घूमे और उसके तीक्ष्ण नुकीले दाँत गरीब और अमीर के फर्क को भूल जाएं। लेकिन यह अक्सर होता नहीं दिखता है।

वास्तव में भारत में अब एक नवीन और जनतांत्रिक पुलिस व्यवस्था की जरूरत है। पुलिस व्यवस्था में यदि सुधारो की दिशा में अग्रसर होना है तो केवल उसकी शक्तियों को बढ़ाने के परिप्रेक्ष्य में नहीं हो सकता बल्कि उसे गैर जरूरी और अनुचित राजनीतिक और प्रशासनिक हस्तक्षेपों के अन्यायपूर्ण भंवर-चक्रों से भी बाहर निकालना होगा। इसे सच का हाथ मजबूत करनेवाला आवाज बनना होगा। साथ ही नए अभ्यार्थियों को प्रशिक्षण के दौरान केवल क्रूरतापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करने की ट्रेनिंग न देकर उन्हें भारतीय नागरिको के सामान्य अधिकारों, मानवाधिकारो तथा भारतीय संविधान की रक्षा हेतु दृढ़संकल्पित करना होगा। समय की माँग है कि पुलिस तंत्र जनता के प्रति संवेदनशील बनकर उनके विश्वास एवं अपेक्षाओ पर खड़ा उतरे तथा जनतंत्र की जड़ों को सशक्त और सुदृढ़ करे।

संदर्भ

1. फोर्टनाइटली रिपोर्ट, गवर्नमेंट ऑफ बंगाल एंड बिहार, 1917, पटना
2. इम्पेरियल गजट ऑफ इंडिया Vol. I से IV
3. ऐबस्ट्रेक्ट ऑफ पुलिस इंटेलिजेंस, गवर्नमेंट ऑफ बिहार एंड उड़ीसा, स्टेट आर्काइव, पटना
4. पुलिस डिपार्टमेंट फाइल, गवर्नमेंट ऑफ बिहार, स्टेट आर्काइव, पटना
5. अरविंद वर्मा, द इंडियन पुलिस-ए क्रिटिकल इवैल्यूएशन, रिजेन्सी पब्लिकेशन, नई दिल्ली
6. पुष्पलता तनेजा, भारतीय प्रजातंत्र और पुलिस, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
7. डॉ. जोरावर सिंह राणावत, भारतीय पुलिस-प्रभावशीलता एवं सामाजिक छवि, इंडियन पब्लिकेशन हाउस जयपुर

बौद्ध दर्शन के चार आर्यसत्यः एक समीक्षात्मक अध्ययन

नीरज कुमार

शोधकर्त्ता, प्रा0भा0इ0एवं पुरातत्त्व विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारत में दर्शन की एक लम्बी परम्परा है। यहाँ धर्म और दर्शन का गहरा संबंध हमेशा से रहा है। भारतीय जीवन और धर्म पर दर्शन ने गहरा प्रभाव छोड़ा है। भारतीय दर्शन परंपरा के अधिकांश सम्प्रदाय किसी न किसी धर्म या सम्प्रदाय से जुड़े रह हैं। कुछ दर्शनों से तो नये धर्मो का अविर्भाव भी हुआ है। भारत में जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए दर्शन का सृजन हुआ है। जब मानव ने अपने आप को दुःखों के चक्रव्यूह में घिरा पाया तब उसने पीड़ा और क्लेश से मुक्ति पाने हेतु दर्शन को अपनाया। भारतीय दर्शन की दृष्टि मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? हम सबको उत्पन्न करने वाली वह दिव्य शक्ति कौन है? यहाँ से प्रारम्भ होती है और दर्शन इन प्रश्नों और जिज्ञासाओं के उत्तर खोजने का कार्य अलग-अलग दार्शनिकों तथा दर्शन सम्प्रदायों ने किया। चाहे फिर वह आस्तिक दर्शन हो या नास्तिक, हिन्दू दर्शन हो या अहिन्दू दर्शन। भारतीय चिन्तन के अन्तर्गत अनेक दर्शनों ने अपना स्थान बनाया। चिन्तन की इस सुदीर्घ यात्रा में बौद्ध दर्शन का भी विशेष महत्व है। हम बौद्धदर्शन की विचारधारा से अवगत होने के पूर्व दर्शन क्या है? इसे जानेंगे।

'दर्शन' शब्द 'दृश' धतु से बना है जिसका अर्थ है 'जिसके द्वारा देखा जाय'। दर्शन का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है– **"दृश्यते अनेन इति दर्शनम"**

अर्थात जिसके द्वारा देखा जाए वह दर्शन है। यहाँ दर्शन से अभिप्राय सामान्य देखना नही होगा, वरन नेत्र जैसी किसी इन्द्रिया से परे होकर देखने से होता है। दर्शन के साथ शास्त्र शब्द भी जुड़ा हुआ है। शास्त्र शब्द मुख्यतः दो अर्थों में प्रयोग होता है। शास्त्र शब्द के बारे में आगम ग्रन्थों में बताया गया है।

बौद्ध दर्शन के चार आर्यसत्य

भगवान बुद्ध ने अपनी प्रज्ञा और सूक्ष्म विवेक बुद्धी के बल पर चार आर्य सत्यों को प्रस्तुत किया। बुद्ध द्वारा दिए गए सारे उपदेश इन चार आर्य सत्यों में समाहित हो जाते हैं। वे चार आर्य सत्य निम्न है।

- दुःखः संसार दुःखों से परिपूर्ण है
- दुःख समुदायः दुःखों का कारण भी है
- दुःख निरोध दुःखों का अन्त सम्भव है
- दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदाः दुःखों के अन्त के मार्ग हैं

ये सभी आर्यसत्य बौद्धधर्म केसार है। बुद्ध की सारी विचारधारा किसी न किसी रूप में इन चार आर्यसत्यों से प्रभावित हैं। इन आर्यसत्यों के संबंध में 'माज्झिम निकाय' में कहा गया है कि, "इसी से (चार अर्थात सत्यों से) अनाशक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शांति, ज्ञान, प्रज्ञाया निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।" चन्द्रकीर्ति कुमार के अनुसारचार आर्य सत्यों को आर्य कहने का अभिप्राय यह है कि, आर्य (विद्वज्जन) लोग ही इन सत्यों के तह तक पहुँचते हैं, पामरजन जीते हैं, मरते हैं, तथा दुःखमय जगत का अनुभव प्रतिक्षण करने पर भी इन सत्यों तक नहीं पहुँच पाते। इन आर्य सत्यों का संक्षिप्त में विवेचन करेंगे। इस प्रकार

दु:ख- बुद्ध द्वारा कहा गया सर्वप्रथम आर्यसत्य है 'दु:ख'। यह सारा संसार दु:खमय है। 'बुद्ध द्वारा यह निष्कर्ष जीवन की गहन अनुभूतियों पर विश्लेषण परह ही सत्य माना है। जीवन से अनेक प्रकार के दु:ख जुड़े हुए हैं। जैसे–रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिंता, असन्तोष, नैराश्य, शोक इत्यादि। इसको स्पष्ट करने हेतु भगवान बुद्ध का कथन दृष्टव्य है–"जन्म में दु:ख है, नाश में दु:ख है, रोग दु:खमय है, मृत्यु दु:खमय है, अप्रिय से संयोग दु:खमय है, प्रिय से वियोग दु:खमय है। संक्षेम में रोग से उत्पन्न पंचस्कन्ध दु:खमय है।" बुद्ध ने पंचस्कन्ध के अन्तर्गत शरीर, अनुभूति, प्रत्यक्ष, इच्छा और विचार इन पाँच तत्वों को प्रमुख माना है। कुछ लोगों ने बुद्ध के सारे संसार को दु:खमय कहने का विरोध किया और कहा कि संसार में कुछ सुखमय अनुभूतियाँ भी होती हैं। इस पर बुद्ध ने अपने विचार इस प्रकार दिये।

दु:ख-समुदाय-भारतीय दर्शन एवं दार्शनिकों की यह विशेषता रही है कि सभी ने संसार को दु:खमय जाना और दु:ख के कारणों को खोजने में निरंतर प्रयासरत रहे है। गौतम बुद्ध ने भी इस परंपरा का निर्वाह किया है। बुद्ध के दूसरे आर्य सत्य में एक सिद्धान्त के रूप में दु:खों के कारणों को स्पष्ट किया है जिसे 'प्रतीत्यसमुत्पाद' कहा गया है। पाली भाषा में इस सिद्धांत को 'पटिच्यसमुत्पाद' कहते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद दो शब्दों के योग से बना है-प्रतीत्य और समुत्पाद। प्रातीत्य का अर्थ है 'किसी वस्तु के उपस्थित होने पर' समुत्पाद का अर्थ है-'किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति' होती है। अत: प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ हुआ - एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। अर्थात एक के आगमन से दूसरे की उत्पत्ति होती है।

दु:ख-निरोध-गौतम बुद्ध द्वारा कहा गया तृतीय आर्यसत्य **'दु:ख-निरोध'** है जिसे निर्वाण भी कहा जाता है। निर्वाण को पाली भाषा में 'निव्वान' कहा जाता है। बुद्ध ने द्वितीय आर्यसत्य दु:ख के कारण को माना है अत: यदि दु:ख के कारणों को नष्ट कर दिया जाए तो दु:ख का भी अन्त हो जाता है। भारत के अन्य दर्शनों में जिस प्रकार 'मोक्ष' को माना है बौद्धदर्शन में वही स्थान या संज्ञा निर्वाण की है। निर्वाण को प्राप्त करना इस जीवन में ही संभव है। यदि व्यक्ति अपने अन्दर समाए राग, द्वेष, मोह, आसक्ति, अहंकार, भय पर विजय पा लेता है तो वह मुक्ति पाता है।

दु:ख-निरोध-मार्ग

बुद्ध अपने चतुर्थ आर्य सत्य में दु:ख निरोध-मार्ग की व्याख्या की है। दु:ख निरोध-मार्ग दु:खों के कारणों का अन्त करने का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलकर बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। उनके अनुसार दूसरे लोग भी इस मार्ग पर चलकर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं चाहे फिर वे गृहस्थ हों या सन्यासी। दु:ख-निरोध-मार्ग को समझाने के लिए बुद्धने आष्टाँगिक मार्ग की चर्चा की है।

सम्यक् दृष्टि: बुद्ध ने दु:ख का केंद्रबिन्दु अविद्या को माना है अविद्या के कारण ही मिथ्या दृष्टि का आविर्भाव होता है। मिथ्या दृष्टि की प्रबलता के कारण अवास्तविक वस्तु में वास्तविकता का भ्रम होता है। इसी कारण जो आत्मा नहीं है उसे आत्मा मानते हैं, जो नश्वर संसार है उसे अनश्वर, जो दु:खमय है उसे सुखमय मान बैठते हैं। अत: मिथ्या दृष्टि का सम्यक् दृष्टि से ही सम्भव है। सम्यक् दृष्टि का अर्थ बुद्ध के चार आर्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त करना है।

सम्यक् संकल्प: सम्यक् दृष्टि सर्वप्रथम सम्यक् संकल्प से प्राप्त होती है। बुद्ध के चार आर्य सत्यों को अपने जीवन में उतारना ही सम्यक् संकल्प है। सत्य के ज्ञान, एन्द्रिय विषयों से अलग रहना, द्वेष और हिंसा के विचारों को त्यागना ही सच्चे साधक को निर्वाण तक पहुँचा सकती है।

सम्यक् वाक: सम्यक् वाक ही सम्यक् संकल्प की शक्ति है। कोई भी मानव सम्यक् ज्ञान का पालन तभी कर सकता है जब वह निरन्तर प्रिय व सत्य वचन बोले। ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिए जिससे दूसरों को कष्ट पहुँचता हो। अतरु कहा गया हे "मन को शन्त रखने वाला एक शब्द हजार निरर्थक शब्दों से श्रेयस्कर है।"

सम्यक् कर्मान्त: सत्य भाषी एवं मधुर वाणी के अलावा मनुष्य को निर्वाण प्राप्त करने के लिए कर्मों से अपने आप को बचाना है क्योंकि यह पथभ्रष्ट कर सकते हैं। बुद्ध ने बुरे कर्मों का परित्याग का आदेश दिया है। उनके मतानुसार तीन बुरे कर्म है-हिंसा, असत्य और इन्द्रिय भोग। अत: बुद्ध ने अहिंसा, अस्तेय अर्थात दूसरे की सम्पत्ति को न चुराना और इन्द्रिय संयम की शिक्षा दी।

सम्यक् आजीविका: सम्यक् आजीविका से तात्पर्य है जीवन व्यतीत करने के लिए उचित एवं शुभ मार्ग का अनुसरण करना। धोख, लूट, भ्रष्टाचार, अत्याचार जैसे अशुभ मार्ग से आजीविका चलाना पाप है।

सम्यक् व्यायाम: सम्यक् व्यायाम में मन नियंत्रण की आवश्यकता है। इसके लिए अपने अंदर से विद्यमान विचारों को बाहर निकालना, नये बुरे विचार को मन पर में आने से रोकना, अच्छे भावों को मन में भरना और इन भावों को मन में सतत क्रियाशील रखना यही चार व्यायाम बुद्ध ने कहे हैं।

सम्यक् स्मृति: जिन विषयों का ज्ञान हो चुका है उसे सदैव ध्यान में रखना है। निर्वाण की आशा रखने वाले व्यक्ति ने शरीर को शरीर, मन को मन, और संवेदना को संवेदना समझाना आवश्यक है, इनमें से किसी के लिए भी अगर ऐसा सोचा कि यह मैं हूँ अथवा मेरा है। सर्वदा भ्रामक है। इन सब वस्तुओं को क्षणिक एवं दु:खमय समझना है। अगर ऐसा नहीं समझा तो वस्तुओं में आशक्ति आ जाएगी और नष्ट होने पर दु:ख होगा।

सम्यक् समाधि: प्रस्तुत मार्गो परचलने के बाद निर्वाण चाहने वाला व्यक्ति अपने चित्त स्थायी कर समाधि को अवस्था प्राप्त कर सकता है। इसकी उन्होंने चार अवस्था मानी है। पहली अवस्था में बुद्ध के चार आर्य सत्यों को मनन चिन्तन करना है। दूसरी अवस्था में प्रथम अवस्था से संदेह दूर हो जाते हैं। अत: तर्क एवं वितर्क त्यागकर आनन्द एवं शान्ति की अनुभूति करना है।

बौद्धदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

क्षणिकवाद: प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु कारणानुसार होती है। कारण के नष्ट होने पर वस्तु भी नष्ट होती है। अत: प्रत्येक वस्तु नाश्वान है। प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अनित्यवाद से अवतरित हुआ है। इसके अनुसार संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें परिवर्तन न हो। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। चाहे वह जड़ हो या चेतन सब परिवर्तनशील है। गौतम बुद्ध ने अनित्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है–"जो वृद्ध हो सकता है वह पूर्णत: वृद्ध होकर ही रहेगा। जिसे रोगी होना है वह रोगी होकर ही रहेगा। जो मृत्यु के अधीन है वह अवश्य मरेगा। जो नाश्वान है उसका नाश अत्यावश्यक है।"

बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अनित्यवाद के सिद्धान्त को उनके अनुयायियों ने क्षणिकवाद के रूप में रूपांतरित किया। क्षणिकवाद अनित्यवाद का ही विकसित रूप है। क्षणिकवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र होता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र होता है।

अनात्मवाद: बुद्ध ने संसार की समस्त वस्तुओं को क्षणिक माना है। कोई भी वस्तु किन्हीं दो क्षणों में एक सी नहीं रहती। आत्मा भी अन्य वस्तुओं की तरह परिवर्तनशील है। जबकि भारत के अन्य दर्शनों ने आत्मा को नित्य माना है, स्थायी माना है। आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के उपरान्त एवं मृत्यु के पूर्व भी रहता है। अत: आत्मा पूर्नजन्म के विचारों को जीवित रखती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अगर आत्मा का अर्थ स्थायी तत्व में विश्वास करना है तो बुद्ध का मत पूर्णत: अनात्मवादी कहा जा सकता है।

अनीश्वरवाद: बुद्ध के दार्शनिक विचारों में ईश्वर की सत्ता का विरोध किया है।

साधारणत: कहा जाता है कि ईश्वर की सृष्टि है और ईश्वर विश्व का महान स्त्रष्टा है। परन्तु बुद्ध के अनुसार यह संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से संकलित होता है। यह विश्व परिवर्तनशील एवं अनित्य है। इस नश्वर एवं परिवर्तनशील जगत् का ईश्वर को मानना, जो अनित्य है, असंगत है। इसलिए बुद्ध ईश्वर को सृष्टि का श्रेष्ठा एवं नियामक नहीं मानते है। अगर हम ईश्वर को विश्व का स्त्रष्टा मानने लगें तो अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी। जैसे–ईश्वर विश्व का नियंता है तो फिर सृष्टि में विनाश एवं परिवर्तन का अभाव होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। संसार दु:ख, परिवर्तन, अशुभ के अधीन दिखाई देता है।इसका निर्माण इसी प्रयोजन से हुआ है और प्रयोजन किसी न किसी कमी को अभिव्यक्त करता है। बुद्ध के अनुसार समस्त संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम द्वारा चलता है। सृष्टि की समस्त वस्तुएँ कार्य-कारण की श्रृंखला में अबाधित है कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो अकारण हो। इस प्रकार विभिन्न रूप से बुद्ध ने अनीश्वरवाद को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने शिष्यों को ईश्वर पर निर्भर न रहने का उपदेश दिया और कहा **"आत्म-दीपो भव।"**

बौद्धदर्शन के सम्प्रदाय

बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार भारत के अलावा अन्य देशों में भी हुआ और सभी जगह इसे विरोध का सामना करना पड़ा। बौद्ध प्रचारकों से अनेक प्रश्न पूछे गए जिनके उत्तर प्रचारकों को बुद्ध से भी प्राप्त नहीं हुए। इसलिए प्रचारकों ने धर्म रक्षा एवं लोगों को

अपने धर्म के प्रति आकृष्ट करने के लिए बुद्ध के मतों को परिवर्तित कर अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रतिपादन किया। इनमें चार प्रमुख सम्प्रदाय उल्लेखनीय है–

- माध्यमिक (शून्यवाद)
- योगाचार (विज्ञानवाद)
- सौत्रान्तिक (बाह्यनुमेयवाद)
- वैभाषिक (बाह्य प्रत्यक्षवाद)

माध्यमिक (शून्यवाद): इस वाद का प्रर्वतक नागार्जुन को माना जाता है। शून्यवाद को साधारणत: लोग समझते हैं कि संसार शून्यतम है और उसे सर्ववैनाशिकवाद भी कहा। परन्तु यह भ्रामक है। शून्यवाद का अर्थ है-वर्णनातीत। इसे मध्यम मार्ग एवं सापेक्षवाद भी कहते हैं। इस मत के अनुसार संसार के विभिन्न विषयों को हम सत्य नहीं कह सकते। क्योंकि प्रत्येक वस्तु दूसरे पर निर्भर रहती है। विश्व के विषयों को हम सत्य भी नहीं कह सकते असत्य भी नहीं। इन्होंने ईश्वर की सत्ता को नहीं माना परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से यह किसी परमार्थिक सत्ता को मानते हैं। नागार्जुन ने दो प्रकार के सत्य की चर्चा की **1. संवृत्ति सत्य**-यह साधारण मनुष्यों के लिए है। 2. **पारमार्थिक सत्य**-यह निरपेक्ष रूप से सत्य है।

योगाचार (विज्ञानवाद): योगाचार विज्ञानवाद के प्रणेता असंग और वसुबन्धु को माना जाता है। इस मत के अनुसार विज्ञान सत्य है। शून्यवादियों ने बाह्य वस्तुओं तथा चित्त के अस्तित्व को नहीं माना है। परन्तु विज्ञानवादी बाह्य वस्तुओं की सत्ता का खण्डन करते हैं। अपितु चित्त की सत्ता में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार विज्ञान अर्थात मन की सत्ता को नहीं माना जाय तब सभी विचार असिद्ध हो जाते हैं। अत: विचार की सम्भावना के लिए चित्त को मानना आवश्यक है। "हमारा समस्त बाह्य ज्ञान निस्सार और निस्स्वभाव है, वह भाषाजन्य है, मृगतृष्ण है, स्वप्नवत है। कोई चीज बाहरी नहीं है, सब कुछ मन (स्वचित्त) की काल्पनिक रचना है।" विज्ञानवाद विज्ञान को एकमात्र सत्य मानता है। विज्ञान के दो भेद हैं- प्रवृत्ति विज्ञान और आलम विज्ञान।

सौत्रन्तिक बाह्यानुमेयवाद: कुमार लाट द्वारा इसका विकास हुआ सौत्रन्तिक चित्त तथा बाह्य वस्तुओं दोनों के अस्तित्व को मानते हैं। विज्ञान वादियों ने बाह्य जगत के अस्तित्व का खण्डन किया है, परन्तु सौत्रन्तिक उनके विपरीत बाह्य जगत को चित्त के समान सत्य मानते हैं। सौत्रन्तिक-बाह्य जगत को चित्त के समान मानते हैं। सौत्रन्तिक-बाह्य-नुमेयवादियों ने विज्ञानवादियों के बाह्य सत्य के विरोध की आलोचना की है। इन्होंने ज्ञान के चार प्रकार बताए– आलम्बन, समनन्तर, अधिपति और सहकारी।

वैभाषिक (बाह्य-प्रत्यक्षवाद): काश्मीर में बौद्धसम्प्रदाय के विषय में विरोधात्मक मत विद्यमान थे। इसलिए बौद्धधर्म के समर्थकों ने एक सभा का आयोजन कर 'अभिधर्म' पर विभाषा नामक एक टीका लिखी। वैभाषिक मत मूलत: विभाषा पर ही आधारित था इसलिए इस सम्प्रदाय का नाम वैभाषिक पड़ा। वैभाषिक चित्त और जड़ दोनों की सत्ता को मानते हैं। वे सभी वस्तुओं के अस्तित्व को मानते हैं। इनके अनुसार सभी वस्तुओं का अस्तित्व भूत, वर्तमान और भविष्य काल में होता है। धर्म शब्द का प्रयोग वैभाषिक मत में अधिक हुआ है।

बौद्धदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

अन्य धर्मो की तरह बौद्धधर्म का विभाजन भी कई सम्प्रदायों में हुआ है। ऐसे सम्प्रदाय मूलत: दो हैं–'हीनयान' तथा 'महायान'। 'हीनयान' बौद्धधर्म का प्राचीनतम रूप है तो 'महायान' उसका विकसित रूप है।

हीनयान: हीनयान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। पाली साहित्य इस धर्म का प्रमुख आधार रहा है, जिसमें बुद्ध की शिक्षाएँ संग्रहित हैं। यह सम्प्रदाय प्राचीन बौद्धदर्शन की परम्परा को मानता है। इसी कारण इसे प्राचीन एवं मौलिक धर्म माना गया है। हीनयान के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य अर्हत होना या निर्वाण प्राप्त करना है। ईश्वर का स्थान हीनयान सम्प्रदाय में 'कम्म' तथा 'धम्म' को दिया गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार शरीर, मन तथा निवास स्थान को अपनाता है। संसार का नियामक हीनयान के अनुसार 'धम्म' है।

महायान: बौद्धधर्म के कुछ अनुयायियों ने हीनयान सम्प्रदाय कीसंकीर्णता अव्यवहारिकता के विपरीत एक दूसरे सम्प्रदाय को जन्म दिया जो जनसाधारण के मस्तिष्क ओर ह्दय को संतुष्ट कर सके। जिसे महायान कहा गया है। यह कहना कठिन है कि महायान शाखा का प्रारम्भ कब हुआ लेकिन यह अनुमान किया जाता है कि हीनयान के बाद ही यह धारा शुरू हुई। महायान सम्प्रदाय को

'सहजयान' भी कहा जाता है। महायान धर्म की सरलता एवं व्यावहारिकता ही इसे विश्व-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित कर सकी। महायान सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता बोधिसत्व की कल्पना है।

महायान में अपनी मुक्ति के साथ संसार के सभी जीवों की मुक्ति पर जोर दिया गया है। महायानी संसार के समस्त प्राणियों के समग्र दु:खों का नाश करा उन्हें निर्वाण प्राप्त करा देना अपने जीवन का उद्देश्य मानता है। महायान के अनुसार बोधिसत्व में करूणा समावेश रहता है। बोधिसत्व का अर्थ है बोधि अर्थात ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति परंतु महायान में बोधिसत्व का अर्थ लिया जाता है जो व्यक्ति। लोक कल्याण में संलग्न रहता है। महायान में बुद्ध को ईश्वर के रूप में माना गया है इसलिए कहा गया है-"The God of Mahayana is The God of Love and lays a great stress on devotion".

भारत में बौद्धदर्शन असफल क्यों?

बुद्ध की उदार एवं व्यवहारिक विचारधाराओं के साथ बौद्धधर्म एवं वैश्विक स्वरूप धारण कर लिया था परन्तु बुद्ध के बाद इस धर्म के अंदर भी वैदिक धर्म की बुराईयों ने प्रवेश कर लिया जिसका विरोध कर यह धर्म आविर्भूत हुआ था कालांतर में यह अनेक छोटे-छोटे सम्प्रदायों में बँट गया-हीनयान, महायान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि। हीनयान अधिक कट्रता के कारण संकुचित हुआ तो महायान अधिक उदारता के कारण विकृत हुआ। तंत्र-मंत्र और चमत्कार प्रदर्शन के बल पर अज्ञानी जनता को आकर्षित करना, सिद्धी प्राप्ति के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, यही इनकी साधना बन गई इन सम्प्रदायों में भी अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और उनका प्रदर्शन ही सिद्ध समझा गया सिद्धी लाभ के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, आधारविहीन गुप्त क्रियाओं विशेषकर नारियों के शोषण आदि अपनाया गया। इनकी योगिनियों के द्वारा मनुष्य के कामुकता को खूब बढ़ावा मिला, चमत्कार प्रदर्शनार्थ निरीह जनता को ठगने की प्रवृति बढ़ी। मठीय जीवन विलासितापूर्ण हो गया है। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होने लगा और इनका नैतिक स्तर गिरा। और अंत में शंकाराचार्य के अद्वैतवाद के प्रहारों से बौद्ध धर्म की जड़े हिल गई। परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म अपने घर ही अपना अस्तित्व खोने लगा और सिमट कर रह गया।

निष्कर्ष

भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्धधर्म अपने विराट रूप में भारत और विश्व के अन्य देशों में फैला। बुद्ध ने अपने ज्ञान से संसार के दु:खी जनता को दु:ख से छुटकारा पाने का रास्ता बताया। जनकल्याण ही उनका परम उद्देश्य था। परन्तु उनके दर्शन में कई ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए जिनके उत्तर वे स्वयं नहीं दे पाए। शायद यहाँ उन्होंने मौन रहना ही उचित समझा आगे चलकर बौद्धधर्म दर्शन के विवादों में घिरगया। परन्तु बौद्धदर्शन की विचारधारा, आध्यात्मिक पक्ष बड़ा ही उच्चकोटि का है।

संदर्भ-सूची

1. आचार्य बलदेव उपाधयाय, भारतीय दर्शन, पृष्ठसं. 3
2. आचार्य बलदेव उपाधयाय, भारतीय दर्शन, पृष्ठसं. 3
3. डॉ. रामनाथ शर्मा, भारतीय दर्शन के मूल तत्व, पृष्ठसं. 1
4. के. दामोदरन, भारती चिन्तन परम्परा, पृष्ठसं. 3
5. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन, पृष्ठसं. 38
6. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृष्ठसं. 107
7. डॉ. बलदेव उपाधयाय, भारतीय दर्शन, पृष्ठसं. 121-122
8. डॉ. राधाकृष्णन, बौद्ध दर्शन, प्रथम खंड पृष्ठसं. 294
9. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृष्ठसं. 109
10. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृष्ठसं. 118
11. पांडेय, गोविन्द चन्द्र, बौ. धर्म वि0 इति., पृष्ठसं. 316-17
12. एस.एन. दासगुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, पृष्ठसं. 143
13. यजुर्वेद (11/30)
14. मनुस्मृति (2/118)

भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में इच्छा मृत्यु का स्वरूप

डॉ० नीतीश कुमार

दर्शन शास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय,
बोधगया (बिहार)

गत तीन दशकों से दुनिया में इच्छा-मृत्यु का दूसरा रूप सामने आ रहा है। इसे यूथरेसिया के नाम से जाना जा रहा है। इसमें इंजेक्शन के द्वारा जीवन को समाप्त किया जाता है। पर क्या ऐसी मृत्यु विचारणीय नहीं है? क्या इसके कुत्सित परिणामों पर विचार नहीं करना चाहिये? एक व्यक्ति ऐसी बीमारी से लड़ रहा हे जिसका कोई इलाज नहीं है। वह दर्द से मुक्ति पाने के लिये अपना जीवन समाप्त करने की इच्छा जाहिर करता है। ऐसी स्थिति में क्या उसे एक इंजेक्शन देकर दर्द रहित मुत्यु देना सही है? नीदरलैंड में 1983 से इच्छामृत्यु कानूनन स्वीकार्य है जिसके अंतर्गत लगभग तीन हजार लोग प्रतिवर्ष मृत्यु के लिये आवेदन करते हैं। आस्ट्रेलिया ने भी इसे कानूनी स्वीकृति दी थी हालांकि इससे पहले कि कोई इस नये कानून का इस्तेमाल कर पाता, यहां की फेडरल सिनेट ने इसे खारिज कर दिया। यूथनेसिया या इच्छामृत्यु पर इन दिनों बहुत से देशों में विवाद चल रहा है।

अपने जीवन को समाप्त कर देने की इस सहमति में परिवार और डॉक्टर के सहयोग को लेकर कुछ नैतिक सवाल उठते हैं। कौन से नियम और मापदण्ड यह तय करेंगे कि मृत्यु के लिये सहमति प्रदान कर रहे व्यक्ति का निर्णय विशुद्ध रूप से उसका है, उस पर कोई पारिवारिक दबाव नहीं है। यह कैसे सुनिश्चित हो कि इसमें परिवार द्वारा बीमार की देखभाल की जिम्मेदारी से मुक्त होने की मंशा का खतरा नहीं। इसके अलावा डॉक्टर की भूमिका पर आये तो हिप्पोक्रेट की वह शपथ याद कीजिये जिसके अन्तर्गत वह बीमारी को ठीक करके रोगी को जीवन देने का वचन लेता है, न कि मृत्यु प्रदान करने का।

अधिकतर लाइलाज रोगी आत्महत्या की ओर अपनी बीमारी के कारण नहीं, अवसाद की वजह से मुड़ते हैं। यानी भीतर उनका अवसाद यह विचार उत्पन्न करता है, न कि शारीरिक कष्ट और अवसाद का इलाज संभव है। बीमार व्यक्ति का मृत्यु का प्रस्ताव निराशा दर्शाता है न कि संवेदनशीलता। इससे यह संदेश जाता है कि बीमार रोगी और निर्भर व्यक्ति को जीने का हक नहीं है।

आस्ट्रेलिया की नॉर्थ टेरिटरी में तो यूथनेसिया (स्वेच्छा से मरने का अधिकार) को लेकर एक विधेयक (टर्मिनली इल बिल) ही पास कर दिया गया और ऐसे लोग जो मरणासन्न होते हैं, उन्हें कम्प्यूटर की मदद से मारक इंजेक्शन देने के लिये "डॉ. डेथ" यंत्र भी बना लिया गया है। यूथनेसिया (वैध आत्महत्या) की प्रक्रिया ने काफी जोर पकड़ लिया है। इस प्रक्रिया में मरणासन्न रोगी की शैया के समीप एक कम्प्यूटर संबंध सिरिंज से उसे स्नायु टीका (इंट्रावीस इंजेक्शन) लगा देता है और इस तरह इसकी जागतिक लीला खत्म हो जाती है। इस तरह यह दया या करूणा मृत्यु (मर्सी किलिंग) मृत्यु की एक छवि है। इस पर बहस जारी है और इस तरह की क्रुर करूणा पर अभी प्रश्न चिह्न लगा हुआ है।[1]

यूथनेसिया अर्थ है good death या dying well इसे physician-assisted sucide कहा जाता है। आत्महत्या अनुमति विषय क कानून जब पास नहीं हुआ तब दया और करूणा की छद्म-संज्ञा के साथ इस नयी विधि का जन्म हुआ। महसूस किया गया कि व्यक्ति जब किसी लम्बी असहनीय बीमारी से ग्रसित हो और जिन्दा लाश की तरह जीवन जीने से तंग आ जाये तो उसकी स्वीकृतिपूर्वक चिकित्सक की सलाह पर उसे मौत दे दी जाये ताकि वह इस संसार के वर्तमान के सभी दु:खों से मुक्त हो जाये। इसे slippery slope भी कहा जाता है।[2]

यह euthanasia शब्द ग्रीक मन से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है well और thanatos का तात्पर्य है – मृत्यु जब मनुष्य शारीरिक या मानसिक बीमारी से मृत्यु हेतु निवेदन करता है और यदि न्यायालय इसे उचित स्वीकारता है तो न्यायाधीश उस व्यक्ति को स्वयं जहर पिलाने आता है।

उन्नीसवीं सदी में इस किस्म की आत्महत्या पर वैज्ञानिक आधार पर विचार करना शुरू किया गया। ओहियो में 1906 में अमेरिका ने आत्महत्या के पक्ष में बिल पास कराना चाहा, किन्तु वह पास न हो सका। ब्रिटेन में भी 1935 में एक ऐसे ही बिल को नामंजुर किया गया था। Tohnson और Republic को क्रमश: उनकी पत्नी और पुत्र की Mercy Killing करने पर दण्ड भुगतना पड़ा था।

ब्रिटेन में Euthanasia Society की स्थापना हुई और Euthanasia के समर्थन में 1950 से लेकर 1969 तक लगातार कई बार बिल रखे गये किन्तु वे पास नहीं हो सके। अमेरिका में भी यही हालात रहे। Fleteher ने Euthanasia के पक्ष में मजबूत तर्क प्रस्तुत करके murder को malice aforethought कहा और euthanasia को mercy afovethought कहकर कनाडा, ब्रिटेन और अमेरिका में जनमत कराकर भी इस पक्ष को मजबूत बनाया। इसके बाद Death with Dignity Bills भी लाये गये पर Living will को कानूनी नहीं बनाया जा सका और 1976 में कैलिफोर्निया अमेरिका में Right to Die Status Bill पास हो गया। नीदरलैण्ड आदि देशों में बाद में Dutch Medical Council Voluntary Euthanasia को मान लिया गया। अमेरिका में इसे कानूनी बनाने के पूरे प्रयत्न हुये किन्तु वह सफल नहीं रहा। 1970 में Court ने Right to Refurse Medical Treatment Constitution पास किया। Dr. Jack Kevorkian के प्रयास से 1994 में Oregan Death with Dignity Act पास हुआ था किन्तु उसे 1997 में रद्द कर दिया गया और माना गया कि PhysicianA ssisted Suicide गैर कानूनी है। ब्रिटेन में 14 फरवरी 2003 को वेलेन्टाइन डे वाले ही दिन छ: साल की Cloned Sheep Dolly को फेफड़ों में खराबी आ जाने के कारण euthanized death से समाप्त कर दिया गया।

भारत जैसे देश में भी euthanized death को लेकर काफी चर्चायें प्रारंभ हो गयी है। लोग राष्ट्रपति को पत्र लिखकर स्वैच्छिक मृत्यु हेतु अनुमति मांग रहे है। कई टी.वी सीरियलों में स्वैच्छिक मृत्यु के मसलों को फिल्माकर जनसाधारण के विमर्श का विषय बनाया जा रहा है। सीरियल निर्माता एकता कपूर अपने सीरियल "सास भी कभी बहु थी" में नायिका तुलसी द्वारा उसी की सास को अस्पताल में इच्छामृत्यु दिये जाने के दृश्य ने भारतीय मानस के दिलोदिमाग पर प्रश्न चिह्न खड़े कर दिये हैं। एकता कपूर इस मुद्दे को, जो कि पाश्चात्य से आयातित है, को अपने सीरियल में उठाने को लेकर काफी गर्वित भी महसूस करती है। इच्छामृत्यु आत्महत्या से भी बड़ा पाप है, क्योंकि आत्महत्या से तो एक व्यक्ति दोषी व पाप का भागी बनता है किन्तु इच्छा मृत्यु में एक से अधिक व्यक्ति दोषी तथा पाप के भागी बनते हैं। एक मृत्यु की इच्छा करने वाला और दूसरा उसको अंजाम देने वाला तथा तीसरे वे लोग दोषी होते हैं, जो इस कार्य को सहयोग व समर्थन करते है। संलेखना में चूंकि मृत्यु की इच्छा है ही नहीं, अत: उसकी तुलनाम्न्जीदेंपं से करना आधारहीन है।[3]

सेठ जी. एस. मेडिकल कॉलेज मुंबई में वैज्ञानिक मनु कोठारी ने भारत और दूसरी जगहों पर यूथनेसिया पर अध्ययन किया है। भारत में यूथनेसिया के मामले पर वे उत्साह पूर्ण हैं। वे कहते हैं– "मैं पिछले चालीस वर्षो से डॉक्टर हूँ। भारत बुजुर्गो को नजरअंदाज नहीं करता। मुझे हमेशा लगता है कि अमेरिका में बुजुर्ग भावनाओं के अभाव के कारण पीड़ित होते हैं क्योंकि उनकी देखभाल नहीं होती। वे बीमारी की वजह से नहीं, मानवता की अनुपस्थिति के कारण आत्महत्या के बारे में सोचते हैं।" वे इच्छा मृत्यु को कानूनी सहमति देने के खिलाफ हैं। वे कहते हैं– "यह हथियार मनुष्य को देने लायक नहीं है।"[4]

मृत्यु के विविध प्रयोग

कुछ लोग मृत्यु का आलिंगन विविध प्रकार से करते हैं। ऐसी मृत्यु कष्टप्रद और भयप्रद दोनों होती है फिर भी कुछ लोग मृत्यु को आमंत्रित करते हैं। अनशनपूर्वक मरण समाधि मरण है। इसमें भीतर में शान्ति और समाधि का अनुभव होता है। जैन और जैनेतर समुदाय में अनशन के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। लक्ष्य की भिन्नता होने से जैन परंपरा में इसे अनशन, संथारा या संलेखना कहते हैं और वैदिक परंपरा में प्रायोपवेश कहते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार प्रायोपवेश लंबे समय तक चलने वाली प्रक्रिया

है। आमरण अनशन की तरह यह अपनी मांग मनवाने के लिये नहीं, देह त्याग करने के लिये ही किया जाता रहा है। इस व्रत को पूरा करने में दृढ़ और प्रचण्ड संकल्प बल चाहिये, इसलिये प्रायोपवेश को जीवन से भागना नहीं कहा जा सकता। श्री अरविन्द के अनुसार इस तरह के प्रसंग मृत्यु को जीवन से ज्यादा मूल्यवान बनाते हैं। जैन परंपरा में विहित अनशन के महत्त्व को उजागर करते हुये स्वामी चैतन्य कीर्ति लिखते हैं– "कभी-कभी कोई जैन मुनि संथारा - साधना के द्वारा लंबे उपवास के बाद देह त्याग कर देता है। उसका उद्देश्य होता है कि वह होशपूर्वक मृत्यु में प्रवेश करे। अनेक मुनि इस प्रक्रिया द्वारा अपने ध्येय को प्राप्त कर लेते होंगे, जैन समाज में यह स्वैच्छिक मृत्यु आत्महत्या नहीं मानी जाती, बल्कि मुनि की तपस्या मानी जाती है, मुनि और अधिक पूज्य हो जाता है।"[5]

भारतीय साहित्य में शील रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग के प्रसंग भी मिलते हैं। चम्पानगरी के महाराज दधिवाहन की महारानी का नाम धरिणी और पुत्री का नाम चन्दन बाला था। अकस्मात् महाराज दधिवाहन पर कौशाम्बी के महाराज शतानीक ने आक्रमण कर दिया। दधिवाहन ने व्यर्थ का रक्त बहाना उचित नहीं समझा और शतानीक से युद्ध किये बिना ही स्वंय वन की ओर चले गये। शतानीक की सेना ने बेरोक टोक नगर को लूटना शुरू किया। लूट-खसोट में एक सैनिक धरिणी और चन्दनबाला को उठाकर ले गया। उस नर-पिशाच ने ज्योंही धरिणी का शील लूटना चाहा, त्योंहि धरिणी ने अपनी जीभ खींचकर शील रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिया।[6]

गुजरात में महाराज सिद्धराज राज्य करते थे, उस समय की घटना है। एक बार मध्यप्रदेश की "ओड" जाति अकाल से ग्रस्त होकर अपनी आजीविका के लिये गुजरात पहुंची। राजा सिद्धराज ने "सहस्रलिंग" तालाब खुदाने का निर्णय इसलिये किया कि प्रजा को राहत-कार्य मिल जाये। ओड जाति में टीकम नाम का एक व्यक्ति अपनी पत्नी व बच्चों को लेकर वहां चला आया। उसकी पत्नी का नाम जसमा था। जसमा बड़ी विचक्षण और वीर नारी थी। विचक्षणता और वीरता के साथ वह अत्यन्त सुन्दर भी थी। रूप प्राय: अभिशाप सिद्ध होता है। जसमा के लिये भी यही हुआ। उसका पति और उसके साथी मिट्‌टी खोदते और स्त्रियां उस मिट्‌टी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ढोती थीं। राजा सिद्धराज की दृष्टि जसमा पर पड़ी। उसने उसे अपने महलों में आने के लिये अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु जसमा हृदय विचलित नहीं हुआ। उसने इस कुचक्र की जानकारी अपने पति को दी और कहा कि अब हमें यहां नहीं रहना चाहिये। बहुत से लोग वहां से इनके साथ चल पड़े। राजा को यह मालूम हुआ तो वह स्वयं घोड़े पर बैठ अपने सैनिकों को साथ ले चला पड़ा। निकट पहुंच कर राजा ने कहा– "जसमा को छोड़ दो, और सब चले जाओ।" टीकम ने कहा - "ऐसा नहीं हो सकता।" बहुत से लोग उसमें मारे गये, टीकम भी मारा गया। पति के मरने पर जसमा के जीवन का कोई मूल्य नहीं रहा। उसने हाथ में कटार लेकर अपने पेट में भोंकते हुये कहा– "यह मेरा हाड़-मांस का शरीर है। दुष्ट! तू इसे ले और अपनी भूख शान्त कर।" इस तरह उस अबला ने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया।[7]

जीवन मूल्यों की रक्षा के लिये है। शास्त्रकारों ने इन मूल्यों को धर्म कहा है और अनुमति दी है कि इनके निर्वाह के लिये, धर्म का पालन करने के लिये जीवन का त्याग करना पड़े तो कर देना चाहिये। महाभारत में कहा गया है कि जीवन बचाने के लिये धर्म का त्याग करना पड़े तो वह जीवन मृत्यु से भी गया गुजरा है। उत्कट उद्देश्य के लिये अपना उत्सर्ग करने की परंपरा जीवन से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही है। मध्यकाल के राजपूत इतिहास में कमजोर पड़ने पर मर-मिटने के लिये किले के बाहर निकल पड़ने वाले वीरों का "साका" और स्त्रियों के "जौहर" उसी परंपरा का विस्तार कहे जा सकते हैं।

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण द्वारा सरयू के तट पर अपना अन्त कर लेने का प्रसंग प्रसिद्ध है। राम द्वारा त्याग दिये जाने के बाद लक्ष्मण सरयू के किनारे जाकर बैठ गये थे और सांस लेना रोक दिया था। रामायण इस प्रसंग में कहती है कि उसके बाद लक्ष्मण ने महाप्रयाण किया। बाद में राम ने भी इसी तरह सरयू में जाकर अपने प्राणों का विसर्जन किया। अयोध्या के कई नागरिकों ने उनका अनुसरण किया। रामायण के अनुसार महर्षि शरभंग और शबरी ने अग्नि में प्रवेश कर अपने जीवन का अन्त किया। बालि की मृत्यु पर तारा ने भी उसके शव के पास आमरण उपवास का निश्चय व्यक्त किया। महाभारत के अनुसार नकुल और सहदेव की माता माद्री ने आत्मदाह कर शरीर छोड़ा। भीष्म के संबंध में प्रसिद्ध है कि उन्हें इच्छामृत्यु का वरदान मिला हुआ था और उन्होंने शरशय्या पर लेटे-लेटे ही जीवन लीला समाप्त की थी।[8]

संदर्भ ग्रंथ सुची

1. तीर्थंकर, जनवरी 1998, पृष्ठ 17
2. For fuller account, Peter Singer, Practical Ethics, Cambridge University Press, 1993, पृष्ठ 176.178 - 193.200
3. प्रकृत विद्या समाधि विशेषांक, डॉ. भागचन्द भास्कर, अक्टूबर-दिसम्बर, 1995, पृष्ठ 113-116
4. अहा जिंदगी, फरवरी 2007
5. अहा जिंदगी, फरवरी 2007
6. मुनि नथमल, श्रमण महावीर, सं मुनि दुलहराज, जैन विश्व भारती, 1974, पृष्ठ 79
7. स्थानांग, टिप्पण, पृष्ठ 488
8. अहा जिंदगी, फरवरी 2007

नाट्य कला की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' का समग्र विश्लेषण

डॉ० पाण्डव कुमार

सहरसा, बिहार

भारत में ही नाट्य शास्त्र की रचना सबसे पहले हुई। यहाँ नाट्य शास्त्र के अनेक आचार्य हुए, जिन्होंने नाटक पर बड़े विस्तार और गम्भीरता से इस विधा पर विचार किया है। इनमें भरतमुनि, धनंजय, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, अभिनव गुप्त, विश्वनाथ आदि के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

वही रचना नाटक कहला सकती है जो इस कौशल से लिखी गई हो कि अभिनेता अपने अभिनय के द्वारा उसे रंगमंच पर लोगों के समक्ष प्रस्तुत करके उनके हृदय में इस की निष्पत्ति कर सके। नाटक में साध्य होता है रस (या फल) और साधन है अभिनय, संवाद, संगीत इत्यादि, निमित्त है अभिनेता, भोक्ता दर्शक, आधार है कथा और इन सबका प्रयोग करने वाले हैं नाट्यकार और नाट्य-प्रयोक्ता। नाटक की उत्पत्ति बताते समय ही भरतमुनि ने नाट्य कला की चर्चा की है। उनके अनुसार इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा जी से जाकर कहा कि "आप ऐसी कृति सृजित कीजिए जो सुनी भी जा सके, खेली भी जा सके, देखी भी जा सके क्रीड़ानीयकामिच्छामों दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत।[1] दशरूपककार और भावप्रकाशकार ने भी भरतमुनि की इसी स्थापना को पुष्ट किया है कि "नाटक एक ऐसा खेल है जो मंच पर ही सार्थक होता है। वह पाठ्य वस्तु नहीं है, उसका प्रयोग किया जाता है।" आचार्य धनंजय के मतानुसार अवस्था की अनुकृति नाटक है। नाटक में अनुकरण तत्व की प्रधानता है। यह अनुकरण मानवीय जीवन के क्रियाशील कार्यों का होता है। मनुष्य अनेक परिस्थितियों से हर क्षण गुजरता है। उसकी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहने के कारण उसके जीवन-रंगमंच पर अनेक दृश्य (स्थितियाँ) आते-जाते रहते हैं, नाटककार नाटक की रचना करते समय इन्हीं स्थितियों का अनुकरण करता है।

नाटक में जीवन का यथार्थमूलक अनुकरण होते हुए भी नाटककार सर्जनात्मक कल्पना करता है। यही कल्पना नाटक को साहित्य की विध प्रदान करती है। इसलिए नाटक एक ऐसी कला है, जिसमें अनुकरण और कल्पना दोनों का योग होता है।

भारतीय दृष्टि से नाटक के निम्नलिखित तत्व माने गये हैं :

वस्तु

वस्तु नाटक की कथा को कहते हैं जिसके दो प्रकार होते हैं– आधिकारिक कथा और प्रासंगिक कथा। आधिकारिक कथा वह है जो नाटक में आरम्भ से अन्त तक पाई जाती है और प्रासंगिक कथाएँ लघु होती हैं जो नाटकीय कथावस्तु की धारा में कुछ दूर चलकर समाप्त हो जाती हैं। आज नाटक आदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हो गये हैं, ऐतिहासिक-पौराणिक से अधिक सामाजिक-राजनैतिक हो गये हैं।

नेता

नेता चरित्र को कहते हैं। यह नाटक की कथावस्तु का नेतृत्व करता है, इसे नायक कहते हैं। लेकिन 'नेता' में नाटक के सभी प्रकार के चरित्रों का समावेश होता है- नायक, नायिका, विदूषक, प्रतिनायक, लघु चरित्र इत्यादि। नाटक शास्त्र के अनुसार नायक को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए। नायिका को भी उसी के अनुरूप होना चाहिए। प्राचीन नाटकों के अन्त में नायक-नायिका की

विजय और प्रतिनायक की पराजय दिखायी जाती थी। इस प्रकार के नाटक को सुखान्त नाटक कहते हैं। किन्तु, आज दु:खान्त नाटक भी लिखे जा रहे हैं, जिनमें नायक-नायिका का दु:खद अन्त या उनकी मृत्यु भी हो जाती है।

रस

यह काव्य और नाटक दोनों की आत्मा है। प्राचीन दृष्टि से नाटक मेंशृंगार, करुण और वीर-तीन रसों में से कोई एक प्रधान हो, ऐसी व्यवस्था है। नाटक के अन्त में सत्य की जीत होती थी, इसलिए दर्शकों को आनंद की प्राप्ति होती थी। वास्तव में, रस नाटक के अन्त में सारभूत प्रभाव होता था। आज इसकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों की काव्यत्वप्रधन स्वच्छन्दतावादी परम्परा का उत्कर्ष बिन्दु भी है और स्वातंत्र्योत्तर नव्य नाट्य चेतना से प्रेरित-अनुप्राणित हिन्दी नाटक का प्रस्थान बिन्दु भी। राकेश हिन्दी की नाट्य-परम्परा में ही आये थे- जहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की नाट्य कला को छोड़ा था, वहाँ से जयशंकर प्रसाद ने शुरु किया था, और जहाँ जयशंकर प्रसाद ने उसे छोड़ा, वहाँ जगदीशचन्द्र माथुर और मोहन राकेश उसे लेकर आगे चले। यह भी धयातव्य है कि राकेश-पूर्व के हिन्दी नाटक मुख्यत: मन के बाहर के नाटक हैं– सामाजिक समस्याओं और राष्ट्रीय चेतना के, मन के भीतर के नाटक नहीं हैं, व्यक्ति-संबंधों के नाटक नहीं हैं, भले ही इनकी झलक कहीं-कहीं मिल जाती हो। छायावादी काव्य में अभिव्यक्त अनुभूतियों के बारे में कहा जाता है कि वे वास्तविक नहीं, काल्पनिक अनुभूतियाँ हैं। कुछ ऐसी ही बात राकेश-पूर्व नाटकों के पात्रों की अनुभूतियों के बारे में कही जा सकती हैं- जहाँ अनुभूतियाँ ही काल्पनिक, अवास्तविक हों वहाँ उन्हें अभिव्यक्त करनेवाली भाषा कैसे वास्तविक और विश्वसनीय हो सकती है? ऐसे सन्दर्भ में जब मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' 'लेखन और प्रकाशन सन् 1958' सामने आया, तब नाटक के अध्येताओं को लगा कि यह तो एक प्रकार का विशिष्ट नाटक है। प्रसिद्ध नाट्य-समीक्षक नेमिचन्द्र जैन ने लिखा– "हिन्दी के ढेरों तथाकथित ऐतिहासिक नाटकों से 'आषाढ़ का एक दिन' इसलिए मौलिक रूप से भिन्न है कि उसमें न तो अतीत का तथ्यात्मक विवरण है, न पुनरुत्थानवादी गौरवगान और न भावुकतापूर्ण अतिनाटकीय स्थितियाँ। उसकी दृष्टि कहीं ज्यादा आधुनिक तथा सूक्ष्म है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की शुरुआत का सूचक है।"[2] नाट्य निर्देशिका और समीक्षक डॉ. गिरीश रस्तोगी ने अपना विचार व्यक्त किया-"आषाढ़ का एक दिनन्मोहन राकेश का पहला और सर्वोत्तम नाटक ही नहीं है, आज के हिन्दी नाटक की पहली महत्वपूर्ण उपलब्धि भी है। यह नाटक राकेश को हिन्दी के शीर्षस्थ नाटककारों में प्रतिष्ठित करता है और हिन्दी नाटक और रंगमंच को भारतीय नाटकों और रंगमंच को समकक्ष लाता है।"[3]

संस्कृत साहित्य के अध्ययन और विद्यार्थी जीवन से रंगमंच के प्रति आकर्षण ने ही सम्भवत: मोहन राकेश को अश्वघोष के 'तरंस्तरंगेष्ठिव राजहंस:' एवं कालिदास के 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' के मूल काव्यनाट्य बिम्बों पर नाटक लिखने तथा 1944 में 'वेणी संहार' के संस्कृत-मंचन से अभिनेता तथा 1945-46 में दो अन्य संस्कृत नाटकों से निर्देशक के रूप में जुड़ने को प्रेरित किया होगा। स्वयं रचनाकार के शब्दों में, "आषाढ़ का एक दिन के भी वह तीन चरित्र पहले से मन में स्पष्ट थे। मेघदूत पढ़ते हुए मुझे लगा करता था कि कहानी निर्वासित यक्ष की उतनी नहीं है जितनी स्वयं अपने आत्मा से निर्वासित उस कवि की, जिसने अपनी ही एक अपराध-अनुभूति को इस परिकल्पना में ढ़ाल दिया है। उस अपराध-अनुभूति के संबंध में सोचते हुए जो तीन चरित्र मुझे मिले, वे थे मल्लिका, अम्बिका और विलोम। कालिदास का चरित्र तो केन्द्र में था ही। इनके अतिरिक्त शेष सब पूरक चरित्र हैं जिनकी सृष्टि नाटक लिखते समय हुई है।"[4] परन्तु सच यह है कि कालिदास को केन्द्र में रखने और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश का इस्तेमाल करने के बावजूद यह नाटक "कालिदास के बारे में नहीं।"[5] लेखक के अनुसार, "मैं इस नाटक में आज के लेखक की द्विविध को चित्रित करना चाहता था-लेखक जो राज्य या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा प्रस्तावित लोभ के प्रति आकर्षित होता है और दूसरी ओर कहीं अपने प्रति प्रतिबद्ध भी होता है।"[6] और इस द्विविध से पार पाकर राकेश इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "लेखक का व्यक्तित्व नि:सन्देह उन सब सुविधाओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है, जो राज्य उसे दे सकता है।"[7] परन्तु यह कैसी विडम्बना है कि इस धारणा को पुष्ट करने वाले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का मूल चरित्र कालिदास न केवल राज्याश्रय ही ग्रहण कर लेता है बल्कि स्वयं सत्ताधरी भी बन बैठता है और इसका लेखक मोहन राकेश इसी नाटक के लिए अकादमी पुरस्कार

प्राप्त करता है। यहीं पर मोहन राकेश के नाटक का विषय अपने इतिहास का दामन त्याग कर, वर्तमान आधुनिक मानव की समस्याओं को नाट्य लेखन के क्षेत्र में प्रस्तुत किया।

'आलोच्य नाटक' का उद्देश्य कालिदास, मल्लिका और विलोम की प्रेमकथा के माध्यम से साहित्य कला और प्रेम, रचनाकार और परिवेश, भावना और कर्म, इच्छा और समय, कलाकार और राज्य इत्यादि के पारस्परिक संबंध, आंतरिक तनाव एवं संघर्ष का नाटकीय प्रस्तुतीकरण करना है। इनमें से राकेश का बुनियादी सरोकार कालिदास को मूल में रखकर उसके रचनाकार व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के प्रश्न को रेखांकित करना है। राकेश के शब्दों में, 'kIt was the main speech fo KalioaQs at the end of the Third Act that for me carried the meaning of the play. Therefore I felt satounded when the play was interpreted by some people just sa the emotional tragedy of Mallika."[8]

प्रतीकात्मकता और नाट्य-विडम्बना राकेश के नाट्य कला की दो अन्य प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनका बहुआयामी प्रयोग उन्होंने अपने सभी नाटकों में किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' का मंच-विधान इसके चरित्रों, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का संकेत देने के साथ-साथ उनकी शारीरिक और मानसिक यात्रा के लिए आधार-स्थल प्रस्तुत करता है। जगदीश शर्मा के शब्दों में "इस प्रकार एक ही स्थान पर समय की गति के साथ बदलता हुआ परिवेश समय के हाथों उत्पीड़ित मानव-नियति की कथा कहता है।"[9] इस प्रकार के आयाम को मल्लिका के चरित्र और दृश्यबंध के माध्यम से बड़ी रोचक तीव्रता एवं नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

चारित्रिक स्तर पर कालिदास "सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक" है तो मल्लिका "कालिदास की आस्था का विस्तारित रूप" संकेतित करती है। विलोम "दुराग्रह की आक्रामक शक्तियों"[10] का द्योतक है। मल्लिका के भावनामय रोमानी चरित्र के मुकाबले अम्बिका यथार्थपरक व्यावहारिक जीवन-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है। प्रियंगुमंजरी, दन्तुल, रंगिणी-संगिनी और अनुस्वार-अनुनासिक जैसे पात्र सत्ता और व्यवस्था के विविध रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं और सत्ताधरी, राजपुरुष, राज्याश्रयी बुद्धिजीवी तथा राज्याधिकारी की बहुरूपी मानसिकताओं के प्रतीक हैं। इसी प्रकार "मेघ" और "ग्रंथ" को कालिदास तथा "ग्राम प्रान्तर" और "भूमि" को मल्लिका का सूक्ष्म प्रतीकत्व प्रदान करके नाटककार ने अद्भुत रंग-कौशल का परिचय दिया है। इसी प्रकार पृष्ठ 23 का घायल हरिण शावक जो कवि कालिदास की नैसर्गिक कोमल भावना, निश्छल चेतना और स्पन्दनमय संवेदनशीलता का प्रतीक है, वही पृष्ठ 25 के संवाद "माँ की-सी आँखें और उसका-सा ही स्नेह"[11] की पृष्ठभूमि में देखने पर तीसरे अंक मल्लिका की बच्ची बनकर कालिदास के चरित्र की विसंगति एवं परिस्थिति की विडम्बना का नाटकीय संकेत बन जाता है।

इसी प्रकार राकेश ने व्यंग्य और नाट्य-विडम्बना का कई रूपों और स्तरों पर अत्यन्त कलात्मक एवं प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल करके 'आषाढ़ का एक दिन' को नई समृद्धि और गरिमा प्रदान की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

दूसरे अंक के आरम्भ में राजकर्मचारियों के संबंध में मल्लिका के इस कथन कि "जानते हैं, माँ इस संबंध में क्या कहती है? कहती कि जब भी ये आकृतियाँ दिखाई देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है। कभी युद्ध कभी महामारी! ...परन्तु पिछली बार तो ऐसा कुछ नहीं हुआ।"[12] के उत्तर में निक्षेप का प्रश्न "नहीं हुआ?"[13] पूरी तीव्रता और सघनता से मल्लिका के जीवन के आंतरिक सत्य और स्थिति की विडम्बना का संकेत दे देता है। लगभग यही स्थिति पहले और तीसरे अंक के 'आषाढ़ के दिन' के मेघों और वर्षा के अन्तर की है। तीसरे अंक में इसी से जुड़ा कालिदास का एक सम्वाद है- "और कि वही चेतना है जिसमें कम्पन्न होता है, वही ह्दय है जिसमें आवेश जागता है। परन्तु...।"[14] यह छोटा-सा 'परन्तु' इच्छा के विरुद्ध समय की शक्ति नियति के समक्ष व्यक्ति की दुर्बलता और परिस्थितियों के मुकाबले संबंधों की विडम्बना का कितना बड़ा प्रमाण प्रस्तुत कर देता है। प्रथम अंक में कालिदास घायल हरिण शावक की रक्षा के लिए राजकर्मचारी से भिड़ जाता है, परन्तु वही कालिदास तीसरे अंक में मल्लिका के घर के "हरिणशावक"[15] से वितृष्णा के कारण वह घर, प्रेमिका और प्रदेश ही छोड़कर चला जाता है। आश्रय देने के नाम पर मातुल की टाँग और कालिदास के व्यक्तित्व एवं मन को तोड़ देने वाले राज्य की विडम्बना भी स्पष्ट ही है। दूसरे अंक में वर्षों बाद कालिदास से मिलने की आतुर प्रतीक्षा करती मल्लिका का रंगिणी-संगिणी तथा अनुस्वार-अनुनासिक और प्रियंगुमंजरी से मिलना भी कम विडम्बनापूर्ण नहीं है परन्तु मल्लिका द्वारा विवाह का प्रस्ताव विनम्रतापूर्वक ठुकरा देने पर उसका प्रेमी और घर लूट लेनेवाली

पियंगुमंजरी का यह भोला प्रश्न तो त्रासद ही है कि "क्यों? तुम्हारे मन में कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर-परिवार हो?"[16] स्पष्ट है कि सन्दर्भों, शब्दों, सम्वादों, स्थितियों और मन:स्थितियों की यह विडम्बना समन्वित होकर समग्रत: चरित्रों और संबंधों की व्यापक विडम्बना का रूप लेकर सम्पूर्ण नाटक को आषाढ़ के मेघों की तरह चारों ओर से आच्छादित कर लेती है। नाट्य विडम्बना का बहुस्तरीय एवं प्रभावशाली रोचक उपयोग राकेश के रंग-शिल्प की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

"आषाढ़ का एक दिन रस और आनंद का परम्परित नाटक नहीं वरन् द्वन्द्व और त्रासदी पर आधारित एक आधुनिक नाटक है। इस बुनियादी अंतर को न समझने के कारण ही अधिकांश समीक्षक अनजाने और अनचाहे ही इस नाटक और मल्लिका के चरित्र के प्रति अन्याय कर जाते हैं।"[17] नाटक का द्वंद्व, तनाव और संघर्ष, भावना, व्यक्ति, स्थिति तथा प्रकृति-सभी स्तरों पर विद्यमान है। रूमानियत और यथार्थ, भावना और कर्म, समय और इच्छा, प्रेम और विवाह, परिवेश और सृजनात्मकता, व्यक्तिगत स्वातंर्त्य और राज्याश्रय- 'आषाढ़ का एक दिन' में व्याप्त संघर्ष के विविध आयाम हैं। नाटककार इसे आरम्भ में 'मेघ' (कालिदास) और 'बिजली की कौंध' (विलोम राज्य) के द्वारा और फिर विरोधी वृत्तियों एवं दृष्टिकोणों वाले चरित्रों के पारस्परिक अंतसंबंधों के द्वारा व्यक्त करता है। ज्येष्ठ मास की तपती हुई लू (परिस्थितियाँ) ने धरती (मल्लिका) को सुखा रखा है। तभी आषाढ़ मास के मेघों की पहली वर्षा (कालिदास की प्रेमासिक्त) उसे जीवनदायी आर्द्रता से तृप्त कर जाती है। लेकिन तभी बिजली (विलोम-राजा का दूत) कौंधती है और प्यासी मल्लिका को अपनी आत्मीय आर्द्रता एवं कोमलता से चारों ओर उड़ जाते हैं। यह नाटक बाहरी क्रियाओं (एक्शन) और संघर्ष के बजाए अधिकतर भीतरी प्रतिक्रियाओं और द्वन्द्व के द्वारा तनाव की सृष्टि करता है। तलवारों की लड़ाई की अपेक्षा यह नाटक विरोधी भावनाओं, मनोवृत्तियों और इरादों के संघर्ष को प्राय: वाक्युद्ध के रूप में प्रकट करता है। प्रथम अंक में यह तनाव अम्बिका और मल्लिका, दन्तुल और कालिदास, निक्षेप-मातुल और अम्बिका तथा कालिदास, मल्लिका और विलोम के बीच उभरता है। दूसरे अंक में मल्लिका और प्रियंगुमंजरी का वैषम्य इसे गहराता है और तीसरे अंक में परिस्थितियों की विडम्बना से घिरे कालिदास, मल्लिका और विलोम के बीच पूरी शक्ति से उभर कर यह संघर्ष तीनों को तोड़ जाता है। मल्लिका को पाकर ही विलोम जान पाता है कि मन के बिना केवल तन की प्राप्ति कितनी अधूरी और अर्थहीन उपलब्धि है। इसी प्रकार, तन के बिना केवल मन (भावना) के स्तर पर मल्लिका की प्राप्ति कालिदास को भी असंतोष एवं मोहभंग की दारुण स्थिति में ले जाती है। कालिदास के आगमन से विरहिणी मल्लिका की प्रतीक्षा खत्म होती है, लेकिन केवल उसकी आस्था और उसके विश्वास को तोड़कर चिर-वियोग में अकेला छोड़ जाने के लिए। मानव-प्रकृति और नियति की इस विडम्बना को रेखांकित कर नाटककार कई रंग-युक्तियों का नाटकीय प्रयोग करता है। तनाव और प्रभाव को गहराने के लिए रचनाकार ने विविध पात्रों के स्वभाव, व्यवहार, वस्त्र-विन्यास, रंग-रूप, हाव-भाव और गति-विधान के वैषम्य के साथ-साथ नाटकीय प्रवेश-प्रस्थान, अर्थगर्भी मौन, आशंका, सम्भावना और आकस्मिकता का भी रोचक इस्तेमाल किया है। नाट्य समीक्षक एन.सी. ठाकुर के शब्दों में, 'kHe hsa skillfully contrsated characters, their gestures and movements, their dresses, their language and its rhythms, their thought patterns and behaviour. He hsa also contrsated atmosphere and its effect and is not for the skae of contrsat. He uses it for dramatic tension, to heighten the dramatic impact of the play."[18]

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के प्रवेश और प्रस्थान, रचनाकार ने कौशलपूर्वक अत्यन्त नाटकीय एवं दिलचस्प ढ़ंग से नियोजित किए हैं। आकस्मिक होकर भी वह पूर्णत: स्वाभाविक है। सभी महत्वपूर्ण पात्रें के प्रवेश से पहले उनके नाम और चरित्र का संकेत राकेश ने बड़ी चतुराई से अपने पाठकों-दर्शकों को दे दिया है। मल्लिका नाटक के प्रथम सम्वाद में ही घर की मालकिन अम्बिका को 'माँ' कहकर उससे अपने संबंध और अपनी मानसिकता को स्पष्ट कर देती है। कालिदास को लेकर माँ-बेटी के लम्बे वाद-विवाद के बाद उसका प्रवेश कराया गया है। विलोम के प्रवेश से पूर्व मल्लिका के सम्वाद "यह तुम्हारी नहीं, विलोम की भाषा है।"[19] द्वारा उसके चरित्र का पूर्वाभास नाटककार हमें करा देता है। मातुल का प्रथम सम्वाद ही उसके अपने व्यक्तित्व और कालिदास से उसके रिश्ते को साफ कर देता है। दूसरे अंक में राजदुहिता (प्रियंगुमंजरी) से कालिदास के विवाह का सन्दर्भ भी निक्षेप के सम्वाद में पहले से ही दे दिया जाता है और अनुस्वार, अनुनासिक उसके आगमन की पूर्व सूचना दे देते हैं।

राकेश के नाटकों का बुनियादी सरोकार रहा है, "व्यक्तित्व की खोज घर के माध्यम से और घर की खोज व्यक्तित्व के माध्यम से।"[20] प्रेमिका और पत्नी दोनों के साथ अपनी कल्पना के घर की तलाश में असफल होने के बाद 'आषाढ़ का एक दिन' के अंत

में कालिदास संबंधों के किसी नये समीकरण की खोज में बाहर निकल जाता है। यह घर मल्लिका और विलोम को भी नहीं मिलता। कालिदास के भीतर के दूसरे आदमी को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए राकेश ने विलोम की सृष्टि की है। इसी रंग-युक्ति का प्रयोग नाटककार ने 'लहरों के राजहंस' में श्यामांग तथा 'आधे-अधूरे' में सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा के रूप में भी किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में व्यक्तित्व के इस द्वैत को मूर्त रूप देने के लिए राकेश ने मातृगुप्त के नाम-सन्दर्भ का भी उपयोग किया है।

'आषाढ़ का एक दिन' का दृश्य-विधान अम्बिका और मल्लिका की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सुरुचि, संस्कार और सौन्दर्य-बोध का द्योतक होने के अतिरिक्त समय के साथ-साथ इन चरित्रों की बदलती हुई परिस्थितियों और मन:स्थितियों को भी उजागर करता है। 'मेघ' का प्रतीकत्व बहुअर्थगर्भी है। 'मेघ' पानी से जुड़कर जीवन के प्रतीक बनते हैं तो अंधकार से जुड़कर दुख और निराशा के। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में मेघगर्जन, वर्षा और विद्युत के दृश्य-श्रव्य बिम्ब नाटक के कथ्य और शिल्प का अविभाज्य अंग बनकर आए हैं। आरम्भ में यह मल्लिका के नवोपलब्ध सौन्दर्यानुभव और अनुभूतिमय प्रेम के लिए रोमानी वातावरण की सृष्टि करते हैं। कालिदास की विदाई से पहले अंधकार और प्रकाश की यह लुकाछिपी मल्लिका एवं कालिदास के अंतर्द्वन्द्व का संकेत देती है और बाद में यही बिम्ब मल्लिका की पीड़ा और आँसुओं को एक व्यापक आयाम दे जाता है। तीसरे अंक में प्रकृति के इन उदात्त तत्वों का उपयोग रचनाकार ने परिस्थितियों की विडम्बना और विषमता को रेखांकित करने के लिए किया है। प्रथम अंक के आरम्भ में अम्बिका का छाज में धन फटकना एक ओर उसके कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व का संकेत है, दूसरी ओर उसके मन की हलचल और उद्वेलन का तो तीसरी ओर खाद्य (मल्लिका और परिवार की प्रतिष्ठा) में से किसी तरह अखाद्य (कालिदास) को अलग करके बाहर निकाल फेंकने के प्रयत्न का भी संकेत देता है। यहाँ अम्बिका की शब्द-मितव्ययता और चुप्पी तथा घोड़ों की टापों और राजकर्मचारियों के आगमन से जुड़ी आशंका के द्वारा राकेश ने जबरदस्त तनाव की सृष्टि की है। इसके अतिरिक्त, 'हरिणशावक, उपत्यकाएँ, वायु-कुम्भ, बाघ (छाल), दीपक, रेशमी वस्त्र में लिपटे भोजपत्र, गेरु की आकृति सब मिलकर आत्मीय संबंधों के सूचक बन जाते हैं। ...अंत में एक ही दीपक का जलना कई संकेत एक साथ करता है- अम्बिका की मृत्यु, मल्लिका का एकाकीपन और उसका आत्मदाह। घोड़ों की टापों से मल्लिका, अम्बिका, विलोम की अलग-अलग स्थितियों का प्रस्तुतीकरण करते हुए नाटकीय संघर्ष को तीव्र प्रभाव दिया गया है। 'आषाढ़ का एक दिन' का सारा सौन्दर्य सांकेतिकता में है- यह सांकेतिकता भाषा में भी है, और क्रियाओं में, दृश्यों में भी।

सारांशत: कहा जा सकता है कि इस नाटक की रचना के लिए राकेश ने संस्कृत साहित्य से कालिदास का नाम (चरित्र) और परिवेश, भारतेन्दु से साहित्य रंगमंच समन्वित रंग-बोध, प्रसाद से भाव-सघनता और काव्यत्व, पारसी रंगमंच से मनोरंजन का तत्व और कॉमिक-सीन नियोजन (रंगिणी संगिनी), सब्सर्ड नाटकों से विसंगतिजन्य हास्य, व्यंग्य (अनुस्वार-अनुनासिक), भुवनेश्वर मिश्र और अश्क से मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष संबंधों के कथ्य, समस्या नाटकों से तीन अंकीय रंग-विधान और अभिव्यंजनावाद से मानव मन की गहरी अनुभूतियों और सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को उकेरने की शैली लेकर 'आषाढ़ का एक दिन' में उनका मौलिक एवं सृजनात्मक उपयोग किया है। इसी अर्थ में इसे हम अपनी रंग-परम्परा की सार्थक परिणति का उल्लेखनीय साक्ष्य भी मान सकते हैं।

सन्दर्भ:

01. भरतमुनि; नाट्य शास्त्र, पृष्ठ 1/12
02. सं. नेमिचन्द्र जैन; आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, से उकृत
03. गिरीश रस्तोगी; मोहन राकेश और उनके नाटक
04. मोहन राकेश; लहरों के राजहंस, पृष्ठ 14-15
05. मोहन राकेश; साहित्यिक और सांस्कृतिक कृष्टिरू (एक महत्वपूर्ण भेंट), पृष्ठ 164
06. वही
07. मोहन राकेश; साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि (साहित्यकार की समस्याएँ), पृष्ठ 25
08. Enact : 53 (May 1971) Mohan Rkaesh interviewed : Rajinder Paul.
09. जगदीश शर्मा; मोहन राकेश की रंग सृष्टि, पृष्ठ 16

10. मोहन राकेश; लहरों के राजहंस (पहली भूमिका), पृष्ठ 8-9
11. मोहन राकेश; आषाढ़ का एक दिन, पृष्ठ 25
12. वही, पृष्ठ 53
13. वही
14. वही, पृष्ठ 126
15. वही, पृष्ठ 123
16. वही, पृष्ठ 87
17. सं. सुन्दरलाल कथूरिया; नाटककार मोहन राकेश (रस निकर्ष पर), पृष्ठ 186
18. Ashadh Ka Ek Din : N.C. Thkaur (Contrsat and Parallelism) p. 22
19. मोहन राकेश; आषाढ़ का एक दिन, पृष्ठ 34
20. इन्द्रनाथ मदान; हिन्दी नाटक और रंगमंच: पहचान और परख, पृष्ठ 79

भक्ति आंदोलन व कबीर: एक विश्लेषण

प्रदीप कुमार

शोध-छात्र, नेट-एस०आर०एफ०, पटना विश्वविद्यालय, पटना

तुर्क-अफगानकालीन भारत के धार्मिक जीवन की प्रमुख विशेषता है-भक्ति-आंदोलन का उदय। इस काल में अनेक संतों एवं सूफियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने धर्म को आडंबर विहीन करने एवं ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति जगाने का कार्य किया। इस युग के संतों ने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किए वे थे हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य समन्वय एवं एकता स्थापित करने का प्रयास तथा सामाजिक और धार्मिक तनाव को कम करने की चेष्टा।[1]

भक्ति आंदोलन का विकास दो चरणों में हुआ। पहला चरण 7वीं से 13वीं शताब्दी तक चला, जब दक्षिण भारत में इसका आरंभ हुआ। दूसरा चरण 13वीं से 16वीं शताब्दी के मध्य विकसित हुआ। उत्तरी भारत में यह आंदोलन अपने दूसरे चरण में इस्लाम के सम्पर्क में आया और इसकी चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इससे प्रभावित, उत्तेजित और आंदोलित हुआ।[2]

13वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ। इस्लाम-धर्म की सरलता से प्रभावित होकर ब्राह्मण धर्म को सरल और ग्राह्य बनाने का प्रयास किया गया। प्राचीन काल में भी धार्मिक आंडबरों से क्षुब्ध होकर लोगों ने ज्ञान-मार्ग को 'मोक्ष' प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बताया। शंकर ने अद्वैतवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया; परन्तु सामान्य जन इस मार्ग को स्वीकार नहीं कर सकें। मोक्ष-प्राप्ति का सरल मार्ग उन्हें भक्ति में ही नजर आया। दक्षिण भारत में सातवीं से बारहवीं शताब्दियों के मध्य शैव नयनार और वैष्णव अलवार संप्रदायों ने भक्ति मार्ग का अवलंबन कर पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली थी।[3]

प्रो. ए.एल. श्रीवास्तव का विचार है कि सल्तनत काल में सुल्तानों ने हिन्दुओ के प्रति जो धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनायी, मंदिरों का विनाश किया उस कारण हिन्दू धर्म में एक नई विचारधारा ने जन्म लिया। अब बाह्य धार्मिक आंडबरों के स्थान पर (मंदिर, मूर्ति, पूजा, यज्ञ इत्यादि) ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम प्रकट करने की भावना का उदय हुआ। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि भक्ति आंदोलन इस्लाम की सहजता एवं रचनात्मकता से अधिक प्रभावित हुआ। इस्लाम के एकेश्वरवादी स्वरूप, समानता एवं बंधुत्व की भावना से हिंदू धर्म सुधारक भी प्रभावित हुए।[4]

भक्ति मार्ग भारतीय धर्म और दर्शन के लिए नया नहीं था। इसकी झलक उपनिषदों में ही पाई जाती हैं। इस्लाम ने हिंदू सुधारकों को अपनी धर्मिक-सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने पर मजबूर कर दिया। फलत: मध्यकाल में भक्ति आंदोलन 'विराट जन आंदोलन' के रूप में प्रकट हुआ। शीघ्र ही भक्ति-आंदोलन, जन-आंदोलन के रूप में परिणत हो गया। इन संतों ने किसी नए धर्म की स्थापना नहीं की, बल्कि प्रचलित धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का दूर किया एवं हिन्दू-समाज के सभी वर्गों में समानता और सद्भाव स्थापित की। वे धार्मिक ग्रथों, कर्मकांडों, यज्ञ, पूजा, बलि, तप आदि में विश्वास नहीं रखते थे, बल्कि एकेश्वरवाद के समर्थक थे। धार्मिक संतों ने दोहों, कविताओं एवं गीतों के माध्यम से अपना संदेश जनसाधारण तक पहुँचाया।[5]

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख संत

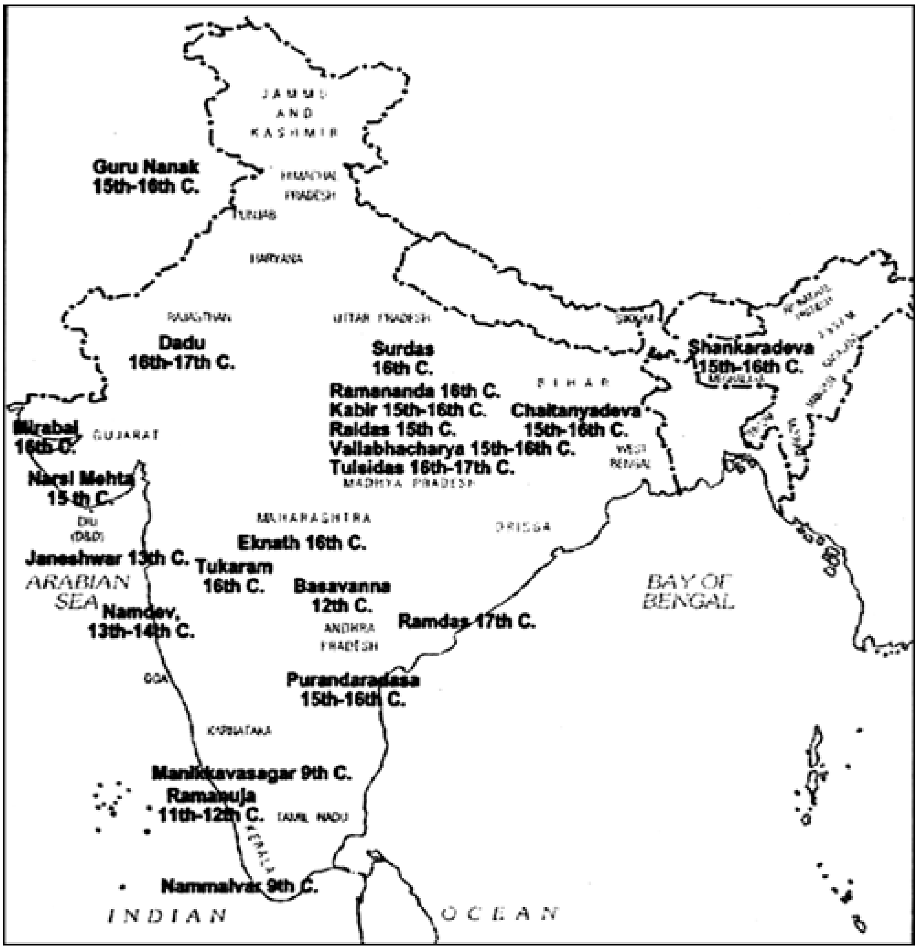

(भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत एवं उनका काल) (Map-1, स्रोत: www.exoticindiaart.com)

भक्ति आंदोलन के नेताओं में रामानुज, माधवाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, बल्लभाचार्य, रामानंद, चैतन्य, कबीर नानक आदि।

रामानुज: "दक्षिण भारत में भक्ति-आन्दोलन के सबसे विख्यात प्रवर्तक रामानुज थे। 12वीं शताब्दी के पूवार्द्ध में इनका जन्म तिरुपति के निकट हुआ था। इन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन किया एवं विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया। उनकी धारणा थी कि सगुण ब्रह्म की भक्ति से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। उन्होंने वैष्णव धर्म को प्रश्रय दिया एवं सामाजिक समानता पर बल दिया। वे सात्विक जीवन व्यतीत करने पर अधिक बल देते थे। दक्षिण भारत में उनके उपदेशों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। अपनी शिक्षा के प्रचार के लिए उन्होंने अनेक मठों की स्थापना की।"[6]

नामदेव: महाराष्ट्र में रामानन्द के प्रमुख शष्य नामदेव हुए जिन्होंने भक्ति आन्दोलन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने ईश्वर की भक्ति पर बल दिया एवं सामाजिक विभेद को समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने ब्राह्मणों के वाहय आडंबरों, मूर्ति पूजा, व्रत, उपवास एवं जाति-प्रथा का कड़ा विरोध किया। वे ऊँच-नीच का भेद नहीं मानते थे। वे सभी व्यक्तियों के आचरण की शुद्धता, भक्ति की पवित्रता तथा सरसता एवं चरित्र की निर्मलता पर बल देते थे। वे निर्गुणवादी थे। मराठी भाषा के माध्यम से उन्होंने

महाराष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन में बुनियादी योगदान दिया। नामदेव से लेकर तुकाराम तक महाराष्ट्र में संतों की एक लंबी परम्परा चली जिसने मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में भक्ति एवं सामाजिक समानता की भावना का प्रचार किया। तुकाराम ने पंढरपुर स्थित विठोबा मंदिर को (कृष्ण का मंदिर) भक्ति आन्दोलन का केंद्र बना दिया।[7]

माधवाचार्य: दक्षिण भारत के दूसरे महान संत माध्वाचार्य थे। उनका जन्म दक्षिण में उदयी नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने शंकर और रामानुज दोनों के मतों का खंडन किया और द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उन्होंने सभी देवताओं को ईश्वर का ही विभिन्न स्वरूप माना। उनका मत था कि ईश्वर को भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता था। उन्होंने विष्णु की उपासना और ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया।[8]

निम्बार्क: दक्षिण के एक-दूसरे प्रमुख संत निम्बार्काचार्य थे। वह रामानुज के समकालीन थे। उनका जन्म मद्रास के बेलारी जिले में एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। रामानुज की तरह उन्होंने भी शंकर के विचारों को मान्यता प्रदान नहीं की एवं इसका विरोध किया। वे कृष्ण के उपासक थे। कृष्ण-भक्ति द्वारा ही उन्होंने मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग ढूँढ़ा। उनके द्वारा संस्थापित मत द्वैताद्वैतवाद के नाम से विख्यात है। इन वैष्णव संतों के प्रयास से भगवद्गीता का महत्त्व और प्रतिष्ठा बढ़ी। अवतारवाद की कल्पना के विकास के साथ अवतारों की पूजा और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भी स्थापित हुई, परन्तु ये व्यावहारिक तौर पर सामाजिक और धार्मिक असमानताओं को दूर नहीं कर सके। यह कार्य बाद के संतों ने किया।[9]

रामानन्द: उत्तरी भारत में भक्ति-मार्ग का प्रसार करने में रामानन्द का प्रमुख स्थान है। वे रामानुज की पीढ़ी के संत थे। उनका जन्म 14वीं शताब्दी में इलाहाबाद के निकट एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा बनारस में हुई। उनके आराध्यदेव राम थे। उनके दर्शन में राध-कृष्ण की उपासना-पद्धति की तरह शृंगारिकता का स्थान नहीं था, बल्कि अपने ईश्वर को प्राप्त करने के लिए उन्होंने पूर्ण भक्ति एवं अनुराग का दर्शन दिया। ब्राह्मणों की प्रभुता को अस्वीकार करते हुए उन्होंने निम्न एवं अछूत वर्ग के लोगों को भी समान धरातल पर खड़ा कर दिया।[10]

चैतन्य महाप्रभु: वल्लभाचार्य की तरह चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण की उपासना एवं भक्ति को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। उनका जन्म बंगाल (नदिया) में हुआ था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन एक संन्यासी के रूप में कृष्ण-भक्ति में व्यतीत किया। वे भक्ति, प्रेम और नाच-गान से कृष्ण को रिझाकर मोक्ष की प्राप्ति करना चाहते थे। उनका दर्शन अर्चिंत्यभेदाभेदवाद के नाम से जाना जाता है। बंगाल और उड़ीसा में उनके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक थी।[11]

इन प्रमुख संतों एवं विचारकों के अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के दौरान अन्य विचारकों का भी उदय हुआ जिन्होंने भक्ति के अतिरिक्त सामाजिक सुधारों पर भी बल दिया। इनमें रामदास, संत ज्ञानेश्वर, भक्त रैदास प्रमुख है। 16वीं शताब्दी में सगुण भक्ति सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक तुलसीदास हुए। उन्होंने रामचरितमानस द्वारा राम भक्ति का प्रचार किया। इसी प्रकार सूरदास और मीराबाई ने 'कृष्णभक्ति' को प्रोत्साहित किया।

भक्ति की दो शाखाएँ: भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख धराएँ थीं-निर्गुण और सगुण परम्परा। निर्गुणवादी निराकार प्रभु की सर्वोच्चता में विश्वास रखते थे परन्तु सगुण परम्परावाले राम या कृष्ण को अपना अराध्यदेव मानते थे। निर्गुण संत उपनिषद् की विचारधाराओं से प्रभावित थे परन्तु सगुण संत अवतारवाद की कल्पना से। निर्गुण संतों ने वाह्य साधना पर अधिक बल दिया जबकि सगुणवाला ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, कीर्त-उपासना को प्रोत्साहन दिया। निर्गुण संत अपने विचारों में अधिक प्रगतिशील थे। उनलोगों ने ईश्वर की एकता के आधार पर हिन्दुओं-मुसलमानों में एकता और समानता स्थापित करने का प्रयास किया। निर्गुण भक्ति आन्दोलन का उदय ब्राह्मणों के जातिगत एवं कर्मकांड़ों आधिपत्य तथा ज्ञानमार्गियों की शुष्क एवं नीरस तार्किकता के विरुद्ध "विद्रोह की भावना" से हुआ। निर्गुणवादियों का प्रभाव सगुणवादियों की अपेक्षा ज्यादा व्यापक पड़ा। यह आन्दोलन कोई सामाजिक, धार्मिक अथवा आर्थिक क्रांति नहीं ला सका परन्तु इसने एक नयी विचारधारा का प्रतिपादन अवश्य किया। प्रो. राणाडे के अनुसार भक्ति आन्दोलन ने भक्ति के प्रति आस्था, लोकभाषाओं में साहित्य रचना, हिन्दू-मुस्लिम सहयोग एवं सहिष्णुता, जाति-बंधन की शिथिलता तथा विचार और कर्म के स्तर पर सामाजिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।[12]

भक्ति आन्दोलन

सगुण	निर्गुण
राम/कृष्ण	निराकार प्रभु
अवतारवाद से प्रभावित	उपनिषद् से प्रभावित
मूर्ति पूजा, कीर्तन, उपासना पर जोर	वाह्य साधना पर बल
सुधारवादी विचारधारा	मूल परिवर्तनवादी
रामानुज माधवाचार्य, तुलसीदास	कबीर, नानक दादू-दयाल
केंद्र-ग्राम	केंद्र-शहरों एवं कस्बों

कबीर रामानंद के शिष्य थे। वे धर्मसुधारक के अतिरिक्त एक महान समाजसुधारक भी थे। वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। उन्होंने संन्यास-मार्ग नहीं अपनाया, बल्कि परिवार के साथ रहते हुए भी धार्मिक एवं समाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों पर कठोर आघात किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा-संत कबीर

भारतीय चिन्ता तथा साधनों के क्षेत्र में कबीर का अद्वितीय स्थान हैं मध्यकालीन निर्गुण चिन्तनधारा का मुख्य प्रवेश द्वारा कबीरदास व उनकी वाणी है। कबीरदासजी ने एक नये युग का सूत्रपात किया। उनकी चर्चा करते हुए नाभादास जी कहते हैं:

भक्ति विमुख जो धर्म सो सग सु सब अधरम करि गायो।
योग यज्ञ व्रत दान भजन बिनू तुच्छे दिखाये।
हिन्दू तुरक प्रणाम रमैनी सबदी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सबन के हित की भाखी।
आरूढ़ दशा है। जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम पट दर्शिनी।[13]

कबीर दास जी का कब जन्म हुआ था? यह एक विवादास्पद विषय है।[14] इनका जन्मकाल जेठ सूदी पूर्णिमा सोमवार वि.सं. 1456 माना जाता है। यह भी निश्चित नहीं है कि इनका जन्म कहाँ हुआ था? कुछ लोगों का कहना है कि इनका जन्म काशी में हुआ था। दूसरे विद्वान इनका जन्म मगहर मानते हैं। कबीरदास ने अपनी जन्मभूमि का कहीं परिचय नहीं दिया। इनके जन्म-स्थान का वर्णन करते हुए अनन्तदास कहते हैं–

काशी बसै जुलाहा एक। हरि भगतिन की पकंरी टेक।।

कबीर स्वयं अपने को काशी का जुलाहा कहते हैं।[15] उन्होंने काशी में रहने वाले लोगों का चित्र बड़ा ही सजीव उपस्थित किया है। एक पद से सूचित होता है कि ये बहुत दिनों तक काशी में रहे थे। किन्तु 'पहिले दरसनु मगहर पाइयों पुनि कासी बसै आई' के आधार पर कुछ विद्वानों का कहना है कि इनका जन्म मगहर में हुआ था। पर दर्शन प्राप्त करने का अर्थ अपने इष्टदेव का दर्शन भी हो सकता है, जन्म ग्रहण करने का नहीं। 'बनारस गजेटियर' में 'बलहरा ग्राम' को इनका जन्म-स्थान बताया गया है। पर लेखक ने इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं दिया हैं इसलिए यह मत भी स्वीकार नहीं किया गया जा सकता है। डॉ. सुभद्र झा के मतानुसार

कबीर का जन्म मिथिला में हुआ था पर वे इसे भली प्रकार प्रमाणित नहीं कर सके।[17] अनन्तदास से लेकर धर्मदास आदि ने इनका जन्म-स्थान काशी बताया हैं इस प्रकार इस विषय में विद्वान संदिग्ध हैं कि इनका जन्म कहाँ हुआ था। पर प्राचीन लेखकों के मतानुसार इनका जन्म-स्थान काशी ही माना जा सकता है।[18]

इनके माता-पिता के विषय में कहा जाता है कि काशी में स्वामी रामानन्द का एक भक्त ब्राह्मण था। उसकी विधवा कन्या को स्वामी जी ने भूल से यह आशीर्वाद दिया कि उसका पुत्र उत्पन्न होगा। इस आशीर्वाद के फलस्वरूप उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। लोक-लाज के भय से लहरतारा ग्राम के पास उसे फेंक आयी। नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा-दम्पत्ति ने उनका पालन-पोषण किया। कुछ लोगों के कथनानुसार ये लहरतारा तालाब में एक ज्योति के रूप में प्रकट हुए थे। नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा-दम्पत्ति ने उक्त ज्योति को ही बाल रूप में प्राप्त किया था परन्तु यह धारण केवल कबीर-पंथियों तक ही सीमित है।

कबीरदास जी की शिक्षा-दीक्षा किसी पाठशाला में नहीं हुई। इनके विषय में कहा जाता है, 'मसि कागज छूयों नहीं, कलम गयों नहिं हाथ' इससे स्पष्ट है कि किसी के द्वारा इन्हें अक्षर-ज्ञान नहीं मिला। ये प्रारंभ से ही भगवान् के उपासक थे। ये माथे पर तिलक लगाकर राम-राम जपते रहते थे। इसे स्पष्ट है कि उन दिनों रामानन्द का प्रभाव बढ़ रहा था तथा इन पर भी उनका प्रभाव पड़ा था। कबीरदास विवाहित थे या अविवाहित यह स्पष्ट नहीं है, पर इनकी रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि ये आजीवन गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके दो विवाह हुए थे। पहली इन्हें पसन्द नहीं थी पर दूसरी को ये सुलक्षणी कहते थे तथा दूसरी से इन्हें संतानें भी प्राप्त हुई।[20]

इनके पदों में भी दो स्त्रियों का नाम आता है।[21] कबीर के पदों से यह पता लगता है कि उनके संतानें भी थीं परन्तु यह स्पष्ट नही हो सकता है कि इनकी कितनी संतानें थीं। एक लेखक का मत है कि इनके कमाल तथा निहाल दो लड़के तथा कमाली और निहाली दो लड़कियों थीं। इनमें अन्त में कमाल ही बचे थे। कमाल की प्रवृति ईश्वर-साधना से अधिक धन-संचय करने की थी।[22]

कबीरदास ने अपने गुरु का नाम कहीं नहीं दिया है इसलिए गुरु के विषय में विभिन्न विवाद है। सर्वसाधारण रूप से यह कहा जाता है कि कबीरदासजी के गुरु स्वामी रामानन्द थे। कहा जाता है कि रामानन्द जी के प्रभाव को सुनकर कबीरदासजी के हृदय में उनका शिष्य बनने की लालसा उत्पन्न हुई। प्रसिद्ध है कि वे गंगा-घाट की उन सीढ़ियों पर लेट गये जहाँ से रामानन्द स्नान करने जाया करते थे। अंधेरे में रामानन्द का पैर कबीर पर पड़ गया तथा उन्होंने अपने मुख से राम-राम का उच्चारण किया। कबीर ने इसी को गुरुमंत्र मान लिया और वे अपने को स्वामी रामानन्द का शिष्य कहने लगे। उन दिनों स्वामी रामानन्द का प्रभाव बहुत अधिक था। वे एक बड़े धार्मिक सुधारक थे। कबीर पर उनका प्रभाव पड़ा होगा तथा हो सकता है कि कबीर उनके सम्पर्क में आये हों और उनके उपदेशों को ग्रहण कर लिया हो, यह असंभव नहीं हैं इस मत का समर्थन अनन्तदास, नाभादास तथा अनेक कबीर-मतानुयायियों के द्वारा हुआ है।[23]

मुहम्मद गुलाम सरवर ने 'खजीनतुल असफिया' में लिखा है कि 'शेख कबीर जोलाहा शेख तकी के उत्तराधिकारी और चेले थे।'[24] सरवर साहब का यह कथन संदिग्ध है क्योंकि उनके मतानुसार शेख तकी की मृत्यु 1575 ई. में तथा कबीर की मृत्यु 1594 ई. में हुई थी। इसलिए उनका दिया हुआ कबीर का मृत्युकाल बहुत पीछे चला जाता है। इस प्रकार कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि कबीर के गुरु कौन थे। कबीर ने अपनी रचनाओं में अपने गुरु का नाम नहीं लिखा है परन्तु वे अपने गुरु की बड़ी श्रद्धा करते हैं। गुरु की महिमा को ब्रह्म से भी उच्च माना है।[25]

रचनाएँ

कबीरदास पढ़े-लिखे नहीं थे। इन्होंने कोई पुस्तक नहीं लिखी। इनकी फुटकर साखियाँ व छन्दों का संग्रह कर लिया गया। सं. 1521 में इनके शिष्य धरमदास ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'कबीर बीजक' के नाम से प्रस्तुत किया। यह कबीर के देहान्त के बहुत पीछे तैयार किया गया।

सिखों के धर्मग्रंथ 'गुरु ग्रन्थ साहब' में भी संतों की रचनाएँ हैं। इसमें कबीर के सवा दो सौ पद तथा ढाई सौ साखियाँ हैं।

कबीर की रचनाओं का तीसरा संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से प्रस्तुत किया गया। यह एक प्राचीन हस्तलिपि के आधार पर हैं इसमें कबीर दास की आठ सौ साखियों तथा चार सौ पद हैं।

कबीरदास जी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उन्होंने सगुणवाद तथा मूर्ति-पूजा का खण्डन किया और निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का माध्यम ज्ञान को स्वीकार किया। कबीरदासजी ने ज्ञान का नया अर्थ बताया। उन्होंने पुस्तकों के ज्ञान को व्यर्थ कहा है। वेद, पुराण, स्मृति आदि पढ़ने का अर्थ अपने को भ्रम में डालना हैं। 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पण्डित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय।'[26] वे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। विभिन्न मत-मतान्तरों, धर्म आदि में न पड़कर ईश्वर की शरण में जाना चाहिए।

कबीरदास जी ने आध्यात्मिक साधना का एक ऐसा नवीन मार्ग प्रशस्त किया जिसमें साधना सोते-जागते, उठते-बैठते तथा दैनिक जीवन का प्रत्येक कार्य करते हुए संभव है। योगियों ने सहज समाधि के लिए प्राणायाम के द्वारा वायु को ब्रह्मरंध्र में चढ़ाने को कहा पर कबीर तन के योग की अपेक्षा मन के योग को सफलता प्राप्ति के लिए अधिक उपयुक्त समझते थे। उनके अनुसार सच्चा योगी वहीं है। जो मन में ही ब्रह्म की साधना करता हैं कबीरदासजी रामानन्द से प्रभावित थे। उन्होंने जनता में ऐसी भक्ति का प्रचार किया जिसमें तीर्थ, मन्दिर, मस्जिद, मूर्ति-पूजा को कोई स्थान नहीं दिया गया। उनकी भक्ति निष्काम-भक्ति थी। कबीर के मतानुसार ब्रह्म सबके हृदय में विद्यमान हैं केवल अन्तःदृष्टि प्रेम के द्वारा प्रत्येक जीव में दिखायी देती है।

ब्रह्म के स्वरूप के विषय में कबीरदासजी का कहना है कि ब्रह्म न निर्गुण है न सगुण, वह निर्गुण-सगुण की सीमा से परे है।

कबीरदासजी का कहना है कि ब्रह्म न भारी है न हल्का। उसका अनुभव किया जा सकता है पर उसका स्वरूप बताया नहीं जा सकता। कबीरदासजी वैष्णवों से प्रभावित थे पर शास्त्रों का उन्होंने विरोध किया।

रामं रामं राम रमि रहिये साणि। सेती भूलि न कहिये।।[27]

कबीरदास उस माता की प्रशंसा करते हैं जिसने वैष्णव पुत्र को जन्म दिया।

कबीर धनि ते सुन्दरी, जिनि जानां वैसनो पूत।
राम सुमिरि निरभै हुआ, सब जग गया अऊत।।[28]

कबीरदास निर्गुण राम के भक्त थे पर उन्होंने सगुण ब्रह्म के उपासकों की प्रशंसा भी अपने पदों में की है :

राम जपो जिये ऐसे ऐसे। ध्रुव प्रलाद जप्यो हरि जैसे।
दीन दयाल भरोसो मेरे। सब परवार चढ़ाया बेरे।।[29]

कबीरदासजी ने नाम की महत्ता बतायी है-

आदि नाम सब मूल है, और मन्त्र सब डार।
कहै कबीर निज नाम बिनू, बूड़ि मुआ संसार।।

संक्षेप में कबीरदासजी ने ज्ञान को सत्य की प्राप्ति के लिए उपयोगी माना। वह सत्य चाहे निर्गुण राम से संबंधित हो, या उसकी प्राप्ति के साधनों के विषय में। कबीरदासजी भक्ति में विश्वास करते थे। उनका मत था कि भक्ति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। कबीरदासजी ने हिन्दु-मुसलमानों में एकता स्थापित करने की चेष्टा की। उनके अनुसार हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही एक ब्रह्म द्वारा निर्मित हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।[30]

कबीर ने तृष्णा को डाकिनी तथा काल कहा है। भक्ति के द्वारा इस संसार से मुक्ति पा जाना ही पक्का लक्ष्य होना चाहिए। भक्ति के मार्ग में माया बाधाएँ उपस्थित करती है। कबीरदास के मतानुसार मनुष्य को कनक, कामिनी, मद्य, मांस आदि से दूर रहना चाहिए क्योंकि इन्हीं के द्वारा माया मनुष्य को अपने जाल में आबद्ध कर लेती है। कबीरदासजी ने कहा कि मनुष्य को सत्य, क्षमा, दया आदि गुण अपनाना चाहिए पर काम, क्रोध, लोभ, मद से दूर रहना चाहिए। मनुष्य को सदा सत्य बोलना चाहिए, सत्य को उन्होंने ब्रह्म का ही रूप माना है। कबीरदासजी के मतानुसार मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है, उसे यह पता नही कि किस समय काल उसके सिर पर आ जायेगा फिर इस नश्वर शरीर के लिए गर्व कैसा?

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायेगी, क्यों तारा परभात।।

कबीरदासजी ने साधारण बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया, जो कि परिष्कृत नहीं थी पर उनकी रचनाओं का प्रभाव विलक्षण था। उन्होंने राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली का प्रयोग किया पर ब्रजभाषा का भी प्रयोग है।

इस प्रकार कबीर ने मध्ययुग में व्याप्त कुरीतियों तथा अराजकता को हटाने का प्रयत्न किया। उन्होंने लोभ, मोह, कपट, तृष्णा को हटाकर क्षमा, दया, सहनशीलता एवं विश्व बन्धुत्व का सन्देश दिया। कबीरदासजी ने हिन्दू मुसलमानों में भी सामंजस्य स्थापित करने का महान् प्रयत्न किया। उस समय धर्म के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। धर्म में ईश्वर की साधना से अधिक कर्मकाण्ड पर बल दिया जा रहा था। ऐसे समय में कबीर ने जिस धर्म का मार्ग जनता को दिखाया वह नैतिक तथा मानवतावादी था। कबीर ने जनता को अमर सन्देश दिये और उनकी वाणी भी अमर हो गयी।

संदर्भ-सूची

1. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-158
2. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-158
3. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-158
4. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-158
5. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
6. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
7. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
8. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
9. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
10. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
11. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
12. प्रसाद, कामेश्वर : *भारतकाइतिहास*; भारती भवन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1995, पृष्ठ-159
13. नाभदास : *श्रीभक्तिमाल*, बम्बई भूषण प्रेस, पृष्ठ-72
14. चतुर्वेदी, परशुराम : *उत्तरभारतकीसंत-परम्परा*; भारतीय मंदिर प्रेस, इलाहाबाद, संवत-2021, पृष्ठ-123, 175
15. "तु ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना", दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रंथावली*, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण : सन् 2018, पद-250, पृष्ठ-194
16. बनारस गजेटियर, इलाहाबाद, 1909
17. *जनरल ऑफ दियुनिवर्सिटी ऑफ बिहार*, नवम्बर 1956, वॉल्यूम 1, पृष्ठ-1, 6
18. धरमदास, धनी : *शब्दावली*, पृष्ठ-3
19. गुरु ग्रन्थ साहब, *रागविलावल*, 4
20. पहली कुरूप कुजाति कुलक्खनी साहुरै पेइयै बुरी।
    अब की सरूप सुजाति सुलक्खनी सहेज उदरधरी।।
    भत्ती सरी मुई मेरी पहली बरी।
    जुग जुग जीवो मेरी अबकी धरी।।
    – दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रंथावली*, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण सन्-2018 ई., परिशिष्ट पद.-136, पृष्ठ 302-303
21. 'मेरी बहुरिया का धनिया नाऊ।'
    – *गुरुग्रन्थसाहब*, राग आसा, पद-33, पृष्ठ-242
22. बूड़ा बंस कबीर का, उपजिओ पूत कमालु।
    हरि का सुमिरनु छाँड़ि, कै, भरि ले आया मालु।।
    ख़ सिंह, मोहन (कबीर), 'हिज बायोग्राफी' लाहौर, 1934 ई., पृष्ठ-632
23. नाभादास : *भक्तिमाल*; छप्पय-31
24. वेस्टकाट, रे. : *कबीरएण्डकबीर-पंथ*, कानपुर, 1907, पृष्ठ 25-61

25. वेस्टकाट, रे. : *कबीरएण्डकबीर-पंथ*, कानपुर, 1907, पृष्ठ 25-61
26. सत्गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उजागर।
लोचन अनन्त उपाडिया, अनन्त दिखावनहार।।
- दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रन्थावली*, साखी 3, पृष्ठ-59
27. दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रन्थावली*, साखी-337, पृष्ठ-92
28. दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रन्थावली*, साखी-337, पृष्ठ-162
29. दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रन्थावली*, साखी पद
30. सत्गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उजागर।
लोचन अनन्त उपाडिया, अनन्त दिखावनहार।।
- दास, श्यामसुंदर : *कबीरग्रन्थावली*, साखी 3, पृष्ठ-59

भारत चीन संबंध के आधार

नरेंद्र ठाकुर

एम. ए. (राजनीति विज्ञान), नेट (यूजीसी)

सहायक शिक्षक, +2 राजकीय अंबेडकर आवासीय उच्च विद्यालय, बक्सर (बिहार)

शोध-सारांश

चीन को लेकर भारत की समस्या यह है कि इसने चीन को लेकर सदैव ही 'कोल्ड पीस' यानि निष्क्रियता ओढ़कर शान्ति बनाये रखने की नीति अपना रखी है। जब तक भारत अपनी स्थिति को देखते हुये जागरूक और आक्रामक नहीं होता तब तक यह टुकड़ों-टुकड़ों में अपनी जमीन को चीन के हिस्से मे जाते देखते रहने के लिए विवश बना रहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के परिवर्तन परिदृश्य में भारत और चीन अपने संबंधों के विकास और विभिन्नीकरण के लिये एक नवीन इच्छा रख रहे हैं। वे श्रृखंला के क्रियान्वयन के द्वारा सभी संघर्षरत मुद्‌दों के शान्तिपूर्ण समाधान की इच्छा रखते हैं। पिछले 4 दशक की कालावधि में हस्ताक्षरित किये गये समझौते सामान्य सीमा पर शान्ति का विकास करने में न केवल सहायक हुये बल्कि आर्थिक संलग्नता और जनता का जनता से सम्पर्क के लिये मंच भी स्थापित कर चुके हैं।

मुख्य शब्दः परमाणु नीति, क्योटो प्रोटोकोल, गुटनिरपेक्ष मार्ग, मोस्ट फेवर्ड नेशन, अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

परिचय

भारत चीन के बीच बहुत नजदीकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंध रहे हैं, जो उनकी भौगोलिक, सांस्कृतिक एव धार्मिक समानताओं में प्रतिबिम्बित होते हैं। भारत-चीन संबंधों में नवयुग के प्रारम्भ के लिये प्रमुख आरम्भण 1988 ई. में राजीव गाँधी की बीजिंग यात्रा के दौरान किया गया था तथापि चीनी प्रधानमंत्री ली पेंग की दिल्ली यात्रा दिसम्बर 1991 ई. द्वारा प्रतिफल की प्राप्ति हुई थी। वास्तविक नियन्त्रण रेखा सन्धि 1993 ई. द्वारा प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव की बीजिंग यात्रा के दौरान सीमा पर अमन एवं शांति की नींव रखी गयी। यह सम्भवतः एशिया में प्रथम हथियार नियन्त्रण सन्धि थी। भारत चीन सीमा पर वास्तविक नियन्त्रण रेखा पर सैन्य क्षेत्र पर विश्वास निर्माण के उपायों में पुनर्वलित हुई और 1996 ई. में राष्ट्रपति जियांग जेमिन की दिल्ली यात्रा के दौरान इस पर हस्ताक्षर हुये। इस समझौते द्वारा सीमाओं पर न केवल सैन्य टुकड़ी में कमी की गयी बल्कि सीमा विवाद के निष्पक्ष तर्क संगत और पारस्परिक स्वीकार्य योग्य समाधान के लिये कुछ मानदण्ड का सुझाव भी दिया गया। 11 मई 1998 ई. का पत्र प्रधानमंत्री वाजपेयी द्वारा पोखरण 2 परमाणु विस्फोट के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रपति बिल क्लिंटन को लिखा गया, इन्होनें द्विपक्षीय संबंधों के सुधार की प्रक्रिया को बाधित कर दिया था लेकिन सौभाग्य से इसे सामान्य करने में अधिक समय नहीं लगा और विदेश मंत्री यशवंत सिंह की जून 1999 ई. में चीन यात्रा, उच्चस्तरीय विनिमय की पुनःस्थापना करने में सहायक सिद्ध हुई। राष्ट्रपति के.आर. नारायणन की मई 2000 ई. में चीन की राजकीय यात्रा हुई और उसके तुरन्त बाद चीन के राष्ट्रीय जनवादी कांग्रेस के स्टैंडिग कमेटी के चेयरमैन ली पेंग ने जनवरी 2001 ई. में नई दिल्ली की यात्रा की। तत्पश्चात् जनवरी 2002 ई. के द्वितीय सप्ताह में चीनी प्रधानमंत्री झू रोंगजी की छः दिवसीय यात्रा के आर्थिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक संबंधों को और मजबूत कर दिया, जिसका परिणाम आज भी भारत-चीन संबंधों पर सकारात्मक रूप से दिखाई पढ़ता है। सन् 2003 के बाद से भारत-चीन मुजफ्फरपुर के मध्य बहुत से ऐसे परिवर्तन देखे गये जो एक ओर राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक सफल साबित नहीं हुए परन्तु दूसरी ओर आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से दिन-प्रतिदिन मजबूत हो रहे हैं।

विभिन्न सरकार और भारत-चीन संबंध

अटल बिहारी बाजपेयी और भारत चीन संबंध: सांस्कृतिक विदेश मंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने फरवरी 1979 में चीन की यात्री की। दुर्भाग्यवश उन्हें यात्रा के पूरी किय बिना ही भारत वापस लौटना पड़ा। बाजपेयी की यात्रा की यात्रा के समय ही चीन ने अपने पड़ोसी वियतनाम पर आक्रमण कर दिया था। वियतनाम एक गुट-निरपेक्ष देश है। एस पर आक्रमण के विरूद्ध रोष प्रकट करते हुए बाजपेयी स्वदेश लौट आए। राजनयिक संबंधों के सामान्य होने के तीन वर्ष पश्चात हुई इस यात्रा में, सीमा समस्या को छोड़ कर, वार्ता सामान्यतया लाभदायक रही। चीन ने अपनी ओर से न तो कश्मीर का प्रश्न उठाया, और न सिक्किम के भारत में विलय पर चर्चा की। विदेश मंत्री ने, इस यात्रा से वापस आने पर लोकसभा को बताया कि संबंधों को सामान्य बनाने की दिशा में एक अच्छी पहल की गई। सीमा के प्रश्न पर पुन: एक बार द्विपक्षीय वार्ता की सम्भावना हो गई। श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने उत्तर-पूर्व भारत में आतंकवादी गतिविधियों को चीन द्वारा दिए गए समर्थन का प्रश्न भी उठाया। परनतु चीन ने यह कह दिया कि वह तो पुरानी बात हो गई। बाजपेयी ने अपनी ओर से सिक्किम के विलय के प्रश्न पर भारत का दृष्टिकोण स्पष्ट किया, परन्तु चीन ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इस यात्रा के प्श्चात् नागा और मीजो विद्रोहियों को चीन से प्रापत हो रही सहायता समाप्त हो गई। सामान्य रूप से भारत विरोधी प्रचार में कमी अवश्य आई। यात्रा पर कहा जा सकता है कि बाजपेयी की यात्री के दौरान भारत-चीन वार्ता में यह समझौता हुआ लगता था कि सीमा-विवाद के प्रश्न का दोनों देशों के मुजफ्फरपुर के सुधार की प्रक्रिया के मार्ग में बाध नहीं बनने दिया जाएगा तथा बाजपेयी-यात्रा-काल में वियतनाम पर हुए आक्रमन को सोवियत संघ के समर्थकों द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया था। इस घटना को जानबूझ कर किया गया भारत का अपमान नहीं कहा जा सकता है। बाकी यात्रा के परिणाम सुखद रहे थे।

यह सत्य है कि वियतनाम कांड ने भारत-चीन संबंधों में थोड़ी कटुता अवश्य उत्पन्न की तथापि, 1980 के प्श्चात् भारत-चीन मुजफ्फरपुर में सुधार के प्रयास जारी रहे। इससे पूर्व, 1978 में एक उच्च-स्तरीय व्यापार शिष्टमण्डल की भारत यात्रा के पश्चात् लगभग 1200000, डालर के भारत-चीन व्यापार का एक समझौता हुआ था। उपराष्ट्रपति बी0डी0 जत्ती भी 1978 में चीन के राष्ट्रीय दिवस के अवसर पर पीकिंग की यात्रा पर गए थे।

श्री अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा की सरकार लगभग 13 दिन के लिए मई 1996 में 11 वीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात् सत्तारूढ़ हुई। बाजपेयी सरकार की विदेश नीति के आधार बिन्दु का परिचय हमें 24 मई, 1996 को संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत राष्ट्रपति के अभिभाषण में कमलता है। बाजपेयी सरकार ने आपनी विदेश नीतिक के तहत पाकिस्तान सहित दक्षिण एशिया के अपने सभी पड़ोसियों के साथ द्विपक्षीय रूप में तथा सार्क के मंच पर संबंधों की प्रगाढ़ता और भारत चीन संबंधों को सुधारने पर जोर दिया गया। परमाणु ऊर्जा के शान्ति पूर्ण इस्तेमाल की प्रतिबद्धता पर जोर देते हुए राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक होने पर हमारी परमाणु नीति के पुर्नमूल्यांकर पर जोर दिया।

मार्च 1998 में भारत में सत्ता परिवर्तन होने से श्री अटलबिहारी बाजपेयी भारत के प्रधानमंत्री बने। इनके प्रधानमंत्री बनने और अप्रैल 1998 में चीनी सेना के जनरल फू-क्वान्याऊ की भारत यात्रा के बाद में सीमा विवाद भारत-चीन के बीच में उभर कर आये। इससे संबंधों में पुन: टकराव आया था। 1993 से 1999 तक 6 वर्षो के दौरान संपन्न किए गए समझौते निरर्थक साबित हुए इसलिए अप्रैल 1998 में निम्न दो बिन्दु स्पष्ट उभर कर आये:

1. चीन द्वारा पाक को दी जाने वाली सैनिक सहायता।
2. चीन-अमेरिका गठबंधन से भारत को खतरा।

एशियान में जी-8 शिखर बैठक-जी-8 देशों के साथ व्यापक बातचीत के लिए कुछ चुने हुए विकासशील देशों को आमंत्रित करने की पहल के लिए प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी ने राष्ट्रपति शिरॉक को धन्यवाद दिया। बहुध्रुवीय विश्व के हमत्व पर समान समझ थी, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र का पुनर्गठन करना जरूरी माना गया। प्रधानमंत्री ब्लेयर के साथ हुई बातचीत में प्रधानमंत्री ब्लेयर ने महत्वपूर्ण सुरक्षा चिंताओं के प्रति संवेदनशीलता और समझ-बूझ दिखाई। चीन के राष्ट्रपति हू जिंताओ के साथ मुलाकात में प्रधानमंत्री ने कहा कि चीन का नया नेतृत्व भारत के साथ मित्रता बढ़ाने पर बहुत बल देता है। हम इस बात पर सहमत हुए कि चीन और भारत जो विश्व की कुल आबादी का एक-तिहाई भाग हैं, को मिलकर प्रभावी ढ़ग से काम करना चहिए, ताकि इक्कीसवीं शताब्दी को एशिया की शताब्दी बनाया जा सके। भारत उन चौदह विकासशील देशों में से एक था जिन्हें एशियान में

जी-8 देशों की विस्तृत वार्ता में से एक था जिन्हें एवियान में जी-8 देशों की विस्तृत वार्ता में आमंत्रित किया गया। इस वार्ता में स्वतंत्र रूप से तथा खुलकर बातचीत हुई, जिसमें विभिन्न आर्थिक विकास, पर्यावरण और प्रकाश संबंधी तथा अन्य मुद्दों पर विकासशील देशों की चिंतओं पर प्रकाश डालने का मौका मिला और अपने भाषण में सहस्त्रब्दि विकास दौर के निष्कर्षो पर सार्थक अनुवर्ती कार्रवाई करने की तत्काल जरूरत पर जोर दिया, जिससे एक ऐसी विश्व-व्यापार व्यवस्था बनाई जा सके जो विकास को बढ़ावा दे सके मौजूदा प्रतिबद्धताओं का पालन करने तथा विशेषकर अल्पविकसित देशों में विकास हेतु अतिरिक्त वित्तीय संसाधन पैदा करने के लिए विचारों की जाँच करने की जरूरत पर बल दिया और सुझाव दिया कि यद्यपि क्योटो प्रोटोकोल की पुष्टि नहीं हो पाई है, फिर भी जैसा कि प्रोटोकोल में व्यवस्था की गई है, प्रोत्साहनों और प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण के जरिए स्वच्छ ऊर्जा विकास को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विकासशील देशों को उनके जैव-विविधता संसाधनों तथा उनके परंपरागत ज्ञान का इस्तेमाल करने के लिए समुचित प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। इस कटु सत्य की ओर ध्यान दिलाया कि यदि इन क्षेत्रों में तत्काल और स्पष्ट प्रगति नहीं होती तो विकासशील देशों में आर्थिक उदारीकरण तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पर्यावरण उपायों के लिए राजनीतिक समर्थन जल्दी ही विशंडित हो जाएगा।

जी-8 शिखर बैठक के अवसर पर प्रधानमंत्री ब्राजील तथा मैक्सिको के राष्ट्रपतियों से मिलने का अवसर मिला। दोनों ही राष्ट्रपति इस बात पर हसमत थे कि विकासशील देशों की चिंताओं को प्रभावी ढ़ग से स्पष्ट करने के लिए विश्व व्यापार संगठन से जुड़े मुद्दों पर एक स्ट्रैटेजिक गठबंधन बनाने, जी-15 जैसे समूहों में प्रभावी सहयोग बढ़ाने और संयुक्त राष्ट्र को सुद्रढ़ बनाने की जरूरत है। जी आठ देशों की विस्तृत वार्ता विकासित और विकासशील देशों के बीच उच्चतम स्तर पर संपर्क बनाने का एक उपयोगी मंच बन सकती है। एवियान में पधारे कई प्रतिभागियों ने यह विचार प्रकट किया कि भविष्य में जी-8 की अध्यक्षमा करने वाले देश इस पहल को जारी रखें तथा प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ के निमंत्रण पर चीन की यात्रा की। लगभग दस वर्ष के बाद भारत के प्रधानमंत्री की यह चीन की पहली यात्रा थी। इस यात्रा से चीन के नए नेतृत्व के साथ व्यक्तिगत तौर पर बातचीत करने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ। चीन में प्रधानमंत्री का बड़ी गर्मजोशी और शालीनता के साथ स्वागत किया गया इस बात का विशिष्ट रूप से अहसास दिलाया गया कि वे भी हमारी तरह परस्पर सद्भाव बनाने तथा हमारे द्विपक्षीय संबंधों में विविधता लाने के लिए पूरी तरह इच्छुक है और सभी बैठकों के दौरान आपसी विश्वास और समझ-बझ पैदा करने की चल रही प्रक्रिया को मजबूत करने की दोनों पक्षों की प्रतिबद्धता को दोहराया गया।

एच0 डी0 देवगौरा और भारत चीन संबंध: बाजपेयी सरकार के त्यागपत्र के पश्चात् संयुक्त मोर्चा के नेता श्री एच0 डी0 देवगौड़ा ने 1 जून, 1996 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। 5 जून, 1996 को घोषित न्यूनतम साझा कार्यक्रम में विदेश नीति के सन्दर्भ में देवगौड़ा सरकार ने कोई नई व्याख्या नहीं दी। गुटनिरपेक्ष मार्ग पर चलते हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को पुख्ता करने, चीन से संबंध सुधारने, परमाणु अप्रसार के लक्ष्य को बढ़ावां देने और सार्क साप्टा के अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सहयोग बढ़ाने पर देवेर्गाड़ा सरकार ने जोर दिया। नवम्बर 1996 में चीन के राष्ट्रपति जियांग जेमिन की भारत यात्रा से दोनों देशों के संबंधों में एक नये अध्याय की शुरूआत हुई। चीन के किसी राष्ट्रपति की यह पहली भारत यात्रा थी। सीमा पर तनाव कम करने संबंधी समझौतों के अलावा दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ाने के बारे में भी एक महत्वपूर्ण समझौता हुआ। संयुक्त मोर्चा सरकार में कुशल राजनईक और विदेशमंत्री के नाम से माने जाने बाले श्री इंद्रकुमार गुजराल ने 21 अप्रैल 1997 को प्रधान मंत्री पद सम्हाला। लगभग एक वर्ष के शासनकाल में अपने पडोसी देशों से मधुर संबंध बनाये रखे। दौरान न चीन के किसी मंत्री या प्रधानमंत्री का दौरा हुआ और न ही भारत के प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री का दौरा हुआ। गुजराल के शासनकाल में भारत और चीन के संबंध सौहार्दपूर्ण रहे।

इन्द्रकुमार गुजराल और भारत चीन संबंध: सांस्कृतिक सौम्य राजनयिक माने वाले देश के 12वें प्रधानमंत्री श्री इन्दकुमार गुजराल 50 वर्षो का सार्वजनिक जीवन बिताने के बाद प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए। 1976 में सोवियत संघ में भारतीय राजदूत के रूप में आपने महत्वपूर्ण राजनयिक दायित्व सम्हाला। वी0पी0 सिंह और एच0 डी0 देवेगौड़ा की सरकारों में एक कुशल विदेशमंत्री के रूप में अपनी भूमिका का उन्होंने निर्वाह किया और 21 अप्रैल, 1997 को प्रधानमंत्री पद सम्हालने के बाद विदेश नीति की दृष्टि से श्री गुजराल का योगदान महत्वपूर्ण रहा। इस दौरान चीन के साथ किसी भी क्षेत्र में नये संबंध स्थापित नही हुए। दोनों देशों के मध्य संबंध सौहार्दपूर्ण बने रहे।

भारत-चीन संबंध (यू0पी0ए0 सरकार के कार्यकाल में 2004-2014): शोध पत्र पर सिंहावलोकन करने पर प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य सहयोग और संघर्ष की निरन्तर प्रक्रिया चल रही है। दोनों की आर्थिक अन्तर्निर्भरता और सांस्कृतिक कूटनय के अभिनव प्रयोग से सैनिक तथा राजनीतिक शक्ति प्रभाव को हतोत्साहित करने के लिये सर्वोच्च आशा रखती हैं। भारत और चीन एशिया-प्रशान्त में सहकारी सुरक्षा संरचनाओं के निर्माण के लिए सहयोग कर सकते हैं। भारत-चीन परस्पर सहयोग और सहबन्ध दोनों देशों की विशाल जनता की प्रगति, एशिया के उदय और विश्व की शान्ति-समृद्धि व साहचर्य में सहकारी होगा। यथार्थ में भारत को अपनी नीति उपागम को सही करने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि उसे चीन के साथ शांतिपूर्ण एवं स्थायी मुजफ्फरपुर के निर्माण के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जब यह अपने अधिकारों और आत्म विश्वास को दृढ़ता पूर्वक अभिव्यक्त कर सकें। इसे 21वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश से एक विकसित देश के निर्माण के संदर्भ में सोचना और कार्य करना आरम्भ कर देना चाहिए। भारत को केवल भावनाओं की अपेक्षा द्विपक्षीय संबंधों के स्थायी आधार के खोज की आवश्यकता है। चीन एक राष्ट्रवादी और सकारात्मकवादी राज्य है। यह स्पष्ट लक्ष्य रखता है। भारत के पास बहरहाल, एक यथार्थवादी और लक्ष्य अभिमुखी नीति योजना की कमी है। वर्तमान परिदृश्य में भारत को अपने 'तद्र्थवाद' को पूर्णरूप से छोड़ देना चाहिए और राष्ट्रीय हित के उद्देश्यों पर आधारित एक दीर्घकालीन चीन नीति को अपनाना चाहिए। भारत-चीन संबंधों के आयाम में राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य पहलुओं पर टकराव एवं कड़वाहट प्रकट होती रहती है। सांस्कृतिक पहलू मधुर संबंधों के निरन्तर प्रवाह में हैं। भारत और चीन दोनों को सांस्कृतिक सम्पर्कों द्वारा आम जनता को जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। 'मोतियों की माला' द्वारा चीन अपने प्रभाव को बढ़ाने में प्रयासरत् है। 'पूर्व की ओर देखो' नीति के तहत भारत पूर्व एशियाई देशों के साथ जुड़ाव के लिए उन्मुख हैं। इस क्षेत्र में भी भारत और चीन के मध्य प्रतिद्वंदिता है। 21वीं शताब्दी के उभरते गति विज्ञान पर केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन उनप्रभावों पर विचारणीय ध्यान दे रहा है जो चीन और भारतीय क्षेत्र की उभरते गतिशीलता द्वारा आने वाले दशकों में एशिया को आच्छादित करने वाला है। भारत और चीन रूपी दो प्रगतिशील एशियाई शक्तियाँ, एशिया और अफ्रीका में आर्थिक आकार और वाणिज्यिक संलग्नता के तीव्र विस्तार में प्रयासरत् हैं। बहरहाल, नवीन गतिशीलता और अवसर ने चीन को उग्र विचारधाराई आरोपण की अवधारणा से आधुनिक, प्रगतिशील और समन्वयवादी राष्ट्र की तरफ मोड़ दिया है। चीनी रूपान्तरण इतना बलशाली रहा है कि अधिकांश दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश उस क्षेत्र में चीनी उपस्थिति से सुगम्यता का अनुभव करते हैं। भारत भी इस क्षेत्र में, उदारवादी शक्ति के रूप में अपने को स्थापित करने के लिए चैतन्य प्रभाव बनाने में प्रयासरत् है। दोनों देशों के नीति-निर्धारकों द्वारा ऊर्जा के भारी बोझ को कम करने के लिए ऊर्जा कार्यकुशलता तरीकों पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। भारत के विद्युत अधिनियम 2003 ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के द्वार खोल दिए हैं और ऊर्जा लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्रदान की है। 13वें वित्त आयोग का निष्कर्ष है कि भारत में केवल विद्युत सम्पेषण और वितरण के दौरान 0.69 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष का ऊर्जा ह्रास होता है। भारत में पर्याप्त ऊर्जा संरक्षण तरीके अपनाने पर सम्पूर्ण ऊर्जा खपत में 25 प्रतिशत की कमी की जा सकती है। वर्ष 2005-2031 की कालावधि में 8 प्रतिशत की समुचित विकास दर प्राप्ति के लिए भारत को अपनी प्राथमिक ऊर्जा आपूर्ति को तीन से चार गुना और चीन को दो से ढाई गुना वृद्धि की आवश्यकता पड़ेगी। वर्ष 2030 तक सम्मिलित दोनों देश विश्व में कुल ऊर्जा उपभोग का लगभग 25 प्रतिशत की भागीदारी रखेंगे और सर्वाधिक कार्बन-डाई-आक्साइड छोड़ने वाले प्रथम दो देश हो जाएंगे। भारत और चीन दोनों, उभरती अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए, आवश्यक ऊर्जा लक्ष्य प्राप्ति में पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। 15 मई 2007 ई. के शंघाई आयोजन में हाइड्रोकार्बन पर निर्भरता को दीर्घकाल में कम करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। नवीन ऊर्जा धारा द्वारा, 10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की विद्युत शक्ति क्षमता प्राप्ति का लक्ष्य चीन ने सन् 2010 तक और भारत ने सन् 2012 तक रखा है। दोनों देश महत्वपूर्ण सौर, पवन, जल और बायोमास ऊर्जा संसाधन रखते हैं। जबकि चीन लघु जल विद्युत, बायोगैस, सौर और ताप ऊर्जा के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धि रखता है। भारत पवन विद्युत उत्पादन के विकास में अपनी उपलब्धि रखता है। इन क्षेत्रों में, भारत-चीन के नेतृत्व वर्ग की नवीन अभिरूचि ने दोनों देश के संबंधों को और अधिक सुदृढ़ किया है।

मोदी सरकार भारत-चीन संबंध

2014 में नरेन्द्र मोदी जब भारत के प्रधानमंत्री बने तो पूरा देश उनमें भारत के लिए कई संभवनाएं देख रहा था चीन और पाकिस्तान के साथ भारत के संबंध को लेकर भी देश के लोंगों को काफी उम्मीद थी नरेन्द्र मोदी ने शुरूआत में अपने सभी पड़ोसी

देशों के साथ संबंध बेहतर करने की दिशा में काफी प्रयास भी किये। इसी कड़ी में सितम्बर 2014 को चीन के राष्ट्रपति मोदी के निमंत्रण पर अहमदाबाद पहुंचे। अपने सभी पड़ोसी देशों के साथ संबंध बेहतर करने की दिशा में काफी प्रयास भी किए। इसी कड़ी में सितम्बर 2014 को चीन के राष्ट्रपति मोदी के निमंत्रण पर अहमदाबाद पहुंचे। जिस तरह से मोदी ने उनकी आगवानी कीए उससे लगा कि दोनों देशों के बीच संबंध सुधारेगा। इस यात्रा के दौरान कैलाश मानसरोवर यात्रा के नए मार्ग और रेलवे में सहयोग समेत 12 समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। इसके अलावा दोनों देशों ने क्षेत्रीय मुद्दों और चीन के औद्योगिक पार्क से संबंधित समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। हालांकि उसी दौरान चीनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) के करीब 1000 जवान पहाड़ी से जम्मू कश्मीर के चुमार क्षेत्र में घुस आए थे। भारत ने चीनी राष्ट्रपति के सामने यह मुद्दा डठाया लेकिन अपनी तरफ से वार्ता में कोई खलल नहीं पड़ने दिया।

18 जून साल 2017 को डोकलाम पर सीमा विवाद को लेकर एक बार पिर से दोनों के बीच तनाव शुरू हुआ और यह लगभग 73 दिनों तक चला। ध्यातव्य है कि भारत-भूटान और चीन को मिलाने वाला बिन्दु को भारत में डोकलाम भूटान में 'डोक ला' और चीन में 'डोकलांक' कहा जाता है। डोकलाम एक पठार है जो भूटान के हा धटी, भारत के पूर्व सिक्किम जिला, और चीन के यदोंग कउंटी के बीच में है।

विभिन्न क्षेत्रों पर भारत-चीन संबंध

राजनीतिक संबंध: भारत ने 1 अप्रैल 1950 को चीन के साथ अपने राजनयिक संबंध स्थापित किये थे और इसी के साथ भारत पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करने वाला पहला गैर-समाजवादी देश बन गया था। वर्ष 1962 में भारत और चीन के मध्य सीमा संधर्ष की शुरूआत दोनों देशों के मुजफ्फरपुर के लिये एक गहरा झटका था। परंतु वर्ष 1988 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी की ऐतिहासिक यात्रा ने दोनों देशों के मध्य मुजफ्फरपुर को सुधारने में महत्तवपूर्ण भूमिका निभाइ। यदि वर्तमान संदर्भ में बात करें तो देशों के प्रतिनिधियों के मध्य समय-समय पर द्विपक्षीय वार्त्ताओं के साथ-साथ अनौपचारिक सम्मेलनों का आयोजन भी किया जा रही है, जो यह दर्शाता है कि दोनों देश अपने दीर्घकालिक हितों को लेकर सजग हैं।

वाणिज्यिक और आर्थिक संबंध

भारत और चीन ने वर्ष 1984 में एक व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके तहत उन्हें मोस्ट फेवर्ड नेशन (MFN) का दर्जा प्रदान किया गया गया। इसके पश्चात् वर्ष 1994 में दोनों देशों ने दोहरे कराधन से बचने के लिये भी एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। भारत और चीन के बीच व्यापार और आर्थिक मुजफ्फरपुर में पिछले कुछ वर्षों में तेजी देखी गई है। वर्ष 2000 की शुरूआत में दोनों देशों के बीच 3 बिलियन डॉलर का व्यापार था, जो कि वर्ष 2017 में बढ़कर 84.5 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया।

सांस्कृतिक संबंध

भारत और चीन के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान की शुरूआत कई शताब्दियों पहले हुई थी। कुछ ऐसे भी साक्ष्य मौजूद है। जो भारत की प्राचीन वैदिक सभ्यता और चीन की शांग-झोउ सभ्यता के मध्य 1500-1000 ई.पू.के आस-पास वैचाकि और भाषायी आदान-प्रदान को दर्शाते हैं। पहली, दूसरी और तीसरी शताब्दी के दौरान कई बौद्धतीर्थ यात्रियों और विद्वानों ने ऐतिहासिक रेशन मार्ग 'के माध्यम से चीन की यात्रा की। तरह कई चीनी यात्री जैसे–इत्सिंग, फाहयान और हवेनसांग आदि भी भारत की यात्रा पर आए। इसके अलावा शैक्षणिक आदान-प्रदान हेतु वर्ष 2003 में पेकिंग विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन केंद्र की भी स्थापना की गई थी। चीन में भी योग तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। उल्लेखनीय है कि 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में नामित करने हेतु संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव के सह-प्रायोजकों में चीन भी एक था। भारतीय फिल्में भी चीन में काफी लोकप्रिय हैं और वहाँ काफी अच्छी कमाई करती हैं।

शैक्षिक संबंध

भारत और चीन ने वर्ष 2006 में एजुकेशन एक्सचेंज प्रोग्राम (EEP) पर हस्ताक्षर किये, ज्ञातव्य है कि यह दोनों देशों के बीच शैक्षिक सहयोग को बढ़ाने हेतु किया गया एक समझौता है। इस समझौता है। इस समझौते के तहत भारत और चीन एक-दूसरे के देश में देश में उच्च शिक्षा के मान्यता प्राप्त संस्थानों के 25 छात्रों को सरकारी छात्रवृत्ति प्रदान करते हैं। दोनों पक्षों के बीच शिक्षा क्षेत्र में सहयोग के परिणामस्वरूप चीन में भारतीय छात्रों की संख्या में हुई है। आँकड़ों के अनुसार, शैक्षणिक वर्ष 2016-17 के दौरान चीन के विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुल 18171 भारतीय छात्र विभिन्न विषयों में अध्ययनरत थे।

निष्कर्ष

दिन-प्रतिदिन विस्तृत हो रहे व्यापार असंतुलन के मुद्दे को जल्दी से दूर करने की आवश्यकता है। भारत यह आशा कर रहा है कि अगामी वार्ताओं में चीन कुछ ठोस कदमों का अनावरण करेगा जो सभी प्रकार के संबंध में कुछ हद तक संतुलन का सृजन करेंगे। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का इतिहास परिवर्तन का साक्षी रहा है। युगान्तकारी परिवर्तन इसकी एक विशेषता रही है। भारत-चीन संबंध में भी अगर सकारात्मक ईमानदार और गम्भीर प्रयास किये जाएं तो न केवल भारत और चीन बल्कि समूचे दक्षिण एशिया में एक नए युग की शुरूआत होगी।

संदर्भ-सूची

1. आर. एस. यादव, भारत की विदेश नीतिः एक विश्लेषण पृष्ठ-263
2. के.एम. पाणिकर, इंडिया एंड चाइना,पृष्ठ-235
3. शीला औझा, भारत की विदेश नीति का मूल्यांकन, पृष्ठ-56
4. वी.एन. खन्ना, भारत की विदेश नीति, पृष्ठ-112
5. महेश भटनागर, भारत की विदेश नीति, पृ-156
6. डॉ. बी0 एल0 फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2010 पृष्ठ सं0 159,
7. डॉ. ना0मा0 घटाटे, अटल बिहारी बाजपेयी गठबन्धन की राजनीति, प्रभात प्रकाशन, आसाफ अली रोड, नई, दिल्ली, 2004, पृष्ठ सं0 399
8. प्रभुदत शर्मा, विदेश नीतियाँ, सिद्धाँत एवं व्यवहार, पृष्ठ-58

चोल कालीन स्थापत्य कला एवं उसकी विशेषताएँ

राजीव कुमार

ग्राम–बिस्फी "मोतनाजे", पोस्ट–बिस्फी, जिला–मधुबनी (बिहार)

दक्षिण भारतीय इतिहास का क्रमबद्ध ज्ञान हमें जिस साहित्य से ज्ञात होता है, उसे संगम साहित्य कहा जाता है। इस प्रकार सुदूर दक्षिण के प्रारंभिक इतिहास का मुख्य साधन संगम साहित्य ही है। दक्षिण भारत अत्यंत प्राचीन, सम्पन्न और सुन्दर प्रदेश रहा है। यहाँ पर्वतों की क्रमोन्नत और दूर तक विस्तृत श्रृंखलाएँ हैं, ऊँचे पर्वत और नीचे उपत्यकाएँ हैं, ऊँचे जलप्रपात और गहरी तथा तीव्र गति से बहने वाली नदियाँ है। तीन ओर से तटों को प्रक्षालित करता हुआ समुद्र है जो दक्षिण भारत की दशा और सुन्दरता को अधिक आकर्षक बनाते हैं।[1] संगम साहित्य से हमें दक्षिण भारत के तीन राज्यों - चोल, चेर, तथा पाण्डय का विवरण प्राप्त होता है। उत्तर-पूर्व में चोल, दक्षिण–पश्चिम में चेर तथा दक्षिण–पूर्व में पाण्ड्यों का राज्य स्थित था। चोल राज्य के लोग किसान (वेल लालर) थे और कृषि में प्रवीण थे। वे तंजौर और तिरूचिरापल्ली के जिलों वाले क्षेत्र में रहते थे। चेर लोग कुरवर जाति के थे और तमिलनाडू के पश्चिमी प्रदेश में रहते थे। पाण्ड्य लोग समुद्र कें किनारे बसने वाले वडवर जाति के थे और तमिल देश के सुदूर दक्षिण भाग में निवास करते थे।

दक्षिण भारत के राज्यों में चोल सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रभावशाली थे। इनका राज्य पेन्नार तथा दक्षिण वेल्लारू नदियाँ के बीच में स्थित था। इसके अंतर्गत चित्रूर उत्तरी अर्काट, मद्रास से चिंगलपुत्र तक का भाग, दक्षिण अर्काट, तंजौर त्रिचनापल्ली का क्षेत्र सम्मिलित था। अशोक के समय मौर्य राज्य के दक्षिण में चोल थे। साहित्य और उत्कीर्ण लेखों में उन्हें "सूर्यवंशी" कहा गया है।[2]

इस राज्य की पहली रजधनी तिरूचिरापल्ली के समीप उरैयूर थी और बाद में कावेरी नदी के मुहाने पर कावेरी पट्टनम् हो गई। प्रारंभ में चोल राज्य पर आंध्रो का आधिपत्य था और बाद में पल्लवों का बढ़ा। नवीं शताब्दी से चोल वर्ष का स्वतंत्र इतिहास शुरू होता है। नवीं से तेरहवीं सदी तक चोल राज्य विशेष महत्वशाली रहा है। इस अवधि में चोल नरेशों ने प्रशासन, सभ्यता और संस्कृति में विशेष प्रगति की थी।[3] इस वर्ष का प्रथम शासक विजयादित्य (850–80 ई.) पहले पल्लवों का सामंत था और बाद में स्वतंत्र होकर उसने चोल वर्ष की स्थापना की।

चोलों का उत्थान विजयादित्य से प्रारंभ होता है। उसनें तांजाय (तंजौर) या तंजावुर पर अधिकार करके "नरकेसरी" की उपाधि धारण की। प्रमुख चोल वर्ष का सबसे प्रतापी और प्रसिद्ध नरेश था। सेना और प्रशासन के गठन, कला एवं स्थापत्य, धर्म तथा दर्शन और व्यापार एवं उद्योग सभी क्षेत्रों में राजराज का शासनकाल नवीन प्रगति का सूचक था। उसने अभिलेखों को "एतिहासिक प्राक्कथन" (प्रशस्ति) के साथ प्रारंभ करने की परंपरा का सूत्रपात किया। तंजौर (तंजावुर) में उसके द्वारा निर्मित शिव मंदिर एवं भवन तमिल स्थापत्य के सुंदर स्मारकों में है। सादगी, समानुपात एवं सौंदर्य का इससे सुंदर समन्व्य स्थापत्य में और क्या हो सकता था।[4]

राजराज के पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (1015–44) ने केरल, पाण्ड्य, कल्याणी के चालुक्य तथा कदम्ब और गौंडवाना के नरेशों को परास्त किया, बंगाल और कलिंग को जीता और अपनी दृढ़ जल सेना से समुद्र पार लंका, ब्रह्मा हिन्दचीन, जावा, सुमात्र के प्रदेश भी जीते। इस प्रकार भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर समुद्र पार भी चोल साम्राज्य की शक्ति और सीमाएँ बढ़ायीं। चोल वर्ष का अन्य प्रसिद्ध राजा कुलोतुंग प्रथम (1070–1130) ने पड़ोसी राज्यों को परास्त किया और चोल राज्य की शक्ति,

प्रतिष्ठा और गौरव को बनाये रखी। कुलोतुंग के बाद के चोल नरेश शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों के आक्रमणों और युद्धों से दुर्बल हो गए तथा बाद के चोल राजा भी योग्य शासक नहीं थे। सन 1310 ई. में मलिक काफूर ने अपने आक्रमण से चोल राज्य का अंत कर दिया।[5]

चोल नरेश महान कला प्रेमी और उत्साही निर्माता थे। उन्होंने बड़े भवन, राज प्रसाद व भव्य मन्दिर निर्मित किए, सुन्दर नगर और सैनिक बस्तियाँ योजनापूर्वक बनायी। नदियों पर विस्तीर्ण बाँध बाँधे, कृत्रिम झीलें निर्माण की, सिंचाई के लिए छोटी-बड़ी नहरें निकाली तथा विस्तृत सड़के और राजमार्ग बनवाए। चोल नरेश अपने विशाल भव्य भवनों, मन्दिरों के निर्माण तथा धतु एवं पाशाण की बनी हुई देवी-देवताओं की मूर्त्तियों के लिए विशेष रूप से प्रख्यात है।[6] "द्रविड़ वास्तु शैली" का जो प्रारंभ पल्लवों के समय हुआ उसका चरमोत्कर्श इस काल में देखने को मिलता है। चोल मन्दिर निर्माण कला की कलात्मक परंपरा की शुद्धता के लिए प्रशांसनीय है। चोल काल दक्षिण भारतीय कला का स्वर्णयुग कहा जाता है। कलाविद् फर्गुसन ने तो यहाँ तक कह दिया है कि चोल कलाकार कल्पना में महान और संपादन में जौहरी थे। उनके शब्दों में– चोल कलाकारों ने देवों की तरह कल्पना की और मणिकारों (जौहरी) की भाँति इस कल्पना का कला में प्रदर्शन किया।[7]

चोल कालीन मन्दिरों के दो रूप हमें देखने को मिलते हैं। प्रथम के अंतर्गत प्रारंभिक काल के वे मन्दिर है जो पल्लव शैली से प्रभावित हैं तथा बाद के मन्दिरों की अपेक्षा काफी छोटे आकार के है। दूसरे रूप के मन्दिर अत्यंत विशाल तथा भव्य है। इनमें हम द्रविड़ शैली की परिपक्व अवस्था पाते हैं। चोल सम्राटों ने अपनी शक्ति और ऐष्वर्य का प्रदर्शन भव्य तथा उत्तुंग शिखर मन्दिरों के निर्माण में किया।[8]

चोल शासकों ने अपनी राजधानी में बहुसंख्यक पाषाण-मन्दिरों का निर्माण करवाया। इस काल के प्रारंभिक स्मारक पुडुकोट्टेटै जिले से प्राप्त होते है। इसमें नारट्टामलाई में बनवाया गया विजयालय चोलेश्वर मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। जिसे चोल राजा विजयालय के समय में बनवाया गया था। इसका प्रदक्षिणापथ वर्गाकार है। मंडप स्तंभयुक्त है और कई तल्लों वाले विमान के शीर्ष पर स्तूपिका स्थापित है। यह पश्यिमाभिमुखी है और इसे प्रारंभिक चोल शैली का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। इस प्रकार का दूसरा मन्दिर कन्नूर का बालसुब्रह्मण्य मन्दिर है जिसे आदित्य प्रथम ने बनवाया था। इस मंदिर में द्रविड़ शैली की सभी विशेषताएं देखी जा सकती है। कुम्बकोनम में नारकेश्वर का खूबसूरत छोटा मन्दिर उसी अवधि और शैली का है पर उसका सबसे उल्लेखनीय स्वरूप यह है कि उसकी बाहर दीवालों के ताखों में मूर्त्तिया पाई जाती है। पश्चिम के अर्धनारी, उत्तर में ब्रह्मा, दक्षिण में दक्षिणामूर्त्ति पर अन्य ताखों में पुरुषों और नारियों की आदमकद मूर्त्तियाँ है जो बहुत काफी उभरी हुई है और करीब-करीब ऐसा लगता है कि वे मानो अलग से बनाई गई है।[9]

कोडुमबालूर (पुदुक्कोट्टई) में मूवरकोइल (तीन का मन्दिर) एक अन्य प्रारंभिक चोल मन्दिर है जो अपनी भवन-निर्माण कला के सौष्ठव और मूर्त्तियों के सौन्दर्य के लिए उल्लेखनीय हैं। इन तीनों विमानों का निर्माण चोल परांतक द्वितीय के वर्षवर्त्ती राजा मूर्त्ति विक्रमकेसरी ने दसवीं शाताब्दी के उत्तरार्द्ध में कराया था। तीनों प्रमुख देवस्थानों का निर्माण पद्मकोषों की परिकल्पना के आधार पर किया गया है जिसके आधारतल की गठन एक पूरे फूले हुए कमल की पंखुड़ियों के अनुकरण पर है। मन्दिर निर्माण कला की अगली अवस्था की सबसे अच्छी झांकी हमें श्रीनिवास-नल्लोर (त्रिचनापल्ली जिला) के कोदंगनाथ मन्दिर में मिलती है जो परांतक प्रथम के शासनकाल में निर्मित हुआ था। मन्दिर की कुल लम्बाई 50 फुट है, भीतरी कक्ष 25 फुट की भुजा वाला वर्गाकार है तथा सामने का मण्डप 25 फुट लम्बा और 20 फुट चौड़ा समकोण चतुर्भुजाकार है। शिखर की ऊँचाई 50 फुट है। भीतरी कक्ष के दीवालों के बाहर मध्य के ताखों पर मन्दिरों में सामान्यत: पाए जाने वाले देवता है। दक्षिण में एक पेड़ के नीचे आसन पर बैठे हुए दक्षिणामूर्त्ति और उनके भक्त सिंह और दोनो ओर गण, पश्चिम में खड़े हुए विष्णु और उत्तर में खड़े हुए ब्रह्मा। अन्य ताखों में खड़ी हुई मूर्त्तियाँ है जो किन्हीं व्यक्तियों के चित्र है। सभी मूर्त्तियाँ बहुत उभरी हुई श्रेष्ठ कलाकृतियाँ हैं।[10]

राजराज प्रथम और उसके पुत्र राजेन्द्र की विजयों और प्रतिभा के कारण मन्दिर निर्माण को बड़ा प्रोत्साहन मिला। राजराज के शासन के प्रारंभिक वर्शो में उसके बढ़ते हुए साम्राज्य के विभिन्न भागो में अब तक वर्णित मन्दिरों से बड़े, पर फिर भी साधारण आकार के अनेक मन्दिर बने। इनमें मूर्त्तिकला की समादा और ब्योरों की दृष्टि से अत्यधिक उल्लेख तिरूवालीश्वरम् का मन्दिर है जो तिनेवेली जिलें में ब्रह्मदेशम् में अवस्थित है। राजराज के शासनकाल में बने अन्य अनेक छोटे मन्दिर उल्लेखनीय है, तिरूवादि (तंजौर जिला) का उत्तर कैलाश देवस्थान, तिरूमलवाड़ि (त्रिचनापल्ली जिला) का वैधनाथ मन्दिर दादापुरम (दक्षिण आरकट

जिला) के शिव और विष्णु के जुड़वा मन्दिर और पोलोन्नरूध (श्रीलंका) का शिवदेवालय सं0-2, पर मूर्त्ति कला की दृष्टि से इनमें से कोई तिरूवालीश्वरम् के समान नहीं है।[11]

चोल स्थापत्य का चरमोत्कर्श त्रिचनापल्ली जिले में निर्मित दो मन्दिरों तंजौर तथा गंगैकोण्डचोलपुरम् के निर्माण में परिलक्षित होता है। तंजौर का भव्य शौव मन्दिर, जो राजराजेश्वर अथवा बृहदीश्वर नाम से प्रसिद्ध है, का निर्माण राजराज प्रथम के काल में हुआ था। भारत के मन्दिरों में सबसे बड़ा तथा लम्बा यह मन्दिर एक उत्कृष्ट कलाकृति है जो दक्षिण भारतीय स्थापत्य के चरमोत्कर्श को घोतित करती है।[12] इसे द्रविड़ शैली का सर्वोत्तम नमूना माना जा सकता है। इसके निर्माण में ग्रेनाइट पत्थरों का प्रयोग किया गया है। मन्दिर चारों ओर से एक ऊँची दीवार से घिरा है। मन्दिर का गर्भगृह 44 वर्ग फीट का है, जिसके चतुर्दिक 9 फीट चौड़ा प्रदक्षिणापथ निर्मित है। गर्भगृह के भीतर एक विशाल शिवलिंग स्थापित है जिसे अब बृहदीश्वर कहा जाता है। मन्दिर के वर्हिभाग में विशाल नन्दी की एकाष्म मूर्त्ति बनी है। मन्दिर की दीवारों में अनेक देवी-देवताओं की मूर्त्ति बनी हुई है। इस प्रकार भव्यता तथा कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से यह दक्षिण भारत का सर्वश्रेष्ठ हिन्दु स्मारक है। पर्सी ब्राउन के शब्दों में, इसका विमान (शिखर) न केवल द्रविड़ शैली की सर्वोत्तम रचना है अपितु इसे समस्त भारतीय स्थापत्य की कसौटी भी कहा जा सकता है।[13]

चोलों के वैभवकाल मे बनाया गया दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर गंगैकोण्डचोलपुरम् का मन्दिर है जिसका निर्माण राजराज के पुत्र राजेन्द्र चोल के शासनकाल में हुआ। इसकी योजना तंजौर मन्दिर के समान है लेकिन दोनों में कुछ विषमता भी है। यह तंजौर के मन्दिर से आकार और ऊँचाई में छोटा है, पर अत्यंत ही सुंदर, कलापूर्ण और प्रभावोत्पादक है। तंजौर मन्दिर में शक्ति, संतुलन और गंभीरता अधिक है जबकि गंगैकोण्डचोलपुरम् के मन्दिर में मार्दव, सौंदर्य और विलास अधिक है। तंजौर का बृहदीश्वर या राजराजेश्वर मन्दिर चोल नरेशों की भक्ति भावना, अदम्य श्रद्धा, अलौकिक कला प्रेम, कल्पनातीत विशाल हृदयता तथा तीक्ष्ण प्रतिभा के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये मन्दिर चोल सम्राट की महानता एवं गौरवगाथा को आज भी सूचित कर रहे है।[14]

तंजौर जिले में दारासरम का ऐरावतेश्वर मन्दिर और त्रिभुवनम् का हरेश्वर या त्रिभुवनेश्वर का मन्दिर भी चोल शासन काल में निर्मित हुए। चोल युग की शिल्पकला का एक अन्य प्रसिद्ध स्मारक कुम्भकोणम में नागेश्वर स्वामी का मन्दिर है। ये तीनों मन्दिर चोलकालीन शिल्पकला के सुन्दर प्रतीक हैं।

पल्लव नरेशों ने शिल्पकला की जो दीपशिखा प्रज्वलित की थी और वास्तुकला के क्षेत्र में मन्दिर निर्माण कला की जो नींव रखी थी, चोल नरेशों ने उसे अपनी प्रतिभा, कल्पना, संरक्षण और वैभव से अत्यधिक अग्रसर किया। चोलों ने पाशाण के विभिन्न टुकड़ों को काटकर और उन्हें तराश कर, गढ़कर विशाल मन्दिर बनाने का कार्य प्रारंभ किया और इसी शैली और सिद्धांत के आधार पर अनेक मन्दिर बनवाए।

चोलों का शासनकाल अपनी काँसे की मूर्त्तियों के लिए भी विशेष उल्लेखनीय हैं। संसार के विभिन्न संग्रहालयों और दक्षिण भारत के मन्दिरों में इस अवधि की काँसे की मूर्त्तियों के जो नमूने बच रहे है उनमें अनेक रूपों में शिव की मूर्त्तियाँ, ब्रह्मा, सप्तमाताएँ अपनी पत्नियों लक्ष्मी और यू देवी के साथ विष्णु अपने अनुचरों के साथ राम और सीता, शौव संतो-जिनमें से बंदर की मूर्त्तियाँ सबसे अधिक संख्या में मिलती हैं और कालिया नाग पर शिशु कृष्ण के नृत्य तथा अन्य अनेक विषयों पर बनाई गई मूर्त्तियाँ हैं। 11वीं शाताब्दियों के मूर्त्तिकारों ने साधारणत: मूर्त्तिकला संबंधी पुरानी परम्पराओं का पालन करते हुए भी बहुत स्वतंत्रता के साथ काम किया और उनकी मूर्त्तियों में प्राचीन लालित्य, गौरव और त्रुटिहीन रूचि की झाँकी मिलती है। इस कला को हम सबसे अच्छे रूप में नर्त्तक देवता नटराज की विभिन्न मूर्त्तियों में देखते हैं।[15]

चोल युग में जब हिन्दु संस्कृति और धर्म समुद्र-पार भारत से बाहर प्रसारित हुए, तक दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों और द्वीपों में चोलकालीन शिल्पकला भी प्रचलित हुई। जावा, सुमात्र, बाली, बोर्निया, मलाया, स्याम आदि देशो में हिन्दु धर्म के प्रसार से अनेक हिन्दु मन्दिर निर्मित हुए। थाइलैण्ड में अंकोरवाट का विशाल मन्दिर तथा तंजौर और गंगैकोण्ड चोलपुरम् के मन्दिरों की कल्पना तथा निर्माण में पारस्परिक संबंध था। ये धार्मिक वास्तुकला के विकास की एक ही श्रृंखला की कड़ियाँ है। ए.के. कुमारास्वामी ने पुराने जेटन (Zayton) आधुनिक चौनचू (फारमोसा के सामने) में 13वीं शाताब्दी के मन्दिर में चोल वास्तुकला तथा मूर्ति-आलेखन में निकटतम समता देखी।[16]

संदर्भ सूचीः

1. लूनिया, बी. एन., - प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2003, पृष्ठ - 615-16
2. चौधरी, राधाकृष्ण - प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1989, पृष्ठ - 429
3. लूनिया, बी0 एन0 - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ -668
4. वर्मा, एच0 सी0 - मध्यकालीन भारत, भाग-1, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
5. लूनिया, बी0 एन0 - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 624
6. लूनिया, बी0 एन0 - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 671
7. The conceivd like giants and finished like jewellers. श्रीवास्तव, के0 सी0 प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2011-12, पृष्ठ - 745
8. झा एवं श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1998, पृष्ठ - 421
9. शास्त्री के0 ए0 नीलकंठ - दक्षिण भारत का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2006, पृष्ठ - 510
10. शास्त्री के0 ए0 नीलकंठ - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 511
11. शास्त्री के0 ए0 नीलकंठ - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 513
12. The largest and the tallest of all Indian temple, it is a masterpiece constituting the high watermark of the south Indian architecture. शास्त्री के0 ए0 नीलकंठ - ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997, पृष्ठ - 463
13. झा एवं श्रीमाली - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 422
14. श्रीवास्तव, के0 सी0 - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 746
15. शास्त्री के0 ए0 नीलकंठ - पूर्वोध्दृत, पृष्ठ - 517
16. महाजन, वी0 डी0 - प्राचीन भारत का इतिहास, एस0 चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, पृष्ठ - 754

महात्मा गाँधी और बुनियादी शिक्षा

डॉ० अभिषेक कुमार

मधुबनी, बिहार

इतिहास निश्चय ही अतीत में मानवों के द्वारा किए गए प्रभावकारी कार्यों के समेकित अध्ययन से निकली ज्ञान की वह धारा है, जिनसे हमें, हमारे वर्तमान को समझने में हमें पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। इतिहास के अध्ययन की कई विषय - वस्तुएं हो सकती हैं, परंतु जब शिक्षा का इतिहास लिखा जाता हो तो उसकी उपादेयता बेहद गंभीर बन पड़ती है। शिक्षा का इतिहास जैसे गंभीर विषय पर जब हम चिंतन करते हैं, तो यह हमें कई भागों में वर्गीकृत नजर आती है। जैसे औपनिवेशिक भारत और स्वतंत्र भारत में शिक्षा के क्षेत्र में किए गए सरकारी प्रयासों की समीक्षा का कार्य, दूसरे समय-समय पर शिक्षा दर्शन में आने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उनके प्रभावों पर विचार मंथन का कार्य, इतना ही नहीं 'शिक्षा का इतिहास लेखन' हमें सामाजिक चेतना के तात्कालिक तात्विक मूल्यों पर भी कृष्टिपात करने का अवसर प्रदान करता है। जिसके आइने में हम समाज सुधारकों द्वारा समय-समय पर सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का उपयोग एक साधन के रूप में किया गया। कुछ इसी प्रकार का प्रयोग सामाजिक चेतना परिवर्तन के संदर्भ में गांधी जी ने भी किया था।

गांधी जी की बात आते ही हम एक ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करने लगते हैं, जिन्होंने अपने कुशल नेतृत्व से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रयास को ऐसी धर प्रदान की जिससे गुलामी की दो सौ वर्षों की बेड़ियां काट दी गई। परंतु यह सब इतना आसान न था। गांधी जी ने भारतीयों में भारतीयता का अभिमान जागृत करने के लिए कई रचनात्मक कार्यक्रम चलाए। इन कार्यक्रमों में शिक्षा क्षेत्र में उनके द्वारा प्रस्तुत की गई पद्धति उनके प्रखर चिंतन की बानगी प्रस्तुत करती है। गौरतलब है कि गांधी जी द्वारा प्रस्तुत शिक्षा पद्धति को हम बुनियादी शिक्षा पद्धति, नई तालीम, वर्ध शिक्षा योजना या बेसिक एजुकेशन के नाम से जानते हैं। इसके कई उद्देश्य थे। इनमें लोगों में स्वदेशी भावना पैदा करना, भारतीयता की समझ है जागृत करना, स्वरोजगार के लिए कौशल क्षमता बढ़ाना और स्वावलंबी जीवन को अपनाने जैसे कई उद्देश्य समाहित थे।

हम पाते हैं कि प्रकृति ने यह नियम प्रतिपादित कर रखा है कि जो आगे की ओर विकास नहीं करेगा, वह पतन की ओर अग्रसर होता चला जाएगा। ऐसे में हर समाज सदैव परिवर्तनशील रहता है और इस संदर्भ में यह कहना गलत नहीं होगा कि सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका बेमिसाल है। यह बात अलग है कि शिक्षा की ऐतिहासिक विवेचना में इस बात पर गौर करना सबसे महत्वपूर्ण है कि शिक्षा के किन किन आयामों पर प्रयास किया गया। जहां तक युग-युग में मनुष्य अपने सुख शांति और स्वतंत्रता के लिए जो प्रयोग और चेष्टाएं करता आया है वह ऐतिहासिक परंपरा की निश्चित कड़ियां ही होती है।[1]

जहां तक बुनियादी शिक्षा के प्रादुर्भाव की बात है, वास्तव में संसार में तालीम या शिक्षा की जो भी पद्धति निकली उन सब के पीछे निश्चित रूप से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था कायम करने की नियत और उसके अनुकूल नागरिक तैयार करने का उद्देश्य रहा है। स्वाभाविक रूप से नई तालीम के पीछे बापू का भी यही उद्देश्य रहा।[2]

भारत में बुनियादी शिक्षा का सूत्रपात भारतीयता के वजूद का प्रश्न था। यदि हम औपनिवेशिक भारत में विद्यार्थियों पर लगाए गए कुछ दमनकारी प्रतिबंधें को देखें तो अंग्रेजों की मंशा का हमें सहज ही अनुमान हो जाता है। उन दिनों के नियमों के तहत जिस किसी विद्यार्थी को आंदोलन में भाग लेने के जुर्म में अदालत से सजा दी गई होती थी। उसे किसी भी विद्यालय में दाखिले से पहले सरकार से इजाजत लेनी पड़ती थी। विद्यालय के किसी कर्मचारी को राजनैतिक आंदोलन में भाग लेने की अथवा अपनी राय प्रकट करने की इजाजत नहीं थी। विभागीय नियम 100 कहता था कि यदि स्कूल के शिक्षक या संचालक ऐसी कोई हरकत करते हैं तो शिक्षा विभाग उस स्कूल की मान्यता रद्द कर सकती थी। यहां सरकार की ओर से दी जाने वाली सहायता को बंद किया जा

सकता था। वहीं शिक्षा विभाग का नियम 101 के अनुसार यदि शिक्षक स्वयं विद्यार्थियों को राजनीतिक सभाओं में ले जाए या जानबूझकर उन्हें वैसी सभा में उपस्थित रहने के लिए प्रोत्साहित करें तो यह शिक्षक के कर्तव्य में चूक मानी जाती थी।[3]

ऐसे में हम कह सकते हैं कि उपनिवेशवाद के शिकंजे में छटपटा रहे मुल्क द्वारा अपने स्वाभिमान को प्रदर्शित करने का एक माध्यम बनकर बुनियादी शिक्षा पद्धति सामने आई।

दूसरी तरफ औपनिवेशिक भारत में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को प्रश्रय दिया गया। जिसका प्रतिकार भी आवश्यक था। अंग्रेजों की मंशा क्या थी इसकी झलक मैकाले द्वारा 2 फरवरी 1835 ईस्वी को प्रस्तुत स्मरण पत्र में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है। उसमें उसने भारत के आयुर्वेद, विज्ञान, गणित, ज्योतिष, इतिहास तथा भूगोल की खिल्ली उड़ाई और कहा कि क्या हमें यह मिथ्या धर्म से संबंधित इतिहास, गणित, ज्योतिष और आयुर्वेद पढ़ाना है? उसका तर्क यह था कि भारतीय भाषाओं में ना तो कोई साहित्य तत्व है तथा ना ही वैज्ञानिक जानकारी है। उसने कहा था कि शएक अच्छे पाश्चात्य पुस्तक की एक आलमारी भारत तथा अरब के समस्त साहित्य के बराबर है। अपने प्रस्तावों में मैकाले की योजना यह थी कि एक ऐसा वर्ग बनाया जाए जो रंग तथा रक्त से भारतीय हो परंतु प्रवृत्ति, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि से अंग्रेज हो। उसने अपने पिता को एक स्मरण पत्र में भी यह आशा व्यक्त की थी यदि हमारी शिक्षा योजनाओं का अनुसरण किया गया तो बंगाल के प्रतिष्ठित वर्ग में आने वाले 30 वर्षों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। 4

इसके विपरीत भारत में शिक्षा के लक्ष्य को लेकर अलग अपेक्षाएं थी और चर्चा के केंद्र में यह बात थी कि शिक्षा की वास्तविक कसौटी क्या होनी चाहिए? भारतीय चिंतकों की सोच थी कि कलम चलाने वालों तथा विद्वानों की गणना तब बुद्धिजीवियों में की जाए जब उनकी लेखनी और वाणी के तात्पर्य शुभ तथा उपयोगी हो तथा कार्य समाज उन्मुखी हों। अन्यथा ऐसे प्रमाण पत्र प्राप्त विद्वानों की गणना अशिक्षित लोगों में की जानी चाहिए। तालीम को किताबों परीक्षा और डिग्रियों में कैद कर देना तालीम का गला घोटना है। तालीम को राष्ट्रीय जन-जीवन की ज्वलंत समस्याओं की आग लगने से बचाकर दूर रखना तालीम को निष्प्रभावी और निर्जीव बनाना है। शिक्षा पूर्ण जीवन की समग्रता से ओतप्रोत है। बुनियादी शिक्षा इसलिए बुनियादी है कि वह जीवन की बुनियादी बातों को तालीम का मुख्य अंग मानती है और बुनियादी शिक्षा इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा है कि वह हमारे राष्ट्र की मूल और ज्वलंत समस्याओं को सुलझाने की ख्रष्टि से अपना कार्यक्रम निर्धारित करती है।[5]

आधुनिक समाज में प्रचलित शिक्षा पद्धति का एक बड़ा प्रभाव यह रहा है कि हमारे समाज को दो वर्गों में बांट दिया गया। हम कह सकते हैं कि प्रचलित शिक्षा पद्धति के द्वारा भारतीयों के जीवन मूल्यों में कुछ ऐसी फेरबदल की गई कि जो जितना ही अपने हाथ पाव से काम नहीं करता वह उतना ही बड़ा सम्मानित माना जाने लगा। यह किसी राष्ट्र की दुर्बलता को चिन्हित करता है, जहां निकम्मों को प्रतिष्ठा हासिल होती है। यदि तटस्थ होकर भारतीय समाज के ताने-बाने को देखा जाए तो आज समाज में एक ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता जान पड़ती है जिसमें सौहार्द का पाठ पढ़ाया जाता हो। साथ-ही-साथ इसमें भारतीय होने का आत्माभिमान भी जागृत करने की क्षमता हो। इस आधुनिक संदर्भ में भी महात्मा गांधी के विचार बड़े ही प्रासंगिक हैं। शिक्षा के इतिहास की गवेषणा के क्रम में हम पाते हैं कि प्राचीन काल में जब थोड़े से लोगों को शिक्षित करना होता था तो व्यक्तिगत गुरुओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। बाद में जब शिक्षा की मांग बढ़ने लगी और व्यक्तिवादी पद्धति छोटी पड़ने लगी, तब शिक्षण संस्थाओं के रूप में संस्थावादी शिक्षण पद्धति का विकास हुआ। इसी प्रकार जब शिक्षा की मांग सार्वजनिक हो गई तब संस्थाएं भी छोटी पड़ रही हैं। अतएव जमाने की मांग है कि अब शिक्षा को संस्थाओं की चारदीवारी से बाहर निकालकर समाज के जन-जन में फैलाना होगा यही कारण है कि गांधी जी ने कहा था कि शिक्षा की अवधि गर्भ से लेकर मृत्यु तक की है और इसका क्षेत्र पूरा समाज है। इसी विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने कहा था कि समाज के समस्त कार्यक्रम यानी उद्योग की प्रक्रिया, सामाजिक वातावरण और प्रख्रति का परिचय शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। 6

बापूजी जिसे जनता का सच्चा स्वराज्य कहते थे। उसकी प्राप्ति की भूमिका में उन्होंने नई तालीम की कल्पना की थी। उस भूमिका को स्वीकार कर लेने पर नई तालीम के तीन बुनियादी पहलू स्पष्ट होते हैं। पहला समवाय, दूसरा स्वावलंबन और तीसरा अहिंसा। समवाय से उनका अभिप्राय जहां ज्ञान प्राप्ति से था, वही स्वाबलंबन से उनका अभिप्राय जीवन पद्धति में बदलाव से था। साथ ही साथ अहिंसा से उनका अभिप्राय सामाजिक परिवर्तन से था। इन तीनों ही भूमिका में नई तालीम केवल विद्यालय या शिक्षार्थी तक ही सीमित नहीं थी। उसमें बाल शिक्षण और लोक शिक्षण एक समग्र प्रक्रिया के परस्पर पूरक पहलू हो जाते हैं।[7]

महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा की जो व्याख्या की थी उससे यह स्पष्ट है कि वह इसे 'जीवन के लिए शिक्षा' और इससे भी कहीं अधिक, इसे 'जीवन के माध्यम से शिक्षा' मानते थे। इसका उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था लाने का था जिसमें शोषण और हिंसा का कोई स्थान न हो। इसी कारण ऐसे उत्पादक, सृजनात्मक और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी कार्यों को जिसमें जाति और वर्ग के भेदभाव के बिना सभी लड़के और लड़कियां भाग ले सकें बुनियादी शिक्षा का केंद्र माना गया है।[8]

शिक्षा जीवन द्वारा मिलनी चाहिए साथ ही जीवन व्यापी भी होनी चाहिए। सच्ची शिक्षा श्रम, समानता, संगठन, सृजन, संयम एवं संस्कार वर्धन पर बल देती है। जिस शिक्षा पद्धति में उचित मार्गदर्शन एवं स्वाधयाय के साथ-साथ क्रियाशीलता पर भी बल दिया जाता है, वह शिक्षा पद्धति अपने सफल परिणाम देगी। स्वाबलंबन बुनियादी शिक्षा की कसौटी रही है और यह केवल आय एवं व्यय के संदर्भ में ही नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति और कुशल नागरिक बनाने के दृष्टिकोण से भी अति महत्वपूर्ण है। गांधी के विचार नवीन नहीं हैं, बल्कि इसकी जड़ भारतीय संस्कृति में तथा भारत के अलावा अन्य देशों की शिक्षा के विकास के इतिहास में भी देखे जा सकते हैं। महात्मा गांधी का कहना था कि शजब तक हमारे देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार नहीं होता और शिक्षा से मेरा मतलब केवल शिक्षा की प्रारंभिक बातों से नहीं है, बल्कि अपने अधिकारों से, अपने प्राप्तव्य के और इन अधिकारों के साथ जो जिम्मेदारियां लगी हुई है, उनके ज्ञान से हैं– जब तक इस शिक्षा का सर्वसाधारण जनता में खूब प्रचार-प्रसार नहीं हो जाता, तब तक हमारी आशाएं अनिश्चितकाल तक निरी आशाएं बनी रहेंगी। इसलिए हमारी कठिनाइयों का एकमात्र हल यह है कि हम एक ऐसी शिक्षा की परम आवश्यकता को भली-भांति समझ सकें और हम में से जो इसका प्रसार करने के योग्य हो वे अपना कर्तव्य समझकर आगे बढ़ें और इस कार्य को अपने कंधें पर उठा ले। मेरा ख्याल है आज इससे अधिक देशभक्ति का काम दूसरा नहीं हो सकता। यही वह जिम्मेवारी है जो हमारे परम श्रद्धेय नेता के वचनों से हम पर पड़ी हैं और मैं साहस पूर्वक कहता हूं कि देश को ऐसी आशा रखने का अधिकार है कि उसके कुछ युवक -वे आरंभ में भले ही थोड़े हों, परंतु उनकी संख्या निरंतर बढ़ती जाएगी - कर्तव्य की इस पुकार को पूरे ध्यान से सुनेंगे और उसका प्रत्युत्तर देंगे। इतनी बात यदि पूरी हो जाए तो परिस्थिति समय-समय पर कितनी भी अंधकार पूर्ण क्यों प्रतीत होती हो, अंत में हमारे प्रयत्न अवश्य सफल होंगे, क्योंकि हमारी संख्या इतनी अधिक है यदि हम स्वयं ही ना लड़खड़ा जाएं तो संसार की कोई भी शक्ति हमारी प्रगति को नहीं रोक सकती।[9]

बात 1937 ईस्वी की है जब भारत में हुए महा निर्वाचन में कुल 11 प्रांतों में से 6 प्रांतों में इंडियन नेशनल कांग्रेस ने बहुमत प्राप्त किया था।[10] जैसा कि महानिर्वाचन के समय पार्टी ने जनता से समूह के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने का वादा किया था और मध्य निषेध को भी लागू करने के लिए प्रतिबद्धता जाहिर की थी। सरकार बनाने के बाद यह एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर सामने आई, क्योंकि जहां एक तरफ सबों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने में बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता थी, वहीं दूसरी तरफ मध्य निषेध लागू करने से आबकारी कर के रूप में प्राप्त होने वाली बड़ी धनराशि अब प्राप्त नहीं होने वाली थी। ऐसे में एक ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता आन पड़ी जो राष्ट्रीय हो, निशुल्क हो, और स्वावलंबी भी हो। इसके साथ-साथ और भी कई महत्वपूर्ण कारक थे जिनसे बुनियादी शिक्षा पद्धति का प्रादुर्भाव जुड़ा था। भारत को भारतीयता से जुड़ी एक ऐसी शिक्षा पद्धति की दरकार थी जो भारतीय सभ्यता एवं परंपरा के मूल्यों द्वारा पोषित हो और जो भारतीयों को स्वदेशी का पाठ पढ़ाती हो। तत्कालीन भारतीय समाज को अपने सामाजिक जीवन की जरूरतों के अनुरूप एक शिक्षा पद्धति की जो आवश्यकता थी इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए बुनियादी शिक्षा पद्धति एक विकल्प बनकर सामने आई। उदाहरणस्वरूप भारतीय वस्त्र उद्योग बुरी तरह प्रभावित था, जिससे लोग विदेशी कपड़ों पर आश्रित होने लगे थे। ऐसे में गांधीजी की मंशा थी कि शिक्षा में कताई शास्त्र को जोड़कर वस्त्र उद्योग को घरेलू उद्योग में तब्दील कर देना चाहिए। विद्यालयों में ख्रषि की विधिवत शिक्षा देकर प्रत्येक व्यक्ति को किसानी में सक्षम बना दिया जाए और प्रत्येक खाली हाथ को कुशल दस्तकारी सिखा दिया जाए। कुल मिलाकर इसका लक्ष्य भारतीय समाज का कायाकल्प करना था। इन्हीं परिस्थितियों में महात्मा गांधी ने लोगों के समक्ष बुनियादी शिक्षा पद्धति को प्रचलित शिक्षा पद्धति के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। महात्मा गांधी को अपनी शिक्षा योजना को वर्ध में होने वाली मारवाड़ी शिक्षा सभा के रजत जयंती समारोह में रखने का अवसर प्राप्त हुआ। 22 और 23 अक्टूबर 1930 में भारत के शिक्षा शास्त्रियों की एक सभा बुलाई गई जहां उन्होंने बुनियादी शिक्षा के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए और वहां उपस्थित लोगों को शिक्षा के उद्देश्य के रूप में मानव का उच्चतम शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक विकास होना बताया। 11 इसकी रूपरेखा निर्धारण के लिए डॉक्टर जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई। इस समिति के संयोजक श्री कार्यक्रम हुए सदस्यों में ख्वाजा गुलाम सैयादैन, विनोबा भावे, काकासाहेब कालेलकर, किशोरी लाल मसरूवाला, जे0 सी0 कुमारप्पा, कृष्णदास जाजू, के0 टी 0 शाह, श्रीमती आशा देवी जैसी

गणमान्य चिंतक और शिक्षा शास्त्री हुए। इस समिति ने दिसंबर 1937 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। फरवरी 1938 में बुनियादी तालीम को लागू करने का प्रस्ताव पारित हुआ।[12]

महत्वपूर्ण है कि बुनियादी शिक्षा पद्धति के प्रादुर्भाव के पीछे कई कारक तत्व काम कर रहे थे। कहीं तात्कालिक जरूरतें थी, तो कहीं अस्मिता की लड़ाई भी थी। एक तरफ सांस्कृतिक चेतना का प्रश्न था तो दूसरी तरफ स्वावलंबन का मूल्य भी प्रेरणा का कार्य कर रहा था। हम पाते हैं कि भारत की आजादी के बाद बुनियादी शिक्षा पद्धति हाशिए पर डाल दी गई। इसके बावजूद हम ऐसा कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षा भारत की अपनी उपज है और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के द्वारा विश्व को अनुपम देन है।

संदर्भ

1. मजूमदार धीरेंद्र, नई तालीम अखिलभारत सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1956, पृष्ठ संख्या, 30
2. वही, पृष्ठ संख्या, 28
3. हरिजन, 18/09/ 1937
4. ग्रोवर बी0 एल0, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चांद एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या, 183
5. सोनी दयाल चंद, बुनियादी शिक्षा रू क्या और कैसे, अखिलभारत सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1971, पृष्ठ संख्या, 27
6. मजूमदार धीरेंद्र ग्राम स्वराज्य की ओर, अखिलभारत सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1971, पृष्ठ संख्या, 22
7. राममूर्ति आचार्य, शिक्षा संस्कृति और समाज, श्रम भारती, खादी ग्राम, 1990, पृष्ठ संख्या 27
8. के0जी0 सैयदेन, बुनियादी शिक्षा संदर्भ (बुनियादी स्कूलों के अध्यापकों के लिए), शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय, भारत सरकार, 1957, पृष्ठ संख्या 6
9. संपूर्ण गांधी वांग्मय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, खंड 5, पृष्ठ संख्या 173
10. मजूमदार धीरेंद्र, पुर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 78
11. भाई योगेंद्र जीत, शिक्षा सिद्धांत की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ संख्या 209
12. वही, पृष्ठ संख्या 210

महिला एवं मानवाधिकार के विभिन्न पहलू

डॉ० राकेश कुमार पासवान

एम० ए०, पीएच०-डी०, इतिहास विभाग
ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारत में महिलाओं के अधिकारों की उपेक्षा हमेशा से होती आ रही है। संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन के मुताबिक, दो तिहाई विवाहित महिलाएँ घरेलू हिंसा की शिकार हैं। स्वास्थ्य सुविधा प्रणाली के बिगड़ने से हजारों भारतीय महिलाएँ प्रतिवर्ष प्रसव के दौरान दम तोड़ देती हैं। आंकड़ों के मुताबिक, पूरी दूनिया में प्रसव के वक्त होने वाली मौतों में से एक चौथाई भारत में होती हैं। भारत में यह दर रुस, चीन और ब्राजील से कई गुना ज्यादा है।

भारतवर्ष में पुरातन काल में नारी शक्ति का अत्यधिक महत्त्व था। यहाँ की संस्कृति में नारी को एक महान् शक्ति के रूप में आदर-सम्मान दिया जाता रहा है। वैदिक काल में इस देवभूमि की नारी, सामाजिक-धार्मिक व अध्यात्मिक क्षेत्रों में पुरुष की सहभागिनी थी। गौरवपूर्ण अधिकार व सम्मान प्राप्त नारी आदिकाल से माँ, बहन, प्रेयसी, पत्नी व पुत्री आदि रिश्तों को, दायित्त्वों को निभाती चली आ रही है। वैदिक काल में नारी ने अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए, समाज व जीवन के हर क्षेत्र में अपना गौरव व सम्मान बढ़ाया था। महर्षि याज्ञवल्क्य का गार्गेय के साथ संवाद, जगद्गुरू शांकराचार्य का मंडन मिश्र की धर्मपत्नी भारती के साथ शास्त्रों, वेदों व कामशास्त्र पर शास्त्रर्थ आज भी स्मरणीय है।

मध्यकाल में भारतीय नारी का जीवन संकटग्रस्त था। शिक्षा लगभग समाप्त हो गई थी। मध्यकाल में भी अपनी विद्वत्ता, वीरता, लगन से अपना, अपने परिवार का, अपने समाज व देश का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखनेवाली रानी दुर्गावती, अहिल्याबाई, पद्मिनी, जीजाबाई आदि युगों-युगों तक प्रेरणा देती रहेंगी। नैतिकता, सदाचरण व ब्रह्मचर्य पालन में भारतीय पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठतम् उदाहरण बार-बार पेश करनेवाली भारतीय महिलाओं ने पुरातनकाल, मध्यकाल में ही नहीं वरन् ब्रिटिश हुकूमत के समय भी भारत की जंग-ए-आजादी में सक्रिय व अविस्मरणीय भूमिका निभाई थी। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंदन सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी आदि ने भारतीय नारी की दशा को समझते हुए, नारी शिक्षा व अन्य क्रांतिकारी सुधारों को प्रचारित-प्रसारित करने व लागू करवाने का महानतम कार्य किया। भारत-पाक विभाजन के समय भी सतीत्व के रक्षार्थ, अपने नश्वर शारीर का त्याग करनेवाली भारतीय महिलाओं की बलिदान की उच्य परंपरा के कारण ही भारतीय नारी सदैव सम्मान की पात्र रही है। आज भारतीय महिलाएँ शिक्षा, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में अगर अग्रणी स्थानों पर हैं तो वह भारत के इन्हीं महापुरुषों की सोच व प्रयासों का परिणाम है।

ब्रिटिश हुकूमत से लंबे संघर्ष व अनगिनत बलिदानों द्वारा आजादी हासिल करने के बाद, आजाद भारत के संविधान में भारतीय नारी को तमाम अधिकार प्रदान किए गए। शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए तमाम विद्यालयों की स्थापना की गई। आजाद भारत में इन दिनों राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों व शिक्षा, रोजगार के क्षेत्रों में महिलाओं ने तेजी से तरक्की हासिल की। महिलाओं ने कामयाबी की कीर्तिमान स्थापित किए। एक प्रधानमंत्री व कुशल प्रशासक के रूप में इंदिरा गांधी ने विश्व पटल पर अपने अमिट हस्ताक्षर करके भारत-भूमि की शान में बढ़ोतरी की। वर्तमान समय में भी राजनीतिक क्षेत्र में महिला शक्ति का वर्चस्व कायम है। सोनिया गांधी, मीरा कुमार, ममता बनर्जी, मायावती, जयललिता आदि की नेतृत्व क्षमता व कार्यशैली का लोहा विपक्षी राजनीतिक दल भी मानते हैं। भारत के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद पर भी नारी शक्ति के रूप में श्रीमती प्रतिभा पाटिल आसीन हुई है। सार्वजनिक जीवन

व सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में अपने विशेष योगदान के कारण सुभाशिनी अली, अरूधंती रॉय, मेघा पाटेकर का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है।

गौरवशाली इतिहास और कानूनी अधिकार के बावजूद आज भारत में आम महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। शीर्ष पदों पर महिलाओं के आसीन होने के बावजूद आज महिला को उसका अधिकार व सम्मान प्राप्त नहीं है। ग्रामीण अंचलों में नारी शिक्षा का प्रचार, प्रसार होने के बावजूद अभी अज्ञान की कालिमा मिटी नहीं है। अशिक्षित महिलाओं का अपने अधिकारों की जानकारी न होना, उनका अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न होना ही महिला की पीड़ा का उसकी समस्या का सबसे बड़ा कारण है। विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सरकारों के द्वारा महिलाओं को जागरूक करने का प्रयास गैर-सरकारी संगठनों व सरकारी महकमों के माध्यम से जारी रखे हुए हैं। यह सत्य है कि बगैर शैक्षिक व कानूनी जागरूकता के वर्तमान युग में महिलाओं को अधिकार व सम्मान मिलना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। यह दुर्भाग्यपूर्ण कटु सत्य है कि 'यत्र नारयस्य पूजयंतें, रमन्ते तत्रदेवता' की अवधारणावाले भारत देश में सामाजिक पारिवारिक स्तर पर स्त्री की दशा सोचनीय व दयनीय है। समाज के नैतिक पतन का परिणाम है कि जन्मदात्री नारी को पारिवारिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

नारी मानवाधिकार एक क्रांतिकारी विचारधारा है। महिलाओं के जीवन और दृष्टिकोण को मानवाधिकार के मानदंड में शामिल करना इस बात का परिचायक है कि मनुष्य होने के नाते जो मानव सम्मान महिला को मिलना चाहिए उसे दिलाने में विश्व के सभी देश असफल रहे हैं। मानवाधिकार, महिलाओं को अपने साथ हुए हिंसा, दुर्व्यवहार और महत्त्वहीनता के अनुभवों को परिभाषित, विश्लेशित और अभिव्यक्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है।[1]

अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध और नब्बे के दशक के पूर्वार्द्ध में विभिन्न देशों में महिलाओं ने मानवाधिकार संरचना को विश्लेषणात्मक और राजनीतिक हथियार के रूप में विकसित किया जो महिलाओं के मानवाधिकार का आधार बना। मानवाधिकार संरचना पर विचार से दो बातें उभर कर सामने आई। एक तो मानवाधिकार के बारे में विचार और दूसरा महिलाओं के जीवन के बारे में। तात्पर्य यह है कि मानवाधिकार संरचना पर पहले तो लिंग के आधार पर विचार किया गया, फिर महिलाओं के जीवन की व्याख्या इस मानवाधिकार संरचना के संदर्भ में की गई।[2] मानवाधिकार संरचना को महिलाओं ने अपने दृष्टिकोण से परखकर इस तथ्य को प्रत्यक्ष किया कि किस प्रकार मानवाधिकार की परिभाषा और उसका अनुपालन लिंग-भेद से प्रभावित है।[3]

नब्बे के दशक के पूर्वार्द्ध में ही बिना मतभेद के यह मान लिया गया कि महिलाओं के लिए समाज में उसकी हैसियत से अधिक महत्त्वपूर्ण है उसकी व्यक्ति गत निधि जैसे कि उसका शारीर। महिलाओं की व्यक्तिगत निधि हमेशा ही लोगों का शिकार बनती रही। इसका ठोस और सर्वव्यापी प्रतिचित्रण है महिलाओं के विरूद्ध हिंसा और स्वच्छन्द तौर पर उन्हें प्रजनन के अधिकार से वंचित रखना। वर्तमान में महिलाओं के मानवाधिकार स्थापित करने में सबसे बड़ा मुद्दा है उनके विरूद्ध हिंसा। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के कई वीभत्स रूप है जैसे कि पारिवारिक हिंसा, बलात्कार, बाल विवाह और खतना। ये सारे ही मानवाधिकार के उल्लघंन हैं। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विस्तृत दायरे की चर्चा महिलाओं के विरूद्ध हिंसा उन्मूलन घोषणापत्र के अनुच्छेद 2 में किया गया है : जो है-

1. परिवार के अंदर होनेवाले शारीरिक, यौन संबंधी एवं मनोवैज्ञानिक हिंसा। मारपीट, घरों में लड़कियों के साथ यौन शोषण, दहेज हिंसा, पति द्वारा बालात्कार, यौन अंगों को विकृत करना या कोई ऐसी परंपरा जो महिलाओं के लिए हानिकारक हो तथा किसी भी तरह का शोषण आदि इसमें शामिल हैं।
2. किसी भी समुदाय में हुए शारीरिक, यौन संबंधी या मनोवैज्ञानिक हिंसा जिसमें बलात्कार, यौन उत्पीड़न, यौन शोषण, कार्य स्थल या शिक्षण संस्थाओं में उत्पीड़न, महिला व्यापार और बलात वेश्यावृति शामिल है।
3. राज्य द्वारा शारीरिक, यौन संबंधी या मनोवैज्ञानिक हिंसा को अन्जाम देना या उसकी अनदेखी करना। इसके अलावे, न्यायिक प्रक्रिया में लिंग के आधार पर किसी तरह के भेद-भाव भी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा में शामिल हैं। महिलाओं के मानवाधिकार की सुरक्षा की दिशा में समुचित प्रयत्न के लिए यह अनिवार्य शार्त है कि महिलाओं के विरूद्ध हर की हिंसा का उन्मूलन इस प्रयास कर केंद्र बिन्दु हो।[4]

भारत में महिलाओं की मुक्ति के प्रयास की शुरूआत उन्नीसवीं शाताब्दी में देखी जा सकती है। विभिन्न सामाजिक-धार्मिक सुधार संस्थाएँ उस समय की प्रचलित घृणात्मक रिवाजों को गैर कानूनी करार देने और सामाजिक मानस पटल पर नारी सशक्तीकरण

और उनके हित अंकित करने के लिए औपनिवेशिक शासकों से हाथ मिलाए और उन्हें इसके लिए सहमत किया। संविधान की मदद से स्वतंत्रता पश्चात राज्य ने महिला संबंधी सभी विवादास्पद मामलों को अपने हाथ में ले लिया।[5] संवैधानिक प्रावधान, विधेयक एवं जन नीतियों के बदलते स्वरूप ने नारी के परिप्रेक्ष्य में राज्य की भूमिका को निर्धारित किया। हालांकि गैर सरकारी संस्थाओं एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही।[6]

भारतीय संविधान में महिलाओं से संबंधित मामलों के संदर्भ में विस्तृत या विशिष्ट प्रावधान नहीं है। समानता के अधिकार के अनुसार लिंग के आधार पर भेद-भाव करना मौलिक अधिकार का उल्लंघन है, इसलिए इसमें महिलाओं के अधिकार स्वत: ही निहित है। अनुच्छेद 15 (3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के हित में कार्य करने का निर्देश देता है। राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व में महिलाओं से संबंधित निश्चित प्रावधान हैं जिसमें मातृत्व लाभ, जच्चा और बच्चा दोनों के लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ, समानता का प्रावधान जैसे स्त्री और पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन इत्यादि शामिल हैं। परंतु स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद भी अधिकांशत: प्रावधान संविधान तक ही सीमित रह गए और पूर्णत: कार्यान्वित नहीं हो पाए हैं।

संवैधानिक प्रावधानों की कमी को विधेयकों द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया।[7] हालांकि केवल कानून के द्वारा सामाजिक संरचना, संस्थाओं एवं प्रवृति में बदलाव नहीं लाया जा सकता लेकिन इसके बिना भी सामाजिक अभियांत्रिकी संभव नहीं है। इसलिए राज्य, कुछ हद तक महिला संगठनों के दबाव में भी, दहेज निषेध, बाल विवाह निषेध, समान वेतन, अभद्र तरीके से महिला की प्रस्तुति और गर्भ में लिंग परीक्षण आदि महिला विषय क कई विधेयक को अंजाम दिया।[8]

हालांकि संवैधानिक-कानूनी संरचना नारी की समानता के अधिकार को प्रोत्साह देता है और उनकी विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखता है, परंतु उन्हे मूर्त रूप मिला पंचवर्शीय योजनाओं के माध्यम से। पांचवीं पंचवर्षीय योजनाओं तक सरकार केवल महिलाओं के जनहित की बात करती थी। छठी योजना में पहली बार विकास का मुद्दा आया जिसमें विशेषत: स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार की बात की गई। सातवी योजना में महिलाओं के प्रत्यक्ष लाभ की बात आई। आठवीं योजना में नारी सशक्तीकरण पर बल दिया गया। नौवीं योजना में सामाजिक परिवर्तन और विकास के माध्यम के रूप में नारी सशक्तीकरण पर बल दिया गया ताकि वे हर क्षेत्र में पुरुष की सहभागी बनकर अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर सके। दसवीं योजना का उद्देश्य सरकार के विभिन्न अंगों को महिलाओं के प्रति विशेष रूप से जागृति करना था। इसके साथ ही निम्नलिखित कारणों से यह योजना सामाजिक परिवर्तन तथा विकास के माध्यम हेतु नारी-सशक्तीकरण की प्रक्रिया को जारी रखना चाहती थी: (क) समाजिक सशक्तीकरण (ख) जन्डर बजटिंग एवं ऑडिटिंग की अवधारणा के माध्यम से आर्थिक सशक्तीकरण (ग) महिलाओं के हितार्थ न्याय प्रक्रिया ताकि लिंग भेद समाप्त हो सके तथा जीवन के हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों के समान अपने को स्वच्छन्द महसूस कर सके। नारी सशक्तीकरण की दिशा में सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा उठाए गए नये कदम से नीतियों एवं दृष्टिकोण में व्यावहारिक परिवर्तन आया। परिणामस्वरूप सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर ध्यान देने के साथ-साथ लोक नीति एवं संस्थागत व्यवस्था के स्तर पर सुधारवादी प्रयास तथा न्यायिक सुधार हुए।[9] महिला मानवाधिकार की सुरक्षा सहित महिलाओं के जनहित की देख-रेख के उद्देश्य से नोडल एजेंसी के रूप में 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ। इस आयोग को निम्नलिखित क्षेत्रों में वृहत अधिकार प्राप्त है:

* वेतन की समानता और वोकेशनल ट्रेनिंग एवं तकनीक के प्रयोग से आर्थिक सशक्तीकरण करना।
* निचले स्तर से संसद तक विधायिका तथा निर्णय के लिए उत्तरदायी संस्थाओं में प्रतिनिधित्व के द्वारा राजनीतिक सशक्तीकरण करना।
* कानून की समीक्षा, त्वरित न्याय, बंदी के लिए न्याय प्रक्रिया, शिकायतों का निपटारा एवं पुलिस और न्यायालय को महिलाओं के पक्ष में सचेत करने जैसे कई कानूनी मामलों को देखना।
* स्त्री भ्रूण हत्या एवं शिशु हत्या, स्त्री एवं बच्चों का व्यापार, अनुसूचित जाति एवं जनजाति महिलाओं की समस्या जैसे स्वास्थ्य और सामाजिक मामलों की देखरेख करना।
* विधवाओं की समस्याएँ, विशेषत: धार्मिक स्थलों पर पारिवारिक हिंसा से पीड़ित महिलाओं की समस्याएँ एवं भारत में महिलाओं के स्तर को ऊपर उठाना आदि।

महिलाओं के मानवाधिकार की सुरक्षा एवं प्रोत्साहन में भारत सरकार के कार्य नीतिगत घोषणाओं तथा निर्धारित कार्यक्रम की रूपरेखा की तुलना में तुच्छ ही कहे जा सकते हैं। हिंसा और महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध हम तथ्य को पुष्ट करते हैं कि

सिद्धांत और वास्तविकता में जमीन-आसमान का अंतर है।[10] इस स्थिति में एक मात्र रास्ता यही बचती है कि पूर्ण रूप से इन समस्याओं का हल ढूंढा जाए जिससे नीति और दृष्टिकोण में एक व्यावहारिक परिवर्तन हो और बदले में यह महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ जन नीति एवं संस्थागत व्यवस्था में सुधार लाए तथा न्याय सुधार संभव हो सके।

संदर्भ सूची

1. वी0 टी0 पाटिल, ह्यूमन राईट्स : थर्ड मिलेनियम विजन, ऑथर्स प्रसे, नई दिल्ली, 2001, पृं. 185
2. वी0 टी0 पाटिल, ह्यूमन राईट्स : थर्ड मिलेनियम विजन, ऑथर्स प्रसे, नई दिल्ली, 2001, पृं. 186
3. वी0 टी0 पाटिल, ह्यूमन राईट्स : थर्ड मिलेनियम विजन, ऑथर्स प्रसे, नई दिल्ली, 2001, पृं. 187
4. के0 राजू एण्ड के0 सत्यनारायाण, वीमेन, ह्यूमन राईट्स एण्ड रूरल डेवलमेंट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2002, पृं. 132
5. गुरचरण सिंह, ह्यूमन राईट्स एण्ड इमेनसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृं. 147
6. गुरचरण सिंह, ह्यूमन राईट्स एण्ड इमेनसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृं. 147
7. मालती थल्लपन, ह्यूमन राईट्स एण्ड इमेनसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया, पुडु बुक्स, पांडिचेरी, 1998, पृं. 149
8. मालती थल्लपन, ह्यूमन राईट्स एण्ड इमेनसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया, पुडु बुक्स, पांडिचेरी, 1998, पृं. 149
9. एस0 के0 वर्मा0 जेण्डर एण्ड इक्वालिटी : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस इन इंडिया, रीजेन्सी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृं. 98
10. एस0 के0 वर्मा0 जेण्डर एण्ड इक्वालिटी : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस इन इंडिया, रीजेन्सी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृं. 98

मुगलकालीन भू-राजस्व व्यवस्थाः एक अध्ययन

डॉ० संजय कुमार आजाद

एम० ए०, पीएच०-डी०, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रस्तावना

मुगलकाल में भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। शासक के लिए विशाल सेना का प्रबन्ध करने, शान-शौकत पूर्ण एवं विलासमय जीवन व्यतीत करने, विशाल प्रशासन को संचालित करने, अपने उमरा वर्ग के जीवन स्तर को उच्च बनाये रखने तथा अपने व्यक्तिगत राजनीतिक आदर्शों को प्राप्त करने हेतु आपार धन व्यय करना पड़ता था। राज्य को भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य स्रोतों जैसे जजिया, जकात, खम्स, गनीमद (युद्ध से प्राप्त माल का 1/5 भाग), अमीरों की मृत्यु पर राजसत् की गई उनकी सम्पत्ति, वस्तुओं पर एकाधिकार, नमक कर, चुँगियों, खानों से आय, टकसालों से आय, उपहार में प्राप्त धन इत्यादि से आय हो जाती थी।[1] परन्तु भू-राजस्व से प्राप्त धन की तुलना में शेष स्रोतों से प्राप्त आय की मात्र बहुत ही कम होती थी। अतः भू-राजस्व ही साम्राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होने के कारण मुगल शासकों ने दिल्ली के सुल्तानों की भांति भू-राजस्व को अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए इस व्यवस्था की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। मुगल साम्राज्य के प्रथम शासक बाबर नें पूर्वकाल से चली आ रही भू-राजस्व-व्यवस्था को समय न मिलने के कारण पूर्व की भाँति यथावत् बनाये रखा और साम्राज्य की विविध प्रशासनिक इकाईयों से स्थानीय अधिकारी पूर्ववत भू-राजस्व वसूली करते रहे। बाबर ने अपने साम्राज्य का कुछ भू-भाग मुगल अमीरों तथा कुछ अफगान अमीरों को जाग़ीर के रूप में प्रदान किया।[2] कन्नौज से बिहार तक के प्रदेशों की शासन-व्यवस्था अफगान 'वजहदारों' को प्रदान की गई, जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। 'वजहदार' वे लोग कहलाते थे, जिन्हें निश्चित क्षेत्र का भू-राजस्व प्रदान किया जाता था तथा वे उससे प्राप्त होने वाली धनराशि अपने परिवार तथा अपने सैनिकों पर व्यय करते थे।[3] इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अमीर थे जिन्हें कई परगनों के प्रशासन तथा उनकी भू-राजस्व की वसूली का उत्तरदायित्व प्रदान किया गया। साम्राज्य में कुछ ऐसे भी क्षेत्र थे, जिन्हें बाबर ने खालसा घोषित किया, परन्तु कहीं-कहीं उसने सम्पूर्ण प्रदेश के कुछ भाग को ही खालसा घोषित किया।[4] जहाँ जमींदारों का संबंध है बाबर ने प्रशासन में उनकी भी सहायता प्राप्त की। बाबर ने जब देखा कि 'वजहदार' भ्रष्ट होने लगे तथा उसे आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा तो उसने आदेश दिया कि उनके राजस्व आवंटन का 30 प्रतिशत वसूल किया जाये तथा वह धनराशि सेना पर खर्च की जाये।

हुमायूँ के शासनकाल में भी भू-राजस्व के क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया। परन्तु उसके राज्यकाल में भू-राजस्व की दर अकबर के समय से कम थी। हुमायूँ के राज्यकाल में एक 'खरबार' (आठ मन से कुछ अधिक) अनाज पर दो बाबरी तथा चार टंके भू-राजस्व के रूप में वसूल किया जाता था।[5] हुमायूँ को पराजित करने के पश्चात् शेरशाह सुल्तान बना। उसने भू-राजस्व के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सुधार किये। यह कहना अतिशयोक्ति नहोगा कि उसने अकबर कालीन भू-राजस्व सुधारों के लिए मार्ग दर्शन किया। शेरशाह ने 'गज-सिकन्दरी' के द्वारा भूमि की बीघों मे ं पैमाइश[6] कराई तथा प्रत्येक बीघा का क्षेत्रफल 3600 वर्ग गज था। उपज के आधार पर भूमि का उत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट तीन श्रेणियों में विभाजन किया गया।[7] कृषक से औसत उपज का एक तिहाई

भू-राजस्व के रूप में वसूल किया गया। कृषक तथा राज्य के बीच पट्टा[8] तथा कबूलियत की व्यवस्था की गई। अकाल तथा अन्य प्रकोपों से फसल के नष्ट होने पर राज्य की ओर से सहायता देने की व्यवस्था की गई।

परन्तु शेरशाह सूरी की मृत्योपरान्त साम्राज्य में अराजकता व्याप्त हो गई जिससे उसके भू-राजस्व संबंधी सुधार विनष्ट हो गये। अत: अकबर जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने भू-राजस्व के पुनर्गठन का प्रयास किया। इस उद्देश्य से उसने 1560 ई. में अब्दुल मजीद आसाफ खां को दीवान नियुक्त किया।[9] उसने अमीरो ं को प्रसन्न रखने के लिए उनकी जागीरों के काल्पनिक आँकड़े लिखवा डाले जिससे भविष्य में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुयीं तथा राजकोष को हानि हुई। अत: अकबर ने 1563 ई. में उसके स्थान पर एतमाद खां को खालसा भूमि का दीवान नियुक्त किया।[10] उसने सर्वप्रथम खालसा भूमि को जागीर भूमि से अलग किया। राजधनी के निकटवर्ती क्षेत्रों के मूल्यो को आधार मानकर सम्पूर्ण साम्राज्य के भू-राजस्व को नकदी में परिवर्तित किया गया। 1564 ई. में अकबर ने मुजफ्फर खां तुरबती[11] को दीवान के पद पर नियुक्त किया, जिसने काल्पनिक आँकड़े के स्थान पर वास्तविाक आँकड़े एकत्रित कराने का प्रयास किया। इस कार्य के लिए उसने 'कानूनगों' नियुक्त किये तथा वास्तविक आँकड़े के आधार पर भू-राजस्व का 'जमा हाल हासिल' नामक एक नवीन लेखा तैयार करवाया। 1568 ई. में शिहाबुद्दीन अहमद खां को खालसा भूमि का दीवान नियुक्त किया गया।[12] उसने प्रतिवर्ष भू-राजस्व निर्धारण की व्यय साध्य प्रणाली के स्थान पर नस्क प्रणाली चालू की, जिसके द्वारा शासन तथा कृषक के मध्य पारस्परिक बंदोबस्त की व्यवस्था की गई।

1570 ई. में जब गुफ्फार खाँ तुर्बती को दूसरी बार दीवान के पद पर नियुक्त किया गया तो उसने भू-राजस्व व्यवस्था के पुनर्गठन का निश्चय किया। अब उसने भूमि की पैमाइश तथा उसकी उपज के आधार पर भू-राजस्व निर्धारित करने का निर्णय लिया। 1523 ई. के बाद जागीर भूमि को कम करके एक बहुत बड़ा भू-भाग खालसा भूमि में परिवर्तित कर दिया गया।[13] भूमि की पैमाइश के लिए सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय के गज़ को अपनाया गया तथा 3600 वर्ग गज का एक बीघा निश्चित किया गया।[14] परन्तु उसमें जूट की रस्सी के स्थान पर लोहे की कड़ियों से जुड़े बास की कमचियों का प्रयोग किया, जिसका नाम 'जरीब' रखा गया जो रस्सी की भाँति घट-बढ़ नहीं सकता था।[15] साम्राज्य की खालसा भूमि पर 182 करोड़ी नियुक्त किए गए।[16] इनकी सहायता के लिए कारकुन एवं फोतदार नियुक्त थे। 1580 ई. तक राजस्व विभाग के पास पर्याप्त आँकड़े एकत्रित हो गए। इसी वर्ष साम्राज्य को बारह प्रान्तों में विभाजित किया गया।

भू-राजस्व निर्धारण करने के लिए भूमि को उपज के आधार पर चार वर्गों में विभाजित किया गया जिन्हें पोलज, परती, चाचर एव बंजर का नाम दिया गया।[17] 'पोलज' वह भूमि थी जो प्रत्येक वर्ष दो फसलें देती थी। 'परती' भूमि को एक फसल के पश्चात् बिना जोताई-बोआई के छोड़ दिया जाता था, जिससे कि उसमें उपजाऊ शक्ति आ सके। 'चाचर' वह भूमि थी, जिसे तीन-चार वर्षो तक बिना कृषि के छोड़ रखी जाती थी। 'बंजर' वह भूमि थी जिसे पाँच अथवा अधिक वर्षो तक परती रखी जाती थी। प्रथम दो प्रकार की भूमि अर्थात् पोलज एवं परती भूमि को उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया। इन तीनों श्रेणियों की भूमि से औसत उपज के आधार पर भू-राजस्व निर्धारित किया गया।

भू-राजस्व व्यवस्था में व्याप्त दोषों के उपचार के लिए 1580 ई. में आइने दहसाला[18] अथवा दस वर्षीय बंदोबस्त लागू किया गया। अबुल फज़ल के अनुसार अकबर के राज्यकाल के 15वें वर्ष से लेकर 24वें वर्ष (1571 से 1580 ई.) तक के आँकड़े एकत्रित किए गए जिनसे भू-राजस्व एवं मूल्यों को जोड़कर उसे 10 से विभाजित कर प्रतिवर्ष का औसत निकाला गया तथा इसे वार्षिक नकद भू-राजस्व के रूप में स्वीकार किया गया। अबुल फज़ल लिखते है कि इस प्रकार प्रत्येक परगने की पिछले दस वर्षो (हाले दहसाला) की उपज तथा उसके मूल्यों को एकत्रित किया गया और उसके दसवें भाग को वार्षिक भू-राजस्व (माले-हरसाला) के रूप में स्वीकार किया गया।[19] इस प्रकार अकबर के शासन के चौबीसवें वर्ष (1580 ई.) तक 'दस्तूरूल अमल[20] (नियम पुस्तिका) तैयार हो गये, जिसमें प्रत्येक बीघा का नकदी दर दिया हुआ था। प्रो0 इरफान हबीब के अनुसार ये दरें अकबर के 24वें वर्ष की नहीं थीं, अपितु 40वें वर्ष की थी।[21] इस बंदोबस्त में प्रत्येक वर्ष संशोधन किया जाता था तथा दस वर्षो की औसत उपज निकालने के लिए पहले वर्ष की उपज को घटाकर उसके स्थान पर 11वें वर्ष की उपज उसमें जोड़ दी जाती थी।[22] अकबर के राज्यकाल में अनुभव के आधार पर भू-राजस्व व्यवस्था में सुधार किये जाते रहे। 1582ई. में भू-राजस्व के लिए खालसा भूमि को चार भागों में विभाजित किया गया तथा प्रत्येक भाग के लिए राजस्व अधिकारी की नियुक्ति की गई। अकबर के राज्यकाल में 1588 ई. में भूमि की पैमाइश के लिए 'गज-ए-सिकदंरी' के स्थान पर 'गज-ए-इलाही'[23] का प्रयोग प्रारम्भ किया गया। इन दोनों में 39:41 का

अन्तर था। एक बीघा 3600 वर्ग गज का स्वीकार किया गया तथा बीघा का बीसवाँ भाग बिसवा कहलाता था। यद्यपि शाहजहाँ के राज्यकाल में भूमि की पैमाइश की इकाई को पुनः परिवर्तित करने का प्रयास किया गया परन्तु वह अस्थायी सिद्ध हुआ तथा मुगलकाल के अन्त तक साधारणतया 'बीघा-ए-इलाही[24] प्रचलित रहा।

अकबर के शासनकाल में भू-राजस्व वसूली के लिए जब्ती प्रणाली[25] का प्रचलन हुआ, जो भूमि सर्वेक्षण, भू-राजस्व निर्धारण के लिए दस्तूरूल अमल तथा जब्ती खसरे की तैयारी पर आधारित थी। साम्राज्य के अधिकतर भू-क्षेत्रों में यही प्रणाली प्रचलित थी। दूसरे दूस्तरूल अमल के द्वारा कर्मचारियों की मनमानी पर नियंत्रण लगाया जा सका। तीसरे, दस्तूरूल अमल के कारण वार्षिक भू-राजस्व की प्राप्ति में उतार चढ़ाव की सम्भावना का काफी सीमा तक अन्त हो गया। इस प्रणाली में कुछ दोष भी थे। उन क्षेत्रों में जहाँ भूमि समान श्रेणी की नही थी वहाँ इसे सफलतापूर्वक नहीं लागू किया जा सका। दूसरे उत्पादन में सदैव अनिश्चितता बनी रहती थी।

भू-राजस्व निर्धारण की दूसरी प्रमुख प्रणाली बटाई अथवा गल्लाबख्शी कहलाती थी।[26] 'आईन-ए-अकबरी में तीन प्रकार की बटाई का उल्लेख मिलता है- खेत बटाई, लाक बटाई एवं रास बटाई।[27] खेत बटाई में फसल के तैयार होते ही खेत में खड़ी फसल का विभाजन कर लिया जाता था। लाक बटाई में फसल को काटने के पश्चात खलिहान में लाया जाता था तथा अनाज निकाले बिना ही राज्य एवं किसान के बीच उसका बँटवारा कर लिया जाता था। 'रास बटाई' के अन्तर्गत खलिहान में फसल आने पर राज्य तथा किसान के बीच उपज के बीच बँटवारा कर लिया जाता था। भू-राजस्व की विभिन्न प्रणालियों में कनकूत अथवा दानाबन्दी प्रणाली भी प्रमुख थी।[28] इस प्रणाली के अन्तर्गत पहले उपज वाली भूमि का पैमाइश की जाती थी और फिर उसके अनुसार भूमि की उपज का अनुमान लगाया जाता था। भू-राजस्व की एक अन्य प्रणाली 'नस्क' भी है।[29] इस प्रणाली के अन्तर्गत न तो भूमि की पैमाइश होती और न तो फसलों का सामायिक विवरण ही तैयार किया जाता था।

राज्य की ओर से प्रत्येक कृषक को पट्टा दिया जाता था, जिसमें उसका नाम, उसकी भूमि तथा क्षेत्र, 'बोई गई फसल का विवरण, भू-राजस्व का अंकन इत्यादि का उल्लेख होता था। इसके बदले कृषक राज्य को कबूलियत प्रदान करता था जो एक प्रकार से स्वीकृत पत्र था। पट्टा तथा कबूलियत राज्य तथा कृषक के बीच एक प्रकार का समझौता था।[30] इससे यह प्रतीत होता है कि भू-राजस्व सीधे कृषक से वसूल किया जाता था। जहाँ तक भुगतान की पद्धति का संबन्ध है 'अमिल' को यह आदेश था कि यदि कृषक नकद नहीं देना चाहता तो अनाज के रूप में भुगतान स्वीकार कर लिया जाये।[31] प्रशासन की ओर से विशेष परिस्थितियों में कृषकों को सहायता भी प्रदान की जाती थी। अकाल पड़ने पर भू-राजस्व में छूट प्रदान की जाती थी तथा कृषकों को तकावी अथवा ऋण भी प्रदान किया जाता था जिस पर कोई ब्याज नहीं लिया जाता था।[32] शाहजहाँ के शासनकाल में 1630-31 के दुर्भिक्ष में बादशाह ने अहमदाबाद में भारी पैमाने पर भू-राजस्व माफ कर दिया था तथा लोगों को राहत पहुँचाने के उद्देश्य से लंगरखाने तथा दानगृह स्थापित कर दिये थे।[33] 1614 ई. में जब अति वर्षा के फलस्वरूप कश्मीर में फसल खराब हो गई तथा अनाज का अभाव हो गया तो बादशाह ने लोगों में एक लाख रुपया वितरित किये जाने तथा उनके भोजन के लिए लंगरखाने की स्थापना का आदेश दिया था।[34] औरंगजेब का समकालीन इतिहासकार ईश्वरदास नागर 'फुतूहात-ए-फिरोजशाही' में लिखते है कि 1688-89 ई. में सूबा हैदराबाद में सूखे के कारण बादशाह ने एक वर्ष के लिए जजिया तथा अन्य सभी करों की वसूली बन्द करने का आदेश दिया था।[35] जहाँगीर के शासनकाल में प्रशासकीय नियंत्रण ढ़ीला हो गया और इसी कारण भू-राजस्व व्यवस्था में ढ़ीलापन आ गया। कृषकों का राज्य से सीध संपर्क टूटने लगा। मुकद्दमों या जाग़ीरदारों की सेवाएँ भू-राजस्व वसूली के लिए पुनः ली जाने लगी। ये वसूलकर्ता कृषकों से भू-राजस्व के अतिरिक्त धन वसूल करने लगे। कृषकों का शोषण होने से उन्होंने खेती छोड़ दी। इससे राज्य की आय घटी। शाहजहाँ के समय में कृषकों की हालत खराब हो गयी। साम्राज्य की 70 प्रतिशत के लगभग कृषि-भूमि जागीरों में विभक्त हो गयीयही जाग़ीरदार ग्रामों से भूमि कर वसूल करते थे।[36] भू-राजस्व की दर 1/3 से बढ़कर 1/2 कर दी गई।[37] कृषकों को अब उस भूमि पर भी भू-राजस्व देना पड़ता था जिसे उसने परती छोड़ दिया था। इस प्रकार शाहजहाँ के समय में अकबरकालीन टोडरमल बन्दोबस्त समाप्त हो गया तथा 'ठेकेदारी प्रथा' जारी हो गई।[38]

औरंगजेब के शासनकाल में जब्ती प्रणाली लगभग समाप्त हो गयी। नस्क प्रणाली का व्यवहार बढ़ा, अर्थात् अनुमान के आधार पर तथा साधारण पैमाइश के आधार पर भू-राजस्व निश्चित होने लगा। औरंगजेब ने उपज का 1/2 भू-राजस्व वसूल किया।[39] उसके समय में भी जागीरदारी और ठेकेदारी प्रथा जारी रही। भू-राजस्व वसूली के समय कठोरता बरती जाती थी। राजस्व कर्मचारी बेईमानी और भ्रष्ट होने के साथ-साथ अत्याचारी भी हो गये थे।

अन्त में हम यह देखते हैं कि मुगल शासकों ने भू-राजस्व प्रशासन में विशेष रुचि ली जैसा कि हमें ज्ञात है कि मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने पहले से चली आ रही व्यवस्था को ही अपनाया वही हुमायूँ के समय में भी भू-राजस्व व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन देखा नहीं गया और इसके बाद शेरशाह के समय भू-राजस्व व्यवस्था में क्रांतिकारी सुधार हुआ तथा इसके बाद मुगलों की भू-राजस्व व्यवस्था का वास्तविक संस्थापक अकबर को ही माना गया। मुगलकालीन भू-राजस्व व्यवस्था को एक सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने का श्रेय अकबर को ही प्राप्त है। इसके बाद जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब के समय में धीरे-धीरे वह व्यवस्था शिथिल होती चली गई। अन्त में उत्तर मुगलकालीन बादशाहों के समय में तो यह व्यवस्था पूर्णतया समाप्त हो गई।

संदर्भ सूची

1. आर0पी0 त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, अनुवादक कालिदास कपूर, सेन्ट्रल बुक डिपो प्रकाशन, इलाहाबाद 1961, पृष्ठ- 108 एवं बी0एन0 लूनिया, अकबर महान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ- 382-83
2. एल0पी0 शर्मा, मध्यकालीन भारत, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा, तेईसवाँ संशोधित संस्करण : 2007, पृष्ठ- 307
3. लईक अहमद, मुगल कालीन भारत, प्रयाग पुस्तक भवन प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2007, पृष्ठ- 297
4. लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 297
5. लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 298
6. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, राजनीति, समाज और संस्कृति, अनुवादक नरेश, 'नदीम', ओरियंट ब्लैकस्वान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009 पृष्ठ- 218, एवं डॉ. आर0पी0 त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृष्ठ- 108
7. सतीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 219 एवं आर0पी0 त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 108
8. सतीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 219, आर0पी0 त्रिपाठी, पूर्वोक्त, 108
9. लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 298 एवं अकबरनामा भाग-2, पृष्ठ-111 (यथा उद्धृत) ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान भाग-2, अनुवादक डा0 भगवानदास गुप्त, शिवलाल अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, प्रथम हिन्दी संस्करण 1972, पृष्ठ- 181
10. ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबरनामा भाग-2 पूर्वोक्त, पृष्ठ- 183
11. ए0एल0 श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 183 एवं बी0एन0लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ 386-87
12. ए0एल0 श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 185 एवं आर0पी0त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 189
13. बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 387-88
14. बी0एन0 लूनिया पूर्वोक्त, पृष्ठ- 390
15. ए0एल0 श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 186 एवं आर0पी0 त्रिपाठी पूर्वोक्त, पृष्ठ-189, एवं आईन-ए-अकबरी, ब्लाखमैन अनुवादक भाग-2, पृष्ठ- 66-67 एवं डा0 इरफान हबीब, द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, पृष्ठ- 354
16. आर0पी0 त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 189
17. ए0एल0 श्रीवास्तव, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 187 एवं बी0एन0 लूनिया पृष्ठ- 391
18. सतीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 230 एवं आर0पी0त्रिपाठी, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 190 एवं डा0 ए0 एल0 श्रीवास्तव मुगलकालीन भारती पृष्ठ- 505 (यथा उद्धृत) डा0 एम0 पी0 श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत में प्रशासनिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन, शेखर प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2006-2007 पृष्ठ- 86-88
19. लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 299 एवं ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग-2 पृष्ठ- 189 एवं अकबरनामा, भाग-3, पृष्ठ- 282 (यथा उदधृत) ए0 एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान भाग-2, पृष्ठ- 189
20. बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 393 एवं अकबरनामा भाग-3, पृष्ठ- 381 (यथा उद्धृत) ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान भाग-2, पृष्ठ- 202
21. इरफान हबीबी, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, पृष्ठ- 354 (यथा उद्धृत) लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 300
22. डॉ. आई. एच0 कुरैशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द मुगल एम्पायर, पृष्ठ- 169 (यथा उद्धृत) डा0 एम0पी0 श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत में प्रशासनिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन, पृष्ठ- 89
23. ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान भाग-2, पृष्ठ- 185 एवं बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 390 एवं एस0ए0ए0 रिज़्वी द वण्डर दैट वाज इंडिया, खण्ड-2, पृष्ठ- 185, (यथा उद्धृत) डॉ. लईक अहमद, पूर्वोक्त पृष्ठ- 300

24. एस0 के0 पाण्डे, मध्यकालीन भारत, प्रयाग एकेडमी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2010-2011, पृष्ठ- 587 एवं डॉ. यू0 एन0 डे0, दि मुगल गवर्नमेण्ट, पृष्ठ- 122-123 एवं डॉ. इरफान हबीब, एग्रेरियन सिस्टम, पृष्ठ- 354 (यथा उद्धृत) डॉ. एम0पी0 श्रीवास्त, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 90
25. हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्कालीन भारत, भाग-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय प्रकाशन, दिल्ली, विश्वविद्यालय, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ- 395 एवं आर0पी0 त्रिपाठी मुस्लिम प्रशासन के कुछ पहलू, अनुवादक सुरेश मिश्र, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम हिन्दी स स्करण 2014, पृष्ठ- 264-66
26. बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 395 एवं आर0पी0 त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृष्ठ- 191 एवं सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत राजीनति, समाज और संस्कृति पृष्ठ- 230
27. बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 395
28. बी0एन0 लूनिया, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 395
29. आर0पी0 त्रिपाठी, मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृष्ठ- 191 एवं हरिश्चन्द्र वर्मा, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 398
30. ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग-2, पृष्ठ- 197 एवं एस0के0 पाण्डे, मध्यकालीन भारत पृष्ठ- 588-89
31. बी0एन0 लूनिया पूर्वोक्त, पृष्ठ 398
32. ए0एल0 श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग-2, पृष्ठ- 197
33. लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 302
34. बी0पी0 सक्सेना, हिस्ट्री ऑव शाहजहाँ ऑफ देहली, पृष्ठ- 212 (यथा उद्धृत) लईक अहमद पूर्वोक्त पृष्ठ- 302
35. ईश्वरदास नागर, अनुवाद तसनीम अहमद, फुतूहात-ए-आलमगीरी, पृष्ठ- 184 (यथा उद्धृत) लईक अहमद, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 303
36. एल0पी0 शर्मा, मध्यकालीन भारत, पृष्ठ- 312
37. ओंकारनाथ उपाध्याय, मध्यकालीन भारत का इतिहास, राम प्रसाद एण्ड संस प्रकाशन, आगरा-3, संस्करण 1990, पृष्ठ- 408
38. ओंकारनाथ उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 409 एवं एल0 पी0 शर्मा, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 312
39. ओंकारनाथ उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृष्ठ- 409

नए भारत में कौशल विकास की उभरती संभावनाएं एवं चुनौतियां (हरियाणा राज्य के संदर्भ में)

नीशू

एम.ए. (राजनीतिशास्त्र), नेट (यू.जी.सी.- DEC19U3853)
एम.डी.यू., रोहतक

सार

भारत ने हाल के वर्षों में तेजी से विकास देखा है, जो नए-युग के उद्योगों के विकास से प्रेरित है। क्रय शक्ति में वृद्धि के परिणामस्वरूप सेवा की गुणवत्ता के एक नए स्तर की मांग हुई है। बदलते आर्थिक परिवेश के साथ, भारत की युवा आबादी के कौशल सेटों को लागू करने और बढ़ावा देने पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि उन्नत और बेहतर स्तर वाले देश काम की दुनिया के अवसरों और चुनौतियों को अधिक प्रभावी ढंग से समायोजित करते हैं। भारत में शिक्षा और प्रशिक्षण पर जोर देने वाले जोरदार तनाव के बावजूद, अर्थव्यवस्था की बढ़ती जरूरतों और मांगों को पूरा करने के लिए कुशल जनशक्ति की कमी अभी भी है। यह अध्ययन भारत में कौशल विकास प्रणाली के सामने आने वाली चुनौतियों की पड़ताल करता है और उन समाधानों का प्रस्ताव करता है जिन्हें इस तरह की चुनौतियों को हल करने के लिए अपनाया जा सकता है। यह अध्ययन हरियाणा राज्य के संदर्भ में किया गया है।

कुंजी-शब्द: कौशल अंतर; कुशल जनशक्ति; कौशल विकास की पहल।

परिचय

वैश्विक अर्थव्यवस्था में, प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के साथ, श्रमिकों को उच्च स्तर के कौशल और ज्ञान की आवश्यकता होती है जो उन्हें अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक पूरा करने में सक्षम बनाएंगे ताकि आवश्यक गुणवत्ता मानकों को पूरा किया जा सके और मूल्य श्रृंखला प्रक्रिया की दक्षता में पूरा का पूरा वृद्धि हो सके। तेजी से तकनीकी परिवर्तनों, और आर्थिक गतिविधि की बढ़ती जटिलता के कारण, रोजगार तेजी से कौशल की कमी और इस तरह बेरोजगारी के लिए अग्रणी होते जा रहे हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण और शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है ताकि कार्यबल के कौशल को उन्नत बनाया जा सके ताकि उन्हें नई तकनीकों को अपनाने और लागू करने में सुविधा मिल सके। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए इस तरह की चुनौतियां अधिक हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) को आकर्षित करने, विदेशी व्यापार का विस्तार करने, और इस तरह औद्योगिक और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक कुशल कार्यबल की आवश्यकता है। कौशल और ज्ञान किसी भी राष्ट्र के लिए आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रेरक शक्ति हैं। उच्च और बेहतर कौशल वाले अर्थव्यवस्थाएं काम की दुनिया के अवसरों और चुनौतियों का अधिक प्रभावी ढंग से जवाब देती हैं। (जीओआई, 2009)। गुणवत्ता मानकों के सहमत सेट को बनाए रखते हुए आवश्यक कार्यों को सबसे कुशल तरीके से पूरा करने के लिए आवश्यक दक्षताओं के समूह के रूप में कौशल को परिभाषित किया जा सकता है। कौशल विकास उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा करने और गतिशील वैश्विक बाजार (मैकलेन, 2013) में प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित

करने के लिए आवश्यक कौशल, ज्ञान को व्यावसायिक या तकनीकी प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारियों को सशक्त बनाने का एक तरीका है। कौशल को मोटे तौर पर कठिन कौशल और नरम कौशल में वर्गीकृत किया जा सकता है। कठिन कौशल एक संगठन के मुख्य व्यवसाय से संबंधित तकनीकी क्षमताएं हैं उदा। ऑपरेटिंग मशीनरी, कंप्यूटर प्रोटोकॉल, वित्तीय प्रक्रिया, सुरक्षा मानक और बिक्री प्रशासन। इस तरह के कौशल आमतौर पर निरीक्षण, मात्र और माप के लिए आसान होते हैं और उन्हें व्यवस्थित रूप से सिखाया जा सकता है। इसके विपरीत, सॉफ्ट स्किल्स किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताएं हैं, जिसे निर्धारित नहीं किया जा सकता है। (राव, 2010)।

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी)- भारत के अनुसार, कौशल को आवश्यक प्रशिक्षण की डिग्री और अवधि के आधार पर चार स्तरों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कौशल स्तर 1 (अर्ध कुशल) उन कौशल को संदर्भित करता है जिन्हें अल्पकालिक पाठ्यक्रमों, केंद्रित हस्तक्षेपों और नौकरी के प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। कौशल स्तर 2 (कुशल) उन कौशल को संदभिंत करता है जो व्यवसाय के लिए विशिष्ट हैं और तकनीकी या व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। स्किल लेवल 3 (हाईली स्किल्ड) का तात्पर्य उच्च तकनीकी या व्यावसायिक संचालन से जुड़े कौशल से है और इसे डिग्री, डिप्लोमा और स्नातकोत्तर शिक्षा के बाद हासिल किया जा सकता है। स्किल लेवल 4 (स्पेशलाइजेशन विद स्पेशलाइजेशन) उच्च दक्षता के साथ कौशल को संदर्भित करता है जिसमें अनुसंधान और डिजाइन शामिल होते हैं जिन्हें डॉक्टरेट या कई वर्षों के कार्य अनुभव के माध्यम से हासिल किया जा सकता है।

भारत में कौशल विकास पहल

भारत सरकार ने कौशल विकास के लिए एक अच्छी तरह से परिभाषित ढांचे की आवश्यकता को मान्यता दी है और कौशल विकास की जिम्मेदारी लेने के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विभिन्न संगठनों का गठन किया है। कई एजेंसियां - राष्ट्रीय एजेंसियां, 17 मंत्रालय, कई सेक्टर कौशल परिषद (एसएससी), 35 राज्य कौशल विकास मिशन और कुछ अन्य उद्योग निकाय राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन को प्राप्त करने के लिए कार्य कर रहे हैं।

कौशल विकास पर प्रधानमंत्री की राष्ट्रीय परिषद्

सर्वोच्च समन्वय संस्थान, प्रधानमंत्री कौशल विकास पर राष्ट्रीय परिषद, नीति निर्देश और समीक्षा के लिए स्थापित किया गया था। इस परिषद् की अध्यक्षता प्रधानमंत्री के साथ मानव संसाधन विकास, वित्त, ग्रामीण विकास, भारी उद्योग, श्रम और रोजगार और आवास और शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रियों के साथ होती है। परिषद के पास कौशल प्रणालियों के माध्यम से 2022 तक 500 मिलियन कुशल लोगों को उत्पन्न करने का एक दृष्टिकोण है, जो गतिशील और अत्यधिक समावेशी होना चाहिए। कौंसिल नीतिगत उद्देश्य, शासन मॉडल, वित्तपोषण और कौशल विकास से संबंधित रणनीतियों को निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार है। यह योजना के विकास की भी समीक्षा करता है और मध्य पाठ्यक्रम सुधार का निर्देशन करता है, किसी भी अनुभाग या संपूर्ण कार्यक्रम या योजना के समावेश और समाप्ति का प्रबंधन करता है, और सार्वजनिक/निजी की पहलों का समन्वय करता है।

कौशल विकास पर राष्ट्रीय नीति

जैसा कि भारत सरकार ने 2022 तक 500 मिलियन लोगों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा है, इसलिए इसे साकार करने के लिए, श्रम और रोजगार मंत्रालय ने कौशल विकास पर एक राष्ट्रीय नीति तैयार की है। नीति ने उन भूमिकाओं को रेखांकित किया है जो विभिन्न हितधारकों यानी केंद्र और राज्य सरकार, उद्योगों, ट्रेड यूनियनों और समाज को भारत में कौशल संस्कृति की स्थापना के लिए खेलने की आवश्यकता होगी। नीति ने निर्दिष्ट किया कि सरकार को निजी क्षेत्र में कौशल विकास की पहलों का पूरक होना चाहिए और अल्पकालिक और उद्योग-प्रासंगिक पाठ्यक्रमों की आवश्यकता पर बल देना चाहिए। इसके अलावा इसकी वकालत की गई कि प्रशिक्षुता और ऑन-द-जॉब ट्रेनिंग के लिए बुनियादी ढांचा विकसित किया जाना चाहिए और मौजूदा प्रशिक्षण एक्सचेंजों को आवेदकों को प्रशिक्षण, प्रशिक्षुता और नौकरियों के लिए अधिकृत करने के लिए कैरियर मार्गदर्शन केंद्रों में सुधार किया जाना चाहिए। नीति ने एक प्रभावी मूल्यांकन और विश्वसनीय प्रमाणन प्रणाली की स्थापना और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षण संस्थानों के परिणाम पर जानकारी को सार्वजनिक करने का भी आह्वान किया।

राज्य कौशल विकास मिशन राज्य सरकारों या केंद्र शासित प्रदेशों ने अपने-अपने राज्यों में केंद्रित कौशल विकास के लिए अपने स्वयं के राज्य कौशल विकास मिशनों का गठन किया है। एसएसडीएम नौकरियों के निर्माण के लिए मुख्य क्षेत्रों की पहचान करके और उपयुक्त सरकारी संस्थानों और उद्योग और प्रशिक्षण प्रशिक्षण संगठनों के साथ काम करके कौशल विकास को बढ़ावा देने में एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक राज्य ने एक फेमवर्क लागू किया है जो कौशल विकास के लिए अपनी राज्य स्तर की आवश्यकताओं और दृष्टि को सबसे उपयुक्त बनाता है। जबकि कुछ राज्यों ने मुख्य सचिव या मुख्यमंत्री के तहत एक निगम के रूप में अपने एसएसडीएम का गठन किया है, अन्य लोगों ने इसे उपयुक्त राज्य सरकार के विभागों जैसे मानव संसाधन विकास, श्रम या योजना के तहत रखा है। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्य सरकारों ने बजट आवंटित करना और कौशल विकास के लिए वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करना शुरू कर दिया है।

चुनौतियां

अपर्याप्त आधारभूत संरचनाः एनएसडीसी ने 2022 तक भारत में 347 मिलियन कुशल कर्मियों की वृद्धिशील आवश्यकता की भविष्य वाणी की है, लेकिन अगले दशक तक देश को एक महत्वपूर्ण कौशल विकास चुनौती का सामना करना पड़ रहा है, हर साल लगभग 12 मिलियन लोगों के कार्यबल में शामिल होने की उम्मीद है। इसके विपरीत, देश में लगभग 4.3 मिलियन की कुल प्रशिक्षण क्षमता है, इस प्रकार कौशल विकास प्रशिक्षण के अवसर के लगभग 64 प्रतिशत नए लोगों को हर साल वंचित किया जाता है। इस अंतर को पाटने के लिए इस तरह के विशाल बुनियादी ढाँचे को तैयार करना एक बड़ी चुनौती है।

निम्न उद्योग इंटरफ़ेसः उद्योग-इंटरफ़ेस किसी भी शिक्षा/प्रशिक्षण संस्थान के लिए बहुत आवश्यक है क्योंकि यह स्थानीय क्षेत्र/क्षेत्र में कौशल की मांग के आकलन में मदद करता है और इस प्रकार पाठ्यक्रम सामग्री को अद्यतन करता है, शैक्षिक/प्रशिक्षण संस्थान बनाने में उद्योग लिंकेज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। छात्रों के दिमाग में एक मजबूत छवि के रूप में यह उन्हें सुनिश्चित करता है कि पाठ्यक्रम व्यावहारिक उद्योग की आवश्यकताओं के साथ प्रासंगिकता में है। अधिकांश प्रशिक्षण संस्थानों में निम्न उद्योग इंटरफ़ेस है, जिसके परिणामस्वरूप प्लेसमेंट रिकॉर्ड और वेतन की पेशकश के मामले में कौशल विकास क्षेत्र का प्रदर्शन खराब है।

कम छात्र जुटानाः आईटीआई और पॅलिटेक्निक जैसे कौशल संस्थानों में नामांकन उनकी नामांकन क्षमता की तुलना में कम रहता है। इस समस्या का मुख्य कारण रूढ़िवादी सोच, प्रवास के प्रति अनिच्छुक और प्रवेश स्तर पर कम वेतन के कारण प्रशिक्षित होने के लिए छात्र जुटना है। व्यावसायिक प्रशिक्षण छात्रों द्वारा वांछनीय नहीं माना जाता है और वे एक नियमित डिग्री पसंद करते हैं क्योंकि यह एक प्रमाण पत्र की तुलना में अधिक मूल्यवान है, अन्य चीजें समान हैं।

मूल्यांकन के बिना सीधे प्रवेशः प्रशिक्षण की निम्न गुणवत्ता का एक प्रमुख कारण छात्रों को कौशल प्रशिक्षण संस्थानों में प्रवेश देने से पहले पूर्व मूल्यांकन या प्रवेश परीक्षाओं की कम आवृत्ति है। बेतरतीब ढंग से प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चुनने से छात्रों की रुचियों और क्षमताओं के बीच एक बेमेल संबंध हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप छात्र पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं का सामना करने में असमर्थ होते हैं और इस प्रकार ड्रॅप आउट होते हैं।

मानकीकरण का अभावः पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण वितरण प्रणालियों का कोई मानकीकरण नहीं है, जिसके कारण विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों में पाठ्यक्रमों की तुलना करना संभव नहीं है, जो छात्रों के बीच कौशल के बारे में अस्पष्टता भी पैदा करता है जो किसी प्रशिक्षण संस्थान में एक विशेष पाठ्यक्रम के तहत प्रदान किया जाएगा। क्षमता परिणामों को मापने और मूल्यांकन के लिए मानकीख्रत ख्रष्टिकोण की कमी है।

कौशल प्रासंगिकताः कौशल संस्थानों के कुछ पाठ्यक्रमों का पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम उद्योग की आवश्यकताओं से मेल खाने वाले प्रशिक्षण प्रदान नहीं करता है जिसके कारण उनके खराब प्लेसमेंट रिकॉर्ड हैं। इस प्रकार इस तरह के पुराने और अनम्य पाठ्यक्रम कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रमों को पूरी तरह से निरर्थक बना देते हैं जिससे उनकी मांग से अधिक विशिष्ट कौशल की आपूर्ति होती है। पाठ्यक्रम को नियमित रूप से अपडेट करना और तदनुसार प्रशिक्षण बुनियादी ढांचे को अपग्रेड करना जटिल और महंगा है।

कैरियर परामर्शः अपर्याप्त प्लेसमेंट आँकड़े और प्रशिक्षण संस्थानों के कमजोर उद्योग लिंक के कारण छात्रों के लिए उचित कैरियर मार्गदर्शन की कमी है। संस्थान अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं लेकिन प्रशिक्षुओं को दी जाने वाली नौकरियां शहरी क्षेत्रों में होती हैं। नौकरी की प्रकृति और स्थान के बारे में जानकारी की अनुपस्थिति से, बिना किसी कौशल अधिग्रहण के विकल्प निकलता है।

उच्च लागत: उच्च प्रशिक्षण की लागत जो प्रशिक्षण के इच्छुक छात्रों में से कई लोगों द्वारा सस्ती नहीं है। योजना आयोग के अनुमान के अनुसार, कार्यबल में प्रवेश करने वाले लगभग 80 प्रतिशत व्यक्तियों के पास प्रशिक्षण का अवसर नहीं है। इसके अलावा, प्रशिक्षण पूरा होने के बाद असंतोषजनक प्लेसमेंट रिकॉर्ड और कम वेतन की पेशकश के कारण, उच्च प्रशिक्षण लागत लक्ष्य आबादी की अपील नहीं करती है।

हरियाणा में कौशल विकास मिशन

"युवा" हर राज्य की संपत्ति और स्तंभ है, इसलिए उन्हें मजबूत बनाने के लिए, हरियाणा कौशल विकास मिशन में, युवा कौशल को "बढ़ाने और उन्नयन" पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं और राज्य कौशल विकास और उद्यमिता पहल और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के माध्यम से उत्कृष्टता के लिए प्रयास करते हैं। हरियाणा सरकार युवाओं के लिए एक पारिस्थितिकी तंत्र बनाने के लिए प्रयास कर रही है जो प्रशिक्षण के माध्यम से अवसर प्रदान करेगा ताकि वे कुशल रोजगार के अवसरों का उपयोग कर सकें और स्वरोजगार उद्यम स्थापित कर सकें जो बेहतर गुणवत्ता वाले स्थायी जीवन प्राप्त करने में उनकी मदद करेंगे।

हरियाणा कौशल विकास मिशन (एचएसडीएम) मई 2015 में राज्य सरकार द्वारा स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य युवाओं को आर्थिक और भारत के विकास में भाग लेने के लिए सशक्त बनाना है। मिशन विभाग में कौशल विकास योजनाओं को तैयार करने और चलाने के लिए सरकार के भीतर संपर्क का एक एकल बिंदु है। HSDM एक एकीकृत मिशन के रूप में कार्य करता है जो राज्य के कौशल विकास लक्ष्य को प्राप्त करने में विभिन्न राज्य विभागों के प्रयासों को जोड़ता है। हरियाण में पहले से ही 80+ पाठ्यक्रम हैं, जो योजनाओं जैसे सूर्या, सक्षम, पीएमकेवीवाई आदि में हरियाणा के युवाओं के लिए उपलब्ध 15+ विभिन्न क्षेत्रों को शामिल करता है। मिशन में उद्यमिता योजना भी है जो वर्तमान में एचवीएसयू के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही है। पेशेवरों और अत्याधुनिक प्रशिक्षण भागीदारों की एक टीम से सुसज्जित, प्रत्येक कार्यक्रम को भविष्य के ज्ञान, कौशल विकसित करने और इसलिए रोजगार हासिल करने या एक सफल उद्यमी बनने की दृष्टि से लागू किया जाता है।

इस योजना के साथ, यह योजना उन लोगों को अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के लिए है जो अपने कैरियर को प्राप्त करना चाहते हैं जो उच्च स्तर पर है। यहां तक कि, हमारे देश में बहुत से लोग जो गरीबी रेखा से नीचे हैं मूल रूप से, कई कौशल योजना भारत सरकार द्वारा एक अनूठी और सबसे उत्कृष्ट अवधारणा है। उनका उद्देश्य भारतीय युवाओं को सार्थक, उद्योग प्रासंगिक और कौशल-आधारित प्रशिक्षण देना है। इस योजना के तहत, सभी प्रशिक्षुओं को सरकार और उद्योग द्वारा निःशुल्क प्रशिक्षण, प्रमाणन प्रदान किया जाएगा। इस बीच, यह सिर्फ प्रशिक्षण और मूल्यांकन की एक विजयी उपलब्धि को पसंद करता है, जो वास्तव में उन्हें बेहतर भविष्य के लिए अपनी नौकरी हासिल करने में मदद करेगा।

अगर हम स्किल डेवलपमेंट की बात करें फिर, देश भर में कौशल विकास और उद्यमिता कठिन कार्य अब तक अत्यधिक विभाजित हो चुके हैं। देश में कौशल विकास और उद्यमिता संवर्धन के पारिस्थितिकी तंत्र के त्वरित पुनर्गठन की आवश्यकता है, जो उद्योग की जरूरतों पर निर्भर करता है और इसकी आबादी को जीवन की सभ्य गुणवत्ता की सुविधा प्रदान करता है। मुख्य लक्ष्य भारतीय युवाओं की प्रतिभाओं के विकास के लिए अवसर, स्थान और गुंजाइश बनाना और उन क्षेत्रों में से अधिक विकसित करना है जो पहले से ही पिछले कई वर्षों से कौशल विकास के तहत रखे गए हैं। नए कार्यक्रम का लक्ष्य 2020 तक हमारे देश के 500 मिलियन युवाओं को प्रशिक्षण और कौशल विकास प्रदान करना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न योजनाएँ भी प्रस्तावित हैं। हमारी विकास दर को शिक्षण, स्वस्थ शैक्षणिक वातावरण, सौहार्दपूर्ण छात्र शिक्षक संबंध और सराहनीय प्लेसमेंट अवसरों के अनूठे पैटर्न के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। विभिन्न कॉर्पोरेट और सरकारी निकायों के साथ हरियाणा कौशल विकास मिशन भागीदार। इसके अलावा, प्रशिक्षुओं के विभिन्न क्षेत्रों से उद्योगों के साथ करार किया गया है। हरियाणा कौशल विकास मिशन ने भारत के 28 राज्यों में प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किए। भारत भर में 300+ कौशल प्रशिक्षण केंद्रों का एक नेटवर्क स्थापित किया है जो इस व्यापक विभाजन को उन लोगों के बीच विभाजित करने का प्रयास करता है जिनके पास अवसरों तक पहुंच है और जो नई अर्थव्यवस्था की नौकरियों से हाशिए पर जा रहे हैं।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्किल इंडिया ट्रेनिंग पार्टनर ऑफ एनएसडीसी, स्किल इंडिया, हरियाणा, पंजाब में फ्रैंचाइजी

केंद्र और राज्य सरकार ने युवाओं के कौशल को बढ़ाने के लिए काफी प्रयास किए हैं और कुशल कर्मचारियों की मांग और आपूर्ति के बीच एक बड़ा अंतर बना हुआ है। यह इस तथ्य से बढ़ जाता है कि अरब से अधिक लोगों की आबादी और 25 वर्षों

के औसत में बहुमत के साथ लगभग 300 मिलियन लोग नियोजित या बेरोजगार हैं। दूसरी तरफ उद्योग कुशल श्रम की तीव्र कमी में है। यह स्पष्ट रूप से उजागर करता है कि हमारी अधिकांश आबादी कुशल और इसलिए बेरोजगार है। भारत में आधुनिक औद्योगीकरण की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए भारत के युवाओं के कौशल को बढ़ाने के लिए एक प्राथमिक उद्देश्य के साथ कौशल विकास के राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना की गई है। आज स्थानीय स्तर पर नियोजित, राष्ट्रीय स्तर पर मांग की गई और विश्व स्तर पर तैयार किए गए कार्यबल के निर्माण के लिए कल के बदलते चेहरे के अलावा शुरू हो रहा है।

कौशल की आवश्यकता

भारत की जनसंख्या 1.21 बिलियन की बड़ी है और यह तेजी से बढ़ रही है और वैश्विक अर्थव्यवस्था में तेजी से एकीकृत हो रही है। भारत 15-59 वर्ष की आयु समूह में कार्य बल के अनुपात के साथ दुनिया के युवा देशों में से है, जो लगातार बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में, भारत में कुल कार्यबल का केवल 2 प्रतिशत ही कौशल प्रशिक्षण के तहत है। भारत के पास दुनिया की भविष्य की मांगों को पूरा करने का एक बड़ा अवसर है। भारत कुशल कार्यबल के लिए दुनिया भर में सोर्सिंग हब बन सकता है। भारत के लिए चुनौतियां बढ़ गई हैं, क्योंकि इसके लिए लाख से अधिक कार्यबल की तैयार आबादी तक पहुंचने की जरूरत है।

वित्त वर्ष 2018-19 के लिए भारत के सकल घरेलू उत्पाद में हरियाणा राज्य का योगदान लगभग 3.32 प्रतिशत था। हरियाणा एक प्रगतिशील कारोबारी माहौल बनाने के लिए जाना जाता है और व्यापारिक संगठनों को कई तरह के प्रोत्साहन प्रदान करता है। यह 2018 के रूप में व्यापार करने में भारत की सहजता में एक 3 जी सर्वश्रेष्ठ राज्य के रूप में रैंक किया गया है। कौशल विकास के लिए, सरकार ने 2015 में हरियाणा कौशल विकास मिशन (एचएसडीएम) का गठन किया जो विभिन्न योजनाओं में उपलब्ध 15+ क्षेत्रों को कवर करते हुए 80+ पाठ्यक्रमों के माध्यम से प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसमें उद्यमिता योजना भी है जो वर्तमान में एचवीएसयू (हरियाणा विश्वकर्मा कौशल विश्वविद्यालय) के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही है। इसके अलावा, पहल को सफलतापूर्वक चलाने के लिए वित्त मंत्री ने वित्त वर्ष 2019-20 के लिए कौशल विकास और औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए 680. 06 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं।

हरियाणा राज्य सरकार को PMKVY (2016-20) के राज्य सगाई घटकों को प्रभावी ढंग से लागू करने में सक्षम करने के लिए, भारत सरकार ने 2019-20 के लिए 32,37,56,924.40 रू. की राशि मंजूर की। इससे पहले वर्ष 2017-18 के लिए 21,56,99, 375 रू. स्वीकृत किया गया था। 2018-19 के लिए 32,33,41,200 रुपये स्वीकृत किया गया।

प्लेसमेंट आंकड़ों की रिपोर्ट करते हुए, विशेष परियोजनाओं के तहत 4,399 प्रमाणित उम्मीदवारों में से, 33 प्रतिशत उम्मीदवारों ने 50+ प्रशिक्षण केंद्रों से रोजगार प्राप्त किया और 2,01,486 प्रमाणित अभ्यर्थियों में से अल्पकालिक प्रशिक्षण में 60 प्रतिशत के करीब नौकरी की।

क्र.सं.		RPL	अल्पकालिक प्रशिक्षण	विशेष परियोजनाएं
1	उत्तीर्ण उम्मीदवार	133694	243342	9320
2	चल रहे प्रशिक्षण	847	6253	1673
3	प्रशिक्षित उम्मीदवार	132847	237089	7647
4	असेस्ड उम्मीदवार	107414	220328	5364
5	उत्तीर्ण अभ्यर्थी	101994	201486	4399
6	प्लेसमेंट	-	119,466	1430
7	प्रशिक्षण केंद्र	1845	853	55
8	प्रशिक्षण पार्टनर्स	58	333	18
9	जॅब रोल्स	197	133	47

अनुशंसाएँ

विश्लेषण के आधार पर, प्रशिक्षण की गुणवत्ता में सुधार और भारत में कौशल अंतर को कम करने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की जाती हैं।

प्रशिक्षण संस्थानों का मूल्यांकन

छात्रों को गुणवत्तापूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने की तत्काल आवश्यकता है ताकि उनकी रोजगार क्षमता बढ़े। प्रशिक्षण संस्थानों को अनुदान प्रदान करने के अलावा ऐसे संस्थानों के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने और बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कुछ तकनीकों का भी विकास करना चाहिए। इस तरह की एक पहल उनके प्रदर्शन के आधार पर प्रशिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए हो सकती है, जिसका मूल्यांकन कुछ मानदंडों के आधार पर किया जा सकता है। स्वीकार्य वेतन पैकेज, उद्योग के साथ कुल छात्रों की संख्या के साथ ऐसे संस्थानों को वित्तीय सहायता भी प्रदान की जा सकती है। यह गुणवत्ता प्रशिक्षण प्रदान करने और अधिक से अधिक छात्रों को रखने के लिए संस्थानों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ाने में मदद करेगा।

कौशल सर्वेक्षण

कौशल की मांग और आपूर्ति के बीच की खाई को पाटने के लिए, इस अंतर के मुख्य कारणों का पता लगाना आवश्यक है। नियोक्ताओं से सटीक कौशल की आवश्यकता को खोजने के लिए सर्वेक्षण किया जा सकता है। इस तरह के सर्वेक्षणों के विश्लेषण से प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पाठ्यक्रम संरचना तैयार करने में मदद मिलेगी और इस प्रकार मानकीकृत पाठ्यक्रम पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण वितरण प्रणाली विकसित की जा सकती है।

प्रबुद्ध छात्र

कोर्स पूरा होने के बाद छात्रों को मौजूदा प्रशिक्षण संस्थानों, पाठ्यक्रमों की पेशकश और कैरियर के अवसरों से अवगत कराया जाना चाहिए। इस तरह की जानकारी समाचार पत्रों, पत्रिकाओं या केंद्रीकृत पोर्टलों के माध्यम से उपलब्ध कराई जा सकती है, जो संस्थान की रैंकिंग के साथ सभी मान्यता प्राप्त संस्थानों, पाठ्यक्रमों की पेशकश, प्लेसमेंट रिकॉर्ड की सूची बनाते हैं। यह छात्रों को बाजार में उनकी रुचि और मांग के आधार पर सही संस्थान और पाठ्यक्रम चुनने में मदद करेगा। इसके अलावा यह उन धोखाधड़ी संस्थानों पर भी नजर रखने में मदद करेगा जो छात्रों को धोखा दे रहे हैं और विश्वसनीय नहीं हैं।

निष्कर्ष

यद्यपि भारत सरकार ने कौशल विकास के लिए एक अच्छी तरह से परिभाषित ढांचे की आवश्यकता को मान्यता दी है और कौशल विकास की जिम्मेदारी लेने के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विभिन्न संगठनों का गठन किया है, फिर भी कौशल संस्कृति को विकसित करने के लिए और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। भारत न केवल नियोक्ताओं पर, बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर भी कौशल अंतर का गंभीर प्रभाव हो सकता है। प्रमुख चिंताओं में से एक उत्पादकता और राजस्व का नुकसान है क्योंकि कुशल श्रम की कमी के कारण कई नौकरियां महत्वपूर्ण समय के लिए खाली रहती हैं। यह अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालता है कि कौशल अंतर को पाटने और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए कुशल कार्यबल बनाने के लिए सरकार और अन्य हितधारकों के लिए एक साथ काम करना कितना गंभीर है।

संदर्भ

* अग्रवाल, पी., और भट्ट, आर. (2011), वैश्वीकरण, भारत और दुनिया, नई दिल्ली: संकल्पना पब।
* चेनॅय, डी. (2012): स्किल डेवलपमेंट इन इंडिया, ए ट्रांसाफॉर्मिंग इन द मेकिंग। इंडिया इन्फ्रास्ट्रक्चर रिपोर्ट 2012, आईडीएफसी, 199-207।
* धार, ए. (2013, 15 जून)। 2028 तक भारत सबसे अधिक आबादी वाला देश: संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट, हिन्दू,

* दुग्गल, एस. (2014, 11 जून)। भारत को सशक्त बनाना। द पायनियर,/रास्ते/सशक्तिकरण (2009), राष्ट्रीय कौशल विकास नीति, भारत सरकार।
* मैक्लेन, आर. (2013)। एशिया-प्रशांत, डॉर्ड्रेक्ट: स्प्रिंगर के विकास में समावेशी और सतत विकास के लिए कौशल विकास।
* योजना आयोग (2013 ए)। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) रोजगार और कौशल विकास, योजना आयोग, भारत सरकार, 140
* योजना आयोग (2013 बी)। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) आर्थिक क्षेत्र, योजना आयोग, भारत सरकार, 69।
* राव, एम.एस. (2010)। रोजगार को बढ़ाने वाले सॉफ्ट स्किल: कॉरपोरेट के साथ कैंपस को जोड़ना, नई दिल्ली: इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।

1857 का विद्रोह और मगध क्षेत्र

डॉ० नीतीश कुमार विमल

नेट (यूजीसी), पीएच.डी (इतिहास)

1857 का विद्रोह और इसकी चिंगारी से पटना सबसे अधिक प्रज्जवलित था। पटना को गया और शाहाबाद से निरंतर ऊर्जा मिल रही थी। 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि, मूल स्रोत एवं प्रकृति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि बनारस के राजा चेत सिंह के विद्रोह का प्रभाव समीपवर्त्ती बिहार प्रान्त पर विशेष कर तत्कालीन शाहाबाद एवं गया जिला पर व्यापक रूप से पड़ा था।[1] अंग्रेज कम्पनी के अत्याचार से असंतुष्ट बिहार के भूस्वामियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूंका और चेत सिंह को मदद दी। इस तथ्य पर प्रकाश सारण के कलक्टर, ग्रूस की सूचना से भी मिलता है, जो उसने रेवन्यू चीफ रॉस को 29 अगस्त 1781 को भेजा था।[2] उसमें यह स्पष्ट रूप से अंकित था कि सासाराम के पूर्ववर्ती आमिल राजा कुली खाँ इन दिनों चेत सिंह के साथ था। उस जिले के अनेक निवासी और संभवत: राजपूतों की एक उपजाति उज्जैन उसके प्रति सच्ची निष्ठा रखती थी। गया जिला का टिकारी राज परिवार का पीताम्बर सिंह, चेत सिंह के घनिष्ठ संबंधी थे तथा उसके आश्रित काफी अधिक सैनिक थे। उसके पास कुछ घुड़सवार भी थे। पटना मिलिशिया के अधिकारी मेजर टार्डी को 06 अक्टूबर 1781 को लिखे पत्र में सूचित किया था कि पटना रेवन्यू चीफ के इलाकों में गया जिला के कुछ जमींदार एवं दूसरे लोग अपने आश्रितों को कम्पनी के सैनिक वर्दी एवं अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कर रहे थे। यह इस तथ्य का परिचायक है कि गया जिला के जमींदार अंग्रेजी सरकार की नीतियों के खिलाफ धीरे-धीरे अपने को तैयार कर रहे थे। इतना ही नहीं गया स्थित सरेया और कुटुम्बा के जमींदार नारायण सिंह ने भी सासाराम पहाड़ियों के क्षेत्र में रामनगर के समीप कम्पनी के सैनिकों की गतिविधियों में बाध डाली थी।[3] इस अभियोग में उनको गिरफ्तार किया गया और 05 मार्च 1786 को उनको राजकीय बंदी के रूप में ढाका भेज दिया गया था। गया जिला स्थित नरहट एवं सामे के राजा अकबर अली खाँ ने भी इस समय कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह किया एवं कम्पनी को काफी परेशानी उठानी पड़ी थी।[4] 21 जनवरी 1798 को अंग्रेज ईस्ट इंडिया कम्पनी एवं अवध के सआदत अली के बीच संधि सम्पन्न होता है। इसके अनुसार सआदत अली को कम्पनी ने अवध के नवाब के रूप में मान्यता प्रदान किया। इस समझौते के फलस्वरूप अवध की गद्दी के एक दूसरे दावेदार वजीर अली को पेंशन दिया गया तथा उसे बनारस में निवास करने के लिए भेज दिया गया था। इस व्यवस्था से असंतुष्ट होकर वजीर अली ने अंग्रेजों के विरुद्ध अखिल भारतीय शाड्यंत्र की योजना का निर्माण किया। तत्कालीन पटना प्रमंडल के टिकारी राज के राजा मिनजीत सिंह भी इसमें सम्मिलित थे।[5] वास्तविकता यह थी कि 1857 के पूर्व भी कारणों से ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध गया जिला के अनेक भूस्वामियों में एवं बिहार में भीतर-भीतर व्यापक असंतोष फैला हुआ था। इस असंतोष के अपने कारण थे। 1845-46 में जब अंग्रेज प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध के दरम्यान सिख सेना के दुर्घर्ष प्रतिरोध के कारण किंचित गंभीर स्थिति में था, तथा कम्पनी सरकार के सभी साधन उत्तर-पश्चिमी सीमांत की ओर लगाए जा रहे थे, उन्हीं दिनों पटना में उसकी सत्ता पर आक्रमण एवं उसे उखाड़ फेंकने की योजना बनाई जा रही थी। इस संदर्भ में एक सैनिक अधिकारी ने 1857 में स्पष्ट किया था कि 1866 तक पटना के मुसलमान गया जिले के मुसलमानों के सहयोग से अभिजात्य सतलज नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में कम्पनी के उलझनों से लाभ उठाने का प्रयास कर रहा था।[6] दानापुर में पदस्थापित कुछ देशी सैनिक अधिकारियों एवं जवानों को विद्रोहियों में अपने पक्ष में लाने में सफलता प्राप्त कर ली थी।[7] तत्कालीन पटना प्रमंडल के कमिश्नर विलियम ट्रेलर ने भी स्पष्ट किया था कि कुछ वर्षो से पटना नगर असंतोष एवं दुरभिसंधियों का अड्डा बन गया था। 1846 में एक खतरनाक शाड्यंत्र का भंडा फोड़ हुआ, उसमें पटना के आस-पास के जिलों, विशेषकर गया एवं सासाराम जिले के अनेक मुसलमान शामिल थे और इन लोगों ने देशी सैनिक जवानों को भड़काने का प्रयास किया। पटना और इसके आस-पास में फैले विद्रोह में अंग्रेज विरोधी नीति ही मुख्य कारक थे, कौमी प्रश्न तकरीबन गौण थे। दोनों कामों के लोग एक तरह के ही प्रश्न से संबोधित हो रहे थे। यद्यपि इसकी ब्रिटिश व्याख्या कौमी कलर

को ही तवज्जो दे रहे थे। 1846 के शाड्यंत्र के संबंध में यह कथन 1846 का शाड्यंत्र कहीं अधिक व्यापक शांड्यंत्र का भाग मात्र था। इस शाड्यंत्र का उद्देश्य अंग्रेजी सत्ता को तथा बरतानवी शासन को निर्मूल कर मुसलमान राजवंश की पुनर्स्थापना करना था।[8] गया जिला के अनेक भूस्वामियों पर इस शाड्यंत्र में सम्मिलित रहने का संदेह किया गया था।[9] 1857 के पूर्व की घटनाएँ 1857 के विद्रोह को राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में युक्तिसंगत बनाते हैं। 1846 का शाड्यंत्र हो या 1857 का विद्रोह सबमें ब्रिटिश राज की नीतियों के प्रति जनाक्रोश ही था, जो स्थानीय स्तर पर स्थानीय स्वरूप में सामने आ रहे थे। ब्रिटिश शासन के आरंभिक काल से ही भारतीयों को विपरीत को विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था और औपनिवेशिक शासन में भारतीय सामाजिक संरचना को तकरीबन हर पहलू नजर अंदाज होते चले गये। समाजिक संरचना का पहली बार सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में निरंतर और तेज अवरोध का सामना करना पड़ रहा था। गया जिले के कई स्थानों पर सैनिक के विप्लव ने आंशिक जनव्यापी विद्रोह का स्वरूप ग्रहण कर लिया था।[10] 1857 का विद्रोह जिसमें गया जिला भी सक्रिय रहा था, महज सैनिक विद्रोह नहीं था। तत्कालीन सैनिक पदाधिकारियों के विवरण से भी इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। अनेक सैनिक पदाधिकारियों ने स्वीकार किया है कि सर्वप्रथम संकट प्रस्तुत हुआ सैनिक विद्रोह के रूप में, फिर तेजी से उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया। अनेक स्थानीय तत्व इसमें शामिल होते गये और इसकी ब्रिटिश विरोधी भावना प्रबल होती गयी। ब्रिटिश विरोध की यह भावना गया जिला के विभिन्न क्षेत्रों में 1857 के पूर्व ही अन्तर्धारा के रूप में विराजमान था।[11] विद्रोह की शुरुआत के साथ ही गया जिले सभी भाग में इस विद्रोह की चिनगारियाँ फैलने लगी। पटना के कमिश्नर ने व्रिदोहियों को दबाने के लिए एवं स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये। विलियम टेलर ने मई 1857 में ही गया के स्थानीय प्रशासकों को आदेश दिया कि नगर को सुरक्षित रखने के लिए हर संभव प्रयास किया जाए।[12] काये ने स्पष्ट किया कि जून 1857 तक यूरोपीय अत्यधिक आतंकित हो गये थे। गया के अंदरूनी भागों में भी विद्रोहियों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था तथा गया नगर के निवासियों में आतंक का वातावरण फैल गया था। प्रमंडल आयुक्त ने स्थिति से निपटने के लिए लेफ्टिनेंट गवर्नर से स्थानीय पुलिस दल के गठन का प्रस्ताव किया था। आवश्यकता पड़ने पर उसमें वृद्धि की जा सकती थी। 12 जून 1857 को गया के स्थानीय कार्यपालक पदाधिकारियों को सूचित किया गया कि वे अतिरिक्त आरक्षी दल का यथाशीघ्र संघटन करें। इस आदेश के अनुसार गया जिले के प्रत्येक प्रशासनिक इकाइयों में अतिरिक्त आरक्षी दल का व्यवस्था किया गया। दल में भर्ती किये गये अधिकांश जवान दलित समुदाय यथा दुसाध, चमार आदि ही थे।[13] ऊँच जाति के लोगों को पुलिस बल में भर्ती नहीं किया गया था। उनको तलवार, ढाल एवं बरछा आदि प्रयोग करने का प्रशिक्षण दिया गया था। उनकी वर्दी उजली, पगड़ी लाल और कमरबंद थी। उनको 5 रुपये महीना दिया जाता था एवं दफादार को आठ रुपये तथा जमादार को दस रुपये दिया जाता था।[14] 30 जवानों पर एक जमादार और 25 पर एक दफादार की व्यवस्था की गयी थी। शेरघाटी में आतंक का वातावरण अधिक था। अतः शेरघाटी के सभी डिप्टी मजिस्ट्रेट ने प्रमंडलीय आयुक्त के आदेशानुसार तत्काल 50 जवानों को भर्ती किया। पटना प्रमंडल के कमिश्नर ने यह आदेश दिया कि जिन लोगों ने पहले ही जवानों को भी भर्ती कर लिया हो वे जाति, परिवार या ऐसा कुछ जो केंद्रीय दल के अनुपयुक्त हो, के आधार पर आवश्यक परिवर्तन कर सकते थे।[15] टेलर ने विभिन्न जिला अधिकारियों को विद्रोह को कठोरता से दबाने का आदेश दिया।[16] कमिश्नर के आदेश पर गया जिले के कुछ मुख्य मौलवियों को बर्खास्त कर दिया गया था।[17] लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा इस तरह का आदेश नहीं दिया गया था, बल्कि तत्कालीन कमिश्नर के आदेश पर ही इस कार्य को सम्पन्न किया गया था। फोरेस्टर ने इसे एक खेदजनक कार्रवाई कहा और लिखा कि उन्हें गिरफ्तार करने का तरीका सम्मानजनक नहीं कहा जा सकता तथा कार्रवाई सरासर विश्वासघात था।[18] अली करीम नामक प्रभावशाली व्यक्ति को, जो कुछ वर्षों से गया में निवास कर रहे थे, टेलर ने गिरफ्तार करने का असफल प्रयास किया।[19] उसके आदेश पर पटना के मजिस्ट्रेट लोविस ने अली करीम का पीछा किया किन्तु उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सका। ग्रामवासियों ने न केवल लोविस को कोई सहायता नहीं की बल्कि अनेक उपायों से ग्रामवासियों ने मजिस्ट्रेट को गिरफ्तारी में बाध पहुंचाई। कमिश्नर टेलर ने अली करीम की समस्त सम्पत्ति को जप्त करने का आदेश दिया, उसे जीवित या मृत पकड़ लाने के लिए पुरूस्कार 2,000 रुपये से बढ़ाकर 5,000 रुपये कर दिया था।[20] मौलवी अली करीम पटना से गोरखपुर चला गया और वहाँ अंग्रेजों के विरुद्ध वाले विद्रोही दल में सम्मिलित हो गया था। इस आन्दोलन के दौरान अंग्रेजों के लिए कुछ अन्य इलाकों में भी स्थिति खतरनाक बनी रही। जिला के नवादा, जहानाबाद, राजगीर, अमारूत आदि जगहों में विद्रोह की धारा प्रबल थी।[21] इन क्षेत्रों में विद्रोह का संचालन मुख्यतः मुस्लिम नेताओं के हाथ में केन्द्रित था।[22] इन क्षेत्रों में हैदर अली खाँ, अहमद अली खाँ, मेहदी अली खाँ, हुसैन बख्श खाँ, गुलाम अली खाँ, हुक्कु सिंह, नन्हकू सिंह तथा फतह सिंह विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे। ये लोग उत्साही नवयुवकों से सम्पर्क बनाते थे तथा उनको विद्रोह में सम्मिलित होने

की प्रेरणा देते थे। इन क्षेत्रों में रंगरूटों को भर्ती किया गया एवं विद्रोह को नेतृत्व देने वाले लोग आपस में मिलकर अपने को संगठित करते थे। ये लोग नवादा के निकट अंटीपुर मं एकत्रित हुए और वहाँ पर घोषणा किया कि राजगीर परगना में कम्पनी का राज खत्म हो गया है।[23] उमोना के नाना सिंह (जिनकी सम्पत्ति या जमींदारी मुख्यत: नवादा जिला में थी) कम्पनी के विरुद्ध बगावत पर उतर आये थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मगध के सम्पूर्ण क्षेत्र में 1857 के विद्रोह के पूर्व से ही ब्रिटिश विरोधी भावना अन्तर्धारा के रूप में विराजमान थी। 1857 के विद्रोह के अवसर पर यह अन्तर्धारा राष्ट्रीय धारा में एकीकृत हो गयी और समस्त मगध क्षेत्र 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह को व्यक्त करने लगा। मगध क्षेत्र में व्याप्त विद्रोह की भावना को 1857 की क्रांति के अवसर पर राष्ट्रीय अभिव्यक्ति मिली।

सहायक संदर्भ सूची

1. जे॰आर॰ हैड, अर्ली इंगलिश ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बिहार, पृ॰ 8
2. के॰के॰ दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, प्रथम भाग, पटना, 1974, पृ॰ 01
3. जे॰आर॰ हैड,पूर्वोद्धत
4. इंडियन हिस्टोरिकल रेकर्ड्स, 1937 के प्रोसिडिंग्स में डा. के.के. दत्त का आलेख 'दि कांस्पिरेसी ऑफ वजीर अली'
6. म्यूटिनी ऑफ दी बंगाल आर्मी, पृ॰ 174
7. टेवलर, आवर क्राइसिस
8. होम्स, हिस्ट्री ऑफ द इंडियन म्यूटिनी, लंदन, 1888, पृ॰ 88
9. एच॰पी॰ चट्टोपाधय दी सिपॉय म्यूटिनी ऑफ 1857, पृ॰ 130
10. पुलिस सुपरिटेन्डेंट, गया का पत्र पटना के कमिश्नर के नाम, दिनांक 24 जून 1857
11. 12 जून 1857 को टेलर का पत्र, शाहाबाद के मजिस्ट्रेट एवं सिवान और शेरघाटी के डिप्टी मजिस्ट्रेट के नाम
12. गया जिलाधिकारी का पत्र पटना कमिश्नर के नाम, दिनांक 24 जून 1857
13. ारेस्टर, हिस्ट्री ऑफ दी इंडियन म्यूटिनी, खंड-1, पृ॰ 401-402
14. गया के जिलाधिकारी का पत्र, पटना कमिश्नर के नाम, 2 अक्टूबर 1857
15. सैम्यूल्स का पत्र बंगाल सरकार के सचिव के नाम, 27 सितम्बर 1857

अस्पृश्यता आन्दोलन एवं महात्मा गांधी

डॉ० दिनेश व्यास

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

डॉ० अभय विक्रम सिंह

सहायक आचार्य, गाँधी एवं शांति अध्ययन विभाग,
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

भारतीय समाज में विदेशी शिक्षा के प्रभाव के कारण जो नव जागरण की लहर चल रही थी, उसमें महात्मा गांधी के प्रवेश के साथ ही एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। महात्मा गांधी से पूर्व हुए भारतीय राष्ट्रवाद के प्रणेताओं तथा सामाजिक एवं धार्मिक सुधारकों को सामान्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जाता है: पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी एवं प्रशंसक तथा परम्परावादी सुधारक। महात्मा गांधी की यह विशेषता है कि वे सच्चे अर्थों में भारतीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते थे किन्तु उन्होंने सामाजिक आवश्यकताओं का भी अपने लेखन में पूर्ण रूप से ध्यान रखा। वे पाश्चात्य प्रभाव से अछूते नहीं थे लेकिन भारतीयता में उनकी गहरी निष्ठा थी। यह निर्विवाद सत्य है कि वैष्णव धर्म की पृष्ठभूमि से महात्मा गांधी को अस्पृश्यता का विरोध करने की सशक्त प्रेरणा मिली थी। उनका परिवार एवं पूर्वज निष्ठावान वैष्णव थे। महात्मा गांधी का जन्म एक परम्परावादी परिवार में हुआ था। "उनकी माता पुतली बाई धर्मभीरू स्वभाव की थी और अछूतों के स्पर्श से दूर रहती थी।" इसी रूढ़िवादी परम्परा का पालन करने के लिए वे बचपन में महात्मा गांधी को समझाती थी। लेकिन महात्मा गांधी के मन में बचपन से यह जानने की उत्सुकता थी कि कुछ लोगों को अस्पृश्य क्यों माना जाता है? कभी महात्मा गांधी अपनी माता के पास आते और कहते थे "माँ मैंने आज एक टेढ़ को छुआ है।" माता सशंकित होकर पूछती क्यों? तब वे हंसकर कहते "नहीं माँ, मैं मजाक कर रहा था।"

गांधी के घर में साफाई के लिए ऊका नाम का हरिजन आता था। महात्मा गांधी बार-बार अपनी माता से पूछते थे कि ऊका के छूने से वे अपवित्र कैसे हो जायेंगे? कई बार वे जान बूझकर ऊका को छू लेते थे और माता से कह देते थे माता उन्हें तुरन्त नहाने को कहती और मोहन दास नहा लेते थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अति संवेदनशील पत्रकार गांधी की चेतना में अस्पृश्यता के अविवेक के प्रति बालपन से ही जागरूकता थी।

महात्मा गांधी जब ब्रिटेन पढ़ने जा रहे थे तो उनकी जाति वालों ने बम्बई में एक सभा की। इस सभा के अध्यक्ष पटेल महाजन ने उनसे कहा कि "हम जाति में प्रमुख है इसलिए तुम हमारी ताकत जानते हो। हमें खबर मिली है कि इंग्लैण्ड में तुम्हें मांस खाना पड़ेगा और शराब भी पीनी होगी। फिर तुम समुद्र यात्रा करोगे, जो हमारी जाति के नियमों के विरूद्ध है। इसलिए हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि तुम अपने निश्चय पर पुनर्विचार करो, नहीं तो तुम्हें बहुत भारी दण्ड भुगतना पड़ेगा। महात्मा गांधी ने उत्तर दिया- "मुझे खेद है कि मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकता। इंग्लैण्ड के बारे में मैंने बिल्कुल दूसरी बात सुनी है। वहां मांस और शराब की जरूरत नहीं होती है।" इस उत्तर से नाराज होकर सभा ने जातिवालों को आदेश दिया कि वे मोहनदास से सारे संबंध तोड़ लें। उनसे किसी प्रकार का संबंध रखने वाला व्यक्ति जाति से निकाल दिया जायेगा। इस घटना से यह स्पष्ट होता है कि उस समय हमारा समाज कितना रूढ़िवादी था। स्वयं के जाति से निकाल दिये जाने की घटना पर गांधी ने लिखा है कि "जातिवालों का तीव्र विरोध पहले की तरह है।" सब कुछ एक आदमी पर निर्भर है जो पूरी ताकत से कोशिश कर रहा है कि मैं जाति में प्रवेश न कर सकूं। मुझे

अपने लिए इतना दुःख नहीं है जितना उन जातिवालों के लिए जो भेड़ों की तरह एक आदमी के पीछे चलते हैं। उनके तर्कों में धर्म का कोई स्थान नहीं है। ऐसे लोगों से संबंध न रखना ही बेहतर है।

भारतीय समाज की स्थिति को समझने के उद्देश्य से हुए अनेक अध्ययनों में भारत की जटिल जातीय व्यवस्था परिलक्षित होती है। केरल में प्रचलित जाति प्रथा को समझाते हुए जिंकिन लिखती है– *"अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केंद्र होत हुए भी जाति के मामले में केरल के लोग सबसे ज्यादा कट्टर है। यहां का हिन्दूत्व ऐसा निराला है कि 1911 और 1921 के बीच 195 नई जातियों का आविष्कार हो चुका था। सारे भारत में अस्पृश्यता है किन्तु केरल में अगम्य और अदृश्यता भी है। अब्राह्मणों को ब्राह्मणों से बोलने से पहले अपना मुँह ढक लेना पड़ता था और सिर को नीचा रखना पड़ता था। जातियों की असंख्यता के कारण केरल का समाज छिन्न-भिन्न अवस्था में था। हर काम में जाति को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था।"*

दक्षिण भारत की जातीय स्थिति पर माइकेल मोफैट अपनी पुस्तक "ऐन आवटचेवल कम्प्यूनिटी इन साउथ इंडिया" में पेरियारों वर्ग को गांव के कुंए से पानी नहीं भरने दिया जाता। उनके अपने कुंए होते हैं जिसके पास वे पशुओं की हड्डियां बिखेर देते हैं ताकि कोई सवर्ण गलती से उनके कुएं से पानी न खींच ले। किसी सवर्ण से बात करते हुए इस अभागे को अपने मुंह के आगे हाथ रखना पड़ता है जिससे सवर्ण उसकी सांस से अशुद्ध न हो जाये। ब्राह्मण उन्हें देख नहीं सकते और किसी ब्राह्मण को दूर से देखते ही पेरियार को भाग कर छिप जाना पड़ता था। उनसे कोई भी काम करवाया जा सकता है और काम करते हुए उन्हें अपनी नजर नीची रखनी पड़ती है। यदि कोई पेरियार सवर्ण की रसोई की ओर देख लेता है तो तुरन्त सारे बर्तन तोड़ दिये जाते है।

हेरोल्ड आइजक ने भी लिखा है कि *"भंगी को शूद्र भी अछूत समझते हैं उन्हें गांव के बाहर रहने को मजबूर किया जाता है और गांव की सड़क पर चलते हुए इन्हें आवाज लगाते हुए चलना पड़ता है। कहीं-कहीं भंगियों को अपनी पगड़ी पर कौए का पंख लगाकर चलना पडता था, जिससे लोग उन्हें दूर से देखकर समझ जाये।"* हिन्दू समाज में दयनीय स्थिति होने के कारण हरिजनों की संस्कृति में अनेक मुस्लिम तत्वों का समावेश भी हुआ। इस सन्दर्भ में इबटसन ने 1881 ई. में पंजाब की जनगणना की रिपोर्ट में लिखा कि "भंगियों का एक धर्म नहीं है और वे हिन्दू से अधिक मुसलमान हैं। वे मुर्दो को गाड़ते है और मुसलमानों की तरह मुर्गो की बलि देते हैं। इसी तरह हरिजनों पर अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मूर्धन्य विद्वान डॉ. श्यामलाल ने लिखा है-उन्हें इतना नीच समझा जाता था कि उनकी परछाई भी सवर्ण को अशुद्ध कर देती थी। हरिजनों की स्थिति स्पष्ट समझने के लिए यहां डेन्जील इबटसन का एक और सन्दर्भ उल्लेखनीय है। उनके अनुसार सामाजिक दृष्टि से वे निम्नतम हैं वे सामाजिक सीढ़ी के निम्नतम स्तर पर भी खड़े नहीं होते।"

भारतीय इतिहास पर अतिसंक्षिप्त एवं उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों पर दृष्टि डालने पर हम कह सके हैं कि महात्मा गांधी के आगमन के पूर्व अत्यंजों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। महात्मा गांधी के अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन से पूर्व भी दलितोद्वार आन्दोलन क्षेत्रीय स्तर पर पनप रहा था। उदाहरणार्थ-महाराष्ट्र में करते सुधारक और बोलते सुधारक द्वारा समाज के परिशोधन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया गया। किन्तु महात्मा गांधी के प्रखर नेतृत्व के कारण ही अस्पृश्यता आन्दोलन ने राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण किया।

महात्मा गांधी के आलेखों का जाति एवं अस्पृश्यता के संबंध में मूल्यांकन के साथ-साथ इस बात पर विचार करना भी प्रासांगिक होगा कि वर्णाश्रम के सन्दर्भ में गांधी जी की क्या मान्यताएं रही है। प्रारम्भ में गांधी वर्ण, धर्म और जाति की मर्यादा को सम्पूर्ण भंग करने के पक्ष में नहीं थे। साथ ही अस्पृश्यता को दूर करने के लिए वह सहभोज एवं अर्न्तजातीय विवाह को आवश्यक नहीं मानते थे। महात्मा गांधी जातीय व्यवस्था का अनुमोदन करते हुए 'यंग इंडिया' में लिखते हैं कि *"जाति प्रथा का सौन्दर्य इस तरह में तथ्य निहित है कि यह अधिकृत धन का संपदा को अपना आधार नहीं बनाती। यह परिवार को अवधारणा का ही एक विषद रूप है। दोनों का आधार जन्म एवं रक्त संबंध से है। जाति किसी को छोटा या बड़ा नहीं बनाती। यह केवल अलग दृष्टिकोण और जीवन के अलग ढेरों को सूचित करती है। इसका अस्पृश्यता से कोई संबंध नहीं है किसी को अस्पृश्य बनाने का अर्थ उसे सामाजिक विकास के फूलों से वंचित करना है।"*

इसी प्रकार महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में वर्ण व्यवस्था का अनुमोदन करते हुए उसकी उपादेयता के सन्दर्भ में लिखा कि "वर्ण का अर्थ आजीविका का पूर्व निर्धारण है। व्यक्ति को अपनी आजीविका अर्जन करने के लिए अपने पूर्वजों का पेशा अपनाना

चाहिए। वर्ण एक प्रकार से विरासत का कानून "ला ऑफ हैरीडिटी" है। वर्ण व्यवस्था मनुष्य निर्मित नहीं है। वरन् यह तो सर्वथा दोष मुक्त प्राकृतिक नियम है। न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण नियम के अनुसार ही इसका प्रभाव है। जिस प्रकार गुरूत्वाकर्षण उसके नियम के खोजे जाने से पहले भी अस्तित्वभूत था, उसी प्रकार वर्ण व्यवस्था का नियम भी शाश्वत काल से था। हिन्दूओं ने इस नियम (ला) को ढूंढा और इस नियम के सहारे उन्होंने आध्यात्मिक जगत में आश्चर्य जनक उन्नति की। संसार के अन्य देश वह नहीं कर पाये।"

महात्मा गांधी के उपर्युक्त दोनों आलेखों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने वर्ण एवं जाति का अनुमोदन कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के कारण ही किया था। उनकी यह धारणा थी कि वर्ण व्यवस्था से आजीविका की समस्या से आसानी से निपटा जा सकता है। महात्मा गांधी के इन आलेखों से यह परिलक्षित होता है कि वे समाज में वर्ण संघर्ष को भी टालना चाहते थे। महात्मा गांधी समाज में अहिंसात्मक रूप में सुधार करके ही समाज का परिशोधन करना चाहते थे। उनके इन्हीं विचारों का अनुमोदन बाबू जगजीवनराम ने भी अपनी पुस्तक में किया है।

महात्मा गांधी के अस्पृश्यता निवारण में वर्ण व्यवस्था का विवेचन करते हुए डॉ. बाबू जगजीवन राम लिखते हैं कि "गांधी जी लगातार बहुत समय तक यंग इंडिया और हरिजन पत्रिका के माध्यम से अपनी इस मान्यता को प्रतिष्ठित करते रहे कि अस्पृश्यता एक अनेक सिरों वाला राक्षस है। वे अस्पृश्यता को मिटाकर चातुर्वर्ण्य को उसकी प्राचीन शुद्धता के साथ वापिस लाना चाहते थे। मनुष्य जन्मत: समान होते हैं लेकिन उनके स्वभाव, झुकाव, दृष्टिकोण और क्षमताओं में अन्तर रहता हैं, समाज में संघर्ष और स्पर्ध को बढ़ावा देने की अपेक्षा हजार गुना अच्छा यह होगा कि समाज में चातुर्वर्ण्य की स्थापना हो और हर व्यक्ति अपने पुश्तैनी कारोबार को उसी प्रकार स्वीकार ले जैसे वह समाज का नियंत्रण करने वाले अन्य प्राकृतिक नियमों को स्वीकार करता है।"

महात्मा गांधी "सन् 1920 के दशक में विभिन्न जातियों के लोगों के एक साथ खाने और परस्पर विवाह करने पर लगे प्रतिबंधों के अनुमोदन के लिए तैयार थे, क्योंकि वे इन्हें आत्म नियंत्रण का माध्यम मानते थे।" परन्तु आगे चलकर "जब उनके अनुभव में यह आया कि वर्ण व्यवस्था की प्राचीन शुद्धता अब वापस नहीं लौट सकती तब उन्होंने वर्ण एवं जाति को समाप्त करने के पक्ष में अपना मत दिया।" महात्मा गांधी ने 1930 के दशक में जाति प्रथा की खुलकर निंदा की। उन्होंने लिखा कि *"कोई व्यक्ति स्त्री या पुरुष कहां विवाह करता है किसके साथ खाता है, यह उसकी उन्मुक्त इच्छा पर छोड़ देना चाहिए।"* महात्मा गांधी ने सह भोज व अर्न्जातीय विवाह के पक्ष में तर्क देते हुए "हरिजन" में लिखा कि "यदि भारत एक है और अविभाज्य है तो इसमें निश्चय ही अनगिनत छोटे-छोटे समूहों को जन्म देने वाले कृत्रिम विभाजन नहीं होने चाहिए, जो न एक दूसरे के साथ बैठकर खाना खा सके और न परस्पर विवाह कर सकें।" महात्मा गांधी ने सन् 1946 में "एक चौका देने वाली घोषणा की कि-उनके सेवाग्राम स्थित आश्रम में कोई विवाह संस्कार तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक वर-वधू में से एक जन्म से अछूत न हो।" उन्होंने हिन्दू समाज की सामाजिक संरचना को ध्यान में रखते हुए जातीय व्यवस्था पर एकदम हमला नहीं किया क्योंकि वे जानते थे एकदम से किए गए प्रहार से सामाजिक वैमनस्यता पैदा हो जायेगी। सन् 1920 में उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा कि "मैं सिर्फ चार विभाजनों को मूलभूत नैसर्गिक और आवश्यक मानता हूँ। अनगिनत उपजातियां कभी सुविधाजनक हो जाती है, पर अक्सर रूकावटें पैदा करती है जितनी जल्दी वे परस्पर घुल-मिल जाएं उतना अच्छा है।" इसके ठीक 15 वर्षों बाद गांधी ने वर्ण व जातीय व्यवस्था पर अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किए कि "शास्त्रों में वर्णित वर्णाश्रम आज व्यवहार में अस्तित्वहीन है। आज की जाति प्रथा वर्णाश्रम से एकदम उलट है। सार्वजनिक राय से इसे जितनी जल्दी खत्म किया जाए उतना ही अच्छा है।" यहां पूर्णत: स्पष्ट हो गया है कि गांधी जातीय व्यवस्था को सार्वजनिक सहमति से ही समाप्त करना चाहते थे। वे सब वर्गों को विश्वास में लेकर जातीय व्यवस्था समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने 'हरिजन' में अछूतों के पक्ष में सार्वजनिक सुझाव देते हुए लिखा था कि "सभी हिन्दू स्वेच्छा से अपने आपको शूद्र कहें, वे शूद्र जो सामाजिक सीढ़ी में सबसे नीचे माने जाते हैं।"

अत्यंजों के प्रति गांधी की करूणा और दलितों के प्रति उनका अहिंसा प्रेरित सार्वभौमिक प्रेम उनके लेखन में खूब अच्छी तरह अभिव्यक्त हुआ है। वे अस्पृश्यता निवारण को स्वराज्य की अनिवार्य शर्त मानते थे। इस सन्दर्भ में उन्होंने नवजीवन में लिखा है कि "जो अपने आपको हिन्दू मानते हैं यदि वे सब अपने हृदय से अस्पृश्यता को त्याग करने के लिए तैयार नहीं है तो मैं अकेला होने पर भी यही कहूंगा कि हमें इस पाप को दूर किए बिना स्वराज्य नहीं मिलेगा और यदि हम इस पाप को दूर नहीं करेंगे तो हिन्दू

धर्म का नाश हो जायेगा। अस्पृश्यता को धर्म मानकार उससे चिपके रहकर हिन्दू धर्म को कायम रखना, गाय की रक्षा करना, अहिंसा का पालन करना और समत्व भाव बनाये रखना असंभव समझता हूँ। जैसे धूप के बिना अन्न नहीं पक सकता वैसे ही अस्पृश्यता रूपी अंधकार का नाश हुए बिना स्वराज्य रूपी अन्न की फसल कभी नहीं पक सकती।"

महात्मा गांधी ने अपने पत्रों के माध्यम से हिन्दू समाज में चली आ रही हजारों वर्षो पुरानी अस्पृश्यता की कुप्रथा को समाप्त करने के लिए सवर्ण जातियों को सप्रमाण यह समझाने का प्रयास किया कि अस्पृश्यता का कोई औचित्य नहीं है, न तो इसे शास्त्रों के आधार पर और न ही स्वास्थ्य के आधार पर इसे उचित ठहराया जा सकता हैं इसके विपक्ष में जब कुछ लोगों ने उनसे तर्क किया कि अछूत लोग गन्दे काम करते हैं उनको छूना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हो सकता है, महात्मा गांधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का अभिशाप मानते थे। वे इस कुप्रथा के कट्टर विरोधी थे। समाज के एक बहुत बड़े वर्ग के अमानवीय शोषण को देखकर गांधी का हृदय वेदना से भर उठा था। उनके शब्दों में उनकी आत्मिक पीड़ा व्यक्त हुई है जो दृष्टव्य है उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा "अस्पृश्यता सहस्त्रों फनों वाला सर्प है और जिसके एक-एक फन में विशैले दांत हैं। इसकी कोई परिभाषा संभव नहीं है। उसे मनु या अन्य प्राचीन स्मृतिकारों की आज्ञा से भी कुछ लेना देना नहीं है। उसकी अपनी निजी और स्थानीय स्मृतियां है। मसलम अल्मोड़ा की एक जाति जिसका धंधा तथा-कथित सनातन धर्म के अनुसार भी एकदम निदोर्ष है, अछूत मानी जाती है। इस जाति के लोग शिल्पी किसान कहे जाते हैं। बोरा नाम की एक दूसरी जाति कि भी यहां दुर्दशा है। यद्यपि यह न मुर्गा मांस खाती हैं, न शराब पीती है और न साफाई और स्वच्छता के नियमों की उपेक्षा ही करती है। परम्परा ने उन्हें अछूत बना दिया है। हिन्दू धर्म जो किसी बात पर सोचता ही नहीं है, आंख बंद कर ऐसी परम्पराओं का निर्वाह करता है। फलस्वरूप लोग, उसकी जैसी हंसी उड़ाई जानी चाहिए वैसी और उससे अधिक हंसी उड़ाते हैं।" महात्मा गांधी का यह मत था कि अस्पृश्यता का कलंक तभी दूर हो सकता है जब हिन्दू अपनी आत्मा की शुद्धता का संकल्प ले। उनकी यह धारणा भी थी "अस्पृश्यता को दूर करने का यह काम किसी भी कानूनी व्यवस्था के द्वारा नहीं किया जा सकता। यह तभी हो सकता है जब हिन्दूओं की आत्मा में इस बुराई के खिलाफ काम करने की प्रेरणा हो और वे स्वेच्छा से इस कलंक को मिटा दें। अस्पृश्यों के प्रति यह सवर्णो का परम कर्त्तव्य है।"

महात्मा गांधी अत्यंजों के उत्थान को सवर्ण जातियों का प्रायश्चित मानते थे। वे इस संदर्भ में 'नवजीवन' में लिखते है कि "यह कहना कि कोई अत्यंजों का उद्धार करता है" गांधी अस्पृश्यता के निवारण को सवर्ण जातियों की आत्म शुद्धि का एक यज्ञ मानते थे। उनकी यह धारणा थी कि सहस्त्रों वर्षो से अत्यंजों पर किए जा रहे शोषण के कलंक को दूर करने का यही मात्र उपाय हैं महात्मा गांधी हिन्दूओं में आत्मिक सुधार लाना चाहते थे। उन्हें औपचारिकताओं से किंचित मात्र भी संतुष्टि नहीं थी।

महात्मा गांधी के शब्दों में क्रांति का रूप छिपा हुआ था लेकिन उन पर नम्रता और संवेदना का ऐसा आवरण था जो भारतीय जन मानस के हृदय में सहजता से उतर गया "गांधी एक ओर तो जाति पर सीध प्रहार नहीं करते थे लेकिन दूसरी ओर अस्पृश्यता निवारण का सीधा तरीका वह यह बतलाते थे कि हर व्यक्ति स्वयं को हरिजन समझे। हिन्दूओं ने अपने ही समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को पतित बनाकर उसका अमानवीय शोषण किया था। इस घृणित पाप का प्रायश्चित यही था कि स्वर्ण हिन्दू अपने तथा-कथित उच्च पद से नीचे उतर आयें और स्वयं को अत्यंज भाईयों की सेवा में लगा दें वे स्वयं को हरिजन से उच्च न समझे। गांधी के इस कथन में जहां दार्शनिक ऊंचाई और मानवीयता थी वहां बुद्धिमानी और चालाकी भी थी।"

महात्मा गांधी का अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन पूर्णत: अहिंसा पर आधारित था। वे किसी भी प्रकार की हिंसा पर आधारित आन्दोलन के समर्थक नहीं थे। सामाजिक उत्पीड़न से मजबूर होकर कुछ जगह अछूत हिंसा का सहारा ले रहे थे। इस संदर्भ में महात्मा गांधी ने दोनों पक्षों को समझाते हुए यंग इंडिया में 30 जून 1927 को "हमारे कलंक" शीर्षक से लिखा कि "अस्पृश्यता निवारण की दिशा में काफी प्रगति हुई है लेकिन, अभी इससे कई गुना ज्यादा प्रगति अपेक्षित और आवश्यक हैं अधिकांश सुधार खून-खराब के बाद ही हो पायें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय ऐसी स्थिति आ जाती है कि दलितों में और अधिक सहने का धैर्य नहीं रह जाता है और फिर वे कानून को अपने हाथ में लेकर, दु:ख और क्रोध से उम्मत होकर, अत्याचारियों की तमाम गलतियों को खुद दोहराने लगे हैं।" मैं आशा करता हूँ कि तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दू समझ रहते अपने कदम वापिस ले लेंगे और दलित वर्गों के साथ न्याय करेंगे। इसमें अब काफी विलम्ब हो चुका है। साथ ही मैं यह भी आशा करता हूँ कि अगर वे अपनी गलती महसूस करके प्रायश्चित नहीं करते तो भी दलित वर्गों के लिए अत्याचारियों के खिलाफ विद्रोह करने जैसा कोई अविवेकपूर्ण

काम नहीं करेंगे। मुझे तो इसी आशा के साथ इस बुराई को दूर करने के लिए काम करना है। मुझे तो इस आशा से काम करते जाना है कि वे कष्ट सहन और आत्म शुद्धि की प्रक्रिया से गुजरते हुए अपने स्वत्व और अपने हिन्दूत्व को दुनिया के सामने प्रतिष्ठित करेंगे।"

महात्मा गांधी के उपर्युक्त लेखन से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि वे सामाजिक संघर्ष को हर कीमत पर टालने के प्रबल पक्षधर थे। उन्होंने अपने लेखन से दोनों वर्गों में सामंजस्य स्थापित करने का सदैव प्रयत्न किया। अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन दो समानान्तर परिप्रेक्ष्यों में चला। प्रथम परिप्रेक्ष्य सामाजिक था। उसके अन्तर्गत अछूतों को मंदिर प्रवेश, कुओं, तालाबों ओर सड़कों को अछूतों के लिए खुलवाने का प्रयास किया गया एवं इन्हें शिक्षित करने का भी प्रयास किया गया। द्वितीय परिप्रेक्ष्य कानूनी व राजनैतिक था। इसके अन्तर्गत सहस्त्रों वर्षों से अन्याय एवं शोषण के शिकार अछूतों के कानूनी अधिकारों के लिए संघर्ष किया गया। महात्मा गांधी के अतिरिक्त डॉ. अम्बेडकर एवं अन्य प्रबुद्ध नेताओं ने इस दिशा में विशिष्ट योगदान प्रदान किया।

उस काल में दक्षिण भारत में अत्यंजों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। वहीं अस्पृश्य मंदिर के चारों ओर बनी सड़क पर चल भी नहीं सकते थे। "कालीकट शहर में काली मंदिर के सामने की सड़क पर अस्पृश्यों का चलना मना था। वहां सड़क को अछूतों के लिए खोलने का सत्याग्रह चला। जिसको गांधी ने अपना अनुमोदन प्रदान किया। वायकोन सत्याग्रह केरल में 1924 में प्रारम्भ हुआ था।"

कांग्रेस ने बेलगांव अधिवेशन में "वायकोम सत्याग्रहियों के नाम धन्यवाद प्रस्ताव पास किया और त्रवणकोर सरकार से अपील की गई कि वह सार्वजनिक सड़कों को सभी जाति के लोगों के लिए खोल दें। केरल से लौटते हुए महात्मा गांधी त्रिवेन्द्रम में महारानी और दीवान से मिले। महात्मा गांधी से उनकी वार्ता सफल रही। 7 अप्रैल को राज्य सरकार ने निषेधज्ञा वापिस ली और आम सड़कों को सभी के लिए खोल दिया गया। वायकोम सत्याग्रह गांधी के नेतृत्व का पहला चरण था, जिसने भविष्य में होने वाले इसी आन्दोलन में गांधी के नेतृत्व को सुस्पष्ट और निश्चित बना दिया।"

ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने 17 अगस्त 1932 को अल्पसंख्यकों के आरक्षण के लिए एक कार्यक्रम की घोषणा की जिसे कम्प्यूनल अवार्ड कहा जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त दलितों को अल्पसंख्यक मान लिया था और उन्हें प्रथक निर्वाचन अधिकार दिए गए। महात्मा गांधी ने इसका जबरदस्त विरोध किया। इस अवार्ड के खिलाफ एक साहसिक निर्णय लेते हुए महात्मा गांधी ने 20 सितम्बर 1932 को यरवदा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। इस अवसर पर समाचार पत्र प्रतिनिधियों को दिए गए अपने साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि ***"जिसके लिए मैं जी रहा हूँ और जिसके लिए मुझे मृत्यु का वरण करने में भी हर्ष होगा वह है अस्पृश्यता की आमूल समाप्ति।"***

महात्मा गांधी के इस अनशन ने सरकार पर दबाव डालने के अतिरिक्त एक ऐसा विलक्षण वातावरण तैयार किया जिससे उनके सहकर्मियों, अनुयायियों और देशवासियों में अस्पृश्यता के खिलाफ जन चेतना उत्पन्न हुई। "सभी स्थानों पर लोगों ने सामूहिक उपवास रखे, कई मंदिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल दिए गए और लोगों ने सार्वजनिक सभाओं में अस्पृश्यता समाप्त करने की शपथ ली, लोग तथाकथित अछूतों के साथ बिना भेदभाव मिले।" महात्मा गांधी भी अपने अनशन के इस व्यापक प्रभाव से आश्चर्यचकित हुए थे। सी.एफ. एण्ड्रयूज़ को भेजे गए समुद्री तार में उन्होंने उसे सम्पूर्ण भारत में एक आधुनिक चमत्कार का एक आश्चर्यपूर्ण संप्रकाशन बताया।

महात्मा गांधी के इस अनशन से देश के अनेक नेता सहमत नहीं थे। नेहरू भी सहमत नहीं थे, उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "क्या गांधी जी को लोगों को इस तरह डाराने धमकाने का अधिकार है?" इसके विपरीत टैगोर ने तत्कालीन स्थिति में गांधी के अनशन का अनुमोदन किया और कहा कि "भारत की एकता तथा इसकी सामाजिक समग्रता की रक्षा हेतु मूल्यवान जीवन की बलि दे देना सर्वथा उपर्युक्त है।"

महात्मा गांधी के अनशन से पूर्व पृथक निर्वाचन मण्डल के प्रश्न पर आम सहमति के लिए बातचीत प्रारम्भ हो गई थी। "सप्रू, जयकर, राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद, देवदास तथा घनश्याम दास बिडला पूना पहुंचे और हरिजनों का प्रतिनिधित्व करने वाले नेताओं अम्बेडकर, सोलंकी तथा एम.सी. राजा, देवदास गांधी, राजभोग, बालू, गवार्ड, ठक्कर, बापा, सोलंकी, सीपी मेहता, गोखले और कायम थे।"

महात्मा गांधी ने अपना अनशन ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा समझौता स्वीकृत किए जाने के पश्चात् 27 सितम्बर को तोड़ा। समझौते के अनुसार पृथक निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था समाप्त कर दी गई और विधान मण्डलों में अछूतों के लिए 147 सुरक्षित स्थानों का प्रावधान किया गया।

महात्मा गांधी के अनशन के पश्चात् पूरे देश में 27 सितम्बर से दो अक्टूबर तक अस्पृश्यता उन्मूलन सप्ताह मनाया गया। 30 सितम्बर 1932 का हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। सेठ घनश्याम दास बिडला इसके अध्यक्ष बनाये गए एवं अमृत लाल ठक्कर को इसका सचिव बनाया गया। हरिजन सेवक संघ के प्रबंध मण्डल में एक भी अछूत को नहीं रखा गया था। महात्मा गांधी ने इस निर्णय की काफी आलोचना की गई थी।

महात्मा गांधी ने "नौ महीनों की यात्रा में 12504 मील की यात्रा की और हरिजन कोष के लिए उन्होंने आठ लाख रुपये एकत्रित किए।" उनकी हरिजन यात्रा 2 अगस्त 1934 को खत्म हुई थी। उनकी हरिजन यात्रा पर राजगोपालाचारी ने लिखा कि "अस्पृश्यता निवारण की क्रांति समाप्त हुई अब केवल अस्पृश्यता का भग्नावेश बचा है। बाबू जगजीवन राम के अनुसार "गांधी जातिगत भेदभाव को मिटा नहीं सके लेकिन अस्पृश्यता को सदियों से मिली जनस्वीकृति को उन्होंने समाप्त कर दिया। उन्होंने अछूतों को मुक्ति के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया।"

महात्मा गांधी अपनी हरिजन यात्रा में निरन्तर हरिजनों को मंदिर में प्रवेश का प्रयास भी कर रहे थे, लेकिन "तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के कानून हरिजनों के मंदिर प्रवेश के विरोधी थे। यदि कोई हरिजन मंदिर में प्रवेश करता तो पुजारी या किसी अन्य सर्वण की शिकायत पर वह गिरफ्तार हो सकता था।" इस कानूनी रूकावट को दूर करने के लिए मंदिर प्रवेश सम्बंधी विधेयकों का निर्माण हुआ। रंगा अय्यर द्वारा बनाया गया बिल सेंट्रल एसेम्बली के लिए था। वायसराय लार्ड वेलिंग्टन ने डॉ. सुब्बारायन के बिल को मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल मेंपेश करने की अनुमति नहीं दी। कारण यह दिया गया कि उसका विषय प्रान्तीय दायरे का न हो कर राष्ट्रीय महत्व का था, लेकिन रंगा अय्यर बिल को केंद्रिय एसेम्बली में प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी गई।" इस बिल (द अनटचेबिलिटी एबोलिशन बिल) के अनुसार मंदिर में जाने वाले और उस बस्ती के सवर्णो के बीच मतदान कराया जायेगा और यदि हरिजनों के पक्ष में बहुमत मिल जाए तो हरिजनों को मंदिर प्रवेश का अधिकार होगा।

श्री रंगा अय्यर (द अनटचेबिलिटी एबोलिशन बिल) से महामना पं. मदन मोहन मालवीय सहमत नहीं थे क्योंकि "वे सामाजिक एवं धार्मिक महत्व के प्रश्न पर कानून बनाए जाने के सर्वथा विरोध में थे।" महात्मा गांधी ने महामना मालवीय जी की बात से असहमति प्रकट करते हुए बडी विनम्रता से बिल के पक्ष में मदुरै के मंदिर का उदाहरण देते हुए लिखा कि "हिन्दु मतदाताओं ने बहुतम से उस मंदिर को खोल देने की इच्छा व्यक्त की है। लेकिन कानूनी बाध की वजह से न्यासी लोग मंदिर के द्वारा हरिजनों के लिए नहीं खोल सकते। कानून बनाकर उस बाध को दूर करना कया जोर-जबरदस्ती माना जायेगा। ...अतएव मेरा ख्याल है कि अनुज्ञापक और संशोधनात्मक कानून निर्माण के अलावा कोई चारा नहीं है।" उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है महात्मा गांधी अपने लेखन में न्यायसंगत तर्कों का सहारा लेकर अपने पाठकों के विवेक की जाग्रत करने का प्रयास किया ताकि वे बिल की वास्तविकता को समझ सकें। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए महात्मा गांधी ने आगे लिखा कि "इन विधेयकों का उद्देश्य किसी को किसी चीज के लिए बाध्य करना नहीं है, अपितु उनका उद्देश्य उस वर्तमान बाध्यकारिता को हटाना है।"

श्रीरंगा अय्यर का **"द अनटचेबिलिटी एबोलिशन बिल"** पारित नहीं हो पाया था। इस स्थिति से विक्षुब्ध होकर रंगा अय्यर ने कांग्रेस की कटु आलोचना की। इस बिल के पारित नहीं होने के पीछे कई कारण रहे थे जिनका यहां वर्णन करना प्रासंगिक नहीं होगा लेकिन इस सन्दर्भ में महात्मा गांधी ने एक आलेख "वह अभागा बिल" "हरिजन" में लिखा। इसमें उन्होंने कांग्रेस का पक्ष तो रखा ही साथ ही दृढ़ता से मंदिर प्रवेश की बात को भी दोहराया था। उन्होंने लिखा कि "मंदिर प्रवेश की लड़ाई तो जारी रखनी ही है। हरिजनों को दिया वचन भी पूरा करना ही है, और उनके लिए मंदिरो का अवश्य खुलवाना है। इस कानून के पास होने में कोई बाध न हो, ऐसी स्थिति के आने तक सुधारकों को राह देखनी चाहिए। किन्तु प्रतीक्षा से लाभ तो जाग्रत व्यक्ति ही उठा सकता है। उतावली में बिल को वापिस ले लेना खुद हमें सबक सिखाता है। निराश होने का कोई कारण नहीं है। अब दुगने प्रयत्नों की जरूरत है।"

महात्मा गांधी की उपर्युक्त पंक्तियों से सुस्पष्ट होता है कि "द अनटचेबिलिटी एबोलिशन बिल" के प्रकरण के बाद वे हरिजनों के मंदिर प्रवेश आन्दोलन को लेकर सुधारकों में किसी प्रकार की निराशा उत्पन्न नहीं होने देना चाहते थे। बल्कि उन्होंने अपने लेखन से सुधारकों को और तेजी से प्रयत्न करने के लिए अभिप्रेरित किया।

महात्मा गांधी द्वारा "अछूतो" को "हरिजन" सम्बोधित किए जाने के पीछे एक पवित्र भावना थी। महात्मा गांधी को इस शब्द के प्रयोग के सन्दर्भ में आपत्ति व्यक्त करते हुए एक सज्जन श्री एच.के. मलिक ने एक पत्र लिखा। इन सज्जन की यह धारणा थी कि "हरिजनों" को "दलित" ही सम्बोधित किया जाए। इस पत्र का उत्तर देते हुए महात्मा गांधी ने "हरिजन" में लिखा कि ".. . हजारों अस्पृश्यों को "अछूत", "अस्पृश्य" आदि नाम पसंद नहीं है, किन्तु यह "हरिजन" नाम पंसद है। इस बात को भी ध्यान में रखना है। हम सबका ध्येय एक ही है और वह यह है कि अस्पृश्यता को जड़-मूल से नष्ट कर देना है। जब वह मंगलमय दिन आयेगा, तब या तो "हरिजन" शब्द का लोप हो जायेगा या फिर हम सभी "हरिजन" अर्थात् हरि के भक्त कहलाने का गर्व अनुभव करेंगे, और ऊँच-नीच भाव का जहर हृदय से निकाल कर इस सुन्दर नाम के योग्य अपने को बना लेंगे।" महात्मा गांधी की उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि मानव जीवन में आधारभूत एकता में उनका प्रबल विश्वास था।

महात्मा गांधी के अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन के प्रमुख पक्षों में एक पक्ष हरजिनों का मंदिर प्रवेश का था। उनके इस दृष्टिकोण की यह कह कर आलोचना की गई कि मंदिर प्रवेश पर जितना धन खर्च किया जा रहा है उतना अगर हरिजनों पर खर्च किया जाए तो उनके जीवन स्तर में सुधार आयेगा लेकिन महात्मा गांधी इससे सहमत नहीं थे। इस सन्दर्भ में उन्होंने "हरिजन" में एक आलेख लिखा "मंदिर-प्रवेश बनाम आर्थिक उन्नति" इसमें उन्होंने लिखा "... यह कहना बिल्कुल गलत है कि मंदिर प्रवेश के प्रश्न से हरिजनों की आर्थिक उन्नति में बाध पहुँच रही है। मंदिर प्रवेश आर्थिक उन्नति में भी सहायक होगा। कारण यह है कि जब हरिजनों को मंदिरों में जाने का अधिकार मिल जायेगा, तो आर्थिक उन्नति के जो मार्ग आज हरिजनों के अलावा दूसरों के लिए खुले हुए है, वे हरिजनों के लिए भी अपने आप खुल जायेंगे।"

महात्मा गांधी भारत की सांस्कृतिक बहुलता से परिचित तो थे ही साथ ही वे विशाल भारतीय समाज के जटिल अर्न्तसंबंधी को भी पहचानते थे। इसी कारण से उन्होंने "हरिजन" के द्वारा मंदिर प्रवेश के लिए स्थानीय आन्दोलन चलाया। इस सन्दर्भ में उन्होंने सुधारकों को समझाते हुए "हरिजन" में लिखा "यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भिन्न-भिन्न जगहों का वांछित उद्देश्य साधने के लिए भिन्न-भिन्न तरीके ग्रहण किए जायें। ....हमारा विचार यह नहीं है कि एक साथ एक ही प्रकार का अखिल भारतीय आन्दोलन चलाया जाए। कहां कितने जोर से और किस तरीके से आन्दोलन चलाया जाए, यह तो हर जगह की अपनी परिस्थितियों का पर निर्भर करता है। कोई भी मंदिर खोला जाए इसके पहले व्यवहारित मतैक्य अपने पक्ष में कर लेना चाहिए। इसलिए जरूरत इस बात की है कि स्थानीय लोकमत को मंदिर-प्रवेश के पक्ष में कर लेने का अनवरत प्रयत्न किया जाए।" महात्मा गांधी की उपर्युक्त पंक्तियों से परिलक्षित होता है कि वे सुधारको को अभिप्रेरित कर स्थानीय आधार पर जनमत का निर्माण कर हरिजनों को मंदिर प्रवेश दिलाना चाहते थे।

महात्मा गांधी ने अपने एक लेख "आदर्श भंगी" में हरिजनों को समाज की सबसे महतवपूर्ण इकाई बताते हुए तुलना माँ से की। उन्होंने लिखा "माता बच्चों का मैला धोती है उन्हें स्वच्छ रखकर शरीर की रक्षा करती है उसकी प्रकार भंगी समाज का मैला साफ करके उसे स्वच्छ रख कर उसके शरीर की रक्षा करता है।" इसी लेख में ज्ञान होना चाहिए। मल की जांच पड़ताल करके आदर्श भंगी सम्बंधित व्यक्तियों को यह चेतावनी देगा, आपके मल में आज अमुख द्रव्य थे, इसलिए आप होशियार हो जाएं, आपके पेशाब में शक्कर थी, आपके मल में कमी थी आदि। इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति का अर्थ है, शौच शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। ऐसा आदर्श भंगी छोटे-छोटे गांवो और बड़े-बड़े शहरों में मल-मूत्र की व्यवस्था के सम्बंध में विशेष ज्ञान रखकर वहां के समाज का सलाहकार और पथ-प्रदर्शक होगा।

महात्मा गांधी के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि वे एक ऐसे हरिजन (भंगी) की परिकल्पना करते थे जिसे थोड़ा चिकित्सा शास्त्र का भी ज्ञान हो ताकि वह समाज के हित में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सके। हरिजन की इस नवीन भूमिका में निश्चय ही उसका शिक्षित होना अनिवार्य था। इससे उसके सामाजिक स्तर में सुधार आता और वह समाज की मुख्य धारा में शामिल हो जाता।

महात्मा गांधी समाज को परिष्कृत कर अस्पृश्यता का निवारण करना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने पत्रों के द्वारा विधान मण्डलों के चुनावों में अस्पृश्यता निवारण समर्थक प्रत्याशियों का ही समर्थन करने के लिए जन चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया। उन्होंने 09 जनवरी 1937 को "हरिजन" में लिखा था। "हरिजन-सेवक चुनावों के इस अवसर का उपयोग मतदाताओं को अस्पृश्यता की समस्या से अवगत कराने और उम्मीदवारों को ऐसी स्थिति में ला खड़ा कर सकने में, जिससे यह

बिल्कुल स्पष्ट हो जाये कि अमुक उम्मीदवार अस्पृश्यता विरोधी है अथवा समर्थक। वे उम्मीदवारों से इस तरह के प्रश्न पूछ सकते हैं क्या आप पूर्ण अस्पृश्यता निवारण के पक्ष में है?" क्या आप मंदिर प्रवेश पर रूढ़ि के आधार पर लगे कानूनी प्रतिबन्धों को समाप्त करने और ऐसा कानून बनवाने के पक्ष में है जिससे मंदिरों के अधिकारियों को ये छूट मिल जाये कि जहां सवर्ण हिन्दुओं का मत अनुकूल हो चुका हो वहां वे हरिजनों के लिए मंदिरों के द्वारा खोल दें? क्या आप सार्वजनिक कुओं, स्कूलों आदि द्वारा निर्बाध उपयोग के देश के सामान्य कानून पर अमल करवाने के पक्ष में है?

महात्मा गांधी की उपर्युक्त पंक्तियाँ से स्पष्ट है कि वे मतदाताओं को अभिप्रेरित कर ऐसे उम्मीदवारों को निधन मण्डलों में निर्वाचित करवाना चाहते थे जो अस्पृश्यता के मुखर विरोधी हो और विधान मण्डलों में अस्पृश्यता निवारण के लिए कानून बनाने में सहायता करें।

महात्मा गांधी के अस्पृश्यता निवारण के निरन्तर प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही त्रवणकोर के महाराजा ने अस्पृश्यों के लिए मंदिरों के द्वार खोलने की घोषणा करके अस्पृश्यता निवारण में एक नवीन युग का सूत्रपात किया। महात्मा गांधी ने त्रवणकोर राजा के इस कदम की प्रशंसा करत हुए इसे अन्य रियासतों के राजाओं के लिए अनुकरणीय उदाहरण बताया था। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा "... त्रवणकोर का यह सत्कार्य अन्यत्र भी यही सद्‌भावना पैदा करेगा और हिन्दु राज्य भी इसका अनुसरण करेंगे, और कोई वजह नहीं है कि वे ऐसा न करें। हिन्दु नरेशों का यह कर्तव्य है और उन्हें यह और कोई वजह नहीं है कि वे ऐसा न करें। हिन्दु नरेशों का यह कर्तव्य है और उन्हें यह विशेषाधिकार भी प्राप्त है कि वे ऐसी धार्मिक संहिता ऐसे धार्मिक नियम बनाये और लागू आवश्यकताओं के अनुकूल भी हो। इस कार्य के द्वारा वे न सिर्फ हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को जल्दी दूर करने में सहायक होंगे, बल्कि स्वयं हिन्दु-धर्म को भी निश्चित नाश से बचा सकेंगे। प्रत्येक हिन्दु राज्य में बसने वाले जिम्मेदार हिन्दुओं को मेरी सलाह है कि वे अपने राज्य के नरेशों और उनके सलाहकारों से प्रार्थना करें कि वे भी इस निहायत जरूरी सुधारों को अपने राज्य में फौरन जारी कर दें।"

"हरिजन सेवक संघ" के अध्यक्ष घनश्याम दास बिड़ला ने "हरिजनों के लिए आदर्श विद्यालय" खोलने का प्रस्ताव रखा था। महात्मा ने इसे "हरिजन" में 22 फरवरी 1942 को प्रकाशित करते हुए इसकी प्रशसां करते हुए लिखा "ये विद्यालय अस्पृश्यता-रूपी दैत्य के नाश के समर्थ-सक्षम साधन सिद्ध होंगे।" गांधी के इन शब्दों का भावार्थ यही हो सकता है कि वे शिक्षा को अस्पृश्यता निवारण का प्रमुख साधन मानते थे। उनके इन शब्दों में सवर्णो के लिए चेतावनी भी छिपी हुई थी कि हरिजन शिक्षित होने के पश्चात् तो अपना अधिकार प्राप्त कर ही लेंगे।

महात्मा गांधी द्वारा समर्थित "बिड़ला की यह योजना कायम नहीं हो पायी। कारण सन् 1942 के बाद का समय घोर अशांति, राजनीतिक उथल-पुथल और युद्ध का रहा। राजनीति और हिन्दु-मुस्लिम झगड़ों के अलावा गांधी हरिजन सेवा, गौ सेवा, ग्राम कल्याण, खादी उद्योग, स्वास्थ सुधार आदि अनेक क्षेत्रों में अपना सक्रिय एवं मौलिक योगदान दे रहे थे। उनकी प्रेरणा एवं परामर्श से उस समय देश में चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीम संघ, हरिजन सेवक संघ और गौ सेवा संघ देश में अपना कार्यक्रम चला रहे थे।"

उन्होंने कांग्रेस जनों से आव्हान किया, कि वे हरिजनों को अपने घरों में स्थान दें ताकि इस सामाजिक विसंगति को खत्म किया जा सकें, अब देश स्वतंत्रता की कगार पर था महात्मा गांधी की यह इच्छा थी कि कोई हरिजन कन्या भारत की प्रथम राष्ट्रपति बनें। उन्होंने 2 जून 1947 के प्रवचन में कहा "अब वह समय जल्दी ही आ रहा है, जब हिन्दुस्तान को अपने रिपब्लिक का पहला प्रधान चुनना होगा। अगर कोई बहादुर मेहतर लड़की हो, बिना स्वार्थ की हो, शुद्ध हो तो मैं तहेदिल से चाहूंगा कि ऐसी कन्या हमारी प्रेसीडेन्ट बनें। यह कोई बेकार का ख्वाब नहीं हैं ऐसी लड़कियाँ जरूर मिल सकेंगी, अगर हम उन्हें ढूंढने की कोशिश करें। महात्मा गांधी के इन विचारों से स्पष्ट है कि वे स्वतंत्रता भारत में हरिजनों को सम्मानजनक स्थान दिलाना चाहते थे यद्यपि हरिजन कन्या या राष्ट्राध्यक्ष बनने का उनका यह स्वप्न आजादी के 50 वर्षो के बाद भी पूरा नहीं हुआ है। अपितु दलित वर्ग का व्यक्ति राष्ट्रपति जरूर बन चुका है। उनके द्वारा दिखाए गए मार्ग के कारण ही स्वतंत्रता भारत में हरिजनों तथा दलितों की स्थिति में निरंतर सुधार आया हालांकि इस क्षेत्र में अभी भी काम होना बाकी है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में लेकिन ये गांधी की लेखनी और वाणी का ही प्रभाव है कि आजाद भारत में भी लोगों ने उनका अनुसरण करते हुए इस वर्ग के हकों के लिए संघर्ष जारी रखा हैं भारत में अस्पृश्यता को लेकर आए बदलाव को गांधी की दृष्टि तथा उपाय को ही मुख्य रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। महात्मा

गांधी व्यक्तिगत रूप से आजीवन हरिजन-उद्धार के कार्यों में संलग्न रहे। उनसे पूर्व उनके समकालीन समाज सुधारकों ने भी अस्पृश्यता का निवारण करना चाहा परन्तु गांधी के हस्तक्षेप ने ही हरिजन-समस्या को इतना व्यापक महत्व एवं परिवेश प्रदान किया कि देश की जनता में अस्पृश्यता निवारण के लिए नव चेतना उत्पन्न हुई इसके पीछे मुख्य कारण उनके लेखन की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने अपने लेखन को समाज के परिवेश के अनुरूप ढ़ालते हुए नवाचार के क्रम को निरन्तर जारी रखते हुए अस्पृश्यता निवारण के लिए भागीरथी प्रयत्न किए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1	नवजीवन	04, अप्रैल, 1925
2	नवजीवन	04, मार्च, 1923
3	कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी	1903-45 पृष्ठ 74
4	कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी	1903-45, पृष्ठ 74
5	हरिजन	18, जुलाई, 1936
6	हरिजन	29, सितम्बर, 1934
7	शर्मा रामशरण	प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्यवन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003 पृष्ठ सं. 43
8	हरिजन बन्धु	9, अप्रैल 1983
9	हरिजन	16, नवम्बर 1935
10	शर्मा रामशरण	युद्धों का इतिहास, राजकरण प्रकाशन की विश्व 2006
11	गांधी महात्मा	सत्य के साथ मेरे प्रयोग, सस्ता साहित्य
12	यंग इंडिया	1920
13	यंग इंडिया	30, जून 1927
14	हरिजन	25, जून 1934
16	हरिजन	14, मई 1946
17	हरिजन	2, जुन 1947
18	यंग इंडिया	मई 1935
19	अमृत बाजार (पत्रिका)	2, जनवरी 1918
20	हरिजन	16, नवम्बर 1935
21	शर्मा रामशरण	युद्धों का इतिहास राजकमल प्रकाशन, 2006

भारतीय राजनीति में बढ़ता आपराधीकरण

अजय कुमार

एम.ए. यूजीसी नेट (राजनीति विज्ञान)
डीएवी कॉलेज, बोहर, पंजाब

सारांश

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। भारतीय लोकतंत्र के विकास में कई बाधाएं आईं हैं पर यह निरंतर विकास कर रहा है। आज भारतीय राजनीति में सबसे बड़ा संकट राजनीति में बढ़ता आपराधीकरण है। भारतीय लोकतंत्र के पवित्र मंदिर संसद में जो हमारे प्रतिनिधि बैठते हैं। उनमें बहुत से नेताओं के अपराध जगत से लंबा नाता रहा है। भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार, दंगे फसाद आदि चीजें का होना आम बात है। भारतीय राजनीति में अच्छे ईमानदार नेताओं की बहुत कमी है। भारतीय राजनीति में बढ़ता आपराधीकरण एक चिंताजनक विषय है। जिस देश में कानून बनाने वाले ही अपराधी है फिर उस देश में क्या ख़ाक सुशासन होगा। यह एक विचारणीय विषय है।जे जल्द ही आपराधीकरण पर रोक नहीं लगाई गई तो इसके दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे।

परिचय

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। इतने बड़े देश में निरपक्ष चुनाव कराने एक चुनौती भरा कार्य है। मोजुदा समय देखा जाए तो भारतीय राजनीति जिस राह पर चल रही हैं वह ईमानदारों के लिए सही नहीं हैं। आज भारतीय राजनीति में धोखाधड़ी, बेईमानी, अपराध का बोलबाला है। भारतीय राजनीति को नेताओं द्वारा एक व्यापार समझा जाता है जिस के प्रति राऐ है "हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आए"। जिस कारण अपराधी प्रवृत्ति के लोग राजनीति में आते हैं। पहले तो अपराधी प्रवृत्ति के लोगों से चुनाव जीतने के लिए नेताओं द्वारा मदद ली जाती थी। पर आज स्वयं ये अपराधी राजनीति में आ गये है। आज देखा जाए तो भारतीय संसद ओर विधानसभा के चुनावों में दांगी नेताओं द्वारा चुनाव लड़ें और जीते जाते हैं। भारतीय लोकतंत्र के शुरुआती दौर में ऐसा नहीं था। पर 1971, 1977, 1980 के चुनावों में कांग्रेस द्वारा दांगी नोताओ को उम्मीदवार बनाया गया। तब से राजनीति में अपराधीयो का ग्राफ बढ़ता जा रहा है।

भारतीय लोक सभा में 2004 में 24%, 2009 में 30%, 2014 में 34% ओर 2019 में 43% ग्राफ रहा। इस तरह यह निरंतर बढ़ रहा है। 2018 में सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर केंद्र सरकार द्वारा कोर्ट में एक हल्फनामा पेश करके बताया कि देश भर में कुल 1765 सांसद और विधायक हैं जिन पर 3045 आपराधिक मामले दर्ज हैं।

एसोसिएशन आफ डेमोक्रेसी की रिपोर्ट के मुताबिक 15वीं लोकसभा में 543 सांसदों में से 162 सांसदों के खिलाफ ओर राज्य सभा के 232 सांसदों में से 40 के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। 16 वीं लोकसभा में 543 में से 186 सांसद दांगी हैं।इस के ईलावा 2019 में 17वीं लोकसभा में 542 सांसदों में से 233 सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। इन सांसदों के हल्फनामे के हिसाब से इन पर दुष्कर्म, अपरहण जेसे मुकदमे दर्ज हैं।

17वीं लोकसभा में जे सियासी दलों के हिसाब से देखा जाए तो भाजपा के 303 सांसदों के हल्फनामे के हिसाब से प्रज्ञा ठाकुर के समेत 116 सांसदों पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। वहीं कांग्रेस के 52 में से 29 सांसदों पर आपराधिक मुकदमे दर्ज हैं। वहीं कांग्रेसी सांसद कुरियाकोस पर 204 मामले दर्ज हैं जिस के हिसाब से वह नंबर वन पर है। वहीं लोजपा के सभी छे सांसद, बहुजन समाज पार्टी के दस में से पांच सांसद, तणमूल कांग्रेस के 22 सांसदों में से नौ सांसदों पर अपराधिक मामले दर्ज हैं। राज्यवार अपराधी

सांसदों को देखा जाए तो सबसे ज्यादा अपराधी सांसद केरल ओर बिहार से आऐ है। केरल के 90 फीसदी, बिहार के 82 फीसदी, उत्तर प्रदेश के 56 फीसदी, वेस्ट बंगाल से 55 फीसदी, महाराष्ट्र से 58 फीसदी, सांसदों पर अपराधिक मामले दर्ज हैं। सबसे कम 15 फीसदी गुजरात ओर 9 फीसदी छत्तीसगढ़ राज्य में से हैं।

इसके आलावा मोजुदा समय विधानसभाओं में देखा जाए तो आंध्र प्रदेश में 146 विधायकों में से 146 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। वहीं मध्य प्रदेश में 230 विधायकों में से 94 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। गुजरात में 182 विधायकों में से 47 विधायकों पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। महाराष्ट्र में 285 विधायकों में से 176 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं जिनमें से 113 पर तो गंभीर मामले दर्ज हैं। बिहार में से 243 विधायकों में 138 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं।

एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेसी की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली 2020 विधानसभा चुनाव में से आम आदमी पार्टी के 62 विधायकों में से 38 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। वहीं बीजेपी के 8 विधायकों में से 5 पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। वहीं केजरीवाल पर सबसे ज्यादा 13 मामले दर्ज हैं। इन मामलों के अलावा हमारे गणमान्ये के ऊपर महिला उत्पीड़न के भी मामले दर्ज हैं।ऐ डी आर की रिपोर्ट मुताबिक हमारे देश में मोजुदा समय 76 सांसदों एवं विधायकों पर महिलाओं के प्रति अपराध मामले दर्ज हैं। जिसमें 18 सांसद और 58 विधायक हैं। जिनमें 3 सांसदों और 6 विधायकों के प्रति बलात्कार के मामले दर्ज हैं। अगर पार्टी वार प्रतिनिधियों की बात करें तो 17 राज्यों में बीजेपी के 27 सांसदों और विधायकों पर महिलाओं के प्रति अपराध के मामले दर्ज हैं। ओर कांग्रेस के 16 सांसदों और विधायकों पर मामले दर्ज हैं। एक तो बीजेपी विधायक कुलदीप सेंगर बलात्कार के जुर्म में सजा भुगत रहा है।

इस रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि दिन बे दिन राजनीति में आपराधीकरण बढ़ता जा रहा है। जो जल्द ही कड़े फैसले नहीं लिए गये तो इसके दुष्परिणाम निकलेंगे। बढ़ते अपराधीकरण को देखते हुए 2006 में चुनाव आयोग ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर कहा था कि जे संसद अपराधियों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए कानून नहीं बनाये गये तो वह दिन दूर नहीं जब भारतीय संसद में दाऊद इब्राहिम और अबु सलेम जेसे आतंकवादी बैठेंगे। समय-समय पर सुप्रीम कोर्ट ने भी इस मामले संबंधी चुनाव आयोग एवं संसद को चेताया है पर संसद इस पर कोई कड़ा कानून बनाने को तैयार ही नहीं ह है। विभिन्न समितियों वोहरा, तारकुंडे, शंखधर आदि के सिफारिश पर अमल भी करना चाहिए।जब कानुन बनाने वाले ही अपराधी होगा तो उस देश में सुशासन की आस नहीं रखी जा सकती।

निष्कर्ष

आखिर में यह ही कहा जा सकता है कि संसद को कड़े कानून बना के आपराधिक नेताओं को चुनाव लडने से रोकने चाहिए। सियासी दलों को भी उन नेताओं का समर्थन नहीं करना चाहिए जो अपराधी है। मतदाताओं को भी समझदारी से मतदान करना चाहिए ओर जन प्रतिनिधि कानुन 1951 में सुधार करने की जरूरत है साथ में कठोर भी।

संदर्भ

1. https://www-sansarlochan-in.crimi— राजनीति का अपराधीकरण: कारण, सम्बंधित समिति और 3
2. www.bbc.com राजनीतिक पार्टियों को अपराधी छवि के उम्मीदवारों 3
3. rjmsh.com › article & pdf PDF International Research Journal of Management Sociology & Humanities ...
4. shodhganga.inflibnet.ac.in— PDF
   Web results v.k & fÀrh(& Shodhganga
5. https://www.google.com//url/sa/t-source/web.rct/j-url/https//m-punjabkesari.in/aapki&kalam&se/news/criminalisation&of-politics-570495þ3Famp-ved/2ahUKEwjS9teSgc7qAhW QfH0KHbUSCo84ChAWMAN6BAgIEAE&usg¾AOvVaw2arhmkh&1yA9mtZvjS6Ajw
6. https://www.jansatta.com-chopal
   अपराध और राजनीति - Jansatta

भारत में साम्प्रदायिकता के कारण और दुष्परिणाम

अमृता कुमारी

शोध-छात्रा, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

साम्प्रदायिकता की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती क्योंकि विभिन्न विश्लेषकों ने इसकी परिभाषा विभिन्न आयामों के आधार पर की है। ऑक्साफोर्ड शब्दकोश के अनुसार इसका अर्थ है समुदाय का समुदाय के लिए। वस्तुत: सकारात्मक सोच के अंतर्गत उपरोक्त परिभाषा का तात्पर्य होगा किसी व्यक्ति की अपने समुदाय के सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रति-प्रतिबद्धता। परंतु नकारात्मक दृष्टिकोण में इसका तात्पर्य धर्म के शोषणकारी प्रयोग द्वारा समूह विशेष के सामाजिक-आर्थिक स्वार्थ की सिद्धि करना है। दूसरे शब्दो में, यह एक ऐसा समाज विरोधी दृष्टिकोण है जिसके अंतर्गत उन समस्त भावनाओं एवं क्रियाकलापों का समन्वय होता है जिनमें किसी विशिष्ट धर्म या भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के निहित स्वार्थ पर बल दिया जाए एवं उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखते हुए उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाए या उसको प्रोत्साहित किया जाए।

ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से सांप्रदायिकता के भारत में उद्‌भव एवं पल्लवित, पुष्पित तथा प्रस्फुटित करने का श्रेय ब्रिटिश साम्राज्यवाद को दिया जा सकता है। उन्होंने भारत में अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए धार्मिक भेद-भावों का विशिष्ट लाभ उठाया। यही कारण है कि उन्होंने भारत के अलग-अलग धार्मिक समूहों को पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व देने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप 1857 के विद्रोह से लेकर 1885 में कांग्रेस की स्थापना तक हिंदू-मुस्लिम की एकता की दृढ़ दीवारों को अंग्रेज सरकार ने 1905 के बंगाल विभाजन से करारा झटका दिया। तदुपरांत 1906 में 'ऑल इंडिया मुस्लिम लीग' की स्थापना से लेकर विभिन्न सवैधानिक अधिनियमों के अंतर्गत निर्वाचन पद्धति स्वाधीनता के पूर्व द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के आधार पर भारत के विभाजन के रूप में देखने को मिली।[1]

सांप्रदायिकता के कारण

जहाँ तक सांप्रदायिकता की समस्या के कारण का प्रश्न है इतिहासविदों, राजनीतिशास्त्रियों एवं अन्य विषयों के विद्वानों में स्पष्ट मतांतर दिखता है। इसके बावजूद कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जिन पर सामान्यत: मतैक्य प्रतीत होता है। रोमिला थापर के अनुसार भारतीय संदर्भ में सांप्रदायिकता एक ऐसा बोध है जो कि अपनी धार्मिक पहचान का प्रयोग एक विचारधारा के रूप में करते हैं। जो कि आगे चलकर धार्मिक समुदाय के प्रति राजनैतिक भक्ति की माँग करती है एवं उन राजनैतिक क्रियाओं का समर्थन करती है जो कि धार्मिक समुदाय के हित में होती हैं। वस्तुत: संप्रायवाद को एक मनोवैज्ञानिक घटना के रूप में देखा जा सकता है। संभवत: यह एक ऐसा भय है कि कि अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक दोनों संप्रदायों को होता है। स्वतंत्रता के सात दशक बीत जाने के पश्चात् भी भारत में सांप्रदायिक ताकतों के विद्यमान रहने के निम्न कारण हैं[2]

1. अल्पसंख्यकों की पहचान इसका एक कारण हो सकती है, क्योंकि जब अल्पसंख्यक (जो कि धार्मिक अल्पसंख्यक भी हो सकते हैं) बहुसंख्यकों से डरते हैं तो वे उन पर संप्रदायवादी होने का आरोप लगाते हैं।
2. सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक विसंगतियाँ भी ऐसे परिवेश का निर्माण करती हैं जो कि संप्रदायवाद के लिए उत्तरदायी होता है। आर्थिक कारणों से सांप्रदायिक दंगों के संबंध में भारत सरकार के कृषि मंत्रालय की एक शोध रिपोर्ट के अनुसार उत्तरी हिंदी भाषी क्षेत्र में 50 प्रतिशत अतिरिक्त भूमि का सही वितरण न हो पाना सांप्रदायिकता में बढ़ोत्तरी एक महत्वपूर्ण कारण है।

3. किसी धर्म विशेष के प्रति तुष्टिकरण की नीति का अपनाया जाना भी इसके लिए जिम्मेदार है।
4. किसी एक धर्म विशेष के कट्टरवादियों के बढ़ने की वजह से दूसरे धर्म के कट्टरवादियों को उभरने का मौका मिलता है। वस्तुत: ऐसा संकीर्ण राजनैतिक साध्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता रहा है।
5. आंतरिक धार्मिक असहिष्णुता से उत्पन्न परिस्थितियों को बाहरी स्थितियों द्वारा समर्थन देना (जैसे सीमा पार से सहायता देना) भी सांप्रदायिकता में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है।
6. वोट बैंक की राजनीति के अंतर्गत दो प्रमुख समुदायों के बीच घृणा का वातावरण तैयार करना तथा परस्पर विरोधी प्रचार-प्रसार करके सांप्रदायिक सौहार्द्र को बिगाड़ने के कारण ऐसी प्रवृत्ति को बल मिलता है।
7. धर्मांतरण एवं पुन: धर्मांतरण के मुद्दे के राजनीतिकरण ने भी संप्रदायवाद की उत्पत्ति एवं विकास में अहम भूमिका अदा की है। वस्तुत: राजनीति को सांप्रदायिकता का जामा पहनाने की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण संप्रदायों के आपसी संबंध सामान्य बनाने की प्रक्रिया में बड़ी बाध पैदा हो गई है। उदाहरणार्थ किसी एक मुद्दे ने हिंदू-मुस्लिम समुदाय के आपसी सौहार्द्र को इतना नहीं बिगाड़ा जितना कि राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के विवाद ने। पिछले दो दशकों में भारत के कई राज्यो में जो दंगे हुए उनमें जो चौंकाने वाले तथ्य उभर कर सामने आये वह यह है कि सांप्रदायिकता ग्रामीण इलाकों में भी तेजी से फैल रही है।
8. सरकार एवं प्रशासनिक उदासीनता के कारण भी कई बार सामान्य घटना सांप्रदायिक दंगे के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उदाहरणार्थ, शाहबानों मामले में राजीव गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को नहीं माना तथा सांप्रदायिक दबाव के कारण मुस्लिम महिला विधेयक पारित करवाया। परिणामस्वरूप, हिंदू कट्टरपंथी संस्थाओं ने भी राम जन्म-भूमि विवाद पर न्यायालय के नकारात्मक फैसला आने की स्थिति में मानने से मना कर दिया।
9. सांप्रदायिक घटनाओं के पीछे निहित स्वार्थ से प्रेरित विदेशी हाथ होने की आशंका भी जताई जाती रही है, उदाहरणार्थ, जब तमिलनाडु में कुछ वर्ष पूर्व हरिजनों को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने की बात सामने आई थी तो तत्कालीन प्रशासन ने भी यह आशंका जाहिर की थी जमायते इस्लामी हिंद एवं अन्य कट्टरपंथी गुटों को इस तरह के कार्य को क्रियान्वित करने के लिए मुस्लिम देशों एवं अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी संगठनों से धन मुहैय्या कराया जा रहा है।

उपरोक्त वर्णित कारणों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिकता के उद्‌भव एवं विकास में किसी एक कारण को पूरी तरह उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है। किसी समुदाय विशेष को भी इसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार ठहराना अनुचित होगा। परंतु एक तथ्य तो पूरी तरह शंकाओं से परे है और वह यह है कि इसके परिणाम समस्त भारतीय समाज के लिए अत्यंत घातक है।

सांप्रदायिकता के दुष्परिणाम

1947 में द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त पर हुए देश के विभाजन का घाव अभी भरा भी नहीं कि सांप्रदायिक दंगों का प्रहार शुरू हो गया जो आज तक न सिर्फ चलता आ रहा है बल्कि दिनानुदिन उसकी विकरालता एवं भयावहता बढ़ती ही जा रही है। भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों में निम्न मुख्य हैं[3]-

1. सांप्रदायिकता विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर द्वेष को बढ़ावा देती है। परिणामस्वरूप, आपस में द्वेष या वैमनस्य उत्पन्न होना स्वाभाविक है। परंतु यही द्वेष कभी-कभी भयावह रूप धारण कर समाज में आतंक एवं दहशत का माहौल उत्पन्न करता है जिससे सामाजिक समरसता भंग होती है।
2. सांप्रदायिक दंगों की आग में झुलस कर समाज की अर्थव्यवस्था बुरी तरह आहत हो जाती है जिसका खामियाजा लंबी समयावधि तक पूरे समाज को भुगतना पड़ता है।
3. सांप्रदायिकता राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता की परिस्थिति पैदा कर देती है जिसके नकारात्मक परिणाम काफी दूरगामी होते हैं।
4. भारत की बहुलवादी व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता तथा अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में सांप्रदायिकता सदैव व्यवधन उत्पन्न करती रही है।

5. आजादी के पश्चात् सांप्रदायिक ताकतें इतनी उग्र होती जा रही हैं कि राजनीतिक दलों तक का गठन इसी आधार पर होने लगा है। मुस्लिम लीग, शिरोमणि अकाली दल, राम राज्य परिषद्, हिंद महासभा, शिवसेना आदि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। प्रो. मोरिस जोंस का मानना है कि यदि सांप्रदायिकता को संकुचित अर्थ में समझा जाए अर्थात् कोई राजनीतिक दल किसी विशेष पंथिक समुदाय के राजनीतिक दावों की सुरक्षा के लिए बना हो तो कुछ दल ऐसे हैं जो स्पष्टतया अपने को सांप्रदायिक कहते हैं जैसे कि मुस्लिम लीग, अकाली दल, हिंदू महासभा, जनसंघ आदि। पुन:श्च, यदि सांप्रदायिकता को व्यापक अर्थ में लिया जाए अर्थात् संपूर्ण हिंदू समाज के ही भीतर किसी सामाजिक-धार्मिक समुदाय के साथ संबंध के रूप में तो सभी दलों में किसी न किसी स्तर पर और कुछ न कुछ मात्र में ऐसी सांप्रदायिकता अवश्य मिलेगी, यहाँ तक कि कांग्रेस भी इससे मुक्त नहीं है। केरल में ईसाई समुदाय के साथ कांग्रेस का ऐसा गठबंधन रहा है कि इसे संकुचित दृष्टि से भी सांप्रदायिक कहा गया है। यहाँ तक कि साम्यवादियों ने भी कुछ जगहों पर और कतिपय प्रयोजनों के लिए सांप्रदायिक क्षेत्र तैयार कर लिये हैं।[4]
6. चुनावों के समय धार्मिक भावनाओं को उभार कर राजनीतिक दल एवं नेतागण वोट इकट्ठा करने का प्रयास करते हैं। इस निहित स्वार्थ के लिए मठाधीशों, इमामों, पादरियों तथा साधुओं तक को चुनावी प्रचार में एक-दूसरे के विरुद्ध झोंक दिया जाता है। 1977 एवं 1980 के आम चुनावों में जामा मस्जिद के इमाम की भूमिका इसका ज्वलंत उदाहरण है।
7. देश के विभाजन की आग अभी बुझी भी न थी कि परोक्ष रूप से पंथ के आधार पर पृथक् राज्यों के निर्माण की मांग उठने लगी। अकाली दल द्वार पंजाबी सूबे की मांग औपचारिक स्तर पर भाषायी आधार पर की गई लगती है, परंतु वास्तविकता में यह धर्म आधारित मांग ही थी। 2 नवम्बर 1949 को मास्टर तारा सिंह ने पूर्वी पंजाब मे एक 'सिक्ख प्रांत' की मांग रखते हुए यह कहा कि ऐसा इसलिए आवश्यक हो गया है क्योंकि वहाँ के हिंदू संकीण ह्रदय वाले और संप्रदायवादी हो गए हैं जिनसे सिक्ख समुदाय को उचित व्यवहार की आशा नहीं रह गई है। इसी तरह नागालैंड में भी ईसाइयों द्वारा पृथक राज्य की स्थापना की मांग मुख्यत: धार्मिक निष्ठा पर ही आधारित थी।[5]
8. इतना ही नहीं केंद्र एवं राज्यों के मंत्रिमंडल के गठन भी सांप्रदायिक ताकतों के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। यही कारण है कि मंत्रिमंडल के गठन में इस बात का खास ध्यान रखा जाता है कि अल्पसंख्यक वर्ग जैसे मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों आदि को यथासंभव प्रतिनिधित्व दिया जाए।
9. वस्तुत: सांप्रदायिकता का भारतीय राजनीति पर कितना गंभीर प्रभाव पड़ता है उसकी स्पष्ट झलक केरल एवं पंजाब की राजनीति पर दृष्टिपात करने से मिलती है। जहाँ तक केरल की राजनीति का प्रश्न है बाहर से वह जितनी भी वामपंथी या धर्मनिरपेक्षता के रंग में रंगी दिखे पर अंदर से धार्मिक एवं सांप्रदायिक प्रभाव से प्रभावित दिखती है। सांप्रदायिक दबाव समूहों में नय्यर सर्विस सोसायटी, श्रीनारायण धर्म परिपालन युग्म और अनेक ईसाई संगठन हैं जो शासन एवं राजनीति की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि प्रगतिशील समझे जाने वाले वामपंथी दल भी चुनावी रणनीति तैयार करने में इनसे तालमेल बिठाने में परहेज नहीं रखते। इसी तरह पंजाब में सशक्त शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी एवं स्वर्ण मंदिर परिसर के सामने स्थित अकाल तख्त के स्वरूप एवं भूमिका की जांच की जाए तो पता चलता है कि वे एक सामानान्तर सरकार की तरह हैं जिस पर समकालीन सरकार के आदेश भी प्रभावी नहीं होते। वस्तुत: अनेक बार धर्म से परे राजनीतिक विवादों का निष्पादन भी अकाल तख्त ही करता है।[6]

सुझाव

अब प्रश्न यह उठता है कि दिनानुदिन बढ़ती जा रही ज्वालामुखी-रूपी इस विभीषिका का दमन कैसे किया जाए? अर्थात् भारत में सहिष्णुता एवं राष्ट्रीय समरसता को किस प्रकार सुदृढ़ किया जाए कि सांप्रदायिक ताकतों का समापन संभव हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उनके सुझाव दिये गये हैं जिसमें निम्न प्रमुख हैं:

1. राजनीतिक दलों को मजहब, भाषा, जाति एवं क्षेत्र के आधार पर लोगों को परस्पर विरोधी खेमे में बांटने की नीति से अपने आपको दूर रखना होगा। जो भी राजनीतिक दल ऐसा करने में चूक करें उन पर सख्त प्रतिबंध लगाए जाएं एवं कठोर प्रशासनिक कदम उठाए जाएं।
2. अल्पसंख्यकों की समस्याओं का निपटारा प्रभावी ढंग से किया जाए तथा बहुसंख्यकों के प्रति उनके मन में व्याप्त भय एवं शंकाओं को दूर करने के प्रभावी कदम उठाए जाएं जिससे कि वे पूर्णत: सुरक्षित महसूस करें।

3. हिंसक व अलगाववादी तत्वों से सख्ती से निपटा जाए, जिसके लिए प्रशासनिक तंत्र को चुस्त-दुरुस्त बनाए जाने की आवश्यकता है।
4. सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि जाने-अनजाने उसके द्वारा कोई ऐसा कार्य न हो जाए जिससे सांप्रदायिक ताकतों को बल मिले।
5. इस दृष्टि से शिक्षा की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षण पद्धति एवं पुस्तकों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि छात्र-छात्राओं को वैज्ञानिक सोच की दिशा में प्रेरित किया जा सके।
6. किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृत्ति पैदा न की जाए सारा कार्य ऐसे ढंग से हो कि अल्पसंख्यकों को अपने अल्पसंख्यक होने का अहसास न हो।
7. जनसाधारण तक पहुंच वाले जनसंपर्क के माध्यम जैसे कि सिनेमा, टीवी, रेडियो आदि के माध्यम से दकियानूसी संकीर्ण विचारों व सोच के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष छेड़ा जाए।
8. राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रनिर्माण को अहम मानते हुए धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का पालन सच्चे अर्थों में किया जाए।

सांप्रदायिकता के विविध पहलुओं पर नजर डालते हुए संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिस धर्म का इस्तेमाल उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज सुधारकों ने सामाजिक-धार्मिक कुप्रथाओं को दूर करने के लिए किया उसी धर्म का नकारात्मक प्रयोग निहित स्वार्थ के लिए औपनिवेशिक काल में अंग्रेज सरकार ने किया तथा स्वतंत्रता के पश्चात् आज तक इसका प्रयोग विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति के लिए किया जाता रहा है। इस प्रवृत्ति ने, जिसे सांप्रदायिकता कहा जाता है भारत की बहुल-संस्कृति समाज के तार को छिन्न-भिन्न कर राष्ट्रीय एकता की भावना को गहरा सदमा पहुंचाया है। इस प्रवृत्ति को प्रभा दीक्षित ने अपनी पुस्तक सांप्रदायिकता का ऐतिहासिक संदर्भ में नये आयाम देने का प्रयास किया है। उनका यह कहना है कि संप्रदायवाद जान-बूझ कर रचा गया एक राजनीतिक सिद्धांत है जिस प्रचार पुराने स्थापित विशिष्ट समुदाय का एक वर्ग राष्ट्रवादी एवं लोकतांत्रिक शक्तियों को शिथिल करने के लिए करता है। सांस्कृतिक विशिष्टता का बोध सांप्रदायिक आंदोलन की आधारशिला है। अतः बहु धर्मी, बहु जातीय एवं बहु संस्कृति वाले समाज में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना समुदायवादी राजनीति के लिए एक आदर्श स्थिति उत्पन्न कर देती है। ऐसे समाज में राजनीतिक क्षेत्रों में विशिष्ट प्रभाव स्थापित करने के लिए तथा राजनीतिक सौदेबाजी के लिए धर्म या संस्कृति का राजनीतिकरण हर समुदाय के लिए, विशेषकर अल्पसंख्यकों के लिए सबसे आसान रास्ता बन जाता है।

निष्कर्ष

मूलतः बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक संप्रदायवाद की प्रेरक शक्ति एवं कार्य प्रणाली समान होते हुए भी दोनों में एक गुणात्मक भेद है- अल्पसंख्यक संप्रदायवाद का उद्देश्य जहाँ बहुसंख्यकों के साथ समता प्राप्त करा होता है वहीं बहुसंख्यक संप्रदायवाद का उद्देश्य अल्पसंख्यकों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना होता है। भारत में सांप्रदायिकता को दोनों संप्रदायों हिंदू तथा मुसलमान के राजनीतिक महत्वाकांक्षा रोकने वाले परंपरावादी अभिजन लोगों ने अपने निहित स्वार्थ के लिए सैद्धांतिक जामा पहना कर बढ़ावा दिया है। वस्तुतः भारतीय इतिहास की गहराई में जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संप्रदायवाद का मूल सत्ता के द्वंद्व में था, न कि धर्म में। यह लोकतंत्रवादी राष्ट्रवाद के विरुद्ध स्थापित अभिजात वर्ग की राजनीतिक प्रतिक्रिया था, न कि एक समुदाय की धार्मिक भावना की राजनीतिक अभिव्यक्ति। यही कारण है कि दोनों समुदायों में संप्रदायवादी आंदोलन का नेतृत्व प्रारंभ से आज तक अभिजात वर्गों के हाथ में रहा है जिसके माध्यम से इन वर्गों ने अपने समुदायों में अपनी श्रेष्ठता को सुरक्षित रखने के साथ-साथ इस नवोदित प्रगतिशील अभिजात वर्ग के बढ़ते प्रभावों को बाधित करने का प्रयास किया जिसने धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रीय आदर्शों को राष्ट्र निर्माण का आधार चुना था।

सन्दर्भ सूची

1. नीरा चंदोक, बियोण्ड सेकुलरिज्म, द राइट्स ऑफ रिलिजियस माइनॉरिटिज, न्यू दिल्ली, ओयूपी, 2004.
2. पार्था चट्टर्जी, द नेशन्स एण्ड इट्स फैगमेंट्स: कोलोनियल एंड पोस्ट कोलोनियल हिस्ट्रीज, न्यू दिल्ली, ओयूपी, 1999.
3. राजीव भार्गव, सेकुलरिज्म एंड इट्स क्रिटिक, ऑक्साफोर्ड, न्यू दिल्ली, 1997.
4. उपरोक्त.
5. अभय कुमार दुबे, साम्प्रदायिकता के स्रोत, प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
6. राजीव भार्गव, पूर्वोक्त.

युवाओं में मानसिक अस्वस्थता

डॉ० राजीव रंजन

गेस्ट फैकल्टी
पीटीईसी, शेरघाटी, गया

प्राचीन काल से ही एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं स्वच्छ समाज का निर्माण करने में शिक्षित युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं देश एवं समाज के सर्वांगीण विकास की प्रगति को आगे बढ़ाने के लिए युवाओं को किसी न किसी रूप में शिक्षित एवं प्रशिक्षित किया जाता रहा है, ताकि वे अपने सार्वजनिक जीवन में सामंजस्य कर आगे बढ़ सकें। दीर्घ काल से ही किसी न किसी समस्या को लेकर शिक्षित युवाओं में असंतोष एवं मानसिक अस्वस्थता की भावना पैदा होती रही है, जिसके प्रति पूर्व में बहुत कम ध्यान दिया गया है। परिणामस्वरूप शिक्षित युवाओं को सामान्य सामाजिक परिस्थितियों में भी समायोजन स्थापित करने में कठिनाईयों का अनुभव करना पड़ा है।

वर्तमान समस्याग्रस्त सामाजिक परिदृश्य में उक्त समस्याएं और अधिक गंभीर हो गयी हैं। यद्यपि विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में नित्य नये होने वाले आविष्कारों के कारण जीवन शैली में अभूतपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हें, तथापि शिक्षित युवाओं की हताशा एवं निराशा यथावत है।

मानव जीवन को और अधिक सुखमय बनाने वाली नयी-नयी वस्तुएं तैयार हो रही हैं, जिन्हें प्राप्त कर पाने में शिक्षित युवाओं को अत्यधिक कठिनाई हो रही है, जिससे उनके मानसिक सन्ताप में वृद्धि हो रही है। अत: व्यक्तित्व विकास के स्थान पर व्यक्तित्व विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

वर्तमान समाज के शिक्षित युवाओं में सामाजिक संबंध भी अर्थोन्मुखी हो गये हैं। जो युवक आर्थिक दृष्टि से विपन्न हैं वे सामाजिक मुजफ्फरपुर के क्षेत्र में पीछे छूट जाते हैं और उन्हें आत्म ग्लानि एवं सामाजिक मानहानि का शिकार होना पड़ता है। ऐसी विसंगतिपूर्ण परिस्थिति में वे अपने आपको समीप एवं सुदुरवर्ती सामाजिक वातावरण में सामन्जस्य बनाये रखने में असमर्थ पाते हैं, जिसके कारण शिक्षित युवाओां में असंतोष एवं मानसिक अस्वस्थता की भावना बढ़ना स्वाभाविक है।

शिक्षित युवा वर्ग में कपोल कल्पना की बीमारी में शनैः शनैः वृद्धि हो रही है। परिश्रममुक्त एवं "येन केन प्रकारेण" मनोरथ सिद्ध करने की बढ़ती प्रवृत्ति का अनुसरण करने में शिक्षित युवक भी पीछे नहीं हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी कार्य क्षमता का क्षरण हो रहा है, वहीं दूसरी ओर उनमें असंतोष एवं मानसिक अस्वस्थता की भावना बलवती हो रही है। आज का शिक्षित युवक भौतिकवाद से ग्रसित है। वह अपनी कार्य क्षमता पर ध्यान न देकर अति महत्वाकांखी होना पसन्द करते हैं, और जब वह अपनी परिकल्पना को साकार होता नहीं देखता है तो उसके अन्दर असंतोष एवं मानसिक अस्वस्थता की भावना घर कर जाती है। शिक्षित बेरोजगारी की समस्या विकराल है। यह इस सीमा तक बढ़ गई है कि उच्च शिक्षा के शिखर पर खड़े युवक को भी भावना बेरोजगारी का भय लगने लगता है।

प्राय: सड़कों पर बहुतायत में उच्च शिक्षित बेरोजगारों को देखा जा सकता है। वे ऐसी नौकरी करने को भी विवश होते हैं, जिसमें उनके शोषण एवं अन्याय के द्वार खुले हैं। उनमें कुंठाएं घर कर जाती हैं, जो आगे चलकर उनमें असंतोष एवं मानसिक अस्वस्थता की भावना उत्पन्न करने का कारण बनती हैं।

मानसिक अस्वस्थता के लक्षण

साधारणतया मानसिक रोगों के अधिकतर लक्षणों का स्वरूप कुछ हद तक एक स्वस्थ्य व्यक्ति में भी पाया जा सकता है किन्तु मानसिक रोगी में इन लक्षणों की तीव्रता सामान्य से अधिक समय तक बने रहने के कारण व्यक्ति के पारिवारिक, व्यवसायिक एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। सामन्य रूप से निम्न लक्षण मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति में होते हैं:

1. संवेदनात्मक, शारीरिक एवं सामाजिक सुरक्षा की निम्न स्थिति।
2. सामाजिक व्यवस्था में दु:खद अनुभूति।
3. अपने दैनिक जीवन में असहयोगात्मक मनोवृत्ति एवं व्यवहार।
4. बदलती हुयी परिस्थितियों के साथ असामंजस्य।
5. वास्तविकता से अपर्याप्त सम्पर्क।
6. असंतुलित भावना का प्रदर्शन।
7. अपर्याप्त आत्म मूल्यांकन।
8. आतार्किक सामजिकता।
9. ईर्ष्या, द्वेश एवं शत्रुता का भाव।
10. वास्तविकता का गलत प्रत्यक्षीकरण।
11. आपेक्षित सामाजिक भूमिकाओं की आपर्याप्त पूर्ति।
12. व्यक्तित्व में एकीकरण का अभाव।
13. अपर्याप्त स्वच्छन्दता।
14. पहचान का गलत प्रत्यक्षीकरण।
15. बीते हुये अनुभव से सीखने की अयोग्यता।

वर्ल्ड बैंक सर्वेक्षण का प्रतिसेदन

इस सर्वे के निष्कर्ष में जोर देकर कहा गया है कि भारत में हर साल करीब 1.10 करोड़ युवा स्नातक की डिग्री हासिल करते हैं। लेकिन कड़वी सच्चाई यह है कि उनमें से 90 प्रतिशत नौकरी के काबिल हैं ही नहीं। वर्ल्ड बैंक की सर्वे की रिपोर्ट हाल में ही 'इडिया इनोवेशन: टुवड्र्स सस्टेनेबल एण्ड एक्सक्लूसिव ग्रोथ' नाम से जारी की गयी है। इस रिपोर्ट में भारत की उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर गहरी चिंता जतो हुए कहा गया है कि साधारण कॉलेजों/विश्वविद्यालयों (आई.आई.एम0, आई.आई.टी0, जे0एन0यू0, डी0यू0 इन जैसे अन्य विश्वस्तरीय संस्थानों को छोड़कर) से हर साल डिग्री लेकर निकलने वाले 75 से 90 प्रतिशत स्नातक शिक्षित बेरोजगारों की भीड़ ही बढ़ा रहे हैं। इसका कारण यह बताया गया है कि देश के विश्वविद्यालयों की शिक्षा पद्धति में वर्ष 1970 से कोई परिवर्तन ही नहीं लाया गया है।

इधर दिन प्रतिदिन युवाओं की संख्या में भारी वृद्धि हो रही है।यही कारण है कि भारत को "युवाओं का देश" भी कहा जाता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्तमान समय में शिक्षित युवाओं की समस्याओं का निराकरण कर देश और समाज के विकास में उनकी बृहद भूमिका निर्धारित की जा सकती है। कदाचित वर्तमान समय में ऐसा नहीं किया गया तो शिक्षित युवाओं की रचनात्मक एवं विकासोन्मुख शक्ति बिनाशकारी शक्ति का रूप धारण कर लेगी।

अतुल्य जीवन की अतुल्य अवस्था 'युवावस्था' है। विलक्षण प्रतिभा एवं ऊर्जा से ओतप्रोत युवाओं के समक्ष जीवन की कठिनाईयां एवं समस्याऐं नतमस्तक होती हैं संघर्ष, समस्या, आशा एवं निराशामय समाज एवं संसार में कुशल युवा ही, स्वतंत्र एवं सुरक्षित सत्ता को स्थापित करने का यश प्राप्त करता है। युवावस्था ही वास्तव में वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य की बौद्धिक सम्पदा की परख होती हैं सम्मानजनक जीवन जीने की कला का दर्शन होता है। ऐसा देखा जाता है कि शिक्षण, प्रशिक्षण, रोजगार एवं विविध प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तनावों के कारण सुवा कभी.कभी स्वयं को समझ नहीं पाता है। ऐसे विषम काल में, समय से श्रेष्ठ, अनुभवी

एवं विशेषज्ञों के बहुमूल्य मार्गदर्शन, निर्देश एवं परामर्श की परम आवश्यकता होती है। इससे युवाओं के प्रगति पक्ष में अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रो. एम.वी. मूर्थी के अनुसार, Youth is full of Gifts- "Youth is a period of bubbling physical energy of mantel turmoil and emotional tumult. It is also a period of economic uncertainty. Youth looks before and after, and pines for things of which it is not sure. Unless one's childhood and adolescence are bound each to each in natural piety and health, one's youth is bound to be full of trouble. For him who has arrived into youth beautifully, the world is full of beautiful gifts."

वे लोग जो 15.35 आयु वर्ग के अन्तर्गत आते हैं, युवा कहे जाते हैं। भारत सरकार ने इन युवाओं का आयु वर्ग 15 से 35 वर्ष तक रखा जाता है। ये युवा छात्र भी हो सकते हैं और गैर छात्र भी। ग्रामीण क्षेत्र के युवा भी हो सकते हैं और शहरी क्षेत्र के भी।

मानसिक अस्वस्थता

मानव व्यवहार के पीछे एक ऐसी आन्तरिक भावना कार्य करती है, जिससे प्रेरित होकर यह क्रिया या व्यवहार को प्रकट करता है तथा इसी प्रेरक शक्ति के फलस्वरूप व्यक्ति सदैव लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील व क्रियाशील रहता है। परन्तु मानव सदैव लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता है, क्योंकि समाज की अनेक बाधाएं उसे लक्ष्य मार्ग तक पहुंचने में कठिनाई उत्पन्न करती है। कभी-कभी व्यक्ति को स्थायी या अस्थायी रूप से प्रेरणाओं की तृप्ति में बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप उसे मानसिक अस्वस्थता की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

मानसिक अस्वस्थता का अर्थ

मानसिक अस्वस्थता एक प्रकार की मानसिक अवस्था है, जिसकी उत्पत्ति इच्छाओं तथा प्रेरणाओं की संतुष्टि के अभाव में होती है। जब व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं के प्रभाव के कारण उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता है, परन्तु उसके मार्ग में ऐसी बाधाएं उत्पन्न हो जाती है, जिनके कारण वह अपनी इच्छाओं को संतुष्ट नहीं कर पाता है, तो वह निराशा/मानसिक अस्वस्थता का अनुभव करता है।

कोलमैन के अनुसार, "प्रेरणा के कुंठित होने से उत्पन्न आघात (Thwarting) के परिणामस्वरूप मानसिक अस्वस्थता उत्पन्न होती है। मानसिक अस्वस्थता से मानसिक तनाव बढ़ जाता है, उत्साह भंग हो जाता है तथा व्यक्ति अत्यन्त व्याकुल एवं चिन्तित दिखाई देता है।"

साधारणतया मानसिक अस्वस्थता की मानसिक स्थिति के निम्न चिन्ह हैं:

1. हीन भावना।
2. तनाव की अधिकता।
3. विभिन्न प्रकार की मनोरचनायें।
4. असंतोष।

मन (N. I. Munn, 1964) का विचार है कि कुण्ठा जीव की वह अवस्था है जो किसी प्रेरणात्मक व्यवहार की सन्तुष्टि के कठिन अथवा असम्भव हो जाने के कारण उत्पन्न होती है। (State of organism resulting when the satisfaction of motivated behavior is rendered difficult or impossible)

कुण्ठा शब्द के संबंध में मनोवैज्ञानिकों में एक मत नहीं हैं इसके मुख्यत: तीन अर्थ लगाये जाते हैं, जो कुण्ठा के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में संबंधित है:

1. **कुण्ठा परिस्थिति:** मनोवैज्ञानिकों (Brown-Forber, 1951; Jsawon-Marx, 1958; Amsel, 1958; 1962) का विचार है कि कुण्ठा उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में वह परिस्थितियां सम्मिलित है, जैसे–जिनमें आंशिक या पूर्ण भौतिक बाधाएं हो जिसमें पुरस्कार समाप्त या कम किया गया है, प्रत्युत्तकक्रम की प्रारम्भिक और पूर्ण अवस्था में देर की जाय, जब सफलता की आशा हो तब असफलता अथवा दण्ड प्राप्त हो।

2. कुण्ठा उत्पन्न करने वाली परिस्थितियां जीव में कुण्ठा की दशा उत्पन्न करती है। व्यक्ति में कितनी कुण्ठा उत्पन्न होगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि कुण्ठा परिस्थिति कितनी शक्तिशाली हैं अधिक शक्तिशाली परिस्थितियां अधिक मात्र में कुण्ठा उत्पन्न करती है। भिन्न-भिन्न कुण्ठा परिस्थितियां भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्र में कुण्ठा उत्पन्न करती है। कुण्ठा अवस्था (Frustrating State) का मापन प्रत्यक्ष और मात्रात्मक रूप से सम्भव है। इसका मापन त्वक् प्रत्युत्तर क्रिया (CSR activity) तथा नाड़ी गति (Pulse rate) द्वारा किया जाता है।
3. **कुण्ठा प्रतिक्रिया:** कुण्ठा के प्रतिक्रियाओं में जिन कुण्ठा प्रतिक्रियाओं का अध्ययन विस्तार में किया गया है, वह निम्न प्रकार से है। Aggression, Regression तथा Fixation उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि "कुण्ठा केवल आवश्यकताओं या इच्छाओं की निष्फलता 1991 ही नहीं है, कुण्ठा का अर्थ इससे कहीं-कहीं अधिक विस्तृत है।

मानसिक अस्वस्थता के स्रोत

प्राणी की क्रियाएं मुख्यत: दो बातों पर निर्भर करती है–

1. प्रेरणा शक्ति (Strength of Motivation)
2. उद्देश्यों से दूरी (Distance from Goal)

व्यक्ति में कितनी कुण्ठा होगी, कुण्ठा की मात्र भी मुख्यत: इन्हीं दो बातों पर निर्भर करती है। यहां कुण्ठा उत्पन्न करने वाले कुछ सामान्य स्रोतों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

1. **प्रतिस्पर्धा:** सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति को जो सुविधाएं और साधन उपलब्ध होते हें, वह सभी व्यक्तियों के लिए समान नहीं होते हैं। समाज के अधिकांश व्यक्ति अपने पद प्रतिष्ठा आर्थिक स्तर आदि को दूसरों के बराबर करने के लिए एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा या होड़ करते हैं। प्रतिस्पर्धा की दौड़ में अक्सर एक व्यक्ति आगे निकल जाता है तथा दूसरा पीछे रह जाता है, पीछे रह जाने वाला व्यक्ति जब बाधाओं पर सफलता पाने में अपने को असमर्थ समझता है, तब उस अवस्था में उसमें कुण्ठा उत्पन्न होती है। सफलता की आशा में असफलता की परिस्थिति भी व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करती है।
2. **उच्च आकांक्षा स्तर:** जब व्यक्ति का आकांक्षा स्तर उसकी योग्यताएं की अपेक्षा बहुत अधिक उच्च होता है, तब इस अवस्था में भी व्यक्ति सफलता की अनेक आशाएं करता है। परन्तु योग्यताओं के अभाव में अक्सर उसे असफलता या निराशा ही मिलती है। इस प्रकार की परिस्थिति व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न कर देती है। उच्च आकांक्षा स्तर और योग्यताओं के अभाव में सफलता प्रयास में व्यक्ति को नुकसान या दण्ड भी उठाने पड़ सकते हैं। यह परिस्थिति भी व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करती है।
3. **जन्मजात अयोग्यताएं:** कुछ जन्मजात अयोग्यताएं, जैसे–अन्धपन, बहरापन, लंगड़ापन, हकलाना या कोई गम्भीर असाधय रोग आदि अयोग्यताएं जन्मजात भी हो सकती हैं अथवा जन्म के कुछ समय उपरान्त वह अयोग्यताएं उत्पन्न हो सकती हैं। इन अयोग्यताओं की उपस्थिति में व्यक्ति जीवन-संघर्ष में अपने आप को दूसरों से हीन पाता है अथवा इस प्रकार की कल्पना करता है। हीनता की भावना की कल्पना की अवस्था में व्यक्ति जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है जब असफल होना उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। हीनता की भावना और असलता की अवस्था में, व्यक्ति में कुण्ठा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।
4. **वाह्य कारक:** उपरोक्त तीनों कारक आन्तरिक कारक हैं। यहां नीचे कुछ महत्वपूर्ण वाह्य कारकों का वर्णन किया गया है, जिनकी उपस्थिति में कुण्ठा का उत्पन्न होना स्वाभाविक दिखायी देता है।
   (a) **प्राकृतिक पर्यावरण से संबंधित कारक:** जैसे–बाढ़, भूकम्प, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्नि, प्रकोप आदि से व्यक्तियों की लक्ष्य प्राप्ति में गम्भीर बाधाएं हैं, जिनसे कुण्ठा उत्पन्न होने की बहुत अधिक सम्भावनाएं होती हैं।
   (b) **दुर्घटनाएं:** विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाएं भी व्यक्ति को आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक रूप से कमजोर कर सकती है और इस कमजोरी को अवस्था में व्यक्ति बाधाओं पर सफलता प्राप्त करने में असहाय हो जाता है तो कुण्ठा के उत्पन्न होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती है।

(c) **राजनैतिक कारण:** व्यक्ति की अनेक प्रेरणाओं पर राज्य अंकुश होता है, जिसके फलस्वरूप प्रेरणायें राज्य के नियंत्रण के कारण किलता का रूप ले लेती है।

(d) **सामाजिक बाधाएं:** मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे अपने व्यवहार को समाज के अनुकूल बनाना है। वह किसी भी इच्छा या प्रेरणा के अभीष्ठ तक पहुंचने के लिए इस बात का ध्यान रखता है कि अभीष्ठ का सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक पक्ष क्या है, जैसे.आर्थिक सुरक्षा के लिए व्यक्ति चोरी आदि का कार्य नहीं करता।

मानसिक अस्वस्थता की उत्पत्ति

मानसिक अस्वस्थता के प्रति प्रतिक्रिया के तरीके:

मानसिक अस्वस्थता के प्रति प्रतिक्रिया के मुख्यत: दो तरीके होते हैं:

(अ) प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएं:

प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएं अन्तर्द्वन्द और कुण्ठा का प्रत्यख रूप से समाधान करने के वे चेतन प्रयास हैं, जिनसे लगभग स्थायी समाधान होता है। इनका उपयोग व्यक्ति बहुध छोटी कठिनाईयां या हल्की कुण्ठा की अवस्था में ही करता है। यह तरीके मुख्यत: तीन हैं–

1. आक्रमण (Attack)
2. सुलह (Compromise)
3. परिस्थिति से पीछे हटना (Withdrawal)

1. आक्रमण (Attack): आक्रमण में व्यक्ति बांध को हटाना चाहता है। कुण्ठा की अवस्था में व्यक्ति इस प्रकार की प्रतिक्रिया करते समय स्वयं कार्यवाही करके बाध हटाकर समस्या का समाधान करना चाहता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति नौकरी प्राप्त करने में असफल हो जाता है तो वह अधिक प्रयास करके कौशलों को बढ़ाता है। आवश्यकतानुसार व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से समस्या समाधान के लिए लड़ाई और मारपीट करके भी समस्या का समाधान कर सकता है। इस प्रतिक्रिया का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके द्वारा व्यक्ति के जीवित रहने के लिए जो आवश्यक लक्ष्य है, उन्हें प्राप्त करता है तथा बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है।
2. सुलह (Compromise): कुण्डा से संबंधित अनेक परिस्थितियां ऐसी होती है कि व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में कुछ न कुछ समझौतापूर्ण समाधान निकालना ही पड़ता है। कई बार इस प्रकार की प्रतिक्रिया में व्यक्ति वास्तविक वस्तु के स्थान पर उसके डुप्लीकेट या सबस्टीट्यूट के काम चलाकर समझौता करता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जो भूखों पर रहा है वह अपने अन्तरात्मा से समझौता करने के लिए यह कह सकता है। बस एक बार चोरी करके खा लूं फिर कभी नहीं या अपनी भूख को मिटाने के लिए गन्दी वस्तुएं खाकर भूख शान्त कर सकता है। एक काम (Sex) से उत्तेजित व्यक्ति अपनी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिए अगर उसे कुछ न मिले तो तस्वीरों या दिवास्वप्न द्वारा ही सन्तोष प्राप्त कर सकता है।
3. परिस्थिति से पीछे हटना (Withdrawal): कुण्ठा के प्रति प्रतिक्रिया करते समय व्यक्ति वापसी प्रतिक्रिया के अन्तर्गत कुण्ठा परिस्थिति से दूर हटकर समस्या से बचता है या समाधान करता है। व्यक्ति इस प्रतिक्रिया को कई प्रकार से कर सकता है, जैसे (क) वह खतरे की परिस्थिति से हार मान सकता है। (ख) कुछ समायोजन संबंधी भागों की उपेक्षा कर सकता है। (ग) परिस्थिति के प्रति अपने संवेगात्मक लगाव को कम कर सकता है। उपर्युक्त तीन तरीकों से वह खतरे की परिस्थिति से बच सकता है। इसे संक्षेप में परिस्थिति से पलायन कह सकते हैं।

अस प्रतिक्रिया के द्वारा व्यक्ति जिन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है या जिनका समाधान नहीं कर सकता है, उनसे पलायन करके बचाव करता है। इस प्रतिक्रिया के साथ भय-संवेग काम करता है।

(ब) अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएँ:

अन्तर्द्वन्द और कुण्ठा का समाधान व्यक्ति जब अप्रत्यक्ष ढंग से चेतन, अर्ध-चेतन और अचेतन स्तर पर विभिन्न मनोरचनाओं (Mental Mechanisms) के द्वारा करता है, जो यह अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाएं कहलाती हैं।

जब व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द और कुण्ठा उत्पन्न होते हैं तो व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है। इन अवस्थाओं में व्यक्ति का अहं असुरक्षित हो जाता है। इन अवस्थाओं में अहं अपनी सुरक्षा प्रतिरक्षा क्रियातंत्र या मनोरचनाओं की सहायता से करता है। कुछ प्रमुख मनोरचनाएँ निम्न हैं:

1. दमन (Repression)
2. शमन (Suppression)
3. प्रतिगमन (Regression)
4. उदात्तीकरण (Sublimation)
5. अन्तर्बाध (Inhibition)
6. रूपान्तरण (Conversion)
7. युक्तिकरण (Rationalization)
8. प्रतिक्रिया निर्माण (Reaction Formation) इत्यादि।

मानसिक अस्वस्थता का प्रभाव:

मानसिक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो जाती है–

1. हीन ग्रन्थि का जन्म।
2. आक्रामक व्यवहार।
3. तनाव की अनुभूति।
4. मानसिक लक्षण।

जब व्यक्ति अपनी इच्छित प्रेरक की संतुष्टि व्यक्तिगत या सामाजिक बन्धन के कारण नहीं कर पाता है तो इससे उसमें मानसिक अस्वस्थता के भाव उत्पन्न होते हैं तथा शैने: शैनें: उससे हीनता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी मानसिक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति विद्रोहात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है या एक प्रकार के तनाव की अनुभूतिकरता है। इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उसमें अनेक प्रकार के मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ व्यक्तियों में ऐसी सूझ-बूझ होती है कि वह इन निराशाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है। जबकि कुछ व्यक्ति निराश हो जाने पर कुण्ठित हो जाते हैं तथा ऐसी प्रतिक्रियाएं करना आरम्भ कर देते हैं जो असमायोजित या असामान्य व्यवहार की प्रतिपालक होती है।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

* सिंह ए.एन. सिह ए.पी. समाज कार्य देवा पब्लिकेशन्स लखनऊ 2007
* सिंह ए.एन. गर्ग सांख्यिकी के सिद्धांत देवा पब्लिकेशन्स लखनऊ 2007
* प्रो0 सुरेन्द्र सिंह प्रो0 आर0बी0एस0 वर्मा भारत मे समाज कार्य का क्षेत्र न्यू रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ पृष्ठ 104-131
* दैनिक जागरण लखनऊ (संस्करण) 17.10.2007
* डॉ. सोती शिवेन्द्र चन्द्र भारत मे सामाजिक समस्याएँ, कनिष्का पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, पृष्ठ 63-64
* डॉ. जी0 के0 अग्रवाल - सामाजिक विघटन, साहित्य भवन, आगरा पृष्ठ 386-386
* डॉ. लाभ सिंह एवं डॉ. गोविन्द तिवारी - असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ 118-119
* प्रो0 पी0 डी0 मिश्र - असामान्य व्यवहार, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ पृष्ठ 147-148
* R.K. Kanpur "Youth Welfare " The planning commission Government of India (E.D.), Encyclopaedia of social work in india Vol. Two (1968: 437-438), Publications Division government of India New Delhi
* http:planningcommission.nic.inèkplansèkplanrelèkfiveyrèk10thèkvolume2èkv2_ch2_7.pdf.
* Souvenir-National Seminar on youth Related Schemes & Employment interface,A ugust 9 & 10 2003, P – 8.
* Bogardus, E.S., Sociology, Macmillan company Newyork, 1953, P-548.

गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्थाः एक समीक्षा

डॉ० सैय्यद मुर्शिद फैज

व्याख्याता, इतिहास विभाग, अल-हफीज़ कॉलेज, आरा (बिहार)

शोध-साराश

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकालीन सभ्यता-संस्कृति के विविध क्षेत्रों, विशेषतः सामाजिक परिस्थितियों की ओर मूल्यांकन करने के क्रम में यह देखा गया है कि तत्कालीन समाज को व्यवस्थित एवं विकसित करने के उद्देश्य से अनेकानेक विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया गया है, जैसे– तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था, दास प्रथा, वैवाहिक संबंध, संयुक्त परिवार, स्त्रियों की स्थिति, मनोरंजन के साधन, खानपान आदि। अन्य युगों की अपेक्षा जब हम गुप्तकालीन उक्त विषयों का अध्ययन करते हैं, तो वहाँ तत्कालीन परिस्थितियाँ देशकाल व पात्र के अनुसार अत्यधिक उपयुक्त प्रतीत होती हैं।

Keywords: मनु, ब्राह्मण

गुप्तवंशीय शासकों का समाज पारम्परिक तरीके से चार भागों में बंटा था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्राह्मण सर्वोपरि थे। उन्हें शिक्षा संबंधी, राजनीति संबंधी, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक खास अधिकार मिले हुए थे। उनका काम मुख्य रूप से छः प्रकार का था – वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना।[1] ये कर्म उनके स्वधर्म के अन्तर्गत माने जाते थे। वे सामाजिक विकास हेतु सदैव तत्पर रहते थे। अपनी तपस्या एवं साधना से वे समाज के लोगों को अच्छे मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित करते थे। गुप्तकालीन साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि उस समय ब्राह्मणों को मृत्युदंड नहीं दिया जाता था। शूद्रक के मृच्छकटिक के नवें अंक में ब्राह्मण धरूदत्त को हत्यारा प्रमाणित करने के बाद भी ब्राह्मण होने के कारण उन्हें प्राणदंड नहीं दिया गया था। मनु ने ब्राह्मण हत्या को महापाप बताया है।[2] दशकुमारचरितम् में ब्राह्मण मंत्री को देशद्रोही होने पर केवल अंधा कर दिया गया था। गुप्तकालीन प्रमुख ब्राह्मण राजवंशों के प्रमाण मिलते हैं।

गुप्तकालीन सामंत शासक मातृविष्णु जाति का ब्राह्मण था। मनु की मान्यता के अनुसार, अगर ब्राह्मण क्षत्रिय धर्म से जीवन निर्वाह नहीं कर पाता, तो उसे कृषि कर्म, गो-पालन और व्यापार ग्रहण कर लेना चाहिए।[3]

समाज में क्षत्रिय दूसरे स्थान पर थे। गुप्तकाल से जुड़े सभी स्मृतिकारों, पुराणकारों एवं उपनिषद्कारों ने क्षत्रियों को समाज में दूसरा दर्जा दिया है। वे देश और समाज के हित में काम करते थे। युद्ध में जीती गई समस्त वस्तुएँ (खाद्य, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण एवं वस्त्र) क्षत्रियों की होती थी।[4] सम्राट समुद्रगुप्त को ऐसे ही अनेक राजाओं से उपहार में बहुमूल्य धन-सम्पत्ति एवं राज-कन्याएँ प्राप्त हुई थीं। मनु के अनुसार, क्षत्रिय को वैश्य कर्म अपनाने की सलाह दी गई है और कृषि कार्य करने को मना किया है।[5] आर्थिक संकट आने पर वे व्यापार कर सकते थे।

क्रमागत आधार पर वैश्य का समाज में तीसरा स्थान था। कृषि और व्यापार करने के लिए वे पूरी तरह से आजाद थे। गुप्तकाल में उन्हें श्रेष्ठि, वर्णक आदि नामों से पुकारा जाता था। वहीं, श्रेष्ठि आज का सेठ कहलाता है। वैश्य ही राज्य को सर्वाधिक कर प्रदान करते थे। आपातकाल में वैश्य को ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्म अपनाने की छूट थी। गो, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा हेतु वैश्य भी शस्त्र ग्रहण कर सकता था।

समाज में शूद्रों की दशा चौथे स्थान पर थी। हेमचंद ने शूद्रों के लिए छः नाम दिए हैं – शूद्र, अन्त्य वर्ण, वृषल, पद्यः, पज्ज और जघन्य।[6] शूद्रों को नीच कहा जाता था। उनमें उत्साह और प्रयास का पूर्ण रूप से अभाव था। उनके समाज से जुड़े सारे नियम

उन्हें नीचता दिखाते थे। मनु की मान्यता के अनुसार, वे काष्ठ शिल्प, धतु शिल्प, मांड शिल्प एवं चित्रकला आदि कर्म कर सकते थे। वे विद्यार्थी भी हो सकते थे। पुराण उन्हें उदारता प्रदान करते हैं।[7] कुल मिलाकर शूद्र ब्राह्मण की कृपा पर निर्भर रहता था।

गुप्तकालीन स्मृतियों में कुछ मिश्रित जातियों, यथा – मृर्द्धानिशितां, अम्बष्ट, पारशब, उग्र तथा करण का उल्लेख मिलता है। उन्हें निम्न स्तर के कार्य, जैसे– शिकार करना, मछली मारना, श्मशान घाट की रखवाली करना निर्धारित थे। उन्हें गाँव के बाहर रहने की इजाजत थी। गाँव में प्रवेश करते समय उन्हें ढोल बजाना पड़ता था, ताकि लोग उन्हें स्पर्श करने से बचें। उन्हें स्मृतियों में चांडाल कहा गया है। शूद्रों के अलावा सभी वर्ण आपस में खानपान कर सकते थे, परन्तु याज्ञवल्क्य ने कृषक भाई एवं अहीर के साथ भोजन ग्रहण करने की अनुमति दे रखी है। स्मृतियों में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि ब्राह्मणों ने ही अब्राह्मणों का व्यवसाय ग्रहण किया था। उदाहरण के तौर पर, मयूर शर्मा ब्राह्मण ने स्वेच्छा से अमिय वृत्ति अपनाकर वाकाटक वंश की स्थापना की। 15वीं सदी के एक लेख से ज्ञात होता है कि एक तैलिक वेणी का प्रमुख अधिकारी क्षत्रिय था। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि थोड़े की अंतराल के बाद सभी वर्ण कोई भी व्यवसाय अपना लेते थे।

दास प्रथा

गुप्तकाल में दासता के भी उदाहरण मिलते हैं। नारद स्मृति में दासता के सूक्ष्म विवेचन मिलते हैं। प्रायः ऋणकर्त्ताओं, करदाताओं एवं युद्धबंदियों को दास बनाया जाता था। दासों के साथ अमानवीय व्यवहार नहीं होते थे। वे दासता से मुक्त भी हो सकते थे।

वैवाहिक स्थिति

शास्त्र बताते हैं कि विवाह धर्म का एक प्रमुख हिस्सा था। वंश परम्परा और धार्मिक कार्य हेतु पति-पत्नी का साथ अनिवार्य था। आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा प्राप्त होती है–ब्रह्म, दैव, आर्श, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच के अलावा अन्य विवाह, शास्त्र-मान्य थे। वात्स्यायन के कामसूत्र में प्रेम-विवाह का उल्लेख पाया जाता है। धनाढ्य बहु विवाह कर सकते थे। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में राजाओं को बहुवल्लभ कहा गया है। नागरिकों के उदार वर्ग में विधवा विवाह की प्रथा थी। अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह की भी चर्चा की गई है। अंतर्जातीय विवाह के भी प्रमाण मिलते हैं। अपने वर्ण में ज्यादातर विवाह होते थे। ब्राह्मणवंशीय वाकाटक शासक रूद्रसेन ने वैश्य वर्ण की प्रभावती गुप्ता के साथ विवाह किया था। याज्ञवल्क्य ने अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों को कानूनी माना है। कदम्बों ने अपनी बेटियों का विवाह वैश्य गुप्तों के साथ किया था। गुप्तकाल में विदेशी कन्याओं को पत्नी रूप में स्वीकार करने के उल्लेख मिलते हैं।

संयुक्त पारिवारिक विधान

गुप्तकालीन समाज में संयुक्त व पारिवारिक व्यवस्था देखने को मिलता है। माता-पिता के रहते पारिवारिक विघटन की निंदा की गई है। एक गुप्तकालीन अभिलेख से पता चलता है कि एक दानकर्त्ता अपनी माँ, पत्नी, एक पुत्र, एक पुत्री, दो भतीजों और दो भतीजियों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए दान किया करता था। इससे स्पष्ट होता है कि पिता की मृत्यु के बाद भाई पूरे परिवार के साथ संयुक्त रूप से रहते थे।

स्त्रियों की दशा

समाज में स्त्रियों की दशा दयनीय थी। बाल विवाह का प्रचलन ऊँचाई पर था। कुछ स्मृतिकारों ने पिताओं के लिए यह अनिवार्य कर दिया है कि वे अपनी कन्याओं का विवाह उनके रजस्वला होने से पूर्व ही कर दें। ऐसा नहीं करने पर उन्हें नरकगामी होना पड़ सकता है। स्त्रियों को शिक्षा देना पूर्णतया मना था। कहीं-कहीं ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि उच्च कुल में पैदा औरतों को शिक्षा की व्यवस्था थी। आश्रमों में रहने वाली कन्याएँ इतिहास और पुराणों के अध्ययन के साथ-साथ पद्य रचना करती थी। महाकवि कालिदास ने आदर्श पत्नी के अन्य गुणों के साथ उसकी ललित कला निपुणता का भी उल्लेख किया है। शकुंतला की सखी अनुसूया चित्रकला में और यक्ष की पत्नी वीणा बजाने में पारंगत थी। अमरकोश में नारी शिक्षिकाओं द्वारा वैदिक मंत्रों का ज्ञान प्रदान करने का उल्लेख मिलता है। उन्हें उपाध्याया कहा जाता था। ललित विस्तर से पता चलता है कि राजकन्या गोपा बहुत सारे शास्त्रों में पारंगत थी। मनु की मान्यता है कि सभ्य नागरिक पत्नी को आय-व्यय का हिसाब रखने हेतु ज्ञान आवश्यक है।[8] जहाँ तक स्त्रियों की सम्पत्ति

का सवाल है, याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्र और विधवा के अभाव में पुत्री को उत्तराधिकारी बनाया जाना चाहिए। बृहस्पति ने भी उत्तराधिकार को स्वीकार किया है। भाष्यकार विज्ञानेश्वर ने छह प्रकार के स्त्री धन को स्वीकारा है – पिता, भ्राता, माता और पति द्वारा दिया गया धन तथा कन्यादान के समय प्राप्त धन। विवाह के बाद ससुराल जाने पर सास-शसुर एवं ननद द्वारा दिया गया धन भी स्त्रीधन माना जाता था।[9] गुप्तकालीन समाज में पर्दा प्रथा एवं घूंघट का प्रचलन था।

वेश्यावृत्ति

मृच्छकटिक में वेश्यावृत्ति की चर्चा है। वेश्या निवास को नवयुवकों का घर समझा जाता था। वेश्यागामी को समाज निम्न दृष्टि से देखता था। वृद्ध वेश्याएँ कुट्टनी का काम करती थीं और युवक एवं युवतियों को वेश्यावृत्ति का काम सिखाती थीं। आजीविका के लिए ये युवतियाँ अपनी आमदनी से इन्हें तनख्वाह देती थीं। दयनीय दशा में पड़ी युवतियों को वेश्यावृत्ति सिखा देना और नवयुवकों को पथभ्रष्ट करना उनका व्यवसाय था। इस तरह के प्रमाण दो प्राचीन ग्रंथों 'कुट्टनीमतम्' और 'दूतीकर्म' में मिलते हैं।

मनोरंजन

गुप्तकालीन ग्रंथों में मनोरंजन के बहुत सारे साधन बताए गए हैं। वात्स्यायन ने कामसूत्र में नागरिकों की उद्यान यात्रा की बात बताई है। धनी वर्ग अपने घरों में अनेक तरह के पशु-पक्षी रखते थे। राजवर्ग के लोग मृगया को आमोद-प्रमोद का प्रिय साधन मानते थे। 'शाकुंतलम्' में भी इस तरह की चर्चा आई है। उज्जयिनी वेश्या बसंतसेना की पक्षीशाला में कोयल, सारिका, शुक, मोर, तीतर एवं हंस आदि पक्षी मौजूद थे। मृच्छकटिक में द्यूत को समस्त भौतिक सुखों की प्राप्ति का साधन माना गया है। नगर में अनेक नाटक गृह और ग्राम भवन होते थे, जहाँ लोगों का मनोरंजन होता था। सामाजिक उत्सवों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने अपने यात्रा वृतांत ने लिखा है, प्रतिवर्ष रथ यात्रा का आयोजन किया जाता है। संख्या में रथ 20 होते हैं। रथो की साज-सज्जा आकर्षक एवं अनुपम होती है। इस अवसर पर संन्यासी गणमान्य एवं सामान्य व्यक्ति भी एकत्रित हो जाते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। सारी रात दीपक जलता है। विभिन्न प्रकार से पूजन किया जाता है। प्रत्येक जनपद में ऐसा ही किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य पर्वो पर भी इस प्रकार के उत्सवों का आयोजन किया जाता था।[10]

वस्त्र और आभूषण

साहित्यिक ग्रंथ और कलाकृतियों से हमें गुप्तकाल में प्रयुक्त वस्त्र और आभूषण की जानकारी प्राप्त होती है। पुरुष धोती पहनते थे एवं पगड़ी बांधते थे। औरतें साड़ी और साया पहनती थीं। अजंता की गुफाओं की चित्रकारी बताती है कि एक स्त्री छींट की अंगिया पहने हुए हैं। साड़ियाँ बहुध रंगीन हुआ करती थीं। सूती कपड़े का प्रचलन ज्यादा था, परन्तु ऋतुओं के अनुसार गर्म और रेशमी कपड़े भी पहने जाते थे। चीनी यात्री फाहियान के अनुसार भारतीय ऊनी और रेशमी कपड़े अधिक पहनते थे। रेशमी कपड़े चीन से आते थे। इसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने 'चीनांशुक' शब्द द्वारा किया है। कुमारगुप्त के मंदसौर अभिलेख से पता चलता है कि स्त्रियों के बीच रेशमी कपड़े बहुत प्रिय थे। स्त्रियाँ आभूषण प्रिय थीं। करधनी, कड़ा, अंगूठी, बाजूबंद आदि का प्रयोग ज्यादातर किया जाता था। स्त्रियाँ पैरों में घुंघरू भी पहनती थीं। राजकुल के पुरुष विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनते थे। बांग्लादेश के राजशाही जिले से कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनके वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत के साथ कठि पर कठिबंध तथा उदर में उदरबंध आदि गहने दिखाई पड़ते हैं। अमरकोश में अनेक गहनों, यथा – सिट, लटगर, कानो, नाक, कलाइयों, भुजाओं, अंगुलियों, कमर तथा पैरों के गहनों का इस समय काफी प्रचलन था। केश-विन्यास देखने पर स्त्रियों की दक्षता का पता चलता है। स्त्रियाँ पुष्प से बालों को सजाती थीं। आज महाराष्ट्र की राजधनी मुंबई में बालों को फूलों से सजाने का प्रचलन जोरों पर है। कालिदास के 'मेघदूतम्' से पता चलता है कि स्त्रियाँ केशों में मंदार के फूल लगाकर उनको कृत्रिम तरीके से सुगंधित करने का प्रयास करती थीं। बाघ-गुफाओं की चित्रकारी से पता चलता है कि गणिकाएँ अपने केश के पिछले हिस्से में जुड़ा बांधती थीं और सफेद फूलों की मालाओं से उसे बांधती थीं। बालों की चोटी को बढ़ाने के लिए स्त्रियाँ नकली बालों का भी प्रयोग करती थीं। स्त्रियाँ अपने नेत्र तथा ओष्ठ में अंगराग लगाती थीं। अलंकार प्रेमी पुरुष सुगंधित तेलों का प्रयोग करते थे। लोग श्रृंगार साधनों से पूर्ण रूप से अवगत थे।[11]

खानपान

समाज में आज की भांति शाकाहारी-मांसाहारी दोनों थे। फाहियान के अनुसार, बाजारों में मांस और मदिरा की दुकानें नहीं हैं। लोग सूअर तथा मुर्गियाँ नहीं पालते। प्याज और लहसुन का भी प्रयोग नहीं मिलता। शराब नहीं पीते। केवल चांडाल जंगली पशुओं का आखेट करते और मांस का विक्रय करते थे। फाहियान का यह कथन सत्य नहीं प्रतीत होता है। यह कथन बौद्धधर्मावलंबियों के लिए उपयुक्त लगता है। हिन्दू तो लहसुन और प्याज खाते थे। शकुंतला नाटक में चर्चा है कि मांढव्य नामक पात्र ब्राह्मण होते हुए भी सूअर का मांस खाता है। तत्कालीन स्मृति ग्रंथ बताते हैं कि मांस-मछली खाने पर मनाही नहीं थी। बृहस्पति की मान्यता है कि जिन औरतों के पति विदेश चले गए हैं, उन्हें मांस-मदिरा से बचना चाहिए। कालिदास के ग्रंथों में सुरा सेवन की काफी चर्चा मिलती है। 'मालविकाग्निमित्रम्' 'रघुवंशम्' तथा 'कुमारसंभवम्' तीनों ग्रंथों में सुरा सेवन का उल्लेख साफ शब्दों में किया गया है। लोग शाकाहारी भी थे। चावल, यव, गेहूँ, दाल, फल, घी, दूध तथा मक्खन शाकाहारियों का भोजन था। शालि, महाशलि, कलम तथा वहाव्रिहि धन की प्रमुख प्रजातियाँ थीं। पके हुए चावल को ओदन और भात कहा जाता था। ब्राह्मण का शाकाहारी प्रतिशत 80 से ऊपर था। क्षत्रिय तो जमकर शराब पीते थे।[12]

जहाँ तक मुझे ग्राह्य है, गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था का स्तर उच्च था। नगरों का जीवनस्तर वैभवपूर्ण था। उज्जयिनी, दशपुर, पाटलिपुत्र आदि नगर दर्शनीय थे। मृच्छकटिक द्वारा गुप्तकालीन नगर-जीवन का विलासमय पक्ष उच्च स्तर पा चुका है। साधारण लोगों की स्थिति भी संतोषजनक थी। आजकल भुखमरी और गरीबी का जो प्रतिशत है, वह उन दिनों नहीं था। समाज के लोग एक-दूसरे के सुख-दुख को समझते थे। शादी-विवाह के मौके पर इकट्ठे होते और आर्थिक मदद करते थे। समाज में दानशीलता और उदारता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। धन का वितरण समाज में मुँह देखकर नहीं होता था। प्रो. आनंद कुमार स्वामी ने गुप्तकालीन संस्कृति को विलासमयी, आभिजात्य संस्कृति कहकर संबोधित किया है। स्वामी का यह कथन गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था की मजबूती का संकेत देता है। निश्चित रूप से गुप्तकालीन लोगों की आर्थिक दशा मजबूत रही होगी। बिना अर्थ के विलासमय जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 10.75
2. मनुस्मृति, 11.54
3. मनुस्मृति, 11.56
4. मनुस्मृति, 7.90
5. मनृस्मृति, 7.96
6. हेमचन्द अभियान चिन्तामणि, 38.34
7. वायुपुराण, 101.353
8. मनुस्मृति, 112
9. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य, 2.143-44
10. उदयनारायण राय, गुप्त राजवर्ष तथा उसका युग, पृष्ठ 317
11. वृहत्संहिता, 5.21
12. आर. एन. डांडेकर, हिस्ट्री ऑफ गुप्ताज, पृष्ठ 121-22

भारत में संघीय व्यवस्था का सामाजिक एवं ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ० सुनील कुमार यादव

दहियावाँ, सिया मस्जिद के दक्षिण, छपरा, सारण (बिहार)

संघवाद समाज, संस्कृति एवं राजनीति के बहुलवादी स्वरूप का राजनीतिक प्रबन्धन है, स्वशासन एवं साझाशासन की संवैधानिक संरचना है, स्वायत्तता एवं राष्ट्रीयता के समन्वित अभिव्यक्ति की राजनीतिक विद्या है। इसका स्वरूप बहुलवादी है प्रवृत्ति समायोजनवादी हैं। प्रयोजन एकीकरणवादी है। संघावाद ऐसे राष्ट्रीय राज्य में पुष्पित एवं पल्लवित होता है, जहाँ बहुलवादी समाज के संस्थानीकरण को सुनिश्चित किया जाता है, राजनीतिक सहभागिता को अधिक से अधिक व्यापक बनाया जाता है, सम्प्रभु की शक्ति को सीमित एवं विभाजित किया जाता है, संघ एवं संघीय इकाइयों के बीच पारस्परिक निर्भरता एवं सहयोग को संस्थाबद्ध किया जाता है। इसमें संघ एवं संघीय इकाइयों के सामुहिक विकास का आघार राष्ट्रीय होती है तथा निजी विकास का आधार स्वायत्तता होती है। यह केंद्र और राज्यों बीच केवल शक्ति का विभाजन ही नहीं है। अपितु विविधतापूर्ण समाज की राष्ट्रीय जीवन पद्धति भी है लिविंग्स्टन का मानना है कि संघवाद का सारतत्व संवैधानिक या संस्थागत संरचना में नहीं अपितु सामाजिक संरचना में अन्तर्निहित होता है। संघवादी संविधान द्वारा समाज के संघीय गुणों को व्यवस्थित एवं संरक्षित किया जाता है। संघवाद मूलतः संविधान का नहीं समाज का परिणाम है।[1]

आधुनिक युग में सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में 1787 मे संघात्मक संविधान का निर्माण हुआ तत्पश्चात् 1848 में स्वीट्ज़रलैड में 1867 में कनाडा में, 1901 में ऑस्ट्रेलिया में तथा 1917 में सोवियत संघ में हुआ। भारत में 1950 में संविधान लागू होने के साथ ही संघीय व्यवस्था का कार्यन्वयन प्रारम्भ हो गया। किन्तु भारत में न तों कनाडियन शैली के स्वायत्तशासी प्रान्त बने, न अमेरिका के शुद्ध संघात्मक शैली सोवियतसंघ के एकाधिकारवादीशैली की न स्वीट्ज़रलैंड़ के समान मुक्त अनुबन्ध से जुड़े कंन्टन शैली कें भारत में इन सब से भिन्न केंद्रीकृत स्वायत्त शासन शैली के प्रान्तों की व्यवस्था की गयी।

भारतीय संघवाद भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं सामाजिक संरचना का परिणाम हैं। यही कारण है कि यह न तो अमेरिका की अध्यक्षात्मक संघवाद की तरह हो सका न कनाडा के संसदीय संघवाद की तरह, न स्वीट्ज़रलैंड़ की पार्शदीय संघवाद की तरह। अतः इसे समझे बिना भारतीय संघवाद का आंकलन सही–सही नहीं किया जा सकता। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले तथा संविधान निर्माण के समय कुछ ऐसी राजनीतिक समस्याएं एवं परिस्थितियाँ थी। जिसका समाधान किये बगैर ब्रिटिश शासक सत्ता स्थानान्तरण के लिये तैयार नहीं थे। वे परिस्थितियाँ थी:

1. देशी रियासतें अपनी स्वतंत्र पहचान तथा सत्ता संबंधी सुविधा खोकर आजादी प्राप्त करने के लिये तैयार नहीं थी।
2. मुस्लिम लीग किसी भी ऐसी संवैधानिक व्यवस्था को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था जिसमें हिन्दू बहुल कांग्रेस का वर्चस्व हो।
3. अल्पसंख्यक समुदाय अपनी सुरक्षा स्वायत्तता एवं विकास के अवसर को सुनिश्चित किये बगैर अजादी प्राप्त करने को तैयार नहीं था।
4. राष्ट्रीय कांग्रेस किसी भी ऐसी संवैधानिक व्यवस्था को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था जिसका कोई राष्ट्रीय स्वरूप न हो तथा जिसमें प्रजातांत्रिक मूल्यों को महत्व न दिया गया हो।

5. ब्रिटिश शासक तब तक आजादी देने को तैयार नहीं थें, जब तक देशी रियासतें अल्पसंख्यक समुदाय एवं मुस्लिम लीग अपनी सहमति न प्रदान करें।

ऐसी स्थिति में इन सभी समस्याओं के समाधान की क्षमता से सम्पन्न संवैधानिक व्यवस्था की खोज स्वंतत्रता आन्दोलन के संचालकों एवं संविधान निर्माताओं की आवश्यकता ही नहीं विवशता बन गयी। गाँधी के नेतृत्व में सार्वदेशिक जनाधरित राष्ट्रीय कांग्रेस के दलीय स्वरूप का विकास, 1930 में संघात्मक व्यवस्था संबंधी साइमन कमीशन का प्रस्ताव 1935 का भारत सरकार अधिनियम, मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित नेहरू समिति की रिपोर्ट और अन्तत: कैबिनेट मिशन की 1946 की रिपोर्ट संघात्मक संवैधानिक व्यवस्था की स्थापना की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण कदम रहे। कैबिनेट योजना की रिपोर्ट के आधार पर जुलाई 1946 में संविधान सभा का गठन हुआ, किन्तु भारत विभाजन के बाद देश की परिस्थितियाँ बदल गयी, संविधान निर्माताओं की सोच बदल गयी। इस बदली हुई परिस्थिति में भारत के लिये स्वायत्तता से महत्वपूर्ण स्थायित्व हो गया। इनीशीसेटिव से महत्वपूर्ण दक्षता हो गयी तथा संघवाद से अधिक महत्वपूर्ण भारत विभाजन से उत्पन्न सम्प्रदायिक एवं विघटनवादी शक्तियों पर नियंत्रण स्थापित करना हो गया।

नेहरू ने अपने प्रतिवेदन में कहा था कि कैबिनेट मिशन योजना में केंद्रीय सत्ता के क्षेत्र पर लगायी गयी सीमाएं मुख्यत: एक समझौता था जिसे संविधान सभा ने देश की प्रशासकीय अपेक्षाओं के विरूद्ध मुस्लिम लीग को समायोजित करने के लिये स्वीकार किया था। अब जब देश का विभाजन एक तथ्य बन चुका है एक संघात्मक संविधान का निर्माण राजनीतिक और प्रशासकीय दोनों दृष्टियों से एक प्रतिगामी कदम होगा। अत: केंद्रीय संविधान समिति एवं नेहरू ने अपने प्रस्ताव में निर्णय लिया कि हमारे संविधान की सुदृढ़तम संरचना शक्तिशाली केंद्र के साथ एक संघ की होगी।[2]

भारत विभाजन के बाद संविधान सभा के गठन की प्रक्रिया में जो परिवर्तन लाया गया, जिस तरह उसकी कार्यवाही संचालित की गयी, जिस तरह की आम सहमति एवं समायोजनकारी निर्णय निर्माण प्रक्रिया अपनायी गयी उससें स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माता केवल संविधान ही बना रहे थे अपितु राष्ट्र का एक समन्वयकारी एवं समायोजनकरी ढ़ाँचा भी खड़ा कर रहे थे। संविधान में समानता के अधिकार के साथ ही धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा एवं संस्कृति के अधिकार की व्यवस्था कर अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना मौलिक अधिकारों में सम्पत्ति के अधिकार की व्यवस्था कर सामन्तों एवं पूँजीपतियों के हितों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना प्रीवीयर्स एवं बी श्रेणी के राज्यों में राज प्रमुख पद की व्यवस्था कर राजाओं के हितों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना, मौलिक अधिकार, संसदीय प्रणाली, स्वतंत्र न्यायपालिका, संविधान तथा संसद के संविधान में संशोधन का अधिकार देकर संविधान को आम जनता एवं विभिन्न समुदायों की बदलती अपेक्षाओं के अनुरूप बनाये रखने की व्यवस्था करना एवं ऐसे समायोजनवादी कदम रहे जो समाज संस्कृति एवं राजनीति के बहुलवादी स्वरूप के संगम के राजनीतिक प्रबन्धन के प्रति संविधान निर्माताओं की प्रतिबद्धता को दर्शातें हैं।

भारत के बहुलवादी समाज की विविधता के बीच एकता को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिये ही भारत में समानीकरण के सिद्धान्त की जगह एकीकरण का सिद्धान्त अपनाया गया। संविधान में कहीं भी सेकुलर शब्द का प्रयोग नही किया गया किन्तु सम्पूर्ण संवैधानिक व्यवस्था को सेकुलरवादी बनाकर अल्पसंख्यकों में व्याप्त असुरक्षा की भावना को राष्ट्रीयता में परिवर्तित करने की व्यवस्था कर दी गयी। संसदीय प्रणाली अपनाकर देश के सभी क्षेत्रों एवं समुदायों के प्रतिनिधियों का राष्ट्रीय प्रान्तीय एवं स्थानीय समस्याओं पर विचारविमर्श करने हेतु तथा समस्याओं के समाधान हेतु सरकार पर दबाव डालने हेतु एक शक्ति सम्पन्न संसद जैसे राष्ट्रीय मंच की व्यवस्था कर दी गयी। राज्यों की गतिविधियों से केंद्र को अवगत कराते रहने हेतु सभी राज्यों में मनोनीत राज्यपाल की व्यवस्था कर दी गयी। निर्वाचन के माध्यम से राजनीतिक सहभागिता को सार्वदेशिक बनाते हुए जाति, वर्ग, सम्प्रदाय एवं क्षेत्र के आधार पर संस्थाबद्ध करने की व्यवस्था कर दी गयी।

संवैधानिक संघवाद को व्यवस्थित एवं संचालित करने वाले राजनीतिक दलों की उपादेयता एवं भूमिका से अच्छी तरह परिचित रहने के बाद भी संविधान निर्माता यदि संविधान में राजनीतिक दलों के संबंध में कोई व्यवस्था नही करते तो इसका मुख्य कारण यही रहा कि भारत के बहुलवादी समाज में उत्पन्न एवं विकसित होने वाले नये-नये समाजिक हितों एवं सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप संवैधानिक संघवाद को स्वतंत्र ढंग से व्यवस्थित करते रहने की जिम्मेदारी राजनीतिक दलों को सौंपना चाहते थे, क्योंकि किसी भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था का संचालन केवल संविधान एवं कानून से ही नही होता अपितु समाज की मनोवृतियों एवं

अभिवृतियों से भी होता है। राजनीतिक दल इन्ही मनोवृतियों एवं अभिवृतियों के प्रतिनिधित्व के माध्यम से विविधता को एकता में रूपान्तरित करते हैं। राजनीतिक दल ही अपनी संघात्मक संरचना के माध्यम से स्वायत्तता एवं राष्ट्रीयता के समन्वित विकास की पृष्ठभूमि तैयार करते है। संघीय इकाइयों के सामूहिक एवं निजी व्यक्तित्व के विकास का प्रबन्ध करते है। राजनीतिक दलों के ऐसे समावेषी स्वरूप के संबंध में उनही ये सभी अपेक्षायें उस समय की राष्ट्रीय कांग्रेस एवं अन्य दलों की संघात्मक संरचना पर आधारित रहीं। 1967 के राजनीतिक परिवर्तन को एक युगान्तकारी घटना मानते हुये योगेन्द्र यादव ने लिखा है कि लोकतंत्र के शिशु को अब नर्सरी से बाहर अधिक नैसर्गिक एवं जोखिम भरे आबोहवा में उतारा जा रहा था। यह व्यवस्था की असफलता का नही बल्कि राजनीतिक दायरे में नये तबकों को शामिल करने में लोकतांत्रिक राजनीतिक की असाधारण सफलता का द्योतक था।[3]

किन्तु यह देश का दुर्भाग्य रहा कि समाज एवं राजनीति के बहुलवादी चरित्र को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले राजनीतिक दलों का समावेषी स्वरूप आरोपित नेतृत्व के विकास के चलते समाप्त होता गया और राजनीतिक दल क्षेत्रीय एवं जातीय हितों के आधार पर खण्डित एवं गठित होते गये। उनकी संघात्मक संरचना एवं स्वरूप भी विकृत एवं निश्प्राण होता चला गया। आज स्थिति यह है कि कोई भी राजनीतिक दल ऐसा नही है जो राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में स्वायत्तता के विकास का वातावरण निर्मित कर सके। संघवादी अपेक्षाओं के अनुरूप अपने को संगठित एवं विकसित कर सके।

अत: प्रस्तुत शोध निबन्ध में यह जानने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार दलीय व्यवस्था में परिवर्तन के साथ ही संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया, किस प्रकार नये राजनीति परिवेष में भारत के संवैधानिक संघवाद का नया अवतार हुआ है, जिसकी परिकल्पना संविधान निर्माताओं ने नहीं की थी। किस प्रकार संघीय संरचना एवं दलीय संरचना का तारतम्य क्रमश: टूटता गया। किस प्रकार दलीय व्यवस्था संघीय व्यवस्था को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने में असमर्थ होती गयी। किस प्रकार दलीय व्यवस्था संघवाद के राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्वरूप को संवैधानिक अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवस्थित रखने में असमर्थ होती गयी। किस प्रकार संघ एवं संघीय इकाईयों के बीच पारस्परिक निर्भरता एवं सहयोग की भावना कम होती गयी और अन्तत: किस प्रकार नये सौदेबाजी आधारित संघवाद का विकास हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नेहरू जी के नेतृत्व में जो संघवादी सरकार बनी वह भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में संघवादी मानकों को सुदृढ़ आधार प्रदान करने में इसलिये सफल हो सकी कि राष्ट्रीय कांग्रेस की संगठनात्मक प्रक्रिया, नेतृत्व निर्माण प्रक्रिया एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया संवैधानिक संघवाद की अपेक्षाओं के अनुरूप रही तथा पार्टी का संस्थागत स्वरूप सुदृढ़ एवं सृजनात्मक रहा। कांग्रेस पार्टी के संस्था विन्यासित स्वरूप के चलते ही सरकार के कार्यकलाप बहुलवादी समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने की ओर अग्रसर होते रहे। संघवादी सरकार को गठित एवं संचालित करने में प्रजातांत्रिक मूल्यों को महत्व दिया जाता रहा। नेहरू और शास्त्री के कार्यकाल में राज्य के मुख्य मंत्री वे ही हुए जो संविधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त किये हुए थे, जो प्रान्त के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली व्यक्ति रहे, जिनका स्वतंत्र व्यक्तित्व रहा, जिनकी कार्य संस्कृति लोकहित आधारित रही। जिनकी सोच राष्ट्रीय मूल्यों एवं संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप रही। उस समय राज्यपाल भी वे ही नियुक्त हुआ करते थे जिनके नाम पर केंद्र और राज्य दोनों की सहमति रहा करती थी। राज्यपाल भी अपनी कार्य संस्कृति में संवैधानिक लोकहितों को महत्व दिया करते थे। केंद्र की सत्ता विन्यासित महत्वाकांक्षा को नहीं अपितु इस अवधि में केंद्र और राज्य परस्पर निर्भरता एवं सहयोग के आधार पर देश को विकास की ओर अग्रसर करते रहे। नेहरू द्वारा अपनाई गई आम सहमति एवं समायोजन की नीति ने संघ एवं संघीय इकाइयों के बीच समस्त संबंधों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। कविराज का मानना है कि प्रारम्भिक रूप में भारतीय संघवाद संविधान की अपेक्षा कांग्रेस पार्टी में सक्रिय संघवादी प्रक्रिया के अनुरूप संचालित होता रहा।[4]

उस समय के मुख्यमंत्रीयों की देख-रेख में प्रान्तीय स्वायत्तता अपने स्वाभाविक गति से विकसित होती रही उस समय के प्रान्तीय मुख्यमंत्रियों में प्रमुख रहे उ0 प्र0 में गोविन्द, बल्लभ, पन्त एवं चन्द्रभानु गुप्त, बिहार में श्री कृष्ण सिंह, पश्चिम बंगाल में विधानचन्द राय, मद्रास में कामराज, मैसूर में निजलिंगगप्पा आदि। दामोदर घाटी निगम की संरचना एवं कार्यक्षेत्र के संबंध में तत्कालीन मुख्यमंत्री विधानचन्द्र राय ने आपत्ति की थी। 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के मामले में केंद्र तथा राज्यों के बीच गहरे मतभेद उभरे थे। किन्तु इस प्रकार के समस्त मतभेद पार्टी आलाकमान तथा वरिष्ठ नेताओं के सहयोग से पार्टी स्तर पर ही सुलझा लिये जाते थे। उस समय केंद्र-राज्य संबंध संविधान की धराओं के अनुसार कम दलीय हाईकमान प्रधानमंत्री एवं कांग्रेस पार्टी के वरिष्ठ नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका द्वारा अधिक निर्धारित होता था।

नेहरू ने स्वस्थ संवैधानिक परम्पराओं का विकास करके, संवैधानिक संरचना का संस्थानीकरण करके, विविधताओं का स्वायत्ततापूर्व से ढ़ंग से एकीकरण की व्यवस्था कराके, संसदीय प्रक्रियाओं का सुदृढ़ीकरण करके सामाजिक व्यवस्था की परम्परागत प्रतिबद्धताओं के रूपान्तरण की व्यवस्था करके, भारतीय संविधान द्वारा प्रायोजित संघावद के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। भारत के संविधान के संघावद एवं संसदीय संस्थाओं का जो साँचा नेहरू ने खड़ा किया उनके अन्दर जिस तरह की कार्य संस्कृति विकसित की, स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक निर्वाचन के माध्यम से आम जनता की अपेक्षाओं एवं महत्वाकांक्षाओं को नीचे से ऊपर लाने के लिये जिस तरह का राजनीतिक प्रबन्धन किया, केंद्र और राज्यों के संबंधों को जिस प्रकार संघीयकरण की प्रक्रिया द्वारा एकीकरण को प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया, वह भावी भारत के निर्माण में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

संवैधानिक संघवाद के प्रजातांत्रिक आधार को सुदृढ़ बनाने के साथ ही अपने सपनों के भारत निर्माण की महत्वाकांक्षा को साकार बनाने हेतु नेहरू ने पार्टी एवं सरकार के संघात्मक स्वरूप पर आघात पहुँचाने की प्रक्रिया का भी बीजारोपण कर दिया। सरदार बल्लभ भाई पटेल के मरने के बाद कांग्रेस अध्यक्ष पुरुषोत्तम दास टंडन को मत्वैमिन्य के चलते पद छोड़ने हेतु विवष करके स्वयं पार्टी अध्यक्ष का पद ग्रहण कर लेना तथा चार वर्ष बाद पद छोड़ने पर अपने पसन्द के व्यक्तियों को अध्यक्ष के पद पर मनोनीत करते रहना, पार्टी के संघात्मक स्वरूप को समाप्त करने की दिशा में बढ़ाया गया महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं उन्होंने पार्टी के साथ–ही–साथ राजस्थान के पटेलवादी मुख्यमंत्री हीरा लाल शास्त्री एवं पंजाब के मुख्यमंत्री गोपी नाथ भार्गव को भी पदत्याग हेतु विवष करके संघवाद के संवौधनिक स्वरूप को ही आघात पहुँचाया। द्वितीय आम निर्वाचन के बाद केरल में नम्बूदरी पाद के नेतृत्व में बनी साम्यवादी सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू करके भी संघवादी व्यवस्था के विरूद्ध आचरण किया। नेहरूजी के ही कार्यकाल में प्रान्तीय त्रिंडल के चयन एवं आकार के संबंध में संसदीय बोर्ड की सहमति ली जाने लगी। ये सारे कदम भारत की संघात्मक व्यवस्था को एकात्मक बनाने की दिशा मे प्रभावी सिद्ध हुये। के संस्थानम ने लिखा है कि शीर्ष का नेतृत्व शाक्तिशाली था तथा राज्यों के नेतुत्व के व्यक्तित्व एवं पद दुसरी श्रेणी का था। पिछले दो विधानमंडलों के उम्मीद्वारों का चयन संसदीय बोर्ड ने किया।[5]

नेहरू ने अपने कार्यकाल के उतरार्द्ध में कामराज योजना के माध्यम से राष्ट्रीय कांग्रेस के संघात्मक चरित्र को पुनः प्रतिष्ठापित करने हेतु कांग्रेस का अध्यक्ष कामराज को बनाया। देश के नये नेता को चुनने के मामले में राज्यों के मुख्यमंत्रियों के महत्व को प्रतिष्ठापित किया। नेहरू ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया, किन्तु प्रजातांत्रिक ढ़ंग से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की राजनीतिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी। नेहरू की बनायी हुई राजनीतिक जमीन पर ही कांगेस अध्यक्ष कामराज ने–नेहरू की मृत्यु के बाद राज्यों के मुख्यमंत्र्यिों, कांग्रेस कार्य समिति के सदस्यों, संसदीय दल के पदाधिकारियों तथा करीब दो सौ सांसदों से परामर्श करने के बाद संसदीय दल की बैठक में बताया कि सांसदो एवं अन्य पक्षों का सबसे ज्यादा समर्थन लाल बहादुर शास्त्री को प्राप्त है। वे आम सहमति के नेता है। 2 जुन 1964 को नेहरू की मृत्यु के ठीक पाँच दिन उनका उत्तराधिकारी चुन लिया गया। भानतीय राजनीति एक युग से दूसरे युग में प्रवेश कर गयी। न देश की एकता टूटी, न पार्टी की। शास्त्री के मरने के बाद भी यही प्रक्रिया अपना कर इन्दिरा जी को संसदीय दल का नेता चुना गया।

नेहरू और शास्त्री के मरने के बाद 1967 में जो चतुर्थ आम निर्वाचन हुआ उसमें कांग्रेस का एकाधिकार समाप्त हो गया। प्रान्तीय स्तर पर दल बदल के आधार पर संविद सरकार बनाने की प्रवृत्ति ने राजनीतिक दलों के संघात्मक एवं संस्थागत चरित्र को समाप्त कर दिया। विधानसभाओं के स्तर पर जो बेमेल एवं विजातीय गठबन्धन की राजनीति प्रारम्भ हुई उसमें राजनीतिक दलों की सिद्धांत निष्ठा, दलीय निष्ठा और दलीय अनुशासन को दफना दिया गया। सरकार को राजनीति रूपी बाजार में सौदेबाजी की वस्तु बना दी गई निर्वाचकीय राजनीति के बीच जो रिक्तता उत्पन्न हुई उसमें भारत के बहुलवादी समाज के सामुदायिक हित के निर्वाचकीय अभिव्यक्ति का आधार जाति, वर्ग और सम्प्रदाय को बना दिया गया। सातवें दशक में जाति वर्ग एवं सम्प्रदाय के लोगों की संख्या के आधार पर पार्टियों द्वारा उम्मीद्वारों का चयन होने लगा। इससे संघवाद की जीवनी शक्ति राष्ट्रीयता एवं स्वायत्तता का समन्वित विकास अवरूद्ध होता गया। संघवाद और दलीय व्यवस्था अनिश्चितता एवं उद्देश्यहीनता का शिकार होती गयी। इसी अवधि में जाति एवं वर्ग आधारित आरोपित नेतृत्व का विकास प्रारम्भ हो गया जिसके चलते केंद्र और राज्य के संबंध राजनीतिक दलों के नेतृत्व की महत्वकांक्षा के अनुरूप व्यवस्थित होते गये तथा राजनीतिक दलों का संगठन भी की महत्वाकांक्षा के अनुरूप ही व्यवस्थित होने लगा।

केंद्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी ने विभिन्न राजनीतिक रणनीति के तहत गैर कांग्रेसी राज्य सरकारों को उलटनें, विधानसभाओं को भंग करने तथा राष्ट्रपति शासन लागू करने जैसे कदम उठाकर केंद्र और राज्य के संबंधों को अनिश्चितता के दौर में ढ़केल दिया। जिससे क्षेत्रीय जातिवादी एवं वर्गवादी राजनीतिक दलों के विकास का मार्ग प्रशस्त होता गया। राष्ट्रीय पार्टियों का जनाधर कम होता गया। ऐसी ही स्थिति में राज्यपाल अपनी दोहरी भूमिका (राष्ट्रपति के प्रतिनिधि एवं राज्य का संवैधानिक प्रधान) के बीच सन्तुलन स्थापित करने में असमर्थ होता गया। एक तरफ यदि राष्ट्रीयता का हास हुआ तो दूसरी तरफ केंद्रीय सरकार के सत्ताविन्यासत हस्तक्षेप राज्यों में स्वायत्तता का भी ह्रास हुआ।

ऐसी दिशाहीन दलीय व्यवस्था के काल में 1971 के मध्यावधि निर्वाचन के बाद बंगलादेश के निर्माण के बाद एवं 1972 के विधान सभाई निर्वाचन के बाद संघ एवं संघीय इकाइयों पर इन्दिरा जी का एकाधिकार स्थापित हो गया। सम्पूर्ण संघात्मक व्यवस्था एवं इन्दिरा कांग्रेस का संगठन इन्दिरा जी की सत्ता विन्यासित महत्त्वकांक्षा के अनुसार व्यवस्थित एवं संचालित होने लगा। वी. डी. दुआ ने लिखा है कि नेहरू ने केंद्र और राज्यों के बीच पार्टनरशिप आधारित आम सहमति का जो ढ़ाँचा खड़ा किया था उसे उन की पुत्री ने छिन्न-भिन्न कर दिया।[6] इस अवधि में भारतीय संघवाद मे दो तरह के केंद्र राज्य के संबंध विकसित हुए-कांग्रेसशासित राज्यों में मनोनित मुख्यमंत्री की परम्परा प्रारम्भ होने के कारण स्वामी एवं सेवक का संबंध विकसित हुआ तथा गैर-कांग्रेस शासित राज्यों में विशेषकर क्षेत्रीय पार्टी वाले राज्यों में विरोध आधारित प्रतिद्वंद्वी का संबंध विकसित होने लगा।

इस प्रकार कांग्रेस शासित राज्यों में केंद्रीकृत प्रवृति के चलते स्वायत्तता का विकास अवरूद्ध होता गया तथा क्षेत्रीय पार्टियों द्वारा शासित प्रान्तों में अत्याधिक स्वयत्तता की माँग के चलते राष्ट्रीयता का विकास अवरूद्ध होता गया और कुछ प्रान्तों में पृथकतावाद की प्रवृति भी विकसित होने लगी। ऐसी स्थिति में इन्दिरा जी ने मुख्यमंत्री की सहमति से राज्यपाल नियुक्त करने की परम्परा तोड़ दी। संविधान संरक्षक न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार में भी संविधान संशोधन के माध्यम से अतिक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामत: न्यायधीशों की नियुक्ति एवं स्थानान्तरण भी दलीय राजनीति का शिकार बनती गई। इन्दिरा जी से लेकर राजीव गाँधी के कार्यकाल तक क्षेत्रीयता का विकास समान रूप से होता रहा। 1976 में आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव अकाली दल द्वारा प्रस्तुत किया गया। 1977 में पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा ज्ञापन पत्र के माध्यम से अनुच्छेद 263 में वर्णित अन्तर्राज्य परिषद के गठन की माँग जोरदार रूप से की गयी।

1977 में जब इन्दिरा जी के अधिनायकवादी शासन को समाप्त कर विभिन्न राष्ट्रीय पार्टियों के विलय से निर्मित जनता सरकार सत्ता में आयी तो भारतीय प्रजातंत्र के इतिहास में पहली बार बिना किसी संवैधानिक आधार के आठ कांग्रेस शासित सरकारों को बर्खास्त करके नये जनादेश से विधान सभा गठित करने का आदेश दे दिया गया। यह भारतीय संघवाद की हत्या का क्रूरतम प्रयास रहा जिसकी पुनरावृत्ति इन्दिरा जी ने भी 1980 में सत्ता प्राप्त करने के बाद नौ गैर-कांग्रेसी सरकारों को बर्खास्त करके की। 1980 से 84 तक भारत के राजनीतिक रंगमंच पर पृथकवादी एवं साम्प्रदायिक तत्वों का तथा क्षेत्रीय दलों के प्रभाव क्षेत्र मे भी तीव्र गति से वृद्धि हुई। पंजाब में खालिस्तान की मांग जोर पकड़ने लगी। असम में नागरिकता के प्रश्न पर असमगण परिषद के नेतृत्व मे बगावत का झण्डा लहराया गया। मिजोरम में लालडेंगा के नेतृत्व में मिर्जाफ्ट ने विद्रोह का रवैया अपना लिया। कष्मीर में फारूख अबदुल्ला ने विरोध का स्वर तेज कर दिया। दलीय व्यवस्था में विखण्डन एवं क्षेत्रीय पार्टियों के दबाव में इन्दिरा जी ने केंद्र राज्य संबंधों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए उच्चतम न्यायलय के सेवानिवृत्त न्यायधीश आर. एस. सरकारिया के नेतृत्व में सरकारी आयोग की नियुक्ति की। 1983 के विधानसभा चुनाव मे आन्ध्र में तेलगु देशम तथा कर्नाटक में क्रान्तिरंगा पार्टी के समर्थन से जनता पार्टी सत्ता में आ गई। पंजाब के अकाली दल का आनन्दपुर साहब प्रस्ताव निश्चित रूप से एक पृथकतावादी दस्तावेज रहा जिसकी परिणति इन्दिरा जी की निर्मम हत्या में हुई।

1984 में राजीव जी सत्ता में आये तो अपने प्रारम्भिक काल में केंद्र राज्य संबंधों में टकराव की नीति त्याग कर सहयोग की नीति अपनाई। पंजाब में लोंगोवाल समझौता, असम में असम समझौता, मिजोरम मे लालड़ेगा के साथ समझौता, तमिलनाडु में अन्ना डी. एम. के. तथा कष्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेन्स के साथ ताल मेल बिठाकर यह संकेत दिये कि वे राज्यों के साथ टकराच की नीति त्याग कर सहयोग की नीति पर चलना चाहते है। किन्तु यह स्थिति तब बदल गयी जब गैर-कांग्रेसी सरकारें सामूहिक रूप से विरोध का भाव प्रदर्षित करने लगी। अन्तत: राजीव जी भी कांग्रेसी एवं गैर कांग्रेसी राज्यों के साथ उसी नीति पर चल पड़े जिस नीति पर इन्दिरा जी और जनता पार्टी चला करती थी।

इस प्रकार 1971 से 1988 तक सत्तानिष्ठ राजनीतिक दलों ने मनमाने ढ़ंग से राज्य सरकारों को व्यवस्थित रखने की पहल तथा दूसरी तरफ क्षेत्रीय राजनीतिक दल केंद्र सरकार के अधिनायकवादी प्रवृति के विरूद्ध स्वायत्तता की आवाज उठाते रहे। परिणामत: भारत का संवैधानिक संघवाद, तनावग्रस्त निश्क्रिय एवं लकवाग्रस्त होता चला गया। व्यक्ति नियंत्रित राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का संगठन एवं निर्णय निर्माण प्रक्रिया ज्यों-ज्यों केंद्रीकृत होती त्यों-त्यों क्षेत्रीय राजनीतक दल संगठित एवं विकसित होते गये।

1989 में जब पहली बार क्षेत्रीय दल के एन.टी.टी. रामाराव, देवीलाल तथा कांग्रेस से अलग हुए विश्वनाथ प्रताप सिंह की पहल पर जनता दल, तेलगु देशम डी.एम.के., संगठन कांग्रेस और असमगण परिषद के बीच दलीय गठबन्धन के तहत एक राष्ट्रीय मोर्चे का निर्माण हुआ तथा लोकसभा निर्वाचन में आम जनता ने उसे विजय प्रदान कर सरकार बनाने हेतु अधिकृत कर दिया तो यही से भारतीय संघवाद ने अपने नये अवतार में जीवन्त होने की प्रक्रिया प्रारम्भ की। 1989 का राष्ट्रीय मार्चा भारतीय संघवाद के पुर्ण जन्म में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

भारतीय संघवाद को पुर्णजीवित करने वाली जिस साझा राजनीति का बिजारोपण 1967 में राज्य स्तर पर हुआ उसी का विकास 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर हुआ। वही साझा राजनीति 1989 में संघवाद को विकसित करने का सुदृढ़ आधार बन गयी। पहली बार क्षेत्रीय पार्टीयों ने राष्ट्रीय पार्टीयों के साथ संघीय सरकार के निर्माण में भागीदारी निभाना प्रारम्भ किया। पहली बार मतदाताओं ने कांग्रेस के विकल्प के रूप में किसी एक पार्टी या गठबन्धन की जागह क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय पार्टीयों से निर्मित राष्ट्रीय मोर्चे को चुना जिसमें सभी पार्टीयों की अपनी-अपनी पहचान बनी हुई थी। पहली बार संघवाद की जीवनी शक्ति राष्ट्रीयता एवं स्वयत्तता को राजनीतिक व्यवस्था में समान महत्व प्रदान किया गया। दलीय गठबन्धन के इतिहास में यह पहली घटना रही जब राज्यों की स्वयत्तता के सम्मान के पक्ष में तथा अधिनायकवादी केंद्रीयता के विरोध में राजनीतिक कार्यवाही का संघीय मंच गठित हुआ। पहली बार क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय मोर्चे में सम्मिलित हो अलगाववादी क्षेत्रीयता को राष्ट्रीय संदर्भ प्रदान करने की पहल प्रारम्भ की। मतदाताओं की बदली मानसिकता के चलते राष्ट्रीय नेताओं में जो बौनापन विकसित हुआ तथा राष्ट्रीय राजनीति दलों के जनाधर में जो गिरावट आई उससे क्षेत्रीय नेताओ में राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के बीच समस्तरीय होने का भाव विकसित हुआ। पहले दल महत्वपूर्ण हुआ करती थी अब मोर्चा महत्वपूर्ण होने लगा।

जैसे–जैसे भारत की सामाजिक आधार राजनीति में परिवर्तन आता गया वैसे-वैसे क्षेत्रीय दलों का प्रभाव एवं प्रतिनिधित्व संघीय सरकार में बढ़ता गया। 1989 से 1997 तक पांच संसदीय चुनाव हुए किन्तु किसी भी राजनीतिक दल या गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। इन सभी निर्वाचनों में क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व बढ़ता गया तथा राष्ट्रीय दलों का प्रतिनिधित्व घटता गया। 1989 के संसदीय चुनाव में क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व 27 रहा, 1991 में 55 रहा, 1996 में 131 रहा, 1998 में 150 हो गया तथा 2004 में क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधित्व की संख्या 159 हो गयी। इस प्रकार 1989 से 2009 तक मतदाताओं का जनादेश एक पक्षीय ना होकर बहुपक्षीय होता गया। एकलवादी ना होकर बहुलवादी होता गया। एकात्मक ना होकर संघात्मक होता गया। ऐसे जनादेश के दबाव में हीं भारतीय जनता पार्टी को अपने एकात्मक राष्ट्रवाद के वैचारिकी को तैयार कर संघात्मक राष्ट्रवाद का समर्थन करने हेतु विवष होना पड़ा। पुरुषोतम अग्रवाल का मानना है कि विभिन्न क्षेत्रीय एवं जातिय पहचान का आत्मरेखांकन अब उस परिपक्वता पर पहुंच चुका है जहां किसी भी एक राजनीतिक दल के लिए इन सभी पहचान समुहों को अपने अन्दर रखना संभव नहीं है। विविधता की स्वभाविक परिणति हो सकती है पर विविधता के अस्तित्व की शार्त नही।[7] आजादी के बाद यदि भारतीय संघवाद को विभाजन एवं भाशयी प्रतिवाद ने नया रूप प्रदान किया था, तो आज पिछड़ी एवं दलित जातियों के उभार से विकसित क्षेत्रीय दलों तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की राजनीति संघवाद को नया रूप प्रदान करती जा रही है।

भारत में 1990 के दशक में नव उदारवाद एवं भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ क्षेत्रगत, जातिगत एवं समाजिक संरचना में आये परिवर्तन ने समूची संघवादी प्रक्रिया को बदलकर रख दिया है। आज संवैधानिक प्रावधान जस के तस है किन्तु केंद्र राज्य संबंध बदलते जा रहे हैं। जहाँ आर्थिक उदारीकरण के चलते राज्यों के आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त हुई है वही विखण्डित दलीय व्यवस्था तथा केंद्र में किसी भी एक दल का बहुमत नही हाने के कारण राज्यों को राजनीतिक स्वायत्तता भी प्राप्त होती जा रही है। भारत की दलीय व्यवस्था में आये परिवर्तन न जहाँ प्रतिस्पर्धी संघवाद के प्रयोजन को धरातल पर उतारा है वहीं उसने संघवादी लोकतंत्र को सुदृढ़ आधार भी प्रदान किया है। इस परिवर्तित दलीय व्यवस्था के चलते ही अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर विराम लग चुका है। 1950 से 1989 तक 39 वर्शो में राज्यों में राष्ट्रीय शासन की घोषणा 79 बार हुई थी। (एम. पी. सिंह. 2006-71) जिसमें नेहरू के 14 वर्ष के कार्यकाल में केवल पांच बार राष्ट्रपति शासन की घोषणा की गयी। जबकि इन्दिरा जी 15 वर्शो के कार्यकाल में

58 बार राष्ट्रपति शासन की घोषणा हुई। जनता पार्टी ने अपने छोटे से शासन काल मे 16 बार राष्ट्रपति शासन की घोशण की। किन्तु 1994 से 2000 तक मात्र चार राष्ट्रपतिषासन की घोषणा की गयी।

आज भारतीय संघवाद अपने नये अवतार में मजबुत होता दिखाई पड़ रहा है। इसलिये नहीं कि क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व संघीय सरकार में बढ़ता जा रहा है, बल्कि इसलिए कि क्षेत्रीय दलों की संघीय सरकार में भागीदारी से केंद्रीय सरकार का राज्यों में हस्तक्षेप कम होता जा रहा है। केंद्रीकरण की प्रवृत्ति पर विराम लगता जा रहा है। राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की ताकत क्षेत्रीय राजनीति दलों पर निर्भर करने लगी है। राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय दलों की शार्तो पर समझौता करने को विवष होते जा रहे हैं। पहले राष्ट्रपति का चयन मनमाने ढ़ग से कर लिया जाता था। अब क्षेत्रीय पार्टियों का समर्थन प्राप्त करना सत्तानिष्ठ राष्ट्रीय रानीतिक दलों की विवषता बनती जा रही है। पहले क्षेत्रीय पार्टियाँ प्रधानमंत्री पद प्राप्त करने का स्वप्न भी नहीं देख पाती थीं। किन्तु बदली हुई राजनीतिक स्थिति में क्षेत्रीय पार्टियों के नेता भी प्रधानमंत्री पद का स्वप्न देखने लगे हैं। नब्बे के दशक में ही क्षेत्रीय पार्टियों द्वारा चयनित नेता देवगौड़ा को प्रधानमंत्री पद प्राप्त हो चुका है। पहले प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमंडल द्वारा प्रेशित राष्ट्रपति शासन के प्रस्ताव को पुनर्विचार हेतु वापस करने का साहस राष्ट्रपति नहीं जुटा पाता था। वी. डायसी ने जनता पार्टी के शासन काल में लौटाय तो पार्टी के लोगों ने इतना हंगामा किया कि उन्हे विवष होकर विधेयक पर हस्ताक्षर करना पड़ा, किन्तु नब्बे के दशक में ही राष्ट्रपति के. आर. नारायनन ने कल्याण सिंह की सरकार का गिराने हेतु राष्ट्रपति शासन के प्रस्ताव को पुनर्विचार करने हेतु आग्रह किया। वाजपेयी सरकार ने 22 सितम्बर को राबड़ी सरकार को राष्ट्रपति शासन द्वारा गिराने का प्रस्ताव रखा किन्तु उसे भी निरस्त करना पड़ा।

पहले सर्वोच्य न्यायालय भी अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को रोक नही पाता था किन्तु अब 1994 मे एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (ए. आई. 1994, 3 ए. सी. सी.) के मामले में सर्वोच्य न्यायालस ने अनुच्छेद 356 के प्रयोग को न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत लाकर उसके दुरुपयोग पर अंकुष लगा दिया है। पहले अनुच्छेद 356 का प्रयोग अत्याधिक दलीय राजनीतिक हितों से प्रेरित हो कर किया जाता था। जिससे भारतीय संघवाद निश्प्राण एवं जड़वत होता जा रहा था। किन्तु अब ऐसा करना सम्भव नहीं है। इस प्रकार सर्वोच्य न्यायालय का यह निर्णय, राज्यों की स्वायत्तता के विकास में एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुआ है। सर्वोच्य न्यायलय ने राज्यों की स्वायत्तता की दिशा में इससे भी एक कदम आगे बढ़कर 2007 में आई. आर. कोयल्लो बनाम तमिलनाडु राज्य (ए. आई. आर. 2007द्ध7) एस. एस. ई. 880) में संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम द्वारा बनाई गयी नौवीं अनुसूची के उपबन्धें को भी न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत ला दिया है। जिसे प्रथम संशोधन द्वारा न्यायिक समीक्षा से बाहर रखा गया था। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि न्यायालय भी तभी इस बात पर कदम उठाने में सक्षम हो सकी जब संघीय सरकार में एक दलाय प्रभुत्व की जगह बहुदलीय प्रभुत्व स्थापित हो सका है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जुड़ने के बाद भारतीय संघवाद में न केवल केंद्र अपितु राज्यों ने भी अपने-अपने विकास के लिये निजी स्तर पर प्रयास प्रारम्भ कर दिये हैं ऐसे प्रयास के चलते भरतीय संघवाद बाजार अर्थव्यवस्था के नये युग में प्रवेश करता जा रहा है। परिणामत: संघीय सम्प्रभुत्ता में, संघीय निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में एवं संघीय नीति निर्माण प्रक्रिया के कार्यान्वयन में राज्यों की भागीदारी क्रमश: बढ़ती जा रही है। वैश्वीकरण के लाभों के दोहन के लिए संघीय इकाइयों की प्रतिद्वंद्विता बढ़ती जा रही है। आज भारत के इकाई राज्य विदेशी, पूँजी निवेशी को आमंत्रित करके अपने राज्य में उद्योग धन्ध लगाने के लिये पूँजीपतियों को निमंत्रण देने अपने राज्य में सामजिक, आर्थिक आधारभूत ढ़ाँचे (सड़क, बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य) का निर्माण करने हेतु विश्वबैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश और एशियाई विकास बैंक जैसी संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने हेतु स्वतंत्र ढंग से प्रयास करने लगे हैं। भारतीय संघवाद में यह एक अभिनव परिवर्तन है। इकाई राज्य अपनी व्यापार नीति एवं औद्योगिक नीति की घोषणा करने लगे हैं। जिससे की राज्य द्वारा दी जाने वीली सुविधाओं की जानकारी उद्योगपतियों को दी जा सके। इससे की राज्य मुख्यमंत्री निजी कम्पनियों के कार्यकारी अधिकारी (सी. ई. ओ.) की भाँति राज्य के विकास उत्थान एवं सतत् प्रगति का प्रयास करने लगे है। इससे इकाई राज्यों का आत्मविश्वास बढ़ रहा है उनकी निर्णय क्षमता मे वृद्धि हो रही है और केंद्र-राज्य संबंध एक नये युग में प्रवेश कर रहा है। आज यह सब परिवर्तन इसलिये सम्भव हो पा रहा है। भारतीय संघवाद जिसे संविधान लागू होने के बाद के. सी. व्हीयर ने अर्द्ध संघात्मक कहा उसने अपनी विकास यात्रा में सहयोगी संघवाद (ग्रीन आस्टीन) का रूप ले लिया तथा पुन: सौदेबाजी संघवाद (मोरिस जोन्स) में परिवर्ति होता रहा और आज यह आन्तरिक रूप से प्रतिस्पर्द्धी संघवाद या बाजार संघवाद (रूडोल्फ एण्ड एडोल्फ) में परिणत होता हुआ दिखाई दे रहा है। आज भारतीय संघवाद की सबसे बड़ी समस्या है दलीय नेतृत्व का व्यक्ति विन्यासित होना तथा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के अनुसार केंद्र-राज्य संबंधों का व्यवस्थित होना।

अतः भारतीय संघवाद को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिये आवश्यक है कि राजनीतिक दलों के अन्दर प्रचलित आरोपित नेतृत्व की जगह प्रजातांत्रिक पद्धति से स्वविकसित नेतृत्व को प्रोत्साहित किया जाये। तभी राष्ट्रीयता विन्यासित स्वायत्तता का विकास सम्भव हो पायेगा।

सन्दर्भ

1. विलियम एस लिविंग्स्टन, फेडरालिज़म एण्ड कॉन्स्टीच्यूशनललिज़म, ऑक्साफोर्ड क्लरेंडन प्रेस, 1956, पृष्ठ 02
2. शिवराज बी, सम्पादक, फेमिंग आफ इंडियन कॉन्स्टीच्यूशनल खण्ड 2, आई. आई.पी.ए. नई दिल्ली, पृष्ठ 777
3. लोकतंत्र के सात अध्याय, सम्पादक, अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 045
4. कविराज ऑन स्टेट सोसायटी एण्ड डिसकोर्स इन इंडिया, पृष्ठ 88
5. के. संथनम यूनियन एण्ड स्टेट रिलेसन्स इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1960, पृष्ठ 61-62
6. वी.डी. दुआ एण्ड एम.पी. सिहं, इण्डियन फेडरालीजम इन न्यू मिलेनियम, मनोटर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ149
7. लोकतंत्र समीक्षी जन-दि0 2004, पृष्ठ 5

बीसवीं शताब्दी के पूर्व बिहार में प्रेस का विकास

डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह

पीएच०-डी० (इतिहास विभाग), बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य लोगों में जन- चेतना का विकास करना था। फलतः स्वतंत्र आंदोलन और पत्रकारिता में घनिष्ठ संबंध महसूस किया जा सकता है। बिहार ह। में भी स्वतंत्रता आंदोलन के प्रसार को मजबूती प्रदान करने में पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। बिहार में तीन भाषाओं (अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू) में पत्र-पत्रिकाएं निकाली जाती थी और तीनों भाषा में निकली पत्र-पत्रिकाओं ने बिहार के स्वतंत्रता आंदोलन की जड़ को मजबूती प्रदान किया।

बिहार में, अंग्रेजी पत्रकारिता का आरंभ 19 वीं शताब्दी में हुआ। 1875 में गुरू प्रसाद सेन द्वारा बिहार के पहले अंग्रेजी अखवार 'दि बिहार हेराल्ड' का प्रकाशन आरंभ हुआ। 1881 में पटना से 'इंडियन क्रॉनिकल' नामक अखबार प्रकाशित हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में राष्ट्रवादियों द्वारा 'दि मदरलैंड' तथा 'बिहार स्टैंडर्ड' का प्रकाशन आरंभ किया गया। मगर इनका जीवनकाल संक्षिप्त रहा।

दो अन्य अखबारों 'दि बिहारी' और 'दि बिहार टाईम्स' का प्रकाशन इसी काल में आरंभ हुआ जो बिहार को पृथक प्रांत बनाने की मांग की प्रस्तुति में सक्रिय रहे। बिहार टाईम्स की स्थापना पटना में 1903 में साप्ताहिक के रूप में हुई। 1906 में इसे भागलपुर से प्रकाशित श्होने वाले 'बिहार न्यूज' के साथ जोड़कर 'दि बिहारी' का नया नाम दिया गया 1912 में यह एक दैनिक में परिवर्तित हो गया। 1917 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। इसका स्थान 'दि सर्चलाइट' ने लिया जो 15 जुलाई 1918 से प्रकाशित होने लगा। इसके प्रथम संपादक सैयद हैदर हुसैन थे। 1930 में इसे एक दैनिक का रूप प्राप्त हुआ। सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ों आंदोलन के क्रम में राष्ट्रवादियों के प्रवक्ता केष रूप में सर्चलाईट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रस्तुत अध्ययन में 20 वीं शताब्दी के पूर्व बिहार में प्रेस के विकास का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजीः लिथो प्रेस, देशी भाषा, व्यावसायिक, जागृत प्रहरी, नवसंघटित, राष्ट्रीय विचारधारा

परिचर्चा

सन् 1853 तक पटने में कोई मुद्रणालय या लिथो प्रेस होने का उल्लेख नहीं मिलता।[1] परन्तु सन् 1850 में सासाराम (शाहाबाद) में शाह कबीरूद्दीन अहमद नामक किन्हीं सज्जन ने छापाखाने की स्थापना की थी।[2] पटना शहर में या वर्तमान बिहार प्रान्त के अन्य इलाकों में पुस्तकें मुख्यतः लखनऊ, बम्बई, कलकत्ता और सासाराम से छपकर आती थीं।

पटना के तत्कालीन कमिश्नर, विलीयम टेलर ने बिहार में शिक्षा प्रचार की एक विशिष्ट योजना बनाई थी, जिसमें जन-साधारण को उपयोगी बातों का ज्ञान कराने तथा स्थानीय प्रशासन के संबंध में भ्रांतियों के निराकरण के लिए देशी भाषा में समाचार-पत्र निकालने का कार्यक्रम भी सम्मिलित था।[3] टेलर ने "अखबारे बिहार" नामक साप्ताहिक पत्र उर्दू में निकाला। तीन सितम्बर 1856 को विलियम टेलर ने पर्याप्त संख्या में यह अखबार खरीद कर पटना डिवीजन के प्रत्येक सरकारी कार्यालय तथा जिला स्कूलों में भेजने के लिए सरकार से अनुरोध किया। साथ ही सरकार से इन पत्रों को भेजने के लिए डाक-व्यय का भी भार वहन करने का

अनुरोध किया। इस उर्दू साप्ताहिक का मासिक शुल्क एक रुपया तथा वार्षिक शुल्क नौ रुपये था। यह पत्र भी अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और टेलर के पटना से जाने के थोड़े ही दिन बाद सितम्बर 1857 में इसका प्राणान्त हो गया।[4]

सन् 1867 तक पटने में सिर्फ दो मुद्रणालयों के संबंध में उल्लेख मिलता है। इन दोनों प्रेसों के मालिक पुस्तक-व्यवसायी थे जो इनका उपयोग सिर्फ अपने व्यावसायिक कार्य के लिए किया करते थे, परन्तु खाली वक्त का उपयोग बाहर का काम करने में भी करते थे। सासाराम के शाह कबीरूद्दीन अहमद का जो प्रेस था उसमें सरकारी घोषणाएं आदि छपती थीं।

वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद के मूल उद्देश्य से संस्थापित "बिहार साइंटिफिक सोसाइटी" की ओर से उर्दू में "अखबारे, अखबार", नामक आठ पृष्ठों का उर्दू मासिक पत्र, प्रथम श्रेणी के उपविद्यालय निरीक्षक मुंशी सूरजमल तथा पटना नोर्मल स्कूल के अधीक्षक राय सोहन लाल के संयुक्त सम्पादकत्व में निकलता था। यह पत्र बिहार में काफी लोकप्रिय हुआ। यह इस बात से स्पष्ट है कि उत्तर पश्चिम डिवीजन के स्कूलों के इंस्पेक्टर ने सन् 1868-69 में अपनी वार्षिक प्रतिवेदन में भी इस पत्र की चर्चा की। सन् 1869 के जनवरी मास में मुंशी सूरजमल ने 'चश्मए इल्म' नाम का दूसरा उर्दू पत्र निकाला। यह पत्र बड़ा ही सस्ता और उपयोगी साबित हुआ। इसका प्रकाशन सन् 1857 तक जारी रहा।

यह कुछ बड़े संयोग की बात है कि बिहार से सर्वप्रथम हिन्दी और अंग्रेजी पत्र का प्रकाशन एक ही साल सन् 1872 में हुआ। बिहार का सबसे पहला अंग्रेजी अखबार "बिहार हेराल्ड" पटना से और हिन्दी समाचार पत्र "बिहार बन्धु" पटना के लिए ही कलकत्ते से निकला। सन् 1872 में पटना में कोई हिन्दी प्रेस नहीं था, इसलिए प्रारंभिक दो वर्षों तक "बिहार बन्धु" कलकत्ते से ही छपकर निकलता रहा और सन् 1874 में अपना प्रेस कायम होने पर यह पटने से ही छपकर निकलता रहा और सन् 1874 में अपना प्रेस कायम होने पर यह पटने से ही छपकर निकलने लगा। इस पत्र ने बिहार के भविष्य निर्माण में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस पत्र लगातार करीब अर्धा शताब्दी तक निकलता रहा और बिहार के जागृत प्रहरी के रूप में काम करता रहा।

''बिहार हेराल्ड" बिहार का सबसे प्राचीन 1872 अंग्रेजी समाचार पत्र है। पटना के अपने जमाने के प्रख्यात वकील बाबू गुरुप्रसाद सेन ने उस समय के प्रमुख बिहारी नेता बाबू गोविन्द चरण एवं कई अन्य प्रमुख बिहारवासियों के सहयोग से इसका प्रकाशन प्रारंभ किया था। अनेक वर्षों तक "बिहार हेराल्ड" बिहार के सार्वजनिक मामलों की वकालत करता रहा। परन्तु बाद में यह मुख्यत: बिहार में बसे बंगाली समाज के लोगों का मुखपत्र हो गया। 19वीं शताब्दी की अंतिम दशब्दी में बिहार को बंगाल से अलग कर पृथक प्रान्त की मांग का यह जबर्दस्त विरोधी बन गया।[5]

सन् 1900 में बाबू गुरु प्रसाद सेन की मृत्यु हो गयी। इनके मरने के बाद इसका प्रबन्ध कई बार बदला और कई व्यक्तियों के हाथों में गया। परन्तु अन्तत: यह बंगाली प्रवासी संघ का मुख-पत्र बन गया। पटना के प्रमुख बैरिस्टर श्री पी. आर. दास के सहयोग से इसका पुन: सघटन किया गया। श्री सचीन्द्रनाथ बसु बार-एट लॉं जो कि अपने समय में प्रांजल और साहित्यिक अंग्रेजी भाषा लिखने के लिए मशहूर थे, काफी दिनों तक इस पत्र से सम्बद्ध रहे। स्वर्गीय अमिय कुमार गुप्ता भी एक तेजस्वी पत्रकार थे।

''इंडियन क्रॉनिकल" दूसरा अंग्रेजी साप्ताहिक पटने से सन् 1881 में श्री चिक के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। श्री चिक उदारमना आंग्ल-भारतीय थे। शीघ्र ही इनकी जगह श्री माने नामक सज्जन ने ले ली। बिहार के सार्वजनिक जीवन में प्रख्यात श्री गोविन्द चरण इस पत्र के सहायक सम्पादक थे। "इंडियन क्रॉनिकल" अन्तत: आधुनिक बिहार के निर्माता बाबू महेश नारायण के हाथ में चला गया, परन्तु कुछ ही समय बाद वित्तीय कठिनाइयों के कारण "इंडियन क्रॉनिकल" बन्द हो गया।

तदन्तर "बिहार पैट्रिओट" के नाम से सन् 1884 में पटना से एक दूसरा अंग्रेजी साप्ताहिक प्रकाशित हुआ। बिहार में आकर बसे बंगालियों की हित-रक्षा के उद्देश्य से इस पत्र का प्रकाशनारम्भ किया गया था, परन्तु उसी वर्ष इसकी अकाल मृत्यु हो गयी।

कायस्थ समाज के उन्नयन और विकास के लिए पटना से सन् 1881 में महेशनारायण ने "कायस्थ गजेट" नामक पत्र निकाला, परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण 25 दिसम्बर, सन् 1891 में यह पत्र भी बन्द हो गया।

दिवंगत डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, सन् 1893 के प्रारंभ में ही इंग्लैंड यात्रा से वापस आये और पटना में वकालत शुरू की। पटना में बसने के बाद उन्होंने बिहार प्रदेश के उन्नयन एवं विकास तथा बिहारियों की हितरक्षा के लिए बिहारियों द्वारा ही नियंत्रित एक समाचार पत्र के प्रकाशन की आवश्यकता महसूस की। जिस समय डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा स्वदेश वापस आये और पटना में वकालत शुरू की उस समय तेजस्वी पत्रकार तथा बिहारियों के हित रक्षकों के रूप में श्री महेश नारायण की काफी ख्याति हो चुकी थी। उनके इन्हीं गुणों के कारण लोगों ने उन्हें "आधुनिक बिहार का निर्माता" के नाम से अभिहित करना शुरू कर दिया था।

डाक्टर सिन्हा ने श्री महेश नारायण, श्री शालिग्राम सिंह, श्री विश्वेश्वर सिंह (कुल्हड़िया, श्री महावीर सहाय, श्री नन्दकिशोर लाल तथा बिहार के तत्कालीन अन्य प्रमुख सार्वजनिक कार्यकत्ताओं के सहयोग से सन् 1884 में पटना से "बिहार टाइम्स" नामक साप्ताहिक अंग्रेजी का प्रकाशन प्रारम्भ किया। प्रकाशन की तिथि से लेकर सन् 1907 में अपनी मृत्यु पर्यन्त श्री महेश नारायण ही इसके सम्पादक रहे। श्री महेश नारायण भागलपुर के निवासी थे। इसलिए उनकी सुविधा के ख्याल से कुछ समय के लिए "बिहार टाइम्स" का कार्यालय भागलपुर स्थानांतरित कर दिया गया, परन्तु सन् 1906 में यह पुन: पटना आ गया और इसकी व्यवस्था का पुन: संघटन किया गया। अब इसका नाम सिर्फ "बिहारी" रह गया। सैय्यद हसन इमाम तथा श्री सच्चिदानन्द सिन्हा का बराबर इस पत्र के साथ सक्रिय सहयोग बना रहा और श्री महेश नारायण के देहावसान के बाद "बिहारी" के प्रबन्ध एवं संचालन की पूरी जिम्मेदारी इन्हीं दोनों व्यक्तियों पर मुख्य तौर से आ गयी। पत्र के सम्पादन का भार उस समय के दो उत्साही और सक्षम बिहारी युवकों पर सौंपा गया। ये थे श्री पुरुषोत्तम प्रसाद शर्मा और अखौरी वासुदेव नारायाण सिन्हा। "बिहारी" की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता काफी बढ़ जाने के कारण कुछ समय के लिये इसे अर्द्ध-साप्ताहिक के रूप में भी प्रकाशित किया गया। इन्हीं सज्जनों ने सन् 1910 के अक्टूबर मास से "मोर्डन बिहार" के नाम से एक अंग्रेजी मासिक का प्रकाशनारम्भ किया, जो अल्प समय में ही विद्यार्थियों में काफी लोकप्रिय हो गया। लेकिन सन् 1992 में यह बन्द हो गया। इसी समय भागलपुर से श्री हरेकृष्ण प्रसाद ने 'यंग बिहार' नामक दूसरे अंग्रेजी मासिक का प्रकाशनारम्भ किया, परन्तु यह भी अल्पजीवी ही रहा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही बिहार को बंगाल से अलग करने का आंदोलन चल पड़ा था और इसके प्रमुख अगुआ थे श्री महेश नारायण तथा श्री सच्चिदानन्द सिन्हा। "बिहार टाइम्स" तथा "बिहारी" के जरिये इन दोनों व्यक्तियों ने बिहार को बंगाल से अलग करने और इसे अलग प्रशासकीय खण्ड में विभक्त करने का जोरदार आंदोलन किया। श्री महेश नारायण जी अपने परिश्रम का फल देखने के लिए जीवित न रह सके, परन्तु श्री सच्चिदानन्द सिन्हा काफी दिनों तक जीवित रहे। उन्होंने न केवल बिहार को बंगाल से अलग बिहार और और उड़ीसा प्रान्त बनते देखा बल्कि बाद में बिहार-उड़ीसा को अलग-अलग प्रदेश बनते भी देखा। डाक्टर सिन्हा बिहार-उड़ीसा प्राप्त के प्रशासन से काफी निकट रूप से सम्बद्ध रहे। वे 'गवर्नर की एक्सक्यूटिव काउंसिल' के सदस्य, बिहार व उड़ीसा विधायिका परिषद के अध्यक्ष तथा पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। इसके अलावा वे प्रान्तीय एवं केंद्रीय विधायिका परिषद् के साधारण सदस्य भी रहे और अन्त में देश की स्वाधीनता के बाद उन्होंने भारतीय संविधान परिषद् के अध्यक्ष का भी पद सुशोभित किया। वे जब तक जीये देश के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की धुरी बने रहे।

इस समय तक दैनिक पत्रों का युग प्रारंभ हो गया था और देश के विभिन्न भागों से अनेक प्रभावशाली अंग्रेजी दैनिक पत्र निकलने लगे थे। बिहार-उड़ीसा प्रान्त के गठन के बाद से ही बिहार के नेता भी यहाँ से एक दैनिक पत्र निकालने की बात सोच रहे थे। साप्ताहिक अंग्रेजी "बिहारी" को ही दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशिक करने का विचार किया गया और इसके लिए धन जुटाने की कोशिश प्रारम्भ कर दी गयी। बनैली राज के तत्कालीन मैनेजर राजबहादुर शिवशंकर सहाय ने बनैली के राजा श्री कीर्त्यानन्द सिंह को प्रेरित कर उनसे दो लाख रुपये एक अंग्रेजी दैनिक के प्रकाशन के लिए प्राप्त किये। उन रुपयों से "दी बिहार एण्ड उड़ीसा न्यूज पेपर्स लिमिटेड" के नाम से सन् 1912 में एक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना की गयी। कम्पनी के प्रबन्ध निर्देशकों में प्रतिनिधि व्यक्तियों को रखा गया। श्री माहेश्वर प्रसाद इलाहाबाद में म्यूर सेन्ट्रल कॉलेज में इतिहास तथा अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे। वे बिहार के ही रहने वाले तेजस्वी और मेधवी व्यक्ति थे। डॉक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने उन्हें प्रोफेसरी का पद त्याग कर अंग्रेजी दैनिक "बिहारी" के सम्पादन का भार स्वीकार करने के लिए उत्साहित एवं प्रेरित किया। फलस्वरूप 13 अप्रैल सन् 1912 को श्री माहेश्वर प्रसाद के नवसंघटित बिहार-उड़ीसा प्रान्त के प्रथम गवर्नर के रूप में सर चार्ल्स बेली का शुभागमन हुआ। सम्पादक श्री माहेश्वर प्रसाद को श्री पुरुषोत्तम प्रसाद शर्मा तथा आखोरी वासुदेव नारायण सिन्हा दो उत्साही सहायक मिले हुए थे जिन्हें साप्ताहिक "बिहार टाइम्स" और साप्ताहिक "बिहारी" में काम करने का अनुभव और यश प्राप्त हो चुका था। श्री माहेश्वर प्रसाद बड़े ही दबंग और प्रखर लेखनी के धनी पत्रकार थे। जिस समय उन्होंने दैनिक "बिहारी" के सम्पादन का भार स्वीकार किया उस समय चम्पारण में रैयतों पर अंग्रेज निलहों का अत्याचार चरम चीमा पर पहुँच चुका था। निलहों के जुल्म ने सारे देश का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। उनके अत्याचार और अन्याय का ही यह परिणाम था कि महात्मा गाँधी को बाद में चम्पारण में आकर आकर उनके विरुद्ध सत्याग्रह प्रारंभ करना पड़ा। निलहों के खिलाफ दैनिक "बिहारी" में तीखे में तीखे समाचार और लेख लिखने के कारण उसके सम्पादक श्री माहेश्वर प्रसाद को गवर्नर सर चार्ल्स बेली का कोपभाजन बनना पड़ा। दी बिहार एण्ड उड़ीसा न्यूज पेपर्स लिमिटेड में बनैली राज का हिस्सा मुख्य था। इसलिए गवर्नर ने बनैली राज के मैनेजर राय बहादुर शिवशंकर सहाय को बुलाकर श्री माहेश्वर

प्रसाद को "बिहारी" के सम्पादक पद से हटा देने को कहा। साथ ही उनकी जगह पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने की सलाह दी जो सरकारी दबाव में रह सके। मजबूरन शिवशंकर बाबू को गवर्नर के आगे झुकना पड़ा। श्री माहेश्वर प्रसाद को बनैली राज में कोई नौकरी दे दी गई और सम्पादक पद से हटा दिया गया। श्री माहेश्वर प्रसाद की जगह पर दैनिक "बिहारी" के सम्पादक के पद पर अल्फ्रेड कनिंघम नामक एक सज्जन की नियुक्ति की गयी, जो कि "स्टेट्समैन" (कलकत्ता के सम्पादकीय विभाग में पहले से काम कर रहे थे। दोनों सहायक सम्पादक श्री परमेश्वर प्रसाद शर्मा तथा श्री अखोरी वासुदेवनारायण सिन्हा ने भी अपने पद से इस्तीफा दे दिया। श्री शर्मा महारानी हथुआ के साप्ताहिक अंग्रेजी "एक्सप्रेस" के सम्पादकीय विभाग में चले गये और श्री सिन्हा इलाहाबाद के दैनिक "लीडर" में सहायक सम्पादक के पद पर चले गये। अल्फ्रेड कनिंघम सन् 1916 में "बिहारी" के सम्पादक का पद छोड़कर चले गये और उनकी जगह पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों के माहिर तथा अनुभवी पत्रकार श्री गोकुलानन्द प्रसाद वर्मा ने "बिहारी" का सम्पादन भार सम्भाला, परन्तु सितम्बर 1917 में दैनिक "बिहारी" सदा के लिए बंद हो गया।

हथुआ राज से चौधरी टोला (पटना) निवासी स्वर्गीय रायबहादुर रामगोपाल सिंह चौधरी के प्रबंध में सन् 1913 में साप्ताहिक अंग्रेजी 'एक्सप्रेस' निकला। इसके सम्पादक थे एक दक्षिण भारतीय पत्रकार श्री एस. ए. राजा और सहायकों में प्रमुख थे श्री पी. पी. शर्मा। श्री मुरली मनोहर प्रसाद 'सर्चलाइट' के विख्यात सम्पादक ने भी अपना पत्रकार जीवन इसी पत्र से शुरू किया था। थोड़े ही समय में इस पत्र ने काफी लोकप्रियता प्राप्त कर ली और इसे दैनिक का भी रूप दे दिया गया। परन्तु दुर्भाग्य कि श्री परमेश्वर प्रसाद शर्मा की मृत्यु युवा अवस्था में ही सन् 1915 में हो गयी और श्री एस. ए. राजा भी सन् 1916 में 'एक्सप्रेस' को छोड़कर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (बम्बई में चले गये। बाद में इसके सम्पादक श्री मन्मथ नाथ डे, श्री रामगोपाल सिंह चौधरी और श्री मुरली मनोहर सिंह भी हुए। साप्ताहिक 'एक्सप्रेस' ने कई ऐसे महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किये जो आज भी संग्रहणीय हैं। श्री एस. ए. राजा के जाने के बाद इस पत्र की वह लोकप्रियता न रही जो उनके समय में थी। पत्र को उठाने की अनेक चेष्टाएं की गयी परन्तु धीरे-धीरे इसका ह्रास ही होता गया और अन्ततः सन् 1930 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

मुजफ्फरपुर से जिले के जमींदार श्री बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह ने मुजफ्फरपुर से "बिहार स्टैंडर्ड" प्रकाशित किया और इसी समय सदाकत आश्रम से बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी के मुख्य पत्र के रूप में "मदरलैंड" नामक साप्ताहिक भी निकला। श्री कृष्ण बल्लभ सहाय (जो बाद में बिहार के मुख्यमंत्री हुए, "मदरलैंड" के सम्पादक थे। श्री एम. एस. एम. शर्मा भी "मदरलैंड" के सम्पादकीय विभाग में काम करते थे। ये दोनों पत्र उस समय की उग्र राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक थे। "मदरलैंड" का प्रकाशन तो कुछ समय के बाद स्थगित हो गया परन्तु "बिहार स्टैंडर्ड" सन् 1917-18 तक चलता रहा। अपने समय के विख्यात् सार्वजनिक कार्यकर्त्ता और विधायक रायबहादुर द्वारिका नाथ ने भी कुछ समय तक इस पत्र का सम्पादन किया।

बाद में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तफरका पैदा होने और मोहम्मद जिन्ना के कांग्रेस से अलग होने पर हिन्दुओं और मुसलमानों में फिरकाराना संघटन कर नई लहर दौड़ गयी। हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग के नाम से दोनों जातियों के लोगों की ओर से अलग-अलग प्रयास किये जाने लगे और इसी क्रम में पटना से दो अखबार सन् 1938-39 के बीच निकले, जिनमें एक का नाम "हिन्दू टाइम्स" और दूसरे का नाम "मुस्लिम क्रॉनिकल" था। एक हिन्दू महासभा और दूसरा मुस्लिम लीग का समर्थक था। लेकिन ये दोनों अखबार भी अधिक दिनों तक नहीं चले और अपने प्रकाशन की तिथि के कुछ मास बाद ही बंद हो गये।

श्री एम. यूनुस ने पटने से "पटना टाइम्स" नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक सन् 1924 में प्रकाशित किया जो सन् 1943 में दैनिक हो गया। सन् 1943 में यह श्री शम्भुनाथ झा के सम्पादकत्व में निकलने लगा। इस पत्र के संचालक मोहम्मद यूनुस थे जो कि पटना के नामी बैरिस्टर थे और सन् 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया एक्ट के अन्तर्गत संघटित नई सरकार में वे बिहार के सबसे पहले मुख्यमंत्री थे। "पटना टाइम्स" के सम्पादक" के सम्पादक श्री शम्भुनाथ झा 'इंडियन नेशन' (पटना 'एडवांस' (कानपुर तथा दैनिक 'विश्वमित्र' (कानपुर आदि पत्रों के सम्पादक रह चुके थे। "पटना टाइम्स" ने कुछ ही समय में स्वतंत्र दैनिक के रूप में अपना अच्छा स्थान बना लिया था परन्तु सन् 1944 के अक्टूबर मास में यह बंद हो गया।

श्री माहेश्वर प्रसाद को हटाकर उनकी जगह पर अल्फ्रेड कनिंघम को "बिहारी" का सम्पादक बनाये जाने के बाद से ही बिहार में जागृत जनमत के प्रतिनिधि समाचार-पत्र की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। देश और राज्य में जागृति की नई लहर फैल रही थी और सम्पूर्ण राष्ट्रीय जनमानस एक नवीन राष्ट्रीय चेतना से उद्‌बुध हो रहा था। अप्रैल सन् 1917 में महात्मा गांधी के चम्पारण आगमन से एक नई राजनीतिक हलचल पैदा हुई। ऐसे समय में जनता के सच्चे प्रतिनिधि अखबार का अभाव सभी को खल रहा

था। साप्ताहिक अंग्रेजी "बिहारी" के बंद होने के बाद से सैय्यद हैदर हुसैन के सम्पादकत्व में अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

निष्कर्ष

अत: स्पष्ट है कि बिहार से तीन भाषाओं में समाचार पत्र निकाला जाता था, इनका स्वरूप राष्ट्रीय था। वे व्यवसायिक दृष्टिकोण से बंधे हुए नहीं थे, जिसके कारण समाचार पत्रों को जन-चेतना फैलाने में काफी मदद मिली। इस जन-चेतना ने लोगों के दिलों-दिमाग राष्ट्रीयता की भावना से उद्वेलित करने का काम किया गया और राष्ट्रीय आंदोलन के चरमोत्कर्ष मे सहायता प्रदान किया।

संदर्भ

1. स्वतंत्रता संग्राम में पत्र पत्रिकाओं का योगदान, लेखिका डॉ भारती कुमारी सिंह, पृष्ठ 10.
2. वही, पृष्ठ 12.
3. वही, पृष्ठ 13.
4. वही, पृष्ठ 14.
5. वही, पृष्ठ 15.
6. *The Journal of the Bihar Research Society,* Volume I, Part I-IV, 1964, p. 100.
7. Ibid.
8. Communication from W. Tayler, Commissioner of Patne Division, to the Director of Public Instruction, oaQted the 31st January, 1856.
9. *The Journal of the Bihar Research Society,* Volume I, Part I-IV, p. 100.
10. देखिये बिहार-बन्धु, सितम्बर, 1881, पृष्ठ 2.

कृषि विविधिकरण की उभरती प्रवृतियाँ एवं किसानों के आय पर इसका प्रभाव

मुकेश कुमार

सहायक प्राध्यापक (जीटी), वाणिज्य विभाग, जी.डी. कॉलेज बेगूसराय
एल.एन.एम.यू. दरभंगा, बिहार

सार-संक्षेप

कृषि क्षेत्र में बढ़ती लागत, घटती कृषिजोत, जलवायु परिवर्तन, फसलोत्तर प्रबंधन, खाद्य प्रसंस्करण एवं भण्डारण सुविधा की कमी के कारण भारतीय कृषि क्षेत्र अलाभकारी व्यवसाय बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में जबकि बढ़ती जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा एवं कृषि को लाभकारी व्यवसाय बनाने की चुनौति है, कृषकों को पारम्परिक अन्न आधारित खेती के अतिरिक्त अन्य विविध कृषि आधारित उत्पादों को अपनाकर उद्यमिता विकास तथा प्रभावी बाजार हस्तक्षेप विकसित कर कृषकों की आय में वृद्धि करने के लिए कृषि विविधीकरण एक अनिवार्य आवश्यकता है बदलते परिवेश में कृषि के विविधीकरण का फंडा अपनाकर अधिक आय अर्जित की जा सकती है। तमाम किसान खेती को घाटे का सौदा बताते हैं, लेकिन यह सच नहीं है। यानी खेती के साथ पशुपालन एवं बागवानी करके मनचाहा मुनाफा हासिल किया जा सकता है। जो किसान इस तरीके को अपनाते हैं वे अपने इलाके के प्रगतिशील किसान के रूप में पहचाने जाते हैं। इन किसानों को समाज में भी सम्मान मिलता है वहीं सरकार की ओर से भरपूर मदद की जाती है। ऐसे किसानों को गाँव से लेकर जिला और प्रदेश व राष्ट्रीय-स्तर पर सम्मानित किया जाता है। देश में जहाँ तमाम किसानों की आत्महत्या की खबरें आ रही हैं वहीं तमाम ऐसे किसान हैं जो देश व समाज के लिए नजीर बने हें। कुछ किसान खेती को घाटे का सौदा बताते हैं तो तमाम नौजवान बड़ी-बड़ी कंपनियों में नौकरी छोड़कर खेती को अपना रहे हैं। यह सुनने में एकदम विरोधभासी लगता है, लेकिन एकदम सच है। जो कुछ अलग, नया करने का जज्बा रखते हैं वे नौकरी के फेर में इधर-उधर भटकने के बजाय खेती में विविधीकरण की नीति अपनाकर स्वावलंबी बनते हैं। ऐसे किसानों को सरकार की ओर से भरपूर सहयोग मिलता है तो अपने इलाके में वे प्रगतिशील किसान के रूप में पहचाने जाते हैं। ऐसे किसानों को समाज में मान-सम्मान ही नहीं मिलता बल्कि अपनी मेहनत और अपनी खेती के तरीके के आधार पर खेती से अच्छा-खासा मुनाफा भी मिलता है। इन किसानों को आसपास के किसान अपने मार्गदर्शक के रूप में देखते हैं।

मुख्य शब्द : नगरीकरण, प्रौद्योगिकीय, कृषक प्रशिक्षण, वाणिज्यिक शस्यों, कृषि भूमि

परिचय

कृषि क्षेत्र में आधुनिक कृषि आदानों के प्रयोग व मशीनीकरण से सीमांत व भूमिहीन किसान बेरोजगार हो जाते हैं व काम की तलाश में नगरों की ओर पलायन करते हैं जिससे नगरीकरण में वृद्धि होती है। कृषि क्षेत्र में किसानों की संख्या घटने लगती है। महिला श्रम सहभागिता, जनसंख्या की संरचना, उच्च मूल्य, कृषि वस्तुओं के निर्यात की संभावना कृषि के व्यावसायीकरण में सहायक होते हैं। राज्य में कृषि पारिस्थितिकी एवं आर्थिक संतुलन की दृष्टि से कई विकल्पों पर भी विचार किया जाये। कृषि विविधीकरण को कृषकों के स्तर एवं आर्थिक स्थिति के अतिरिक्त सामाजिक स्वीकार्यता को भी ध्यान में रखा जाय। साथ ही राजनैतिक निर्णय कृषि नियोजन पर हावी न हो सके, इसके लिए भी नियम एवं चेतना आवश्यक है।

कृषि विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि में प्रौद्योगिकीय तथा वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग हो, जिसकी पूर्व शर्त यह है कि तकनीकी विकास विभिन्न कारकों जैसे शस्य व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, भू-जोत, भूस्वामित्व तथा मानवीय चयन एवं उसे प्रवृत्त करने वाले उपायों पर निर्भर है। इस प्रकार भारतीय कृषि व्यवस्था में तकनीकी प्रगति के बिना कृषि विकास सम्भव नहीं है। बिहार के कृषि विकास में यंत्रीकरण के प्रसार की प्रासंगिकता के दृष्टिगत सामयिक एवं क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन द्वारा पाया गया है कि कृषकों के ज्ञान एवं ग्राह्यता की दृष्टि से असन्तुलित रूप से प्रसार हो रहा है जिसके कारण ख्रषि उत्पादकता एवं उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि न होकर अनुकूलतम कृषि के लक्ष्य में अवरोध उत्पन्न हो रहा है। इस दृष्टि से राज्य में यन्त्रीकरण की क्षेत्रीय समस्याएँ निम्न हैं–

मशीनीकरण के प्रयोग में आने वाली बाधाओं-भू-जोत आकार, शोधित एवं व्यवहारिक तकनीकी का अभाव, तकनीकी परेशानियों को दूर करने एवं कृषक प्रशिक्षण केंद्रों का अभाव-वित्त एवं साख की समस्या, क्रय-विक्रय अभिकर्त्ताओं एवं एजेन्सियों की कमी, कृषि फार्मो तक संचार एवं परिवहन की कमी तथा भूस्वामित्त्व में बटाईदारी के कारण स्वसाधन एवं तकनीकी जुटाने के प्रति अनिच्छा आदि है।

बिहार में विभिन्न यंत्रों के प्रसार एवं प्रतिवर्ग किमी. सकल कृषि के क्षेत्र में प्रयोग में विषमताएँ एवं वैज्ञानिकता का अभाव मिलता है यथा लघु एवं सीमांत कृषकों के 70 प्रतिशत से अधिक भू-जोतों के बावजूद वर्ष 1985 से 2015 के मध्य मृदा पलटने वाले उपयुक्त लोहे के हलों का प्रसार नकारात्मक (–68.58) स्थिति में है तथा वर्तमान में प्रति वर्ग किमी. में मात्र 6.7 हल प्रयोग में लाये जाते हैं, जो भू-जोत आकार के अनुरूप कम है। वस्तुतः कृषकों के द्वारा ट्रैक्टर चालित हलों का लघु भू-जोतों में प्रयोग अविवेकपूर्ण स्थिति को दर्शाता है।

उन्नत थ्रेसर शस्य भण्डारण की गुणवत्ता के दृष्टिगत अत्यन्त महत्वपूर्ण यंत्र हैं किन्तु वर्ष 1985 से 2015 के मध्य प्रसार सूचकांक 141.22 के उपरान्त भी इस महत्त्वपूर्ण यंत्र का प्रयोग 1.52 थ्रेसर प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र में किया जाता है, जो अत्यधिक अल्प संख्या को इंगित करता है। खाद्यान्न बीजों के अंकुरण के लिए उचित मृदा की आर्द्रता परत पर व उचित गहराई पर बुआई करने वाले उन्नत बुआई यंत्रों का राज्य में प्रसार सूचकांक 32.43 किन्तु प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर मात्र 0.98 बुआई यंत्र प्रयोग में लाये जातें हैं। ट्रैक्टरीकरण के साथ ही मशीनीकरण का प्रसार होता है राज्य में ट्रैक्टरों का प्रसार सूचकांक वर्ष 1985 से 2015 के मध्य 204.24 हुआ किन्तु प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर मात्र 3.59 ट्रैक्टर प्रयोग में लाये जातें हैं, वही दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, बेगुसराय में 2 टैक्टरों से भी कम प्रयोग में लाये जाते हैं।

राज्य में कीटनाशक व खरपतवार नाशक रसायनों तथा दवाओं के छिड़काव हेतु प्रयोग में लाये जाने वाले स्प्रेयर का प्रसार सूचकांक वर्ष 1985 से 2015 के मध्य 112.5 अंकित किया गया व प्रति वर्ग किमी. सकल कृषि क्षेत्र में 0.51 स्प्रेयर प्रयोग में लाये जाते हैं इसमें भी समस्तीपुर व बेगुसराय विकास खण्ड में क्रमशः 0.15 व 0.09 स्प्रेयर प्रयोग में लाये गये। यह क्षेत्र इस दृष्टि से समस्याग्रस्त है। राज्य में सिंचाई के साधनों के रूप में महत्त्वपूर्ण शक्ति चालित नलकूपों का प्रसार सूचकांक प्रश्न गत अवधि में 143.74 रहा व प्रति वर्ग किमी. क्षेत्रफल पर 11.09 नलकूप प्रयोग में लाये गये। उतपादन अपर्याप्तता-किसी भी क्षेत्र में कृषि विकास हेतु तकनीकी प्रसार अतयन्त आवश्यक है, जो कि क्षेत्रीय समस्याओं व वहाँ के आवश्यकतानुसार शोध तकनीकी का चयन शोध करने से ही सम्भव है। जिस कारण कृषि प्रधान है।

तकनीकी यंत्र प्रसार प्रशिक्षण केंद्रों की अपर्याप्तता-आधुनिक तकनीकी यन्त्रों को क्रियान्वित करने हेतु पहले प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है क्योंकि राज्य में ग्रामीण साक्षरता 56.81 प्रतिशत है। जो इस दृष्टि से समस्याग्रस्त क्षेत्र हैं। इसलिये कृषि विकास हेतु जितना आधुनिक तकनीकी का प्रसार आवश्यक है उससे पहले प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना तथा विकास आवश्यक है।

विपणन केंद्रों की अपर्याप्तता-विपणन तंत्र कृषि विकास को दिशा प्रदान करता है राज्य में सहकारी क्रय केंद्रों की अन्तर केंद्र दूरी 4.34 किलोमीटर ज्ञात की गई है। जबकि यह दूरी जिलों में 8.00 किलोमीटर से भी अधिक ज्ञात की गई है। अतः इन क्षेत्रों के कृषि उत्पादों का उचित विपणन नहीं हो पाता, जो कि अहम समस्या है। उचित विपणन से अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है आधुनिक तकनीकी विकास व ग्राह्यत्ताकृषकों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है।

यन्त्र मरम्मत सेवा केंद्रों की अपर्याप्तता-कृषि विकास में यन्त्र मरम्मत सेवा केंद्रों की अपर्याप्तता है यह सुविधा बिहार के अतिरिक्त कुछ एक नगर केंद्रों में ही उपलब्ध है फलस्वरूप कृषकों को इस सुविधा हेतु लम्बी दूरी, अनावश्यक धन और समय नष्ट करना पड़ता है।

बिहार में कुल 277 लघु औद्योगिक इकाइयाँ कृषि उत्पादों के प्रक्रमण के दृष्टिगत सीमित औद्योगिक विकास मिलता है जबकि वर्तमान में राज्य में वर्ष 2005-16 में धन्य शस्यों का 970791 कुण्टल दलहन शस्यों के रूप में 198419 कुण्टल, आलू 2396685 कुण्टल व 4633787 कुण्टल गन्ना का उत्पादन किया गया, जो औद्योगिक प्रक्रमण हेतु पर्याप्त क्षेत्रीय औद्योगिक आधार के बावजूद अल्प विकास की समस्याएँ हैं।

सुधारात्मक उपाय एवं सम्भावित नियोजित विकास हेतु रणनीति

नियोजन एक विशिष्ट प्रदेश, राज्य या राष्ट्र के कृषि सम्भाव्यता को ध्यान में रखते हुए निश्चित लक्ष्य को सामने रखकर उसके प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। नियोजन के अन्तर्गत किसी भी क्षेत्र में कृषि में व्याप्त समस्याओं का भविष्य के प्रति दृष्टिगत समाधान कर विकास के कार्य को महत्व प्रदान किया जाता है। इस प्रकार कृषि नियोजन क्षेत्र एवं कृषि की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तनशील होती है वहीं कृषि नियोजन गतिशील प्रक्रिया के रूप में अंगीकर किया जाता है, जिसमें भूमि उपयोग एवं उत्पादकता सुनिश्चित करना मुख्य उद्देश्य होता है। इस प्रकार कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्र के लिए कृषि विकास हेतु नियोजन व रणनीति तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है।[9] बिहार के कृषि विविधीकरण के आँकड़ों के अध्ययन के परिणामों के आधार पर विभन्न क्षेत्रों में व्याप्त कृषि गत समस्याओं को ध्यान में रखकर राज्य के आर्थिक विकास में कृषि विविधीकरण की भूमिका को और अधिक सुदृढ़ करने हेतु सम्भावित नियोजित रणनीति तैयार की गई है।

राज्य में विशेषत: बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में मृदा अपरदन की रोकथाम के लिए उपयुक्त कृषि व्यवस्था के साथ ही साथ अपरदन अवरोधी शस्य जैसे, मूँग, लोबिया, उरद, सनई, सेम आदि के अतिरिक्त अपरदन अवरोधी वृक्षों का पौध रोपण किया जाये।

भूमि को प्राकृतिक रूप से बढ़ाने के लिए कम्पोस्ट के अतिरिक्त उर्वरता वृद्धि में सहायक हरी खाद की फसलें यथा-सनई, ढेंचा, मूँग, लोबिया, मोंठ, नील तथा कुल्थी आदि के अतिरिक्त दलहनी फसलें विशेषत: अल्प सिंचाई के क्षेत्रों में उगाई जाये।

जल संसाधन संरक्षण हेतु सतही जल के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए बाँध ऊँची की जायें तथा क्षेत्र के ढलान के अनुपात में मेंढ़बंदी की जाय। इसके अतिरिक्त भू-जोत आकार के अनुसार जल संचलन हेतु ताल बनाकर मत्स्य पालन किया जाना भी विकास का महत्वपूर्ण अंग बन सकता है। इसके अतिरिक्त नाली निर्माण, पलवल लगाना, झाड़ी एवं घास लगाना भी जल एवं मृदा संरक्षण दोनों में ही लाभप्रद हो सकते हैं। यथा सम्भव सिंचाई हेतु जल का दुरुपयोग रोकने के लिए उपयुक्त आधुनिक सिंचाई विधियाँ यथा बौछारीय विधि, अवभूमि सिंचाई विधि तथा टपकदार सिंचाई विधि आदि का प्रयोग भी लाभप्रद है।

राज्य में क्षारीय एवं लवणीय ऊषर भूमि का उपयोग के उपयुक्त फसलें जैसे–धन, बरसीम, पालक, गोभी, टमाटर, गन्ना, सरसो, मटर, अलसी तथा पुष्प कृषि के अतिरिक्त क्षारीय भूमि के उपयुक्त पौधे विशेषत: कांटेदार पौधे तथा बेर, ककरौंदा तथा टैंटी आदि के अतिरिक्त आंवला तथा जैट्रोफा कृषि को अपना कर तथा अम्लीय भूमि हेतु उपयुक्त शस्य यथा-राई, जौ आदि उगाकर न केवल इनका उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। बल्कि अनुपयुक्त भूमि को भी लाभप्रद बनाया जा सकता है।

बिहार में ख्रषि भूमि सीमित है तथा जन संख्या निरन्तर वृद्धि शील है, ऐसी स्थिति में खाद्य सुरक्षा से भी महत्त्वपूर्ण भूमि-उपयोग नियोजन है। अत: भूमि उपयोग नियोजन दीर्घकालिक विकास को स्वोदभूत गति प्रदान करने तथा पारिस्थतिक संतुलन बनाये रखने की दृष्टि से कृषि विविधीकरण आवश्यक है।

बिहार में निर्वाहक खाद्यान्न प्रधान शस्य व्यवस्था सकल कृषित क्षेत्र के 80.21 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करती है। अत: राज्य के आर्थिक विकास हेतु कृषि में खाद्यान्न शस्यों के साथ वाणिज्यिक शस्यों का विस्तार आवश्यक है। प्रथम चरण में वाणिज्यिक शस्यों के अन्तग्रत सकल कृषि क्षेत्र वर्ष 2016 में 18.48 प्रतिशत से बढ़ाकर 35.00 प्रतिशत वर्ष 2020 तक किया जाय तथा वर्ष 2018 तक कम से कम 45.00 प्रतिशत क्षेत्र शस्य वाणिज्यीकरण का भाग बन सके, ऐसे नियोजित प्रयास किये जायें। इस दृष्टि से समन्विय कृषि विकास हेतु खाद्यान्न तथा वाणिज्यिक शस्यों की उच्च उपज देने वाली कई प्रजातियाँ है।

बिहार में कृषि के समविन्त विकास की दृष्टि से खाद्यान्न व वाणिज्यिक शस्यों हेतु रासायनिक उर्वरक विभिन्न मृदा उर्वरता वर्गो के अनुसार किये गये हैं साथ ही इन शस्यों के लिए प्रस्तावित कम्पोस्ट खाद की मात्र भी प्रस्तावित की गई है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग निश्चित रूप से पर्यावरणीय समरसता के अनुकूल नहीं है। अत: हरी खाद एवं कम्पोस्ट खाद के अतिरिक्त जैव खाद अर्थात् वर्मी खाद जैसे प्रयोग भी इस दिशा में अपनाये जा सकते हैं।

निष्कर्ष

अंततः ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए कृषि का विविधीकरण महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। इस हेतु कृषि क्षेत्र में ऋण प्रवाह व ठेका कृषि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसोचैम एवं अर्न्स्ट एंड यंग के सर्वे में कहा गया है कि देश में 14.8 करोड़ ग्रामीण परिवार में से 8.9 करोड़ परिवार कृषि से जुड़े हैं। इनमें से 4.6 करोड़ वित्तीय सेवा के दायरे से बाहर हैं। अध्ययन में कहा गया है कि कंपनियां कृषि उत्पादों के लिए जोखिम प्रबंधन तथा बाजार उपलब्ध कराने में अहम् भूमिका निभा सकती है, जिससे किसानों एवं बैंक के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी फायदा होगा। कृषि क्षेत्र में कंपनियों के शामिल होने से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण तथा पूंजी प्रवाह में तेजी आएगी। कृषि को एक व्यावसायिक मॉडल की तरह सरकारी तौर पर पेश करने की जरूरत है। किसानों को यह प्रमाणिक तौर पर आश्वासन देना होगा कि कृषि भी एक व्यवसाय है और इसमें असीम आर्थिक लाभ की संभावनाएँ हैं। निचले स्तर पर किसानों को व्यावसायिक खेती हेतु सुविधाएँ उपलब्ध कराने एवं प्रोत्साहित कराने की आवश्यकता है। सरकारी तौर पर सिंचाई, प्रशिक्षण, संसाधन, शोध अनुसंधान का प्रबल प्रयास ही खेती को लाभ का धंधा बना सकता है।

संदर्भ स्रोत

1. जे. राइट (2016), "रिपोर्ट आन द डैवलपमेंट आफ एग्रीकल्चर इंडस्ट्रीज इन इंडिया", मैनेजर आफ पब्लिकेशंस भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ 149
2. एच.के. सिंह (2015), "बेसिक फक्ट्स अबाउट एग्रीकल्चर एण्ड इट्स मेटर्स", सेंट्रल कौंसिल आफ एग्रीकल्चर, नई दिल्ली, पृ 124
3. एम.एस. स्वामीनाथन (2016), कृषि अर्थशास्त्र, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ 35
4. एम. रंधवा (2015), "एग्रीकल्चर इन इंडिया", इण्डियन कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, नई दिल्ली, पृ 52
5. आर. सेन (2016), एरीगेशन एण्ड इंडियन एग्रीकल्चर, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 31
6. मश्र एवं पुरी, 2012, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
7. देबराय विवेक एवं भंडारी लवीश, 'विकास चाहिये तो कृषि पर निर्भरता कम करें', इंडिया टुडे, नव.-2012, नई दिल्ली

गुरु रविदास जी के काव्य में दार्शनिकता

सोमा देवी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, देश भगत यूनिवर्सिटी मंडी, पंजाब
पंजीकरण संख्या- 15370194004

दर्शन में तार्किक ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया जाता है। डॉ. राधकृष्णन के अनुसार– 'दर्शन' अन्तर्ज्ञान को तर्क के आधार पर सिद्ध करना और उसका प्रचार करना है। विचार या बुद्धि तत्व कवि का जीवन दर्शन होता है जिसे वह काव्य के माध्यम से प्रकट करता है। विचार कवि के अन्तर्मन से उपजते हैं और बाद में वे विविध रूप धारण कर लेते हैं। अर्थात काव्य कवि के मौलिक व्यक्तित्व का प्रतीक है जिससे वह अपनी मनोस्थितियों और भावनाओं को संप्रेषीत करता है। संत महापुरुषों की भक्ति-भावना में से कई मनोभाव वाणी के रूप में प्रकट होते हैं। संत काव्य स्व-अनुभूति की कसौटी पर कसे ज्ञान को प्रस्तुत करता है और कहीं-कहीं उसे अकथनीय विचारों को प्रकट करने के लिए कल्पना का भी सहारा लेना पडता है। संत काव्य तर्कपूर्ण दर्शन नहीं। फिलासाफी मुख्य रूप से पारभौतिक विषयों के सम्पूर्ण तार्किक और तरतीवबार अध्ययन को कहते हैं। "संतों के काव्य दर्शन में आत्म-गहराइओं के भीतर ईश्वरीय गहराइओं के रहस्यात्मक अनुभवों के मादक स्वाद का सौंदर्यमय वर्णन होता है।"[1]

संतों की वाणी चाहे आध्यात्मिक रंग में रंगी है, फिर भी संतों ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मुक्ति संबंधी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसमें से उनके दार्शनिक विचार उभर कर सामने आते हैं। संत जब अखंड आनंद की अवस्था को प्राप्त करते हैं तो ही मन, बुद्धि का प्रारंभिक साफ़र तह कर ही असली मुकाम पर पहुँचते हैं। चाहे वह ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति मार्ग को तह कर चुके होते हैं फिर भी जीव जगत, माया की प्रकृति को अनदेखा नहीं कर सकते। मुक्ति प्राप्त करने के लिए वे अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। तुरिया अवस्थायों के अनुभव में से जहां मन-बुद्धि कायम रहते हैं, वहाँ दार्शनिक विचार भी प्रकट होते हैं। असल में संत दार्शनिकता को अपने अनुभव की कसौटी पर जांच कर भक्ति के परमाथी तथ्यों को सहज भाव में व्यक्त करते हैं।

डॉ. शांति नाथ गुप्ता के अनुसार– "भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार सच्चा दार्शनिक वह होता है जो अंतर ध्यान हो कर समूचे तत्व को प्रत्यक्ष अनुभव कर जीवन की सच्चाइयों को प्रकट करे परंतु ऐसे दार्शनिक विरले होते हैं।"[2] दर्शन का अर्थ बुद्धि द्वारा प्राप्त सारे ख्रष्टिकोण हैं। हम कौन हैं? कहाँ से आए हैं? दृष्टिमान जगत क्या है? सृष्टि की रचना कैसे हुई? सृष्टि का रचनाहार कौन है? आदि मूल प्रश्नों को विवेक के आधार पर देखना ही दर्शन है। संत उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान निजी अनुभूति अनुसार वाणी में प्रकट करते हैं। अतरू वह सच्चे दार्शनिक होते हैं। गुरु रविदास जी की वाणी में ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मुक्ति आदि अटल सत्यों का वर्णन है जो मन की आकांक्षाओं को संतुष्ट करके मानवीय अनुभव को और समृद्ध बनाते हैं। गुरु रविदास जी के काव्य का केंद्र बिन्दु ईश्वर है। ब्रह्म का वर्णन करना कठिन है क्योंकि पूरे जगत में एक ही है। उसके जैसा कोई दूसरा नहीं है जिससे उसकी उपमा की जा सके -

"कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै।।
जैसा तू तैसा तूही किआ उपमा दीजै।।"[3]

ईश्वर सूक्ष्म शक्ति है जिसमें क्रिया नहीं पर उस कारण सब में क्रिया है। वह कर्म-अकर्म से परे है। प्रभु सर्वगुण संपन्न भी है और गुणातीत भी है। वह सृष्टि के साकार रूप में निर्गुण रूप में समाया है। वह निविकार, निर्भय, अविनाशी और सहज है-

"निहचल निराकार अज अनुपम। निरभै अति गोबिंदा।।
आगम अगोचर अछर अतरक निरगुन अति आनंदा।।

सदा अतीत गयान घन बरजित निरबीकार अबिनासी।।

कहै रविदास सहज सूननि सति जीवन मुकति निधी कासी।।"[4]

गुरु रविदास जी के अनुसार ईश्वर एक है, ओंकार है, जिसका तीनों लोकों में पसारा है परमात्मा ही सृष्टि का सृजनहार है, सर्वव्यापी है, सब में उसकी ज्योति समाई हुई है-

"चहुं दिसि दिवला वरि रहै जगजग हैव रहयो रे।

जोति जोति समजोति जोति में हिलमिल रहयो रे।।"[5]

प्रभु सगुण, निर्गुण में समान रूप में विद्यमान है -

"अगुण सगुण डॉ. समकरि जानयो

चहुं दिस दरसन तोरा।।"[6]

ईश्वर गुणातीत है। इस लिए वह निर्गुण में सगुण और निराकार में साकार है -

"सोई बसि रसि मन मिलै, गुन निरगुन एक बिचार।।"[7]

एक निर्गुण अनेक में समाया है -

एक ही एक अनेक होइ बिसथरीउ

आन रे आन भरपूरि सोऊ।।"[8]

जीव: गुरु रविदास जी ने वैज्ञानिक दृष्टि से मानव की भीतरी बनावट का बहुत सुंदर चित्र खींचा है। मानव शरीर कोशिकायों से बना है जिसमें जीवन का आधार पानी है। जीव हवा के सहारे जीवित है। मानव शरीर का निर्माण वीर्य और रक्त से होता है। इसके अतिरिक्त यह हड्डियों एवं मास का ढांचा है जिसमें पक्षी के रूप में रूह वास करती है–

"जल की भीति पवन का ठमभा रकत बूंद का गारा।

हाड मास नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा।।"[9]

रविदास जी के अनुसार सृष्टि के आरंभ में एक ईश्वर था, अंत में भी एक ही रहता है, फिर वर्तमान सृष्टि के लोग सभी को अलग-अलग दृष्टि से क्यों देखते हैं? इसका का उत्तर भी स्वयं रविदास जी अपने काव्य में देते हुए कहते हैं कि ईश्वर एक है, वह सभी में समान रूप में समाया हुआ है, सबका मूल एक ही है। बाहरी रूप-रंग के कारण एक-दूसरे में विभिन्नता नज़र आती है। जिस प्रकार सोने से बने गहने अलग प्रतीत होते हैं, पानी और पानी से उठी लहरें अलग लगती हैं पर इनका मूल एक ही है, इसी तरह समूची सृष्टि में एक ही ईश्वर का वास है, कोई एक दूसरे से भिन्न नहीं है -

"आदिहु ऐक अंत फुनि सोई मध्य जो उपाधि कैसे।

है यहु एक भ्रम रू दूजो कनक अलंकृत जैसे।।"[10]

गुरु जी के अनुसार ब्रह्म और जीव में कोई अंतर नहीं अर्थात अद्वैत है -

"तोही मोही मोही तोही अंतर कैसा। कनक कटक जल तरंग जैसा।"[11]

माया जाल में फंस जाने के कारण राजा स्वप्न में भिखारी बन जाता है और दुखी होने लगता है। इसी प्रकार मनुष्य मोह-माया के जाल में फंस कर स्वयं को ब्रह्म से अलग समझ बैठता है। अज्ञानतावश वह सृष्टि के सृजनहार को भुला कर सभी के साथ द्वैत भरा व्यवहार करता है -

"माधे का कहीऐ भ्रम ऐसा।।

जैसा मानिऐ होई ना तैसा।।

नरपति ऐक सिंघासनि सोईआ, सुपने भइआ भिखारी।।

अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ, सो गति भई हमारी।।"[12]

गुरु रविदास जी कहते हैं कि जीव अपने अवगुणों के कारण विकारों का शिकार होकर दुखी होता है -

"तूँ सुलितान सुलिताना, बंदा सकिसता अजाना।।
मैं बंदिआनत बदनज़र दरद मंद बरखुदार।।
मैं गुनहागार गुमराह गाफिल कमदिला करतार।।"[13]

साधु-संत, गुर, भक्त, ब्रह्म ज्ञानी मुक्त जीव हैं जो प्रभु का सिमरन कर प्रभु कृपा के पात्र बन जाते हैं–

"संत अनंतहि अंतर नाहि।।"[14]

सृष्टि की उत्पत्ति

प्रत्येक कार्य का कोई कर्ता या कारण होता है। भारतीय पौराणिक परंपरा में सृष्टि की उत्पत्ति के कई कारणों का वर्णन है। जैसे ब्रह्म, जल, वायु, अगिन, प्रकाश, आकाश, द्रव्यों का संयोग (सतो, तमो, रजो) आदि। सृष्टि की प्रत्येक छोटी सी छोटी वस्तु में क्रिया हो रही है और यही क्रिया ज़िदगी है -

"एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ।।
आन रे आन भरपूर सोइ।।"[15]
"आदि मध्य ऐसान ऐक रस, तार तूंब नहीं ताई।
बावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रयो हरि राई।।"[16]

पाँच-तत्वः मनुष्य शरीर पाँच तत्वों का बना है। आकाश, वायु, अगिन, जल और पृथ्वी के तत्व सभी में मौजूद हैं -

"पाँच तत जिनि कीया पसारा सो योही किंधु और रे।।"[17]

माया से छुटकारा पा कर जीव को मुक्ति मिल सकती। राम-नाम जप कर जीव प्रभु से अभेद हो जाता है -

माया: सृष्टि का बाहरी विभिन्नता वाला रूप जो मानव को अज्ञानता कारण आकर्षित करता है, माया कहलाता है। माया अपने सुंदर रूप के कारण मानव को मोहित कर लेती है। यह वास्तव में प्रभु का ही रूप है लेकिन हम जगत के पसारे को स्थूल दृष्टि से देखते हैं। सूक्ष्म दृष्टि वाले के लिए प्रभु जगत में ही समाया हुआ है। इसलिए संतों ने माया के दोनों रूपों का वर्णन किया है। बाहरी रूप झूठा है क्योंकि यह समय के साथ बदल जाता है। कण-कण में ईश्वर का वास है। वह सदीवी सत्य है। जगत में इस रचनाहार को न देख पाना ही माया है -

"पाँच तत्त यहु त्रिगुणि माया।।
जो दीसै सो सकल उपाया।।"[18]

गुरु जी ने जहां माया की निंदा की है, वहाँ उसे सखी-सहेली भी कहा है। जब मानव माया में बुरी तरह से फंस जाता है तो माया का असली रूप सामने आता है -

"पाचो थकित भए जहां तहां थीति पाई।।
जा कारनि मैं दोरयो फिरत सो अब घाट मैं आई।
पांचों मेरी सखी सहेली तीन निधी दई दिखाई।।"[19]

निर्वाण: मानव को माया से छुटकारा पाकर ही मुक्ति मिल सकती है। कुकर्मो के पत्थरों से भरी हुई जीवन-नौका संसार रूपी भवसागर में लोभ की तरंगों के थपेड़े खाकर डावांडोल हो जाती है। राम-नाम जप कर ही जीव प्रभु के साथ अभेद हो सकता है-

"झूठी माया जग दाहकाया ते तिनि ताप दहै रे।।
कहै रविदास राम जप रसना, माया काहू के संग ना रहै रे।।"[20]

गुरु रविदास जी के जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाने को ही मुक्ति प्राप्त करना कहते हैं। गुरु जी ने मुक्ति के प्रकारों की बाँट नहीं की बल्कि उरवार मुक्ति को अधिक महत्व दिया। संसार में रहकर बंधन मुक्त होना ही उरवार मुक्ति है। प्रभु के साथ

सदीवी मेल प्राप्त कर स्वर्ग का वासी बनना पार मुक्ति है। सहज अवस्था में से होते हुए आत्म प्रकाश द्वारा परम दिव्य ज्योति को अनुभव करना उरवार मुक्ति है जो पूर्ण विश्व को बेगमपुरा बनाती है –

"पार गया चाहे कोई, देहु उरवार पार नहीं होइ।।
पार कहै उरवार सूँ पारा, बिन पद परचे भ्रमों गंवारा।।"[21]

पूरे विवरण के बाद हम कह सकते हैं कि गुरु रविदास जी की दार्शनिक विचारधारा मौलिक है। चाहे रविदास जी दार्शनिक नहीं थे परंतु उनके अनुभव के आधार पर प्रभु के साथ अभेदता में से जो आत्म–ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ, वह किसी विरले दार्शनिक को ही नसीब होता है।

संदर्भ-संकेत

1. डॉ. प्रेम प्रकाश सिंह, गुरु नानक और निर्गुण धारा, पृष्ठ – 53
2. डॉ. शांति नाथ गुप्ता, भारतीय दर्शन, पृष्ठ – 5
3. आदि ग्रंथ, पृष्ठ – 858
4. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 65
5. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 74
6. डॉ. धर्मपाल सिंगल, वाणी श्री गुरु रविदास जी, पृष्ठ – 73
7. आदि ग्रंथ, पृष्ठ – 346
8. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
9. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 70
10. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
11. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
12. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 34
13. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
14. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
15. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
16. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 87
17. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
18. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 7
19. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 7
20. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47
21. डॉ. बी.पी. शर्मा, संत रविदास वाणी, पद – 47

मानवतावाद का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० महेन्द्र पासवान

ग्राम-केवलचक, पोस्ट-फुलवरिया बहेरी, थाना-गुरूआ, जिला-गया (बिहार)

दार्शनिक चिंतन की परम्परा के शुरू से ही पार्थिव जीवन को महत्ता देनेवाले मनीषी, जिन्होंने मानव और समृद्धि को जीवन का लक्ष्य उद्घोषित किया, बहुत लम्बे अर्से तक मानव द्वारा केन्द्रित यह अध्ययन इतिहास में एक साधारण विचारों का समावेश रहा। यूरोपीय पुनर्जागरण काल से इसका महत्ता बढ़ा और धीरे-धीरे यह मानव कल्याण के सभी कोशिशों का प्रेरणा स्त्रोत का केन्द्र बिन्दु बन गया। पारलौकिक मूल्यों के जगह पर इहलौकिक उद्देश्यों को महत्ता देनेवाली इस विचारधारा का ही नाम मानववाद है।

ह्यूमैनिज्म शब्द की व्युत्पति लैटिन होमा (होमा) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है- मानव। मानववादी-दर्शन मनुष्य को सृष्टि का केन्द्रबिन्दु मानता है। मनुष्य जाति के इतिहास में देखने पर मनुष्य ने स्वयं अपने अस्तित्व का लक्ष्य माना है। मिश्र और मेसोपोटामिया के प्राचीन साम्राज्यों में दैवी शक्तियों के सामने मानव स्वयं को अकिचन अंश मानते थे और दासत्व को तर्कसंगत और अनिवार्य मानते थे। इतिहास में आगे चलकर मानव कानून को धर्म से अलग करके देखना आरम्भ किया, उन्हें मनुष्य कृत समझने लगा।

16वीं शताब्दी के पहले जीवन और संसार के प्रति मानव की दृष्टि धार्मिक भावना से अनुशासित होती थी। पश्चिम में मध्ययुग की समाप्ति के साथ ही साथ चर्च की महत्ता का अन्त हुआ और सृष्टि का मानवीय सन्दर्भ में पुन: आविर्भाव हुआ। पृथ्वी पर मनुष्य के साथ जो भी घटना घटती है, उसके लिए मुख्यत: मानव स्वयं ही उत्तरदायी है। अत: उसे अपने भौतिक अस्तित्व के कल्याण के लिए ज्ञान की साधना करनी चाहिए। मानव को यह दृढ़ विश्वास जगा कि उसमें स्वयं को और अपनी दुनिया को परिवर्तन करने की क्षमता है- मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधता है। इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप यूरोप में भौतिक प्रगति का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रांति के कारण होनेवाली भौतिक उन्नति और ज्ञान-विज्ञान की बराबर प्रगति ने यूरोप का काया-कल्प कर दिया और वह एक अपूर्व जागृति की नई दीप्ति से प्रकाशमान हुआ। इहलोक को सुखी बनाने की कामना, देश-प्रेम की भावना, स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के विचार आदि उच्च माननीय उद्देश्यों ने यूरोप की आत्मा को नया रूप एवं कलेवर प्रदान किया। प्राचीन, महान और गौरवपूर्ण संस्कृति वाले एशियाई देशों और अफ्रीकी प्रदेशों में यूरोपीय शक्तियों का शासक उत्पीड़क साम्राज्यवादी शक्तियों का शासन था, लेकिन यूरोपीय व्यक्ति शासन के अलावा पाश्चात्य नवात्मा के प्रतीक बनकर भी गये। पश्चिम के संबंध में दुनिया के अन्य सीमाओं को भी आधुनिक युग के सिंह द्वार पर ला खड़ा किया। सम्पूर्ण संसार इतिहास के विस्तार को प्रकाशित करते हुए आधुनिक युग की आत्मा ने पश्चिमी क्षितिज से अपना प्रकाश विकीर्ण किया।[1] ज्ञान की नई मशाल को पाकर पिछड़े या पराधीन जन समाजों ने न केवल साम्राज्यवाद के विरूद्ध विद्रोह किया, बल्कि उसके प्रकाश में अपना संस्कार करते हुए महान भविष्य के रास्ते पर चरण रखा।

पश्चिम में मानवीय बुद्धि को धर्मबन्धनों से छुटकारा करने का कार्य पूर्ण कर यह पुनर्जागरण कालीन मानववाद शक्ति विहीन हो गया। विज्ञान के दुत विकास का ऐसा व्यावसायिक उपयोग हुआ है कि मानवीय हित को तिलांजली दे दिये गये। औद्योगिक क्रांति से जिस व्यावसायिकता की प्रतिष्ठा बनी उसने समस्त श्रेष्ठ मानवीय मर्यादाओं को नष्ट कर झकझोर दिया एवं विनष्ट कर दिया।

फ्रांस की राज्य-क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के आदर्श नारे का उद्घोष किया था, किन्तु पश्चिमी देशों ने साम्राज्य की स्थापना की और परतन्त्र देशों के वासियों को उत्पीड़न एवं अत्याचार की भयानक चक्की में पीसकर उन्हें तोड़ दिया, निरंकुश यातना का शिकार बनाया।

टैगोर ने रेने रामोन्ड का औपनिवेशिक दमन संबंधी जो अनुभव उद्धत किया है, वह इस प्रकार है-

"युद्ध के बाद पन्द्रह वर्ष का कारावास भोगने के लिए मुझे गुयान भेजा गया। कटुता का प्याला मैंने अन्तिम बूंद तक पीया है। कारावास की अवधि के बाद भी एक पूरक दण्ड और बच रहा है- जीवन भर के लिए निष्कासन। व्यक्ति गुयाना पहुँचता है स्वस्थ, युवा और सबल, पर लौटता है दुर्बल, वृद्ध और रोगी ......वह ईमानदार के रूप में गुयान जाता है। वे (निष्कासित) इस धरती की सभी निष्कृष्ट कोढ़ से सहज शिकार होते हैं।"

वैज्ञानिक युग ने यंत्रीकरण और सामूहिकीकरण की जिन प्रवृतियों को जन्म दिया है वे मानव हित को मान देनेवाली किसी नियंत्रक व्यवस्था के अभाव में अभिशाप सिद्ध हुई है। इस प्रक्रिया में मानव नगन्य होकर वस्तु मात्र रह गया है। व्यावसायिक और यांत्रिक सभ्यता की पुरानी परम्पराओं को समूल धवस्त कर दिया है। उनके स्थान पर सामाजिक सहयोग के किसी नये आदर्श की प्रतिष्ठा के अभाव में मानव-मानव के बीच बेगानेपन का संबंध कायम हो गया है। बुद्धिजीवी और विशेषकर कलाकार अपने आपको समाज के द्वारा बहिस्कृत अनुभव करने लगे हैं।

इस परिस्थिति में असहाय समर्पण ने जब निराशावादी जीवन-दृष्टियों को उत्पन्न किया, जिनके आधार पर मानव सभ्यता के सम्भावित अंत की उद्घोषणाएँ की गयी है, चुनौती के भाव केन्द्रित विचारधाराओं को प्रेरित किया है। एक नया और व्यापक मानववाद विश्व-मानव की अन्तश्चेतना को परिलक्षित कर रहा है।

मानवतावाद शब्द का इतिहास इतना विशाल, इतना जटिल और इतने अधिक अभिप्रायों से संबद्ध है कि उसके संबंध में भी स्थापनाएँ उद्धत की जाए, वे विवादास्पद होने से नहीं बच पाती। एक अमेरिकी विद्वान प्रो. चैने (इडवर्ड पी. चैने) के अनुसार मानववाद के विभिन्न अर्थ है-"यह जीवन का विवेक संगत संतुलन हो सकता है जिसे प्रारंभिक मानववादियों ने यूनानियों में पाया, यह केवल ह्यूमैनिटीज (मानवशास्त्र) का अध्ययन हो सकता है। यह धार्मिकता के मुक्ति और रानी एलिजोवंथ या वैजामिन फैंकलिब के जीवन के सभी पक्षों में गहरी दिलचस्पी हो सकता है। शेक्सपीयर या गेटे द्वारा रूपायित सभी मानवीय आवेगों के प्रति अनुकूल प्रतिचेष्टा का भाव हो सकता है या यह एक दर्शन हो सकता है जिसका केन्द्र मनुष्य है। इस अन्तिम अर्थ में मानववाद को संभवतया सर्वाधित महत्व सोलहवीं सदी में मिला।[2]

मानवतावाद की विश्व के मानव-प्रवृति और मानवीय समस्याओं के संबंध में स्पष्ट मान्याताएँ हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सोलहवीं सदी के लिए सर्वप्रथम मानववादी संज्ञा का प्रयोग किया गया था। आधुनिक मानववाद, जिसमें रिनेशा ह्यूमैनिज्म के श्रेष्ठ सिद्धान्त का अस्तित्व समाहित है, व्याप्ति तथा महत्व की दृष्टि से उससे कहीं अधिक विशाल और प्रभावशाली आन्दोलन है।

बीसवीं सदी के मानवतावाद की यथासम्भव संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कारलिस लेमान्ट ने कहा है कि वह इसी पार्थिव संसार में सम्पूर्ण मानवता के महतरहित के लिए सेवा दर्शन है जो विवेक सम्मत और जनतांत्रिक पद्धतियों के सर्वथा अनुकूल है। मानववाद केवल शास्त्र-व्यवसायी दार्शनिकों की सम्पति नहीं है, अपितु सुख्पूर्ण और सोद्देश्य जीवन यापन के लिए जन-सामान्य के चिंतन एवं कार्य का मार्ग है।[3]

कैथोलिक मानवतावादी विचारक जाक मारिता ने मानववाद को इस प्रकार परिभाषित किया है- "मानववाद अनिवार्य रूप से मनुष्य की अधिक सही अर्थो में मानवीय बनाता है तथा प्रकृति और इतिहास में मनुष्य के श्रेष्ठ बनानेवाली सभी क्रियाओं में योगदान के लिए उसे सन्न) कर उसकी मौलिक महानता को प्रकट करता है। यह परन्तु अपेक्षा करता है कि मनुष्य अपनी सम्भावनाओं सर्जनात्मक क्षमताओं और मेध का उपयोग करे तथा भौतिक जगत् की शक्तियों को अपनी स्वाधीनता का उपकरण बनाने के लिए प्रयत्नशील है।"[4]

धर्म निरेपक्ष मानव सेवा का आदर्श ही आधुनिक युग के मानववाद की नैतिकता हो सकती है। पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में-"इस जमाने का दिमाग यानी उँचे दर्जे का दिमाग व्यावहारिक है और प्रैगमैटिक है, नैतिक है और सामाजिक है, परोपकारी है

और मानववादी है- उसका संचालन सामाजिक उन्नति के असली आदर्शवाद से होता है, उसके पीछे काम करने वाली आदर्श जमाने की रिवश की युगधर्म की नुमाईदगी करते हैं। पुराने लोगों के दार्शनिक ढ़ंग को, उनकी अन्तिम सत्य की खोज को बहुत हद तक छोड़ दिया गया है- इसका ईश्वर है मानवता और उसका धर्म है समाज सेवा।[5]

मानवतावाद मनुष्य के महत्व को किसी विराट सत्ता में अन्वेषित करने और उसके प्रति समर्पित होने का विरोध करता है और सामान्य जन को ही सब मूल्यों का अन्तिम निर्णायक मानता है।

गोर्की के शब्दों में-"सामान्य जन केवल ऐसी शक्ति ही नहीं है, जिन्होंने सारे भौतिक मूल्यों का सृजन किया है, अपितु ये ही आत्मिक मूल्यों के एक मात्र और अन्नत स्रोत है, काल सौन्दर्य और प्रतिभा में वे ही सामूहिक रूप में प्रथम और प्रमुख दार्शनिक तथा कवि है, विद्यमान सारी महान कविताओं, विश्व की सम्पूर्ण ट्रैजेडीज और उसमें भी सबसे महान ट्रेजडी विश्व संस्कृति के सृष्टा है।"[6]

इस प्रकार मानव गरिमा के प्रति अविचलित आस्था मानवतावादी विचारणा का केन्द्र-बिन्दु है। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो जब भी कोई विचारक मनुष्य के पार्थिव कल्याण को सर्वोपरि मानता है, तो उसके चिंतन का संचरण स्वभावत: मानववादी धरातल पर होता है। जबतक मानव कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है, किसी भी प्रकार के दार्शनिक या सैद्धान्तिक विचारों के प्रति मानवतावाद का विरोध भाव रहता है। इसलिए मानवतावाद एक सम्प्रदाय नहीं है, वह दृष्टि और कर्म को प्रेरित करने वाली एक व्यापक विचारधारा है।

मानवतावाद का प्रतिपाद्य मनुष्य का लौकिक सुख है न कि किसी कल्पित संसार का मरणो आनन्द, एक ऐसा सुख जो कि उसको प्राप्त है और जो किसी पराशक्ति की स्थिति या भू-भंगिमा पर निर्भर नहीं है। मानव महत्व के प्रति एक अटूट विश्वास को मानवतावाद का मर्म माना जा सकता है, जिसकी सबसे समर्थ अभिव्यक्ति शताब्दियों, पूर्व को ध्रुवों, के महर्षियों के इन आप्तवाक्यों में मिलती है- मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। मनुष्य ही सब वस्तुओं का प्रतिमान है।

ह्यूमैनिज्म विभाग की वह धारणा है कि जो मनुष्य की प्रारंभिक महत्ता में विश्वास रखता है उसकी दुनियावी उम्मीदों और खुशहाली के प्रतिबद्ध है, लैटीन शब्द हुमैन्स यानि होमो- मैन या होमीनेस- मैनमाइंड व्युत्पन्न है, पाश्चात्य यूरोपीय पुनर्जागरण की चारित्रिक विशेषता के रूप में समझा जाता है। यूनान और रोम के प्रचीन लेखक हमेशा से हुमैन और हुमैन शब्दों में विभेद करते रहे हैं इस आधार पर कि प्रथम शब्द में प्राणीत्व और दूसरे में देवत्व का आभास होता है।

बीसवीं शताब्दी में मानववाद की दुनिया में कुछ आयाम जुड़े। एफ.सी.एस. शीलर ने इसे अपने शब्द प्रैग्नेटीज्म के अनुवाद के रूप में लिया जिसका तात्पर्य हरेक दार्शनिक सूझ का उद्‌भाव मानव क्रिया-कलापों एवं प्रोटेगेरसे के विचारों से समझा जाता है जिसके अनुसार वह मनुष्य को बुद्धिजीवियों का मानदंड बताया है, जिसके अन्तर्गत चाहे प्लेटो या ह्यूम द्वारा बताये गये दर्शन हो या अपने जमाने के आदर्शवादियों के विचार। डरविग बैबीट के मानवतावाद पर विचार भिन्न थे जो कि प्राचीन विचारधारा से मिलता-जुलता था और कल्पनात्मक और प्रकृतिवाद के विरूद्ध था, न केवल शाब्दिक अर्थो में भी।

ह्यूमैनिज्म शब्द वास्तव में पुनर्जागरण काल के विचाकों में प्रचलित दृष्टिकोण के प्रतिबद्ध था। पुनर्जागरण काल में मानववाद की चरित्रगत विशेषता प्राचीन अध्ययन पर जोर देने में और प्राचीन आदर्शो और स्वरूपों के प्रति सहज वापसी में था। यह आन्दोलन शिलालेखों के पुनर्अध्ययन की तरफ अग्रसर हुआ तथा सुधार की दिशा में एक नया आयाम दिया। मानवतावादी शब्द उन विभिन्न व्यक्तियों के समूह को दिया गया जिनमें वोकेशियों, पेट्राक, लारेन्जोवल्ला, जोरेन्जों डी मैडीसी, इरेसमस और धमस मूल का नाम आता है। एम.सी.एस. शीलर और डरविंग बैबीट के अनुसार उपरोक्त लोगों के विचारों को ही मानवतावाद की संज्ञा दी गयी। वर्तमान दौर में इस शब्द का प्रयोग ग्रन्थों की रचना एवं विज्ञान की प्रमुखता ग्रहण करने में है।

कालीन्स न्यू एज इन साइक्लोपिडीया के अनुसार मानवतावाद पुनर्जागरण काल में विचारशील मनुष्यों की वह धारणा है जब धर्म की जगह पर मानव-मष्तिक खुद अध्ययन का विषय बन गया और संकीर्ण रूप से देखें तो पाते हैं कि यूनानी और रोम 16वीं शताब्दी के ग्रन्थों का पुनर्नवीकृत अध्ययन और वोकैशियों, पेट्राट कालेट, लारेन्जो डी कैडीसी, इरेसमस और थोमस मूर जैसे प्रसिद्ध मानववादियों की विचारधाराएँ ही मानववाद कहलायी।

साहित्य, इतिहास, नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र एक तरफ तो मानव-विज्ञान से संबंधित है जो प्राकृतिक विज्ञान से भिन्न है, वही दूसरी ओर इसमें पराभौतिक एवं धार्मिक विश्वास भी पिरोये हैं। अंतत: हम कह सकते है कि मानवतावाद को उस दार्शनिक या नैतिक पद्धति मान सकते हैं जो कि मानव के सम्मान एवं उसकी स्वतंत्रता में अपनी धारणा को व्यक्त करता है।

14 वीं शताब्दी की इतावली मानववाद विभिन्न स्रोतोंत्र से प्रेरित हुआ। उतरी यूरोप के हर देश से ज्यादा इटली में प्राचीन ग्रन्थों से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहा है। रोम परिवर्तनों के दौर सेगुजरा लेकिन इसकी छवि धूमिल कदापि नहीं हुई। उत्तर में मानववाद का महान केन्द्र फ्रांस था। प्राचीन मूल्यों की प्रथम पीढ़ी में फ्रांस के मध्ययुगीन सभ्यता की झलक थी जो कि बाद में स्वदेशी इतावली सभ्यता के साथ घुल-मिल गयी। इस अवधि के दौरान ग्रीक भाषा और साहित्य में एक रूचि का प्रसार हुआ जो कि शीघ्र वाजेटीयम एवं पाश्चात्य विद्वानों की सजग निगाहों के समझ में आ गया।

इस ज्ञान का प्रथम फल इस रूप में प्रस्तुत हुआ जिससे प्राचीन सभ्यता आवर्तित होती गई और सिसरों के जमानों और समकालीन मान्यताओं में जो खाई थी वह पट गई। मध्ययुगीन स्वेच्छाचारिता को हटाकर मानववाद ने अपनी घुसपैठ बना ली और वह सभ्यता का अंग बनती गई। प्राचीन देवी-देवताओं जो की समकालीन ईसाई राजा एवं रानी थे, लोरेन्जो वल्ला जैसे भाषा वैज्ञानिक ने भी इस शब्द के अर्थ को युगानुकूल वास्तविक धारणा के अनुरूप बताना चाहा। इसका अर्थ यह नहीं की इसका पूर्णत: विकसित इतिहास शीघ्र चला आया वरन् यह इतावली मानववादी थे जिन्होंने इसके प्रभाव का आवर्तित किया एवं आधुनिक पाश्चात्य विश्व में इसकी एक जगह दिलाया।

मानवतावाद प्रतिभावों ने इसके दार्शनिक प्रयोग पर बल दिया और कहा कि इस प्रकार की गुणात्मक अंत तक पहुँच सकते हैं। मानववादियों के विचार ईसाई और प्राचीन मान्यताओं एवं समकालीन नीति एवं राजनीति शास्त्रों के प्रति केन्द्रित होते रहे। प्रारंभिक मानववादियों ने विद्यालयी दर्शन पर जोर डाला और वे विद्यालयों को इस दर्शन के प्रति जागरूक रहते हुए समझा। पेट्राक के समय से ही विद्यालय तंत्र पर आघात होता रहा है और यह समझा जाता है कि विवादास्पद कला की जगह एक ऐसा दर्शन होना चाहिए जो शिक्षा एवं बुद्धि को बढ़ावा मिले। जब मानववादी दर्शन का सजग अध्ययन प्रारम्भ किया, वे अरस्तू के बजाय प्लेटो की परम्परा की तरफ दौड़े। फेटारा-न-लारेंस की सभा ने 1430 ई. में एक विशाल जोश प्लेटो की अध्ययन को समर्पित किया और बाद में शताब्दी के मासिंलियों फीसीनो कासिमों डीमेडिसी के संरक्षण में पटाकर प्लेटो की तमाम किताब के पहाड़ का अनुवाद कर डाला और प्लेटो के अकेडमी को स्थापित किया। इस समूह की संख्या आशावान जीवन के मूल्यों को परिवर्द्धित किया और नागरीकीय क्रिया-कलापों में अपना मुख मोड़ लिया जो कि पूर्व समय की रूचि था जो लाभ के रूप में चरित्रगत किया गया है।

धर्म और नीतिशास्त्र के अनुसार दार्शनिक रूप में मानववाद प्रकृतिवाद के विरूद्ध है। यह उस दार्शनिक धारणा का प्रतीक है जो मानव अनुभव की अभिव्यक्ति के सभी दर्शन का प्राथमिक जरूरत के रूप में स्वीकार करता है और इस उद्देश्य के लिये मानव ज्ञान की आवश्यकता को स्वीकार करता है। इस प्रकार मनुष्य को बौद्धिक विश्व का केन्द्र लगाकर और सभी विज्ञान और साहित्य मानव जीवन और इसके उद्देश्यों के प्रति समर्पित हुए दर्शन अपने को साहित्यिक मानववाद से जोड़ता है। पुनर्जागरण काल का साहित्यिक मानववाद मुख्यत: मध्ययुगीन रूढ़िवादी विचारों से मुक्ति का एक प्रयास था और साथ ही सभ्य समाज में प्राचीन साहित्य विशेषत: यूनानी साहित्य के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया।

ऐतिहासिक रूप में मानवतावाद शब्द के दार्शनिक उपयोग का इतिहास बहुत हीनदीन है। यह प्रथमत: एक वर्णात्मक प्रयोगिक शब्द मालूम पड़ता है जो कि 'प्रकृतिवादियों' के विरूद्ध है। आधुनिक लेखक इसे प्रैग्मेटीज्म के विस्तृत अर्थो में तकनीकी रूप से जानते है। विलियम जेम्स ने इसे परमवाद के विलोम से लिया है। 'मानववाद' शब्द की अनिश्चित अर्थ में भी इस्तेमाल किया गया है। केवल और मानवहित का नकल करते हुए उसे टाल दिया जाता है। धार्मिक परिवेश में भी इसका प्रयोग होता है और धर्मनिरपेक्षी इसे परावास्तविकवाद या अदृश्यवाद के रूप में समझते है।

प्रारम्भिक मानवतावाद का जन्म इटली में हुआ जिसका ऐतिहासिक संबंध पाश्चात्य जगत् में प्राचीनतम था। तिमिर युगों की समाप्ति के बावजूद भी रोमन यादगारों एवं सभ्यता का प्रभाव परिलक्षित था और जो 15वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वता और यूरोपीय समाज साहित्यिक खजानों के ससंर्ग में पल्लवति हुआ। व्यक्तिवाद का विकास और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण पर विजय और इसका सौन्दर्यपूर्ण विकास इस इतावली दिमाग को चुस्त एवं ग्राह्य प्राचीन साहित्य में रूचि का भी परिणाम कहा है। इटली से मानवीय आन्दोलन उत्तर की तरफ गुजरा, पश्चिम की ओर मुड़ते हुए जर्मनी, नीदरलैण्डस, स्पेन, फ्रांस और इंगलैण्ड में फैल गया। यह मध्ययुगीन विचारों के विपरीत रूप में प्रभावित हुआ और आधुनिक मानव विचारों एवं शारीरिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। उत्तर मध्ययुगीन के लोगों को यह एक खोई हुई प्राचीन विश्व को उजागर किया, जिनकी सभ्यता राजनैतिक एवं बौद्धिक स्वतंत्रता के चले श्रेष्ठतर थी। अरस्तु के धार्मिक अन्धनुकरण की नई तरह से इसने व्याख्या की। भाषा विज्ञान के संबंध में इसके आलोचना को जन्म दिया। धर्म में इसने ईसाईवाद के बोलबाला को हटाते हुए एक नवीन तुलनात्मक दृष्टिकोण का जन्म हुआ। इस

प्रकार मानवतावाद एक सुधारात्मक आन्दोलन के रूप में उदित हुआ। मानववादियों का भाषाविज्ञान संबंधी अन्वेषण जो कि दक्षिण में प्राचीन लेखकों की तरफ केन्द्रित थे मुख्यत: बाईविल से संबंधित थे।

यद्यपि बहुत हद तक मानववादियों को धार्मिक सुधार के नेताओं ने विभेदपूर्ण आध्यात्मिक निर्णय की कमी थी और यही कारण है कि सुधारात्मक रूप से यह अलग हो गयी और सुधारात्मक आन्दोलन जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त हो गया।

मानवतावाद की विशेषताएँ

1. मानवतावाद जगत के प्रति एक ऐसी धारणा में विश्वास करता है, जिसके अनुसार सभी लोकोत्तर या दैनिक तथ्य पुरा कल्पनाएँ और जिसके अनुसार प्रकृति किसी मष्तिक या चेतना से परे, यथार्थ और शक्ति की सतत् परिवर्तनशील प्रणाली है।
2. मानवतावाद विज्ञान के नियमों और तथ्यों का आश्रय लेता है। उसकी विश्वास है कि मनुष्य इस महान प्रकृति के विकास-क्रम की उपज है और उसकी चेतना उसके मस्तिष्क के व्यापार से अविभाज्य रूप में जुड़ी है। इसलिए मरणोपरान्त उसकी सचेतन सत्ता भी अविद्यमान हो जाती है।
3. मनुष्य में ही अन्तिम विश्वास रखने के कारण मानववाद की मान्यता है कि यदि वह विवेक और विज्ञान का साहस एवं दूरदर्शिता के साथ उपयोग करे तो अपनी समस्याओं का हल करने में निश्चय ही समर्थ हो सकता है। संसार क्या है और कैसा है, इसे जानने का एकमात्र साधन मनुष्य की बुद्धि है।
4. मानवतावाद की नियतिवाद या भाग्यवाद के सभी सिद्धान्तों के विरूद्ध यह मान्यता है कि अतीत के साथ प्रतिवाधित होकर भी मनुष्य रचनात्मक वरण और कर्म की वास्तविक स्वाधीनता रहता है और कुछ सीमाओं के साथ स्वयं अपने भाग्य का विधायक है।
5. मानवतावाद राष्ट्र, जाति, धर्म और ऐसी अन्य सीमाओं का अतिक्रमण करनेवाली एक ऐसी नैतिक व्यवस्था में विश्वास करता है, जो सम्पूर्ण मानवमूल्यों को इहलौकिक अनुभवों और मुजफ्फरपुर पर आधारित मानती है और जिसका चरम लक्ष्य पार्थिव सुख, स्वतंत्रता और प्रगति है- आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक प्रगति।
6. मानवतावाद की मान्यता है कि व्यक्ति समाज के कल्याण में योग देनेवाली क्रियाओं के साथ अपने निजी सन्तोष और आत्म-विकास का उचित समन्वय करने पर ही श्रेष्ठ जीवन की उपलब्धि करता है।
7. मानवतावाद कला और सौन्दर्य बोध के अधिकतम संभव विकास में विश्वास करता है ताकि सौन्दर्यानुभूति लोक-जीवन में एक व्यापक वास्तविकता बन जाए।
8. मानवतावाद एक ऐसे सामाजिक कार्यक्रम में विश्वास करता है जिसके अनुसार जनतंत्र, शांति और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समृद्ध अर्थव्यवस्था पर आधारित जीवन-यापन के उच्चस्तरीय मान की विश्व में सर्वत्र स्थापना की जा सके।
9. मानवतावाद का आग्रह है कि विवेक और विज्ञान का उपयोग सामाजिक जीवन में पूरी निष्ठा के साथ किया जाए और प्रजातांत्रिक प्रणाली (जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नागरिक अधिकार भी सम्मिलित है) आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में अपनायी जाए।
10. मानवतावाद अपनी और अन्य जीवनादर्शो की बुनियादी आस्थाओं और अवधारणाओं के प्रति वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल एक अन्तहीन प्रश्न परम्परा में विश्वास करता है।

मानवतावाद एक ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण है, जो जीवन को दैवीविधान से स्वतंत्र मानते हुए मानव-आचरण की एक नैतिक धारणा को स्वीकार करता है और जिसने नैतिकता और सामाजिक आदर्शवाद की उन महत्वपूर्ण मान्यताओं को सामाहित कर लिया है, जो उदार चिन्तन के परिणामस्वरूप विकसित हुई। मानववाद मानवीय मुजफ्फरपुर में परोपकार के महत्व और सम्भावना के प्रति आग्रह करता है। वह आर्थिक लाभों, काम, चेष्टाओं, पुखान्वेषी-अभिप्राय या अन्य तुच्छ तुष्णाओं को निशेध करता है।

मानवतावाद सम्पूर्ण ही है मानव-संबंधीवाद-मानवहितों की वकालत करनेवाली विचारधारा। मानववाद किसी देश या जाति के प्रति भेद-भाव या दुर्भावना को बर्दाशत नहीं करता। वह विश्व नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और मनुष्य की अनिवार्य बन्धुता का

समर्थक है।

मानवतावाद आज उन सभी लोगों के लिए प्रेरक आदर्श है जो श्रेष्ठतर जीवन निर्माण के महायज्ञ में जुटे हैं। मानववाद मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों को पूर्ण मुक्ति देता है और संसार विभिन्न देशों के निवासियों के बीच एक सामान्य विश्वास के रूप में विकसित हो रहा है। वह एक संकीर्ण मतवाद नहीं है, बल्कि एक दृष्टि है, जो सभी दर्शनों और चिन्तन पद्धतियों द्वारा प्रतिपादित मानव-महत्व के मूल्यों को आत्मसात करती है।

एक ऐसे विश्व का निर्माण, जिसमें मनुष्य-मात्र की समानता व्यवहारत: स्वीकृत हो और मनुष्य सब वस्तुओं का प्रतिमान हो, विशेषकर राज्य का जो उसपर शासन करता है। राज्य का स्वरूप अमानवीय है जैसा कि मुनाफे या ताकत के आधार पर निर्मित राज्य का होता है, तो उसका अन्त होना चाहिए और उसके स्थान पर एक मानवीय व्यवस्था-मानववादी राज्य की स्थापना होनी चाहिए।

एक ऐसे विश्व का निर्माण, जिसमें दरिद्रता की हेय अवस्था का उन्मूलन हो चुका हो, लोगों को उपयुक्त भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएँ उपलब्ध हो, और वे तन-मन से स्वस्थ मानवों के रूप में दुनिया को आबाद करें न कि भूख, रोग, बेकारी और युद्ध के सताए आज के लाखों करोड़ों पशु-धर्माओं के रूप में।

एक ऐसे विश्व का निर्माण जहाँ लोग संसार के अन्य नागरिकों के साथ वास्तविक स्वतंत्रता, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, बौद्धिक और भावनात्मक का उपभोग कर सके।

एक ऐसे विश्व का निर्माण, जिसमें इन्सान भोजन, शान्ति, स्वतंत्रता के लिए अपने आरंभिक संघर्षो, जिनमें वे आप जुटे रहते हैं, को पार कर ऊपर उठ सकें और मनुष्य की गरिमा का साक्षात्कार करें, जिससे एक नयी महान मानव संस्कृति का प्रकाश विकीर्ण हो।

इस प्रकार मानववाद जीवन के प्रति ऐसा दार्शनिक अभिज्ञान है, जो मनुष्य के इस लोक में अधिकतम कल्याण की ओर जीवन के समुन्नता रूपान्तर की दिशा देता है।

संदर्भ सूची

1. टैगोर, टुवार्ड्स यूनिवर्सल मैन, पृष्ठ-343
2. इनसाइक्लोपेडिया ऑफ सोसल साउन्सेज, भालू.-7-8, पृष्ठ-541
3. हुमैनिज्म इज एक फिलासाफी, दि मिनींग ऑफ हूमैनिज्म, पृष्ठ-18
4. टु हुमैनिज्म, इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ-12
5. हिन्दुस्तान की कहानी, पृष्ठ-12
6. गार्की, आन लिटरेचर, पृष्ठ-71
7. लिटररी ऐंड फिलासफिकल एसेज, मटेरियालिज्म एण्ड रिभोलूशन।
8. जूलियस हवसले मैन इन द माडर्न वल्ड।
9. द यूनिक्वेनेस आफ मैन, पृष्ठ-28
10. Quated in living issues of philosophy by Harold H. Titus, Humanistic Naturalism, P-120.
11. James Gregor, the ideology of Fascism.
12. New Let + Review (Nov. Dec. 70) the polities of philosophy (Interview with LouisA lthusser).
13. जुलियन हवसले, मैन इन द माडर्न वल्ड।
14. The Uniqueness of Man, P-28
15. Maxy, Political Philosophycs, P-558.
16. Erich From : Humanist phycho-Analysis and Marx's Theory-socialist Humanism.

बौद्धधर्म में चरम साध्य

डॉ० ओम प्रकाश प्रभाकर

दर्शनशास्त्र विभाग, सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), राम सकल सिंह साइंस कॉलेज, सीतामढ़ी

पाचिय

बौद्ध दर्शन का विकास गौतम बुद्ध, जिनका मूलनाम सिद्धार्थ, के उपदेशों से हुआ। उनके पिता का नाम शुद्धोदन था और माता का नाम माया। उनका जन्म वर्तमान नेपाल क दक्षिणी भाग में कपिलवस्तु में शाक्य-राजघराने में 563 वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में यशोधरा से हुआ था और उनत्तीस वर्ष की आयु में उन्हें एक पुत्र हुआ जिसका नाम राहुल रख गया। उनत्तीस वर्ष की आयु में ही सिद्धार्थ ने अपनी युवा पत्नी और नवजात शिशु को अपने पीछे छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया। वह सत्य की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करते रहे और इस क्रम में अनेक गुरूओं से शिक्षाग्रहण करते रहे। इन गुरूओं में से सब से प्रसिद्ध थे अलार कलाम और तिद्दक रामपुत्र। लेकिन उनकी शिक्षा उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाई और तब छः वर्षो तक उन्होंने घोर तपश्चर्या की। लेकिन इससे भी उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। अंततः उन्हें इन तपश्चर्याओं की व्यर्थता का अहसास हुआ और तत्पश्चात् सतत गहन समाधि के द्वारा उन्हें पैंतीस वर्ष की आयु में बोधगया में एक विशाल पीपल वृक्ष क नीचे (जिसे बोधि वृक्ष के नाम से जाना जाता है) बोधि (ज्ञान) की प्राप्ति हुई और उसक बाद वह बुद्ध के नाम से जाने जाने लगे। गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश अपने पूर्व क पांच शिष्यों को वाराणसी के समीप सारनाथ में दिया। यह घटना बौद्धधर्म में धर्मचक्र प्रवर्तन के नाम से जानी जाती है। उनका देहावसान 80 वर्ष की अवस्था में संभवतः 483 ई.पूर्व में हुआ। उनका संदेशों ने बौद्धधर्म और दर्शन दोनों की आधारशिला रखी और यह काल क्रम से श्रीलंका, बर्मा (म्यांमार), स्याम (थाइलैंड), तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान इत्यादि देशों में फैल गया।

मुख्य शब्दः धर्मचक्र प्रवर्तन, निरोधगामिनी प्रतिपद, न्याय वैशेषिक दर्शन, उपाधिशेष निर्वाण, महायान

विषय-वस्तु

बौद्धधर्म में मानव का चरम साधय "निर्वाण" को माना गया है। बौद्धधर्म में चार आर्य सत्य बताए गए है–

1. जीवन में दुःख-ही-दुःख है।
2. दुःख का कारण है (दुःख-समुदाय)।
3. दुःख का निवारण संभव है (दुःख-निरोध)।
4. दुःख से निवारण का मार्ग भी है (दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद)।

बुद्ध ने इन चार आर्य सत्यों की महत्ता को स्वयं "मज्झिम निकाय" में इस प्रकार स्पष्ट किया "इसी से अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अंत, मानसिक शान्ति, ज्ञान, निर्वाण संभव हो सकते हैं।धर्म में यही कार्य-कारण श्रृंखला प्रतीत्य समुत्पाद कहलाती है। परन्तु दुःख निरोध निर्वाण कहलाता है। तृतीय आर्य सत्य में निर्वाण का उल्लेख है। निर्वाण की प्राप्ति ही बौद्धधर्म का चरम साधय है। "निर्वाण" निर् उपसर्गपूर्वक वन या "वान" शब्द से निष्पन्न हुआ है। यहाँ वन का अर्थ प्रायः तृष्णा किया गया है और निर्वाण का अर्थ तृष्णा से निवृत्त होना अथवा तृष्णा का निरोध, क्षय, विनाश ही निर्वाण है।

निर्वाण का एक दूसरा अर्थ भी विद्वानों ने किया है- बुझना या शान्त होना। जैसे–दीपक स्नेह (तेल) अथवा बत्ती के शेष न रहने पर शान्त हो जाता है वैसे ही राग, द्वेष, मोह से विमुक्त होना ही निर्वाण है। निर्वाण की प्रथम व्युत्पत्ति स्थविरवाद, वैभाषिक, सौत्रन्तिक मत के अधिक समीप है और दूसरी कुछ आगे विकसित होकर महादान दर्शन की एक झलक प्रस्तुत करती है। जहाँ निर्वाण को शान्त और सुख रूप माना गया है, फिर भी दोनों यानों में एकमात्र अन्तिम उद्देश्य निर्वाण या परिनिर्वाण लाभ ही रहा। यद्यपि महायानी केवल व्यक्तिगत निर्वाण की इच्छा नहीं रखता। वह समस्त सत्यों के निर्वाण के लिए प्रत्यनशील रहता है। क्या निर्वाण एक भावात्मक अवस्था है? क्या यह एक चैतन्य अवस्था है? इस विषय में बौद्धदर्शन के आधुनिक भाष्यकारों में मतभेद है। इस विषय में दो परम्पराएं पायी जाती है–

एक परम्परा उन दार्शनिकों की है, जो निर्वाण को अभावात्मक या अचैतन्य अवस्था स्वीकार करते हैं। श्चेरवात्सकी, ओल्डेनवर्ग, दाहल आदि दार्शनिक इसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके अनुसार बुद्ध निर्वाण को निरोधमात्र, अभावमात्र मानते हैं। चूंकि वे अनात्मवाद को मानते थे, अमर कूटस्य, नित्य आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करते थे, अत: वे निर्वाण को भावात्मक या चैतन्य अवस्था नहीं स्वीकार कर सकते थे। किन्तु अचैतन्य अवस्था होने पर निर्वाण को नि:श्रेयस का अभाव नहीं कहा जा सकता। यह अभावात्मक अवस्था होने पर भी परम नि:श्रेयस परम कल्याण और अमृत पद है। मोक्ष की ऐसी ही कल्पना न्याय वैशेषिक दर्शन मिलती है। निर्वाण चितवृत्ति निरोध और भाव निरोध है।

दूसरी परम्परा में उन दार्शनिकों की गणना होती है, जिन्होंने निर्वाण को भावात्मक अवस्था स्वीकार किया है। डॉ. राधकृष्णन, डॉ. पुंसे, मैक्समूलर, चिल्डर्स और श्रीमती रिज डेविड्स इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये निर्वाण को सुख, अमरत्व आदि मानते हैं। इस परम्परा में निर्वाण में चेतनता बनी रहती है। यह चेतना के अभाव में जड़ अवस्था होगी और यह परम नि:श्रेयस नहीं होगी। इनके अनुसार बौद्धग्रन्थों के निब्बानं परमं सुखम्, निब्बान् पदमुच्यते और निब्बान् अकुतोभयम् इत्यादि उद्धरण निर्वाण की भावरूपता को प्रमाणित करते हैं। मैक्समूलर एवं चिल्डर्स ने बौद्धदर्शन के निर्वाण विषय क स्थलों का विधिपूर्वक अनुशीलन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि एक भी ऐसा स्थल नहीं पाया जाता जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि निर्वाण एक अभावात्मक अवस्था है। बौद्धदर्शन में निर्वाण के दो भेद प्राप्त होते हैं–

1. उपाधिशेष निर्वाण
2. निरूपाधिशेष निर्वाण

पहले प्रकार का निर्वाण प्राप्त सन्त पुरुष को उपलक्षित करता है, जिसमें पाँचों स्कन्ध अब भी सुरक्षित है, यद्यपि वह इच्छाशक्ति जो जन्म धारण के लिए विवश करती है, लुप्त हो जाती है। वस्तुत: उपाधिशेष निर्वाण जीवन रहते हुए निर्वाण को प्राप्त कर लेना है। यदि कोई व्यक्ति राग द्वेषों पर विजय प्राप्त करके शुद्ध आचरण के साथ आर्य सत्यों का निरन्तर ध्यान करते हुए समाधि के द्वारा प्राप्त कर लेता है तो उसका चित्त लोभ-मोह, राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है, उसका चित्त तृष्णा आदि सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

उपाधिशेष-निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को अर्हत कहते हैं। निरूपाधिशेष निर्वाण में सन्त पुरुष की मृत्यु के पश्चात् एवं मृत्यु के परिणामस्वरूप समस्त अस्तित्व का लोप हो जाता है। अर्थात् यह निर्वाण शरीरपात के अनन्तर प्राप्त होता है। वस्तुत: निर्वाण मरणोत्तर अवस्था का सूचक नहीं है। यह वह अवस्था है जो जीवित रहते हुए ही पूर्णता प्राप्ति के बाद होती है। यह अवस्था जीवन्मुक्ति की अवस्था है। जिसमें सामान्य जीवन की संकीर्ण रूचियाँ समाप्त हो जाती है, और व्यक्ति पूर्ण शान्ति एवं समत्व का जीवन बिताता है, इसमें पुर्नजन्म एवं तज्नय दु:ख समाप्त हो जाता है, और निर्वाण प्राप्त व्यक्ति का जीवन मृत्यु पर्यन्त पूर्ण ज्ञान एवं शान्ति के साथ व्यतीत होता है, इस वृत्ति को प्राप्त करने वाला अर्हत् कहलाता है। "निर्वाण एक अवर्णनीय अवस्था है। इसके विषय में यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यह है भी या नहीं, इस शब्द का अर्थ केवल दु:ख से मुक्ति है। बुद्ध ने स्वयं भी निर्वाण संबंधी प्रश्नों को अव्याकृत प्रश्न मानते हुए निर्वाण को अवर्णनीय अवस्था माना है। बुद्ध एक द्रष्टान्त की सहायता से समझाते हुए कहते है–

"मान लीजिए एक व्यक्ति एक शल्य से बिधा है। उसका मित्र उसे उपचारार्थ किसी वैद्य के पास ले जाता है। पुन: यह भी मान लीजिए कि वह घायल व्यक्ति यह कहता है कि मैं तब तक शल्य को निकलवाकर चिकित्सा नहीं कराऊंगा जब तक मैं यह

जान न लूँ कि बाण चलाने वाला स्त्री है या पुरुष? क्षत्रिय है या ब्राह्मण, वैश्य या शुद्र। वह महार की बनी है या सन्ठे की, तांत की या मरूवा की। ऐसी स्थिति में घायल के प्रश्न अनुत्तरित रह जाएंगे और वह मर जाएगा। अत: निर्वाण के स्वरूप व तत्संबंध ी अन्य प्रश्नों के विषय में उहा-पोह करना निरर्थक है।" (बौद्धदर्शन के परवर्ती सम्प्रदायों में निर्वाण का स्वरूप) बौद्धदर्शन के सभी सम्प्रदाय मूल बौद्धदर्शन की तरह निर्वाण को ही लक्ष्य स्वीकार करते हैं। पर स्वरूप के विषय में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। स्थविरवाद बौद्धधर्म का प्राचीन सम्प्रदाय है। आगे चलकर यह दो प्रधान उपसम्पद्रायों में विभक्त हो गया। विभाषाशास्त्र को मानने वाले वैभाषिक व सूत्रें को प्रमुखता देने वाले सौत्रन्तिक। ये दोनों सर्वास्तिवाद की शाखाएँ हैं, यद्यपि वैभाषिक, जिन्हें सर्वास्तितवाद कहा जाता है, स्थविरवाद के अधिक निकट है। निर्वाण का लक्षण दु:ख का विनाश, विराग और रागक्षय इत्यादि बतलाते है। निर्वाण तृतीय आर्य सत्य कहा गया है। निर्वाण दु:ख का निरोध, अर्थात् तृष्णा का क्षय, तृष्णा का विराग और तृष्णा से विमुक्ति है।

तृष्णा के निरोध से भव, भव से जाति, जरा मरण शोकादि का विरोध हो जाता है, और इस तरह समाप्त दु:ख के निरोध होने से भिक्षु जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। अभिधर्मकोषभाष्य में निर्वाण को तृष्णा का सर्वथा प्रहाण, व्यन्तीभाव, क्षय निरोध, व्युपशम इत्यादि बताया गया है। संयुक्त निकाय में इसे शान्तप्रणीत, समस्त उपाधियों का निरूद्ध होना कहा गया है। धम्मपद में निर्वाण को अमृतपद कहा गया है। संयुक्त निकाय में निर्वाण के अनेक पर्यावाची शब्द आए हैं। निर्वाण राग, द्वेष एवं मोह का क्षय है। भगवान भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे भिक्षुओ, मैं तुम्हें, संसार का अन्त, अनास्रव, पार, निपुण, अजर, ध्रुव, अनिदर्शन, निष्प्रपञ्च, सत्, अमृत, प्रणीत, शिव, क्षेम, आश्चर्य, अद्‌भुत, निर्वाण, ऋण और परायण का निर्देश करता हूँ।

उदान में निर्वाण को अचलपद कहा गया है। स्थविरवाद में "निर्वाण" "दृष्ट धर्म निर्वाण" (इसी जन्म में निर्वाण) है। योगी समापत्ति में प्रवेश कर जिस समय प्रज्ञा का लाभ करता है, उसी समय निर्वाण का साक्षात्कार होता है। इसी से इसे अंगुत्तर निकाय में इसे प्रत्यामवेदनीय कहा है। आचार्य नागसेन ने 'मिलिन्दप्रश्न ' में निर्वाण का सूक्ष्म विवेचन किया है। आचार्य का कहना है, तृष्णा का निरोध हो जाना निर्वाण है। पंचस्कन्धें का नि:शेषत: रूक जाना, उनका सर्वथा लुप्त हो जाना निर्वाण है। आचार्य कहते है कि जिस प्रकार जलती हुयी आग की लौ बुझने पर पुन: दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार निर्वाण-प्राप्त सत्व भी दिखायी नहीं पड़ता। निर्वाण में दु:ख लेशमात्र भी शेष नहीं रहता। निर्वाण सुख ही सुख हैं। हीनयान में निर्वाण "अर्हत" पद है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को निर्वाण स्वयं प्राप्त करना है। अर्हत का दुसरों के निर्वाण में कोई प्रयोजन नहीं है। 'महायान' में निर्वाण विषय क इस दृष्टिकोण को अस्वीकार किया जाता है। महायान के अनुसार निर्वाण का हीनयानी आदर्श अत्यन्त स्वार्थ मूलक एवं हेय है। इसमें निर्वाण 'बोधिसत्व' होना हैं बोधिसत्व केवल अपने निर्वाण से सन्तुष्ट नहीं होता, वह प्राणिमात्र के दु:ख निरोध से सन्तुष्ट होता है।

हीनयान के दार्शनिक सम्प्रदायों-सौत्रन्तिक एवं वैभाषिक जिन्हें सर्वास्तिवाद कहा जाता है- में निर्वाण को अविद्या, तृष्णा, उपादान एवं तज्जन्य कलेशों के अभाव की अवस्था माना जाता है। इसमें स्वीकार किया जाता है कि पुद्‌गल नैरात्म के ज्ञान से क्लेशावरण दूर होता है। सर्वास्तिवाद में निर्वाण को अच्युत, अभय, परम सुख, शान्त, अजर, अमृत आदि पदों से अभिहित किया है। निर्वाण विषय क इन मान्यताओं के बावजूद सौत्रन्तिक एवं वैभाषिक सम्प्रदायों के विचारों में किञ्चित् अन्तर हैं वैभाषिक निर्वाण को द्रव्य सत् मानते हैं। सौत्रन्तिक इसे अभावरूप स्वीकार करते हैं। सौत्रन्तिक निर्वाण को हेतु फल परम्परा का उच्छेदमात्र स्वीकार करते हैं तो वैभाषिक इसे उच्छेद का हेतु निर्वाण का प्रतिलाभ मानते हैं।

महायान शाखा के दार्शनिक सम्प्रदायों-विज्ञानवाद और शून्यवाद में भी निर्वाण के स्वरूप में मतभेद है। विज्ञानवाद में वैभाषिक एवं सौत्रन्तिक सम्प्रदायों के विचारों का समन्वय पाया जाता है। इसमें वैभाषिक के निर्वाण विषय क "द्रव्य-सत्" विचार का और सौत्रन्तिक के "अभावरूप" विचार का समन्वय होता है। इसमें निर्वाण को बोधिलाभ तथा तथताभाव की प्राप्ति माना जाता है। निर्वाण बोधि होने के कारण सत् है, किन्तु वह द्रव्य सत् न होकर ज्ञान सत् है। पुन: निर्वाण में अभाव भी है, किन्तु वह द्रव्य-अभाव न होकर ज्ञान-अभाव है। वह ज्ञान से अज्ञान का खण्डन है। अत: भाव और अभाव दोनों विज्ञान सत् है और इन दोनों का समन्वय बोधि-अवस्था में होता है जो निर्विकल्प ज्ञान की अवस्था है। शून्यवाद में निर्वाण को शून्यता कहा जाता है।

नागार्जुन ने इसे उत्पाद-निरोध, शाश्वत-उच्छेद, एक-अनेक, आगम-निर्गम इन चार द्वन्द्वों से मुक्त अवस्था स्वीकार किया है माध्यमिक दर्शन इसे चतुष्कोटिविनिर्मुक्त, सर्वदृष्टिप्रहाण, प्रपंचोपशम और शिव कहता है। यह सत्, असत्, सद्‌सत् (उभय) और न सत् न असत् (अनुभव) इन चार कोटियों से परे होने के कारण एक अनिर्वचनीय अवस्था है।

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. बी0एन0, विश्व धर्म दर्शन की समस्याएं, स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स कम्पनी, लंका, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-59
2. साकृंत्यायन, राहुल, बौद्धदर्शन, किताब महल, पृष्ठ संख्या -217
3. तिवारी, केदारनाथ, द कम्पेरिटीव रिलीजन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 159
4. शर्मा, चन्द्रघर, भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 136
5. दूबे, सत्यनारायण, बौद्ध एवं जैन धर्म तथा दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या - 182
6. देवराज, डॉ. नंद किशोर, भारतीय दर्शन, पृष्ठ संख्या - 190, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
7. पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, पृष्ठसं. -41।
8. देवराज, डॉ. नंद किशोर, भारतीय दर्शन, पृष्ठसं. -171।
9. वर्मा, सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, विश्वधर्म दर्शन, पृष्ठसं. -151-153 बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।
10. डॉ. रमेन्द्र, धर्म दर्शन, सामान्य एवं तुलनात्मक, मोतीलाल बनारसीदास।

महिला-शिक्षा की महत्ता: गांधीवादी विश्लेषण

डॉ० पूनम डागर

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति-विज्ञान, भागिनी निवेदिता कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

शिक्षा किसी व्यक्ति के जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। वह व्यक्ति को साक्षर बनाती है, स्थितियों का बुद्धिमानी, तर्क से विश्लेषण करना और उसे व्यक्तित्व एवं सामाजिक विकास के लिए प्रयोग करना सिखाती है। इस संदर्भ में शिक्षा जिंदगी जीने का मार्ग है, चरित्र निर्माण का महत्त्वपूर्ण उपकरण है जो हमें विचारों और कार्यों को क्रमबद्ध करना और जीवन के लक्ष्णों और आदर्शों की प्राप्ति करना सिखाती है। शिक्षा के इस तर्क को गांधीजी ने अत्यंत महत्त्व दिया। गांधीजी निर्विवाद रूप से भारत में आधुनिक शिक्षा के महानतम समर्थकों में से एक थे तथा उनकी शिक्षा की योजना में मानव की अधिक नैतिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रगति शामिल है। उनकी शिक्षा योजना का उद्देश्य जीवन को सच्चे और आहिसंक ढंग से जीना और आत्म साक्षात्कार के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति है। उनके तरीके साधारण तथा व्यावहारिक थे और यह उनकी शिक्षा योजना में भी स्पष्ट प्रदर्शित होता था।

मानवीय स्वतंत्रता और न्याय को कटिबद्ध गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचार उनके इस वक्तत्य से भलीभांति समझे जा सकते थे, "शिक्षा मृत्युपर्यन्त चलने वाली अखण्ड साधना है। यह मानवीय शरीर, मन, बुद्धि एवं चरित्र को आकार प्रदान करने वाली उन प्रवृत्तियों की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है, जो आनंद एवं कुशलता की कुंजिका है।" इतना ही नहीं, वे कहते हैं, "मेरा विचार है कि सच्ची समझ वाली शिक्षा केवल शारीरिक अंगों जैसे कि हाथ, पैर, आँख, कान, नाक इत्यादि के यथोचित एवं बुद्धिमतापूर्वक प्रयोग द्वारा ही बालक (शिक्षार्थी) के बौद्धिक विकास का शीघ्रता व श्रेष्ठ ढंग से मार्ग प्रशस्त हो सकता है। जब तक मस्तिष्क और काया एक साथ आत्मा की जागृति के लिए आगे नहीं बढ़ते, तब तक मस्तिष्क (बुद्धि) विकास शिक्षा-क्षेत्र की केवल एक ही शाखा का विकास करेगा, तथा इस प्रकार वह विकास पूर्ण नहीं होगा, वह दुर्बल ही रहेगा।" और फिर यह कि, "भारत में, जहां अस्सी प्रतिशत से भी अधिक जनता कृषि कार्यों में तथा दस प्रतिशत उद्योगों में संलंग्न हो, वहां शिक्षा को केवल अक्षर-ज्ञान तक सीमित कर देना एक अपराध है, लड़के-लड़कियों को बाद के जीवन में हस्तकार्य के अयोग्य बनाना है। मैं इस विचार का समर्थक हूं कि हमारा समय अधिकाशत: रोजी-रोटी कमनाने के लिए ही निकल जाता है, लेकिन हमारे बालकों को प्रारंभ से ही श्रम की गरिमा व महत्ता बताई जाए। उन्हें श्रम से घृणा करना नहीं सिखाया जाना चाहिए। निश्चित रूप से किसान के बेटे को स्कूल जाने के बाद बेरोजगार नहीं हो जाना चाहिए, जैसा कि प्राय: होता है।

महिलाएँ और शिक्षा

गांधीजी जब शिक्षा के विषय में बात करते थे या शिक्षा द्वारा जब कल्याण का विचार रखते थे, तो नि:संदेह, वे पुरुषों के समान ही नारी-शिक्षा पर बल देते थे। इस संबंध में उनके विचार थे, "जहां तक महिला-शिक्षा का संबंध है, मेरा दृढ़तापूर्वक मानना है कि नारी को न केवल पुरुषों के बराबर सुविधाएं मिलनी चाहिए, अपितु, जहां आवश्यक हो, उन्हें विशेष सुविधाएं भी प्राप्त होनी चाहिए।"

यही नहीं, अपने काल में व्याप्त निरक्षरता और अशिक्षा, विशेषकर नारी-आशीक्षा और निरक्षरता के संबंध में गांधीजी बहुत चिंतित थे। समाज व राष्ट्र-निर्माण हेतु नारी के योगदान साथ ही अपने समय में राष्ट्र की पराधीनता की बेड़ियों को काटने में महिलाओं

की भूमिका के संबंध में गांधीजी पूर्णतः सचेत थे। इस हेतु नारी-वर्ग के महत्त्व को वे जानते थे, और इसीलिए वे नारी शिक्षा व साक्षरता हेतु कटिबद्ध थे।

उपयुक्त शिक्षा

सर्वत्र समानता के जिस आदर्श को गाधीजी अपने स्वराज में प्रस्तुत करते हैं, उस आदर्श की प्राप्ति के लिए नारी जाति को समान रूप से शिक्षा के अधिकार देने की बात कही है। 'पुरुष की भांति स्त्री को भी शिक्षा का पूरा अधिकार है और पुरुष को जैसी शिक्षा पाने की अनुकूलता है। वैसी स्त्री को भी होनी चाहिए। नारी जाति को शिक्षित होने के समानाधिकार के सिद्धांत को स्वीकार कर उन्हें शिक्षित बनाने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करने की भी आवश्यकता है। गांधीजी इस तथ्य के प्रति पूर्णरूपण सजग थे कि भारत की स्वतंत्रता का तब तक कोई अर्थ नहीं होगा जब तक कि उनकी स्त्रियां अज्ञान, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुप्रथाओं के बंधनों में बंधी रहेंगी। उनकी इन बंधनों से मुक्ति के बिना भारत किसी प्रकार से भी नैतिक, भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्त्रियों के पुनर्जागरण के लिए शिक्षा ही सर्वाधिक शक्तिशाली यंत्र है। अतः उनको पर्याप्त एवं उपयुक्त शिक्षा मिलनी ही चाहिए।

स्त्री शिक्षा स्वभावगत हो

गांधीजी के मतानुसार, नारी जाति ही वास्तव में, गुरुत्व के भार को सहर्ष वहन कर सकती है। माता अपने बच्चों के लिए श्रेष्ठ गुरु बन सकती है। श्रेष्ठ माता के रूप में गुरुता का भार ऐसी स्त्रियां ही सफलतापूर्वक वहन कर सकती है इसलिए गांधीजी यह मानते हैं कि स्त्री और पुरुष की शिक्षा में भेदमूलक स्थिति नहीं होनी चाहिए। किन्तु उन्होंने इस तथ्य को कभी भी अनदेखा नहीं किया कि नब्बे प्रतिशत स्त्रियों को क्योंकि मातृपद प्राप्त करना है और घर-गृहस्थी के कार्य को बखूबी पूरा करना है, अतः स्त्री-शिक्षा की प्रभावी व्यवस्था करते समय उसकी इन विशिष्ट आवश्यकताओं के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है। गांधीजी के लिए स्त्री और पुरुष अधिकारों की दृष्टि से समान हैं। उनमें कुछ स्वभावगत एवं शरीरगत असमानताएं हैं। यह ही स्त्री और पुरुष की शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करें तो ऐसी शिक्षा गांधीजी के अनुसार व्यवहारिक, उपयोगी और सार्थक होगी। गांधीजी का स्पष्ट रूप से यह मानना था कि चूंकि प्रकृति ने स्त्री व पुरुष को अलग-अलग रूपों में सृजित किया है, अतः उनकी शिक्षा-व्यवस्था भी एक-दूसरे के भिन्न ही होनी चाहिए। शारीरिक एवं सामाजिक विभिन्नताओं के कारण स्त्री व पुरुष यद्यपि एक ही समाज के सदस्य हैं। अतः उनकी शिक्षा-पद्धति भी इन्हीं मानदण्डों को ध्यान में रखकर बनायी जानी चाहिए तभी शिक्षा का निहितार्थ 'स्व-विकास' अथवा 'आत्मानुभूति' फलीभूत हो सकेगा। क्योंकि स्त्री को अपने गुणों के व पुरुष को अपने गुणों के विकास का पूर्ण अवसर इस शिक्षा प्रणाली में मिल सकेगा। जिसकी चर्चा हमें गांधीजी के दर्शन में मिलती है।

वस्तुतः गांधीजी स्त्रियों के लिए ऐसी विशेष शिक्षा-व्यवस्था को निर्मित करना चाहते हैं जो उनमें निहित प्रकृतिजन्य स्त्रियोचित गुणों का विकास कर सकें और स्त्रियां कार्यक्षेत्र में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह आसानी से कर सकें। गांधीजी के अनुसार, चूंकि स्त्रियों में संवेदनशीलता, गलत सही में विभेद करने की क्षमता, विभिन्नता को स्वीकारने की क्षमता, सहजता, संरक्षण का विशेष गुण, सृजनता जैसे गुण प्रकृति द्वारा ही पर्याप्त मात्रा में है जो सृजनात्मक अथवा रचनात्मक कार्यों में ज्यादा उपेक्षित है, अतः गृह-व्यवस्था, कुटुम्ब की एकता को बनाये रखना, बच्चों का लालन-पालन करना, उनमें उचित एवं आवश्यक संस्कारों की शिक्षा देना जैसे कार्य स्त्रियां आसानी से कर सकेगी इसलिए आवश्यक है कि उनकी शिक्षा इसी दिशा में हो। उपरोक्त विषय पर केन्द्रित ही उनकी शिक्षा-प्रणाली हो।

गांधीजी ने स्कूली बालाओं को शिखा के उद्देश्य से अवगत करते हुए बतााया है कि पढ़ाई का अर्थ मात्र किताबी ज्ञान से नहीं है वरन् उसका वास्तविक निहितार्थ तो दया, ममता एवं सेवा जैसे गुणों का विकास करने से है। इन्हीं गुणों के कारण स्त्रियों को जाना जाता है। इन्हीं गुणों का प्रतिनिधित्व स्त्री-जाति करती है। अतः इनका विकास करना ही स्त्री-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। इसी संबंध में गांधीजी कहते हैं भारतीय कन्याओं का वैवाहिक जीवन कभी मात्र एक पुरुष (अपने पति) की सेवा करना नहीं रहा है अपितु यहां की परंपरा तो स्त्री-वर्ग द्वारा संपूर्ण समाज एवं पारम्पारिक आदर्शों को अक्षुण्ण रखते हुए अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने की वही है। किस प्रकार स्त्रियां अपने को इतनी सक्षम एवं सक्रिय बनाये कि वे अपेक्षित कर्त्तव्यों का निर्वाह आसानी से कर सके, स्त्री-शिक्षा पाठ्यक्रम में इन पक्षों को भी जोड़ा जाना चाहिए। इस संबंध में यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक

है कि गृहस्थ-कार्यों को गांधीजी नें पुरुष एवं स्त्री की जिम्मेदारी मानी है। गांधीजी का यह विश्वास था कि स्त्री प्रकृति से ही परिवार की माता के रूप में बच्चों के लालन-पालन करने तथा गृहस्थी का गुरुतर भार उठाने के योग्य बनी है। गांधीजी के अनुसार स्त्रियों के प्रकृतिजन्य इन्हीं गुणों को विकसित करना ही स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम एवं सह-शिक्षा

गांधी-चिंतन स्त्रियों के शिक्षा माध्यम की चर्चा करते हुए उनको मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने के पक्षधर है। इसके अतिरिक्त वे बाल-शिक्षा के लिए स्त्रियों की सेवाएं ग्रहण करने के पक्ष में हैं। बाल-शिक्षा में पुरुषों की उपेक्षा स्त्रियां अधिक सफल हो सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्त्रियां पुरुषों की उपेक्षा अधिक उदार एवं सह्रदय होती है। इसलिए बालको को शिक्षा देने का दायित्व स्त्रियों पर हो तो अधिक अच्छा रहेगा।

इसी प्रकार सह-शिक्षा के प्रश्न पर भी गांधीजी के विचार पूर्णत: स्पष्ट है। वे कहते है कि बालक-बालिकाओं की शिक्षा यदि साथ-साथ हो तो इसमें कोई बुराई नहीं है, विदेशों में इसके बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं। परंतु इस संबंध में गांधीजी कहते हैं कि, सह-शिक्षा व्यवस्था की ऐसी प्रक्रिया का प्रथम सोपान घर है। घर में माता-पिता का व्यवहार बालक व बालिका दोनों के प्रति समान ही होना चाहिए। जब घर में बच्चे ऐसे वातावरण में रहेंगे तो फिर सह-शिक्षा के साथ सामंजस्य बिठाने में उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी। गांधीजी के अनुसार व्यक्ति का वृहद रूप परिवार है ओर परिवार का वृहद रूप समाज। जैसी व्यवस्था हमें समाज में चाहिए वैसी व्यवस्था घर से ही प्रारंभ होनी चाहिए। अत: सह-शिक्षा की प्राथमिक धारणाओं का विकास घर के भीतर माता-पिता का बालक-बालिका के प्रति किए गये समाज व्यवहार से प्रारंभ होगा।

स्त्री-शिक्षा संबंधी अन्य तर्क

स्त्री-शिक्षा के लिए गांधीजी की कटिबद्धता उनके द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार संपन्न बनाए जाने की अभिलाषा में भी देखी जा सकती है। गांधीजी किसी भी रूप में नारी-अधिकार को पुरुषों से कम नहीं आंकना चाहते थे। पुरुष नारियों के पिछड़ेपन का तर्क देकर उन्हें अपने समान अधिकारों से वंचित करें, गांधीजी को यह स्वीकार नहीं था। लेकिन फिर भी उनकी यह स्वीकारोक्ति थी कि पुरुषों के समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए महिलाओं को शिक्षित होना ही होगा। उन्हीं के शब्दों में, "अधिकारों की प्राप्ति के लिए नारी शिक्षा आवश्यक है, लाखों शिक्षाविहीन महिलाओं के उत्थानर्थ शिक्षा-प्रसार अपरिहार्य है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधीजी नारी-शिक्षा व उत्थान के प्रति पूरी तरह से गंभीर एवं दृढ़ थे। उन्होंनें कहा कि, "समदर्शी न होने के बावजूद नारी व पुरुष का स्तर एक समान है। वे एक अनुपम जोड़ा है, वे एक-दूसरे के पूरक है। दोनों एक-दूसरे की सहायता करते है, एक की सहायता के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना ही संभव नहीं है। अत: इस वास्तविकता को जानते हुए, दोनों में से किसी एक को कम करके आकॅना, वास्तव में दोनों को ही समान रूप से बरबाद करने वाली बात है। नारी-शिक्षा-संबंधी योजना के समय इस सत्यता को मस्तिष्क में रखना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि घरेलू जीवन पूर्णत: नारी-निर्मित है, इसलिए बालकों को प्रारंभिक शिक्षा के विशेष उद्देश्य से भी महिला-शिक्षा व ज्ञान का महत्त्व अतुलनीय है।"

शिक्षा चूंकि व्यक्तित्व के बहुंमूखी विकास का माध्यम है, यह अति बाल्यकाल से प्रारंभ होकर जीवनपर्यन्त जारी रहकर जीवन को मूल्यवान बनाने वाली प्रक्रिया है, और जैसा कि विदित है, प्रारंभिक काल में शिक्षा अधिकांशत: घर में ही होती है। दूसरे शब्दों में यह माता पर ही निभर करती है। भारत ही नहीं, विश्वभर के सभी देशों के अधिकतर परिवारों के संबंध में सामान्यत: और एशिया के बारे में विशेषत: यह बात दावे के साथ आज भी आनेकानेक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तनों के बावजूद कही जा सकती है। परिवार आज भी महत्त्वपूर्ण है, महिलाएं परिवार की घुरी है, और इस रूप में प्रमुख योगदान दे रहीं हैं। इसलिए, नारी वर्ग का प्राथमिकता से साक्षर व शिक्षित होना परमावश्यक है। इस हेतु गांधीजी का तर्कपूर्ण बल वास्तविक है। इतना, ही नहीं, पुरुषों के समान शिक्षा, या कहीं कहीं वस हेतु महिलाओं को प्राथमिकता दिए जाने का उनका तर्क भी सत्य है।

शिक्षा चूंकि स्व: निर्माण का श्रेष्ठतम् साधन है, एवं निर्माण समान रूप से सबका मूलाधिकार है, पुरुषों का ही नहीं, अपितु महिलाओं का अधिकार भी है, इसलिए शिक्षा नारी-वर्ग के लिए आवश्यक और अपरिहार्थ है। गांधीजी का तर्क है कि तब तक नारी आत्मनिर्भर, आत्मसमानी और व्यवहारिक समानता की परीधि में भी नहीं आ पाएंगी और जब तक शिक्षा के बल पर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अपना स्थान नहीं बना लेती। यह बात उन्होंने संपूर्ण विश्व की महिलाओं के बारे में कही थी, भले ही इस

संबंध में अनुभवों के मूल में भारतीय महिलाऐं की दशा ही क्यों न रही हों। उन्होंने कहा कि, “मुझे भलीभांति इस वास्तविकता का पता है कि गांवों में महिलाएं अपना भार स्वयं ही उठाती हैं। कई क्षेत्रों में प्रभावी रहती हैं। लेकिन महिलाओं की वैधनिक और प्रथागत स्थिति बहुत ही बुरी है, और उसमें मूलभूत परिवर्तन अनिवार्य है, और इसके लिए, कानूनी प्रक्रिया की अपेक्षा शिक्षा द्वारा उनकी जागृति महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य है।

नारी-शिक्षा की महत्ता के संबंध में गांधीजी के तर्क विचारणीय है। वे आज भी उतने ही प्रासंशिक है, जितने वे उनके समय में थे। गांधीजी ने स्वयं अपने काल में नारी-शिक्षा के संबंध में कार्यक्रमों को प्रारंभ कराया था। उन कार्यक्रमों के मूल में दो अतिव्यवहारिक एवं तात्कालिक उद्देश्य थे–प्रथम, नारी-वर्ग में ज्ञानोत्थान, तथा द्वितीय नारी-वर्ग में आर्थिक व सामाजिक आत्मनिर्भरता। ज्ञानोत्थान का उद्देश्य शिक्षा अथवा साक्षरता है, इसके अतिरिक्त महिलाओं को उन कुप्रथाओं और रूढ़ीवादी विधानों की जकड़न से बाहर लाना है, जो सदियों से उनकी मानसिक, और सामाजिक पराधीनता के लिए उत्तरदायी है। गांधीजी का स्पष्टत: मानना था “केवल पुरुषों द्वारा निर्मित, न कि महिलाओं की सहमति से, बनाए गए विधानों और कुप्रथाओं के बल पर नारी-वर्ग को प्रताड़ित किया गया है, उनका शोषण किया जा रहा है।”

“इस स्थिति से नारी-वर्ग को उबारने के लिए, जो कि सहज कार्य नहीं है, आवश्यक होगा कि उन्हें स्व: निर्माण के समानावसर प्रदान किए जाएं। लेकिन यह भी उनमें ज्ञानोत्थान द्वारा ही संभव होगा। नारी ज्ञानवान होगी, तो पुरुषों के विपरीत दृष्टिकोण को रूपातंरिक करने में सक्षम होगी। वे पुरुषों के किसी भी प्रकार की अधिपति तथा स्वामी समझने की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त पर सकेंगी।” इस संबंध में उनका वह भी तर्क था कि महिलाएं जागृतावस्था में, अर्थात् ज्ञान के बल पर अपनी पराधीनता का जुआ उसी प्रकार से उतारकर फेंक सकती है, जैसाकि पुरुष और वह भी मानवीय मूल्यों के बल पर। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता का सीध सा अभिप्राय न केवल स्व: समानता को प्राप्त कर लेना है, अपितु इन क्षेत्रों में महिला वर्ग की भागीदारी को सुनिश्चित करना भी है। इस संबंध में गांधीजी के समस्त प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों में नारी की सहभागिता का आग्रह आज भी पूर्णत: प्रासंगिक एवं ग्रहा है।

अत: गांधीजी का उद्देश्य नारी-शिक्षा को नारीत्व के विकास में सहायक बनाने से था, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र व परिवार दोनों ही सशक्त हो सकें। जहां एक चोर गांधी-दर्शन में स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्त्रियों में स्त्रियोचित गुणों के विकास से जोड़कर घर के भीतर के कार्यों को करने की प्रधानता को स्वीकारा गया है तो वहीं दूसरी ओर समस्त समाज को प्रतिनिधित्व प्रदान करने वाली स्त्रियों जैसे सीता, दाम्पती, द्रोपदी का उदाहरण भी समय-समय पर प्रस्तुत किया गया है।

संक्षेप में, समाज में व्यापक परिवर्तन लाने के लिए स्त्रियों को शैक्षणिक रूप से सशक्तिकृत करना आवश्यक है। स्त्रियों की विशेष शिक्षा कैसी हो और कहां से शुरू हो तथा पाठ्यक्रम के साथ ही, उन्हें किस प्रकार व्यावसायिक ज्ञान से भी अवगत कराया जाए, जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें, ये सभी दृष्टिकोण महिला-शिक्षा संबंधी गांधी-चिंतन में दृष्टिगोचर है। वस्तुत: गांधीजी का उद्देश्य महिलाओं के लिए ऐसी विशेष शिक्षा-व्यवस्थ्ताा को निर्मित करना, जो महिला ने निहित प्रकृतिजन्य गुणों का विकास कर सकें और महिलाएं अपने कार्यक्षेत्र में अपने स्वभाव व स्वधर्म के अनुसार उत्तरादायित्व का निर्वाह आसानी से कर सकें।

संदर्भ

1. मो. क. गांधी, ‘मेरे सपनों का भारत’, अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, 1962
2. मो. क. गांधी, ‘बुनियादी शिक्षा’, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, 1953
3. मो. क. गांधी, ‘माहलाओं से’, बनारस : गांधी ग्रन्थालय, 1999
4. अलू दस्तूर एवं उषा मेहता, ‘गांधीजी कंट्रीब्यूशन टू द इमेंसीपेशन ऑफ विमिन,’ बम्बई : पापुलर प्रकाशन, 1991
5. डॉ. कमला द्विवेदी, ‘गांधी जी का शिक्षा दर्शन, नई दिल्ली : श्री पब्लिशिंग लिमिटेड, 1986
6. पुष्पा जोशी, ‘गांधी ऑन विमिन,’ अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग लिमिटेड, 1988
7. एम. एम. पटेल, ‘द एजुकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, अहमदाबाद: नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1953
8. जोसेफ सी. मुकालेल, ‘गांधीयन एजुकेशन’, नई दिल्ली : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, 1997
9. श्रीमन नारायण, ‘महात्मा गांधी द रटोमिक मैन’ मुंबई : सोमच्चा पब्किेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, 1971
10. नलिनी पण्डित, ‘गांधी’, नई दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन, 1993

छोटे और मध्यम किसानों पर हरित क्रांति का प्रभाव

रानी कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग वी.के.एस.यू., आरा, बिहार

"हरित क्रांति ने मनुष्य के भुखमरी एवं वंचना के युद्ध में अस्थायी सफलता प्राप्त की है। इसने मनुष्य को साँस लेने हेतु स्थान प्रदान किया है।" – डॉ. नारमन ई बारलाग (नोबेल भाषण, दिसम्बर 11, 1970)

1943 के बंगाल भुखमरी की भयावह स्मृतियों के पश्चात् खाद्य सुरक्षा भारत के नीति निर्धारिकों के लिए प्रमुख मुद्दा बन गया। एक राष्ट्र ज़ो हरित क्रांति से पूर्व अनेक बार भुखमारी एवं भीषण खाद्य अपर्याप्ततां से ग्रस्त था, वो आज खाद्य आधिक्यता से परिपूर्ण है। हरित क्रांति ने भारतीय कृषि को आकर्षक एवं जीवन शैली को जीवन निर्वाहक के स्थान पर व्यापारिक आयाम प्रदान किया है। भारत आज आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी एवं तकनीकीए भौतिक एवं जैविक विज्ञान पा निर्भर है।[1]

सार

भारत सदैव से अकाल एवं सूखे का देश रहा है। भारत में ग्यारवहीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य 14 अभिलेखित अकाल हुए है। अंतिम प्रमुख अकाल भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति से ठीक चार वर्ष पूर्व 1943 में बंगाल में हुआ, जिसके उपरांत 1966 में बिहार का अकाल एवं 1970-73 में महाराष्ट्र, 1979-80 में पं. बंगाल, 2013 में महाराष्ट्र में सूखा पड़ा। भारत को स्वतंत्रता तब प्राप्त हुई जब कृषि अपने सबसे खराब दौर से गुजर रही थी। अत: यह स्वाभावित है कि खाद्य सुरक्षा स्वतंत्र भारत के कार्यसूची में प्रमुख मुद्दा बन गया। खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय समस्त व्यक्तियों की हर समय पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक आहार के प्रति भैतिक एवं आर्थिक पहुँच से हैं जिसके माध्यम से वे एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन निर्वाह के लिए अपनी आहार संबंधी आवश्यकताओं एवं खाद्य प्राथमिकताओं को पूरा कर सके (वर्ल्ड फूड सम्मिट, 1996)। खाद्य सुरक्षा के तीन स्तंभ हैं-खाद्यात्र की उपलब्धता, खाद्यात्र के प्रति समाजिक एवं आर्थिक पहुँच एवं खाद्य उपभोग।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 51 मिलियन टन के खाद्य उत्पादन से आज हम अवर्णनीय प्रगति करते हुए 257 मिलियन टन के खाद्य उत्पादन पर हैं। भारत आज विश्व के 15 अग्रणीय कृषि उत्पादक निर्यातकों में से एक है। यह शोधपत्र भारत में हरित क्रांति युग से पूर्व एवं पश्चात् कृषि उत्पादकता का समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांक करने का एक प्रयास है। किसी भी अन्य वस्तु की शांति हरित क्रांति भी दोषमुक्त नहीं है। भारत में हरित क्रांति की किलताओं एवं चुनौतियाँ और उन्हें दूर करने के उपायों को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है।[2]

दूसरी पंचवर्षीय योजना के उत्तरार्ध में **फोर्ड फाउंडेशन** के विशेषज्ञों के एक दल को कृषि उत्पादन और उत्पादकता के साधन बढ़ाने के लिए नये तरीके सुझाने के लिए भारत सरकार द्वारा आमंत्रित किया गया था। इस टीम की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने 1960 में सात राज्यों से चयनित सात जिलों में एक गहन विकास कार्यक्रम आरम्भ किया और इस कार्यक्रम को गहन क्षेत्र विकास कार्यमक्रम (IADP) का नाम दिया गया था। 1960 के मध्य का समय कृषि उत्पादकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। प्रो. नॉर्मन बोरलॉग तथा उनके साथियों द्वारा गेहूं की नई उच्च उपज किस्मों को विकसित किया गया और कई देशों द्वारा इसे अपनाया गया। बीजों की नई किस्मों द्वारा कृषि उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के वादे के कारण, दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों ने एक व्यापक पैमाने पर इसे अपनाया। इस नई 'कृषि रणनीति' को पहली बार भारत में 1966 के खरीफ के मौसम में अमल में लाया

गया और इसे उच्च उपज देने वाली किस्म कार्यक्रम (HYVP) का नाम दिया गया था। इस कार्यक्रम को एक पैकेज के रूप में पेश किया गया था क्योंकि मुख्य तौर पर यह कार्यक्रम नियमित तथा पर्याप्त सिंचाई,, खाद, उच्च उपज देने वाले किस्मों के बीज, कीटनाशकों पर निर्भर था।

सरकार ने 1960 में सात राज्यों से चयनित सात जिलों में एक गहन विकास कार्यक्रम आरम्भ किया और इस कार्यक्रम को गहन क्षेत्र विकास कार्यक्रम (IADP) का नाम दिया गया, जिसे बाद में भारत की हरित क्रांति के रूप में परिभाषित किया गया था। हरित क्रांति से गेहूं, चावल और ज्वार के उत्पादन में लगभग 2 से 3 गुना की वृद्धि हुई। एम.एस. स्वामीनाथन को भारत में हरित क्रांति के जनक के रूप में जाना जाता है।[3]

प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश शासन आने से पूर्व, कृषि जीवन-शैली का परंपरागत अभिन्न अंग थी। पशुपालन निवासियों की प्रमुख सहायक क्रिया थी। कृषि स्वतंत्र एवं जीवन-निर्वाहक प्रकृति की थी। कृषक स्वतंत्र थे एवं ग्रामीण समुदाय अपनी आवश्यकताओं के लिये काफी हद तक स्वपर्याप्यता रखते थे। जब अंग्रेज 17वीं शताब्दी में भारत आए, उन्होंने कृषि का प्रयोग भारतीयों पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिऐ एवं उनसे राजस्व वसूलने के लिऐ किया। स्वतंत्र कृषक राजस्व प्राप्ति एवं इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति की गति बढ़ाने का साधन मात्र रह गये। ब्रिटिश काल में भारतीय कृषि का सर्वोत्तम काल था। प्रथम विश्व युद्ध, 1930 की वैश्विक मंदी एवं द्वितीय विश्व युद्ध ने निर्यात बाजार का संकुचन कर दिया। बंगाल के अकाल ने स्थिति को और अधिक भयावह बना दिया और खाद्य उपलब्धता घटकर 417 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति हो गई। इस प्रकार भारतीय कृषि में वैश्विक उच्चावचनों के कारण उतार-चढ़ाव आते रहें। अर्थशास्त्र विजयी हुआ और जीवन हार गया। भारतीय कृषि सफलता की एक कहानी है। भारत आज कृषि रूपांतरण के अष्टम चरण में है। भारतीय कृषि के विभिन्न चरणों में विभाजन को लेकर मतैक्य नहीं है। विभिन्न अध्ययनों में विभाजन एवं चरणों की समय सीमा में परिवर्तन है। भारतीय कृषि की संक्षिपत प्रगति यात्रा इस प्रकार है-[4]

सारणी 1: भारतीय कृषि के विभिन्न चरण

चरण	लक्षण
ब्रिटिश काल से पूर्व (1600 पूर्व)	कृषि केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं थी। यह एक परंपरा थी। कृषि सहायक के रूप में पशु भी है मुख्य कार्यो की एक था।
ब्रिटिश काल (1600-1947)	कृषि कभी नहीं किसी भी फिर से: जीवन शैली और परंपरा का हिस्सा नहीं हो पाया। कृषि एक मात्र आथिक गतिविधि बन गई। आधुनिक खेती जीवन का अर्थ है स्थान पर प्रगति साधन बन गया। ब्रिटिश शासकों के राजस्व का स्त्रोत।
स्वतंत्रता प्राप्ति चरण (1947-1950)	भारतीय कृषि का सबसे बुरा दौर, भयानक अकाल, निम्नतम उत्पादकता, कृषकों की अति ऋणग्रस्तता, विभाजन के कारण भू-स्वामियों एवं भू-श्रमिकों की बिगड़ती स्थिति।
नियोजन काल (1950-1951 से 1967-68)	मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, रागी, मक्का) का भूमि प्रति इकाई बढ़ता उत्पादन (शोध एवं विस्तार सेवाओं का विस्तार)
ग्रीन क्रांति की प्रारंभिक अवधि (1968-1969 के लिए 1985-1986)	कृषि, शोध, विकास एवं अन्य सहायक सेवाओं के माध्यम से गेहूँ एवं चावल के उत्पादन में वृद्धि
विस्तृत प्रचार काल (1986-87 से 1996-97)	आधुनिक तकनीकियों शोध, विकास, शिक्षा व जागरूकता, सिंचाई में विनियोग, इंफास्ट्रचर, गोदाम, बाजार इत्यादि का विकास।

सुधार के पश्चात (1997-98 से 2005-06)	रसायनों व श्रम के प्रयोग से उत्पादकता में निरंतर वृद्धि (परंतु वृद्धि दर के विकास में कमी), मक्का, कपास, गन्ना, तिलहन के क्षेत्रों में वृद्धि।
पुनर्वापसी काल (2006-07 से आज तक)	कृषि व्यवसायीकरण फसल के पैटर्न में विविधिकरण, फलों, सब्जियों, फूलों की खेती पर जोर, निर्यातों में वृद्धि।

इस काल के दौरान भारत के पक्ष में मात्र एक अनुकूल घटना घटित हुई और वह थी लंबे काल से आकांक्षित स्वतंत्रता, परंतु स्वतंत्र भारत अनेक आर्थिक समस्याओं से जूझ रहा था (जैसे–बंगाल अकाल के पश्चात् के प्रभाव, निम्न कृषि उत्पादकता, अत्यंत निम्न प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, और बढ़ती हुई भूहीन श्रमिकों की संख्या)। विभाजन का दंश झेल रहे भारत के लिये राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ और भी खराब हो गई। रोजगार अवसरों की अत्यंत कमी के लिये तीव्र औद्योगिकरण आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कृषि की उद्योगों के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया भी आवश्यक थी। अतः कृषि की स्थिति को सुधारने के लिये शीघ्रतम प्रयास आवश्यक थे। नियोजन काल के दौरान भारतीय ससरकार ने खाद्य सुरक्षा के लिये प्रयास किए। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान 14.9 प्रतिशत कृषि के आवंटित बजट धनराशि इस संदर्भ में अग्रणीय पहल थी। इसके अतिरिक्त सिंचित क्षेत्रों का बढ़ना एवं अन्य भूमि सुधार उपायों के माध्यम से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई। परंतु अनुकूल उत्पादन होने के बाद भी संभावनायें वास्तविकता में रूपांतरित नहीं हुई। 60 के दशक के प्रारंभ में नीति निर्धरक ऐसी कृषि तकनीकियों की खोज में थे जो ये रूपांतरण कर सकें। 60 के दशक के मध्य तक यह तकनीकी "चमत्कारी बीजों" के रूप में सामने आयी, जो कि मैक्सिकों में सफल हो चुकी थी। इस प्रकार भारतीय कृषि में हरित क्रांति के आगमन की पृष्ठभूमि तैयार हुई। यह क्रांति एचवाईवी, बीज, रसायन, कीटनाशकों एवं भू-मशीनीकरण पर आधारित थी। इस क्रांति ने भारतीय कृषि की कला को परिवर्तित कर दिया (सारिणी-2)।[5-6]

सारणी-2 भारतीय कृषि कला में पतिवर्तन

घटक	*1950 में*	*आज*
बीज	कृषि खाद्य उत्पादन के लिए एक निश्चित के हिस्से के बीज के रूप में इस्तेमाल किया द्वारा	एचवाइवी बीजों का प्रयोग
पोषण की आवश्यकता	खाद और खाद द्वारा	उर्वरक+FYM+जैविक उर्वरक कीटनाशक
कीटनाशक	डीडीटी का विस्तृत प्रयोग	इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट का प्रयोग
पर्यावर्णीय जागरूकता	रसायनों का अनावश्यक एवं अन्यायपूर्ण प्रयोग	मृदा आवश्यकताओं के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग
सूचना तंत्र	कृषकों को कृषि की आधुनिक कलाओं का ज्ञान न होना	सूचना तकनीकी का विस्तृत प्रयोग
कृषि सहयोगी सेवायें	सरकार पर निर्भरता	के बढ़ते महत्व के निजी क्षेत्र
श्रमिक	घर के सदस्यों का प्रयोग	किराये का श्रम
मशीनों का प्रयोग	बहुत कम प्रयोग	कृषि यंत्रीकरण का प्रभुत्व
उत्पादन	पण्य वस्तु अधिशेष की कम से कम होना	अधिकतम पण्य अधिक्यता
उद्वेश्य	पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति	अत्यधिक लाभार्जन
दृष्टिकोण	जीवन निष्पादक	व्यापारिक

अत्यधिक खर्चीली तकनीकी होने कारण हरित क्रांति को वृहद क्षेत्र में फैलाना संभव नहीं था। परंतु यह बात विचारणीय नहीं थी। सबसे आवश्यक कार्य आधिक्य पूर्ण क्षेत्र में प्रगति को और अधिक बढ़ाना था, जिससे की औद्योगिक क्षेत्रों का भी विकास

किया जा सके। निरंतर बढ़ती कृषि उत्पादकता ने भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। जैसे–जैसे इन चमत्कारिक तकनीकियों काविस्तृत प्रसार हुआ न केवल कृषि अपितु सहायक क्षेत्रों का भी विकास हुआ (सारिणी-3)।

सारणी-3: भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में 1950-51 से 2010-11 तक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर (प्रतिशत/वर्ष) की प्रवृत्ति (1999-00 के मूल्यों पर)

चरण	सभी क्षेत्रों	कृषि एवं सहायक क्षेत्र	कृषि	गैर कृषि
पूर्वी के हरित क्रांति	3.71	2.00	1.97	5.42
हरित क्रांति का दौर	3.72	2.38	2.63	4.62
विस्तृत प्रचार काल	5.52	3.57	3.58	6.40
सुधार के पश्चात	6.01	2.08	2.04	7.23
पूर्नवापसी काल	8.24	2.62	2.55	9.47

Source: http:// MOSPINICIN / MOSPINnew / Upload / SYB 2015 / Ch-8 Agriculture / Agriculture Writeup.pdf.

हरित क्रांति तकनीकियों के विस्तृत प्रसार का चरण भारतीय कृषि का श्रेष्ठ चरण है जिसमें भारत के कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पादन में कुल 3.5 प्रतिशत का योगदान दिया। 1997-98 से इस वृद्धि दर का घटना प्रारंभ हुआ जो कि 2005-06 तक दृष्टिगोचर रहा। यह कमी कृषि क्षेत्र के संसाधनों को अन्य क्षेत्रों में विस्थापित करने के कारण हुई है। इसके बाद भी सुधार काल के समय कृषि क्षेत्र ने पुनः वृद्धिदर प्राप्त करने का प्रयास किया।[7-8]

भारत में हरित क्रांति

"हरित क्रांति का अर्थ वरीयता प्राप्त विश्व के संपन्न राष्ट्रों के निवासियों एवं भूले हुए विश्व के विकासशील राष्ट्रों के निवासियों के लिए पूर्णतया भिन्न है।" ***-डॉ. नॉरमन बॉरलाग***

'हरित क्रांति' इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डॉ. विलियम गैड ने किया था। परंतु जिस व्यक्ति ने इस शब्द को एक शाब्दिक अर्थ प्रदान किया वह डॉ. नॉरमन बॉरलाग हैं। उन्हें विश्व में "हरित क्रांति के जनक" के रूप में जाना जाता है। हरित क्रांति से अभिप्राय शोध एवं विकास, तकनीकी स्थानान्तरण, एचवाईबी बीजों के प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, प्रबंधकीय तकनीकियों के आधुनिकीकरण एवं कृषकों को हाइब्रिड बीजों, सिंथेटिक उर्वरकों व कीटनाशकों के वितरण की पहल कीशृंखला से है। यह शृखला 40 के दशक से 60 के दशक के अंत तक प्रभावी हुई, जिसके माध्यम से विश्व के विशेषकर विकासशील राष्ट्रों की कृषि उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इन तकनीकियों का सर्वप्रथम प्रयोग मैक्सिको में रोग प्रतिरोधक उच्च प्रजनन क्षमता के हाइब्रिड बीजों को बनाकर किया गया। इस कारण मैक्सिको में गेहूँ के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। 60 के प्रारंभ के अकाल एवं तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव ने भारत सरकार को बॉरलाग को आमंत्रित करने के लिए विवश किया। एमएस स्वामीनाथन, जिनके सुझावों पर यह आमंत्रण प्रेषित हुआ, को "भारत में हरित क्रांति के जनक" के रूप में जाना जाता है।[9]

छोटे और मध्यम किसानों पर हरित क्रांति का प्रभाव

हरित क्रांति के फलस्वरूप देश के कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। कृषि लागतों में हुए गुणात्मक सुधार के फलस्वरूप देश में कृषि उत्पादन बढ़ा है। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता आई है। व्यवसायिक कृषि को बढ़ावा मिला है। कृषकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। कृषि आधिक्य में वृद्धि हुई है। हरित क्रांति के फलस्वरूप गेहूँ, गन्ना, मक्का तथा बाजरा आदि फलसों के प्रति हेक्टेअर उत्पादन एवं कुल उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है। हरित क्रांति की उपलब्धियों को कृषि में तकनीकी एवं संस्थागत परिवर्तन एवं उत्पादन में हुए सुधार के रूप में निम्नवत देखा जा सकता है।[10(11-12)]

(क) हरित क्रांति के आर्थिक प्रभाव :

1. हरित क्रांति से देश में खाद्यान्न उत्पादन तथा खाद्यान्न गहनता दोनों में तीव्र वृद्धि हुई और भारत अनाज उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर हो सका। वर्ष 1968 में गेहूँ का उत्पादन 170 लाख टन हो गया जो कि उस समय का

रिकॉर्ड था तथा उसके बाद के वर्षों में यह उत्पादन लगातार बढ़ता गया।

2. हरित क्रांति के बाद कृषि में नवीन मशीनों जैसे–ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, ट्यूबवेल, पंप आदि का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार तकनीकी के प्रयोग से कृषि का स्तर बढ़ा तथा कम समय और श्रम में अधिक उत्पादन संभव हुआ।
3. कृषि के मशीनीकरण के चलते कृषि हेतु होने वाली मशीनों के अलावा हाइब्रिड बीजों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशी तथा रासायनिक उर्वरकों की मांग में तीव्र वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप देश में इससे संबंधित उद्योगों का अत्यधिक विकास हुआ।
4. हरित क्रांति के फलस्वरूप कृषि के विकास के लिए आवश्यक अवसंरचनाएँ जैसे–परिवहन सुविधा हेतु सड़कें, ट्यूबवेल द्वारा सिंचाई, ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति, भंडारण केंद्रों और अनाज मंडियों का विकास होने लगा।
5. विभिन्न फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimu Support Price–MSP) व अन्य सब्सिडी सेवाओं का प्रावधान भी इसी समय शुरू किया गया। इसी कदम के फलस्वरूप किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य मिलना संभव हो सका। किसानों को दिये जाने वाले इस प्रोत्साहन मूल्य से वे नई कृषि तकनीकी अपनाने में सक्षम हुए।
6. किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विभिन्न वाणिज्यिक, सहकारी बैंक तथा कोआपरेटिव सोसाइटी आदि के माध्यम से उन्हें ऋण सुविधाएँ दी जाने लगी। इसी कारण किसान कृषि में लगने वाली लागन को आसानी से इन संस्थाओं से प्राप्त कर सके।
7. हरित क्रांति तथा मशीनीकरण से उत्पादन में हुई बढ़ोतरी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के नये अवसर विकसित हुए। हरित क्रांति की वजह से पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार तथा ओडिशा से लाखों की संख्या में मज़दूर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में रोज़गार की तलाश में जाने लगे।

(ख) हरित क्रांति के सामाजिक प्रभाव:

1. हरित क्रांति की वजह से भारत के ग्रामीण समाज में व्यापक स्तर पर बदलाव हुए इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था ग्रामीण समाज का बाज़ारोन्मुख व गतिशील होना। हरित क्रांति के बाद कृषि पूर्व की भाँति मात्र एक जीविकोपार्जन का साधन नहीं रही बल्कि यह अब ग्रामीण समाज के आय का मुख्य स्रोत बन गई है।
2. किसानों की आय बढ़ने से उनके सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर का विकास हुआ।
3. इसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों में स्वकेंद्रण की भावना का विकास हुआ जिससे पारंपरिक संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवार की व्यवस्था प्रचलन में आई।
4. हरित क्रांति के कारण लोगों की आय में वृद्धि हुई और इसने ग्रामीण समाज में पारंपरिक रूप से चली आ रही प्रथाओं जैसे–जजमानी प्रथा, वस्तु-विनिमय (Barter) आदि को समाप्त किया।
5. हरित क्रांति के विषय में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह छोटे और सीमांत किसानों की तुलना में बड़े किसानों के लिए अधिक लाभप्रद रही। इसका मुख्य कारण नई तकनीकी में लगने वाली अत्यधिक लागत थी जिसे छोटे किसानों द्वारा वहन करना संभव नहीं था।
6. इसका परिणम यह हुआ कि धनी व निर्धन किसानों के बीच असमानता बढ़ती गई। कुछ स्थानों पर इस असमानता की वजह से संघर्ष भी हुए।
7. जहाँ हरित क्रांति ने अर्थव्यवस्था, समाज तथा संस्कृति में बदलाव किये, वहीं इससे कई नैतिक समस्याएँ भी पैदा हुई। उत्तर भारत के इलाकों के किसानों जैसे–पंजाब हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नशा, शराब आदि के सेवन की प्रवृत्ति बढ़ी।
8. हरित क्रांति का महिलाओं के जीवन पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। हरित क्रांति से पूर्व महिलाएँ बाहर खेतों में काम करके घर के पुरुष सदस्यों का हाथ बटाया करती थीं लेकिन किसानों की बढ़ती आय तथा मशीनों के बढ़ते प्रयोग से ग्रामीण महिलाओं की स्वतंत्रता कम हुई।

(ग) हरित क्रांति के राजनीतिक प्रभाव :

1. भारतीय राजनीति के क्षेत्र में हरित क्रांति ने दूरगामी प्रभाव डाले। किसानों के नये वर्ग ने स्थानीय स्तर की राजनीति में भाग लेना प्रारंभ किया। पूर्व राजनीति जहाँ समाज के उच्च जातियों तथा धनी वर्ग द्वारा ही नियंत्रित होती थी उसमें अब समाज के छोटे तबके के लोगों की भागीदारी बढ़ी।
2. हरित क्रांति ने स्वतंत्रता के बाद ज़मींदारी उन्मूलन, भूमि सुधार जैसे कदमों के चलते भारत में समतामूलक समाज के निर्माण को गति प्रदान की। इससे छोटे व मध्यम स्तर के किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और इससे उनमें शिक्षा तथा राजनैतिक चेतना का विकास हुआ।
3. किसान तथा उनसे संबंधित मुद्दों को केवल स्थानीय स्तर पर ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर महत्त्व दिया जाने लगा। इससे किसानों से संबंधित अनेक संगठनों का निर्माणह हुआ तथा पूरे देश में उनकी भूमिका एक दबाव समूह की भाँकि निर्मित हुई।
4. किसान एवं उनसे संबंधित मुद्दे देश के कुख्य राजनीतिक दलों के लिए वोट बैंक बने तथा विभिन्न दलों ने किसानों के मुद्दों की वकालत करना प्रारंभ किया।

निष्कर्ष और सुझाव

भारत में हरित क्रांति के सूत्रपात के पाँच से अधिक दशक बीत गये हैं, लेकिन भूख के विरुद्ध हमारा युद्ध अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

भारत को हरित क्रांति की प्रेरणा तब मिली थी, जब साठ के दशक के मध्य में अच्छी फसल नहीं हुई थी और अकाल के हालात पैदा हो गए थे, लेकिन इसका असली उद्देश्य था, देश में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना और अगर सटीक रूप में कहा जाए तो इसका मुख्य उद्देश्य भारत को खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाना था। अब हम यह देख सकते हैं कि उस समय अपनाई गई नीतियों में अब तक कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया है और भारत की समस्त जनता को भूख की समस्या से छुटकारा दिलाने में और पर्याप्त मात्र में उपयुक्त पोषण की व्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने में यह क्रांति किल हो गई है। इन नीतियों के अंतर्गत ही उर्वरक, भूजल-निष्कासन और खाद्यान्न (विशेषकर चावल और गेहूँ) के लिए आवश्यक न्यूनतम समर्थन मूल्य और अनाज की वसूली और सार्वजनिक वितरण (मुख्यत: चावल और गेहूँ) के लिए सब्सिडी देने की शुरुआत की गई थी।[13-14]

आज भारत खाद्यान्न के उत्पादन के मामले में राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भर हो गया है। साथ ही गेहूँ और चावल के मामले में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक और चावल का सबसे बड़ा निर्यातक बन गया है। कुल उत्पादन में भारी वृद्धि के बावजूद सभी प्रकार के खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में बहुत कम वृद्धि हुई है, क्योंकि साठ के मध्य की तुलना में आज भारत की आबादी तिगुनी से भी अधिक हो गई है। सन् 1951 में जहाँ खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति वास्तविक उपलब्धता 144 कि.ग्रा. थी, वहीं 1971 में इसकी मात्र में भारी वृद्धि हुई और यह मात्र बढ़कर 171 कि.ग्रा. हो गई; इसका मुख्य कारण था गेहूँ की भारी उपलब्धता, लेकिन पिछले पचास वर्षों में इसकी उपलब्धता में 170-180 कि.ग्रा. के बीच घट-बढ़ होती रही। हरित क्रान्ति की सफलता के लिए सुझाव[15(16;17-18)]

1. **संस्थागत परिवर्तनों को प्रोत्साहन:** हरित क्रान्ति की सफलता के लिए भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावी और विस्तृत रूप से लागू किया जाना चाहिए। बटाईदारों को स्वामित्व का अधिकार दिलाया जाना चाहिए। सीमा निर्धारण से प्राप्त अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन कृषकों में वितरित किया जाना चाहिए। चकबछनी का प्रभावी बनाकर जोतों के विभाजन पर प्रभावी रोक लगायी जानी चाहिए।
2. **कृषि वित्त की सुविधा:** कृषि वित्त की सुविधाएँ बढ़ाते समय छोटे किसानों को रियायती दर पर साख की सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए, ताकि वे आवश्यक उन्नत बीज, रासायनिक खाद तथा कृषि उपकरण क्रय कर सकें।
3. **रोज़गार के अवसरों में वृद्धि:** श्रम प्रधान तकनीकों को अपनाया जाना चाहिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बेकारी की समस्या के समाधान के लिए कुटीन एवं ग्राम उद्योगों का तेजी से विस्तार किया जाना चाहिए।

4. **सिंचाई के साधनों का विकास:** देश में सिंचाई की सुविधाओं का पर्याप्त विकस किया जाना चाहिए, ताकि कृषक अधिक उपज देने वाली किस्मों का पूरा लाभ उठा सकें। इस सन्दर्भ में लघु सिंचाई परियोजनाओं के विस्तार पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
5. **अन्य संरचनात्मक सुधारों का विस्तार:** कृषि के विकास के लिए आवश्यक बिजली, परिवहन सहित अन्य संरचनात्माक सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए। तभी हरित क्रांति अन्य फ़सलों तथा क्षेत्रों तक फैल सकेगी।
6. **हरित क्रांति का अन्य फसलों तक फैलाव:** हरित क्रांति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसका विस्तार चावल तथा अन्य फसलों की खेती तक किया जाये। चावल के साथ दालें, कपास, गन्ना, तिलहन, जूट आदि व्यापारिक फसलों के संबंध में भी उत्पादन वृद्धि संतोषजनक नहीं रही है। अत: इन फसलों को भी हरत क्रान्ति के प्रभाव क्षेत्र में शामिल किया जाना चाहिए।
7. **छोटे खेत और छोटे किसानों को सम्बद्ध करना:** छोटे खेतों तथा छोटे किसानों को भी हरित क्रांति से सम्बद्ध करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि-(अ) भूमि सुधार कार्यक्रमों को शीघ्रता और प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए, (ब) छोटे-छोटे किसानों को उन्नत बीज, खाद आदि आवश्यक चीजों को खरीदने के लिए उदार शर्तों एवं दरों पर साख सुविधाएँ उपलब्ध करायी करायी जानी चाहिए, (स) साधारण कृषि उपकरणों की खरीद के संबंध में दी गयी सुविधाओं के अतिरिक्त बड़ी-बड़ी फार्म मशीनरी यथा-ट्रैक्टर, हार्वेस्ट आदि को सरकार की ओर से किराए पर दिया जाना चाहिए, (द) बहुत छोटी-छोटी जोतों वाले किसानों को सहकारी खेती को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
8. **समन्वित फार्म नीति:** हरित क्रांति की सफलता के लिये समन्वित फार्म नीति अपनायी जानी चाहिए, ताकि फार्म तकनीकि व आगतों के मूल्यों के संबंध में एक उचित नीति अपनाई जा सके तथा ख़्रषकों को उ़तशील बीज, खाद, कीटनाशक तथा ख़्रषि यन्त्र एवं उपकरण उचित मूल्य पर समय पर उपलब्ध हो सकें। इसके अतिरिक्त सरकार को समस्त ख़्रषि उपजों की बिक्री का प्रबन्ध किया जाना चाहिए तथा उचिज मूल्य पर ख़्रषि उत्पादों को ख़रीदने की गारन्टी भी देनी चाहिए।

वर्तमान में सरकार द्वारा कारगर पहल

मोदी सरकार ने किसानों को राहत पहंचाने के लिए हरित क्रांति-कृषोंन्नति योजना यानि छतरी योजना[19] को 2020 तक के लिए लागू कर दिया है। अब इस योजना का लाभ किसान वर्ष 2020 तक उठा पाएंगे। सरकार का मानना है कि योजना किसानों की आमदनी बढ़ाने में मददगार साबित होगी। छतरी योजना यानी 'अम्ब्रला स्कीम' 'हरित क्रांति-कृषोंन्नति योजना' के अंदर 11 योजनाओं को शामिल किया गया है और ये सभी योजनाएं किसानों के विकास और उनकी आमदनी में बढ़ोतरी करने वाली योजनाएं है। इन 11 योजनाओं को जारी रखने के लिए सरकार को तीन वित्तीय वर्षो के लिए 33,26 9.9 76 करोड़ का बजट रखा है, जो वर्ष 2017-18 से लेकर वर्ष 2019-20 तक के लिए होगा।

संदर्भ

1. बॉउंडर बी (1979): भारत में हरित क्रांति का प्रभाव विश्लेषण, तकनीकि पूर्वानुमान और सामाजिक परिवर्तन, खंड 15,297-313; फोर्ड फाउंडेशन (1959): भारत की खाद्य संकट पर रिपोर्ट और इसे पूरा करने के लिए कदम। नई दिल्ली: खाद्य और कृषि मंत्रालय और सामुदायिक विकास मंत्रालय।
2. ग्रिफिन, कीथ (1974): द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ एग्रेरियन चेंज: एन एसेय ऑन द ग्रीन रिवोल्यूशन, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1974; पीपी 265-279, 1995।
3. राव, सी.एच.एच. (1994): भारत में कृषि विकास, ग्रामीण गरीबी और पर्यावरण में गिरावट, ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली; पीपी 05-09, www.fao.orgèkesèkesaA
4. आरबीआई, भारत सरकार (2011) "सांख्यकीय डायरी", पृष्ठसं. 57-77।
5. नियोजन आयोग, भारत सरकार (2011) "डाटा फॉर यूज आफ डेप्यूटी चेयरमैन, प्लानिंग कमीशन", पृष्ठसं. 17-20। 6. आईआईएफसीओ, नई दिल्ली (2004) "एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस", पृष्ठसं. 34-45।
7. महादेवन, रेणुका (2003) "प्रोडक्टिविटी ग्रोथ इन इण्डियन एग्रीकल्चरल: द रोल ऑफ ग्लोब्लाइजेशन एण्ड इकोनॉमिक, रिफार्म", एशिया-पेसेफिक डवलपमेंट जर्नल, खण्ड-10, अंक-2, मु. पृष्ठ 57-72।

8. नियोजन आयोग, भारत सरकार (2002) "रिपोर्ट आफ कमेटी आन इंडिया विजन 2020", पृष्ठसं. 30-35
9. गुलाटी, अशोग (2009) "इमरजिंग ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एग्रीकल्चर : वॉट कैन बी लर्न फ्राम दीज", एग्रीकल्चर इकोनोमिक्स रिसर्च रिव्यू, खण्ड-22, मु.पृष्ठ 171-184
10. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार (2012-13) "स्टेट आफ इण्डियन एग्रीकल्चर", पृष्ठसं. 72-80
11. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, विभिन्न वार्षिक रिपोर्ट। निनन के. (1993) "द ग्रीन रिवोल्यूशन, ड्राईलैण्ड एग्रीकल्चर एण्ड सस्टेनेबिलिटी : इनसाइट फॉम इंडिया", इकोनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, खण्ड-28, मु.पृष्ठ ए2-ए7
12. सिंह, राजवीर साही, एस.के., मिश्रा यू.के. (2013) "इमरजिंग ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एग्रीकल्चर : ए रिव्यू", रिर्स जर्नल आफ रिसंट साइंसेस, खण्ड-2, मु.पृष्ठ 36-38
13. टेन्ले, लौरा (1987) "बियोन्ड द ग्रीन रिवोल्यूशन, बायोसाइंस, खण्ड-37, अमेरिकन इंस्टीट्यूट आफ बायोलोजिकल साइंसेस", मु. पृष्ठ 176-180
14. कोहली, एलएन (2013) "इण्डियन इकोनॉमिक प्राब्लम्स", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशंस, पृष्ठसं. 184-287
15. दत्त व सुंदरम, "इण्डियन इकोनॉमी", एस चांद पब्लिकेशंस, पृष्ठसं. 472-534
16. मिश्रा, जे.पी., "भारतीय आर्थिक संरचना", साहितय भवन, पी. 28-47
17. राजाराम के. (1999) "भारतीय अर्थव्यवस्था और भारत का भूगोल", स्पेक्ट्रम इंडिया, पृष्ठ 181-314
18. पंत प्रीति, असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, बीएसएनबी कॉलेज, लखनऊ-226001, यूपी, भारत Preeteepant@gmail.com
19. छतरी योजना यानि हरित क्रांति-कृषोन्नति योजना में किसानों की आमदनी बढ़ाने वाली 11 योजनाओं का समावेश किया गया है। इससे पहले ये सभी योजनाएँ सरकार द्वारा स्वतंत्र रूप से चलाई जाती थी, लेकिन वर्ष 2017-18 में, इन सभी योजनाओं को क्लब करने का फैसला लिया गया। इसके बाद से ये सभी योजनाएं छतरी योजना- 'हरित क्रांति-कृषोन्नति योजना' के नाम से जाती हैं।

राजा राम मोहन राय: एक महान समाज सुधारक

पल्लवी

एम.ए. (इतिहास), नेट (यूजीसी), मगध यूनिवसिटी, बोध गया

सारांश

राम मोहन राय को 'भारतीय पुनर्जागदण का पिता' कहा जाता है। वह आनें वाली संस्कृति और सभ्यता के विराट रुप में एक शिखर के समान थे वे मानववाद के इत और आधुनिक भारत के पुरखा और पिता थे। राजा राम मोहन राय द्वारा आरम्भ किए हुए भारत में पुनजागरण पर टिप्पनी करते हुये प्रोफेसर जे0 एन0 सरकार ने कहा था, "यह एक गौरवमयी उशा का आरंभ था ऐसी उशा जैसी संसार में कहीं और देखने को नहीं मिली। एक वास्तविक पुनर्जागदण जो यूरोपीय पुनर्जागदण, जो कुस्तुनतुनिया के पतन के पश्चात आया उससे कहीं अधिक विस्तृत था, अधिक गहरा था और अधिक क्रांतिकारी था।" समाज सुधार के क्षेत्र में तो सत्यहीवह प्रभात का तारा थे। उनका मुख्य उदेश्य स्त्रियों के प्रति अधिक उत्तम व्यवहार प्राप्त करना था। अमानुशी सती प्रथा को समाप्त करवाने के लिए जो प्रयत्न उन्होनें किए वे इतने विश्व विख्यात हैं कि उनका विवरण करना बहुत मुश्किल है। वह समकालिन लोगों से बहुत आगे थे। जब उन्होनें स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह का अधिकार मांगा, तो मांग की। वे बालविवाह और बहुपत्नी विवाहों को बंद करवाना चाहते थे। इससे अधिक वह उनकी शिक्षा के पक्ष में थे क्योंकि उसके बिना उनके समाज में अच्छा स्थान प्राप्त करने की बात नही सोची जा सकती थी। उन्होनें जातिवाद पर भी प्रत्यक्ष प्रहार किया। उनके अनुसार जातिपाति के कारण भारतीय समाज जड़ हो गया था और इससे लोगों की एकता तथा धनिवठता में बाध पड़ती थी। इन अनगिनत विभाजनों के कारण देश-प्रेम की भावना उत्पन्न नहीं होती। राजा साहब ने यह सुझाव दिया कि जातिपांति के बन्धनों के हटानें के लिए शौव वैवाहिक पद्धति अपनानि चाहिए।

मुख्य शब्द: राजाराम मोहन राय, पुनर्जागरण, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह

प्रस्तावना

राजा राम मोहन राय वस्तुत: एक समाज सुधारक थे जिन्होने समाजिक पुनर्निमाण एवं शिक्षा के क्षेत्र में उत्तम कार्य किया। उन्हें भारत की समसजिक क्रांति का अग्रदूत कहा जा सकता है। धर्म के साथ समाज और राष्ट्र का गहरा संबंध राम मोहन अच्छी तरह समझते थे। उन्होनें यह विश्वास व्यक्त किया कि धर्म और समाज सुधार की अनुपस्थिति में केवल राजनीतिक विकास का कोई मूल्य नहीं रहेगा। उन्हें मालूम था, कि धार्मिक सुधार और समाजिक सुधार राष्ट्रीय प्रगति और मुक्ति के साथ जुड़े हैं। उन्होनें जब धार्मिक सुधार का आन्दोलन छेडा तो साथ उनका ध्यान उन सामाजिक कुरीतियों की ओर भी गया, जो मुख्यत: धर्माश्रित कुरीतियाँ थीं।

इनका जन्म 1774 में राधानगर में एक बंगाली ब्राह्मण कुल में हुआ। इनके पूर्वज जागीरदार थे और बंगाल के नबावों के यहाँ सेवा करते थे और उन्हें उपाधियाँ मिली हुई थी। राम मोहन नें आरम्भिक शिक्षा अपनें हीं नगर में प्राप्त की और बंगला, फारसी और संस्कृत में प्र्याप्त कौशल प्राप्त कर लिया। 1790 में वह उत्तरी परत के प्रमाण पर गए और उन्होनें बौद्धसिद्धान्तों का परिचय प्राप्त किया। अपनी उदारवादी शिक्षा से राम मोहन हिन्दू धर्म, बौद्धधर्म और इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हो गये। 1803 में राम मोहन कम्पनी की सेवा में नियुक्त किये गए और दिग्बी के साथ दीवान के रुप में काम करनें लगे। दिग्बी महोदय नें उन्हे

अंग्रेजी सिखाई और उनका परिचय उदारवादी और सुक्तिसुक्त विचारधारा से करवाया। 1814 में राम मोहन कलकत्ता में बस गए और लोक सेवा और सुधार के एक गौरवमय जीवन का आरम्भ किया।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। धर्म हीं उसका प्राण है। धार्मिक आन्दोलनों नें भारतीय समाज में परिवर्तन और परिश्कार के राजनीतिक पुर्नजागरण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक राष्ट्रवाद की आधारशिला के पीछे भी राजा राम मोहन राय के सामाजिक विचार हीं रहे हें। यह बात दूसरी है, कि भारतीय स्वतंत्रता आनदोलन को अन्तिम निष्कर्श तक पहुँचानें का श्रेय किसी और को मिले, पर उस अग्नि को प्रज्वलित करनें का कार्य राजा राम मोहन राय ने हीं किया है।1 राजा राम मोहन राय मानवतावाद के प्रतिमूर्ति थे, वे विश्व भ्रातृत्व के उपासक थे, और धार्मिक मत मतान्तरों से ऊपर उठकर सर्वभौम धर्म के उपासक थे।

राजा राम मोहन राय के समय में समाज में बाल-विवाह, बहु-विवाह, सतीप प्रथा, मूर्तिपूजा, जाति-प्रथा आदि सामाजिक समस्याएं व्याप्त थी। एक समाज सुधारक के रुप में उन्होंने इन बुराइयों को दूर करनें का प्रयास किया। वे चाहते थे, कि समाजिक प्रथाएं धार्मिक क्रियाऐं या विधान आदि सभी मानव कल्याण की अग्नि परीक्षा में खरे उतरें, अन्यथा वे त्याग हैं। उस समय जबकि धार्मिक या सामाजिक रीतियों के विषय में अविश्वास को क्षीण से क्षीण स्वर में बड़े से बड़ा अपराध माना जाता था। राजा राम मोहन राय नें र्ध के सन्दर्भ में अपना विचार व्यक्त किया था। उस समय महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य से भारत वर्ष में महिलाओं के कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। इस आधुनिक सन्दर्भो में विशेष कर महिला सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में राजा राम मोहन राय के सामाजिक विचार बहुत अधिक प्रासंगिक है।[2]

बाल विवाह और बहु विवाह का विरोध

भारतीय समाज सदियों से कुरीतियों का शिकार रहा है। मुगल आक्रमणकारियों के पूर्व भारत में नारी का स्थान सममान जनक था। मुगलों क सामनें हिन्दू राजाओं के पराजय का प्रमुख कारण रहा है, सामाजिक संगठन का कमजोर होना। प्रमुख कमजोरियों में थी- जाति-प्रथा, स्त्रियों की शोचनीय स्थिति, बाल-विवाह, कन्या बध आदि का प्रचलन। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में बाल-विवाह, सम्पूर्ण भारत में विद्यमान थी। बाल विवाह से तात्पर्य है, विवाह के हेतु वर और वधू के लिए जो न्यूनतम आयु कानून द्वारा निर्धारित की गयी है, उस आयु को प्राप्त होने से पहले की आयु में हीं दोनों का विवाह कर देना, अर्थात बाल विवाह से हमारा अभिप्राय ऐसे विवाह से है जो अवयस्कता की बवस्था में होते हैं। बाज-विवाह मात्र शारीरिक दृष्टिकोण से हीं नहीं बल्कि नेतिक रुप से भी बुराई भी है, क्यों कि यह हमारे सदाचार की जड़े खोरवला कर देता है, और शारीर का सत्यानाश भी कर देता है। अतः बाल-विवाह का अर्थ छोटी उम्र में विवाह होने से है, जिसमें नेतिकता का खुला उल्लेघन होता है। भारतीय समाज में ऐसे विवाह को अनैतिक एवं अधर्म माना गया है।[3] राजा राम मोहन राय ने बात-विवाह को अधर्म एवं अनैतिक माना है। उन्होनें लिखा है "जो लड़की गोद में बैठाने लायक हो, उसे पत्नी बनाना धर्म तो नहीं, बल्कि अधर्म की पराकाष्ठा अवश्य है"।[4] 19वीं सदी में भारत में बाल विवाह की प्रथा अपनी चरम सीमापर थी।

बल-विवाह के विषय में धर्म से संबंधित मनुस्मृति के अध्याय 3 के इक्यानेव श्लोक में स्पष्ट लिखा गया है -

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहणीयाच्छुल्कमण्वपि।

गृहणच्छल्कं हि लोभेन स्यान्नेडपत्य विक्रयी।

बुद्धिमान कन्या को चाहिए कि वह कन्या के विवाह में थोड़ा सा भी शुल्क व धन न ले, लोभ में आकर शुल्क लेनें प रवह मनुष्य सन्तान को बेचने वाला कहलाता है।[5]

राजा राम मोहन राय के अनुसार बाल-विवाह के कई दुष्परिणाम निकले। बाल विवाह से स्त्रियों की शिक्षा में बाध आयी जिससे उनकी शिक्षा का स्तर निम्न होता गया। बाल विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। सनतानोंत्पत्ति के समय होने वाली मृत्यु से सित्रियों की मृत्यु दर बढ़ने लगी। उनके अनुसार बाल-विवाह से न केवल माँ के स्वास्थ पर वरन् शिशु के स्वास्थ पर भी बुरा प्रभाव पड़ता था।[6] राजाराम मोहन राय के अनुसार बाल-विवाह हिन्दू समाज की एक बुराई है, जिससे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक नुकसान होता है। इस प्रथा को समाप्त करनें के लिए उनके मित्र ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नें अथक प्रयास किया। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरुप 1860 ई. में बाल-विवाह के विरुद्ध एक ऐक्ट पारित हुआ, जिसके अनुसार विवाह की आयु 12 वर्ष कर दी गयी। बाल-विवाह

के हानिकारक प्रभाव को देखते हुए इस प्रथा के विरुद्ध 1929 ई. में एक निर्णयक कदम उठाया गया। इस वर्ष पारित किये गये "चाइल्ड मैरिज ऐक्ट" में विवाह की आयु लड़कियों के लिए 14 वर्ष तथा लड़कों के लिए 18 वर्ष कर दी गयी। पुन: बाल-विवाह निराधक संशोधित अधिनियम 1978 ई. में लागू हुआ, जिसके अनुसार विवाह की आशु लड़को और लड़कियों के लिए 23 वर्ष तथा 18 वर्ष कर दी गयी।[7]

राजा राम मोहन राय नें बहु विवाह जैसी प्रथा को सती की संख्या में वृद्धि का कारण बताते हुये बहु विवाह के खण्डन के लिए आधार प्रसतुत किया जिसके अनुसार व्यवहारिक रुप से इसे अनुचित माना जाए। राजा राम मोहन राय नें धार्मिक आधार पर इसका खण्डन करते हुये कहा कि यह प्रथा हमारे प्रचीन विधि वेत्तओं द्वारा लिखित नियमों के यर्वथा विपरीत है। उन्होनें हिन्दू धर्म ग्रन्थों का संदर्भ देते हुए कहा कि किसी व्यक्ति को एक पत्नी के जीवीत रहते दूसरा विवाह करनें की अनुमति विशेष परिस्थिति में मिलनीं चाहिए। राता राम मोहन राय ने कहा कि बहु विवाह की प्रथा के परिणाम समाज व परिवार के लिए भयानक थे। इस प्रथा का अन्त कानून बनाकर हीं और विवाह की आयु निर्धारित करके हीं किया जा सकता है। राजा राम मोहन राय नें अपनी आत्मकथा में नोट लिखा है कि "बाल विवाह के संबंध में ग्रहम्ण के साथ मेरे अनवरत विवाद ने तथा अन्य घृणित रीति रिवाजों में मेरे हस्तक्षेप नें मुझे नई चेतना प्रदान की।[8]

सती प्रथा का अन्त

19वीं सदी में भारत में सती प्रथा जैसी अमानुशिक बुराई का प्रचलन था। सती प्रथा का अर्थ है यह प्रथा मृत पति के साथ विधवा पत्नी को चिता पर जलने की प्रथा। यह प्रथा इस देश में प्राचीन काल से चली आ रही थी। उदाहरण के तौर पर अपनें बड़े भाई की पत्नी को सती होते हुए देखा था। समाज सुधार के लिए राम मोहन ने जो आंदोलन छेड़ा उसमें सबसे महत्वपूर्ण ओर सफल आन्दोलन "सती प्रथा" के विरुद्ध संर्घष था, जो राम मोहन राय के नाम के साथ सर्वदा जुड़ा रहेगा। इस घटना नें राम मोहन राय तथा उनके सहयोगियों को इस प्रथा के विरुद्ध अपना आन्दोलन प्रारंभ करनें के लिए प्रेरित किया इन्होंनें सरकार के पास इस प्रथा के विरुद्ध आवेदन पत्र हीं नहीं भेजा बल्कि लेखों पुस्तिकायें और सामाचार पत्रों के माध्यम से आक्रमण कर दिया। इसके अलावा बंगाल गजट तथा अपनी पत्रिका "संवाद कौमुदी" के पृष्ठों को इस सन्दर्भ के हथियार के रुप में प्रयोग किया।[9]

सती प्रथा के विरोध में लिखी गयी अपनी पुस्तिका में राम मोहन नें शास्त्रों और स्मृति ग्रन्थों से उद्धरण देकर प्रमाणित किया कि सती-प्रथा के पीछे कोई शास्त्रीय या धार्मिक अनुमोदन नहीं है। उन्होंने मनुस्मृति, ऋग्वेद, गीता, स्मृति, पुराण आदि से सती-प्रथा के विरुद्ध सन्दर्भ खोज निकाला। राम मोहन की पैनी नजर ने भारतीय नारी की दुर्दशा का कारण खोज हीं लिया।[10] राजा राम मोहन राय नें सती प्रथा को बढ़ावा देनें वाले कारणों को बहुत निकट से खोजनें का प्रयास किया। राजा राम मोहन राय नें समाजिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए यह बतानें का पुरा प्रयास किया कि सती प्रथा के प्रचलन को बढ़ावा देनें में नारी के संपत्ति के अधिकारों का अपहरण हीं मूल कारण है। इसके साथ वैदिक सामाजिक का कोई संबंध नहीं है।[11]

लॉर्ड विलियम बेंटिक ने राम मोहन की सलाह पर 4 दिसम्बर 1929 ई. को सती प्रथा के उनमूलन का कानून पारित किया। कानून में कहा गया कि जो लोग विधवा को बल पूर्वक जलायेगें "उन्हें प्राण दण्ड दिया जा सकता है। कुछ समय बाद मद्रास एवं बम्बई में भी कानून पास कर दिया गया। राम मोहन नें कट्टर पंथी हिन्दूओं के विरोध को देखते हुए बेंटिक साहब को अपने निर्णय पर डटे रहनें की सलाह दी। रुढ़िवादी कट्टर पंथियों नें इंगलैंड के प्रिवी काउंसिल में सती प्रथा विरोध कानून के पक्ष में तर्क रखने के लिए गये तथा पार्लियामेंट में रहकर कानून का समर्थन करते रहे।[11] जुलाई 1832 ई. व्रिवी काउंसिल नें रुढ़िवादी हिनदुओं द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया और सती प्रथा विरोधी कानून लार्ड विलियम बैटिक द्वारा भारत में लागू हुआ।[12]

विधवा पूर्नविवाह का समर्थन

कानून रुप से 1856 ई. के पूर्व विधवाओं को न तो पूनर्विवाह की स्वीकृति थी और न ही पति की संपत्ति में उन्हें कोई अधिकार प्राप्त था। यह एक बहुत बड़ी समस्या हिन्दू समाज के सामने थी। कई विधवाये तो अपमान न सहनें की स्थिति में मुसलमान बन गई या ईसाई बनीं। राजा राम मोहन राय नें इस समस्या पर सरकार का ध्यान खीचा। उन्हीं के प्रयास से 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह

का कानून बना। राजा राम मोहन राय नें अपनीं पुस्तक "नारी अधिकार संबंधी" में स्पष्ट लिखा है, कि आधुनिक कानून के अनुसार विधवा मताओं और सौतेली माताओं दोनों को हीं पति की संपत्ति के बंटवारे में निराश्रय करार दिया गया है। विधवाओं के संतत्ति के अधिकार के बारे में जनता को कुछ भी ज्ञान हीं है। इसी कानून का सहारा लेकर हिन्दूओं में बहु विवाह की प्रति चली क्योंकि पुरुश को पता था कि उन्हे अपनी संपत्ति का भाग नहीं देना होगा।

"आत्मीय सभा" में विधवा पुनविवाह के बरे में विचार होता रहा। राम मोहन के मुख्य विषय राचन्द्रबागीश ने विधवा विवाह की जोरदार वकालत की थी, आगे चलकर इसी ब्रह्म समाज के सदस्य विद्यासागर ने विधवा विवाह को समाजिक मान्यता दिलाने में सफलता प्राप्त की।[13]

महिलाओं की शिक्षा पर बल

राजा राम मोहन राय की शिक्षा के प्रति गहरि रुचि थी। नि:संदेह भारत का भावी इतिहास राम मोहन के दूरदश्रिता को हीं प्रदर्षित करता है। राजा राम मोहन राय की यह विशेषता रही है कि ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में उन्होनें अपने मस्तिष्क पर किन्हीं पूर्वाग्रहों का हानी नहीं हावी नहीं होनें दिया। प्राचीन भारतीय दर्शन ओकर धर्म में निहित ज्ञान के अमर कोश के प्रति उनकी श्रद्धा कम नहीं थी अपनी उपर्युक्त मान्यताओं और शिखाओं द्वारा राम मोहन राय पूर्व और आधुनिक पश्चिम की दीवार को गिराने और सुवर्ण हिन्दुओं के बीच यूरोपीय विचारों और मानएड़ो को लाने का प्रयास किया।

राजा राम मोहन राय पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के पक्षपाती होनें पर भी भारतीय संस्कृति और गौरव ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन के प्रति पूर्ण सजग थे और इसी उद्देश्य के लिए उन्होनें वेदान्त कॉलेज की स्थापना की, अंग्रजी शिक्षा पर बल देते हुये भी उन्होनें संस्कृत की आवश्यकता का निरस्कार नहीं किया। उनका विचार था, कि देश की वास्तविक उन्नति के लिए विश्व से संबंध स्थापित करके कदम से कदम मिलाकर चलना पडेगा। राम मोहन राय चाहते थे कि भारत में प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क एवं अनिवार्य हो। नारी शिक्षा के वे जबरदस्त समर्थक थे, लेकिन इस दिशा में किसी संस्था की स्थापना हेतु वे कोई ठोस कदम न उठा सके। नारियों को शिक्षा दिये जाने का विचार सर्वप्रथम ब्रिटिश काल में राम मोहन राय की पहल पर प्रारंभ हुआ, जिससे सामाजिक परिवर्त्तन को बल मिलां उसके बाद अनेक संस्थाओं के द्वारा नारी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया गया।

निष्कर्ष

राजा राम मोहन राय को सत्य ही नवयुग का निर्माता कहा गया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान मोनियर विलियम्स के अनुसार, "राजा राम मोहन राय तुलनात्मक धर्मी के विद्वान का संसार में पहला महान अनवेशक था।"[14] महाकवि रवीनद्र नाथ टैगोर के अनुसार, राजा राम मोहन राय नें भारत में आधुनिक युग का सुत्रपात किया। उनको भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण का पिता तथा भारतीय राष्ट्रवाद का अग्रदूत कहा गया है क्योंकि उन्होनें सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों द्वारा राजनीतिक जाग्रति के लिए मार्ग तैयार हुआ। राजा राम मोहन राय की विचार धारा पर प्रकाश डालते हुये सतीश चन्द्र चक्रवर्ती नें कहा कि राम मोहन का विचार था कि उनका समाज एक नये सम्प्रदाय का भावी आधार नहीं बनेगा, वल्कि सभी वर्गो के लोगों द्वारा एक ईश्वर की सम्मिलित पूजा के माध्यम से समस्त भारत को एक कड़ी में बांधेगा।

1. शुक्रनीतिसार उद्धत: राम देव जी, भारत वर्ष का इति0 द्वितीय खण्ड़, प्रकाशन वर्ष 1927 पृष्ठ 113
2. राजा राम मोहन राय द्वारा द्विषत जन्म वार्षिक समारोह। समिति विहार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "राजा राम मोहन राय को इन्दिरा गाँधी की श्रद्धांजलि।"
3. टान्सलेशन ऑफ द मुण्डकापनिशद भूमिका कलकक्रा 1819 ई.
4. राजा राम मोहन राय का लेख: मार्डन एन डाचमेण्ट आन द एशेन्ट राइट्स ऑफ फीमेल पृष्ठ 7, 1822 ई. कलकत्ता
5. मनुस्मृति: अश्याय 3 श्लोक संख्या 51, पृष्ठ 74
6. मनुस्मृति: पूर्वोक्त 3 श्लोक 5। पृष्ठ 75
7. दैनिक हिन्दुस्तान: लखनऊ 18 जुलाई 1982 पृष्ठ 1

8. मजूमदार जे0के0: राजा राम मोहन राय एण्ड प्रोगेसिव मूवमेण्ट पृष्ठ 42
9. राजा राम मोहन राय इंगलिश वर्क्स 1822 ई. प्रथम भाग पृष्ठ 4
10. दत्त कार्तिक चन्द्र: राजा राम मोहन राय, जीवन दर्शन पृष्ठ 265
11. मजूमदार: राजा राम मोहन राय, एण्ड प्रोगेसिव मूवमेण्ट पृष्ठ 45
12. मुखजी रवीन्द्रनाथ: भारत में सामाजिक परिवर्तन पृष्ठ 252
13. मजूमदार: राजा राम मोहन राय एण्ड प्रोगेसिव मूवमूण्ट पृष्ठ 42
14. दत्त के. सी.: राम मोहन राय का जीवन दर्शन इलाहाबाद लोक भारतीय प्रकाशन 1999, पृष्ठ 259
15. नेहरु, जवाहर लाल: डिस्कवरी ऑफ इंडिया पृष्ठ 372-73

दलित महिलाओं की परिस्थिति पर मनरेगा का प्रभाव मध्य प्रदेश के गांवों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ० पवन कुमार मिश्र

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-226007

सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम के अधीन चलाए जा रहे कार्यक्रमों का दलित महिलाओं की प्रस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। आजाद भारत के इतिहास में मनरेगा वह पहला कार्यक्रम है जो न्यूनतम 100 दिनों के रोजगार की गारंटी देता है। चूंकि मनरेगा में अनुसूचित जातियों और महिलाओं को प्राथमिकता देने की बात कही गई है। अत: प्रस्तुत प्रपत्र यह भी विश्लेषित करने का प्रयास करता है कि मनरेगा के द्वारा दलित महिलाओं की रोजमर्रा की जिंदगी में किस तरह के बदलाव आए हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनुसूचित जातियां और महिलाएं, दोनों ही हमेशा वंचित रहे हैं। अत: अनुसूचित जाति की महिला पर विकास के कार्यक्रम के प्रभावों को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत प्रपत्र इस संबंध में एक सूक्ष्म स्तरीय विश्लेषण है।

मुख्य शब्द: मनरेगा, दलित जाति, दलित जाति की महिलाएं।

'दलित' शब्द की अवधारणा

व्यापक अर्थों में दलित शब्द का प्रयोग समाज के अति पिछड़े एवं निचले पायदान पर खड़े लोगों के लिए किया जाता है। अत: कई बार अनुसूचित जनजाति, महिलाएं तथा कभी-कभी अल्पसंख्यकों को भी दलितों की श्रेणी में रख लिया जाता है। दलित शब्द में कई बार गरीब लोगों को भी रखा जाता है। लेकिन लोकप्रिय सामाजिक-राजनैतिक अर्थों में दलित शब्द का प्रयोग "अनुसूचित जातियों" के लिए किया जाता है।

विवेक कुमार (2005, 2010) ने दलित कही जाने वाली जातियों को एक ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया है जिनकी विशेषताएं हैं– हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में अद्वितीय संरचनात्मक स्थिति, अपने संरचनात्मक स्थिति के कारण पहले से चले आ रहे सामाजिक बहिष्करण का दुष्परिणाम भुगतना, सामाजिक बहिष्करण का दीर्घ इतिहास, जाति आधारित सामाजिक प्रस्थिति जिसका कोई विकल्प नहीं है तथा अपने ऐतिहासिक सामाजिक बहिष्करण के कारण चेतना का निर्माण।

जाति व्यवस्था में पाई जाने वाली असमानता अपनी चरम सीमा को पृथक जातियों के विकास में प्रदर्शित करती है जिन्हें 'अस्पृश्य' जातियां कहा जाता है। इन जातियों को अधिकत: सामाजिक व सांस्कारिक अशुद्धि से परिपूर्ण माना जाता था तथा उनके धन्धे निम्नतम माने जाते थे। 1935 में 'अनुसूचित' बनने से पूर्व इन जातियों को 'बाह्य' जातियां, पतित जातियां, भग्न व्यक्ति तथा विजातीय कहा जाता था। 'अनूसूचित जाति' शब्द का प्रयोग सबसे पहले साइमन कमीशन ने 1928 में किया। आगे चलकर इसकी परिभाषा 1935 के भारत सरकार अधिनियम में दी गई। इस परिभाषा के आधार पर समकालीन भारत में कुल 1038 जातियां अनुसूचित जातियां मानी जाती हैं। आज ये भारत की आबादी में 2011 की जनगणना में करीब 16% हैं। दलित शब्दावली का

सर्वप्रथम प्रयोग पत्रकारिता की भाषा के रूप में 1931 के आसपास अस्पृश्य जातियों के लिए किया गया तथापि यह 1971 के बाद ही खुलकर ही प्रचलन में आया जब महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स ने इसे लोकप्रिय बनाया।

दलित स्त्रियां

प्राचीनकाल से अनुसूचित जातियां भारतीय समाज के निम्न स्तर पर रही है। हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्न रही है। दलित महिलाएं भी इसका अपवाद नहीं है। दलित स्त्रियों पर अत्याचार और शोषण शुरू से होता रहा है और कन्याओं को बोझ व पराया समझा जाता रहा है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जोगदंड (1995) के अनुसार दलित महिलाओं का वर्ग, महिला वर्ग से भी पृथक विशेष समस्याओं वाला वर्ग है। जोगदंड ने लिखा है कि दलित महिलाएं भारतीय समाज के निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व करती हैं। उन्हें सामाजिक धरातल पर दोहरे मापदण्ड का सामना करना पड़ता है। दलित होने के कारण उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सीमांतता का शिकार होना पड़ता है तथा महिला होने के कारण लिंग आधारित असमानता को भी चुनौती के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं भोजन, ईंधन एवं पानी प्राप्त करने हेतु उन्हें कठिन संघर्ष करना पड़ता है।

ए. एन. जाधव ने अपने लेख 'दलित एमंग दलितस्: सिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड सिड्यूल्ड ट्राइब वुमन' में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की स्त्रियों की स्थिति का महाराष्ट्र में जायजा लिया और बताया कि जहां शिक्षा में इन स्त्रियों की भागीदारी कम है वहीं काम में भागीदारी अधिक है। 1981 की जनगणना के अनुसार सवर्ण स्त्रियों की उत्पादन के काम में भागीदारी 21. 88 प्रतिशत थी। जबकि अनुसूचित जाति (अ.जा.) में यह 29.08 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति (अ.ज.जा) में यह 38.78 प्रतिशत थी। यह भागीदारी सर्वाधिक मध्य महाराष्ट्र में थी। जाधव ने बताया कि अत्यधिक अ.जा.; अ.ज.जा. की स्त्रियां खेती तथा कृषि से जुड़े धंधें में काम करती है। इसका अर्थ है, उन्हें शिक्षा के अभाव में अन्य क्षेत्रों में काम नहीं मिलता। इस प्रकार राज्य के विभिन्न जिलों तथा जातियों के बीच काम की दर में भेद है। गरीबी की वजह से अ.जा. और अ.ज.जा. की स्त्रियों को धनी सवर्ण स्त्रियों के घरों में काम करना पड़ता है जबकि बहुत कम सवर्ण स्त्रियां अपने घर के बाहर काम करने जाती हैं। अशिक्षा की वजह से ये स्त्रियां शारीरिक श्रम ही करती हैं। घर और कृषि के अलावा ये फैक्टरियों में भी काम करती हैं। निर्माण के क्षेत्र में भी ये स्त्रियां सक्रिय हैं। परन्तु इनको न तो पुरुषों के बराबर मजदूरी मिलती है और न ही इनको रोजगार मिलता है। मौसम (सीजन) के अनुसार इनके श्रम की मांग घटती बढ़ती रहती है। न्यूनतम मजदूरी भी इनको नहीं दी जाती। पुरुषों से इनको कम मजदूरी मिलती है परंतु ये पुरुषों से ज्यादा लंबे समय तक काम करते हैं। नवजात शिशुओं की मांओं को अकसर काम पर नहीं लिया जाता या फिर जमींदार उनको बच्चे को दूध पिलाने की छुट्टी नहीं देते। स्वरोजगार वाली स्त्रियों को अपना सामान बेचने की समस्या रहती है। कच्चा माल तथा पूंजी (ऋण) पाना भी समस्या होती है। 90 प्रतिशत अ.जा., अ.ज.जा. स्त्रियों को अपनी आवश्यकता से कम पोषण मिलता है। इन स्त्रियों का बाहर भी यौन शोषण होता है तथा घर में भी इनके साथ हिंसा होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आम दलित और आदिवासी स्त्री को अपने आर्थिक, सामाजिक तथा यौन शोषण से निजात नहीं मिलती है।

सामान्यत: अनुसूचित जातियों के परिवारों में स्त्रियों को घर से बाहर कार्य करने को अनुचित नहीं माना जाता था परन्तु बेहतर आर्थिक स्थिति वाले स्त्रियों के बाहर काम करने को सम्मानपूर्ण नहीं समझते थे परन्तु बदले हुए परिवेश के साथ यह भ्रम समाप्त हुआ है। पुरुष वर्ग भी स्त्रियों के प्रति भेदभाव की भावना के प्रति अपनी सोच को बदलने की कोशिश कर रहा है जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया है। दलित स्त्रियों के व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण के संदर्भ में यह परिलक्षित होता है कि पुरुष घर की महिला को अपने पैरों पर खड़ा होने को प्रेरित करते हैं। इसमें महिला सशक्तिकरण का विशेष योगदान है। आज के दौर में दलित स्त्रियां समाज पर बोझ नहीं बनना चाहती हैं।

दलितों को जागरुक करने के लिए सरकार ने अनेक कल्याणकारी योजनाओं का शुभारम्भ किया है जिससे बहुत हद तक दलित वर्गों का विकास एवं उत्थान हुआ है लेकिन इसकी गति काफी धीमी रही है। नवीन योजनाओं द्वारा दलित महिलाओं को समाज में नवीन जीवन अवश्य प्राप्त हुआ है लेकिन इन कार्यक्रमों ने विशेष रूप से उच्च वर्गों को ही प्रभावित किया है। अभी उनका विकास नहीं हो पाया है। वह आज भी पारम्परिक जीवन जीने को मजबूर हैं हालांकि सरकार इनको जागरुक करने तथा सुविधाएं प्रदान करने के लिए अनेक कदम उठा रही है लेकिन इसका कितना प्रभाव दलित महिलाओं पर पड़ता है तथा वह इससे कितना प्रभावित होती है, यह ज्ञात करने के लिए सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जिसका परिणाम है कि दलित स्त्रियां आज भी

जागरुक नहीं हो पाई है तथा वह आज भी समाज में पिछड़ी हुई है। सरकार और समाज दोनों के द्वारा महिला सशक्तिकरण की बहुत सी कोशिशें की जा रही हैं जिनको महिला सशक्तिकरण का नाम दिया जा रहा है। सशक्तिकरण के यह प्रयास समस्त महिलाएं विशेष रूप से दलित महिलाओं के लिए भी केन्द्रित हैं।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम : एक संक्षिप्त परिचय

भारत के ग्रामीण लोगों को रोजगार प्रदान करने व गाँवों में स्थानीय स्तर पर आधारभूत ढांचे के निर्माण के द्वारा भारत के पुर्ननिर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक वैधनिक स्वरूप एवं अधिकार आधारित दृष्टिकोण के साथ मनरेगा को अधिसूचित किया गया था। यह देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का एक अधिकार आधारित कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य ऐसे प्रत्येक परिवार, जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करना चाहते हैं, उन्हें एक वर्ष में कम-से-कम 100 दिनों की गारंटीशुदा मजदूरी रोजगार उपलब्ध कराते हुए आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना (मनरेगा) - 7 सितम्बर 2005 को पारित ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम के तहत 2 फरवरी 2006 को तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापल्ली नामक स्थान से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना (नरेगा) को 200 पिछड़े जिलों में लागू किया गया। इस योजना में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना तथा काम के बदले अनाज योजनाओं को इसमें समाहित कर लिया गया। 1 अप्रैल 2008 से यह योजना देश के सभी जिलों में लागू कर दी गई। 12 अक्टूबर 2009 को इसका नाम परिवर्तित करके 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम' (मनरेगा) कर दिया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करना चाहते हैं, एक वित्तीय वर्ष में 100 दिन का सुनिश्चित रोजगार प्रदान करके, ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को जीविकोपार्जन सुरक्षा में बढ़ोतरी करना है। इसके अतिरिक्त इसका लक्ष्य मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के माध्यम से सूखे, वनों के कम होने और भू क्षरण के कारणों का निवारण करते हुए ग्रामीण अधेसंरचना को विकसित करना था। गांवों में स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करना तथा पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से सृदृढ़ बनाना भी इसके लक्ष्यों में सम्मिलित है। भारत में पहली बार काम के अधिकार "मनरेगा" को वैधनिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के उद्देश्य

इस अधिनियम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. ग्रामीण भारत में निवास करने वाले सबसे ज्यादा गरीब लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान कर सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना।
2. गाँवों में दीर्घकालीन आधारभूत संरचना के विकास, जल सुरक्षा, भूमि की उत्पादकता को बढ़ाना, भू- सुरक्षा, सूखा प्रभावित इलाकों का विकास करना इत्यादि।
3. यह अधिकार आधारित विधयन द्वारा गाँवों में रहने वाले वंचित समूहों विशेषकर-महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों को सहायता प्रदान कर उन्हें सशक्त करना।
4. इस योजना के क्रियान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका को बढ़ाकर, उन्हें मजबूती प्रदान कर लोकतंत्र को समावेशी व सशक्त बनाना।
5. भारत में व्याप्त लिंग भेद को दूर करने के लिए इस योजना के द्वारा रोजगार की गारंटी में महिलाओं को प्राथमिकता प्रदान कर उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत करने की कोशिश करना।

भारत में स्वाधीनता के पश्चात ग्रामीण विकास और रोजगार देने संबंधी समस्त कार्यक्रमें में मनरेगा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। एक समन्वित कार्यक्रम के रूप में यह प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन तथा उनके द्वारा सृजित रोजगार के मध्य समन्वय भी स्थापित करता है। यह एक ऐसा अधिनियम है जिसकी दिशा नीचे से ऊपर है और यह एक जनकेंद्रित, मांग आधारित, स्वयं चयनित अधिकार प्राप्त कानून है। यह मांग आधारित ऐसी योजना है जिसके तहत प्रत्येक राज्य से रोजगार की मांग के आधार पर केंद्र से राज्यों को आर्थिक संसाधनों का वितरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह उन राज्यों को विशेष रियायत देता है, जो गरीबों के रोजगार की मांग को पूरा करने की दृष्टि से ज्यादा अच्छा काय सम्पादित करते हैं। यह महिलाओं और वंचित वर्गों पर ध्यान केन्द्रित कर उनके आर्थिक सशक्तीकरण में सहायता करता है।

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के प्रावधान

इस अधिनियम से हर ग्रामीण परिवार को सरकार से सौ दिन का काम मांगने का अधिकार मिल गया है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं -

1. इस अधिनियम के तहत ग्रामीण परिवार का कोई भी वयस्क सदस्य, जो अकुशल कार्य करना चाहता हो, वह इसके लिए स्थानीय ग्राम पंचायत में अपना पंजीयन करा सकता है।
2. इस कानून के तहत प्रत्येक ग्रामीण परिवार एक साल में 100 दिन कार्य करने का अधिकारी होता है।
3. निवास स्थान, कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति की उम्र की समुचित जांच के बाद एक जॉब कार्ड दिया जाता है, जिसपर उसका फोटो लगा रहता है। जॉब कार्ड कार्य की मांग का एक पहचान पत्र होता है। इसे आवेदन के 15 दिनों के अंदर जारी किया जाता है।
4. प्रत्येक जॉब कार्ड की अपनी अलग पहचान संख्या होती है। इसी जॉब कार्ड के आधार पर गाँव या ब्लाक स्तर पर कार्य करने की मांग की जाती है और हर दिन कार्य के बाद तथा कार्य की मजदूरी मिलने के बाद उस कार्ड को अपडेट किया जाता है।
5. कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति को एक लिखित आवेदन, जिसमें कार्य का स्थान, समय और कार्याविधि का वर्णन हो, गाँव या ब्लाक स्तर पर जमा किया जाता है। इसके पश्चात ग्राम पंचायत उस आवेदन के आधार पर 15 दिनों के अंदर आवेदन करने वाले व्यक्ति को जॉब की रसीद जारी करती है।
6. यदि किसी स्थिति में जॉब की मांग करने वाले व्यक्ति को 15 दिन के अदंर कार्य नहीं मिल पाए तो उसे राज्य द्वारा बेरोजगारी भत्ता दिया जाता है।
7. जॉब का आवंटन करते समय कुछ स्थितियों जैसे–कार्य की मांग करने वाले व्यक्ति को उसके निवास स्थान से पांच किलोमीटर की परिधि में वह कार्य प्रदान कराना होगा, अगर कार्य पांच किलोमीटर की परिधि से बाहर मिलता हो तो उस स्थिति में परिवहन व आवास व्यय के रूप में 10 प्रतिशत की अतिरिक्त मजदूरी प्रदान की जाएगी।
8. मनरेगा के तहत कार्य प्रदान करने में महिलाओं को वरीयता प्रदान की जाएगी।
9. मजदूरी का भुगतान साप्ताहिक आधार पर किया जाता है। किसी भी कार्य के लिए अधिकतम 15 दिन के भीतर मजदूरी का भुगतान करना अनिवार्य है। मजदूरी का भुगतान मेट की ओर से तैयार की गई मस्टर रोल के हिसाब से किया जाता है, तथा इसके लिए जॉब कार्डधरी का पोस्ट ऑफिस अथवा बैंक में खाता खोला जाता है।
10. मनरेगा अधिनियम में केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार की जिम्मेदारी अलग-अलग तय की गई है। इस योजना में होने वाले खर्च में कुल मिलाकर 90 प्रतिशत केंद्र सरकार देगी और शेष 10 प्रतिशत धन राज्य सरकार लगाएगी।
11. कार्यस्थल पर मजदूरों के लिए अनेक सुविधाएं देने का प्रावधान है। जैसे–कार्यस्थल पर मजदूरों को पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य, आराम के लिए शेल्टर का निर्माण करना आदि।
12. कार्यस्थल पर बच्चों वाली महिलाओं के बच्चों के लिए पालना आदि की भी व्यवस्था की गई है। यदि कार्यस्थल पर महिलाएं अपने साथ छह वर्ष से कम आयु के बच्चे लेकर आती हैं और उनकी संख्या पांच या अधिक हो तो एक महिला बच्चों की देखभाल (अस्थायी क्रेच) में रहेगी और उसे पूरी मजदूरी मिलेगी।
13. सभी प्रकार के रिकॉर्ड और अन्य कागजातों की जांच का कार्य ग्राम सभा के माध्यम से वस्तुत: गाँव के लोगों द्वारा किया जाता है।

मनरेगा ने ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में जेंडर समानता और सशक्तिकरण को महत्व देते हुए इसे अपनी परिकल्पना में सम्मिलित किया है। इस अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न प्रावधानों और दिशा-निर्देशों का लक्ष्य महिलाओं को समान काम और उस काम तक सरल पहुंच, अनुकूल कार्य परिस्थितियां, समान वेतन और निर्णय-निर्माण में उनका प्रतिनिधित्व आदि को शामिल किया गया है।

मनरेगा और दलित महिलाएं : कुछ अध्ययन

ग्रामीण विकास मंत्रालय (2012) के अनुसार 47% राष्ट्रीय भागीदारी दर के साथ आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि मनरेगा योजना में महिलाओं की भागीदारी अन्य योजनाओं की तुलना में अधिक सक्रिय है। शोध अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि मनरेगा महिलाओं के लिए काम का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है जो अन्यथा बेरोजगार अथवा कम रोजगार में लगी रहती थीं।

आँकड़ों द्वारा यह भी स्पष्ट होता है कि मनरेगा के कारण प्रदत्त काम तक पहुंच बढ़ गई है और इससे महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर और उनके सामान्य कल्याण पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। 6 राज्यों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार 82% विधवाओं ने मनरेगा को आय का महत्वपूर्ण स्रोत माना और कुल निदर्शन की 69% महिलाओं ने कहा कि मनरेगा ने उनको भूख से बचाया है। इसके अलावा एक अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि मनरेगा के बाद महिलाओं का अपनी मजदूरी पर अधिक नियंत्रण हो गया है और वे उन्हें अपने छोटे ऋणों को चुकाने, बच्चों के स्कूल की फीस चुकाने व स्वास्थ्य संबंधी खर्चों पर खर्च कर रही हैं।

धीरजा एवं राव (2010) का अध्ययन यह भी संकेत करता है कि महात्मा गांधी नरेगा से प्राप्त मजदूरी को लेने और खर्च करने में महिलाओं ने स्वतंत्रता दिखाई है जोकि परिवार में उनकी बेहतर निर्णय निर्माण क्षमता का संकेत करता है। आंध्र प्रदेश के 5 जिलों में जब 600 महिला श्रमिकों का साक्षात्कार लिया गया, यह पाया गया कि उत्तर देने वाली लगभग 47 प्रतिशत महिलाएं अपनी मजदूरी स्वयं लेती हैं, 50 प्रतिशत अपनी मजदूरी अपने पति के साथ लेती हैं और लगभग 4 प्रतिशत महिलाएं अपने पति को मजदूरी दे देती हैं। इसी अध्ययन में राजस्थान में उत्तर देने वाली 600 महिलाओं में लगभग 91 प्रतिशत अपनी मजदूी स्वयं लेती थीं और अन्य 4 प्रतिशत अपने पति के साथ मजदूरी लेती थीं। अन्य राज्यों, जिसमें बिहार और छत्तीसगढ़ शामिल है, में भी इसी तरह का रूझान दिखाई देता है।

धीरजा एवं राव (वही) का यह अध्ययन 27 राज्यों के 102 जिलों में जेंडर मुजफ्फरपुर पर महात्मा गांधी नरेगा के प्रभावों से संबंधित है। इस अध्ययन में यह बताया गया है कि महात्मा गांधी नरेगा के बाद महिलाओं के पक्ष में जेंडर संबंध विकसित हुए हैं। महात्मा गांधी नरेगा के तहत महिलाओं की भागीदारी से उनमें आत्म सम्मान, आत्म बल और आत्मविश्वास बढ़ा है। एसएचजी (सेल्फ हैल्प ग्रुप) ने सदस्यों के बीच जेंडर में बदलाव के लिए योगदान किया है और महात्मा गांधी नरेगा ने इन बदलावों को मजबूत आधार दिया है। महात्मा गांधी नरेगा लागू होने के बाद महिलाओं में पारिवारिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आयामों वाला जेंडर रिलेशन इंडेक्स बढ़ा है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि नेतृत्व प्रतिबद्धता से इतर राज्य स्तरीय राजनीति का महात्मा गांधी नरेगा के क्रियान्वयन पर न्यूनतम प्रभाव रहा है। इसके विपरीत ज़िले, प्रखंड और जीपी प्रशासनिक और संगठनात्मक क्षमता ही इतनी मजबूत है जिससे इसकी सफलता सुनिश्चित लगती है। तमिलनाडु में महात्मा गांधी नरेगा का अनुकूल प्रदर्शन मुख्य रूप से प्रभावी प्रशासनिक क्षमता के कारण संभव हुआ है। तमिलनाडु में शीर्ष से निचले क्रम तक के क्रियान्वयन की तुलना में उत्तर प्रदेश ने ग्राम पंचायत स्तर पर कर्मचारियों को अहम जिम्मेदारी सौंपी है। अध्ययन में यह भी बताया गया है कि तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में महात्मा गांधी नरेगा लागू करने की बाधाओं में कर्मचारियों के बीच बेरोजगारी भत्ता वितरित करने की राज्यों की अरुचि और महात्मा गांधी नरेगा की लोक निर्माण कार्य परियोजनाओं के जरिये तैयार की गई संपत्तियों की उत्पादनशीलता पर सवालिया निशान शामिल हैं।

इसके अलावा तमिलनाडु में महात्मा गांधी नरेगा के तहत महिलाओं की उच्च भागीदारी मुख्य रूप से सांस्कृतिक कारणों, प्रभावी राज्य और स्थानीय संस्थाओं, एसएचजी और निजी क्षेत्र में मजदूरी के अत्यधिक अंतर के आकर्षण से संभव हुई है। इसक विपरीत उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से जाति और धर्म के कारण निम्न भागीदारी रही है।

बाबू, वी.एस. एवं राव (2010) का अध्ययन मनरेगा का अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर पड़ने वाले प्रभावों से संबंधित है। यह अध्ययन त्रिपुरा, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मिजोरम, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में किया गया था। इसमें लाभार्थियों के मध्य जागरूकता का स्तर भी एक पक्ष था। यह पाया गया कि इस परियोजना के संचालन में इससे जुड़ी जागरूकता का अभाव एक महत्वपूर्ण तथ्य है। इसके अलावा इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि मनरेगा की वजह से मिलने वाली मजदूरी ने महिलाओं में आत्मविश्वास को बढ़ाया है।

मध्य प्रदेश में किए गए होम्स और सदाना (2011) के अध्ययन में गुणवत्ता और मात्रत्मक शोध के परिणाम दर्शाए गए हैं। इसमें उस पहल को विस्तार दिया गया है जिसमें महात्मा गांधी नरेगा गरीबी उन्मूलन और विकास प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी का समर्थन करने के लिए लोक निर्माण के कार्यक्रमों तक जेंडर-विशेष की पहुंच सुनिश्चित करता है। इसके नतीजे बताते हैं कि महात्मा गांधी नरेगा में महिलाओं को रोजगार मिलने से कुछ महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है और कुछ परिवारों में उनकी नीति निर्धारण क्षमता थोड़ी बढ़ी है। यह नीति निर्धारण ज्यादातर मामलों में परिवार में खपत के लिए खाद्यान्नों की खरीद से संबंधित है। अन्य मामलों में महात्मा गांधी नरेगा का पारिवारिक मुजफ्फरपुर पर कोई प्रभाव नहीं देखा गया है।

हालाँकि इस योजना से रोजगार बढ़ा हैं और महिलाओं की मजदूरी बढ़ी है लेकिन रोजगार दिवसों की कुल संख्या और मजदूरी के वास्तविक प्रावधान पर गहरी नजर डाली जाए तो कहीं ज्यादा असमान तस्वीर उभरती है। महात्मा गांधी का मौजूदा डिजाइन, हालाँकि इसमें विभिन्न जेंडर संवेदी पहल की गई है, उन विभिन्न स्तरों पर समग्र रूप से कारगर नहीं है जिनमें महिलाओं की गरीबी और असुरक्षा के मुद्दे शामिल हैं। नतीजन इसके प्रभाव खराब क्रियान्वयन की कटुता के कारण जेंडर संवेदी डिजाइन में अंतर के साथ घालमेल हो गए हैं। अध्ययन बताता है कि जेंडर असमानता की कटुता दूर करने के लिए महात्मा गांधी नरेगा के डिजाइन और क्रियान्वयन को मजबूत बनाना चाहिए, नीति निर्धारण में महिलाओं की भागीदारी का समर्थन करना चाहिए और जेंडर संवेदी क्रियान्वयन में निवेश ही महिलाओं को सशक्त बनाएगा तथा जेंडर समानता को बढ़ावा देगा।

आई. आई. टी. चैन्नई (2010) के अध्ययन में गांव की जरूरतों के संदर्भ में महात्मा गांधी नरेगा योजनाओं के कार्यकलापों का मूल्यांकन किया गया। रिपोर्ट छह प्रमुख पहलुओं पर आधारित हैं, वे हैं – कामकाज के अनुरोधें की प्रभावी जानकारी, विभिन्न जिलों में मजदूरी में अंतर, कृषि पर महात्मा गांधी नरेगा का प्रभाव, महात्मा गांधी नरेगा योजनाओं में महिलाओं की अधिक सहभागिता, महात्मा गांधी नरेगा और मानव अधिकार, निर्णय लेने में ग्राम सभा की प्रभाविकता और महात्मा गांधी नरेगा में बी पी एल की कम सहभागिता। मूल्यांकन के खुलासों में यह निष्कर्ष निकला है कि महात्मा गांधी नरेगा गरीबों के लिए एक वरदान है तथा इसने रोजगार मांगने वाले परिवारों को 100 दिनों का रोजगार प्रदान करके ग्रामीणों से एक बड़े हिस्से को लाभ प्रदान किया। इसमें अच्छी प्रथाओं पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे शीघ्र मजदूरी भुगतान, ग्रामीण महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा और हेल्पलाइन का प्रावधान।

उपर्युक्त अध्ययनों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि मनरेगा की वजह से ग्रामीण महिलाओं में रोजगार के क्षेत्र में भागीदारी बढ़ी है। उनके अंदर आत्मविश्वास भी आया है। हालांकि उपर्युक्त अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि मनरेगा के सैद्धांतिक प्रावधानों और व्यवहार में कुछ अन्तर अवश्य है। अनेक कारण महिलाओं की भागीदारी को सीमित कर रहे हैं, साथ ही महिलाओं में मनरेगा को लेकर जागरूकता का भी अभाव है। कुछ स्थानों पर सरकारी तंत्र के सहयोग का अभाव भी देखा गया है।

शोध कार्य का विश्लेषण

प्रस्तुत प्रपत्र आईसीएसएसआर संस्था द्वारा प्रायोजित शोध कार्य से प्राप्त वृहद् निष्कर्षो में से लिए गए कुछ निष्कर्षो पर आधारित है। आईसीएसएसआर द्वारा प्रायोजित शोध कार्य बहुत विस्तृत आयाम लिए हुए है जिसमे दलित महिलाओं के सशक्तिकरण में मनरेगा के योगदानों को उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के लगभग 700 उत्तरदाताओं के उत्तरों के विश्लेषण के रूप में देखा गया है। प्रस्तुत प्रपत्र इसी शोध कार्य से संबंधित मध्य प्रदेश के कुछ गांवों के क्षेत्र अध्ययन से प्राप्त वृहद् निष्कर्षों के एक हिस्से का समाजशास्त्रीय विश्लेषण है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में मध्य प्रदेश के "भोपाल" जिले के "ऺदा" ब्लॉक के "नरोन्ह सांकल" ग्राम सभा तथा "उज्जैन" जिले के "तराना" ब्लॉक के ग्राम सभा "छड़ावद" तथा "इंदौर" जिले के "महू" ब्लॉक के ग्राम सभा "कोडरिया" पर किए गए शोध कार्य के निष्कर्ष शामिल हैं। उत्तरदाताओं से बात करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। इस शोध कार्य के निष्कर्षो का सारांश निम्नवत् है –

शोध के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि 32.67 प्रतिशत सूचनादाताओं का आय का स्रोत मनरेगा के पूर्व कृषि मजदूरी, 10. 67 प्रतिशत की स्वयं की खेती, 49.67 प्रतिशत गैर कृषि मजदूर एवं 7 प्रतिशत का निजी व्यवसाय था। अनेक सूचनादाताओं ने यह स्वीकार किया कि मनरेगा में मजदूरी करने के पश्चात भी यदि वे खाली होती हैं या जिन दिनों उनको मनरेगा में रोजगार नहीं मिलता उन दिनों वे कृषि कार्य संबंधित मजदूरी ही करती है। यहां यह भी पाया गया कि कुछ महिलाएं आस-पास के घरों में सुबह और

शाम घरेलू मजदूरी जैसे चौका-बर्तन का भी कार्य करती हैं। उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी में यह पाया गया कि 96 प्रतिशत लोगों को मनरेगा में अपनी इच्छानुसार कार्य मिलने की जानकारी है जबकि 4 प्रतिशत लोगों को इसकी जानकारी नहीं है।

मनरेगा की जानकारी संबंधी प्रश्न पूछने पर सूचनादाताओं ने उत्तर दिया कि उनको मनरेगा योजना के बारे में जानकारी ग्राम रोजगार सहायक एवं ग्राम पंचायत द्वारा प्राप्त हुई। ग्राम रोजगार सहायक ग्रामवासियों तक सूचना पहुंचाते हैं तथा इन्हें हर सम्भव मदद भी करते हैं। इसके अलावा सचिव भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं तथा लाभार्थियों को जागरूक बनाए रखते हैं। मध्य प्रदेश में ग्राम रोजगार सहायकों को ग्रामीण लोग "मंत्री जी" कहते हैं।

शोध के दौरान यह तथ्य भी सामने आया है कि सूचनादाताओं में काम न मिलने की दशा में बेरोजगारी भत्ता संबंधी जागरूकता अपेक्षित रूप से कम है। लगभग 38.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि उनको इस बात की जानकारी है कि कार्य न मिलने की दशा में बेरोजगारी भत्ता मिलना चाहिए। जबकि 61.67 प्रतिशत लोगों ने इस तथ्य की जानकारी होने से इंकार किया। यह पूछे जाने पर कि क्या उनको कभी बेराजगारी भत्ता मिला है तो उन्होंने कहा कि इस दशा की कभी नौबत नहीं आई क्योंकि मनरेगा के तहत उनको काम मिला है। अप्रत्यक्षत: यह मालूम हुआ कि जागरूक लोगों ने भी बेरोजगारी भत्ते की मांग कभी नहीं की। इसके पीछे तमाम दबाव जिम्मेदार हैं। अधिकांश महिला सूचनादाता मनरेगा के तहत सड़क निर्माण, इन्दिरा आवास, प्रधानमंत्री आवास, पंचायत भवन, तालाब निर्माण इत्यादि कार्यों में संलग्न पाई गई। यह पाया गया कि मनरेगा के तहत अभी मुख्य कार्य प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत आवासों का निर्माण किया जा रहा है। वृक्षारोपण तथा जलसंरक्षण इत्यादि कार्यों पर भी थोड़ा बहुत बल दिया जा रहा है।

जब सूचनादात्रियों से यह पूछा गया कि मनरेगा में व्याप्त सबसे बड़ी बाध क्या है तो उनका कहना था कि मनरेगा में प्रदान की जाने वाली मजदूरी एवं रोजगार के 100 दिन बहुत कम हैं तथा मजदूरी भुगतान में विलंब, इन्हीं तीनों तत्वों को मनरेगा की सबसे बड़ी बाध माना जा सकता है। अधिकतम सूचनादाताओं की यही मांग है कि मिलने वाली मजदूरी कम से कम 300 या उससे अधिक होनी चाहिए तथा कार्यदिवस भी 100 से बढ़कर 200 दिन न्यूनतम करना चाहिए। इसके साथ ही दैनिक मजदूरी के आधार पर दैनिक भुगतान नियमित रूप से होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो मनरेगा के प्रति लोगों का रूझान बढ़ेगा तथा आसपास के शहरों एवं कस्बों की ओर उनका पलायन रूकेगा। विशेष रूप से दलित महिलाओं में इसके बेहतर परिणाम सामने आएंगे। प्रस्तुत अध्ययन में मनरेगा में महिलाओं को रोजगार के उचित अवसर न मिलने के कारणों में यह पाया गया कि 16.33 प्रतिशत महिलाएं अशिक्षा, 43 प्रतिशत जानकारी का अभाव, 6.67 प्रतिशत रूढ़िवादिता तथा 34 प्रतिशत असुरक्षा की भावना को बताया।

मनरेगा का सूचनादाताओं की आर्थिक स्थिति पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु सामाजिक स्थिति पर अवश्य पड़ा है। इसके अलावा मनरेगा द्वारा उनकी आर्थिक स्थिति में कोई मूलभूत सुधार तो नहीं हुआ परन्तु छोटे-मोटे खर्चे हेतु महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता काफी हद तक कम हुई है। मनरेगा के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का महिला श्रमिकों के प्रति व्यवहार उदार एवं तटस्थ पाया गया। महिला श्रमिकों के साथ कठोरता एवं दुर्व्यवहार से संबंधित कुछ मामले पाए गए परन्तु तुलनात्मक रूप में पुरुष श्रमिकों के प्रति अधिकारियों का रवैया सख्त था।

मनरेगा के अन्तर्गत मजदूरी करने में महिलाएं में उत्सुकता अधिक हैं क्योंकि उनको उसी गांव में काम मिल जाता है, अन्यत्र कहीं जाना नहीं पड़ता। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि परंपराओं के प्रभावों के कारण महिलाओं का गांव के बाहर जाकर मजदूरी करना उचित नहीं माना जाता इसलिए वे स्थानीय स्तर पर मनरेगा में काम करती हैं। यहां यह भी एक चिन्तनीय मुद्दा यह उभरकर सामने आया कि यदि महिलाओं को उनके घर के एक-दो किलोमीटर या उनके ही मजरे के दायरे में काम उपलब्ध नहीं होता तो वे उसके बाहर जाकर काम करने में कम रूचि रखती हैं। उनके काम करने पर परिवार के समर्थन के बारे में पूछने पर महिला सूचनादाताओं ने बताया कि उनके परिवारों ने उनको काम करने की अनुमति इसलिए प्रदान की ताकि घर की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके। एक-दो मामले ऐसे भी सामने आए जिनमें महिला सूचनादाताओं के पति उनके काम करने के खिलाफ थे परन्तु जब उनको ग्राम रोजगार सहायक तथा अन्य लोगों ने समझाया तो वे तैयार हो गए।

शोध के दौरान यह तथ्य भी सामने आया है कि बेसहारा तथा विधवा महिलाओं के लिए मनरेगा लाभदायक सिद्ध हो रहा है। प्राप्त होने वाली मजदूरी को वे ज्यादातर भोजन, वस्त्र तथा घर के लिए सामान आदि खरीदने पर व्यय करती हैं।

कुछ परिवारों में ऐसा भी देखा गया कि जॉब कार्ड धरक तो महिला है लेकिन उसके नाम पर कार्य उसके घर का कोई पुरुष सदस्य कर रहा है। यहां तक कि कुछ मामलों में घर के नाबालिग बच्चे भी अपनी मां, बहन अथवा भाभी के नाम पर काम करते हुए पाए गए।

शोध कार्य के दौरान यह भी पाया गया कि महिलाएं काम करने के बाद पहले की तुलना में स्वयं को आत्मनिर्भर महसूस करने लगी हैं, उनमें पहले की तुलना में स्वतन्त्रता एवं आत्मसम्मान की अधिक भावना भी जाग्रत हो रही है। हालांकि कार्यस्थलों पर उनको शौचालय एवं अन्य बुनियादी सुविधाओं का अभाव उन्हें कभी-कभी मुश्किल हालातों में डाल देता है। इसके अलावा कभी-कभी भुगतान में देरी भी उनके लिए कठिनाई बनती है। कभी-कभी बैंक द्वारा कुछ कार्यवाही की वजह से भुगतान में देर हो जाती है। भुगतान में देरी की एक प्रमुख वजह सरकार द्वारा कई बार पैसे का विलम्ब से भेजा जाना भी है। इसके अलावा कुछ अशिक्षित ग्रामीणों के मामले में यह पाया गया कि वे लोग अपना बैंक खाता आधार से लिंक नहीं करा पाए हैं इसलिए उनको भुगतान में देरी हुई है।

शोध के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि जैसे–जैसे मनरेगा में भुगतान संबंधी भ्रष्टाचार दिखाई नहीं दे रहा है। इसका प्रमुख कारण है कि अब भुगतान एवं धनराशि संबंधी विवरण वेबसाइट पर उपलब्ध होते हैं। इसलिए मजदूरी में किसी प्रकार का कोई भ्रष्टाचार नहीं हो पाता तथा मजदूरी भी समय से प्राप्त हो जाती है।लेकिन विश्लेषक यह मानते हैं कि कई बार निर्माण कार्यों की लागत जानबूझकर बहुत ज्यादा दिखाई जाती है। जिससे मनरेगा में भ्रष्टाचार के आरोपों से इंकार नहीं किया जा सकता। कुछ सूचनादाताओं ने यह अलिखित रूप में स्वीकार भी किया कि उन्हें कभी-कभी अपने भुगतान में से कुछ हिस्सा गांवों के प्रतिनिधियों के साथ बांटना पड़ता है।

निष्कर्ष

ज्यां द्रेज ने अपनी पुस्तक 'सोशल एसपेक्ट ऑफ इण्डियन पॉलिसीज' (2017) में मनरेगा कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी के लिए उनके समक्ष आ रही बाधाओं को छः राज्यों बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में एक सैंपल सर्वे से प्राप्त निष्कर्षों में बताया है कि–

"बहुत से क्षेत्रों में महिलाओं के घर से बाहर काम करने के बारे में सख्त सामाजिक मानकों का अस्तित्व है। उत्तर प्रदेश और बिहार में हम ऐसी महिलाओं से मिले जिन्होंने यह बताया कि वे नरेगा के अन्तर्गत कामों में अपना पंजीकरण नहीं करवा पायी और उनसे यह कहा गया कि यह कार्यक्रम उनके लिए नहीं है। सीतापुर जिला (उत्तर प्रदेश) में नरेगा के कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को लेकर काफी आक्रोश था। ग्राम सभा के पदाधिकारियों और महिलाओं के पुरुष सम्बन्धियों - दोनों ने ही इसका जबरदस्त विरोध किया। नौकरी के कार्ड से वयस्क महिलाओं का नाम हटा दिया गया और सामान्य तौर पर यह दलील दी गयी कि महिलाएं कार्यस्थल पर काम नहीं कर 'सकती' हैं, वे 'काफी कमज़ोर' हैं, और उनके द्वारा यह काम करना 'सामाजिक रूप से अस्वीकार्य है'। नारी श्रम के बारे में व्यापक रूप से प्रचलित इन विचारों के चलते ही सीतापुर (उत्तर प्रदेश) के सैम्पल में सिर्फ 5: महिलाएं नरेगा में काम कर रही थीं।"

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार ऐसा लगता है कि इस पूर्वग्रह का आंशिक कारण यह था कि नरेगा के अन्तर्गत मिलने वाले कानूनी न्यूनतम वेतन और स्थानीय बाजार के वेतन दर (विशेष रूप से महिलाओं के वेतन दर) में अन्तर था। इसके साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ था कि नरेगा में पुरुष और महिलाओं को समान वेतन के प्रावधान के चलते भी महिलाओं की भागीदारी का विरोध किया गया क्योंकि पुरुष (तुलनात्मक रूप से ऊँचे वेतन वाले) इन कामों पर विशेषाधिकार कायम रखना चाहते थे।

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार तकदीरी (सीतापुर जिला, उत्तर प्रदेश) ने यह बताया कि उसे बहुत से कार्यस्थलों से वापस लौटा दिया गया-और जब 'मजदूरों की अधिकता' हो जाती है तो महिलाओं को ही काम छोड़ने के लिए कहा जाता है। यहां यह गौरतलब है कि तकदीरी ने काम बढ़ने की जिस समस्या की ओर ध्यान दिलाया, वह अपने-आप में 'गैर-कानूनी' है, क्योंकि नरेगा के अन्तर्गत काम चाहने वाले सभी मजदूरों को काम का अधिकार है, और कानून के मुताबिक उन्हें सरकार द्वारा काम उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, नरेगा के कानूनी प्रावधानों के विपरीत अधिकांश स्थानों पर काम 'माँग से प्रेरित' नहीं है। इसके बजाय, अधिकांश स्थानों पर कार्य स्थानीय सरकारों की पहल से आरम्भ हुआ है, तथा किसी भी समय इसकी एक सीमित आपूर्ति ही हो सकती है। मौजूदा अध्ययन में साक्षात्कार देने वाले बहुत से लोगों के बारे में भी यही बात सच है। मुश्किल आर्थिक हालात का सामना कर रहे बहुत से लोगों के लिए आवश्यकता के अनुसार काम मिलना, काम के नियमित पारिश्रमिक मिलने जितना ही महत्वपूर्ण है। बहरहाल, विशेष रूप से ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं को काम पर न रखना चिन्ता का विषय है।

ज्यां द्रेज (वही) के अनुसार ठेकेदारी की अनुचित उपस्थिति भी एक नकारात्मक कारक की भूमिका अदा करती है। इससे महिलाओं को काम मिलने में दिक्कत होती है और उन्हें इस कार्यक्रम का लाभ नहीं मिलता। जिन कार्यस्थलों पर ठेकेदारों की दखल थी, वहां 35% महिला श्रमिकों ने यह कहा कि उनका उत्पीड़न हुआ, जबकि ठेकेदारों से मुक्त कार्यस्थलों पर सिर्फ 8% महिलाओं ने ही ऐसी शिकायत की। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि ठेकेदारों द्वारा संचालित कार्यस्थलों के ज्यादा शोषकारी होने की सम्भावना होती है।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ज्यां द्रेज द्वारा बताई गई उपर्युक्त समस्याएं भी पाई गई हैं। इसके अलावा पारिश्रमिक मिलने में होने वाली देरी भी गरीब महिलाओं की भागीदारी में बाधक बनती हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने गांव में ही उच्च वर्गों और प्राय: उच्च जातियों के घरों में साफ-साफाई का काम करने को प्राथमिकता देती हैं क्योंकि वहां उनको नियमित रूप से मजदूरी प्राप्त होती है। बच्चों के पालन-पोषण का इंतजाम मनरेगा कार्यस्थल पर ही किए जाने का प्रावधान है लेकिन बहुत कम जगहों पर ऐसी समुचित व्यवस्थाएं की जाती हैं। अत: उन महिलाओं की मनरेगा में भागीदारी मुश्किल हो जाती है। सरकारी तंत्र का अपेक्षाकृत कम सहयोग, जागरूकता का पर्याप्त स्तर पर न होना तथा सड़ी-गली परंपराओं का दबाव भी महिलाओं की मनरेगा की भागीदारी को मुश्किल बनाता है। इन सबका स्पष्टतया प्रभाव दलित महिलाओं की प्रस्थिति पर भी पड़ता है।

हालांकि सैद्धांतिक धरातल पर यह तो स्पष्टतया दिखाई देता है कि मनरेगा के प्रावधान निश्चित रूप से ग्रामीण जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में मदद करते हैं। हाल के कोविड महामारी के दौरान प्रवासी मजदूरों को मनरेगा के कार्यक्रमों से जोड़कर उनके जीवन स्तर को बनाए रखने की कोशिशें काफी चर्चित रही हैं। यह यह भी महत्वपूर्ण है कि कोविड के दौरान मनरेगा के तहत कुछ राज्यों में 100 दिनों का न्यूनतम मजदूरी कार्यदिवस का स्तर प्राप्त कर लिया गया है जो कि सामान्य दिनों में संभव प्रतीत नहीं होता है। लेकिन मनरेगा का समग्र मूल्यांकन इसके आरंभ से लेकर आजतक की तिथि के आधार पर किया जाए तो यह पाया गया है कि यह कार्यक्रम दलित महिलाओं की प्रस्थिति को कुछ तो बेहतर जरूर बनाता है लेकिन अभी भी यह कार्यक्रम वह स्तर नहीं प्राप्त कर पाया है जो इससे अपेक्षित था।

References :

1. **A huja, Ram**, **1995 :** *Indian Social System*, New Delhi, Rawat Publiation.
2. A **zam, M**., 'The Impact of Indian Job Guarantee Scheme on Labour Market Outcomes : Evidence from a Natural Experiment', http:èkèkssrn.comèkabstract:1941959. (From Ministry of Rural Development, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha)*
3. **Boner, K., J. Dom, J. Dunkan, E. Dinsmore, K. Fuglesten, L. Lei etc., 2012 :** *MGNREGA Implementation* :A *Cross-State Comparison*, Woodro Wilson School, New Jersey, Prinston University.
4. **Babu, V.S. and K. H. Rao, 2010 :** *Impact of MGNREGS on Schduled Castes & Scheduled Tribes : Studies Conducted in Eight States*, Hyderabad, National Institute of Rural Development.
5. **Central Institute of Fisheries Education (CIFE)**, 2009. 'A study report on appraisal on MRNREGA Programme in Thane andA nkola Districts of Maharashtra', Report Ministry of Rural DevelopmentèkUNDP.
6. **Chandrashekhar, C., and J. Ghosh**, 2011. 'Public Works & Wages in Rural India', Retrive from Macroscan :A nA lternative Economic Webcentre (From Ministry of Rural Development, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha)*
7. **Desai, Neera and M. Krishnaraj, 1990 :** *Women and Society in India*, New Delhi,A janta Publication.
8. **Dheerja, C. and H. Rao, 2010 :** *Changing Gender Relation :A Study of MGNREGSA Cross Different States*, Hyderabad, National Institute of Rural Development (NIRD).
9. **Drenz, J.** 2017. Bhartiya Nitiyon ka Samajik Paksha, sub-editor – **Kamal Nayan Chaubey**, EPW and Vani Prakashan, First Edition, New Delhi
10. **Homes, R.S. Rath and N. SaoaQna,** 2011. '*An opportunity for Challenge? Gender analysis of Mahatma Gandhi National Rural Employment GuaranteeA ct*', London : Overseas Development Institute and Indian Institute of Dalit Studies.
11. **IIT Chennai,** 2010. '*NAREGA in Districts of Dharmpuri, Erode, Nagapattinam, Meramavlur, Tanjavur, Theni, Thodukundi, Tiruvallur, Vellor, Villupuram of Tamil Nadu*', report presented to Ministry of Rural DevelopmentèkUNDP
12. **Jogdand, P.G., 1995 :** *Dalit Women in India : Issues and Perspective*, Pune, Gyan Publication.

13. **Kumar, V., 2005 :** 'Situating Dalits in Indian Sociology', *Sociological Bulletin* (special issue of *SouthA sia: The State of Sociology, Issues of Relevance and Rigour*), 54 (3, September-December). New Delhi.
14. **Kumar, V., 2010 : '**Teaching Caste and the Hindu Social Order: Dalits in Indian Sociology', in M. Chaudhuri (ed.), *Sociology in India: Intellectual and Institutional Practices*. New Delhi: Rawat Publications.
15. **Ministry of Rural Development**, 2012. Government of India, *MGNREGA sameeksha:A nA nthology of Research Studies on the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee,A ct 2005-2012*, edited and compled by Mihirshah, Neelakshi Mann and Varad Pande: New Delhi: Orient Blackswan.
16. **Michel, S. M.,** 2015. *Dalit in Modern India : Vision and Value*, New Delhi, Sage Publications.
17. **Nanda, A radhana and P.G.A rul,** 2008. 'kAarthik Vikas evam Mahilaiya" by Tapan Biswal (ed.) Manvadhikaar, Gender evam Paryavaran, New Delhi : Vivah Books Pvt. Ltd.

मध्यकालीन भारत में दास प्रथा

डॉ० राकेश रंजन सिन्हा

एसोशिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कुंवर सिंह महाविद्यालय, लहेरियासराय, दरभंगा (बिहार)

प्राचीनकाल से भारत में दास प्रथा का प्रचलन रहा है। स्मृतियों एवं कौटिल्य के ग्रन्थ "अर्थशास्त्र" में इस बारे में विशद विवरण मिलता है। पूर्व मध्यकाल में भी यह प्रथा विद्यमान थी। देवनभट्ट और जिमूतवाहन के कथनानुसार वैतनिक श्रमिक व दास में भेद था। ब्राह्मणों को दास नहीं बनाया जाता था। अकाल के समय भूख से पीड़ित कई परिवार दासता स्वीकार कर लेते थे। नारद के कथनानुसार गायों की जोड़ी अपने स्वामी को अर्पण करके वे स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अधिकृत थे।

पश्चिमी एशियाई देशों में, भारत के सदृश्य गुलाम प्रथा मौजूद थी। इस्लाम के उदय के बाद भी यह कायम रही। अरब में मध्य एशिया के तुर्की दास जिन्हें मामलूक कहा जाता था, का उपयोग विशेष तौर पर सैनिक कार्यो के लिये होता था। भारतीय मुसलमान शासकों ने अरब और मध्य एशिया की देखा-देखी दास प्रथा को बढ़ावा दिया। इसे अमानवीय् न समझा गया वरन् वैयक्तिक व सार्वजनिक जीवन में उपयोगिता के कारण सामाजिक परम्परा के रूप में चालू किया गया।

सामाजिक दृष्टि से दास चार प्रकार के होते थे–(1) क्रीत-खरीदा हुआ। (2) लब्ध-दान अथवा भेंट द्वारा प्राप्त। (3) युद्धबन्दी। (4) आत्म-विक्रेता-जो स्वयं अपने आपको बेच दें।

तीक्ष्ण सामाजिक विषमतायें, निम्न वर्गो की हृदय विदारक दरिद्रता, शासक वर्ग में इस्लाम के प्रचार की धुन, प्रशासकीय हठधर्मी व व्यापक तौर पर स्वतंत्र रोजगार धन्धें की कमी दास प्रथा के पोशक तत्व थे।

मध्यकालीन भारत में दासों की स्थिति ठीक नही थी। उस समय जागीरदारों और जमींदारों के आपसी संधर्षो में विजेता पक्ष विजित क्षेत्र से लोगों को पकड़ कर दास के रूप में परिणत कर देते थे। इस प्रकार दासों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। दक्षिण भारत में विजयनगर राज्य में दासता की प्रथा को वैधनिक मान्यता प्राप्त थी।

विदेशों से जैसे तुर्की, मध्य एशिया, फारस, अबीसीनिया, मलाया आदि से उत्तरोत्तर संख्या में दासों का आयात होता था। भारतीय दासों में शारीरिक गठन के कारण आसाम प्रान्त के दासों का अधिक महत्त्व था। इनका मूल्य अन्य दासों की अपेक्षा अधिक था। बंगाल तथा मलाया से हिजड़ों के क्रय का प्रचलन था। वे अन्त:पुर की महिलाओं पर निगरानी रखने के लिये उपयुक्त माने जाते थे। दासों की कीमत उनकी वैयक्तिक प्रतिभा पर निर्भर थी। इल्तुतमिश के शासनकाल में (1210-1236 ई.) में मेधवी और कर्मठ दास का मूल्य 50,000 जितल तक था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम प्रशासन में दासों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया गया। मुस्लिम शासक और अभिजात वर्ग के लोग अपने दासों में अधिक रूचि लेने लगे और उन्हें सुशिक्षित और कुशल बनाने के लिए प्रयत्न किया। इस्लाम धर्म भाई चारे के सिद्धांत में विश्वास रखता है। यही कारण था कि दासों को हेय दृष्टि से नहीं देखा गया और न दासता को कलंक समझा गया। फलत: मध्य युग के दासों में प्रभावशाली व्यक्ति सुल्तान के पद पर पहुँचे और गुलाम वंश की स्थापना हुई। सत्यत: कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन जैसे गुलामों ने अपनी योग्यता के बल पर सिंहासन प्राप्त किया और भारत में इस्लामी शासन के संस्थापक सिद्ध हुए।

खिलजी वंश (1290-1320) और तुगलक वंश (1320-1413ई.) के दौरान दासों की संख्या मे निरंतर वृद्धि होती गई। खिलजी काल में इनकी तादाद पचास हजार थी जबकि तुगलक काल में दो लाख। अलाउद्दीन खिलजी ने बलबन की नीति का पालन किया

और अमीरो का प्रभाव शासन में बढ़ने से रोका। उसके शासन काल में मालिक काफूर, जो एक दास था, का प्रभाव बढ़ा। उसने सुल्तान के प्रमुख सेनापति की हैसियत से दक्षिण भारत में इस्लाम की विजय पताका फहराई। मालिक काफूर ने सिंहासन प्राप्ति हेतु सम्भवत: अलाउद्दीन को विष देकर मार डाला (जनवरी 4, 1316)। दूसरे ही दिन मालिक काफूर ने अलाउद्दीन के शिशु पुत्र शिहाबुद्दीनउमर को जिसकी आयु पांच या छ: वर्ष थी, सुल्तान घोषित कर दिया और खुद को संरक्षक। अलाउद्दीन के ज्येष्ठ पुत्र खिज्रखां को कैद कर लिया। कुछ दिनों बाद खिज्रखां और उसके भाई शादीखां को अन्ध बना डाला और उसकी माता की सारी सम्पत्ति जब्त करके बन्दी बना लिया। इस हृदयहीन कुकृत्यों का बुरा प्रभाव हुआ। अलाउद्दीन के क्रोधित अंगरक्षकों ने मालिक काफूर की हत्या कर दी तथा मुबारक अपने शिशु भाई को अन्ध बनबाकर सिंहासन पर बैठा (अप्रैल, 1316)।

मलिक काफूर, खुसरों खां, मालिक यकलखी, मलिक अहमद सितम हिन्दू परिवर्तित दास थे। सुलतान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के समय इनकी शक्ति बहुत बड़ी। हंसन और हुसामुद्दीन उसके अतिप्रभावशाली दास थे। अलाउद्दीन के शासन काल का प्रसिद्ध हिन्दु परिवर्तित दास मलिक यकलखी को केंद्रीय खुफिया विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था और बाद में देवगिरी सूबे का राज्यपाल बनाया गया।

सुलतान मुबारकशाह का अन्त हिन्दू परिवर्तित दास खुसरों खां के हाथों हुआ। खुसरों खां ने अपने चार माह के अल्पकाल में कई हिन्दू परिवर्तित हिन्दू दासों को ऊँचे सरकारी पदों पर नियुक्त किया, लेकिन वे प्रतिद्वन्द्वियों को दबाने मे असफल रहे। 5 सितम्बर 1320 को गाजी मलिक ने खुसरों खां को पराजित कर दिया। उसे तथा उनके समर्थकों को मौत के घाट उतार दिया और शासन सत्ता छीनकर दिल्ली में तुगलक राज वंश की नींव डाली।

तुगलक शासन काल में (1320-1414 ई.) में दासों के शक्ति में आश्चर्यजनक बृद्धि हुई। फिरोज तुगलक दासों का बड़ा प्रेमी था। शमसे-शिराज अफीफ लिखता है-'दासों के बारे में उसकी चिन्ता इतनी बढ़ी हुई थी कि उसने बड़े जागीरदारों तथा अधिकारियों को आज्ञा दे रखी थी कि जब कभी वे युद्ध के लिये प्रस्थान करें, दास अवश्य पकड़े। उनमें से जो सबसे अच्छे हों, उन्हें दरबार की सेवा में भेजें। सुलतान उन राज्यपालों से बहुत प्रसन्न रहता जो उसके पास सुन्दर पढ़े लिखें व सुसंस्कृत युवक बतौर दास भेंट में भेजते थे। फिरोज तुगलक वास्तव में निष्ठाप्रद, योग्य राज्य पदाधिकारियों की एक जमात का गठन करना प्रशासन के सफल संचालन के लिये उचित मानता था। राजकीय पदों पर नियुक्तिया वंश परम्परा के अनुसार की जाने लगी। इस आज्ञा के फलस्वरूप साम्राज्य में दासों की संख्या एक लाख अस्सी हजार तक पहुंच गई। केवल सुलतान के राजप्रसाद में दासों की संख्या चालीस हजार थी। इस विशाल दास समुदाय के उचित प्रशासन के लिये एक पृथक विभाग का गठन किया गया। 'दिवाने बन्दगान' को दीवाने बजारत से पृथक कर दिया गया और इसे स्वतंत्र रूप से दासों की देखभाल की जिम्मेदारी सौंपी गई। एक पृथक कोष की भी स्थापना हुई। एक सांख्यिकी अधिकारी के जिम्मे दासों के आंकड़े रखने तथा लाभप्रद जानकारी-संकलित करने का भार सौंपा गया।

दासों के लिये उनकी रूचि के अनुकूल साहित्य, कला 'शिल्प व सैन्य संबंधी प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की गई। अमीरों को बहुत से दास सुपुर्द किये गये और हिदायत दी गई कि वे उनकी शिक्षा व भरण पोषण का दायित्व होशियारी से निभावें। परिणमत: करीब बार हजार दास निपुण कारीगर बन गए। कुछ ने सेना में प्रवेश करके उच्च पद प्राप्त किया। चालीस हजार दास राज प्रसाद में सुलतान की वैयक्तिक सेवा में बने रहें। ऐसा कोई शाही महकमा नहीं बचा जिसमें दास मौजूद नहीं थे। इन्हें 10 टके से लेकर 100 टकों तक की नकद खानगी दी जाती थी। किसी दास को 10 टकों से कम वेतन नहीं मिलता था। खजाने से नियमित रूप से उन्हें तीसरे या चौथे या छठें महीने वेतन का भुगतान होता था। जिन्हें नकद भत्ता नहीं मिलता था, उन्हें जागीर में गांव बख्से जाते थे। दासों की आर्थिक दशा इस प्रकार संतोषप्रद थी। यद्यपि शाही कोष पर इस प्रकार के व्यय के प्रभाव हानिप्रद साबित हुए। शनै: शनै: दासों का राजकीय क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ने लगा और फिरोज के अन्तिम वर्षो में तो वे सर्वेसर्वा बन बैठे। बरनी लिखता है- 'अधिकांश दास प्रमादी व शाड्यंत्री बन गये।' इसी प्रकार मेहंदी हुसैन के शब्दों में, 'खिलजी व तुगलक कालीन शाही दास स्वामीभक्त न रह सके। वें अतिमहत्वाकांक्षी व दुष्चरित्र साबित हुए। राज्य के विद्रोहियों के दमन व सीमा विस्तार के बजाय उन्होंने निजी स्वार्थो की पूर्ति में राजकोष को खाली कर दिया।'

मुगलकाल में दासों का राजनैतिक प्रभाव नगण्य रहा। सुदृढ़ केंद्रीय शासन की स्थापना व मनसबदारी प्रथा का प्रचलन इसके प्रमुख कारण थे। मुगल शासकों ने दासों की उपयोगिता समझी मगर तुगलक कालीन सुलतानों की तरह इन्हें शासन पर हावी न होनें

दिया। इनका इस्तेमाल बहुध घरेलू कामकाज के लिये किया जाता था। सम्राट अकबर ने उनके प्रति अति मानवीय दृष्टिकोण अपनाया। वह उन्हें 'बन्दा' या 'दास' के नाम से सम्बोधन न करके 'चेला' कहता था। 'चेला' से तात्पर्य जैसा अबुलफजल ने लिखा है, 'एक विश्वसनीय शिष्य' से है। सम्राट निरन्तर अपने अमीरों को अधीनस्थ चेलों के साथ सद्-व्यवहार करने पर जोर देता था। सरकार चेलों की जन्मजात विशेषताओं के विकास को राजकीय कामकाज व नित्यप्रति के जीवन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मूल्यवान मानती थी।

मुगलकाल में सामंती वर्ग में विलासिता में वृद्धि के कारण दासियों का बड़ा प्रचलन था। विस्तृत अन्त:पुर सामाजिक प्रतिष्ठा का बिन्दु माना जाने लगा। मुगलकाल में दासियाँ दो प्रकार की थी (क) वे जो नित्य प्रति के गृहकार्य के लिये रखी जाती थी (ख) वे जो ऐन्द्रिक सुख हेतु काम में ली जाती। कभी-कभी इन्हें स्वामी की इतनी कृपा प्राप्त होती थी कि वे गृहस्वामिनी से अधिक सम्मानीय पद ले लेती थी। पश्चिमी ईसाई समाज के विपरीत, भारत में स्वामी से उत्पन्न दासी की सन्तान दास नही मानी जाती थी। उन्हें परिवार के सदस्यों का स्तर दिया जाता था। दास द्वारा उत्पन्न सन्तान ही दास मानी जाती थी।

दास रखने की प्रथा मुस्लिम समाज के प्रत्येक प्रतिष्ठित परिवार में थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, साधारण लोग भी घरेलू काम काज को स्वयं करने में हीनता का अनुभव करने लगे और दास और दासियों को अपने घरों में रखने लगें।

भारत में दूसरें देशों से दास लाये जाते थे, लेकिन उनमें भारत के दासों की अपेक्षा कार्य कुशलता का अभाव था। आसाम, क्षेत्र के दास शारीरिक शक्ति के कारण बहुत उपयोगी थे, इनकी माँग अधिक थी। एक विशेष प्रकार के दासों को हरम में मुस्लिम महिलाओं की सेवाओं के लिए रखा जाता था। तेरहवी सदी में इस प्रकार के दासों का व्यापार बंगाल में अधिक होता था। इन्हें कभी-कभी मलाया द्वीप समूह से भारत में लाया जाता था।

कुछ समय के बाद दास रखने की प्रथा हिन्दु समाज में भी प्रचलित हो गई। हिन्दू अभिजात वर्ग के लोग दासों को घरेलू कार्य और सैनिक काम के लिए भी रखने लगे। दक्षिण में वेश्यायें भी दासियों को सेवा के लिए रखने लगीं।

राजस्थान की रियासतों में मध्ययुग की तरह 19वीं सदी तक दासता की प्रथा प्रचलित रही। इस संबंध में कर्नल टाड ने लिखा है कि खेतिहर दास (जिन्हें 'बसाई' कहा जाता है) के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के भी दास होते थे, जिन्हें 'गोला' या 'दास' कहा जाता था। ये प्राय: राजपूत राजा की अवैध सन्तान थीं जिनका राज्य में कोई अधिकार नही था। उनकी सन्तान भी दास होती थी जिसका वर्गीकरण उनकी माँ के अनुसार किया जाता था। टाड महोदय का कहना है कि मेवाड़ में उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता था। उनकी पहचान यह थी कि वे बायें कुहनी में चाँदी का छल्ला पहनते थे।

इस्लामी समाज में दासों को भी अधिकार मिले हुए थे। विधि-वेताओं का कहना है कि इस्लाम के अन्तर्गत एक मालिक को अपने दास के लिए उन सभी सुख और सुविधाओं को उपलब्ध कराना चाहिए, जिनका उपभोग वह स्वंय करता हों। डॉ. के0एम0 अशरफ ने लिखा है कि यदि दास पहले हिन्दू समाज के निम्न वर्ग का था तो इस्लाम धर्म के ग्रहण करने से उनकी स्थिति निश्चय ही ऊँची हो जाती थी। यदि वह ऊँची जाति का होता था तो इस्लाम स्वीकार करने के बाद हिन्दू समाज में उनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी। वह फिर से हिन्दू समाज में अपमानजनक परिस्थितियों में ही जा सकता था।

इस्लामी समाज मे सम्पत्ति के रूप में दास की मान्यता थी। कानून में यह व्यवस्था थी कि यदि किसी दास को सुल्तान दासता के बन्धन से छुड़ाना चाहता था तो उसे उसके मालिक को मुआवजा देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उसे किसी अन्य क्षेत्र में स्वतंत्र नहीं समझा जाता था और यदि उसे दण्ड देना होता था तो उसके मालिक की उपस्थिति में ही उसे दण्डित किया जाता था।

डॉ.के0एम0 अशरफ का विचार है कि मध्ययुग में दासों की स्थिति साधारण जनता से गिरी नही थी। यदि वह दास हिन्दू समाज की निम्न श्रेणी से परिवर्तित मुस्लिम हो तो उसकी दशा पहले से कहीं अधिक अच्छी थी। कभी-कभी ऐसे भी दृष्टान्त मिलतें है जब कि एक स्वतंत्र व्यक्ति को साधन की कमी से दैवी विपत्तियों के कारण भूखों मरते देखा गया, परन्तु सुल्तान के दास को प्रचुर मात्र में भोजन की सामग्री उपलब्ध रही। इस प्रकार सुल्तान की सेवा में रत दासों को अनेक सुख और सुविधाओं मिलती थी जबकि स्वतंत्र व्यक्ति को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। कभी-कभी राजनीतिक परिस्थितियों के कारण कुशाग्र बुद्धि वाले दासों को सामाजिक क्षेत्र में ऊँचा स्थान प्राप्त करने से सफलता मिली।

दास प्रथा ने समाज को दो वर्गों में विभक्त किया। एक वर्ग केवल दूसरे वर्ग का काम करने के लिए रहा और दूसरा वर्ग काम न करने के लिए हो गया। इस स्थिति का दूसरा कुप्रभाव यह पड़ा कि समाज में यह धारणा बन गई कि शारीरिक श्रम केवल दासों के लिए था और इसे निन्दनीय समझा जाने लगा। दास प्रथा से समाज में निर्दयता और बर्बरता की वृद्धि हुई। दासों की उचित शिक्षा और सुविधाएँ न मिलने से उनका नैतिक पतन हुआ। दासियो की प्रचुरता के कारण अमीर वर्गो में दुष्चरित्रता बढ़ी। उनके अन्त:पुरों में स्त्रियों में परस्पर कलह व प्रतिकार की भावनाओं में वृद्धि हुई। महिलाओं के सामाजिक स्तर में बड़ी गिरावट आई। इन्हीं सब कारणों से मध्ययुगीन समाज की प्रगति अवरूद्ध हो गई।

संदर्भ ग्रन्थ

1. लल्लन जी गोपाल - इक्नोमिक लाइफ ऑफ नार्दर्न इंडिया - 700 से 1200 ई.।
2. शम्स सीराज अफीफ - तारीखे फीरोजशाही, संपादक विलायत हुसैन, कलकत्ता।
3. डॉ. ईश्वरी प्रसाद - हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इंडिया।
4. मिनहाजुससिराज - तवकाते नासीरी, (अनु, रेवर्टी, एच. जी. जिल्द 2)
5. हबीबउल्ला - फाउन्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया।
6. अबुल फजल - आइने अकबरी (अनुवाद एच. ब्लॉकमेन, जिल्द 1)
7. के.एम. अशरफ - लाइफ एण्ड कन्डिशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान।
8. गौरीशंकर हीराशंकर ओझा - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति।
9. कर्नल टाड़ - एनल्स एण्ड एन्टीक्लीटीज ऑफ राजस्थान।
10. लेनपूल - मेडिवल इंडिया अण्डर मुहमडन रूल।

भारतीय संघवाद का उभरता स्वरूपः केंद्रीय संघवाद से वास्तविक संघवाद की ओर

डॉ० धनंजय झा

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी/पार्ट टाइम), राजनीति विज्ञान विभाग,
एल.एस. कॉलेज, मुजफ्फरपुर।

दुनिया भर के देशों में केंद्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारों का आधारभूत ढांचा बदल रहा है। इसके साथ इनमें सत्ता के स्वरूप में भी बदलाव देखा जा रहा है। सरकारों के पुराने स्वरूप के स्थान पर नये स्वरूप आने से केंद्रीय सरकार के स्वरूप पर प्रभाव पड़ रहा है और कई परंपरागत अधिकारो में कटौती हो रही है। सत्ता का बंटवारा स्थानीय स्तर पर होने से गठबंधन और भागीदारी पर आधारित सरकारों का नया स्वरूप सामने आ रहा है। कम से कम संसाधनों के इस्तेमाल से अधिक से अधिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकारों को शासन प्रक्रिया में एक-दूसरे से संवाद करना होता है। इसलिए विभिन्न स्तरों के सरकारी संगठनों में आपसी संवाद आवश्यक हो गया है। व्यापक लिखित संविधान के साथ संघवाद की नीति अपनाने के कारण बेहतर शासन संविधानों के प्रावधानों पर निर्भर हो गया है। इसमें केंद्र-राज्य मुजफ्फरपुर का विशेष स्थान है।

इस परिचयात्मक पृष्ठभूमि में, संघवाद का अर्थ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली और उसके राजनीतिक और वित्तीय आयामों पर चर्चा इस आलेख मे की गई है।

संघ के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द Federation लैटिन भाषा के शब्द थ्वमकने से लिया गया है जिसका अर्थ 'संधि' या 'समझौता' होता है। एक राज्य, जो किसी संधि या समझौते का परिणाम होता है, एक संघ है। एक संघ राज्य एक ऐसा राजनीतिक संगठन है जो राष्ट्रीय एकता और राज्य के अधिकारों की रक्षा के लिए शक्ति प्राप्त करता है। यह सरकार की ऐसी व्यवस्था है जिसमें सरकार का कोई भी स्तर न तो पूर्ण रूप से दूसरे पर आश्रित है और न ही पूर्ण रूप से दूसरे से स्वतंत्र है।

संघवाद ऐसा साधन है, जो ऐसी प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है जो विविधता भरे समाज को एकसूत्र में बांधने की क्षमता रखता है। संघवाद से सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता और विभिन्न जातीय और क्षेत्रीय समूहों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। यह राष्ट्रीय एकता, विविधताओं में सामंजस्य, साझा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधानों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में, संघवाद एक प्रणाली है जो स्वशासन और सत्ता के बंटवारे तथा संघ के विभिन्न हिस्सो के हितों संतुलन को बढ़ावा देती है।[1]

भारत में संघवाद एक राष्ट्र द्वारा निर्मित नहीं है। यह केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की एक लंबी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया है।

भारतीय संघवाद का संक्षिप्त इतिहास

आधुनिक भारतीय संघवाद की जड़ें ब्रिटिश शासन में तलाशी जा सकती है। सन् 1935 में पहली बार ब्रिटिश शासन ने भारत में संघीय सरकार की स्थापना के प्रयास किए। इसके लिए भारतीय शासन अधिनियम 1935 बनाया गया। इससे पहले ब्रिटिश शासन मुख्य रूप से प्रशासन के केंद्रीकरण पर आधारित था।

भारतीय शासन अधिनियम 1935 में ब्रिटिश भारतीय प्रांत और रजवाड़ों को मिलाकर संवैधानिक लोकतंत्र की अवधारणा के साथ केंद्र और उसकी ईकाइयों के आधार पर भारतीय संघ का गठन किया गया। अधिनियम के अनुसार अति केंद्रीकरण के साथ संघ की स्थापना की गई जिसमें ईकाइयों के लिए अस्थायी स्वायत्तता के प्रावधान अपनाए गए। यह स्वायत्तता हमेशा केंद्र के विवेक और नियंत्रण पर आधारित थी हालाँकि इस अधिनियम के संघीय प्रावधान कभी लागू नहीं किए गए लेकिन इस का प्रभाव स्वतंत्र भारत पर साफ दिखाई देता है। भारतीय संविधान का ढांचा संघीय है। लेकिन इसके तत्व सुदृढ़ एकात्मक शासन के प्रतीक हैं। राज्य स्वायत्ततापूर्ण व्यवहार करते हैं। लेकिन अंतिम सत्ता केंद्र के नियंत्रण में निहित है।[2]

स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में संघीय नीति के प्रावधानों को लागू करना आसान नहीं था। संविधान के निर्माताओं ने सामान्य स्थितियों की तुलना में आपात स्थितियों के संबंध में ज्यादा सोचा जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्ता के बंटवारे में असंतुलन हो गया। इससे राज्यों की न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो सकी। भारतीय शासन व्यवस्था के लिए संसदीय संघीय संविधान का चयन भी देश के ऐतिहासिक अनुभवों का परिणाम है।

भारतीय संघवाद की प्रकृति

भारतीय संविधान के लागू होने के प्रारंभ से ही भारतीय संघवाद की प्रकृति पर सवाल उठाए जाते रहे हैं। हालाँकि भारतीय संविधान संघ के सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करता है। लेकिन पूरे संविधान में कहीं भी फेडरल या संघ शब्द का उल्लेख नहीं है। संविधान में इसके लिए यूनियन ऑफ स्टेटस- "राज्यों का संघ" शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके बावजूद भारतीय संविधान में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो किसी संघ के लिए जरुरी होता है। भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ इस प्रकार है[3]-

दोहरा शासन

भारतीय संविधान दो स्तर पर शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है। संविधान केंद्र स्तर पर अलग और राज्य स्तर पर अलग शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है।

शक्तियों का बंटवारा

भारतीय संविधान में कंद्र और राज्य सरकारों की शक्तियों का स्पष्ट बंटवारा किया गया है। संविधान की सातवीं अनुसूची में शक्तियों के बंटवारे की व्यवस्था की गई है। संपूर्ण शक्तियों को केंद्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में बांटा गया है। केंद्रीय सूची में राष्ट्रीय महत्व के 97 विषयों को शामिल किया गया है। क्षेत्रीय स्तर के विषयों को राज्य सूची में स्थान दिया गया है जिसकी संख्या 66 है। तीसरी समवर्ती सूची में 47 विषय हैं जिन पर केंद्र और राज्य सरकारें दोनों कानून बना सकती हैं लेकिन दोनों के टकराव की स्थिति में केंद्र का कानून मान्य होगा। जो विषय इन सूचियों में नहीं आ पाए और भविष्य में आने वाले विषय भी केंद्रीय सूची में रहेंगे। केंद्र के बनाए कानूनों का दायरा संपूर्ण राज्य का होगा जबकि राज्यों के कानूनों का दायरा उनका अपना क्षेत्र विशेष होगा।

लिखित संविधान

भारतीय संविधान लिखित संविधान है। इसी से केंद्र और राज्य सरकारें सत्ता और अधिकार प्राप्त करती हैं। भारतीय संविधान न केवल लिखित है बल्कि यह बेहद सख्त और सर्वोच्च है। केंद्र और राज्य सरकारें दोनों संविधान के दायरे में काम करने के लिए बाधय हैं।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

भारतीय संविधान में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। यह केंद्र और राज्यों के बीच किसी भी विवाद के निपटारे के लिए भी उत्तरदायी है। यह अभिभावक की भूमिका का निर्वहन करती हैं और अंतिम व्याख्याता भी यही है।

भारतीय संविधान की ये विशेषताएँ उसे साफतौर पर संघीय घोषित करती हैं। लेकिन इनके अलावा संविधान में ऐसी एकात्मक शासन की विशेषताएँ भी मौजूद हैं जो उसकी प्रकृति को विवादास्पद बनाती हैं। केंद्र की आपातकालीन शक्तियाँ, राज्यपाल की केंद्र

के एजेंट के रूप में भूमिका, राज्यों की केंद्र पर वित्तीय निर्भरता, समवर्ती सूची के प्रावधान, राज्य सभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व, एकल न्यायपालिका, शीर्ष पदों की शक्तियों के संबंध में संशोधन प्रक्रिया और योजना/नीति आयोग की भूमिका आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो संविधान के एकात्मक शासन के पक्ष को सामने लाती हैं।

इन विशेषताओं से साफ पता चलता है कि भारत में सही अर्थों में संघीय शासन नहीं है। विभिन्न विचारकों ने भारतीय संघ को अलग-अलग नाम दिए हैं। के.एम. मुंशी ने इसे 'अर्धसंघ' कहा है। के.सी. वीअर ने कहा है- यह संघीय विशेषताओं के साथ एकात्मक राज्य है न कि एकात्मक विशेषताओं के साथ संघीय राज्य। भारतीय संघ को 'छद्म संघ' या 'संघीय ढांचा लेकिन एकात्मक आत्मा' भी कहा गया है। डब्ल्यू.एच. मोरिस जोंस का मत है कि भारतीय संघवाद एक तरह का सहकारी संघवाद है जहाँ केंद्र और राज्यों के बीच मोल-भाव की प्रक्रिया चलती है। लेकिन अंतिम समाधान में दोनों पक्ष सहयोग के लिए सहमत होते हैं।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संघ के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण मौजूद हैं। कई लोग भारत को संघ मानते हैं। जबकि दूसरे इससे इनकार करते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत एक संघ है जिसमें एकात्मक शासन की मजबूत विशेषताएँ मौजूद हैं। हालाँकि पिछले वर्षों में विशेष तौर पर 1990 के बाद से भारतीय शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं और यह गहरे रूप से संघीयकरण की ओर मुड़ी है।[5]

भारतीय संघ की कार्य प्रणाली

जैसा कि हमने देखा है कि भारतीय संघ का झुकाव केंद्र की ओर है और इसलिए शक्तिशाली केंद्र सरकार की स्थापना की गई है। यही तथ्य भारतीय संघ की वास्तविक कार्य प्रणाली में भी देखा जा सकता है। भारतीय संघ के कार्य निष्पादन को तीन चरणों में बांटा जा सकता है।

प्रथम चरण 1950-1967 इस चरण में केंद्र और राज्यों में कांग्रेस की सरकारों का आधिपत्य रहा है। जवाहरलाल नेहरू के करिश्माई नेतृत्व में पहले से ही मजबूत केंद्र और ज्यादा ताकतवर होकर सामने आया। मुख्यिमंत्रियों, मंत्रियों और विधयी संस्थाओं के उम्मीदवारों का चयन नेहरू द्वारा किया जाता था। इस चरण में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच कोई टकराव नहीं देखा गया क्योंकि केंद्र और लगभग सभी राज्यों में अपने अधिकारों के इस्तेमाल के प्रयास शुरु किए जिन्हें केद्र ने अस्वीकार्य बताया।

इसी चरण में क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। केंद्र की कांग्रेसी सरकार ने अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करके और दल-बदल कराकर पुन: राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया। हालांकि इस परिवर्तन के बावजूद भी मध्यावधिक चुनाव के बाद कांग्रेस पार्टी एक बार फिर केंद्र और राज्यों में सत्ता पर काबिज हो गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने संविधान में 42वां संविधान संशोधन किया। इससे राज्यों की शक्तियों में कटौती कर केंद्र को मजबूत बनाया गया। इस दौर में सत्ता का जबरदस्त केंद्रीकरण हुआ और देश में 1975-77 तक आपात स्थिति लागू रही। इंदिरा गांधी के काल में राज्य शक्तिहीन रहे और अतीत की तुलना में सत्ता का ज्यादा केंद्रीकरण हुआ। वर्ष 1977 से 1979 के दौरान केंद्र में गैर-कांग्रेसी सरकार रही। हालांकि यह सरकार विकेंद्रीकरण में विश्वास करती थी लेकिन इसने भी वही सब कुछ किया जो कांग्रेस सरकार ने किया था। इस सरकार ने अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग करते हुए नौ राज्यों में कांग्रेसी सरकारों को बर्खास्त कर दिया और उनकी विधानसभाएँ भंग कर दी। वर्ष 1980 में इंदिरा गांधी ने केंद्र में सत्ता में वापसी की और जनता पार्टी व गठबंधन के नेतृत्व में बनी नौ राज्यों की सरकारों को सत्ता से हटा दिया। राजीव गांधी देश के प्रधानमंत्री बने। केंद्रन्मुखी नीति अपनाने वाली अपनी मां के उलट राजीव गांधी ने क्षेत्रीय मांगों और आंदोलनों के विषयों के अनुसार सामंजस्य की नीति अपनाई।[6] उन्होंने क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन करने का प्रयास किया जबकि उनके पास केंद्र में सत्ता थी।

भारतीय संघवाद का तीसरा चरण 1980 के दशक के अंत से शुरु होता है। यह गठबंधन सरकारों का युग था। गठबंधन युग में कांग्रेस का आधिपत्य बीते समय की बात बन गई। क्षेत्रीय दल जैसे तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) और अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एआईएडीएमके), आंध्रप्रदेश में तेलुगू देशम पार्टी, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) और लोक जनशक्ति पार्टी (एलजेपी), उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) और समाजवादी पार्टी (एसपी) तथा अन्य क्षेत्रीय दल ज्यादा मुखर रूप से सामने आ गए। इन दलों की मुखरता ने केंद्र सरकार को कमजोर कर दिया। अनेक क्षेत्रीय दलों ने केंद्र में सरकार का गठन करने के लिए हाथ मिला लिए क्योंकि कोई भी दल अपने बूते पर सरकार का गठन करने की स्थिति में नहीं था।

इस परिदृश्य में क्षेत्रीय दलों के नेता (वी.पी.सिंह और एच.डी. देवेगौड़ा) प्रधानमंत्री बने। देवेगौड़ा की सरकार में क्षेत्रीय दलों के अनेक नेता मंत्री बनाए गए। यही स्थिति एनडीए और यूपीए सरकारों के साथ भी रही है।

गठबंधन के इस युग में सत्ता राज्यों की ओर हस्तांतरित हो गई। केंद्र में सरकार गठित करने की प्रक्रिया में क्षेत्रीय दल प्रमुख अवयव बन गए। क्षेत्रीय दल के राज्य स्तरीय प्रमुख यह तय कर रहे हैं कि उनकी पार्टी से कौन केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होगा। इन नेताओं की राय मंत्रियों के विभागों के बंटवारे में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यूपीए प्रथम (2004) की सरकार में आरजेडी के लालू प्रसाद ने गृह मंत्रालय और एलजेपी के रामविलास पासवान ने रेल मंत्रालय की मांग की। काफी विचार-विमर्श के बाद लालू प्रसाद को रेल मंत्रालय और रामविलास पासवान को रसायन, उर्वरक एवं इस्पात मंत्रालय पर मनाया गया। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब क्षेत्रीय दल प्रशासकीय प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री की शक्ति और स्थिति कमजोर होती गई। फिलहाल प्रधानमंत्री क्षेत्रीय दलों से निर्देशित और नियंत्रित होता है जिनके नेता ताकतवर मुख्यमंत्री के. करुणानिधि, लालू प्रसाद यादव, मायावती, जे. जयललिता, एन.चंद्र बाबू नायडू और अन्य हैं। हालांकि अंतिम शक्ति और सत्ता प्रधानमंत्री में निहित है फिर भी प्रधानमंत्री को गठबंधन सहयोगियों की शर्तों पर काम करना होता है। दूसरी ओर राष्ट्रपति की भूमिका में इजाफा हो रहा है। गठबंधन की स्थिति में वह सरकार के गठन के लिए अपनी विवेकाधीन शक्तियों का इस्तेमाल कर सकता है। किसी दल द्वारा स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने और लोकसभा को भंग करने में राष्ट्रपति की भूमिका बढ़ गई है।

इस बदलते हुए परिदृश्य में क्षेत्रीय दल न केवल केंद्र में अपना आधिपत्य जमा रहे हैं बल्कि कई राज्यों में सत्ता पर भी काबिज हैं। इस प्रक्रिया को न केवल स्वस्थ सहकारी संघवाद के रूप में देखा जा सकता है बल्कि यह राष्ट्रीय एकता से भी जुड़ा है। राष्ट्रीय गठबंधन के सदस्य के तौर पर क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय नेताओं की ताकत कमतर करनी आरंभ कर दी है। ये क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय हितों के आपसी टकराव पर भी बातचीत के लिए तैयार हैं।[7]

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय संघवाद धीरे-धीरे केंद्रीय संघवाद से बहुदलीय प्रणाली के तहत वास्तविक संघवाद की ओर बढ़ रहा है। समाज के बढ़ते राजनीतिकरण, दलीय प्रणाली के क्षेत्रीयकरण, राज्यों की स्वायत्तता के पक्ष में न्यायपालिका की सक्रियता और 1990 के दशक में शुरू हुए अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण के प्रभाव में शासन प्रणाली का कार्य निष्पादन और ज्यादा संघवादी हो रहा है।

संदर्भ सूची

1. नारायण, इकबाल, 'राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त', रतन प्रकाशन, दिल्ली, 1988, पृष्ठ 73.
2. सिंह, एम.पी. एवं सक्सेना, रेखा, इंडियन पॉलिटिक्स : कन्टेपररी इसूज, प्रेन्टिस हॉल, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 138.
3. उपरोक्त, पृष्ठ 152.
4. मिश्रा, सुब्रत के., 'फेडरलिज्म', संकलित मिरजा गोपाल जयाल (सं.) द ऑक्साफोर्ड कम्पेनियन ऑफ पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया, ऑक्साफोर्ड, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 43.
5. उपरोक्त, पृष्ठ 55.
6. सक्सेना, रेखा, सिचुएटिंग फेडरलिज्म मेकेनिज्म, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 151.
7. देखे सुब्रत के. मिश्रा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 68.

कन्नौज के लिए हुए त्रिदलीय संघर्ष: एक समीक्षा

डॉ० मोहम्मद तसद्दुक

पुर्व शोधार्थी, (इतिहास स्नातकोत्तर विभाग)
भु०ना० मंडल विश्वविद्यालय, लालुनगर, मधेपूरा

नर्मदा नदी के दक्षिण के सभी महत्वपूर्ण राज्यों को पराजित करने के उपरान्त गोविन्द तृतीय ने उत्तर भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने की योजना बनाई, ध्रुव के सफल उत्तर भारतीय अभियान के उपरान्त राजधानी मान्यखेट लौट आने के बाद, कान्यकुब्ज राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रतिहारों एवं शक्तिशाली पालों के बीच कूटनीतिक चालों, सैन्य अभियानों एवं संघर्षो का सिलसिला पूरे चरम पर था। राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने प्रतिहार शासक वत्सराज एवं गौड़ाधिप धर्मपाल को पराजित किया, परन्तु उसने उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया था।[1] ध्रुव की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी पुत्र गोविन्द तृतीय को कई वर्ष तक उत्तराधिकरी के लिए छिड़े गृहयुद्ध को शान्त करने एवं दक्षिण भारतीय राज्यों को पुनःसंगठित करने में लगा। फलतः गोविन्द तृतीय के पूर्ण व्यवस्थित होने तक के अंतराल में गौड़ाधिपति धर्मपाल ने अपनी ताकत को संगठित करके कान्यकुब्ज पर अपना पूरा अधिकार कायम करने के लिए कई कामयाब मुहिम चलाया। उस समय कान्यकुब्ज के राजसिंहासन को लेकर आयुधवंशीय इन्द्रायुध एवं चक्रायुध नामक दो सगे भाई आपस में लगातार संघर्षरत थे। इस संघर्ष में प्रतिहार नरेश इन्द्रायुध के साथ तो दूसरी ओर चक्रायुध को धर्मपाल का समर्थन हासिल था।

धर्मपाल के 32 वें वर्ष के खालिमपुर अभिलेख से यह पता चलता है कि कन्नौज नरेश चक्रायुध को धर्मपाल का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। कुरु, यदु, अवंति, कीर, (कांगड़ा) भोज (बरार) मत्स्य (जयपुर) तथा मद्र (पूर्वी पंजाब) के शासकों ने पाल-शासक धर्मपाल के सैनिक दबाव में आकर चक्रायुध को कान्यकुब्ज का राजा स्वीकार कर लिया था।[2] इस प्रकार से देखें तो स्पष्ट होता है कि धर्मपाल का प्रभुत्व संपूर्ण उत्तर भारत पर स्थापित माना जा सकता है। उत्तर भारत के प्रभुत्व-स्थापना को लेकर चल रहे त्रिकोणात्मक संघर्ष का विवरण निम्नलिखित है-

आठवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट प्रमुख राजवंश थे। प्रतिहार अधिपति वत्सराज ने राजपूताना व मध्य भारत,पालों ने बिहार और बंगाल में और राष्ट्रकूट वंश ने दक्षिण में अपनी सत्ता स्थापित की थी। उत्तर भारत में पाल और प्रतिहारों के बीच आधिपत्य के लिए संघर्ष अवश्यंभावी था। प्रतिहार गंगा यमुना के संगम तक पहुँच गये थे और प्रयाग तक पालों का प्रभाव भी बढ़ गया था। ठीक इसी समय राष्ट्रकूटों ने भी अपने शासक ध्रुव के नेतृत्व में विंधय पर्वत पार कर उत्तर में अपनी प्रभुता के लिए प्रयास किया। इस प्रकार त्रिकोणात्मक संघर्ष की संभावना बलवती हुई। यह संघर्ष 783 से 914 ई. तक चला। पहला संघर्ष राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव, प्रतिहार शासक वत्सराज, पाल नरेश धर्मपाल के बीच हुआ, जिसमें ध्रुव नरेश (राष्ट्रकूट) की विजय हुई।

जिस समय कन्नौज की गद्दी पर इंद्रायुध था, उस समय राष्ट्रकूट ध्रुव ने गंगा-यमुना के दोआब पर आक्रमण किया और अपनी इस विजय के उपलक्ष्य में उसने साम्राज्य-लक्षणों में गंगा एवं यमुना के दोआब पर आक्रमण किया और अपनी इस विजयोपलक्ष्य में उसने साम्राज्य लक्षणों में गंगा-यमुना के आकृति चिन्ह भी जोड़ लिए। बंगाल के धर्मपाल ने इंद्रायुध को परास्त कर उसे सिंहासन से उतार दिया और उसके स्थान पर अपने संरक्ष्य चक्रायुध को बैठा दिया। राष्ट्रकूट पालों की प्रभूता स्वीकार न कर सके, इसके लिए शक्ति संतुलन हेतु दोनों वंशों में संघर्ष अनिवार्य हो गया। अमोघवर्ष के संजन अभिलेख के अनुसार ध्रुव के पुत्र और

उत्तराधिकारी गोविन्द तृतीय के समक्ष दोनों, धर्मपाल और चक्रायुध ने आत्म-समर्पण कर दिया। राष्ट्रकूट और पालों के संघर्ष के फलस्वरुप दोआब क्षेत्र में अव्यवस्था फैल गयी। और इस अराजक स्थिति से प्रतिहार नरेश नागभट्ट ने लाभ उठाते हुए चक्रायुध के संरक्षक बंगाल के राजा धर्मपाल को मुंगेर के आसपास हराकर कान्यकुब्ज पर अपना अधिकार कर लिया। इस पराजय के बाद धर्मपाल ने राष्ट्रकूट शासक गोविन्द के साथ सुलह करने की कोशीष की। गोविन्द तृतीय ने पुन: उत्तर भारत पर अपना अभियान शुरु किया तथा नागभट्ट को हराया। इसी समय राष्ट्रकूटों के राज्य में आंतरिक समस्याएँ शुरु हो गयी और गोविन्द तृतीय वापस लौट गये। राष्ट्रकूटों के वापस लौटने के बाद पुन: पाल एवं प्रतिहारों के बीच कन्नौज के लिए संघर्ष शुरु हो गया। पालों को आंशिक तौर कुछ सफलता तो मिली किन्तु देवपाल (815-55ई.) के बाद पालों की ताकत कमजोर होने लगी लेकिन प्रतिहारों का अभ्युदय होने लगा। मिहिरभोज प्रतिहार (836-89) ने कन्नौज तथा कालिंजर विजय कर अपने राज्य में मिला लिया। फिर देवपाल और राष्ट्रकूटों के हाथों उन्हें परास्त होना पड़ा। देवपाल की मृत्यु के बाद राष्ट्रकूटों ने बंगाल पर आक्रमण किया और इधर प्रतिहार-शासक को थोड़ी राहत मिली।[4] मिहिरभोज ने चेदि और गुहिलौत राजाओं के साथ मित्रा का संबंध स्थापित किया। उधर राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय को पूर्वी चालुक्यों से उलझना पड़ा। मिहिर भोज ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया।उसने नर्मदा नदी के तट पर कृष्ण द्वितीय को हराया और मालवा पर कब्जा कर लिया। साथ ही गुजरात और काठियावाड़ पर कब्जा करते हुए कन्नौज को अपने राज्य की राजधानी बना लिया। राष्ट्रकूट इतनी आसानी से अपनी पराजय कहाँ मानने वाले थे। जब तक महेन्द्रपाल (890-910) शासक रहा, तब तक प्रतिहारों की प्रतिष्ठा बनी रही। महेन्द्रपाल के बाद प्रतिहारों की शक्ति कमजोर होने लगी। महिपाल प्रतिहार के समय पुन: राष्ट्रकूट और प्रतिहारों के बीच संघर्ष शुरु हुआ। इंद्र तृतीय ने महिपाल को परास्त किया और उसकी सेना ने कन्नौज को बर्बाद कर दिया। प्रतिहार राष्ट्रकूटों के समक्ष नतमस्तक हुआ। क्षेमीश्वर ने चंडकौशिक में उसे "कर्नाट का विजेता" कहा है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि पाल-प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट बार-बार कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए संघर्षरत थे। इस संघर्ष में प्रथम पाली में वत्सराज और ध्रुव के समक्ष धर्मपाल को पराजित होना पड़ा। ध्रुव के लौट जाने के बाद धर्मपाल ने पुन: कन्नौज पर अपना भाग्य आजमाया और खालिमपुर-अभिलेख के अनुसार उसने कन्नौज का सम्राट बनने लायक अपने को समझा तथा कन्नौज की गद्दी पर अपने प्रतिनिधि को बैठाया। उसके इस कार्य पर स्वीकृति की मुहर पांचाल, भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवंती, गांधर कीर इत्यादि ने लगाई। कन्नौज में धर्मपाल ने एक दरबार का भी आयोजन किया और वहाँ बीस राजाओं ने उसे अपना शासक माना। यही कारण है कि उदयसुन्दरी कथा में सोड्ढल ने उसे 'उत्तरापथ स्वामी' कहा है।

वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज के प्रश्न पर पालों को ललकारा और पालों से लड़ने के लिए एक संधि भी की। कन्नौज पर उसने आक्रमण किया और धर्मपाल की सहायता के बावजूद उसका प्रतिनिधि चक्रायुध नाकाम रहा। भोज के ग्वालियर प्रशस्ति में लिखा है कि नागभट्ट (715-833 ई.) और धर्मपाल (775-814 ई.) के बीच घमासान युद्ध हुआ था। यह युद्ध मुंगेर में ही हुआ था। धर्मपाल पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय उत्तर भारत का सर्वशक्तिमान शासक हो गया,साथ ही उसने आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स्य आदि राज्यों को भी अपने अधीन किया।

नागभट्ट की उपरोक्त विजय दुंदुभि से राष्ट्रकूट व्याकुल हो उठा। अत: उन्होंने पालवंश के साथ इस अवसर पर कूटनीतिक संबंध स्थापित करने की सोची और इसमें धर्मपाल के ससूर राष्ट्रकूट परबल ने अपने प्रभाव का उपयोग किया। इस प्रकार,धर्मपाल को तटस्थ बनाकर गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट ने प्रतिहार नागभट्ट पर आक्रमण कर दिया। नागभट्ट हार गया। इससे धर्मपाल की साम्राज्यवादी प्रतिष्ठा पुन: स्थापित हो गयी।[8] साथ ही एक बार फिर से पाटलिपुत्र पाल शासन का केंद्र बन गया। देवपाल को अनुकूल परिस्थिति मिली। प्रतिहार रामभद्र (833-36 ई.) कमजोर शासक था और राष्ट्रकूट अमोघवर्ष अपने राज्य के आंतरिक मामलों में इस तरह फँसा कि उत्तर में हस्तक्षेप करने का उन्हें मौका ही नहीं मिला। प्रतिहार और राष्ट्रकूट राज्य अपनी-अपनी समस्याओं में उलझे हुए थेय इसलिए देवपाल के लिए इससे अच्छा अवसर और दूसरा हो ही नही सकता था। उसके शासन के अंतिम समय में प्रतिहारों का उत्कर्ष भोज के नेतृत्व में हुआ। प्रतिहारों का उत्कर्ष पालों के लिए चिंता का विषय था।

भाग्यलक्ष्मी ने अपना स्थान परिवर्तन किया और वत्सराज को अलंकृत किया। परंतु, शीघ्र ही राष्ट्रकूटों ने भोज को पराजित कर दिया। देवपाल प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों को नियंत्रण में रखने में सफल रहा। ग्वालियर अभिलेख तथा कहला अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रतिहार मिहिरभोज ने देवपाल (810-50 ई.) को हरा दिया, परन्तु बादल अभिलेख के अनुसार देवपाल ने गुर्जर प्रतिहार को हराया।

देवपाल के बाद पालवंश की स्थिति बद से बदतर होने लगी। हालांकि अमोघवर्ष ने भी पालों पर आक्रमण किया, परन्तु पालों की कमजारी से सबसे ज्यादा लाभ प्रतिहारों ने उठाया। मिहिरभोज ने प्रतिहार साम्राज्य को काफी आगे बढ़ाया। नारायणपाल को राष्ट्रकूट और प्रतिहारों का मुकाबला करना पड़ा और साथ ही मगध से भी हाथ धेना पड़ा।[9] मिहिर भोज के समय से ही कन्नौज फिर से प्रतिहारों के हाथ आ गया था, तब से ही कन्नौज प्रतिहारों की राजधानी रही। महेन्द्रपाल (890-910 ई.) के बाद प्रतिहारों की शक्ति क्षीण हो गई और पुनः राष्ट्रकूटों ने उत्तर में हस्तक्षेप करना शुरु किया। उन्होंने महिपाल प्रतिहार को पराजित कर अपना कब्जा जमा लिया।[10] महिपाल भाग गया, लेकिन बाद में अपने चंदेल सामंत हर्षदेव अथवा यशोवर्मन की सहायता से वह पुनः लौटा और राष्ट्रकूटों के वापस जाने के बाद फिर अपनी राजधानी कन्नौज में राजगद्दी पर बैठा। इसके बाद से प्रतिहारों ने कन्नौज पर अधिकार बनाए रखा।

उपरोक्त वर्णित संघर्षो पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि यह संघर्ष छः चरणों में हुआ। पहला चरण वत्सराज, ध्रुव और धर्मपाल के बीच हुआ। दूसरा चरण धर्मपाल एवं वत्सराज के बीच हुआ था। तीसरा चरण नागभट्ट और राष्ट्रकूट के बीच लेकिन चौथा चरण विवादास्पद रहा। गोविन्द तृतीय के उत्तर भारत पर आक्रमण के संबंध में विवाद है। ऐसा लगता है कि इस चरण में पूर्वगामी प्रथम चरण की ही पुनरावृत्ति हुई थी। पाँचवें चरण में धर्मपाल एवं देवपाल दोनों ने प्रमुख विपक्षियों की कमजोरी का फायदा उठाया था। छठे चरण में इंद्र तृतीय, अमोघवर्ष द्वितीय, गोविन्द चतुर्थ और अमोघवर्ष तृतीय प्रतिहार महिपाल के समकालीन थे। राष्ट्रकूटों की अक्षमता एवं दूर्बलता का फायदा उठाकर महिपाल ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। क्षेमीश्वरकृत नाटक 'चंडकौशिक' से पता चलता है कि महिपाल ने कर्णाट यानि राष्ट्रकूटों को हराया था। इस अंतिम चरण में भाग्य लक्ष्मी ने प्रतिहारों को विजयश्री हस्तगत् किया।

संदर्भ

1. श्याम मनोहर मिश्र- 'दक्षिण भारत का इतिहास'।
2. खालिमपुर अभिलेख।
3. अमोघवर्ष का संजन अभिलेख।
4. R.C. Majumadar – 'History of Bengal', (Vol.I Edited),A nceint India.
5. सोड्दल-'उदयसुन्दरी'।
6. क्षेमीश्वर-'चंडकौशिक'।
7. G. Yazdani- 'The Early History of Deccan'.
8. T.V. Mahalingam- 'South India Polity'.
9. नीलकण्ठ शास्त्री- 'दक्षिण भारत का इतिहास', पटना, (हिन्दी अनुवाद), 1972
10. V.SA iyer - Historical Sketches ofA ncient Deccan, Coimbatore, 1967

तुलसी का रामराज्य और लोकतंत्र

डॉ० संजीव कुमार

सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग,
फारबिसगंज महाविद्यालय, फारबिसगंज

तुलसीदासजी का आविर्भाव 16वीं सदी में हुआ था। उस समय दिल्ली की सत्ता पर मुगलों का आधिपत्य था। खनवा की लड़ाई में राणा सांगा की हार के साथ ही राजपूत शासकों की शक्ति क्षीण होने लगाी थी। धीरे-धीरे समस्त उत्तर भारत पर मुगलों का अधिकार हो गया था। मुगल शासकों की राज्य विस्तारवादी नीतियों के चलते अक्सर युद्ध होते रहते थे। उस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी शासन, राज्य की प्राप्ति हेतु मारकाट, लड़ाई-झगड़ा करना। क्या राजा और क्या प्रजा, क्या शासक, क्या शासित सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से हीन था। शासकों के निरंतर युद्ध में लगे रहने के कारण सामाजिक संगठन कें लिए उनके पास समय न था। अत: समाज के स्तर पर विश्रृँखलतायें थीं। इस संदर्भ में डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-

"उस समय उन्होंने जिस समाज को देखा था, वह बहुत ऊँचे आदर्शों पर नही चल रहा था। उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में डुबे हुए थे और निचले स्त्री-पुरुष दरिद्र, रोगी और अशिक्षित थे।"[1]

तुलसीदासजी ने अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति को करीब से देखा, सुना और समझा तथा मानसिक संकल्पना के स्तर पर 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में रामराज्य को प्रस्तावित किया। मानस का उत्तरकांड मानस का सातवाँ सोपान है। इसी में मुख्य रूप से उनकी विचारधारा मुखरित हुई है। इसे संपूर्ण मानस का फलश्रुति कहा जा सकता है।[2]

तुलसीदासजी के 'रामराज्य' में शासक राम हैं। राम में शौर्य, धीरता, सत्य, शील, बल, विवेक, दम, परोकार, क्षमा, दया, बुद्धि, विज्ञान, निर्मल मन तथा साधु-सेवादि के गुण हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे अत्याचारी रावण का विनाश कर रामराज्य की स्थापना करते हैं, जिसमें सभी सुखी हैं। कोई दरिद्र, हीन और दुखी नही है। सभी स्वस्थ और निरोग शरीर वाले हैं। छोटी अवस्था में किसी की मृत्यु नहीं होती है, न किसी को कोई पीड़ा होती है।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब विरूज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहीं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।[3]

श्रीरामचंद्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होते ही तीनों लोक के लोग हर्षित हो जाते हैं। उनके सारे शोक समाप्त हो जाते हैं। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्रीरामचंद्रजी के प्रताप से सबकी विषमता मिट जाती है।

राम राज बैठे त्रेलोका। हरसित भए गए सब सोका।।
वयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।[4]

सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर हैं, सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।

वरणाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।[5]

'राम-राज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रह कर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।[6]

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत में परिपूर्ण हो रहा है। स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री राम भक्ति के परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अध नाहीं।।

राम भगति रत नर अरू नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।[7]

सभी दम्भरहित हैं, धर्म परायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करनेवाले और पंडित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञता का भाव रखते हैं। कपट-चतुराई किसी में नहीं है।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरू नारि चतुर सब गुणी।।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहीं कपट सयानी।।[8]

सब नर नारी उदार हैं। सभी परोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुषमात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करनेवाली हैं।

सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।।

एकनारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।[9]

'रामराज्य' में पृथ्वी धन धन्य से पूर्ण है। पहाड़ों में अनेक प्रकार के रत्न और बहुमूल्य पदार्थों की खानें प्रकट हुई हैं। मेघ समय पर वृष्टि करते हैं। सूर्य आवश्यकता के अनुसार गर्मी प्रदान करता है। सभी प्रकार के कष्टों से प्रजा मुक्त है। तुलसीदासजी के अनुसार रामराज्य राम की धर्मशीलता, पुण्य, प्रताप, त्याग, परोपकार आदि गुणों का परिणाम था। 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में इसी का उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। रामराज्य का यह वर्णन तुलसीदास जी की कोरी कल्पना नहीं है। यह प्रामाणिक कथन हैं। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण और महाभारत के शांतिपर्व में हुआ है।

'प्राणिनो नाप्सु मज्जन्ति नान्यथा पावको दहत्।

रूजाभयं न तत्रसीद रामें राज्यं प्रशासति।।

आसन वर्षसहस्त्रिण्यस्तथा वर्षसहस्त्का:।।

आरोगा:सर्वसिद्धार्था रामे राज्यं प्रशासति।।[10]

तुलसीदासजी ने 'रामराज्य' में एक आदर्श राजा, आदर्श प्रजा और लोक कल्याणकारी राज्य की रूप-रेखा प्रस्तुत की है। रामराज्य की इसी रूप-रेखा के कारण बहुत सारे विद्वान 'रामराज्य' में आधुनिक लोकतंत्र के सूत्र तलाशते हैं।

लोकतंत्र या प्रजातंत्र शासन की ऐसी प्रणाली है जिसमें सरकार का चयन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता करती है। सरकार में ऐसे लोग सम्मिलित होते हैं। जो जनता के प्रतिनिधि होते हैं। अत: लोकतंत्र या प्रजातंत्र में शासन जनता का ही होता है। लोकतंत्र का उद्देश्य जनता का कल्याण है।

लोकतांत्रिक राज्य का स्वरूप लोक कल्याणकारी होता है। शासन में शामिल लोग जब जन सरोकार से विमुख होते हैं तो जनता उन्हें विभिन्न माध्यमों से हटा भी सकती है। लोकतंत्र को प्ररिभाषित करते हुए संयुक्त राज्यय अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा है- "लोकतंत्र जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार है।" लिण्सेट इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं- "लोकतंत्र एक ऐसी राजनैतिक प्रणाली है जो पदाधिकारियों को बदल देने के नियमित संवैधनिक अवसर प्रदान करती है और एक ऐसे रचनातंत्र का प्रावधान करती है जिसके तहत जनसंख्या का एक विशाल हिस्सा राजनीतिक प्रभार प्राप्त करने के इच्छुक प्रतियोगियों में से मनोनुकूल चयन कर महत्त्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित्त करती है।" मैकर्सन के अनुसार- "लोकतंत्र एक ऐसा रचनातंत्र है जिसमें सरकारों को चयनित और प्राधिकृत किया जाता है अथवा किसी अन्य रूप में कानून बनाए और निर्णय लिए जाते हैं।" शूप्टर के अनुसार- "लोकतांत्रिक विधि राजनीतिक निर्णय लेने हेतु ऐसी संस्थागत व्यवस्था है जो जनता की सामान्य इच्छा को क्रियान्वित करने हेतु तत्पर लोगों को चयनित कर सामान्य हित को साधने का कार्य करती है। वास्तव में लोकतंत्र मूलत: नागरिक

और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सहभागी राजनीति से संबद्ध प्रणाली है। लोकतंत्र की विवेचना के बाद अगर हम 'रामराज्य' की संकल्पना के साथ लोकतंत्र के संबंध को देखते हैं, तो पाते हैं कि संरचनात्मक रूप से 'रामराज्य' और लोकतंत्र में अंतर है। 'रामराज्य' में भले ही राजा रामचंद्र सभी मानवीय सात्त्विक गुणों से परिपूर्ण हैं, प्रजा हितैषी हैं। वे निरंतर प्रजा की सुरक्षा और कल्याण के लिए तत्पर रहते हैं। वे सदा प्रजा के मतों का आदर करते हैं। राजकीय नीतियों के निर्धारण में प्रजा की सहभागिता भी रहती है। प्रजा सभी दृष्टि से सुखी हैं। प्रजा को कोई कष्ट नहीं है। प्रजा भी आदर्श प्रजा हैं। वे उदार, परोपकारी और कर्मठ हैं। प्रजा में परस्पर प्रेम है, किसी प्रकार का वैर-भाव नहीं है। उनमें समरसता का भाव है। लेकिन राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक ही है। केवल लोक कल्याणकारी उद्येश्यों के स्तर पर 'रामराज्य' और लोकतांत्रिक राज्य में समानता मिलती है। इस संदर्भ में भगीरथ मिश्र की टिप्पणी उल्लेखनीय है-

"यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास के युग मे जनतंत्र की भावना कल्पनातीत है, क्योंकि उस समय स्वेच्छाचारी राजतंत्र चल रहा था। फिर भी गोस्वामीजी ने अपने 'रामचरितमानस' में जनतंत्रात्मक राज्य शासन की भावना को प्रतिष्ठापित किया है और इसी के परिणामस्वरूप उनका आदर्श आज भी हमारे लिए उपयोगी है। उनकी यह भावना है कि स्वेच्छाचारी राजा के हाथ में जनहित सुरक्षित नही, इसीलिए उन्होंने ऐसे शासन की कल्पना की जो वैयक्तिक स्वार्थों से परे है; त्याग जिसका आचरण है, और लोकहित जिसका व्यवहार है।"

संदर्भ

1. 'हिन्दी साहित्य: उदभव और विकास', हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 125
2. 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', बच्चन सिंह, तीसरी आवृत्ति, 2009, पृष्ठ 142
3. 'रामचरितमानस', उत्तरकाण्ड, नवाह्न परायण, आठवां विश्राम, दो.- 20, चौ.-3
4. वही, दो.-19 चौ.-4
5. वही, दो.-20,
6. वही, दो.-20, चौ.-1
7. वही, दो.-20 चौ.-2
8. वही, दो.-20 चौ.-4
9. वही, दो.-21 चौ.-4
10. 'महाभारत', शा. अ., 29, श्लोक-54,55
11. 'तुलसी के राजनीतिक विचार', निबंधकार-भगीरथ मिश्र, संकलन- 'तुलसीदास', सं.- डॉ. वासुदेव सिंह, पृष्ठ 135

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी की भूमिका

डॉ० दीपक कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), इतिहास विभाग,
एम.पी.सिन्हा साइंस कॉलेज, मुजफ्फरपुर

भारतीय राजनीतिक मंच पर 1919 से 1948 तक महात्मा गाँधी जी इस प्रकार छाए रहे कि इस युग को भारतीय इतिहास का गांधीयुग कहा जाता है। 1915 में गांधी जी भारत लौट आए और अपनी सेवाओं की मान्यता के फलस्वरूप अब वे महात्मा कहलाने लगे। यह प्रभाव कितना अधिक था, वह पण्डित जवाहरलाल नेहरू के मूल्यांकन से पता चलता है। 1945 में उन्होंने लिखा था, "गांधीजी का प्रभाव उन लोगों तक सीमित नहीं जो उन्हें राष्ट्र नेता मानते हैं अथवा उनसे सहमत है। यह तो उन लोगों पर भी पड़ा दिखाई देता है जो उनसे असहमत हैं अथवा उनकी आलोचना करते हैं। भारत के असंख्य लोगों के लिए वह भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा तथा उग्र राष्ट्रवाद के प्रतीक हैं तथा गर्वपूर्ण शक्ति के सामने झुकने से इनकार करते हैं अथवा ऐसी किसी आज्ञा को स्वीकार नहीं करते जिसमें देश का अनादर होता है। यद्यपि भारत के बहुत से लोग सैकड़ों बातों में उनसे सहमत नहीं हैं... परन्तु जब भारत की स्वतंत्रता की बात आती है तो वे सब उन्हीं के पास भागते हैं और उन्हें अपना अपरिहार्य नेता मानते हैं।"

महात्मा गांधी उदार और उग्रवादी दल दोनों की राजनीतिक परम्पराओं के उत्तराधिकारी थे। उन्होंने न केवल इन दोनों नीतियों के उत्तम भागों का समन्वय किया अपितु दोनों को एक अधिक गतिशील और व्यावहारिक मोड़ भी दिया। उदारवादी और उग्रवादी दलों के सामाजिक और राजनैतिक कार्य में जो विरोधभास सा था उससे गांधीजी कभी चिन्तित नहीं हुए क्योंकि उनके अनुसार राजनीति को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया जाना चाहिए। उनका स्वराज्य राम राज्य अथवा ईश्वर के राज्य का दूसरा नाम था अर्थात् वह राज्य जो सब जनता के हित के लिए कार्य करें। आरंभिक काल के राष्ट्रीय नेताओं, जैसे गोविंद रानाडे, दादा भाई नौरोजी, विशाख दत्त, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचंद्र पाल सभी ने अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण की बात तो कहीं परन्तु किसी ने भी निर्धन जनता के लिए कुछ नहीं किया। गांधीजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस निर्धन, मूक और भूखी जनता का प्रतिनिधित्व करती है और उन्होंने उससे सामाजिक और आर्थिक हित के लिए कार्य किए। अस्पृश्यता को हटाना, हरिजनों के जीवन को उत्तम बनाना, ग्राम उद्योग संघ बनाना, बुनियादी शिक्षा के लिए तालीमी संघ बनाना, खादी को पुनर्जीवित करना, हाथ का कता और बुना कपड़ा पहनना, ऐसी बातें थी जिनसे ग्राम में रहने वाले निर्धन व्यक्तियों की उन्नति हुई।

गांधीजी 46 वर्ष की आयु में 1915 में भारत लौटे। पूरे एक वर्ष तक उन्होंने देश का भ्रमण किया और भारतीय जनता की दशा को समझा। फिर उन्होंने 1916 में अहमदाबाद के पास साबरमती आश्रम की स्थापना की जहाँ उनके मित्रों और अनुयायियों को रहकर सत्य-अहिंसा को समझना तथा व्यवहार करना पड़ता था। उन्होंने संघर्ष की अपनी नई विधि के साथ यहाँ प्रयोग भी करना आरंभ किया।

चम्पारण सत्याग्रह (1917) - गांधीजी ने सत्याग्रह का अपना पहला बड़ा प्रयोग बिहार के चंपारण जिले में 1917 में किया। यहाँ नील के खेतों में काम करने वाले किसानों पर यूरोपीय निलहे बहुत अधिक अत्याचार करते थे। किसानों को अपनी जमीन के कम से कम 3/20 भाग पर नील की खेती करना तथा निलहों द्वारा तय दामों पर उन्हें बेचना पड़ता था। इसी तरह की परिस्थितियाँ

पहले बंगाल में भी रही थी मगर 1859-61 के काल में एक बड़े विद्रोह के द्वारा वहां के किसानों ने निलहे साहबों से मुक्ति पा ली थी।

गांधीजी के दक्षिण अफ्रिका के संघर्षों की कहानी सुनकर चंपारण के अनेक किसानों ने उन्हें वहां आकर उनकी सहायता का निमंत्रण दिया। राजकुमार शुक्ल गांधीजी को आमंत्रित करने के लिए लखनऊ गए थे। गांधीजी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल-हक, जे. बी. कृपलानी, नरहरि पारिख और महादेव देसाई के साथ 1917 में वहाँ पहुँचे और किसानों की हालत की विस्तृत जाँच-पड़ताल करने लगे। जिले के अधिकारियों ने उन्हें चंपारण छोड़ने का आदेश दिया, मगर उन्होंने आदेश का उल्लंघन किया और जेल-मुकदमें के लिए तैयार रहे। सरकार ने मजबूर होकर पिछला आदेश रद्द कर दिया और एक जाँच समिति बिठाई जिसके एक सदस्य स्वयं गांधीजी थे। अंततः किसान जिन समस्याओं से पीड़ित थे उनमें कमी हुई। इस तरह भारत में "सविनय अवज्ञा आंदोलन" की पहली लड़ाई गांधीजी ने जीत ली। चंपारण में उन्होंने वह भयानक गरीबी भी देखी जो भारतीय किसानों के जीवन का अंग था।

सन् 1918 में गांधीजी ने अहमदाबाद में मजदूरों और मिल मालिकों के एक विवाद में हस्तक्षेप किया। उन्होंने मजदूरों को मजदूरी में 35 प्रतिशत वृद्धि की मांग करने तथा इसके लिए हड़ताल पर जाने की राय दी। लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि हड़ताल के दौरान मजदूर मालिकों के खिलाफ हिंसा का प्रयोग न करें। मजदूरों के हड़ताल जारी रखने के संकल्प को बल देने के लिए उन्होंने आमरण अनशन किया। उनके अनशन ने मिल मालिकों पर दबाव डाला और वे नर्म पड़कर मजदूरी 35 प्रतिशत बढ़ाने पर सहमत हो गए।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन (1919-22)

लखनऊ समझौता हिंदू और मुसलमानों की सामूहिक राजनीतिक कारवाई के लिए आधार तैयार कर चुका था। हिंदू-मुस्लिम एकता के सिद्धांत की घोषणा के लिए एक आर्य समाजी नेता स्वामी श्रद्धानंद से मुसलमानों ने दिल्ली स्थित जामा मस्जिद के प्रवचन मंच से उपदेश देने के लिए आग्रह किया जबकि मुसलमान डॉक्टर किचल्लू को अमृतसर में सिखों के पवित्र स्थल स्वर्ण मन्दिर की चाबियाँ दे दी गई। इसी वातावरण में मुसलमानों के बीच राष्ट्रवादी प्रवृत्ति ने खिलाफत आंदोलन का रूप ले लिया। राजनैतिक रूप से जागरूक मुसलमान तुर्की साम्राज्य के प्रति ब्रिटेन और उसके साथ संधिब) राष्ट्रों के व्यवहार के आलोचक थे। जल्द ही अली बंधुओं, मौलाना आजाद, हकीम अजमल खां और हसरत मोहानी के नेतृत्व में खिलाफत कमेटी बनी और देशव्यापी आंदोलन का आयोजन किया गया। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने भी खिलाफत आंदोलन को हिन्दू-मुस्लिम एकता को मजबूत बनाने और मुस्लिम जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में लाने का सुनहरा मौका समझा। खिलाफत कमेटी ने 31 अगस्त 1920 को असहयोग आंदोलन शुरू किया। सबसे पहले उसमें गांधीजी शामिल हुए। उन्होंने अपना कैसर ए हिन्द' पदक लौटा दिया।

रौलट एक्ट के पारित करने, जालियांवाला बाग के भीषण गोली काण्ड और खिलाफत के विवाद में अंग्रेजों की भूमिका से गांधीजी अत्यंत पीड़ित हुए। सितम्बर 1920 में कोलकाता कांग्रेस के अधिवेशन में अन्यायी सरकार के विरूद्ध असहयोग करने का प्रस्ताव पारित किया। लोगों से सरकारी शिक्षण संस्थानों, अदालतों और विधान मंडलों का बहिष्कार करने तथा खादी के उत्पादन के चरखा-तकली चलाने और हाथ करघे का अभ्यास करने को कहा गया। गांधीजी ने नागपुर में दिसंबर 1920 के वार्षिक कांग्रेस के अधिवेशन में घोषणा की "ब्रिटिश जनता को इस बात के लिए सतर्क रहना होगा कि अगर वह न्याय करना नहीं चाहती तो प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्त्तव्य होगा कि वह साम्राज्य को नष्ट कर दें।" 1921 और 1922 के दौरान भारतीय जनता का एक अभूतपूर्व आंदोलन हुआ। हजारों छात्रों ने सरकारी स्कूलों और कॉलेजों को छोड़कर राष्ट्रीय स्कूलों में प्रवेश लिया। सारे देश में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। खादी जल्दी ही आजादी का प्रतीक बन गया। गांधीजी को छोड़कर बाकी सारे महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेता 30,000 अन्य लोगों के साथ 1921 के अंत तक जेल में बंद कर दिए गए। 1 फरवरी 1922 को महात्मा गांधी ने भारत के वायसराय लार्ड रीडिंग को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सरकार की कठोर नीति की निंदा की एवं उसे चेतावनी दी। 5 फरवरी को यूपी के गोरखपुर जिला के चौरीचौरा में कांग्रेस और खिलाफत का एक जुलूस निकला। कुछ पुलिस वालों ने इनसे दुर्व्यवहार किया तो भीड़ हिंसक हो गई और थाने में आग लगा दी गई। इस घटना में 22 पुलिसकर्मी मारे गये। अनेक व्यक्ति जला दिए गए। इस घटना के विरोध में महात्मा गांधी ने फरवरी 1922 में अपना आंदोलन वापिस ले लिया और कहा कि कड़े आत्मसंयम के बिना इस सत्याग्रह का प्रयोग नहीं हो सकता।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-31, 1932-34)

गांधीजी 1928 में पुन: राजनीति में आ गए और उन्होंने 1930 में नमक कानून को तोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया। 12 मार्च 1930 को गांधीजी ने साबरमती आश्रम से अपने 78 सहयोगियों के साथ मिलकर डाण्डी समुद्र तट पर जाकर अवैध नमक बनाया। सुभाष चन्द्र बोस ने इस अभियान की तुलना नेपोलियन के एलबा से पैरिस की और किये जाने वाले अभियान से की थी। एक अंग्रेज समाचार संवाददाता ने इसकी खिल्ली उड़ाई और कहा कि "क्या एक सम्राट को एक केतली में पानी उबालने से हराया जा सकता है।" कलकत्ता के प्रसिद्ध समाचार पत्र स्टेट्समैन ने व्यंग से कहा, गांधी महोदय समुद्री जल को तब तक उबाल सकते हैं जब तक कि डोमिनियन स्टेट (Dominion State) नहीं मिल जाता। परन्तु इन साम्राज्यवादियों ने इस अवज्ञा आंदोलन के नैतिक प्रभाव का ठीक-ठीक मूल्य नहीं आंका। शीघ्र ही अवज्ञा आंदोलन में 60,000 से भी अधिक स्वयं सेवियों ने भाग लिया।

5 मार्च 1931 को सरकार और कांग्रेस में गांधी-इरविन समझौता (Gandhi-Irwin Pact) हो गया और वायसराय ने इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय संवैधानिक विकास का उद्देश्य भारत को डोमिनियन स्टेट देना है। गांधीजी ने भारतीय संवैधानिक सुधारों के लिए बुलाए गए दूसरे गोल मेज सम्मेलन में भाग लिया। वे निराश लौटे और 1932 में पुन: सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया। 1933 में उन्होंने अपने आंदोलन की असफलता को स्वीकार किया और कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और अपने आप को हरिजनों की सेवा तक सीमित कर लिया। परन्तु 1928 से 1934 तक के इन वर्षो ने कांग्रेस का स्वरूप ही बदल दिया। अब इसमें आत्मविश्वास, गर्व और दृढ़ निश्चय आ गया था। परन्तु सबसे प्रमुख बात यह थी कि अब यह सर्वसाधारण का आन्दोलन बन गया था।

भारत छोड़ो आंदोलन (1942)

क्रिप्स मिशन की असफलता से सभी को निराशा हुई। अभी तक कांग्रेस ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था। (सिवाय संविधान सभा की मांग के) जिससे अंग्रेजों को परेशानी हो। परंतु अब जबकि जापान लगभग देश के द्वार पर खड़ा था। कांग्रेस चुप नहीं रह सकती थी। गांधीजी ने अब अप्रैल 1942 में अंग्रेजों के सुव्यवस्थित ढंग से भारत से चले जाने की बात कही। उनके अनुसार जो भी हो अब भारतीयों और अंग्रेजों की कुशलता इसी में थी कि अंग्रेज भारत से चले जाए। अब 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा प्रसिद्ध हो गया। 10 मई 1942 के हरिजन में उन्होंने लिखा कि 'भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है। उनके जाने से यह लोभ समाप्त हो जाएगा।

8 अगस्त 1942 को बम्बई में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में इस प्रस्ताव का समर्थन हुआ और यह कहा गया कि "भारत में अंग्रेजी राज्य की समाप्ति भारत और संयुक्त राष्ट्रों दोनों के हित में है। अगले दिन ही गांधीजी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्य बन्दी बना लिए गए और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। देश की जनता में राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी के विरूद्ध जनाक्रोश फैल गया। स्थान-स्थान पर सार्वजनिक माल, संपत्ति इत्यादि की हानि हुई। गोलियाँ चली। सरकार ने भी दमन चक्र चलाया, सैकड़ो व्यक्ति मारे गये और हजारों जेल में डाल दिए गए।

गांधीजी ने 15 जुलाई 1943 को एक पत्र लिखकर हिंसात्मक कार्यो के लिए सरकार को दोषी ठहराया और एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा इसकी जाँच की मांग की। गांधीजी ने 10 फरवरी को आत्म शुद्धि के उद्देश्य से 21 दिनों के लिए उपवास शुरू किया। 13 दिनों के बाद गांधीजी के हालात बहुत ही नाजुक हो गयी। सरकार ने महसूस किया कि गांधीजी का जीवित रहना उनकी मुक्ति आंदोलन को हिंसक होने से बचाने के लिए जरूरी है। इसलिए मई 1944 को गांधीजी को जेल से रिहा कर दिया गया। स्वस्थ होने पर उन्होंने पुन: राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया और ये आंदोलन भारत के स्वतंत्र होने तक चलता रहा।

निष्कर्षत

ऐसा कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी भारत एवं भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख राजनीतिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। राजनीतिक और सामाजिक प्रगति की प्राप्ति हेतु अपने अहिंसक विरोध के सिद्धांत के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।

विश्व पटल पर महात्मा गांधी सिर्फ एक नाम नहीं अपितु शान्ति और अहिंसा का प्रतीक है।

महात्मा गांधी के पूर्व भी शान्ति और अहिंसा के बारे में लोग जानते थे, परन्तु उन्होंने जिस प्रकार सत्याग्रह, शांति व अहिंसा के रास्तों पर चलते हुए अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया, उसका कोई दूसरा उदाहरण विश्व इतिहास में देखने को नहीं मिलता। तभी तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी वर्ष 2007 से गांधी जयंती को 'विश्व अहिंसा दिवस' के रूप में मनाए जाने की घोषणा की है। गांधीजी के बारे में प्रख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि- 'हजार साल बाद आने वाली नस्लें इस बात पर मुश्किल से विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस से बना ऐसा कोई इंसान भी धरती पर कभी आया था।

संदर्भ

1. आधुनिक भारत का इतिहास - बी. एल. ग्रोवर, अलका मेहता, यशपाल पृष्ठ संख्या-315, 316, 317, 318, 333
2. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष - विपिन चन्द्र, पृष्ठ सं0- 138, 140, 367, 368
3. भारतीय इतिहास- 12वीं कक्षा NCERT, भाग-3, पृष्ठ संख्या-349, 355, 356, 357
4. आधुनिक भारत - सुमित सरकार, पृष्ठ संख्या-324, 330, 445, 446, 447
5. आधुनिक भारत का इतिहास - विपिन चन्द्र, पृष्ठ संख्या- 277, 280, 282, 284

किरातार्जुनीय के काव्य-द्रव्य

डॉ० गंगेश गुंजन

ग्राम+पो0 - केयाल, थाना - करपी, जिला - अरवल, बिहार

संसार की किसी भी वस्तु की निर्मिति में द्रव्यों की अनिवार्य स्थिति होती है। यदि वस्तु भौतिक है तो द्रव्यों की संस्थिति स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। पर यदि वस्तु अभौतिक या अमूर्त है तो उसके प्रभव द्रव्यों की पहचान भर की जा सकती है। काव्य इसी प्रकार की अमूर्त वस्तु है। श्रेष्ठ काव्य अपने में कैसे-कैसे द्रव्य समाविष्ट किए रहते हैं, उनकी प्रत्यभिज्ञा और विवेचना शत-प्रतिशत भले न हो, किन्तु एक हद तक अवश्यमेव की जाती है।

काव्य-द्रव्यों को लेकर पाश्चात्य और भारतीय आचार्यों ने अलग-अलग स्थापनाएँ दी हैं। पाश्चात्य आचार्य काव्य-द्रव्यों को निम्नलिखित रूप में निरूपित करते हैं-भावतत्त्व, बुद्धि तत्त्व, कल्पनातत्त्व और रूपतत्त्व।

भावद्रव्य वह मूल धारा है जो काव्य में आद्यन्त अन्तर्धवित रहती है। "किरातार्जुनीय" भारवि प्रणीत काव्य है। यह बृहत्त्री में प्रथम स्थानिक है। संस्कृत काव्य-परम्परा में महाकाव्यों की जो मणिमाला दृष्टिगोचर होती है, उसमें किरातार्जुनीय उम्दा मनका है। इसकी गणना किए बिना कोई भी संस्कृत अधयेता अपनी काव्य-साधना का पुरश्चरण पूरा नहीं कर सकता। यहाँ (किरातार्जुनीय में) शब्दों की सुष्ठु वन-सम्पदा है, अर्थचारुता के सरस दिव्य फल हैं और चमकभरी भावराशि का उमंगायित उदधि है। दूसरे शब्दोंमें, "किरातार्जुनीय" संस्कृत काव्य-परम्परा का वह लहराता वृक्ष है जहाँ मात्र शब्दों के पत्ते ही पत्ते नहीं हैं जिनकी हरीतिमा हमारी आँखें चुरा लेती हैं, अपितु वहाँ अर्थगौरव का वह शिखर है जहाँ हमें 'प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती' के पवित्र दर्शन होते हैं।

भारवि की एकमात्र रचना "किरातार्जुनीय" है जिस पर महाकवि की कीर्ति का कैलास खड़ा है। इस महाकाव्य के उपजीव्य द्रव्य के मूल में महाभारत और शिवपुराण है। महाभारत के वनपर्व अध्याय 38 से 41 और शिवपुराण की ज्ञान-संहिता अध्याय-63 से 67 में अर्जुन के द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति की कथा आयी है। इसी लघुकथा को उपजीव्य बनाकर महाकवि भारवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। लघीयसी कथा में गरीयसी काव्य-आत्मा की प्रतिष्ठा करके कवि काव्य की ऐसी इमारत खड़ी करता है जो अपनी पहचान में अमोघ है।

"किरातार्जुनीय" में अठ्ठारह सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में वनेचर को अहमियत, उसकी योग्यता की चर्चा के साथ युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित ब्रह्मचारी वेशधरी वनेचर जो दुर्योधन की शासन-व्यवस्था की समग्र और सम्यक् सूचना लेकर लौटता है, उसका वर्णन है। वनेचर मुखबिरी की जवाबदेही से जुड़ा है। अतः वह अपने व्यक्तित्व-स्थापन के क्रम में कहता है- न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः[1] अर्थात् हितैषी को प्रिय एवं मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए। तात्पर्य उसे यथार्थ कथन करना चाहिए। यह सच है कि हितकारी एवं मनोहारी वचन दुर्लभ होते हैं- हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः[2] इसी क्रम में महाकवि भारवि अर्थगौरव की महत्ता को रेखांकित कर जाते हैं- सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चतार्थामिति वाचमाददे। अभिप्राय कि मुखबिरी कार्य में नियुक्त वनेचर को अर्थगांभीर्य के वैशिष्ट्य से सुशोभित निश्चित अर्थवाली वाणी का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन, यहाँ धयातव्य है कि भारवि इसी व्याज से अपने काव्य में अर्थगौरव की धुरी निश्चित कर देते हैं जो उनकी काव्य-पहचान का ध्रुवतारा है। वनेचर दुर्योधन की शासन-व्यवस्था के क्रम में 'त्रिगण' (अर्थ, धर्म और काम) की उत्तरोत्तर वृद्धि की बात कहता है। यह उसकी लाघव शैली में कथन की सबसे बड़ी विशेषता है-

असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।
गुणानुरागादिवसख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।।[3]

अर्थात् समुचित विभाग करके पक्षपात रहित भक्ति से अनासक्त भाव से आराधना करते हुए उस दुर्योधन के गुणों में अनुराग से मानों त्रिगणों ने (अर्थ, धर्म और काम ने) परस्पर मित्रा कर ली हो, ऐसे एक एक से विरोध नहीं करते, सभी उत्तरोत्तर बढ़ते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद राजनीति में दण्ड की चतुर्विधियाँ हैं, उन्हें दुर्योधन उपयुक्त स्थान पर प्रयोग करता है। सबसे बड़ी बात कृषकों के उत्थान के लिए उसने वर्षा पर निर्भरता कम करने के लिए कई कल्याणकारी कार्य किये हैं, जैसे नहर की खुदाई, जल संचयन हित में तालाबों, बाबड़ियों का अच्छा-खासा निर्माण। इससे कृषकों की हालत में कुरु प्रदेश में काफी कुछ सुधार हुए हैं। फलतः कृषक-वर्ग पर उसका नियन्त्रण है। राजा लोग प्रेमपूर्वक उसकी शास्ति मानते हैं और समय पर कर चुकता करते हैं और भेंट में हाथी एवं घोड़े देते हैं। इस प्रकार समुन्नति के अध्याय दिनोंदिन खुलते जा रहे हैं। वनेचर कहता है- हे महाराज! फिर भी आपका आतंक उसको बना हुआ है। अतः प्रतीकारार्थ आपको कदम उठाना चाहिए। इतना कहकर पुरस्कारोपेत होकर वनेचर चला जाता है। वनेचर के जाने के बाद युधिष्ठिर ने द्रौपदी के समक्ष सभी भाइयों को समग्र सूचनाएँ दी।

द्रौपदी की उक्तियाँ इस सर्ग की उसे एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करती हैं। यहाँ द्रौपदी अपने पतियों को उनके सुनहरे अतीत का स्मरण कराकर प्रतीकार के लिए प्रबोधित करती है। महाराज युधिष्ठिर को इन शब्दों में झिंझोड़ती है-

विहाय शान्तिं नृप धम तत्पुनः प्रसीद सन्धेहि वधय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः॥[4]

अर्थात् हे राजन्! शान्ति को त्यागकर शत्रुओं के विनाश के लिए उस जगत्प्रसिद्ध तेज को पुनः धारण करें। निस्पृह मुनिजन अन्तः शत्रुओं (कामादि) को जीतकर सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं, राजा लोग नहीं। वे अपने पराक्रम से सिद्धि को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के कई उद्बोधन से उद्दीप्त कथन द्रौपदी के इस सर्ग में आये हैं।

द्वितीय सर्ग में भीम और युधिष्ठिर के बीच संवाद-सौष्ठव अत्यंत प्रेरक और मनोहारी है। इसी सर्ग में कवि ने महर्षि व्यास का सोद्देश्य अवतरण कराया है।

तृतीय सर्ग में महर्षि व्यास मृत्युञ्जयी भीष्म पितामह, गुरु द्रोण और कर्ण जैसे शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति हेतु एक विद्या प्रदान करते हैं जिससे अर्जुन देवराज इन्द्र को प्रसन्न करके ऐसे दिव्यास्त्रें को प्राप्त करेंगे कि पूर्वोक्त सभी महाशूर-वीर परास्त होंगे। यक्ष तपस्थल तक अर्जुन को पहुँचा देगा। ऐसा कहकर व्यास अन्तर्धन हो जाते हैं और उनके स्थान पर यक्ष उपस्थित हो जाता है।

इसके अनन्तर अर्जुन तपस्या के लिए चल पड़ते हैं। यहाँ द्रौपदी अर्जुन के प्रति उत्साहवर्धक संबोधन करती है। द्रौपदी के शब्द शौर्य उद्दीप्त निमित्त शत-प्रतिशत सौदामिनी की संदीप्ति से संयुक्त है, देखिए-

स क्षत्रियस्त्रणसहः सतां यस्तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः।
वहन्द्वयीं यद्फलेर्ध्थजाते करोत्यसंस्कारहतामिवोक्तिम्॥[5]

अर्थात् जो सज्जनों की रक्षा में समर्थ है वही क्षत्रिय है, जिसकी युद्धकर्म में शक्ति है, वही कार्मुक है, इन दोनों शब्दों को पूर्वोक्त अर्थ से रहित केवल जातिमात्र वाचक धारण करता हुआ पुरुष व्याकरण गम्य अर्थ के अभाव के कारण संस्कारहीन कर देता है। द्रौपदी की आकांक्षा में कैसा गुलाबी रंग है उसे पढ़कर पाठक रसद्रवित हुए बिना नहीं रहता है, जरा उसे तो देखिए-

तदाशु कुर्वन्वचनं महर्षेर्मनोरथान्नः साफलीकुरुष्व।
प्रत्यागतं त्वास्मि कृतार्थमेव स्तनोपपीडं परिरब्धुकामा॥[6]

चतुर्थ सर्ग में अर्जुन ने अपनी तपस्या के क्रम में यक्ष के साथ हिमालय की ओर जाते हुए ग्राम सीमाओं के पास शरद् ऋतु को देखा। अतः यह सर्ग अर्जुन और यक्ष की संवेदनशीलता से ओत-प्रोत होकर शरद् ऋतु को समर्पित है। शरद् ऋतु का वर्णन देखिए-

विनम्रशालिप्रसवौधशालिनीरपेतर्प्का: ससरोरुहाम्भसः।
ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरुपायनीभूतशरद्गणश्रियः॥[7]

यक्ष मुख से वर्णित शरद्-शोभा स्वाभाविक सुन्दर होने से साह्लादकारिणी है- नभ में बलाकाएँ नहीं उड़तीं। इन्द्रचाप से चर्चित मेघ नहीं उमड़-घुमड़ रहे हैं। फिर भी आकाश उत्कृष्ट शोभा सम्पन्न है। वस्तुतः जो सुन्दर है, वह बनावटी गुणों की अपेक्षा नहीं करता-

पतन्ति नास्मिन्विशदाः पतत्रिणो धृतेन्द्रचापा न पयोदपंक्तयः।
तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्।।[8]

इस प्रकार वर्णन-वृद्धि के क्रम में घनी वन राजियों से व्याप्त उपत्यकाओं से युक्त हिममण्डित शिखरवाला हिमालय नील अधेवस्त्र पहने निर्मद हलधर के समान दूर से दिखाई पड़ा। यहीं चतुर्थ सर्ग की समाप्ति होती है-

तमतनुवनराजिश्यामितोपत्यकान्तं
नगमुपरि हिमानीगौरमासाद्य जिष्णुः।
व्यपगतमदरागस्यानुसस्मार लक्ष्मी-
मसितमधरवासो बिभ्रतः सीरपाणेः।।[9]

पंचम सर्ग में कविकृत एवं यक्षकृत हिमालय का वर्णन है। वर्णन में कवि को तो कल्पना के पंख लग गये हैं। इस सर्ग का आरम्भ ही हिमालय वर्णन से होता है-

अथ जयाय नु मेरुमहीभृतो रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं नु विलंघयितुं नभः।।

अर्थात् शरद् की शोभा को देखने के बाद अर्जुन हिमालय की ओर चले, जो हिमालय अत्यन्त उन्नत होने के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी ऊँचाई से सुमेरु पर्वत को जीतने के लिए या दिशाओं के अन्त को देखने की तीव्र उत्कण्ठा से या आकाश को लाँघने के लिए ऊपर की ओर उठ खड़ा हुआ हो।

यक्षकृत हिमालय-वर्णन में हिमालय को पावन, बहुमूल्य रत्नों की खनि, मुनियों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराने वाला तथा औषधियों का आगार बताया गया है। यहाँ घास सदा हरी रहती है, कमल खिले रहते हैं और वृक्षों के पत्ते कभी नहीं पकते। नियम निरत भगवान् शंकर के वाम भाग में पार्वती हैं और भगवान् शंकर का वाहन नन्दी भी कैलास के शिखर पर रहता है। अन्त में, अर्जुन को यक्ष का उपदेश है कि वे सावधन चित्त और इन्द्रिय नियमन के साथ तपस्या करें। भगवान् शंकर और लोकपाल उनकी तपस्या में रुचि और सतत उत्साह-वृद्धि करें। ऐसा कहकर यक्ष अन्तर्धन हो गया।

षष्ठ सर्ग में इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन की परीक्षा तपस्या के क्रम में लेने के लिए इन्द्र अप्सराओं को भेजने का उपक्रम करते हैं, इसका वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग में गन्धर्वों सहित अप्सराएँ स्वर्ग से इन्द्रकील पर्वत के लिए प्रस्थान करती हैं, जहाँ अर्जुन तपस्यारत हैं।

अष्टम सर्ग में देवांगनाओं का वन विहार और उनकी जल-क्रीडाओं का वर्णन है।

नवम सर्ग में संध्याकाल का वर्णन है। फिर घने अंधकार की व्याप्ति में प्रकृति को चित्रित किया गया है। इसके बाद चन्द्रोदय का चित्रण है। चित्रण चित्तावर्जक है। विलास-वर्णन में भारवि का कमाल देखते ही बनता है।

दशम सर्ग में अर्जुन को लुभाने में अप्सराओं को किल दिखाया गया है। फलतः किलकामा अप्सराएँ स्वर्ग लौट जाती हैं।

एकादश सर्ग में वृद्धमुनि वेशधरी इन्द्र का अर्जुन के पास आगमन होता है और उन दोनों के बीच तर्कशील संवाद घटित होता है। मुनिवेशधरी इन्द्र मुक्ति के लिए तपस्या के औचित्य पर संवाद जारी रखते हैं। वहीं गांडीवधरी अर्जुन के प्रति सशंक भी होते हैं, क्योंकि सर्वभूत सुहृत् मुमुक्षु के लिए सशस्त्र होना सवाल खड़ा करता है। किन्तु, अर्जुन के तर्क की तेज धर में और उसकी अचलपदी संकल्पना के समक्ष इन्द्र अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपने प्रिय पुत्र अर्जुन का आलिंगन करते हैं और भगवान् शंकर की आराधना का आदेश देकर तिरोभूत हो जाते हैं।

द्वादश सर्ग अर्जुन की कृच्छ्र तपस्या को रेखांकित करता है। तपस्वियों को अर्जुन में सूर्य, अग्नि अथवा देवराज इन्द्र का भ्रम होता है और उनकी तपस्या को लोकहित में न होने पर प्रश्न उठाते हैं। अपनी शंका के शमन के लिए वे भगवान् शंकर की शरण गहते हैं। इसपर भूतभावन भगवान् शंकर शंका का निवारण करते हुए अर्जुन को लोकहितकारी एवं देवोपकारी बताते हैं और एक विशिष्ट सूचना देते हैं कि देवारि मूकदानव इस पाण्डुपुत्र को वराह रूप धारण कर मारने जा रहा है। प्रतीकार के लिए वे स्वयं विलक्षण किरात का वेश धारण कर अपने प्रमथगणों के साथ परिवर्तित रूप में जा रहे हैं। उनके प्रयाण से सम्पूर्ण वन-प्रान्त प्रमथित हो उठता है। भगवान् शंकर वृक्ष की ओट में होकर शर-सन्धन करते हैं।

त्र्योदश सर्ग वराह भेदन को लेकर केन्द्रित है। चतुर्दश सर्ग में वनेचर रूपधरी गण और अर्जुन के बीच अर्थगौरवपूर्ण तीव्र संवाद की निर्मिति की गयी है। शिकार का पक्षाधिकारी कौन होगा,- यह विषय विवेचित हुआ है। तत्पश्चात् वनेचर से प्राप्त सूचना के आधार पर भगवान् शिव अपनी समग्र सेना को एक साथ वाण-प्रहार करने के लिए आदेश देते हैं। गाण्डीवधरी अर्जुन सभी वारों को व्यर्थ करके सभी सैनिकों को मूर्च्छित कर देते हैं।

पंचदश सर्ग में प्रथमतः कार्त्तिकेय और अर्जुन के बीच, बाद में भगवान् शंकर और अर्जुन के बीच लोमहर्षक युद्ध का रचना-पटल तैयार किया गया है।

षोडश सर्ग में किरातवेशधरी भगवान् शंकर की विलक्षण रणक्रिया को देखकर अर्जुन तर्क-वितर्क में पड़ जाते है। फिर भी विजय-लक्ष्मी को लक्ष्य करते हुए वे अविचल धैर्य रखते हैं।

सप्तदश सर्ग में भी रणक्रिया जारी है। इसमें भगवान् शंकर की सेना से अर्जुन की टक्कर उतार-चढ़ाव के साथ होती है। शंकर अर्जुन की कीर्ति-वृद्धि के लिए हार-जीतवाली लड़ाई लड़ते हैं। युद्ध क्रम में एकबार ऐसा होता है कि अर्जुन साधन रहित होकर पत्थरों एवं वृक्षों की डालियाँ फेंकने लगते हैं। लेकिन, शंकर के समक्ष एक न चली, फिर तो क्रोधविष्ट होकर अर्जुन ने शंकर की छाती पर मुष्टि प्रहार किया।

अष्टादश सर्ग में अर्जुन और भगवान् शंकर के बीच बाहुयुद्ध का वर्णन है। दोनों में युद्ध की चारुता बढ़ाने के लिए मुक्का-मुक्की, पटका-पटकी, गुत्थमगुत्थी के मनहर दृश्य कवि ने उपस्थित किये हैं। इस बाहुयुद्ध, मल्लयुद्ध की प्रशंसा में यहाँ तक लिखा गया है कि भगवान् शिव अर्जुन की तपस्या से जितने प्रसन्न नहीं हुए, उससे अधिक उनकी रणक्रिया से प्रसन्न हुए-

तपसा तथा न मुदमस्य ययौ भगवान्यथा विपुलसत्त्वतया।

गुणसंहतेः समतिरिक्तमहो निजमेव सत्त्वमुपकारि सताम्।।

अन्त में, सफलकाम अर्जुन भगवान् शिव की बहुविध स्तुति करते हैं। इस क्रम में उनके द्वारा की गई स्तुति का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

आत्मलाभपरिणामनिरोधैर्भूतसंघ इव न त्वमुपेतः।

तेन सर्वभुवनातिग लोके नोपमानमासि नाप्युपमेयः।।[10]

भगवान् शिव न उपमेय हैं, न उपमान। वे तो कारणों के कारण हैं- त्वं कारणं कारणकारणाम्[11] इन्हीं सर्वसमर्थ भगवान् का वचन है कि हे अर्जुन, घर जाओ, शत्रुओं को जीतो-व्रज जय रिपुलोकम्[12] इस प्रकार शिव के कहे जाने पर देवताओं से प्रशंसित विजय लक्ष्मी से युक्त उस अर्जुन ने घर जाकर युधिष्ठिर को सादर नमस्कार किया। यहीं काव्य का समापन होता है।

इस प्रकार 'किरातार्जुनीय' के भावद्रव्यों में जो फलक विस्तार है उसमेंश्रृंगार और वीररस सम्मिलित हैं।

बुद्धि द्रव्य के अन्तर्गत विचार की प्रधनता होती है। बिना विचार के केवल रागात्मक भावनाओं से रंजित काव्य जनरंजन के लिए चिरस्थायी नहीं होतां उसमें बुद्धि द्रव्य का समावेश अनिवार्य है। हृदय और मस्तिष्क के योग की दिशा में रचित काव्य बहुमान और बहुमूल्य होता है। 'किरातार्जुनीय' में सात्त्विक लक्ष्य की पूर्ति के लिए राजनीति के साथ तपस्या को भी अचूक कारक बनाया गया है। शुद्ध राजनीति में उत्तेजना का कहीं स्थान नहीं है। उसमें त्याग, धैर्य और शक्ति का समाराधन विधान है।श्रृंगार पक्ष को साधक के समक्ष रखकर उसके इन्द्रिय-नियमन की परीक्षा होती है। अर्जुन को यहाँ सफल होते दिखाया गया है। विचार का एक पक्ष ऐसा होता है जो सम्पूर्ण काव्य में विलसित, उल्लसित रहता है। उदाहरण के लिए अर्जुन के द्वारा किया गया वह सत्प्रयास जिससे दुर्योधन पर अर्थात् खोई हुई राज्यलक्ष्मी पर विजय हेतु उपाय की प्राप्ति करना। किन्तु, विचार घनीभूत होकर सूक्तियों में जब ढल जाते हैं, तब वे खण्ड होकर भी जीवन पर अखण्ड रूप से विचार की धर पैदा करते हैं, जैसे–

(क) दुरन्ता बलबद्विरोधिता[13] (बलवान के साथ विरोध करने का परिणाम बहुत भयानक होता है।)

(ख) मतमालम्बनमात्मपौरुषम्[14] (अपना पुरुषार्थ ही आपत्ति के प्रतिकार का एकमात्र साधन है।)

(ग) प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया[15] (महान् पुरुष का स्वभाव है कि वे दूसरों की उन्नति को नहीं सहते।)

(घ) श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः[16] (बिना विघ्न के कल्याण को प्राप्त करना कठिन है।)

(ङ) सन्धते भृशमरतिं हि सद्वियोगः[17] (सज्जनों का वियोग दुःखदायी होता है।)

(च) नान्तरज्ञाः श्रियः[18] (लक्ष्मी ऊँच-नीच का विचार नहीं करती।)

(छ) न्यायधारा हि साधवः[19] (सज्जन लोग ही न्याय के आधार हैं।)

(ज) परमं लाभमरातिर्भ्गमाहुः[20] (शत्रुओं का नाश परम लाभ कहा गया है)

(झ) सतां हि वाणी गुणमेव भाषते[21] (सज्जनों की वाणी किसी भी व्यक्ति के गुण को ही कहती है।) म्च्प्ळतःड के अंतर्गत उपर्युक्त समस्त उदाहरणों को रखा जा सकता है।

कल्पना-द्रव्य का विनियोग काव्य को कलात्मक बनाता है। 'कल्पना' शब्द क्लृप् धतु से निर्मित है जिसका अर्थ 'मानसिक सृष्टि करना' होता है। मानसिक चित्रों का संबंध त्रिकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) से होता है। ये चित्र प्रायः चतुर्विध होते हैं- चाक्षुष चित्र, ध्वनि चित्र, गन्ध चित्र और स्पर्श चित्र। इनका क्रमशः संबंध हमारी आँखों, श्रवणेन्द्रियों, नासिका तथा त्वचा से हुआ करता है। 'किरातार्जुनीय' से इनके उदाहरण यत्प्रकार हैं-

चाक्षुष चित्र-

कपोलसंश्लेषि विलोचनत्विषा विभूषयन्तीमवतंसकोत्पलम्।

सुतेन पाण्डोः कमलस्य गोपिकां निरीक्ष्य मेने शरदः कृतार्थता।।[22]

(कपोलों में लगे हुए कर्णभूषणीभूत कमलों की आँखों की कान्ति से विभूषित करती हुई गोपिकाओं को देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुन ने शरद् ऋतु को सफल माना।)

मुञ्चतीशे शराञ्जिष्णौ पिनाकस्वनपूरितः।

दधवान धवनयन्नाशाः स्फुटन्निव धराधरः।।[23]

(शंकर के अर्जुन पर बाण चलाने पर पिनाक की धवनि से भरा वह इन्द्रकील पर्वत (धराधर) फटते हुए के समान दिशाओं को प्रतिधवनित करता हुआ शब्द करने लगा।ऋ

गन्ध चित्र-

कान्ताजनं सुरतखेदनिमीलिताक्षं

संवाहितुं समुपयानिव मन्दमन्दम्।

हर्म्येषु माल्यमदिरापरिभोगगन्ध-

नाविश्चकार रजनीपरिवृत्तिवायुः।।[24]

(सुरतखेद से निमीलित नयना सुरसुन्दरियों के खेद निवारणार्थ मानो अंग मर्दन के लिए मन्द-मन्द बहते हुए प्रभात-कालीन पवन ने अटारियों पर माला और मदिरा की गंध को फैला दिया।)

स्पर्श चित्र-

श्वसनचलितपल्लवाधरोष्ठे नवनिहितेर्ष्यमिवावधूनयन्ती।

मधुसुरभिणि षट्पदेन पुष्पे मुख इव शाललतावधूश्चुचुम्बे।।[25]

(भ्रमर ने शालशाखारूपी वधू के वायुरूपी श्वास से कम्पित किसलयरूपी ओष्ठ युक्त पुष्परसरूपी मद्य के गन्ध वाले नवप्रणयकोपकम्पित पुष्प रूपी मुख को चूमा।)

रूप द्रव्य के अन्तर्गत काव्य की विध, भाषा और छन्दोविधान आदि आते हैं। 'किरातार्जुनीय' की भाषा 'नारिकेलफलसम्मितम्' है अर्थात् ऊपर से कठोर किन्तु अन्दर से अत्यन्त मधुर। 'संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' में डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने लिखा है- 'भारवि की भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है। उसका शब्द-संचय भावानुकूल है। भावानुसार कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। भाषा में कहीं शैथिल्य नहीं है। मनोभाव, उदात्त कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का 'किरातार्जुनीय' एक

रत्नाकार ही है। अर्थ-गांभीर्य और अर्थ गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है। 26 डॉ. द्विवेदी ने भारवि की भाषा पर जैसी टिप्पणी की है, वह एक उदाहरण से स्पष्ट है-

अकृत्रिमप्रेमरसाभिरामं
रामार्पितं दृष्टिविलोभि दृष्टम्।
मन: प्रसादाञ्जलिना निकामं
जग्राह पाथेयमिवेन्द्र सूनु:।।[27]

स्वयं कवि भारवि का भाषा के प्रति जो अपना मन्तव्य है, वह भी द्रष्टव्य है-

स्फुटता न पदैरपाकृता
न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां
न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।।28

अलंकार-योजना पर अगर ध्यान जाए, तो 'किरातार्जुनीय' अपनी समृद्धि की अलग मुहर रखता है। महाकवि भारवि रीति-शैली के जनक हैं। चित्रलंकारों के प्रयोग में उन्होनें जैसी पटुता और प्रचुरता दिखाई है, वह अभूतपूर्व है। 'किरातार्जुनीय' का पन्द्रहवाँ सर्ग चित्रलंकारों के विविध व्यूहों से भरा पड़ा है। कहीं एकाक्षर श्लोक है, तो कहीं दो या चार अक्षर वाले, कहीं पादादि यमक है, तो कहीं पादान्तादि यमक, कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है, तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीध और उलटा एक ही होता है, तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही हैं, कहीं दो पद समान हैं, तो कहीं चारों पद एक ही हैं, कहीं आद्यन्त यमक है, तो कहींशृंखला यमक, कहीं निरोष्ठ्य वर्ण श्लोक है तो कहीं अर्धभ्रमक, कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक हैं तो कहीं चार-चार अर्थों के व्यंजक श्लोक भी हैं।

एक ही व्यंजन वर्ण 'न' के सहयोग से एक श्लोक का ठाट खड़ा किया गया है। यह चित्रलंकारों में एकाक्षर चित्रलंकार है-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।।[29]

इस श्लोक में नाना, आनना, नुन्न, ऊन प्रभति शब्द क्रमश: विभिन्न प्रकार (नाना), मुख (आनन), विद्ध (नुन्न) और निकृष्ट पुरुष (ऊन) के अर्थ में प्रयुक्त है।

इस एकाक्षरी चित्रलंकार का प्रयोग माघ ने जो किया है, उसे देखें-

दाददो दुद्दुद्दादी दादादो दूददीददो:।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽदद:।।[30]

दरअसल, ऐसे प्रयोगों से काव्य की कथाधरा में गतिरोध पैदा होता है। हाँ, पाण्डित्य-प्रदर्शन अवश्यमेव होता है। कालिदास का काव्य जिस प्रकार हृदय पर अखंड राज्य करता है, स्फूर्ति से पाठकों को भर देता है, एक स्थायी प्रभाव की कैद में करता है, उसप्रकार भारवि सफल नहीं हो पाते। खेल खेलने के लिए जब शब्दों का प्रयोग होता है, तब शब्द केवल खेल बनकर रह जाते हैं, काव्यानंद की प्राप्ति नहीं करा पाते। डॉ. भोलाशंकर व्यास ने डॉ. डे की विचारणा के साथ भारवि की कविता के संबंध में अपनी सहमति जतलाते हुए 'संस्कृत कवि दर्शन' में लिखा है- "भारवि की अभिव्यंजना शैली का परिपाक अपनी उदात्त स्निग्धता के कारण सुन्दर लगता है, उसमें शब्द तथा अर्थ के सुडौलपन की स्वस्थता है, किन्तु महान् कविता की उस शक्ति की कमी है, जो भावों की स्फूर्ति तथा हृदय को उठाने की उच्चतम क्षमता रखता है।[31]

'किरातार्जुनीय' में भारवि की उपमा-प्रियता प्रगाढ़ है। 13वाँ और 17वाँ सर्ग प्राय: उपमा अलंकारो के मनोहर प्रयोग से भरे हैं। एक उदाहरण अलम् होगा-

मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधै विवेकिनाम्।
सुकृत: परिशुद्ध आगम: कुरुते दीप इवार्थदर्शनम्।।[32]

उपमा के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, श्लेष, यमक, एकावली, समासोक्ति, दृष्टान्त, अर्थापत्ति, विरोधभास प्रभृति अलंकार भी कवि की कलम के अभिराम अलंकार बने हैं।

भारवि का परम प्रिय छन्द वंशस्थ है। क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलकम्' में वंशस्थवृत्त के लिए उनकी प्रशंसा की है-

वृत्तछत्रस्य सा काधपि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता।।

भारवि ने वंशस्थवृत्त के अतिरिक्त उपजाति, द्रुतविलम्बित, अनुष्टुप, वियोगिनी, प्रमिताक्षरा, प्रहर्षिणी, स्वागता, पुष्पिताग्रा, उद्गता, औपच्छन्दसिक, मालिनी, वसन्ततिलका, शिखरिणी आदि-आदि छन्दों पर भी अपना अधिकार जतलाया है।

भारतीय आचार्यो की दृष्टि में काव्य-द्रव्य निम्नलिखित हैं- शब्दार्थ, रीति, गुण, रस, अलंकार और छन्द। इन पर दृष्टि-केंद्रण न होने से प्रस्तुत निबंध में उनका विवेचन इस प्रकार है कि पाश्चात्य आचार्य की दृष्टि में जो काव्य-द्रव्य आयत्त हैं, उनका विवेचन हो।

निष्कर्षत

'किरातार्जुनीय' काव्य-द्रव्यों से सम्पूर्ण सशक्त एवं कीर्तिभाज् रचना है। भारतीय विद्वत्परम्परा इसे अपना हृदयहारी हार के साथ कालजयी कृति मानती है।श्रृंगार की स्वर लिपि की ओट लेकर 'किरातार्जुनीय' में भारवि ने विजयोपलब्धि के बीज मंत्र की कविता लिखी है। इस कविता में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति के साथ-साथ वीरभाव के प्रासाद की नींव त्याग, तपस्या और बाहुबल पर रखकर यह संदेश रचा गया है कि इस संसार में लक्ष्य भेदन के लिए सात्त्विक तपः साधना से बढ़कर और कुछ नहीं, बशर्त्ते उसके पीछे अपनी शक्ति का सागर लहराता हो।

संदर्भ सूची

1. किरातार्जुनीयम् – 1/2
2. वही – 1/4
3. वही – 1/11
4. वही – 1/42
5. वही – 3/48
6. वही – 3/54
7. वही – 4/02
8. वही – 4/23
9. वही – 4/38
10. वही – 18/34
11. वही – 18/35
12. वही – 18/48
13. वही – 01/23
14. वही – 02/13
15. वही – 2/21
16. वही – 5/49
17. वही – 5/51
18. वही – 11/24
19. वही – 11/30
20. वही – 13/12

21. वही – 14/11
22. वही – 4/9
23. वही – 15/34
24. वही – 9/76
25. वही – 10/34
26. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-लेखक – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ- 185 प्रकाशक- राम नारायण लाल विजय कुमार 2, कटरा रोड, इलाहाबाद
27. किरातार्जुनीयम् – 3/37
28. वही – 2/27
29. वही – 15/14
30. शिशुपालवधम् – 19/114
31. संस्कृत कवि दर्शन – डॉ. भोला शंकर व्यास पृ0- 112
32. किरातार्जुनीयम् – 2/33

गरुड़पुराण में भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति

डॉ० नलिनी श्रीवास्तव

संस्कृत, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

पुराण के पाँच लक्षणों की चर्चा सभी पुराणों में आती है, प्रायः अठारह पुराण मुख्य रूप से भारतवर्ष के भूगोल को वर्णित करते हुए अभिलक्षित होते हैं। सभी पुराणों का यह महत्वपूर्ण विषय है कि वह प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डाले। गरूड़पुराण में भी विस्तृत रूप से हमें भारत के प्राचीन भूगोल की जानकारी प्राप्त होती है। पुराणों के पंचलक्षण में सर्वप्रथम सर्ग का उल्लेख हुआ है गरूड़पुराण में भी यत्र-तत्र विस्तार से वर्णन आया है, जिसमें पर्याप्त दार्शनिकता दिखायी पड़ती है। गरूड़पुराण जगत की उत्पत्ति की मुख्य आधार परमात्मा या परमेश्वर को मानता है, इसके अतिरिक्त प्रायः सर्वत्र सांख्य सम्मत सृष्टि-प्रक्रिया को महत्त्व प्रदान किया गया है, परन्तु उसके नियन्ता के रूप में अधिकाशं स्थानों पर भगवान शिव और विष्णु को माना गया है।

एक स्थान पर भगवान शिव पार्वती से पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में जो मन्तव्य प्रदान करते हैं उस पर भी दर्शन का प्रभाव है। उसके अनुसार शिव से नियन्त्रित होकर त्रिगुणात्मक अहंकार से सर्वप्रथम महत् की उत्पत्ति हुई, फिर इसी तरह क्रमशः महत् से तम् तम् से वेष्टित, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

''अहंकारात्समुत्पन्नं महत्त्वं च पार्वति।
महतत्त्वातमो जातं तामसा वेष्टितं नभः।।
नभसों वायुरूपन्नों वायो रग्निरजायत।
अग्नेराप: समुत्पनन, अद्भ्यो जाता महीतदा।।''[1]

निम्नलिखित श्लोक में स्पष्ट रूप से मही (पृथ्वी) का उल्लेख हुआ है।

पुराणों में भूगोल का विवरण दो रूपों में दिया गया है एक संपूर्ण ब्रह्माण्ड और विश्व का, दूसरा सम्पूर्ण भारतवर्ष का। गरूड़पुराण में भी दोनों प्रकार के विवरणों की प्राप्ति होती है। पुराणकारों ने विश्व के जिन देशों, पर्वतो, नदियों आद का उल्लेख किया है, यदि उनकी पहचान आजकल ठीक ढंग से हो जाय, तो संभव है कि बहुत से प्राचीन तथ्यों की जानकारी हमें मिले।

गरूड़पुराण के अनुसार सम्पूण्र ब्रह्माण्ड के भीतर चौदह लोक है जिनमें पृथ्वी लोक के उपर छः लोक और उसके नीचे सात लोक हैं। पृथ्वीलोक या भूलोक के उपर छः ऊर्ध्वलोक है उनका नाम हैं - भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक। भूलोक मध्यलोक है और उसके नीचे के जो सात अघोलोक है उनका नाम है - अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल। पुराणों के अनुसार पृथ्वीलोक या भूलोक प्रथम लोक है क्योंकि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इसी का उच्चारण किया। इस लोक का अधिष्ठाता देव अग्नि है और वह प्रलयाग्नि से नष्ट हो जाता है। भूलोक से उपर युवर्लोक है इसे हीं अन्तरिक्ष माना गया है। युवर्लोक से ऊपर स्वर्गलोक है। स्वर्गलोक से उपर महर्लोक हैं कल्पान्त में यह लोक जीवरहित हो जाता है परन्तु इसका अन्त नहीं होता। जीवरहित हो जानें पर भी इसका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता है। जनलोक पाँचवा लोक है जो महर्लोक से उपर है। इसे वरूण का लोक माना गया है। अखंड ब्रह्मचर्य पालन करने वाले योगी जनों का यह लोक माना जाता है। तपोलोक छठा लोक है जो जनलोक से ऊपर है इसका प्रलय नहीं होता है।

सबसे ऊपर सत्य लोक है इसे ब्रह्मा का निवास स्थान माना गया है इसका कभी भी नाश नहीं होता है। भूलोक से नीचे जो सात लोक हैं, उन्हें अधेलोक कहा जाता है इन्हें ही सामान्यतया पातल लोक कहा जाता है। ये ऊर्ध्वलोक या अधेलोक आज किस स्थिति में और कहाँ? - इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है। डा० बलदेव उपाध्याय के अनुसार-पाताल

की पहचान समग्र पश्चिमी गोलार्थ से की जा सकती है जिसे आजकल उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका के नाम से पुकारते हैं। मध्य अमेरिका के मुख्य प्रदेश मैक्सिकों प्राचीन संस्कृति के नाम से विख्यात है और वहाँ के निवासी आज भी उस प्राचीन संस्कृति के उपासक है। गरूड़पुराण में अतल नामक पाताल लोक में मय नामक असुर की उपस्थिति बतलायी गयी है। मय बड़े हीं अद्भुत महलों का निर्माण करनेवाला असुरों का इन्जिनीयर (शिल्पी) था। मैक्सिको तथा पेरू देशों की समृद्ध शिल्प-कला एवं भवनों एवं प्राचीन युग की विशद कलाकृतियों को देखकर आधुनिक शिल्पी आश्चर्यचकित हो उठता है। मैक्सिकों का आचार-विचार रहन-सहन पर भारतीय प्रभाव ज्यादा है। इस दृष्टि से समग्र अमेरिका की पहचान पाताल के रूप में करना प्रमाणिक एवं वैज्ञानिक है। 2

गरूड़पुराण के अनुसार अधेलोको के नीचे भी नरकादि लोक है। स्कन्दपुराण के अनुसार नरकों के नीचे कालाग्नि है उसके नीचे वृहक है उसके नीचे अनन्त है। उस अनन्त लोक में पद्म, कुमुद, अंजन, वाभन आदि दिशाओं के गज हैं वहीं अण्डकटाह है। उसके भी नीचे जल है और फिर उसके नीचे एक करोड़ नरक है। उसके भी नीचे दो करोड़ प्रकार की अग्नि है। उसके नीचे चालीस हजार तम हैं। उसके नीचे चौआलिस करोड़ नवासी लाख अस्सी हजार अण्डकटाह है। उसके बाद एक करोड़ देवियाँ हैं। उसके बाद संकर्षण के नि:श्वास से प्रेरित दाहक अग्नि है। कल्पान्त में उसी के द्वारा प्रेरित होकर अग्नि संसार जलाती है। उक्त विवरण में बहुत सा विवरण ऐसा है जिसके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता करूड़पुरण उपरिवर्णित चौदह भुवनों एवं अन्य लोगों को केवल एक ब्रह्माण्ड या ब्रह्मलोक के भीतर स्वीकार करता है।

पुराणों में जिस भूलोक या पृथ्वीलोक की चर्चा की जाती है उसका विस्तृत वर्णन सर्वत्र प्राप्त होता है। कुछ पुराण तो चतुद्वीप पृथ्वी को स्वीकार करते है तो सप्तद्वीपा पृथ्वी को। परन्तु गरूड़पुराण सप्तद्वीपा पृथ्वी को स्वीकार करता है।

जम्बु प्लक्ष्द्वयौ द्वीपों शल्मलश्चापरों हट।
कुश: क्रौञ्चस्तयाशाक: पुरूकरश्चैव सप्तभ:।।[3]

जम्बुद्वीप चार समुद्र या लवणोदधि से वेष्टित माना गया है। सभी द्वीपों में जम्बुद्वीप को सबों के बीच में माना गया है और उसकी गणना सबसे पहले आती है। जम्बू द्वीप का विस्तार एक लक्ष योजन है और इसी क्रम में सभी अपने से द्विगुणित है।

प्लक्ष द्वीप को विभिन्न पुराणों में गोमेद या गोमेदक कहा गया है प्लक्ष द्वीप को इक्षु रस के समुद्र से वेष्टित माना गया है। प्लक्ष द्वीप का विस्तार दो लक्ष योजन है।

शाल्मलि द्वीप को सुरा समुद्र से वेस्टित माना गया है। शाल्मलि द्वीप का विस्तार चार लक्ष योजन है।

शक द्वीप को क्षीर समुद्र से और पुस्कर द्वीप को स्वादुजल से वेष्टित माना गया है। प्रत्येक द्वीप में सात पर्वत एवं सात नदियाँ मानी गयी हैं। इनमें से अनेक द्वीपों की भौगोलिक स्थिति का सही ज्ञान नहीं होता है। जम्बुद्वीप के अलावा कुशद्वीप और शाकद्वीप के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

कुशद्वीप के निवासी कुशीय लोगों का उल्लेख अनेक प्राचीन फारसी शिलालेखों में मिलता है। उदाहरणार्थ-दारयवहु (अंग्रेजी में डैरियस 522, से 486 ई० पू०) के हमदान लेख में उसके राज्य की सीमा इस प्रकार बतलायी गयी है - सेग्दियाना (सिरदरिया और आमूदरिया के बीच का बुखारा प्रान्त) में रहने वाले शकों के देश से वहाँ से लेकर कुशतक सिन्धु (सिन्धु प्रदेश - भारतवर्ष का सिन्धुनदी से प्रवाहित प्रदेश) से लेकर स्वर्दा तक (एशिया माइनर में सारडिस नामक स्थान) कुद विद्वान इथोपिया से इसका समीकरण मानते हैं तो कुछ मिश्र के मध्य भाग को। जबकि प्राचीन फारस सम्राटों के राज्यों के प्रान्तों की गणना में कुश तथा मुदाय (इजिप्त या मिश्र प्रदेश - दोनों को अलग-अलग गिनाया गया है। शाकद्वीप या शकद्वीप की लगभग ठीक-ठीक पहचान हो जाती है। पुराणों के अनुसार शाक द्वीप क्षीर सागर से वेष्टित है। मार्को पोलो ने अपने यात्रा-वृतान्त में जिस शिरवान नामक समुद्र की चर्चा की है। वहाँ चार जातियाँ थी - मग, मागग, मानग ओर मन्दंग जो क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णो का प्रतिनिधित्व करने वाली मानी गयी है। आज भी जो शाकद्वीपीय ब्राह्मण भारत आकर विशेष कर बिहार में बस गये है वे अपने नाम के साथ जोड़ते हैं।

गरूड़पुराण में जम्बुद्वीप का सर्वाधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। इसी जम्बुद्वीप में भारतवर्ष विद्यमान है अत: इसकी चर्चा सभी पुराणों में है। जम्बूद्वीप को सातों द्वीपों के बीच में माना गया है जिसका विस्तार एक लक्ष योजन है यह गोल है और चारों ओर खारे जल से घिरा हुआ है। यह द्वीप 9 खण्डों में बँटा हुआ है और सभी खंड 9-9 हजार योजन के हैं इन खंडों को वर्ष भी कहा गया है जिनके नाम है - भारत, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, भद्राश्व, केतुमाल, उत्तर कुरू, रम्यक् और हिरण्यंमय।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत आनेवाले अनेक खंडों की ठीक-ठीक पहचान आज नहीं हो पाती है, फिर भी अनेक खंडों के विष्य में विद्वानों का जो अनुभव है वह सत्य के निकट प्रतीत होता है।

सृष्टि के आदिमनु का नाम भी भरत मिलता है अतः उनके नाम पर इस देश का नाम भारत हुआ ऐसा मत कई ग्रन्थों में प्राप्त होता है। परन्तु अधिकांश पुराण इसी मत को मानते है कि ऋषभ देव के पुत्र भरत, जिसे जड़ भरत भी कहा जाता है के नाम पर इस देश का नाम भारत हुआ। गरूड़पुराण में भारतवर्ष को देवताओं की परमप्रिय भूमि के रूप में चित्रित किया गया है विष्णुपुराण में यह भारतवर्ष सभी वर्षों में श्रेष्ठ है इसे कर्मभूमि माना गया है -

गायन्ति देवा किल गीतकानि घन्यास्तु ये भारत भूमिभागे।
स्वर्गा पवर्गस्य फलार्जनाम भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात।।[4]

भारतवर्ष का प्रारम्भिक नाम अजनाभ वर्ष या, ऐसा श्रीमद्‌भागवत-महापुराण स्वीकार करता है। उसके अनुसार अज यानी ब्रह्म की नाभि से यह उत्पन्न है इसलिए इसका नाम अजनाम वर्ष पड़ा है।

"नामे पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद्धिमरतोभवत्।
तस्य नाम्ना त्विद्रवर्ष भारतं चेति कीर्त्यते।।"[5]

स्कन्दपुराण पुराणों के अनुसार यह भारतवर्ष भी नौ भागों में विभक्त है जो दक्षिण से उत्तर तक नौ हजार योजन लम्बा है। पुरब से पश्चिम तक यह अस्सी हजार योजन लम्बा है। इसके उत्तर में हिमालय और दक्षिण में क्षीर सागर हैं। इसी में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं। इनमें चार वर्ग निवास करते हैं।

भारतवर्ष नौ द्वीपों में विभक्त है ऐसा सभी पुराण स्वीकार करते हैं। इन द्वीप के विषय में संक्षेप में विचार करते हुए गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने लिखा हैः इन्द्रद्वीप को कहीं-कहीं इन्द्रधुम्न भी कहा गया है। आजकल इसको अण्डमान कहते हैं। नागद्वीप का आधुनिक नाम निकोबार है। सौम्य को सुमात्रा यवद्वीप या वालीद्वीप भी कहा जाता है। फिलीपाइन ही गान्धर्व द्वीप है और वोर्नियों वरूणद्वीप है। कशेरूमान को कसेरू भी कहते हैं। ताम्रपर्ण ही सिंहल या सिलोन है कुमारिका ही कुमारीद्वीप है अर्थात् पाकिस्तान सहित यही भारतवर्ष है।

आचार्य उपाध्याय ने गभस्तिमान, सौम्य और गन्धर्व द्वीपों का आधुनिक स्थान बताने में प्रश्न चिन्ह लगा दिया है परन्तु इन द्वीपों को भी अनेक विद्वानों ने पहचान करने का प्रयत्न किया है।

जिस भू-भाग पर मनुष्यों का निवास होता था उसे जनपद और जो भू-भाग मनुष्यों से शून्य होता था उसे अख्य कहा जाता था। सभी पुराणों की तरह गरूड़पुराण में भी विभिन्न जनपदों का उल्लेख है।

1. **पांचालः** इसे पांचाल देश या कान्यकुब्ज के नाम से कहा गया है। फर्रूखाबाद कि में स्थित आज का कांपिल और अहिक्षत्र वरेली जिला का आज का रामनगर इसके प्रमुख नगर थे।
2. **कोसलः** इसकी राजधानी अयोध्या थी जो आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।
3. **काशीः** काशी जनपद प्राचीन भारतवर्ष का एक बहुत महत्वपूर्ण जनपद था इसकी चर्चा स्कन्दपुराण में गरूड़पुराण में भी आयी है।
4. **विदेहः** इसे ही मिथिला था जनक देश भी कहा गया है। बिहार के दरभंगा और नेपाल तक फैला हुआ था जिसकी राजधानी जनकपुर (अब नेपाल) थी।
5. **मगधः** प्राचीन जनपदों में मगध बहुत महत्वपूर्ण है पटना और गया का हिस्सा इसी जनपद में आता था।
6. **कीकटः** मगध को ही अनेक विद्वानों ने कोकट माना है।
7. **अंगः** बिहार का भागलपुर और मुंगेर का क्षेत्र प्राचीनकाल का अंग जनपद था इसकी राजधानी चम्पा थी, जो आज का चम्पापुर है जो भागलपुर में है।
8. **बंगः** आज का बंगाल ही बंग जनपद था।
9. **पौण्ड्रः** इसे ही पुण्ड भी कहा गया है। कौशिकी कच्छ के पूर्व में पौण्ड्र देश था जो आज का उत्तरी बंगाल है।

10. **उत्कलः** आज का उड़ीसा/पुराणों (स्कन्दपुराण) में महत्वपूर्ण तीर्थ क्षेत्र के रूप में चर्चा है।

11. **कलिङ्गः** विद्वानों ने कलिंग को उत्कल (उड़ीसा) जनपद माना है। जो बाद में दो भागों में बट गया। कलिंग जनपद के दक्षिण भाग में महेन्द्र पर्वत था।

12. **कम्बोजः** कम्बोज जनपद हिन्दूकुश पर्वत के पास था। विद्वानों ने कम्बोज को काश्कर के दक्षिण और आधुनिक पाकिस्तान के पूर्व माना है।

गान्धर	- यह जनपद काबुल नदी घाटी से तक्षशिला तक विस्तृत था इसकी दो राजधनियाँ थी पश्चिमी गान्धर की पुष्कलावती, वह सुवास्तु (स्वात) और कुमा (काबुल) नदियों के संगम पर स्थित थी जिसका आधुनिक नाम चारस है। पूर्वी गान्धर की राजधानी तक्षशिला थी।
मलेच्छदेश	- यह सिन्ध देश था इसे संभवतः यवन देश भी कहा गया है।
अर्बुद प्रदेश	- आज का आबू पर्वत का हिस्सा ही अर्बूद देश था।
चेदि प्रदेश	- पुराण के अनुसार चेदि और मण्डला दोनों जनपद एक ही थे।
द्रविड़ प्रदेश	- इसे आज के तमिलनाडु से अभिन्न माना जा सकता है।
केरल	- आज का केरल प्रान्त नगर
अमरावती	- पुराणों में मालवा की राजधानी के रूप में अवन्तिका या अवन्तिपुर है स्कन्दपुराण का एक उपर खण्ड भी इसके नाम से मिलता है जो शिप्रा नदी के किनारे स्थित है। यह उज्जयिनी नगरी ही उज्जैन है।
अहिछत्र	- अहिछत्र को उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में स्थित आधुनिक रामनगर से अभिनन माना जाता है।
इन्द्रधुमपुर	- यह आज का उज्जैन ही प्रतीत होता है।
इन्द्रप्रस्थ	- दिल्ली में स्थित आज का इन्द्रपत ही है। इसे ही शकप्रस्थ भी कहा गया है।
कन्खल	- आज का कनखल है।
किष्किन्धपुरी	- तुंगभद्रा नदी के किनारे स्थित बेलारी जिले में मानी जाती है।
गया	- आज भी इसी नाम से बिहार में स्थित है।
देवयजन	- प्रयाग का ही दूसरा नाम है। जो इलाहाबाद है।
द्वारवती	- आज की द्वारका है।
पाटलिपुत्र	- आज का पटना शहर जिसे पुराणों में कुसुमपुर भी कहा गया है।
वन	- गरूड़पुराण में विभिन्न वनों का उल्लेख आया है जिनमें - नलिकावन, राजगृहवन, धर्मारण्य, अरर्विद वन प्रसिद्ध है। नैमिशारण्य को पवित्र वन माना गया है।

नलवन ट्रावनकोट में राजगृहवन मगध में धर्मारण्य महासागर के पूर्व में नैमिशारय उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में गोमती तट के किनारे स्थित है।

नदियाँ -

वेदस्मृति च वरदा सुरसा शिवा।
तापी पयोष्णी सरयूः कावेरी गोमती तया।।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी।
केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती।।
चटषिकुलया च कावेरी मृतगंगा प्यस्विनी।
विदर्भी च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः।।[6]

आसा पिवन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जना–

ये सभी नदियाँ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है साथ ही भारत के भौगोलिक स्वरूप को समझने केलिए इनका विशेष योगदान है।

प्रतीची सरस्वती को कहा गया ओर उसे महानदी और महासुर नदी भी कहा गया। ऋर्षिकुल्या को बिहार में बहनेवाली कोयल नदी से अभिन्न माना गया है। वेणा भीमरथी या भीमा तुंगीद्रा पम्पा, वेत्रवती कृष्णा की सहायक नदियाँ है। ताम्रपर्णी ताम्रपनी है। इन सभी नदियों की न ठीक पहचान हो पाती है न ही इनके प्रवाह क्षेत्रो को सही जानकारी।

पर्वत (3)

महेन्द्रो मलय: सत्य: शक्तिमानक्षपर्वत:।

विन्ध्यश्च परिभद्रश्च सप्ताह कुलपर्वता:।।[7]

किसी भी देश के भौगोलिक विवरण में पर्वतों का विशेष महत्व रहता है। गरूड़पुराण भी अन्य पुराणों की तरह सात पवर्तों का उल्लेख करता है। इन पर्वतों में कुछ को मर्यादा पर्वत कुछ को कुल पर्वत और अन्य की सामान्य पर्वत के अन्तर्गत रखा गया है। मर्यादा पर्वत पृथ्वी पर स्थित विभिन्न द्वीपों को मर्यादित करते है अत: इनहें मर्यादा पर्वत कहा गया है। इन पर्वतों के बीच में मेरू के दक्षिण में निषध, हेमकुट और हिमवान ये तीन मर्यादा पर्वत है। मेय के उत्तर में नील, श्वेत और श्रृंगवान पूर्व में माल्यवान् पश्चिम गन्ध नामक पर्वत है इस तरह जम्बूद्वीप में ये नों पर्वत हैं।

महेन्द्र पर्वत की पहचान वर्तमान उड़ीसा से प्रारंभ होने वाली पर्वतमाला से की जा सकती है जो गोदावरी नदी के तट तक जा सकती है।

मलय पाण्ड्य देश का प्रमुख पर्वत है। मैसुर के दक्षिण से लेकर ट्रावनकोट की सीमा तक फैले हुए पर्वत को मलय कहा जा सकता है।

सह्य पर्वत आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है जो उत्तर से दक्षिण की ओर फैला हुआ है। यह गोवा से गुजरात की सीमा तक विस्तृत है।

शक्तिमान पर्वत को वर्त्तमान खानदेश और अजन्ता के समीप माना जाता है। कुछ विद्वान इसे हजारीबाग जिले में स्थित पर्वत को शक्तिमान मानते है। ऋक्ष पर्वत बघेलखंड से आरम्भ होकर सरगुजा पलामु राँची सिंहभूम के पश्चिमी हिस्से तक फैला माना गया है कुछ विद्वान इसे जबलपुर के भेड़ाघाट से लेकर सतपुड़ा की पहाड़ी तक विस्तृत मानते है। विन्ध्य पर्वत पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बिहार तक लगभग सात सौ मील लम्बा है।

परियात्रा को भोपाल से पश्चिम विन्ध्य के पश्चिमी भाग से लेकर अरावली पर्वत तक की श्रृंखला को पारिपात्र माना है।

प्राय: अन्य सभी पुराणों में इन्हीं सात पर्वतों को कुलपर्वत माना गया है।

गरूड़पुराण में विविध प्रकार के रत्नों का उल्लेख है। हिमालय पर्वत-पुष्पराग मलय पर्वत पर मुक्तामणि प्राप्त होता था। सौराष्ट्र में वज्रमणि।

वृक्ष-पुराणों कई अध्यायों में विभिन्न वृक्षों की महत्ता बताई गई है।

वृक्षणा सेवनं श्रेष्ठ सर्वमासे सर्वदा

बट, जौ, तिल, वेंत, खजूर, जम्बू, रामी, तुलसी, कसैली, कटहल, अश्वत्थ, खदिर, नारियल, कर्पूर/द्राक्षाफलन, को उत्तम फल माना गया है। फूलों में कन्दार, करवीर, केतकी, पाटल, सिन्धुवार, मालती यथूकि, भृंगराज उत्पल बकूल, चम्पक, जयन्ती को श्रेष्ठ माना गया है।

बी.आर. अम्बेडकर पर बुद्ध के वैचारिक प्रभावों का अध्ययन

डॉ० सुबोध कुमार चौधरी

उच्च माध्यमिक शिक्षक, रा.कृ.उ.मा. विद्यालय, चकगुलामुद्दीन, पटेढ़ी बेलसर, वैशाली

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में बी.आर. अम्बेडकर की उस मानसिकता को प्रभावित करनेवाले कारणों का आकलन किया जायेगा, जो उन्हें एक ही समय में समाज-सुधारक तथा उद्देश्य के प्रति विद्रोही बना दिया। उनकी प्रारंभिक जीवन से संबंधित घटनाएं इस तथ्य का पर्याप्त प्रमाण देती है कि उनके विचार ठोस हो जाने से पहले कई चरणों से होकर गुजरे। वस्तुत: उनके विचार में विकासवादी प्रवृतियों की खोज का प्रयत्न चुनौती देनेवाला और व्यापक कार्य होने का वादा करता है।

इस शोध कार्य को तैयार करने का मुख्य उद्देश्य महात्मा बुद्ध के विचारों के उस विशिष्ट प्रवाह का पता लगाना है, जिसने बी. आर. अम्बेडकर के संवेदनशील मस्तिष्क को गहराई से प्रभावित किया। इस कार्य में निश्चित रूप से उस महान विद्वान और राजनेता के जीवन-साहित्य से सहयोग मिलेगा। मानसिकता का अध्ययन करना कड़वाहट और हिंसा को समझना जिसने सामाजिक संगठन अर्थात् 'वर्णाश्रम धर्म' के प्रति पुराने ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर आघात किया। अपनी विकासवादी प्रक्रिया में उनके राजनैतिक और सामाजिक विश्वास की जड़े झांकने से निश्चय ही उन सभी लोगों के लिए उच्च शिक्षा की बात होगी जो मानव संबंधी में मानवीय गरिमा और समानता में विश्वास करते है। वर्तमान अध्ययन का औचित्य प्रतिपादन करने के लिए विभिन्न पारंपरिक तथा समकालीन विचारकों के विचारों को मिश्रित कर एक एकीकृत अध्ययन का रूप दिया जायेगा। जिस पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों की नींव दृढ़ता से खड़े किये जाते है। स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर ने महात्मा बुद्ध से प्रेरणा ग्रहण कर अपने विचारों को समृद्ध किया।

बहुत कमलोगों को पता है कि अलबर्ट आइंस्टीन एक पियानो मास्टर भी थे, लियोनार्दो-दा-विंची भी एक वैज्ञानिक थे, रवीन्द्रनाथ टैगोर भी एक चित्रकार थे और यहशृंखला चलती रहती थी। सभी महान हस्तियों के साथ ऐसा होता है क्योंकि कुछ क्षेत्रों में उनका योगदान इतना अधिक है कि वे अपने नाम के लगभग पर्याय हो जाते है। डॉ.बी.आर. अम्बेडकर के साथ भी ऐसा ही हुआ। अपनी मोहक उपलब्धि से उन्होंने दलित वर्गो को अमानवीय सामाजिक भेदभावों से मुक्त कराने का निश्चय किया। वह दलितों के उत्थान के अग्रदूत थे। उनके समाज का आदर्श स्वतंत्रता, समानता और, भ्रातृत्व के सिद्धांत पर आधारित था।

डॉ.बी.आर. अम्बेडकर बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। वे भारतीय राष्ट्रीय परिदृश्य पर तब अवतरित हुए जब भारत विघटन, नैतिक अधोगति, अस्पृश्यता और विभिन्न प्रकार के भेदभावों की भावना से ग्रस्त था। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का मानना था कि समानता और स्वतंत्रता, सभी विशेषाधिकारों को तोड़ने के बाद ही संभव है। उन्होंने जाति-प्रथा की भेदभावपूर्ण और शोषण के लिए आलोचना की। समाज में धन की सम्पूर्ण मात्रा के अनुपात में उसे देखकर चौंक उठे। मार्क्स की क्रांति और 'वर्ग-संघर्ष' के तरीके के विपरीत वे शिक्षा की प्रक्रिया में समाजवाद और समानतावाद चाहते थे।

वास्तव में महात्मा बुद्ध के विचारों के उल्लेखनीय प्रवाह ने बी. आर. अम्बेडकर के संवेदनशील मस्तिष्क को गहन रूप से प्रभावित किया। स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर ने महात्मा बुद्ध से प्रेरणा ग्रहण की जैसा कि नीचे इंगित है।

डॉ. अम्बेडकर पर महात्मा बुद्ध के "अन्निका" (Transitoriness/ अनित्य, अस्थायी) एवं "अन्नत्ता" (Egolessness/ आत्मश्लाघारहित) सिद्धांत" का बहुत महान प्रभाव पड़ा। इन दो सिद्धान्तों ने उन्हें वैज्ञानिक एवं मानवतावादी दोनों बना दिया। इन

प्रभाव से वे इन जिज्ञासाओं (प्रश्न ों) की ओर प्रेरित हुए : जैसे वेदों की अमोघता (Infalliability/ अपरिहार्यता), आत्मा की मुक्ति (मोक्ष/Salvation) में विश्वास, धार्मिक कृत्यों या कार्यो की प्रभावोत्पादकता (Efficacy), मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करने के लिए उत्सव (Ceremonies) एवं उत्सर्ग (Sacrifices/आहुति) का माध्यम, ईश्वर द्वारा मनुष्य की रचना तथा ब्रह्मा के शरीर से मनुष्य के सृजन का सिद्धान्त; तथा कर्म-नीति जो वर्तमान जीवन में मनुष्य की स्थिति के लिए पुनर्जन्म के कर्मो या कृतत्वों को आधार बनाती है। इस प्रकार अम्बेडकर के लेखों में महात्मा बुद्ध के उपदेशों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

महात्मा बुद्ध ने उनकी 'मानसिक' (Mental) एवं 'आध्यात्मिक' अभिरूचि (MetaphysicalA ttitude) को बहुत हद तक प्रभावित किया। बुद्ध की यह स्वीकारोक्ति कि "सभी का केंद्र मन है" तथा "मन ही सभी अच्छाइयों एवं बुराइयों का स्रोत है जो हमारे अन्दर जागृत होती है तथा हममें घटित होती है।" अम्बेडकर को निश्चयपूर्वक यह स्वीकारने के लिए प्रेरित किया कि 'मन का परिमार्जन या शोधन (Cleansing) ही धर्म का सारत्व है'।[1] इसलिए उन्हानें धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान का सुझाव दिया। उनके लिए अस्पृश्यता रक्त या जातीयहीनता का उपगमन नहीं था। दरअसल, यह एक विरूपित अभिव्यक्ति थी, सामाजिक मनोविज्ञान का, एक प्रकार का सामाजिक मतभेद दूसरे गुट के विरूद्ध। इसलिए इन सामाजिक-धार्मिक प्रतिकूलता को दूर करने और उनमें एक समान राष्ट्रीय भावना जगाने में था। इसके साथ ही अम्बेडकर ने दलितों की मानसिक स्थिति को उठाने के लिए निरन्तर प्रयास किये ताकि वह उनकी रचनात्मक क्षमता में आस्था और आशा उत्पन्न कर सके। उन्होंने व्यक्ति पर बहुत जोर दिया क्योंकि वह स्वयं अपने दु:ख और सुख के लिए जिम्मेदार है। उनके अनुसार मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है, अच्छा या बुरा और वह बाह्य कारणों की कठपुतली नहीं है जो उनके भाग्य का निर्धारण करती है। मनुष्य अपने अनवरत प्रयासों से दु:ख को पार कर सुख प्राप्त कर सकता है।

डा. अम्बेडकर ने प्रख्यान करते हुए कहा, बुद्ध तो उनकी प्रथम गुरू है। बुद्ध की तरह उन्होंने हिन्दू धर्म ग्रंथो-वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रति भी विद्रोह किया।

डा. अम्बेडकर ने महात्मा बुद्ध के 'अन्निका' (Transitoriness ध अनित्य, अस्थायी) एवं 'अन्नत्ता' (Egolessness ध आत्मश्लाघारहित) के दर्शन को लागू करके चतुर्वर्ण पर आधारित वेदों, ब्राह्मणों और सामाजिक संगठन की सत्यता का परीक्षण किया। इस दर्शन की उन्होंने अपनी कृति "द बुद्धा एंड हिज धम्म" में विवेचना की। उन्होंने लिखा कि भगवान बुद्ध ने वेदों और ब्राह्मणों के खिलाफ विद्रोह किया क्योंकि वे मानते है कि:

1. वेद केवल पवित्र नहीं है बल्कि अपरिहार्य है और उनसे प्रश्न नहीं की जा सकती;
2. आत्मा की मुक्ति या परावर्तन से पलायन केवल वैदिक यज्ञों, धार्मिक समारोहों तथा ब्राह्मणों की भेंट के कारण हो सकता है।
3. कि आदर्श धर्म वेदों में निहित है आदर्श समाज के सिद्धान्त के साथ;
4. इस आदर्श समाज की संरचना चतुर्वर्ण पर आधारित है[2], चतुर्वर्ण समाज ने निम्न नियमों की वकालत की।

(a) समाज को चार वर्गो में विभाजित किया जाना चाहिए
(i) ब्राह्मण (ii) क्षत्रिय (iii) वैश्य (iv) शूद्र

(b) इन सभी चार वर्गो में सामाजिक समानता नहीं हो सकती।

(c) चार वर्गो को व्यवसाय के एक विभाजन का निरीक्षण करना चाहिए। ब्राह्मणों का पेशा पढ़ना, पढ़ाना और धार्मिक समारोहों का काम होना चाहिए। क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का पेशा लड़ाई, व्यापार और सेवा होना चाहिए। शूद्रों का कार्य तीन श्रेष्ठ वर्गो की सेवा होना चाहिए। विभिन्न वर्गो को सौपे गए ये व्यवसाय प्रत्येक के लिए विशिष्ट होने चाहिए।

(d) ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को शिक्षा का अधिकार दिया जाता है। शूद्र और स्त्रियों को शिक्षा पाने का अधिकार नहीं है।

(e) व्यक्ति का जीवन चार अवस्थाओं में बँटा हुआ है अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। पहले चरण का उद्देश्य अध्ययन और शिक्षा होना चाहिए, दूसरे का परिवारिक दायित्व निभाना है, तीसरे का उद्देश्य सांसारिक बंधनों

से मुक्त होकर एकांत में रहना तथा ईश्वर को खोज तथा चौथे का उद्देश्य संसार को त्याग कर मोक्ष की प्राप्ति करना था। इन अवस्थाओं का लाभ तीन वरिष्ठ वर्गो के केवल पुरुष सदस्यों को प्राप्त थे। प्रथम और चौथा शूद्र और महिला के लिए खुला नहीं था।[3]

इस सिद्धान्त ने व्यवसाय के स्थायी विभाजन का प्रवर्त्तन किया और शूद्रों को शिक्षा या व्यापार के अधिकार से वंचित रखा। ज्ञान के अधिकार का खंडन करना अज्ञान का शाश्वत होना है ताकि बंधन बनाए रखा जा सके। बौद्ध धर्म ने सभी चीजों को पुन: परीक्षण करने और इसके लिए आधार देने पर पुनर्विचार करने के लिए खुला मान लिया।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने हिन्दू धर्म पर बहस की और कहा कि वह किसी हिन्दू के रूप में नहीं मरेंगे और नागपुर में अपने अनुयायियों के साथ 14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म को अपनाया।

अम्बेडकर ने भारत में अपनी जाति व्यवस्था के अध्ययन में निम्नलिखित बातों पर बल दिया:

1. हिन्दू लोगों के समिश्र के बावजूद गहरी सांस्कृतिक एकता है।
2. 'जाति' एक विशाल सांस्कृतिक एकता को टुकड़ों में टुकड़ा कर रहा है।
3. वर्गो की नकल और उत्सर्जन के माध्यम से जातियाँ बन गई है।[4]

बुद्ध ने समतावाद और मानववाद का सिद्धान्त अपनाया। एक संघ (एक गणराज्य) में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और जन्म के बराबर था और प्रत्येक परिवार राजनीतिक प्रयोजनों के लिए बराबर था। संघ के सदस्यों को नागरिकता का पूरा अधिकार दिया गया। रज्जम को वासियों (वसनतानम), 7707 की संख्या में, सभी को राज (रजुनम) करने का अधिकार दिया गया। कोई भी राष्ट्रपति (राजनो), उपराष्ट्रपति (उपराजनो), कमांडर-इन-चीफ (सेना-पतिनो), और चांसलर ऑफ एक्सचेकर[5] बन सकता है। यह स्पष्ट है कि सभी कार्यालय वैकल्पिक होते थे। बुद्ध के जन्म के समय उनके पिता शुद्धोधन शाक्य राज्य, जिसमें रिपब्लिकन संविधान था, प्रमुख पद के लिए चुने गये।[6]

संघ के संविधान के अनुसार 'संघ' की स्थापना की रिपब्लिकन विचारधारा का डा. अम्बेडकर पर अन्तहीन प्रभाव था। यह उनकी पूरी पुस्तक "द बुद्धा एंड हिज धम्म" में देखी जा सकती है।

शाक्य संसद में युवा, बूढ़े का प्रवेश, पुत्र और छोटे भाई को नागरिकता का पूरा अधिकार था। उन्हें बोलने और वोट देने का अधिकार था और प्रत्येक सदस्य को राष्ट्रपति बनने की आकांक्षा थी। सिद्धार्थ गौतम को 20 वर्ष की आयु में शाक्य संसद में स्थान दिया गया। शाक्य संसद द्वारा आधुनिक संसदीय प्रक्रियाओं को अपनाया गया था। शाक्य संसद में प्रक्रिया का नियम था कि किसी प्रस्ताव के बिना कोई बहस हो सकती है और प्रस्ताव को तीन बार पारित किए जाने तक कोई घोषणा नहीं की जा सकती। रिपब्लिक समाज समानता तथा परस्पर सम्मान के वातावरण में कार्य करता था। रिपब्लिकन का संविधान वास्तव में 'सामाजिक लोकतंत्रा' की नींव बना रहा था, अम्बेडकर ने सामाजिक लोकतंत्र के इस विचार को अपनाया था।

बुद्ध का यह अखण्ड विश्वास था कि अपने भाग्य के निर्माण के लिए मनुष्य के पास स्वयं क्षमता है, अम्बेडकर पर अन्तहीन प्रभाव डाला और ऐसा प्रतीत होता है कि यह सर्वाधिक निर्णायक प्रभाव भी रहा। बुद्ध का यह दृष्टिकोण कि 'जन्म ही मृत्यु का कारण है' शायद अम्बेडकर को रूढ़िवादियों से अलग तथा दूर रखा तथा धार्मिक विश्वासों के जाल से दूर किया। वह इस बात से पूर्णत: आश्वत हुए कि दु:ख या विपत्ति सिर्फ सामाजिक नहीं है बल्कि आर्थिक भी है इसलिए आत्म विकास हेतु अथक परिश्रम करते हुए एक व्यक्ति को सामाजिक दायित्व पर पूरा ध्यान देना ही है। इसलिए उन्होंने 'सध्धम' की स्वीकारा जो कि सामाजिक गणतंत्र है।

अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि महात्मा बुद्ध के विचारों के अचल प्रभाव के परिणामस्वरूप बहुत ही व्यापक स्तर पर पूर्व व्याप्त सामाजिक विसंगतियों को दूर करने के सिद्धांतवादी धारणा उनके अन्दर उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे डा. अम्बेडकर क्रांतिकारी समाज सुधार आन्दोलन के एक गूढ़ राजनीतिक पर्यवेक्षक, एक सचेत चिंतक तथा एक शिखर व्यक्तित्व के रूप में उभरे।

निष्कर्ष के रूप में, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अम्बेडकर ने अपने समकालीन भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों एवं विद्वानों के कार्यो को अपने बहुरंगीन व्यक्तित्व में समाहित किया। इन चिंतकों के विचारों के अचल प्रभाव के परिणामस्वरूप बहुत ही व्यापक स्तर पर पूर्व व्याप्त सामाजिक विसंगतियों को दूर के लिए हठधर्मिता (सिद्धांतवादी) की दृढ़धारणा उनके अंदर उत्पन्न हुआ।

धीरे-धीरे डॉ. अम्बेडकर क्रांतिकारी समाज-सुधार आन्दोलन के एक गूढ़ राजनीतिक पर्यवेक्षक, एक सचेत चिंतक तथा एक शिखर व्यक्तित्व के रूप में उभड़े।

हलाँकि आदर्शो के अथक प्रयास, गहन अध्ययन और महात्मा बुद्ध के जीवन और कार्यों के प्रति सचेत जागरूकता, अम्बेडकर ने अपने रंगीन व्यक्तित्व का विकास किया। उनके व्यक्तित्व पर महात्मा बुद्ध के प्रभाव को ज्ञात करना दुष्कर नहीं है। जो भी हो किंतु अम्बेडकर महात्मा बुद्ध का हुबहु प्रतिलिपि नहीं बने। बहुत हद तक वे अपनी मौलिकता को बनाए ही रखे जो उनके घोर विरोधियों के द्वारा उपेक्षित नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. बहादूर मल; द रिलिजन ऑफ बुद्धा एंड इट्स रिलेशन टू उपनिषैदिक थाउट, विश्वेश्वरानन्द इंस्टीट्यूट पब्लिकेशन्स, होशियारपुर, पृष्ठ 57
2. अम्बेडकर, बी.आर., 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्म', सिद्धार्थ कॉलेज पब्लिकेशन्स, बम्बई, 1957, पृष्ठ 87
3. वही, पृष्ठ 88-89
4. अम्बेडकर, बी.आर., 'कास्ट इन इंडिया' द इंडियन एंटीक्वारी, ए जर्नल ऑफ ऑरियन्टल रिर्श, ग्स्टप्ए 1917ए पृष्ठ 81-95
5. जयसवाल, के.पी., हिन्दू पॉलिटी : ए कंस्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया इन हिन्दू टाइम्स, द बंगलोर प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग को.लि. , पृष्ठ 47-48
6. मजुमदार; आर०सी०, एनसिएन्ट इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास देल्ही, 1968, पृष्ठ 160

मौर्य साम्राज्य में कृषि एवं भू-राजस्व व्यवस्था का विश्लेषनात्मक अध्ययन

शंभू कुमार गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), इतिहास विभाग, गोपेश्वर कॉलेज हथुआ, गोपालगंज, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य ही सबसे पहला सुदृढ़ साम्राज्य था। इसका विस्तार अशोक के शासनकाल में सर्वाधिक हुआ। अशोक कालीन मौर्य साम्राज्य वर्तमान समय में पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में बंग्लादेश तक था। यह लगभग समस्त भारतीय उपमहाद्वीप को समाहित किए हुए था केवल वर्तमान समय के तमिलनाडू, कर्नाटक और केरल के कुछ हिस्सों को छोड़कर। मौर्य साम्राज्य के भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल भू-भाग पर स्थापित होने का सर्वप्रमुख कारण इसकाल की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, (विशेषकर कृषिक अर्थव्यवस्था), लोहे का अन्वेषण एवं उन्नत भूराजस्व व्यवस्था थी।

कृषि अर्थव्यवस्था तत्कालीन मौर्य साम्राज्य के अर्थव्यवस्था का आधार। लोहे के खोज ने कृषि में अधिशेष उत्पादन को जन्म दिया। परिणामस्वरूप इसी अधिशेष उत्पादन से शिल्प हस्तशिल्प, एवं व्यापार-वाणिज्य को आधार मिला एवं मौर्याकालीन अर्थव्यवस्था विविधिकृत हो गई। भू-राजस्व की बेहतर प्रणाली ने सता को किसानों, व्यापारियों को न विभिन्न प्रकार की केवल सुविधा प्रदान करने में सक्षम बनाया बल्कि कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए नए-नए स्थायी नगरों को बसाया जाने लगा। खासकर भूमि-कर की प्राप्ति होती थी जो राजकीय आय के स्थायी स्रोत थे।

मुख्य शब्दः सीताध्यक्ष, शिलालेख, कुल्हाडी, फाल, आदि

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध मे मौर्यकालीन खेतीहर अर्थव्यवस्था कृषि विस्तार भू-राजस्व जैसे मध्यपूर्ण बिंदूओं का अध्ययन करना है।

विधितंत्र

प्रस्तुत शोध में विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है अध्ययन के निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए ऐतिहासिक अनुसंधान विधि तथा पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अध्ययनों की समीक्षा किया गया है।

मौर्यकालीन कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएँ

मौर्यकाल में भी भारत एक कृषि-प्रधान देश था, मेगास्थनीज के अनुसार दूसरी जाति कृषकों की है जो संख्या में सबसे अधिक है। युद्ध तथा अन्य राजकीय कर्तव्यों से मुक्त होनें के कारण वे अपना सारा काम कृषि पर लगाते है, युद्ध के समय दोनों पक्षों के लड़ने वाले एक दूसरे का संहार करते है, परन्तु कृषि मेंसंलग्न मनुष्यों को पूर्णतया निर्वहन रूप से अपना काम करने देते है। भूमि राजा और कृषक दोनों के अधिकार मे होते थे इस काल में कृषि उत्पादन काफी बढ़ गया था कारण था लोहे के उपकरणों का भारी मात्र में प्रयोग। कृषि कार्य के लिए बड़े पैमाने पर फाल, मुबेदार, कुल्हाडी, हंसिये आदि का प्रयोग बड़े पैमाने पर होता था

इस काल मे गोपालक और शिकारी भी नियुक्त किए जाते थे, जिनका काम कृषि फसल को नवट करने वाले कीड़े-मकोड़े तथा पशु पक्षियों को नष्ट करना था।

वर्ष मे दो फसले आसानी से उगाई जाती थी, एक जाड़े में गेहूँ बोया जाता था और दूसरा गर्मी मे तिल ज्वार बोने का उपयुक्त समय होता था अतः भारत वर्ष के कृषक प्रायः सदा दो फसल काटते है, इसके अतिरिक्त एक साथ होने वाले फल और मूल जो दलदलो में उत्पन्न होते है और भिन्न-भिन्नमिठास के होते थे मनुष्यों को प्रचुर खाद्य सामग्री प्रदान करते है।

कौटिल्य ने भी कृष्ठ (जुती हुई), अकृष्ठ (बिना जुती हुई) स्थल (उची) आदि भूमियों का उल्लेख मिलता है, खेती हल बल की सहायता से होती थी, सिंचाई की ओर राज्य का विशेष ध्यान था। मेगास्थनीज ऐसे पदाधिकारियों का उल्लेख करता है जो नहरों का निरीक्षण करते थे जूनागढ़ अभिलेख से प्रकट होता है कि चन्द्रगुप्त के गर्वनर पुष्यगुप्त वैश्य ने सौराष्ट्र में सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था

अर्थशास्त्र मे भी सिंचाई के अनेक साधनों का उल्लेख मिलता है

1. नदी, सर तडाक और कूप द्वारा सिंचाई
2. डोल या चरस द्वारा कुएं से पानी निकाल कर सिचाई
3. बैलों द्वारा खींचे जाने वाले रहट या चरस द्वारा कुएं से सिंचाई
4. बांध बनाकर नहरों से सिंचाई
5. वायुद्वारा संचालित चक्की से सिंचाई।

भूमि उर्वरता बढाने के लिए विभिन्न प्रकार के खादो का प्रयोग होता था। चाणक्य ने भी घी, शहद, चर्वी, मछलियों का चूर्ण गोबर राख आदि का खाद के रूप में प्रयोग बताया है। कौटिल्य ने फसलो के प्रमुख उपज के रूप में गेहूँ, जै, चना, सरसों, मटर, उड़द आलू कपास-खरबूज, तरबूज आदि का नाम लिया है। फलो मे नीबू आम, जामून-फालशा किशमिश आदि का उल्लेख किया है।

इस काल में राज्य की ओर से चारवाहों की भी व्यवस्था थी। पशुओं में, गाय-बैल, भैस, गध, भेड़ बकरी ऊँट सुंअर कुत्ते आदि प्रमुख रूप से पाले जाते थे। अर्थशास्त्र से भी पता चलता है कि, चन्द्रगुप्त के समय मे पशुधन विकास के लिए एक विशेष विभाग था जो पशुओं का भरण-पोषण तथा चिकित्सा देखता था।

इस काल मे सीता या राजकीय भूमि की भी चर्चा मिलती है, इन इलाको मे निश्चित रूप से स्वामित्व, जोत नीलामी और व्रिकी पर राजा का लगभग पूर्ण अधिकार होता था। वस्तुतः अर्थशास्त्र मे सीताध्यक्ष या कृषि निरीक्षण का जिक्र है जो शायद इन इलाकों में कृषि कार्य का निरीक्षण करता होगा ये इलाके निश्चित रूप से उपजाऊ होगी और इनमें काफी उपज भी होती होगी।

मौर्यकाल में भू-राजस्व संगठन

मौर्यकाल में भू-राजस्व के निर्धारण पर विशेष बल देते थे और करों के लेखा-जोखा करने के लिए अलग से एक विभाग था, जिसका प्रमुख अधिकारी समहर्ता कहलाता था, कोषाध्यक्ष को सन्निधता के नाम से भी जाना जाता था, चूकी इस काल मे वस्तु के रूप में भी राजस्व प्राप्त किया जाता था, अतः इस प्रकार के आय को संग्रहित करना सन्निधता का ही कार्य था।

यूनानी लेखकों के अनुसार "इस काल मे कुछ गाँव कर मुक्त थे, परन्तु ऐसे गाँव अपवाद स्वरूपथे, प्रायः ऐसे गाँव थे जिनसे सैनिकों की नियूक्ति की जाती थी"

कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि कुछ गाँवो को कर से मुक्त रखा जाता होगा, नई भूमि पर खेती को प्रोत्साहन करने के संदर्भ में।

अर्थशास्त्र मे बताया गया है कि कभी-कभी आपातकाल मे धनी लोगों से आकस्मिक धन एकत्रित किया जाता था, युद्ध, सुखा, महामारी आदि के समय अतिरिक्त कर लगाया जाता था।

यूनानी लेखकों के अनुसार, कुल उपज का चौथा हिस्सा किसान कर के रूप में देते थे, इनके अनुसार किसान लोग नजराना भी देते थे, इस काल में राजस्व का प्रमुख आधार भूमि कर (भाग) था। ग्रंथों के अनुसार कुल उपज का छठा हिस्सा था। अशोक के लुम्बिनी शिलालेख के अनुसार, लुम्बिनी यात्रा के दौरान (बुद्ध के जन्मस्थल) उसने उस गाँव को बलि कर से मुक्त कर दिया और भाग कर को घटाकर कुल उपज का आठवा हिस्सा कर दिया।

कौटिल्य ने राजस्व के लिए राज्य को दो भागों में बाँटा है-दुर्ग (नगर) ग्राम (राष्ट्र) नगर से शुल्क द्वारदेय सुरा पोतबल बाजार आय के स्रोत थे जबकि ग्राम से आय के स्त्रों, वणिक, नावपाल, नदीपार करने को कर पतन आदि। चूंगी आयातित वस्तुओ पर प्राय: 1/5 होता था वस्तु के अनुसार इसके दर मे भिन्नता होती थी 1/10 से 1/25 के बीच परिवर्तनशील था।

मादकद्रव्योंपर कर के लिए जिम्मेवार सुराध्यक्ष होता था। सुरा पर कर 1/10 तथा मध पर 1/20 से 1/25 कर लिया जाता था, इसका परमिट लेना पड़ता था। चोरी से ब्रिकी करने पर पकड़े जाने पर 600 पण दंड लगता था।

इस काल में कुछ भूमि कर मुक्त भी थी जैसे ब्रह्मदेव ब्राह्मणों को धर्मार्थ उपयोगार्थ दी गई। इस काल मे भू राजस्व का एक प्रचलित तरीका था-बटाई। बटाइदार को पहले वीज हल-बैल आदि और खेती के लिए जमीन दी जाती थी। इस मामलेकृषक संभवत: कुल उपज का आध हिस्सा राज्य को दे देता था। भूराजस्व मौर्य अर्थव्यवस्था का अधर था इसलिए अर्थतंत्र में राज्य की राजस्व व्यवस्था पर काफी गंभीरता और सावधनी पूर्वक विचार किया गया है और काफी सुझबुझ के साथ भूमि की उर्वरता के अधर पर विभिन्न गांवो पर अलग-अलग कर लगाए जाने का प्रावधान रखा गया है।

निष्कर्ष

मौर्यकालीन कृषि तथा भूराजस्व व्यवस्था के अध्ययन के उपरांत निष्कर्ष: कहा जा सकता है कि मौर्य शासकों ने सुरक्षा एवं स्थापित के लिए बेहतर नीति अपनाई, जिसके तहत कृषि को बढ़ावा, तथा भूराजस्व व्यवस्था का निर्धारण किया, कृषि नीति बेहतर था तभी तो मेगास्थनीज महोदय कहते है कि इस काल में कही भी अकाल नहीं पड़ा यह बेहतर नियोजन का परिणाम और वसुली की पद्धति सुदृढ़ थी और राज्य के बड़े हिस्से से अपार राजस्व वसुला जाता था। इसी राजस्व के बल पर सरकारी तंत्र और सेना का रख-रखाव संभव हो सका।

संदर्भ-सूची

1. प्राचीन भारत का समाजिक एवं आर्थिक विकास -डा0 शिवस्वरूप सहाय
2. प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृति इतिहास -डा0 विमलचन्द्र पाण्डेय
3. प्राचीन भारत का इतिहास-झा एवं श्रीमासी
4. प्राचीन भारत - रामसरण शर्मा
5. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति -के.सी. श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ० बृजराज सिंह

एम0एस0सी0 (भौतिकी), एम0एड0, एम0फिल्0 (शिक्षाशास्त्र),
पी.एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र) डी.ई.आई. डीम्ड यूनिवर्सिटी, आगरा

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का अध्ययन किया गया। जिसके अन्तर्गत शिक्षण में प्रयुक्त सामान्य तकनीकी जैसे–कम्प्यूटर आधारित शिक्षण तकनीकी का ज्ञान, स्मार्ट फोन द्वारा विद्यार्थियों के साथ संवाद एवं कोरोना महामारी काल में तकनीकी का शिक्षण के लिए प्रयोग आदि को सम्मिलित किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है एवं शोध अध्ययन में आगरा जनपद के खेरागढ़ ब्लॉक से स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा 100 महिला एवं 100 पुरुष अध्यापकों का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित उपकरणों का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रतिशत, मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष रूप में पाया गया है कि परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की तकनीकी दक्षता निम्न स्तरीय पायी गयी। जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षकों द्वारा तकनीकी युक्त शिक्षण जैसे–स्मार्ट फोन द्वारा शिक्षण के विविध तरीके, कम्प्यूटर आधारित शिक्षण एवं तकनीकी यंत्रों के माध्यम से विषय -वस्तु का प्रस्तुतीकरण आदि का सामान्य ज्ञान पर्याप्त नहीं है एवं तकनीकी दक्षता के अभाव में शिक्षकों द्वारा ऑनलाइन शिक्षण का संचालन सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है।

प्रस्तावना

शिक्षा लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अच्छी शिक्षा प्राप्त करना हर देश के नागरिक का अधिकार है। शिक्षित व्यक्ति अच्छी शिक्षा के बलबूते पर अपने कैरियर का निर्माण करता है। शिक्षण और अन्य महान आविष्कारों में प्रगति के कारण 1950 की तुलना में शिक्षा आज बहुत विविध है। आजकल वर्तमान जीवन में ऑनलाइन शिक्षा का बोलबाला है। ऑनलाइन शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जहाँ शिक्षक दूर से और दुनिया के किसी भी कोने से इंटरनेट के माध्यम से जुड़ सकता है। शिक्षक स्काइप, जूम इत्यादि एप्प के जरिये वीडियो कॉल करते है और बच्चे लैपटॉप या कम्प्यूटर पर शिक्षक को देख और सुन सकते है। शिक्षक बच्चों को पढ़ाने के लिए अपने कम्प्यूटर की स्क्रीन शेयर करते है जिससे बच्चे घर बैठे शिक्षा प्राप्त कर पाते है।

आज कोविड-19 के लॉकडाउन के तहत हमे काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। उसमें सर्वप्रथम है बच्चों की शिक्षा। ऑनलाइन यानी दूरस्थ शिक्षा ने लॉकडाउन में चल रही इस मुश्किल को आसान कर दिया है। अब विद्यालय के निर्देशों के अनुसार

शिक्षक बच्चों को घर से ऑनलाइन पढ़ा रहे है ताकि शिक्षा में बाध न पड़े। ऑनलाइन शिक्षा एक अलग तरह की प्रणाली है जहाँ शिक्षक विभिन्न प्रकार के टूल्स का उपयोग कर शिक्षा को आसान बना देते है।

लॉकडाउन के इस वक्त जहाँ सभी शिक्षा केन्द्र बन्द है। वहाँ ऑनलाइन शिक्षा ने अपनी जगह बना ली है। आज दुनिया के सारे देशों के बच्चे ऑनलाइन शिक्षा का उपयोग करके आसानी से पढ़ाई कर पा रहे है। ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त करने के लिए अच्छी और तीव्र गति की इंटरनेट कनेक्टिविटी की जरूरत है। शिक्षक दूरस्थ शिक्षा में वी.एच.अस. वीडियो, डीवीडी और इंटरनेट के पाठ्यक्रमों के अनुसार बच्चों को पढ़ाते है। 1993 में ऑनलाइन शिक्षा कानूनी कर दी गयी और यह एक अनोखा तरीका है जिसके माध्यम से सभी उम्र के छात्र पढ़ सकते है। इंटरनेट की सहजता के कारण वर्षो से ऑनलाइन शिक्षा लोकप्रिय हो रही है।

ऑनलाइन शिक्षा में विद्यार्थी शिक्षक द्वारा ली गयी क्लास को रिकॉर्ड कर सकते है। जिससे कक्षा के पश्चात् विद्यार्थी रिकॉह्डग को पुन: सुन सकते है और कहीं शंका हो तो बेझिजक शिक्षक से दूसरे क्लास में पूछ सकते है। इससे संकल्पना यानी कांसेप्ट छात्रों को समझ आ जाता है। ऑनलाइन शिक्षा में किसी प्रकार की विषय संबंधित समस्या हो तो शिक्षक से ऑनलाइन पूछ सकते है। इसके लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। ऑनलाइन पढ़ाने के लिए शिक्षक ने कुछ कार्यक्रमों को "़लैश कार्ड और गेम जैसे बनाया है जो छात्र के सीखने के अनुभव को बढ़ाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का अध्ययन।
2. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का अध्ययन।
3. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता में तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।

न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आगरा जनपद के खेरागढ़ ब्लॉक से स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत 100 महिला व 100 पुरुष शिक्षकों का चयन किया गया है। अत: प्रस्तुत अध्ययन में 200 परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सामान्य तकनीकी दक्षता जिसके अन्तर्गत शिक्षण में प्रयुक्त तकनीकी जैसे–स्मार्ट फोन व कम्प्यूटर का प्रयोग एवं तकनीकी यंत्रों द्वारा पाठ का प्रस्तुतिकरण आदि के मूल्यांकन हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधियों के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा प्रतिशत, मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात का अनुसरण किया गया है।

अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का अध्ययन।

शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की तकनीकी दक्षता से संबंधित आँकड़ों के वितरण के प्रतिशतांक को तकनीकी दक्षता मापनी के अनुसार 03 अन्तरालों में विभिक्त किया गया है। जो कि तकनीकी दक्षता के स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) को दर्शाता है। शोधार्थी द्वारा प्रत्येक प्रतिशतांक अन्तराल में प्राप्त महिला शिक्षकों की संख्या एवं उनके प्रतिशत को निम्नांकित तालिका सं. 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 1: तकनीकी दक्षता के प्रतिशतांक अन्तराल के अन्तर्गत परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की संख्या व उनका प्रतिशत

प्रतिशतांक	महिला शिक्षक (N = 100)	
	संख्या	प्रतिशत
P_{75} से ऊपर (उच्च वर्गीय)	17	17%
$P_{25} - P_{75}$ (मध्यम वर्गीय)	43	43%
P_{25} से नीचे (निम्न वर्गीय)	40	40%

उपरोक्त तालिका 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत 40 प्रतिशत महिला शिक्षकों में तकनीकी दक्षता निम्न स्तरीय पायी गयी। इसी प्रकार परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत 43 प्रतिशत महिला शिक्षकों में तकनीकी दक्षता मध्यम स्तरीय पायी गयी। जबकि केवल 17 प्रतिशत महिला शिक्षकों में तकनीकी दक्षता उच्च स्तरीय पायी गयी। तालिका 01 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मानों को निम्नांकित आरेख 01 में दर्शाया गया है।

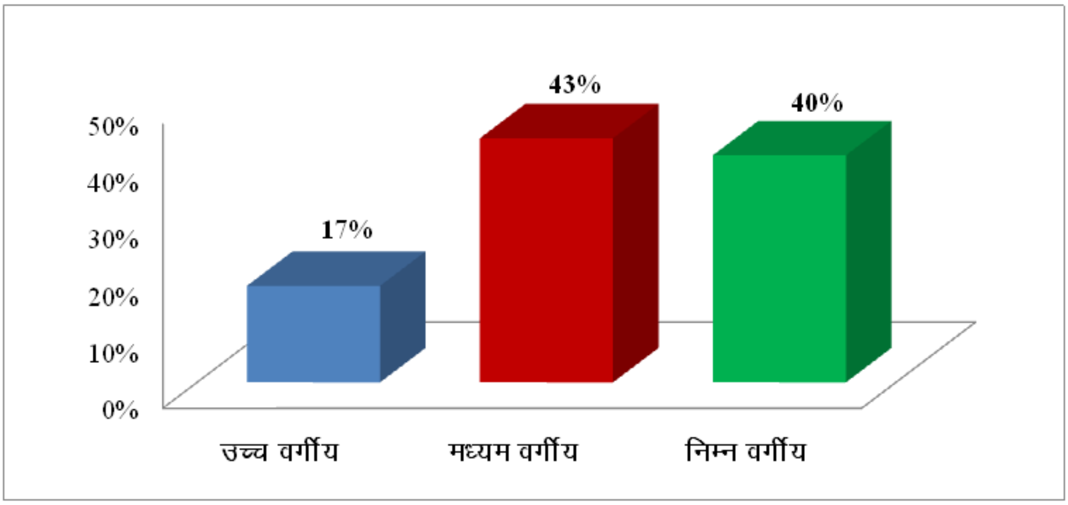

आरेख 0: परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों का प्रतिशत

2. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता का अध्ययन।

शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता से संबंधित आँकड़ों के वितरण के प्रतिशतांक को तकनीकी दक्षता मापनी के अनुसार 03 अन्तरालों में विभिक्त किया गया है। जो कि तकनीकी दक्षता के स्तरों (उच्च, मध्यम एवं निम्न स्तर) को दर्शाता है। शोधार्थी द्वारा प्रत्येक प्रतिशतांक अन्तराल में प्राप्त पुरुषों शिक्षकों की संख्या एवं उनके प्रतिशत को निम्नांकित तालिका सं. 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 2: तकनीकी दक्षता के प्रतिशतांक अन्तराल के अन्तर्गत परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की संख्या व उनका प्रतिशत

प्रतिशतांक	पुरुष शिक्षक (N = 100)	
	संख्या	प्रतिशत
P_{75} से ऊपर (उच्च वर्गीय)	20	20%
$P_{25} - P_{75}$ (मध्यम वर्गीय)	46	46%
P_{25} से नीचे (निम्न वर्गीय)	34	34%

उपरोक्त तालिका 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत 34 प्रतिशत पुरुष शिक्षकों में तकनीकी दक्षता निम्न स्तरीय पायी गयी। इसी प्रकार परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत 46 प्रतिशत पुरुष शिक्षकों में तकनीकी दक्षता मध्यम स्तरीय पायी गयी। जबकि केवल 20 प्रतिशत पुरुष शिक्षकों में तकनीकी दक्षता उच्च स्तरीय पायी गयी। तालिका 02 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मानों को निम्नांकित आरेख 02 में दर्शाया गया है।

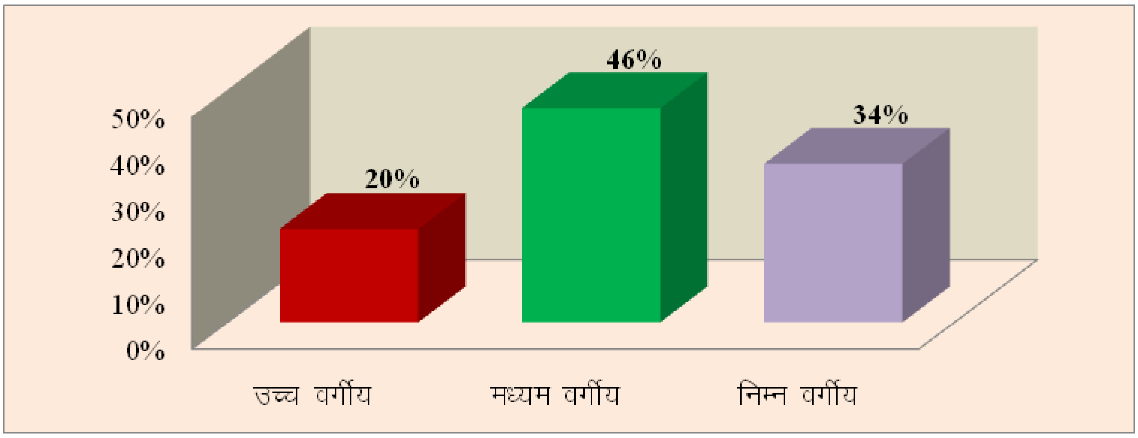

आरेख 2: परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों का प्रतिशत

3. उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता में तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के मध्य सार्थक अन्तर की गणना के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी है। परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के आँकड़ों के लिए प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात के मान को तालिका 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 3: परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के संदर्भ में प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात का मान

अध्ययन चर	शिक्षक	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक स्तर
तकनीकी	महिला	100	43.31	7.82	1.33	0.05 पर असार्थक
दक्षता	पुरुष	100	44.82	7.13		

उपरोक्त तालिका 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के लिए मध्यमान क्रमश: 43.31 व 44.82 पाया गया है एवं मानक विचलन का मान क्रमश: 7.82 व 7.13 पाया गया। तालिका 03 में प्रदर्शित महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के संदर्भ में प्राप्त मध्यमान के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि महिला शिक्षकों में तकनीकी दक्षता, पुरुष शिक्षकों में तकनीकी दक्षता के सापेक्ष निम्न पायी गयी। महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के मध्य सार्थक अन्तर के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं क्रान्तिक अनुपात का मान 1.33 पाया गया जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर व 198 मुक्तांश पर असार्थक है। अत: प्राप्त क्रान्तिक अनुपात का मान महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के मध्य असार्थक अन्तर को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लिंगभेद के संदर्भ में उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। तालिका 03 में प्रदर्शित शिक्षकों की तकनीकी दक्षता के मध्यमानों को आरेख 03 द्वारा दर्शाया गया है।

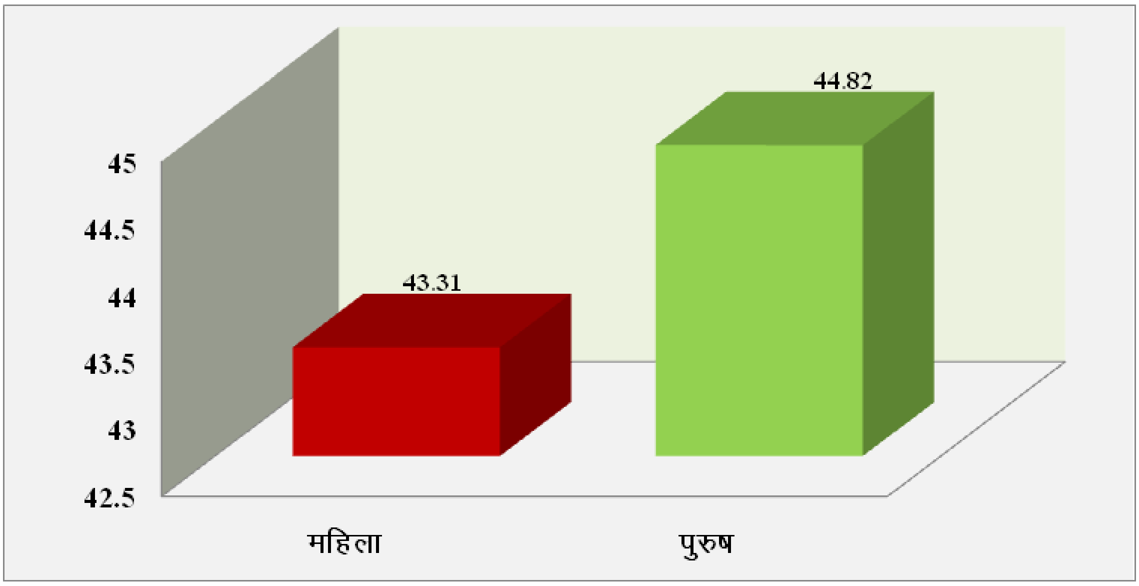

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा विभाग के अधीन संचालित परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता निम्न स्तरीय पायी गयी एवं महिला शिक्षकों की तकनीकी दक्षता पुरुष शिक्षकों की तकनीकी दक्षता की तुलना में कम पायी गयी। परिषदीय विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की निम्न तकनीकी दक्षता यह प्रदर्शित करती है वर्तमान परिवेश में संचालित ऑनलाइन शिक्षण का संचालन सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता और न ही तकनीकी दक्षता के

अभाव में शिक्षण कार्य में प्रभावी एवं गुणवत्तापूर्वक शिक्षण कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता। वर्तमान अध्ययन में महिला व पुरुष शिक्षकों की संख्या निम्न तकनीकी दक्षता के अन्तर्गत, उच्च तकनीकी दक्षता के अन्तराल की तुलना में अधिक पायी गयी। तकनीकी दक्षता के संदर्भ में महिला व पुरुष शिक्षकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

References

https://www.who.int/docs/default-source/coronaviruse

https://www.weforum.org/agenda/2020/04/coronavirus-education-global-covid19-online-digital-learning/

https://www.thehindu.com/education/teaching-in-the-time-of-covid-19/article31766432.ece

https://www.pearson.com/english/professional-development/covid19.html

सोशल मीडिया का बच्चों एंव युवा वर्ग पर प्रभाव

वर्षा रानी

शोध-प्रज्ञा, समाजशास्त्र विभाग, ल0ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

सार-संक्षेप

वर्तमान में सोशल मीडिया की लोकप्रियता में निरंतर वृद्धि हो रही है। फेसबुक व व्हाटसप से जुड़ना स्टेटस सिंबल माना जाता है। शहर से लेकर गाँव तक मोबाइल फोन की पहुँच ने इंटरनेट को हर किसी के लिए आसान बना दिया है। सोयाल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग करने वाली लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या बच्चों व युवाओं की है। वर्तमान युवा पीढ़ी जो एक समय तक तकनीकी प्रेमी थी। आज सोशल मीडिया प्रेमी हो गयी है और अपना समय विभिन्न ऑन लाईन सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे–फेसबुक, ट्विटर, यू-टयूब, व्हाटसएप पर व्यतीत कर रही है। आज लाइव चैट, अपडेट्स व वीडियों शेयरिंग लोकप्रिय होते जा रहे हैं। बच्चे एंव युवा अपने मनोरंजन एंव समय व्यतीत करने के लिये सोशल मीडिया को सबसे सहज उपलब्ध साधन मानता है। इन पर प्रसारित दृश्य तथा खबरों का बच्चों एंव युवाओं के मन पर गहन प्रभाव पड़ता है। सोशल मीडिया का उपयोग बच्चे एंव युवा ज्ञान विस्तार तथा अध्ययन में आनेवाली कठिनाईयों के समाधान के रूप में कर रहे है अथवा इन्हें केवल खेल या मनोरंजन के रूप में ले रहे हैं और निरर्थक बातों में समय बबार्द कर रहे हैं।

परिचय

सोशल मिडिया का बच्चों पर प्रभाव–सोशल मीडिया हम सबकी जिन्दगी का एक अहम हिस्सा बन गया है। जिसके जरिये हम सूचनाओं का आदान-प्रदान और मनोरंजन करते है। एक दूसरे से जुड़े रहते है। यह एक वर्चुअल वर्ल्ड का निर्माण भी करता है। यह एक विशाल नेटवर्क है। सोशल मिडिया हमारे जीवन में कितनी गहरी पैठ बना चुका है इसका अंदाजा निम्न आंकड़ो से लग सकता है। वी आर सोशल हूटसयूट ने जो आंकड़े डिजिटल 2017 ग्लोबल ओवरव्यू के नाम से प्रकाशित किये है, उसके अनुसार भारत की कुल जनसंख्या करीब 1.31 अरब है जिसमें 46.2 करोड़ इंटरनेट यूजर्स है। यही नहीं सोशल मीडिया पर एक्टिव यूजर्स की तादाद 19.1 करोड़ है। मोबाइल से सोशलमीडिया पर एक्टिव रहने वालों की तादाद करीब 16.9 करोड़ है। सोशल मीडिया की दुनिया में ग्रोथ रेट 30 फीसदी है तो भारत की ग्रोथ रेट करीब 44 फीसदी है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, टिवटर, व्हाट्सएप, हाइक, इमो, स्नैपचैट, वाइबर आदि सोशल मीडिया के प्लेटफ़ार्म है। जहाँ लोग आसानी से अपना अकाउँट खोल कर इसका इस्तेमाल कर सकते है। तकनीक के ढ़ेर सारे फायदे होते है और नुकसान भी। यही बात सोशल मीडिया पर भी लागू होती है। सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू है। सोशल मीडिया के तमाम फायदे के बावतूद नकरात्मक पक्ष यह है कि इसका बच्चों पर ज्यादा दुष्प्रभाव पड़ रहा है। जिसको लेकर चिंताएँ बढ़ गयी है। अलग-अलग देशों में सोशल मीडिया के इस्तेमाल का बच्चों पर पड़ रहे दुष्प्रभाव को लेकर अध्ययन हो रहे है। प्रबुद्ध वर्ग अपनी -अपनी राय भी दे रहे है। भारत में हालांकि इस तरह के सवे अभी कम हुए है लेकिन चिंताएँ सबकी एक समान ही है।

सोशल मीडिया पर बच्चों की ज्यादा निर्भरता से उनमें चिड़चिड़ापन और असंतुष्टि का भाव पैदा होता है। पहले बच्चों का दायरा सीमित था। वो चुनिंदा दोस्तो और अपने माँ-बाप के ही प्रभाव में रहते थे। अब उनका दायरा बढ़ गया है। वे सोशल मीडिया के इस्तेमाल से अनजाने दोस्तों के भी प्रभाव में आ जाते हे जिनको वे जानते तक नहीं लेकिन उनके सुझावों पर आसानी से भरोसा

कर लेते है। चार-पाँच साल तक बच्चा सिर्फ अपनी माँ के प्रभाव में रहता है एसके बाद पिता, स्कूल व अन्य लोगों के संपर्क में आना शुरू कर देता है। सोशल मीडिया पर बच्चों की ज्यादा निर्भरता उन्हें घर, परिवार और दोस्तों दूर कर देती है। यहीं नही सोशल मीडिया पर ज्यादा निर्भरता से उनमें पढ़ाई के प्रति दिलचस्पी में कमी तो आती ही है। इसके अलावा सीखने की क्षमता में कमी और याद रखने की क्षमता पर भी प्रकूिल प्रभाव पड़ता है। स्कूल जाने वाले बच्चों का मन मनोरंजन में ज्यादा और अध्ययन में कम लगता है। सोशल मीडिया पर अश्लील और निरर्थक सामग्री आसानी से उपलब्ध होने से उनमें बुरी लत पड़ रहे है। अपने माता-पिता से मदद माँगने के बजाए सोशल मीडिया का ज्यादा इस्तेमाल करने वाले बच्चे अनजाने लोगों से मुश्किल वक्त में मदद माँगने लगते है। जहाँ उन्हें उचित सलाह नहीं मिलती। दोस्तो से चैट और निरर्थक विषयों लंबी-लंबी बहसो में अपने समय को बर्बाद करते है और निष्कर्ष कुछ नहीं निकलता है। चूँकि बच्चे उतने परिपक्व नहीं होते है कि स्वस्थ विमर्श कर सके। सीखने और पढ़ने की उम्र में समय का सदुपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। लेकिन बच्चों द्वारा सोशल मीडिया के इस्तेमाल के कारण उनके पठन-पाठन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ब्रिटेन में हुए एक सर्वे के मुताबिक सोशल मीडिया का ज्यादा इस्तेमाल करने वाले बच्चों की मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। सोशल मीडिया का ज्र्यादा इस्तेमाल करने वाले बच्चों में असंतुष्टि का भाव ज्यादा रहता है। ब्रिटेन के इंस्टीटयूट ऑफ लेबर इकोनौमिक्स द्वारा सोशल मीडिया यूज एंड चिल्ड्रेन्स वेलीबीइंग अध्ययन 10 से 15 साल के करीब 4000 बच्चों पर की गई। इस अध्ययन में पाया गया कि जो बच्चे सोशल मीडिया का ज्यादा इस्तेमाल करत थे वे अपने जीवन से कम संतुष्ट थे और जो बच्चे कम इस्तेमाल करते थे वे ज्यादा संतुष्ट थे। इस अध्ययन के दौरान एक तथ्य और जो सामने आया वो यह कि लड़कियों पर इसका असर और भी ज्यादा पड़ता है। वे शायद इसलिए कि लड़कियाँ, लड़कों की तुलना में ज्यादा भावुक और संवेदनशील होती है। स्पष्ट है कि सोशल मीडिया का उचित उपयोग जहाँ एक तरफ ज्ञान का खजाना है तो वही दूसरी तरफ बच्चों के मानसिक स्वास्थय पर बुरा प्रभाव डालने वाला साबित हो रहा है।

सोशल मीडिया का युवा वर्ग पर प्रभाव–आज का युग वर्ग औद्योगिक क्रांति के बाद संचार क्रांति से सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहा है। जिसका प्रभाव न सिर्फ शहरों और शहरी युवाओं तक सीमित रहा है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों के स्वरूप में भी आमूलचूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया की भूमिका के बदलते स्वरूप को देखा जाए तो यह कहा जा सकता हे कि सोशल मीडिया युवा वर्ग के लिए निर्णायक भूमिका तय करती है। उनमें अनुशासन, आत्मनिभरता, न्याय इससे भी अधिक उनके विचार एंव कार्य के ढ़ंग में वैज्ञानिकता के विकास में सहायक हो रहा है। आज का युवक राजनीतिक महत्व को न केवल समझ रहा हे बल्कि वेट की रणनीति को समझकर राजनीतिक दलो के भाय को इधर-उधर कर रहा है। सोशल मीडिया के कारण युवा वर्ग के मूल्यों एंव मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गये है जो पुरानी पीढ़ी से भिन्न है आज का युवा परम्परागत जाति एंव संयुक्त परिवार प्रणाली के नियंत्रणों से मुक्त हो रहा है। वह बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, छुआछूत, ऊँच-नींच, आदि से दूर हो रहा है। युवाओं में उन्मुक्त स्त्री-पुरुष मुजफ्फरपुर के बारे में सोच पनप रही है, प्रेम विवाह, एंव अंतरजातीय विवाह की तरफ बढ़ रहा है। जिससे तलाक व विवाह-विच्छेद की प्रवृति बढ़ रही है।

युवा वर्ग अपने परम्परागत मूल्यों की पहचान खो रहा है और पाश्चात्य संस्कृति के मूल्यों को अपना रहा है। जिससे युवा वर्ग में व्यक्तिवादिता और सामाजिक मुजफ्फरपुर में औपचारिकता बढ़ती जा रही है अतः युवा वर्ग अपने परम्परागत बुजुर्गो के विचारों, मूल्यों, आदर्शों एंव मानदण्डो के साथ सामंजस्य स्थापित करने में संघर्षरत है वहीं अपनी विभिन्न पारिवारिक एंव वैवाहिक समस्याओं का सामना कर रहा है। आज युवा वर्ग में एक विशिष्ट प्रकार की उप-संस्कृति मौजूद है जो प्रमुख रूप से संगीत, फैशन, शैली तथा अवकाश के क्षणों के प्रयोग पर केन्द्रित है। यह कार्य की अपेक्षा आराम की संस्कृति है। इस समूह की मुख्य रूचि खाने-पीने एंव परिधनों की विभिन्न ''शैली" (स्टाइल) में होती है। परिवार के व्यक्तियों की अपेक्षा युवाओं के सामाजिक मुजफ्फरपुर का समस्त तानाबाना इस आयु वर्ग के व्यक्तियों द्वारा बुना होता है। इस संस्कृति के युवाा, कुण्ठाा कई रूप स्वरूप में विचलन और आज्ञाकारिता तथा मुख्य धारा की वयस्क मध्यमवर्गीय संस्कृति के प्रति विद्रोह की भावना से ग्रसित होते है। सोशल मीयिा ने युवा वर्ग को हर कोण से प्रभावित किया है जिसके सकारात्मक एंव नकारात्मक दोनों रूप दृष्टिगोचर होते है। युवाओं में जहाँ आज काम करने की सनक पैदा हो गयी है जिससे अंतराष्ट्रीय विज्ञान ओलम्पियाड, शोध एंव प्रबंध संस्थानों में तीव्र प्रतिस्पर्धा के चलते युवा ने अपने आपको स्थापित किया है। आज चाहे मेडिकल साइंस हो, कम्पयुटर अथवा आईटी हो युवा ने हर जगह अपना स्थान बनाया है। इसके ठीक विपरीत गलैमर और भौतिकवादी जीवनशैली ने युवाओं को दिग्भ्रमित किया है और इसे फैलाने में सोशल मीडिया

ने अहम भूमिका निभाई है। आज का दौर युवाशक्ति का दोर है। भारत में इस समय 65 प्रतिशत के करीब युवा है। इन युवाओं को बड़ी ही सक्रियता से जोड़ने का काम सोशल मीडिया कर रहा है। युवा वर्ग में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का क्रेज दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। युवाओं के उसी क्रेज कारण आज सोशल नेटवर्किंग दुनिया भर में इंटरनेट पर होने वाली नंबर वन गतिविधि बन गया है। सोशल मीडिया को परस्पर संवाद का बेब आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील मंच कहा जा सकता है। जिसके माध्यम से लोग संवाद करते है, आपसी जानकारियों का आदान -प्रदान करते है और उपयोगकर्त्ता जनित सामग्री को सामग्री सृजन की सहयोगात्मक प्रक्रिया के एक अंश के रूप में संशोधित करते है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया युवाओं को जिन्दगी का एक अहम अंग बन गया है। यह सही है कि इसके माध्यम से लोग अपनी बात किसी रोक-टोक के देश और दुनिया के हर कोने तक पहुँचा सकते है, परन्तु इससे अपराधों में भी वृद्धि हुई है।

आजकल सोशल मीडिया पर लगभग सभी लोग एक्टिव रहते है खासकर युवा पीढ़ी। सोशल मीडिया के दो पक्ष है एक यह कि यह बहुत जरूरी और लाभदायक है दूसरा पक्ष यह कि सोशल मीडिया का बहुत नुकसान भी और समय खराब करना है खासकर युवा पीढ़ी के लिए। कहने का तात्पर्य है कि सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभाव भी रहता है तो नकरात्मक प्रभाव भी रहता है लेकिन वर्तमान समय में इसके नकारात्मक प्रभाव ज्याद ही है। जिसके पास स्मार्टफोन है वह सोशल मीडिया मनोरंजन करने का अच्छा माध्यम है लेकिन मनोरंजन के चक्कर में युवा पीढ़ी अपने अमुल्य समय का उपयोग अपने भविष्य के लिए न करके सोशल मीडिया में फंस गया है। आज के समय में हम देखे तो बहुत बड़ी संख्या में युवा पीढ़ी व्हाट्सएप, फेसबुक, हाईक और भी कई एप्प या साइट्स का उपयोग करते है। हम यू समझे कि आज का युवा सोशल मीडिया की जड़ों में फंस चूका है। जहाँ से निकलना बहुत मुश्किल है तो गलत नहीं होगा। जब सोशल मीडिया का इतना ज्यादा प्रभाव नहीं था तब युवा आपने भविष्य के बारे में सोचने के लिए ज्यादा समय निकालते थे लेकिन अब उनके दिन का एक बड़ा हिस्सा सोशल मीडिया पर निकलता है। पहले युवा खेलने और ऐसे मनोरंजन के खेल खेलते थे जिनसे उनका दिमाग तेज और एक्टिव रहता था। आजकल के युवा यह देखते हैं कि फेसबुक पर डाली फोटो पर कितने कमेंट आए या फिर अपने व्हाट्सएपप पर मैसेज चेक करेगा, मोबाइल को बार-बार चेक करेगा। सोशल मीडिया के माध्यम से युवा अश्लील कंटेट से प्रभावित होता है। जो दिमाग पहले वह पढ़ाई में लगाता था वही दिमाग वह व्हाट्सएप और फेसबुक पर बर्बाद करता है।

इनके अलावा सोशल मीडिया पर कई लोग भड़काऊ संदेश व वीडियो भेजते है जिसके कारण युवाओं की मानसिकता पर काफी प्रभाव पड़ता है और कई युवा तो भड़काऊ संदेश व वीडियो देखने के बाद घिनौना अपराध तक कर बैठते है। आजकल की युवा पीढ़ी सोशल मीडिया के माध्यम से कई तरह की अश्लील साइट्स गेम खेलने में भी अपना समय खराब कई बड़े फायदे है। सोशल मीडिया के माध्यम से ही हमारा बहुत समय बचता है। सोशल मीडिया के माध्यम से हम आसानी से ट्रांसफर कर सकते है लेकिन इसके बावजूद अधिकतर युवा सोशल मीडिया का गलत उपयोग करते है। उन तक कई गलत जानकारी पहुँचती है जिसे वह सही मान लेता है। जिसका उनकी जिन्दगी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जबकि यदि युवा वर्ग सोशल मीडिया का इस्तेमाल सही कामों के लिये करे तो इससे न केवल उनके ज्ञान में वृद्धि होगी बल्कि उनका भविष्य भी सुदृढ़ होगा। वर्तमान युग में सोशल मीडिया के माध्यम से बच्चों एंव युवाओं को भले ही दोस्तों के संपर्क में रहना अच्छा लगता हो। लेकिन इनका ज्यादा इस्तेमाल भी हानिकारक है। सोशल मीडिया के माध्यम से बच्चों एंव युवाओं को भले ही दोस्तों के संपर्क में रहना अच्छा लगता हो। लेकिन इनका युग में बच्चे युवा हर समय ऑनलाईन रहते है जिससे उनका दिमाग हर समय व्यस्त रहता है और आराम भी नही मिल पाता। ऐसे में उनके दिमाग को जानकारियों को सुरक्षित रखने की प्रक्रिया पूरी करने के लिए समय नहीं मिल पाता। जिसका सीध असर उनकी यादाश्त पर पड़ता है। सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल से मस्तिष्क पर जानकारियों का बोझ बढ़ जाता है। जिससे दिमाग कम जानकारियों को ही लंबे समय तक याद रख पाता है।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया का सर्वाधिक प्रभाव बच्चों एंव युवा वर्ग पर पड़ता है। सोशल मीडिया का उपयोग बच्चे एंव युवा वर्ग दो तरह से करते है। कुछ बच्चे एंव युवा ज्ञान विस्तार तथा अध्ययन में आने वाली कठिनाइयों के समाधान के रूप में कर रहे है जो इसका सकारात्मक पक्ष है। जबकि कुछ मनोरंजन के रूप में इसका उपयोग कर रहे है, ये बच्चे पठन-पाठन में कम एंव सोशल मीडिया पर अधिक समय व्यतीत कर अपनी क्षमता का दुरुपयोग करते है। वर्तमान समय में अधिकतर बच्चों व युवाओं को लाभ हो रहा

है। विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में। सोशल मीडिया कभी-कभी समाज में गलत अफवाह फैलाने का भी काम करती है। अतः इस पर नियंत्रण आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. डोमिनिक, आर0 जोसफ, (1993): "दी डायनेमिक्स ऑफ मास कम्यूनिकेशन" मैकग्रौहिल दिल्ली, पृष्ठ 71
2. आइजेन्सटेड, एस0 एन. (1985), चैजिंग पेटनर्स ऑफ यूथ प्रोब्लेमस इन कटेम्परेरी सोसायटी, जॉन विले एण्ड संस, न्यूयार्क, पृष्ठ 109
3. फेड्रिक एण्ड विटनी, जे0 के0 ब्लेक (1983), "इन्ट्रोक्डक्शन ऑफ मॉस कम्यूनिकेशन", प्रिन्ट इन यू0 एस0 ए0, पृष्ठ 44
4. गुप्ता, बृजमोहन, (1992), जनसंचार : विविध आयाम, राधकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 39
5. हेबरमास (1986) : "दी थ्योरी ऑफ कम्यूनिकेशन एक्शन सेज पब्लिकेशन" : लंदन, पृष्ठ 18
6. पारख जवरीमल्ल, (2000), "जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य", ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ 56

हंसराजक कथामे नारीक स्थान

कुमकुम कुमारी

शोध-गवेषिका (यूजीसी-नेट), विश्वविद्यालय मैथिली विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हंसराज अर्थात मंत्रनाथ झाक जन्म दरभंगा जिलान्तर्गत उजान गाममे 1938 ई. के भेल छल। मिथिला मिहिर, पटनामे उपसम्पादकक रूपमे सर्वप्रथम जिपिकोपार्जनक आरम्भ कएल तत्पश्चात तेजनारायण कॉलेज बनेलीमे मैथिली विभागमे व्याख्याता भेलाह। बादमे अध्यक्ष मैथ्ली विभाग ल0 ना0 वि0 वि0 दरभंगासँ सेवानिवृत भए, साहित्य-साधनामे लागि गेलाह। हिनक प्रकाशित कृति अछि।- सतूजा (कथा संग्रह), चितकाबर (कथा-संग्रह), ओ जे कहलनि (भेंटवार्ता) बिसरल-बिसरल (संस्मरण) भाइवीरसिंह (विनिबंधक अनुवाद), मणिपद्‌म (संपादन), एगो रहथि राजा (संपादन), विद्यापतिक पुनर्मूल्यांकन (संपादन) एवं पाछाँसँ अबैत इजोत (संस्मरण)। कतिपय पत्र-पत्रिकाक अवैतनिक संपादक भेलाह। जाहिमे बसात (मासिक, दरभंगा), वैदेही (मासिक, दरभंगा) एवं मिथिला भारती (साप्ताहिक, दरभंगा) अबैत अछि।

एकटा कथाकारक रूपमे हुनक मान्यता छल जे लिखी, जतवे लिखी सेनीक लिखी। ओँ अपन अनुभव आ अनुकूल दृष्टिक कारण किछु विशिष्ट कथा लिखलनि। जाहिमे छिद्र, चोर, मोर, कुकूर, राग, पैघलोक एवं अपन लोक आदि कथाकेँ परिगणित कएल जा सकैए। हिनक शैली विशिष्ट छलनि। छोट-छोट शब्दावलीमे पैघ-पैघ बात कहि देबाक सामर्थ्य छलनि। हिनक कथाक शिल्प, कथ्य, भाव, ओ भाषा रागात्मकताकेँ परिपुष्टि करैत अछि। तेँ स्थायी भावकेँ कत्तौ खोंट नहि होअ' देलनि। दृश्यक चित्रणमे सजीवता, घटनाक आयोजनमे स्वाभाविकता, शैलीक रोचकता कारण विशिष्ट होइत छल।

आजुक मिथिला समाज पूर्णतः पितृसत्तात्मक अछि। परिवारपर पुरुषक आधिपत्य छैक। ओकर मनोनुकूले परिवारक गतिविधि चलैत छैक। जाहिमे नारीक स्थान नगण्य रहलैक। ओकरा देवी कहि, फुसिया ओल जाइत रहलै। देवीक शोषण होइत रहल आ पुरुष सत्तामे बनल रहलाह। स्त्रीक स्वाधीनता धर्मक अधीन कैद अछि आ पुरुष ओकर रक्षक। प्रारम्भमे तँ हुनका लोकनिक शिक्षापर पहरा रहल। प्रसिद्ध महिला चिंतक-सीमोन कहैत छथि- " मातृसत्तात्मक समाजमे स्त्रीक आचरण सरल छल। हुनकासँ शुद्धता एवं शुचिताक कम अपेक्षा कएल जाइत छल जे पितृसत्तामे स्त्री पुरुषक सम्पति भ' गेल। कौमयिता एवं पतिव्रता हुनक परमधर्म भ' गेल।"[1]

धर्म गुणहीन होअय, खराप होअय, मुदा धर्म, धर्म थिक। अपन धर्मक अनुपालनमे अहाँ मरि-खपि गेलौं, कोनो बेजाय नहि। गुलामीक मानसिकता तैयार करब, एहि धर्मक कार्य भेल। एकर सहयोगसँ मनुक्ख (स्त्री) मे हीन भावनाकेँ भरल जाइत अछि। जाहिसँ पीढ़ी-दर पीढ़ी स्वयं हीनभावनासँ ग्रसित होइत चल गेल।

स्वातंयोत्तर कालक लेखकक ध्यान नारी-समाजक एहि दुर्दशा दिस गेल। एहि कालक कथामे दू स्वरूपक कथा देखवामे अबैछ। प्रथमतः पुरान पीढ़ीक मान्यताकेँ स्वीकारैत कि छुनवताक प्रवेश करबैत आ दोसर स्वरूप प्राचीन मान्यताकेँ एकदम नकारैत अभिनव रूपक कथा, मैथिली कथाकेँ आन्दोलित कएलक। कथाधरक गतिमान कएलक। एहि कथा सभमे व्यापकता आएल। नारी समाजक उचित स्थान दिएबाक प्रयास भेल। लोकककेँ आर्थिक विपन्नता सकपंज कएने छैक। ओकर मनोरथ समस्याक जालमे ओझराएल छटपटा रहल छैक। मुदा ताहिसँ ओकर मानवीय संवेदना आहत किएक होइ। मनुक्ख-मनुक्खक मध्य आपसी सदभाव नष्ट नहि हएबाक चाही, हंसराज एहि फाँरक कथाकार छलाह।

हिनका एकटा प्रसिद्ध कथा अछि-'अपन लोक'। अपन लोक कथा नायिका थिक भुल्ली। भुल्ली मनोज बाबूक खानदानी नौरिन थिक। ओकर नानी भरि जीवन हिनके ओतय खटल। शहरक नीक मोहल्लामे हिनक आवास छल। जकर वर्णन करैत कथाकार कहलनि अछि-" आगाँमे छोटसन फुलबाड़ी, बरंडा, बिचला कोठली ड्राइंगरूम, एक कात बेडरूम, दोसर कात भुल्लीक कोठली। भनसा घर, भंडार, पाइप, स्नानघर, पयखाना आ आँगन।"[2]

भुल्लीक विवाह भ' गेल छैक। ओकर स्वामी रिक्शा चलबैछैक। ओकर डेरा मनोज बाबूक डेराक सटले छैक, मुदा भुल्ली ओत' नहि रहैत अछि। एहि ठाम नारीक दू स्वरूपक दर्शन होइछ-पहिल ओकर स्वतंत्रता आ दोसर स्नेह। स्वातंत्र्य, मनुक्खे नहि,पशु-पक्षी मात्रमे व्याप्त रहैछ। पिजड़ामे बंद सुग्गा आ खुट्टासँ बान्हल पशु हरदम अपनाकेँ स्वतंत्र करबाक चेष्टामे लागल रहैत अछि। भुल्ली, मनोजबाबूक मुँहलगुवा नौरिन थिक। मनोजबाबूक व्यवहार अपनत्वपूर्ण अछि। जाहि कारणेँ ओ एहि घरकेँ अपन घरे मानैत अछि। मानबोक चाहियैक। ओकर आवश्यकताक आपूर्ति बहुत स्नेहसँ कएल जाइत छैक।

"... आ हाथ सून देखिकेँ गेरूआ तरसँ एक टकही बहार कए देल थिक आ कहने रहथिन-' चुड़ी पहिरिलिहेँ।' आ दू टकही दैत कहने रहथिन-' हाट पर ब्लाउज कीनि लिहें।' ... पचटकही दैत कहने रहथिन- 'नूआ कीनिलिहें भुल्ली।' आ तकर बादसँ ई मुँह लागल जवाब देबए लागि गेल छलि।"[3]

एहि वर्णनमे कथाकार ओहि घरमे भुल्लीक हैसियतकेँ देखबैत छथि। मनोजबाबूक पत्नी मानो सेहो ओकरा खूब मानैत छथिन। भुल्ली मनोजबाबूक एबाक बाट मानो संग मिलि कए जो हैत रहैए। आफिससँ ओ पीबि कए घूमैत छथि। कहियो-कहियो बहुत राति भऽ जाइत छनि तऽ अकछा कए मानो सूतै लेल चल जाइत छथि। मुदा भुल्ली ओंघाइत हुनक बाट तकैत रहि जाइए। हुनक अयलापर पकड़ि कए हुनक कोठली द' अबैत छनि। जूता-कोट खोलि उचित स्थानमे राखि दैत छनि। एनामे कहियो-कहियो ओ झीक भारि भुल्लीक कोठलीमे चल जाथि आ ओकर एहि पलंग पर सूति जाथि। भुल्ली लचार अछि। मुदा मानो भीतर-भीतर सुनगि रहल अछि।

दोसर दिस भुल्लीक स्वामी बहुत कसिकए दुखित पड़ि जाइत छैक। ओकरा बजयबाक लेल ओकर पड़ोसिया सुकूनी एलैए। मुदा मनोजबाबू आ मानो अपन काज बिथुत कए, ओकरा नहि जाय देबऽ चाहैत छथि। भुल्ली मालिकक मोन तोड़ि नहि जाइए। सुकूनी गारि दैत, आपस चल जाइत छैक। एहि स्थलपर सुकूनीकक चकचाएब, नारी चरित्रक विशिष्ट अंश थिक। मात्र अपन सुख देखि, भुल्ली अपन लोकक सेवामे नहि जा रहल अछि, सुकनीक ई सोचब सर्वथा उचित छैक। मुदा हंसराजक दुष्टि कतौ अन्यत्र अछि। भुल्लीक चरित्र सोझमतिया नारीक चरित्र थिक। ओ शोषित अछि। मुदा शोषणक रूप देखार नहि छैक। तेँ साँप-छुछुन्नरिक गतिमे रहि गेल अछि। ओकर मालिक स्वामीक दबाइ-दौरीक लेल पाइ द' रहल छथिन। तखन सुकनी सेहो ओकर दबाइ आनि सकै छैक। जे मालिक ओकरा अपनहि जकाँ मानैत छैक, ओकरा कोना छोड़ि चल जेतेक। भुल्लीक द्वन्द नारी चेतनाक प्रतिफलन थिक। मुदा जखन ओकरा अपन मालिकसँ अनट-बिनट होइत छैक आ मनोजबाबू अपन लोक (मानो)क पक्ष लैत छथि, तऽ ओकरा ज्ञान होइत छैक। ओ अपन लोकक ओहिठाम राता-राती विदा भऽ जाइए। मुदा अहू ठाम सुकूनी अपन लोक बनलि, ओकरा दुत्कारै छैक। ओकर स्वामी ओकर विपरित सुकूनीकेँ अपन लोक मानैत छै। कथाक एहेन अंत वस्तुत: मानवीय संवेदनाक पक्षधर निठाढ़ अछि। दृष्टव्य थिक-

"हँ, निकल छुतहरी हमर घरसँ। तों कहियाक हमर लोक भेलें? जै दिन हम मरैत रही, क्यों पुछनिहार नहि छल, एक घार पानि देनिहार नै छल, तहिया तँ तों ओइ बाबूक संगे छीटबला नूआ पहिरि, पाटी कयने नीक-निकूत खाइत, रमसैत, चमकैत आ हँसैत रहेँ। हम मुइलौँ कि जीबैछि तकर खोजो करै कए तोरा जरूर तिनै रहौ। ओइ दिन तँ के-कहाँ भए अपन लोक हमरा इएह भेल।"[4]

कथाकारक एहि कथनमे अधिकार आ कर्तव्यकेँ परभाषित कएल कि भुल्ली मालिकक चलाकीकेँ नहि जानि, हुनको अपन लोक मानैत छल। ओकर चरित्र द्वन्दमे फसल रहि गेलैक। ओनीक-बेजायक अन्तरकेँ नहि बूझि सकल। कथाक भाषा आ कथ्य बेजोड़ अछि। हिनक प्रसिद्ध कथामे 'छिद्र' सेहो अबैत अछि। रामा आदिवासी समाजक सरदारक बेटा छी। पिताक इच्छा छैक जे ओकर बेटा अपनहि आदिवासी समाजमे विवाह करय। कारण रामा किछु पढ़ि-लिखि लेल कतऽ अमरूख समाज लोक बजाय लगलैक जे ओ कोनो अजातिसँ विवाह क' लेत सरदार एहि लेल बेराम ठाकुर (जनजातिक देवता) केँ दूटा मुरगी सेहो कबुलने छल। हमर आलेख नारी चरित्रकेँ रेखांकित करबाक लेल अछि। ते मात्र रामासँ परिचित करबैत नायिका फूलो पर अबैत छी। फुलिया, माने फूल गुलाब बाग मेलामे नचैत-गवैत अछि। ओर मात्र एतवहि बूझल छैक जे ई मौगी जे ओकरा संगे रहैत छैक ओकर मामी छियै।

रामा, फूलकँ अपन पत्नी बना घर अनैत अछि। सरदार स्वजातीय कन्या फूलकँ देखि आनन्द विभोर भ' जाइए। आब ओकर' खेरओआल वंश नहि बुड़तैक। बेटा अनजाति नहि भेलैक। ओ पूरा समाजकँ अपन पुतोंहुकँ आशिष देबाक लेल आमंत्रित कएलक। मुदा एक टा युवक ओहि फूलकँ मेलामे नचैत-गवैत देखने रहै। ओ सरदारक भर्त्सना करैत छैक। जखन कि आदिवासी समाजमे नचबा-गएबापर कोनो प्रतिबंध नहि छैक। मुदा ओकर सरदारी चल जेतैक, तकर डरसँ ओ चिंतित भऽ जाइए।

'छिद्र' कथाक नारी पात्र फुलिया चरित्रहीन नहि अछि। गरीब अछि, तँ अपन कलासँ अपन रोजी-रोटी चलबैत अछि। मुदा पितृसत्तात्मक समाज, नारीक छिद्रान्वेषी अछि। ओ फुलियाक मात्र कमजोर भाग पर चोट दैत अछि। नारीक संग एहि प्रभृतिक व्यवहार आमबात थिक, जकरा कथाकार रेखांकित कएलनि अछि।

क्षमा शर्मा समकालीन स्त्री-विमर्शक उपलब्धिक संबंधमे लिखैत छथि-"स्त्रीवादी विचार जे कएलक, से कएलक, पूजल जयबाक विचारकँ धज्जी उड़ा देलक। पहिल बेर स्त्री गणकँ पता चललैक जे देवी कहयवाक महिमा-मंडनसँ जे मरि रहल छल ओ ओकर महानता नहि, अपितु पुरुषक द्वारा अदौसँ बनाओल ओ विचार छल जे कखनहुँ पूजिकए, कखनहुँ भारि कए अपन सत्तापर कायम छल।"[5]

वर्तमानकाल नारीवादी आन्दोलनक संघर्षसँ गुजरि रहल अछि। जाहिमे नारी-चेतनाक कथा, कविता, नाटक आ लेखक कमी नहि अछि। हिनक 'चोर' कथामे भूखल आ कमजोर स्त्रीक शोषण होटल मालिक सिंहजीक द्वारा रातुक अन्हारमे बंद कक्षमे कएल जाइछ। स्त्री लाचार अछि तँ मात्र कानि-खीझि सिंहजीक वासनात्मक शोषणकँ प्रकट करैए आ मधवा ई लीला देखि भागि जाइए। स्त्रीक कानब आ मधवाक भागि जाएब, समस्याक समाधान नहि थिक। तखन शोषणकँ देखार करब, सेहो कथाक भाग थिक।

'उग्रास' हिनक उत्कृष्ट कथा थिक। जाहिमे हंसराज जी एकटा भिखमंगनीक चरित्रकँ उच्चता सोपान चढ़ा। एहि बातक खुलासा कएलनि अछि जे गरीब लोक लग इज्जति छैंक। जखन कि असहाय लोककँ समाज इज्जत देबा लेल तैयार नहि अछि। बाट चलैत लोक किसिम-किसिम कए फबती कसैत रहैत छैक। ओकरा लेल घैन सना मुदा जखन कथाकार सहानुभूतिवश ओकरा चारि आना कैंचा भीखमे दैत छथिन त*ओ पाई घमबैत बजैत अछि-" तों बड़ अधलाह, लोक छह।"[6]

ओ सामान्य लोकक सदृशे कथाकारो कँ बुझैत अछि ओ हुनक पाइकँ एहि लेल घुमा दियऽ चाहैत अछि जे ई पाइ दऽ कत्तै एकर नजायज फायदा नहि उठा लियअ। मुदा कथाकार जखन-जखन ओकरा देखैत छथि किछु बेसी कैंचा दे अपन रास्ता नापि लैत छथि। आब भिगमंगनीकँ विश्वास भऽ गैलै जे ई अधलाह लोक नहि छथि।

जखन राजा (कथाकार) कँ ओकर सम्पूर्ण लचारीक पता चलैत छैक, तखन ओकर लोकक चौलक उतर नहि देवबाक कारण जानि सकल। आ अंतमे एक दिन जखन तीन-चारि पुरुषक संग असगरि जूझैत देखैत अछि आ ओकर हाथमे छूरा देखाइ पड़ै छैक तऽ अचम्भित भऽ जाइत अछि। द्रष्टव्य थिक-"हँ राजाजी! ई मरदावा सभ गेल कहाँ? आइ एकरा आउर कए हम बिना खून कयने नै रहब। आखिर मरद भेल तऽ की ?"[7]

कथाकारकँ तखन उग्रासक बोध होइत छनि, जखन याशो (भिखमंगनी) एकटा रिफ्यूजीसँ विवाह कए घर बसालैए। वस्तुतः नवयौवनाक संरक्षण लेल पुरुषक संग रहब आवश्यक। समाजक कुदृष्टि, असगरि नारीक विरूद्ध अछि। भारतीय समाजमे पुरुषक नारी दृष्टि की अछि, ई सभ जनैत अछि। गरीबक कठिन जीवन आ पुरुष समाजक कुदृष्टि दुनूकँ एहि कथामे रेखांकित कएल गेल अछि।

स्त्रीमे आएल नवचेतनाक परिणाम थिक जे भारत सरकार 2001 ई. कँ स्त्री सशक्तीकरण वर्ष घोषित कएलक आ स्त्री गणक जीवन स्तर, सामाजिक स्तर ऊपर उठयवाक उद्घोषणा भेल। पंचायत स्तरमे एकरा सुधारबाक लेल, कतिपय निरक्षर महिला सरपंच निर्वाचित कएल गेल। आँनि-बाड़ी योजनाक अन्तर्गत महिलाक बहाली भेल। ग्राम सेविका, स्कूल शिक्षिका बनलीह। हंसराजक 'यात्रा' कथामे उषा जे हरीक पत्नी थिक बहुत संवेदनशील अछि। ओ हरीक संगी विमलक परीक्षा फीस लेल, बहुत सीदति सहि, अपन घरक खर्चमे कटौती कऽ पचास टाका दैत छैक। हरी अपन पत्नीकँ एहि कार्य लेल प्रशंसा करैत छैक। समयक अन्तरालमे विमल पाइवाला भऽ जाइए। आ जखन हरीकँ कत्तै जयवाक लेल पचास टाका काज पड़ैत छैक तऽ ओ गछिकँ निपत्ता भऽ जाइए। ई मात्र एक मित्रक धेखाबाजी नहि, एक संवेदनाक हत्या थिक। हमर समाज पुरुष प्रधान समाज थिक। जाहि कारणँ विमलक पत्नी, हरीक फोनक उत्तरमे अपन पतिक कोनो प्रकारक सूचनाक बात नहि कहि पबैए। पितृसत्ता समाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सभ ठाम हावी अछि। एहि स्थितिसँ फराक उषाक चरित्रकँ उभारबाक प्रयास कथाक वैशिष्ट्य। 'स्त्री, पुरुषक एहि अभियानमे एक

साधनक रूपमे उपयोग कएल जाइत रहलीह। आइयो ई कहावत प्रचलित अछि– "प्रत्येक सफल व्यक्तिक पाछु स्त्रीक हाथ रहैत अछि।"[8]

एहि उक्तिकँ सिद्ध करैत हंसराजक 'मोड़' कथाकँ देखल जा सकैछ। गांगुली बाबूक बेटी रम्भाक विवाह खूब धूमधमसँ भेलैक। ओ सासुर गेल। बरख दिनुक बाद घूरल त' एकटा बच्चा कोरामे रहैक। गांगुली बाबूक बच्चाक संग रमल रहैत छथि। ओतहि अलका बेटी छनि जे कॉलेजमे पढ़त अछि आ चरत्रहीन अछि। पूर, बाजारक लोक पचीस रूपैया द भेटनी सिनेमा देखैए। कथाकार सोमनाक हुनक उद्येश्य पुरुषक काम लोलुपता दिसू इंगित करैछ। लोक जवान छौड़ीक हाथसँ पकौरा खायबाक लेल भीड़ लगौने रहैत अछि। सुरेशक बहिन मधुरीक दारिद्रयपर दुखी भऽ जाइए। ओ ओही शहरमे नौकरी 'क' रहल अछि। ओ मधुरीक वर्तमानवेश–भूषासँ तुरत चीन्ही नहि सकल। मुदा जकरा नेनपनसँ देखने अछि, ओकरा बिसरियो कोना जाएत। ओ ओकर पछोड़ धएने मधुरीक खोलीमे पहुँचेए। मधुरी, नैहरक आप्त लोककँ देखि, आनन्दसँ भरि जाइए। मदन किछु दिनक बाद मधुरी लेल नुआ, ओकर बेटी लेल फ्राक आ बेटा लेल पेन्ट–शर्ट सनेश ल जाइत छैक। जाहिसँ ओकर बहिन नग्न नहि रहैक। मुदा जखन ओर स्वामी एहि कपड़ा सभकँ देखैत छैक, तऽ क्रोधसँ भरि उठैत छैक। मधुरीक पिटाई होइ छैक। कारण, स्त्रीक चरित्रपर संदेह। पुरुषक ई दम्भ, स्त्रीक सम्पूर्ण जिनगीकँ सोखि जाइत छैक आ दोसर दिन बहुत कष्टसँ मदनकँ ओ पैकेट घुरा दैत छैक। कथाकार नारीक चरित्रकँ बिना–बुझने–सुझने लांछित कऽ देब पुरुषोंचित दम्भकँ नकारैत मानवीय संवेदनाकँ सर्बोपरि मानैत छथि। स्त्रीक अधीनताक स्थितिक मुख्य कारण पितृसत्ताक यौनिकता अछि। पुरुष समाज व्यवस्थामे यौन कामनाक संतुष्टि स्त्रीकँ अधीनमे रखलक जँ से नहि तऽ पारिवारिक सम्पूर्ण संचालनके सुव्यवस्थित करयवाली नारी शोषिता किएक रहितथि?

जे किछु हंसराजक कथा नारीक संवेदना, ओकर निष्ठा ओकर समर्पण आदिकँ प्रतिष्ठ करबामे पाछु नहि रहल अछि हिनक कथाक विशेषता अछि जेओ गुण–अवगुण दुनूमे पर नजरि रखैत, आगू बढ़ैत अछि।

संदर्भ

1. स्त्री : संघर्ष आओर सृजन, ले.– श्रीधरम, पृष्ठ–15, अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष–2008
2. सतंजा, ले.–हंसराज, पृष्ठ–6ए वीणा प्रकाशन,पटना–1 प्रकाशन वर्ष–2008
3. तत्रैव, पृष्ठ–9
4. तत्रैव, पृष्ठ–18
5. स्त्री : संघर्ष आओर सृजन, ले.–श्रीधरम, पृष्ठ–44 अंतिका प्रकाशन,नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष–2008
6. सतंजा, पृष्ठ–34
7. तत्रैव, पृष्ठ–40
8. नारीवादक भारतीय दृष्टिकोण, ले. श्री धरम पृष्ठ–66

गाँधी और अम्बेदकर: वैचारिक जमीन

चंद्रमौली कुमार

एम०ए० इतिहास, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
यूजीसी-नेट/जेआरएफ

डॉ॰ अम्बेदकर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के भीतर से उन विचारकों में से हैं, जिन्होंने अपनी मूल चिंता और अपने सरोकारों को जाति-प्रथा पर केन्द्रित किया। ठीक इसी के समानांतर महात्मा गाँधी का नाम आता है, जो बराबर युगीन राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के साथ बराबर उलझते रहे। अम्बेदकर अपने चिंतन के धेरे में केन्द्रित हैं, किंतु यह संकेंद्रन भी व्यापक स्तर पर विश्व मानवतावाद से संपृक्त है, किंतु गाँधी के चिंतन का घेरा व्यापक किंतु राजनीतिक है। गाँधी के पहले दादा भाई नौराजी' तिलक या गोपाल कृष्ण गोखले दलित समस्याओं पर लगभग मौन रहे हैं। लेकिन गाँधी वर्णवाद और जातिवाद के पोशक होने के बावजूद जाति के आधार पर विषमता और शोषण तथा जाति के नाम पर होनेवाले खुले अन्याय का राजनीतिक स्तर पर विरोध करते थे। गाँधी अपने लेखन में बराबर दलित वर्ग का पक्ष लेते रहे हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन का जनाधर प्रदान करने की राजनीति, सम्बल के रूप में स्वायत्त किया।

यह देखना काफी दिलचस्प होगा कि गाँधी भी रूढ़िवाद, सामाजिक शोषण और जाति-प्रथा के विरूद्ध बढ़े और अम्बेदकर भी। गाँधी शोषण, जाति-प्रथा सामाजिक न्याय, जाति-प्रथा के कलंक को मिटाने के लिए कृतसंकल्प अवश्य थे, किन्तु इन सामाजिक विडम्बनाओं के शिकार वह कभी नहीं रहे। कारण गाँधी उच्च कुलोद्भव जाति आते थे, जबकि अम्बेदकर भारतीय समाज की समाजशास्त्रीय विडम्बनाओं के स्वयं शिकार थे। अम्बेदकर किसी उच्च कुलोद्भव कुल से नहीं अपितु समाज की अछूत या अस्पृष्य समझी जानेवाली जाति महार कुल के ('अप्प दीपो भव') स्वयं अपने आप में दीपक थे। इस दीपक से तब से लेकर आज तक और आने वाले भविष्य में बहुजन समाज को उस दीपक से रोशनी मिलती रही है और मिलती रहेगी। किसी कुल में जन्म लेना यह महज एक संयोग है। किंतु इस संयोग के कुछ फायदे भी हैं और कुछ उसकी सीमाएं भी हैं। इन्हीं सीमाओं ने गाँधी और अम्बेदकर को कभी एक फ्टं पर आने नहीं दिया। डॉ॰ कृष्णदत्त पालीवाले लिखते हैं, "इतिहास की यह एक अजीब विडम्बना है कि अम्बेदकर और गाँधी दोनों ही रूढ़िवाद, सामाजिक शोषण और जाति- प्रथा को मिटाने की लड़ाई लड़ने पर भी अलग-अलग रहे, मिलकर लड़ाई कभी न लड़ सके, जबकि दोनों ही दलित जातियों की स्थिति में बुनियादी सुधार लाना चाहते थे। दोनों में बहुत-सी समानताएँ हैं, किंतु दोनों की विचार प्रविधियों और दृष्टिकोणों में एक गहरी भिन्नता भी विद्यमान है। यह भिन्नता वैचारिक स्तर पर ज्यादा गहरी है- कर्म स्तर पर कम।[1] विचार की प्रविधियाँ और दृष्टिकोण के अन्तर को समझना कुछ कठिन नहीं है। गाँधी का मानसिक नहीं सांस्कारिक गठन एक सनातनी हिंदू का था, जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था का हामी होता है, पर अम्बेदकर के मन में उस जड़ता के जहरवाद का कटु अनुभव था। इन्हीं अनुभवों ने अम्बेदकर में हिंदू समाज-व्यवस्था और उसकी चिंतन-दृष्टि के प्रति घृणा पैदा कर दी। अम्बेदकर के उग्र और कठोर विचारों के कारण एक समय था जब काँग्रेसजन उन्हें अँग्रेजों के पिट्ठू तक कहा करते थे और गरम दलवाले ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान, पश्चिमी चिंतन का उदार-ठंडा प्रतिक्रियावादी समर्थक कहते थे।[2] जबकि सच्चाई यह है कि अम्बेदकर की निष्ठा देश-भक्ति के प्रति राजनीतिक दिखावा नहीं था। दरअसल अम्बेदकर भारत की धार्मिक गतानुगतिकता की दो हजार वर्शों की लड़ाई को लड़ रहे थे। उनके ऊपर मध्यकालीन संतों के अलावा ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई फूले और पेरियार जैसे महान चिंतकों और मनीशियों के विचारों बल था। यही वह बल था, जिसके चलते वह वर्षों से चली आती हुई जड़ता के विरूद्ध खड़े हो सके। और वंचित समाज के लिए उनकी अविस्मरणीय देन को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। सन् 1916 में डॉ॰ अम्बेदकर ने जाति-प्रथा की समस्या पर एक निबंध लिखा था। जाति-प्रथा पर लिखा गया उनका

लेख आक्रमक था। इसी कारण ब्राह्मणों ने उन्हें ब्राह्मणवाद का 'कट्टर शात्रु' की संज्ञा दी। अम्बेदकर सवर्ण हिंदुओं की उदारता को ढोंग के सिवा कुछ भी नहीं मानते थे। अत: उनका मानना था कि दलितों को अपनी मुक्ति का मार्ग खुद चुनना होगा। उन्हें ब्राह्मणवाद से टक्कर लेना होगा और उसे भूमिगत करना होगा। हजारों वर्शों से चले आ रहे सवर्ण हिंदुओं के जुल्म और अत्याचार से मुक्ति के लिए वे सीध लड़ना चाहते थे ताकि समता पर आधारित समाज की संरचना हो सके। उनके ऊपर ज्योतिबा फूले, गोविन्द रानाडे, नारायण गुरू, पेरियार जैसे विचारकों की सामाजिक चेतना की चमक थी।

यह सच है कि गाँधी ने सवर्ण होकर भी ब्राह्मणवाद का समर्थन नहीं किया। 1920 में उन्होंने 'यंग इंडिया' ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर', नामक एक निबंध लिखा। इस लेख में उन्होंने यह सिद्ध किया कि फिरंगी सरकार आपस में फूट डालकर स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने के लिए' ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर प्रश्न को रंग देना चाहते हैं। गाँधी का अपना तर्क था- मुझे साफ नजर आ रहा है कि सरकार अपनी मुस्तकबिल नीति के मुताबिक ब्राह्मणेतरों को काँग्रेस में रखकर उनका इस्तेमाल ब्राह्मणों के विरूद्ध करेगी और दोनों में झगड़ा पैदा करके और ब्राह्मणेतरों को राजनीतिक प्रलोभन देकर ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन यथासंभव बंद नहीं होने देगी। (यंग इंडिया, 17.11.1920) डॉ॰ कृष्णदत्त पालीवाल का तर्क कि गाँधी जी की यह भविष्य वाणी सत्य सिद्ध हुई और तमाम सिरफिरों ने 'ब्राह्मणवाद' और 'ब्राह्मणेतर की' लड़ाई करवाकर अपनी स्वार्थपूर्ति की राजनीतिक रोटियाँ सेंकी। अम्बेदकर तो गाँधी जी के इन विचारों से भड़क गये और उन्हें विश्वास हो गया कि गाँधी जी का दलित-प्रेम एक ढोंग है। डॉ॰ पालीवाल की आगे की टिप्पणी कि दुर्भाग्य की बात यह है कि गाँधी जी अम्बेदकर को और अम्बेदकर गाँधी जी को ठीक-ठीक न समझ सके। फलत: दोनों के बीच भ्रमों का जाल खड़ा हो गया और वे इस जाल को तोड़कर मिल न सके।[3]

जबकि सच्चाई यह है कि आजादी के 70-75 वर्षो के इतिहास में छद्म वामपंथ और दलित का खेल जारी है। कभी दलित नेताओं को भीख देकर तो कभी सत्ता के गलियारे में कृपांक देकर एक बड़े समुदाय को गुमराह गाँधी से लेकर आज तक के तथाकथित लेखकों और चिंतकों ने की है। गाँधी की सीमा यह थी कि वह वर्ण-व्यवस्था में अपने स्थान से नीचे नहीं उतर सकते थे और अम्बेदकर अपनी ज्ञान की गरिमा में भीख का कटोरा आगे नहीं बढ़ा सकते थे।

गाँधी और अम्बेदकर की लड़ाई के बीच कम्पनी की सरकार ने अगस्त 1932 में अल्पसंख्यक समुदाय के लिए विधानमंडल में सीटों को सुरक्षित किया। इसके लिए चुनाव पृथक् मंडलों से स्वीकार किया गया। सिक्ख, ईसाई और मुसलमान पहले से ही अल्पसंख्यक मान लिये गये थे। इस कानून ने दलित वर्गया उस समय की अनुसूचित जातियों को भी स्थान दिया। यह एक सच्चाई थी कि दलित हिंदू नहीं हैं। इस तथ्य को तार्किक ढंग से स्थापित किया गया। काँग्रेस शुरू से जानती थी कि पृथक् निर्वाचन मंडलों से मुसलमान और दलित वर्ग में एक नयी राजनीति उठ खड़ी होगी और इससे साम्प्रदायिकता को अनुकूल हवा मिल जाएगी। यही कारण था कि सभी राष्ट्रवादी नेताओं ने दलित वर्ग को शोश हिंदू समाज से अलग करने की नीति का विरोध किया। अरवदा जेल में कैद गाँधी ने इसका कड़ा विरोध किया। स्थिति की गंभीरता को समझते हुए गाँधी 20 सितम्बर,1932 को आमरण अनशन पर बैठ गये और अपने प्रेस बयान में कहा, "मुझे अपनी जिंदगी की परवाह नहीं। इस पवित्र उदेश्य के लिए यदि ऐसी सैंकड़ों जिंदगियाँ कुर्बान हो जाएँ तो भी उस पाप का प्रायश्चित नहीं हो सकता। जो हिंदुओं ने अपने ही गरीब और असहाय भाइयों पर ढाये हैं।" इस राजनीतिक नाटक में गाँधी जी की जीत हुई। यह वही राजनीतिक मोड़ है जहाँ से हिंदुत्ववादी भारत भूमि पर कायम रहेगी और तथाकथित दलित-पिछड़े इस सत्ता की गुलामी को अलंकार की तरह अपने ऊपर ओढ़कर अपने में मस्त रहेंगे और हैं। संतों की मध्यकालीन चेतना भक्ति आंदोलन को इस नवीन संत ने ऐसे कुंद कर दिया मानों जो कुछ भी हुआ वह एक नया नवजागरण का श्रीगणेष था। गाँधी निरंतर भारतीय मनीशा को चेतना के नाम पर जड़ता को परोसते रहे और यह जड़ता ही आज भारतीय फिजा में गौरव बनकर लहरा रही है। गाँधी को इसका अवार्ड भी मिला। आज चवन्नी से लेकर हजार के नोटों पर लक्ष्मी के नाम पर हो, अथवा उससे कुछ विशिष्ट धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हम गाँधी की ही पूजा करते हैं और अम्बेदकर-अम्बेदकर एक मूल्य का नाम है जो महात्मा बुद्ध से चलकर नये युग में प्रवेश करता है।

गाँधी के प्रति मोह और मोहभंग या कहें प्रतिकार का भाव का इतिहास भी एक दिलचस्प इतिहास रहा है। यह हैरानी की बात है कि पिछले अरसे से गाँधी के प्रति एक नया मोह उन वामपंथियों में भी पैदा हुआ है, जो कभी उन्हें कुलीन समाज का पोशक मानते रहे हैं। गाँधी के प्रति आश्चर्यजनक सम्मान इधर भारतीय जनता पार्टी में भी पैदा हुआ है। इस रहस्य की कुँजी सन् 1932 के भारतीय इतिहास और गाँधी के इन विचारों में है कि 'वर्ण-व्यवस्था ईष्वरीय है,' 'वर्ण व्यवस्था बनाए रखना जरूरी है,' 'शूद्र को पढ़-लिखकर विद्वान बनने के बजाय अपने पेशे को ईष्वरीय मान कर करना चाहिए' और 'जाति टूटने से समाज टूटता है'

और इसलिए 'सन् 1932 में गाँधी ने इस बात को लेकर अनशन किया था कि हिंदुओं से दलितों को अलग सम्प्रदाय क्यों माना जा रहा है? उस समय अगर दवाब डालकर गाँधी ने पूना समझौते द्वारा दलितों को हिंदुओ से अलग सम्प्रदाय बनने से रोक न दिया होता, तो आज देश में हिंदु अल्पसंख्यक होते और न मस्जिद गिरा पाते, न ईसाइयों को जिंदा जला पाते। वह काम गोलवरकर के भी बूते का नहीं था। वर्ण-व्यवस्था भी गाँधी के इसी समझौते के कारण आज समूचे देश की व्यवस्था पर एकच्छत्र राज कर रही है।[4]" इसके बदले डॉ॰ राम विलास शार्मा उनमें 'उत्कट सौंदर्य-बोध' के दर्शन न करें तो क्या करें और ध्रुव शुक्ल 'बापू का जीवन मनुष्य देह में कविता का पुनर्वास का पुरुषार्थ' जैसा नायाब विशेषण नहीं गढ़े नहीं तो...।

और जिस प्रेमचंद को 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से सदारत करने का मौका मिला, उस प्रेमचंद को बाहोश तो होना ही चाहिए। अब प्रश्न उठता है आस्था के नाम पर रामविलास शार्मा वेदों से लेकर रामचरितमानस की क्यों दौर लगायी? और वह भी 'परम्परा का मूल्यांकन' के नाम पर! क्यों प्रेमचंद ने गाँधी को तो उछाला मगर अपनी पत्रिका में अम्बेदकर के नाम पर एक भी लेख या निबंध या कहानियाँ न लिखीं। फकत हंस के मुख पृष्ठ पर अंबेदकर का एक चित्र छापकर इति श्री मान ली। "गाँधी और अम्बेदकर के पूना-पैक्ट में पृथक् निर्वाचन की समस्याओं में प्रेमचंद ने गाँधी का साथ यह कहकर दिया कि धन्य हैं महात्मा जिन्होंने देश को टूटने से बचा लिया।[5]"

इस तरह के अनेक राजनीतिक प्रश्न हैं, जिनके अन्दरूनी पेंचों को समझने की आवश्यकता है। इस देश मेंएकमात्र समस्या हिंदुत्व ही है, जिसने भारत के किसान, मजदूर, आदिवासी, हरिजन और गिरिजनों के लिए समस्याएँ पैदा खड़ी कर रखी है। अम्बेदकर देश की मूल और जमीनी समस्याओं से बराबर टकराते रहे हैं।

गाँधी जी के जीवन और लेखन का संयोजन 48000 (अरूंधति राय के अनुसार) पृष्ठों में किया गया है। इनका प्रकाशन विभाग की ओर से अट्ठानवे जिल्दों में संगृहीत है। गाँधी के जीवन की एक-एक घटना, एक-एक वाक्य उसमें लिख दिया गया है अपनी परिणति तक जाने में इन संग्रहों की कोई इयत्ता नहीं। अरूंधति राय इस संग्रहों के बारे में लिखती है "समस्या यह है कि गाँधी ने 'सब कुछ' कहा और इस 'सब कुछ' का उल्टा भी बोल दिया। चुन-चुन कर अपनी मतलब की बातों को ढूँढनेवालों के लिए वे ऐसा हक्का-बक्का कर देनेवाले विविध विचार पेश करते हैं कि आप आश्चर्यचकित होकर दाँतो तले अँगुली दबा लेते हैं, दंग रह जाते हैं।"[6]

अपनी बातों को पुख्ता करने के लिए अरूंधति राय गाँधी के आश्चर्यजनक वक्तव्य पेश करती है-

आजादी नीचे से शुरू होती है। इस प्रकार प्रत्येक गाँव में एक-एक ऐसा गणतंत्र या पंचायत होगा जिसके पास संपूर्ण शक्तियाँ होंगी। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक गाँव को आत्म-निर्भर होना होगा और अपने मामलों का प्रबंधन स्वयं करने योग्य होना पड़ेगा, इतना ही नहीं वह पूरे विश्व से अपनी सुरक्षा कर सके। असंख्य ग्रामों से बने इस ढाँचे में हमेशा फैलते, कभी न ऊपर उठते चक्र होंगे। जीवन, एक पिरामिड नहीं होगा, जिसमें शीर्ष नीचे वालों के कंधे पर खड़ा हो। बल्कि यह एक महासागरीय चक्र होगा जिसके केंद्र में कभी भी अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर व्यक्ति होगा। इसलिए सबसे बाहरी परिधि के पास आंतरिक चक्र को कुचलने की शक्ति नहीं होगी, बल्कि वह सभी अंदरूनी चक्रों को ताकत देगी और खुद की शक्ति इनसे प्राप्त होगी।"

गाँधी के 1946 में लिखे एक सादगी भरे सुषांत स्वर्ग का रूपक कितना मोहक और युटेपियायी है! किंतु इसके पहले अंबेदकर बहुत पढ़ते थे। पाठ की प्रक्रिया और समझ उनकी अपनी थी। इस अपनी समझको डॉ॰ अम्बेदकर एक सुनियोजित ढंग से लेखकीय प्रारूप तैयार कर कागज के पन्ने पर रखते थे। इस प्रकार अम्बेदकर ने बहुत सारा लिखा। किंतु उनके लेखन को हिन्दी पट्टी में सतही या कबार कहकर हवा फैला दी गयी। और एक बहुजन समाज का कम-से-कम सामान्य पढ़ा-लिखा तबका उनके क्रांतिकारी किंतु बहुमूल्य लेखकीय अवदान से वंचित रह गया। सात-आठ के दशक में दलित आंदोलन की हवा चलने लगी और प्रकाशन विभाग को तब होष आया। परिणामस्वरूप उनके द्वारा लिखी पुस्तकों को प्रकाश में आने का मौका मिला। किंतु इन पुस्तकों के समाप्त होने के बाद या आउट ऑफ प्रिंट के बाद शायद इनका प्रकाशन विभाग को लाजिमी नहीं था। आप गाँधी, नेहरू, विवेकानंद द्वारा लिखित पुस्तकें पुस्तकालयों और किताबों की दुकानों में चमकती नजर आयेंगी, किंतु अम्बेदकर की किताबें ढूँढ़ने पर भी नजर नहीं आतीं।

उनके अनेक ग्रंथों में 'जाने का विनाष' सबसे वैज्ञानिक और मौलिक पाठ है। उनके तर्कों के निषाने पर कट्टरवादी या चरमपंथी हिंदू नहीं बल्कि वो जो अपने को समन्वयवादी या नरमपंथी समझते हैं। कुछ वैसे वामपंथी भी अंबेदकर के निषाने पर हैं जिन्हें वे वामपंथी हिंदू' कहते हैं। भारत में उदारतावाद एक ऐसा खेल है, जिस खेल में विजय हर बार जड़वादियों की सदा से होती रही है।

'अंबेदकर, एक अछूत, उस जाति-विरोधी परंपरा के उत्तराधिकारी थे, जो ईसा से 200-100 वर्ष के भी पूर्व से शुरू होती है। माना जाता है कि जाति-चलन की उत्पत्ति ऋग्वेद (1200-900 वर्ष ईसा पूर्व) के पुरुष-सूक्त से हुई (एक था डॉक्टर एक था संत-पृ॰ 33) जाति को पहली बार चुनौति का सामना तब करना पड़ा था, जब बौद्धों ने संध की रचना की, जिसमें सभी का प्रवेश स्वीकार्य था- चाहे वह जिस जाति का हो। बारहवीं सदी में दक्षिण भारत में बसवन्ना के नेतृत्व में वीरषैवों ने चुनौती दी। चौदहवीं सदी के बाद से हिंदी-पट्टी में संतों का भक्ति आंदोलन मूलतः सामाजिक आंदोलन था। उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में महात्मा ज्योतिबा फूले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना कर पश्चिम भारत में इस परम्परा को आगे बढ़ाया। पंडिता रमाबाई भारत की पहली ब्राह्मण महिला थीं जिन्होंने ब्राह्मणवाद का परित्याग कर ईसाई धर्म को अपना लिया, वैसे बाद में उन्होंने ईसाईयत को भी चुनौती दी। स्वामी अछूतानंद ने आदि हिंदू आंदोलन का नेतृत्व किया और पहली दलित पत्रिका का सम्पादन किया। दक्षिण में अय्यनकाली और नारायण गुरू ने पुरानी सनातन व्यवस्था की चूल हिलाकर रख दी। जाति-विरोधी परंपरा में अंबेदकर के समकालीन रामासामी नायकर पहली बार संपूर्ण भारतीय जाति का उत्तरदान-रामायण और मानस को जमकर चुनौति दी। बंगाल के जोगिन्द्रनाथ मंडल, पंजाब में बाबू मंगू राम ने हिंदू धर्म को कसकर चुनौति दी। अंबेदकर इन्हीं लोंगों के अपने थे और इन्हीं से इनका सम्वाद बनता भी था।

गाँधी के लिए ये सभी आँख की किरकिरी थे। गाँधी भारत की शास्त्रीय परंपरा का विरोध किसी प्रकार से वर्दाषत नहीं कर सकते थे। अम्बेदकर गाँधी के साथ समस्त काँग्रेसी नेताओं की चालकियों से खूब अवगत थे। अम्बेदकर ने कहा, यह बेवकूफी होगी यदि ऐसा मान लिया जाये कि चूँकि काँग्रेस भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है, इसलिए वह भारत के लोगों की स्वतंत्रता के लिए भी लड़ रही है तथा छोटे-से-छोटे व्यक्ति की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रही है। काँग्रेस स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रही है यह सवाल इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना अहम सवाल यह है कि काँग्रेस किन लोगों की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रही है।[6]

कहते हैं जब अंबेदकर गाँधी से 1931 में पहली बार मिलेः तो उन्होंने उनसे प्रश्न किया वे काँग्रेस की इतनी आलोचना क्यों करते हैं - उस समय काँग्रेस की आलोचना का अर्थ होता था, भारतीय राष्ट्रीयता के प्रति या राष्ट्र-भक्ति पर प्रश्न -चिह्न। अंबेदकर जवाब था जो बाद में प्रसिद्ध हो गया-गाँधी जी, मेरी कोई अपनी मातृभूमि नहीं है, कोई भी अछूत जिसमें थोड़ी-सी भी चेतना हो, इस मातृभूमि पर गर्व नहीं करेगा।"

इससे अच्छी टिप्पणी और क्या हो सकती है कि 'इतिहास ने अंबेदकर के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया। इतिहास ने पहले अंबेदकर को काल-कोठरी में बंद कर दिया और फिर महिमामंडित कर दिया। इतिहास ने अंबेदकर को अछूत का नायक बना दिया, छोटे-बंद बस्तियों का राजा। इसने अंबेदकर के लेखों को दुनिया की नजरों से छुपा दिया। अंबेदकर की इन्कलाबी बौद्धिकता पर इतिहास ने डाका डाला और तेज धर जबान को भोथरी करने की कोशिश की।[7]

बावजूद अंबेदकर को माननेवालों में अनेक ने उनकी देन को सृजनात्मक रूप दिया। उत्तर प्रदेश की मायावती उन्हीं लोगों में सबसे महत्त्वपूर्ण महिला मुख्यमंत्री बनीं जिन्होंने अंबेदकर की मूर्त्तियों का एक जिंदा इन्कलाबी लक्ष्य[8] सामने रखा। जिसने भारत के संपूर्ण आकाश को घूमाच्छादित कर रखा था। दलितों के द्वारा अपने हक के लिए पता नहीं कितना कुछ हाय-तौबा मचाया गया। अंबेदकर की प्रतिमा का प्रत्यारोपण सार्वजनिक स्थानों पर किया जाता है, जिसके चारों ओर लोग इकट्ठा होते हैं, उनके हाथ में एक किताब होती है। यह ध्यान देना दिलचस्प होगा कि उनके हाथों में जो किताब होती है- क्रांतिकारी क्रोध से ओत-प्रोत मुक्तिदायक। अपनी सजीव भूमिका के साथ- यह वही दस्तावेज है जो प्रत्येक भारतीय जीवन को शासित और नियंत्रण में रखती है।

अपने समय के इशत् पूर्व नवजागरण के पुराघाओं से अंबेदकर ने बहुत कुछ सीखा उनसे प्रेरणा ग्रहण की। कहते हैं कि अंबेदकर के परिवार लोग कबीर के पदों और उनकी साखियों से सुसंस्कार प्राप्त हुआ था। इसी तर्क ने आगे चलकर अंबेदकर चेतस बनाया। अम्बेदकर अपने एक निबंध 'रानाडे, गाँधी और जिन्ना' में रानाडे को उद्धृत करते हुए लिखा है-

आप आधे-अधूरे उदार नहीं हो सकते। आप राजनीति में उदार तथा धर्म में रूढ़िवादी नहीं हो सकते-दिल और दिमाग एक साथ रहने चाहिए। आप ये दोनों काम एक साथ नहीं कर सकते कि आप बुद्धि का परिश्कार कर लें, मन को पुष्ट कर ले, अपने राजनीतिक आधिकारों तथा विशेषधिकारों का क्षेत्र भी बढ़ा लें, और साथ-ही-साथ अपने दिलों के द्वारा बंद करके उसे संकीर्ण भी बना लें। यह एक निरर्थक स्वपन है कि हम लोगों से उस समय यह आशा करें कि वे अपने निजी अंधविश्वास तथा सामाजिक

दोशों के बंधन में बँधे रहें, जबकि वे अपने शासकों से अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। शीध्र ही इन व्यर्थ स्वपन-द्रश्यओं को अपने-अपने स्वपनों के धवस्त होने का पता चल जाऐगा।[9]"

कहने की आवश्यकता नहीं कि जब अंबेदकर अपने लेख में रान डे को कोट कर रहे थे और उद्धृत अंष के धवन्यार्थ की बात कर रहे थे, उस धवन्यार्थ में वह स्वयं नहीं थे, ऐसा कैसे कहा जा सकता है- शीध्र ही उन व्यर्थ स्वपन-द्रष्टाओं को अपने स्वपनों के धवस्त होने का पता चल जाऐगा। बाद में जिन-जिन सपनों की तामीर गाँधी के द्वारा बुनी गयी, अंबेदकर ने उसके एक-एक तार को चिन्दी-चिन्दी कर के अपने बहुजन भाइयों के सामने रख दी। आज भी कुछ जड़वादी अंबेदकर की तार्किकतापूर्ण चेतावनी से डरते हैं।

अंबेदकर का तर्क किसी दर्शनशास्त्र का तर्क नहीं था, बल्कि समय, समाज और समाज के अधिकार-बोध से उपजा हुआ उसके न्याय की मांग थी और न्याय मांगने से नहीं मिलता, स्वतंत्रता दी नहीं जाती, ली जाती है या फिर छिनी जाती है। कबीर को भी न्याय के लिए लड़ना पड़ा था, किसी संयत और शालीन भाषा में नहीं, अपितु उस भाषा में एक आक्रोष था, एक तेज था, किंतु मानवीय प्रेम और करूणा का संवेग था। अंबेदकर इस बात को उन्हीं की तरह भाषा में स्वीकार करते हैं कि "यदि व्यक्ति का प्रेम तथा धृणा प्रबल नहीं है तो वह यह आषा नहीं कर सकता कि वह अपने युग पर कोई प्रभाव छोड़ सकेगा, और ऐसी सहायता प्रदान कर सकेगा, जो महान सिद्धांतों तथा संधर्श की अपेक्षा धयेयों के लिए उचित हो। मैं अन्याय, अत्याचार, आडंबर तथा अनर्थ से धृणा करता हूँ और मेरी धृणा उन सब लोगों के प्रति है, जो इन्हें करते हैं। वे इनके दोशी हैं। मैं अपने आलोचकों को यह बताना चाहता हूँ कि मैं अपने धृणा भावों को वास्तविक बल व शक्ति मानता हूँ। वह केवल उसी प्रेम की अभिव्यक्ति है, जो मैं उन धयेयों और उद्देश्यों के लिए प्रकट करता हूँ, जिनके प्रति मेरा विश्वास है। उसके लिए मुझे किसी प्रकार की शार्म महसूस नहीं होती।[10]

गाँधी और अंबेदकर के विचारों की जमीन समानान्तर रही है। कहते हैं समानांतर रेखाएँ कभीदूसरे से दूर-दूर नहीं मिलतीं। किंतु मैथ की भाषा सामाजिक गणित की भाषा नहीं हो सकती। इसके लिए ज्ञान के न्यायोचित गणितीय भाषा की आवश्यकता हैं। अंबेदकर और गाँधी एक-दूसरे के समानान्तर प्रतिपक्ष थे। अंबेदकर वर्ण-व्यवस्था की वीभत्स अवधारणा के विरोधी थे जबकि गाँधी इसी वीभत्स जड़ता को समाज में स्थापित करना चाहते थे। गाँधी और अंबेदकर के प्रतिरोधी विचारों की जमीन उनके अलग-अलग सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिपक्ष रहे हैं। अंबेदकर भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की जड़ता पर कुठाराधत कर रहे थे, किंतु गाँधी इन्हीं जड़ मान्यताओं पर भारतीय लोकतंत्रीय आजादी की नींव रखना चाह रहे थे। भारत आज भी गाँधी के सपनों को भारत मूल अर्थो में जी रहा है। कहावत है, "जो शोश जगत के लिए अकाल होता है, वही ब्राह्मणों और बनियों के लिए सुकाल होता है।"

डॉ॰ अंबेदकर पक्का विश्वास के साथ इस बात को स्वीकार करते हैं कि हिंदू धर्म में दलितों को न्याय मिल पाना असंभव है। फिर "यह धर्म किसी को नहीं बचा सकता। इसमें जीवंतता शोश नहीं रही।"

बाबा साहेब गाँधी से पूछते हैं -'चातुर्वण्य से आपका क्या तात्पर्य है? कहाँ से शुरू होता है कहाँ समाप्त होता है? मैंने गाँधी से पूछा। गाँधी जी संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके।" आगे और कहा, " हमारे देश ने बार-बार स्वतंत्रता क्यों खोई, आये दिन हम विदेशी हुकूमत में क्यों जकड़े गये? क्योंकि यह देश कभी एक होकर शात्रु के समक्ष नहीं खड़ा हुआ। समाज का एक छोटा वर्ग ही सामने आया और जिस शात्रु ने पराजित किया वही विजेता बन गया। इसका प्रमुख कारण है हिंदुओं की विनाशकारी जातिप्रथा।[11]" सन्1936 में डॉ॰ अंबेदकर ने 'जाति प्रथा उन्मूलन' पर भाषण के उत्तर में गाँधी ने कहा, वर्ण-व्यवस्था हमें सिखाती है कि हम सब अपने बाप-दादों के पेषे को अपनाते हुए अपनी जीविका चलाएँ। यह हमारें अधिकारों का नहीं, हमारे कर्त्तव्यों का निर्धारण करती है।" इसका जवाब बिल्कुल सीध है, गाँधी जी को वणिक धर्म का ही पालन करना चाहिए था चाणक्य नीति का नहीं।

सच्ची बात तो यह कि गाँधी और अंबेदकर के विचारों का कोई हल निकलना चाहिए। गाँधी टेढ़ी लकीर खींचकर समानता की बात करते थे और अंबेदकर सीध-अभेद की बात करते थे। जाति, धर्म, समप्रदाय की दीवारें जब तक रहेंगी अंबेदकर जैसे समतावादी चिंतक पैदा होते रहेंगे। किसी कूटनीति से भारतीय समाज और संस्कृति का भला होना असंभव है। स्वाधीनता, समता और प्रेम की स्थापना के लिए हमें पुनर्पुनः सम्वाद स्थापित करने की आवश्यकता है। आज के राजनीतिज्ञों के बीच एक मानवीय मूल्य का कुहासा छाया हुआ है-उन्हें इन मूल्यों की तलाष के लिए अपने भीतर के मनुष्य से सम्वाद करना होगा, तभी हम उसे प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारी नवचेतना के लिए अभिप्रेत है।

संदर्भ

1. कृष्णदत्तपालीवाल,दलित साहित्य विमर्श, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110001, पृ॰-47
2. वही, पृ॰-48
3. वही, पृ॰-48
4. मुद्राराक्षस, आलोचना का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-110002, पृ॰ 303
5. कृष्णदत्त पालीवाल, दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ॰-18
6. अरूंधति राय, एक था डॉक्टर एक था संत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002 पृ॰-39
7. वही, पृ॰-39
8. उत्तर प्रदेश के संदर्भ में, अंबेदकर प्रतिमा में निहित आमूल परिवर्त्तनवाद के एक विशेषण के लिए निकोलस जाऊल (2006) देखें "दलित ग्रामीणों को, जिनके अधिकारों और मान-मर्यादा का नियमित रूप से उल्लंघन किया है, लाल टाई पहने हुए, हाथ में संविधान की पुस्तक लिये, एक दलित राजनीतिज्ञ की प्रतिमा की स्थापना करना बंधन मुक्त उद्धरित नागरिकता का गरिमा और गर्व के साथ सार्वजनिक एलान है। कानून लागू होने से उनके जीवन में कैसे सकारात्मक बदलाव आया है, यह उसका अहसास भी है।" 204 एक था डॉक्टर एक था संत के फुटनोट से उद्धृत।
9. अंबेदकर, रानाडे, गाँधी और जिन्ना, मूलनिवासी पब्लिकेशन ट्रस्ट सर्वे न॰-5, 4/311, केषव नगर, मढ़वा पुणे-36, पृ॰-31
10. वही, फ्लैप से
11. कृष्णदत्त पालीवाल, 'दलित साहित्य विमर्श', सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110001, पृ॰-55

महात्मा गांधी और आत्मनिर्भर भारत

प्रेम शंकर गोंड

सहायक प्राध्यापक, सच्चिदानन्द सिन्हा महाविद्यालय,
औरंगाबाद (बिहार)

सारांश

देश इस समय कोविड-19 की चुनौती का सामना कर रहा है। इस महामारी ने हमारे सामने भौतिक और मानसिक दोनों स्तरों पर अस्तित्व संबंधी विभिन्न प्रश्न खड़े कर दिए हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, हर मोर्चे पर मूल्यगत और सैद्धांतिक पुनर्विचार की जरूरत महसूस की जा रही है। यह परंपरा-सिद्ध धारणा रही है कि भारतीय ग्रामीण संरचना प्रत्येक दृष्टि से एक आत्मनिर्भर इकाई है। हालांकि सभ्यता के इतिहास को पीछे की ओर नहीं लौटाया जा सकता, लेकिन जीवन मूल्यों के स्तर पर बुनियादी परिवर्तन समय की मांग है।

गांधीजी ने अपनी 'हिंद स्वराज' नामक छोटी-सी पुस्तक में औपनिवेशिक आधुनिकता की आलोचना की थी। पश्चिमी सभ्यता को उन्होंने 'शैतानी' तक करार दे दिया था। सामाजिक संगठन, अर्थतंत्र एवं राज्यतंत्र के स्वरूप पर उन्होंने स्वराज्य, स्वदेशी और स्वशासन के सूत्र सुझाए थे।

Key Word: महात्मा गांधी, स्वराज, आत्मनिर्भरता, ग्रामोद्योग, स्वदेशी, रोजगार।

परिचय

महात्मा गांधी आधुनिक इतिहास में आत्मनिर्भरता के विचार के शुरुआती प्रस्तावकों में से एक थे, जिन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए विकास का सुस्पष्ट और वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया।स्वदेशी जिसे "महात्मा गांधी ने **स्वराज की आत्मा**" कहा है और जो सदैव भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का केंद्र बिंदु रहा है। एक ओर जहां उन्होंने स्थानीय क्षेत्र के प्रति झुकाव और जमीनी स्तर पर प्रतिभागिता, स्थानीय समुदाय की भूमिका और समुदाय के भीतर उत्पादन, सृजन और सभी की जरूरतें पूरी करने की उसकी क्षमता और चिरस्थायी जीवन-यापन के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए वहीँ दूसरी तरफ अपने रचनात्मक कार्यक्रम (1941) में प्रस्तुत किया, जहां उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर और प्रत्येक इकाई की स्वतंत्रता के साथ पूर्ण स्वराज हेतु देश को सशक्त किया।

आज जब इस महामारी के चलते भारत में अनेक राज्यों से मजदूर वापस गांव की ओर लौट रहे हैं, तब हमें गांधी के विचार फिर से प्रासंगिक नजर आते हैं जिसमें वे आत्मनिर्भर गांव की बात करते हुए कहते थे कि "हमारा गांव ऐसा हो जिसमें सभी लोग अपनी जरूरत की वस्तुएं स्वयं बनाते हों या उपजाते हों; जो वे न उपजा पाते हों उसकी पूर्ति वे पास के गांव से ही कर लेते हों।"

गांधी के आत्मनिर्भर गांव में कोई व्यक्ति खाली नहीं बैठता। इसके लिए वे खेती, खादी और ग्रामोद्योग को महत्वपूर्ण कारक मानते थे। उनका कहना था कि ग्रामोद्योग के पीछे मेरी कल्पना है कि हमें रोजमर्रा की आवश्यकताएं गांव की बनी चीजों से ही पूरी करनी चाहिए। ग्रामोद्योग में हथकरघा, मधुमक्खी पालन, तेलघानी उद्योग, गुण उद्योग, मिट्टी की बनी वस्तुओं को शामिल किया जाता है जिससे गांव के संसाधनों और जनशक्ति को उपयोग में लाया जा सके तथा लोगों को सशक्त बनाया जा सके।

इसलिए यदि देश में समता और शक्ति मूलक समाज की स्थापना करनी है तो सरकार को गांधीवादी विचारों को अपनाते हुए भारत जैसे देश में (जहां 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण है) स्थानीय रोजगार की व्यवस्था कायम करनी होगी। तभी जाकर एक सशक्त भारत का निर्माण संभव हो पाएगा।

आत्मनिर्भरता

गांधीजीवन के हर पड़ाव में आत्मनिर्भरता के महत्त्व को समझाते चले गए।चाहे अपना खाना खुद बनाना हो, अपने बाल स्वंय काटना हो या अपने कपड़े धेबी से न धुलवाकर खुद धेना हो। ये ऐसे उदाहरण है जो हमें उस समय अगर ज्यादा समझ में न आए हों तो आज मज़बूरी में समझ आ रहे हैं। आत्मनिर्भरता निजी स्तर पर हो या देश के स्तर पर, अगर सबसे बड़े सुधार की कहीं जरूरत है तो वह आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की है। देश में अनाज उत्पादन से लेकर अपने उत्पादों के लिए बाजार तैयार करने तक हर क्षेत्र में हमें आत्म निर्भरता चाहिए। देश के मौजूदा आर्थिक लक्षण बता रहे हैं कि स्थितिया इतनी जटिल हो गई हैं कि गांधी को एक बार फिर पलट कर देखने की मज़बूरी आन पड़ी है।महामारी ने हमें बताया कि निर्यात के मुकाबले आयात ज्यादा होने से होता क्या है। आजादी के बाद हमें यह पहली बार महसूस हो रहा है कि आयात के सहारे काम चलाते रहने का अंजाम क्या होता है। आज हमें अगर सबसे ज्यादा आगाह किया जा रहा है तो वह हमारी अर्थव्यवस्था पर खतरे को लेकर आगाह किया जा रहा है।

गांधीजी आत्मनिर्भरता के सिद्धांत के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने इसके लिए हमेशा "स्वदेशी" अपनाने की बात की। वे आत्मनिर्भर और समरसतापूर्ण "आदर्श गांवों" के निर्माण की इच्छा रखते थे। वे विश्वास करते थे कि भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। उनके लिए, खादी सिर्फ एक राजनीतिक प्रतीक या राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक नहीं था बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने का भी एक साधन भी था।

आज हमें ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में पलायन की दु:खद प्रवृत्ति को देखते हैं। वर्तमान में हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था वहां के लोगों को आजीविका के लिए पर्याप्त अवसर देने में किल रही है। लेकिन ऐसा पहले नहीं था, कभी भारतीय गांव आत्मनिर्भर हुआ करते थे **चार्ल्समेटकार्फ** ने भारतीय गांव के बारे में लिखते हुए कहा है की-"भारत के ग्राम समुदाय एक प्रकार के छोटे-छोटे गणराज्य हैं, जो अपने लिए आवश्यक सभी सामग्री की व्यवस्था कर लेते हैं तथा किसी प्रकार के बाहरी सम्पर्क से मुक्त हैं. लगता है कि इनके अधिकारों और प्रबन्धें पर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।" चार्ल्स मेटकफ़् के उपरोक्त कथन तत्कालीन भारत के आत्मनिर्भर गाँव की हकीकत बयान करते हैं।

गाँधी जी ने कृषि के माध्यम से ग्रामीण जीवन को खुशहाल और अपने आप में एक पूर्ण इकाई बनाने पर जोर देते थे। वे लघु और कुटीर उद्योगों के पक्षधर थे। उनका का कहना था कि, "सामूहिक उत्पादन में लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता।" आज जिस गति से उपभोक्तावाद और संग्रह की प्रवृत्ति और अमेरिका तथा यूरोप के विकसित देशों के साथ-साथ संपूर्ण विश्व में आर्थिक मंदी तथा बेरोजगारी बढ़ रही है, उसे देखते हुए गाँधी जी की चेतावनी ठीक लगती है। यह सही है कि आज के युग में औद्योगीकरण के बिना विकास तथा प्रगति कर पाना कठिन हैं, किन्तु हमने गाँधी जी के सिद्धांतों पर चलकर हम छोटे, कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया होता, तो बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, शोषण और उपभोक्तावाद जैसी समस्याएं इतना विकराल रूप न लें पाती।

गाँधीवादी सिद्धांत (आत्मनिर्भरता में सहायक)

स्वराज (हिन्द स्वराज): महात्मा गांधी के अर्थव्यवस्था और राजनीति से संबंधित विचार उनके जीवन दर्शन में प्रबलता से परिलक्षित होते हैं। हिंद स्वराज उनकी शुरुआती पुस्तक है, जो जीवन के बुनियादी पहलुओं में ग्रामीण समुदायों की आत्मनिर्भरता के बारे में उनकी परिकल्पना का वर्णन करती है। उनके अनुसार, **"कोई व्यक्ति, कोई गांव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्र हो सकता है।"**

यहाँ उनकी आत्मनिर्भरता आत्मनियंत्रण और नैतिक विकास से संबंधित है, जो मस्तिष्क शरीर और आत्मा के विकास के माध्यम से संभव है और सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह या गैर-अधिकार की भावना के आचरण में परिलक्षित होती है।

कोई व्यक्ति इनका आचरण करके आत्म बल प्राप्त कर सकता है यह व्यक्तियों को अपनी इच्छाओं, भावनात्मक अतिरेक और अधिकतम लाभ पाने की प्रवृत्तियों को सीमित करने की दिशा में समर्थ बनाती है, जिससे सतत विकास भी संभव होता है तथा किसी भी परिस्थिति में आत्मनिर्भरता प्रबल रहती है।

स्थानीय शासन

महात्मा गांधी की मान्यता थी कि भारतीय ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण ग्राम पंचायतो की पुनर्व्यव्यवस्था से ही संभव है। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबन्ध, शांति और सुरक्षा की एकमात्र संस्था रही है।

"वास्तव लोकशाही केंद्र में बैठे हुए बीस व्यक्ति नही चला सकते। वो तो नीचे हर गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए ताकि सत्ता के केंद्र बिंदु जो अभी दिल्ली, कलकत्ता या बंबई जैसे बडे शहरों में है मैं उस भारत के सात लाख गांव में बांटना चाहूंगा। लोकतंत्र का सार वास्तव में विभिन्न वर्गो के लोगों के समस्त शारीरिक आर्थिक और आध्यात्मिक संसाधनों को सर्व कल्याण के लिए जुटाने की कला और विज्ञान है।"

महात्मा गांधी के ये वाक्य या यूं कहें ये स्वप्न भारतीय लोकतंत्र के लिए आदर्श है, जिसे पाने का प्रयास स्वतंत्रता के बाद से ही जारी है और सच कहा जाये तो अभी भी उसे पूरा किया जाना बाकी है। सही मायने में लोकतंत्र के वास्तविक अर्थ भी यही है कि देश में लिये गये हर निर्णय में, जिसका सरोकार आम जनता से है, जन-जन की सहभागिता हो।

हिन्द स्वराज पुस्तक का दूसरा आयाम स्थानीय शासन और आर्थिक विकास के पहलुओं सहित आत्मनिर्भरता से संबंधित है। वह सहभागितापूर्ण शासन और वरीयताक्रम में ऊपरी एजेंसियों के साथ उसके उत्तरोत्तर मुजफ्फरपुर में विश्वास रखते थे, जिससे दूरस्थ शासकीय निकाय के दूरदराज के नेटवर्क्स के स्थान पर एक निकटतम नेटवर्क की स्थापना की जा सके। उनका मानना था कि कोई देश केवल आत्मनिर्भर होकर ही स्वतंत्र हो सकता है और इसकी शुरुआत गांव के स्तर से स्थानीय स्तर पर उत्पादन और साथ ही साथ खपत करने से होती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा स्वदेशी

उन्होंने गांवों की आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से गांवों में नई जान डालने की जरूरत पर बल दिया। इस विचार पर बल देते हुए उन्होंने लिखा, "भारतीय गांव, भारतीय कस्बों और शहरों की जरूरत की सभी चीजों का उत्पादन और आपूर्ति करते थे। भारत उस समय दरिद्र हो गया, जब हमारे शहर विदेशी बाजार बन गए तथा विदेशी से आई सस्ती और घटिया वस्तुओं को भरकर गांवों को खोखला करने लगे।" उनके विचार उनकी स्वदेशी की अवधारणा में भी परिलक्षित होते हैं।

गाँधी का स्वदेशी अंतर्मुखी नहीं था, इसका मुख्य उद्देश्य विदेशी आयात को बाहर रखने से कहीं अधिक आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता को बढ़ावा देना था। "जहाँ कपास उगाने से लेकर सूत कातने तक के सभी कार्य एक ही गाँव या क़स्बे में किये जाते हों, वही सच्चा स्वदेशी है।" ये विचार उनके उस विचार से जुड़ा था जहाँ उनका मानना था कि गावों को गणतंत्र बनाने और उनके लोकतांत्रिक शासन के लिए उनका आत्मनिर्भर होना आवश्यक है, ताकि गाँव के लोग अपने ज़रूरत की समस्त चीज़ें गाँव में पैदा कर सकें। "ग्राम्य स्वराज्य से मेरा तात्पर्य एक ऐसे गाँव से है जो पूर्ण गणतंत्र हो और अपनी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसी से स्वतंत्र है। इसलिए सभी गाँवों की पहली चिंता अपने खाने के लिए फ़सलों और कपड़े के लिए कपास का उत्पादन होना चाहिए। पशुओं के लिए चारागाह और वयस्कों और बच्चों के लिए खेल का मैदान छोड़ने के बाद यदि अतिरिक्त ज़मीन बचती है तो गाँजा, तम्बाकू, अफ़ीम को छोड़कर अन्य व्यापारिक फ़सलों के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है।"

अतः उन्होंने ख्रषि सहित आजीविकाओं के लिए शिल्पों के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रस्ताव पेश किया। बुनाई और कताई पर व्यापक बल देते हुए उन्होंने ग्रामीणों के परम्परागत व्यवसाय रहे अन्य सभी प्रकार के शिल्पों पर जोर दिया और इस प्रकार उन्होंने शिल्पकार अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। इस संदर्भ में उन्होंने आधुनिक मशीनी सभ्यता के प्रति अपनी अरुचि भी व्यक्त की और उनका विश्वास था कि खपत केवल उन्हीं वस्तुओं तक सीमित होनी चाहिए, जिनका निर्माण मशीनों के बगैर किया जा सकता हो।

उनका विश्वास था श्रम बचाने के लिए मशीने रखने का विचार परोपकार की भावना नहीं, बल्कि लालच की भावना द्वारा निर्देशित होता है, जिसका उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना है। वह उद्योगों के खिलाफ नहीं थे, बल्कि औद्योगीकरण के खिलाफ थे, जिसकी परिणति धन इकट्ठा करने में होती है, जहां प्रेरक बल श्रम बचाना नहीं बल्कि लालच होता है।

गांधी स्वयं कहते थे कि मशीनों का अपना स्थान है। वे उन्हीं मशीनों का विरोध करते थे जो मानवीय श्रम को प्रतिस्थापित करती हैं। उन्होंने Young India में विस्तारपूर्वक इसकी व्याख्या की है, 'kMachinery has its place; it has came to stay. But

it must not be allowed to displace the necessary human labour.A n improved plough is a god thing. But if by some chance, one man could plough up by some mechanical invention of his the whole of the land on India and control all the agricultural produce and if the millions has no other occupation, they would starne, and being idle, they would become dances, as many have already become..... I would welcome every improvement in the cottage machine, but I know that it is criminal to displace the hand-labour by the introduction of power-driven spindles unless one is at the sometime ready to give millions of farmers some other occupation in their home."

गांधी जी सभी मशीनों के खिलाफ नहीं थे। वे केवल उस अंधधुंध मशीनीकरण का विरोध करते थे, जिसमें करोड़ों लोगों को बेरोजगार करने की संभावना है। उनसे किसी ने पूछा कि क्या आप सभी तरह की मशीनों के विरूद्ध हैं। उनका जवाब था, 'kMy answer is emphatically, 'No'. But, I am against its indiscriminatemultiplication. I am refuse to be dazzled by the seeming triumph of machinery. I am uncompromisingly against all destructive machinery. But simple tools and instrument and such machinery as save individual labour and lightens the burden of millions of cottages, I should welcome."

आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था

गांधी यह मानते थे कि आर्थिक व्यवस्था का व्यक्ति और समाज पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है और उससे उत्पन्न हुई आर्थिक और सामाजिक मान्यताएँ राजनीतिक व्यवस्था को जन्म देती हैं। उत्पादन की केंद्रित प्रणाली से केंद्रीभूत पूंजी उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप समाज के कुछ ही लोगों के हाथों में आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था केंद्रित हो जाती है। ऐसे में गांधी के समाज की रचना विकेंद्रीकरण पर आधारित मानी जा सकती है। गांधी के आर्थिक-सामाजिक दर्शन में विक्रेंद्रित उत्पादन प्रणाली, उत्पादन के साधनों का विकेंद्रित होना और पूंजी विकेंद्रित होने की बात कही गई है, ताकि समाज जीवन के लिये आवश्यक पदार्थों की उपलब्धि में स्वावलंबी हो और उसे किसी का मुखापेक्षी न बनना पड़े।

रचनात्मक कार्यक्रम

गाँधीजी कहते थे **"मेरी वास्तविक राजनीति ही रचनात्मक कार्य है"** के कथन के दौरान राष्ट्रपिता ने समाज के समग्र विकास की नींव को मजबूत बनाने के लिए नागरिकों के योगदान की महत्ता को ध्यान में रखा। आत्मनिर्भरता व एकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ "महात्मा" ने 18 ऐसे रचनात्मक कार्यों का उल्लेख किया है जो मुख्य रूप से उनके सिद्धांतों को व्यवहारिक बनाते हैं। जिसमें साम्प्रदायिक एकता, अस्पृष्यता निवारण, नषाबन्दी, खादी एवं अन्य ग्रामोद्योग, साफाई अभियान, बुनियादी तालीम, प्रौढ़ शिक्षा, महिलाओं का उत्थान, स्वास्थ्य एवं साफाई की शिक्षा, आर्थिक समानता प्रमुख है।उन्होंने रचनात्ममक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसा के साधनों के जरिए, नस्ल, रंग या पंथ का भेद किये बिना प्रत्येक इकाई की स्वतंत्रता ही पूर्ण स्वतंत्रता है।

आधुनिक युग में गाँधीवादी आत्मनिर्भरता की प्रासंगिकता

गाँधी जी का चिंतन भविष्य वादी था और उनके विचारों में आत्मनिर्भर गांवों के बारे में कुछ विचारणीय और अत्यंत व्यावहारिक प्रस्ताव समाहित थे, जिनकी परिणति निम्नलिखित में होती है:

गांव ऐसी मशीनों का उपयोग करते हुए उत्पादन की छोटी इकाइयां बन जाएंगे, जहां श्रमिकों का स्थान नहीं लिया जाएगा, बल्कि श्रम में सुगमता प्रदान की जाएगी। कारीगरों की अर्थव्यवस्था और दम तोड़ते परम्परागत हस्तशिल्प की रक्षा होगी, जिसमें विश्व बाजार का सृजन करने का सामर्थ्य मौजूद है। यदि इस विचार का बेहतर ढंग से पालन किया जाता ऐसे में प्रवासी मजदूरों को वो संकट नहीं उठाने पड़ते जो उन्होंने कोरोना काल में उठाये हैं।

आजीविका का सृजन करने के लिए ख्रषि और संबंधित क्रियाकलापों (कृषि आधारित और अन्य गैर-कृषि गतिविधिया) में नई जान डाली जाएगी। ऐसे आर्थिक क्रियाकलापों का सृजन, जो भूमि पर निर्भर न हों, लेकिन फिर भी आजीविका उपलब्ध कराएंगे।

कृषि में मौसम के मुताबिक होने वाली बेरोजगारी के कारण गांवों से होने वाले पलायन पर रोक लगेगी। बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए संसाधनों के अतिशय इस्तेमाल के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले पारिस्थितिकीय प्रभावों और परिणामस्वरूप होने वाले प्रदूषण में कमी लाई जाएगी। संसाधनों के संदर्भ में स्थानीय विशिष्ट वस्तुओं और परम्परागत ज्ञान का उपयोग होगा।

नवीकरणीय स्रोतों के माध्यम से बिजली में और अपने जलस्रोतों के माध्यम से पानी में आत्मनिर्भरता लानी होंगी, इसलिए गांवों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सेवाएं लेनी होंगी। गांवों और शहरों के बीच में विकास संबंधी भेद और विषमताओं में कमी आएगी।यह गांधीवादी अवधारणा देश में सतत विकास की भावना को बढ़ाती है।

कहीं न कहीं रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से भेदभाव समाप्त करने की उनकी अवधारणा देश में नस्लवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद क्षेत्रवाद जैसी समस्याओं को निस्तारित करती है।

निष्कर्ष

आजादी के 70 वर्षो के बाद भी गांव और किसान दोनों उपेक्षित किए गए। जिनको गांधी देश की आवाज बनाना चाहते थे, उनकी आवाजें ऊंची मीनारों और फैक्ट्रीयों के शोर में कहीं गुम हो गई।जब हम समावेशी विकास की बात करते हैं तो उसमें हर नागरिक के उत्थान के लिए उसे मदद मुहैया कराने की बात की जाती है। इस बात का महत्वपूर्ण बिंदु ये होना चाहिए की किसी भी व्यक्ति की ऐसी मदद की जाए जिससे वो आगे खुद अपनी मदद करने के लिए सक्षम हो जाए। पिछले दस साल से अकुशल देशवासियों को कुशल बनाने की जो कौशल विकास मुहिम चल रही है वह चलते चलते इस मुकाम पर आ गई है कि देश में कुशल और प्रौद्योगिकी के स्नातकों की फौज खड़ी हो गई है और आज बेरोज़गारी की पहाड़ जैसी समस्या से हम रूबरू हैं। यानी आज हमें गांधीवाद के उस अध्याय को ढूंढने की जरूरत पड़ रही है जो समान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था, करुणा, प्रेम, नैतिकता, ग्रामोद्योगपर आधारित समावेशी विकास को सुनिश्चित करता हो। यह सही है कि आज के युग में औद्योगीकरण के बिना विकास तथा प्रगति कर पाना कठिन हैं, किन्तु हम गाँधी जी के सिद्धांतों पर चलकर तथा छोटे, कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास पर ध्यानदेते हुए आत्मनिर्भर भारत के स्वप्न को साकार कर सकते है। क्योंकि आधुनिक अर्थशास्त्री भी अब इस बात पर जोर देने लगे हैं कि यदि हमें विशाल पैमाने पर तीव्र गति से आर्थिक विकास साधना है तो 'वस्तुओं की गुणवत्ता' बढ़ाने के साथ 'मनुष्यता की गुणवत्ता' भी बढ़ानी चाहिए।उपराष्ट्रपति **श्री एम. वेंकैया नायडू** ने भी कहा कि अब यह समय है कि हम गाँधी जी की इच्छाओं का सम्मान करें और अपने गांवों की ओर वापस लौटें।

संदर्भ ग्रंथ

* गाँधी, महात्मा, "हिन्द स्वराज" राजपाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
* गाँधी, महात्मा, "मेरे सपनों का भारत" राजपाल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
* गाँधी, महात्मा, "ग्राम स्वराज्य" प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
* कुमारप्पा, डॉ. जे.सी., अनुवादक सुरेशराम, "गाँधी अर्थ-विचार" सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
* यंग इंडिया, 5.11.25
* नायडू, एम. वेंकैया, "आत्मनिर्भरता का भारतीय सिद्धांत वैश्विक कल्याण में महत्वपूर्ण साझेदारी से जुड़ा है" पायनियर दैनिक अखबार, 27 अगस्त 2020।
* Bhuimali, Dr. Anil, "Relevance of M. K. Gandhi's ideals of self-sufficient village economy in the 21st century"https://www.mkgandhi.org/articles/bhuimali.htm
* https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1553441
* Joshi, Divya, "Gandhiji on villages" Gandhi book centre,Mumbai.
* Weber,Thomas, "The Mahatma, his Philosophy and his Legacy"Orient BlackSwanpublishers.

गाँधी सागर बाँध का पर्यावरण पर प्रभाव (एक भौगोलिक विश्लेषण)

राकेश राजोरा

शोधार्थी, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

डॉ० एम०जेड०ए० खाँन

सह-आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

प्रस्तावना

जीवनदायिनी चर्मण्यवती नदी अर्थात् चम्बल नदी एवं इस पर बने चारों बाँध चम्बल प्रवाह क्षेत्र के आर्थिक विकास की धूरी है। भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही उपलब्ध जल संसाधनों का जनहित में अधिक से अधिक लाभ देने की दिशा में बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आरम्भ हुआ था। तदनुसार चम्बल घाटी विकास परियोजना का सूत्रपात सन् 1953 में किया गया। चम्बल घाटी विकास परियोजना दो राज्यों राजस्थान एवं मध्यप्रदेश की सम्मिलित परियोजना है। इस परियोजना के अन्तर्गत चम्बल नदी पर गाँधी सागर बाँध, राणा प्रताप सागर बाँध, जवाहर सागर बाँध एवं कोटा बैराज का निर्माण किया गया। चम्बल घाटी विकास परियोजना एक बहु-उद्देशीय परियोजना है, जिसके मुख्य उद्देश्य इन दोनों राज्यों में बाँधों एवं नहरों के निर्माण द्वारा राज्यों में सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाना, कृषि को स्थायी स्वरूप प्रदान करना, मिट्टी अपरदन की समस्या का समाधान करना, बाढ़ नियन्त्रण करना, जल विद्युत आपूर्ति में वृद्धि कर राज्यों की विद्युत संबंधी आवश्यकता को पूर्ण करना, मछली पालन को प्रोत्साहन देना, चम्बल कमाण्ड क्षेत्र में जनजातियों के जीवन स्तर में सुधार लाना, शुद्ध पेयजल की आपूर्ति करना, उद्योगों को जलापूर्ति करना, भूगर्भिक जल स्तर ऊँचा उठाना, वन एवं वन्य जीव संरक्षण करना आदि है।

गाँधी सागर बाँध बनाने के लिए उपयुक्त दशाएँ

1. चम्बल नदी के पानी का उपयोग करने के लिए राजस्थान के निर्माण के पूर्व इन्दौर, मेवाड़ और कोटा राज्यों के भूतपूर्व नरेशों ने विशेषतः विद्युत उत्पादन तथा सिंचाई के लिए अलग-अलग योजनाएँ बनाई लेकिन राजनीतिक कारण, आर्थिक कठिनाईयों, वैज्ञानिक साधनों की कमी तथा यातायात के सीमित साधनों के परिणामस्वरूप इन योजनाओं को कार्यान्वित नहीं किया जा सका। समय के साथ ये समस्याऐं दूर की गई।
2. चम्बल नदी एक गहरी एवं संकरी घाटी में होकर बहती है। कई स्थानों पर तेज ढ़ाल के फलस्वरूप जलप्रपात मिलते है जिनसे जल विद्युत का उत्पादन सुविधापूर्वक किया जाना सम्भव है।
3. इस बेसिन में कच्चे माल की कमी नहीं है। उदाहरणार्थ चूने का पत्थर और वन इस क्षेत्र के प्रमुख साधन है। अतः कई प्रकार के उद्योग स्थापित किये जा सकते थे।
4. चम्बल अधिकतर जनजातियों के अधिवास क्षेत्रों से होकर गुजरती है। अतः इनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये यहाँ पर कृषि की सुविधाएँ प्रदान करनी थी और उसके लिए सिंचाई तथा सस्ती ऊर्जा भी अपरिहार्य थी।

5. मध्य प्रदेश के इस क्षेत्र में अकाल और बाढ़ों को कम करने के लिए तथा कृषि को स्थायी स्वरूप प्रदान करने के लिए यह बाँध बनाना आवश्यक था।

चम्बल नदी का प्राचीन नाम चर्मण्यवती है। इसको कामधेनु नदी भी कहा जाता है। चम्बल नदी की कुल लम्बाई 966 किलोमीटर है। चम्बल नदी मध्यप्रदेश में महु नामक स्थान (इंदौर के पास) के समीप जनापाव पहाड़ी (616 मीटर ऊँची) के विन्धयन कगारों के उत्तरी पार्श्व से निकलती है। यह लगभग 325 किलोमीटर की दूरी तक एक लम्बे, संकड़े और तीव्र गर्त से होकर बहती है। लगभग 966 किलोमीटर की समस्त दूरी तय करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश के मुरादगंज के समीप यमुना नदी में मिल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। पालिया से पिनाहट तक उत्तर-पूर्व से आगे यह राजस्थान और मध्यप्रदेश के बीच लगभग 241 किलोमीटर की सीमा निर्धारित करती है। उत्तर प्रदेश में यमुना नदी में गिरने से पूर्व मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के बीच सीमा बनाती है।

शोध पत्र का महत्व

जल ही जीवन है, परन्तु यही जीवनदायी जल जब नदियों में बिना उपयोग के व्यर्थ बहता हुआ समुद्र में मिल जाए तो उस सागरीय लवण युक्त जल का सदुपयोग नहीं हो पाता, न पीने में, न सिंचाई में, न ही उद्योगों में। अत: इस व्यर्थ बहते जल को समुद्र में मिलने से पूर्व ही बाँध बनाकर, रोक कर, नदी जल स्तर ऊपर उठाकर, सिंचाई, जल विद्युत उत्पादन, मत्स्य पालन, स्वच्छ एवं शुद्ध पेयजल आदि के रूप में सदुपयोग किया जाये तो आर्थिक-सामाजिक उन्नति होगी। इस प्रकार इन बाँधों के कुछ लाभ है तो इन्हीं बाँधों से कुछ हानियाँ भी होती है। हम इन हानियों को पूर्ण रूप से समाप्त तो नहीं कर सकते परन्तु इन हानियों के प्रभावों को काफी हद तक कम अवश्य कर सकते हैं ताकि लोगों को स्वस्थ एवं उन्नत जीवन दे सकें। इसी क्रम में "गाँधी सागर बाँध का पर्यावरण पर प्रभाव" विषय पर एक भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया।

बाँधों का कृषि, वनस्पति, मिट्टियों, मानव जीवन, पशु जीवन, परिवहन, व्यापार, उद्योग, पर्यटन आदि पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ता है। आज सुपर टेक्नोलॉजी के युग में बाँधों का उपयोग अपरिहार्य बना हुआ है। वर्तमान सन्दर्भ में बाँधों का पर्यावरण पर प्रभाव एक नवीन एवं ज्वलन्त विषय के रूप में उभर कर सामने आ रहा है क्योंकि जल जीवन का आधार है एवं इसके बिना जीवन संभव नहीं है।

बाँधों के पर्यावरण पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ते हैं। इस प्रकार बाँधों की स्थिति ने प्रगतिशील मनुष्य के समक्ष एक चुनौती खड़ी कर दी है। इसका प्रमुख कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या और उनकी आवश्यकताऐं हैं। बाँधों का समुचित एवं संरक्षित उपयोग एक ओर समृद्धि का मूल है तो वहीं दूसरी ओर इनका दुरुपयोग एवं कुप्रबन्धन घोर विनाश को सीध-सीध निमन्त्रण हैं।

शोध पत्र के उद्देश्य

शोध करने के उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जायेगा–

1. चम्बल नदी पर बने गाँधी सागर बाँध के विभिन्न उपयोग एवं लाभ।
2. गाँधी सागर बाँध क्षेत्र से संबंधित नगरों एवं गाँवों में क्या-क्या विकास हुए।
3. अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह जानना है कि चम्बल नदी पर गाँधी सागर बाँध के बनने के बाद पर्यावरण पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।
4. गाँधी सागर बाँध बनने से पहले एवं बाँध बनने के बाद की पारिस्थितिकी का तुलनात्मक अध्ययन करना।

विधितंत्र

अनुसंधान में एक निश्चित क्रमबद्ध सोपानों एवं उत्तम विधियों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों के संकलन में प्रतिदर्श, प्रश्न ावली, अनुसूची, अवलोकन, साक्षात्कार आदि विधियों का चयन किया गया। विभिन्न विभागों, समाचार पत्रों, शोध

पत्रों, जरनल्स, मैग्जिन्स आदि से द्वितीयक आँकड़ें प्राप्त किये। आँकड़ों का संग्रह चयनित परियोजना की रूपरेखा व उद्देश्यों के अनुसार किया गया है। आँकड़ों का वर्गीकरण, संश्लेषण, विश्लेषण, सारणीयन करके उन्हें उचित स्थानों पर प्रदर्शित किया गया है।

गाँधी सागर बाँध क्षेत्र का सर्वेक्षण निम्न बिन्दुओं पर आधारित है–

1. शोध अध्ययन हेतु गाँधी सागर बाँध का चयन किया गया है।
2. निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करने वाली प्रश्न ावली का प्रयोग कर गाँधी सागर बाँध क्षेत्र से विस्तृत जानकारी प्राप्त की गई है।
3. शोध को विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए गाँधी सागर बाँध क्षेत्र में अवलोकन एवं साक्षात्कार के आधार पर लोगों से जानकारीयाँ प्राप्त की गई एवं प्राप्त जानकारियों की सत्यता एवं शुद्धता की जाँच की गई।
4. गाँधी सागर बाँध क्षेत्र एवं अन्य संबंधित क्षेत्रों के छायाचित्र लेकर शोध को रोचक एवं बोधगम्य बनाया गया है।
5. आरेखों एवं आलेखों का यथास्थान स्पष्टता से प्रयोग कर शोध को सरल बनाने का प्रयास किया गया है।

आँकड़ों के स्त्रोत

"गाँधी सागर बाँध का पर्यावरण पर प्रभाव: एक भौगोलिक विश्लेषण" नामक शीर्षक पर अनुसंधान करने के लिए संबंधित साहित्यों के अध्ययन के बाद तथ्य संकलन हेतु विभिन्न स्थानों पर जाकर प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य संकलित किये।

1. **प्राथमिक स्त्रोत:** कुछ तथ्य बिना किसी माध्यम या सहायता के एकत्र किये गए है। स्वयं घटना का अवलोकन करके तथ्य एकत्र करने हेतु गाँधी सागर बाँध, भानपुरा (मंदसौर) क्षेत्र का गहन अवलोकन किया। चम्बल नदी घाटी के अभ्यारण्यों का अवलोकन कर वहाँ की पारिस्थितिकी स्थिति, वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं को देखा। कुछ स्थानों तथा जीव-जन्तुओं के चित्र भी लिए। यहाँ चम्बल घड़ियाल अभ्यारण्य में घड़ियाल, मगरमच्छ, स्तनपायी डॉल्फिन और ऊद बिलाव भी दिखाई दिये। चम्बल नदी घाटी में विभिन्न स्थानों पर (मुख्य रूप से तटीय क्षेत्र में) मृदा अपरदन युक्त भू-आकृतियाँ भी है।

   साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी अनुसंधान हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी की सत्यता की जाँच भी की गई जिसमें प्राप्त जानकारी सत्य एवं विश्वसनीय सिद्ध हुई।

2. **द्वितीयक स्त्रोत:** कार्यालय वन्य जीव मण्डल, कोटा से Chambal River Expedition-1998, Wildlife Report प्राप्त की जिसमें चम्बल नदी के जीव जन्तुओं (घड़ियाल, मगरमच्छ, ऊदबिलाव आदि) के बारे में वास्तविक तथ्य प्राप्त हुए है। जिला सांख्यिकी कार्यालय, मंदसौर से चम्बल घाटी क्षेत्र का तापमान, वर्षा, आर्द्रता, वनस्पति, उद्योग, आर्थिक क्रियाएँ आदि से संबंधित आँकड़ें प्राप्त किये हैं। कार्यालय जिला कलेक्टर, मंदसौर से भौगोलिक स्थिति तथा इस क्षेत्र में चम्बल नदी की वास्तविक स्थिति के बारे में तथ्य प्राप्त हुए है। जल संसाधन विभाग, मध्यप्रदेश से राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में चम्बल की स्थिति के विषय में तथ्य प्राप्त हुए है। जन स्वास्थ्य अभियांत्रिक विभाग, अधिशाषी अभियन्ता, उत्पादन व वितरण खण्ड, अकेलगढ़ (कोटा) से गाँधी सागर बाँध के जल की Chemical & Bacteriological Report के संबंध में कुछ सामान्य जानकारी प्राप्त हुई है। कार्यालय भारतीय विज्ञान विभाग, जयपुर से मंदसौर एवं नीमच के चम्बल नदी क्षेत्र की जलवायु के संबंध में तथ्य एकत्र किये गये हैं।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय एवं स्थिति

गाँधी सागर बाँध 24°44' उत्तरी अक्षांश तथा 75°33' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। गाँधी सागर बाँध चम्बल घाटी विकास परियोजना के प्रथम चरण में मध्य प्रदेश राज्य के मन्दसौर जिले में भानपुरा तहसील में बनाया गया। गाँधी सागर बाँध मध्य प्रदेश के मन्दसौर जिला मुख्यालय से 122 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। बाँध का निर्माण चम्बल नदी पर किया गया है। स्वतंत्र भारत में मध्य भारत के प्रथम मुख्यमंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू के प्रयासों से योजना की स्वीकृति प्राप्त हुई। मन्दसौर में गाँधी सागर बाँध और पावर स्टेशन के निर्माण की आधारशिला तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा 7 मार्च, 1954 को रखी गई थी। बिजली स्टेशन में वर्ष 1957 में काम शुरू किया गया था, जबकि बिजली उत्पादन और इसका वितरण नवम्बर, 1960 में हुआ। इस बाँध का नाम भारत के प्रमुख नरम दल के नेता एवं स्वतंत्रता सैनानी महात्मा गाँधी के श्रद्धांजलि के रूप में गाँधी सागर बाँध रखा गया।

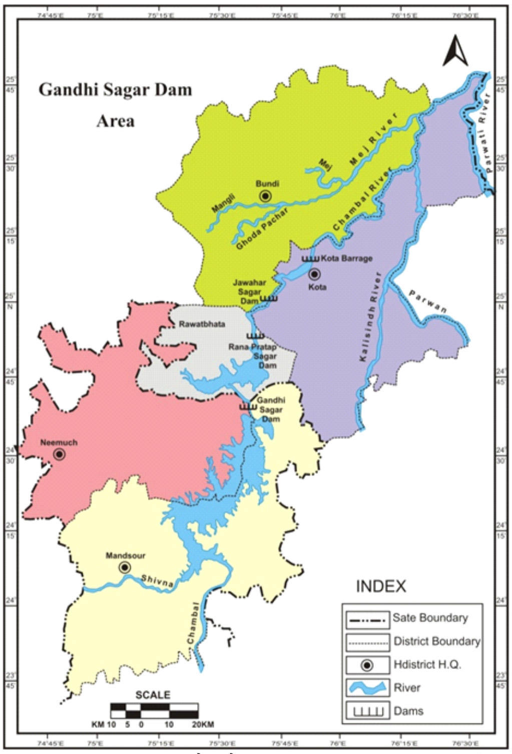

गाँधी सागर बाँध की कुल जल धारण क्षमता (काम आने योग्य) 6920 मिलियन क्यूबीक मीटर तथा कुल जल धारण क्षमता 7746 मिलियन क्यूबीक मीटर है। इस बाँध की कुल जल भराव क्षमता 1312 फीट है। इस बाँध पर एक विद्युत गृह है जिसमें 23 मेगावाट प्रतिघण्टा क्षमता की 3 इकाईयाँ एवं 27 मेगावाट प्रतिघण्टा क्षमता की 1 इकाई विद्युत उत्पादन के लिए स्थापित की गई है। इस बाँध की कुल उत्पादन क्षमता 119 मेगावाट है। यह बाँध 67.70 मीटर ऊँचा एवं 513.60 मीटर लम्बा है। यहाँ औसत वर्षा 86 सेन्टीमीटर होती है। इस बाँध पर 18.3 m × 8.5 m के 10 मुख्य निकास द्वार है एवं 3 m × 7.6 m के 9 स्लूज निकास द्वार है। गाँधी सागर बाँध द्वारा 22584 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र जलमग्न है। गाँधी सागर बाँध से छोड़ा गया जल राणा प्रताप सागर बाँध में एकत्र होता है। गाँधी सागर जलाशय के निर्माण के कारण 59 ग्राम पूर्ण रूप से तथा 169 ग्राम आंशिक रूप से डूब में आये जिन्हें आस-पास के क्षेत्र में बसाया गया।

गाँधी सागर बाँध

गाँधी सागर पॉवर स्टेशन 65 मीटर लम्बा और 56 फीट चौड़ा है। गाँधी सागर पॉवर स्टेशन अब पूरे मन्दसौर जिले में बिजली की आपूर्ति करता है। जिले में बिजली की जरूरतों को पूरा करने के अलावा इस बिजलीघर से बिजली मध्य प्रदेश एवं राजस्थान राज्य में दूर-दूर तक सप्लाई की जाती है। गाँधी सागर बाँध से बिजली उत्पादन के बाद जो पानी छोड़ा जाता है, वह राणा प्रताप सागर बाँध एवं जवाहर सागर बाँध होता हुआ कोटा बैराज में जाता है, जिसका उपयोग सिंचाई के लिए होता है। गाँधी सागर बाँध का जलाशय क्षेत्र हिराकुण्ड जलाशय के बाद भारत में दूसरा सबसे बड़ा जलाशय है। इसके साथ ही गैर प्रवासी पक्षियों का यहाँ जमावड़ा भी लगता है।

कार्य योजनाएँ

मध्य प्रदेश में अधिक वर्षा होने पर गाँधी सागर बाँध में अधिक मात्र में पानी की आवक प्रारम्भ हो जाती है। बाँध भरने के बाद जल संसाधन विभाग को गेट खोलकर चम्बल में पानी की निकासी करनी पड़ती है। इससे राजस्थान की सीमा में चम्बल नदी में बाढ़ के हालात बन जाते हैं। ऐसे में राणा प्रताप सागर बाँध, जवाहर सागर बाँध एवं कोटा बैराज से पानी निकासी के समय खतरे की आशंका बनी रहती है। इन सब परिस्थितियों से निपटने के लिए विभाग ने गाँधी सागर बाँध से आहू नदी में अधिकतम 3 लाख क्यूसेक पानी की निकासी के लिए योजना तैयार की है। आहू नदी के पठारी क्षेत्र के सर्वे के लिए मध्य प्रदेश जल संसाधन विभाग ने 15 लाख का बजट स्वीकृत किया है।

तकनीकी कमेटी की बैठक में केंद्रीय जल आयोग के निर्देश पर चम्बल नदी के सबसे बड़े बाँध गाँधी सागर पर दो किलोमीटर लम्बी सुरंग बनाने का प्रस्ताव तैयार करने पर सहमती बनी। सुरंग बनाने की दिशा में काम शुरू हो गया है। बाँध के गेट खराब होने की स्थिति में प्रस्तावित सुरंग से निकासी की जा सकती है।

भारत की सभी प्रमुख नदियों का वर्ष 2030 और 2050 में पानी की जरूरतों के मुताबिक मास्टर प्लान तैयार किया जाना है। इसके तहत चम्बल नदी का भी प्लान तैयार किया जाना है। नदी में अभी कितना पानी आ रहा है ?, जल का सिंचाई, पेयजल, औद्योगिक उपयोग व वाष्पीकरण ह्मस कितना होता है? इसका अध्ययन किया जायेगा। साथ ही वर्ष 2050 तक की जनसंख्या के अनुसार यह कार्य योजना तैयार की जानी है।

देश में संभवतया पहली ऐसी नहर का निर्माण किया जा रहा है, जो जमीन से करीब 100 फीट नीचे सीमेन्ट के ब्लॉकों में बहेगी और रेवा नदी तक पहुँचेगी। जहाँ से पानी नहरों द्वारा किसानों के खेतों तक पहुँचेगा। वहीं नहर के ऊपर किसान खेती करेंगें। एशिया की सबसे बड़ी मानव निर्मित झील मध्य प्रदेश के भानपुरा के पास गाँधी सागर बाँध के टेल एण्ड के कँवला गाँव में इस नहर का निर्माण कार्य चल रहा है। यहाँ जमीन के करीब 100 फीट नीचे तक खुदाई करके, उसमें सीमेन्ट व कंक्रीट से 3×3 के ब्लॉकों की दो मुँहा सुरंग बनाई जा रही है। इस सुरंग के जरिये गाँधी सागर बाँध के भराव क्षेत्र के कँवला क्षेत्र की चम्बल नदी स्थित गाँधी सागर बाँध का पानी रेवा नदी में पहुँचाया जायेगा। वहीं करीब 1 लाख एकड़ जमीन में सिंचाई की राह खोली जायेगी।

गाँधी सागर बाँध की मुख्य विशेषताएँ

गाँधी सागर बाँध एक बहुउद्देशीय योजना के तहत बनाया गया है। गाँधी सागर बाँध से संबंधित प्रमुख आँकड़े तालिका में दिये गये हैं-

तालिका संख्या 1: गाँधी सागर बाँध के विशिष्ट लक्षण

Location	**99.8 K.M. upt-stream of Kota Town across Chambal River on Rajasthan-M.P. Border**
Commencement	September-1953
Completion	November-1960
CatchmentA rea	22584 sq.km.
Rainfall	86.0 Cm.A verage
Storage Capacity - (Gross)	7746 Million Cu.M.

(Live)	6920 Million Cu.M.
Length of the Dam at Top	513.60 M.
Height of Dam	63.70 M.
Nature of Dam	Stone-Masonry
Area Submerged at F.R.L.	661.12 Sq.Km.
Average Bed Level	R.L. 343.80 M.
Crest of Spillway	R.L. 391.40 M.
Full Reservoir Level	R.L. 399.90 M.
Maximum Water Level	R.L. 401.10 M.
Designed Flood Discharge	13705 Cumecs.
Spillway	(A) Vertical Gates: 10 Nos. 18.3 M X 8.5 M.
	(B) Sluice Gates: 9 Nos. 3.0 M. X 7.6 M.
Power Units in M.W.	4 Units of 23 M.W. each & One Unit of 27 M.W.
Total	**119 M.W.**

Source: CommandA rea Development, Chambal, Kota

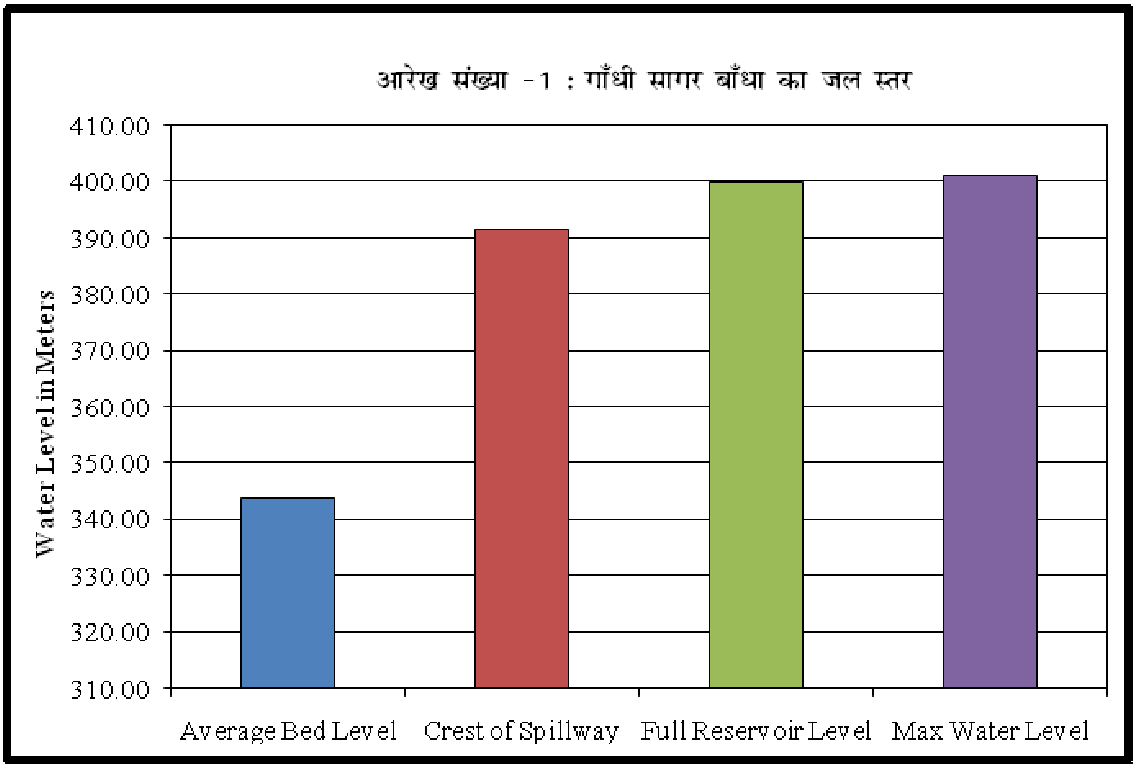

बाँध निर्माण के उद्देश्य

जल, धरती पर सभी के जीवन के सम्पोषण के लिए अनिवार्य है। यह समस्त संसार में समान रूप से वितरित नहीं होता है तथा इसकी उपलब्धता वर्षा के दौरान विभिन्न स्थानों पर एक समान नहीं होती। विश्व के एक हिस्से में पानी का अभाव है तथा वह सूखाग्रस्त है तो विश्व के दूसरे हिस्से में अधिक जल होने के कारण उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम प्रबन्ध करने में चुनौतीपूर्ण

कार्यों का सामना करना पड़ता है। नि:सन्देह नदियाँ प्रकृति का एक महान वरदान है तथा विभिन्न सभ्यताओं के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। फिर भी कई अवसरों पर नदियाँ, बाढ़ के समय लोगों के जीवन एवं सम्पत्ति के साथ विनाशकारी खेल खेलती है। अत: नदियों के जल का कुशल प्रबन्ध करना एक महत्वपूर्ण विचाराधीन मुद्दा है।

चम्बल नदी के जल संसाधन के कुशल प्रबन्धन के लिए चम्बल नदी क्षेत्र का गहन सर्वेक्षण करने के बाद यह क्षेत्र तकनीकी एवं आर्थिक रूप से व्यवहार्य पाया गया अत: यहाँ के विकास के लिए चम्बल घाटी विकास परियोजना बनाई गयी। सभ्यता के विकास होने के बाद से मानव बरसाती अवधी में वर्षा के उपलब्ध अतिरिक्त जल को स्टोर करने तथा शुष्क अवधि के समय उसी जल का उपयोग करने के लिए बाँधों एवं जलाशयों का निर्माण करते हैं। गाँधी सागर बाँध त्वरित सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए चम्बल नदी के जल का सदुपयोग करके, सूखा एवं बाढ़ से प्रभावित इस क्षेत्र की वृहत जनसंख्या के कष्टों को कम करने के लिए दोहरी भूमिका निभा रहा है। इस बाँध निर्माण के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. गाँधी सागर बाँध बनाने का मुख्य उद्देश्य विद्युत उत्पादन करना है, जिससे लोगों, उद्योगों, किसानों आदि को पर्याप्त एवं सस्ती विद्युत उपलब्ध हो सके। विद्युत उत्पादन से इस क्षेत्र का आर्थिक विकास तीव्र हो गया है।
2. स्वच्छ एवं पर्याप्त पेयजल उपलब्ध करवाना।
3. बाँध निर्माण द्वारा जल रोक कर भूगर्भिय जल स्तर को ऊँचा उठाना ताकि आस-पास के वन क्षेत्रों को कम गहराई पर आसानी से जल प्राप्त हो सके, वन वर्ष भर हरे-भरे बने रहे एवं वनों का विस्तार हो सके।
4. अपने उद्‌गम स्थल से यहाँ तक चम्बल नदी में जल का तीव्र प्रवाह रहता है अत: बाँध बनाकर जल के तीव्र प्रवाह को कम करके मृदा अपरदन को कम करना।
5. जलीय एवं वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करना।
6. बाँध व विद्युत गृह निर्माण तथा विद्युत उत्पादन कार्य द्वारा लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना।
7. चम्बल नदी में वर्षा ऋतु में अचानक अधिक मात्र में पानी की आवक से बाढ़ की समस्या बन जाती है अत: बाँध निर्माण द्वारा बाढ़ की समस्या से छुटकारा दिलाना।
8. प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग में वृद्धि कर उनका जीवन स्तर ऊपर उठाना।
9. मत्स्य उद्योग के विकास हेतु बाँध निर्माण करना।
10. पारिस्थितिकी संतुलन स्थापित करना।
11. दैनिक कार्यों में उपयोग हेतु जलापूर्ति करना।
12. बाँध निर्माण द्वारा विस्तृत जलाशय बनाकर पर्यटन एवं मनोरंजन हेतु सुंदर दृश्य उपलब्ध कराना, ताकि लोगों को आत्मीय शांति एवं आनन्द प्राप्त हो सके।
13. बाँध के विशाल जलाशय में नौका विहार की सुविधा उपलब्ध कराना।

बाँध से क्षेत्र का विकास एवं लाभ

1. गाँधी सागर बाँध निर्माण से पूर्व मन्दसौर एवं आस-पास का क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था परन्तु बाँध निर्माण एवं विद्युत गृह से विद्युत उत्पादन के बाद इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती गई। यहाँ लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ।
2. बाँध क्षेत्र तक आने जाने हेतु पक्की सड़क का निर्माण किया गया एवं उसे जिला मुख्यालय से जोड़ा गया।
3. बाँध निर्माण, मरम्मत, सुरक्षा आदि संबंधित व्यवस्था कार्य एवं विद्युत उत्पादन में लगे कार्मिकों हेतु नवीन भवन एवं कार्यालय बनाए गए। अब यहाँ जनसंख्या बढ़ने से बाजार का भी विकास होने लगा है। नवीन उद्यान बनाए गए हैं। लोगों की आवजाही बढ़ गई हैं।
4. पर्याप्त एवं निरन्तर विद्युत आपूर्ति होने से मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में कई छोटे-बड़े उद्योगों की स्थापना हुई एवं औद्योगिक विकास से लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ।

5. गाँधी सागर बाँध से केवल विद्युत उत्पादन का ही प्रावधान है। बाँध से मंदसौर जिले के क्षेत्र में सिंचाई नहीं की जाती है, फिर भी प्राथमिक भण्डार होने के कारण मध्य प्रदेश (ग्वालियर क्षेत्र) तथा राजस्थान क्षेत्र में सिंचाई के लिए यह जलाशय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। गाँधी सागर बाँध के जलाशय में पर्याप्त जल की आवक से ही कोटा बैराज की दोनों नहरों में जल वितरण होता है एवं राजस्थान व मध्य प्रदेश की लाखों हैक्टेयर भूमि को सिंचाई की सुविधा प्राप्त होती है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई है।
6. 660 वर्ग किलोमीटर (255 वर्ग मील) क्षेत्र में फैले गाँधी सागर बाँध के जलाशय में मत्स्य उत्पादन कार्य मध्य प्रदेश मत्स्य विभाग निगम द्वारा संचालित किया जाता है तथा इस जलाशय से प्रतिवर्ष लगभग 1226 मिट्रीक टन मत्स्य उत्पादन किया जाता है।
7. बाढ़ पर नियंत्रण हुआ है।
8. मृदा अपरदन पर रोक लगी है।
9. बाँध पर जल विद्युत उत्पादन होने से प्रदूषण रहित विद्युत प्राप्त होती है।
10. बाँध बनने से इस क्षेत्र का भूगर्भिक जल स्तर ऊँचा हो गया है, जिससे नलकूपों एवं कुओं में कम गहराई पर ही सिंचाई हेतु जल उपलब्ध हो जाता है। उच्च जल स्तर होने से वनों का भी विस्तार हुआ है।
11. वन विस्तार के कारण यहाँ अभयारण्य विकसित हो गया है जिससे वन्य जीवों को संरक्षण प्राप्त हो रहा है।
12. जलीय जीवों को संरक्षण प्राप्त हुआ है एवं जैव विविधता का विकास हुआ है।
13. इस क्षेत्र के पारिस्थितिकी संतुलन में गाँधी सागर बाँध का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
14. गाँधी सागर बाँध पर प्रतिवर्ष हजारों लोग पिकनिक एवं नौका विहार हेतु आते हैं जिससे यहाँ पर्यटन विकास भी हुआ है।

बाँध क्षेत्र की समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव

चम्बल घाटी विकास परियोजना के तहत बने गाँधी सागर बाँध से उत्पन्न समस्याएँ एवं उनके प्रभाव निम्नलिखित हैं -

1. वन एवं वन्य जीव-जन्तुओं संबंधी समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव -
   - गाँधी सागर बाँध के जलाशय से हजारों हैक्टेयर वन भूमि जलमग्न हो गई जिससे वन ह्रास होने के साथ-साथ विभिन्न वन्य जीवों का आश्रय स्थल भी छिन गया है एवं जैव विविधता का भी ह्रास हुआ है।
   - आस-पास के ग्रामीण ईंधन, चारा एवं कच्चा माल प्राप्ति हेतु यहाँ के वनों में अवैध कटाई करते है, फलस्वरूप वन में वृक्षों की सघनता कम होती जा रही हैं।
   - वन क्षेत्र कम होते जाने से मृदा अपरदन की दर प्रतिवर्ष बढ़ती ही जा रही है।
   - बाँध क्षेत्र में कंटीली वनस्पति अधिक हैं। यहाँ चट्टानी क्षेत्र होने से मृदा परत की मोटाई भी कम है। यहाँ बैर की झाड़ियाँ एवं बबूल के वृक्ष अधिक है जिनके कांटों से वन्य जीव घायल हो जाते हैं। कुछ वन्य जीव तो यहाँ से पलायन कर गये हैं।
   - यहाँ के वन क्षेत्र में वन विभाग की कड़ी निगरानी नहीं होने से अवैध शिकार भी किये जाते हैं, जिससे वन्य जीवों की संख्या कम होती जा रही है।
   - वर्षा ऋतु के अलावा पूरे वर्ष भर यहाँ की कंटिली वनस्पति शुष्क अवस्था में रहती है। लोगों की असावधनी एवं केम्फायर की वजह से वन में आग लग जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में प्राय: वनाग्नि की समस्या उत्पन्न हो जाती है, जिससे वायु प्रदूषण होता है।
2. कृषि संबंधी समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव
   - गाँधी सागर बाँध के कृषि क्षेत्र में कृषक आधुनिक कृषि तकनीक का उपयोग बहुत कम करते हैं। कृषक पूर्ण शिक्षित नहीं है एवं उन्हें कृषि संबंधी प्रशिक्षण नहीं मिल पाता परन्तु समय के साथ-साथ नई पीढ़ी के किसान नवीन तकनीक का इस्तेमाल करने लगे हैं, लेकिन फिर भी यहाँ कृषि विकास की दर राष्ट्रीय कृषि विकास की दर से कम है।

- इस क्षेत्र में वर्षा ऋतु में तीव्र वर्षा के कारण मृदा अपरदन की दर बढ़ जाती है, जिससे उपजाऊ कृषि मृदा बह जाती है।
- कृषक अधिक मात्र में कीटाणुनाशक दवाओं एवं रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं जिससे मृदा प्रदूषण बढ़ गया है।
- गाँधी सागर बाँध के कृषि क्षेत्र में सड़क मार्गों का अभाव है अत: किसानों को तैयार फसल को बाजार तक ले जाने में बहुत परेशानी होती हैं।

3. मृदा अपरदन की समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव –

वर्षा ऋतु में अत्यधिक जल की आवक होने पर गाँधी सागर बाँध के निकास द्वार खोलकर लाखों क्यूसेक जल प्रवाह किया जाता है, जिससे बाँध के डाउन स्ट्रीम (निचले धरा-प्रवाह क्रम) में नदी तटीय क्षेत्र में मृदा अपरदन की दर तीव्र हो जाती है। इस प्रकार यहाँ की उर्वरक मृदा का विनाश हो जाता है।

4. जलवायु संबंधी समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव –

- पिछले कुछ दशकों में यहाँ वन विनाश होने से जलवायु परिवर्तन की गति तीव्र हुई है। प्रदूषण बढ़ा है परिणाम स्वरूप तापमान भी प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। यहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं अकाल की समस्याएँ उत्पन्न होने लगी है।
- 14 सितम्बर, 2019 को मध्य प्रदेश में भारी बारिश के कारण गाँधी सागर बाँध से लाखों क्यूसेक पानी छोड़ा गया, जिससे कोटा के निचले क्षेत्रों समेत कोटा ग्रामीण के कई गाँव जलमग्न हो गये। 14 सितम्बर, 2019 को मध्य प्रदेश में तेज बारिश व पानी की अत्यधिक आवक होने से गाँधी सागर बाँध के 9 स्लूज व 10 क्रेश गेट खोलकर जल निष्कासन किया गया। ऐसी स्थिति में गाँधी सागर से लेकर कोटा बैराज तक हाई अलर्ट घोषित किया गया।
- अत्यधिक जल निकासी एवं तेज वर्षा के कारण गाँधी सागर बाँध एवं अन्य गाँवों का जिला मुख्यालय से सम्पर्क टूट जाता है जिससे यात्रियों को बहुत अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई बार लोगों की बाढ़ के जल में डूबने से मृत्यु हो जाती हैं। बाढ़ के बाद इस क्षेत्र में संक्रामक बिमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

5. अन्य समस्याएँ एवं उनका पर्यावरण पर प्रभाव –

- गाँधी सागर बाँध पर अपरदन से प्राप्त बजरी एवं रेत अवरूद्ध हो जाती है जिससे बाँध के निचले धरा-प्रवाह क्रम में बजरी व रेत का अभाव हो जाता है।
- बाँध से जल बहाव बंद हो गया है, जिससे जल की ताजगी समाप्त हो जाती है और जल सड़ने लगता है, इस गन्दे पानी के उपयोग से पीलिया, हैजा आदि भयंकर बिमारियाँ बढ़ रही हैं।
- गाँधी सागर बाँध के जलाशय में पत्तें, टहनियाँ और जानवरों की लाशें नीचे जमती हैं और सड़ने लगती हैं, जलाशय के नीचे ऑक्सीजन का अभाव होने से मीथेन गैस बनती है जो कार्बन डाई ऑक्साइड से भी ज्यादा ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाती है।
- बाँध के कारण जल रूकने से स्वतंत्र बहने वाली चम्बल नदी में बहते हुए पारिस्थितिकिय जल में रहने वाली कई जलीय जीवों की प्रजातियाँ समाप्त हो गई हैं।
- बाँध क्षेत्र में सुरंगे बनाने एवं निर्माण कार्य हेतु पहाड़ियों पर ब्लास्टिंग की गई जिससे पहाड़ियाँ अस्थिर हो गई हैं और इससे भू-स्खलन की घटनाएँ बढ़ गई है।
- गाँधी सागर बाँध में रूके हुए पानी में मलेरिया के कीटाणु पनपते हैं, जो जलाशय के नजदीकी क्षेत्रों में रह रहे लोगों में बिमारियाँ बढ़ाते हैं।
- गाँधी सागर बाँध से मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है, जो पर्यावरण के लिए घातक एक ग्रीन हाउस गैस है। अब तक जल विद्युत गृह को पर्यावरण के अनुकूल ही बताया जा रहा था। यहाँ तक कि पिछले जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में भी इसे इको-फ्रेंडली का चौला पहनाया गया। यही नहीं इसे ग्रीन एनर्जी, क्लीन एनर्जी और कार्बन मुक्त एनर्जी बताकर पहली दुनिया के देशों द्वारा तीसरी दुनिया के गरीब और मजबूर देशों को बेचा जा रहा है

लेकिन वास्तव में यह एक भ्रम है। असल में जल विद्युत गृह मीथेन गैस जैसी जहरीली गैस की फैक्ट्री है।

- अन्तर्राष्ट्रीय संस्था इंटर गर्वनमेन्टल पैनल ऑफ क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.) ने जल विद्युत गृहों के लिए बाँधों से निकलने वाली मीथेन गैस को स्वीकार किया है।

इस बाँध क्षेत्र में वनोन्मुलन एवं वन भूमि जलमग्नता ने विभिन्न आपदाओं को निमंत्रण दिया है। जिससे यहाँ का पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त यहाँ निरक्षरता, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, निम्न जीवन स्तर, सुविधाओं का अभाव, निर्धनता आदि कई समस्याएँ हैं।

सारांश

इस प्रदेश विशेष का अध्ययन पारिस्थितिकी तंत्र विकास की दृष्टि से पर्यावरण एवं मानव के मध्य अन्तर्सम्बन्धें के रूप में किया गया है। गाँधी सागर बाँध का प्रदेश की वनस्पति, जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों एवं भौतिक तत्वों आदि पर पारिस्थितिकी दृष्टि से विपरीत प्रभाव पड़ा हैं। वहीं दूसरी ओर प्रादेशिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मानव सभ्यता के विकास के लिए यहाँ भौगोलिक वातावरण उन्नत अवस्था में उपलब्ध हैं, यथा मिट्टी, जल, वनस्पति तीनों कारकों का सामन्जस्य हैं। अतः पारिस्थितिकी तंत्र के मानव व पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों में संतुलन है, उसमें मानव द्वारा पर्यावरण पर अधिक प्रभावशाली होने से यह संतुलन बिगड़ गया है।

गाँधी सागर बाँध निर्माण से दोनों राज्यों का आर्थिक विकास हुआ है। चम्बल घाटी विकास परियोजना की क्रियान्विती के फलस्वरूप जो कार्य करवाये गये हैं उनसे न केवल चम्बल कमाण्ड क्षेत्र का स्वरूप ही बदला है बल्कि यह क्षेत्र निरन्तर लाभान्वित होकर विकास के पद पर अग्रसर हैं। चम्बल घाटी विकास परियोजना मध्य प्रदेश के लिए वरदान सिद्ध हुई है। आस-पास के कृषकों को सिंचाई हेतु पर्याप्त जल मिल जाता है। बाँध पर बने विद्युत गृह से प्रदूषण रहित जल विद्युत का उत्पादन होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Biswas, A.K.; (2004) : "Dams : Cornucopia or Disaster?", International Journal of Water Resources Development 20, 3-14.
2. McDonald; (2010) Wilmsen, B.; & Webber, M. : "Dams and Displacement : Raising the Standards and Broadening the Research Agenda". Water Alternatives 3(2):142-161.
3. Naidu, C.; (2015) : "Sand Mafia Replaces Decoits as Agent of Terror in Chambal Ravines". Firstpost. Dennis Publishing.
4. Naveen, P.; (2015) : "Indian Skimmers have Stopped Breeding in Chambal : Report", The Times of India.
5. Prater, S.H.; (1988) : "The Book of Indian Mammals", Oxford University Press.
6. Saxena, D.N.; (2008), Garg, R.K.; & Rao, R.J. : "Water Quality and Pollution Status of Chambal River in National Chambal Sanctuary", Madhya Pradesh, Journal of Environmental Biology, CRC Press, 29(5) 701-710.
7. Saxena, K.R.; (2004) & Sharma, V.M. : "Dams Incidents and Accidents", CRC Press.
8. Singh, L.A.K.; (1985) & Sharma, R.K. : "Gangetic Dolphin Platanista gangetica : Observations on Habits and Distribution Pattern in National Chambal Sanctuary", J.Bombay Nat. Hist. Soc. (3) 82, pp. 648-653.

गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन (1804-1815 ई.): गढ़वाल के विशेष सन्दर्भ में

सत्येन्द्र धर्म्वाण

शोध छात्र, इतिहास विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल

देवेश सिंह गर्ब्याल

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सन्त नारायण स्वामी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नारायणनगर, जिला पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड

सारांश

किसी भी राज्य की स्थापना का मूल उद्देश्य राज्य में न्याय एवं शान्ति व्यवस्था स्थापित करना होता है। इसके निमित्त शासक वर्ग राज्य में दण्ड का विधान करता है। गढ़वाल में 19वीं सदी के आरम्भिक दशक में गोरखा शासकों का शासन रहा। गोरखा शासकों ने न्याय को राज्य की आय के साधन रूप में प्रयोग किया तथा न्याय के नाम पर दोनों पक्षों (वादी तथा प्रतिवादी) से धन वसूलने का कार्य किया। ऐसी स्थिति में उचित न्याय की सम्भावना करना बेईमानी थी। गोरखा शासन आतंक का रूप था अधिकांश जनता इससे त्रस्त होकर गांव छोड़कर जंगलों में पलायन कर जाती थी। गोरखाओं की दण्ड व्यवस्था बहुत क्रूर और अमानवीय थी। दण्ड की सजा कठोर होने के कारण लोग न्यायलय कूच करने से डरते थे। दण्ड का तरीका अवैज्ञानिक था। सजाए बहुत कष्टप्रद होती थी साथ में जुर्माने की राशि भी चुकानी होती थी। जुर्माने की राशि चुकाने में असमर्थ होने पर उक्त व्यक्ति की निजी एवं पैतृक सम्पति के साथ-साथ अभियुक्त के बच्चों तथा महिलाओं को भी नीलाम कर जुर्माने की राशि प्राप्त की जाती थी।

इसी प्ररिपेक्ष्य में प्रस्तुत शोध-पत्र में गढ़वाल में गोरखा शासन के अर्न्तगत न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का विशिष्ट अध्ययन करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया जाएगा।

मुख्य शब्द: गोरखा शासन, न्याय, दण्ड, अराजकता, गोरख्याणी, विचारी, दीप, भारादारों।

राज्य वह संगठित इकाई होती है जो किसी शासन के अधीन होकर मानव को समृद्धशाली बनाती है। भारतीय दर्शनान्तर्गत मनुस्मृति[1], महाभारत[2] व अग्निपुराण[3] में राज्य के सात अनिवार्य अंग बताए गए हैं। कौटिल्य ने भी अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र[4] में सप्तांग अर्थात् सात अनिवार्य अवयवों (तत्वों) स्वामी, आमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड तथा मित्र का उल्लेख किया है। राज्य की उत्पति के सिद्धान्त से स्पष्ट होता है कि न्याय की स्थापना के उदेश्य से ही राज्य की उत्पति हुई है। इस अनुबंध सिद्धान्त का प्रथम स्पष्ट और विस्तृत प्रतिपादन बौद्धग्रंथ दीर्घनिकाय से प्राप्त होता है।[5] ऐसा ही विवरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है, जिसमें कहा गया है कि अराजक परिस्थितियों में लोगों ने अपना राजा चुना है और वचन दिया है कि वे अपने सोने के अंष में से कुछ अंष देने के अतिरिक्त अनाज का छठवां भाग और विक्रय वस्तुओं का दसवां भाग कर के रूप में चुकाएंगे। अर्थशास्त्र में राजा को छूट

दी गई है कि वह कानून बना सकता है साथ ही यह बात कही गयी है कि राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता जो धर्म के विरूद्ध हो और राजा को स्वेच्छाचारी बनाये। पुत्र तथा शात्रु को उनके अपराध के अनुसार राजा द्वारा समान रूप से दण्ड देने की बात कही गयी है।[6] मनु ने न्याय व्यवस्था की शारण में जाने या मुकदमों के 18 कारण बताये हैं[7] यथा: ऋण एवं धरोहर का भुगतान न करना, बिना स्वामित्व के विक्रय करना, साझीदारों के संबंध में गड़बड़ी हो जाना, दान दी गई वस्तु को पुन: वापिस लेना, पारिश्रमिक का भुगतान न करना, समझौतों को भंग करना, क्रय-विक्रय की व्यवस्था का उल्लंघन करना, स्वामी तथा भृत्य के बीच विवाद पैदा होना, सीमा संबंधी अड़चन, किसी को मारना, किसी का अपमान करना, चोरी करना, हिंसा तथा व्यभिचार करना, वैयक्तिक कर्त्तव्यों को न निभाना, पैतृक सम्पति संबंधी विवाद, जुआ तथा पासा खेलना।

अत: स्पष्ट है कि उचित न्याय व्यवस्था बनाए रखने के लिए ही राज्य और राजपद स्थापित हुए। प्राचीन काल से ही शासक तथा न्याय एक दूसरे के अभिन्न अंग तथा पूरक रहे हैं; बिना उचित न्याय के अराजकता दूर नहीं हो सकती थी। गढ़वाल में गोरखा शासकों के हाथों 14 मई 1804 ई. को प्रद्युम्नशाह के पराजय के उपरांत गढ़नरेश अपना राज्य खो बैठे और गढ़वाल में गोरखा शासन स्थापित हुआ। इस क्रूर शासन को गढ़वाल में स्थानीय भाषा में 'गोरख्याणी' कहा जाता है। 1815 ई. में सिंगोली की संधि के उपरांत गोरखा शासन का अंत हुआ। इस अल्पकालीन शासन काल में गोरखा शासकों ने जो न्याय एवं दण्ड प्रक्रिया लागू की वह बहुत कठोर और धनलोलुपता पर आधारित थी। अत: प्रस्तुत शोध-पत्र में गोरखा शासन काल के दौरान न्याय तथा दण्ड प्रणाली का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

गोरखा शासन काल में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था: मध्य हिमालय में स्थित गढ़वाल पर गोरखा शासन काल में न्याय की आड़ में प्रजा का आर्थिक शोषण किया गया तथा उनका न्याय, न्याय न होकर मात्र धन प्राप्ति का एक साधन बन गया। गोरखाओं के अत्याचारी शासन के कारण लोग गांवों से पलायन करके जंगलों अथवा अन्य स्थानों पर शारण लेते थे, जिसका राज्य की कृषि व्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा। प्राचीन काल से ही न्याय व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ आय राज्य को प्राप्त होती थी, चाहे वह दण्ड स्वरूप हो या भेंट। इस काल में न्याय व्यवस्था का दुरुपयोग हुआ। गोरखा शासकों ने गढ़वाल को तीन तहसीलों श्रीनगर, लंगूरगढ़ तथा चांदपुर में न्याय व्यवस्था हेतु तीन न्यायालयों की स्थापना की गई थी, जो कि 'विचारी अदालथ' (अदालत) कहलाती थी।[8] हौजसन के अनुसार अदालत में एक विचारी (न्यायधीश) रहता था, जिसकी सहायता के लिए निम्न सैन्याधिकारी और सैनिक हुआ करते थे[9]-

कारदार	-	1	मेहजर	-	1
जमादार	-	1	हवालदार	-	2
अमलदार	-	2	सिपाही	-	40

चितरंजक नेपाली के अनुसार कचहरी कार्य करने वाले 7 व्यक्ति थे जिन्हे निम्न राशियां वेतन के रूप में दी जाती थी।[10]

क्र0सं0	कर्मचारी	संख्या	वार्षिक व्यय (रुपये में)
1.	विचारी	2	700/-
2.	बहीदार (लेखक)	2	288/-
3.	तहवीलदार	2	300/-
4.	टहलुवा (चपरासी)	1	36/-

विचारी (न्यायधीश): विचारी या न्यायधीश से निश्पक्ष न्याय 'जस्तों को तस्तो' (जैसा को तैसा), बिना लोभ-मोह के, मोलाहिजा (बिना किसी प्रभाव के) काम करने की अपेक्षा की जाती थी। मुख्य तीन अदालतों के अतिरिक्त फौजदार अपनी फौजदारी के प्रदेश में दीवानी तथा फौजदारी के विवादों का निर्णय स्वयं करता था।[11] विभिन्न फौजदार अपनी अनुपस्थिति में अपने सहायकों को न्याय करने का दायित्व सौंप देते थे, जो कि विचारी कहलाते थे।

अपराधों की जांच: वादी को अदालत में किसी प्रकार से लिखित आवेदन-पत्र देने की आवश्यकता नहीं थी। फौजदार या विचारी के पास मौखिक निवेदन के आधार पर ही जांच कार्य आरम्भ हो जाता था। वादी व प्रतिवादी दोनों को अदालत में उपस्थित

होना पड़ता था। किसी भी पक्ष की ओर से वकील या मुख्तार को उपस्थित होने तथा बहस करने की अनुमति नही थी।[12] वादी, प्रतिवादी तथा साक्षियों से मौखिक पूछताछ की जाती थी। इतने से ही विवाद के तथ्यों का पता लग जाता था। यदि किसी तथ्य के संबंध में शांका उत्पन्न होती थी तो वादी, प्रतिवादी और साक्षियों के सिर पर 'हरिवर्ष' की पोथी रखकर सच्ची बात कहने का आदेश दिया जाता था। यदि अपराधी अपना अपराध स्वीकार नहीं करता तो उसे कोढ़े लगाकर या अन्य प्रकार की यातनाएं देकर तथ्यों को प्रकट करने हेतु बाधय किया जाता था।[13]

समझौताः प्रायः विचारी, वादी और प्रतिवादी में समझौता कराने का प्रयास करती थी; कई जटिल विवादों के निर्णय ग्राम पंचायतों की सहायता से हल करवाए जाते थे। उदाहरण के लिए पारिवारिक सम्पति के बंटवारे में पंचायत निर्णय करती थी। पंचायत कभी-कभी पर्चियों के माध्यम से भी भाग्य का निर्णय करती थी।[14]

न्याय का तरीकाः न्याय की विधियां सरल थी। प्रत्येक दिन विवादों को सुना जाता था। एक विवाद के निर्णय के बाद ही दूसरा सुना जाता था। साधारण विवादों को लिखने की आवश्यकता नहीं थी। केवल महत्वपूर्ण दीवानी विवादों में निर्णय को कागज पर लिखकर दिया जाता था, जिस पर विचारी की मुहर लगी होती थी। हारे हुए व्यक्ति से दण्ड की राशि वसूली जाती थी।[15]

दिप (दीप): ऐसे विवाद जो अधिक जटिल होते थे, जिनमें मौखिक साक्ष्यों द्वारा वादी के सत्व की पुष्टि और प्रतिवादी के सत्व का हनन मान्य नहीं ठहराया जा सकता था। विभिन्न प्रकार के दीप की सहायता से निर्णय किया जाता था। उनमें वादी या प्रतिवादी जिसे हानि पहुंचती थी उसी को अपराधी मानकार दण्ड दिया जाता था। फौजदार, विचारियों और जनसाधारण का विश्वास था कि विभिन्न द्वीपों के द्वारा होने वाला निर्णय ईष्वर की प्रेरणा से होता है इसलिए उसे ही सही मानना चाहिए। गोरखा शासन से पूर्व भी सच्चाई जानने हेतु अनेक दीपों का प्रयोग किया जाता था। गोरखा काल में भी इन दीपों का प्रयोग किया गया जिनमें से कुछ निम्नवत् है[16]-

(1) गोला दिप (गोला दीप): इसमें गर्म लोहे की छड़ को वादी और प्रतिवादी को दिया जाता था। कुछ दूर तक छड़ को पकड़कर ले जाने में जिस व्यक्ति के हाथ जल जाते थे उसे अपराधी माना जाता था।

(2) तराजू दिप (तराजू दीप): जिस व्यक्ति की सत्य परीक्षा ली जानी होती थी उसे एक दिन पूर्व पत्थरों से तोला जाता था तथा उन पत्थरों को सुरक्षित रखा जाता था और दूसरे दिन पुनः उन्ही पत्थरों से व्यक्ति को तोला जाता था। अधिक वजन वाले को सच्चा तथा कम वजन वाले को झूठा कहा जाता था।

(3) कढ़ाई दिप (कढ़ाई दीप): कढ़ाई में उबलते हुऐ तेल में अपराधी का हाथ डालने पर यदि वह जलता नहीं था तो उसे निर्दोष घोषित किया जाता था तथा जलने पर उसे अपराधी माना जाता था। देहरादून के महंत गुरू के सेवक राम को भी इस दीप से गुजरना पड़ता था।[17]

(4) तीर दीपः इसमें अभियुक्त को पानी के तालाब में तब तक सिर डुबाए रखना पड़ता था जब तक कि दूसरा व्यक्ति तीर तक पहुंचकर वापस न लौट आए। अपराधी को तब तक निर्दोश माना जाता था जब तक वह दूसरे व्यक्ति के लौटने तक जल में नहीं डूब जाता था।

(5) जल दीपः इसमें वादी और प्रतिवादी के छोटे लड़को को तालाब में डाला जाता था। जिसका लड़का देर तक नहीं डूबता था उसे विजयी माना जाता था।

(6) जहर दीपः वादी व प्रतिवादी को विषैली जड़ी खाने को दी जाती थी, जो मर गया वह तर गया और जो बच गया वह जीता माना जाता था।

(7) मन्दिर दीपः धन और भूमि विवादों में किसी मन्दिर में वादी और प्रतिवादी देव-प्रतिमा के समक्ष धनराशि को या उस भूमि के मिट्टी के एक ढेले को रख देते थे। जिस व्यक्ति के परिवार में 6 मास के अन्दर किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती थी या दैवीय प्रकोप होता था तो उसे दोशी माना जाता था।[18] विवादों में प्रायः वादी-प्रतिवादी के नाम छोटे-छोटे कागज के टुकड़ों पर लिखकर मन्दिर में देव-प्रतिमा के सम्मुख रखे जाते थे। पुजारी जिस व्यक्ति के नाम वाले कागज को पहले उठाता था उसे सफल या सच्चा और दूसरे व्यक्ति को असफल या झूठा माना जाता था। कई विवादों में वादी को देव-प्रतिमा को साक्षी मानकर सौगन्ध लेनी पड़ती थी कि उसका आरोप सच्चा है।[19]

दण्ड: अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड दिए जाते थे। गम्भीर या बहुमूल्य वस्तुओं की चोरी करने वाले व्यक्तियों के अंग-भंग किए जाते थे, जिसमें हाथ और नाक काट दिए जाते थे। कभी अपराधी को निर्दयता से पीटा जाता था तथा घावों पर नमक-मिर्च लगाया जाता था।[20]

मृत्यु दण्ड: गोरखा शासन काल में फांसी या मृत्युदण्ड बहुत कम दिया जाता था। हत्या आरोपी व्यक्ति प्राय: भारी आर्थिक क्षतिपूर्ति देकर मृत्युदण्ड से बच सकता था जो गोरखा काल में न्याय के स्थान पर धन कमाने को रेखांकित करता है; फिर भी कुछ विशेष अपराधों के लिए प्राणदण्ड देने की प्रथा थी। प्राणदण्ड में प्राय: पेड़ से लटाकाकर फांसी दी जाती थी। राजद्रोह या विश्वास घात करने पर अथवा जानबूझकर गाय की हत्या करने पर प्राण दण्ड दिया जाता था। इसी प्रकार यदि हरिजन, ब्राह्मण और राजपूत को जाति भ्रष्ट करने का प्रयत्न करता तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। अपने से उच्च जाति की नारी से व्यभिचार करने वाले पुरुष को भी मृत्युदण्ड दिया जाता था और नारी की नाक काट दी जाती थी। जिस व्यक्ति की पत्नी से व्यभिचार किया जाता था वह अपनी पत्नी के 'जार' को तथा पत्नी को स्वयं ऐसा दण्ड दे सकता था। न्यायालय की दृष्टि से उसका यह कार्य सर्वथा वैद्य था।[21]

आर्थिक दण्ड: सामान्य अपराधों के लिए केवल आर्थिक दण्ड लिया जाता था। दण्ड की राशि के नकद भुगतान न करने की स्थिति में अपराधी की चल-अचल सम्पति को छीन लिया जाता था। साधारण चोरी पर भी आर्थिक दण्ड आरोपित किया जाता था। यदि किसी राजपूत व्यक्ति द्वारा किसी की हत्या कर दी जाती तो उससे दण्ड स्वरूप भारी राशि वसूली जाती थी, परन्तु उसे राज्य से निर्वासित नहीं किया जाता था। लेकिन यदि अपराधी ब्राह्मण हो तो उसे राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या कर लेता था तो उसके सगे-सम्बन्धियों से दण्ड स्वरूप भारी राशि वसूली जाती थी।[22] आर्थिक दण्ड लेना गोरखा राज्य में फौजदार, विचारी एवं राज्य तीनों के लिए लाभदायक था। दण्ड की राशि अपराधी की आर्थिक स्थिति के अनुरूप निर्धारित की जाती थी। गोरखा शासक ऐसे अधयादेश निकालते थे जो अव्यहारिक होने के साथ उनका पालन करना भी असम्भव था। उदाहरण के लिए गढ़वाल में एक ऐसा अधयादेश निकाला गया था कि, 'कोई महिला मकान की छत पर ना चढ़े।'[23] जबकि पहाड़ के गांवो में महिलाओं के अधिकांश कार्य यथा: घास, लकड़ी, मंडुवा आदि गीले व धुले वस्त्रों को सुखाने हेतु छत पर जाना एक सामान्य बात थी। ऐसे कार्य प्राय: नारियों द्वारा ही सम्पादित किए जाते थे। ऐसे अध्यादेशों का एकमात्र उद्देश्य उनके उल्लंघन की आड़ में गरीब जनता से धन निचोड़ना था।[24] इसके अलावा झूठे आरोपों के द्वारा भी धन ऐंठा जाता था।

दण्ड की राशि आय के साधन रूप में: गोरखा शासकों ने न्याय प्रणाली को आय के साधन रूप में प्रयोग किया। अकेले गंगावार से 'असमानी-फरमानी' के नाम पर प्रतिवर्ष दो हजार रुपये प्रतिवर्ष राजकोश मे जमा होते थे। इसके अतिरिक्त इसमें कई गुना राशि भारादारों (राजस्व अधिकारी) के जेब में जाती थी। गोरखा न्याय प्रणाली अत्यंत चतुरतापूर्ण ढ़ंग से वादी और प्रतिवादी दोनों को लूट लेती थी।[25]

जिस न्याय व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से राज्य तथा राजपद स्थापित हुए राजा को प्रजा से कर लेने का अधिकार प्राप्त हुआ उसी न्याय व्यवस्था का गोरखा शासन काल में धन के लिए दुरुपयोग किया गया। गोरखा शासन काल में न्याय का अर्थ धन संचय करना था। उन्होंने न्याय को धन कमाने का माध्यम बनाया। इसलिए गोरखा शासनकाल को 'गोरख्याणी' कहा जाता है। जनता इनके अत्याचारी शासन से तंग आकर जंगलो अथवा अन्य क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाते थे।[26] क्योंकि गोरखा शासकों की दण्ड प्रणाली बहुत कठोर व अमानुशिक थी, जिसको आधुनिक समाज में उचित नहीं ठहराया जा सकता है। किसी भी शासनकाल में राज्य की न्याय एवं दण्ड प्रणाली उस शासन काल के अंतर्गत राज्य के सामाजिक पृष्ठभूमि को दर्षाता है कि उक्त शासन काल में प्रजा के प्रति शासकों का व्यवहार किस प्रकार था। गढ़वाल में गोरखाकालीन शासन में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि गोरखा शासन प्रजा हितैशी नहीं था।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति-9/293, स्वाम्त्यतात्यौ पुरे राष्ट्र कोषदण्डौ सुवत्तथा। सप्तप्रकृतयो वोता: सप्ताब राज्यमुच्यते।।
2. महाभारत-शान्तिपर्व-64/65/69, राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे। आत्मामात्य्रा कोशाश्र दण्डो मित्रणि चैव कि।। तथा जनपद्यैव पुरं च कुरूनन्दन। एतत् सप्तात्मकं राज्यं परिपाल्यं प्रयत्नत:।।
3. अग्निपुराण-233/12, स्वाम्यमात्य्रा तथा दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च। मित्रजनपद्रैव राज्यं सप्तामुच्यते।।

4. कौटिल्य, अर्थशास्त्र- 6/96/1, स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोषदण्डमित्रणि प्रकृतयः।
5. शर्मा, रामशरण, 1995, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, नई दिल्ली, पृष्ठ 79
6. कौटिल्य, अर्थशास्त्र- 2/56-57/1/5, दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति। राजा पुत्रे च शात्रै च यथादोशं समं धृत।।
7. मनुस्मृति-8/4-5-6-7, टीकाकार, शास्त्री, रामचन्द्र वर्मा, 2020, प्रभात पेपरबैक, नई दिल्ली
8. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1 पर्वतीय राज्यों का विध्वंस, वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढवाल, पृष्ठ 209
9. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 209
10. रावत, शिवचंद सिंह, 2011, गढ़वाल की अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक संस्थाओं के विकास का इतिहास, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 48
11. एटकिंसन, ई.टी., 1973, हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, जि. 3 पृष्ठ 170
12. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1 पृष्ठ 211
13. रावत, शिवचंद सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 48-49
14. वही, पृष्ठ 49
15. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 211
16. वही, पृष्ठ 211
17. पंकज, प्रियदर्शी, 2013, गोरखों की कर, न्याय एवं दंड व्यवस्था (1790-1815 ई.) (कुमाऊँ और गढ़वाल के संदर्भ में), हिमालयी इतिहास के विविध आयाम (संपादक गिरिजा पाण्डे, हीरा सिंह भाकुनी), पृष्ठ 171
18. रावत, शिवचंद सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 49
19. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 211-12
20. पांडे, बद्रीदत्त, 1997, कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृष्ठ 404
21. ट्रेल, जी0डब्ल्यू0, 1828, स्केच ऑफ कुमाऊँ, एशियाटिक रिर्सच जर्नल, कलकत्ता, जि0 16, पृष्ठ 102
22. उपरोक्त, पृष्ठ 171
23. एटकिंसन, ई.टी0, 1973, पूर्वोक्त, पृष्ठ 171
24. वही, पृष्ठ 172
25. डबराल, शिव प्रसाद, 1999, गोरख्याणी-1, पूर्वोक्त, पृष्ठ 213
26. वही, पृष्ठ 40

लोहिया स्वच्छ अभियान एंव महिलाओं की भूमिका

डॉ० रिंकी कुमारी

गाँव - डरहार, पोस्ट - लहेरियासराय, थाना - बहादुरपुर, जिला - दरभंगा

सार संक्षेप

लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान के तहत राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों को खुलें में शौच मुक्त बनाने का लक्ष्य है। जिसे केंद्र प्रायोजित स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) तथा राज्य सम्पोषित लोहिया स्वच्छता योजना के प्रावधानों से पूरा किया जाना है। इस अभियान के तहत 1.66 करोड़ परिवारों को शौचालय उपलब्ध करवाना तथा बिहार को 02 अक्टूबर, 2019 तक खुले में शौच मुक्त बनाने का लक्ष्य है। देशके अन्य राज्यों की तरह बिहार में भी सम्पूर्ण स्वच्छ अभियान चलाया जा रहा है इस अभियान को सफल बनाने में सरकारी, विभागों के अलावा गैर–सरकारी संस्थाओं को भी भागीदारी है। वैसे बिहार कई क्षेत्रों में अन्य राज्यों से पीछे है। लेकिन सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान के क्षेत्र में बिहार की महिला समूह आगे बढ़कर काम कर रही है। इसमें बिहार शिक्षा परियोजना द्वारा गठित महिला समाख्या समूह का योगदान सराहनीय है। महिला समाख्या समूह राज्य के बाहर की महिलाओं को भी इस अभियान में शामिल होने के लिए प्रेरित कर रही है। महिला समाख्या समूह की कई दक्ष महिलाएँ मध्य प्रदेश और छतीसगढ़ में जाकर वहाँ की महिलाओं को शौचालय बनाने का अभियान में शामिल होने के लिए तैयार कर रही है।

बिहार महिला समाख्या आन्दोलन ने शहरों की बात तो छोड़ दे, ग्रामीण महिलाओं को भी जगाने का काम किया है। उन्हें इस लायक बनाया किवे अपनी आवश्यकता को समझें और उसे पुरा करने के लिए पुरुषों का सहारा छोड़ स्वयं आगे आए। वैसे, महिला कार्यक्रम चलाए जा रहे है। लेकिन बिहार महिला समाख्या समूह ने नारी सशक्तिकरण के लिए जो काम किया। उसे देखने बाहर के लोग आ रहे है।

महिला समाख्या के अंतर्गत महिलाओं के स्वयं सहायता समूह बनाए गए। उन समूहों को राष्ट्रीयकृत बैंको से जोड़ा गया। कई समूहो को अपना रोजगार करने के लिये बैंको से लघु ऋण भी दिए गए। दूसरा सबसे बड़ा बीड़ा जो महिला समाख्या ने अपने समूह के माध्यम से उठाया। वह है संपूर्ण स्वच्छता अभियान में भागीदारी। इसके लिए महिला समाख्या संगठन ने ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय बनाने का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षण के बाद महिलाएँ राज मिस्त्री बन गई। फिर क्या था, महिला राजमिस्त्री का विश्वास जगा और वे घर–घर जाकर ग्रामीण महिलाओं को शौचालय की जरूरत बताने लगी। इसी क्रम में बहुत से परिवार के लोग शौचालय बनवाने को तैयार भी हो ताते। महिला समूह की राजमिस्त्री उनके घरों में शौचालय तैयार कर देती। महिला समाख्या समूह की इन उपलब्धियों ने सरकार को भी सहयोग करने के लिए प्रेरित किया। इससे सामाजिक परम्परा के बंधन टूटे। अनेक जरूरत मंद महिलाओं को रोजगार मिला।

महिलाओं के रोजगार के नये क्षेत्र खुले। साथ ही स्वच्छता के प्रति ग्रामीण परिवारों की आस्था बढ़ी। उत्तरी बिहार के कई जिले बाढ़ ग्रस्त है। बाढ़ के दिनों में शौच के लिये बाहर जाना मुश्किल हो जाता है। महिलाओं को तो सामान्य दिनों में भी अंधेरा होने का इन्तजार रहता है। महिला समाख्या समूह की सदस्या जब ग्रामीण महिलाओं को उस स्थिति की याद दिलाती है तो ग्रामीण महिलाएँ परिवार के लोगों को घर में शौचालय बनवाने का एक माहौल तैयार हो गया है। सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान की सफलता के लिए रास्ता साफ दिख रहा है। राज्य में लोक स्वास्थ्य अभियंत्रण विभाग ने भी अभियान के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन

बसर करने वाले परिवारों को अनुदान स्वरूप दी गई राशि पर उनके घरों में शौचालय बनवाये जा रहे है। मगर महिला समाख्या समूह की उपलब्धियाँ इससे अधिक दिखाई पड़ रही है।

उपलब्ध जानकारी के अनुसार, अकेले मुजफ्फरपुर जिले में 126 महिला राजमिस्त्रियों ने 3,457 से अधिक शौचालयों का निर्माण किया। वही रोहतास में 20 महिला राजमिस्त्रियों ने 622, गया में 49 महिला राजमिस्त्रयों ने 6,770, सीतामढ़ी में 31 ने 622 पश्चिम चम्पारण में 28 ने 194, कैमूर में 6 ने 77, दरभंगा में 16 ने 623, शिवहर में 12 ने 112, भोजपुर में 44 ने 1,093 वैशाली में 20 ने 154 अर्थात राज्य में कुल 352 महिला महिला राजमिस्त्रियों ने 13,724 शौचालयों का निर्माण कर एक उल्लेखनीय कार्य किया। मुजफ्फरपुर जिला महिला समाख्या की जिला कार्यक्रम समन्वयक पूनम सिंह बताती है कि इस जिले के चार प्रखंडों में सघन रूप से शौचालय निर्माण का काम चल रहा है। इसमें जिले का मुशहरी प्रखंड सबसे आगे है। यहाँ चार महिला सहायता समूह की 50 महिलाएँ इस काम में लगी है।

शौचालय के सामग्री निर्माण में स्वयं सहायता समूह की सावित्री तारा और विभा दक्ष मानी जाती है। सावित्री का कहना है कि अब जिलों में लोग राजबाड़ा स्वंय सहायता समूह द्वारा बनाई गई महिलाओं को महीने में 1,500 से 4,500 रुपये की आमदनी हो जाती है। इसे देखते हुए गाँव की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी इस काम में आगे आने लगी है। मुशहरी के मुखिया संजय कुमार मानते है कि प्रखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में एक बदलाव आ गया है। एक नयी क्रान्ति आ रही है। लगता है मुशहरी एक बार फिर नसली आंदोलन के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्वच्छता के लिए चर्चा में आ जाएगा।

महिला सशक्तिकरण की चर्चा करते हुए पूनम कहती है कि मुशहरी प्रखंड के अलावा जिले के अन्य प्रखंडो में भी महिला स्वंय सहायता समूह का गठन महिला समाख्या की स्वंय सेविकाओं के नेतृत्व में हो रहा है। केवल चार प्रखंडों में एक हजार से अधिक महिला स्व सहायता समूह का गठन हो चुका है। 20 हजार ग्रामीण महिलाए इनकी सदस्य बन चुकी है। लगभग 500 स्व सहायता समूहो को विभिन्न बैंक शाखाओं से जोड़ दिया गया है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इन स्व सहायता समूहों के जरिये न केवल आमदनी बढ़ाने का प्रयास हो रहा है, बल्कि महिलाओं में बचत करने की आदत भी डाली जा रही है। इसी का परिणाम है कि इस जिला की महिला स्व सहायता समूह की ओर से अब तक 2 करोड़ रुपये बैंको के बचत में जमा कराए गये है। महिलाओं में बचत का यह अनोखा उदाहरण है। इससे महिलाओं में आत्म विश्वास जगा है। स्व सहायता समूह की हर महिला अब कुछ न कुछ करने के लिए संकल्पबद्ध है। यह पूछने पर कि शौचालय बनाने की तकनीकी जानकारी महिलाओं को कैसे मिली, जिला कार्यक्रम समन्वयक ने बताया कि पहले कुछ महिलाओं को प्रशिक्षण के लिए ईश्वर भाई के सफाई विद्यालय अहमदाबाद भेजा गया। वहाँ से प्रशिक्षण लेकर लौटी महिलाओं ने दूसरी महिलाओं को राजमित्री का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षित महिला राजमिस्त्री तारा बताती है कि एक बार बता देने के बाद महिलाएँ शौचालय बनाने में जुट जाती है। इसकाम से एक सामाजिक परिवर्तन आया है। अब कुछ परिवारों में पुरुष बच्चों की देखभाल करते हैं और महिला राज मिस्त्री दूसरे गाँवो में शौचालय बनाने जाती है। कुछ पुरुष अपनी राजमिस्त्री पत्नी को स्वयं कार्यस्थल पर पहुँचाने का काम करते है। इस प्रकार स्वच्छता अभियान के कारण सामाजिक परिवर्तन को तो बल मिल ही रहा है, पुरुषों की नजर में महिलाओं का मान भी बढ़ा है।

सचमुच बिहार में महिलाओं ने स्वच्छता के लिए एक मजबूत वातावरण तैयार किया है। अब गाँवों में लोग शौचालय की आवश्यकता को महसूस करने लगे है। तभी तो कई महिला गैर-सरकारी संगठनों ने शौचालय निर्माण के जरिये स्वच्छता को अनी संस्था का प्रमुख कार्यक्रम मान लिया है। इसी क्रम में मुजफ्फरपुर जिला के कुरहनी प्रखंड के हनुमान प्रसाद ग्रामीण विकास सेवा दल ने अपने प्रयास से प्रखंड के सकरी सरैया पंचायत को 'निर्मल ग्राम' घोषित कराया। इसके लिये पंचायत सहित इस स्वयं सेवी संस्था को इसी वर्ष नयी दिल्ली में राष्ट्रपति ने सम्मानित किया। इस संस्था की कार्यक्रम प्रभारी उषा सिंह बताती है कि हमारी संस्था ने कुरहनी प्रखंड को 'निर्मल प्रखंड' बनाने का कार्यक्रम बनाया है। इसके लिए पूरे प्रखंड के गाँवों में शौचालय निर्माण का कार्य महिला राज मिस्त्रियों से कराया जा रहा है। लेकिन गाँव की महिलाएँ चाहती है किमहिला राज मिस्त्री ही उनके घरों में शौचालय का निर्माण करें।

अब विश्वास हो जाता है कि और कुछ हो या न हो अन्य क्रान्तियों की तरह सम्पूर्ण स्वच्छता क्रान्ति की अगुआई बिहार के महिला हाथ में रहेगी। तभी तो कई राज्यों से नेतृत्व और प्रशिक्षण के लिये बिहार से संपर्क साधे जा रहा है। बिहार में बदलाव तो आ ही रहा है इसके साथ-साथ महिलाओं से जुड़े कई मिथक टूट रहे है। आशा करनी चाहिये कि बिहार सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान

में महिलाओं के कारण आगे रहेगा। बिहार के गोपालगंज में ऐसी ही दो बुजुर्ग महिलाओं को जिला प्रशासन ने सम्मानिमा किया है, जो अपना जीवनयापन तो लोंगों से मदद मांग कर करती है, लेकिन इन्हीं पैसों को बचा कर उन्होंने स्वच्छ भारत अभियान के तहत घर में शौचालय का निर्माण कर एक मिशाल पेश की है। इन महिलाओं ने यह साबित कर दिया कि देश या समाज में किसी प्रकार के योगदान के लिए पैसे नहीं, जज्बे की जरूरत है। गोपाल गंज के जिला अधिकारी अनिमेष पराशर ने आई ए एन एस को बताया कि गोपाल गंज सदर प्रखंड के कोन्हवा ग्राम पंचायत को खुले मे शौच से मुक्त कर दिया गया है।

इस मौके पर जिला प्रशासन ने कोन्हवा पंचायत की 55 वर्षीय मेहरून खातून और 60 वर्षीय जगरानी देवी को पुरस्कृत कर सम्मानित किया। दरअसल, दोनों महिलाएँ लोगों से मदद माँगकर या मजदूरी कर अपना गुजर-बसर कर रही है, लेकिन उनके द्वारा किया गया कार्य बेहद सराहनीय है। महरून खातुन कहती है, नरेन्द्र मोदी जब से प्रधानमंत्री बने है, तब से देश को स्वच्छ रखने के लिए अभियान चला रहे हैं। ऐसे में इस पंचायत के लोग भी हमारे साथ है। साफ-सुथरा रहने में क्या हर्ज है? जिलाधिकारि पराशर कहते है कि केंद्र सरकार की स्वच्छ भारत मिशन और बिहार सरकार के लोहिया स्वच्छता अभियान के तहत खुलें में शौच से मुक्ति का अभियान जिलें के प्रत्येक गाँव में चलाया जा रहा है। इन दोनों महिलाओं को जब इस अभियान के बारे में पता चला तो ये बहुत प्रभावित हुई। इसका असर यह हुआ कि लोगों से मदद मांगर जुटाए पैसों को बचाकर इन्होंने अपने घरों में शौचालय बनवा लिया। उन्होंने कहा कि आज ये दोनों महिलायें समाज में मिसाल बन चुकी हैं। वे कहते है कि ये दोनों महिलाएँ वृद्ध है, लेकिन समाज को एक नया संदेश दिया है।

एक अधिकारी कहते है कि कम पढ़ी लिखी और वृद्ध होने के कारण जगरानी देवी न ठीक से बिन्दी बोल पाती है और न ही भोजपुरी बोल पाती है, लेकिन उनके किये गये कार्यो ने उनके संदेश को बहुत दुर तक समाज में पहुँचा दिया है। आज ये दोनों महिलायें समाज में मिसाल बन गई है।

बिहार लोहिया स्वच्छ अभियान: एक रिपोर्ट

गंगा नदी के पास बसे गाँवों में शौचालय का निर्माण प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा है। हर घर में शौचालय होना चाहिए। यह 21वीं सदी में दुनिया की सबसे बड़ी चुनौती है। देशभर में खुले में शौच करने वाली आबादी का 60 प्रतिशत चार राज्यों में है। देश में चार राज्य ऐसे है जिनको तय करना है कि खुले में शौच मुक्त हो सकता है या नहीं। ये राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़िसा, और झारखंड है। इन राज्यों में बड़ी आबादी के पास शौचालय नहीं है। स्वच्छ अभियान के तहत प्रगति अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ धीमी है। भारत को स्वच्छ बनाने हेतु इन राज्यों में युद्ध स्तर पर उपयोगिक शौचालयों की आवश्यकता है। ऐसे में सबसे बड़ा सवाल यही है कि क्या ये राज्य खुले में शौच से मुक्त हो पायेंगे इसकी पड़ताल करने के लिए सुश्मिता सेनगुप्ता और रश्मि वर्मा ने बिहार राज्य का दौरा कर हालात का जायजा लिया। बिहार में लगभग 70 प्रतिशत घरों तक शौचालय की पहुँच नहीं है। इन राज्य में मंत्रालय के अनुमान से अधिक शौचालयों की जरूरत हो सकती है। इसकी वजह है बड़ी संख्या में शौचालयों का अनुपयोगी होना। इन्हें उपयोग करने लायक बनाना होगा। तभी शौचालय तक लोगों की पहुँच होंगी। बिहार में 8.2 लाख शौचालय बेकार पड़े है। इन शौचालयों को उपयोग लायक बनाने के लिए या तो दोबारा बनाना होगा या इनकी मरम्मत करनी होगी। बिहार राज्य में तो यह कार्य धीमा है।

बिहार के बाढ़ प्रभावित खगड़ियों जिला के रहीमपुर उतरारी गाँव के निवासियों ने शौच की सबसे मुश्किल चुनौती का सामना किया है। वे सभी जल्दी उठ जाते और शौच के लिए जगह की तलाश करते। 35 वर्षीय मोहित यादव कहते है कि महिलाओं की स्थिति बहुत कठिन है। मानसून के दौरान शौच के लिए उनकी पत्नी और बेरियाँ सूर्योदय से पहले खुले स्थान की तलाश के लिए बाढ़ के पानी से गुजरती है। रहीमपुर उत्तरारी गाँव गंगा के तट पर बसा है। ऐसा नहीं है कि गाँव में शौचालय नहीं है। यहाँ स्वच्छ भारत अभियान (एस.बी.एम.) के तहत बनाए गए शौचालयों की संख्या बहुत है। इस अभियान के तहत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 2 अक्टूबर 2019 महात्मा गाँधी की 150 वीं जयंती तक भारत को खुले में शौच से मुक्त बनाना चाहते है।

गाँधी जी ने कहा था कि स्वच्छता आजादी से अधिक महत्वपूर्ण है। लेकिन शौचालय होने का मतलब यह नहीं कि इसका इस्तेमाल होगा। रहीमपुर उतरारी गाँ में नियमित बाढ़ को ध्यान में रखते हुए शौचालयों को जमीन से चार फीट ऊपर बनाया गया ताकि बाढ़ के पानी से नुकसान न पहुँचे। लेकिन ठेकेदार ने सोकफिट (सोख्ता गड्ढ़ा) को बाढ़ के स्तर पर ही बना दिया। जिससे मानसून के दौरान सोकफिट भर जाता है, और उन्हें लोंग इस्तेमाल नहीं कर सकते।

प्रधानमंत्री की ओर से शौचालय बनाने के लिए अधिकारियों पर अधिक से अधिक शौचालय बनाने का दबाव है, भले ही उपयोग न किए जायें। लोहिया स्वच्छ अभियान के तहत शौचालय बनाने की होड़ सी चल रही है। बिहार सरकार को कुल 202 लाख घरों के लिए 70 प्रतिशत शौचालयों का निर्माण अक्टूबर 2019 तक पुरा करना है। विभिन्न स्वच्छता योजनाओं के अन्तर्गत राज्य में बनाएँ गये 58 लाख शौचालयों में से 16 लाख शौचालयों का निर्माण स्वच्छ भारत अभियान शुरू करने के बाद किया गया। इसके 50 प्रतिशत का निर्माण वित्त वर्ष 2016-17 में किया गया था। क्या इसका मतलब यह है कि राज्य सम्पूर्ण स्वच्छता को मन से अपना रहा है? यह बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आया है कि राज्य शौचालय का निर्माण खुले में शौच मुक्ति के अधिकारिक 'प्रमाण-पत्र' को प्राप्त करने के लिए कर रहे है। लोग इन शौचालयों का इस्तेमाल करेंगे, यह पक्का नहीं है।

इसका अर्थ है कि कुछ वर्षों के बाद, राज्यों में खुले में शौच करने की स्थिति फिर से वापस आ जाएगी। और यह क्यों कहा जा रहा है, बेगुसराय जिलें में शिहमा ग्राम पंचायत के सरपंच लल्लन कुमार सिंह से पूंछने पर उन्होंने बताया "पिछलें छह महिनों में 80 प्रतिशत से अधिक घरों में शौचालयों का निमार्सण किया गया है।" शौचालयों के उपयोग पर सिंह बताते है कि वह लगातार प्रोत्साहित करते ह ताकि ग्रामीण अपना व्यवहार बदलें और शौचालय का उपयोग करना शुरू कर दें। लेकिन डाउन टू अर्थ के संवाददाताओं ने पाया कि कुछ ही घर शौचालय का उपयोग कर रहें है।जबकि अन्य पहले की तरह खुले में शौच कर रहे हैं। स्पष्ट है कि यहाँ शौचालयों का इस्तेमाल करने के जागरूकता और प्रोत्साहित करने का काम बहुत कम हुआ है। पिछलें वित्तीय वर्ष में राज्य ने सूचना शिक्षा और संचार (आई ई सी) संबंधित गतिविधियों के लिये अपने आवंटित बजट का केवल 0.18 प्रतिशत खर्च किया था।

शौचालयों के निर्माण के लिए बजट का 99 प्रतिशत हिस्सा खर्च किया गया था हालांकि कुछ गाँव ऐसे भी है जिन्हें शौचालय अभियान के तहत धनराशि आवंटित नहीं की गई। शिहमा जैसे ग्राम पंचायत धन प्राप्त करने के मामलें में काफी भाग्यशाली है क्योंकि वे गंगा के पास बसे है। नमामि गंगे के अंतर्गत ऐसे गांवों को शौचालयों का निर्माण करने में प्राथमिकता मिलती है। गंगा से दूर बसे गाँवों को प्राथमिकता से फंड नहीं मिलता। इन गाँवों के लिए राज्य ने 2014 में लोहिया स्वच्छ अभियान (LSBA) का शुभारंभ किया था। लेकिन इस योजना के तहत निधि तभी जाड़ी की जाती है जब पूरा गाँव खुले में शौच मुक्त हो जाता है। अधिकारियों का कहना है कि जब तक वार्ड के सभी घरों में शौचालय नहीं बन जाता तब तक आधिकारिक रूप से धन राशि जारी नहीं हो सकती। इसलिये वित्तीय बाध एक कारण है कि लोग शौचालयों के निर्माण नहीं कर रहे है या खराब शौचालयों के साथ समझौता करने को मजबूर है।

मोदी ने इसकी समय सीमा 02 अक्टूबर 2019 रखी है। जाहिर है, बिहार प्रदेश में शौचालयों के निर्माण के लिए आपाधपी जारी है। इस बड़े आधिकारिक लक्ष्य के बाबजूद शौचालयों के निर्माण के लिये समुदायों की माँग और इसके प्रति सरकार की जवाबदेही में बड़ा अन्तर है। 72 वर्षीय मंसूर अली ने बताया "मैने शौचालय निर्माण केलिए बहुत पहले ही आवदेन अधिकारियों को सौंप दिया था। मेरे बेटों ने डिजाइन के मुताबिक 10 फीट गहरे गड्ढ़े खोदे थे। छह मीने बीत गये है, न तो अधिकारी वापस आए न ही पैसा मिला।"

अली का परिवार बहुत गरीब है जिस कारण वह शैचाल के निर्माण में अक्षम है। अली का दो साल का पोता शौचालय के लिए खोदे गए गड्ढ़े में गिर गया इस कारण उन्हें गड्ढ़ें को बंद करने के लिये मजबूर होना पड़ा शायद ही अली अब कभी शौचालय बनवाए। पांडे कहते है कि गरीबी शौचालयों का निर्माण नहीं करने का मुख्य कारण है।

गंगा को साफ करने के एजेंडे के तहत राज्य में स्वच्छ आभियान चल रहा है। गंगा नदी के पास शौचालयों के निर्माण हेतु अधिकारियों पर बहुत दबाव है। यह समझा जा सकता है कि गंगा का सबसे बड़ा भाग राज्य में है, जिसे भारी संख्या में बहते गंदे नाले प्रदूषित करते है। लेकिन मल प्रबंधन पर शायद कोई ध्यान दे रहा है। बुयान गाँव के एक 55 वर्षीय किसान श्याम लाल अपने नव निर्मित शौचालय से अपशिष्ट जल के प्रबंधन के लिए बने गड्ढ़ो से भूजल प्रदूषित होगा या नहीं। इसी कारण भविष्य में उन्होंने शौचालय का उपयोग बंद करना पड़ सकता है।

पूरे राज्य में लोहिया स्वच्छ अभियान के अंतर्गत शौचालयों के निर्माण पर पूरी तरह ध्यान केन्द्रित किया गया जबकि ठोस कचरे और मल के प्रबंधन जैसे जरूरी आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया गया। श्याम लाल कहते है कि इन गड्ढ़ों की गहराई भूजल के समान स्तर पर है। लेकिन उनका कहना है कि उनके पास 12,000 रुपये की सहायता के अलावा कोई विकल्प नहीं है, वह

शौचालय बनाने के लिए इसी तकनीक को अपना सकते है। गोहरा ग्रम पंचायत के 62 वर्षीय किसान गया प्रसाद बताते है कि पंचायत में शौचालयों का उपयोग कम है हालांकि पुरे ग्राम पंचायत को खुले में शौच मुक्त घोषित किया गया है। प्रसाद आगे बताते है कि सरपंच शौचालयों के लिये आवंटित धन को नियंत्रित करते है और ग्रामीणों को शामिल किये बिना शौचालयों का निर्माण कराया जाता है। गाँव वाले कहते है कि खराब गुणवत्ता हर जगह देखी जा सकती है। स्थानीय समुदायों को शामिल किए बिना शौचालय निर्माण किये जा रहे है।

डाउन टू अर्थ के संवाद दाता के भ्रमण के दौरान गाँवों में रहने वाले ज्यादातर ग्रामीणों ने कहा कि यह कार्यक्रम लक्ष्य का पीछा करने वाला अभ्यास बनकर रह गया है। शौचालयों का उपयोग करने के लिए लोगों के व्यवहार में परिवर्तन पर ध्यान नही दिया गया। शौचालयों की गुणवत्ता सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि इच्दुक लोग शौचालयों का इस्तेमाल कर सके। हरेकुशनपुर ग्राम पंचायत के संरपंच रामा पांडे का कहना है कि निर्माण शुरू होने से पहले लोगों को शौचालय के लाभ के बारे में बताया जाना चाहिए था। लेकिन जिले में दसके विपरीत कार्य हुआ है। पांडे आगे कहते है "कार्यक्रम माँग के आधार पर नहीं चल रहा है।" कटक में स्वच्छ अभियान के सलाहकार तपस्वनी चौधरी की दलील है कि शौचालय निर्माण की गति इतनी तेज है कि जारूकता अभियान शुरू करने के लिए समय नही मिल पा रहा है।

सोकपिट् का ऐसा डिजाइन बना दिया गया है जो समस्या के रूप में उभरकर सामने आया है। बाढ़ क्षेत्र में अपशिष्ट जल प्रबंधन पर बहुत कम काम किया गया है, जिसे स्थानीय और यहाँ तक कि ब्लॉक अधिकारी भी गलत मानते है।

निष्कर्ष

तकनीकी विकल्प केवल किफायती ही नहीं बल्कि मिट्टी की थिति के अनुसार भी होना चाीए। ठोस कचरे और अपशिष्ट जल एकत्र करने के लिए विशाल गोबरों के निर्माण करने की प्रवृति भी होती है, जो अपशिष्ट जल प्रबंधन के समझ की कमी को दर्शाती है। जहाँ एक ओर शौचालयों का निर्माण युद्ध स्तर पर किया जा रहा था, वहीं दूसरी और अपशिष्ट जल प्रबंधन की समय की कमी भी दिखाई दे रही थी। इस कारण अंत में शौचालय का उपयोग नहीं होगा और ये उस जगह को मलिन भी कर सकते है।यह खुलें में शौच मुक्त उन्मूलन के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर पायेगा।

केंद्रीय पेय जल और स्वच्छता मंत्रालय के अनुसार, जिले ने पहले ही सभी घरों के लिए शौचालय का लक्ष्य हासिल कर लिया है लेकिन मिट्टी और पानी को दूषित होने से बचाने के लिए सम्पूर्ण स्वच्छता के मूल उद्देश्य से भटक गया है।

अत: प्रदुषण से बचने के तरीकों और शौचालयों की स्थिति पर ग्रामीणों के स्थानीय ज्ञान का प्रयोग स्वच्छ भारत अभियान के अंतर्गत नहीं किया गया क्योंकित अधिकारियों ने शौचालयों के निर्माण का कार्य ठेकेदारों को दे दिया। ब्लॉक अधिकारियों को केवल (LSBA) परियोजनाओं के साथ ही शामिल किया गसा है।

संदर्भ

1. शर्मा, गोविन्द : योजना, नवम्बर 2007
2. प्रज्ञा (सम्पादक) : शाचालय (प्रतीकात्मक तस्वीर) आज तक इन नई दिल्ली, 14 सितम्बर 2018
3. सेन गुप्ता, सुश्मिता और वर्मा, रश्मि (संवाददाता) : डाउन टू अर्थ, 17 अगस्त, 2017
4. Bakshi D. Sinha and PSK Menon, Environmental sanitation, Health and Panchyati Raj Institutes, Concept. Publishing company, New Delhi 1996.
5. Surat Singh, Total Sanitation Campain - An Evalualative study of District Karnal Haryana Institute of Rural Development, Nilokheri 2006.

मानव जीवन में मानवाधिकार का महत्व: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० शिव कुमार पासवान

पी-एच.डी., पी.डी.एफ. (इतिहास), ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

मानव कल्याण के विश्व दृष्टिकोण का विचार प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सर्वाधिक रहा है, वसुधैव कुटुम्बकम सर्वो भवन्तु सुखिन, जैसी विश्व मानवता विचारधाराओं का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में हुआ जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का केंद्रीय आधार है। इन्हीं जीवन मूल्यों के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र को अपनाया गया। मानवाधिकारों के इस सार्वभौमिक घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद है जिसे "मानवता के मैग्नाकार्टा" कहा जाता है।

मानवाधिकारों के अन्तर्गत वे सभी अधिकार सम्मिलित किये जाते है जो व्यक्ति को उसमें निहित मूल प्रवृति के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। मानव को खुशी और शान्तिपूर्वक जीवन जीने के अधिकारों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ही मानवाधिकार की संकल्पना की गई। इसके विधेयक में समानता, शिक्षा, धर्म, सामाजिक सुरक्षा, मानव व्यवहार, न्याय, आत्मनिर्णय का अधिकार धर्मातंरण संरक्षण और आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के सभी धर्मातंरण संरक्षण और आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के सभी अधिकार सम्मलित है।[1]

शान्ति का आकांक्षी भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का एक सक्रिय सदस्य रहा है। मानवाधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्वभौमिक घोषणा का भारत ने यथोचित सम्मान किया है, भारत का संविधान उन सभी विचारों, आदर्शो, मूल्यों मानकों और शब्दावलियों का प्रशसनीय ढ़ंग से उल्लेख करता है। जिनका वर्ण मानवाधिकारों के यू.एन. चार्टर में है। हमारे संविधान के प्रस्तावना के लक्ष्य वास्तव में समस्त विश्व के लिए प्रेरेणा की किरणें हैं। हमने मूल अधिकारों के अलावा कल्याणकारी राज्यों के लक्ष्यों को भी अपने संविधान में सम्मिलित किया है। प्राचीन सभ्यताओं की भूमि भारत में मानवीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कई फैसलों में समय-समय पर मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को उद्धृत किया है। इन निर्णयों के जरिये उस लोकतांत्रिक भावना को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है। जो वास्तविक रूप से सामाजिक न्याय के प्रवर्तन में सहायक है और जो किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र का अनिवार्य लक्षण भी है।[2]

प्राय: प्रत्येक राज्य के शासनतंत्र का यह सर्वप्रमुख दायित्व होता है कि वह सदैव अपने नागरिकों के लिए एक अपराध एवं भयमुक्त वातावरण बनाए रखे तथा इस बात के सर्वोतम प्रयास करें कि जो व्यक्ति समाज के भीतर रहकर साशय विधि का उल्लंघन करते हैं और तदनुसार कानून व्यवस्था, लोक शान्ति एवं सामाजिक सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती बन जाती है, वे किसी भी अवस्था में अदंडित न रह जाए। नि:संदेह भारत वर्ष में भी यही व्यवस्था पुरातन काल से निरन्तर अपनाई जाती रही है, जिसके स्पष्ट दर्शन हमें आधुनिक भारतीय अपराध शास्त्र के अन्तर्गत भी प्राप्त होते हैं, चाहे भले ही मानव समुदाय पर तब से आज तक किसी भी वंश, जाति, सम्प्रदाय या प्रणाली का शासन क्यों न रहा हो।[3] संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में कहा गया है कि सभी मानव "मुक्त पैदा हुए है और गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से समान हैं तथा सभी को बिना किसी प्रकार के भेदभाव के जैसे नस्लवाद, जातिवाद, रंगभेद, धर्म, भाषा, राजनीतिक व अन्य मत सामाजिक उत्पति, सम्पति, जन्म व अन्य स्तर के

भेदभाव के बिना घोषणा में वर्णित स्वतंत्रता और हक पाने का अधिकार है।" 19वीं एवं 20वीं सदी में महात्मा गाँधी मानवाधिकारों का हनन रोकने वाले अग्रणी नेता माने जाते है। शुरू में दक्षिण अफ्रीका और बाद में भारत में उन्होंने ऐसे करोड़ों लोगों के लिए नए युग का सूत्रपात किया जो बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित थे। महात्मा गाँधी ने शोषित मानवता की आवाज बुलन्द करने के लिए एक संगठित आन्दोलन प्रारंभ किया। उन्होंने लोगों को आह्वान किया कि वे अपने अधिकारों को पाने के लिए निर्भय होकर बहादुरी के साथ संघर्ष करे।[4] महात्मा गाँधी ने भारत में जिस तरह विभिन्न सामाजिक उद्देश्य जैसे अस्पृश्यता उन्मूलन और मंदिरों में दलितों के प्रवेश के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया, वह निश्चय ही आधुनिक भारत में मानवाधिकारों के इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

आज के वर्तमान सामाजिक परिपेक्ष्य में विभिन्न प्रकार का बिमारी समाज के लिए घातक हो गई है। पिछले कुछ वर्षो में कई अंतराष्ट्रीय करारों के माध्यम से एच.आई.वी. एवं एड्स से संबंधित मानवाधिकारों की पूर्ण एवं व्यापक पहचान की गई हैं।

एच.आई.वी./एड्स जैसी घातक बीमारी के संदर्भ में अभी तक इलाज की सहज पहुंच के बारे में संयुक्त राष्ट्र आयोग के मानवाधिकार प्रस्ताव 2011/33 में यह बात स्वीकारी गई है कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के सर्वोच्च मानदंडों को प्राप्त करने के लिए उपचार सुविधाओं तक पीड़ित व्यक्तियों की सहज पहुंच अति आवश्यक है। प्रस्ताव में सदस्य राष्ट्र को उद्बोधित करते हुए कहा गया है कि वे ऐसी नीतिया अपनाएं जिससे एड्स संबंधित आवश्यक उपचार की उपलब्धा पर्याप्त स्तर तक और इस प्रकार विस्तारित की जा सके जिससे यह सभी को सुलभ हो सके। साथ ही एड्स/एच.आई.वी. के संबंध में 2001 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष अधिवेशन में एच.आई.वी./एड्स और मानवाधिकारों के बीच अभिन्न संबंध की पहचान की गई।[5]

सम्पूर्ण विश्व आज हर मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए प्रयासरत दिखाई देता है परन्तु एक ऐसा वर्ग शनैः शनै अपने अधिकारों का हनन होते हुए देख रहा है और वह वर्ग एच.आई.वी.एवं एड्स से ग्रस्त व्यक्तियों का। आज एड्स से ग्रसित व्यक्ति एवं समुदाय ऐसे हैं। जिन्हें बराबरी के बुनियादी आर्थिक और सामाजिक अधिकारों प्राप्त नहीं है एड्स और मानवाधिकार ये दो बिन्दु अपनी संवेदनशीलता के साथ-साथ एक दूसरे से जुड़े हुए भी हैं।

मानवाधिकार और उसकी रक्षा एक सार्वभौमिक तथ्य है। मानवाधिकार के संरक्षण व उनके प्रति आदर व चिंता आज की समय की मांग है इन अधिकारों की रक्षा की एकमात्र गारंटी परस्पर सद्भाव ही है जहाँ यह सद्भाव नहीं होगा वहाँ समाज में रहने वाला व्यक्ति एक दूसरे से असहिष्णुता का व्यवहार करने लगते हैं वहीं पर सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता है। सम्पूर्ण स्थिति पर यदि दृष्टि डाली जाय तो यही लगता है कि मानवाधिकार का सबसे बड़ा शत्रु आतंकवाद है मानवाधिकार के प्रति किसी भी व्यक्ति की उदासीनता का सबसे मुख्य कारण है- शिक्षा का अभाव! सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद भी शिक्षा में विशेष सुधार नहीं हुआ है। इसी कारण अधिकांश लोग अपने-अपने अधिकारों के विषय में जानते ही नहीं हैं तो वे इन अधिकारों सभ्य समाज में कहीं आवाज उठाई जाती है परन्तु ऐसे अधिकार प्रायः रौंद दिये जाते है जिसका कारण वर्त्तमान की सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में कमी का होना है। मानवाधिकार आयोग को आम आदमी की अन्तिम आस्था के रूप में देखा जाता है। भारत में भी मानवाधिकार हनन के अधिकांश मामले दूसरे देशों की तरह पुलिस से ही संबंधित है। इसका सबसे बड़ा कारण अंग्रेजों द्वारा 1861 में बनाया गया पुलिस कानून है 1861 में अंग्रेजों ने जो पुलिस कानून बनाए थे उनकी पृष्ठभूमि में हमारा स्वतंत्रता संग्राम था जिसे अंग्रेजों ने गदर अथवा सैनिक विद्रोह कह कर बदनाम किया था।[6] सामाजिक अन्याय से लड़ने और उससे निजात पाने के लिए वैधनिक या कानूनी उपाय करने के साथ ही सकारात्मक भेदभाव की नीति, समाज के उपेक्षित वर्गो को मुख्यधरा में लाने का हमारी शासन व्यवस्था का प्रयास है लेकिन इसको लागू करने का दायित्व उन्हीं लोगों के हाथ में हैं जो इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग होने की वजह से पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं यही कारण है कि संविधान में सामाजिक न्याय की व्यवस्था को स्वीकार किए जाने के 60 वर्षो के बाद भी हम उस व्यवस्था को स्थापित करने की दिशा में अभी भी प्रयासरत हैं। इसके लिए आर्थिक और अन्य तरह के उपाय भी किए गये हैं। तमाम योजनाएं शुरू की गई हैं। सामाजिक अन्याय की गिरफ्त में आए लोगों की देखभाल हो सके। उन्हें नौकरी के अवसर सस्ते ऋण तथा आवश्यक सुविधाऐं जुटाने का प्रयास जारी है पर इनको लागू करना और अच्छी तरह लागू करना ताकि केवल सुपात्र को ही इसका लाभ मिले, एक बड़ी चुनौती साबित हो रही हैं। बहुत से आवांछित एवं अपात्र लोग इस लाभ की बहती गंगा में हाथ धे रहें हैं। जो पात्र नहीं हैं उन्हें लाभ मिल रहा है और असली हकदार हैं वे उससे वंचित हो रहे हैं।

सामाजिक भेदभाव की जड़े गलत परंपराओं व्यवस्थाओं में तो हैं ही साथ ही आज की अर्थ लोलुप मानव प्रवृति में भी हैं। आज जितने घोटालों और भ्रष्टचार के कारनामे हो रहें हैं, वे यही बताते हैं कि आर्थिक उन्नति के चलते आर्थिक शोषण और भ्रष्टाचार के पैमाने और अवसर भी उतनी ही तीव्रता और व्यापकता से पैदा हो रहे हैं।[7]

मानवाधिकार की अवधारणा कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति का एक प्राकृतिक अधिकार है कि उसे सम्मानपूर्ण और गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान किया जाए इस प्रकार मानवाधिकार व्यक्ति के गरिमामयी जीवन के लिए आवश्यक हैं। ये अधिकार व्यक्ति के पर्याप्त विकास और खुशहाली के भी जरूरी है। मानवाधिकार को सर्वव्यापी व्यवस्था का उद्देश्य सभी समाज में व्यक्ति के सम्मानपूर्ण जीवन के लिए परिस्थितियों का पुनिर्माण और पुनरीक्षण करना है। मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति को मानवोचित गुण होने के कारण प्राप्त हो जातें हैं। ये किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना प्रत्येक को न्यूनतम जीवन स्तर की गारंटी देते हैं। महिलिाऐं विश्व की आबादी का आध हिस्सा हैं। बाबजूद इसके हम देखतें हैं कि महिलाओं के मानवाधिकार कर हनन और लिंग आधारित हिंसा व्यापक पैमाने पर जारी हैं भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रति 24 मिनट एक महिला यौन शोषण प्रति 43 मिनट में अपहरण प्रति 54 मिनट में बलात्कार का शिकार हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार प्रति 8 सेकेण्ड में एक महिला यौन शोषण तथा प्रति 6 मिनट में एक महिला का बलात्कार होता है। महिलाओं के मानवाधिकारों की हनन उसके जन्म लेने से पहले ही कन्या भ्रूण हत्या के रूप में आरंभ हो जाता है। भारत में भ्रूण जॉच पद्धति के प्रारंभ होते ही वर्ष 1984 में ही 40 हजार भ्रूण हत्या के मामले दर्ज किये गये।[8]

स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा मानव के सामानपूर्ण जीवन का एक मूलभूत आवश्यक तत्व है। यह व्यक्ति के उन मानवीय अधिकारों के संबंध है जिसके बिना व्यक्ति अपने अन्य मानवीय अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकता है। स्वास्थ्य एवं सुरक्षा मानव अधिकार का मूल है और चिकित्सकीय उपेक्षा इस अधिकार पर कुठाराघात करता है। स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य रक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार है जिसका संरक्षण किया जाना आवश्यक है।

मनवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 के अनुच्छेद 3 में सभी व्यक्तियों के लिए जीवन के अधिकार की बात की गई है, जिसमें गरिमा पूर्ण जीवन समाहित है। अगर कोई चिकित्सा व्यवसायी मरीज के जीवन के साथ खिलवाड़ करता है तो वह मरीज के प्राण व दैहिक स्वतंत्रता का हनन है। इसी के अनुच्छेद 25के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उपयुक्त हो। उसमें स्वास्थ्य संबंधी देखरेख की उचित सुविधा तथा आवश्यक सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था का अधिकार शामिल है।[9]

अत: मानवधिकार के अन्तर्गत वे सभी अधिकार शामिल किये जाते हैं जो व्यक्ति एवं समाज के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अपने अनेक कार्यक्रमोंव नीतियों की सहायता से जनता में विश्वास की आशा जगाई है। हमारी संस्कृति के सभी धर्म ग्रन्थ स्वस्थ परंपरा, स्वस्थ्य संवाद और स्वास्थ्य जीवन के साथ सबके अभ्युदय की कामना करते हैं।[10]

आज मानवाधिकार को आम जनता तक पहुँचाने में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है। मिडिया ने एक मई संस्कृति को विकसित करने की कोशिश शुरू की है जिसे हम सशक्तीकरण की संस्कृति भी कह सकते हैं आज वर्तमान समाज जागरूक है जिसमें मानवाधिकार की अहम भूमिका है मानव को सुखी और शान्तिपूर्ण जीवन जीने के अधिकारों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ही मानवाधिकार के बदौलत ही पूरे विश्व में शान्ति एवं सौहार्द का माहौल बन सकता है।

संदर्भ सूची

1. मंयक श्रीवास्तव, मानवाधिकार आलेख, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली मार्च 2008, पृष्ठ 1446
2. वहीं पृष्ठ - 1451
3. दिनेश मोहन चड़ठा, मानवाधिकार आलेख, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर - 2008, पृष्ठ-479
4. डा. जसवन्त सिंह, महात्मा गाँधी और मानवाधिकार, प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर-2006, पृष्ठ-848

5. डा. ऋतु सारस्वत, एड्स की रोकथाम में मानवाधिकार, एक सफल प्रयास कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, दिसम्बर-2007, पृष्ठ-6
6. अमरेन्द्र कुमार मिश्र, मानवाधिकार-मानवमूल्यों का रक्षक (आलेख), कुरूक्षेत्र प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, दिसम्बर-2007, पृष्ठ-26
7. जगदीश प्रसाद मीणा, मानवाधिकार आलेख, 'योजना' प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अप्रैल-2011, पृष्ठ-21-22
8. पिंकी पूणिया, महिला अधिकार बनाम मानवाधिकार, योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अप्रैल-2011, पृष्ठ-35
9. प्रदीप कुमार मरीजों के मानवाधिकार (आलेख) योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अप्रैल-2011, पृष्ठ-37-38
10. अंशु गुप्ता मानवाधिकार तथा मीडिया, योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अप्रैल 2011, पृष्ठ-41

मार्कण्डेय पुराण वर्णित श्रीमदालसा चरितस्य आख्यान

डॉ० जय प्रभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक साहित्य (अंशकालिक), राम औतार गौतम संस्कृत महाविद्यालय, अहल्यास्थान, दरभंगा

मार्कण्डेय पुराणे श्रीमदालसाचरितस्य आख्यानम् सर्व प्रसिद्धम् आख्यानम् विद्यते। आलोच्य पुराणानुसारेण मदालसा विश्वावसु महोदयस्य परमज्ञानी कन्या विद्यते। सा परम विदुषी पुत्री अस्ति। सा वर्णधर्मस्य, आश्रमधर्मस्य, राजधर्मस्य, लोकधर्मस्य, वेदधर्मस्य, कर्मधर्मस्यपूर्ण ज्ञात्री विद्यते। काम क्रोध-लोभ-मोह-मद मात्सर्यादीन् सर्वान मानवस्य दुर्गुणान् दमयन्ती।[1] सा बुद्धि-चित्ति-वृत्ति-प्रवृत्यादयोपरि सर्वदा अंकुशम् करोति। सा प्रवृत्तिं निवतौ निवृतिंश्च प्रवृत्ता आस्थान्वियायते। सा गृह-नगर-ग्राम-देश-विदेश-स्वदेशेषु पूर्ण परिचिता विद्यते। कर्म-कर्म-विकर्म सुकर्मादीनां-पूर्ण-ज्ञात्री वत्तते। स्वधर्म-परधर्म-विधर्म-सहजधर्म-राजधर्म-आपद्धर्मादीनांपूर्णज्ञात्री विधते। माता, पिता, पति, स्वश्रु, श्वशुर, राजा, प्रजा, स्वजन, सुजन, विजन, अरिजन, परिजनादिभिः सह समुचिता व्यवहार कुशली विद्यते।[2] सा सदधन्, चिद्धन, आनन्दधन-एकात्मक परम- सच्चिचदानन्दे पूर्णश्रद्धां विश्वासं एकान्तनिष्ठा च सर्वदा रक्षति। स्वयं सर्वदा तस्योपरि परिनिष्ठिताम् करोति। मदालसा रूप यौवनेन अतिदिव्य नारी विद्यते किंतु स्वकीय सौन्दर्य प्रति कदापि गर्वम् न करोति। मदालसा मायावी राक्षसमुखात् पति-मृत्यु-सामाचारं ज्ञात्वा स्वकीय-प्राणं त्यजति। श्रृत्वा अतिदुखो भवति। किंतु पुनर्विवाहस्य कामनंन करोंति।[3] मार्कण्डेय पुराणानुसारेंण तस्य मृत्युवार्ता श्रवणोत्तरमपि सुरक्षितान्वस्वप्राणान् दृष्ट्रवा स आत्मानं निर्दयं निष्ठुरं नृशंसं मत्वा स्वभर्त्सनां चकार। यथा्

तत्याज जीवितं साधवी र्धिमां निष्ठुरमामसम।

मत्कुते निधनं प्राप्तां याज्जीवाम्यति निर्घृण:।।[4]

मदालसा संबंधो मार्कण्डेयपुराणे महर्षिर्व्यासोऽपि आदर्शस्य स्थापनायै प्रतिवद्धोदृश्यते। अस्मिन्पुराणे ऋतुधवजस्वारोच्युत्तमानां चरित्रवर्णनेष्वेकपत्नीत्वस्य प्रतिष्ठापनाय विविध विचारा: प्रदर्शिता: सन्ति।

"करूणा वरूणा लसे प्रिये

शुशुभे सा सुषमा मदालसा।।[5]

भगवान आशुतोष शिवस्य महात्म्येन मदालसा पुनर्जीवनं प्राप्नोति तथा स्वीकय पत्या सह असीम प्रेम करोति। अस्य प्रेम्ण: परिणामोपि अति सुखावहो भवति। मदालसा काल क्रमेण प्रथमारभ्य: चतुर्थ पुत्रस्य जन्मम् ददाति। तस्य पुत्र: क्रमश: विक्रान्त: सुबाहु, शत्रुमर्दन: एवञ्च अलर्क रूपेण सुविख्यातो भवति। अलर्क: कनिष्ठ पुत्र: पितु राजस्यस कार्मभारं ग्रहणम् करोति। सर्वेषां पुत्रणाम् उपदेशिका माता मदालसा विद्यते।[6]

मार्कण्डेय पुराणे देवीमदालसा चरित कथा अतिरोचका विद्यते।

अस्मिन् सत्ती महत्त्वस्य वर्णनम् अति रोचकं विद्यते।

मार्कण्डेयपुराणानुसारेण राजा विश्वासु महोदयस्य पुत्री मदालसा विदुषी कथ्या आसीत्। सानीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, एवं ब्रह्मविद्यायाम् पार्ंगता आसीत्। वर्णधर्म एवञ्च आश्रमधर्मे सा आस्थान्विता आसीत।[7] वज्रकेतु दानवस्य पुत्र: पाताल केत्वेन तस्या अपहरणम्

कतोऽस्ति। नृपः शत्रुजितस्य पुत्रः कुवलयाश्व; तधवजेन दानवस्य वधः कृतः एवञ्च दानवसेनाया युद्धे परास्ताः। तेन मदालसाया विधिवत् विवाहम् कृतः कस्याचित् दुरात्मा दानवेन छलपूर्वकं गन्धर्व राजस्य पुत्री धर्मशीला मदालसा देव्याया पतिम् मृत्यु सूचना प्रसारिता। देवी मदालसा स्वकीय पत्युः मृत्यु समाचारं श्रुत्वा पतिवियोगस्य असहय वेदनायां देहत्यांग कृतवती। तस्याः पतिरपि पत्नी रूपे अन्य स्त्रिया वरणम् न कृतवान्।[8] यथा –

"अस्मिञ्जन्मानि नान्या में भवित्री सहधर्मचरिणी।

तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्वतनयामहम।।

न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिरिति सत्यं मयोदितम्।

सहधर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्तवा गजगमिनीम्।।[9]

यद्यपि ऋतुध्वजः पत्नीमनुसृत्य प्राणत्यागं न करोति तथापि सोऽन्ययोजित भोगस्य त्यांग कृत्वेकेपत्नीत्वमायरति। स उघोषित यत् नान्या स्त्री मदालसायाः स्थानं ग्रहीतुमर्हति। ऋतिध्वजः स्वप्रतिज्ञां पूर्णरूपेण पालयति च।

अनन्तरम् मार्कण्डेय पुराणानुसारं नागराज अश्वतरेन स्वकीय द्वौ पुत्रे माध्यमेन सती-साधवी बाला मदालसा वियोगस्य एवञ्च विरहातुरः ऋतध्वजस्य एक पत्नी व्रत संकल्पस्य वृत्तान्तम् श्रुत्वाप्लक्षावतरण नामक तीर्थे दुश्चर तपं कृत्वा सरस्वती देवीम् प्रसन्नो कृतः। देवी सरस्वती देव्या वरदानस्वरूपः पद, ताल एवंच स्वराद्याम् अद्भुत दक्षतां प्राप्य अपूर्वः संयमः एवं च श्रवपूर्वकम् सत्पस्वरेण गानम् कृत्वा भगवान् शिवस्य अराधना कृतः। भगवान शिवः तस्य तपस्यया कारणेन प्रकटो भूत्वावरम् बूहि इत्य कथयत्। नागराजेन वरं याजना क्रमे कथितः राजकुमार कुवलयाश्वस्य पत्नी मदालसा यस्यामवस्थायाम् देहत्यागं कृतवती तस्यामवस्थायाम् मदीय कन्या रूपेण जन्म ग्रहणं करोतु। सा पूर्व शील, विनय सौन्दर्यादि गुणेन सम्पन्न जातिस्मरा योगिनी एवंच योगजननी रूपेण प्रकटं भवतु।

"गृहिणी सचिव सखी मिथः

प्रिया शिष्यालिलिते कलाविधै।।[10]

आशुतोष प्रभु शिवस्य प्ररणानुसारेण नागराज अश्वतरेन श्राद्धकाल समुपस्थिते सति भगवान शिवस्य ध्यानेन तल्लिनम् भूत्वा पितरस्य यजनं कृत्वा मध्यम पिण्ऽस्य भोजनम् अकरोत्। तत्क्षणः श्वासस्य निश्रण समये नागराजस्य मध्यफणेन पूर्ववत् देवी मदालसाया प्रादुर्भावोऽभवत्।

कालान्तरे राजकुमार ऋतधवजम् अद्भुतअह्लादपूर्वकम् नागराजेन निजपुत्री मदलसाम् समर्पित्वा स्वयं कृतार्थः अभवत्।

पुनर्जन्मे मदालसा प्रथमारभ्यः चतुर्थ पुत्रस्य जन्म दतवती। तेषा क्रमशः नामोस्ति विक्रान्तः सुबाहु, शत्रुमर्दनः एवञ्च अलर्कः।

देवीमदालसा अस्य, रूदन, कीडनादि अवसरे स्वकीय एकःएक पुत्रम् आत्मगीत माध्यमेन प्रवृत्तिमार्गेन विरक्तम् कृत्वा निवृत्तिपरायण यतिधर्म प्रतिष्ठिता। किंतु स्वकीय अन्तिम पुत्र अलर्कम प्रति तस्या आकर्षणम् अधिकमस्ति। तस्य कृति राजधर्मस्य उपदेशम् आधिकम दतवती। सः एव पितु राजकार्यस्य वास्तविक अधिकारी अभवत्। देवी मदालसा स्वीकयं पुत्रम् अलर्कम प्रतिकथयति काकवत् आलस्य रहितः, कोकिलवत् सञ्चयशील सर्पवत् शत्रुजयः, भयूखत निधि विस्तारक, हंसवत गुणग्राहकः, कुक्कुरवत् प्रातः जागरणशीलः, लोह स दृश क्लिष्ट एवंच विविध कर्मसम्पदकः अलूकवत् आक्रमण शीलः, अग्निविषफुर्लिवत् प्रकाशः एवंच व्यापनशीता, शाल्मलीबीजवत् प्रसरणशीलस्य उपदेशः कथितः।[11]

अनेन उपदेश क्रमेण्पुनः मदालसा स्वकीय कनिष्ठ पुत्रं प्रतिकथयति-शार्दूलवत् पराक्रम शीलता पदमवत् अलिप्तता एवञ्च तावपनोदकता, चन्द्रवत अह्लादकता एवञ्च सूर्यवत् प्रकाशशीलता, गर्भिणीया पयोधर तुल्या भविष्य निधि सञ्चयशीलताया उपदेशऽपि पदत्त।

"कर्मण्येवाधिकाकाररत्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्म फल हेतु र्भूर्मा ते सृंगोऽस्त्वकर्मणि।।[12]

प्रतिदेव ऋतध्वजस्य सार्थ्वे वनगमन समयेनपूर्वम् सतीदेवी मदालसा निज पुत्र अर्लकम् अध्यात्मसन्देशयुक्तः एक स्वर्णमयी अंगूष्ठिका प्रदत्त वति। विपन्नता दशायामपि तस्ये सन्निहित सन्देशानुरूपम् कार्य कर्त्तुभ् उपदेशयति। यथा:

"सडग: सर्वात्मना त्याज्य: स चेत्तयक्तुं न शक्यते।

सभ्दि: सह स कर्त्तव्य: सतां सडगो हि भेषजम्।

काम: सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्ते न स:।

मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम।।[13]

मार्कण्डेय पुराणस्य मदालसा चरित्रम् आख्यानम् सर्वेषां मानवाननांकृते अनुसरणीय विद्यते। अस्य चरित्रम् अभ्युदय एवञ्य नि: श्रेयस मार्गस्य पथ पद्रर्शकं विद्यते।

संदर्भ सूची

1. श्री मदालसा चरित 7/02/2
2. श्री मदालसा चरित 2/20/22
3. श्री मदालसा चरित 6/24
4. मार्कण्डेय पुराण 21/21
5. मदालदसा चरित 11/22
6. मदालदसा चरित 1/31/35
7. मदालदसा चरित 1/19/21
8. मदालसा चरित 1/22
9. मार्कण्डेय पुराण 22/21/22
10. रघुवंशम् महाकाव्य 8/67
11. मदालसा चरित 8/2/6
12. गीता 2/47
13. मार्कण्डेयपुराण 34/23/24

मत्स्य उद्योग में बिहार सरकार की भूमिका

उमेश कुमार सिंह

वाणिज्य संकाय, जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा, सारण।

बिहार राज्य एक पिछड़ा राज्य है। यहाँ की जनता के पास रोजगार के रूप में साधन की कमी है। बिहार राज्य के बँटवारें झारखण्ड के रूप में होने के बाद खनिज सम्पदा की कमी हो गयी। ऐसी परिस्थिति में बिहार राज्य के लिए मत्स्य उद्योग एक वरदान के रूप में सिद्ध हो सकता है। बिहार राज्य बेरोजगारी, गरीबी साधन विहीन राज्य होने के कारण यहाँ के लोगों का भोजन कम कैलोरी युक्त होता है। गरीबी के कारण यहाँ के लोग प्रोटीनयुक्त भोजन भी नहीं करते है, जिसके कारण वे बीमार पड़ते है और जल्द कम उम्र में ही मरने को मजबूर हो जाते है। ऐसी परिस्थिति में मत्स्य उद्योग से उन्हें प्रोटीनयुक्त भोजन की आवश्यकता की पूर्ति आसानी से हो सकता है, साथ ही यहाँ के उत्तर बिहार का अधिकांश क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित रहता है, जिसमें अधिक समय तक बाढ़ का पानी भरा रहता है, इसलिए उस भूमि पर मत्स्य उद्योग से नवजवानों को अधिक रोजगार मिल सकता है। तथा बिहार राज्य की आर्थिक स्थिति भी सुधार सकती है। इन्हीं सब बातों पर विशेष ध्यान देकर बिहार सरकार इस उद्योग को बढ़ाने के लिए सरकारी प्रयास (प्रावधानों एवं प्रशिक्षण) की व्यवस्था की गई है।

बिहार के अन्दर मछली की माँग एवं राज्य में मछली की उत्पादन के बीच भारी अन्तर है। इस अन्तर को भरा जा सकता है और यह अन्तर बिहार के बेरोजगार युवकों के लिए प्रसन्नता की बात यह है कि मछली पालन को लेकर बिहार सरकार प्रशिक्षण एवं अनुदान दोनों स्तरों पर मदद कर रही है। यदि बिहार में जो युवक बेराजगार है उन्हें सरकारी सहायता को देखते हुए समय का लाभ उठाना चाहिए एवं देश को आर्थिक उन्नति की ओर ले जाने में सहयोग प्रदान करना चाहिए।

सरकार मछली पालन का प्रशिक्षण राज्य के बाहर और राज्य के अन्दर बिल्कुल नि:शुल्क दे रही है। चैर, मौन, टाल जैसी आर्द्धभूमि पर मछली पालन के लिए आसानी से सरकार सहायता मिल सकती है। चौर में आमतौर पर पर्याप्त पानी लगा रहता है। मछली पालन से चौर की जमीन और पानी दोनों का सही उपयोग हो सकता है। मछली पालन के क्षेत्रों में लगभग डेढ़ करोड़ लोगों को देश में रोजगार प्रदान किया गया है। संयुक्त राष्ट्र की खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार आजादी के बाद से अब तक मछली उत्पादन में दस गुणा वृद्धि हुई है। मछली पालकों के लिए सरकार प्रशिक्षण के साथ-साथ तालाब का निर्माण एवं बीज के सुविधाएँ भी प्रदान करती है। इस सुविधा को प्राप्त करने के लिए मछली पालकों को मालगुजारी की रसीद, भूमि स्वामित्व प्रमाण-पत्र, पासपोर्ट साईज के दो फोटो और फोटोयुक्त पहचान पत्र देना होता है। इन समस्त कागज के साथ-साथ आवेदन किया जाता है, उस आवेदन में बैंक खाता, आई.एफ.एस.सी. कोड के साथ आवेदन होना चाहिए। आवेदन जिला मत्स्य पदाधिकारी के माध्यम से करना चाहिए। आवेदन की जाँच के बाद आवेदक को मछली पालन अनुदान की राशि दी जाती है। मत्स्य पालन विभाग सरकारी अनुदान का लाभ देने के लिए किसी भी प्रकार की तकनीकी सहायता योजनाओं की जानकारी के लिए एक अधिकारी को जिम्मेदारी सौंपी गयी है। जिसके माध्यम से मत्स्य उद्योगकर्त्ता जानकारी प्राप्त कर सकते है। इसके साथ-साथ सरकार मत्स्य प्रशिक्षण केंद्र मीठापुर, पटना में भी यह सुविधा प्रदान की है, जिसके माध्यम से मत्स्य उत्पादन से संबंधित विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते है।

मत्स्य पालन योजना के संबंध में सरकारी प्रावधान

मत्स्य किसान विकास ऐजन्सी का मुख्य उद्देश्य बेरोजगार व्यक्तियों को मछली पालन का प्रशिक्षण देकर उसको ग्राम पंचायत से तालाब पट्टे पर दिलवाकर या अपनी बेकार पड़ी जमीन पर निजी भूमि में तालाब बनाकर मछली पालन उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए यह एजेन्सी कार्य करती है, जिससे राज्य में उत्तम स्वरोजगार का विकास हो सके।

मत्स्य पालन स्वरोजगार अपनाने के लिए किसी भी शौक्षणिक योग्यता या आयु की पाबंदी नहीं है। मत्स्य पालन करने वाले व्यक्तियों का मत्स्य विभाग द्वारा दिए जाने वाले मछली पालन प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है, जिसके लिए मत्स्य पालक को 50 प्रतिदिन की दर से प्रशिक्षण भत्ता भी दिया जाता है।

मत्स्य किसान विकास एजेन्सी द्वारा मत्स्य पालन उद्योग सम्बद्ध किसानों को सहायता देने हेतु मुख्य रूप से निम्न योजनाएँ चलाई जा रही है–

1. पंचायती तालाबों को पट्टे पर दिलवाकर मत्स्य पालन कराया जाता है। पट्टे 5 से 10 वर्षों के लिए निबंधन किया जाता है।
2. मत्स्य पालकों को पट्टे पर लिए हुए तालाब सुधार कार्य जैसे तालाब की गहराई बढ़ाने, बाँध बनवाने तथा आउटलुक आदि बनवाने के लिए 60,000 प्रति हेक्टेयर पर बैंक ऋण दिलवाया जाता है तथा उस पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
3. खाद्य खुराक व बीज आदि के लिए मत्स्य पालकों को 30,000 बैंक ऋण तथा उस पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।

मत्स्य किसान विकास एजेन्सी को मछली पालकों को उपयुक्त सुविधा प्रदान करने के लिए निम्न दास्तावेजों को देना होता है–

1. शपथ-पत्र
2. इकरारनामा (इकरारनामा मत्स्य पालक व ग्राम पंचायत के बीच होनी चाहिए)।
3. तालाब की नकल जमाबंदी व हक शिजरा।
4. दो पासपोर्ट साईज फोटो।
5. पट्टा धनराशि की रसीद (फार्म 4 पर)।
6. नकल प्रस्ताव ग्राम पंचायत तालाब पट्टे पर देने वाला।
7. प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र।

निजी भूमि में नए तालाब का निर्माण

मत्स्य पालक को अपने भूमि में मछली तालाब बनाने हेतु निम्नलिखित सहायता उपलब्ध कराई जाती है–

1. तालाब खुदाई–इसके लिए मत्स्य पालक को निजी भूमि में तालाब की खुदाई हेतु 2,00000 रू. प्रति हेक्टेयर की दर से बैंक ऋण दिया जाता है, उस पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
2. खाद्य, खुराक व बीज आदि पर सहायता–इस हेतु किसानों को मछली तालाब में योजना के अनुसार खाद्य, खुराक और बीज के संबंध में व्यवस्था के लिए बिहार सरकार द्वारा 30,000 रू. का बैंक ऋण की सुविधा जिस पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
3. मत्स्य बीज हैजरी का निर्माण–इस हेतु एक हेक्टेयर निजी भूमि से चयनित मदद से 20 हैजरी का निर्माण करने के लिए 80,000 रू. का बैंक ऋण की सुविधा तथा उस पर 10 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
4. एकीकृत मछली पालन हेतु सहायता–मछली पालन के साथ डेयरी, सुअर पालन या मुर्गी पालन करने पर 80,000 रू. ऋण सुविधा पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
5. ऐरिएटर लगाने हेतु सहायता–तालाब से अधिक मछली उत्पादन लेने के लिए उनमें एरिएटर लगाने हेतु 50,000 रू. बैंक ऋण इस पर 20 प्रतिशत अनुदान दिया जाता हे।

उपयुक्त सभी के लिए अनुसूचित जातियाँ या अनुसूचित जनजातियाँ भारतीयों के लिए 20 प्रतिशत अनुदान की जगह पर 25 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।

मछली का बीमा, चोरी होने पर मुआवजा

सुखा और बाढ़ से तालाब में मछली की क्षति होने से किसानों को मुआवजा के लिए बिहार सरकार 2018-19 में नए प्रावधान के आधार पर मछलियों का बीमा कराना होगा। जिसके फलस्वरूप उन्हें मुआवजा मिल सकता है।

मछली बीज उत्पादन की व्यवस्था: बिहार सरकार ने राज्य में बीज उत्पादन के लिए फीड मिल की स्थापना की है जिससे मछली बीज की कमी को पूरा किया जा सके। ये फीड मिल निम्न है–

(i) Amrit Fish Feed Mill	—	Hajipur
(ii) Hi-Tech Fish Feed Mill	—	Hajipur
(iii) Shiv- Shakit Fish Feed Mill	—	Samastipur
(iv) Anmal Fish Feed Mill	—	Muzaffarpur
(v) Nutri Fish Feed Mill	—	Muzaffarpur
(vi) Ambro Fish Feed Mill	—	Darbhanga

मछली, मखाना संबंधी मुआवजा: इसके संबंध में बिहार सरकार द्वारा बाढ़ से हुई क्षति की मुआवजा की व्यवस्था किया है। जिसके द्वारा मछली, मखाना की हानि की पूर्ति की जाएगी।

मत्स्य उद्योगों के विभिन्न योजनाएँ: बिहार राज्य ने चारसे पाँच वर्षों में मत्स्य उत्पादन में राज्य में 4.5 लाख टन का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए 29 दिसम्बर 2007 को बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीष कुमार ने सड़क मानचित्र तैयार किया। जिसके आधार पर इस लक्ष्य को निर्धारित किया जा सके। उनके द्वारा मत्स्य उत्पादन को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित को दो स्रोतों में पूरा किया जा सकता है। तालाब और मन्स मानचित्र द्वारा इस लक्ष्य को पाया जा सकता है। बिहार में 3200 किलोमीटर नदियाँ 1,00000 हेक्टेयर चौर और बाढ़ के मैदान की आर्द्रता, 9000 हेक्टेयर आवक्यों झिलों या मन्स 7200 हेक्टेयर जलाषयों और 69,000 हेक्टेयर तालाबों के मामले में प्रचुर मात्र में जलीय संसाधनों द्वारा विकास लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। मत्स्य उद्योग को दुगना करने के लिए बीज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए 350 मिलियन बीज को वर्त्तमान मछली बीज के उत्पादन को तिगुना करने की आवश्यकता होगी।

प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना: मत्स्यजीवी सहयोग समिति के सक्रिय सदस्य हो जिसकी आयु 18-60 वर्ष तक हो उसके लिए प्रधानमंत्री द्वारा दुर्घटना में मृत्यु/स्थायी अपंगता होने पर उनके आश्रितों को 2 लाख रू. आंषिक अपंगता होने पर 1 लाख रू. तथा अस्पताल में चिकित्सा हेतु 10 हजार रू. चिकित्सा व्यय के लिए प्रदान की जाती है।

इस प्रकार मत्स्य उद्योग के विकास में सरकार का बहुत सहयोग रहा है। वर्त्तमान में इसका विकास भी बहुत तेजी से हो रहा है।

संदर्भ

1. Economics of Fisheries Management: A Critique in Third World Perspective : R. Korakandy, Daya Publishing House, 2018 , reprint, 243 p, tabls., figs.,, ISBN : 9788170351542
2. A Text Book of Fish Biology and Fisheries : S S Khanna and H R Singh, Narendra Pub, 2015, 3rd edition, xv, 524 p, figs, ISBN : 9789384337117
3. A Text Book of Fishery Science and Indian Fisheries : C.B.L. Srivastava, Kitab Mahal, 2013, Reprint, xvi, 532 p, figs, ISBN : 9788122501391
4. Biotechnology and Genetics in Fisheries and Aquaculture : P Ramchandran Nair, Dominant, 2008, xii, 308 p, figs, ISBN : 8178885654
5. Biotechnology for Agriculture and Fisheries : P Shambhu, Pearl Books, 2008, viii, 248 p, ISBN : 8189979386
6. मछली पालन, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार
7. मिश्रित मत्स्य पालन, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार
8. समेकित मत्स्य पालन, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार
9. मछलियों में होने वाली बीमारियाँ : पहचान, कारण और निदान, मत्स्य पालन निदेशालय, बिहार

भारत में लोक शिकायत निवारण तंत्र की उपादेयता का एक अध्ययन

नंदन कुमार भारती

अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग, पूर्णियाँ कॉलेज, पूर्णियाँ
पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ

सारांश

समसामयिक समाज में राज्य सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। लोकतंत्र एवं विकास की सफलता काफी हद तक सरकारी तंत्र की कुशलता पर निर्भर करती है। आधुनिक सरकार को स्वनिर्णय की असीम शक्ति प्राप्त है। राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका नागरिकों की प्रशासन पर निर्भरता बढ़ाती है। प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग अनाचार, परेशानी और भ्रष्टाचार को जन्म देता है। जिसके परिणाम स्वरूप जनता में प्रशासन के विरूद्ध शिकायतें पैदा होती हैं। चैम्बर शब्दकोश के अनुसार-"शिकायत" का अर्थ है "शिकायत का आधार", दमनकारी या अनुचित स्थिति प्रतीत है।" लोकतंत्र में जनता को अपनी शिकायतें अभिव्यक्त करने का अवसर मिलना चाहिए और उन शिकायतों के निवारण की उचति व्यवस्था भी होनी चाहिए। इस इकाई में हम जनता की शिकायतों की प्रकृति और इन शिकायतों की प्रकृति और इन शिकायतों के निवारण की संगठनात्मक व्यवस्था की व्याख्या करेंगें।

मुख्य शब्दः कुशलता, भ्रष्टाचार, शिकायत, संगठन, प्रशासन, सरकारी

प्रस्तावना

पर्यावरण लोक शिकायतों की प्रकृति को निर्धारित करता है। प्रशासन के औपनिवेशिक इतिहास तथा उसकी सत्तावादी प्रकृतिने नागरिकों में प्रशासन के प्रति नकारात्मक मनोवृति को जन्म दिया है। प्रशासन के कार्यकलाप एवं आम लोगों की आकांक्षाओंके बीच की खाई के परिणामस्वरूप, प्रशासन की नकारात्मक छवि पैदा हुई है। जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षा तथा प्रशासककी सत्तावादी मनोवृत्ति के फलस्वरूप नागरिक एवं प्रशासन के बीच तनाव उत्पन्न हुआ है। असमानता के कारण सामाजिकस्थिति में विरोधभास ने वेबेरियन नौकारशाही के सर्वमुक्तिवाद के मानदंड को त्याग दिया है जिसके परिणामस्वरूप प्रशासननागरिकों के साथ भेदभाव करता है। लोक सेवकों से उम्मीद की जाती है कि वह नागरिकों की सेवा करें लेकिन लोक सेवकएवं नागरिकों के बीच की दूरी नागरिकों और प्रशासन के बीच तनाव पैदा करती है। सुशिक्षित मध्यम वर्ग के ग्रामीण और शहरीलोक सेवकों से आशा की जाती है कि वह निर्धन अशिक्षित ग्रामीण नागरिकों की सेवा करें। यह नागरिकों और लोक सेवकों के बीच सामाजिक और मनोवैज्ञानिक खाई को जन्म देता है। इन सारे तत्वों का प्रभाव यह होता है कि इससे जनता की प्रशासनके विरूद्ध शिकायतें बढ़ती हैं।

आम शिकायत की प्रकृति का स्वरूप

* भ्रष्टाचार- कार्य करने अथवा न करने के लिए रिश्वत की माँग तथा उसे स्वीकार करना।

* पक्षपात- सत्ताधरी या शक्तिशाली लोगों के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए कार्य करना अथवा न करना।

* भाई-भतीजावाद- अपने सगे सम्बंधियों की मदद करना।

* अशिष्टता- अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना या अन्य तरीके से अभद्र व्यवहार करना।

* कर्त्तव्य की उपेक्षा- कानून द्वारा अपेक्षित कार्यों को न करना।

* भेदभाव- निर्धन एवं अप्रभावशाली नागरिकों की सही शिकायतों की उपेक्षा करना।

* विलम्ब- उचित समय पर कार्यों को पूरा नहीं करना।

* कुप्रशासन- लक्ष्य प्राप्त करने में अकुशलता।

* अपर्याप्त निवारण तंत्र- प्रशासन के विरूद्ध जनता की शिकायतें सुनने में किलता।

आम शिकायतों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की शिकायतें भी हो सकती हैं जो किसी खास प्रशासनिक विभागया अभिकरण से सम्बंधित होती हैं। उदाहरणार्थ, पीटने, प्रताड़ित करने, संदेहात्मक व्यक्तियों एवं गवाहों को गैर कानूनी ढंगसे बंदी बनाने जैसे तीसरे दर्जे के तरीके अपनाने पर लोग पुलिस के विरूद्ध कई प्रकार की शिकायतें करते हैं। आम लोगों के विरूद्ध पुलिस एवं अपराधी तत्वों में सांठ-गांठ और साक्ष्यों को बदलना या जालसाजी करना भी पुलिस प्रशासन के खिलाफ लोक शिकायत का अन्य क्षेत्र है। कृषीय प्रशासन के विरूद्ध शिकायतें आमतौर पर निवेश की प्रकृति और मात्र से तथा किसानों को प्रदान की गई सेवाओं से संबंधि त होती हैं। यद्यपि किसी खास प्रशासकीय संस्था के विरूद्ध शिकायतें हो सकती है, लेकिन भ्रष्टाचार की शिकायत सभी सरकारी संस्थाओं के लिए आम बात है। लोक शिकायतों के निवाराह के लिए लोकपाल, लोकायुक्त लोक अदालत जिला स्तरीय फोरम आदि की व्यवस्था है।

लोक शिकायत निवारण तंत्र की उपादेयता

लोकायुक्त/लोकपाल - स्वीडिश शब्द 'ओम्बुड' जिसका अर्थ है किसी का प्रतिनिधित्व करने वाला, से 'ओम्बुड्समैन' बना है। ओम्बुड्समैन का तात्पर्य उस संस्था से है जो कुप्रशासन से नागरिकों की रक्षा करती है। 'ओम्बुड्समैन' नामक यही संस्था भारत में लोकपाल/लोकायुक्त कहलाती है। ओम्बुड्समैन की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1809 में स्वीडन में तत्पश्चात् फिनलैण्ड सन् 1919, डेनमार्क सन् 1955 तथा नार्वे सन् 1965 में हुई। इन स्कैन्डिनेवियन देशों के अतिरिक्त यह संस्था न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका में भी कार्यरत है।ओम्बुड्समैन एक निष्पक्ष तथा कार्यकुशल संस्था मानी जाती है क्योंकि यह स्वतंत्रतापूर्वक किसी मुद्दे की जाँच करसरकार को कार्यवाही करने का परामर्श देती है।

राज्यों में लोकायुक्त की स्थापना लोकपाल की तुलना में उत्साह जनक कही जा सकती है। सर्वप्रथम उड़ीसा राज्य ने सन् 1970 में लोकायुक्त की स्थापना की। पत्पश्चात् महाराष्ट्र 1971, बिहार 1973, तमिलनाडु 1974, जम्मूकश्मीर 1975, मध्य प्रदेश 1981, आन्ध्र प्रदेश 1983, केरल 1983, हिमाचल प्रदेश 1983, कर्नाटक 1984, असम 1985, गजरात 1986, तथा पंजाब 1995, राज्य ने लोकायुक्त की स्थापना की। प्रत्येक राज्य के लोकायुक्तलोक शिकायतों का निवारण की संरचना, कार्य प्रणाली तथा अधिकार क्षेत्र को पृथक रखा गया। हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा तथा केरल में लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में मुख्यमंत्री भी सम्मिलित है। प्रदेश में लोकायुक्त संस्था की स्थापना के साथ ही राज्य सतर्कता आयोगको समाप्त कर दिया गया। कतिपय राज्यों में लोकायुक्त के साथ उप लोकायुक्त का पद भी सृजित है। इन राज्यों में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार, केरल, कर्नाटक तथा असम सम्मिलित हैं। किसी राज्य में लोकायुक्त का कार्यकाल 5 तो किसी में 3 वर्ष निर्धारित है। इसी प्रकार नियुक्ति की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न अपनाई जाती है।

भारत में सन् 1963 में सर्वप्रथम राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति हरिश्चन्द्र माथुर समिति, ने यह सुझाव दियाथा कि ओम्बुड्समैन जैसी संस्था भारत में भी होनी चाहिए। संसद सदस्य डॉ॰ एल॰ एम॰ सिंधवी ने यह माँग संसदमें भी उठाई तथा प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यह इंगित किया था कि केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल तथा राज्यस्तर पर लोकायुक्त संस्थाओं की स्थापना ओम्बुड्समैन प्रणाली के अनुसार की जानी चाहिए। आयोग की सिफारिश के आधार पर सर्वप्रथम 9 मई, 1968 को लोकपाल तथा लोकायुक्त विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया हो जोलोक सभा में पारित हो चुका था लेकिन राज्यसभा में पारित न हो पाया क्योंकि लोकसभा भंग हो गई थीं। प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति को लोकपाल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा गया था। इसके कार्य क्षेत्र पर विवाद हुआ। फिर सन् 1971 में पुन: यह विधेयक प्रस्तुत हुआ किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण अधर में लटक गया।

सन् 1977 में जनता पार्टी सरकार द्वारा नया 'लोकपाल विधेयक' संसद के सम्मुख लाया गया जिसमें प्रधानमंत्री को इसके क्षेत्राधिकारों में रखते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की बात कही गई थी।

राजनीतिक अस्थिरता के उस दौर में विधेयक पारित नहीं पाया। चौथी बार लोकपाल विधेयक राजीव गाँधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री को इसके क्षेत्राधिकार से बाहर रखते हुए अगस्त, 1985 को प्रस्तुत हुआ जिसे स्वयं राजीव गाँधी की सरकार ने ही वापिस ले लिया था। पाँचवी बार लोकपाल विधेयक वी॰ पी॰ सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने संसद के सम्मुख सन् 1990 में प्रस्तुत किया था। इस विधेयक में लोकपालको सर्वप्रथम एक व्यक्ति की अपेक्षा एक संस्था के रूप में देखते हुए एक अध्यक्ष तथा दो सदस्यों का प्रावधान किया गया था किन्तु यह सरकार भी समय से पूर्व सत्ता से दूर हो गई तथा लोकपाल विधेयक सदैव की भाँति पारित नहो पाया। सन् 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा सन् 1998 में वाजपेयी सरकार द्वारा भी लोकपाल विधेयक लोकसभा में पेश किया गया था किन्तु लोकसभा भंग होने के कारण पारित न हो सका। प्रधानमंत्री को लोकपालके दायरे में लाते हुए एक नया विधेयक 4 अगस्त, 2001 को लोकसभा को लोकपाल के दायेर में लाते हुए एक नयाविधेयक 14 अगस्त, 2001 को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। संसद में आठ बार पेश हो चुका लोकपाल विधेयक सदैव ही विवाद तथा बदकिस्मती का शिकार रहा है।

लोकपाल बिल को सन 2013 में लोकपाल और लोकायुक्त, दोनों के रूप में संसद के दोनों सदनों में पास कराया गया। इसके बाद सन् 2016 में लोकसभा ने लोकपाल अधिनियम में संशोधन पर सहमति व्यक्त की औ इस बिल की समीक्षा के लिए इसे एक स्टैंडिंग कमिटि के पास भेजा गया। इस बिल के पास होने के 6 साल बाद वर्ष 2019 को जाकर भारत में पहला लोकपाल नियुक्ति हुई। इस बिल की कई **विशेषता है–**

* भ्रष्टाचार के विरोध में पास किये गए इस बिल में यह बताया गया हैं कि केंद्रीय स्तत पर इसक लिए लोकपाल नियुक्त होंगे और राज्य स्तर पर इसके लिए लोकायुक्त की नियुक्ति होगी।
* राज्य स्तत में राज्यों को इस अधिनियम के शुरूआत में एक साल के अंदर लोकायुक्त का गठन करना होगा।
* लोकपाल के द्वारा संदर्भित मामलों में परीक्षण करने के लिए विशेष अदालतों का गठन किया जायेगा।
* लोकपाल प्रधानमंत्री सहित सभी प्रकार के लोक सेवकों को अपने अधिकार क्षेत्र में रखा है। यदि उन्हें पता लगात है, कि उनके खिलाफ कहीं पर भ्रष्टाचार हो रहा है, तो लोकपाल इसके लिए अपनी जाँच शुरू कर सकते हैं, इसके लिए भले ही अन्य एजेंसी द्वारा जाँच की जा रही हो, फिर भी वे खुद अपनी तरफ से जाँच शुरू कर सकते है। फिलहाल सशस्त्र बल को जाँच के दायरे से बाहर रखा गया है।
* लोकपाल बिल में प्रधानमंत्री को कुछ रियायत प्रदान की गई है। जब भी प्रधानमंत्री के उपर भ्रष्टाचार का आरोप लगते हैं, तो लोकपाल के अन्य सदस्यों की सहमति का होना आवश्यक है। लोकपाल अंतराष्ट्रीय, संबंधे, आंतरिक या बाहरी सुरक्षा, एनर्जी स्पेस जैसे क्षेत्रों में स्वायता प्रदान की गई है। हाल में सबसे ज्वलंत मुद्दा राफेल का था, जो इसके दायरे से बाहर का था।
* यदि लोकपाल या लोकायुक्त के किसी अधिकारी के खिलाफ किसी भी शिकायत जाँच आती है, और वह आरोप सिद्ध हो जाता हैं, तो संबंधित अधिकारी 2 महीने के अंदर सेवा विमुक्त कर दिया जायेगा।
* सरकारी कार्य से जुड़े अधिकारी अपने कार्य का संपादन नहीं करता है। तो किसी भी कार्यालय में दोषी अधिकारियों पर वित्तीय जुर्माना लगा सकता है। और यह मुआवजा शिकायता कर्ता को प्रदान किया जा सकता है।

लोकपाल की शक्तियाँ

* लोकपाल के पास केंद्र सरकार पर उनके सरकारी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोंपों की जाँच करने और उससे जुड़े मामलों में निपटने का स्वतंत्र अधिकार प्रदान किया गया है।
* लोकपाल के पास देश के सबसे प्रचलित सीबीआई सहित किसी भी जाँच एंजेसी का अधिकार होता है। सीबीआई ने ने किसी भ्रष्टाचार के आरोपी की जाँच की है और यदि उसमें कुछ खामियाँ लगती हैं, तो लोकपाल उस एजेंसी द्वारा की गई

जाँच की भी निगरानी अपने द्वारा कर सकती है। साथ ही लोकपाल के अनुमति के बिना उसका कहीं और स्थानांतरण नहीं किया जा सकता है।

* भ्रष्टाचार के खिलाफ जाँच के लिए अधिकतम 6 माह का समय तय किया गया है। यह इसकी प्रमुख विशेषता है। हालांकि लोकपाल या लोकायुक्त एक बार में 6 महीनके की अवधी को आगे बढ़ा सकती है, लेकिन इसके लिए उन्हें लिखित आवेदन देना होगा।
* लोकपाल को यह भी शक्ति प्रदान की गई हैं कोई व्यक्ति या संस्था के उपर 2 लाख तक जुर्माना और सजा दे सकता है।
* लोकपाल इसके अतिरिक्त स्वविवेक से निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की गई हैं जो न्यायिक प्रकृति के अनुसार लोक-कल्याणकारी हो।

उपसंहार

लोकायुक्त संस्था सैद्धान्तिक दृष्टि से सुदृढ़ दिखाई देती है किन्तु व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य में लोकायुक्त संस्था प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाई है। लोकायुक्त की भूमिका सरकार को परामर्श देने की है। कई बार लोक सेवकों का अपराध सिद्ध हो जानेपर भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार समुचित कार्यवाही नहीं करती है। इस प्रकार प्रशासन में अनैतिकता तथा अकार्यकुशलता पर अंकुश नहीं लग पाता है। दरअसल लोक सेवकों का भ्रष्टाचारतो 'फल' है जिसका मूल समूचे समाज के नैतिक मूल्यों के पतन में निहित है।" भ्रष्टाचार निवारण में निस्संदेह लोकायुक्त सशक्त भूमिका निर्वाहित कर सकता है किन्तु पहले लोकायुक्त को प्रभावी बनाना आवश्यक है। किसी भी सभ्य समाज में आदर्श नागरिक और विकसित समाज के लिए प्रथम अनिवार्यता न्याय का सस्तापन, सहजता, सुगमता एवं सरलतापूर्वक प्राप्त होना ही है।

संदर्भ सूचि

1. मोहित भट्टाचार्य, लोक प्रशासन के नये आयाम, जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 390-391
2. डॉ. ए. पी. अवस्थी, विकास प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ 140-141
3. बिधुत चक्रवर्ती, प्रकाश चंद, वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन सिद्वांत और प्रद्धतियां, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 329-330
4. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन सिद्वांत एवं व्यवहार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृष्ठ 220-221
5. मनोज सिन्हा, प्रशासन एवं लोकनीति, ओरियण्ट ब्लोस्वॉन पब्लिकेशन, हैदराबाद, पृष्ठ 85-86
6. सुशमा यादव, बलवान गौतम, लोक प्रशासन सिद्वांत एवं व्यवहार, ओरयण्ट ब्लैकस्वॉन पब्लिशन, हैदराबाद 112-113
7. सुमित्र मोहन, इंडिया पॉलिसी यंड डेवलपमेंट, टाटा मैग्रा हिल पब्लिकेशन, चेन्नई, पृष्ठ 167-168
8. अमर्त्य सेन, भारत विकास की दिशाएं, राजपाल एंड सन्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 194-196
9. डॉ. रूमकी बसु, लोक प्रशासन संकल्पनाएं एवं सिद्धांत, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 170-171
10. 6. एम. पी. शर्मा, बी. एल. सडाना, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार, किताब महल, आगरा, पृष्ठ 443-444

मेघदूत में प्रयुक्त उपमालंकार-विवेचन

डॉ० दीनबन्धु माँझी

ग्राम-मिर्जापुर, पोस्ट-उस्ती बनियापुर, जिला-सारण, बिहार

शोध सारांश

काव्य शास्त्रीयों ने उपमालंकार का जो लक्षण निर्दिष्ट किया है वह पूर्णत: कालिदास के उपमाओं में अपनी विशिष्टता के साथ दृष्टिगत होता है। कालिदास कहीं भी प्रयास करके उपमा का निबंधन नहीं करते अपितु उपमा के प्रयोग अहमसमिकया स्वत: में उनके काव्यों में स्फूर्त्त हो उठते हैं।

कवि कुलगुरू महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के लोकोत्तर प्रतिभा-सम्पन्न अद्धितीय काव्यकार एवं नाटककार हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय साहित्य, दर्शन, धर्म और संस्कृति के स्वर मुखरित हैं। इनकी काव्य-कला-कुशलता एवं नाट्यकला-निपुणता की प्रषंसा सभी सहृदय सुधी समालोचक करते हैं। ऋतुसंहार, कुमार संभवम् रघुवंशम, मेघदूतम् इन श्रव्य-काव्यों और मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वषीयम् और अभिज्ञानषाकुन्तलम् नाट्य ग्रन्थों का प्रणयन कर इन्होंने संस्कृत को समृद्ध बनाने में अपूर्व योगदान किया।

अलंकारशास्त्रियों ने काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्वों में रीति, गुण, अलंकार, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य का उल्लेख किये हैं। लोक में जिस प्रकार आभूशणों से रूपवती रमणी का रूपलावण्य द्विगुणित हो जाता है, उसी प्रकार अलंकारों से युक्त कविता-कामिनी का सौन्दर्य और भी निखर उठता हैं।

यथा-

नाकान्तमपि निर्भूशं विभातिवनितानम्।[1]

अत: काव्य में अलंकार की उपादेयता की किसी तरह उपेक्षा नहीं की जा सकती हैं। संस्कृत जगत् में 'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति कालिदास की उपमा अलंकार-प्रयोग-पटुता को ज्ञापित करती है।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अलंकारों का कहीं भी अनावश्यक प्रयोग नहीं किया है। अपितु उपमादि अलंकार अनायास ही यथा स्थान प्रयुक्त होकर काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाया है।

मेघदूत में कालिदास की उपमायें उनकी काव्य-कला की विशेषताएँ बताती हैं। इन्द्रधनुष से युक्त मेघ की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता हैं-

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतव्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्राव्प्रभवति धनुऽखण्डभाखण्डलस्य।
येन शयाम वपुरतितरां कान्तिमार्पस्यते ते-
बर्हेणेव स्फुरितरूचिना गोपवेशस्यविष्णो:।। [2]

यहाँ इन्दुधनुष से युक्त मेघ की उपमा मयूरपुच्छाधारी गोपवेश वाले विष्णु से दी गई हैं। यक्ष कहता है कि बाँबी से निकलते हुए इन्द्रधनुष की शोभा रत्नों की शोभा से सम्पन्न दिखलाई पड़ती है जिससे मिलकर तुम्हारा श्याम वर्ण ठीक उसी तरह का दिखलाई पड़ता है।

विन्ध्याचल की तलहटी में ऊँचे-नीचे पथरों के बीच बहने वाली नर्मदा नदी हाथी के शारीर पर भस्म द्वारा रचित रेखाओं के समान लगती हैं:

यथा-

रेवा द्रक्ष्यस्युपलविशमे विन्धयपादेविषीर्णा।

भक्तिच्छेदैरि विरचितां भूमिभेङ्गे गजस्य।।[3]

यहाँ रेवा और विन्धय में लिंगों की और कार्य की समता से ही नायिका और नायक के व्यवहार का समारोप होने से समासोक्ति और श्रावती उपमा हैं।

इसी प्रकार

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णषारप्रभाणाम्।

कुन्दक्षेपानुगममधुकरश्रीमुशामात्मात्मबिम्बं

पात्री कुवर्वन्दषपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्।।[4]

कुन्दपुष्प सफेद होता हैं और भ्रमण काला, इसी तरह दसपुर की वधुओं के नेत्र भी सफेद हैं और उनकी पुतलियाँ काली इस प्रकार कुन्द-पुष्प स्थित भ्रमर और वधुओं के नेत्रों का सादृष्य होने से उपमा अलंकार हैं।?

ब्रह्मावर्तं जनुदमथच्छायया गाहमानः

क्षेत्र क्षेत्रप्रधानपिषुनं कोरवं तद्भजेथाः।

राजन्यानां षितषरषतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा

घारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्शन्मुखानि।।[5]

यहाँ पर अुर्जन की ध्यान-दृष्टि का सादृष्य मेघ की जल-वृष्टि में होने से उपमा अलंकार हैं।

कैलाश पर्वत की गोद में अलकारूपी प्रियत्तमा है और उसकी गंगा रूपी साड़ी नीचे की ओर सरकती हुई दिखाई देंगी। इसमें उपमा और रूपक का मनोरम समन्वय द्रष्टव्य हैं।

तस्योत्सेङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगड़गादुकूला।

न त्वं दृष्ट्व्या न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।।[6]

आँखों में आंसू भरे हुए यक्षिणी दुर्दिन में अधखिली कमालिनी के तुल्न्य न प्रबुद्ध हैं और न सोयी हैं।

पादानिन्दोरमृतषिषिराजालमार्गप्रविष्टान्

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरूभिः पक्ष्मभिष्छादयन्तीं

साभ्रेहन्ते स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्।[7]

हिमालय पर हंसद्वार से आगे बढ़ते हुए तिरछी ऊपर की चढ़ाई में मेघ के लिए कवि ने उपमा दी हैं-

'श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः' तो बर्फ से श्वेत हिमालय पर टिके बादल के कारण पर्वत कवि को निश्चल नयनों से निहारने योग्य शोभा वाला लगता हैं, जैसे बलराम के कंधे पर नीला वस्त्र फहरा रहा हो-

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।[8]

कैलाश को कवि ने अप्सराओं का दर्पण कहा हैं। उस पर इतनी उजली बर्फ चमकती रहती हैं कि दर्पण की तरह कहना बड़ा सटीक उपमान हैं। इसके आगे जाकर कालिदास ने कल्पना की हैं कि शांकर का अट्टहास प्रतिदिन इकट्ठा होता चला गया हैं, वही बर्फ की राशियों के रूप में कैलाष के ऊपर चमक रहा है–

गत्वा चोधर्व दषमुख भुजोछवासितप्रस्थसन्धे:,
कैलासस्य त्रिदषवनितादर्पणस्यातिथि: स्या:।
श्रुङ्गोछायै: कुमुदविषदैंयों वितत्य स्थित: खं
राषीभूत: प्रतिदिनमिव त्र्बकस्याट्टहास:।[9]

उपमालंकार के प्रयोग के लिए कालिदास प्रसिद्ध हैं। मेघदूत में उनकी उपमायें निखरे रूप में हैं। काव्यशास्त्रियों ने उपमा का जो लक्षण निर्दिष्ट किये हैं वह पूर्णत: कालिदास की उपमाओं में अपनी विशेषताओं के साथ दृष्टिगत होता हैं। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में उपमा का स्वरूप निम्न प्रकार से निर्दिष्ट किया हैं–

'प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते'।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में उपमा का स्वरूप निम्नप्रकार से निर्दिष्ट किया हैं–

साम्यवाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यउपमा द्वयो:।[10]

उपयुक्त विवेचन से मेधदूत में प्रयुक्त उपमालंकार का महत्व एवं सौन्दर्य स्पष्टत: ज्ञात होता हैं।

संन्दर्भ

1. भाम: – काव्यालंकार – 1/13
2. कालिदास – पूर्वमेघ – 15
3. कालिदास – पूर्वमेघ – 19
4. कालिदास – पूर्वमेघ – 47
5. कालिदास – पूर्वमेघ – 48
6. कालिदास – पूर्वमेघ – 63
7. कालिदास – पूर्वमेघ – 27
8. कालिदास – पूर्वमेघ – 59
9. कालिदास – पूर्वमेघ – 58
10. आचार्य विश्वनाथ – साहित्य दर्पण – 10/14

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पहलू (एक समीक्षात्मक अध्ययन)

मिथिलेश कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोध-सारांश

रचनात्मक कार्यक्रम को सत्य एवं अहिंसा के माध्यम से 'पूर्ण स्वराज' की रचना का आधार कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। गाँधीजी महज परोपकार को ही रचनात्मक कार्य नहीं मानते थे। उनका मत था जो भी मनुष्य में अहिंसक शक्ति जगाए वही रचनात्मक कार्य है। सत्य और अहिंसा के माध्यम से 'पूर्ण स्वराज' और पूर्ण स्वाधीनता हासिल करने का रचनात्मक कार्यक्रम एक माध्यम है। रचनात्मक कार्यक्रम का लक्ष्य व्यक्ति में चरित्र निर्माण करना तथा व्यक्ति के चरित्र निर्माण से समाज तथा राष्ट्र का निर्माण। इसके अतिरिक्त जनता के बीच आर्थिक, आत्म-निर्भरता और स्वदेशी भावना को बढ़ावा देना। रचनात्मक कार्यक्रम का लक्ष्य बेरोजगारी या गरीबी को मदद करना नहीं बल्कि एक ऐसे अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना, जिससे व्यक्ति स्वयं आत्म-निर्भर, स्वावलंबी और स्वाभिमानी हो सके।

परिचय

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों का भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अति महत्वपूर्ण योगदान है। गाँधीजी अपने 'रचनात्मक कार्यक्रमों' के द्वारा भारत तथा पूरी मानवता के लिए एक क्रांतिकारी प्रारूप तैयार किया, जो भारतीयों के उत्थान में मील का पत्थर साबित हुआ। इस कार्यक्रम के द्वारा उन्होंने एक आदर्श समाज की परिपूर्ण कल्पना तथा निर्माण की प्रक्रिया से अवगत कराया। यही वह आधार था जो व्यक्ति के भीतर परिवर्तन द्वारा सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हमें राह दिखाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत तथा सामाजिक बदलाव साथ-साथ घटित होते हैं तथा एक-दूसरे के प्रतिपूरक होते हैं। 'रचनात्मक कार्यक्रम' द्वारा गाँधीजी जनता को स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत-निर्माण के लिए तैयार कर रहे थे। इस परिकल्पना के बीच उनके जीवन में बहुत पहले जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दि लास्ट' से ही पड़ गये थे। जिनके क्रांतिकारी विचारों ने उनके हृदय में 'सर्वोदय' को जन्म दिया। इस ध्येय को पाने के लिए समाज के संपूर्ण ढ़ाँचे को बदलना होगा। अहिंसक समाज का अन्य कोई आदर्श हो ही नहीं सकता, अत: सामाजिक बदलाव सुनियोजित विकास द्वारा संभव होगा, हिंसापूर्ण गतिविधियों से नहीं। वे मानते थे कि सामाजिक संस्थान "व्यक्ति के विचारों को नैतिक मूल्य प्रदान करने की अभिव्यक्ति है। महात्मा गाँधी जानते थे कि उनके विचारों तथा आदर्शों का पालन उनकी सहजतापूर्ण सादगी के कारण कई बार कठिन हो जाता था।" यह मेरा सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य है कि मैं विश्व को आश्चर्यचकित करता रहा हूँ। कई बार नये प्रयोग अथवा नये तरीके से किये जा रहे प्रयोग भ्रांतियाँ भी पैदा कर देते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रमों का उद्देश्य

रचनात्मक कार्यक्रमों का उद्देश्य अहिंसक समाज की रचना करता था। इसके लिए इन्हें तीन बातें जरूरी लगी। ऐसे समाज की रचना करती हो जो हर प्रकार के शोषण का अंत होना चाहिए। ऐसी समाज की रचना में प्रशासनिक व्यवस्था की कम-से-कम भूमिका होनी चाहिए, यानि उन्हें इस कदर तक ले जाना चाहिए कि लोग स्वयं अपनी व्यवस्था चला सकें। ऐसा करने में वर्त्तमान समाज में जो बाधाएँ हों, वे दूर होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो गाँधीजी का लक्ष्य था ऐसे अहिंसक समाज की स्थापना करना,

जिसमें शोषण का अंत हो और शासन की भूमिका कम-से-कम होनी चाहिए। इन दो लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम का अनुकरण करना, ताकि लक्ष्य हासिल करने में सुगमता हो। गाँधीजी का रचनात्मक कार्यक्रम आदर्श-समाज निर्माण का साधन भी है और साध्य भी, इसका उद्देश्य समाज परिवर्तन के लिए सामूहिक प्रयत्न और लोक शिक्षण का काम करता है। रचनात्मक कार्यक्रम समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का तरीका है। इन सब उद्देश्य की पूर्ति में गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का अविस्मरणीय योगदान है।

रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पहलू

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की शुरूआत कौमी एकता, खादी और अस्पृश्यता निवारण से की थी। बाद में उन्होंने जो समग्र रचनात्मक कार्यक्रम दिए थे, वे निम्नलिखित हैं–

(1) कौमी एकता (2) अस्पृश्यता निवारण (3) शराबबंदी (4) खादी (5) ग्रामोद्योग (6) स्वच्छता (6) नई शिक्षा (8) प्रौढ़ शिक्षा (9) महिला एवं स्वास्थ्य शिक्षा (10) क्षेत्रीय भाषाएँ (11) राष्ट्रभाषा (12) आर्थिक समानता (13) किसान (14) कुष्ठरोगी (15) विद्यार्थी (16) आदिवासी।

ऐसा नहीं लगता कि इन कार्यक्रमों के क्रम में किसी निश्चित नियम का पालन किया गया हो। जैसे–जैसे उनकी नजर में काम आते गए, वैसे-वैसे उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम में जगह देते गए। इन सब कार्यक्रमों के अलावा गौ-सेवा का कार्यक्रम आया था, जबकि गाँधीजी इसे वर्षों से करते आये थे।

इन सारे कार्यक्रमों पर एक-साथ देखा जाय तो हम पायेंगें कि गाँधीजी ने इन कार्यक्रमों के माध्यम से जीवन के अनेक पहलुओं को शामिल किये हैं। इसलिए कुछ ऐसे भी कार्यक्रम हैं, जिनका संबंध जीवन के एक से ज्यादा क्षेत्रों से है।

रचनात्मक कार्यक्रम के राजनैतिक पहलू के अंतर्गत अस्पृश्यता निवारण, कौमी एकता, प्रौढ़-शिक्षा, स्त्री, किसान, मजदूर और विद्यार्थियों से संबंधित कार्यक्रमों को शामिल कर सकते हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की भावना को स्थापित करना था। कौम-कौम के बीच भेद-भाव और अस्पृश्यता अपने देश को टुकड़ों में बाँटने का काम करते हैं। दोनों के मूल में देश की जाति व्यवस्था है। अंग्रेजों ने अपने राजकाल में इन कमजोरियों को बढ़ावा ही दिया था। इससे आपस में बैर-भाव बढ़ा। इसके विरोध में गाँधीजी ने अनशन करके अपनी जान को जोखिम में डाल दिया था। कौमी समस्या की बाबत तो उन्होंनें अपना बलिदान ही दे दिया।

अनेक बार देश इन प्रश्नों के समाधान तक पहुँचने की स्थिति में आ गया था। लेकिन बाँटो और राज करो की नीति अपनाने वाली अंग्रेजी हुकूमत इस बारे में कोई समाधान हो, यह नहीं चाहती थी। अपने ही देश के राजनेताओं ने समाज में भेद-भाव के बीज बोकर और उसमें खाद-पानी डालकर इस विष-रूपी वृक्ष को बड़ा किया था। इसलिए इन दो कार्यक्रमों को निष्ठा से चलाने के लिए गाँधीजी लगातार अपने साथियों और कांग्रेस के सदस्यों से विनती करते रहते थे। आजादी मिलने के थोड़े समय में ही संवैधानिक दृष्टि से हम अस्पृश्यता को कानूनी रूप से हटा सकें। लेकिन हजारों वर्षा से आ रही यह कुप्रथा भारतीय समाज को दूषित कर रही थी। गाँधीजी अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा इस कुप्रथा को समाज से उन्मूलन में काफी हद तक सफल हुए, लेकिन उसका पूर्ण उन्मूलन नहीं कर सके। कौमी बैमनस्य और राजनैतिक दाँव-पेंच की वजह से देश का आखिर बँटवारा होकर ही रहा। इसके दुष्परिणाम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आधी सदी से भी ज्यादा गुजर जाने के बाद हम आज भी भुगत रहे हैं। अपने देश का यह दुर्भाग्य है कि आज भी इस समस्या से पूरा देश जूझ रहा है।

गाँधीजी ने जब रचनात्मक कार्यक्रम के एक अंग के रूप में प्रौढ़ शिक्षा की बात कही तब उन्होंने कहा कि लोक चेतना जागृत करने के कार्यक्रम को अंग्रेज सरकार चाहकर भी नहीं रोक सकेगी। फिर भी अगर सरकार इस काम में बाध डालने की कोशिश करे तो लोगों को सच्ची शिक्षा देने के मूल अधिकार के लिए लड़ लेना होगा, क्योंकि इस अधिकार के बगैर स्वराज मिलने से रहा।

देश को एकता के सूत्र में बाँधकर सच्चे स्वराज के अभियान में गाँधीजी को जिन लोगों के सहयोग की जरूरत थी, वह थे-महिलाएँ, किसान, मजदूर और विद्यार्थी। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रम में उन्होंने इन सबके बीच काम करने को भी शामिल किया। इनलोगों में जागृति और चेतना लाने के लिए गाँधीजी के पास सटीक उपाय था राष्ट्रीय आजादी के आंदोलन में उन्हें शामिल करना।

इनलोगों में जागृति और चेतना लाने के लिए गाँधीजी के पास सटीक उपाय था-स्वतंत्रता आंदोलन में उन्हें शामिल करना। उन्होंने इन सभी वर्गों के बीच काम करने की काँग्रेस को सलाह दी। वे चाहते थे कि काँग्रेस हर एक क्षेत्र में प्रत्येक विभाग और केंद्र में किसी योग्य व्यक्ति को लोकशिक्षा, संगठन और निर्माण की जिम्मेदारी दे। उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में काम करने के लिए कुछ नियमों का पालन का भी सुझाव दिया। उदाहरण के तौर पर वे चाहते थे कि विद्यार्थियों को किसी भी राजनैतिक गुट से संबंध नहीं रखना चाहिए। वे सामान्य तौर पर हड़ताल आदि के समर्थक नहीं थे। लेकिन यदि कोई बड़ा राष्ट्रीय आंदोलन हो तो वे इसमें सबकुछ छोड़कर जुड़ जाने की सलाह देते थे। वह मानते थे कि किसान, मजदूर या विद्यार्थियों को अहिंसक तरीके से काम करने से किस तरह से धीमे ही सही पर स्थायी परिणाम आते हैं, यह समझाने की कोशिश करनी चाहिए। वे काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं को इन वर्गों के सवालों का शांतिमय तरीकों से हल ढूँढ़ते हुए उनमें जागृति लाने के लिए प्रेरित करते थे।

गाँधीजी यह भली-भाँति जानते थे कि देश के नागरिकों की शिक्षा समाज की रीढ़ को मजबूत करने के लिए बहुत जरूरी है। इसलिए लम्बे अनुभव के आधार पर उन्होंने अपने सपने के अहिंसक समाज की स्थापना के लिए एक वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था भी प्रस्तावित की और उसे कई साल तक आजमाया भी। रचनात्मक कार्यक्रम में उन्होंने स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, आरोग्य और प्रौढ़ शिक्षा के अनेकों कार्यक्रम दिये।

शिक्षा के बारे में गाँधीजी के इन विचारों ने देश और विदेश के शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया था। ये विचार अद्यतन शिक्षाशास्त्र के सिद्धांतों से मिलते-जुलते थे। गाँधीजी के विचारों के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करने वाले लोगों ने हर उम्र और ज्ञान-मर्यादा वाले लोगों के लिए अलग-अलग प्रयोग द्वारा गहन अध्ययन कर विचार पेश किये। शुरू में गाँधीजी के शिक्षा पर विचार प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग किये गये। इसी विचार के विकास के क्रम में पूर्व बुनियादी, बुनियादी, उत्तर बुनियादी श्रेणियों का उद्भव हुआ। रचनात्मक कार्यक्रम में बुनियादी शिक्षा के इन सभी स्तरों का समावेश हो जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में रचनात्मक कार्यक्रम का एक दूसरा अंग वैसे तो नयी और पुरानी शिक्षा व्यवसाय पर लागू होता है। लेकिन गाँधीजी ने देश की उस काल की परिस्थिति देखकर उस पर विशेष ध्यान दिया था। आज आजादी मिले आधी सदी बीत जाने पर भी उसका महत्व जितना गाँधीजी के समय में था, उससे थोड़ा-सा भी कम नहीं हुआ। रचनात्मक कार्यक्रम की सूची में गाँधीजी ने प्रांतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा के दो अलग-अलग कार्यक्रम दिए थे। प्रांतीय भाषा यानि अलग-अलग राज्यों के लोगों की मातृभाषा, जिसको पढ़े-लिखे वर्ग ने नकारा। परिणामस्वरूप आम जनता पढ़े-लिखे वर्ग से अलग हो गई और अंध-श्रद्धा और वहम के गर्त में डूब गई। दूसरी ओर पढ़ा-लिखा वर्ग भी समान्य प्रजा से अलग हो गया, जिस कारण वह देश की नब्ज न समझ पाया और ज्यादातर विदेशी भाषा के माध्यम से विदेशों के अनुकरण से बाहर नहीं निकल पाया।

रचनात्मक काम में शिक्षा से संबंधित एक कार्यक्रम स्वास्थ्य के बारे में लोक-शिक्षण है। अपने देश में अच्छे स्वास्थ्य में सबसे बड़ा बाधक कारण है। आम जनता में सफाई, शरीर विज्ञान, आरोग्य के बारे में अज्ञानता। माताओं में शिक्षा की कमी के कारण शिशु मृत्यु दर भी काफी ऊँचा है। विदेश से आने वाले किसी भी अतिथि को अपने देश की ये राष्ट्रीय कमजोरियाँ तुरंत दिखाई देती है। यहाँ रहने वाले लोगों में जहाँ-तहाँ थूकना, गाँव के खेत-खलिहान पर मल-त्याग करना आदत-सी हो गई थी। गाँधीजी इस कार्यक्रम के द्वारा लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे कि ये सब गंदी आदतें हैं।

नशाबंदी, गौ-सेवा और कुष्ठ रोगियों की सेवा के कार्यक्रम ऐसे थे, जिन्हें हम सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में गिना सकते हैं। कवि रबिन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह पश्चिम और हिन्दुस्तान के मजदूरों के बीच तुलना करते हुए एक मार्मिक बात कही थी। उन्होंने कहा था कि पश्चिम का मजदूर दिन भर की मेहनत से जब थक जाता है तो वह शराबखाने में जाकर अपनी थकावट दूर करता है। प्रायः सभी धर्मो में किसी भी प्रकार के नशे के खिलाफ लोगों को चेतावनी दी है, फिर भी मनुष्य अब तक इस बुराई में फँसा हुआ है। दुर्भाग्य की बात है कि पढ़े-लिखे, धनवान और समाज में जिन्हें प्रतिष्ठित माना जाता है ऐसे लोग महँगी शराब पीने को अपनी शान समझते हैं। नशा आदमी का तन और धन बर्बाद कर देता है। इस बारे में गाँधीजी के विचार इतने तीव्र थे कि वे कहते थे कि अगर थोड़े समय के लिए उन्हें शक्ति प्रदान किया जाय तो वे सबसे पहला कानून शराबबंदी का लायेंगें। लेकिन शराबबंदी के बारे में सबसे बड़ी भूल यह हुई कि उसे लागू करने के लिए सरकार ने कानून, पुलिस और अन्य सरकारी माध्यमों का ही सहारा लिया। जहाँ भी इसके लिए व्यापक जन-आंदोलन हुए वहाँ शराबबंदी सफल हुई।

कुष्ठ रोगियों के साथ सदियों से ऐसा व्यवहार होता है मानो वे मनुष्य ही नहीं हैं। उनके साथ स्नेह, सेवा और करूणा का संबंध जोड़कर मानव सांस्कृति दृष्टि से ऊपर उठ जाता है। यदि हमें अहिंसक समाज की स्थापना करना है तो मनुष्यों में करूणा, स्नेह और सेवा के संबंध स्थापित करने होंगें। ऐसे समाज में मनुष्य को अपने से कमजोर, आर्थिक रूप से गरीब, शरीर से बीमार और व्यसनग्रस्त लोगों के बारे में सोचना होगा, क्योंकि केवल सृष्टि का शोषण करने वाला मनुष्य ज्यादा समय टिक नहीं सकता। यह विज्ञान ने साबित कर दिया है।

रचनात्मक कार्यक्रम के सामाजिक पहलू में कौमी एकता, अस्पृश्यता निवारण, जातिवाद पर प्रहार, आदिवासी सेवा और स्त्री शिक्षा के कामों का भी सवावेष होता है। गाँधीजी रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा सामाजिक क्षेत्र में समानता लाना चाहते थे। भारत में वर्ण-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता ने जड़ पकड़ ली थी। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद-भाव हो यह गाँधीजी के लिए असहनयी था। इसीलिए बचपन में उन्होंने अपनी माँ की आज्ञा न मानकर अस्पृश्यता को स्वीकार नहीं किया था।

रचनात्मक कार्यक्रम के आर्थिक पहलू में हम खादी, ग्रामोद्योग, आर्थिक समता, किसान, मजदूर और कुछ अंश तक गौ-सेवा का समावेष कर सकते हैं। इन कार्यक्रमों का लक्ष्य था आर्थिक समता और इन्हें किसानों, मजदूरों और गाँव के हस्त शिल्पकारों के माध्यम से चलाना था। चंपारण में किसानों की जागृति के फलस्वरूप सवा सौ वर्षो से चली आ रही अन्यायपूर्ण 'तिनकठिया प्रथा' छः से आठ महीनों के अहिंसक आंदोलन के फलस्वरूप खत्म हुई। इसी प्रकार अगर किसानों के प्रदर्शन, मोर्चे जैसे कार्यक्रम के बदले उनकी समस्याओं को लेकर लोक जागृति का अभियान चलाया जाय तो किसान अपनी अहिंसक शक्ति द्वारा बड़े परिवर्तन कर सकते हैं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत खेती के विकास के साथ गौ-सेवा शामिल था। गाय देश के कृषि-चक्र का एक आवश्यक अंग है। गाय हमें कृषि करने की ऊर्जा का बड़ा साधन बैल एवं खेती के लिए खाद के रूप में गोबर देती है। इसके अतिक्ति दूध भी देती है।

गाँधीजी ने अहिंसक जागृति और संगठन द्वारा लोकशक्ति उत्पन्न करके स्वराज की इमारत खड़ी करने का जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया, उसकी इकाई गाँव थे। तब तक वे स्वराज्य के लिए शहरों में सभा, सम्मेलन करके प्रस्ताव पारित करनेवाले लोगों को थके बिना यह समझाने में लगे थे कि हिन्दुस्तान की ज्यादातर जनसंख्या गाँव में बसती है। इसलिए गाँव की जागृति के कार्यक्रम पहले होने चाहिए। उनका यह भी मानना था कि अगर सही में समूचे समाज की शक्ति जगानी हो तो वह तभी संभव है जब समाज के सबसे कमजोर अंग को मजबूत बनाया जाय। अन्त्योदय के इस विचार के पीछे सबसे दलित, पीड़ित के लिए करूणा और समस्त समाज को मजबूत करने की व्यूहरचना एक-साथ काम करती है। इसलिए उन्होंने ग्राम के विकास में भी खादी और ग्रामोद्योग को पहला स्थान दिया, जो लोग खादी या ग्रामोद्योग के काम में लगे थे और जिनकी रोजी-रोटी बड़े उद्योग आने से चली गई थी, उन्हें भीख में नहीं बल्कि आत्म-सम्मान की मेहनत की रोजी मिले, तभी समाज का सबसे दरिद्र वर्ग अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।

गाँधीजी के कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू थो- ग्राम स्वावलंबन, जिसका अर्थ होता है, आर्थिक क्षेत्र में गाँव की आत्म-निर्भरता। अगर भारत के तात्कालिक जनसंख्या लगभग सात लाख गाँव स्वावलंबी बन जाय तो स्वतंत्र भारत की सरकार को शहर या विदेश के सामने हाथ फैलाने का सवाल ही न खड़ा होगा।

महिलाओं के काम को रचनात्मक कार्यक्रम का एक हिस्सा मानकर गाँधीजी सदा काँग्रेस को महिलाओं के बीच काम करने की जिम्मेदारी देना चाहते थे। काँग्रेस के सम्मेलनों में महिलाएँ स्वयंसेविकाओं के रूप में काम करने में अपने आपको धन्य मानती थी। गाँधीजी का सदा यह प्रयास रहता था कि महिलाएँ अपनी समस्याओं पर ज्यादा रूचि लेकर पुरुषों के समान आत्म-निर्भ हों। इस कार्य में उन्हें काफी हद तक सफलता मिली।

निष्कर्ष

रचनात्मक कार्यक्रम-'उसका रहस्य और स्थान' नामक पुस्तिका लिखने के बाद भी गाँधीजी ने कहा कि रचनात्मक कार्यो की यह सूची कोई आखिरी सूची नहीं है। समय के साथ-साथ इसमें परिवर्तन की गुंजाईश है। गाँधीजी ने जिन उद्योगों का जिक्र किया था, उनमें वर्षो तक तरह-तरह के प्रयोग होते रहे और वे स्वयं भी इन प्रयोगों में रूचि लेते रहे हैं। इन उद्योगों की टेक्नोलॉजी बदली जा सकती है। शिक्षा की पद्धति में नये प्रयोग किया जा सकते हैं। राजनैतिक व्यवस्था में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं। बदले हुए स्वरूप में हम उन कार्यक्रमों को रचनात्मक कार्य कह सकते हैं, जो निम्न हैं–

1. लोगों की ताकत बढ़ाने में सहायता करे।
2. हमें यह विश्वास दिलाये कि इनसे समाज अहिंसा की दिशा में आगे जा रहा है।
3. प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा करे।

आज हम राजनैतिक गुलामी से मुक्त हो गए हैं। लेकिन अहिंसक समाज की रचना से अभी भी बहुत दूर हैं। उनकी नींव रखने के लिए आज भी जगह-जगह रचनात्मक कार्यों के केंद्र विद्यमान हैं। जिस हद तक ये कार्यक्रम लोगों की स्वतंत्र अहिंसक शक्ति बढ़ाने में सफल हो, मनुष्य की अच्छाई और विश्व को कल्याण की दिशा में आगे ले जाने में सफल हो, उस हद तक ये केंद्र रचनात्मक केंद्र ही कहलायेंगें, चाहे उनका नाम गाँधी के नाम से भले न जुड़ा हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पहलूओं के द्वारा तात्कालीन भारतीय समाज को एक नई रूपरेखा दी, जिसके फलस्वरूप भारत को स्वतंत्रता दिलाने में निर्णायक भूमिका रही। वर्त्तमान संदर्भ में भी उनका विभिन्न कार्यक्रमों का अवलोकन किया जा रहा है, जैसे—नशाबंदी या शराबबंदी, स्वच्छता अभियान, स्वरोजगार इत्यादि।

संदर्भ-सूची

1. गाँधीजी कृत - रचनात्मक कार्यक्रम, उसका रहस्य और स्थान, 1941 ई॰
2. के॰ के॰ दत्त - गाँधीजी इन बिहार, पटना, 1969 ई॰
3. महात्मा गाँधी - आत्मकथा और माय एक्सपेरिमेंट विथ ट्रूथ, 1945 ई॰
4. अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम, कलकत्ता, 1977 ई॰
5. महात्मा गाँधी - हिन्द स्वराज, 1909 ई॰
6. महात्मा गाँधी - मेरे सपनों का भारत, 1933 ई॰
7. महात्मा गाँधी - हरिजन सेवा (पत्रिका), 1933 ई॰
8. विश्वनाथ टंडन - गाँधी के बाद सर्वोदय का सामाजिक और राजनीतिक दर्शन, वाराणसी, सर्वसेवा संघ, राजघाट, 1965 ई॰
9. महात्मा गाँधी - नवजीवन, 1941 ई॰
10. जनसत्ता - 2 अक्टूबर, 2016 ई॰

05 July 2017

शेखर जोशी की कहानियों में निम्न-मध्यवर्गीय चेतना: 'बच्चे का सपना' कहानी के विशेष सन्दर्भ में

विजय सिंह

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, हे0 न0 ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल

सारांश

यह कहानी एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। जिसमें एक छोटी बच्ची के माध्यम से कथाकार शेखर जोशी यह दिखाना चाहते हैं, कि एक निम्न वितीय परिवार में जन्म लेने वाले बच्चों में उनके निम्न-मध्यवर्गीय पारिवारिक संस्कारों की एक सुन्दर छटा किस प्रकार दिखायी पड़ती है। जो कि उन्होंने इस कहानी में एक बच्ची के माध्यम से चित्रित किया है, जिसमें वह बच्ची सभी प्रकार की जाति, धर्म, वर्ग और समुदाय के लोगों को एक समान रूप से देखना चाहती है। उसमें सभी प्रकार के लोगों के प्रति आपसी समानता और सौहार्द का भाव तब दिखता है, जब वह किसी रेलवे स्टेशन पर आवारा पड़े आनाथ बच्चों की स्थिति को देखकर गहन सोच में डूब जाती है, और उन्हें भी हर हाल में अपने ही जैसा देखना चाहती है। अपनी इस दुनियां का हिस्सा बनाना चाहती है। इसी में उसकी खुशी है। यह कहानी हमें समाज में सभी जनों के साथ आपसी सामंजस्य बनाए रखने की शिक्षा देती भी देती है। जिसे कथाकार ने बालमनोविज्ञान के माध्यम से दिखाया है।

मुख्य शब्द: देवभूमि, संभाग, केदार खण्ड, मानस खण्ड, साहार्द, जन्मोत्सव, निश्च्छलता, तिरस्कार, बिटिया, नैसर्गिक

पहाड़ी प्रदेश उत्तराखड की यह पावन धरती प्राचीन काल से ही अपना विशिष्ट महत्व रखती है। यह प्रदेश देवभूमि उत्तराखड के नाम से भी विश्वविख्यात है। यह दो संभागों में विभक्त है। गढ़वाल मंडल (केदार खण्ड) और कुमाऊं मंडल (मानस खण्ड) इन दोनों भागों में से कुमाऊं मण्डल का हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान रहा है। इस संभाग ने आरम्भ से ही साहित्य की धारा पर न जाने कितने कवियों, लेखकों, और साहित्यकारों की जमात को खड़ा किया है। जिनमें कथाकार शेखर जोशी का नाम भी आदरणीय है। इनका संबंध भी कुर्मांचल प्रदेश के अल्मोड़ा जनपद की धरती से रहा है।

कथाकार शेखर जोशी का नाम नई कहानी के दौर में प्रमुख कहानीकारों की श्रेणी में आता है। इनकी कहानियां भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय समाजिक चेतना और उसकी मनोदशाओं को विविध स्तरों पर अभिव्यक्त करने वाली कहानियां हैं। ये प्रमुख रूप निम्न-वर्गीय चेतना के कुशल चितेरे कथाकार रहे हैं। इनकी निम्न-मध्यवर्गीय संबंधों को लेकर चलने वाली कहानियों में मुख्यत: बच्चे का सपना, विडुवा, प्रश्न वाचक आकृतियाँ, गाइड, संवादहीन, निर्णायक, पुराना घर, रिक्ति और आदमी का डर जैसी कहानियां प्रमुख हैं। जो भारतीय निम्न-मध्यवर्ग की विडम्बनाओं को प्रस्तुत करती हैं।

'बच्चे का सपना' कहानी में कहानीकार जोशी ने बच्चे के जिस मनोविज्ञान को चित्रित किया है। वह आज की भयावनी उपभोगतावादी संस्कृति के दौर में एक आश्चर्य चकित करने वाली बात है। इस कहानी का अनुशीलन करने के बाद हम इस वास्तविकता से परिचित होते हैं, कि आज के बच्चों की तुलना में पहले के बच्चों का वास्तविक स्वरूप कितना उज्ज्वलतम् स्वच्छ और पवित्र था। यह कहानी उस दौर की है। जिस समय के बच्चों में वास्तविक रूप से उनके अन्तर्गत स्वाभाविक रूप में बचपना

और मानवीयता जैसे गुण सिंचित थे, बचे हुए थे। इसके साथ ही आज के दौर में इस प्रकार की कल्पना हम किसी बच्चे से नहीं कर सकते हैं। जो अपने माता-पिता से अपनी पसंदीदा चीजों को मंगवाने की आड़ पर किसी दूसरी चीज के वास्तविक स्वरूप को देखकर ही सन्तुष्ट होते हों। जो कि इस कहानी में एक बच्ची ने दिखाया है। यानि कि इन बच्चों के अन्तर्मन पर किसी वस्तु की चाह ने अपना अधिकार पूर्णरूप नहीं जमाया था, जिसका आज के बच्चों पर पड़ा।

यह कहानी एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की दास्ता को अंकित करने वाली कहानी है। जिसमें एक पिता अपनी छः, सात वर्ष की बिटिया की इच्छापूर्ति के लिए उसकी मांग के अनुसार बहुत दिनों से उसके चेहरे की मासूम मुस्कान को देखने के लिए महीने के शुरूआती दिनों में ही 'कैंटीन' से एक टॉफी का डिब्बा खरीदा था, क्योंकि एक दिन उसकी बेटी अपनी एक सहेली के जन्मोत्सव की पार्टी में शामिल होती है। तो उसकी सहेली को उपहार स्वरूप किसी ने इसी प्रकार की टॉफी का डिब्बा भेंट किया था। जिसे देखकर वह भी काफी प्रसन्न हुई, और अपने पिता से भी ऐसी ही टॉफी लाने की इच्छा व्यक्त करती है। अब पिता ने उसकी इस प्रसन्नता के खातिर इसी प्रकार की टॉफी का डिब्बा तो खरीद दिया पर उसकी उदासीनता के कारण रास्ते में ही चोरों की भेंट चढ़ जाता है। साथ उसका वह थैला भी जिसमें अन्य आवश्यक घरेलू सामान भी उसने कैंटीन से खरीदकर रखा था। "महीने के शुरू में भीड़ अधिक रहती है, लेकिन खुले बाजार की अपेक्षा चार पैसे की बचत के लिहाज से मैंने देर तक लाइन में प्रतीक्षा करने के बाद प्रायः सभी आवश्यक चीजें ले ली थी। पुरानी पेंट से बनाया गया झोला वनस्पति घी के डिब्बे का भार शायद झेल न सके यह सोचकर मैंने उसे अलग कर दिया था तमाम चीजें जैसे—नहाने के साबुन, तेल, ब्रुष, पेस्ट, लड़कों की बनियान इत्यादि छोटी-मोटी जरूरी चीजें झोले में भर दी थी। इन्हीं के साथ इतने चाव से उसके लिए लिया हुआ टॉफी का पैकेट भी था, जो शायद ठीक वैसा ही रहा होगा जैसा उसने अपन किसी सहेली के जन्म-दिन पर उसके उपहारों में देखा था-भरा-पूरा चमचमाता हुआ।"[1] कहानी के इस अंश में बाजार की अपेक्षा कैंटीन से सामान लेने से अपनी आमदनी की कुछ बचत के लिहाल से तथा पुराने कपड़ों से बनाए हुए थैले को बचाने जैसी सोच से ही स्पष्ट हो जाता है, कि एक निम्न-वितीय परिवार वाला व्यक्ति किस प्रकार की व्यवस्था को अपनाकर अपना जीवन यापन करता है। यानि कि वह हर चीज में कुछ न कुछ बचत करके उस बचत से अपना कोई दूसरा काम निकालता है। तत्पष्चात शाम के समय जब वह व्यक्ति अपने घर पहुंचता है, लेकिन सामान का थैला रेलगाड़ी में ही भूल जाता है, तो घर के सभी सदस्य उसके चेहरे की उदासी को जानने के लिए रूबरू होते हैं। इस पूरी घटना की जानकारी देने के बाद वह अपने घर से अपनी बेटी के साथ वापस रेलवे स्टेशन की ओर अपने सामान की खोज में निकल आता है, तो वहाँ उन्हें चार, छः आवारा बच्चे मिलते हैं, जो कि स्टेशन पर किसी भी गाड़ी के आने की प्रतिक्षा में बैठे थे। और गाड़ी के आने पर वे सब तेजी के साथ उसके अन्दर घुसकर वहाँ किसी के छूटे सामान को उठाकर अपने भूखे पेट का गुजारा-बसरा करते थे। उन्हें देखकर उसे सहसा यह विश्वास हो गया कि उसके सामान का थैला इन्हीं छोकरों के हाथ लग गया होगा, जो कि अब मिलने वाला नहीं है। वहाँ गाड़ी में काफी खोज-बीन करने के पष्चात जब उसका सामान नहीं मिलता है, तो वह वहाँ स्थित रेलवे-पुलिस के पास अपने सामान चारी की रिर्पोट लिखवाने जाता है, लेकिन वहाँ भी वह पुलिस के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर वापस निकल पड़ा। जो कि हमारी पुलिस व्यवस्था का अकसर ही ऐसा रवैया देखने और सुनने को मिलता है, पर यहाँ कथाकार ने कहानी में पुलिस-व्यवस्था पर किसी भी प्रकार की टीका-टिप्पणी किए बिना ही उसकी अपनी भूल-चूक को ही प्रमुखता के साथ इसके लिए जिम्मेदार माना है।

लेकिन कहानी वास्तविक रूप में उस बच्ची को चित्रित करती है। जो अपने पिता के साथ घर से स्टेशन पर पहुंचकर अपनी टॉफी की लालसा को भूलकर वहाँ पड़े उन गरीब, मवाली छोकरों की मैली-कुचैली स्थिति को देखकर उन्हीं के लिए चिन्तित हो जाती है। अब वह अपने अलग-अलग अन्दाज में अपनी कल्पनाओं में उन सब छोकरों के बारे में सोच-विचार करती हुई उन्हीं में खो जाती है। उसे उनकी चिन्ता सताने लगी है। साथ ही कहानी में यह भी ज्ञात होता है, कि उस बच्ची की भोली-भाली नजरों में तो ये सब बच्चे कहीं न कहीं किसी हद तक अपनी विवशता और लाचारी के कारण किसी भी सूरत में बुरे नहीं हो सकते हैं। वापस अपने घर पहुंचने पर जब वह अपने घर में उन बच्चों की चर्चा करती है, कि उनके फटे-चिथड़े कपड़े पहने हुए थे। हाथ-पैर काले हो रखे थे, और आपस में बीड़ी सुलगाकर उसके धुएं से अपने मुंह को गोल बनाकर उस धुएं को छल्लों के रूप में बाहर निकाल रहे थे। अब उसके मन में उन्हीं बच्चों का प्रतिबिंब घुमने लगा है। इस प्रकार की सोच प्रायः मध्य और उच्चवर्गीय परिवार

के बच्चों में कदापि नहीं होती है। इस संबंध में कथाकार जोशी कह रहे हैं। "बच्ची की सारी कल्पना अब उन छोकरों पर ही केन्द्रित होकर रह गई थी, और यह देखकर अच्छा लगा कि वह इस खेल में सुख ले रही थी।"[2] इसके बाद वह अपने पिता से इस बारे में जानकारी लेती है, कि उनके माँ-बाप उन्हें इस प्रकार बीड़ी आदि पीने पर डांटते-मारते नहीं हैं क्या? उन्हें कुछ बोलते नहीं होंगे, तो तब उसका पिता उसे समझाता है, कि वे बच्चे अनाथ हैं, उनका अपना कोई घर-बार माँ-बाप नहीं होते हैं। और नहीं उनका कोई ठिकाना रहता है। वे इधर-उधर घुमते रहते हैं। जब उसके पिता ने उसे यह सब समझाया तो उस बच्ची का साक्षात्कार मानो एक और अजनबी दुनियां से भी हो गया। जिसकी उसके बाल सुलभ मन ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी, कि इस दुनियां में ऐसा भी होता है। यह उसके लिए एक रहस्यमयी बात थी। अब वह उस दुनियां के बारे में भी सोचने लगी। वह उन रहस्यों को सत्यता के साथ खोजने के लिए विवष हो गई। "यह शायद उसके लिए एक नया रहस्य था। बहुत देर तक वह गुमसुम-सी पड़ी रही, जैसे इस यथार्थ को समझने की कोशिश कर रही हो। कुछ देर बाद वह फिर वातावरण में लौट आयी थी। उसने कहा, कल वे लोग खूब साबुन मलकर नहाएंगे। कैसे काले हाथ-पैर हो रखे थे ना, पिता ने हामी भरी शायद कोयला बीनते होंगे। आगे वह अपने पिता से पूछती है। आपके झोले में तेल भी था न? खूब चमचमाकर बाल बनाएंगे। वह अपनी कल्पना में उन्हें नहला-धुलाकर संवार रही थी।"[3] अब उसके अन्दर एक ऐसा भोलापन उद्दीप्त हो उठता है, कि वे अनाथ बच्चे उनके सामान के थैले को प्राप्त करके जिसमें घर का सामान भरा हुआ था को प्राप्त करके उस सामान से अपनी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। जिससे उनके रहन-सहन में बड़ा बदलाव आएगा। यह सोचकर वह अपने-आप में बेहद खुश हो रही थी। फिर वह सोचने लगी कि वे लोग जब कल दुबारा मेरे पापा को मिलेंगे तो बहुत साफ-सुथरे और संवरे हुए होंगे। अब वह उनके बारे में यही कल्पना करने लगी। जबकि उसका पिता तो इस बात को अच्छी तरह समझता है, कि अगर उनके हाथ वह सामान लगा भी होगा तो उसे उन लोगों ने किसी ठेली या दुकान वालों को बेच दिया होगा, क्योंकि उन बेवस बच्चों की मजबूरी तो सजने-संवरने की अपेक्षा प्राथमिक तौर पर अपने खाली, भूखे पेट को भरने की है, लेकिन वह इन सब बातों को अलग रखकर अपनी बिटिया की उन कल्पनाओं के बीच में यह सब बताकर उसके कोमल मन को ठेस नही पहुंचाना चाहता था। उसका जो भोला-भाला मन रहस्यमयी ढंग से उन्हें अपने अन्दर संजोए हुए था। इन सब कल्पनाओं को लेकर उसके बालमन में इतनी खुशी की लहर झलक रही थी, कि वह उन असहाय बच्चों को भी अपनी इस दुनियाँ में लौट आने की कामना करती है। दूसरे दिन जैसे ही उसके पिता जी काम से घर आए, वैसे ही वह उन बच्चों के बारे में जानना चाहती थी। वह अपने पिता से पूछती है, और वह भी उसकी इस तरह की इच्छा को अच्छी तरह भांप गया था, कि उसके मन में उन बच्चों के प्रति आहद स्नेह भर गया है। वह उसके इस प्रकार के विश्वास को तोड़कर उसे निराषा नहीं दिलाना चाहता है। वह झूठ ही कह देता है। हाँ बेटी आज भी मुझे वे सब लड़के दिखाई दिए। मुस्कुराते हुए उसके मनोबल को और अधिक बढ़ावा देता है। "बड़ी उत्सुकता से मेरी ओर देखने लगी। इससे पहले कि वह कुछ और पूछती मैंने ही उसकी समास्या का समाधान किर दिया-आज सब नहा-धेकर साफ-सुथरे बने हुए थे-एकदम हीरो। सुनकर बेटी के चेहरे पर सुखद आषचर्य की चमक आ गई। वह प्रसन्न थी, सन्तुष्ट-परन्तु सभी बच्चों की तरह अपने सपनों की वास्तविकता से अपरिचित और अनजान।"[4] बच्ची जब अपने पिता के साथ घर से स्टेशन पहुंचती है, तो इससे स्पष्ट होता है, कि अन्य सामान की अपेक्षा आज के दिन इन दोनों पिता और बेटी के लिए टॉफी ही कीमती चीज हो गयी थी। लेकिन स्टेशन के जिस वातावरण में उसका प्रवेश होता है। जिसमें पाँच, छः मैले-कुचैले बच्चे फटे-अधफटे ताशों से खेल रहे थे, और साथ में बीड़ी भी पी रहे थे। उनमें से एक बच्चे ने बीड़ी का लम्बा कस लेकर अपने गालों को फुलाकर उस धुएं को एक गोल छल्ले के रूप में हवा में बाहर निकाल दिया। भले ही ये बच्चे उसकी दुनियां के तो नहीं थे, फिर भी उसके लिए इस प्रकार की एक नई दुनियां आक्रर्षण का केंद्र बन गयी। जिसे देखकर उसे एक सुखद अनुभूति हुई थी। वह उस बच्चे के मुंह से निकलने वाले धुएं में जैसे उसके अन्दर की एक शक्ति मानती है। उसकी यह शक्ति उसे बहुत प्रभावित करती है। वह उसकी अच्छाई या बुराई के परिणाम को नहीं समझती। घर आने पर पिता ने उसकी बातों को सुनकर कह दिया कि-"इन धुएं वाले छल्लों वालों की तकदी में ही लिखा था तुम्हारा डिब्बा, बच्ची ने चौंककर पूछा सच पापा।"[5] यह न केवल उसका एक प्रश्न ही था, बल्कि उसकी इच्छा की पूर्ति का आन्नदमय स्वरूप भी उसमें सम्मिलित था। बच्चों के बाल-सुलभमन में प्रश्न ानुकुलता एक सहज प्रवृति होती है। उसका ध्यानकर्षण अब टॉफी पर नहीं उन बच्चों की स्थिति पर है। उनके रहस्यों को जानने और समझने में ही वह व्यस्त हो गयी। वह उन्हें भी अपनी ही तरह देखना चाहती है। वह सोचती

है कि वे अनाथ हैं। उनका अपना कोई नहीं है, कुछ भी नहीं है। न घर-बार, न माँ-बाप इस सोच के साथ ही यह बच्ची अब बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था में पहुंच चुकी है। उसकी चेतन शक्ति का विकास हो जाता है। अब वह उन बच्चों को अपने सामने साफ-सुथरा पाती है। इस प्रकार बच्चों का प्रौढ़ बन जाना एक सुखद अनुभूति प्रदान करता है। देखा जाए तो यह कहानी वास्तविक रूप से व्यक्तिगत अनुभूतियों से आरम्भ होकर मानवीय समाज के एक विस्तृत फलक पर पहुंच जाती है। जिसमें कि अन्तत: यह बच्ची यही समझ बैठती है, कि समान से भरा थैला स्टेशन पर पड़े उन असहाय लड़कों को मिला होगा जिसका उपयोग कर वे भी इस दुनियां में लौट आएंगे। इस दुनियां का एक हिस्सा बन जाएंगे। अब वे भी हमारी ही तरह जिएंगे। इस संबंध में आनंद प्रकाश का यह कथन दृष्टिगोचर होता है। "कहानी यधयपि इस टिप्पणी की मदद से एक अवास्तविक संसार और वास्तविक समाज के बीच की खाई को उजागर करती है, फिर भी लेखक एक महत्वपूर्ण कथ्य सब पात्रों के पारस्परिक लगाव की खूबसूरती को रेखांकित करने में दिखाई पड़ता है।"[6] एक विचारणीय तथ्य यह है, कि एक पिता ने बहुत दिनों से अपनी बेटी के इस मासूमियत भरे चेहरे की जिस मुस्कुराहट को देखने के खातिर उसके लिए टॉफी का डिब्बा खरीदा था। वही मुस्कान आज उसके चेहरे पर टॉफी के खातिर नहीं बल्कि किसी दूसरे बहाने से झलक उठती है। इस संबंध में श्रीराम त्रिपाठी अपने एक लेख 'जिनकी पीठ पर यह पृथ्वी टिकी है' में लिखते हैं। "हर पिता अपनी सन्तान के चेहरे पर एक सुखद आषचर्य की चमक देखना चाहता है। इस सामान्य चाहत की पूर्ति असामान्य द्वारा होती है। जो वस्तु लेकर वह जाता है, वह समान्य ही है, परन्तु उसकी बिटिया के लिए असामान्य है। एक ओर पिता को असामान्य की पूर्ति का सुख है, तो दूसरी ओर बिटिया को असामान्य की प्राप्ति का सुख जिसे वह बहुत दिनों से मांग रही थी। मतलब कि खुशी को और बढ़ावा दिया जाता। एक निम्न वितीय व्यक्ति इसी तरह खुद की और अपने बच्चों की खुशी को बढ़ाता है।"[7] साथ ही साथ हमें यह भी अनुभूत होता है, कि यह कहानी आज के बालमनोविज्ञान के एकदम विपरीत है। क्योंकि आज के दौर का बच्चा भी आत्म-केन्द्रित हो गया है। उसमें इस प्रकार का सहयोग और समानता का भाव कहीं भी दिखाई नहीं देता है। क्योंकि आज के दौर में आत्म-केन्द्रित जीवन शैली बनाने में विभिन्न प्रकार के इलैक्टॉनिक्स और प्रिण्ट मीडिया जैसे माध्यमों ने इन बच्चों को अपनी ओर आकर्षित करके इन्हें एक टैक्नोलॉजी की दुनियां में मोड़कर उन्हें भी आधुनिक जीवन परिस्थितियों में ढालकर इन नन्हें-मुन्नें बच्चों की इस प्रकार की मासूमियत, निश्च्छलता और एक-दूसरे के दु:ख-दर्द को साझा करने वाले वास्तविक मानवीयता के गुणों को समाप्त कर दिया है। आज के उपभोगतावादी दौर में भी यह कहानी उपभोगतावादी सोच का तिरस्कार करके हमारे सामने किसी प्रकार का प्रश्न खड़ा किए बिना ही हमें एक विस्तृत मानवीयता की धारा पर पहुंचाती है। कहानी में आए तथ्यों से यह भी यह भी स्पष्ट होता है, कि यह बात बिल्कुल ही गलत है, कि मानव जीवन में वास्तविक खुशियां महज कुछ चंद चीजों की प्राप्ति से ही सम्भव है, बल्कि सत्य तो यह है, कि ये खुशियां हमारे जीवन में हमारी भावनाओं के अनुरूप किसी भी प्रकार से लौट आती है। साथ ही कथाकार शेखर जोशी की कहानियों का अनुशीलन करने से यह भी पता चलता है, कि वे बच्चों को हमेशा उनके वास्तविक रूप में देखना चाहते थे। 'शेखर जोशी की कहानियां बच्चों के कोमल संसार को उनकी नौसर्गिकता के साथ बाचाना चाहती हैं। उनमें कृतिमता का कितना ही लेप लगाएं, कितना ही मोडें वे कच्ची टहनियों की तरह हर एक झौंके के बाद नुन: वापस अपनी स्थिति में लौट आते हैं।'[8]

इस प्रकार यह कहानी न केवल एक बच्चे का सपना है। वरन् यह तो हम सभी लोगों की एक सम्मानपूर्वक सोच रखने वाले सामाज का भी एक सपना है। इस दृष्टि से यह आज के समाज के लिए एक अति महत्पूर्ण कहानी है, जो कि हमारे मौजूदा संकटों के बाद भी इन सपनों को सही सलामत रखने की एक चुनौती हमारे सामने पेश करती है। कथा के माध्यम से कथाकार ने वास्तविक रूप में बच्चों के दोश रहित स्वाभाविक सपनों के आश्रय से हमारे और हमारे अन्दर की मनुष्यता को संजोए रखने का संकेत दिया है। जो कि सभी जनों को एक जैसा समझती है। और सभी की खुशहाली की कामना करती है। साथ ही कहानी समाज के नैसर्गिक स्वरूप को भी प्रत्यक्षत: हमारे सामने प्रस्तुत करती है, कि सामाजिक क्रिूरता के बीच इन बच्चों द्वारा की गई चोरी के लिए कहीं न कहीं हमारा मानवीयता के भावों से भरा समाज ही जबावदेही है। क्योंकि ये बच्चे इस समाज की वास्तविकता से पूर्णत: अनभिज्ञ हैं, इसलिए वे बेकसूर हैं।

सन्दर्भ

1. संकलित कहानियां, 'बच्चे का सपना' कहानी, शेखर जोशी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, प्रथम पृष्ठ 1-2, संस्करण: 2008
2. वही, पृष्ठ 5
3. वही, पृष्ठ 5-6
4. वही, पृष्ठ 6
5. वही, पृष्ठ 5
6. हिन्दी काहानी की विकास प्रक्रिया, आनंद प्रकाष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 102, प्रथम संस्करण: 1997
7. अनहद पत्रिका, संतोष कुमार चतुर्वेदी, इंडिया प्रेस, इलाहाबाद,, अंक 4, जनवरी, 2014 पृष्ठ 102
8. वही, पृष्ठ 109

महात्मा गाँधी का राष्ट्रवादी दर्शनः एक अध्ययन

नीरज कुमार

उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षक (इतिहास विभाग), +2 उच्च विद्यालय, चकहबीव, समस्तीपुर

राष्ट्रवाद से अभिप्राय है-राष्ट्र के प्रति प्रेम या स्नेह। अपने ऐतिहासिक राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि पृष्ठभूमि में रहने वाले लोगों में स्नेह एवं एकता की भावना ही राष्ट्रवाद है। यह संसार में प्रत्येक देश के लोगों में यह भावना विद्यमान रहती है जिसका विकास आधुनिक विश्व में राजनीतिक पुनर्जागरण का परिणाम है।

18वीं शाताब्दी में राष्ट्रवाद शब्द का पहली बार प्रयोग जॉन **गॉटफ्रेड हर्डर** ने की थी और इस शब्द का प्रयोग करके जर्मन राष्ट्रवाद की नींव डाली। उस समय केवल इतना ही बताया गया की राष्ट्र केवल समान धर्म, क्षेत्र, नस्ल, भाषा आदि से बनता है। परन्तु जब इस आधार पर सामांजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया तो इसने केवल तनाव एवं हिंसा को जन्म दिया। राष्ट्रवाद की अवधारणा को जब जोर-जबरदस्ती से लागू किया जाता है तो वह 'अतिराष्ट्रवाद' या 'अन्धराष्ट्रवाद' कहलाता है। अर्थात जब राष्ट्रवाद चरममूल्य बन जाता है तो सांस्कृतिक विविधताओं के नष्ट होने की सम्भावना बढ़ जाती है। भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में महात्मा गाँधी के विचार महत्वपूर्ण माने जाते हैं। उन्होंने अपने राष्ट्रवादी विचारधारा में स्वराज्य, स्वदेशी, शिक्षा, साम्प्रदायिक एकता आदि पर बल दिए। उन्होंने अपने राष्ट्रवाद में महिला सशक्तिकरण, मद्यनिशेध, छुआ-छूत उन्मूलन एवं स्वच्छता आदि में रचनात्मक कार्य पर बल दिए।

महात्मा गाँधी का राष्ट्रवाद व्यक्ति एवं मानवतावाद को अधिक महत्त्व देता है। उन्होंने लोकमानवतावाद का पक्ष लिया। जनता की भागीदारी को अनमानस में बदलने हेतू अहिंसात्मक एवं रचनात्मक कार्यो को अपनाया एवं लोगों के बीच एकता एवं अखंडता को स्थापित करने का प्रयास किया।

सुखी ग्राम समुदायों वाली गाँधी की "राम राज्य" की कल्पना और लघु स्तरीय ग्राम कुटीर उद्योगों का उनका आदर्शीकरण, श्रम बचाने वाली आधुनिक मशीनों के प्रयोग में कुछ सशर्त छूट देते हुए भी भारतीय समाज और उसकी संस्थाओं में औपनिवेशिक पैठ के विरूद्ध राष्ट्रीय चुनौती का प्रतीक बन गया।

"महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद के कपड़ा कामगारों को अहमदाबाद कपड़ा मजदूर एसोसिएशन के रूप में संगठित किया था और पूंजीवादी मालिकों से बोनस लेने के लिए 1918 में 21 दिन का उपवास किया था। बाद में, गाँधी ने औद्योगिक मजदूरों की उग्र कार्रवाई से अपने आप को दूर रखा था।"

महात्मा गाँधी ने 'सर्वोदय' के द्वारा सबका उत्थान करने का प्रयास किया। इसलिए उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध कर हरिजनों को मंदिर में प्रवेश की वकालत की। उन्होंने स्वदेशी पर जोर देते हुए लोगों से स्वदेशी वस्तुओं एवं कपड़ों को अपनाने एवं विदेशी वस्तुओं को त्याग करने की अपील की।

उन्होंने स्वदेशी को स्पष्ट करते हुए कहा की सर्वप्रथम पड़ोस में बनी हुई वस्तु का उपयोग करना चाहिए अगर पड़ोस में न हो तो गाँव में, गाँव में न हो तो प्रखंड में, प्रखंड में न हो तो जिला में, यदि जिला में न हो तो राज्य में, और यदि राज्य में न हो तब अंत में देश में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए जिससे ग्राम के साथ-साथ राष्ट्र मजबूत बन सकेगा। गाँधी ने कहा की "मैं अमेरिकी गेहूं खाऊँ और मेरा पड़ोसी अन्न अभाव में भूखा मरने दूँ तो यह पाप है।"

स्वदेशी को स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी ने भारत के प्रत्येक व्यक्ति को घर में अपनी आवश्यकतानुसार कपास बोने एवं उस कपास को चरखा के माध्यम से सूत कातकर उनके वस्त्र बनाने पर जोर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने ग्राम उद्योग के माध्यम से ग्राम को स्वयं आत्मनिर्भर बनने की बात बताई। "यदि हमारे देश के लोग स्वयं यह सुनिश्चित कर लें की वह स्वयं द्वारा बना एवं काता हुआ कपड़ा पहनेंगे तो हम जल्द ही आत्मनिर्भर बन सकेंगे और हमारा राष्ट्र मजबूत बन सकेगा।" साथ ही साथ हमारे देश के गरीब एवं अशिक्षित जनता का जो शोषण विदेशी कंपनियाँ कर रही है वह स्वत: ही समाप्त हो जाएगी एवं ये कम्पनियां फिर स्वयं ही देश छोड़कर चली जाएगी और हम आर्थिक आजादी को प्राप्त कर पाएँगे।

गाँधी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अच्छे तरीके से समझते थे। वे जानते थे की वैश्वीकरण की प्रक्रिया मानव को अपनी आवश्यकतों को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसलिए उन्होंने स्वदेशी दर्शन पर बल दिया जो मानवीय आवश्यकताओं को कम करने के साथ-साथ शारीर श्रम के माध्यम से जीविकोपार्जन किया जाए तो व्यक्ति की आवश्यकताएँ बहुत ही कम हो जाएगी, जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर बन सकेगा एवं शांति तथा खुषहाली को प्राप्त कर सकेगा।

इस प्रकार महात्मा गाँधी के विचारों से वैश्वीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति प्राप्त होती है। उनके इन विचारों का उल्लेख 'हिन्द स्वराज' (1909) में मिलता है गाँधी ने स्वदेशी के रूप में एक ऐसा समाधान दिया जो एक ओर तो बेरोजगारी एवं गरीबी को कम करेगा वहीं दूसरी ओर उदारीकरण एवं निजीकरण की दौड़ से भारत जैसे विकासशील देशों को बचा सकेगा।

"गाँधी का राष्ट्रवाद पुरे विश्व को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करता है। उन्होंने पूरे विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना के माध्यम से मानव अधिकारों के संरक्षण पर बल दिया। पूंजीवाद, रंगभेद, अत्याचार आदि को नकारते हुए अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, साधन एवं साधय आदि पर जोर देते हुए विश्व में शांति स्थापित करने के लिए सकारात्मक व्यवहारिक दृष्टिकोण को अपनाने पर बल दिया।

गाँधी के राष्ट्रवादी विचारधारा में मूलरूप से उनका राजनीतिक चिंतन दिखता है। जिसका मूल उद्देश्य केवल 'मानवहित' है। इनके अनुसार राष्ट्रीयता और मानवता दोनों एक ही चीज है। गाँधी का राष्ट्रवाद सहिष्णुता, त्याग, बलिदान, अनुशासन एवं विश्व के कल्याण पर आधारित है। इस तरह उनका राष्ट्रवाद पश्चिम के राष्ट्रवाद से भिन्न है। गाँधी ने ऐसे राष्ट्रवाद को अस्वीकार कर दिया, जिससे हिंसा का सहारा लिया गया हो।

महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम अपने राष्ट्रवाद का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में किया। जहाँ उन्होंने उपने सत्याग्रह के माध्यम से गिरमिटिया प्रथा एवं रंगभेद की नीति को समाप्त करने का प्रयास किया। जब वे भारत लौटे तो इसका सर्वप्रथम प्रयोग चम्पारण आंदोलन (1917) में किए। उसके बाद खेड़ा आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, एवं भारत छोड़ो आन्दोलन द्वारा शांतिपूर्ण तरीके से बहिष्कार, धरना, हड़ताल, अनशन आदि पर बल दिए। फलत: इन आंदोलनों ने देश को स्वतंत्रता की ओर आगे बढ़ाया।

गाँधी अपने राजनीतिक आख्यान में महिलाओं को बार-बार संबोधित करते थे और उन्हें एक सृजनात्मक शक्ति मानते थे। उन्होंने विशेषकर 1930 के बाद सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को समर्थन और प्रोत्साहन दिया। दूसरी ओर, वह चाहते थे की महिलाएँ पुरुषों की सहयोगी, और माँ की भूमिका निभाएँ और आत्मत्याग तथा अहिंसा के उदाहरण के रूप में और खादी बुनने वालियों के रूप में प्रस्तुत हों। गाँधी महिलाओं को उनके पारंपरिक स्थान और कार्य में, अर्थात घर के काम काज और बच्चों के पालन-पोषण में सर्वाधिक योग्य मानते थे। इस प्रकार, गाँधी की दृष्टि और कल्पना में पितृसत्तात्मक मूल्यों का रंग था।

"महात्मा गाँधी का आर्थिक राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में विचार वर्तमान से भविष्य के धरातल तक विस्तृत था जिसमें मुख्य रूप से ट्रस्टशिप, स्वदेशी एवं सर्वोदय आदि के सिद्धात थे। वे पश्चिमी सभ्यता के मानवीकीकरण, औद्योगीकरण तथा एकाधिकार आर्थिक संयंत्र की विकृतियों से चिंतित थे। जिस कारण वे आर्थिक पुनर्निर्माण की जिन प्राथमिकताओं की ओर इशारा किए वे उनके वैचारिक आग्रहों का प्रतीक था। यहीं कारण था कि गाँधी ने आर्थिक विकेंद्रीकरण को एक अहिंसक समाज का अनिवार्य तत्व माना क्योंकि आज की दुनिया में जो हिंसा दिखाई दे रही है वह केंद्रीकृत औद्योगीकरण का परिणाम है।

गाँधी ने अहिंसावादी समाज के निर्माण के लिए केंद्रीयकृत भारी उद्योग के जगह लघु एवं कुटीर उद्योग पर जोर दिया यही कारण है कि उन्होंने कई बार यह कहा कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाएगी तो सम्पूर्ण भारत नष्ट हो जायेगा। इसलिए यदि राष्ट्र को

मजबूत एवं आत्मनिर्भर बनाना है तो गाँव को आत्मनिर्भर एवं मजबूत करना अनिवार्य होगा। गाँधी बहुत पहले ही इस बात को समझ चुके थे की आज जो उद्योगगीकरण के कारण शाहरी क्षेत्र पर दबाब बढ़ता जा रहा है अर्थात् गाँव से शाहर की ओर पलायन बढ़ रहा है उससे शाहरी क्षेत्र के सीमित संसाधनों पर दबाब बढ़ेगा। इसके लिए ही उन्होंने लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर बल दिया, जिससे की ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर एवं सशक्त बने तथा गाँवों से शाहरों की ओर पलायन रूके।

वर्त्तमान दौर में भी हमारी मूल आवश्यकताएँ आर्थिक एवं आण्विक हथियार नहीं है। हमारी वर्तमान आवश्यकताएं शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, स्वच्छ पानी, गरीबी उन्मूलन, हिंसा पर रोक, कृषि एवं ग्रामीण विकास, यातायात सुविधाएँ, उर्जा आदि की प्राप्ति है। इन्हें प्राप्त करने के लिए आज गाँधी के विचारों को अपनाने की आवश्यकता है।

महात्मा गाँधी की अंर्तदृष्टि ने बहुत पहले ही समझ लिया था कि राजनीति के अपराधीकरण का मुख्य कारण भष्टाचार एवं नैतिक मूल्यों का पतन है। इसलिए उन्होंने राजनीति के अध्यात्मीकरण करने का प्रयास किया। गाँधी ने कहा की सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह जैसे राजनीति मूल्यों के आधार पर राजनीति कार्यो का संचालन होने पर ही जनता के हितों की रक्षा की जा सकती है। राजनीति एवं प्रशासनिक जीवन में भ्रष्टाचार एवं कर्तव्यहीनता को रोकने हेतु गाँधी द्वारा प्रतिपादित आदर्षो को अपनाना होगा।

आज अधिकतर देशवासी अपनी सारी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति स्वार्थ की अग्नि में भस्म करते जा रहे है। आज संकीर्ण राष्ट्रवाद की भावना से देश की गरिमा न जाने कहाँ खो गई है। स्वार्थ साधना के साधक लोग राष्ट्र को रसातल में ले जाकर उसकी रीढ़ की हड्डियाँ तोड़ने पर तुले है स्वार्थ की भावना के विशाक्तता के कारण वायुमंडल विशैला बनता जा रहा है। आज लोग बिना सोचे समझे आपस में लड़ते नजर आ रहे है। समाज साम्प्रदायिकता की भावना में बँटा हुआ नजर आ रहा है।

गाँधी के एक राष्ट्रभाषा सूत्र पर अमल किया जाए तो वर्तमान भारत में भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन की प्रवृति, दक्षिण एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र में हिन्दी भाषा के विरूद्ध होने वाली हिंसा, महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों का विरोध आदि भाषा के आधार पर होने वाली समस्याओं का समाधान निकलता है।

"भाषावाद की समस्या के निराकरण हेतु महात्मा गाँधी ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि हम भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते है, तो हमें हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाना होगा शिक्षा के माध्यम को भी मातृ भाषा के रूप में अर्थात् हिंदी भाषा के रूप में अपनाना होगा।" महात्मा गाँधी में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी तथा ऐसी ही भावना को देश के प्रत्येक नागरिकों में वे देखना चाहते थे, जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्र एवं जन की दूरियों को कम करना था। "गाँधी राजनीतिक स्वराज्य को भी प्राप्त करना चाहते थे।" उनके 'सपनों का भारत' परिकल्पना इस स्वप्न को सार्थक करने की दिशा की ओर इंगित करती है।

आजादी के 72 वर्षो बाद भी हम जब अपने देश की परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि देश आज नक्सलवाद, आतंकवाद, महंगाई आदि से जूझ रहा है। आजादी के पूर्व एवं बाद के दौरान जिस लक्ष्य एवं राष्ट्रीय कार्यक्रम पर सहमती बनी थी उन सबोंको चुनौती मिल रही हैं। एवं राष्ट्र को विपरीत दिशा में ले जाने वाली ताकतें भारत पर हावी हो रही है, साथ ही साथ गाँधी ने पश्चिम के वर्चस्व को समाप्त करने एवं विश्व स्तर पर भारत की पहचान बनाने का जो सपना देखा था वह अभी अपूर्ण है।

गाँधी का विचार था कि हिंसा का मूल कारण शोषण अभाव एवं विषमता है, जिससे देश में नक्सलवाद एवं आतंकवाद की जड़े फैलती जा रही हैं। उनका मानना था की भारत में उग्रवादी हिंसा स्वत: उत्पन्न नहीं हुई है बल्कि इसके पीछे आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक आदि प्रमुख कारण हैं।

यहीं कारण है की गाँधी ने रचनात्मक कार्यक्रमों के अंतर्गत बुनियादी शिक्षा, स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता एवं चरखा को अपनाने पर जोर दिया। "गाँधी का यह मानना था की राजनीतिक शक्ति का केंद्रीकरण भी हिंसा के लिए उतना ही उत्तरदायी है जितना आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण।" इसके लिए 'लोकसम्मत्ति' की सरकार से काम नहीं चलेगा बल्कि स्वयं 'लोगो की सरकार' होनी चाहिए, जिससे लोग स्वयं अपना काम चलाने लगे, अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है की जनता के हाथों में अधिक से अधिक शक्ति होनी चाहिए। चूँकि भारत एक ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाला देश है जहाँ की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती हैं। इसलिए "गाँधी ने सत्ता विकेंद्रीकरण अर्थात् ग्राम स्वराज्य का विचार दिए, ताकि देश को भूखमरी, गरीबी, शोषण से मुक्ति मिल सकें।"

निष्कर्ष

वर्त्तमान में आतंकवादी हिंसा एवं देश के अन्य समस्याओं का समाधान गाँधी के ग्रामीण गणतंत्र के स्वरूप को अपनाकर किया जा सकता है क्योंकि जब शासन के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति की भागेदारी होगी तो स्थानीय स्तर की समस्याओं को शीघ्र सुलझा लिया जाएगा, जिससे शासन के प्रति हिंसा या असंतोष नहीं पनपेगा और जब हिंसा एवं असंतुष्ट नहीं होगा तो लोगों को हथियार उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, जिससे राष्ट्र आतंरिक रूप से मजबूत होगा एवं बाहरी ताकतों को भी हिंसा भड़काने का मौका नहीं मिलेगा, जिससे हम महात्मा गाँधी के राष्ट्रवाद के विचारों एवं सिद्धांतों को सफलतापूर्वक अपनाने एवं लागू करने में सफल हो पाएंगे साथ ही साथ इसके माध्यम से हम भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को और अधिक मजबूत करने में सफल हो पाएंगे।

सन्दर्भ

* हिन्द स्वराज्य, महात्मा गाँधी, अनुवाद-प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-132
* सविता सिंह, सत्याग्रह, पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-30, 130
* ज्ञानेन्द्र रावत-महामानव महात्मा गाँधी-एक विमर्श, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ-19
* सत्य के प्रयोग, महात्मा गाँधी, अनुवाद-काशीनाथ त्रिवेदी, लेख
* भारत में विभिन्न युगों के दौरान समाजिक संरचना का विकास, डॉ. कृष्ण, इग्नु नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-24
* आशीष नंदी, राष्ट्रवाद बनाम देशभक्ति, अनुवाद-दुबे अभय कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ-32
* ग्राम स्वराज-महात्मा गाँधी-नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद
* के0 डी0 गंगराडे, गाँधी के आदर्ष और ग्रामीण विकास, राध पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ-26

मैथिली कथा संसारमे राजकमल चौधरीक ‘ललका पाग’ कथाक महत्त्व

प्रीति कुमारी

अतिथि व्याख्याता, मैथिली विभाग, ललित नारायण स्मारक महाविद्यालय, वीरपुर (सुपौल) बिहार

स्व. राजकमलक ‘ललका पाग’ एकगोट उत्कृष्ट कथाक श्रेणीमे अबैत अछि। ‘ललका पाग’ कथाक महत्त्व ओहिना अछि, जेना चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’ क ‘उसने कहा था’ शीर्षक कथाक। राजकमल अल्पायु होइत मैथिली साहित्यक भंडार कँ भरलनि। कथा, उपन्यास ओ मुक्तक कविताक क्षेत्रमे अग्रगण्य रहलाह।

स्व. राजकमलक आर्विभाव मैथिली साहित्यमे ओहन समयमे भेल जखन साहित्यक सभ विध वैवाहिक समस्याक चारूकात घुरिया रहल छल। मुदा मिथिलाक स्त्रीक सामाजिक ओ पारिवारिक स्थितिक वर्णन कोनो विधमे गौण छल। राजकमल पहिल बेर अपन कथा विधक संग एहि सभ समस्या कँ उजागर करबाक प्रयास कयलनि।

राजकमलक कथा संसारमे मिथिलाक असली समस्या सामाजिक अशिक्षा एवम् अर्थक विपन्नताक चित्रण भेल अछि। संगहि पात्क चरित्र हीनता पर आक्षेप नहि कए ओकर आदिमूल दिस संकेत कयलनि अछि। राजकमल मैथिली कथामे विषय ओ शिल्प दुनू दृष्टिएँ परिवर्त्तन आनलनि। परम्परा भंजक रूपमे साहित्यमे उपस्थित भेलाह तथा उपहासक पात्र बनलाह।‘ललका पाग’ कथाक अन्तर्गत मिथिलाक नारीक ओहन स्वरूप उजागर भेल अछि, जाहिमे पतिक प्रताड़ना, परिवारक प्रताड़ना कँ शिरोधर्य करैत ओ मूक बनल रहैत छल। पुरुष-प्रधान सामाजिक सोच ओ विकृतिक अभिव्यक्ति ‘ललका पाग’ कथामे भेल अछि।

‘ललका पाग’ कथाक नायिका त्रिपुरा उर्फ तीरू ओहि समस्त मैथिल स्त्रीक प्रतिनिधित्व करैत अछि जे समाजक दंडकँ अपन प्रालब्ध बूझि मूक भए सहन करैत अछि। सौन्दर्यक सन्दर्भमे तीरू कोनो अप्सराक संग तुलना करबाक योग्य नहि छल, ओकर पारिवारिक पृष्ठभूमि से हो अत्यन्त दयनीय छल।

‘ललका पाग’ कथाक कथानायिका तिरू अपन क्रोधी, अविवेकी एवं आतार्किक पति तथा निर्दयी सासुक चक्र चालि कँ देखैत, बुझैत आ सहैत अछि। तीरू मैथिल नारीक ओहन कोटि मे अबैत अछि, जे जातमे गहूम पिसैत अछि, ढ़ेकी मे धन कुटैत अछि, उखरिमे धन छटैत अछि, सिलौट पर मसाला पिसैत अछि आ पिठार पिसैत कोनो नव-पुरान पदकँ (गीत कँ) नहुएँ-नहुएँ स्वर मे गबैत अछि। कथानायिका तीरूक बालअवस्थामे तीरूक पिता परलोक वासी भए भेल छलाह, भाय क्षिंगुरनाथ गाम सँ भागि गेल छलाहा।

एहन परिस्थितिमे तीरू आर्थिक विपन्नता सँ जुझैत माएक संग जीवन यापन करैत छलीह। राजकमल ‘ललका पाग’ कथामे तीरूक वय: सन्धिमे प्रवेश करबाक वर्णन एहिरूपँ केने छथि -“किछुए वर्षमे पेटमे पिल्ही, देहमे घाव-गोंसरी, आँखिमे सेर दू सेर काँची नेने फाटल-चीटल फराक मे नेटा-पोंटा पोछैत खरिहाने-खरिहान, गाछिए-गाछी वउआइवाली तीरू, बाँसक नवका कोपरसन कोमल, कविश्रेष्ठ वाणभऋक श्यामांगी नायिका भ गेली।”

पंडित टेकनाथ झा अर्थात तीरू क पिताक देहान्तक एगारह वर्षक बाद जखन तीरू’ क भाय झिगुरनाथ गााम वापस होइत छथि, तखन तीरूक वयस लगभग तेरहक करीब छल। भाय झिंगुरनाथ तीरूक विवाहक निर्णय लेत अछि आ चंडीपुरक रामसागर चौधरीक सुपुत्र राधकान्त सँ तिरूक विवाह होइत अछि। इम्हर तिरू परिणीता तँ भेलीह मुदा बाल-बु) सँ युक्त छलीह। सरल निश्छल हृदय

सँ युक्त तिरू अपन सत सासु सँ पोखरिमे हेलबाक प्रसंग पुछलनि–"माय अहाँकँ पोखरिमे हेलए अबैत अछि? हुनक सत सासु तिरूक जीवनमे विष घोरबाक संकल्प केने छलीह। हुनका एहि सँ नीक अवसर आर की भेटतनि! ओ स्वंय एवम् भोला मास्टरक माध्यम सँ सम्पूर्ण गाममे एहि बातक मिथ्या प्रचार करोलनि जे नबकी कनियाँ रातिमे पोखरिमे हेलैत छलथिन्ह। ई मिथ्या समाचार आगि जकाँ गामभरिमे पसरि गैल। स्वभाविक अछि जे एहिबातक जानकारी राधकान्त कँ सेहो भेलन्हि। जखन राधकान्त एहिबातक सन्दर्भमे तिरू सँ प्रश्न कयलनि जे की अहाँ रातिमे पोखरीमे नहाइत छी? एहि प्रश्न क उत्तर नहि दए कए तिरू चुप्प रहि गैलीह जे राधकान्तक शंका के विश्वास मे बदलि देलक उपरान्त राधकान्त निश्चय कयलनि जे तिरू कँ एहिलेल दंडित कयल जाए आ दंडक रूपमे राधकान्त तिरू कँ परित्याग कयलनि।

ओना पहिने सँ राधकान्त कँ आधुनिका कामाख्याक छवि आकर्षित केने रहैत छल। डा0 शम्भुनाथ मिश्रक सुपुत्री कामाख्या द्वारा कॉलेजमे गाओल ओ गीत–"पिआ आ जा, पिआ आ जा, आ आऽऽ ......" सदिखन राधकान्तक मानस–पटल पर उभरैत रहैत छल। राधकान्त एवम् कामाख्याक बीच विवाहक प्रस्ताव स्वंय राधकान्तक माय अर्थात् चननपुरवाली देलनि, जकरा कामाख्याक पिता स्वीकार कए लेलनि।

इम्हर लगभग एक वर्षक बाद राधकान्त तिरूक घर जाएत अछि। तिरू अत्यन्त दुःखी छलीह, तँ नीचा मे सुतबाक तैयारी करए लगलीह। पलंग पर बैसेत राधकान्त तिरू सँ प्रश्न कयलनि–"हम दोसर विवाह कए रहल छी।" तिरू चुप्पे रहलीहा। "की कहैत छी? दुःख तँ नहि हएत। पुनः

राधकान्त क्रोध मे आबि कए जोर सँ बाजल–की पुछैत छी? एतेक कालक पश्चात् मूड़ी उपर उठाकए स्थिर दृष्टिएँ राध दिस तकैत वाणभट्टक नायिका बजलीह–"हम की कहू? हमरा कियेक दुःख होयत। अहाँ विवाह करब तँ हमरा दुःख कियेक होयत। एहन कियेक विचारैत छी! अहीकँ सुख तँ हमरो सुख थिक।"

पुरुष–प्रधान मिथिलाक सामाजिक सोचक कारणेँ मिथिलामे एक पुरुष कैकटा स्त्रीक संग विवाह करबाक लेल स्वतंत्र छल तँ राधकान्तक पुनर्विवाहक समय कोनहुँ अस्वभाविकता ग्रामीण समाजमे नहि उभरल। पुनर्विवाहक समय राधकान्तक लेल जखन ललका पागक आवश्यकता भेल आ ललका पाग घरमे कीनि कँ नहि आनल गेल छल तखन 'तिरू' क विवाहमे जे ललका पाग पहिरल गेल छल, जकरा प्रतिदिन तिरू फूल– मालाक संग पूजा करैत छलीह, ओहि ललका पाग कँ लए तिरू राधबाबूक समक्ष उपस्थित कयलक। एहि प्रसंग कँ कथाकार बड्ड मार्मिक ढ़ंगे प्रस्तुत कयलनि अछि –"

राधबाबूक हाथमे पाग दैत तिरूक छाती फाटि गेलनि। किन्तु एहिबर ओ कनलीह नहि, हृदय कठोर कए अपन नोर पीबि गेलीह। ई ललका पाग राधबाबूकँ हिला देलक, हुनक कठोर हृदय कँ मोम बना देलक।कथनायिका तिरू अपन सद्चरित्र, सबल व्यवहार एवम् विकृति मूलक सोच पर अंकुश लगबैत छथि। तिरू बाजी कँ नहि अपितु अपना कर्त्तव्य, व्यवहार विचार आ हाव–भाव सँ पतिक हृदय मे प्रवेश करैत छथि। तिरूक आत्मीय समर्पण एवम् पतिव्रत धर्म निर्वहनक कारणें राधबाबूक बढ़ल डेग पाछु भऽ जाइत अछि। तिरूक धैर्य, सहनशीलता ओ कोमल व्यवहार कठोर हृदयक राधबाबू के द्रवित करैत समाजक समस्त नारी कँ संदेश देत छथि जे नारीक अस्त्र धैर्य, सहनशीलता, सद्विचार, सद्व्यवहार एवम् पतिव्रत धर्म निर्वहन करबाक अप्रतीम मनोभाव होइत अछि। वस्तुतः तिरू एहन मैथिल स्त्रीक छवि प्रस्तुत केने छथिन्ह जे जीवन भरि दुःख सहैत अछि मुदा किछु बजैत नहि अछि। तिरू कमजोर नहि छथि अपितु हुनका मे स्वाभिमान अछि मर्यादा अछि।

निष्कर्षत

उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय कथाकार राजकमल 'ललका पाग' कथाक माध्यम सँ स्त्री चरित्रक सबलता ओ दुर्बलता तथा सामाजिक शाडयंत्र, सामाजिक तानाबाना, पुरुषक भ्रमित सोच कँ कथामध्य प्रस्तुत कयलनि अछि। ललका पाग सफल कथाक कोटिमे अबैत अछि कारण समस्याक साथ समाधानक कथन अछि। कथा ललका पाग कथाक राजकमलक कथामे अलगे महत्त्व अछि कारण ललका पाग टुटैत दाम्पत्य जीवन कँ बचैबाक काज करैत अछि।

परिशिष्ट मैथिली

कथासंग्रह

1. ललका पाग, 1968
   संपादक-मंडल
   प्रो0 विश्वम्भर झा
   आद्यानाथ झा 'निरंकुश'
   भूमिका - रमानाथ झा
2. कृति राजकमल, 1980
   संपादक
   प्रो0 आनन्द मिश्र
   श्री मोहन भारद्वाज

अनुसूचित जाति महिलाएँ एवं राजनीतिक सशक्तता : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सीकर जिले के संदर्भ में)

अनिल सैनी

शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग जयनारायण व्यास, विश्वविद्यालय, जोधपुर

सार

राजनीतिक सन्दर्भ में महिला सशक्तीकरण के स्तर का ज्ञान इस आधार पर हो सकता है कि सत्ता स्वरूप निर्धारण और उसमें सहभागिता के मामले में उन्हें कितनी स्वतंत्रता व समानता प्राप्त है तथा उनके योगदान को कितना महत्व दिया जाता है। राजनीतिक शक्ति संरचना व निर्णय प्रक्रिया से जुड़े कार्यकलापों से सशक्त व सुनिश्चित भागेदारी ही महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त कर सकती है। आज सम्पूर्ण विश्व की महिलाएँ समाज में शक्ति के असमान व एक पक्षीय वितरण को चुनौती देने हेतु निरंतर प्रयास कर रही है। असमानता पर आधारित लैंगिक मुजफ्फरपुर में परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि वर्तमान वैश्विक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में, सत्ता व शक्ति के मुख्य केंद्र बिन्दुओं यथा-राज्य, बाजार व नागरिक समाज का नेतृत्व करने के लिए महिलाएँ आगे आयें। स्वयं को प्रभावित कर सकने वाली योजनाओं व नीतियों को अपने अनुरूप निर्मित करवाने के लिए महिलाओं को सत्ता के गलियारों में अपनी पैठ बनानी होगी और ऐसी शक्ति अर्जित करनी होगी कि वे स्वयं के संदर्भ में किये जाने वाले निर्णयों को प्रभावित कर सकें।

महिलाओं की उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, विशेषकर राजनीति में उनका सशक्तीकरण हो, उनकी सहभागिता का स्तर उच्च हो। ऐसा होने पर ही लैंगिक आधार पर एक समानतापूर्ण समाज की स्थापना हो सकती है।

संकेत शब्द: अनुसूचित जाति, समाज, महिला, सशक्तिकरण, सहभागिता, लैंगिक विषमता, राजनीति, विकास, अधिकार, मतदान, निर्णय।

प्रस्तावना

महिलाओं को पुरुषों के समान राजनीतिक अधिकार एवं राजनीतिक सहभागिता का मुद्दा आज के विश्व का और आधुनिक विकसित सभ्यता का एक लोकप्रिय, चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। यद्यपि महिलाओं को सत्ता के स्वरूप-निर्धारण तथा उसमें भाग लेने के लिए कानून की संवैधानिक समानता तथा स्वतंत्रता प्राप्त है किन्तु फिर भी व्यवहारिक रूप में देश की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं को उनकी आबादी के अनुपात में राजनीति के क्षेत्र में भागीदारी करने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। विश्व में होने वाले महिला सम्मेलनों में पुरुषों के साथ महिलाओं की समान राजनीतिक भागीदारी के लिए समय-समय पर संकल्प पारित किये जा रहे हैं तथा विभिन्न राष्ट्रों पर यह मनोवैज्ञानिक दबाव बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की समान भागीदारी सुनिश्चित की जावे।

महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण क्या है? इसकी जानकारी के लिए हमें प्रसिद्ध विचारक लूसियन पायी ने जो अवधारणा विकसित की है, उसके अनुसार राजनीतिक सषक्तीकरण को जानने का प्रयत्न किया है। इस क्रम में हमें महिलाओं की दृष्टि से तीन बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना है–

- समानता के लिए संवेदनशीलता
- राज्य और समाज व्यवस्था को प्रभावित करने की क्षमता
- राज्य व्यवस्था की इकाइयों से महिलाओं का संबंध

इन आधारों पर किया जाने वाला प्रत्येक विश्लेषण महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के स्तर को असंतोषजनक स्थिति में बताता है। अत: भारत में राजनीतिक दृष्टि से सशक्तीकरण तभी संभव है, जब सम्पूर्ण देश की महिलाएँ देश के समग्र विकास की प्रक्रिया में भाग लें।

राजनीतिक सशक्तीकरण के मुख्य रूप से चार पक्ष है-

- राजनीतिक जागरूकता
- राजनीति में भागीदारी
- राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त करना
- नेतृत्व प्राप्त कर, निर्णयों को प्रभावित करना तथा दिशा देना

उक्त बिन्दुओं को एक कथन में कहें तो राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए शक्ति के पुन: वितरण की आवश्यकता है। शक्ति की अवधारणा के सिद्धान्त को वर्तमान में विस्तृत रूप से विकसित किया गया है। हमारा प्रयास सशक्तीकरण की अवधारणा एवं वास्तविकता के बीच परस्पर सामूहिक, अंत:संबंध स्थापित करने का है। इससे हमें सैद्धान्तिक ज्ञान एवं व्यवहारिक सत्यता दोनों को समझने में मदद मिलती है। वर्तमान में फ्रांसीसी संरचनावादियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि सामाजिक संरचना, भाषायी संरचना से बहुत अधिक ग्रहण करती है। इन सिद्धान्तवादियों के लिये भाषा सांकेतिक है। भाषा शक्ति है, इसलिये जब हम यह कहते हैं कि महिलाओं का सशक्तीकरण हुआ है तो हम यह कहना चाहते हैं कि महिलाओं के पास ज्ञान की शक्ति में वृद्धि हुयी है।

वर्तमान में जब हम सशक्तीकरण की बात कर रहे हैं तो विशिष्ट रूप से हमारा ध्यान राजनीतिक क्षेत्र के विभिन्न आयामों के अन्तर्गत दिये जाने वाली शक्ति के सन्दर्भ में केन्द्रित होता है, सशक्तीकरण का अर्थ अधिक विस्तृत एवं व्यापक है। उदाहरणार्थ, जैसे ही एक महिला मेयर या सभापति बनती है, वह अपने क्षेत्र की अन्य महिलाओं के लिये शक्ति का एक प्रतीक बन जाती है और इस प्रकार सामुदायिक जीवन में राजनीतिक शक्ति अनेक आयामों मे प्रवेश कर जाती हैं। इस अर्थ में शक्ति एवं सशक्तीकरण का एक विस्तृत अर्थ है, शक्ति एवं सत्ता का भी एक विस्तृत अभिप्राय है, जिसका एक अभिप्राय राजनीतिक है, किन्तु साथ ही साथ इसका संबंध लैंगिक मुद्दों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों से भी संबंधित है।

भारत के राजनीतिक इतिहास में यह पहला अवसर था जब स्थानीय स्वशासित संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए। इन संविधान संशोधनों से स्थानीय स्वषासन की सत्ता संरचना में और निर्णय की प्रक्रिया में महिलाएँ भागीदार हुयी। इतना ही नहीं इससे महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी बढ़ी हैं और वह अपनी शक्ति को सामाजिक विकास में तथा राजनीतिक क्रियाक्लापों में लगा रही हैं और एक सुदृढ़ लोकतंत्र की स्थापना कर रही है। इसके कई रचनात्मक परिणाम भी सामने आ रहे हैं। राजनीति में भागीदारी से महिलाओं में जागृति उत्पन्न हुयी और निर्णय निर्माण प्रक्रिया में उनकी हिस्सेदारी से उनमें आत्मविश्वास और स्वाभिमान, समानता एवं स्वायत्तता के अधिकार का अहसास हुआ और वह नीति निर्धारण व क्रियान्वयन में अपना प्रभाव व रचनात्मक भूमिका का निर्वहन करने के काबिल बनी है। अत: समाज विकास के नये मॉडल पर पुन: विचार किया जाये क्योंकि ये सब महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण हेतु तीन आधारभूत सिद्धांतों को अनिवार्य माना जा सकता है–

- स्त्री-पुरुश के मध्य समानता
- स्वयं की क्षमताओं के पूर्ण विकास का महिलाओं को अधिकार
- स्वयं को प्रतिनिधित्व व स्वयं के संदर्भ में निर्णय लेने का महिलाओं को अधिकार

वास्तविकता तो यह है कि राजनीतिक परिदृष्य में आज भी महिलाओं की भूमिका बहुत सार्थक नहीं मानी जा सकती। निर्णय प्रक्रिया में सशक्त भागेदारी के अभाव में प्राय: ही उन्हें संसाधनों के असमान वितरण व अपने हितों की उपेक्षा तथा अनेक अन्य

वंचनाओं का सामना भी करना पड़ता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति में महिला सहभागिता के मुद्दे को अधिक सशक्त ढंग से उठाया जाए। यद्यपि पिछले कई दशकों से चले आ रहे महिला आंदोलनों की प्रभावशाली उपलब्धियाँ रही है, परंतु इसके पष्चात् भी राजनीतिक शक्ति संरचना में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व देखने को नहीं मिलता। आज भी पूरे विश्व में औसतन 12-13 प्रतिशत महिलाएँ ही विधयी संस्थाओं हेतु निर्वाचित हो रही है। भारत में कमोवेष यही स्थिति है।

यद्यपि विभिन्न संवैधानिक प्रावधनों की सहायता से स्वतंत्र भारत में महिलाएँ अनेक क्षेत्रों में सफलतापूर्वक महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह कर रही है, परंतु उनकी राजनीतिक भूमिका को आज तक की बहुत अधिक निर्णायक नहीं माना जाता। यह सत्य है कि गैर परम्परागत राजनीतिक गतिविधियाँ जैसे– पर्यावरण संबंधी आंदोलन, मद्य निशेध आंदोलन आदि के संदर्भ में महिलाओं ने न सिर्फ भूमिका का निर्वाह किया है, बल्कि सत्ता व शक्ति के पदों पर बैठे लोगों को अपनी गतिविधियों से प्रभावित करते हुए उनके मध्य अपनी सशक्त उपस्थिति भी दर्ज करायी है। ऐसा करने वाली महिलाओं में सुदूर ग्रामीण अंचल की अशिक्षित व साधनहीन, अनुसूचित जाति महिला से लेकर शिक्षित व सम्पन्नतम तबके की महिलायें भी शामिल रही हैं। उत्तरांचल का चिपको आंदोलन, आन्ध्रप्रदेश का अरक विरोधी आन्दोलन तथा आदिवासी पुनर्वास हेतु किया जाता रहा नर्मदा बचाओ आन्दोलन आदि में महिलाओं की भागीदारी से सभी परिचित हैं, परन्तु सक्रिय, प्रत्यक्ष व चुनावी राजनीति मुख्यत: पुरुष प्रभुत्व का क्षेत्र ही रही है, जिसमें महिलाओं की सहभागिता, अनुपातिक रूप से हमेशा से ही बहुत कम है।

स्वतंत्र भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता संबंधी प्रवृतियों की जाँच मुख्यत: चुनावों में मतदाताओं व उम्मीदवारों के रूप से राजनीतिक प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के आधार पर की जा सकती है। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संसदीय चुनावों में उनके प्रतिनिधित्व के आधार पर भी जाँच सम्भव है, विगत 70 वर्शो में हुए विभिन्न चुनावों में देश की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं का अधिकतम प्रतिनिधित्व 14.31 प्रतिशत 2019 की सतरवीं लोकसभा में पाया गया है। अब तक हुए 17 लोकसभा चुनावों में महिलाओं का औसत प्रतिनिधित्व 6.35 प्रतिशत मात्र है। यह गणना सभी श्रेणी की महिला प्रतिनिधियों की है। इसके परे जाकर अनुसूचित जाति महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को देखें तो स्थिति और भयावह प्रतीत होती है।

आँकड़ों से स्पष्ट है कि सभी चुनावों में पुरुष उम्मीदवारों की तुलना में महिला उम्मीदवारों की संख्या बहुत कम है तथा निर्वाचित महिलाओं का प्रतिशत भी कुल अनुपात में बहुत कम है। राजस्थान से लोकसभा चुनावों में चुनाव जीतकर अब तक मात्र 15 महिलाओं ने ही संसद में कदम रखा है। यू ंतो राज्य से वर्ष 1962 से अब तक 25 महिलाएँ चुनाव जीती है, लेकिन इनमें चेहरे 15 महिलाओं के ही है।

* अध्ययन के अनुसार वर्ष 1952 से वर्ष 2019 तक लोकसभा में महिलाओं के स्थिति में वर्ष 2019 में 17 वीं लोकसभा में सर्वाधिक 14.31 प्रतिशत महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ हैं तथा अनुसूचित जाति महिलाओं का लोकसभा में प्रतिनिधित्व ना के बराबर है।
* राजस्थान से संसद में जाने वाली महिलाओं की स्थिति में अनुसूचित जाति महिलाओं की संख्या नगण्य है। केंद्रीय मंत्रीपरिषद में महिला प्रतिनिधित्व में वर्ष 2019 में केवल 03 केबिनेट व 02 राज्यमंत्री महिलाएँ है। जो कि महिला प्रतिनिधित्व की दयनीय स्थिति को उजागर कर रही है।
* भारतीय न्यायिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति में कुल 706 न्यायधीशों में से केवल 77 महिला न्यायधीश की नियुक्ति न्यायपालिका में महिला प्रतिनिधित्व की स्थिति को प्रकट कर रही है जो कि दर्शाती है अभी इस क्षेत्र में महिला प्रतिनिधित्व में वृद्धि की आवश्यकता है।
* अध्ययन में मताधिकार के उपयोग की जानकारी के अनुसार कुल 250 उत्तरदाताओं में से 84.80 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएँ अपने मताधिकार का प्रयोग करती है तथा 15.20 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएँ मताधिकार से वंचित है। मताधिकार से वंचित महिलाओं के कारकों में 26.31 प्रतिशत उतरदात्ताओं ने मतदाता सूची में नाम नहीं होने तथा 42.10 प्रतिशत ने मताधिकार प्राप्त होने के पश्चात चुनाव नहीं होने की बात स्वीकार की है।

* अध्ययन के अनुसार 49.52 प्रतिशत अनुसूचित जाति की महिलाएँ अपने पति की सलाह पर मतदान करने की बात स्वीकार करती है तथा 26.41 प्रतिशत महिलाएँ अपने विवेक से मतदान की बात कहती है। मतदान में शामिल मानदण्डों के अनुसार सर्वाधिक 31.60 प्रतिशत महिलाएँ व्यक्ति को देखकर, 28.30 प्रतिशत पार्टी तथा 17.45 प्रतिशत महिलाएँ जाति को देखकर वोट डालने की बात स्वीकार करती है।
* अध्ययन में पाया गया कि 51.20 प्रतिशत महिलाएँ दल विशेष से प्रभावित होने व 48.20 प्रतिशत प्रभावित नहीं होने की बात करती है।
* अनुसूचित जाति महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता के अनुसार 39.20 प्रतिशत महिलाएँ सहभागी है तथा 60.80 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएँ सहभागी नहीं है। सहभागी 39.20 प्रतिशत महिलाओं में से सर्वाधिक 54.00 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाएँ पार्टी प्रचार में हिस्सा लेती है तथा 31 प्रतिशत रेलियों में भाग लेकर, 26.40 प्रतिशत चुनाव लड़कर व 21.80 प्रतिशत सभाओं में भाग लेकर राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होती है।
* अध्ययन अनुसार 19.21 प्रतिशत (48) महिलाओं ने राजनीतिक पद ग्रहण किया है तथा 80.80 प्रतिशत इससे वंचित है। 19.20 प्रतिशत पद प्राप्त करने वाली उत्तरदाता महिलाओं में सर्वाधिक 27.08 प्रतिशत जिला परिषद सदस्य व 25.00 प्रतिशत पंचायत समिति सदस्य एवं 22.91 प्रतिशत राजनीतिक संगठनों में पदों को प्राप्त किया है।
* अध्ययन में पाया गया कि राजनीतिक पदों पर रहते हुए महिलाओं ने सर्वाधिक 83.90 प्रतिशत अनुसूचित जाति महिलाओं को सरकारी योजनाओं का लाभ दिलवाया है तथा 64.5 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं को आंगनवाड़ी में लगाया है। 54.87 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं के अधिकारों की मांग उठाने की बात कहती है।
* अध्ययन के अनुसार 36.18 प्रतिशत (92) महिलाएँ राजनीतिक पहुँच रखती है तथा उन्होनें 60.86 प्रतिशत महिलाओं को राजनीतिक पहुँच का लाभ भी पहुँचाया है। 29.2 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाएँ मानती है कि राजनीति में महिलाओं की दखल व अधिकार जरूरी है तथा 22.41 प्रतिशत का मानना है कि महिलाओं को राजनीति में आना चाहिएं। वहीं 60.00 प्रतिशत उत्तरदाता मानती है कि अभी ओर अधिक अधिकारों की आवश्यकता है।
* अनुसूचित जाति महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता के अनुसार अधिकांश 60.00 प्रतिशत से अधिक महिलाओं को भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, राज्य के मुख्यमंत्री, सांसद, विधायक, महिला आयोग अध्यक्ष के नामों की जानकारी नहीं है। जो कि महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता ना के बराबर होना दर्शाती है।
* अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 48.4 प्रतिशत उत्तरदाता निम्न स्तर की राजनीतिक सशक्तता दर्षाती है। 37.6 प्रतिशत उत्तरदाता मध्यम स्तर की व 14 प्रतिशत उच्च स्तर की राजनीतिक सशक्तता रखती है।

अनुसूचित जाति महिलाओं की राजनीतिक सशक्तता

क्रं. सं.	स्कोर	स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	1 से 6	निम्न	121	48.4
2	7 से 12	मध्यम	94	37.6
3	13 से 18	उच्च	35	14.0
		कुल योग	**250**	**100**

* उत्तरदाताओं की राजनीतिक सशक्तता को विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों यथा अनुसूचित जाति के प्रकार, आयु, परिवार की प्रकृति, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, स्वयं की आय आदि में संबंध को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है-

सामाजिक, सांस्कृतिक कारक व राजनीतिक सशक्तता

क्रं. स.	कारक	राजनीतिक सशक्तता		सार्थकता
		X^2 की गणना 0.05 स्तर पर मान	गणितीय मान	
1	अनुसूचित जाति	df. 8 =k 15.51	5.06	सार्थक अन्तर नहीं
2	आयु	df. 10 =k 18.31	3-97	सार्थक अन्तर नहीं
3	परिवार की प्रकृति	df. 2 =k 5.99	2	सार्थक अन्तर नहीं
4	वैवाहिक स्थिति	df. 6 =k 12.59	43-46	सार्थक अन्तर
5	शिक्षा	df. 10 =k 18.31	56	सार्थक अंतर
6	स्वयं की आय	df. 8 =k 15.51	12-37	सार्थक अन्तर नहीं

तालिका में प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति, आयु, परिवार की प्रकृति व स्वंय की आय, राजनीतिक सशक्तता को निर्धारित नहीं करते है। जबकि वैवाहिक स्थिति और शिक्षा राजनीतिक सशक्तता में निर्धारण में महत्वपूर्ण चर है।

सुझाव व निष्कर्ष

अनुसूचित जाति महिलाओं की राजनीतिक सशक्तता, जागरूकता व परिवर्तन का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति महिलाओं अभी भी अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति उदासीन है। वो राजनीतिक अधिकारों व सहभागिता पर अभी भी पति व परिवार की राय को महत्वपूर्ण मानती है। अभी भी महिलाएँ राजनीतिक रूप से बहुत पिछड़ी हुई है तथा उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति अधिक सजग, जागरूक व खड़े होने की आवश्यकता है।

- आज आवश्यकता इस बात है कि अनुसूचित जाति महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम समानता पर आधारित सामाजिक संरचना का निर्माण किया जाये।
- अनुसूचित जाति महिलाओं को आर्थिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक है।
- प्रारम्भ से ही बालक-बालिकाओं को समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाये, तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इस क्षेत्र में अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।
- आवश्यकता इस बात की है कि अनुसूचित जाति महिलाएँ स्वयं अपने प्रति अपने मन में बसी हीन भावना का त्याग करें तथा स्वयं की प्रति गौरव का भाव उत्पन्न करें।
- अनुसूचित जाति महिलाएँ स्वयं को संगठित करें तथा एकजुट हो।
- आवश्यकता है कि राजनीतिक क्षेत्र में अनुसूचित जाति महिलाओं को स्थान व पद प्राप्त होने पर वह स्वयं के विचार व आवाज को अभिव्यक्त करें, वह अपना पक्ष समाज के समक्ष रखे।
- अनुसूचित जाति महिलाएँ अपने मतदान का महत्व समझे। वे अपने परिवार व पति पर निर्भरता को छोडकर स्वयं अपने मतदान का अपने विवेक के आधार पर उपयोग करें।
- अनुसुचित जाति पुरुष महिलाओं के साथ पूर्ण सहयोग करें, वे महिला सशक्तीरण हेतु अपनी पितृसत्तात्मक विचारों को त्याग कर आत्मावलोकन करें।
- पंचायत राज विभाग व स्थानीय निकाय संस्थाओं में आरक्षण के साथ-साथ अनुसूचित जाति महिलाओं को राज्य की विधानसभाओं व संसद में आरक्षण प्रदान किया जाये ताकि वे स्वयं कल्याण के प्रति अधिक जागरूक व संवदेनशील हो सके।
- अनुसूचित जाति महिलाओं से संबंधित परिवादों को नियत समय में जाँच व उनपर उचित निर्णय किये जाये।

९ प्रस्तुत शोध से प्रकट होता है कि अनुसूचित जाति महिलाओं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लिए महिला अशिक्षा भी काफी हद तक जिम्मेवार है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं में अशिक्षा के प्रभाव के कारण व अपने अधिकारों को जानने से वंचित रह जाती है तथा पुरुष तथा समाज के द्वारा हिंसा व तिरस्कार की भेंट चढ़ा दी जाती है। अत : आवश्यक है कि महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षा दी जावे क्यों कि एक शिक्षित महिला दो परिवारों को शिक्षित करती है। साथ ही वह शिक्षित होकर अपने विरुद्ध हो रहे अपराध व हिंसा को रोक सके तथा कानून व संविधान द्वारा उसे प्रदत अधिकार व हकों का प्रयोग करे एवं अपनी स्थिति में सुधार ला सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

* पंचोली, दीपक : 2014, राजस्थान के दलित और परिवर्तन की प्रक्रिया, राजस्थान जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
* शर्मा, मंजू : 2014, स्त्रीं विमर्श कल आज और कल, हिन्दी विभाग, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चुरू।
* अग्रवाल सरोज : 2013, महिला अधिकारिता और सुरक्षा, साहित्य प्रकाशन, जयपुर।
* चौहान, दिनेश : 2013, दलित समाज की समस्याएं, रावत प्रकाशन, दिल्ली।
* लाटा, मंजु : 2012, अनुसूचित जाति में महिला उत्पीड़न, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
* शर्मा, रेखा : 2012, दलित महिलाएं एवं मानवाधिकार, रावत प्रकाशन, दिल्ली।
* रावत हरिकृष्ण : 2011, उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* थोराट सुखदेव (अनु. पन्त, विजय कुमार) : 2011, भारत में दलित, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* धवन हरिमोहन एवं कुमार अरूण : 2011, महिला आरक्षण एवं भारतीय समाज रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* भार्गव नरेश : 2009, दलित और प्रजातांत्रिक क्रान्ति, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* वर्मा कल्पना (संपा.) : 2009, स्त्रीं विमर्श : विविध पहलू, लोक भारती, इलाहाबाद।
* सिंह सुनिल कुमार : 2010, जाति व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* सिंह सुनील कुमार : 2010, जाति व्यवस्था निरन्तरता एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली।
* सिंह वी.एन. एवं सिंह जनमेजय : 2010, आधुनिक एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* सारस्वत निशांत : 2006, भारतीय लोकतंत्र में महिलाएं, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
* दुबे शयामाचरण : 2005, भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।
* रावत हरिकृष्ण : 2004, समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
* गुप्ता एम. एल. : 2004, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
* महाजन धर्मवीर : 2003, भारत में समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
* श्रीनिवास एम.एन. : 2003, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
* दूबे श्याम चरण (अनु. अटल, योगेश) : 2001, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
* गुप्ता रमणिका : 2001, दलित चेतना, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली।
* दूबे शयाम चरण (अनु. अटल, योगेश) : 2001, भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, दिल्ली।
* शर्मा प्रज्ञा : 2001, महिला विकास एवं सशक्तीकरण, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
* राजस्थान पत्रिका/दैनिक भास्कर समाचार पत्र।
* सरकारी बेबसाईट।

राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विषमताएं: एक चुनौती

डॉ० श्रवण राज

सहायक आचार्य अर्थशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

सारांश

विश्व के अधिकांश विकसित देशों का अनुभव बताता है कि जिस देश के पास उच्च कुशल श्रम-शक्ति है वह देश बहुत अधिक संसाधनों के अभाव में भी ऊँचा आर्थिक स्तर प्राप्त कर सकता है और यह कुशल श्रम-शक्ति शिक्षा के माध्यम से ही तैयार होती है। शिक्षा की महत्ता को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने विचार व्यक्त किए है। नोबल पुरूस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन का मानना है कि आज कोई भी देश शिक्षा की उपेक्षा करके सतत् सामाजिक-आर्थिक विकास की दर को प्राप्त नहीं कर सकता है। अर्थशास्त्री प्रो. थियोडोज शुल्ट्ज ने अपने शोध में पाया कि शिक्षा पर व्यय का भार इसके लाभांश की अपेक्षा श्रमिको, कार्मिकों, एवं शिक्षकों की दक्षता बढ़ाता है जो अन्तोगत्वा उत्पादन में वृद्धि करता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में लिखा है कि किसी कार्यक्रम की सफलता जनभागीदारी पर निर्भर करती है जिसके लिए जनता को जागरूक बनाना आवश्यक है और यह जागरूकता शिक्षा से ही आ सकती है। उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा ही जनसाधारण में जागरूकता, सजगता, मनन, चिन्तन, नवप्रर्वतन एवं सतत् सामाजिक-आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

Key Words : शिक्षा, मानव संसाधन विकास, शिक्षा के विकास की विषमताएं।

प्रस्तावना

शिक्षा, मानव संसाधन विकास में एक विशेष किस्म का निवेश है जिससे व्यक्ति के ज्ञान, कौशल एवं दक्षता में वृद्धि होती है और मानसिक, संवेगात्मक, रचनात्मक, सृजनात्मक एवं बौद्धिक क्षमताओं का विकास होता हैं। शिक्षा से देश में रोजगार का स्तर बढ़ता है, लोगों की प्रति व्यक्ति आय के साथ-साथ राष्ट्रीय आय बढ़ती है, जनसामान्य के जीवन स्तर में सुधार आता है, नागरिकों की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होती है तथा जनसंख्या की जन्म दर-मृत्यु दर में कमी आती है। शिक्षा से ही जनसाधारण में अंधविश्वास, अज्ञानता, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता एवं अंधकार दूर हटते है और सामाजिक चेतना जागृत होती है। अत: यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि यह शिक्षा ही है जिससे मनन, चिन्तन, नवप्रर्वतन एवं सतत् सामाजिक-आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ब्रिटेन, रूस, नीदरलैण्ड एवं स्वीटजरलैण्ड् जैसे विश्व के अनेक विकसित देशों का अनुभव बताता है कि जिस देश के पास एक उच्च कुशल श्रम-शक्ति है वह देश अधिक संसाधनों के अभाव में भी ऊँचा आर्थिक विकास का स्तर प्राप्त कर सकता है और यह कुशल श्रम-शक्ति केवल शिक्षा के माध्यम से ही तैयार होती है। देश-विदेश के विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने शिक्षा की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त किये है। भारतीय मूल के अमेरिकी नोबल पुरूस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य कुमार सेन मानते है कि आज कोई भी देश शिक्षा की उपेक्षा करके सतत् सामाजिक-आर्थिक विकास की दर को प्राप्त

नहीं कर सकता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में लिखा है कि किसी कार्यक्रम की सफलता जनभागीदारी पर निर्भर करती है जिसके लिए देश की जनता को जागरूक बनाना अतिआवश्यक है और जनसामान्य में यह जागरूकता केवल शिक्षा के माध्यम से ही आ सकती है।

ऊपरी विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि किसी देश को आर्थिक विकास करना है तो उसे पहले अपनी श्रम-शक्ति को कुशल बनाना होगा और जो शिक्षा के माध्यम से ही तैयार होगी। परन्तु, कोई देश शिक्षा का विकास करे और उसमें विषमता न हो प्राय: ऐसा देखने में नहीं आया है। सामान्यत: शिक्षा के विकास में विषमताएँ आती ही है चाहे वह लिंगीय विषमताएँ हो, क्षेत्रीय विषमताएँ हो अथवा संस्था स्तरीय विषमताएँ हो। प्रो. स्ट्रमलिन ने अपने अध्ययन में यह पाया कि प्राथमिक शिक्षा से किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में पच्चीस प्रतिशत वृद्धि होती है और माध्यमिक शिक्षा से पचास प्रतिशत की। इसी प्रकार विश्व बैंक ने अपने अध्ययन में महिलाओं को शिक्षित बनाने को एक अच्छे किस्म का निवेश बताया। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग का भी मानना है कि यदि शिक्षा को पुरुषों अथवा महिलाओं के लिए सीमित करने का प्रश्न हो तो पढ़ाई का अवसर महिलाओं को दिया जाना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी को शिक्षित किया जा सके।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि यदि किसी देश को आर्थिक विकास करना है तो उसे पहले अपनी श्रम-शक्ति को कुशल बनाना होगा और वह शिक्षा के माध्यम से ही तैयार होगी। परन्तु, कोई देश शिक्षा का विकास करे और उसमें किसी प्रकार की विषमता न आए, ऐसा कम ही दिखाई पड़ता है। सामान्यत: शिक्षा के विकास में विषमताएँ होती ही है चाहे वह लिंगीय विषमता हो, क्षेत्रीय विषमता अथवा संस्था स्तरीय विषमता। शिक्षा के विकास में लिंगीय विषमता के तथ्य को अनेक अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा उजागार किया है। विश्व विकास रिपोर्ट (2005) के अनुसार शिक्षा ही महिलाओं को सोचने, समझने एवं सजग बनकर जीने की क्षमता प्रदान करती है। इसी प्रकार विश्व बैंक (1992) ने शिक्षा पर अपने अध्ययन में महिलाओं को शिक्षित बनाने को एक अच्छे किस्म का निवेश बताया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली (1948) का भी मानना है कि शिक्षा का अवसर महिलाओं को दिया जाए ताकि भावी पीढ़ी को शिक्षा दी जा सके।

भारत में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विशेषकर क्षेत्रीय विषमता के तथ्य पर अनेक शौक्षणिक प्रतिवेदनों में प्रकाश डाला गया है। इन प्रतिवेदनों में इवेल्युएेशन ऑफ क्वालिटी इम्प्रुमेन्ट प्रोग्राम इन एज्युकेशन, पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एज्युकेशन, इण्डियन ऐज्युकेशन रिपोर्ट प्रमुख है। इवेल्युऐशन ऑफ क्वालिटी इम्प्रुमेन्ट प्रोग्राम इन एज्युकेशन (1998) में बताया गया कि घरेलु एवं जीविकोपार्जन कार्यो में व्यस्त रहने के परिणामस्वरूप ग्रामीण छात्र-छात्राएं नियमित रूप से विद्यालय नहीं जा पाते है। पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एज्युकेशन (1999) में बताया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चे विशेषकर लडकियां अभी भी प्राथमिक शिक्षा से वंचित है। इसी प्रकार इण्डियन ऐज्युकेशन रिपोर्ट (2000) में बताया गया कि शाहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा अब भी बहुत कम है। उक्त प्रतिवेदनों से दो महत्वपूर्ण तथ्य निकलकर सामने आते है; एक, ग्रामीण, दुर्गम एवं पिछड़े क्षेत्रों के विद्यालयों में शिक्षा का स्तर अब भी शाहरों की अपेक्षा बहुत नीचा है। दूसरा, ग्रामीण, दुर्गम एवं पिछड़े क्षेत्रों के विद्यालयों में छात्रों के अपेक्षा छात्राओं का नामांकन बहुत कम है।

शिक्षा के विकास में विषमता का एक अन्य सामाजिक पहलू है जिसमें लिंगीय एवं क्षेत्रीय दोनों ही प्रकार को विषमता देखने को मिलती है, विशेषकर ग्रामीण विद्यालयी बालिका शिक्षा में। ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में बालिका ड्रापआउट अधिक है जिसके अनेक पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारक देखे गए है। इन कारकों में प्रो. एम. कुण्डू ने भाषा एवं संस्कृति के विकास का अपूर्ण ज्ञान, क्षेत्रीय भाषा में पाठ्य पुस्तकों का उपलब्ध न होना, ग्रामीण विद्यालय के प्रति शिक्षकों के नकारात्मक अभिगम को प्रमुख बताया। प्रो. एस. सुब्रह्मण्यम ने ग्रामीण विद्यार्थियों का वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था के साथ समायोजन का अभाव, उनके अभिभावकों का व्यावसायिक स्थानांतरण, ग्रामीण बालिकाओं का शिक्षा के प्रति नकारात्मक अभिगम एवं सामाजिक रीति-रिवाज को ड्रापआउट के मुख्य कारणों के रूप में इंगित किया। इसी प्रकार प्रो. यु. नैय्यर ने अभिभावकों की शिक्षा, सामाजिक श्रेणी, आर्थिक स्तर, लिंग एवं विद्यालय सुविधाओं को काफी हद तक ड्रापआउट का जिम्मेदार माना।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारत एवं राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास की विषमताओं का तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। देश एवं राज्य दोनों में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विशेषकर लिंगीय एवं क्षेत्रीय दो प्रकार की विषमताओं दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत विश्लेषण में लिंगीय विषमताओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही उन प्रमुख कारकों एवं उनके प्रभावों का पता लगाने का भी प्रयास किया गया है जो ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विषमता को अधिक प्रभावित करते है। इस हेतु प्रस्तुत शोध अध्ययन के दो उदेश्य निर्धारित किये गये है जिनको प्राप्त करने हेतु अपनायी गयी शोध पद्धति एवं शोध पद्धति के अर्न्तगत विभिन्न सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग कर द्वितीयक समंकों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन के निर्धारित किये गये उदेश्यों का विवरण नीचे दिया गया है।

अध्ययन के उदेश्य (Objectives of the Study)

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्न दो विशिष्ट उदेश्य निर्धारित किये गये है-

1. भारत में विद्यालयी शिक्षा का विकास एवं विकास की विषमताओं विशेषकर लिंगीय विषमताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
2. राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा का विकास एवं विकास की विषमताओं विशेषकर लिंगीय विषमताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

उपरोक्त उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु अपनाई गई शोध पद्धति निम्न प्रकार है।

शोध पद्धति (Research Methodology)

भारत एवं राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास एवं विषमताओं से संबंधित इस शोध में विद्यालयी शिक्षा के विकास एवं इसमें लिंगीय एवं क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करने के लिए देश के 28 राज्यों को इस विश्लेषण में सम्मिलित किया गया है। भारत में वर्ष 1951 से अब तक शैक्षणिक संस्थाओं, नामांकन, अध्यापक तथा साक्षरता का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। राजस्थान में ग्रामीण विद्यालयी शिक्षा के विकास एवं इसमें लिंगीय एवं क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करने के लिए राज्य के 33 जिलों को इस विश्लेषण में सम्मिलित किया गया है। वर्ष 1951 से अब तक शैक्षणिक संस्थाओं, नामांकन, अध्यापक तथा साक्षरता का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इन सूचकों से संबंधित द्वितीयक समंक विभिन्न सरकारी प्रतिवेदनों, स्टेटिस्टिकल एब्स्ट्रेक्टस, जिला सांख्यिकी रुपरेखा एवं विभिन्न शिक्षा विभागों से प्राप्त किए गए है।

राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास को मापने हेतु शैक्षणिक संस्था, नामांकन एवं अध्यापकों की संख्या जैसे सूचक लिए गए। इन सूचकों में वृद्धि को जानने के लिए दशकीय एवं चरघातांकीय वृद्धि दर की गणना कर विश्लेषण किया गया है। साथ ही बालिका विद्यालय, बालिका नामांकन, महिला अध्यापक एवं राजस्थान में महिला-पुरुष साक्षरता दर के आधार पर विद्यालयी शिक्षा में लिंगीय विषमताओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है जिसकी चर्चा नीचे की गई है।

परिणाम एवं चर्चा (Results and Discussion)

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त परिणाम एवं चर्चा को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में भारत में विद्यालयी शिक्षा के विकास तथा इसमें लिंगीय विषमताओं के विश्लेषण के परिणामों की चर्चा की गई है। इसी प्रकार दूसरे भाग में राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास तथा इसमें लिंगीय विषमताओं के विश्लेषण के परिणामों की चर्चा की गई है।

1. भारत में विद्यालयी शिक्षा का विकास

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों द्वारा चलाई गई शिक्षा प्रणाली व्याप्त थी। इसके पश्चात् केंद्र एवं राज्य सरकारों ने समय-समय पर अनेक शिक्षा आयोगों, परिषद्ों एवं समितियों की स्थापना कर उनकी संस्तुतियों के आधार पर शिक्षा की दशा एवं दिशा सुधारने

का भरसक प्रयास किया। इस संदर्भ में 1950-51 से 2010-11 तक सकल घरेलू उत्पाद का शिक्षा पर व्यय एवं जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय स्तर पर शैक्षिक संस्थाओं एवं विद्यालयों में छात्र-छात्राओं के नामांकन में जो वृद्धि हुई उसे सारणी 1 में बताया गया है।

सारणी-1: भारत में सकल घरेलू उत्पाद का शिक्षा पर व्यय एवं शिक्षा की वृद्धि (1951-2011)

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद का शिक्षा पर व्यय		विद्यालय स्तर पर शैक्षणिक संस्थाएँ		विद्यालयों में छात्र-छात्राओं का नामांकन	
	व्यय राशि (करोड़ रू. में)	दशकीय वृद्धि (%)	संख्या (हजार में)	दशकीय वृद्धि (%)	नामांकन (हजार में) (हजार में)	दशकीय वृद्धि (%)
1950-51	114	-	231	-	23495	-
1960-61	344	201.7	399	72.7	44752	90.5
1970-71	1118	225.0	540	35.3	77298	72.7
1980-81	3641	225.7	675	25.0	104463	35.1
1990-91	20761	470.2	820	21.5	147301	41.0
2000-01	82486	297.3	971	18.4	191209	29.8
2010-11	164972	200.0	1108	14.1	221880	16.0

स्रोतः वार्षिक प्रतिवेदन, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

सारणी 1 पर दृष्टि डाले तो सकल घरेलू उत्पाद का शिक्षा पर व्यय राशि वर्ष 1950-51 से 2010-11 तक की अवधि में निरन्तर बढ़ती दिखाई पड़ रही है जिसकी दशकीय वृद्धि दर उक्त अवधि में 200 प्रतिशत एवं 200 प्रतिशत से ऊपर ही रही है। शिक्षा पर व्यय की दशकीय वृद्धि दर 1980-81 से 1990-91 के दशक में लगभग 470 प्रतिशत रही थी जो पिछले साठ वर्षों में सर्वाधिक दिखाई पड़ रही है। विद्यालय स्तर पर शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या उक्त अवधि में बढ़ती दिखाई पड़ रही है परन्तु, विद्यालय स्तर पर शैक्षणिक संस्थाओं की दशकीय वृद्धि दर को देखा जाए तो इसमें वृद्धि निरन्तर गिरती हुई दर से दिखाई पड़ रही है अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद के शिक्षा पर व्यय राशि के अनुरूप विद्यालय स्तर पर शैक्षणिक संस्थाओं में वृद्धि दिखाई नहीं पड़ी है। यद्यपि उक्त अवधि में विद्यालयों में छात्र-छात्राओं की नामांकन संख्या में वृद्धि हुई है परन्तु, विद्यालयों में छात्र-छात्राओं के नामांकन की दषकीय वृद्धि दर 1980-81 से 1990-91 के दशक को छोड़कर गिरती दिखाई पड़ रही है।

भारत में साक्षरता की विषमताएँ: वर्ष 2011 की जनगणना में उस व्यक्ति को साक्षर माना गया जिसकी आयु सात वर्ष या इससे अधिक थी और जो किसी भाषा को पढ़-लिख अथवा समझ सकता था। भारत में वर्ष 1951 में जहाँ कुल साक्षरता दर 18. 33 प्रतिशत थी जिसमें पुरुष एवं महिला का प्रतिशत क्रमशः 27.16 एवं 8.86 था जो बढ़कर वर्ष 2011 में 74.04 प्रतिशत हो गयी जिसमें पुरुष एवं महिला का प्रतिशत क्रमशः 82.14 एवं 65.46 हो गया। यद्यपि स्वतंत्रता पश्चात् साक्षरता में वृद्धि हुई है परन्तु, यह वृद्धि न सिर्फ विकसित राष्ट्रों की तुलना में कम है वरन् इसमें विषमताएं भी अधिक है। जनगणना 2011 के अनुसार एक तरफ केरल में 93.91 प्रतिशत साक्षरता है वहीं दूसरी तरफ बिहार में केवल 63.82 प्रतिशत साक्षरता है जो क्षेत्रीय विषमता का द्योतक है। भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार शिक्षा के विकास की लिंगीय विषमताओं को साक्षरता दर द्वारा सारणी 2 में बताया गया है।

सारणी-2: भारत में साक्षरता की लिंगीय विषमताएँ-2011

साक्षरता का स्तर	भारत के राज्य		
	कुल	पुरुष	महिला
उच्च (>70 प्रतिशत)	केरल, मिजोरम, त्रिपुरा, गोवा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, सिक्किम, तमिलनाडू, नागालैंड, मणिपुर, उत्तराखंड, गुजरात, पं. बंगाल, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, मेघालय, उडीसा, असम, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश	केरल, मिजोरम, गोवा, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तराखंड, सिक्किम, गुजरात, तमिलनाडू, मणिपुर, हरियाणा, नागालैंड, कर्नाटक, प. बंगाल, उडीसा, पंजाब, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, असम, झारखंड, जम्मु-कश्मीर, मेघालय, आन्ध्रप्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, बिहार	केरल, मिजोरम, त्रिपुरा, गोवा, नागालैंड, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, महाराष्ट्र, तमिलनाडू, मेघालय, मणिपुर, पंजाब, पं. बंगाल, गुजरात, उत्तराखंड
मध्यम (55-70 प्रतिशत)	उत्तर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, आन्ध्रप्रदेश, झारखंड़, राजस्थान, अरूणाचल प्रदेश, बिहार	–	कर्नाटक, असम, हरियाणा, उडीसा, छत्तीसगढ, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर
निम्न (<55 प्रतिशत)	–	–	झारखंड, बिहार, राजस्थान

स्रोतः स्टेट्रिसटिकल एब्सट्रेक्ट्र ऑफ इंडिया, 2012 से परिकलित।

सारणी 2 में भारत के विभिन्न राज्यों में कुल साक्षरता दर देखे तो तीन चौथाई राज्य उच्च (70 प्रतिशत से अधिक) साक्षर है जबकि लिंगानुसार स्थिति में काफी भिन्नता देखी गई है। एक ओर जहाँ भारत के सभी राज्यों में पुरुष साक्षरता उच्च (70 प्रतिशत से अधिक) है वहीं दूसरी ओर महिला साक्षरता की दृष्टि से इन राज्यों की स्थिति काफी पिछड़ी है। देश के लगभग आधे राज्यों में महिला साक्षरता मध्यम है जबकि झारखंड बिहार एवं राजस्थान जैसे राज्यों में महिला साक्षरता की स्थिति बहुत खराब है। इससे साक्षरता की लिंगीय विषमताएं स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

2. राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा का विकास

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से वर्तमान में भारत का सबसे बड़ा राज्य है जहाँ देश की लगभग 5.50 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 77.12 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। वर्ष 2011 की गणनानुसार यहाँ 67.06 प्रतिशत साक्षरता थी जिसमें पुरुष एवं महिला का साक्षरता का प्रतिशत क्रमशः 80.51 एवं 52.66 था। राज्य की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि एवं उससे संबंधित कार्यो में जीविकोपार्जन हेतु लगी थी। जनसंख्या के इतने बड़े भाग का कृषि एवं उससे संबंधित कार्यो में लगने से राज्य सकल घरेलू उत्पाद एवं रोजगार में कृषि की विशेष भूमिका रही है। राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ, विशाल क्षेत्रफल, संसाधनों की कमी, कृषि एवं उद्योगों का पिछड़ापन, प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर, बेरोजगारी, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन, महिला जागरूकता का अभाव, निरन्तर पड़ने वाले अकाल एवं सुखा ऐसे अनेक कारक रहे है जिनका स्पष्ट प्रभाव यहाँ की शिक्षा स्तर पर देखा जा सकता है।

राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास एवं इसमें विषमताओं को मापने हेतु विद्यालयी शिक्षा पर व्यय, शैक्षणिक संस्था, नामांकन एवं अध्यापकों की संख्या जैसे विकास सूचक लिए गए। इन सूचकों में वृद्धि को जानने के लिए दशकीय वृद्धि दर एवं

चरघातांकीय वृद्धि दर की गणना एवं विश्लेषण की गई। साथ ही साक्षरता दर एवं प्रतिशत के आधार पर विद्यालयी शिक्षा में लिंगीय (पुरुष-महिला) विषमता का विश्लेषण किया गया है। राजस्थान में वर्ष 1951 से 2011 तक विद्यालयी शिक्षा के विकास एवं लिंगीय विषमता को विद्यार्थियों की संख्या, नामांकन एवं अध्यापकों की संख्या द्वारा सारणी 3 में स्पष्ट देखा जा सकता है।

सारणी 3 में कुल विद्यालयों में बालिका विद्यालय दस फिसदी से भी कम पाए गए है। साथ ही बालिका नामांकन एवं कुल अध्यापकों में महिलाओं का प्रतिशत कम पाया गया है। सारणी में तुलनात्मक रुप से बालिका विद्यालयों, बालिका नामांकन एवं महिला अध्यापकों का प्रतिशत कम पाया जाना लिंगीय विषमता को स्पष्ट करता है। अध्ययन अवधि में बालिका विद्यालयों, बालिका नामांकन एवं महिला अध्यापकों की बढ़ती संख्या एवं तुलनात्मक रुप से बढ़ता प्रतिशत पाया जाना विद्यालयी शिक्षा की लिंगीय विषमता को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

सारणी 3: राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा का विकास एवं लिंगीय विषमताएँ (1951-2011)

वर्ष	विद्यालयों की संख्या		विद्यार्थी नामांकन		अध्यापकों की संख्या	
	कुल	बालिका	कुल	बालिका	कुल	महिला
1950-51	5243	564 (10.75)	424244	67691 (15.95)	18714	2298 (12.27)
1960-61	16501	885 (5.36)	1300549	250882 (19.29)	54304	6691 (12.32)
1970-71	22406	1479 (6.60)	2375683	483206 (20.33)	89391	14543 (16.26)
1980-81	30177	1998 (6.62)	4091258	939882 (22.97)	131390	26920 (20.48)
1990-91	42971	3500 (8.14)	6963651	1941876 (27.88)	214644	53446 (24.89)
2000-01	71319	6040 (8.46)	11467136	4389293 (38.27)	336352	88741 (26.38)
2010-11	89422	80.48 (9.00)	17774060	7998327 (45.00)	485450	145635 (30.00)
चरघातांकी वृद्धि दर	**4.80**	**4.50**	**6.40**	**8.20**	**8.00**	**10.40**

स्त्रोतः प्रगति प्रतिवेदन, प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग, बीकानेर, राजस्थान।

राजस्थान में साक्षरता की विषमताएँ: मानव विकास रिपोर्ट राजस्थान (1999) में राज्य में नीची साक्षरता एवं इसमें विषमता के लिए मुख्यतः ऐतिहासिक घटनाओं तथा विशाल मरूस्थल, पहाडी विस्तार, विशम भौगोलिक परिस्थिति, उच्च जनसंख्या वृद्धि दर, शिक्षा में बालिकाओं की उपेक्षा, अपर्याप्त शैक्षणिक ढॉचा, महिला अध्यापिकाओं का अभाव एवं वित्तीय रूकावटों को मुख्य रूप से जिम्मेदार बताया गया है। इन्हीं के परिणामस्वरूप राज्य में साक्षरता में लिंगीय विषमताएं देखने को मिलती है।

राज्य में लिंगानुसार साक्षरता की स्थिति देखें तो पाएंगे की जहाँ राज्य के अधिकांश जिलों में पुरुष साक्षरता उच्च है वही इन्हीं जिलों में महिला साक्षरता की स्थिति चिन्ताजनक है। राज्य के केवल प्रतापगढ़ एवं बांसवाड़ा जिलों को छोडकर शोश सभी जिलों

में पुरुष साक्षरता उच्च है जबकि किसी भी जिले में महिला साक्षरता उच्च नही है। इतना ही नही लगभग तीन-चौथाई जिलों में महिला साक्षरता निम्न है। राजस्थान की वर्ष 2011 की साक्षरता स्थिति को लिंगानुसार सारणी 4 में बताया गया है।

सारणी 4: राजस्थान में साक्षरता की लिंगीय विषमताएँ (2011)

साक्षरता का स्तर	राज्य के जिले कुल	पुरुष	महिला
उच्च (>70 प्रतिशत)	झुंझनू, अलवर, भरतपुर, जयपुर, सीकर	झुंझनू, कोटा, सीकर, जयपुर, भरतपुर, अजमेर, चुरू, अलवर, सवाई माधेपुर, धैलपुर, श्रीगंगानगर, नागौर, उदयपुर, झालावाड, जोधपुर, बाड़मेर, बूंदी, पाली, चित्तौड़गढ़, टोंक, बीकानेर, सिरोही, भीलवाडा, जैसलमेर, डूंगरपुर, जालौर।	–
मध्यम (55-70 प्रतिशत)	कोटा, अजमेर, चुरू, सवाई माधेपुर, धैलपुर, श्रीगंगानगर, नागौर, उदयपुर, झालावाड, जोधपुर, बाड़मेर, बूंदी, पाली, चित्तौड़गढ़, टोंक, बीकानेर, सिरोही, हनुमानगढ़, करौली, दौसा, जैसलमेर, भीलवाडा, राजसमंद, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, बांरा, प्रतापगढ़।	प्रतापगढ़, बॉसवाड़ा।	कोटा, झुंझनू, सीकर, जयपुर, अलवर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, अजमेर।
निम्न (<55 प्रतिशत)	जालौर।	–	चुरू, धैलपुर, भरतपुर, बीकानेर, करौली, सवाई माधेपुर, दौसा, नागौर, जैसलमेर, जोधपुर, बाडमेर, पाली, सिरोही, जालौर, बूंदी, भीलवाड़ा, टोंक, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, राजसमंद, उदयपुर, बांरा, झालावाड़, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़।

स्रोत: प्रगति प्रतिवेदन 2012, प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग, बीकानेर, राजस्थान से परिकलित।

सारणी 4 में लिंगानुसार साक्षरता की विषमताएँ देखें तो पाएंगे कि राजस्थान के जालौर जिले में कुल साक्षरता 55 प्रतिशत से कम है जबकि झुंझनू, अलवर, भरतपुर, जयपुर एवं सीकर जिलों में कुल साक्षरता 70 प्रतिशत से अधिक है। पुरुष साक्षरता की स्थिति को देखे तो एक ओर जहाँ राज्य के अधिकांश जिलों में पुरुष साक्षरता उच्च है वही दूसरी ओर इन्हीं जिलों में महिला साक्षरता की स्थिति काफी चिन्ताजनक है। राज्य के केवल प्रतापगढ़ एवं बॉसवाड़ा जिले को छोडकर संपर्ण राज्य में पुरुष साक्षरता उच्च है जबकि कोटा, झुंझनू, सीकर, जयपुर, अलवर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ एवं अजमेर को छोड़कर राज्य के शेष सभी जिलों में महिला साक्षरता निम्न है। राज्य के एक भी जिले में पुरुष साक्षरता निम्न नही है पर एव भी जिले में महिला साक्षरता उच्च नही है। यह तथ्य साक्षरता की लिंगीय विषमताएं स्पष्ट कर देता है।

ऊपरी विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालयी शिक्षा के विकास में चाहे भारत की बात की जाए अथवा राजस्थान की स्थिति देखे तो दोनों में ही असन्तुलन एवं लिंगीय विषमताएं दिखाई पडती है। इन विषमताओं को कम करने की आवश्यकता सदैव महसूस की जाती रही है। इस दिशा में स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक अनेक प्रयास किये गये है। इन प्रयासों के कई सकारात्मक परिणाम भी दिखाई पडे है। फिर भी इस दिशा में कुछ और प्रयास अपेक्षित है। इन प्रयासों को किया जाने से निश्चित ही इस संबंध में अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे। देश एवं राज्य में विद्यालयी शिक्षा के विकास में विषमताओं कम करने हेतु निम्न सुझाव नीचे दिए गए है।

विषमताओं को कम करने हेतु सुझाव

भारत एवं राजस्थान में विद्यालयी शिक्षा के विकास में असन्तुलन एवं लिंगीय विषमताओं को कम करने हेतु निम्न सुझाव दिए गए है:

1. शिक्षा से संबंधित विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं का समुचित कार्यान्वन करना एवं शिक्षा में ग्रामीण महिला भागीदारी को बढ़ावा देना।
2. देश एवं राज्य के ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में सरकारी विद्यालय की स्थापना करना एवं पर्याप्त आधारभूत संरचना एवं स्टाफ उपलब्ध करवाना।
3. शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में अभिभावकों एवं बालिकाओं को शिक्षा के प्रति जागरूक करना एवं विद्यालयों में बालिका नामांकन को बढ़ावा देना।
4. देश एवं राज्य के पिछड़े एवं आदिवासी क्षेत्रों में रोजगार के वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध करना तथा बालविवाह जैसी कुरीतियों पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण स्थापित करना।
5. देश एवं राज्य में महिला शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना तथा समाज में महिलाओं को पुरुशों के बराबरी का दर्जा दिलाने की दिशा में प्रयास करना।

संदर्भ सूची

क्र अब्दुल कलाम, ए.पी.जे. "सम्मान के लिए शिक्षा" लेख, *योजना,* मासिक पत्रिका, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, सितम्बर, 2005, पेज 5.

क्र हारून, एम. "महिला साक्षरता दशा और दिशा" लेख, *योजना,* मासिक पत्रिका, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर 1999, पेज 15-17.

क्र प्रगति प्रतिवेदन (2007-08), प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर।

Ø Kundu, M. (1984): Tribal Education in India: Some Problems, *Journal of Indian Education*, Vol. 10 (2), pp. 1-7.

Ø Suubramaniyam, S. (1986): Problems of School Droupout: A Study With Special Reference to SC and ST in Andhra Pradesh, *Education Quartley*, 38 (3), pp. 28-32.

Ø Nayyar, U. (1993): Study on Causes for Droupout and Non-Enrollment among Rural Girls in Haryana in Rural Female Literacy, Study Sponsored by *UNESCO* New Delhi.

Ø Schultz, T. (1959): Investment in Human Capital, *Ame. Eco. Review*, Vol. 51(1), P 17.

Ø Progress Report (2007-08): Department of Elementary and Secondary Education, Government of Rajasthan, Jaipur.

Ø Public Report in Basic Education in India (1999), *Oxford University*, New Delhi.

Ø World Development Report (2005): Knowledge for Development, World Bank, Oxford University Press, New York.

Ø Human Development Report (2000): Ministry of HRD, Govt. of India, New Delhi.

Ø Annual Report (2007-08): Elementary Education and Literacy, GOI, New Delhi.

Ø Statistical Abstract of Rajasthan (2006): Directorate of Economics and Statistics Department, Jaipur, Rajasthan.

Ø World Development Report (2005): Knowledge for Development, World Bank, Oxford University Press, New York.

Ø Human Development Report (2000): Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.

Ø Annual Report (2002-03): Elementary Education and Literacy, Government of India, New Delhi.

Ø Statisticas Abstract of Rajasthan (2004): Directorate of Economics and Statistics, Jaipur, Rajasthan.

Ø Website: www.edu.nic.in

पर्यावरण संरक्षण का संहितागत व्यवस्था

सुभाष कुमार

विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोधार्थी

महानगरों और कस्बों के आसमान में इस तरह प्रदूषण भरा रहता है कि उषा की पवित्र और कमनीय किरणों का दर्शन हो पाना कठिन हो जाता है। मानव के द्वारा किये गये क्रिया-कलापों से आसमान अनेक प्रकार की गर्द-गुबार से भारता जा रहा है। उषा विषय क वेद के कृषि की कल्पना है कि उषा कालीन क्षितिज मनमोहक है। उषा काल को देखने आज भी अनेकों स्थलों पर पर्यटकों की भीड़ उभड़ती है। कन्याकुमारी का समुद्र तट इसका अनुपम उदाहरण है।

यदि उषा की किरणें निर्वाध रूप से धरती पर उतरें तो पर्यावरण संरक्षित रहेगा तथा स्वास्थ्य का विकास होगा। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि **"माताभूमिः पुत्रे अहं पृथिव्याः"**[1] अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं। जो पुत्र अपनी माता को प्रदूषित करता है, उससे निकृष्ट और कौन हो सकता है? जो माता की सुरक्षा, संरक्षा, सुचिता तथा स्वाभिमान के प्रति सर्वथा समर्पित हो उससे उत्कृष्ट और कौन हो सकता है? हमें पृथ्वी माता के पर्यावरण को इसलिए स्वच्छ रखना चाहिए क्योंकि भोजन और स्वास्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इसी भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता है। क्योंकि वर्षा के रूप में पानी देकर यह पृथ्वी में गर्भाधन करता है।[2]

जब तक हमारी मानसिक पर्यावरण चेतना सुसंस्कृत तथा परिस्कृत नहीं होगी तब तक हमारे लिए मानसिक शान्ति और आध्यात्मिक उपलब्धियाँ मृगमरीचिका ही रहेंगी। पर्यावरण प्रदूषण को कैसे रोका जा सकता है? इस संहिता साहित्य ने समाज का ध्यान आकर्षित किया था। वे भूमि को ईश्वर का ही रूप मानते थे। पर्यावरण की रक्षा, पूजा का एक अविभाज्य अंग था।

भूमि जिसकी पाद स्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है, द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।[3] यहाँ पर ब्रह्मपरमेश्वर को नमन करते हुए प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश दिया है। वेदों में पर्यावरण का विभाजन वायु, जल, धवनि, खाद, मिट्टी, वनस्पति एवं पशु-पक्षी संरक्षण आदि के रूप में किया गया है। वैदिक कृषि जल की शुद्धता पर विशेष बल देते हैं। क्योंकि शुद्ध जल में रोग विनाशक तत्त्व होते हैं। यह दीर्घजीवन का सिद्धसूत्र है। कृषियों का कथन है कि वे रोग विनाश जल को ग्रहण करते हैं। स्वच्छ जल पीने से आयु बढ़ती है। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर सम्यक रूप से स्वच्छता का निवाश स्थान निर्मित करता है।[4]

यदि शुद्ध जल का उपयोग किया जाय तो वह मंगल प्रदाता तथा घृत के समान पुष्टि वर्धक होता है। जल माधुर्य पूर्ण जल धराओं का स्रोत है, जल में आयेर्वेदीय गुण है। जल भोजन पचाने में अत्यन्त उपयोगी है। जल से प्राण शक्ति विवर्धित होती है। वह कानित, बल और पौरूष का आधार है वह मानव को अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्त्व है।[5]

वेद का कथन है कि, जल में सब प्रकार की औषधिया हैं और उसमें अग्नि भी है जो विश्व का कल्याण करती है।[6]

जो जल सब प्रकार की औषधि से युक्त है, अर्थात् शुद्धता और पवित्रा और आरोग्य का मूल मन्त्र है उसे प्रदूषित करना मानवता के विरूद्ध अपराध है। जल देवता स्वरूप है तभी वेद का कृषि उद्घोष कर रहा है कि हमारे लिए समस्त मरूस्थल का जल सुखप्रदायक हो। दलदल तथा जलीय क्षेत्र का जल सुखदाई हो। पृथ्वी खोदकर निकाले हुए कुएँ आदि का जल सुखदाई हो। घड़े में रखा हुआ जल सुखदाई हो और वर्षा से प्राप्त जल सुखदाई हो।[7-8]

वायु की शुद्धि जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस तथ्य को यजुर्वेद में स्पष्ट किया गया है।[9]

"उत्तम गुण वाला प्रकाश रहित तथा सबको प्राप्त होने वाला जो वायु शरीर में विचरण करता है, उसको तुम जानो।" वायु को शुद्ध और अशुद्ध अर्थात् ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड इन दो रूपों में विभाजित करते हुए वेद में कहा गया है-

प्रत्यक्ष और भूत दोनों प्रकार की हवायें सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश पर्यन्त बहती रहती है। हे साधक! एक तो मेरे लिए शक्तिदायक है और एक जो दूषित है उसे दूर फेंक देती है।[10] हजारों वर्ष पूर्व पूर्वज इस तत्व से अवगत थे कि हवा कई प्रकार की गैसों का मिश्रण है। जिनके अलग-अलग गुण और अवगुण हैं। इनमें ही प्राणवायु भी है जो जीवन के लिए अत्यावश्यक है।[11]

इस वायु के गृह में जो यह अमर तत्व की धरोहर स्थापित है वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। शुद्ध वायु कई रोगों के लिए औषधि का कार्य करती है।[12]

शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है जो हमारे हृदय के लिए औषधि के समान उपयोगी है एवं आनन्ददायक हे। वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ता है।[13] वैदिक वांग्मय पर्यावरण-चेतना के प्रति जागरूक है। वेद का स्पष्ट कथन है कि हम सौ वर्षों तक उन्नति करते रहें।[14]

पश्येम शरदः शतम्।।
जीवेम शरदः शतम्।।
बुधयेग शरदः शतम्।।
सेहेम शरदः शतम्।।

यदि हमारी पर्यावरण चेतना निरन्तर इसी प्रकार लुप्त होती रही तो हम प्रकृति प्रदत्त मानव की सौ साल तक की आयु तक कैसे जी पायेंगे? हम अपनी सम्पूर्ण आयु को बिना दुःख भोगे जियें इसके लिए वेद के कतिपय अंशों के आधार पर यहाँ यह आंकलन करने का उपक्रम किया जायेगा कि वेदों में पर्यावरण-चेतना कितनी चैतन्य और विकसित है। जिसके आधार पर हम भावी जीवन को सुखमय जीने में सफल हो सकें।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि, औषधिया प्रदूषकों का अवशोषण करती है।[15] **"ओषंधयेति त्तः औषधयः संभवम्"** तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि औषधिया वप्रवृद्धा होती है।[16] जिसका दो प्रकार से होता है। 1. वर्षा को बढ़ाने वाली तथा 2. वर्षा से बढ़ने वाली। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- "यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति"[17] यज्ञो वैभवनस्य नाभिः[18] आयं वै यज्ञो योऽयं पवते[19] यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि[20] गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि- भैषज्य संज्ञा वा एते ऋतु संधिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतु संधिषु वै व्याधियते[21] शतपपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि शब्द ही वज्र है, उसका प्रयोग संतलित हो कर ही करना चाहिए। उसके दुरूप्योग से मानव को कष्ट भोगना होता है।[22] ऐतरेय ब्राह्मण में भी शब्द को शस्त्र के रूप में बताया गया है।[23]

ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है कि वायु, अग्नि और पृथ्वी विराट् ब्रह्म की विभूतिया है। ये जब तक सुरक्षित बनी रहती है, नष्ट नहीं होती है, तब तक प्रजाओं के लिए भोग भूमिया हैं, सुख की साधन है।[24]

इस प्रकार जीव, प्राण, अन्तरिक्ष और पृथिवी का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। ऐतरेय में भी इस तथ्य का उल्लेख करता है।[25]

तैत्तिरीय आरण्यक में सभी सुखों का और पर्यावरण की शुद्धि का यज्ञ श्रेय को दिया गया है। अतः उसके महत्व पर तैत्तिरीयारण्यक में विशद चर्चा करता है।[26]

इस प्रकार ऊपर दिये गये वैज्ञानिक निष्कर्षों से स्पष्ट है कि पेड़-पौधे न केवल पर्यावरण-सन्तुलन के श्रेष्ठ विकल्प है, अपितु विषैली गैसों के शोषण तथा ऑक्सीजन प्रदान करने के कारण प्राणियों के जीवन का आधार है। अतः वृक्षों की सुरक्षा में ही मानव सुरक्षित है, यह सिद्ध हो चुका है। छान्दोग्योपनिषद् में इस बात की पुष्टि करता है।[27]

आधुनिक युग में यदि हम पर्यावरण को शुद्ध रखना चाहते हैं तो निश्चित रूप से हमें अपने प्राचीन कृषियों, महर्षियों के बताये हुए कल्याणकारी मार्ग का अन्वेषण करना ही होगा और वह सुगम मार्ग है; अध्यात्म। हमें अपने जीवन में अध्यात्मिकता को महत्व देना होगा। अध्यात्म का तात्पर्य केवल, तिलक धारण करना, सुन्दर वस्त्र पहनना और दिव्य वचनों को बोलना ही नहीं है, प्रत्युत अपने स्वयं के जीवन को सर्वजन कल्याणकारी बनाना भी है। मानव अपने जीवन में सर्वजन हिताय जो कार्य करता है वह उसके

द्वारा किया गया कर्म ही उसका यज्ञ हो जाता है। किन्तु मनुष्य स्वयं किसी विधि विशेष को समझे बिना कैसे उस यज्ञ को समझ सकता है? अत: वेदों में महर्षियों ने अपने निज अनुभव के आधार पर अपने आप को यज्ञमय बनाने के लिए कुछ नियम बनाये हैं। मानव का धर्म है कि वह कृषियों के बनाये हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन को धन्य करें। मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने के लिए दैनिक पंच यज्ञों का विधान किया गया है, जो निम्नानुसार है-

1. ब्रह्मयज्ञ- प्रात: काल तथा सायंकाल नित्य ब्रह्म का चिन्तन करना ही ब्रह्मयज्ञ हैं वेदों को भी ब्रह्म कहा गया है, अत: नित्य वेदों का अध्ययन, अवलोकन तथा उनका चिन्तन करना ही ब्रह्म यज्ञ है।
2. देवयज्ञ- देव यज्ञ दैनिक होता है। प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है कि वह सुख की कामना करने वाला अपने परिवार के साथ भोजन के पूर्व कुछ हवनीय पदार्थों की हवि दे। जिससे उसके आन्तरिक और ब्राह्म सभी प्रकार के कल्मश दूर हो सकें और वह सुखी हो सके।
3. भूतयज्ञ- मानव का कर्त्तव्य है कि वह अपने लिए पकाये हुए अनन्न में से कुछ भाग अपने से भिन्न के लिए निकाल कर रख दे, यदि वह प्रेम से अपने सिवाय अन्यों का भी ध्यान करता है तो वह निश्चित रूप से भूतयज्ञ करता है। महर्षि यास्क ने इस वेद वाक्य को अपने ग्रन्थ में उल्लेख करते हुए कहा गया है-

"केवलाघो भवति केवलादी"

अर्थात् वह केवल पाप का भागी होता है जो बिना किसी को खिलाये हुए स्वयं खा लेता है।

4. अतिथि यज्ञ- अतिथि सत्कार भी यज्ञ हैं जो गृहस्थ अतिथि यज्ञ नहीं करता वह पाप का भागी होता है। उसके सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं तथा वह नर्क तुल्य जीवन-यापन करता है।

वर्त्तमान समय में पर्यावरण चेतना का केन्द्र बिन्दु स्थूल पदार्थ है। जबकि स्थायी तथा धर्मनिष्ठ पर्यावरण चेतना के अभाव के कारण प्रदूषण तथा अनुसंधान की चरम स्थिति में वायु शोधन, जलशोधन, तथा भू-संरक्षण के तात्कालिक प्रयास किये जाने चाहिए, जो बढ़े हुए संक्रामक रोग की भाँति असाधय तथा निष्फल प्राय: होते जा रहे हैं।

इस भयावह स्थिति से निपटने के लिए मानव जाति के लिए आज इस रहस्य को समझना नितान्त आवश्यक हो गया है, क्योंकि यह यजन निरन्तर चलने वाली जीवनी शक्ति का अंग है। इसमें प्रमाद का परिणाम हमारे समझ प्रत्यक्ष है। भारतीय दर्शन में प्राकृतिक अनुराग और प्रकृति संरक्षण की चिरन्तर धारा का ही पर्याय भारतीय संस्कृति है। हम सभी इस प्रकृति के अविभाज्य अंग ही तो है, क्योंकि, बिना प्रकृति के न तो मानव का अस्तित्व है और न ही मानवेतर किसी अन्य प्राणी का। प्रकृति में विद्यमान जल, वायु, सूर्यादि ग्रह, नक्षत्र, वनस्पतियाँ, एवं जीव जगत् ये सभी मानव जीवन के अनिवार्य एवं आवश्यक घटक है। इनमें से किसी एक की भी हानि होती है तो जैसे एक धगे के टूट जाने के पश्चात् सभी बँधे हुए पुष्प बिखर जाते हैं ठीक उसी प्रकार संसार में फैला विविध रूप रंगों का यह जीवन विखर जायेगा। इसी संरक्षण की भावना से ओत-प्रोत होकर मनीषियों ने समग्र प्राकृतिक शक्तियों को देवीय स्वरूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया था।

इस तरह संहितागत व्यवस्था पर्यावरण संरक्षण का मूलाधर है। सभी संहिताओं पर्यावरण संबंधी मंत्र पाये जाते हैं। उन मंत्रों के माध्यम से हम दैनिक जीवन में पर्यावरण का संरक्षण कैसे करें, उसका दिशा-निर्देश हमें उपरोक्त वर्णित संहिता ग्रन्थ में मिलता है। आज वैज्ञानिकों ने यज्ञ-अनुष्ठान को वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित कर दिया है कि यज्ञ के हवि से उठा धुँआ पर्यावरण को स्वच्छ बनाता है और हानिकारक तत्त्वों एवं गैसों को वह नष्ट करता है। आज आवश्यकता है, पर्यावरण संरक्षण के लिए उन संहिता ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता है। ये संहिता ग्रन्थ हमें पर्यावरण संरक्षण का सूत्र देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. अथर्ववेद, 12/1/12.
2. अथर्ववेद, 12/1/42.
3. अथर्ववेद, 10/7/32.
4. अथर्ववेद, 3/12/9.

5. अथर्ववेद, 3/13/15.
6. ऋग्वेद 10/9/6.
7. अथर्ववेद, 1/6/4.
8. अथर्ववेद, 3/30/3.
9. यजुर्वेद 27/13.
10. ऋग्वेद 10/137/2.
11. ऋग्वेद 10/186/3.
12. ऋग्वेद 10/137/4.
13. ऋग्वेद 10/186/1.
14. अथर्ववेद, 19/67/1.
15. शतपथ ब्राह्मण, 2/2/4/5.
16. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/2/2/5.
17. शतपथ ब्राह्मण, 9/4/1/11.
18. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/9/5/5.
19. ऐतरेय ब्राह्मण, 5/33.
20. शतपथ ब्राह्मण, 8/7/2/21.
21. गोपथ ब्राह्मण, 1/19.
22. शतपथ ब्राह्मण, 7/2/4/28.
23. ऐतरेय ब्राह्मण, 3/44.
24. ऐतरेय आरण्यक, 2/1/217.
25. ऐतरेय आरण्यक, 2/1/7.
26. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 10/79.
27. छान्दोग्योपनिषद, 4/16/1.

जनजाति विकास में ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

पियुष कुमार सिंह

शोध छात्र, समाजशास्त्रीय अध्ययनविभाग
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

शोध सारांश

ग्रामीण डिजिटल शिक्षा अभियान को विश्व के डिजिटल साक्षरता अभियान के सबसे वृहद स्तर पर देखा जा रहा है। इसके तहत 20 घंटे की ट्रेनिग कोर्स के माध्यम से लोगो को डिजिटल साक्षर बनाया जा रहा है। इस योजना के तहत तत्कालीन प्रधानमंत्री, हर घर से कम से कम एक व्यक्ति को डिजिटल साक्षर बनाने की ओर अग्रसर है। जैसा की हम सभी जानते है की जनजाति की मुख्य समस्याओं में शिक्षा एक गंभीर समस्या है। परंपरागत रूप से इनकी शिक्षा-दीक्षा व समाजीकरण युवागृह में होती थी। लेकिन वर्तमान समय में जनजाति के इस संस्था का विलोप हो रहा है तथा ये लोग भारत सरकार के द्वारा शिक्षा के लिए चलाये जा रहे विभिन्न योजनाओं से लाभान्वित हो रहे है। इनकी परंपरागत व्यवसाय भी इस आधुनिक औद्योगिक समय में समाप्ती के कगार पर है। डिजिटल शिक्षा के माध्यम से ये लोग शिक्षित हो कर अपने समाज व संस्कृति को वैश्विक पटल पर ला सकते है। इस योजना से लाभान्वित हो कर ये अपने व्यवसाय को एक नई दिशा प्रदान कर सकते है तथा इन सब में आने वाले कठनाई को भी समझना आवश्यक प्रतीत होता है, इसलिए वर्तमान में जनजाति के विकास में डिजिटल साक्षरता की भूमिका का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुख्य शब्दः डिजिटल शिक्षा, जनजाति, विकास, डिजिटल साक्षरता, डिजिटल शिक्षा

प्रस्तावना

जनजाति शब्द का ख्याल आते है ही हमारे मन में सुदूर प्राकृतिक इलाकों में निवास करने वाले लोगों का चित्र आ जाता है। प्राचीन काल से ही जनजातियों का अलग वर्ग रहा है। ये पूरी तरह से एक अलग सामाजिक..-सांस्कृतिक मूल्यों व जीवन शैली से जुड़े हुए है जो अपरिवर्तित सा प्रतीत होता है। इनकी आर्थिक प्रणाली भी स्वतंत्र है जो मुख्य रूप से पशु पालन, कृषि और वानिकी रही है। भारतीय सामाजिक संरचना में जनजाति समुदाय एक महत्वपूर्ण सामाजिक श्रेणी का प्रतिनिधित्व करती है। इन्हें भारत के मूल निवासी भी कहां जाता है। भारत एक बहु प्रजातीय राष्ट्र है। भारत में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के समूह पाए जाते है जो अपनी सामाजिक सांस्कृतिक विकास के विभिन्न स्तर पर है। एक समूह जो अपने विकास के प्रारम्भिक स्तर पर है उन्हें आदिवासी, जनजाति, पुरातन व्यवस्था वाले व भारत के मूल निवासी आदि नामों से संबोधित किया जाता है। भारतीय सन्दर्भ में जनजाति को संवैधानिक रूप से अनुसूचित जनजाति कहां जाता है। ये जनजाति पिछड़े वर्गों में दूसरा सबसे पिछड़ा समूह है, जिसे गैर विशेषाधिकार प्राप्त अनुभाग के नाम से जाना जाता है।

वैरिएर एल्विन (1961) के अनुसार– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342, खंड एक में इस प्रकार स्वीकार किया गया है की "राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजातियों, जनजाति समुदायों या जनजाति समुदायों के भीतरी समूहों की घोषणा करेंगे। इस

सूचना में जो जनजातियाँ, जनजाति समुदाय या जनजातियों के भीतरी समूह परिभाषित किये जायेंगे, वे सब अनुसूचित जनजाति (Schedule Tribes) कहलायेंगे।"[1]

देसाई के अनुसार (1961) के अनुसार- "बाह्य आक्रमणों के समय दुर्गम प्रदेशों में जो लोग निवास करने को बाधय हुए है उन्हें जनजाति माना जाने लगा होगा।"[2]

डॉ. मांडवी (2001) के अनुसार- "पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवधरी जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है की रचना ईश्वर ने किया हैं। ईश्वरी रचना में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसे बुद्धि, ज्ञान और विवेक का उपहार ईश्वर ने दिया है। इस रूप में भी सभी मनुष्य बिना किसी भेद- भाव के ईश्वर के समान रचनाएँ है। मनुष्य-मनुष्य के मध्य समानता और स्वतन्त्रता प्राकृतिक आधार है, परंतु ईश्वर का यह वरदान चंद मनुष्यों ने ही अपने भाईयों से छिन लिया हैं। ऐतिहासिक रूप से अवसर की समानता और स्वतन्त्रता से वंचित रहने के कारण समाज का एक बड़ा वर्ग सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक रूप से इतना पिछड़ गया की अब वह आदिवासी कहे जाने लगा।"[3]

गिलिन और गिलिन (1950) के अनुसार- "किसी भी प्राक् शिक्षित स्थानीय समूह को जनजाति कहां जा सकता है, जिसके सदस्य आम (सामान्य) प्रदेश में निवास करते है, जिनके द्वारा आम (सामान्य) भाषा का प्रयोग किया जाता है तथा जिनके बीच सामान्य संस्कृति पाई जाति हैं।"[4]

उपयुक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हमे ज्ञात होता है की जनजाति की एक निश्चित निवास स्थान, एक समुदाय के लोगों द्वारा एक सामान्य भाषा का प्रयोग, विशिष्ट संस्कृति आदि होती है। जनजाति लोग अपने जीविकोपार्जन हेतु प्राय: जंगलों में उपलब्ध प्रकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते है। सभी जनजातियों की एक अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है जिनसे उनकी पहचान निर्धारित होती है। जनजाति की परिवार, विवाह, परिहार-परिहास की भी अपनी एक विशिष्ट नियमावली होती है जिनके अनुसार उस पूरे समुदाय के सभी सदस्यों का व्यवहार निर्धारित होता है। जनजाति में युवागृह नामक संस्था के माध्यम से युवाओं के समाजीकरण की क्रिया होती है। जिसमें उनको इस विशिष्ट समुदाय की संस्क्रति, अन्य संस्थाओं, यौनाचर, आदि की शिक्षा दी जाती है। भारत के कुल आबादी का लगभग आठ प्रतिशत जनजातियों की आबादी है, जो पूरे भारत में विभिन्न राज्यों में व विभिन्न समुदायों में निवास करती हैं। इनमें प्रमुख रूप से संथाल, नागा, भुईया, खस, गोंड, बैगा, बिरहोर, मुंडा, चेरु, पनिका, नागा, खासी आदि है। अनेक कारणों से भारत में ही विभिन्न स्थानों पर निवास करने वाले जनजाति समुदायों की स्थिति विभिन्न है। जिनको विभिन्न विद्वानों द्वारा भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर कई भागों में विभक्त किया गया है। इनके मान्यताएं, सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, पुजा, रीति-रिवाज आदि में भी इनके अपने-अपने तौर-तरीके है। जनजाति की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपने आस-पास उपलब्ध प्राख्रतिक संसाधनों पर निर्भर रहते है।

जनजाति की विशेषता

उपयुक्त विवेचना से जनजाति की निम्न विशेषताएँ स्पष्ट होती है-

* प्रत्येक जनजाति की एक निश्चित संस्कृति होती है।
* प्रत्येक जनजाति की एक निश्चित मानक व मूल्य होते है जिसके अनुसार उस समुदाय के सभी लोगों को व्यवहार निर्धारित होता है।
* प्रत्येक जनजाति को भौगोलिक व भाषाई आधार पर कई भागों में विभाजित किया जा सकता है।
* जनजाति की आर्थिक प्रणाली सामान्यतया आस-पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन होते है।
* जनजाति की अपनी एक वंशावली व विवाह नियम होते है।
* प्रत्येक जनजाति के परिहार व परिहास संबंधी नियम भिन्न-भिन्न होते है।

ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान

21वीं सदी वैश्वीक व्यापार के साथ-साथ पूरे विश्व में डिजिटलीकरण का दौर चल रहा है। वही भ्रष्टाचार की रोकथाम व पारदर्शिता हेतु सरकार आकड़ों को ऑनलाइन करने पर जोर दे रही है, और सरकार को इन सब में कामयाबी भी मिल रही है,

जैसे–जनवितरण प्रणाली में कई लोग फर्जी कार्ड के माध्यम से सुविधा का लाभ ले रही थे, जो राशन कार्ड के डिजिटलीकरण से पता चला।[5] इसी तरह मानरेगा में डिजिटलीकरण के द्वारा फर्जी पंजीकरण का पता चला।[6] सरकार ने 'भारतीय नागरिक पहचान कार्ड' (आईसीआईसी) परियोजना के रूप में तहत एक केंद्रीय डेटाबेस में सभी नागरिकों से संबंधित सभी जानकारियां, जैसे–जन्म तिथि प्रमाण-पत्र, शैक्षिक प्रमाण-पत्र, वोटर पहचान-पत्र, राशन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, पैन, पासपोर्ट, गैस, बिजली, टेलीफोन उपभोक्ता आईडी, बैंक खाता संख्या, बॅयोमीट्रिक्स, बीमा, वाहन पंजीकरण इत्यादि रखने का प्रयास कर रही है। जिसको सशक्त व भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने की ओर एक कदम के रूप में देखा जाना चाहिए। 'वर्तमान सरकार ने न केवल देश में डिजिटल क्रांति की प्रकिया में तेजी लाने के लिए उत्प्रेरक का काम किया है बल्कि देश में डिजीटल विभाजन में सेतु बन्धन का काम किया है। पिछले तीन वर्षों में न केवल डिजिटल प्रौद्योगिकी के अन्वेषण, कार्यान्वयन और उपयोग में तेजी से वृद्धि देखने को मिली है बल्कि डिजिटलीकरण और उसके लाभों को निचले स्तर तक ले जाने और खासतौर से समाज के उन वर्गों तक पहुंचाने पर जोर दिया है'।[7] इन सब के वावजूद सरकार को डिजिटलीकरण में कम लोगों का डिजिटल साक्षर होने की समस्या आ रही थी जो सन् 2014 की 71वें सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार केवल छ:प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास कम्प्यूटर उपलब्ध है[8], से स्पष्ट हो रहा है। इस कारण सरकार इन समस्या के समाधान व भारत के ग्रामीण समाजों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने की परिकल्पना के साथ डिजिटल साक्षरता अभियान की शुरुआत की है। ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को डिजिटल साक्षर बनाना है। जिससे लोगों का डिजिटल संबन्धित सेवाओं तक पहुँच आसानी से हो सके। इस योजना के तहत चयनित लोगों को इंटरनेट चलाना, ई-बैंकिंग, स्मार्ट फोन चलाना, कम्प्यूटर चलाना व नई तकनीक के बारे में जानकारी आदि की कुशलता में निपुण किया जाएगा। 8 फरवरी 2017 को तत्कालीन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्री मण्डल द्वारा प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान का शुभारंभ किया गया यह अभियान डिजिटल साक्षरता का विश्व में सबसे बड़ा अभियान है। इस अभियान का लक्ष्य मार्च 2019 तक छ:करोड़ ग्रामीण परिवारों (एक व्यक्ति प्रति परिवार) को डिजिटल साक्षर बनाना है। योजना के अंतर्गत वित्तीय वर्ष 2017-18 में 2.75 करोड़ तथा वित्तीय वर्ष 2018-19 के तहत 3 करोड़ लोगों को डिजिटल साक्षर किया जाना है। इस योजना हेतु 2351.38 करोड़ रुपये लागत का अनुमान है। यह योजना इलेक्ट्रानिक व सूचना प्रोधैगिक मंत्रालय के पर्येक्षण में संचालित किया जाएगा।[9] इस योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु सरकार ने 2.5 लाख पंचायतों में से प्रत्येक पंचायत से 300 लोगों का चयन करने का फैसला लिया है।[10] इस योजना के तहत एक परिवार के एक सदस्य (14 से 60 आयु वर्ष) को डिजिटल साक्षर बनया जाएगा इस कारण परिवार को एक इकाई के रूप में परिभाषित किया गया है। इस योजना के अंतर्गत गैर स्मार्ट फोन उपयोगकर्ता, कॉलेज ड्रॅप- आउट, प्रौढ़ साक्षरता मिशन के प्रतिभागी, कक्षा 9 से 12 तक डिजिटल निरक्षर विद्यार्थी जिनके स्कूल में कम्प्यूटर शिक्षा उपलब्ध नहीं है, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, बीपीएल कार्ड परिवार, महिलाएं, नि:शक्तजनों आदि को प्राथमिकता दी जाएगी।

ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान व जनजाति

एक ओर जहां विश्व के अन्य लोग नित्य नए-नए विकसित तकनीकी का प्रयोग कर रहे है, वही दूसरी ओर जनजाति समाज के लोग कई तरह की गंभीर समस्याओं से जूझ रहे है। वही सरकार सभी आकड़ों को ऑनलाइन करने का प्रयास कर रही जिससे पारदर्शिता के साथ-साथ आम जन को उचित व सही जानकारी प्राप्त हो सके। जनजाति समाज के विकास हेतु व इनको समाज की मुख्यधरा में लाने के लिए तथा तत्कालीन सरकार के कल्याणकारी योजनाओं तक पंहुच के लिए, इनके साथ-साथ अन्य ग्रामीण जनों की समस्या मुख्य रूप से डिजिटलीकरण ही है। वर्तमान समय वैश्वीकरण का समय भी है जिनमें एक समाज का दूसरे समाज पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। एलेन तूरेन के अनुसार वर्तमान समाज सूचना समाज है व जिस समाज के पास जितना अधिक सूचना होगा वह समाज उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा। अगर हम वर्तमान समय में देखें तो ज्ञात होगा की बहुत की कम जनजाति समाज आधुनिकता के पास है तथा बहुत ही कम जनजाति परिवार के लोग कम्प्यूटर, स्मार्ट फोन आदि का उपयोग करना जानते है। वे अभी भी अपने आपको परंपरागत रूप से जीने की कोशिस कर रही है। इनकी शिक्षा-स्वास्थ्य अभी भी निम्न स्तर का ही है। सरकारी नौकरी में इनका प्रतिशत अभी भी संतोषजनक नहीं है। ये लोग प्राय: दिहाड़ी मजदूरी में ही लगे रहते है। उच्च शिक्षा की तरफ ये लोग बहुत कम आकर्षित हो रहे है। जनजाति के विकास में ये सब प्रतिकूल परिस्थितियां है। डिजिटल साक्षर हो कर के ये लोग विभिन्न समय पर आने वाली विकास कार्यक्रमों का लाभ ले सकती है, तथा अब तक बने जनजाति विकास कार्यक्रमों की भी

जानकारी प्राप्त कर ये अपने आपको लाभान्वित कर सकते है। 'किसी भी समाज में शिक्षा की गुणवत्ता समाज की वास्तविक रचना की आधारशिला है। शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए, डिजिटल इंडिया की पहल ने समाज में शिक्षा के प्रसार में सुधार के लिए अनेक डिजिटल सेवाओं को एक साथ ला दिया है'।[11] शिक्षा के बढ़ते महत्व को समझ कर ये लोग शिक्षा के प्रति भी अपना सकारात्मक रुख अपना सकते है, साथ ही स्वास्थ्य से संबन्धित समस्याओं के निराकरण हेतु ये डिजिटल शिक्षा का सहायता ले सकते हैं। डिजिटल शिक्षा के माध्यम से जनजाति अपने अधिकारों से भी अवगत हो सकते है। कई जनजाति का मुख्य व्यवसाय ख्रषि है जिसको वे लोग परंपरागत तौर- तरीके से करते आ रहे है। इस अभियान का लाभ उठा कर ये लोग ख्रषि हेतु विकसित नयी तकनीक, उन्त बीज, खाद, कीटनाशक तथा फसलों में लगने वाले विभिन्न रोगों की रोकथाम-उपचार हेतु दवाओं आदि की जानकारी प्राप्त कर ये अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकते है। अगर हम वर्तमान सरकार की तत्कालीन विकास नीतियों को विश्लेषण करे तो हमे ज्ञात होगा की बिना डिजिटल साक्षर के हम अपने आपको अपंग सा महसूस करते है और दूसरों पर निर्भर होना पड़ेगा। जैसे बैंक में टोकन लेने के लिए, गैस को मोबाइल से बूक करने, कैशलेश सुविधा के लिए, बिजली बिल, ऑनलाइन शॅपिंग, आदि महत्वपूर्ण कार्य डिजिटल के माध्यम से ही पूर्ण होने वाले कार्य है, और ये हमारी जिंदगी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी बन गए है। जनजाति डिजिटल साक्षर हो कर इन मूलभूत सुविधाओं का भरपूर प्रयोग बिना किसी दूसरे के सहायता के ले सकते है। जनजाति द्वारा अपने आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु परंपरागत रूप से किए जाने वालों कार्यों का उचित मूल्य न मिलना व इनके कार्यो का आधुनिकीकरण न होना भी इनके पिछड़ेपन का मुख्य कारण हैं। आज कल लोग में फैशनेबल सामानों का चलन बढ़ता जा रहा है, ऐसे समय में जनजाति अपने आपको डिजिटल साक्षर हो कर अपने परंपरागत उत्पादों को और अधिक सुधार कर के बाजार में उचित मूल्य प्राप्त कर सकते है तथा डिजिटलीकरण के माध्यम से अपने समान का प्रचार व प्रसार भी कर सकते है। डिजिटल साक्षरता का यह भी एक लाभ है की ये भारत के आर्थिक विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी दर्ज करा सकते है। जनजाति अपने परंपरागत व्यवसाय को और अधिक कुशलता पूर्वक करे इसके लिए इनको सरकार द्वारा चलाई जा रही कौशल विकास कार्यक्रम में संचालित अन्य कार्यक्रमों से सीख ले सकते है। जनजाति के सामने एक मुख्य समस्या स्वास्थ्य से संबन्धित है जिसके लिए ये लोग जादू-टोने व झाड-फुक का सहारा लेते है। डिजिटल साक्षर हो कर ये लोग विभिन्न स्वास्थ्य से संबन्धित कार्यक्रमों व विभिन्न रोगों से संबन्धित प्राथमिक उपचार की जानकारी ऑनलाइन प्राप्त कर सकते है। (स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में सरकार की विभिन्न डिजिटल पहल में शामिल हैं- 'डिजिटल एम्स' एक ऐसी परियोजना जिसका उद्देश्य यूआईडीएआई और एम्स के बीच प्रभावी सम्पर्क बनानाय 'ई-अस्पताल' योजना जो स्वास्थ्य प्रबंधन योजना का एक खुला स्रोत हैय 'एमरक्तकोष'- एक वैब आधारित तंत्र जो सभी सरकारी ब्लड बैंकों को एक नेटवर्क से जोड़ देता है।[12]) एक तरफ जहां कुछ जनजाति संख्रति खतरे व विलुप्त के कगार पर है वही ये लोग अपने संस्ख्रति को वैश्विक पटल पर लाने हेतु डिजिटल साक्षर हो कर इसको विभिन्न ऑनलाइन माध्यमों से विश्व के सामने प्रस्तुत कर अपनी संस्ख्रति को बचाने में सकारात्मक पहल कर सकते है। वर्तमान समय में रसोई गैस के अनुदान, मानरेगा के बिल भुगतान, छात्रों की छात्रवृत्ति आदि ऑनलाइन हो गए है, जिससे जनजाति समाज के लिए इन सब सुविधाओं के लाभ हेतु डिजिटल साक्षर होना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारत की आबादी का लगभग सत्तर प्रतिशत निवास गांवों में होता है। ऐसे में ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान को सुचारु रूप से संचालित कर ग्रामीण लोगों को डिजिटल साक्षर बनाना अति आवश्यक प्रतीत होता है। जनजातियों के विकास में भी डिजिटल साक्षरता सकारात्मक रूप से प्रभावी हो सकता है बशर्ते इससे जनजाति खुद को जोड़ पाये। यह कार्य ग्राम स्तर के जनप्रतिनिधियों को एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के साथ करना होगा, जिससे जनजातियों की सहभागिता सुनिश्चित हो सके। डिजिटल साक्षरता के अलावा जनजातियों को डिजिटल सामाग्री यथा लैपटाप, कम्प्यूटर, इंटरनेट सुविधा वाला स्मार्ट फोन आदि की सुविधा भी इनकी निम्न आर्थिक स्थिति को देख कर करनी चाहिए, जिससे ये दिन प्रतिदिन अपने आपको अपडेट रख सके व सूचनाओं को प्राप्त करने में आसानी हो सके जिसके माध्यम से ये लोग अपने विकास को गति प्रदान कर सके। क्योंकि डिजिटल तकनीकी में नित्य परिवर्तन हो रहे है और अगर कोई भी आम आदमी अपने आपको अपडेट नहीं रखता तो वह भी पिछड़ा हुआ महसूस करता है तो जनजाति जिनके लिए यह एक नया अनुभव है, को भी समस्या हो सकती है। वही दूसरी तरफ यदि हम इन्हें सिर्फ डिजिटल साक्षर बना के छोड़ देंगे तो इसका कुछ सकारात्मक प्रभाव नहीं दिख सकता क्योंकि इनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं होती की ये लोग

लैपटाप, कम्प्यूटर, व अच्छे स्मार्ट फोन का उपभोग कर सकें। जनजाति विकास हेतु सरकारी प्रयास हेतु अति आवश्यक है बिना किसी सरकारी प्रयास के इनका उत्थान संभव नहीं है। डिजिटल साक्षरता अभियान के तहत साक्षर जनजाति परिवार को यह जिम्मेदारी देनी चाहिए की वो अपने समुदाय के अन्य लोगों को डिजिटल साक्षर होने की तरफ प्रेरित करे, क्योंकि ऐसा देखने को मिलता है की अन्य लोगों अपेक्षा जनजाति अपने समुदाय के लोगों के बातों को मानते है। आज कल हर ग्राम के विकास के लिए आवंटित धन का ब्यौरा ऑनलाइन उपलब्ध है तथा सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न योजनाओं यथा आवास, स्वास्थ्य, आदि की पूर्ण जानकारी ये आसानी से प्राप्त कर लेंगे व अपने अधिकारों हेतु एक सशक्त आवाज उठा सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Beteille, A. (1992). *Society and Politics in India: Essay in a Comparative Perspective.* Delhi: Oxford University Press.
- Devalle, S. B. (1992). *Discourse of Ethnicity: Culture and Protest in jharkhand.* New Delhi: Sage publication.
- Behura, N. K. (1995). Tribes in India: Planed Development. In A. K. Singh, & M. K. Jabbi, *Tribals in India: Development, Deprivation and Discontent.* Har Ananad: New Delhi.
- http://www.yogiyojana.in/pm-gramin-digital-saksharta-abhiyan-hindi/Retrieved september12, 2018,
- http://thewirehindi.com/15776/truth-behing-digital-literacy-in-india-and-pradhan-mantri-gramin-digital-saksharta-abhiyan/ (n.d.). Retrieved september12, 2018,
- Desai, A. R. (2012). *Rural Sociology in India.* Mumbai: Popular Prakashan Private Limited.
- Varrier, E. (1960). *The Tribal world of Varrier Elvin.*Bombay: Oxford University.
- Majumdar, D. S. (1967). *A Introduction to Social Anthropology.* Bombay: Asia Publishing House.
- https://www.deepawali.co.in/pradhan-mantri-gramin-digital-saksharta-abhiyan-hindi.html,(n.d.). Retrieved september10, 2018,
- https://www.prabhatkhabar.com/news/sampadkiya/story/714834.html,(n.d.). Retrieved september19, 2018
- https:// pibindia.wordpress.com/2017/09/01/भारत-में-डिजिटल-क्रांति//Retrieved सितम्बर 19, 2018
- मांडवी, ड. श. (2001) आदिवासी विकास और संवैधानिक व्यवस्था। ए जर्नल ऑफ एशिया फॅर डेमोक्रेसी एंड डेव्लपमेंट, वैल्यूम 4.
- मदन, ड. ज. (2015) परिवर्तन व विकास का समाजशास्त्र दिल्लीए विवेक प्रकाशन
- हसनैन, न. (1992) जनजाति भारत। नई दिल्ली जवाहर पब्लियर्स एंड डिस्टिबूटर्स
- हरिश्चंद्र, उ. (1990) भारतीय जनजातियाँ। राजस्थान विश्वविद्यालय सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केंद्र

Footnotes

1. Vairer Elvin- A New Deal for tribal India, 1961, p.p. 1
2. Desai, A.R.- Rural India in Transition, 1961, p.p. 51-52
3. ekaMoh] M- 'k- (2001) vkfnoklh fodkl vkSj laoSèkkfud O;oLFkk- , tuZy vkWiQ ,f'k;k iQkWj MseksØslh ,aM MsOyiesaV] oSY;we 4-
4. Gilin and Gilin- *Cultural Anthropology*, 1950, p.p. 282
5. https://www.prabhatkhabar.com/news/sampadkiya/story/714834.html,(n.d.). Retrieved september19, 2018
6. https://www.prabhatkhabar.com/news/sampadkiya/story/714834.html,(n.d.). Retrieved september19, 2018
7. https:// pibindia.wordpress.com/2017/09/01/Hkkjr&esa&fMftVy&Økafr//Retrieved september19, 2018
8. http://www.yogiyojana.in/pm-gramin-digital-saksharta-abhiyan-hindi/Retrieved september12, 2018
9. http://thewirehindi.com/15776/truth-behing-digital-literacy-in-india-and-pradhan-mantri-gramin-digital-saksharta-abhiyan/ (n.d.). Retrieved september12, 2018,
10. https://www.deepawali.co.in/pradhan-mantri-gramin-digital-saksharta-abhiyan-hindi.html,(n.d.). Retrieved september10, 2018,
11. https:// pibindia.wordpress.com/2017/09/01/Hkkjr&esa&fMftVy&Økafr//Retrieved september19, 2018
12. https:// pibindia.wordpress.com/2017/09/01/Hkkjr&esa&fMftVy&Økafr//Retrieved september19, 2018

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनः राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

प्रभात कुमार

शोध-छात्र, इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

आधुनिक काल से पूर्व न तो 'राष्ट्र' था और न 'राष्ट्रवाद'। फ्रांस की क्रान्ति से आज तक 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' एक समान नहीं रहा है। हॉब्सबॉम ने अपनी पुस्तक *नेशंस एण्ड नेशनलिज्म, सिंस 1780 : प्रोग्राम, मिथ, रियलिटी* में इन दोनों के बदलते रूपों/पक्षों पर विचार किया है। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' की चर्चा कम थी। जोहान्न नेस्ट्राय ने 1862 में पूछा था-

"'राष्ट्रीय' (नेशनल) क्या है? जब कोई भी आपकी बोली हुई भाषा का एक शब्द भी नहीं समझता।" 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' के झंडे 1880 से 1914 के बीच अधिक लहराये गये। द *एज ऑफ एम्पीयर* का समय हॉब्सबॉम 1880 से 1914 के बीच मानते हैं। उनकी इस पुस्तक के छठे अध्याय का शीर्षक है- 'वेपिंग "लैग्स : नेशंस एण्ड नेशनलिज्म'। इसी समय में 'राष्ट्रवाद' ने आगे की छलाँग लगाई और इसका वैचारिक तथा राजनीतिक 'कंटेंट' रूपान्तरित हुआ। उन्नीसवीं सदी के अंत में दक्षिणपंथी विचारधारा के रूप में फ्रांस और इटली में यह पहली बार प्रस्तुत हुआ-विदेशियों, उदारवादियों और समाजवादियों के विरुद्ध राष्ट्रीय ध्वज लहराने, घुमाने के इच्छुक रूप में, अपने राज्य के आक्रामक विस्तार के पक्ष में।[1]

सी.ए. बेइली के किताब के अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद उपनिवेश-पूर्व काल में ही जड़ पकड़ने लगा था; इसका जन्म उनके शब्दों में "पारंपरिक देशभक्ति" से हुआ, जो "भूमि, भाषा और पंथ से लगाव की एक सामाजिक स्तर पर सक्रिय भावना थी" और उपमहाद्वीप में इस भावना का विकास पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के आरंभ से बहुत पहले हुआ। अठारहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों के भारत में क्षेत्रीय आधार पर ऐसी भावनाओं का विकास होने लगा था, जब जन्मभूमि की परिभाषा देश, वतन या नाडु के रूप में की जाने लगी थी तथा क्षेत्रीय भाषाओं और धार्मिक संबद्धताओं के विकास के साथ धीरे-धीरे पहचानों का निर्माण होने लगा था। लेकिन बंगाल, महाराष्ट्र, अवध या मैसूर में केंद्रित होकर भी संचार के विभिन्न साधनों के कारण उनका अलगाव भंग हुआ। मुगल साम्राज्य की राजनीतिक वैधता पूरे हिंदुस्तान में स्वीकार की जाती थी, जिसे हिंदू-मुसलमान दोनों का देश समझा जाता था तथा सांस्कृतिक बाधएँ व्यापार और नियमित तीर्थयात्राओं के कारण हवा हो जाती थीं। बेइली का कथन यह है कि जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना वर्चस्व स्थापित किया, तो यह पारंपरिक देशभक्ति सुशासन की सुस्थापित नैतिक परंपराओं से भटक चुके विदेशी राज की विभिन्न प्रकार की देशी समालोचनाओं में और ईसाई मिशनरियों के प्रचार के विरुद्ध क्रूद्ध प्रतिक्रियाओं में व्यक्त हुई। आखिरी बात यह कि वह प्रतिरोध की अनेक कार्रवाईयों में फूटकर सामने आई, जिनमें राजाओं और साधारण जनता दोनों ने भाग लिया और जिनका चरम उत्कर्ष 1857 का विद्रोह था। विद्रोह के बाद भारत में शिक्षा के तीव्र प्रसार, रेल और तार जैसी संचार व्यवस्थाओं के विकास तथा उपनिवेशी संस्थाओं के कारण उत्पन्न सार्वजनिक कर्मक्षेत्र के कारण धीरे-धीरे राजनीति का एक आधुनिक स्वरूप सामने आया। इस दौर में हालाँकि "पुराना देशप्रेम" पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ, फिर भी, अगर हम इस मुद्दे पर फिर से पार्थ चटर्जी की बात याद करें तो उसे नए सिरे से ढालकर एक ऐसी नई उपनिवेशी आधुनिकता पैदा की गई, जो पश्चिम की आधुनिकता से भिन्न थी।[2]

1857 के बाद का भारतीय राजनीतिक इतिहास, अर्थात् उस समय का इतिहास जब उपनिवेशी व्यवस्था के साथ राजनीतिक टकराव कुछ अधिक आधुनिक संस्थाबद्ध सार्वजनिक कर्मक्षेत्र में आरंभ हुआ, बहुआयामी है। पहली बात तो यह है कि 1857 के बाद उपनिवेशवादी नीतियों में एक रूढ़िवादी प्रतिक्रिया का समावेश हुआ। भूस्वामी कुलीनों का पुनर्वास करने और उन्हें मजबूत बनाने के प्रयास किये गये, क्योंकि वे जनता के "स्वाभाविक" नेता समझे जाते थे। अकेले वही "जनता की कादारी पा सकते" थे और इसलिए वे ही एक कमजोर उपनिवेशी राजसत्ता के विश्वसनीय सहयोगी हो सकते थे। इस नई साम्राज्यिक समाज व्यवस्था में देशी राजाओं को 1877 के उस शाही दरबार में प्रमुखता का पद दिया गया था, जिसमें महारानी विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी का पद धारण किया और जिसे तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड लिटन ने देश के कुछ भागों में अकाल के बावजूद बड़े तड़क-भड़क के साथ आयोजित किया था। उनके अलावा अब बड़े जमींदार भी उपनिवेशी प्रशासन के ढाँचे में एक प्रमुख भूमिका निभाने लगे।

जमींदारों और शिक्षित भारतवासियों की ब्रिटिश राज में असंदिग्ध निष्ठा की सरकारी मान्यता का आधार यह था कि ये वर्ग ब्रिटिश राज की दैवी प्रकृति में आस्था की घोषणा करते थे और उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के किसान विद्रोहों के प्रति अपमान का रवैया अपनाते थे, जैसे उन्होंने बाद में 1857 के विद्रोह की निंदा की। लेकिन यह तो कहा जा सकता है कि यह एक गलत धारणा थी। क्योंकि राज के प्रति कादारी के पीछे अपनी अधीनता की अवस्था से जुड़े तिरस्कार की चेतना भी बढ़ रही थी।[3]

बढ़ते नस्ली तनाव, धर्मांतरण के डर और बेंथमवादी प्रशासकों के सुधारवादी उत्साह ने पढ़े-लिखे भारतवासियों को विवश कर दिया कि वे ठहरकर अपनी स्वयं की संस्कृति पर एक गहरी नजर डालें। इससे वह प्रक्रिया पैदा हुई जिसे बरनार्ड कोह्न (1987) ने संस्कृति का "विषय संकरण" कहा है, जिसमें शिक्षित भारतवासियों ने अपनी संस्कृति को ऐसी ठोस इकाई के रूप में निरूपित किया, जिसका आसानी से उद्धरण दिया जा सके, तुलना की जा सके, उल्लेख दिया जा सके और विशेष उद्देश्यों से जिसका उपयोग किया जा सके। यह नई सांस्कृतिक परियोजना, जिसने अपने आपको अंशतः उन्नीसवीं सदी के सामाजिक और धार्मिक सुधारों के माध्यम से व्यक्त किया, उसका सूत्र शब्द "पुनर्जागरण" में निहित था। इसका उद्देश्य भारतीय संस्कृति को "शुद्ध" करना और इस तरह उसकी "पुनर्खोज" करना था कि वह बुद्धिवाद, अनुभववाद, एकेश्वरवाद और व्यक्तिवाद के यूरोपीय आदर्शों से मेल खाए। इसका उद्देश्य यह दिखाना था कि भारतीय सभ्यता किसी भी तरह पश्चिम की सभ्यता से हीन नहीं है, बल्कि एक अर्थ में, अपनी आध्यात्मिक सिद्धियों में, उससे श्रेष्ठ भी है। पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति के विपरीत भारतीय सभ्यता के आध्यात्मिक मूल में गर्व के इस भाव ने भारतवासियों को न केवल अपने निजी जीवन को पुनर्गठित और गरिमामय बनाने में मदद दी, बल्कि इसकी वैचारिक प्रेरणा ने एक नये-नये पैदा हो रहे सार्वजनिक कर्मक्षेत्र में उपनिवेशी राजसत्ता का सामना करने के लिए उनको प्रेरित भी किया। दूसरे शब्दों में, इसने उस आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद को वैचारिक आधार भी प्रदान किया, जो उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्ष में विकसित हुआ।

हो सकता है कि *भारतीय राष्ट्रवाद* का विकास जैसा कि बेनेडिक्ट एंडरसन ने सोचा है उस तरह से पश्चिमी प्रभावों का परिणाम न रहा हो, लेकिन पश्चिमी शिक्षा की भूमिका फिर भी महत्वपूर्ण थी, क्योंकि उसने उसके फलने-फूलने के लिए एक आलोचनात्मक लोक-संवाद को जन्म दिया। अगर इस शिक्षा का उद्देश्य पढ़े-लिखे भारतीयों के मन का उपनिवेशीकरण करना और उनमें कादारी की एक भावना भरना था, तो इन भारतीयों ने भी उपनिवेशवाद के प्रति अपनी समालोचना तैयार करने के लिए वर्चस्व के इस ज्ञान का चयनित उपयोग और उसमें फेरबदल किया। लेकिन भारतवासियों के विभिन्न समूहों में इस आलोचनात्मक चेतना के स्तर अलग-अलग थे, क्योंकि स्वयं शिक्षा का प्रसार अत्यंत असमान था। भारत में उच्च शिक्षा का तेजी से प्रसार तब शुरू हुआ जब 1857 में तीनों प्रेसिडेंसियों में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए और 1882 में शिक्षा एक मुक्त उद्यम बन गई। लेकिन यह प्रसार अत्यंत असमान था और स्पष्ट है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक चेतना के असमान विकास से इसका संबंध था।[4]

भारत में राष्ट्रवाद का जन्म उपनिवेश विरोधी आन्दोलन से हुआ है। राष्ट्रवाद के जन्म के बाद यहाँ आधुनिक राष्ट्र का जन्म हुआ। अर्नेस्ट गेलनर (1987) ने लिखा है कि राष्ट्र राष्ट्रवाद का निर्माण नहीं करता। इसके ठीक विपरीत राष्ट्रवाद से राष्ट्र जन्म लेता है। भारत में पहले से 'सेकुलर' और धार्मिक धराएँ-लड़ियाँ मौजूद थीं। उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद का संबंध पहले की सेकुलर परम्परा से है। यहीं से उसने अपना मत-सिद्धांत प्राप्त किया। के.एन. पणिक्कर ने अपने लेख *नेशनलिज्म : देन एण्ड नाऊ* में एक ओर अशोक और अकबर को तथा दूसरी ओर राममोहन राय और विवेकानन्द को रखा है। उपनिवेशवाद विरोध के कारण भारतीय जनता एकजुट हुई और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन क्रमशः विकसित होता गया। उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद का इसकी

सैद्धान्तिकी और राजनीतिक व्यवहार का एक निर्धारित वैशिष्ट्य धर्मनिरपेक्षवाद था, जिसने भारतीय समाज के बहुसांस्कृतिक, बहुधार्मिक चरित्र को मान्यता दी और जाति, धर्म, पंथ के अन्तर के विरुद्ध खड़ा हुआ। इसका राजनीतिक पंथ उदारवाद था। ब्रिटिशों से लड़ते हुए भी भारतीय राष्ट्रवादी उदारवादी ब्रिटिशों के प्रशंसक थे, जिससे असहमति और संवाद स्थापित करने की गुंजाइश थी। पार्थ चटर्जी ने द *नेशन एण्ड इट्स फैमेंट्स* में औपनिवेशिक समाज के भीतर उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद द्वारा 'सम्प्रभुता के क्षेत्र' को तैयार करने की बात कही है। उन्होंने दो क्षेत्रों-बाह्य और आन्तरिक का उल्लेख किया है। बाह्य क्षेत्र जहाँ भौतिक था, वहाँ आन्तरिक क्षेत्र-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक। उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद एशियाई और अफ्रीकी देशों में था। इन देशों का उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद आन्तरिक था। सांस्कृतिक-आध्यात्मिक आन्तरिक क्षेत्र से यूरोपीय उपनिवेशवाद को लम्बे समय तक चुनौती नहीं दी जा सकती थी। इसे बाह्य क्षेत्र में प्रवेश करना ही था। आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र से बाह्य भौतिक क्षेत्र को दी जाने वाली चुनौती क्रमश: कमजोर होती गयी।[5] यूरोपीय और साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारत की जो 'विकृत छवि' निर्मित की थी, उसे पूर्वनिर्मित भारतीय छवि से चुनौती दी गयी थी, 19वीं सदी के आरंभ में जो बाद में कायम नहीं रह सकी। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उसमें विकृतियाँ आने लगीं। भारतीय सांस्कृतिक जो भी चिह्न और बिम्ब थे, वे सब अतीत में थे, जिसे सम्पूर्णत: ग्रहण नहीं किया जा सकता था। इन सांस्कृतिक चिह्नों में से धार्मिक चिह्नों को ग्रहण कर हिन्दू पुनरुत्थानवाद सामने आया, जिसकी प्रतिक्रिया में मुस्लिम अभियान भी चला।

ए.आर. देसाई ने अपनी पुस्तक *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि* में भारतीय राष्ट्रवाद के जिन पाँच चरणों की चर्चा की है, उनमें से पहला चरण उन्नीसवीं सदी के आरंभ से कांग्रेस के स्थापना वर्ष (1885) तक है। अंग्रेजों ने भारत में जिन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की थी उसमें शिक्षित हुए भारतीय बुद्धिजीवियों पर पाश्चात्य संस्कृति के लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी विचारों का प्रभाव पड़ा।[6] राष्ट्रवाद के इस प्रथम चरण के सामाजिक आधार को देसाई 'संकीर्ण' मानते हैं, लेकिन इस दौर के बुद्धिजीवियों में ही "राष्ट्रीय चेतना और महत्वाकाँक्षा का सबसे पहले विकास हुआ।" राजा राममोहन राय और उनके 'प्रबुद्ध साथियों' को देसाई ने 'भारतीय राष्ट्रवाद के हरावल दस्ते' के रूप में देखा है। भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद कोई 'एकायामी चित्र' नहीं है। राष्ट्रवाद को इतिहास ने निर्मित किया, पर उसके 'प्रागैतिहास' की ओर भी ध्यान दिया गया है। शेखर बंद्योपाधयाय ने अपनी पुस्तक 'पलासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास' के चौथे अध्याय 'भारतीय राष्ट्रवाद का उदय' में सी.ए. बेइली *(ओरिजिंस ऑफ नेशनलिटी इन साउथ एशिया: पैट्रिओटिज्म एण्ड इथिकल गवर्नमेंट इन द मेकिंगि ऑफ मॉडर्न इंडिया, 1998)* द्वारा 'राष्ट्रवाद के प्रागैतिहासिक' की खोज का उल्लेख किया है। "भारतीय राष्ट्रवाद ने क्षेत्रीयता की एक पहले से मौजूद भावना पर स्वयं को आधारित किया। पारम्परिक देशभक्ति जिसे लोक नैतिकता और सदाचारी शासन के देसी विचारों ने बुद्धिवादी रूप दिया, उसके आधार पर खुद को खड़ा किया।"[7]

भारतीय राष्ट्रवाद पर विचार करने वाले इतिहासकारों और विद्वानों की मुख्यत: दो कोटियाँ हैं। पहली प्रमुख कोटि के अन्तर्गत वे सब हैं, जिन्होंने उपनिवेशी शासन के विरोध को केंद्र में रखा। इसमें देशभक्ति की भावना के साथ अपनी परम्परा के प्रति गर्व-भावना पर आधारित विचारधारा महत्वपूर्ण रही है। इतिहासकारों के इस प्रमुख सम्प्रदाय ने भारतीय समाज के अन्तर्विरोधें, उसके टकरावों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। 'राष्ट्र के हितों को साझे हितों वाली एक समरस इकाई' मानकर चलने वाले इतिहासकारों को रजत रे (1980) जैसे विद्वानों ने 'नव परम्परावादी सम्प्रदाय' कहा है। आंग्ल- अमेरिकी विद्वानों ने 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' पर अस्सी के दशक से नये सिरे से जो विचार किए हैं, उन पर कम ध्यान दिया जाता है और इन नयी व्याख्याओं की पृष्ठभूमि पर विचार कम हुआ है। शेखर बंद्योपाध्याय ने रजत रे का उल्लेख कर इन विद्वानों की 'नई व्याख्या' को 'वैलेंटाइन शिरोल जैसे लेखकों के उस पुरने साम्राज्यिक दावे' से जोड़ा है कि "भारतीय समाज का राजनीतिकरण वर्ग या राष्ट्र जैसी आधुनिक धारणाओं की बजाय भाषायी क्षेत्रों, जातियों या धार्मिक समुदायों जैसी परम्परागत सामाजिक संरचनाओं की तर्ज पर हुआ।" मार्क्सवादी इतिहास-लेखन पर अस्सी के दशक से जो नये सिरे से प्रहार हुआ है, उसे भी देखने की जरुरत है। नव परम्परावादी सम्प्रदाय, जिसे 'कैम्ब्रिज सम्प्रदाय' भी कहा जाता है, ने राष्ट्रवादी विचारधारा को खारिज किया। शेखर बंद्योपाधयाय ने ठीक ही इसे 'इतिहास के प्रति सनकी दृष्टिकोण' कहा है और इसे 'संकीर्ण नेमियारवादी मॉडल का अनुसरण' माना है, जो राष्ट्रवादी आन्दोलन का दर्जा गिराता है और तपन राय चौधरी के शब्दों में उसे 'पाशविक राजनीति के स्तर' तक पहुँचा देता है।[8]

विपिन चंद्र ने उपनिवेशी भारत में दो प्रकार के अंतर्विरोध दिखाए हैं। प्रमुख अंतर्विरोध भारतीय जनता के और ब्रिटिश राज के हितों के बीच था, पर उससे अलग हटकर भारतीय समाज के अंदर वर्गों, जातियों और धार्मिक समुदायों के बीच अनेक गौण अंतर्विरोध पर समझौते कर लिये गये और इस तरह एक राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व स्थापित हुआ।[9] लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन किसी एक वर्ग, जाति या धार्मिक समुदाय का आंदोलन नहीं था और गाँधी या जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने माना कि भारत कोई ढाँचाबद्ध राष्ट्र न होकर एक निर्माणाधीन राष्ट्र था। परस्परविरोधी हितों वाले अनेक समूह यहाँ थे और इसलिए वर्ग या जातिगत या सांप्रदायिक टकरावों से बचने और इन सभी असंबद्ध समूहों को एकछत्र नेतृत्व के अंतर्गत लाने के लिए हमेशा समझौते करने पड़ते थे। फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एक आंदोलन बन गया, हालाँकि सभी गौण टकराव संतोषजनक ढंग से हल नहीं किए जा सके।

सन्दर्भ सूची

1. सुमित सरकार, *मॉडर्न इंडिया, 1885-1947,* मैकमिलन, न्यू दिल्ली, 1983, पृष्ठ 11.
2. पार्थ चटर्जी, द *नेशन एण्ड इट्स फैगमेंट्स : कोलोनियल एण्ड पोस्ट-कोलोनियल हिस्ट्रीज,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1993, पृष्ठ 5-7.
3. शेखर बंधेपाधयाय, *पलासी से विभाजन तक और उसके बाद,* ओरिएंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 206.
4. दीपेश चक्रवर्ती, *प्रोविन्सीयलाइजिंग यूरोप : पोस्ट कोलोनियल थॉट एण्ड यूरोप,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 2000, पृष्ठ 4.
5. ए.आर. देसाई, *सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म,* पॉपुलर बुक डिपो, बाम्बे, 1959, पृष्ठ 144.
6. शेखर बंधेपाधयाय, पूर्वोक्त.
7. उपरोक्त.
8. सुमित सरकार, *राइटिंग सोशल हिस्ट्री,* ऑक्साफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1997.
9. विपिन चन्द्र, आदि, *इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस,* पेन्ग्यून, न्यू दिल्ली, 1989, पृष्ठ 22-30.

नागरिक समाज और भारतीय लोकतंत्र: एक अध्ययन

डॉ० प्रियंका कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एस.के.बी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर (बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

भारत में नागरिक समाज और लोकतंत्र के बीच का संबंध पश्चिमी लोकतंत्रों जैसा न होकर कुछ जटिल किस्म का है। हाल के दशकों में लोकतंत्र के कामकाज में हुए परिवर्तनों ने इस संबंध को और भी पेचीदा बना दिया है। इस आलेख में हम इसी संबंध की व्याख्या करेंगे। ध्यान रहे कि किसी संस्थागत बंदोबस्त और किसी राजनीतिक संरचना के विकास के रास्तों और मुकामों में समानता नहीं होती। ऊपर से अगर लोकतंत्र और नागरिक समाज की शक्ल गढने वाला ऐतिहासिक दौर और स्थितियाँ अलग तरह की हों तो दोनों के बीच का यह फर्क और भी मुखर हो जाता है। भिन्न सामाजिक-आर्थिक हालात और सांस्कृतिक माहौल में दो एक से संस्थानों का विकास एकदम अलग-अलग तरीकों से हो सकता है।

इंसान के सामाजिक जीवन से जुड़े किसी सार्वभौम मूल्य की अनगिनत किस्में हो सकती हैं, क्योंकि उसे रचने वाले ऐतिहासिक हालात तरह-तरह के होते हैं और उस मूल्य के आधार पर होने वाला आचरण भी अलग-अलग तरह का हो सकता है। मसलन, दोस्ती या आवभगत की प्रथाएँ एस्किमो लोगों में कुछ और होती है और आंध्रवासियों के बीच कुछ और। इसी तरह व्यक्तिगत स्वायत्तता जैसे मूल्य का सांस्कृतिक तात्पर्य विभिन्न समाजों के लिए अलग-अलग हो सकता है। सभी कालावधियों और सभी तरह के समाजों के लिए इस प्रश्न का सैद्धांतिक उत्तर नहीं दिया जा सकता कि अरस्तू के लिहाज से स्वायत्तता किस बिंदुपर 'संयम' से 'अतिचार' में बदल कर 'अराजकता' अथवा मनमर्जी बन जाती है। इस प्रश्न का उत्तर खूब सोच-समझ कर परिस्थितिजन्य और संदर्भगत सीमाओं का ध्यान रख कर तय करना पड़ेगा। हर समाज के कुछ अपने लाजमी हालात होते हैं जिन्हें कार्रवाई के समय कर्ता द्वारा नहीं बदला जा सकता। उदाहरण के लिए, अगर स्वायत्तता प्रदर्शित करने के लिए कोई देह का सार्वजनिक प्रदर्शन करना चाहे तो हर समाज के लिए उसकी प्राथमिकता अलग-अलग होगी। एक सार्वभौम मूल्य के रूप में लोकतंत्र के साथ भी ऐसा ही है। जाहिर है कि इसीलिए लोकतंत्र कोई एक ही नहीं है, बल्कि तरह-तरह के लोकतंत्र हैं जिनमें समानता होते हुए भी भिन्नता है। लोकतंत्र के रूप में मूल्यों का एक ही ढ़ाँचा किन्हीं दो समाजों में एक-सा नहीं हो सकता।

लोकतंत्र के कामकाज और विकास को सुगम बनाने वाले पहलू या हालात भी इसी तरह किस्म-किस्म के होते हैं। इसी में से एक आवश्यक पहलू है *नागरिक समाज का उदय*। नागरिक समाज का अर्थ है बाजार और सार्वजनिक दायरा। पश्चिमी यूरोप के समाजों में नागरिक समाज और राष्ट्रीय समुदाय के बीच बिरादराना संबंध हैं। ये दोनों एक साथ लोकतांत्रिक जागरूकता का परिणाम थे। उदीयमान पूँजीवाद एक स्तर पर लोगों का स्थानीय अलगाव तोड़ कर उन्हें जिंसों, सेवाओं और अनुबंधें के बाजार-विनिमय में धकेल रहा था। इसी प्रक्रिया में लोगों के बीच रिश्ते बने, एक-दूसरे से मिलती-जुलती समझ बनी। इस हद तक कि लोगों के बीच परस्पर संवाद होने लगा और इसीलिए देशी भाषाओं का महत्व भी बढ़ गया। यूरोप में यह राष्ट्रीय समुदायों के बनने की शुरुआत थी। पूँजीवाद के बढ़ते कदम लोगों को सीधे-सीधे एक-दूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया में ले आये जिससे उन सामंती समुदायों की पकड़ कमजोर हुई जिन्होंने जनता को ऊँच-नीच के मुजफ्फरपुर में जकड़ रखा था। इस प्रकार अधीनस्थता की अनुभूति धीरे-धीरे टूटने लगी।[1]

इसी प्रक्रिया में हम वैयक्तियन से संपन्न व्यक्ति का उभार देखते हैं, एक ऐसे इंसान का उभार जिसे अपने होने का एक अलग तरह का एहसास था। व्यक्ति होने की यह नयी अनुभूति जैसे–जैसे उभरी, जीवन और समाज के बारे में नयी कल्पनाशीलता ने जन्म लिया। यही दौर था जब यूरोपीय समाजों में विचारों का एक दिलचस्प खेल हुआ। विचारों की अन्योन्यक्रिया और द्वंद्व से जिन विवादों का जन्म हुआ उनमें से *नागरिक समाज* निकला। इस प्रक्रिया ने पूँजीवाद के साथ उभरी सामाजिक संरचनाओं को उदारमना बनाया। लोकतांत्रिक चेतना नवोदित थी। उसके लोकतंत्र में विकास की प्रक्रिया में नागरिक समाज का वजूद बनता चला गया। नागरिक समाज और लोकतंत्र ने एक–दूसरे को आगे बढ़ाने और परस्पर समर्थन की गहरी भूमिका निभाई। इसी ऐतिहासिक विकास–क्रम से इस आस्था ने जन्म लिया कि लोकतंत्र को टिके रहने और फलने–फूलने के लिए नागरिक समाज की जरुरत पड़ती है।

यहाँ हम इस व्यापक आस्था की प्रासंगिकता की जाँच करेंगे कि लोकतंत्र के लिए नागरिक समाज आवश्यक और महत्वपूर्ण होता है। हम यह भी देखेंगे कि भारत में नागरिक समाज के लोकतंत्र के साथ क्या रिश्ते हैं। भारत में नागरिक समाज का विकास बड़ा जीवंत रहा है। नए 'सामाजिक आंदोलनों'[2] की ताकत लोकतांत्रिक दायरे में अपना स्थान बना चुकी है और समाज में उनका आधार तैयार हो गया है। आज गैर–सरकारी संगठनों का जिक्र किये बिना जनांदोलनों की चर्चा करना मुश्किल है। इन संगठनों का काफी प्रसार हो गया है और वे स्थानीय स्तर पर जन–सक्रियता से गहराई के साथ जुड़े हुए हैं। चाहे मुद्रित हो या इलेक्ट्रॉनिक, जन–संचार माध्यमों का जबरदस्त विस्तार हुआ है। चारों तरफ फैली निरक्षरता की समस्या से जूझ रहे किसी भी समाज के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अहमियत कम करके नहीं आँकी जा सकती। मीडिया के संदेश के साथ सीधे जुड़ने की निरक्षर की अक्षमता इस मीडिया के कारण फौरन क्षमता में बदल जाती है। गरीब आदमी को किसी के जरिए यह जानने की जरुरत नहीं रह जाती कि दुनिया में क्या हो रहा है। बात कहने के पारंपरिक जरियो की पहुँच भी बढ़ी है। सांसारिक मामलों के प्रचार और ज्ञान का काफी विस्तार हुआ है। लगता है कि जैसे समाज का एक बड़ा हिस्सा लगातार संवाद की प्रक्रिया से गुजर रहा हो। लेकिन, इन तमाम बातों के बावजूद नजदीकी निगाह डालने पर यह दलील दी जा सकती है कि सतह के नीचे नागरिक समाज की सीमाओं का क्षय हो रहा है। अगर यह अवलोकन सही है तो फिर सवाल उठता है कि क्या नागरिक समाज लोकतंत्र की सफलता के लिए एक आवश्यक पूर्वशर्त है?

यूरोपीय दार्शनिक लेखन और पश्चिमी इतिहास लेखन में मिलने वाला नागरिक समाज खास तरह का समाज है। उस लिहाज से हर समाज नागरिक समाज नहीं हो सकता। वह तो अंतर्विरोधी आयामों के संयोग से बनता है। पूँजीवादी समाज के उदय के साथ ही नागरिक समाज का उदय होता है जब ज्यादा से ज्यादा लोग बाजार के दायरे में धकेले जाने लगते हैं। समुदाय पहले की तरह इंसान को सहारा देने में नाकाम हो जाते हैं। उसे अपनी जरुरतें बाजार के जरिए ही पूरी करनी होती है, क्योंकि उसे समुदायों का सहारा मिलना बंद हो जाता है। बाजार पहली बार एक स्थायी किस्म की 'जनता' की रचना कर डालता है, जिसमें हर व्यक्ति अनाम ढंग से साथ–साथ होता है। पहले यह 'जनता' की रचना कर डालता है, जिसमें हर व्यक्ति अनाम ढंग से साथ–साथ होता है। पहले यह 'जनता' केवल विशेष अवसरों पर ही बनती थी, जैसे किसी तीर्थयात्रा के मौके पर या किसी मेले के मौके पर। अपने एक सिरे पर नागरिक समाज एक सार्वजनिक दायरा है जिसकी रचना ऐसे अनुवत और अहं युक्त व्यक्तियों से मिल कर होती है जो प्रतियोगितामूलक पूँजीवादी दुनिया में सक्रिय हैं। यही कारण है कि हेगेल नागरिक समाज की परिभाषा इंसान की पारिवेशिकताओं के दायरे के रूप में करते हैं[3], जैसे अहंकार, मनमानापन, सनक आदि। लेकिन, अगर बाजार ही एकमात्र जगह होती जिसमें इंसान को जिंदगी गुजारनी पड़ती तो हम सभी दम घुटने से मर जाते। उदीयमान पूँजीवाद लोकतांत्रिक चेतना और व्यक्तिवाद के उदय का कारण भी तो था। समाज नये तरीके से कल्पित किया जा रहा था और जीवन के लिए नये मकसद हासिल किए जा रहे थे। समय के साथ पूँजीवाद समाज में व्यक्ति नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का वाहक भी बन गया। जहाँ तक नये मूल्यों, सरोकारों और हितों का सवाल था, लोग समान प्रयास और संवाद के लिए साथ–साथ आने लगे। हर कोई हर एक के साथ संवाद करने लगा। इस तरह नागरिक समाज का दूसरा ध्रुव बना जिसे हेबरमास[4] के शब्दों में *'पूँजीवादी सार्वजनिक दायरा'* कहा जाता है। यह माना गया कि यह दायरा सत्ता के हस्तक्षेप के बिना सभी के लिए मुहैया है। यह अधिकारों के वाहक व्यक्तियों का दायरा है।

इन्हीं अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों के कारण 'नागरिक समाज' के शब्दावली का इस्तेमाल तरह–तरह से होता रहा है। कभी–कभी विचारधारात्मक मंतव्यों के साथ और कभी–कभी एकदम अनावश्यक रूप से भी। समाजवादी दुनिया के ढह जाने के बाद कई पश्चिमी टिप्पणीकारों ने बाजार आधारित समाजवादी जीवन को ही नागरिक समाज करार दे दिया। जावीद आलम का कहना है कि

इस तरह की परिभाषा का कड़ा प्रतिरोध होना चाहिए।[5] भूमंडलीकरण के कारण सारी दुनिया में, खासकर तीसरी दुनिया में बाजार लूट-खसोट का अड्डा बन गया है। कुछ लोग सत्ता के संस्थानों के अलावा बाकी समाज को नागरिक समाज का दर्जा देते हैं। कुछ लोग नागरिक समाज अभिव्यक्ति का इस्तेमाल वहाँ करते हैं जहाँ केवल समाज कहने से काम चल सकता है। मौजूदा संदर्भ में मैं नागरिक समाज की परिभाषा एक ऐसे सार्वजनिक दायरे के रूप में कना तर्कसंगत जान पड़ता है जिसमें अधिकार संपन्न व्यक्ति अपने विचारों, आस्थाओं और सामाजिक प्राथमिकताओं की मान्यता के लिए संघर्ष करते हैं। ध्यान रखने की बात है कि भारत में बहुत बड़ी संख्या में लोग ऐसे हैं जो केवल नाममात्र के लिए ही अधिकार संपन्न हैं। उन्हें न तो किसी विमर्शी दायरे में जाने की इजाजत है और न ही उनके पास इस तरह की क्षमताएँ हैं। नागरिक समाज में ऐसे वंचित लोगों की हैसियत पर सावधनी से गौर करने की जरुरत है।

अभिजनों की उलट-प्रतिक्रिया और उसके साथ ही 2014 केक बाद के कालखंड में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा के हिंदुत्व के प्रभाव में वृद्धि की रौशनी में अगर भारत के नागरिक समाज की लाक्षणिक विशेषताओं पर गौर किया जाए तो पता चलता है कि भारतीय लोकतंत्र का रास्ता कुछ खास तरह से अलग किस्म का है। भारत में नागरिक समाज का केंद्र या तो लोकतंत्र के खिलाफ हो गया है, या फिर वह लोकतंत्र की उन प्रक्रियाओं से विलग हो गया है, जो नागरिक समाज को टिकाए रखती है। इस निष्कर्ष की सावधनी से व्याख्या की जानी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि नागरिक समाज के सदस्यों ने लोकतंत्र की विचारधारा या उतारदावादी लोकतंत्र की आधारभूत सैद्धांतिक अवधारणाओं में यकीन करना बंद कर दिया है। इसके उलट संभावना इसी बात की है कि ये लोग उन तौर-तरीकों के पूरी तरह से हामी होंगे जिनके आधार पर लोकतंत्र का कामकाज चलना चाहिए। यहाँ लोकतंत्र के आदर्श रूप का मतलब है पश्चिमी समाजों में लोकतंत्र के निष्पादन का तरीका। अगर हम नागरिक समाज के भीतर रायशुमारी करके उसकी छानबीन करें तो पायेंगे कि इस समाज के मुखर हिस्से व्यक्ति के तौर पर अपनी स्वायत्तता का बहुत ख्याल रखते हैं। वे मानते हैं कि उनके अधिकार अनुलंघनीय हैं, उनकी प्राइवेट और निजी जिंदगी पर किसी किस्म की सामाजिक निगारनी नहीं होनी चाहिए, सार्वजनिक दायरे में होने वाले मूल्यगत विवादों में सत्ता का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और सार्वजनिक कार्य-व्यापार में शिष्टता कायम रखी जानी चाहिए। कुल मिलाकर नागरिक समाज के ये सदस्य खुद को किसी भी किस्म के बुद्धिवाद विरोधी रुझानों से, सत्ता के किसी भी प्रलोभन से और किसी भी तरह के आत्म-तुष्टीकरण से परे मानते हैं।

इस संदर्भ में दो प्रमुख मुद्दों पर प्रकाश डालना जरुरी है। पहला, नागरिक समाज के केंद्र का निर्माण करने वाले अभिजन लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रति संशयग्रस्त हो गये हैं। उन्हें लगता है कि समाज के कमजोर वर्ग जिस तरह राजनीति कर रहे हैं उससे सार्वजनिक जीवन में अशिष्ट लोगों और शोर मचाने वाली आवाजों की भरमार हो गई है। दरअसल, उत्पीड़ित समूहों की गतिविधियाँ समता की उनकी अपनी अवधारणा पर आधारित है। सत्ता में हिस्सेदारी की उनकी अपनी समझ है। वे अपनी दावेदारियों से साबित करना चाहते हैं कि द्विजों के बराबर ही उनकी भी कीमत है। जब वे खड़े होते हैं, तो अभिजनों को उनकी अहमियत स्वीकार करनी पड़ती है। समता, जायज हकों और सबलीकरण के लिए इन साधारण लोगों द्वारा चलाया जाने वाला संघर्ष कुछ इस शैली में है कि उससे राजनीतिक दायरे में कोलाहल मचता हुआ लगता है। 1990 के दशक से राजनीतिक दायरे और चुनावी होड़ में कमजोर तबकों का बहुत बड़े पैमाने पर बहुत भारी संख्या में प्रवेश हुआ है। इससे ऐसा लगता है कि सार्वजनिक दायरे में एक तरह का जाम लग गया हो। संख्याबल के दबाव से मुक्त बुद्धिवादी विनिमय की गुंजाइश बहुत घट गई है। इससे उन लोगों को दिक्कत होने लगी है जो पश्चिम द्वारा थमाए गए मूल्यों और गुणों के आधार पर नागरिक समाज को परिभाषित करते हैं।[6]

दूसरा मुद्दा यह है कि कमजोर वर्ग अपनी समस्त विविधता के साथ लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपने खास नैतिक अर्थशास्त्र और सांस्कृतिक नजरिया भी लाया है। इस नैतिकता और संस्कृति में ऐसे मूल्य भी शामिल हैं जिन्हें नागरिक समाज के लिए मूल्यवान नहीं माना जा सकता। असल में ये मूल्य तो नागरिक समाज के लिए विधेयक समझी जाने वाली आवश्यकताओं के ही खिलाफ जाते हैं। देश के सार्वजनिक जीवन में काफी मुखर बन जाने वाले और प्रमुखता प्राप्त कर लेने वाले इन मूल्यों के कुछ पहलू इस प्रकार हैं : सामुदायिक एकजुटता, अपने जातिभाई की मदद करना, अपने समुदाय की प्रगति के लिए लाइन तोड़ कर आगे बढ़ जाना, अपने समूह से बाहर के लोगों के लिए भद्र या नरम रवैया न अपनाना और सार्वजनिक वक्तव्यों में शिष्टता का ख्याल न करना। समझने की बात यह है कि राजनीतिक जीवन में यह स्थिति इन समुदायों की प्रकृति के कारण बनी है। ये लोग व्यक्तियों के रूप में जनता नहीं बने, बल्कि अपने समुदाय में रचे-बसे लोगों की तरह जनता बने। इसके अलावा इनमें से ज्यादातर समुदाय अपने

सदस्यों से उनकी मदद के बदले सामुदायिक जीवन से बिना शर्त जुड़ाव की अपेक्षा करते हैं। इन कमजोर समदायों के लोगों में एक व्यक्ति के रूप में सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रहने की क्षमताएँ नहीं हैं। उनमें विश्वास का अभाव है, उनकी बोलने की क्षमताएँ अपर्याप्त हैं, जबकि इन गुणों की सार्वजनिक बहसों में बड़ी जरुरत होती है। अपनी इन्हीं खामियों की पूर्ति वे अपने संख्याबल से करते हैं। इस तरह व्यक्तियों के बजाय समुदायों की होड़ का नजारा बनता है जो एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति की तरफ इशारा करता है जिसका नागरिक समाज से मेल नहीं बैठ सकता। नागरिक समाज की प्रचलित समझ के मुताबिक उसकी संस्कृति प्राक्-आधुनिक रिश्तों से परे जानी चाहिए और उसे कुछ निश्चित सार्वभौम आयामों से संपन्न होना चाहिए।[7]

लेकिन, जैसा कि जावीद आलम का तर्क है कि कमजोर वर्गों की संस्कृति को *कोलाहल की राजनीति* की संज्ञा देने पर भी उसके अपने तर्कसंगत आदर्श हैं जिनके औचित्य के पक्ष में सार्वजनिक बहस की जा सकती है।[8] लोकतंत्र का परिप्रेक्ष्य कोई भी हो; समता, जायज हकों की प्राप्ति और सबलीकरण जैसे लक्ष्यों की वांछनीयता से इनकार नहीं किया जा सकता। इन्हें प्राप्त करने के साधनों पर सवाल जरुर खड़ा किया जा सकता है। मुश्किल यह है कि कमजोर वर्गों को नागरिक समाज के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले शिष्ट और औचित्यपूर्ण साधनों पर कोई महारत हासिल नहीं है। सतही तौर पर तो यही लगता है कि उन्होंने जिन तरीकों का सहारा लिया है वे नागरिक समाज का मुँह चिढ़ाने वाले ही हैं। हाँ, सतह के नीचे वे उन्हीं मूल्यों के लिए संघर्ष कर रहे हैं जिनसे स्थिर नागरिक समाजों की भित्ति बनती है। दिक्कत यह है कि नागरिक समाज के पश्चिम प्रदत्त सिद्धांत यह हकीकत नहीं समझने देते।

भारत में नागरिक समाज की उपस्थिति सीमित ही समझी जाएगी। शिक्षा और संस्कारों से संपन्न एवं अपने अधिकारों के उपभोग में सक्षम लोग ही इस समाज के केंद्रीय सदस्य है। दूसरों के लिए भी झंडाबरदारी करते हुए दावा उनका जरुर रहता कि वे भी उन्हीं की तरह नागरिक समाज में सक्रिय रह सकते हैं। अभिजनों के विश्व-दृष्टिकोण की अवधारणाओं के सामाजिक महत्व में खासी गिरावट आई है, और राजनीतिक प्रक्रिया में भी उनकी हैसियत साफ तौर पर कम हो गई है। यही कारण है कि नागरिक समाज के आधारभूत मूल्यों के पक्ष में मजबूती से खड़े होने वाले लोग लोकतंत्र को जीवन प्रदान करने वाली प्रक्रियाओं से कट गये हैं। अपने उल्टे-सीधेपन और विकृतियों के साथ भारत में लोकतंत्र नागरिक समाज के बहुत बड़े हिस्से के समर्थन के बिना ही चल रहा है और टिका भी हुआ है।[9]

भारतीय लोकतंत्र एक असामान्य मुकाम पर खड़ा है। ये हालात पश्चिमी देशों से एकदम अलग हैं जिनका अनुभव आज तक हमारे लिए लोकतंत्र का नमूना बना हुआ है। भारतीय स्थिति यह है कि लोकतंत्र का रास्ता सुगम बनाने के माध्यम बतौर नागरिक समाज या तो वास्तविक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रति उदासीन हो गया है, या फिर उसका विरोध करता नजर आ रहा है। स्थापित मध्यवर्गों, शिक्षितों और खुशहाल तबकों यानी अभिजनों का अलगाव जावीद जैसे विद्वान लोकतांत्रिक प्रक्रिया के संदर्भ में किसी और नजर से देखते हैं। उनका मानना है कि इस अलगाव का एक ही संभव अपवाद है और वह है अकादमिक जगत में सक्रिय आलोचनात्मक समझ रखने वाले बुद्धिजीवीगण, सामाजिक आंदोलन और अन्य रेडिकल गतिविधियों में लगे हुए लोग।[10]

चूँकि भारत में आधुनिक संस्कृति का विस्तार सतह पर ही हुआ है, इसलिए नागरिक समाज की रचना समाज के अभिजन हिस्सों के बीच ही हो पाती है और फिर वह बाहर की तरफ अपना विस्तार करता है। लेकिन, किसी नागरिक समाज के फलने-फूलने के लिए जरुरी नहीं है कि पूरा समाज ही शिक्षित और संस्कारवान बने। जिस समाज में अभिजनों और जनसाधारण के बीच मूल्यों और खुशहाली के मामले में इतनी बडी दरार हो, उसमें जरुरत तो इस बात की है कि एक *प्रतिज्ञा-पत्र* (आजादी की पूर्व संध्या पर नेहरु का 'नियति से मुलाकात' वाला विख्यात भाषण) को मान्यता दी जाए, ठीक उसी तरह जैसे आजादी के आंदोलन के समय और संविधान की रचना के समय दी गई थी। अभिजनों ने उस समय जनसाधारण को एक वांछित भविष्य की उपलब्धि का आश्वासन थमाया था। आज मुड़ कर निगाह डालने से लगता है कि शायद वह वायदा प्रामाणिक नहीं था। लेकिन, जिस समय वह वायदा किया गया था, उस समय सच लगता था। उसके तहत जिन लक्ष्यों की प्राप्ति की जानी थी और जिनका कार्यान्वयन किया जाना था, वे विकसित होकर सारे समाज में फैले। इसी प्रतिज्ञा-पत्र के कारण अभिजनों और जनसाधारण के विश्व-दृष्टिकोणों के बीच का फर्क उभर कर सामने नहीं आ पाया। अर्थात्, समुदायों के भीतर और समुदायों के बीच मौजूद *विभेद की संस्कृतियाँ* चुपचाप पड़ी रहीं और उन्होंने राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित नहीं किया। आज सार्वजनिक दायरे में विभेद की उन्हीं संस्कृतियों की बाढ़ आ गई है। उस समय सार्वजनिक दायरा उद्देश्यों की एकता से बँध हुआ था और बुद्धिजीवियों के बीच होने वाली बहस में जनता

की भी खामोश भागीदारी मान ली जाती थी। उस समय भारत में प्रकार और दायरे के लिहाज से सीमित पर कुछ-कुछ नागरिक समाज से मिलती-जुलती संरचना सुचारू रूप से काम कर रही थी।[11]

आज वह स्थिति नहीं रह गई है। भारत में लोकतंत्र को विस्तार और गहनता देने की प्रक्रिया बड़े ऊल-जुलूल ढग से चल रही है। सवाल यह है कि क्या हम इस विकास-क्रम को रेडिकल करार दे सकते हैं? हकीकत यह है कि लोकतंत्र का विस्तार पूँजीवादी समता प्राप्त करने के प्रयासों का नतीजा है और उससे लोकतंत्र को टिकाऊपन और वैधता मिली है। विस्तार के ये पहलू जमीनी स्तर पर कितने भी बेढंगे क्यों न हों, इनके कारण पूरे मुल्क के पैमाने पर राज्य व्यवस्था के सेकुलर चरित्र को बनाए रखने में मदद मिली है। हिंदुत्व के हमले के सामने उत्तरोत्तर कमजोर महसूस कर रहे अल्पसंख्यकों को एक न्यूनतम आश्वासन भी मिला है। हिंदुत्व की बढ़ती हुई ताकत नागरिक समाज के सारतत्त्व पर भी सीधे हमले के रूप में देखी जानी चाहिए। हिंदुत्व ऊपर से तो लोकतंत्र के रूप का आदर करता हुआ दिखता है, पर भीतर से लोकतंत्र को विकलांग बनाता है।[12]

भारतीय राजनीति का हिंदूकरण करने के अपने अभियान में हिंदुत्व का मुख्य हथकंडा यही है कि वह रूप के स्तर पर लोकतंत्र का सम्मान करते हुए दिखना चाहता है। हिंदुत्व निचली जातियों को अपने आगोश में लेने की राजनीति कर रहा है। यह एक ऐसी राजनीति है जिससे लोग अपनी अस्मिता से वंचित हो जाते हैं। लोकतंत्र के सार से अलग करके केवल रूप पर जोर देने के कपट से हिंदुत्व को फायदा यह होता है कि उसे बड़ी संख्या में ऐसे लोगों को आकर्षित करने में मदद मिलती है जो किसी अन्य स्थिति में हिंदुत्व के केंद्रीय विचारधारात्मक आग्रहों को किसी भी कीमत पर समर्थन देने के लिए तैयार नहीं होते। शायद इसीलिए उसे नीतीश कुमार की राजनीति में निहित कालाबाजारियों से कोई दिक्कत नहीं होती, पर ममता बनर्जी के ऐसे ही कामों के प्रति वह अरुचि जाहिर करता रहता है।

हिन्दुत्व के उभार के साथ एक और महत्वपूर्ण घटना हुई है। रूपांतरण के नेहरूयुगीन एजेंडे का प्रभाव क्षीण हो जाने के साथ ही राज्य द्वारा गरीबों की तरफदारी में अपनायी जाने वाली भूमिका का भी क्षय हो गया है। लेकिन, खास बात यह है कि राज्य द्वारा किए जाने वाले हस्तक्षेपों में इसी के मुताबिक गिरावट नहीं आई है। अब राज्य भूमंडलीय पूँजी के पक्ष में गैर-रूपांतरणकारी हस्तक्षेप करता है। उसकी यह प्रवृत्ति न केवल जनता की मुक्तिकारी आकांक्षाओं के खिलाफ जाती है, बल्कि पूँजीवादी समता के जन-दावे के भी खिलाफ है क्योंकि राज्य ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों को विशेष अवसरों और आरक्षण के दायरे से बाहर करता जा रहा है। नागरिक समाज और लोकतंत्र का पारस्परिक संबंध समझने के लिए इस सवाल का जवाब जरूरी नहीं है कि परिवर्तन का नेहरूयुगीन एजेंडा मुक्तिकारी था या नहीं। इस मुद्दे की समझ के निए यह तय करना भी अहम नहीं है कि पूँजीवादी समता की प्राप्ति से लोगों की जिंदगी खुशहाल होगी या नहीं। समझने की बात यह है कि पूँजीवादी समता की माँग ही आज के जमाने का युद्धक्षेत्र है।[13]

नागरिक समाज को बृहत्तर समाज का पर्याय बनाना केवल अभिजनों के बस की बात नहीं है, हालाँकि पश्चिमी लोकतंत्रों में ऐसा हो चुका है। भारत में अभिजन नागरिक समाज का ऐसा माहौल नहीं बनने देते जिससे जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को प्रोत्साहन प्राप्त हो सके। अभिजनों और साधारण जनता के बीच सूत्र भंग होना आज की राजनीति का मुख्य द्वंद्व बन गया है। समाज के दैनंदिन जीवन से जुड़े समान लक्ष्यों में भागीदारी करने के लिए अभिजनों और साधारण जनता के एक मंच पर आने की परिस्थितियाँ नहीं रह गई हैं। सार्वजनिक बहसों में दोनों एक-दूसरे के खिलाफ बोलते रहते हैं। यही कारण है कि भारत में नागरिक समाज का एक बहुत महत्त्वपूर्ण आयाम कमजोर हो जाता है।

आपसी संवाद की जगह के रूप में सार्वजनिक दायरा खंडित पड़ा हुआ है क्योंकि समुदाय अभिजनों से कट कर संगठित राजनीति के हलके में आपसी होड़ में लगे हुए हैं। अब संदेश अबाध प्रवाह के रूप में नहीं जाते, बल्कि सामुदायिक सीमाओं को पार करते ही या तो उनमें बाध पड़ जाती है या फिर उनका मतलब बदल जाता है। जब से मंडल विरोधी आंदोलन के तहत मैरिट या दक्षता या योग्यता जैसे प्रश्नों पर खास तरह की सार्वजनिक बहस हुई है, तभी से यह प्रक्रिया देखी जा सकती है। जिन मुख्य अवधारणाओं पर बहस हो रही है, उनके तात्पर्य अलग-अलग सामुदयिक हितों के पर्याय बन गए हैं। उनके कारण संवाद आगे नहीं बढ़ता, बल्कि उनसे संवाद को नुकसान पहुँचता है। ऐसा ही रूझान तब दिखाई पड़ता है जब हिंदुत्व लोकतंत्र जैसी प्रमुख धारणाओं को भ्रम फैलाने के लिए अपने पक्ष में इस्तेमाल करने का प्रयास करता है। हालाँकि लोकतंत्र में बहुमत अस्थायी होता है, और उसके बनाने या बिगाड़ने के लिए लगातार प्रतियोगिता होती रहती है, पर इसके बावजूद हिंदुत्व उसे हिंदू बहुसंख्या के साथ जोड़ कर स्थायी रूप देने का कुप्रयास करता है। वह चाहता है कि हिंदुओं को एक धार्मिक किस्म के संप्रदायगत बहुमत के रूप में स्वीकार कर

लिया जाए। इसी तरह के बहुमत के नाम पर वह भीड़ की कार्रवाई को वैध ठहराता है। हिंदुत्व की ये हरकतें लोकतंत्र पर अवांछित तात्पर्य थोप देती हैं।[14]

उपरोक्त विश्लेषण की रोशनी में यह कहा जा सकता है कि भारत में अभिजनों और जनसाधारण के बीच हुआ संबंध-भंग तात्पर्यों और संवाद के भी परे चला गया है। अभिजनों की प्राथमिकता केवल यह रह गई है कि संकीर्ण स्वहितों पर आधारित उनकी आर्थिक बहबूदी किस तरह ज्यादा से ज्यादा हो सकती है। भूमंडलीकरण के जमाने में उन्होंने ऐसे हालात पैदा कर दिए हैं कि राज्य को उसके लोकोपकारी दायित्व छोड़ने पड़ रहे हैं जिससे जनता अपनी लड़ाई में अकेली पड़ती जा रही है। चौतरफा गरीबी से पीड़ित समाज मे लोगों की रोजमर्रा की जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रहीं हैं, न ही नागरिक संस्थाएँ उनकी मदद करने के लिए है। ऐसे हालत में उन्हें परोपकारी संस्थाएँ भी नहीं दिख रही हैं। इस परिस्थिति में उन्हें अपने बिरादराना समूहों का सहारा लेने पर मजबूर होना पड़ रहा है। अब केवल समुदायों की सुरक्षित दुनिया की वह जगह रह गई है जहाँ लोग अपने जीवन की फिर से सार-सँभाल कर सकते हैं। दिक्कत यह है कि भारत में समुदाय अक्सर व्यक्तियों के जीवन में बड़ी अंतविरोधी भूमिका अदा करते हैं। गौरतलब है कि समता के लिए और उसके परिणामस्वरूप मान्यता के लिए किया जाने वाला संघर्ष व्यक्तियों की सक्रियता पर मुक्तिकारी असर डालता है। वे बलपूर्वक अपनी बात कहते हैं और चाहते हैं कि उनका भी मूल्य समझा जाए। एक ऐसे समाज में इस तरह की दावेदारी का महत्व कम करके नहीं आँका जा सकता जहाँ पूरे के पूरे तबके यथास्थिति के खामोश अनुमोदन तक ही सीमित करके रख दिए गए हों। लेकिन, दूसरी तरफ जो समस्याएँ अर्थात रोजमर्रा की जो जरूरतें लोगों द्वारा खुद निबटाई जानी चाहिए, उनके लिए भी समुदायों पर निर्भरता की मजबुरी निजी स्वतंत्रता और आरंभ सम्मान के आयामों पर हानिकारक प्रभाव डाल सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. जावीद आलम, लोकतंत्र के तलबगार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 138-146
2. उपरोक्त
3. राजेन्द्र वोरा एंड सुहास पल्सिकर, इंडियन डेमोक्रेसी : मिनिंग एंड प्रैक्टिस, सेज, न्यू दिल्ली, 2004, पृष्ठ 153
4. उपरोक्त
5. जावीद आलम, लोकतंत्र के तलबगार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 140
6. गुरप्रीत महाजन, "सिविल सोसइटी एंड इट्स अवतार्स", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिक वीकली, वॉल्यूम XXXIV (20) 15-21 मई, 1999, पृष्ठ 1186-1196
7. सतीश सर्ववाल, "डिमोक्रेसी एंड सिविल सोसाइटी इन इंडिया : इंटीग्रल और ऐक्सीडेंटल", सोसियोलॉजिकल बुलेटिन, वॉल्यूम 50, नं. 2, 2003
8. जावीद आलम, लोकतंत्र के तलबगार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 142
9. सुदीप्त कविराज एंड सुनील खिलनानी, सिविल सोसाइटी : हिस्ट्री एंड पॉसिबिलिटिज, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2001, पृष्ठ 33
10. उपरोक्त, पृष्ठ 34
11. उपरोक्त, पृष्ठ 36
12. अमिर अली, "द इवोल्यूशन ऑफ पब्लिक स्फेयर इन इंडिया", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 30 जून, 2001
13. गुरप्रीत महाजन, "सिविल सोसइटी एंड इट्स अवतार्स", पूर्वोक्त
14. जावीद आलम, लोकतंत्र के तलबगार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 144

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्तावाद संस्कृति का किशोरों पर पड़ता प्रभाव

पुजा कुमारी

शोध छात्रा (सामाजिक विज्ञान), ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा (बिहार)

सारांश

मोटे तौर पर अर्थव्यवस्थाओं और समाजों के वैश्विक एकीकरण के रूप में परिभाषित वैश्वीकरण ने न केवल राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित किया है अपितु इसका लोगों के सांस्कृतिक जीवन पर भी काफी प्रभाव पड़ा हैं।

युवा पीढ़ी, खास तौर से मासूम बच्चे इससे सबसे ज्यादा संक्रमित हैं। आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों रूप से युवाओं का वैश्वीकरण की दुनिया के साथ एक अस्पष्ट संबंध है। नई सूचना प्रौद्योगिकियों से परिचित ये सबसे अच्छी शिक्षित पीढ़ी है जो काम, अध्ययन, विनिमय परियोजनाओं और छुट्टी के लिए दुनिया भर में यात्राएं करती है, और टेलीफोन और इंटरनेट द्वारा देश-विदेशों में दोस्तों और रिश्तेदारों के निरंतर संपर्क में होती है।

लेकिन यह पीढ़ी अत्यधिक उपभोगवादी है और उसके जीवन का हर पहलू चमक दमक, और से दिखावे से सम्मोहित है। युवा लोगों को सूचना सामग्री के संदेशों का एक अंतहीन प्रवाह प्राप्त हो रहा है जो क्रय व्यवहार और उपभोग को प्रोत्साहित करता है जिससे आत्म-छवि प्रभावित होती है। उच्च-मध्यम वर्ग में 4 से 12 वर्ष की आयु के बच्चों को उनकी खर्च क्षमता द्वारा परिभाषित और देखा जाने लगा है। लड़कियों को विशेष रूप से बाजारियों द्वारा लक्षित किया जाता है ताकि वे उन्हें उन उत्पादों की एक पूरी श्रृंखला बेच सकें जो उन्हें आदर्श और व्यक्ति विशेष के रूप में स्थापित करते हैं। अब तो पूरी तरह सिद्ध हो चुका है कि उपभोक्तावाद के गंभीर शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक अभावों से पीड़ित बच्चों का बचपन नष्ट हो रहा है।

परिचय

वैश्वीकरण, प्रतिस्पर्धी दुनिया का एक महत्वपूर्ण कारक है जो वैश्विक स्तर पर लोगों के आर्थिक, सांस्कृतिक मूल्यों को तेजी से एकीकृत करता है। तकनीकी प्रगति के युग में वैश्वीकरण का सांस्कृतिक, सामाजिक, मौद्रिक, राजनीतिक और देशों के सांप्रदायिक जीवन पर व्यापक प्रभाव है। लगातार हो रहे शोध और अध्ययनों से पता चला है कि वैश्वीकरण, आबादी के सांस्कृतिक जीवन में हस्तक्षेप करता है जो कई महत्वपूर्ण मुद्दों को जन्म देता है। व्यापक अर्थ में, 'वैश्वीकरण' शब्द का अर्थ है सूचनाओं, विचारों, प्रौद्योगिकियों, वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, वित्त और लोगों के क्रॉस कंट्री प्रवाह के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं और समाजों का संयोजन।

वैश्वीकरण ने युवाओं पर भी कई प्रभाव डाले हैं। मीडिया माध्यमों में वृद्धि से वैश्विक उपभोक्तावाद फैला है। टेलीविजन, संगीत वीडियो और फिल्मों के माध्यम से, अमेरिकी और यूरोपीय-निर्मित सामग्री दुनिया भर में मनोरंजन पर हावी हो रही है। युवा अपने स्थानीय संस्कृतियों और अनुभवों के संदर्भ में वैश्विक उत्पादों को अपनाने और व्याख्या करने की प्रवृत्ति रखते हैं, जिससे नए संकर सांस्कृतिक रूप बनते हैं; जिनके अर्थ स्थानीय और राष्ट्रीय परिस्थितियों से भिन्न होते हैं। विकासशील देशों के कई युवा, साथ ही साथ औद्योगिक दुनिया में हाशिए पर छूटे युवा, भौतिक विकास की अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ हैं। इससे अलगाव और हताशा उत्पन्न हो सकती है जिसकी निष्पति अपराध और सामाजिक संघर्ष में बदलने की पूरी संभावना है।

बाजार और उपभोक्ता के रूप में बच्चे

उपभोक्ता व्यवहार इस बात का अध्ययन है कि लोग कैसे खरीदते हैं, क्या खरीदते हैं, कब खरीदते हैं और क्यों खरीदते हैं।

विपणक बच्चों को भविष्य के साथ-साथ वर्तमान बाजार के रूप में देखते हैं और इसलिए कम उम्र में ब्रांड की निष्ठा बाद में निरंतर बिक्री में मदद करती है।

हमारी जीवन-शैली धीरे-धीरे बदल रही है। इसमें उपभोक्तावाद बढ़ता जा रहा है। अधिकाधिक मात्रा में उत्पादन बढ़ रहा है। जन-समुदाय गैरजरुरी उत्पादों को भोजन समझकर भोगते हुए स्वयं ही उत्पादों की भेंट चढ़ता जा रहा है।

बाजार में विलासिता की सामग्री की बहुलता है। ग्राहकों को लुभाने के लिए विज्ञापन जी-जान एक कर रहे हैं। चाहे खाद्य सामग्री हो, चाहे दैनिक उपयोग की वस्तुएँ हों या प्रसाधन-सामग्री; विज्ञापन उनकी विशेषताएँ बताकर मानव समुदाय को तरह-तरह से आकर्षित कर रहे हैं। विज्ञापन फिल्मी सितारों एवं ऋषि-मुनियों का भी हवाला देने से नहीं चूकते। सौंदर्य-प्रसाधनों की तो होड़ लग गई है। संभ्रांत परिवारों की महिलाएँ अपनी ड्रेसिंग टेबल पर बीस-तीस हजार रुपये की सौंदर्य-सामग्री रखे ही रहती हैं। अब पुरुष भी पीछे नहीं हैं, वे भी कीमती साबुन, तेल, ऑफ्टर-शेव और कोलोन लगाने लगे हैं। जगह-जगह फेशनेबल एवं नए-नए डिशाइन के वस्त्रों के लिए बड़े-बड़े वस्त्रालय एवं बुटीक खुल गए हैं।

आजकल लोग आवश्यकता के लिए नहीं बल्कि दिखावे के लिए वस्तुएँ अधिक खरीदते हैं। म्यूजिक सिस्टम, कंप्यूटर, मोटरसाइकिल तथा कार आदि शौक तथा दिखावे की चीजों हो गई हैं। इसके साथ ही अधिक धनी लोग तो बच्चों की पढ़ाई के लिए पंचसितारा विद्यालय, खुद के इलाज के लिए पंचसितारा हॉस्पिटल, खाना खाने के लिए पंचसितारा होटल में ही जाते हैं, क्योंकि यह उनके स्तर के अनुरूप होता है। अमरीका में तो लोग मरने के बाद बनने वाली समाधि को सजाने के लिए भी पैसा खर्च करने लगे हैं। माता-पिता और परिवार के रहन सहन प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ा है।

एक समय था जब हमारे युवाओं के आदर्श, सिद्धांत, विचार, चिंतन और व्यवहार सब कुछ भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए होते थे। वे स्वयं ही अपने संस्कृति के संरक्षक थे, परंतु आज उपभोक्तावादी पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध से भ्रमित युवा वर्ग को भारतीय संस्कृति के अनुगमन में पिछड़ेपन का एहसास होने लगा है। जिस युवा पीढ़ी के उपर देश के भविष्य की जिम्मेदारी है, जिसकी उर्जा से रचनात्मक कार्य सृजन होना चाहिए, उसकी पसंद में नकारात्मक दृष्टिकोण हावी हो चुका है। संगीत हो या सौंदर्य, प्रेरणास्त्रोत की बात हो या राजनीति का क्षेत्र या फिर स्टेटस सिंबल की पहचान सभी क्षेत्रों में युवाओं की उपभोक्तावादी संस्कृति में ढली नकारात्मक सोच स्पष्ट परिलछित होने लगी है। आज महानगरों की सड़कों पर तेज दौड़ती कारों का सर्वेक्षण करे तो पता लगेगा कि हर दूसरी कार में तेज धुनों पर जो संगीत बज रहा है वो पॉप संगीत है। युवा वर्ग के लिए ऐसी धुन बजाना दुनिया के साथ चलने की निशानी बन गया है। युवा वर्ग के अनुसार जिंदगी में तेजी लानी हो या कुछ ठीक करना हो तो गो इन स्पीड एवं पॉप संगीत सुनना तेजी लाने में सहायक है।

हमें सांस्कृतिक विरासत में मिले शास्त्रीय संगीत व लोक संगीत के स्थान पर युवा पीढ़ी ने पॉप संगीत को स्थापित करने का फैसला कर लिया है।

आज विदेशी संगीत चौनल युवाओं की पहली पसंद बनी हुई है। इन संगीत चौनलों के ज्यादा श्रोता 15 से 34 वर्ष के युवा वर्ग हैं। आज युवा वर्ग इन चौनलों को देखकर अपने आप को मॉडर्न और ऊँचे ख्यालों वाला समझ कर इठला रहा है।

आज युवाओं के लिए सौंदर्य का मापदण्ड ही बदल गया है। विश्व में आज सौंदर्य प्रतियोगिता कराई जा रही है, जिससे सौंदर्य अब व्यवसाय बन गया है। आज लड़कियाँ सुन्दर दिख कर लाभ कमाने की अपेक्षा लिए ऐन-केन प्रकरण कर रही है।

उपभोक्ताओं की बढती संख्या

उपभोक्तावाद फैलता है, पृथ्वी पीड़ित होती है। अमेरिकियों और यूरोपीय लोगों ने कुछ सालों से लगातार अधिक खपत पर लगाम लगाई है। लेकिन अब वर्ल्डवाइड इंस्टीट्यूट ऑफ द वर्ल्ड की रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देश पर्यावरण की उपेक्षा कर, स्वास्थ्य और सुविधाओं को बढ़ाने से होनेवाली खुशियों में तेजी से पकड़ बना रहे हैं। दुनिया भर में लगभग 1.7 बिलियन लोग अब ष्उपभोक्ता वर्गष से संबंधित हैं- उच्च प्रसंस्कृत भोजन, बड़े घरों की इच्छा, अधिक और बड़ी कारों, ऋण के उच्च स्तर और गैरजरुरी वस्तुओं के संचय के लिए समर्पित जीवनशैली वाले लोगों का समूह।

आज लगभग आधे वैश्विक उपभाक्ता विकासशील देशों में निवास करते हैं। जिनमें बाजार विस्तार की सबसे अधिक संभावना वाले चीन में 240 मिलियन और भारत में 120 मिलियन लोग शामिल हैं । वर्ल्डवॉच इंस्टीट्यूट के अध्यक्ष क्रिस्टोफर फ्लाविन ने प्रेस को दिए एक बयान में कहा है, 'बढ़ती खपत ने बुनियादी जरूरतों को पूरा करने और रोजगार सृजन में मदद की है। लेकिन जैसा कि हम एक नई सदी में प्रवेश करते हैं, यह अभूतपूर्व उपभोक्ता-भूख प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर रही है और यह दुनिया के गरीबों के लिए उनकी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में भी बाधा पैदा कर रही है।' रिपोर्ट में पृथ्वी के पानी की आपूर्ति, प्राकृतिक संसाधनों और विनाशकारी कैमरों के ढेरों, प्लास्टिक कचरा बैग, और अन्य सस्ते में उत्पाद-अप्रचलन में निर्मित सामान, और सस्ते में निर्मित सामानों के साथ निर्मित किए गए सस्ते सामानों की वजह से विनाशकारी टोल को संबोधित किया गया है।

'यूज एंड थ्रो' मानसिकता

वैश्वीकरण विकासशील देशों में पहुंच से बाहर माल और सेवाओं को पहले से अधिक उपलब्ध बनाने में एक ड्राइविंग कारक है। एक समय में जिन वस्तुओं को विलासिता माना जाता था- टीवी, सेल फोन, कंप्यूटर, एयर कंडीशनिंग-अब आवश्यकता के रूप में देखे जाते हैं।

संयुक्त राज्य में, लाइसेंस प्राप्त ड्राइवरों की तुलना में सड़क पर अधिक कारें हैं। ऑटोमोबाइल पर बढ़ती निर्भरता का अर्थ है अधिक प्रदूषण, अधिक यातायात, जीवाश्म ईंधन का अधिक उपयोग। कारों और अन्य प्रकार के परिवहन में लगभग 30 प्रतिशत विश्व ऊर्जा उपयोग और 95 प्रतिशत वैश्विक तेल की खपत है। मांस पर बढ़ते जोर के साथ आहार में परिवर्तन, पर्यावरण और सामाजिक लाभ को दिखाता है जो बेलगाम खपत से दूर है। मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त गोमांस, चिकन और सूअर का मांस प्रदान करने के लिए, पशुधन उद्योग कारखाने की खेती में स्थानांतरित हो गया है। गोमांस के आठ औंस का उत्पादन करने के लिए 6,600 गैलन (25,000 लीटर) पानी की आवश्यकता होती है; दुनिया की 95 प्रतिशत सोयाबीन की फसल खेत जानवरों द्वारा खायी जाती है, और दुनिया की 16 प्रतिशत मीथेन, एक विनाशकारी ग्रीनहाउस गैस, पेटिंग, पेट फूलने वाले पशुओं द्वारा उत्पादित की जाती है।

ज्यादा उपभोग कम खुशी

कई अध्ययनों के अनुसार समृद्धि में वृद्धि मनुष्यों को खुश या स्वस्थ नहीं कर रही है। 65 से अधिक देशों में जीवन की संतुष्टि के सर्वेक्षण से पता चलता है कि आय और खुशी में वृद्धि मामूली है। बढ़ा हुआ उपभोक्तावाद स्पष्ट रूप से एक स्थिर मूल्य पर आता है। लोग उच्च-उपभोग वाली जीवनशैली के लिए कर्ज चुका रहे हैं और लंबे समय तक काम कर रहे हैं, फलस्वरूप परिवार, दोस्तों और सामुदायिक संगठनों के साथ कम समय बिता रहे हैं।

निष्कर्ष

बच्चों के उत्पादों और भोजन का बाजार बहुत बड़ा है। एक ओर माता-पिता के पास बच्चों साथ बिताने को क्वालिटी टाइम नहीं है, दूसरी तरफ मीडिया के सानिध्य में अधिकांश समय रहने से बच्चे व्यावसायिक विज्ञापनों से प्रभावित हो रहे हैं । यहां तक कि औद्योगिक समाजों में, जहां सरकारें और प्रचारक बेहतर बाल विज्ञापन मानकों और नियमों या बेहतर खाद्य गुणवत्ता के लिए लड़ते हैं, उद्योग आत्म-नियमन (जो शायद ही कभी होता है, या जानबूझकर कमजोर होता है) को प्राथमिकता देते हुए लड़ता है, और यह तर्क देता है कि यह व्यक्तिगत विकल्प और माता-पिता का मुद्दा है।

आज युवाओं के आतंरिक मूल्य और सिद्धांत बदल रहे हैं। उनका उददेश्य मात्र पैसा कमाना बन गया है। उनकी नजर में सफलता की एक ही मात्र परिभाषा है और वो है दौलत और शोहरत । चाहे वो किसी भी क्षेत्र में हो । इसके लिए वो कुछ भी करने को तैयार हैं।

संपन्नता दिखाकर हावी हो जाने का ये प्रचलन युवाओं को सबसे अलग एवं श्रेष्ठ दिखाने की चाहत के प्रतीक लगते हैं।

आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों, मल्टीप्लेक्सों, विशालकाय मॉलों, स्पॉसेंटर के जरिए बाजार जिस ठाठ-बाट से भारत में आ रहा है वह उसके आकाओं की वर्षों पहले सोची-समझी साजिश का परिणाम है तब उन्हें बाजार के इस स्वरूप का भले ही पता न हो पर उनके सामने अपना स्वार्थ स्पष्ट था। आज वे ही छद्म भूमंडलीकरण, उदारवाद व कथित लोक कल्याणकारी योजनाओं के जरिए देश को बाजार और नागरिक को ग्राहक बना रहे हैं।

बाजारवाद में बाकायदा एक शिक्षा दिया जा रहा है - ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निशाने पर छोटे बच्चे हैं, एक टूथपेस्ट कंपनी के सीईओ के अनुसार अगर आपके प्रोडक्ट का स्वाद बच्चे को अच्छा लग गया तो वह अगले 25 वर्षों तक आपका ग्राहक बन जाएगा।

सन्दर्भ

- Anup Shah, Children as Consumers, *Global Issues*, Updated: November 21, 2010
- Ryan, Michael T. (2007) "consumption" in George Ritzer (ed.) The Blackwell Encyclopedia of Sociology, Blackwell Publishing, 2007, 701–705
- Robinson, Gail (2019). "Media and The Society". Mass Commnunication and Journalism (reprint ed.). Waltham Abbey, Essex: Scientific e-Resources (published 2020). p. 111. ISBN 9781839472060. Retrieved 14 June 2020.
- Barber, Benjamin R. (Spring 2008). *"Shrunken Sovereign: Consumerism, Globalization, and American Emptiness"*. World Affairs. Retrieved 23 April 2013.

औपनिवेशिक भारत में शहरी हस्तशिल्पों और ग्रामोद्योगों का ह्रास

डॉ० रजनीश कुमार

एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास), बी.आर.ए.बी.यू, मुजफ्फरपुर

उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक भारत अपने हस्तशिल्पों के लिए सारे विश्व में प्रसिद्ध था। वे न सिर्फ निर्यात की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था के शक्तिशाली स्तंभ भी थे। उनमें कपड़े, धतु की बनी वस्तुएँ, मिट्टी के कलात्मक बर्तन, हथियार, गलीचे और कालीन, लकड़ी के सामान, आदि शामिल थे। वे अनेक लोगों को रोजगार के अवसर और आय के स्रोत प्रदान करने के साथ ही कलात्मक कौशल के विकास में सहायता देते थे। वे उत्कृष्टता की इतनी ऊँचाई पर पहुँच गये थे कि विदेशी बाजारों में उनका बोलबाला हो गया था। भारत आने वाले विदेशी पर्यटक और देशी अभिजात वर्ग उन पर लट्टू थे। वे हस्तशिल्प मुख्यतया निर्यात एवं अभिजात वर्ग और अन्य नगरवासियों तथा फौज की जरुरतों को पूरा करते थे।

ग्रामीण क्षेत्रों में जो गृह उद्योग थे वे प्रधानतया स्थानीय जनता की जरुरतों को पूरा करते थे। उनमें बनी वस्तुएँ सस्ती थीं, भले ही उनमें उच्च कलात्मकता और गुणवत्ता न हो। वे उद्योग स्थानीय तौर पर उपलब्ध कच्चे मालों और कौशल पर आधारित थे तथा उनके उत्पाद स्थानीय बाजार के लिए ही होते थे। उनमें लगे दस्तकार पूर्ण-या अंशकालिक श्रमिक होते थे और वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए सर्वथा अपरिहार्य थे। कृषि और ग्रामोद्योगो में परस्पर एकात्मकता थी। दस्तकारों को कृषि से खाद्य पदार्थ और कच्चे माल मिलते थे जबकि वे खेती के औजार बनाने और उनकी मरम्मत करने के साथ ही आभूषण, मिट्टी के बर्तन, कपड़े, फर्नीचर आदि की आपूर्ति करते थे। ग्रामीण क्षेत्रों के अंदर विनिमय की प्रक्रिया में मुद्रा का प्रयोग नाममात्र ही होता था। वहाँ वस्तु-विनिमय व्यवस्था का ही बोलबाला था। कहना न होगा कि गाँवों में काफी हद तक स्वावलंबन था।

औद्योगिक कार्यकलापों में सबसे महत्वपूर्ण था, सूती और ऊनी, दोनों प्रकार के कपड़ों का उत्पादन। सूती कपड़ों का उत्पादन सारे देश में होता था। उनका उत्पादन दैनिक उपयोग के अलावा देश से बाहर निर्यात तथा देश के धनी अभिजात लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होता था। ढाका का विश्वविख्यात मलमत उत्कृष्टता का प्रतीक था। सूती कपड़ों के बाद रेशमी वस्त्रों का स्थान आता था जिनके लिए विदेशी बाजारों में एक सनक सवार थी। कश्मीर, पंजाब और अन्य पड़ोसी इलाकों की ऊनी वस्तुओं की भारी माँग थी। कश्मीरी शल की ख्याति सारे यूरोप में थी और उसकी कारीगरी की तारीफ करते हुए पारखी नहीं थकते थे। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियों के अंग्रेजी और फ्रांसीसी उपन्यासों में धनाढ्य महिलाओं को कश्मीरी शाल ओढ़े हुए चित्रित किया गया।

कार्ल मार्क्स ने 1853 में न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून के लिए लिखे अपने एक महत्वपूर्ण लेख में कहा था:

नियमित रूप से असंख्य कातने वालों और बुनकरों को पैदा करने वाला करघा और चरखा ही उस समाज के ढों की धुरी थे। अनादि काल से यूरोप भारतीय कारीगरों के हाथ के बनाए हुए बढ़िया कपड़ों को मंगाता था और उनके बदले अपनी मूल्यवान धतुओं को भेजता था और इस प्रकार वहां के सोनार के लिए वह कच्चा माल जुटा देता था। सोनार भारतीय समाज का एक आवश्यक अंग है।[1]

वाराणसी, मिर्जापुर, मुरादाबाद, नासिक, पुणे, हैदराबाद, विशाखापत्तनम, तंजावुर, स्यालकोट, लाहौर, आदि धतु से बनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिए मशहूर थे। उनके उत्पादों की मांग न सिर्फ सारे भारत में बल्कि विदेशों में भी थी। वे दैनिक इस्तेमाल

के बर्तनों तथा सजावटी सामानों के अतिरिक्त तलवारों, भाले-बरछियों का भी उत्पादन करते थे। ये हथियार साधारण तथा अलंकृत, दोनों तरह के होते थे। मीनाकारी वाले आभूषणों, पत्थर पर नक्काशी और अस्त्र-शस्त्र के लिए राजस्थान सुविख्यात था।

इन सब हस्तशिल्पों का पतन अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही शुरु हो गया। मुगल शासन धराशाई हो गया और क्षेत्रीय शासकों की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक सत्ता को गहरा धक्का लगा। भारतीय शासकों और उनके दरबार के लुप्त हो जाने से कलात्मक वस्तुओं की लगभग पूरी तथा अन्य शहरी हस्तशिल्पों की चीजों की बहुत कुछ मांग समाप्त हो गई। हस्तशिल्पियों ने अपने संरक्षक खो दिये जो उन्हे अपने कौशल को बेहतर बनाने और नये पैटर्न तथा डिजाइन अपनाने के लिए भौतिक सहायता और प्रोत्साहन देते रहते थे। कभी-कभी ये संरक्षक प्रदर्शनियों और प्रतियोगिताओं का आयोजन करते थे जिससे शिल्पकारों को अपने कौशल और उत्पादों को उन्नत करने में बढ़ावा मिले।

ज्यों-ज्यों ब्रिटिश शासन का विस्तार हुआ त्यों-त्यों अधिकतर देशी शासक अपने दरबार सहित लुप्त होते चले गये। फलत: शिल्पकारों के संरक्षण, प्रोत्साहन और मांग का मुख्य स्रोत तेजी से समाप्त हो गया। यद्यपि समाज के पुराने अभिजात वर्ग के अवशेष काफी समय तक बने रहे और पांच सौ से कुछ अधिक देशी रियासतें किसी न किसी प्रकार 1947 तक बनी रहीं, फिर भी शिल्पकारों का दुर्दिन समाप्त नहीं हुआ। बच रहे देशी शासकों के पास अपनी पुरानी आदतों और जीवन-स्तर को बरकरार रखने के लिए या तो पर्याप्त संसाधन नहीं थे या उन्होंने यूरोपीय लोगों की जीवनशैलियों की नकल करने की कोशिश की। यह सही है कि कुछ बड़े देशी शासकों ने दस्तकारों को अपना संरक्षण और समर्थन देना जारी रखा परंतु छोटे पैमाने पर।[2] कहना न होगा कि इन सब परिवर्तनों का तात्कालिक प्रभाव मुख्य रूप से विलास की वस्तुएँ और कलात्मक उत्पाद तैयार करने वालों ने ही झेला। दैनिक उपयोग की वस्तुओं की मांग वर्षों तक अप्रभावित रही।

पुराने शासकों, अभिजात वर्गीय परिवारों तथा उनके दरबारियों की नई पीढ़ियाँ बीते दिनों की शानशौकत से सर्वथा अनभिज्ञ थीं। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने नये ब्रिटिश शासकों की जीवनशैली अपनाने और उनके समाज के साथ अभिन्न हो जाने की कोशिश की। स्पष्ट है कि यदि उनके पास साधन होते तो भी वे हस्तशिल्प की वस्तुएँ नहीं खरीदते क्योंकि उनका उस और कोई झुकाव नहीं था। पुराने दरबारियो और सामंतों का स्थान लेने वाले यूरोपीय अफ़सरों और अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयो के नवोदित समूह की रूचियाँ और माँग के स्वरूप भिन्न थे। वे अपनी आय यूरोपीय वस्तुओं पर खर्च करते थे और उन्हें भारतीय उत्पाद कतई नहीं भाते थे। प्रो. डी.आर. गाडगिल ने लिखा है: 'किसी भी विदेशी शासन का एक अत्यंत हानिकारक प्रभाव विजित जनगण पर विजेताओं के आदर्शों को थोपना होता है; और नवसृजित भारतीय 'बुर्जुआजी' ने पिछली सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय मानकों को स्वीकारने और हर भारतीय चीज को हिकारत की नजर से देखने में अपनी तत्परता दिखलाई। यह बात कलाओं के संबंध में विशेष रूप से लागू थी। यूरोपीय फैशनों को अपनाना प्रबोध का प्रमाण चिह्न माना गया। फलत: देशी उद्योगों के उत्पादों को काफी हानि उठानी पड़ी।'[3]

ब्रिटिश शासन की स्थापना और विस्तार के साथ ही यूरोप से आने वाले पर्यटकों की संख्या काफी बढ़ गई। रेल मार्गों का विकास, बेहतर सड़कों का निर्माण और पर्यटकों की सुरक्षा-व्यवस्था इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थी। विदेशी पर्यटक भारतीय हस्तशिल्पों की और आकर्षित हुए और कुछ समय तक लगा कि पर्यटकों की माँग के कारण हस्तशिल्पों की तीव्र अवनति रूक जायेगी और उन्हें नया जीवन मिलेगा। दुर्भाग्यवश, पर्यटकासें के आगमन का हस्तशिल्पों पर विनाशकारी असर पड़ा। पर्यटक चाहते थे कि हस्तशिल्पी उनकी रूचियों, डिजाइनों और पैटर्नों के अनुसार उत्पादन करें। स्पष्टतया इसने हस्तशिल्पियों की सृजनात्मक प्रतिभाओं को कुंठित कर दिया। उनके उत्पादन निर्जीव और घटिया हो गये और उनका कलात्मक मूल्य अतीत की बात बन गया।[4]

भारतीय शासक परिवारो और उनके दरबारियों के लुप्त होने तथा हथियारों और गोले-बारूदों के साथ ही लड़ाई की प्रौद्योगिकी में आमूल परिवर्तन होने के कारण लोहार और युद्ध में काम आने वाले घोड़ों, हाथियों और ऊंटों के साज-सामान बनाने वाले बेरोजगार हो गए। जो लोहार 1850 के दशक तक हथियारों और ढालों की पच्चीकारी और जड़ाई के कामो में लगे थे वे बेकार हो गए। 1858 के बाद जब देश में काफी हद तक कानून और व्यवस्था फिर से कायम हो गई तब लोगों को घर पर अथवा यात्रा के दौरान अपनी सुरक्षा के लिए हथियार रखने की आवश्यकता नहीं रही। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार ने गैर-सरकारी लोगों द्वारा कतिपय किस्म

के हथियारों के रखने और उसे लेकर चलने पर पाबंदी लगा दी। जो लोग हथियार बनाने के धंधे में थे उन्होंने पर्यटकों और नवसंभ्रांत वर्ग के घरों में सजावट के लिए नुमाईशी वस्तुओं का निर्माण शुरू कर दिया।

जैसा कि हम कह चुके हैं, शहरों के हस्तशिल्पी उत्कृष्ट वस्तुएँ बनाते थे और वे उच्च कौशल संपन्न थे। वे हमेशा अपनी कलाओं और शिल्पों को उन्नत बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे और शायद ही कभी गुणवत्ता के मामले में कोई समझौता करते थे। यही कारण था कि उनके माल महंगे होते थे और उन्हें केवल धनवान ही खरीद पाते थे। वे शिल्पसंघों में संगठित थे जो गुणवत्ता पर सख्त नियंत्रण रखते और अपने सदस्यों को आवश्यकतानुसार पैसों, कच्चे मालों और विपणन-सुविधओं की सहायता देते थे। वे हमेशा चौकस रहते थे कि कोई अवांछित तत्व उनमें न घुसे। इन संघों के, श्रेष्ठी या नागर सेठ कहे जाने वाले मुखिया वंशानुगत होते थे। वे काफी धनवान होते थे। मुगल शासन के दौरान शाही महलों से जुड़े विविध प्रकार के कारखाने थे। बादशाह हस्तशिल्पियों को सहायता देने में कोई कसर नहीं उठा रखते थे। जिससे पे अपने कौशल को उन्नत बनाएँ। अकबर और जहांगीर ने अपने कारखानों से जुड़े हस्तशिल्पियों के प्रशिक्षण के लिए विदेशी विशेषज्ञों को भी आमंत्रित किया था।[5]

ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ही शिल्पसंघों की अवनति आरंभ हो गई और यूरोपीय सौदागर एवं उनके एजेंटों के शिल्पियों के साथ सीधे अनुबंध होने लगे और वे उन्हें पैसे, कच्चे माल तथा अन्य सुविधाएँ मुहैया कराने लगे। उन्होंने विपणन की सुविधाएँ प्रदान कीं। वे पैटर्न और डिजाइन भी निर्दिष्ट करने लगे। कहना न होगा कि उनकी दिलचस्पी केवल शीघ्र उत्पादन बढ़ाकर अधिकाधिक बिक्री और मुनाफे प्राप्त करने में थी। परिणामत: उत्पादों की शिल्पकारिता और कलात्मक व्यावसायिक मूल्य में भारी गिरावट आई तथा वे देशी-विदेशी बाजारों में अपना दबदबा नहीं बनाए रख सके।

औद्योगिक क्रांति ने भारत के साथ ब्रिटेन के आर्थिक और वाणिज्यिक मुजफ्फरपुर के स्वरूप में आमूल परिवर्तन ला दिया। औद्योगिक क्रांति ने कारखाने की व्यवस्था को जन्म दिया, जो ऊर्जा के नये बेजान स्रोतों तथा श्रमिकों की विशाल संख्या की सहायता से श्रम-विभाजन के सिद्धांत के आधार पर काम करने लगी। उसके उत्पादन का पैमाना अभूतपूर्व रूप से बड़ा हो गया, जिसके कारण ब्रिटिश को अपनी विनिर्मित वस्तुओं के विपणन और अपने कारखानों तथा तेजी से बढ़ रही श्रमिक-संख्या के लिए क्रमश: कच्चे माल और खनिज पदार्थों; तथा खाद्यान्नो की आवश्यकता पड़ी जिसको पूरा करने के लिए उसे भारत की और देखना पड़ा। ब्रिटेन ने अपना घरेलू बाजार अपनी विनिर्मित वस्तुओं के लिए पूरी तरह आरक्षित कर लिया। इन परिवर्तनों का प्रभाव सबसे पहले सूती कपड़ों के सिलसिले में देखा गया। कहना न होगा कि औद्योगिक क्रांति की शुरुआत कपड़ा उद्योग से हुई और उसे 'अग्रणी क्षेत्रक' कहा गया।

ब्रिटिश विनिर्माताओं ने सरकार पर दबाव डालना शुरू किया कि वह ब्रिटेन में भारतीय वस्तुओं की बिक्री को प्रतिबंधित करे। इसके परिणामस्वरूप 1720 में ब्रिटिश बाजार में छपे और रंगे भारतीय सूत्री वस्त्र के उपयोग पर कानूनी रोक लग गई। 1760 में एक महिला को आयातित रूमाल रखने पर 200 पौंड का जुर्माना भरना पड़ा। सादे कपड़े के अयात पर भारी प्रशुल्क लगा दिये गये। हालैंड को छोड़ बाकी यूरोपीय देशों ने भी भारतीय वस्त्र के प्रवेश को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया या उस पर भारी प्रशुल्क लाद दिये। इसके बावजूद भारतीय रेशमी और सूती कपड़ों को यूरोपीय बाजारों से बाहर नहीं किया जा सका। ईस्ट इंडिया कंपनीने भारतीय वस्तुओं को खरीदना और विदेश में मुख्य रूप से मूल्यवान धतुओं के साथ उनका विनिमय जारी रखा। पलासी की लड़ाई (1757) और बंगाल, बिहार उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने (1865) के साथ ही ईस्ट इंडिया कंपनी वास्तविक शासन बन गई। उसने इन प्रांतों से प्राप्त राजस्व से निर्यात-व्यापार का वित्त पोषण आरंभ कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजनीतिक सत्ता का प्रयोग शिल्पियों पर अपने माल उसे सस्ती दरों पर, यहाँ तक कि घाटा सहकर भी, बेचने के लिए विवश करने हेतु शुरु कर दिया। शिल्पियों को एक प्रकार से बंधुआ मजदूर बना दिया गया और उन्हें कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें भारतीय सौदागरों के लिए काम करने से रोका गया। ईस्ट इंडिया कंपनी ने यह सुनिश्चित कर दिया कि उसके भारतीय और विदेशी प्रतिद्वंद्वी उसके साथ प्रतियोगिता करने की स्थिति में न रहें और शिल्पियों को उच्चतर मजदूरी और कीमतें न दे सकें। कंपनी के कर्मचारियों ने कच्चे मालों की बिक्री पर एकाधिकार कर लिया और वे शिल्पियों से ऊँची कीमतें ऐंठने लगे।

औद्योगिक क्रांति आरंभ होने के बाद ब्रिटिश बाजार में प्रवेश करने वाले भारतीय कपड़ों पर भारी प्रशुल्क लाद दिये गये। केलिको के ऊपर आयात-प्रशुल्क 1813 तक 3.33 प्रतिशत था और उसका उपयोग घरेलू उपभोग के लिए करने पर 68.33 प्रतिशत अतिरिक्त प्रभार देना पड़ता। मलमल पर 10 प्रतिशत आयात प्रशुल्क था, परंतु घरेलू उपभोग की स्थिति में 27.33 प्रतिशत अतिरिक्त प्रभार देना पड़ता था। रंगीन कपड़ों का आयात केवल पुनर्निर्यात के लिए ही 3.33 प्रतिशत प्रशुल्क देकर किया जा सकता था, परंतु ब्रिटेन में उनके किसी भी रूप में उपभोग पर प्रतिबंध था। 1813 में ब्रिटिश संसद ने घरेलू उपभोग के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले केलिको पर लगने वाले समेकित प्रशुल्प पर 20 प्रतिशत का नया प्रभार लाद दिया। दूसरे शब्दों में, ब्रिटेन में उपभोग में आने वाले केलिको पर 78 प्रतिशत से अधिक प्रशुल्क मूल्यानुसार लगाया गया। इसी प्रकार घरेलू उपभोग के मलमल पर अधिक प्रशुल्क देना पड़ता था।[6] ब्रिटिश सरकार का उद्दष्ट था: भारतीय वस्तुओं पर निषेधात्मक प्रशुल्क लगाकर घरेलू बाजार ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के लिए आरक्षित करना।

1813 में भारत के साथ व्यापार पर से ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार हटा दिया गया। फलस्वरूप भारत में ब्रिटिश वस्तुओं का प्रवेश बेरोकटोक होने लगा। इसके ठीक एक दशक बाद कंपनी के, भारत के बारे में बहुत ही जानकार और अनुभवी माने जाने वाले एक निदेशक हेनरी सेंट जॉर्ज टकर ने अपने एक ज्ञापन में लिखा:

वह कौन-सी वाणिज्यिक नीति है जो हमने भारत के संबंध में अपनाई है? रेशम की विनिर्मित वस्तुओं और रेशम तथा कपास के अंतर्मिश्रण से बने थानों को हमने अपने बाजारों से पूरी तरह बाहर रखा है; हाल में, अंशत: 67 प्रतिशत प्रशुल्क वसूली के कारण कुछ हद तक, मगर मुख्यतया श्रेष्ठतर मशीनरी के प्रभाव के परिणामस्वरूप सूती वस्त्र जो अब तक भारत के प्रधान माल रहे हैं, इस देश से न सिर्फ बाहर हो गये हैं बल्कि हम कपास से विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात द्वारा अपने एशियाई उपनिवेशकों के उपभोग को अंशत: पूरा भी कर रहे हैं। इस प्रकार भारत को विनिर्माण की अवस्था से हटा कर एक कृषि-प्रधान देश बना दिया गया।[7]

यहाँ पर रेखांकित किया जाना चाहिए कि 1813 तक भारतीय सूती और रेशमी वस्त्र ब्रिटिश बाजार में काफी मजबूत स्थिति में थे। वे ब्रिटेन में बनी समान वस्तुओं से 50-60 प्रतिशत कम कीमत पर बिकने पर भी मुनाफादायक थे। इस संदर्भ में इतिहासकार एच.एच. विल्सन ने लिखा है:

इसी कारण यह आवश्यक हो गया कि– (ब्रिटेन में बनी वस्तुओं) की संरक्षा के लिए उन पर 70 और 80 प्रतिशत मूल्यानुसार प्रशुल्क लगाये जायें या उनके प्रवेश पर पूरी तरह रोक लगे। यदि यह स्थिति नहीं होती और निषेधात्मक प्रशुल्कों और आज्ञप्तियों का अस्तित्व नहीं होता तो पैस्ले तथा मैनचेस्टर की मिलें आरंभ में ही बंद हो जातीं और शायद ही उन्हें फिर भाप की ताकत द्वारा चालू कर पाना संभव होता। उनका सृजन भारतीय विनिर्माण के बलिदान से हुआ। यदि भारत स्वतंत्र होता, तो वह मुँहतोड़ उत्तर देता। वह ब्रिटिश वस्तुओं पर निषेधात्मक प्रशुल्क लगाता और इस तरह अपने उत्पादक उद्योग को विनाश से बचा लेता। आत्मरक्षा का यह मार्ग उसके लिए नहीं खुला था; वह एक अजनबी की मर्जी पर निर्भर था। बिना कोई प्रशुल्क अदा किए ब्रिटिश वस्तुएँ उस पर थोप दी गईं, और विदेशी विनिर्माता ने राजनीतिक अन्याय के हथियार का इस्तेमाल एक ऐसे प्रतियोगी को दबाने और अंततोगत्वा, उसका गला घोंट देने के लिए किया जिसका मुकाबला वह बराबरी के आधार पर नहीं कर पाता।[8]

अपनी विपणन-समस्याओं के हल के लिए ब्रिटश उद्योगपतियों ने कानून द्वारा अपनी विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को बाधय किया। 1769 में कंपनी से कहा गया था कि वह हर वर्ष 3,80,000 पौंड मूल्य की ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं का, घाट सहकर भी निर्यात करे। 1793 में ईस्ट इंडिया कंपनी को मजबूर किया गया कि वह हर साल अपनी हजाजरानी की 3,000 टन क्षमता का उपयोग ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं को ले जाने के लिए करे। 1794 और 1813 के बीच पूर्व के देशों, अधिकतर भारत को ब्रिटिश सूती वस्त्रों का निर्यात लगभग 700 गुना बढ़ गया।[9]

जैसा कि हम कह चुके हैं, 1813 में भारत के साथ व्यापार पर से ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया जिससे ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुएँ भारत में बेरोज-टोक प्रवेश कर सकें। 1833 के बाद तो ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार से कोई वास्ता ही नहीं रहा और उसके बाद भारत-ब्रिटेन व्यापार निजी हाथों में आ गया जिनका ब्रिटिश विनिर्माताओं से घनिष्ठ संबंध था।

ब्रिटिश सूती वस्त्रों का भारत में आयात 1813 में 1,10,000 पौंड मूल्य का था जो 1856 में बढ़कर 63,000,000 पौंड पर पहुंच गया। यद्यपि ब्रिटिश लोक सैद्धांतिक तौर पर मुक्त व्यापार की बात करते थे, फिर भी जहाँ तक भारत का संबंध था उन्होंने व्यवहार में उसे केवल अपने निर्यात के सिलसिले में ही अपनाया। उन्होंने ब्रिटिश बाजार में प्रवेश करने वाले भारतीय उत्पादों पर भारी प्रशुल्क लगाये। 1824 में भारतीय केलिको, मलमल और चीनी पर मूल्यानुसार क्रमश: 67.5, 37.5 और 300 से 400 प्रतिशत प्रशुल्क देने पड़े।

1850 के दशक से रेल मार्गों का निर्माण हुआ और बेहतर सड़कें बनीं। 1869 में स्वेज नहर खुलने के बाद यूरोप और भारत के बीच की दूरी घटी और इससे, माल कोलाने ले जाने में लगने वाला समय कम हो गया। रेलवे द्वारा अपनाई गई माल भाड़ा नीति बंदरगाहों से आने और उन तक ले जाये जाने वाले माल के अनुकूल थी यानी उनसे रियायती दरों पर भाड़ा लिया जाने लगा। इन सब परिवर्तनों ने सारे देश में ब्रिटिश माल के शीघ्रता से वितरण में मदद दी। इसका परिणाम यहाँ तक हुआ कि जो ग्रामीण दस्तकार तब तक परिवहन और संचार की सुविधाओं के अभाव के कारण विदेशी माल की प्रतियोगिता से बचे हुए थे वे अपने को असुरक्षित महसूस करने लगे। गांव का अलगाव खत्म होने लगा। अंतत: इन अलग-थलग पड़े आत्मनिर्भर गाँवों के कवच को इस्पाती रेल ने छेदा ही नहीं बल्कि नष्ट भी कर दिया। ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुएँ बहुत सस्ती और बढ़िया थीं, इसलिए उनके प्रवेश से ग्रामीण दस्तकारों के उत्पादों की मांग में तेजी से गिरावट आई। नतीजा हुआ उनकी बेरोजगारी।[10]

रेलवे के उदय के कारण जल मार्गों का महत्व घट गया और नदी तटों पर बसे हस्तशिल्पों के कई केंद्र वाणिज्यिक दृष्टि से अपना महत्व खो बैठे। मिर्जापुर इसका एक प्रतिनिधि उदाहरण है। वह धतु की बनी वस्तुओं के लिए मशहूर था। नदी परिवहन की अवनति के साथ ही उसका बेड़ा गर्क हो गया। एल.एस.एस. ओ मैले ने काफी बाद 1913 में लिखा कि जिन शहरों की समृद्धि और अर्थव्यवस्था को काफी आघात लगा था वे रेलवे द्वारा व्यापार हथिया लिये जाने से हुए नुकसान को नहीं झेल पाए। 'व्यापार में इस प्रकार के दिशा-परिवर्तन के प्रभाव को पटना और रिविलगंज (सारण) के उदाहरण द्वारा सर्वोत्तम ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है। पटना को प्रकृति ने ही नदी तटवर्ती विक्रय-केंद्र के स्थल के रूप में बनाया है... शहर का व्यापार गंगा के उत्तर के जिलों में नई रेल लाइनों के चालू हो जाने के कारण अब घट गया है...'[11] इस प्रकार हम देखते हैं कि इन स्थानों का वाणिज्यिक महत्व घट गया और इनमें बसे शिल्पियों को अपने ग्राहकों से हाथ धेने पड़े और वे धीरे-धीरे रोजी-रोटी की खोज में शहर छोड़कर गांवों में चले गये।

ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद दिल्ली, मुर्शिदाबाद, पटना, ढाका, लखनऊ आदि शहर राजनीतिक दृष्टि से पहले जैसे महत्वपूर्ण नहीं रहे। इससे वहां के शिल्पियों के बुरे दिन आ गये। वहां से प्रशासनिक तंत्र के हट जाने के कारा वहां की जनसंख्या में भी तेजी से गिरावट आई और हस्तशिल्प की वस्तुओं के लिए ग्राहकों का अभाव हो गया। इसे स्पष्ट करने के लिए ढाका का उदाहरण ले सकते हैं। वहाँ की जनसंख्या 1818 में 1,50,000 थी जो मात्र 18 वर्षों में घट कर 1836 में 20,000 पर आ गई।

बर्बाद हुए हस्तशिल्पी दरिद्र हो गये और रोजगार के वैकल्पिक अवसर प्राप्त करने में किल रहे। अब उनके सामने कृषि पर निर्भर होने के सिवाय कोई अन्य चारा नहीं रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में दस्तकार पहले से ही अपने पूर्ण या अंशकालिक व्यवसाय से हाथ धे बैठे थे और कृषि क्षेत्रक में जीविकोपार्जन के स्रोत ढूँढ़ने के लिए विवश हो गये थे।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के दौरान भारतीय राष्ट्रवादियों ने देशी उद्योगों की अवनति के लिए ब्रिटिश सरकार को जिम्मेदार ठहराया। उनके अनुसार इस अवनति के परिणामस्वरूप ही वि-उद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जन्म लिया और भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी रहे हैं जिन्होंने ब्रिटिश शासन को इसके लिए जिम्मेदार नहीं माना है। उनके अनुसार 'इस बात की जोरदार संभावना है कि परंपरागत क्षेत्रक में, आमतौर पर, निरपेक्ष रूप से आर्थिक महत्व की दृष्टि से कोई गिरावट नहीं आई और इसलिए वह उन्नीसवीं सदी की अर्थव्यवस्था के निष्पादन में हतोत्साहक तत्व नहीं बनी। यह भी संभव है कि निरपेक्ष संवृद्धि हुई हो जिससे अर्थव्यवस्था में विस्तारकारी शक्तियों को अवलंब मिला हो। उनका यह भी दावा है ब्रिटिश सरकार के प्रयासों के परिणामस्वरूप उद्योगीकरण की पूर्वस्थितियाँ तैयार हुई।

सन्दर्भ सूची

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, ऑन ब्रिटेन मास्को, 1953, पृष्ठ 380
2. डी.आर. गाडगिल, दि इंडस्ट्रियल इवोलूशन ऑफ इंडिया इन रिसेंट टाइम्स, 1860-1939, दिल्ली, पृष्ठ 39
3. उपरोक्त, पृष्ठ 41
4. उपरोक्त
5. ए. ई. चिरोव, इंडिया : इकोनॉमिक डेवलपमेंट इन दि सिक्सटिंथ-एटिंथ सेंचुरीज, आउटलाइन हिस्ट्री ऑफ क्राफ्ट्स एंड ट्रेड, पृष्ठ 182-83 और 184
6. रोमेश दत्त, दि इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल, 1757-1837, नई दिल्ली, 1963, पृष्ठ 179
7. उपरोक्त, पृष्ठ 180
8. उपरोक्त, पृष्ठ 180-81
9. उपरोक्त, पृष्ठ 176
10. मौरिस डी. मौरिस का निबंध 'दि ग्रोथ ऑफ लार्ज-स्केल इंडस्ट्री टू 1947; धर्मा कुमार (सं.) पूर्वोक्त, पृष्ठ 673-74; डी. एच. बुकनान, दि डेवलपमेंट ऑफ कैपिटलिस्ट इंटरप्राइज इन इंडिया, न्यूयॉर्क, 1934, पृष्ठ 192
11. एल.एस.एस.ओ. मैल्ले, सेंसस ऑफ इंडिया, 1911, खंड, भाग-1, कलकत्ता, 1914, पृष्ठ 26-27

बिहार राज्य में कृषि समस्याएँ: एक भौगोलिक अध्ययन

राम कुमार सिंह

यूजीसी-नेट, शोध-छात्र, भूगोल विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

निबंध-सार

कृषि प्राथमिक क्रियाकलाप है जो सदियों से सभ्य समाज का प्रतीक रहा है। यह न केवल बिहार की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है बल्कि एक विशाल जनसंख्या की जीवन पद्धति भी है। प्राचीन काल से ही इसे सर्वोच्च पेशा समझा जाता रहा है क्योंकि कृषि से ही सभी मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति होती रही है। बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की मुख्य अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है। बिहार के विभिन्न भागों में कृषि में विविधता पाई जाती है। यहाँ कृषि को मुख्यत: गहन या जीवन निर्वाहन कृषि के रूप में रखा जाता है। इस कृषि में खाद्यान्नों का सबसे अधिक उत्पादन होता है।

मुख्य शब्द: प्राथमिक क्रियाकलाप, अर्थव्यवस्था, कृषि प्रधान, निर्वाहन कृषि।

उद्देश्य

बिहार में कृषि के क्षेत्र में प्राकृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जो समस्या है, उसके बारे में जानना।

विधितंत्र

किसी भी शोधकार्य को पूरा करने के लिए विधितंत्र की आवश्यकता होती है। विधितंत्र के द्वारा शोधकार्य को संयमित क्रमबद्ध, विश्लेषित और वैज्ञानिक स्वरूप दिया जा सकता है। इस शोधकार्य को पूरा करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है। इंटरनेट, विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की भी सहायता ली गई है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र बिहार राज्य है, जिसकी आकृति आयताकार है। बिहार राज्य का आक्षांशीय विस्तार 24°20'10" N से 27°31'15" N है तथा देशांतरीय विस्तार 83°19'50" N से 88°17'40" N के बीच है। इस राज्य के पूर्व में पश्चिम बंगाल, तथा पश्चिम में उत्तर प्रदेश राज्य स्थित है। उत्तर एवं दक्षिण में क्रमश: नेपाल देश एवं झारखंड है। बिहार राज्य के कुल क्षेत्रफल 94163 वर्ग किलोमीटर तथा यह सम्पूर्ण भारत के कुल क्षेत्रफल का 4.12% है।

बिहार राज्य की कुल जनसंख्या 10,099,452 है तथा जनसंख्या घनत्व 1106 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है, लिंगानुपात 918 महिला प्रति 1000 पुरुष पर है। यहाँ की कुल ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या क्रमबद्ध 88,71% एवं 11,29% है।

विश्लेषण

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है, जिसकी 80% कार्यकारी आबादी कृषि-कार्य में संलग्न हैं। कृषि ही राज्य के लोगों की जीविका का मुख्य आधार है। इस राज्य की लगभग 70% भूमि कृषि के अंतर्गत है। इनमें से 60% शुद्ध बोये गये क्षेत्र हैं। राज्य की इतनी बड़ी जनसंख्या इतने बड़े क्षेत्र में कृषि-कार्य करके खाद्यान्न के अतिरिक्त औद्योगिक कच्चा माल उत्पन्न करती है। वास्तव में कृषि

उनकी जीवन-पद्धति बन गयी है। बिहार में कृषि की महत्ता के अनेक कारण है। इसका अधिकांश मैदानी भाग कृषियोग्य हैं तथा सदियों से कृषि से संबंधित रहा है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और अधिक अनाज की आवश्यकता, के कारण बिहार में गहन निर्वाहक प्रकार की खेती की जाती है। अधिक उत्पादन के लिए, सिंचाई, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाएँ और अधिक उत्पादन देने वाले बीज के प्रयोग बड़े पैमाने पर हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि में नये-नये औजारों का प्रयोग हो रहा है। किन्तु, कृषि पर जनसंख्या का अधिक बोझ, प्रति व्यक्ति कृषि-भूमि की कमी, खेतों के छोटे आकार एवं बिखरा प्रारूप तथा अधिकांश किसानों की निर्धनता के कारण छोटे किसानों की दशा अच्छी नहीं है। यह दुर्भाग्य की बात है कि कृषि प्रधान राज्य होते हुए भी यह राज्य कृषि के मामले में पिछड़ा हुआ है। कृषि पर जनसंख्या के निरंतर बढ़ते हुए बोझ, अनुपस्थित भू-स्वामित्व, सिंचाई की कमी, छोटे और बिखरे खेत, अपर्याप्त रासायनिक खाद के प्रयोग, खेती के पुराने ढंग और उत्तम बीज की कमी के कारण यहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है और खेती पिछड़ी अवस्था में है। इसके अतिरिक्त बिहार की कृषि पर प्रतिवर्ष बाढ़ और सूखा का प्रकोप रहता है। जल-संसाधन के पर्याप्त होने के बावजूद उचित जल-प्रबंध के अभाव में बिहार के किसानों को बहुत हद तक पानी के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। मौनसूनी वर्षा की अनिश्चिता के कारण यहाँ की कृषि को "मौनसून के साथ जुआ" कहा गया है। कृषि-विपणन की दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण किसानों को फसल का उचित कीमत नहीं मिल पाती है। इन्हीं कारणों से बिहार के किसानों की दशा दयनीय है और वे अपने खेतों को छोड़कर दूसरे प्रांतों में आजीविका के लिए शरण लेने को बाध्य है।

बिहार के विभिन्न भागों में कृषि में विविधता पायी जाती है। इसका मुख्य कारण धरातल की प्रकृति, वर्षा की मात्र तथा कृषि की उर्वरता में प्रादेशिक भिन्नता है। बिहार, का मैदानी भाग उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी से निर्मित है। इसके निचले भागों में बाढ़ के कारण क्षति तो होती है, किन्तु मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। इस क्षेत्र में सतही जल तथा भूमिगत जल का विशाल भंडार है, जिसके आधार पर सिंचाई की सुविधाएँ भी हैं। इसके विपरीत, संकीर्ण पर्वतीय एवं पठारी भागों में उबड़-खाबड़ भूमि, कम उपजाऊ मिट्टी तथा सिंचाई की सुविधाओं के कम विकास के कारण कृषि का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। बिहार के मैदानी भागों में भी मिट्टी के प्रकार तथा वर्षा की मात्र में प्रादेशिक भिन्नता के कारण विभिन्न प्रकार की फसल पैदा की जाती है।

बिहार की कृषि गहन निर्वाहक प्रकार की है, जिसके अंतर्गत वर्ष में चार फसलें बोयी या काटी जाती है; यथा-

1. **भदई फसलें-** यह फसलें मई-जून में बोयी जाती है और अगस्त-सितम्बर में काट ली जाती हैं। धन, मक्का, ज्वार, बाजरा, जूट, ऊरद, सनई, मडुआ, इत्यादि इस मौसम की मुख्य फसलें हैं। ये फसलें वर्षा पर आधारित हैं और इन्हें कम सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। राज्य के अधिकांश भाग में ये फसलें उपजाई जाती हैं।
2. **अगहनी फसलें-** इनकी बोआई जुलाई-अगस्त में होती है और नवम्बर-दिसम्बर में ये तैयार हो जाती हैं। चावल, कुलथी, तिल, आलु, तेलहन, सब्जी, मकई, कपास, गन्ना, तम्बाकू, पटसन इत्यादि इसकी मुख्य फसलें हैं।
3. **रबी फसलें-** ये बंसत ऋतु की फसल हैं, जिनकी बोआई अक्टूबर-नवम्बर में होती हैं तथा ये फसलें मार्च-अप्रैल तक तैयार हो जाती हैं। इस फसलों के उत्पादन में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। इसलिए सिंचाई की सुविधा के विस्तार के साथ ही रबी की फसलों का भी विस्तार हुआ है। गेहूँ सर्वप्रमुख रबी फसल है। गेहूँ के अतिरिक्त जौ, चना, मटर, सरसों, मसूर, खेसारी, अरहर इत्यादि की फसलें भी बड़ी मात्र में उपजाई जाती हैं।
4. **गरमा फसलें-** ये ग्रीष्मकालीन फसलें हैं, जिनकी खेती उन क्षेत्रों में होती है जहाँ नियमित सिंचाई की व्यवस्था है। इसकी बोआई मार्च-अप्रैल में होती है और कटाई जून महीने में होती है। ग्रीष्मकालीन धन, मकई, मूँग, आम, केला, तरबुज, ककरी, सब्जियाँ एवं प्याज इस मौसम की मुख्य फसलें हैं।

यह उल्लेखनीय है कि बिहार के जिन क्षेत्रों में मिट्टी कम उपजाऊ है तथा सिंचाई की सुविधा की कमी है, वहाँ वर्ष में एक ही फसल पैदा की जाती है। अधिक उपजाऊ सिंचाई की सुविधासम्पन्न क्षेत्रों में एक से अधिक फसलें होती हैं।

बिहार की मुख्य फसलें

बिहार में फसलों की विविधता है। फसलों को उनकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित वर्गो में बाँटा जाता है-

1. **खाद्य फसलें-** धन, गेहूँ, मक्का, ज्वार-बाजरा, चना, जौ दलहन, तेलहन इत्यादि।

2. **व्यावसायिक या नगदी फसलें–** इनमें वे सभी फसलें आती हैं, जिन्हें बेचकर किसान नगद राशि प्राप्त करता है। इसके अंतर्गत गन्ना, पटसन, कपास, तम्बाकू, आलू, तेलहन तथा दलहन, लाल मिर्च, मसालें इत्यादि आते हैं।
3. **पेय फसलें–** इसके अंतर्गत चाय आती है, जिसकी खेती किशनगंज में की जाने लगी है।
4. **रेशदार फसलें–** कपास, जूट, रेशम आदि।
5. **फल–** आम, केला, लीची, अमरूद इत्यादि।
6. **मसाले–** लालमिर्च, लहसून, हल्दी, धनिया, मेथी इत्यादि।

कृषि की समस्याएँ

बिहार एक कृषि प्रधान प्रान्त है, किन्तु यहाँ के अधिकांश कृषक निर्धन है। इसका कारण यह है कि इस प्रदेश में कृषि की दशा अच्छी नहीं है और यह अनेक प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं संरचनात्मक समस्याओं से ग्रस्त है। बिहार की कृषि से संबंधित महत्वपूर्ण समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

1. **प्राकृतिक समस्याएँ–** इनके अंतर्गत प्राकृतिक आपदा, जल-जमाव क्षेत्र एवं परती तथा कृषि योग्य बंजर भूमि की स्थिति, मिट्टी-अपरदन तथा मिट्टी के अत्यधिक उपयोग से संबंधित समस्याएँ आती हैं।

   क. प्राकृतिक आपदा– बिहार की कृषि बाढ़ और सूखा की समस्या से हमेशा ग्रसित रहती है। उत्तर बिहार में कोसी, कमला-बलान, बूढ़ी गंडक, गंडक, घाघरा इत्यादि नदियों के किनारे लगभग प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में बाढ़ आ जाया करती है। इससे जान और माल के साथ-साथ फसलों को भी नुकसान होता है। इसी प्रकार बिहार का दक्षिणी-पश्चिमी भाग सूखाग्रस्त है। इस क्षेत्र में जहाँ सिंचाई का उचित प्रबंध नहीं है, वहाँ के किसान उचित उत्पादन नहीं कर पाते है। उचित जल-प्रबंध के द्वारा नहरों और नलकूपों का निर्माण करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

   ख. जल-जमाव– उत्तर और दक्षिणी बिहार के मैदानी भागों में क्रमश: चौर और टाल के रूप में बड़े-बड़े गहरे क्षेत्र स्थित हैं, जिनमें निकास का प्रबंध नहीं है। परिणामस्वरूप वर्षा ऋतु में तीन-चार महीने में जलमग्न रहते हैं और इनमें भदई और अगहनी फसलें नहीं होती है। इनमें वर्ष में केवल एक रबी फसल होती है। उत्तरी बिहार के वैशाली, सारण इत्यादि जिलों में जल-जमाव और वाष्पीकरण के कारण भूमि पर नमकीन पदार्थ जमा हो जाते हैं और मिट्टी की उर्वराशक्ति कम हो जाती है। जल-जमाव की समस्या का समाधान जल-निकास का प्रबंध करके किया जा सकता है।

   ग. परती तथा कृषि योग्य बंजर भूमि– बिहार की लगभग 13 प्रतिशत भूमि इस वर्ग में सम्मिलित हैं। इनमें 6.71 प्रतिशत चालू परती, 1.62 प्रतिशत अन्य परती और 4.64 प्रतिशत कृषि योग्य बंजर भूमि हैं। सिंचाई, खाद और अन्य कृषि आदानों के प्रयोग के द्वारा इन्हें जोत में लाने की आवश्यकता है। इससे कृषि-क्षेत्र का विस्तार होगा और उत्पादन में वृद्धि होगी।

   घ. मिट्टी-अपरदन– बिहार का मैदानी भाग सतही अपरदन और पठारी एवं पर्वतीय भाग अवनालिका अपरदन से प्रभावित है। मैदानी क्षेत्र में मिट्टी के ऊपर का उपजाऊ तत्व बहकर अन्यत्र चला जाता है, जिसे रेंगती गई मौत (Creeping death) कहते हैं। खेतों के किनारे मेंड़ बनाकर इसे रोका जा सकता है। ढालुआ क्षेत्र में सतह पर नलिका भी बन जाती है और मिट्टी की परत के अपरदित हो जाने के कारण पथरीली भूमि सतह पर निकल आती है। इस समस्या के समाधान के लिए ढालों पर सीढ़ीनुमा खेती करना और वृक्षारोपण करना आवश्यक है।

   ङ. मिट्टी का अत्यधिक उपयोग– बिहार के मैदान की मिट्टी हजारों वर्ष से लगातार फसल के अंतर्गत है। इससे मिट्टी की उर्वरा-शक्ति कम हुई है। अधिक जनसंख्या की उदर-पूर्ति के लिए एक ही खेत में वर्ष में कई फसलें पैदा की जाती है। अधिकतर खेतों में सालों-साल एक ही फसल-साहचर्य देखा जाता है। इससे मिट्टी के विशेष उपजाऊ तत्व नष्ट हो जाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए फसल बदलकर बोया जा सकता है या कुछ समय के लिए खेत को परती छोड़ दिया जा सकता है।

2. **आर्थिक समस्याएँ–** बिहार के किसानों की आर्थिक दशा दयनीय है। इसका बुरा प्रभाव कृषि पर पड़ता है। ये समस्याएँ निम्नांकित हैं-

क. भूमि पर आधिपत्य में असमानता– बिहार के कुछ किसानों के पास बहुत अधिक भूमि है और अधिकतर किसानों के पास बहुत कम भूमि है। बिहार के लगभग 80 प्रतिशत किसान छोटे और सीमान्त वर्ग के हैं, जिनके पास 2 हेक्टेयर से भी कम कृषि-भूमि है। इस विषमता से उत्पादन और उपभोग में असंतुलन आ जाता है और श्रमशक्ति का अपव्यय होता है। छोटे किसानों की आर्थिक दशा इतनी दयनीय है कि कृषि में पूँजी-निवेश न्यूनतम स्तर का है। अनुपस्थित जमींदार और आर्थिक बंधुआपन के कारण कृषि पिछड़ी हुई है।

ख. निर्धन-किसान– अधिकतर किसान निर्धन हैं और ग्रामीण ऋण का अभाव है। धन के अभाव में वे आधुनिक यंत्र, रासायनिक खाद, अधिक उपज देने वाले बीज तथा सिंचाई के साधनों का प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

ग. अधिक उत्पादन लागत– हरित-क्रांति के बाद खेती का कार्य महँगा हो गया है। अधिक उपज के लिए खाद और सिंचाई आवश्यक है। रासायनिक खाद महँगे हैं और सिंचाई के लिए डीजल का प्रयोग भी काफी महंगा पड़ता है। निर्धन किसान के लिए यह एक समस्या बन गयी है।

घ. फसल उत्पाद का कम मूल्य– देश में महँगाई तेजी से बढ़ी है। लगभग सभी पदार्थों की कीमत काफी बढ़ गयी है। किन्तु, औद्योगिक एवं अन्य उत्पादों की तुलना में कृषि उत्पाद की कीमत बहुत कम बढ़ी है। फलतः किसानों को अपने उत्पाद का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

3. **सामाजिक समस्याएँ :**

क. कृषि-भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता बोझ– जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और रोजगार के अन्य अवसर के अभाव में कृषि-भूमि पर जनसंख्या का बोझ दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इससे खेतों का आकार काफी छोटा हो गया है और यह अनार्थिक होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त किसानों के खेत बिखरे हुए भी है। इस कारण, इसमें मशीनें से खेती करना काफी कठिन है।

ख. भूमि-सुधार कार्यक्रमों का अप्रभावशाली कार्यान्वयन– सरकार ने कृषि भूमि के संतुलित बँटवारे का प्रयास किया है। किन्तु, राजनैतिक इच्छा-शक्ति के अभाव में यह पूरा नहीं हो सका है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसानों और कृषि-मजदूरों के बीच तनाव और कलह बढ़ गया है। मध्य बिहार के जहानाबाद, पटना और गया जिले इससे अधिक प्रभावित हैं। इस क्षेत्र के किसान और मजदूर दोनों गाँव छोड़कर भाग रहे हैं।

ग. तिरस्कार की दृष्टि– कृषि और कृषक की दयनीय दशा देखकर समाज में किसानों को उचित सम्मान नहीं मिलता है और उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पढ़े-लिखे लोग खेती की ओर आकृष्ट नहीं होते हैं।

घ. शिक्षा की कमी– बिहार के अधिकतर किसान अशिक्षित है। अतः उन्हें मिट्टी की जाँच, उचित फसल के उत्पादन, उचित खाद, बीज एवं कृषि-यंत्र के उपयोग का ज्ञान नहीं है। अतः किसान आदत से निराश और संवेदनशील हो गये हैं।

4. **संरचनात्मक समस्याएँ:** बिहार में कृषि से संबंधित अधिसंरचना की कमी है। अधिक उत्पादन के लिए सिंचाई के साधन का बहुत अधिक विकास हुआ है, किन्तु अभी भी इसमें सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान समय में शुद्ध बोयी गयी भूमि का केवल 79.90 प्रतिशत सिंचित है और शेष 20.10 प्रतिशत वर्षा पर आधारित है। रासायनिक खाद, उन्नत और अधिक उपज देने वाले बीज, ऋण-सुविधा इत्यादि का अभाव है। यातायात के साधन, भंडारण तथा व्यवस्थित बाजार के अभाव में बिचौलिये उनका शोषण करते हैं। इन कारणों से यहाँ अलाभप्रद पारम्परिक खेती की जाती है। खेती का ढंग पुराना है। खेती में पशु का प्रयोग होता है, जो दुर्बल होता है और उनके लिए चारा की कमी है। परिणामस्वरूप यहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है।

प्रति हेक्टेयर बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं-

क. सिंचाई की व्यवस्था, बाढ़ और सूखा से सुरक्षा,

ख. उर्वरक का प्रयोग,

ग. कीट एवं रोग-नाशक दवाएँ और पौध-संरक्षण,

घ. उन्नत संकर बीज का प्रयोग,

ड़. मिट्टी सर्वेक्षण, उर्वरीकरण तथा संरक्षण,

च. गहन जुताई, कटाई और परिष्करण के लिए कृषि-यंत्रों की व्यवस्था,

छ. विद्युत, यातायात, भंडारण, क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था,

ज. लागत के अनुसार उपज का मूल्य-निर्धारण,

झ. चकबन्दी द्वारा जोतों का एकीकरण (दुर्भाग्यवश बिहार में चकबन्दी सफल नहीं हुआ और इस विभाग को सरकार ने बन्द कर दिया),

ञ. कृषि मंडियों की स्थापना।

इन उपायों का कार्यान्वयन सरकारी और गैर-सरकारी लोगों की इच्छा-शक्ति पर निर्भर करता है। बिहार में कृषि के विकास की सम्भावनाएँ बहुत हैं। इन उपायों के द्वारा इसे विकसित किया जा सकता है।

संदर्भ-सूची

1. Singha, V.N.P., Nazim, M & Ahmed, P (2015) बिहार का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. कुमार, एन. (2016) मधेपुरा जिला में भूमि उपयोग का बदलता प्रतिरूप एवं कृषि पर उसका प्रभाव : पी.एचडी, पृष्ठ 155.159
3. हुसैन माजिद (2003) कृषि भूगोल, अनुवादक एल.एन. वर्मा, रावत पब्लिकेशन जयपुर।
4. कुमार, ए. (1995) बिहार का भूगोल, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली।
5. राम, एल. एन. (1991), ए सिस्टेमेटिक ज्योग्राफी ऑफ बिहार, पटना यूनिवर्सिटी, पटना।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि की भूमिका (सागर नगर, मध्य प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)

हरिओम मद्धेशिया

शोध छात्र, शैक्षिक अध्ययन शाला, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

भूमिका

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है (भटनागर, 2007)। वैदिक कालीन शिक्षा मुख्य रूप से गुरूकुलों में संचालित की जाती थी, जिसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की चारित्रिक, आध्यात्मिक गुणों का विकास, तथा आत्मा का परमात्मा से मिलन था। प्राचीन काल तथा वर्तमान काल में शिक्षा का जो स्वरूप है, उन दोनों में बहुत अन्तर है (मित्तल, 2018)। ऐसी परिस्थिति में शिक्षण विधियों में अन्तर होना स्वभाविक है शायद इन्ही कारणों से एन.सी.एफ. 2005 में शिक्षा का लक्ष्य स्कूली जीवन को विद्यार्थियों के व्यावहारिक जीवन से जोड़ना है।

प्रगतिशील शिक्षा हमे बताती है कि शिक्षा बच्चें के लिए है न कि बच्चें शिक्षा के लिए है इसलिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया अध्यापक केन्द्रित न होकर बाल केन्द्रित होना चाहिए। क्यों कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का आयोजन विद्यार्थियों के लिए होता है न कि अध्यापकों के लिए।

मैकाईवर व पेज ने कहा है "समाज सामाजिक सबंन्धें का जाल है" आज के इस युग मे शिक्षा ही एक यन्त्र है जिसके माध्यम से इस सामाजिक जाल को समझा जा सकता है" इस जाल को समझने के लिए चारदीवारी से बाहर जा के समाजिक सम्बंन्धें को समझाना आवश्यक होगा।

आज शिक्षा का स्वरूप बाल केन्द्रित शिक्षा पद्धति के रूप में परिवर्तित हो रहा है, जहाँ विद्यार्थी अपने अनुभवों के आधार पर स्वयं सीखते है। सीखना अपने आप में एक सामाजिक गतिविधि है (एन.सी.एफ., 2005, पृष्ठ 15), इसलिए हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित व सवंर्द्धित करना चाहिए। इस लिए आज ऐसे शिक्षण विधियों को आवश्यकता है जिसमें विद्यार्थी अपनें अनुभवों, अभिरूचियों, उनकी खोजी प्रवृत्ति, सक्रियता और उनकी रचनात्मकता को प्रोत्साहित कर सके।

अध्यापक केन्द्रित शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को गौण माना जाता है हालाँकि विद्यार्थी उसी वातावरण में सीखते है जहाँ उन्हे महसूस हो कि वे महत्वपूर्ण है। पियाजे ने भी अपने सीखने के सिद्धान्त में बालक की भूमिका को सक्रिय व महत्वपूर्ण माना है। दुर्भाग्य से आज भी हमारे स्कूल ऐसा महसूस कराने में असफल है (एन.सी.एफ., 2005, पृष्ठ 16)।

सीखने की प्रक्रिया में व्यस्त एक विद्यार्थी अपने ज्ञान का सृजन खुद करता/ती है। इस लिए आज ऐसे शिक्षण विधियों की आवश्यकता है। जिसमें विद्यार्थियों खुद को व्यस्त रख सके। ऐसे परिस्थिति में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती है। इसी महत्ता को ध्यान में रखतें हुए शोधार्थी दवारा विद्यार्थियों की उपलब्धि पर विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों की भूमिका का अध्ययन किया गया है।

संबन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

अंसारी (2017) ने अपने अध्ययन में बताया कि शिक्षक अपने शिक्षण में शिक्षण अधिगम सामाग्री का प्रयोग करते है किन्तु प्रशिक्षण के अभाव के कारण उनकी शिक्षण प्रभावशीलता का अभाव पाया गया। **मिश्रा** (2017) ने अपने अध्ययन में बताया कि सीखना जीवन के वृहद्तर अनुभवों को प्रभावित करता है। अत: सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाले को सशक्त अभिकर्ता मानना चाहिए। जो विद्यालय एवं विद्यालयी परिस्थितियों एवं समस्याओं से निपटनें में समर्थ हो। **बोबड़े-वर्मा** (2017) ने अपने अध्ययन में बताया कि स्वतंत्र वातावरण में गतिविधि द्वारा सीखना अधिक उपयोगी है। इस विधि में विद्यार्थी अपने समस्याओं की अभिव्यक्ति सरलतापूर्वक करते है। **शाक्य-दुबे**, (2017) ने अपने अध्ययन में बताया कि गणित शिक्षण के लिए वैदिक गणित विधि, परंपरागत गणित शिक्षण विधि से कही अधिक प्रभावी है। **दास** (2009) ने निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि जिन विद्यार्थियों का एजुसेट के माध्यम से गणित शिक्षण किया गया उनकी उपलब्धि ऐसे छात्रों से बेहतर थी जिन्हे एजुसेट के माध्यम से शिक्षण नही किया गया। **अग्निहोत्री** (2015) ने निष्कर्ष के रूप में पाया गया कि कहानी सुनने का विद्याथियों की जिज्ञासा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा कहानी नही सुनने वालों की तुलना में कहानी सुननें वालों का जिज्ञासा स्तर अधिक पायी गयी। **खेर, मेहराज** (2016) ने निर्ष्कष के रूप में पाया गया कि आवश्यकता-आधारित अधिगम कार्यक्रम व्यावहारवादी, भविष्य वादी, एवं मनोवैज्ञानिक सिद्वान्तों पर आधारित हाने के कारण केवल शिक्षक शिक्षा हेतु नही वरन् शिक्षण के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों की अधिगम आवश्यकतों की पूर्ति करने में सक्षम है।

संबन्धित साहित्यिक निष्कर्ष व अध्ययन की आवश्यकता

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी में ऐसे शिक्षण विधियों को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है जिससे विद्यार्थियों में रचनात्मकता व सृजनात्मकता जैसे गुणों का विकास हो सके। उपरोक्त अध्ययनों जिसमें प्रमुख रूप से मदरसें में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, सामाजिक विज्ञान शिक्षण, प्रशिक्षित शिक्षकों के सन्दर्भ में शिक्षण विधियाँ, आवश्यकता आधारित अधिगम कार्यक्रम पर अध्ययन, शिक्षण विधि के रूप में नुक्कड़ नाटक, एजुसेट के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, बधेका की शिक्षण पद्वतियाँ प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में, बाल केन्द्रित शिक्षा एवं प्रगतिशील शिक्षा आदि प्रमुख है। किन्तु ऐसे अध्ययनों का अभाव पाया गया, जो सामाजिक विज्ञान में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों का अध्ययन करता हो इन्ही कारणों से अनुसंधानकर्ता द्वारा "सामाजिक विज्ञान शिक्षण में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों की भूमिका" विषय का चयन किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

* सामाजिक विज्ञान के अवधारणाओं के विकास में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों की भूमिका।
* छात्र व छात्राओं के मध्य उपलब्धियों का विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिसीमन

* इस अध्ययन मे मध्य प्रदेश शासन द्वारा संचालित विद्यालय ही सम्मिलित है।
* प्रस्तुत शोध कार्य शासकीय माध्यमिक शाला रजाखेड़ी और शासकीय माध्यमिक शाला मकरोनिया सागर मध्य प्रदेश के माध्यमिक शाला तक ही सीमित है।
* इस अध्ययन में केवल कक्षा 8वी के विद्यार्थियों को ही सम्मिलित किया गया है।

अनुसंधान प्रविधि व प्रक्रिया: प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक विधि पर आधारित है। इस अध्ययन के अन्तर्गत सागर नगर, विकासखण्ड सागर मध्य प्रदेश के अन्तर्गत ऐसे माध्यमिक शालाओं का चयन किया गया जो मध्य प्रदेश शासन द्वारा संचालित किया जा रहा है।

न्यादर्श:

* प्रथम चरण पर न्यार्दश के अन्तर्गत सागर जिले तथा विद्यालय का चयन सुविधापरक रीति से किया गया।
* द्वितीय चरण पर विद्यार्थियों का चयन पूर्व परीक्षण के आधार पर एक निश्चित मानक (50%) के अनुसार किया गया।

आकड़ों का संग्रहः आकड़ों के संग्रहण के लिए शोधार्थी द्वारा म0प्र0 शासन द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का शिक्षण चयनित विद्यालय के कक्षा 8वी के विद्यार्थियों के लिए अधयाक केन्द्रित एवं विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से किया गया। यह शिक्षण कार्य 15 दिनों तक करने के बाद शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित उपलब्धि परीक्षण प्रशासित करके आकड़ों को एकत्रित किया गया। तथा साथ ही कक्षा का निरीक्षण भी किया गया

आकड़ों का एकत्रिकरण, सारणीयन व विशलेषण

तालिका क्रमांकः-1

(क) स्कूल का नामः शासकीय माध्यमिक शाला मकरोनिया, सागर म0प्र0 (विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण)

क्र.	विद्यार्थी का नाम	इतिहास	भूगोल	नागरिक शास्त्र	अर्थशास्त्र	योग
1.	साहिल राईन	06	07	05	03	21
2.	कीर्ति जैन	06	06	05	03	20
3.	अयान बेहना	07	08	07	04	26
4.	रोहित राजपूत	04	05	04	03	16
5.	श्रुति अहिरवार	04	06	03	03	16
6.	ओम कोरी	06	08	04	04	22
7.	अनस बेहना	00	05	01	03	09
8.	अजय कोरी	06	04	04	02	16
9.	मनीषा पटैल	07	05	06	04	22
10.	राकेश कुमार	05	06	06	04	21
	कुल योग	**51**	**60**	**45**	**33**	**189**
	औसत	5.10	6.00	4.50	3.30	19.00

नोटः सभी विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए है।

तालिका क्रमांकः-2

(ख) स्कूल का नामः शासकीय माध्यमिक शाला रजाखेड़ी, सागर म0प्र0। (अध्यापक केन्द्रित शिक्षण से शिक्षण)

क्र.	विद्यार्थी का नाम	इतिहास	भूगोल	नागरिक शास्त्र	अर्थशास्त्र	योग
1.	अभिलाषा ठाकुर	01	05	01	00	07
2.	अभय अहिरवार	00	04	01	00	05
3.	कृष्णा अहिरवार	01	04	00	00	05
4.	यश अहिरवार	00	07	02	00	09
5.	कुन्ति सेन	01	06	01	00	08
6.	गौरव कुशवाहा	00	07	03	01	11
7.	संजू अहिरवार	03	05	00	01	09
8.	अंकिता रैकवार	03	04	00	02	09
9.	अमित कुमार	03	05	01	03	12
10.	सुनिता पटैल	04	04	02	02	12
	कुल योग	**16**	**51**	**11**	**09**	**87**
	औसत	1.6	5.1	1.1	0.9	8.7

नोटः सभी विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए है।

तालिका-3: विद्यार्थी केन्द्रित एवं अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि सें प्राप्त प्राप्तांको के औसत का अन्तर

क्र.	स्कूलों का नाम	इतिहास	भूगोल	नागरिक शास्त्र	अर्थशास्त्र	योग
1.	विद्यार्थी के0 शि0 विधि से शिक्षण (क)	5.10	6.00	4.50	3.30	19.00
2.	अध्यापक के0 शि0 विधि से शिक्षण (ख)	1.60	5.10	1.10	0.90	8.70
	उपलब्धियों के प्राप्तांको के औसत का अन्तर	**3.50**	**0.90**	**2.90**	**2.40**	**10.30**

विश्लेषण व निष्कर्ष

प्रथम उद्देश्य के सन्दर्भ शोधार्थी द्वारा तालिका 1, 2, 3 के निरीक्षण के दौरान पाया कि विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण मे सामाजिक विज्ञान की अवधारणात्मक समझ तुलनात्मक रूप से बेहतर थी। जब विद्यार्थियों को विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण किया जा रहा था तो पाया गया कि इतिहास ऐसा विषय है जिसमें सबसें अधिक 5.10 औसत प्राप्तांक रहा जबकि अर्थशास्त्र विषय में सबसे न्यूनतम 3.30 रहा। तथा इस समूह की समग्र औसत प्राप्तांक 19.00 रहा। वही जब अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण समूह वाले में सबसे अधिक औसत प्राप्तांक भूगोल विषय में सबसे अधिक 5.10 तथा सबसे कम अर्थशास्त्र विषय में 0.90 रहा। तथा इस समूह की समग्र औसत प्राप्तांक 8.70 रही। विद्यार्थी केन्द्रित एवं अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि सें प्राप्त औसत प्राप्तांको के विषय गत अन्तर देखे तो पाते है कि सबसे अधिक औसत अन्तर इतिहास (3.50) तथा सबसे कम औसत अन्तर भूगोल (0.90) है। वही विद्यार्थी केन्द्रित एवं अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि सें प्राप्त प्राप्तांको के औसत का अन्तर 10. 30 है। इतिहास विषय के लिए तथा सबसे कम प्रभावी भूगोल विषय के लिए है।

तालिका-4

(क) स्कूल का नामः शासकीय माध्यमिक शाला मकरोनिया, सागर म0प्र0 (विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण)

क्र.सं.	विद्यार्थी का नाम	इतिहास	भूगोल	नागरिक शास्त्र	अर्थशास्त्र	योग
1.	कीर्ति जैन	06	06	05	03	20
2.	अयान बेहना	07	08	07	04	26
3.	श्रुति अहिरवार	04	06	03	03	16
4.	अनस बेहना	00	05	01	03	09
5.	मनीषा पटैल	07	05	06	04	22
	योग	**24**	**30**	**22**	**17**	**93**
	कुल प्राप्तांको का औसत	4.8	6	4.4	3.4	18.6

नोटः सभी विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए है।

तालिका-5

(ख) स्कूल का नामः शासकीय माध्यमिक शाला रजाखेड़ी, सागर म0प्र0। (अध्यापक केन्द्रित शिक्षण से शिक्षण)

क्र.सं	विद्यार्थी का नाम	इतिहास	भूगोल	नागरिक शास्त्र	अर्थशास्त्र	योग
1.	अभिलाषा ठाकुर	01	05	01	00	07
2.	कृष्णा अहिरवार	01	04	00	00	05

3.	कुन्ति सेन	01	06	01	00	08
4.	अंकिता रैकवार	03	04	00	02	09
5.	सुनिता पटैल	04	04	02	02	12
	योग	**10**	**23**	**4**	**4**	**41**
	कुल प्राप्तांको का औसत	2	4.6	0.8	0.8	8.2

नोटः सभी विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए है।

तालिका-6: विद्यार्थी केन्द्रित एवं अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि सें शिक्षण प्राप्त छात्र व छात्रों के प्राप्तांको के औसत का अन्तर

क्र.सं.	**स्कूलों के नाम**	**इतिहास**	**भूगोल**	**नागरिक शास्त्र**	**अर्थशास्त्र**	**योग**
1.	विद्यार्थी के0 शि0 विधि से शिक्षण छात्रों का औसत प्राप्तांक	4.8	6.0	4.4	3.4	18.6
2.	अध्यापक के0 शि0 विधि से शिक्षण सें छात्राओं का औसत प्राप्तांक	2	4.6	0.8	0.8	8.2
	उपलब्धियों के प्राप्तांको के औसत का अन्तर	2.80	1.4	3.60	2.6	10.4

नोटः सभी विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए है।

विश्लेषण व निष्कर्ष

द्वितीय उद्देश्य के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा तालिका 4, 5, 6 के निरीक्षण के दौरान पाया पाया गया कि विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण पाने वाले छात्रों में सबसे अधिक (6.0) औसत प्राप्तांक भूगोल विषय तथा सबसे कम (3.4) अर्थशास्त्र विषय में रहा। वही अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण पाने वाले छात्रों का सबसें अधिक (4.6) औसत प्राप्तांक भी भूगोल विषय में रहा जबकि सबसे कम औसत प्राप्तांक नागरिक शास्त्र व अर्थशास्त्र में समान रूप (0.8) से रहा। हालांकि समग्र सामाजिक विज्ञान विषय में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण पाने वाले छात्रें का औसत प्राप्तांकों 18.6। अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण पाने वाले छात्राओं के समूह का औसत प्राप्तांक सबसे अधिक (4.6) भूगोल विषय में तथा सबसे कम (0.8) समान रूप से नागरिक शास्त्र व अर्थशास्त्र रहा। अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण पाने वाले छात्रें का औसत प्राप्तांकों 08.20 रहा, वही जब विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि व अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण करने पर औसत प्राप्तांकों के विषय गत अन्तर को देखते है तो पाते है कि सबसे अधिक अन्तर नागरिक शास्त्र (3.60) व सबसे कम अन्तर (1.40) भूगोल विषय रहा। जबकि समग्र अर्थात सामाजिक विषय में यह अन्तर 10.40 हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि लिंग का विद्यार्थियों की उपलब्धि पर कोई प्रभाव पड़ता नही है। तथा विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि, अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि से बेहतर है।

उपरोक्त आकड़ों के निरीक्षण व व्याख्या से यह प्रतीत होता है कि अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि व विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण में विद्यार्थियों की उपलब्धी में सार्थक अन्तर पाया गया। ऐसे में इन आकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सागर के माध्यमिक शालाओं में सामाजिक विज्ञान शिक्षण हेतु अध्यापक केन्द्रित शिक्षण विधि की तुलना में विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षण विधि से शिक्षण अधिक प्रभावशाली है तथा इन विधियों का लिंग पर प्रभाव नही पड़ता।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ansari, S. & Singh S. P. (2017). Madarse me shikshan adhigam prakriya ka adhayan. *Pariprekshya*, 24(02), 75-88.
2. Mishra, R. K. (2017). Samajik vigyan shikshan : Vidyalaya aur vidyalyaettar vimarsh ki parsprikta. Priprekshya, 24(02), 01-24.
3. Jain, S. (2012). Prashikshit shikshko ke kaksha shikshan ke dauran shikshan vidhiyon ke prayog me aane wali samsyayon ki samikshatmak adyayan (Unpublished ph.d. thesis). Department of adult education, Dr. harisingh gour university sagar, m.p.
4. Das, manoj kumar, (2009).Teaching-learning through Edu Sat and Academic Performance of Children – A Study. INDIAN EDUCATIONAL REVIEW, 45(1),92-108.
5. मिश्रा, त्रिभुवन और सिंह, सीमा (2017) गिजुभाई बधेका की शिक्षण पद्धतियाँ प्राथमिक शिक्षा के विशेष सन्दर्भ में *प्राथमिक शिक्षक*, 41 (01), 28-39
6. मित्तल, सुनैना (2018) बाल केन्द्रित शिक्षा तथा प्रगतिशील शिक्षा *प्राथमिक शिक्षक*, 42 (3) 42-47
7. एन.सी.ई.आर.टी. (2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी.
8. रानी, रीना. (2018) पूर्व प्राथमिक शिक्षा में शिक्षण-अधिगम विधियाँ *प्राथमिक शिक्षक*, 42 (2) 85-90
9. अग्निहोत्री, प्रशान्त और मिश्रा (2015) विद्यार्थियों की जिज्ञासा पर कहानी सुनने के प्रभाव का अध्ययन. *प्राथमिक शिक्षक*, 39 (2-3) 55-66
10. खेर, सीमा (2016) पूर्व प्राथमिक शिक्षक शिक्षा में आवश्यकता-आधारित अधिगम कार्यक्रम परएक अध्ययन. *प्राथमिक शिक्षक*, 40(2) 05-09
11. अली, मेहराज (2016) प्रारंभिक स्तर पर शिक्षण की विध के रूप में नुक्कड़ नाटक. *प्राथमिक शिक्षक*, 39-40 (4-1) 34-39.

उत्तराखण्ड क्रांति दल की क्षेत्रीय राजनीति में भूमिका

रीना रांगड़

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, हे.न.ब.ग. केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल, उत्तराखण्ड

शोध सारांश

प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से या दल बनाकर अपने विचार रखने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है, इसी प्रकिया का एक अंग क्षेत्रीय दलों का उदय होना है। क्षेत्रीय दलों का आधार किसी क्षेत्र विशेष तथा क्षेत्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति तक सीमित होता है, इसी क्रम में उत्तराखंड क्रांति दल उत्तराखण्ड के क्षेत्रीय दल के रूप में उभरा, जिसने राज्य की जनता के मन में पृथक राज्य निर्माण की परिकल्पना का बीज बोया तथा सफलता भी प्राप्त की, परन्तु समय के साथ उक्रांद अपने कार्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति से बिमुख होकर सत्ता की और उन्मुख हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ की वर्तमान समय में उक्रांद की स्थति एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल से हटकर एक आंदोलनकारी दल की रह गयी।

शोधार्थी द्वारा यह शोध पत्र वर्णानात्मक विधि से लिखा गया है, जिसमे प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया गया तथा शोध क्षेत्र मे जाकर अनुभवी व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया गया है और प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा जानकारी प्राप्त की गयी है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उक्रांद के उदभव, राज्य निर्माण से पूर्व व राज्य निर्माण के पश्चात इस दल के योगदान को दर्शाने के साथ इनकी कमियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

मुख्य शब्दः राजनीतिक दल, क्षेत्रीय दल, भारतीय राजनीति, दलबदल, गठबंधन।

क्षेत्रीय दल से अभिप्राय उन दलों से है जिनका आधार किसी क्षेत्र विशेष तक होता है, साथ ही कुछ सीमित क्षेत्रीय उद्देश्यों के साथ यह दल अपना कार्य भी क्षेत्र विशेष तक ही करते हैं। भारत में स्वतंत्रता से पूर्व ही कई क्षेत्रीय दलों का गठन हुआ लेकिन उनका अस्तित्व ना के बराबर रहा परन्तु बाद में भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय दलों का प्रभुत्व सन् 1967 के आम चुनाव के बाद बढने लगा।[1] भारतीय राजनीतिक इतिहास में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के उदय के कारण क्षेत्रीय जनता के सामाजिक, भोगोलिक, धार्मिक, भाषायी असंतोष से उत्पन्न जन आन्दोलन का परिणाम रहा है। क्षेत्रीय दलो के उदय के मूल कारण केन्द्र मे शासन कर रहे दलों के खिलाफ विद्रोह, क्षेत्रवादी विचारधारा, विशिष्ट लक्ष्य, दलीय गुटबंदी, साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवम् भाषावाद आदि रहे हैं।[2] उदहारणस्वरुप तेलगुदेशम के उदय का कारण आन्ध्र प्रदेश में केन्द्र की सरकार द्वारा हर तीसरे महीने मुख्य मंत्री बदलने की प्रणाली, द्रविड मुनंत्र कडगम के शक्ति संचय का कारण राज्य व केंद्र में हिन्दी भाषा को लेकर विवाद, शिव सेना का हिन्दुत्व व मराठी तथा आप के उदय का कारण भ्रष्टाचार व मंहगाई, असम गण परिषद के उदय का कारण असम मूल के लोगों का अल्पसंखक होने का डर तथा इसी क्रम में उत्तराखण्ड क्रान्ति दल का उदय का कारण केन्द्र सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रवासियो की उपेक्षा रही है।[3]

उत्तराखण्ड क्रांति दल का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसी दल ने ही उत्तराखण्ड की जनता के मन में अपने पृथक राज्य की ज्योति को प्रज्जवलित किया था। परन्तु बाहरी शक्तियों के हस्तक्षेप ने दल के अन्दर की खामिंयां तथा दल के नेताओं का सत्ता के लिए सत्ता लोलुपता ने ही उत्तराखण्ड क्रांति दल की विघटन की भूमिका को तैयार किया, जिसका परिणाम उत्तराखण्ड क्रांति

दल को इस रूप मे प्राप्त हुआ कि वर्तमान समय में वह अब एक राजनीतिक दल कम और आन्दोलनकारियों का समूह अधिक प्रतीत होता हुआ दिखाई पड़ता है।

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलो से बने अलग राज्य निर्माण आन्दोलन हेतु एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल के रूप में उत्तराखण्ड क्रांति दल का उदय हुआ। 24 व 25 जुलाई 1979 में मंसूरी में कुमाऊँ विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. देवीदत्त पन्त की अध्यक्षता में आयोजित सम्मेलन में एक नए संगठन उत्तराखंड क्रांति दल की स्थापना हुई।4 इस सम्मलेन में डॉ. देवीदत्त पन्त के अतिरिक्त 53 सदस्यों ने भाग लिया जिनमे नित्यानंद भट्ट, जगदीस कापडी, ललित किशोर पांडे, वीर सिंह ठाकुर, हुकुम सिंह पंवार, विनोद चंदोला, दिवाकर भट्ट, विनोद बडथ्वाल और देवेन्द्र सनवाल सहित अनेक गढ़वाली व कुमाउनी समाजसेवी, शिक्षाविद, उच्च शिक्षित युवा वर्ग भी सम्मिलित थे। इस दल के प्रथम अध्यक्ष के रूप में डॉ. देवीदत्त पन्त ने कार्यभार संभाला।[5]

उत्तराखंड क्रांति दल की स्थापना अपने कुछ उद्देश्यों को लेकर हुई थी, जिनमें प्रमुख उद्देश्य उत्तराखंड के रूप में पृथक पर्वतीय राज्य के लिए संघर्ष करना, उत्तराखंड राज्य को समाजवादी ओर धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाना, आर्थिक व सामाजिक असमानता को दूर करना, उत्तराखंड की महिलाओं की दशा सुधारना, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ों व अल्पसंख्यकों के हितो को सुरक्षित करना था।[6]

उक्रांद ने देश के संविधान की तर्ज पर ही अपने पार्टी संविधान में समाजवादी व धर्मनिरपेक्ष शब्दावली का प्रयोग किया। जिसका उद्देश्य संभवत: दल का स्वयं को संविधान से जुड़ा हुआ प्रदर्शित करना था। इसके साथ ही दल ने इन शब्दावलियों के माध्यम से खुद के धर्म निरपेक्ष स्वरुप को स्पष्ट किया जो कि अभी तक किसी और दल ने नहीं किया था और समाजवादी शब्द का प्रयोग कर दल ने खुद को साम्यवादी विचारधारा से जुड़ा हुआ होने का संकेत दिया।[7]

राज्य निर्माण से पूर्व चुनावी राजनीति में उक्रांद की भूमिका

उक्रांद ने अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु वर्ष 1980 ई. के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव व संसदीय चुनाव में भाग लेने का निर्णय किया। जिनमें उत्तर प्रदेश के पहाडी क्षेत्रों के लिये विधानसभा व लोक सभा चुनाव में 19 व 4 सीटें थी। अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ संसदीय सीट पर उक्रांद के संस्थापक डॉ. देवीदत्त पन्त ने चुनाव में भाग लिया लेकिन उन्हें मात्र 33 हजार ही वोट प्राप्त कर असफलता का मुंह देखना पड़ा था। इनकें द्वारा चुनाव प्रचार के दौरान क्षेत्रों में किये गए दौरों ने संगठन को बढ़ाने का कार्य किया, जिससे दल के उद्देश्यों, रणनीति से आम जनता अवगत हुयी।[8] वहीँ दूसरी ओर रानीखेत विधानसभा पर उक्रांद प्रत्याशी जसवंत सिंह बिष्ट ने चुनाव जीत लिया।[9] समाजवादी आंदोलनों से जुड़े होने के कारण उत्तर प्रदेश के अन्य हिस्सों के नेताओं से जसवंत सिंह बिष्ट की घनिष्टता थी उनकी इस पृष्ठभूमि ने उक्रांद को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस प्रकार उक्रांद ने क्षेत्रीय राजनीतिक दल बनने में कामयाबी हासिल की। वर्ष 1980 ई. के चुनाव में उक्रांद को जो सफलता मिली भले ही वह आशाओं के विपरीत ही क्यों ना रही हो, लेकिन इससे दल के सदस्यों का आत्म विश्वास बढ़ा था।[10]

वर्ष 1984 ई. में उक्रांद द्वारा नशा विरोधी आन्दोलन चलाया गया जिस कारण भी दल की लोकप्रियता बड़ी[11] जिसके फलस्वरूप वर्ष 1984 ई. के राजनीतिक चुनावों में उक्रांद द्वारा फिर से चुनाव में भाग लेने का निर्णय लिया जिसमे अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ संसदीय क्षेत्र से उक्रांद प्रत्याशी जसवंत सिंह बिष्ट को 42,444 मत मिले जबकि भाजपा के डॉ. मुरली मनोहर जोशी को 44,640 मत प्राप्त हुए। दोनों प्रत्याशियों के बीच महज 2,196 मतों का अंतर था यद्यपि विजय कांग्रेस की हुयी, किन्तु कम मतान्तर ने यह स्पष्ट कर दिया कि उक्रांद राष्ट्रीय दलों को चुनौती देने की स्थिति में पहुँच चुका था। वर्ष 1985 ई. के उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव में डीडीहाट से उक्रांद के काशी सिंह ऐरी की विजय हुयी, जिसने इस तथ्य को और भी स्पष्ट कर दिया। उक्रांद का राजनीति क्षेत्र में आना दल से जुड़े युवा वर्ग को पसंद नही आ रहा था, जिसका कारण यह रहा की दल के नेता व युवा वर्ग में मतभेद उत्पन होने लगे। जिस्से दोनों वर्गों के मध्य विभाजन की स्थिति उत्पन्न होने लग गयी तथा यह दल के लिए पहली असफलता माना जा रहा था।[12]

इसके पश्चात वर्ष 1989 के चुनाव में पुन: जसवंत सिंह बिष्ट उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए चुने गए जबकि डीडीहाट से काशी सिंह ऐरी निर्वाचित हुए, जो दल की बागडोर संभाले हुए एक युवा नेता थे। इन तीनों चुनावों में उक्रांद रानीखेत और डीडीहाट के अतिरिक्त कही भी खाता खोलने में असमर्थ रहा।[13] उक्रांद वर्ष 1990 में निष्क्रिय भूमिका में रहा जो कार्य क्षेत्रीय दल के रूप

में उक्रांद को करना चाहिए था वह कार्य उत्तराखंड प्रदेश संघर्ष समिति द्वारा किया जा रहा था पृथक राज्य हेतु इसने 10 अप्रैल 1990 दिल्ली चलो का नारा दिया।[14] दूसरी और दल के शीर्ष नेताओं की स्वार्थपूर्ति के कारण जसवंत सिंह बिष्ट जिन्होंने उक्रांद को पहली विजय दिलाई, उक्रांद के विधायक के रूप में विधानसभा में उत्तराखंड राज्य का पहला प्रस्ताव रखा और इस दल को राष्ट्रीय पहचान दिलाने में सक्रिय भूमिका अदा की, उन्हें वर्ष 1991 के विधयी चुनाव में उक्रांद का टिकट नहीं दिया गया और उन्होंने दल को छोड़ दिया व समाजवादी जनता दल की सदस्यता ग्रहण कर ली। एक अनुभवी नेता का इस तरह दल को छोड़ना उक्रांद के लिए एक बड़ी हानि थी, जिस ओर शीर्ष नेताओं ने ध्यान नहीं दिया दूसरी और काशी सिंह ऐरी जैसे नेता विधायक के रूप ने ख्याति अर्जित कर रहे थे। धीरे-धीरे अब उक्रांद जो कि अपने प्रारंभिक स्वरूप में एक आन्दोलनकारी दल की भूमिका में था, उसका अब राजनीतिकरण होने लग गया था। राजनीतिक दांव-पेंचों में उलझने से दल कमजोर होने लगा। वर्ष 1989 में जहाँ उक्रांद राष्ट्रीय दलों (कांग्रेस व भाजपा) को चुनौती देने की स्थति में आ गया था, वही अब वह वर्ष 1991 में आन्तरिक कलह, नेताओं की सत्ता प्राप्ति की इच्छा, अन्य अनुभवी नेताओं की उपेक्षा करने के कारण पूरी तरह क्षीण होने लगा था। उक्रांद नेताओं के लिए यह आवश्यक था कि वे शीघ्र ही जनता के सम्मुख अपनी छवि को सुधारने हेतु कदम उठाये। इसी क्रम में उक्रांद अध्यक्ष काशी सिंह ऐरी के नेतृत्व में पृथक राज्य निर्माण हेतु संघर्ष वर्ष 1992 तक जारी रहा।[15]

इस संघर्ष को आगे जारी रखते हुए उक्रांद ने 15 जनवरी 1992 को मकर संक्रान्ति के अवसर पर बागेश्वर में सरयू नदी के किनारे पृथक राज्य उत्तराखंड के लिए घोषणा करते हुए दस्तावेज जारी किया। इसमें गैरसैण (चंद्रनगर) को प्रस्तावित राजधानी घोषित किया तथा इस दस्तावेज को उक्रांद का पहला ब्लू प्रिंट माना गया और उक्रांद के शीर्ष नेता काशी सिंह ऐरी ने विधिवत् तौर पर 21 जुलाई 1992 को भावी राज्य उत्तराखंड की राजधानी गैरसैण का नाम चन्द्रनगर घोषित किया।[16]

वर्ष 1992 ई. के इसी सम्मेलन में उक्रांद ने राज्य बनने तक चुनाव में भाग न लेने का संकल्प लिया किन्तु इस संकल्प के बावजूद भी दल 1993 के विधानसभा चुनाव में शामिल हुआ जिसमे केवल काशी सिंह ऐरी ही चुनाव में जीत सके।[17] अपने इस संकल्प के बावजूद उक्रांद का विधान सभा चुनाव में आना दल के लिए सफल साबित नही माना जा रहा था।

राज्य निर्माण के बाद चुनावी राजनीति में उक्रांद की भूमिका

उक्रांद की मजबूत इच्छाशक्ति, त्याग, बलिदान, और लोकप्रियता के परिणामस्वरूप ही 9 नवम्बर 2000 को पृथक उत्तराँचल राज्य का गठन किया गया तथा राज्य गठन के पश्चात उक्रांद ने काशी सिंह ऐरी के युवा नेतृत्व के अंतर्गत राज्य के प्रथम विधानसभा चुनाव 2002 में भाग लिया,जिसमे 70 सीटो में से 4 सीटों पर उक्रांद ने सफलता अर्जित की और यह राज्य में चुनावी लाभ व सरकारों के गठन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका बनाने में सफल रहा, वर्ष 2002 में उक्रांद 04 सीटे व मत प्रतिशत 05.49 रहा।18 इस विधान सभा चुनाव में उक्रांद चोथे स्थान पर रही। 2002 के विधान सभा चुनाव में यमनोत्री से प्रीतम सिंह पंवार 9498 मत, कनालिक्षिना से काशी सिंह ऐरी 9378, द्वाराहाट से विपिन चन्द्र त्रिपाठी 11114, नैनीताल से नारायण सिंह जन्तवाल 10857 मत प्राप्त करने में सफल रहे।19 वर्ष 2007, 2012, 2017 के विधान सभा चुनाव में उत्तराखंड वासियों की जन आकांक्षावो को पूरा करने के उदेश्य से उक्रांद ने फिर से चुनाव में भाग लिया। जिसमे उक्रांद फिर से चोथे पायदान पर रही उनका मत प्रतिशत 5.49 रहा[20] व उक्रांद को तीन सीटे ही प्राप्त हुई जिसमे देवप्रयाग से दिवाकर भट्ट को 20940, नरेन्द्रनगर से ओमगोपाल रावत को 13729, दवाराहाट से पुष्पेश त्रिपाठी 11128 मतों से विजयी हुए।[21] 2012 के विधानसभा चुनाव में उक्रांद का मत प्रतिशत 1.93 रहा[22] जिसमें उक्रांद (पी) के प्रीतम सिंह पंवार 15909 मत यमुनोत्री विधानसभा क्षेत्र से एक सीट हासिल कर सके।[23] इस प्रकार 2012 के विधयी चुनाव में उक्रांद को सिर्फ एक सीट प्राप्त हुयी। इसी क्रम में 2017 के विधानसभा चुनावों में दल को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुयी। वहीं अगर उत्तराखंड में लोकसभा चुनाव की बात की जाय तो उक्रांद इसमें भी कोई खास सफलता हासिल नही कर पायी है, 2004 के पांच सीटों के लिए हुए लोक सभा चुनाव में उक्रांद ने मात्र 1.64 मत प्राप्त किये हैं[24] वहीं 2009 के लोक सभा चुनाव में मात्र 1.23 मत प्राप्त किये।[25] जिससे यह कहा जा सकता है की उक्रांद के मत प्रतिशत में कमी आती रही है।

उक्रांद में कुछ महिला प्रतिभागियों ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमे प्रमुख रूप से कमला रावत, लक्ष्मी धस्माना, उमा भट्ट, कमला बमोला, बसंती देवी, सुशीला बलूनी, प्रमिला रावत, आदि मुख्य रूप से रही है।[26] उक्रांद हमेशा से क्षेत्रीय मुददों की बात करता रहा है वह जल-जंगल-जमीन और राजधानी जैसे मुददों पर चुनाव लड़ते आ रहें है फिर भी उसका यह परिणाम

रहा है की यह दल राज्य की राजनीति में तीसरे दल के रूप में भी अपने आप को नही ला पा रहा है। दल की स्थापना क्षेत्रीय विकास के लिए की गयी थी परन्तु दल की स्थति 2017 के चुनाव में देखी जा सकती है, उक्रांद की राजनीति में सफल ना होने का कारण यह रहा है की यह दल क्षेत्र के मुददों से भटककर सत्ता पाने की इच्छा में लगी रही, इसके अलावा दल में फूट, व्यक्तिगत टकराव, गठबंधन में असफलता तथा जमीनी स्तर पर पार्टी द्वारा दल को मजबूत न बनाना व संगठन में कमी का अभाव आदि दल में मुख्य रूप में देखने को मिला। जिससे पार्टी को किलता का मुह देखना पड़ा है।

उत्तराखंड क्रांति दल के सफल न होने के कारक

धन का अभाव - राजनीति में धन एक महत्वपूर्ण साधन है, जिसके माध्यम से राजनीतिक पार्टियां अपने पार्टी के कार्य कलापों को बड़ा-चड़ाकर प्रिंट मिडिया एवम इलेक्ट्रानिक मिडिया के माध्यम से लोगो के सामने प्रस्तुत करती है जबकि उक्रांद के पास आवश्यक खर्च को जुटाने में भी अनेक बार मुश्किलो का सामना करना पड़ा इस संदर्भ में पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता शान्ति प्रसाद भट्ट से पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि एक गांव से दूसरे गांव तक जाने के लिए संसाधनों की कमी रही है, जिसमें धन एक महत्वपूर्ण अवयव है किन्तु आर्थिक तंगी के परिणामस्वरूप दल के सदस्य, पार्टी के निर्णयों, कार्यो, एवं राज्य विकास की अवधारणा को गावं-गांव तक पहुचाने में असमर्थ रहे है एवं संसाधनों की कमी के कारण संगठन में कमजोरी आने लगती है जिस कारण वह उस क्षेत्र में पैसा नही लगा पाता है मिडिया, अखबार सभी पूंजीपतियों के आगे पीछे ही घूमते है तथा उनका कहना है की आन्दोलन में हम हमेसा से आगे रहे लेकिन सता में आने के लिए हमे हमेशा से वितीय संसाधन की जरूरत थी, जिस कारण हम आगे नही आ पाए। उक्रांद अपनी असफलता का एक कारण संसाधनों की कमी को मानता है।[27]

गठबंधन की राजनीति में असफलता - उत्तराखंड क्रांति दल राजनीतिक गठबंधन में भी सफल साबित नही मानी गयी है। वर्ष 2007 के दूसरी विधानसभा चुनाव में भाजपा सबसे बड़ी राजनैतिक दल बन कर उभरा, लेकिन दल पूर्ण बहुमत से दूर रहा ऐसे में दल को सरकार गठित करने के लिए के संगठन के समर्थन की जरूरत पड़ी जिसमें उक्रांद का समर्थन प्राप्त करना भाजपा के लिए आवश्यक हो गया था। उक्रांद ने भी अवसर के महत्व को देखते हुए 9 सूत्रीय मांग पर अपनी सशर्त समर्थन देने की घोषणा की। राज्य निर्माण के बाद पहली बार उक्रांद नेताओ को भी सता सुख भोगने का मोका मिला, लेकिन उन्हें क्या पता था की उनका यह निर्णय दल में आगे कितना बड़ा बदलाव लायेगा। पार्टी ने भाजपा को अपनी शर्त के साथ समर्थन दिया लेकिन उक्रांद को कोई सफलता प्राप्त नही हुई बल्कि उक्रांद के राजनीतिक गठबंधन में शामिल होने से पार्टी की विचारधारा पर प्रश्न उठता रहा है।[28]

उत्तराखंड क्रांति दल का विभाजन - 1979 में डी. डी. पन्त ने पहाड़ो की समस्याओं को उठाने के लिए जिस उत्तराखंड क्रांतिदल की स्थापना की थी, आज वह अपनी पहचान खोती नजर आ रही है, जिसका प्रमुख कारण दल का बार बार टूटना है।उत्तराखंड क्रांति दल का बार-बार विखराव इस बात को साबित करता है। उक्रांद का पहला विभाजन 1996 में हुआ था जिसका कारण भाजपा को माना जाता है, दूसरा 2003 में जिसका कारण दल के अन्दर व्यक्तिगत टकराव था, तथा तीसरा 2011 में। 2011 से पहले दल का जितनी भी बार विभाजन हुआ था वह बाद में एक हो गयी लेकिन 2011 के विभाजन में पार्टी ने न केवल अपना नाम खोया बल्कि उसे अपने चुनाव चिन्ह से हाथ भी धेना पड़ा तथा चुनाव आयोग द्वारा अपनी मान्यता भी खोनी पड़ी। दल के बार-बार टूटने के कारण उक्रांद जनता के मन में वह विश्वास पैदा नही कर पाया जो उसे करना चाहिए था, जिससे भी दल कमजोर हुई है।[29]

प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव - क्षेत्रीय राजनितिक दलों की सफलता का मुख्य आधार एक प्रभावशाली व कुशल नेतृत्व होता है। नेता का व्यक्तिव व कार्य ही राज्य स्तरीय दलों को मजबूत आधार प्रदान करता है और उन्हें जीवित रखता है। उदाहरण के लिए द्रमुक को प्रभावशाली बनाने में अन्नादुरै, तेल्गुदेसम को एम टी रमा राव, बंगाल में अजय मुखर्जी, उत्कल कांग्रेस में बीजू पटनायक की भूमिका रही है।[30] वर्तमान समय में भी यही स्थति देखने को मिली है जैसे द्रमुक में करूणानिधि, अन्नाद्रमुक में जयललिता, समाजवादी पार्टी में मुलायम सिंह, तर्नमुल कांग्रेस में ममता बनर्जी, हरियाणा विकास पार्टी में वंशी लाल, राष्ट्रीय जनता दल में लालू प्रसाद यादव के व्यक्तित्व और नेतृत्व पर आधारित थी। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी एक बहुत बड़ी चुनोती बनकर राष्ट्रीय दलों मुख्य रूप से भाजपा के सामने आयी है। पार्टी को यह प्रसिद्धी केवल मुलायम सिंह यादव के कारण प्राप्त हुई है।वही बहुजन समाज वादी पार्टी का राज्य स्तर से राष्ट्रीय दल के रूप में उभर कर आने का पूरा श्रेय दल की मुखिया मायावती के कुशल नेतृत्व व उनके प्रभावशाली व शक्तिशाली अस्तित्व को जाता है। लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा की उक्रांद दल में स्थायी सर्वमान्य,

सर्वप्रिय नेतृत्व का अभाव रहा है, इस दल के विभिन्न नेताओं जैसे डी. डी. पन्त, इन्द्रमणि बडोनी, जसवंत सिंह बिष्ट, काशी सिंह एरी, विप्पिन चन्द्र त्रिपाठी, दिवाकर भट्ट, डॉ. नारायण सिंह जन्तवाल, त्रिवेन्द्र सिंह पंवार, बी. डी. रतूड़ी आदि को यद्यपि उत्तराखंडवासियों ने भावनात्मक व नैतिक धरातल पर अपना नेता माना था, लेकिन इन नेताओं का दुर्भाग्य रहा है, कि ये कभीं उत्तराखंड की जनता के लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्धी ना पा सके। जिस तरह से देश के अन्य हिस्सों में क्षेत्रीय दल के नेता अपनी एक ही व्यक्ति पार्टी के लिए प्रसिद हुए वह उक्रांद में देखने को नही मिला जिससे दल कमजोर होता चला गया।

उत्तराखंड राज्य आन्दोलन में जिस प्रकार से उक्रांद ने भूमिका निभाई थी उस कारण स्थानीय जनता का उनसे भावात्मक रूप से लगाव भी रहा। लेकिन भीतरी टूट फुट के कारण दल जनता की उम्मीदों में खरी नही उतर पाई। 2017 में दल की किलता का कारण पूछे जाने पर उक्रांद के पूर्व अध्यक्ष बी. डी. रतूड़ी से पूछे जाने पर उन्होंने कहा की कमी हमारी भी रही है, की हम जनता के मन में वह विश्वास नही बना पाए, जिस प्रकार भाजपा ने राम मंदिर के मुद्दे से जनता का ध्यान आकर्षित किया।[31] उत्तराखंड में क्षेत्रीय दल के रूप में स्थापित रहा उत्तराखंड क्रांति दल अब अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है।

दल बदल – उत्तराखंड क्रांतिदल की राजनीति में सफल न होने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारक यह भी रहा ही दल के सदस्यों का दूसरी पार्टी की और झुकाव देखने को मिला। उक्रांद के पार्टी के ही सदस्य जिन्होंने राज्य गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वह कभी भाजपा में शामिल हुए कभी कांग्रेस में और फिर उक्रांद में वापिस आ गये। दल की यह स्थति देख उक्रांद जनता के मन में कैसे विश्वास अपना सकती थी जब दल के सदस्यों को ही नही पता की उन्हें क्या करना है इससे भी उक्रांद कमजोर हुई है।[32]

उक्रांद के मुददों व राष्ट्रीय दलों के मुद्दो में फर्क न होना–उत्तराखंड क्रांति दल के मुददों व राष्ट्रीय दलों के मुदों में कोई महत्वपूर्ण अंतर देखने को नही मिला है जहां उत्तराखंड क्रांति दल के मुददे राज्य की राजधानी गैरसैण बनाने, राज्य से पलायन रोकने, राज्य की परिसम्पत्तियों को उत्तर परदेश से मुक्त कराना, राज्य में पूर्ण शराबबन्दी कराना, वन अधिनियम जैसे आदि मुद्दे रहे है वहीं सभी राष्ट्रीय दलों के भी यही मुद्दे प्रमुख रहें है।

उत्तराखंड क्रांति दल ने राज्य के सम्पूर्ण विकास के लिए दल को अन्य राजनीतिक दलों से कोई अलग पहचान नही दी है। उक्रांद ने भ्रष्टाचार, शिक्षा, चिकित्सा, आपदा प्रबन्धन, क्रषि, काला बाजारी, राज्य के विकास में बाधक महंगाई, पेयजल व सिंचाई आदि पर कोई ब्लू प्रिंट जारी कर अपने को अन्य राजनीतिक दलों से अलग प्रदर्शित नही किया। क्षेत्रीय दल होने के नाते उक्रांद को वही प्रमुख मुद्दे लाने चाहिए थे जिससे वह खुद को एक अलग पहचान दिला सके जिससे पार्टी कमजोर हुई है।[33]

आपसी मतभेद- उक्रांद के सफल न होने का एक महत्वपूर्ण कारक दल का आपस में ही गुटबाजी व आपसी खीचतान रही है। एक ही विधान सभा क्षेत्र में उक्रांद के कई प्रत्याशियों द्वारा चुनाव में भाग लिया जाना, टिकट न मिलने पर दल की सदस्यता त्याग देना व निर्दलीय रह कर उसी क्षेत्र से चुनाव में भाग लेना[34] दल के सदस्यों द्वारा निजी सवार्थो के लिए सड़कों पर आपसी लड़ाईया[35] ही उक्रांद की किलता का कारण बनी। जिससे दल कमजोर हुई है।

निष्कर्ष

क्षेत्रीय दल के रूप में उत्तराखंड क्रांति दल का उद्भव स्थानीय समस्याओं को केंद्र के सम्मुख रखने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयास से हुआ। इसके गठन का महत्वपूर्ण उद्देश्य उत्तराखंड के रूप में पृथक पर्वतीय राज्य की मांग करना था, जिसमें यह दल सफल रहा तथा साथ ही स्थानीय समस्याओं की ओर केंद्र का ध्यान आकर्षित करने में भी दल ने आंशिक रूप से सफलता प्राप्त की लेकिन जिस क्षेत्रीय संस्कृती, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पहचान की खातिर उक्रांद की नीवं पड़ी थी और जिस कारण यह राजनीति में सफल ना रही उसका एक ही कारण था की क्षेत्रीयता की बात न करना। जब पंजाब में पंजाबियों की कश्मीर में कश्मीरियों की हरियाणा में हरयाणवी की आंध्र प्रदेश में तेलुगु की महाराष्ट्र में मराठी की तमिलनाडु में तमिलों की बात होती है तो उत्तराखंड में उत्तराखंडीयों की बात क्यों नही हो सकी। इसका एक ही कारण था की दल अपनी अस्पष्ट नीतियों, आपसी मतभेदों, कुशल नेतृत्व के अभाव, सत्ता लोलुपता एवं वित्तीय अभावों तथा दल के सदस्यों का दूसरी पार्टी की और झुकाव के कारण दल अपने वास्तविक उद्देश्यों से विमुख हो गया। दल की सबसे बड़ी कमी यह रही की दल संगठनात्मक रूप से मजबूत नही रहा व उत्तराखंड की जनता का झुकाव अन्य राष्ट्रीय दलों जैसे कांग्रेस, भाजपा की ओर चला गया तथा वर्तमान में यह दल अपनी पहचान

बनाने हेतु जद्दोजहद कर रहा है जिसका प्रत्यक्ष उदहारण 2017 के विधानसभा चुनाव परिणाम रहे हैं, जिसमें उक्रांद को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुई है। उक्रांद की किलता का सबसे बडा कारण यह रहा की दल सिर्फ दूसरी पार्टी की वैशाखी बनकर चलता रहा है अगर देश के अन्य सभी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की बात की जाये तो उनका अपना आधार है उनकी अपनी सरकारे है जैसे झारखंड, तेलंगाना में वही राजनीतिक ताकत है जिन्होंने राज्य के लिए लड़ाई लड़ी थी, अन्य क्षेत्रीय ताकते तमिलनाडू में एडीमके, डीमके, कर्नाटक में जनता दल सेकुलर, पश्चिम बंगाल में तरन्मुल कांग्रेस, असम में असम गण परिषद्, पंजाब में अकाली दल, महाराष्ट्र में शिव सेना, महाराष्ट्र नव निर्माण सेना और रास्ट्रवादी कांग्रेस, उत्तर प्रदेश में सपा, बसपा, राष्ट्रीय लोक दल, राज्यों में भी अपने वजूद में है, बल्कि या तो वे सत्ता में है या वहां के प्रमुख विपक्षी दल के रूप में है, इन पार्टियों में भी विभाजन हुआ है, राजनितिक गठबंधन हुआ है, लेकिन वह अभी भी क्षेत्रिय ताकते बनी हुई हैं। परन्तु उत्तराखंड में ऐसा नही हो पाया है क्योंकि आन्दोलन को छोड़ कर उक्रांद अपनी राजनितिक पहचान नही बना पाया और अपने इस राजनैतिक सफर में उक्रांद बढने के बजाय घटती चली गयी और उक्रांद जनता के मन में वह विश्वास नही बना पाया जो राज्य के अन्य क्षेत्रीय दलों ने बनाया। उक्रांद अपना बोट बैंक बनाने में भी असफल रही है, अगर बात दुसरे दलों की कि जाये तो जैसे पंजाब में अकाली दल का प्रमुख वोट बैंक ग्रामीण सिक्ख कृषक वर्ग रहा है, सिक्किम के क्षेत्रीय दल सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट की बात की जाये तो दल अपनी पार्टी को मजबूत करने के लिए संगठन को मजबूत बनाया, दल ने युवा संगठन, विद्यार्थी संगठन, महिला संगठन, मजदूर संगठन, भूतपूर्व संगठन, व्यापार संगठन, चालक संगठन आदि का गठन किया। समाजवादी दल का आधार उत्तर प्रदेश रहा है दल का प्रभाव क्षेत्र ग्रामीण किसान, अन्य पिछड़ी जातियां और अल्पसंख्यक खासकर मुस्लमान रहे है। उक्रांद में यह स्थति देखने को नही मिली है, अगर मिली होती तो उक्रांद को अपनी क्षेत्रीय दल की मान्यता नही खोनी पडती, उक्रांद अब एक गैर पंजी.त राज्य स्तरीय क्षेत्रीय दल मात्र रह गया है। अगर वही दूसरी तरफ तेलंगाना की क्षेत्रीय पार्टी तेलगाना राष्ट्रीय समिति व उत्तराखण्ड की उत्तराखण्ड क्रांति दल की बात की जाय तो दोनों दलों ने अलग राज्य की मांग की क्षेत्रीय भावनाओं को उभारा लेकिन एक के हिस्से में सत्ता आयी और दुसरे ने राज्य में अपना अस्तित्व ही मिटा दिया, उक्रांद की एक गलती यह भी रही की जब इन्होने अलग राज्य की मांग की तो यह सभी दलों को एक साथ लेकर चले उसका नतीजा यह हुआ की राज्य तो बन गया लेकिन उसका राजनैतिक लाभ अन्य राजनैतिक दल ले गये जो राज्य विरोधी थे जबकि तेलांगना के अलग राज्य की मांग एक नेता ने करी उन्होंने राष्ट्रीय दलों को कभी अपने आन्दोलन में शामिल नही किया जिससे वह भारी मतों से विजयी रहे। उक्रांद भी अगर अपनी बात को दमदार तरीके से करे, मुददों को सही समय में उठाये और वह कार्य करे जो जनता के मन में उक्रांद के प्रति विश्वास पैदा कर सके तो यह दल मजबूती से दुबारा अपने शिखर पर पहुंच सकता है, जिस प्रकार देश के अन्य क्षेत्रीय दल है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वीर, गौतम, भारतीय राजनीति, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करणः 2019, पृष्ठ संख्या 133
2. पांगती, नयन सिंह, उत्तराखंड राज्य की राजनीति में उत्तराखंड क्रांति दल की भूमिका, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 2015, पृष्ठ संख्या 5
3. जैन पुखराज, फड़िया बी.एल, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 1990, पृष्ठ संख्या (596-597)
4. उत्तराखंड क्रान्ति दलः दृष्टि पत्र, पृष्ठ संख्या 1
5. करगेती, मदनमोहन, स्वतंत्रता आन्दोलन तथा स्वातन्त्र्योत्तर उत्तराखंड, विनसर पब्लिशिंग, देहरादून, 2016, पृष्ठ संख्या 328। धाद, उत्तराखंड आन्दोलन 1, उत्तराखंड क्रान्ति दल का घोषणा पत्र, पृष्ठ संख्या 119
6. हुसैन, जाकिर, उत्तराखंड पृथक राज्य आन्दोलन ओर क्षेत्रीय राजनीति, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1998, पृष्ठ संख्या 93
7. हुसैन, जाकिर, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 94
8. दत्त, भैरव, स्वतंत्रोत्तर उत्तराखंड में राजनीतिक गतिविधियाँ एक अध्ययन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 2015, पृष्ठ संख्या 137
9. उत्तराखंड क्रान्ति दलः दृष्टि पत्र, पृष्ठ संख्या 1
10. दत्त, भैरव, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 138
11. पांगती, नयन सिंह, उत्तराखंड राज्य की राजनीति में उत्तराखंड क्रांति दल की भूमिका, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 2015, पृष्ठ संख्या 45
12. हुसैन, जाकिर, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 95

13. हुसैन, जाकिर, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 96
14. भट्ट, त्रिलोक चन्द्र, उत्तराखण्ड आन्दोलन, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 2000, पृष्ठ संख्या 219
15. हुसैन, जाकिर, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 96-97
16. हुसैन, जाकिर, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 98
17. नेगी, धीरज सिंह, उत्तराखंड राज्य स्थापना और उसकी पृष्टभूमि, 2011, देहरादून, पृष्ठ संख्या 45
18. बलोदी, राजेन्द्र प्रसाद, उत्तराखंड समग्र ज्ञान कोश, विनसर पब्लिशिंग, देहरादून, 2008, पृष्ठ संख्या 179
19. युगवाणी, मार्च 2002, पृष्ठ संख्या 23
20. नेगी, धीरज सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 106
21. युगवाणी, मार्च 2007, पृष्ठ संख्या (20-21)
22. रीजनल रिपोर्टर, मई 2017, पृष्ठ संख्या 24
23. युगवाणी, अप्रैल 2012 पृष्ठ संख्या 17
24. रीजनल रिपोर्टर, जून 2009, पृष्ठ संख्या 11
25. रीजनल रिपोर्टर, मार्च 2012,पृष्ठ संख्या 7
26. नेगी, धीरज सिंह, उत्तराखंड राज्य स्थापना और उसकी पृष्टभूमि, 2011, देहरादून, पृष्ठ संख्या 52
27. साक्षात्कार, शान्ति प्रसाद भट्ट, प्रवक्ता उत्तराखंड क्रांतिदल
28. युगवाणी, उपचुनाव फरवरी 2008 पृष्ठ संख्या 12 युगवाणी, जनवरी-2008, पृष्ठ संख्या 14-15
29. भाटिया, शंकर सिंह, उत्तराखंड राज्य आन्दोलन का इतिहास, उत्तराखंड शक्ति प्रकाशन, देहरादून, 2013 पृष्ठ संख्या 104 रीजनल रिपोर्टर, मई 2017 पृष्ठ संख्या 24
30. जैन, पुखराज, फड़िया, बी.एल, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 1990, पृष्ठ संख्या 596
31. साक्षात्कार- बी.डी. रतूड़ी, पूर्व अध्यक्ष, उत्तराखंड क्रांति दल
32. https:èkèkwww.amarujala.comèkdehradunèkdiwakr-bhatt-left-uttarakhnd-kranti-dal-hindi-news, 03 December2015
33. पांगती, नयन सिंह, उत्तराखंड राज्य की राजनीति में उत्तराखंड क्रांति दल की भूमिका, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 2015, पृष्ठ संख्या 203
34. राष्ट्रीय सहारा, देहरादून, 14 जनवरी 2017
35. राष्ट्रीय सहारा, देहरादून, 17 जनवरी 2017

मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान का अध्ययन

राम किशन पाल

शोध छात्र ए0पी0एस0वि0वि0 रीवा (म0प्र0)

डॉ० अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

प्राचार्य श्री राम कॉलेज रौरा रीवा (म0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य मानव अधिकार शिक्षा के प्रति प्रशिक्षणार्थियों में जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान के सन्दर्भ में अध्ययन किया जिसके लिए रीवा मण्डल के शिक्षक-प्रशिक्षक महाविद्यालयों मे अध्ययन प्रशिक्षणार्थियों में मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरणों के योगदान को जानने के लिए 400 इकाईयों का चयन याद्च्छिक न्यायदर्शन की लाटरी विधि से किया गया आंकडों का संकलन करने के लिए 'अभिकरणों की मानवाधिकार शिक्षा के प्रति योगदान संबंधी मतावली' का प्रयोग किया गया। आंकडों के विश्लेषण हेतु माध्य, मानक विचलन, टी परीक्षण तथा एफ परीक्षण का प्रयोग कर किया गया। विश्लेषणोपरान्त निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये।

1. ग्रामीण व शहरी छात्रध्यापकों का प्राप्त (पी0) मान (0.01) स्तर पर सार्थक पाया गया।
2. शहरी छात्रध्यापक व छात्रध्यापिकायें यह मानते है कि मानवाधिकार शिक्षा के प्रति विभिन्न अभिकरणों का योगदान प्रभावशाली है।

मुख्य पद: मानवाधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता एवं अभिवृत्ति शिक्षक प्रशिक्षण के प्रशिक्षणार्थी शासकीय और अशासकीय अभिकरण

प्रस्तावना

मानव अधिकार वे अधिकार है जो प्रत्येक मानव को मानव होने के नाते सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण में रहते हुए जीवन में विकस व उत्कर्ष के लिए प्राप्त होते है मानव अधिकारों का उपयोग कर मानव अपनी शारीरिक, सामाजिक, आत्मिक तथा अन्य उपयोगी आवश्यकताओं के निर्वाध रूप से पूर्तिकर व्यक्तित्व का समग्र विकास करने में समर्थ हो पाता है अत: मानव अधिकार उन अधिकारों को कहते हैं जो मनोनयन तथा उत्कर्ष के लिए जो सुविधाएँ नियम, ईश्वर, समाज की ओर से प्राप्त है को कहते है। इन अधिकारों को जनसामान्य तक पहुँचाने हेतु इसकी शिक्षा दी जानी चाहिए इसे मानवाधिकार शिक्षा कहते है मानव अधिकार शिक्षा को बढावा देने में शासकीय व अशासकीय अभिकरणों की उपयोगिता भी सार्थक रूप से प्रभावित कर सकती है, शोध समस्या को ध्यान में रखते हुए निम्न अभिकरणों का विवरण निम्नवत है।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (UNO)

संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक परिषद् ने इसकी (16 फरवरी 1946) स्थापना की। इसका अर्थ अध्ययन व शोध करवाना, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों का प्रारूप तैयार करना व लागू करवाना। मानवाधिकारों के उल्लंघन के अभिकथनों का अन्वेषण करना, विस्तृत उल्लंघन के साक्ष्यों के आधार पर कार्यावाई करना एवं उप-आयोग स्थापित करने की शक्ति इस आयोग को प्रदान की गई। इस आयोग ने श्रीमती फर्कलिन डी0 रूजवेल्ट की अध्यक्षता में जनवरी 1947 में कार्यवाईयों की शुरूवात की जिसके अन्तर्गत उप-आयोगों की स्थापना की जो निम्न है–

1. **अल्पसंख्यक संरक्षण तथा विभेद निवारण आयोग:** इसका कार्य मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की शिकायत की जांच करना, प्रत्येक देश की जनसंख्या की समस्या पर निगाह रखना दासत्व एवं दास-व्यापार पर निगाह रखना। इसके अन्तर्गत शिक्षा में विभेद। मूलवंश के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों के विभेद, नियोजन एवं उपनियोजन के विभेद, न्याय में समानता, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद तथा मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रदत्त समस्त कार्य, धार्मिक अधिकारों एवं आचरण मे विभेद का निस्तारण।
2. **मानव अधिकार केंद्र:** इसका अर्थ मानवाधिकार क्रिया-कलापों में समन्वमात्मक स्थिति पैदा करना है। इसका केंद्र जेनेवा में स्थित है।
3. **मानव अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त:** इसका अर्थ सिविल, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक अधिकार जिसमें विकास का अधिकार भी समाहित हो कि सभी को प्रोन्नति एवं संरक्षण की दिशा में प्रयत्न करना विभिन्न देशों की सरकारों को मानवाधिकारों के प्रति सम्मान को रखने हेतु सलाह देना मानवाधिकारों की पूर्ण प्राप्ति में बाध पहुँचाने वाले तत्वों का निराकरण करना है।
4. **राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाओं का एशिया-पैसेफिक फोरम:** राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों का एशिया पैसेफिक फोरम-1996 में आस्ट्रेलिया में स्थापित किया गया। एशिया महाद्वीप की राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के मध्य समन्वयात्मक संबंध कायम करने हेतु कार्य करता है। पेरिस प्रिंसिपल्स के आधार पर राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था की स्थापना करने की प्रतिबद्धता के साथ कोई भी देश एशिया पैसेफिक फोरम का सदस्य बन सकता है। 2002 तक इस फोरम के सदस्य देश थे- आस्ट्रेलिया मानवाधिकार एवं समानाधिकार आयोग, फिजी मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग भारत, इण्डोनेशिया, मंगोलिया, नेपाल, न्यूजीलैण्ड, फिलीपीन्स एवं श्रीलंका मानवाधिकार थे। डर्बन सम्मेलन 1996 के अन्त में, घोषणा में इसके निम्न उद्देश्य घोषित किये गये-

   क. एशिया पैसेफिक क्षेत्र के देशों में जहाँ आवश्यक हो राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं की स्थापना के लिए एवं विकास की दशा में कार्मिक एवं अन्य सहयोग प्रदान करना।

   ख. आपसी समझौता, सहकारिता एवं संयुक्त गतिविधियों की सेमिनार, मीटिंग, प्रशिक्षण एवं सूचनात्मक विनिमय के द्वारा अभिवृत्ति विकसित करना।

   ग. सरकारी, शैक्षिक संस्थाओं एवं पेरिस सिद्धान्तों पर आधारित मानवाधिकार आयोग के फोरम की बैठकों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।

मानव अधिकारों हेतु शासकीय अभिकरण

मानव अधिकारों के क्रियान्वयन से संबंधित विभिन्न कार्यो के पालन करने के लिए राष्ट्रीय संस्था की स्थापना अत्यन्त प्रभावी साधनों में से एक है। इस प्रकार की संस्था प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के माध्यम से मानवाधिकारों के प्रति जानकारी प्रदान करने तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में निष्पक्ष अन्वेषण करती रहती है। इस प्रकार मानवाधिकारों पर राष्ट्रीय संस्था अथवा आयोग के महत्व को महसूस करते है। 1993 में मानवाधिकार सम्मेलन में यह कहा गया था कि "विश्व मानव अधिकार सम्मेलन सरकारों से ऐसी राष्ट्रीय संरचनाओं तथा संस्थाओं को मजबूत बनाने का अनुरोध करता है जो मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।" इस प्रकार विभिन्न घोषणा तथा कार्यवाही कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर संयुक्त राष्ट्र

मानव अधिकार उच्चायुक्त की 12 सित्मबर 1998 की रिपोर्ट में यह कहा गया कि राज्यों को राष्ट्रीय मानव अधिकार संरचना तथा संस्थाओं की स्थापना को और मजबूत बनाने पर विचार करना चाहिये। भारत में मानव अधिकार आयोग की स्थापना 27 सितम्बर 1993 को की गई। 18 दिसम्बर 1993 को "मानव अधिकार संरक्षण विधेयक" लोकसभा से पारित होने तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् 18 जनवरी 1994 को अधिनियम बना जिसे "मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993" के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम का उद्देश्य राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा जिला स्तर पर मानव अधिकार न्यायालयों की गठन के लिए प्राविधान करना था जो मानव अधिकारों तथा उनसे संबंध अथवा आनुषंगिक मामलों को संरक्षण दे सकें। इस अधिनियम की धारा 2(घ) मानव अधिकार शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई कि मानव अधिकारों का तात्पर्य संविधान द्वारा प्राविधान प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंगविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों की प्राण, स्वतंत्रता, समानता व गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकारों से है जो भारत में न्यायालयों के द्वारा प्रवर्तनीय है। इस अधिनियम के द्वारा भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई तथा राज्यों में राज्य मानव अधिकार व मानव अधिकार न्यायालयों की स्थापना की गई। इस आयोग में आठ (8) सदस्य होते है। इस आयोग ने सरकार के समक्ष मानवाधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए सिफारिशें की जिसमें मुख्य निम्न हैं-

1. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में संशोधन करने की सिफारिश की जिसमें पीडित अथवा उसके परिवार के सदस्यों को अनुतोष प्रदान करने की शक्ति व आयोग की स्वायत्ता सुनिश्चित करनी थी।
2. आयोग ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा यातना, क्रूर अमानवीय व अपमानजनक व्यवहार के विरूद्ध दंड के विभिन्न रूपों को स्वीकार करने की सिफारिश की।
3. पुलिस को सुधारने व शिक्षित करने की, अखिल भारतीय कारागार नियम संग्रह के अन्तर्गत भारतीय कारागार अधिनियम 1984 की पुनः निरीक्षण करने को सिफारिश की। क्योंकि अभिरक्षात्मक अपराध में प्रतिरक्षाविहीन व्यक्ति के विरूद्ध लोक सेवक द्वारा किया गया अमानवीय व्यवहार।
4. जनसाधारण में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।
5. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों को स्थिति में सुधार।
6. आयोग ने बालश्रम की समाप्ति, शिशुओं की शिक्षा के अधिकार आदि में प्रगति की अनुशंसा की।
7. मानव अधिकारों की जानकारी देने तथा वृद्धि हेतु दूरदर्शन तथा आकाशवाणी की अर्न्तग्रस्तता को बढावा देना।

एमनेस्टी इण्टरनेशनल

यह मानवाधिकारों के हित में संघर्ष जर्मनी में स्थापित यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है, जो मानवाधिकारों के हित में संघर्ष करती है। वर्तमान में इसका मुख्यालय लंदन में है। यह संस्था मानव अधिकार हनन से संबंधित मामलों की स्वयं अपने स्तर पर जांच करती है तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर समाधान हेतु संबंधित देशों की सरकार को भेजती है।

एशिया वाचः यह संस्था एशियाई देशों में मानवाधिकार संबंधी घटनाओं को प्रसारित करती है।

हयूमन राइटस वाचः इस संस्था ने अपनी एक रिपोर्ट में अमेरिका में सेग भेद, पुलिस, अत्याचार, भाषा संबंधी भेदभाव एवं जेलों में बुरे व्यवहार पर स्थिति बतायी थी।

इंडियन प्यूपिल्स हयूमन राइट्स कमीशनः इस संस्था की स्थापना 1987 में की गई थी जिसमें बी0एम0 तारकुण्डे मृणाल सेन, रजनी कोठारी, सेमिला थापर आदि है। यह संस्था एक लोक न्यायाधिकार वाली संस्था है। यह कमीशन मानवाधिकार हनन संबंधी मुकदमों की सुनवाई में सहायता देता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्यः मानवाधिकार शिक्षा के प्रति प्रशिक्षणार्थी में जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान का अध्ययन।

परिकल्पनायेंः

1. मानव अधिकार शिक्षा के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरणों के योगदान का अध्ययन।

2. मानव अधिकार शिक्षा के प्रति प्रशिक्षणार्थियों की जागरूकता उत्पन्न करने में शासकीय, अशासकीय अभिकरणों के योगदान का अध्ययन।

शोध अध्ययन की कार्यविधि: शोधकार्य के लिए वर्णनातमक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यायदर्श: रीवा मण्डल शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों के (400) प्रशिक्षणार्थियों का चयन यादृच्छिक-न्यायदर्शन्न विधि की लाटरी विधि से किया गया।

उपकरण: शोधकर्ता ने मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं अभिवृत्ति विकसित करने में अभिकरणों के योगदान संबंधी स्वनिर्मित मतावली का प्रयोग किया जिसमें कुल कथनों की संख्या (30) थी।

सांख्यिकीय विधियाँ: उपकरण से प्राप्त आंकडों का विश्लेषण हेतु टी परीक्षण तथा एक परीक्षण का प्रयोग किया गया।

आँकडों का विश्लेषण एवं व्याख्या: मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान-प्रसार विसरण

माध्य तालिका

	छात्रध्यापक	छात्रध्यापिका	ग्रामीण क्षेत्र का माध्य
ग्रामीण क्षेत्र	16.05	12.60	14.88
शहरी क्षेत्र	14.07	14.79	14.28
प्रशिक्षणार्थियों का माध्य	15.60	13.95	14.58

प्रसार विसरण एनोवा तालिका

सोर्स आफ वैरियन्स	डी0एफ0	एस0एस0	एम0एस0एस0	एफ0
समूह	3	1120.8	372.09	57.32**
अ	1	1051.00	1051.00	161.37**
ब	1	26.49	26.63	4.22**
अ × ब	1	40.57	40.82	6.37**
त्रुटि	396	24.71	6.38	
योग	399	3702.12	9.13	

तालिका से प्रदर्शित F मान F ⋝ 57.32 p > .01 सार्थक है अर्थात ग्रामीण शहरी क्षेत्र के छात्रध्यापक यह मानते है कि मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरणों का योगदान है। दोनों ही क्षेत्र के छात्रध्यापक/छात्रध्यापिका का F मान F ⋝ 161.37 p > .01 तथा F ⋝ 4.22 P > .01 सार्थक है। यह इस ओर इंगित करता है कि दोनों ही क्षेत्र के छात्रध्यापक/छात्रध्यापिका यह मानते है कि अभिकरण मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में सहायक है। अत: वह मानव अधिकार शिक्षा को आवश्यक मानते है।

दोनों के मध्यमान भी यह इंगित करते है कि मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरण सहायक होते है। ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रध्यापक का मध्यमान शहरी क्षेत्रों के छात्रध्यापक/छात्रध्यापिकाओं व ग्रामीण क्षेत्र की छात्रध्यापिकाओं से अधिक है। इन प्राप्त मान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण छात्रध्यापक इन अभिकरणों को आवश्यक मानते है। क्योंकि वे यह मानते है कि ग्रामीण क्षेत्र में मानवाधिकारों का हनन अधिक हो रहा है। अत: मानवाअधिकार शिक्षा की आवश्यकता है। शहरी क्षेत्र के छात्रध्यापक/छात्रध्यापिकाओं का दृष्टिकोण है कि वर्तमान में मानव अधिकारों का हनन हो रहा है। जिसको रोकने हेतु इन अभिकरणों का होना आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं अभिकरणों के द्वारा उन्हें मानवाधिकार के प्रति संज्ञान

विकसित होता है। तथा इस जागरूकता से वे मानवाधिकारों का हनन रोक सकते है। अतः मानवाधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरण सहायक है।

ग्रामीण क्षेत्र की छात्रध्यापिकाओं की संज्ञानता मानव अधिकारों के प्रति कम होने के कारण वे इन अभिकरणों से कम प्रभावित है। यह उनकी पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक व्यवस्था के कारण है जिसने उनको इतना सीमित कर दिया है। उनको इन अभिकरणों के बारे में जानकारी कम है। तथा उनकी मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता कम है। एवं मानव अधिकार शिक्षा के प्रति भी कम संज्ञान रखती है। इसलिए वे विभिन्न अभिकरणों के योगदान से कम परिचित है। जिससे वह मानव अधिकार के प्रति भी कम जागरूक है।

मानव अधिकार शिक्षा के प्रति प्रशिक्षार्थियों की जागरूकता उत्पन्न करने में शासकीय, अशासकीय अभिकरणों का अध्ययन

	N संख्या	मध्य	मनक विचलन	टी परीक्षण
ग्रामीण क्षेत्र	200	31.97	1.97	2.56
शहरी क्षेत्र	200	32.87	2.86	

मध्यमान = 0.88 तालिका 61 में प्राप्त t मान .05 स्तर पर सार्थक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् प्रशिणार्थियों की मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरण सार्थक है। शासकीय व अशासकीय अभिकरणों का मध्यमान क्रमशः (M = 31.97 तथा = 32.87) है। जिससे यह दृष्टिगत है कि दोनों ही क्षेत्र के छात्रध्यापक यह मानते है कि मानव अधिकारों की जानकारी हेतु वर्तमान में मानव अधिकार शिक्षा की अति आवश्यकता है। अतः वे मानते है कि अभिव्यक्ति स्वतंत्रता व वाक्य स्वतंत्रता, शोषण के विरूद्व समानता, पंथनिरपेक्षता तथा पर्यावरणीय मूल्य आदि के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने हेतु मानव अधिकार शिक्षा को आवश्यक मानते है।

शहरी क्षेत्र के छात्रध्यापक यह मानते है कि मानव अधिकारों का हनन ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होता है। उनको उचित समय में न्याय नहीं मिलता है, मानव अधिकारों का हनन शहरों में अधिक होता है। इसका कारण अधिक औद्योगिकीकरण निवास तथा कार्य स्थान में अधिक दूरियां अतिव्यस्थ जीवन शैली तथा स्वकेन्द्रित होना है इसलिए आपसी भाईचारा विभिन्न समूदायों में मेल न होना है इसका पुष्टिकरण अधिक हो रहा है ग्रामीण क्षेत्रों में भी मावन अधिकारों का हनन हो रहा है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अभी भी सौहार्दपूर्ण वातावरण है जिसमें वहां के निवासियों में सदभावना व मैत्रीपूर्ण संबंध है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्र के छात्रध्यापक यह मानते है कि मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता आवयक है। जोकि शासकीय अशासकीय अभिकरणों के द्वारा प्राप्त होती है।

यह इस ओर इंगित करता है कि मानव अधिकार शिक्षा द्वारा पाठ्क्रम में उन सभी 16 तत्वों का समावेश होना चाहिए जिससे मानव अधिकार की अवधारणा मूल्यों तथा मानव अधिकार घोषणा के विभिन्न अनुदेशों की जानकारी प्राप्त हो।

निष्कर्ष

मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरणों के योगदान के सन्दर्भ में निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए-

1. ग्रामीण व शहरी प्रशिक्षणार्थी मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिकरणों का सहायक मानते है।
2. ग्रामीण क्षेत्र के छात्रध्यापक शहरी क्षेत्र के दोनों (छात्रध्यापक व छात्रध्यापिकाओं) और ग्रामीण छात्रध्यापिकाओं की अपेक्षा अभिकरणों को आवश्यक मानते है।
3. शहरी प्रशिक्षणार्थी मानव अधिकार हनन को रोकने में इन अभिकरणों के योगदान को स्वीकार करते है।
4. ग्रामीण छात्रध्यापिकाओं की मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता कम होने के कारण अभिकरणों के योगदान से कम परिचित है।

5. ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों में मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विभिन्न अभिकरण सार्थक है।

सुझाव

मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में अभिरणों के योगदान के सन्दर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते है।

1. ग्रामीण छात्रध्यापिकाओं की मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता के सन्दर्भ में अभिकरणों के योगदान की संज्ञानता काफी निम्न स्तर की है। इस प्रकार इनको मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता करने के लिए इनके पारिवारिक सामाजिक, शैक्षिक परिवेश में सुधार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।
2. शहरी क्षेत्र के प्रशिक्षणार्थियों का मानना है कि वर्तमान में मानव अधिकारों का हनन हो रहा और इसे राकने के लिए अभिकरणों का होना आवश्यक है। क्योंकि ये अभिकरण मानव अधिकार के प्रति संज्ञान विकसित करने में सहायक है अत: इन अभिकरणों को और अधिक सशक्त बनाने की आवश्यकता है साथ ही इनकी पहुँच सुदूर दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों में होना सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
3. यद्यपि ग्रामीण व शहरी प्रशिक्षणार्थी मानव अधिकार शिक्षा के प्रति जागरूकता हेतु इन अीाकरणों को आवश्यक मानते है फिर भी मानव अधिकार शिक्षा की पहुँच जन सामान्य में नहीं है। अत: इसे जन सामान्य तक पहुँचाया जरये जिससे लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता हो सके विशेष रूप से अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता, शोषण के विरूद्ध समानता, पंथनिरपेक्षता तथा पर्यावरणीय मूल्यों के प्रति जागरूक हो सके।
4. शहरी प्रशिक्षणार्थियों का मानना है कि मानव अधिकारों का हनन ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में अधिक होता है। क्योंकि इसका कारण, औद्योगिकीकरण निवास कार्य स्थान में अधिक दूरियाँ, अति व्यस्थ जीवन शैली तथा स्वकेन्द्रित होना है। इसलिए आपसी भाईचारा विभिन्न समुदायों में मेल न होना है। अत: विभिन्न अभिकरणों के द्वारा मानव अधिकार शिक्षा से लोगों में जागरूकता फैलायी जा सकती है। और मानव अधिकारों के हनन को रोकने का प्रयास किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कृष्णा, हरे एवं शास्त्री, श्रवण कुमार (2014): माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत् एन0सी0सी0 प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के डब्लू डब्लू डब्लू एन0एच0आर0सी0 वार्षिक रिपोर्ट (2002–03)।

गुप्ता, एस0पी0 (2017): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

मंगल, ए0के0 एण्ड मंगल, उमा (मई–2019): शिक्षा तकनीकीए पी0एच0आई. लर्निग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

सिंह, ए0के0 (2014): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।

सिंह ए.के. (2015): उच्चतर सामान्य मनाविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

बिहार में असहयोग आन्दोलनः बढ़ता दायरा

डॉ० रीतेश कुमार

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अप्रैल, 1920 ई. में पटना की एक सार्वजनिक सभा में मौलवी शौकत अली का भाषण हुआ, जहाँ असहयोग का एक कार्यक्रम भी तैयार किया गया। असहयोग के समर्थकों में ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरणीधर प्रसाद, मजहरूल हक, शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी तथा मौलाना नुरुल हसन थे। परन्तु हसन इमाम, नवाब सरुराज हुसेन खाँ तथा सच्चिदानन्द सिन्हा असहयोग के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी, बिहार प्रदेश की यह खूबी थी कि मतभेदों के बावजूद आपस में प्रेम–व्यवहार ज्यों–का–त्यों बना रहा।

अगस्त, 1920 ई. बिहार प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन की बैठक भागलपुर में हुई, जिसके सभापति राजेन्द्र प्रसाद थे। इस अवसर पर गाँधीजी ने तार द्वारा यह सूचना दी कि सम्मेलन असहयोग आन्दोलन का समर्थन करे, जिसका कारण पंजाब हत्याकाण्ड तथा खिलाफत था। परन्तु, ब्रजकिशोर प्रसाद के सुझाव पर असहयोग के कारणों में स्वराज्य भी जोड़ दिया गया। भागलपुर सम्मेलन के दो-तीन दिन पहले गुजरात प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन ने भी असहयोग का समर्थन किया था। इस तरह पूरे देश में केवल गुजरात और बिहार ही ऐसे दो प्रांत थे, जिन्होंने प्रांतीय सम्मेलन में कलकत्ता अधिवेशन के पूर्व ही असहयोग का समर्थन किया था।

सच्चिदानन्द सिन्हा तथा हसन इमाम ने 1918 ई. से ही पटना से सर्चलाईट निकालना प्रारंभ किया था। परन्तु, चूँकि यह अखबार असहयोग का समर्थक नहीं था, इसलिये 1920 ई. में सर्चलाईट प्रेस से ही राजेन्द्र प्रसाद ने एक हिन्दी साप्ताहिक *देश* का प्रकाशन प्रारंभ किया, जिसके सम्पादक वे स्वयं थे। देश असहयोग का समर्थक था। राजेन्द्र प्रसाद ने हसन इमाम तथा सच्चिदानन्द सिन्हा से यह समझौता किया था कि अपने सम्पादकीय लेखों में सर्चलाइट न तो असहयोग का समर्थन करेगा, न विरोध। फिर भी, अन्य लोगों का लेख, चाहे वह असहयोग के पक्ष में होगा या विपक्ष में प्रकाशित करेगा।

इसी बीच बिहार के जनकधरी प्रसाद ने गाँधीजी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने असहयोग-संबंधी कुछ चिंता व्यक्त की थी। जनकधारी प्रसाद की महत्वपूर्ण शंका यह थी कि अहिंसात्मक ढंग से चलाये गये असहयोग आंदोलन में हिंसा की कुछ संभावना रह जाती है, क्योंकि भावावेश में आकर कोई भी आदमी हिंसा पर उतारू हो सकता है। गाँधीजी ने जनकधरी प्रसाद के प्रश्नों के उत्तर 15 दिसम्बर, 1920 ई. के यंग इंडिया में प्रकाशित किया। अपनी सहमति व्यक्त करते हुए गाँधीजी ने जबाव दिया था कि निश्चय ही अहिंसात्मक आन्दोलन के हिंसात्मक होने की संभावना रहती है, परन्तु जिस तरह स्वाधीनता के दुरुपयोग के खतरे से डरकर स्वाधीनता आन्दोलन से पीछे नहीं हटा जा सकता, उसी प्रकार किसी अहिंसात्मक आन्दोलन के आगे चलकर हिंसात्मक होने की संभावना से डरकर उसे बन्द नहीं किया जा सकता।[1]

असहयोग आन्दोलन के दौरान बिहार में मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, धरणीधर प्रसाद तथा मुहम्मद शफी परिषद् की उम्मीदवारी से हट गए। अपनी उम्मीदवारी वापस लेते हुए मौलाना मजहरूल हक ने कहा कि एक मुसलमान के नाते वे उस सरकार से सहयोग नहीं कर सकते, जो इस्लाम को बरबाद करने पर तुली हो तथा एक हिन्दू के रूप में भी वे उस सरकार से सहयोग नहीं करेंगे, जिसके हाथ पंजाबी भाईयों के खून से रंगे हों।

छपरा के अवैतनिक दण्डाधिकारी महेन्द्र प्रसाद ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। नागपुर प्रस्ताव के अनुसार अनुग्रह नारायण सिंह तथा ब्रजनन्दन प्रसाद ने अपनी वकालत छोड़ दी। वकालत छोड़नेवाले अन्य लोगों में पटना से मो. खुरशेद हसनैन, गया से

कृष्णप्रकाश सेन सिंह, मुकुटधरी प्रसाद, छपरा से जकरिया हुसेन हाशमी, मथुरा प्रसाद, विंधेश्वर प्रसाद, रामदयालु सिंह, रामवनमी प्रसाद, दरभंगा से ब्रजकिशोर प्रसाद, धरणीधर, मोतिहारी से गोरख प्रसाद, भागलपुर से दीपनारायण सिंह, मुंगेर से श्रीकृष्ण सिंह, तेजेश्वर सिंह, नेमधरी सिंह, पुरुलिया से अतुलचन्द्र घोष, हजारीबाग से रामनारायण सिंह तथा पलामू से शेख साहब थे।

असहयोग से प्रभावित होकर बहुत-से विद्यार्थियों ने महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया और इधर-उधर भटकने लगे। एक दिन मो. फजलुल रहमान ने राजेन्द्र प्रसाद से कहा कि सड़कों पर 10 हजार विद्यार्थी पड़े हुए हैं। अब उनकी पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। फलतः, पटना-गया रोड पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य बने और बद्रीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद तथा प्रेमशंकर बोस प्राध्यापक। उनलोगों ने क्रमशः बी.एन. कॉलेज, पटना कॉलेज तथा टी.एन.बी.जुबली कॉलेज से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय महाविद्यालय का प्राध्यापक पद स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त जगत नारायण लाल, राम चरित्र सिंह तथा अब्दुल बारी-जैसे लोग भी महाविद्यालय में आ गए।

नागपुर कांग्रेस के बाद महात्मा गाँधी जब 6 फरवरी, 1921 ई. को बिहार आये, तब उन्हीं के हाथों राष्ट्रीय महाविद्यालय के भवन में ही बिहार विद्यापीठ का विधिवत् उद्घाटन हुआ। मजहरूल हक को कुलपति तथा ब्रजकिशोर प्रसाद को उपकुलपति बनाया गया। बिहार विद्यापीठ की स्थापना के पश्चात् सरकारी महाविद्यालयों में पढ़नेवाले छात्र काफी उत्साहित हुए तथा एक दिन पटना महाविद्यालय तथा विज्ञान महाविद्यालय के करीब 60 अच्छे-अच्छे विद्यार्थी भी राष्ट्रीय महाविद्यालय में पढ़ने आ गये। विद्यापीठ के छात्रों में जयप्रकाश नारायण, मृत्युंजय प्रसाद, विशेश्वर प्रसाद कोईराला, श्रीकांत ठाकुर विद्यालंकार, मातृका प्रसाद कोईराला, विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, सुरेश्वर पाठक तथा अनिरूद्ध सिंह थे।

करीब-करीब सभी जिलों में बिहार विद्यापीठ से संबद्ध राष्ट्रीय पाठशालाएँ थीं। इनमें करीब 25 हजार विद्यार्थी शिक्षा पाने लगे।[2] इन विद्यालयों की स्थापना के बाद राष्ट्रीय शिक्षा का नाम समुचित ढंग से चलने लगा।

एक दिन पटना इंजीनियरिंग स्कूल के छात्रों की वहां के प्राचार्य से किसी बात पर अनबन हो गई। विद्यार्थियों ने स्कूल का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने मजहरूल हक के पास जाकर कहा कि वे राष्ट्र की पुकार पर अपने विद्यालय की पढ़ाई छोड़ चुके हैं तथा उन्हें बतलाया जाय कि अब वे क्या करें। मजहरूल हक, जो उस समय फ्रेजर रोड पर स्थित सिकन्दर मंजिल में रहते थे, उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने ऐशो-आराम की जिन्दगी छोड़कर उन विद्यार्थियों के साथ पटना-दानापुर सड़क पर स्थित अपने एक मित्र मियाँ खैरूद्दीन के एक खपरैल मकान में चले गए। वहाँ चर्खे का एक कारखाना खोल दिया तथा लड़के चर्खे बनाने लगे। मजहरूल हक उन लड़कों को स्वयं पढ़ाते थे तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की सीख देते थे। इसी जगह का नाम आगे चलकर सदाकत आश्रम पड़ा।

मजहरूल हक के उज्जवल चरित्र पर इस बात से काफी प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने एक मुसलमान विद्यार्थी मुहम्मद खलील को आश्रम से निकाल दिया तथा राजेन्द्र प्रसाद के लाख कहने पर भी उसे पुनः नहीं रखा। मुहम्मद खलील ने भी असहयोग प्रारंभ होने पर महाविद्यालय का त्याग किया था तथा राष्ट्रीय गीत "भारत जननि, तेरी जय तेरी जय हो" से काफी प्रसिद्ध हो गया था। उसे आश्रम से निकाल दिये जाने पर जब राजेन्द्र प्रसाद मजहरूल हक के पास उसकी सिफारिश लेकर गए, तब हक साहब ने बड़े दुःख के साथ कहा, "मैं तुम्हारी बात कभी नहीं टालता, पर इस समय मजबूर हूँ। तुम नहीं जानते कि खलील ने कितना बुरा काम किया है। इसलिये तुम सिफारिश कर रहे हो। मैंने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिये आज तक सब कुछ करता आया हूँ और आज फकीर बन गया हूँ, उस पर इसने ठेस लगाई है। मैंने अबतक की सारी जिन्दगी में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये काम किया है। उसी में आज भी लगा हुआ हूँ। आश्रम में रहकर इसने हिन्दू लड़कों के साथ ऐसा बर्ताव किया है, जिससे वे लड़के, जो मुझ पर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आए हैं, हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने-बनाये काम को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि लड़कों को मुसलमान बनावें। मैं सब कुछ माफ कर सकता हूँ, पर इस तरह इस्लाम के नाम पर विश्वासी लड़कों के साथ विश्वासघात करना बरदाश्त नहीं कर सकता। अब मैं यह जान गया हूँ कि हिन्दी और संस्कृत भी इसने ढोंग के लिए पढ़ी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फसाद भी करा देगा। मैं इसे आश्रम में हरगिज न रहने दूंगा।[3] आगे चलकर मुहम्मद खलील खलील दास के नाम से मशहूर हुए और कई स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराए।

30 सितम्बर, 1921 ई. को मजहरूल हक ने सदाकत आश्रम से ही *मदरलैण्ड* नामक एक अखबार निकालना शुरू किया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार, असहयोग का प्रचार तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देना था।

प्रसंगवश, यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है कि 1919 और 1923 के दरम्यान उत्तरी बिहार में प्लांटर्स के विरूद्ध बहुत से आंदोलन हुए। लेकिन उसके लिए कांग्रेस का समर्थन नहीं था। धनी किसानों और फैक्टरी के अमला रह चुके लोगों ने आंदोलन की अगुआई की। इस आंदोलन को मझोले और गरीब किसानों का भी समर्थन हासिल था जब कि वे गरीब किसान फैक्टरी अमला के जुल्म झेल चुके थे।

यहाँ इस तथ्य को रेखांकित करना प्रासंगिक जान पड़ता है कि चंपारण सत्याग्रह और होमरूल मूवमेंट के बाद कांग्रेस ने अनेकों किसान सभाएं स्थापित की ताकि किसानों की परेशानियों पर ध्यान दिया जा सके। राजेन्द्र प्रसाद ने कथनानुसार संविधान में परिवर्तन कर दिए जाने से उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। उन्होंने जमींदार प्लांटर्स के बीच ताल-मेल बैठाने की कोशिशें की। स्थायी बंदोबस्त के विरूद्ध प्रस्तावित कानून का विरोध करने के लिए नवंबर 1919 में जमींदार व प्लांटर्स का एक सुंयक्त संगठन बनाया गया जिसके अध्यक्ष थे दरभंगा के महाराजा।

इस बात के मद्देयनजर राजेन्द्र प्रसाद ने यह गारंटी दी कि "कांग्रेस का सबसे योग्य और सक्षम कार्यकर्त्ता स्थायी बंदोवस्त पर किसी भी तरह के हमले का विरोध करेगा।" इसमें दो राय नहीं कि इस मामले पर कुछ लोग परस्पर विरोध-रुख अख्तियार किए हुए हैं। इस संघर्ष में जो लोग कुछ मदद कर सकते हैं वे जल्द से जल्द आगे आएं, नहीं तो बहुत देर हो जाएगी।[4]

प्रसाद ने इस बात का विस्तृत उल्लेख किया किया कि जो लोग पहले छोटे जमींदार थे, वे ही आज शिक्षित वर्ग हैं। इनकी उस बंदोबस्त को अस्त-व्यस्त करने के व्यर्थ के काम में काई 'खास दिलचस्पी' नहीं है, चूंकि जमींदारों और 'शिक्षित वर्ग' में कोई द्वन्द्व नहीं है। इसलिए यह गठजोड़ किसी 'परछाई' से लड़ रहा है। यदि उसे नहीं तोड़ा गया तो यह 'शिक्षित वर्ग' (यानि कि छोटे जमींदार) और असामियों को जमींदारों के खिलाफ भड़काएगा।

1919 में रौलट सत्याग्रह के दौरान गाँधी के प्रति जनता की सहानुभूति बहत 'सघन और व्यापक' थी। लोग अंग्रेजों को भारत से खदेड़ देने की बातें खुलकर कर रहे थे। यह भी कहा जा रहा था कि सरकारी कर्मचारियों और पुलिस से बात करके उन्हें अपने पक्ष में कर लिया गया था। मुंगेर और शाहाबाद के वकीलों ने भी बहुत अहम भूमिका अदा की। उन्होंने अपने मुवक्किलों के जरिए हर तरह की अफवाहें, फैलाई। बेतिया राज के गुदरी बाजार में दुकानें बंद रही, धनबाद में रह रहे कच्छ मारवाड़ी और पंजाबी के लोगों ने भी सत्याग्रह का समर्थन किया। झरिया, करकेंद्र और कटरा में आम हड़तालें हुई। कुछ खदानों में लोगों ने कोयल लादने का काम अपने-आप बंद कर दिया। यह आंदोलन झरिया से हजारीबाग में इसरी तक फैल गया। कुछ ऐसी भी मनगढंत कहानियां सुनने में आ रही थीं जिससे यह लग रहा था कि मुसलमानों को सत्याग्रह में हिस्सा लेने के लिए जान-बूझकर ऐसा किया जा रहा था (जैसे कि यह अफवाह फैली हुई थी कि अंग्रेजों की मंशा धार्मिक शहरों में सूअर का मांस परोसने वाले होटल खोलने की है) यद्यपि छोटे मौलवी उत्तर प्रदेश के मौलानाओं से संपर्क में थे। लेकिन फुलवारी के मौलाना और वेहाबी मौलाना फिरंगी महल उलेमाओं के विरूद्ध थे। वे नहीं चाहते थे कि मुसलमान सत्याग्रह में हिस्सा लें।

1920 के शुरू में दरभंगा के महाराजा ने कुछ रियायतें दी। लेकिन ये रियायतें केवल संपन्न असामियों के लिए ही थीं। सारण में एक कब्जेदार संपन्न असामी के पुत्र विद्यानंद 1917 के गाँधी के सत्याग्रह से बहुत प्रभावित हुए (हालांकि गाँधी ने उसके साथ किसी संबंध से इंकार किया)। 1919 और 1920 में दरभंगा राज में एक जबरदस्त आंदोलन में वे संपन्न असामियों के परम्परागत अधिकारों की ही बात करते थे। उन्हें मध्य और निचली जातियों के मझौले और गरीब किसानों का भरपुर समर्थन मिला। क्योंकि ये लोग 'अमला' दमन से बुरी तरह पीड़ित थे। शुरू-शुरू में कांग्रेस ने भी विद्यानंद को समर्थन दिया, लेकिन बाद में समर्थन देना बंद कर दिया। इसकी वजह यह बताई गई कि वह ग्रामीणों में एकता बनाए रखना चाहती है। अप्रैल 1920 में विद्यानंद ने एक मुहिम चलाई कि दरभंगा राज के असामियों की समस्याएं सुलझाने के लिए एक समिति बनाई जाए। लेकिन राजेन्द्र प्रसाद ने इसका विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार वह विश्वास करने लायक नहीं था। हालांकि विद्यानंद द्वारा जमा किए गए तथ्यों का दरभंगा जिला कांग्रेस कमेटी ने मुआयना किया (विद्यानंद ने 100 गवाहों से 13 घंटे बात की थी) लेकिन उस रिपोर्ट को दरभंगा जिला कांग्रेस की मीटिंग में पढ़ा भी नहीं गया।[5]

ऐसा लगता है कि कांग्रेस की किसान सभाएं केवल चम्पारण में ही केन्द्रित रहीं। इन सभाओं की स्थापना गोरख प्रसाद की पहल पर हुई। वे ही मोतिहारी, केसरिया और मेहसी की सभाओं के अध्यक्ष थे। इनमें से पहली दो सभाओं में 50-50 सदस्य थे और तीसरी में 100 सदस्य। बेतिया कस्बा और मचेरगांव की सभाओं में क्रमशः दस और सदस्य ही थे। चम्पारण में अपने अनुभव के आधार पर गोरख प्रसाद ने टिनैंसी एक्ट में कुछ संशोधन करने के सुझाव दिए जो उनके कथनानुसार 'अत्यंत' आवश्यक थे। ये संशोधन कब्जेदार असामियों से संबंधित थे (मसलन, नामांतरण शुल्क निर्धारित करना, कब्जे का हस्तांरण, लकड़ी का अधिकार आदि)। उन्होंने यह भी कहा कि उनके सुझावों को जमींदारी की मुखालफत न समझा जाए क्योंकि अब समय एक जुट होने का आ गया है।

बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में राजेन्द्र प्रसाद ने कृषि के सवाल पर कांग्रेस के रूख को जोरदार शब्दों में दुहराया: "हर एक कांग्रेसी का यह कर्त्तव्य है कि जरूरत की घड़ी में वह आततायी भू-स्वामियों के खिलाफ रैयतों की मदद करे। जहां रैयत आक्रामक हो गए हो वहाँ जमींदारों को समर्थन दें। हमारी विलक्षण सामाजिक संरचना के विविध तत्वों को 'उचित' स्थान पर रख कर ही समाज में सद्भावना बनाए रखी जा सकती है। हमारा संगठन केवल रैयतों के लिए है।"[6]

यह बात साफतौर पर कही गई कि रैयत कांग्रेस की सभाओं में आते रहें ताकि उनकी परेशानियों का पता लगता रहे। लेकिन वे तुरंत किसी हल की उम्मीद न करें। खैर, किसान प्रतिनिधियों के वोट की बदौलत ही बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में 'असहयोग' का प्रस्ताव पारित हो सका।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आंदोलन को संगठित करने वाले कांग्रेसियों के लिए बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमेटी जो हिदायतें जारी करती थी उनमें शीर्ष पर वे हिदायतें होती थीं जो रैयतों को अनुशासित करने के बारे में होती थी। असहयोग आंदोलन की सूचना आम राजनीतिक सभाओं के जरिए नहीं प्रचारित की गई बल्कि यह रैयत सभाओं, पंचायतों और सेवा समितियों के जरिए प्रचारित की गई। जनवरी 1921 में मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुंगेर और पूर्णिया में हाट लूटने की लगभग कुल 35 घटनाएं घटी। अपने को गाँधी का चेला कहने वाले लोगों ने बाजार में वस्तुओं की उचित कीमतें लागू करने की कोशिश की और यह बात फैला दी कि दुकानों को लूट लेने के लिए 'गांधी का हुक्म है'। कांग्रेसियों ने मुजफ्फरपुर जिले का दौरा किया और 'हजारों' पर्चे बांटे ताकि गांववालों में यह बात फैल जाए कि 'उनका शांत रहना अत्यंत आवश्यक है।' राजेन्द्र प्रसाद को यह बात बड़ी अजीब लगी कि दुकानें लूटने की घटनाओं के मद्देनजर फैली 'उत्तेजना' को नियंत्रित करने में जिन लोगों ने मदद की, उन्हीं पर अंकुश लगा दिया गया और जिन लोगों ने आंदोलन के नाम का गलत इस्तेमाल किया, इन्होंने मनमानी करते रहे। बगहा थाना के अन्तर्गत चौतेखा नील फैक्टरी को लूटकर उसमें आग लगा देने की घटना को बेतिया के कांग्रेसियों ने एक 'अपदा' की संज्ञा दी। यह घटना मवेशियों को घास चराने के अधिकार को लेकर घटी।

प्लांटर्स और रैयतों के बीच लंबे समय से विवाद चला आ रहा था। उसकी एक वजह यह भी थी कि असहयोग आंदोलन के कार्यकर्त्ता फैक्टरी बाजारों के समानान्तर बाजार स्थापित कराना चाहते थे। पूरे चम्पारण में संप्रभुता को चुनौती देने की घटनाएं बड़े पैमाने पर घटने लगी थी। फैक्टरी की रखावट में गैर कानूनी ढंग से मवेशियों को घास चराने की घटनाएं आम बात हो गई थी। कुछ कारखानों को अपना बकाया वसूलने की प्रक्रिया शुरू करने के प्रमाण पत्र मिल गए थे। मुजफ्फरपुर के प्लांटर्स के कुछ कारखानों का लोगों ने घेराव कर लिया और उसमें काम करने जानेवाले लोगों को रोक दिया। सारण के एक कारखाने का लोगों ने घेराव कर लिया और उसमें काम करने जाने वाले लोगों को रोक दिया। सारण के एक कारखाने पर लोगों ने हमला बोल दिया। साम्यवादियों की तर्ज पर उन्होंने गन्ने पर अपने अधिकार की मांग की थी। असहयोग के प्रचार-प्रसार से प्रेरित होकर सारण के रैयतों में 'कानूनहीनता' की स्थिति आ गई थी। हथवा राज में लोगों ने लगान देना बंद कर दिया।[7]

निष्कर्ष

असहयोग आंदोलन का आरंभ जनवरी 1921 में हुआ और शुरू में जोर मध्यवर्ग की भागीदारी पर किया गया, जैसे यह कि छात्र स्कूल-कॉलेज छोड़ दें और वकील अपना वकालत का पेशा छोड़ दें। साथ ही, राष्ट्रीय स्कूलों और पंचायती अदालतों की स्थापना, एक करोड़ रूपए का तिलक स्वराज कोष जमा करने और उतने ही सत्याग्रही भरती करने के प्रयास किए गए। धीरे-धीरे विदेशी कपड़ों के बहिष्कार और सार्वजनिक दहन के साथ आंदोलन और भी उग्र बनता गया।

लेकिन असहयोग-खिलाफत आंदोलन ने गाँधीवादी कांग्रेस के नेतृत्व में भारत में जन-आंदोलन की प्रकृति पर अनेक सवाल खड़े किए। जैसा कि ऊपर के पाराग्राफों में हमने देखा, बिहार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस आंदोलन के अलग-अलग रूप रहे। सभी क्षेत्रों में आंदोलन आरंभ में शहरों और कस्बों तक सीमित रहा और वहाँ यह मुख्यत: मध्यवर्ग की भागीदारी पर निर्भर था, जो धीरे-धीरे कम हो गई। दरअसल, अहसयोग आंदोलन की सफलता के पैमाने से गाँधी को पूरा संतोष तो निश्चित ही नहीं मिलने का था। स्कूलों, कॉलेजों और अदालतों के बहिष्कार के आँकड़ों को देखें, तो मध्यवर्ग की भागीदारी कुछ खास नहीं थी, बल्कि किसानों और मजदूरों की भागीदारी अधिक प्रभावशाली थी।

संदर्भ सूची

1. प्रसाद राजेन्द्र, *आत्मकथा,* एशियन पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1957, पृष्ठ 116
2. सिंह अनुग्रह नारायण, *मेरे संस्मरण,* पटना, 1961, पृष्ठ 26
3. सिंह, लता, "नेशनलिस्ट मूवमेंट इन बिहार 1919-1927" *पीएचडी थीसीस,* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, न्यू दिल्ली, 2000, पृष्ठ 63-68
4. दत्ता, के.के. *फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार,* वाल्यूम 1, पटना, 1957, पृष्ठ 327
5. उपरोक्त, पृष्ठ 363
6. दत्ता (1957), पूर्वोक्त, पृष्ठ 363
7. सिंह, लता (2000), पूर्वोक्त, पृष्ठ 89

बिहार में सक्रिय राष्ट्रीय आंदोलन एवं साम्प्रदायिक सद्भाव

डॉ० रूमा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), इतिहास विभाग
एल.एन.टी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फपुर

प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारतीय जनता ने तन-मन-धन से अंग्रेजों की सहायता की। युद्ध के दौरान मित्र-राष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि वे युद्ध निजी स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि विश्व को जनतन्त्रवाद के लिए सुरक्षित बनाने के लिए लड़ रहे हैं, जिससे भारतीयों को यह आशा हो गई कि युद्ध के बाद अवश्य ही भारत का स्वशासण का अधिकार मिलेगा। अंग्रेजों द्वारा खिलाफत का आश्वासन[1] मिलने के पश्चात् भारतीय मुसलमानों ने भी अंग्रेजों को पूरी सहायता प्रदान की, यद्यपि उनकी धर्मशक्ति तुर्की के प्रति थी जो युद्ध में तुर्की की खिलाफ लड़ रहा था।

20 अगस्त, 1917 ई० को भारत मंत्री लॉर्ड मांटेग्यु ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति है कि प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो, जिससे भारत में उत्तरदायी शासन प्रणाली को विकसित किया जाय। उन्होंने बलाया कि इस नीति का कार्यान्वयन क्रमवार होगा। इस घोषणा के प्रायः तीन महीने बाद मांटेग्यु भारत आये और यहाँ के नेताओं से मिलकर राजनीतिक गतिविधियों का अध्ययन किया। जून, 1918 ई० में उन्होंने भारत के वायसराय चेम्सफोर्ड के साथ मिलकर भारत में राजनीतिक सुधार-संबंधी एक योजना तैयार की।

इस रिपोर्ट के निकलने के बाद इसकी काफी आलोचना सारे देश में हुई। बिहार में भी इस पर विचार करने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस की बैठक हुई, जहाँ इसकी तीखी आलोचना की गई। कुछ लोगों ने इसके पक्ष में वक्तव्य दिया तथा कुछ ने विपक्ष में। फिर भी, कुछ संशोधन के साथ इसे स्वीकार कर लिया गया। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, "मेरा अपना स्वभाव शुरू से ही नरम है। उग्र विचार जल्दी हृदय में उठते ही नहीं हैं। इस विषय पर विचार करने में मैं नरम दल के पक्ष का ही समर्थक था। बिहार में इस पर विचार करने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस की बैठक हुई। उसमें मैंने भाग लिया, पर हमेशा उग्र विचारों के विरोध में ही मैं रहा। मैं समझता था कि हममें अभी इतनी शक्ति नहीं आई है कि गवर्नमेण्ट पर जोर देकर हम कुछ भी करा सकते हैं। इस बात का भी मुझे पूरा विश्वास न था कि देश के शासन का सब भार अगर हमारे ऊपर आ जाय तो हम उसका सुचारु रूप से वहन कर सकेंगे। इसलिए मैं उस रिपोर्ट को ठीक मानता था। उसके आधार पर जो कुछ भी हो सकता था, मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार था। मैं यह पसन्द नहीं करता था कि उसकी टीका-टिप्पणी ऐसी हो कि जिससे हमारी अनिच्छा या नामंजूरी समझी जाय। प्रान्तीय कान्फ्रेंस में मतभेद रहा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, यही विचार स्वीकृत भी हुए। हॉं, जहाँ-तहाँ कुछ सुधार सुझाये गये।"[2]

मांटेग्यु चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर विचार करने के लिए 21 अगस्त, 1918 ई० को बिहार के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर हसन इमाम की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बंबई में बुलाया गया, जहाँ इस रिपोर्ट की कटु आलोचना हुई। अधिवेशन ने इस बात पर काफी जोर दिया कि भारत उत्तरदायी शासन के पूर्णतः योग्य है तथा प्रान्तों के साथ-साथ केंद्र में भी उत्तरदायी शासन का श्रीगणेश होना चाहिए। अधिवेशन में यह भी निर्णय लिया गया कि ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के लिए सैयद हसन इमाम के ही नेतृत्व में एक शष्टमण्डल इंगलैण्ड भेजा जाय।

सुधार योजना के साथ-साथ भारत सरकार ने क्रान्तिकारियों की गतिविधयों की जॉच तथा शाड्यंत्रों के दमन-संबंधी कानून बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष सिडनी रॉलेट बनाये गये। 1918 ई. के अन्त में रॉलेट समिति ने अपनी रिपोर्ट

प्रकाशित की, जिसमें भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की कहानी बतलाते हुए इस बात की सिफारिश की गई थी कि भारतीय सुरक्षा अधिनियम के इस प्रावधान को स्थायी कर दिया जाय, जिसके अनुसार बिना किसी कानूनी कार्यवाही के किसी भी व्यक्ति को नजरबन्द किया जा सके। 6 फरवरी, 1919 ई. में सर्वोच्च धारा सभा द्वारा एक विधेयक पारित हो गया, जिसका नाम रॉलेट-कानून दिया गया। इस कानून के विरोध में महात्मा गाँधी ने सारे देश में प्रदर्शन करने के लिए 6 अप्रैल का दिन तय किया।

6 अप्रैल को पटना में जबर्दस्त हड़ताल हुई। सभी दूकानें बन्द हो गईं, परन्तु एक दूकानदार हड़ताल के लिए तैयार नहीं था। यह बात जब हसन इमाम को मालूम हुई तो राजेन्द्र प्रसाद के साथ वे उस दूकान पर गये और दूकानदार के पैरों पर अपनी टोपी उतारकर रख दी। बूढ़ा दूकानदार अवाक् रह गया। कहने लगा, "आपने यह क्या किया, आपका हुक्म ही हमारे लिए काफी होता।" नतीजा यह हुआ कि सारे शहर में *हिन्दू या मुसलमान* सभी की दूकानें बन्द रहीं, चाहे वह सोन-चाँदी या साग-सब्जी की ही क्यों ने हों।[3]

उस दिन हसन इमाम के नेतृत्व में पटना में एक विशाल जूलूस निकाला गया था, जिसमें एक मील तक लोगों की भीड़ थी। बाद में यह भीड़ इतनी बढ़ गई कि किला मैदान तक पहुँचने पर सभा करने के लिए स्थान ही नहीं मिल पाया। जिससे गंगा किनारे रेत पर सभा की गई। सभा की अध्यक्षता हसन इमाम ने की, जिसमें राजेन्द्र प्रसाद, मजहरुल हक, चन्द्रवंशी सहाय, मित्र लाल, मौलवी खुरशेद हुसेन, पूर्णन्दु नारायण सिन्हा तथा शम्भू शरण आदि नेताओं के भाषण हुए।

पटना में 11 अप्रैल को महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के विरुद्ध हसन इमाम की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें राजेन्द्र प्रसाद के पास भेजे गये महात्मा गाँधीजी ने सत्याग्रह-प्रतिज्ञा-पत्र के महत्त्व को समझाया गया। प्रतिज्ञा-पत्र गाँधीजी ने वैसे सत्याग्रहियों के हस्ताक्षर के लिये भेजे थे, जो इस बात के लिये तैयार हों कि वे अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के वैसे कानूनों की अवज्ञा करेंगे, जिन्हें तोड़ने की अनुमति एक मनोनीत समिति देगी तथा उसके लिये जो सजा होगी, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे। सबसे पहले इस पर हसन इमाम ने हस्ताक्षर किया।[4] तथा उसके बाद मजहरुल हक, राजेन्द्र प्रसाद, चन्द्रवंशी सहाय आदि अन्य नेतागण।

इन घटनाओं के विरोध में 13 अप्रैल को अमृतसर के निवासी जब जालियाँवाला बाग में शान्तिपूर्वक एक सभा कर रहे थे, उसी समय जनरल डायर ने 100 भारतीय तथा 50 गोरे सिपाहियों के साथ वहाँ पहुँचकर, लोगों को बिना चेतावनी दिए ही, गोली चलाने के आदेश दे दिया। 1350 चक्र गोलियाँ चलीं, जिसमें 379 आदमी मरे और 1137 घायल हुए। जब कारतूस समाप्त हो गयी, तभी गोली का चलना बन्द हुआ। सरकार ने इस समाचार के फैलने पर रोक लगा दी।

इधर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने युद्धकाल में मुसलमानों को दिए गए अपने वायदों को भंग कर दिया। युद्ध के दौरान भारतीय मुसलमानों को वचन दिया गया था कि ब्रिटिश सरकार खिलाफत की रक्षा करेगी और मेसोपोटामिया, अरेबिया और फिलस्तीन, जिसे जजीरते-उल-अरब कहा जाता है, खलीफा के ही अधीन होंगे। परन्तु, युद्ध के पश्चात् सेवीज संधि द्वारा तुर्क साम्राज्य का विघटन कर दिया गया। इस संबंध में 19 फरवरी, 1920 ई. को अली बन्धुओं तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक शिष्टमण्डल वायसराय से मिला और ब्रिटिश सरकार के वचन-भंग की तरफ उनका ध्यान आकृष्ट किया, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। फरवरी, 1920 ई. में मुहम्मद अली के नेतृत्व में दूसरा शिष्टमण्डल इंगलैण्ड गया और तत्कालीन प्रधानमंत्री लॉयड जार्ज के सामने क्षोभ प्रदर्शित किया। परन्तु, वह भी व्यर्थ साबित हुआ।

इन से क्षुब्ध होकर महात्मा गाँधी ने निश्चय किया कि पंजाब हत्याकाण्ड और तुर्क साम्राज्य के विघटन के विरुद्ध वे देश में असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन चलायेंगे, जिसकी सूचना सभी जगह भेज दी गई।

अप्रैल, 1920 ई. जहाँ असयोग का एक कार्यक्रम भी तैयार किया गया। असहयोग के समर्थकों में ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरणीधर प्रसाद, मजहरुल हक, शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी तथा मौलाना नुरुल हसन थे। परन्तु हसन इमाम, नवाब सरुरान हुसेन खाँ तथा सच्चिदानन्द सिन्हा असहयोग के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी, बिहार प्रदेश की यह खूबी थी कि मतभेदों के बाजवूद आपस में प्रेम-व्यवहार ज्यों-का-त्यों बना रहा। असहयोग पर विचार करने के लिए कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन सितम्बर 1920 ई. में कलकत्ता में बुलाया गया, जिसके सभापति लाला लाजपत राय थे। इस अधिवेशन में बहुत-से नेताओं ने असहयोग का विरोध किया और अल्प बहुमत से असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

असहयोग आन्दोलन के दौरान बिहार में मजहरुल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, धरणीधर प्रसाद तथा मुहम्मद शफी परिषद् की उम्मीदवारी से हट गए। अपनी उम्मीदवारी वापस लेते हुए मौलाना मजहरुल हक ने कहा कि एक

मुसलमान के नाते वे ही उस सरकार से सहयोग नहीं कर सकते, जो इस्लाम को बरबाद करने पर तुली हो तथा एक हिन्दू के रूप में भी वे उस सरकार से सहयोग नहीं करेंगे, जिसके हाथ पंजाबी भाइयों के खून रंगे हों।[5]

असहयोग से प्रभावित होकर बहुत-से विद्यार्थियों ने महाविद्यालयों का परित्याग कर दिया और इधर-उधर भटकने लगे। एक दिन मो0 फजलुल रहमान ने राजेन्द्र प्रसाद से कहा कि सड़कों पर 10 हजार विद्यार्थी पड़े हुए हैं। अब उनकी पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। फलतः, पटना-गया रोड पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया। राजेन्द्र प्रसाद उसके प्राचार्य बने और बद्रीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद तथा प्रेमशंकर बोस प्राध्यापक। उनलोगों ने क्रमशः बी. एन. कॉलेज, पटना कॉलेज तथा टी. एन. बी. जुबली कॉलेज से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय महाविद्यालय का प्राध्यापक पद स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त जगत नारायण लाल, राम चरित्र सिंह तथा अब्दुल बारी-जैसे लोग भी महाविद्यालय में आ गए।

एक दिन पटना इंजीनियरिंग स्कूल के छात्रों की वहाँ के प्राचार्य से किसी बात पर अनबन हो गई। विद्यार्थियों ने स्कूल का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने मजहरुल हक के पास जाकर कहा कि वे राष्ट्र की पुकार पर अपने विद्यालय की पढ़ाई छोड़ चुके हैं तथा उन्हें बतलाया जाय कि अब वे क्या करें। मजहरुल हक, जो उस समय फ्रेजर रोड पर स्थित सिकन्दर मंजिल में रहते थे, उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने ऐशो-आराम की जिन्दगी छोड़कर उन विद्यार्थियों के साथ पटना-दानापुर सड़क पर स्थित अपने एक मित्र मियाँ खैरुद्दीन के एक खपरैल मकान में चले गए। वहाँ चर्खों का एक कारखाना खोल दिया तथा लड़के चर्खे बनाने लगे। मजहरुल हक उन लड़कों को स्वयं पढ़ाते थे तथा *हिन्दू-मुस्लिम एकता* की सीख देते थे। इसी जगह का नाम आगे चलकर सदाकत आश्रम पड़ा।

मजहरुल हक के उज्जवल चरित्र पर इस बात से काफी प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने एक मुसलमान विद्यार्थी मुहम्मद खलील को आश्रम से निकाल दिया तथा राजेन्द्र प्रसाद के लाख कहने पर भी उसे पुनः नहीं रखा।

मुहम्मद खलील ने भी असहयोग प्रारंभ होने पर महाविद्यालय का त्याग किया था तथा राष्ट्रीय गीत "भारत जननि, तेरी जय तेरी जय हो।" से काफी प्रसिद्ध हो गया था। उसे आश्रम से निकाल दिये जाने पर जब राजेन्द्र प्रसाद मजहरुल हक के पास उसकी सिफारिश लेकर गए, तब हक साहब ने बड़े दुःख के साथ कहा, "मैं तुम्हारी बात कभी नहीं टालता, पर इस समय मजबूर हूँ। तुम नहीं जानते कि खलीन ने कितना बुरा काम किया है। इसलिये तुम सिफारिश कर रहे हो। मैंने जिस चीज को अपने सारे जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया है, जिसके लिये आज तब सब कुछ करता आया हूँ और आज फकीर बन गया हूँ, उस पर इसने ठेस लगाई है। मैंने अबतक की सारी जिन्दगी में *हिन्दू-मुस्लिम एकता* के लिये काम किया है। उसी में आज भी लगा हुआ हूँ। आश्रम में रहकर इसने हिन्दू लड़कों के साथ ऐसा बर्ताव किया है, जिससे वे लड़के, जो मुझ पर विश्वास करके प्रेमवश मेरे पास आए हैं, हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव समझने लगे। इसने मेरे सारे जीवन के बने-बनाये काम को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है। इसने इस बात की कोशिश की है कि लड़कों को मुसलमान बनावें। मैं सब कुछ माफ कर सकता हूँ, पर इस तरह इस्लाम के नाम पर विश्वासी लड़कों के साथ विश्वासघात करना बरदाश्त नहीं कर सकता। अब मैं यह जान गया हूँ कि हिन्दी और संस्कृत भी इसने ढोंग के लिए पढ़ी है। एक दिन यह हिन्दू-मुस्लिम फसाद भी करा देगा। मैं इसे आश्रम में हरगिज न हरने दूँगा।"[6] आगे चलकर मुहम्मद खलील खलील दास के नाम से मशहूर हुए और कई स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराए।

30 सितम्बर, 1921 ई. को मजहरुल हक ने सदाकत आश्रम से ही मदरलैण्ड नामक एक अखबार निकालना शुरू किया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का प्रसार, असहयोग का प्रचार तथा हिन्दू-मुसलमान एकता पर बल देना था। धयातव्य है कि लोगों को गाँध ीजी के नेतृत्व में पूरा विश्वास था। लोग समझने लगे थे कि 31 दिसम्बर, 1921 ई. तक स्वराज्य अवश्य मिल जाएगा। परंतु 5 फरवरी, 1922 ई. को उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरीचौरा नामक स्थान में जब लोगों ने उत्तेजित होकर थानेदार तथा 21 सिपाहियों को जिन्दा जला दिया, तब गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन को तत्काल स्थगित करने का आदेश दिया।

ऐसे लोगों को भी घोर निराशा हुई, जो यह समझ बैठे थे कि 31 दिसम्बर, 1921 ई. तक स्वराज्य अवश्य मिल जायेगा। इस संबंध में जनकधरी प्रसाद ने लिखा है, "मोहम्मद शफी साहब की दृढ़ धारणा थी कि 31 दिसम्बर, 1921 ई. तक स्वराज्य अवश्य हो जाएगा। इसकी पूरी संभावना भी हो गयी थी। बम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने साफ-साफ कहा था कि स्वराज्य में केवल एक इंच ही कसर रह गई थी। मेरा भी खयाल है, यदि दूरदर्शिता से काम लिया गया होता और बातों की अकड़ नहीं दिखाई गई होती, तो उसी समय स्वराज्य अवश्य हो गया होता और 1947 ई. वाला खंडित स्वराज्य नहीं लेना पड़ता।...... मोहम्मद शफी बक्सर जेल

में 31 दिसम्बर, 1921 ई. को रात भर जागते रह गये कि स्वराज्य की खबर अब आती है, अब आती है। जब यह समाचार नहीं मिला, तब उन्हें गहरा धक्का लगा।"[7] उल्लेखनीय है कि इसी बीच खिलाफत आन्दोलन भी समाप्त हो गया, क्योंकि तुर्की का शासन मुस्तफा कमाल पाशा के हार्थों में आने से तुर्की में खिलाफत का अन्त कर लोकतन्त्र की स्थापना हुई।

बहरहाल 10 मार्च 1922 ई. को गाँधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर मुकदमा चला तथा 6 वर्ष की साधारण सजा हुई। असहयोग समाप्त हो गया फिर भी राष्ट्रीयता की ज्वाला सुलगती रही। अप्रैल में डॉ. सैयद महमूद को अपने एक भाषण के सिलसिले में सजा हुई। 26 जुलाई को मौलाना मजहरुल हक पर तत्कालीन कारा महानिरीक्षक बनातवाला ने मानहानि का मुकदमा दाखिल किया, क्योंकि हक साहब ने मदरलैण्ड के 23 जून वाले अंक में बक्सर जेल में राजनीतिक कैदियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार के क्रम में कारा प्रशासन की कड़ी आलोचना की थी। अपने सम्पादकीय में हक ने लिखा था कि बिहार के जेलों में राजनीतिक कैदियों के साथ दिनों-दिन बदतर व्यवहार किया जा रहा है। कारा महानिरीक्षक बनातवाला के आदेश से राजनीतिक कैदियों को गाँध ी टोपी पहनने से मनाही है, क्योंकि यह सरकार के विरोध का प्रतीक है। एक दिन महत्त्वाकांक्षी जेलर सन्तोष ने अनेक कैदियों के सिर से गाँधी टोपी छीन ली, उनके पास जहाँ कहीं भी गाँधी टोपी पायी गयी, उसे बरामद कर लिया गया। फिर भी, जब कारा महानिरीक्षक कारा का निरीक्षण करने आये, तो प्रत्येक कैदियों के सर पर गाँधी टोपी थी, क्योंकि उनलोगों ने अपनी धेती को फाड़कर गाँधी टोपी बना ली थी। असहयोगियों की इस दृढ़ता से कारा महानिरीक्षक ने क्षुब्ध होकर कैदियों के बीच सरकार के प्रति कादारी निभाने पर एक भाषण दिया। 12 जून को मलांग नामक एक मोतिहारी के राजनीतिक कैदी को कारा कार्यालय में बुलाकर जेलर ने उसके मुँह में थूका, लार को उसके गाल में मला और जूते से इतनी जोर से उसे ठोकर मारी कि वह जख्मी हो गया और 5 दिनों तक उसका जख्म स्पष्ट दिखाई देता रहा। जेलर ने मलांग की दाढ़ी भी पकड़ कर खींची, जो इस्लाम धर्म का अपमान था, इस घटना से जेल के कैदियों ने 60 दिनों की भूख-हड़ताल शुरू कर दी, जिसमें साधारण कैदी भी शरीक हुए। जब अधीक्षक को यह बात मालूम हुई, जब उसने कैदियों से भूख-हड़ताल बन्द करने की बहुत विनती की, परन्तु कैदी नहीं माने। डॉ. महमूद भी, जो उस समय राजनीतिक कैदी थे, हड़ताल बन्द करने के प्रयास में असफल हरे। अन्त में मलांग के ही प्रयास से 60 दिनों की भूख-हड़ताल समाप्त हुई। अन्त में हक ने लिखा था कि बनातवाला के जेल प्रशासन से हेनरी ह्वीलर की सरकार बिहार में अपनी लोकप्रियता समाप्त कर रही है, यद्धपि इसमें सर ह्वीलर का कहीं भी दोष नहीं है।[8]

1927 ई. में मांटेग्यु-चेम्साफोर्ड सुधार के कार्यों की जाँच के लिए ब्रिटिश सरकार ने आयोग नियुक्त किया, जो 1928 ई. प्रारम्भ में भारत पहुँचा। इस आयोग के सभापति सर जॉन साइमन थे। आयोग की आगमन-संबंधी घोषणा के प्रकाशित होते ही सारे देश में असन्तोष की ज्वाला प्रज्जवलित हो उठी। अली इमाम, सच्चिदानन्द सिन्हा तथा नवाब इस्माइल खाँ ने 16 नवम्बर, 1927 ई. को सरकार को एक ज्ञापन दिया, जिसमें आयोग का विरोध करते हुए यह भावना व्यक्त की गई थी कि इस आयोग में हिन्दुस्तानियों को जान-बूझकर सम्मिलित नहीं किया गया है। इस ज्ञापन में यह भी लिखा गया था कि जब तक एक ऐसे आयोग की नियुक्ति नहीं होगी, जिसमें अंग्रेज तथा भारतीय राजनीतिज्ञ समान अधिकार के साथ रहें तबतक देश के लोग आयोग के साथ थोड़ा भी सहयोग नहीं करेंगे।

7 फरवरी, 1928 ई. को जब यह आयोग बंबई उतरा जब देशव्यापी प्रदर्शन तथा हड़ताल हुई। लाहौर में लाला लाजपत राय ने आयोग के विरुद्ध एक विराट् प्रदर्शन का आयोजन किया। पुलिस ने उनपर अनगिनत लाठियाँ बरसाई, जिसके फलस्वरूप 17 नवम्बर, 1928 ई. को उनकी मृत्यु हो गई। संयुक्त प्रान्त में जवाहरलाल नेहरू तथा गोविन्दवल्लभ पन्त को भी पुलिस की लाठियाँ लगीं।

पटना में 12 दिसम्बर को आयोग के आने का दिन तय था। लाजपत राय पर लाठी-प्रहार तथा 27 नवम्बर को उसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु ने बिहार के लोगों में काफी रोष ला दिया था। 'साइमन वापस जाओ' तथा 'लालाजी की मृत्यु का बदला लेंगे' इत्यादि नारा बिहार में काफी लोकप्रिय हो गया था। पटना युवक सम्मेलन में मुहम्मद आलम ने 'खतरा मोल लो (लिव डेन्जरसली)' का नारा दिया था, जिसकी हजारों प्रतियाँ छपवाकर दिवारों पर चिपकाई गई थीं। आयोग के आगमन के कुछ दिन पूर्व पटना में एक प्रादेशिक सम्मेलन हुआ, जिसमें सभी दलों के लोगों ने आयोग के वहिष्कार का निर्णय किया। तत्पश्चात् अली इमाम के सभापतित्व में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ, जहाँ आयोग का वहिष्कार-संबंधी एक प्रस्ताव पारित हुआ।

निष्कर्ष

असहयोग आन्दोलन तथा बाद की घटनाओं ने बिहारियों में एक नया जोश ला दिया, जो बाद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के क्रम में दृष्टिगोचर हुआ। इस आन्दोलन का असर मौलाना मजहरुल हक के व्यवहारिक जीवन पर इतना अधिक पड़ा कि उन्होंने कीमती-अंग्रेजी परिधनों का त्याग कर लम्बी दाढ़ी ली और सरल जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया। इस काल के भारतीय राष्ट्रीय जीवन में हिन्दू-मुसलमान संबंध विषाक्त हो रहा था तथा अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे होते रहते थे। अप्रील में कलकत्ता में भीषण साम्प्रदायिक दंगा हुआ। इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया बिहार में हुई। अप्रिल और मई के महीनों में सासाराम, मुँगेर, संथालपरगना, मुजफ्फरपुर और दरभंगा के कई स्थानों पर साम्प्रदायिक देंगे हुए। किन्तु जून के महीने में निश्चित रूप से प्रान्त की साम्प्रदायिक स्थिति में सुधार हुआ और बकरीद का त्योहार बिना किसी गंभीर अशांति के सम्पन्न हुआ। कई स्थानों पर अन्तर-साम्प्रदायिक शांति स्थापित करने के लिए शांति समितियाँ स्थापित की गई। मजहरुल हक छपरा में बढ़ते हुए साम्प्रदायिक तनाव से अधिक दुखी थे। उन्होंने 10 जून, 1926 को बिहार के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं तथा नेताओं एवं खिलाफत समिति के कुछ सदस्यों तथा कुछ अन्य लोगों की एक बैठक बुलाई। कई दिनों के विचार-विमर्श के बाद उपस्थित लोगों ने साम्प्रदायिक कटुता के कुप्रभावों को रोकने हेतु काररवाइयाँ करने का संकल्प व्यक्त किया। इस सम्मेलन के निर्णय के अनुसारी मजहरुल हक, मौलवी शफी, जगत नारायण लाल, राजेन्द्र बाबू और कुछ अन्य नेता इसके लिए प्रान्त के दौरा पर निकाले। इसके परिणामस्वरूप बिहार अपेक्षाकृत साम्प्रदायिक दंगों के विषाक्त प्रभाव से मुक्त हुआ।" किन्तु उत्तेजना बनी रही। कई स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। 23 दिसम्बर, 1926 को एक मुसलमान हत्यारे ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोली मार कर हत्या कर दी। इससे देश को बड़ा आघात पहुँचा। बिहार में इस पर सनसनी फैल गई एवं अधिकांश नगरों में उनके सम्मान में हड़तालें मनाई गई।

देश में अनेक नेता संवैधानिक प्रगति के लिए प्रस्तावना के संबंध में सरकार के कट्टर रवैया के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाने को उत्सुक थे। कांग्रेस के अध्यक्ष, श्री आयंगर ने मार्च, 1927 में ऐसेम्बली के सत्रवसान के पूर्व संध्या में नई दिल्ली में एक भावपूर्ण अपील जारी करके राजनैतिक एवं सामप्रदायिक एकता पर विशेष बल दिया। लगभग 30 प्रमुख मुसलमान नेता नई दिल्ली में 20 मार्च, 1927 को मिले और लम्बे विचार-विमर्श के उपरान्त सर्वसम्मति से निम्नलिखित विषयों पर संयुक्त निर्वाचन मंडल के संबंध में निर्णय लिया : (क) बम्बई प्रेसिडेंसी से सिंध को पृथक कर अलग प्रान्त बनाया जाए। (ख) उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त और बलुचिस्तान में अन्य प्रान्तों के समान ही सुधार लागू किए जाएँ। (ग) पंजाब और बंगाल में मुसलमानों को उनकी आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाए। (घ) केंद्रीय विधान मंडल में मुसलमान सदस्यों की संख्या कुल 1/3 से कम नहीं हो और इसके लिए मिश्रित निर्वाचन मंडल प्रणाली जारी की जाए।

यही है वह परिवेश जिसमें संयुक्त निर्वाचन पद्धति के संबंध में दिल्ली प्रस्तावों पर बिहार-उड़ीसा के मुसलमान प्रतिनिधियों की एक सभा 8 मई, 1927 को अंजुमन इस्लामिया हाल में हुई। इसमें अली इमाम, शफी दाउदी और सैयद अब्दुल अजीज ने दिल्ली प्रस्तावों का समर्थन किया किन्तु अन्य प्रमुख मुसलमान नेताओं ने संयुक्त निर्वाचन का डटकर विरोध किया। लम्बी बहस के उपरान्त निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

संदर्भ सूची

1. दि टाइम्स, जनवरी 7, 1918
2. रिर्पोट ऑन इण्डियन कन्स्टीटयूशनल रिफॉर्म्स, कलकत्ता, 1918, पृष्ठ 1
3. दत्त, के.के, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, बिहार गवमेंट प्रेस, पटना, 1957, खण्ड, 1, पृष्ठ 228
4. दि स्टोरी ऑफ जलियाँवाला बाग, पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 5
5. सिंह, अनुग्रह नारायण, मेरे संस्मरण, पटना, 1961, पृष्ठ 26
6. दि स्टोरी ऑफ जलियावाला बाग, पूर्वोक्त, पृष्ठ 11
7. फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्ट, दिसम्बर 1920, पृष्ठ 361-403
8. प्रसाद, राजेन्द्र, आत्मकथा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 120

वर्त्तमान परिदृश्य में जैविक खेती: अवसर और चुनौतियाँ

संतोष कुमार

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, ल०ना०मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

भारत धीरे-धीरे लेकिन लगातार जैविक खेती की ओर बढ़ रहा है। जैविक खेती उन क्षेत्रों के लिए सही विकल्प है, जहाँ रासायनिक उर्वरकों और कृत्रिम कीटनाशियों का खेती में पहले से ही न्यूनतम प्रयोग हो रहा है। दूसरी तरफ सिंचित क्षेत्रों में भी जहाँ रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों का इस्तेमाल अपेक्षाकृत अधिक होता है और भूमि की उपजाऊ क्षमता में भी कमी आ जाती है, जैविक खेती को अपनाकर मृदा और पर्यावरण स्वास्थ्य में वृद्धि की जा सकती है। फसल उत्पादन के अतिरिक्त पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खीपालन, मछलीपालन एवं डेयरी आदि को भी जैविक विधियों से किया जा सकता है। वर्त्तमान समय में तेजी से लोकप्रिय हो रहे आर्गेनिक अनाज, दालें, मसालें, सब्जियां व फल जैविक खेती की संभावनाओं को और बढ़ावा दिला रहे हैं। इसमें ग्रामीण युवाओं को स्थानीय रोजगार और कृषको के आय वृद्धि की भरपूर संभावनाएं हैं। हालांकि, जैविक खेती में किसानों और अन्य हितधरको को कई प्रकार की चुनौतियों जैसे–जागरूकता की कमी, विपणन से जुड़ी समस्याएं, कम्पोस्ट की कमी, जटिल प्रमाणीकरण प्रक्रिया, सहायता के लिए अपर्याप्त सुविधाएं, वित्तीय समर्थन का आभाव आदि है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए केंद्र से लेकर पंचायत स्तरों तक वित्तीय तथा तकनीकि समर्थन की व्यापक तौर पर व्यवस्था करने की जरूरत है।

शब्द कुंजी: जैविक खेती, प्रमाणीकरण, जैव उर्वरक, हरित क्रांति।

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसमें 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर जीवन यापन करती है। हरित क्रांति के साथ हमने खाद्यान में आत्मनिर्भता प्राप्त कर ली है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह-तरह की रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों का प्रयोग से पारिस्थितिकी तंत्रों के जैव तथा अजैव दानों ही घटकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता जा रहा है। जिससे फसल उत्पाद गुणवत्ता में गिरावट के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य एवं मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आई है और पर्यावरण प्रदूषण के रूप में भी इसका खामियाजा भुगतना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में जैविक खेती एक विकल्प के रूप में उभरी है। देश में स्वास्थ्यवर्धक भोजन की उपलब्धता, मृदा की उर्वरता तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु व विभिन्न देश में हमारे देश से आयात होने वाले उत्पादों में जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए देश में जैविक खेती के अधिकाधिक प्रसार की आवश्यकता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

जैविक खेती से तात्पर्य

जैविक खेती एक ऐसी पद्धति है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों के स्थान पर जीवांश खाद् पोशक तत्वों गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जीवाणु कल्चर और जैविक खाद आदि जैव नाशियों आदि का उपयोग किया जाता है। इससे न केवल भूमि की उर्वराशक्ति लंबे समय तक बनी रहती है, बल्कि पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होता और कृषि लागत घटने व उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ने से कृषक को अधिक लाभ भी मिलता है।

जैविक खेती एक पर्यावरण अनुकूल कृषि प्रणाली है। इसमें खाद्यानों, फलों और सब्जियों की पैदावार के दौरान उनका आकार बढ़ाने या वक्त से पहले पकाने के लिये किसी प्रकार के रसायन या पादप नियामकों का प्रयोग भी नहीं किया जाता है। जैविक खेती का उद्देश्य रसायनमुक्त उत्पादों और लाभकारी जैविक सामग्री का प्रयोग करके मृदा स्वास्थ्य में सुधार और फसल उत्पादन को बढ़ावा देना है। इससे उच्च गुणवत्ता वाली फसलों के उत्पादन के लिये मृदा को स्वस्थ और पर्यावरण को प्रदूषणमुक्त बनाया जा सकता है।

भारत में जैविक खेती की वर्त्तमान स्थिति

भारत में विविध कृषि जलवायु क्षेत्रों के कारण विविध किस्मों के जैविक उत्पादों के उत्पादन की वृहत क्षमता उपलब्ध है। देश को कई भागों में विरासत में मिली जैविक खेती की परम्परा एक अतिरिक्त सुअवसर है। निर्यात बाजार की तीव्र बढ़ोतरी के फलस्वरूप देशीय बाजार में भी उतरोत्तर प्रगति हो रही है, जो जैविक उत्पादकों के लिए अपने उत्पादों के निरंतर विक्रय के लिए आशाजनक संकेत है। वर्ल्ड ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर रिर्पाट 2018 के अनुसार भारत जैविक उत्पादकों की संख्या में विश्व में नंबर एक है और जैविक कृषि भूमि के मामले में भारत विश्व में नौवें स्थान पर है। भारत में 2003-04 में जैविक खेती को लेकर गंभीरता दिखाई गई और 42000 हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक खेती की शुरूआत हुई। वर्ष 2017-18 में भारत में जैविक खेती के अंतर्गत कुल 35.6 लाख हेक्टेयर प्रमाणित क्षेत्र था जिसमें से 17.8 लाख हेक्टेयर वन्य अथवा जंगली क्षेत्र और 17.8 लाख हेक्टेयर कर्षित क्षेत्र था। सभी राज्यों में जैविक प्रमाणीकरण के अधीन सबसे अधिक क्षेत्र मध्य प्रदेश में है जिसके बाद राजस्थान, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश है। 2016 में सिक्किम ने जैविक प्रमाणीकरण के तहत अपनी पूरी खेती योग्य भूमि को बदलने की उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त की है।

वर्ष 2017-18 में भारत द्वारा लगभग 17 लाख टन जैविक उत्पादों का उत्पादन किया गया जिसमें खाद्य उत्पादों जैसे कि तिलहन, गन्ना, अनाज, बाजरा, कपास, दालें, औषधीय पौधे, चाय, फल, मसालें, सब्जियां, कॉफी आदि शामिल है। 2017-18 के दौरान कुल निर्यात मात्र 4.58 लाख टन थी जिससे 3453.48 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई। जैविक उत्पाद संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, कनाडा, स्विटजरलैंड, आस्ट्रेलिया, इजराइल, दक्षिणी कोरिया, वियतनाम, न्यूजीलैंड, जापान, आदि देशो को निर्यात किए गए।

जैविक कृषि को सरकार की ओर से भी पूर्ण समर्थन मिल रहा है। कृषि मंत्रालय ने जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय जैविक खेती परियोजना, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, पूर्वोत्तर के लिए प्रौद्योगिकी मिशन और राष्ट्रीय कृषि विकास योजना संचालित कर रहा है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय जैविक उत्पाद कार्यक्रम कार्यान्वित किया है। इस राष्ट्रीय कार्यक्रम में प्रमाणीकरण निकायों के लिए प्रत्यायन कार्यक्रम, जैविक उत्पादन के लिए मापदंड, जैविक खेती को बढ़ावा देना आदि शामिल है। अप्रसंस्कृत कृषि उत्पादों के लिए उत्पादन और प्रत्यायन प्रणाली हेतु राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के मानकों को यूरोपीय आयोग और स्विटजरलैंड ने अपने देश के मानकों के समकक्ष माना है। भारत में जैविक खेती से संबंधित तथ्यों को तालिका-1 के द्वारा दर्षाया गया है–

तालिका-1

वर्ष	जैविक क्षेत्र (हेक्टेयर में)	कुल कृषि भूमि का जैविक खेती (प्रतिशत में)	जैविक उत्पादक	जैविक खुदरा बिक्री (मिलियन •)
2014	720000.00	0.40	650000.00	101.32
2015	1180000.00	0.66	585200.00	144.20
2016	1490000.00	0.83	835000.00	171.65
2017	1780000.00	0.99	1093288.00	185.89
2018	1938220.79	1.08	1149371.00	185.89

स्त्रोत: एफ. आई. बी. एल. सर्वे 2020।

जैविक उत्पादों की गुणवत्ता

यह सिद्ध हो चुका है कि परंपरागत खेती से प्राप्त उत्पादों की तुलना में जैविक उत्पादों की गुणवत्ता बेहतर होती है। जैविक खेती से प्राप्त उत्पादों की गुणवत्ता का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

* जैविक पदार्थो में अधिक शुष्क पदार्थ, खनिज और आक्सीकारक विरोधी तत्व पाए जाते है।
* 94-100 प्रतिशत जैविक उत्पाद पीड़कनाशी रहित पाए जाते है।
* जैविक सब्जियों में नाइट्रेट की मात्र 50 प्रतिशत कम होती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है।
* कई अनुसंधान परिणाम सिद्ध करते हैं कि परंपरागत कृषि से प्राप्त उत्पादों की तुलना में जैविक उत्पाद अधिक स्वादिष्ट होते है।
* परंपरागत कृषि से प्राप्त उत्पादों की तुलना में औसतन ऑक्सीकारक विरोधी तत्वों की मात्र 50 प्रतिशत अधिक होती है, जो शारीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते है।

बाजार में प्रचलित कुछ आर्गेनिक ब्रांड

आजकल बाजार में कई ब्रांड के जैविक खाद्य पदार्थ उपलब्ध है जिनमें कुछ बड़े आर्गेनिक ब्रांडो के नामों में आर्गेनिक इंडिया, प्योर एंड शयोर, फैब इंडिया, नवधन्य, डाउनटू अर्थ, 24 मंत्र, ग्रीन सेस, सात्विक, सन आर्गेनोफूडस, आर्गेनिका, सनराइज, आर्गेनिक तत्व इत्यादि शामिल है। उपरोक्त के अलावा भी बाजार में कई आर्गेनिक ब्रांड है। देश के कई बड़े रिटेल स्टोर्स जैसे रिलायंस, हाइपर सिटी, बिग बाजार स्पेंसर्स और ईजी डे पर भी जैविक खाद्य पदार्थ मिलते है।

जैविक खेती में अवसर

वर्त्तमान समय में जैविक उत्पादो के लाभों को देखते हुए लोगो का जैविक खेती की ओर रूझान बढ़ा है। कोरोना आपदा के बाद लोग खाने के लिए ऐसे सामान ढूढ़ रहे है जिससे उनकी इम्युनिटी बढ़े। इसके कारण दुनियाभर में पौष्टिक और केमिकल फ्री भोजन की मांग बढ़ी है। वर्त्तमान में जैविक खेती के द्वारा इस आपदा को अवसर में बदला जा सकता है। जैविक खेती की महत्ता निम्नलिखित है–

1. सतत कृषि विकास– इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में ग्रामीण विकास के लिए कृषि का विकास आवश्यक है क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। यह तय है कि भारत में कृषि विकास के बिना ग्रामीण विकास संभंव नहीं है। इस दशा में जैविक खेती को अपनाकर बहुत सी समस्याओं का सामना सफलतापूर्वक किया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता हानि, पानी की कमी, गरीबी और कुपोषण आदि कुछ ऐसी चुनौतियां है जो दिनोंदिन बढ़ती जी जा रही है। इन समस्याओं के सामाधन में जैविक खेती महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।
2. कृषि आय– जैविक खेती को अपनाकर ग्रामीणों की आमदनी बढ़ाने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते हैं। जैविक उत्पादों के निर्यात कों बढ़ाकर इनसे प्राप्त आय को बढ़ाया जा सकता है। भारत जैविक विधि से उत्पादित सोयाबीन कपास, चीनी, तिलहन, दलहन, बासमती धन, मसाले, चाय, फल सूखे फल, सब्जियां, कॉफी और उनसे प्राप्त मूल्य संवंर्धित उत्पादों का निर्यात करता है। इससे अप्रत्यक्ष रूप से कृषकों की आय में बढ़ोतरी होती है। साथ ही घरेलू बाजारो में भी जैविक उत्पादों की मांग लगातार बढ़ती जा रही है जिससे कृषकों को अच्छे लाभ की संभावनाएं दिनों दिन बढ़ रही है।
3. रोजगार के अवसर– जैविक खेती से प्राप्त कच्चे पदार्थो का ग्रामीण स्तर पर मूल्य संवर्धन किया जा सकता है। किसान अपने जैविक उत्पादों का प्राथमिक खाद्य प्रसंस्करण करके अधिक मुनाफा कमा सकते है। फल, सब्जियां एवं दालों आदि से संबंधित प्रसंस्करण इकाईयों को स्थापित करके रोजगार के अवसरों एवं आय में पुन: वृद्धि की जा सकती है। जैविक खेती में अनेक आदानों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए जैविक खेती में अनेक आदनों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए जैविक खेती में कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, गोबर गैस सलरी, जैव-पीड़कनाषी, जैव उर्वरकों आदि की आवश्यकता होती है। अत: उपरोक्त आदानों का उत्पादन एवं विपणन ग्रामीणों द्वारा स्वयं किया जा सकता है जिससे काफी ग्रामीण युवकों को

रोजगार मिल सकते है। ग्रामीण उत्पादक अपने उत्पादों का स्वयं विपणन करके भी रोजगार प्राप्ति कर सकते है। जैविक प्रमाणीकरण मे भी काफी लोगों को रोजगार की प्राप्ति होती है। चूकि जैविक खेती में फसल-विविधीकरण एवं फसल चक्रों पर विशेष बल दिया जाता है। अत: इससे वर्ष भर रोजगार के अवसरों की उपलब्धता रहती है।

जैविक खेती से संबंधित चुनौतियाँ

जैविक खेती के प्रगति में कई चुनौतियाँ है जिसमें प्रमुख चुनौतियाँ निम्नांकित है–

* जैविक बीजों की कमी।
* किसानों के पास कम्पोस्ट तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की जानकारी के साथ ही उसके प्रयोगों की जानकारी का भी अभाव है।
* जैविक उत्पाद के लिए विपणन और वितरण नेटवर्क का अभाव है। क्योंकि मांग कम होने के कारण खुदरा विक्रेता इन उत्पादों को बेचने के प्रति रूचि नहीं रखते। आपूर्ति संबंधी समस्याओं और किसानों के बीच जागरूकता में कमी होने के चलते यह समस्या बढ़ गई है।
* रूपांतरण अवधि के दौरान कम आय जैविक खेती के प्रसार मे बाधा बनती है।
* फसल मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों के लिए प्रोद्योगिकी पैकेजों का अभाव। जैविक उत्पादन प्रणालियों में खरपतवार, कीटनाशक और रोगों के प्रबंधन के लिए पर्यावरण अनुकूल तकनीकों को विकसित करने के लिए और अधिक शोधें की आवश्यकता है।
* जैविक खेती अपनाने के आरंभ के वर्षों में कुछ मामलों में फसल के पैदावार में कमी आती है। कई बार कम पैदावार मिलने से किसानों का जैविक खेती के प्रति मोह भंग हो जाता है।
* जैविक खाद और जैव उर्वरकों की सीमित उपलब्धता।
* प्रमाणीकरण प्रक्रियाओं में जटिलताएं एवं अधिक खर्च।
* जैविक क्षेत्र में संगठनों के बीच कमजोर संबंध।
* कुछ आदानों की उच्च लागत।
* वित्तीय समर्थन का आभाव।

सुझाव

* जैविक उत्पादन में प्रमाणीकरण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसको सरल करने की आवश्यकता है जिससे लघु एवं सीमांत किसान भी जैविक उत्पादन कर सकें। इससे जैविक खेती को प्रोत्साहन मिलेगा।
* रूपांतरण अवधि में जैविक खेती करने वाले किसानों को उचित मुआवजा मिलनी चाहिए।
* जैविक खेती करने वाले किसानों को पर्याप्त वित्तीय तथा तकनीकी समर्थन मिलनी चाहिए।
* जैविक उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए खुदरा बिक्री, पैकेजिंग और लेबलिंग का भी बेहतर प्रबंधन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

भारत परंपरागत रूप से विश्व का सबसे बड़ा जैविक खेती करने वाला देश है। यहाँ के प्राकृतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक घटनाक्रम जैविक खेती के अनुकूल है। आज देश के कई प्रदेशों में फलों व सब्जियों की जैविक खेती का भविष्य उज्जवल नजर आता है। आर्गेनिक फूड को लेकर लोगों में काफी जागरूकता बढ़ी है। यह विदेशी मुद्रा अर्जन, सतत् ग्रामीण विकास, कृषि आय की स्थिरता और स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन में सहायक है। वर्त्तमान समय में जैविक खेती में अनेक चुनौतियाँ है जिसका सामाधन सरकारी स्तर पर पहल करक करना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. वीरेन्द्र कुमार (2018), जैविक खेती की ओर बढ़ता रूझान, कुरूक्षेत्र पत्रिका, फरवरी 2018।
2. नरेन्द्र कुमार (2017), कार्बनिक खेती में जैव उर्वरकों का योगदान, विज्ञान प्रगति, अक्टूबर 2017
3. अमित कुमार सिंह (2014), जैविक खेती, कृषि ज्ञान गंगा, ऐस्ट्राल इंटरनेशनल लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. डा0 चन्द्र प्रकाश शुक्ल (2015), जैविक खेती, पोइन्टर पब्लिषर्स, जयपुर
5. वीरेन्द्र बहादुर सिंह (2018), जैविक खेती, दया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
6. अरूण कुमार शार्मा (2008), जैविक खेती, नई दिशाए, एग्रोबायोस, जोधपुर
7. डॉ. दिनेश कुमार (2019), सतत कृषि विकास में जैविक खेती की भूमिका, कुरूक्षेत्र पत्रिका, मई 2019
8. सी0 पी0 शुक्ल (2015), जैविक खेती, बायोग्रीन बुक, नई दिल्ली
9. आई एफ बी एल एवं आई. एफ. ओ. ए. एम. ईयर बुक, 2018
10. http://www.apeda.gov.in

जनजातीय हस्तशिल्प पर कोविड-19 का आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावः छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष संदर्भ में

शिव कुमार सिंघल

पीएच.डी. शोधार्थी - अर्थशास्त्र, बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

छत्तीसगढ़ राज्य जनजातीय बहुल क्षेत्र है। देश की जनजातीय आबादी का आधे से अधिक भाग छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, झारखण्ड व गुजरात में निवास करता है। छत्तीसगढ़ राज्य में 42 प्रकार की जनजातियां है जिसे 161 उपसमूह में विभाजित किया जाता है। छत्तीसगढ़ में निवास कर रही जनजातियां जीविकोपार्जन हेतु कृषि के अतिरिक्त विभिन्न परंपरागत हस्तशिल्प का निर्माण कर, निर्माण श्रमिक का कार्य कर, लघु वनोपजों का बाजार में विक्रय कर अर्थोपार्जन करती है व सामान्य (परंपरागत) जीवन जीने में यकीन रखती है। कोविड-19 महामारी के कारण जनजातीय आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव हुआ है। जहां पहले हस्तशिल्प वस्तुओं का जनजातियां निर्माण कर विक्रय के माध्यम से जीविकोपार्जन कर रही थी वहीं कोविड-19 व प्रतिबंधें के कारण पूर्ण बंद की स्थिति में जनजातीय हस्तशिल्प कला निर्माण की गति मंद पड़ गई है, निर्यात प्रतिबंध ने भी जनजातीय हस्तशिल्प को प्रभावित किया है जिससे जनजातीय जीवन स्तर पर भी प्रभाव पड़ा है।

कुंजी शब्दः जनजातियां एवं कोविड-19, कोविड-19 का जनजातीय हस्तशिल्प पर प्रभाव, छत्तीसगढ़ की जनजातियां व जीविकोपार्जन

प्रस्तावना

जनजातियों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की भारतीय ग्रामीण सभ्यता का। छत्तीसगढ़ राज्य की कुल जनसंख्या जनगणना 2011 के अनुसार 2,55,45,198 है। इस जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या 78,22,902 है। कुल जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या है। छत्तीसगढ़ राज्य की जनजातीय जनसंख्या देश की कुल जनजाति जनसंख्या का 6.2 प्रतिशत है। इस राज्य की अधिकांश जनजाति "प्रोटो आस्ट्रेलाइड" प्रकार की है। छत्तीसगढ़ के बस्तर को जनजातियों की भूमि कहा जाता है। इस राज्य में निवास करने वाली कुछ जनजातियां जैसे– हल्बा, बैगा, गोंड, मुरिया, माड़िया, कमार, बिरहोर, कोरकु, धुरवा, मांझी आदि है। जनगणना 2011 के अनुसार छत्तीसगढ़ के 27 जिलों में रहने वाली जनजातियां जीविकोपार्जन, अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न तरह के आर्थिक क्रियाकलाप जैसे– कृषि करना, जनजातीय परंपरागत हस्तशिल्प का निर्माण, निर्माणी श्रमिक का कार्य, लघु वनोपजों जैसे–चिरौंजी, लाख, गोंद, भेलवा, तेदु पत्ता, हर्रा, साल बीज, महुआ आदि का संग्रह कर बाजार में विक्रय कर व विभिन्न संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों से जुडकर् कर्मकार का कार्य करना जनजातियों के जीवन का एक हिस्सा है। कोविड-19 महामारी के कारण लागू प्रतिबधों ने जनजातीय आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला है। जहां पहले जनजातियां विभिन्न तरह की हस्तशिल्प वस्तुओं का उत्पादन कर अर्थोपार्जन कर रही थी वहीं अब आयात व निर्यात के प्रतिबंधें ने हस्तशिल्प निर्माण की गति को मंद कर दिया है। जनजातियां विभिन्न तरह की हस्तशिल्प वस्तुओं का उत्पादन कर स्थानीय बाजार में, प्रदर्शनियों के माध्यम से, एम्पोरियम में,

राज्य सरकार को बिक्री कर व राज्य सरकार मांग के अनुसार देश-विदेश में इन जनजातीय परंपरागत हस्तशिल्प का निर्यात करती थी। प्रतिबंधें एवं कोविड-19 के कारण पूरी व्यवस्था चरमरा गई है। जिसका सीध असर इन हस्तशिल्प कलाओं से जीवन यापन कर रहे जनजातियों पर पड़ा है। छत्तीसगढ़ राज्य की जनजातीय हस्तशिल्प अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर संभाग में जनजातियों द्वारा हस्तशिल्प निर्माण का उत्कृष्ट कार्य किया जाता है।

डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी ने जनजातीय हस्तशिल्प कलाओं के संबंध में कहा है कि "हस्तशिल्प की वस्तुएं हमारी मौन राजदूत है, बिना कुछ कहे यह हमारी जीवन प्रणाली, हमारी संस्कृति, हमारे रीति-रिवाजों व हमारे विचारों के बारे में बहुत कुछ कह देती है।"

विशाल अर्थ और स्वरूप लिए शिल्प शब्द-मानव व सभ्यता और संस्कृति का घोतक है। जनजातीय हस्तशिल्प कला मानव सभ्यता, मानव कला की प्राचीनता का बोध कराता है। छत्तीगढ़ राज्य का जनजातीय बहुल क्षेत्र-खनिज संपदा, वनों एवं वनोपजों से समृद्ध, इठलाती-इतराती नदियां, सीधे सरल स्वभाव वाले मानव जन, लोक संस्कृति व लोक गीतों के धरोहर वाले प्रकृति की गोद में रचा-बसा अरण्य क्षेत्र है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. कोविड-19 का जनजातीय हस्तशिल्प पर आर्थिक प्रभावों का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ राज्य में जनजातीय जीविकोपार्जन व अर्थोपार्जन के माध्यम का अध्ययन करना।

शोध हेतु परिकल्पना

जनजातीय हस्तशिल्प पर कोविड-19 का बुरा आर्थिक प्रभाव हुआ है। हस्तशिल्प के अतिरिक्त जनजातियों के रोजगार, जीविकोपार्जन के साधन जैसे–कृषि, मजदूरी, वनोपज आदि से जीवन यापन को कोविड-19 ने प्रभावित किया है।

साहित्य की समीक्षा

जनजातीय हस्तशिल्प एवं आर्थिक स्थिति से संबंधित विशयों पर समय-समय पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार रखे है इनमें से कुछ निम्नानुसार है-

1. **साहू, छबिराम (2012) जनजातीय हस्तकलाएं: एक ऐतिहासिक अध्ययन बस्तर संभाग के विशेष संदर्भ में. पीएच. डी. शोध प्रबंध, इतिहास अध्ययनशाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग.** ने बस्तर संभाग के जनजातियों में प्रचलित हस्तकलाओं का अध्ययन किया एवं पाया कि जनजातीय हस्तशिल्प से बस्तर के आदिवासियों के जीवन में आर्थिक रूप से सकारात्मक परिवर्तन स्पष्ट दिखायी पड़ता है। परन्तु जनजातीय कलाकारों द्वारा निर्मित हस्तशिल्प वस्तुओं के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने तथा विपणन के लिए अभी भी सशक्त कदम उठाये जाने हेतु राज्य शासन को और भी अधिक गंभीर प्रयास करना होगा।
2. **सिंह, गीता (2013) जनजातीय श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बस्तर जिले के शिल्पकला उद्योग में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों पर आधारित एक सामाजिक अध्ययन. पीएच.डी. शोध प्रबंध समाजशास्त्र अध्ययन शाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़** ने जनजातीय श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बस्तर जिले की शिल्पकला उद्योग में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों पर आधारित एक सामाजिक अध्ययन विषय पर अध्ययन करते हुए पाया कि शिल्पकला उद्योग में जनजातीय श्रमिकों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पुरूष श्रमिकों की अपेक्षा महिला श्रमिकों की समस्या अधिक है। सरकार की योजनाओं को और अधिक सुगम बनाने की आवश्यकता है, हस्तशिल्प कला का क्षेत्र आज केवल छत्तीसगढ़ और भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विश्व में अलग पहचान बना चुका है। यह कला जनजातीयों की संस्कृति, सभ्यता की अभिव्यक्ति है।

3. **अंसारी, खुदैजा परवीन (2013) मध्यप्रदेश के हस्तशिल्प उद्योग का एक आर्थिक विशलेशण सागर जिले के संदर्भ में. शोध प्रबंध अर्थशास्त्र अध्ययन शाला डॉ. हरिशंकर गौर विश्वविद्यालय सागर मध्यप्रदेश** ने मध्यप्रदेश के हस्तशिल्प का आर्थिक विश्लेशण के अपने अध्ययन में पाया कि भारत प्राचीन समय से ही हस्तशिल्प के लिए विख्यात रहा है भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक छवि में हस्तशिल्प की संमृद्ध विरासत का बड़ा योगदान रहा है। हस्तशिल्प उद्योगों के माध्यम से 1.3 करोड़ से भी अधिक शिल्पी व बुनकारों को रोजगार मिला है जिनमें एक बड़ा प्रतिशत समाज के कमजोर वर्ग का है। हस्तशिल्प उद्योग पर्यावरण हितैशी, कम पूंजी निवेश, मूल्य संवर्धन का ऊँचा अनुपात, आयात सुगमता, कच्चे माल की उपलब्धता एवं उच्च निर्यात संभावनाएं इस क्षेत्र की शक्ति है, शिल्पियों के समस्याओं के समाधान हेतु बदलती परिस्थिती के अनुरूप वैज्ञानिक एवं आधुनिक प्रबंध व्यवस्था को लागू किया जाना चाहिए। शिल्पियों को संकुलों एवं सहकारिता के द्वारा संगठित करने पर जोर देना होगा जिसे हस्तशिल्पियों का विकास, संवृद्धि तथा पर्यावरण, समाज कल्याण के मानको को ध्यान में रखकर सुनिश्चित करना होगा।
4. **शर्मा, श्रीमती शीतल (2016) छत्तीसगढ़ जनजातियों के आर्थिक विकास में हस्तशिल्प कला का योगदान बेल मेटल-काष्ठ कला बस्तर संभाग के संदर्भ में पीएच.डी. शोध प्रबंध, वाणिज्य अध्ययनशाला, प. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़,** ने छत्तीसगढ़ जनजातियों के आर्थिक विकास मे बेल मेटल एवं काष्ठ कला का अध्ययन करते हुए पाया कि हस्तशिल्प भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। हस्तशिल्प व्यवसाय मे मुख्यत: पिछड़ी हुई जनजातियों के कारीगर सम्मिलित है। इस क्षेत्र मे लगभग 25000 कारीगर बस्तर संभाग मे हस्तशिल्प व्यवसाय में संलग्न हैं। इस क्षेत्र मे 14 तरह की हस्तशिल्प कलाएं प्रसिद्ध हैं। पिछले कुछ वर्षो में यहाँ कारीगरों की संख्या मे वृद्धि एवं निर्यात प्रतिशत बढ़ा है। इन जनजातियों का हस्तशिल्प के माध्यम से अर्थोपार्जन पूर्ण व कुशल रूप से होता रहे इस कारण सरकार को और अधिक कुशल योजनाएं बनाने की आवश्यकता है।

अनुसंधान अभिकल्प एवं प्रविधि

1. **अध्ययन का क्षेत्र:** अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य के 27 जिलों को लिया गया है। छत्तीसगढ़ राज्य अपने मातृ राज्य मध्यप्रदेश से अलग होकर 01 नवम्बर सन् 2000 को बना। वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य में जिलों की संख्या 27 है। ये सभी 27 जिले जनजातियों का निवास स्थान भी है। छत्तीसगढ़ राज्य जनजातियों का गढ़ कहा जाता है। छत्तीसगढ़ राज्य में 42 प्रकार की जनजातियां हैं जिन्हें 161 उपसमूहों में विभाजित किया जाता है। इस राज्य में बसने वाली 07 विशेष पिछड़ी जनजातियां-अबुझमाड़िया, बैंगा, कमार, बिरहोर, कोरवा, भुजियां एवं पंडोप है। इस क्षेत्र में बसने वाली जनजातियों की अपनी एक विशेष परंपरागत हस्तशिल्प है जिससे जनजातियों की संस्कृति, सभ्यता का बोध होता है। छत्तीसगढ़ की कुल जनजाति जनसंख्या 78,22,902 है यहां की जनजातियां विभिन्न तरह की हस्तशिल्प जैसे—बेलमेटल शिल्प, मिट्टी शिल्प, तुम्बा शिल्प, बांस शिल्प, पत्थर शिल्प, लौह शिल्प, काष्ठ शिल्प आदि शिल्प कार्य में पारंगत है। जनजातियों द्वारा निर्मीत हस्तशिल्प वस्तुओं का बड़े पैमाने पर देश-विदेश में करोड़ों रुपयों का निर्यात किया जाता रहा है।

छत्तीसगढ़ राज्य में 14 तरह की हस्तशिल्प कला प्रसिद्धि प्राप्त है जो निम्नानुसार है-

1. घड़वा कला (बेलमेटल)	2. काष्ठ हस्तशिल्प
3. बांस हस्तशिल्प	4. लौह हस्तशिल्प
5. मिट्टी हस्तशिल्प (टेराकोटा)	6. गोदना हस्तशिल्प
7. पत्थर हस्तशिल्प	8. तुम्बा हस्तशिल्प
9. भित्ती एवं चित्रकला शिल्प	10. पत्ता हस्तशिल्प
11. सीसल हस्तशिल्प	12. जूट हस्तशिल्प
13. कौड़ी शिल्प	14. कशीदाकारी हस्तशिल्प

जिले का नाम	छत्तीसगढ़ राज्य की जिलावार कुल जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों की जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में जिलावार महिला जनजातीय साक्षरता का प्रतिशत	कुल जनसंख्या में जिलावार जनजातियों का लिंगानुपात
बालौद	826165	259043	31.35	67.67	1049
बलौदाबाजार	1305343	167450	12.83	52.85	1038
बलरामपुर	730491	458949	62.83	43.44	988
बस्तर	834375	520779	62.42	33.98	1035
बेमेतरा	795759	37185	4.67	54.36	1026
बीजापुर	255230	204189	80.00	25.95	1011
बिलासपुर	1961922	425688	21.70	50.30	1008
दंतेवाड़ा	283479	201458	71.07	28.14	1067
धमतरी	799781	207633	25.96	62.66	1034
दुर्ग	1721948	101188	5.88	68.30	976
गरियाबंद	597653	215986	36.14	53.17	1038
जांजगीर-चांपा	1619707	187196	11.56	53.22	1009
जशपुर	851669	530378	62.28	58.09	1019
कबीरधम	822526	167043	20.31	41.96	1022
कोण्डागांव	578824	411001	71.01	40.72	1046
कोरबा	1206640	493559	40.90	52.06	1004
कोरिया	658917	304280	46.18	50.00	993
महासमुन्द	1032754	279896	27.10	52.90	1038
मुंगेली	701707	72781	10.37	45.39	1012
नारायणपुर	139820	108161	77.36	35.33	1021
रायगढ़	4193984	505609	33.84	52.55	1019
रायपुर	2160876	93010	4.30	64.81	974
राजनांदगांव	1537133	405194	26.36	62.45	1046
सुकमा	250159	208797	83.07	20.48	1041
सूरजपुर	789043	359672	45.58	44.56	993
सरगुजा	840352	482007	57.36	45.38	996
कांकेर	748941	414770	55.38	54.34	1034
छत्तीसगढ़	25545198	7822902	30.60	41.38	1020

सारणी: छत्तीसगढ़ के राज्य में जनजातियों की जनसंख्या जनगणना 2011, को निम्न सारणी के माध्यम से देखा जा सकता है।

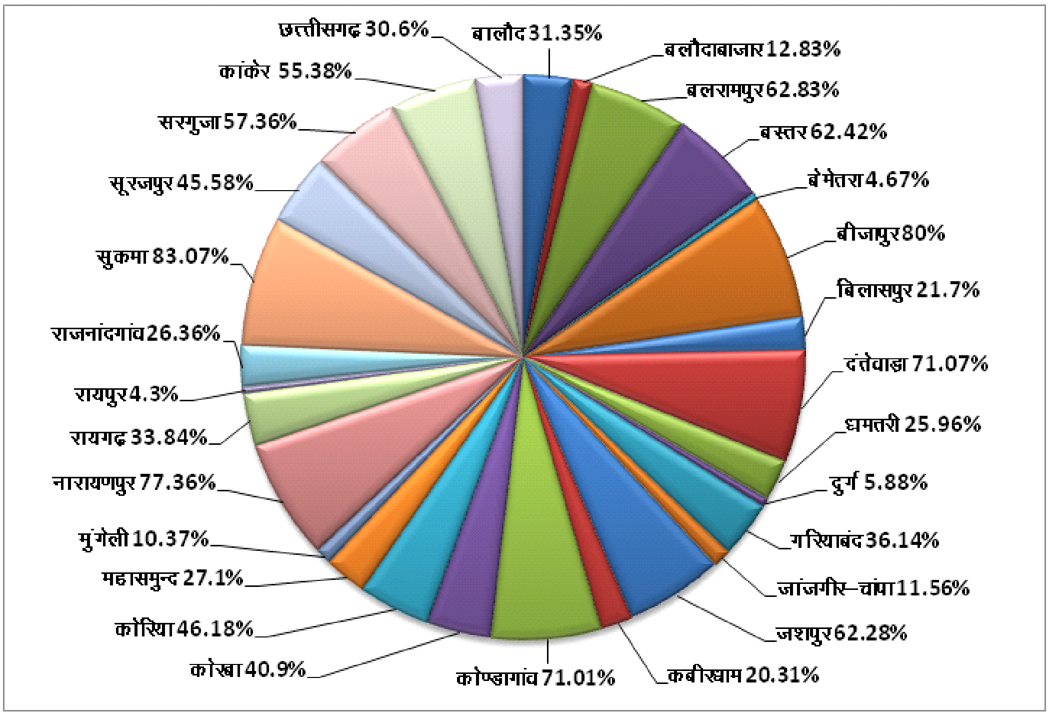

आरेख: छत्तीसगढ़ राज्य में जिलावार जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत

स्त्रोत: जनगणना 2011 के आकड़ो के अनुसार

2. अध्ययन हेतु अभिकल्प: प्रस्तुत अध्ययन हेतु ऐतिहासिक एवं मात्रत्मक अनुसंधान का प्रयोग किया जा रहा है।

कोविड-19 का जनजातीय जीवन पर प्रभाव

कोविड-19 का जनजातीय जीवन पर प्रभाव को निम्न बिंदुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

1. **जनजातीय हस्तशिल्प कला पर कोविड-19 का आर्थिक प्रभाव** - जनजातीय हस्तशिल्प कला पर कोविड-19 का बुरा प्रभाव हुआ है। छत्तीसगढ़ की जनजातीयों में परंपरागत हस्तशिल्प के विभिन्न रूप जैसे-घड़वा कला, बांस कला, मिट्टी कला, लौह कला, काश्ठ कला आदि आदिकाल से ही इनके जीवन व संस्कृति का हिस्सा रही है। वर्तमान में विभिन्न जनजातियां जैसे-गौंड, कमार, मुड़िया, माड़िया, घड़वा आदि जनजातियां विभिन्न हस्तशिल्प वस्तुओं का उत्पादन कर जीविकोपार्जन कर रही थी, कोविड-19 के कारण लागू प्रतिबधें के चलते हस्तशिल्प संबंधी वस्तुओं का उत्पादन विगत 5-6 महिनों से नही कर पा रही है। अगर हस्तशिल्प वस्तुओं का उत्पादन कुछ मात्र में हो भी रहा है तो कोई खरीददार नही मिल पा रहा है। कोविड-19 ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाला है आयात-निर्यात बंद है जिसका सीध प्रभाव जनजातीय हस्तशिल्प पर हुआ है। इस तरह कोविड-19 का हस्तशिल्प पर निम्न प्रभाव जैसे- उत्पादन पर प्रभाव, निर्यात पर प्रभाव, जनजातीय आर्थिक स्थिति पर प्रभाव देखने को मिला है।
2. **जनजातीय रोजगार पर प्रभाव**- छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्र में रोजगार के रूप में विभिन्न तरह के क्रियाकलाप जैसे-कृषि, मजदूरी व हस्तशिल्प वस्तुओं के निर्माण संबंधी कार्य कर, जनजातियां जीविकोपार्जन, अर्थोपार्जन करती आ रही है परंतु कोविड-19 के कारण बाजारों के बंद होने से इन अनुसूची क्षेत्रों की जनजातियां बेरोजगारी की कगार पर आकर खड़ी हो गई है।

क्र.	छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में जनजाति समुदाय द्वारा रोजगार व जीविकोपार्जन हेतु किए जाने वाले विभिन्न कार्य	जनजाति प्रतिशत जो इन कार्यों में संलग्न है
1	कृषि	70 प्रतिशत
2	मजदूरी (संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के कार्य)	15 प्रतिशत
3	हस्तशिल्प निर्माण संबंधी कार्य	15 प्रतिशत

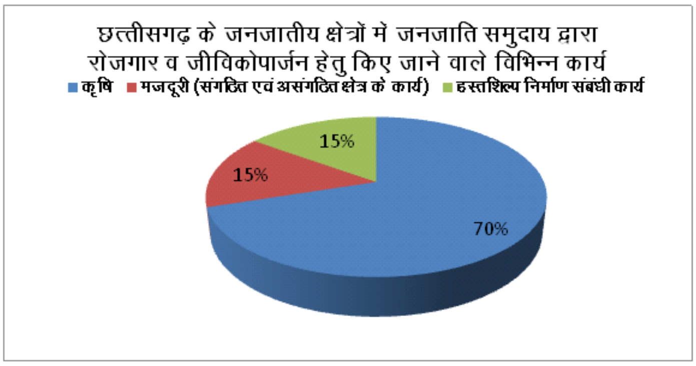

आरेख - छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में जनजाति समुदाय द्वारा

रोजगार व जीविकोपार्जन हेतु किए जाने वाले विभिन्न कार्य

3. **जनजातीय स्पास्थ्य पर प्रभाव** - कोविड-19 व प्रतिबंधे के चलते आवागमन का जरिया बंद होने से जनजातीय क्षेत्रों के ऐसे आदिवासी जो गंभीर बिमारी से ग्रस्त है उन्हे काफी कठिनाईयों जैसे– बेहतर स्वास्थ्य सुविधा के लिए शहरी क्षेत्र के अस्पतालों में जाने में कठिनाई आ रही है। कोरोना विशाणु के कारण अस्पताल की व्यवस्था चरमरा गई है।
4. **जनजातीय प्रवासी मजदूरों पर प्रभाव** - कोविड-19 व प्रतिबंधे के कारण रोजगार पाने के चाह में अपने मूल क्षेत्र को छोड़कर दूसरे शहरो, जगहो पर गए श्रमिकों को काफी दिक्कतों जैसे–रोजगार एवं आय के साधनों का छूटना, अपने मूल क्षेत्र में वापस आने में परेशानियों का सामना करना संबधी परेशानियां आ रही है।
5. **जनजातीय क्षेत्रों में कोविड-19 संक्रमण का खतरा एवं प्रभाव** - जनजातीय क्षेत्र के वे मजदूर जो रोजगार की तलाश में दूसरे शहरों में चले गए थे प्रतिबंधे के चलते जब प्रवासी मजदूर अपने मूल क्षेत्र में वापस आए तो कई मजदूरों को कोविड-19 का संक्रमण हो चुका था जिससे इन जनजातीय क्षेत्र में संक्रमण फैलने का खतरा बढ़ चुका है। पारंपरिक जीवन शैली व स्थानीय स्तर पर अंधविश्वासों के चलते इन क्षेत्रों में यह महामारी गंभीर खतरा बन सकती है।

जनजातीय हस्तशिल्प के विकास एवं कोविड-19 महामारी से बचाव हेतु सुझाव

1. **स्वास्थ्य सुविधा को बेहतर करना** - जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधा को बेहतर करने की आवश्यकता है। सड़क का निर्माण, 24 घंटे बिजली, स्वच्छ जल आदि की व्यवस्था को सुगम बनाने की जरूरत इन क्षेत्रों की प्राथमिकता होनी चाहिए।
2. **जनजातीय अंधविश्वासों व कुरितियों को समाप्त करना** - जनजातीय क्षेत्रों में जनजातियों में कई तरह की कुरितियां, अंधविश्वास प्रचलित होते है जिसके चलते कई परिस्थितियों में कई जनजातीय जीवन को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन क्षेत्रों में विकास के लिए कुरितियों व अंधविश्वासों को दूर करने हेतु शासन/प्रशासन को जरूरी कदम ऊठाए जाने की आवश्यकता है।
3. **शिक्षा को बढ़ावा देना तथा अज्ञानता को कम करना होगा** - शिक्षा की कमी व अज्ञानता के कारण जनजातियों द्वारा एकत्रित एवं उत्पादित सामग्रीयों को बिचौलिए द्वारा कम कीमत देकर खरीदा जाता है जिससे प्राय: जनजातियां ठगी का शिकार हुआ करती है। बेहतर जीवन स्तर एवं स्वास्थ्य के बारे में जानकारी हेतु शिक्षा इन क्षेत्रों की पहली प्राथमिकता है।

4. **जनजातीय क्षेत्र में नक्सली समस्या का समाधान** – नक्सली समस्या का उचित समाधान एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, जिसके अभाव में जनजातीय लोगो में तीव्र आर्थिक गतिविधियां अवरूद्ध हो रही है।
5. **जनजातीय महिलाओं का विकास** – जनजातीय महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों में शामिल करने हेतु विशेष प्रोत्साहन देना होगा जिससे महिला सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़ा जा सके।
6. **शिल्पग्राम का विकास** – महत्वपूर्ण क्षेत्रों को, शिल्पग्राम के रूप में विकसित किया जाना चाहिए, जिससे पर्यटन में भी वृद्धि होगी।
7. **हस्तशिल्प के लिए आयोजन** – हस्तशिल्प से जुड़े लोगों का स्थानीय राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष सेमिनार आयोजित किया जाना चाहिए जिससे हस्तशिल्प के क्षेत्र में अनुसंधान एवं नवाचार को प्रोत्साहन मिल सके।
8. **योजनाओं का सही क्रियान्वयन** – जनजातियों में हस्तशिल्प के विकास हेतु शासन द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन कर समस्याओं की पहचान कर उसका समुचित निपटारा करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

छत्तीसगढ़ राज्य की जनजातीय जीवन, अर्थव्यवस्था, संस्कृति में हस्तशिल्प कला का महत्वपूर्ण स्थान है। कोविड-19 संक्रमण के कारण जनजातीय जीवन पर बहुत ही अधिक बुरा असर हुआ है। जनजातियां जो कुछ ही माध्यमों जैसे कि- कृषि, मजदूरी, हस्तशिल्प का उत्पादन व विक्रय, लघु वनोपज का संग्रहण एवं बाजार में विक्रय कर अपना जीवन यापन करती हैं ये सभी माध्यम कोरोना महामारी एवं प्रतिबंधे के चलते मंद पड़ गई है। जनजातियों को जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है व सरकार/प्रशासन पर पूरी तरह निर्भर हो गई है। यह अवस्था तब-तक के लिए है जब तक इस महामारी का कोई सार्थक इलाज ढूढ़ नही लिया जाता। इलाज के ढूढ़ लेने के पश्चात् जनजातीय जीवन पुन: अपनी पटरी पर दौड़ने लगेगी। परंतु यह भी सत्य है कि जनजातीय क्षेत्रों में वर्तमान समय में भी आधारभूत सेवाओं जैसे–पक्की सड़क, बिजली, स्वास्थ्य सेवाएं, शुद्ध पेय जल, संचार माध्यमों की कमी है इन कमियों की पूर्ति करने की जवाबदारी पूर्णत: सरकार/शासन की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महावर,निरंजन (2014) छत्तीसगढ़ की शिल्प कला दिल्ली: राधाकृष्णा प्रकाशन, ISBN13:9788183616799
2. मेहता, प्रकाश चंद्र (2006) आदिवासी विकास एवं प्रथाएं नई दिल्ली: डिस्कवरी पब्लिशिंग, पृष्ठ संख्या 89
3. निरगुणे, बंसत (2006) आदिवासी विकास एवं प्रथाएं नई दिल्ली: डिस्कवरी पब्लिशिंग, पृष्ठ संख्या 89
4. शर्मा, ब्रम्हदेव (1980) आदिवासी विकास एक सैधादांतिक विवेचन. भोपाल:मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ संख्या 110
5. शर्मा, श्रीमती शीतल (2016) छत्तीसगढ़ जनजातियों के आर्थिक विकास में हस्तशिल्प कला का योगदान बेल मेटल-काष्ठ कला बस्तर संभाग के संदर्भ में पीएच.डी. शोध प्रबंध, वाणिज्य अध्ययनशाला, प. रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़
6. सिंह, गीता (2013) जनजातीय श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बस्तर जिले के शिल्पकला उद्योग में कार्यरत जनजातीय श्रमिकों पर आधारित एक सामाजिक अध्ययन. पीएच.डी. शोध प्रबंध समाजशास्त्र अध्ययन शाला, प. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

कृषि आय पर कर का औचित्यः ग्रामीणों के विकास के संदर्भ में

रवि शंकर गुप्ता

पीएच०डी०, शोधार्थी, अर्थशास्त्र, बस्तर विश्वविद्यालय जगदलपुर (छ०ग०)

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व कृषि आधारित क्रियाओं मे लगी हुई है।भारतीय कर अधिनियम 1961 की धारा 10(1) के अनुसार भारत मे कृषि आय को पूर्णतः कर मुक्त रखा गया है, इस प्रावधान के पीछे मुख्य कारण यह था कि हमारी अर्थव्यवस्था के सकल घरेलु उत्पाद मे कृषि क्षेत्र का बडा योगदान है, कृषि तथा कृषि सहायक कार्यो ने जनसंख्या के बडे भाग को रोजगार प्रदान किया हुआ है। कृषि क्षेत्र को कर योग्य आय की श्रेणी मे रखने पर इस क्षेत्र मे लगे कृषक वर्ग व अन्य कृषि सहायक या कृषि आधारित लघु उद्योगों मे नियोजित लोगों मे निराशा आ सकती है, परिणामस्वरुप कृषि उत्पादकता मे कमी व बेरोजगारी मे वृद्धि की स्थितिअर्थव्यस्था के सामने आ सकती थी। परन्तु यह स्थिति तात्कालीन थी, जिसके लिए कृषि आय को करमुक्त आय श्रेणी मे रखे जाने का प्रावधान सर्वथा उचित व न्यायसंगत था, वर्तमान परिपेक्ष्य मे इन प्रावधानों मे संशोधन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था तथा विषेष कर ग्रामीण लोक कल्याण व देश के तीव्र आर्थिक विकास के पक्ष मे एक महत्वपूर्ण निर्णय सिद्ध हो सकता है।

सर्वप्रथम हम यह जानना आवश्यक है, कि भारतीय आयकर के अनुसार कृषि आय से क्या तात्पर्य है-

भारतीय आयकर अधिनियम के अनुसार कृषि आय से तात्पर्य–

सामान्य रूप मे कृषि आय से तात्पर्य ऐसी आय से है, जो कृषि कार्य करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हो, लेकिन आयकर मे कृषि आय शब्द का एक निश्चित तथा विशिष्ट अर्थ लिया जाता है, कौन सी आय कृषि आय कहलाएगी और और कौन सी आय कृषि आय नही कहलाएगी, यह जानने के लिए आयकर अधिनियम के इस संदर्भ मे दिए गए शब्दावलियों का अध्ययन आवश्यक है।

कृषि आय की परिभाषा

आयकर अधिनियम की धारा 2(1) के अनुसार कृषि आय से निम्नांकित तात्पर्य है -

1. भारत मे स्थित कृषि कार्य के लिए प्रयोग मे आनें वाली भूमि से प्राप्त किराया या लगान।
2. कृषि क्रिया अथवा उपज को विक्रय योग्य बनाने की क्रिया अथवा उपज को बेचने से कृषक या लगान प्राप्त करने वाले की आय।
3. कृषि कार्य के सम्बंध मे प्रयोग आने वाले मकान की आय।

कृषि आय से सम्बधित महत्वपूर्ण बातें

1. आय कृषि भूमि से सम्बंधित होना चाहिए, अर्थात कृषि आय तभी मानी जाएगी जब आय कृषि से सम्बंधित हो, किसी अन्य प्रकार की भूमि से प्राप्त आय जैसे खदान, नदी, जंगल से प्राप्त आय कृषि आय नही कहलाएगी।

2. कृषि भूमि भारत मे स्थित होनी चाहिए।
3. भूमि का प्रयोग कृषि के लिए होना चाहिए, अर्थात उस पर कृषि कार्य जैसे जुताई, बुवाई, कटाई आदि कार्य होने चाहिए इसके बिना अपने आप उगने वाले पेडों से प्राप्त आय कृषि आय मे शामिल नही होते है।
4. आय (लगान, किराया) प्राप्त करने वाले भूस्वामी या व्यक्ति का भूमि मे हित होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त और भी कई शार्ते, नियम, धराएँ व उपधाराएँ कृषि आय के निर्धारण मे प्रयुक्त होतीं हैं, जो कि भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 1961 के अन्तर्गत दी गई हैं। यहाँ प्रश्न यह है, कि कर अधिनियम के अनुसार भारत मे कृषि आय को पूर्णत: करमुक्त रखा गया था, उस पर आज की स्थिति मे करारोपण किया जाना चाहिए, अथवा कृषि आय को पूववर्त करमुक्त आय की श्रेणी मे ही रखा जाना चाहिए।

सर्वप्रथम हम यह जान लेना आवश्यक है, कि हमारे देश मे कृषि आय को आयकर अधनियम 1961 की धारा 10(1) के अनुसार भारत मे कृषि आय को पूर्णत: करमुक्त आय की श्रेणी मे क्यों रखा गया था? क्या तात्कालीन परिस्थितियाँ और वर्तमान परिस्थितियाँ एक समान है? यदि परिस्थितियों मे अंतर दृष्टिगत हो रहें है, तो आयकर अधिनियम के अंतर्गत कृषि आय के संबंध मे कर प्रावधानों मे परिवर्तन क्या तर्कसंगत व न्यायसंगत नही है?

कृषि आय को करमुक्त रखने के पीछे तात्कालिक कारण

भारतीय आयकर अधिनियम 1961 की धारा 10(1) के अनुसार भारत मे कृषि से प्राप्त आय को सभी प्रकार के करों से पूर्णत: मुक्त रखा गया जिसके पीछे निम्नलिखित कारण थे –

1. भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि व कृषि आधारित क्रिआओं मे लगीं हुई है।
2. अर्थव्यवस्था के सकल घरेलु उत्पाद मे कृषि क्षेत्र का बडा योगदान है।
3. कृषि तथा कृषि सहायक कार्यो ने जनसंख्या के बडे भाग को रोजगार प्रदान किया हुआ है।
4. कृषि क्षेत्र को कर योग्य आय की श्रेणी मे रखने पर इस क्षेत्र मे लगे कृषक वर्ग व अन्य कृषि सहायक या कृषि आधारित लघु उद्योगों मे लगे लोग, हतोत्साहित हो सकते थे।
5. कृषि उत्पादकता मे कमी, व बेरोजगारी मे वृद्धि की स्थिति अर्थव्यवस्था के सामने आ सकती थी।

देश हित मे करों का महत्व

किसी भी देश की सरकार को जनहितकारी या लोक कल्याणकारी कार्यो को पूरा करने के लिए तथा समाज एवं देश के प्रति उत्तरदायित्वों के निर्वाहन हेतु धन की आवश्यकता होती है साथ ही विकासशील देशों को अपने विकास मार्ग पर निर्बाध व सतत् रूप से बढ़ने के लिए धन की आवश्यकता होती है इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा जनता पर विभिन्न प्रकार के कर लगाए जाते हैं। सरकार द्वारा कर ना लगाए जाने की स्थिति मे देश हित मे चल रहे लोकहित के कार्य अवरूद्ध हो सकते हैं।

उपरोक्त कारणों से यह स्पष्ट है कि देश के विकास हेतु कराधन कितना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यस्था जिसकी 75 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों मे निवास करती है, ग्राम विकास, राष्ट्र विकास का प्रथम सोपान है, ऐसी स्थिति मे करों का महत्व इसीलिए और भी बढ़ जाता है क्योंकि एक विकासशील अर्थव्यस्था के समक्ष अनेक चुनौतियाँ होती हैं जिनके समाधान हेतु प्रत्येक स्तर पर वित्त की आवश्यकता होती है।

वर्तमान परिपेक्ष्य मे कृषि आय पर करारोपण (ग्रामीणों के विकास के संदर्भ में) के पक्ष मे तथ्य

पिछले कई दशकों से भारत मे कृषि आय पर कोई कर नही लिया जाता रहा है, एक प्रश्न मस्तिष्क मे आता है कि क्या इतने दशकों बाद भी कृषि आयों पर कर नही लगाया जाना चाहिए, जो लोग कृषि कार्य मे संलग्न है, वे अवश्य ही इसका विरोध करेंगें, परन्तु वास्तविकता यही है,कि भारत जैस विकासशील देश जिसको विकास हेतु विशाल वित्त संसाधनो की अत्यधिक आवश्यकता है, वहॉ अब वह समय आ गया है, कि देशहित को देखते हुए कृषि आयों पर भी करारोपण किया जाना चाहिए।

सन 1975 मे गठित डॉ. के0एन0 राज की अध्यक्षता वाली कृषि पर कर कमेटी ने कृषि आय पर कर के सम्बंध मे समृद्ध किसानो पर कर की सिफारिष की थी, डॉ. अम्बेडकर ने भी समृधद कृषकों से कर वसूली अर्थव्यवस्था के हित मे बताया था। उसके बाद 1953-54 मे गठित कर जॉच आयोग ने भी इस संदर्भ मे कर प्रावधानो मे संशोधन की सिफारिशें की थी। चुंकि देश की आवश्यकतानुसार सकल घरेलु उत्पाद का अनुपात अब भी कम है, कृषि आय पर कर, सकल घरेलु उत्पाद के स्तर को बढाने मे सहायक होगा, इस कर से प्राप्त राजस्व का प्रयोग शासन ग्राम जनहितकारी या लोक कल्याणकारी कार्यो मे कर सभी ग्रामों के तीव्र विकास मे कर सकतीं है और इस तथ्य से सभी सहमत होंगें कि ग्रामो का विकास देश के विकास के मार्ग मे मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है। इस संदर्भ मे महात्मा गांधी का विचार था कि भारत की आत्मा गांवों मे निवास करती है, और सर्वप्रथम विकास की बागडोर गांव से ही प्रारंभ होनी चाहिए। पहले गांव विकास करेगा, फिर राज्य तब कहीं जाकर राष्ट्र विकास की संकल्पना साकार हो सकेगी।

परिचर्चा का विषय

यदि भारत मे कृषि आय पर कर लगाया जाता है, तो कर विभाग को पर्याप्त राजस्व की प्राप्ती होगी,जो देश के ग्रामीण क्षेत्रों मे आधारभूत अधेसंरचना के विकास में लगाया जा सकेगा। परन्तु भारत देश की यह विडम्बना ही है कि राजनैतिक कारणो व वोट बैंक की नीति के पोशक किसी नेता या सरकार ने कृषि आय पर करारोपण के विषय मे किसी भी प्रकार के निर्णय लेने की हिम्मत नही दिखाई है।

शासन जब भी किसी विवादित या संवेदनशील मुद्ये को मे सुलझाने मे दिक्कत महसूस करती हैं, तब देशहित ऐसे मुद्यों पर स्वस्थ आम बहस कराया जा सकता है।

कृषि कार्य मे लगे लोगों को शासन व जनता की सहानुभूति प्राप्त होती है, और ऐसा होना भी चाहिए परन्तु इस सहानुभूति का लाभ केवल गरीब और सीमांत कृषकों को ही प्राप्त होना चाहिए समृद्ध और साधन सम्पन्न कृषकों को नही। पिछले वर्शो मे कृषकों द्वारा आत्महत्या की घटनाएँ प्रकाश मे आयीं है, ऐसे मे कृषि आय पर कर, इस समस्या को और ना बढ़ा दें ऐसे विचार मस्तिष्क मे आना स्वाभाविक हैं, परन्तु इस समस्या से निपटने के लिए शासन द्वारा समस्या के पीछे के वास्तविक कारणों को ढूंढ़ कर उसका समुचित निदानात्मक उपाय ढूंढ़ा जा सकता है।

जब हम कृषि आय पर कर लगाने की बात करतें है, तो हम इस बात के पक्षधर बिल्कुल नही है, कि सभी कृषकों पर आयकर लगाया जाए, बल्कि आवश्यकता ऐसे नियम की है, जिसमे एक निश्चित सीमा तक कृषि आय करमुक्त हो उसके ऊपर के कृषि आयों पर निश्चित दरों पर करो का प्रावधान होना चाहिए। साथ ही कृषक आयकर दाताओं को भी आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(C) के तहत बचतों व निवेशों पर कर छूट सम्बंधी सभी प्रावधानो का लाभ प्राप्त हो, जो देश के अन्य आयकर दाताओं को प्राप्त होते हैं।

देश का सामान्य आयकर दाता उस समय परेशान होता है जब वह अपनी आय पर करों के भुगतान के पश्चात अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाते हुए कुछ कठिनता का अनुभव करता है। और वहीं एक साधन सम्पन्न कृषक आसानी से अपनी समस्त आय का उपभोग अपने जीवन को उन्नत करने मे लगा लेता है, वह कृषक मंहगे वाहन, मंहगें मकान व अन्य विलासता की वस्तुओं का उपभोग अपने जीवन को विलासितापूर्ण बनाने मे करता है, क्योंकि उनकी आय पर कर का कोई प्रावधान ही नही है।

इस प्रकार एक ओर देश के सामान्य व्यवसायी, नौकरी या पेषेवर श्रेणी के आयकर दाताओं के मन मे असंतोष की भावना उत्पन्न होती है तो दूसरी ओर देश को कृषि आय पर प्राप्त हो सकने वाले कर रूपी राजस्व की भारी हानि होती है।

इस लेख का यह आषय कदापि नही है, कि सभी कृषक विलासिता का जीवन बिता रहें है, किन्तु इस बात को सर्वथा नकारा भी नही जा सकता कि पंजाब, हरियाणा, पं0 बंगाल, उ0प्र0, आसाम तथा कृषि के लिए उपयुक्त कई अन्य राज्यों मे विलासितापूर्ण जीवन व्यापन करने वाले सम्पन्न कृषक कृषि आय के करमुक्त होने का अनाधिकृत लाभ लेकर समाजहित व देशहित मे अपने महत्वपूर्ण योगदान के प्रति उदासीन बने हुए है।

छोटी बचतों को प्रोत्साहन

जब कृषि से आय पर सामान्य आय की तरह ही आयकर के प्रावधानो को लागू कर दिया जाएगा तब कृषक समुदाय भी प्रॉविडेन्ड फंड, जीवन बीमा, व राष्ट्रीय बचत पत्रों आदि मे बचतों को जमा करने के प्रति जागरुक होंगें। इससे तात्कालिक व दूरगामी परिणाम ये होंगें कि कृषकों मे बचतों की प्रवृत्ति बढ़ेगी, प्रावधान के अनुसार कर से राहत प्राप्त होंगीं, बचत से गरीब किसानो की आर्थिक स्थिति मे लगातार सुधार होगा, ग्राम विकास की ओर एक सार्थक कदम बढ़ेगा, शासन को कर स्वरूप राजस्व की प्राप्ती होगी, बचतों के निवेश से कार्यशील पूंजी मे वृद्धि होगी जो आधारभूत संरचना को सुदृढ़ता प्रदान करेगी।

हमारी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सकल घरेलु उत्पाद मे कृषि क्षेत्र, उद्योग, व सेवा क्षेत्र का योगदान एक नज़र मे –

GDP – Sectoral contribution (%)

Year	Agriculture	Industry	Services*	Total
1991	29.34	19.33	51.16	100
1996	14.46	28.02	57.24	100
2000	13.96	14.01	74.02	100
2006	17.26	20.12	62.62	100
2010	17.28	16.21	66.51	100
2012	13.72	13.75	72.53	100

Source: Data Base on Indian Economy – RBI *includes construction

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है, कि हमारी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत, सकल घरेलु उत्पाद मे कृषि क्षेत्र का योगदान उद्योग क्षेत्र के लगभग बराबर ही है। जिससे पर्याप्त राजस्व की प्राप्ती की जा सकती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप मे हम यह कह सकतें हैं चुंकि भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व पटल पर विकास की ओर अग्रसर है, हमारी विकासशील अर्थव्यस्था को प्रत्येक स्तर पर वित्त संसाधनों की आवश्यकताएँ है। चूंकि विकास की शुरूवात ग्राम से हो तो राष्ट्र बेहद मज़बूती के साथ विकास के मार्ग पर गतिशील हो सकता है, इसलिए करमुक्त कृषि आय की सीमा से अधिक आयों पर कर ग्रामों के विकास मे महत्वपूर्ण पहल सिधद होगी। शासन के समक्ष वित्त संसाधन हेतु कर सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, वर्तमान स्थिति मे जबकि कृषि क्षेत्र से आय अर्थव्यस्था के सकल घरेलु आय का महत्वपूर्णभाग है, इस पर कर का प्रावधान एक विकासशील अर्थव्यवस्था के हित मे सर्वथा तर्कसंगत तथा न्यायसंगत है, ताकि देश की, ग्रामींण स्तर से लेकर शाहरी स्तर तकविकास की संकल्पना साकार रूप ले सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आयकर एवं कर नियोजन – मेहरोत्र डॉ. एच0एस0
2. आयकर विधान एवं लेखे – सिंह एवं जैन
3. Rural development strategies in developing countries – Singh K.K,A li S
4. सुंदर – सुभेश शोध पत्रिका
5. लोक वित –डॉ. सिंह एस.के., साहित्य भवन पब्लिकेशन्स
6. समाचार पत्र
7. कृषि व ग्रामीण विकास को समर्पित पत्रिका–योजना
8. Journals of Rural development
9. Economic Planning and Development –YaoaQv K.P.

कर्पूरी ठाकुर और जगदेव प्रसाद के नेतृत्व में बिहार में सामाजिक परिवर्तन

सोनी कुमारी

शोधार्थी, इतिहास, पाटलीपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

बिहार की राजनीतिक परिदृष्य में कर्पूरी ठाकुर और जगदेव प्रसाद दो ऐसे नाम हैं जिन्होंने दलितों, पिछड़ों और वंचितों को मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया और इनके हक की लड़ाईयां लड़ी। उन्होंने पिछड़े वर्ग के लोगों को अपने अधिकारों से परिचित कराया तथा उस अधिकार को पाने के लिए लड़ने-मरने की ताकत दी।

कर्पूरी ठाकुर जी एक ऐसा व्यक्तित्व थे जिनमें गांधी की सादगी और ग्राम्य चेतना, अम्बेदकर की आभा और ओजस्विता तथा लोहिया की निर्भीकता और लड़ाकूपन सामहित थी। कर्पूरी जी ने संघर्ष को देखा, सुना, झेला ही बल्कि उन्होंने संघर्ष को जीया था। संघर्ष ही उनका जीवन था। यह संघर्ष जनता का संघर्ष था, जन-जन का संघर्ष था। गुलाम भारत में वे जितनी बार जेल गए, उससे अधिक बार उन्हें आजाद भारत में जेल जाना पड़ा।

कर्पूरी जी जयप्रकाश आंदोलन से बहुत पहले दलितों-पिछड़ों में आत्म-सम्मान की चेतना जगाकर बिहार ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश में परिवर्तन की समाजवादी चेतना पैदा की। उन्होंने कहा था - "कमानेवाला खायेगा, लूटनेवाला जायेगा।" उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर देश की जनता इन्हें 'जननायक की उपाधि से अंलकृत किया।

जगदेव प्रसाद का व्यक्तित्व डॉ. राम मनोहर लोहिया के दर्शन से काफी हद तक प्रभावित था परंतु उन्होंने लोहिया के समाजवाद से अलग हटकर अपने अध्ययन अनुभव एवं चिंतन के द्वारा समाजवाद की एक नयी विचारधारा का प्रतिपादन किया जो गौतम बुद्ध, ज्योतिबा फुले, कार्ल मार्क्स, रामास्वामी नायकर, भीमराव अम्बेदकर और डॉ. राममनोहर लोहिया आदि महान विचारकों का समन्वय है।

जगदेव प्रसाद ने कहा था - हम जिनके लिए बोलते हैं, वे गूंगे और बहरे हैं। हम जिनके लिए नहीं बोलते वे इनते चालाक और चतुर हैं कि वे मेरी बात को जल्दी पकड़ लेते हैं परंतु जिस दिन सारे लोग जग जायेंगे उस दिन निश्चित ही उनको नेस्तानाबुत कर देंगे। वह दिन जल्द ही आनेवाला है।

कर्पूरी ठाकुर और सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा -

1947 में देश की आजादी और 1948 में गांधीजी की हत्या के बाद समाजवादी नेताओं का कांग्रेस मोहभंग हो गया। इसके बाद उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को भंग कर नया समाजवादी दल बनाया। इसके साथ ही कर्पूरी जी को बिहार प्रदेश समाजवादी दल का नेता घोषित कर दिया गया। वे वर्षो तक इसी पद पर रहे।

कर्पूरी जी ने पद पर रहते हुए हमेशा दलितों और पिछड़ों के हक की बात की। दरभंगा जिले के इस्लामपुर और विक्रमपट्‌टी के जमींदारों ने किसान-मजदूरों के साथ ज्यादती करनी शुरू कर दी। दलितों-पिछड़ों की सैकड़ों बीघा जमीन पर इन्होंने जबरन कब्जा कर लिया तब कर्पूरी जी ने जमींदारों के विरूद्ध सत्याग्रह शुरू कर दी। उन्हें मार तक खानी पड़ी किंतु अंततः जिला प्रशासन और जमींदारों को झुकना पड़ा और 60 बीघे जमीन पर गरीबों का फिर से कब्जा हो गया।

1947 के आरंभिक दिनों में जब समाजवादी दल ने किसानों की समस्याओं को लेकर 'अखिल भारतीय किसान पंचायत' की स्थापना की उस समय कर्पूरी जी के जुझारूपन को देखते हुए पहले उन्हें संगठन सचिव, फिर बाद में प्रांत का महासचिव बना दिया गया।

1952 में आजाद भारत में प्रथम आम चुनाव हुआ। समाजवादी खेमे में अनेक महान् विभूतियों के होने के बावजूद जनता ने कांग्रेस को ही चुना। समाजवादी दल के गिन-चुने लोग ही चुनाव जीत सके। इन्हीं चुनिंदा लोगों में एक थे - कर्पूरी ठाकुर। 1952 से 1988 उनके निधन तक बिहार में कोई भी ऐसी विधान सभा नहीं बनी, जिसमें कर्पूरी जी की आवाज न गुंजी हो।

1967 के चुनाव में सात राज्यों में कांग्रेसी पार्टी हार गयी और देश के इतिहास में इन राज्यों में पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकारें बनी। इस बार डॉ. लोहिया ने नारा ही दे दिया - "कांग्रेस हटाओ, देश बचाओ।" कर्पूरी ठाकुर लोहिया की नीति और सिद्धांतों से केवल सहत ही नहीं थे, बल्कि उन्हें अमली जामा भी पहनाना चाहते थे। इसी सयम पहली बार बिहार में गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। महामाया प्रसाद सिंहा को मुख्यमंत्री बनाया गया। कर्पूरी जी को उप-मुख्यमंत्री और शिक्षा मंत्री बनाया गया।

पद पर आसिन् होते ही कर्पूरी जी ने अपनी विचारधारा के अनुरूप दलित-पिछड़ी और शोषित-पीड़ित जनता के हक में फैसले लेने शुरू कर दिए। शिक्षामंत्री के रूप में उन्होंने शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उन्होंने पहली बार मैट्रिक से अंग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया। इसका कारण यह था कि एक तो अंग्रेजी भाषा को गुलामी का प्रतीक मानते थे और दूसरा इस अंग्रेजी के कारण बहुत सारे दलित-पिछड़े और गरीब लड़के मैट्रिक नहीं कर पाते थे।

1970 में जनसंघ के सहयोग से बिहार में फिर से मिली-जुली सरकार बनी। कर्पूरी जी राज्य में पहली बार मुख्यमंत्री बने। परंतु यह सरकार अल्पजीवी रही। 1977 में पुन: आम चुनाव हुआ। 'जनता पार्टी' के रूप में देश में पहला सशक्त राजनीतिक विकल्प उभरा। स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार दिल्ली की गद्दी पर कोई गैर-कांग्रेसी सरकार बैठी। कर्पूरी जी समस्तीपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र से पहली बार संसद में पहुंचे। जून 1977 के विधान सभा चुना में भी कर्पूरी जी की जीत हुई और वे दूसरी बार बिहार के मुख्यमंत्री बने।

इसके बाद उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी निर्णय लेते हुए बिहार में मैट्रिक तक की शिक्षा नि:शुल्क कर दी। रोजगार के क्षेत्र में उन्होंने छ: हजार जुनियर इंजीनियर और चार हजार डॉक्टरों की नियुक्ति किया। किसान-मजूदरों के लिए उन्होंने छोटे किसान और अलाभकर जोतों पर से मालगुजारी हटा दी। भ्रष्टाचार उन्मुलन, अंतर्जातीय विवाह करनेवालों को सरकारी नौकरी में आरक्षण की घोषणा कर दी।

सबसे क्रांतिकारी काम उन्होंने यह भी किया बिहार में 'मुंगेरीलाल आयोग' की सिफारिशों के अनुरूप सरकारी नौकरी में पिछड़े महिला और कमजोर वर्ग के सवर्णो के लिए सरकारी नौकरी में आरक्षण अकी घोषणा कर दी। इसके तहत पिछड़े वर्ग के लिए 8 प्रतिशत, अत्यंत पिछड़े वर्ग के लिए 12 प्रतिशत, महिलाओं के लिए 3 प्रतिशत और आर्थिक दृष्टि से कमजोर सवर्णो के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई।

कर्पूरी ठाकुर ने अपने राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग सरकार पर अनवरत निगरानी रखने तथा अभिवंचित एवं कमजोर वर्गों के हितों के प्रति सरकार को सजग रखने में बिताया। वे अल्पावधि के लिए सत्तासीन भी रहे परंतु उन्होंने अपने नेतृत्व में सरकार को सामाजिक न्याय के प्रति कटिबद्ध रखा। उनके द्वारा सदन में उठाए गए प्रश्नों में 44 प्रतिशत प्रश्न कमजोर वर्ग के हितों से संबंधित थे।

जगदेव प्रसाद और सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

जगदेव प्रसाद देश में मानववादी और समतामूलक समाज का स्थापना करना चाहते थे। उनका मानना था कि भारतीय समाज दो तबकों में बंटा है - शोषक और शोषित। देश के तमाम दलित, मुसलमान, आदिवासी, पिछड़ी जातियाँ और ऊँची जाति के कुछ शोषितों की संख्या सौ में नब्बे है शोषक मुख्यत: ऊँची जाति के अमीर लोग है जिनकी संख्या मात्र 10 प्रतिशत है। परंतु यही 10 प्रतिशत शोषक हर दौर में 90 प्रतिशत शोषितों पर शासन कर रहे है। वे कहते थे जब तक इन शोषकों और शोषितों के बीच का अंतर नहीं मिटेगा, तब तक सही मायने में भारत में समाजवाद नहीं आएगा।

जगदेव प्रसाद का मानना था कि देश में बहुसंख्यक हिंदू समाज को पंगु बनाकर रखने में मुख्य योगदान पौराणिक हिंदू धर्मग्रंथों का है। उनके अनुसार वर्णों और जातियों के कर्मों, अधिकारों और भोगों की अलग-अलग व्याख्या ही हिंदू धर्मशास्त्र का उदेश्य है। वे वर्णाश्रम और श्रम विभाजन के पक्षधर नहीं थे। उनका कहना था कि वर्णाश्रम का आधार भोगैष्वर्य की सुलभता, समाज की प्रभुता, आराम और लौकिक सुविधा का स्वार्थ है और धार्मिक सांस्कृतिक वर्चस्व बनाए रखना ही हिंदु धर्मग्रंथों का उदेश्य है।

मनुस्मृति का उदारहण देते हुए जगदेव प्रसाद कहते थे कि मनु ने शोषितों-पीड़ितों को 5995 जातियों में बांट दिया ताकि वे आपस में लड़ते रहे। राजसत्ता, धर्म, शिक्षा और व्यापार सभी वर्णव्यवस्था के आधार पर चलता रहा। इन्हीं धर्मग्रंथों के कारण देश की सत्ता 10 प्रतिशत अगड़ी जातियों के हाथों में सिमट गयी और 90 प्रतिशत शोषित जनता का देश के शासन-राजकाज से कोई ताल्लुक नहीं रह गया। उनके अनुसार 'जातिभेद और वर्णभेद एक ऐसा राक्षस है जो सब ओर से आपका मार्ग रोके हुए हैं। जब तक इस राक्षस का वध नहीं होगा तब तक देश में न राजनैतिक सुधार हो सकता है, न आर्थिक सुधार।'

जगदेव प्रसाद भारत में भी समुन्नत देशों के तरह राजनैतिक क्रांतियों के पहले सामाजिक क्रांति की अनिवार्यता के पक्षधर थे। वे कहते थे कि भारत की सामाजिक व्यवस्था में सुधार के बिना आर्थिक सुधार नहीं हो सकता। उनका कहना था कि वर्णभेद और जातिभेद के चलते देश की बहुसंख्यक शोषित जनता में कभी कोई ताकत, कोई अधिकार और कोई प्रतिष्ठा की भूख नहीं रही। इसलिए जो क्रांति यह बहुसंख्यक वर्ग कर सकता था वह नहीं कर सका। ऐसे ही बहुसंख्यक लोगों में राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरूकता पैदा करने के प्रयास में वे आजीवन लगे रहे। उनकी मान्यता थी कि यदि जाति प्रथा का सफलता से 'उन्मुलन हो जाए और छुआछूत का बंधन नष्ट हो जाए तो देश की 90 प्रतिशत शोषित-पीड़ित जनसंख्या में आत्मविश्वास जागेगा और उनकी सुप्त प्रतिभा अपने आप नए उन्मेश के साथ गतिशील हो जाएगी।

देश के 90 प्रतिशत शोषितों को शोषण और जलालत की जिंदगी से मुक्ति दिलाने के लिए जगदेव प्रसाद ने अंबेदकर की तरह एक ऐसी इंसानी बस्ती बसाने की कल्पना की थी जिसमें देश के तमाम पिछड़ों, दलितों को बसाया जा सके। इनके अनुसार ऐसी इंसानी बस्ती सरकारी वन भूमि था बंजर भूमि में बसायी जाएगी, जिसमे प्रत्येक परिवार को दो एकड़ जमीन दी जाएगी। प्रत्येक इंसानी बस्ती एक सौ परिवार की होगी, जिसमें स्कूल, अस्पताल की सुविधा दी जाएगी। इसमें प्रत्येक परिवार को लघु उद्योगों का विशेष प्रशिक्षण दिया जाएगा तथा सरकार उन्हें कच्चा माल उपलब्ध कराएगी। उनके द्वारा तैयार माल सरकार ही निश्चित कीम पर खरीद लेगी। ऐसी बस्ती में सिर्फ वे ही परिवार रहेंगे जो भूमिहीन हैं या जिनके पास कोई रोजगार या नौकरी नहीं है। इसप्रकार प्रत्येक परिवार को प्रशिक्षण देकर नए लघु उद्योगों की स्थापना कर भारत को ही जापान बनाने की बात जगदेव प्रसाद ने की थी।

जगदेव प्रसाद वर्तमान शिक्षा प्रणाली को विषमतामूलक मानते थे। वे समतामूलक शिक्षा की वकालत करते थे। उनका मानना था कि भारत जैसे विशाल देश में शिक्षा प्रणाली समतामूलक, रोजगारपरक और उत्पादकतामूलक होनी चाहिए। जब तक ऐसी शिक्षा प्रणाली नहीं होगी, देश की 90 प्रतिशत शोषित जनता को अपने अधिकारों की समझ नहीं होगी। समकालीन शिक्षा प्रणाली को वे ब्राह्मणवादी विचारों का पोशक और बोकरीमूलक कहते थे। इसीलिए वे इसके विरोधी थे। वे ब्राह्मणवादी विचारों को स्कूली पाठ्यक्रमों से निकालकर पूरे देश में एक समान शिक्षा व्यवस्था को लागू करना चाहते थे। वे शिक्षा को केंद्रीय सूची का विषय बनाने के पक्षधर थे। उनका नारा था -

"चपरासी हो या राष्ट्रपति की संतान
सबकी शिक्षा एक समान।"

जगदेव प्रसाद नारियों में विशेष शिक्षा के पक्षधर थे। उनका कहना था कि किसी परिवार में जब कोई लड़का शिक्षित होता है तो एक ही व्यक्ति शिक्षित होता है जबकि यदि लड़की शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित होता है। इसलिए नारी शिक्षा के बगैर सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की संभावना नगण्य है। वे डॉ. राम मनोहर लोहिया के ही तरह हिंदी को जनभाषा, राष्ट्रभाशा बनाना और अंग्रेजों को देश से निकाल फेंकना चाहते थे। जब लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन की शुरूआत की तो जगदेव प्रसाद ने बिहार में उसका नेतृत्व किया।

जगदेव प्रसाद ने सामाजिक बदलाव और सांस्कृतिक क्रांति के लिए 'अर्जक संघ' को माध्यम बनाया। इसके माध्यम से वे वर्ण-भेद और जाति भेद को समाप्त कर मानववाद की स्थापना करना चाहते थे। इस संदर्भ में उन्होंने नारा दिया था -

"मानववाद की क्या पहचान।
ब्राह्मण भंगी एक समान।
पुनर्जन्म और भाग्यवाद।
इससे जन्मा ब्राह्मणवाद।"

आर्थिक परिवर्तन एवं उत्थान के लिए जगदेव प्रसाद भूमि, कल-करखाने और उत्पादन के साधनों पर देश के 90 प्रतिशत शोषितों को हक दिलाने के पक्षधर थे। उन्होंने नारा दिया था - जो जमीन को बोये जोते, वही जमीन का मालिक होवे। आर्थिक क्रांति के लिए दिए गए' उनके सुझाव निम्नलिखित थे–

1. सरकारी नौकरियों में जनसंख्या के अनुपात में दलितों-पिछड़ों और अल्पसंख्यकों में नियुक्तियां हो।
2. सभी परिवार को दो एकड़ जमीन मुहैया कराया जाय।
3. वृहद उद्योगों में सिर्फ उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन हो, जिनका उत्पादन लघु उद्योगों में संभव न हो।
4. जब तक देश में बाल मजदूरी और भूखे एवं नंगे लोगों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन पर पूर्व प्रतिबंध लगा दिया जाए।
5. भूमि और कल-कारखानों में मजदूरों और मालिकों दोनों का समान मालिकाना हो, जिससे शोषक और शोषित का भेदभाव मिटे।
6. 21 वर्ष से अधिक उम्र वाले प्रत्येक व्यकित को खेती, नौकरी या व्यापार में से एक धंधा अवश्य मिले यानि कोई बेरोजगार न हो, एसी व्यवस्था सरकारी स्तर पर हो।

जमींदारी प्रथा के खिलाफ जितना प्रचंड रूप जगदेव प्रसाद का था, उतना शायद ही किसी नेता का रहा हो। जमींदारी वर्ग और भ्रष्ट नौकरशाही से उन्हें सख्त न्फरत थी। वे कहते थे कि देश में जितने भी जमींदारी प्रथा वाले प्रदेश रहे है जब पिछड़े हैं। पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, राजस्थान, मध्य प्रदेश उन सभी राज्यों में अंग्रेजी शासन के दौरान जमींदारी प्रथा थी इसलिए ये प्रदेश बहुत पिछड़े है। जबकि पंजाब, हरियाणा जैसे प्रदेश इसलिए उन्नत है कि वहां जमींदारी प्रथा नहीं थी। उनके अनुसार विकास और प्रगति के लिए ही नहीं बल्कि न्याय के लिए भी जमींदारी प्रथा को समाप्त करना आवश्यक है। कानूनी दृष्टिकोण से जमींदारी प्रथा के उन्मुलन के बावजूद असलियत में जमींदारी प्रथा अभी भी है। अब यह रूप परिवर्तित कर पूंजीवाद के रूप में है। इसके समाप्ति के बगैर सामाजिक और आर्थिक क्रांति संभव नहीं है।

कर्पूरी ठाकुर और जगदेव प्रसाद ने अपने भाषणों और कृत्यों से शोषित, पीड़ित समाज में नवचेतना का संचार किया। उन्होंने राजनीतिक विचारक टी.एच. ग्रीन के इस कथन को चरितार्थ कर दिखाया कि चेतना से स्वतंत्रता का उदय होता है, स्वतंत्रता मिलने पर अधिकार की मांग उठती है और राज्य को मजबुर किया जाता है कि वे उचित अधिकारों को प्रदान करें।

संदर्भ-सूची

1. ठाकुर, डॉ हरिनारायण- भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, कल्पज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत- बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. कुमार, डॉ. अमरेन्द्र- कर्पूरी ठाकुर, जन से नायक तक, जागृति साहित्य प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना।
4. प्रसाद, डॉ. उपेन्द्र- परिषद् साक्ष्य, जननायक कर्पूरी ठाकुर स्मरण, बिहार विधान परिषद् सचिवालय, पटना।
5. कुमारी, डॉ. रंजना- कर्पूरी ठाकुर, नेता विरोधी दल के रूप में संसदीय भूमिका, राजकमल प्रकाशन, अशोक राजपथ, पटना।
6. डॉ. रमेन्द्र- ब्राह्मणवाद के विरूद्ध जगदेव प्रसाद का संघर्ष, अशोक कुमार सिंहा द्वारा संकलित शाहीद का संग्राम पुस्तक से उद्धृत।

बैंकिंग सेक्टर में सुधार

डॉ० कुमार सुधांशु

अतिथि शिक्षक, बी.बी.ए., राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
जय प्रकश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

साल 2000 में बैंकिंग सुधार से जुड़ी कई कमेटिया बनाई गई और इसके बाद और सुधारों को आगे बढ़ाया गया। वित्तीय क्षेत्र में सुधार पर बनी कमेटी में देश की मैक्रो अर्थव्यवस्था और नियामकीय मैक्रो अर्थव्यवस्था और नियामकीय ढांचे, वित्तीय समग्रता और घरेलू वित्तीय समग्रता और घरेलू वित्तीय विकास को लेकर भी सुझाव दिए गए थे। 2014 में पी जे नायक की अगुवाई में बैंकों में बोर्ड के कामकाज की समीक्षा के लिए कमेटी बनाई गई। इसकी अहम सिफारिशें सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कामकाज और प्रबंधन को बेहतर बनाना था, जिनकी देश के बैंकिंग सेक्टर में बड़े पैमाने पर माजूगदी है।

परिचय

फर्मों और परिवारों दोनों के लिए बैंकिंग सिस्टम भारत में कर्ज हासिल करने का अहम जरिया है। बैंकों का आकार, चुनौतियों से निपटने की उनकी क्षमता और पूंजी का उनका स्तर वित्तीय बाजारों के सुचारु रूप से काम करने के लिए बेहद अहम हैं। भारत में बैंकिंग सेक्टर में सरकार के नियंत्रण वाले बैंकों की बड़ी संख्या है। बैंकिंग सिस्टम के लिए मुख्य चुनौतियों में उनकी अनिष्पादित संपत्तियों में बढ़ोतरी और बड़ी संख्या में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की मौजूदगी है।

इन वजहों से बैंकों को औद्योगिक कर्ज मुहैया कराने और अंतरराष्ट्रीय पूंजी की जरूरतों को पूरा करने में दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए मौजूदा उपाय पर्याप्त नहीं रहे हैं। बैंकिंग सेक्टर को बढ़ावा देने के लिए हमें आने वाले वक्त में तीन क्षेत्रों में काम करने की जरूरत है: बैंकों के गवर्नेंस में सुधार, सेक्टर में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना और कॉरपोरेट बॉन्ड मार्केट विकसित करना, ताकि बैंकों पर उधारी के स्रोत के रूप में दबाव कम हो सके।

भारत में बैंकों के सुधार का इतिहास

1991 से पहले भारत बड़े पैमाने पर बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर रहा था। सरकार ने 1969 में 50 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया था। इसके जरिये उसने 80 फीसदी से ज्यादा बैंक शाखाओं पर नियंत्रण हासिल कर लिया था। सरकार ने 1980 में कई और बैंकों को अपने नियंत्रण में लिया और देश भर में 200 करोड़ से ज्यादा डिपॉजिट वाले बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इस तरह से तकरीबन 90 फीसदी बैंकों का नियंत्रण सरकार के पास हो गया और लंबे समय तक यह मामला बना रहा।

1969 से 1991 के बीच बैंकों का जबरदस्त विस्तार हुआ। इनकी जमा और कर्ज के बिजनेस में भी काफी बढ़ोतरी हुई। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को कर्ज देने में 14 से 41 फीसदी के बीच बढ़ोतरी हुई। हालांकि, 1991 तक बैंकों की दक्षता और उत्पादकता में गिरावट होने लगी। ग्राहकों की सेवा की गुणवत्ता अच्छी नहीं थी और मुनाफा भी कम होने लगी। 1991 में जब सरकार ने अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की शुरुआत की तो उसने बैंकिंग क्षेत्र में कई तरह के सुधार किए। एम नरसिम्हन की अध्यक्षता में

वित्तीय प्रणाली से जुड़ी कमेटी ने वैधनिक तरलता अनुपात (एसएलआर) और नकद आरक्षी अनुपात (सीआरआर) को घटाने की सिफारिश की, ताकि बैंकों के संसाधनों को मुक्त किया जा सके, ब्याज दरों को तय करने के लिए बाजार की ताकतों पर निर्भरता हो और प्राइवेट और विदेशी बैंकों का भारत में प्रवेश आसान हो सके, जिससे इस सेक्टर में प्रतिस्पर्धा बढ़े और सरकारी बैंकों की संख्या घट सके। कमेटी की कई सिफारिशों को लागू किया गया। इनमें एसएलआर और सीआरआर में कटौती, बाजार के हिसाब से ब्याज दर तय किया जाना और नए प्राइवेट और विदेशी बैंकों को वोला जाना शामिल था।

नरसिम्हन की अगुवाई में बैंकिंग सेक्टर में सुधार को लेकर बनी कमेटी ने बैंकिंग सेक्टर को और मजबूत बनाने के लिए 1998 में कई और उपायों की सिफारिश कीं। इसने मौजूदा उपायों में हुई प्रगति की समीक्षा की और बैंकों के विलय, पूंजी की पर्याप्तता और नियम-कानून से जुड़े कई और उपायों का प्रस्ताव किया। इसके अलावा, 1998 में कमेटी ने बैंकों में तकनीक के ज्यादा इस्तेमाल, कौशल प्रशिक्षण और प्रोफेशनल मैनेजमेंट संबंधी कदमों का भी सुझाव दिया।

ऐसे कई सुधारों को 1991 से लागू किया गया, जिससे देश के बैंकिंग सेक्टर के प्रदर्शन और ताकत में सुधार हुआ। मिसाल के तौर पर बैंकिंग सिस्टम के उधारी की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में हिस्सेदारी 1990 में 51.5 फीसदी थी, तो 2000 में बढ़कर 53.4 फीसदी हो गई। हालांकि, यह बाकी देशों में यह जीडीपी अनुपात और उधारी के अनुपात का मामला काफी ज्यादा था। साल 2000 में चीन में यह अनुपात 133 फीसदी, मलेशिया में 143 फीसदी और थाईलैंड में 122 फीसदी था।

साल 2000 में बैंकिंग सुधार से जुड़ी कई कमेटियां बनाई गईं और इसके बाद और सुधारों को आगे बढ़ाया गया। वित्तीय क्षेत्र में सुधार पर बनी कमेटी में देश की मैक्रो अर्थव्यवस्था और नियामकीय ढांचे, वित्तीय समग्रता और घरेलू वित्तीय विकास को लेकर भी सुझाव दिए गए थे। 2014 में पी जे नायक की अगुवाई में बैंकों में बोर्ड के कामकाज की समीक्षा के लिए कमेटी बनाई गई। इसकी अहम सिफारिशें सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कामकाज और प्रबंधन को बेहतर बनाना था, जिनकी देश के बैंकिंग सेक्टर में बड़े पैमाने पर मौजूदगी है।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का दबदबा

आज भी देश के बैंकिंग सिस्टम में सार्वजनिक क्षेत्र यानि सरकारी बैंकों की हिस्सेदारी काफी ज्यादा है। बैंकों की कुल संपत्तियों में इन बैंकों का हिस्सा 70 फीसदी है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का प्रदर्शन पूरे बैंकिंग सिस्टम के प्रदर्शन की नुमाइंदगी करता है। बैंकों की गैर-निष्पादित संपत्तियों (एनपीए) में इनका सबसे बड़ा योगदान है। मार्च 2016 के मुताबिक, एनपीए में सरकारी बैंकों की हिस्सेदारी 88 फीसदी थी। वक्त बीतने के साथ हालात और खराब हुए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो सरकारी बैंकों का एनपीए मार्च 2015 में 2.78 लाख करोड़ था, जो जून 2017 में बढ़कर 7.33 लाख हो गया।

तालिका 1: बैंकों के कुल कर्ज में जोखिम वाले कर्ज का हिस्सा
(प्रतिशत में)

	मार्च 2008	मार्च 2018
सरकारी बैंक	3.5	15.6
प्राइवेट बैंक	4.2	4.6
विदेशी बैंक	3.0	4.5
सभी बैंक	3.5	12.1

स्त्रोत: भारतीय रिवर्ज बैंक

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में जोखिम-पूर्ण संपत्तियों (स्ट्रेस्ड एसेट्स) का हिस्सा 16 फीसदी से ज्यादा है। यह प्राइवेट बैंकों के इसी आंकड़े के मुकाबले तीन गुना ज्यादा है। एनपीए में बढ़ोतरी से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की सेहत पर भी बुरा असर पड़ा है

और इसका असर रिटर्न ऑन एसेट्स (आरओए) और रिटर्न ऑन इक्विटी (आरओई) रेशियो में भी नजर आता है। ये रेशियो 2016 में नकारात्मक दायरे में चले गए। पिछले एक दशक में ऐसा पहली बार हुआ है।

हालांकि, प्राइवेट बैंक भी एनपीए की बढ़ती हिस्सेदारी से परेशान हैं। मार्च 2016 के मुताबिक सभी व्यावसायिक बैंकों का एनपीए 6.1 लाख करोड़ रुपये था। इसके अलावा, बैंकों की संपत्तियों की गुणवत्ता और मुनाफे में भी गिरावट हो रही है। मार्च 2008 और मार्च 2017 के दौरान बैंकों का स्ट्रेस्ड कर्ज कुल कर्ज के 3.5 फीसदी से बढ़कर 12.1 फीसदी हो गया। वित्त वर्ष 2016-17 की पहली छमाही में बैंकों का टैक्स के बाद मुनाफे में साल दर साल आधार पर गिरावट आई। बैंकों के मुनाफे में गिरावट की मुख्य वजह जोखिम से जुड़े प्रावधानों में बढ़ोतरी, कर्ज का राइट ऑफ और नेट इंटरेस्ट इनकम में गिरावट है।

बैंकिंग सेक्टर में इस तरह की दिक्कतों के कारण औद्योगिक क्षेत्र से जुड़े कर्ज के वितरण में सुस्ती आ गई है। इससे बैंकों की अंतरराष्ट्रीय पूंजी जरूरतों की क्षमता भी सीमित हुई है। जनवरी 2017 में औद्योगिक क्षेत्र की कर्ज ग्रोथ में 5.1 फीसदी की गिरावट हुई थी, जबकि नवरी 2016 में इसमें 5.6 फीसदी की बढ़ोतरी हुई थी। एनपीए ज्यादा रहने से बैंकों को बाजल-3 के तहत बड़ी पूंजी की जरूरतें पूरी करने में भी दिक्कत होगी। ये शर्तें जनवरी 2019 से अमल में आएंगी।

सरकार ने इस चुनौती से निपटने के लिए बैंकों को फंड दिया है। वित्त वर्ष 2015-16 में इंद्रधनुष प्लान के तहत बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के जरिये एनपीए में भारी बढ़ोतरी और अर्थव्यवस्था पर इसके बराबर असर को स्वीकार किया गया था। इसके बुरे नतीजों में बैंकों की कर्ज ग्रोथ में और गिरावट, बैंकों के मुनाफे और पूंजी पर्याप्तता अनुपात में गिरावट शामिल हैं। इससे निपटने के लिए वित्त मंत्रालय ने बैंकों को फिर से पूंजी मुहैया कराने के लए 24 अक्टूबर को 2.1 लाख करोड़ के प्लान का ऐलान किया। ये फंड न सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पूंजी की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने में मदद करेंगे, बल्कि बैंकों को अपनी बैलेंस शीट को साफ करने और बैड कर्ज को कवर करने में भी मदद मिलेगी।

इंद्रधनुष योजना में पुनर्पूंजीकरण के अलावा बैंकिंग सुधार को और व्यापक बनाने की बात है। इसके 7 विंदुओं में जवाबदेही के लिए ढांचा तैया करना, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में सीईओ और चेयरमैन के रोल को अलग करना, भर्तियों और गवर्नेंस में सुधार के लिए बैंक बोर्ड ब्यूरो (बीबी) बनाना आदि शामिल हैं। हालांकि, इसके अमल पर पूरी तरह से काम नहीं हो पाया है। साथ ही, इंसॉल्वेंसी और बैंकरप्सी कोड (आईबीसी) भी एनपीए की चुनौती से निपटने के लए चैनल मुहैया कराता है। इसमें बैंकों और प्रमोटरों को 270 दिनों के भीतर निपटारा प्लान पर सहमत होने या संपत्तियों की बिक्री जैसी कार्रवाई की बात है।

वैश्विक संदर्भ: गहराई और प्रतिस्पर्धा

भारत के बैंक, बाकी वित्तीय संस्थान और बाजार आकार या वित्तीय ताकत के मामले में अपने वैश्विक समकक्षों से पीछे हैं। वित्तीय मजबूती न सिर्फ बैंकिंग सिस्टम के आकार को बढ़ाने में अहम है, बल्कि यह आर्थिक वृद्धि और गरीबी कम करने से भी जुड़ी है। भारत में सरकारी आंकड़ों के हवाले से की गई एक स्टडी के मुताबिक, ग्रामीण इलाकों में गरीबी कम करने में बैंकों की वित्तीय मजबूती का योगदान रहा है। भारत में बाकी विकासशील देशों के मुकाबले प्राइवेट क्रेडिट-जीडीपी और लोन-डिपॉजिट अनुपात कम है। 2015 में भारत का प्राइवेट क्रेडिट-जीडीपी अनुपात 50.2 फीसदी थी, जबकि चीन और ब्राजील का यह आंकड़ा क्रमश: 140 फीसदी और 71 फीसदी रहा।

बैंकिंग सिस्टम में बड़े बैंकों का दबदबा होता है और इसमें कुछ नए खिलाड़ी भी हैं। मार्च 2016 के मुताबिक, टॉप 10 बैंकों (संपत्तियों के हिसाब से रैंकिंग) का सिस्टम की कुल संपत्तियों में 58 फीसदी हिस्सा था। 1991 के बाद पूर्णकालिक बैंकिंग के लिए सिर्फ 14 लाइसेंस दिए गए हैं। इसके उलट अमेरिका में 1976 से 2009 के बीच सालाना 130 नए बैंक वजूद में आए। भारत में विदेशी बैंकों की संख्या काफी कम है। मार्च 2016 के मुताबिक, देश की कुल बैंकिंग संपत्तियों में विदेशी बैंकों की हिस्सेदारी 6 फीसदी थी।

आरेख 1: जीडीपी में बैंकों के डिपॉजिट का हिस्सा (प्रतिशत), 2015

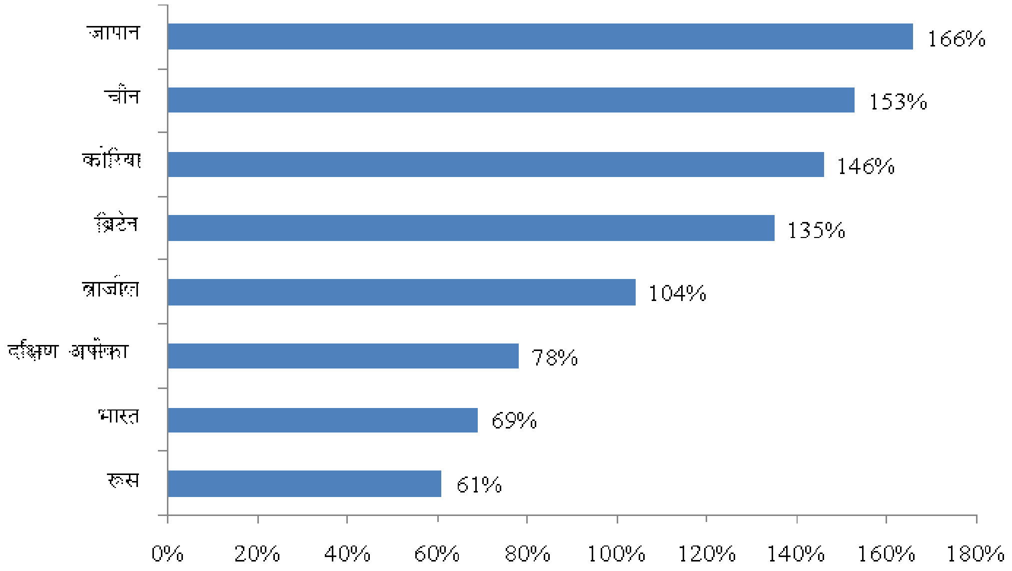

भविष्य की बात

देश को आने वाले वक्त में मजबूत और पर्याप्त पूंजी से लैस बैंकिंग सिस्टम बनाना चाहिए। कर्ज मुहैया कराने और संसाधनों के बेहतर आवंटन के लिए इसकी क्षमता भी बढ़नी चाहिए। बैंकिंग सिस्टम को मजबूत बनाने के लिए पुनर्पूंजीकरण के अलावा कई अन्य उपाय भी करने होंगे। सलाना कॉरपोरेट गवर्नेंस में सुधार, बिजनेस से जुड़ी बाधाओं को कम करना, वित्तीय देखरेख के काम में सुधार, बेहतर कॉरपोरेट डेट मार्केट विकसितकरना और कर्ज की रिकवरी का असरदार सिस्टम।

बैंकिंग सेक्टर में तीन खास क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जा सकती है। पहला बैंकों खासतौर पर सरकारी इकाइयों के कामकाज में सुधार और इन्हें मजबूत बनाना। ये सुधार पुनर्पूंजीकरण की तरह भी अहम हैं और इन पर भी साथ-साथ काम करने की जरूरत है। वैश्विक स्तर पर अनुभव बताते हैं कि एनपीए की समस्या से निपटने के लिए बैंकिंग सेक्टर में सुधार वाले कदम काफी कारगर रहे हैं। मिसाल के तौर पर चीन में पुनर्पूंजीकरण के अलावा बैंकिंग सेक्टर में सुधार पर काफी फोकस किया गया। इसके तहत वित्तीय नियमन और निगरानी को मजबूत किया गया, कॉरपोरेट गवर्नेंस को बेहतर बनाया गया और पारदर्शिता बढ़ाई गई।

इसी तरह, दक्षिण कोरिया ने 1990 के दशक के आखिर में पूर्वी एशियाई देशों में आए वित्तीय संकट के बाद फाइनेंशियल सुपरवाइजरी सर्विस (एफएसएस) का गठन किया, ताकि उनके बैंकों की बेहतर तरीके से देखरेख हो सके। कुछ हद तक सरकार पहले ही बैंकों के कामकाज को बेहतर बनाने की जरूरत को स्वीकार कर चुकी है। इंद्रधनुष योजना ने बैंक अधिकारियों से जुड़े रोजगार पर नजर रखने के लिए स्वतंत्र बैंक बोर्ड ब्यूरो बनाने का सुझाव दिया था। अगर वाकई में स्वतंत्र ब्यूरो का गठन किया जाता है, तो इसका सरकारी बैंकों के कामकाज पर गहरा असर होगा। ज्यादा जवाबदेही बैंकों की कर्ज देने के सिस्टम में बेहतरी सुनिश्चित कर सकती है। हमें यह पक्का करने की जरूरत है कि इस पर अमल समयबद्ध तरीके से हो।

सुधार का दूसरा क्षेत्र कॉरपोरेट बॉन्ड मार्केट विकसित करना है। बॉन्ड मार्केट को वित्त के अहम साधन के तौर पर बैंकों के पूरक बनने की जरूरत है। लिक्विड और डीप बॉन्ड मार्केट फर्मों को सस्ते में कर्ज जुटाने में मदद करेंगे। आदर्श स्थिति के तहत आने वाले समय में कॉरपोरेट कर्ज के साधन के तौर पर बॉन्ड मार्केट की हिस्सेदारी बढ़ेगी और उधारी में बैंकों की हिस्सेदारी घटेगी।

बैंकिंग सेक्टर में सुधार का तीसरा क्षेत्र बैंकिंग क्षेत्र को लगातार प्रतिस्पर्धी बनाए रखना है। इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा तेज करने और नवाचार के लिए भारत को प्राइवेट और विदेशी खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। बैंकों के लिए 'ऑन-टैप' (हमेशा या कभी भी) लाइसेंस की नई पॉलिसी इस दिशा में सकारात्मक कदम है। हालांकि, बैंकिंग सेक्टर में प्रवेश से जुड़ी बाधाओं को कम करने के लिए शर्तों में और ढील दी जा सकती है। सब्सिडियरी ढांचे की वकालत करना न सिर्फ विदेशी बैंकों को भारतीय बैंकिंग सेक्टर में घुसने के लिए प्रोत्साहित करेगा, बल्कि इससे वैश्विक झटकों का वतरा भी सीमित करने में मदद मिलेगी। लंबे वक्त में प्रतिस्पर्धा बढ़ने से बैंकिंग सेक्टर की क्षमता और मुनाफे में बेहतरी आएगी।

देश में बैंकिंग सेक्टर में सुधार में ऐतिहासिक तौर पर (खासतौर पर 1990 के दशक से) प्रतिस्पर्धा बढ़ाने, गवर्नेंस और नियमन को मजबूत करने पर ध्यान रहा है। भविष्य में होने वाले सुधार के जरिये इन क्षेत्रों में और बेहतरी आनी चाहिए और पिछली गलतियों से भी सीखने की जरूरत है।

संदर्भ

* 1998, बैंकिंग सेक्टर में सुधार पर कमेटी की रिपोर्ट। भारत सरकार।
* 2009 'ए हंड्रेड स्मॉल स्टेप्सः कमेटी रिपोर्ट ऑन फाइनेंशियल सेक्टर रिफॉर्म', सेज पब्लिकेशन,
  · http%//planningcommission.nic.in/reports/ genrep/rep_fr/cfsr_all.pdf
* 'फाइनसें, फाइनेंशियल सक्टेर पॉलिसी आरै लॉन्ग रन ग्रोथ'। एम स्पेन्स ग्रोथ कमीशन बैकग्राउंड पेपर 11, वर्ल्ड बैंक, वॉशिंगटन डीसी।
* अय्यागरी, मेघना, बेक, थॉर्स्टन और हुसैनी मोहम्मद, फाइनेंस एंड पोवर्टीः एविडेंस फ्रॉम इंडिया (जून 2013), शीईपीआर डिस्कशन पेपर नंबर... डीपी 9497।
* इंडीकेटर बैंकों और बाकी वित्तीय संस्थानों के प्राइवेट क्रेडिट और डिपॉजिट और जीडीपी से जुड़ा अनुपात बताता है।
* स्रोतः इंटरनेशनल फाइनेंशियल स्टैटिस्टिक्स, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोश (आईएमएफ)
* 6 एडम्स, राबर्ट एम और जैकब गम्ब्रे लिच 'वये रआर ऑल द न्यू बैंक्स? द रोल ऑफ रेगुलेटरी बर्डन इन न्यू बैंक फॉर्मेशन' रिव्यू ऑफ इंडस्ट्रियल ऑर्गनाइजेशन 48.2 (2016): 181-208

गाँधी और अम्बेडकर के बीच संबंध

डॉ० सुकान्त शेखर

तिलकामाँझी, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

महात्मा गाँधी को भारत के राष्ट्रपिता के रूप में और डॉ. भीमराव अम्बेडकर को भारत के संविधान निर्माता के रूप में जाना जाता हैं। चिंतन की एक धारा गाँधीवाद और अम्बेडकरवाद को दो ध्रुवों पर स्थापित करके दोनों को एक-दूसरे का विरोधी घोषित कर देती हैं। चिंतन की एक दूसरी धारा हैं जो गाँधी और अम्बेडकर को अनिवार्यत: विरोधी न मानकर उनमें समानता के तत्त्वों को खोजने का प्रयास करती हैं। लुडविंग विट्गेंस्टेन का यह कथन हैं कि "जब वैसे दो सिद्धांत आपस में मिलते हैं जिनके बारे में सामान्य धारणा ये है कि उनके बीच सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता, तब एक विचार को मानने वाले लोग दूसरे विचार को मानने वालों को मूर्ख और विधर्मी घोषित कर देते हैं।" पहला प्रश्न यह हैं कि क्या वास्तव में ऐतिहासिक तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं की ये दोनों महापुरुष सर्वथा भिन्न विचार वाले थे? दूसरा प्रश्न यह हैं कि क्या व्यक्तित्व का टकराव इतना सशक्त कारण है कि उसे विचारों के मूल्यांकन में निर्णायक समझा जाए? सबसे महत्त्वपूर्ण यह हैं कि क्या वर्त्तमान सामाजिक संदर्भ में इन दोनों महापुरुषों के दलित उत्थान संबंधी विचारों को परस्पर विरूद्ध कहना प्रासंगिक हैं? दोनों के बीच समानता के बिन्दु थे लेकिन साथ-साथ हम दोनों के बीच वैचारिक द्वंद को भी देखते हैं। उदाहरण के लिए, गाँधी जहाँ जाति संबंधी प्रश्न का समाधान हिन्दू धर्म के अन्तर्गत खोज रहे थे, वहीं अम्बेडकर के लिए इस कुप्रथा का आधार ही हिन्दू धर्म था। गाँधी राज्य की सत्ता को सीमित कर आत्म-नियमन द्वारा व्यवस्था संचालन चाहते थे, तो अम्बेडकर एक संविधानवादी थे और राज्य प्रदत्त अधिकार के माध्यम से सुधार के समर्थक थे। गाँधी का भारत 'ग्राम-स्वराज' के दर्शन पर आधारित था तो अम्बेडकर शहरी तथा आधुनिक जीवन शैली के पक्षघर थे। गाँधी के लिए कांग्रेस दलितों की भी प्रतिनिधित्वकारी संस्था थी तो अम्बेडकर कांग्रेस को उच्च वर्णों की संस्था मानते थे। गाँधी ने भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए जहाँ पश्चिमी सभ्यता की कटु आलोचना की, वहीं अम्बेडकर का झुकाव पश्चिमी सभ्यता के प्रति बना रहा। जहाँ अम्बेडकर की प्राथमिकता में दलित उत्थान था, वहीं गाँधी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी। अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि मैं गाँधीजी को 'महात्मा' नहीं मानता हूँ। गाँधीजी जब प्रथम बार अम्बेडकर से मिले थे तो गाँधीजी डॉ. अम्बेडकर के विद्वता से काफी प्रभावित हुए थे। गाँधीजी अम्बेडकर के दलितों के उत्थान के प्रति व्याकुलता को समझ रहे थे। इस मुलाकात के बाद किसी ने उन्हें बताया कि अम्बेडकर दलित वर्ग से हैं तो गाँधीजी ने कहा कि मैं उन्हें ब्राह्मण समझ रहा था।

गाँधीजी और अम्बेडकर के बीच के मुजफ्फरपुर को व्यापक रूप से समझने के लिए ना केवल हमें समानता के बिन्दु को बल्कि असमानता के बिन्दु को भी विस्तृत रूप से समझना होगा। गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर के बीच समानता के निम्नलिखित तत्त्व है–

1. **मानवतावाद में विश्वास**- यूरोप में पुनर्जागरण के समय मानवतावाद का विकास हुआ। अब जीवन के केंद्र में मानव आ गया। मनुष्य के जीवन के महत्त्व और उसकी गरिमा में विश्वास व्यक्त किया गया। महात्मा गाँधी मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। गाँधीजी का सम्पूर्ण हरिजन अभियान मानवता एवं तर्क के सिद्धांत पर अवलंबित था। उन्होंने कहा कि 'शास्त्र' छुआछूत की इजाजत नहीं देते हैं। लेकिन यदि वे ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करते हैं तो हमें उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए क्योंकि ऐसा करना मानवीय प्रतिष्ठा के विरूद्ध हैं। डॉ. अम्बेडकर यह शिकायत करते हैं कि हिंदूसमाज में अस्पृश्य जातियों की स्थिति जानवरों के समान है। उन्हें घृणा और हेय् दृष्टि से देखा जाता हैं। डॉ. अम्बेडकर वेद या अन्य धार्मिक ग्रंथों को ईश्वर द्वारा रचित नहीं मानते थे। डॉ. अम्बेडकर ने मानवीय गरिमा से कभी भी समझौता नहीं किया। वे जीवनपर्यन्त अपने

समाज के लिए आंदोलन करते रहे जिससे उन्हें हिंदूसमाज में मानव होने की गरिमा मिल सके। अम्बेडकर ने मानव गरिमा के साथ गाँधीवादी नजरिए को साझा किया।

2. **राष्ट्रवादी-** गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर दोनों ही भारत के राष्ट्र निर्माता थे। हिंद स्वराज में गाँधीजी ने सिद्ध किया कि साम्राज्यवादी शासन से पूर्व भारत एक राष्ट्र रहा और ये अंग्रेज थे जिन्होंने भारत की सांस्कृतिक एकता तो तोड़ा। गाँधीजी हिंदू-मुसलमान एकता के पक्षघर थे। गाँधीजी ने पाकिस्तान बनाने का विरोध किया और उन्होंने घोषणा की देश का बँटवारा मेरी लाश पर होगा। गाँधीजी जन नेता थे और जन नेता की उस वक्त अहमियत ही क्या रह जाती हैं, जब उसका जन ही उसका अनुसरण करने से इंकार कर दें?[1] डॉ. अम्बेडकर का विचार था कि भारतीय एकता औपनिवेशिक राज्य द्वारा लागू ब्रिटिश विधिक व्यवस्था का उपोत्पाद थी। डॉ. अम्बेडकर ने भारत के संविधान निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और भारत की एकता एवं समृद्धि के लिए कार्य किया।
3. **अस्पृश्यता का अंत-** महात्मा गाँधी जात-पात को नहीं मानते। अस्पृश्य वर्ग के संबंध में कहा कि उनकी दशा सुधारने की आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दू जाति के माथे पर यह एक भारी कलंक है जिसके लिए भारत को बहुत बड़ा प्रायश्चित करना पड़ेगा।[2] गाँधीजी के हृदय में तो अस्पृश्यता को जला देने के लिए एक आग धधक रही थी।[3] एक संस्था की स्थापना हुई जिसका नाम हरिजन सेवक संघ रखा गया। उसके सभापति हुए सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मंत्री अमृतलाल ठक्कर बने। मंदिरों में प्रवेश, सार्वजनिक कुओं से उन्हें जल भरने का आंदोलन चलाया गया। हरिजनों की सेवा लिए अंग्रेजी में हरिजन और भारतीय भाषाओं में हरिजन-बंधु तथा हरिजन सेवक के नाम से साप्ताहिक पत्रों का जन्म हुआ जो कई बरसों तक चलें। डॉ. अम्बेडकर जो स्वयं अस्पृश्यता से पीड़ित थे। उन्होंने हर प्रकार से यह प्रयास किया कि अस्पृश्यता को समाप्त कर दें। इसके लिए उन्होंने आंदोलन किया। संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रयास किया।
4. **वकील-** गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर दोनों ही वकील थे। दोनों ही कानून को समझते थे।
5. **पश्चिम के देशों में उच्च शिक्षा-** गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर दोनों ने ही पश्चिम के देशों में उच्च शिक्षा ग्रहण की थी। दोनों ही पश्चिम के सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित थे। दोनों पर ही इसका प्रभाव पड़ा था, साथ ही दोनों भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से भी परिचित थे।

गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर के कई विचारों एवं कार्यों में अंतर भी था जिसके कारण दोनों के बीच संघर्ष भी हुए और आलोचना भी हुई। दोनों के बीच अंतर के निम्नलिखित बिन्दु हैं–

1. **गाँव के संबंध में विचार-** गाँधीजी की दृष्टि में 'ग्रामराज, रामराज है' और एक सच्ची स्वतंत्रता हैं लेकिन अम्बेडकर के विचार इसके विपरीत थे। उनका मानना था कि भारतीय ग्रामों की यथास्थिति की प्रकृति ने समानता, बंधुत्व तथा स्वतंत्रता को भी नकारा है। इसलिए उनके अनुसार, हमें भारतीय ग्राम व्यवस्था पर अभिमान करने की अपेक्षा शर्म आनी चाहिए। गाँधीजी जहाँ एक ओर गाँव को आत्मनिर्भर इकाई बनाना चाहते थे वहीं अम्बेडकर गाँव को भेदभाव का इकाई मानते थे। ग्राम पंचायत पर गाँव के उच्च वर्ग और शक्तिशाली वर्ग का कब्जा रहता हैं जो पिछड़े वर्गों पर अत्याचार और शोषण करता हैं। यह व्यवस्था सदियों से बनी हुई हैं जिसके कारण ग्राम तंत्र जातिवादी भेदभाव को कायम रखता हैं बल्कि उसे बढ़ावा भी देता हैं। इस प्रकार के स्पष्ट विचार डॉ. अम्बेडकर के थे।
2. **जाति के संबंध में विचार-** जाति के संबंध में दोनों के विचारों में बहुत अंतर था। गाँधीजी कहते है "जाति व्यवस्था (वर्ण-व्यवस्था) हिन्दू धर्म का बड़ा बल है और वह उसका रहस्य है"[4] डॉ. अम्बेडकर कहते है हिन्दू विद्वान वर्ण-व्यवस्था को एक आदर्श समाज-संगठन मानते हैं। वे इस सिद्धांत के दास बन गये है। गाँधीजी के अनुसार वर्ण-व्यवस्था संयम के उद्देश्य से अर्थात् त्याग वृद्धि से स्थापित की गई है। जाति-प्रथा नितान्त स्वाभाविक प्रथा है। इस देश में उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया गया है। गाँधीजी कहते हैं कि जाति-प्रथा का मूलोच्छेद करने के लिए जो प्रयत्न किया जा रहा है उसका मैं विरोधी हूँ। व्यक्ति को इस बात का निश्चय करने की पूरी छूट मिलनी चाहिए कि वह कहाँ शादी करेगा और कहाँ खाएगा।[5] अस्पृश्यता की बुराई से खीजकर वर्ण-व्यवस्था का ही नाश करना उतना ही गलत होगा, जितना की शरीर में कोई

कुरूप-वृद्धि हो जाए तो शरीर का या फसल में ज्यादा घास-पास उगा दिखे तो फसल का ही नाश कर डालना। डॉ. अम्बेडकर जाति को समाप्त कर देना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए हिन्दुधर्म में सुधार लाने का प्रयास किया। गाँधी ने अहूत जाति की स्थिति हिन्दूधर्म में बताया कि अहूत जातियों का अस्तित्व चातुर्वर्ण्य की ज्यादती करके इन जातियों को बहिष्कृत किया है। इनका स्थान चातुर्वर्ण्य के अंदर ही है।[6] डॉ. अम्बेडकर वेद को ईश्वर द्वारा रचित नहीं मानते थे। उनका कहना है कि पुरुष सूक्त को बहुत समय के बाद ऋग्वेद में संकलित किया गया हैं।[7] डॉ. अम्बेडकर जब हिन्दूधर्म में परिवर्त्तन में नहीं ला सके तो उन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया क्योंकि बौद्ध धर्म ने जातिप्रथा का विरोध किया था। जाति को लेकर दोनों के बीच सबसे ज्यादा विरोध था। गाँधीजी जहाँ जाति व्यवस्था में सुधार के समर्थक थे वहीं डॉ. अम्बेडकर जाति प्रथा का पुरी तरह से विनाश चाहते थे।

3. **पूना पैक्ट**- साइमन कमीशन के सामने अपनी गवाही में अम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि दलित या वंचित वर्गो को एक अलग वर्ग के रूप में देखा जाना चाहिए। इसे हिंदू जाति से पृथक एक स्वतंत्र अल्पसंख्यक बनाया जाना चाहिए। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने 16 अगस्त 1932 को सांप्रदायिक निर्णय की घोषणा की। सांप्रदायिक निर्णय ने दलित वर्गो जिन्हें 78 सीटें दी गई, सहित अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र एवं सीटें आरक्षित की। दरअसल सांप्रदायिक निर्णय उपनिवेशवादी शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का एक और प्रमाण था। गाँधीजी ने इसका विरोध किया। गाँधीजी समझते थे कि राजनीतिक चुनाव के लिए भी यदि अलग क्षेत्र हो जायेंगे तो यह एक नया अछूतपन हो जायेगा।[8] महात्मा गाँधी यरवदा जेल में थे। वहीं अनशन आरंभ हुआ। डॉ. अम्बेडकर समझौते के लिए तैयार नहीं थे लेकिन देश की जनता का दवाब डॉ. अम्बेडकर पर था क्योंकि यदि गाँधीजी को कुछ हो जाता तो अस्पृश्य वर्ग की स्थिति और खराब हो जाती। अंततः गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर के बीच समझौता हो गया। दलित वर्ग के लिए पृथक निर्वाचक मंडल समाप्त कर दिया गया तथा व्यवस्थापिका सभा में अछूतों के स्थान हिन्दूओं के अंतर्गत ही सूरक्षित रखे गये। प्रांतीय विधानमण्डलों में दलित वर्गो के लिए 147 सीटें आंवटित की गई।
4. **दलितों के उत्थान के तरीके एवं माध्यम**- गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर के बीच साधनों के लेकर मतभेद थे। दलितों या अछूतों कों गाँधीजी द्वारा हरिजन नाम देना अम्बेडकर जी पसंद नहीं आया वह इसे गाँधीजी की चालाकी मानते थे। गाँधीजी ने अछूतों के मंदिर प्रवेश और सार्वजनिक तालाब से जल भरने की बाते कही। लेकिन अम्बेडकर गाँधीजी के अछूत वर्ग के उत्थान के किए गए कार्यो को अपर्याप्त मानते थे और उसकी आलोचना की। अस्पृश्य वर्ग यह मानते थे कि यह एक ढोंग मात्र है जो उनकी राजनीतिक जागृति में बाधक होगा, उनकों राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी तों अछूतपन स्वयं दूर हो जायेगा। वे इस प्रश्न को धार्मिक और सामाजिक नहीं समझते थे, इसे केवल आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से ही देखते थे।[9]
5. **सिद्धांत एवं विचार**- गाँधीजी और डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं सिद्धांतो में अंतर था। गाँधी एवं अम्बेडकर दोनों राजनीतिक तथा सामाजिक कार्यकर्ता थे। अम्बेडकर की कार्यगत पद्धति में कुछ बेहद कठोर थीं लेकिन अहिंसा को लेकर समझौता विहीन तरीके के अलावा गाँधीजी में वैचारिक या सैद्धांतिक कठोरता नहीं थी। गाँधीजी उदार और उग्रवादी दल दोनों की राजनीतिक परम्पराओं के उत्तराधिकारी थे।[10] सत्य एवं अहिंसा के विचारों से कोई समझौता नहीं किया। अम्बेडकर का मानना था कि पूर्ण अहिंसा साध्य है और सापेक्षिक हिंसा एक साधन है, जबकि गाँधीजी ऐसा अंतर नहीं मानते और किसी भी प्रकार की हिंसा के घोर विरोधी थे। डॉ. अम्बेडकर स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के सिद्धांतों में विश्वास करते थे और भारतीय समाज एंव राजनीति में इन मूल्यों को स्थापित करना चाहते थे।
6. उत्पादन के मशीनीकरण और भारी मशीनों के उपयोग पर भी गाँधी एवं अम्बेडकर में मत भिन्नता है। गाँधीजी मशीनीकरण के विनाशकारी वि-मानवीकरण प्रभाव के आलोचक थे। लेकिन अंबेडकर का मानना था मशीनीकरण से सभी को लाभ पहुँचेगा।
7. अम्बेडकर अछूतों को हिंदू समुदाय के बाहर एक धार्मिक अल्पसंख्यक मानते थे जबकि गाँधीजी उन्हें हिन्दू समुदाय का अभिन्न अंग मानते थे।

इस प्रकार गाँधीजी एवं अम्बेडकर के विचारों में भिन्नता है तो समानता भी है। गाँधीजी के विचारों में भिन्नता है तो समानता भी है। गाँधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि वह चतुर्वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं हैं।[11] गाँधीजी एवं डॉ. अम्बेडकर दोनों ही मूर्तिपूजा के विरोधी थे लेकिन उनके अनुयायियों ने उनकी मूर्ति बनाने में ज्यादा ऊर्जा खर्च की।

यदि दोनों के अनुयायी अंधभक्त ना होकर खुले दिमाग से गाँधीवाद और अम्बेडकरवाद का विश्लेषण करेंगे तो उनमे समन्वय के तत्त्वों को खोज सकेंगे। लेकिन ऐसा नहीं करके केवल टकराव को बढ़ाने से देश के सभी वर्गों को विकास नहीं हो सकेगा और देश विकसित नहीं बन सकेगा जिसका सपना इन दोनों महापुरुषों ने देखा था। वास्तव में दोनों के साधन में अंतर था लेकिन साध्य दोनों का एक समान था।

संदर्भ सूची

1. चंद्र, विपिन, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, क०न० पानिकर, सुचेता महाजनः भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 10, केवेलरी लाइन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 479
2. 'प्रजाबन्धु' 11.06.1916
3. प्रसाद, राजेन्द्रः आत्मकथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 431
4. न्यू इंडिया 10.05.1915
5. हरिजन 16.11.1935
6. संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, मार्च 1965 संस्करण, पृष्ठ 326
7. हू वर द् शूद्राज? पृष्ठ 145
8. प्रसाद, राजेन्द्रः आत्मकथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 429
9. प्रसाद, राजेन्द्रः आत्मकथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 433
10. ग्रोवर, बी०एल और यशपालः आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, एस०चन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 318
11. टाइम्स ऑफ इंडिया, 19 सितम्बर 1932, इस सोर्स वालयूम-1, पृष्ठ 101-111

प्राचीन ग्रंथों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० सुनील कुमार

(सहायक प्राचार्य), इतिहास विभाग, यू. टी. डिग्री महाविद्यालय
चमथा, बेगूसराय, ल.न.मि.वि.वि. दरभंगा (बिहार)

21वीं सदी की दहलीज पर खड़ी मानव जाति के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या आज पर्यावरण संरक्षण की हैं। इस स्थिति के लिए कोई और नही वह स्वंय जिम्मेदार है। समस्या की भयावहता ने जाति के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, जिसकी झलक राष्ट्रीय एवं अंर्तराष्ट्रीय स्तरों पर होने वाले रियों डिजेनेरी जैसे सम्मेलनों में मिल चुकी है। यद्यपि पर्यावरण को बचाने के लिए काफी सारे प्रयास कई विदेशी संस्थाओं द्वारा किये जा रहे हैं परंतु कोई पुख्ता हल नही सूझता। वस्तुतः पर्यावरण विनाश का प्रमुख कारण है प्रकृति से हमारी बढ़ती दूरी, अनियंत्रित रूप से फैलता उपभोक्तावाद और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने की प्रवृत्ति। जब तक इन प्रवृत्तियों को काबू नहीं कर लिया जाता तब तक पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण की बाते बेमानी है।[1]

प्रकृति ही मानव का पर्यावरण और यही उसके संसाधनों का भंडार हैं। आज का मानव प्रकृति की गोद मे पलकर भी अपनी स्वंय की अज्ञानता के कारण तथा वैज्ञानिक व तकनीकी जानकारी के अहंवश, पर्यावरणीय संसाधनों की क्रूरता के साथ दोहन करने में लिप्त है। गत 25 वर्षो से पारिस्थितिकविदों ने समझाने व समझने का अथक प्रयास किया है, कि दिक् और काल की सीमाओं में हमारें संसाधन सीमित ही हैं। अति उपभोगी सभ्यता में औद्योगिक उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों और उर्जा के भंडारों पर ही निर्भर है, और यह दोनों ही निश्चित रूप से उदारता व त्वरित गति से उपयोग में लाये जा रहे है व क्षीण हो रहे हैं। इस प्रक्रिया में संसाधनों द्वारा पोषित जीव-तन्त्र संकीर्ण, दूषित और विषाक्त हाता जा रहा हैं। आज विज्ञान मानव को एक चौराहे पर ला खड़ा किया है, जिसके दो विकल्प हो सकते हैं। प्रथम विकल्प विवेक, मितव्यय और नैतिकता का लम्बा, मार्ग अथवा दूसरा विकल्प विनाशक, विलासमयी उपभोग मूलक संस्कृति का मार्ग है।[2]

आधुनिकता के बदलते परिवेश मे पर्यावरण का महत्वपूर्ण एवं सराहनीय योगदान है। स्वस्थ पर्यावरण ही जीव-जगत की आधारशिला है। परंतु वर्तमान समय में विकास की अंधी दौर में जाने अनजाने मानव के द्वारा ही यह सुरक्षा कवच नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। नित् नये आयामों को प्राप्त करने की, स्पर्श करने की लिप्सा में हमने अपने ही हाथों अपने विनाश की मार्ग निर्मित कर लिया है प्रकृति प्रदत्त उन समस्त उपहारों का हमने बड़ी ही निमर्मता के साथ दोहन किया है। आज हमारी मानव सभ्यता विनाश के मुख पर पहुँच गयी है। हमारें द्वारा किये गये प्रकृति के इस दोहन से प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता तथा खपत में उद्वेलन हो गया है। यही कारण है कि ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं के विद्वान, चिन्तक पर्यावरण की सुरक्षा और संचालन के प्रति जागरूक है। आज ज्ञान-विज्ञान की ऐसी कोई भी विषय -शाखा नहीं है, जिसमें पर्यावरण संबंधी समस्याओं की चर्चा न होती हो।[3]

पर्यावरण से संबंधित प्रसंग तथा व्याख्यायें हमारे वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में भरे पड़े हैं। प्रचीन कृषि-मुनियों की पूरी दिनचर्या ही प्रकृति पर निर्भर थी। वहाँ अरण्यों में उपलब्ध समाग्रियों से ही उनके निवास गृह कुटिया का निर्माण होता था वहीं वनीय फल-फूलों पर उनका जीवन आधारित था। नदियों में स्नान करते थे तथा उन्हीं झुरमुटों के मध्य एकान्त स्थल पर वृक्षों के नीचे पूजा-पाठ तथा यज्ञादि क्रिया-कलाप होते थे। इन्हीं-सघन वनों के गुरूकुल आश्रमों में शिष्य विद्या ग्रहन करते थे। इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान राम के विषय में लिखा है- **"गुरू गृह पढ़न गये रधुराई, अल्पकाल विद्या**

सब आयी।" राजगृह से राजपुत्रें को ब्रह्मचर्य व्रत के पालन तथा शिक्षा ग्रहण करने के लिए इन्हीं अरण्य स्थित गुरूकुल, आश्रम में भेज दिया जाता था। राजकुमार वेदों, पुराणों तथा धनुर्विद्या इत्यादि ज्ञान से सम्पन्न होकर इनसे निकलते थे। गुरूकुल आश्रम स्थित जीव-जन्तुओं, पेड़, फल, फूलों तथा गुरू के यज्ञादि कार्यो संबंधी सम्पूर्ण दायित्वों का निर्वहन करते थे तथा एक योग्य ब्रह्मचर्य व्रतधरी को सम्पूर्ण ज्ञान से मंडित तथा परिपूर्ण करके उन्हें गृहस्थ आश्रम के योग्य बनाकर ही अपने दायित्वों से मुक्त होते थे। प्राचीन काल में पर्यावरण में किसी प्रकार का असंतुलन नहीं था, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरणीय तत्वों को देवता मानकर उनकी पूजा करता था। हानि पहुँचाने को कौन कहे? प्रत्येक का तन-मन तथा धन से रक्षा करना नैतिक तथा धार्मिक कर्त्तव्य था। जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी, आकाश एवं विभिन्न वनीय वृक्षों को देव तुल्य स्थान प्राप्त था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन तत्वों को विशेष स्थान देते हुए लिखा है कि क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा ये ऐसे पाँच तत्व हैं जिससे सृष्टि का निर्माण होता है। इसे ही पर्यावरण विज्ञानियों ने बाद में 'पारिस्थितिकी' नाम दिया। डच मूल के भारतीय विद्वान फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध-ग्रंथ 'रामकथा' उद्भव और विकास में कहा है कि बाल्मीकि रामायण तो जैसे पर्यावरण की महागाथा ही है।"[4]

वैदिक काल की अरण्य संस्कृति का स्वर्णकाल कहा जाता था, उन दिनों वन देवी 'अरण्यानी' की पूजा अनिवार्य थी। वन देवी 'प्रकृति' का पर्याय मानी जाती थी। वनों की विशेष महत्ता थी तथा सभ्यताओं का विकास भी इन्हीं के छाया तले हुआ था, ऐसा स्वीकार किया जाता है। भारतीय आर्य परंपरा तो सदैव इसकी पूजक रही हैं अरण्य, तपोवन तथा कुंज क्रमशः ज्ञानस्थली, तपोस्थली, तथा कर्मस्थली माने जाते थे। स्कन्द पुराण तथा कठोपनिषद् के प्रसंगानुसार 'पीपल' वृक्ष की जड़ में ब्रह्म, तने में विष्णु तथा टहनियों में शिव का वास होना माना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी पीपल का वृक्ष औषधि गुण सम्पन्न तथा ग्रीष्म काल में विशेष शीतलता प्रदायक माना गया है। इसी छाया मोहक तथा अतुलनीय होती है। हमारें कृषि-मुनियों ने इसकी गुण संपन्नता को स्वीकार करते हुए इसकी पूजा का विशेष विधान बनाया था जो समाज में आज भी प्रचलित है। ऋग्वेद मे सोमवृक्ष एवं अथर्ववेद में पलाश वृक्ष की पूजा का विधान है।[5]

ऋग्वेद में वनस्पतियों और वृक्षों को न काटने का परामर्श है पर्यावरण के भौतिक एवं सांस्कृतिक पख के संरक्षण हेतु जो मूलभूत अवधारणायें वेदों में प्रस्थापित हैं, उनमें वनस्पतियों, औषधियों के फलने-फूलने की कामना की गई है। वृक्षों की पुत्रवत् रक्षा करने के निर्देश वेद में मिलते हैं। हमारे प्राचीन कृषि-मुनियों ने निश्चित रूप से वक्षों के महत्व को करोड़ों वर्ष पूर्व ही समझ लिया था। यही कारण है कि चारों वेदों में वृक्ष संरक्षण संबंधित सामग्री प्रचूर मात्र में मिलती है। वेदों में न केवल वृक्षारोपण के महत्व को बताया गया है अपितु हमें कौन-कौन से वृक्ष लगाने चाहिये इस तथ्य को भली-भाँति समझाया गया है, ताकि हम अश्वत्थ, अपामार्ग, कुष्ठ, न्यगोध, खदिर आदि वृक्ष लगायें जिससे हमारा जीवन स्वस्थ व सुरक्षित रहे। वैज्ञानिकों के अनुसार एक औसत आकार का वृक्ष एक वर्ष में हमें एक टन ऑक्सीजन प्रदान करता है, सघन वृक्षों के झुण्ड तापमान को 5 सेन्टीग्रेड तक कम कर सकते हैं तथा विकिरण एवं ध्वनि-प्रदूषण को 10 से 15 प्रतिशत तक रोकने में समर्थ हैं। आज हमारे भूगोलवेत्ता एवं वैज्ञानिक जिस निर्णय पर पहुँचे हैं, वनों एवं वृक्षों की महत्ता को समझने वाले वैदिक कृषि स्वधिते न हिंसीत वृक्षों को न काटने तथा उनकी सतत् रक्षा करने के लिए निर्देश भी देते हैं - 'पृथिवी देव यजन्योषधयास्ते मूलं मा हिंसिषम्[6] अर्थवेद में कृषि स्वास्थ्यवर्धक औषधियों वनस्पतियों की स्तुति करते हैं प्रजापतिः पृथिवी विश्वगर्भा माशामाशां रण्यां न कृणोत[7] गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोडरण्यं ते पृथ्वी स्योनमस्तु यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवस्तिठन्ति विश्वहाः[8] पृथिवीं विश्वघायसं धश्तामच्छावदमसि[9] वृक्षों के अभाव के कारण ही आज पर्यावरण की अनेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। अर्थववेद में ऋषि ने इसलिए कहा है कि यह सम्पूर्ण हरे भरे पर्वत, जंगल इत्यादि नहीं काटने चाहिए क्योंकि यह तो सबका कल्याण करने वाले हैं, गिरयस्ते पर्वता हिमदन्तोश्ररण्यं ते पृथिविस्योनमस्तु[10] पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वृक्षारोपण को वैदिक काल से मान्यता प्राप्त रही है। पराशर कृषि का मानना है-

दश कूप समोवापी दशव्यापी समोह्रदः।

दशह्रद समः पुत्रः दशपुत्र समोद्रुमः।।

अर्थात दस कुआँ के बनाने के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ी खुदाने के बराबर एक तलाब, दस तालाब खुदाने के बराबर एक पुत्र या शिष्य को धर्म परायण बनाना व दस समाज सेवी पुत्रें के बराबर एक वृक्ष लगाने का पुण्य होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 146वें अध्याय में वर्णित अख्यानी सूक्ति में वृक्षों एवं वनों की उपादेयता पर गंभीरता से प्रकाश डाला गया हैं दीर्घ अन्तराल के

बाद अपने आश्रम को लौटे कृषि एरम्मद आश्रम की वनस्पतियों, औषधियों, लताओं, वृक्षों को क्षीण होते देखकर आत्मग्लानि से भर उठते हैं और वन देवी से क्षमा याचना करते हुए संकल्प भी लेते हैं कि वे पून: वृक्षों, वनस्पतियों को उगाएगें और कोई भी इन अरण्यानियों को नष्ट न कर सकें।

ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम् मण्डल अर्थात् सोम-सूक्त, अरण्यानी सूक्त एवं अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त इत्यादि में बारम्बार एक ही उद्‌घोष सुनाई देता है कि हमारी भूमि हरी-भरी रहे तथा स्वास्थ्यवर्धक औषधियों, वनस्पतियों से सदा परिपूर्ण रहे एवं हमारे लिए सुखदायिनी हो -

प्रजापति: पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां न कृणोतु गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोश्ष्रण्यं ते पृथिवीं स्नोनमस्तु यस्यां
वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा:। पृथिवीं विश्वधयसं धश्तामच्छावदामसि।[11]

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में ऋषि स्पष्टरुपेण कहता है कि जो मनुष्य प्राकृतिक तत्तवों को क्षति पहुँचाते हैं, उसे अपने अधीन करके मनमानी करते हैं, पृथ्वी ऐसे दुराचारियों को दण्डित करती है, जैसे अश्व अपनी थकान दूर करने के लिए अपने शरीर का धूल को झाड़ देता है -

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जानान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्थ गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्।।[12]

ऋषियों ने शुद्ध एवं समृद्ध पर्यावरण को मानव जीवन एवं विकास के लिए अनिवार्य माना है। उन्होंने अपने आप को प्रकृति के छोटे तथा बड़े प्रतीकों के सम्मुख स्वयं को सर्वात्मना उपासक के रूप में समर्पित किया है। तत्पश्चात् प्रकृति प्रदत्त जिस पर्यावरण से मानव संपुष्ट हुआ वह कल्पनातीत है। ऋषियों का चिन्तन है कि, आप वात, एवं औषधय: इन तीनों ने इस विश्व को आवृत कर रखा है।[13] मन्त्रगत छन्दांसि शब्द का अर्थ है परिधि। प्रकृति के प्रत्येक कण में आन्तरिक शक्ति और बाहयशक्ति होती है आन्तरिक शक्ति इसे गति एवं ऊर्जा देती है और बाहयशक्ति इसकी रक्षा करती है। यथा-न्तविर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम[14] इस परिधि का उद्देश्य जीवन की रक्षा से है। वन्य जीव वनों को बनाये रखते हैं, वन जलों को आकर्षित कर पृथ्वी पर बरसाते हैं।[15] वेद में जलों को "आपो औषधीयमतीं''[16] कहा गया है, यजुर्वेद में जल को "वानस्पत्य:" कहा गया है।[17] इस प्रकार इस इस परिधि के बने रहने से अर्थात् पारिस्थितिकी संतुलन व पर्यावरण की शुद्धता बनी रहने से सभी जीव जीवित रहते हैं-

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वत: पुरुष: पशु:।
यत्रें ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम्।।[18]

भारतीय संस्कृति 'अरण्य संस्कृति' संस्कृति रही हैं, अरण्य का मुख्य आधार वृक्ष हैं। हमारे यहाँ धार्मिक दृष्टि से वृक्षों को महत्व दिया गया है क्योंकि ये पर्यावरण-संरक्षण करते हैं। यहाँ वृक्ष की तुलना संतान से की गई है और हमारे वृक्षों को काटना पाप माना गया हैं। अथर्ववेद में तो वृक्षों को नष्ट करना भूमि के मर्म पर प्रहार करना बताया गया है।[19]

अथर्ववेद में वर्षा ऋतु के आने में अपनी लयवद्ध आवाज के द्वारा सब को यह बताने में कि, वर्षा ऋतु का प्रारंभ हो गया है, मेंढ़कों के योगदान व उनके द्वारा प्रकट की गयी प्रसन्नता का भी वर्णन किया गया है। पर्यावरण एवं मानव के लिए पशुओं की महत्ता को देखते हुए अनेक मन्त्रें में प्रार्थना की गई है कि हे सूर्य! आप मुझको अनेक रूप वाले पशुओं से पूर्ण करिये। वन्य पशुओं के संबंध में अथर्ववेद का चिन्तन मानवाधिकारों से परिपूर्ण था।[20]

पर्यावरण की विशुद्धता एवं परिस्थितिकीय संतुलन को निरन्तर बनाये रखने के लिए हमें वैदिक ऋषियों के समान ही न केवल वन्य जीवन बल्कि गम्य पशुओं जैसे- गौ, महषि, अश्व, अजा आदि के महत्वपूर्ण योगदान को दृष्टिगत करते हुए वन्य तथा गाम्य जीवों को आत्मवत् एवं उनकी उपयोगिता के आधार पर देवता तुल्य मानते हुए उन्हें यथोचित आदर एवं संरक्षण प्रदान करना होगा। उनके संबंध में समुचित नीति निर्धारण करनी होगी तभी विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।[21]

हमारे प्राचीन बौद्धएवं जैन आचार्य तो प्रकृति के प्रागंण मे ही जीते थे और उसी के पुजारी थें। यूं तो पर्यावरण अन्तश्चेतना तो प्राचीन सभी धर्मो में दिखाई देती है। किंतु बौद्ध एवं जैन धर्म में इसे जितना महत्व दिया गया है, उतना किसी में नही दिया गया है। हमारें बौद्धाचार्यो एवं जैनाचार्यो ने प्रकृति के हरेक अंग को सुरक्षित रखने का अथक प्रयास किया है। उन्होंने वनस्पति को आयुर्वेद की शाखा से जोड़कर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बचाने का प्रयत्न किया है।[22]

बुद्ध के जीवन में भी प्रकृति पर्यावरण का विशेष महत्व है। उन्होने वनों को समाधि के लिए उपयुक्त माना है, यही कारण हैं कि बौद्धविहारों का निर्माण प्राकृतिक सौंदर्य के बीच वनों में किया गया है और बौद्धभिक्षुओं को मानसिक शांति के लिए वनों में रहने का निर्देश दिया गया हैं। वर्षा ऋतु में बौद्धभीक्षु वन-प्रवास करते थे। इस दौरान वे कहीं भ्रमण करने से बचते थे, ताकि उनके पैरों से जीव-जंतु एवं वनस्पतियों का नुकसान नही हों। सभी भिक्षु पेड़-पौधें एवं जीव-जंतुओं के प्रति मित्रवत व्यवहार करते थे। बौद्धधर्म में जगह-जगह वृक्षों के प्रति आदर की भावना देखने को मिलती है। बौद्धग्रंथों में कहा गया है कि वृक्ष हमें छाया एवं शीतलता प्रदान करते हैं, इसलिए वृक्ष की शाखा को भी नहीं तोड़ना चाहिए। ज्ञातव्य हो कि एक बार बुद्ध के शिष्य महामोगलन ने एक भिक्षु की प्यास मिटाने के लिए एक पौधे को जड़ से उखाड़ना चाहा, तो बुद्ध ने उसे मना कर दिया था। क्योंकि बुद्ध के अनुसार, वृक्ष को भी नुकसान पहुँचेगा और पर्यावरण और पर्यावरण असंतुलन का खतरा उत्पन्न होगा। बौद्धभीक्षुणीयों द्वारा रचित थेरीगाथाओं में भी जंगल के प्रति अनुग्रह की भावना देखने को मिलती हैं। साथ ही जल को जीवनदायिनी मानकर उसके संरक्षण पर जोड़ दिया गया है। बौद्धग्रंथों में नदियों और पहाड़ो को विशेष महत्व दिया गया है। कई जगहों पर गंगा नदी और हिमालय पहाड़ को विशेष महत्व दिया गया है। इस तरह हम देख सकते है कि बुद्ध का संपूर्ण जीवन और चिंतन पर्यावरणीय चिंतन को प्रतिबिंबित करता है।[23]

तथागत बुद्ध का विचार था कि मानव जाति प्रकृति का हिस्सा हैं और यदि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ की गई तो मानव जाति क्रियाशील नही हो पाएगी तथा पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ जाएगा, क्योंकि जीवन प्रकृति का अभिन्न अंग है। पौधे तथा जानवर मानव के बिना रह सकते है परंतु मानव इनके अभाव में अपनी कल्पना भी कर सकता। तथागत इस तथ्य को समझते थे और इसके लिए उन्होंने **मध्यम मार्ग** की सलाह दी।[24]

भगवान बुद्ध सर्वदा सौन्दर्यपुलकित प्रकृति के अभिरम्य प्रदेश में रहना चाहते थे। उनका जन्म लुम्बिनी के सुरम्य प्रदेश में हुआ था जहाँ लताओं और वृक्षों की हरीतिमा उल्लसित थी। अम्बलट्ठिका, अम्बपाली के आम्रवन, जेतवन पर्वतों के सौंदर्य से परिवृत राजगृह का सुरम्य भू-भाग उनका सर्वदा निवास बना रहा और उनका महापरिनिर्वाण भी कुशीनारा के दो पुष्पित शाल वृक्षों के मध्य ही हुआ। उपर्युक्त तथ्यों से यह अभिप्रमाणित होता है कि प्रकृति के अभिरम्य प्रदेशों रमणीय भू-भागों, पर्वतप्रांतों से उनकी विशेष रागानुरक्ति थी। प्रकृति की गोद में जन्में पले भगवान बुद्ध का सहज साहचर्य आजीवन प्रकृति से रहा। अतः प्रकृति के भव्य पदार्थो से उनका विशेष अनुराग रहा।[25]

बौद्धपालिग्रंथों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वृक्ष पूजा बड़ी व्यापक थी। वृक्षों की देवता, अप्सरा नमा, प्रेतात्मा आदि की अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वृक्षारोपण करते थे। कुछ लोग वृक्षवासी प्रेतात्माओं तथा नागों के भय के निवारणार्थ वृक्ष-पूजा करते थे। बोधिवृक्ष या पीपल के लिए बने मंदिरों को बोधिघर कहा गया हैं साँची, मथुरा कला में बोधिघरो का अंकन प्रायः मिलता हैं। इन मंदिरों की छत नही होती थी बल्कि बीच का भाग आकाश की ओर खुला रहता था केवल चारों ओर की दिवार बनाई जाती थी।[26]

प्रत्येक बौद्ध के लिए एक-एक पवित्र वृक्ष की कल्पना की गई है जिसे उसका बोधिवृक्ष माना गया था। इस प्रकार बड़े सहज ढ़ंग से वृक्षों की पूजा बौद्धघर्म में प्रविष्ट हो गई और उसी प्रकार जनसाधारण से प्रीति और विश्वास प्राप्त करती रही, जिस प्रकार वह पहले प्राप्त करती थी। महावजिक जातक की कथा में कुछ व्यापारी खजाने की खोज में निकलते है और उसे ढूंढ़ते हुए एक वटवृक्ष की छाया में पहुंच जाते है। वह वटवृक्ष कल्पवृक्ष का ही एक रूप था। उसकी पूर्वी शाखा से जल की धराएं, दक्षिण शाखा से अन्नपान, पश्चिमी शाखा से स्त्रियाँ और उत्तरी शाखा से सब इच्छित वस्तुएं उत्पन्न हो रही थी।[27]

दुम्मेध जातक से इस बात की सूचना मिलती है कि पुत्री, यश, धन आदि के लाभ के लिए भक्तजन बड़े वृक्ष के नीचे एकत्र होकर याचना करते, गन्धपुष्प से वटवृक्ष की पूजा कर, जल से अभिषेक तथा प्रदक्षिणा कर वृक्षदेवता की नमस्कार करते। न्यग्रोध के अतिरिक्त जातकों में अखण्ड पलाश, गण्डतिन्दु और शाल वृक्षों की पूजा उपासना का उल्लेख मिलता है।[28]

मनुष्य का श्रेष्ठता बोध प्रकृति-पर्यावरण के अनावश्यक दोहन एवं शोषण का एक प्रमुख कारण हैं इसके तहत ऐसा माना जाता है, कि मनुष्य इस सृष्टि की सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है जो स्वयं में मूल्यवान है और अन्य सभी जैविक एवं अजैविक तत्वों की अर्थवत्ता मनुष्य सापेक्ष है। इसके अनुसार, यह संपूर्ण सृष्टि मनुष्य के उपभोग के लिए हैं मनुष्य एकमात्र साधय है और सारा

प्रकृति-पर्यावरण उसके लिए साधन मात्र हैं, इस दृष्टि के तहत पर्यावरण संरक्षण की बात भी केवल इसलिए की जाती है ताकि, मनुष्यों का जीवन सुरक्षित एवं सुखमय बना रहे। इस दृष्टि को मनुष्य केंद्रित पर्यावरणीय नीतिशास्त्र कहते है।

लेकिन, बौद्धधर्म-दर्शन मनुष्य केंद्रित पर्यावरणीय नीतिशास्त्र से आगे की बात करता हैं। बौद्धआदर्शों के अनुसार प्रकृति-पर्यावरण में सजीव एवं निर्जीव आपस में संबंधित और परस्पर आश्रित हैं। इसलिए मानवीय जीवनशैली का प्रकृति-पर्यावरण के संग एक तारतम्यता होनी चाहिए। बौद्धदर्शन के एक प्रमुख सिद्धांत प्रतीत्यसमुत्पाद मनुष्य के अविद्याजनित श्रेष्ठताबोध को अस्वीकार करता है और इसकी जगह संसार में परस्पर निर्भरता के विचार को समर्थ्रन देता है। इसके तहत संपूर्ण चराचर जगत की रिपेक्ष उपयोगिता को स्वीकार किया गया है और सबों के बीच सामंजस्य एवं सहकार की वकालत की गई है। इस तरह बौद्धदर्शन ब्रह्मांडकेंद्रित पर्यावरणीय नीतिशास्त्र का समर्थन करता हैं।[29]

बौद्धदर्शन सम्यक आजीविका की शिक्षा देता है, जिसका अर्थ है-विहित (उचित) उपायों से जीवकोपार्जन करना। इसके अंतर्गत अहन्य जीवों के अधिकारों का उलंघन किए बिना जीविकोपार्जन करने का आदेश दिया गया हैं साथ ही इसमें जीविका के लिए अन्य जीवन, यथा - पशु, पक्षी, वृक्ष आदि को क्षति नहीं पहुँचाने का आदर्श भी सन्निहित है। इसी तरह सम्यक कर्म एवं सम्यक व्यायाम का भी पर्यावरणीय दृष्टि से महत्त्व है।[30]

बौद्धदर्शन के अनुसार मनुष्य आंतरिक एवं ब्राह्‌ ग्रंथियों से बद्ध है। लोभ, मोह एवं आक्रमकता आदि आंतरिक ग्रंथियाँ या आंतरिक प्रदूषण हैं और बाह्‌ ग्रंथी है पर्यावरण प्रदूषण। जो मनुष्य विवेकी एवं शीलवान होता है, वह इन दोनों प्रकार की ग्रंथियों से मुक्ति पाने में सक्षम है। इसलिए, बौद्धदर्शन आदर्श मानव जीवन के लिए प्रज्ञा, शील एवं समाधिका आदर्श प्रस्तुत करता है। इन आदर्शों के जरिए चराचर जगत के कल्याण की कामना की गई हैं इसे बौद्धदर्शन के एक अन्य सिद्धांत ब्रह्म-विहार में भी देखा जा सकता है। इसके अंतर्गत मैत्री (समस्त प्राणियों से मैत्री भाव), करूणा (समस्त प्राणियों से दया भाव), मुद्रिता (सबकी समृद्धि एवं प्रसन्नता में आनंद की अनुभूति) और उपेक्षा (अपने स्वार्थ के प्रति उपेक्षा और शत्रु-मित्र दोनों के प्रति समान भाव) की शिक्षा दी गई है। इन शिक्षाओं में पर्यावरणीय संकट का व्यवहारिक समाधान निहित हैं।[31]

बौद्धसाहित्य से प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत के लोग प्रदूषण-मुक्त, स्वच्छ पर्यावरण के प्रति अत्याधिक जागरूक थे। मानव-जीवन में वृक्ष एवं वनस्पतियों की उपयोगिता तथा पर्यावरण की शुद्धता में उसके योगदान से भली-भाँति परिचित थे, सम्भवत: उनके संवर्धन एवं संरक्षण को ध्यान में रखकर वनस्पतियों तथा वृक्षों का संबंध विभिन्न धर्म के विभिन्न देवताओं से समीकृत किया गया था।

जैन तीर्थकर पर्यावरण के विशेषज्ञ थे। उन्होंने पर्यावरण को अध्यात्म से जोड़कर एक नयी चेतना का संचार किया। स्वयं को प्रकृति के प्रागंण मे बैठकर आध्यात्मिक साधना की ओर स्वानुभूति के आधार पर जीवन के सूत्र दिये। वे सूत्र यद्यपि मुख्य रूप से मुनि आचार से सम्बद्ध है, पर उन्हीं को अणुव्रत के रूप में श्रावकों के लिए प्रतिष्ठापित किये जाने पर वे समग्र समाज के लिए दीपक बन गये। आज वे ही सूत्र समूचे जैन साहित्य के सृजन का कारण बने। उन्हीं सूत्रें से पर्यावरण विज्ञान को समझा जा सकता है। वे ही सूत्र धर्म के पर्यायर्थाक बन गये। इसलिए जैन धर्म और पर्यावरण को समानार्थक माना जा सकता है।[32]

तीर्थकर ऋषभदेव जिस प्रकार जैन संस्कृति के आद्य-पर्वत माने जाते है, उसी प्रकार उन्हें पर्यावरण विज्ञान का पितामह भी कहा जाता है। पर्यावरण का संबंध पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक, एकेन्द्रिय, स्थावर जीवों तथा द्वीन्द्रिय से लेकर पंचन्द्रिय त्रस कायिक जीवों से रहा है। ऋषभदेव ने इन जीवों के प्रति अहिंसा और समता भाव का पाठ देकर परस्परोग्रह का संदेश दिया। इन जीवों का वातावरण के साथ कितना धनिष्ठ संबंध है, यह स्पष्ट करते हुए, उनके पारस्परिक सहयोगात्मक मुजफ्फरपुर को प्रतिस्थापित करने का आग्रह किया। सभी जीवों का कल्याण एक-दूसरे से अनुस्यूत रहने में ही है। एकात्मक और समता भरी अहिंसात्मकता को धर्म का प्राण माना। प्रकृति के संतुलन में जीवों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अत: उनका संरक्षण ही पर्यावरण का संरक्षण है, जैन तीर्थकर पर्यावरण के सच्चे पोषक थे।[33]

जैन संस्कृति का पर्यावरण से अत्यन्त गहरा संबंध है यही कारण है कि इस संस्कृति के समस्त नियम एवं उपनियम मूलत: प्रकृति से जुड़े हुए है। जैन वामय में सर्वत्र चौबीस तीर्थकारों का विधिवत उल्लेख मिलता है। ये चिन्ह जन्म से तीर्थकरों के दाहिने पैर के अंगूठे में होता है। उनके जन्म काल के समय जिन चिन्हों को इंद्र देखता है, उसी को लांछन निश्चित कर देता है। इस प्रकार जब हम तीर्थकरों के चिन्ह को देखते है, वहाँ भी हमें पर्यावरण की सच्ची अनुभूति होती है। इन चौबीस तीर्थकरों के चिन्ह पशु-पक्षी

से जुड़े हुए हैं तथा प्रकृति विषय क हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म एवं संस्कृति का प्रकृति से अत्यन्त गहरा संबंध है जिसकी सुरक्षा, संवर्द्धन एवं अक्षुण्णता बनाये रखने में यह धर्म सतत् जागरूक एवं प्रयत्नशील है। जैनधर्म संस्कृति के चौबीस तीर्थकरों के चिन्ह निम्न प्रकार उल्लेखित है[34]–

1. ऋषभदेव-आदिनाथ	वृषभ (बैल)
2. अजितनाथ	हाथी (गज)
3. सम्भवनाथ	अश्व (घोड़ा)
4. अभिनन्दन नाथ	बन्दर
5. सुमति नाथ	चकवा पक्षी
6. पद्म प्रभु	कमल
7. सुपार्श्वनाथ	सवास्तिक
8. चन्द्रप्रभु	अर्द्धचन्द्र
9. पुष्पदंत	मगर
10. शीतलनाथ	श्रीवृक्ष
11. श्रेयान्सनाथ	गेंड़ा
12. वासुपूज्य	महिम
13. विमलनाथ	शुकर
14. अनन्तनाथ	सेही
15. धर्मनाथ	वज्रदण्ड
16. शान्तिनाथ	हिरण
17. कुन्थुनाथ	बकरा
18. अरहनाथ	मछली (तगर कुसुम)
19. मल्लिनाथ	कलश
20. सुव्रतनाथ	कछुआ
21. नमिनाथ	नीलकमल
22. नेमनाथ	शंख
23. पार्श्वनाथ	सर्प
24. महावीर	सिंह

इन चौबस तीर्थकरों के चिन्हों में से वृषभ, गज, अश्व, बन्दर, चक्रवाक, मगर, गेंडा, महिष, शूकर, से हिरण, बकरा, मछली, कछुआ, सर्प एवं सिंह आदि चिन्ह पशु-पक्षी से सम्बंधित है। इसके अतिरिक्त कमल, नीलकमल एवं शंख आदि चिन्ह प्रकृति विषयक हैं जहाँ प्रकृतिक सौंदर्य, शुद्ध हवा और सुगन्ध व्याप्त है। शंख, कच्छप और मगर जल की शुद्धता की ओर संकेत करते हैं और चन्द्रमा, शीतलता, स्वच्छता एवं प्रकाश का प्रतीक है। वास्तव में उपर्युक्त ये सभी चिन्ह मात्र प्रतीकात्मक हैं जो पर्यावरण की शुद्धता का भान कराते हैं।

महावीर का सिद्धांत बहुआयामी था। उनका संपूर्ण जीवन संयमित और सुसंस्कृत था। यही कारण है कि सभी राजाओं ने उन्हें विशिष्ट पदों पर नियुक्त किया था। कृतधनवता और अप्रमाणिकता जैसे दुर्गुन उनके पास कभी नही फटके थे। उनका मूल उद्देश्य था 'सर्वोदयवाद' जिसमें प्राणि मात्र के प्रति मैत्री का भाव था। महावीर ने स्पष्ट रूप से कहा कि हर प्राणी का चेतना-अचेतना अस्तित्व हैं उसकी अपनी उपयोगिता हैं। वनस्पति, वायु, जीव, अग्नि सभी जीव हैं। महावीर ने व्यक्तिगत शुद्धता की बात कही है,

अणुव्रत से उसे महाव्रत तक पहुँचाया है। अहिंसा उनका मूलमंत्र है तो निषेध उनका प्रबल हथियार, क्योंकि निषेध प्रधान व्यवस्था में परिवर्तन अधिक सरलता में होता है। महावीर की समाज व्यवस्था का मुख्य सूत्र था किसी को दु:ख मत दो, किसी का स्वत्व हरण मत करों। जीवन में प्रमाणिकता का सूत्र महावीर ने दिया आचार्य अणुव्रत के माध्यम से। इंद्रियां संयम के लिए महावीर ने दो साधन भी दिए - ध्यान और स्वाधयाय। स्वधयाय से विवेक जाग्रत होता हैं। ध्यान से चेतना स्वच्छ होती है। ये दोनों साधन साधक को आत्मनियंत्रित बना देता है और उसे एकाधिकार की भावना से उत्पन्न भयंकर स्थिति से बचा लेते हैं। आज क्षेत्रीय असंतुलन और पर्यावरण जिस प्रकार दूषित हो रहा है उसने महाउधोगों पर प्रश्न लगा दिया है। महावीर की दृष्टि से कदाचित छोटे-छोटे उधेग लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। उससे पर्यावरण की सुरक्षा एवं आर्थिक असंतुलन जैसी अनेक समस्याओं से बचा जा सकता है।[35]

जैन संस्कृति अहिंसावादी संस्कृति है जो आणविक एवं विस्फोटक युग के लिए कवच सदृश है। इसके बिना प्राणी मात्र का आस्तित्व बनाये रखना असम्भव है। इसलिए भगवान महावीर ने पर्यावरण की सूरक्षा के लिए 'जिओ और जीने दो', 'अहिंसा परमो धर्म:', 'परस्परोपग्रहो जीवाना' एवं 'पातिवाणं रखणो धम्मो' आदि सूत्र देकर पृथ्वी, जल, वायु अग्नि, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी एवं मानव - इन सभी को सुरक्षित रखने का अदभुत प्रयत्न किया था। जैन धर्म वनस्पति कार्य आदि एकेंद्रिय जीवों की रक्षा करने का हिमायती और पक्षधर है। मनुष्य और प्रकृति को समान गुण सम्पन्न माना गया है, और इसकी व्याख्या करते हुए बताया गया है कि दोनों जन्म लेते हैं, वृद्धि करते है, चैतन्य युक्त होते हैं तथा छिन्न-भिन्न होने पर दोनों ही म्लान हो जाते हैं। दोनों जल ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि जैनधर्म में वनस्पति कार्य आदि प्राणी को भी नष्ट करने का निषेध किया गया है।[36]

'सूत्रकृतांग'[37] का कथन है कि पृथ्वी जीव है, जल एवं अग्नि भी जीव हैं। वायु तृण, वृक्ष एवं बीज भी जीव हैं। इनके अतिरिक्त त्रस कार्य जीव तो जीते होते ही हैं। इस तरह जीव के छह निकाय होते हैं। सभी प्राणियों को दु:ख अप्रिय है। अत: किसी भी प्राणी की हिंसा न करें।

जैनधर्म में 'अपरिग्रहवाद' मूलभूत सिद्धांत है जो पृथ्वी वायु मंडल के साथ ही आत्म मंडल को प्रदूषित होने से बचाता है। इसे इच्छा परिमाण भी कहा गया है। इसका आशय यह है कि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम से कम वस्तुओं का उपभोग करना अर्थात आय की अपेक्षा व्यय कम से कम करना ताकि पर्यावरण संरक्षित रहे। हमारे प्रज्ञा पुरुषों ने शाट्लेष्या सिद्धांत, इच्छा परिमाण व्रत, अर्थ दण्ड त्याग व्रत, परिग्रह परिमाण व्रत आदि सूत्रों के माध्यम से पर्यावरण को शुद्ध, अक्षुण्ण बनाये रखने में सतत् योगदान दिया है, जैसे– अगर एक दातुन के लिए एक टहनी की आवश्यकता है तो बड़ी मोटी टहनी या डाली तोड़ने पर क्या वनस्पति - कायिक जीवों के प्रति अतिक्रमण, अन्याय, हिंसा नहीं है? स्नान करने के लिए यदि एक बाल्टी पानी पर्याप्त है तो पूरा नल खोलकर पानी बहाना क्या जल प्रदूषण नहीं है। पृष्ठ पर दो लाईन लिखकर पूरा पृष्ठ यों ही छोड़ देना क्या मृदा आदि प्रदूषणों को बढ़ावा देना नहीं है? कागज बनाने के लिए कितने कारखाने लगाने पड़े? कितने जंगलों को काटना पड़ा? इन सभी बातों को ध्यान में धारण करने, संयमित एवं मितव्ययी जीवन जीने के लिए भगवान महावीर ने कहा था कि सभी चेतन या अचेतन पदार्थों की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। सभी का अपना-अपना आस्तित्व है। इसलिए छोटे से छोटे जीव के आस्तित्व को स्वीकार करो क्योंकि जो दूसरे के आस्तित्व को स्वीकार करता है वहीं अपने अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। अत: मनुष्य को अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं पर अहिंसा भावनापूर्वक उपयोग कर निष्परिग्रही होना चाहिए ताकि वह धन-संचय की होड़, मिलावट, बलात्कार, उत्पीड़न, हत्या आदि मानसिक प्रदूषण से निजात पा सके, जिसके फलस्वरूप अखिल विश्व में समस्त प्राणियों केबीच संतुलन बना रह सके।। इस प्रकार पर्यावरण की अक्षुण्णता, शुद्धता बनाये रखने में अपरिग्रहवाद संजीवनी बूटी ही है।[38]

जैन व्‌मय में बाह्य पर्यावरण के साथ अन्त:पर्यावरण का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। मानव का आध्यात्मिक चिन्तन उसे भौतिक जगत् में कर्म करने हेतु प्रवृत्त करता है। अत: भौतिक पर्यावरण की शुद्धि करना आवश्यक है। इस प्रकार जैन सिद्धांत एवं आचार तन, मन एवं पर्यावरण शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है, जिन्हें विभिन्न पर्यावरणीय पक्षों के संदर्भ में समझना, पहचानना और आचरण में समाहित करना इस युग की महती आवश्यकता बन गई है।

जैन धर्म मानवता की गहराई और उसकी क्रियान्विति पर बल देता है। यही अहिंसा का मर्म है और यही संस्कृति का मूल। अहिंसा ही पर्यावरण का आधार है। संयम समता, करूणा आदि मूल्य पर्यावरण के संरक्षक के लिए उपयोगी है। अहिंसा का प्रतिष्ठापन जैन धर्म एवं जीवन पद्धतिमें सर्वोपरि हैं। जैन संस्कृति ही पर्यावरण की समग्रता को समाहित किये हुये है और उसके पोषण करने में सहभागी बनी हुई है।[39]

भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित एक व्रत को भी यदि पूर्ण रूप से मानव द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो जगत् के कई अनर्थों से स्वयं को बचाया जा सकता है। सूक्ष्म बादर प्राणियों को भी अभयदान दिया जा सकता हैं, मनुष्य अल्प परिग्रही बनकर शान्ति से शुद्ध पर्यावरण में अपना जीवन व्यतीत कर सकता हैं। जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जहाँ पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, अपरिग्रह, अहिंसा, संयम, तप और सँवर आदि द्वारा पर्यावरण का संरक्षण हो सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के समस्त जीवों की रक्षा का भार मानव को समझाना आवश्यक हैं। आज हमें मानव की सुरक्षा की ही चिन्ता नहीं, वरन् समस्त जीवों को संरक्षण देने, उनके स्वतंत्र आस्तित्व, उनके जीवन और गतिविधियों मे अहस्तक्षेप का विशेष ध्यान रखना होगा, ताकि वे पदार्थ भी मनुष्य के जीवन और उसकी गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करें।

जैन आचार में कहा गया है कि 'वल्यु सहावो धम्मो' अर्थात प्रत्येक वस्तु का अपना स्वभाव है और वही उसका धर्म हैं। विश्व की सभी वस्तुओं को उनके मूल स्वभाव में रहने देना, उनके मूल स्वभाव को जान लेना धर्म हैं। जैन तीर्थकरों ने अपने जीवन द्वारा संसार के छोटे से छोटे प्राणी की रक्षा का प्रयत्न किया हैं, जिनका एक विशिष्ट प्रयोजन हैं यहाँ प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र हैं और स्वतंत्र रहना चाहती है। अपने स्वार्थ के लिये किसी प्राणी का या वस्तु का विनाश न करना तथा उन्हे अपने स्वभाव में रहने देना, यही अवधारणा जैन आचार-मीमांसा की मौलिक विश्लेषणता है जो इस प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की संरक्षक एवं संवर्द्धक बन सकती है।[40]

अहिंसा परमोधर्मः - धर्म तो वही है जो धारण करने योग्य हो। वैज्ञानिक युग में यह एक सर्वमान्य धारण बन गई है कि हम परंपराओं, परिपाटियों की उपेक्षा करने लगे हैं। उन्हें रूढ़िवादिता की संज्ञा देकर हेय समझते हैं। वर्तमान में आवश्यकता इन बात की है कि इन समस्त मूल्यों को वैज्ञानिक धरातल की ज्ञान सूक्ष्मता से अवगत करवाया जाये तथा इनकी सकारात्मक प्रभाव को जीवन में उतारा जाये। अहिंसा एक भगवती है जो भीत-भय ग्रस्त के लिये शरण तुल्य, पक्षियों के लिये गमन तुल्य, प्यासों के लिए जल तुल्य एवं दुखी दुर्बलों के लिए औषधि तुल्य है।

इन सब विशिष्टाओं से युक्त अहिंसा त्रस और स्थावर सकल जीवों के लिए कल्याण करने वाली है। अहिंसा की महिमा और सामर्थ्य को देखते हुये निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि अहिंसा सकल धर्मों में श्रेष्ठ है। अतः अहिंसा के बिना जगत का कल्याण एवं संरक्षण असम्भव है।

पर्यावरण को प्रदूषित करने में दो मूल कारण है - तृष्णा और हिंसा। परिग्रह और क्रूरता, तृष्णा और हिंसा के ही विकसित रूप हैं। जैनधर्म प्रारम्भ से ही तृष्णा और हिंसा पर संयम रखने की बात करता रहा हैं, हिंसा का जीवन में विस्तार न हो इसके लिए जैन आगमों में वृक्ष, वनस्पति, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि आदि सभी की चेतना पहचान कर उनके साथ मनुष्य के सदृश्य अस्तित्व एवं समानता की बात कही गई है। हिंसा को तिरोहित करने के लिए ही शाकाहार एवं शुद्ध आहार पर जैन धर्म में विशेष ध्यान दिया गया हैं। यहाँ बहुत से धन्यों, बीजों, फलों एवं साग को भोजन में न लेने की बात कही गई है ताकि अहिंसा का अक्षरतः पालन हो और प्राकृतिक सुरक्षा यथावत् बनी रहे। इसी अहिंसा के विस्तार को मद्देनजर रखते हुए मांसाहार का निषेध किया गया। हिंसा को न्यूनतम करने के लिए श्रावकों के व्रतों में, नियमों में अनेक हिंसक व्यवसायों पर भी प्रतिबंध लगाए गए जिनसे पर्यावरण संतुलन का खतरा था। जैन परंपरा में ऐसे अनेक विवरणों का सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है जिनसे पर्यावरण संतुलन के लिए कई महत्वपूर्ण सूत्र जुड़े हुए हैं। जो दूसरों को अर्थात् त्रस स्थावन जीवों को मारता है, सताता है, डराता है तो उसकी हिंसा हाने से भाव मलिन होता है और बाह्य पर्यावरण प्रदूषित होता हैं जबकि इसके विपरीत अहिंसा से पर्यावरण का संरक्षण होता है।[41]

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"[42] सूत्र जैन दर्शन का महत्वपूर्ण सूत्र हैं। चारों ओर स्वस्थ वातावरण के निर्माण में प्राणियों में पारस्परिक सहयोग एवं एक-दूसरे के प्रति समादर का भाव अपेक्षित हैं। यहाँ पर्यावरण संरक्षण का अर्थ- व्यष्टि-समष्टि, एक-अनेक, सूक्ष्म-स्थूल, जीव-अजीव समस्त पदार्थों की अन्योन्याश्रित समग्रता से है।

जैन सिद्धांत पर्यावरण से संबंधित दो मुख्य बिन्दुओं पर आधारित हैं। प्रथम पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और वनस्पति में जीवत्व और प्राणतत्व के अस्तित्व की अवधारणा और दूसरा जीव मात्र के संरक्षण हेतु अहिंसा व्रत का अधिक से अधिक पालन। जैन शास्त्रों में मात्र जन-तंत्र का ही नहीं अपितु प्राण-तंत्र का भी प्रतिपादन हुआ हैं। इन प्राण-तंत्र की नींव में करूणा अपनी सम्पूर्ण प्रखरता

के साथ समन्वित हैं इसलिए यहाँ प्राण मात्र को पूर्ण सम्मान व संरक्षण देना स्वीकार किया गया है। प्रकृति के साथ मानवीय मुजफ्फरपुर की यह अनुपम क्रिया वस्तुत: पर्यावरण चेतना का एक अविभाज्य अंग हैं। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण एक दृष्टि से मानवीय धर्म माना जा सकता है।

'सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्य श्मामलां मातरम्' गीत में बंकिमचन्द चटर्जी ने जिस पृथ्वी का चित्रण किया है, उसमें पर्यावरण की समग्र जीवन्तता चित्रित हैं। वैदिक काल में प्राचीन ऋषि-मुनियों ने पर्यावरण के महत्व को समझकर ही उपवन लगाने तथा नित्य यज्ञादि आयोजित करने का नियम बनाया था। पर्यावरण को प्रत्यक्षत: प्रभावित करने वाले अग्नि, वायु, पर्जन्य, वरूण, सोम, पृथ्वी तथा वृक्ष आदि वैदिक ऋषियों के पूज्य रहे है। वृक्षों की वैज्ञानिक महत्ता आज स्वीकार की जाती हैं, केला, बरगद तथा पीपल में मेलाटोनिन नामक हारमोन पाया जाता है जो अन्य वृक्षों में नही पाया जाता। पूजा-पाठ यज्ञादि कार्यों में इसी कारण इसे महत्व प्रदान करने हेतु धार्मिक कृत्यों से जोड़ा गया था। पर्यावरण को शुद्धता प्रदान करने में यज्ञों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 'यज्ञोश्ष्यं सर्व कांमधुक' अर्थात यज्ञ सब कामनाएँ पूर्ण करने वाले होते है। यज्ञ क्रियाओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण एवं अध्ययन उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। यज्ञ से पूर्व वातावरण में सल्र डाइआक्साइड, नाइट्स आक्साइड तथा पानी में वैक्टीरिया की उपस्थिति जहाँ अधिक थी, वहीं यज्ञ सम्पादन के बाद वातावरण में इनकी उपस्थिति में कमी देखी गयी। यदि भस्मों की राख का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उसमें फारूोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैगनीशियम तथा नाइट्रोजन आदि भूमि उपयोगी रसायनिक तत्वों की अधिकता थी, जो इन क्रियाओं के वैज्ञानिक महत्व दर्शाते है।[43]

प्रचीन काल के भरतीय मनीषियों ने प्रकृति के रहस्यों का न केवल पता लगाया, अपितु संतुलित अर्न्तप्रक्रिया के लिए समायोजन की प्रक्रिया को आचरण परक बनाया। तात्पर्य यह है कि प्रकृति में अर्न्तमुजफ्फरपुर के समायोजन हेतु जो-जो क्रियाएँ आवश्यक रही, उन्हीं के अनुरूप आचरण करने (सन्धयोपासना, पूजा-वंदना, वृत्ति आदि सभी कार्य) का धार्मिक नियम बना दिया गया। जिसके फलस्वरूप हजारों वर्षो तक मनुष्य प्रकृति का अर्न्तसंबंध मधुर बना रहा। प्रकृति के रहस्यों तथा मनुष्य जाति सहित अन्य प्राणी जीवों पर पड़ने वाले प्रभावों को जनसामान्य तक पहुँचाने का आचरण रूपी सरलतम रूप दिया गया। पश्चिमी देशों में मानव और प्रकृति के अर्न्तमुजफ्फरपुर को आधार बनाकर पर्यावरण का अध्ययन शुरू हुआ।[44]

अमेरिकी संस्कृति का केंद्रीय भाव है -'यूस एण्ड थ्रो' अर्थात वस्तुओं का उपयोग करों और उसे फेंक दो। इससे कूड़े का ढ़ेर जमा होता जा रहा हैं। वहाँ रिपेयर और रीसाइकिल का विचार कोई नही करता। पर हमारे देश में हम वस्तुओं को बार-बार उपयोग करते है। बचत द्वारा हम दूसरों की मदद करते हैं।[45]

वैज्ञानिकता के दंभ में आज हम भूल बैठे है कि 'मानव जीवन का सुप्रभात' पर्यावरण के अनुग्रह पर ही निर्भर हैं। नवीनतम वैज्ञानिक विचार 'डीप इकोलॉजी' प्राचीन वैदिक एवं पौराणिक अवधरणओं की ओर हमारा विश्वास बढ़ा है। विज्ञान में विकसित नवीनतम 'डीप इकोलॉजी' प्राचीन ऋषियों के कथनों को ही दुहराती है तथा नैतिकता एवं मर्यादा की सीमा जीव का शोषण एवं संहार न हो तथा प्रकृतिक संतुलन के साथ पर्यावरण की शुद्धता भी विद्यमान रह सके। पर्यावरण के संबंध में 'मानवीय बुद्धिमत्ता ही आज मूर्खता का पर्याय बन चुकी है। मानव अपनी जिन बौद्धिक उपलब्धियों पर गर्व करता था, वहीं आज पर्यावरण के ऑचल को तार-तार कर रही है। पारिस्थितिक विषमता को देखते हुए आज विज्ञान की सभी शाखाओं के विद्वान मिलकर विज्ञान के 'इकोएथिकल' आयाम को अपनाने की बात कर रहें है, जिसमें किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान से पहले उसके पर्यावरणीय एवं नैतिक पृष्टभूमि पर विचार किया जाय।

'प्रकृति सीधी सौम्य गाय तथा रूष्ट सिंहनी दोंनों है।' यदि उसके साथ सामंजस्य, सहयोग का व्यवहार किया गया तो अनंत काल तक अपने दुग्धरूपी संपदाओं से हमारा पालन-पोषण करती रहेगी, परंतु शोषण एवं विदोहन की स्थिति में हमें मार डालने में भी उसे तनिक संकोच नही होगा। प्रकति से छेड़छाड़ कर दुष्परिणाम आज भूकंप, हिमस्खलन, भूस्खलन, सूखा, बाढ़, मरूस्थलीकरण तथा शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता के रूप में हमारें सामने हैं। यदि सभी प्राकृतिक समस्याओं का निराकरण करना है तो हमें प्राचीन वैदिक, बौद्धएवं जैन ऋषियों द्वारा बताये गये मार्गो का अनुसरण करना होगा तभी हमारा तथा पर्यावरण का आस्तित्व बच सकता हैं, अन्यथा हम जिस डाल पर बैठे है उसे काटने का कर्म तो कर ही रहे है।

संदर्भ

1. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव - इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2010, नई दिल्ली, पृष्ठ
2. बी. डी. शर्मा - पर्यावरण शिक्षा, ओमेगा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ
3. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव - इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2010, नई दिल्ली, पृष्ठ
4. डॉ. सत्यनारायण दुबे 'शरतेन्दु' - पर्यावरण अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन, प्रथम संस्करण, 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ 120
5. उपर्युक्त, पृष्ठ वही
6. यजुर्वेद, 1/25
7. अथर्ववेद, 12/43
8. अथर्ववेद, 12/11
9. अथर्ववेद, 12/22
10. अथर्ववेद, 12/1/11
11. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव - इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आंदोलन चिन्तन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2010, नई दिल्ली, पृष्ठ 121
12. उपर्युक्त, पृष्ठ व
13. अथर्ववेद, 18/1/77
14. अथर्ववेद, 12/2/44
15. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/2/2
16. अथर्ववेद, 19/17/6
17. यजुर्वेद, 1/14
18. अथर्ववेद, 8/2/35
19. सुधंशु शेखर एवं दीपक कुमार - पर्यावरण एवं मानवाधिकार, जागृति पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2013, पृष्ठ 20
20. डॉ. सूर्य नारायण गौतम - वेद, यज्ञ एवं पर्यावरण, एजुकेशनल बुक सर्विस, प्रथम संस्करण, 2014, नई दिल्ली, पृष्ठ 106-07
21. उपर्युक्त, पृष्ठ 110
22. Prof. (Dr.) Rishabha Chandra Jain (Chif Editor) – Vaishali Institute Research Bulletin No. 10 में प्रकाशित शारदा सिंह का शोध आलेख- जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण, Research Institute of Prakrit Jainology &A hinsa, First Edition, 2008, Vaishali, Page - 88
23. सुधांशु शेखर एवं दीपक कुमार - पर्यावरण एवं मानवाधिकार, जागृति पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2013, नई दिल्ली, पृष्ठ 34
24. प्रो. सूर्य नारायण व्यास (स.) - बौद्धविमर्श में प्रकाशित डॉ. रणजीत प्रताप सिंह का शोध आलेख, बौद्धसाहित्य में पर्यावरण, आर्यभाषा संस्थान, प्रथम संस्करण, 2012, वाराणसी, पृष्ठ 211
25. डॉ. शुभांगी - बौद्धवाड्मय मे पर्यावरण संरक्षण, जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016, पटना, पृष्ठ 25-26
26. प्रो. सूर्य नारायण व्यास (स.) - बौद्धविमर्श में प्रकाशित डॉ. रणजीत प्रताप सिंह का शोध आलेख, बौद्धसाहित्य में पर्यावरण, आर्यभाषा संस्थान, प्रथम संस्करण, 2012, वाराणसी, पृष्ठ 213
27. उपर्युक्त, पृष्ठ वही
28. उपर्युक्त, पृष्ठ 214
29. सुधांशु शेखर एवं दीपक कुमार - पर्यावरण एवं मानवाधिकार, जागृति पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2013, नई दिल्ली, पृष्ठ 34
30. उपर्युक्त, पृष्ठ वही
31. उपर्युक्त, पृष्ठ वही

32. डॉ. भागचन्द्र जैन - जैन धर्म एवं पर्यावरण, न्यू भारतीय बुक डिपों, पृष्ठ 31
33. Prof. (Dr.) Rishabha Chandra Jain (Chif Editor) – Vaishali Institute Research Bulletin No. 10 में प्रकाशित शारदा सिंह का शोध आलेख- जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण, Research Institute of Prakrit Jainology &A hinsa, First Edition, 2008, Vaishali, Page – 87.88
34. डॉ. हीरालाल जैन - जैन धर्म का प्रारंभिक इतिहास, शारदा मंदिर, वाराणसी, पृष्ठ 25
35. Prof. (Dr.) Rishabha Chandra Jain (Chif Editor) – Vaishali Institute Research Bulletin No. 10 में प्रकाशित शारदा सिंह का शोध आलेख- जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण, Research Institute of Prakrit Jainology &A hinsa, First Edition, 2008, Vaishali, Page – 88.89
36. सूत्रकृतांग, 1/2/3/78
37. सूत्रकृतांग, 1/11/9
38. Prof. (Dr.) Rishabha Chandra Jain (Chif Editor) – Vaishali Institute Research Bulletin No. 10 में प्रकाशित शारदा सिंह का शोध आलेख- जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण, Research Institute of Prakrit Jainology &A hinsa, First Edition, 2008, Vaishali, Page – 81
39. डॉ. सॉवर सिंह यादव - जैन आचार मीमांस एवं पर्यावरण, सहित्यसागर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2014, जयपुर, पृष्ठ 102-103
40. उपर्युक्त, पृष्ठ 104
41. उपर्युक्त, पृष्ठ 105
42. तत्वार्थ सूत्र, 2/21
43. डॉ. सत्यनारायण दूबे शरतेन्दु - पर्यावरण अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन, प्रथम संस्करण, 2010, इलाहाबाद, पृष्ठ 122-123
44. डॉ. निधि मिश्रा, आयुर्वेद में पर्यावरण एवं समाज, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, प्रथम संस्करण, 2009, नई दिल्ली, पृष्ठ 154
45. किशोरीलाल व्यास - भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, प्रथम संस्करण, 2007, नई दिल्ली, पृष्ठ 139

मानव जीवन में शाकाहारी और मांसाहारी आहार का जीवन पर प्रभाव

डॉ० मंजुश्री

स्नाकोत्तर गृह विज्ञान विभाग, ति0 मॉ0 भा0 वि0 वि0, (बिहार)

"मनुष्य के स्वास्थ्य का रहस्य लोगों के घरों में ही है" –नाइटिंगगेल

भोजन मनुष्य की मूल आवश्यकताओं में से एक है पुण्य विधान भोजन से ही मनुष्य की शारीरिक मानसिक वह मनोवैज्ञानिक शक्ति प्राप्त करता है। संसार के प्रत्येक जीव का शरीर निरंतर कार्य करता रहता है। हमारे देश में प्रमुख रूप से शाकाहारी आहार ही खाया जाता है परंतु इस प्रतिशत से 30% लोग मांसाहारी भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन शरीर को सारणी मानसिक रूप से चुस्त-दुरुस्त भोजन शरीर की उपयोगिता वृद्धि एवं विकास का सोपान है।

भोजन शाकाहारी और मांसाहारी रूप से ग्रहण करते हैं।

1. शाकाहार
2. मांसाहार

कुछ व्यक्ति मांस को छोड़कर वनस्पति खाद्य पदार्थ का उपयोग और साग सब्जी करता है उसे शाकाहारी कहते हैं तथा मांसाहारी उसे कहते हैं जो अपने भोजन में मांस का उपयोग करता है। शाकाहारी भोजन में रेशेदार तत्व प्रोटीन वसा अल्प मात्र में ऊर्जा एवं कार्बोहाइड्रेट की प्राप्ति तो होती ही है। लेकिन कुछ आवश्यक अमीनो अम्ल की कमी होने से शरीर की वृद्धि एवं विकास में बाध उत्पन्न होती है। इसके विपरीत मांसाहार के भोजन में कार्बोहाइड्रेट रेशा, विटामिन (C), के (K) का अभाव होता है साथ ही मांस में मौजूद वर्षा से अनेक तरह की बीमारियां होती है।

आधुनिक समय में मांसाहारी भोजन एक सहयोगी खाद्य-पदार्थ के रूप में खाए जाते हैं। यह आहार धार्मिक व आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। धार्मिक प्रथाओं के कारण मांसाहार लोग भी कुछ विशेष दिनों के अवसरों और त्योहारों पर मांस नहीं खाते हैं। मुंगेर नगर निगम के विभिन्न मोहल्लों के सर्वे में मैंने पाया कि शाकाहारी और मांसाहारी भोजन में करने वाले जो व्यक्ति मौजूद थे उसमें स्वस्थ शाकाहारी ज्यादा थे। जो मांसाहारी थे वह रोग से ग्रसित थे ज्यादा प्रोटीन लेने से किडनी रोग ज्यादा पाए जाते हैं। मांसाहारी भोजन वाले व्यक्तियों को हृदय रोग मधुमेह रोग और कब्ज रोग जाया ज्यादा पाया जाता है। और वहीं पर शाकाहारी व्यक्तियों की कार्य क्षमता जाया ज्यादा पाई गई है। शाकाहारी भोजन में थकान कम व स्फूर्ति ज्यादा होती है क्योंकि इसमें रेशेदार पदार्थों की ज्यादा मात्र पाई जाती है। रेशेदार भोजन ग्रहण करते हैं और उसका मुख्य उद्देश्य शरीर की वृद्धि तथा रोग वादियों से शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक पोषक पदार्थ प्रोटीन खनिज तथा विटामिन आदि प्राप्त करना होता है। रेशेदार खाद्य पदार्थों का होना शारीरिक क्रियाओं के सुचारू ढंग से संचालन के लिए अति आवश्यक है रिश्तेदार पदार्थों की भी शरीर में उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि अन्य पोषक पदार्थों की। भोजन में मौजूद रेशेदार पदार्थ शरीर की पाचन शक्ति को मजबूत करने के साथ-साथ विभिन्न अंगों को मजबूती भी प्रदान करता है।

शाकाहारी भोजन जिसमें रेशेदार भोज्य पदार्थ के स्रोत

रेशेदार पदार्थ मुख्य रूप से अंकुरित अनाजों दलिया साबू तथा छिलके वाले डालो और जोकड़ वाली डालो और जो कर युक्त आटे से अधिकता में विद्यमान होते हैं। अनाजों में मक्का ज्वार बाजरा तथा चना छिलके सहित में भरपूर रेशेदार पदार्थ होते हैं। सब्जियों में हरे पत्तेदार साल जैसे पालक सोया मेथी कुला चौलाई तथा मूली का साग इत्यादि पुणिराम फलों जैसे अमरुद आलूबुखारा कमरा आदिल सेब संतरा पपीता अनानास नाशपाती एवं रसभरी आदि से भरपूर पदार्थ विद्यमान रहते हैं। आलू में कार्बोहाइड्रेट की मात्र पाई जाती है फलों में रहते हैं संतरे के औषधीय गुणों को देखते हुए इसे यूरोप में गोल्डन एप्पल भी कहा जाता है। इसका छिलका और गुदा दोनों लाभकारी है। **संतरे को मैथिली में संतोला या समतोला, बांग्ला में कमला लेंबू तमिल में आरंजू कहते हैं।** यह औषधीय गुणों से युक्त है। इसमें प्रचुर मात्र में विटामिन सी होता है। लोहा और पोटेशियम भी काफी होता है इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें फुक्टोज डेज खनिज एवं विटामिंस शरीर में पहुंचते ही शरीर में ऊर्जा देना प्रारंभ कर देते हैं। इसमें मौजूद कुल कुल 35 अतिरिक्त ताकत प्रदान करते हैं।

संतरे में मौजूद पोशक तत्त्व

पोशक तत्त्व प्रति 100ग्राम (3.5 औंस)

ऊर्जा	50 किलो कैलेरी 190	
कार्बोहाइड्रेट	11.54 ग्राम	
शर्करा	9.14 ग्राम	
आहारीय रेषा	2.4 ग्राम	
वसा	0.21 ग्राम	
प्रोटीन	0.70 ग्राम	
थायमीन	0.100 मिलीग्राम	8 फीसदी
राइबोफ्लेविन	0.040 मिलीग्राम	3 फीसदी
नायसिन	0.400 मिलीग्राम	3 फीसदी
पैंटोथैनिक अम्ल	0.250 मिलीग्राम	5 फीसदी
विटामिन	0.051 मिलीग्राम	4 फीसदी
फोलेट	17 मिलीग्राम	4 फीसदी
विटामिन	45 मिलीग्राम	75 फीसदी
कैल्शियम	43 मिलीग्राम	4 फीसदी
लौहतत्व	0.09 मिलीग्राम	1 फीसदी
मैंग्नीशियम	10 मिलीग्राम	3 फीसदी
फॉसाफोरस	12 मिलीग्राम	2 फीसदी
पोटेशियम	169 मिलीग्राम	4 फीसदी
जस्ता	0.08 मिलीग्राम	1 फीसदी

उपरोक्त सामग्री में मौजूद पोषक तत्वों के अनुसार रोगों का समाधान संतरे के माध्यम से

1 हृदय रोग

2 उच्च रक्तचाप

3 सूखा रोग
4 कैंसर
5 ज्वार
6 पेट के रोग
7 सर्दी जुकाम
8 सूखी खांसी
9 गर्भवती महिलाओं के लाभकारी है।

संतरे को अपने भोज्य पदार्थ से ग्रहण करने से उपरोक्त रोगों से छुटकारा मिलता है। संतरा दिल के मरीजों के लिए रामबाण है। संतरे का रस शहद में मिलाकर पीने से हृदय को ताकत मिलती है इसे संबंधी रोग धीरे-धीरे खत्म। धमनियों में होने वाले रक्त विकार को दूर करते हैं उन्हें मैग्नीशियम और पोटैशियम अधिक मात्र में होने से उच्च रक्तचाप के मरीजों के लिए यह अच्छा होता है। यह रक्तचाप पर नियंत्रण रखता है। जिन बच्चों को सूखा रोग की शिकायत हो उन्हें संतरे का जूस जरूर देना चाहिए पुणे विराम इससे बच्चों का साडे विकास हो विटामिन की भरपूर मात्र होने के कारण हड्डियों की कमजोरी रक्त शुद्ध हो चिड़चिड़ापन दूर हो जाता है। संतरे के प्रति दिन जूस के सेवन से किसी भी प्रकार के कैंसर की संभावना कम होती है क्योंकि संतरे के जूस में एंटीऑक्सीडेंट्स अधिक मात्र में पाए जाते हैं। यह दांतों व मसूड़ों के लिए लाभकारी होते हैं। संतरे के सेवन से प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत बनती है जो कोल्ड और फ्लू जैसे संक्रमण का खतरा कम होता है। क्योंकि इसमें विटामिन सी की अधिक मात्र होती है। गर्भवती महिलाओं तथा यख्रत रोग से ग्रसित महिलाओं के लिए संतरे का जूस बहुत लाभकारी होता है इसके सेवन से जहां प्रसव के समय होने वाली परेशानियों से थोड़ा आराम मिलता है।

अनाजों तथा दालों में लगभग 2% से 3% तथा हरी सब्जियों और फलों में लगभग 3% से 4% तक पदार्थ उपस्थित रहते हैं भोजन की दृष्टि से दैनिक आहार में हमें प्रतिदिन 300 से 400 ग्राम मात्र में रेशेदार पदार्थों को शामिल करना चाहिए। जो शाकाहारी भोजन के माध्यम से हमारे शरीर में पाए जाते हैं।

मांसाहारी आहार की पौष्टिकता

मांसाहार से अच्छी किस्म के प्रोटीन मिलते हैं। मांस में 16% से 23% प्रोटीन होती है और वसा की मात्र 10% से 14% मुर्गी तथा मछली में अन्य पशुओं के मांस की अपेक्षा वसा कम होती है। अत: इन्हें कम वसा वाले मांसाहार कहते हैं। इसमें Cholesterol की मात्र कम होती है। मांस में लौह तत्व, Phosphosuus ,VitaminA तथा B समूह को विटामिन अच्छी मात्र में होते हैं। खोल या हड्डियों वाली मानसून में कैल्शियम की मात्र अच्छी होती है। मांसाहार आहार ग्रहण करने वाले व्यक्तियों में कब्ज रोग, मधुमेह और हृदय रोग पाए जाते हैं। और प्रोटीन के अच्छे स्रोत में से है। मुंगेर बिहार के प्राचीनतम जिला में से एक है। बिग मुंगेर के निवासी होने के कारण मैंने अपने जिला की प्रति कुछ मेरा कर्तव्य बनता है अनुसंधान के माध्यम से मुंगेर शहर के शाकाहारी एवं मांसाहारी लोगों के आहार का तुलनात्मक अध्ययन और उससे होने वाली विभिन्न प्रकार की पोस्टिक तत्व की कमी तथा उनसे उत्पन्न रोगों के जरिए लोगों के जीवन व्यवस्था के बारे में सचेत किया गया है। शाकाहारी आहार में मानव को पूर्ण पोषक तत्व प्रदान करते हैं। मानव को आहार के प्रति सचेत करने के लिए आम लोगों को शिक्षित करना वह होना आवश्यक है। भोजन से प्राप्त प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट खनिज लवण वर्षा भोजन के आधार पर बड़ा होता है यानी भोजन स्तर मांसाहारी और शाकाहारी के आधार पर निर्भर करता है। भोजन में फलों यानी मौसमी फलों को सब्जियां जिसके माध्यम से शरीर का पूर्ण हो पाता है। तभी जाकर शरीर स्वस्थ हो पाता है और रोगों से लड़ने से लड़ने लड़ने की क्षमता स्वता उत्पन्न होती है।

“Health is food and food is Health”

शाकाहारी या मांसाहारी भोजन पर्यावरण की देन है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निखार उचित भोजन से ही संभव है। उत्तम स्वास्थ्य के लिए उचित व चयनित पौष्टिक तत्वों से भरपूर आहार लेने से उचित जीवन का निर्माण होता है।

संदर्भ सूची

1. Heman MA,et al. Intake of Potassium, maganesium, calcium , and fiber and risk of stroke among US mwn, Circulation . 1998 sep. 24,91(13);1198-209,1998.
2. Food and nutrition Encyclopaedia, 2nd Edition
3. डॉ जी0 पी0 शौरी, पोषण एवं आहार विज्ञान, राजेश कुमार झा, 16 जून 1971 आगरा।
4. डॉ. प्रतिभा वर्मा, डॉ कान्ती पाण्डे, आहार, व पोषण प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन।
5. डॉ. प्रेमचन्द्र स्वर्णकार, Adapted From the Report of the Nutrition Expert Group प्रकाशन मंडल, गांधी नगर, दिल्ली।
6. श्रीमति भुपिन्दर कौर बख्शी, Fundamental of food and Nutrition अगर पब्लिकेशन्स 2010-2011, कानपुर।
7. डॉ. राज किशोर, कुरूक्षेत्र पत्रिका प्रकाशन दिल्ली, 42-44, सितम्बर, 2009
8. मधुरा स्वामीनाथ, योजना पत्रिका प्रकाशन दिसम्बर, 2013
9. डॉ. विजय शर्मा, कुरूक्षेत्र पत्रिका, दिल्ली 62-66, अक्टूबर, 2011
10. एम0 एस0 स्वामिनाथन, आहार एवं पोषण, पृष्ठ 41-66, एम0 आर0 ब्रदर्स, इन्दौर।
11. डॉ. रूपम मिश्रा पत्रिका कुरूक्षेत्र पृष्ठ, 39-41 जनवरी-15
12. नवनीत रंजन पत्रिका कुरूक्षेत्र पृष्ठ 42-45 जनवरी-11

स्वामी विद्यानंद और किसान आंदोलन

डॉ० सरोज कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक) राजेन्द्र कॉलेज, छपरा

1919-20 ई. में उत्तर बिहार में दरभंगा राज के खिलाफ एक जोरदार किसान आंदोलन देखने को मिला। यह आंदोलन स्वामी विद्यानंद के नेतृत्व में विकसित हुआ और दरभंगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, पूर्णिया और मुंगेर जिलों में फैल गया।[1] चम्पारण सत्याग्रह के पश्चात् महात्मा गांधी से प्रेरणा लेकर बिहार के सामाजिक क्षितिज पर स्वामी विद्यानंद (विभूभरण प्रसाद) किसानों के उद्धारक के रूप में अवतरित हुए। दरभंगा राज का अधिकार उत्तर बिहार में लगभग 12 प्रतिशत क्षेत्र पर था जो कि दरभंगा से लेकर मुजफ्फरपुर, सहरसा, पूर्णिया तथा भागलपुर जिले तक विस्तृत थी और यह भारत की सबसे धनी जमींदारियों में से एक थी।[2] दरभंगा राज पुराने चारागाहों का सौदा और पेड़ों पर नया दावा कर रहा था। राज के अमला या एजेंट आम तौर पर छोटे जमींदार थे। आर्थिक दबावों के कारण ये और भी दमनकारी हो गए थे। स्वामी विद्यानंद को दरभंगा राज एवं उसके गुमास्तों की ज्यादतियों के विरूद्ध आंदोलन करने की आवश्यकता महसूस हुई।[3]

स्वामी विद्यानंद ने जून 1919 ई. में मधुबनी जिला के नरार गाँव में स्कूल खोले जाने की मांग को लेकर अपना अभियान शुरू किया।[4] 2 अक्टूबर 1919 ई. को मधुबनी में लगभग 5000 किसान इकट्ठा हुए और उनकी ओर से बिहार के उपराज्यपाल को इनकी गंभीर हालत में सुधार तथा एक जाँच आयोग बैठाने की अर्जी दी गई तथा टेलीग्राम भी भेजा गया। इसमें जमीदारों द्वारा किसानों को उनके लकड़ी और फल के उपयोग के अधिकार से वंचित करने, किसानों को मुफ्त श्रमिक भेजने को बाधय करने तथा कुछ धनी किसानों द्वारा इन्कार किये जाने पर उन्हें सिविल और क्रिमिनल केस में फंसाने की धमकी देने आदि की शिकायत की गई थी।[5]

इस याचिका के बाद दरभंगा के अमलों के दुर्व्यवहार के खिलाफ अनेक याचिकाएं दी गयी। मधुबनी जिला के ही रादिका सर्किल में बेनीपट्टी और अमरहाट में किसानों का सम्मेलन हुआ। इसमें किसानों ने खुलकर हिस्सा लिया तथा शाह अहमदुल्लाह की अध्यक्षता में एक किसान सभा का गठन हुआ। स्वामी विद्यानंद के द्वारा प्रकाशित पम्पलेट के अनुसार उन्होंने दरभंगा जिला के बचौर, पारी तथा जरैहाती में किसानों का सम्मेलन आयोजित किया। स्वामी विद्यानंद तथा उनके सहयोगियों की माँग पर जिलाधिकारी की अध्यक्षता में गठित जाँच आयोग ने दरभंगा राज के अमला के विरूद्ध आरोप को सही पाया। फिर भी किसानों की दशा में सुधार के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। कांग्रेस द्वारा गठित जाँच आयोग भी अपने उदेश्य में असफल रहा। विद्यानंद फजल रहमान और जी0 रंगा ऐयर, प्रकाशक, सर्चलाइट के सहयोग से महाराज के सामने अमला के जुल्म को लाने में सफल हुए।[6]

यद्यपि उनका कार्यक्षेत्र मधुबनी रहा, परंतु उन्होंने पूरे उत्तर बिहार का दौरा किया और उनके सभाओं और सम्मेलनों में किसानों की माँग को उठाया। 11 अक्टूबर, 1919 ई. को दरभंगा में 10 हजार किसानों ने स्वामी विद्यानंद के समर्थन में अपनी एकजुटता प्रदर्षित की थी।[7] 5 फरवरी, 1920 को सुपौल में करीब 15000 से 20000 किसानों ने एक सभा में भाग लिया। इस सभा में यह माँग की गई थी कि स्थायी प्रबंध लागू किये गये क्षेत्र में लगान की दर बढ़ाये जाने पर सरकार हमेशा के लिए रोक लगा दे। किसानों के इन प्रदर्शनों से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी विद्यानंद के किसान आंदोलन का जनाधर काफी व्यापक और मजबूत था। बिहार सरकार इससे भयभीत हो गयी थी क्योंकि वह सोच रही थी कि स्वामी विद्यानंद गांधीजी के पद्-चिह्नों पर सफलतापूर्वक चल रहे थे।[8] विद्यानंद को मात्र कांग्रेस के समर्थन की आवश्यकता थी। इस समर्थन से कांग्रेस को भी काफी फायदा था। इससे बिहार के गरीब किसानों के बीच व्यापक जनाधर के निर्माण में उसे काफी मदद मिली, किन्तु कांग्रेस के नेताओं ने विद्यानंद की आषाओं पर पानी फेर दिया। दिसंबर 1919 ई. के अमृतसर कांग्रेस में उनकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।[9]

प्रारंभिक दिनों में कांग्रेस ने विद्यानंद का सहयोग लिया। कांग्रेस की सहानुभूति का कारण यह था कि दरभंगा महाराज रामेश्वर सिंह ब्रिटिश उपनिवेशवाद के समर्थक और स्वतंत्रता आंदोलन के विरोधी थे। चूँकि कांग्रेस मुख्य रूप से राजनीतिक राष्ट्रवाद की पोषक थी और विद्यानंद का किसान आंदोलन मुख्यत: आर्थिक पहलुओं पर जोर देता था, जो वर्ग संघर्ष के दर्शन के अधिक समीप था। इसलिए कांग्रेस नेतृत्व ने तत्कालीन आर्थिक-सामाजिक परिवेष में विद्यानंद के किसान आंदोलन को पूरी तरह समर्थन देने से इन्कार कर दिया।[10]

अप्रैल 1920 ई. में प्रांतीय कांग्रेस की पटना में बैठक हुई। इस बैठक में विद्यानंद ने मांग की कि प्रांतीय कांग्रेस ही दरभंगा महाराज की जमींदारी में हो रही ज्यादती की जाँच के लिए एक जाँच आयोग की नियुक्ति करे, लेकिन इसका कोई फल नहीं निकला। जब बिहार प्रांतीय सभा में जाँच आयोग गठित करने का विद्यानंद का प्रस्ताव आया तो डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के इशारे पर सभी नेताओं ने एक स्वर से विद्यानंद की निंदा की। राजेन्द्र प्रसाद ने विद्यानंद पर आरोप लगाया कि अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे आंदोलन चला रहे हैं।[11] कांग्रेस के समर्थन का अभाव स्वामी विद्यानंद के किसान आंदोलन के विघटन का प्रमुख कारण बना तथा इससे दरभंगा महाराज की काफी मदद हुई।

यह आंदोलन दो-एक घटनाओं को छोड़कर आमतौर पर शांतिपूर्ण और सीमित प्रकृति का था। यद्यपि स्वामी विद्यानंद का किसान आंदोलन कतिपय कारणों से असफल रहा, फिर भी किसानों को जागृत करने, अपने अधिकारों के प्रति उनमें संचेतना जगाने तथा किसानों के विभिन्न माँगों को एक हद तक पूरा करवाने में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। उनके आंदोलन के फलस्वरूप ही महाराजा दरभंगा ने विद्यानंद से समझौता कर किसानों की अनेक माँगों को स्वीकार कर लिया। दरभंगा राज ने किसानों के असंतोष को दूर करने के लिए अपने नेतृत्व में किसान सभा का गठन किया तथा कुछ रियायतों की घोषणा कर स्वामी विद्यानंद के किसान आंदोलन को कमजोर कर धीरे-धीरे समाप्त करवा दिया।[12] विद्यानंद के आंदोलन का ही प्रभाव था कि बिहार में 1922-23 ई. में शाह मुहम्मद ज्वेर की अध्यक्षता में एक किसान सभा की स्थापना हुई थी। आगे चलकर बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह इसके उपसभापति तथा उनके मित्र नन्द कुमार सिंह तथा सिद्देष्वर चौधरी इसके सचिव बने।[13] विद्यानंद ने किसानों की समस्या को हमेशा जनता और सरकार के सामने रखा।[14] अंतत: रैयतों का राजनीतिकरण हुआ साथ ही साथ राजनीतिक दलों के सम्मुख इनके समर्थन का महत्त्व कायम हुआ।

संदर्भ-सूची

1. शुक्ल, रामलखन, "आधुनिक भारत का इतिहास", हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1998, पृष्ठ 287.
2. हेनिंधम, स्टीफेन, "एग्रेरियन रिलेसंश इन नार्थ बिहार पिजेन्ट प्रोटेस्ट एण्ड द दरभंगा राज, 1919-20", पृष्ठ 73.
3. इण्डियन इकॉनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, अंक-16, न0-1, जनवरी-मार्च, 1979.
4. गवर्नमेन्ट ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा पुलिस एव्सट्रैक्ट, 1356, दरभंगा, 5 जुलाई, 1919.
5. उपाधयाय, बद्रीनाथ, "रिप्लाई टू ओपेन लेटर", सर्चलाईट प्रेस, बाँकीपुर, दरभंगा राज, पी.ए. फाइल 333, 1920; एक्टिभिटीज ऑफ स्वामी विद्यानंद, जी.वी.ओ.एस. फाइल 333, 1920, पी.बि.रा0 आ0, पटना
6. सर्चलाइट, पटना, 17 मई, 1920.
7. बिहार और उड़ीसा सरकार का पाक्षिक रिपोर्ट, 1 अक्टूबर, 1919
8. गवर्नमेंट ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा, पुलिस एव्सट्रैक्ट, बिहार स्पेशल ब्रांच, 1920.
9. बिहार और उड़ीसा सरकार का पाक्षिक रिपोर्ट, 1 जनवरी, 1920.
10. बिहार और उड़ीसा सरकार का पाक्षिक रिपोर्ट, 2 अप्रैल, 1920
11. हेनिंधम, स्टीफेन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 73, 74
12. दास, प्रमोदानंद, "बिहार का इतिहास", सुमित्र प्रकाशन, पटना, 1993, पृष्ठ 20
13. दत्त, के. के., "बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास", भाग-2, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृष्ठ 225.
14. सरकार, सुमित, "मॉडर्न इंडिया: 1885-1947", पियर्सन, दिल्ली, 1985, पृष्ठ 241.

शेक्सपीयर के नाटकों का भारतेंदु पर प्रभाव

डॉ० मनोज 'विद्यासागर'

ग्राम व पोस्ट-गम्हरिया, जिला-मधेपुरा, बिहार

अंग्रेज जब भारत आए तो वह अपने आचार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन तथा पोशाक भी साथ लाए थे। शासन तंत्र को चलाने के लिए किसी राजभाषा का होना परम आवश्यक था। इसी कारण अ।ग्रेज अपनी राजभाषा अंग्रेजी (English) को उसकी सरलता की वजह से भारतीय शासन तंत्र के लिए अपनाया। इसके साथ-साथ यहाँ के शिक्षा प्रणाली के लिए अंग्रेजी को ही माध्यम बनाया।

अग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रसार के लिए उन्होंनें माडर्न स्कुल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय की स्थापना की। इन संस्थाओं में न केवल पढ़ाई की माध्यम अंग्रेजी थी बल्कि अंग्रेजी विषय को पढ़ना भी अनिवार्य था। अंग्रेजी जानने वालो को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दी जाती थी। इस तरह उन्होंने अपनी भाषा और साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए भागीरथ प्रयास किया। क्रमशः अंग्रेजी भाषा और साहित्य कि पहुँच भारत के पढ़े लिखे लोगो के बीच बढ़ने लगी। अंग्रेजी की पढ़ाई होने से यह स्वाभाविक ही था कि उस भाषा और साहित्य के महान विद्वानों तथा कृतियों का प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ता। दो विभिन्न साहित्य आपस में मिलेंगे तो एक दुसरे को प्रभावित अवश्य करेंगे। भारत के विद्वान अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में आने से अनेक नई साहित्यिक विधओं से अवगत हुए जिससे भारतीय साहित्य में भी नई विधओं का विकास हुआ।

नाट्य-विध हमारी प्राचीन साहित्य से चली आ रही थी। लेकिन उनमें जटिलता आ जाने के कारण वह जनमानस के लिए दुरुह हो गई थी। इसीलिए लेखक कोई सहज नाट्य तकनीक की खोज में थे, ताकि उस तकनीक को अपनाकर नाट्य-विध को सरल बनाया जाय। अंग्रेजी के प्रसार से एक दुसरे के करीब से जानने पहचानने के अवसर प्राप्त हुआ जिससे यहाँ के लेखक अंग्रेजी साहित्य संसार से अवगत हुए। अंग्रेजी के लेखको में सबसे ज्यादा विलियम शेक्सपीयर की रचनाएँ आकर्षक लगी। वे अंग्रेजी के सबसे महान नाटककार व कवि थे तथा उनकी भाषा अंग्रेजी का मेरुदण्ड है। ये अनेक रूप में भारतीय भाषाओं को प्रभावित करते रहे है। विशेषकर शेक्सपीयर के नाटय संसार नें हिन्दी नाट्य जगत को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। जिनके फलस्वरूप प्रस्तावना, सूत्रधर तथा नान्दी-पाठ की समाप्ति हो गई। नाटकों में अंको को बाँटा जाने लगा। वस्तु में यर्थाथ चित्रण का समायोजन हुआ। व्यंग्यात्मकशैली के नाटको का हिन्दी में अभाव था, उसका विकास हुआ। नाटक में विषादमय वातावरण का सृजन होने लगा। नाटक में प्रतिहिंसा तथा प्रतिशोध जैसे कथानक का सृजन आरम्भ हुआ। इन सबमें तीन चीजें विशेष रूप से शेक्सपीयर के नाट्य साहित्य से आयातित हुई है। जो निम्नांकित है- (1) दुखान्तपूर्ण नाटक (2) मानसिक अंतर्द्वन्द्व (3) स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यानक शैली। उपर्युक्त तीनों का प्रभाव हिन्दी नाटककार भारतेंदु हरिश्चन्द्र पर विशेष रूप से पड़ा है। इनकी नाटकों की उत्पत्ति लोक नाट्य संबंधी लीलाओं से नहीं हुई है। उनकी परंपरा को मध्य युग से चली आ रही थी। क्योंकि जननाट्य की परंपरा अत्यंत विपन्न दशा में थी। भारतेंदु को नाटको की प्रेरणा के लिए दो ही साधन उपलब्ध थे: (1) संस्कृत नाटको के अनुदित रूप तथा (2) शेक्सपीयर के नाटको के माध्यम से प्राप्त पाश्चात्य नाट्य स्वरूप। परन्तु राष्ट्रीय जागरण तथा उत्थान के इस युग में जिस प्रकार सामाजिक जीवन में भारतीय परंपरागत रूढियों तथा धर्मान्धता को त्याग कर पाश्यात्य देशों के खान-पान, रीति-रीवाज तथा रहन-सहन के नियमों को ग्रहण किया जा रहा था, ठीक उसी तरह साहित्यिक जीवन में भी संस्कृत नाट्य साहित्यिक की दुरुहता, जटिलता या नियमबद्धता को छोड़कर शेक्सपीयर के नाटकों की ओर उसका ध्यान जा रहा था। अतः संस्कृत नाटको की परंपरा के प्रति आस्था रखते हुए

भी हिन्दी नाट्य साहित्य संस्कृत नाटाकों की नियमबद्धता तथा नियंत्रण से मुक्ति पाने के लिए लालायित था। गद्य तथा पद्य के क्षेत्र में भारतेंदु युग में रीति कालीन परिपाटी का बहिष्कार तथा नवीन राष्ट्रीयता तथा सामाजिकता के दर्शन होते है। नाटक के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रभाव का शेक्सपीयर के नाटकों के माध्यम से आना स्वाभाविक था।

अत: तत्कालिक हिन्दी नाटकों पर शेक्सपीयर[1] का प्रभाव अनेक साधनों द्वारा हुआ। जिनमें प्रमुख है:

1. बंगला के मौलिक तथा अनुदित नाटकों के माध्यम से जिन पर शेक्सपीयर के नाटकों की छाया थी।
2. शेक्सपीयर के अनुदित तथा अभिनित नाटकों द्वारा।
3. अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार द्वारा।

भारतेंदु के कुल अठारह नाटक मिलते हैं। जिसमें सात अनुदित है तथा ग्यारह मौलिक है। यदि उनके नाटकों का वर्गीकरण किया जाय तो उनका विभाजन तीन भागों में हो सकता है-

1. सामाजिक नाटक
2. ऐतिहासिक नाटक
3. प्रहसन।

इनमें संस्कृत परंपरा का अनुसरण किया गया है। इन्ही तीन वर्गो में शेक्सपीयर की नाट्य शैली को भी अपनाया गया है। साथ ही साथ इसमें पाश्चात्य यर्थाथवादी दृष्टिकोण का भी प्रभाव है।

शेक्सपीयर का प्रभाव पहले पहल बंगला नाटकों के माध्यम से हिन्दी में आया। इसीलिए सर्वप्रथम हम इन्ही नाटकों पर विचार करेंगे, जिनका अनुवाद भारतेदु ने बंगला से किया था। इसमें सबसे प्रथम 'विद्यासुन्दर' नाटक है। यह भारतेंदु की पहली रचना है। अपनी बंगला यात्रा के समय भारतेंदु ने बंगला नाटकों का अभ्युदय देखा था। अत: हिन्दी नाटकों में भी वे बंगला नाटकों के गुणों को लाना चाहते थे।

'विद्यासुन्दर' एक श्रृगार रस प्रधान नाटक है। इसमें कथानक का निर्माण तीन ग्रंथों के आधार पर हुआ है। रामप्रसाद सैन तथा रामचन्द्र राय गुणाकर ने संस्कृत 'विद्यासुन्दर' के आधार पर दो काव्यों को लिखा था। यतीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसी कथानक पर एक नाटक का निर्माण किया था, जैसा कि भारतेंदु ने स्वंय कहा है कि गुणाकर जी के काव्य का उनके अनुवाद पर प्रभाव पड़ा है। कथानक के रूप में सुन्दर नामक विद्यार्थी राज्यकन्या विद्या पर मोहित हो जाता है और उसपर अपना अनुराग दिखलाता है। राज्यकन्या उसे राय दंण्ड का भय देती है, पर अंत में दोनो का मिलन होता है, क्योंकि राजा सुन्दर की विद्वता पर मुग्ध हो जाता है। यह नाटक मात्र तीन अंक का है। इसकी कथा शेक्सपीयर की रोमान्टिक नाटकों से बहुत मिलती जुलती है। शिल्प विधि पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृत के नाटकों के भाँति सूत्रधर तथा नान्दी पाठ नहीं है। और प्रस्तावना भी नहीं है। पद का प्रयोग भी कम है इस नाटक में धुमकेतु तथा हीरा मालिन के वार्तालाप में यर्थाथवाद की झलक स्पष्ट मिलती है।

'नीलदेवी' एक ऐतिहासिक नाटक है जिसका आधार एक अंग्रेजी काव्य है। इसकी नाटक शैली पर शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। नाटक का कथानक यह है कि अब्दुल सरीफ सूर पंजाब नरेश सूर्यदेव पर चढ़ाई करता है और पंजाब नरेश युद्ध मेंप्रास्त हो जाता है। अंत में धेखे से रात में बंदी बना लेता है। बंदी पंजाब नरेश सूर्यदेव की रानी नीलदेवी गायिका का रूप धारण कर अब्दुल सरीफ के दरबाज में जाती है, वहाँ उसे मारकर पति का शव ले जाती है तथा इसके साथ सती हो जाती है। यह संक्षेप में इसका कथानक है। शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों की तरह, इसमें संधर्ष का अच्छा चित्रण किया गया है। सूर्यदेव तथा अब्दुल सरीफ का संधर्ष चरण सीमा पर उस समय पहुँच जाता है, जब सूर्यदेव मारा जाता है। अब्दुल सरीफ की मृत्यु दुखान्त तत्त्वों के अनुसार है। पाश्यात्य् नाटक शैली के पतन या 'कैटास्टाफी' का सूचक इस नाटक का नायक सूर्यदेव है। जिसमें शेक्सपीयर दुखान्त नाटकों के नाटयों के अनेक गुण पाये जाते है। सूर्यदेव लोहे के पिंजरे में मुर्च्छित पड़ा हुआ है। उस समय देवता के गीत में निराशा के शब्द, एक विषादमय वातावरण की सृष्टि करता है। नील देवी में भारतीय वीर नारी का आदर्श सामने रखा गया है। ट्रेजडी के तत्वों के अनुसार भय और करुणा का संचार नायक के मृत्यु के अवसर पर किया गया है। नाटक के बीच में चौथा दृश्य एक सराय का है। जिसमें पिकदान अली, चपरंत्र टटू और मटियारिन का संवाद गंभीर वातावरण के पश्चात् हास्य् को ठीक उसी प्रकार उत्पन्न करता है। जैसे 'मैकवेथ' में पार्टनसीन और 'हैमलेट' ने कब्र खोलनेवाले दृश्य।

यहाँ भी नान्दी, सूत्रधर, प्रस्तावना, भरत वाक्य का प्रयोग नहीं है। संस्कृत नाटकों के नियमों का पूर्ण बहिष्कार किया गया है। यह भारतीय परंपरा से हटकर पाश्चात्य दुखान्त नाटकों की परंपरा का अनुसरण करता है। भारतीय नाटकों में कार्य व्यापार की सफलता दिखलाने के लिए उत्सुकता कौतूहल और चरित्र चित्रण में शील-वैचित्रय तथा अंतर्द्धन्द्व को महत्व दिया गया है। इस आधार पर 'नीलदेवी' में भी नाटककार ने उत्सुकता तथा कौतूहल का पूर्ण समावेश करने की चेष्टा की हैं। इस नाटक का कार्य व्यापार शेक्सपीयर के 'मैकवेथ' नाटक की भांति अत्यंत क्षिप गति से चलता है। संकलन त्रेय सिद्वान्तों का भी पालन किया गया है। अभिनेता की दृष्टि से भी यह भारतेंदु का सर्वश्रेष्ट नाटक कहा जा सकता है। चौथा दृश्य हास्यात्मक संवाद से ओतप्रोत है। पाँचवाँ दृश्य जिज्ञासा और कौतूहल की चरण सीमा पर पहुँच जाता है। सातमें तथा आठवे दृश्य में करुणा और निराशा का तीव्रतर विकास दिखाया गया है। विशेषकर उसअवसर पर जब राजा सूर्यदेव की मृत्यु का समाचार प्राप्त होता है। अंतिम दृश्य इस दृष्टि से अनुपम है, क्योंकि उसमें दुखान्त नाटक के सभी गुण पाये जाते है।

इसके अलावा 'भारत दर्दशा'[3] पर पाश्चात्य् यर्थाथवादी प्रभाव है तो 'भारत जननी' पर पाश्चात्य ओपेरा शैली का स्पष्ट झलक मिलती है। 'सती प्रताप' पर पाश्चात्य नाटकों की भांति खुले चुम्मन और मिलन आदि दृश्यों को दिखाया गया है, जो भारतीय परंपरा के प्रतिकुल है। इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में नान्दी, सूत्रधर और प्रस्तावना को भी इसमें नहीं रखा गया है। प्रहसनों में सामाजिक यर्थाथवाद का चित्रण मिलता है। जो पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव के कारण है।

अपने नाटकों के निर्माण में भारतेंदु ने पूर्वी तथा पश्चिमी दोंनों शैलियों का समन्वय किया है। संस्कृत नाट्य परंपरा में विश्वास रखते हुए तथा उसका अनुसरण करते हुए भी, उसकी जटिलता और नियमबद्धता को धीरे-धीरे तोड़कर पाश्चात्य नाटकों की सरल तथा स्वच्छन्द नाट्य शैली को अपनाने की प्रवृति उनकी रही है। उनके नाटकों में दृश्य विधान सरल तथा अभिनेय है। भारतेंदु ने मध्यम मार्गो को ग्रहण करते हुए हिन्दी नाटको की ग्राहिका शक्ति का विकास किया जिससे उनके पूर्ववर्ती नाटककारों ने उनके आदर्श रूपों को ध्यान में रखकर ही नाटकों की रचना की।

संदर्भ-सूची

1. हिन्दी नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव-श्रीपति शर्मा पृष्ट सं.-345
2. हिन्दी नाटकोपर पाश्चात्य प्रभाव- विश्वनाथ मिश्र- पृष्ट संख्या- 420
3. हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव- विश्वनाथ मिश्र- पृष्ट सं0- 505

भारतीय राजनीति का आधुनिकीकरण: केंद्र और परिधि का प्रश्न

डॉ० विकास कुमार

एम.ए., पीएच.डी., राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

आधुनिकता के संपर्क में आने पर भारतवासियों ने सबसे बड़ा असर यह ग्रहण किया कि वे अपनी पारंपरिक अस्मिता के प्रति नये सिरे से सचेत होते चले गये, आधुनिकता के प्रभाव में उस अस्मिता की पुनर्व्याख्या करके उसमें नवजीवन का संचार किया गया और नयी संस्थाओं और विचारों के संदर्भ में उसका सुदृढ़ीकरण हुआ। यही था भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण का रास्ता। आधुनिकतावादी प्रेरणाओं ने लोगों को भारत की भारतीयता का दावा करने की, उस भारतीयता का पुन: सूत्रीकरण करने और कुल मिलाकर उसे एक आधुनिक चरित्र देने की गुंजाइश प्रदान की। भारत के आधुनिकीकरण पर परंपरा को खारिज करने वाला मॉडल लागू नहीं होता। न ही आधुनिकता और आधुनिकता संस्थाओं की शक्ति को नकार कर सिर्फ परंपरा की वांछनीयता पर जोर देने वाला मॉडल भारत के मामले में कारगर है। इसी तरह आधुनिकता और परंपरा के कुछ-कुछ हिस्सों की एक खास तरतीब पर जोर देने वाला मध्यमार्गी मॉडल भी यह नहीं है।[1]

भारतीय आधुनिकीकरण को देखने का एक तरीका यह भी रहा है कि उसे आधुनिक संस्थाओं और मूल्यों की उस भूमिका को कम महत्व देते हैं जिनके कारण ही पारंपरिक अस्मिताओं का पुनर्जागरण हुआ और उन्हें समसामयिक अर्थ मिले। परंपरा खुद-ब-खुद अपना पुनर्जागरण नहीं कर सकती थी। बजाय इसके कि हम परंपरा और आधुनिकता पर अलग-अलग जोर दें और एक-दूसरे की कीमत पर उनका महत्व समझा जाए, हमें उन दोनों के संबंध को समझना होगा, उस प्रक्रिया को समझाना होगा जिसने इस संबंध को जन्म दिया है और उस मिश्रण को समझना होगा जो उस समय पैदा होता है जब एक प्राचीन समाज नये जमाने की जरुरतों को पूरा करने की कोशिश करता है। यही है वह प्रक्रिया जिसके जरिये ऐसा समाज परिवर्तन के जरिये नैरंतर्य का संधन करता है और इस सिलसिले में अपनी समृद्ध विविधता को नष्ट किये बिना नयी एकता और नयी पहचान ग्रहण कर लेता है।[2]

भारतीय समाज की संरचना इतनी जटिल है कि परिवर्तन के सूत्र इसके इतिहास में खँगालने पर भी आसानी से नहीं मिलते। इतिहास बताता है कि उसके समाज के कुछ हिस्से तो गतिशील थे, पर कुछ हिस्से गतिरोध के शिकार थे। भारतीय सभ्यता को एक ऐसी जड़ सभ्यता मानने से भी काम नहीं चलने वाला है जिसमें उपनिवेशवाद के प्रभाव से अचानक हलचल होने लगी थी। हम देख चुके हैं कि मुसलमानों के आक्रमणों और उनके साम्राज्य के मजबूत होने से हिंदुओं की पारंपरिक व्यवस्था किस तरह की बेचैनियों की शिकार हुई। उपनिवेशवाद द्वारा प्रदत्त शांति-व्यवस्था और एकताकारी शक्ति ने इस समाज को बड़े पैमाने पर परिवर्तन करने की प्रेरणा देने के साथ-साथ विजातीय शासन का प्रतिरोध करने की भावना भी दी जो आगे चलकर नये राष्ट्र का आधार बनी। कहना न होगा कि पश्चिम से उपनिवेशवाद के कंधें पर सवार होकर आयी नयी प्रौद्योगिकीय, संस्थागत और वैचारिक हवाओं ने भारतवासियों को परिवर्तन का संदेश सुनाया।

इस संदेश के प्रति भारत ने दो तरह की प्रतिक्रिया की। एक तरफ उदारतावादी और समाजवादी विचारधाराओं को अपनाकर पश्चिमीकरण का स्वागत किया गया और दूसरी तरफ घोर पश्चिम विरोधी रवैया अपनाया गया। इन दो परस्पर विरोधी नजरियों का परिणाम यह हुआ कि आधुनिक विश्व में भारत की जगह बनाने के लिए जरुरी परिवर्तन स्वीकार कर लिये गये, पश्चिम की चुनौती

का सामना करने के लिए भारतीय अस्मिता की दावेदारी सामने आयी और उसे एक नयी सारवस्तु से संपन्न करके एक नया अर्थ दे दिया गया।[3] इस परिवर्तन के एजेंट थे हमारे नये अभिजन जिन्होंने वर्तमान में परिवर्तन करते हुए भी अतीत की निरंतरता कायम रखी और साथ में भविष्य का यूटोपिया भी रचते रहे। उन्होंने जो नयी अस्मिता खोजी थी, उसकी खास बात यह थी कि उसमें न केवल अपने होने का एहसास था, बल्कि यह कामना भी निहित थी कि हम क्या होना चाहते हैं।

पहली बार भारत में एक ऐसा अभिजन उभरा था जो अपने चरित्र में राष्ट्रीय था। पहलकदमी स्थानीयताओं से हटकर केंद्र में पहुँच गयी। नेतृत्व का यह परिवर्तन भारतीय इतिहास का एक प्रमुख परिवर्तन था। पहले होता यह था कि पारंपरिक व्यवस्था पर छाये हुए विशिष्ट जन सामाजिक या निजी विवाद निबटाते रहते थे, या फिर पश्चिमीकरण के शुरुआती दौर में जगह-जगह बिखरी हुई जागरूक हस्तियाँ सुधारों के लिए काम करती रहती थीं, पर यह अभिजन राष्ट्रीय संदर्भ में बोलता हुआ, राष्ट्रीय चेतना की बात करता हुआ एक राष्ट्र के रूप में भारत के भविष्य की चर्चा करता था। इस अभिजन के सदस्य उद्देश्यों, लक्ष्यों और विचारधारा की बात करते थे। भारत के लिए यह सब एक नयी बात थी।[4]

इन अभिजनों ने भारत के ग्रामीण समाज में पैठ बनाने और आम लोगों की गोलबंदी के लिए नये नाना प्रकार की रणनीतियाँ बनायीं। आम जनता आधुनिक संचार के मुहावरों को नहीं समझती थी और उससे केवल स्वदेशी प्रतीकों की भाषा में ही बात की जा सकती थी। गाँधी उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन के दौरान इस तरह के प्रतीकों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर चुके थे। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि आधुनिकता को अपनी जन-वैधता के लिए हमेशा ही परंपरा की जरुरत थी। अभिजनों ने गांधी के अनुभव से तो लाभ उठाया ही, साथ ही उन्होंने भारतीय जनता के सामने बहुत से विचारधारात्मक लक्ष्य सीधे-सीधे आधुनिक मुहावरे में भी पेश किये। नये विचारों और नयी संस्थाओं का प्रसार हुआ। नतीजतन तरह-तरह के अंतर्विरोध और विरोधभास पैदा हुए। एक तरफ शांति-व्यवस्था और अनुशासित विकास की प्रक्रिया चलाने वाली राजनीतिक प्रणाली थी और दूसरी तरफ व्यक्तिगत अधिकारों और असहमति के अधिकार पर आधारित प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र था। एक तरफ समरूप राजनीतिक व्यवहार का आग्रह करने वाला केंद्रीकृत राज्य था और दूसरी तरफ स्थानीय इकाइयों की स्वायत्तता कायम रखने वाला ढीला-ढाला संघ था। एक तरफ पार्टियों की होड़ और बहुमत के शासन पर आधारित भागीदारी थी और दूसरी तरफ अल्पसंख्यकों के हित समूहों की नुमाइंदगी का प्रश्न था। आर्थिक संस्थाओं पर राजकीय स्वामित्व बनाम निजी पूँजी की बहस थी। बुनियादी माल के उत्पादन और निर्यात के बदले औद्योगिक ताकतों का समर्थन जीतने की रणनीति के मुकाबले संपूर्ण उद्योगीकरण का विचार था। एक तरफ भद्र समाज के सदस्यों को शिक्षा देने के लिए बनायी गयी शिक्षा प्रणाली थी और दूसरी तरफ शैक्षणिक अवसरों और सामाजिक प्रगति के प्रोत्साहन द्वारा समतामूलक लक्ष्यों को वेधने का विचार था।[5]

ब्रिटिश प्रशासकों और शिक्षाविदों में भी इस बात पर मतैक्य नहीं था कि भारतवासी संसदीय लोकतंत्र की पेचीदगियों पर महारत हासिल कर पायेंगे या नहीं। इस बारे में ऐसे ही मतभेद भारतीय नेताओं के बीच भी थे। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि आखिर में इस समस्या से निपटने के तौर-तरीकों पर बनी आम सहमति क्या थी। विचारधारा और सहमति का जो संश्रय उभरा, वही हमारे लिए महत्वपूर्ण है। अभिजनों ने जो तरीका चुना उसमें परंपरा से प्राप्त शक्ति के साथ-साथ लक्ष्यों और दायित्वों के अधिकृत बँटवारे का एक सोचा-समझा समन्वय था। उदारतावादी विचार भी अपनाया गया जो ब्राह्मणों को काफी पसंद था और विविधता और असहमति के प्रति सहनशीलता की लंबी परंपराओं का भी ध्यान रखा गया। इन तौर-तरीकों में खासी नवीनता थी, क्योंकि वे अनम्य श्रेणीक्रम, घोर विषमताओं और गहरी स्थानीय संकीर्णताओं जैसी स्थापित बुराइयों के खिलाफ जाते थे। साथ ही इनसे यह संदेश भी मिलता था कि भारतीय बुराइयों के खिलाफ जाते थे। साथ ही इनसे यह संदेश भी मिलता था कि भारतीय मानस परिवर्तन के लिए तैयार हो चुका है, यहाँ के लोग ज्ञानोदय की विरासत थामने के लिए तैयार है और भारतीय सभ्यता की खूबियाँ कायम रखने का सबसे बड़ा तरीका उसके विविध घटकों की स्वायत्तता बनाये रखने के लिए प्रतिब) लोकतांत्रिक सरकार और प्रशासन ही हो सकता है। जाहिर है कि संस्कृति, भाषा और धर्म की समृद्ध भारतीय विविधता किसी भी तरह के अधिनायकत्व द्वारा नहीं बचायी जा सकती थी।[6]

इस रवैये की एक खास बात यह थी कि इसमें किसी पहलू को छोड़ने और पहलू को पकड़ने का आग्रह शामिल नहीं था। न ही इस रवैये में वक्त और जरुरत के मुताबिक संशोधन करने पर किसी को एतराज था। मसलन, आधुनिकतावादी अभिजन मजबूत केंद्र वाले एक राष्ट्र-राज्य के विचार के प्रति काफी आकर्षित थे। देश के विभाजन ने वैसे भी एक ढीले-ढाले संघ के विकल्प को समाप्त कर ही दिया था। लेकिन, ऐसे केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्य की प्राथमिकता विकेंद्रीकृत राज्य व्यवस्था की लंबी परंपरा और स्थानीय अभिजनों की उस भूमिका के खिलाफ जाती थी जिसे राष्ट्रीय आंदोलन ने कमोबश स्थापित कर दिया था। यह गाँधीवाद की अर्धलोकलुभावनवादी परंपरा के भी विपरीत थी जो दरिद्रनारायण की वकालत करते हुए गाँव को असली भारत का दर्जा देने में यकीन करती थी। संविधान सभा में केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की ये दोनों आवाजें जम कर बुलंद की गयीं। इस विरोधभास से निकलने के लिए संविधान निर्माताओं ने एक अस्पष्ट संघवाद अपनाया जो केंद्र को मजबूत करते हुए उसे काफी अधिकार देता था। यह एक खास तरह का भारतीय नवाचार था। इसी तरह प्राचीन भारत के नमूने और गाँधीवादी विचार की प्रेरणाओं पर आधारित पंचायती राज प्रणाली अपनाकर केंद्र सरकार ने एक और नवाचार किया, जिसका श्रेय जवाहरलाल नेहरू को मिलना चाहिए। इस तरह भारतीय अभिजनों ने केंद्र और परिधि दोनों पर ध्यान दिया।[7]

बात केवल यही नहीं थी कि राष्ट्रीय अभिजन ऊपर से नीचे की ओर यानी शीर्ष से जमीन की तरफ अपनी पैठ बढ़ाना चाहते थे, या स्थानीय अभिजन नीचे के प्रभाव का इस्तेमाल करके शीर्ष की तरफ गति करना चाहते थे। इन दोनों अभिजनों के बीच एक मध्यवर्ती अभिजनों का दायरा भी विकसित हुआ। इसकी गति ऊपर और नीचे दोनों तरफ थी। ये मध्यवर्ती अभिजन जनता, उनके स्थानीय नेताओं और शीर्ष नेताओं के बीच संपर्क सूत्र का काम करते थे। इन बीच के नेताओं में परंपरा और आधुनिकता के बीच आवागमन की असाधारण क्षमता थी। उन्होंने पाने-गँवाने के आधार पर राजनीति की और पंच फैसले की भूमिका निभायी जिसके महत्व पर ध्यान न दे पाने के कारण ही कुछ प्रेक्षक भारतीय राजनीति से यह प्रवृत्ति खत्म करने की वकालत करने लगते हैं। इन लोगों को महज 'दलाल' समझना भी उचित नहीं होगा। दो राजनीतिक पक्षों के बीच तीसरे पक्ष द्वारा समझौता कराने की प्रक्रिया में राजनीतिक दलों को हर स्तर पर उपलब्ध अवसरों, उपादानों और प्रतीकों का भान भी होता था। कुल मिलाकर ये बीच के नेता दरअसल राज्य व्यवस्था की दृष्टि से जनगोलबंदी के बहुत बड़े वाहक थे।[8]

निष्कर्ष

इन तीन तरह के अभिजनों ने मिलकर एकीकरण का एक खास तरह का मॉडल विकसित किया। यह न तो पश्चिमी लोकतंत्रों में प्रचलित विभिन्न हितों के समूहन जैसा था, न ही यह परंपरागत राज्य प्रणालियों में चलने वाला विभाजित हितों और निष्ठाओं वाला मॉडल था। इस नये किस्म के एकीकरण में सत्ता की बिखरी हुई संरचनाएँ मध्यवर्ती नेटवर्कों के रूप में एक साथ आ कर स्वायत्त उपप्रणालियों की तरह बृहत्तर राजनीतिक प्रणाली का अंग बनने लगी थीं। ये उपप्रणालियाँ स्थानीय हितों की सुरक्षा और उनके समूहन का आश्वासन देते हुए व्यवस्था को लगने वाले झटकों को जज्ब करने की क्षमता रखती थीं। इनमें परंपरागत समाज की जजमानी प्रथा के पहलू तो थे, लेकिन इनसे आधुनिक राजनीति की जरुरतें भी पूरी होती थीं। एक तरह से इस मॉडल को मध्यवर्ती समूहन का मॉडल कहा जा सकता है। अगर आधुनिक राष्ट्र-राज्य केंद्र और परिधि के बीच मुजफ्फरपुर और समीकरणों की देन होते हैं तो यह मानना पड़ेगा कि भारत में केंद्र और हाशिये के बीच और आधुनिकता और परंपरा के बीच सूत्र की भूमिका इसी मध्यवर्ती समूहन ने निभायी।[9]

लेकिन, इसका मतलब यह नहीं था कि इस नये तरह के एकीकरण ने सभी समस्याओं को हल कर दिया था। कुछ सवाल अभी बाकी थे। मसलन, परंपरा और आधुनिकता के इस द्वैधत्मक संबंध में केंद्रीय राज्य व्यवस्था की नुमाइंदगी करने वाले प्रतीकों की जमीनी पहुँच किस हद तक हो सकती थी? पुराने सार्वभौम मूल्य नयी प्रौद्योगिकी और नयी राज्य व्यवस्था के कारण पहले की तरह स्वीकार्य नहीं रह गये थे। सवाल यह भी था कि क्या एक बहुलवादी समाज में एक सच्ची राष्ट्रीय अस्मिता परवान चढ़ सकती है? क्या नयी अस्मिताएँ उभर सकती हैं और अगर उभरेंगी तो उनका क्या रूप होगा? चूँकि यह मॉडल एक साथ पीछे भी देखता था और आगे भी, इसलिए इस पर यह शक होना भी स्वाभाविक था कि क्या यह एक प्रणाली के रूप में भविष्य का संधन कर सकता है?

सन्दर्भ सूची

1. सुषमा यादव, भारतीय राजनीति, ज्वलंत प्रश्न, दीप एण्ड दीप 2008, पृष्ठ 83
2. नीरजा गोपाल जयाल, डेमोक्रेसी इन इंडिया, ऑक्साफोर्ड, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 9
3. उपरोक्त, पृष्ठ 36
4. पीटर डिशूजा, कॉन्टेम्परारी इंडिया, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 39
5. उपरोक्त, पृष्ठ 89
6. फ्रैन्सिस, फ्रैंकल, ट्राँसाफॉर्मिंग इंडिया, ऑक्साफोर्ड, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 39
7. उपरोक्त, पृष्ठ 40–41
8. पूर्वोक्त
9. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 112

कोरोना वायरस महामारी और बिहार की अर्थव्यवस्थाः एक विश्लेषण

प्रोफेसर (डॉ०) संजय कुमार झा

विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, टी.एन.बी. महाविद्यालय, भागलपुर
तिलकामांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

प्रस्तावना

जब कभी विकास की चर्चा होती है तब बिहार की तस्वीर अपनी दर्दनाक गरीबी की कहानी लिए हुए पिछड़ेपन की परेशानी लिए हुए बरबस सामने आ जाती है। पिछड़ेपन की यह कसक और अधिक कष्टकारक तब हो जाती है जब यह ज्ञात होता है कि इस राज्य के मानवीय और भौतिक साधन इतने विशाल और बहुरंगी हैं कि उनके विकसित होने पर यह राज्य प्रथम कोटि का विकसित क्षेत्र हो सकता है। श्री जॉन हंटर ने उत्तरी बिहार की उर्वरा भूमि को भारत का हृदय प्रदेश और सभी विशेषज्ञ इसे भारत की आत्मा कहते हैं। अभी बिहार को कोरोना वायरस महामारी के समय reverse migration की विकट समस्या का सामना करना पड़ रहा है। एक अनुमान के अनुसार बिहार में लगभग 15 लाख प्रवासी मजदूर आए जिसके कारण गरीबी और बेरोजगारी से त्रस्त बिहार को कठिन चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। यहाँ स्वास्थ्य सुविधा भी नगण्य है। ऐसी परिस्थिति में बिहार की समस्या का समुचित समाधान किस प्रकार हो सकता है यह एक चिंतन का विषय है। इसी सन्दर्भ में इस आलेख की प्रस्तुति की जा रही है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन और प्रो. अभिजीत बनर्जी के अनुसार कोरोना वायरस और उससे थर्राई अर्थव्यवस्था में गरीब के और गरीब होने की सम्भावना है। भारत सरकार के NSSO के 75जी चक्र (2017-18) के परिणाम में कहा गया है कि 2012-18 के बीच एक ग्रामीण का मासिक खर्च 1430 रू. से घटकर 1304 रू हो गया जबकि एक शहरी का 2630 से बढ़कर 3155 रू हो गया। अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त से यह सही है कि ऐसे संकट कमजोर तबके को ज्यादा प्रभावित करते हैं लेकिन कृषि और उससे सम्बद्ध गतिविधियों का आकलन करने से यह पता चलता है कि देश को वर्त्तमान संकट से केवल कृषि ही निकाल सकती है। खाद्यान्न संकट भारत में नहीं होगा क्योंकि जरूरत से सात करोड़ टन ज्यादा अनाज पैदा हो रहा है। दूसरी ओर प्रवासी मजदूरों को अपने घरों में पहुँचने से उनका श्रम भरपूर मिल रहा है। खेती की प्रवृत्ति में एक और क्रान्तिकारी परिवर्त्तन यह हुआ कि श्रमिकों की सहज उपलब्धता के कारण जमीन मालिकों ने बँटाईदारों से खेत लेकर खुद खेती करना शुरू कर दिया है। वे खेती में खाद-बीज पानी में अधिक पैसा लगाएँगे जिसके कारण उत्पादन ही नहीं उत्पादकता भी बढ़ेगी। इससे लोगों के उपभोग एवं माँग में वृद्धि होने से स्थानीय उपभोक्ता एवं सेवा उद्योगों में विस्तार होगा। ग्रामीण विकास की प्रमुख समस्याओं जैसे - गरीबी, बेकारी और आर्थिक विषमता का सफल, व्यापक और टिकाऊ हल मिलेगा। कृषि का आधुनिकीकरण ग्रामीण विकास की स्वचालित प्रक्रिया को प्रस्फुटित, पल्लवित एवं पोषित करता जाएगा। भारत में लघु एवं सीमान्त किसान 86 प्रतिशत हैं। आज के समय में कोरोना वायरस महामारी से उत्पन्न आर्थिक संकट का समाधान उद्योग से नहीं बल्कि कृषि, दूध, सब्जियाँ एवं फल इत्यादि की पैदावार को बढ़ाकर और उसके निर्यात से होगा।

विश्लेषण

International Monetary Fund (I.M.F) के अनुसार इस वर्ष भारत की विकास-दर 1.9 फीसदी रहने की आशंका है। इससे भी बड़ा डर यह है कि कोरोना वायरस ने पूरी दुनियाँ में आर्थिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को पंगु बना दिया है। यह 1930 की महामंदी के बाद का सबसे बड़ा संकट है। कोरोना वायरस के कारण आज भारत की 1.38 अरब की आबादी और तीन ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था Ventilator पर है। आज भारत के समक्ष भीड़, कमजोर स्वास्थ्य व्यवस्था और गरीबी जैसी समस्या है। अतः यह जरूरी है कि महामारी के खतरे का मुकाबला करते हुए महामंदी की समस्या से भी निपटने की तैयारी साथ-साथ किया जाए।

R.B.I. के पूर्व गवर्नर प्रो. रघुराम राजन के अनुसार भारत आर्थिक दृष्टि से आजादी के बाद की सबसे बड़ी आपात स्थिति का सामना कर रहा है। भारत को कोरोना वायरस के संक्रमण से भी लड़ना है और आपदा प्रबन्धन भी करना है।

आज हमारे देश में जितने भी रोजगार हैं, उनमें 80 प्रतिशत से ज्यादा असंगठित क्षेत्र में हैं जहाँ न तो नौकरी की कोई गारण्टी होती है और न ही (regular salary) नियमित वेतन की। कोरोना वायरस की वजह से सबसे ज्यादा नुकसान इसी तबको को हुआ है। प्रवासी मजदूरों को अपने पैतृक गाँव लौटने के सिवा कोई विकल्प नजर नहीं आ रहा है और यही reverse migration का कारण बना है।

बिहार राज्य में reverse migration के कारण गाँव में लोगों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। खेती के भरोसे इतने लोगों का गुजारा नहीं हो सकता है क्योंकि रकबा छोटा होता जा रहा है और परिवार बड़ा। ऐसी परिस्थिति में यह जरूरी हो गया है कि लोगों के लिए गाँव में ही रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जाएँ। इन सबकी जेब में पैसा डालने का इंतजाम किया जाए जिसे वे खर्च कर सकें। नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रख्यात अर्थशास्त्री प्रो. अभिजीत बनर्जी ने सुझाव दिया है कि सरकार सबको कुछ न कुछ पैसा बाँटे ताकि माँग में वृद्धि की जा सके। अर्थव्यवस्था का चक्का घूमेगा और दबाब में फँसी बिहार की अर्थव्यवस्था को गाँवों से सहारा मिलेगा। यदि थोड़ी सावधानी से काम किया जाए तो गाँवों में कारोबार, रोजगार, कमाई के साधन ही खड़े नहीं होंगे बल्कि बिहार की अर्थव्यवस्था को एक नई ताकत भी मिल सकती है और विकास का एक नया मॉडल स्थापित हो सकता है।

बिहार में गाँव लौटे प्रवासी मजदूरों का सम्मान किया जाए ताकि उन्हें बराबरी का एहसास हो। इससे उनके मन में अपने गाँव को छोड़कर बाहर जाने का मन नहीं करेगा। एक दिन भोजन करा देना समस्या का समाधान नहीं है। हमलोगों को अपने सामर्थ्य के अनुसार उनकी मदद के लिए आगे आना होगा। अगर हमलोग ऐसा करते हैं तो शायद वे आगे घर को छोड़कर महानगर की तरफ रूख ही न करें। दिखावा नहीं बल्कि समाज में सहयोग और भाईचारे को बढ़ाने की जरूरत है। इस महामारी के पहले Social exclusion की भावना लोगों में विकसित हो चुकी थी लेकिन इस महामारी ने लोगों को आपस में आपसी सौहार्द और भाईचारे का सन्देश दिया है जोकि हमारी पुरानी भारतीय परम्परा थी। उदारीकरण के बाद लोगों ने पाश्चात्य सभ्यता का अन्धाधुन्ध अनुसरण शुरू कर आपसी सौहार्द की जगह पैसे को महत्व देना शुरू कर दिया था। 'सन्तोषं परं सुखं' की भावना को चरितार्थ करते हुए समाज को पाश्चात्य सभ्यता की नकल छोड़कर हमें अपने आस-पास के ग्राम्य जीवन को व्यवस्थित करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है। गाँवों का समग्र विकास ही आज के समय की माँग है। यदि गाँवों में सारी सुविधाएँ जो शहरों में उपलब्ध हैं को उपलब्ध करवाने की दिशा में सार्थक कदम उठाए जाएँ तो प्रवासी मजदूरों की समस्या का समाधान हो सकता है। इस सम्बन्ध में ग्राम पंचायतों को एक सार्थक भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करना होगा और इसके लिए जनप्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देकर बदलते हुए परिवेश के अनुसार ढालने के लिए उत्प्रेरित करने की आवश्यकता है।

भ्रष्टाचार हिंसा, चोरी इत्यादि की बड़ी वजह आर्थिक विषमता ही है। आर्थिक विषमता में कमी ग्रामीण उद्योगों के उत्थान और लोगों में नैतिकता, भाई-चारे की भावना और सामाजिक समसरता के द्वारा ही हो सकती है। इस सम्बन्ध में बिहार सरकार को एक सार्थक पहल करने की जरूरत है।

अर्थव्यवस्था के समक्ष चुनौतियाँ

1991 के बाद भारत में (LPG, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण मॉडल) GDP (सकल घरेलू उत्पाद) का जो विकास हुआ उसका प्रमुख कारण विलासिता की वस्तुओं का अधिक उत्पादन और सेवा क्षेत्र में वृद्धि रही है। वस्तुत: यह विकास रोजगारहीन, जड़हीन ओर बेरहम था। एक तरु अंधाधुंध रियायतें देकर विदेशी पूँजी को हमारी उन कम्पनियों को अधिग्रहण की छूट दी गयी जो पहले ही अच्छा कर रही थी। वही दूसरी तरु वैश्वीकरण के नाम पर चीनी माल के आयात की अनुमति देकर रोजगार को नुकसान पहुँचाने और आर्थिक असमानता को बढ़ाने का काम किया। इसके कारण विदेशी व्यापार और चालू खाते पर भुगतान शेष में घाटा असहनीय होता गया। भारतीय बाजार में चीनी सामान की हिस्सेदारी बढ़ गई। कई स्थानीय उद्योग धन्धे चौपट हो गए क्योंकि उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों में कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्मिलित ही नहीं थी। बेरोजगारी और गीरबी ने लोगों को सरकारी मदद पर निर्भर बना दिया। रोजगार (मनरेगा) ओर भोजन के अधिकार के नए मापदण्ड बनने लगे लेकिन ये नीतियाँ लोगों द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास में योगदान देने में बाधक हैं। विकास को अधिक भागीदार, समावेशी और रोजगारोन्मुखी बनाने के लिए Universal Basic Income देने की बात भी हुई। मौजूदा आर्थिक व्यवस्था में यह एकमात्र समाधान बताया जाता है लेकिन यह लम्बे समय तक नहीं चल सकता है। हलाँकि वर्त्तमान प्रधानमंत्री मोदी जी Make In India, Start Up, Khadi इत्यादि पर जोर देते रहे पर कम tariff और बिना सोचे समझे FDI और आयात पर निर्भरता की नीति भी जारी रही। ज्ञातव्य है कि देश में सामाजिक स्थिति की खराब स्थिति का कारण स्वास्थ्य और शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय की कमी भी है। प्रधानमंत्री महोदय का Vocal For Local पर जोर आत्मनिर्भरता की दिशा में उठाया गया एक ऐसा कदम है जिसकी लम्बे समय से जरूरत थी। आज उन स्थानीय उद्योगों को पुनर्जीवित करने का समय है जो वैश्वीकरण के युग में नष्ट हो गए थे। यह उन आर्थिक नीतियों

को शुरूआत करने का भी समय है जो जन-कल्याण स्थायी आय, रोजगार सृजन और सबके लिए मददगार हों और जो लोगों में विश्वास पैदा करें। सरकार ने स्वदेशी उद्योगों के लिए अधिक अवसर और सम्मान पैदा करने की ओर भी कदम बढ़ाया है जिसके कारण स्थानीय ब्राण्डों को वैश्विक ब्रांड बनाने में सहायता मिलेगी। कोरोना महामारी से निपटने के लिए इस अवसर का उपयोग स्थानीय विनिर्माण ओर अन्य व्यवसायों के आधार पर अर्थव्यवस्था के पुननिर्माण के लिए किया जाना चाहिए।

बिहार की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए सुझाव

प्रत्येक संकट नए अवसर भी लाता है। कोरोना वायरस (कोविड-19) ने भी ऐसा ही किया है। इस वायरस के कारण बिहार में आर्थिक अवसाद उत्पन्न होने की सम्भावना है। एक अनुमान के अनुसार यहाँ के लगभग चालीस लाख मजदूर दूसरे राज्यों में काम करते हैं। यहाँ पर स्वास्थ्य सुविधाएँ भी नगण्य हैं। इस वायरस से वचाव के लिए PPE किट और testing किट भी समुचित मात्रा में उपलब्ध नहीं है। ऐसी परिस्थिति में यहाँ स्वाथ्सय सेवा क्षमताओं का विस्तार करने के साथ ही अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए ज्यादा निवेश करना होगा। आज business को बचाने और उसको खड़ा करने में मदद देना, नौकरियाँ बचाने, टैक्स घटाने, बैंकों से ऋण आसान बनाने, बुजुर्गों की बचत बचाने, पेंशन बढ़ाने और रूपये को संरक्षण देने की जरूरत है। बिहार में कृषि के विविधीकरण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए निम्नलिखित उपाय की जरूरत है –

1. मखाना का उत्पादन बढ़ाकर प्रवासी मजदूरों को रोजगार दिया जा सकता है। अभी बिहार में लगभग 6000 (छ: हजार) टन मखाना का उत्पादन होता है जिसे बढ़ाकर दो लाख टन तक कियाा जा सकता है। यह विश्व में होने वाले उत्पादन का 85 प्रतिशत है। इसके अलावा शेष पन्द्रह प्रतिशत में जापान, जर्मनी, कनाडा, बंगलादेश और चीन का हिस्सा है। विदेशों में जो भी उत्पादन होता है उसका बड़ा भाग चीन में होता है लेकिन वहाँ इसका उपयोग केवल दवा बनाने के लिए होता है। मखाना में बीस एमिनों एसिड पाए जाते हैं। जेनेवा के कृषि खाद्य संगठन (FAO) एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के शोध के अनुसार मटन, गाय एवं माँ के दूध से भी ज्यादा पोषक तत्व (एमिनो एसिड) मखाना में होता है। इसमें प्रोटीन 7.5 से 15.25 प्रतिशत के रूप में एवं आयरन 1.4 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा. होता है। QSV यानि वसा मात्र 0.1 प्रतिशत होती है। प्रति 100 ग्राम से 362 किलो कैलोरी प्राप्त होता है। इसमें 76.9 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और 0.9 प्रतिशत मिनरल होता है। यह दिल के साथ डाइबिटीज के मरीज के लिए बहुत फायदेमंद है। इसमें कोरोना वायरस से भी लड़ने की ताकत है। इस सूखे मेवे में वह जरूरी विटामिन है जो किसी व्यक्ति को कोरोना से लड़ने की ताकत देता है। वैज्ञानिकों का मत है कि इम्युनिटी बढ़ाने में भी यह सहायक है। बिहार के मखाना को GI टैग मिलने वाला है। इसकी प्रक्रिया चल रही है। इससे मखाना को ग्लोबल पहचान तो मिलेगी ही, यह दुनियाँ में तबाही मचाने वाले कोरोना वायरस से लड़ने की ताकत भी लोगों को देगा। बायोटेक किसान हब के माध्यम से इसका उत्पादन बढ़ाकर ओर इसके निर्यात से विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकेगी। प्रवासी मजदूरों को काफी संख्या में रोजगार मिल सकेगा।

   मखाना का अधिक से अधिक processing plant लगाने की जरूरत है। दरभंगा, कोशी एवं सीमांचल के क्षेत्र में कलस्टर बनाकर रोजगार सृजन की काफी सम्भावनाएँ हैं। एक अनुमान के अनुसार यदि मखाना खेती के लिए रोड-मैप बनाया जाए तो मखाना का सालाना उत्पादन दो लाख टन तक हो सकता है। मखाना अनुसन्धान केन्द्र से जुड़े वैज्ञानिकों से किसानों को पैदावार बढ़ाने में राम-मशविरा करना चाहिए। यदि क्लस्टर बना तो बिहार को प्रति वर्ष दस हजार करोड़ रू. प्राप्त हो सकता है।

2. कोरोना वायरस के कारण उत्पन्न नई परिस्थिति के कारण प्रवासी मजदूर गाँव की ओर लौट (reverse migration) रहे हैं। गाँव के कुल कारोबार में 30 फीसदी पशुपालन यानी मुख्यत: दूध का कारोबार है। लॉकडाउन के बाद शहरों में दूध की माँग 30 से 35 फीसदी कम हो गई है। चाय की दूकानें, होटल, रेस्टरॉट मिठाई की दूकाने, भोज और घरों में आवाजाही ठप होने के कारण दूध की माँग और बिक्री में गिरावट आई है। डेयरी उद्योग को अभी अधिक सहारे की जरूरत है। मुर्गी पालन, अंडे का कारोबार को प्रोत्साहन देने की जरूरत है। बाहर से आए हुए मजदूरों में बहुतों के पास (Special Skill) विशिष्ट दक्षता है। बाहर रहकर किसी ने डेयरी उद्योग में काम किया है तो किसी ने कुटीर एवं लघु उद्योगों में दक्षता हासिल किया है। इन लोगों की क्षमता का फायदा उठाकर उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जा सकता है।

3. भागलपुर का कतरनी धान, जर्दालु आम, मुजफ्फरपुर का शाही लीची, नौगछिया से कटिहार तक केला की खेती, मक्का आधारित उद्योग (खगड़िया से कटिहार तक का क्षेत्र) खाद्य एवं प्रसंस्करण उद्योग (Food Processing Industries), टमाटर एवं हरा मिर्च की खेती, कैटल फीड, मत्स्य पालन एवं कृषि से सम्बन्धित आधुनिक उपकरण इत्यादि ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ रोजगार की काफी सम्भावनाएँ हैं। इन क्षेत्रों में रोजगार-सृजन किया जा सकता है। नौगछिया के क्षेत्र में केला पर आधारित उद्योग की स्थापना की जा सकती है। इससे जेम, जेली, चिप्स के उत्पादन द्वारा काफी लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। मुजफ्फरपुर और हाजीरपुर में लीची आधारित उद्योग की स्थापना कर लोगों को रोजगार देकर क्रयशक्ति बढ़ाकर माँग का सृजन किया जा सकता है।

4. बॉस (Green Gold) पर आधारित कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने की जरूरत है। सरकार ने Bamboo mission चलाया है। लोगों में बाँस के विभिन्न उत्पादों के बारे में प्रचार-प्रसार कर बाँस के उत्पादन को बढ़ाकर रोजगार-सृजन कियाा जा सकता है। इससे अर्थव्यवस्था को काफी मजबूती मिलेगी।
5. गंगा और कोशी के छाड़न में पलने वाली मछलियों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के द्वारा बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार दिया जा सकता है।
6. पक्षी अभ्यारण्य को विकसित कर बाहर से लौटे मजदूर भाईयों को रोजगार दिया जा सकता है। बेगूसराय की कॉवर झील, वैशाली जिले की बरैला, मोतिहारी का मोती झील, कटिहार का गोगाबिल, समस्तीपुर का बागुलिया क्षेत्र को केन्द्र सारकार की सहायता से विकसित किया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि इन झीलों में सालों भर पानी रहे। पानी रहने की व्यवस्था सुनिश्चित होने से भू-गर्म जल-स्तर में सुधार होगा और पारिस्थितिकी में सन्तुलन बना रहेगा। इन क्षेत्रों को विकसित कर बाहर से लौटे प्रवासी मजदूरों को अपने घर में काम देकर उनकी क्षमता के दोहन से अर्थव्यवस्था में माँग का सृजन किया जा सकता है ताकि अर्थव्यवस्था का चक्का सुचारू रूप से चलता रहे। माँग सृजन के द्वारा ही माँग और पूर्त्ति में सामंजस्य स्थापित कर अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाया जा सकता है।
7. बिहार में पर्यटन की काफी सम्भावनाएँ हैं। इकोटूरिज्म (Ecotowism) को बढ़ावा देकर रोजगार उत्पन्न किया जा सकता है। इसको विकसित कर कोरोना महामारी से उत्पन्न चुनौती को अवसर में बदला जा सकता है।
8. बिहार में 46 छियालीस विभिन्न किस्म की मिट्टी पायी जाती है जिसमें विभिन्न प्रकार के फूलों की खेती की जा सकती है। फूलों के उत्पादन को बढ़ावा देकर रोजगार सृजन किया जा सकता है और इसकी बिक्री की समुचित व्यवस्था कर इससे विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है।
9. कोशी एवं सीमांचल के क्षेत्रों में जूट की खेती को प्रोत्साहन देने की जरूरत है। बन्द पड़े जूट मिलों को चालू करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके साथ ही जूट पर आधारित हस्त-शिल्प उद्योग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
10. बिहार में 28 जिले बाढ़ प्रभावित हैं। अत: बाढ़ के पानी के उचित प्रबन्धन के द्वारा सिंचाई और पटवन की समुचित व्यवस्था कर कृषि-उत्पादन में और अधिक वृद्धि की जा सकती है। बहुत सारे नहरों में अभी पानी नहीं रहता है। इन नहरों की खुदाई करवानी चाहिए जिससे कि लोगों को काफी रोजगार मिले और नदियों को जोड़कर बाढ़ के पानी को इन नहरों में संचित कर बाढ़ की विभीषिका को वरदान में बदला जा सकता है। पानी का उचित प्रबन्धन होने से बड़े-बड़े स्वचालित लॉण्ड्री प्लांट को लगाया जा सकता है जिसमें बहुत सारे लोगों को रोजगार मिल सकता है। यहाँ से कपड़े घुलकर दूसरी जगहों में भेजा जा सकता है। इस प्रकार काफी रोजगार का सृजन किया जा सकता है और बिहार को विकसित राज्य बनाया जा सकता है।
11. सड़क के दोनों किनारों की खाली पड़ी जमीन और नहरों के मोड़ पर बरगद, पीपल, नीम, महोगनी इत्यादि का वृक्षारोपण कर पर्यावरण को संरक्षित एवं रोजगार का भी सृजन किया जा सकता है। बरगद के पेड़ के नीचे तीन हजार से पाँच हजार लीटर तक पानी जमा रहता है। यही नहीं यह हवा में पाये जाने वाला SO2 (सल्फर डाई ऑक्साइड) को भी अवशोषित कर लेता है यानि एक बरगद का पेड़ काटने से न सिर्फ भू-जल बल्कि वातावरण को भी नुकसान होता है। वहीं पीपल के पौधे प्रदूशण की मात्रा को कम करत हैं। पर्यावरण-संरक्षण के लिए नीम, महोगनी और अशोक जैसे पौधों को लगाने की जिम्मेवारी है।
12. सरकारी स्कूलों और आँगनबाड़ी केन्द्रों की खाली पड़ी जमीन में Kitchen Garden बनाकर आर्गेनिक सब्जी की खेती की जा सकती है। इससे रोजगार मिलेगा और लोगों की क्रयशक्ति बढ़ेगी।
13. रेशमी शहर के नाम से प्रसिद्ध भागलपुर में सिल्क उद्योग को विकसित कर रोजगार पैदा करने की अपार सम्भावनाएँ हैं। सरकार को भागलपुर में सिल्क व्यापार पुनर्स्थापित करने और इसकी खोई गरिमा को लौटाने की दिशा में काम करने की जरूरत है। नाथनगर, चम्पानगर, पुरैनी और बौंसी जैसे छोटे-छोटे कस्बों एवं गाँवों में बीस हजार से ज्यादा लूम पर हजारों लोग सिल्क के कपड़े के निर्माण के व्यवसाय में लगे हैं। इनको ऋण की समुचित व्यवस्था कर और सिल्क निर्यात की व्यवस्था कर सिल्क उद्योग को काफी विकसित किया जा सकता है। इस क्षेत्र में रोजगार सृजन की अपार सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।
14. मिथिलाचन में मधुबनी पेंटिंग और अंग प्रदेश में मंजुशा कला को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इनके विकास और संवर्द्धन के लिए उचित संसाधन की व्यवस्था कर रोजगार सृजन कर कारोना से उत्पन्न चुनौती को अवसर में बदला जा सकता है।
15. प्रत्येक पंचायत में अनाजों के भंडारण की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक पंचायत में कोल्ड स्टोरेज की व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि कृषि उत्पादों को सुरक्षित रखा जा सके। Contract Farming को प्रोत्साहित करने के साथ ही बाजार समिति

प्रांगण में आधारभूत संरचना विकसित कर किसानों को E-platform से जोड़कर उन्हें electronic trading की सुविधा प्रदान की जाए।

E-Display पर किसान अपने उत्पादों के देश भर के मूल्य को देखकर खरीद और बिक्री कर सकेंगे और इसके लिए उन्हें कोई शुल्क नहीं देना होगा। प्रत्येक पंचायत में ई चौपाल की व्यवस्था की जानी चाहिए।

16. देश में शहद उत्पादन में बिहार अग्रणी राज्य है। अभी पाँच लाख बॉक्स में मधुमक्खी पालन होता है। बीस हजार टन शहद का उत्पादन होता है। अभी पचास हजार लोग इससे जुड़े हैं। मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देकर काफी लोगों को रोजगार दिया जा सकता है।

17. गाँवों में बहुत सारा जमीन खाली पड़ी और गैरमजरूआ है। उस पर पपीता, नारियल की खेती कर फल का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और लोगों को रोजगार भी दिया जा सकता है।

18. कोशी, सीमांचल और पूर्वी बिहार के जिलों में फसल-चक्र के तहत धान और गेहूँ के अलावा मक्का और सोयाबीन की खेती की अपार सम्भावनाएँ हैं। जहाँ पानी की कमी है वहाँ सोयाबीन की खेती की जा सकती है। ऊँचे और मध्यम जमीन पर मक्का और सोयाबीन की खेती को प्रोत्साहित किया जा सकता है। धान, गेहूँ तथा गरमा फसलों की जगह उद्यानिक फसल आम, अमरूद, केला का बगीचा लगाना और इसके उत्पादन से अधिकाधिक लाभ लेने के लिए किसानों को प्रेरित किया जाना चाहिए।

19. रेलवे की खाली पड़ी जमीन पर रेलवे के साथ बिहार सरकार एक समझौता कर पपीता, आम, अमरूद, कटहल इत्यादि की खेती करवाकर रोजगार सृजित कर सकती है और इससे प्राप्त आमदनी को फिर विकास के काम में खर्च कर सकती है।

20. वैसे उद्योग जो संसाधनों के अभाव कर में मृत प्राय हो गए हैं जैसे - लेदर के जूते, जूस फैक्ट्री, एल्यूमीनियम के बरतन और सामान, कीटनाशक दवाएँ, तार और टासफार्मर का निर्माण, सिल्क स्पिनिंग मिल और हैण्डलूम से तैयार कपड़े को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। इस प्रकार कोरोना से उत्पन्न चुनौती को अवसर में बदलने की अपार सम्भावनाएँ बिहार में विद्यमान हैं।

21. मृत प्राय हस्तशिल्प और कृषि आधारित उद्योग के विस्तारण के द्वारा रोजगार सृजित कर लोगों की क्रयशक्ति बढ़ायी जा सकती है। हमारे माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतिश कुमार जी लगातार बिहार के विकास के लिए कार्यरत हैं और हरेक जिले के लिए उन्होंने अधिकारियों को अलग अलग रोडमैप तैयार करने को कहा है ताकि बिहार का सर्वांगीण विकास हो सके और प्रवासी मजदूरों के लौटने से उत्पन्न समस्या का समाधान किया जा सके। यह एक दूरदर्शी मुख्यमंत्री का बिहार के विकास का पैगाम है। माननीय मुख्यमंत्री जी के कार्यकाल के दौरान बिहार के विकास की दर दस प्रतिशत से ऊपर रही है।

जब भी बिहार की अर्थव्यवस्था संकट में रही है तो खेती और गाँव से पैदा होने वाली माँग ने ही उसे सहारा दिया है। यही वह रास्ता है जो आगे चलकर बड़े उद्योगों को चलाने और मध्यम वर्ग के रोजगार को बचाने की जमीन तैयार कर पाएगा।

22. झंझारपुर, दरभंगा, बरौनी, बरारी (भागलपुर) हाजीपुर में बंद पड़े औद्योगिक क्षेत्र को पुनर्जीवित करने का प्रयास करने की जरूरत है।

23. पंडौल, सीवान एवं भागलपुर के सूत मिलों को पुनः चालू कर रोजगार उत्पन्न किया जा सकता है।

24. सितुआ और डोका (घोंघा) का प्रशिक्षण एवं संवर्द्धन कर रोजगार सृजित किया जा सकता है।

25. कृषि में बहुफसली कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।

26. जूट से बने हस्तशिल्प सामान को बढ़ावा देकर और उसकी बिक्री की समुचित व्यवस्था के द्वारा रोजगार सृजित की जा सकती है।

27. प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। शिक्षा रोजगारोंन्मुखी होना चाहिए। शिक्षा नौकरी प्राप्त करनेका साधन नहीं बल्कि आत्मनिर्भर होने के लिए होना चाहिए। इसके लिए समाज में एक सकारात्मक सोच विकसित करने की जरूरत है जिसके लिए समाज के पढ़े लिखे लोगों को आगे आना होगा। समय प्रबन्धन में महत्व को समझना होगा। आजकल गाँवों में युवा वर्ग पूरा दिन ताशखेलकर और व्यर्थ की बातों में अपना समय बर्बाद कर देता है। इसे रोकने की जरूरत है। उनकी उर्जा को सकारात्मक दिशा में मोड़ने की जरूरत है और यह काम जन सहभागिता से ही हो सकता है। अतः ग्राम-पंचायत स्तर पर सभी लोगों को इस दिशा में प्रयास करने की जरूरत है। जन-सहभागिता और जनभागिदारी के माध्यम से अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाया जा सकता है।

कृषि का आधुनिकीकरण ग्रामीण विकास की अधिकांश समस्याओं का समाधान देगा विशेषकर उत्पादकता वृद्धि और रोजगार प्रसार की दिशाओं में किन्तु इसके साथ-साथ कृषि सम्बन्धी अन्य पेशों में बहुविविधता लानी होगी जैसे - दुग्ध उत्पादन, मवेशी पालन घरेलू उद्योगों तथा विशेषकर यातायात संवहन, शिक्षा तथा अन्य संरचनात्मक सुविधाओं का विस्तार

इत्यादि। इससे रोजगार और उत्पादन दोनों में वृद्धि आएगी। कृषि का आधुनिकीकरण ग्रामीण विकास की स्वचालित प्रक्रिया को प्रस्फुटित, पल्लवित और पोषित करता जाएगा। कृषि के विविधीकरण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है।

यदि थोड़ी सावधानी, दूरदर्शिता और पारदर्शी रूप में काम किया जाए तो गाँवों में कारोबार, रोजगार एवं कमाई के साधन खड़े ही नहीं होंगे बल्कि अर्थव्यवस्था को एक नई ताकत भी मिल सकती है और विकास का एक नया मॉडल स्थापित हो सकता है।

28. बिहार के वैसे लोग जो विदेशों में बसे हैं और साधन सम्पन्न हैं उनको बिहार में निवेश करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
29. बोधगया (गया जिला) बौद्ध धर्म की विरासत के कारण जापान, दक्षिण कोरिया और थाईलैण्ड जैसे देशों के साथ बिहार के साझा सांस्ख्रतिक सम्बन्ध हैं। इसलिए मदद के लिए उनके साथ सम्पर्क करने को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
30. बिहार में प्रत्येक जिला में तकनीकी संस्थान और मेडिकल संस्थान खोले जाएँ ताकि यहाँ के लोग जो बाहर जाकर इलाज करवाने में पैसा खर्च करते हैं वह राज्य में खर्च होगा और माँग का सृजन होते रहेगा। बिहार के चतुर्दिक विकास के लिए यह आवश्यक है। इस महामारी ने लोगों के जीवन जीने में तरीके को बदल दिया है।

Referencs

1. RBI (2020), Monetary Policy Report, Reserve Bank of India, April 2020.
2. Sengupta, R. And Dev M. (2020), COVID-19: Impact on the Indian Economy,Indira Gandhi Institute of Development Research (IGIDR), Mumbai.
3. OziliP. And Thankom A. (2002), Spillover of COVID-19: Impact on the Global Economy.
4. ANAROCK Research, (2020), COVID-19: Impact on the Indian Real Estate Sector, ANAROCK
5. Bloom, E., Wit, V.D., Jose, M.J.-S. (2005). POTENTIAL ECONOMIC IMPACT OF AN Avian Flu Pandemic on Asia. Asian Development Bank. https:// www. think-asia.org/handle/11540/2165. (Google Scholar).
6. International LabourOrganisation. 2020. COVID-19 and the world of work, impact and policy responses. ILO. (Google Scholar).
7. FAO (2020), "COVID-19 Pandemic : Impact on Food and Agricultural", Food and Agricultural Organisation, Rome, http:// www.fao.org/2019-ncov/q-and-a/en/
8. Himanshu (2019), "India's Farm Crisis: Decades old and with deep roots", The India Forum, https:// www. the india-forum.in/article/farm-crisi-runs-deep-higher-msps-and-cash-handouts-are-nst-enough
9. IMF (2020), "Policy responses to COVID-19", International Monetary Fund, Washington D.C.
10. Kapur, Dev and Subramanian, Arvind (2020), "How corona virus can be converted to opportunity to fundamentally strengthen Indian Economy", Indian Express, April 3, 2020.
11. Khera, Reetika (2020), "COVID-19: what can be done immediately to help vulnerable population", Ideas for India. https:// www. ideasforindia.in/topics/poverty-inequality/Covid-19-what –can–be-done- immediately-to help-vulnerable-population.html.
12. Narayanan, Sudha (2020)," Food and agriculture during a pandemic: Managing the consequence", https:// www.ideasforindia.in/topics/agriculture/food-and-agriculture-during-a-pandemic-managing-the-consequences. html
13. Mehrotra, Santosh, and Jajatik.Parida (2019): India's Employment crisis: Rising Education Levels and falling Non-agricultural Job Growth. https://cse.azim premjiuniversity.edu.in/wp-content/uploads/2019/10/Mehrotra Parida India Employment crisis.pdf
14. Sengupta, R (2020), "COVID-19: Macroeconomic implications for India, Ideas for India", 24 March. https:// www.ideasforindia.in/topics/macroeconomics/covid-19- macroeconomic-implications-for-india,html
15. Balajee, Anuragh and Tomar, Shekar and Udupa, Gautham (2020), "Fisal Situation of India in the time of COVID-19", India School of Business, Available at SSRN:https://ssrn.com/abstract=3571103 http:// dx.doi.org/10.2139/ssrn.3571103
16. https:// Indian express.com/article/explained/explained-how-has-covid-19-affected - the - global - economy - 6410494/
17. https://www.indiatoday.in/magazine/ the-big-story/story / 20200323- an - economic-coronany-1654645-2020-03-13
18. https://www.livemint.com/ news / india/ coronavirus - outbreak- in-india-could-cost-the economy - 29-9-billionab-11583480504316.html.
19. https://bfsi.eletsonline.com/ covid-19-and-its-impact-on-indian-economy/
20. https://www.financialexpress.com/ economy/growth-pangs-fitch-cuts-indias-fy20-gdp - growth-forecastcheck-revised-estimate // 886220/

अनामदास का पोथा: औपनिषदिक आख्यान

डॉ० पल्लवी

फ्लैट नम्बर 10, पार्क व्यू अपार्टमेन्ट, लूकरगंज, प्रयागराज

'अनामदास का पोथा' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का चतुर्थ एवं अन्तिम उपन्यास है। यह उपन्यास छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों पर आधारित है। प्रागैतिहासिक एवं वैदिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अनेक लेखकों ने उपन्यास लिखे किन्तु औपनिषदिक तत्वचिन्तन को कथारूप में प्रस्तुत करने का प्रयास सर्वप्रथम द्विवेदी जी ने किया। इस उपन्यास के आरम्भ में भूमिका और अन्त में उपसंहार है और इसमें अनामदास की टिप्पणी भी है। उपन्यास के ये तीनों भाग न केवल उपन्यास की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं बल्कि लेखक की अद्‌भुत सृजन प्रतिभा को भी प्रस्तुत करते हैं।

यह कहानी रिक्व ऋषि के पुत्र रैक्व की है, जो बचपन में ही सामाजिक जीवन से अनभिज्ञ होकर चिन्तन-मनन में ही लीन हो गये थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि समस्त चैतन्य जगत् को जो प्राणवन्त बनाता है, वह वायु है। इसलिए उन्होंने वायु को ही मूल तत्व माना। नित्यदिन की तरह एक दिन वे स्नान करने नदी की ओर जा रहे थे। तभी भयंकर आँधी आयी और आँधी के साथ-साथ प्रचण्ड वेग से वर्षा भी होने लगी। जल का वेग इतना तीव्र था कि उसमें रैक्व ऋषि बहने लगे और नदी की धारा में बहते हुए वे एक ऊँचे शिला-खण्ड से टकरा गये और वहीं मूर्च्छित हो गयी। धीरे-धीरे जब आँधी का वेग कम हुआ तो ऋषिकुमार की मूर्च्छा भी खत्म हो गयी। चाँदनी रात थी। वे किसी तरह चाँदनी की रोशनी में आगे बढ़ रहे थे। तभी उन्हें थोड़ी दूर पर मूर्च्छितावस्था में एक अनुपम सुन्दरी दिखायी पड़ी। पास में एक बैलगाड़ी कीचड़ में बुरी तरह धँसी हुई थी और गाड़ीवान भी वहां पर मरा पड़ा था। रैक्व ऋषि सामाजिक जीवन से अनभिज्ञा होने के कारण कभी स्त्री को नहीं देखे थे।

वास्तव में वह सुन्दर युवती महाराजा जानश्रुति की इकलौती कन्या जाबाला थी, जो रथ पर बैठकर अपनी मौसी के घर जा रही थी, लेकिन आँधी-तूफान के कारण वह रास्ते में ही फँस गयी और बेहोश हो गयी। जब जाबाला को होश आया तो उसने देखा कि एक तरुण तापस उसके केशों और आँखों को घूर रहा है। उस तरुण तापस से बात करने पर जाबाला को पता चला कि वह ऋषिकुमार व्यवहार शून्य है। वह जाबाला को स्वर्गलोक का प्राणी समझकर उसके अनुपम सौन्दर्य से अभिभूत होकर उसे शुभा कह कर सम्बोधित करने लगा। राजकुमारी जाबाला इस ऋषिकुमार रैक्व से अपने घर पहुँचाने का आग्रह करती है। ऋषिकुमार रैक्व अत्यन्त विनीत भाव से जाबाला से कहता है- शुभा, तुम जैसा भी आदेश करोगी, उसका पालन करना मेरे लिये हर्ष और गौरव की बात होगी। परन्तु तुम्हारे पिता के घर का रास्ता मुझे मालूम नहीं है। तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर जिधर कहो, उधर पहुँचा दूँ।[1] राजकुमारी जाबाला रैक्व ऋषि के इस भोलेपन पर मुग्ध होकर हँसते हुए कहती है- देखो ऋषिकुमार, तुम्हारा यह प्रस्ताव अनुचित है। इससे लोकनिन्दा होगी। कोई भी युवक किसी कुमारी को पीठ पर ले जाने की बात नहीं करता। सोचता भी नहीं।[2] रैक्व समझ नहीं पाता कि किसी की सहायता करना कैसे अनुचित हो सकता है, तभी अनुचर जाबाला को ढूँढ़ते हुए वहाँ आते हैं और जाबाला उनके साथ चली जाती है।

"जाबाला तो चली गयी, परन्तु रैक्व को वह अपने 'स्त्रीत्व' से पूरी तरह अभिभूत कर गयी। उसका रूप, उसकी वाणी के साथ ही उसकी विद्वत्ता से वह इतना प्रभावित हुआ कि अपने ही प्रदत्त नाम 'शुभा' की स्मृतिस्वरूप टूटी गाड़ी के नीचे बैठकर चिन्तन

करने लगा। छान्दोग्योपनिषद् में उल्लेख है कि रैक्व ऋषि एक टूटी गाड़ी के नीचे बैठकर चिन्तन करते थे और बीच-बीच में अपनी पीठ खुजलाया करते थे। द्विवेदी जी ने ऋषि की इस आदत को काम मनोविज्ञान की परिधि में समेट लिया है।[3]

उधर जाबाला, भोले तापस की याद में बेचैन रहने लगी। उसे परेशान देखकर पिता जानश्रुति, गुरु औदुम्बरायण और सभी परिजन परेशान थे। वृद्ध आचार्य औदुम्बरायण उसके भी गुरु थे और उसके पिता के भी।[4] राजा जानश्रुति ने जाबाला के विवाह के लिए सुयोग्य वर ढूँढ़ने का कार्य गुरु औदुम्बरायण को ही दे रखा था। गुरु औदुम्बरायण रथ के नीचे बैठकर पीठ को खुजलाने वाले तरुण रैक्व से मिलते हैं। उन्हें पता चलता है कि तरुण रैक्व वायु-निरोध द्वारा रोगियों को रोग से मुक्त कर देते हैं। गुरु औदुम्बरायण रैक्व ऋषि से जाबाला के रोग के संबंध में बात करना चाहते हैं। किन्तु रैक्व केवल 'शुभा' की ही चर्चा करते हैं। जाबाला को जब यह सब बातें मालूम होती हैं तो वह और अधिक बेचैन हो उठती है। वह सोचती है कि काश तरुण तापस को पता होता उसकी शुभा की क्या हालत है। वह अपनी व्यथा किसी से कह नहीं रही थी। भीतर-ही-भीतर वह अपने ताप से आप ही जलने लगी।[5]

एक दिन रैक्व ऋषि स्नान करने के लिए नदी के किनारे गये। वहाँ उन्होंने देखा कि, एक वृद्धा स्नानादि से निवृत्त होकर सूर्य को अर्घ्य दे रही थी। वे एकटक उन्हीं की ओर देखने लगे।[6] उसने अपने जीवन में दूसरी बार किसी स्त्री को देखा। वह वृद्ध महिला महर्षि औषस्तिपाद की धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी ऋतम्भरा थी। उनके पूछने पर रैक्व ने अपना परिचय दिया- भवति प्रणिपात स्वीकार करें। मैं रिक्व ऋषि का पुत्र हूँ, लोग मुझे रैक्व कहते हैं। पर पहले आप मुझे यह बतायें कि क्या कहकर मैं आपको सम्बोधित करूँ।[7] वृद्धा ऋषिकुमार को समझाते हुए कहती है- सौम्य, तेरे-जैसे लड़के मेरी-जैसी वृद्धा को माँ कहकर पुकारते हैं।[8]

इस प्रकार ऋतम्भरा के रूप में अनाथ रैक्व को माता पिता मिल गयी, जिससे उसे माता और पिता दोनों का स्नेह मिला। माता ऋतम्भरा को यह मालूम हो जाता है कि रैक्व के बार-बार पीठ खुजलाने के पीछे शुभा को पाने की अदम्य अभिलाषा है। उसे शुभा ही ठीक कर सकती है। वह रैक्व की बेचैनी को दूर करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करती हैं। वह रैक्व की दार्शनिक चिन्ताओं के निवारण के लिए विद्वानों से मिलने की सलाह देती हैं तथा उसे अनुभवों से सीखने के लिए प्रेरित करती हैं। महान् तत्वज्ञानी औषस्ति ऋषि रैक्व को समझाते हुए कहते हैं- "तूने बहुत तपस्या की है, पर तपस्या का एक बहुत आवश्यक अंग है सत्संग। उसी की कमी तुझमें जान पड़ती है।"[9] तुम सत्संग करो, लोगों के बीच घूमकर अपने परखे सत्य की जाँच करो। वे आगे कहते हैं- "एकान्त का तप बड़ा तप नहीं है, बेटा! देखो संसार में कितना कष्ट है, रोग है, शोक है, दरिद्रता है, कुसंस्कार हैं। लोग दुःख से व्याकुल हैं उनमें जाना चाहिए। उनके दुःख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। यही वास्तविक तप है। जिसे यह सत्य प्रकट हो गया है कि सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है, वह दुःख-कष्ट से जर्जर मानवता की कैसे उपेक्षा कर सकता है वत्स।"[10] वे आगे कहते हैं- "चार पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इनमें पहले तीन साधन हैं, अन्तिम साधय है। पहले तीन में धर्म सबसे बड़ा है। उसके अनुकूल रहकर अर्थ का उपार्जन करना चाहिए। अर्थ प्रधन नहीं है धर्म का अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ है। धर्म के विरुद्ध जाने से वह त्याज्य है। इसी प्रकार सौम्य! काम, धर्म और अर्थ का अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ कहलाता है। धर्म और अर्थ के विरुद्ध जाने पर वह आचरणीय नहीं रहता।"[11]

इस प्रकार, औषस्ति ऋषि और माता ऋतम्भरा से मिलकर रैक्व को यह अनुभव होता है कि तपस्या की कसौटी समाज है, मानवता की सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। यही सोचकर रैक्व समाज सेवा करने का निश्चय करता है। लोगों से मिलने पर उसे बहुस-सी बातें मालूम होती हैं, जिन बातों से वह अब-तक अनजान था। शास्त्र ज्ञान से बिल्कुल अनभिज्ञ किन्तु परोपकार की भावना से भरे हुए माता से मिलकर रैक्व को अहसास होता है कि मनुष्य की मदद करना ही सब धर्मों से बड़ा धर्म है। दूसरी ओर तपसया और सेवा के महत्त्व को भली-भाँति समझनेवाला आश्वलायन से रैक्व को व्यावहारिक पहलुओं को समझने की सही दिशा मिलती है। अब रैक्व प्राणवायु से बढ़कर आत्मा को महत्त्व देने लगे। उन्हें ज्ञान हो गया कि- "शरीर नाशवान् है, प्राण विनश्वर साधन मात्र, मन भी नष्ट हो जानेवाला साधन है, अविनश्वर है केवल आत्मा।"[12]

उधर, जाबाला रैक्व की याद में मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाती है। उसके मनोरंजन के लिए कोहलियों के नृत्य और नाटक का आयोजन किया जाता है। जाबाला की देख-भाल के लिए उसकी मौसी की लड़की जो उसकी अन्तरंग सखी भी थी, को बुलाया जाता है। कोहलियों ने जाबाला से मनोजन्मा देवता और अशोक वृक्ष का पूजा करवाया ताकि वह शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ हो जाये।

"कोहलियों द्वारा प्रस्तुत नाटक में ऋष्यश्रृंग को मोहित करने के लिए गन्धर्व देवता (कन्दर्प) कामदेव अप्सराओं के दल के साथ भूलोक पर उतरे। इन्द्र को भय था कि तप करके तरुण ऋष्यश्रृंग इन्द्रासन प्राप्त करना चाहता है। मनोजन्मा देवता ने ऋष्यश्रृंग को कुसुमवाण से बेधकर मोहित करने का उपक्रम किया। सुव्रता नाम अप्सरा से यह न देखा गया। भोले ऋषि के मन में वासना का अंकुर उगाना उसे बड़ा क्रूर लगा। वह ऋषि के सामने आ गयी। फलत: गन्धर्व देवता ने उसे मृत्युलोक में जाने का शाप दे दिया। लेकिन अशोक-पूजन के बाद उसे शापमुक्त होकर पुन: देवलोक में आने का वरदान भी मिला। जाबाला ने ऋष्यश्रृंग की जगह रैक्व को देखा। वह व्यथित हो उठी, लेकिन भरत-वाक्य से उसके हृदय को आसीम सान्त्वना भी मिली।"[13]

माता ऋतम्भरा जाबाला से मिलती है, जिससे जाबाला के हृदय का दर्द कुछ कम होता है। इसी बीच आश्वलायन को यह पता चलता है कि जाबाला और रैक्व दोनों एक-दूसरे को जानते हैं और आपस में मिल चुके हैं तो वे औदुम्बरायण के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं और अन्त में माता जी के प्रयत्नों से रैक्व और जाबाला का आनन्दमय मिलन होता है।" सारी सभा जय-जय कर उठी। रैक्व ने देखा माता जी आ गयी हैं, वे उठे और माता जी के चरणों पर साष्टांग प्रणत हो गये। माता जी ने उठकर छाती से लगा लिया। उनका इंगित समझकर जाबाला भी चरणों में उसी प्रकार आ गिरी। माता जी ने दोनों को प्यार से उठाया और आचार्य की ओर देखकर बोलीं- "आचार्य अब विवाह की सब विधियाँ पूरी कर ली जायें। रैक्व ने कातर भाव से माता की ओर देखा। अत्यन्त भोलेपन से कहा- "विवाह नहीं माँ उद्वाह।' माता जी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से पुत्र की ओर देखा। बोलीं, एक ही बात है बेटा! पर तू क्या दोनों में अन्तर मानता है? संकुचित रैक्व ने उत्तर दिया- हाँ, माँ![14] और यहीं पर उपन्यास के कथानक की समाप्ति हो जाती है।

प्रस्तुत कथानक से यह स्पष्ट होता है कि 'अनामदास का पोथा' आचार्य द्विवेदी की औपन्यासिक प्रतिभा का बहुआयामी और बहुअर्थीय प्रयास है। आचार्य द्विवेदी आधुनिक भारत के उन इने-गिने मनीषियों में थे, जिन्होंने इन सम्पूर्ण देश की आत्मा को, इसकी विविधता, इसके मतभेदों और अन्तर्विरोधें को सम्पूर्ण सहानुभूति के साथ समझा और पूर्वग्रहमुक्त होकर उसे रेखांकित करने का प्रयास किया। द्विवेदी जी का यह उपन्यास भी उनके इसी विराट् साहित्यिक व्यक्तित्व की झलक ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि एक साक्षी बनकर उपस्थित भी होता है।[15]

इस उपन्यास के आरम्भ में एक लम्बी भूमिका है, जिसमें द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की तरह ही 'अनामदास का पोथा' की कथा को भी किसी अन्य व्यक्ति यानी अनामदास द्वारा लिखित बताया है। द्विवेदी जी की इस प्रवृत्ति को डॉ. नामवर सिंह 'मुखौटे की प्रविधि'[16] कहते हैं। यह भूमिका न केवल उपन्यास को बल्कि उपन्यासकार के व्यक्तित्व को भी समझने में सहायता करती है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं- "दरअसल यह भूमिका" अपने-आप में स्वयं एक व्यक्ति-व्यंजक निबन्ध है। अपने-आपको द्विवेदी जी ने जितना भूमिका में उद्घाटित किया है, शायद ही कहीं अन्यत्र किया हो। भूमिका क्या है, जैसे जीवन की सान्धय वेला में सारे जीवन का सिंहावलोकन।"[17]

'अनामदास का पोथा' उपनिषद्कालीन भारतीय समाज का सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है। इसमें छान्दोग्योपनिषद् के रैक्व आख्यान को प्रमुख आधार बनाया गया है तथा उसके विस्तार के लिए छान्दोग्य और वृहदारण्यक के प्रमुख पात्रें के विचारों तथा अन्य घटनाओं की सहायता ली गयी है।[18] अनामदास टिप्पणी में कहते है- इसके अधिकांश स्थल छान्दोग्य उपनिषद् से लिये गये हैं।... एक-एक ग्रन्थ के रूप में यदि इनका विचार किया जाये तो सबसे प्राणवन्त तत्वान्वेषियों का विचार पिटक छान्दोग्य है। छान्दोग्य में एक-से-एक फक्कड़ और अक्खड़ विचारक मिलते हैं जो रूढ़ियों के बिल्कुल कायल नहीं। ऐसा लगता है कि छान्दोग्य और वृहदारण्यक समकालीन उपनिषदें हैं। हमारे दोनों के रचयिताओं में एक प्रकार की प्रच्छन्न प्रतिस्पर्द्धा है। एक में जो मुख्य और स्वाधीन विचारक हैं, उसे दूसरी में गौण स्थान दे दिया गया है।"[19] परन्तु अनामदास के रैक्व न तो छान्दोग्य में मिलते हैं और न वृहदारण्यक में मिलते हैं। अनामदास का कहना है- "प्रस्तुत कथा में यद्यपि छान्दोग्य के तत्व ही प्रधान हैं फिर भी रैक्व के प्रसंग में इनका इस रूप में कहीं भी स्मरण न किया जाना कुछ आश्चर्यजनक है।"[20] द्विवेदी जी की लेखनी का ही कमाल है कि रैक्व जैसे अविश्वसनीय पात्र को भी पाठको ने सहर्ष स्वीकार किया है।

निष्कर्षत

कहा जा सकता है कि द्विवेदी ने "छान्दोग्य उपनिषद् के एक छोटे-से रैक्व-आख्यान की अस्फुट रेखाओं को मनोहर कल्पनाओं का रंग देकर उपन्यास की कलात्मक कथा का निर्माण किया है।"[21] जो उनके निर्माण कौशल की परिचायक है।

सन्दर्भ-सूची

1. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 29.
2. उपर्युक्त, पृष्ठ 29-30.
3. हिन्दी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य, डॉ. महीप सिंह, पृष्ठ 193.
4. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 36.
5. उपर्युक्त, पृष्ठ 40.
6. उपर्युक्त, पृष्ठ 49
7. उपर्युक्त, पृष्ठ 49.
8. उपर्युक्त, पृष्ठ 49.
9. उपर्युक्त, पृष्ठ 55.
10. उपर्युक्त, पृष्ठ 60.
11. उपर्युक्त, पृष्ठ 60-61.
12. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास साहित्य : एक अनुशीलन, डॉ. श्रीमती उमा मिश्रा, पृष्ठ- 113
13. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन, डॉ. यदुनाथ चौबे, पृष्ठ-112-113
14. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 200-201
15. हिन्दी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य, शीर्षक, लेख औपनिषदिक आख्यान बनाम युगीन मानवीय सम्पृक्ति, डॉ. महीप सिंह, पृष्ठ-189
16. दूसरी परम्परा की खोज, डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ- 114-115
17. उपर्युक्त, पृष्ठ- 116
18. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य, डॉ. चौथीराम यादव, पृष्ठ-67
19. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-205
20. उपर्युक्त, पृष्ठ-208
21. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन, श्रीमती मजु सारस्वत, पृष्ठ-77

बी.एड. अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

डॉ० श्रीमती शैलजा गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष- शिक्षक-शिक्षा विभाग
दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई (जालौन)

सुरेन्द्र यादव

शोधार्थी- शिक्षाशास्त्र, सम्बद्ध-बुन्देलखण्ड वि0वि0, झाँसी (उ0प्र0)

सारांश

"भूमण्डलीकरण, कम्प्यूटरीकरण, सूचना-संचार और प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्ण विकास एवं विश्व स्तर पर मानव अन्तरक्रिया के वर्तमान युग में व्यक्तियों में तनाव एवं रोगों का स्तर तेजी से बढ़ा है, वह भी तब जब विज्ञान अपने विकास का लोहा मनवा रहा है। आज विज्ञान ने मानव को सुख के कृत्रिम संसाधन उपलब्ध कराने में सफलता तो प्राप्त कर ली है किन्तु मानव मन को शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति कराने में विमुख नजर आ रहा है। आज व्यक्ति अपने आप को तनावग्रस्त, चिन्ताग्रस्त, रोगग्रस्त तथा अशान्त महसूस कर रहा है। ऐसे में तनावरहित, चिन्तारहित, रोग रहित तथा सुख, शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कराते हुये सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कराने वाली योग शिक्षा की महती आवश्यकता है। आज योग शिक्षा शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यार्थियों, प्रशिक्षणार्थियों एवं शिक्षकों को प्रदान की जा रही है ताकि व्यक्ति अच्छे नागरिक बन समाज एवं राष्ट्र की सेवा करने में सफल सिद्ध हों। योग शिक्षा के इन्हीं तथ्यों के दृष्टिगत शोधार्थी ने बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया है। शोध अध्ययन में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के बी0एड0 अध्ययनरत् समस्त प्रशिक्षणार्थियों में से प्रतिदर्श के रूप में 400 प्रशिक्षणार्थियों को स्तरीकृत यादृच्छिक चयन विधि से चयनित कर, वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत प्राचलिक सांख्यिकी के क्रान्तिक अनुपात द्वारा निष्कर्ष की प्राप्ति की गयी। जिसमें बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में लिंग (छात्र एवं छात्रा) के आधार पर सार्थक अन्तर पाया गया जबकि महाविद्यालय प्रकार (अशासकीय एवं स्ववित्तपोषित) के आधार पर अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया गया। स्पष्टत: जिन प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति कम पायी गयी उनके पारिवारिक वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा शैक्षिक वातावरण की स्थिति योग शिक्षा के प्रति उच्च अभिवृत्ति प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम अच्छी दृष्टिगत हुई।"

प्रस्तावना

योग शब्द का अर्थ है- 'क्रिया विधि' अर्थात् शरीर और चित्त की क्रिया अथवा अभ्यास ही योग है जिसके करने से एक विशेष प्रकार की सिद्धि होती है। [1] पतंजलि के अनुसार भौतिक शरीर, मनुष्य की इच्छा शक्ति और मन को नियंत्रण में लेना जीवन के आदर्श के लिये बहुत आवश्यक है। योग मार्ग पर चलकर व्यक्ति अपनी शक्तियों और सामर्थ्य में वृद्धि करता हुआ जीवन में पर्याप्त सुख एवं संतोष अनुभव करता है। योग का समावेश हमारे दैनिक जीवन में एक नियतचर्या के रूप में होना चाहिये क्योंकि यह हमारे

व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, भावात्मक और आध्यात्मिक सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। योग के दो रूप हैं- वाह्य और आन्तरिक। यम, नियम, आसन और प्राणायाम वाह्य रूप में आते हैं जबकि प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आन्तरिक रूप में समाहित हैं। योग के सभी पहलू व्यक्ति की समन्वित जीवन शैली है। [2]

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना होता है। शिक्षा का माध्यम चाहे अनौपचारिक हो या औपचारिक, माता-पिता एवं शिक्षकों द्वारा बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक तथा आध्यात्मिक यथासम्भव विकास करना मुख्य उद्देश्य होता है। योग शिक्षा तथा उनसे सम्बन्धित क्रियाएं सभी प्रकार से बालक के इस बहुमुखी विकास में बहुत ही सहायक सिद्ध होती है। यही कारण है कि आज योग की शैक्षिक दृष्टि से प्रासंगिकता बढ़ गयी है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा योग की प्रासंगिकता के दृष्टिगत "बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन" का कार्य किया गया है।

व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसकी अभिवृत्तियाँ हैं। अभिवृत्ति वास्तव में एक मनोसामाजिक प्रत्यय है जो विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार की पृथकता को बताता है। अभिवृत्ति व्यक्ति के मनोभावों अथवा विश्वासों को इंगित करती है जो ये बताती है कि व्यक्ति क्या महसूस करता है। [3]

वर्तमान में अधिकांश विद्यार्थी एवं प्रशिक्षणार्थी तथा शिक्षक योग शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रख रहे हैं जिसका कारण योग शिक्षा से होने वाले अनेक ऐसे लाभ हैं जो वास्तव में सर्वागीण व्यक्तित्व विकास में लाभकारी हैं। अधिकांश शोध अध्ययनों से भी स्पष्ट है कि विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों की अभिवृत्ति धनात्मकता/सकारात्मकता की ओर बढ़ रही है। योग शिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों के प्रति उत्तम योगदान करने में सक्षम सिद्ध हो रही है। फिर भी बड़े स्तर पर शोध अध्ययन द्वारा ऐसा भी प्राप्त हो रहा है कि विद्यार्थी प्रशिक्षणार्थी तथा प्राध्यापकों में योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में उत्थान की आवश्यकता है। परन्तु निश्चय ही यह विचारणीय प्रश्न है कि शिक्षा के उच्च स्तर पर अनिवार्य रूप से योग शिक्षा को सम्मिलित करने के उपरान्त भी उसके उद्देश्यों की प्राप्ति विफल हो रही है। इस असफलता का क्या कारण है इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण शिक्षको एवं विद्यार्थियों में योग शिक्षा की सकारात्मक अभिवृत्ति का अभाव है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के बाद भी परिणाम नकारात्मक प्राप्त हो रहे हैं।

यूथ हेल्थ सर्वे के अनुसार- "देश में 6.94% युवक व युवतियाँ अवसाद से ग्रसित हैं, 15.54% पूरी तरह चिन्ता ग्रस्त हैं तथा 19.19% दिमागी परेशानी वाले पाये गये।"[4]

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

आज शिक्षा के क्षेत्र में योग शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। छात्र एवं छात्रा इस दिशा में जागरूक हो, इस हेतु शैक्षिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास चल रहे हैं। सरकार द्वारा विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर योग संचालन का विशेष बल दिया जा रहा है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में बी0एड0 प्रशिक्षणार्थी अथवा भावी शिक्षकों की योग के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन इस बात को ध्यान में रखकर किया गया है कि भावी शिक्षक कल का शिक्षक होगा जो अपने विद्यालय, परिवार एवं समाज में योग का महत्व बताकर योगाभ्यास के द्वारा उनके व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करा सकता है। योग शिक्षक द्वारा योगाभ्यास का छात्रों पर तटस्थ, निर्भीक, शान्तिप्रिय एवं सर्वव्यापी प्रभाव देखा गया है। योग के महत्व पर महर्षि पतंजलि ने कहा कि- "सम्पूर्ण जीवन ही योग है।"

वर्तमान में योग शिक्षा के महत्व को दृष्टिगत नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 में भी प्रमुखता से स्थान दिया गया है। इसके महत्व को दृष्टिगत ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 11 दिसम्बर 2014 को प्रत्येक वर्ष 21 जून को 'विश्व योग दिवस' के रूप में मनाने के लिये मान्यता दी है। योग विद्यार्थियों में समग्रता लाने में सहायक है जिससे कार्य में मानसिक संघर्ष, द्वन्द एवं विसंगति आदि उत्पन्न न हो। जब व्यक्ति व विद्यार्थी अपने कार्य क्षेत्र में समग्रता के साथ कार्य करते हैं तब समाज व राष्ट्र में नवीन जागरण उत्पन्न होता है। साथ-साथ नवीन दिशाएं खुलती हैं। इन्हीं आवश्यकता एवं महत्व के दृष्टिगत शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित समस्या कथन का चयन किया गया।

समस्या कथन

"बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन"

शोध अध्ययन के उद्देश्यः

1. बी0एड0 अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. बी0एड0 अध्ययनरत् अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः उपर्युक्त शोध उद्देश्य के निर्णय हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पना का निर्धारण किया गया।

1. बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. बी0एड0 अध्ययनरत् अशासकीय एवं स्वत्तिपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन का सीमांकनः

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में संचालित समस्त बी0एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों तक सीमित है।
2. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से सम्बद्ध समस्त बी0एड0 महाविद्यालय ही अध्ययन क्षेत्र के भाग होगें।
3. समस्त जनसंख्या में से केवल 400 प्रशिक्षणार्थियों को प्रतिदर्श के रूप में चयन किया गया।
4. केवल अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत् बी0एड0 प्रशिक्षणार्थी ही अध्ययन के भाग होगें।

अध्ययन की शोध विधिः प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध विधि के अन्तर्गत वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया। इस विधि के अन्तर्गत वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किसी समस्या का समाधान वैज्ञानिक ढ़ंग से खोजा जता है तथा विकास की दिशा देखनी होती है और भावी विकास हेतु मार्गदर्शन प्राप्त करना होता है।

शोध अध्ययन की जनसंख्याः प्रस्तुत शोध अध्ययन में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बन्धित समस्त बी0एड0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत् समस्त प्रशिक्षणार्थी शोध अध्ययन के जनसंख्या रहे।

शोध अध्ययन के प्रतिदर्शः प्रस्तुत शोध अध्ययन कार्य में प्रतिदर्श के रूप में समस्त जनसंख्या में से केवल 400 प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया तथा समस्त महाविद्यालयों में से कुल 12 (चार अशासकीय एवं 8 स्ववित्तपोषित) महाविद्यालयों का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया।

अध्ययन की प्रतिदर्श चयन विधिः प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रतिदर्श चयन विधि के रूप में प्रशिक्षणार्थियों एवं महाविद्यालयों का चयन सम्भाव्य प्रतिदर्शन की स्तरीकृत यादृच्छिक चयन विधि का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः प्रस्तुत शोध अध्ययन में डा0 महेश कुमार मुच्छल द्वारा निर्मित एवं प्रमाणीकृत योग अभिवृत्ति मापनी ब।ैद्ध का प्रयोग किया गया जिसकी विश्वसनीयता 0.83 थी।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधिः प्रदत्तों के विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु प्राचलिक सांख्यिकी के अन्तर्गत टी-परीक्षण सांख्यिकी का प्रयोग किया गया जिसमें मध्यमान, प्रमाणिक विचनल का भी प्रयोग किया गया।

शून्य परिकलपना की जाँचः प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता ने प्रतिदर्श के माध्यम से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण क्रान्तिक अनुपात सांख्यिकीय विधि का प्रयोग करते हुये शून्य परिकल्पना की जांच की है।

शून्य परिकल्पना-01: बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र एवं छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-01

वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमान अन्तर (D)	क्रान्तिक मान (C.R.)	सार्थकता
छात्र	200	51.315	5.68	0.875	1.53	0.05 स्तर पर
छात्रा	200	50.44	5.74			असार्थक

उपर्युक्त तालिका 01 के तथ्य अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र एवं छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में दोनों मध्यमानों के मध्य क्रान्तिक अनुपात का मान 1.53 प्राप्त हुआ। df=398 पर सार्थकता के दोनों स्तरों 0.01 तथा 0.05 पर प्राप्त सारणीमान क्रमश: 2.59 तथा 1.97 है जो कि क्रान्तिक अनुपात के गणना मान 1.53 से अधिक है। अत: शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई। अर्थात् बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र एवं छात्रा प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में समानता पायी गयी।

कारण स्वरूप स्पष्ट है कि जिस प्रकार बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र प्रशिक्षणार्थी योग शिक्षा से सम्बन्धित विषय, प्रकरण, तथ्यों, विचारों, भावनाओं एवं मान्यताओं के प्रति दृष्टिकोंण रखते हैं। उसी के समान छात्रा प्रशिक्षणार्थी भी रखती है। साथ-साथ छात्र एवं छात्रा दोनों के मध्य योग के प्रति पारिवारिक, सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण तथा योग ज्ञान प्राप्ति के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूचियों में समानता का होना पाया गया।

शून्य परिकल्पना-02: बी0एड0 अध्ययनरत् अशासकीय तथा स्वत्तिपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-02

वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	मध्यमान अन्तर (D)	क्रान्तिक मान (C.R.)	सार्थकता
अशासकीय प्रशिक्षणार्थी	200	53.12	4.65	4.49	8.552	0.01 स्तर पर
स्ववित्तपोषित प्रशिक्षणार्थी	200	48.63	5.82			सार्थक

उपर्युक्त तालिका 02 के तथ्य अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0एड0 अध्ययनरत् अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में दोनों मध्यमानों के मध्य क्रान्तिक अनुपात का मान 8.552 प्राप्त हुआ। df=398 पर सार्थकता के दोनों विश्वास स्तरों 0.01 तथा 0.05 पर प्राप्त सारणीमान क्रमश: 2.59 तथा 1.97 है जो कि क्रान्तिक अनुपात के मान से कम है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हुई। अर्थात् बी0एड0 अध्ययनरत् अशासकीय तथा स्ववित्तपोषित प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है अर्थात् दोनों के मध्य अभिवृत्ति में समानता नहीं है। उपर्युक्त तालिका में मध्यमान प्राप्तांक से स्पष्ट है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति अधिक/उच्च पायी गयी।

कारण स्वरूप स्पष्ट है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति पारिवारिक वातावरण, सामाजिक वातावरण तथा शैक्षिक वातावरण, अशासकीय महाविद्यालय के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में निम्न/कम अच्छा है।

शोध अध्ययन के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन "बी0एड0 अध्ययनरत प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन" में उद्देश्य निर्णय के परिणामस्वरूप निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए-

1. बी0एड0 अध्ययनरत् छात्र एवं छात्रा प्रशिक्षणार्थियों में योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इससे स्पष्ट हुआ कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बी0एड0 अध्ययनरत् समस्त छात्र एवं छात्राओं की योग शिक्षा के प्रति दृष्टिकोंण में समानता है अर्थात् जिस प्रकार छात्र प्रशिक्षणार्थी योग शिक्षा से सम्बन्धित विषय, प्रकरण, तथ्य विचार, भावनाओं एवं मान्यताओं के प्रति धारणा रखते हैं उसी प्रकार से छात्रा प्रशिक्षणार्थी भी रखती है।
2. महाविद्यालय प्रकार (अशासकीय एवं स्ववित्तपोषित) के स्तर पर बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों में योग शिक्षा के प्रति दृष्टिकोंण में सार्थक रूप से अन्तर पाया गया। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में बी0एड0 अध्ययनरत् प्रशिक्षणार्थियों की योग शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति की तुलना में अशासकीय महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों की अभिवृत्ति उच्च/अधिक पायी गयी।

सुझाव

आज का विद्यार्थी भविष्य का निर्माता है। सरकार द्वारा उच्च शिक्षा में नित् नये-नये प्रकार से शिक्षा में गुणवत्ता लाने के उपाय किये जा रहे हैं किन्तु जमीनी हकीकत यह है कि यह सभी उपाय विफल हो रहे हैं। आज शिक्षा एक व्यवसाय का रूप ले चुकी है और अपनी गुणवत्ता खोती जा रही है। शिक्षक और छात्र में आपसी अन्तरक्रिया कम से कमतर होती जा रही है। नये-नये लाभकारी विषयों एवं नयी-नयी शिक्षा तकनीकों से शिक्षकों में रूचियाँ एवं अभिवृत्तियाँ निरसता को प्राप्त हो रही है। परिणामस्वरूप छात्र-छात्राओं की शैक्षिक गुणवत्ता से दूरी बनती जा रही है। योग शिक्षा आज वर्तमान में अति प्रासंगिक विधा है जिसके माध्यम से बालक तथा व्यक्ति के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास किया जा सकता है। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को योग शिक्षा से सम्बन्धित ज्ञान को पारिवारिक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर एवं शैक्षिक स्तर पर प्रासंगिक एवं व्यावहारिक बनाना होगा। इस हेतु प्रशासनिक स्तर भी प्रयास करने होगें जिससे विद्यार्थी सुरक्षित भविष्य पा सके तथा तनाव मुक्त एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर देश तथा स्वयं का विकास कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (2013); भारतीय दर्शन-2, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, पृ. सं0-289
2. पटेल, श्रीकृष्ण एवं डा0 मनोज प्रजापति (2015); शारीरिक स्वास्थ्य एवं योग शिक्षा, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, पंचम संस्करण, पृ. सं0 273
3. राआशिप (2015); योग शिक्षा, एम0एड0 कार्यक्रम, राष्ट्रीय अध्यापक, शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. सं0 24-26
4. गर्ग, ओमप्रकाश एवं संजय दत्ता (2010); योग शिक्षा, जयपुर, राजस्थान शिक्षा महाविद्यालय, पृष्ठ संशोधित संस्करण, पृ. सं0 56
5. नागेन्द्र, एच0आर0 (2006); प्राणायाम, कला ओर विज्ञान, बंगलौर, योग प्रकाशन।
6. बालकृष्ण, आचार्य (2007); विज्ञान की कसौटी पर योग, हरिद्वार, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण।
7. गुप्ता, एस0पी0 एवं डा0 अलका गुप्ता (2014); उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुसतक भवन, प्रथम संस्करण।
8. गुप्ता, एस0पी0 (2015); अनुसंधान संदर्शिका, इलाहाबाद, शारदा पुसतक भवन, नवीन संशोधित संस्करण।
9. सिंह, अरूण कुमार (2010); मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास।
10. गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2007); सांख्यिकीय विधियाँ, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, तृतीय संस्करण
11. Shodganga.inflibnet.ac.in
12. http://eric.ed.gov.
13. M.B. Buch Survey
14. https://ndl.itlkjp.ac.in

विजय नगर साम्राज्यवाद और कृष्णदेव राय

प्रज्ञा शिखा

शोध-छात्रा, इतिहास विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

शोध-सारांश

विजयनगर अथवा विजय का शहर एक शहर और एक साम्राज्य, दोनों के लिए प्रयुक्त नाम था। इस साम्राज्य की स्थापना चौदहवीं शताब्दी में की गई थी। अपने चरमोत्कर्ष पर यह उत्तर में कृष्णा नदी से लेकर प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण तक फैला हुआ था। 1565 में इसपर आक्रमण कर इसे लूटा गया और बाद में यह उजाड़ा गया। हालाँकि सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों तक यह पूरी तरह से विनष्ट हो गया था, पर फिर भी कृष्णा-तुंगभद्रा दोआब क्षेत्र के निवासियों की स्मृतियों में यह जीवित रहा। उन्होंने इसे हम्पी नाम से याद रखा। इस नाम का आविर्भाव यहाँ की स्थानीय मातृदेवी पम्पादेवी के नाम से हुआ था। इन मौखिक परंपराओं के साथ-साथ पुरातात्विक खोजों, स्थापत्य के नमूनों, अभिलेखों तथा अन्य दस्ताजोंने विजयनगर साम्राज्य को पुनः खोजने में विद्वानों की सहायता की।

मुख्य शब्द: विजयनगर, दोआब क्षेत्र, राज्याभिषेक, संगम वंश, व्यापारिक संधि।

विषय-वस्तु

दक्षिण भारत के नरेश मुगल सल्तनत के दक्षिण प्रवाह को रोकने में बहुत सीमा तक असफल रहें। मुगल उस भूभाग काल तक अपनी विजयपताका फहराने में समर्थ रहें। यही कारण है कि दक्षिणपथ के इतिहास में विजयनगर राज्य को विशेष स्थान दिया गया है। दक्षिण भारत की कृष्णा नदी की सहायक तुंगभद्रा को इस बात का गर्व है कि विजयनगर उसकी गोद में पला। उन्होने नदी के किनारे प्रधान नगरी हंपी पर महज 300 सैनिक के साथ हमला किया और बेहतरीन रणनीति के साथ सफल हुए। विजयनगर के पूर्वी दिशा के पड़ोसी राज्य के होयसल नरेशों का प्रधान स्थान था हंपी। इस हमले के बाद वह किसी भी हाल में विजयनगर का उदय नहीं देखना चाह रहे थे। क्योंकि विजयनगर के पूर्वगामी पड़ोसी राज्य होयसल राज्यों का मार्ग दुर्गम है इसलिय उत्तर के महान सम्राट् धनानंद भी दक्षिण में विजय करने का संकल्प पूरा ना कर सके। द्वारसमुद्र के शासक वीर वल्लाल तृतीय ने दिल्ली के सुल्तान ने मलिक मुहम्मद की सहायता के लिय दो हिंदू कर्मचारियों को नियुक्त किया जिनके नाम हरिहर तथा बुक्क थे उस समय कृष्णदेव राया ने वीर वल्लाल को समझाने की कोशिश की मगर सफल नही हुए। बाद में वे दिल्ली सुल्तान से मिल कर अपने दोनो भाइयों को शामिल करते हुए कृष्ण देव राय के स्वतंत्र विजयनगर राज्य पर हमला किया मगर तीनो सेनाओं को पराजय का मुख देखना पड़ा। सन् 1336 ई. में कृष्ण देव राय के आचार्य हरिहर ने वैदिक रीति से शंकर प्रथम का राज्याभिषेक संपन्न किया और तुंगभद्रा नदी के किनारे विजयनगर नामक नगर का निर्माण किया। विजयनगर राज्य में विभिन्न तरह के मंत्रालय बनाए गये जिसमें शासन मंत्रालय भी था जिसका इस्तेमाल तब होता था जब राजा सही फैसला न ले पाए।[1]

विजयनगर में प्रतापि एवं शक्तिशाली नरेशों की कमी न थी। युद्धप्रिय होनें के अतिरिक्त सभी हिन्दू संस्कृति के रक्षक थे। स्वंय कवि तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। हरिहर व बुक्का संगम नामक चरवाहे के पुत्र थे उनको उनके राज्य से निकाल दिया गया था। अतएव उन्हें संगम सम्राट् के नाम से शासन किया। विजयनगर राज्य के संस्थापक हरिहर प्रथम ने थोड़े समय के पश्चात् अपने वरिष्ठ

तथा सुहढ़ साम्राज्य बना दिया। हरिहर द्वितीय का नाम उल्लेखनीय है जिसने अपने राज्याभिषेक के पश्चात् संगम राज्य को उन्नति का चरम सीमा पर पहुँचा दिया। मुगल रियासतों से युद्ध करते हुए देबराय प्रजापालन में संलग्न रहा। राज्य की सुरक्षा के निमित्त तुर्की घुड़सवार नियुक्त कर सेना की वृद्धि की। उसके समय में अनेक नवीन मंदिर तथा भवन बने।[2]

दूसरा राजवंश सालुव नाम से प्रसिद्ध था। इस वंश के संस्थापक सालुब नरसिंह ने 1485 से 1410 ई. तक शासन किया। उसने शक्ति क्षीण हो जाने पर अपने मंत्री नरस नायक को विजयनगर का संरक्षक बनाया। वही तुलुव वंश का प्रथम शासक माना गया है। उसने 1410 से 1503 ई. तक शासन किया और दक्षिण में कावेरी के सुदूर भाग पर भी विजयदुंदुभी बजजाई। तुलुब वंश में हंगामा तब हुआ जब कृष्णदेव राय का नाम राजा बनने में सबसे आगे था। उन्होने 1501 से 1539 ई. तक शासन किया और विजयनगर को भारत का उस समय का सबसे बड़ा साम्राज्य बना दिया बस दिल्ली एक मात्र स्वतंत्र राज्य था। कृष्ण देव राय के शासन में आने के बाद उन्होने अपनी सेना को इस स्तर तक पहुचाया। 1.50 लाख घुड़सवार सैनिक 88,000 पैदल सैनिक 20,000 रथ 64,000 हाथी और 1.50 लाख घोड़े 15,000 तोप इत्यादि। वे महान प्रतापी शक्तिशाली शांतिस्थपक सर्वप्रिय सहिष्णु और व्यवहारकुशल शासक थे। उन्होने विद्रोहियों को दबाया ओडिशा पर आक्रमण किया और पुरे भारत के भुभाग पर अपना अधिकार स्थापित किया। सोलहवीं सदी में युरोप से पुर्तगाली भी पश्चिमी किनारे पर आकर डेरा डाल चुके थे। उन्होने कृष्ण देव राय से व्यापारिक संधि करने की विनती की जिससे विजयनगर राज्य की श्रीवृद्धि हो सकती थी लेकिन कृष्ण देव राय ने मना कर दिया और पुर्तगालीयों सहित 42 विदेशी शक्तियों को भारत से खदेड़ कर बाहर किया।[3]

तुलुव वंश का अंतिम राजा सदाशिव परंपरा को कायम न रख सका। सिंहासन पर रहते हुए भी उसका सारा कार्य रामराय द्वारा संपादित होता था। सदाशिव के बाद रामराय ही विजयनगर राज्य का स्वामी हुआ और इसे चौथे वंश अरवीदु का प्रथम सम्राट मानते है। रामराय का जीवन कठिनाइयों से भरा पड़ा था। शताब्दियों से दक्षिण भारत के हिंदू नरेश इस्लाम का विरोध करते रहे अतएव बहमनी सुल्तानों से शत्रुता बढ़ती ही गई। मुसलमानी सेना के पास अच्छी तोपें तथा हथियार थे इसलिय विजयनगर राज्य के सैनिक इस्लामी बढ़ाव के सामने झुक गए। विजयनगर शासकों, द्वारा नियुक्त मुसलमान सेनापतियों ने राजा को घेराव दिया अतएव सन् 1565 ई. में तलिकोट के युद्ध में रामराय मारा गया।[4] मुसलमानी सेना ने विजयनगर को नष्ट कर दिया जिससे दक्षिण भारत संस्कृति की क्षति हो गई। अरवीद् के निर्बल शासकों में भी वेकंटपतिदेव का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। उसने नायको को दबाने का प्रयास किया था। बहमानी तथा मुगल सम्राट में पारस्परिक युद्ध होने के कारन वह मुगल सल्तनत के आक्रमण से मुक्त हो गया था। इसके शासनकाल की मुख्य घटनाओं में पुर्तगालियों से हुई व्यापारिक संधि थी। शासक की सहिष्णुता के कारण विदेशियों का स्वागत किया गया और ईसाई पादरी कुछ सीमा तक धर्म का प्रचार भी करने लगे। वेंकट के उत्तराधिकारी निर्बल थे। शासक के रूप में वे विफल रहे नायकों का प्रभुत्व बढ़ जाने से विजयनगर का अस्तित्व मिट गया।[5]

हिंदू संस्कृति के इतिहास में विजयनगर राज्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा। विजयनगर की सेना में मुसलमान सैनिक तथा सेनापति कार्य करते रहे परन्तु इससे विजयनगर के मुल उद्देश्य मे कोई परिर्वतन नही हुआ। विजयनगर राज्य सायण द्वारा वैदिक साहित्य की टीका तथा विशाल मंदिरो का निर्माण दो ऐसे ऐतिहासिक स्मारक हैं जो आज भी उसका नाम अमर बनाए है। विजयनगर के शासक स्वंय शासनप्रबंध का संचालन करते थे। केंद्रीय मत्रिमंडल की समस्त मंत्रण को राजा स्वीकार नहीं करता था और सुप्रबंध के लिए योग्य राजकुमार से सहयोग लेता था। प्राचीन भारतीय प्रणाली पर शासन की नीति निर्भर थी। सुदुर दक्षिण में सामंत वर्तमान थे जो वार्षिक कर दिया करते थे और राजकुमार की निगराणी में सारा कार्य करते थे प्रजा के संरक्षण के लिए पुलिस विभाग सतर्कता से कार्य करता रहा जिसका सुंदर वर्णन विदेशी लेखकों ने किया है। विजयनगर के शासकगण राज्य अंगों में कोष को ही प्रधान समझते थे। उन्होनें भूमि की पैमाइश कराई और बंजर सिंचाइवाली भूमि पर पृथक्-पृथक् कर बैठाए। चुंगी राजकीय भेंट अर्थिक दंड़ तथा आयात पर निर्धारित कर उनके अन्आय के साधन थ। विजयनगर एक युद्ध राज्य था अतएव आय का दो भाग सेना में व्यय किया जाता तीसरा अंश संचित कोष के रूप में सुरक्षित रहता और चौथा भाग दान एवं महल संबंधी कार्यो में व्यय किया जाता था। भारतीय सहित्य में विजयनगर राज्य का उल्लेख अमर है।[6]

तुंगभद्र की घाटी में ब्राहमण जैन तथा शैव धर्म प्रचारको ने कन्नड भाषा को अपनाया जिसमें रामायण महाभारत तथा भागवत की रचना की गई। इसी युग में कुमार व्यास का आविर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त तेलुगू भाषा के कवियों को बुक्क ने भुमि दान में दि। कृष्ण देव राय का दरबार कुशल कविगण द्वारा सुशोभित किया गया था। संस्कृत साहित्य की तो वर्णनातीत श्रीवृद्धि हुई।

विद्यारण्य बहुमुख प्रतिभा के पंड़ित थे। विजयनगर राज्य के प्रसिद्ध मंत्री माधव ने मीमांसा एवं धर्मशास्त्र संबंधी क्रमश: जैमिनीय न्यायमाला तथा पराशरमाधव नामक ग्रथों की रचना की थी उसी के भ्रता सायण ने वैदिक मार्गप्रवर्तक हरिहर द्वितीय के शासन काल में हिंदू संस्कृति के आदि ग्रंथ वेद पर भाष्य लिखा जिसकी सहायता से आज हम वेदों का अर्थ समझते है। विजयनगर राज्यओं के समय में संस्कृत साहित्य में अमूल्य पुस्तकें लिखी गई। बौद्ध जैन तथा ब्राहामण मतों का प्रसार दक्षिण भारत में हो चुका था। विजयनगर राजाओं ने शैव मत को अपनाया यद्यपि उनकी सहिहष्णुता कारण वैष्णव आदि अन्य धर्म भी पल्लवित होते रहे। विजयनगर की कला धार्मिक प्रवृत्तियों के कारण जटिल हो गई। मंदिरों के विशाल गोपुरम् तथा सुंदर खचित स्तंभयुक्त मंडप इस युग की विशेषता है। विजयनगर शैली की वास्तुकला के नमूने उसके मंदिरों में आज भी शासकों की कीर्ति का गान कर रहे हैं।[7]

विजयनगर साम्राज्य

विजयनगर साम्राजय मध्यकालीन दक्षिण भारत का एक साम्राज्य था। इसके राजओं ने 310 वर्ष राज किया। इसका वास्तविक नाम कनर्लाटक साम्राजय था। इसकी स्थापना हरिहर और बुक्का राय नामक दो भाईयों ने की थी। पुर्तगाली इसे बिसनागा राज्य के नाम से जानते थे। इस राज्य की 1565 में भारी पराजय हुई और राजधानी विजयनगर को जला दिया गया। उसके पश्चात क्षीण रूप में यह और 70 वर्ष चला। राजधानी विजयनगर के अवेशेष आधुनिक कर्नाटक राज्य में हम्पी शहर के निकट पाये हैं और यह एक विश्व विरासत स्थल है। पुरातात्त्विक खोज से साम्राज्य की शक्ति तथा धन-सम्पदा का पता चलता है।[8]

स्थापत्य कला

विजयनगर साम्राजय में संस्कृति के साथ-साथ कला तथा वास्तुकला की भी उन्नति हुई। कृष्ण देव राय ने हजारा एवं विट्टल स्वामी मंदिर का निर्माण करवाया। ये मंदिर स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने है। मंडप के अलावा कल्याण मंडप का प्रयोग तथा एकात्मक कला से निर्मित स्तंभ एवं मूर्तियाँ विजयनगर स्थापत्य की विशिष्टता को दर्शाते है। स्थापत्य कला की द्रष्टि से विजयनगर किसी भी समकक्ष नगर से कमतर नही था। अब्दुल रज्जाक विजयनगर को विश्व में कहीं भी देखें या सुने गए सर्वाधिक भव्य एवं उत्कृष्ट नगरों में सें एक मानता है। उसका कहना था की नगर इस रीति से निर्मित है कि सात नगर-दुर्ग और उतनी ही दीवरों एक

दूसरे को काटती है। सातवाँ दुर्ग जो अन्य दुर्ग के केन्द्र से 10 गुना बड़ा है। बाजारों के साथ-साथ राजा के महलों में तराशे हुए चिकने और चमकीले पत्थरो से निर्मित असंख्य बहती धाराएँ और नहरें देखी जा सकती थीं। ये विजयनगर स्थापत्य की उत्कृष्टता को दर्शाते है। [9]

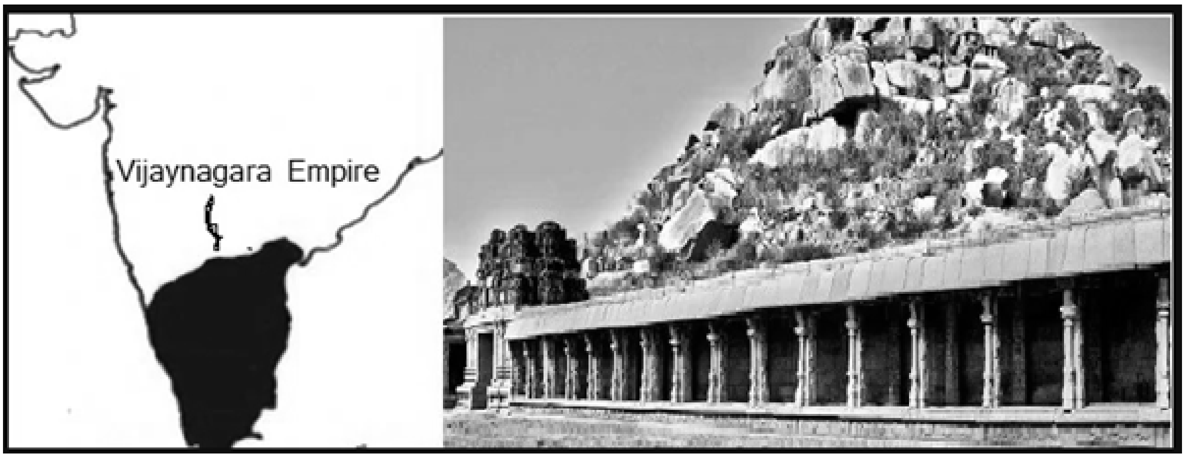

उत्पत्ति

इस साम्राज्य की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न दंतकथाएँ भी प्रचलित है। इनमें से सबसे अधिक विश्वासनीय यही है कि संगम के पुत्र हरिहर तथा बुक्का ने हम्पी हस्तिनावती राज्य की नींव डाली और विजयनगर को राजधानी बनाकर अपने राज्य का नाम अपने गुरू के नाम पर विजयनगर रखा। दक्षिण भारत में मुसलमानों का प्रवेश अलाउद्धीन खिल्जी के समय हुआ था। लेकिन अलाउद्धीउन राज्यों का हराकर उनसे वार्षिक कर लेने तक ही सीमित रहा। मुहम्मद बिन तुगलक ने दक्षिण में साम्राज्य विस्ततार के उद्येश्य से कम्पिली पर आक्रमण कर दिया और कम्पिली के दो राज्य मंत्रियों हरिहर तथा बुक्का को बंदी बनाकर दिल्ली ले आया। इन दोनो भईयो द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बाद इनहे दक्षिण विजय के लिय भेजा गया। माना जाता है कि अपने इस उद्येश्य में असफलता के कारण वे दक्षिण में ही रह गय और विद्यारण्य नामक सन्त के प्रभाव में आकर हिन्दू धर्म को पुनः अपना लिया। इस तरह मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में ही भारत के दक्षिण पश्चिम तट पर विजयनगर साम्राजय की स्थापना की गई।

साम्राज्य विस्तार

विजयनगर की स्थापना के साथ ही हरिहर तथा बुक्का के सामने कई कठिनाईयों थीं। वारगल का शासक कापाया नायक तथा उसका मित्र प्रोलय वेम और वीर बल्लाल तृतीय उसके विरोधी थे। देवगिरि का सूबेदार कुतलुग खाँ भी विजयनगर के स्वतंत्र अस्तित्व को नष्ट करना चाहता था। हरिहर ने सर्वप्रथत बादामी उदयगिरि तथा गुटी के दुर्गो को सृद्धढ किया। उसने की उन्नती पर भी ध्यान दिया जिससे साम्राज्य में समुद्धि आयी। होसल साम्राट वीर बल्लाल मजदुरो की विजय अभियान में लगा हुआ था इस अवसर का लाभ उठाकर हरिहर ने होयसल साम्राज्य के पूर्वी बाग पर अधिकाकर लिया। बाद में वीर बल्लाल तृतीय मजदुरो के सुल्तान द्वारा 1342 ई. में मार डाला गया। बल्लाल के पुत्र तथा उत्तराधिकारी अयोग्य थे। इस मौके को भुनाते हुए हरिहर ने होयसल साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। आगे चल कर हरिहर ने कदम्ब के शासक तथा मजदुरो के सुल्तान को कोई उपाधि धारण नही की। उसने तमिलनाडु का राज्य विजयनगर साम्राज्य में मिला लिया। कृष्णा नदी को विजयनगर तथा बहमनी की सीमा मान ली गई। बुक्का के बाद उसका पुत्र हरिहर द्वितीय सत्तासीन हुआ। हरिहर द्वितीय एक महान योद्धा था। उसने अपने भाई के सहयोग से कनारा त्रिचनापल्ली कांची चिंगलपुट आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।[10]

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कृष्णदेव राय के शासन की चारित्रिक विशेषता विस्तार और दृढ़ीकरण था। इसी काल में तुंगभद्रा और कृष्णा नदियों के बीच का क्षेत्र (रायचूर दोआबद्ध हासिल किया गया (1512), उडीसा के शासकों का दमन किया गया (1514) तथा बीजापुर के सुल्तान को बुरी तरह पराजित किया गया था (1520)। हालाँकि राज्य हमेशा सामरिक रूप से तैयार रहता था, लेकिन फिर भी यह अतुलनीय शांति और समृद्धि की स्थितियों में फला-फूला। कुछ बेहतरीन मंदिरों के निर्माण तथा कई महत्त्वपूर्ण दक्षिण भारतीय मंदिरों में भव्य गोपुरमों कोजोड़ने का श्रेय कृष्णदेव को ही जाता है। उसने अपनी माँ के नाम परविजयनगर के समीप ही नगलपुरम् नामक उपनगर की स्थापना भी की थी। विजयनगर के संदर्भ में सबसे विस्तृत विवरण कृष्णदेव राय के या उसके तुरंत बाद के कालों से प्राप्त होते हैं। कृष्णदेव की मृत्यु के पश्चात 1529 में राजकीय ढाँचे में तनाव उत्पन्न होने लगा। उसके उत्तराधिकारियों को विद्रोही नायकों या सेनापतियों से चुनौती का सामना करना पड़ा। 1542 तक केंद्र पर नियंत्रण एक अन्य राजकीय वंश, अराविदु के हाथों में चला गया, जो सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक सत्ता पर काबिज रहे। पहले की ही तरह इस काल में भी विजयनगर शासकों और साथ ही दक्कन सल्तनतों के शासकों की सामरिक महत्त्वाकांक्षाओं के चलते समीकरण बदलते रहे। अंतत: यह स्थिति विजयनगर के विरुद्ध दक्कन सल्तनतों के बीच मैत्री-समझौते के रूप में परिणत हुई। 1565 में विजयनगर की सेना प्रधानमंत्री रामराय केनेतृत्व में राक्षसी-तांगड़ी (जिसे तालीकोटा के नाम से भी जाना जाता है) के युद्ध में उतरी जहाँ उसे बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुण्डा की संयुक्त सेनाओं द्वारा करारी शिकस्त मिली। विजयी सेनाओं ने विजयनगर शहर पर धावा बोलकर उसे लूटा। कुछ ही वर्षों के भीतर यह शहर पूरी तरह से उजड़ गया। अब साम्राज्य का केंद्र पूर्व की ओर स्थानांतरित होगया जहाँ अराविदु राजवंश ने पेनुकोण्डा से और बाद में चन्द्रगिरी (तिरुपति के समीप) से शासन किया।

संदर्भ-सूची

1. citebook/ title=प्रांतीय राज्य/ page=k172
2. आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव, 2018 दिल्ली सल्तनत (711-1526), शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृष्ठ 257
3. बसुंधरा फिलियोजट, 2006 (पुनर्मुद्रण) विजयनगर नेशनल बुक ट्रस्ट, न्यू दिल्ली पेज न.-230-232
4. हरिश्चंद्र वर्मा (संपादक), 2009, मध्यकालीन भारत (750-1540), हिंदी माध्यम कार्यालय कार्यानवेय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृष्ठ 279
5. सतीश चंद्र, 2013, मध्यकालीन भारत-राजनीति समाज और संस्कृति, ओरिएंट ब्लैक स्वान, हैदराबाद, पृष्ठ 142-143
6. जॉर्ज मिशैल, 1995 ऑर्किटैक्चर एंड आर्ट ऑफ सदर्न इंडिया कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस कैम्ब्रिज, पेज न.- 85, 86, 87
7. डॉ. आर.एन. पांडे, 2004, विजयनगर साम्राज्य, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृष्ठ 25
8. हबीब निजामी (संपादक), 1970, कंप्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पीपल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 1047
9. के.ए. नीलकंठ शास्त्री, 1955 ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू दिल्ली,पेज न.-128-132
10. बर्टन स्टीन, 1989 विजयनगर (द न्यू कैम्ब्रज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम 1, पार्ट 2) फाउंडेशन बुक्स, न्यू दिल्ली, पेज न.-154-156

भाषा और समाज

डॉ० माधवी

सहायक प्राचार्य, हिंदी विभाग, गंगा सिंह कॉलेज, (छपरा)

सारांश

समाज के अस्तित्व पर ही भाषा का अस्तित्व अवलंबित होता है। भाषा के अध्ययन -विश्लेषण के क्रम में यह बात स्पष्ट होता है कि भाषा कोई जन्मजात वस्तु नहीं होती है, उसे समाज में रहकर समाज से ही अर्जित किया जाता है। यह परम्परानुमोदित होती हैं और हर नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी से विरासत में इसे प्राप्त करती है। भाषा का भौतिक पक्ष और सामाजिक पक्ष परस्पर सम्बद्ध और अनुस्यूत होकर उसकी साभिप्रायता को प्रमाणित करती है–

कुंजी शब्दः अस्तित्व, अवलंबित, परम्परानुमोदित, साभिप्रायता, अनुस्यूत

भाषा व्यक्त और सार्थक उच्चारित श्रौत ध्वनि प्रतीकों की यादुच्छिक व्यवस्था है। हम भाषा की प्रकार्यात्मकता को रेखांकित करते हुए यह कहते हैं कि भाषा परस्पर सम्बोध्य समाज में काम करती हैं। किसी भी भाषा अपनी स्वयं की संरचना और बनावट कि निश्चित रूप होते हैं जो वैज्ञानिक एवं भौतिक हो सकते हैं। लेकिन भाषा का मूलतः अस्तित्व सामाजिक जीवन-धारा में रहकर ही सार्थक होता है। भाषा व्यक्त तथा सार्थक, उच्चारित तथा श्रौत यादुच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है, जो सम्बोध्य समाज में काम करती हैं।

भाषा का संबंध मनुष्य और समाज से होता है, यह इन दोनों को जोड़ने का कार्य करती है। भाषा से मानव जाति अपने विचारों, भावनाओं और संवेगो को व्यक्त कर अपनी मन की जिज्ञासा को शांत करता है। भाषा शिक्षा, धर्म, राजनीति, साहित्य, विज्ञान एवं मनोविकार इत्यादि का मूल आधार है। यह रोजमर्रा के अनौपचारिक कामों का वाहक है। मानव जाति की सभ्यता और संस्कृति प्राचीन काल से लेकर अब तक अपनी विशिष्ट प्रयोजनीयता की अभिनव रूप को भाषा से गढा जाना संभव हुआ है–

भाषा सामान्य जन-जीवन के लिए है, इसका प्रयोग मानव जन-जीवन में मुख्य रूप से दो रूप में होता है:-

1. शब्दों और व्याकरण से मिले वाक्य में और
2. सांकेतिक रूप भाव में

शब्दों और व्याकरण से मिलकर बने वाक्यों से मानव अपने मुख से बोल कर अपने विचार को व्यक्त करता है, तो सांकेतिक भाषा में मानव शरीर के किसी अंग का प्रयोग करता है। जिसमें प्रमुख हैं–आँख, भौंह, हाथ, सिर हिलाना, शारीरिक प्रतिक्रिया इत्यादि।

मानव भाषा मूल्याभिव्यक्ति होती है, मानव जीवन के मूल्यों के प्रतिष्ठापन, संवर्धन और मानकीकरण की प्रक्रिया का आधार भाषा होता है। सभ्यता के विकसित होने पर यह आवश्यक हो जाता है कि कोई एक भाषा जिनकी कई बोलियाँ हो, उनमें से एक बोली का मानक रूप होना चाहिएद्य जिसे मानक भाषा या परिनिष्ठित भाषा कहा जा सके और वह पूरे क्षेत्रा में प्रमुखतः शिक्षित वर्ग, शिक्षा, पत्र-व्यवहार, समाचार एवं संचार इत्यादि की भाषा हो। जैसे- भारत देश में अनेक भाषाएं एवं बोलियाँ बोली जाती है, उनमें हिंदी भाषा की कई बोलियों में खड़ी बोली को मानक रूप देकर उपरोक्त सभी कार्य संपन्न होते हैं। वैसे ही चीन में चीनी भाषा, लंदन में अंग्रेजी भाषा एवं रोम की लैट्रिन मानक भाषा इत्यादि।

प्रत्येक भाषा का अपना स्वरूप होता है, अपनी अर्थ-प्रकृति होती है, अपना परंपरा होता है, अपने मुहावरे होते हैं, अपनी कहावतें होती हैं और व्याकरणिक कोटि होती है।

कोई भी दो भाषाएं एक सी नहीं हो सकती है। भाषा का यह भेद इतिहास पर आधारित है। भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन काल में उन स्थानों में हुई होंगी, जहां बहुत से लोग एक साथ रहते होंगेद्य ऐसे स्थानों में किसी एक स्थान की वह भाषा जो आरंभ में उत्पन्न हुई होंगी तथा आगे चलकर जिसमें ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि कारणों से अनेक भाषाएं बोलियों आदि बनी होंगीद्य जैसे– भारोपीय भाषा-परिवार, जिसका प्रादुर्भाव एक साथ रहने वाले लोगों में हुआद्य भूगौलिक परिस्थितयों ने भाषा के विकास एवं शाखाओं में बांटने का कार्य वहीं से आरंभ कर दिया होगाद्य दस-बीस पीढ़ियों उपरांत अलग-अलग बसने वाली उन शाखाओं की भाषा मे काफी विभिन्नता आ गई होंगीद्य कुछ वर्ष उपरांत नवीन स्थान पर कई शाखा और प्रशाखायें इधर-उधर बसी होंगी,फिर वही भाषा का नवीन विकास हुआ होगा या भाषा का स्वरूप परिवर्तन हुआ होगा।

मनुष्य भाषा का प्रयोग जन्म से मरण तक करता है। इसलिए भाषा चिरसहचरी कही जाती है। जिसे हम देखकर, सुनकर या बोलकर और लिखकर सीख पाते हैं। भाषा आसपास के वातावरण से सीखी जाती है। मानव जिस समाज में रहता है, वहां की भाषा का जो रुप होता है, वही उस मनुष्य की भी भाषा हो है जिसे हम संक्षिप्त रूप में मातृभाषा भी कह सकते हैं।

निष्कर्ष

भाषा पूर्णता: आदि से अंत तक समाज से संबंधित है। उसका विकास समाज में हुआ है, उसका अर्जन समाज से होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है यह समाज की संपत्ति है, मनुष्य स्वभावत अनुकरणीय है। दूसरों की नकल करना उसे खूब आता है, भाषा यह अनुकरण की ही प्रक्रिया है इसे यह एक पीढ़ी दूसरे पीढ़ी अर्थात धरोहर नवजात के हाथो सौंपती है जो इसको कालांतर में परिवर्तन आदि कर सकता है किंतु उसे उत्पन्न नहीं कर सकता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज में ही वह मूल रूप से अपनी भावनाओं, विचारों और आकांक्षाओं को प्रकट करता है भाषा बड़ा ही व्यापक और महत्वपूर्ण शब्द है। सामाजिक क्रिया-कलापो के लिए व्यावहारिक साधन के साथ साथ किसी भी मानव पर पड़ी हुई प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न अनुभव और विचारों की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन होने के कारण भाषा बड़े ही गौरव शालिनी स्वीकृत है प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार के रूप में भाषा का सहारा लेता ही है भाषा के बिना मनुष्य अपने काम को अंजाम नहीं दे सकता है जैसे मानव के लिए खुराक, पानी और हवा जितना आवश्यक है उतना ही उनके जीवन में भाषा की उपयोगिता है।

संदर्भ

1. गोपाल राय, हिंदी भाषा का विकास, अनुपम प्रकाशन, पृष्ठ 10, 1995
2. आचार्य देवेंद्र नाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 1966-1983
3. आचार्य किशोरी दास बाजपेई 'भारतीय भाषा विज्ञान' वाणी प्रकाशन, वर्ष 1999
4. भोलानाथ तिवारी, मुकुल प्रियदर्शी, हिंदी भाषा की सामाजिक भूमिका, प्रकाशन-दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास, संस्करण-1 वर्ष-1983
5. डॉक्टर तिलक सिंह, नवीन भाषा विज्ञान, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-1 वर्ष-1989
6. आचार्य देवेंद्र नाथ वर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966-1983
7. प्रोफेशन नंदकिशोर प्रसाद, हिंदी व्याकरण रचनासार, आनंद प्रकाशन, भागलपुर (बिहार)

आत्मनिर्भर भारत अभियान: नए कलेवर में गाँधी का सपना

लक्ष्मी कुमारी

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षिका), राजनीति विज्ञान विभाग, राजेन्द्र मिश्र महाविद्यालय, सहरसा
भू. ना. मं. विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)

COVID-19 के संक्रमण काल के दौरान मई, 2020 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा कि भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए हमें आपदा को अवसर में बदलने का संकल्प लेना होगा। प्रधानमंत्री ने स्वदेश में निर्मित वस्तुओं के उपयोग पर विशेष बल देते हुए लोकल के उपयोग को बढ़ावा देने और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए दूसरों को प्रेरित करने का भी आहवान् किया। COVID-19 के महामारी के पहले और बाद की दुनिया के बारे में बात करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि 21वीं सदी के भारत के सपने को साकार करने के लिए देश को आत्मनिर्भर बनाना जरूरी है। इस कार्य के सफल संचालन के लिए प्रधानमंत्री ने इस बात पर विशेष बल दिया कि भारत को COVID-19 महामारी संकट के दौर को एक अवसर के रूप में देखना चहिए। आत्मनिर्भर भारत का तात्पर्य है–दुनिया के साथ जुड़े रहते हुए आर्थिक विकास के साथ अपने लोगों के जीवन की गुणवत्ता सुधारना और भारत के भविष्य का पुन: निर्माण करना। वास्तव में यह विचार महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज की अवधारणा का ही नवीन रूप है। आज से लगभग एक सदी पहले हिन्द स्वराज लिखते हुए भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का एक सपना था, 'भारत को आत्म निर्भर बनाना।' इसके लिए उन्होनें कहा था कि अगर भारत को आत्मनिर्भर बनाना है तो सबसे पहले हमें हमारे गाँवों को स्वावलंबी बनाना होगा, क्योंकि भारत अपने चन्द शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है। महात्मा गाँधी आर्थिक स्वायत्तता अर्थात् आत्मनिर्भरता को राजनैतिक स्वाधीनता की कुंजी कहते थे। उनका मानना था–'भारत के निर्माताओं के सामने दो रास्ते हैं- अधिकाधिक उत्पादन और अधिकाधिक लोगों के द्वारा उत्पादन। पहला मार्ग एक आर्थिक गुलामी की ओर ले जाएगा और दूसरा–आर्थिक आत्मनिर्भरता के रास्ते हमें आगे बढ़ायेगा।' आर्थिक स्वायत्तता कीबात, जिसे हिन्द स्वराज के माध्यम से महात्मा गाँधी ने कही, वह आज लगभग सौ बरस बाद अत्यधिक प्रासंगिक है। हिन्द स्वराज के बरअक्स पहले यह समझना आवश्यक है कि हिन्दुस्तान का अर्थ राजतन्त्र नहीं, अपितु करोड़ों किसान और मजदूर है जो राज्य और अर्थतन्त्र की बुनियाद हैं। आत्मनिर्भरता की चाहत रखने से पहले यह तय करना भी अत्यन्त आवश्यक है कि साध्य की आवश्यकता के अनुसार ही उसके लिए साधन की तलाश की जानी चाहिए तथा उन्हें तराशने का कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए। राजतन्त्र के आत्मनिर्भर होने का उद्देश्य और अर्थ, लोकतंत्र के बहुसंख्यक अर्थात् किसानों और मजदूरों की आत्मनिर्भरता से ही मुमकिन है। इसलिए यह अनिवार्य है कि किसानों और मजदूरों को पहले आत्मनिर्भर बनने की दिशा मेंकदम बढ़ाया जाए, जिसके लिए जरूरी है कि राज्य उनके लिए वो साधन और संसाधन सुनिश्चित करे, जिसे पाकर वोअपने परिवार और समुदाय को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ सके।

महात्मा गाँधी का स्वदेशी आंदोलन और आत्मनिर्भरता एक ही सिक्के के दो पहलू थे, जो आज की दुनिया मे भी सार्थक हैं। गाँधी के हिन्द स्वराज में 'भारत के पूरे आर्थिक और राजनीतिक मॉडल' को विस्तार से समझाया गया है। गाँधी के लिए स्वदेशी में भारत के उस औपनिवेशिक शोषण को खारिज किया गया था,जिसमें ब्रिटिश खजाने भरते थे और नतीजे में भारत के गरीब और कुचले हुए लोग घाटे में रहते थे। मूर्खतापूर्ण उपभोक्तावाद की कभी ना मिटने वाली भूख को शांत करने के लिए असीमित औद्योगिक विकास पर आधारित पूंजीवाद पश्चिमी आर्थिक मॉडल में खुले बाजार का आदर्श बन गया, जिसकी गाँधी ने अपनी पुस्तक

हिन्द-स्वराज में आलोचना की। ब्रिटिश औपनिवेशिक मॉडल अमरीका तक पहुँचा दिया गया तथा आर्थिक विकास के रामबाण के रूप में प्रचारित किया गया, जिसमें एक अपरिहार्य कारगर साधन के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मुकाबले तकनीकी भौतिकवाद को पेश किया गया। लेकिन ये वो नहीं था और यही कारण है कि हमें फिर से स्वदेशी अर्थशास्त्र की आवश्यकता है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का 'आत्म-निर्भर' पर जोर दिया जाना, स्वदेशी अर्थशास्त्र ही है। स्वदेशी न तो अलगाव है और न ही इसका ये अर्थ निकाला जाना चाहिए बल्कि यह स्थानीयकरण और वैश्वीकरण के बीच भारत का सेतु है। भारत के प्रसंग में आत्मनिर्भरता का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अलगाव न होकर, गंभीरतापूर्वक अपनी स्थानीयता और सम्पूर्ण विश्व से जुड़ाव को बढ़ावा देना चाहिए, जिसके लिए गवर्नेंस सिस्टम को सरल व कारगर बनाकर आगे बढ़ना होगा।

हम जानते है कि महात्मा गाँधी भारत की स्वतन्त्रता मात्र से ही संतुष्ट नहीं रहे, बल्कि उन्होने तो नए भारत के निर्माण के लिए आत्मनिर्भर बनाने वाली अर्थव्यवस्था का भी विचार दिया था और उसी विचार को आधार बनाकर प्रधानमंत्री मोदी ने आत्मनिर्भर भारत अभियान की शुरूआत की। जीवन का कोई ऐसा हिस्सा नहीं है जहाँ गाँधी के विचार प्रासंगिक नहीं है। महात्मा गाँधी के विचार, सच्चाई, शांति, अहिंसा, सतत्-विकास, पर्यावरण- संरक्षण, मूल्य आधारित शिक्षा आदि जैसे कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर आज भी हमारा मार्गदर्शन करते हैं। भारत का प्रत्येक नागरिक गाँधी जी के विचारों और दर्शन से लाभ उठाकर देश को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान दे सकता है।

महात्मा गाँधी के राष्ट्रनिर्माण की कल्पना का आधार गाँवों का स्वशासित, आत्मनिर्भर, सहयोगात्मक, सामुदायिक जीवन था और ऐसे प्रयत्नों का महत्वपूर्ण परिणाम तो नैतिक ही हो सकताहै। जब व्यक्ति अपनी कुशलता और सतत् प्रयत्न से आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान वस्तु को बनाता है तो उसे स्वाभिमान, आत्मविश्वास, आत्म-निर्भरता, साहस, आशा, स्वतन्त्र सूझ-बुझ और शक्ति प्राप्त होती है। उसके बाद वह और भी अधिक कठिन काम, ऐसा काम जिसे दूसरों के साथ मिलकर करना पड़े, करने के लिए भी तत्पर हो जाता है। अगर उसके साथ दूसरे भी ऐसा ही करते हैं, तो उन सब में एक प्रकार के सामुहिक साहस और सामुहिक आशा का संचार होता है। यह एक कोड़ा सिद्वान्त नहीं है, अपितु स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय किसान तथा मजदूर वर्ग गाँधी जी के कार्यक्रम की प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन से अपने ही सादे औजार से ऐसी चीजें बनाते रहे, जिनसे उनके अपने चरित्र और अपने नैतिक बल का निर्माण भी हुआ और साथ ही-साथ खादी की आश्चर्यजनक प्रगति भी हुई। असहयोग आंदोलन के दिनों में वही जिले अत्याचार का अहिंसक मुकाबला करने में सबसे अधिक साहसी, दृढ़ और सफल रहे, जहाँ हाथ-कताई, हाथ-बुनाई और ग्रामोत्थान के दूसरे काम कुछ वर्षो सेचल रहे थे। हमारे गाँव शहरों की सारी जरूरतें पूरी करते थे। देश की गरीबी तब शुरू हुई, जब हमारे शहर, कस्बे विदेशी कम्पनियों के माल के बाजार बन गए और उपभोग की वस्तुओं को गाँव में भेजकर उनका शोषण किया जाने लगा।

वर्त्तमान समय की महामारी के संक्रमण काल में भी लगभग वही परिस्थिति तब उत्पन्न हुई, जब COVID-19 के संक्रमण को रोकने के लिए राष्ट्रव्यापी लॉकडान यानि तालाबन्दी का आह्वान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा किया गया। आरम्भ के कुछ दिनों की तालाबन्दी तथा बढ़ते संक्रमण की स्थिति को देखते हुए माना जाने लगा कि हमें कोरोना की परिस्थिति के साथ ही अपने जीवन को जीना सीखना होगा। ऐसी विकट परिस्थिति में प्रधानमंत्री के द्वारा आपदा को अवसर में बदलने के लिए 'आत्म-निर्भरता' का मन्त्र भारतीय नागरिकों को दिया गया। बकौल प्रधानमन्त्री- "इस लॉकडाउन में भारत ने कोरोना से लड़ाई के लिए भौतिक संसाधनों को तैयार किया, अपने मानव संसाधन को भी बचाया है। भारत से अन्य देश प्रेरणा ले रहे हैं। यह माना जा रहा है कि भारत विश्व को उचित दिशा दिखा सकता है, लेकिन इसके लिए भारत को स्वयं आत्मनिर्भर बनना होगा। इसके लिए इच्छा-शक्ति, समावेशी-विचार, निवेश, अवसंरचना और नव प्रर्वतन की आवश्यकता है।

लॉकडाउन संकट से बिगड़ी देश की अर्थव्यवस्था को ठीक करने के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने आत्मनिर्भर भारत अभियान शुरू की थी, जिसके तहत् बीस लाख करोड़ रूपये का आर्थिक पैकेज दिया गया। यह राहत पैकेज सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी. पी.) का लगभग 10 प्रतिशत है, जो मजदूरों, छोटे व्यापारियों, लघु उद्यमियों, किसानों के साथ अति सूक्ष्म उद्यमों, ईमानदार करदाताओं और अन्य व्यवसायों के लिए राहत और अवसर दे सकती है। चीन के आर्थिक हमले, सरकारों की उदासीनता और विदेशी पूँजी के प्रभुत्व के कारण एक लम्बे समय से पीड़ित लघु उद्योगों के फिर से उत्थान के लिए इसे एक उपाय के रूप में देखा जा सकता है। स्थानीयताके लिए प्रोत्साहन इस लक्ष्य को प्राप्त करने मेंमदद करेगा। प्रधानमंत्री मोदी का लोकल के लिए जोर, जिसे 'वोकल फॉर लोकल' कहा जा रहा है, आत्मनिर्भरता की दिशा में एक मजबूत कदम है, जिसकी जरूरत एक लम्बे समय से थी।

आज वैसे स्थानीय उद्योगों को पुनर्जीवित करने का समयआ गया है जो वैश्वीकरण के युग में नष्ट हो गये थे। यह उन आर्थिक नीतियों की शुरूआत का समय है जिनसे जन-कल्याण, स्थायी आय, रोजगार सृजन, सभी के लिए मददगार और लोगों में विश्वास की भावना पैदा की जा सके।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अपनाए गए आत्मनिर्भरता सिद्धान्त में गाँधी के विचार को अपनाते हुए एक सुधार के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसमें स्थानीयता को बढ़ावा देने के मार्ग पर चलने का दृढ़-संकल्प लिया गया है, जबकि महात्मा गाँधी के लिए स्वदेशी अपनाने का विचार ही अत्मनिर्भरता की अभिव्यक्ति थी। 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न लिखित हैं–

- **आत्मनिर्भर भारत अभियान**–प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कोरोना महामारी के संक्रमण काल में भारत की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए 20 लाख करोड़ रूपये के राहत पैकेज का ऐलान किया था। इस पैकेज को आत्मनिर्भर भारत अभियान का नाम दिया गया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का कहना है कि इस बड़े राहत पैकेज से भारत में लोगों को काम-काज करने की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी और कोशिश की जाएगी कि अगले कुछ सालों में भारत अपनी जरूरत की अधिकतर चीजों के लिए खुद पर निर्भर हो जाए। इस हिसाब से अभियान का नाम आत्मनिर्भर भारत अभियान रखा गया।
- **किसान होंगे आत्मनिर्भर**–कोरोना वायरस के बढ़ते संकट के दौर में सबसे बड़ी मार किसानों पर पड़ी है। इस हिसाब से आत्मनिर्भर भारत अभियान में तीन करोड़ किसानों को 4.22 लाख करोड़ रूपये का कृषि लोन दिया गया है। इसमें तीन महीने तक उन्हें लोन वापस करने की जरूरत नहीं है। इसक साथ ही इंटरेस्ट सब्वेंशन और तुरंत लोन चुकाने के इंसेंटिव के रूप में मिलने वाली सुविधा 31 मई 2020 तक बढ़ा दी गई है। यह सुविधा कोरोना के बढ़ते संक्रमण को देखते हुए बढ़ने वाले लॉकडाउन के वजह से कुछ और समय के लिए अग्रसारित की गई है।
- **आत्मनिर्भर किसान, समृद्ध भारत**–आत्मनिर्भर भारत अभियान में मोदी सरकार ने किसानों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के हाथ में अधिक से अधिक पैसा पहुँचाने की कोशिश की है। सरकार ने बताया है कि मार्च और अप्रैल के बीच 86600 करोड़ रूपये के 63 लाख लोन कृषि क्षेत्र में दिए गए हैं। इसके साथ ही सहकारी बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की रिफाइनेंसिंग के लिए नाबार्ड ने 29500 करोड़ दिए है। इसके साथ ही राज्यों को रूरल इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फंड के लिए 4200 करोड़ की मदद दी गई है।
- **शहरी गरीब बनेंगे आत्मनिर्भर**–भारत सरकार ने बताया कि पिछले दो महीने के दौरान प्रवासी मजदूर और शहरी गरीब लोगों के लिए कई उपाय किये गए हैं, जिससे उन्हें कोरोना के बाद के दौर में जीने में आसानी हो। इसमें प्रवासी मजदूर के रहने के लिए स्टेट डिजास्टर रिस्पांस फंड के रकम के उपयोग की इजाजत दी गई है जिससे की उनके खाने और पीने की व्यवस्था की जा सके। केन्द्र सरकार ने राज्यों को 11000 करोड़ दिए हैं जिससे कि वह स्टेट डिजास्टर रिस्पांस फंड की मदद से इनके लिए काम कर सकें। अर्बन होमलेस सेंटर्स में रहने वाल लोगों के लिए दिन में तीन बार खाने की व्यवस्था की गई है। 12,000 सेल्फ हेल्प ग्रुप में तीन करोड़ मास्क और सवा लाख लीटर सेनेटराइजर बनाए हैं, इसके माध्यम से भी शहरी गरीबों को काम उपलब्ध कराने की कोशिश की गई है।
- **मनरेगा में बढ़ा आवंटन**–कोरोना वायरस के बढ़ते संक्रमण को रोकने के लिए किए गए लॉकडाउन के इस दौर में बहुत से प्रवासी मजदूर अपने घर जाने लगे। उन्हें उनके घर पर ही काम मिल सके, इसके लिए सरकार ने मनरेगा के माध्यम से बड़ी पहल की है। मोदी सरकार ने बताया कि 13 मई तक मनरेगा में 14.62 करोड़ मानव दिवस काम बनाया गया है। इस तारीख तक मनरेगा में वास्तविक खर्च 10,000 करोड़ किया जा चुका है। अब तक देश के 1.87 लाख ग्राम पंचायत म

  2.33 करोड़ लोगों ने आवेदन किया था, जिन्हें काम मिल गया है। पिछले वर्ष की तुलना में इस वर्ष मई में 50 फीसदी तक ज्यादा लोगों ने मनरेगा में काम के लिए आवेदन किया है।
- **नए लेबर कोड से मिलेगी मदद**–केन्द्र सरकार ने नया लेबर कोड लाकर श्रमिकों के हित में एक बड़ा काम किया है। सरकार ने कहा कि नए लेबर कोड की वजह से पूरे देश में एक जैसी न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने में मदद मिल सकती है। इसके साथ ही सभी श्रमिकों को समय पर भुगतान कराने में भी मददद मिलने की उम्मीद है। इस समय न्यूनतम

वेतन का फायदा सिर्फ 30 फीसदी श्रमिक उठा पाते हैं। इसके साथ ही सभी मजदूरों को नियुक्ति के लिए अपॉइंटमेंट लेटर दिया जाएगा तथा प्रत्येक इम्पलॉई का सलाना हेल्थ चेकअप अनिवार्य कर दिया जाएगा।

आत्मनिर्भर भारत की कुछ प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं–

- भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए मजदूरों की समस्याओं को दूर करने के साथ-साथ संस्थागत सुधारों पर भी विशेष ध्यान देना होगा। हमें गाँवों को एक यूनिट मानकर उनके विकास के लिए नई आर्थिक नीतियाँ बनानी होंगी। इसके लिए विकास का प्रवाह उपरी स्तर से निचले स्तर की ओर हाने के बजाय निचले स्तर से ऊपरी स्तर की ओर होना चाहिए, क्योंकि भारत विविधताओं वाला देश है, एक क्षेत्र की समस्याएं दूसरे क्षेत्र की समस्याओं से अलग हैं। इसलिए एक ही नीति से सभी क्षेत्र को नहीं हांका जा सकता।
- आर्थिक विकास की नीतियाँ राष्ट्रीय स्तर पर न हों, बल्कि राज्यों से प्रेरित जिला आधारित हो एवं जिनका मुख्य केन्द्र गाँव होने चाहिए। हमें इस महत्वपूर्ण तथ्य को समझना होगा की राष्ट्रीय स्तर पर जो नीतियाँ बनाई जाती हैं, वे पूरे राष्ट्रको एक सूत्र में पिरोने का काम करती हैं, परन्तु आर्थिक विकास की जो नीतियाँ ऊपर से नीचे की ओर आती हैं, वे अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को उतना लाभ नहीं पहुँचा पातीं।
- ग्रामीण स्तर पर रोजगार एवं श्रम-शक्ति के बीच तालमेल स्थापित करने के लिए ऑनलाईन ग्रामीण-शहरी रोजगार सूचना केन्द्र बनाया जाना चाहिए। यदि इन ग्रामीणों एवं छोटे शहरों के युवाओं को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार गाँव में ही प्रशिक्षण सुविधाएं मिल जाएँ एवं स्थानीय लघु, सूक्ष्म एवं मध्यम उद्योगों में रोजगार की राह खुल जाए, तो केवल बेरोजगारी की समस्या का हल ही नहीं निकलेगा, अपितु पलायन की समस्या भी सुलझेगी। कौशल विकास योजना द्वारा युवाओं को स्थानीय जरूरतों के आधार पर प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए स्कॉलरशिप भी देनी चाहिए, इससे परम्परागत पद्धति में भी परिवर्त्तन आएगा, जो प्रति वर्ष बड़ी तादाद में बेरोजगारी की भीड़ तैयार कर रही है।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकासपर जहाँ विशेष ध्यान दिए जाने की दरकार है, वहीं जो मजदूर पहले से ही प्रशिक्षित एवं पढ़े-लिखे हैं उन्हें खाद्य पदार्थो फलों-सब्जियों, दुग्ध-उत्पादों, गुणवत्ता मछलियों, स्थानीय उत्पादों आदि की प्रोसेसिंग, ग्रेडिंग और पैकेजिंग इत्यादि की ओर आकर्षित किया जा सकता है। हालांकि इसमें सबसे बड़ी समस्या उत्पादन की गुणवत्ताएवं बिक्री की होगी, इसके लिए स्थानीय उत्पादों को आस-पास की बड़ी कम्पनियों के साथ जोड़कर प्रोत्साहन दिया जा सकता है। लघु एवं कुटीर उद्योगों जैसे ग्रामोद्योग, हथकरघा उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के विकास पर विशषे ध्यान दिए जाने की दरकार है, ताकि स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन हो, स्थानीय उत्पादों को पहचान मिल सके और लोकल सप्लाई चेन मजबूत हो सके।
- औद्योगीकरण की नीति में बदलाव करते हुए उद्योगों के विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया जाना चाहिए, जिससे की विकास कीधारा को गाँव, कस्बों एवं छोटे शहरों तक लाया जा सके। इसके लिए सबसे बड़ी बाधा लाल फीताशाही एवं बाबूगिरी को कम करने के लिए प्रत्येक फाइल एवं सम्बन्धित विवाद के निटारे के लिए उसे नवीन तकनीकी से जोड़ते हुए इस प्रक्रिया को और अधिक सरल एवं व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए।
- विदेशी कम्पनियों को भारत में निवेश के लिए आकर्षित करने के लिए हमें विश्वस्तरीय बुनियादी ढ़ांचा बनाना होगा। भारत में सस्ते श्रमिकों की बड़ी संख्या एवं एक बड़ा उपभोक्ता बाजार पहले से ही है जो लम्बे समय से भारत की एक स्थानीक विशेषता रही है।
- आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को केवल आर्थिक सुधारों से ही नहीं, बल्कि श्रम सुधार, सिविल सेवा सुधार, कौशल सुधार,शिक्षा सुधार आदि जैसे समग्र सुधारों से ही संभव बनाया जा सकता है। इसके लिए उचित परिवेश तैयार करने के लिए सरकार को शोध एवं विकास यानी आर. एंड. डी. पर भी खर्च बढ़ाना होगा। अभी भारत सरकार द्वारा आर. एंड. डी. पर जी. डी. पी. का मात्र 0.6 प्रतिशत ही व्यय किया जाता है जिसे 2020 में 1.6 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है।
- फोर्ब्स की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार आर. एंड. डी. पर सबसे ज्यादा व्यय करने वाली विश्व की 2500 शीर्ष कम्पनियों में चीन की 301 एवं भारत की 26 कम्पनियाँ है। देश में बड़ी समस्या गुणवत्ता की नहीं बल्कि प्रबन्धन, कौशल, तकनीकी

ज्ञान के समन्वित प्रयोग की भी है। इस कारण से आज भी भारत में श्रम एवं पूँजी की उत्पादकता तुलनात्मक रूप से काफी कम है।

- आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए मजबूत वित्तीय प्रणाली विकसित करनी होगी। आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए न सिर्फ कर प्रणाली आसान बनानी होगी, बल्कि ऋण और वित्त की कमी से निपटने के लिए मजबूत वित्तीय प्रणाली भी विकसित करना होगा। वित्त के लिए निजी क्षेत्र की मदद भी ली जा सकती है। केन्द्र के साथ-साथ राज्य सरकारों को भी इस महान् यज्ञ में योगदान देना होगा। लागों की सहभागिता के साथ न केवल आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार होगा, बल्कि इसके लिए आवश्यक आधारभूत ढ़ांचे के विकास को भी बल मिलेगा तथा बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि की सुविधाएं प्रत्येक व्यक्ति को मिल सकेंगी।

निष्कर्ष

कारोना संकट ने पूरे विश्व की अर्थ-व्यवस्था को जड़ से हिला दिया है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। परिवर्त्तन समय की जरूरत है क्योंकि यथा स्थिति किसी भी समस्या का कोई विकल्प नहीं होती विकसित देश भी दूसरों की नकल करके विकसित नहीं हुए हैं, बल्कि खुद को विकसित करने के लिए अपनी रणनीतियों को स्वंय तैयार किया। आपदा को अवसर में बदलने के लिए पहचाने जाने वाले भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने उस समय से ही महात्मा गाँधी के आत्मनिर्भर भारत के सपने को सकार करना आरंभ कर दिया था,जब वे गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री हुआ करते थे। वहाँ आए भूकम्प और गुजरात पुनर्निर्माणइसकी स्पष्ट गवाही देते हैं। लोकल के लिए मुखर होना असल मायनों में भारत की उद्यमिता की आंतरिक शक्ति को पहचान कर उसे बढ़ावा देना है, जो जमीन, मजदूर, पैसे और कानून के उलझाव में फंसी उनसे मुक्त होने के इंतजार में है जैसा कि प्रधानमंत्री मोदी ने कहा है। एक बार पुन: स्वदेशी की व्याख्या होनी चाहिए, सुदृढ़ स्थानीयकरण और अपरिहार्य वैश्वीकरण के बीच एक ऐसे पुल के रूप में, जो एक दूसरे के पूरक हो, विरोधी नहीं। इसलिए इस अवसर का उपयोग स्थानीय विनिर्माण और अन्य व्यवसायों के आधार पर अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए किया जाना चाहिए, यह देश को और अधिक सकारात्मक दिशा में ले जाएगा और तभी महात्मा गाँधी के आत्मनिर्भर भारत का सपना नए कलेवर में आकार ले सकेगा।

सदंर्भ सूची

1. चारी शेषाद्री, मोदी का आत्मनिर्भर भारत: आइडिया वही जो गाँधी का था– आधुनिकीकरण हो, लेकिन पश्चिम पर निर्भरता नहीं; 15. 05.2020; द प्रिन्ट
2. शर्मा, रमेश; आत्मनिर्भरता के अर्थ और अनर्थ; 18.05.2020; साभार इंटसेट
3. झा, कृष्णमोहन; नजरिया; प्रधानमंत्री ने दी आपदा को अवसर में बदलने की ताकत; 14.05.2020; Webdunia हिन्दी
4. गाँधी जी; हिन्द स्वराज; सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी; तेरहवाँ संस्करण; जून, 2016
5. गाँधी, मोहनदास करमचंद; मेरे सपनों का भारत; सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी; बारहवाँ संस्करण; नवम्बर, 2014
6. अग्निहोत्री, डाॅ0 दिलीप; गाँधी दर्शन में आत्मनिर्भर भारत; नया लुक: नया मीडिया, नई नजर; 14.08.2020
7. सिंह, निरंकार; गाँधी जी का सपना और आज के गाँव; जनसत्ता; 02.10.2015
8. महाजन, डॉ अश्विनी; आत्मनिर्भर भारत मिशन का विचार भारतीय लोकाचार और जनसामान्य से सीधे जुड़ा; m- jagran-com.cdnampproject.org
9. आत्मनिर्भर भारत अभियान के बारे में ये जरूरी बातें जानते हैं आप? Et online ; 15-05-2020
10. अहमद, जुबैर; कोरोना वायरस महामारी के बाद भारतीय अर्थ-व्यवस्था स्वदेशी की तरफ जाएगी? बी.बी.सी. संवाददाता, नई दिल्ली; 01.05.2020
11. पांडेय कमलेश; आत्मनिर्भर भारत अभियान से बढ़ रहे हैं रोजगार, विकसित हो रहे हैं तरक्की के विभिन्न आयामय प्रभासाक्षी न्यूज नेटवर्क; 29.06.2020
12. आत्मनिर्भर भारत: केन्द्र, राज्य और निजी क्षेत्र को भी इस महान यज्ञ में अपना योगदान देना होगा; S- Com.Cdn.ampproject.org; 10-06-2020

स्त्रोत - दैनिक जागरण

आदिवासी संस्कृति एवं पर्यावरण चेतना

दीपक कुमार खरवार

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

सदियों से आदिवासी प्रकृति परिवेश में रहते रहे हैं एवं अपनी जीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहे है। जिसके कारण इनकी अपनी एक अलग संस्कृति विकसित हो गयी हैं। शायद इसलिए आदिवासियों एवं पर्यावरण के बीच एक घनिष्ट संबंध पाया जाता हैं। चुंकि किसी भी समूह या समुदाय की संस्कृति स्थानीय वातावरण के अनुसार विकसित एवं आकारित होता है। ठीक उसी प्रकार आदिवासी समुदाय का भी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृति जीवन भी स्थानीय प्राकृतिक परिवेश के अनुसार परिभाषित एवं परिचालित होता हैं। हजारों वर्षो से आदिवासियों ने अपने इस ज्ञान का उपयोग खुद को समायाजित करने, अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने एवं पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए किया हैं। जिसके माध्यम से वे प्राकृतिक संसाधनो का संतुलित दोहन एवं पर्यावरण का संरक्षण करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में आदिवासी समाज किस प्रकार पर्यावरण चेतना से ओत-प्रोत है जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर्यावरण से परिभाषित एवं परिचालित होता हैं का विश्लेषण किया गया हैं।

मुख्य शब्दः आदिवासी, पारिस्थितिकी, संस्कृति, पर्यावरण, चेतना।

प्रस्तावना

जिस तरह से आदिवासियों की परिकल्पना प्रकृति के साथ उनके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृति निकटता के साथ की जाती है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। आदिवासियों को ऐसे समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो सरल या आदिम परिस्थितियों में रहते है तथा अपनें अस्तित्व एवं आजीविका के लिए मुख्य रूप से प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। प्रकृति के साथ उनके सहजीवी संबंध होते है (राय बर्मन, 1993)। प्रकृति के साथ आदिवासियों के सम्बन्ध को दो तरह से देखा या अन्वेशण किया जा सकता है। पहला तरिका यह है जिसमें प्रकृति एवं पर्यावरण से सम्बन्धित बाते आदिवासियों के पहेलियों, कहानियों, मिथकों, किंवदतियों, दावतो और त्योहारों में व्यक्त और चित्रित किया गया हैं। दूसरा उस क्षेत्र का अन्वेशण किया जा सकता है, जिसमें आदिवासी समुदाय अपने दिन-प्रतिदिन के अस्तित्व के लिए प्रकृति एवं पर्यावरण पर निर्भर हैं। प्रकृति पर आदिवासियों की निर्भरता उनकी दैनिक आजीविका की जरूरतों से प्रदर्षित होता है, जो उनके भोजन से शुरू होता हैं। आदिवासियों का भोजन व्यवहार उनके प्रकृति के सम्बन्धों के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ा होता हैं। भोजन के अतिरिक्त आदिवासी अपने झोपड़ियों या घरों के निर्माण सामग्री तथा दैनिक आर्थिक और घरेलु गतिविधियों के लिए आवश्यक उपकरण एवं हथियार के लिए कच्चा माल भी जंगलो से प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कला की वस्तुएं, कलाकृतिया, संगीत वाद्ययंत्र, एवं आभूषण भी वनोपज से बनाये जाते हैं। वास्तव में आदिवासियों की कुल भौतिक संस्कृति, वनों एवं वनोपज पर आदिवासी लोगों की निर्भरता में निहित हैं (खाखा, 2008)।

रोगो के चिकित्सा या उपचार का ज्ञान एक अन्य क्षेत्र है जहाँ आदिवासी समुदायों एवं उनके पर्यावरण के बीच एक घनिष्ट संबंध पाया जाता है। जंगलो और आस-पास के क्षेत्रों में पाए जाने वाले औशधीय जड़ी-बूटियों के उपयोग के आधार पर रोगो का उपचार हमेशा आदिवासी समुदायों में किया जाता रहा है, (खाखा, 2008)। प्राकृतिक पर्यावरण और जनजातियों के बीच का संबंध न केवल उनके भौतिक अस्तित्व के आस-पास बुना हुआ है। बल्कि यह सांस्कृतिक क्षेत्र में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। जनजातियों से संबंधित मिथक और कहानियाँ, पहेलियाँ, संगीत एवं नृत्य, दावते और त्योहार, रीति-रिवाज और जीवन चक्र की रस्म आदि सभी,

थोड़ा या अधिक मात्रा में पर्यावरण के साथ उनके संबंधों के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते है। लगभग सभी आदिवासियों की रचित कहानियों में प्राकृतिक पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान होता हैं। इन कहानियों का विषय और महत्व एक दूसरे से पृथक जनजातियों में भिन्न होता हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासियों का धर्म प्राकृतिक पर्यावरण को बनाए रखनें और संरक्षित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राकृतिक पर्यावरण एवं रीति-रिवाजों के बीच का सम्बन्ध विवाह, जन्म तथा मृत्यु से जुड़े अनुष्ठानों में भी अच्छी तरह से परिलक्षित होता हैं। पृथ्वी और आदिवासियों के बीच का संबंध न केवल भौतिक है बल्कि नैतिक एवं कर्मकाण्डीय भी हैं। भूमि आदिवासियों के लिए मूल्यवान सिर्फ इसलिए नही है क्योंकि यह उन्हें जीवित रहने तथा आजीविका के लिए साधन प्रदान करता है, बल्कि इसलिए भी है क्योंकि उनकें पूर्वजो के द्वारा उन्हें विरासत में मिला है। इसलिए आदिवासियों के लिए यह नैतिक रूप से बाध्यकारी है कि वे भूमि को संरक्षित करे और अपने आगे आने वाली पीढ़ियों को इसे हस्तानांतरित कर सके। बलिदान और प्रार्थनाओं के माध्यम से वे अपने पूर्वजो और पृथ्वी के मध्य एक अच्छा संबंध बनाये रखना चाहते है, जिसपर उनका अस्तित्व और आजीविका निर्भर हैं, (खाखा, 2008)। यद्यपि इसमें सबसे महत्वपूर्ण जो है वह यह है कि पर्यावरण संसाधनों को उपयोग केवल उस सीमा तक सीमित है, जितना आदिवासी समुदाय के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। यह वह अभिवृति है जो आदिवासी समुदाय और पर्यावरण के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। आदिवासी समाजों को मार्गदर्शन देने वाले सामाजिक मूल्यों के कारण ऐसा संभव है। ये सभी मूल्य, सामाजिक संरचना में समतावाद, आर्थिक संरचना में सामूहिकता, सामाजिक संबंधों में समायोजन, निर्णय लेने में सर्वसम्मति, दर्शन में नैतिक जीवन और संगीत, नृत्य तथा कला में समूह की भागीदारी प्रकृति एवं संस्कृति के बीच में संतुलन स्थापित करते हैं, (मुडा, 1992)।

संस्कृति

संस्कृति मानव समाज की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका संबंध मानव जीवन के अनेक पक्षों से हैं। मानव समाज को अपने संस्कृति विशेषता के कारण ही पशु समाज से पृथक किया जाता है। मैलिनोवस्की का मानना है कि संस्कृति जीवन व्यतीत करने की एक सम्पूर्ण विधि है जो कि व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। एक तरफ हमारे पास सामाजिक संस्कृति है तथा दूसरी तरफ भौतिक संस्कृति हैं। हर्सकोविट्स अमेरिकन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट्स ने अपनी पुस्तक, 'मैन एंड हिज़ वर्क (1956) में कहते है कि संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग हैं। उन्होनें पर्यावरण को दो भागों में पहला प्राकृतिक पर्यावरण तथा दूसरा सामाजिक पर्यावरण के रूप में विभाजित किया हैं। उनका मानना है कि मानव का कुल सामाजिक पर्यावरण ही मानव की अपनी संस्कृति है क्योंकि यह मानव द्वारा स्वयं बनाया गया हैं। एडवर्ड टायलर ने अपनी पुस्तक प्रिमिटिव कल्चर में संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह वह जटिल सम्रगता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा और ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश होता है, जिसे मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता हैं (टायलर, 1874)। इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृति मानव की सामाजिक विरासत है, समाज द्वारा मानव को दिया गया उपहार है, जिसे मनुष्य जन्म लेने के बाद प्राप्त करता है। यह संस्कृति प्रकृति की देन नहीं, बल्कि समाज की देन है। संस्कृति के आधार पर ही एक समाज दूसरे समाज से भिन्न होता है। अनादिकाल से मानव समाज संस्कृति के आधार विभाजित रहा हैं। जिसमें से आदिवासी संस्कृति भी एक हैं। आदिवासी संस्कृति स्वयं में एक स्वतंत्र संस्कृति हैं। इस प्रकार की संस्कृति को आदिवासी साहित्य, कला, संगीत, नृत्य तथा धर्म आदि विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता हैं।

आदिवासी संस्कृति एवं विशेषताए

हमारे देश में आदिवीसयों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे वनवासी, गिरिजन, जनजाति, आदिम जाति, आदिमवासी तथा अनुसूचित जनजाति आदि। आदिवासियों से तातपर्य ऐसे समूह से है जिसका एक विशिष्ट नाम होता है, जिसमें एक समूह के होने की भावना होती है, सामान्यता जिसका एक क्षेत्र, बोली, भाषा, सांस्कृतिक एकरूपता तथा यह एक अंतर्विवाही समूह होते हैं अर्थात आदिवासी समुदाय अपने ही समूह में विवाह संबंध स्थापित करते हैं।

आदिवासी समाज की संस्कृति को आदिवासी संस्कृति के नाम से जाना जाता हैं। वास्तव में आदिवासी संस्कृति स्वयं में एक स्वतंत्र संस्कृति हैं। आदिवासी समाज एक ऐसा समाज है जिसमें लोग जंगलों, पहाड़ों तथा मैदानों में निवास करते हैं। आदिवासी

समाज में जीवन जीने का विशेष ढंग, समूह की समानता, मौखिक परम्पराएं, जनजातीय साहित्य, कला, संगीत नृत्य तथा धर्म आदि विशेषताओं के आधार पर आदिवासी संस्कृति को देख एवं समझ सकते हैं। ये लोग अपनी संस्कृति को अपने सामाजिक संगठन, अपने न्यायिक एवं युवागृहो, अपने त्योहारो, अपनी भाषा, अपनी वस्तुकला, अपनी कला-गीत और नृत्य पोशाक और अलंकरण में व्यक्त करते हैं।

आदिवासी संस्कृति में धर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिसमें किसी न किसी प्रकार की अमानवीय या अलौकिक शक्ति पर विश्वास किया जाता है, जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति और पवित्रता की धारणा होती है तथा जिसकी अभिव्यक्ति पूजा या प्रार्थना के माध्यम से की जाती हैं। जनजातीय समाज में लोग आत्मावाद एवं प्रकृतिवाद के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। प्रकृतिवाद (नेचुरलिज्म) के अन्तगर्त आदिवासी प्रकृति को ईश्वर मानकर इसकी पूजा करते है जैसे-सूर्य, चंद्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, जानवर तथा पेड़-पौधे आदि प्राकृतिक पदार्थ। इन प्राकृतिक पदार्थो का आदिवासियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता हैं। ठीक इसी प्रकार टोटमवाद का भी आदिवासी समाज में महत्वपूर्ण स्थान हैं। आदिवासी किसी पेड़-पौधे, जानवर या किसी प्राकृतिक चीजों को अपना टोटम मानते है तथा उसकी पूजा करते हैं और कभी भी उसे नुकसान नही पहुँचाते हैं। टोटम वास्तव में आदिवासियों का एक प्रतिक है जो उनकी धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करता हैं।

आदिवासी संस्कृति एवं पर्यावरण चेतना

प्राकृतिक पर्यावरण पर आदिवासियों की निर्भरता जीविका पर आधारित एवं सांस्कृतिक दोनो तरह से होती हैं शायद इसलिए ही आदिवासी परंपरा में पर्यावरण संरक्षण की कार्यप्रणाली होती है जिसे उनमें मौजूद विभिन्न स्वरूपों को देख के समझा जा सकता हैं। इस प्रथा को संचालित करने का सबसे जो महत्वपूर्ण व्यवस्था है वह टोटमवाद की प्रणाली है जिसके माध्यम से पर्यावरण संरक्षण किया जाता हैं। भारत में बहुत सारी जनजातियों के बीच यह प्रथा प्रचलित हैं, विशेष रूप से पूर्वी एवं मध्य भारत की जनजातियों में यह प्रथा ज्यादा देखने की मिलती हैं। टोटम को गोल्डनवीजर ने कुछ इस प्रकार परिभाषित किया हैं-

गोल्डनवीजर के अनुसार टोटमवाद से अभिप्राय किसी जनजाति के सामान्यत: सिब प्रकार के सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी एक विशेष प्रकार की पारलौकिकता से होता हैं। इस पारलौकिकता की रचना कतिपय प्रकार के पशुओं, पौधों या प्राकृतिक पदार्थों के प्रति विशिष्ट अभिवृत्ति से होती है। यह अभिवृत्ति भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। यथा, टोटमी पौधे या पशु से वंशनिर्धारण, टोटमी प्राणियों को मारने या खाने पर निषेध, टोटमी पशु की मृत्यु पर सामूहिक रूप में षोक प्रकट करना, टोटम एवं टोटमपंथियों के बीच शारीरिक और मानसिक विशेषकों का प्रचलन माना जाना, टोटम एवं टोटमपंथियों को दैव अभिभावक के रूप में देखना, टोटम चिन्हों को तावीजो के रूप में पहनना एवं यहा तक कि, इन्हें शरीर पर गोदवाना, टोटमी प्राणियों की वृद्धि हेतु समारोहों का आयोजन करना आदि चीजे सम्मिलित हैं।

टोटमवाद में कुल तथा पौधों एवं जानवरो के विभिन्न प्रकार के प्रजातियों समूहों के बीच के संबंधों को संदर्भित करता हैं। उदाहरण के रूप में ओरांव जनजाति को देखा जा सकता है, जिसमें टोप्पो गोत्र एक पक्षी से, मिन्ज गोत्र एक विशेष प्रकार की मछली से एवं लकरा गोत्र चिता से लिया गया हैं। ठीक इसी प्रकार ही मुडा, खरिया एवं होस जनजातियों में भी पाया जाता हैं। टोटम के सिद्धांत का उपयोग आदिवासियों के विवाह को नियंत्रित करने में भी किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त टोटम पर्यावरण संरक्षण जैसे विषय में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। आदिवासी अपने टोटम से संबंधित कुछ निषेधों का पालन भी करते हैं। वे अपने टोटम से संबंधित किसी भी पशु, पक्षी, पौधों या प्राकृतिक पदार्थों को मारते या खाते नही है और ना ही किसी भी प्रकार का उन्हें नुकसान नही पहुँचाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखनों को मिलता है कि जनजातियों के टोटम के जैसे ही यदि कोई दूसरा पशु, पक्षी या पौधें रंग या आकार मिलते है तो आदिवासी उन्हें भी किसी प्रकार का हानि नही पहुँचाते है, जैसे यदि किसी जनजाति का टोटम बाघ है तो बाघ का रंग एवं धारियी गिलहरी से मिलती है तो आदिवासियों में बाघ के साथ-साथ गिलहरी के प्रति भी श्रद्धा बढ जाती हैं। यद्यपि कुछ आदिवासी ये नही मानते है कि उनकी उत्पत्ति उनके अपने टोटम से हुई है लेकिन इसके बावजूद भी वे अपने टोटम के प्रति श्रद्धा भाव रखते है तथा उनकी पूजा-अर्चना करते है क्योंकि उनका मानना है कि अतित में कूल देवताओं ने उनके पूवर्जो की सहायता की है तथा विषम परिस्थितियों में उनकी सुरक्षा की हैं। टोटमवाद के परिणामस्वरूप बहुत सारे प्राकृतिक प्रजातिया

जनजातियों के लिए सम्मान की वस्तु बन गए। जिन प्रजातियों को टोटम के रूप में लिया जाता है वे किसी पशु, पक्षी, सरीसृप या पौधें के एक परिवार से नही होते हैं। बल्कि जहाँ टोटमवाद प्रथा मौजूद है, वहां इन सभी परिवारों की प्राकृतिक वस्तुए सामाजिक संरचना के निमार्ण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। इस प्रकार संपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का अंग बन जाता है। टोटमवाद केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नही है बल्कि यह प्राकृतिक व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था के बीच जो निर्भरता का संबंध है उसको भी बनाए रखता है।

प्राकृतिक पर्यावरण आदिवासियों के बहुत से देवताओं और आत्माओं का निवास स्थान होता है। आदिवासियों का मानना है कि उनके देवताओं और पूवर्जो की आत्माए भौतिक स्थल के विशिष्ट भागों जैसे पहाड़ों घने वृक्षों एवं वनस्पतियों तथा नदियों और झरनों जैसे जल निकायों में निवास करती हैं। इसलिए आदिवासी इन स्थानों की हमेशा देख-रेख करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त टोटम से संबंधित कुछ निषेध होते है जो प्राकृतिक पर्यावरण के साथ जनजातियों के संबंधों को नियत्रित करते हैं। उदाहरण स्वरूप ओरांव जनजाति को देखा जा सकता है, जिसमें गांव के किसी भी व्यक्ति को सरहुल की दावत या त्यौहार से पहले खेतों की जुताई, नये सीजन के फल, फूल एवं खाद्य पदार्थ को इक्टठा करने की अनुमति नही होती है क्योंकि इसमें यह माना जाता है कि पृथ्वी माता का भग्वान के साथ प्रतिकात्मक विवाह होता है। ठीक कुछ इसी प्रकार का निषेध उनके शिकार प्रथा में भी देखने को मिलता है। शिकार करने वाले जनजाति जून और जुलाई के महिनों के दौरान किसी भी जानवर या पक्षी का शिकार नही करते है क्योंकि उनका मानना है कि यदि उन्होनें निषेधों का उल्लधन किया तो उनकी धान की फसल बर्बाद हो जायेगी, खाखा (2008)।

यद्यपि जनजातियों का जीवन-निर्वहन एवं प्राकृतिक पर्यावरण के संबंध ऐसा होता है कि यह प्रकृति के संरक्षण में बहुत सहायक होता हैं। इसमें जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि आदिवासी समुदायों में प्राकृतिक संसाधनों का उतना ही उपयोग या दोहन किया जाता है जितना समुदाय के अस्तित्व के आवश्यक है। इस प्रकार का दृष्टिकोण जनजातीय समुदाय एवं पर्यावरण के बीच सामंजस्य को स्थापित करता है। यह सामंजस्य आदिवासी समुदायों को मार्गदर्शित करने वाले सामाजिक मूल्यों के कारण संभव हो पाया हैं।

आदिवासी परंपरा एवं वन संरक्षण

अधिकांश आदिवासी समुदाय बहुत लम्बे समय से वन या उसके आस-पास के क्षेत्रों में रहते रहे है। सायद इसलिए जनजाति एवं वन एक दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए है। जनजातीय समुदाय का जीवन वनों एवं वन्य जीवन के साथ इतना घनिष्ट रूप से जुड़ा होता है कि इनको वनों से अलग नही किया जा सकता। वर्षो से प्राकृतिक क्षेत्रों में रहने के कारण आदिवासियों ने अपनी एक अलग संस्कृति विकसित कर ली है। जिसके माध्यम से आदिवासी समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन परिभाषित एवं परिचालित होता है। प्रकृति से ही संबंधित पेड़-पौधे, पशु, पक्षी, जानवर, नदी, पहाड़, आदि इनके टोटम का हिस्सा होते है। आदिवासी एवं वनों के बीच एक सहजीवी संबंध होता है। जंगलो से ही आदिवासी अपनी बुनियादी जरूरते पूरा करने के लिए आवश्यक चीजें प्राप्त करते है। खाद्य सामाग्री के रूप में फल-फूल, कन्द-मूल, शहद, सब्जियों के पत्ते, आदि वनों से प्राप्त करते है। इसके साथ ही उन्हे अपनी झोपड़ी या घर बनाने के लिए कच्चा माल, जलाने के लिए लकड़ी, कपड़ों के लिए रेशे, मवेशियों के लिए चारा, अपने स्वास्थ्य या इलाज के लिए जड़ी-बुटिया आदि उपयोगी चीजें आदिवासियों को जंगलो से मिलता है। बदले में जनजाति अपने पारम्परिक ज्ञान के द्वारा वनों को संरक्षण करते है तथा अपने विभिन्न सांस्कृतिक विश्वासों, प्रथाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से इसकी उर्वरता को भी बनाये रखते है। वास्तव में आदिवासी वन पारिस्थितिकी तंत्र का अभिन्न हिस्सा होने के कारण अन्य स्थलीय पारिस्थितकी तंत्र की अन्य घटको की तरह अपने आस-पास के पारिस्थितिकी तंत्र के संचालन और रखरखाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, (सिन्हा, 1991)। अपने अवलोकन के आधार पर बताते है कि आदिवासी महिलाए जंगल को अपना मायका मानती है और पेड़ उनके लिए बहुत पवित्र होता है। कुछ आदिवासी अपने आर्थिक एवं अन्य उद्देश्य के पूर्ति के लिए जंगल से कुछ पेड़ों को काटते है लेकिन उसके बदले में अधिक मात्रा में नये पेड़ों का रोपण भी करते है, जिससे उनके पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बना रहे।

निष्कर्ष

आदिवासी एवं प्राकृतिक पर्यावरण के बीच एक घनिष्ट संबंध होता है। उनका पुरा जीवन स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र पर आधारित होता है। आदिवासी समुदाय का सभी प्रकार का क्रिया-कलाप जैसे धार्मिक विश्वास प्रणाली, संस्कार, अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, ज्ञान, विज्ञान, लौकिक एवं अलौकिक एवं संस्कृति स्थानीय पर्यावरण से ओत-प्रोत होता हैं। इसके ही अनुसार उनका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन परिभाषित एवं परिचालित होता है। आदिवासी समुदायों में ऐसा प्रचलित है कि उनके देवी-देवताओं या पूवर्जों की आत्माए प्राकृतिक पदार्थों जैसे पषु, पक्षीयों आदि में विद्मान करती है, इसलिए उनके टोटम में प्राकृतिक पदार्थों का बहुत महत्व होता है। उनका अपने टोटम के प्रति श्रद्धा का भाव होता है तथा वे हमेशा उसकी पूजा एवं सुरक्षा करते है। इस प्रकार देखा जाय तो आदिवासियों के संस्कृतियों का निमार्ण पारिस्थितिकी तंत्र का ही हिस्सा है, जो चेतन या अचेतन रूप में प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण में मदद करता हैं। संक्षेप में कहे तो आदिवासियों की संस्कृति एवं पर्यावरण चेतना, क्षेत्रिय पारिस्थितिकी का प्रतिबिम्ब होता है।

सन्दर्भ सूची

1. अमिताभ, सरकार एंड समीरा दास गुप्ता (2000) *एथनो इकोलॉजी आफ इडियन ट्राइब: डाइवर्सिटी इन कल्चरल अडॉप्टेशन*, नई दिल्ली और जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
2. खाखा, वर्जिनियस (2008) *स्टेट, सोसाइटी एंड ट्राइबस; इसू इन पोस्ट कोलोनियल इण्डिया*, नोएडा, उत्तर प्रदेश: पीर्यसन पब्लिकेशन
3. गाडगिल, माधव और गुहा, रामचन्द्र (2018) *यह दरकती ज़मीन, भारत का पारिस्थितिकी इतिहास* (अनुवाद कमल नयन चौबे) नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. चौबे, कमल नयन (2015) *जंगल की हकदारी, राजनीति और संघर्ष*, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
5. दुबे, श्यामाचरण (1993) *मानव और संस्कृति,* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
6. योगेष, अटल एवं यतीन्द्र सिंह सिसोदिया (2011) *आदिवासी भारत: एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन*, नई दिल्ली एवं जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
7. हसनैन, नदीम (2016) *जनजातिय भारत,* (आठवा संस्करण), नई दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स।
8. हर्सकोविट्स, (1956) *मैन एंड हिज़ वर्क,* न्यू यार्क: क्नाफे।
9. मैलिनोवस्की, बी0. (1944) *ए साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर एंड अदर ऐस्से,* चैपल हिल यूर्निवसिटी ऑफ न0. कैरोलिना प्रेस।
10. टायलर, ई0 बी0, (1874) प्रीमिटिव कल्चर, न्यूयार्क।
11. विद्यार्थी, एल0 पी0 एंड राय, बी0 के0 (1976) ट्राइबल कल्चर ऑफ इण्यिा, नई दिल्ली: कान्सप्ट पब्लिशिंग कम्पनी।
12. सिन्हा, राजीव के0, (1991) इकोसिस्टम प्रिजर्वेशन थ्रू फेथ एण्ड ट्रेडिशन इन इण्डिया, *जर्नल ऑफ ह्यूमन इकोलाजी*, vol.2, No.1, pp.21-24
13. मुण्डा, आर0 डी0, (1992) 'इन सर्च ऑफ ट्राइबल होमलेण्ड' *इन ट्राइबल ट्रांसफॉर्मेशन इन इण्डिया,* ट्राइबल स्टडीज ऑफ इण्डिया सर्विस सीरीज, vol.3, एडीटेड बाई बुद्धदेव चौधरी. नई दिल्ली: इण्टर-इण्डिया पब्लिकेशन्।
14. सिंह, ऐ0 के0 (1982) *ट्राइबल फेस्टिवल इन बिहार,* न्यू दिल्ली: कांसेप्ट पब्लिशिंग हाउस।
15. डासगुप्ता, समीरा (1994) *बिरजिया: सोसाइटी एण्ड कल्चर,* कलकत्ता: र्फिमा केएलएम0 पीवीटी0 लटीडी।
16. म्जुमदार, डी0 एन0 एण्ड मदन टी0 एन0, (2016) *सामाजिक मानवशास्त्र परिचय* (इक्कीसवां संस्करण), नई दिल्ली: मयूर बुक्स।

उच्च शिक्षा में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० प्रगति

सहायक प्राफेसर, गृह-विज्ञान विश्वविद्यालय विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में उच्च शिक्षा में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक, मानसिक एवं सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में किया गया है। इस अध्ययन हेतु दरभंगा जिला के विश्वविद्यालय व महाविद्यालय के महिला सहायक प्राध्यापकों के समग्र में से 150 कार्यरत महिलाओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि (Random Sampling Method) के द्वारा किया गया। डाटा संकलन के लिए शोधकर्ताओं द्वारा Interview Schedule का उपयोग किया गया। संकलित डाटा के विश्लेषण के संदर्भ में प्रतिशत, माध्य, मानक विचलन व कई वर्ग परीक्षण की गणना की गई व निष्कर्ष निकाले गए हैं।

मुख्य शब्दः उच्च शिक्षा क्षेत्र, कार्यरत महिलाएँ, आर्थिक, मानसिक एवं सामाजिक स्थिति।

प्रस्तावना

"यत्रः जामयः शोचन्ति, तत् कुलम् आशु विनश्यति,
यत्रः तु एताः न शोचन्ति, तत् ही सर्वदा वर्धते।"
"यत्रः नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्रा देवता।" (श्लोक)

जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा तब तक विश्व का कल्याण संभव नहीं है। –स्वामी विवेकानन्द

आज विश्व में उच्च शिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक उन्नति का सोपान है, मानव संसाधन के रूप में महिलाओं को संबल बनाना आधुनिक युग की सशक्त माँग है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक स्वतंत्रता देना अत्यावश्यक है। यहाँ महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता से अभिप्राय है कि महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक दशा ऐसी होनी चाहिए, जिससे वह स्वाभिमान के साथ बिना कष्ट के मानसिक संतुलन बनाए रखकर अपना एवं अपने परिवार के जीवन का निर्वाह कर सके।

आज इस दौर में शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत महिलाऐं अपने आप को सबसे ज्यादा सुरक्षित महसुस करती है तथा घर एवं नौकरी दोनों में सामंजस्य स्थापित कर लेती है। अगर सरकार उनके वेतन, स्वास्थ्य, अवकाश, पदोन्नति सुरक्षित रोजगार के लिए नीतियाँ अनिवार्य करती है तो महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक स्थिति तनाव रहित व सुदृढ़ रहेगी। प्रस्तुत शोधपत्र दरभंगा जिला के उच्च शिक्षा विभाग में कार्यरत महिलाओं के संदर्भ में है। महिलाएँ शिक्षा क्षेत्र में रहते हुए शैक्षणिक कार्यो के संचालन में कई समस्याओं का सामना कर रही है।

असभ्य एवं सभ्य समाज के बीच यदि महिला के प्रति दृष्टिकोणों में परिवर्तन नहीं लाया जाएगा तो महिला की आर्थिक स्थिति सशक्त होते हुए भी चिंतित एवं परेशान रहेंगी। इसीलिए पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश में कन्या, युवती, स्त्री के प्रति सोच में मनोवैज्ञानिक बदलाव अत्यन्त आवश्यक है। महिलाओं को वैचारिक स्वतंत्रता देनी होगी। इसके व्यक्गित अस्तित्व, सामाजिक अस्तित्व एवं पारिवारिक अस्तित्व को नए रूप में परिभाषित करना होगा। अक्सर हमारे श्लोकों, दोहों, कविताओं, कहानियों में जो छवि उजागर की जाती है, वो हमारे वास्तविक स्थिति से कोसों दूर है। आज की महिलाओं का स्त्रीत्व पुरूषत्व की सोच के चंगुल में इस कदर है कि हमेशा हरेक Stage पर कितनी ही परीक्षाएँ एवं अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है तब भी वो मर्यादा और सम्मान आज भी समाज में नहीं प्राप्त है जो पुरूषों को प्राप्त है।

"देश की आधी आबादी महिलाएँ और देश की बची आधी आबादी की जननी महिलाओं की ये दुर्दशा।"

कहते हैं–

या देवी सर्वभूतेषु जननी रूपेण।
मातारूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः ....

वस्तुस्थिति एकदम विपरीत जहाँ आज भी एक बच्ची के पैदा होने के बाद ढोल, नगाड़े नहीं बजते, खुशियाँ नहीं मनाई जाती है बल्कि चारों और पसरा सन्नाटा ये बताता है कि आज भी महिलाओं को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए बहुत संघर्ष की जरूरत है।

साहित्य पुनरावलोकन

शर्मा कनिका (2019)– प्रस्तुत शोध पत्र "व्यवसायिक शिक्षण के अंतर्गत कार्य-जीवन संतुलन का अध्ययन (महिला शिक्षकों के विशेष संदर्भ में" के अंतर्गत लेखिका ने महिला शिक्षकों के कार्य-जीवन संतुलन को जानने का प्रयास किया है उनका मानना है कि महिला कर्मचारियों के बीच कार्य जीवन संतुलन का प्रबंधन विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न होता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि कार्यस्थल और परिवार में नियोजित महिलाओं द्वारा रणनीतियों को लागु करने की कला सीखने के लिए, कार्यजीवन संतुलन का प्रबंधन करने में सक्षम होना पूरी तरह से परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

शुक्ला डॉ0 सुनीता (2019)– प्रस्तुत शोध पत्र "कार्यरत महिलाओं के परिवारिक जीवन का अध्ययन" के अन्तर्गत लेखिका को यह पता चला कि महिलाएं अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को नियंत्रित करने का प्रयास कर रही है। शिक्षा के प्रभाव के कारण सामाजिक मूल्यों व पारिवारिक परम्पराओं में परिवर्तन देखने में आया है। पारिवारिक निर्णय लेने में महिलाऍं अहम भूमिका निभा रही है। महिलाऍं पुरूषों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर चल रही है एवं सभी सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों का संचालन पूर्ण रूप से कर रही है। यह सामाजिक परिवर्तन की ओर नई दिशा का संकेत है।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय महिलायें अब केवल सजावट की वस्तु न रहकर, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी साख बना रहीं हैं तथा घर एवं बाहर दोनों में सामंजस्य करके कुशलता पूर्वक भरतीय नारी की भूमिका निभा रही है। लेकिन कार्यरत महिलायें आज भी कई समस्याओं का सामना कर रही है।

अध्ययन की आवश्यकता (Significance of Study)– कामकाजी महिलाओं पर आधारित विषय कुछ अलग या आकर्षक नहीं है पर इसकी आवश्यकता इसीलिए नहीं हुई क्योंकि पुरूष प्रधान समाज में उसकी स्थिति संघर्षपूर्ण है, बल्कि इसीलिए हुई क्योंकि अब महिलाऐं अबला नहीं रही, अपने अधिकार के प्रति जागरूक एव सजग हुई है। वर्तमान में महिलाओं को हर क्षेत्र में रोजगार तो मिल रहा है लेकिन क्या यह रोजगार पूरे परिवार के भरण-पोषण के लिए प्रर्याप्त है? क्या महिलाओं को समान कार्य का समान वेतन प्राप्त हो रहा है? ऐसे कई प्रश्न मस्तिष्क पटल पर दखल देते रहते है। उच्च शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के कार्य से उनकी आर्थिक स्थिति में कितना बदलाव आया या फिर कितनी प्रतिशत महिलाऐं कार्यक्षेत्र में समस्याओं का सामना करती है आदि प्रश्नों के उत्तर जानने के दृष्टि से इस कार्य का चयन किया गया है।

शोध उद्देश्य–

* कार्यरत महिलाओं की समस्या से अवगत होना।

शोध परिकल्पना–

* कार्यरत महिलाओं की रोजमर्रा की जिन्दगी समस्याओं से धिरी रहती है।

शोध प्रविधि– बिहार राज्य के दरभंगा जिला के विश्वविद्यालय व महाविद्यालय के समग्र में से 150 कार्यरत महिलाओं का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि (Random Sampling) विधि से किया गया उनकी समस्याओं को जानने के लिए एवं डाटा संग्रह के लिए प्रश्नावली और साक्षात्कार तालिका (Questionnaire & Interview Schedule) का उपयोग किया गया।

समंको का विश्लेषण एवं परिणाम– अनुसंधान कार्य समंको के संग्रह करने के पश्चात सांख्यिकीय विधियो का प्रयोग करते हुए समंको का विश्लेषण एवं व्याख्या करने से प्राप्त निष्कर्षो को निम्न रूप से प्रस्तुत किया गया है।

Table-1: Common Work place issues (कार्यस्थल की सामान्य समस्याएँ)

- Interpersonal Conflict (अंतर्वेयक्ति विरोध)
- Communication Problem (संवाद समस्या)
- Harassment (उत्पीड़न)
- Discrimination (भेदभाव)
- Low Motivation & Job Dis-Satisfaction (कम प्रेरणा - कार्य असंतुष्टि)
- Performance Issues (प्रदर्शन समस्याऐं)

Table-2: उच्च शिक्षा संस्थान में कार्यरत विभिन्न समस्याओं से ग्रसित कार्यरत महिलाओं का प्रतिशत।

क्षेत्र	संख्या (N)	समस्याएं (Common issues)	संख्या (N)	प्रतिशत (%)
शासकीय क्षेत्र	75	अंतर्व्यक्ति विरोध	135	90
		संवाद समस्या	90	60
		उत्पीड़न	75-90	50-60
आशासकीय क्षेत्र	75	भेदभाव	120-135	80-90
		कम प्रेरणा और कार्य असंतुष्टि	90-105	60-70
		प्रदर्शन संबंधित समस्याऐं	120-135	80-90
Total	150			

उपरोक्त टेबुल का डाटा यह प्रदर्शित करता है कि 5-10 प्रतिशत महिलाऐं ही सुकून और बिना किसी समस्या के अपने कार्यस्थल पर काम कर पाती है। बाकी 90-95 प्रतिशत कार्यरत महिलाऐं किसी न किसी समस्या, कभी-कभी अनेक समस्याओं से ग्रसित होकर बहुत ही तनावपूर्ण जिन्दगी जीती है।

निष्कर्ष

शोष विषय पर अध्ययन करने के पश्चात प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि उच्च शिक्षा के शासकीय एवं अशासकीय क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति में बहुत कम अन्तर है, दोनों ही क्षेत्रों में महिलाएं कई समस्याओं का सामना कर रही हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत महिलाऐं तभी संतुष्ट रह सकती है जब उनके साथ लिंग भेदभाव नहीं किया जाय। वहाँ बनाई गई नीतियों व नियमों को समान रूप से लागू किया जाये। समुचित क्रियान्वयन ही एक ऐसा माध्यम है जिससे इस क्षेत्र में व्यापक सुधार किया जा सकता है।

संदर्भ सूची पुस्तकें (Books)

* शर्मा, श्रीमति नीलमणि: "आधे भारत का संघर्ष", संजीव प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
* मनीषा: "हम सभ्य औरते," सामयिक प्रकाशन, 2009

रिपोर्ट एवं जर्नल (Reports & Journals)

* Sharma, Kanika: "A Study on work - Life Balance A mong Teaching Professionals with Special reference to women teachers", International Journals of A dvanced Research in commerce, Management & Social Science IJA R (MSS), ISSN : 2581 - 7930 VOl. 02 Cot.- Dec., 2019.
* Shukla Dr. Sunita: "Journal of education in Twenty first Century" A n International Journal of education & Humanities, ISSN : 2394 - 7845, Vol-VI Number-I, Dec.-2019

वेबसाइट (Website)

* http://economictimes.indiatimes.com
* http://www.catelyst.org.

ब्रिटिश शासन में भूमि व्यवस्था और उसके कुप्रभाव: एक समीक्षा

डॉ० प्रियंका कुमारी

इतिहास विभाग, मिथिला महिला महाविद्यालय
ल0 ना0 मिथिला विश्वद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश

17वी शताब्दी के दौरान भारत यूरोप के उन बड़ी वाणिज्यिक राष्ट्रों में अग्रणी था जो भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध स्थापित करने और भारत के विदेश व्यापार पर आधिपत्य जमाने का प्रयास कर रहे थे। भारत के शासन की बागडोर लगभग एक सौ बरस (1757-1857) तककंपनी के हाथ में रही और इस अवधि में भारत की राजनीति और सामाजिक संरचना के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आए। कंपनी के उत्कर्ष काल के समय भारत का केंद्रीय शासन गर्त में था। गर्त की गति को कंपनी ने और भी तेज कर दिया और राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में एक नई व्यवस्था की नीव डालें। प्रचलित अर्थव्यवस्था के जिन पहलुओं को कंपनी ने बदलने का प्रयास किया उनमें पहली भूमि व्यवस्था है। बंगाल में वारेन हेस्टिंग द्वारा आरंभ की गई प्रारंभिक भू-राजस्व व्यवस्था इससे की गई थी कि समस्त भूमि सम्राट की है। उसने इस व्यवस्था का आरंभ भूमि की नीलामी सबसे ऊंची बोली लगाने वालों को देकर कर दी। ब्रिटिश सरकार ने भारत में एक समान भूमि व्यवस्था लागू नहीं की। सरकार ने कभी भी दर को निश्चित रूप नहीं दिया ताकि उसे अधिक से अधिक धन का अर्जन करने का अवसर मिले। राजस्व की दर भी ऊंची थी। किसान समय पर राजस्व नहीं देने के कारण भूमिहीन होते चले गए। किसान खेती से उदासीन रहने लगे जिसके चलते कृषि में और गिरावट आई। सारांशत: ब्रिटिश शासन में की नीति ब्रिटेन के लिए वरदान और भारत के लिए अभिशाप सिद्ध हुई।

मुख्य शब्द: ब्रिटिश शासन, भूमि व्यवस्था, स्थाई बंदोबस्त, रैयतवाड़ी बंदोबस्त, महालवाड़ी भू राजस्व व्यवस्था।

भू-व्यवस्था का ऐतिहासिक विश्लेषण

कंपनी शासन के अधीन आने से पहले भारत में पारस्परिक कृषि का प्रचलन था। भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर थे तथा कृषि एवं दस्तकारी अन्योन्याश्रित संबंधों पर आधारित थी। ग्राम समुदाय में कृषि और हस्तशिल्प उद्योग दस्तकारी साथ-साथ चलते थे। गांव के उत्पादन का एक प्रमुख भाग राज्य को लगान या भूमि कर के रूप में दिया जाता था। गांव की कृषि उपज का दस्तकारी उत्पादन का एक भाग गांव से बाहर कस्बों और नगरों में भेज कर वहां बेच दिया जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि गांव में आत्मनिर्भरता और मुद्रा अर्थव्यवस्था एक साथ विद्यमान थे। इस ग्रामीण अर्थव्यवस्था की एक अन्य विशेषता थी की भूमि पर जनसंख्या की निर्भरता का दबाव नहीं था और बिना जोती हुई कृषि योग्य भूमि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। उसका मूल्य कुछ अधिक नहीं होता था शासक वर्ग और ग्रामवासी दोनों ही भूमि के समुचित उपयोग में अभिरुचि रखते थे।

गांव के कृषकों जमींदारों तथा अन्य वर्गों के पारस्परिक संबंध सहानुभूति और सदभावना पूर्ण, समय और सहयोग से ओतप्रोत थे। वित्त विभाग भूमि के निर्धारण और वसूली के कारण राज्य के अधिकारियों और शासन वर्ग से हुआ करता था। ऐसे झगड़ों में ग्राम की एकता एवं संगठन बहुत ही स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता था। ग्रामीण क्षेत्र का स्थानीय शासक या अधिकारी अथवा प्रांत का सूबेदार कृषि उपज का 1/6 ते 1/2 भाग तक भूमि के रूप में प्राप्त कर लेने के बाद वह ग्रामीण समस्याओं और विवादों में

नहीं उलझता था। सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन के अस्थिर संसार में यही एक स्थिर तत्व था। ग्राम की भू राजस्व वसूली के लिए वंशानुगत जमीदारी प्रथा थी। जमीदार कृषकों सेभू राजस्व वसूल करते थे और उसका एक भाग कमीशन के रूप में अपने पास रखकर शेष राजकोष में जमा कराते थे। मुगल शासन काल में किसी क्षेत्र के जमींदारी या सामान्य अधिकार सम्राट को एक निर्धारित भूमि कर नियमित रूप से देने पर प्राप्त किए जा सकते थे।

जब बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल के प्रांतीय सूबेदार और मुगल सम्राट से जिम्मेदारी अधिकार कृषकों से भू राजस्व वसूल करने के अधिकार प्राप्त कर लिए तब कंपनी के शासक वर्ग ने भू राजस्व व्यवस्था और भूमि कर प्रणाली में विभिन्न प्रकार के परीक्षण और निरीक्षण करके और गलती के बाद उसका सुधार करके हर क्षेत्र व प्रदेश के ग्रामीण वर्गों के समावेश और कृषि की उन्नति व विकास पर विचार करके सबसे कम झमेला करके अधिक से अधिक भू राजस्व कैसे वसूल किया जाए इसके लिए अनेक प्रकार की भूमि व्यवस्था की।

पहले दौर (1764-1772) का सबसे अहम तथ्य था बंगाल में द्वैध शासन जिसे कंपनी ने 1765 में सम्राट से दीवान प्राप्त करने के बाद लागू किया वास्तव में यही से कंपनी द्वारा राजस्व लूट का इतिहास शुरू होता है। बक्सर की लड़ाई में अंग्रेजी विजय के बाद बंगाल की दीवानी प्राप्त करने क्लाइव द्वारा द्वैध शासन व्यवस्था अपनाई गयी। सामान्यत: शासन शक्ति को दो घटकों में विभक्त किया जा सकता है दीवानी अर्थात राजस्व उगाही की शक्ति और नागरिक न्याय तथा निजामत अर्थात से नियंत्रण और फौजदारी कानून। यह परिवर्तन दो शक्तियों (दीवानी और निजामत) को एक व्यक्ति के हाथों में केंद्रित करने के लिए उत्तरदाई सिद्ध हुआ। दूसरा दौर (1772 से 1786) का था। 1772 में दो साल की इजारेदारी की जगह 5 वर्षीय बंदोबस्त शुरू हुआ और पुराने जमींदारों के प्रति पक्षपात की शुरुआत हुई। इसके बावजूद नीलामी की प्रथा को बनाए रखा गया क्योंकि ज्यादा से ज्यादा कितना भू राजस्व वसूला जा सकता है इसका जवाब नीलामी के बाद ही मिलता था। इन व्यवस्थाओं ने कंपनी के लिए अधिक से अधिक राजस्व उगाहने के लिए एक औजार के रूप में कार्य किया लेकिन इससे किसानों को अधिकतम कष्ट उठाना पड़ा क्योंकि लगान अधिकार की नीलामी खरीदने वाले अधिकतर ठेकेदार सट्टेबाज मात्र थे उन्हें न तो कृषि क्षेत्र की कोई जानकारी थी और नहीं भूमि में कोई अस्थाई दिलचस्पी। उनका केवल मकसद था प्रत्येक स्थिति में अधिक से अधिक कृषको से धन लेना, चुकी नीलामी की बोलियों में भूमि की क्षमता अधिक मानी जाती थी तथा कर अधिक से अधिक निश्चित किया जाता था। इससे जमीन के किराए तो बढ़ गए लेकिन पैदावार नहीं बढ़ी, किसानों का शोषण अवश्य बढ़ गया।

स्थाई बंदोबस्त पद्धति

1776 ई. में एक अस्थाई राजस्वविभाग प्रारंभ करने की बात सोची गई। वारेन हेस्टिंग ने नीलामी द्वारा या पट्टे पर जमीन की बिक्री कर क्रेता को उस पर स्थाई अधिकार बनाए रखने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसी प्रकार गवर्नर जनरल की काउंसिल के सदस्य फिलिप फ्रांसिस ने स्थाई भू राजस्व व्यवस्था का समर्थन किया किंतु इंडिया के डायरेक्टरों ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। संक्षेप में लार्ड कार्नवालिश ने स्थाई बंदोबस्त की प्रणाली प्रारंभ की और इसे बंगाल में कार्यान्वित किया।

वारेन हेस्टिंग ने बंगाल को एक बूचड़खाना बना दिया था वह अपने पीछे दुर्दशा उपद्रव की एक श्रृंखला छोड़ गया था। कर्नवालिश को संचालकों द्वारा यह आदेश मिला था कि वह सारी गंदगी दूर कर दे और ऐसा प्रबंध करें जिससे कंपनी को लाभ हो। भारत के किसानों को भी प्रसंता मिले और भूमि पतियों की भी सुरक्षा हो। भारत पहुंचते ही लॉर्ड कॉर्नवालिस ने भूमि विजय के दस्तूर पढ़े और लगाने के संबंध में जांच पड़ताल करने के आदेश दे दिए। स्थाई बंदोबस्त करना चाहता था उसके अनुसार इस बंदोबस्त योजना से निम्नलिखित प्रमुख लाभ हो सकते थे-

क. भूमि से प्राप्त होने वाले लगान की राशि निश्चित रूप से निर्धारित हो जाएगी और कंपनी के अधिकारियों को अन्य क्षेत्रों की ओर ध्यान देने के लिए समय मिल जाएगा। लगान चुकाने वाले भी वार्षिक बढ़ोतरी और कमी की चिंता से मुक्त हो जाएंगे।

ख. राजस्व वृद्धि की चिंता ना होने पर जमींदार कृषि उत्पादन वृद्धि के लिए चिंतित रहेंगे। जंगलों को साफ कर कृषि योग्य भूमि को बनाएंगे और बंगाल का निर्यात व्यापार बढ़ जाएगा इसके फलस्वरूप कालांतर में समृद्धि और संपन्नता में वृद्धि होगी।

ग. अंग्रेजों के लिए लाभ था कि इस बंदोबस्त से धन निष्कासन में सहायता मिलने वाली थी और इंग्लैंड मालामाल हो जाने वाला था। अंग्रेजों के लिए इसका सबसे बड़ा लाभ है इस आकर्षण में था कि जमींदारों को लगान वृद्धि का भय नहीं होता और निर्यात व्यापार की वृद्धि करते जिसका लाभ अंग्रेजों को ही मिलता। बंगाल से व्यापार के माध्यम से धन निष्कासन होता था इसलिए इंग्लैंड के शासकों के लिए अस्थाई व्यवस्था को स्वीकृति देने का मुख्य आकर्षण निर्यात की संभावना में था जो इस व्यवस्था से संभव हो सकती थी।

जब 10 वर्षीय बंदोबस्त को कंपनी के संचालक मंडल की स्वीकृति प्राप्त हो गई, तब 1793 ईस्वी को इसी 10 वर्ष के बंदोबस्त को स्थाई बंदोबस्त घोषित कर दिया गया। इसके अनुसार बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदारों को स्थाई रूप में भूमि का स्वामी बना दिया गया। उन्हें उस भूमि के समस्त अधिकार दे दिए गए अब भूमि पर जमींदारों का पैतृक अधिकार हो गया और इससे वह भूमि का क्रय विक्रय कर सकते थे। जमींदारों से वसूल किया जाने वाला भूमि सदा के लिए निश्चित कर दिया गया। उसमें अब किसी भी प्रकार की कटौती या बढ़ोतरी नहीं की जा सकती थी। अब उनको भूमि कर का 8/9 भाग कंपनी सरकार को देता था और शेष 1/9 भाग राजस्व संबंधी अपनी सेवाओं के लिए जमींदारों को अपने पास रखना था। जब तक जमींदार यह निश्चित भूमि कर सरकार को देते रहेंगे तब उनकी भूमि उनसे छीनी नहीं जाएगी परंतु यदि वे निर्धारित भूमि कर या उसका कुछ अंश निर्दिष्ट अवधि में सरकार को नहीं दे सके तो उनकी समस्त भूमि छीन ली जाएगी। उसे नीलाम कर सबसे अधिक बोली लगाने वालों को दे दी जाएगी।

कुछ विद्वानों का मत है कि अस्थाई बंदोबस्त का तात्कालिक प्रभाव यह पड़ा कि बंगाल प्रांत धन-धान्य पूर्ण और समृद्ध हो गया। भारत में बंगाल ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे अधिक संपन्न प्रांत बन गया। ख्रषि में उन्नति हुई स्थाई बंदोबस्त ने जमींदारों को भूस्वामी मानकर उनकी प्रतिष्ठा और अधिकारों में अत्यधिक वृद्धि की। कुछ राष्ट्रवादी भारतीय अर्थशास्त्रियों को का यह मत है कि कार्नवालिस की स्थाई बंदोबस्त की नीति के पीछे एक राजनीतिक चाल थी एक विशिष्ट वर्ग निर्मित करना जो अपने वर्ग स्वार्थ की पूर्ति के लिए ब्रिटिश राज का समर्थक हो जाएगा।

स्थाई बंदोबस्त के प्रारंभिक वर्षों में कुछ लाभ अवश्य हुए हैं पर अल्प अवधि में ही यह व्यवस्था अनाचार, उत्पीड़न और शोषण का साधन बन गया। इस व्यवस्था ने ऊपरी स्तर पर सामंतवाद और निम्न स्तर पर दास वृद्धि को उभारा। इस व्यवस्था से जो लाभ दर्शाए गए हैं वह केवल सीमित हैं सिर्फ छाया रूप में ही थे वास्तव में नहीं। स्थाई बंदोबस्त की आलोचना करते हुए टी आर होम्स ने लिखा है कि, "स्थाई बंदोबस्त एक भयंकर भूल थी। छोटे कृषकों को इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। जमीदार भी बराबर लगान चुकाने में असमर्थ रहे जिससे उनकी जमींदारी सरकार ने अपने स्वयं के लाभ के लिए मिलान कर दी।" बेवेरीज का कथन है कि, "जमींदारों के साथ समझौता करके या भयंकर भूल तथा अन्याय संगत बात की गई।" समिति ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है कि ग्रामीण क्षेत्रों पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा और शायद इसका अनुभव आज भी किया जा रहा है।

इस प्रकार स्थाई प्रबंध से कृषको और सरकार की अत्यधिक हानि हुई। यदि सरकार को कृषि उत्पादन में वृद्धि होने पर भी लगाम में वृद्धि नहीं हुई और आर्थिक हानि हुई तो कृषकों की स्थिति भी दिन प्रतिदिन दुखद और दरिद्र होती गई। सरकार उनके लिए कुछ नहीं कर सके सबसे प्रथम लगभग 75 वर्षों बाद 1859 में और सन् 1868 तथा 1885 में बंगाल भूमि कानून द्वारा कृषकों की स्थिति को ठीक करने का प्रयास किया गया। जमींदारों को भी दीर्घकाल में कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बिलासी और रंगरेलियो वाला वर्ग समाज में पनपा। इसने राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्र का साथ देकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का समर्थन किया।

रैयतवाड़ी बंदोबस्त

दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना और विस्तार हो जाने से भू-राजस्व व्यवस्था से संबंधित है नवीन समस्याएं उत्पन्न हो गई। तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों की धारणा थी कि इन क्षेत्रों में बड़ी संपत्तियों वाले जमींदार नहीं थे जिनके साथ भू-राजस्व का बंदोबस्त किया जा सके। वे यह जानते थे कि जमींदारी व्यवस्था लागू करने से भू राजस्व में अनेक दोष उत्पन्न हो जाएंगे। स्थाई बंदोबस्त का सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में भारी विरोध होने लगा। इससे नए प्रकार के भूमि बंदोबस्त रैयतवाड़ी की पृष्ठभूमि तैयार हुई। अंग्रेज अधिकारी कैप्टन रीड और मुनरो के नेतृत्व में यह अनुशंसा हुई कि भू राजस्व सीधे किसानों के साथ किया जाए। इसे कहते हैं इस प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक पंजीकृत भूमि दान या कृषक को भूमिका स्वामी मान लिया गया। भूमि

कर देने के लिए उसी से शर्तें और भूमि कर की दर निश्चित की गई। वहीं राज्य सरकार को भूमि कर देने के लिए उत्तरदाई था उसे अपनी कृषि भूमि को कृषि के लिए व्यक्ति को देने उसे गिरवी रखने और बेचने की अनुमति थी। वह अपनी भूमि से कुछ समय तक वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि वह निर्धारित समय पर निर्दिष्ट भूमि कर देता रहे।

इस रैयतवाड़ी व्यवस्था की यह विशेषता थी कि किसानों से भूमि कर वसूली संबंधी अधिकार सरकार के पास थे। इस व्यवस्था के अंतर्गत भू राजस्व के बंदोबस्त को स्थाई नहीं बनाया गया। इसे नियमित रूप से 20 या 30 वर्षों के बाद संशोधित और परिवर्तित किया जा सकता था और आमतौर पर सरकार की ओर से भू राजस्व को बढ़ा दिया जाता था। इस व्यवस्था में भी किसानों की कठिनाइयों समस्याओं और उत्पीड़न उत्पन्न हुई। कृषक भूमि की निर्धारित समय में देने के लिए साहूकारों से ऋण लेने लगे और उनके चंगुल में फंस गए भूमि कर वसूली और संग्रहण के नियम कठोर थे और इसके अंतर्गत किसानों को यातनाएं दी जाती थी।

भूमि कर निर्धारित करने के बाद सन 1847 में मुंबई प्रांत में रैयतवाड़ी भू राजस्व व्यवस्था स्थापित की गई। किसान को भूमि का स्वामी मारकर भूमि कर अदायगी के लिए उसे उत्तरदाई बना दिया। भूमि कर प्रत्यक्ष रूप से किसान से ही वसूल किया जाने लगा। यह भू राजस्व व्यवस्था स्थाई नहीं अपितु तीस बरस के लिए की गई थी। इस व्यवस्था में भी भूमि कर का निर्धारण अधिकतर अनुमानों पर ही निर्धारित हो गया और यह कठोरता की ओर ही बढ़ा। तीस बरस के बाद 1868 में मुंबई प्रांत में पुन: भूमि का सर्वेक्षण कर भू राजस्व व्यवस्था किया गया। इस समय अमेरिका में गृह युद्ध चल रहा था और कपास का अभाव हो गया था जिसकी कीमत बहुत अधिक बढ़ गई थी। मुंबई प्रांत में इससे कृषकों की आय में अस्थाई वृद्धि हो गई। सर्वेक्षण अधिकारियों ने इसे मूल्य वृद्धि का लाभ उठाकर भूमि कर में 67 प्रतिशत से 100 प्रतिशत की वृद्धि कर दी। इस नए बढ़े हुए भूमि कर को देने में कृषिको को अनेक कष्ट हुए और अनेक कृषक भूमि कर अदा नहीं कर सके। उनके जीवन निर्वाह की समस्या हो गई। इससे कृषकों में असंतोष फैला। मुंबई प्रांत में लागू की गई रैयतवाड़ी भू राजस्व व्यवस्था में यह दोष था कि इसमें भूमि कर अत्यधिक निश्चित किया गया था और भूमि करके निर्धारण के विरोध किसानों को न्यायालय में अपील करने का अधिकार नहीं था।

महालवाड़ी भू राजस्व व्यवस्था

लॉर्ड हेस्टिंग्स ने 1822 ईस्वी में कंपनी के अधिकृत प्रदेशों के भू राजस्व प्रबंधन के लिए जिस नई पद्धति को लागू किया वह महलवाड़ी पद्धति कही जाती थी। यह पद्धति मध्य प्रदेश और पंजाब के क्षेत्रों में लागू की गई। लॉर्ड लॉरेंस के शब्दों में, "जमीनों के मालिक संभवत: गांव की ओर से सरकार के साथ समझौता करते थे व्यक्तिगत रूप से नहीं गांव की बिरादरी अपने मुखिया या प्रतिनिधि के माध्यम से निश्चित अवधि तक निश्चित रकम चुकाए जाने का भार अपने ऊपर ले लेती थी और फिर सारी जिंदगी आपस में बैठकर सब के अंश निर्धारित कर दिए जाते थे। इस व्यवस्था में मुख्यता प्रत्येक व्यक्ति खेती करके अपने ही लिए निर्धारित रकम चुका था पर अंतत: वह अपने साथियों के अंश के लिए और वह सब उसके अंश के लिए उत्तरदाई होते थे। इस प्रकार वे सब सम्मिलित दायित्व सूत्र में बंधे रहते थे।" लॉर्ड हेस्टिंग्स ने लॉर्ड कार्नवालिस के स्थाई बंदोबस्त को अस्वीकार किया था।

महालवाड़ी पद्धति अस्थाई नहीं थी यह कहीं-कहीं तीस बरस के लिए और कहीं-कहीं बीस बरस के लिए लागू की गई थी। स्थाई बंदोबस्त संबंधी समझौता जमींदारों के साथ किया गया था किंतु महलवाड़ी पद्धति में समस्त गांव के साथ समझौता किया गया था। समस्त गांव सम्मिलित रूप से और गांव का प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग सारे गांव के लगाने की अदायगी के लिए उत्तरदाई बन गया। गांव के नंबरदार ने सरकार के निश्चित राजस्व देने के लिए समस्त गांव की ओर से समझौता पत्र पर हस्ताक्षर किया। ग्रामीण अपनी जोत के अनुसार लगान की राशि देते थे और सभी राशियों को मिलाकर गांव लगान की अदायगी करता था अत: गांव का किसान तब तक अपनी भूमि का मालिक बना रहता था जब तक कि वह अपनी जोत का लगान देता रहता था चुकी उन प्रदेशों में जहां यह पद्धति लागू की गई थी जमीदारी अथवा ग्राम पंचायत के अधीन विभाग 'महल' के नाम से पुकारा जाता था इसलिए यह पद्धति महलवाड़ी के नाम से विख्यात हुई।

इस पद्धति में समझौता के मुताबिक लगान का निर्धारण सरकार के अधिकारी करते थे। नंबरदार ग्राम पंचायत के सदस्यों से परामर्श लेकर राजस्व की राशि का निर्धारण करते थे। मुख्य रूप से कलेक्टर को यह अधिकार दिया गया कि वह भूमि की मालगुजारी निश्चित करके किसानों के बीच भूमि का आवंटन करें। गांव के लोगों को भूमि के अधिकारों से संबंधित सरकारी पत्र मिलते थे जिसमें जमीन का नक्शा और रखवा दर्ज रहता था। भू राजस्व की राशि भूमि के उत्पादन क्षमता उस में उगाई जाने वाली

फसलों और फसलों के मूल्यों के अनुसार बीस या तीस साल के लिए निर्धारित की जाती थी। उत्तर प्रदेश में महलवाड़ी पद्धति के साथ-साथ और जिला में एक और पद्धति थी जिसका नाम था तालुकदारी। इसके अनुसार कई गांव एक तालुकदार के अंतर्गत रहते थे। तालुकदार के साथ सरकार तीस साल के लिए समझौता करती थी। तालुकदार ही राजस्व की वसूली करता था। मुरादाबाद बरेली शाहजहांपुर रूहेलखंड में महलवाड़ी पद्धति लागू की गई थी।

भू राजस्व व्यवस्था के दोष और परिणाम

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में और उसके बाद भी भारत के विभिन्न प्रांतों और क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की भू राजस्व प्रणालियां लागू की गई। इनके दोष और कुपरिणाम निम्नलिखित थे-

1. ब्रिटिश शासकों द्वारा लागू की गई भू राजस्व प्रणालियों में कृषक को और सरकार के बीच चले आ रहे बिचौलियों को समाप्त करने का प्रयास किया गया। अनेक इलाकों में भू राजस्व संबंधी समझौते प्रत्यक्ष रूप से कृषकों के साथ किए गए। स्थानीय स्वशासन की परंपरागत ग्रामीण संस्था ग्राम पंचायत को भी भूमि कर निर्धारण और संग्रहण से दूर रखा गया। उसके कार्य, प्रभाव और महत्व को अनदेखा कर दिया गया। ग्राम पंचायत का जो एक प्रमुख कार्य था- भूमि कर वसूली और संग्रहण। उसे ब्रिटिश शासन ने समाप्त कर दिया इसका स्थान सरकारी भ्रष्ट, घूसखोर कर्मचारियों ने ले लिया। ग्रामीण क्षेत्र में ग्राम का स्थानीय पाटिल, पटेल या लंबरदार अब केवल सरकार की ओर से कृषकों से भूमि कर वसूल और संग्रह करने वाला ही रह गया था।
2. ब्रिटिश शासकों ने भूमि बंदोबस्त के दौरान भूमि कर को अत्यधिक बढ़ा दिया था और वसूली तथा संग्रहण के नियम और ढंग भी अत्यधिक कठोर बना दिए थे ब्रिटिश प्रशासकों ने इसके दुष्परिणामों की किंचित भी चिंता नहीं की वह तो कृषि के प्रगति और कृषकों की दशा के प्रति घोर उपेक्षित थे। कृषि को के प्रति उनमें कोई सहानुभूति और उदारता नहीं थी। इससे उन पर असीमित, अमानवीय अत्याचार, अनाचार हुए। उन्हें अनेक यातनाएं और कष्ट भुगतना पड़ा। वे अधिकाधिक दरिद्र होते गए। रैयतवाड़ी और जमीदारी प्रणाली में कृषकों की दशा अत्यंत ही दयनीय हो गई। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई ब्रिटिश शासन के प्रथम 50 वर्षों में भारतीय उद्योग व्यवसाय और व्यापार नष्ट हो गए।
3. नवीन भू राजस्व व्यवस्था ने ग्रामों में भूमि के महत्व को अधिक बढ़ा दिया। 80 प्रतिशत लोग भूमि व कृषि पर निर्भर रहने लगे ग्रामों में एक ऐसा संपन्न साहूकार वर्ग उत्पन्न हो गया जो कृषक को बड़े हुए और अधिक भूमि कर की अदायगी के लिए जीवन निर्वहन के लिए पर्याप्त ऋण देकर अपने चंगुल में फंसा लेता था। विस्तृत भूमि के स्वामी संपन्न कृषक और जमींदार बिलासी हो गए। और नगरों में राज्य सी भवनों में निवास कर विलास और ऐश्वर्य में मग्न रहने लगे तो दूसरी ओर उनके कारिंदे उनकी ओर से किसको से बनवाना भूमि कर व अन्य कर वसूल कर उन पर अत्याचार करते थे। फलतः अपने ग्रामीण क्षेत्रों में अनुपस्थित जाकर नगर के क्षेत्रों में राजसी भावनाओं में रहने वाला बिलासी जमींदारों का वर्ग पनपा। समाज में साहूकार और जमींदार महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गए अनेक कृषक बढ़ा हुआ और अधिक भूमि कर समय पर नहीं देने के कारण हुए उनकी कृषि भूमि से वंचित कर दिए जाते थे और उनकी जमीन जप्त कर दी जाती थी।
4. भूमि बंदोबस्त के दौरान भिन्न-भिन्न तरीकों के कार्य किए गए कुछ जिलों में भूमि कर की दरें ऊंची निर्धारित की गई। इसके अतिरिक्त भूमि की पैमाइश का कार्य भी लंबे समय तक चलता रहा। इस अवधि में अंग्रेज अधिकारियों ने ब्रिटिश सरकार की आय में वृद्धि करने के लिए भूमि कर की दरें भूमि की उर्वरता की क्षमता और ऊपर से अधिक निर्धारित की बंबई और मद्रास के अधिकांश प्रदेशों में राजस्व की ऊंची दरें निर्धारित की गई। कुल उत्पादन पर 45 से 50 प्रतिशत भूमि कर निर्देशित कर दिया गया। महलवारी और रैयतवाड़ी दोनों व्यवस्थाओं में ब्रिटिश सरकार का मुख्य लक्ष्य अधिकतम भाग लगान के रूप में वसूल करना था। इससे भू राजस्व की व्यवस्थाएं भारतीय कृषकों के लिए अभिशाप बन गई थी।

निष्कर्ष

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना का सर्वाधिक प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा। स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत कंपनी सरकार को जमीदारों से एक निश्चित धनराशि भू राजस्व के द्वारा प्राप्त हो जाती थी। महलवाड़ी व्यवस्था में भी ग्राम्य महाल से एक निर्धारित

बढ़ी हुई रकम प्राप्त हो जाती थी। रैयतवाड़ी व्यवस्था में भी कंपनी ने कृषकों को भूमि का स्वामित्व मान लिया था पर निश्चित भूमि कर वसूल करने में सरकार ने विभिन्न उपायों का सहारा लिया जिनको बंगाल में जमींदारों ने अपनाया था। 19वीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के प्रारंभ में कृषि का वाणिज्यकरण किया गया। नगद और अधिक ध्यान देने वाली फसलों को बढ़ाया गया जैसे- गन्ना, कपास, तंबाकू आदी पर यहां भी कृषक किल ही रहे। फसल बेचने से प्राप्त रकम का अधिकांश भाग जमींदारों और महाजनों की जेब में चला गय। और कृषक अधिकाधिक दरिद्र होते चले गए। सच तो यह है कि 1757 से लेकर सन 1947 तक की लगभग 200 वर्षो की अवधि में ब्रिटिश सरकार ने कृषकों के प्रति जो नीति अपनाई तथा भू राजस्व प्राप्त करने के लिए जो व्यवस्थाएं निर्मित की गई उनका प्रमुख उद्देश्य न तो भारत में ख्रषि उत्पादन में वृद्धि करना था और न ही इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की दशा ही सुधारना था। अपितु उनका उद्देश्य कृषि अर्थव्यवस्था से उत्पन्न होने वाला अतिरिक्त धन भूमि कर के रूप में वसूल करता था। उसने भारत के कृषकों को ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का शिकार बना दिया।

संदर्भ सूची

1. सव्यसाची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1850-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019.
2. धनपति पांडे, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015.
3. विपिन चंद्रा, द राइज एंड ग्रोथ आफ इकोनामिक नेशनलिज्म इन इंडिया, दिल्ली, 1966.
4. राम लखन शुक्ला (संपादक), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008.
5. श्रीधर पांडे, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2016.
6. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खंड 1, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली, 2017.
7. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, त्रिनिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2014.
8. विपिन चंद्रा, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2012.
9. सुमित सरकार, आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
11. ग्रोवर बी.एल. और यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास-एक नवीन मूल्यांकन, एस चांद कंपनी, नई दिल्ली, 2004.
12. मिश्रा एवं पूरी, भारत अर्थव्यवस्था, हिमालय प्रकाशन, 2011.
13. धर्माकुमार (संपादक), द कैंब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री, खंड 2, ओरियंट लोंगमैन, नई, 1984.
14. आर पी दत्त, इंडिया टुडे, मनीषा ग्रंथालय, कोलकाता, 1979.
15. शिवानी किंगकर चौबे, भारत में उपनिवेशवाद, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
16. कृष्ण दत्त, आधुनिक भारत का इतिहास, अनुबुक्स, मेरठ, 1989.

“भारत-चीन संबंध: सीमा विवाद के परिपेक्ष्य में वर्तमान विवेचन”

डॉ० अमित कुमार उपाध्याय

सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय

डॉ० पंकज तिवारी

सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, गोरखपुर

भारत-चीन संबंध में नये आयाम के तौर पर सीमा विवाद ‘डोकलाम से गलवन तक’ की घटना वैश्विक मंच पर एक विचारणीय मुद्दे के रूप में देखा जा सकता है। सन 2014 एवं 2015 में जिस तरह से एशिया की इन दो महाशक्तियों के नेताओं ने एक दूसरे देशों की यात्राएँ की इससे यह स्पष्ट होन लगा था कि दोनों देश आपसी सहयोग को इस प्रकार मजबूत बनाने में सफल होगे जो एशिया के लिए शुभ होगा। सितम्बर 2014 में चीनी राष्ट्रपति की भारत यात्रा एवं जून, 2015 में भारतीय प्रधानमंत्री की चीन यात्रा दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग के नए पहलुओं की तरफ इशारा करते हैं।

भारतीय प्रधानमंत्री के चीन यात्रा के दौरान चीनी राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री का स्वागत अपने गृह नगर जियान के सरकारी अतिथि गृह में किया था। चीनी राष्ट्रपति ने भारतीय प्रधानमंत्री को बताया कि चीन और भारत के रिश्ते स्थायी विकास को महसूस कर रहे है और उदार संभावनाओं के समक्ष खड़े है। राष्ट्रपति शी जिनपिंग द्वारा जो गर्मजोशी और व्यक्तिगत मेहमानवाजी प्रधानमंत्री को दी गई उसे हम प्रधानमंत्री मोदी द्वारा अहमदाबाद में शी के भव्य स्वागत और मेहमानवाजी के प्रतिल के रूप में देख सकते है। ऐसा पहली बार हुआ है कि भारत और चीन के नेताओं ने एक दूसरे के देशों में अपनी यात्राएँ राष्ट्रीय राजधानी से न शुरू करते हुये राज्यों की राजधानी से की। प्रधानमंत्री ने जियान में अपने भव्य स्वागत के बाद ट्वीट करके कहा “चीन के लोगों का उत्साह देखकर खुशी हुयी। पीपुल्स टू पीपुल्स कान्टेक्ट हमेशा खास होता है।”[1]

प्रधानमंत्री मोदी ने चीनी प्रधानमंत्री ली के साथ अपने संयुक्त मीडिया वक्तव्य में कहा मैने चीन पर कुछ मुद्दों पर अपना मत बदलने पर जोर दिया जो भारत और चीन के रिश्तों के मजबूत होने में रूकावट पैदा करते हैं। चीनी राष्ट्रपति के साथ प्रेस वार्ता में कहे गये उनके इस कथन में भारत के बिजिग द्वारा उठाये गये उन कदमों पर अपने विरोध को बताया है जो भारत अनुचित समझता है, और उसे अस्वीकार करता है। इनमें भारतीय सीमा में चीनी सेना का आ जाना कश्मीर एवं अरूणाचल प्रदेश के नागरिकों को अलग वीजा देना जैसे प्रमुख मुद्दे है।

1950 में ही कम्युिनिष्ट चीन के नक्शे के भारत के बड़े भू-भाग को चीन का अंग दिखलाया गया था जब भारत सरकार ने चीन का ध्यान इस ओर आकर्शित किया तो उसे यह जवाब मिला कि ये नक्शे गलती से बन गये हैं और चीन की सरकार इसे शीघ्र ही सुधार कर देगी। यह “हिन्दी चीनी भाई-भाई” का युग था और इसलिये भारत सरकार ने चीन की नेक नियति पर संदेह नहीं किया लेकिन चीन ने अपना नक्शा नहीं बदला और उनके प्रत्येक संस्करण में भारतीय भू-भाग पर चीन का दावा बढ़ता गया।[2]

चीन के प्रति भारत की विदेश नीति उसकी अनेपेक्षित असफलता की गाथा है। भारत ने चीन को अपना पड़ोसी समझकर उससे पुराने सम्बन्धों को बहाल करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु नेहरू चीनी नेताओं की मनोवृतियों को समझ न सके। जब 25

अक्टूबर 1950 को चीन की सेना ने तिब्बत की स्वतंत्रता के नाम पर सैन्य हस्तक्षेप किया तो भारत ने चीन से अपनी मित्रता के मोह जाल में फसे होने के कारण उसे चीन का घरेलू मामला कहकर टाल दिया। उससे चीन का हौसला बढ़ गया। 1958 में उसने सीमा विवाद खड़ा किया। 1959 में उसने तिब्बत हड़प लिया और फिर 1962 में भारत पर आक्रमण करके लगभग 35000 वर्ग मील पर कब्जा कर लिया जिससे भारत चीन संबंध टूट गये।[3]

चीन द्वारा भारत के विरूद्ध आक्रामक कार्यवाही सितम्बर 1962 में प्रारम्भ की 8 सितम्बर 1962 को अरूणाचल प्रदेश उस समय (NEFA) कहलाता था में मैकमोहन रेखा को पार करके चीन की सेनाओं ने भारत में प्रवेश किया और हमारे कुछ क्षेत्रों अपने अधिकार में ले लिया। नेहरू पर जनमत विपक्ष एवं प्रेस का दबाव बढ़ता जा रहा था। 13 अक्टूबर, 1962 को नेहरू ने पत्रकारों को बताया की भारतीय सेना को आदेश दिया है कि वे चीनी सेना को दूसरी ओर ढकेलकर अपनी भूमि को स्वतंत्र करवा ले। भारत के तत्कालीन थल सेना अध्यक्ष वी.एम. कौल में अपनी पुस्तक "अनटोल्ड स्टोरी" में लिखा की मैं सोचता हूँ कि नेहरू के इस वक्तव्य ने चीन को शीघ्र आक्रमण करने के लिये उकसा दिया।[4]

भारत चीन सीमा विवाद का जिक्र होने पर कुछ लोगों का तेवर 1962 के अपराधी ढूढने वाले होते हैं।[5] अधिकांश आलोचक को लगता है कि भारत चीनी मनमुटावों के घातक विस्फोट की जिम्मेदारी सिर्फ नेहरू जी की थी। कृष्ण मेनन और सरदार पणिक्कर जैसे सलाहकार इन्ही के विश्वासपात्र मित्र थे। पंचशील का सपना किसने समझा था भला? चीनी नेताओं के साथ व्यक्तिगत मैत्री के रूमानी सिंकजे में फसकर वर्षो मुग्ध संतुष्ट नेहरू जी के अलावा और कौन रहा था? ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं जो मानते हैं कि भारत चीन विवाद सिर्फ नेहरू जी भलमनसाहत, नादानी नासमझी आत्मधाती अहिंसा से उपजा था।[6]

1962 के बाद सफाईयों व बचाव पक्ष की दलीलों के नमूनों पर बड़े पैमाने पर आत्म कथायें प्रकाशित हुयी। इसमें जनरल कौल की "अनकही कहानी" तथा इन्टेलिजेन्सी के व्योरो के.बी.एन. मलिक की माई इयर विथ नेहरू दी चयनिज विट्रेयल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। परन्तु इनमे उपलब्ध जानकारी को प्रमाणिक सिद्ध करना कठिन है। चीन में पहले भारतीय राजदूत पणिक्कर ने भी यह बात महसूस कर ली थी कि चीनी नेता अपने को ही चौधरी समझते है और दूसरों छुटभैया। अगर भारत के द्वारा समय रहते इस संकट का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सका तो इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत के राजनेता एवं राजनैयिक आत्म मुग्ध और संतुष्ट थे उन्हे चीन भी भारत जैसा सुधारवादी, शांतिप्रिय और परामर्ष द्वारा हर समस्या के समाधान के लिये प्रतिबद्ध दिखाई देता था।[7]

भारत चीनी सीमा विवाद का इतिहास

सिक्ख प्रांत के राजा रणजीत सिंह ने 1808 में जम्मू पर चढ़ाई (किशोर सिंह) पर की 1819 में कश्मीर, 1834 में लद्दाख पर अपना शासन स्थापित कर लिया। लद्दाख को जीतकर जम्मू में शामिल कर लिया था। इस प्रकार सिक्खों का शासन चल रहा था।

1839 मे महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद जम्मू कश्मीर के राजा डोगरा राजवंश के राज किषोर सिंह के पुत्र गुलाब सिंह बने।

इस प्रकार सिक्ख प्रांत कमजोर पड़ गया था उसका फायदा उठाते हुये चीन ने 1841 में लद्दाख पर आक्रमण कर दिया था। चीन ने सिक्खों पर जीत हासिल की फिर सीमा पर शांति के लिये एक संधि हुयी थी। फिर सिक्ख पुनः शासन करने लगे थे इसी समय भारत पर अंगेजों का शासन था सन् 1846 में ब्रिटिश और सिक्खों के बीच एक युद्ध हुआ था जिसे इतिहास पहला एंग्लो सिक्ख युद्ध कहलाया था। इस प्रकार अंग्रजों ने पंजाब प्रांत का कुछ हिस्सा जीता और कश्मीर घाटी और लद्दाख वाले हिस्से पर कब्जा कर लिया था। इसमें गुलाब सिंह ने अंग्रेजों की खूब मदद की थी। इसीलिए अंग्रेजों ने 75 लाख रू. में जम्मू और कश्मीर को बेच दिया था। मतलब कश्मीर घाटी, जम्मू, लद्दाख, गिलगित, बलूचिस्तान (अमृतसर संधि) के तहत, परन्तु ये क्षेत्र ब्रिटिश शासन के अन्दर ही रहा। जम्मू कश्मीर रियासत के पहले राजा गुलाब सिंह थे इन्ही वंश के राजा हुये हरि सिंह। 1846 में ब्रिटिशों ने कश्मीर घाटी व लद्दाख पर अपना शासन स्थापित कर लिया था और चीन से पूर्वी लद्दाख सीमा पर बात करने की कोशिश की पर चाइना ने बात नहीं की। उस समय सीमा परिभाषित नहीं हुआ था। 1865 में ब्रिटिश इण्डिया सिविल सर्वेन्ट डब्लू एच जानसन उन्होने सीमा के लिए 'जानसन लाइन प्रस्ताव' की इसके हिसाब से आक्साई चीन को जम्मू कश्मीर का हिस्सा बताया था। वर्तमान समय में भारत इसी जानसन लाइन को स्वीकार करता है। उस समय आक्साई चीन की सीमा सी.जी.यांग प्रांत (पूर्वी तुर्कीस्तान) से लगती थी जो

समय स्वतंत्र प्रान्त हुआ करती थी इसलिए जानसन लाइन के बारे में चीन से नहीं पूछा गया न ही चीन ने रूची दिखाई। ब्रिटिश इसी जानसन लाइन को सीमा मानकर काम करने लगे। फिर 1878 में चाइना ने शिजियांग पर कब्जा कर लिया था। 1899 में ब्रिटिश काउन्सिल जार्ज मैकेटनि ने एक लाइन का प्रस्ताव दिया जसे क्लाउड मैकडोनल ने चीन तक पहुँचाया था इसलिये इस लाइन का नाम मैकेटनी मैकडोनल लाइन पड़ा। अब इस लाइन का कुछ भाग आक्साई का कुछ भाग चीन का कुछ भाग भारत का बताया गया था पर इस बीच चीन ने इस पर कोई प्रतिक्रिया नही दिया। 1959 में इसे चीन ने स्वीकारा थां।

स्वीकार करने का कारण

तिब्बत चीन से अलग हुआ करता था और चीन उस पर कब्जा करने के लिये सड़क का निर्माण करना चाहता था फिर उसने पश्चिमी तिब्बत अपनी स्थिति मजबूत करने के लिये चीन ने शिजियांग से 1951 में तिब्बत तक सड़क निर्माण किया जो आक्साइ चीन से होकर जाती थी। इसका नाम शिजियांग तिब्बत रोड़ था। 1959 में जब रोड बन चुका था तब भारत को पता चला। भारत दावा करता है कि यह क्षेत्र उसका है।

इसी को लेकर 1962 में भारत चीन युद्ध हुआ था। इसमें चीन आक्साइ चीन पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया था। युद्ध के बाद दोनो सेनायें जहाँ थी उसी को वास्तविक नियंत्रण रेखा (LA C) माना गया पहाड़ो व तालाबों के कारण सही सीमांकन नहीं हुआ जिस कारण विवाद होता है।

एल.ए.सी. – लद्दाख, हिमाचल, उत्तराखण्ड, सिक्किम, अरूणाचल से होकर जाती है सबसे ज्यादा विवाद लद्दाख क्षेत्र के गलवान घाटी व पेंगोंग झील के पास होता है। गलवान घाटी भारत में स्थित है जिसे चीन अपना क्षेत्र बताता है। पेंगोंग झील पर (LA C) अभी भी स्पष्ट नहीं हो पायी है। झील के पहाड़ों को फिंगर 4 पर भारत का वेस कैम्प है जबकि फिंगर 8 पर चीन का बेस कैम्प है भारत दावा करता है उसका अधिकार फिंगर 8 तक है जबकि चीन फिंगर 4 तक का दावा करता है फिंगर 4 से लेकर फिंगर 8 तक दोनों देश पेट्रोलिंग करते हैं। सिक्किम में स्थित नथुला दर्रा के पास पथराव देखने को मिला। डेमचोक, गोगरा पोस्ट, दौलतबेग ओल्डी में भी घुसपैठ हुयी।

भारत पूर्वी क्षेत्र में चीन के साथ 1140 किलोमीटर सीमा साझा करता है। यह सीमा भूटान के पूर्वी सीमा से प्रारम्भ होकर तिब्बत (चीन अधिकृत) भारत ओर म्यामार के त्रिसंगम (Tri-Junction) तक विस्तारित है। यह सीमा रेखा को मैकमोहन रेखा कहा जाता है हालाकि, चीन मैक मोहनरेखा को अवैध मानता है और इसे अस्वीकार करता है चीन अरूणाचल प्रदेश को दक्षिण तिब्बत या तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र (TA R) का ही भाग भानता है।

चीन का अभिमत है कि वर्ष 1914 में, शिमला समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले तिब्बती प्रतिनीधि इस कार्य हेतु अधिकृत नहीं थे। उल्लेखनीय है कि इसी समझौते द्वारा मैकमोहन रेखा को मानचित्र पर निरूपित किया गया था।

डोकलाम विवाद

जुलाई 2017 में चीन की सेना "पिपुल्स लिबरेसन आर्मी" ने डोकलाम के पठार पर सड़क निर्माण कार्य आरम्भ किया जिस पर भूटान के अनुरोध पर भारतीय सेना ने चीनी सेना के सड़क निर्माण कार्य का विरोध किया, परिणाम स्वरूप भारत और चीन की सेनाओं के बीच विवाद उत्पन्न हो गया और भारतीय सेना ने चीन के सड़क निर्माण कार्य को रोक दिया। इस कार्य से दोनों देशों के बीच लम्बे समय तक गतिरोध बना रहा, भारत का मानना है कि यह क्षेत्र भूटान के अन्तर्गत आता है, जिससे भारत की रक्षा संधि है अत: चीनी सेना द्वारा किया गया यह कार्य आक्रमणकारी एवं अवैध है। ज्ञात हो कि डोकलाम एक पठार भारत, भूटान तथा चीन के मिलान बिन्दु पर चूम्बी घाटी के पास अवस्थित है। यह पठार भूटान के अधिकार क्षेत्र में आता है जिस पर चीन भी दावा करता है।

दूसरी तरफ चीन का अभिमत है कि यह क्षेत्र उसका भू-भाग है तथा विकास कार्य के लिये यह सड़क निर्माण का कार्य किया जा रहा है। इसलिए भारत द्वारा विरोध गलत है तथा भारतीय सेना को तुरंत वहाँ से हट जाना चाहिये। अगस्त 2017 के अन्तिम सप्ताह में भारत चीन के मध्य यह गतिरोध समाप्त हो गया तथा चीन ने डोकलाम क्षेत्र से अपनी सेना हटाने की धोशणा की और सड़क निर्माण कार्य को रोक दिया अत: अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के क्षेत्र में यह भारत की महत्वपूर्ण जीत के रूप में देखा जा सकता है।

वन बेल्ट वन रोड परियोजना

चीनी राष्ट्रपति शीजिनपिंग की महत्वाकांक्षी परियोजना "वन बेल्ट वन रोड" पर एक वैश्विक सम्मेलन बिजिंग में 14-15 मई 2017 को सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में 29 राष्ट्रो के राष्ट्र अध्यक्ष सहित लगभग 100 देशों के प्रतिनीधियों ने भाग लिया। जापान एवं अमेरिका जैसे देश जो प्रारम्भ में इस परियोजना का विरोध कर रहे थे, ने भी चीन की कूटनीति प्रभाव के कारण इस सम्मेलन में हिस्सा लिया। इस परियोजना के तहत चीन विश्व में कुल छः आर्थिक कारिडोर बनायेगा जिसमें रोड, रेलवे, ऊर्जा परियोजना, हाइवे यातायात, डेम इत्यादि का निर्माण किया जायेगा।

चीन इस परियोजना को सैन्य तत्वों की अनुपस्थिति में "मार्षल प्लान" तथा भूमण्डलीकरण-2, के रूप में दर्षा रहा है, जिससे वैश्विक मंदी को रोका जा सकता है तथा विश्व के देशों के मध्य सहयोग अर्थिक खुलापन एवं व्यवहार इत्यादि को बढ़ावा दिया जा सके। "भारत द्वारा चाइना पाकिस्तान आर्थिक कारिडोर" का विरोध किया जा रहा है, क्योंकि यह पाक अधिकृत कश्मीर से होकर गुजरती है, जो भारत की सम्प्रभुता के खिलाफ है, क्योंकि भारत से इस संदर्भ में कोई अनुमति नहीं ली गई है। यह कारिडोर पाक अधिकृत काष्मीर से होकर गुजरता है जिसको भारत अपना अंग मानता है। गलवन घटना का प्रमुख कारण यह था कि भारत द्वारा सीमा पर सड़क का निर्माण कार्य किया जाना चीन को नागवार लगता था।

गलवन घाटी के नवीन घटनाक्रम पर कुछ बुद्धिजीवियों, राजनीतिक विश्लेषकों एवं वैदेषिक तथा रक्षा मामलों के विशेषज्ञों के विचार भी काफी महत्वपूर्ण है। इसी क्रम में ब्रम्हा चेलानी[8] ने 18 जून 2020 के दैनिक जागरण के अपने लेख 'ध्वस्त करने होंगे चीन के नापाक इरादे' के अन्तर्गत कहा कि "माओत्से तुंग ने चीन की पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त किया और देंग श्याओपिंग में आधुनिक चीनी अर्थव्यवस्था की बुनियाद रखी वहीं शी जिनपिंग चीन को दुनिया की सबसे बड़ी ताकत बनाने के लिए प्रतिबद्ध दिखते है। भारतीय सीमा रेखा को उसका सही ऐतिहासिक नाम 'भारत-तिब्बत सीमा' कर देना चाहिए। वही 22 जून, 2020[9] के अपने संपादकीय लेख संवेदनशील विषयों पर संकुचित राजनीति के अन्तर्गत कहा कि जिस पंचशील को 1957 में संयुक्त राष्ट्र ने मान्यता दी उसे चीन ने 1962 के युद्ध से कर दी।

26 जून, 2020[10] के अपने संपादकीय लेख "चीन को सही राह पर लाने का तरीका" के अन्तर्गत राजनीति शास्त्र के वरिष्ठ स्तंभकार शंकर शरण ने कहा कि "पंचशील समझौता जो 29 अप्रैल, 1954 को भारत और तिब्बत के संबंध पर हुआ था। यह कुल छः अनुच्छेदों का समझौता है। जिसके शीर्षक में दर्ज चीन के तिब्बत क्षेत्र और भारत के बीच व्यापार संबंध के बारे में समझौता। इस संदर्भ में शरण जी का कहना है कि भारत और तिब्बत का संबंध कितने स्थापित खुले और पारस्परिक थे परन्तु चीन के बब्जे के कारण अनुच्छेद 02 और 05 के अनुरूप भारत और तिब्बत के लोग पहले की तरह इस पार से उस पार मिलने जुलने समान की खरीदारी करने नहीं जा पा रहे हैं ऐसे में पंचशील की नसीहत देना अथवा भारत द्वारा एकतरफा इस समझौत पर कायम रहना उचित न होगा।

चीन 1890 के दस्तावेज का हवाला देकर डोकलाम को अपना बताता है। 1914 के दस्तावेज के अनुसार तिब्बत भी एक स्वतंत्र देश है परन्तु नेहरू जी ने चीनी कम्युनिष्टों को तिब्बत हड़पने दिया इसलिए इसी के एवज में चीन ने भारतीय और तिब्बती जन को संतुष्ट करने के लिए पंचशील समझौते के बहाने उन्हे बहलाने का उपाय किया।

गलवन घाटी की घटना के उपरान्त कांउसिल फॉर स्ट्रेटजिक अफेयर्स से संबद्ध सामरिक विश्लेषक दिव्य कुमार सोती[11] ने 29 जून, 2020 को अपने लेख 'डरे चीन की कायराना हरकत' के अन्तर्गत कहा कि चीन यह जानने की कोशिश कर रहा है कि कोरोना के चलते विश्व बिरादरी के उनके विरूद्ध लामबद्ध होने से भी उसकी शक्ति में कमी नहीं आने वाली है। उनका कहना है कि गलवन घटना के कारणों में एक यह भी है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के रक्षा सलाहकार के अनुसार प्रतिद्वन्दी देशों के विरूद्ध कार्यवाही तब करनी चाहिये जब वे आपको कमजोर समझ रहे हो।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत को अपने विदेश नीति में परिवर्तन करना चाहिये। गलवन घाटी की घटना से हमें सतर्क हो जाना चाहिए और यह समझना चाहिये कि चीन अब खुद को सबसे बड़ी वैश्विक ताकत के तौर पर देखता है चीन दक्षिण चीन सागर में वियतनाम, मलेशिया, ब्रुनेई, इण्डोनेशिया, फिलिपिन्स और हिमालय की चोटियों में भारत को ललकार रहा है। भारत अपने घरेलू राजनीति के चलते अपने विदेश नीति को पाकिस्तान के इई गिर्द की रखा था। डोकलाम से गलवन तक चीन की नियत लगभग

एक जैसी ही रही। भारत का वैश्विक स्तर पर शक्ति संतुलन के लिये चीन की विस्तारवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने हेतु पहल करनी चाहिये।

भारत को पहल करने के लिये सबसे पहले अपने आस पड़ोस में समर्थन को मजबूत करना होगा। इसके लिए क्वॉड जैसी पहल को तेज करना होगा। हमें क्वॉड को नाटो की तरह सामूहिक रक्षा ढाचे पर संगठित करना होगा जिसमें एक देश पर आक्रमण सभी देशों पर आक्रमण माना जाता है। इस व्यवस्था में वियतनाम, मलेशिया जैसे देशों की दिलचस्पी हो सकती है। पाकिस्तान चीन का पिठ्ठू बन चुका है। वहीं नेपाल भी अब हमारे सदाबहार दोस्त की सूची में नहीं रहा। श्रीलंका और बंग्लादेश पर भी चीन का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। म्यामार एवं भूटान की भी अपनी विभिन्न चुनौतियाँ एवं मजबूरियाँ। ऐसे मे इन्दिरा युग की तरह रूस से संबंध को मजबूत करना चाहिये। भारत को चीन के विस्तारवादी प्रवृति पर अंकुश लगाने हेतु वैश्विक मंच पर कूटनीतिक एवं राजनैतिक विकल्पों का उपयोग कर प्रभावकारी मार्ग बनाना चाहिए। इस प्रकार भारत शक्ति संतुलन हेतु पहल कर सकता है।

संदर्भ

1. तपन विस्वाल, "अन्तर्राष्ट्रीय संबंध" ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा.लि. नई दिल्ली, 2016, पेज 219
2. दीना नाथ मिश्र, "अन्तर्राष्ट्रीय संबंध" ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 पृ. 384
3. डॉ. जे.सी. जोहरी, "अन्तर्राष्ट्रीय संबंध" एस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, 2018, पृ. 202
4. डॉ. वी.एन. खन्ना, "अन्तर्राष्ट्रीय संबंध" एस.वी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, 2015, पृ. 175
5. डी.आर. मंकेकर, दी गिल्टी मेन ऑफ 1962, बम्बई 1968
6. पुष्पेश पंत, श्री पाल जैन, "अन्तर्राष्ट्रीय संबंध" मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1997, पृ. 466
7. वही, पृ. 467
8. ब्रम्हा चेलानी, 18 जून 2020, दैनिक जागरण गोरखपुर।
9. हृदय नारायण दीक्षित, 22 जून 2020 दैनिक जागरण गोरखपुर।
10. शंकर शरण, 26 जून 2020, दैनिक जागरण गोरखपुर।
11. दिव्य कुमार सोती, 29 जून 2020 दैनिक जागरण, गोरखपुर।

कोरोना (कोविड-19) के विरुद्ध शारीरिक प्रतिरोध क्षमता का विकास (योग के संदर्भ में)

मृत्युंजय कुमार सिंह

क्रीड़ा अधिकारी, शासकीय महाविद्यालय, खुरई सागर, मध्यप्रदेश

सारांश

कोरोना वायरस जनित महामारी कोविड-19 ने मानवता के अस्तित्व को झकझोरते हुए, प्रगति-पथ पर तेजी से चल रहे मनुष्य को इस पर विचार करने को विवश कर दिया है कि आखिर उसकी विकास यात्रा कितनी सुगम है? इस आकस्मिक आपदा का मुकाबला करने के लिए कोई देश पूरी तरह, तैयार नहीं था। आज सभी भविष्य को लेकर आशंकित हैं। इस अति संक्रामक और प्राणघातक विषाणु ने वैश्विक स्तर पर व्यापार-व्यवसाय को बुरी तरह प्रभावित किया है। एक ओर इसने विभिन्न देशों के बीच के आर्थिक-राजनीतिक समीकरणों को फिर से परिभाषित करने को विवश किया है तो दूसरी ओर जीवन की लय को छिन्न-भिन्न भी कर दिया है। चूंकि संक्रमित व्यक्ति के साथ किसी भी तरह संपर्क में आने वाला व्यक्ति दूसरों के लिए संक्रमण का वाहक बन जाता है इसलिए संक्रमण का क्रम आबाध रूप से आगे बढ़ता जाता है। दुर्भाग्य से इस रोग की सर्दी, जुकाम और बुखार जैसे सामान्य लक्षणों के साथ साम्य इतना अधिक है कि इसका पता चलना भी सरल नहीं है। एक समस्या यह भी है कि लोग इसे प्रकट करने से भी बच रहे हैं। अब तो ऐसे रोगी भी सामने आ रहे हैं जिनमें उक्त सामान्य लक्षण भी नहीं दिख रहे। बुजुर्गों और बच्चों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कोरोना वायरस के मामले भारत में भी लगातार बढ़ रहे हैं। अभी हमारे पास समय है जिससे हम प्रतिरोधक कदम उठा सकते हैं। इन्ही उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कोरोना (कोविड-19) के विरूद्ध शारिरिक प्रतिरोध क्षमता में योग के महत्व को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है। कोविड-19 की वजह से लॉकडाउन के कारण लोग घरों में सुरक्षित हैं। इस वक्त जरूरी है कि हम अपनी शारीरिक प्रतिरोधकता को मजबूत बनाएं। योग, प्राणायाम एवं आहार में थोड़। परिवर्तन करके आप अपनी इम्यूनिटी मजबूत कर फेफड़ो के जरिए शरीर में पहुंचने वाले संक्रमण से बचाव के लिए रक्षा प्रणाली को प्राकृतिक रूप से मजबूत कर सकते हैं। इनसे आपको इस मुश्किल दौर में तनावमुक्त रहने व चिंताओं को दूर रखने में मदद भी मिलेगी। हमें अपनी दिनचर्या, खानपान, रहन-सहन की आदत, पुरानी मान्यताओं को बदल दें और यह परिवर्तन केवल भारत में ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व हो रहे है। ऐसे समय में भारत योग के माध्यम से शारीरिक प्रतिरोध का विकास कर न केवल अपने लोगों के स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है बल्कि सम्पूर्ण विश्व को योग का रास्ता दिखा सकता है। पूर्व की भांति विश्व का मार्गदर्शक बन सकता है।

आधार शब्दः कोविड-19, योग, एसीई-2, प्रतिरोध क्षमता

प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में हाहाकार मचाए हुए कोरोना वायरस (कोविड-19) का प्रकोप विश्व के संयम की परीक्षा ले रहा है। महीनों से घरों में 'कैद' लोगों ने मान लिया है कि बेवजह घर से बाहर निकले नही कि इस बीमारी से संक्रमित हो सकते है। ऐसे में लोगों

के अन्दर कई प्रकार के नकारात्मक विचार, दिनचर्या का अस्त-व्यस्त होना, आलस, मानसिक तनाव आदि विभिन्न प्रकार की शारिरिक समस्याओं से ग्रस्त होना आम बात है। साथ ही साथ 'वर्क फॉर होम' और जीवन में नवीनता लाना वर्तमान परिस्थितियों में सबसे ज्यादा चुनौती पूर्ण कार्य है। कोविड-19 वायरस के संक्रमण का वैज्ञानिक पक्ष यह है कि वायरस पहले मुंह, नाक या ऑख के माध्यम से शरीर के अन्दर प्रवेश करता है। अंदर प्रवेश करने के बाद यह कई अंगों की कोशिका के ऊपर उपलब्ध प्रोटीन एसीआई-2 के साथ संक्रिया करता है और कोशिका के अन्दर प्रवेश कर जाता है। फिर इसी तरह आसपास की कोशिकाओं को भी तेजी से प्रभावित कर संक्रमित कर देता है। एसीई-2 ऐसा एंजाइम होता है जो जिस अंग में बनता है, उसके लिए बहुत ही आवश्यक होता है। वायरस कोविड-19, एसीई-2 से संक्रिया कर इस एंजाइम को एक्टिविटी को ही नष्ट कर देता है, जिससे जीब के उस अंग में खराबी आ जाती है। एसीई-2 एंजाइम की एक्टिविटी उम्र के साथ-साथ कम होती है और मधुमेह, ब्लडप्रेसर और हार्ट के मरीज में भी एसीई-2 की एक्टिविटी कम रहती है, जिस कारण कोविड-19 के संक्रमण में बूढ़े, मधुमेह, ब्लड प्रेसर हार्ट की समस्या वाले मरीजों की मृत्युदर ज्यादा बढ़ जाती है।[1] वैज्ञानिको ने पाया है कि एसीई-2 की एक्टिविटी को शरीर में कुछ योग, नियमित व्यायाम और खाने की वस्तुओं से बढ़ाया जा सकता है। भारत में यह तेजी से फैल रहा है। यह तेजी से संक्रमित होने वाला है। भारत को इसके लिए पूरी तरह से तैयार हो रहा है ताकि इसका मुकाबला किया जा सके। अगर भारत में यह महामारी की शक्ल नहीं लेता हैं तो भी हमें नये तरह के संक्रमणों से बचने की तैयारी पूरी रखनी होगी। पिछले दषकों में हम भारत में स्वाइन फ्लू और निपाह का संक्रमण झेल चुके हैं। इसके लिए होने वाली तैयारियों पर होने वाला खर्च निवेश हैं, जो हमें तत्काल या स्थिति के बिगड़ने पर फायदा पहुंचाएगा। कोविड-19 ने हमें मौका दिया है कि हम अपनी व्यवस्था को ठीक करें। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि इसके फैलने के स्तर पर इससे निपटना। शुरूआती दिनों में जब यात्रा-संबंधित मामले कम और संभालने लायक होते हैं, तो व्यापक स्क्रीनिंग, सभी संदिग्धों की जॉच और संपर्कों का पता लगाना से इसके फैलाव को सीमित किया जा सकता है। पर एक बार जब संक्रमण मजबूती से समुदाय में जड़ जमा लेता है और स्थानीय बन जाता है, तो उस समय वह हमारी प्रयोगशालाओं पर शीघ्रता से दबाव डालना शुरू कर देता है। उस स्थिति में हमारी रणनीति इसको सीमित करने से इसको खत्म करने की हो जाती है ताकि स्वास्थ्य व्यवस्था चरमराए नहीं।

भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था बहुत कमजोर और बिखरी हुई है। हमें सामंजस्य और तालमेल बिठाते हुए इसका मुकाबला करने की जरूरत है। इसके लिए सरकारी और निजी क्षेत्र के साथ-साथ पारंपरिक स्वास्थ्य व्यवस्था को भी साथ लेकर चलना होगा। इसके अलावा पुलिस, अग्निशमन सेवा परिवहन, पर्यटन, खाद्य आपूर्ति और अन्य क्षेत्रों के साथ तालमेल बैठाना होगा। यह प्रत्युत्तर समानुपातिक और वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए और सब कुछ पारदर्शी और मानव अधिकारों को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए। बड़ी प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए गठित राष्ट्रीय संकट प्रबंधन समिति (एनसीएमसी) का प्रयोग किया जाना चाहिए और उसे विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के साथ तालमेल बैठाने का काम सौपा जाना चाहिए।[2] इसके साथ ही लागों में कोरोना वायरस के प्रति जागरूकता फैलाना तथा स्वच्छता को दिनचर्या का हिस्सा बनाना भी बहुत आवश्यक है। साथ ही साथ व्यक्तियों की शारीरिक प्रतिरोध क्षमता विकसित करने के लिए भी प्रेरित करना होगा, जिसमें योग एक महत्वपूर्ण तथा कारगर उपाय सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में योग के द्वारा शारीरिक प्रतिरोध क्षमता के विकास के पहलुओ पर प्रकाष डाला गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

कोरोना वायरस जनित महामारी कोविड-19 ने मानवता के अस्तित्व को झकझोरते हुए प्रगति-पथ पर तेजी से चल रहे मनुष्य को इस पर विचार करने को विवष कर दिया है कि आखिर उसकी विकास यात्रा कितनी सुगम है? इस आकस्मिक आपदा का मुकाबला करने के लिए कोई देश पूरी तरह, तैयार नहीं था। आज सभी भविष्य को लेकर आषंकित हैं। इस अति संक्रामक और प्राणघातक विशाणु ने वैश्विक स्तर पर व्यापार-व्यवसाय को बुरी तरह प्रभावित किया है। एक ओर इसने विभिन्न देशों के बीच के आर्थिक-राजनीतिक समीकरणों को फिर से परिभाषित करने को विवष किया है तो दूसरी ओर जीवन की लय को छिन्न-भिन्न भी कर दिया है। चूंकि संक्रमित व्यक्ति के साथ किसी भी तरह संपर्क में आने वाला व्यक्ति दूसरों के लिए संक्रमण का वाहक बन जाता है इसलिए संक्रमण का क्रम आबाध रूप से आगे बढ़ता जाता है। दुर्भाग्य से इस रोग की सर्दी, जुकाम और बुखार जैसे सामान्य लक्षणों के साथ साम्य इतना अधिक है कि इसका पता चलना भी सरल नहीं है। एक समस्या यह भी है कि लोग इसे प्रकट करने

से भी बच रहे हैं। अब तो ऐसे रोगी भी सामने आ रहे हैं जिनमें उक्त सामान्य लक्षण भी नहीं दिख रहे। हालांकि समय पर उचित उपचार पाकर संक्रमित लोग स्वस्थ होकर घर भी लौट रहे हैं।

महामारी बनकर सामने आए खतरनाक रोग कोविड-19 के स्पष्ट उपचार की कोई निश्चित औशधि अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। चिकित्सा जगत में इसे लेकर देश-विदेश में तीव्र गति से अनुसंधान जारी है, लेकिन व्यवस्थित उपचार और टीके की खोज में अभी समय लगेगा। किसी टीके या सुनिश्चित दवा के अभाव में संक्रमण को बढ़ाने से रोकने के लिए लोगों के बीच संपर्क पर रोक ही एकमात्र उपाय है। इसे ही ध्यान में रखकर पूरे देश में लॉकडाउन का निर्णय लिया गया। इसके चलते करीब-करीब सब कुछ ठप्प हो गया और दैनिक जीवन पर बुरा असर पडा़। लॉकडाउन करने का निर्णय कठिन था। फिर भी जीवन रक्षा के लिए और कोई उपाय नहीं था। इसलिए कठिनाइयों के बावजूद सबने इसका स्वागत किया और इस प्रयास के अच्छे परिणाम भी मिले, परंतु एक-दूसरे से शारिरिक दूरी बरतने के निर्देष का ठीक से पालन न करने की स्थितियां कई जगह दिखती रहीं। अभी भी दिख रही है। इसी कारण लॉकडाउन को बढ़ाने और अधिक कोरोना मरीजों वाले इलाकों में पहले से ज्यादा सख्ती बरतने का फैसला लेना पडा़।

नागरिक जीवन के सामनें उठने वाली बहुत सी समस्याओं के लिए सरकार की ओर से यथासंभव प्रयास किया जा रहा है, लेकिन वैकल्पिक व्यवस्था लागू करना आसान नहीं। कोरोना के खिलाफ मानवता की यह जंग अभूतपूर्व है। आज के युग में साप्ताहिक अवकाश या किसी खास प्रयोजन पर कुछ दिनों का अवकाश लेकर लोगों को घर पर रोकने का अभ्यास है, अन्यथा नौकरी या व्यवसाय के लिए तय समय पर घर से बाहर जाना और लौटना सामान्य दिनचर्या होती है। इस पर विराम लग गया है और लगभग सभी अपने-अपने घरों में रहने को बाध्य है। संक्रमण का खतरा इतना अधिक है कि कहा नहीं जा सकता कि कब, कौन उसकी चपेट में आ जाए? कोरोना वायरस से भय के साये में जीवन बिताना आसान नहीं है। यह जीवनशैली नई है और इसके फलस्वरूप आ रहा अप्रत्याशित बदलाव समाज के सभी वर्गो के लोगों के जीवन में व्यक्तिक्रम ला रहा है। कि विभिन्न आयु वर्गो के लोगों को अपने अभ्यस्त जीवन और सुपरिचित भूमिकाओं को नए ढंग से परिभाषित करने और आवश्यकतानुसार नए ढंग से नियोजित करने की जरूरत पड़ रही है। अनिश्चय के इस दौर में शारीरिक दूरी का अनुभव बहुतों के लिए चिंता, थकान, तनाव को बढ़ाने वाला साबित हो रहा है। कुछ लोग तो अवसाद का शिकार हो रहे हैं। लोगों में भावनात्मक उलझनों के साथ असुरक्षा का भाव भी बढ़ रहा है। खान-पान का गड़बड़ और नींद में व्यवधान की शिकायतें भी मिल रही हैं। हालांकि हर व्यक्ति इस अकस्मात आई परिस्थिति के प्रति अलग-अलग ढंग से प्रतिक्रिया करता दिख रहा है, लेकिन इस कठिन दौर में परिवर्तित जीवन दशाओं को स्वीकार कर जीवन की सार्थकता की तलाश जरूरी है। इसलिए सभी के लिए भय और चिंता से मुक्त होकर व्यवस्थित जीने का क्रम बनाना जरूरी है। चूंकि माता-पिता बच्चों के लिए आदर्श यानी रोल मॉडल होते है। अतः बच्चों से बातचीत करने के लिए इस अवसर का उपयोग किया जाना चाहिए। सोशल मीडिया पर तैरती सूचनाओं और अफवाहों के समुद्र से बचना और विश्वसनीय सूचना पर भरोसा करना होगा। ऐसे ही कल्पित समस्याओं से भी बचना होगा। घर की साफ-सफाई और निजी स्वच्छता के साथ संतोष और धैर्य से काम लेना होगा। अपनी रक्षा और पड़ोसियों की सहायता की कोशिश भी करनी होगी। इस संक्रमण से बचने और अपनी रक्षा करने के लिए जरूरी है कि संतुलित आहार, नियमित दिन-चर्या, शारिरिक व्यायाम और पहले से चल रही दवा का नियमानुसार सेवन किया जाए ताकि शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र सुदृढ़ बना रहे और वायरस को सेंध मारने का अवसर न मिले। मौसम में बदलाव के कारण भी शरीर की व्यवस्था पर ध्यान देना आवश्यक है। बुजुर्गो और बच्चों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अगर आज की बात करें तो सारी दुनिया कोरोना वायरस से परेशान और डरी हुई है। कोरोना वायरस के मामले भारत में भी लगातार बढ़ रहे हैं। अभी हमारे पास समय है जिससे हम एहतियाती कदम उठा सकते हैं। इन्ही उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कोरोना (कोविड-19) के विरूद्ध शारिरिक प्रतिरोध क्षमता में योग के महत्व को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है।

आलेख

कोरोना वायरस की रोकथाम एवं उपचार के लिए कोई दवा या वैक्सीन नहीं है। ऐसे में आप अपनी सेहत पर विशेष ध्यान दें। नियमित रूप से हाथ धोएं। खांसते और छींकते समय नाक और मुॅह पर रूमाल या टिष्यू पेपर से रखें। जिन व्यक्तियों में कोल्ड

और फ्लू के लक्षण हों उनसे दूरी बनाकर रखे, भीड़कर वाली जगहों पर जानें से बचे। इम्यूनिटी बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थों के सेवन से हम कोरोना वायरस से बचाव कर सकते हैं। कोविड-19 से जो संक्रमित थे उनमें 3.5 प्रतिशत लोगों की मौत हुई है जबकि 96.5 प्रतिशत लोग ठीक भी हुए हैं। मरने वाले 3.5 प्रतिशत लोगों में वो लोग हैं, जिनकी शारीरिक प्रतिरोध क्षमता कमजोर थी। अत: कोरोना वायरस से बचाव के लिए इम्यूनिटी बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थों के सेवन से हम इससे बचाव कर सकते हैं। जैसा कि बताया गया है कि अपने हाथों को नियमित रूप से धोना कोरोना वायरस की रोकथाम के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। वहीं, दूसरी ओर रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए इन चीजों का सेवन भी कर सकते है, जैसे अदरक, तुलसी, कच्ची हल्दी, शहद साथ में लें या आंवले का मुरब्बा,जो शहद में बना हो, लें। लहसुन की दो कली और शहद को रोजाना साथ में लें क्यों कि इसमें एलिसिन पाया जाता है, जिसके सेवन से शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।[3]

कोविड-19 की वजह से लॉकडाउन के कारण लोग घरों में सुरक्षित हैं। इस वक्त जरूरी है कि हम अपनी शारीरिक प्रतिरोधकता को मजबूत बनाएं। योग, प्राणायाम एवं आहार में थोड़ा परिवर्तन करके आप अपनी इम्यूनिटी मजबूत कर फेफड़ो के जरिए शरीर में पहुंचने वाले संक्रमण से बचाव के लिए रक्षा प्रणाली को प्राकृतिक रूप से मजबूत कर सकते हैं। इनसे आपको इस मुश्किल दौर में तनावमुक्त रहने व चिंताओं को दूर रखने में मदद भी मिलेगी। दिन की सही शुरूआत करने के लिए सुबह उठकर सबसे पहले गुनगुना पानी पीएं। यह 'ऊशापान' सदियों पुराना भारतीय तरीका है जिससे पूरी रात शरीर में एकत्रित होने वाले विशैले तत्व शरीर से बाहर निकल जाते है। इसके अलावा सुबह-सुबह एक-एक चम्मच सहजन की पत्तियों का चूर्ण व आंवला का चूर्ण गुनगुने पानी में मिलकर पीने से आपकी शारीरिक प्रतिरोध बढ़ती है। आप नींबू व शहद के साथ चाय में भी इसे ले सकते हैं।

शरीर की सही मालिश बच्चों के लिए जरूरी तो है ही साथ ही वयस्कों में भी यह काफी लाभदायक साबित होती है। मालिश की मदद से आप न केवल अपनी मांसपेशियों की मजबूती सुनिश्चित कर सकते हैं बल्कि थकान दूर करने, शरीर मजबूत बनाने और कई दूसरी बीमारियों से रक्षा में इसका लाभ ले सकते हैं। आयुर्वेद और नैचुरोपैथी में मालिश को बेहद अहम माना गया है। इसे कई बीमारियों के इलाज में प्रभावी माना जाता है। यह तन-मन को नई ताजगी देती है। सुबह नहाने के बाद तिल के तेल से मालिश करें। यदि तिल का तेल न हो, तो सरसों का तेल इस्तेमाल कर सकते हैं। यह वहिनियों की रूकावट को दूर कर शरीर में रक्त का संचार बढ़ाती है। धूप में सरसों के तेल की मालिश से शरीर में सूर्य की किरणों से मिलने वाला विटामिन-डी अच्छी तरह समा जाता है। इसमें विटामिन ई भी होता है, जिससे त्वचा की झुर्रिया दूर होती है। तिल के तेल में अल्ट्रावॉयलेट किरणों से रक्षा करने का प्राकृतिक गुण होता है। इसके नियमित इस्तेमाल से सूर्य की किरणों के सीधे संपर्क में आने पर भी इन किरणों के हानिकारक प्रभाव से रक्षा होती है, जिससे त्वचा पर बढ़ती उम्र के असर कम दिखते हैं। तिल के तेल में विशैले तत्वों को दूर करने के गुण होने के कारण इसे मालिश के लिए बहुत अच्छा माना गया है। इसकी मालिश से शरीर काफी शुद्ध हो जाता है।

अच्छी रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए पर्याप्त नींद लेना बेहद जरूरी होता है। नींद के दौरान हमारे शरीर की कोशिकाओं की मरम्मत व पुनर्निर्माण होता है। नींद के दौरान दिमाग शरीर की कोशिकाओं को 60 प्रतिशत तक सिकोड़ कर अपने अंदर के विशैले तत्वों को बाहर निकाल देता है। इस प्रक्रिया के सही तरीके से पूरा होने पर शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत होती है।[4]

दिन की शुरूआत में योग-व्यायाम आपको कई प्रकार के लाभ देते हैं शुरूआत सूर्य नमस्कार के साथ करे। सूर्य नमस्कार करने से आपमें ऊर्जा का संचार होता है तथा पिंगला नाड़ी सक्रिय होती है जिससे आपको दिन के काम करने के लिए ऊर्जा मिलती है। सूर्य नमस्कार के अलावा ऐसे आसन करें जो आपके शरीर एवं इसकी प्रतिरोधकता को मजबूत करते हैं। इनमें अधेमुख श्वानासन, उत्तनासन, भुजंगासन, प्रसारित पादोतानासन को शामिल कर सकते हैं। इनके साथ ही प्राणायाम भी शरीर में ऊर्जा चक्र सक्रिय करने में मदद करता है। प्राणायाम का मस्तिष्क तथा इसके मनोविज्ञान पर सकारात्मक असर भी पड़ता है। बार-बार माइग्रेन, थकावट या फिर सुस्ती की शिकायत कम इम्यूनिटी की वजह से होती है, जिसे प्रणायाम से दोबारा हासिल किया जा सकता है। भ्रामरी प्राणायाम कानों को बाहरी शोरगुल से बंद कर तथा अपना ध्यान अंदर की ओर केंदित कर तत्काल राहत प्रदान करता है। इससे तनाव कम

होता है एवं नींद न आने की समस्या का समाधान होता है। अनुलोम-विलोम की मदद से स्वांस नली की रोगनिरोधक शक्ति बढ़ती है। संपूर्ण रूप से देखा जाए तो प्राणायाम फेंफडों को नवऊर्जा देता है जिससे माइक्रोब्स के प्रति रोगनिरोधक क्षमता मजबूत होती है और आप परिवेश में संक्रमण होने पर भी स्वस्थ रहते हैं।

आचार्य द्विवेदी ने नाथयोग साधना के प्रसंग में बताया है कि मेरूदण्ड जहाँ सीधे जाकर वायु और उपस्थ के मध्य भाग में मिलता हैं वहाँ एक स्वयंभू लिंग है जो एक त्रिकोण चक्र में स्थिति है, इसे अग्निचक्र कहते हैं। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। यह कुण्डलिनी ब्रह्मद्वार को अवरुद्ध कर सोयी हुई है इसे जगाकर षिव से समरस कराना योगी का लक्ष्य है। यह लक्ष्य अन्य साधना-विधियों से भी प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु चाबी से जिस प्रकार हठात् ताला खुल जाता है उसी प्रकार कुण्डलिनी के उद्बोधन से हठात् मोक्षद्वार भी अनायास खुल जाता है। हठात् मोक्षद्वार खोलने की यह विधि ही हठयोग है[5] ऐसा गोरक्षषतक में भी कहा गया है। षिवसंहिता में कहा गया है कि योग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना योग की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए योगी सद्गुरू द्वारा बताये गये मार्ग से योग साधना में प्रवृत्त होता है।[6] अस्तु नाथयोग-साधना के क्रम में यथावसर पुनः योग साधना का विवरण देने के पूर्व नाथयोगियों में प्रचलित तथा नाथपंथी सिद्धान्त ग्रंथों में प्रायः वर्णित अष्टांगयोग का यथावष्यक निरूपण किया जा रहा है। यम अष्टांग योग साधना में पातंज्जल योग के समान ही प्रथम अंग है। किन्तु पतंज्जलि ने जहाँ इसके अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच ही यम बताये है वहाँ हठयोग प्रदीपिका में अहिंसा, सत्यस, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तो पातंजल योग के समान ही है किन्तु इसमें क्षमा, धृति, दया, ऋजुता, मिताहार और शौच सहित कुल दस यम बताये हैं।[7] इसके अन्तधौति, दन्तधौति, हृदयधौति और मूलषोधन नामक चार प्रकार हैं जिनसे साधक अपने शरीर को स्वस्थ बनाते हैं। इनमें अन्तधैति के वातसार, वारिसार, वह्सिार और बहिश्कृत भव चार प्रकार के भेद बताये गये हैं। धौतिकर्म के प्रभाव से श्वास, कास, प्लीहा और कुष्ठ तथा बीस प्रकार के कफजन्य रोग दूर होते हैं ऐसा इस अभ्यास का फल बताया गया है।[8] विभिन्न द्रव पदार्थों द्वारा नासिका मार्ग की सफाई करने की क्रिया नेति कहलाती है। यह नाक, कान, कंठ और मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों में लाभदायक है। जल, सूत्र, दुग्ध, तेल या धृत आदि माध्यमों के कारण इसके अनेक भेद बताये गये हैं। शट्कर्मो में एक क्रिया त्राटक है, किसी लक्ष्य विशेष को एकाग्रता के साथ आँसू निकलने तक निर्निमेश देखने की क्रिया त्राटक कहलाती है।[9] इसके अन्तः, मध्य और बाह्य तीन भेद बताये गये हैं इससे नेत्रगण दूर होते हैं, स्मरण-शक्ति आदि बढ़ती है तथा मन की उद्विग्नता भी शान्त होती है। पाँचवाँ शट्कर्म कपालभाति है। लोहार की धौंकनी के चलने के समान वेगपूर्वक रेचक और पूरक प्राणायाम ही कपालभाति कर्म कहलाता है इससे मस्तिष्क के तमाम विकारों को दूर कर प्राणशक्ति द्वारा कपाल का शोधन किया जाता ह। वातक्रम, व्युम्क्रम और शीतक्रम के भेद से इसके भी तीन भेद बताये जाते हैं।[10] कंधे को सामने की ओर झुकाकर अपने पेट की दाहिनी और बांयी और तेजी से इधर-उधर घुमाना नौलिकर्म कहा गया है, यह भी शट्र्म की एक विधि है और योग की अन्य क्रियाओं में शीर्श स्थानीय बतायी गयी है।[11] इससे मंदाग्नि नष्ट होती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पाचन शक्ति बढ़ती है और विभिन्न प्रकार के वात-विकार नष्ट होते है।[12]

निष्कर्ष

कोरोना (कोविड-19) के संक्रमण के मामले भारत में भी बहुत तीव्र गति से बढ़ रहे है, जिसके कारण कोरोना के मरीजों की संख्या भी तीव्र गति आई है। ऐसे में आवश्यक है कि हमें अपनी दिनचर्या, खानपान, रहन-सहन की आदत, पुरानी मान्यताओं को बदल दें और यह परिवर्तन केवल भारत में ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व हो रहे है। ऐसे समय में भारत योग के माध्यम से शारिरिक प्रतिरोध का विकास कर न केवल अपने लोगों के स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है बल्कि सम्पूर्ण विश्व को योग का रास्ता दिखा सकता है। पूर्व की भांति विश्व का मार्गदर्शक बन सकता है। वर्तमान समय में योग का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप उभरा है उस पर भी व्यापक कार्य करना होगा। निश्चित रूप से योग के अन्दर वह क्षमता है जिसके माध्यम से भारत के साथ-साथ विश्व कोरोना जैसी वैश्विक महामारी से निपटने में सक्षम होगा। बस आवश्यक है सही प्रतिबद्धता और प्रषिक्षण की जो भारत द्वारा ही सम्भव है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 कुंदन कुमार "नया वायरस, एहतियात ही उपाय" राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, 4 अप्रैल 2020, पृष्ठ-4
2. डॉ. मंजू नाथ और डॉ. अनंत भान, "समय को हाथ से न निकलने दे", राष्ट्रीय सहारा हस्तक्षेप, 7 मार्च 2020, पेज-02
3. देवव्रत शर्मा, "इम्यूनिटी बढ़ाने पर दे ध्यान", राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, 21 मार्च, 2020 पेज-02
4. मनीषा खरबदा, "सुबह की सही शुरूआत", दैनिक जागरण, 22 अप्रैल 2020, पृष्ठ-8
5. नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ 138 एवं 139
6. शिवसंहिता, पृष्ठ 5/217
7. हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं. 1/17
8. वही, पृष्ठ 30
9. वही, श्लोक सं. 2/31
10. हठयोग स्वरूप एवं साधना, योगी आदित्यनाथ, पृष्ठ 43
11 हठयोग प्रदीपिका, श्लोक सं. 2/33.34
12. वही

रवीन्द्रनाथ और महादेवी के काव्य में मानववादी चिंतन

अंजू सिंह

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग खान्द्रा कॉलेज, खान्द्रा (पं. बगाल)

मानववादी चिंतन वह विचारधारा है जो मानव-मूल्यों, उस से संबंधित विषयों पर ध्यानाकर्षण करती हैं। मूल रूप से मानव-मात्रा के हित की भावना ही मानववाद के केंद्र में है। दार्शनिक सिद्धांत के रूप में मानववाद आधुनिक युग की देन है, किन्तु यह विचार नया नहीं है। मध्ययुग में हम देखते है कि, चिंतन के केंद्र में मनुष्य नहीं ईश्वर था, भौतिक सन्दर्भ नहीं आध्यात्म था। वैज्ञानिक और भौतिक विकास के परिणामस्वरूप मानव के चिंतन में परिवर्तन आया। आध्यात्मिकता से मनुष्य की यात्रा इहलौकिकता की ओर बढ़ी और चिंतन का केंद्र मनुष्य बना। पूंजीतांत्रिक व्यवस्था ने मनुष्य को पण्य में बदल दिया फलत: उसके परम्परित मूल्य में गिरावट आयी। नये मूल्यों की तलाश हुयी। एक ओर साधन संपन्न वर्ग सब कुछ के रहने पर भी तनावग्रस्त था तो दूसरी ओर विपन्न मनुष्य अपने अभाव के कारण तनावग्रस्त रहा। यही विडम्बना आधुनिक मनुष्य के साथ रही। इसी बात को कविगुरु रवीन्द्र और महादेवी समझती थी।

वैचारिक पृष्टभूमि

हिंदी छायावाद के प्रमुख चार स्तम्भ हुए - जयशंकर प्रसाद (1890-1937 ई.), सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (1897-1961 ई.), सुमित्रानंदन पंत (1900-1977 ई.) एवं महादेवी वर्मा (1907-1987 ई.)। ये सभी रचनाकार रवीन्द्र साहित्य से परिचित और प्रभावित थे। महादेवी इनके प्रत्यक्ष संपर्क में रहीं, अत: उनके साहित्य में अनजान मनुष्य के प्रति सहानुभूति, करुणा तथा हतोत्साहित मनुष्य को उत्साहित करने का भाव ही उनकी चेतना में सन्निहित हैं। रवीन्द्र साहित्य के समीक्षक डा० शिवनाथ जी ने रवीन्द्रनाथ के मानववादी चिंतन के सन्दर्भ में कहा हैं कि, "रवीन्द्रनाथ ने ऐसे उपेक्षित मानव को अपने पूरे साहित्य में सम्पूर्ण हमदर्दी के साथ याद किया हैं; उनके साहित्य के लिए ये लोग अनजान नहीं हैं; देश समाज के लिए इनके महत्त्व को उन्होंने छोटा नहीं समझा है, उस समाज के प्रति ऐसी निगाह से देखने के कारण ऐसे सभ्य समाज को उन्होंने धिक्कारा भी कम नहीं है। सामान्य आदमी के प्रति किए गए दुर्व्यवहारों का लंबा-चौड़ा उल्लेख रवीन्द्रनाथ ने किया है।"1 दूसरी ओर महादेवी भी समाज में दुखी प्राणियों के उद्धार के लिए, उन्हें अपनाती और उनके व्यर्थ हो गये जीवन को संघर्ष के आलोक में प्रज्ज्वलित रहने की प्रेरणा देती रहीं। संभवत: उनके निजी जीवन का संघर्ष, स्त्री होने कारण अधिकता के साथ उत्पन्न हुआ हो इसलिए शोषित वर्ग के लिए उनके हृदय में अपार संवेदना ने जन्म लिया और उन्हें अति संवेदनशील बनाया। इसी संवेदना ने उनके व्यक्तित्व को स्नेह,समता, बंधुता, आत्मीयता जैसी भावनाओं से समृद्ध किया। उनके अनुसार - "जब मनुष्य के हृदय और बुद्धि की परिधि परिवार ही था, तब उसी के प्रसाधन-संरक्षण तक उसकी आस्था सीमित थी। जैसे-जैसे उसकी बुद्धि और हृदय ने समाज, ग्राम, नगर, देश आदि के क्रम पार कर विश्व की सत्ता को स्वीकार किया, उससे रागात्मक संबंध जोड़े, वैसे-वैसे ही उसकी आस्था नये क्षितिजों को अपनाती गई। व्यक्ति जैसे-जैसे विश्व तक फैल गया वैसे ही उसके सुख-दुखों का विस्तार हुआ। दुख भोजन-वस्त्र के प्रत्यक्ष अभाव से लेकर परतंत्रता, उपेक्षा, अप्रतिष्ठा आदि की अप्रत्यक्ष भावना तक फैल गया है। सुख शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति से लेकर स्नेह, समता, बंधुता, आत्मीयता जैसी भावनाओं में सूक्ष्म व्यापकता पा गया है। आज किसी को भोजन-वस्त्र देना मात्र पर्याप्त नहीं है, उसे स्नेह और बंधुता की छाया

भी देनी होगी। और यह एक की नहीं विश्व भर की आवश्यकता है।"2 कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर और छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का जन्म भले ही अभिजात्य परिवार में हुआ हो लेकिन साधारण मनुष्य के प्रति उनकी करुणा, दुख, सहानुभूति, बंधुता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

मानवप्रेमी रवीन्द्रनाथ का पूरा जीवन, समग्र साहित्य तथा उनके चिंतन के केंद्र में मनुष्य और उसकी मनुष्यता ही रही है। संघर्ष ही मनुष्य को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा है। संभवत: तभी रवीन्द्रनाथ, प्रत्येक संघर्षशील मनुष्य को अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहने की सलाह देते हुए कहते है–

"यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे तबे, एकला चलो रे।
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे।"[3]

अंतत: यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि, रवीन्द्रनाथ इस विश्वमंच पर अवतरित नये मानव का सही मूल्यांकन करने में कितने सफल रहें हैं। राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक जीवन चक्र में उलझे नये मानव को उनका क्या संदेश हैं। जीवन यात्रा में विघ्न बाधाओं से हार न मानने का संकल्प और आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा रवीन्द्रनाथ के काव्य में देखने को मिलता है। जब वे हारे मन को हौसला बंधाते हुए कह उठते हैं, 'तुम एक बार निर्भीक होकर, अपनी पूरी आस्था समेटकर साहस के साथ खड़े तो हो जाओ, तुम्हारी विजय निश्चित है।' इतिहास साक्षी है, अन्याय होता रहा है। तो क्या मनुष्य चुपचाप सबकुछ सहता रहे? नहीं; कभी नहीं, मानवता की रक्षा के लिए नये मानव को संघर्ष के साथ विघ्न बाधाओं का डटकर सामना करना होगा। कवि रवीन्द्र कहते हैं -

"नहीं भय, होगी होगी जय, खुलेगा द्वार -
जानता तेरी बंधन डोर टूट ही जाएगी हर बार।
कि अपने को खोकर क्षण क्षण, सो रहा है तू निद्रालीन,
किन्तु पाना ही होगा तुझे निशा पर अपना वह अधिकार।"[4]

रवीन्द्रनाथ का पूरा जीवन उनका चिंतन इस बात को प्रमाणित करता रहा कि, उन्होंने मनुष्य और मनुष्यता में कभी अपने विश्वास को पराजित नहीं होने दिया। जीवन के अंतिम वर्ष, 14 मई 1941 को शांतिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ ने बंगला नव-वर्ष के उत्सव में 'सभ्यातर संकट' (सभ्यता का संकट) विषय पर दिए अपने अंतिम सन्देश में कहा था, "मनुष्य के प्रति विश्वास खो देना पाप है।"[5] इसका अंग्रेजी अनुवाद 'क्राइसिस इन सिविलाइजेशन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

दूसरी ओर महादेवी की दृष्टि तो सदा ही जीवन और उसके अभिन्न अंग मानव पर ही केन्द्रित रहीं हैं। उनकी कविता का दीपक तो शुरू से ही अंधकार को पराजित करनेवाला साहसी रूप धारण करता रहा हैं। उनका दीपक डटकर अँधेरे से लड़ता हुआ अविराम जलता रहता हैं -

"आलोक यहाँ लुटता है,
बुझ जाते हैं तारागण
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन!"[6] *(नीहार काव्य संग्रह-1930, गीत संख्या-15)*

रात के आसमान में घनघोर अँधेरा है, तारे भी बुझ गए हैं। अकेला दीपक अविराम जलता है। वह अकेला ही अंधकार से लड़ता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे दीपक ने प्रण कर लिया हो कि, कितनी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो वह अँधेरे से पराजित नहीं हो सकता। महादेवी की कविता का दीपक जहाँ एक ओर लड़ने का संकेत देता है,वहीं दूसरी ओर वह संघर्ष का भी प्रतीक है। जहाँ दीपक है, वहाँ प्रकाश और अंधकार दोनों साथ रहते है। जब कोई विषम परिस्थिति में संघर्ष के लिए संकल्प लेता है तब अंधकार रूपी बाधा उसके मार्ग को अवरुद्ध करने का प्रयास करता है। यह दीपक अपनी पूरी आस्था समेटकर हार न मानने के

संकल्प के साथ अंधकार रूपी बाधा का सामना करता हुआ, जलता रहता है। वह कभी नहीं बुझता। दृष्टव्य है, 1942 में प्रकाशित दीपशिखा काव्य संग्रह की कुछ पंक्तियाँ –

"दीप मेरे जल अकंपित, घुल अचंचल!"[7] *(दीपशिखा, गीत संख्या-1)*

° ° °

"सब बुझे दीपक जला लूँ

घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूँ!"[8] *(दीपशिखा, गीत संख्या-5)*

महादेवी के गीतों का 'मैं' किसी व्यक्ति विशेष की परिधि तक सीमित नहीं हैं। वह 'मैं' आवाज उठाता हैं, उन तमाम दबे, कुचले, शोषित और निराश हो चुके दुखी प्राणियों के उद्धार के लिए। उनके व्यर्थ हो गए जीवन को एक अर्थ देते हुए, उन्हें प्रेरित करता है कि अपनी की लौ को कभी न बुझने देना। निर्भय रहकर दृढ संकल्प के साथ अपनी आस्था संभालना। सही मायने में किसी को आदर्श का उपदेश देना बहुत सहज होता है। महादेवी उन व्यक्तिओं में से नहीं है। वे समाज में उपेक्षित व्यक्तियों के बीच रहकर उनके उद्धार के लिए लगातार प्रयत्नशील रहीं हैं। जीवन के कठोर अनुभव औरहृदय में अपार करुणा ने उन्हें दीनो और शोषितों की सेवा से जोड़ दिया। महादेवी की रचनाओं का मूल स्त्रोत करुणा है, जिसमें पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति संवेदना के साथ मनुष्य को जागृत करने की भावना और विश्व-कल्याण के प्रति कर्त्तव्य-बोध भी है।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ स्वभावगत मानववादी थे। साधारण शोषित मनुष्य के प्रति उनकी असीम सहानुभूति और करुणा का भाव ही उनकी मानवीय चेतना है। इसलिए मानव के सुख-दुख की जीवंत संवेदना में कवि जीवित रहने की आकांक्षा रखते हैं। उन्होंने समाज में तिरस्कृत निम्नवर्ग को मानवता के अधिकारों का योग्य पात्र माना है। 'गीतांजलि' में संकलित 'अपमानित' शीर्षक कविता में कवि रविन्द्र कहते हैं कि, 'मनुष्य को स्पर्श से प्रतिदिन दूर करके, तुमने मनुष्य के प्राणों के देवता से घृणा की है। उनके साथ अन्न-जल बाँट कर खाना होगा और अपमान में भी उनके सामान होना होगा द्य' उदाहरण दृष्टव्य है –

"मनुष्य के स्पर्श को प्रतिदिन दूर हटाते हुए

तुमने मनुष्य के प्राणों के देवता से घृणा की है।

विधाता के भयंकर रोष से अकाल के द्वार पर बैठ

उन सबके साथ बाँट कर तुम्हें अन्न-जल खाना होगा।

अपमान में उन सबके समान होना होगा।"[9] *(गीतांजलि, गीत संख्या-108)*

यहाँ कवि रवीन्द्र दबी हुई मानवता के उत्थान के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। वे आत्म समर्पित होकर मानव के अधिकार की बात करते हैं। कवि का हृदय अजस्त्र मानव प्रेम से भरा हुआ है। उनका मानना हैं कि ईश्वर को मानव का सामान्य, सच्चा और कर्मठ रूप ही प्रिय है। ईश्वर को साधारण जन-जीवन के बीच ही पाया जा सकता हैं। 'गीतांजलि' काव्य संग्रह में संकलित 'जहाँ सबसे अधम' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं, जहाँ रहते सबसे अधम, दीन से भी दीन, वही तुम्हारे चरण विराजते हैं; सबसे पीछे, सबसे नीचे, सर्वहारा जन के बीच। उदाहरण दृष्टव्य है –

"जहाँ सबसे अधम, दीन से भी दीन रहते हैं,

वहीं तुम्हारे चरण विराज करते हैं

सबसे पीछे, सबसे नीचे,

सर्वहारा जन के बीच द्य"[10] *(गीतांजलि, गीत संख्या-107)*

रवीन्द्रनाथ विश्व – मानवतावाद के हिमायती थे। वे 'यत्र विश्वं भवति एक नीड़म' के स्वप्नद्रष्टा थे। उन्होंने जहाँ भी मनुष्य और मनुष्यता का अपमान होते देखा, उसका तीखा विरोध किया।

भारतीय समाज में पुरुष को मनुष्य होने का दर्जा प्राप्त है जबकि स्त्री इससे वंचित रहीं है। महादेवी स्त्री की दयनीय स्थिति को अच्छी तरह समझती थी। स्त्री-मुक्ति के सन्दर्भ में, महादेवी विश्व के अग्रदूतों में गिनी जाती है। नारी विमर्श पर आधारित सिमोन

द बोउवार की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' का प्रकाशन 1949 और इससे सात वर्ष पूर्व 1942 में महादेवी की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' प्रकाशित हुई। सिमोन द बोउवार के अनुसार 'नारी पैदा नहीं होती, वह बनाई जाती है', जबकि महादेवी कहती हैं, 'भारतीय नारी जन्म से ही अभिशप्त है' इसलिए महादेवी ने भारतीय समाज में जन्म से अभिशप्त, जीवन से संतप्त, उपेक्षित, अपमानित स्त्री को जागृत करने का प्रयास किया हैं।

समाज में व्याप्त अन्यायों, रुढियों, दुख को देखकर महादेवी की आत्मा विद्रोह कर उठती है। महादेवी स्त्री की पौराणिक छवि को तोड़ने का प्रयास करती है। स्त्री की अत्यधिक संयमशीलता और धैर्यशीलता उसके दुख का कारण बनी क्योंकि पुरुष-प्रधान समाज ने स्त्री के इन्हीं गुणों के कारण उनका शोषण किया हैं। दूसरी ओर स्त्री की यह प्रवृति उसकी शक्ति एवं संकल्प का भी प्रमाण है। जिस प्रकार विशाल आकाश का कोई भी कोना बदली का नहीं होता, उसी तरह पितृसत्तात्मक समाज का कोइ भी कोना स्त्री का नही होता। दृष्टव्य है, सांध्यगीत (1936) में संकलित 'मै नीर भरी दुख की बदली' की कुछ पंक्तियाँ-

"विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।"[11] *(सांध्यगीत, गीत संख्या-21)*

महादेवी के गीतों में, वेदना के गहन अंधकार में भी आशा की किरण दिखाई पड़ती हैं। अज्ञानता के अंधकार में निष्क्रिय और निराश हो चुकि स्त्रियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित करती हैं। महादेवी कहती हैं –

"पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!
◦ ◦ ◦ ◦
अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दुखव्रती निर्वाण उन्मद
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला!"[12] *(दीपशिखा, गीत संख्या-2)*

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि, महादेवी के स्वर में आशा रूपी पाथेय को कभी न भूलने की प्रेरणा है। यहाँ चुनौती है, सभी परिचित रास्तों को छोड़कर संघर्ष के साथ नए मार्ग पर अकेले चल सकने की और संकल्प के साथ संघर्ष में भी अपनी असीम शक्ति को आलोकित करने की। गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार– "पीड़ितों के प्रति ममता, उपेक्षितों के प्रति उदारता, शोषितों के प्रति सहानुभूति, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सुझाव के साथ क्षमा आदि के अनुपम सम्मिश्रण से जिस साहित्य-सरिता का उद्‌गम होगा, वह युग-युग तक अपनी शीतलता से जीवन से थके-संतप्त हृदयों का सिंचन करती रहेगी, यह तो सभी मानेंगे।"[13]

निष्कर्ष

मानवीय धरातल पर कविगुरु रवीन्द्रनाथ और छायावादी कवयित्री महादेवी हमारी समझ के दायरे से कहीं ज्यादा ऊपर हैं। उनकी मानवीय चेतना में जीवन-मूल्यों से संबंधित, सामान्य जन जीवन के प्रति करुणा, सेवा, समर्पण के साथ दृढ-संकल्प का भाव निहित है। आज विश्व जीवन के हर क्षेत्र में विकास कर रहा है, सम्पूर्ण भौतिक संसाधनों से समृद्ध हो रहा है तो दूसरी ओर कराह और चीत्कार से भरा हुआ भी है। वैश्विक संकट ने मनुष्य को अँधेरे दौर में ढकेल दिया है। इस संकट की घडी में हमें उस महान विरासत का स्मरण करते हुए, उन्हीं की तरह अपराजित विश्वास को हासिल कर संघर्षरत एवं आशावादी होना होगा। यही दृष्टिकोण विश्व – मानवता को स्थापित करता है।

सन्दर्भ

1. शिवनाथ, रवीन्द्र साहित्य की समीक्षा, हिंदी समिति प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण - 1976, पृ.- 300-301
2. सं. निर्मला जैन, महादेवी साहित्य (खण्ड-4), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण-2007, पृ.-167 (साहित्यकार की आस्था)
3. प्र. सं. इन्द्र नाथ चौधुरी, रवींद्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-4 (गीत, भाग-1), सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृ.-132
4. वहीं, खण्ड-5 (गीत भाग-2), पृ.-122
5. वहीं, खण्ड-32 (भारतवर्ष में इतिहास की धारा तथा अन्य निबंध), पृ.- 77
6. सं. निर्मला जैन, महादेवी साहित्य (खण्ड-1), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण- 2007, पृ.-45
7. वहीं, पृ.-311
8. वहीं, पृ.-319
9. प्र. सं. इन्द्र नाथ चौधुरी, रवींद्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-2 (कविता, भाग-2) पृ.-149
10. वही, पृ-147
11. सं. निर्मला जैन, महादेवी साहित्य (खण्ड-1), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण-2007, पृ.-273
12. वही, पृ-313
13. गंगाप्रसाद पाण्डेय, महीयसी महादेवी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2007, पृ.- 331

आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर प्रभाव

डॉ० प्रियंका चतुर्वेदी

199K, (Muni Kunj), Dargahia Nandanagar, Post-Kunaraghat, Dist-Gorakhpur, (U.P)

सार

प्राचीन समय से ही हमारे जीवन मूल्य संस्कृति एवं सामाजिक नियंत्रण का आधार रहे हैं। आधुनिक समय में परिवर्तन के इस दौर में इन जीवन मूल्यों में परिवर्तन हो रहे हैं, जिसका प्रभाव समाज पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी समाज का हिस्सा होता है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है, उसका उस पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज से ही भाषा-बोलचाल, संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज, परम्परायें, मेल-मिलाप, मूल्य, रहन-सहन का तरीका आदि सीखता है। व्यक्ति के आस-पास का समाज, जिससे वह जीवनपर्यन्त प्रभावित रहता है, सामाजिक परिवेश कहलाता है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज में ही रहता है, जो उसे पशुओं से भिन्न करता है। सामाजिक परिवेश में ही व्यक्ति आजीवन बचपन से लेकर वृ)ावस्था तक विभिन्न स्थितियों के अनुसार अपनी भूमिका का निर्वहन करना सीखता हैं, जैसे बचपन में पुत्र, भाई, मित्र आदि के रूप में व्यवहार करना सीखता है। युवावास्था में पिता, पति, मित्र अथववा माता-पत्नी तथा कार्यक्षेत्र में व्यवसायी, पदाधिकारी तथा अन्य व्यवहारों को समय परिस्थिति एवं कार्यक्षेत्र के अनुसार सीखता है। स्थानों व कार्यक्षेत्र के अनुसार कार्य करना सीखता है। स्थानों व संस्कृतियोंके आधार पर सामाजिक परिवेश में भिन्नता पायी जाती है। उदाहरण के तौर पर पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति के सामाजिक परिवेश में भिन्नता पायी जाती है।

सामाजिक परिवेश में परिवेश से तात्पर्य समाज में होने वाले परिवर्तन से है। हम जिस समाज में रहते हैं, वह सामाजिक सम्बन्धों का जाल होता है। अतः सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य प्रत्यक्ष तौर पर सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन से है। इसके अंतर्गत सामाजिक मानक, सामाजिक पैटर्न, सामाजिक जीवन मूल्य आदि सभी आते हैं। प्रत्येक समाज में विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं। उन सभी के मूल्यों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं में भिन्नता पायी जाती है। हमारे समाज में प्राचीन समय से चले आ रहे जीवन मूल्यों में परिवर्तन स्पष्ट देखा जा सकता है। पूर्व समय में समाज में कृषि द्वारा जीवन यापन किया जाता था। संयुक्त परिवारों का प्रचलन था, कई पीढ़ी के सदस्य अपने परिवार के अन्य सदस्यों को, संस्कृति को हस्तान्तरित करते थे। धर्म की प्रधानता थी, समाज द्वारा स्थापित उच्च मानवीय मूल्यों जैसे- नैतिकता, ईमानदारी, सहयोग, समानता, उदारता, बड़ों का सम्मान, प्रेम, आपसी समझ, परोपकार, दूसरों के प्रति सद्भाव आदि को अधिक महत्व दिया जाता था।

किन्तु आधुनिक परिवेश में स्थिति इसके विपरीत है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, शहरीकरण, समाज में अपराध बढ़ते जा रहे हैं। लोग गांवों से शहरों की तरफ रूख करने लगे हैं, इसके भी कई कारण हैं, बेराजगारी, उच्च सामाजिक स्तर की लालसा, शहरों की चकाचौंध, पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव आदि। लोग पुरातन जीवन मूल्यों को प्रगति में बाधक मानने लगे हैं। आधुनिक समय में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अग्रिम पंक्ति में देखना चाहता है। संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ले लिया है। समाज में दिन-प्रतिदिन अपराध बढ़ते जा रहे हैं। आज समाज में वेश्यावृत्ति, बलात्कार, बुजुर्गों का परित्याग, माता-पिता के प्रति उपेक्षित

व्यवहार, झूठ बोलना, धोखाधड़ी दूसरों को नुकसान पहुंचाकर स्वयं आगे बढ़ना जैसी घटनाएं आम बातें हो गयी हैं। व्यक्ति कम समय एवं कम श्रम में अधिक भौतिक सुखों को प्राप्त करना चाहता है। इनके अतिरिक्त आज समाज ने तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी सराहनीय प्रगति की है, इससे भी सामाजिक मूल्यों में बदलाव आया है। एक तरफ जहां तकनीकी बदलाव में रोजमर्रा के जीवन को आसान बनाया है, ज्ञान में वृद्धि की है, वही दूसरी ओर अपराध को भी बढ़ावा दिया है। आज छोटे बच्चे भी मोबाईल एवं इंटरनेट का खुलकर उपयोग करते हैं। इन साधनों ने उन्हें इतना व्यस्त कर दिया है कि उनके मध्य आपसी संचार में कमी आने लगी हैं। आज माता-पिता भी बच्चों को सबसे आगे देखना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें अपने जीवन मूल्यों से समझौता करने की शिक्षा देने में भी नहीं हिचकते। साथ ही पश्चिमीकरण, फैशन, पाश्चात्य, सभ्यता का प्रभाव, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण आदि ने भी सामाजिक परिवेश को प्रभावित किया है।

इस प्रकार आधुनिक समय में परिवर्तन का सामाजिक जीवन मूल्यों में आये परिवर्तन का समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव देखा जा सकता है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ, ज्ञान में वृद्धि हुए, रोजगार के साधन बढ़े हैं, वहीं दूसरी तरफ परिवार की संरचना का विघटन हुआ, संयुक्त परिवारों का स्थान एकाकी परिवारों ने ले लिया है। लोग भौतिकता को अधिक महत्व देने लगे। समाज में अपराध में वृद्धि हुई, वेश्यावृत्ति, भ्रष्टाचार, झूठ, असहयोग, तलाक आदि घटनाएँ बढ़ने लगी। अत: समाज में जीवन मूल्यों में आये परिवर्तन का प्रभाव सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही देखा जा सकता है।

विधि

आधुनिक समय मेंसामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन के लिए 500 मध्यमवर्गीय महिलाओं का चयन किया गया, जिनकी आयु 40 वर्ष तक हो। इसके लिए एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। इस प्रश्नावली में 36 प्रश्न पूछे गये थे, जिन्हें अंक प्रदान कर संपूर्ण प्रश्नावली से समग्र योग वाला मूल प्राप्तांक प्राप्त किया। इसके साथ ही राजकुमार ओझा के मूल्य मापनी का भी उपयोग किया गया। इसके आधार पर चारों जीवन मूल्यों - सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं के प्रश्नावली के प्राप्तांकों के आधार पर मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात किये गये, जिनके आधार पर क्रान्तिक अनुपातों की गणना की गई, जिसके आधार पर जीवन मूल्यों के परिवर्तन का अध्ययन किया गया। ये विभिन्न समूह/जोडियाँ जिनके बीच अंतर ज्ञात किया गया, जो निम्नानुसार हैं–

1. सैद्धान्तिक एवं आर्थिक मूल्य
2. सैद्धान्तिक एवं सामाजिक मूल्य
3. सैद्धान्तिक एवं धार्मिक मूल्य
4. आर्थिक एवं सामाजिक मूल्य
5. आर्थिक एवं धार्मिक मूल्य
6. सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य

अंतर की सार्थकता सम्बन्धी परिणाम निम्नांकित सारण में प्रस्तुत किये गये हैं–

सारणी क्रमांक-1: सैद्धान्तिक एवं आर्थिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुंए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम।

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
सैद्धान्तिक मूल्य	161	45.75	7.47	0.15	> 0.05
आर्थिक मूल्य	137	45.90	6.18		

स्वतंत्रता के अंश - 3.96

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है कि सैद्धान्तिक एवं आर्थिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन का सामाजिक जीवन मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों समूहों के मध्य क्रान्तिक अनुपात 0.15 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणी मान की अपेक्षा कम हैं।

उपरोक्त परिणामों के आधार पर, दोनों समूहों की महिलाओं के मतों के आधार पर, निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर सैद्धान्तिक एवं आर्थिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सारणी क्रमांक-2: सैद्धान्तिक एवं सामाजिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
सैद्धान्तिक मूल्य	161	45.75	7.47	1.84	> 0.05
सामाजिक मूल्य	82	47.59	5.79		

स्वतंत्रता के अंश - 141

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है, कि सैद्धान्तिक एवं सामाजिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार सामाजिक जीवन मूल्यों में परिवर्तन का उनके जीवन मूल्यों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों समूहों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात 1.84 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणी मान की अपेक्षा कम है। अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर सैद्धान्तिक एवं सामाजिक मूल्य की महिलाओं की प्रतिक्रियाओं के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है, कि आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर सैद्धान्तिक एवं सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

सारणी क्रमांक-3: सैद्धान्तिक एवं धार्मिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
सैद्धान्तिक मूल्य	161	45.75	7.47	1.40	> 0.05
धार्मिक मूल्य	120	47.15	6.00		

स्वतंत्रता के अंश - 279

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है कि सैद्धान्तिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन का सामाजिक जीवन मूल्यों पर कोई सार्थक प्रभाव नहींपड़ा है। दोनों समूहों के मध्य क्रान्तिक अनुपात 1.40 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणी मान की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर सैद्धान्तिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं की प्रतिक्रियाओं के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामााजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर सैद्धान्तिक एवं धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

सारणी क्रमांक-4: आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
आर्थिक मूल्य	137	45.9	6.18	1.69	> 0.05
सामाजिक मूल्य	82	47.59	5.79		

स्वतंत्रता के अंश - 271

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है, कि आर्थिक एवं सामाजिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन का सामाजिक जीवन मूल्यों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों समूहों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर क्रान्तिक अनुपात 1.69 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणी मान की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर आर्थिक एवं सामाजिक मूल्य की महिलाओं के मतों के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

सारणी क्रमांक-5: आर्थिक एवं धार्मिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
आर्थिक मूल्य	137	45.9	6.18	1.25	> 0.05
धार्मिक मूल्य	120	47.15	6.00		

स्वतंत्रता के अंश - 255

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है, कि आर्थिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन का आधुनिक सामाजिक जीवन मूल्यों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों समूहों के मध्य क्रान्तिक अनुपात 1.25 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम मान की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर दोनों समूहों की महिलाओं के मतों के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर आर्थिक एवं धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

सारणी क्रमांक-6: सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन सम्बन्धी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुमान	'पी' मान
सामाजिक मूल्य	82	47.59	5.79	0.44	> 0.05
धार्मिक मूल्य	120	47.15	6.00		

स्वतंत्रता के अंश - 200

0.05 स्तर पर सार्थकता हेतु न्यूनतम सारणी मान - 1.97

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट होता है, कि सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन का आधुनिक सामाजिक जीवन मूल्यों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। दोनों समूहों के मध्य क्रान्तिक अनुपात 0.44 आया है, जो 0.05 स्तर पर निर्धारित न्यूनतम सारणी मान की अपेक्षा कम हैं।

अत: उपरोक्त परिणामों के आधार पर दोनों समूहों की महिलाओं के मतों के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

परिणाम एवं निष्कर्ष

आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में परिवार का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के परिणामों से स्पष्ट होता है कि विभिन्न सामाजिक जीवन मूल्यों में आये परिवर्तन का समाज पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा है। सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों के दो-दो के जोड़े हैं। **आधुनिक** समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव सम्बन्धी परिणामों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर प्राप्त नहीं हुए।

सामान्य रूप से आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में परिवर्तन का प्रभाव समाज पर दृष्टिगोचर हो रहा है। यह संभवत: विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के फलस्वरूप हो रहे हैं, उनके उपयोग से व्यक्ति का जीवन पूर्व की अपेक्षा अधिक सुखद एवं सरल हो गया है, जिसमें स्वयं काम करने में मेहनत एवं शक्ति लगती थी, वह भी अपेक्षाकृत कम लग रही है। यह सामान्य अवलोकन जिसमें सभी-प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति सम्मिलित हैं, अलग-अलग जीवन मूल्यों के व्यक्ति इसमें सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न सामाजिक जीवन मूल्यों की महिलाओं के संदर्भ में आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन का समाज पर प्रभाव के अध्ययन से सम्बन्धित है। न्यादर्श में चयनित महिलाओं में से विभिन्न जीवन मूल्यों में से सैद्धान्तिक, आर्थिक सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों की महिलाएँ उभरकर सामने आयी। इन मूल्यों वाली महिलाओं की प्रतिक्रियाओं से यह बात परिणामस्वरूप स्पष्ट हुई कि विभिन्न जीवन मूल्यों की महिलाओं के अनुसार आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में आये परिवर्तन का

समाज पर प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा है, क्योंकि दो-दो मूल्यों की जोड़ियां बनाकर उनके मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से अंतर देखा गया है, जो सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हुए।

चारों मूल्यों की महिलाओं के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में परिवर्तन सम्बन्धी मध्यमानों से स्पष्ट होता है कि सैद्धान्तिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्य की महिलाओं के मूल्य क्रमश: 45.73, 45.90, 47.97 एवं 47.15 है। यह मध्यमान यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि विभिन्न सामाजिक जीवन मूल्यों की महिलाओं के आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हुए परिवर्तन के परिणाम यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि सामाजिक जीवन मूल्यों में आये परिवर्तन का समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसका संभावित कारण जैसा कि पूर्व में बताया जा रहा है, कि विज्ञान और तकनीकी के फलस्वरूप होने वाले नये-नये आविष्कारों ने जीवन को सुखमय बनाया है, उसका प्रभाव आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में हो रहे परिवर्तन के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को सभी जीवन मूल्य की महिलाओं ने स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में एक और बात महत्वपूर्ण है कि इस परिवर्तन ने परिवार के विभिन्न सदस्यों के साथ-साथ समाज और देश के सभी नागरिकों के व्यक्तित्व में अंतर आया है। यह अंतर उनके व्यक्तित्वशील गुणों में अंतर के रूप में दिखाई पड़ता है। व्यक्तित्वशील गुण जिन्हें अप्रत्यक्ष रूप से जीवन मूल्यों के रूप में लिया जा सकता है, उनमें भी परिवर्तन हो रहे हैं, आधुनिक समय में सामाजिक जीवन मूल्यों में परिवर्तन ने समाज को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

अत: हम कह सकते हैं, कि समाजिक मूल्यों में आये परिवर्तन के कारण समाज में परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है जहां समाज में प्राचीन जीवन मूल्यों में, नैतिक मूल्यों, परोपकारिता, दया, सहयोग, ईमानदारी इत्यादि मूल्यों की प्रधानता थी, किन्तु आधुनिक परिवेश में भौतिकवादी मूल्यों का बोलबाला है, जिसे लोगों ने आगे बढ़कर स्वीकार किया है।

References:

- भार्गव, महेश (2010) आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा उन्नीसवाँ संस्करण, पृ. 525-527
- सिंह अरूण कुमार (2003) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, छठा संस्करण, मोतीलाल, बनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली।
- गुप्ता, एम0एल0 एवं शर्मा, डी0डी0 (2002), सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
- महाजन, डॉ0 धर्मवीर एवं कमलेश महाजन, भारत में समाज।
- आचार्य, लोकेश (2013), जीवन मूल्य, दैनिक जागरण द्वारा http//hindi.yahoo.com
- रंगा, श्यामनाराण (अभिमन्यु), (2012), संस्कारों का हास, गिरता जीवन मूल्य www.mppost.com
- www.wikipedia.org

सार्वजनिक उपक्रमों का भारतीय अर्थव्यवस्था में योगदान

डॉ० मो० इमरान आलम

+2 शिक्षक, अर्थशास्त्र विभाग, एल. एन. इण्टर स्कूल मलिकपुर, पीरपैंती, भागलपुर (बिहार)

शोध-सारांश

सार्वजनिक क्षेत्र राज्य की इकाई होती है। अत: वह अपने को राज्य के कल्याणकारी उद्देश्यों से अलग नहीं रख सकती तथा वे सरकारी निर्णयों से प्रभावित होती हैं। परन्तु, ताज़ा दौर जो बाजारीकरण का है, में बहुत ही रोचक घटना देखने को मिल रही है। उदारीकरण के बाद की अवधि में सार्वजनिक उद्योगों की लाभदयेता, कार्य कुशलता तथा गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ है। यह शोध के नये आयामों को जन्म देता है, जबकि जब राज्य की बढ़ती भूमिका थी तो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की लाभदेयता, कार्यकुशलता तथा गुणवत्ता आदि सभी निम्न स्तर की थी। परन्तु, उदारीकरण के बाद इन इकाइयों में सुधार हुआ तथा ये निजी क्षेत्र की तरह प्रतिस्पर्धी हो गयी, ऐसा क्यों हुआ? उदारीकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का समुचित विकास हुआ परन्तु, इन उद्योगों ने आवश्यकतानुसार रोजगार के अवसर सृजित नहीं कर सकें जबकि दूसरी तरफ निजी क्षेत्र के उद्योगों ने अपेक्षाकृत तुलनात्मक रूप से ज्यादा रोजगार के अवसर सृजित किया है। इसके साथ इसमें कोई दो राय नहीं है कि उदारीकरण के बाद बाज़ार की शक्तियों ने मूल्यों में अधिक वृद्धि किया है, जिससे सामाजिक कल्याण को ठेस लगा है।

मुख्य शब्द: सार्वजनिक उद्योग, औद्योगिक नीति, बाजारीकरण, उदारीकरण, औद्योगीकरण।

परिचय

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग से आशय प्राय: ऐसी सरकारी संस्थाओं से है, जो जनता के लिए वस्तुयें तथा सेवायें उसी रूप में प्रदान करती हैं, जिस रूप में इन सार्वजनिक उद्योगों के अभाव में निजी उद्योग प्रदान करते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग एवं निजी क्षेत्र के उद्योग के मध्य प्रमुख अन्तर उनके स्वामित्व के प्रकार का है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग सरकार के स्वामित्व में कार्य करते हैं जबकि निजी क्षेत्र के उद्योग निजी स्वामित्व में कार्य करते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा देश में निजी क्षेत्र के एकाधिकार को नियन्त्रित किया जाता है तथा देश की आर्थिक संसाधनों को विकेन्द्रीकरण के द्वारा देश में आय की असमानता में कमी आती है। चूँकि निजी क्षेत्र लाभ के उद्देश्य से कार्य करते हैं, अत: वे ऐसे स्थानों पर स्थापित होते हैं जहाँ उन्हें लाभ अधिक प्राप्त हो सके। इससे देश के पिछड़े व ग्रामीण क्षेत्र वंचित रह जाते हैं। इस उद्देश्य के लिए भी सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना आवश्यक होती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के पास आर्थिक संसाधन कम थे। इस कारण भारत में औद्योगिक विकास की संभावना कम दिखायी दे रही थी। अत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने औद्योगिक विकास की जिम्मेदारी स्वयं उठायी। 1948 तथा 1956 में सरकार ने औद्योगिक नीति की घोषणा की। 1956 की नीति में स्पष्ट कर दिया गया की भारी तथा मूलभूत उद्योगों का विकास सरकार स्वयं करेगी तथा इसी के तहत भिलाई, दुर्गापुर तथा राउरकेला में भारी उद्योगों की स्थापना की गयी। अत: ऐसे उद्योग जो सरकार के स्वामित्व में कार्य करते हैं उन्हें सार्वजनिक उद्योग कहते हैं। जबकि भारी उद्योग से तात्पर्य ऐसे उद्योग से है जिसमें बड़े

पैमाने पर पूँजी की आवश्यकता पड़ती है और ऐसे उद्योगों का उत्पादन स्केल बड़ा होता है।[1] भारत में पिछले दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को लेकर काफ़ी बहस होते रही है। इन बहसों में यह बहस भी रही है कि क्या सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को होना चाहिये या नहीं? वैसे ये बहस बहुआयामी रहे हैं तथा अपने अन्दर यह स्थानीकरण के मुद्दों से लेकर लाभदेयता, कुशलता, विकास तथा पर्यावरण को शामिल करता है। इसी संदर्भ में 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के सम्बन्ध में कई नीतियों में लोचशीलता लायी गयी जिसे उदारीकरण कहा गया। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्यप्रणाली को दो समयावधियों में बाँट कर देखा जा सकता है-

1. उदारीकरण के पूर्व,
2. उदारीकरण के बाद,

उदारीकरण के पूर्व की अवधि में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तथा 1991 के पूर्व की स्थिति की व्याख्या की जा सकती है जो वस्तुत: नेहरू-महालनोविस मॉडल पर आधारित थी। यह दौर ऐसा था जब देश में आधारभूत संरचना का अभाव था तथा निजी निवेश को आकर्षित करना कठिन था। जबकि, तेज आर्थिक संवृद्धि के लिये औद्योगीकरण की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को भारी उद्योगों में निवेश करके पूरा किया गया। वास्तव में इस पूरी अवधि में विकास का प्रारूप राज्य की बढ़ती भूमिका के साथ संचालित हुई तथा उद्योगों का विकास 'शिशु उद्योग' की तरह संरक्षणात्मक रहा।[2] राज्य के बढ़ते कार्यभाग ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को कुछ सीमित दायरे में रखा जिसके फलस्वरूप इनमें शिथिलता आ गयी। जिससे उन उद्यमों की लाभदेयता, गुणवत्ता तथा दक्षता पर प्रश्न चिन्ह खड़े हो गये। ये प्रश्न सामाजिक विकास से पूर्णत: अलग नहीं थे। वस्तुत: सार्वजनिक क्षेत्रों पर इस बात का भी आरोप लगा कि वे आर्थिक विषमता को जन्म दे रहे हैं। फलत: नीतियों की समीक्षा करने की आवश्यकता महसूस हुई। इन समस्याओं तथा आवश्यकताओं ने उदारीकरण को जन्म दिया।

उदारीकरण के बाद की अवधि में वर्ष 1991 से वर्तमान तक की अवधि की व्याख्या की जा सकती है। 1991-92 में सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के सम्बन्ध में कई नीतियाँ अपनायी गयी जैसे- आरक्षित उद्योगों को निजी क्षेत्र के लियेखोलना, सामान्य जनता व श्रमिकों की सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी को प्रोत्साहितकरने तथा साधन एकत्रण के लिये कुछ चुने हुए सार्वजनिक उद्योगों के शेयरों काविनिवेश करना, अस्वस्थ सार्वजनिक इकाइयों के लिये वही नीति अपनाना जो अस्वस्थनिजी इकाइयों के लिये अपनायी जाती है, तथा समझौता ज्ञापनों के जरिये सार्वजनिकउद्योगों के निष्पादन में सुधार पर जोर देना आदि। इन सुधारों को ही उदारीकरण कहा गया। वस्तुत: उदारीकरण ने निजता के महत्व को समझा और व्यक्तिगत उद्यमिता को विकास के अवसर आसानी से सुलभ करायें। इस नये माहौल को राज्य की घटती भूमिका तथा बाज़ार की बढ़ती भूमिका का दौर कहा जाता है। इस दौर में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को निजी क्षेत्र के उद्योगों के साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा करने के लिये छोड़दिया गया। वास्तव में, बाज़ार की अपनी कार्यप्रणाली होती है, उसका उद्देश्य लाभकमाना होता है तथा लाभ कमाने के सभी सम्भव तरीके अपनाने के लिये वे काफी हद तक स्वतंत्र होते हैं। बाजार प्रणाली में समाज के हाशिए पर रह रहे लोगों के कल्याण को ध्यान में रखकर निर्णय नहीं करना होता है। कभी-कभी बाज़ारतन्त्र इतना मजबूत होता है कि राज्य की क्रियायें भी उनसे प्रभावित होती हैं।[3]

सार्वजनिक क्षेत्र राज्य की इकाई होती है। अत: वह अपने को राज्य के कल्याणकारी उद्देश्यों से अलग नहीं रख सकती तथा वे सरकारी निर्णयों से प्रभावित होती हैं। परन्तु, ताज़ा दौर जो बाजारीकरण का है, में बहुत ही रोचक घटना देखने कोमिल रही है। उदारीकरण के बाद की अवधि में सार्वजनिक उद्योगों की लाभदयेता, कार्य कुशलता तथा गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ है। यह शोध के नये आयामों को जन्म देता है, जबकि जब राज्य की बढ़ती भूमिका थी तो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की लाभदेयता, कार्यकुशलता तथा गुणवत्ता आदि सभी निम्न स्तर की थी। परन्तु उदारीकरण के बाद इन इकाइयों में सुधार हुआ तथा ये निजी क्षेत्र की तरह प्रतिस्पर्धी हो गयी, ऐसा क्यों हुआ? उदारीकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का समुचित विकास हुआ परन्तु, इन उद्योगों ने आवश्यकतानुसार रोजगार के अवसर सृजित नहीं कर सकें जबकि दूसरी तरफ निजी क्षेत्र के उद्योगों ने अपेक्षाकृत तुलनात्मक रूप से ज्यादा रोजगार के अवसर सृजित किया है। इसके साथ इसमें कोई दो राय नहीं है कि उदारीकरण केबाद बाज़ार की शक्तियों ने मूल्यों में अधिक वृद्धि किया है, जिससे सामाजिक कल्याणको ठेस लगा है।[4]

भारतीय सार्वजनिक उपक्रम

विश्व के सभी देशो में सर्वजनिक उपक्रमों या लोक उद्योग का स्वामित्व का यह अर्थ कदापि नही है कि इन उद्योगों की सम्स्त पॅूजी सरकार द्वारा प्रदान कि जाय। केवल पूँजी का बड़ा भाग सरकार का हो जिससे सरकारी स्वामित्व पर बहुमत सिद्ध किया जा सके भारत में सरकारी स्तर पर लोक उद्योग को परिभाषित नही किया है लेकिन भारतीय अधिनियम 1956 की धारा 617 में सरकारी कम्पनी की परिभाषा दि गई इस परिभाषा के अनुसार सरकार कम्पनी का अभिप्राय किसी ऐसी कम्पनी हैं से है जिसकी चुकता अंश पुर्जी का कम से कम-51 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सरकार अथवा राज सरकार अथवा केन्द्रीय अशंत: एक या अधिक राज्य सरकारों या सरकारी निगमों या कम्पनीय के पास हो।

इन परिभाषा में सरकारी स्वामित्व पर ही बल दिया गया है। भारतीय भारतीय संदर्भ में लोक उद्योगों पर पूनर्पूर्ति सरकरी स्वामित्व होना अनिवार्य नहीं है। पूर्णत: के स्थान पर अधिकांश सरकारी स्वामित्व वाले उद्योगों की श्रीणी में सम्मिलित किया जाता हैं।[5] लोक उद्योगों का प्रबन्ध सरकार अथवा किसी सार्वजनिक सत्ता के द्वारा किया जाता है। कुल उद्योगों का प्रबन्ध निजी संस्थाओं द्वारा भी किया जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में ऐसे अनेक उद्योग है जो जो लोकउद्योगों की श्रेणी में आते है तथा जिनका प्रबन्ध निजी संस्थाओं द्वारा किया जाता है। अमेरिका में अणुशक्ति आयोग आदि का प्रबन्ध निजी संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

सार्वजनिक उपक्रमों या लोक उद्योगों की यह विशेषता है कि इनका नियंत्रण सरकार अथवा किसी लोक सत्ता द्वारा किया जाता है। यदि किसी लोक उद्योग पर केवल सरकारी स्वामित्त्व ही है तथा नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है तो ऐसे उद्योग को लोक उद्योग की श्रेणी में नहीं रखा जाता है। अत: स्पष्ट है कि लोक उद्योग केवल उसी उद्योग को नहीं कहा जायेगा जिस पर बहुमत स्वामित्त्व सरकार का है ऐसे बहुमत स्वामित्व वाले उद्योग का नियंत्रण भी सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।[6] लोक उद्योग की इस विशेषता के अर्न्तगत लोक उद्योग को श्रेणी मे उन उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है। जो उन सेवाओ तथा वस्तुओ का उत्पादन करते है जिनका उत्पादन लोक उद्योगों के अभाव में निजी उपक्रम करते। इस विशेषता के अनुसार शिक्षा स्वास्थ्य न्याय तथा करनून व्यवस्था आदि को लोक उद्योगों को अर्न्तगत सम्मिलित नहीं किया जाता है सभी लोक उद्योगों की स्थापना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जनता की सेवा करने के लिए की गई है।

सरकारी स्वामित्व होने के कारण लोक उद्योग में प्रांरभिक पूँजी के सम्पूर्ण अथवा अधिकांश भाग की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है प्रांरभिक विनियोग के पश्चात् प्रबन्ध के प्रारूप से लाके उद्योगों की वित्तिय व्यवस्था निर्धारित होती है सरकारी कम्पनियों अथवा लोक निगमों की वित्तिय व्यवस्था अथ्वा राष्ट्र की वित्तीय व्यवस्था (बजट आदि) से प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं होता है इस प्रकार लोक उद्योग के संगठन के ये प्रारूप वित्तीय स्वायतता रखते है इसके अतिरिक्त विभागीय संगठन अपनी वित्तिय व्यवस्था के लिय पूर्णत: सरकारी बजट के अंशदान पर निर्भर होते है अत: विभागीय प्रबन्ध के उपक्रमों को लोक निगम तथा सरकारी कम्पनी के समान वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त नहीं होती है।[7]

लोक उपक्रम की सबसे बड़ी विशेषता यह कि सार्वजनिक उपक्रम निजी उपक्रमों के विकल्प होते हुए भी उसके पुरक एवं सहयोगी उपक्रम है। लोक उपक्रम का प्रमुख्य उद्देश्य जनहित संरक्षण सन्तुलित आर्थिक विकास एवं समाज में अर्थिक न्याय का वितरण करना है। लोकउद्योगों में विनियोजित धनराशि सरकारी खजाने से आती है। जिसे सरकार जनता से करो आदि के रूप से प्राप्त करती है इसलिए यह धनराशि सार्वजनिक धन होती है। उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर सार्वजनिक उपक्रम ऐसे उद्योगों को कहा जाता है। जाम मूल्य प्राप्त करके जनता के लिए वस्तुओ तथा सेवाओं का उत्पादन करने के लिए स्थापित किये गये है। तथा जिनका प्रबन्ध एवं नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है। तथा जिन पर स्वामित्व भी सरकार का ही है। इन उद्योगों की वित्त व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है।[8]

भारत में अर्थ व्यवस्था को नियन्त्रित करने हेतु मौद्रीक राजकोषीय तथा औद्योगिक नीति एवं लाईसेंस प्रणाली अधिक कारगर सिद्ध नही हो पायी है। भारत की अर्थ व्यवस्था वर्तमान में इस परिस्थिति में नहीं है कि इस प्रकार की किसी नयी व्यवस्था का प्रयोग करे। अत: देश कि वर्तमान परिस्थितीयों को देखते हुए राज्य अर्थ व्यवस्था में राजकीय हस्तक्षेप (सर्वजनिक क्षेत्र के विकास) का प्रर्याप्त औचित्य है अत: भारत सरकार द्वारा अधिकांश आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व अपने हाथ में लिया गया है। देश मेंपूँजी निर्माण निम्न दर तथा उपयुक्त व्यावसायीक वातावरण के अभाव के कारण विदेशों पर निर्भरता को देखते हुए आर्थिक व्यवस्था के नियंत्रण में सार्वजनिक क्षेत्र का पर्याप्त औचित्य है।

सार्वजनिक क्षेत्र को नियोजन की सफलता का महत्पुर्ण सहायक समझा जाता है। प्रायः यह कहा जाता है कि नियोजित अर्थव्यवस्था की सफलता सार्वजनिक क्षेत्र के विकास निहित है। नियोजन की सफलता हेतू अनेक ऐसे कार्य होते है। जिनमें निजी क्षेत्र की रूची नहीं होती है जैसे कृषि अनुसंधान लेकिन सरकार को कृषि क्षेत्र में पैदावार बढाने के लिए इस प्रकार के अनुसन्धान कार्य करने पड़तें है नियोजन के चार दशकों में लोहा एंव इस्पात कोयला फर्टिलाईजर भारी इन्जीनिरिंग आदि उद्योगों के विकास का श्रेय सार्वजनिक क्षेत्र को ही है नियोजित अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र न केवल आर्थिक ही नहीं वरन् सामाजीक क्षेत्र में भी अपना औचित्य सिद्ध किया हैं। आकाशवाणी दूरदर्शन परिवार नियोजन कार्यक्रम शिक्षा चिक्त्सिा आदि के विकास के फलस्वरूप उचित सामाजिक वातावरण उत्पन्न करने का श्रेय भी सार्वजनिक क्षेत्र को ही है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा केन्द्रीय खजाने मे योगदान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा है। यह योगदान वर्ष 1991-92 में केवल 22,215 करोड़ रूपये था जो वर्ष 1999-2000 में विनियोजन असम्भव था। प्रथम योजना के समय 1 अप्रैल 1951 को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनियोजन की राशि केवल 29 करोड़ रूपये थी जो बढ़कर वर्ष 2019 में 132,52,534 करोड़ रूपये हो गयी। स्वतन्त्रा के पहले सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत उपक्रमों की क्रियाएँ केवल जनकल्याण की सेवाओं (रेलवे डाक सुरक्षा तथा आकाशवाणी आदि) तक ही सीमित थी लेकिन स्वन्त्रता के पश्चात् तथा विशेषता नियोजन अवधि में सार्वजनीक क्षेत्र के उपक्रमों की क्रियाओं का पर्याप्त विस्तार हुआ है। जिसके फलस्रूप भारतीय अर्थव्यवस्था का कोई भी क्षेत्र सार्वजनीक क्षेत्र के हस्तक्षेप से नहीं बच पाया है। प्रथम योजना के समय 1 अप्रैल 1950 को केन्द्र सरकार के वाणिज्य तथा व्यवसायिक उपक्रमो की संख्या केवल 5 थी जो बढ़कर 31 मार्च 2019 को 2240 हो गयी है।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र गति से विस्तार के कारण देश में उपलब्ध रोजगार के अवसरो में वृद्धि हुई है। भारतीय सर्वजनिक क्षेत्र विशिष्ट स्तर की तकनिकी के विकास तथा इस क्षेत्र द्वारा संचालीत क्रियाओं में वृद्धि के कारण देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग रोजगार प्राप्त किये हुए है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम में कर्मचारियों कि संख्या वर्ष 1999-2000 में 18.54 लाख थी सार्वजनिक क्षेत्र के अर्न्तगत सार्वजनीक इस्पात उद्योग भारतीय खाद्य निगम भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्स इत्यादी प्रमुख है। जिनमें कर्मचारीयों की संख्या सार्वधिक है। इस प्रकार रोजगार प्राप्त करवाने में सार्वजनिक क्षेत्र का पर्याप्त योगदान रहा है।[9]

भारत में आधारभुत उद्योगों की स्थापना का दायित्व निजी क्षेत्र को सौंपना ना तो उपयुक्त है और न ही उचित। आधारभूत उद्योगों की स्थापना में भारी विनियोग की अवश्यक्ता होती है। परिपक्ता की अवधि लम्बी होती है। तथा शीघ्र लाभदायकता की आशा नहीं होती है।

सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान

किसी भी देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिये औद्योगीकरण आवश्यक है। आर्थिक प्रक्रिया में कृषि के बाद उद्योग का स्थान आता है। उद्योगों के विकास से कृषिका भी तीव्र विकास होता है। अर्थशास्त्र के इस नीति को ध्यान में रखते हुये भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही उद्योगों के विकास के लिये प्रयास किया जाने लगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में देशमें भारी उद्योगों की स्थापना के लिये प्रयास किया गया। इसके बाद सरकार द्वारा देश में कई भारी उद्योग स्थापित किया गया। इससेदेश के आर्थिक विकास में तेजी आयी। परन्तु, 1980 के दशक में देश के अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग रूग्ण एवं घाटे में चले गये। इससे देश का आर्थिक विकास बाधित हुआ। उद्योगों की रूग्णता तथा घाटे में चले जाने के कारणों के अध्ययन से पता चलाकि भारतीय औद्योगिक नीति में बहुत ऐसे कठोर नियम हैं जो इन्हें विकसित होने नहींदे रहे हैं। अतः सरकार ने नयी औद्योगिक नीति 1991 के माध्यम से देश में उदारीकरण की प्रक्रिया अपनायी। इससे देश के उद्योगों के प्रतिबन्धों में नरमी आयीऔर उद्योगों का विकास होने लगा। अब यहाँ पर यह देखने वाली बात थी कि उदारीकरण का देश के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों पर विशेषतः भारी उद्योगों पर प्रभाव पड़ा? सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यरत् उद्योगों संख्या वर्ष 1991-92 में 237 थी जो वर्ष 2015-16 में 244 हो गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में कार्यरत् नियमित कर्मचारियों की संख्या वर्ष 1991-92 में 21.79 लाख थी जो वर्ष 2018-19 में 21.14 लाख रह गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में लगी पूँजी वर्ष 1991-92 में 11799100 लाख थी जो वर्ष 2018-19 में 193879500 लाख हो गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का कुल टर्न ओवर या सकल बिक्री/आय/उत्पादन वर्ष 1991-92 में 13390600 लाख थी जो वर्ष 2018-19 में 185466700 लाख हो गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र का सकल लाभ वर्ष 1991-92 में 1367500 लाख था। जो वर्ष 2018-19 में 20521300 लाख हो गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों द्वारा केन्द्रीय राजकोष में दिया जाने वाला योगदान वर्ष

1991-92 में 1995100 लाख था जो वर्ष 2018-19 में 27807500 लाख हो गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे अर्थव्यवस्था के अर्थव्यवस्था में समग्र विकास से भी प्रभावित होते हैं। लोक उद्यम सर्वेक्षण 2018-2019 के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के जीडीपी का अनुमान वर्तमान कीमतों पर वर्ष 2018-19 में 135.76 लाख करोड़ लगाया गया था जो वर्ष 2018-19 के मुकाबले 124.88 लाख करोड़ की तुलना में 8.71 प्रतिशत अधिक है। जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का कुल टर्न ओवर या सकल बिक्री/आय/उत्पादन वर्ष 2018-19 के मुकाबले 2018-19 में 1854667 करोड़ से घट कर 1854667 करोड़ हो गया अर्थात 7.04 प्रतिशत की कमी आ गयी है। केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में कार्यरत् नियमित कर्मचारियों की संख्या वर्ष 2018-19 के मुकाबले वर्ष 2018-19 में 200593 करोड़ से 278075 करोड़ हो गयी अर्थात इसमें 38.63 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। इस प्रकार उपर्युक्त आँकड़े सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के महत्व को बताते है। वास्तव में भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का अपना विशेष महत्त्व है। यह न केवल लोगों को रोजगार प्रदान करता है बल्कि तीव्र आर्थिक संवृद्धि के लिये भी विशेष महत्व रखता है। [10]

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि सार्वजनिक उद्यम केवल आर्थिक संरचना के अभिनन अंग ही नहीं, बलिक वे सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों, नीतियों एवं संरचनाओं को महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करते है। इनका राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक एवं प्रशासनिक दशाओं को सुधारने में प्रमुख्य यागदान होता है। भारत में सार्वजनिक उद्यमों को केवल वैज्ञानिक एवं तकनीकी औद्योगीकरण का ही श्रेय नहीं है अपितु वैज्ञानिक कृषि को भी इसने बढ़ाबा दिया है। इसलिए सार्वजनिक उपक्रमें की स्थापना किसी देश के विकास के लिए आवश्यक हो गयी है। उद्देश्यों का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियाँ क्या है तथा वह देश को किस ओर ले जाना है नयी ओद्योगिक नीति के बाद निजीकरण और उदारीकरण के बढ़ते प्रचलन ने सार्वजनिक उपक्रमों के अस्तित्त्व के समक्ष गंभीर चुनौती उपस्थित कर दी है। यह प्रश्न उठने लगाा है कि क्या वैश्विक आर्थिक संरचना के चलते सार्वजनिक उपक्रम अप्रासंगिक होते जा रहे है या अपनी गुणवत्ता और महत्ता के आधार पर अपनी गुणवत्ता और महत्ता के आधार पर अपनी उपादेयता और प्रासंगिकता बनाए रखेंगें? चूंकि इस प्रश्न का उत्तर भविष्य के गर्भ में निहित है, तथापि सार्वजनिक उपदक्रमों की प्रासंगिकता अपरिहार्य प्रतीत होती है।

संदर्भ-सूची

1. जगदीश प्रकाश-इण्टरप्राइजेज इन इण्डिया, सेन्ट्रल लॉ बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980, पृ. 78, 89
2. जगदीश प्रकाश लोक उद्यम, पृ. 62
3. जगदीश प्रकाश भारत में लोक उद्यम, पृ. 102
4. प्रथम पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 16
5. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 22
6. सप्तम पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 6
7. आर0 सी0 कुलश्रेष्ठ- औद्योगिक अर्थशास्त्र, पृ. 252, 253
8. तेजकुमार जैन एवं सुनील कुमार सक्सेना-लोक उद्योग- पृ. 46-56
9. आर0 सी0 कुलश्रेष्ठ- औद्योगिक अर्थशास्त्र, पृ. 266, 267
10. जगदीश प्रकाश-इण्टरप्राइजेज इन इण्डिया, सेन्ट्रल लॉ बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980, पृ. 98, 99

भारत में प्राचीनकाल में पंचायतीराज व्यवस्था: एक विश्लेषण

अमोद कुमार दास

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), राजनीतिक विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

पंचायती राज व्यवस्था भारत की एक विलक्षण एवं अद्‌भुत विशेषता है। जो गाँव वालों द्वारा चयनित पांच व्यक्तियों का समूह है। पचांयत शब्द सारे भारत में गाँव प्रशासन, जिसमें न्याय प्रशासन भी जुडा हुआ है के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। प्राचीन भारत के साहित्यिक ग्रन्थों में भी "पंचायत" शब्द को पंचातयन के नाम से परिभाषित किया गया है। जब दुनिया सभ्य हो रही थी, उस समय वैदिक काल में ही हमारे यहां पंचायते अस्तित्व में आ चुकी थी। इसी कारण प्राचीन भारत को ग्राम-पचांयतों के देश के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त थी। रामायण और महाभारत काल में भी सभा, गाँव और समितियों का उल्लेख मिलता है अत: रामायण काल में भी भारत में ग्रामीण प्रशासन प्रचलित था। रामायण में ग्रामिणी आज के ग्राम विकास अधिकारी के समान होता था। शुक्रनीति सार में भी गाँवों के अधिकारियों का वर्णन मिलता है। कौटिल्य के अर्थशात्र में भी स्थानीय संस्थाओं का उल्लेख मिलता है जो प्राय: राजा के हस्तक्षेप से मुक्त रहती थीं। प्राचीन काल में भू-राजस्व, वसूली, आपसी झगड़ों व मनमुटाव का निपटारा, उर्वरक भूमि का स्वामित्व, मन्दिरतथा अन्य पूजा स्थलों का प्रबन्ध, सास्कृतिक व साहित्यक विकास और सार्वजनिक हित के सभी कार्य पचांयतों द्वारा किये जाते थे। अत: अति प्राचीनकाल से ही भारत के ग्राम, शासन व्यवस्था की धुरी रहे है।

मुख्य शब्द: रामायण काल, वैदिक युग, न्याय प्रशासन, पंचायतीराज व्यवस्था, सभा या समिति

पंचायती राज का अर्थ एवं परिभाषाएँ

हमारी पंचायत प्रणाली स्थानीय सरकार का ही एक स्वरूप है। भारत वर्ष में बहुत प्राचीन काल से पंचायत शब्द प्रयुक्त किया जाता रहा है। भारतीय दर्शन में मानव शरीर की रचना पाँच तत्वों से हुई मानी गई है-ये है पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु। मानव शरीर इन्ही पांचों तत्वों से निर्मित होकर क्रियाशील होता है। इसी प्रकार प्रशासन के लिए भी पांचकी उपस्थिति आवश्यक मानी गई है।

'पंचायत' शब्द की संधि-विच्छेद करने पर पंच आयत दो शब्द प्राप्त होते है। 'पंच' का अर्थ है-पाँच और 'आयत' बैठने के स्थान के अर्थ में ले सकते है। तात्पर्य यह है कि पंचायत का अर्थ पांच व्यक्तियों के बैठने का स्थान हो सकता है।

भारतीय परम्परानुसार पांच, सात, नौ आदि विषम संख्याओं को शुभ और चार, छह, आठ आदि सम संख्याओं को अशुभ माना जाता रहा है। संभवत: 'पांच' शुभ सख्या इसी उद्देश्य से रखी गई हो।

'पंचायत' शब्द से अब सारे भारत में गांव प्रशासन, जिसमें न्याय प्रशासन भी जुडा हुआ है, के लिए चयन किए हुए गाँव वालों के एक समूह से माना जाता है। पंच (पांच) की संख्या ही क्यों प्रयोग की गई, के संबंध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। 'बृहस्पति' के अनुसार दो, तीन अथवा पांच व्यक्तियों का समूह गांव के कल्याण की देख-रेख के लिए नियुक्त किये जाने का संकेत मिलता है। चूंकि पांच व्यक्तियों का समूह होने से सम्भवत: नाम दिया गया हो। 'पंचायत' शब्द सम्भवत: यह सूचित करता है कि साधारणतय: उन व्यक्तियों की संख्या जिनसे समिति बनती थी, पांच थी, किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि यह

संख्या नियमित रूप से रखी जाती रही हो। फिर भी संख्यात्मक संदिगधता के होते हुए भी यह निश्चित है, कि प्रशासनिक और न्यायायिक कार्य करने वाली एक इकाई (पंचायत) थी। भारत वर्ष में बहुत प्राचीन काल से पंचायत शब्द प्रयुक्त किया जाता रहा है।

'पंचायत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'पंचायतन' से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है पाँच व्यक्तियों का समूह। 'पंचायत' शब्द से सारे भारत में गांव प्रशासन, जिसमें न्याय प्रशासन भी जुड़ा हुआ है, के लिए चयन किये हुए गांव वालों के एक समूह से माना जाता है। संस्कृत के शब्द 'पंचायत' का शाब्दिक अर्थ पांच का मेल है जिसमें चारों वर्णो के प्रतिनिधियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के साथ पांचवे प्रतिनिधि ईश्वर को शामिल माना गया है। पंचायत की अवधारणा कोई नई बात नहीं है। वैदिक काल में भी पंचायतों का अस्तित्व था। ग्राम के प्रमुख को ग्रामणी कहते थे। वह सम्पूर्ण ग्राम का मुखिया होता था। तब महासभाएं थी, जहां राजा भी डरता हुआ जाता था कि कहीं उसे पदच्युत न कर दिया जाए।

वेदों में महासभा को 'विस:' या समिति भी कहा गया है जिनका एक काम राजा का चुनाव करना भी होता था। महासभा में उस क्षेत्र के सभी निवासी शामिल होते थे और राजा को भी उसकी बैठकों में शामिल होना पडता था। भारत में पंचायत राज व्यवस्था को प्राचीनकाल से ही महत्व प्राप्त था एवं इन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सभा, समिति एवं विद्थ जैसी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्थ सम्भवत: जनसभा थी जिसमें सभी वयस्क स्त्री-पुरूष समान रूप से भाग लेते थे। यह धार्मिक एवं युद्ध सम्बन्धी कार्य विशेष रूपसे करते थे। सम्भवत: इसकी बैठकें आयोजित होती थी तथा इसके सदस्य परस्परवाद-विवाद के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचते थे। यह विद्थ संस्था स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रतिनिधित्व करती थी।

वैदिक युग में राज्य आकार में अधिक विशाल नहीं होते थे तथा उनकी राजधानी का आकार भी छोटा होता था। प्रत्येक गाँव में जनता की 'सभा' होती थी और राजधानी के सम्पूर्ण राज्य की एक केन्द्रीय लोकसभा होती थी जिसे 'समिति' कहा जाता था। राजा स्वामी होते हुए भी निरंकुश नहीं था। सभा एवं समिति नामक संस्थाएं उस परनियंत्रण रखती थी। वैदिक युग में सभा एवं समिति का जो स्वरूप था वह पूर्णत: समाप्त नहीं हुआ था अपितु उसका स्थान 'पुर' तथा 'जनपद' ने ले लिया।

प्राचीन काल में पंचायती राज व्यवस्था

प्राचीन काल में पंचायती राज संस्थाओं का अस्तित्व पंचायत प्रणाली के प्रति जन-जनकी मनोवृत्ति एवं ग्राम स्तर पर पंचायत संस्थाओं का सांगठनिक संरचनाओं से इंगित होता है। प्राचीन भारत के साहित्यिक ग्रन्थों में भी "पंचायत" शब्द को परिभाषित करने के प्रयास किए गए हैं। इसके अनुसार इसे 'पंचायतन्' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। के. पीजायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पॉलिटी' में इस बात को स्वीकार किया है कि वैदिक कालमें ग्रामीण प्रशासन का कार्य मुखिया द्वारा संचालित होता था जिसे 'ग्रामीणी' कहा जाता था। यही ग्रामीणी राज्याभिषेक के अवसर पर ग्रामीण समुदाय का प्रतिनिधित्व करता था। उन्होंने यह भी कहा है कि वैदिक काल में ग्राम सभा का भी अस्तित्व था। ये संस्थाएं निरन्तर अस्तित्व में रही। हालांकि समय के साथ उनके स्वरूप एवं नामकरण में परिवर्तन होता गया। इसी तरह राधाकुमुद मुखर्जी का भी यही अभिमत है कि प्राचीन भारत में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था विद्यमान थी और जनसाधारण की उसमें महत्वपूर्ण भूमिका थी। भारत में सभ्यता के प्रारम्भ से ही सामाजिक सगंठन दो प्रमुख भागों में विभाजित रहे हैं-शहरी एवं ग्रामीण। सामाजिक सगंठन के इन दो प्रधान समूहों में पाये जाने वाले सामाजिक जीवन की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न है। दोनों के जीवन स्तर एवं संस्कृति में भिन्नता देखने को मिलती है। शहरी संस्कृति, सभ्यता एवं राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति ग्रामीण समाज की तुलना में उत्तम है। ग्रामीण यदि अर्द्ध-विकसित हैं तो शहरी विकसित। भिन्नता के कारण इनके लिए निर्मित संस्थाओं के कार्य भी प्राय: भिन्न ही होते हैं। मौर्य काल में भी शहरी संस्थाओं का अस्तित्व मिलता है।

मैगास्थनीज ने पाटलीपुत्र के नगरीय प्रशासन के सम्बन्ध में लिखा है कि नगर प्रशासन का उत्तरदायित्व छ: समितियों पर था। प्रत्येक समिति में पांच सदस्य होते थे। पहली समिति उद्योग-धन्धों की देखभाल करती थी। दूसरी समिति विदेशियों से सम्बन्धित मामलों को संभालती थी। तीसरी समिति जन्म-मृत्यु का ब्यौरा रखती थी। चौथी समिति का कार्य व्यापारियों पर नियंत्रण रखना था। पांचवी समिति उद्योगों द्वारा उत्पादित सामग्री की देखभाल करती थी तथा निगरानी रखती थी कि नया एवं पुराना माल मिलाकर

व्यापारी बेचने न पावें। छठी समिति व्यापारियों द्वारा विक्रय किये गये सामग्री के मूल्यका दसवां अंश कर के रूप में एकत्र करती थी। मौर्यकाल में भी नगरपालिकाओं में पदाधिकारियों की चर्चा मिलती है। ईश्वर प्रसाद ने लिखा है कि नगर के कुछ पदाधिकारियों को नागरिक कहा जाता था जो वर्तमान में कोतवाल के समान कार्य करते थे। यह व्यक्ति सार्वजनिक सम्पत्ति का ब्यौरा रखता था एवं सराय, मनोरंजन तथा बाजार में बिक्री पर दृष्टि रखता था। वह आगन्तुकों के व्यवहार पर भी नियंत्रण रखता था। जब दुनियां सभ्य हो रही थी, उस समय वैदिक काल में ही हमारे यहां पंचायतें अस्तित्व में आ चुकी थी। शायद यही कारण है कि प्राचीन भारत को ग्राम-पचांयतों के देश के रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त थी। वैदिक काल में सभा, समिति और विद्थ जैसी संस्थाएँ भी अस्तित्व में थी जो आज की पंचायत समितियों के समान ही कार्य करती थी।

रामायण और महाभारत तक के काल में सभा, गाँव और समितियों का उल्लेख मिलता है जिससे स्पष्ट है कि रामायण कालीन भारत में भी ग्रामीण-प्रशासन प्रचलित था। इस संदर्भ में प्रो. अलतकेशर का कथन महत्वपूर्ण है। उनके मुताबिक–"अति प्राचीनकाल से ही भारत के ग्राम, शासन-व्यवस्था की धुरी रहे हैं। वैदिक काल मुख्यत: ग्रामीण समाज था इसलिए उस समय राजनीति में गांवों का प्रभुत्व स्थापित था। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय राज्य का आकार बेहद छोटा होता था लेकिन बाद में राज्य का आकार बढ़ने पर भी गांवों का महत्व बरकरार रहा। रामायण में 'ग्रामिणी' नामक एक राजकीय अधिकारी का उल्लेख मिलता है जो गांव की समस्त समस्याओं के समाधान का प्रयास करता था। तत्कालीन 'ग्रामिणी' आज के ग्रामविकास अधिकारी के समान होता था।

'मनुस्मृति' के मुताबिक दस गांवों के ऊपर 'दशिके' नामक अधिकारी होता था जबकि 200 गाँवों का प्रबंध देखने वाला अधिकारी 'विशाधिप' कहलाता था। शासन द्वारा एक हजार गाँवों के ऊपर जिस अधिकारी को नियुक्त किया जाता था उसे 'सहस्त्रपति' कहा जाता था। आर्यो के काल में भी विकास की प्रमुख इकाई के रूप में ग्रम पंचायतें विद्यमान थी। 5000 ई.पू. से 3500 ई.पू. तक वेदों में राज्य के विभिन्न कर्मचारियों की भूमिका के अन्तर्गत पंचायतों का उल्लेख मिलता है। उस समय राज्य में तीन अधिकारी हुआ करते थे। सबसे पहला पुरोहित, दूसरा सेनापति एवं तीसरा अधिकारी ग्रामीण था। ग्रामीण ग्राम का अधिपति एवं पंचायत का प्रमुख होता था। ग्रामीण ग्राम की सैनिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने में मुख्य भूमिका अदा करता था। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में भी ग्राम मुखिया के रूप में ग्रामणी का उल्लेख मिलता है, साथ ही इसे राजस्व संग्रह करने वाला एवं सैनिक अधिकारी के रूप में भी प्रदर्शित किया गया है। महाकाव्य काल के दौरान भी ग्राम पंचायतें हुआ करती थी। उस अवधि में प्रशासन की सुविधा के लिए राज्य कई इकाइयों में विभाजित होता था और यह विभाजन दशमलव प्रणाली पर आधारित था। सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। इसके ऊपर दशग्राम, विंशतिग्राम, शतग्राम, सहस्त्र ग्राम और राज्य था। इनके अधिकारियों में ग्राम पंचायत के अधिकारी ग्रामिक एवं अन्य के क्रमश: विंशतीय, शतग्रामी, अधिपति और राजा होते थे।

वैदिक काल में गाँव और गाँव की जनता का शासन में अत्याधिक महत्व था और गांव का समस्त प्रबंधन पंचायतें (सभा या समिति) ही करती थी। राधाकुमुद मुखर्जी सहित कई अन्य विद्वान कहते हैं कि प्राचीन भारत सत्ता के विकेन्द्रीकरण में विश्वास करता था और उस समय प्रत्येक गांव स्वशासित था। चीनी विद्वान मैंगस्थनीज ने भी अपने यात्रा विवरणों में लिखा है कि प्राचीन भारत के ग्राम छोटे-छोटे, आत्मनिर्भर और गणतंत्र थे। सारत: तब के गांवों के प्रशासन का स्वरूप प्रजातंत्रात्मक था। याज्ञवलक्य स्मृति में भी स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। याज्ञवलक्य ने ग्राम एवं नगर में चारागृह के आधार पर अन्तर किया है। शुक्रनीति सार के अनुसार गाँव में छ: प्रकार के अधिकारी थे- ग्रामनेता, सहसाधिपति, भागहार, लेखक, शुल्कग्राह तथा प्रतिहार। शुक्र ने इन छ: अधिकारियों के कार्योका भी वर्णन किया है, जिसमें मुखिया ग्रामनतेश का कार्य डाकुओं तथा चोरों से ग्रामवासियोंकी पिता के समान रक्षा करना था।

वैदिक महाकाव्यों व स्मृतियों से ज्ञात होता है कि स्थानीय सगंठनों की स्थापना तथा विकास प्रारम्भ से ही दृढ़ हो गया था एवं उनकी शक्ति राज्य द्वारा स्वीकृत थी। वे राज्य पर अपना प्रभाव डाल सकते थे। राज्य के सामान्य नियमों के अतिरिक्त अपनी व्यवस्था के संचालन हेतु अपने विधान का निर्माण करते थे। कौटिल्य ने भी ऐसी स्थानीय संस्थाओं का उल्लेखा किया है जो प्राय: राजा के हस्तक्षेप से मुक्त रहती थी। "अर्थशास्त्र" में प्रतिपादित किया है कि राजा को ऐसे गाँव की रचना करनी चाहिये जिसमें कम से कम सौ परिवार तथा अधिक से अधिक पांच सौ परिवार रहते हो।

कौटिल्य ने राजा को सुझाव दिया कि गाँवों की संगठन व्यवस्था इस प्रकार की जाये ताकि प्रत्येक आठ सौ गाँवों के केन्द्र में एक स्थानीय, चार सौ गाँवों के केन्द्र में एक द्रोणमुख, दोसौ गाँवों के केन्द्र में कार्वटिक तथा दस गाँवों के समूह के केन्द्र में संग्रहण हो। कौटिल्य नेनगर के लिए पुर शब्द का प्रयोग किया है तथा पुर के प्रधान के लिये "नागरिक" शब्द का प्रयोग किया है। नागरिक को कौटिल्य ने नगर की सम्पूर्ण कानून व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिये उत्तरदायित्व सौंपा। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त किया तथा नगरके प्रत्येक एक चौथाई भाग को 'स्थानिक' नाम के अधिकारी के अधीन रखा। प्रत्येक दस, बीस, परिवारों पर एक गोप की नियुक्ति की व्यवस्था की, जिसका कार्य इन परिवारों के स्त्री-पुरूषों की जाति, गोत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखने के साथ ही उनके आयत था व्यय की जानकारी भी रखना था। तत्कालीन गुप्तकालीन प्रशासन में स्थानीय प्रशासनको अत्यधिक महत्व दिया जाता था। उस समय का प्रत्येक गांव अपने आप में स्वयत्तशासी और स्वतंत्र होता था।

प्राचीन ग्रामीण प्रशासन से सम्बन्धित लेखन कार्यों में नारद, बृहस्पति और काव्यायन जैसे विद्वानों का नामोल्लेख प्रासंगिक है। इन विद्वानों ने ऐसे नियम बनाए थे जिनके आधार पर ग्रामीण प्रशासन चलाया जाना चाहिए। ग्रामीण-प्रशासन के बारे में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी काफी कुछ लिखा गया है। कौटिल्य के मुताबिक उस समय स्थानीय स्वशासन काफीविकसित अवस्था में था और गांव के प्रशासकीय स्टाफ में एक अध्यक्ष, एक संखायक, स्थानिकऔर जंघकारिका आदि पदाधिकारी होते थे।

गुप्तकालीन प्रशासन में स्थानीय प्रशासन को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। उस समय ग्राम समितियों का भी विकास हो चुका था जिन्हेंबिहार में ग्राम-जनपद और मध्य भारत में पंचमंडली कहा जाता था। गुप्त काल में ही बिहारके अलावा कर्नाटक और महाराष्ट्र तक में ग्राम समितियां स्थापित हो चुकी थी। प्राचीन काल में स्थानीय निकायों के बीच कार्य का स्पष्ट विभाजन भी देखने कोमिलता था। भू-राजस्व वसूली, आपसी झगड़ों व मनमुटाव का निपटारा, उर्वरक भूमि कास्वामित्व, मंदिर तथा अन्य पूजास्थलों का प्रबंध, सांस्कृतिक व साहित्यिक विकास औरसार्वजनिक हित के सभी कार्य पंचायतों द्वारा ही किये जाते थे। गुप्त शासकों की अपनेविशाल साम्राज्य पर पूरी पकड़ थी क्योंकि उनकी प्रशासनिक व्यवस्था उच्च कोटि की थी। गुप्तशासकों की सफलता का एक कारण यह भी था कि सभी स्थानीय समस्याएँ स्थानीय स्तर परही सुलझा ली जाती थी जिस कारण केन्द्रीय प्रशासन पर काम का बोझ कम रहता था। गुप्तसाम्राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए अग्रलिखित प्रकार से प्रशासनिक इकाईयों का विभाजन किया जाता था:गुप्त साम्राज्य प्रान्त (सूबेदार) नगर (नगरपति) ग्राम (ग्रामिक) सम्पूर्ण गुप्त साम्राज्य कुछ प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त का अलग से सूबेदारहोता था। नगर का सर्वोच्च अधिकारी 'नगरपति' कहलाता था जिसकी सहायता के लिए एकपरिषद होती थी जिसका स्वरूप आज की नगरपालिकाओं जैसा ही था। गांव का सर्वोच्चअधिकारी ग्रामिक कहलाता था जिसकी सहायता के लिए भी एक समिति होती थी जिसे ग्रामसभा कहा जाता था। इस ग्राम सभा का अध्यक्ष 'ग्राम प्रधान' कहलाता था। कुछ प्रमुख मसलों में ग्राम प्रशासन गांव के बड़े-बुजुर्गों की सहायता भी प्राप्त करता था।

गुप्तकाल में प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था थी और ग्राम-समितियों को व्यापक अधिकार प्राप्त थे। राजपूतकालमें भी प्रशासनिक संरचना कुछ-कुछ ऐसी ही थी। उस समय भी सबसे छोटी प्रशासकि इकाई ग्राम ही थी। राजपूतकालीन प्रत्येक गांव में एक ग्राम-सभा होती थी जो गांव का समस्त प्रबन्ध करती थी। एक अच्छी बात यह है कि राजपूत काल में नगरों की अपेक्षा गांव कहीं अधिक स्वतंत्र होते थे क्योकि नगरों का प्रशासन केन्द्रीकृत नौकरशाही द्वारा चलाया जाता था। बाद में सल्तनत काल में गांवों की राजनीतिक स्थिति कुछ कम हुई क्योंकि सल्तनत कालीन प्रशासन मुख्यत: सैनिक प्रशासन था।

मुस्लिम शासनकाल में भी स्थिति लगभग ऐसी ही रही और ग्राम समितियों के अधिकार व क्षेत्र काफी कम कर दिए गए। चार्ल्स मेटकॉफ के मुताबिक भारत में अनेक गणतंत्र थे और इन छोटे गणतंत्रों में लगभग सभी जरूरत की चीजें उपलब्ध थी तथा विदेशी सम्बन्ध के मामले में ये लगभग स्वतंत्र थे। मुस्लिम शासन से पहले भारत में पंचायत व्यवस्था काफी उन्नत अवस्था में थी लेकिन धीरे-धीरे इसव्यवस्था का स्थान जागीरदारी व्यवस्था ने ले लिया।

ग्राम पचांयतों के अस्तित्व के सन्दर्भ में यदि बौद्ध काल की चर्चा की जाए तो केन्द्रीय प्रशासन की मुख्य नींव के रूप में पंचायत का स्वरूप प्रस्फुटित होता था। बौद्ध काल में ग्रामीण व्यवस्था का जो स्वरूप जातक कथाओं में मिलता है उससे हम तत्कालीन भारत की राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था से परिचित होते हैं। जातक कथाओं से हमें यह जानकारी मिलती है कि गाँव का शासन ग्राम-प्रमुख अपनी इच्छानुसार नहीं करता था। प्रशासनिक कार्यों में उसे जनमत का पूरा ध्यान रखना होता था तथा ग्रामीण जन ही अपनी समस्याओं कानिपटारा करते थे। ग्राम प्रमुख समस्याओं के निपटारे में पहल करता था। उसे स्थानीय रीति-रिवाज एवं स्थापित

प्रथाओं का ध्यान रखना होता था। "बौद्ध काल में ग्रामों की शासन व्यवस्था सुनिश्चित और सुगठित थी। सम्पूर्ण जनपद के शासन की इकाई ग्राम थे। ग्राम के शासक को ग्रामयोजक कहते थे। ग्रामयोजक का पद बड़ा ही महत्वपूर्ण था। ग्राम सम्बंधी सभी मामलों को सुलझाने का कार्य ग्रामयोजक के ऊपर था। वह ग्राम के अभियोगों का निर्णय करता था। मद्यपान, जुआ, पशु हिंसा जैसी दूषित प्रवृत्तियों को निषिद्ध करने का अधिकार उसको प्राप्त था। मादक वस्तुओं का क्रय-विक्रय उसकी आज्ञाया अनुमति पर ही सम्भव था। राजा को आवश्यकतानुसार ग्राम शासन में संशोधन करने तथा ग्रामयोजक को अपदस्थ करने का अधिकार था। कृषि और व्यापार पर भी ग्रामयोजक के माध्यम से विशेष ध्यान रखा जाता था। जब बहुत से लोग एक स्थान पर बस जाते थे तो उनकी सम्पूर्ण बस्ती को ग्राम या गाँव कहा जाने लगा था। खेतों पर किसानों का अधिकार था। किसान को अपनी सारी उपज का छठे से बारहवाँ हिस्सा राज्य को देना होता था। किसान ग्राम पंचायत की अनुमति के बिना अपने खेत दूसरे को नहीं बेच सकता था। ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा कहा जाता था और इसका मुखिया ग्रामयोजक होता था। ग्राम योजक का चुनाव सभा द्वारा होता था। उस दौरान गाँव सभी दृष्टियों से छोटे रूप में पूर्ण स्वावलम्बी प्रजातन्त्र था।

भारत की राजनैतिक, प्रशासनिक और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से मौर्य काल इतिहास में अपना विशेष महत्व रखता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में न्यायपालिका, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका जैसे सरकार के प्रमुख अंगों का विधिवत् वर्णन किया है। मौर्यकाल में ग्रामीण स्तर पर पंचायत संस्थाएँ तीनों ही कार्य सम्पादित करती थी। ग्राम मुखिया अथवा पंचों के न्याय से यदि जनता सन्तुष्ट नहीं होती तो किसी मध्यस्थ व्यक्ति का सहारा लेकर समस्या का समाधान किया जाता था। आर.सी. मजूमदार ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने शासन काल में ग्रामीण स्वायत्त शासन को प्रोत्साहित कर राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया था। राजा ने ग्रामीण क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया। साम्राज्य में गाँव सबसे नी चे की इकाई थी और ग्रामिक मुख्य संचालक था। भारत में पंचायती राज विकसित कि एक जा रहे एक स्थानीय स्वापत्त शासन का स्वरूप है। स्थानीय स्वायत संस्थाएँ अपने क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का उपभोग करती हुई राज्य अथवा केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित स्थानीय आवश्यकताओं एवं समस्याओं की स्थानीय स्तर पर ही सत्तत प्रयत्नशील रहने वाली संस्थाएँ होती है, तथा इन्हें अपने प्रदत्त अधिकारियों की सीमा में कुछ स्वतंत्रता अवश्य प्राप्त होती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मुखर्जी, राधाकुमुद, लोकल गवर्नमेन्ट इन एनशियेंट इण्डिया, ऑक्सफोर्ड एट दी क्लीरेण्ड प्रेस, उसमानिया यूनिवर्सिटी, 1985, पृ. 6
2. प्रसादी, ईश्वरी, ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इंडिया, दी इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1981, पृ. 88
3. मनु स्मृति (7/115-117)
4. पाण्डेय, राजबली; प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2001, पृ. 37
5. शामशास्त्री, कौटिल्याज अर्थशास्त्र,प्रिंटिंग प्रेस, मैसूर, 1956, पृ.
6. शर्मा, घनश्यामदत्त, मध्यकालीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सस्थाएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1988, पृ. 168
7. मुतालिब, एम.ए. एवं खान, रसीद, थ्योरी ऑफ लोकल गवर्नमेन्ट, स्टर्लिंग प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ. 22
8. मजूमदार, आर.के. तथा श्रीवास्तव, एन., हिस्ट्री ऑफ एनशियेन्ट इंडिया, एस.बी.डी पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, कोलकत्ता, 2004, पृ. 123
9. सत्य सुभाष, ग्राम स्वराज, दिवान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 7
10. शर्मा, हरिओम, ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक सहभागिता में महिलाओं की भूमिका, ग्रामीण नेतृत्व के उभरते प्रतिमान, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004, पृ. 10
11. पुरोहित, अमित, पंचायत राज व्यवस्था, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ. 14
12. जोशी, आर.पी. एवं भारद्वाज, अरूणा, भारत में ग्रामीण एवं शहरी स्थानीय शासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 12
13. जोशी, आर.पी. एवं मंगलानी, रूपा, (सम्पा.) भारत में पंचायती राज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 9
14. जायसवाल, काशीप्रसाद, हिन्दू पॉलिटी: ए कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया इन हिन्दू टाइम, बैंगलोर प्रिन्ट एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, बैंगलोर, 1955, पृ. 13

हिन्दी साहित्य में प्रगतिशीलता: चेतना और स्वरूप

सत्यनारायण कुमार

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश

साहित्य, संगीत और कला एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सवाल है, इसका स्वरूप बृहदाकार है। हिन्दी साहित्य में कालचक्रावशात् लेखन की दृष्टि से अनेक उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है या यों कहें इसकी समृद्धि के लिए अनेक आंदोलन किये गये हैं। उन्हीं आंदोलनों में से एक आंदोलन है- प्रगतिशीलता। अग्रगमन की नैतिक प्रवृत्ति की जागृति ही प्रगतिशील चेतना है और प्रगतिशील चेतना का स्वरूप वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामाजिक होने का दरकार है। प्रगतिशीलता का एक नारा स्वीकारा जा सकता है- 'सबका साथ, सबका विकास'। बंगाल में अकाल के बाद भुखमरी और दरिद्रता की जो भयावह स्थिति उत्पन्न हुई, उसका जिक्र निराला ने अपनी कविता 'भिक्षुक' में बड़े ही करुण भाव से व्यक्त किया है-

"वह आता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठीभर दाने को- भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

x x x

चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए!

यह समाजनिष्ठ नहीं, बल्कि व्यक्तिनिष्ठ समस्या है। जब तक समस्याएँ समाजनिष्ठ नहीं होगी, तब तक प्रगतिशील आंदोलन अधूरा ही माना जायेगा।

मूल शब्द: साहित्य, प्रगतिशील, चेतना, स्वरूप, सर्वहारा, सामंतवादी।

प्रस्तावना

साहित्य, संगीत और कला मनुष्य का अभिन्न अंग हैं। इसके बिना मनुष्य पशुवत् माना गया है। सत्यता भी है। जैसे नदी का जीवन उसकी गतिशीलता है, वैसे ही साहित्य, संगीत और कला का जीवन उसकी प्रगतिशीलता है। साहित्य, संगीत और कला एक-दूसरे के पूरक भी हैं। जहाँ तक हिन्दी साहित्य का सवाल है, इसका स्वरूप बृहदाकार है। हिन्दी साहित्य में कालचक्रावशात् लेखन की दृष्टि से अनेक उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है या यों कहें इसकी समृद्धि के लिए अनेक आंदोलन किये गये हैं। उन्हीं आंदोलनों में से एक आंदोलन है- प्रगतिशीलता। इस शीर्षकान्तर्गत प्रगतिशीलता को हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने की कोशिश की गयी है। साथ ही प्रगतिशीलता में मौजूद विचारधारा का अवलोकन तथा चेतना एवं स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। प्रगतिशीलता का साहित्यिक आशय को भी भरसक समझने का प्रयास किया गया है।

'प्रगति' संस्कृत शब्द है। 'प्रगति' के लिए अंग्रेजी में 'प्रोग्रेस' तथा उर्दू में 'तरक्की' शब्द प्रचलित है। 'प्र' उपसर्ग, 'गम्' धातु, तथा 'क्तिन्' कृत प्रत्यय के मेल से 'प्रगति' शब्द का निर्माण हुआ है। जिसका अर्थ है- अग्रगमन (संस्कृत), बढ़ंत, बढ़ाव, वृद्धि, विकास, उन्नति (हिन्दी) अर्थात् सीधी भाषा में 'आगे बढ़ना'। पारिभाषिक अर्थ के रूप में 'प्रगति' का अर्थ है- "ऐसा वैचारिक परिवर्तन लाना, जो वस्तु, गुण या परिणाम में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी कर सके।"

'प्रगति' एक व्यापक शब्द है। यानी कहें तो 'प्रगति' व्याख्येय शब्द है। 'प्रगति' का एक व्यापक अर्थ है- 'सामूहिक रूप से होने वाली क्रमिक उन्नति'। मतलब ये हुआ कि उन्नति वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामूहिक होना चाहिए, वह भी क्रमिक। वैयक्तिक उन्नति का ही नाम है- 'पूँजीवाद', जबकि सामूहिक क्रमिक विकास का रूप 'प्रगतिशीलता' है।

'वाद' क्या है?- विचार या सिद्धांता, आंदोलन। 'प्रगति' में 'वाद' के जुड़ने से 'प्रगतिवाद' का निर्माण हुआ। इसी प्रगतिवाद का पर्याय है- 'प्रगतिशीलता'। उसकी यथार्थ दशा से अवगत कराने के उपरांत प्रगति या उत्कर्ष की प्रेरणा दी। मतलब यह हुआ कि 'प्रगतिशीलता' एक आंदोलन है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 में प्रगतिवाद की परिभाषा दी है- "प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आंदोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर-छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्व प्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।"[1] 'प्रगति' के बारे में मुख्य धारणा 'मार्क्सवादी' है और यही हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि भी रही है। इसी बात को लक्ष्य कर डॉ॰ रंजीत अपनी पुस्तक 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' में जिक्र किया है। उनका मानना है कि 'प्रगति' के संबंध में मार्क्सवादी धारणा ही मुख्यत: हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि है। मार्क्सवाद एक प्रकार का नया और वैज्ञानिक मानववाद है, जिसे राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और समाजवाद तथा दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक वस्तुवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है।"[2] का वास्तविक अर्थ हुआ- 'सबका विकास'। सामंतवाद, पूँजीवाद, बाजारवाद व सर्वहारा वर्ग की एक मतलब प्रगतिशीलतारूपता ही प्रगतिशीलता कहला सकता है। प्रगतिशीलता का एक नारा स्वीकारा जा सकता है- 'सबका साथ, सबका विकास'।

हिन्दी साहित्य में दो कालखंडों के बीच एक कालखण्ड संक्रमणकाल कहलाता है। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि एक की समाप्ति और दूसरे का प्रारंभ के बीच विचारों का प्रभाव बिलकुल समाप्त नहीं हो जाता है। प्रथम कालखण्ड का प्रभाव अगले कालखण्ड में कुछ दूर तक जाता है। प्रो॰ देवेन्द्रनाथ शर्मा का मानना है कि "साहित्य के क्षेत्र में चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाय या तात्कालिक सामाजिक समस्याओं एवं परिस्थितियों के चित्रण को, इसका अंतिम निर्णय न कभी हुआ है, न होगा।"[3]

छायावाद की प्रतिक्रिया ही है- प्रगतिशीलता यानी प्रगतिवाद। छायावाद (1918-1936 ई॰) और प्रगतिवाद (1936-1943 ई॰) के बीच का वय:संधिकाल है- 1936 ई॰। प्रगतिवादी विचार धारा की उत्पत्ति 1936 ई0 से प्रारंभ हुई, यह सत्य नहीं। कहीं-न-कहीं 1936 ई॰ के पूर्व ही छायावाद की प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई होगी और जिसका परिणाम है- प्रगतिवाद। प्रगतिवादी साहित्यकार छायावादी कवियों को प्रतिक्रियावादी मानते हैं। "प्रगति और प्रतिक्रिया परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं।"[4]

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है। यह भी कहा गया था कि लेखक को किसी संकीर्ण विचारधारा में बँधने की बजाय एक व्यापक मानवतावादी नजरिया अपनाना चाहिए। प्रगतिशील

साहित्य को प्रगतिवाद के विपरीत ऐसा साहित्य कहा गया, जिसमें छायावाद के बाद ही सामाजिक राजनीतिक स्थितियों को आधार बनाया गया हो और जो मार्क्सवादी या प्रगतिशील लेखक संघ से बँधा न हो। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह की टिप्पणी गौरतलब है। उन्होंने 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', नामक अपनी पुस्तक के 'प्रगतिवाद' नामक अध्याय में लिखा है कि "........... जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि-विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोधाभाव छिपा है।"

प्रगतिशीलता का साहित्यिक आशय भी है। कारण कि साहित्य का भाषा से परस्पर संबंध है। "भाषा मनुष्य की अनुपम सृष्टि है। भाषा की श्रेष्ठ सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है रचनात्मक साहित्य। साहित्य की विभिन्न विधाओं में, विशेषत: कविता में भाषा का श्रेष्ठतम प्रयोग अपेक्षित है।"[5] मनोरंजनात्मक साहित्य उपेक्षणीय है। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। 'दर्पण' भी साहित्यिक शब्द है। ग़ालिब की पंक्तियाँ अनायास स्मरण हो आ जाती हैं-

"उमर भर ग़ालिब यही भूल करता रहा।
धूल चेहरे पे थी और आइना साफ करता रहा।"

नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह आदि प्रमुख समकालीन रचनाकार हैं। अगर प्रगतिशील साहित्य की कड़ी में बढ़ोत्तरी की जाय तो एक और नाम समकालीन कवि का जुड़ सकता है और वो नाम है-अरुण कमल। साहित्य का प्रगतिशील आंदोलन सिर्फ कविता का आन्दोलन नहीं था, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति साहित्य की सभी विधाओं में हो रही थी। यही नहीं, यह ऐसा आंदोलन था, जो साहित्य से इतर कलाओं मसलन थियेटर, चित्रकला, संगीत, फिल्म आदि में अभिव्यक्ति पा रहा था।

'प्रगतिवाद' और प्रगतिशीलता में सूक्ष्म अंतर है। दोनों एक ही धरातल पर कार्य करते हैं। दोनों एक ही उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृतसंकल्पित हैं, किन्तु अंतर है स्वतंत्रता और पूर्ण स्वतंत्रता में। जहाँ प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा का पूर्ववत् अनुशरण करता है, वहाँ प्रगतिशील उससे स्वतंत्र है। प्रगतिवाद, केवल साम्यवादी मार्ग में स्वयं के लिए विवश है, जबकि प्रगतिशीलता किसी भी वाद-विशेष से आवद्ध नहीं होता है। इसी सूक्ष्म अंतर का परिणाम है- 'प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना'। 1933 ई० में भारतीय प्रगतिशील लेखकों एवं बुद्धिजीवियों ने एक संघ बनाने का फैसला लिया। इस कार्य को सफल रूप देने का कार्य लंदन में अध्ययनरत और प्रवासी बुद्धिजीवियों ने किया। भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की संस्थापना हो गयी। मुल्कराज आनंद को अध्यक्ष और सज्जद जहीर को सचिव बनाया गया। भारत में प्रेमचन्द भी लेखक संघ बनाना चाहते थे, किन्तु लंदन में बने 'भाप्रलेस' का स्वागत किया गया और उसकी घोषणा पत्र को सारांश के रूप में जनवरी 1936 ई० के 'हंस' में प्रकाशित किया गया। नौ और दस अप्रैल 1936 ई० को लखनऊ में काँग्रेस का अधिवेशन था। उस अधिवेशन में पंडित जवाहर लाल नेहरू सभापति बनाये गये और प्रलेस का सभापति प्रेमचंद हुए।

प्रगतिवादी साहित्यकारों ने समाज में किसानों-मजदूरों की भलाई के लिए साहित्य का सहारा लिया। हालाँकि समाज में इसका विरोध भी हुआ, लेकिन अज्ञेय जी इसका समाधान करते हुए लिखते हैं कि "किसानों मजदूरों की तरह आज निम्न मध्यवर्ग भी पीड़ित है। यही नहीं, बल्कि इस समाज-व्यवस्था में छोटे-बड़े सभी लोग परेशान हैं, इसलिए साहित्य सबके लिए है।"[6] बंगाल में अकाल के बाद भुखमरी और दरिद्रता की जो भयावह स्थिति उत्पन्न हुई, उसका जिक्र निराला ने अपनी कविता 'भिक्षुक' में बड़े ही करुण भाव से व्यक्त किया है-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ मिलकर हैं एक, चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठीभर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।"[7]

मजदूर-किसानों की दयनीय हालत को प्रगतिशील कविता में जगह दी गयी है। समाज के पूँजीपति वर्ग और सामंतवादी वर्ग को लक्ष्य कर अपनी क्षुब्धता को प्रकट किया गया है।

"श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बालक अकुलते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।"

कवि नागार्जुन ने अपनी कविता 'अकाल और उसके बाद' में बंगाल के अकाल से उत्पन्न भुखमरी और तंगहाली का वर्णन किया है। इसी कविता के उतरार्द्ध में आनंद का भी वर्णन करते हैं। वे लिखते हैं-

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धूआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद"

इसी तरह केदारनाथ अग्रवाल भी अपनी रचनाओं में प्रगतिशीलता को बखूवी प्रश्रय दिया है। बुजुर्ओं के द्वारा सर्वहारा वर्ग पर किये गये अत्याचार को उकेरते हैं। किसानों की बदहाली को बड़ी करीबी से झाँककर देखते हैं और उसकी दयनीय दशा, संघर्ष व कष्टमय जीवन का जिक्र करते हुए लिखते हैं-

"हमारी जिंदगी के दिन
बडे संघर्ष के दिन हैं
हमेशा काम करते हैं
मगर कम दाम मिलते है।"[8]

लोकमंगल की साधना को साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण प्रयोजन प्रगतिवादी विचारक मानते हैं। इनका मानना था कि जब तक समाज में आर्थिक सामाजिक विषमता रहेगी, तब तक बुजुर्आ सर्वहारा का शोषण करता रहेगा। वैसी स्थिति में समाज का सर्वांगीण विकास की कल्पना नासमझी ही होगी। सच्चा मानवतावादी शोषण-मुक्त, वर्गविहीन और सर्वांग विकसित समाज की आकांक्षा रखता है।

"छायावाद के गर्भ से 1930 ई॰ के बाद नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ, उसे सन् 1936 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गया।"[9] छायावाद के पश्चात् की विस्तृत सामाजिक चेतना के पक्षधर सम्पूर्ण साहित्य को प्रगतिशील साहित्य मानते हैं। इसी मतभेद के कारण "ये प्रगतिवाद को संक्रीर्ण और साम्प्रदायिक बतलाते हैं तथा 'प्रगतिशील साहित्य' को व्यापक और उदार। उनके अनुसार 'प्रगतिशील लेखक संघ' द्वारा निर्धारित और प्रचलित साहित्य प्रगतिवाद है और बाकी प्रगतिशील साहित्य।"[10]

मुझे लगता है कि प्राचीन काल से अब तक के संपूर्ण भारतीय साहित्य में प्रगतिशीलता की गूँज गूँजायमान रही है। यदि प्रगतिशीलता का अर्थ समाज के निम्न उपेक्षित वर्ग से सहानुभूति दिखाना है, तो संभवत: संस्कृत में मिट्टी की गाड़ी का रचयिता नाटककार शूद्रक भारत का पहला प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उसने अपने 'मृच्छकटिक' (मिट्टी की गाड़ी) में तत्कालीन आदर्शों के विरुद्ध उच्च कुलीन नायक-नायिका के स्थान पर 'चारुदत्त' नामक मध्य वर्ग के व्यक्ति को नायक बनाया है। यह भी उस जमाने की प्रगतिशीलता ही है।

भारतीय साहित्य में यथार्थवादी या प्रगतिशील काल की सफल, विस्तृत व सुदृढ़ परंपरा का आविर्भाव हुआ है- 'गाथासप्तशती' से। इसमें उच्चवर्ग के बजाय निम्न वर्गीय श्रमिक वर्ग की अनुभूतियों को पिरोया गया है। इसी तरह 'अमरूक' शतक, भर्तृहरि के श्रृंगार-शतक, गोवर्द्धनाचार्य की 'आर्यासप्तशती' में प्रगतिशीलता के तत्त्व मौजूद हैं।

हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार "प्रगतिवाद की आत्मा साम्यवाद में थी, दृष्टि रूस के साहित्यिक इतिहास की ओर थी, प्रेरणा राजनीतिक मंतव्यों द्वारा अनुशासित थी और कल्पना प्रोलेतेरिएत सत्ताशाही से अनुप्रमाणित थी। उसकी खोज उस नए मानव की थी जो समस्त पतनशील प्रवृत्तियों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित करके एक प्रोलेतेरियत शासन सत्ता को उभारने का अवसर दे।"[11]

समाज में सर्वांगीण विकास ही मानव मुक्ति की चरम स्थिति होगी। इस आधार पर समाज में चार प्रकार की सामाजिक अवस्थाएँ हैं-

1. आदिम साम्यवाद
2. दास प्रथा
3. पूँजीवाद
4. समाजवाद

प्रसिद्ध आलोचक डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने कहा कि "लोकतंत्र व राष्ट्रीय चेतना के लिए जाति व्यवस्था से लड़ने की जरूरत है। उन्होंने आगे कहा कि ज्ञान के विकास की दो प्रक्रिया हैं। पहला स्थान साधना का तथा दूसरा जन आन्दोलन"[12] कार्ल मार्क्स व एंगेल्स की स्वीकृति थी कि शोषक का जुल्म शोषितों पर तभी कम होगा या समाप्त होगा, जब शोषित वर्ग शोषकों को सत्ता विहीन कर देगा और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित होगा। समाज में साम्यवाद तभी आयेगा, जब समाज वर्गविहीन होगा, तभी कोई किसी का शोषण नहीं करेगा।

प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी काव्यधारा के विकास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अध्याय को जोड़ा। इस वाद ने साहित्य को व्यक्तिवादी ययार्थ के बंद कमरे से निकालकर आमजन-जीवन के गलियारे बीच प्रवाहित कर दिया। इतना ही नहीं जीवन और साहित्य के मूल्यों का निर्धारण किया। भाषा को कुहरे से निकालकर नये धरातल पर सम्मानित किया। इस धारा के प्रमुख कवियों में गिनती होती है- पंत, निराला, शमशेर, त्रिलोचन, सुमन तथा मुक्तिबोध की।

प्रगतिवादी काव्य के उद्भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, तो सहायक हुई ही, साथ ही छायावाद की जीवनषून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया भी उसमें निहित थी। मतलब यह हुआ कि छायावाद में साहित्यकार आत्मिक उन्नति या संतुष्टि के लिए रचना करते थे। स्पष्टतः कहा जाय, तो यह कि सामाजिक उन्नति गौण, पर वैयक्तिक उन्नति प्रधान।

प्रगतिवादी साहित्य में सोद्देष्यता चरमोत्कर्श पर होती है। सोद्देष्यता और प्रचार में अंतर है। किसी विषेष अभिप्राय से या किसी विषेष दृष्टि से कला की रचना करना सोद्देष्यता कहलाता है, जबकि पूर्ण स्पष्टता के साथ किसी सिद्धांत, दृष्टिकोण या मान्यता की घोषणा करता फिरना प्रचार कहलाता है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रगतिवाद एक उद्देश्य परक आंदोलन है। डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है कि "प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करता है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफाश हो और नयी सामाजिक शक्तियों के संघर्षो, युयुत्सा और आस्था को बल मिले। साहित्य जनता का जनता के लिए चित्रण करता है।"[13] डॉ॰ नगेन्द्र का मानना है कि "प्रगतिशीलता (प्रगतिवाद) ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी-काव्यधारा की उन्नति में अहम भूमिका निभाया है। इसी में वे लिखते हैं कि उसने काव्य को (साहित्य मात्र को) व्यक्तिवादी यथार्थ के बंद कमरे से निकालकर जनजीवन के बीच प्रवाहित कर दिया। जीवन और साहित्य के मूल्य, सौंदर्यबोध और लक्ष्य को समाज के यथार्थ और उसकी रचना से जोड़ा, भाषा को कुहरे से निकाल कर धरातल पर प्रतिष्ठित किया।"[14]

प्रगतिशील चेतना और उस चेतना के स्वरूप को निर्धारित करने में मुख्य भूमिका नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री व रामविलास शर्मा की रही है। किन्तु, इन प्रगतिशील कवियों के अलावे निराला, पंत, सुमन, मुक्तिबोध, शमशेर आदि की भी

भूमिका कम नहीं रही है। इसी कड़ी में और प्रगतिशील कवि जोड़े जा सकते हैं, जैसे-राजेश जोशी, अरुण कमल, केदारनाथ सिंह आदि को। प्रगतिशील साहित्य की चेतना और उसके स्वरूप निर्धारण को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर देखा-समझा जा सकता है:

1. मानव अस्मिता की प्राप्ति का प्रयास।
2. आम जन-जीवन का विस्तारपूर्वक चित्रण।
3. साहित्य में दलितों एवं उपेक्षितों का पुनःस्थापन।
4. मातृभाव की स्थापना।
5. पीड़ित व उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति।
6. सर्वहारा वर्ग को बुजुओं के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरणा देना।
7. सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकार के प्रति जाग्रत करना।
8. वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट करने की प्रवृत्ति जगाना।
9. सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा और अधिकारों की चिंता करना।
10. 'रोटी, कपड़ा और मकान की प्राप्ति सबका अधिकार' का भाव जगाना।

पूँजीवाद का सिद्धांत था- शेर को मांस उतना ही दो, जिससे वह केवल जी सके, शक्ति का अजमाईष नहीं करे। सदा-सदा से पीड़ित, शोषित एवं अनाचार की शिकार महिला के दर्द को प्रगतिवादी कवि सह न सका। उसकी वीणा की तार, तार-तार होकर बेसुरे आवाज़ में कह उठा-

"योनि नहीं है रे नारी! वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।"

आज भी वही स्थिति है नारियों की, जो मुगलों व अंग्रेजों के समय था। तैंतीस, पैंतीस या पचास प्रतिशत आरक्षण के बावजूद भी असुरक्षित हैं। मुट्ठी भर "नृषंस, दर्पी, हठी, निरंकुष, निर्मम, कलुषित, कुत्सित धनपति समाज को जोंक की भाँति चूसते हैं।"[15] वे कुबेरपति मुट्ठी भर धन समाज के दीन-हीन मर्दों और स्त्रियों पर लूटाकर सब कुछ छिन लेता है।

प्रगतिवादी कवियों ने शोषक वर्ग के अत्याचारों के विषद् चित्र प्रस्तुत कर चूस लिए गए किसानों और श्रमिकों की मर्मातक दषा का आभास देने का प्रयत्न किया है। "प्रगतिवाद प्राचीन विचारधाराओं को स्वीकार नहीं कर सकता। वह नियतिवाद, ब्रह्मवाद, आध्यात्मवाद के पचड़े में नहीं पड़ सकता। ये सभी उसके मार्ग की बाधाएँ हैं। वह नूतन दृष्टिकोण, नूतन गति का पोषक है। मार्क्सवादी प्रगतिवाद में मनुष्य के शरीर और मन, पृथ्वी और समाज के अतिरिक्त जो कुछ शेष रह जाता है, उसकी सत्ता को वह स्वीकार नहीं करता। वह व्यष्टि नहीं, समष्टि चाहता है। वह परिवर्तन में विश्वास करता है, अतएव साहित्य में निरन्तन सिद्धांतों की स्थापना उसे मान्य नहीं।"[16]

निष्कर्ष

हमारा समाज कमोवेश प्रारंभ से वर्ग संघर्श का शिकार रहा है। उसी वर्ग संघर्श को पाटने का आंदोदन है- प्रगतिशीलता। निष्कर्षतः यह स्वीकारा जा सकता है कि प्रगतिशीलता सर्वहारा समाज का एक बृहत् आंदोलन है। यह वास्तविक हक के लिए किया गया जमीनी संघर्ष है। इसमें उस हक की लड़ाई है, जिसे मुट्ठी भर सामंतवादियों ने सर्वहारा के सभी सुख छीन लिया था:

लूट लिया था
इसकी माँ-बहनों की अस्मत
कर दिया था बेघर

भूख से बिलखते बच्चे
चिथड़ों में लिपटी बहू-बेटियाँ
शेष
कुछ नहीं था सर्वहारा के सामने
सिवा संघर्ष के।

श्रमिक वर्ग भी समाज का एक मजबूत अंग है। समाज में एकरूपता की आवश्यकता है। सामंतवाद, पूँजीवाद, बाजारवाद एवं सर्वहारा वर्ग की एक रूपता ही प्रगतिशीलता कहला सकता है। उँच-नीच, भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, आदि के साथ-साथ दलगत नीति से ऊपर उठकर समाज के तमाम वर्गों की उन्नति ही प्रगतिशीलता कहला सकता है और इसकी आवश्यकता भी है। प्रगतिशीलता का एक नारा स्वीकारा जा सकता है- 'सबका साथ, सबका विकास'।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्यकोश (भाग-1), डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 395
2. हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ. रंजीत, पृष्ठ 31
3. छायावाद और प्रगतिवाद, प्रो॰ देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृष्ठ 8
4. वही, पृष्ठ 9
5. साहित्य विमर्श, प्रेम प्रभाकर, पृष्ठ 34
6. हिन्दी की प्रगतिशील कविता, डॉ. लल्लन राय, पृष्ठ 3
7. निराला रचनावली (खण्ड-1), नंदकिशोर नवल, पृष्ठ 76
8. कहें केदार खरी-खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 30
9. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली (2012), डॉ॰ अमरनाथ, पृष्ठ 222
10. वही,पृष्ठ 222
11. हिन्दी साहित्यकोश (भाग-1), डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 395
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1973 ई॰), डॉ॰ नगेन्द्र, पृष्ठ 606
13. वही, पृष्ठ 607
14. वही, पृष्ठ 608
15. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद (1947ई॰), विजयषंकर मल्ल, पृष्ठ 90
16. छायावाद और प्रगतिवाद, डॉ॰ देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृष्ठ 137

दलित स्कूली छात्राओं की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० संगीता कुमारी

अतिथि सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग
एस. के. महिला कॉलेज, बेगूसराय
एल. एन. एम. यू. दरभंगा, बिहार

सारांश

मानव एक सामाजिक प्राणी है। यह समाज में ही जन्म लेता है तथा समस्त सामाजिक क्रिया-कलाप करते हुए वहीं पर मृत्यु को प्राप्त होता है। मनुष्य अपने स्वतंत्रता अस्तित्व के साथ समाज के हित को ध्यान में रखते हुए एक साथ जीवन यापन कर मानवता का परिचय देता है। समाज में फैला रूढ़िवादी एवं अंधविश्वास विचारधारा विकास के मार्ग में रूकावट पैदा करती हैं, शिक्षा से व्यक्तित्व निखरता है, संस्कृति और अधिक संस्कार-संपन्न होती है, सभ्यता का विकास होता है, लौकिक ज्ञान चहुंमुखी होकर मानव जाति का मार्ग उत्तरोत्तर उत्थान हेतु प्रशस्त करता है। अभावग्रस्त 'दलित' छात्राओं द्वारा शिक्षा ग्रहण न किये जाने के अनेक कारण हैं यथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन, घरेलू काम भाई-बहिनों की देखभाल, माता -पिता का अशिक्षित अथवा निरक्षर होना और पढ़ाई में मार्ग-दर्शन न मिलना, बाल-विवाह, सामाजिक रूढ़िवादिता, मां-बाप की शिक्षा-व्यय वहन न करने की स्थिति, धरेलू काम में हाथ बंटना, दूसरे बच्चों के साथ सामंजस्य न कर पाने की प्रवृत्ति, माता-पिता के साथ बच्चे का उपयुक्त संवाद न होना, घर और शिक्षण संस्थाओं का वातावरण अनुकूल न होना, बच्चे पर माता-पिता का अनुशासन ढीला होना आदि-आदि।

मुख्य शब्द: लौकिक ज्ञान, सामाजिक रूढ़िवादिता, सम्मानहीन पिछड़ेपन, बहिष्कृत वर्ग, बहिष्कृत वर्ग, कल्प-सूत्र, गुण-कर्मानुसार

विषय-वस्तु

एनट्रे बेटिले ने जाति-प्रथा के दोषों को बताते हुए कहा है कि "जाति-प्रथा में यह दुर्गुण है कि उसमें असमानताएं मिटने की बजाय इकट्ठा होती चली जाती हैं और परिणामत: सामाजिक और राजनीतिकसत्ता एक ही जाति के कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होती चली जाती है।" अछूतों अथवा दलितों के अस्तित्व में आने और उनके विभिन्न युगों में जीवन-यापन के बारे में यद्यपि अनेक सिद्धान्त सामने आते हैं, किन्तु तर्कसम्मत सिद्धान्त यह प्रतीत होता है कि दलित आर्योत्तर भारतीयों के वंशज हैं। यह भयावह सत्य भी हमारे सम्मुख उपस्थित होता है कि विश्वभर में लगभग सभी समाजों की धन-संपदा, अवसरों एवं अन्य संसाधनों के असमान्य वितरण की समस्या न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है। इसी परिस्थिति के कारण समाज में कुछ मानव-समूह आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से आगे बढ़ गये और कुछ मानव-समूह अपेक्षाकृत पीछे छूट गये तथा कालान्तर में ये सुविधा-संपन्न और सुविधा-वंचित अथवा स्वामी और सेवक बन गये। स्वभावगत एवं संस्कारजन्य यह स्थिति पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगेबढ़ती गई और परिणामस्वरूप निर्धनता, असुविधापूर्ण तथा प्रतिकूल वातावरण मेंजन्मे-पले-बढ़े-पढ़े बच्चे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ते चले गये और राष्ट्र की मुख्य धारा से दूर होते गये।

प्रथम श्रेणी में आने वाले व्यक्ति दूसरे श्रेणी में आने वाले निरीह लोगों पर भेदभावजन्य शासन एवं अन्याय, उत्पीड़न और अत्याचार करने लगे, जिसका सहज परिणाम यह हुआ कि उत्पीड़ित वर्ग में हीन-भावना, मानसिकता, सम्मानहीन पिछड़ेपनका भाव पैदा हो गया। श्री राममनोहर लोहिया कहा करते थे कि "जाति-प्रथा यथास्थिति समर्थक एवं परिवर्तन विरोधी एक दुर्जेय शक्ति है जो समाज में न केवल सभी प्रचलित रीति-रिवाजों की रक्षा करती है बल्कि अपमान एवं असत्य को भी पुष्ट करती है।" कर्माधारित व्यवस्था में व्यक्ति अपनेज्ञान, गुणों एवं कर्मो के आधार पर उत्तम, मध्यम, अधम और निकृष्ट श्रेणी पाते थे, जबकीं जन्म पर आधारित व्यवस्था में ज्ञान-गुण-कर्म गौण हो गये और जन्म को प्रधानता मिल गई। इसका दुखद परिणाम यह हुआ कि अधम वर्ग में जन्मा बच्चा शिक्षित, गुणवान और कर्म-कुशल होने पर भी अधम ही बना रहा और उसे तथाकथित उच्च वर्ग ने सम्मानपूर्ण स्वीकृति प्रदान नहीं की।

भारत में जाति-प्रथा के प्रभाव के कारण ही एक बड़ा जन-समुदाय अछूत एवं दलित बनता चला गया। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था में सम्मानपूर्ण स्थान न पाने वाले वर्ग को 'अवर्ण', 'अछूत', 'अंत्यज' अथवा 'पंचम (वर्ण)' कहा जाने लगा। इस वर्ग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखकर ज्ञात होता है कि अछूत और दलित कहे जाने वाले लोग आर्य-पूर्व भारतीयों के वंशज थे। ब्रिटिश काल में इसे दलित वर्ग कहा गया। साइमन कमीशन ने इस वर्ग को 'अनुसूचित' जाति की संज्ञा दी। इन्हें 'बहिष्कृत वर्ग' नाम 1931 की जनगणना में दिया गया। 1970 में 'दलित पेंथर आंदोलन' में इन्हें 'दलित' की संज्ञा दी गई। 1933 में एक 'मंदिर-प्रवेश आंदोलन' के समय महात्मा ने इन्हें 'हरिजन' नाम दिया। प्रसिद्ध फांसीसी समाजशास्त्री चार्ल्स फौरियर ने ठीक ही कहा है कि "किसी राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था और राजनीति में स्त्रियों को जैसा स्थान प्राप्त हो, उससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि वह राष्ट्र कितना सभ्य और सुसंस्कृत है।" नगरों और गांवों की सभ्यता से दूर वन प्रदेशों अथवा पर्वतीय घाटियों में रहने वाले विकास की दृष्टि से अति पिछड़े कबीलों को आदिवासी कहा गया। यही अछूत, अंत्यज और दलित वर्ग ही स्वतंत्रता भारत में अनुसूचित जातियों के नाम सेजाना जाने लगा। प्राचीनकाल में महिलाओं को समाज में उच्च एवं सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त होता था।

वैदिक काल में स्त्रियों को निश्चय ही समाज और परिवार में उच्च स्थान प्राप्त थे। बौद्धकाल में नारी-साधिका शिक्षा ग्रहण करके उच्च शिखर तक पहुंच जाती थी। कल्प-सूत्र' नामक ग्रंथमें एक सहस्र जैन भिक्षुणियों के प्रथम श्रेणी के प्रवचनकार होने का उल्लेख मिलता है। याज्ञवल्क्य और गार्गी, मैत्रेयी तथा शंकराचार्य जनक और सुलभा, के बीच संवाद एवं शास्त्रर्थ से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में नारियां शिक्षा और ज्ञान के उच्च शिखर परविद्यमान थीं। 'थेरी' कही जाने वाली बौद्ध भिक्षुणियां अपनी संपूर्ण प्रबल शक्ति-सामर्थ्य योग्यता से सामाजिक उत्थान और धार्मिक कार्यो के प्रचार-प्रसार में लगी रहती थीं। कालान्तर में गुरुकुल में अध्ययनरत बाल-बालिका की प्रतिभा के आधार पर वर्ण-निर्धारण की प्रक्रिया में विकार आया तथा दुर्भाग्य से यह गुण-कर्मानुसार न होकर जन्मानुसार हो गया। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारत में नारियों को जो सम्मानपूर्ण दर्जा समाज और परिवार में प्राप्त था, वह सभी युगों में विभिन्न कारणों से नीचे गिरता गया और वे शिक्षा, राजनीति और व्यावसायिक क्षेत्रों में लगातार पिछड़ती गईं तथा वे वर्तमान युग के महिला-पिछड़ेपन के अभिशाप से ग्रस्थ हो गईं।

यहां इस बात का उल्लेख करना भी अनिवार्य है कि अनुच्छेद 15(4) को संविधान के मूल अधिकार शीर्षक अध्याय में रखा गया है जबकि अनुच्छेद 45-46 को 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्व' शीर्षक में रख गया है। अनुच्छेद 46 में शासन पर यह दायित्व डाला गया है कि वह देश में दुर्बल वर्ग के लोगों, विशेषत: अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को विशेष रूप से बढ़ावा देगी तथा सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषणों से उनकी रक्षा करेगी। अनुच्छेद 15(4) में उल्लेख है कि नागरिकों के सामाजिक अथवा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गो के उत्थान हेतु विशेष विधान आदि बनाने के सरकार के अधिकार को शेष अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 29 की धारा (2) के प्रावधान किसी भी प्रकार से बाधित नहीं करेंगे अर्थात् अनुच्छेद 15(4) के माध्यम से सरकार को यह संवैधानिक अधिकार दिया गया है कि वह सरकारी शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े नागरिकों के लिए, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण कर सकती है। समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवासन के अनुसार वंशागत जाति वर्ण-व्यवस्था को जारी रखने के लिए स्त्रियों को कठोर अनुशासन में रखा जाने लगा। उन्हें अपनी ही जाति में विवाह करने, विवाह बचपन में ही करने, विधवा जीवन व्यतीत करने अथवा सती होने के लिए बाध्य किया जाने लगा।

सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त हुए अवशेषों से इस मत की पुष्टि भी होती है। आर्योत्तर काल में भारतीय समाज चार वर्णोंख्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में बंट गया, जिसमें शूद्र निम्न स्तर पर थे। शायद इसीलिए आर्योत्तर वर्ण- व्यवस्था में उनको कोई स्थानही नहीं दिया गया। अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आर्य-पूर्व भारतीयों कीएक मूलत: स्वतंत्रता तथा समता-आधरित संस्कृति थी। यह भी कहा जाता है कि ये चार वर्णस्वयं भगवान ने बनाये अर्थात उन्होंने अपने मस्तक से ब्राह्मण, अपने बाजुओं से क्षत्रिय,अपनी जंघाओं से वैश्य (बणिक तथा कुशल कारीगर आदि) और अपने चरणों से शूद्र बनाये। जो लोग इन चार श्रेणियों में नहीं आ पाए, वे 'अछूत', 'अवर्ण', 'अंत्यज', 'पंचम', 'हम-शूद्र' कहे जाने लगे। विश्वभर में लगभग सभी समाजों में उपलब्ध अवसरों, धन-सम्पदा और अन्य संसाधनों केअसमान वितरण की समस्या न्यूनाधिक रूप से पाई जाती मुगल शासन काल में भी जातिगत अथवा वर्णाधारित व्यवस्था पूर्ववत् चलती रही। विडम्बना यह रही कि एक ओर तो उन्हे 'सुकोमल' कहा गया और दूसरी ओर उनके साथ 'कठोरतम' व्यवहार किया गया। शिक्षा से वंचित होकर उन्हें कूप-मंडूप की भांति घर की चारदीवारी तक सीमित रहने के लिए विवश होना पड़ा। समाज में नारियों का स्तर निम्न से निम्नतर होता गया। उन्हें पुरुषों की सेवक मात्र समझा जाने लगा, गृहस्थ कार्यों और उत्सवों में भी उनकी भागीदारी कम कर दी गई। संक्षेप में कहें तो उन्हें पुरुषों का सुख-आराम देने तथा बच्चे पैदा करने का यंत्र मात्र मान लिया गया। उन्हें पुरुषों के पूर्णत: अधीन बना दिया गया।

जाति-प्रथा विश्व की प्राचीनतम वर्गाधारित व्यवस्थाओं में से एक है जो आज भी अस्तित्व मेंहै। जाति-प्रथा का उद्‌गम हिन्दुओं के पवित्र ग्रंथ मनुस्मृति में खोजा जा सकता है, जिसका रचना काल 200 ईसा-पूर्व से 100 ईसा-पूर्व के बीच में कहीं पड़ता है। कालान्तर में देश के कुछ वर्ग भेद भावजन्य अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा उत्पीड़न का शिकार हो जाते हैं, क्योंकि ये मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित होते चले जाते हैं। ऐसे उत्पीड़ित वर्ग में हीन भावना, आत्मसम्मान-रहित मानसिकता, पिछड़ेपन का भाव और आत्मविश्वास का अभाव आदि पैदा हो जाता है। परिणामत: असुविधा, अलाभ एवं प्रतिकूल वातावरण में जन्मे-पले-बढ़े-पढ़े बालक/बालिकाएं सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े ही रह जाते हैं और वे राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित नहीं हो पाते। इसका पहला कारण, समुदायों का गरीबी के कारण असंगठित होना। दूसरा कारण, समाज के मध्यम वर्ग द्वारा इनके साथ भेदभाव किया जाना है। बच्चों में भी लड़कियां अपेक्षाकृत अधिक समाज और परिवार की उपेक्षा की शिकार बनती हैं और अशिक्षित रह जाती हैं।

अभावग्रस्त छात्राओं द्वारा शिक्षा ग्रहण न किये जाने के अनेक कारण हैं यथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ापन, घरेलू काम-भाई-बहिनों की देखभाल, बाल-विवाह, माता-पिता का अशिक्षित अथवा निरक्षर होना और पढ़ाई में मार्ग-दर्शन न मिलना, घरेलू काम में हाथ बंटाना, सामाजिक रूढ़िवादिता, मां-बाप की शिक्षा-व्यय वहन न करने की स्थिति, दूसरे बच्चों के साथ सामंजस्य न कर पाने की प्रवृत्ति, माता-पिता के साथ बच्चे का उपयुक्त संवाद न होना, घर और शिक्षण संस्थाओं का वातावरण अनुकूल न होना, बच्चे पर माता-पिता का अनुशासन ढ़ीला होना आदि-आदि। जबकीं भविष्य में नारी और जननी बनने वाली हैं जिन पर प्रगतिशील भावी पीढ़ी और स्वस्थ समाज के निर्माण का दायित्व सर्वाधिक है। अब तक के शोधो से यह निष्कर्ष निकला है कि सामाजिक पिछड़ेपन के कारण छात्राओं का बौद्धिक और भाषायी विकास अवरुद्ध होता है तथा उनकी शिक्षा-ग्रहण क्षमता प्रभावित होती है। यह भीपाया गया है कि सामाजिक दृष्टि से हीन भावना की शिकार हुई बालिकाएं पढ़ने-लिखने में रुचि नहीं लेती हैं और स्कूलों आदि में तत्समय उपलब्ध सुविधाओं क पूरा लाभ नहीं उठापातीं। उनकी बुद्धि का स्तर, आकांक्षा, भाषा-अभिव्यक्ति, सामान्य ज्ञान, विश्लेषण-क्षमता, समझने, सार-ग्रहण करने और स्मरण करने की शक्ति भी प्राय: निम्न स्तर की होती है।

निष्कर्ष

अभावग्रस्त छात्राओं का बौद्धिक विकास और अध्ययन संबंधी उपलब्धि अपेक्षित स्तर की नहींहो पाती। दलित नारी शताब्दियों से निर्बल, अधिकार रहित, अपनी बात कहने के अधिकार से वंचित, गरिमाहीन, व्यक्तित्व-शून्य रहती आई है, किन्तु अब उनमें भी जागृति आने लगी है और वे निश्चित रूप से नहीं चाहतीं कि भविष्य में उनको सताया जाये, दबाया जाये या फिर उनका किसी भी प्रकार से शोषण किया जाये, अथवा उन्हें उनके गृहस्थ, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राज, किशोर (1994): "स्त्री के लिए जगह", वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002
2. मैथ्यू, पी.डी. एवं बक्शी, पी.एम. (1993): "महिलाएँ व संविधान", भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली
3. कुसुम यदुलाल (2010) अनुसूचित जाति एवं जनजाति की स्कूली छात्राओं की मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याएँ, परिप्रेक्ष्य वर्ष 17, अंक 2
4. चमन लाल (2001): "भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री", सारांश प्रकाशन, दिल्ली- हैदराबाद।
5. जगजीवन राम (2001): "भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या", राजपाल पब्लिकेशन, दिल्ली।
6. मेघवाल, कुसुम (1994): "भारतीय नारी के उद्धारक डॉ. बी.आर. अम्बेडकर", राजस्थान दलित साहित्य अकादमी, उदयपुर-313001

कोविड-19: शिक्षा के लिए ई-लर्निंग एक चुनौती या एक वरदान

श्रीमती प्रियंका साहू

शोधार्थी- शिक्षाशास्त्र विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

डॉ० अंजूलता

असिस्टेंट प्रोफेसर-शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, झांसी

सार

जैसा कि पृथ्वी कोविड-19 महामारी से ग्रस्त है शिक्षा उद्योग जीवन को पाने के लिए विकल्प की खोज शुरू कर रहे है। शिक्षा प्रणाली में एक विकल्प की तलाश में ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के साथ यह खोज समाप्त हो गई। इस महामारी में ई-लर्निंग एक वरदान के रूप में सामने आया है लेकिन इस लर्निंग ने कई सारी आलोचनाओं को भी आकर्षित किया है जैसे प्रभावी शिक्षकों की कमी, और बुनियादी सुविधाओं की कमी, स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव एवं छात्रों के बीच कहीं ना कहीं ऑनलाइन शिक्षा पद्धति को लेकर अरुचि। लेकिन 100 चीजों की आलोचना करना बहुत आसान है बजाय की किसी एक चीज की सराहना करना। है ना?

हमारी शिक्षा प्रणाली हालांकि इसकी प्रकृति बहुत ही मौलिक और दोष रहित है पर आज समय की आवश्यकता अनुसार ई-लर्निंग आवश्यक हो गई या यह कहें की अति आवश्यक हो गई है। ज्ञान के प्रसार की इस खोज में किया गया चिंतन ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के साथ समाप्त हो गई थी। यद्यपि इस कोरोना काल में ई-लर्निंग बड़े पैमाने पर एक उपलब्धि के रूप में उभरा है लेकिन इसने बड़ी संख्या में आलोचनाओं को भी आकर्षित किया है। कुछ लोगों ने इसे स्वास्थ्य के लिए खतरा भी करार दिया है। यद्यपि इनमें से कई आलोचनाएं तुलनात्मक रूप से सही भी है लेकिन जब पृथ्वी अपनी सामान्य परिस्थिति में नहीं है तो यह भी प्रासंगिक है और ई-लर्निंग ऐसे समय की एक आवश्यकता है। कोविड-19 विद्यालयों महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों को अपने द्वार बंद करने के लिए बाध्य कर सकता है परंतु सीखने की प्रक्रिया बंद नहीं होगी।ई-लर्निंग को पूरी तरह से दोष पूर्ण अवधारणा कहा जा सकता है लेकिन हमारे पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। हम इस शिक्षण पद्धति की अवधारणा को बेहतर बनाने की कोशिश कर सकते हैं। व्यवहारिक रूप से हमारी पीढ़ी में कोई दोष रहित अवधारणा नहीं है। जिस तरह से भ्रष्ट राजनेताओं और पापी नीति निर्माता होने का मतलब यह नहीं है कि हम अपने लोकतंत्र में विश्वास करना बंद नहीं करते हैं उसी प्रकार ई-लर्निंग एक नई अवधारणा है इसका मतलब यह नहीं है कि हम पूरी तरह से हार मान लेंगे।ऑनलाइन शिक्षा हमारा भविष्य है और इसे अपनाने का यह अनुकूलित समय है। इसका ज्यादा से ज्यादा अभ्यास करें और इसे ना केवल एक विकल्प के रूप में बल्कि पारंपरिक शिक्षा प्रक्रिया से शिक्षा ग्रहण करने के विकल्प के रूप में तैयार करें। हम यहां परिवर्तन के युग में एक गवाह के रूप में खड़े हैं जहां हम एक तकनीकी क्रांति को अपने सामने देख सकते हैं इसलिए हमें इसका खुले हाथों से स्वागत करना चाहिए।

इस संकट से पहले भी ऑनलाइन लर्निंग अपने लचीलापन और कम खर्ची होने के कारण लोकप्रिय था एक अध्ययन से पता चलता है कि अमेरिका में औसतन 71% स्नातक अकेले सालाना +84000 तक कमाते हैं और बचे हुए 29% स्नातक +85000 से +150000 ऑनलाइन शिक्षण पद्धति के द्वारा शिक्षा प्रदान करके कमाते है ।

प्रस्तुत आर्टिकल में मेरा उद्देश्य ई-लर्निंग के पक्ष और विपक्ष को प्रस्तुत करना है इस आर्टिकल के द्वारा ई-लर्निंग की भविष्य में होने वाली संभावनाओं के बारे में तथा इस क्षेत्र में ई-लर्निंग के अन्य संभावनाओं की चर्चा करेंगे। इस आर्टिकल के द्वारा ई-लर्निंग की राह में आने वाले बाधाओं विशेष रूप से हमारे जैसे विकासशील देश में ई-लर्निंग की बाधाओं को कैसे दूर किया जाए वह जानेंगे।

प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं कि कोरोना ने पूरे विश्व में अपने पांव पसारे हुए हैं पूरा विश्व अभी भी अनिश्चितता की पकड़ में है। कोविड-19 महामारी एक स्वास्थ्य संकट है। हमारी तेजी से चलती हुई जिंदगी में अचानक से एक ठहराव आ गया है। जिसके चलते सरकार ने सामाजिक दूरी और राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन लगाने का फैसला किया यह एक नए युग की शुरुआत के जैसा लग रहा है।

दिसंबर 2002 में भारत सरकार ने संविधान के 86 संशोधन में 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी है।

इसलिए हमारा संविधान राष्ट्र के सभी नागरिकों को शिक्षा ग्रहण करने का मौलिक अधिकार देता है। कोविड-19 महामारी हमारी शिक्षा प्रणाली के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आई। हालांकि हर कोई सरकार की ओर उत्सुकता भरी नजर से देख रहा है कि वह कब लॉकडाउन को खत्म करें। लेकिन लॉकडाउन खत्म होते ही हम अपने घरों से निकलने के लिए एकदम स्वतंत्र हो जाएंगे लेकिन आगामी वर्षों में सरकार के नीति निर्माताओं के अनुसार सामूहिक समारोह सांप्रदायिक बैठकों में बड़ी संख्या में इकट्ठा होने की अनुमति नहीं दी जाएगी। इस तरह यह लगभग निश्चित है कि शैक्षिक परिसरों को भी किसी भी समय पूरी तरह से आबाद नहीं किया जाएगा। इस संकट के समय में ई-लर्निंग एक वरदान के रूप में दिखाई दिया है।

ऑनलाइन शिक्षा हमें घरों पर हमारी सुरक्षा के साथ पाठ्यक्रम और शैक्षिक कार्यक्रम को उपयोग करने की अनुमति देता है। ऑनलाइन शिक्षा सभी प्रकार के विद्यार्थियों को एक लचीली व्यवस्था प्रदान करता है उनके समय को बचाता है। ऐसे में मोबाइल, कंप्यूटर, लैपटॉप द्वारा ऑनलाइन क्लासेस, व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर, ईमेल, ऑनलाइन कोर्सेज, जूम, गूगल मीट, आदि महत्वपूर्ण एप्लीकेशन सफलतापूर्वक प्रयोग किए जा रहे हैं। ऑनलाइन शिक्षा विद्यार्थियों को कम लागत में अधिक लाभ उपलब्ध कराता है। हमारी पारंपरिक शिक्षण पद्धति में विद्यार्थियों को एक निश्चित समय एक निश्चित स्थान पर कक्षा में उपस्थित होकर एक विशेष समय पर एक लंबे व्याख्यान के माध्यम से और फिर से अगली कक्षा के लिए उसी दिनचर्या का पालन कराने के लिए बाध्य करता है। जोकि कुछ छात्रों के लिए बहुत ही जटिल कार्य प्रतीत होता है। इसके साथ-साथ स्कूल की फीस बहुत ही अधिक होती है । सभी विद्यार्थी स्कूल शुल्क, हॉस्टल शुल्क, भोजन शुल्क का खर्च नहीं उठा पाते। ऑनलाइन शिक्षा इन सभी खर्चों के लिए एक आसान प्रवेश द्वार प्रदान करती है। विद्यार्थी अपनी नौकरियों के साथ-साथ अध्ययन कार्य भी जारी रख सकते हैं क्योंकि उन्हें एक निश्चित समय पर एक निश्चित जगह पर बार-बार उपस्थित नहीं होना पड़ता।

"ऑनलाइन शिक्षण बहुत तेजी से दुनिया को प्रभावी लागत में शिक्षा देने का माध्यम बनता जा रहा है।" (जैकमेसमैन कैंब्रिज प्रौद्योगिकी साझेदार)

विभिन्न ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म छात्रों को विस्तृत सारणी में से पाठ्यक्रमों को चुनने की अनुमति देता है चाहे इसमें बीजगणित, भाषा या ललित कला ही क्यों ना हो। छात्र इसके द्वारा कुछ नए विषयों जैसे मानव समाज शास्त्र, इंटर्नशिप आदि का भी अध्ययन कर सकते हैं। ई-लर्निंग मल्टीनेशनल कॉरपोरेशन में अपने कर्मचारियों को कुछ नया सिखाने की प्रवृत्ति को भी संदर्भित करता है। कुछ नया सिखाने से तात्पर्य अपने अंदर मौजूदा कौशल में पदोन्नति करके अधिक क्षमता हासिल करना जिससे वह बेहतर प्रदर्शन कर सके। शिक्षा की पारंपरिक दुनिया जैसे विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों की शिक्षा के द्वारा कुछ नया सीखना लगभग असंभव है। ई-लर्निंग ना केवल नए छात्रों का स्वागत करता है बल्कि वे लोग जो खुद को आगे बढ़ाना चाहते हैं उन्हें प्रशिक्षित भी करता है। हमारी शिक्षा प्रणाली जिसमें छात्रों और उनके शिक्षकों के बीच भौतिक सहभागिता शामिल है ,हालांकि व्यवहार में बहुत मौलिक है परंतु यह अपने स्वभाव में बहुत ही अल्पविकसित है। हमारे देश में शिक्षा ना केवल पूर्व परिभाषित है बल्कि कुछ निश्चित

पाठ्यक्रम और कुछ चयनित पाठ्य पुस्तको तक ही सीमित है जिसके कारण यह मानव के व्यक्तित्व विकास और मानव संबंधों की सीमा को एक बड़े क्षेत्र में कवर करती है।अधिगम में शिक्षक या प्रोफेसर के द्वारा अर्जन किया हुआ उपदेशात्मक ज्ञान भी शामिल होता है स्नातक स्तर पर बड़े पैमाने पर पाठ्यक्रम विशेष रूप से पाठ्य पुस्तक उन्मुख होते हैं अर्थात अपेक्षाकृत स्थिर प्रकृति के होते हैं, पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम एक निश्चित समय सीमा तक तो ठीक है लेकिन उच्च शिक्षा में आगे के पाठ्यक्रमों के लिए इन्हें उचित नहीं कहा जा सकता। उच्च शिक्षा में एक छात्र के रूप में विकास से अधिक एक व्यक्ति के रूप में विकास शामिल है, इसमें विश्लेषणात्मक और सामाजिक कौशल का विकास भी शामिल है। हमारी शिक्षा प्रणाली स्नातक स्तर के पहले सिर्फ किताबी ज्ञान देती है और उच्च स्तर पर व्यवसायिक दृष्टि से उचित शिक्षा नहीं देती है सीखने की प्रक्रिया सिर्फ पाठ्यपुस्तक तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि शिक्षा को छात्रों के अनुकूल व्यवसाय प्रदान करने वाली भी होनी चाहिए इसके लिए सिर्फ पुस्तकों का ज्ञान पर्याप्त नहीं है।

हमारे देश में जहां हम एक ओर अपने शिक्षक को गुरु या एक रोल मॉडल के रूप में देखते हैं। शिक्षा शब्द का एक बहुत ही विस्तृत अर्थ है जब शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच परस्पर अंतर क्रिया होती है तभी शिक्षार्थी कुछ सीख पाता है इसके साथ साथ हमारे देश में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने के बजाय सामूहिक रूप से शिक्षा देना ज्यादा अच्छा माना जाता है क्योंकि सामूहिक शिक्षा के दौरान छात्र ना केवल शिक्षक से सीखता है बल्कि अपने साथी समूह से भी अलग-अलग प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार के वातावरण में ज्ञान प्राप्त करने वाले छात्रों को डिजिटल माध्यम से शिक्षा देना कोई सरल कार्य नहीं है इसके अलावा हमारे देश में जहां जहां लोगों को अपने जीवन यापन के लिए ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वहां बच्चों को डिजिटल शिक्षा के लिए अन्य सुविधाएं प्रदान करना उनके लिए एक नामुमकिन कार्य के जैसा है। हमारा देश एक विकासशील देश है यहां पर ऑनलाइन शिक्षा उन लोगों के लिए ज्यादा लाभप्रद है जो इंटरनेट के क्षेत्र से पहले से जुड़े हुए हैं। वास्तव में अगर देखा जाए तो हमारे देश में बहुत ही कम लोग हैं जिनके पास उपयुक्त सुविधाएं स्मार्टफोन और कंप्यूटर उपलब्ध है इसके साथ साथ कंप्यूटर और स्मार्टफोन उपलब्ध होने के बाद भी उनके पास अच्छा नेटवर्क उपलब्ध होना बड़ी मुश्किल बात है। इसी क्रम में हम देखते हैं कि देश में एक छोटी संख्या में ऐसे विद्यालय उपलब्ध हैं जहां डिजिटल शिक्षा देने के माध्यम जैसे वर्चुअल कक्षाएं स्मार्ट रूम उपलब्ध हैं ऐसे में हम देखते हैं की देश का बहुत बड़ा समूह है जो इन सभी सुविधाओं से वंचित है वह डिजिटल शिक्षा ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं और वे लोग अपने मौलिक अधिकार से वंचित हैं अत: अगर भविष्य में डिजिटल शिक्षा को हम एक मुख्य शिक्षा का माध्यम मानते हैं तो निम्न वर्ग के लोग अपने मौलिक अधिकार से वंचित ही रहेंगे। क्या यह एक भेदभाव नहीं कहलाएगा? एक ऐसी कक्षा जिसमें सिर्फ उच्च वर्ग के लोग ही पढ़ाई कर सकते हैं या सिर्फ उच्च वर्ग के लोग ही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं? क्योंकि हमारे देश में प्रत्येक छात्र स्मार्टफोन या कंप्यूटर का खर्च नहीं उठा सकता।

"हमारे देश में 90% शिक्षा की तकनीकी या मध्यम व उच्च वर्ग के लोगों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं यदि हम निम्न वर्ग को यह सारी तकनीकी की सुविधाएं बिना शुल्क के भी उपलब्ध करा दें तो भी यह एक निरर्थक कार्य है क्योंकि उन्हें इस तकनीकी का संचालन करना ही नहीं आता जैसे कि हम उन्हें भिन्न सिखाना चाहते हैं और हम उदाहरण के रूप में पिज्ज़ा को ले रहे हैं तो यह भी एक निरर्थक कार्य है क्योंकि पिज़्ज़ा का उदाहरण वे तभी समझेंगे जब उन्होंने कभी पिज्जा खाया हो तभी वह जानेंगे कि पिज्ज़ा में कितने भाग होते हैं।" (गौरी गुप्ता S.F. डायरेक्टर)

इंटरनेट कनेक्शन अभी भी हमारे देश के कई भागों में काफी बड़ी समस्या है ई-लर्निंग की बात करें तो विद्यालयों को इस तरह बनाया ही नहीं गया है कि वहां पर ई-लर्निंग कराया जा सके। शिक्षक अभी भी नई तकनीकों से अनभिज्ञ हैं इसलिए वह कक्षा में ई-लर्निंग कराते हुए अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन करने में असमर्थ हैं कुछ ही शिक्षक वर्चुअल कक्षाओं को संचालित कर पाते हैं क्योंकि कुछ ही शिक्षकों को इसका ज्ञान है। इसके अलावा एक दूसरी समस्या जोकि यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों या शहरों के बाहर जो जो भी शिक्षक शिक्षण कार्य कर रहे हैं तथा जिन्हें ई-लर्निंग की पूर्ण जानकारी है उन्हें उस तरह का वातावरण ही नहीं उपलब्ध हो पाता कि वे ई-लर्निंग करा सकें क्योंकि कक्षा के दौरान ही इंटरनेट संबंधी समस्या का उन्हें बार-बार सामना करना पड़ता है जिसके कारण वे निर्धारित विषय को कक्षा में पढ़ा नहीं पाते। इसके साथ साथ ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों के अंदर ई-लर्निंग को लेकर कोई भी उत्साह नहीं दिखाई देता क्योंकि क्योंकि उन्हें शिक्षा ग्रहण करने का यह माध्यम अत्यंत ही बोझिल दिखाई पड़ता है, कक्षा के

भीतर शिक्षक व छात्र की अंत: क्रिया पारंपरिक शिक्षण प्रणाली में ही उपलब्ध होती है जो कि ई-लर्निंग में संभव नहीं हो पाता एवं इसके साथ साथ छात्रों के माता-पिता का सहयोग भी सही ढंग से नहीं मिल पाता जिसके कारण शिक्षक ऑनलाइन कक्षाएं संचालित नहीं कर पाते। ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान बच्चों को शांत माहौल की आवश्यकता होती है जो कि घर में बैठकर उपलब्ध नहीं हो पाता और ऑनलाइन कक्षाएं बाधित होती रहती हैं। ऑनलाइन कक्षाओं में साथी समूहों का साथ ना मिल पाने के कारण छात्रों में उदासीनता का माहौल उत्पन्न हो जाता है जिससे मानसिक तनाव भी उत्पन्न हो सकता है। शिक्षक और छात्र का आमने सामने विचारों के आदान-प्रदान नहीं हो पाते हैं ना ही शिक्षक छात्रों से प्रश्न कर पाते हैं ना ही छात्र अपने संदेह का शिक्षकों से तुरंत उत्तर पाते हैं इस प्रकार इन सभी पहलुओं को देखते हुए हम कह सकते हैं कि ऑनलाइन कक्षाओं में लचीलापन कम है ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान छात्रों का लगातार स्क्रीन के सामने बैठे रहने से आंखों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है इस प्रकार छात्रों के स्वास्थ्य के लिए भी ऑनलाइन कक्षाएं उपयुक्त नहीं मानी जा सकती। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में कक्षा का संचालन ही नहीं बल्कि छात्रों की शारीरिक क्रियाकलाप का भी ध्यान रखते हैं जैसे कि प्रत्येक विद्यालय महाविद्यालयों में खेल के मैदान उपलब्ध होते हैं जिसमें छात्रों के लिए खेलने की व्यवस्था भी होती है छात्रों के लिए अलग तौर से खेलों की कक्षाएं भी संचालित की जाती है। जिससे छात्रों का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है लेकिन अगर हम ऑनलाइन कक्षाओं पर ध्यान दें तो छात्र सिर्फ कंप्यूटर स्क्रीन तक ही सीमित रह गए हैं जो कि उनके स्वास्थ्य के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है लगातार बैठने से उनके शरीर पर बुरा असर पड़ता है मोटापा एवं आंखों की रोशनी जैसी कई दिक्कतों का सामना करना पड़ सकता है। लगातार प्रयासों के बावजूद भी शिक्षक पारंपरिक शिक्षण प्रणाली की तुलना में ऑनलाइन शिक्षण प्रणाली में छात्रों की रुचि ,रुझान का स्तर नहीं बढ़ा पाएंगे

प्रधानमंत्री के द्वारा म-अपकलं प्रोग्राम संचालित किया गया जो शिक्षा पर आधारित है। जिसके द्वारा डिजिटल एवं ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा देना तुरंत शुरू किया गया। सर्वोच्च 100 विश्वविद्यालयों को 30 मई 2020 से ऑनलाइन पाठ्यक्रम स्वचालित रूप से शुरू करने की अनुमति दी गई। कोरोना वायरस की वजह से स्कूलों और कॉलेजों के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के अवसाद एवं तनाव को दूर करने के लिए सरकार की तरफ से एक डिजिटल प्लेटफॉर्म को पेश किया गया जिसे "मनोदर्पण" नाम से जाना गया। (निर्मला सीतारमण ,मिनिस्टर आफ फाइनेंस ऑफ इंडिया)

ऑनलाइन शिक्षा शायद शिक्षा प्रदान करने का भविष्य में एक माध्यम हो सकता है लेकिन पारंपरिक शिक्षा प्रणाली से आधुनिक तरीकों में बदलाव एक बहुत ही क्रमिक प्रक्रिया होनी चाहिए, इसे अचानक बदलाव के द्वारा प्रभावी रूप से हासिल नहीं किया जा सकता। यद्यपि सरकार कक्षाओं का संचालन टेलीविजन के माध्यम से करने का प्रयास कर रही है, लेकिन यह ऑनलाइन शिक्षण पारंपरिक अवधारणा को पूरी तरह से प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है।

ऑनलाइन शिक्षण शायद अभी तक एक पूरी तरह से त्रुटि पूर्ण अवधारणा है। क्या हमारे पास इस वैश्विक सर्वव्यापी महामारी के समय में अन्य कोई वैकल्पिक मार्ग है? अत: इस नए शिक्षण के युग को अपनाने का एवं शिक्षण के नए तरीके के भविष्य के रूप में तैयार करने का सही समय है। कोविड-19 कॉलेजों विद्यालयों के दरवाजों को बंद कर सकता है लेकिन सीखने की प्रक्रिया को बंद नहीं कर सकता।

शिक्षा के क्षेत्र में ऑनलाइन लर्निंग एक क्रांतिकारी परिवर्तन होगा। इस विषय में कई सवाल उठ सकते हैं जैसे हम इसे कब पूरी तरह से अपना पाएंगे? इससे संबंधित निपुण शिक्षक कौन होंगे? ऐसे कौन से विषय होंगे जो इसके द्वारा पढ़ाए जाएंगे यह उच्च शिक्षा के लिए एक क्रांतिकारी परिवर्तन है हमें सामूहिक रूप से इसकी कल्पना करनी चाहिए और इसकी और कदम बढ़ाने चाहिए।

"शिक्षा तथ्यों को सीखना नहीं बल्कि सोचने समझने के लिए दिमाग का प्रशिक्षण है" (अल्बर्ट आइंस्टीन)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिक्षा के सिद्धांत- पी डी पाठक
2. शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियां -डॉ प्रतिभा उपाध्याय
3. शैक्षिक तकनीकी -डॉ राजीव मालवीया

4. कुमार प्रमोद, (2020). रिफरेंस बेस्ट स्टडी ऑन इंपैक्ट ऑफ कोविड–19 ऑफ एजुकेशन सिस्टम
5. दागदी,सरस्वती.,गिरी आशीष, राम.,सिमखादा,पदम. (2020).इंपैक्ट ऑफ कोविड–19 ऑन द एजुकेशन सेक्टर इन नेपाल चौलेंज एस एंड कॉपी स्ट्रैटेजिस
6. शर्मा,कृष्णा.,गांधी राजीव., शर्मा मुकेश. (2020). गवर्नमेंट इनीशिएटिव फॉर कंटिन्यू कंटिन्यूइंग स्कूल एजुकेशन ड्यूरिंग लॉकडाउन आई स्टडी ऑफ गवर्नमेंट स्कूल्स इन प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक्ट ऑफ राजस्थान
7. अमर उजाला मई संस्करण
8. दैनिक जागरण जून संस्करण
9. books-googlr-co-in©>books
10. drishtiias-com@hindi@daily&upd
11. navbharattimes-indiatimes-com

राजस्थान के खनिज संसाधनः भौगोलिक वितरण एवं उत्पादन

डॉ० धमेन्द्र पाटीदार

सहायक आचार्य, भूगोल, राजकीय महाविद्यालय, सागवाड़ा (डूंगरपुर)

संक्षिप्ती

खनिज संसाधन वह प्राकृतिक पदार्थ होते है जिसकी अपनी भौतिक विशेषताएँ होती है और जिसकी बनावट को रासायनिक गुणों द्वारा धात्विक एवं अधात्विक पदार्थ के रूप में व्यक्त किया जाता है। खनिज पदार्थ देश के सीमित एवं महत्त्वपूर्ण संसाधन माने जाते है जिन्हें न तो पुनः निर्मित नहीं किया जा सकता है और न ही औद्योगिक अथवा कृषि क्षेत्र से उत्पादित किया जा सकता है। सामान्यतः खनन को विकासशील देशों की एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि माना जाता हैं जिसके अन्तर्गत भूगर्भ से खनिज पदार्थ निकाले जाते है और यह रोजगार एवं आय में महत्त्वपूर्ण योगदान रखता है। भारत द्वारा अनेक खनिजों का उत्पादन एवं निर्यात किया जाता है जो इसकी भौगोलिक सीमा में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। राजस्थान को खनिजों का अजायबङर कहा जाता है जिसमें मुख्यतः जास्पर, वोलस्टोनाइट, जस्ता, ऐस्बेस्टस, जिप्सम, मार्बल, ऑकर, रॉकफास्फेट एवं कैल्साइट खनिज पाये जाते है।

खनन वैसे तो एक अल्पकालीन गतिविधि मानी जाती है परन्तु इसके प्रभाव दीर्ङकालीन होते है। खनन से एक ओर जहाँ खनन कंपनी को लाभ होता है, लोगों को रोजगार प्राप्त होता है एवं सरकार को आय प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर इससे पर्यावरणीय ह्रास, पारिस्थितिकी असंतुलन और मानव जीवन पर दुश्प्रभाव पड़ते है। खनन में अनेक गतिविधियाँ ऐसी होती है जो प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर, जनसामान्य, पेड़-पौधों, जीव जन्तु, पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, विशेषकर उस स्थिति में जब खनन मानव बसाव के अधिक निकट हो, खनन प्रक्रिया समुचित ढ़ंग से पूर्ण न की जाए। एक विचार जो बुद्धिजीवियों के मन में उत्पन्न होता है कि आर्थिक विकास के लिये क्या गैर-नवीकरणीय खनिज संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जाना चाहिए? परन्तु यहाँ इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इन गैर-नवीकरणीय खनिजों का कोई मूल्य नहीं है, यदि इनका उपयोग समाज के विकास के लिए न किया जाए। इस न्न में प्रस्तुत शोध पत्र इन गैर-नवीकरणीय संसाधनों के वितरण, भण्डार एवं उत्पादन के साथ समुचित ढ़ंग से दोहन एवं पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान आकर्षित करता है ताकि सतत् विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

Key Words: खनन, खनिज संसाधन, उत्पादन एवं वितरण, पर्यावरण ह्रास एवं संरक्षण।

परिचय

किसी देश का आर्थिक विकास एवं समृद्धि बहुत कुछ उस देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है। वर्तमान युग में जिन देशों के पास प्राकृतिक संसाधनों के अगाध भण्डार भरे है वहीं देश आज विश्व में आर्थिक रूप से सुदृढ़ तथा उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में अधिक उन्नति कर सके है। इसके विपरीत जिन देशों में प्राकृतिक संसाधनों का अभाव है वह देश न तो आर्थिक उन्नति कर पाए है और न ही उत्पादन, रोजगार एवं राष्ट्रीय आय का स्तर ऊँचा कर पाए है। विश्व के अल्पविकसित देश इसके उदाहरण माने जा सकते है। प्राकृतिक संसाधनों के समुचित भण्डार होने से ही संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, युक्रेन, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी,

बेल्जियम, फ्रांस एवं जापान विश्व के ऐसे राष्ट्र है जिन्होंने अन्य राष्ट्रों की तुलना में अधिक उन्नति की है। इन प्राकृतिक संसाधनों में खनिज एक प्रमुख संसाधन है जिससे अर्थव्यवस्था के विकास एवं समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है।

खनिज संसाधन आधुनिक अर्थव्यवस्था के विकास की आधारशिला माने जाते है। एक ओर जहाँ खनिज संसाधन औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आधार एवं ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत है वहीं दूसरी ओर वह राजनीतिक सुरक्षा एवं शक्ति के स्त्रोत, कच्चेमाल, रोजगार के आधार तथा आर्थिक सुदृढ़ता के प्रतीक भी माने जाते है। कृषि, उद्योग, परिवहन तथा अन्य क्षेत्रों का विकास खनिज संसाधनों पर ही निर्भर करता है। खनिज पदार्थो की खोज, उनके खनन एवं उपयोग के परिणामस्वरूप ही आज विश्व के आस्ट्रेलिया और कालाहारी जैसे उष्णतम एवं अलास्का जैसे ठण्डे मरूस्थल का विकास संभव हो सका है। इसीलिए कहा भी जाता है कि आधुनिक आर्थिक जीवन का कोई भी क्षेत्र खनिज संसाधनों के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है और यही खनिज संसाधनों के महत्त्व को उजागर करता है।

खनन विश्व के अधिकांश विकासशील देशों की एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि है जिसे प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों में सम्मिलित किया जाता है। खनन का मुख्य उद्देश्य आर्थिक होता है। खनन प्रक्रिया के अन्तर्गत भूगर्भ से धात्विक एवं अधात्विक खनिज निकाले जाते है। सामान्यत: वह वस्तुएँ जो भू-गर्भ से खोदकर निकाली जाती है उन्हें खनिज पदार्थ कहते है। दूसरे शब्दों में, खनिज वह प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला वह पदार्थ होता है जिसकी अपनी भौतिक विशेषताएँ होती है और जिसकी बनावट को रासायनिक गुणों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। खनन प्रक्रिया में वह सभी उत्पाद प्राप्त होते है जो औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र से उत्पादित नहीं किए जा सकते है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत मुख्यत: सोना, चाँदी, तांबा, हीरा, लौह-अयस्क, कोयला, पेट्रोलियम, यूरेनियम, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, बॉक्साइट, ग्रफोइट, टिन, ऐस्बेस्टस, जिप्सम, अभ्रक, मूल्तानी मिट्टी, चूना पत्थर, घीया पत्थर, स्लेट पत्थर, इमारती पत्थर, बैराइट्स, बेन्टोनाइट, केलसाइट एवं टंगस्टन खनिज निकाले जाते है। खनिज किसी देश के सीमित एवं महत्त्वपूर्ण संसाधन होते है। चूंकि खनिज संसाधनों को पुन: निर्मित नहीं किया जा सकता है इसीलिए खनन प्रक्रिया हमारे लिए और भी महत्त्वपूर्ण बन जाती है।

खनन भारत जैसे विकासशील देश की एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि है जिससे न केवल खनन कम्पनी को लाभ होता है वरन् इसकी विभिन्न गतिविधियों में संलग्न लोगों को रोजगार एवं सरकार को आय की प्राप्ति होती है। देश के आर्थिक विकास में खनन की महत्त्वपूर्ण भूमिका का पता इस बात से भी लगाया जा सकता है कि खनन से प्राप्त उत्पाद हम कृषि, उद्योग अथवा सेवा क्षेत्र से प्राप्त नहीं कर सकते है। यह खनन की मुख्य विशेषता भी कही जा सकती है और इसी के चलते वर्तमान वैश्विक परिवेश में खनन एवं खनिज पदार्थो का आर्थिक महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। एक विचार जो बुद्धिजीवियों विशेषकर अनुसंधानकत्ताओं के मन में उत्पन्न होता है कि आर्थिक विकास के लिए क्या इस प्रकार के गैर-नवीकरणीय खनिज संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जाना चाहिए? दूसरी ओर यहाँ इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इन संसाधनों का कोई आर्थिक मूल्य नहीं है, यदि समाज के विकास के लिए इनका उपयोग न किया जाए। इस कशमकश में प्रस्तुत शोध पत्र इन गैर-नवीकरणीय संसाधनों के वितरण, भण्डार एवं उत्पादन के साथ समुचित ढ़ंग से दोहन एवं पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान आकर्षित करता है ताकि सतत् विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

साहित्य का पुनर्रावलोकन

नवीन, एम.एस. (2012) ने अपने शोध अध्ययन में खनन से भौतिक-रासायनिक एवं जैविक पैरामीटर का ह्रास पाया। उन्होंने बालू के अवैज्ञानिक खनन से मिट्टी के पीएच मान एवं उर्वरता का ह्रास, लौह एवं सल्फेट के आयन का उच्च संकेन्द्रण, टॉक्सिक मेटल, जल की गुणवत्ता का ह्रास, भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन एवं पारिस्थितिकी असन्तुलन जैसी समस्याएँ खनन क्षेत्र में पायी। जियांग, एच. एवं अन्य (2010) ने अपने अध्ययन में खनन से न केवल आस-पास के क्षेत्र का जल अधिक प्रभावित पाया वरन् इससे हानिकारक प्रभाव धीरे-धीरे दूर-दूर तक फैलते दिखाई पडे। फ्रेड जी. बेल एवं लॉरेन्स जे. डोनेल (2007) ने अपने अध्ययन में ब्रिटेन के विगत 35 वर्षो के खनन सम्बन्धि समंकों पर किए गए आनुभाविक अध्ययन में पाया कि खनन की गतिविधियों से स्थानीय पर्यावरण ङातक रूप से प्रभावित हुआ है, विशेषकर भूजल में चूना पत्थर ङुल जाने से स्थिति और भी खतरनाक बनती जा रही है। रफीक, एम. (2007)` ने खनन के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों पर अध्ययन में पाया कि यद्यपि खनन ने प्रदेश की

सामाजिक-आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है फिर भी इसके पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी प्रभाव भविष्य में हानिकारक सिद्ध होंगे। गोस, एम.के. (2004) ने अपने अध्ययन में झारखण्ड के गोड़ा जिले के कोयला खनन क्षेत्रों की भूमि की उर्वरता पर खनन एवं गैर-खनन क्षेत्रों पर किये गये तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि गैर-खनन वाले क्षेत्रों की अपेक्षा खनन के निकटवर्ती क्षेत्रों की मृदा कम उपजाऊ पायी। किटुला, ए.जी.एन. (2004) ने अपने खनन और गैर-खनन समुदायों पर किये तुलनात्मक अध्ययन में खनन परिवारों की औसत आय अधिक पायी। साथ ही खनन के निकटवर्ती क्षेत्र का पर्यावरण में प्रदूषण, मर्करी, साइनाइट, धूल एवं दूशित जल भी अधिक पाया।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य राजस्थान के खनिज संसाधनों के वितरण, जमाव, उपयोग एवं उत्पादन का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस हेतु निम्न दो विशिष्ट उद्देश्य बनाये गये है:

1. राजस्थान के प्रमुख एवं गौण खनिजों के भौगोलिक वितरण एवं जमाव का अध्ययन करना।
2. राजस्थान के प्रमुख एवं गौण खनिजों के उपयोग एवं उत्पादन का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि

खनिज संसाधनों के वितरण, भण्डार एवं उत्पादन का विश्लेषण करने के लिये राजस्थान को उद्देश्यपूर्वक चुना गया है। खनिजों का अजायबघर कहे जाने वाला राजस्थान खनिज संसाधनों की उपलब्धता एवं विविधता के मामले में भारत का सबसे समृद्ध राज्य है जहाँ 81 विभिन्न प्रकार के प्रमुख एवं गौण खनिज पाये जाते है और जिनमें से 57 खनिजों का खनन वर्तमान में किया जा रहा है। राजस्थान देश में सीसा एवं जस्ता अयस्क, सेलेनाइट एवं वॉलोस्टोनाइट का एकमात्र उत्पादक राज्य है जबकि चॉदी, केल्साइट, फलोराइट, डोलोमाइट, जिप्सम, बॉल क्ले, स्फतीय, फेल्सफार, रॉक फास्फेट, लाल गेरू, लौह अयस्क, तांबा, स्टील एवं सीमेंट ग्रेड चूना पत्थर का अग्रणी उत्पादक राज्य है। इसके अतिरिक्त संगमरमर, कंकर एवं बजरी, बलुआ पत्थर, स्लेट पत्थर, इमारती पत्थर, बेन्टोनाइट एवं ग्रेनाइट जैसे सजावटी पत्थर के उत्पादन में भी राज्य का देश में प्रमुख स्थान है। राज्य में लिग्नाइट, कांच बालुका, चाइना क्ले, क्वाट्ज़ाइट, रायोलाइट, सरपेनटाइन, चिप्स पावडर, ब्रिक्स अर्थ, मेसोनरी पत्थर, क्वार्ट्ज आदि खनिज भी न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते है।

राजस्थान में खनिज संसाधनों की खोज, विकास एवं प्रशासन के उद्देश्य से खान एवं भूविज्ञान निदेशालय की स्थापना की गई जिसका मुख्यालय उदयपुर में रखा गया है। राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र का खनन एवं विपणन का कार्य राजस्थान राज्य खनन एवं खनिज निगम संक्षेप में, आर.एस.एम.एम.एल. द्वारा किया जाता है। इस निगम को खनन की गतिविधियों से वर्ष 2018-19 के दौरान 71147 करोड़ रूपये का अनुमानित सकल राजस्व एवं 19217 करोड़ रूपये का पूर्व-कर लाभ प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही विभिन्न उद्योगों को कच्चामाल एवं राज्य के निवासियों को रोजगार एवं आय की प्राप्ति हुई है। इस अध्ययन में मुख्यत: द्वितीयक समंक प्रयुक्त किये गये। यह द्वितीयक समंक विभिन्न सरकारी प्रतिवेदनों, भारत एवं राजस्थान सरकार के खनिज विभागों के विभिन्न प्रतिवेदनों से प्राप्त किये गये है। राजस्थान में खनिज संसाधनों के भण्डार के विवरणात्मक विवेचन के साथ भौगोलिक वितरण को राजस्थान के खनिज मानचित्र की सहायता से दर्षाया गया है जबकि राज्य के प्रमुख एवं गौण खनिजों के उत्पादन को विभिन्न सारणियों में प्रदर्षित किया गया है।

विश्लेषण एवं चर्चा

राजस्थन के खनिज संसाधनों के वितरण एवं उत्पादन पर प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण एवं चर्चा को दो भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में राजस्थान के प्रमख एवं गौण खनिजों के वितरण एवं भण्डार की चर्चा की गई है जबकि दूसरे भाग में राजस्थान के प्रमख एवं गौण खनिजों के उत्पादन का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है।

1. राजस्थान के प्रमुख खनिजों का जमाव एवं वितरण: धात्विक खनिज जिनके अयस्क से मूल खनिज रासायनिक प्रक्रिया द्वारा अलग कर लिये जाते है, उनमें लौह-अयस्क, सीसा, जस्ता, मैंगनीज, चांदी, बेरेलियम, तांबा, केडमियम एवं वाल्फेमाइट के भण्डार राज्य में पाये गये है। इसी प्रकार अधात्विक खनिज जिनसे अयस्क से मूल खनिज अलग नहीं किये जाते है, उनमें फेल्सपार,

ऐस्बेस्टॉस, मैग्नेसाईट, वरमेकूलेट, वॉलस्टोनाइट, अभ्रक, यूरेनियम, पन्ना, नमक, बेराईट, "लोराइट, चूना पत्थर, जिप्सम, रॉक फॉस्फेट, पाईराइट, ग्रेनाइट, केल्साइट, फ्लूरस्पार एवं मूल्तानी मिट्टी के भण्डार राज्य में पाये गये है। इसके अतिरिक्त ईंधन खनिजों में लिग्नाइट किस्म का कोयला एवं खनिज तेल के भण्डारों का भी राज्य में पता चला है। पहले राज्य में प्रमुख खनिजों के जमाव एवं वितरण का संक्षिप्त विवरण भौगोलिक मानचित्र सहित नीचे दिया जा रहा है।

जिप्सम: जिप्सम एक प्रकार का उर्वरक खनिज होता है, जो रवेदार रूप में सैलेनाईट कहलाता है। यह खनिज पदार्थ की लहदार किस्म होती है। भारत का सबसे अधिक जिप्सम राजस्थान में मिलता है। देश के जिप्सम उत्पादन में राज्य का अंश लगभग 95 प्रतिशत है। इस प्रकार जिप्सम के उत्पादन में राज्य का एकाधिकार माना जा सकता है। जिप्सम उत्पादक क्षेत्र राज्य के विभिन्न हिस्सों में विस्तृत रूप से फैले हुए है जिन्हें तीन प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। प्रथम, नागौर क्षेत्र जहाँ जिप्सम के पर्याप्त जमाव पाये गये है। यहाँ भदवासी, मदाना, खैरात, मांगलोद, धाकोरिया, भड़ाना, मालगू एवं जोथियासी स्थानों पर यह खनिज प्राप्त होता है। द्वितीय, बीकानेर-हनुमानगढ़-चुरू क्षेत्र जहाँ वर्तमान में देश का अधिकांश जिप्सम जमाव माना जाता है। बीकानेर में सियासत, काओरी भारू, धोलेरा, जगदेवला, दांडला, पुगाल एवं हरकासर की खदानें प्रमुख है। चुरू जिले में भालन, भानीन, जगासरी, भदीबाईन, साथून एवं देवगाढ़ियाँ स्थान पर जिप्सम संस्तरण मिलते है जबकि गंगानगर जिले में सूरतगढ़, तोलानिया, किसानपुर, नोलखी, पूरबसर, बीरमसर एवं रंगमहल स्थान पर तथा हनुमानगढ़ जिले में नोहर एवं भदरा स्थानों पर इसके जमाव मिलते है। तृतीय, जैसलमेर-बाड़मेर-पाली जोधपुर क्षेत्र। जैसलमेर जिले में मोहनगढ़, हमीरवाली, धानी एवं लाखा; जोधपुर जिले में फालसुन्द, मंगलोद, कारास, ढ़ाकोरिया, बादवासी, मनोना एवं मिलवसलागी की खदानें; बाड़मेर जिले में कावास, कुरला, श्योकर, उत्तरलाई एवं पार की धानी; पाली जिले में खूटानी में जिप्सम मिलता है।

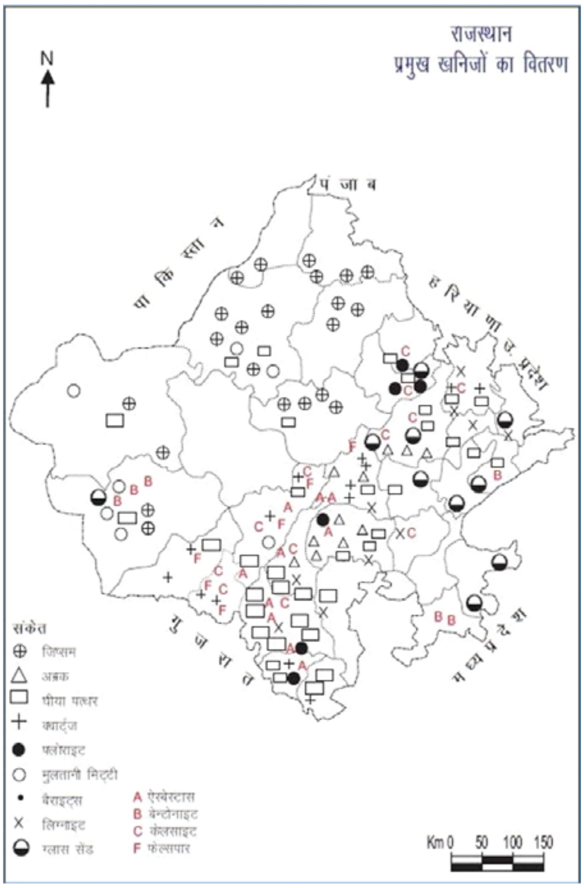

अभ्रकः अभ्रक आग्नेय एवं कायान्तरित चट्टानों में सफेद अथवा कालें रंग के छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में पाया जाता है। सफेद रंग के अभ्रक को रूबी अभ्रक एवं हल्का गुलाबीपन लिए अभ्रक को बॉयोटाईट अभ्रक कहते है। अभ्रक आधुनिक विद्युत उद्योगों के लिए एक अपरिहार्य पदार्थ माना जाता है। अभ्रक से चादरें भी बनायी जाती है। इस प्रकार के उद्योगों को माइके नाइट के नाम से जाना जाता है। राज्य के बहुमूल्य खनिजों में अभ्रक का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। राजस्थान में अभ्रक उत्पादन की पेटी मुख्य रूप से उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में फैली हुई है। उत्तर-पूर्व अभ्रक पेटी में राज्य के टोंक एवं जयपुर जिले सम्मिलित किये जाते है। टोंक जिले के अन्तर्गत बरला, मानखण्ड, शंकरवाड़ा, बारचोला, मिराऊँ, धौली बारोनी एवं पालरी मुख्य अभ्रक खदानें है जबकि जयपुर जिले में बंजारी एवं लक्ष्मी प्रमुख अभ्रक खदानें है। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम अभ्रक पेटी में राज्य के भीलवाड़ा एवं उदयपुर जिले की खदानें सम्मिलित की जाती है। भीलवाड़ा जिले में नात-की-नेरी, तूनका, सिंदिरियास, चापरी, बंजारी, रतनगाभा, भानकिया, घोगास, गोरखन, धावमण्ड, गोकुलपुरा, बेमाली एवं कोचरिया तथा उदयपुर जिले में चम्पागुढ़ा धोलामेतरा एवं गालवा प्रमुख अभ्रक खदानें है। इनके अतिरिक्त सीकर, अजमेर, किशनगढ़, ब्यावर, अलवर एवं पाली जिलों में भी अभ्रक की छोटी-छोटी खदानें अवस्थित है जहाँ कम मात्रा में अभ्रक का उत्पादन होता है।

चूना पत्थर एवं घीया पत्थरः चूना पत्थर महत्त्वपूर्ण इमारती पत्थर है जो लगभग सम्पूर्ण राज्य में मिलता है। राज्य के जयपुर एवं सिरोही जिलों में अजबगढ़ श्रेणी का चुना पत्थर प्रचुर मात्रा में मिलता है जबकि पाली, जोधपुर, नागौर, चितौड़गढ़ एवं कोटा जिलों में विंध्यनकाल का चुना पत्थर पाया जाता है। इसके राज्य के अतिरिक्त अलवर, जैसलमेर, पाली, सवाईमाधोपुर जिलों में चुना पत्थर मिलता है। घीया पत्थर सामान्यतया मुलायम एवं सघन सिलखड़ी चिकनी चट्टानें होती है। घीया पत्थर की अच्छी किस्म में स्टेटाइट का नाम पहले आता है। राज्य में यह खनिज लगभग सभी क्षेत्रों में पाया जाता है परन्तु, इसके तीन मुख्य उत्पादक क्षेत्र माने जाते है। प्रथम, डागोथा झरना उत्पादक क्षेत्र जो दौसा जिले में अवस्थित है। द्वितीय, घेवरिया एवं चांदपुरा उत्पादक क्षेत्र जो भीलवाड़ा जिले में अवस्थित है और तीसरा, देवपुरा उत्पादक क्षेत्र जो उदयपुर जिले में अवस्थित है। इनके अतिरिक्त घीया पत्थर का जमाव राज्य के सीकर, टोंक, बांसवाड़ा, डूँगरपुर, जहाजपुर, करौली, अलवर एवं अजमेर जिलों में है।

ऐस्बेस्टॉसः ऐस्बेस्टॉस लचीले तंतुओं में अलग किया जा सकने वाला एक अधात्विक खनिज होता है जिसका उपयोग सीमेंट चादरें, टाइलस, फिल्टर्स, बायलर्स एवं अन्य ताप निरोधक वस्तुओं के निर्माण में किया जाता है। राज्य में ऐस्बेस्टॉस क्राइसोलाइट एवं एम्फीबाल के रूप में पाया जाता है। एम्फीबाल जो कि थोड़ा घटिया किस्म का खनिज है वह राज्य में अधिकांश स्थानों पर मिलता है। देश के कुल ऐस्बेस्टॉस का लगभग 90 प्रतिशत राज्य में उत्पादित होता है। राजस्थान के उदयपुर जिलें में झाड़ौल, बरोली, किरत, जांजर की पाल क्षेत्र एम्फीबोलाइट किस्म के ऐस्बेस्टॉस के लिए जाने जाते है जबकि उदयपुर जिलें के ही ऋशभदेव क्षेत्र में क्राइसोलाइट किस्म का ऐस्बेस्टॉस पाया जाता है। इनके अतिरिक्त धलाना-ओडवास क्षेत्र से ट्रिमोलाईट किस्म का ऐस्बेस्टॉस मिलता है। उदयपुर जिले के खैरवाड़ा क्षेत्र के अतिरिक्त नाथद्वारा, कांथल, आसिंद, डेकलिया, सलूम्बर, बरना एवं गुजाम क्षेत्र, डूँगरपुर जिले के देवल, खेमारू, पीपरदा, नलवा, डूंगरसारभ, घंटीगला एवं जकोल, राजसमन्द जिले के लिखी एवं गुड़ा, अजमेर जिले के नैराला, कनवाली, नेनहुर्द, अर्जुनपुरा तथा पाली जिले के सेन्द्रा एवं मानपुरा राजस्थान के प्रमुख ऐस्बेस्टॉस उत्पादक क्षेत्र है।

फेल्सपारः सामान्यतः अलकाली एल्युमिना सिलीकेट खनिज वर्ग में सम्मिलित फेल्सपार अधात्विक खनिज होता है जबकि व्यापारिक फेल्सपार पोटषस्पर एवं सोड़ास्पर का मिश्रण होता है। देश में फेल्सपार उत्पादन का लगभग 61 प्रतिशत राज्य में उत्पादित होता है। यह खनिज अभ्रक की खदानों से सह-उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। राज्य का 96 प्रतिशत फेल्सपार अजमेर जिले के मकरेष से प्राप्त होता है। इसकी मुख्य खदानें जयपुर जिले में डूँगरवाड़ा दादिया, बान्देरबेनटी, मंदोती, अमरपुर, बोराड़ा, सकुन एवं गुजरवाड़ा क्षेत्र तथा पाली जिले में चाओन्दिया, प्रतापगढ़, डिगोर एवं फूलदबाड़ा क्षेत्र में है। इसके अतिरिक्त टोंक, सीकर, उदयपुर एवं बाँसवाड़ा जिलों में फेल्सपार की खदानें है।

लौह-अयस्कः लौह-अयस्क के उत्पादन एवं भण्डार की दृष्टि से राज्य की देश में स्थिति सुदृढ़ नहीं मानी जा सकती है। राज्य में लौह-अयस्क की विभिन्न किस्में छोटे-छोटे जमाव क्षेत्र के रूप में मिलती है। राज्य में पाये जाने वाला लौह-अयस्क मुख्यतः हैमेटाइट श्रेणी का है। इसके अतिरिक्त राजस्थान में कुछ स्थानों पर मैग्नेटाइट किस्म की लौह-अयस्क क्वार्ट्ज के साथ मिलती है। राज्य में लौह-अयस्क का वर्ष 1953 से उत्पादन किया जा रहा है। राज्य के उत्तरी-पूर्वी भाग में मोरिजा-बानोल जमाव क्षेत्र जयपुर जिले के आमेर तहसील में स्थित प्रमुख अयस्क जमाव क्षेत्र है। इस क्षेत्र में हैमेटाइट किस्म के लौहे के लगभग 25 लाख टन के

भण्डार का अनुमान है जबकि टोड़ा-चिपलाटा, थोई बनिया-का बास, तातेरी, बागावास और भाटों की गली प्रमुख चालू खदानें है। नीमला-राइसेला क्षेत्र भी जयपुर से लगभग 65 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित है जहाँ अच्छी किस्म के लौहे के 10 लाख टन के भण्डार का अनुमान है। साथ ही डाबला-सिंघाना नीम का थाना क्षेत्र में टेओन्ड़ा एवं काली पहाड़ी क्षेत्र में अयस्क के बड़े जमाव है। राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग में उदयपुर जिले में थाना गाँव के समीप नाथरा का पाल क्षेत्र में हैमेटाइट अयस्क के भण्डारों की पता चला है। सरकार के खनन विभाग द्वारा यहाँ पर लगभग 1.10 करोड़ टन के हैमेटाइट अयस्क के भण्डारों का अनुमान लगाया गया है। इसी प्रकार, थूर-हुन्डेर क्षेत्र भी उदयपुर जिले में स्थित है जहाँ हैमेटाइट किस्म के 50 हजार टन लौह-अयस्क के भण्डार होने का अनुमान है। इनके अतिरिक्त राज्य के बूंदी जिले में लोहारपुरा, भीलवाड़ा जिले में इन्द्रगढ़, झालावाड़ जिले में पादरपाल एवं डाग, बांसवाड़ा जिले में कमलफरा एवं लामपा तथा डूँगरपुर जिले में तलवारा, खामरिया एवं लोहारिया गाँव प्रमुख है।

मैंगनीज: मैंगनीज मुख्यत: अवसादी चट्टानों में पाये जाने वाला एक महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ है। इसका उपयोग विशेष रूप से बिजली उद्योग में किया जाता है। इसे लोहे को मजबुत एवं साफ करने में भी प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त शीषे को रंगने एवं चमकदार बनाने तथा कीटाणुनाशक पदार्थो में भी इसका उपयोग लिया जाता है। चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने में भी इसे उपयोग में लाया जाता है। मैंगनीज के कुल उत्पादन का 95 प्रतिशत भाग धातु निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। राज्य में मैंगनीज की कच्ची धातु मुख्यत: बांसवाड़ा जिले में पायरोल्युसाईट, ब्राऊनाइट, साइलोमिलेन खनिज के रूप में मिलती है। बाँसवाड़ा जिले में लीलवानी, नराडिया, सिवोनिया, कालाखूआ, घाटियाँ, कांसला, सागवा, इटावा, तिम्मामौरी, खेड़िया, काचला, बोहरिया सानालकाई, गोइका-बारीखूंटा एवं तलवाड़ा मैंगनीज की प्रमुख खदानें है। मैंगनीज अयस्क के रूप में उदयपुर जिले के नेगड़िया, सरूपपुरा एवं रामौसन गाँवों के निकट भी मिलता है। इसके अतिरिक्त राज्य में राजधानी के निकट अलवर क्वार्ट्जाइट शिलाओं की दरारों में तथा सवाईमाधोपुर जिले की बोनली तहसील में मैंगनीज के जमाव का पता चला है।

ताबां: ताबां बहुत ही लचीला एवं बिजली का उत्तम संचालक तथा अलौह-धातु पदार्थो में सबसे महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ माना जाता है। राजस्थान में झुन्झुनूं जिले में खेतड़ी एवं सिंघाना खदानें तथा अलवर जिले में खो-दरीबा खदानें तांबा उत्पादन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। राज्य में खेतड़ी के निकट सिंघाने में तांबें को निकालने एवं शोधन का कार्य हिन्दुस्तान तांबा निगम खेतड़ी द्वारा किया जा रहा है। यहाँ तांबा अयस्क कोल्हन एवं मन्धान, खेतड़ी, पपरना के पश्चिम में अखवाली खानें, बंबाई के पश्चिम में पुरानी खदानें एवं बरखेरा खदानें प्रमुख है। अलवर के खो-दरीबा गाँव के निकट पहाड़ियों के पास ये खदानें अवस्थित है। इनका विकास हिन्दुस्तान तांबा लिमिटेड द्वारा किया जाता है। अलवर जिलें में थाना गाजी, कुशलगढ़ सेनपुरी, भगत का वास नामक गाँव के पास भी तांबें के जमाव मिले है। इसके अतिरिक्त उदयपुर जिले में देलवाड़ा गाँव के निकट तांबें की खदानें अवस्थित है। साथ ही रेलमगरा और दरीबा, बीकानेर जिले में बीदासर गाँव, भीलवाड़ा जिले में पुर के निकट, चुरू जिले में विभिन्न स्थानों पर, डूँगरपुर जिले में कुछ स्थानों पर तथा राज्य के पूर्व में झालावाड़ा और कोटा जिलों में विभिन्न स्थानों पर न्यूनाधिक मात्रा में तांबें के जमाव मिलते है।

सीसा एवं जस्ता: सीसा एवं जस्ता सान्द्र का उत्पादन देश में एक मात्र राजस्थान राज्य ही करता है। राज्य में सीसा-जस्ता मिश्रित रूप में मिलता है जिसे गेलेना कहते है। वर्तमान में राज्य में इस अयस्क के 3330 लाख टन भण्डार का अनुमान है। राज्य में इस धातु का लगभग समस्त उत्पादन उदयपुर जिलें के दक्षिण-पूर्व में स्थित जावर माइन्स से प्राप्त होता है। सीसे एवं जस्ते के साथ अयस्क के रूप में चॉदी भी प्राप्त होती है। राज्य में सीसा एवं जस्ता सान्द्र का जमाव दो प्रमुख क्षेत्रों तक ही सीमित है। दक्षिण-पूर्वी प्रदेश में इस धातु का जमाव उदयपुर जिले की जावर क्षेत्र में मोचिया मगरा, बरोड़ मगरा और जावर पहाडियों में है। वर्तमान में खदानें मोचिया मगरा पहाड़ी पर अवस्थित है। इस हेतु उदयपुर जिले के देबारी स्थान पर भारत सरकार का जस्ता शोधन संयंत्र स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त उदयपुर जिले के राजपुरा-दरीबा क्षेत्र में सीसे एवं जस्ते के लगभग 30 लाख टन भण्डार होने का अनुमान है। साथ ही उदयपुर जिले में ऋशभदेव एवं देबारी, डूँगरपुर जिले में घुघरा एवं माण्डों तथा बाँसवाड़ा जिले में बारडालिया गाँव अन्य प्रमुख स्थान है। भीलवाड़ा जिले के आगूंचा के आस पास सीसा एवं जस्ता के अपार भण्डार पाये गये है जिसके उपयोग हेतु हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड द्वारा रामपुरा-आगूंचा एवं चित्तौड़गढ़ जिले के चन्देरिया में सुपर स्मेल्टर संयंत्र स्थापित किये गये है।

प्रमुख अन्य खनिज एवं उत्पादन: राजस्थान कॉच बालूका के उत्पादक में देश में प्रमुख स्थान रखता है। देश में उत्तरप्रदेश के बाद राजस्थान दूसरा बड़ा कॉच बालूका उत्पादक राज्य है। राजस्थान में कॉच बालूका के मुख्य क्षेत्र जमाव बूंदी, जयपुर,

सवाईमाधोपुर, भरतपुर, बीकानेर एवं बाड़मेर जिलों में पाये गये है। इनके अतिरिक्त कोटा, उदयपुर, जोधपुर एवं अन्य जिलों से भी कॉच बालूका प्राप्त होती है। राज्य में चीनी मृत्तिका एक मूल्यवान खनिज पदार्थ है जो सिरेमिक सिलिकेट उद्योग के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह सवाईमाधोपुर, सीकर, अलवर एवं उदयपुर जिलों में प्राप्त होती है। इसकी धुलाई का कारखाना नीम का थाना क्षेत्र में स्थापित किया गया है। यह खनिज रबर उद्योग में उपयोग, पेन्ट्स, डिटरजेंट्स, सीमेन्ट एवं टेक्सटाइल उद्योग में उपयोग लिया जाता है। राजस्थान के खनिज संसाधनों में डोलोमाइट एक अन्य प्रमुख खनिज है। इस खनिज में कैल्शियम एवं मैग्नेशियम का दुहरा कार्बोनेट होता है। यह खनिज राज्य के अजमेर, जयपुर, अलवर, सीकर और जोधपुर जिलों में मिलता है। वर्तमान में राजसमन्द जिले में भी इसके जमाव का पता चला है। डोलोमाइट खनिज मुख्यत: चिप्स एवं पावडर तथा चूना बनाने में प्रयुक्त किया जाता है।

रॉकफास्फेट रासायनिक खाद के लिए प्रयुक्त एक खनिज होता है जिसके जमाव राज्य के उदयपुर जिले के झामर-कोटड़ा स्थान पर विषाल भण्डार के रूप में मिलते है। इसके अतिरिक्त उदयपुर जिले में दाकन-कोटड़ा-सीसारमा, नीमचमाता, बढ़गाँव, भीण्डर, बैलागढ़, नीवनियाँ, भला तथा लाखरवास स्थान पर, जैसलमेर जिले में विरमानिया एवं लाढ़ी, सीकर में करपूरा, बांसवाड़ा जिले में सलोपेट, जयपुर जिले में अचरोत तथा अलवर जिले में अडूका-अदवानी क्षेत्र में रॉक-फास्फेट के भण्डार मिलते है। राज्य में प्राकृतिक चट्टानों को तोड़कर स्वत: बाहर निकलने वाला महत्त्वपूर्ण खनिज बेराइट्ज सफेद गुलाबी, भूरे एवं कत्थई रंग में पाया जाता है। इस खनिज से बेरियम प्राप्त होता है। यह खनिज उदयपुर जिले के जगतपुर स्थान पर सर्वाधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अलवर एवं भरतपुर जिलों में भी इसका उत्पादन होता है। यह खनिज रंग रोगन उद्योग, तेल के कुएं खोदने, कागज उद्योग, पटाखे एवं दवाइयाँ बनाने में प्रयुक्त होता है। उपरोक्त अतिरिक्त राजस्थान में अनेक प्रकार के खनिज संसाधन न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते है। राजस्थान के प्रमुख खनिजों के वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक के उत्पादन को सारणी 1 में बताया गया है।

सारणी 1: राजस्थान के प्रमुख खनिजों का उत्पादन (वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक, हजार टन में)

क्र.सं.	खनिज का नाम	2010-11	2012-13	2014-15	2016-17	2018-19
1	तांबा	971	980	910	1055	1350
2	लौह-अयस्क	53	533	5767	3563	3329
3	सीसा-जस्ता	7413	8632	7654	6136	11095
4	बाल-क्ले	1845	2474	3118	3437	4743
5	चाइना-क्ले	1020	1719	2725	2855	3775
6	डोलोमाइट	507	896	458	476	285
7	फेल्सपार	1299	2074	2309	5611	7415
8	जिप्सम	4322	2719	2768	1817	4664
9	चुना पत्थर	43941	50289	61585	66306	75578
10	अभ्रक	6	7	4	3	17
11	क्वार्ट्ज	385	693	1685	1500	2683
12	रॉक फास्फेट	1409	1439	1287	788	309
13	घीया पत्थर	956	804	1699	1201	1459
14	वुलेस्टोनाइट	124	188	182	166	127
15	लिग्नाइट	1909	7365	10482	8518	8769
	योग	**66160**	**80818**	**102633**	**103432**	**125598**

स्त्रोत: खनन एवं भूविज्ञान विभाग राजस्थान, उदयपुर।

नोटः खनन एवं भूविज्ञान विभाग राजस्थान द्वारा वर्ष 2015-16 से सारणी के क्र.सं. 4, 5, 6, 7, 8, 10, 11 एवं 13 पर अंकित खनिजों की गिनती गौण खनिजों में की जाने लगी है।

सारणी 1 के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक की अवधि में राज्य के प्रमुख खनिजों के कुल उत्पादन में 89.84 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस अवधि में डोलोमाइट एवं रॉक फास्फेट को छोड़कर शेश खनिजों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। राज्य में जिप्सम एवं वुलेस्टोनाइट का उत्पादन बहुत कम बढ़ा है जबकि फेल्सपार, क्वार्ट्ज एवं लिग्नाइट के उत्पादन में सबसे अधिक वद्धि दर्ज की गई है। उक्त अवधि में लौह अयस्क के उत्पादन बहुत तेजी से उतार-चढ़ाव दिखाई पड़ रहा है जबकि अन्य खनिजों के उत्पादन में अपेक्षाकृत कम वृद्धि दिखाई पड़ रही है। लौह अयस्क का उत्पादन वर्ष 2010-11 में 56.34 से बढ़कर वर्ष 2018-19 में 3329.10 हजार टन हो गया जबकि रॉक फास्फेट का उत्पादन 1409 से घटकर 309 हजार टन रह गया। राज्य के उक्त खनिजों में लौह अयस्क के उत्पादन की यह वृद्धि 6181.13 प्रतिशत आंकी गयी, जो सबसे अधिक रही है जबकि रॉक फास्फेट के उत्पादन में सर्वाधिक कमी हुई, जो 78.06 प्रतिशत आंकी गयी है।

2. राजस्थान के गौण खनिजों का जमाव एवं वितरणः राजस्थान के खनिज संसाधनों में प्रमुख खनिजों के साथ-साथ राज्य में अनेक प्रकार के गौण खनिजों के जमाव भी पाये गये है। गौण खनिजों में बेन्टोनाईट, मूल्तानी मिट्टी, संगमरमर, इमारती पत्थर एवं स्लेट पत्थर मुख्य है जो राज्य में विभिन्न स्थानों पर न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते है। इन गौण खनिजों का जमाव, उपयोग एवं वितरण को संक्षेप में नीचे बताया गया है।

बेन्टोनाईटः बेन्टोनाईट खनिज राज्य में स्लेटी, पीले और हल्के गुलाबी रंग में मिलता है। इसका महत्त्वपूर्ण गुण है कि यह पानी में भिगोने पर विपुल मात्रा में फूल जाने की योग्यता रखता है। राज्य में बाड़मेर, बीकानेर एवं सवाईमाधोपुर जिलों में इसके जमाव मौजूद है। बेन्टोनाईट मुख्यतः वनस्पति एवं खनिज तेलों को साफ करने तथा चीनी मिट्टी के बर्तनों की पॉलिष में प्रयुक्त किया जाता है।

मूल्तानी मिट्टीः राजस्थान मूल्तानी मिट्टी का एक अग्रणी उत्पादक राज्य है। भारत के कुल उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत अकेले राजस्थान में उत्पादित होता है। राजस्थान के पश्चिम क्षेत्र में अवस्थित बीकानेर जिले में पलाना, केसरदेसर एवं मुंध; बाड़मेर जिले में कपूरड़ी, अलामरिया एवं शिव; जैसलमेर जिले में बेहदोई, मंधाऊ एवं रामगढ़ महत्त्वपूर्ण उत्पादक क्षेत्र है। यह खनिज प्राणी, वनस्पति खनिज तेलों तथा चिकनाइयों के विरंजन, दुर्गन्ध हटाने, छानने एवं साफ करने में प्रयुक्त होता है।

संगमरमरः संगमरमर के उत्पादन में राजस्थान का नागौर जिला विश्व में प्रसिद्ध है। राज्य का सम्पूर्ण संगमरमर यही उत्पादित माना जाता है। नागौर के मकराना का संगमरमर सफेद, गुलाबी, काले एवं धारीदार किस्म एवं उत्कृष्ठ कोटि का है जिससे विश्व प्रसिद्ध इमारत ताजमहल का निमार्ण किया गया है। संगमरमर की अन्य खदानें राज्य के सीकर जिले में मेओण्डा, अजमेर जिले में किशनगढ़, अलवर जिले में जीरा एवं दादमपीर तथा उदयपुर, राजसमन्द, जालौर एवं जैसलमेर जिलों में विद्यमान है।

स्लेट पत्थरः राजस्थान में स्लेट पत्थर का लगभग 80 प्रतिशत अकेले अलवर जिले के बहरोड़, भाढ़णा, खुण्डरोट, भोयासर, रासलाना एवं गीगलाना क्षेत्र में पाया जाता है। यह पत्थर अलवर से अन्य राज्यों के साथ-साथ पश्चिमी जर्मनी, हॉलैण्ड एवं आस्ट्रेलिया को निर्यात किया जाता है। यह बहुरंगी पत्थर विदेशों में मकानों की छत, फर्ष एवं दीवारों में प्रयुक्त होता है।

इमारती पत्थरः राज्य में चुना पत्थर एवं बलुआ पत्थर अतिमहत्त्वपूर्ण इमारती पत्थर माने जाते है जिनका जोधपुर के अलावा कोटा, चितौड़गढ़ एवं बीकानेर जिलों में जमाव है। राज्य में जिलेवार देखें तो छत डालने की पट्टियाँ जयपुर, ग्रेनाइट अजमेर एवं जालौर, जोधपुर में गुलाबी एवं भूरे रंग के इमारती पत्थर, जैसलमेर में पीला एवं छींटदार पत्थर, उदयपुर एवं डूँगरपुर में काला पत्थर तथा करौली, धौलपुर एवं भरतपुर के निकट लाल रंग का इमारती पत्थर निकालता है।

गौण खनिजों का उत्पादनः राजस्थान के गौण खनिजों का वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक का उत्पादन सारणी 2 में बताया गया है। गौण खनिजों के भौगोलिक वितरण को राजस्थान के प्रमुख खनिज मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 2: राजस्थान के गौण खनिजों का उत्पादन (वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक, हजार टन में)

क्र.सं.	खनिज का नाम	2010-11	2012-13	2014-15	2016-17	2018-19
1	बेन्टोनाइट	110	787	250	141	276
2	ब्रिक्स अर्थ	23440	20882	19904	15587	13383
3	चिप्स पावड़र	136	92	94	86	141
4	मूल्तानी मिट्टी	66	47	64	19	64
5	ग्रेनाइट	757	2850	2629	3843	5672
6	कंकर-बजरी	68751	146074	62863	56841	2898
7	चुना पत्थर बर्निंग	8107	6277	32962	8585	12586
8	संगमरमर	10332	13877	12685	13524	8252
9	मैसोनरी पत्थर	57444	70251	72888	92984	120346
10	पट्टी कातला	180	22	2881	5762	1715
11	क्वार्ट्जाइट	6	12	37	14	26
12	रायोलाइट	1006	1098	1214	1499	2237
13	बालूका पत्थर	11724	16381	13954	12011	15814
14	सरपेनटाइन	1137	1507	1308	966	827
15	स्लेट पत्थर	13	20	6	0	2
	योग	**183209**	**280177**	**223739**	**211862**	**184239**

स्रोत: खनन एवं भूविज्ञान विभाग राजस्थान, उदयपुर।

सारणी 2 के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक की अवधि में राज्य के कुल गौण खनिजों के उत्पादन की वृद्धि एक प्रतिशत से भी कम रही है। इस अवधि में गौण खनिजों में पट्टी कातला का उत्पादन 180 से बढ़कर 1715 हजार टन हो गया है जबकि कंकर-बजरी का उत्पादन 68751 से घटकर 2898 हजार टन रह गया है। पट्टी कातला के उत्पादन की यह वृद्धि 852.78 प्रतिशत आंकी गयी, जो सबसे अधिक रही है जबकि कंकर-बजरी के उत्पादन सर्वाधिक गिरावट हुई जो 95.78 प्रतिशत आंकी गयी है। उक्त अवधि में राज्य के गौण खनिजों में ब्रिक्स अर्थ, मूल्तानी मिट्टी, कंकर-बजरी, संगमरमर, सरपेनटाइन एवं स्लेट पत्थर के उत्पादन में गिरावट जबकि चिप्स पावड़र, चुना पत्थर बर्निंग एवं बालूका पत्थर के उत्पादन में वृद्धि बहुत कम दिखाई पड़ती है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए है जिनके आधार पर सुझाव दिये गये है।

1. खनिज संसाधनों की दृष्टि से राजस्थान सीसा एवं जस्ता अयस्क, सेलेनाइट एवं वॉलोस्टोनाइट उत्पादन में एकाधिकार रखता है जबकि चॉदी, केल्साइट, फलोराइट, डोलोमाइट, जिप्सम, बॉल क्ले, फेल्सफार, रॉक फास्फेट, लाल गेरू, लौह अयस्क, तांबा, संगमरमर, कंकर-बजरी, इमारती पत्थर, बेन्टोनाइट, ग्रेनाइट, बालूका पत्थर तथा स्टील एवं सीमेंट ग्रेड चूना पत्थर का अग्रणी उत्पादक राज्य है जैसाकि सारणी 1 एवं 2 से स्पष्ट है।

2. राजस्थान के प्रमुख खनिज संसाधनों में वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक की अवधि में राज्य के प्रमुख खनिजों के कुल उत्पादन में 89.84 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस अवधि में डोलोमाइट एवं रॉक फास्फेट को छोड़कर शेश खनिजों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। राज्य में जिप्सम एवं वुलेस्टोनाइट का उत्पादन बहुत कम बढ़ा है जबकि फेल्सपार, क्वार्ट्ज एवं लिग्नाइट के उत्पादन में सबसे अधिक वद्धि दर्ज की गई है।
3. राजस्थान के गौण खनिज संसाधनों में अनेक प्रकार के खनिजों के जमाव भी पाये गये है। गौण खनिजों में बेन्टोनाईट, मूल्तानी मिट्टी, संगमरमर, इमारती पत्थर एवं स्लेट पत्थर मुख्य है जो राज्य में विभिन्न स्थानों पर न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते है जैसाकि राज्य के गौण खनिज संसाधनों के विवेचन में बताया गया है।
4. राजस्थान के गौण खनिज संसाधनों वर्ष 2010-11 से 2018-19 तक की अवधि में गौण खनिजों के कुल उत्पादन की वृद्धि एक प्रतिशत से भी कम आंकी गयी है। इस अवधि में गौण खनिजों में पट्टी कातला के उत्पादन में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की गयी है। राज्य में ब्रिक्स अर्थ, मूल्तानी मिट्टी, कंकर-बजरी, संगमरमर, सरपेनटाइन एवं स्लेट पत्थर के उत्पादन में गिरावट जबकि चिप्स पावड़र, चुना पत्थर बर्निंग एवं बालूका पत्थर के उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गई है।
5. राजस्थान के खनिज संसाधनों के खनन में प्रयुक्त विस्फोटों से न केवल उच्च डेसीबल वरन् खनन प्रक्रिया में उपयोग ली जाने वाली मशीनों एवं उपकरणों से निरंतर ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। साथ ही विस्फोटों से राख एवं धूल के कण वायु के माध्यम से दूर-दूर तक पहुंच जाते है जिससे वायु प्रदूशित होती है। खनन की यह संपूर्ण प्रक्रिया जल की गुणवत्ता एवं मृदा में ह्युमस तत्व पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है।
6. राजस्थान खनिज संसाधनों का खनन आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है परन्तु खनन के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव विशेषकर ध्वनि, जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण के इस आधार पर यह कह सकते है कि राज्य में न सिर्फ अतिआवश्यक खनिज संसाधनों का दोहन किया जाना चाहिए वरन् दोहन नियंत्रित एवं समुचित ढ़ंग से वैज्ञानिक तकनीक द्वारा किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

- Agrawal, V. and Samar, P., Marble Resources and Environmental Pressure Due to Marble Slurry in Rajasthan, *Memoir Geol. Soc. of India*, Vol. 76, 2010, pg 142-147.
- Chauhan, S.S., Mining, Development and Environment: A Case Study of Bijolia Mining Area in Rajasthan, India, *Journal of Hum. Ecol.*, Vol. 31 (1), 2010, pg 65-72.
- Dasgupta, A., Impact of Mining on Rural Environment and Economy- A Case Study, Kota District, Rajasthan, *International Journal of Remote Sensing & Geoscience (IJRSG),* Vol. 2 (3), November 2012, pg 21-26.
- Fred, G. and et.al., Mining and Its Impact on the Environment, 2007.
- Ghose, M.K., Effect of Opencast Mining on Soil Fertility, *Journal of Scientific & Industrial Research*, Vol. 63, 2004, pg 1006-1009.
- Indian Mineral Year Book, published by Indian Bureau of Mines, Nagpur.
- Jadhav, H.V., Environmental Pollution, Himalaya Publishing House, Bombay and Delhi, 1995.
- Jha, S., Studies on Geological, Physico-mechanical, Eco-environmental and Commercial Characteristics of Decorative Stones from Southern Districts of Rajasthan, unpublished Ph.D. thesis, 2003, M.L. Sukhadia University, Udaipur (Raj.).
- Kitula, A.G.N., The Environment and Socio-economic Impacts of Mining on Local Livelihoods in Tanzania, *Journal of Cleaner Production*, Vol. 14, 2006, pg 405-414, Available online at www.elsevier.com
- Mineral Directory of Rajasthan 2012, published by Department of Mines and Geology, Government of Rajasthan.
- Mineral Statistics 2014, published by Department of Mines and Geology, Government of Rajasthan.
- Patnaik, L.N., Environmental Impact of Industrial and Mining Activities, 1990, Ashish Publishing House, New Delhi.
- Rafiq, M., Analysing the Socio-Economic Impact of mining Activities in Bowen and Surat basin Regions, 2007.
- Website of Department of Mining and Geology- http://www.dmg.raj.org
- Ziang, H., Environmental Impact of Mining Activities on the Surface Water Quality in Tibet, 2010.

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में बाल मजदूर: एक दृष्टिकोण

डॉ० अरूण प्रसाद अमन

अतिथि सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, बी०एस०एस० कॉलेज सुपौल
बी०एन०एम०यू० मधेपुरा (बिहार)

बच्चे किसी भी राष्ट्र के प्रारंभिक अवस्था में दायित्व होते हैं, जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक अवस्था में वे राष्ट्र की सम्पत्ति एवं पूँजी होते हैं। इनके दायित्व की अवस्था में इनका समुचित सुरक्षा, पालन-पोषण, शिक्षा एवं विकास का दायित्व परिवार, समाज और राष्ट्र पर होता है, तो कलान्तर में यही बच्चे देश के निर्माण और राष्ट्र के विकास के महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ और धरोहर बन जाते हैं। यों तो बाल श्रम की समस्या एक वैश्विक समस्या है। परन्तु भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह एक गंभीर समस्या है। विकासशील देशों में पारिवारिक सीमित आमदनी, निम्न जीवन स्तर, परिवार का बड़ा आकार, बेरोजगारी की अधिकता, पारिवारिक उपेक्षा, अशिक्षा इत्यादि ऐसे घटक हैं जो ऐसे देशों में बाल श्रम की समस्याएँ पैदा करती है।

बालश्रम की अवधारणा

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के निदेशक ने बाल श्रम को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ये वे किशोर नहीं हैं जो दिन के कुछ घंटे खेल और अध्ययन से निकाल कर जेब खर्च के लिए काम करते हैं। ये वे बच्चे भी नहीं है, जो वयस्कों के जिन्दगी व्यतीत करने को मजबूर हैं। वस्तुत: ये वे बच्चे होते हैं जो दस से अठारह घंटे काम करके कम वेतन पर अधिक श्रम बेचते, बुनियादी शिक्षा और खेल से वंचित और कभी-कभी परिवार के अलग-अलग होकर रहते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार हर 14 वर्ष से कम उम्र के वे बच्चे जो मजदूरी पर प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में काम करते हैं उन्हें बाल मजदूर की श्रेणी में रखा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारत में 30 करोड़ बच्चों में से 4.44 करोड़ बाल श्रम के रूप विभिन्न उद्योगों में काम करते हैं। देश का प्रत्येक सातवाँ बच्चा बाल श्रमिक के रूप में जन्म लेता है। एक दुखद पहलू यह है कि हमारे देश में दुनिया के सबसे अधिक बच्चे अनाथ हैं। प्रतिवर्ष लगभग 11.5 लाख अमान्य बच्चे जन्म लेते हैं, जिनमें से अधिकांश 5-6 वर्षो के पश्चात बाल श्रमिक बना दिये जाते हैं। भारत में जहाँ कि 39% आबादी अत्यधिक निर्धन है, यहाँ बाल श्रम एक चुनौतिपूर्ण एवं विचारणीय मुद्दा है।

बाल श्रम की उत्पत्ति एवं विकास क्रम

बाल श्रम की उत्पत्ति मानवीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ हुआ। वैश्विक स्तर पर बाल श्रम का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव जीवन का इतिहास पृथ्वी पर मानव जीवन जब अस्तित्व में आया उसे अपनी भूख मिटाने के लिये श्रम करना पड़ा सर्वप्रथम वनस्पतियों फलों को प्राप्त करने के लिये और फिर शिकार के लिये। जब मनुष्य कबीलों के रूप में रहने लगे तो इन आयोजनाओं में वयस्क मनुष्यों के साथ-साथ उनके बच्चे उसमें हाथ बाँटाते थे। बाल श्रम का प्रादुर्भाव यहीं से शुरू हुआ जो आज भी बना हुआ है। धीरे-धीरे समाज का स्वरूप बदलता गया, उसकी आवश्यकतायें बढ़ती गई शक्तिशाली मनुष्य तथा कबीलों को शासक के रूप में समाज स्वीकार करता गया और शक्तिहीन मनुष्य शासित होते गये और इसी आधार पर कार्यों और श्रम का

विभाजन होता चला गया। आजीविकायें और उनके लिये किये कार्यों के आधार पर समाज वर्गीकृत हुआ और आदि पुरूष मनु ने सम्पूर्ण समाज को चार वर्णों में विभाजित कर दिया और सबसे निम्न वर्ग 'शूद्र' को सारे समाज के कार्य करने को महिमा मंड़ित कर दिया गया। धीरे-धीरे इस वर्ग का पूरा का पूरा परिवार कुलीनों की बेगारी में लग गया जिसमें उस परिवार की महिलायें और बच्चे भी थे जो बिना किसी सेवा मूल्य लिये कार्य करते रहे उन्हें तथाकथित कुलीनों से जूठन और उतरे हुए कपड़े मिल जाते थे। राजपूत काल में शासक वर्ग अपनी राजकुमारी की शादी में दहेज के रूप में बाल श्रमिक के रूप में छोटी लड़कियों और छोटे लड़कों को भेज दिया करते थे ताकि राजकुमारी के दैनिक कार्यों की प्रतिपूर्त्ति के लिए ये दहेज के रूप में दिये गये बाल श्रमिक वहाँ कार्य कर सकें और उनकी राजकुमारी सुखी रहे। यह स्थिति सल्तनतकाल और मुगलकालों में भी बनी रही। किन्तु इस काल में एक घिनौना स्वरूप और सामने आया। बच्चों से बाल श्रम तो लिया ही जाता था कम उम्र के लड़के और कम उम्र की लड़कियाँ, शासकों, सामंतों के निजी हरम में रखे जाने लगे कृषि व पशुपालन जैसे कार्यों, घरेलू नौकरों के रूप में बाल श्रम फलता-फूलता रहा।

अंग्रेजों के शासनकाल में भी बाल श्रम बना रहा अंग्रेजों की मूल धारणा भारत के राज्यों को धीरे-धीरे अपने साम्राज्य में मिलाना, भारत का धन अधिक से अधिक अपने यहाँ ले जाना, प्रमुख था कोई सुधार कार्यक्रम लागू करने नहीं आये थे। अत: उन्होंने बाल श्रम जैसी कुरीतियों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। स्वतंत्र भारत में भी बाल श्रम रोकने के संवैधानिक उपचारों के बावजूद बाल श्रम को हम समाप्त नहीं कर सकें हैं। बाल श्रम की भयावह स्थिति के बीच आज भी हम खड़े हुये हैं।

बाल श्रमिकों का विस्तार

वैसे तो बाल श्रम सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है लेकिन यूरोपीय एवं ऐशियाई देशों में बाल श्रम के विस्तार का विभत्व रूप देखने को मिलता है। जहाँ तक भारत का सवाल है भारत में पाये जाने वाले विभिन्न क्षेत्रों में बाल श्रमिकों के विस्तार को इस तालिका से दिखाया जा सकता है:

तालिका-2.1: विभिन्न उद्योगों में बाल श्रमिकों का विस्तार

क्रमांक	उद्योग	स्थान	बाल श्रमिकों की अनुमानित संख्या
1.	माचिस तथा अतिशबाजी का कार्य,	शिवाकाशी (तमिलनाडु)	50,000
2.	पत्थर खानों से पत्थर निकालना,	केरल	20,000
3.	शीशा की खान,	मेघालय	28,000
4.	मछली प्रशोधन कार्य,	केरल	20,000
5.	हस्तकरघा उद्योग,	त्रिवेन्द्रम (केरल)	10,000
		तिरूपुर	8,000
		भिवंडी (महाराष्ट्र)	15,000
6.	बीड़ी उद्योग,	तिरूचिरपल्ली (तमिलनाडु)	7,000
		त्रिचूर (केरल)	2,000
		दमोह (म0 प्र0)	
		सागर (म0 प्र0)	10,000
		जबलपुर (म0 प्र0)	
7.	ताला उद्योग,	अलीगढ़ एवं अन्य (उ0 प्र0)	10,000
8.	हस्तकला उद्योग	जम्मू कश्मीर	27,000

9.	कालीन बुनाई	कश्मीर	35,000
		भदौही, वाराणसी	
		मिर्जापुर, शाहजहाँपुर (उ0 प्र0)	30,000
		राजस्थान	
10.	काँच एवं चूड़ी उद्योग,	फिरोजाबाद	
		शिकोहाबाद (उ0 प्र0)	30,000
11.	रत्नों को चमकाना,	जयपुर (राजस्थान)	13,000
12.	जूट उद्योग,	केरल	30,000
13.	चीनी मिट्टी का सामान बनाना,	खुर्जा (उ0 प्र0)	
		ग्वालियर (म0 प्र0)	5,000
14.	पीतल के बर्त्तन बनाने का कार्य,	मुरादाबाद	24,000
15.	यौन व्यापार में,	सम्पूर्ण देश	70,000
16.	भीख,	सम्पूर्ण देश	35,000
17.	ईट भट्टा भवन निर्माण,	सम्पूर्ण देश	50,000
18.	खनन कार्य,	सम्पूर्ण देश	25,000
19.	कृषि क्षेत्र,	सम्पूर्ण देश	1,50,000
20.	होटल व्यवसाय/घरेलू नौकर	सम्पूर्ण देश	1,20,000
21.	रसायन उद्योग,	सम्पूर्ण देश	35,000
22.	कोयला बीनना/कचड़ा सामान बीनना	सम्पूर्ण देश	50,000
23.	स्लेट-पेंसिल उद्योग, चौक उद्योग	मंदसौर (म0 प्र0)	35,000
24.	चमड़ा उद्योग,	आगरा, कानपुर एवं प्रथौना	15,000
25.	मरम्मत कार्यों		50,000

इस प्रकार के कार्यों में देश का 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चे सक्रिय हैं और देश के कुल उत्पादन में इनका एक बड़ा योगदान है, किन्तु बच्चों के स्वास्थ्य शिक्षा और उनके नैसर्गिक अधिकारों की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है।

बाल श्रमिकों की समस्याएँ

बाल श्रमिकों की दशाओं तथा समस्याओं से संबंधित विभिन्न अध्ययनों में कुछ चौंकने वाली समस्याएँ सामने आयी है।

1. बाल श्रम समस्या के मूल में निर्धनता कम वहन मालिकों या नियोजकों का निहित स्वार्थ अधिक है।
2. कम वेतन में अधिकाधिक घंटे तक काम लेकर उनका शोषण किया जाता है, उन्हें न तो अवकाश मिलता है और न ही अतिरिक्त कार्य के लिए अतिरिक्त वेतन ही दिया जाता है।
3. स्वास्थ्य की उचित देखभाल की सुविधा न होने से कठिन और विपरीत परिस्थितियों में काम करने के कारण समय से पहले ही बच्चे विभिन्न तरह के गंभीर रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।
4. बाल श्रमिक प्राय: असंगठित और निजी उद्योगों में ही कार्यरत हैं जहाँ वे निषेद्यात्मक कानून की पहुँच से बाहर है। अत: इन क्षेत्रों में उनका शोषण सरलता से किया जाता है।

बाल श्रम उन्मूलन हेतु सरकारी प्रयास

बाल श्रम उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना कार्यक्रम के तहत 1.50 लाख बच्चों को शामिल करने हेतु 76 बाल श्रम परियोजनाएँ स्वीकृत की गयी हैं। करीब 1.05 लाख बच्चों को विशेष स्कूलों में नामांकित किया जा चुका है। श्रम मंत्रालय ने योजना आयोग से वर्तमान में 250 जिलों की बजाय देश के सभी 600 जिलों को राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना में शामिल करने के लिए 1500 करोड़ रूपये देने को कहा है। 57 खतरनाक उद्योगों, ढ़ाबा और घरों में काम करने वाले बच्चों (9-14 साल की उम्र के) को इस परियोजना के तहत लाया गया। सर्वशिक्षा अभियान जैसी सरकारी योजनाएँ भी लागू की गयी। 10वीं योजनावधि के दौरान श्रमनीति के अन्तर्गत व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया गया, जो बाल श्रम उन्मूलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण पयदान है।

1991 की जनगणना के अनुसार देश में बाल श्रमिकों की संख्या लगभग 1.1 करोड़ थी, जबकि वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी संख्या भारत में 10.1 मिलियन बाल श्रमिक हैं, जबकि बिहार में बाल श्रमिकों की संख्या लगभग 11 लाख है। संसाधनों की कमी और सामाजिक चेतना और जागरूकता के वर्तमान स्तर को ध्यान में रखते हुए सरकार ने 10वीं पंचवर्षीय योजनावधि के अंत तक देश से बाल श्रम समाप्त करने की समय-सीमा निर्धारित थी, परन्तु इसे पूर्ण करने में असमर्थ हैं। इस योजना के अन्तर्गत उन सभी बच्चों को शामिल किया है जिनकी उम्र 14 से कम है और जो काम कर रहे हैं। बालकों से संबंधित अनुसूची में सूचिबद्ध व्यवसाय एवं प्रक्रिया है। श्रम निषेद्य एवं विनियमन अधिनियम 1986 और व्यवसाय एवं प्रक्रिया जो उनके स्वास्थ्य और मनोविज्ञान को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

NSSO के अनुसार 1999-2000 सर्वेक्षण प्रतिवेदन के अनुसार यह संख्या 10.40 मिलियन थी। इसके अन्तर्गत यह प्रस्तावित है कि जोखिम भरे उद्योग में कार्यरत बच्चों का क्रमिक रूप पुनर्वास कार्य प्रारंभ हो। जोखिम भरे व्यवसायों में काम करने वाले बच्चों का सर्वेक्षण कर, उन्हें वहाँ से हटाकर विशेष स्कूलों (पुनर्वास-सह- कल्याण केन्द्र) में दाखिल दिलाया जाय ताकि सरकारी स्कूली व्यवस्था की मुख्यधारा से उन्हें जोड़ा जा सके। 10वीं एवं 11वीं योजनावधि की रणनीति के अन्तर्गत उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने की भी योजना बनी इसमें बहुत हद् तक सफलता भी प्राप्त हुई।

इस प्रकार बाल श्रम उन्मूलन के लिए स्वतंत्रता से पूर्व से ही सरकारी स्तर पर कई अधिनियम पारित किये गये हैं। जिसमें बालक श्रम गिरवीकरण अधिनियम, 1933, बाल श्रमिक नियुक्ति अधिनियम, 1938, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948, कारखाना अधिनियम, 1948, दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम, 1948, बगान श्रमिक अधिनियम, 1951, भारतीय खदान अधिनियम, 1952, जहाजरानी व्यवसाय अधिनियम, 1958, वाहन व्यवसाय अधिनियम, 1962, प्रशिक्षु अधिनियम, 1961, बीड़ी एवं सिंगार कामगार अधिनियम, 1966, दुकान एवं वाणिज्य संस्थान अधिनियम, 1969, सम्भूत उर्जा अधिनियम, 1962, बंधुवा श्रम अधिनियम, 1976, बाल श्रमिक निषेद्य एवं नियमन अधिनियम, 1986, बाल श्रमिक निषेद्य नियमन, 1988, बाल श्रम निषेद्य अधिनियम, 1995, 1997, बाल श्रम निषेद्य विनियम, 2016, 2018 इत्यादि बहुत सारे अधिनियम बाल श्रम उन्मूलन की दिशा में पारित किये गये हैं।

इस प्रकार भारत जैसे विकासशील एवं निर्धन देश में जहाँ एक तरफ जनसंख्या की अधिकता है, बेरोजगारी विकराल मुँह बाएँ खड़ी है, अशिक्षा का घोर अंधकार व्याप्त है, निर्धनता के मकड़जाल में देश उलक्षा हुआ है। प्राकृतिक अपदाएँ और कोरोना जैसे वैश्विक महामारी की चपेट से देश त्रस्त है। इन समस्याओं के झंझावात में बाल मजदूरों की समस्याएँ अपने आप में काफी चुनौतिपूर्ण एवं उलझनपूर्ण बना हुआ है। यह सही है कि बाल श्रम उन्मूलन की दिशा में सरकार द्वारा बहुत सारे उपायों के साथ-साथ कई अधिनियम भी पारित किये गये हैं, फिर भी आज बाल श्रम की समस्याएँ पारिवारिक, ग्रामीण, शहरी, सामाजिक, राज्यीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक विकट समस्या बनी हुई है। जब तक बाल श्रम जैसे घृणित समस्याओं का निदान नहीं हो पाता तबतक किसी भी देश में स्वस्थ एवं संतुलित विकास की कल्पना करना बालू की दीवार खड़ा करने के समान है। इस समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति, परिवार, समाज, सरकार के साथ-साथ विभिन्न सरकारी संस्थाएँ एवं गैर सरकारी संगठन इत्यादि को समन्वित एवं समवेत रूप में प्रयास करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. भारत में बाल श्रम समस्याएँ और समाधानः उषा सिंह एवं एच0 पी0 सिंह।
2. भारत में बाल मजदूरः सुभाष शर्मा।
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट्स।
4. श्रम मंत्रालय भारत सरकार की विभिन्न रिपोर्ट्स।
5. द चाइल्ड एण्ड टूरिस्टः रानी ओग्रेंड़ी।
6. द चाइल्ड एण्ड द स्टेट इन इंडियाः माइनर वीनर

भारतीय अर्थव्यवस्था और वैश्वीकरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० गणेश राय

पी०एच०-डी०, अर्थशास्त्र, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

भूमण्डलीकरण से आशय है, देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत (Integrate) करना। जब किसी अर्थव्यवस्था का विश्व के अन्य देशों के साथ कोई आर्थिक सबंध नहीं हों तो उसे हम बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy) कहते है, और जब किसी अर्थव्यवस्था का विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक तथा व्यापारिक सबंध हो तो ऐसी अर्थव्यवस्था को खुली अर्थव्यवस्था कहते है। जब किसी भी अर्थव्यवस्था का विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं के लिये पूर्णतः खोलना, जिससे व्यापार, विदेशी निवेश, दीर्धकालीन तथा अल्पकालीन पूँजी प्रवाह टेक्नालॉजी के प्रवाह, श्रम की गतिशीलता आदि पर किसी प्रकार का प्रतिबद्ध नहीं हो तो इसे हम वैश्वीकरण कहते है। प्रोफेसर जगदीश भगवती "आर्थिक भूमण्डलीकरण से आशय राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का व्यापार निगमों था बहुउद्देशीय निगमों के द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी अल्पकालीन पूँजी प्रवाह श्रमिकों तथा मानवता के अन्तर्गष्ट्रीय प्रवाह तथा टेक्नालॉजी के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ना है।"

प्रस्तावना

वैश्वीकरण की पूरी अवधारणा इस परिकल्पना पर आधारित है, कि यदि विश्व के देशों के बीच संसाधनों तथा टेक्नालॉजी का स्वंतत्र गतिशीलन हो तथा इसके साथ ही वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं हो तो सभी देश उन वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेंगें, जिनमें उनकी सापेक्षिक कुशलता सर्वाधिक स्पष्ट होगी और ऐसी स्थिति में सभी देशों को उत्तम गुणवत्ता की वस्तुएं न्यूनतम लागत पर प्राप्त होगी, और इस प्रक्रिया में न केवल सभी देशों को लाभ होगा, बल्कि साथ ही विश्व स्तर पर संसाधनों का बंटवार कुशलता होगा तथा इसके साथ ही विश्व उत्पादन भी अधिकतम होगा। इस प्रकार वैश्वीकरण का अर्थ है, कि -

1. विश्व के किसी भी देश में वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन साम्भवित न्यूनतम लागत पर प्राप्त करना।
2. प्रत्येक स्थान पर संसाधनों तथा प्रबन्धीय क्षमता का कुशलतम प्रयोग।
3. पूरे विश्व को एक बाजार के रूप में स्थिापित करना।

ऐसी स्थिती के सभी देशें के बीच वस्तुओं तथा सेवाओं का स्वतंत्र प्रवाह होगा, और सभी प्रकार के व्यावापारिक प्रतिबंध सामाप्त हो जाएंगे। पूरे विश्व एक अप्रतिबन्धित रोजगार के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ जाती है। यहाँ सभी देशों के बीच होने वाली प्रतियोगिता कुशलता को बढ़ाने वाली सिद्ध होती है। क्योकि प्रत्येक देश उन्नत तकनीक का प्रयोग करने लगता है।

वैश्वीकरण (Globalization) की चर्चा सबसे पहले प्रोफेसर जॉन नैशविट (Jonha Naisbitt) ने अपनी पुस्तक 'New directions transforming our lines" में की थी। वैश्वीकरण से सैद्धांतिक रूप से तीन धारणायें सबंधित है। उदारीकरण (Liberalization) बाजारीकरण (Marketization) तथा निजीकरण (Privationzation) है। उदारीकरण के होने से प्रत्येक देश

की सरकारें घरेलू तथा विदेशी बाजार के लिये लाइसेंसिंग, निवश सीमा, विदेशी नियंत्रण, आरक्षित उद्योग जैसे प्रतिबंधों को हटा लेती है। इससे देश में विदेशी पूँजी तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की स्थापना होने लगती है। देश की करेन्सी चालू खाते तथा पूँजी खाते के लिये पूर्णरूप से परिवर्तनीय हो जाती है। उदारीकरण, निजीकरण की आवश्यक है, इसलिए औद्योगिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागेदारी को बढ़ाया जाता है। इसके लिए राष्ट्रीकरण की प्रक्रिया को रोकना तथा विनिवेशीकरण की प्रक्रिया को रोकना तथा विनिवेशीकरण की प्रक्रिया को सम्पन्न किया जाता है। जिससे निजी क्षेत्र अपने लाभ के उद्देश्य से उत्पादन को बढ़ाता है। जिससे आर्थिक विकास की गति ओर तेज होती हे। वैश्वीकरण को प्राप्त करने के लिए उदारीकरण को बढ़ाया जाता है। उदारीकरण से सरकारी हस्तक्षेप, आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राज्य की भूमिका या संसाधनों के बंटवारे तथा आर्थिक विकास की रणनीति को तय करने में सरकार की भूमिका में कमी आती है।

उद्देश्य

1. देश की अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता की क्षमता पैदा करना।
2. देश के संसाधनों को ठीक ढंग से प्रयोग करना।
3. उन्नत तकनीकी का प्रयोग करना।
4. देश की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर करने के लिए सुझाव देने।

भारत में वैश्वीकरण की आवश्यकता

भारतीय सन्दर्भ में यदि वैश्वीकरण के महत्व की बात की जाये तो इसके दोनों पहलू अर्थात् सकारात्मक एवं नकारात्मक, दृष्टिगत होते हैं। वैश्वीकरण ने जहाँ भारतीय संस्कृति को गहनता से दुशित किया हैं वहीं दूसरी ओर इससे देश के जीवन को नई उर्जा प्राप्त हुई हैं। पुरानी, कुएँ की मेंढ़क वाली मानसिकता को त्याग कर भारत सहित सभी राष्ट्रों की सोच व्यापक बनी हैं एवं राष्ट्रीय नीतियों का निर्धारण भी अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में किया जाने लगा हैं। किसी भी राष्ट्र में मानवीय आपदा हो या प्राकृतिक आपदा, विश्व के अन्य राष्ट्र परस्पर सहयोग हेतु तत्पर रहते हैं। आर्थिक आधार पर भारत के लिए वैश्वीकरण, भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए खोलता हैं। इससे भारत सहित अन्य राष्ट्रों की पर परस्पर निर्भरता में वृद्धि हुई हैं।

वैश्वीकरण और विदेशी निवेश

वैश्वीकरण में विश्व का विकास एकल एकीकृत आर्थिक इकाई के रूप में होता हैं और बाजार के रूप में केवल विश्व बाजार का अस्तित्व होता हैं। इस प्रकार की स्थिति में प्रतिस्पर्धा के आधार पर मुक्त व्यापार की सीमा रेखा विहीन सत्ता की ओर सभी देश अग्रसर होते हैं। वैश्वीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख तत्व समाहित है -

1. सभी राष्ट्रों द्वारा आयात शुल्क घटाना।
2. आयात नीति को अधिक उदार बनाना तथा आयात पर प्रतिबन्धों में ढील देना।
3. विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करना।
4. विदेशी तकनीकी सम्बन्धी सन्धियों को प्रोत्साहन देना।

वैश्वीकरण से विश्व के राष्ट्रों में विदेशी पूंजी का प्रवाह तेजी से वृद्धि करता हैं। विदेशी पूंजी का प्रवाह प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टोलियों के रूप में गतिमान होता हैं। विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु राष्ट्रीय महत्व के कई उद्योगों में विदेशी निवेश की सीमा बढ़ाकर 51 प्रतिशत कर दी गई हैं भारत सरकार द्वारा सन् 1996-97 में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की नीतियों को और अधिक लचीला बनाया गया तथा 9 प्रकार के उद्योगों में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 74 प्रतिशत तक स्वत: अनुमोदन की आज्ञा दी गई। विदेशी निवेश के प्रस्तावों को शीघ्र अनुमोदित करने के लिए विदेशी निवेश संवर्धन परिषद् की स्थापना की गई हैं। इन प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारत में निजी विदेशी पूंजी का प्रवाह अत्यन्त तीव्रता से बढ़ गया। इसमें भी आधा पोर्टफोलियों निवेश भारतीय स्टॉक मार्केट में विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा किया गया।

वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क

1. देश का आर्थिक विकास, पूँजी की मात्रा पर निर्भर करता है, विकासशील देशों में पूँजी का अभाव होता है। लेकिन वैश्वीकरण से पूँजी का प्रवाह बढ़ता इसके स्टॉक में वृद्धि होती है।
2. वैश्वीकरण से विकासशील देशों को आघतन तकनीक, ज्ञान तथा शोध तथा विकास पर खर्च किये बिना उसका लाभ मिल जाता है।
3. विदेशी प्रतियोगिता होने से देशी उद्योग में एक स्वस्थ्य प्रतियोगिता की परस्पर निर्मित होती है। इससे घरेलू संसाधनों का इष्टतम प्रयोग होता है।
4. विदेशी बाजार में पहुँच बढ़ती है। जिससे बाजार का विस्तार होता है। इससे उत्पादन तथा निर्यात में वृद्धि होती है। प्रोफेसर जगदीश भगवती जी कहते है, कि वैश्वीकरण से बहिर्मुखी अर्थव्यवस्था (outward oriented Economies) का विकास होता है, इसी प्रकार प्रोफेसर सेम्युलसन कहते है, कि इससे अर्थव्यवस्था विशिष्टीकरण में सफल होती है, और अच्छा निष्पादन करती है।
5. वैश्वीकरण से अर्थव्यवस्था को बड़े पैमाने की मितव्यतायें प्राप्त होती है। जिससे बाजार का विस्तार होता है। ओर व्यापार भी बढ़ता है। वैश्वीकरण का पक्ष लेते हुए प्रोफेसर जगदीश भगवती कहते है, कि इसके अभाव से घेरलू एकाधिकार को जन्म मिलता है, इसलिए हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से स्वस्थ्य प्रतियोगिता को बढ़ाना चाहिए।

गरीबी तथा विषमता में कमी आना प्रोफेसर जगदीश भगवती कहते हे, जब से विश्व के देशों ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाया है, तब से गरीबी तथा वितरण की असमानता में कमी आयी है। विश्व बैंक के अनुमान पिछले दो दशकों में चीन की संवृद्धि पर 10 प्रतिशत तथा भारत की सम्वृद्धि दर कम रही है। एशियन विकास बैक की रिपोर्ट के अनुसार चीन में गरीबी 1978 में 28 प्रतिशत थी। जो 1998 में घटकर 9 प्रतिशत रह गयी। जवकि भारत में 1978 में गरीबी 51 प्रतिशत थी। जो 1999 में घटकर 26 प्रतिशत रह गयी इन सब अध्ययनों से यह कहा जा सकता है। कि वैश्वीकरण ने गरीबी तथा आर्थिक विषमता को कम किया है।

इस प्रकार यह आसानी से कहा जा सकता है, कि वैश्वीकरण आर्थिक विकास का इंजिन है, तकनीकी प्रगति का साधन, है, प्रतियोगिताजन्य सभी लाभों का सृजक तथा अर्थव्यवस्था में निवेश, रोजगार तथा उत्पादन में वृद्धि लाने का माध्यम है।

वैश्वीकरण विरूद्ध तर्क

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने "सोशल डाइमेन्सन ऑफ ग्लोबलाइजेशन" के सबंध में एक आयोग नियुक्त किया उस आयोग ने मत व्यक्त किया कि वैश्वीकरण की चालू प्रक्रिया में बदलाव होना चाहिए। क्योकि इससे कुछ ही लोग, लाभान्वित ही रहे है, तथा बहुत अधिक लोक इसकी प्रक्रिया तथा प्रारूप के निर्धारण में दखल नहीं रखते है। वैश्वीकरण से विदेशी पूँजी देश की अर्थव्यवस्था में निवेश को बढ़ाती है, लेकिन इससे यह खतरा है, कि विदेशी पूँजी के बारे में यह निश्चित नहीं होता है, कि विदेशी पूँजी अर्थव्यवस्था से कब बहार हो जाये, देश के संसाधन तथा साधनों का लाभ कमाने के लिये बहार के देशों में जाना।

1. देशी उद्योग या विकासशील देशों का औद्योगिक ढाँचा कमजोर होता है, जबकि विकसित देशों का उन्नत उनके अन्दर स्वस्थ्य प्रतियोगिता का जन्म नहीं हो पाता है, जिससे विकाससशील देशों का एक तरह से शोषण ही हो रहा है।
2. वैश्वीकरण से घरेलू बाजार में विदेशी उपभोक्ता वस्तुयें आ जाती है। विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण, तथा प्रदार्शन प्रभाव के कारण देश के उत्पादन को नुकसान पहुँचता है।
3. वैश्वीकरण से सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामाजिक न्याय की अवधारणा पर लागू नहीं होती है।
4. विश्व स्तर पर समस्त अर्थव्यवस्थायें उपभोक्तावाद का केन्द्र बन कर रह जाती है। इससे विलासिता की वस्तुओं को बढ़ावा मिला है, और छोटे उपभोक्ताओं को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है।
5. वैश्वीकण से पूँजीगहन तकनीकी को बढ़ावा मिलता है, जिससे अर्थव्यवस्था का रोजगारमूलक ढांचा अत्यन्त ही कमजोर होता जाता है, इससे रोजगार तथा सामाजिक न्याय की स्थापना एक दिवास्वप्न बनकर रह जाती है।

विश्व बैंक ने ग्लोवल एकोनोमिक प्रॉसपेक्टक 2007 में कहा कि वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अनियंत्रित या स्वंतत्र छोड़ दिया जाये तो इसके जबरदस्त प्रतिकूल प्रभाव दृष्टिगोचर होगें। इससे आर्थिक असन्तुलन तथा पर्यावणीय दबाब आ सकते है, जिससे आर्थिक विषमता, श्रम बाजार में दबाब तथा प्रदूषण युक्त प्लैनेट का खतरा बन सकता है। भारत का दृष्टिकोण भारत में 1950-51 से चली आ रही आर्थिक नीति तथा उससे सबंधित कार्यनीतियों में क्रांतिकारी रूप से परिवर्तन की बात 1991 में शुरू हुयी इसको क्रियान्वित करने के लिए औद्योगिक नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति तथा व्यापारिक नीति में व्यापाक परिर्वतन किये गये।

इस नयी नीति के प्रयोग के श्रेय तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव तथा वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह जी को जाता है। बहुत से लोग इसे राव-मनमोहन विकास रणनीति (Rao Manmohan Development strategy) कहते है। भारत को 1980-90 के दशक में आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा, भुगतान संतुलन की स्थिति विपरीत होने लगी, साथ ही साथ आयात बढ़ने लगे, 1990 में खाडी सकंट से भी आर्थिक संकट और गहरा गया, भारत की अर्थव्यवस्था अनिवासी भारतियों पर निर्भर हेने लगीं विदेशी निवेश की जरूरत भी बढ़ने लगी, इसके साथ ही भारत की साख मान (Credit Rating) नीचे गिरने लगी। राजनीतिक अस्थिरता के चलते विदेशी निवेशक अपनी पूँजी निकालने लगे, तब भारत ने अपने घाटे की पूर्ति के लिये अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से 1980 मिलियन डोलर का ऋण लिया, आयात को बंद करना पड़ा, विदेशी बैंकों मेंभारत को स्वर्ण रखना पड़ा इसके बाद भी भारत आर्थिक संकट से नहीं उभर सका, भारत के विदेशी मुद्रा भण्डार, एक मिलियन डोलर के बराबर रह गये जो दो सप्ताह से अधिक के आयातों के भुगतान के लिये भी पर्याप्त नही थे। राजकोषीय घाटा (GDP) के 10 प्रतिशत तथा चालू खाते में घाटा (GDP) के 3 प्रतिशत तक पहुँच गया। मुद्रा स्फ्रीति की दर 12 प्रतिशत से अधिक हो गई। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि 1991 का आर्थिक सकंट किसी अल्पकालीन कारकों का परिणाम नहीं था, अर्थव्यवस्था में अपनाई गयी दीर्धकाल से दोषपूर्ण आर्थिक नीतियों का संचयी प्रभाव का परिणाम ही था। इस संकट के पीछे जाकर देखें तो इसके बीज 1979-81 के बीच पैदा हुए तेल संकट से ही पड़ गये थे। जब विश्व में तेल के मूल्य दो-गुने हो गये थे। इससे भारत की अर्थव्यवस्था पर गहरा विपरीत प्रभाव पड़ने लगा, क्योकि जब 1978 में चालू खाते का घाटा न के बाराबर था, वहीं 1981 में बढकर (GDP) के बराबर हो गया। बाद के वर्षो में भी चालू खाते के घाटे में वृद्धि होती रही। वहीं भुगतान संतुलन भी 1991 की अवधि में अधिक प्रतिकूल हुआ ओर विदेशी विनमय कोष भी अपने न्यूनतम स्तर पर जा पहुँचा।

इस व्यवस्था के लिए राजकोषीय व्यवस्था भी जिम्मेदार रही, क्योकि 1980 के दशक में गैर-विकासात्मक व्यय अधिक किये गये, जिससे सभी प्रकार के घाटे बढ़े, बजट घाटा जो 1981-82 में (GDP) के 0.2 प्रतिशत था जो बढ़कर 1990-91 3.5 प्रतिशत हो गया, राजकोषीय घाटा 1984-85 में 7.5 प्रतिशत था, जो 1990-91 में बढ़कर (GDP) के 8.4 प्रतिशत हो गया।

जिससे मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हुयी इसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति में भी वृद्धि हुयी, इससे निर्यात भी कम हुये, (क्योंकि वस्तुओं की कीमतें बढ़ गयीं।) इस प्रकार का राजकोषीय घाटा अपोषणीय होता है, जो देश की अर्थव्यवस्था को ;णजाल की ओर ले जाता है। इन सब विपरीत स्थितियों से बचने के लिये भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक से सहायता लेना ही उचित समझा, और भारत ने 1980 मिलियन डोलर के ऋण प्राप्त किये। हमें सहायता तो मिली लेकिन कुछ शर्तो के तहत्-कि भारत को स्थायित्व एवं संरचात्मक समायोजन कार्यक्रम लागू करने होगें। इसके तहत भारत को राजकोषीय घाटा तथा मुद्रा पूर्ति को कम करना था, घरेलू क्षेत्र की नीतियों में उदारीकरण के तहत् उत्पादन, निवेश तथा कीमत पर प्रतिबंध कम करने होगें, तथा विदेशी स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं, तकनिकी तथा पूँजी प्रवाह पर लगें प्रतिबंध भी हटाने होगे।

वैश्वीकरण का भारत पर प्रभाव

1. सन् 1991 की शुरूआत में भारत को भीशण भुगतान संतुलन के संकट का सामना करना पड़ा था एवं इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए भारत को अपनी औद्योगिक नीति में मूलभूत परिवर्तन करने पड़े जिसमें प्रमुख हैं -
   * निजी पूंजी निवेश को स्वतंत्रता प्रदान करना।
   * औद्योगिक लाइसेन्स व्यवस्था का अन्त करना।
   * अनेक वस्तुओं पर मूल्य नियन्त्रण समाप्त करना।
   * लघु उद्योगों के संरक्षण से सम्बन्धित नीतियों में कमी करना।

उपरोक्त नीतियों में संशोधन के परिणामस्वरूप भारतीय औद्योगिक वातावरण में मूलभूत परिवर्तन हुए। वर्तमान में विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबाव में सभी राष्ट्रों की औद्योगिक नीतियाँ वैश्वीकरण से प्रभावित होती हैं।

2. वैश्वीकरण के कारण भारत जैसे विकासशील देश में निर्धनता में कमी आई हैं। एषियन विकास बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में गरीबी 1977-78 में 51 प्रतिशत से घटकर वर्ष 1999-2000 में 26 प्रतिशत हो गई है और यह गिरावट अभी भी जारी हैं।
3. वैश्वीकरण के द्वारा भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश संभव होने से भारत की पूंजी की समस्या का समाधान होता जा रहा हैं तथा ऋणग्रस्तता में कमी आई हैं।
4. प्रौद्योगिकी हस्तांतरण से भारत में उत्पादन क्षमता एवं संवृद्धि दर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा हैं।
5. भारतीय उपभोक्ताओं को सस्ती दरों पर उच्चगुणवत्ता युक्त वस्तुएँ उपलब्ध हो रही हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण घरेलू उद्योगों की गुणवक्ता में सुधार आया हैं।
6. शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई शैक्षिक तकनीकों को समावेषित किया जा रहा हैं। प्रोजेक्टर, विडियों कान्फ्रेसिंग के आधार पर प्रश्नोत्तर विधि, प्रदर्शन विधि आदि का प्रयोग शिक्षा में किया जा रहा हैं फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में बिना बोझ के शिक्षा, निर्मितवाद, अभिसंज्ञानवाद आदि नये सम्प्रत्यय उभर रहे हैं।

निष्कर्ष

इन सब समझौतों को मानते हुये भारत सरकार ने अपने आर्थिक सकंट को काबू में करने के लिये कदम उठाये और इसी वैश्वीकरण की व्यवस्था के चलते भारत की अर्थव्यवस्था विकास की मुख्य धारा में ही नहीं बल्कि आज विश्व की चौथी बडी अर्थव्यवस्था बनकर उभरी है, और विश्व अर्थव्यवस्था की आखों के लिये तिनका बनती जा रही हैं। लेकिन हमें आज वैश्वीकरण के अन्धें अनुकरण की आवश्यकता नहीं वल्कि सतर्ककतापूर्ण इसके प्रयोग की वेहद् आवश्यकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश की स्थापना वैश्वीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास थे। डंकल प्रस्ताव के आधार पर विश्व व्यापार संगठन वैश्वीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। डंकल प्रस्ताव के आधार पर विश्व स्तर पर पेटेन्ट नियम लागू करना, बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश को सरल बनाना, विदेशी विनियोग के अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह को सरल बनाना आदि पहलुओं पर बल दिया गया। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण के फलस्वरूप भारत सहित अधिकांश राष्ट्रों द्वारा उदारीकरण को प्रोत्साहन दिया गया जिसने भारतीय औद्योगिक, व्यापारिक, वित्तीय और आर्थिक व्यवस्था को गहनता से प्रभावित किया हैं। आर्थिक क्षेत्र में जहाँ अधिकांश सकारात्मक प्रभाव प्राप्त हुए वही सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षैत्रों में समन्वित प्रभाव दृष्टिगत हुए हैं। जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को ऊँचे लाभ प्राप्त हो सकें।

सदंर्भ ग्रंथ सूची

1. दत्त-सुन्दर भारतीय अर्थव्यवस्था एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली 2011
2. योजना प्रकाशन विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली गई 2005
3. मिश्रा एण्ड पुरी भारत की अर्थव्यवस्था हिमालय प्रकाशन, नई दिल्ली 2011
4. कुलश्रेष्ठ आर.एस औद्यौगिक अर्थव्यवस्था साहित्य भवन, प्रकाशन, आगरा 2003
5. अग्रवाल ए.एन भारतीय अर्थव्यवस्था न्यू.एज. इन्टरनेशनल (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली 2008।

वस्तु एवं सेवा कर का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० पूनम कुमारी

पी०एच०-डी०, अर्थशास्त्र, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

भारत सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ व सुविकसित करने के लिए जीएसटी लागू करना एक सफल प्रयास साबित हुआ हैं। जिससे भारत को अपने व्यापार व विदेश नीति को सुव्यवस्थित व गतिशील बनाने में सहायता मिलती हैं। जीएसटी का सबसे बड़ा फायदा यह है कि अब विभिन्न वस्तुओं पर एक ही बार कर चुकाना पड़ेगा। भारत में वस्तु एवं सेवा कर को लागू किया जाना अप्रत्यक्ष कर सुधारों के क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा रही है बड़ी संख्या में केन्द्रीय एवं राज्यों के अप्रत्यक्ष करों को मिलाकर उन्हें एकल कर अर्थात् वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का रूप देने से करों की बहुतायत अथवा दोहरे कराधान की समस्या का समाधान बड़े पैमाने पर हो जाएगा और इसके साथ ही 'एक समान राष्ट्रीय बाजार' का मार्ग प्रशस्त हो गया है, उपभोक्ताओं की दृष्टि से इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि वस्तुओं पर उन्हें अपेक्षाकृत कम कर अदा करना पड़ेगा, जो वर्तमान में लगभग 25-30 प्रतिशत के बीच है, यही नहीं, जीएसटी को लागू करने से भारतीय उत्पाद घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धी बन जाएंगे। अर्थशास्त्रियों एवं कर विश्लेषकों का मानना है कि जीएसटी आर्थिक विकास की गति बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा। जीएसटी का क्रियान्वयन सरल है, क्योंकि यह पारदर्शी है और इसका अनुपालन भी स्वत: हो सकेगा। भारत में वस्तु एवं सेवा कर को लागू किया जाना अप्रत्यक्ष कर सुधारों के क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा रही है बड़ी संख्या में केन्द्रीय एवं राज्यों के अप्रत्यक्ष करों को मिलाकर उन्हें एकल कर अर्थात् वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का रूपा देने से करों की बहुतायत अथवा दोहरे कराधान की समस्या का समाधान बड़े पैमाने पर हो जाएगा और इसके साथ ही 'एक समान राष्ट्रीय बाजार' का मार्ग प्रशस्त हो गया है, उपभोक्ताओं की दृष्टि से इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि वस्तओं पर उन्हें अपेक्षाकृत कम कर अदा करना पड़ेगा, जो वर्तमान में लगभग 25-30 प्रतिशत के बीच है, यही नहीं, जीएसटी को लागु करने से भारतीय उत्पाद घरेलू एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धी बन जाएंगे। अर्थशास्त्रियों एवं कर विश्लेषकों का मानना है कि जीएसटी आर्थिक विकास की गति बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा। जीएसटी का क्रियान्वयन सरल है, क्योंकि यह पारदर्शी है और इसका अनुपालन भी स्वत: हो सकेगा। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) विधेयक 2016 संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों के बीच समान व्यवहार के लिए कर प्रणाली की एकल व्यवस्था की जरूरतों को पूरा करता है, जिस पर सर्वसम्मति बनाने का प्रयास किया गया है, इस विधेयक का केन्द्रीय तथा मूल विषय यह है कि 'करों' की दर कम हो।

प्रस्तावना

भारत में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लागू किया जाना अप्रत्यक्ष कर सुधारों के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें केन्द्र व राज्यों के अप्रत्यक्ष करों को मिलाकर उन्हें एकल कर अर्थात् वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को रूप देने से दोहरे कराधान की समस्या का समाधान हो सकेगा और एक समान राष्ट्रीय बाजार का मार्ग प्रस्तुत हो सकेगा। अब 01 जुलाई, 2017 से सभी वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतें पूरे देश में एक सी हो जाएगी। सर्वप्रथम अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में सुधारों की शुरूआत वर्ष

2003 में लेकर समिति ने की थी, इसके बाद संप्रग सरकार ने वर्ष 2006 में जीएसटी विधेयक प्रस्तावित किया था, पहली बार यह विधेयक वर्ष 2011 में लाया गया था, जीएसटी व्यवस्था विश्व के 140 देशों में लागू है, वर्ष 1954 में जीएसटी लागू करने वाला फ्रांस विश्व का पहला देश है, भारत की तरह की दोहरी जीएसटी व्यवस्था ब्राजील और कनाडा में भी है, वर्ष 2000 में तत्कालीन वाजपेयी सरकार ने जीएसटी पर विचार के लिए विशेष अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया था, समिति का अध्यक्ष पश्चिम बंगाल के तत्कालीन वित्त मंत्री असीम दासगुप्ता को बनाया गया असीम दासगुप्ता समिति को जीएसटी के लिए मॉडल तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई थी। वर्ष 2005 में तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने आम बजट में जीएसटी के विचार को सार्वजनिक तौर पर सामने रखा था, वर्ष 2009 में जीएसटी के बारे में एक विमर्श पत्र रखा गया, बाद में सरकार ने राज्यों के वित मंत्रियों की एक अधिकार सम्पन्न समिति बनाई थी, वर्ष 2014 में तत्कालीन संप्रग सरकार ने इससे सम्बन्धित विधेयक तैयार किया था, किन्तु लाक सभा का कार्यकाल समाप्त होने के कारण वह विधेयक पास नहीं हो सका, वर्ष 2014 में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में बनी केन्द्र सरकार इसे लोक सभा में लेकर आई और इसे स्थायी समिति में भेजा गया।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) से सम्बन्धित संविधान संशोधन (122वाँ) विधेयक, 8 अगस्त, 2016 को लोकसभा में पास हो गया, सभी सदस्यों ने इस बिल के पक्ष में मत डाले, राज्यसभा ने 3 अगस्त, 2016 को जीएसटी विधेयक को सर्वसम्मति के साथ पारित कर दिया था, सविधान संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति से पूर्व आधे से अधिक राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इसका समर्थन किया जाना था, असम देश का पहला राज्य था जिसकी विधानसभा ने इस विधेयक का समर्थन किया, इसी क्रम में बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, दिल्ली, नागालैण्ड, महाराष्ट्र, हरियाणा, सिक्किम, मिजोरम, तेलंगाना, गोवा, ओडिशा, राजस्थान, अरुणाचल प्रदेश तथा आंध्र प्रदेश राज्यों की विधान सभाओं द्वारा इस विधेयक को पारित किए जाने के बाद 8 सितम्बर, 2016 को राष्ट्रपति द्वारा इस विधेयक को स्वीकृति प्रदान कर दी गई। इसी के साथ 122वां संविधान (101वाँ संशोधन) संशोधन अधिनियम, 1 जुलाई, 2017 से लागू हो गया।

अध्ययन की आवश्यकता

भारत में हाल ही में कर सुधारों के क्षेत्र में वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम लागू करके अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में एक नया कर जीएसटी लागू किया गया। जिसमें पूर्व में लागू अधिकांश कर शामिल कर लिये गये है। चूंकि यह नया कर है जिसे भारत के व्यापारियों एवं शोधकर्त्ताओं को समझना आवश्यक है इसलिए इस विषय पर इस अध्ययन को केन्द्रित किया गया है और यही तथ्य इस अध्ययन की आवश्यकता तथा प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

अध्ययन के उद्देश्यों को भारत: अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

1. भारत में लागू विभिन्न प्रकार के करों का अध्ययन करना
2. जीएसटी से पहले भारत में लागू विभिन्न प्रकार के अप्रत्यक्ष करों की कमियों का अध्ययन करना।
3. वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम की विस्तृत व्याख्या करना।
4. वस्तु एवं सेवा कर लागू करने में आने वाली कठिनाईयों का अध्ययन करना।
5. जीएसटी लागू करने से भारत में एक राष्ट्र, एक बाजार, एक कर की कल्पना को साकार करने वाले लक्ष्य का अध्ययन करना।
6. जीएसटी की कमियों एवं लाभों का मूल्यांकन करते हुए इसकी प्रासंगिकता का आकलन करना।

अध्ययन की पद्धतियाँ

विषय की व्याख्या और अध्ययन के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विषय के आयाम सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के है। अध्ययन की पकृति के अनुरुप अध्ययन की पद्धति वर्णात्मक, विश्लेषणात्मक एवं समीक्षात्मक है। विषय से सम्बन्धित आंकडों को इकट्ठा करने के लिए प्राथमिक स्रोतों की अपेक्षा द्वितीयक स्रोतों का ही अधिक प्रयोग किया गया है क्योंकि इसका

क्षेत्र अत्यधिक व्यापक होने के कारण प्राथमिक स्रातों से सम्पूर्ण एवं वास्तविक आंकड़े एकत्रित करना अत्यन्त कठिन एवं व्ययभारित होगा। जीएसटी सम्बंधी आंकड़ों को एकत्रित करने के बाद उनका सारणीयन के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले गये है।

साहित्यावलोकन

भारत में वस्तु एवं सेवा कर: एक अवलोकन के सन्दर्भ में किये गये इस शोध की आवश्यकता, उददेष्यों तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन किया गया है यथा – अर्पित हल्दिया एवं मेघा हल्दिया द्वारा लिखित ग्रन्थ "जी.एस.टी.: समस्याएँ एवं समाधान" (2018) में भारत में लागू नए वस्तु एवं सेवा कर के सन्दर्भ में आ रही विभिन्न प्रकार की समस्याओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा इन समस्याओं के लिए उचित समाधानों की भी व्याख्या प्रस्तुत ग्रन्थ में की गई है। पंकज के सिंह द्वारा लिखित रचना "जीएसटी" (2017) में लेखक ने लिखा है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 30 जून, 2017 को मध्यरात्रि से भारत में वस्तु एवं सेवा कर लागू कर दिया। पुस्तक में आगे लिखा गया है कि वस्तु एवं सेवा कर के लागू होने से राज्य एवं केन्द्र के अधिकांश कर इस अप्रत्यक्ष कर में शामिल हो गए है। अनूप मोदी एवं महेष गुप्ता ने अपनी पुस्तक "जीएसटी: प्रैक्टिस मैन्अुल" (2017) में जीएसटी का अर्थ, जीएसटी की अवधारणा, जीएसटी लागू करने का समय, जीएसटी का मूल्य, जीएसटी पंजीयन, जीएसटी रिटर्न प्रोसेस, कर का भुगतान, ऑडिट तथा जीएसटी रेट की सूची आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। बसंती लाल बाबेल ने अपनी रचना "केन्द्रीय माल एवं सेवा कर अधिनियम, 2017" (2017) में जीएसटी लागू करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा लाये गये अधिनियम की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा शोध विषय से सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। समय तथा अन्य परिस्थितियों की सीमा में रहते हुए जो साहित्य सुलभ हो पाये, उन्हीं की यहाँ समीक्षा की गई है।

वस्तु एवं सेवा कर: भारत में वर्ष 1991 से कर सुधारों की जिस प्रक्रिया की शुरुआत हुई है, उसका उद्देश्य पूरे देश में वस्तुओं एवं सेवाओं पर एक समान कर प्रणाली को लागू करना है, जिससे करारोपण की प्रक्रिया को सहज और सरल बनाते हुए कर प्रणाली की जटिलता को कम किया जा सके। इससे सरकार के राजस्व में तीव्र वृद्धि की भी संभावना है। इस संदर्भ में अप्रत्यक्ष करो में सुधार की दिशा में वैट (मूल्य सर्वर्द्धित कर) की अगली कड़ी के रुप में "वस्तु एवं सेवा कर" एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। वस्तु एवं सेवा कर वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाया जाने वाला एक एकीकृत अप्रत्यक्ष कर है, जिससे केंद्रीय उत्पाद शुल्क, राज्य स्तरीय वेट, चुंगी, क्रय कर, विलासिता कर, मनोरंजन शुल्क, सेवा कर आदि शामिल है। वस्तु एवं सेवा कर का आरोपण आपूर्ति एवं उपयोग के अंतिम चरण पर किया जाएगा। यह कर मूल्यवर्धन के प्रत्येक स्तर पर अनिवार्य रूपा से लगाया जाएगा। इसमें प्रत्येक चरण पर किसी भी आपूर्तिकर्ता को टैक्स क्रेडिट सिस्टम के माध्यम से इसकी भरपाई करने की अनुमति होती है। इसमें ग्राहक को केवल आपूर्ति श्रृंखला के अंतिम चरण पर आरोपित कर का ही भुगतान करना होता है।

जीएसटी और केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध

वर्तमान में केन्द्र और राज्यों के राजकोषीय अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख भारतीय संविधान में किया गया है और इस लिहाज से दोनों के क्षेत्राधिकार एक-दूसरे से लगभग पूरी तरह भिन्न हैं, भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के अनुसार केन्द्र सरकार के पास वस्तुओं के उत्पादन (मानव के उपभोग वाली शराब, अफीम, मादक द्रव्य इत्यादि को छोड़कर) पर टैक्स लगााने का अधिकर है, जबकि राज्यों के पास वस्तुओं की बिक्री पर टैक्स लगाने का अधिकार है, लेकिन कर को मूल राज्य द्वारा वसूला जाता है और इससे प्राप्त राजस्व पूरी तरह अपने पास रख लिया जाता है, सेवाओं के मामले में केवल केन्द्र को ही सेवा कर (सर्विस टैक्स) लगाने का अधिकार है चूँकि भारत में आयात होने अथवा भारत से निर्यात होने की स्थिति में वस्तुओं की बिक्री अथवा खरीद पर किसी भी प्रकार का कर लगााने का अधिकार राज्यों को नहीं है, इसलिए केन्द्र सरकार ही इस कर को अतिरिक्त सीमा शुल्क के रूप में लगाती है एवं वसूलती है, जो मूल सीमा शुल्क के अलावा है, यह अतिरिक्त सीमा शुल्क (जो आमतौर पर सीवीडी; Counter vailing Duty) और एसएडी (SpecialA dditional Duty) के रूपा में जाना जाता है; समान घरेलू उत्पाद पर लगने वाले उत्पाद शुल्क, बिक्री कर, राज्य वैट और अन्य करों का प्रति-सन्तुलन करता है जीएसटी को लागू करने के लिए संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता पड़ी, जिससे कि केन्द्र और राज्यों को जीएसटी लागू करने के साथ-साथ इसे एकत्रित करने के

लिए समवर्ती रूप से सशक्त बनाया जा सके। वस्तु एवं सेवा कर परिषद् (जीएसटीसी) जीएसटीसी को 12 सितम्बर, 2016 से अधिसूचित किया गया है, जीएसटीसी को एक सचिवालय की ओर से सहायता सुनिश्चित की जा रही है, जीएसटीसी की अब तक 28 बैठकें हो चुकी है, जीएसटीसी द्वारा लिए गए प्रमुख निर्णय निम्नलिखित हैं-

1. न्यूनतम छूट सीमा 20 लाख होगी, संविधान के अनुच्छेद 279ए में वर्णित विशेष श्रेणी के राज्यों (असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड त्रिपुरा, सिक्किम, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड) के लिए न्यूनतम छूट सीमा 10 लाख तय की गई है।
2. संयोजन न्यूनतम सीमा 50 लाख होगी, संयोजन योजना अन्तर-राज्य आपूर्तिकर्ताओं, सेवा प्रदाताओं (रेस्तरां सेवा को दोड़कर) और विशेष श्रेणी के निर्माताओं के लिए उपलब्ध नहीं होगी।
3. केन्द्र अथवा राज्य सरकारों की मौजूदा कर प्रोत्साहन योजनाओं को सम्बन्धित सरकारें बजट के जरिए प्रतिपूर्ति करते हुए जारी रख सकती हैं, वहीं, इन योजनाओं को मौजूदा स्वरूप में ही जीएसटी के अंतर्गत जारी नहीं रखा जा सकेगा।
4. कर की चार दरें यथा 5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत, और 28 प्रतिशत निर्धारित की गई हैं, इसके अलावा, कुछ वस्तुओं और सेवाओं को छूट प्राप्त मदों की सूची में रखा जाएगा, अर्थात् उन पर शून्य कर होगा बेशकीमती धातुओं (जैसे कि सोना) की दर को तय करना अभी बाकी है विलासिता वाली कुछ वस्तुओं के साथ-साथ नुकसानदेह वस्तुओं पर 28 प्रतिशत की सर्वाधिक दर के अलावा उपकर भी 5 वर्षो तक लगाया जाएगा, ताकि जीएसटी को लागू करने से राज्यों को होने वाले किसी भी तरह के राजस्व नुकसान की भरपाई की जा सके, परिषद् ने वर्तमान कर संरचना को ध्यान में रखते हुए अधिकारियों की समिति से यह तय करने को कहा है कि किस स्लैब में कौन-कौनसी वस्तुएँ और सेवाएँ आनी चाहिए।
5. पाँच कानूनों यथा सीजीएसटीकानून, यूटीजीएसटी कानून, आईजीएसटी कानून, एसजीएसटी कानून और जीएसटी मुआवजा कानून की सिफारिश की गई है।
6. एकल इंटरफेस सुनिश्चित करने के लिए 5 करोड़ से कम के कारोबार वाले 90 प्रतिशत से ज्यादा करदाताओं पर राज्य कर प्रशासन का समस्त प्रशासकीय नियन्त्रण होगा, जबकि 10 प्रतिशत करदाताओं पर केन्द्रीय कर प्रशासन का समस्त प्रशासकीय नियन्त्रण होगा, इसके अलावा 1.5 करोड़ से ज्यादा के कारोबार वाले करदाताओं में से 50 प्रतिशत पर केन्द्रीय कर प्रशासन का समस्त प्रशासकीय नियन्त्रण और शेष 50 प्रतिशत पर राज्य कर प्रशासन का समस्त प्रशासकीय नियन्त्रण होगा।
7. आईजीएसटी अधिनियम के तहत् भी अधिकार कुछ अपवादों को छोड़कर सीजीएसटी और एसजीएसटी अधिनियमों की भाँति ही समान आधार पर दिए जाएँगे।
8. अवस्थित जल क्षेत्रों में जीएसटी के संग्रह का अधिकार केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को दिया जाएगा।
9. जीएसटी मुआवजा उपकर के फॉर्मूल एवं इससे जुड़ी व्यवस्था को अंतिम रूप दे दिया गया है।
10. इनपुट टैक्स (कच्चे माल पर कर) क्रेडिट, संरचना करारोपण, संक्रमणकालीन प्रावधान और मूल्य निर्धारण पर चार कानूनों की सिफारिश की गई है, इसके अलावा पंजीकरण, इनवॉयस, भुगतान, रिटर्न और वापसी (रिफंड) पर उन पाँच कानूनों की भी सिफारिश की गई है, जिन्हें सितम्बर 2016 में अंतिम रूप दिया गया था और संसद में पेश किए गए जीएसटी विधेयकों को ध्यान में रखते हुए संशोधित किया गया था।
11. 21 जुलाई 2018 को जीएसटी कांउसिल की 28वीं बैठक में काउन्सिल ने टेलिविजन, फ्जि, कारपेट जैसे तमाम उत्पादों पर जीएसटी दर काफी कम की है जबकि राखी, सैनिटरी नैपकीन, झाड़ू जैसे उत्पादों को कर मुक्त कर दिया गया है।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) की मुख्य विशेषता

जीएसटी की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. वस्तुओं के उत्पादन अथवा वस्तुओं की बिक्री या सेवाओं के प्रावधान पर कर लगाने की मौजूदा अवधारणा के बजाय वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर जीएसटी लगाया जाएगा।

2. मूल स्थान आधारित कराधान के वर्तमान सिद्धान्त के बजाय गंतव्य स्थित उपभोग कराधान के सिद्धान्त के आधार पर जीएसटी लगाया जाएगा।
3. यह एक दोहरा जीएसटी होगा जिसके तहत् केन्द्र एवं राज्य एक साथ समान आधार पर इसे लगाएंगे, केन्द्र द्वारा लगाए जाने वाले जीएसटी को केन्द्रीय जीएसटी (सीजीएसटी) कहा जाएगा और राज्यों (विधायिका वाले केन्द्रशासित प्रदेशों सहित) द्वारा लगाए जाने वाले जीएसटी को राज्य जीएसटी (एसजीएसटी) कहा जाएगा, वहीं, बिना विधायिका वाले केन्द्रशासित प्रदेशों द्वारा लगााए जाने वाले जीएसटी को केन्द्रशासित प्रदेश जीएसटी (यूटीजीएसटी) कहा जाएगा।
4. वस्तुओं अथवा सेवाओं की अन्तर-राज्य आपूर्ति (स्टॉक हस्तांतरण सहित) पर एकीकृत जीएसटी (आईजीएसटी) लगाया जाएगा, इसका संग्रहण केन्द्र करेगा, ताकि क्रेडिट से जुड़ी श्रृंखला में कोई व्यवधान न आ सके।
5. वस्तुओं के आयात को अन्तर-राज्य आपूर्ति माना जाएगा और इस पर देय सीमा शुल्क के अलावा आईजीएसटी भी लगेगा।
6. सेवाओं के आयात को अन्तर-राज्य आपूर्ति माना आएगा और इस पर आईजीएसटी लगेगा।
7. सीजीएसटी, एसजीएसटी/यूटीजीएसटी और आईजीएसटी की दरे अंतत: वे होंगी जिन पर जीएसटीसी के तत्वावधान में केन्द्र एवं राज्यों की सहमति होगी।
8. जीएसटी निम्नलिखित करों का स्थान लेगा, जिन्हें वर्तमान में केन्द्र द्वारा लगाया एवं वसूला जाता है
9. जीएसटी में समाहित किए जाने वाले राज्य कर लिम्नलिखित हैं-
   - i. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क
   - ii. उत्पाद शुल्क (औषधीय एवं प्रसाधन उत्पाद)
   - iii. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्व की वस्तुएँ)
   - iv. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (वस्त्र एवं वस्त्र उत्पाद)
   - v. अतिरिक्त सीमा शुल्क (यह आम तौर पर सीवीडी के रूप में जाना जाता है)
   - vi. विशेष अतिरिक्त सीमा शुल्क (एसएडी)
   - vii. सेवा कर
   - viii. वे उपकर और अधिभार जो वस्तुओं अथवा सेवाओं की आपूर्ति से सम्बन्धित हैं।

वस्तु एवं सेवा कर नेटवर्क (जीसएटीएन)

वस्तु एवं सेवा कर नेटवर्क (जीएसटीएन) का गठन सरकार द्वारा कम्पनी अधिनियम, 1956 की पूर्व धारा 25 के अन्तर्गत निजी कम्पनी के रूप में किया गया है, जीएसटीएन करदाताओं को तीन तरह की सेवाएं देगा, ये हैं-पंजीकरण, भूगतान और रिटर्न सम्बन्धी सेवा, करदाताओं को ऐसी सेवाएं प्रदान करने के अलावा जीएसटीएन उन 25 राज्यों के लिए बैंक-एण्ड आईटी मॉडयूल्स विकसित करेगा जिन्होंने इस प्रकार का विकल्प चुना है, वर्तमान करदाताओं को नई व्यवस्था के अन्तर्गत लाने का कार्य (माइग्रेशन) नवम्बर 2016 से ही प्रारम्भ हो गया है केन्द्र और राज्यों के राजस्व विभाग मौजूदा पंजीकृत करदाताओं से वस्तु तथा सेवा कर नेटवर्क (जीएसटीएन) द्वारा संचालित आईटी प्रणाली पर आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने का आग्रह कर रहे हैं, ताकि उनका सफलतापूर्वक माइग्रेशन हो सके, लगभग 60 प्रतिशत वर्तमान पंजीयनकर्ता जीएसटी प्रणाली अपना चुके हैं, जीएसटीएन ने प्रबंधित सेवा प्रदाता (एमएसपी) के रूप में मैसर्स इन्फोसिस को 5 वर्षो की अवधि के लिए लगभग 1380 रू करोड़ की कुल परियोजना लागत के साथ पहले ही नियुक्त कर लिया है। जीएसटीएन ने 34 आईटी, आईटीईएस तथा वित्तीय प्रौद्योगिकी कम्पनियों को चुना है जिन्हें जीएसटी सुविधा प्रदाता (जीएसपी) कहा जाएगा, जीएसपी एप्लीकेशन विकसित करेगा, जिसका इस्तेमाल करदाता जीएसटीएन के साथ सम्पर्क के लिए करेंगे।

मूल्यांकन

केंद्र सरकार ने एक जुलाई, 2017 को वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लागू किया है, यह अप्रत्यक्ष करों की एकीकृत व्यवस्था है, इसने भारतीय अर्थव्यवस्था में 17 से अधिक अलग-अलग तरह के अप्रत्यक्ष करों को समाप्त किया है, ये सभी जीएसटी में शामिल हो गए हैं, सरकार ने इसे ऐतिहासिक करार दिया है, एक देश-एक टैक्स के मकसद को पूरा करने के लिए सरकार ने इस दिशा में कदम बढ़ाए है।

जीएसटी व्यवस्था के आने से भारतीय अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव देखने को मिले हैं, इसके लागू होने के बाद अर्थव्यवस्था में तमाम उतार-चढ़ाव भी आए, इस नई व्यवस्था को शुरू हुए अब एक साल से अधिक का समय हो चुका है वित्त मंत्रालय ने हाल में एक रिपोर्ट जारी की, इसमें सरकार ने बताया कि जीएसटी से 31 जुलाई, 2018 तक एक लाख करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य रखा गया था, इसकी तुलना में कुल 96,483 करोड़ रुपये का कुल जीएसटी राजस्व अर्जित किया गया है, इसमें 15,877 करोड़ केंद्रीय जीएसटी, 22,293 करोड़ राज्य जीएसटी, 49,951 करोड़ एकीकृत जीएसटी (जिसमें 24,852 करोड़ रुपये आयात से) 8,362 करोड़ रुपये जीएसटी क्षतिपूर्ति के रूप में दिए है, इन आंकड़ों का विश्लेषण करने पर दो प्रमुख बातें साफ होती है पहला, जून 2018 में जीएसटी से कुल आय 95,610 करोड़ से बढ़कर जुलाई, 2018 में 96,483 करोड़ रुपये हो गई है, यह जीएसटी परिषद की ओर से निर्धारित लक्ष्य एक लाख करोड से तकरीबन 3,517 करोड़ रुपये कम है, इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार ने अप्रैल-मई 2018 में राज्यों को 3,899 करोड़ रुपये जीएसटी क्षतिपूर्ति के रूप में दिए हैं। अप्रत्यक्ष कर संग्रह अगर लक्ष्य से कम रहता है तो उसे एक चुनौती के रूप में देखा जाता है, कारण है कि भारतीय अर्थव्यवस्था श्रम बहुल है, संगठित और असंगठित क्षेत्र में बड़ा अंतर है, देश में कुल श्रमबल का 8 फिसदी हिस्सा ही संगठित क्षेत्र में काम करता है, बाकी का 92 फीसदी हिस्सा असंगठित क्षेत्र में है, इसलिए जब भी अप्रत्यक्ष कर संग्रह में कमी आती है तो कर संग्रह लक्ष्य को पूरा करने का दबाव संगठित क्षेत्र के लोगों पर ही आ जाता है। दूसरा, आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि जून 2018 में जीएसटीआर 3B रिटर्न दाखिल करने वालों की संख्या 64:69 लाख से बढ़कर 66 लाख हो गई है।

ये आंकडे आने वाले समय में अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से सकारात्मक संदेश देते है साथ ही साफ करते है कि भविष्य में अप्रत्यक्ष कर संग्रह बढ़ेगा। जीएसटी के काफी हद तक सकारात्मक परिणाम आने की संभावना व्यक्त की जा रही है किन्तु इसे ओर सकारात्मक बनाने के लिए शोधकर्ता का सुझाव है कि जीएसटी के टैक्स स्लैब में बदलाव किया जाना चाहिए। वर्तमान में चल रहे 28 फीसदी वाले स्लैब को हटाकर 12 फीसदी और 18 फीसदी वाले टैक्स स्लैब को मिलाकर एक नया स्लैब बनाया जा सकता है। अगर सरकार ऐसा निर्णय लागू करे तो जीएसटी एक कर वाली मूल भावना के निकट पहुंच सकता है।

निष्कर्ष

कर-प्रणाली किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रणाली की रीढ़ होती है। यह जितनी मजबूत होगी आर्थिक ढांचा अतना ही सुदढ़ होगा। इस परिपेक्ष्य में "वस्तु एवं सेवा कर" से संवंधित अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों को भी देखे तो सकारात्मक एवं उत्साहजनक परिणाम दिखते है। भारत जैसी उभरती आर्थिक शक्ति के लिए आर्थिक सुधार अनिवार्य है। अत: वस्तु और सेवा कर संबंधी प्रावधानों पर केंद्र व राज्यों को सर्वसम्मति बनाते हुए इसे लागू कराना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। इसके अलावा केंद्र व राज्य दोनों स्तरों पर एकसमान करों की दर से एक राष्ट्रीय कॉमन बाजार के निर्माण में भी मदद मिलेगी। साथ ही कर प्रणाली का यह सुधार घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार एवं निवेश हेतु बेहतर प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के निर्माण में भी सहायक होगा। इन सारे सूक्ष्म स्तरों पर होने वाले प्रभावों से देश के सकल घरेलू उत्पाद में भी बढ़ोतरी होगी। कुल मिलाकर कहे तो कर संबंधी यह सुधार एक साथ आर्थिक संवृद्धि एवं विकास को गति प्रदान करने का काम करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हल्दिया, मेघा एवं हल्दिया, अर्पित, जी.एस.टी.: समस्याएँ एवं समाधान, पेपर बैक, 2018।
2. सिंह, पंकज के, जीएसटी, डायमंड पैकेट बुक्स, 2017।

3. मोदी, अनूप, गुप्ता, महेष, जीएसटीः प्रैक्टिस मैन्अुल, पेपरबैक, 2017।
4. बाबेल, बंसती लाल, केन्द्रीय माल एवं सेवा कर अधिनियम, 2017, सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2017।
5. विनोद, विपुल, क्या है जीएसटी, पी.एम. पब्लिकेशन्स, 2017।
6. मेहरोत्रा, एच,सी, अग्रवाल, वी.पी., माल और सेवा कर, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2018।
7. पटवर्धन, गोविंद, ऐसा है जीएसटी कायदा, सकल प्रकाशन, 2017।
8. गुप्ता, प्रवीण, माहेश्वरी, दीप्ति, त्यागी, आर.के., वस्तु एवं सेवा कर, एस.बी. पी डी पब्लिशिंग हाउस, 2018।
9. गुप्ता, विनीत, गुप्ता, एन.के., गुड्स एण्ड सर्विसेज टैक्स, भारत लॉ हाउस प्रा.लि. 2018।
10. सिंह, अवधेश, जीएसटी मेड सिम्पल, सेन्टेक्स पब्लिकेशन प्रा.लि. 2018।

वैश्विक घटनाओं का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (1914–1917) पर प्रभाव

डॉ० सुरेन्द्र कुमार सिंह

अपने मूल चरित्र में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, उन तमाम विश्व पर्यघटनों से अविछिन्न रूप में जुड़ा हुआ था, जो साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में लगे थे। इस कारण इस पर 1917 की रूसी क्रान्ति जैसी घटनाओं का प्रभाव तो पड़ा ही साथ ही साथ विश्व साम्राज्यवाद के स्वंय के अन्तरविरोधों के कारण राजनीतिक महत्व की जिन घटनाओं ने- जैसे प्रथम विश्वयुद्ध, विश्व की राजनीति को प्रभावित किया उनका भी असर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर पड़े बिना नहीं रह सका। वास्तव में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल से शुरू किया गया भारत का आर्थिक दोहन ब्रिटिश संसद के शासन काल तक बरकरार रहा और इंग्लैण्ड में हो रही तकनीकी विकास ने भारत का शोषण इतना बढ़ा दिया कि भारत कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था ही चौपट होकर रह गई-भारत की अपनी उत्पादन प्रणाली को नष्ट कर दिया गया मगर उसकी जगह पर किसी अन्य उत्पादन प्रणाली को नहीं लाया गया-जैसा कि यूरोप में पुरानी उत्पादन प्रणाली की समाप्ति के बाद, नई पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली को स्थापित किया गया था। इसका फल यह हुआ कि मध्यवर्गी जनता में यह भावना घर कर गई कि भारत कि बदहाली का कारण ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियाँ हीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन को भारत की सहायता मिली और इसका मूल आधार था कि युद्ध के दौरान युरोप में यह तथ्य स्थापित हुआ कि ब्रिटेन आजादी के लिए लड़ रहा है। इस लिए भारतीयों की आजादी से इन्कार नहीं किया जा सकता है। किन्तु युद्ध के पश्चात् भारतीयों की आशा पर तुषारपात हो गया। युद्ध पश्चात् की ब्रिटिश नीति ने भारत की राजनीति पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया। इंग्लैंड युद्ध में राष्ट्रों की आजादी के अधिकार के लिए गया था। जिसका अधिकार भारत को भी मिलना चाहिए था।[1] 1916 के लखनऊ अधिवेशन के बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग की एकता ने भारतीय पुँजीपति वर्ग की राजनीतिक हस्तक्षेप की शक्ति को बढ़ा दिया था अब भारतीय पूँजीपति वर्ग ज्यादा दृढ़ता से अपनी माँगों को सामने ला सकता था।[2] कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच के समझौता जैसी घटनाओं से राष्ट्रीय आन्दोलन में गति उत्पन्न हुई। तिलक ने इस विचार से असहमति प्रकट की कि भारत स्वशासन के लिए लायक नहीं है। श्रीमति एनी बेसेन्ट और तिलक ने होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ किया ताकि भारतीय कृषक वर्ग में व्याप्त निर्धनता और भुखमरी को समाप्त किया जा सके।[3] सम्पूर्ण देश संवैधानिक परिवर्त्तनों के पक्ष में था। 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्व-शासन के लिए निश्चित कदम उठाने की माँग की। जनता ने माँग की कि ब्रिटिश सरकार भारत में अपनी नीति स्पष्ट करे, लोगों को आशा थी कि वे धीरे-धीरे आजादी के निकट पहुँच रहे हैं। स्वनिर्णय एवं साम्राज्यवाद विरोधी नारों में उदारवादी भी शामिल होने लगे। 20 अगस्त 1917 को भारत के तत्कालीन सचिव ई. एस. मान्टेग्यू ने ब्रिटिश सरकार की नीति को स्पष्ट करने हुए कहा कि सरकार का लक्ष्य भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा में शामिल करना है ताकि स्वशासन का विकास हो सके और अन्त में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के एक अभिन्न अंग के रूप में भारत में प्रगतिवादी जिम्मेवार सरकार बन सके।[4] इस घोषणा से तिलक संतुष्ट नहीं हुए और होमरूल की माँग जारी रखी।[5]

परन्तु प्रथम विश्व युद्ध और खासकर 1917 की रूसी क्रान्ती ने भारतीय राजनीति को नया आयाम दिया अब एक ऐसा देश अस्तित्व में आ गया था जो स्वतंत्रता संग्राम को सीधा मदद कर सकता था। गाँधी के आगमन के बाद आन्दोलन के अब तक के स्थापित तरीकों के विपरीत अहिंसात्मक प्रतिरोध का तरीका विकसित किया।[6] राष्ट्रवादी साम्राज्य में समान भागीदार बनना चाहते थे। लाला लाजपत राय आजादी के अतिरिक्त सामाजिक और आर्थिक शोषण की संमाप्ति चाहते थे।[7] गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा कि

भारतीय उसे आसन से बुला लेंगे। कांग्रेस नेताओं में आपसी मतभेद था। किन्तु वे सभी ब्रिटिश शासन से निराश थे।

1917 की रूसी क्रान्ति ने कांग्रस के जनाधार को भी बदला। पहले कांग्रेस में केवल मध्य वर्ग से आए हुए वकील, डाक्टर, शिक्षक, व्यवसायी, और जमींदार थे। किसानों और मजदूरों में राजनीतिक चेतना नहीं थी। कांग्रेस मॉगों की पूर्ति के लिए एवं समस्याओं के समाधान के लिए संवैधानिक रास्ता चुनती थी जो किल रही। रूसी क्रान्ति ने भारतीय नेताओं और जनता को काफी प्रभावित किया। आजादी की लड़ाई के लिए इसने समाज के निचले तबके के लोगों को उत्प्रेरित किया। कांग्रेस द्वारा मात्र राजनीतिक रियायतों की मॉग के खिलाफ लाला लाजपत राय जैसे नेता समाजवाद के मानवीय पक्ष से काफी प्रभावित थे। उन्होंने यूरोपीय सामाजिक ढॉचे की भर्त्सना की, क्योंकि यह अन्याय, आतंक, शोषण और वर्ग शासन पर टिका हुआ है। उन्होंने भारतीय ढॉंचों में भी इन दुर्गुणों को पाया।[8] पूँजीवादी समाज के प्रति मार्क्स ने जो विश्लेषण किया है, उसके प्रति उन्होंने सहमति प्रकट की। इसके बावजूद वे साम्यवादी नहीं थे। उन्हीं के शब्दों में, मैं नहीं तो साम्यवादी हूँ और न मुझे इसके सिद्धान्तों से सहानुभूति है। लालाजी के अनुसार राष्ट्र की सम्पत्ति कुछ लोगों के हाथ में है।[9] उनके अनुसार विदेशी दासता से मुक्ति के लिए ही लड़ाई नहीं होनी चाहिए बल्कि भारतीय पूँजीपतियों एवं जमींदारों की सुविधओं के खिलाफ भी लड़ाई होनी चाहिए।[10] यद्यपि उन्होंने आर्थिक एवं सामाजिक विषय तथ्यों को दूर करने का कोई समाधान नहीं बताया, लेकिन वे प्रगतिशील नीतियों के पक्षधर थे। उनकी राय में मात्र आजादी विकास के लिए पर्याप्त नहीं थी। क्रान्तिकारियों को कांग्रेस के तरीकों में विश्वास नहीं था। उनका विश्वास था कि एक सशस्त्र क्रान्ति की ताकत से हीं अंग्रेजों को निकाल बाहर किया जा सकता है। क्रान्तिकारियों के पास भी किसी क्रान्तिकारी दर्शन के अभाव ने उन्हें आनन्दमठ, भगवद्गीता, भवानी मन्दिर और मुक्तिबोध पाशा से प्रेरणा मिली। उनलोगों ने राष्ट्रीय कांग्रेस के संकीर्ण तथ्यों पर प्रहार किया।[11] क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप वार्षिक त्योहार जैसे गणपति पूजा और शिवाजी पर्व के अवसर पर देखने को मिलता था।[12] इसका आयोजन बालगंगाधर तिलक करते थे। तिलक ने गणपति पर्व का इस्तेमाल जनता तक पहुँचने के लिए किया।

बंग-भंग आन्दोलन के क्रान्तिकारी छवि और 1905 में रूस की जापान पर विजय ने भारतीय नवयुवकों में क्रान्ति की भावना पैदा की और क्रान्तिकारी आन्दोलन को बल मिला।[13] बंगाल में अरविन्द घोष के अनुज वारीन्द्र कुमार घोष एवं स्वामी विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने क्रान्ति का प्रचार किया। वारीन्द्र कुमार घोष को बाद में महसूस हुआ कि केवल राजनीतिक प्रचार ही क्रान्ति के लिए काफी नहीं है। इसी क्रान्तिकारी भावना का कमाल था कि 1905 में अनुशीलन सोसायटी की स्थापना हुई जो क्रान्तिकारी आन्दोलनों को संगठित करने का प्रयास किया। 1907 में युगान्तर समूह की स्थापना बी. के. घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त जैसे क्रान्तिकारीयों ने की। किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन और क्रान्तिकारी जनसमुह के संगठन के अभाव में उनके आन्दोलन का स्वरूप आतंकवादी बनता गया। वे अंग्रेजों की हत्या करने के पक्ष थे। अब आन्दोलन को गुप्त संगठनों के द्वारा संचालित करने के क्रम में बंगाल के बाहर बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, उड़ीसा और बनारस में गुप्त रूप से संगठन बनाए गए जो रूसी आतंकवादी एवं आयरिश आतंकवादी की तरह व्यक्तियों की हत्या करने में विश्वास करते थे। उनका लक्ष्य अंग्रजों में आतंक फैलाना था, ताकि उन्हें भारत से बाहर किया जा सके।[14] दिल्ली में जब एक बार 1912 ई. में वायसराय लार्ड हार्डिग प्रवेश कर रहे थे, उनकी हत्या करने का प्रयास किया गया। व्यक्तिगत हिंसा की यह राजनीति इतना असर जरूर लाई कि मन्मवनाथ गुप्ता की दृष्टि में आतंकवादी गतिविधियों के चलते ही राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लाई गई थी।[15] बंग विभाजन का प्रस्ताव वापस लेने पर भी क्रान्तिकारीयों ने अपनी गतिविधि जारी रखी। क्रान्तिकारीयों का संगठन अब देश से बाहर भी बनने लगा और लन्दन पेरिस और उत्तरी अमेरिका में क्रान्तिकारी संगठन बने। उन लोगों ने उन देशों से सहायता लेने का प्रयास किया जिनका सम्बन्ध ब्रिटेन से अच्छा नहीं था। श्याम कृष्ण वर्मा, बी.डी.सावरकर और लाला लन्दन गए। यूरोप में मैडम कामा और अजीत सिंह काफी प्रख्यात थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय क्रान्तिकारीयों ने ब्रिटेन के खिलाफ जर्मनी की सहायता लेनी चाही। उन्हें समाजवादी आन्दोलनो से भी सहायता मिली। वे जर्मनी की सहायता से रंगरूटों की भर्ती, कोष संग्रह, और हथियारों की आपुर्त्ति क्रान्तिकारीयों को करना चाहते थे, लेकिन साथ ही वे जर्मनी के हाथों खिलौना नहीं बनना चाहते थे।[16] सावरकर की गिर"तारी के पश्चात् लन्दन में क्रान्तिकारी बिखर गए। विरेन्द्र नाथ चटोपाध्याय जर्मनी गए। बर्लिन में भारतीय स्वतंत्रता समिति बनी जिसके सचिव विरेन्द्र नाथ चटोपाध्याय बने। इस समिति ने बगदाद,पर्सिया, काबुल और इस्ताम्बुल में अपना प्रतिनिधी भेजा। क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से काफी प्रभावित थे। लाला हरदयाल 1911 ई. में सन्फ्रांसिसको पहुँचे। उन्होंने गदर पार्टी की स्थापना की। वे किसी भी तरह भारत से अंग्रेजों को बाहर निकालना चाहते थे।[17] वे ब्रिटिश शासन की

जगह स्वतंत्रता और समानता पर आधारित शासन की स्थापना करना चाहते थे। वे अपने को समाजवादी कहते थे। कामागाटामारू की घटनाओं से गदर पार्टी के कार्यकर्त्ताओं का सहायता मिली और सिक्खों को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भड़काने में सफल हुए।[18] क्रान्तिकारीयों ने साम्राज्यवादी शोषण को समझा और उसके खिलाफ संघर्ष को जनता तक ले जाने में योगदान किया।

संवैधानिक सुधारवादीयों और आतंकवादियों के अतिरिक्त ऐसे सामाजिक सुधारवादी थे जिन्होंने अपने लेखों भाषणों और कृत्यों से राजनीतिक चेतना पैदा की। राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, अरविन्द घोष ऐसे भी समाज सुधारक थे। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा को समाप्त करने के लिए जबरदस्त आन्दोलन किया। दयानन्द सरस्वती एक उग्रवादी राष्ट्रवादी थे। स्वामी विवेकानन्द एक महान व्यक्तित्व के स्वामी थे और उन्होंने भी धार्मिक भावनाओं को समाजवादी संकल्पना के साथ जोड़ कर देखा और सामाजिक बुराइयों के घोर विरोधी बने। उनके अनुसार धार्मिक व्यक्ति वही है जो आम जनता के लिए निजी स्वार्थो की बलि देता है।[19] वे पीड़ितों के हितों के लिए लड़ाई में विश्वास करते थे। उनके लेखों एवं भाषणों से जनता में जागृति का संचार हुआ। विवेकानन्द भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की हार्दिक सफलता चाहते थे, क्योंकि यह देश से बुराइयों को निकालने का प्रयास कर रहा है। उनका मत था कि प्रजा राजा की सन्तान है। जो राजा अपनी प्रजा को भूल जाए, उसे उठाकर फेंक देना चाहिए। एक बार विवेकानन्द ने अपने को समाजवादी कहा। एक जगह उन्होंने लिखा मैं एक समाजवादी हूँ। इसलिए नहीं कि यह एक पुर्ण पद्धाति है, किन्तु रोटी का आधा टुकड़ा भी रोटी नहीं हो इससे बेहतर होता है।[20] डॉ. भूपेन्द्र नाथ दत्त ने स्वामी विवेकानन्द को प्रथम समाजवादी चिन्तक कहा है। उनका समाजवाद एक सिद्धान्त था जो व्यक्तिगत आजादी का बलिदान सामाजिक सर्वोच्चता के लिए चाहता था।[21] किन्तु विवेकानन्द समाजवादियों से मतभेद भी रखते थे। वे वर्ग-युद्ध और इतिहास की भैतिकवादी व्याख्या में विश्वास नहीं करते थे। वे एक ऐसी सामाजिक व्याख्या में विश्वास नहीं करते थे। वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जो समानता और सबों को समान अवसर प्रदान करे। वे शंकराचार्य, रामानुज और चैतन्य के सिद्धान्तों पर चलकर भारतीय समाज का नव निर्माण चाहते थे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप साम्राज्यवाद विरोधी होने के कारण तमाम साम्राज्यवाद विरोधी घटनाओं का प्रभाव इसपर दिखता है। इसके अलावा 1917 के पश्चात् भी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय आजादी की लड़ाई को काफी हद तक प्रभावित किया। किन्तु इसकी प्रकृति और स्वरूप का पता तभी चलता है, जब इसका गहन विश्लेषण किया जाए। प्रथम विश्व युद्ध रूसी क्रान्ति, शान्ति समझौता ने स्वतंत्रता संघर्ष और राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित किया, जरूरत है कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का मूल्यांकन इन तमाम राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में किया जाय।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. कपिंग सर जॉन, "***पालीटिकल इण्डिया 1832-1932 ए को-आपरेटिव सर्वे ऑफ ए सेंचुरी***" पृ. 69-70
2. कांग्रेस प्रेसीडेंसियल एड्रेस फ्राम सिल्वर टू द गोल्डन जुबली, पृ. 224
3. बेसेन्ट ***"हाउ इण्डिया फाइट फार फीडम" मद्रास 1915***
4. मुखर्जी पंचानन दास-***"इण्डियन कंस्टीच्युसनल डाक्युमेंट्स" (1600-1918) खण्ड-1 पृ. 696***
5. कैनेडी कैप्टन मेकोलस, डी0-"ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ कम्युनिज्म इन इण्डिया"
6. प्रसाद विषेष्वर- "चेंजिंग मोड्स ऑफ इण्डियन नेशनल मूवमेंट" पृ. 50
7. एग्रो डेनियल ***"मोडरेट्स एण्ड एक्सट्रिमिस्ट इन इण्डियन नेशनल मूवमेंट" पृ. 164***
8. राय लाजपत- द *पालीटिकल फयूचर ऑफ इण्डिया, पृ. 202*
9. राय लाजपत, *"इण्डियाज विल टू फ्रीडम" पृ. 23-24, 29-30*
10. वही पृ. 36
11. सेडिशन कमिटि 1918, *रिपोर्ट, कलकत्ता, सुपरिन्टेन्डेन्ट, गवर्नमेन्ट प्रिटिंग प्रेस, इण्डिया, पृ. 24*
12. सेडिशन कमिटि 1918, रिपोर्ट पृ. 1
13. चन्द्र विपिन पाल और अन्य पूर्वानुसार पृ. 95
14. सेडिशन कमिटि, 1918, रिपोर्ट पूर्वानुसार, पृ. 96

15. गुप्ता मन्मवनाथ, *भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास पृ. 75*
16. विपिन चन्द्र, पुर्वानुसार पृ. 45
17. सेडिशन कमिटि, 1918, रिपोर्ट पृ. 745
18. सिंह बाबा गुरदीप- *"द वोआयज ऑफ काँमागाटामारू और इण्डियाज स्लेवरी एब्रोड"* पृ. 1-202
19. घोष शंकड़- *"द वेस्टर्न इम्पेक्ट आन इण्डियन पालीटिक्स" 1885-1919 पृ. 180*
20. नेहरू जवाहरलाल *"द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" पृ. 340*
21. "द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द" खण्ड-4 पुर्वानुसार पृ. 421

“कथाकार रमेश पोखरियाल ‘निशंक’ के कथा-साहित्य में लोकभाषा”

कपिल देव पँवार

(शोधार्थी), हिंदी-विभाग
हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल (उत्तराखंड)

शोध सारांश

समकालीन लेखक रमेश पोखरियाल ‘निशंक’ ने हिमवन्त प्रदेश के लोकतत्त्वों को साहित्य में जीवन्त करने का सफल प्रयास किया है। उनका कथा-साहित्य ‘लोकजीवन’ पर केन्द्रित है। उन्होंने लोक को साहित्यपटल पर पुरातन व नवीन जीवनमूल्यों के साथ प्रतिबिम्बित करते हुए लोक की भाषा-विविधता के साथ लोक को साहित्य की मूलधारा से जोड़ा है। कथाकार निशंक जी शिल्प के प्रति आग्रही नहीं दिखते हैं बल्कि अपने कथा-साहित्य के जरिए वे शिल्प की अपेक्षा लोकजीवन की सरल, सहज भाषा में संवेदनाओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति पर बल देते है। लोकतत्वों की सफल व्यंजना हेतु लोक भाषा का विशेष महत्व है। यदि हम जनता की भावनाओं को उसी की लोक-प्रचलित भाषा में व्यक्त करें तो ऐसा सुंदर मणि-कांचन संयोग प्रशंसनीय ही माना जाता है। निशंक जी ने उतराखंड की लोकभाषा के शब्दों को अपने भाषिक सौष्ठव के संस्पर्श से अनमोल रत्न की भाँति गढ़ा है। अपने उपन्यास ‘छूट गया पड़ाव’ में लेखक स्वयं स्पष्ट करते हैं कि- “साहित्य साधना मेरे लिए वैसी ही अपरिहार्य है जैसे शरीर के लिए श्वास-प्रश्वास। मेरी दैनंदिनी उर्जा का यह अजस्र स्त्रोत है। हर सृजन मुझमें नई ताजगी भरता है और आगे बढ़ निकलने का हौसला देता है। यह सिलसिला पिछले तीन दशकों से अनवरत चला आ रहा है। जो देखा, महसूस किया और भोगा, वह मनोभावों में उमड़ कर सीधी, सरल और बोलचाल की भाषा में ढलता चला गया।” उन्होंने स्थानीय पर्वतीय-जीवन, वहाँ की खेती-बाड़ी, रहन-सहन, रीति-नीति, बोली-बानी, जीविकोपार्जन, व्यवसाय-धंधा आदि को खुली आँखों से देखा और अनुभव किया है यही कारण है कि उनके कथा साहित्य में स्थानीय भाषाओं के शब्दों से लोक-जीवन की परिधि में सहज जीवन के चरित्र-चित्रण एवं परिवेश जीवंत हो उठते हैं।

बीज शब्द: ‘कथाकार रमेश पोखरियाल ‘निशंक’, ‘लोक’, ‘लोकतत्त्व’, ‘लोकभाषा’, ‘गढवाली-कुमाऊनी’, ‘लोकजीवन’

साहित्य का लोक-समाज से सदैव सीधा सरोकार रहा है। लोक के बिना किसी समृद्ध साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि प्रत्येक रचनाकार अपनी लोक की आवृति से ही पात्रों को गढ़ता है तथा कथानक को प्रभावित करता है तो दूसरी ओर इसी लोक से उसकी शब्द-संपदा संपुष्ट होती है। अपने सूक्ष्मतम् मनोभावों को व्यावहारिक रूप से आवश्यक क्रियाकलाप की अभिव्यक्ति के लिए लोक जिस प्रकार की बानी, भाषा को चुनता है, शब्दों को वरीयता देता है उसे ही रचनाकार, लोक की कसौटी पर खरा उतरकर रचनाधर्मिता का प्रस्थान बिंदु बनाता है। इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि रचना को सहज, सरल बनाने के साथ पाठकीय संवेदना में भी इससे वृद्धि होती है तथा साधरणीकरण की अद्‌भुत क्षमता भी इसी लोक के विन्यास से प्राप्त होती है। लोक भाषा से सर्वग्राहता का गुण रचना का प्राणतत्त्व बन जाता है। लोकभाषा में मानव हृदय के उद्‌गार एवं मनोभावों की अभिव्यक्ति लोकचेतना का प्रश्रय है। लोकमानस की मौखिक परम्परा साहित्यिक लेखन में लोकभाषा के लिखित रूप में दिखाई देती है। वस्तुत: ‘लोकभाषा’ बोलचाल की भाषा होती है जिससे लोक में प्रचलित वर्ण्य विषय लोक प्रियता पाकर भाषा-शैली के भेद को मिटाकर

कथ्य में सादगी पैदा कर देता है। लोकभाषा से लोकजीवन की उपेक्षित अनुभूतियों को भी अभिव्यक्ति मिलती है और लौकिक वर्ण्य विषय का स्वर मुखरित होता है। लोक द्वारा विचारों के संचार के लिए प्रयुक्त वह भाषा जो सरल, सुबोध, व्यवहारिक, व्याकरणिक नियमों से स्वच्छंद होती है 'लोकभाषा' कहलाती है।

लोकभाषा जन-भाषा होती है हालाकिं लोकभाषा में साहित्य सृजन के बाद वह व्याकरणिक नियमों में बद्ध होकर साहित्यिक भाषा के रूप में परिनिष्ठित हो जाए किन्तु मूलत: वह लोकभाषा ही होती है। यह भी कह सकते हैं कि जिस भाषा में 'लोकसाहित्य' लिखा जाता है उसे लोकभाषा कहा जाता है, जिसप्रकार कि लोकमर्मज्ञ डॉ. नन्दलाल कल्ला 'लोकभाषा' और उसके महत्व को स्पष्ट करते हैं कि-'मनुष्य के उच्चारण अवयवों से उच्चारित भाषा ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था है। 'भाषा' में प्रयुक्त शब्द, पद, ध्वनि, अर्थ वाक्य आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण करना भाषाविज्ञान का ही कार्य है। लोकसाहित्य 'लोकभाषा' में रचित होता है। जो भाषा विज्ञान के लिए लोक शब्दावली अध्ययन का आधार स्त्रोत निर्मित करती है। कभी-कभी किसी तत्सम् शब्द का मूल भी लोकांचल में प्रयुक्त भाषा भण्डार में प्राप्त हो सकता है।'[1] अत: साहित्य में किसी विशेष क्षेत्र अथवा किसी समुदाय के जीवन-व्यापार को साहित्यिक आकार देने वाली भाषा को हम लोकभाषा कहते हैं। ऐसी भाषा द्वारा लोकजीवन के विचारों का स्वछंद विनिमय बिना किसी विशेष व्याकरणिक बंधन और बनावटीपन के साहित्यिक अभिव्यक्ति प्राप्त करता हैं। वस्तुत: किसी भी भाषा का विकास 'लोक' के आधार पर ही होता है। हमारा प्राचीन साहित्य लोकसाहित्य कहलाता है जिसमें लोकजीवन की विवेचना लोकतत्त्वों के साथ लोकभाषा से विवेचित होता है। और उसी लोकभाषा से हमारी हिंदी भाषा का विकास हुआ है इसीलिए भाषाविज्ञान की दृष्टि से लोक-साहित्य का महत्त्व सर्वाधिक है और विभिन्न विद्वान भाषा के अध्ययन के लिए लोक-साहित्य को अह्म उपादान मानते है।

विवेच्य रचनाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी के कथा-साहित्य के शिल्प-गत तत्त्वों में 'भाषा' प्रमुख तत्त्व है जिसको उन्होंने कहीं परम्परागत स्वरूप में तो कहीं लोक की मौलिकता के साथ प्रयुक्त किया है। उन्होंने लोकजीवन के स्पन्दन से युक्त भाषा को माध्यम बनाकर पर्वतीय जीवन का सार्थक चित्रण 'लोकभाषा' में किया है। उनके कथा-साहित्य में प्रयुक्त लोकभाषा पर विस्तृत विवेचन से पूर्व यहाँ लोकभाषा के स्वरूप व महत्त्व को समझना आवश्यक है। मध्य हिमालय का अपना सौन्दर्य तथा शिल्प विश्व को सदैव आकृष्ट करता आया है। इसे एक ओर प्रकृति ने अतुलनीय सौन्दर्य दिया है तो दूसरी ओर शिखरों ने अपनी निष्छलता से इसे एक अलग पहचान मिली है। विश्व की समस्त सभ्यताओं ने इसके गौरव को स्वीकार किया है फिर चाहे यह यहाँ के लोक व्यवहार, लोक धर्म या लोक भाषा से ही क्यों न जुड़ा हो, विवेच्य शब्द साधक 'निशंक' इसी मिट्टी की उपज है, जिसने अपनी भाषा को हिमालयी संस्कार दिए हैं। लोक का कोई कोना ऐसा नहीं है, जो इनकी रचनाओं में अछूता रह गया हो। लोक भाषा को लोकरंग से जोड़कर प्राणवान बनाने की क्षमता इनके कथा-साहित्य में देखी जा सकती है। शब्द चयन कथानक के अनुरूप बनाना तथा उसे लोक के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत करना एक सम्मोहित शिल्प का अपना सौन्दर्य है। भरतमुनि के अनुसार- 'हिमवत्, सिन्धु और सौवीर में 'उकार बहुला भाषा' अपभ्रंश थी' इस कथन के आधार पर डॉ. गोविन्द चातक स्पष्ट करते हैं कि 'मध्य पहाड़ी आज भी उकार-बहुला लोक-भाषा है। नागों, शकों, गुजरों और आभीरों से गढ़वाल-कुमाऊं प्रदेश का ऐतिहासिक संबंध रहा है।'[2] पारंपरिक संस्कारों से परिपूर्ण ऐसी भाषा ही पर्वतीय लोकजीवन की भाषा है जिसके सौन्दर्यगत प्रभाव में निशंक जी ने अपना कथा-साहित्य रचा है। उत्तराखंड के लोकजीवन में जो 'भाषा' अथवा जो 'षब्द' ग्राम्य जीवन में प्रयुक्त होते हैं उनका भरपूर प्रयोग उनके कथा-साहित्य में हुआ है।

रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में लोकभाषा के प्रभाव को हम ग्रामकथा तथा आँचलिक कथा दोनों में पाते हैं। लोकभाषा के शब्दों का सुन्दर प्रयोग कर प्रतीकों को माध्यम बनाने की कला निशंक जी की भाषा का विशेष सौन्दर्य है। जैसा कि हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार कमलेश्वर ने लिखा है कि- 'कहानीकार के लिए यह बहुत मुश्किल होता है कि वह अपनी भाषा का चुनाव कहां से और कैसे करे- जिंदगी जो परिदृश्य सामने उपस्थित करती है वह सब भाषा में नहीं होता। कुछ दृश्य हैं, कुछ मूक क्षण हैं, कुछ संवेदनाएं हैं, कुछ अत्याचार और संत्रस हैं, कहने का मतलब यह कि भाषा के होते हुए भी लेखक के पास भाषा नहीं होती। हर लेखक को भाषा की खोज करनी पड़ती है, क्योंकि आदमी के अंदर और बाहर जो खामोशी है, और उसके अन्दर और बाहर जो शोर है, वह हर समय एक सा नहीं होता और उसी को कथाकार शब्द देता है।[3]'

अत: रचनाकार कथ्य और शिल्प को सजीव और कलात्मक बनाने के लिए अपनी निजी भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग करता है। इस तथ्य को निशंक जी भी स्पष्ट करते हैं कि- "साहित्य साधना मेरे लिए वैसी ही अपरिहार्य है जैसे शरीर के लिए

श्वास-प्रष्वास। मेरी दैनंदिनी उर्जा का यह अजस्र स्त्रोत है। हर सृजन मुझमें नई ताजगी भरता है और आगे बढ़ निकलने का हौसला देता है। यह सिलसिला पिछले तीन दषकों से अनवरत चला आ रहा है। जो देखा, महसूस किया और भोगा, वह मनोभावों में उमड़ कर सीधी, सरल और बोलचाल की भाषा में ढलता चला गया।[4]" लोकभाषा में वर्णित लोकतत्त्वों का उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में में विश्लेषण किया जा सकता है। उनके उपन्यास 'मेजर निराला', 'बीरा', 'अपना-पराया' और 'पहाड़ से ऊँचा' आँचलिकता के परिवेश में निर्मित है। जहाँ लोकभाषा का अधिक प्रभाव अँचल विशेष में प्रचलित रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, मेले, लोकविश्वास आदि के साथ विवेचित है। इनमें भाषा की सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से आँचलिक शब्दों का प्रयोग अधिकाधिक किया गया है और आँचलिक शब्दों का प्रयोग ही लोकभाषा को सषक्त बनाता है, जो वस्तुतः स्थानीय बोलियों का प्रतिनिधत्व करती है। लोक तत्वों की आभा से महकते दृष्यों के साथ लोकभाषा के शब्दों का सुन्दर प्रयोग कथानक में जीवन्तता उत्पन कर देते है। उपन्यास 'मेजर निराला' के संवाद लोकभाषा के साथ लोकजीवन को चित्रित करता है। - 'गबरू काका के आंगन का पुस्ता, मूसी दीदी की झोपड़ी की मरम्मत, कोतवाल दादा के पेड़ की कटाई, सब के सब छूट गये थे पिछले बरस। हाँ, अपनी गौशाला भी तो टपकने लगी थी, उसकी छंवाई भी तो करनी पड़ेगी इस बार'[5] इस तरह उपन्यास में पुस्ता, छंवाई, निगोड़ी, साँकल, अड्यामोर, बौड़ि-जा, सारी, बाक्य, कलेवा, छौं, ढ़बडी रोटी, थिच्वाणी, पलेन्थरा, पठालियां, दगड्यों, पन्देर, ताँद, पुजाई, मंगणी, अन्वार, कौथिग, थौल-मेलों, समौण, भुली, ग्वार, बछेर, भैंस रम्हाई, घसेर, दुधेरों, डिन्डाली, सारी, लोण-तेल, कोदा-झंगोरा, काठ, चराचरी, गधेरे, खैरी विपदा, मण्डाण, पष्वा भंकोरे, जैसे गढ़वाली लोकभाषा के शब्द और संवादों से कथानक गढ़वाल के पर्वतीय लोकसमाज को आलोकित करता है। वहीं लोकभाषा के कई शब्दों को लेखक कथानक में अवतरण चिह्न के साथ प्रस्तुत करते हैं जिससे लोकभाषा के शब्द विशेष ध्यानकर्शित करते हैं कुछ उदाहरण देखिए- 'विवाहित बेटियाँ अपने मायके वालों से मिलती और अपनी 'खैरी-बिपदा' और मायके की कुषल क्षेम पूछती। माँ अपनी बेटी के लिए घर से कुछ न कुछ पकवान बनाकर जरूर ले जाती, जैसे उड़द या गहथ की भरी रोटी, 'रोट अर्सा' या फिर दूध में बना हलुआ।

- बात करने की हिम्मत हो पाई तो बात करते और 'समौण' के रूप में उन्हें कुछ खरीद कर देते। यह समौण अंगूठी, रूमाल या माला कुछ भी होता।
- बुर्जुग मेले में अपने दूर दराज के नातेदार रिश्तेदार और सम्बन्धियों से मिलते। गाय, भैंस, बैल के खरीदने-बेचने की 'शैदा' लगाते एक दूसरे के गाँव आने जाने का दिन बार तय करते।[6]

'मेजर निराला' उपन्यास के उपरोक्त उद्धरणों में 'खैरी-विपदा', 'रोट अर्सा', 'समौण', 'षैदा' शब्द अवतरण चिह्नों (' ') के अन्दर उदधृत किए गये हैं जो लोकजीवन की विशिष्टता के सूचक हैं तथा इन शब्दों के साथ पर्वतीय प्रदेश की आत्मा जुड़ी हुई है। 'खैरी-विपदा' शब्द साधारण अर्थ नहीं देता वरन् विवाहिता स्त्री की संघर्षमय कष्टों भरी जिंदगी का सूचक है। इस एक शब्द से स्त्री के साथ जुड़े दुखों की आवृति को पहचाना जा सकता है। लोकभाषा के अतिरिक्त यह भाषिक सौन्दर्य किसी भी भाषा में हम ढूंढ नहीं सकते। पदलालित्य की दृष्टि से भी यह शब्द अतुलनीय है क्योंकि विवाहिता नारी इस एक शब्द से अपने दुखों का अनवरत् वर्णन कर सकती है। लोकभाषा का 'समौण' शब्द भी लोक तत्त्वों से गहराई से जुड़ा हुआ है। अपने किसी प्रियजन को भेंट स्वरूप दी जाने वाली वस्तु के साथ उन समस्त स्मृतियों को भी जोड़ा गया है, जो प्रियजन के साथ जुड़ी हुई है। कहीं-कहीं इसे समलौण शब्द के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है किंतु भाशिक सौन्दर्य की संपूर्ण मिठास इस एक लोकभाषा के शब्द में देखी जा सकती है। लेखक ने ऐसे शब्दों का बहुतायत प्रयोग किया है, यही कारण है कि उनका लेखन साधारणीकरण के सोपानों पर सफलता प्राप्त करता आया है। इसी उपन्यास में 'कल्योऊ', 'दोण', 'कौथिग', 'पष्वा', 'जेठू', 'भंगजीरा', 'कण्डाली', 'डिण्डाली' जैसे अनेक शब्द लोकभाषा के ऐसे शब्द है जो किसी लोकपरम्परा अथवा लोक-विशेष वस्तु के बोधक हैं।

विवेच्य लेखक द्वारा जीवन-मूल्यों के उद्घाटन में लोकभाषा के शब्दों का बहुत ही कारगर अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया है। कथ्य विषय लोकजीवन, आंचलिक जीवन एवं स्वयं के परिवेश पर आधारित होने के कारण उसमें लौकिकता के स्वर सुनाई देते हैं, वे लोकभाषा के सरल, सुग्मय शब्दों को बीच-बीच में प्रयोग करते हैं। 'बीरा' उपन्यास का प्रारम्भ लोकभाषा केन्द्रित शब्दों के साथ ऐसे ही दृष्यों का वर्णन है जहाँ गाँव के वातावरण में प्रकृति के विभिन्न रूप सम्पूर्ण लोकजीवन को सहित्यिक कैनवास पर प्रतिबिम्बित करते हैं- 'महिलाएँ घास-लकड़ी बटोरकर कोई पन्देरे की ओर जा रही थी, तो कुछ गाय-भैंसो को दुहाती नजर आ रही थी। कुछ एक डिंडालों और तिबारियों में हुक्के की गुडगुड़ाहट भी सुनाई दे रही थी। कुछ ही देर में महिलाएँ चूल्हा फूँककर

उसमें चाय की केतली रखकर सब्जी काटने और कुछ आटा गूँथने की तैयारी करने लगी। कुछ घरों में चिमनी के सामने और कहीं चूल्हे की रोशनी में बच्चे अपनी किताब को टटोलते नजर आ रहे थे। बिजली के खम्भे तो हैं गाँव में, लेकिन धुप धुप टिमटिमाते बल्बों को दिया दिखाना पड़ता था।'[7] ऐसी चित्रात्मकता से लोकजीवन के बीच पाठक स्वयं पहुँच जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह ये सब स्वयं देख रहा हो। 'डिडालें और तिबारियाँ' जहाँ की खास पहचान है, जहाँ महिलाओं का दुरूह जीवन की तस्वीरें दिखने लगती है। 'बीरा' उपन्यास में लोकभाषा के अनेक शब्दों के साथ कथानक की संरचना हुई है जैसे- छज्जा, तिबार, डिंडालों, धारा, रैबार, अड्या, पंदेरा, भिड़ा हुआ, बागदान, झंगोरा, आँछरी, पिठाई, खलियान आदि।

निशंक जी का कथा-साहित्य राष्ट्र भाषा हिंदी में हैं लेकिन कतिपय लोकभाषा में स्थानीय उत्पादों, फल-फूल, फसल, वृक्षों के नाम जब एक प्रवाह में आते हैं तो भाषा में किलिष्ठता भी महसूस हो सकती है। हालांकि जब हिंदी के साथ ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है तो लेखक बड़ी सहजता से स्थानीय बोलियों के शब्दों को भी भाषा के प्रवाह में सरल कर देते हैं। 'मेजर निराला' उपन्यास के केन्द्रीय पात्र 'मेजर निराला' के परिवेशगत चरित्र को उद्धृत करते इस उद्धरण मे ऐसी ही किलिष्टता प्रतीत होती है- 'जब वह कभी छुट्टी पर घर आता था तो गाँव के मर्द सब उसे मिलने पहुँच जाते थे। फिर 'मन्दरी' बिछा दी जाती थी डिंडाली में और एक-एक कर लोग पक्तिंबद्ध घेरा बनकार बैठ जाते थे। फौज से लाई हुई 'दराम' की बोतल से एक-एक 'पोली' दराम सब को देता था वह। 'बगछट' हो जाते थे लोग और फिर हँसी मजाक चलती थी देर रात्रि तक।'[8] इस उद्धरण में किलिष्ट ठेठ पहाड़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन वाक्य संयोजन से जो दृष्य सामने आता है उससे इन शब्दों के समानर्थक हिंदी शब्दों की अनुभूति की जा सकती है। लोकभाषा के ठेठ शब्दों से संवाद सजीव रूप में लोकजीवन के बिम्ब उत्पन्न करते हैं। उपन्यास 'पहाड़ से ऊँचा' से लिया गया यह उदाहरण देखिए- 'सूरज की किरणों की आँख मिचोली से बीच-बीच में वर्षा ऋतु का आभास कम हो रहा था। शंकर दत्त चिलम लेकर अपने छज्जे (तिबारी) में बैठे हैं और तभी उन्हें दूर से गोपाल दत्त आता दिखाई देता है। 'नमस्कार दाज्यू। बाल-बच्चे सब ठीक हैं?'

'चिरंजीव भुला गोपाल, सब ईष्वर की कृपा है। तुम सुनाओ क्या हालचाल है?[9]'

लोकजीवन के बदलते परिवेश के बिम्ब को उत्पन्न करता एक अन्य उदाहरण देखिए– 'अब कहाँ रही ऐसी एकता? अब ढोर-ढंगर पालने भी बन्द कर दिए हैं लोगों ने'। हाँ दाज्यू अब तो न पहले जैसा जंगल रहा और न ही लोगों में अपनी किसी बाड़ी से प्रेम।'[10] इस तरह 'निशंक' जी की भाषा में विविधता है जिसकी खास बात यह है कि वे लोकभाषा के ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनका एक प्राचीन इतिहास हो। उपरोक्त उद्धरण में 'दाज्यू' जैसे शब्दों का अपना एक विशेष इतिहास और परम्परा है क्योंकि 'मध्य पहाड़ी में प्रयुक्त दा, दिदा, दादू, आदि शब्द भी किरात मूल से सम्बन्धित हैं। उसी प्रकार छोटे भाई के लिए प्रयुक्त भुला शब्द किरात भाषा में बो-लो या बा-लु रूप में उपलब्ध होता है।'[11] इस प्रकार 'पहाड़ से ऊँचा' का कथानक पर्वतीय लोकजीवन की कई जीवन्त तस्वीरें प्रस्तुत करता है। उपन्यास में दाज्यू, ईजा, भुला, तिबार, तमाखू, कौथिग, ढोर-ढंगर, द्वारबाट जैसे गढ़वाली-कुमाऊँनी लोकभाषा के शब्दों से युक्त भाषा ही कथानक को लोकजीवन के समीप ले जाती है।

निशंक जी के उपन्यास शीर्षक भी लोकभाषा से प्रभावित है। जिस तरह गढ़वाली-कुमाउंनी में व्यंजन परिर्वतन के रूप प्राकृत और अपभ्रंष से प्रभावित होते हैं उसका प्रभाव उनके कथा साहित्य में दिखाई देता है। 'भागोंवाली' उपन्यास शीर्षक व इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र का नाम ऐसे ही भाषीय प्रभाव का परिणाम है। 'गढ़वाली भाषा में अन्तिम अर्धस्वर य और व का प्राय: लोप होकर व्यंजन पूर्ण हो जाता है'[12] जिसप्रकार 'भागोंवाली' अर्थात हिन्दी मे 'भाग्य वाली' से लोकभाषा के प्रभाव में परिनिष्ठित होकर ही 'भागों वाली' शब्द बना है। क्योंकि 'भाग्य' शब्द का अन्तिम वर्ण 'य' गढ़वाली भाषा प्रभाव में 'य' से पूर्व आये वर्ण 'ग' अद्धाक्षर का पूर्ण 'ग' होकर विशेषण रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि उनके कथा साहित्य में उनकी परिवेशगत भाषा अथवा लोकभाषा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ हम लोकभाषा को उनके जीवन संदर्भो की प्रकृति के अनुरूप पाते हैं। 'लोकभाषा' शुद्ध साहित्यिक भाषा और बोली के बीच की कड़ी है जो उनके लोक साहित्य की अभिव्यक्ति का उचित माध्यम है जिससे कथ्य में सजीवता व कलात्मकता उभर कर आती है। समकालीन साहित्यकारों ने बोलचाल की भाषा को कहानी, उपन्यास विधाओं में ज्यादा महत्व दिया है, निशंक जी भी सामान्यत: बोलचाल की भाषा को तब्जो देते हैं लेकिन अपने ग्राम-राग के चलते उन्होंने लोकजीवन के रंग से युक्त लोकभाषा का समुचित प्रयोग किया है।

संदर्भ सूची

1. हिंदी का प्रादेशिक लोकसाहित्यशास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, पृष्ठ सं. 247
2. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, गोविन्द चातक, पृष्ठ सं. 45
3. आधुनिक हिंदी कहानी, गंगा प्रसाद विमल, पृष्ठ सं. 102
4. छूट गया पड़ाव, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 17
5. मेजर निराला, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 23
6. मेजर निराला, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 86
7. बीरा, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 06
8. मेजर निराला, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 116
9. पहाड़ से ऊँचा, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 06
10. पहाड़ से ऊँचा, रमेश पोखरियाल निशंक, पृष्ठ सं. 07
11. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, गोविन्द चातक, पृष्ठ सं. 40
12. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, गोविन्द चातक, पृष्ठ सं. 53

भारत में महिलाओं की शिक्षा

डॉ० कुमारी पूजा

शिक्षिका, +2 उच्च विद्यालय, खैरा, जमुई, (बिहार)

परिचय

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। महिला और पुरुष दोनों समान रूप से समाज के दो पहियों की तरह कार्य करते हैं और समाज को प्रगति की ओर ले जाते हैं। दोनों की समान भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक है कि उन्हें शिक्षा सहित अन्य सभी क्षेत्रों में समान अवसर दिये जाएँ, क्योंकि यदि कोई एक पक्ष भी कमजोर होगा तो सामाजिक प्रगति संभव नहीं हो पाएगी। परंतु देश में व्यावहारिकता शायद कुछ अलग ही है, वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में महिला साक्षरता दर मात्र 64.46 फीसदी है, जबकि पुरुष साक्षरता दर 82.14 फीसदी है। उल्लेखनीय है कि भारत की महिला साक्षरता दर विश्व के औसत 79.7 प्रतिशत से काफी कम है।

स्वरूप और महत्व

शिक्षा वयस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिए एक आधार के रूप में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा अन्य अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए लड़कियों और महिलाओं को सक्षम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बहुत सी समस्याओं को पुरुषों से नहीं कह सकने के कारण महिलाएं कठिनाई का सामना करती रहती हैं। अगर महिलाएँ शिक्षित हों तो वे अपने घरों की सभी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं। स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय विकास में मदद करता है। महिला शिक्षा एक अच्छे समाज के निर्माण में मदद करती है।

भारत में महिला शिक्षा वर्तमान परिदृश

- भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर काफी कम है। वर्ष 2011 की जनगणना के आँकड़े दर्शाते हैं कि राजस्थान (52.12 प्रतिशत) और बिहार (51.50 प्रतिशत) में महिला शिक्षा की स्थिति काफी खराब है।
- जनगणना आँकड़े यह भी बताते हैं कि देश की महिला साक्षरता दर (64.46 प्रतिशत) देश की कुल साक्षरता दर (74.04 प्रतिशत) से भी कम है।
- बहुत कम लड़कियों का स्कूलों में दाखिला कराया जाता है और उनमें से भी कई बीच में ही स्कूल छोड़ देती हैं। इसके अलावा कई लड़कियाँ रूढ़िवादी सांस्कृतिक रवैये के कारण स्कूल नहीं जा पाती हैं।
- कई अध्ययनों के अनुसार, भारत में 15-24 वर्ष आयु वर्ग की युवा महिलाओं की बेरोजगारी दर 11.5 प्रतिशत है, जबकि समान आयु वर्ग के युवा पुरुषों के मामले में यह 9.8 प्रतिशत है।
- वर्ष 2018 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट में कहा गया था कि 15-18 वर्ष आयु वर्ग की लगभग 39.4 प्रतिशत लड़कियाँ स्कूली शिक्षा हेतु किसी भी संस्थान में पंजीकृत नहीं हैं और इनमें से अधिकतर या तो घरेलू कार्यों में संलग्न होती हैं या भीख मांगने जैसे कार्यों में।
- आँकड़े यह भी बताते हैं कि भारत में अभी भी लगभग 145 मिलियन महिलाएँ हैं, जो पढ़ने या लिखने में असमर्थ हैं।
- उल्लेखनीय है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा स्थिति और अधिक गंभीर है।

भारत में महिला शिक्षा का इतिहास

भारत में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति को समझने के लिये आवश्यक है कि इतिहास में इसकी विकास यात्रा को भी समझा जाए। इसे मुख्यत: 3 भागों (1) प्राचीन वैदिक काल, (2) ब्रिटिश इंडिया और (3) स्वतंत्र भारत में विभाजित कर देखा जा सकता है।

प्राचीन वैदिक काल

- भारत में महिला शिक्षा का इतिहास प्राचीन वैदिक काल से जुड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि लगभग 3000 से अधिक वर्ष पूर्व वैदिक काल के दौरान महिलाओं को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था और उन्हें पुरुषों के समान समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता था।
- वैदिक अवधारणा के स्त्री शक्ति सिद्धांत के अनुसार, महिलाओं की देवी के रूप में पूजा शुरू हुई- उदाहरण के लिये शिक्षा की देवी सरस्वती।
- वैदिक शास्त्र कहते हैं कि "लड़कों के साथ लड़कियों को उचित देखभाल के साथ पोषित और प्रशिक्षित किया जाना चाहिये।"
- वैदिक साहित्य में उन महिलाओं का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने वैदिक अध्ययन का रास्ता चुना।

ब्रिटिश इंडिया

- इस काल में पहला ऑल-गर्ल्स बोर्डिंग स्कूल वर्ष 1821 में दक्षिण भारत के तिरुनेलवेली में स्थापित किया गया था।
- वर्ष 1840 तक स्कॉटिश चर्च सोसाइटी द्वारा दक्षिण भारत में निर्मित छह स्कूल मौजूद थे जिनमें कुल 200 लड़कियों का नामांकन कराया गया था।
- वर्ष 1848 में पुणे में गर्ल्स स्कूल की शुरुआत करने वाले ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई पश्चिमी भारत में भी महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थे।
- पश्चिम भारत में महिला शिक्षा की शुरुआत पुणे में गर्ल्स स्कूल के निर्माण के साथ हुई जिसे वर्ष 1848 में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई ने शुरू किया था।
- उल्लेखनीय है कि 1850 तक मद्रास मिशनरियों ने स्कूल में लगभग 8,000 से अधिक लड़कियों का नामांकन कराया था।
- ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यक्रम वुड्स डिस्पैच ने वर्ष 1854 में महिलाओं की शिक्षा और उनके लिये रोजगार की आवश्यकता को स्वीकार किया।
- वर्ष 1879 में स्थापित बेथ्यून कॉलेज वर्तमान में एशिया का सबसे पुराना महिला कॉलेज है।
- गौरतलब है कि महिलाओं की समग्र साक्षरता दर वर्ष 1882 में 0.2 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1947 में 6 प्रतिशत हो गई।

स्वतंत्र भारत

- स्वतंत्रता के समय देश में महिला साक्षरता दर काफी कम थी, जिसे सरकार द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1958 में सरकार ने महिला शिक्षा पर एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया, जिसकी सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं। इन सिफारिशों का सार यह था कि महिला शिक्षा को भी पुरुष शिक्षा के सामानांतर पहुँचाया जाए।
- वर्ष 1959 में इसी विषय पर गठित एक समिति ने लड़कों और लड़कियों के लिये एक समान पाठ्यक्रम को विभिन्न चरणों में लागू करने की सिफारिश की।
- वर्ष 1964 में स्थापित शिक्षा आयोग ने बड़े पैमाने पर महिला शिक्षा के विषय में बात की और वर्ष 1968 में भारत सरकार से एक राष्ट्रीय नीति विकसित करने की सिफारिश की।

महिला शिक्षा की आवश्यकता

- महिलाओं को शिक्षित करना भारत में कई सामाजिक बुराइयों जैसे- दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या और कार्यस्थल पर उत्पीड़न आदि को दूर करने की कुंजी साबित हो सकती है।
- यह निश्चित तौर पर देश के आर्थिक विकास में भी सहायक होगा, क्योंकि अधिक-से-अधिक शिक्षित महिलाएँ देश के श्रम बल में हिस्सा ले पाएंगी।
- हाल ही में स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा एक सर्वेक्षण जारी किया गया है, जिसमें बच्चों की पोषण स्थिति और उनकी माताओं की शिक्षा के बीच सीधा संबंध दिखाया गया है।
- इस सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि महिलाएँ जितनी अधिक शिक्षित होती हैं, उनके बच्चों को उतना ही अधिक पोषण आधार मिलता है।
- इसके अलावा कई विकास अर्थशास्त्रियों ने लंबे समय तक इस विषय का अध्ययन किया है कि किस प्रकार लड़कियों की शिक्षा उन्हें परिवर्तन के एजेंट के रूप में उभरने में सक्षम बनाती है।

महिला शिक्षा के मार्ग में बाधाएँ

- भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर सामाजिक दर्जा नहीं दिया जाता है और उन्हें घर की चहारदीवारी तक सीमित कर दिया जाता है। हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में स्थिति अच्छी है, परंतु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आज भी देश की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।
- हम दुनिया की सुपर पॉवर बनने के लिये तेजी से प्रगति कर रहे हैं, परंतु लैंगिक असमानता की चुनौती आज भी हमारे समक्ष एक कठोर वास्तविकता के रूप में खड़ी है। यहाँ तक कि देश में कई शिक्षित और कामकाजी शहरी महिलाएँ भी लैंगिक असमानता का अनुभव करती हैं।
- समाज में यह मिथ काफी प्रचलित है कि किसी विशेष कार्य या परियोजना के लिये महिलाओं की दक्षता उनके पुरुष समकक्षों के मुकाबले कम होती है और इसी कारण देश में महिलाओं तथा पुरुषों के औसत वेतन में काफी अंतर आता है।
- देश में महिला सुरक्षा अभी एक बड़ा मुद्दा बना हुआ है, जिसके कारण कई अभिभावक लड़कियों को स्कूल भेजने से कतराते हैं। हालाँकि सरकार द्वारा इस क्षेत्र में काफी काम किया गया है, परंतु वे सभी प्रयास इस मुद्दे को पूर्णत: संबोधित करने में असफल रहे हैं।

महिला शिक्षा हेतु सरकार के प्रयास

- 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' की शुरुआत वर्ष 2015 में देश भर में घटते बाल लिंग अनुपात के मुद्दे को संबोधित करने हेतु की गई थी। यह महिला और बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा मानव संसाधन मंत्रालय की संयुक्त पहल है। इसके तहत कन्या भ्रूण हत्या रोकने, स्कूलों में लड़कियों की संख्या बढ़ाने, स्कूल छोड़ने वालों की संख्या को कम करने, शिक्षा के अधिकार के नियमों को लागू करने और लड़कियों के लिये शौचालयों के निर्माण में वृद्धि करने जैसे उद्देश्य निर्धारित किये गए हैं।
- कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत वर्ष 2004 में विशेष रूप से कम साक्षरता दर वाले क्षेत्रों में लड़कियों के लिये प्राथमिक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था करने हेतु की गई थी।
- महिला समाख्या कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1989 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्यों के अनुसार महिलाओं की शिक्षा में सुधार व उन्हें सशक्त करने हेतु की गई थी।
- यूनिसेफ भी देश में लड़कियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु भारत सरकार के साथ काम कर रहा है।
- इसके अलावा महिला शिक्षा के उत्थान की दिशा में झारखंड ने भी एक बड़ी पहल की है। झारखंड स्कूल ऑफ एजुकेशन ने कक्षा 9 से 12वीं तक की सभी छात्राओं को मुफ्त पाठ्य पुस्तक, यूनिफॉर्म और नोटबुक बाँटने का फैसला किया है।

निष्कर्ष

स्त्री शिक्षा स्त्री और शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबंधित है। दूसरे रूप में यह स्त्रियों के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पद्धति को संदर्भित करता है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरुष हो। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानो का कदापि कल्याण नहीं हो सकता।

सन्दर्भ

ख जे सी अग्रवाल (1 January 2009). भारत में नारी शिक्षा प्रभात प्रकाशन आई.एस.बी.एन. 978-81-85828-77-0.

ख E.W. Hutter (1859). Female Education: Its Importance, the Helpsand the Hindrances: A ddress Delivered Before theacultyand Students of the Susquehanna Female College, at Selinsgrove, Pa-, on Tuesday Evening, November 8th, 1859. T.N. Kurtz. मूल से 19 फरवरी 2014 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 20 जुलाई 2016.

ख सुमन कृष्ण कांत (1 सितम्बर 2001). इक्कीसवीं सदी की ओर. राजकमल प्रकाशन आई.एस.बी.एन. 978-81-267-0244-2.

ख Female Education: A Study of Rural India, Cosmo Publications 2003. आई.एस.बी.एन. 978-81-7755-207-2.

ख डॉं. जे. पी. सिंह (1 April 2016). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन PHI Learning Pvt. Ltd. आई.एस.बी.एन. 978-81-203-5232-2.

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत का पहला सत्याग्रह

कुन्दन कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

चम्पारण सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता का एक परिवर्तन बिंदु ही नहीं है, बल्कि एक सौ वर्ष पहले की यह घटना भारतीयों के नवजागरण, स्वराज्य, स्वाबलबन की ओर बढ़ा कदम है। उसकी शताब्दी वर्ष 2017 में मनाया गया। चम्पारण आंदोलन ने गाँधी को महात्मा बना दिया और आजादी की लड़ाई आम जनता की लड़ाई बन गयी। अत: तीस वर्ष में (1917-1947) भारत आजाद हो गया।

परेशान किसान, बदहाल जनता, लोगों पर सरकारी टैक्स का बोझ। 10 अप्रैल 1917 को महात्मा गाँधी पटना-मुजफ्फरपुर होते हुए 15 अप्रैल 1917 को चम्पारण पहुंचे तो उनके एजेंडों में ये तीन मुद्दे प्रमुख थे। प्रसिद्ध गाँधीवादी कुमार प्रशांत के शब्दों में ''गाँधी को उस जगह की तलाश थी जहाँ से अपने सत्याग्रह का काम शुरू कर सकें, और देश को एक ऐसे आदमी की तलाश थी जो उनके सवाल को अपना सवाल समझे, मंच से संवाद नहीं लोगों के बीच जाकर काम कर सकें। अर्थात दो जरूरतें आपस में मिल गयी, चम्पारण में यहीं हुआ। चम्पारण शोषण एवं उपनिवेशवाद से मुकाबला करने का पाठशाला बन गया ''महात्मा गाँधी ने बताया की अहिंसात्मक आंदोलन से बड़ी से बड़ी शक्तियों को झुकने पर मजबूर किया जा सकता है।''

''गाँधी ने जनता को निडर बनाया, गंदगी, अशिक्षा, महिलाओं की दयनीय स्थिति के विरूद्ध लड़ने को सिखाया। इतिहासकार बताते है की महात्मा गाँधी ने चम्पारण से कई सबक भी ली और आंदोलन के तौर-तरीके एवं उसके कमजोरियों को भी समझा।'' वे 1917 के बाद पूरी तरह आजादी के आंदोलन से जुड़ गए। चम्पारण के बाद खेड़ा, अहमदाबाद, बारदौली, असहयोग आंदोलन ने देश की दिशा बदलकर रख दी। जानकार मानते है कि आजादी के लिए बाकि संघर्ष की बुनियाद चम्पारण में ही पड़ी। 1916 में किसान नेता पंडित राजकुमार शुक्ल ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 31वें अधिवेशन में लखनऊ जाकर महात्मा गाँधी से मुलाकात की और चम्पारण के किसानों को इस अन्यायपूर्ण प्रक्रिया से मुक्त करने के लिए आंदोलन का नेतृत्व करने का अनुरोध किया। महात्मा गाँधी ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया, लेकिन कोलकाता चले गये। अब राजकुमार शुक्ल सोचने लगे अगर मैं बिहार लौट जाऊँ तो क्या पता गाँधी हो सकते हैं कि चम्पारण नहीं आएंगे। यही सब सोचकर राज कुमार शुक्ल महात्मा गाँधी को साथ लेकर चम्पारण लौटें। गाँधी जब चम्पारण पहुंचे तो ग्राम-पाठशालाओं और ग्राम-सुधार के अलावा गौरक्षा पर भी बल दिया।

16 अप्रैल 1917 को महात्मा गाँधी जसौलीपट्टी जा रहे थे, रास्ते में चन्द्रहिया में उन्हें रोक दिया गया और मोतिहारी जिलाधिकारी डब्लू एच हैकॉक के आदेश पर जिला छोड़ने को कहा गया। 18 अप्रैल 1917 को मोतिहारी कोर्ट में पेशी के दौरान मजिस्ट्रेट से कहा की अपनी जाँच पूरी किये बिना चम्पारण नहीं छोड़ेंगे, इसमें जो सजा मिले भुगतने के लिए तैयार हूँ। ''दुनिया में नागरिक अवज्ञा आन्दोलन की यह पहली घटना थी जो पूरे देश में तेजी के साथ फैल गयी। गाँधी की सच्चाई और निडरता को देखकर मजिस्ट्रेट आश्चर्यचकित हुए एवं जमानत की राशि स्वयं भर दिए।''

महात्मा गाँधी तथा उनके अन्य सहयोगी राजेंद्र प्रसाद, जे.बी. कृपलानी, गोरख प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, इत्यादि ने 8000 किसानों का बयान दर्ज किये थे, जो इतिहास की पहली जनमत संग्रह थी। यह बयान बाद में जाँच समिति को अंतत: साक्ष्य के रूप में पेश किया गया।

महात्मा गाँधी ने भारत में सत्याग्रह का पहला प्रयोग चम्पारण में ही किया और सभी हिन्दुस्तान के जनता, मजदूर, किसान, जमींनदार शोषित, पीड़ित, दलित, जनजाति, आदि की उन्होंने इस आंदोलन से आँखे खेल दी। गाँधी ने चम्पारण सत्याग्रह के दौरान मजदूरों को हड़ताल करने की सलाह दी। यह सलाह देने से पहले वह मजदूर और मजदूर नेताओं के संपर्क में आए और हड़ताल करने का तरीका बताएँ –

- किसी भी दशाओं में शांति भंग न होने दी जाय।
- जो मजदूर काम पर जाना चाहे उसके साथ जोर जबरदस्ती न की जाय।
- मजदूर भिक्षा का अन्न न खायें।
- हड़ताल कितनी ही लम्बी क्यों न हो चले, वे दृढ़ रहें और अपने पास पैसा न रहें तो दूसरी मजदूरी करके खाने योग्य कमा लें।

मजदूर नेताओं ने यह शर्त समझ ली और स्वीकार कर ली। मजदूरों की आम सभा हुई और उन्होंने निश्चय किया की जबतक उनकी मांग मंजूर न की जाय अथवा उसकी योग्यता-अयोग्यता की जाँच के पंच की नियुक्ति न हो, तब तकवे काम पर नहीं जायेंगे। कहना होगा कि इस हड़ताल के दौरान सरदार बल्लभ भाई पटेल, अनसूइया बैन और शंकर लाल बैंकर आदि को यथार्थ रूप में पहचान मिली। चम्पारण आंदोलन से सिर्फ चम्पारण के ही किसान को फायदा हुआ ऐसी बात नहीं है, बल्कि पुरे भारत के किसानों को इस आन्दोलन ने अपना अधिकार प्राप्त करने का तरीका सीखा दिया। यदि किसानों को सही मजदूरी नहीं मिलेगा तो किसान खेती करना छोड़ देंगे। जब गाँधी ने चम्पारण की किसानों की परिस्थिति को देखें तो दंग रह गये और सबसे पहले उसकी सही मजदूरी और अधिकार के बारे में बताएँ।

गाँधी की जीत तब हुई जब बिहार के लेफ्टिनेंट गवर्नर एडवर्ड गेटे ने 10 जून 1917 को ''चम्पारण जाँच समिति'' एफ.जी. सलाई की अध्यक्षता में बनाई जिसके सदस्य गाँधी भी थे। अत: मार्च 1918 में ''चम्पारण कृषि विधेयक'' को पारित कर ''तिनकठिया'' पद्धति को अवैध करार कर दिया गया। अत: अक्टूबर 1918 में पूरी तरह ''तीन कठिया पद्धति'' समाप्त हो गयी।

चम्पारण वासियों को एक बेहतर समाज का निर्माण कैसे होगा? इसके बारे में उन्होंने सबसे पहले समाज, शोषित क्यों है और होता कैसे हैं? उसका विश्लेषण करने के लिए महात्मा गाँधी ने कहा –''मानवता का ताज है-समाज, मनुष्यता का लाज है समाज परिवर्तन के पंखो से संयुक्त दिव्य प्रेम का परवाज है-समाज''। इसकी संस्थापना ही मनुष्य मात्र के रक्षार्थ के लिए की गयी। लेकिन जैसा कल था, वैसा आज नहीं है। महात्मा गाँधी ने तो बेहतर समाज का पाठ भारत के पहले सत्याग्रह से अंग्रेजों को सीखा दिया।

किसान एवं कृषि मजदूरों के अधिकारों एवं हितों के हितैषी के रूप में कई राजनीतिक-गैर राजनीतिक संगठनों ने अपना दावा जरूर पेश किया। किन्तु महात्मा गाँधी के विराट छवि के कारण सभी बौने बने रहे, वही किसानों की बातें सम्पूर्ण रूप से किसी भी राजनीतिक दल ने नहीं उठाया। कांग्रेस राष्ट्रीय राजनीतिक का 1934 तक चुनौती विहीन नायक बना रहा और किसानों की बातें काफी हद तक उपेक्षित ही रही। 20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही किसान अपनी समस्याओं की ओर कांग्रेस का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास करते आ रहे थे।

यहाँ किसानों की सतर्कता एवं जागरूकता को यह श्रेय अवश्य जाता है कि इसमें कांग्रेस के शिक्षित एवं अभिजात्य नेतृत्व को शहर से गांव की ओर आने को बाध्य किया। जिसके फलस्वरूप कांग्रेस के संगठन का विस्तार हुआ और इसमें शहरी के साथ ग्रामीण लोगों ने शिरकत करना प्रारम्भ किया। साथ ही कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय दल दवारा ग्रामीण की समस्या को राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से जोड़ने का मार्ग प्रशस्त किया। चम्पारण सत्याग्रह से स्पष्ट हुआ कि अगर किसानों की समस्या को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ दिया जाय तो आन्दोलन की महत्ता और ज्यादा बढ़ जाएगी। दूसरी ओर ''चम्पारण ने गाँधी को अपने विचारों एवं सिद्धांतों को खुलकर प्रयोग करने का अवसर दिया, जिसके फलस्वरूप महात्मा गाँधी के प्रतिष्ठा एवं महत्ता दोनों में काफी वृद्धि हुई। यहाँ भारतीय राजनीति की सभी धाराएँ अपने तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद इसमें एकरूपता दिखाई देती है।''

''गाँधी के नेतृत्व में भारत का पहला सत्याग्रह आन्दोलन'' में 1917 के बाद गाँधी के बिहार आगमन से लेकर 1934 के बीच बिहार के शीर्ष राजनीति में उत्पन्न विभिन्न अंतर्विरोधी राजनीतिक धाराओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया हैं। ''गाँधी के करिश्माई व्यक्तित्व का बिहार के चम्पारण में आने के बाद काफी विस्तार हुआ। जिसके चलते गाँधी के इर्द-गिर्द अनेक तिलस्म विकसित हुए एवं उत्तरी एवं दक्षिणी बिहार के ग्रामीण इलाकों में गाँधी के साथ दैवत्व का एकाकार होता चला गया।" गाँधी के

इसी विराट व्यक्तित्व के अधीन कांग्रेस राजनीति के विकास एवं उसके सामानांतर और कभी-कभी विरोधी धारा के रूप में किसान आन्दोलन को परखने का प्रयास किया गया है।

चम्पारण सत्याग्रह ने एक तरफ गाँधी को राष्ट्रीय राजनीति के शीर्ष पर स्थापित करने में आधार का काम किया, तो दूसरी तरफ कांग्रेस के राजनीति हित एवं किसानों के हित, जो उस समय परस्पर अंतर्विरोधी चिन्तन धाराओं को एक साथ लाने का काम किया था। भारत के राष्ट्रीय राजनीति में गाँधी एवं बिहार दोनों ही गौण महत्व के थे, किन्तु चम्पारण सत्याग्रह ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

चम्पारण सत्याग्रह से सविनय अवज्ञा आन्दोलन तक कांग्रेस के अभिजात्य एवं सामंतवादी चरित्र और नेतृत्व का अन्त: संघर्ष लगातार किसानों के हितों एवं अधिकारों से होता रहा। इस संघर्ष के स्थिति में भारतीय राजनीति में कई विचारधाराओं को पनपने का अवसर प्रदान किया। किसानों की राजनीति क्रमश: एक स्वतंत्र आकर लेती गयी और कांग्रेस से उत्तर किसान सभाओं का जन्म हुआ।

वर्तमान समय में याद आने लगा चम्पारण सत्याग्रह आन्दोलन, जिसमें अंग्रेजों द्वारा किसानों का जीना मुश्किल कर दिया था। वर्तमान में भी दिल्ली से महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश तक के किसानों को आत्महत्या करने पर जब मजबूर होना पर रहा है तो दूसरी ओर दिल्ली के रामलीला मैदान में भूख हड़ताल पर बैठे कई किसानों की मृत्यु भी हो गयी लेकिन फिर भी इसकी प्रवाह कौन करता है? पहले तो अंग्रेज द्वारा किया गया अत्याचार जिसमें प्रत्येक किसानों को एक बीघा यानि एक एकड़ जमीन में तीन कठा में नील की खेती करनी पड़ती थी। उसी से तंग आकर चम्पारण के किसान भी भूखे रहने लगे, तो वहां के किसान नेता पंडित राज कुमार शुक्ल ने सभी किसानों को धीरज रखने का आश्वासन दिया।

समाज ही वह संस्था है जहाँ किसानों की भी बात सुनी जाती है और पुरे दुनिया को अगर पेट भरने का काम करता है तो वह है-किसान। लेकिन भारत का किसान आत्महत्या क्यों कर रहा है? यह विचारणीय तथ्य है, एवं कल्पना करने की जरूरत है।

बिहार में किसानों की स्थिति पर अगर कल्पना की जाए तो सबसे पहले चम्पारण सत्याग्रह ही आता है। जिसमें किसानों पर पड़ने वाले आर्थिक दवाब का वर्णन किया गया है। अंग्रेजों द्वारा किया गया भूमि सम्बन्धी सुधार की बात हो तो समझा भी जायेगा। लेकिन 19 रूपया प्रति एकड़ देने की बात अंग्रेजों ने किसानों को कही थी वह भी किसानों को नहीं मिलता था। दूसरी कल्पना में स्थायी बंदोवस्त के कारण भू-धारण में हुए बदलाव एवं ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्तन को समझने का प्रयास किया गया है। भारत के पहले सत्याग्रह में जो किसानों की समस्या थी वह बीसवीं सदी से लेकर आज इक्कसवीं सदी तक के किसानों की समस्याएं जिस की तस बनी हुई हैं।

महात्मा गाँधी की पुस्तके ग्राम स्वराज्य या हिन्द स्वराज्य एवं कई पत्रिकाओं में भारत को गावों को देश एवं भारत का हृदय गाँव में बसता हैं कहने का काम गाँधी ने किया। उन्होंने एक भाषण के क्रम में कहा था, ''अगर किसान अन्न नहीं उपजायेंगे तो ऑफिस में बैठे अफसर कलम तोड़ कर नहीं खा सकते, पेट भरने के लिए अन्न खाना ही पड़ेगा, लेकिन जब वही किसान उसी दफ्तर में जाते हैं तो वहाँ के आफिसर उन्हें डॉक्टर बहार निकल देते है।'' अभी हाल की घटना है-दिल्ली में अपनी मांग पूरी करने के लिए किसानों ने जब अनशन किया तो पुलिस के द्वारा लाठी-डंडा बरसाया गया, जिसमें कई किसानों को शारीरिक चोटें भी पहुंची।

यूनानी विद्वान अरस्तु ने कहा है ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'' और इसी समाज में किसान, मजदूर, दलित, पीड़ित सभी तरह के इंसान रहते हैं लेकिन सभी को क्या सामान हक और अधिकार मिलता हैं, नहीं।

निष्कर्ष-वर्तमान परिस्थितियों में भारतीय किसान के हकों को मारा जा रहा है, एवं उसकी सही मजबूरी नहीं दी जा रही हैं यह विडंबना है की उद्योग जगत में कंपनियां अपने उत्पाद की कीमत स्वयं तय करती है जबकि किसानों के फसल की कीमत सरकार तय करती है। मिट्टीतोड़कर अन्न उपजाने वाला किसान आज लोन का अभिशाप झेल रहें है। सूखा, बाढ़ और फसल क्षति आदि होने से किसानों की स्थिति दिन प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है। इसलिए किसानों की परिस्थितियों में सुधार एवं उनकी सहीं मजदूरी के लिए आज गाँधी के विचारों एवं सिद्धांतों को अपनाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. सविता सिंह, सत्याग्रह, पब्लिकेशन डिवीजन, नई दिल्ली 2007
2. नियोगी हरि, बापू की ऐतिहासिक यात्रा, पब्लिकेशन डिवीजन नई दिल्ली 2017
3. महात्मा गाँधी, हिन्द स्वराज, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
4. मनोज सिन्हा, गाँधी अध्ययन, ओरियंट ब्लैकशवॉन, नई दिल्ली 2010
5. जे0 एम0 उपाध्याय, महात्मा गाँधी का छात्र जीवन पब्लिकेशन डिसीजन, नई दिल्ली, 1965
6. महात्मा गाँधी, ग्राम स्वराज, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2011
7. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, डायमंड पॉकेट बुक, 2010

कांकेर जिले में जनजातीय महिलाओं पर शिक्षा का प्रभाव (रोजगार-व्यावसायिक परिर्वतन का एक अध्ययन)

सुरेश कुमार

शोध छात्र, अर्थशास्त्र, अध्ययन शाला, बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर, (छ.ग.)

शोध सारांश

किसी समाज की सपन्नता तथा भविष्य को संवारने के लिए महिलायें उपयुक्त मार्गदर्शक होती है। साथ ही विकास एवं संपन्नता को मापने के लिए उस समाज की महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक-व्यवसायिक स्तर को एक बेहतर सूचकांक माना जाता हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले के तहसील में रह रही, जनजातिय महिलाओं की आर्थिक एवं व्यवसायिक संरचना में शिक्षा की सहभागिता के साथ व समाज में उनकी स्थिति का अध्ययन करना है। जो निम्न परिकल्पनाओं के आधार पर किया गया है। शिक्षा ही एक ऐसा आधार है जिसे प्राप्त कर विभिन्न कौशल अपनाकर उच्च जीवन-स्तर की कल्पना की जा सकती है। आय ही एक मात्र क्षमता सृजनकारी कारक नहीं है, बल्कि महिला श्रम की सामाजिक भूमिका उसकी क्षमता आर्थिक रूप से भविष्य के निधारिकों को प्रभावित करता है। साथ ही कुछ क्षेत्र जैसे-कृर्षि, धरेलु कार्य में महिला श्रम की आय कम होने के कारण उनकी कार्यक्षमता को आय प्राप्त न होना है। उक्त परिकल्पना के अध्ययन हेतु प्राथमिक व द्वितीयक संमकों के प्रयोग प्रत्यक्ष अवलोकन वार्तालाप एवं सरल साख्यिकी विधियों आदि के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये है। छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश हैं। यहाँ लगभग 42 प्रकार की जनजातियां एवं उपसमूह निवास करती है। 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2, 55, 45, 198 है। जहाँ कुछ अनुसूचित जनजातियों 78, 22, 902 जो राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। प्रस्तुत अध्ययन में जनजातीय स्त्रियों की स्थिति व सहभागिता पर प्रकाष डाला गया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता हैं। कृषि क्षेत्र में इनका प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी है। समाज की संरचना में जनजातीय स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी अधिक है। इस प्रकार कह सकते है कि जनजातीय महिलायें जननी के रूप में सकरात्मक भूमिका निभाने की सहभागिता के साथ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवार व समाज को एक सुदृढ़ दिशा प्रदान करने में सकरात्मक परिणाम दे रही है।

प्रस्तावना

छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुत प्रदेश है। 2011 की जनगणनानुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2.55, 45, 198 है। जहाँ कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 78, 22, 902, राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वहीं कांकेर जिले में कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 4, 14, 770 जहाँ पुरुष जनसंख्या 2, 03, 934 वहीं महिला जनसंख्या 2, 10, 836 जो कुल जनसंख्या का

55.38 प्रतिशत है। विश्लेषण से एक बात तो स्पष्ट होती हैं। कि महिला जनसंख्या भी आर्थिक व्यवसायिक सहभागिता को प्रभावित करती है। किसी भी समाज के उन्नती व विकास में स्त्री-पुरुषों का समान भागीदार व सहयोग अतिआवश्यक है। स्त्री सहभागिता केवल किन्ही विषेश कार्यों को संपन्न करने के लिए नहीं अपितु परिवार, समाज एवं देश के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है। अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो तकनीकियां व कार्यों के माध्यम से करना ही (आर्थिक) धन संबंधी कहलाता है। किसी भी परिवार में आर्थिक क्रियाकलापों में आर्थिक सहभागिता स्त्रियों की परिवार के साथ-साथ संपूर्ण समाज व देश के विकास के द्योतक है। भारतीय सभ्यता के उद्भव के समय से ही जनजातियां अस्तित्व में रही है। और वन उसके आश्रम एवं जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन था। और आर्थिक जीवन परोक्षत: आश्रित है। जनजातियों और वनों के इस संबंध को सहजीवी संबंध भी कह सकते है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जनजातीय समुदाय की स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन कर संपूर्ण महत्वूर्ण कार्यो की सहभागिता व आय ही एक मात्र क्षमता सृजनकारी कारक नही है, बल्कि महिला श्रम की सामाजिक भूमिका, उसकी क्षमता और अर्थव्यवस्था के भविष्य के निर्धारक आधार पर करना है।

जनजातियों की व्यावसायिक संरचना

प्रस्तुत वर्गीकरण में जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था स्पष्ट होती है। प्रस्तुत वर्गीकरण इस प्रकार हैं।

1. वन आखेट-मत्स्यमारण एवं खाद्य तथा पेय पदार्थ के रूप में वनोपज की प्राप्ति।
2. पहाड़ी कृषि-स्थानांतरित खेती, झूम खेती के नाम से जाना जाता हैं।
3. मैदानी कृषि-सालभर में मौसम अनुसार फसल उगायें जाते है।
4. साल कारीगार-हस्त शिल्प व्यवसाय से संबंधित हैं।
5. पशु चालक-पालतु जानवरों के समुह को चाराकर अपना जीवन-निर्वाह करते है।
6. कृषि कार्य एवं अन्य श्रामिक का कार्य करते हैं।

स्त्रियों की सहभागिता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता है। बड़ा प्रतिशत कृषि में महिला श्रम का है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी हैं। इस सहभागिता को स्त्रियां अपने पूरी जिम्मेदारीयों के साथ पूर्ण कर रही हैं। समाज को संरचना में स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदायी है। बल्कि वह व्यैक्तिक , सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन में जनजातियों में महिलाओं की सहभागिता एवं आर्थिक सहयोग के कारण समान में स्त्रियों को स्थिति पर प्रकाष डालने का प्रयास किया गया हैं।

जनजातिया परिचय

प्राय: सभी जनजातियों में वन व कृषि से जीविकोंपार्जन करने का प्रमुख साधन हैं। गांव का पटेल समाज का मुखिया होता हैं। महिलायें वन से संबंधित कंदमुल फल एकत्र करते है। हल्बा जनजाति में गौत्र व्यवस्था होती है। एक ही गौत्र में विवाह नहीं होता हैं। विवाह निष्चित होने पर घर पर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। तो महुआ के वृक्ष के साथ करते है। इसमें पवित्रता बनी रहती हैं। ऐसी मान्यता है। तलाक प्रथा प्रचलित है। वधु मुल्य भी प्रचलन में है। अंर्तजातिय विवाह करने पर आजीवन जाति से बहिश्कृत कर दिया जाता है। मृतक का दाह संस्कार करते है। बाल मुंडवाते है। स्त्रियां गुदना गोदवाती है। दषहरा, दीपावली, होली, त्योहार मानते है। जिदरी एवं नवाखानी भी पूजते है।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में रहने वाली जनजाति का चयन वर्श 2011 की जनगणना को आधार मानकर किया गया है। तथा अध्ययन हेतु आवश्यक उपयोगी तथ्यों को अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

सारणी क्रमांक-01

तहसीलवार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या

क्र.	तहसील का नाम	जनसंख्या	पुरूष	महिला	प्रतिशत
1.	चारामा	50,754	24,646	26,108	65.293
2	भानुप्रतापपुर	59,896	29,210	30,680	92.21
3.	दुर्गकोंदल	61,951	30,205	31,746	50.10
4.	कांकेर	61,951	30,205	31,746	86.071
5.	नरहरपुर	72,919	35,638	37,281	114.05
6.	अंतागढ़	60,248	29,936	30,312	118.99
7.	कोयलीबेड़ा (पखांजूर)	59,752	30,000	29,752	48.186
;kx		**4]14]770**	**2]03]934**	**2]10]836**	

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक-02

A comparative demographic profile of Kanker district with the State is given as under:

Particulars	Kanker	State
Area (Sq. Km)	**5285**	**135191**
Population (Census 2011)	**7,48,941**	**2,55,45,198**
Females	**3,75,603**	**1,27,12 281**
Males	**3,73,338**	**1,28,27,915**
ST Population	**4,14,770**	**78,22,902**
0-6 Age group	**36,61,689**	**36,61,689**
Rural	**6,72,180**	**1,96,07,961**
%age Rural to Total	89.8%	76.8%
%age ST to Total	55.4%	30.6%
Literacy Rate (Census 2011)	70.29	70.28
Females	60.64	60.24
Males	80.03	80.27
Total Workers (Census 2011)	3,89,359	1,21,80,225
Female	1,71,846	50,46,359
Male	2,17,513	71,33,866
of Workers to Total Population (WPR)	51.99%	47.68%

सारणी क्रमांक-03

कांकेर जिले में शिक्षा-व्यवस्था

Sr.No.	Name of CD Block	Total number of inhabited villages	Type of educational institutions available			
			No school	At least one primary school and no middle school	At least one primary school and one middle school	At least one middle school and one secondary school
1	2	3	4	5	6	7
1	0115-CHARAMA	97	1	23	73	21
2	0116-DURGKONDAL	150	8	79	63	12
3	0117-BHANUPRATAPPUR	110	1	44	65	14
4	0118-KANKER	100	3	33	64	17
5	0119-SARANA(NARHARPUR)	118	2	35	81	19
6	0120-ANTAGARH	189	12	106	71	10
7	0121-KOYALIBEDA	299	18	164	117	24
	Total	**1063**	**45**	**484**	**534**	**117**

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक-04

कांकेर जिले में कार्यषील जनसंख्या

Name of Sub-district	Persons / Males/ Females	Total population	Main workers		Marginal workers		Total workers (main and marginal morkers)		Non workers	
			Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage	Number	Percentage
2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
03348-Charama	Persons	106462	43634	40.99	16296	15.31	59930	56.29	46532	43.71
	Males	52163	25626	49.13	6031	11.56	31657	60.69	20506	39.31
	Females	54299	18008	33.16	10265	18.90	28273	52.07	26026	47.93
03349-Bhanupratappur	Persons	94937	40198	42.34	7075	7.45	47273	49.79	47664	50.21
	Males	46855	24375	52.02	2389	5.10	26764	57.12	20091	42.88
	Females	48082	15823	32.91	4686	9.75	20509	42.65	27573	57.35

03350-Durgkondal	Persons	64293	25175	39.16	11973	18.62	37148	57.78	27145	42.22
	Males	32211	15363	47.69	3994	12.40	19357	60.09	12854	39.91
	Females	32082	9812	30.58	7979	24.87	17791	55.45	14291	44.55
03351-Kanker	Persons	123650	45470	36.77	17898	14.47	63368	51.25	60282	48.75
	Males	61180	29021	47.44	6790	11.10	35811	58.53	25369	41.47
	Females	62470	16449	26.33	11108	17.78	27557	44.11	34913	55.89
03352-Narharpur	Persons	110424	40759	36.91	22609	20.47	63368	57.39	47056	42.61
	Males	53931	24875	46.12	7586	14.07	32461	60.19	21470	39.81
	Females	56493	15884	28.12	15023	26.59	30907	54.71	25586	45.29
03353-Antagarh	Persons	78175	26147	33.45	15603	19.96	41750	53.41	36425	46.59
	Males	39040	16174	41.43	5904	15.12	22078	56.55	16962	43.45
	Females	39135	9973	25.48	9699	24.78	19672	50.27	19463	49.73
03354-Pakhanjur	Persons	171000	64153	37.52	12369	7.23	76522	44.75	94478	55.25
	Males	87958	44468	50.56	4917	5.59	49385	56.15	38573	43.85
	Females	83042	19685	23.70	7452	8.97	27137	32.68	55905	67.32
District: Uttar Bastar Kanker (413)	Persons	748941	285536	38.13	103823	13.86	389359	51.99	359582	48.01
	Males	373338	179902	48.19	37611	10.07	217513	58.26	155825	41.74
	Females	375603	105634	28.12	66212	17.63	171846	45.75	203757	54.25

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

सारणी क्रमांक-05
कांकेर जिले में साक्षर-जनसंख्या

Sr. No.	Name of Sub-district	Total/ Rural/ Urban	Number of literates and illiterates				Literacy rate		Gap in male-female literacy rate			
			Number of literates			Number of illiterates						
			Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	Persons	Males	Females	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
1	03348-Charama	Total	73403	40456	32947	33059	11707	21352	77.44	87.55	67.82	19.73

		Rural	66394	36753	29641	30361	10678	19683	76.95	87.34	67.06	20.28
		Urban	7009	3703	3306	2698	1029	1669	82.39	89.68	75.51	14.17
2	03349-Bhanupratappur	Total	58779	32943	25836	36158	13912	22246	71.4	81.42	61.72	19.7
		Rural	52249	29522	22727	34563	13295	21268	69.59	80.06	59.49	20.57
		Urban	6530	3421	3109	1595	617	978	90.17	95.48	84.97	10.51
3	03350-Durgkondal	Total	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Rural	34174	20018	14156	30119	12193	17926	62.62	73.37	51.87	21.5
		Urban	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
4	03351-Kanker	Total	84782	46596	38186	38868	14584	24284	77.36	86.11	68.83	17.28
		Rural	55265	31342	23923	30943	11417	19526	72.5	82.97	62.21	20.76
		Urban	29517	15254	14263	7925	3167	4758	88.48	93.36	83.79	9.57
5	03352-Narharpur	Total	67747	37927	29820	42677	16004	26673	69.24	79.84	59.24	20.6
		Rural	64400	36181	28219	41515	15530	25985	68.62	79.41	58.44	20.97
		Urban	3347	1746	1601	1162	474	688	83.84	89.77	78.21	11.56
6	03353-Antagarh	Total	38566	22891	15675	39609	16149	23460	59.29	70.39	48.2	22.19
		Rural	33598	20120	13478	37800	15512	22288	56.91	68.27	45.59	22.68
		Urban	4968	2771	2197	1809	637	1172	82.7	90.85	74.3	16.55
7	03354-Pakhanjur	Total	98591	57467	41124	72409	30491	41918	68.14	76.98	58.72	18.26
		Rural	90779	53127	37652	70020	29461	40559	66.9	75.99	57.24	18.75
		Urban	7812	4340	3472	2389	1030	1359	86.86	91.64	81.54	10.1
	District: Uttar Bastar Kanker(413)	Total	456042	258298	197744	292899	115040	177859	70.29	80.03	60.64	19.39
		Rural	396859	227063	169796	275321	108086	167235	68.34	78.58	58.19	20.39
		Urban	59183	31235	27948	17578	6954	10624	86.9	92.46	81.43	11.03

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय कांकेर (छ.ग.)

किसी जनसंख्या की साक्षरता संपूर्ण जानकारी का दपर्ण होता है। जहाँ साक्षरता का उच्च-स्तर जनसंख्या के जीवन के उच्च स्तर को बताता है। इसलिए जनांकिकी के अध्ययन के लिए शिक्षा एवं साक्षरता एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कारक है। शिक्षा का सीधा संबंध उसके जनन व्यवहार से होता है। उच्च षिक्षित परिवार का छोटा आकार और अषिक्षित परिवार का बड़ा आकार उनके जनन व्यवहार के कारण होता है। आर्थिक-सामाजिक मूल्यों को शिक्षा प्रभावित करती है। कांकेर जिले में विभिन्न आयु वर्गो में 55.4 प्रतिशत जनजाति साक्षरता है वही अध्ययन से स्पष्ट होता है ग्रामीण क्षेत्र में महिलायें 58.19 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 81.43 प्रतिशत है। इस प्रकार कुल जनजातीय जनसंख्या में महिला साक्षरता 60.64 प्रतिशत है। परिणामस्वरूप महिलायें कार्यषील जनसंख्या में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। प्राय: जनजाति कांकेर जिल-तहसील के गांवों में निवासरत है। इसमें जनसंख्या के आधार पर गांवो का चयन कर 425 परिवारों को न्यादर्ष निवास कर रहें जनजातियों को आधार मानकर अध्ययन किया गया है। कुल जनसंख्या 1800

उसमें 884 पुरुष और 916 महिलायें रहती है। 0-6 आयु वर्ग के बच्चे 212 कुल जनसंख्या 11.78 प्रतिशत है। लिगानुपात 1036 व साक्षरत दर 72.80 प्रतिशत है।

सारणी : 6

जनगणना 2011 के अनुसार

विवरण	कुल	पुरुष	महिला
कुल घरों की संख्या	425	–.	–
जनसंख्या	1800	884	916
बच्चे (0–6)	212	107	105
जनजातियां	867	430	437
साक्षरता	72.8 प्रतिशत	83.27 प्रतिशत	62.76 प्रतिशत
कुल कर्मी	819	551	268
मुख्य कर्मी	818	–	–
सीमान्त कर्मी	1	–	–

वितरण

छत्तीसगढ़ में लगभग 42 जनजातियां एवं उपसमुह विभिन्न भागों में निवास करती है। सामान्य रूप से जनजाति पूरे भारतवर्श में पाई जाती है। .

प्रयुक्त सामग्री एवं शोध प्रविधियां :-

शोध क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन हेतु 9 ग्रामों का चयन जनजातीय जनसंख्या की अधिकता को आधार मानकर किया गया है, जो छत्तीसगढ के कांकेर जिला के अंतर्गत तहसीलों में स्थित है।

शोध प्रविधियां

प्रस्तुत अध्ययन के उत्तरदाताओं की सामाजिक आर्थिक पृष्ठ भूमि से संबंधित तथ्यों को एकत्रित किया है। इसके अंतर्गत हमने-ग्राम परिचय, परिवार के अनुसूची और विशय से संबंधित कार्य के लिए निम्नाकिंत प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

1. निदर्शन
2. आकड़ों का संतुलन
3. साक्षात्कार
4. अनुसूची
5. व्यैक्तिक अध्ययन
6. अवलोकन एवम् विश्लेषण
7. प्रलेख
8. द्वितीयक संमको का उपयोग

तकनीकी का उपयोग

महिला एवं पुरुषों की कार्य सहभागिता समाजिक, आर्थिक क्षेत्रों का अध्ययन द्वारा लिया गया।

शोध आकार

गांवों के कुल 425 परिवारों में से 314 व्यक्ति को निर्देशित किये गये जो कि इन 9 गांवों की संपूर्ण जनसंख्या का 10-04 प्रतिशत है।

सारणी : 7

आयु के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

vk;q ¼o'kksa esa½	vko`fRRk	izfr'kr
30+40	175.84	56.00
40+50	87.92	28.00
50+60	50.24	16.00
dqy	314.00	100.00

विश्लेषण : इन गांवों से जनजातियों से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् निम्नानुसार जानकारियां प्रस्तुत है।

सारणी : 8

परिवार का स्वरूप

Øekad	ikfjokfjd izd`fr	vkd`frd izfr'kr
1—	संयुक्त	30—76
2—	एंकाकी	72—25
कुल योग	कुल परिवार	42

सारणी का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि कुल चयनित निदर्श परिवारों में मात्र 30-76 प्रतिशत सयुक्त परिवार हैं जबकि 72-25 प्रतिशत परिवार एकाकी है। एकाकी परिवार की यह संख्या परिवार में स्त्री की अधिकतम जिम्मेदारी के क्रियान्वय-निर्वहन को बतलाता हैं।

सारणी : 9

परिवार में सदस्यों की संख्या

पुरुष-स्त्री और बच्चों के आधार पर 200 उत्तरदाताओं के विचारों का वर्गीकरण

lnL;	vkd`fr	izfr'kr
पुरुष	69	34.50
स्त्री	65	32.00
बच्चे	66	33.00
योग	200	100.00

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि परिवार में 34.50 पुरुष सदस्य है जो अधिकतम है।

सारणी : 10

मकान के प्रकार के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

edku dk izdkj	**vkof̀fr**	**izfr'kr**
कच्चा	**120**	**60**
पक्का	**20**	**10**
क्च्चा पक्का	**30**	**15**
कोठी	**20**	**10**
झोपड़ी	**10**	**5**
योग	**200**	**100**

उक्त सारणी से ज्ञात होता है कि उत्तरदाता का मकान कच्चा 80 प्रतिशत है। जबकि अन्य मकानों का प्रकार बहुत कम है। इससे स्पष्ट होता है कि गांव अभी विकासपथ पर धीरे धीरे बढ़ रहा है।

सारणी : 11

स्त्रियों और पुरुषों के विभिन्न आयु समुहों में कार्यों की सहभागितादर घर संबंधित क्रियाकलाप (प्रतिशत में)

Øe l[;k	**dk;l**	**cPp ¼5&14½**		**0;Ld ¼15&49½**		**ik< ¼50 d Åij½**	
		fL=;k	**iq:"k**	**fL=;k**	**iq:"k**	**fL=;k**	**iq:"k**
1.	खाना पकाना	47—5 1/4 3 1/2	—	84—64 1/4 5—3 1/2	5—08 1/4 2 1/2	14—14 1/4 2 1/2	13—08 1/4 1 1/2
2	घर की सफाई	35 1/4 2 1/2	—	87—07 1/4 51 1/2	18—32 1/2 8 1/2	37—79 1/4 4 1/2	18—28 1/4 2 1/2
3	बर्तनों की सफाई	60 1/4 4 1/2	—	91—32 1/2 44 1/4	6—12 1/4 3 1/3	66—66 1/4 12 1/2	9—091/41 1/2
4	पीने का पानी	10—50 1/4 11/2	40—65 1/4 5 1/2	79—5 1/4 49 1/2	24—48 1/412 1/2	27—77 1/4 5 1/2	25—25 1/43 1/2
5	ईधन संग्रहण		52—3 1/4 7 1/2	60—24 1/4 32 1/2	63—26 1/430 1/2	5—5 1/4 1 1/2	33—33 1/4 4 1/2
6	बच्चों की देखभाल	25 1/4 2 1/2	—	80—5 1/4 45 1/2	24—48 1/2 10 1/4	70—18 1/4 11 1/2	16—161/42 1/2
7	कपड़े धोना	10	64—64 1/4 8 1/2	46—67 1/4 22 1/2	75—51 1/435 1/2	80—82 1/4 16 1/2	—
8	कपड़े सीना	48 1/4 13 1/2	—	31—82 1/4 17 1/2	10—20 1/4 5 1/2	75—75 1/4 14 1/2	60—60 1/4 7 1/2
9	पशुओं की देखभाल	37—5 1/4 3 1/2	43—68 1/4 6 1/2	43—07 1/2 21 1/4	76—57 1/4 37 1/2	64—64 1/4 12 1/2	30—80 1/4 8 1/2
10	जानवरों को चारा चराना	52 1/4 4 1/2	—	82—14 1/4 46 1/2	60—22 1/4 30 1/2	62—22 1/4 12 1/2	70—70 1/4 9 1/2
11	बांस का संग्रहण	37—5 1/4 3 1/2	—	90—39 1/4 46 1/2	20—381/4101/2	75—75 1/4 14 1/2	9—09 1/4 1 1/2
12	आग जलाना	—	—	66—07 1/4 35 1/2	89—77 1/4 45 1/2	38—82 1/4 7 1/2	23—23 1/43 1/2
13	घरेलु खरीददारी	—	—	75—55 1/4 44 1/2	6—12 1/4 3 1/2	35—36 1/4 8 1/2	50—50 1/4 4 1/2
14	बुर्जगों की देखभाल	—	—	10—74 1/4 6 1/2	90—85 1/4 45 1/2	38—88 1/4 5 1/2	70—70 1/4 6 1/2

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह बात तो स्पष्ट होती है कि जनजातीय स्त्रियों में 5-14 वर्श की लड़कियां घरेलू क्रियाकलापों को निभाते हुए आर्थिक क्रियाकलापों के अंतर्गत जंगली उत्पाद संग्रहण व अन्य आर्थिक क्रियाकलापों में अपनी सहभागिता आर्थिक लाभ के लिए निभा रही है। जिनकी आर्थिक गणना अकार्यषील आयु वर्ग में है।

सारणी : 12

लिंग के आधार पर कार्यों की सहभागिता दर-घर संबंधित क्रियाकलापों के अंतर्गत (प्रतिशत में)

Øekd	dk;l	i|:"k	fL=;k
1	खाना पकाना	3–57	87–37
2	घर की सफाई	7–07	80–81
3	बर्तनों की सफाई	5–30	79–56
4	पीने का पानी	30–23	60–66
5	ईधन संग्रहण	35–04	34–86
6	बच्चो की देखभाल	45	60
7	कपड़े धोना	18	95
8	कपड़े सीना	1–65	95–19
9	पशुओं की देखभाल	60	75
10	जनवरो को चाराना चारा व्यवस्था	1–04	86–79
11	बास का संग्रहण	39	50
12	आग जलाना	56–50	30–38
13	घरेलू खरीदारी	28–06	64–95
14	बुर्जगों की देखभाल	40–35	60–66
15	मेहमानों की देखभाल	34–28	58–66
16	सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी	79–37	30–79

अध्ययन के विष्लेषण से स्पष्ट हो रहा है कि स्त्रियों की सहभागिता दर पुरुषों की अपेक्षा 85 प्रतिशत से अधिक है। खाना बनाने से लेकर बुर्जुगों व मेहमानो की देखभाल तक स्त्रियां अपने जिम्मेदारी का निर्वहन एवं सहभागिता के साथ करते है।

सारणी : 13

वनोपजों का संग्रहण में स्त्रियों की सहभागिता (माह के आधार पर)

क्रमांक	माह का नाम		उपलब्ध वनोपज
	हिन्दी माह	अंग्रेजी माह	
1	चैत्र	मार्च–अप्रेल	तेंदूपत्ता, महुआ संग्रहण
2	बैशाख	अप्रेल–मई	तेंदूपत्ता, महुआ, चार संग्रहण
3	जेठ	मई–जून	तेंदूपत्ता, महुआ, बीज, चार, सरई, संग्रहण
4	आषाढ़	जुन–जुलाई	कृशि कार्य
5	सावन	जुलाई–अगस्त	कृशि कार्य, मजदूरी, झाडू निर्माण,
6	भादों	अगस्त–सितम्बर	कृशि कार्य, मजदूरी, झाडू निर्माण,
7	क्वांर	सितम्बर–अक्टूबर	कृशि कार्य, मजदूरी,
8	कार्तिक	अक्टूबर–नवम्बर	कृशि कार्य, मजदूरी, शिल्प निर्माण
9	अगहन	नवम्बर–दिसम्बर	कृशि कार्य, मजदूरी, शिल्प निर्माण
10	पूस	दिसम्बर–जनवरी	कृ ा कार्य, मजदूरी, बर्तन निर्माण
11	माघ	जनवरी–फरवरी	कृशि कार्य, मजदूरी, बर्तन निर्माण
12	फागुन	फरवरी–मार्च	कृशि कार्य, मजदूरी, बर्तन निर्माण

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मार्च से जुलाई तक का महीना वनोपज संग्रहण होता हैं इसमें सफाई विक्रय इत्यादि कार्यो का संपादन किया जाता है। इसके साथ ही साथ मौसम के अनुसार ये लोग अपने अर्थोपार्जन हेतु कार्यो का संचालन करते रहते है। जिनसे इनका जीवनयापन चलता रहता है। इस संपूर्ण कार्य में स्त्रियों व बच्चों की संख्या व भूमिका अधिक होती है। इस तरह वर्श भर अर्थोपार्जन में जनजातिय स्त्रियों की संलग्नता रहती है। जिससे यह प्रतीत होता है कि जनजातिय स्त्रियां कृषि एवं मजदूरी वन्य उत्पादों के संग्रहण व विक्रय करने से भी इनकी आय का एक बड़ा हिस्सा इन्हें प्राप्त होता है।

सारणी 14

जनजाति लिंग के आधार पर आर्थिक क्रियाकलापों में सहभागिता

Øekd	dk;Z	lgHkkfxrk nj ¼izfr'kr esa½	
		iq:ष	L=h
1	वनोपज संग्रहण एवं विक्रय	50.18	50.82
1—1	जंगली उत्पाद	37.57	56.42
1—2	विक्रय	56.76	35.18
2	कृषि कार्य	45.13	74.86
2—1	हल चलाना	67.39	22.52
2—2	बीज बोना	57.65	34.29
2—3	रोपा लगाना	15.80	86.15
2—4	खरपतवार	26.21	74.81
2—5	फसल काटना	29.91	76.09
2—6	मिंजाई	82	16
3	बांस की वस्तुएं बनाना	70.60	42.09
4	मजदूरी	53.95	52.08
5	नौकरी	69.05	39.5
6	निर्माण कार्य	—	100

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट होता है कि वनोपज संग्रहण में पुरुषों में (38-60) प्रतिशत की अपेक्षा स्त्रियों की सहभागिता (53-42) अधिक है परंतु संग्रहण के पश्चात् विक्रय में पुरुषों की कार्य सहभागिता दर (62-82) प्रतिशत स्त्रियों की (29-09) प्रतिशत सहभागिता दर से अधिक हो।

आर्थिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी

जनजातिय महिलायें सूर्योदय से ही खेतों में काम करती है तो घरेलु कामकाज, मजदूरी तथा स्थानीय बाजार में वनोपज बेचने का काम करती है। इन परिवारों के पास भूमि स्वामित्व कम है, भूमि उपजाऊ नही है। महिलायें खेत में मजदूरी करती है। इसके अलावा बांस के लठठों से ठोकरी, मिट्टी के घड़े बनाती है। परिवार की अर्थव्यवस्था का अधिकांश भाग इन महिलाओं की अर्जित आय पर निर्भर करता है। किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक स्थिति को उसकी आय तथा जीविकोपार्जन प्रभावित करती है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनजातियां वनो पर निर्भर रहती है। बांस जैसे वृक्ष से आदिकाल से अब तक घर बनाते आ रहे है। बांस के ऊपर मिट्टी छाब देते है। जिससे इसमें मजबूती आती है। महुआ वृक्ष बहुत ही पसंदीदा वृक्ष है। जिससे वे पेय पदार्थ निकालते है। और उसे बेचकर आम प्राप्त करते है। और विषेश अवसर पर ''पेय मंद'' तैयार करते है। ''कोसा'' का भी संग्रहण करके स्थानीय घर बाजार में आयें व्यापारियों को बेचते है। साल तेंदूपत्ता संग्रहण कर बेचा जाता है। चिरोंजी, शहद, सरई के पत्तों, पलास, लाख, गोंद आदि का उपयोग अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा कर विक्रय भी करते है। जनजातियां आज

भी मिट्टी के बर्तन तथा खाने के लिए पेड़ों से प्राप्त पत्तों को दोने पत्तें का आकार देकर इस्तेमाल करती है। जनजाति में अनेक वन्य वृक्षों का प्रयोग विभिन्न प्रकार बीमारियों के औशधियों के रूप में भी करते है। जैसे काली मुसली, सफेद मुसली, चिरायता आदि इनका निजी उपयोग के साथ-साथ विक्रय भी करते है। वनवृक्षों को छालों से ये रस्सी का निर्माण करते है। इसके अतिरिक्त इमली, आंवला, बेहड़ा बीज, कुसुम आदि संग्रहणकर विक्रय करके आय के हिस्सों के स्त्रोत बनाते है। इन सब कार्यों में महिलाओं की सहभागिता अधिक रहती है।

निष्कर्ष

विश्लेशण के आधार पर जनजातियों में इस अध्ययन से परिवारों में 56-15 प्रतिशत एकांकी परिवार है। क्योंकि ये परिवार प्राय: षिक्षित होती जा रही हैं। और आधुनिकता से जुड़ रही है। ऐसे परिवारों में स्त्रियों की स्थिती बहुत अच्छी होती है। अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के साथ जिम्मेदारी पूर्ण आर्थिक कार्यो का निश्पादन सलंग्न रहकर करती है। मौसमी उतार-चढ़ाव के कारण फसल अच्छा न होने पर ये महिलायें देशांतरण कम करती है। और घर पर रहकर ही वनों से प्राप्त चीजों का विक्रयकर आर्थिकोपार्जन कर घर चलाती है। जैसे-झाड़ू, निर्माण, मिटटी के बर्तन, बांस के बने शिल्प बनाती है। घरेलू कार्यो में कार्यशील तथा अकार्यशील आयु वर्ग की स्त्रियां संलग्न होकर करती रहती है जिनसे इनके परिवार की आर्थिक सुढ़ृता बनी रहती है। आर्थिक संरचना मुख्यत: कृषि व जंगली उपज पर निर्भर है इस कारण यें वनों पर अधिक आश्रित है। उससे संबंधित क्रियाकलापों का निश्पादन समयानुसार करते रहते है।

अध्ययन से स्पष्ट है कि जिला-कांकेर में जनजातिं स्त्रियों की स्थिति अच्छी होती जा रही है। वर्तमान में कई नवयुवतियां षिक्षण प्राप्त कर नौकरी में आ रहे है। और उनसे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है।

संदर्भ एवं ग्रंथ सूची

1. एल्विन वेरियर (1991) : द अगारिमा वन्य प्रकाशन नई दिल्ली पृ. क्र.58-59
2. त्रिपाठी के. एच. चन्द्राकर 2001 : छत्तीसगढ़ का भूगोल शारदा प्रकाशन बिलासपुर भाग 1 पृ. क्रं. 79-80
3. मिश्र जे.पी. (2003) : जनांकिकी, साहित्य भवन, पब्लिकेशन आगरा पृ. क्र. 77
4. तिवारी बी. के. (2001) : छत्तीसगढ़ की जनजातियां, हिमालया पब्लिसिंग हाउस पृ. क्रं. 44-45
5. Census to India (2011) : Chhatishgarh at the galance.
6. Ministrey of tribal development M.P. Govt. sub plan : 2005 p-1
7. जैन, श्रीचन्द्र (1980) : ''आदिवासियों के बीच" कमल प्रेस, दिल्ली पृ. क्रं. 37-39

ग्रामीण विकास की कतिपय प्रमुख योजनाओं का वित्तीय समावेषन की दृष्टि से मूल्यांकन

ममता कुमारी

रिसर्च स्कॉलर, तिलका मांझी भागलपुर यूनिवर्सिटी

डॉ० उदय प्रकाश सिन्हा

विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र
तिलका मांझी भागलपुर यूनिवर्सिटी

सारांश

ग्रामीण विकास से तात्पर्य आर्थिक सुधार और बडा सामाजिक बदलाव से है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों की बढी हुई भागीदारी, योजनाओं का विकेन्द्रिकरण, भूमि सुधारों को बेहतर तरीके से लागू करना और ऋण की आसान उपलब्धि करवाकर लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का लक्ष्य होता है।

प्रारंभ में विकास के लिए मुख्य जोर कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और संबंधित क्षेत्रों पर दिया गया था। बाद में वह समझने पर कि त्वरित विकास केवल तभी संभव है जब सरकारी प्रयासों के साथ-साथ पर्याप्त रूप से जमीनी स्तर पर लोगों की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भागीदारी हो, की धारणा बदल गई है। ग्रामीण विकास विभाग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नालिखित बडे कार्यक्रम चलाये जा रहे है- मनरेगा, एनआरएलएम, आईएवाई पीएमजीएसवाई, एनएसएपी, एसएजीवाई, आदि। इसके अतिरिक्त मंत्रालय के पास ग्रामीण पदाधिकारियों की क्षमता के विकास, सूचना, शिक्षा और संचार और निगरानी व मूल्यांकन के लिए भी योजनाएं है। इन योजनाओं के सफल क्रियान्वयन से यह स्पष्ट होता है कि सरकार द्वारा ग्रामीण विकास को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

परिचय

भारत की अधिकतर जनसंख्या गांवो में रहती है। गांवो के विकास हेतु सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की विकास एवं कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही है। इन योजनाओं का उद्देश्य मुख्यत: गांव का आर्थिक, सामाजिकव ढांचागत विकास करना है ताकि गांवो में रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो। इसके लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार इस दिशा में निरंतर प्रयासरत है। अत: ग्रामीण विकास हेतु सभी पक्षों पर समुचित ध्यान देना आवश्यक है। भारत के विकास के लिए जिन क्षेत्रों में नई और सार्थक पहल करने की आवश्यकता बनी हुई है, वे इस प्रकार है।

- साक्षरता, विशेषकर नारी साक्षरता, शिक्षा और कौशल का विकास।
- स्वास्थ्य जिसमें स्वच्छता और जन स्वास्थ्य दोनो शामिल है।
- भूमि सुधार।
- प्रत्येक क्षेत्र के उत्पादक संसाधनों का विकास।
- आधारिक संरचना का विकास जैसे- बिजली, सिंचाई, साख, विपणन, परिवहन सुविधाएं - ग्रामीण सडकों के निर्माण सहित राजमार्ग की पोषक सडके बनाने, कृषि अनुसंधान विस्तार और सूचना प्रसार की सुविधाएं।

- निर्धनता निवारण और समाज के कमजोर वर्गो की जीवन दशाओं में महत्वपूर्ण सुधार के विशेष उपाय, जिसमें उत्पादक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के लोग जो कृषि एवं गैर कृषि गतिविधियों में संलग्न है, उन्हें उत्पादकता बढाने में विशेष सहायता की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें सरकारी योजनाओं द्वारा सत्यार्थ किया जाता रहा है।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास हेतु शुरू की गई योजनाएं

हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों का उत्थान करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय और भारत सरकार ने ग्रामीण विकास विभाग और भूमि संसाधन विभाग के समन्वय से विभिन्न योजनाओं की शुरूआत की है। ये योजनाएं ग्रामीण भारत के नागरिकों को लाभ पहुंचाने के लिए सूत्रबद्ध की गई है, जो अंतत एक लंबे समय के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का मजबूत स्तंभ बनेगी।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए शुरू की गई कुछ महत्वपूर्ण योजनाएं है -

र्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एस जी एस वाई)/राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन -

स्वर्णजंयती ग्राम स्वरोजगार योजना, जिसे राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के रूप में फिर से डिजाइन किया गया है, 2011 में शुरू की गई थी। इसे आजीविका के नाम से भी जाना जाता है। इस योजना का उद्देश्य पूरे देश में महिलाओं के स्व-सहायता मॉडल को सशक्त बनाना है। इस योजना के तहत, सरकार 7प्रति0 की ब्याज दर पर 3 लाख रू0 का ऋण प्रदान करती है जिसे पुर्नभुगतान के समय 4प्रति0 तक कम किया जा सकता है। इस योजना को विश्वबैंक द्वारा सहायता प्रदान की गई थी और गरीबी हेतु प्रभावी व कुशल संस्थागत प्लेटफार्म बनाने का लक्ष्य रखा था। इससे वित्तीय सेवाएं प्राप्त करने और उनमें सुधार करके घरेलु आय में वृद्धि करने में भी मदद मिली। एनआरएलएम गरीबों की क्षमताओं का उपयोग करने में भी मदद करता है ताकि वे देश अर्थव्यवस्था के विकास में भाग ले सके। इसका उद्देश्य वर्ष 2021-22 तक 8-10 करोड गरीब ग्रामीण परिवारों को ैभ्ळ और गांवो तथा इससे उपर के स्तरो के संघो में संगठित करके लाभान्वित करना है।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशन योजना :-

ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं को रोजगार के लायक बनाने के लिए एक कौशल विकास कार्यक्रम के रूप में इस योजना की शुरूआत की गई। यह योजना 25 सितंबर 2014 से अस्तित्व में है। इसका उद्देश्य 15-35 आयु वर्ग के युवाओं को लाभु पहुंचाना है। वर्ष 2014-15 तक 52, 000 उम्मीदवारों को कुशन बनाया गया था।

रोशनी : आदिवासियों के लिए कौशल विकास योजना -

7 जून 2013 को आदिवासी युवाओं को रोजगार प्रदान करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 24 नक्सल प्रभावित जिलों में एक नयी कौशल विकास योजना का शुभारंभ किया था। जिसे ''रोशनी'' के नाम से जाना जाता है। जिसके तहत 10-35 आयु वर्ग के 5000 युवाओं को तीन साल तक प्रशिक्षण और रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है, इस योजना के लाभार्थियों में से 50प्रति0 केवल महिलाएं होगी। यह योजना ''हिमायत परियोजना मॉडल'' पर आधारित है जो जम्मु-कश्मीर में शुरू किया गया था। यह शुरूआती तौर पर छतीसगढ के सुकमा और झारखण्ड के प0 सिंहभूम जिले में लागू किया गया था।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) -

2005 के राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के अनुसार, किसी भी ग्रामीण परिवार के एक वयस्क को 100 दिनों की रोजगार गारंटी प्रदान की जाती है जो एक वित्तीय वर्ष में अकुशल मैन्युल काम करने के इच्छुक है। यह अधिनियम काम करने तथा गरिमा के साथ जीवन जीने को मौलिक अधिकार के रूप में संबोधित करता है। अगर किसी व्यक्ति को 15 दिनों के भीतर नौकरी नहीं मिलती है तो वह बेरोजगारी भत्ता पाने के योग्य है। इस योजना में व्याप्त भ्रष्टाचार को कम करने के लिए संशोधन शुरू किए गए है।

प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)/इंदिरा आवास योजना :-

2016 में प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के रूप में संशोधित इंदिरा आवास योजना भारत में ग्रामीण गरीब लोगों को आवास प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा शुरू की गई एक कल्याणकारी योजना है। इस योजना का लक्ष्य 2022 तक सभी को आवास प्रदान करना है। घरो के निर्माण का खर्च केन्द्र और राज्य द्वारा साक्षा किया जाएगा। यह योजना दिल्ली और चंडीगढ को छोडकर पूरे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लागू की गई है। इस योजना के तहत पक्के घरो में शौचालय, बिजली कनेक्शन, पेयजल, एलपीजी कनेक्शन जैसी आदि बुनियादी सुविधाएं होगी।

मुद्रा बैंक योजना -

इस योजना की शुरूआत 8 अप्रैल 2015 को की गई। इसके तहत मुद्रा बैंक छोटे उद्यमियों को 10 लाख तक क्रेडिट देती है। इसमें तीन विकल्प है शिशू में 50 हजार तक का लोन, किशोर में 50 हजार से 5 लाख तक और तरूण में 5 लाख से 10 लाख तक का लोन दिया जाता है, इस लोन की खास बात यह है कि इसमें न कोई प्रोसेसिंग फीस और न ही कोई गांरटी की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही इसमें ब्याज दर भी कामी कम है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना :-

इस योजना का आरंभ 13 जनवरी 2016 को किया गया है। यह योजना उन किसानों पर प्रीमियम का बोझ कम करने में मदद करेगी जो अपने खेती के लिए ऋण लेते है। और खराब मौसम से उनकी रक्षा भी करेगी। किसानों द्वारा सभी खरीफ और रबी फसलों के लिए क्रमशः 2प्रति0 और 1.5 प्रति0 का एक समान प्रीमियम का भुगतान किया जाना है वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए यह 5प्रति0 होगी। किसानों द्वारा भुगतान किए जाने वाले प्रीमियम की दरे बहुत कम है और शेष प्रीमियम का भुगतान सरकार द्वारा किया जाएगा ताकि किसी भी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं में फसल हानि के लिए किसानों को पूर्ण बीमित राशि प्रदान की जाए।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना :-

इस योजना को 1 दिसम्बर 2018 से पूरे देश में लागू किया गया। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना के तहत देश के छोटे किसानों को सीधे उनके बैंक खाते में प्रत्येक वर्ष 6000रू0 की सहायता राशि दी जाएगी। इस योजना के प्रारंभ में कमजोर किसान परिवार जिनके पास 2 हेक्टेयर या उससे कम जमीन है तो उन्हें 6000रू0 प्रति वर्ष की दर से सहायता दिए जाने का फेसला लिया गया था लेकिन अब इसमें सभी किसानों को इस योजना का लाभ मिलेगा। इस योजना से किसानों की वित्तीय स्थिति में सुधार होगा।

निष्कर्ष

ग्रामीण विकास हेतु संचालित इन योजनाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास का आशय क्षेत्र विशेष के परिपेक्ष्य में ग्रामीण जनसंख्या के सर्वागीण संतुलित विकास से है। भारत सरकार का ग्रामीण विकास मंत्रालय ऐसी अनेक योजनाएं क्रार्यान्वित कर रहा है जिनका उद्देश्य ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है। इन योजनाओं का उद्देश्य गरीबी का पूर्ण रूप से उन्मूलन तथा तीव्र सामाजिक आर्थिक विकास करना है। तदानुसार समाज के अत्यंत उपेक्षित लोगों पर केन्द्रित बहुआयामी नीति के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो में चतुर्दिक आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्त्तन लाना है। ग्रामीणो की आधारभूत आवश्यकताओं एवं जीवनस्तर में सुधार लाने की एक ईमानदार कोशिश की जा रही है।

संदर्भ सूची

1- www.india.gov.in
2- www.pmkisan.gov.in
3- www.minorityaffairs.gov.in
4- Economic Times, 1 oct 2018
5- https:èèaajeevika.gov.in
6. ग्राम विकास कार्यक्रम, Gullybaba Publishing House Pvt. Ltd, January 2018, ISBN 10-938392148x, ISBN-13-978-9383921485.

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उदारवादी राष्ट्रवाद का योगदान

अरविन्द कुमार सिंह

शोध अध्येता, स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० ओम प्रकाश राय

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, महाराजा कॉलेज, आराए वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सन् 1885 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की सथानपा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण शुरूआत थी। काँग्रेस पहली अखिल भारतीय राष्ट्रीय संस्था थी। प्रारम्भिक वर्षो में काँग्रेस के सदस्य अधिकतर मध्यमवर्गीय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय थे। ये लोग भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग मानते थे तथा संवैधानिक प्रणाली के तहत सुधारों के हिमायती थे। इनके तकनीक, मांगों को देखते हुए ही राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारम्भिक चरण को उदारवादी चरण कहा जाता है। इस चरण के मुख्य नेता थे डब्लू0 सी0 बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता आदि। प्रारंभिक वर्षो में काँग्रेस को ए0 ओ0 हयूम, जार्ज यूले, वेडरवर्न, हेनरी कॉटन जैसें अंग्रेजों का भी सहयोग मिला।

उदारवादी चरण के मुख्य उद्देश्य थे:-

1. भारतीय जनता को आधुनिक राजनीति का प्रशिक्षण देना।
2. विभिन्न क्षेत्रों की जनता के बीच कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों पर वैचारिक आदान प्रदान को प्रोत्साहन देना।
3. एक अखिल भारतीय नेतृत्व का विकास करना।
4. एक राष्ट्रीय मंच का गठन करना तथा विभिन्न क्षेत्रों की जनता के बीच कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों पर जनमत का निर्माण करना।

उदारवादी नेताओं की प्रमुख मागें थी।

राजनैतिक एवं प्राशासनिक मांगें

- भारत में राजनीतिक सुधार किया जाए।
- भारत में प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली की स्थापना की जाए।
- भारत के प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए।
- विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ायी जाए तथा इसमें गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या को बढाया जाए।
- सिविल सेवा परीक्षा का भारतीयकरण किया जाए तथा परीक्षा देने की उम्र सीमा बढ़ायी जाए एवं परीक्षा भारत में भी हो।
- सेना में भारतीयों को ऊँचे पदों पर नियुक्ति की जाए।

आर्थिक मांगें

- भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास किया जाए तथा भारतीय उद्योगों के साथ भेदभाव नहीं किया जाए।
- कर प्रणाली तथा लाइसेंस प्रणाली उदार हो।
- सीमा शुल्क के माध्यम से भारतीय उद्योगों को सुरक्षा दी जाए।
- भारत से होने वाले धन के निश्कासन को नियंत्रित किया जाए।
- साम्राज्यवादी युद्धों, रेलवे, सड़क निर्माण के कारण बढ़ते खर्च एवं करों को कम करने की मांग की गयी।
- निरन्तर बढ़ रही लगान दर एवं करों के बोझ को कम करने की मांग की गयी।
- कृषि के वाणिज्यीकरण के खिलाफ आवाज उठाई गयी।

शैक्षणिक मांगें

- आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए। पाश्चात्य एवं अंग्रेजी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाए।

उदारवादी नेताओं ने प्रतिवेदन, स्मारपत्र के द्वारा अपनी मांगों को वायसराय के पास रखा और इनके मांग प्रस्तुत करने का तरीका संवैधानिक था। उदारवादियों ने अपने सलाना अधिवेशन में कोई विशेष मांगे प्रस्तुत नहीं की। परन्तु डब्लू0 सी0 बनर्जी ने घोषणाााा किया कि ''हमलोगों का उद्देश्य है भारत का एक राजनैतिक पहचान बनाना। भारत में जागरूकता है, अभी कुछ लोग राजनैतिक सुधार के बारे में जानते है, परन्तु सभी तक इसे पहुँचाना है। साथ ही, हम राजभक्त है। अत: संवैधानिक प्रणाली को बचाये रखना है। एक बात पर विशेष ध्यान देना है कि आपसी मतभेद न हो।''

उदारवादियों का मानना था कि एकाएक ज्यादा लोकप्रिय होना ही जरूरी नहीं है वरन् उसको संभालना भी जरूरी है। उन्होनें किसी भी अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार की आलोचना नहीं की और न ही स्वराज की मांग रखी। उनका मानना था कि स्वराज मांगने से नहीं मिलता है वरन् इसके लिए प्रयास करना जरूरी है। ये ब्रिट्रिश सरकार के साथ सहयोग में विश्वास रखते थे। दादाभाई नौरोजी का कहना है कि हमलोग पुरूष है और पुरूष के समान राजभक्त होने की घोषणाा करते हैं।

उदारवादी युग की प्राप्त उपलब्धियों पर ध्यान देने पर हम देखते हैं कि इनकी प्रत्यक्षत: एकमात्र उपलब्धि रही – 1892 का भारतीय परिषद् अधिनियम का पास होना। उदारवादी नेताओं ने निरन्तर प्रजातांत्रिक व्यवस्था, विधानसभा के विस्तार, चुनाव की मांग की। यह मांग 1892 के अधिनियम में दिखाई पड़ता है। प्रथम बार अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन प्रक्रिया का समावेश किया गया। इसमें चुनाव शब्द नहीं था। लेकिन केन्द्रीय विधान परिषद् में गैर – सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी। इन सदस्यों का निर्वाचन प्रांतीय विधान परिषद् करेगी और तब वायसराय का उनका मनोनयन करना था। अभी भी वायसराय की तानाशाही वर्तमान थी, लेकिन उदारवादियों की मांग पूरी हो रही थी।

उदारवादियों को उपलब्धियाँ अप्रत्यक्ष रूप से काफी महत्वपूर्ण है। उन्होनें राष्ट्रीय चेतना को फैलाने में विशेष योगदान दिया। काँग्रेस के हर अधिवेशन में इनकी संख्या बढ़ती गयी। 1905 तक भारत में राष्ट्रीय चेतना अच्छी खासी बढ़ गयी थी। राष्ट्रवाद का विकास उच्च मध्यमवर्ग से बढ़कर निम्न मध्यमवर्ग तक पहुँच चुका था। उदारवादियों ने राजनैतिक एकता को बहुत बड़ा उद्देश्य बनाया। देश के हर भाग में काँग्रेस के अधिवेशन किये जाते थे ताकि सम्पूर्ण देश के लोग इस आंदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय एकता के प्रति जागृत हों।

काँग्रेस ने धर्मनिरपेक्ष राजनीति पर बल दिया। उसने यह निर्णय लिया था कि अगर कोई प्रस्ताव किसी सम्प्रदाय से संबंधित है और उस समुदाय का बहुमत नहीं माने तब वह प्रस्ताव काँग्रेस के पटल पर नहीं रखा जाएगा। दादाभाई नौरोजी ने कहा कि काँग्रेस राजनैतिक मुद्धा को वरीयता देगी अन्य को नहीं। धर्म निरपेक्षता की बात उदारवादी युग से अन्त तक बनी रही। सै"यद अहमद खाँ भी इसे तोड़ने में सफल नहीं हुए।

उदारवादी नेताओं ने प्रगतिशील समाज की कल्पना की। उन्होनें प्राचीन समाज की पुनरावृति को नहीं स्वीकारा। उन्होनें आधुनिक यूरोप की समृद्ध लोकतांत्रिक एवं वैज्ञानिक संस्कृति का भारत में प्रचार का समर्थन किया। उन्होनें आधुनिक मूल्य के आधार पर समाज के नियम बनाए। सम्मति आयु अधिनियम का उदारवादियों ने सर्मथन किया। यद्यपि यह भारतीय सामाजिक नियम में हस्तक्षेप था।

उदारवादी नेताओं ने भारतीय राष्ट्रवाद की नींव को मजबूत किया। काँग्रेस के तीसरे अधिवेशन से ही उदारवादियों और सरकार के बीच संघर्ष दिखाई पड़ने लगा। वस्तुत: लार्ड डफरिन काँग्रेस को सलाहकारी संस्था के रूप में प्रयुक्त करना चाहता था। वह वे राजनैतिक एकता आदि शब्दों के प्रयोग के विरूद्ध था। वह काँग्रेस को ''सूक्ष्मतत्वों का सम्मेलन'' कहता था। धीरे-धीरे काँग्रेस के पाँचवें अधिवेशन के बाद महारानी की जय का नारा भी खत्म हो गया। सन् 1888 से ही होमरूल, स्वाराज की बात शुरू होने लगी थी। पी0 आनन्दचार्लू, क्रिस्टोफर दास ने औपचारिक रूप से तो नहीं परन्तु सम्मेलन समारोह में स्वशासन की बात शुरू कर दी थी।

उदारवादी नेताओं की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि इन्होनें साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू की कड़ी आलोचना करके लोगों में आर्थिक चेतना जागृत की। दादाभाई नौरोजी ने 1892 के बाद सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना शुरू कर दी एवं पॉवर्टी ऑफ इंडिया नाम से कई लेख लिखे। उन्होनें धन निश्कासन के रूप में ब्रिट्रिश शोषण को दिखाया। रमेश चन्द्र दत्ता ने भी इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया लिखकर सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना की। एम0 जी0 रानाडे ने भी लेखों के द्वारा अंग्रेजों का आर्थिक शोषण की काफी आलोचना की। दादाभाई नौरोजी ने दिखाया की सन् 1757 से निरंतर अब तक (19वीं सदी के अन्त तक) बड़े पैमाने पर भारतीय धन इंगलैण्ड जा रहा है लकिन इससे भारतीयों को कोई लाभ नहीं हो रहा है। प्लासी युद्ध के पूर्व अंग्रेजो को व्यापार हेतु भारत में पैसा लगाना पड़ता था, परन्तु अब ऐसी बात नहीं है। बंगाल विजय के बाद अन्य क्षेत्र पर प्रभाव एवं आर्थिक लूट बढ़ता गया। सेना एवं प्रशासनिक अधिकारियों का वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता है। भारत सचिव का वेतन भी भारतीय राजस्व से ही दिया जाता है। सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के गृह व्ययकर लिया जाता है। इन सबका परिणाम है- किसानों की बदहाली और भूमि राजस्व पर बढ़ता बोझ। इस प्रकार काँग्रेस ने किसानों की स्थिति पर चर्चा की। उदारवादी युग में इंगलैण्ड के साथ संघर्ष की प्रक्रिया भी तेज हुई। अत: 1885-1905 का युग ''आर्थिक राष्ट्रवाद का युग'' कहा जाता है। प्रथम बार भारतीयों में यह चेतना आई कि उनका आर्थिक शोषण हो रहा है। अत: धन निश्कासन, का विरोध, अतिरिक्त व्यय में कटौती की मांग होने लगी। दादाभाई नौरोजी ने इसको रोकने के लिए उपाय भी बताए।

देश के औद्योगीकीकरण में काँग्रेस पार्टी की विशेष रूचि थी। 1903 की काँग्रेस कमिटी की एक रिपोर्ट से मालूम चलता है जिसमें विभिन्न जिलों में उत्पादित होने वाली वस्तुओं के बारे में पूछा गया है। 1892 में काँग्रेस ने मदनमोहन मालवीय का प्रस्ताव पास किया कि कमजोर एवं गिरते हस्तशिल्प को पुन:जीवित किया जाए। भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने के विचार से स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल में लोगों की रूची जगाई गई। कई स्वदेशी स्टोर खेले गये। 1896 में महाराष्ट्र में एक शक्तिशाली स्वदेशी अभियान शुरू किया गया, जिसमें विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। साथ ही, औद्योगिक प्रदर्शनियॉ लगाना तो काँग्रेस के वार्शिक कार्यक्रम का एक हिस्सा ही बन गया था। वस्तुत: उदारवादियों की आर्थिक मांगों का मूल आधार यह था कि वास्तविक राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निर्धारण इंगलैण्ड के नहीं वरन् भारत के हितों के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

काँग्रेस की कार्यप्रणाली एवं आदर्शो ने भारत के विभिन्न वर्गो, अंग्रेजों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डाला। परम्परगत सामंत, जमीन्दार वर्ग ने उसे अपनी व्यवस्था के लिए खतरा माना। फलत: यह वर्ग ब्रिट्रिश सरकार की ओर अधिकाधिक चिपक गया। व्यापारी वर्ग की जरूरतें तात्कालिक और स्थायी दोनों थी। ज्यों-ज्यों यह वर्ग स्थायी आवश्यकताओं के विषय में जागरूक होता गया, त्यों-त्यों वह काँग्रेस की ओर आकर्शित हुआ क्योकि काँग्रेस देश के आर्थिक विकास की इच्छुक थी। उदारवादी नेताओं को अभी राजनीतिक रूप जनता पर विश्वास नहीं था। इनका मानना था कि इनमें साम्राज्यवादी शक्ति के विरूद्ध सफलतापूर्वक संघर्ष की क्षमता का अभाव है। आरंभिक राष्ट्रवादी आन्दोलन की सबसे आधारभूत कमी इसका संकुचित सामाजिक आधार था। इसका दायरा सिर्फ पढ़े लिखे शहरी भारतीयों तक ही सीमित था।

काँग्रेस की स्थापना में अंग्रेजों ने सहयोग प्रदान किया था, परन्तु काँग्रेस द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन को बढ़ावा देने से उनका ददृष्टिकोण बदलने लगा। लार्ड डफरिन ने काँग्रेस के साथ साथ ए0 ओ0 हयूम को भी कटु शब्द कहे। उसने काँग्रेस को ''सूक्ष्मसमूह का प्रतिनिधि'' बताया एवं कानून बनाकर सरकारी अधिकारियों द्वारा राजनीतिक संगठनों के लिए धन इकटा करने से रोक लगा दिया। लार्ड कर्जन ने इच्छा व्यक्त की कि वह "काँग्रेस को शांतिपूर्वक मरने में मदद करेंगे"। काँग्रेस के प्रभाव को कम करने के लिए सरकार ने "फूट डालो और राज करो" तथा प्रलोभन की नीति भी अपनायी। नाममात्र के सुधारों द्वारा नरमपंथियों को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया। दूसरी ओर, सैय्यद अहमद खाँ, राजा शिवप्रसाद तथा अन्य को काँग्रेस विरोधी आंदोलन शुरू करने को प्रोत्साहित किया गया। अहमद खाँ ने काँग्रेस का विरोध करने के लिए मोहम्मडन एजुकेशनल कॉन्फ्रेस और यूनाईटेड पैट्रियोटिक

एसोसिएशन नामक दो संगठन बनाए। सरकार शिक्षा और प्रेस पर अंकुश लगाकर राष्ट्रीयता की भावना कुचलने का प्रयास करती रही।

इन परिस्थितियों में काँग्रेस ने जो कुछ हासिल किया वह प्रशंसनीय है। उसने देश में राजनीतिक चेतना को बढ़ाया और राष्ट्रवादी तत्वों को मजबूत किया। साथ ही, उसने महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरूआत की। इसके आधार पर ही इतिहासकार पर्सिवल स्पीयर तथा बिपिनचन्द्र ने कहा है कि काँग्रेस ने महत्वपूर्ण परिवर्तन की नींव डाली।

परन्तु उदारवादियों की इन उपलब्धियों से सभी राष्ट्रवादी संतुष्ट नहीं थे। 19वीं सदी के अन्तिम वर्षों में उग्रवादिता का विकास हुआ। उग्रवादी नेता उदारवादी नेताओं की इन उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं थे। फलत: बीसवीं सदी के प्रथम दशक में उग्रवादियों का दबाव काँग्रेस पर बढ़ता गया।

संदर्भ ग्रंथ

1. अयोध्या सिंह:-भारत का मुक्तिसंग्राम : मैकमिलन : 2006 : पृ0136 - 150।
2. बिपिन चन्द्र:-भारत का स्वतंत्रता संघर्ष - हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय : 1994 - पृ0 41 - 45।
3. वहीं :- पृ0 56 - 62।
4. सं0 रामलखन शुक्ल :-आधुनिक भारत का इतिहास - हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पृ0 481 - 487।
5. शेखर बंधोपाध्याय :- पलासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास - ओरियंट ब्लैकस्वॉन : 2009 : पृ0 247 - 254
6. इंद्र वाचस्पति:- भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन : 2009 : पृ0 63 - 68।
7. वहीं:- पृ0 81 - 83।
8. डॉ0 प्रशान्त दत्त:- आधुनिक भारत एक सर्वेक्षण : नेशनल पब्लिकेशन पटना : 1999 : पृ0 22 - 25।
9. डॉ0 पुखराज जैन:- भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास : साहित्य भवन, आगरा : 1993 : पृ0 37 - 45।
10. बी0 एल0 ग्रोवर यशपाल :- आधुनिक भारत का इतिहास : एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली : 2006 : पृ0 300 - 302।

बिहार में नक्सली आंदोलनः जाति/वर्ग के फ्रेमवर्क में (1960-1980 का दशक)

अखिलेश कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

स्वतंत्र भारत के इतिहास में नक्सलवादी आंदोलन एक महत्वपूर्ण सामाजिक आंदोलन है। यह पहला ऐसा आंदोलन है जिसमें गरीब किसानों के साथ-साथ भूमिहीन खेतिहर मजदूरों ने हिस्सा लिया और बहुत हद तक उसे नेतृत्व प्रदान किया। मार्क्स, लेनिन और माओ त्से-तुंग के विचारों से प्रेरित इस आंदोलन की शुरूआत मई 1967 में पश्चिम बंगाल के सिलिगुड़ी सब डिविजन के नक्सलवाड़ी में हुई। नक्सलवाद से प्रेरित बिहार में पहला किसान विद्रोह मुजफ्फरपुर के मुसहरी ब्लॉक में हुआ। एक छोटे अंतराल में ही यहां के कृषि-क्षेत्र की अशांति ने दीर्घकालीन कृषि आंदोलन की संभावनाओं को सामने ला दिया। इन संभावनाओं को देखकर क्रांतिकारी कम्युनिस्ट इस किसान संघर्ष को *उत्तर के श्री काकुलम* मानने के लिए उत्साहित हो गए। हालांकि यह संघर्ष शुरू होने के पहले ही लड़खड़ा गया था फिर भी इसने बिहार में सशस्त्र संघर्ष के दरवाजे खोल दिए।[1]

जयप्रकाश नारायण ने 'नक्सलवादी खतरा' को मिटाने के उद्देश्य से विकास कार्य शुरू करने के लिए मुसहरी को चुन लिया। उस समय उन्होंने कहा कि बंधुआ मजदूर की मजदूरी निर्धारित मजदूरी की आधी थी और ग्रामीण हिंसा की जमीन गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक-आर्थिक अन्याय के बदौलत तैयारा हुई। मुसहरी का संघर्ष एक राजनीतिक विचारधारा को लागू करने के क्रम में पैदा हुआ था, लेकिन राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों, जमींदार और शूदखोर कृशि क्षेत्र की अशांति पर दोष मढ़ने पर उतारू थे।[2]

उल्लेखनीय है कि मुसहरी संघर्ष दो बुनियादी मुद्दों पर लड़ा गया थाः 'जमीन जोतने वालों की' के लिए और जातीय भेदभाव के खिलाफ। इस प्रकार यह संघर्ष आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ था। लेकिन इस प्रक्रिया में सामंती सत्ता को नष्ट करने और किसानों के प्राधिकार को स्थापित करने के मूल उद्देश्य की उपेक्षा हुई। यही उपेक्षा संघर्ष की सीमा रेखा बन गई। माओ ने सिखाया कि जनता और पार्टी पर भरोसा रखो। लेकिन नेतृत्व की इस नीति से किसानों के खिलाफ पूर्वग्रह का संकेत मिला। इस हद तक पूर्वग्रह कि उसने उन्हें पिछड़ा और सिर्फ आर्थिक मुद्दों से सरोकार रखने वाला मान लिया।[3]

मुसहरी के कृषि-संघर्ष का अनुसरण करते हुए दरभंगा, चम्पारण, सीतामढ़ी, पुर्णिया और समस्तीपुर जैसे अलग-बगल के अनेक अन्य क्षेत्रों में उबलता किसान संघर्ष देखा गया। मुंगेर जिला के सूर्यगढ़ा में भी किसानों में जागृति देखी गई। लेकिन भोजपुर जिला के अनजान गांव एकबारी में ही ऐसा हुआ कि 'वसंत का व्रजनाद' फिर एक बार दिल दहलाने वाली ऊर्जा के साथ गूँज उठा।

नक्सली आंदोलन के दौरान *जाति/वर्ग के अन्तर्विरोध* का सबसे वीभत्स रूप भोजपुर जिला में दिखाई पड़ा, इसलिए इस जिला किं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना अति आवश्यक है। मध्य बिहार के अन्य जिलों की स्थिति भी कमोबेश यही है।

भोजपुर जिला पुराने शाहाबाद जिले के विभाजन के बाद 1974 में अस्तित्व में आया। इसका मुख्यालय आरा है। यँ तो इस जिले में बड़े जमींदारों की संख्या कम रही है लेकिन डुमरांव और जगदीशपुर जैसे दो बड़े जमींदार घराने रहे हैं। इसके अलावा केसठ, चौगाई, कसाप आदि अनेक छोटे-छोटे जमींदार घराने भी रहे हैं। खुदकाश्त जमींदारी का तो इस जिले में जाल बिछा हुआ था। यह जिला स्वतंत्रता के पहले से ही किसान आंदोलन का एक तरह से गढ़ रहा था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में यहां के किसानों

ने जगदीशपुर के जमींदार बाबू कुंअर सिंह और उनके भाई अमर सिंह और उनके सहयोगी हरकिशन सिंह तथा निशान सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाया था। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबा तो दिया किन्तु किसानों के असंतोष को रोकने के लिए उन्हें कुशल प्रशासन देने एवं कृशि को विकसित करने की नीति भी अपनानी पड़ी। यही कारण है कि बिहार में सबसे पहले भोजपुर में ही अंग्रेजों ने भारतीय दंड-विधान को लागू किया और 19वीं सदी के उत्तरार्ध में सोन नहर व्यवस्था द्वारा खेती को आधुनिक बनाने का प्रयास किया।

सन् 1873 में स्थायी बंदोबस्त के तहत लार्ड कार्नवालिस ने जिस जमींदारी व्यवस्था की शुरूआत की थी, उसके दुष्परिणाम के बारे में लार्ड हेस्टिंग्स ने 31 दिसम्बर 1891 को लिखा कि इससे पूरे प्रदेश में कमजोर वर्गों का बेइंतहा शोषण हो रहा है और प्रशासन उसे दूर करने में सर्वथा अक्षम साबित हो रहा है। इस व्यवस्था का रैयतों पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ा। मालूम हो कि इनमें अधिकांश पिछड़ी जातियों के थे। स्थायी बंदोबस्त के प्रावधानों के तहत जमींदार रैयतों से लगान तो वसूल करते ही थे, इसके अलावा अबावाब और सलामी भी लेते थे। सही है कि भोजपुर के रैयतों की स्थिति पटना और गया के रैयतों से अपेक्षाकृत बेहतर थी, लेकिन उत्पाद-लगान व्यवस्था के चलते उनकी स्थिति बद से बदतर होती गयी। व्यवस्था रैयतों के लिए इतनी शोषणकारी थी कि 1930 तक आते-आते रैयतों ने उसके बदले नकदी लगान व्यवस्था लागू करने के लिए आवाज उठानी शुरू कर दी। इस व्यवस्था के तहत जमींदारों को पानी की आपूर्ति के लिए पँजी लगानी होती थी, लेकिन व्यवहार में वे ऐसा नहीं करते थे, जिसके चलते जमींदारों और रैयतों के बीच कई बार संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती थी।[4]

हदबंदी कानून बनने के बाद भूस्वामी बड़े पैमाने पर अपनी जमीन रैयतों से वापस लेने लगे, जिसके परिणामस्वरूप रैयतों का बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ और वे खेतिहर मजदूर में तब्दील हुए। सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी महज एक निर्मम मजाक के सिवा कुछ नहीं था। इसी तरह बटाईदारों की स्थिति भी काफी दयनीय थी। भोजपुर में मुख्य रूप से दो तरह की बटाईदारी व्यवस्था थी- अधिया और तीसरी। पहली व्यवस्था के तहत भूस्वामी और बटाईदार खेती में आनेवाले खर्च को आधा-आधा वहन करते थे, लेकिन इसमें श्रम और सिंचाई का खर्च बटाईदार को वहन करना होता था और उत्पादन में दोनों का आधा-आधा हिस्सा होता था। दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत भूस्वामी खेती में आने वाले खर्च का दो तिहाई और बटाईदार एक-तिहाई वहन करते थे और उत्पादन में दोनों का बराबर हिस्सा होता था। यदि फसल नहीं हुई तो बटाईदार को ही घाटा उठाना पड़ता था क्योंकि कानून के अनुसार उसे भूस्वामी को हर साल एक खास रकम या अनाज देना पड़ता था। इसके अलावा रैयतों को सामाजिक अपमान भी सहना पड़ता था।

छठे दशक में यहां समाजवादी आंदोलन का जबर्दस्त प्रसार हुआ और 1967 के विधानसभा चुनावों में शाहाबाद जिले में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी सात सीटें जीतने में कामयाब हुई। समाजवादी आंदोलन ने यँू तो भूमिहीन मजदूरों को, जिसमें अधिकांश दलित थे, लामबंद करने मे कोई विशेष सफलता नहीं पायी, लेकिन पिछड़ी जातियों में सवर्ण विरोधी चेतना पैदा करने में वह जरूर सफल रहा। यादव, कुर्मी और कोइरी जाति के पढ़े-लिखे युवक ऊंची जातियों के अपमानजनक व्यवहार को सहने के लिए अब तैयार नहीं थे। उधर ऊँची जातियों के भूस्वामी उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते रहे।

ऊँची जातियों के भूस्वामियों द्वारा पिछड़ी और भूमिहीन दलित जातियों पर अत्याचार किया जाना वहां की एक स्वीकृत सामाजिक हकीकत थी। इसे पहली बार समाजवादियों ने चुनौती दी। भोजपुर में समाजवादी विचारधारा का प्रसार करने में राम एकबाल, लक्ष्मण सिंह, रघुनाथ गोप और प्रणव चटर्जी की प्रमुख भूमिका रही थी। 1952 में समाजवादी पार्टी में विभाजन के पहले उसके संस्थापक नेताओं में अनेक लोग भोजपुर के थे, जिसमें करथ के धरीछन सिंह, राम एकबाल जो भोजपुर में 'पीरो के गांधी' के नाम से मशहूर हैं, चौराही गांव के कमलकांत वर्मा तथा संदेश ब्लॉक के सुदंरपुर गाँव के रामसकल सिंह प्रमुख थे।

कस्थ के धरीछन सिंह ने 1957-58 में चमार जाति की एक महिला के साथ बलात्कार के मामले को लेकर लंबी कानूनी लड़ाई लड़ी। उसी गाँव के एक राजपूत भूस्वामी ने उस महिला के साथ बलात्कार किया था। इसी तरह तड़ारी ब्लॉक के उरसी गांव में राम एकबाल ने गाँव में रहने वाली वेश्याओं को सामाजिक स्वीकृति दिलवाई।[5] इसके अलावा तीन प्रमुख मध्यवर्ती जातियों कुर्मी, कोइरी और यादवों को एक मंच पर लाकर एक सामाजिक-राजनीतिक ताकत के रूप में एकजुट करने काम भी इन नेताओं ने बखूबी किया। इसमें उनका राजनीतिक लाभ भी था, क्योंकि उनकी सम्मिलित आबादी लगभग 36 प्रतिशत थी।

ऊँची जातियों के भूस्वामियों ने इस परिघटना को अपने लिए एक खतरा के रूप में ही देखा। वैसे भी समाजवादियों को उस समय अहीर-कोइरी-कुर्मी पार्टी के रूप में चिन्हित किया जाता था। 1967 के बिहार विधानसभा चुनावों में शाहाबाद में समाजवादी पार्टी की 22 में सात सीटों पर जीत हुई। ऐसा लगने लगा जैसे त्रिवेणी संघ की वापसी हो गई हो। पीरो ब्लॉक के चौराही गाँव में तो कमलकांत वर्मा के नेतृत्व में समाजवादियों ने उस समय एक नया इतिहास ही रच दिया, जब गाँव के लोगों ने नहर टैक्स देने से इनकार कर दिया। नहर के पानी की अनियमित आपूर्ति से सहार, संदेश, पीरो और जगदीशपुर के रैयत, किसान काफी परेशान थे। यह आंदोलन इतना उग्र हो गया कि जब टैक्स नहीं देने वाले लोगों की संपत्ति जब्त करने के लिए सरकारी अफसर चौराही पहुंचे तो लोगों ने उन पर हमला बोल दिया। यह आंदोलन कई सालों तक चलता रहा। इसी तरह आरा में रामसकल सिंह के नेतृत्व में समाजवादियों ने आटा मिल मालिकों के खिलाफ जबर्दस्त आंदोलन किया। लेकिन इसके बावजूद भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया क्योंकि समाजवादियों ने भी उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया। वे मूल रूप से उपेक्षित ही रहे।

नहर आंदोलन भोजपुर में हमेशा एक प्रमुख मुद्दा बना रहा। सन् 1953 में भोजपुर में कम्युनिस्ट पार्टी की जिला इकाई की स्थापना हुई और उसके बाद 1956 में समाजवादियों और साम्यवादियों ने सम्मिलित रूप से नहर लगान के मुद्दे पर तब आंदोलन चलाया जब सरकार ने प्रति एकड़ उसकी दर पांच रूपये से बढ़ाकर दस रूपये कर दी। सहार, संदेश, पीरो और नावानगर में इस आंदोलन का प्रमुख जोर रहा। इस आंदोलन के दौरान सीपीआई के करीब 300 कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार किया गया। उल्लेखनीय है कि बाद में चलकर सीपीआई के कई नेता नक्सली आंदोलन से जुड़े और उसके विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रामनरेश दुसाध, महाराज महतो और जगदीश महतो, जिन्होंने भोजपुर में नक्सली आंदोलन को जन्म दिया, पहले सीपीआई के नेता, समर्थक हुआ करते थे। 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन के बाद भोजपुर के कई प्रमुख नेता भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) छोड़कर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) में शामिल हो गए। थोड़े ही अंतराल में केशो प्रसाद सिंह, धीरज ठाकुर और सत्यनारायण सिंह जैसे प्रमुख नेताओं की मृत्यु के बाद माकपा फिर कभी उबर नहीं पाई। बेहतर मजदूरी को लेकर भोजपुर में खेतिहर मजदूरों का पहला आंदोलन माकपा के नेतृत्व में हुआ। संदेश ब्लॉक में इसका नेतृत्व अभयपुरा के बीर बहादुर सिंह ने किया। लेकिन माकपा इस आंदोलन को तार्किक परिणति तक ले जाने में असफल रही क्योंकि स्वयं माकपा ही पेकिंग समर्थकों और विरोधियों के बीच बांटने लगी थी।

ऐसी ही स्थिति में एक नए किस्म की राजनीति ने वहां जन्म लिया, जिसे *नक्सलवादी आंदोलन* कहा जाता है। भारत के इतिहास में पहली बार भूमिहीनों और दलितों को लामबंद करने की प्रक्रिया शुरू हुई और इसी के साथ शुरू हुई लाठी के बल पर दलितों को दबाने की प्रक्रिया भी। सरकार ने सोचा भी नहीं था कि भोजपुर में नक्सलवादी आंदोलन भड़क सकता है। सरकार की सूची में यह अशांत क्षेत्र भी नहीं था। छठे दशक में इसे *हरित क्रांति* के मॉडल के लिए चुना गया था। वैसे हरित क्रांति शुरू होने के थोड़े दिनों बाद ही संकेत मिलने लगा था कि हरित क्रांति लाल क्रांति में तब्दील हो सकती है। उस समय वहां लिबरेशन गुट महादेव मुखर्जी से अलग होकर जौहर के नेतृत्व में काम कर रहा था, लेकिन नक्सली आंदोलन को शुरू करने में उसकी कोई भूमिका नहीं थी। हां, आंदोलन को सुचारू रूप प्रदान करने एवं बढ.ाने में लिबरेशन ने अवश्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[6]

भोजपुर में नक्सलवादी आंदोलन की शुरूआत सहार ब्लाक के एकवारी गांव से हुई। यहां की जमीन काफी उपजाऊ है। वास्तव में सहार ब्लाक कृशि के मामले में काफी आगे है। इसे 'भोजपुर का हरियाणा' कहा जाता है। एक बिगहा में 40 मन धान की पैदावार वहां सामान्य बात है। इसके बावजूद खेतिहर मजदूरों को काफी कम मजदूरी दी जाती थी। 1980 तक वहां मजदूरों को सिर्फ तीन सेर कच्ची यानि सवा किलो चावल और खेती के समय रात का खाना दिया जाता था। वैसे यह कोई अकेले एकबारी की बात नहीं थी, बल्कि सभी गांवों में यही हाल था। हरवाहे को दो सेर कच्चा चावल रोज का तथा 10-12 कटा जमीन खेती के लिए दिया जाता था। हरित क्रांति से भूपतियों की आमदनी में वृद्धि हुई लेकिन वे मजदूरी बढ़ाने के लिए तैयार नहीं थे। छोटी जातियां एक तरह से उनका दास थीं। हालत यह थी कि वहां के जमींदार हरिजनों की बहू-बेटियों की इज्जत कभी और कहीं भी लूट लेते थे और कोई चँ तक नहीं कर सकता था।

ऐसे में जगदीश महतो या 'मास्टर साहब' जिस रूप में बाद में लोकप्रिय हुए, ने हरिजनों को जगाने का प्रयास किया। उनके प्रयास का वहां के जमींदारों ने काफी मजाक उड़ाया। 1967 के चुनाव में जब उन्होंने वहां के जमींदारों द्वारा किए जा रहे बूथ कैप्चरिंग का विरोध किया तो उनकी निर्मम पिटाई की गई।

इस चुनाव में जगदीश महतो या 'मास्टर साहब' जिस रूप में वे बाद में लोकप्रिय हुए, ने सीपीआई उम्मीदवार रामनरेश राम के पक्ष में प्रचार किया। रामनरेश राज्य विधान सभा के चौथे आम चुनाव में सहार सुरक्षित सीट से चुनाव लड़ रहे थे। जगदीश महतो एच.डी. जैन स्कूल आरा में विज्ञान शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। अतीत में उन्होंने टिप्पणी की थी- रस्सी जल गया पर ऐंठन नहीं गया। इसका मतलब था कि भूमिहार जमींदारों की जमींदारी चली गई लेकिन सामंती चाल-चलन नहीं गया। जब जमींदार मतदान में गड़बड़ी कर रहे थे, जगदीश मास्टर ने उसका विरोध किया और बुरी तरह उनकी पिटाई हुई।[7]

इस बीच 'भारत में क्रांति के वसंत का वज्रनाद' की खबरें बिहार में फैल चुकी थी। यह घटना नक्सलबाड़ी में हुई थी। अपनी चोट से उबरने के बाद जगदीश मास्टर कलकत्ता गए। वहाँ वे चारू मजूमदार और नक्सलबाड़ी के अन्य नेताओं से मिले और संघर्ष को आगे बढ़ाने के दृढ़ निश्चय के साथ लौटे। रामेश्वर अहीर या 'साधू जी' भी जगदीश मास्टर और रामनरेश राम के साथ जुड़ गए और उन लोगों ने सहार गांव में संघर्ष तेज किया। फरवरी 1970 में चारू मजुमदार ने शाहाबाद क्षेत्र का दौरा किया और नाथुपरु, रोहतास में सी.पी.आई (एम.एल.) का पहले प्रेस सम्मेलन को संबोधित किया। 14 अप्रैल 1970 को आरा शहर में विशाल मशाल जुलूस निकला। उसमें नारा लगा 'हरिजनिस्तान लड़के लेंगे'। आरा शहर में दीवारों पर ऐसे नारे भी देखे गए : ''नक्सलबाड़ी लाल सलाम, कामरेड माओ लाल सलाम''। नेताओं ने संघर्ष जारी रखने के लिए जनता को किसान मजदूर संग्राम समिति में संगठित किया।

इसके बाद एकवारी में जनवरी 1971 से मार्च 1971 के बीच एक के बाद पांच सफाए हुए। एकवारी में पहली हत्या शिवपूजन सिंह की हुई जो स्वयं तो छोटे किसान थे लेकिन जमींदारों के लठैत थे। रामेश्वर अहीर, रामनरेश दुसाध ने इस चिंगारी को ज्वाला बना दिया।

एकवारी की घटना से प्रेरित होकर आसपास के अनेक गांवों के हरिजनों ने भी भूपतियों के अत्याचारों के खिलाफ सर उठाना शुरू कर दिया। एकवारी के आसपास के गांवों अगिआंव, बेरथ, बरुही और चंवरी में भी नक्सली गतिविधियां शुरू हो गई। 26 जनवरी, 1973 को नक्सलियों की अगुवाई में करीब सौ भूमिहीन किसान-मजदूरों ने चंवरी गांव के एक व्यापारी का चावल जब्त कर लिया। न्यूनतम मजदूरी के सवाल पर इस गांव में दो साल से आंदोलन चल रहा था और इस संघर्ष के मुखिया थे गणेशी दुसाध। गणेशी दुसाध नक्सलवादी बनने के पहले साधुओं की शरण में भी गए थे लेकिन एकवारी की घटनाओं ने उन्हें नक्सलवाद की तरफ खींचा। 30 नवम्बर, 1972 को रामनाथ राय नामक एक महाजन को मौत के घाट उतार दिया गया। 9 अप्रैल, 1973 को एकवारी के मुनीनाथ राय की चार बिगहा जमीन जब्त कर ली गई और वहां एक लाल झंडा लगा दिया गया। 19 अप्रैल, 1973 को कारू राय को नक्सलियों ने खलिहान में ही मार दिया।[8] लेकिन सबसे जबर्दसत संघर्ष हुआ 6 मई, 1973 को, जब पुलिस और नक्सली आमने-सामने हुए।

बिहार सरकार ने भोजपुर के नक्सली आंदोलन को दबाने का पूरा प्रयास किया। 1970 के अक्टूबर महीने में ही मुख्यमंत्री दारोगा प्रसाद राय ने नक्सली विद्रोह की समीक्षा के लिए मंत्रिमंडल की एक विशेष बैठक बुलाई, जिसमें भोजपुर के ग्रामीण इलाकों में पुलिस को विशेष अधिकार देने का फैसला किया गया और नक्सली समस्या से निपटने के लिए एक विशेष प्रकोष्ठ बनाया गया। लेकिन इसका परिणाम उल्टा ही हुआ। पुलिस की दमनात्मक कार्रवाइयों के बावजूद नक्सली आंदोलन हरिजनों, मुसहरों दुसाधों एवं अन्य पिछड़ी जातियों के गरीब किसानों में लगातार लोकप्रिय होता गया। भोजपुर में नक्सलवादी विचारधारा के प्रसार एवं पैठ का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उसके प्रतिनिधि रामेश्वर प्रसाद आरा संसदीय क्षेत्र से 1989 के आम चुनाव में आईपीएफ के उम्मीदवार के रूप में विजयी हुए थे। सन् 1975 तक आते-आते सरकार भी मानने लगी कि बिहार के कई जिलों में नक्सली गतिविधियों का विस्तार हो गया है।

उपरोक्त विवरण से साफ है कि भोजपुर के नक्सली आंदोलन में वर्ग संघर्ष की केन्द्रीय भूमिका को मान्यता मिली। आंदोलन के भागीदार जातीय गठबंधन से ऊपर उठे और उन्होंने वर्गीय गठबंधन का निर्माण किया। जैसे-जैसे किसान संघर्ष और उसकी सफलता के समाचार अगल-बगल के गांवों में फैलते गए, वैसे-वैसे अधिक कार्यकर्त्ता किसान संगठनों में जुड़ते गए। इससे अनेक गांवों में हथियारबंद इकाई बनाने की क्षमता पैदा हो गई। साथ ही हर सफाया अभियान के बाद प्रचार जारी रखने की क्षमता भी। संघर्ष के इसी मोड़ पर आधुनिक हथियारों की जरूरत महसूस हुई और इस उद्देश्य से पुलिस कैंपों को निशाना बनाया गया। यह प्रक्रिया किसी अल्पकालिक योजना का प्रतिफल नहीं थी। उल्टे वह तो क्षेत्रों के ठोस अनुभव से पैदा हुई थी।

नक्सलवाद का फैलता दायरा: एकबारी से जहानाबाद तक

गौरतलब है कि 1970 के दशक में नक्सलवादियों ने पुलिस के साथ कई जगहों पर जबर्दस्त संघर्ष किए। इसी समय यह भी साबित हुआ कि दमन के बल पर नक्सलवादियों को नहीं दबाया जा सकता क्योंकि इमर्जेंसी के दौरान ही नक्सलवादियों ने सबसे ज्यादा सैनिक कार्रवाइयां कीं और सबसे ज्यादा वर्ग शत्रुओं का सफाया भी किया। लेकिन पुलिस के साथ संघर्ष में नक्सलवादियों की सैनिक शक्ति का भी काफी नुकसान हुआ। 1975 के अंत में लिबरेशन गुट के पास सिर्फ एक हथिारबंद दस्ता बच गया था-भोजपुर के सहार ब्लाक में और वह भी घुमंतू बन चुका था जिसे पार्टी के लिए संभालना मुश्किल हो गया था। अंत में पार्टी ने दस्ते के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से संगठनकर्त्ता के रूप में बिखेर दिया।

यही हाल पटना था का। लिब्रेशन ग्रुप के अधिकांश नेता और फौजी या तो मारे जा चुके थे या गिरफ्तार हो चुके थे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद 28 जुलाई, 1974 को अस्तित्व में आया लिबरेशन गुट जल्दी ही अन्य जिलों के ग्रामीण अंचलों में दस्तक देने लगा। पटना के पुनपुन, नौबतपुर, मसोढ़ी, बिक्रम, पाली, नालंदा के हिलसा, एकंगरसराय, गया-जहानाबाद के काको, कुर्था, मखदुमपुर, घोसी, अरवल और औरंगाबाद के ओबरा, दाउदनगर, हसनपुर आदि के गरीब किसान और भूमिहीन दलित खेतिहर मजदूर आंदोलन के केन्द्र बन कर उभरने लगा।[9]

गया और औरंगाबाद जिला मार्क्सवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी) के गढ़ रहे हैं। एमसीसी का निर्माण बंगाल के एक क्रांतिकारी ग्रुप ने किया था। ये ग्रुप मई 1969 में बने नए सीपीआई (एम.एल.) से बाहर रह गया था। पहले दक्षिण देश के नाम से जानने वाले इस ग्रुप ने 20 अक्टूबर 1969 को *एमसीसी* का गठन किया। पहले इसके मुखपत्र का नाम दखिण देश ही था। अक्टूबर 1969 में एमसीसी के निर्माण के फलस्वरूप किसान आंदोलन की गतिविधियां बंगाल और बिहार के गया और हजारीबाग जिलों में शुरू हुई। 1972 से 1977 के बीच पार्टी को भयंकर दमन झेलना पड़ा।

एमसीसी भारतीय समाज को अर्द्ध सामंती-अर्द्ध औपनिवेशिक के रूप में देखता है। भारतीय समाज दो बुनियादी अंतर्विरोधों से त्रस्त है। किसान जनता बनाम सामंती शरीफजादे और साम्राज्यवाद बनाम किसान मजदूर वर्ग और उत्पीड़ित पँजीपति। ये अंतर्विरोध परिपक्व होंगे और दो मंजिलों में क्रांति तक नेतृत्व करेंगे। पहली मंजिल-जनवादी क्रांति सामंती जमींदारों और भूमिहीनों के बीच अंतर्विरोध को हल कर शुरू होगी और दूसरी मंजिल-राष्ट्रीय क्रांति फूट पड़ेगी और साम्राज्यवादी वर्गों के सफाये की गति शुरू कर देगी।[10] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहला कार्यभार था कि लाल आधार क्षेत्र का विकास और जन-सेना का निर्माण हो। मुख्यत: गरीब और भूमिहीन किसानों और मजदूर वर्ग पर भरोसा कर ही जन-आधार का निर्माण करना था। जब जनता का राजनीतिकरण सघन और गहरा हो जाय, तभी हथियारबंद दस्ता बनाना था। कार्यकर्ताओं और दस्तों का काम था कि वे जनता को क्रांतिकारी विचारधारा से लैस करें। प्रचार कार्यो को उपयोगी ढंग से जारी रखना था। प्रचार को जनता की स्थितियों के अनुकूल और प्रासंगिक बनाते हुए। उन्हें उन कार्यभारों को इस आस्था के साथ जारी रखना था कि मौजूद परिस्थितियों की सावधानीपूर्वक जांच-पड़ताल, किसान संघर्ष की विचारधारा का प्रचार, किसान जनता की गोलबंदी और उनका संगठन और अंतत: खुद संघर्ष कृशि क्रांति के तार्किक कदम हैं।

एमसीसी की समझ में संघर्ष मूलत: राजसत्ता पर कब्जा करने का आंदोलन है। सिर्फ जमीन प्राप्त करने का संघर्ष संशोधनवाद है। यही कारण है कि जमींदारों की जमीन पर कानूनी दखल पाने के लिए किसानों को सरकारी अफसरों के पास जाने के उद्देश्य से गोलबंद नहीं किया जाता। इसमें एक तर्क और जुड़ जाता है। लंबे और कठिन संघर्ष के बाद जमीन जब्त की जाती है तो उस पर नियंत्रण और उसका उपयोग भी संघर्ष द्वार ही होगा। इसके साथ ही जब तक किसानों को राजनीतिक सत्ता नहीं मिल जाती तब तक वे नई अधिगृहित जमीन को ज्यादा शक्शिाली दमनकारी सरकार और प्रतिक्रियावादी जमींदारों से बचा पाने में सक्षम नहीं हो पाएंगे। इस प्रकार एमसीसी के अनुसार, किसानों की राजनीतिक शिक्षा-दीक्षा पूर्णता तब प्राप्त करती है जब किसान इस तथ्य को समझ लेते हैं कि जमीन की लड़ाई राजसत्ता के लिए युद्ध शुरू करने का साधन मात्र है।[11]

दरअसल बिहार में नक्सवादी आंदोलन के दौरान *जाति/वर्ग के अन्तर्विरोध* के तीन दौर, इस प्रकार थे :

पहले दौर में प्रतिरोध आंदोलन शुरू करने के लिए प्रचार और जनता को संगठित करना शामिल रहता है। इस दौर में किसान जमींदारों, सूदखोरों और समाजविरोधी तत्वों के उत्पीड़न और शोषण की हर कार्रवाई को मानने से इंकार कर देते हैं। साथ ही साथ,

वे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में समान व्यवहार की भी मांग करते हैं। इस उपयोग प्रचार से किसानों की चेतना अस्तित्वमान व्यवस्था को चुनौती देने के स्तर तक पहुंच जाती है।

दूसरा दौर : क्रांतिकारी किसान वर्ग दुश्मन के सफाए की लाइन का अनुसरण करते हुए चुनिंदा लक्ष्यों पर हमला करते हैं। वे सिर्फ दुश्मन के हमलों से अपना बचाव नहीं करते, बल्कि आक्रामक रूख भी अपनाते हैं। वे जमींदारों, और अन्य शक्तिशाली ग्रामीण शासक वर्गों और उनके एजेंटों से हथियार छीन लेते हैं। इस मोड़ पर राज्य अपनी पुलिस और मिलिट्री के बदौलत शासक वर्गों के पक्ष में हस्तक्षेप करता है। यहाँ क्रांतिकारी किसान जनता राजसत्ता के खिलाफ बचाव की लड़ाई लड़ती है।

तीसरा दौर : क्रांतिकारी किसान जनता प्रतिक्रियावादी शक्तियों के खिलाफ निर्णायक हमला बोल देती है और जीत हासिल करती है। तब मुक्तांचल की व्यवस्था का संचालन क्रांतिकारी किसान कमिटी द्वारा होने लगती है।[12]

निष्कर्ष

हालांकि नक्सलवादी संघर्ष का विस्फोट पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी में हुआ जहां से उसका नाम पड़ा, फिर भी जहां कहीं भी किसान संगठनों ने कृषि संघर्ष शुरू किया, उसे नक्सलवादी आंदोलन कहा गया। जहां जुझारू किसान संगठन वर्ग संघर्ष के बैनर तले गरीब किसानों और खेत मजदूरों को एकजुट करने की कोशिश कर रहे थे, वहीं नक्सलवादी संगठन खुद-फूट, गठबंधन, फिर फूट और एकता का शिकार हो रहे थे। बिहार का नक्सलवादी आंदोलन उद्भव में क्षेत्रीय था, लेकिन अपने विकास क्रम में राष्ट्रीय, यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय भी था। इसका कारण है कि नीतियों और कार्यक्रमों का निर्धारण स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर होता था। इससे भी बढ़कर, पार्टी का कार्यक्रम सूत्रबद्ध करते समय अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य को भी ध्यान में रखा जाता था। पूर्ववर्ती किसान संघर्षों के विपरीत जुझारू कम्युनिस्ट संगठनों द्वारा गोलबंद और संगठित किसान सक्रियता ने वर्तमान सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सरंचना की वैधता को चुनौती दी। इसके पहले के संघर्ष कानूनी और संसदीय दायरे में सीमित रहते थे।

राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी आंदोलनों की पर्याप्त प्रगति हुई। परंपरागत ढंग से जमींदार-राजनीतिज्ञ-व्यापारी गठबंधन स्थानीय पंचायत से लेकर विधानसभा और संसदीय चुनावों तक जीत लेते थे। यहां तक कि सुरक्षित क्षेत्रों में भी, जहां सिर्फ दलित ही चुनाव लड़ सकते हैं, क्षेत्र की प्रभावशाली जातियां अपने चमचों को चुनाव जिता देती थीं। चुनावी जंग से नक्सलवादी संगठनों के प्रवेश से इस आचार-व्यवहार को चुनौती मिली।

बिहार के कृषि संबंधों में उभरता असंतोष सामाजिक यथार्थ की ओर इशारा करता है। इस यथार्थ की ओर कि जुझारू किसान-केन्द्रित नक्सलवादी आंदोलन अनेक कारकों और शक्तियों के गठजोड़ के प्रतिफल है। जुझारू किसान आंदोलनों ने भूमि स्वामित्व में बदलाव, निर्धारित मजदूरी का भुगतान, निचली जातियों के स्त्री-पुरूषों की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि और समाज विरोधी तत्वों की ज्यादती कम करने की प्रक्रिया शुरू की है। व्यापक रूप लेता नक्सलवादी आंदोलन ने इस सच्चाई का विस्तृत ब्योरा दिया कि कृषि संबंधों के असंतोष और प्रतिरोध अत्यंत तीखे और दृढ़ हैं। इसका कारण है कि नक्सल प्रभावित क्षेत्र में सामाजिक असमानताओं के शिकार लोग इन्हें संकट ग्रस्त रूप में देख और समझ पाते है और उनके पास इनसे निपटने का संकल्प भी है।

संक्षेप में और सारांश के रूप में, बिहार में कृषि संबंधों से उभरते असंतोष ने वर्तमान कृषि संरचना में बदलाव के दिशा में ले जाने वाले *सामाजिक आंदोलन* के लिए जगह बनाई है। दूसरी और, अंतिर्विरोधों और विवादों से उभरते सामाजिक विन्यास ने संसाधनों तक पहुंच के लिए संघर्ष, वर्तमान समाज-व्यवस्था के खिलाफ चुनौती, आत्म निर्णय की मांग, चुनावी जनतंत्र में भागीदारी के लिए बढ़ता संघर्ष, विकास योजनाओं पर नियंत्रण के लिए संघर्ष को नई ऊँचाई तक पहुंचा दिया।

संदर्भ सूची

1. प्रकाश लुईश, *जनशक्ति : मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन,* मानक, न्यू दिल्ली, 2008, पृ.147
2. कल्याण मुखर्जी, *भोजपुर : ए सोसल एण्ड इकॉनोमिक सर्वे* नेशनल लेबर इंस्टिच्युट, नई दिल्ली (अप्रकाशित)
3. कल्याण मुखर्जी और राजेन्द्र सिंह यादव, *भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार,* राधा कृष्ण, नई दिल्ली, 1980, पृ. 14
4. अरविंद नारायण दास, 'एग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोसियो-इकॉनामिक चेंज, 1900-1980', मनोहर, दिल्ली, 1983, पृ.245

5. कल्याण मुखर्जी, 'भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार', *पूर्वोक्त,* पृ. 34
6. उपरोक्त, पृ. 40
7. कुमार नरेन्द्र सिंह, *बिहार में निजी संनाओं का उद्भव और विकास,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
8. कल्याण मुखर्जी, *पूर्वोक्त,* पृ.40
9. आर.पी. सिन्हा और राजन वर्मा, ''नक्सलाईट एक्टिविज्म इन भोजपुर'', *ए.एन.सिन्हा इंस्टिच्यूट ऑफ सोशल साइंस,* पटना, 1985
10. उपरोक्त
11. कल्याण मुखर्जी और राजेन्द्र यादव, *पूर्वोक्त*
12. अजय कुमार सिंह, *नक्सलिज्म इन बिहार,* विशाल पब्लिकेशन, जलांधर, 2007, पृ. 76-77.

कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में पूर्वप्रत्यय प्रयोग

देवानन्द सिंह

शोध छात्र, एम.ए. हिंदी, यू.जी. नेट
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)
सम्बद्ध चौ. चरणसिंह वि. वि. मेरठ

डॉ० जीत सिंह

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)
सम्बद्ध चौ. चरणसिंह वि. वि. मेरठ

शोध सारांश

''कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में पूर्वप्रत्यय प्रयोग''

(''कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में पूर्वप्रत्यय प्रयोग'' शोध विषय भाषाविज्ञान के विभाग शब्दविज्ञान से संबंध रखता है। शब्द विज्ञान में भी शब्द साधकप्रत्यय के अंतर्गत पूर्वप्रत्यय एवं परप्रत्यय का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत शोध विषय के अंतर्गत कृष्णासोबती द्वारा रचित उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त पूर्वप्रत्ययों को रचना के आधार पर तथा अर्थ के आधार पर वर्गीकरण तथा विवेचन किया है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त पात्रों ने परस्पर संवादों में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उन शब्दों में प्रयुक्त पूर्वप्रत्ययों को रचना के आधार पर एकलपूर्वप्रत्यय तथा दोहरे पूर्वप्रत्यय में वर्गीकृत करके विवेचन किया है। अर्थ के आधार पर कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय एकार्थी एवं अनेकार्थी रूप में प्रयुक्त हुए है। इनके उपन्यासों की मानक हिन्दी में संस्कृत भाषा तथा हिन्दी की उपबोलियों के पूर्वप्रत्यय प्रयोग हुए है। अत: कृष्णा सोबती के उपन्यासों की मानक हिन्दी के विकास और निर्माण में संस्कृत भाषा तथा हिन्दी की बोलियों की भूमिका रही है।)

कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में पूर्वप्रत्ययों का विवेचन करने से पूर्व प्रत्यय के स्वरूप का ज्ञान अपेक्षित है। पूर्वप्रत्यय का अध्ययन भाषाविज्ञान में शब्दविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। भाषाविज्ञान में शब्दविज्ञान के अंतर्गत शब्दसाधक प्रत्यय का अध्ययन किया जाता है। शब्दसाधक प्रत्यय दो प्रकार के माने गये हैं।:-

(क) पूर्व प्रत्यय।

(ख) पर प्रत्यय।

(क) पूर्व प्रत्यय:- ऐसे शब्दांश जो मूल शब्द से पहले जुडकर उसके कोशगत अर्थ को पूरी तरह से बदल देते हैं, पूर्वप्रत्यय कहलाते है। संस्कृत भाषा में पूर्वप्रत्ययों को उपसर्ग कहा गया है। पाणिनि ने अपने लोकप्रिय व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' में उपसर्ग की निम्नलिखित परिभाषा दी है:-

''उपसर्गेण धात्वर्थः बलादन्यत्र नीयते'' अर्थात उपसर्गों के प्रयोग से धातु का अर्थ पूरी तरह से परिवर्तित हो जाता हैं। संस्कृत भाषा धातु प्रधान भाषा मानी गयी है। संस्कृत भाषा में उपसर्ग का जो अर्थ है, हिन्दी भाषा में वही पूर्वप्रत्यय का अर्थ है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में निम्नलिखित दो प्रकार के पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है।:-

1. संस्कृत भाषा से आगत पूर्व प्रत्यय।
2. हिन्दी भाषा और उसकी बोलियों में प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में संस्कृत भाषा से आगत पूर्वप्रत्यय मानक हिन्दी से गहन और व्यापक संबंध रखते हैं। 'कु' और 'क' 'सु' और 'स' पूर्व प्रत्ययों में 'कु' और 'सु' पूर्वप्रत्यय संस्कृत भाषा से आगत मानक हिन्दी के हैं और 'क' एवं 'स' हिन्दी की लोकबोलियों से संबंध रखते हैं। कुपुत्र, कपूत, सुपुत्र और सपूत शब्दप्रयोगों में 'कु' और 'क' पूर्वप्रत्यय एक ही अर्थ के बोधक हैं। इसी प्रकार 'सु' और 'स' पूर्वप्रत्यय एक ही अर्थ के बोधक हैं। इनके उपन्यासों की भाषा में 'सुरभि' और सौरभ शब्दों में 'सु' और 'सौ' एक ही अर्थ के बोधक मानक हिन्दी के पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इनके उपन्यासों की भाषा में निम्नलिखित पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है:-

1. अ,	आ		
2. अन,	अनु		
3. प्र,	सु	स	
4. अभि,	अधि		
5. नि,	नी	और	निर
6. दु,	दू,	दुर	
7. उन,	प्रति,	कु,	क
8. अप,	अव,	उप	
9. वि,	सम		

उपर्युक्त पूर्वप्रत्यय कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा को बहु-आयामी और बहुस्तरीय बनाते हैं। इनके उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त पूर्व प्रत्ययों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत और विभाजित किया जा जाता है:-

(क) रचना के आधार पर प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय (ख) अर्थ के आधार पर प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय

(क) रचना के आधार पर प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय:- कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में रचना के आधार पर निम्नलिखित दो प्रकार के पूर्व प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है।

(1) एकल पूर्व प्रत्यय (2) दोहरे पूर्वप्रत्यय।

(1) एकल पूर्वप्रत्यय:- रचना के स्तर पर प्रयुक्त मूल पूर्वप्रत्यय एकल पूर्वप्रत्यय कहलाता है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में एकल पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग बहुताधिक संख्या में हुआ है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त शिक्षित पात्र परस्पर संभाषण में मानक हिन्दी के एकल पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग अधिक करते हैं। उपन्यासगत ग्रामीण पृष्ठभूमि के पात्र परस्पर वार्तालाप में मानक हिन्दी के पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग कम करते हैं। हिन्दी भाषा की विभिन्न लोकबोलियों से आगत पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग अधिक करते हैं। इनके उपन्यासों की भाषा में निम्नलिखित एकल पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है:-

1. अ,	आ	
2. अन,	अनु	
3. उप,	अप	
4. सु,	स	
5. कु,	क	
6. नि,	नी,	निर
7. वि,	सम्	अव,

कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त एकल पूर्वप्रत्ययों के उदाहरण नमूने के तोर पर निम्नलिखित रूप में देखे जा सकते है:-

मामू ने **निर्दयता** से दुत्कारकर कहा[1]

भाँवरों के बाद तो तेरे **अवगुण** कभी चित नहीं धरे

धनवन्ती समझगई, लड़कों के बापू ने अच्छी गहरी नींद ले **आराम** पाया है।[2]

श्री कमरे में लौट तो एडना **आराम** में थी बैठे-बैठे सिगरेट जलाई। छोड़ दी। फिर जलाई। आँखों पर रखे जया के **विवश** निरीह हाथ **सम्मोहन** का एक तार-एक कड़ी कहीं दूर जा पड़ी।[3]

पतले ओठों पर एक **अनजानी** लकीर उभरी और तत्काल ही गुम हो गई।[4]

परिवार की साँझी श्री संपदा और **संपन्नता** में निहित।[5]

नहीं ईशान, **आख्यान** और **उपाख्यान** का फर्क मेरा निज अनुभव नहीं।[6]

क्या उन्हें चन्ना की **अस्वीकृति** यादा नहीं?[7]

यह कहते-कहते उन्होंने बच्ची की गोद में **सगुण** के कुछ रूपए डाल दिए[8]

इस कोजी **कुरूप** बेअक्ली की पीठ ही पीठ है।[9]

मैं **अब्रहामण** हूँ। मैं राजपूत, मैं **अराजपूत** मैं जाट-गूजर, मैं कमजोर वर्गी में दलित, मैं अनुसूचित।[10]

श्यामा के **निकट** वह आजकल बोझिल हो गए थे।[11]

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रयुक्त निर, अव, वि, सम, अन, आ, उप, अनु, अ, स, कु, नि आदि पूर्वप्रत्यय अपनी संरचना में एकल पूर्वप्रत्यय हैं।

(2) दोहरे पूर्वप्रत्यय:- दो पूर्वप्रत्ययों का ऐसा योग जो आर्थी स्तर पर अलग-अलग अर्थों का बोधक है, दोहरे पूर्वप्रत्यय कहलाते हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में एक ही शब्द की रचना में अलग-अलग दोहरे पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता हैं। रचना स्तर पर दो अलग-अलग पूर्वप्रत्यय अलग-अलग अर्थों के बोधक दोहरे पूर्वप्रत्यय बन जाते हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में शिक्षित पात्रों ने परस्पर अपने संवादों में दोहरे पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग किया है। इन दोहरे पूर्वप्रत्ययों के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यासकार का भाषायी ज्ञान प्रशंसनीय है। 'अपरिचित' शब्द की रचना में 'अ' और परि दो पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। 'अनुपस्थिति' शब्द की रचना में 'अनु' एवं 'उप' पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। 'निरविकार' शब्द में 'निर' और 'वि' पूर्वप्रत्यय प्रयुक्त हैं। अविस्मरणीय शब्द की रचना में 'अ' और 'वि' दो पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। सुव्यवस्थित शब्द की रचना में सु+वि+अव तिहरे पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग है। इस विवेचन की पुष्टि कृष्णा सोबती के उपन्यासों में दोहरे पूर्वप्रत्ययों के प्रयोग से निम्नांकित रूप में की जाती है:-

कल्पना से तपन कई बार **अपरिचित** वह घर देखते रहे।[12]

कमरा खोला तो एक बारगी एड्ना की **अनुपस्थिति** ने पाँवों को किसी असहन विवशता से जकड़ लिया।[13]

देही से रहित आत्मा **निरविकार** है।[14]

पीर-फकीर, साधु-**संन्यासियों** में एक तरफ जी भरकर हलीमी।[15]

देर-से ढीले बालों में कलवाली साड़ी और कार्डीगन में **सुव्यवस्थित** सी पास आई।[16]

यात्रा है **अप्रत्याशित** संयोजन की।[17]

एक **अविस्मरणीय** शाम याद आती है।[18]

(ख) अर्थ के आधार पर प्रयुक्त पूर्वप्रत्यय:- कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में अर्थ के आधार पर निम्नलिखित दो प्रकार के पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है:-

(1) एकार्थी पूर्वप्रत्यय (2) अनेकार्थी पूर्वप्रत्यय

(1) एकार्थी पूर्वप्रत्ययः- ऐसे शब्दांश जो मूल शब्द से पहले जुड़कर एक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, एकार्थी पूर्वप्रत्यय कहलाते हैं। पूर्वप्रत्ययों का अपना कोई कोशगत अर्थ नहीं होता हैं। यह शब्द से पहले प्रयुक्त होकर उसके अर्थ को बदल देते हैं। अर्थ भेदक भूमिका में प्रयुक्त होने के कारण इन्हें एकार्थी पूर्वप्रत्यय माना जाता है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में एकार्थी पूर्वप्रत्यय सबसे अधिक संख्या में प्रयुक्त हुए हैं। इनके उपन्यासों के समवर्गीय और विषमवर्गीय सभी स्त्री-पुरूष पात्र परस्पर संवादों में एकार्थी पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग अधिक करते हैं। इनके उपन्यासों की भाषा में निम्नलिखित एकार्थी पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है:-

1. अ, आ, अन, अनु
2. सु, स
3. कु, क
4. प्र, सम,
5. उप, अप,
6. अव, अभि,
7. नि, नी, निर,
8. दु, दू, दुर, वि, प्रति

उपर्युक्त एकार्थी पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग निम्नलिखित उदाहरणों में देखा जा सकता है:-

मेरी ज़िन्द रहते, जब-जब **प्रभाती** उठूँ[19]

अरी उन **अभागों** की याद तेरे दिल आज ही क्यों पड़ी?[20]

सरदारी ने सुना-**अनसुना** कर तीखे गले कहा[21]

उस पर **सुयोग** और **संयोग** यह भी कि द्विवेदी की प्रज्ञा से अध्यात्म और चिंतन भी तरंगित ही रहते हैं।[22]

जो आज **दुर्दिन** में मेरे सबसे अपने है, [23]

कमोबेश, अच्छा-बुरा अगला-पिछला, पढ़ाई, लिखाई और **प्रशिक्षण** के गुण-**अवगुण** सब एक हस्ताक्षर और स्थान से जुड़ गए।[24]

रात को खाने इत्यादि से **निवृत्त** होकर डॉक्टर साहब को मालकिन ने अन्दर बुलाया। **अभिवादन** के बाद बोली।[25]

कानों में जैसे कोई **अपशकुन** सुन पड़ा।[26]

(2) अनेकार्थी पूर्वप्रत्ययः- ऐसे पूर्वप्रत्यय जो रचना स्तर पर एकल परिलक्षित होते हैं, परन्तु अर्थ के स्तर पर एकाधिक अर्थ भेदक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं, अनेकार्थी पूर्वप्रत्यय कहलाते हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में इस प्रकार के पूर्व प्रत्ययों का प्रयोग कम संख्या में मिलता है। इनके उपन्यासों की भाषा में एक ही पूर्वप्रत्यय विलोमार्थता या निषेधात्कता तथा निश्चयात्मकता के प्रकाशन में प्रयुक्त हुआ है। इनके उपन्यासों की भाषा में निम्नलिखित अनेकार्थी पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग मिलता है:-

1. 'आ' और 'अभि' पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग
2. नि, नी, निर पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग।
3. 'वि' पूर्वप्रत्यय का प्रयोग।

(1) 'आ' और 'अभि' पूर्वप्रत्ययों का प्रयोगः- कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में प्रयुक्त शब्दों में अनेकार्थता के बोधक 'आ' और 'अभि' पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। जैसे:-

एक ऊपर **आसमान** पर और एक थल्ले पानी में।[27]

आप लोग थके हैं, **आराम** करें[28]

आरण्या ने हस्तलिखित **आलेख** पढ़ा-कुछ गलतियाँ ठी, की[29]

भला इस **आलस** का भी क्या कारण?[30]

यह जलपहाड़ तो **आकाश** की ओर जाती राह अन्तिम पडाव लगता है[31]

पति को उस नज़र से देखा जिसमें आहत **अभिमान** नहीं अपना सम्मान अपना मान होता है।[32]

यही **अभियोग** में तुम पर लगाने को था।[33]

मंच पर **अभिनीत** होना अभी कुछ बाकी है क्या।[34]

किसी **अभ्यागत** का आगमन है क्या।[35]

मिसपाल ने जब **अभिवादन** का उत्तर दिया-[36]

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रयुक्त आसमान, आकेश, आलेख आदि शब्दों में प्रयुक्त 'आ' पूर्वप्रत्यय समग्रता का बोधक हैं। आराम एवं आलस शब्दों में प्रयुक्त 'आ' पूर्वप्रत्यय विलोमार्थता का बोधक हैं। अभियोग एवं अभिमान शब्दों 'अभि' पूर्वप्रत्यय निषेधात्मकता के अर्थ प्रकाशन में प्रयुक्त हैं। अभिनीत, अभ्यागत, अभिवादन शब्दों में 'अभि' पूर्वप्रत्यय विधेयात्मक अर्थ के प्रकाशन में प्रयोग हुआ हैं।

(2) नि, नी, निर, 'पूर्वप्रत्ययों का प्रयोगः- कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में 'नि' नी, निर' पूर्वप्रत्ययों का प्रयोग अनेकार्थता प्रकाशन में मिलता है। ये तीनों ही पूर्वप्रत्यय 'नि' के अलग-अलग रूपान्तर हैं। इनके उपन्यासों में नि, नी, निर पूर्वप्रत्यय निषेधात्मकता और निश्चयात्मकता के अर्थ प्रकाशन में प्रयुक्त हुए हैं। जैसेः-

अचरज भरा और **निरर्जन** एकान्त का सम्पूर्ण अहसास[37]

निर्भय होकर मौसी को देखती-भर रही।[38]

निराशा को परे ही रखना।[39]

इसी रक्त से किसी का **निर्माण** कर बेजान-सा पड़ा था।[40]

छेड़-छाड़, चटाक-पटाक, बोली-ताने में **निपुण**, समित्रों इतनी

सिदकवाली कब से हो गई?[41]

वह ग्रीस के सरदार क्षत्रप को **नियुक्त** कर गए थे।[42]

लड़की, जगत की आत्मा इसी में **निवास** करती है[43]

ईशान मौसमी काटने लगे-**निमग्नता** और कठोरता से।[44]

कहीं भी कोई एक दोस्ती का **निमन्त्रण** हो[45]

''वाह-वाह, परदेश में तो ऐसे बन्दे **निहत्थों** के हत्थ हुए न।[46]

उपर्युक्त उदाहरणों में आये निर्जन, निर्भय, निराशा आदि शब्दों में प्रयुक्त 'निर' पूर्वप्रत्यय का प्रयोग विलोमार्थता के प्रकाशन में हुआ है। निर्माण शब्द में 'निर' पूर्वप्रत्यय का प्रयोग निरतरता के अर्थ में प्रयुक्त है। निपुण नियुक्त, निवास, निमग्नता, निमन्त्रण शब्दों में 'नि' पूर्वप्रत्यय निश्चयात्मकता अर्थ के प्रकाशन में प्रयुक्त हुआ हैं तथा निहत्थों शब्द में 'नि' पूर्वप्रत्यय निषेधात्मकता को व्यक्त करता है। ऐसे ही निरोध, निरोग, नीरस आदि शब्दों में 'नी', 'नि' पूर्वप्रत्य निषेधात्मकता को व्यक्त करते हैं।

(3) 'वि' पूर्वप्रत्यय का प्रयोगः- कृष्णा सोबती के उपन्यासों की भाषा में 'वि' पूर्वप्रत्यय अनेकार्थी भूमिका का निर्वाह करता है। 'वि' पूर्वप्रत्यय का प्रयोग विशेषार्थी और विलोमार्थी हैं। जैसेः-

हाथ से **विराम** दे बहू को आवाज दी।[47]

उनकी आँखों में बारी-बारी से **विदेश** की कई स्मृतियाँ घूम गई।[48]

भले वह **विमुख** हो जाए परिवार से पर अपने कर्त्तव्य से नहीं होता[49]

मैं **विशेष** महसूस कर रही हूँ।[50]

आकृति अँधेरे में **विलीन** हो गई।[51]

फिर बात बदलकर **विनम्रता** से बोली।[52]

उनके साथ ही अपनी **विचित्र**-सी वेशभूषा भी होती।[53]

हमेशा वाद-**विवाद** और संवाद अच्छी बात नहीं।[54]

राग-**विराग** प्रेम-अनुराग, पीड़ा-दर्द स्मृति **विस्मृति**, तृप्ति तन्मयता, उल्लास, दुःख-सुख, शोक विषाद आनन्द-आहलाद।[55]

विधर्मी के संग अंग भेट तेरी मति भ्रष्ट हो गई।[56]

उपर्युक्त उदाहरणों में विराम, विदेश, विमुख 'विवाद', विस्मृति, विराग तथा विधर्मी शब्दों में 'वि' पूर्वप्रत्यय विलोमार्थता के 'प्रकाशन' में प्रयुक्त हुआ हैं। विशेष, विलीन, विनम्रता, विचित्र आदि शब्दों में 'वि' पूर्वप्रत्यय विशेष अर्थ के प्रकाशन में प्रयुक्त हुआ हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'वि' पूर्वप्रत्यय अपनी संरचना एवं प्रयोग के आधार पर अनेकार्थी पूर्वप्रत्यय हैं।

उपर्युक्त पूर्वप्रत्ययों के विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कृष्णा सोबती के उपन्यासों की मानक हिन्दी के निर्माण और विकास में लोकबोलियों की महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका रही है। इस आधार पर इनके उपन्यासों की भाषा भारत की मानक संस्कृति के साथ-साथ लोकसंस्कृति की भी अभिव्यक्ति करती है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. डार से बिछुड़ी, पृ. सं. 53, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
2. मित्रोमरजानी पृ. सं. 70, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
3. तिन पहाड़ पृ. सं. 56, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
4. सूरजमुखी अँधेरे के पृ. सं. 39 कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
5. समय सरगम पृ. सं. 65, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
6. समय सरगम पृ. सं. 65, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
7. चन्ना पृ. सं. 345, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
8. चन्ना पृ. सं. 35, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
9. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 205, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
10. समय सरगम पृ. सं. 345, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
11. चन्ना पृ. सं. 60, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
12. तिन पहाड़ पृ. सं. 23, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
13. तिन पहाड़ पृ. सं. 73, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
14. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 301, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
15. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 391, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
16. तिन पहाड़ पृ. सं. 42, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
17. समय सरगम पृ. सं. 15, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
18. समय सरगम पृ. सं. 27, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
19. डार से बिछुडी पृ. सं. 63, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
20. डार से बिछुडी पृ. सं. 78, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
21. मित्रो मरजानी पृ. सं. 44, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
22. समय सरगम पृ. सं. 83, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
23. तिन पहाड़ पृ. सं. 76, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
24. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दूस्तान पृ. सं. 64, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
25. चन्ना पृ. सं. 83, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
26. डार से बिछुड़ी पृ. सं. 89, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
27. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 18, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002

28. तिन पहाड़ पृ. सं. 38, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
29. समय सरगम पृ. सं. 56, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
30. समय सरगम पृ. सं. 56, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
31. तिन पहाड़ पृ. सं. 23, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
32. चन्ना सरगम पृ. सं. 60, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
33. सूरजमुखी अँधेरे के पृ. सं. 88, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
34. समय सरगम पृ. सं. 07, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
35. समय सरगम पृ. सं. 17, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
36. चन्ना पृ. सं. 60, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
37. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दूस्तान पृ. सं. 85, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
38. चन्ना पृ. सं. 117, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
39. ऐ लड़की पृ. सं. 49, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
40. चनना पृ. सं. 91, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
41. मित्रो मरजानी पृ. सं. 66, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
42. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान पृ. सं. 238, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
43. ऐ लड़की पृ. सं. 49, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
44. समय सरगम पृ. सं. 67, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
45. सूरजमुखी अँधेरे के पृ. सं. 54, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
46. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 366, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
47. मित्रो मरजानी पृ. सं. 77, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
48. चन्ना पृ. सं. 370, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
49. ऐ लड़की पृ. सं. 45, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
50. समय सरगम पृ. सं. 17, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
51. तिन पहाड़ पृ. सं. 89, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
52. चन्ना पृ. सं. 15, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
53. चन्ना पृ. सं. 325, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
54. समय सरगम पृ. सं. 143, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
55. समय सरगम पृ. सं. 153, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002
56. ज़िन्दगीनामा पृ. सं. 243, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., -दरियागंज नई दिल्ली-110002

हमारी संस्कृति-हमारी पहचान

प्रियंका सिंह

शोधा छात्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

गंगा-यमुनी तहजीब से लबालब भारत का पूरा इतिहास भारत को विशिष्ट दर्जा प्रदान करता है। यहाँ शक, कुषाण, हूण सभी आये और अन्ततः वे भारत की माटी में समा गये और भारतीय हो गये। एक शब्द में कहें तो यह भारत की संस्कृति है जिसमें हम कश्मीर से कन्याकुमारी तक हाथ धामे एक साथ बंधे हुए हैं। भारत की संस्कृति बहुआयामी हैं जिसमें भारत का महान इतिहास और विलक्षण भूगोल समाहित है। बौद्ध धर्म एवं स्वर्णयुग की शुरूआत और इसके अस्तगमन के साथ फली-फूली अपनी स्वयं की विरासत शामिल है। भारत की संस्कृति सर्वांगीणता, विशालता, उदारता प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी स्थान रखती है।

संस्कृति से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है, जिससे उसे 'सुधरा हुआ', 'ऊँचा', 'सभ्य' आदि विशेषणों से विभूशित किया जाता है। संस्कृति जीवन की विधि है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसमें हम सोचते हैं और कार्य करते हैं, इसमें वे तत्व भी सम्मिलित हैं जो हमने एक समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त किए हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म, वेश-भूषा, बोल-चाल, रहन-सहन सभी संस्कृति के पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीति-रिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने का तरीका और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है।

एस0 आविद हुसैन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भारत का हजारों वर्षो का सांस्कृतिक इतिहास दर्शाता है कि एकता का सूक्ष्म किंतु मजबूत धागा जो उसके जीवन की अनंत विविधताओं से होकर जाता है, सत्ता समूहों के जोर देने या दबाव के कारण नहीं बुना गया, बल्कि भविष्य दृष्टाओं की दृष्टि, संतों की चेतना, दार्शनिकों के चिन्तन और कवि कलाकारों का परिणाम है और केवल ये ही मजबूत माध्यम हैं, जिनका राष्ट्रीय एकता को व्यापक, मजबूत बनाने में उपयोग किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान रही है जो संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, जिसमें भारत का महान इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी सभ्यता और वैदिक युग का विकास भी सम्मिलित है। भारतीय संस्कृति कई हजार वर्ष तक काल की क्रूरता से बचते हुए आज भी जीवंत है। जहाँ एक ओर, सुमेरियन, बेबीलोनियन, मिस्र, ईरान, यूनान और रोम की संस्कृतियाँ ध्वंस होती चली गई जिसके मात्र कुछ ध्वंसावशेष ही उनकी गौरव-गाथा गाने के लिए बचे हैं, तब वहीं भारतीय संस्कृति अपने विराट और विशाल रूप में साक्षात खड़ी है-

''यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहाँ पर,
अब तक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहाँ हमारा।''

(ताराना-ए-हिन्दी अल्लामा इकबाल)

भारतीय संस्कृति अपनी विशिष्टता के कारण विश्व-प्रसिद्ध है, उसने न केवल भारत में ही अपितु भारतवर्ष के बाहर भी सभ्यता का पाठ पढ़ाया। साइबेरिया के सिंहल (श्रीलंका) तक और मैडीगास्कर टापू, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशांत महासागर के बोर्नियो, बाली के द्वीपों तक के विशाल भू-खण्डों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। मध्य प्रदेश के भीमवेटका में प्राप्त शैलचित्र, नर्मदा घाटी

में की गई खुदाई तथा कुछ अन्य नृवंशीय एवं पुरातत्वीय प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारतभूमि आदिमानव की प्राचीनतम भूमि रही है। आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व भारत के बहुत बड़े भाग में एक उच्चकोटि की संस्कृति का विकास हो चुका था, ऐसा सिंधु घाटी की सभ्यता के विवरणों से सिद्ध होता है। इस प्रकार वेदों में परिलक्षित भारतीय संस्कृति न केवल प्राचीनता का प्रमाण है बल्कि वह भारतीय अध्यात्म और चिन्तन की भी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। गीता और उपनिषदों के संदेश हजारों सालों से हमारी प्रेरणा और कर्म के आधार रहे हैं। हालांकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, साल-दर-साल परिवर्तन होते हैं परन्तु भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व और जीवन मूल्यों में एक जैसी निरन्तरता रही है। आज भी भारतीय स्वयं को उन मूल्यों के साथ जुड़ा हुआ पाते हैं। हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें वृद्धि की और हमने भी उन्हीं से सीखा है। जैसे समय व्यतीत होता गया हम उसमें नये विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले जाते हैं। यह संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती चली जाती है। सत्य, शिव और सुन्दर ये तीनों शाश्वत मूल्य हैं जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से निकट लाती है और हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है। संस्कृति से ही मनुष्य नैतिक बनता है और यह संस्कृति ही हमें प्रेम, सहिष्णुता और शान्ति का पाठ पढ़ाती है। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी है, यह वास्तविक जीवन के मायने और जीवन जीने के तरीके सिखाती है। विश्व जैसे-जैसे जुड़ता चला जा रहा है हम अधिक से अधिक वैश्विक हो रहे हैं। सह-अस्तित्व की आवश्यकता ने विभिन्न संस्कृतियों और विश्वासों में सह-अस्तित्व को भी आवश्यक बना दिया है। इसलिए अपनी संस्कृति को समझना अतिआवश्यक हो गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से भौगोलिक अवस्था पर विचार करें तो भारत में नदियों का पवित्र माना जाना यह स्पष्ट संकेत देता है कि सांस्कृतिक जीवन में नदियों का कितना महत्व है। आज भी भारत में नदियों को देवी के समान पवित्र माना जाता है एवं पूजा की जाती है। हाँ यदि वर्तमान की स्थिति का अवलोकन करें तो नदियाँ प्रदूशित होती जा रही हैंजिसका कारण केवल और केवल मनुष्य है, परन्तु यहाँ के अनेक संगठनों, पर्यावरण विभाग और सरकार द्वारा कई योजनाएँ भी चलाई जा रही हैं जिससे हम नदियों को स्वच्छ बनाने के प्रयास में लगे हैं। जहाँ गंगा जैसी पवित्र नदी को माँ के रूप में माना जाता है। यदि वह प्रदूशित हो रही, तब हम सबका यह उत्तरदायित्व बनता है अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने का।

यूरोप की संस्कृति पर यदि विचार करें जिसने विश्व को प्रभावित किया है, तब यह विचार स्पष्ट उभरकर सामने आता है कि इस पर भी भारतीय संस्कृति की छाप है। इसके विकास की जड़ में फ्रांस की क्रान्ति द्वारा प्रतिपादित समता, स्वातत्र्य व भ्रातृत्त्व के सिद्धान्त हैं जिनको रूसो ने अपनी पुस्तक क्रान्ति की बाइबिल तथा सोशियल कान्ट्रैक्ट में अच्छी तरह समझाया है। ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दी में यूरोप ने भिन्न-भिन्न शास्त्र तथा विधाएँ स्पेन के अरब-विश्वविद्यालयों से सीखीं। इन अरबों ने यह सब ज्ञान भारत से ही सीखा था जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं।

भारतीय कथा साहित्य ने भी मध्यकालीन यूरोप को खूब प्रभावित किया। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हाता है कि पाश्चात्य संस्कृति की जड़ें भारतीय संस्कृति से ही जुड़ी हैं और इस प्रकार हमारी संस्कृति की विशिष्टता संसार के सम्मुख बड़ी समृद्धशाली बन जाती है। हमारे भारत ने और भारत के विद्वानों ने परम आवश्यकीय सिद्धान्त शून्य को जन्म देकर विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया। समस्त देशों ने शून्य की गणनाविधि को अपना लिया। हमारे ऋशियों ने योग की महत्ता का प्रतिपादन किया और आज पूरी दुनिया ने इसे अपनाया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय संस्कृति के विशुद्ध व परिष्कृत स्वरूप को विश्व के सामने रखा। महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति के प्रतीक सत्य, अहिंसा व तप की त्रिवेणी ने सम्पूर्ण दुनिया को अपनी धार से सिंचित किया। जब विश्व में अशान्ति जैसा वातावरण चारों ओर फैला हो ऐसे में गाँधी जी की अहिंसा और शान्ति को जो मानवता के सिद्धान्तों पर अवलम्बित थी उसको दुनिया ने स्वीकारना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हमारी संस्कृति ने न केवल अपना भविष्य उज्ज्वल किया अपितु संसार के सम्मुख एक श्रेष्ठ उदाहरण भी प्रस्तुत किया। हमारी संस्कृति से ही विश्व के सम्मुख हमारी पहचान है जो बड़े ही विशिष्ट रूप में प्रस्तुत है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र या देश की वे उपलब्धियाँ हैं और जिनसे उसके इतिहास, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक परिवेश, आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, दर्शनिक विचारधाराओं, धर्म, लोक कलाओं और जीवन आदि के विषय में पता चलता है। वे उपलब्धियाँ राष्ट्र या देश की प्रज्ञा एवं कल्पना के सामूहिक प्रयासों का परिणाम है तथा उनके निर्माण और विकास में महान दार्शनिक तत्ववेत्ताओं, वैज्ञानिकों, कवियों, संगीतज्ञों, चित्रकारों तथा मूर्तिकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अत: संस्कृति का सम्बन्ध जहाँ मानव के शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों के विकास के साथ है, वहीं धर्म, कला,

दर्शन व साहित्य भी इसके अभिन्न अंग हैं। संस्कृति अथवा संस्कार देश की आत्मा व प्रेरणास्रोत होते हैं जिनके सहारे देश अपने लक्ष्यों व आदर्शों का निर्माण करता है।

भारतीय नागरिकों की सुंदरता एवं उनकी धैर्यता उनकी सहनशीलता, लेने और देने की भावना उन संस्कृतियों के मिश्रण में निहित है जिसकी तुलना एक ऐस उद्यान से की जा सकती है जहाँ कई रंगों और पर्णो के फूल हैं जबकि उनका अपना अस्तित्व बना हुआ है और वे भारत रूपी उद्यान में अपनी इसी सुंदरता, समन्वय का उदाहरण दुनिया के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। हमारी संस्कृति उदार होने के साथ-साथ विशाल भी है जिसने हमें एक नई पहचान दिलाई और विश्वपटल पर श्रेष्ठ बनकर उभरी।

सन्दर्भ सूची

1. भारतीय सांस्कृतिक विरासत-सुदर्शन कुमार कपूर
2. भारत की राष्ट्रीय संस्कृति-एस0 आबिद हुसैन
3. भारतीय संस्कृति - आरुणि त्रिवेदी
4. भारतीय संस्कृति का आधार धर्म, समन्वय और आचार - सुशील कुमार शर्मा।
5. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद - प्रभात झा।

दादूपंथी नारायणदास के साहित्य में नारी-विमर्श

डॉ० रेखा शेखावत

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, सतनाली, महेन्द्रगढ़, हरियाणा

शोध-सारांश

भारतीय संस्कृति वैदिक काल से ही नारी को पुरूष समाज में सम्मान का दर्जा प्राप्त था। लेकिन फिर भी नारी किसी ना किसी रूप में पुरूष की शक्ति एवं अहं के कारण शोषण का शिकार बनी रही। भारत वर्ष में ही नहीं विश्व के प्रत्येक कौने में नारी को स्वतन्त्रता का पूर्ण अधिकार नहीं मिला। वह सदैव पुरूष के अधीन ही रही। उसका सौंदर्य, श्रृंगार और सम्पूर्ण समर्पण पुरूष के लिए होता है। नारी पुरूष पर सर्वस्व न्यौछावर करने पर ही तृप्त होती है। भक्ति कालीन संतों ने नारी को माया रूप में स्वीकार कर उसे भक्ति में बाध घोषित कर उसके साथ अन्याय किया। समग्र रूप से उसे ही कामिनी पद से विभूशित करना कहा तक उचित हैं? भक्ति कालीन संतों में मीरा, आण्डाल, अक्क, महादेवी एवं लल्लद्यद का व्यक्तित्व भी किसी भी रूप में पुरूष संतों से कम नहीं है। उसी काल से स्त्री चेतना की अलख समाज में चिंगारी बन चुकी थी। मात्रा श्रृंगारिक पक्ष को देखकर उसे भक्ति में बाधा नहीं कहना चाहिए। दादूपंथी संत नारायणदास ने पुष्कर जैसे साम्प्रदायिक सद्भावना स्थल पर वास करते हुए सत्संग के माध्यम से नारी को समाज में समानता का दर्जा प्रदान करने हेतु सम्पूर्ण मानव जाति को संदेश दिया है। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्रियों को उनके नैतिक दायित्वों व अधिकारों के प्रति सचेत किया है। साथ ही पुरूषों को भी समाज की नैतिक जिम्मेदारी से अवगत कराया है। स्त्रियां प्रत्येक काल में सामाजिक धार्मिक सुधारों नारी मुक्ति आंदोलन की आवाज बुलंद करती नजर आती है। अतः उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में समानता व सुरक्षा का अधिकार मिलना चाहिए। 21 वीं शताब्दी में भी यह सम्भव सा प्रतीत नहीं होता। आज भी मातृ शक्ति नर पिशाचों से सुरक्षित नहीं है। बलात्कार की दर्दनाक घटनाओं ने देश को झकझोर रखा है। इस हेतु नारी सशक्तिकरण आवश्यक है। भ्रमित समाज का मार्ग दर्शन करने के लिए संत नारायणदास प्रासंगिक है।

बीज शब्द: नारी-सशक्तिकरण-विमर्श, संत-मत, सामाजिक सरोकार।

प्राचीन काल से पितृसतात्मक समाज में पुत्र का महत्व पुत्री की अपेक्षा अधिक रहा है। स्त्रियों की दशा में समय एवं परिवेश के अनुसार परिवर्तन हुआ है। भारतीय संस्कृति में स्त्री मां शक्ति रूपा बनकर प्रत्येक हृदय में वास करती है। वह प्रकृति है पुरूष के संग उसकी अर्धांगिनी बनकर उसके साथ चलने का वचन देकर पुरूष को प्रतिस्पर्धा के वशीभूत हो पीछे छोड़ चुकी है। आदि युग से समाज पुरूष प्रधान है, वह जिसमें स्त्री को सम्मान भी दिया है और कहीं उसको मात्र वस्तु समझकर अपनी इच्छाओं का दास बना दिया एवं इसी को अपना बल माना। जननी का महत्व हमेशा से सार्थकता लिए हुए नहीं है। यह तथ्य है कि प्राचीन काल से ही पुरूषों का आधिपत्य परिलक्षित होता है। लेकिन यह भी ज्ञातत्व है कि ऋग्वैदिक काल से आधुनिक काल तक महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में महत्व अर्जित कर लिया है।

शांति कुमार नानूराम व्यास लिखते हैं कि ''सिद्धान्तः नारी को अपने-आपकी रक्षा करने में असमर्थ माना जाता था, अतः वह पति, पुत्रा या बंधु-बांधवों के ही अधीन रहने के योग्य थी। किंतु व्यवहार में इसका अर्थ यह नहीं था कि वह सदा घर की चाहर दीवारी में कैद रहती थी। जीवन कही नीरस न बन जाय, अतः वह सामूहिक भोजों, धार्मिक समारोहों, प्रदर्शनों और क्रीड़ा-विनोद

में मुक्त भाव से सम्मिलत होती थी। सामूहिक अवसरों पर वह अपने समस्त अलंकरणों में पूरी सजध्ज के साथ उपस्थित होकर वातावरण में उल्लास और चमक-दमक का संचार कर देती थी। सार्वजनिक उत्सवों में-जबकि राजधनी एक अलंकृत रमणी-जैसे सुन्दर वेश में सज्जित होती थी, कहीं मंद और उच्च स्वर में संगीत ध्वनि सुनाई पड़ती थी तथा सूत और मागध्गण जन-संकुल मार्गो को और नारियां अवसर की चित्र विचित्रता में अभिवृद्धि करने के लिए मौजूद रहती थी।''[1]

प्रारम्भ से ही नारी को जुए एवं शराब के रूप में रखा गया है। उसे भोग की वस्तु माना है, यह मात्र भारत का नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का नारी दर्शन है। आदिकाल के नाथ साहित्य में नारी साहचर्य को साधना का बाधक माना है। ''भक्ति-आंदोलन के इस ज्वार ने शूद्रों और अंत्यजों की ही भांति सामाजिक भेदभाव की यातना से ग्रस्त, सदियों से पीड़ा झेलती हुई नारी के अंतर्मन का भी अपनी आशाओं -आकांक्षाओं तथा स्वप्नों के साथ समाज की सतह पर ला दिया।''[2]

नाथमत का प्रभाव मध्यकालीन संत-धरा पर दृष्टिगत होता है। कबीर व उनके अनुयायियों ने अपने चिंतन, जीवन दर्शन में नाम-जप एवं मानसिक भक्ति को मूल तत्व माना है। संत सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है और उसका धर्म विश्व धर्म है। इस विश्व धर्म का मूलाधार है हृदय की पवित्रता। संतों के दर्शन में जहां विश्व मंगल कामना की गई है। वहां नारी को साधना में माया रूपिणी स्वीकार कर कबीर कह देते हैं-''माया महाठगिनी मैं जानी।'' साथ ही वे संतों का नारी साहचर्य-निषेध करते हुए उसके कामिनी रूप की भर्त्सना करते हुए ''कबीरा तिनकी कौन गति जो नित नारी के संग।'' उक्ति कह देते है। पतिव्रता की स्तुति करते हुए -''पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।'' कहकर समाज में नारी को सम्मान दिलाने का प्रयास भी संतों ने किया है। यही दर्शन मध्यकाल का आदर्श बन जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि ''उनके प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। जो प्रेम या भक्ति पद-पद पर भक्त को भावविह्वल कर देती है।''[3] डॉ. नगेन्द्र ने 'तुलसी और नारी' लेख में कहा है कि ''मध्य युग में उपासना के तीन मार्ग थे: नारी-भाव से पुरूष-रूप भगवान की उपासना, पुरूष भाव से नारी अर्थात् शक्ति रूप भगवान की उपासना और पुरूष भाव से पुरूष रूप भगवान की उपासना जिसके अन्तर्गत संख्य और दास्य दोनों भाव आ जाते हैं। पहली दो पद्धतियों की अनिवार्यता ही है, इस तीसरी उपासना पद्धति में नारी नहीं आती, और आती है तो बाधा रूप में आती है। मध्ययुगीन धरणा से नारी पर भक्ति में बाध का लेबल लगा दिया।[4]

मध्यकाल की अराजकतापूर्ण तथा उच्छृंखल शासन-व्यवस्था में स्त्रियों की रक्षा के लिए एवं उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए उन्हें घर की दीवारों में बंदी बनाकर रखा जाता था। सामंती युग के संघर्ष में नारी सबसे बड़े आकर्षण का केन्द्र थी। उस युग में नारी का कामिनी रूप भोगमात्र रह गया था जो संतों के लिए स्वीकार्य नहीं था। दयनीय प्रसंग यह है कि संतों ने नारी के रति भाव को देखा एवं उसके आध्यात्मिक महत्व की ओर से अपने नेत्र बंद कर लिए। दादू कबीर के अनुगामी थे। दादू व कबीर में वैचारिक साम्य है। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति में अन्तर है। दादू ने कबीर के समान विद्रोह भाव धरण नहीं किया। अपनी बात विन्रमता पूर्वक प्रकट की है। दादू नारी के कामिनी रूप को हेय बताते हुए कहते हैं-

''दादू तज भरतार को पर-पुरूषा रत होई।
ऐसी सेवा सब करे, राम न जाने सोई।।[5]

तत्कालिन समाज में नैतिक मूल्यों का हनन निरन्तर हो रहा था। संतों ने सूफी धारा में दाम्पत्यमूलक प्रतीकों को ग्रहण कर नारी को आत्मा रूप स्वीकार किया एवं वह निष्काम भाव से प्रियतम परमात्मा से मिलन की चाह रखती प्रतीत होती है।

''पिवसौ खेल प्रेम रख जो जियरे जक होइ।
दादू पावे सेज सुख पड़दा नाहि कोई।।[6]

इन संतों में दाम्पत्यमूलक प्रतीक अवश्य है लेकिन ये नारी को साधना में बाधा तत्व ही मानते हैं। संत दर्शन सामाजिक होने के नाते स्त्रियों के प्रति संवेदनशील है। लेकिन स्वयं की दृष्टि उन्होंने आध्यात्मिकता तक ही सीमित रखी है। मध्यकाल की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को निडर होकर संतों ने उठाया उस युग की बड़ी समस्या थी नारी शोषण की जिसे उन्होंने अधिक उजागर नहीं किया। स्त्री-विमर्श एवं नारी सशक्तिकरण का आन्दोलन तो मीरा से ही शुरू हो जाता है। अपनी वैक्तिक स्वतन्त्रता हेतु मीरा ने सामंतवाद की सारी बेड़िया तोड़कर नारी मुक्ति का आह्वान किया।

''इस युग में नारी मूक बन कर रह गई और उसके समस्त अधिकार छीन लिये गए। यानि कि उसका कोई पृथक अस्तित्व नहीं। उसका व्यक्तित्व उसके पति में निहित हो गया, वह पति की 'वस्तु' हो गई, जिसका वह स्वेच्छानुसार प्रयोग करने को स्वतन्त्र था,

वह पति की चेरी थी, सहचरी नहीं, गृहदासी थी गृहवासिनी नहीं, आज्ञापालिका थी सहयोगिनी नहीं, वासना तृप्ति का साधन थी आत्मोन्नति का नहीं, मनोरंजन की सामग्री थी आत्मसंस्कार की नहीं।''[7]

आधुनिककाल में दादूपंथी संत नारायण ने अजमेर जैसे धार्मिक समन्वय स्थल पर रहते हुए समाज की सभी समस्याओं को अपने सत्संग के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया। उनका साहित्य-सर्जन एवं सत्संग अर्थापार्जन का साधन नहीं था बल्कि निःस्वार्थ भाव से समाज को नैतिक पतन से बचाने एवं मूल्य शिक्षा द्वारा विकास ग्रस्त मानव चरित्र को उज्ज्वल बनाने का सद्प्रयास था। इन्होंने अपनी पूर्व परम्परा का अनुगमन करते हुए भी नारी मन का विश्लेषण अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है।

कबीर का अध्मित है कि ''नारी की छाया परत अंध होत भुजंग।'' इसके विपरीत संत नारायणदास समाज में स्त्री-पुरूष दोनों को समान अधिकार एवं सम्मान देने का उपदेश देते हैं। संत धरा से जुड़कर भी संतों से ऊपर उठे एवं स्त्राी को सम्मान देने हेतु पुरूष को बोध कराते है।

संत कहते हैं कि-

''पत्नी के सब दोष हर प्रेम से ही, गृहलक्ष्मी है
पत्नी विदित यह।
प्रसन्न उसको रख धर्म द्वारा,
तजे धर्मा पथ को ला प्रेम से पथ।।[8]
उन्होंने स्त्री को भी दुर्गुणों व दुराचार से दूर रहने का संदेश दिया है-
मद्यपान व्यर्थ अटन, पर-गृह भायन कुसंग।
पति से छल तज नारी का धर्म करत ये भंग।''[9]

वर्तमान समय में व्याप्त पारिवारिक कलह, टूटते दाम्पत्य संबंध, पलायनवादी वृत्ति अजनबीपन, शहरीकरण की दौड़ एवं भौतिकता की चकाचौंध से समाज में संवेदनाहीन यांत्रिक पीढ़ी का जन्म हो रहा है। आज नैतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं जो स्त्री और पुरूष को धारण करने अनिवार्य है। इस हेतु संत नारायणदास का साहित्य उपयोगी एवं मार्गदर्शक बन सकेगा। भूमण्डलीकरण के इस दौर में नारी भी पुरूष की सहधर्मिणी, माता व बहन बनकर नहीं रहना चाहती। वह पाश्चात्य रंग में रंगकर ''लिव-इन-रिलेशनशिप'' एवं सेरोगेट मदर बनकर अपनी सभी जिम्मेदारियों से मुक्त हो रही है। वह स्वतन्त्रा जीवन जीना चाहती है। यह क्षणिक सुख है लेकिन वह इस दिशाहीन जीवन से परिवार, समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में बाधक बन रही है। आज स्त्री एवं पुरूष इन परिस्थितियों के स्वयं ही जिम्मेदार हैं जिसका अंतिम रूप परिवारवाद को समाप्त करना है जो समाज व संस्कृति के लिए घातक सि होगा।

स्त्राीवादी विमर्श में शमा शर्मा कहती है कि-''स्त्री सशक्तिकरण के जो प्रश्न समाज में प्रकट हो रहे है, साहित्य उनसे निरपेक्ष नहीं रह सकता। हर काल में स्त्रियों के बलीकरण के प्रश्न बदलते रहे हैं। आज स्त्रियां लिंगभेद, महिलाओं पर हिंसा को रोकना, निजी कानूनों में संशोधन, महिला स्वास्थ्य तथा आर्थिक दशा आदि में मुद्दों से जूझ रही है। स्त्रियों को समाज की अग्रगामी धारा से जोड़ने में महिला आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई है। आज साहित्य में भी महिला आंदोलन द्वारा उठाये गये मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे हैं। यह एक अच्छी खबर है।

समाज ने नारी के लिए कुछ पैमाने बना रखे हैं। आदर्श माँ, पत्नी, बेटी व बहन मात्र इन्हीं पर वह खरी उतरनी चाहिए लेकिन प्राचीनकाल से ही नारी का रूप भोग की वस्तुओं से अधिक उज्जवल नहीं बन सका। लेकिन नारायणदास के समय में ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान कुछ तो पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव व कुछ स्वदेशी आंदोलन के कारण नारी ने घर की चौखट लांघी। कुलीन घरों की स्त्रियां भी पुरूषों के बराबर जेल जाने लगी व सड़कों पर लाठियों का सामना करने लगी तो समाज की दशा व दिशा में स्वतः ही बदलाव आने लगा। नारी अपने शक्ति रूप को अनुभव करने लगी इसका प्रभाव साहित्य में भी आ गया। संत दर्शन ने जहां नारी को ''नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।'' तथा ''ढोर, गंवार शुद्र अरू नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी कहकर जहां मध्यकाल में नारी को बाधा व माया रूप में वर्णित किया वही रीतिकाल में भोग-विलास की वस्तु से अधिक नहीं माना। अर्थात् आदिकाल से रीतिकाल तक वह श्रृंगार की तरूणलता व माया की स्वामिनी ही बनी रही। आधुनिक काल में जागरण का ऐसा घोर निनाद हुंकार भरने लगा कि साहित्य में नारी के दैहिक सौन्दर्य व भोगपरक वर्णन का स्थान नारी शक्ति एवं उनके आन्तरिक सौन्दर्य

ने ले लिया। ''नारी चाहे कितने ही रूपों में क्यों ना विभाजित हो-प्रत्येक रूप में संवेदनशील ही उसका सौन्दर्य है, कोमलता उसका वैभव है और घर उसका साम्राज्य है। यह नारी का स्वभाव है और यही उसकी नैसर्गिक संपदा है। नारी प्रकृति की एक अनमोल देन है, जिसे भारतीय संस्कृति ने प्रतिष्ठित कर विश्व रंगमंच पर एक अनुपम सिद्धान्त प्रस्तुत किया।''[10]

''इस युग में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, प्रार्थना सभा में धार्मिक संकीर्णता को दूर कर नारी आंदोलन के युग का सूत्रपात किया। समाज को औरत के दया, ममता और त्याग की गाथा सुनाई देने लगी। इधर सती प्रथा पर रोक, विधवा-विवाह की शुरूआत और स्त्री-शिक्षा पर आग्रह ने वर्षो की बंद सांकलों को खटखटाना शुरू कर दिया।[11]

''पिछले दो सौ वर्षो में स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। कुछ औरतों के लिए कुछ सामाजिक बंधन भी कम हुए है। कुछ कानून भी बदले हैं। हमारे संविधान ने काफी हद तक औरतों को बराबरी का दर्जा दिया है, परन्तु इन सब के बावजूद आज भी लगभग हर देश में स्त्रियों को न समान अधिकार है और न पूरी आजादी है आज भी लगभग हर जगह पुरूष सत्ता का बोलबाला है।''[12]

संत नारायणदास जी ने आधुनिक काल की नारी शक्ति की चेतनता का सृजन अपने काव्य उपदेशों में किया है। उनके सत्संग के दौरान सभी जातियों के स्त्री-पुरूष समान रूप से शामिल होकर श्रवण करते थे जिसमें प्रत्येक समाज का प्राणी अपनी व्यथा संत के समक्ष रखते थे उन्हीं के आधर पर अपने प्रवचनों में वे नारी को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि-

''सधवा को पति सेव, साधना ज्येष्ठ है।
पति सेवा के साथ, भजन कर श्रेष्ठ है।।''[13]

''आजादी आयी तो लगा कि देश की स्त्रियाँ, जो राष्ट्रीय आह्वान पर बड़ी संख्या में स्वतन्त्रता संघर्ष में भाग ले रही थीं, नारी स्वतन्त्रता को नया अर्थ दे पाएंगी, पर ऐसा हुआ नहीं, बंटवारा हुआ और हमेशा की तरह दंगे फंसादों में जो कहर औरतों पर टूटता आया है, टूटा। औरत होने की त्रासदी उस समय भारत पाकिस्तान दोनों ही देशों की औरतों ने भोगी।''[14]

ऐसे दौर में नारी पाशविकता शारीरिक अत्याचार का शिकार हुई। इस आधुनिक संत ने पुरूषों को परनारी पर कुदृष्टि डालने वालों व अत्याचार करने वालों को संदेश दिया है-

''परतिय वेश्या गमन त्यागिये सर्वदा।
नहिं चिन्तन नहिं बात करें उनसे कदा।।[15]

स्त्री-पुरूष के मध्य रागात्मक भाव प्रायः लुप्त से होते जा रहे हैं। प्रेम मात्रा दैहिक सुख तक सिमटकर रह गया। इसीलिए आत्मिक उन्नति व लगाव अवरूद्ध हो चुके हैं। दादूपंथी नारायण ने जहां स्त्री मन को विश्लेषित किया वहीं पुरूष को शिक्षा देते हुए परस्त्रीगमन को समाज में कलंक घोषित किया है। पुरूष को वे सद्मार्ग पर चलने के साथ-साथ नारी को भी पतिव्रता का धर्म निर्वाह करने हेतु संदेश देते हुये कहते हैं-

''नारी को कर्तव्य यह, अपने भर्ता हेत।
जो हित हो सोई करे, निशि दिन होय सचेत।।[16]

नारी को समाज में सम्मान दिलाने हेतु वे अपने प्रवचन के दौरान सभी की पारिवारिक पीड़ा व समाज में हो रहे अत्याचारों को मौखिक सुनते और उनका निवारण भी बताते स्त्राी के सम्बन्ध में हमारे भारतीय समाज की मानसिकता में अध्कि परिवर्तन आज भी नहीं आया है। हमारी जटिलतम सामाजिक व्यवस्था में पुरूषों के लिये ही उदार दृष्टिकोण है जबकि नारी हेतु प्रारम्भ से ही मान मर्यादा व नियमों के कठोर बंधन। प्रगतिशील युग में भी नारी अत्याचार सह रही है। प्रतिदिन पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों में छपने वाले दिल दहला देने वाले समाचारों से आज के पुरूष समाज का भयावह चेहरा नजर आ रहा है। नारी ने घर के बाहर कदम रखा तो उसका आचार व्यवहार, जीवन शैली में परिवर्तन आने लगा लेकिन आज के फैशन परस्त युग में भी, जहां महंगाई ने पुरूष की कमर तोड़ रखी है। स्त्री में बदलाव की बयान असहनीय लगती है क्योंकि भारतीय पुरूष अभी भी परम्परागत पुरूष ही है। वह अपनी अवहेलना नहीं चाहता। आज की नारी ने पुरानी मानसिकता की बेड़ियों को तोड़ने का संकल्प ले रखा है। वह मर्यादा में रहकर मुक्ति का मार्ग तलाश कर चुकी है। उसने शिक्षा व स्वावलम्बन को ही अपनी मशाल बनाकर नारी होने के मायने बदल दिये है। क्रियाशीलता, निर्भीकता और अपराजिता का रूप धारण कर वह पुरूष से कदम मिलाकर चल रही है। नारी सशक्तिकरण

हेतु आधुनिक संत नारायण ने नारी कर वह उसके सम्पूर्ण अधिकार दिलाने का पूर्णतः प्रयास अपने उपदेशों के माध्यम से किया। वर्तमान में कन्या भ्रूण हत्या से लेकर मानव तस्करी तक जैसे सामाजिक विकार तेजी से अपनी जड़े फैलाते जा रहे हैं। तथ्य यह नहीं हैं कि महिलाओं को सुरक्षा दी जाए या कानून बनाये जाएं लेकिन ऐसा कोई भी कार्य जो नारी शोषण को प्रक्षय दे रहा है पूर्णतः अनुचित हैं। हमें ऐसी मूल्यपरक शिक्षा को लागू करना होगा जो आज नाम मात्रा ही पाठ्यक्रम में शामिल है। जिसमें नारी शोषण, यौन उत्पीड़न, बलात्कार एवं मानव तस्करी जैसी घटनाएं कुछ कम हो सके। आज के दिशाहीन समाज के लिए नवीन मार्ग दर्शन एवं नवजागरण के शंखनाद हेतु दादूपंथी संत नारायण का साहित्य अवश्य ही प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. व्यास शांतिकुमार नानूराम- रामायणकालीन समाज, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली 1987, पृष्ठ संख्या 184
2. मिश्र शिव कुमार - भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, बी-31, गोविंदपुर कॉलोनी, इलाहाबाद, संस्करण 2005, पृष्ठ संख्या 179
3. द्विवेदी हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 11 वीं आवृत्ति-2013
4. नगेन्द्र- कृतिकार, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ संख्या 13
5. स्वामी नारायणदास - श्री दादू वाणी टीका, प्रकाशक श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर संख्या 2007, पृष्ठ संख्या-190
6. स्वामी नारायण दास जी- श्री दादू वाणी टीका- पृष्ठ संख्या-142
7. कटारिया कमलेश -नारी जीवनः वैदिक काल से आज तक यूनिक ट्रैडर्स, जयपुर, 2003 पृष्ठ संख्या 13
8. डॉ. श्यामसुन्दर व्यास- हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृष्ठ संख्या 178
9. स्वामी नारायणदास - श्री शिक्षा सूत्रा प्रकाशक-श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर संस्करण संख्या 2027, पृष्ठ 21
10. पण्डया प्रणव (संपादक)- अखण्ड ज्योति, मासिक पत्रिका, दिसम्बर 2019, अंक 12, पृष्ठ संख्या -42
11. कटारिया कमलेश - नारी जीवनः वैदिक काल से आज तक। प्रकाशक-यूनिक ट्रैडर्स, 250 चौड़ा रास्ता, जयपुर संख्या 2003 पृष्ठ-15
12. डॉ. अमरनाथ- हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1 बी, नेता जी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2013, पृष्ठ संख्या -386-387
13. स्वामी नारायण दास -श्री साधक सुधा प्रकाशक-श्री दादूदयाल महासभा, जयपुर, वि.स. 2023, पृष्ठ 75
14. कटारिया कमलेश -नारी जीवनः वैदिक काल से आज तक पृष्ठ संख्या-15
15. स्वामी नारायणदास - श्री साधक सुध- श्री दादूदयाल महासभा जयपुर, संख्या वि.स. 2023, पृष्ठ संख्या 67
16. नारायणदास- श्री शिक्षा सप्तशती- प्रकाशक श्री दादूदयालु महासभा, जयपुर, संस्करण वि.स. 2003 पृष्ठ संख्या 99

समय के साथ कृषि का बदलता स्वरूप: राजस्थान के सीकर जिले के संदर्भ में

पप्पू सैनी

शोधार्थी, गोविन्द गुरू जन. वि.वि. बाँसवाड़ा, राजस्थान, भारत

सारांश

कृषि का विकसित स्वरूप मानव सभ्यता के विकास का सूचक है। कृषि मानव की प्राथमिक आर्थिक क्रिया है। कृषि में विभिन्न फसलों का उत्पादन एवं पशुपालन दोनों को सम्मलित किया जाता है। मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर कृषि कार्य करता है। कृषि मानव का प्राचीन व्यवसाय है जिससे उसकी खाद्यान्न आपूर्ति होती हैं। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्यो में संलग्न मिलती है। राजस्थान के अधिकतर भागों में शुष्क मरूस्थलीय जलवायु मिलती है। इसके लगभग 70 प्रतिशत भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। राजस्थान के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन है। सीकर जिला भारत के पश्चिमी शुष्क जलवायु प्रदेश में स्थित है। सीकर जिले में प्राचीन काल से ही लोगों द्वारा पशुपालन एवं आदिमकालीन जीवन - निर्वाह कृषिकी जाती रही है परन्तु आधुनिक समय में जिले में शिक्षा के स्तर में वृद्धि होने एवं कृषि शिक्षण तथा प्रशिक्षण के कारण लोगों में कृषि के प्रति जागरूकता बढी है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि जिले के किसान परम्परागत जीवन - निर्वाह कृषि को छोड़कर लाभोन्मुख व्यापारिक एवं बागानी कृषि को अपना रहे हैं। जिसके फलस्वरूप सीकर जिले में कृषि प्रणाली का स्वरूप तीव्रता से बदल रहा है। जिले के शिक्षित किसान कृषि क्रिया में वैज्ञानिक विधियों एवं कृषि तकनीकी को तीव्रता से अपनाते जा रहे हैं जिससे जिले की कृषि तेजी से विकसित हो रही है।

मूल शब्द : आर्थिक क्रिया, कृषि, संसाधन, जनसंख्या, तकनीकी।

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी दो - तिहाई जनसंख्या पूर्णतया कृषि पर निर्भर है। भारतीय कृषि में अधिकतर खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। भारतीय किसान व्यावसायिक कृषि बहुत निम्न स्तर पर करते हैं क्योंकि यहां जनसंख्या अधिक एवं कृषि योग्य भूमि कम है जिसके कारण अपने जीविकोपार्जन हेतु खद्यान्न फसलों का उत्पादन करना अति आवश्यक हो जाता है। भारतीय कृषि पूर्णतया मानसूनी जलवायु पर निर्भर है। इसके साथ - साथ भारत विविध जलवायु वाला देश है। जिसके कारण फसलें भी जलवायु विविधता के अनुसार विभिन्न प्रकार की बोई जाती है। जलवायु विविधता के साथ - साथ भारतीय कृषि प्रारूप पर भूमि के स्वरूप एवं मृदा की विभिन्नता का प्रभाव भी पङता है।

कृषि अंग्रेजी भाशा के 'Agriculture' शब्द का पर्याय है जिसकी रचना लेटिन भाषा के दो शब्दों 'Agre' तथा 'Cultura' से मिलकर हुई है जिनका अर्थ क्रमश: 'भूमि' तथा 'देखरेख' या 'जोतना' है। इनका सामान्य अर्थ है कि भूमि को जोतकर फसल पैदा करना। हिन्दी का कृषि शब्द संस्कृत भाषा के 'कृष्' धातु से उद्भूत हुआ है जिसका तात्पर्य है जोतना या खींचना। फसलें उगाना तथा पशुपालन करना भी कृषि के बेङ भाग हैं।

जिम्मरमेन के अनुसार, ''कृषि के अन्तर्गत वे उत्पादक प्रवास सम्मलित है जो भूमि पर बसे हुए मानव द्वारा उपयोग किये जाते हैं। और संभव हो तो मानव पौधे एवं पशुजीवन या प्राकृतिक विकास की प्रणाली को अधिक उन्नत या प्रगतिशील बनाता है और

यह लक्ष्य रखता है कि इन पद्धतियों के द्वारा अपनी वनस्पति या पशु संबंधी पदार्थों की आवश्यकता पूरी हो।'' आगे चलकर जिम्मरमेन ने इसमें पशुपालन, वृक्ष, कृषि, वानिकी, सिंचाई, मत्स्यपालन, फर कृषि आदि को सम्मलित कर लिया।

वेब्स्टर विश्व कोश के अनुसार, ''कृषि वह खेती कार्य है जिसमें फसलों एवं पशुपालन उत्पादन के लिए मिट्‌टी की जुताई को सम्मलित किया गया है।''

इस प्रकार कृषि एक ऐसा प्राथमिक कार्य है जिसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा विविध मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

कृषि मानव की बहुउद्‌देशीयक्रिया है जिसके द्वारा मानव आवश्यकताओं की पूर्ति प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप में होती है। कृषि कार्य में भूमि की जुताई से लेकर सिंचाई, उर्वरक आपूर्ति तथा मृदा संरक्षण आदि को सम्मलित करते हैं। कृषि को वर्तमान स्वरूप तक विकसित होने में लम्बा समय लगा है। प्रारम्भिक कृषि कार्य भूमि की प्राकृतिक उर्वरता में ही किया जाता था लेकिन द्वितीय विश्व - युद्ध के बाद कृषि में रसायनों, शाकनाषी, कवकनाषी तथा उर्वरकों का उपयोग बें पैमाने पर कर कृषि विकास को आधुनिक रूप दिया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान राज्य का सीकर जिला है। सीकर जिला राजस्थान के उत्तरी - पश्चिमी भाग के अर्द्धशुष्क जलवायु दशाओं में स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार $27^0$21' उत्तरी अक्षांष से $28^0$12' उत्तरी अक्षांष एवं देशान्तरीय विस्तार $74^0$41' पूर्वी देशान्तर से $75^0$25' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसकी समुद्र तल से ऊँचाई 432.21 मीटर है। इस जिले के उत्तर में झुंझुनूं, उत्तर - पश्चिमी में चुरू, दक्षिण - पश्चिम में नागौर और दक्षिण - पूर्व में जयपुर जिला स्थित है। इसका उत्तरी - पूर्वी भाग हरियाणा राज्य के महेन्द्रगढ जिले से जुड़ा हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल 7742.43 वर्गकिलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 26.78 लाख है। राजस्थान में क्षेत्रफल की दृष्टि से सीकर जिले का 18 वाँ स्थान है और जनसंख्या की दृष्टि से 9 वाँ स्थान है। जिले का जनसंख्या घनत्व 346 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सीकर जिले में कृषि के स्वरूप में आये परिवर्तन का विश्लेषण करना है। व्यापारिक कृषि को बढ़ावा देने से जिले के किसानों की आय में वृद्धि हो रही है। अध्ययन के माध्यम से कृषि योजनाओं, किसानों के लिए शिक्षा, कृषि नवाचारों, नवीन कृषि पद्धतियों, विकास योजनाओं आदि के महत्व बारे में सुझाव देना है जिससे कि उचित योजनाओं का निर्धारण किया जा सके। जिले में इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. सीकर जिले में फसलों के स्वरूप में समय के साथ आये परिवर्तन का अध्ययन करना है।
2. अध्ययन क्षेत्र में कृषि शिक्षा के विस्तार, कृषि प्रशिक्षण एवं कृषि विकास के महत्व का अध्ययन करना है।
3. अध्ययन क्षेत्र में नवीन कृषि तकनीकी एवं कृषि नवाचारों के प्रभाव का अध्ययन करना है।

शोध विधि एवं आँकड़ों के स्त्रोत

किसी शोध कार्य के लिए शोधार्थी को तथ्यों का संकलन तथा संकलन की विधियों, आंकड़ों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण, शोध के प्रतिवेदन लेखन आदि के लिए एक निश्चित प्ररचना का निर्धारण करना होता है। इस सम्पूर्ण शोध कार्य में दो प्रकार की शोध प्रविधियां अपनायी गयी हैं। इस सम्पूर्ण शोध कार्य में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों के माध्यम से आंकड़ों को एकत्रित किया गया है। प्राथमिक प्रकार के आंकड़ों को अध्ययन क्षेत्र के प्रत्यक्ष सर्वेक्षण एवं अवलोकन और द्वितीयक आंकड़ों को मुख्यत: सरकारी एवं गैर सरकारी विभागों, स्थानीय लोगों एवं समाचार - पत्रों आदि से संकलित किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त आंकों को संश्लेषित एवं विश्लेषित किया गया है। अध्ययन के लिए संबंधित क्षेत्र के 2009 - 2010 से 2013 - 2014 तक की समयावधि के कृषि क्षेत्र एवं कृषि उत्पादन से संबंधित विभिन्न तथ्यों के आँकड़े लिये गये है तथा इस समयावधि के आँकड़ों के आधार पर अध्ययन किया गया है।

प्राथमिक आंकड़ों का संकलन प्रत्यक्ष साक्षात्कार एवं प्रश्नावली विधि द्वारा एकत्रित कर विभिन्न आंकड़ों एवं सूचनाओं का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों के संकलन हेतु संबंधित विभाग, भारतीय जनगणना विभाग, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय द्वारा प्रकाशित सांख्यिकी डाटा, जिला सांख्यिकी कार्यालय, तहसील स्तरीय भू - अभिलेख विभाग, कृषि उपज मण्डी, जल संसाधन विभाग, पटवारी एवं ग्रामसेवक इत्यादि सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित आंकों का विश्लेषण किया गया है। कृषि आधुनिकीकरण के प्राथमिक आंकड़ों एकत्रित करने के लिए जिले के कुछ चुने हुए गाँवों के परिवारों के माध्यम से कृषि यंत्र एवं उपकरण, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई की आधुनिक प्रणाली, उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग एवं कृषि आधुनिकीकरण की समस्याओं आदि से संबंधित प्राथमिक आंकों का संकलन किया गया है।

कृषि का बदलता स्वरूप

मानव सभ्यता के आरंभिक युग में आदिमकालीन मानव अपने जीवन - निर्वाह के लिए अपने समीप के वातावरण पर निर्भर रहता था। उसका जीवन - निर्वाह प्रमुख रूप से पशुओं का आखेट कर एवं अपने समीप के जंगलों से खाने योग्य जंगली पौधे एवं कन्द - मूल आदि को एकत्रित कर होता था। धीरे - धीरे मानव की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी जिससे यह भोजन सामग्री उसके लिए कम पड़ने लगी तब मानव ने अपने जीवन - निर्वाह के लिए पशुपालन आरम्भ किया एवं इसके बाद मानव ने कृषि कार्य करना सीखा। पशुपालन एवं कृषि कार्य से मानव एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास करने लगा। मानव को वर्तमान विकसित कृषि स्वरूप तक पहुँचने में लम्बा समय लगा है। कृषि का वर्तमान विकसित स्वरूप कृषि क्रियाओं पर अनुसंधान के परिणामस्वरूप प्राप्त परिणामों को अपनाने का प्रतिफल है।

कृषि हमारे देश की प्राचीन आर्थिक क्रिया है। कृषि की दृष्टि से भारत एक महत्वपूर्ण देश है। भारत की लगभग दो तिहाई जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। विगत हजारों वर्शों के दौरान भौतिक पर्यावरण, सामाजिक - सांस्कृतिक रीति - रिवाजों एवं प्रौद्योगिकी उन्नति के अनुसार कृषि करने की विधियों में सार्थक परिवर्तन हुआ है। जीवन - निर्वाह कृषि से लेकर व्यापारिक या वाणिज्यिक कृषि तक कृषि के विविध प्रकार हैं।

उत्पादन के उद्देश्य के आधार पर कृषि को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है -

1. आदिमकालीन निर्वाह कृषि

यह कृषि का सबसे प्राचीन स्वरूप है। इसे स्थानान्तरी कृषि या कर्तन - दहन प्रणाली कृषि भी कहते हैं। यह कृषि उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहाँ कम जनसंख्या निवास करती है वहाँ भोजन प्राप्त करने के लिए की जाती है। इसमें अधिकांश उपज का उपयोग कृषक एवं उसका परिवार ही कर लेता है। इस कृषि में विक्रय के लिए उपज नहीं बच पाती है।

2. गहन निर्वाह कृषि

इस प्रकार की कृषि उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होता है। यह श्रम गहन कृषि है, जहाँ अधिक उत्पादन के लिए अधिक मात्रा में जैव - रासायनिक उर्वरकों, सिंचाई, उन्नत बीजों आदि का प्रयोग किया जाता है। इस कृषि में प्रमुख रूप से खाद्यान्नों का उत्पादन किया जाता है। इसमें प्रति इकाई उत्पादन अधिक होता है, परन्तु प्रति कृषक उत्पादन कम होता है।

3. वाणिज्यिक या व्यापारिक कृषि

इस कृषि का प्रमुख उद्देश्य उपज का स्वयं उपयोग न करके व्यापार एवं निर्यात के लिए किया जाता है। यह लाभोन्मुख उत्पादन प्रणाली है। यह एक विशिष्ट प्रकार की कृषि होती है जिसमें अधिकांश कृषि कार्य मशीनों की सहायता से किया जाता है। इस कृषि में अधिक पूंजी - निवेष की आवश्यकता हेती है। इस कृषि में उन्नत सिंचाई प्रणाली, उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, कीटनाशी, उच्च प्रबंध, उन्नत तकनीकी एवं वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस कृषि में कृषक अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की बढती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए कृषि के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। भारत में 1966 - 67 में डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन के प्रयासों से हरित क्रांति की शुरूआत की गई। हरित क्रांति से कृषि में उन्नत बीजों, कृषि उपकरणों, आधुनिक सिंचाई की विधियों, कीटनाशक दवाइयों, उर्वरकों का अधिक से अधिक प्रयोग

किया जाने लगा। हरित क्रांति से भारत की पारंपरिक कृषि, व्यापारिक एवं औद्योगिक कृषि में परिवर्तित होने लगी। जिससे कृषि की स्थिति में तेजी से सुधार हुआ। देश में किसानों में कृषि के प्रति जागरूकता लाने, कृषि शिक्षा का विस्तार करने, किसानों को शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कृषि विश्वविद्यालय, कृषि अनुसंधान केन्द्र एवं कृषि विज्ञान केन्द्र खोले गए हैं। सीकर जिले में किसानों को शिक्षण एवं प्रशिक्षण देने एवं कृषि विकास के लिए फतेहपुर शेखावाटी में कृषि महाविद्यालय एवं कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित किया गया है।

योजना आयोग ने सन् 1989 में भारत को 15 कृषि जलवायु प्रदेशों में विभाजित किया। राजस्थान का पश्चिमी शुष्क मरूस्थलीय प्रदेश भारत के पश्चिमी शुश्क कृषि जलवायु प्रदेश में सम्मिलित है। राजस्थान का पश्चिमी शुश्क मरूस्थलीय प्रदेश भारत का सबसे उश्ण भाग है। इस प्रदेश में शुश्क मरूस्थलीय जलवायु पायी जाती है। इस प्रदेश में कृषि एवं पशुपालन लोगों का मुख्य व्यवसाय है। शुश्क जलवायु होने के उपरान्त भी इस प्रदेश के कुल भू - भाग के लगभग 70 प्रतिषत भाग पर कृषि की जाती है। कृषि एवं पशुपालन यहां के लोगों की अर्थव्यवस्था या आजीविका के प्रमुख आधार हैं। राजस्थान में आदिमकालीन जीवन - निर्वाह कृषि का स्वरूप प्रचलित रहा है।

सीकर जिला भारत के पश्चिमी शुश्क जलवायु प्रदेश में स्थित है। इस क्षेत्र में प्राचीन समय से ही आदिमकालीन जीवन - निर्वाह कृषि एवं पशुपालन व्यवसाय प्रचलित रहा है परन्तु वर्तमान समय में जिले में शिक्षा का स्तर बढने, कृषि शिक्षण एवं प्रशिक्षण के विकास तथा लोगों में कृषि के प्रति जागरूकता बढने आदि के कारण व्यापारिक एवं वाणिज्यिक कृषि का प्रचलन बढ रहा है। वर्तमान समय में सीकर जिले के किसान परम्परागत आदिमकालीन निर्वाह कृषि को छोड़कर व्यापारिक एवं वाणिज्यिक कृषि को अपनाते जा रहे हैं। सीकर जिले में कृषि प्रणाली का स्वरूप तीव्रता से बदलता जा रहा है।

कृषि में नवीन तकनीकी प्रयोग

फव्वारा सिंचाई प्रणाली

फव्वारा सिंचाई राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र, विशेषकर सीकर, झुंझुनू, नागौर, पाली, जोधपुर एवं बाड़मेर आदि जिलों में विशेष महत्वपूर्ण है। फव्वारा द्वारा सिंचाई एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा पानी का हवा में छिंकाव किया जाता है और यह पानी भूमि की सतह पर कृत्रिम वर्शा के रूप में गिरता है। यह सिंचाई की बहुत प्रचलित विधि है जिसके द्वारा पानी की लगभग 30 से 50 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। इसमें जमीन को समतल करने की आवश्यकता नहीं होती। ऊँचे - नीचे और मुश्किल माने जाने वाले भू - भागों में भी खेती की जा सकती है। इसमें नालियाँ बनाने की आश्यकता नहीं पंती जिससे कृषि के लिए अधिक जमीन उपलब्ध हो जाती है। सीकर जिले में फव्वारा सिंचाई के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। इस योजना के अन्तर्गत किसानों को फव्वारा सैट उपलब्ध कराया जाता है। जिसमेंसरकार द्वारा किसानों को अनुदान दिया जाता है। सीकर जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7742.43 वर्ग किलोमीटर है जिसके लगभग 75 प्रतिशत भू भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। सीकर जिले में कुल कृषि भूमि का लगभग 50 प्रतिशत भाग सिंचित है। कुल सिंचित भूमि के लगभग 80 प्रतिशत भाग पर फव्वारा एवं मिनी फव्वारा प्रणाली से सिंचाई की जा रही है।

बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली

बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का विकास विश्व में सर्वप्रथम इजराइल देश में हुआ था। इजराइल में सन् 1964 में बूंद -बूंद सिंचाई प्रणाली विकसित की गई। भारत में बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का प्रयोग 1980 के दशक में शुरू हुआ। सीकर जिले के कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 15 प्रतिशत भाग पर बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली द्वारा सिंचाई की जा रही है। सीकर जिले में वर्तमान में सब्जियों की कृषि करने वाले तथा बागवानी कृषि करने वाले 90 प्रतिशत किसान बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का प्रयोग कर रहे हैं। यह सिंचाई प्रणाली कम पानी वाले क्षेत्रों में विशेष उपयोगी है। इसके अलावा असमतल भूमि एवं बागवानी खेती के लिए भी यह उपयोगी है। सीकर जिले में भूमिगत जल स्तर में तेजी से गिरावट आ रही है। जिले में सिंचाई के लिए जल की मात्रा एवं उपलब्धता लगातार घटती जा रही है। इसी कारण जिले के कृशकों में बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का उपयोग लगातार बढ रहा है। यह सिंचाई प्रणाली सीकर जैसे कम पानी कीउपलब्धता वाले क्षेत्रों में बहुत ही कारगर सिद्ध हो रही है। इस सिंचाई प्रणाली का उपयोग करने से कृषि उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

कृषि में नवाचार :-

सीकर जिले में शिक्षा का स्तर लगातार बढ रहा है लेकिन रोजगार के अवसरों में कमी के कारण शिक्षित बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ रही है। इस कारण शिक्षित युवा वर्ग का ध्यान आधुनिक तकनीकी कृषि की ओर बढ रहा है। वर्तमान में सीकर में शिक्षित युवा किसानों की संख्या बढ रही है। जिले के युवा शिक्षित किसान परम्परागत जीवन - निर्वाह कृषि के स्थान पर आधुनिक व्यापारिक, बागानी एवं सब्जी कृषि की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ये किसान कृषि में वैज्ञानिक विधियों को अपना रहें हैं। भूमि की उर्वरता बनाये रखने एवं अधिक उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी एवं पानी की जाँच करवाकर आवश्यकतानुसार जैविक खाद का उपयोग कर रहे हैं। अपने कृषि उत्पादों को सुरक्षित रखने के लिए शीत भण्डार गृहों का प्रयोग कर रहे हैं।

सीकर जिले के किसान हाईटेक खेती की राह पर चल रहे हैं। पारम्परिक खेती में बदलाव की सोच ने सीकर जिले के किसानों की तकदीर बदल दी है। किसान फव्वारा सिंचाई प्रणाली, बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली, मल्चिंग, शेडनेट, ग्रीनहाउस, लोटनल तकनीक, हाइब्रिड बीज अपनाने के बाद उद्यानिक एवं औषधीय कृषि का उत्पादन भी बढ रहा है। इसके अलावा जिले में खीरा, टमाटर, ककड़ी, घीया, मिर्च, बैंगन, तरबूज, खरबूजा, पपीता आदि की उन्नत खेती की जा रही है। केसर, डचगुलाब, मशरूम सहित दूसरे वातावरण में होने वाली कृषि अब सीकर जिले में होने लगी है। उद्यान विभाग भी हाईटेक फार्मिंग को बढावा देने के लिए कई प्रकार के अनुदान दे रहा है। जिले के अधिकांश खेतों में सौर उर्जा पम्पसैट, बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली, शेडनेट, लोटनल, ग्रीनहाउस नजर आते हैं। इन नवीन तकनीकों को अपनाने के बाद किसानों की आमदनी कई गुना बढ गई है।

सीकर जिले में प्रमुख फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल

सीकर जिले में विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। इन फसलों के उत्पादन क्षेत्र में विभिन्न कारणों से परिवर्तन होता रहता है। सारणी -I में जिले की प्रमुख फसलों के क्षेत्रफल का विवरण वर्ष 2009 - 2010 से 2013 - 2014 तक दर्शाया गया है -

सीकर जिले में प्रमुख फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल (हैक्टेयर में)

क्र.सं.	*फसल*	*वर्ष*				
		2009 - 2010	*2010 - 2011*	*2011 - 2012*	*2012 - 2013*	*2013 - 2014*
1	बाजरा	303948	328946	308521	283819	288588
2	गेहूँ	90628	100482	100080	100128	101345
3	जौ	29372	35743	32588	33745	34166
4	चना	31369	84841	50146	42156	66086
5	तिल	541	1232	1104	761	686
6	राई व सरसों	59702	74672	68539	61457	65136
7	मूँगफली	22064	23763	29536	24062	23422
8	प्याज	7330	9373	8542	7689	9334
9	गन्ना	12	15	20	17	24
10	लाल मिर्च	193	147	139	129	125

सारणी -I स्त्रोत : कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर

सारणी -I का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सीकर जिले में वर्ष 2009 - 2010 में विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में बाजरा का क्षेत्रफल 303948 है., गेहूँ का क्षेत्रफल 90628 है, जौ का क्षेत्रफल 29372 है, चना का क्षेत्रफल 31369 है, तिल का क्षेत्रफल 90628 है, राई व सरसों का क्षेत्रफल 59702 है, मूँगफली का क्षेत्रफल 22064 है, प्याज का क्षेत्रफल 7330 है, गन्ना का क्षेत्रफल 12 है तथा लाल मिर्च का क्षेत्रफल 193 है था। जिसमें सर्वाधिक क्षेत्र पर बाजरे की फसल 303948 है, पर उगायी गई।

जिले में वर्ष 2013 - 2014 में विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में बाजरा की फसल का क्षेत्रफल 288588 है, गेहूँ की फसल का क्षेत्रफल 101345 है, जौ की फसल का क्षेत्रफल 34166 है, चना की फसल का क्षेत्रफल 66086 है, तिल की फसल का

क्षेत्रफल 686 है, राई व सरसों की फसल का क्षेत्रफल 65136 है, मूँगफली की फसल का क्षेत्रफल 23422 है, प्याज की फसल का क्षेत्रफल 9334 है, गन्ना की फसल का क्षेत्रफल 24 है तथा लाल मिर्च की फसल का क्षेत्रफल 125 है था। जिसमें वर्ष 2013 - 2014 में सीकर जिले में सर्वाधिक क्षेत्रफल बाजरे की फसल का 288588 है था।

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का उत्पादन

सीकर जिले में कृषि की नवीन तकनीकी एवं नवीन कृषि पद्धति को अपनाने से कृषि उत्पादनों में लगातार वृद्धि हो रही है। इसमें सिंचाई की आधुनिक प्रणालीयों कृषिगत यंत्रों एवं उपकरणों के उपयोग का महत्वपूर्ण योगदान है। सीकर जिले में वर्ष 2009 - 2010 और 2013 - 2014 में प्रमुख फसलों के उत्पादन की तुलना सारणी -II में दी गई है -

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का उत्पादन (मिट्रिक टन में)

क्र.सं.	*फसल*	*वर्ष 2009 - 2010*	*वर्ष 2013 - 2014*	*कुल उत्पादन वृद्धि*
1	बाजरा	50446	230872	180426
2	गेहूँ	271884	323290	51406
3	जौ	73430	105573	32143
4	चना	38926	68728	29802
5	तिल	41	292	251
6	राई व सरसों	57123	89884	32761
7	मूँगफली	16160	39582	23422
8	प्याज	22150	44170	22020
9	गन्ना	16	50	34
10	लाल मिर्च	35	2190	2155

सारणी -II *स्त्रोत : कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर*

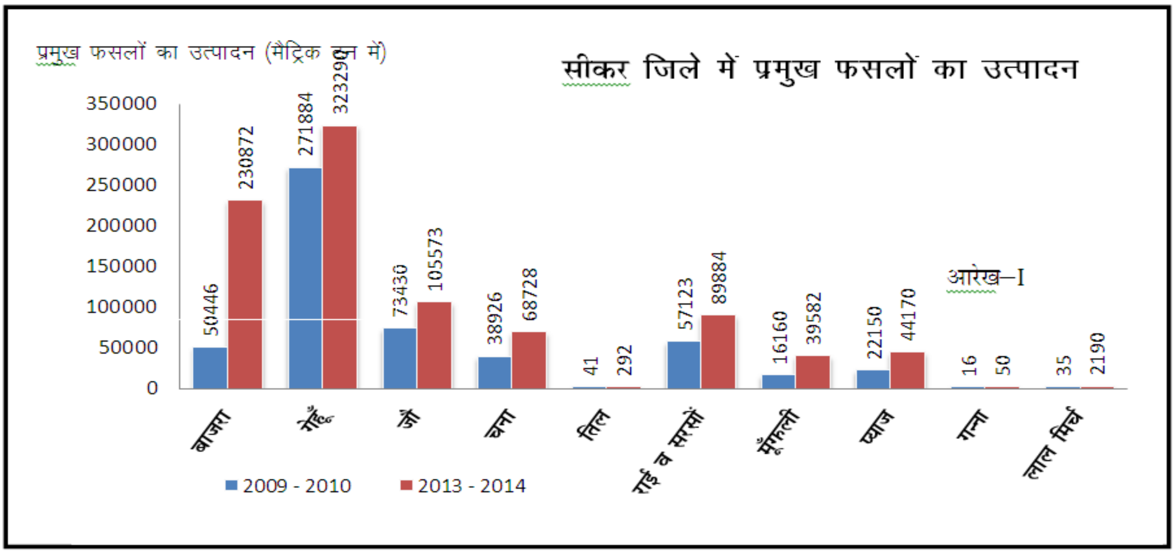

आरेख -I *स्त्रोत: कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर*

सारणी -II का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सीकर जिले में प्रमुख फसलों के उम्पादन में लगातार वृद्धि की गई है। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में बाजरा का उत्पादन 50446 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 230872 मै. टन हो गया। बाजरा के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 180426 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में गेहूँ का उत्पादन 271884 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 323290 मै. टन हो गया। गेहूँ के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 51406 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में जौ का उत्पादन 73430 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 105573 मै. टन हो गया। जौ के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 32143 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में चना का उत्पादन 38926 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 68728 मै. टन हो गया। चना के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 29802 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में तिल का उत्पादन 41 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 292 मै. टन हो गया। तिल के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 251 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में राई व सरसों का उत्पादन 57123 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 89884 मै. टन हो गया। राई व सरसों के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 32761 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 -2010 में मूँगफली का उत्पादन 16160 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 39582 मै. टन हो गया। मूँगफली के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 23422 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में प्याज का उत्पादन 22150 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 44170 मै. टन हो गया। प्याज के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 22020 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में गन्ना का उत्पादन 16 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 50 मै. टन हो गया। गन्ना के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 34 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में लाल मिर्च का उत्पादन 35 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 2190 मै. टन हो गया। लाल मिर्च के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 2155 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई।

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का औसत उत्पादन

सीकर जिले में प्रमुख फसलों के औसत उत्पादन में प्रति वर्ष वृद्धि दर्ज की गई है। जिले में वर्ष 2009 - 2010 और वर्ष 2013 - 2014 में प्रमुख फसलों के औसत उत्पादन का विवरण सारणी -III में दिया गया है -

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का औसत उत्पादन (किग्रा. प्रति हैक्टेयर में)

क्र.सं.	*फसल*	*वर्ष 2009 - 2010*	*वर्ष 2013 - 2014*	*कुल उत्पादन वृद्धि*
1	बाजरा	166	803	637
2	ज्वार	538	1508	970
3	गेहूँ	3000	3189	189
4	मक्का	478	1800	1322
5	जौ	2500	3101	601
6	चना	1241	1038	- 203
7	तिल	76	430	354
8	गन्ना	1333	2083	750

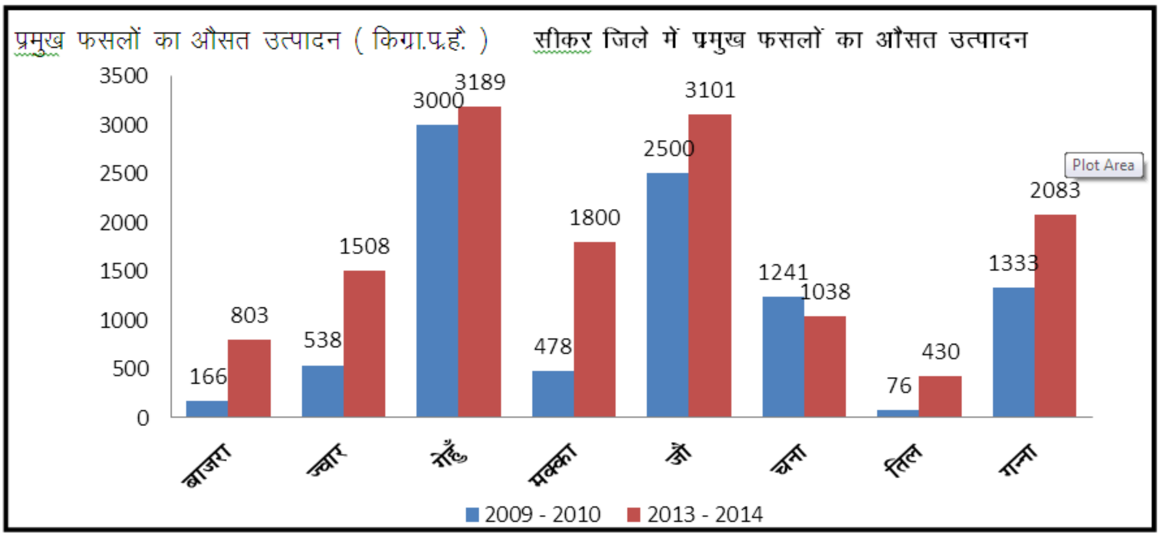

आरेख –II *स्त्रोत : कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर*

सारणी –III का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सीकर जिले में विभिन्न फसलों के औसत उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गई है कि सीकर जिले में विभिन्न फसलों के औसत में वृद्धि दर्ज की गई है। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में बाजरा का औसत उत्पादन 166 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 803 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। बाजरा के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 637 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में ज्वार का औसत उत्पादन 538 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 1508 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। ज्वार के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 970 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में गेहूँ का औसत उत्पादन 3000 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 3189 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। गेहूँ के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 189 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में मक्का का औसत उत्पादन 478 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 1800 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। मक्का के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 1322 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में जौ का औसत उत्पादन 2500 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 3101 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। जौ के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 601 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में चना का औसत उत्पादन 1241 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में कम होकर 1038 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। चना के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 203 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की कमी दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में तिल का औसत उत्पादन 76 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 430 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। तिल के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 354 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 – 2010 में गन्ना का औसत उत्पादन 1333 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हुआ जो वर्ष 2013 – 2014 में बढकर 2083 किग्रा. प्रति हैक्टेयर हो गया। गन्ना के उत्पादन में वर्ष 2009 – 2010 की तुलना में वर्ष 2013 – 2014 में 750 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई।

निष्कर्ष

''समय के साथ कृषि का बदलता स्वरूप एवं विकास मानव सभ्यता के विकास का सूचक है।'' आधुनिक समय में सीकर जिले में शिक्षा का स्तर बढने, कृषि शिक्षण एवं प्रशिक्षण आदि से लोगों में कृषि के प्रति जाग्रति बढ रही है। किसान परम्परागत

जीवन - निर्वाह कृषि को छोंकर व्यापारिक एवं वाणिज्यिक कृषि को अपना रहे हैं। जिसके कारण सीकर जिले में कृषि प्रणाली का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। युवा शिक्षित किसान कृषि में नवीन वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकी को अपना रहे हैं। किसान कृषि में फव्वारा सिंचाई प्रणाली, बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली, मल्चिंग, शेडनेट, ग्रीनहाउस, लोटनल, हाईब्रिड बीज, सौर - ऊर्जा पम्पसैट, जैविक कीटनाशी, खरपतवार नियंत्रक आदि को अपनाकर एवं अपने कृषि उत्पादों को बढाकर अपनी आमदनी को तेजी से बढा रहे हैं। जिले के किसान बागवानी एवं सब्जी कृषि को भी अपना रहे हैं। सब्जी भण्डार के लिए शीत भण्डार गृहों का उपयोग कर रहे हैं। किसान शिक्षित होने के कारण कृषि में नवाचारों का उपयोग कर अपनी कृषि को लाभोन्मुख बना रहे हैं। कृषि उत्पादों में आशातीत वृद्धि होने से किसानों की आमदनी भी तेजी से बढ रही है जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ हो रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह जगदीश, सिंह काशीनाथ (2009) : आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर।
- हुसैन माजिद (2009) : कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन।
- गुर्जर रामकुमार, जाट बी.सी. (2019) : भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- भल्ला एल. आर. (2017) : राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।
- भारत, लोग और अर्थव्यवस्था (2011) : राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
- मानव भूगोल के मूल सिद्धांत (2011) : राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।

सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण : आधुनिक सिंचाई एवं कृषि यंत्रों का योगदान

डॉ० संजय परिहार

(शोध निर्देशक), असि.प्रोफेसर, राज. महाविद्यालय, सिरोही

पप्पू सैनी

शोधार्थी, गोविन्द गुरू जन. वि.वि. बाँसवाड़ा, राजस्थान

सारांश

मानव एक क्रियाषील प्राणी है एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाऐं करता है। जिनमें कृषि महत्वपूर्ण प्राथमिक क्रिया है। वर्तमान में कृषि का तीव्रता से विकास एवं आधुनिकीकरण हो रहा है। कृषि आधुनिकीकरण के लिए किसान कृषि में उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाषक, आधुनिक सिंचाई प्रणाली, नवीन वैज्ञानिक कृषि तकनीकी, कृषि यंत्रों एवं उपकरणों का अधिक से अधिक उपयोग कर रहे हैं। कृषि आधुनिकीकरण से कृषि प्रारूप एवं स्वरूप में बदलाव हो रहे हैं और कृषि उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हो रही है। राजस्थान के अधिकांश भागों में शुष्क मरूस्थलीय जलवायु मिलती है। राजस्थान के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। सीकर जिला भारत के पश्चिमी शुष्क जलवायु प्रदेश में स्थित है। सीकर जिले में प्राचीन काल से ही लोगों द्वारा कृषि कार्य किया जाता रहा है। जिले में विषम भौगोलिक स्थिति, असमतल धरातल, अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय दशाओं आदि के बावजूद भी कृषि का तीव्रता से विकास एवं आधुनिकीकरण हुआ है जिसका प्रमुख कारण जिले के किसान उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों, खरपतवारनाशी, आधुनिक सिंचाई प्रणाली एवं कृषि यंत्रों को अधिक से अधिक कृषि कार्य में उपयोग ले रहे हैं। कृषि आधुनिकीकरण से किसानों की फसलों की उत्पादन लागत में कमी आयी है एवं कृषि उत्पादनों में आशातीत वृद्धि हुई है। जिले में किसान खाद्य फसलों के साथ - साथ व्यापारिक एवं उद्यानिकी फसलों का उत्पादन भी कर रहे हैं। जिले में आधुनिक सिंचाई प्रणाली एवं कृषि यंत्रों का उपयोग बढने से कृषि व्यवस्था आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर हो रही है।

मूल शब्द :- प्राथमिक क्रिया, नवीन तकनीकी, जलवायु, कृषि आधुनिकीकरण, उन्नत किस्म के बीज, आधुनिक सिंचाई प्रणाली।

प्रस्तावना

मानव एक क्रियाशील प्राणी है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार की क्रियाऐं करता है। मनुष्य की जिन क्रियाओं से आर्थिक वृद्धि होती है, उन्हें आर्थिक क्रियाऐं कहते हैं। मनुष्य की जिन अर्थिक क्रियाओं पर भौतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। आदिम मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति जंगली जानवरों के शिकार एवं वनों से प्राप्त उत्पादों से करता था। आदिम मानव घुमक्कड़ था एवं उसे भोजन प्राप्ति में हमेशा अनिश्चितता बनी रहती थी। धीरे - धीरे मानव के बौद्धिक

विकास में वृद्धि के कारण वह उपयोगी जानवरों को पालने लगा। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पशु उत्पादों से होने लगी। पशुपालन के बाद उसने कृषि करना सीखा एवं कृषि ने मानव को स्थायीकरण के लिए प्रेरित किया। मानव एक जगह बस्तियाँ बनाकर रहने लगा और उसने प्राचीन समय में उपजाऊ नदी मैदानों में कृषि कार्य प्रारम्भ किया। प्राचीन सभ्यताओं का विकास इन्ही नदी घाटीयों में हुआ। प्राचीन काल में कृषि एवं पशुपालन जैसी आर्थिक क्रियाओं के विकास के साथ मानव के जीवन में स्थायीत्व आया। उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति होने लगी। 19 वीं शताब्दी से कृषि में उन्नत बीजों, रसायनों, कीटनाशक दवाओं एवं उन्नत मशीनों का उपयोग होने लगा।

भारत में प्राचीन काल से ही कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जब विश्व के अधिकांश देश असभ्य थे, उस समय भारतवासी कृषि व्यवसाय में निपुण थे। भारत में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों जैसी विकसित सभ्यता मौजूद थी, जिसमें बड़े विकसित नगर एवं खाद्यान्नों के भण्डारण की व्यवस्था भी की जाती थी। अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि कृषि का प्रारम्भ दक्षिणी - पूर्वी मानसून एशिया में हुआ था।

वर्तमान में भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी लगभग 54.6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। कृषि जीवन निर्वाह का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। ऐसे कई उद्योग हैं, जो प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं, वे उद्योग लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करते हैं। भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है, जिस कारण भारतीय कृषि एवं अर्थव्यवस्था को मानसून का जुआ कहा जाता है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति कृषि से ओत - प्रोत है। हमारे अनेक त्योंहार एवं उत्सव कृषि से संबंधित हैं। भारत की अर्थव्यवस्था, समाज तथा संसकृति कामूल आधार कृषि ही है। उत्तम भौगोलिक स्थिति, समलत भूमि, उपजाऊ - मृदा, पर्याप्त जलापूर्ति एवं मानसूनी जलवायु जैसे कारकों ने भारत को कृषि क्षेत्र में विशिष्ट देश बना दिया है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद ही कृषि आधुनिकीकरण की अवधारणा दिखाई देती है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में औपनिवैशिक शासन के कारण कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण नहीं हो पाया था। स्वतंत्रता के बाद भारत में जैसे - जैसे जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई उसी के अनुसार खद्यान्नों की मांग भी तेजी से बढने लगी। लोगों की बढती खाद्यान्नों की माँग को पूरा करने के लिए अतिरिक्त खाद्यान्नों के उत्पादन की आवश्यकता हुई। इसके लिए कृषि के आधुनिकीकरण को बढावा दिया गया। कृषि के आधुनिकीकरण के लिए उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों, उन्नत सिंचाई विधियों का प्रयोग, नवीन तकनीकी एवं मशीनों का प्रयोग कृषि में अधिक से अधिक किया जाने लगा। कृषि कार्य में इन सभी का उपयोग करने से कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि होने लगी। जिसके परिणामस्वरूप देश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर होने लगा। कृषि आधुनिकीकरण से आशय है कि कृषि क्षेत्रों में नवीन वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकियों को अधिक से अधिक अपनाना।

भारत के समान राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार भी कृषि है। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन से ही अपना जीविकोपार्जन करती है। कृषि न केवल ग्रामीण जनसंख्या के व्यवसाय एवं आय का आधार बल्कि औद्योगिक कच्चे माल का स्त्रोत एवं राज्य की अर्थव्यवस्था की आधारशिला भी है। राज्य की कृषि तथा इससे संबंधित क्षेत्रों से जो आय हुई है, वह राज्य की सम्पूर्ण आय का लगभग 52 प्रतिषत है। राजस्थान में कृषि तापक्रम, वर्षा के वितरण, उच्चावच तथा मिट्टी की संरचना से प्रभावित होती है। राजस्थान का अधिकांश भाग शुष्क प्रदेश है जिसमें पानी का अभाव पाया जाता है। कृषि के विकास के लिए सिंचाई के साधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए राज्य सरकार लगातार प्रयास कर रही है। जिसके परिणामस्वरूप कृषि हेतु भूमि उपयोग लगातार बढता जा रहा है।

भारत देश की जनसंख्या लगातार तीव्रता से बढती जा रही है। तीव्रता से बढती जा रही जनसंख्या को परम्परागत कृषि से खाद्यसुरक्षा प्रदान करना बहुत ही कठिन है। तीव्रता से बढती हुई जनसंख्या के भरण - पोषण के हेतु एवं जनसंख्या के आर्थिक विकास के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कृषि व्यवसाय को विकसित करना देश की प्राथमिक आवश्यकता है। कृषि को विकसित करने के लिए सरकास द्वारा अनेक कार्यक्रमों एवं योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। भारत में 1966 - 67 में हरित क्रांति की शुरूआत की गई जिसका मुख्य उद्देश्य खाद्यान्नों में आत्म - निर्भरता प्राप्त करना था। कृषि क्षेत्र में नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों से कृषि के स्वरूप में परिवर्तन हो रहे हैं। कृषि वैज्ञानिकों के प्रयासों से नवीन कृषि तकनीकी का विकास, उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक एवं फसलों को कीटाणुओं से सुरक्षित रखने के लिए पौध संरक्षण औषधियों की जानकारी एवं इसका उपयोग, नवीन कृषि यंत्रों और सिंचाई की आधुनिक प्रणालीयों को अपनाने से कृषि का तीव्रता से विकास एवं आधुनिकीकरण हो रहा है। खाद्य फसलों के साथ - साथ कृषक व्यापारिक फसलों का उत्पादन बढाने का भी प्रयास कर रहे हैं, जिससे कृषि का व्यवसायीकरण

हो रहा है। कृषि उत्पादनों में वृद्धि एवं कृषि के व्यवसायीकरण से किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है एवं किसान सम्पन्न हो रहे हैं।

सीकर जिला राजस्थान के अर्द्धशुष्क भाग में स्थित है। जिले में कृषि विकास के लिए भौगोलिक विषमता के साथ ही भूमिगत जल स्तर भी लगातार घटता जा रहा है। जिले की बढती हुई जनसंख्या से कृषि संसाधनों पर दबाव बढता जा रहा है, जिसके कारण जिले में अनेक समस्याऐं उत्पन्न हो रही हैं। इन समस्याओं के निराकरण के लिए जिले में कृषि विकास के लिए कृषि की नवीन वैज्ञानिक विधियों को अपनाना प्रासंगिक है जिससे परम्परागत कृषि का आधुनिकीकरण किया जा सके। जिले में कृषि विकास एवं कृषि के आधुनिकीकरण के लिए किसान उन्नत किस्म के बीज, आधुनिक सिंचाई प्रणाली, कृषि में यंत्रों का प्रयोग, कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करने लगे हैं। जिले में धीरे - धीरे कृषि का विकास एवं आधुनिकीकरण हो रहा है। जिले के किसान खाद्य फसलों के साथ - साथ व्यापारिक एवं बागवानी कृषि करने लगे हैं। कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं कृषि के स्वरूप में परिवर्तन से वर्तमान में किसान आर्थिक रूप से मजबूत हो रहे हैं।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान राज्य का सीकर जिला है। सीकर जिला राजस्थान के उत्तरी - पश्चिमी भाग के अर्द्धशुष्क जलवायु दशाओं में स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार $27^0 21'$ उत्तरी अक्षांष से $28^0 12'$ उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार $74^0 41'$ पूर्वी देशान्तर से $75^0 25'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 432.21 मीटर है। इस जिले के उत्तर में झुंझुनूं, उत्तर - पश्चिमी में चुरू, दक्षिण - पश्चिम में नागौर और दक्षिण - पूर्व में जयपुर जिला स्थित है। इसका उत्तरी - पूर्वी भाग हरियाणा राज्य के महेन्द्रगढ जिले से जुड़ा हुआ है। इसका कुल क्षेत्रफल 7742.43 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 26.78 लाख है। राजस्थान में क्षेत्रफल की दृष्टि से सीकर जिले का 18 वाँ स्थान है और जनसंख्या की दृष्टि से 9 वाँ स्थान है। जिले का जनसंख्या घनत्व 346 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

अध्ययन के उद्देश्य

कृषि एक प्राथमिक क्रिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोगों का जीवन - निर्वाह कृषि कार्यो से ही होता है। ग्रामीण जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से इस क्रिया से संलग्न रहती है। ग्रामीण लोगों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि स्थितियों पर कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण को ज्ञात करना है। जिससे सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों और विभिन्न योजनाओं द्वारा कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण के प्रयासों को सफल बनाया जा सके। सीकर जिले में इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. सीकर जिले में कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण का अध्ययन करना।
2. सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण में प्रयुक्त उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, आधुनिक सिंचाई विधियों, कृषि यंत्रों आदि का अध्ययन करना।
3. कृषि आधुनिकीकरण से शस्य गहनता, फसल प्रतिरूप, शस्य विविधता पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. कृषि आधुनिकीकरण से सीकर जिले की जनसंख्या के सामाजिक - आर्थिक स्तर में आये परिवर्तन का अध्ययन करना।
5. कृषि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दोशों या कमीयों को खोजना तथा उन्हें दूर करने के सुझाव देना।

शोध विधि एवं आँकड़ों के स्त्रोत

किसी शोध कार्य के लिए शोधार्थी को तथ्यों का संकलन तथा संकलन की विधियों, आंकड़ों के वर्गीकरण एवं विश्लेषण, शोध के प्रतिवेदन लेखन आदि के लिए एक निश्चित प्रचना का निर्धारण करना होता है। इस सम्पूर्ण शोध कार्य में दो प्रकार की शोध प्रविधियां अपनायी गयी हैं। इस सम्पूर्ण शोध कार्य में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों के माध्यम से आंकों को एकत्रित किया गया है। प्राथमिक प्रकार के आंकड़ों को अध्ययन क्षेत्र के प्रत्यक्ष सर्वेक्षण एवं अवलोकन और द्वितीयक आंकड़ों को मुख्यत: सरकारी एवं गैर सरकारी विभागों, स्थानीय लोगों एवं समाचार - पत्रों आदि से संकलित किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त आंकड़ों को संश्लेषित एवं विश्लेषित किया गया है। अध्ययन के लिए संबंधित क्षेत्र के 2009 - 2010 से 2013 - 2014

तक की समयावधि के कृषि क्षेत्र एवं कृषि उत्पादन से संबंधित विभिन्न तथ्यों के आँकें लिये गये है तथा इस समयावधि के आँकड़ों के आधार पर अध्ययन किया गया है।

प्राथमिक आंकड़ों का संकलन प्रत्यक्ष साक्षात्कार एवं प्रश्नावली विधि द्वारा एकत्रित कर विभिन्न आंकड़ों एवं सूचनाओं का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों के संकलन हेतु संबंधित विभाग, भारतीय जनगणना विभाग, आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय द्वारा प्रकाशित सांख्यिकी डाटा, जिला सांख्यिकी कार्यालय, तहसील स्तरीय भू - अभिलेख विभाग, कृषि उपज मण्डी, जल संसाधन विभाग, पटवारी एवं ग्रामसेवक इत्यादि सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। कृषि आधुनिकीकरण के प्राथमिक आंकड़े एकत्रित करने के लिए जिले के कुछ चुने हुए गाँवों के परिवारों के माध्यम से कृषि यंत्र एवं उपकरण, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई की आधुनिक प्रणाली, उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग एवं कृषि आधुनिकीकरण की समस्याओं आदि से संबंधित प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया है।

कृषि आधुनिकीकरण में आधुनिक सिंचाई प्रणाली

वर्शा के अभाव में भूमि को कृत्रिम तरीके से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता है। भारत में सिंचाई कृषि विकास के लिए अपरिहार्य है। मिट्टी में उपलब्ध आर्द्रता पर सफल कृषि निर्भर करती है। जो पौधो के अंकुरित होने तथा विकसित होने में सहायक होती है। शुष्क भूमि को भी सिंचाई की सुविधा से कृषि कार्य के योग्य बनाया जा सकता है। सिंचाई करने से कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है एवं कृषि को स्थायित्व मिलता है। राजस्थान भारत के पश्चिमी शुष्क मरूस्थलीय भाग में स्थित है जहां वर्षा बहुत ही कम मात्रा में होती है। सीकर जिला राजस्थान के अर्द्धशुष्क जलवायवीय क्षेत्र में स्थित है, जहां वर्षा बहुत कम होती है। इस कारण हमेशा जल की कमी बनी रहती है। जिले में भूमिगत जल स्तर में भी तेजी से कमी आ रही है ऐसी स्थिति में आधुनिक सिंचाई प्रणाली भूमिगत जल स्तर में सुधार ला सकती है क्योंकि आधुनिक सिंचाई प्रणाली से सिंचाई करने पर जल की पर्याप्त बचत होती है। आधुनिक प्रणाली से सिंचाई करने पर कृषि उत्पादन भी अधिक होते हैं। जिले में किसान जल की बचत करने के लिए तथा अपने कृषि उत्पादन को बढाने के लिए सिंचाई की आधुनिक प्रणालीयों को अपनाते जा रहे हैं। जिले में किसानों द्वारा आधुनिक सिंचाई विधियों को अपनाने से जल की बचत तथा कृषि उत्पादनों में तीव्रता से वृद्धि हो रही है।

फव्वारा सिंचाई प्रणाली

फव्वारा सिंचाई राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र, विशेषकर सीकर, झुंझुनू, नागौर, पाली, जोधपुर एवं बाड़मेर आदि जिलों में विशेष महत्वपूर्ण है। फव्वारा द्वारा सिंचाई एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा पानी का हवा में छिड़काव किया जाता है और यह पानी भूमि की सतह पर कृत्रिम वर्षा के रूप में गिरता है। यह सिंचाई बहुत प्रचलित विधि है जिसके द्वारा पानी की लगभग 30 से 50 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। इसमें जमीन को समतल करने के आवश्यकता नहीं होती। ऊँचे - नीचे और मुश्किल माने जाने वाले भू - भागों में भी खेती की जा सकती है। इसमें नालियाँ बनाने की आश्यकता नहीं पड़ती है जिससे कृषि के लिए अधिक जमीन उपलब्ध हो जाती है। सीकर जिले में फव्वारा सिंचाई के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। इस योजना के अन्तर्गत किसानों को फव्वारा सैट उपलब्ध कराया जाता है। जिसमें सरकार द्वारा किसानों को अनुदान दिया जाता है। सीकर जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7742.43 वर्ग किलोमीटर है जिसके लगभग 75 प्रतिशत भू - भाग पर कृषि कार्य किया जा रहा है। सीकर जिले में कुल कृषि भूमि का लगभग 50 प्रतिशत भाग सिंचित है। कुल सिंचित भूमि के लगभग 80 प्रतिशत भाग पर फव्वारा एवं मिनी फव्वारा प्रणाली से सिंचाई की जा रही है।

बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली

बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का विकास विश्व में सर्वप्रथम इजराइल देश में हुआ था। इजराइल में सन् 1964 में बूंद -बूंद सिंचाई प्रणाली विकसित की गई। भारत में बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का प्रयोग 1980 के दशक में शुरू हुआ। सीकर जिले के कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 15 प्रतिशत भाग पर बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली द्वारा सिंचाई की जा रही है। सीकर जिले में वर्तमान में सब्जियों की कृषि करने वाले तथा बागवानी कृषि करने वाले 90 प्रतिशत किसान बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का प्रयोग कर रहे हैं। यह सिंचाई प्रणाली कम पानी वाले क्षेत्रों में विशेष उपयोगी है। इसके अलावा असमतल भूमि एवं बागवानी खेती के लिए भी यह उपयोगी है।

सीकर जिले में भूमिगत जल स्तर में तेजी से गिरावट आ रही है। जिले में सिंचाई के लिए जल की मात्रा एवं उपलब्धता लगातार घटती जा रही है। इसी कारण जिले के कृषकों में बूंद - बूंद सिंचाई प्रणाली का उपयोग लगातार बढ रहा है। यह सिंचाई प्रणाली सीकर जैसे कम पानी उपलब्धता वाले क्षेत्रों में बहुत ही कारगर सिद्ध हो रही है। इस सिंचाई प्रणाली का उपयोग करने से कृषि उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

विद्युत पम्पसैट

वर्तमान समय में बढते विद्युतीकरण एवं घटते भूमिगत जल स्तर के कारण कुंए एवं नलकूपों की संख्या लगातार बढ रही है। नलकूपों से पानी निकालने के लिए विद्युत पम्पसैट सबसे उपयुक्त यंत्र माने जाते हैं। विद्युत पम्पसैट की सहायता से बहुत अधिक गहराई से भी जल आसानी से निकाला जा सकता है। विद्युत पम्पसैट से पानी निकालने से वायु प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण भी नहीं होता। इस प्रणाली से पानी निकालने की लागत भी डीजल पम्पसैट की तुलना में कम आती है। सीकर जिले में नलकूपों से पानी निकालने के लिए विद्युत पम्पसैटों की संख्या लगातार बढ रही है जिससे जिले में सिंचाई क्षमता में वृद्धि हुई है। जिले में सिंचाई क्षमता में वृद्धि से कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

कृषि आधुनिकीकरण में कृषि यंत्रों का योगदान

वर्तमान में सीकर जिले में कृषि विकास हेतु विभिन्न नवीन एवं आधुनिक तकनीकी का उपयोग लगातार बढता जा रहा है परन्तु जिले में वर्तमान में भी परम्परागत एवं पुराने यंत्रों का प्रयोग कृषि कार्य में देखा जा सकता है। जिले में वर्तमान में विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं के प्रयासों के माध्यम से नवीन वैज्ञानिक तकनीक को बढावा दिया जा रहा है। नवीन वैज्ञानिक तकनीकी प्रयोग से कृषि उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है जिससे किसानों का जीवन - स्तर सुधर रहा है।

आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग कृषि में लगातार बढता जा रहा है। कृषि की विभिन्न क्रियाऐं यंत्रों पर आधारित हो रही है। खेतों को फसल बुवाई के लिए तैयार करने, बीज बोने, कुओं से सिंचाई के लिए पानी निकालने, फसलों की कटाई करने, अनाज निकालने, फसलों का विक्रय के लिए मण्डीयों तक भेजने आदि कार्यों के लिए आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान में कृषि कार्यों को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के कृषि यंत्र उपलब्ध हैं। कृषि में आधुनिक यंत्रों का उपयोग करने से भूमि संसाधन का समुचित उपयोग होने लगा है। कृषि कार्यों में यंत्रों का उपयोग करने से समय की बचत, उत्पादन में वृद्धि एवं कृषि उत्पादन लागत में गिरावट आयी है। कृषि कार्यों में सिंचाई के लिए आधुनिक सिंचाई प्रणाली का उपयोग बढ रहा है। आधुनिक सिंचाई प्रणाली का उपयोग करने से जल की बचत 30 से 50 प्रतिशत तक होने लगी है। कृषि क्षेत्र में आधुनिक कृषि यंत्रों का उपयोग करने से कृषि में नवीन क्रांति आ गयी है जिससे कृषि का तीव्र गति से विकास एवं यंत्रीकरण हुआ है। सीकर जिले में कृषि क्षेत्र में कई प्रकार के कृषि यंत्रों एवं मषीनों का उपयोग लगातार बढता जा रहा है।

ट्रेक्टर :-

आधुनिक कृषि यंत्रों में ट्रेक्टर एक बहुत ही महत्वपूर्ण कृषि यंत्र है। ट्रेक्टर का कृषि कार्यों में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि कार्य में ट्रेक्टर का उपयोग खेतों की जुताई, बुवाई, भूमि समतल करने, अनाज निकालने, कृषि उत्पादों को घर एवं बाजारों तक ले जाने में किया जाता है। आधुनिक समय में कृषि यंत्रों एवं मशीनों का कृषि कार्यों में बढता हुआ उपयोग कृषि आधुनिकीकरण का प्रतीक माना जाता है। आमतौर पर बड़े भू स्वामी एवं सम्पन्न किसान स्वयं का ट्रेक्टर कृषि कार्य के लिए उपयोग करते हैं लेकिन मध्यम एवं सामान्य किसान जिनके पास जोत का आकार छोटा होता है, वे किराये पर ट्रेक्टर लेकर कृषि कार्य पूरा करते हैं। वर्तमान समय में शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में भूमि की नमी को संरक्षित रखने के लिए जुताई की विशेष आवश्यकता होती है। फसलों की बुवाई से पहले खेतों की बार - बार जुताई करके खेतों को तैयार करना पड़ता है। इस कार्य के लिए ट्रेक्टर का बहुत अधिक उपयोग है।

कम्बाइन हार्वेस्टर

इसको 'कम्बाइन' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक बें आकार की मशीन होती है जिससे मक्के की कटाई की जाती है। कटाई के साथ - साथ यह पौधों की बालों से अनाज को भी अलग करती है। इसमें पौधों को काटने एवं फसलीकरण के कार्य

शामिल हैं। ये मशीनें खेतों के अन्दर ही बालों से अनाज को अलग करती हैं। सीकर जिले में कम्बाइन हार्वेस्टर का उपयोग बढ रहा है।

थ्रेसर

प्राचीन समय में पकी हुई फसलों से चारा एवं अनाज को पृथक करने के लिए परम्परागत विधियों का प्रयोग किया जाता था। जैसे – पशुओं, मानव श्रम, प्राकृतिक वायु की सहायता ली जाती थी। आधुनिक समय में इस श्रम साध्य कार्य को आधुनिक तकनीकी के माध्यम से थ्रेसर द्वारा किया जाने लगा है। थ्रेसर आधुनिक कृषि यंत्र है जिसका उपयोग फसलों से चारे एवं अनाजों को पृथक करने के लिए किया जाता है। सीकर जिले में ट्रेक्टर एवं थ्रेसर का उपयोग लगातार बढता जा रहा है। थ्रेसर का उपयोग करने से किसानों के समय, धन और श्रम की बचत होती है। जिले में पिछले कुछ वर्षो में थ्रेसरों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है जो जिले में कृषि आधुनिकीकरण का प्रतीक है।

भूमि समतलक यंत्र

ये भूमि के बड़े भागों को तोड़कर भूमि को समतल बनाते हैं। भूमि को समतल बनाकर बीज बोने के लिए तैयार करते हैं। सीकर जिले में इन कृषि यंत्रों का उपयोग लगातार बढ रहा है।

ऊर्जा द्वारा संचालित ट्रेक्टर स्प्रे

ये यंत्र पौधों की कतारों के बीच होकर खेतों में फसलों के दोनों ओर कीटनाषकों या पीड़कनाषकों का छिड़काव करते हैं।

कल्टीवेटर

प्राचीन समय में खेतों की जुताई लकड़ियों की सहायता से खोदकर की जाती थी। बाद में जनसंख्या वृद्धि होने से जनसंख्या दबाव के कारण कृषि क्षेत्र में वृद्धि होने लगी इस कारण खेतों की जुताई करने के लिए पशुओं का उपयोग किया जाने लगा। ऊँट और बैल का उपयोग कृषि में हल जोतने के लिए किया जाता था। वर्तमान समय में जनसंख्या तीव्र गति से बढ रही है जिसके कारण कृषि क्षेत्र दबाव में वृद्धि हुई है। अधिक जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा के लिए अधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता है। इसके लिए लकड़ी के हल के स्थान पर आधुनिक लोहे से निर्मित हलों का प्रयोग किया जाने लगा है। लोहे के हल से भूमि में गहराई तक जुताई की जा सकती है। सीकर जिले में लौह निर्मित हलों का संचालन ट्रैक्टरों के माध्यम से किया जाता है। जिले में ट्रक्टरों की संख्या के साथ – साथ कल्टीवेटरों की संख्या भी लगातार बढ रही है। कल्टीवेटरों का उपयोग खेतों की जुताई, खेतों को समतल करने, खाद एवं बीज भूमि में डालने तथा खेतों में खरपतवार को नष्ट करने में किया जाता है। कृषि में कल्टीवेटर का उपयोग करने से किसानों के समय एवं श्रम की बचत होने लगी है। इनका उपयोग करने से कृषि भूमि के क्षेत्र एवं उत्पादन में वृद्धि हो रही है। कृषि में इनका उपयोग करने से कृषि का आधुनिकीकरण हो रहा है।

स्प्रेयर एवं डस्टर

फसलों को रोगाणु मुक्त करके ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। फसलों में अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं। रोगों के नियंत्रण के लिए अनेक प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। कृषि कार्य में फसलों के साथ – साथ अनेक प्रकार की अनावश्यक वनस्पति भी उग जाती है उसे समाप्त करने के लिए रसायनों का प्रयोग किया जाता है। रसायनों का प्रयोग करने के लिए कई प्रकार के यंत्रों का उपयोग किया जाता है। फसलों में तरल रसायनों का छिड़काव करने के लिए ताना स्प्रेयर यंत्र का उपयोग किया जाता है। स्प्रेयर की सहायता से कीटनाशकों का छिड़काव करके फसलों को रोगाणु मुक्त किया जाता है। कुछ रसायन पाउडर के रूप में होते हैं इनके छिड़काव के लिए डस्टर यंत्रों का उपयोग किया जाता है। बड़े भू स्वामी एवं संपन्न किसान इन यंत्रों का संचालन मशीनों से करते हैं। वर्तमान समय में किसान फसलों में रोग लगते ही कृषि विशेषज्ञों के परामर्श से रोगों पर तत्काल नियंत्रण करने का प्रयास करते हैं। सीकर जिले में यांत्रिक कृषि का प्रचलन बढता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप फसलों की उत्पादन क्षमता बढती जा रही है।

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का उत्पादन

सीकर जिले में कृषि की नवीन तकनीकी एवं नवीन कृषि पद्धति को अपनाने से कृषि उत्पादनों में लगातार वृद्धि हो रही है। इसमें सिंचाई की आधुनिक प्रणालीयों कृषिगत यंत्रों एवं उपकरणों के उपयोग का महत्वपूर्ण योगदान है। सीकर जिले में वर्ष 2009 - 2010 और 2013 - 2014 में प्रमुख फसलों के उत्पादन की तुलना सारणी -I में दी गई है -

सीकर जिले में प्रमुख फसलों का उत्पादन (मिट्रिक टन में)

क्र.सं.	*फसल*	*वर्ष 2009 - 2010*	*वर्ष 2013 - 2014*	*कुल उत्पादन वृद्धि*
1	बाजरा	50446	230872	180426
2	गेहूँ	271884	323290	51406
3	जौ	73430	105573	32143
4	चना	38926	68728	29802
5	तिल	41	292	251
6	राई व सरसों	57123	89884	32761
7	मूँगफली	16160	39582	23422
8	प्याज	22150	44170	22020
9	गन्ना	16	50	34
10	लाल मिर्च	35	2190	2155

सारणी -I स्त्रोत : कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर

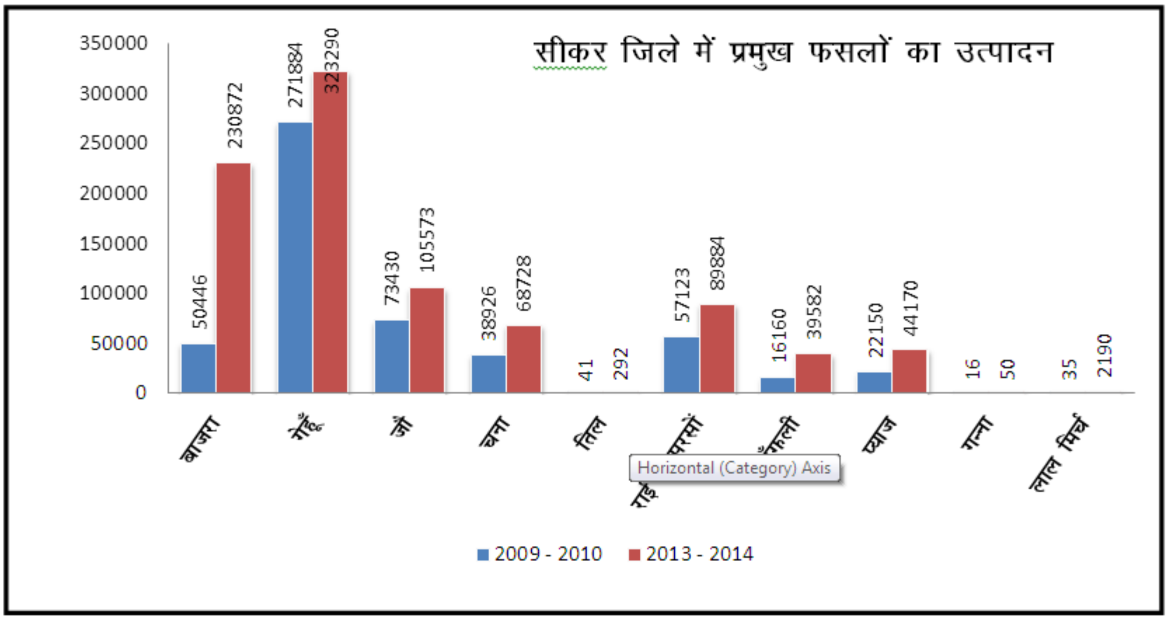

आरेख -I स्त्रोत : कार्यालय जिला कलेक्टर (भू. अभि.) सीकर

सारणी -I का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सीकर जिले में प्रमुख फसलों के उम्पादन में लगातार वृद्धि की गई है। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में बाजरा का उत्पादन 50446 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 230872 मै. टन हो गया। बाजरा के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 180426 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में गेहूँ का उत्पादन 271884 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 323290 मै. टन हो गया। गेहूँ के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 51406 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में जौ का उत्पादन 73430 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 105573 मै. टन हो गया। जौ के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 32143 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में चना का उत्पादन 38926 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 68728 मै. टन हो गया। चना के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 29802 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में तिल का उत्पादन 41 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 292 मै. टन हो गया। तिल के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 251 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में राई व सरसों का उत्पादन 57123 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 89884 मै. टन हो गया। राई व सरसों के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 32761 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में मूँगफली का उत्पादन 16160 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 39582 मै. टन हो गया। मूँगफली के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 23422 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में प्याज का उत्पादन 22150 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 44170 मै. टन हो गया। प्याज के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 22020 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में गन्ना का उत्पादन 16 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 50 मै. टन हो गया। गन्ना के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 34 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई। जिले में वर्ष 2009 - 2010 में लाल मिर्च का उत्पादन 35 मै. टन हुआ जो वर्ष 2013 - 2014 में बढकर 2190 मै. टन हो गया। लाल मिर्च के उत्पादन में वर्ष 2009 - 2010 की तुलना में वर्ष 2013 - 2014 में 2155 मै. टन वृद्धि दर्ज की गई।

निष्कर्ष

कृषि प्राथमिक क्रिया है। कृषि क्रिया प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित है। विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या का व्यवसाय कृषि क्रिया है। परम्परागत रूप से मानव जीवन - निर्वाह के लिए कृषि कार्य करता था। परन्तु वर्तमान में इसका स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। भारत में कृषि लोगों का प्रमुख व्यवसाय है तथा भारत की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। भारत में जीवन - निर्वाह कृषि का स्वरूप प्रचलित था। स्वतंत्रता के बाद तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण लोगों की खाद्य सुरक्षा पर संकट उत्पन्न हो गया। लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए कृषिउत्पादनों को तीव्रता से बढाने के उद्देश्य से कृषि में नवीन प्रयोग किये गये। कृषि में उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, सिंचाई की आधुनिक प्रणाली एवं कृषि यंत्रों आदि का उपयोग किया गया जिससे कृषि उत्पादनों में तीव्र वृद्धि हुई। कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण से कृषि के स्परूप में परिवर्तन आया है। सीकर जिला भी इससे अछूता नहीं रहा। जिले में कृषि का विकास एवं आधुनिकीकरण तीव्र गति से हुआ है। जिले के किसान कृषि क्षेत्र में अपनी उत्पादन लागत को घटाने एवं अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए सिंचाई की आधुनिक प्रणाली एवं कृषि यंत्रों को अपनाते जा रहे हैं जिससे जिले में कृषि का आधुनिकीकरण हो रहा है। जिले में कृषि किसानों के लिए लाभोन्मुख व्यवसाय बन गया है। जिले के किसान खाद्य फसलों के साथ औद्योगिक एवं व्यापारिक तथा बागवानी फसलों की ओर रूख कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भल्ला एल. आर. (2017) : राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।
- हुसैन माजिद (2009) : कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन।
- समकालीन भारत-2 (2011) : राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
- गुर्जर रामकुमार, जाट बी.सी. (2019) : भारत का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- भुगोल, कक्षा - 12 (2017) : राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
- शर्मा एच. एस., शर्मा एम. एल. (2010) : राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- भारत, लोग और अर्थव्यवस्था (2011) : राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
- गुर्जर रामकुमार, जाट बी.सी. (2018) : मानव भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- गौतम अलका (2012) : कृषि भूगोल, आर. के. बुक्स, नई दिल्ली।
- शर्मा भारद्वाज (2013) : कृषि भूगोल, आर. के. बुक्स, नई दिल्ली।
- मामोरिया, चतुर्भुज (1985) : भारत का वृहद् भूगोल, साहित्य पब्लिकेशन, आगरा।

हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना

शिव शंकर यादव

शोधार्थी, शिक्षा संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0)

डॉ० जीतेन्द्र प्रताप

(सहायक आचार्य), शिक्षा संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (उ0प्र0),

सारांश

व्यक्तित्व मनुष्य की जन्मजात एवं अर्जित की गई विशेषताओं का संगठित रूप है, यह स्थिर अवस्था में न रहकर एक गतिशील आधार है, एक विद्यार्थी की सफलता उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर निर्भर करती है, उसके व्यवहार, भाषा एवं आचरण पर सदैव विद्यालय, समाज एवं पारिवारिक वातावरण की छाप झलकती है। अत: व्यक्तित्व में निहित गुण जैसे-रूचि, मूल प्रवृत्तियाँ, व्यवहार, अनुभव, अर्जित ज्ञान आदि सभी तथ्य उसके व्यक्तित्व निर्माण के आधार व संगठित प्रतिबिम्ब है, इसलिये विद्यालयों में किशोर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता (अन्तर्मुखता व बर्हिमुखता) पर ध्यान देना भी आवश्यक है यदि किशोर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्या को हल नहीं किया जाता और व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर इनका विकास नहीं किया तो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती, उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी अवरुद्ध होगा। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा शोध हेतु **''हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन''** सुनिश्चित किया गया जिसके लिए उत्तर प्रदेश प्रान्त के जनपद झाँसी के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित यू0पी0 बोर्ड के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् हाईस्कूल स्तर के 200 विद्यार्थियों जिसमें 100 छात्र व 100 छात्राओं को न्यादर्श रूप में शामिल किया गया तथा प्रदत्तों को संकलित कर व सांख्यिकीय विश्लेषण उपरान्त परिणामस्वरूप पाया गया कि हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों (छात्र एवं छात्राओं) शहरी व ग्रामीण छात्रों व छात्राओं के मध्य व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। अर्थात् शहरी एवं ग्रामीण छात्रों एवं छात्राओं के मध्य व्यक्तित्व में समानता पायी गयी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास की बात तो कही जाती है, लेकिन सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार किया जाय ? यह आज गम्भीर समस्या बनी हुई है। विद्यार्थियों में संतुलित व्यक्तित्व का विकास नहीं होने से आज उनमें व समाज में असंतुलन बढ़ रहा है, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी के अन्दर तनाव व संघर्षमय स्थिति प्रतीत होती है व स्पर्धा युक्त जीवन जी रहा है। यदि विद्यार्थियों के बहिरंग एवं अन्तरंग व्यक्तित्व सामान्य रूप से साथ-साथ विकसित होगें तभी संतुलित व्यक्तित्व का विकास होगा। व्यक्तित्व एक प्रकार से बाहय वातावरण में समायोजन स्थापित कराता है, क्योंकि विद्यार्थी के आन्तरिक तत्व जब बाहय पर्यावरण से सम्पर्क करते हैं तब विद्यार्थी उन दोनों के मध्य सन्तुलन स्थापित करता है यही क्रिया विद्यार्थी के व्यक्तित्व स्वरूप को स्पष्ट करती है।

व्यक्तित्व स्थिर अवस्था में न होकर एक गतिशील आधार है। एक विद्यार्थी की सफलता उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर निर्भर रहती है, उसके आचरण, व्यवहार व भाषा पर विद्यालय, अध्यापकों, मित्रों व उसके पारिवारिक वातावरण की छाप रहती

है, प्राय: व्यक्ति में मौजूद गुण जैसे- रूचि, मूल प्रवृत्तियाँ, व्यवहार, अनुभव, अर्जित ज्ञान आदि सभी तथ्य उसके व्यक्तित्व निर्माण के आधार होते हैं।

व्यक्तित्व से ही व्यक्ति का पूर्ण स्वरूप स्पष्ट होता है, यह व्यक्ति की क्षमताओं, रूचियों, आवेगों व बनावट का संगठित प्रतिबिम्ब है। व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यापक व्यावहारिक विशेषता है जो उसकी रूचि मनोवृत्ति व उसके विचारों को प्रकट करने का ढंग एवं कार्य करने का तरीका जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण से प्रकट होती है अर्थात् व्यक्तित्व सरल अर्थों में स्पष्ट है कि व्यक्ति के चरित्र की विशेषताओं व व्यावहारिक गुणों के मेल से है जो उसके सभी कार्यों द्वारा झलकता है उसके व्यवहारों में अवचेतन व चेतन दोनों प्रकार के व्यवहार सम्मिलित रहते हैं। व्यक्तित्व के गुणों को हम एक स्वभाव के रूप में जान सकते हैं जिसे व्यक्ति अपनी परिस्थिति अनुसार अनुभवों से विकसित करता है, इस आधार पर व्यक्ति के गुण और कुछ नही अपितु व्यक्ति की मूल स्थायी आदतों का अभिन्न अंग है।

आलपोर्ट के कथनानुसार स्पष्ट है कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति में उन मनोशारीरिक अवस्थाओं का गतिशील संगठन है जो उसके वातावरण के साथ उसका अद्वितीय सामंजस्य निर्धारित करता है।''

व्यक्तित्व प्रतिमान का प्रमुख घटक 'आत्मप्रत्यय' व्यक्तित्व का केन्द्रीय भाग है, यह बालकों में मुख्यत: दो प्रकार से कार्य करता है- धनात्मक एवं ऋणात्मक। जब बालक में यह आत्मप्रत्यय धनात्मक स्थिति में होता है तब उसमें आत्मगौरव, आत्मविश्वास एक-दूसरे के साथ सही समन्वय व मूल्यांकन करने की योग्यता आदि गुणों का सही विकास होता है। यदि आत्मप्रत्यय ऋणात्मक स्थिति में होगा तब उसके अन्दर अविश्वास, हीनभावना, ईर्ष्या, कुण्ठा, घृणा आदि गुणों का विकास होता है, इसलिये बालकों में आत्मप्रत्यय धनात्मक प्रकार का होगा तो उसके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन मधुर, संयोगीपूर्ण सम्बन्ध व जीवन सुविधापूर्ण रहेगा। अत: किशोरों के व्यक्तित्व प्रतिमान का विकास मुख्यत: वंशानुक्रम, अधिगम व पारिवारिक वातावरण के अनुभवों से अधिक सार्थक ढंग से प्रभावित होता है अर्थात् जब नवजात शिशु जन्म लेता है तब वह अविकसित शरीर तथा मस्तिष्क या कुछ गुण एवं मूल्य प्रवृत्तियाँ सन्निहित होती हैं जैसे-जैसे वह शिशु व्यक्ति स्वरूप में विकसित होता है वैसे-वैसे वातावरण के साथ समायोजन करना सीखता है। अत: कह सकते हैं कि व्यक्तित्व मनुष्य की जन्मजात एवं अर्जित की गई विशेषताओं का संगठन है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

व्यक्तित्व विकास के बढ़ते क्रम में बालक जब किशोरावस्था में प्रवेश करता है तब उसके अन्दर कई मनोदैहिक परिवर्तन होते हैं, यह वह समयान्तराल होता है जिसमें एक विकासमान व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता तक पहुँचता है इस अवस्था में भिन्न-भिन्न संवेगों में भी अन्तर दृष्टिगोचर होते हैं, इस समय उसे उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, उसके वैयक्तिक लक्षणों के साथ अपनाकर उसके व्यवहारों को परिष्कृत व परिमार्जित करना, अध्यापकों व अभिभावकों की अहम् भूमिका एवं कर्त्तव्य हो जाता है।

विद्यालयों में किशोर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता (अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता) पर ध्यान देना भी आवश्यक है, क्योंकि यदि किशोर विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्या को हल नहीं किया गया और व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर इनका विकास नहीं किया गया तो शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पायेगी। उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी अवरूद्ध हो जायेगा। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा उक्त शोध समस्या में झाँसी जिले के हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों को अपने शोध कार्य हेतु चयन किया गया तथा उनके व्यक्तित्व का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है जो कि निम्नलिखित शोध समस्या कथन द्वारा प्रस्तुत किया- **''हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना।''**

प्रस्तुत शोध समस्या में जिन पदों का प्रयोग किया है उनकी व्याख्या इस प्रकार है-

हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थी- हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों से तात्पर्य कक्षा 9 व कक्षा 10 में अध्ययनरत् उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड उ0प्र0 के विद्यार्थियों से है।

व्यक्तित्व- एक व्यक्ति में जितनी विशेषतायें या विलक्षणतायें होती है उन समस्त विशेषताओं का समन्वय एवं संगठित रूप व्यक्तित्व है।

अध्ययन के उद्देश्य- हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना-

- छात्रों का व्यक्तित्व एवं छात्राओं का व्यक्तित्व।
- शहरी छात्रों का व्यक्तित्व एवं ग्रामीण छात्रों का व्यक्तित्व।
- शहरी छात्राओं का व्यक्तित्व एवं ग्रामीण छात्राओं का व्यक्तित्व।

परिकल्पना- अध्ययन की परिकल्पना उद्देश्यों के विभिन्न समूहों पर आधारित है-

- हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं है-
- छात्रों का व्यक्तित्व एवं छात्राओं का व्यक्तित्व।
- शहरी छात्रों का व्यक्तित्व एवं ग्रामीण छात्रों का व्यक्तित्व।
- शहरी छात्राओं का व्यक्तित्व एवं ग्रामीण छात्राओं का व्यक्तित्व।

परिसीमांकन

प्रस्तावित शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद झाँसी के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में संचालित यू0पी0 बोर्ड के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् हाईस्कूल स्तर के 200 विद्यार्थियों जिसमें 100 छात्र (50 शहरी व 50 ग्रामीण) तथा 100 छात्राओं (50 शहरी व 50 ग्रामीण) को न्यादर्श रूप में शामिल किया गया है।

प्रयुक्त विधि एवं उपकरण

प्रस्तुत शोध का शीर्शक ''हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन'' करना है। उपरोक्त समस्या के अध्ययन के सन्दर्भ में सर्वेक्षण अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है एवं शोध कार्य के उद्देश्य व आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने **कु0 मंजू अग्रवाल** द्वारा निर्मित मानकीकृत, **ए0पी0आर0सी0 आगरा द्वारा 'मल्टीडाइमेन्सनल पर्सनाल्टी इनवैन्टरी'** नामक उपकरण का प्रयोग किया।

सांख्यिकीय विधियाँ- मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, मानक या प्रमाणिक त्रुटि, टी-परीक्षण।

प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण एवं परीक्षण

शोध परीक्षण के प्रषासन तथा अंकन के पश्चात् प्रदत्तों का संकलन तथा व्यवस्थापन किया गया, तत्पश्चात् प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है।

1. **परिकल्पना-** हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।

leg	l[;k	e/;eku	ekud fopyu	iekf.kd =fV	σD	t eku	ifj.kke (.05 स्तर पर)
छात्र	100	262.90	18.63	3.90	2.65	1.47	सारणी मान 1.98 पर (असार्थक)
छात्रायें	100	258.41	18.88				

उपरोक्त तालिका के अंकित मानों से स्पष्ट हो रहा है कि छात्रों का मध्यमान 262.90 व छात्राओं का मध्यमान 258.41 है जो कि दोनों के व्यक्तित्व मध्यमानों में अन्तर दर्शाता है। परिगणित टी0-परीक्षण मान 1.47 है जो सार्थकता स्तर 0.05 तथा 198 df के सारणीमान 2.01 से कम है। अत: यह मान असार्थक है जिससे स्पष्ट होता है कि हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना स्वीकृत है।

2. **परिकल्पना-** हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् शहरी छात्रों एवं ग्रामीण छात्रों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	प्रमाणिक त्रुटि	σD	t मान	परिणाम (.05 स्तर पर)
भाहरी छात्र	50	264.9	18.14	2.6	3.52	0.73	सारणी मान 1.98 पर (असार्थक)
ग्रामीण छात्र	50	262.3	16.79				

उपरोक्त तालिका के अंकित मानों से स्पष्ट हो रहा है कि शहरी छात्रों का मध्यमान 264.9 व ग्रामीण छात्रों का मध्यमान 262.3 है जो कि दोनों के व्यक्तित्व मध्यमानों में अन्तर दर्शाता है। परिगणित टी0-परीक्षण मान 0.73 है जो सार्थकता स्तर 0.05 तथा 98 df के सारणीमान 2.01 से कम है। अतः यह मान असार्थक पाया गया जिससे स्पष्ट होता है कि हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् शहरी छात्र एवं ग्रामीण छात्रों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना स्वीकृत है।

3. परिकल्पना- हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् शहरी छात्राओं एवं ग्रामीण छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है।

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	प्रमाणिक त्रुटि	σD	t मान	परिणाम (.05 स्तर पर)
भाहरी छात्रायें	50	261.3	19.19	4.0	3.66	1.09	सारणी मान 1.98 पर (असार्थक)
ग्रामीण छात्रायें	50	257.3	17.39				

उपरोक्त तालिका के अंकित मानों से स्पष्ट हो रहा है कि शहरी छात्राओं का मध्यमान 261.3 व ग्रामीण छात्राओं का मध्यमान 257.3 है जो कि दोनों के व्यक्तित्व मध्यमानों में अन्तर दर्शाता है। परिगणित टी0-परीक्षण मान 1.09 है जो सार्थकता स्तर 0.05 तथा 98 df के सारणीमान 2.01 से कम है। अतः यह मान असार्थक पाया गया जिससे स्पष्ट होता है कि हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत् शहरी छात्राओं एवं ग्रामीण छात्राओं के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई।

उपरोक्त विश्लेषणों के आधार पर परिणामतः कहा जा सकता है कि शोध में प्रयुक्त विश्लेषण एवं व्याख्या से स्पष्ट है कि प्रयुक्त जनसंख्या से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर छात्र-छात्राओं, शहरी व ग्रामीण छात्रों तथा शहरी व ग्रामीण छात्राओं के मध्य उनके व्यक्तित्व में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अन्तर अत्यन्त निम्न स्तर का है जो कि सांख्यिकीय गणनाओं के मानकीकृत सारणी से तुलना करने पर नगण्य आता है इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं कि शहरी अभिभावकों के सापेक्ष में ग्रामीण परिप्रेक्ष्य के अभिभावक भी अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूक है तथा झाँसी जिले के ग्रामीण अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को उचित शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक वातावरण उपलब्ध कराने के कारण शहरी विद्यार्थियों के समकक्ष ही ग्रामीण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में समानता पायी गयी तथा ग्रामीण परिप्रेक्ष्य के विद्यालयों में भी उत्तम शैक्षिक सुविधा भी शहरी विद्यालयों के समान पायी गयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- माथुर, एस0एस0 (2008) : शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेषन्स।
- लाल, रमन बिहारी (2016-17) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजषास्त्रीय सिद्धान्त, मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन्स।
- सारस्वत, डॉ0 मालती (2005): शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, इलाहाबाद, आलोक प्रकाशन।
- पाठक, पी0डी0 (2008) : शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेषन्स।
- सिंह, अरूण कुमार (2014) : शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गुप्ता, एस0पी0 (2015) : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तर भवन।
- कपिल, एच0 के0 (2014) : अनुसंधान विधियाँ, आगरा, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस।
- पाण्डेय, रामशकल (2011) : शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर0 लाल बुक डिपो।

- कुलश्रेष्ठ, एस0पी0 : शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर0 लाल बुक डिपो।
- गुप्ता, एस0पी0 (2014) : अनुसंधान संदर्शिका, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
- भटनागर, सुरेष (1977): शिक्षण अधिगम एवं विकास का मनोविज्ञान, मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिसिंग हाउस।
- शर्मा, आर. ए.(2003): शिक्षा और मनोविज्ञान में प्रारम्भिक सांख्यिकी, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
- सुलैमान, मुहम्मद (1995): शोध प्रणाली विज्ञान, पटना, शुक्ला बुक डिपो।
- राय, पारसनाथ (2004): अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मीनाराण अग्रवाल।
- जायसवाल, सीताराम (1987): माध्यमिक शिक्षा-सिद्धान्त, लखनऊ, प्रकाशन केन्द्र।
- भटनागर, ए0 बी0 एवं : शैक्षिक एवं मानसिक मापन, भटनागर मीनाक्षी एवं मेरठ, आर.लाल बुक डिपो अनुराग(2008)
- आस्थाना, विपिन (1985): मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
- Google weblight.com
- Hi-m.wikipedia.org
- www.shodh.net
- www.google.com
- books.google.co.in
- scholar.google.co.in

भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के सामाजिक और आर्थिक पहलू: एक अध्ययन

डॉ० रुमा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), इतिहास विभाग,
एल.एन.टी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर

आधुनिक भारत में सांप्रदायिक चेतना अथवा विचारधारा का जन्म औपनिवेशिक प्रभाव के अंतर्गत भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजनीति के रूपांतरण के फलस्वरूप हुआ है। विभिन्न अंचलों, क्षेत्रों तथा देश के बढ़ते हुए एकीकरण ने सामूहिक हितों को देखने के नए तरीकों की माँग की है। विशेष रूप से 19वीं शताब्दी के अंत में आधुनिक राजनीति का जन्म हुआ जिसे भारतीय जनता के बृहत् से बृहत्तर खंडों के राजनीतिकरण और गतिशीलता पर आधारित होना था। भारतीय जनता को नए उभरते हुए राजनीति यथार्थ को समझना था। किंतु जिन नए विचारों से उस नए यथार्थ तथा नए उभरते हुए राजनीतिक यथार्थ को समझना था। किंतु जिन नए विचारों से उस नए यथार्थ तथा नए सामाजिक संबंधों को समझना था उनको ग्रहण करना तथा उनका प्रचार-प्रसार भी वस्तुत: अपनी नवीनता के कारण ही कठिन प्रक्रिया थी। विशेषतया इन उभरते हुए तथा विकासशील किस्म के नए यथार्थों, उनके उपनिवेश-विरोधी हितों तथा नए सामाजिक वर्गों और संस्तरों के प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक संघर्षों, निष्ठाओं तथा व्यापक पहचान की जरुरत थी। उनके लिए यह जरुरी था कि राष्ट्रीयतावाद तथा वर्ग-संघर्ष के आधुनिक विचारों का विस्तार हो। ऐसे विचार धीरे-धीरे उत्पन्न भी हुए। किन्तु जहाँ कहीं भी उनका विकास धीमा और आंशिक था वहाँ लोगों ने नए यथार्थ को धर्म, जाति तथा आंचलिक पहचान के पुराने सुपरिचित-प्रत्ययों के साथ समझने का प्रयास किया है। यह भारतीय इतिहास या सामाजिक-राजनीतिक विकास का एक नया लक्षण था। संपूर्ण विश्व में इस प्रकार की परिस्थितियों में ऐसा ही हुआ है।[1]

किंतु बहुधा ऐसी पुरानी अनुपयुक्त तथा मिथ्या धारणाएँ नई धारणाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं और धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। समय के साथ-साथ वे पुरानी अस्मिताएँ, जिनसे नए यथार्थ को समझने का प्रयास किया गया है, राष्ट्रीयता तथा वर्ग की आधुनिक तथा अधिक उपयुक्त अस्मिताओं के लिए द्वार खोलती हैं। यह प्रक्रिया भारत में भी घटित हुई है जिससे धीरे-धीरे धर्म, जाति तथा क्षेत्र की पुरानी चेतना गौण हो गई और राजनीतिक तथा आर्थिक प्रयोजनों की वजह से उनका स्थान राष्ट्र और वर्ग की चेतना ने ले लिया। किंतु समस्त भारतीय जनता के साथ यह प्रक्रिया एकसमान रूप से घटित नहीं हुई। खासतौर से देश के कुछ भागों में तथा जनता के कुछ वर्गों में धार्मिक चेतना ने सांप्रदायिक चेतना का रूप ले लिया। ऐसा इसलिए हुआ कि इससे समाज के कुछेक वर्गों और कुछेक सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी।[2]

सांप्रदायिकता को 20वीं शताब्दी के दौरान ही विकसित होने में सफलता क्यों मिली और वे कौन-से सामाजिक वर्ग तथा शक्तियाँ थीं जिन्होंने इसके विकास में मदद की। किंतु इस बात को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सांप्रदायिकता और उसकी उत्पत्ति भारतीय समाज या राजनीति में अंतर्निहित नहीं थी अपितु यह ऐतिहासिक रूप से विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का परिणाम थी। यह सच नहीं है कि जहाँ कहीं भी विभिन्न धर्म एक साथ विद्यमान होते हैं वहाँ सांप्रदायिकता अनिवार्य रूप से उत्पन्न होनी ही चाहिए। यह तय है कि सांप्रदायिकता सांप्रदायिक विचारधारा की ठीक उसी प्रकार उपज है जैसे यह मत जातिवाद की ऊपज है कि बहुसमूहमूलक समाज में जातिवाद का होना अनिवार्य है। इस प्रकार सांप्रदायिकता हिंदुओं अथवा मुसलमानों के बीच मूलभूत पारस्परिक विरोध का या मध्ययुग के दौरान उनके तथाकथित संघर्ष का या उनकी संस्कृतियों के बुनियादी टकराव का या 'दो'

अलग-अलग तथा एक-दूसरे से भिन्न सभ्यताओं की मौजूदगी का या हिन्दू-मुसलमान के बीच 'सामाजिक असामंजस्य' का परिणाम नहीं है। ये तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य-कारण वाले सिद्धांत वास्तव में सांप्रदायिक विचारधारा के ही विभिन्न पहलू हैं।[3]

इस संबंध में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हालाँकि सांप्रदायिकता यहाँ की परिस्थिति में अंतर्निहित या अनिवार्य नहीं थी, फिर भी भारतीय सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में कुछ ऐसे तत्व जरुर मौजूद थे जिन्होंने सांप्रदायिकता के अस्तित्व और विकास को बढ़ावा दिया।[4] हमें इन तत्वों को समझकर उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास करना होगा।

अब हम उन अंतर्निहित तत्वों तथा शक्तियों का विवेचन करेंगे जो सांप्रदायिकता की नियति को प्रभावित करती हैं तथा जो इसके उदय और विस्तार की भी व्याख्या करती हैं।

सर्वप्रथम सांप्रदायिकता भारतीय अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक स्वरूप, औपनिवेशिक पिछड़ेपन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने में उपनिवेशवाद की अक्षमता का उप-उत्पाद थी। इसके परिणामस्वरूप जो आर्थिक गतिरोध पैदा हुआ और उसका जन-जीवन-विशेष रूप से मध्यवर्ग के जीवन-पर जो प्रभाव पड़ा उसने ऐसी परिस्थितियों को जन्म दिया जो भारतीय समाज के भीतर विभाजन और विरोध पैदा करने में सहायक बनीं।

संपूर्ण बीसवीं शताब्दी में आधुनिक औद्योगिक विकास तथा सामाजिक और सांस्कृतिक सेवाओं के विकास के अभाव में, खास तौर पर शिक्षित मध्य वर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग के लिए आर्थिक अवसरों का ह्रास होता गया। साथ ही वह वर्ग अब कृषि कर्म की ओर वापस नहीं जा सकता था। ये आर्थिक अवसर 1928 के बाद की भारी मंदी के दौरान और भी कम होते गए। बड़ी भारती मात्रा में बेरोजगारी फैली हुई थी। परिणामतः, विशेष रूप से निम्न मध्य वर्ग ने सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में निरंतर गिरावट के दुष्परिणाम भोगे। ऐसी हालत में राष्ट्रीयवादी आंदोलन, अन्य लोकप्रिय आंदोलनों तथा वामपक्ष ने साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने तथा सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन के लिए संघर्ष करके सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के दीर्घकालिक हल पेश किए। जनता में साम्राज्यवाद-विरोधी भावना को जगाने के लिए उन्होंने बेरोजगारी की इन स्थितियों तथा आर्थिक गतिरोध के अन्य पक्षों को ही अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया।[5]

किंतु जिनमें सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक-समझ नहीं थी उन्होंने तात्कालिक निजी स्वार्थों और वैयक्तिक समस्याओं के अल्पकालिक समाधान को ही देखा। आर्थिक गतिरोध के कारण लोगों में सरकारी नौकरियों, विधि तथा चिकित्सा-शस्त्र जैसे व्यवसायों तथा उपभोक्ताओं और बाजारों के लिए व्यापार को लेकर बड़ी भारी प्रतिस्पर्धा चल पड़ी। इस प्रतिस्पर्धा में मध्य वर्ग के लोगों ने भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार आदि का खुलकर इस्तेमाल किया। लेकिन उन्होंने जाति, प्रांत और धर्म जैसी अन्य सामूहिक समानताओं का इस्तेमाल भी किया जिससे जाति या प्रांतीय धार्मिक समूह के नाम पर या उसके माध्यम से मध्यवर्गीय व्यक्ति की प्रतियोगिता में भाग लेने की क्षमता को बढ़ा सकें। इस प्रकार मध्य वर्ग के कुछ व्यक्ति कुछ समय के लिए सांप्रदायिकता से लाभ उठा सकते थे और उन्होंने यह लाभ उठाया भी। यदि विभिन्न नौकरियों, व्यवसायों और व्यापारों में किसी धार्मिक समूह या संप्रदाय विशेष के हिस्से को सांप्रदायिक नारों तथा सांप्रदायिक राजनीति के माध्यम से बढ़ाया जा सकता था जो मध्यवर्गीय व्यक्ति उनका लाभ उठाने के अवसर पाने की संभावनाएँ बढ़ा सकते थे।[6]

कुछ विद्वानों की धारणा है कि शिक्षा तथा नौकरियों में मुसलमानों के पिछड़ेपन के फलस्वरूप ऐसा हुआ। किंतु वास्तव में यह सही नहीं है। पहली बात तो यह है कि भारत में मजदूर और किसान पिछड़ेपन तथा गरीबी के शिकार थे, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान या सिक्ख। दूसरे, जहाँ तक मुसलमान मध्य वर्ग का संबंध था, बंगाल में या कुछ हद तक पंजाब में रहने वाला मुस्लिम मध्य वर्ग पिछड़ा के लोगों में कठिनाई के हालात में प्रतिद्वंद्विता होगी ही, चाहे वे पिछड़े मध्य वर्गों और संप्रदायों के हों या उच्च वर्ग के। इस प्रकार पंजाब में या देश के कई अन्य भागों में न केवल मुस्लिम मध्य वर्ग वरन् कई आगे बढ़े हुए हिंदू मध्य वर्ग भी उतने ही सांप्रदायिक थे। मध्य वर्ग में प्रतिद्वंद्विता की भावना हर हालत में पैदा होगी ही। यह तो प्रतिद्वंद्विताओं पर लेबल लगाने और इन प्रतिद्वंद्विताओं को बढ़ाने के लिए कुछ वर्गीय समूहों को खोने का प्रश्न था। आर्थिक गतिरोध तथा सीमित आर्थिक अवसरो के औपनिवेशिक हालात में कोई भी मुसलमान यह सोच सकता था कि यदि सरकारी नौकरियों तथा व्यवसायों आदि में मुसलमानों का हिस्सा अधिक हो जाए तो उसके अपने आर्थिक अवसर भी बढ़ जायेंगे। इसी तर्क के आधार पर मध्यवर्गीय हिंदू यह सोचता था कि इनमें मुसलमानों की हिस्सेदारी बढ़ने पर उसके अपने अवसर कम हो जायेंगे। इस प्रकार ये दोनों ही एक-दूसरे को अपना प्रतिद्वंद्वी समझने लगेंगे और सांप्रदायिकता की भावना विकसित होने लगेगी और अपनी जड़ें जमाने लगेंगी। नौकरियों आदि की कमी के कारण, प्रत्येक नियुक्ति सांप्रदायिक तथा अनुचित दिखाई देगी तथा सांप्रदायिकता का पोषण करेगी। परिणाम यह हुआ कि मध्य वर्ग ही सांप्रदायिकता के फैलने-पनपने के लिए उर्वर सामाजिक भूमि बन गया।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का एक अन्य पक्ष भी था जिसने सांप्रदायिक राजनीति को प्रोत्साहित किया। आधुनिक उद्योग, बैंकिंग, वाणिज्य, सामजिक सेवाओं के अभाव में तथा संगीत, रेडियो, रंगमंच, ललित कलाओं, सिनेमा आदि में मनोरंजन और सांस्कृतिक सुअवसरों के अभाव में सरकारी सेवा ही मध्य वर्ग के लिए रोजगार की प्रमुख मार्ग थी। यहाँ तक कि 1951 तक केवल बारह लाख लोग फैक्ट्री अधिनियमों के अंतर्गत आते थे जब कि 33 लाख लोग सरकारी नौकरियों में लगे हुए थे। व्यावसायिक महाविद्यालयो में सांप्रदायिक आधारों पर नौकरियाँ तथ सीटें आरक्षित करने तथा आवंटित करने के लिए और सरकार पर दबाव डालने के लिए सांप्रदायिक राजनीति का इस्तेमाल किया जा सकता था। इसलिए यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी कि 1937 तक सांप्रदायिक राजनीति को सरकारी नौकरियों तथा व्यावसायिक महाविद्यालयों में प्रवेश तथा राजनीतिक पदों-विधान परिषदों तथा नगरपालिका समितियों-की माँगों के इर्द-गिर्द संगठित किया जाता था जिससे इनके माध्यम से इस संबंध में सरकार पर दबाव डाला जा सके।

इस संबंध में इस बात पर गौर करना भी बड़ा रोचक होगा कि अपने संप्रदायों के नाम पर बोलते हुए संप्रदायवादी अन्य किन्हीं मुद्दों को नहीं उठाते थे। वे ऐसे किसी भी विषय को नहीं लेते थे जो आम जनता या मध्यवर्गेतर सामाजिक समूहों के हितों से संबद्ध हों। इस प्रकार जिस बात को मध्य वर्ग अपनी माँगों के माध्यम से सांप्रदायिक राजनीति में लाया उसे आम जनता धार्मिक अनुरोध के माध्यम से लाई।[7]

दूसरी ओर सांप्रदायिकता ने समाज के वर्गों तथा समूहों के मध्य संघर्ष के रूपांतरित जा विकृत रूप को प्रस्तुत किया। यहाँ समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों तथा भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी समूहों के संघर्ष पर आधारित घोशित करते हुए इसकी गलत तस्वीर प्रस्तुत की गई। इस तरह बंगाल तथा मालाबार में जमींदार तथा कृषक वर्ग के बीच के संघर्ष को तथा पंजाब में कृषक वर्ग तथा कर्जदार और साहूकार के बीच के संघर्ष को हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के रूप में चित्रित किया गया, जमींदार-साहूकार के अत्याचार को हिंदुओं के द्वारा मुसलमानों पर अत्याचार के रूप में सामने लाया गया तथा ग्रामीण धनी वर्ग पर आक्रमण को मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर आक्रमण कहा गया। कृषक वर्ग का अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष वस्तुतः निश्चित था। प्रश्न यह था कि क्या इसे एक सुसंगत और वैज्ञानिक वैचारिक राजनीतिक मोड़ दिया जा सकेगा या फिर इसे सांप्रदायिक धाराओं की ओर मोड़ दिया जाएगा? यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज पंजाब में जमींदारों तथा संपन्न कृषक वर्ग और खेतिहर मजदूरों के बीच संघर्ष को सांप्रदायिक मोड़ दिए जाने की कोशिश की जा रही है तथा देश के अन्य कई भागों में इसे जातिवाद का मोड़ दिये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

इस संदर्भ में इस बात का ध्यान देना जरुरी है कि बंगाल में हिंदुओं ने जमीन पर कब्जा हिंदुओं के रूप में प्राप्त नहीं किया बल्कि बंगाल में इस्लाम के प्रसार की ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ऐसा किया गया। 19वीं शताब्दी के आरंभ में मुर्शीद वली खाँ के शासनकाल में बंगाल में हिंदू जमींदारों तथा व्यापारी वर्ग ने भूमि तथा पूँजी पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। 1793 के स्थायी बंदोबस्त ने बड़ी संख्या में पुराने हिंदू और मुस्लिम परिवारों को हटाकर उनके स्थान पर हिंदू व्यापारी वर्ग को रखकर इस प्रवृत्ति को और अधिक मजबूत किया। इस प्रकार, महाजन व्यापारी तथा साहूकार वर्ग में हिन्दुओं की प्रधानता के कारण भी मध्यकाल में ही देखे जा सकते हैं जबकि अधिकतर भारतीय शासक मुस्लिम धर्मानुयायी रहे थे। किंतु उनकी सामाजिक भूमिका अभी प्रभुत्वपरक नहीं थी। वह हिंदू संप्रदायवाद की उपज नहीं थी। बल्कि वह तो भारतीय अर्थव्यवस्था के उपनिवेशीकरण तथा साहूकारों की इस महत्वपूर्ण भूमिका की उपज थी जो उन्होंने शोषण की औपनिवेशिक पद्धति में अपनाई थी। दूसरे शब्दों में, उपनिवेशवाद के इतिहास ने वणिक-साहूकारों के विकास का आश्वासन दिया तथा मध्यकालीन इतिहास इस तथ्य का गवाह है कि वह वर्ग हिंदू था। यह भी एक दिलचस्प बात है कि जब 1880 से 1885 के दौरान बंगाल लगान विधेयक पर बहस की जा रही थी तो आधुनिक राष्ट्रवादी नेताओं ने, जिनमें से अधिकांश हिंदू थे, मुस्लिम काश्तकारों के पक्ष का समर्थन किया जबकि अधिकांश मुस्लिम सांप्रदायिक नेता जमींदार होने के नाते इन काश्तकारों को उनके अपने भाग्य पर छोड़कर उस मामले में उदासीन रहे।[8]

समस्या यह थी कि राजनीतिक तथा सही वर्गचेतना के अभाव में मुस्लिम काश्तकार या ऋणदाता से अक्सर हिंदू जमींदार तथा साहूकार को अपने शत्रु के रूप में देखा और उसके पीछे की औपनिवेशिक वास्तविकता को नहीं। इसके अतिरिक्त मुस्लिम सांप्रदायिकतावादियों ने जमींदार साहूकार के रूप में उनके वर्गचरित्र को तो भुला दिया और उनके हिंदुत्व पर जोर दिया। हिंदू जमींदारों तथा साहूकारों ने इसके विपरीत कार्य किया। उन्होंने खुलेआम अपने हितों की रक्षा करने में कठिनाई महसूस की और इसलिए जब कभी उन्हें शोशितों के आक्रोश या आंदोलन का सामना करना पड़ा तो उन्होंने हिंदुत्व के खतरे में होने की आवाज उठाई।[9]

अनेक देशी रियासतों के हालात भी ऐसे ही थे। उदाहरण के लिए काश्मीर के हिंदू शासक तथा हैदराबाद के मुस्लिम शासकों ने अपने-अपने क्षेत्र में बहुसंख्यक हिंदू तथा मुस्लिम जनता द्वारा जनतंत्र के लिए किये गये लोकप्रिय संघर्षो को हिंदू तथा मुस्लिम शासकों के विरुद्ध किए गये सांप्रदायिक संघर्ष की संज्ञा दी।

कुछ मामलों में सांप्रदायिकता उच्च वर्गों में शक्ति, विशेषाधिकारों तथा आर्थिक सुविधाओं के लिए किये गये संघर्ष की अभिव्यक्ति भी थी जिसे सांप्रदायिक रूप दे दिया गया। उदाहरण के लिए पश्चिमी पंजाब में सांप्रदायिकता के मामले में ऐसा ही हुआ। जहाँ मुस्लिम जमींदारों ने हिंदू साहूकारों का विरोध किया तथा पूर्वी बंगाल में भी ऐसा ही हुआ जहाँ मुस्लिम जोतदारों ने हिंदू जमींदारों का विरोध किया।

इन सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण बात यह है कि सांप्रदायिकता आर्थिक ताथा राजनीतिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी सामाजिक-राजनीतिक शक्तियों, अर्ध सामंती जमींदारों तथा भूतपूर्व अधिकारी-तंत्र तथा औपनिवेशिक सत्ताधारियों के अस्त्र के रूप में विकसित हुई। जमींदारो ने जानबूझकर सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित किया ताकि वे अपने स्वयं के वर्गीय हितों की रक्षा को छिपा सकें तथा अपने पीछे सार्वजनिक समर्थन तैयार कर सकें। इसके अतिरक्त अविस्तारशील अर्थव्यवस्था में राजनीतिक संघर्षो का विकसित होना तथा निरंतर भीषण होते जाना अनिवार्य है। उनका उग्र साम्राज्यवाद- विरोधी रुख अख्तियार करना भी अनिवार्य है। साम्राज्यवाद ने सांप्रदायिकता का इस्तेमाल राष्ट्रीयतावादी शक्तियों को विभाजित करने तथा भीतर से कमजोर बनाने के लिए राष्ट्रीय तथा आर्थिक दोनों ही दिशाओं में उनकी एकता के मार्ग में रुकावट डालने के लिए किया था। यदि हिंदुओं तथा मुसलमानों को एक-दूसरे के विरुद्ध कर दिया जाता है तो ऐसी स्थिति में वे परस्पर मिलकर साम्राज्यवाद के विरुद्ध नहीं लड़ सकते थे। इसके अतिरिक्त भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बनाए रखने के लिए हिंदू-मुस्लिम फूट को लगातार प्रमुख औचित्य के रूप में प्रस्तुत किया गया। औपनिवेशिक सत्ताधिकारियों ने वस्तुत: सांप्रदायिकता को कृत्रिम रूप से 'निर्मित' नहीं किया और न वे ऐसा कर ही सकते थे। किंतु उन्होंने सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया और यथाअवसर कभी उनके प्रति उपेक्षा का रुख अपनाकर और कभी उसे प्रकटत: सहयोग देकर उन्होंने उसका दुरुपयोग किया।[10]

निष्कर्ष

वस्तुत: अँग्रेजों की 'फूट डालो तथा राज्य करो' नीति का एकमात्र रूप सांप्रदायिकता ही नहीं था। उन्होंने भारतीय समाज को अन्य रूपों में विभाजित करने में भी बढ़ावा दिया। इस तरह उन्होंने एक प्रांत का दूसरे प्रांत के, एक जाति को दूसरी जाति के, एक भाषा को दूसरी भाषा के, यहाँ तक कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध कर दिया। किंतु प्रमुख रूप से उन्होंने धार्मिक विभाजन का आश्रय लिया। अंत तक आते-आते सांप्रदायिकता उपनिवेशवाद का प्रमुख सहारा बन गई। दूसरी ओर यदि सांप्रदायिकता को औपनिवेशिक शासन का शक्तिशाली समर्थन न प्राप्त होता तो यह इतना विकसित न हो पाता कि देश का विभाजन कर सके। इस अर्थ में हम आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता को एक ऐसी विचारधारा कह सकते हैं जिसने मध्यवर्गीय राजनीति को उपनिवेशवाद तथा अर्धसामंती जमींदारों की सेवा के लिए प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ सूची:-

1. डॉ. सत्या एम. राय, *भारत में उपनिवेशवाद ऑर राष्ट्रवाद*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ. 586.
2. उपरोक्त.
3. के.एन. पणिक्कर, *कम्युनलिज्म इन इंडिया : हिस्ट्री, पॉलिटिक्स एण्ड कल्चर*, दिल्ली, 1991.
4. उपरोक्त.
5. एस.गोपाल, *एनाटॉमी ऑफ ए कन्फ्रॅन्टेशन*, दिल्ली, 1998, पृ. 66-68.
6. डॉ. सत्या एम. राय, *पूर्वोक्त*, पृ. 592.
7. वही.
8. आई. अहमद, *कास्ट एण्ड सोशल स्ट्रेटिफिकेशन अमंग मुस्लिम्स*, दिल्ली, 1973, पृ. 588.
9. उपरोक्त.
10. ए. मेहता एण्ड ए पटबर्धन, द *कम्युनल ट्रैंगिल इन इंडिया*, इलाहाबाद, 1941.

सहजानन्द सरस्वती के प्रारम्भिक जीवन से किसान आन्दोलनः एक ऐतिहासिक विश्लेषण (1889–1950)

डॉ० गोपाल कुमार

अतिथि प्राध्यापक, इतिहास विभाग (आधुनिक इतिहास)
जगन्नाथ सिंह कालेज, चन्दौली, बेलसंड, सीतामढ़ी (बिहार)
बाबा साहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारत में अंग्रेजो राज्य का एक प्रमुख अंग भारतीय कृषि व्यवस्था को प्रभावित करना था। प्राचीन कृषि व्यवस्था नवीन प्रशासनिक ढांचे के अधीन शनैः शनैः टूट गई। नवीन भूधृति (land - tenures) व्यवस्था ने नए प्रकार के भूमिपति उत्पन्न कर दिए। ग्रामीण भारत में नई प्रकार के सामाजिक वर्ग उभरे। जीवनयापन के अन्य साधन कम होने के कारण देश में भूमि पर बोझ अधिक बढ़ गया और उसका मूल्य भी बढ़ गया। सरकारी कर तथा जमीदारो का भाग अत्यधिक होने के कारण कृषक साहूकारों तथा व्यापारियों के चंगुल में फंस गए।[1] अनुपस्थित भूस्वामितव, परजीवी बिचौलिए, लोभी साहूकार – इन सभी ने मिलकर कृषक को अधिकाधिक निर्धनता के गढ़े में धकेल दिया। इसमे एक नवीन प्रकार का प्रोलतारी वर्ग उत्पन्न किया। अब कृषक को विदेशी ही नहीं अपितु स्थानीय शोषणकारियों तथा पूजीपतियों से भी निबटना था।[2]

19 वी शताब्दी में कृषकों को अशान्ति, विरोधो, विद्रोहों तथा प्रतिरोधों में प्रकट हुई जिनका मुख्य उद्देश्य सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढीला करना था। [3] उन्होंने भूमिभाटक बढ़ाने, वेदखली और साहूकारों की ब्याजखोरी के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। उनकी मांगों में मौरूसि अथवा दखिलकार (Occupancy) अधिकार और भाटक के रूप में अन्न के स्थान पर धन का निश्चित करना था। वर्ग जाति को अनुपस्थिति में, अथवा कृषकों के सुव्यवस्थित संगठन न होने के कारण कृषकों के विद्रोहों ने राजनैतिक रूप धारण नहीं किया, परन्तु 20 वी शताब्दी में वर्ग जाग्रति आई तथा किसान सभाओं को स्थापना हुई। स्वतन्त्रता- प्राप्ति के पूर्व के दशक में किसान सभाएं अधिकाधिक वामपंथी राजनैतिक दलों, जैसा कि कांग्रेस सामजवादी दल, तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव में आई।[4]

स्वामी सहजानन्द सरस्वती (22-2- 1889 से 26-6-1950) भारत के राष्ट्रवादी नेता एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। वे भारत में किसान आन्दोलन के जनक थे। वे आदि शंकराचार्य सम्प्रदाय के दसनामी संन्यासी अखाड़े के दण्डी संन्यासी थे। वे एक बुद्धिजीवी, लेखक, समाज-सुधारक, क्रान्तिकारी, इतिहासकार एवं किसान-नेता थे। उन्होने 'हुंकार' नामक एक पत्र भी प्रकाशित किया। स्वामी जी का जन्म एक मध्यमवर्गीय, पिछड़े ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके प्रारंभिक जीवन की एक रूपरेखा निम्नांकित कथन से स्पष्ट है। ̄मुझे ठीक याद नहीं कि मां के गर्भ से मैं कहां आया। जब यह जान सकता था तब तो इसकी कोशिश ही न की, और अब अर्धशताब्दी से ज्यादा समय गुजर जाने पर पता लगाना एक प्रकार से असंभव है। इसीलिए इस बात की फिक्र ही छोड़ दी। फिर भी पढ़ने के समय स्कूल में जो अवस्था मोटी - मोटी लिखी - लिखाई जाती है उसी के आधार पर मैंने यह अनुमान किया कि स्वामी जी का जन्म सन् 1889 के आरम्भ के महीनों मे यह दुनिया मूक रूप से देखी थी। जहां तक फिर भी पता लग सका है, फरवरी महीने में फागुन को महाशिवरात्रि का दिन था, हालांकि पक्की जानकारी नहीं हो सकी है ''।[5] उपर्युक्त

उद्धरण इस प्रामाणिकता की कसौटी प्रस्तुत करता है कि स्वामी सहजानन्द सरस्वती के बाल्यकाल का पारिवारिक परिवेश शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टियों से अशिक्षित, पिछड़ा एवं मधयम वर्गीय किसान परिवार का था, जो चतुर्दिक वातावरण में ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा जबरन थोपी गई सामंती एवं औपनिवेशिक दासतां का माहौल व्याप्त था। उसका स्पष्ट असर वर्तमान था। अशिक्षा तथा पिछड़ापन का दबाव उतना प्रबल था कि परिवार अपने नवजात शिशु का जन्म दिन भी कहीं अंकित नहीं कर सका था।

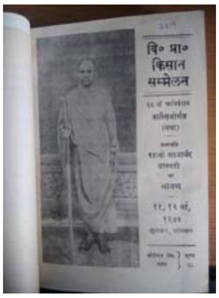

1. स्वामी सहजानन्द सरस्वती 2. किसान सभाओं 3. किसान सम्मेलन 4. भारत में किसान

स्वामी जी का गांव सादियाबाद परगना के बिरनों थाना में अवस्थित है, जो गाजीपुर जिले के शैदपुरा शहर के उत्तर - पश्चिम सीमा पर उत्तर पूर्व रेलवे के दूलहपुर स्टेशन के पास है।[6] नजदीकी कस्बे और एक छोटे सामंती शहर में बचपन के थोड़े से दिन गुजारने के बाद, 17-18 वर्ष की आयु में वे संन्यासी बन बैठे।[7] सामंतवाद और खासकर ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन काल में, औपनिवेशवाद और सामंतवाद का जो अभूतपूर्व घोल - मेल कराया गया था, उसमें सामंतवादी धार्मिकता के प्रभाव तले सांसारिक वृत्तियों से परे परम मोक्ष का दर्शन प्रबल प्रभाव लिए भारतीय सामाजिक संरचना को प्रभावित कर रहा था। स्वामी जी ऐसी धार्मिक मान्यताओं के प्रभाव में करीबन 7-8 साल तक उत्तर भारत के महत्वपूर्ण साधना केन्द्रों का भ्रमण किसी मोक्षदाता गुरु की तलाश में करते रहे तथा संस्कृत वांड्मय के अधययन में उनका समय गुजरा। भारतीय वाड्मय में तपस्वियों, मनीषियों एवं योगियों की साधनाओं के साहित्य एवं इतिहास के सम्पर्क में आने के बाद उनकी उपर्युक्त दार्शनिक अवधारणा का उदय एक स्वाभाविक परिणति थी। अन्य संन्यासियों की ही तरह स्वामी जी भी देश, समाज आदि विषयक कल्याणकारी कार्यों के प्रति उदासीन थे - ठीक ऐसे जैसे वे सब तुच्छ वृत्तिवालों का कार्य है। जब वे दण्डी स्वामी की दीक्षा के क्रम में परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री 108 दण्डी स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती से विधिवत दीक्षा ग्रहण कर दण्डी स्वामी हो गये और उसका विरोध ब्राह्मणों ने किया। 8 तब कई दिनों के शास्त्रार्थ के बाद स्वामी जी ने यह सिद्ध किया कि भूमिहार भी ब्राह्मण ही हैं।

स्वामी जी का परिवार जिस आर्थिक, सामाजिक परिवेश में रह रहा था या गाजीपुर जिले का जो आर्थिक सामाजिक परिवेश उनके जीवन काल में था वह पूर्णत: सामंतवादी भले न रहा हो मगर ब्रिटिश शासन काल में भू - स्वामित्व की जो नई प्रणाली चलाई गई थी, उसने सम्पूर्ण क्षेत्र पर जमींदारों का दबदबा कायम कर दिया था। क्षेत्र में भू - स्वामी जमींदारों एवं कास्तकारों के बीच शोषण की एक नई प्रणाली ने जड़ जमा ली थी तथा ब्रिटिश शासन काल में ध्वस्त की गई स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था और पूंजीवादी उद्योगों का विकास न होना जमीन पर जनसंख्या के दबाव को बढ़ा दिया था। पुरानी स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ध्वस्त होना और रोजगार के अन्य साधनों का सृजन न होना ग्रामीण गरीब आबादी को अर्ध - दास के रूप में खड़ा कर दिया था। वाल्यावस्था में कुश्ती लड़ना, भैंस चराना आदि स्वामी जी के कार्य एक अति अविकसित ग्रामीण व्यवस्था की मौजूदगी के द्योतक हैं, और उन्होंने स्वामी जी के बाल्यकाल को काफी प्रभावित किया। बचपन में ही मां की मृत्यु और उनकी मौसी द्वारा उनका पालन पोषण होना ऐसे कारण थे, जिन्होंने स्वामीजी की चेतना को शुरू के दिनों में भावनात्मकता का आधार प्रदान किये। आर्थिक - सामाजिक परिवेश का सामंती या अर्धसामंती होना, उपनिवेशवाद के तहत हो रहे सार्वजनिक शोषण से जन आयाम की तबाही, औपनिवेशिक दासता के खिलाफ हो रहे

संघर्ष का धार्मिक पुनरुत्थानवादी होना तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा व्यापक पैमाने पर ईसाई धर्म का प्रचार किया जाना और आर्य समाज तथा अन्य धार्मिक संगठनों द्वारा ईसाई धर्म के खिलाफ तथा वैदिक धर्म और सनातन हिन्दू धर्म की महानता आदि का प्रचार

एक ऐसी भौतिक परिस्थिति को पैदा कर रहे थे जिसमें एक नवरंग राय9 की चेतना को धार्मिकता के प्रति उन्मुख होना ही था। स्वामी जी का शुरु का जीवन इन परिस्थितियों में धार्मिकता के प्रति उन्मुख हो गया, नित प्रति स्नान करना, रामायण एवं गीता का पाठ करना, शंकर जी को प्रतिदिन बेलपत्र आदि चढ़ाना ही उनका काम था।

5 ब्रिटिश शासन के दारान किसान आन्दोलन में स्वामी सहजानन्द सरस्वती

ब्रिटिश शासन के वर्ग – चरित्र का वित्तीय पूंजीवादी होने के बाद से भारतीय ग्रामों का शोषण और ज्यादा बढ़ गया था और खास कर स्वामी जी का निवास क्षेत्र बिहार के बगल में होने के कारण अंग्रेज निलहों को दमनकारी कार्यवाइयों का प्रभाव भी उस क्षेत्र पर व्यापक रूप से पड़ रहा था। कृषि की पुरानी व्यवस्था को ढूंढने तथा औपनिवेशिक शासन द्वारा अवाम पर लादी गई बदहवाली के कारण स्वामी जी का परिवार[10] भी एक अशिक्षित मधयमवर्गीय परिवार का स्वरूप ग्रहण कर चुका था जो सामंती और औपनिवेशिक शोषण के तले दबा था और स्वामी जी से उसको कुछ अपेक्षाएं थीं। यही कारण था कि परिवार स्वामी जी की धर्म – उन्मुक्तता को पसंद नहीं करता था। भारतीय सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था की एक कुरीति थी, बाल विवाह और स्वामी जी भी इस कुरीति के शिकार हुए और मात्रा 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह 1905 में कर दिया गया जब उन्होंने मात्र मिडिल स्कूल की पढ़ाई (सप्तम श्रेणी) ही पूरी की थी।[11]

यह वह जमाना था जब भारतीय राष्ट्रीय जीवन में औपनिवेशिक दासता के खिलाफ बहुआयामी संघर्षों का विकास हो रहा था। 1904 में मिडिल पास करने के बाद उनका नामांकन गाजीपुर जर्मन मिशन स्कूल में हुआ। 1905 में बंगभंग के खिलाफ भारत में संघर्ष का जो नया दौर शुरू हो रहा था उसमें तिलक का पुराना धार्मिक पुनरुत्थानवाद का जोर हालांकि कम पड़ता जा रहा था फिर भी स्वामी जी के जीवन पर पुरानी तिलकवादी धार्मिकता का असर काफी प्रभावपूर्ण था। मिशन स्कूल को शिक्षा के तौर तरीके ने भी उन्हें धार्मिक प्रवृत्तियों को अपनी – चेतना में समाहित करने तथा ईसाई धर्म के ऊपर पौराणिक भारतीय संन्यासी – धर्म की महानता को प्रतिष्ठित करने को बाध्य कर रही थी। धार्मिकता के माहौल को भारत की पिछड़ी आर्थिक – सामाजिक संरचना काफी महत्व प्रदान कर रही थी और स्वामी जी समस्याओं के हल को धार्मिक वृत्तियों में खोज रहे थे। चूंकि स्वामी जी के आस – पास की भौतिक परिस्थिति ही धार्मिकता का पुट लिए हुई थी अत: उनकी चेतना के सृजन में उन्होंने व्यापक योगदान किया और स्वामी जी का बाल्यकाल धार्मिकता पर आधारित हो गया, इसलिए आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए। एक अर्द्ध – सामंती समाज में जिस पर एक विकसित पूंजीवादी ब्रिटेन का औपनिवेशिक शासन चल रहा था, और उसके खिलाफ संघर्ष में धर्म पर आधारित आंदोलनों को गठित कर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया जा रहा था कि पौराणिक भारतीय सभ्यता और संस्कृति ब्रिटिश पूंजीवादी सभ्यता

संस्कृति से उच्च थी, और वही साम्राज्यवाद का कारगर विकल्प हो सकती है, ने स्वामी जी की पौराणिक भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन के लिए बाध्य किया। चूंकि पौराणिक भारतीय सभ्यता संस्कृति वर्णाश्रम धर्म पर आधारित सामाजिक संरचना थी और उसका केन्द्र पौराणिक मठ था। भारतीय सभ्यता संस्कृति और चिन्तन में महारत हासिल करने के लिए ऐसे स्वामी की खोज में 1907 को फरवरी के महाशिवरात्रि को घर से निकल पड़े।[12]

1929 में बिहार प्रान्तीय किसान सभा के गठन के पूर्व भी साम्राज्यवादी शासन द्वारा निर्मित जमींदार वर्ग और उसके द्वारा किसानों के शोषण का एक लगातार चलनेवाला सिलसिला बन गया था जिसके खिलाफ भारत में किसानों को विद्रोह हुआ था,[13] जिसमें कूका विद्रोह, संथाल विद्रोह, नीलगिरि के किसानों का विद्रोह, मोपला विद्रोह, बिहार के आदिवासियों का विद्रोहप्रमुख था, मगर इन विद्रोहों,[14] को सशक्त वाणी और सशक्त संगठनके अभाव में साम्राज्यवाद[15] और उसके द्वारा पोषित देशी प्रतिक्रिया की ताकतों ने सम्मिलित रूप होकर दबा दिया था।[16]

1924 के बाद से, जब शाहाबाद जिले के सिमरी ग्राम को अपना केन्द्र बनाकर स्वामी जी ने चरखा और खादी का प्रचार शुरु किया था उसी वक्त से किसानों की दुर्दशा के प्रति उनकी वर्ग - चेतना जागृत होने लगी थीं, और उसकी परिणति हुई सीताराम आश्रम बिहटा के निर्माण के बाद 1928 में एक पैसा सदस्यता शुल्क के आधार पर (किसानों को किसान सभा में संगठित करने में लिए) सदस्य बनाने में। संभवतः यह पटना पश्चिम किसान सभा का संगठन था जिसने आगे चलकर बिहार प्रान्तीय किसान सभा का रूप ग्रहण किया।[17]

1929 में मुजफ्फरपुर में बिहार प्रान्तीय किसान सभा का संगठन श्री कृष्ण सिंह को उसका जेनरल सेक्रेट्री बनाकर किया गया और उसके प्रथम सम्मेलन, सोनपुर में, स्वामी सहजानन्द सरस्वती को अधयक्ष बनाकर सम्पन्न किया गया। सम्मेलन के तुरंत बाद बिहार विधान - सभा में किसान विरोधी जो काश्तकारी बिल पेश और पास किए जाने वाला था,[18] उसका प्रबल विरोध इस किसान सभा ने किया, जिसके फलस्वरूप सरकार को उस काम को वापस लेना पड़ा। यह किसान सभा की पहली विजय थी। मगर विडम्बना यह थी कि रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे समाजवादी विचारक तक इस सभा का विरोध इसलिए कर रहे थे कि, उनकी सम्भावना में, यह कांग्रेस के समानान्तर संगठन का स्वरूप ग्रहण कर भारतीय मुक्ति संग्राम को खंडित करने वाला था।[19] मगर स्वामी जी का किसान संगठन के पीछे जमींदारों के शोषण तथा उस शोषण[20] को गति प्रदान करने में सरकारी भूमिका के खिलाफ एक वर्गीय संघर्ष था, जो अन्ततः मुक्ति - संग्राम का एक पक्ष या अंग ही बन रहा था। स्वराज को पारिभाषित करते हुए उसमें स्थापना की गई, ''किसानों के स्वराज्य का अर्थ है दलितों का स्वराज्य।[21] स्वामी जी ने कांगेस और किसानों के सम्बंध को भी प्रभावित किया तथा किसान सभा के मूल उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए अपनी स्थापना में यह अवधारणा प्रदर्शित की, कि बिना आर्थिक आजादी के राजनीतिक आजादी का कोई अर्थ नहीं। देश के किसान भारत की रीढ़ हैं, उनका वर्चस्व कांग्रेस पर होना चाहिए। कांगेस राजनीतिक संस्था है। किसान - सभा किसानों की वर्ग - संस्था है। जब तक राजनीति और अर्थनीति दो शब्द है तब तक ये दोनों संस्थाएं दो हैं। कांग्रेस मुल्क की आजादी के लिए लड़ती है, किसान सभा आर्थिक अधिकारों के लिए लड़ती है।[22] उपर्युक्त उद्धरण इस तथ्य का गवाह है कि कांगेस और स्वामी जी की दार्शनिकता का मौलिक भेद यह है कि स्वामी जी आर्थिक आजादी के साथ राजनीतिक स्वाधीनता के पक्षधर थे। साम्राज्यवाद और घरेलू पूंजीवाद और जमींदारवाद की समाप्ति के साथ स्वाधीनता उनका लक्ष्य था, आर्थिक स्वाधीनता शहरी एवं ग्रामीण सर्वहारा को प्रदत्त कराने का उनका लक्ष्य कांग्रेस की अर्थनीति से भिन्न था। मगर वास्तविकता यह है कि कांगेस के अन्दर का एक तबका, जो स्वामी जी के समतामूलक विचारों और अर्थिक स्वाधीनता के पक्ष में न था, जमींदारों का खिलाफत किया, और स्वामी जी की जमींदारी विरोधी नीतियों का समर्थन करता रहा। कांग्रेस संगठन में रूढ़िवादी सुझावों का प्रतिनिधित्व करने वाले सरदार पटेल ने सीतामढ़ी की एक आम सभा में कहा था।

बिहार में या हमारे मुल्क में इन जमींदारों की क्या जरूरत है? लोग कौन सा काम हमारे मुल्क के लिए करते हैं? सुना है किसानों को बहुत सताते हैं, और इनसे किसान बहुत डरते हैं, उनसे डरना क्या? ये तो बहुत कमजोर है। यदि हाथ में इनका सिर पकड़कर दबा दिया जाय तो इसका भेजा बाहर निकल आए।[23] 1931 में कांग्रेस और साम्राज्यवाद का समझौता हो गया गांधी इरबिन पैक्ट में, सत्याग्रह स्थगित था मगर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और श्रीकृष्ण सिंह ने गया और मसौढ़ी के किसानों की हालत की जांच की और उनकी कठिनाइयों को दूर करने का वादा किया। स्वामी जी गांधीवादी समझौता परस्ती से उदास हो किसान - सभा का कार्य भी प्रायः बन्द कर दिये थे, तभी अखबारों में छपा एक फर्जी किसान - सभा के निर्माण की बात जिसका उद्देश्य पूर्व के काश्तकारी कानून

को पास करवाना था जिसका विरोध किसान सभा कर रही थी। इस फरजी किसान सभा का मूल उद्देश्य किसानों के नाम पर कुछ निहित स्वार्थों को जमींदारों के साथ मिलकर किसान – सभा के संघर्ष में प्राप्त उपलब्धि को समाप्त करवा देना था।

पटना में आहूत इस फरजी किसान – सभा की बैठक में जब स्वामी जी पहुंचे तो उन्होंने देखा कि वहां किसानों की सभा में लैण्ड होल्डर्स एसोसियेशन के स्तम्भ श्री सच्चिदानन्द सिंहा और राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह उपस्थित हैं। सभा की अधयक्षता श्री डोमा सिंह कर रहे थे। स्वामी जी ने कहा श् किसानों के बिना सूचना दिये यह सभा कैसी ? सभा भंग हो गयी। इसके बाद बिहार के किसानों में स्वामी जी ने एक चेतना भर दी, यही कारण था कि 1933 में जेल से बाहर आने पर एक सभा में श्री कृष्ण सिंह ने कहा कि ''बिहार प्रान्त के किसान आन्दोलन कर बता दिए हैं कि वह सभी जीवित हैं और सब कुछ कर सकते हैं। ''प्रान्तीय किसान सभा की जो बैठक पटना में हुई, जिसमें सोशलिस्टों ने जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रस्ताव लाया उसमें स्वामी जी ने इसका विरोध यह कहकर किया कि अभी इसके लिए समय नहीं आया है, और वह प्रस्ताव पारित न हो सका। मगर हाजीपुर में प्रांतीय किसान सम्मेलन[24] में उन्होंने खुद जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रस्ताव रखा और उसे स्वीकृत कराया। 4 मार्च, 1927 को पश्चिम पटना किसान सभा की स्थापना, 1929 में उसे बिहार प्रान्तीय किसान – सभा का रूप प्रदान किया जाना, सरकार द्वारा बिहार काश्तकारी अधिनियम में संशोधित प्रस्ताव वापस लिया जाना तथा 1933 को गया रैली स्वामी जी के नेतृत्व में किसान आन्दोलन की सफलताएं थीं जिसने किसान – सभा को मधय बिहार का सबसे सशक्त वर्ग संगठन तथा राजनीतिक शक्ति के रूप में उभाड़ा था। शुरू में कांग्रेसी जब इसके संरक्षक बने रहे मगर ज्योंही वर्ग – संघर्ष गहराया, वे इसके विरोधी बन गए। बाद में दरभंगा के किसानों की जमींदार विरोधी शिकायतों के प्रति गांधी का रुख और पुन: अमांवा स्टेट के खिलाफ यहां के किसानों की शिकायतों पर गांधी के जमींदार पक्षी रुख जिसमें गांधी ने कहा था, ''उनके मैनेजर कांग्रेसी है, इसलिए कष्टों को जरूर हटा देंगे।'[25] पर स्वामी जी का कांग्रेस से भ्रम दूर हो गया। उन्होंने कहा ''प्राय: चौदह वर्षों की बनी बनाई गांधी भक्ति आज खत्म हो गई।[26]

स्वामी जी ने सैकड़ों किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया और प्राय: प्रत्येक बार पाया कि जमींदारों के ही साथ लड़ना नहीं, बल्कि कांग्रेस के साथ भी लड़ना पड़ रहा था। कांग्रेस के प्रति अपने मोह – संवरण में स्वामी जी किसानों को समझाते रहे – लेकिन हर किसान – आन्दोलन अनकी आंखे खोलता रहा कि विद्वानों के प्रति कांग्रेस की रामायण कितनी घिनौनी है। इस प्रकार स्वामी जी को पता चल गया कि ''बिहार के कांग्रेसी लीडर जमींदार और जमींदार के पक्के आदमी हैं, एक – एक के बारे में गिन – गिन कर कहा जा सकता है।[27]

सरदार बल्लभ भाई पटेल, जिनके बारे में स्वामी जी की आस्था बड़ी पक्की थी, के बारे में स्वामी जी के गुजरात भ्रमण से उन्हें पता चला कि बारदौली का आन्दोलन महज 10 से 15 फीसदी घनी किसानों का आन्दोलन था जिससे गरीब और मधयम किसानों को कुछ लेना देना नहीं था। पटेल, जिन्हें लौह – पुरुष कहा जाता था, स्वामी जी की वास्तविकता में महज एक झूठे वादों और गरम भाषणों का मात्रा पुलिंदा थे, जो किसानों की प्राय: सब्जबाग दिलाकर कांग्रेस के प्रति सहानुभूति हासिल करते रहे थे। 1935 के चुनावों में किसान सभा के प्रति कांग्रेस का रुख बड़ा ही विचित्रा रहा उम्मीदवारों की चयन समिति ने, जिसमें स्वामी जी एक सदस्य थे, कई बदनाम जमींदारों को अपना उम्मीदवार बनाया, किसान सभाई कोई व्यक्ति उम्मीदवारों की सूची में नहीं था। स्वामी जी ने जब इस कमिटी से इसके प्रतिरोध में इस्तीफा दिया तो दो किसान सभाइयों को टिकट तो दिया गया, मगर कांग्रेस उन्हें मदद करने के बजाय, अंग्रेज पक्षी करार देकर विरोध किया। फलत: एक की हार हो गई तथा एक जहानाबाद से, जो किसान सभा का गढ़ था, भारी मतों से विजयी हुआ।[28]

1936 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के मौके पर अखिल भारतीय किसान सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसमें एन.जी. रंगा, इन्दुलाल याज्ञिक, मोहन लाल गौतम आदि पधारे थे, और स्वामी जी ने इसकी अधयक्षता की, [29] और गया, फैजपुर कोमिल्ला, पलासा, विजयवाड़ा, मखना आदि कि किसानों ने हिस्सा लिया था। अब भारत के विभिन्न प्रान्तों में जो किसान संघर्ष बिखरा पड़ा था उसे एकताबद्ध करने का मौका आया, मगर काल और देश की परिस्थिति के मुताबिक किसान संघर्ष और संगठन का स्वरूप संघीय ही बना रहा। बिहार के किसान आन्दोलन को इससे काफी बल मिला, स्वामी जी को विभिन्न प्रान्तों के दौरे से किसान संघर्ष की विविधता का पता चला। उन्होंने किसान समस्या को समग्रता में समझा। 1937 में फैजपुर (महाराष्ट्र) कांग्रेस अधिवेशन के साथ ही अखिल भारतीय किसान सभा का दूसरा अधिवेशन हुआ। एन.जी. रंगा, अधयक्ष थे। इस सभा में बीस हजार किसानों ने भाग लिया। जिनमें से बहुत से सैकड़ों मील पैदल चलकर आये थे। इसके साथ ही कांग्रेस ने फेजपुर अधिवेशन में खेती सम्बन्धित एक

कार्यक्रम पास किया और दोनों संगठनों के राजनीतिक भाईचारे की घोषणाााा भी की गयी।[30] इस सभा की विशेषता यह रही कि कांग्रेस, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और समाजवादी दल सबों का सद्भाव इसे प्राप्त था और स्वामी जी का बहुआयामी व्यक्तित्व सबों के लिए स्वीकार्य नेतृत्व था।[31] इस सभा में स्वामी जी ने किसानों की दशा की जांच कराने के सम्बन्ध में मांग की। यह मांग स्वीकार कर ली गयी। इसके समर्थन में जवाहरलाल नेहरू ने कहा – किसानों की स्थिति की जांच अवश्य होनी चाहिए। हम इसके लिए स्वामी जी को धन्यवाद देते हैं'', लखनऊ में ही पहली सितंबर को किसान दिवस मनाने का निश्चय किया गया। पूरे भारत में उसी समय से एक सितम्बर को ही किसान दिवस मनाया जाता है। वास्तव में कांग्रेस द्वारा पारित फैजपुर प्रस्ताव मुख्यत: किसानों की कोरी मांग पर आधारित था और समग्र भूमि सुधार की नीतियों को भविष्य में सूत्रबद्ध करने का मात्र एक आश्वासन भर देता था, फिर भी किसान सभा के लिए यह एक भारी महत्व की घटना थी। अत: यह राष्ट्र की ओर से इस बात की स्वीकृति थी कि किसान भारत में एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति है और एक जनवादी भारत के निर्माण के लिए किसान समस्या का हल किया जाना, उग्र – भूमि – सुधार आदि आवश्यक कारक है। स्वामी जी की स्पष्ट मान्यता है कि ''कोई भी राजनीतिक या आर्थिक कार्यक्रम जो इन किसानों की जरूरतों तथा मांगों को भुलाने की घृष्टता करता है उसे किसी भी ख्याली दौड़ से राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं कहा जा सकता।[32] इस काल में स्वामी जी वामपंथ की ओर झुके।

6 अखिल भारतीय किसान सभा का सम्मेलन में स्वामी सहजानन्द सरस्वती

1938 में कांग्रेस अधिवेशन से अलग स्वतंत्र रूप में अखिल भारतीय किसान सभा का सम्मेलन आयोजित होने लगा। मई 1938 की स्वामी जी की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का तृतीय सम्मेलन कोमिल्ला (बांगला देश) में सम्पन्न हुआ। 1939 के 9-10 अप्रैल की आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का चतुर्थ अधिवेशन गया में हुआ। पांचवां अधिवेशन 1940 में आन्ध्रप्रदेश के विशाखापट्टनम जिले के पलासा स्टेशन के पास काशी बुग्गा में हुआ। इसके अध्यक्ष बाबा सोहन सिंह मकना हुए। छट्ठा अखिल भारतीय किसान सभा का अधिवेशन बिहार में 1942 में हुआ। सांतवां अखिल भारतीय किसान सम्मेलन 1943 में भकना में हुआ। आठवां सम्मेलन विजयवाड़ा में 1944 में हुआ। वास्तव में 1930 का दशक बिहार के राजनीतिक इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण बन गया क्योंकि इसके दस जिलों में 1933 के नवम्बर एवं 1935 के नवम्बर के बीच अवधि में लगभग 500 किसान सभा की यूनिटें गठित की गई जो हाजीपुर में हुए किसान सम्मेलन के बाद शुरू की गई थी। पटना में 88, गया में 38, मुंगेर में 57 शाहाबाद में 39, भागलपुर में 22, दरभंगा में 38, मुजफ्फरपुर में 43, सारण में 19, पूर्णिया में 13 तथा चम्पारण में 2 किसान सभाओं को स्वामी जी ने सम्बोधित किया।[33] किसान – सभा की सदस्यता, जो 1935 में 35000 थी। 1937

में बढ़कर 70000 तक पहुंच गई।[34] स्वामी जी अपने भाषणों में एक साल के लगान माफी की मांग उठाते हुए जमींदार एवं उनके अमलों पर तीखा प्रहार करते रहे।[35]

''दरभंगा के किसानों को लगान न देने की राय 10 जून, 1934 को किसानों के महाधिकार पत्र 36 की घोषणा तथा बलदेव सहाय के निवास स्थान पर एक किसान - सभा की अध्यक्षता करते हुए – किसान ''शब्द की पारिभाषित कर स्वामी जी ने आन्दोलन की तीव्रता दी। सभा में प्रस्तावित हुआ कि अपने जीवन यापन के लिए मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर करने वाला हर व्यक्ति किसान है।[37] इस महाधिकार पत्र में भूमि पर रैयतों के अधिकार एवं लगान सम्बन्धी नियमों की स्पष्ट व्याख्या ने किसानों को संघर्ष के लिए सैद्धान्तिक हथियार से लैस कर दिया। इसके परिणामस्वरूप दिनांक 29 जनवरी 1935 को आयोजित किसान सभा ने यह प्रस्ताव पारित किया कि ''वैसा कोई भी काश्तकारी कानून स्वीकार्य नहीं होगा, जो किसानों के मौलिक अधिकारों पर आधारित नहीं है?[38] स्वामी जी की मान्यता थी कि जमींदार लगान ले सकते हैं, लेकिन पैदा करने वाले के आहार के लिए भी कुछ छोड़ दें।[39]

साम्राज्यशाही की समाप्ति के बाद एक जनवादी सरकार, जो किसानों के जमीन पर मालिकाना हक दे सके- की स्थापना की अवधारणा को 1937 के फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन में शामिल न किए जाने के बाद उनका अन्त: विरोध कांगेस से बढ़ गया[40] और गांधी तथा राजेन्द्र प्रसाद से स्वामी जी का मतभेद प्रारम्भ हो गया। अपने कटु अनुभवों का वर्णन स्वामी जी खुद करते हैं कि जिस ईमानदारी और नेकनीयती के साथ विश्वासपूर्वक मैंने जमींदारी और जमींदारों को सुधारने और किसानों एवं उनके बीच सद्भाव लाने की कोशिश की थी इसका परिणाम सिवाय परेशानी और भयंकर निराशा के दूसरा कुछ न हुआ उल्टे जमींदारों का कुचक्र दिन रात बढ़ता गया। भूकम्प के बाद जिस हृदयहीनता का परिचय उन्होंने दिया, वह मेरी आंखों के सामने आज नाचता है। बिहार में सरकार के ही कथनानुसार गल्ले का दाम साठ फीसदी घट गया। फलत: किसानों की ढाई रुपये की जगह सिर्फ एक रुपया दाम मिलने लगा।[41] 1939 में द्वितीय महायुद्ध के शुरू होने पर किसान आन्दोलन का और ज्यादा राजनीतिकरण हो गया। साम्राज्यवादी ब्रिटेन के साथ किसी प्रकार का समझौता न किये जाने के लिए आन्दोलन गठित करने में स्वामी जी ने सुभाष चन्द्र बोस के साथ रामगढ़ कांग्रेस महाधिवेशन के मौके पर 20 मार्च, 1940 को समझौता विरोधी सम्मेलन किया, जिसमें स्वामी जी स्वागताधयक्ष तथा सुभाषचन्द्र बोस अधयक्ष बने थे। यह सम्मेलन कांगेस की उन नीतियों के विरोध में गठित किया गया था जिसके तहत कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यशाही से समझौता का प्रयास कर रही थी। उनके ऊपर मुकद्दमा चला और जेल जाना पड़ा। मगर किसान - सभा का प्रभाव बढ़ता गया। 1942 की किसान सभा की सदस्यता 25000 से बढ़कर 1944 में यह 550000 तथा 1945 में 825000 हो गई।[42]

द्वितीय महायुद्ध के शुरू होने के पूर्व के किसान आन्दोलनों की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए स्वामी जी ने स्थापित किया कि – जब बराबर के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संघर्षों में, असहयोग और चुनावों में सरकार पछाड़ पर पछाड़ खाने लगी- वहीं सरकार, जो पशुबल और प्रभुत्व में अपना सानी नहीं रखती थी, सो भी निहत्थी जनता के दृढ़ संकल्प के सामने अपने को बलहीन पाने लगी तथा गांवों की जनता को अनुमान होने लगा कि हममें अपार शक्ति है, जिसे भूल गए थे। 1930-32 के सत्याग्रह और 1934 के केन्द्रीय चुनाव ने इस पर कसकर मुहर भी लगा दी। 1936-39 के चुनाव ने तो स्पष्ट ही बता दिया कि ग्रामीण जनता के पास अपरम्पार शक्ति है, जो किसी को झुका सकती है। इसी भाव ने, जनशक्ति के इसी ज्ञान ने किसान आन्दोलन को जन्म दिया। जनान्दोलन का मूल तो गांवों में ही था, उसके मूल स्तम्भ किसान ही थे। असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम प्रधानत: उन्हीं को ध्यान में रखकर तैयार हुआ था। अधिकांश वही उस आन्दोलन में खिंचे भी। फलत: अपने अज्ञेय शक्ति का ज्ञान विशेष रूप से उन्हीं को हुआ। उन्होंने सोचा कि अगर हम अपार बलशाली साम्राज्यशाही को पछाड़ सकते हैं, तो इन जमींदार - मालगुजारों और सूदखोरों को क्या हस्ती? ये तो उसी साम्राज्यवाद के बनाये हुए हैं। ...यदि संगठित जनआंदोलन ने सरकार को समाप्त किया, तो संगठित किसान आंदोलन ही जमींदारों को करारा पाठ पढ़ायेगा, यह निष्कर्ष किसानों और उनके सेवकों ने स्वभावत: निकाला। 1927-28 से यह आन्दोलन किसान - सभा के रूप में जन्म लेकर क्रमश: पुष्ट और शक्तिशाली होता गया, त्यों - त्यों किसानों को अपनी अपार शक्ति के मान की मजबूती होती गई। 1936-37 के बाद तो 1938-39 में या उससे पूर्व एक बार किसान- सभा ने बिहार में युक्त प्रांत में था अत्यंत सामंतशाही शक्तियों एवं उनके हिमायतियों को जड़ से हिला दिया। आज जमींदारी मिटाने की व्यापक चिल्लाहट उसी का परिणाम है।[43]

स्वामी जी ने किसान - आन्दोलन को कांग्रेस का उत्तराधिकारी बताया और इस स्थापना को पुष्ट किया कि इस किसान - शक्ति के हाथ में राजसत्ता को आए बिना सच्ची आजादी नहीं मिल सकती। उन्होंने लिखा है, ''किसान - सभा प्रभृति को शक्ल में क्रान्तिकारी शक्तियों का यह प्रादुर्भाव ही है। नियमानुसार ये शक्तियां बाबुओं को प्रतिगामी शक्तियों के साथ घोर संघर्ष करती हुई

आगे बढ़ती ही जा रही हैं। यदि माता की उत्तराधिकारिणी पुत्राी या पिता का उत्तराधिकारी पुत्रा होता ही है, तो कांग्रेस और उसके जन - आंदोलन से उत्पन्न किसान - आंदोलन तथा विधान सभा प्रभृति विप्लवाहिनी की अनिवार्य रूप से कांग्रेस का उत्तराधिकारी बन के उसकी गद्दी पर आसीन होना है। उसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती। तभी वास्तविक राष्ट्रीय आजादी की स्थापना भी होगी।''[44] 1927-28 से 1939 तक किसान आन्दोलनों का वर्ग चरित्र मध्यम किसानों का था, जैसा स्वामी जी कहते हैं, 1927-28 से शुरू होकर प्राय: 15 साल तक किसान आन्दोलन सर्वाधिक शोशित - पीड़ित किसान जनता के उच्च स्तर तक ही सीमित था। फलत: यह भी एक प्रकार से मध्यमवर्गीय आन्दोलन हीं था। खाते - पीते या साधारण किसान ही इसमें भाग लेते थे।[45]

सोवियत सरकार स्वामी जी का एक आदर्श थी, जिसकी वे प्रशंसा करते हुए इस तरह की राज सत्ता की कल्पना आजादी के पश्चात चाहते थे। मझियावां (गया) में एक सभा में स्वामी जी ने स्पष्ट कहा था - दुनिया में एक ऐसा देश है जहां जमींदार नहीं है, पूंजीपति नहीं है, कमाने वालों का राज है, उसकी कमाई का कोई शोषण नहीं करता, वह देश है सोवियत रूस।[46] 1941 में सोवियत संघ पर जर्मनी के हमले के बाद स्वामी जी ने इन्दु लाल याज्ञिक के साथ मिलकर एलान किया कि यह युद्ध जनयुद्ध है, हालांकि उनकी जेल में रिहाई के पूर्व ही केन्द्रीय किसान परिषद अपने नागपुर बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर इस लाइन को हाजिर कर दिया था।[47] स्वामी जी की स्थापना में ''पूंजीवाद का आखिरी रूप फासिज्म की शक्ल में नजर आ रहा है और उसके चलते वर्ग शक्तियों का जो नया गंठजोड़ हो रहा है उसे देखकर तो कहा जा सकता है कि कुछ भी होना असम्भव नही।[48]

1942 से 1945 तक की अवधि में ब्रिटिश शासन ने दमन का रास्ता अपनाया, सभी नेता जेलों में बन्द कर दिए गए तो किसान - सभा ने राष्ट्रीय नेताओं की रिहाई, एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए आन्दोलन चलाया, युद्ध के लिए जबरन वसूलों का खिलाफत किया तथा अन्न पैदा करने के लिए एक आम सहायता आन्दोलन गठित किया[49] यह सारा आन्दोलन किसान सभा के मंच से चलाया गया। आन्ध्र में लाखों एकड़ बंजर जमीन की जोता बोया गया, बंगाल के अकाल में मदद दी गई। 1942 को अगस्त क्रान्ति का चरित्र विश्लेषण करते हुए स्वामी जी ने उसे — बबुआवाद की संज्ञा दी। वे विश्लेशित करते हैं, प्रश्न तो यह है कि यह क्रान्ति जन शक्ति की उस अनियंत्रित जनशक्ति की जो प्रलयंकर विस्फोट लाती है, महायुद्ध का महाताण्डव करवाती है ...बढ़ानेवाली, पूर्णरूप से पल्लवित - पुष्पित करने वाली थी, या कि बाबूदल की वैधानिक शक्ति की ही? जन शक्ति को भी उसने कुछ बढ़ाया हो, सही लेकिन उससे भी कई गुणा यदि बाबू शक्ति को, बाबुओं के वैधानिक बल को बढ़ाया हो, तो मानना ही होगा कि जिस अगस्त क्रांति का हमें गौरव है, फक्र है, उससे हम आगे बढ़ने के बजाये सब मिलकर पीछे ही गए। ...यह तो माना ही होगा कि बाबुओं की वैधानिक शक्ति इससे इतनी बढ़ी कि साम्राज्यशाही ने घुटने टेक उनके लिए गद्दी खाली करा दी। उन्हीं बाबुओं की संस्था - पार्टी - कांग्रेस के विरोध में खड़े होने की आज हिम्मत किसे है? क्रान्तिकारी शक्तियों को ये बाबू आज फूटी आंखों भी नहीं देख सकते। ये शक्तियां बिखरी हुई हैं, जिनसे इन बाबुओं के दमन - दबाव का जम कर सामना करने में असमर्थ है। चीन, हिन्द - चीन, हिन्द - एशिया, मलाया और वर्मा में तो अगस्त क्रान्ति जैसी कोई चीज हुई नहीं और सर्वत्र क्रान्तिकारी जनशक्तियां इन बाबुओं और उनकी सरकारों के छक्के छुड़ा रही है। चीन तो शायद शीघ्र ही इन बाबुओं के शिंकजे से बाहर चला जाएगा। बाकियों में भी कुछ ऐसा ही होने वाला है। हां, इसमें कुछ देर हो सकती है। वर्मा आदि देश में बाबू दल विप्लवी शक्तियों को मिलाने के लिए काफी आगे बढ़ा भी है - इतना आगे जिसकी कल्पना भी भारत की राष्ट्रीय सरकार कर नहीं सकती।[50]

युद्ध जेल में ही स्वामी जी ने मार्क्सवादी साहित्य का अधययन किया और समाजवादियों की अपेक्षा कम्युनिस्टों के सम्पर्क में ज्यादा आए, बिहार में, कम्युनिष्ट पार्टी के निर्माण के बाद उन्हें उसकी सदस्यता के लिए जब आग्रह किया गया तो वे इसे अस्वीकृत कर दिए। ऐसा लगता है कि उस पार्टी की नीतियों के सम्बन्ध में अस्पष्टता, विभिन्न दलों के सम्पर्क के कटु अनुभव, और सबसे बढ़कर एक किसान जनवादी की सीमाबद्धता ने उन्हें उस पार्टी के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी उसमें शामिल होने में रोक रखा। मगर 1942 में किसान सभा का एक मुख्य नारा था कम्युनिस्ट पार्टी पर से प्रतिबंध हटाओ। 1940 के दशक में स्वामी जी के अन्दर एक गतिरोध दृष्टिगोचर होने लगा था। युद्ध के शुरू के दिनों में खेरा, बड़हिया टाल, मंझियावा, पंडौल, सांडा, अमवारी इत्यादि जगहों में किसान संर्घष हुए मगर बाद में यह आम तौर पर धीमा पड़ता गया। 1935 के कांग्रेसी शासन ने भावली को नगदी बना दिया, जिससे जमींदारों को काफी मुनाफा हुआ मगर युद्ध जनित मंहगाई ने उसे निरर्थक बना दिया। 1944 से ही ऐसा लगने लगा था कि अब अंग्रेजों को भारत छोडना पड़ेगा। मगर इसके बावजूद किसान जागृत रहे और आन्दोलनों के सिलसिले में कांग्रेसी सरकारी की कई जगह गोलियां चलानी पड़ी।

स्वामी जी ने चार कांग्रेसी सरकारों को देखा था, 1937, 1943, 1946 और 1947 और इन चारों सरकारों को उन्होंने किसान – विरोधी पाया। स्वामी जी अपना अनुभव बताते हैं – रह गई किसानों और मजदूरों की बात, सो तो बम्बई और कानपुर का गोली और आंसू लाने वाली गैस के प्रयोग आदि ही बताते हैं कि मजदूरों ने क्या पाया। इनकी हड़ताल को तोड़ने में बम्बई में सारी ताकत लगा दी गई। कानून भी ऐसा बना कि मजदूरों को उसका खुलेआम विरोध करना पड़ा और जब उन्होंने उसके विरोध में हड़ताल की तो कांग्रेसी सरकार और कांग्रेस की सारी ताकत उसे तोड़ने लगी। हालांकि फिर भी उनकी हड़ताल सफल होकर ही रही। जमशेदपुर, झरिया, डिहरी, बिहटा, आदि मिलों के मजदूर बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडल को क्या कभी भूलेंगे।''[51]

15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ और उस सरकार के सम्बन्ध में स्वामी जी का मूल्यांकन है, ...प्रान्तों एवं केन्द्र में जो कांग्रेसी सरकारें हैं ....जमींदारी तथा मध्यवर्ती स्वार्थों एवं लगान, मालगुजारी और श्रमदान के सड़े – गले एवं पुराने तरीकों को मिटाने और उनके स्थान पर नई सामयिक प्रणाली को कायम करने को योजनाओं पर उन्होंने पानी फेर दिया है...[52]

स्वामी जी का कम्युनिस्टों से थोड़े दिनों तक झगड़ा भी रहा, जिसके लिए कांग्रेस एवं सोशलिस्ट नेता, जिन्होंने वर्ग – संगठनों को तोड़ने का एक मुहिम – सा चला रहा था, जिम्मेवार थे। लेकिन कम्युनिस्टों को राजनीतिक लाइनें जो कभी दक्षिण पंथ और अतिवामपंथ की रही, भी कम जिम्मेदवार नहीं है। 1947 में ही अपने एक लेख में ''अब क्या हो''? के द्वारा समाजवादी एवं वामपंथी ताकतों को एक जुट करने के लिए 1948 के फरवरी माह में कई वामपंथी दलों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। बैठक भी हुई। सोशलिस्ट पार्टी को छोड़कर 18 दलों के लोग शामिल हुए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से कामरेड सोमनाथ लाहिड़ी इसमें उपस्थित थे। मार्च 1948 में पार्टी की दूसरी कांग्रेस में अपनाई गई नीतियों के कारण वह वामपंथी मोर्चा चल नहीं सका। स्वामी जी का संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयास सफल नहीं हो सका। 28, 29 और 30 अक्टूबर, 1949 को नेता जी भवन, कलकत्ते में देश के वामपंथियों का एक सम्मेलन फिर बुलाया गया। एक समिति भी बनी। किन्तु राष्ट्रीय जनतांत्रिक वामपंथी शक्तियों को एकबद्ध, संगठित करने और राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति को पूरा करने का कर्तत्य अभी भी अधूरा है।

स्वामी जी के अन्तिम योगदान के रूप में है अखिल भारतीय संयुक्त किसान सभा, भारतीय संयुक्त किसान सभा, भारतीय संयुक्त समाजवादी सभा और संयुक्त वामपंथी मोर्चा जो दुर्भाग्यवश सफल नहीं हो सकी। पटना में आहूत वामपंथी सम्मेलन में 18 वामपंथी दलों[53] ने शामिल होकर वर्ग – संघर्ष के आधार पर आन्दोलन विकसित करने सम्बन्धी सम्मेलन किया, जिसकी अध्यक्षता स्वामी जी ने की। जय प्रकाश नारायण की प्रजा सोशलिस्ट पार्टी इसमें भाग नहीं ले सकी। जिस तरह स्वामी जी के जीवन के कई पक्ष हैं : बचपन, संन्यास – धारण, जातीय उत्थान का जीवन, राष्ट्रीय आन्दोलन, किसान – सभा, साम्यवाद के प्रति झुकाव तथा संयुक्त मोर्चा का प्रयास, उसी प्रकार उनकी कृतियों, साहित्यों और लेखों की श्रेणियां भी हैं,[54] 1949 ई. महाशिवरात्रि को बिहटा (पटना) में हीरक जयंती समारोह समिति द्वारा साठ लाख रुपये की थैली का भेंट तथा उसका तदर्थ दान। 9 अप्रैल (रामनवमी) को अयोध्या में सम्पन्न अखिल भारतीय विरक्त महामंडल में प्रथम अधिवेशन में शंकराचार्य के बाद अध्यक्षीय भाषण। 1950 ई. अप्रैल में रक्तचाप से विशेष पीड़ित होकर प्राकृतिक चिकित्सार्थ डा . शंकर नायर, (मुजफ्फरपुर) से चिकित्सा प्रारम्भ। मई – जून में अपने अनन्य अनुयायी किसान नेता प. यमुना कार्थी (समस्तीपुर) के निवास पर निवास। 26 जून, पुनः डॉ. नैयर को दिखाने आने पर मुजफ्फरपुर में ही पक्षघात का आक्रमण तथा 26 जून की रात्रि दो बजे प्रसिद्ध वकील पं. मुचकुन्द शर्मा के निवास पर देहान्त। 27 जून, शव का पटना गांधी मैदान में लाखों लोगों द्वारा अंतिम दर्शन। डॉ. महमूद की अध्यक्षता में शोक सभा, अन्य नेताओं द्वारा श्रद्धांजलि। 28 जून डॉ. श्री कृष्ण सिंह, मुख्यमंत्री तथा अन्य नेताओं का अर्थी के साथ श्री सीताराम आश्रम (बिहटा) में पहुंचना तथा वहीं अन्तिम समाधि। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि का शोक संदेश।[55]

अंतिम विश्लेषण के तौर पर हम कह सकते हैं कि आमतौर पर किसी आन्दोलन को असफलता के लिए उसके नेतृत्व तथा कुछ व्यक्तियों को दोषी ठहरा दिया जाता है। लेकिन यह एक सरलीकरण और सतही विश्लेषण ही होता है। गइराई से देखें तो इसके दो प्रमुख कारण थे। एक तो, किसान आन्दोलनों[56] में आमतौर पर व्यापक वैचारिक परिप्रेक्ष्य, दिशा और समझ का अभाव रहा। वे अपनी तात्कालिक संकीर्ण माँगों में ही उलझे रहे। किसानों की स्थिति और किसानों के शोषण[57] की ऐतिहासिक रूप से पड़ताल करते हुए गहराई से विश्लेषण करने की जरूरत उन्होंने नहीं समझी। ऐसा विश्लेषण उन्हें इस अनिवार्य नतीजे पर पहुंचाता कि पूरी व्यवस्था को बदले बगर किसानों की मुक्ति संभव नहीं है। इससे किसान आन्दोलनों को बदले बगैर किसानों की मुक्ति संभव नहीं है। इससे किसान आन्दोलनों का चरित्र ज्यादा क्रान्तिकारी बनता। दूसरा, किसानों की मांगों को पूरा करने के लिए सरकारी नीतियों[58] को बदलने और सत्ता को प्रभावित करने की कोई संयुक्त रणनीति तथा योजना उन्होंने नहीं बनाई। यदि वे ऐसा करते, एक तो उन्हें

देश के समस्त किसान आन्दोलनों को एकजूट करने की जरूरत का ज्यादा तीव्रता से अहसास होता। सहजानन्द सरस्वती के प्रारम्भिक जीवन से किसान आन्दोलन : एक ऐतिहासिक विश्लेषण (1889-1950) है। दूसरे, देश के अन्य शोशित और वंचित तबकों के आन्दोलनों के साथ एकता बनाने की जरूरत महसूस होती। कुल मिलाकर विचारों के स्तर पर पुरानी मान्यताओं एवं पुराने ढाँचों को खंडित करने और नए विकल्पों की तलाश करने का काम किसान आंदोलन के नेतृत्व को करना होगा और जागरूक बुद्धिजीवियों को करना होगा। संस्कार से किसान गैर राजनीतिक है, इसलिए राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन के लिए उसको तैयार करना एक क्रांतिकारी काम है। भूमिहीन किसान और भूमिधर किसानों[59] में जो आपसी द्वेष और संदेह है वह सबसे बड़ी रुकावट बन कर खड़ी हो जाती है। इस अंतर्विरोध को सुलझाने के लिए दोनों हिस्सों में चेतना पैदा करनी होगी।

संदर्भ सूची :

1 Byn,-G- ,Agricultural trends in India 1891-1997, p. 11

2 Ranga N-G- , History of the Kisan Movements , p. 42

3 Desai,A. R., Peasant Struggles in India p. 49

4 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, History of the Kisan Movements p. 49

5 स्वामी जी की कलम से : जन्म और बाल्यावस्था'', स्वामी सहजानन्द स्मृति ग्रंथ (ब्रह्मर्षि समाज, कानपुर, मार्च, 1986) -पृ. सं . 43 .

6 श्री सुरेन्द्रनाथ, दीक्षित, ''जीवन गाथा'' ज्योति कलश (स्वामी सहजानन्द सरस्वती विकास सेवा संस्थान, मुजफ्फरपुर, 1989) पृ . 4

7 अशोक कुमार, 'सहजानन्द सरस्वती जी की विरासत', नवयुग, 23 फरवरी, 1990 पृ. 24.

8 क्योंकि दण्डी सिर्फ ब्राह्मण ही हो सकते थे और स्वामी जी का सम्बन्ध भूमिहारों से था।

9 स्वामी जी के बचपन का नाम

10 स्वामी जी के परिवार में उनके पिता बेनी राय, स्वामी जी के चाचा, स्वामी जी की मां, स्वामी जी की चाची जो उनकी मौसी भी लगती थीं, स्वामी जी के चार अन्य भाई, एक चचेरा भाई और एक चचेरी बहन थी। स्वामी जी के एक भाई का देहांत उनकी जानकारी के पूर्व ही हो गया था, एक अन्य भाई श्री राम विलास राय की मृत्यु भी उनके सामने हो गई थी, माता की मृत्यु स्वामी जी के बाल्यकाल में ही हो गई थी। शेष बचे तीन भाइयों में स्वामी जी के अलावा थे जंगबहादुर राय और रामध्यान राय, चचेरे भाई थे सुन्दर राय उनके पिता तथा चाची, मौसा की मुत्यु भी स्वामी जी के संन्यास धारण के कुछ ही दिनों बाद हो गई। उनके चचेरे भाई का वंश नहीं चला, देखें ''स्वामी जी की कलम से : जन्म और बाल्यावस्था''। पूर्वोद्धृत

11 आचार्य परमानन्द शर्मा, स्वामी सहजानन्द सरस्वती : जीवन दर्शन और कृतित्व (सहजानन्द सरस्वती ट्रस्ट, गाजीपुर यू.पी., 1974 द्ध, पृ. 2.

12 डॉ. श्याम बिहारी राय ''स्वामी सहजानन्द सरस्वती का राष्ट्रीय आंदोलन मे ऐतिहासिक योगदान ''निवेदिता'', 1987-88 और 1988-89, स्वामी सहजानन्द कुमार, सरस्वती जन्मशती विशेषांक स्वामी सहजानन्द - सरस्वती विद्यापीठ मध्य विद्यालय, गाजीपुर, पृ.6.

13 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, मेरा जीवन संघर्ष, पु . 210 देखें।

14 डॉ0 गोपाल कुमार (रोसड़ा) -बिहार में जमींदारी व्यवस्था और कृषक जीवन (1757-1857) PH-D-Thesis (hindi), इतिहास विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार -2018, पृ0- 163-204

15 डॉ. श्याम बिहारी राय, पूर्वोद्धृत, पृ . 61

16 अयोधया सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम (प्रथम तरंग का विवरण) पृ. 168

17 उपरोद्धृत

18 निवेदिता, पूर्वोद्धृत

19 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, मेरा जीवन संघर्ष (पूर्वोद्धृत) पृ . 342

20 गया के किसानों की करुण कहानी

21 उपरोद्धृत, पृ .71

22 उपरोद्धृत, पृ . 255

23 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पूर्वोन्द्धृत, पृ. 30

24 प्रान्तीय किसान सम्मेलन, हाजीपुर, नवम्बर, 1935

25 अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, पु. 28
26 उपरोद्धृत 208
27 उपरोद्धृत
28 उपरोद्धृत
29 डॉ. श्याम बिहारी राय, पूर्वोद्धृत, पृ. 62
30 रजनी पाम दत्त, आज का भारत (मैकमिलन इन्डिया लि., नई दिल्ली, 1985, पृ.)
31 शंकर दयाल सिंह, जो छोड़ गए वे भी रहेंगे। (1980) पृ. 24-25
32 अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, पृ. 29
33 अवधेश प्रसाद सिन्हा, किसान सभा और कास्तकारी कानून संशोधन, पृ. 6 राकेश गुप्ता, बिहार पीजेन्ट्री और किसान सभा, (नई दिल्ली, 1982) पृ . 66
34 अवधेश प्रसाद सिन्हा, बिहार प्रोभिन्सियल किसान सभा, 1936
35 श्री उपेन्द्र नारायण सिंह, ''किसानों के प्राण'' स्वामी सहजानन्द सरस्वती, ओंकार से हुंकार तक, पूर्वोद्धृत, पृ. 88
36 इस महाधिकार पत्र को कइयों किसान का मैगनाकार्टा कहा है।
37 होम पोलिटिकल फाइल न. 10/1934, बिहार और उड़ीसा सरकार स्पेशल ब्रांच इंसपेक्टर की रपट 11 जून, 1934
38 होम पोल (स्पेशल) मेमो न. 16/1935 बिहार और उड़ीसा सरकार
39 किसानों के प्राण - उपरोद्धृत, पृ . 87
40 टाइम्स ऑफ इन्डिया, 19 मार्च 1989 (पटना)
41 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, ''मेरा जीवन संघर्ष", पूर्वोद्धृत, पृ . 442-443
42 रजनी पान दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ. 109
43 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, ''महारुद्र का महाताण्डव'' पूर्वोद्धृत, पृ . 8-9
44 उपरोद्धृत, पृ. 1
45 उपरोद्धृत
46 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, महारुद्र का महाताण्डव, पृ . 7-8
47 स्वामी सहजानन्द सरस्वती, जंग और राष्ट्रीय लड़ाई, पृ . 2-7
48 स्वामी सहजानन्द, क्रान्ति एवं संयुक्त मोर्चा (बांकीपुर, पटना)
49 रजनी पाम दत्त, पूर्वोद्धृत, पृ . 109
50 स्वामी सहजानन्द, महारुद्र का महाताण्डव, उपरोद्धृत, पृ. 7-8
51 अशोक कुमार, पूर्वोद्धृत, पृ. 30-31
52 उपरोद्धृत, प . 31
53 शीलभद्र याजी, वैज्ञानिक समाजवादी स्वामी सहजानन्द, ब्रह्मर्षि संदेश, पूर्वोच्छ्त, पृ. 38.
54 प्रो .रामनाथ शर्मा, स्वामी सहजानन्द सरस्वती : साहित्यकार के रूप में निवेदिता – स्वामी सहजानन्द सरस्वती जन्मशती विशेषांक (स्वामी सहजानन्द सरस्वती विद्यापीठ महाविद्यालय, गाजीपुर, कल्पना प्रेस, वाराणसी) 1980-88, पृ . 35
55 चौधरी राजनारायण शर्मा विशारद ''स्वामी जी का जीवन घटना क्रम" स्वामी सहजानन्द सरस्वती, ज्योति कलश (स्वामी सहजानन्द सरस्वती विकास सेवा संस्थान, ठाकुर नर्सिंग होम परिसर, मुजफ्फरपुर, 842001, 1984, पृ . 60-62
56 मिश्र, गिरीश, 1978, द एग्रेरियन प्रोब्लम्स आफ परमानेंट सेटलमेंट : एक केस स्टडी ऑफ चंपारण, नयी दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ - 10-32
57 दास, ए.एन, एग्रेरियन मूवमेंट्रा इन इंडिया : स्टडीज इन 20 अथ, सेंचुरी बिहार, लंदन : फ्रैंक कैस, 1983, पृष्ठ -129.
58 गुप्ता, राकेश, बिहार पिजेंट्री एण्ड द किसान सभा 1936, दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशींग हाउस, 1982 पृ . 60-62
59 स्वामी सहजानंद सरस्वती, मेरा जीवन संघर्ष, नयी दिल्ली : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1985 (पूर्वोद्धृत) पृ .-229

वर्तमान दृष्किोण से बदलते राजनीतिक परिवेश में भारत नेपाल संबंध

संतोष कुमार

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान, स्नातकोत्तर विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा।

सारांशः

दो राज्य कि सीमाओं के आपस में मिलने कि वजह से सामान्य राज्यों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध विकसित होने की संभावना बनी रहती है। ईशापूर्व चौथी सदी में चाणक्य द्वारा दिए गए राष्ट्र कि विषय में विश्लेषण का अपना महत्व है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु समय के कालक्रम में राज्यों कि स्थिति एवं प्रवृति में अनेक बदलाव होते रहें है जिसके परिणामों, स्वरूप अर्न्राष्ट्रीय संबंधों में अनेक तरह के विषयों का समावेश भी हुआ एवं जटीलताएँ भी आयी है। भौगोलिक एवं सामरिक दृष्टिकोण से भारत और नेपाल का एक दूसरे के साथ संबंध एक विशेष महत्व रखता है। विगत वर्षो में नेपाल के राजनीतिक परिवेश में बड़ा परिवर्तन हुआ राजतंत्र से प्रजातंत्र कि ओर नेपाल अग्रर हुआ। अभी भी इस प्रक्रिया का सृद्विढ करने के लिए वह क्रियाशील है। वर्तमान समय में भारत में भी काफी लंबे अरसे के बाद एक विशिष्ट राजनीतिक परिवर्तन देखने को मिला है जिससे साफ-साफ मित्रता और विवाद मंतव्य देखने को मिला जहॉ नेपाल को अब बिहार के मोतिहारी से पाइपलाइन के जरिये पेट्रोल-डीजल की आपूर्ति की जाएगी नवम्बर 2019 को नई दिल्ली से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और नेपाल के उनके समकक्ष केपी शर्मा ओली ने विडियो लिंक के जरिये इस योजना का उद्घाटन किया। महत्पूर्ण है कि यह दक्षिण एशिया में दो पड़ोसी देशों के बीच सीमा के आर-पार बनी पहली पाइपलाइन परियोजना है वहीं कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा हटने के साथ ही भारत और नेपाल के बीच कई तरह के जमीनी मसले भी उभर कर देखने को मिला। उन्हीं में से कालापानी का मसला भी एक है, यह मसला अब सुर्खियों में इसलिए आया है, क्योंकि इसको लेकर पिछले दिनों नेपाल के प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने एक बयान दिया कि कालापानी से भारत अपने सुरक्षा बलों को हटाये, क्योंकि वह नेपाल के हिस्से में आता है। यह बयान दरअसल इसलिए आया है, क्योंकि पिछले महीने अक्टूबर (2019) में भारत सरकार ने जम्मू-कश्मीर और लद्दाख यानी दो नये केन्द्रशासित प्रदेशों के गठन के बाद देश का नया नक्शा जारी किया था।

शोध पत्र

भारत और नेपाल दोनों पड़ोसी राज्य है और दोनों का संबंध प्राचीन काल से ही एक दूसरे की सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित-अनुप्रमाणित करते रहें हैं बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी ये एक-दूसरे से आबद्ध रहे है। वैसे राजनीति शास्त्र के महान चिन्तक चाणक्य ने भी विदेश नीति पर गंभारिता से विचार करते हुए मंडल सिद्धात का प्रतिपादन किया था जिसमें निकटतम पड़ोसी देश जिसकी सीमा राज्य से सटती हो उसे 'अरे' राज्य की श्रेणी में रखा था। दो राज्य कि सीमाओं के आपस में मिलने कि वजह से सामान्य राज्यों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध विकसित होने की संभावना बनी रहती है। ईशापूर्व चौथी सदी में चाणक्य द्वारा दिए गए

इस विश्लेषण का अपना महत्व है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता, परन्तु समय के कालक्रम में राज्यों कि स्थिति एवं प्रवृति में अनेक बदलाव होते रहें है जिसके परणामों स्वरूप अर्न्तार्ष्ट्रीय संबंधों में अनेक तरह के विषयों का समावेश भी हुआ एवं जटीलताएँ भी आयी है। दुनियाँ में बदलते भौगोलिक राजनीतिक, आर्थीक सास्कृतिक परिवेश ने संबंधों को सम-समय पर नए आयाम दिए है।

जहाँ तक भारत संबंधों का प्रश्न है यह अति प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर टिका हुआ है। भौगोलिक एवं सामरिक दृष्टिकोण से भारत और नेपाल का एक दूसरे के साथ संबंध एक विशेष महत्व रखता है। भौगोलिक स्थिति कि वजह से नेपाल कि भारत पर निर्भरता एवं सामरिक दृष्टि से भारत का नेपाल कि विशिष्टता भारत एवं नेपाल के संबंधों का एक विशिष्ट आयाम एवं महत्व प्रदान करता है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत एवं नेपाल के संबंध गहरे एवं विशिष्ट रहे है। नेपाल ही एक ऐसा देश है जिसके नागरिक को भारत में आने-वाले के लिए किसी पासर्पोट एवं बिजा कि आवश्यकता नहीं होती है। इसी तरह से भारत के नगरिकों को भी एक सुविधा नेपाल में प्राप्त है। इस अनोखे एवं विशिष्ट संबंध कि जुड़ें इतिहास गहरे समायी हुई है।

विगत वर्षो में नेपाल के राजनीतिक परिवेश में बड़ा परिवर्तन हुआ राजतंत्र से प्रजातंत्र कि ओर नेपाल अग्रर हुआ। अभी भी इस प्रक्रिया का सृद्विढ करने के लिए वह क्रियाशील है। भारत में भी काफी लंबे अरसे के बाद एक विशिष्ट राजनीतिक पविर्तन हुआ है। बदलते राजनीतिक परिवेश में दोनों देशों के संबंधों कुछ पविर्तन हो रहे है ऐसा प्रतीत होता है। एक लंबे अंतराल के बाद भारत के प्रधानमंत्री का नेपाल दौरा और उस पर व्यक्त कि गयी प्रक्रियाए एवं समीक्षाएं इस बात कि ओर इशारा करती है कि दोनों देशों के संबंधों कुछ नया घटित हो रहा है जिसका असर आनेवाले वर्षो में परिलक्षित हो सकता है।

ऐसे में भारत नेपाल संबंधों का अध्ययन अपेक्षित दिखता है ताकि दोनों देशों के बीच के मुद्दों, हितों के विभिन्न आयामों को देखा जा सके एवं उसपर गहराई से विचार किया जा सके एवं भविष्य के लिए कुछ निष्कर्ष निकाले जा सके।

भारत नेपाल के संबंधों का इतिहास काफी पुराना एवं महत्वपूर्ण रहा है इतिहासिक एवं सास्कृतिक वजहों से दोनों देशों के संबंधों में गर्माहट भी महसूस कि जा सकती है। परन्तु नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था में होनेवाले परिवर्तनों एवं विदेशी तत्वों के हस्तक्षेप एवं अतिरिक्त रूचि कि वज़ह से भारत नेपाल संबंधों में कुछ शिथिलता एवं उदाशीनता का माहौल विगत वर्ष परिलक्षित होनेवाला था। परन्तु हाल के वर्षो में भारत एवं नेपाल कि घटनाओं ने संभवत: दोनों देशों के संबंधों ने एक नई उर्जा का संचार किया। यद्यपि हाल के दिनों में (नवंबर, 2019) धार्मिक दृष्टिकोण से देखे तो बिहार के मिथिलांचल से सटे नेपाल स्थित जनकपुरधाम धार्मिक कार्यक्रम में नेपाल की राष्ट्रपति विद्या देवी भंडारी ने कहा कि भारत-नेपाल का संबंध त्रेता युग से ही है। इस रिश्ते को कभी भी खत्म नहीं किया जा सकता है। उनका कथन रहा की भले ही भारत-नेपाल राजनीति दृष्टि से दो राष्ट्र हैं, परन्तु नेपाल व भारत सांस्कृतिक रुप से एक ही राष्ट्र जैसे है। प्रदेश के मुख्यमंत्री ने भी स्पष्ट किया की भावनात्मक तरीकों के निभाये जा रहे संबंध मजबुती प्रदान करते हें जहाँ जनकपुर जैसे धार्मिक स्थल पर भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपनी सक्रियता दिखाते जो दोनों देश के संबंध को सकारात्मक दृष्टिकोण देने का संदेश देता है।

मोतिहारी - अमलेखगंज पाईप लाईन परियोजना

जहाँ एक ओर नेपाल का झुकाव चीन के आर्थिक और बजारीकरण पर ज्दाया देखा जा रहा है तथा चीन भी सड़क योजना से लेकर अपनी वस्तुओं को नेपाल के बाजार में फैला रहा है इस परिदृष्यि में भारत ने भी मित्रता की भावना से नेपाल के साथ फिर से बाजारीकरण के प्रभावन से एक नए युग की शुरूवात करने कि इक्षा दिखायी है। नेपाल को अब बिहार के मोतिहारी से पाइपालाइन के जरिये पेट्रोल-डीजल की आपूर्ति की जाएगी। 10 दिसम्बर 2019 को नई दिल्ली से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और नेपाल के उनके समकक्ष केपी शर्मा ओली ने विडियो लिंक के जरिये इस योजना का उद्घाटन किया। महत्पूर्ण है कि यह दक्षिण एशिया में दो पड़ोसी देशों के बीच सीमा के आर-पार बनी पहली पाइपलाइन परियोजना है। इस योजना का का भरपूर फायदा नेपाल के लोगों को ही मिलने वाला है। इसका श्रेय दोनों देशों के संयुक्त प्रयासों को जाता है। मोतिहारी-अमलेखगंज पाइपलाइन के जरिये पेट्रोलियम पदार्थो की आपूर्ति से लागत मे कमी आएगी। इसका सीधा फायदा नेपाल के लोगों को मिलेगा। महत्पूर्ण है कि टैंकर के जरिये तेल ढुलाई बंद होने से पर्यावरण को नुकसान कम होगा यह पर्यावरण दृष्टिकोण से काफी सकारात्मक कार्य है। इस ऐतिहासिक कार्य के दौरान भारतीय प्रधामंत्री नरेन्द्र मोदी एवं नेपाल के प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने द्विपक्षीय साझेदारी के लिए अलग-अगल टिप्पणी दी जो दोनों देशों के मैत्री संबंध को और मजबूत करता है। पीएम मोदी ने कहा कि नेपाल के साथ विभिन्न क्षेत्रों में साझेदारी को और व्यापक बनाया जाएगा। उन्होंने स्पष्ट भी किया कि पांच वर्षो में दोनों देशों ने कई महत्वपूर्ण द्विपक्षीय परियोजनाओं को अंजाम दिया

है। कुछ अन्य परियोजनाओं पर भी काम चल रहा है, जिन्हें जल्द पूरा किया जाएगा। भारतीय प्रधानमंत्री ने कहा कि पिछले कुछ वर्षो में भारत नेपाल के बीच राजनीतिक स्तर पर भी काफी नजदीकी आई है। नेपाल की प्राथमिकताओं के अनुसार इसके विकास में सहयोग के लिए भारत प्रतिबद्ध है। 2015 में नेपाल में आए विनाशकारी भूकंप के बाद भारत ने वहां पुनर्निर्माण में अहम भूमिका निभाई है। नेपाल के प्रधानमंत्र केपी शर्मा ओली ने संबध को मधुर बनाने हेतु इस तेल परियोजना के प्रति आभारत जताया और उन्होंने मोदी के 'सबका साथ, सबका विकास' नारे का उल्लेख करते हुए कहा कि हमारा नारा भी 'समृद्ध नेपाल, सुखी नेपाल' है। ये नारे दोनों देशों में विकास के जरिए बदलाव के प्रयासों को दर्शाते हैं। ओली ने मोदी को नेपाल आने का निमंत्रण भी दिया जो एक मित्र राष्ट्र के लिए बेहतर संबंधों को दर्शाता है। नेपाल से जुड़े उत्तर बिहार के जिलों की बड़ी आबादी का सुख-दुख भारत-नेपाल संबंधों की गर्माहट से जुड़ा है। पिछले कुछ वर्षो में चीन के नेपाल की नजदीकी की चर्चा ने यहां के लोगों को चिंचित कर दिया था। नेपाल के साथ अगर संबंध बिगड़ते हैं, तो इसका यहां बुरा असर दिखता है। लोगों को हमेशा आशंका रहती है कि यहां पाकिस्तान और बांग्लादेश की सीमा पर बसे लोगों जैसी मुश्किलें न झेलनी पड़ जाएं। नेपाल के सटे भारत के बिहार राज्य के मधुबनी, सीतामढ़ी, पूर्वी चंपारण और पश्चिमी चंपारण जिले नेपाल से सीधे जुड़े हैं। इसी आशंका की वजह से यहां के लोगों को भारत-नेपाल के अच्छे संबंधों की हमेशा कामना रहती है। पिछले वर्ष संयुक्त रूप से पशुपतिनाथ धर्मशाला और आइसीपी वीरगंज का उद्घाटन हुआ था। पिछले कुछ वर्षो में राजनीतिक स्तर पर दोनों देशों के बीच काफी नजदीकी आई है। भारत नेपाल की प्राथमिकता का समझ रहा है। इससे उत्तर बिहार के नेपाल से जुड़े जिलों के लोग उत्साहित है। आश्चर्य कुछ चौकाने वाले तथ्य भी आये है कि वहां के लोगों का कहना है कि नेपाल का ड्रेगन के चंगुल में फंसने से रोका जाना चाहिए।

वर्तमान में कालापानी विवाद

भारत और नेपाल के बीच कई तरह के जमीनी मसले हैं, जिनमें से कालापानी का मसला भी एक है, यह मसला अब सुर्खियों में इसलिए आया है, क्योंकि इसको लेकर पिछले दिनों नेपाल के प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली ने एक बयान दिया कि कालापानी से भारत अपने सुरक्षा बलों को हटाये, क्योंकि वह नेपाल के हिस्से में आता है। यह बयान दरअसल इसलिए आया है, क्योंकि पिछले महीने अक्टूबर (2019) में भारत सरकार ने जम्मू-कश्मीर और लद्दाख यानी दो नये केन्द्रशासित प्रदेशों के गठन के बाद देश का नया नक्शा जारी किया था। इस नये नक्शे में कालापानी भारत के हिस्से के रूप में दर्ज है। इसी बात को नवंबर के पहले सप्ताह में नेपाल सरकार ने अपनी आपत्ति दर्ज करायी थी। इस आपत्ति में ओली ने यह कहा कि नेपाल अपनी जमीन पर किसी और को कब्जा नहीं होने देगा। हालांकि, भारत सरकार ने इतना ही कहा है कि संशोधित नक्शे में कोई फेरबदन नहीं किया गया है।

भारत और नेपाल के बीच इस मसले को लेकर अरसे से बातचीत चल रही है और पूर्व में दोनों देशों ने यह तय भी किया है कि दोनों के उस वक्त जो सचिव होंगे, वे मिलकर बात करेंगे और इस मसले का कोई सार्थक हल निकालेंगे। ऐसे में जब तक यह तय नहीं होता कि करना क्या है, तब तक तो पुरानी स्थिति ही बहाल रहेगी, कलापानी से भारत को सेना हटाने की कोई जरूरत नहीं है। यही वजह है कि भारत ने अभी तक अपने नक्शे में कालापानी को यथावत रखा हुआ है। जाहिर है, जब तक दोनों देशों के बीच कोई बात नहीं बनती और यह तय नहीं हो जाता कि वास्तव में कालापानी किसके हिस्से में रहेगा, तब तक तो केपी शर्मा ओली को ऐसा बयान नहीं देना चाहिए, दो देशों के बीच किसी भी जमीन विवाद का हल इस तरह के बयानों से निकालना मुश्किल है। क्योंकि, कालापानी जगह को लेकर भारत के पास अपने कागजात मौजूद हैं और नेपाल का भी अपना टेक है कि वह उसका है। दो पड़ोसी दशों के बीच ऐसे मसले हल करने के लिए जरूरी है कि दोनों देश कोई राजनीतिक मुद्दा बनाने से बचें और मिलकर बातचीत के जरिये किसी ठोस फैसले पर पहूँचें, ताकि दोनों देशों की जनता में किसी तरह का कोई मतभेद न पनपने पाये और दोनों देशों के रिश्ते भी प्रगाढ़ बने रहें।

वहाँ नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी इस वक्त भारत-विरोध के राष्ट्रवादी रवैये को अपनाये हुए है और वह कालापानी के मसले को हवा दे रहा है यह उचित नहीं है, न ही नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी के लिए और न ही केपी शर्मा ओली के लिए।

कालापानी विवाद की तह में जायें, तो पता चलता है कि दोनों देशों ने कुछ गड़बड़ी की। वहाँ पर भारत के सैन्य बलों ने बैरिकेट लगाये और नेपालियों को आने से रोका, जिससे नेपाल नाराज है। इस बात पर नेपाल की राजनीति बदल गयी और सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें चीन ने पुरजोर तरीके से अपनी दखल दे दी। यह स्थिति भारत के लिए ठीक नहीं है कि भारत और नेपाल के बीच किसी विवाद को कोई तीसरी देश हवा दे। जाहिर है, इसका नुकसान होना तय है, अगर दोनों देशों ने समझदारी नहीं दिखायी तो।

इस वक्त नेपाल की राजनीति और समाज में 'ग्रेटर नेपाल' को लेकर बात चल रही है। 'ग्रेटर नेपाल' का अर्थ है- प्राचीन नेपाल, यानी वह नेपाल जो भौगोलिक रूप से विस्तृत था। इसी 'ग्रेटर नेपाल' की आज नेपाली लोग मांग कर रहे हैं और इसकी हवा पाकिस्तान और चीन दोनों दे रहे हैं कि नेपाल अपने 'ग्रेटर नेपाल' की बात करें। एक तरह से देखा जाये, तो चीन और पाकिस्तान मिलकर भारत को गुपचुप तरीके से परशान कर रहे हैं, जिसमें नेपाल एक जरिया मात्र है। चीन तो बकायदा नेपाल में इन सबके लिए धानराशि भी मुहैया कराता है, यही वजह है कि नेपाल में इस वक्त भारत-विरोध की लहर चल रही है, जिसके परिणामस्वरूप उसके राजनीतिक बयानों में तल्खी देखी जा रही है। 'ग्रेटर नेपाल' की कल्पना कितनी साकार होगी, इस बारे में कहना तो मुश्किल है, लेकिन इतना जरूर है कि कालापानी के विवाद का निपटारा भारत और नेपाल को आपस में बातचीत के जरिये ही करना चाहिए, बल्कि भारत को बहुत ही ज्यादा सावधानी से काम लेने की जरूरत है, बिना कोई तीखा तेवर अपनाये। भारत और नेपाल को विवाद बढ़ानेवाली राजनीति से दूर रहना चाहिए, क्योंकि दोनों देशों के बीच संबंधों को प्रगाढ़ होना हितकारी है।

इस वक्त नेपाल में चीन बड़े-बड़े प्रोजेक्ट लगा रहा है। चीन सांस्कृतिक रूप से नेपाल में भी कई काम कर रहा है। चीन अपने रणनीतिक तरीके से नेपाल में बौद्ध धर्म का प्रसार कर रहा है, चीनी भाषा विस्तार कर रहा है और वहाँ जल्दी ही स्कूलों में चीनी भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ायी जानी लगेगी। चीन वहाँ के नेताओं को धनलाभ दे रहा है और चीन ने ही नेपाल की दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों को एक करने में अपनी महती भूमिका निभायी है। इन सब के चलते नेपाल में चीन की दखल बहुत मजबूत होती जा रही है, जो भारत के लिए निश्चित रूप से अच्छी खबर नहीं है, यह एक ऐसी रणनीति है, जिसका शिकार हर नेपाली हो सकता है, क्योंकि चीन सांस्कृतिक रूप से उनके बीच अपनी पकड़ मजबूत बना रहा है।

पूरे दक्षिण एशिया में सिर्फ भारत-नेपाल के संबंधों में ही प्रगाढ़ता और सकारात्मकता जरूरी नहीं है, बल्कि बाकी देशों के बीच भी यह होना चाहिए। भारत और नेपाल की सीमा की बात हों, इनके पुरातन संबंधों की बात हो या फिर दोनों देशों के भविष्य में रिश्ते कैसे होंगे इसकी बात हो, नेपाल का साथ रहना हमारे लिए जरूरी है। नेपाल का साठ-सत्तर प्रतिशत व्यापार भारत से ही होता है। नेपाल के करीब एक करोड़ लोग भारत में रहते हैं, जिनका आना-जाना लगा रहता है, लेकिन नेपाल अब चीन के साथ सड़क बना रहा है, हलांकि इसमें अभी समय है। नेपाल और चीन के बीच भौगोलिक दूरी ढ़ाई-तीन हजार किमी का है, जबकि नेपाल-भारत के बीच बंदरगाहों का फासला हजार किलोमीटर से भी कम है। ऐसे में कौन व्यापारी ज्यादा पैसा देकर उतनी दूर चीन से मंगवायेगा, यह एक राजनीतिक बात है, चीन के नेपाल में दखल से भारत के ऐतबार से सुरक्षा का बड़ा खतरा है, ऐसे में दोनों देशों के हित में यही होगा कि संबंध अच्छे बने रहें, ताकि तीसरा फायदा न उठा पाये। गौरतलब है कि नेपाल की निर्भरता भारत पर है, जो दस-बीस सालों में खत्म नहीं होने वाली है।

निष्कर्ष

भारत नेपाल केवल पडोसी देश नहीं हैं बल्कि इनाक सदियों पुराना नाता है जो इन्हें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से जोड़ता है। नेपाल से भारत का रिश्ता रोटी और बेटी का है। यह भी आश्चर्यजनक रहा कि पौरानिक काल से तथा आजाद भारत से लेकर अकतक भारत में जितनी भी सरकारें आई सबका रूख नेपाल को लेकर सहयोगात्मक रहा। भारत के मौजुदा प्रधानमंत्री नेरेन्द्र मोदी की नेपाल यात्रा ने इस संबंध को नई दिशा देने की कोशिस की है। जाहे नेपाल में आये महाविनाशकारी भूकंप हो या कालापनी का विवाद इन सबों के बीच फिर भी भारत ने नेपाल जैसे मित्र राष्ट्र के लिए भारत द्वारा तेल पाइपलाइन नए प्रोजेक्ट का आरंभ करने का प्रस्ताव दिया है। प्रस्तुत शोध इस बदलते राजनीतिक परिदृश्य कि पृष्टिभूमि में दोनों देशों के बीच होनेवाली संबंध, विवाद तथा गतिविधियों के गहन अध्ययन एवं परीक्षण के आधार पर दोनों देशों के संबंधों के विश्लेषण का एक क्रमबद्ध प्रयास होगा।

संदर्भः

1. शंकरदेव झा, अन्तराष्ट्रीय सेमीनार, 22-23, नवंबर, 2014
2. दैनिक हिन्दुस्तान, जागरण 11 सितम्बर 2019
3. एस.डी.मुनी. (भारत-नेपाल कालापानी विवाद) प्रभात खबर, नवंबर 2019
4. gshindi.com/category/india-world/bhaarata-naepaala-sanbandha-1950-sae-2016-taka

अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्व

डॉ० नागेन्द्र तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर - दर्शनशास्त्र विभाग
मुरारका कॉलेज, सुलतानगंज
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

योग-दर्शन की अनमोल देन योग के अष्टांग मार्ग को कहा जाता है। योग एक पूर्ण विज्ञान है, पूर्ण जीवन शैली एवं एक पूर्ण आध्यात्म विद्या है। व्यक्ति के निर्माण और उत्थान में ही नहीं, बल्कि समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना तथा शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। सकारात्मक चिंतन इसकी सबसे बड़ी निधि है।

अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्व

भारतीय वाड्मय में योग का विशेष महत्व है। इस विद्या का जितना चिन्तन हमारे ऋषि मुनियों ने किया था, उतना शायद ही किसी अन्य देश के विद्वान ने किया हो। यह विद्या कब से प्रारंभ हुई ? यह कहना बिल्कुल असम्भव है, परन्तु जब हमारे साहित्य तथा धर्म का प्रथम प्रभात हुआ, तभी से इस विद्या का उदय हुआ होगा, यह हम निश्चित रूप से कह सकते है, क्योंकि हमारी वैदिक संहिताओं में विशेषत: ऋक तथा अथर्ववेद की संहिताओं में इस विद्या का सम्मुलेख सबसे पहले किया गया मिलता है। आज जब विश्व अशांति एवं अत्याचार के दलदल में फंसता चला जा रहा है, मानवता आँसू बहा रही है तो भारत के परे पश्चिमी देशों में भी इस विद्या के अध्ययन एवं अभ्यास के प्रति रूचि बढ़ी है। यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गंम्भीर हैं कि विश्व में शांति स्थापित होनी ही चाहिए तो इसका एकमात्र सामाधान है अष्टांग योग का पालन। अष्टांग योग के द्वारा ही वैयक्तिक व् सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शांति एवं आत्मिक आनंद की अनुभूति हो सकती है।

अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्व पर प्रकाश डालने के पूर्व सर्वप्रथम मैं योग शब्द के अर्थ पर विचार करना प्रासंगिक समझता हूँ।

योग शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना। अत: योग का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना, संयोग अथवा मिलाना। किन्तु जब हम आध्यात्मिक सन्दर्भ में योग शब्द का प्रयोग करते है तब इसे जोड़ने या मिलाने की एक दिशा स्वत: ही निर्धारित हो जाती है और वह दिशा है आत्मा का परमात्मा से योग। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा में संयोजित करना ही योग है। दूसरे शब्दों में, आत्मा को ईश्वर से जोड़ने के लिए चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण करके और उसको एकाग्र करके समाधि की स्थिति को प्राप्त कर लेना ही योग है। वस्तुत: योग प्रभु मिलन का मार्ग है, जो जीवात्मा को परमात्मा से युक्त करना सिखाता है। योग दर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है द्य1 मन, बुद्धि और अहंकार इन तीन अन्त:करणों का एक सामान्य नाम चित्त है। यह त्रिगुणात्मक है। सत्व, रजस और तमस ये तीन गुण है। रजो गुण का स्वभाव चंचलता है। रजोगुण की प्रबलता के कारण ही चित्त चंचल होता है और प्रतिक्षण वह भिन्नख्रभिन्न वस्तुओं का आकार लेकर भिन्न-भिन्न रूप में परिणत होता रहता है। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं का आकार लेना ही चित्त की वृति है। गुणों के आधार पर चित्तवृत्तियों को तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं। सात्विक, राजस एवं तामस वृत्तियाँ। राजस एवं तामस वृत्तियों को रोककर सात्विक वृत्तियों का विकास, उसके द्वारा चित्त की एकाग्रता ही योग है।

चित्त की शुद्धि और पवित्रता के लिए योग के आठ अंग माने गए हैं जिन्हें अष्टांग योग कहते हैं। ये अंग हैं[2] – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

1. यम

अष्टांग योग का प्रथम अंग 'यम' है। यम शब्द 'यमे उपरमे' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है – 'यम्यन्ते उपरम्यन्ते निवर्त्यन्ते हिसदिभ्य इन्द्रियाणि यैस्ते यमाः' अर्थात जिनके अनुष्ठान से इन्द्रियों एवं मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर आत्मकेन्द्रित किया जाए, वे यम हैं। यम पाँच हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह।[3] इन यमों का व्यावहारिक जीवन में बहुत महत्व है।

अहिंसा - अहिंसा का अर्थ है किसी भी प्राणी को मन वचन तथा कर्म से कष्ट न देना। मन में भी किसी का अहित न सोचना, किसी को कटु वाणी आदि के द्वारा भी कष्ट न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में किसी भी दिन, किसी भी प्राणी की हिंसा न करना यह अहिंसा हैं।[4] इस प्रकार अहिंसा एक ऐसा मूल्य है जिसके पालन से मनुष्य में करुणा की वृद्धि होती है। मानव में कोमलता एवं उदारता आती है। अहिंसा की भावना से मनुष्य के अन्दर से वैर भावना समाप्त हो जाती है। इससे आंतरिक आनंद की अनुभूति होती है। अतः अहिंसा एक ऐसा मानवीय मूल्य है, जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में समरसता शांति, एकता, बन्धुत्व तथा अमन चौन की स्थापना होती है।

सत्य - सत्य का पालन करने से असत्य निवृत होता है। मन और वचन की एकरूपता को सत्य कहते हैं। सन्देहपरक एवं प्रवंचनायुक्त वाक् असत्य कहलाता है। सत्य के अभ्यासी को अप्रिय सत्य से दूर रहना चाहिए। सत्य का पालन करने के कारण ही राजा हरिश्चन्द्र अमर है। 'सत्य' को तो महात्मा गाँधी ने ईश्वर कहा – सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। सत्य की सिद्धि हो जाने पर तो योगी के मुख से जो भी वचन निकलते हैं, वे सब सत्य ही होते हैं। जो सत्य नहीं बोलते उनमें भय, संकोच एवं आंतरिक मलिनता होती है। झूठ बोलने से नैतिक पतन होता है। इससे मानवीय मूल्यों का क्षय होता है। अतः मानव और समाज की उन्नति के लिए सत्य की आवश्यकता है।

अस्तेय – मन, वचन, और कर्म से चोरी न करना तथा दूसरे के धन का लोभ न करना ही अस्तेय है। अतः योगी पुरुष को भगवान ने जो कुछ प्रदान किया है, उसमें पूर्ण संतुष्ट और आनन्दित रहना चाहिए। चोरी करने वाला समाज द्रोही एवं देशद्रोही है। उसका व्यक्तिगत जीवन मलिन होता है। वह कभी भी महापुरुष नहीं बन सकता जब तक कि वह अस्तेय का पालन न करे। स्तेय से समाज में अव्यवस्था फैलती है। अतः समाज की व्यवस्था एवं विकास के लिए अस्तेय आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य - समस्त इन्द्रियों सहित विषय-विकारों पर संयम रखना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पालन करके मनुष्य ओजस्वी, तेजस्वी, बुद्धिमान, बलवान और पराक्रमी बनकर सबसे दिव्य प्रेम करते हुए सेवा, परोपकार व करुणा आदि से अपने जीवन को सुन्दर बनता है। यही साधक के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। ब्रह्मचर्य के पालन से विश्व की सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य के पालन का यदि समाज में प्रचलन होता तो आज यह दुर्दशा नहीं होती। इससे समाज में जो बलात्कार आदि ओछी हरकते एवं घटनाएँ नित्य प्रति घटती हैं, उन पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य के पालन से समाज में सुव्यवस्था एवं आदर्श की स्थापना होती है। इसीलिए प्राचीन काल में विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचर्य का प्रावधान था जिसके अभाव में आज के विद्यार्थियों एवं व्यक्तियों में अनुशासनहीनता की समस्या आ गयी है।

अपरिग्रह- लोभवश आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना अपरिग्रह हैद्य अपरिग्रह का समाज में अत्यधिक महत्व है। अपरिग्रह के पालन न करने से समाज में चोरी, कालाबाजारी एवं भ्रष्टाचार आदि बुराइयाँ पैदा होती है। समाज में विषमता का सबसे बड़ा कारण परिग्रह अर्थात संग्रह करने की प्रवृति है। यदि दृढ़तापूर्वक अपरिग्रह का पालन किया जाय तो लूटपाट, रिश्वतखोरी, चोर-बाजारी जैसी समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाएंगी। अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति के मन में आत्मसंतोष की भावना पैदा होती है जिससे व्यक्ति के साथ-साथ समाज की बुराइयों से भी छुटकारा पाया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यमों का मानव जीवन में कितना महत्व है। इनका पालन करना व्यक्ति एवं समाज के लिए बहुत उपयोगी है।

2. नियम

नियम योग का दूसरा अंग है। जो शुभ कार्यो में प्रवृत कराते है, वे नियम कहलाते हैं। नियम सदाचार को प्रश्रय देता है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान ये पाँच नियम है।[5] इन नियमों का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में बहुत महत्व है जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

शौच - अर्थात तन और मन की पवित्रता। शौच के पालन से शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता होती है। इससे जीवन में पवित्र विचार आते है और इन विचारों के अनुसार व्यक्ति कर्मों का संपादन करता है।

सन्तोष – अर्थात उचित प्रयास से जितना ही प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहना। सन्तोष रूपी अमृत पान से आत्मसंतुष्टि मिलती है, व्यर्थ की चिन्ता या परेशानी से बचाव होता है।

तप - सुख-दु:ख, सर्दी-गर्मी जैसे कष्टों को सहन करके की जाने वाली साधना को तप कहा जाता है। तप से व्यक्ति अपने आपको इस प्रकार बना लेता है कि वह अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में भी वह अपने मूल्यों से नहीं डिगता। जीवन में किसी महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तप का अत्यन्त महत्व है।

स्वाध्याय - नियमपूर्वक धर्मग्रन्थों का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। हम यदि स्वाध्याय शब्द पर शाब्दिक दृष्टि से विचार करें तो इसके मुख्य अर्थ दो हैं – 'सु अध्ययन स्वाध्याय:' अर्थात उत्तम अध्ययन। ऋषि प्रतिपादित सद्शास्त्रों का पूर्ण श्रद्धा और आस्था के साथ अध्ययन करना। उत्तम ग्रंथों के अध्ययन से हमारे विचारों एवं संस्कारों में पवित्रता, दिव्यता और दृढ़ता से ही जीवन में सात्विकता आती है। दूसरा स्वाध्याय का अर्थ है ख्र स्व अध्ययन अर्थात अपना अध्ययन, अपने आप को पढ़ना, अपने अस्तित्व के विषय में चिन्तन, विचार और निदिध्यासन करना कि मैं कौन हूँ ? मुझे क्या करना चाहिए ? मैं क्या कर रहा हूँ? मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है ? इस प्रकार साधक सजग होकर विवेक पूर्वक विचार करता है, तब वह बाहर के वैभव में न फंसकर ऋषि प्रतिपादित आध्यात्म विद्या, परा विद्या के ग्रंथों का अध्ययन करता हुआ परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त कर सफल हो सकता है।

ईश्वर-प्रणिधान – मन, वचन और कर्म से ईश्वर की भक्ति करना एवं समस्त कर्म ईश्वर को अर्पित करना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर-प्रणिधान एकाग्रता प्राप्त करने का सरल उपाय है। मनुष्य पर जब ईश्वर-प्रणिधान का प्रभाव होने लगता है तो उसे शारीरिक और मानसिक शांति तथा हल्कापन अनुभव होता है। इससे तनाव कम होता है, निराशा या कुण्ठा की भावना नहीं आती है।

3. आसन

'स्थिरसुखमासनम' (योग सूत्र, 2/46)

जिससे शरीर स्थिर रहे और मन को सुख की प्राप्ति हो, शरीर की इस स्थिति को आसन कहते है। आसन करने से नाड़ियों की शुद्धि, स्वास्थ्य की वृद्धि एवं तन-मन को स्फूर्ति प्राप्त होती है। सद्विचारों एवं मूल्यों का क्रियान्वयन व्यक्ति के मन और शरीर द्वारा होता है। इसलिए शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहना आवश्यक है। आसन के अनेक भेद हैं – पद्मासन, वीरासन, मद्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहांसन इत्यादि।

4. प्राणायाम

प्राणायाम योग का चौथा अंग है। श्वास-प्रश्वास आदि की गति को नियंत्रण में रखना ही प्राणायाम कहा जाता है द्य6 जब तक व्यक्ति की साँस चलती है, तब तक उसका मन चंचल रहता है, श्वास वायु के स्थगित होने से चित्त में स्थिरता का उदय होता है। प्राणायाम शरीर और मन को दृढ़ता प्रदान करता है। प्राणायाम के तीन अंग हैं- (i) पूरक, (ii) कुम्भक एवं (iii) रेचक।

पूरक प्राणायाम का वह अंग है, जिसमें गहरी श्वास ली जाती है। कुम्भक में श्वास को भीतर रोका जाता है। रेचक में श्वास को बाहर निकाला जाता है। प्राणायाम का अभ्यास किसी गुरु के निर्देशानुसार ही किया जा सकता है। श्वास के व्यायाम से हृदय पुष्ट होता है और उसमें बल आता है।

5. प्रत्याहार

प्रत्याहार योग का पाँचवा अंग है। प्रत्याहार का अर्थ है ख्र इन्द्रियों को अपने-अपने बाह्य विषयों से खींचकर हटाना तथा इन्हें मन के वश में रखना। इन्द्रियाँ स्वभावत: अपने विषयों की ओर आकर्षित होती है। योगाभ्यास के लिए ध्यान एक ओर लगाना होता है। इसलिए यह जरुरी होता है कि इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों से संसर्ग नहीं हो। प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित न होकर मन के अधीन हो जाती है। व्यक्ति और समाज में जो बुराई, इत्यादि दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब व्यक्ति के ऐन्द्रिक और मानसिक विषय-भोगों, वासनाओं के ही दुष्परिणाम हैं। मनुष्य अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं कर पाता है, जिससे

वे स्वाभावत: विषय की ओर दौड़ती हैं। फलस्वरूप इन विषयों को प्राप्त करने के लिए वह अच्छा या बुरा कोई भी प्रयास करने से नहीं चूकता। इससे व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का क्षय होता है और सामाजिक मूल्य भी टूटते है। प्रत्याहार की साधना से व्यक्ति के इन्द्रिय एवं मन उसके वश में होते है, जिससे जीवन में नैतिक मूल्यों को बल मिलता है।

ऊपर कहे यम से प्रत्याहार तक के साधनों का सामूहिक नाम बहिरंग है क्योंकि इसका लक्ष्य चित्त को भौतिक बाह्य पदार्थों की ओर जाने से रोकना होता है। तत्पश्चात धारणा, ध्यान एवं समाधि की क्रियाओं द्वारा चित्त की एकाग्रता के विभिन्न रूपों की साधना प्रारंभ होती है, जिन्हें अंतरंग कहा जाता है क्योंकि पदार्थ चिन्तन अंतर्मुखी होता है।

6. धारणा

धारणा का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर जमाना। धारणा आन्तरिक अनुशासन की पहली सीढ़ी है। धारणा में निर्मल चित्त किसी एक वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। इस योगांग में चित्त को अन्य वस्तुओं से हटाकर एक वस्तु पर केन्द्रीभूत कर देना पड़ता है। वह वस्तु बाह्य या आन्तरिक दोनों हो सकती है। वह वस्तु का कोई अंश अथवा सूर्य, चंद्रमा या किसी इष्टदेव की मूर्ति में से कोई भी रह सकती है। इस अवस्था की प्राप्ति के बाद साधक ध्यान के योग्य हो जाता है। धारणा अच्छे विचारों एवं पवित्र संकल्प के लिए सहायक है।

7. ध्यान

धारणा से हमने अपने चित्त को जिस विषय में लगाया हो, उसी विषय में उसे निरंतर लगाए रखने का नाम ही ध्यान है। ध्यान की सहायता से मन के 'राजस' और 'तामस' मूल का नाश हो जाता है और सात्विक गुणों का विकास होता है।

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तो ध्यान प्रत्येक क्रिया का पूरक था। ध्यान जीवन का अपरिहार्य अंग है। ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। ध्यान के बिना हम अपने किसी भी भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते है। ध्यान से ही सदा आनन्दमय और शान्तिमय जीवन जी सकते है।

8. समाधि

समाधि योग साधन की अंतिम सीढ़ी है। इस अवस्था में ध्येय वस्तु की ही चेतना रहती है द्य7 इस अवस्था में मन अपने ध्येय विषय में पूर्णत: लीन हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसे अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। ध्यान की अवस्था में ध्येय विषय और ध्यान की क्रिया – ये दोनों पृथक प्रतीत होते हैं। किन्तु समाधि की अवस्था में ध्यान की क्रिया का पृथक अनुभव नहीं होता वह ध्येय विषय में डूबकर अपने को खो बैठती है। इस अवस्था में केवल ध्येय मात्र रह जाता है। समाधि की महत्ता इसलिए है की उससे चित्त वृति का निरोध होता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आज के तनावग्रस्त युग में अष्टांग योग की उपयोगिता एवं महत्ता प्राचीन काल से भी अधिक है। शारीरिक स्वास्थ्य लाभ चिकित्सा शास्त्र के द्वारा संभव है। किन्तु मानसिक स्वास्थ्य लाभ का एकमात्र साधन सशक्त साधन अष्टांग योग है। स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रत्येक नागरिक को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहना परम आवश्यक है और इसके लिए अष्टांग योग सर्वथा उपयोगी है क्योंकि आसन प्राणायाम आदि के अभ्यास से साधक शरीर से स्वस्थ रहता है और यमनियमादि के द्वारा साधक मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है। इसलिए संतुलित एवं सुव्यवस्थित जीवन जीने की कला में अष्टांग योग सदा उपयोगी है। यही नहीं अष्टांग योग से संयम एवं सदाचार के भाव को जागृत कर एड्स जैसे खतरनाक बीमारी एवं यौन अपराधों से रहित एक चरित्रवान समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। साथ ही जनसंख्या को नियंत्रित करके भूख, बेरोजगारी एवं पर्यावरण प्रदुषण से मुक्त भारत बन सकता है। राष्ट्र की ज्वलंत एवं विषम समस्याओं जैसे आतंकवाद, नक्सलवाद, जातिवाद एवं साम्प्रदायिकतावाद के समाधान में अष्टांग योग काफी उपयोगी साबित हो सकता है। अगर हम स्वस्थ, समृद्ध एवं वैभवशाली तथा संस्कारवान भारत का निर्माण करना चाहते हैं तो इसका एकमात्र साधन है अष्टांग योग। इस समय जब पूरा विश्व कोविड-19 (Covid-19) जैसे भयंकर महामारी से त्राहिमाम कर रहा है। तब बड़े-बड़े विशेषज्ञों द्वारा मनुष्य के अंदर

रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए आसन, प्राणायाम एवं ध्यान को अपनाने की सलाह दी जा रही है। इससे योग की महत्ता दिग्दर्शित होती है।

सन्दर्भ सूचि

1. योगश्चितवृतिनिरोध: - योगसूत्र;
2. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोअष्टांगनि - योगसूत्र 2/29
3. अहिंसासत्यास्तेयब्रहमचर्यापरिग्रहा: यमा: - योगसूत्र 2/30
4. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम - योगसूत्र 3/26
5. शौचसंतोषतप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा: - योगसूत्र 2/32
6. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेद: प्राणाया - योगसूत्र 2/49
7. तदेवार्थमात्रनिर्भास स्वरुपशून्यभिव समाधि - योगसूत्र 3/3

ठाकुर का कुआं: अछूत समस्या के प्रति प्रेमचंद का जुड़ाव और प्रतिबद्धता

डॉ० नीलू अग्रवाल

पटना

प्रेमचंद आधुनिक युग के पहले महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने दलित समस्या पर सर्वाधिक गहराई से विचार किया है। उन्होंने आधुनिक भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के कारण अछूत माने गए दलित समाज के त्रासद अनुभवों को अपने रचना कर्म का विषय बनाया है। 'ठाकुर का कुआं', 'सद्‌गति', 'दूध का दाम', 'कफन', आदि कहानियां दलित जीवन में व्याप्त अभाव, पीड़ा, उत्पीड़न और दर्द को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी कहानियों में छुआछूत का विरोध स्पष्टतः सामाजिक और आर्थिक संदर्भ के रूप में किया गया है। प्रेमचंद मानव जीवन के बीच समानता का विश्वास रखते हैं और विशिष्ट जातियों के जन्मगत विशेषाधिकारों का विरोध करते हैं।

प्रेमचंद जब 'ठाकुर का कुआं' की रचना कर रहे थे तब डॉक्टर अंबेडकर द्वारा छेड़े गए दलित अस्मिता आंदोलन ने समाज चिंतकों के सामने भारतीय समाज व्यवस्था व सांस्कृतिक रिश्तों के बारे में नए दृष्टिकोण से सोचने का आह्वान खड़ा कर दिया था। जिसका कुछ-कुछ प्रभाव प्रेमचंद के साहित्य सृजन पर दिखाई देता है। छुआछूत की समस्या एक अछूत परिवार के जीवन को किस प्रकार अभाव, अपमान और असुरक्षितता का पर्याय बना देती है। जीवन की सबसे मूलभूत आवश्यकता पानी पर अधिकार न होने और इसे प्राप्त करने के लिए किस प्रकार अपमानजनक तथा भयग्रस्त स्थिति से गुजरना पड़ता है। इसके यथार्थ चित्रण द्वारा 'ठाकुर का कुआं' कहानी में प्रेमचंद ने जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्ति दी है। 'ठाकुर का कुआं' से पहले की रचनाओं में जैसे कि 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास एक चमार नायक है लेकिन संपूर्ण उपन्यास में कहीं भी अछूत समस्या को अभिव्यक्ति नहीं दी गई है बल्कि मंदिरों में अछूत भी सवर्णों के साथ भजन-कीर्तन करते हैं और सूरदास के मरने के बाद हुए सहभोज में एक ही पंगत में ब्राह्मण, ठाकुरों के साथ चमार, पासी डोम, सभी अछूत साथ बैठकर भोजन करते हैं, जैसी असंभव घटनाओं का चित्रण किया गया है लेकिन ऐसी आदर्शवादी स्थिति उस समय संपूर्ण भारत में कहीं भी नहीं थी।

'ठाकुर का कुंआ' कहानी पानी की समस्या को लेकर गहन चिंता में डूबे अछूत पति-पत्नी, जोखू और गंगी को लेकर शुरू होती है। जोखू और गंगी अछूत होने के कारण ही पानी की समस्या से जूझ रहे होते हैं 'जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी में सख्त बदबू आयी। गंगी से बोला- यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता'[1] लंबे समय से बीमार जोखू प्यास के मारे तड़प रहा था। गंगी रोज शाम को पानी भर लिया करती थी। कुंआ दूर था। बार-बार जाना भी मुश्किल था। एक दिन पहले जब वह पानी लाई थी तब पानी से बदबू नहीं आ रही थी परंतु दूसरे दिन महकने लगा। अब गंगी के सामने पानी की समस्या मुंह बाए खड़ी थी। वह अन्य गरीब सवर्ण महलाओं जैसी सवर्णों के कुएं से पानी नहीं भर सकती थी। अछूतों को सवर्णों के कुएँ पर चढ़ने का अधिकार ही नहीं था। अब सवाल यह है कि 'मगर दूसरा पानी आवे कहां से?'[2]

प्रेमचंद अछूतों की दयनीय आर्थिक दशा, उनकी निम्न सामाजिक प्रतिष्ठा और हर दिन अस्पृश्यता के कारण अपमानजनक स्थितियों से गुजरने की पीड़ा को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। पानी के स्रोत ऊंची जातियों के अधिकार में होने और अछूतों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार बरता जाने के कारण अछूत, ठाकुर -राजपूत या साहू के कुओं से पानी नहीं ले सकते। जोखू के शब्दों में

अछूतों की वस्तविक स्थिति को प्रेमचंद व्यक्त करते हैं 'ठाकुर के कुएँ पर चढ़ने कौन देगा। दूर से लोग डांट बताएंगे। साहू का कुआं गांव के उस सिरे पर है परंतु वहां भी कौन पानी भरने देगा? चौथा कुआं गांव में है ही नहीं।'[3] जोखू के इस बयान से यह साफ पता चलता है कि अछूतों की आर्थिक दशा ऐसी नहीं कि वह अपने लिए कुआं खुदवा सकें। मजबूरन सवर्णों के आगे पानी के लिए गिड़गिड़ाने के सिवाय उनके पास कोई अन्य विकल्प भी नहीं है। पानी जो मानव जीवन की नितांत जरूरत है उसके लिए एक इंसान को विवश होना पड़े और मनुस्मृति के विधानों का पालन करने में सवर्ण समाज आज भी लज्जा महसूस न करें, अमानवीय अत्याचार करके जाति अहम की पुष्टि करें, यह शायद संपूर्ण संसार में धार्मिक कट्टरता का एक अकेला उदाहरण है।

गंगी यह तो जानती थी कि पानी खराब होने पर नहीं पिया जा सकता लेकिन अशिक्षा के कारण यह नहीं जानती थी कि पानी को उबाल लेने से उसकी खराबी दूर हो जाएगी। तो 'बोली यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाए देती हूं।'[4] जोखू बहुत आश्चर्य में पड़ गया कि दूसरा पानी कहां से आएगा। गंगी कहती है, 'ठाकुर और साहू के दो कुएँ हैं। एक लोटा पानी न भरने देंगे'[5] जोखू अब उस सामान्य यथार्थ की ओर संकेत करता है जिस पर सबसे पहले प्रेमचंद की नजर पड़ी थी, 'हाथ -पाँव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे और साहू जी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुवार पर झांकने तक नहीं आता। कंधा देना तो बड़ी बात है।'[6] जोखू यह समझ नहीं पाता कि ऊंची जातियां अछूतों के प्रति इस हद तक असंवेदनशील क्यों है। प्रेमचंद ने जोखू व गंगी के द्वारा इन प्रश्नों को पहली बार रचना के माध्यम से उठाकर अछूत जीवन की वास्तविकता से परिचित कराया। यह अछूतों की एक गहन समस्या थी जिसकी और सबसे प्रथम ध्यान आकर्षित उन्होंने कराया।

तत्कालीन लेखकों पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव पड़ा था। इस प्रभाव को हम प्रेमचंद, निराला जैसे लेखकों की रचनाओं में स्पष्ट रूप से देख पाते हैं। जाति प्रथा और ऊंच-नीच भेदभाव पर कमजोर सी ही प्रतिक्रिया गंगी के मार्फत प्रेमचंद कर पाते हैं। गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा, 'हम क्यों नीच है और ये लोग क्यों ऊंच हैं?'[7]

प्रेमचंद का यह कथन जाति प्रथा से उद्भुत छुआछूत की घिनौनी परंपरा के खिलाफ गंगी के मन में उठ रहे गुस्से हो दर्शाता है। जाति प्रथा के मूल कारणों पर कहीं न कहीं यहां चोट करने का प्रयास तो है लेकिन जिस धर्म के अधीन इस भेदभाव को मान्यता प्राप्त है उसके विरोध में लेखक ने चुप्पी साध ली है। गंगी का गुस्सा केवल शब्दों में अभिव्यक्त होता है। यथार्थ में गंगी उनका मुकाबला नहीं कर पाती और अंततः ठाकुर के कुएं से उसका संघर्ष किए बिना भागना सीधे-सीधे सवर्ण आधिपत्य के सामने समर्पण दर्शाता है। धार्मिक आडंबर पर गंगी ने चोट की है, 'ये लोग गले में ताला डाल लेते हैं। यहां तो जितने हैं एक से एक छँटे हैं? चोरी ये करें, जाल- फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें।'[8] यहां यदि प्रेमचंद ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म की भी आलोचना करते तो कहानी में संघर्ष का तत्व जरूर उभर कर आता। यहां यह साबित होता है कि जिस वर्ग के पास सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सत्ता होगी उन्हें ऐसे कार्यों से कोई भी रोक नहीं सकता क्योंकि इनके द्वारा किए गए अपराध को अपराध नहीं बल्कि जन्मजात अधिकार मान लिया जाता है। 'ठाकुर का कुआं' में तत्कालीन युग के सवर्ण वर्ग और ब्रिटिश तंत्र के अंतरंग संबंधों के चरित्र को भी ईमानदारी से उभारा गया है, 'अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़ेरिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों माह जुआ होता है। यही साहुजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हमसे ऊंचे।'[9] गंगी द्वारा उठाए गए सवाल तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों की वास्तविकता पर एक करारी चोट है। क्या ब्रिटिशकालीन शासन व्यवस्था भी ब्राह्मणवाद के सामने इतनी पंगु थी कि न्याय के नाम पर वहां न्याय का मखौल उड़ाया जाता था अथवा सामंत वादियों द्वारा ब्रिटिश शासन व्यवस्था के समर्थन के बदले उन्हें सुरक्षा मिली हुई थी, 'मंहगू को इतना मारा था कि महीनों खून थूकता रहा।'[10] और तो और इसमें पुलिस बढ़-चढ़कर पूंजीपति और साहूकारों जमींदारों का साथ देती थी। तभी तो जुवाघर चलाते पंडित, चोरी की गई भेड़ डकारने वाले ठाकुर और घी में तेल की मिलावट करके बेचने वाले साहू को धोखाधड़ी अन्याय और अपराध करने पर भी सजा न होने की छूट मिल रही थी।

गंगी जानती है कि उसे किसी ने पानी लेते देख लिया तो उसका बचना मुश्किल है। एक घड़े पानी की कीमत जान गंवाकर चुकानी पड़ सकती है। उस स्थिति की कोई सवर्ण स्त्री कल्पना भी नहीं कर सकती कि पानी जो जीवन की जरूरत है उसके लिए

अछूतों को इस कदर बेबसी का सामना करना पड़ता है। गंगी अभी कुएं के पास तक भी नहीं पहुंची थी पेड़ों की आड़ में छुपकर वह ठाकुर का आंगन खाली हो जाने का इंतजार करती रही। इसी समय दो सवर्ण स्त्रियां पानी भरने आई जो आपस में अपना दुख बांट रही थी। एक स्त्री ने दूसरी से कहा, 'खाना खाने चले और हुकुम हुआ की ताजा पानी भर लाओ। घड़े के लिए पैसे नहीं हैं। हम लोगों को आराम से देख कर जैसे मर्दो को जलन होती है। हां यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लादे बस हुकुम चला दिया कि पानी लाओ जैसे हम लौंडिया ही तो हैं'[11] दूसरी स्त्री ने पहली की व्यथा सुनकर स्त्री की सामाजिक स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया, 'लौंडिया नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी -कपड़ा नहीं पाती? दस -पाँच भी छीन -झपट कर ले ही लेती हो। और लौंडिया कैसी होती है?'[12] पुरूषसत्तात्मक समाज में स्त्री की दोय्यम स्थिति पर यहां प्रकाश डाला गया है। तथाकथित ऊंची जातियों में स्त्री अस्तित्व को नकार कर उसे केवल एक दासी अर्थात गुलाम ही माना जाता रहा है।

दोनों स्त्रियों के जाते ही गंगी को जब लगा कि रास्ता साफ है तो बड़ी ही सावधानी से वह कुएँ की जगत पर चढ़ती है क्योंकि उसे पता है अगर पकड़ी जाएगी तो बहुत कड़ी सजा उसे मिलेगी। मनु स्मृति द्वारा निर्धारित जाति के कानून बड़े कठिन थे। गंगी की स्थिति उस राजकुमार से भी बदतर थी जो 'अमृत चुरा लाने के लिए किसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझ कर न गया होगा'[13] गंगी जानती थी कि पकड़े जाने पर उसकी धृष्टता को माफ नहीं किया जाएगा। उसकी पहल चाहे मजबूरी में ही क्यों न की गई थी लेकिन जाति व्यवस्था के खिलाफ जाकर पानी लेने का साहस उसने किया था, घड़े को पानी में डालकर उसने बहुत ही आहिस्ते से उसे ऊपर खींचा जिससे कोई आवाज न हो और ठाकुर या अन्य कोई घर का सदस्य जाग न जाए। गंगी के संकल्प और मनोभाव को प्रेमचंद इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं, 'घड़े में पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो -चार हाथ जल्दी मारे। घड़ा कुएँ के मुंह तक आ पहुंचा। कोई बड़ा सहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।'[14] एक घड़े पानी के लिए गंगी जिस मानसिक दबाव को झेल रही थी और दृढ़ संकल्प लेकर आई थी उसका नतीजा कुछ न निकला क्योंकि जैसे ही ष्झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे, कि एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल गया।'[15] प्रेमचंद ने लिखा है कि शेर का मुंह इससे अधिक भयानक नहीं होगा। गंगी को तो लगा था कि उसने जंग जीत ली है परंतु डर के मारे गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है। रस्सी के साथ घड़ा भी धड़ाम से पानी में गिर जाता है।

प्रेमचंद गंगी के अंदर इतना साहस नहीं डाल पाए कि वह धर्म की रक्षक बनकर अपनी पूरी क्रूरता के साथ जाति प्रथा और अस्पृश्यता का डटकर मुकाबला कर सके। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचंद स्वयं भी दलित अस्मिता आंदोलन से उत्पन्न दलित चेतना के प्रभाव को गंगी द्वारा दिखाना नहीं चाहते थे। दलित संघर्ष चेतना का प्रभाव उस समय गांवों और कस्बों तक पहुंचा ही नहीं था। भले ही राष्ट्रीय एजेंडे पर जाति प्रथा हुआ अस्पृश्यता निर्मूलन को महत्व दिया जाने लगा था। यही कारण है कि जाति संघर्ष के प्रतीक गंगी की कोई प्रतिबद्धता नजर नहीं आती। वह मानवीय अधिकारों की लड़ाई लड़ने से पहले ही भाग खड़ी होती है। संगठित होकर संघर्ष की चेतना के अभाव में यथास्थिति में लौटने के अलावा गंगी के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था, 'ठाकुर, कौन है, कौन है? पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी। घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाए वही मैला- गंदा पानी पी रहा है।'[16]

यह कथा तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति की वास्तविकता को उजागर करती है। एक वर्ग को सत्ता, संपत्ति और श्रेष्ठत्व बहाल कर के कथित निम्न वर्ग को अभाव, अपमान को झेलते और अवहेलना को सहते रहने का पर्याय बनाए रखना कहां का न्याय है? जाति और वर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाती यह कहानी जितनी तत्कालीन समय में प्रासंगिक थी आज के संदर्भ में भी उतने ही प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी कहानी विविधा एम.एच.डी-03, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ.12
2. वही, पृ 12

3. वही, पृ 12
4. वही, पृ 12
5. वही, पृ 12
6. वही, पृ 12
7. वही, पृ 13
8. वही, पृ 13
9. वही, पृ 13
10. वही, पृ 13
11. वही, पृ 13
12. वही, पृ 14
13. वही, पृ 14
14. वही, पृ 14
15. वही, पृ 14
16. वही, पृ 14

भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोविड-19 का प्रभाव

डॉ० मणि भूषण कुमार

सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फैकल्टी), अर्थशास्त्र विभाग,
एम. पी. एस. साइंस कॉलेज, मुजफ्फरपुर

सारांश

कोरोना वायरस वायरस का प्रकोप सबसे पहले 31 दिसंबर, 2019 को वुहान, चीन में हुआ था. अर्थव्यवस्था पर प्रभाव के बारे में विस्तार से पढ़ने से पहले, सबसे पहले कोरोना वायरस के बारे में जानते हैं। कोरोना वायरस (CoV) वायरस का एक बड़ा परिवार है जो बीमारी का कारण बनता है. इससे आम सर्दी से लेकर Middle East Respiratory Syndrome (MERS-CoV) और Severe Acute Respiratory Syndrome (SARS-CoV) जैसी गंभीर बीमारियाँ हो सकती हैं. नॉवेल कोरोना वायरस वायरस का एक नया प्रकार है जो कि अभी तक मानव में नहीं पाया गया था। हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि चीन और दुनिया के अन्य देशों में COVID-19 के प्रकोप से वैश्विक स्तर पर आर्थिक मंदी, व्यापार, सप्लाई चौन का व्यवधान, वस्तुओं और लोजिस्टिक्स सहित अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की उम्मीद है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस का प्रभाव

आयात में, चीन पर भारत की निर्भरता बहुत बड़ी है. शीर्ष 20 उत्पादों में से (एचएस कोड के दो अंकों में) जो भारत दुनिया से आयात करता है, चीन उनमें से अधिकांश में एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी रखता है। भारत का कुल इलेक्ट्रॉनिक आयात यानी लगभग 45% चीन पर निर्भर है। लगभग एक-तिहाई मशीनरी और लगभग दो और पांच कार्बनिक रसायन जिन्हें भारत दुनिया से खरीदता है, चीन से आते हैं? मोटर वाहन भागों और उर्वरकों के लिए भारत के आयात में चीन की हिस्सेदारी 25% से अधिक है। लगभग 65 से 70% सक्रिय फार्मास्युटिकल सामग्री और लगभग 90% मोबाइल फोन चीन से भारत में आते हैं। इसलिए, हम कह सकते हैं कि चीन में कोरोना वायरस के प्रकोप के कारण, चीन पर आयात निर्भरता का भारतीय उद्योग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। परन्तु अब चीन में हालात सुधार रहे हैं तो हो सकता है की आने वाले समय में कुछ बदलाव देखने को मिले।

सन 1900 के दशक से भारत में महामारियों का इतिहास

वर्तमान में भारत; COVID-19 या कोरोनावायरस महामारी की चपेट में है लेकिन ऐसा नहीं है कि ऐसा भारत में पहली बार हुआ है। दरअसल भारत में महामारियों का इतिहास 1900 के दशक से ही रहा है। आइये इस लेख में इन सभी के इतिहास पर एक नजर डालते हैं। भारत ने 1990 के दशक से कई महामारियों के प्रकोप देखे हैं जैसे कि सार्स का प्रकोप, स्वाइन फ्लू का प्रकोप और कोरोना का प्रकोप। लेकिन इनमें कोई भी प्रकोप COVID-19 जैसा व्यापक और घातक नहीं था। यहां, इस लेख में, हम आपको उन प्रमुख प्रकोपों को रेखांकित करेंगे जो भारत ने 1990 के दशक से देखे हैं।

महामारी क्या होती है?

जब किसी रोग का प्रकोप सामान्य की अपेक्षा पहले की अपेक्षा बहुत अधिक होता तो उसे महामारी (epidemic) कहते हैं. महामारी किसी एक स्थान, क्षेत्र या जनसंख्या के भूभाग पर सीमित होती है। यदि कोई बीमारी दूसरे देशों और दूसरे महाद्वीपों में भी फैल जाए तो उसे पैनडेमिक कहते हैं। WHO ने अब कोरोना वायरस को पैनडेमिक यानी महामारी घोषित कर दिया है। आसान शब्दों में पैनडेमिक उस बीमारी को कहा जाता है जो एक ही समय दुनिया के अलग-अलग देशों में लोगों में फैल रही हो।

आइये अब भारत में विभिन्न महामारियों के इतिहास को जानते हैं;

1915 - 1926: इंसेफेलाइटिस लेटार्गिका

इसे सुस्त इंसेफेलाइटिस के रूप में भी जाना जाता है। यह एक पैनडेमिक थी और 1915 -1926 के बीच दुनिया भर में फैल गई थी। एन्सेफलाइटिस; एक तीव्र संक्रामक बीमारी थी जिसका वायरस मानव के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर हमला करता था।

इस बीमारी की मुख्य विशेषताएं थी; बढ़ती हुई उदासीनता, उनींदापन और सुस्ती। यह नाक और मौखिक स्राव (nasal and oral secretions) से फैलता था। इंसेफेलाइटिस लेथार्गिका यूरोप में अपने महामारी रूप में था लेकिन भारत में इसका प्रभाव इतना अधिक नहीं था।

1918 - 1920: स्पेनिश फ्लू

जबकि दुनिया अभी भी एन्सेफलाइटिस लेथर्जिका से लड़ रही थी, एक नया वायरस फैल गया जिसका नाम था 'स्पेनिश फ्लू'। यह एवियन इन्फ्लूएंजा के घातक स्ट्रेन के कारण शुरू हुआ और प्रथम विश्व युद्ध के कारण फैल गया था। भारत में, इस बीमारी को वे सैनिक लाये जो प्रथम विश्व युद्ध में लड़ाई लड़ने गये थे।

1961 - 1975: हैजा महामारी

1817 के बाद से, विब्रियो कोलेरा (बैक्टीरिया का एक प्रकार) वैश्विक रूप से हैजा की महामारी का कारण बना। 5 साल की समयावधि के भीतर, यह वायरस एशिया के कुछ हिस्सों में फैल गया जहां से यह बांग्लादेश और भारत तक पहुंचा। कोलकाता में खराब जल संचय प्रणाली ने इस शहर को भारत में हैजा की महामारी का केंद्र बना दिया था।

1968 - 1969: फ्लू महामारी

1968 में, फ्लू, इन्फ्लूएंजा ए वायरस के H3N2 स्ट्रेन के कारण हांगकांग में फैला और दो महीने के भीतर भारत पहुंच गया। वियतनाम युद्ध के बाद वियतनाम से लौट रहे अमेरिकी सैनिक इस वायरस के शिकार बन गए थे।

1974: चेचक महामारी

चेचक, दो वायरस वेरिएंट में से किसी एक के कारण होता था: वैरियोला मेजर या वेरोला माइनर। रिपोर्टों के अनुसार, विश्व में चेचक के 60% मामले भारत में रिपोर्ट किए गए थे और दुनिया के अन्य हिस्सों की तुलना में अधिक विषैले थे।

इस खतरनाक स्थिति से छुटकारा पाने के लिए, भारत ने राष्ट्रीय चेचक उन्मूलन कार्यक्रम (NSEP) शुरू किया था, लेकिन यह कार्यक्रम वांछित परिणाम प्राप्त करने में विफल रह था। इस भयावह स्थिति में भारत की मदद करने के लिए, सोवियत संघ के साथ WHO ने भारत को कुछ चिकित्सा सहायता भेजी और मार्च 1977 में भारत चेचक से मुक्त हुआ था।

1994: सूरत में प्लेग

सितंबर 1994 में, न्यूमोनिक प्लेग ने सूरत में दस्तक दी जिसके कारण बड़ी संख्या में लोग इस शहर को छोड़कर अन्य शहरों में भाग गये जिसके कारण यह भारत के अन्य शहरों में भी फैल गया था।

अफवाहों और गलत इलाज की अफवाहों ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया था। लोगों के सामानों की होर्डिग घर में कर ली जिससे अन्य लोगों के सामने खाद्य संकट पैदा हो गया था।

प्लेग का मुख्य कारण; शहर में खुली नालियों, खराब सीवेज प्रणाली आदि थी। हालांकि, सूरत की स्थानीय सरकार ने कचरा साफ किया और नालियों को खोला, और इस प्रकार प्लेग के फैलाव पर नियंत्रण पाया।

2002 - 2004: सार्स

21वीं सदी में, सार्स पहली गंभीर बीमारी थी जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलने वाली थी. यह एक गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम (acute respiratory syndrome) था और सार्स का कारण COVID-19 के समान था, जिसे SARS CoV नाम दिया गया था। यह वायरस लगातार उत्परिवर्तन (mutations) के लिए जाना जाता था और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में खांसी और छींकने के माध्यम से फैलता था।

2006: डेंगू और चिकनगुनिया का प्रकोप

डेंगू और चिकनगुनिया का प्रकोप दोनों ही मच्छर जनित विशिष्ट रोग थे और देश के विभिन्न हिस्सों में पानी के ठहराव ने इन मच्छरों के लिए प्रजनन आधार प्रदान किया। इन्होने पूरे भारत में लोगों को प्रभावित किया था। इन प्रकोपों के कारण देश के कई हिस्से प्रभावित हुए और राष्ट्रीय राजधानी यानी दिल्ली में सबसे अधिक मरीज सामने आए थे।

2009: गुजरात हेपेटाइटिस का प्रकोप

गुजरात में फरवरी 2009 में बहुत से लोग हेपेटाइटिस बी से संक्रमित थे जो संक्रमित रक्त और अन्य तरल पदार्थों के शरीर में संचरण के कारण फैला था। ऐसा माना जाता है कि गुजरात के स्थानीय डॉक्टरों ने दूषित और इस्तेमाल किए गए सिरिंज का प्रयोग किया था जिसके कारण यह रोग फैला था।

2014 - 2015: ओडिशा में पीलिया का प्रकोप

ओडिशा में सितंबर 2014 में पीलिया का प्रकोप देखा गया था और इसका मुख्य कारण दूषित पानी था। रिपोर्टों के अनुसार, पीने के पानी की पाइपलाइनों में गन्दा पानी प्रवेश कर गया जो कि इस बीमारी का कारण बना था।

2014-2015: स्वाइन फ्लू का प्रकोप

2014 के अंतिम महीनों के दौरान, H1V1 वायरस की कई रिपोर्टें उठने लगीं। स्वाइन फ्लू एक प्रकार का इन्फ्लूएंजा वायरस है और 2014 में, गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, महाराष्ट्र और तेलंगाना वायरस के कारण सबसे अधिक प्रभावित राज्यों में से थे। मार्च 2015 तक कई सार्वजनिक जागरूकता अभियान के बाद भी, देश भर में लगभग 33, 000 मामले सामने आए और लगभग 2000 लोगों ने अपनी जान गंवाई।

2017: एन्सेफलाइटिस का प्रकोप

मच्छरों के काटने के कारण, 2017 में, उत्तर प्रदेश के गोरखपुर शहर में सैकड़ों बच्चों की मौत हो गयी थी। जापानी इंसेफेलाइटिस और एक्यूट इंसेफेलाइटिस सिंड्रोम से इन बच्चों की मौत हो गई थी। इन दोनों वायरल संक्रमणों से मस्तिष्क की सूजन होती है, जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक विकलांगता होती है और कुछ मामलों में मृत्यु भी हो जाती है।

2018: निपाह वायरस का प्रकोप

मई 2018 में, केरल में चमगादड़ों के कारण संक्रमण शुरू हुआ था। वायरस के व्यापक प्रसार के कुछ दिनों के भीतर, राज्य सरकार ने वायरस के प्रसार को कम करने के लिए कई सुरक्षात्मक उपायों को लागू किये था। निवारक उपायों के कारण, जून के महीने तक केरल में इस पर अंकुश लग गया था।

2019: कोरोनावायरस

कोरोनावायरस रोग (COVID-19) एक नयी बीमारी है जो 2019 में शुरू हुई थी। इसके संक्रमण के सामान्य संकेतों में श्वसन संबंधी लक्षण, बुखार, खांसी, सांस लेने में तकलीफ और सांस लेने में कठिनाई शामिल हैं। अधिक गंभीर मामलों में, संक्रमण निमोनिया, गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम, गुर्दे की विफलता और यहां तक कि मृत्यु का कारण बन सकता है। अब तक इससे 192 देशों में लगभग 14800 लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

तो ये थे 1990 के दशक के बाद से भारत में फैले अब तक के प्रमुख प्रकोप। यदि उचित स्वच्छता और संयमित दिनचर्या अपनायी जाये तो इन में से कई रोगों को ठीक किया जा सकता है।

भारत के साथ कोरोना वायरस का विश्व पर प्रभाव

नवीनतम संयुक्त राष्ट्र व्यापार रिपोर्ट के अनुसार, भारत और चीन के अपवाद के साथ, विश्व अर्थव्यवस्था कोरोनोवायरस महामारी के कारण मंदी में चली जाएगी।

विकासशील देशों में रहने वाले दुनिया के दो-तिहाई लोगों को अभूतपूर्व आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ सकता है, व्यापार और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन ने अपने नए विश्लेषण में कहा, इन राष्ट्रों के लिए + 2.5 ट्रिलियन बचाव पैकेज का आह्वान किया। UNCTAD विश्लेषण के अनुसार, कमोडिटी से भरपूर निर्यातक देशों को अगले दो वर्षों में विदेशों से निवेश में + 2 - 3 ट्रिलियन की गिरावट का सामना करना पड़ सकता है। UNCTAD के अनुसार, 'फिर भी, विश्व अर्थव्यवस्था इस वर्ष मंदी के दौर में जाएगी, जिससे अरबों-खरबों डॉलर की वैश्विक आय का नुकसान होगा. यह चीन के संभावित अपवाद और भारत के संभावित अपवाद के साथ, विकासशील देशों के लिए गंभीर मुसीबत बन जाएगी'। हालाँकि, रिपोर्ट में यह विस्तृत विवरण नहीं दिया गया है कि भारत और चीन अपवाद क्यों और कैसे होंगे। UNCTAD की रिपोर्ट के अनुसार जिस गति से COVID-19 से विकासशील देशों को आर्थिक झटका लगा है, वह काफी ड्रामेटिक है। UNCTAD के महासचिव मुखिसा (Mukhisa) ने कहा, 'सदमे से आर्थिक गिरावट जारी है और भविष्यवाणी करना मुश्किल है, लेकिन स्पष्ट संकेत हैं कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए चीजें बहुत खराब होंगी। 'रिपोर्ट और कुछ विशेषज्ञों, अर्थशास्त्रियों और नीति निर्माताओं के अनुसार विश्व में कई देशों की अर्थव्यवस्था पर COVID-19 के कारण काफी प्रभाव पड़ने की आशंका है।

भारत और इटली के बीच हेल्थकेयर और अन्य सेक्टर्स की तुलना

तुलना का आधार	**भारत**	**इटली**
जनसंख्या	135 करोड़	6 करोड़
GDP आकार (नॉमिनल)2020	$3.202 ट्रिलियन	$1.989 ट्रिलियन
नॉमिनल प्रति व्यक्ति आय (2020 अनुमान)	$2,338	$32,947
स्वास्थ्य देखभाल पर व्यय (% of GDP)	3.5%	9%
प्रति 10000 व्यक्ति पर चिकित्सक संख्या	7	40
कुल अस्पताल	23852 (2018)	1063 (2017)
प्रति व्यक्ति पर स्वास्थ्य खर्च, पीपीपी (वार्षिक)	$241	$3427
कुल कोरोना केस	1024	97,689
कुल कोरोना के कारण मृत्यु	27	10,779
कुल ठीक हुए केस	95	13,030
सक्रीय मामले	902	73,880
गंभीर मामले	0	3906
प्रति मिलियन जनसंख्या पर कुल मामले	0.7	1,616
प्रति मिलियन मौतें	0.02	178
पहला कोरोना केस	29 जनवरी 2020	29 जनवरी 2020

ऊपर टेबल में दिए गये आंकड़े यह सिद्ध करते हैं कि इटली कोरोना से बहुत बुरी तरह से प्रभावित है जबकि उसके पास बहुत अच्छी सुविधाएँ और मजबूत प्रति व्यक्ति आय है। इसके उलट भारत में कोरोना का इतना विस्तार नहीं है, साथ ही सुविधाएँ भी बहुत अच्छी नहीं हैं।

भारत में सभी केंद्र शासित प्रदेशों और राज्यों में सार्वजनिक सुविधाओं में उपलब्ध बिस्तरों की संख्या है, 7, 39, 024।

जब कि देश में 2018 में कुल सरकारी अस्पतालों की संख्या (total hospitals in India) 23852 थी, इसमें शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के अस्पताल शामिल हैं।

1. देश में आयुष अस्पतालों की कुल संख्या 3943 है

2. रक्षा क्षेत्र के अस्पतालों की संख्या: 133 है
3. रेलवे के अस्पतालों की संख्या: 126 (2018)
4. कर्मचारी राज्य बीमा निगम के कुल अस्पताल: 151

सोर्स: PIB, 2018, प्रेस रिलीज

ऐसे समय में जब दुनिया में 722, 350 लोग कोरोना वायरस से संक्रमित हो चुके हों और लगभग 34 हजार लोगों की मौत हो चुकी हो तो इस वायरस की गंभीरता को साझा जा सकता है।

इटली में 4 में से 1 कोरोना पॉजिटिव केस मिल रहा है जबकि भारत में यह संख्या 50 में से सिर्फ 1 केस की है। अत: आंकड़े बताते हैं कि इटली की तुलना में भारत में स्थिति इतनी गंभीर नहीं है जबकि दोनों देशों में 29 जनवरी को कोरोना का पहला मामला सामने आया था। उम्मीद है कि भारत सरकार द्वारा उठाये जा रहे लॉकडाउन एवं अन्य उपायों का लोगों का समर्थन मिलेगा और भारत इस महामारी पर जल्दी ही काबू पा लेगा।

कोरोना ने भारतीय अर्थव्यवस्था को दिया झटका, 3% से कम रहेगी GDP ग्रोथ

कोरोना वायरस महामारी ने पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था की हालत खराब कर रखी है। इस बीच, विश्व बैंक ने कहा है कि कोरोना वायरस महामारी ने भारतीय अर्थव्यवस्था (Indian Economy) को जबरदस्त झटका दिया है, जिससे देश की आर्थिक वृद्धि दर में भारी गिरावट आएगी। विश्व बैंक ने रविवार को 'दक्षिण एशिया की अर्थव्यवस्था पर ताजा अनुमान: कोविड-19 का प्रभाव' (SouthAsia Economic Update: Impact of COVID-19) रिपोर्ट में कहा है कि 2019-20 में भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर घटकर पांच प्रतिशत रह जाएगी. इसके अलावा, 2020-21 तुलनात्मक आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में भारी गिरावट आएगी और यह घटकर 2.8 प्रतिशत रह जाएगी। रिपोर्ट में कहा गया है कि कोविड-19 (COVID-19) का झटका ऐसे समय लगा है, जब वित्तीय क्षेत्र पर दबाव की वजह से भारतीय अर्थव्यवस्था में पहले से सुस्ती है। इस महामारी पर अंकुश के लिए सरकार ने देशव्यापी बंदी लागू की है। इससे लोगों की आवाजाही रुक गई है और वस्तुओं की आपूर्ति प्रभावित हुई है।

2.8 प्रतिशत रह जाएगी जीडीपी ग्रोथ

रिपोर्ट के मुताबिक, COVID-19 की वजह से घरेलू आपूर्ति और मांग प्रभावित होने के चलते 2020-21 में आर्थिक वृद्धि दर घटकर 2.8 प्रतिशत रह जाएगी. वैश्विक स्तर पर जोखिम बढ़ने के चलते घरेलू निवेश में सुधार में भी देरी होगी. रिपोर्ट कहती है कि अगले वित्त वर्ष यानी 2021-22 में कोविड-19 का प्रभाव समाप्त होने के बाद अर्थव्यवस्था पांच प्रतिशत की वृद्धि दर्ज कर सकेगी. हालांकि, इसके लिए अर्थव्यवस्था को वित्तीय और मौद्रिक नीति के समर्थन की जरूरत होगी।

भारत के लिए परिदृश्य अच्छा नहीं

संवाददाताओं के साथ कॉन्फ्रेंस कॉल में विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री हैंस टिमर ने कहा कि भारत का परिदृश्य अच्छा नहीं है। टिमर ने कहा कि यदि भारत में लॉकडाउन अधिक समय तक जारी रहता है तो यहां आर्थिक परिणाम विश्व बैंक के अनुमान से अधिक बुरे हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस चुनौती से निपटने के लिए भारत को सबसे पहले इस महामारी को और फैलने से रोकना होगा। और साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि सभी को भोजन मिल सके।

निष्कर्ष

21 दिनों के लॉकडाउन से इकॉनमी को कम से कम 100 अरब डॉलर का नुकसान होने की संभावना है। इस फेज में कोरोना के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं तो इसकी संभावना है कि लॉकडाउन को और आगे बढ़ाया जाए। इससे स्थिति और बिगड़ जाएगी। एक तरफ सरकार राहत पैकेज की घोषणाााा कर रही है दूसरी तरफ उसकी कमाई लगातार घट रही है। जनवरी 2020 में जीएसटी कलेक्शन करीब 1.10 लाख करोड़ था जो फरवरी में घटकर 1.05 लाख करोड़ हो गया। मार्च में जीएसटी कलेक्शन गिरकर 97597 करोड़ रह गया। वर्तमान आर्थिक हालात के कारण अप्रैल में इसमें और गिरावट की पूरी संभावना है। पिछले दो बजट से सरकार का फोकस राजकोषीय घाटा कम करने पर था। 2019-20 के लिए यह 3.8 फीसदी था हालांकि लक्ष्य 3.3 फीसदी रखा गया था। वित्त वर्ष 2020-21 के लिए यह लक्ष्य 3.5 फीसदी रखा गया है। सरकार इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए चालू वित्त वर्ष में विनिवेश

से कमाई का लक्ष्य 2 लाख करोड़ रुपये रखा था। इसी के तहत घोषणा की गई थी कि LIC का आईपीओ जारी किया जाएगा। जानकारों का कहना था कि इससे सरकार करीब 50 हजार करोड़ का फंड इकट्ठा कर लेगी। फिस्कल डेफिसिट पर अगर गौर करेंगे तो यह तेजी से बढ़ रहा है। 2019-20 में सरकार पर कुल कर्ज करीब 7.1 लाख करोड़ था। 2020-21 के लिए यह लक्ष्य 7.8 लाख करोड़ रखा गया। यह जीडीपी का करीब 50 फीसदी है। कोरोना का असर जितना व्यापक होगा कर्ज बढ़ता जाएगा और फिस्कल डेफिसिट का फासला भी। इसके अलावा भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (बीपीसीएल), भारतीय जहाजरानी निगम और कंटेनर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया समेत पांच प्रमुख सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार की हिस्सेदारी बेचने को भी मंजूरी दी गई। एजीआर बकाए को लेकर सुप्रीम कोर्ट के फैसले से सरकार का खजाना भरा था। एयरटेल ने करीब 18000 करोड़ रुपये जमा किए और वोडाफोन ने करीब 7000 करोड़ रुपये जमा किए। टाटा टेलिसर्विस ने करीब 2200 करोड़ रुपये चुकाए थे। इस तरह सरकार को कुल 27000 करोड़ रुपये आए थे। लेकिन कोरोना ने इस खुशी पर पानी फेर दिया है।

संदर्भ

1. ''कोविड -19 नाम का कोरोनावायरस रोग''। बीबीसी समाचार। 11 फरवरी 2020. मूल से 15 फरवरी 2020 को संग्रहीत किया गया। 15 फरवरी 2020 को लिया गया।
2. शेख, नोवुल; राबिन, रोनी कैयर्न (10 मार्च 2020)। ''द कोरोनावायरस: वैज्ञानिकों ने अब तक क्या सीखा है''। द न्यूयॉर्क टाइम्स। 24 मार्च 2020 को लिया गया।
3. ''केरल ने भारत में पहले उपन्यास कोरोनावायरस केस की पुष्टि की''। इंडिया टुडे। 30 जनवरी 2020।
4. रीड, डेविड (30 जनवरी 2020)। ''भारत अपने पहले कोरोनावायरस मामले की पुष्टि करता है''। CNBCA 28 मार्च 2020 को लिया गया।
5. ''होम। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय। भारत सरकार''। mohfw-gov-in 22 अगस्त 2020 को लिया गया।
6. भारत में कोविद -19 मामलों की संख्या 467 तक चढ़ जाती है, मौत का आंकड़ा नौ हो जाता है। जीविका। 23 मार्च 2020। 26 मार्च 2020 को लिया गया।
7. ''दिल्ली में कोरोनवायरस के कारण 60 वर्षीय यमनी राष्ट्रीय की मृत्यु हो गई''। हिंदुस्तान टाइम्स। 27 मार्च 2020। 30 मार्च 2020 को लिया गया।
8. ''एशियाई देशों में कोविद -19 से सबसे अधिक संक्रमित भारत, तुर्की को पीछे छोड़ देता है''। हिंदुस्तान टाइम्स। 29 मई 2020। 30 मई 2020 को लिया गया।
9. कुलकर्णी, सागर (5 जुलाई 2020)। भारत कोरोनोवायरस से तीसरा सबसे अधिक प्रभावित देश बन गया, रूस से आगे निकल गयाष डेक्कन हेराल्ड। नई दिल्ली। 5 जुलाई 2020 को लिया गया।
10. ''भारत के मामले की गिनती 100, 000 के पार है, दिल्ली प्रतिबंधों में ढील देता है: कोविद -19 समाचार आज''। हिंदुस्तान टाइम्स। 19 मई 2020। 20 मई 2020 को लिया गया।
11. दैनिक COVID-19 बुलेटिन। ''ट्विटर पर पीआईबी इंडिया (@PIB_Indi)''। 3 जून 2020 को पुन: प्राप्त - ट्विटर के माध्यम से। [गैर-प्राथमिक स्रोत की आवश्यकता]
12. IB "MIB द्वारा CoVID समाचार। ट्विटर। 23 जुलाई 2020 को लिया गया।
13. ''1 लाख से अधिक संक्रमण, आधे मामलों वाले पांच शहर: भारत की अब तक की कोरोनोवायरस कहानी''। द वीक। 20 मई 2020 को लिया गया।
14. IB "MIB द्वारा CoVID समाचार। ट्विटर। 23 जुलाई 2020 को लिया गया।
15. शिवानी कुमार (10 जून 2020)। कोविद -19: वसूली की संख्या पहली बार सक्रिय मामलों से अधिक है। हिंदुस्तान टाइम्स। नई दिल्ली। 11 जून 2020 को लिया गया।
16. विनॉल, एडम (24 मार्च 2020)। ''भारत देशव्यापी तालाबंदी में जाने के लिए''। द इंडिपेंडेंट।
17. ''पीएम मोदी ने 3 मई तक लॉकडाउन के विस्तार की घोषणा की।'' लाइवमिंट। 14 अप्रैल 2020।

हरिराम मीणा की कविता का कथ्य

डॉ० नरेन्द्र प्रताप सिंह

पूर्व शोध-छात्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

विमर्श के रूप में सबसे पहले स्त्री विमर्श साहित्य के रूप में आया और आठवें दशक के आस पास दलित विमर्श तथा 21वीं शताब्दी के पहले दशक में आदिवासी विमर्श की दस्तक सुनायी देने लगी। इन विमर्शो के बीच स्वानुभूति और सहानुभति को लेकर चिंतको और समालोचकों में गम्भीर विमर्श हुआ और सहानुभूति को लेकर ही विमर्शो की शुरूआत हुई। अधिकांश आलोचकों और चिंतको ने स्वीकार किया कि स्त्री, दलित और आदिवासी के संघर्ष की अभिव्यक्ति इस वर्ग के आलोचकों के माध्यम से ही सम्भव है। यह सत्य है कि स्त्री स्त्री पक्ष का, दलित दलित पक्ष का और आदिवासी आदिवासी पक्ष का भोगे हुए यथार्थ के आधार पर ईमानदार चित्रण करने में सफल हो सकता है; लेकिन इस वर्ग के इतर कोई और इसका चित्रण करेगा तो वह सहानुभूति को लेकर आयेगा। स्त्री और दलित चिंतकों ने स्पष्टत: यह स्वीकार किया कि उनके विषय में वे जितनी ईमानदारी से लिख सकते हैं, पुरुष या गैर दलित साहित्यकार के लेखन में स्वानुभूति लेखन का पुट कदापि नहीं होगा। इस संदर्भ में आदिवासी विमर्श के कुछ चिंतक स्वीकार करते हैं कि गैर आदिवासी भी आदिवासियों की पीड़ा का ईमानदारी पूर्वक चित्रण करता है, तो उसे स्वीकार किया जा सकता है। विमर्शो के इस पक्ष-विपक्ष के बीच आदिवासी विमर्श साहित्य की सभी विधाओं में अपना आकार ग्रहण करता जा रहा है।

समकालीन परिदृश्य में आदिवासी समाज कई मोर्चे पर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। आदिवासियों पर आदिवासी रचनाकारों के अलावा गैर आदिवासी रचनाकारों ने भी खूब लिखा है। वीर भारत तलवार एवं हरिराम मीणा दोनों ने यह स्वीकारा है कि आदिवासी की पक्षधरता पर लिखने के लिये आदिवासी होना जरूरी नहीं है। इस संदर्भ में सुनील केरकेट्टा भी लिखते हैं कि- ''आदिवासी जीवन पर लिखने के लिये आदिवासी जीवन दृष्टि की समझ रखना अत्यधिक आवश्यक है अन्यथा उन्हें रोमांटिक रूप में चित्रित करना इनके साथ साहित्यिक अन्याय होगा। वो ये भी मानते हैं आदिवासी समाज, गैर आदिवासियों के लिये उतना ही बंद समाज है जितना अपने लोगों के बीच खुला है।''[1]

आदिवासी भारतीय समाज भारत का सबसे आदिम निवासी है और वह जितना प्राचीन है उतना ही प्राचीन उसका साहित्य है। उनकी साहित्यिक परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होती रही और यह मौखिक साहित्य ही उनकी सबसे बड़ी पहचान है। अगर उनके मौखिक साहित्य का अनुसंधान अध्येता ठीक से करे तो उनके साहित्यिक अवदान का उज्ज्वल पक्ष सामने आ जायेगा। भारत में लगभग 8 प्रतिशत आदिवासी और हर आदिवासी समाज का अपना मौखिक साहित्य है। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में आदिवासी बहुसंख्यक रूप में है। वह राज्य है-मिजोरम इसके अलावा छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, झारखंड, बिहार, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश में वे अल्पसंख्यक हैं। आदिवासी भाषा साहित्य के कुछ महत्वपूर्ण केंद्र हैं और वहां रचनाकारों ने अपने लेखन के द्वारा हर विधा को समृद्ध किया है और जनजातीय पक्षधरता को आगे बढ़ाया है। भारत के हर कोने में फैले आदिवासियों का मौखिक साहित्य उनके सांस्कृतिक संदर्भ को उद्घाटित करता है। लोक साहित्य आदिवासी साहित्य का मुख्य आधार है। सैकड़ों देशज भाषाओं में आज आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है। उनके साहित्य में उनके अस्मिता, सुख-दुख, रीति-रिवाज तथा जीवन के विविध संदर्भ उद्घाटित हुये हैं। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष को व्यक्त करने के लिये कविता को ही मुख्य आधार बनाया है।

भारत के विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में हिंदी तथा अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में कवितायें तथा साहित्य की अन्य विधाओं में लेखन कर रहे हैं'' क्षेत्रीय भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य हिंदी साहित्य जगत में भी अनुदित होकर आ रहा है। हरिराम मीणा मानते हैं

कि-''जब हम आधुनिक कविता के संदर्भ में आदिवासी कविता की बात करते हैं तो आदिवासी कविता संभव है तथाकथित मुख्यधारा के समाज के लिये प्रारंभिक दौर की रचनात्मकता हो।''[2] यह कथन इस बात का संकेत करता है कि आदिवासी लेखन में लगे हुये रचनाकार स्वीकार करते हैं कि आदिवासी लेखन अभी अपने शैशवावस्था में है। संवेदना और शिल्प के धरातल पर उसे अभी और रास्ता तय करना होगा तब जाकर वह अपनी अलग पहचान के रूप में उभर पायेगा।

आदिवासी लेखन का स्वरूप विभिन्न आदिवासी सम्मेलनों आदि से निर्मित हुआ जैसे-10 नवंबर, 1979 को चंद्रपुर जिले के भड़ावती नामक नगरी में प्रथम आदिवासी साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ। दूसरा आदिवासी सम्मेलन 23, 24 मई, 1984 को बड़ी नामक स्थान में संपन्न हुआ। तीसरा आदिवासी सम्मेलन नान्देड़ जिले के किनवत नामक स्थान में 6 से 7 जून, 1987 को हुआ। इन सम्मेलनों के अलावा एक प्रशिक्षण शिविर नवोदित आदिवासी प्रशिक्षण शिविर का आयोजन ठाने के जठार शहर में 26 से 29 फरवरी, 1988 को संपन्न हुआ। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता ने लिखा है-''साहित्य से प्रेम करने वाले तथा सामाजिक बंधन को अपनाने वाले आदिवासी साहित्यकारों का वह क्रांति-उत्सव था। इस प्रशिक्षण शिविर में साहित्य का स्वरूप, साहित्य का प्रयोजन, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, चरित्र, ललित लेखन आदि का मार्गदर्शन तथा 'आदिवासी लोक-साहित्य का संवर्धन' एवं 'आदिवासी-साहित्य तथा समाज' आदि महत्वपूर्ण विषयों पर क्षेत्र के प्रसिद्ध कहानीकारों, उपन्यासकारों, नाटककारों, चरित्र लेखकों तथा कवियों ने उपस्थित शिविरार्थियों का मार्गदर्शन किया।''[3]

चौथा आदिवासी सम्मेलन भूले जिले के नंदुरबार में 26 से 29 जनवरी, 1989 को संपन्न हुआ। इसके अलावा भी कई सम्मेलन हुए। जिससे आदिवासी लेखन की दशा और दिशा तय होती गयी। इन सम्मेलनों के बाद आज आज के परिदृश्य में आदिवासी विमर्श की आवश्यकता इसलिये महसूस होने लगी है क्योंकि शोषण चक्र में पिसता हुआ आदिवासी समाज आखिर कब तक चुप रहकर कहीं विस्थापन का दर्द, कहीं शोषण का चक्र तो कहीं धोखाधड़ी का दर्द सहेगा। आदिवासी विमर्श ही वह माध्यम है जिसके माध्यम से हम समाज के लिये कुछ सकारात्मक सोच विकसित कर सकते हैं और यह सकारात्मक सोच तब तक विकसित नहीं हो पायेगी, जब तक सभ्य समाज, बुद्धिजीवी समाज, राजनेता, समाजशास्त्री तथा अन्य एजेंसियां इस संबंध में गंभीर पहल नहीं करेंगी। इस पहल के लिये जरूरी है कि आदिवासी से जुड़े हर पहलू पर ईमानदार पहल करें, गंभीर कदम उठायें और हर पहलू पर विचार करके उसे निर्णायक मोड़ दें। एक बड़ी आशा की किरण यह उभरकर सामने आई है कि आदिवासी समाज का कुछ युवा वर्ग पढ़-लिख कर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गया है और वह राष्ट्रीय परिदृश्य पर निरंतर यह प्रयास कर रहा है कि इस समाज को विकास की मुख्य धारा पर जोड़ने के लिये किन-किन मोर्चों पर लड़ाई लड़ना होगा। हम भविष्य की आहट की भविष्यवाणी तो नहीं कर सकते, लेकिन इतना हमें महसूस होने लगा है कि आने वाला दिन में आदिवासियों की वह दशा नहीं रहेगी जो आज है। यह आशा की किरण ही है कि अब सरकारें यह सोचने लगी है कि केवल आर्थिक मदद से उनका बहुमुखी विकास संभव नहीं है। जरूरत है उन्हें शिक्षित करने की।

वर्तमान साहित्यिक विमर्शों पर अगर दृष्टि डालें तो यह साफ दिखता है कि दलित विमर्श की हलचल साहित्यिक परिदृश्य में ज्यादा सुनाई दी; क्योंकि रचनाकारों ने इस प्रवृत्ति के उन्नयन में हर विधाओं में लिखकर एक बड़ा प्रयास किया जिसका यह परिणाम हुआ कि उनकी दस्तक साहित्यिक क्षेत्रों में प्रभावी बनकर उभरी। यह रेखांकित करने वाली बात है कि कुछ वर्गों ने आदिवासी और दलित साहित्य को एक साथ साझा करने की बात की; लेकिन आदिवासी चिंतकों ने इसे सिरे से खारिज कर दिया। रमेशचंद मीणा ने कहा-''आदिवासी और दलित विमर्श को कई लोग एक ही मानकर भ्रम फैलाने में लगे रहे हैं जबकि दलित साहित्य रचने वाले आदिवासी की बात ही नहीं करते और न ही करना चाहते हैं। आदिवासी विमर्श और दलित विमर्श में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है इसके बावजूद साहित्यिक हलकों में असमंजस लंबे समय तक बना रहा। दलित आंदोलनकर्ता साहित्यकार अब तब वक्तव्य देते रहे हैं कि हम एक जैसे शोषित रहे हैं तब हम क्यों न एक मंच पर रहें? यह सोच कभी भी ढ़ंग से व्यावहारिक धरातल पर तब्दील नहीं हो सकी। जो दलित और आदिवासी को एक ही विमर्श मानकर चलते हैं उनको यह जान लेना जरूरी है कि दोनों में तात्विक और रूपगत भेद है इसलिये ये दोनों महाशोषित कभी भी एक मंच पर मुश्तैदी से एक साथ खड़े नहीं हो सके।

दलित साहित्य में वर्ण-व्यवस्था के दंश, छुआछूत और अपमान को चित्रित, वर्णित किया गया है। आदिवासी साहित्य में वर्ग-व्यवस्था और उससे उपजी समस्या से इतर जंगल, विस्थापन और बाहरी लोगों की घुसपैठ मुख्य विषय रहे हैं। दलित विमर्श में दलित के दर्द को दलित ही बयान करता है। आदिवासी समाज इस रूप में उदार है कि यहाँ जो भी साहित्यकार आदिवासी विषय के प्रति संवेदित है लिख सकता है। पहले पहल आदिवासियों पर लिखने वाले वेरियर एल्विन, क्रुक अंग्रेज रहे जिन्होंने उनके बीच

वर्षो रहकर अध्ययन करके आदिवासी की पहचान करवाई। जब तक आदिवासी वर्ग से समुचित लेखक नहीं आते तब तक गैर आदिवासी लेखकों के योगदान को महत्व दिया जाना आदिवासी विमर्श की दलित विमर्श से अलग विशेषता ठहरती है।''[4]

आदिवासी चिंतकों में सदैव से यह प्रश्न बना रहा कि उनकी समस्या का हल कौन करेगा? नीति नियंता या उनके ही बीच का कोई जन प्रतिनिधि। यह भी प्रश्न रहा कि आदिवासी लेखन में केवल आदिवासी ही आदिवासी के सवाल को, प्रश्न को, समस्या को और उनकी पीड़ा को व्यक्त कर सकता है कि गैर आदिवासी भी इस मामले में कुछ लिख सकता है। इस मामले में वीरभारत तलवार और हरिराम मीणा एक ही निर्णय पर पहुंच रहे हैं क्योंकि इन दोनों की स्पष्ट मान्यता है कि इस वर्ग की समस्या को जो ठीक से समझ कर उसे लिख सके वह ईमानदार पहल होगी। उसके लिये इन दोनों में अंतर करने की जरूरत नहीं है। हरिराम मीणा ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि- 'आदिवासी कविता' जैसे विषय के साथ भी एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया की संभावना रहती है। वह यह कि कविता तो कविता होती है। आदिवासी और गैर आदिवासी कविता का यह भेद क्यों? जैसे साहित्य तो साहित्य होता है क्या गोरा, क्या काला, क्या सवर्ण, क्या दलित, क्या पुरुष, क्या स्त्री......?[5]

समकालीन आदिवासी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हरिराम मीणा ने कविता के अलावा उपन्यास, कहानी, आलेख, यात्रा वृतांत आदि कई विधाओं में लेखन करने के साथ-साथ उन्होंने आदिवासी कौन? भारतीय मिथक, इतिहास और आदिवासी, स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासी का योगदान, पूर्वोत्तर, मध्य, पश्चिमी, दक्षिणांचल, अंडमान क्षेत्र के आदिवासियों पर गंभीर विचार किया साथ ही संस्कृति धर्म और संप्रदायिकता, शिक्षा, भाषा, विकास बनाम विस्थापन, नक्सलवाद, अस्मिता का सवाल आदि कई गंभीर विषयों पर उन्होंने बड़े संजीदगी से विचार किया है। वे मानते थे कि आदिवासी हजारों वर्षो से इस देश के सबसे पुराने निवासी हैं। बाद में यहां आने वाले समूहों ने इन आदिवासियों को दबा रखा। उनकी जमीनें छीन ली, उन्हें पर्वत और जंगलों में खदेड़ा और उन्हें उत्पीड़िकों ने अपने हित में बेगार करने के लिए विवश कर दिया। आज विभिन्न समूहों के लगभग दस करोड़ आदिवासी है। जिन पर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। चूंकि वे राष्ट्रीय संस्कृति से उनकी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि-

"हैं सारे इंसान बराबर -
ये दकियानुसी बातें है लोकतंत्र की
ठोकतंत्र में करो भरोसा
भोगतंत्र में मन में धारो
संविधान की सिद्धांतों की गोली मारो
बहुत जरूरी मौकों पर-इसके नारे उच्चारो
खूब जमेगी, खूब पटेगी, चक्क चकाचक खूब छनेगी
-धाक तुम्हारी जमी रहेगी।"[6]

हरिराम मीणा की इन कविताओं में आदिवासी समाज की विसंगतियों और विडम्बना तो है ही लोकतंत्र की वह सच्चाई भी है जिसमें आज आम आदमी पीड़ा से ग्रसित होकर कराह रहा है, और सभ्य समाज तमाशा बनकर उनका बहुविध मजाक बना रहा है। उनके अभिशप्त जीवन की विडम्बना को ठीक-ठाक करने के लिए न तो सरकार आगे आ रही है और न आम जनता जो लोकतंत्र का प्रहरी भी, निर्णायक है, नियामक भी। यह कैसा समाज है, जहाँ विकास की रफ्तार में सबसे अंतिम पायदान पर खड़ा प्रकृति पुत्र जो यहाँ का अनादिकाल से निवासी है अपने लिए कोई प्रतिरोध नहीं कर पा रहा है। इसी सच्चाई को वे अपने कविताओं में लगातार उठाते रहे हैं। 'बिरसा मुंडा याद में' लिखते हुए वे कहतें हैं -

"मैं केवल देह नहीं
मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूँ
पुश्तें और उनके दावे मरते नहीं
मैं भी मर नहीं सकता"[7]

इस पूरी कविता में आदिवासी समाज के संघर्ष की गाथा है और यह दिखाया गया है कि बिरसा मुंडा किस तरह अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ प्रतिरोध करता है और पूरी चूले हिला देता है। वह जानता था कि इतनी बड़ी हुकूमत के खिलाफ संघर्ष में उसका

नुकसान होगा; लेकिन वह हार नहीं मानता और अपने साथियों के साथ भारी प्रतिरोध करता है और अंतत: ब्रिटिश हुकूमत उसे जेलों की सलाखों में कैद कर देती है और वहीं छद्मपूर्वक उसके जीवन को ब्रिटिश सरकार समाप्त कर देती है। इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासियों ने बहुत योगदान दिया था; लेकिन उनके योगदान को इतिहास ने गाया नहीं, पहचाना नहीं, संजोया नहीं। यह एक विडम्बना पूर्ण स्थिति है कि जिन आदिवासियों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अलग-अलग क्षेत्रों में अहं योगदान दिया; लेकिन उस गाथा को इतिहास ने भुला दिया उस पीड़ा की अभिव्यक्ति इस कविता में देखी जा सकती है। अपनी अगली कविता 'आदिवासी लड़की' में हरिराम मीणा ने बड़ा गहरा व्यंग्य किया है। कवि के सौंदर्य दृष्टि पर उन्होंने करारा प्रहार करते हुए लिखा है :-

"देखो गौर से उस लड़की को
जिसके गोल-गोल गालों के ऊपर
-ललाट है
जिसके पीछे दिमाग
दिमाग की कोशिकाओं पर टेढ़ी-मेढ़ी खरोंचें
यह एक लिपि है"[8]

कवि उस सच्चाई की तरफ संकेत कर रहा है कि सभ्य समाज के लोग आदिवासी लड़कियों की नग्नता को देखकर तरह-तरह की कविता लिखते हैं। आदिवासियों के घोटुल प्रथा, उनके कम वस्त्र पहनने आदि को लेकर सभ्य समाज में एक आकर्षण था। उस आकर्षण को लेकर सभ्य समाज का व्यक्ति आदिवासियों के पास आता है और उसके उस सौंदर्य का मांसल चित्रण करता है। इसे लेकर कवि आक्रोशित है और अपना आक्रोश इस कविता में व्यक्त कर रहा है।

कवि ने 'जारवा आदिवासी को स्वप्न में देखकर' शीर्षक कविता में जारवा समाज के यथार्थ को व्यक्त किया है। मिथकीय संदर्भों के माध्यम से इस कविता में यह व्यक्त किया है कि द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा लिया यह केवल मिथकीय धारणा नहीं है यह इतिहास का यथार्थ भी है। सभ्य समाज ने हमेशा एकलव्य जैसे आदिवासियों का अंगूठा दान में लिया है। वे लिखते हैं :-

"तुम्हें लाल रंग क्यों पसंद है जारवा-पुत्र
क्षमा करना, इस संबोधन में 'आर्य-पुत्र' की
अभिजात्य अनुगूँज नहीं समझता।
क्या यह अनुराग की व्यंजना है
या लक्षणा लाल खून की
जिससे साबित होती है जिंदगी"[9]

हरिराम मीणा की कबीले से बिछड़ी जारवा औरत एक ऐसी सच्चाई की अभिव्यक्ति करती है जो सदियों से औरतों के जीवन का अभिशाप है। आए दिन मर्द औरतों का दैहिक शोषण करता रहा है। इस शोषण से न तो सीता बची न द्रौपती याद करें हम अपने मिथक को राम के राज्य के विषय में कहा गया है -

"राम राज्य बैठे तिरलोका
हर्षित भयहुं गयहुं सब शोका। " (रामचरित मानस)
यह भी राम राज्य पर कहा गया -
"दैहिक दैविक भौतिक तापा
राम राज काहू नहीं व्यापा।" (रामचरित मानस)

ऐसे सुराज के समय भी सीता को बनवास हुआ, द्रौपती का चीर-हरण उसी के बंधु-बांधवों ने किया ऐसे में आज आदिवासी स्त्रियों का जब सभ्य समाज शोषण करता है तो किसी को आश्चर्य कहां होगा? जारवा समाज के एक स्त्री की इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में हुआ है–

"वह आई नहीं थी
आ ही नहीं सकती थी वह
अपने आदिम टापुई खोल से बाहर
उसे लाया गाया था 'सभ्य आखेटकों' द्वार
जब उसके पैर बहुत भारी थे
और उसकी कबीलाई टोली आगे निकल गई थी
किसी शिकार का पीछा करती
या बाहरी दबाव से डरती।"[10]

विस्थापन आदिवासी समाज की सबसे बड़ी पीड़ा है। विकास के नाम पर, बांध के नाम पर पूरे देश में आदिवासियों का बड़ी संख्या में सरकार ने विस्थापन किया है। इस विस्थापन से आदिवासी समाज तन-मन से टूट गया। कहीं-कहीं उन्होंने जमकर प्रतिरोध भी किया। इन्हीं सच्चाई की उजागर 'अंडमानी आदिवासियों को बेदखल होते देखकर' कविता में उन्होंने वर्णन किया -

"सभ्यता के नाम पर
आखिर कर ही दिए जाओगे बेदखल
हजारों सालों की तुम्हारी पुश्तैनी भौम से
कोई और होंगे अब कानूनी हकदार"[11]

'सरदार बख्तावर सिंह से मिलकर' कविता में कवि ने उस सच्चाई की ओर संकेत किया है कि बुद्धिजीवी समाज नंगे आदिवासियों का बाजारीकरण कर रहा है और उस नंगेपन को वह अपने आपको, अपने दृष्टि सुख का कारण बना रहा है। इन्हीं यथार्थ की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में देखने को मिलती है -

"इस बदहवासी
और स्वार्थी सभ्यता के बीहड़ों में
एक तुम ही तो नजर आए
-प्रेम के पाँखी"[12]

'सभ्यता के विस्तार के नाम पर हादसा' शीर्षक कविता एक ऐसे सत्य की अभिव्यक्ति है जिन्हें आये दिन आदिवासी समाज का व्यक्ति झेलता है। बड़े दबे पांव सभ्य समाज का व्यक्ति उनके परिक्षेत्र में प्रवेश करता है और अपने रणनीति से न केवल मानसिक रूप से पराजित करता है, बल्कि शारीरिक रूप से भी उन्हें अक्षम बना देता है। वह इस तरह के स्थिति का निर्माण करता है कि आदिवासी समाज यंत्रवत उसका आज्ञाकारी बनकर उसके सामने घुटने टेक देता है। प्रस्तुत कविता में जीवन की इसी सच्चाई की अभिव्यक्ति रचनाकार कर रहा है–

"सभ्यता के विस्तार के नाम पर हादसा
देखो! वो आ रहे हैं
तुम देख रहे हो
तुम्हारी नसें तन रही हैं
तुम्हारी भुजाएँ फड़क रही हैं
तुम्हारे तीर-कमान तने हैं
तुम एकजुट हो
मगर, तुम कुछ नहीं कर रहे हो?"[13]

'हां, चांद मेरा है' संग्रह के आमुख में कवि यह स्वीकार करता है कि काव्य लेखन एक प्रवाह है जो, वैयक्तिक प्रतिक्रिया के रूप में प्रगट होता है। वे लिखते है कि- "जब कोई एकांति मन अपने भीतर के तहखानों को परत-दर-परत उघाड़ता चला जाता है और अंधेरों में भटकते किसी अनजान प्रकाश कण से टकराता है तो शायद कविता होती है। जब परिवेश में घटित हो रही असंख्य घटनाओं में से कोई एक स्वयं से मेल खाती है तो शायद कविता होती है। जब हिमालय के उत्तुंग श्रृंगों को छू रहे मेघों का कोई हल्का सा रेशा समुद्रों में बिखरे अंतरियों के पग तलों से लिपटे किसी भारी जल कण से वार्तालाप करने लगता है तो शायद कविता होती है। कविता की पंक्तियों या उनके मध्यांतरों की कितनी उपादेयता होगी यह तो प्रभावों पर निर्भर करेगा। कविता इसके शास्त्रीय होने में रोती है या शास्त्रीयेतर होने में यह तो पता नहीं, लेकिन जब कोई शोकाकुल धीरवीर एकांत के किसी कोने में जाकर फूट-फूटकर रोने लगता है और रेत के ढूह की तरह उसके शास्त्रीय सम्बल ढहने लगते है तो शायद कविता होती है। जब कोई इतिहासकार वक्त की ताकतों का सामना नहीं करके किसी कृति का सृजन करने के बाद अमान्यता की त्रासदी भुगत कर त्रिशंकु सा लटकने लगता है तथा पाठक किंकर्तव्यविमूढ़ होने लगता है और इस विडंबना को कोई निकट से देखता है तो शायद कविता होती है। जब कोई विद्रोही वैयक्तिक स्तर पर सफल विद्रोह करता है और क्रांतिकारी नहीं कहलाकर सलीबों पर टाँक दिया जाता है तो शायद कविता होती है। कॉफी हाउसों के दिनों और मयखानों की राते की लंबी और गूढ़ चर्चाओं के बाद मस्तिष्क के वीरानों में जाकर चर्चाओं से परे कोई चिंतन करता है तो शायद कविता होती है। सूरदास के बालपन, कालिदास के श्रृंगार एवं रति क्रीड़ा और केशव के बूढ़े केशों की उलझन के आगे जब कोई मुक्तिबोध चम्बल में भटकता है या कोई नागार्जुन चांद में रोटी तलाशता है तो शायद कविता होती है। जब कोई वेदनाओं के नैराश्यनंद में, बसंत या चंदन वन के पवन में अथवा भाव या अभावों के अंतरिक्षों में डूबने या तैरने लगता है तो शायद कविता होती है।

वज्रकवच में लिपटा आदमी आकाश देखने के लिए कोई छिद्र तलाशता है, पैरों में छाले जब पहचान चिन्ह छोड़ने लगते हैं। किसी बूढ़े आदमी का ठंडा रक्त जब लावा बनकर नेत्रों से टपकने लगता है, किसी किशोरवय के गातों पर झुर्रिया पड़ने लगती है, अहल्या एक बार फिर प्रस्तर प्रतिभा बनकर किसी राम से निराश होकर जलने लगती है, एकलव्य के अंगूठे का अलग हुआ हिस्सा करहने लगता है, किसी आधुनिक नृप की अगुवाई में प्रतीक्षारत् नन्हें बालक और बालिकाओं के पैर लड़खड़ाने लगते हैं, हाथ कांपने लगते है एवं हाथों के पुष्प कुम्हलाने लगते हैं और यह सब देखकर जब हृदय की धड़कनों से जिरहबख्तर कांपने लगता है तथा मस्तिष्क तनावयुक्त नसें बनकर बाहर झाँकने लगता है तो शायद कविता होती है।

मेरे लिए कविता न कोई वंशानुगत सीख है और न ही किसी संगत का असर। जीवन में कोई ऐश्वर्य या लालित्य भी नहीं मिला जो काव्य सृजन के लिए सौंदर्य के महीन तंतु अंकुरित कर पाता। जीवन के क्रूर यथार्थ को देखा ही नहीं, प्रत्युत भोगा भी है, इसलिए कोरी कल्पनाओं के आसमान भी मुझे नहीं मिले। मुझमें शब्दों के कोई 'जागरण' नहीं है, न ही समझ में नहीं आ सकने वाले कोई गूढ़ रहस्य। दुनिया को अर्थपूर्ण निकटताओं तक देख पा सकने का भ्रम मैंने अभी तक नहीं पाला है, मगर यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि पृथ्वी के शीर्षस्थ बिन्दु पर मैं खड़ा हूँ और सारी पृथ्वी मेरे नीचे हैं। यह अलग बात है कि और भी ऐसा ही कह सकने की संभावनाएँ रखते हों। यह सत्य है कि सहस्त्रों प्रयासोपरांत मैं क्षितिजों को नहीं छू पाया हूँ, किन्तु मेरी वेदनाएँ इन्हीं क्षितिजों से टकराकर बार-बार मेरे पास परावर्तित होती रही है। यह भी एक यथार्थ है कि अंतरिक्ष और उसके नक्षत्र मुझसे अनंत प्रकाशवर्ष दूर तक हैं, मगर उनके शून्य को देखते रहना मुझे भाता है। घुप अंधेरों में मेरे भी रोंगटे खड़े होते है, मगर मेरी त्रासदी है कि मुझे इनमें अभी और चलना है।

हम जिस परिवेश और वातावरण में जी रहे हैं उसको भूत ने छला है, यह और बात है कि जो कुछ शेष रह गया है उसमें हम संतोष कर बैठे हैं। वर्तमान ने एक उद्वेग पैदा किया है। पहले शहरों की ओर गांव भागे थे और अब शहर भाग रहे हैं गांवों की ओर। भविष्य एक अनिश्चय का प्रेत बनकर मंडराता नजर आ रहा है। फिर किस वक्त पर विश्वास करें ? बसंत किसकों नहीं भाता, सुगंधित पवन तो बहे; गगनचुंबी इमारतों की छत से चांद किसे अच्छा नहीं लगेगा, सांस लेने को हवा तो मिले; चांदनी रातों में नौका विहार कौन नहीं करना चाहेगा, नीर की निर्मलता पर तो विश्वास हो; कौन नहीं रहना चाहेगा अपने घरों में चैन से, गलियों और चौराहों का शोरगुल तो शांत हो।

कवि हरिराम मीणा कविता के विषय में अपनी बात लिखकर अपनी कविता यात्रा की एक अच्छी व्याख्या प्रस्तुत की है। एक ऐसी व्याख्या जिस व्याख्या में कविता लिखने की प्रेरणा का संकेत भी है कविता यात्रा के विभिन्न पड़ावों का संकेत भी और बहुविध अनुभूत पीड़ा, कैसे कविता बनती है? उस सच्चाई की अभिव्यक्ति ही है।

आम आदमी की संघर्ष यात्रा अजीब है, विडम्बनापूर्ण है, विसंगति पूर्ण है, संघर्षपूर्ण होने के साथ-साथ पीड़ा और वेदना से परिपूर्ण है इस सच्चाई की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में 'वह आदमी (एक)' में देखा जा सकता है -

"वह आदमी तिलियों की तरह रहता है
मचिस की डिब्बियों में
उसे वक्त नहीं
जो वह तय कर सके
कि -
उसे क्या खाना चाहिए"[14]

'पसीने के सुर्ख रंग' कविता मेहनतकश लोगों के जीवन संघर्ष की गाथा है। हरिराम मीणा अपने संवेदनाओं को केवल आदिवासी समाज के दर्द तक सीमित नहीं करते; बल्कि जीवन की अन्य विसंगतियों की तरफ भी उनकी संवेदना फैलती है। आम मेहनतकश मजदूर अपने संघर्ष में निर्माण से तो जुड़ता है, लेकिन जीवन की ऐसी गाथा लिख जाता है; जो संघर्ष के एक लंबे इतिहास को सामने लाता है। किसान हो, मजदूर हो या औद्योगिक कारखाने में काम करने वाला दिहाड़ी का मजदूर हो सबकी संवेदना को आत्मसात करके कवि यह लिखता है कि -

"पसीना पोंछते-पोछते उसने तेज कर दी
अस्थमेटिक फुफ्फुस-सी धौंकनी को
ऊँघती भट्टी चेती, तेवर कुछ तल्ख हुए
संड़ासी के जबड़े में भिंचा लोहा पसीजने लगा
लुहारिन के हाथों में थमे घन की ताबड़तोड़ चोटे...
और वह सख्त लोहा
अब गुंदी मिट्टी के लोथड़ा-सा तब्दील होने लगा
-हल के पैने फाल में।"[15]

इसी कड़ी में रचनाकार सड़क पर काम कर रहे मजदूरों को देखकर द्रवीभूत होता है और 'सड़क मजूरो को देखकर' यह लिखने के लिए विवश हो जाता है -

"जंगलों से खदेड़े और बस्तियों से भगाए हुए वे
अनजान रास्तों की धू फाँकते-फाँकते
बहुत रियाज के बाद
आखिर हो ही गए थे माहिर सड़क बनाने में।"[16]

अकाल के बाद आम आदमी की स्थिति क्या होती है उस यथार्थ को व्यक्त करते हुए हरिराम मीणा ने बड़ी मार्मिक कविता लिखी है। वे लिखते है -

"यूँ-अकाल का महाप्रेत
भूरी धरती की छाती पर करने लगा -
भीषण ताण्डव और
क्रूर अट्टहास...................।
आखिर
लंबी-चौड़ी कद-काठी वाले
मौसमों की परवाह न करने वाले
जाने लगे अपने भौम से"[17]

हरिराम मीणा ने 'आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर एक महत्वपूर्ण लंबा आलेख लिखा है जिसे यहाँ हम उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं जैसा उन्होंने कहा है–

"जब हम साहित्य में आदिवासी अथवा आदिवासी साहित्य की बात करते हैं तो आदिवासी समाज के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति उपरोक्त दोनों ही दृष्टिकोणों से प्रभावित नजर आती है। मुख्यधारा के लिपिबद्ध साहित्य में आदिवासी समाज की अभिव्यक्ति स्पेस के स्तर पर बहुत कम और आधिकारिता के स्तर पर सतही नजर आती है। जिन साहित्यिक रचनाओं में आदिवासी जीवन की गहन अनुभूति है वहाँ आदिवासी समाज की अभिव्यक्ति साहित्य में हुई है और जहाँ अनुभव की गहनता नहीं या कम रही वहाँ यह अभिव्यक्ति सतही अथवा भ्रांति पैदा करने वाली दिखती है।"

आदिवासी साहित्य चाहे वह वाचिक परंपरा से संबंध रखता है या सीधा-सीधा लिपिबद्ध रूप में हमें उपलब्ध हो रहा है, दोनों ही दशाओं में उसकी परख का सवाल एक बड़े सवाल के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। यहाँ आलोचना के स्थापित प्रतिमान शायद निकष के रूप में ज्यादा उपयोग सिद्ध न हो। साहित्यिक मूल्यांकन के लिए स्थापित प्रतिमानों के कुछ स्थायी सूत्र काम में आ सकते हैं, जिसे हम 'आलोचना की समझ' कह सकते हैं अन्यथा विषयवस्तु, शिल्प, भाव पक्ष व मुहावरा इन सभी स्तरों पर आदिवासी साहित्य तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य से इतर अपनी विशिष्टताएँ रखता है। उसे समझने के लिए एक सही दृष्टि की दरकार रहेगी जो जरूरी नहीं कि साहित्य के हर किसी प्रतिष्ठित समीक्षक या विद्वान के पास हो। यह दिक्कत स्त्री व दलित साहित्य की परख के क्षेत्र में भी पैदा होती रही है पर हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री व दलित चेतना का साहित्य समाज के उन वर्गो का साहित्य है जो मुख्य समाज का हिस्सा रहे चाहे सामाजिक स्तर पर हाशिए या दोयम दर्जे पर ही क्यों न रखे गए। आदिवासी समाज उस रूप में शेष समाज का हिस्सा न रहकर वह संस्कृति, परंपरा व भौगोलिकता के स्तर पर पूरी तरह अलग-थलग रहता आया, इसलिए उसकी तल्खी, तासीर व तेवरों को समझने के लिए 'आलोचना की समझ' की दृष्टि के साथ आदिवासी नजरिए का चश्मा भी जरूरी होगा।

हरिराम मीणा ने समकालीन कविता की तरह बिम्ब, उपमान, अलंकार, प्रतीक और छन्द को प्रयोग में लाया है। यह तथ्य सत्य है कि अधिकांश हिन्दी में लिखने वाले आदिवासी रचनाकारों की रचना में शिल्पगत संरचना का समकालीन हिन्दी कविता की तरह प्रयोग देखने को मिलता है। छन्द की दृष्टि से भी सभी रचनाकार समकालीन हिन्दी कविता के करीब है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि समकालीन कविता में 60वें दशक के बाद कई विमर्श उभर कर सामने आये जिसमे स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श समकालीन लेखन के केंद्र में था। सभी विमर्शों के कथ्य और शिल्प में विभेद है इसमें कोई शक नहीं है। समकालीन आदिवासी लेखकों में हरिराम मीणा ने समकालीन कविता के तर्ज पर आदिवासी जीवन की संघर्ष गाथा की अभिव्यति अपने काव्य में की है। इनका कथ्य और शिल्प समकालीन लेखन के कथ्य और शिल्प के करीब है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सं. मीणा, जनक सिंह, 'अरावली उद्घोष', जनवरी 2014, अंक 101, पृष्ठ 52-53.
2. सं. मीणा, हरिराम 'समकालीन आदिवासी कविता', भूमिका, अलख प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2013
3. सं. गुप्ता, रमणिका 'आदिवासी साहित्य यात्रा', राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 23
4. मीणा, रमेशचंद, 'आदिवासी दस्तक : विचार, परम्परा और साहित्य', अलख प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 11-12
5. सं. मीणा, हरिराम, 'समकालीन आदिवासी कविता', भूमिका अलख प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2013.
6. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
7. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
8. सं. मीणा, हरिराम, सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
9. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
10. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008

11. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
12. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
13. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
14. सं. मीणा, हरिराम, 'हाँ, चाँद मेरा है', जगत राम एण्ड संस, दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ 09
15. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
16. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008
17. सं. मीणा, हरिराम, 'सुबह के इंतजार में', शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2008

भारतीय कला में 'रसो वैसः' की अनुभूति

डॉ० अयोध्या नाथ झा

विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा-846004

स्तुति कुमारी

गवेषिका, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा-846004

विचार, धर्म, तत्त्वज्ञान और संस्कृति का प्रतिरूप है भारतीय कला। भारतीय जीवन दर्शन की जीवन्त व्याख्या कला के द्वारा हुई है। वास्तुकला, शिल्पकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला कास्यप्रतिमा, मृण्मयप्रतिमा आदि के माध्यम से भारतीय कला प्रस्फुटित हुई। कला के विविध आयाम है। राष्ट्र में चहुँ ओर कला निर्माण की अनुगुंज सुनाई पड़ती है। सभी क्षेत्रीय कला ने राष्ट्रीय कला का रूप ग्रहण किया। भारतीय कला का क्रमशः इतिहास भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति में दृष्टिगत होती है और वेद, पुराण काव्य, त्रिपिटक, आगम आदि से इसके विपुल स्त्रोत दृष्टिगत होते हैं। सिन्धुघाटी सभ्यता से चलकर पूर्वमध्यकाल तक भारतीय कला निर्वाध गति से फूलती-फलती रही। तत्पश्चात् विदेशी आक्रांताओं ने कला के क्षेत्र में मिलावटें शुरू कर दी।

कलात्मक वस्तु की बहिरंग मूल्यांकन उसके अर्थ की व्याख्या पर निर्भर करता है। प्रत्येक कलावस्तु, कलाकार के मनोगत भाव का प्रगटिकरण है। अतः कलामर्मज्ञों की रुचि कला द्वारा भाव या अर्थ की व्याख्या में अन्तर्निहित है। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार कला और काव्य के चार तत्त्व या अंग माने गए हैं:-1. रस, 2. अर्थ, 3. छन्द, 4. शब्द (काव्य के लिए) और रूप (कला के लिए)। [1]

'रस' कला की आत्मा है और मन भावों का समुद्र है। भावों की समष्टि से ही रस का उदय होता है। मनुष्य के अंतरमन में अनन्त भावों का अंकुरण होता है, जिसे कला और काव्य द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। काव्यशास्त्र आठ या नौ रस को मानता है, किन्तु जिसका प्रत्यक्षीकरण तो हम कलाकृतिओं में ही प्रत्यक्षतः देखते हैं। कवि या कलाकार सर्वप्रथम अपने मन में रस का सृजन करते हैं तत्पश्चात् उसे शब्द या रूप देकर उसे प्रकट करते हैं।

मन में रस का सृजन होने पर कलाकार अर्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस तरह भारतीय कला का जन्म ही रस से होता है। रस विवेचन से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। भरतमुनि ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र के माध्यम से रस को स्थापित किया। अग्निपुराण ने रस की संक्षिप्त चर्चा की है तो विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को आधार मानकर इसका उल्लेख किया है। कलाकारों ने अपनी कलाकृतिओं में रस को आधार मानकर विभिन्न रसों के माध्यम से अपने कलाकृति को मूर्तरूप प्रदान किया। हृदय की मुक्तावस्था की रसदशा कहलाती है। साहित्य में रस का प्रयोग काव्यास्वादन के लिए हुआ है, किन्तु कला में रस की अभिव्यक्ति ने जीवन का सृजन किया है। कला में रस द्वारा एक प्रकार का विलक्षण, अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। [2]

तैत्तिरीय उपनिषद् का 'रसो वैसः'[3] को ब्रह्मानन्द का रूप कहा गया है। आनन्द ही ब्रह्म है। जब हम कलाकृतियों की दुनिया में विचरण करते हैं तो अशीम आनन्द की अनुभूति होती है। कलाकार कला का साधक है, जब वह अपनी साधना द्वारा कला को रस

से सराबोर कर देता है तो उस साधक की साधना रसानुभूति के द्वारा 'रसो वैस:' का अनुभव करा आनन्द के संसार में प्रवेश करा देती है।

कला में अर्थ का तात्पर्य वर्ण या आलेख्यगत विषय से है। भारतीय कला की अर्थसम्पत्ति में 32 कोटि देवी-देवताओं का विस्तार है, जो संसार के दिव्य और भौतिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। वैदिक और पौराणिक आख्यानों द्वारा उनके उद्देश्य 'तम्' से ज्योति की ओर, 'असत्' से सत्य की ओर, 'मृत्यु' से अमृत की ओर के द्वन्द की व्याख्या करना है। कलाकार अपनी रचना संसार में इसे प्राणवान बना देता है। अर्थात् अच्छाई और बुराई का संघर्ष। साहित्यिक भाषा में हम उसे देवासुरसंग्राम भी कहते हैं। यह संग्राम इतिहास की जय-पराजय की घटना मात्र नहीं है, अपितु यह सत्य की नित्यक्रियायें है, जो देश, काल और परिस्थिति के अनुरूप घटती रहती है। राम-कृष्ण, बुद्ध-महावीर आदि.......... और इन्द्र, शिव, गणेश, कार्त्तिकेय, विष्णु आदि देव, प्रकाश और सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं तो वृत्र, मार महिष, त्रिपुरासुर, महिषासुर, वृत्तासुर, तारकासुर असत् या अन्धकार का द्योतक है। अर्थ ही कला का सच्चा चक्षु है। [4] प्रत्येक कलाकृति पर कलाकार अपनी मौन-भाषा अंकित कर देता है। कलामर्मज्ञ, कलाकार की मौन-भाषा को वाणी प्रदान कर देता है। भारतीय कला का सांस्कृतिक उद्देश्य जानने के लिए उसके अर्थ को जानना आवश्यक है। अर्थ की खोज हमें कला से निसृत रस का बोध कराती है। यथा चक्र, पूर्णघट, स्वास्तिक, पद्म, श्रीलक्ष्मी, अष्टमंगल या अष्टोत्तरशत मंगलचिन्ह एवं गरूड़, नाग, मकर, कूर्म, यक्ष आदि कला के प्रतीक रस अर्थ का बोध कराती है।

पुराणों में कहा गया है कि विश्व की रचना छन्दज सृष्टि के द्वारा है। जिसका मूलाधार छन्द, ताल, लय या मात्रा है। उसी छन्द से सौन्दर्य तत्त्व का प्रस्फुरण होता है। इस तरह भारतीय कला का अविभाज्य अंग तालमान है। कलाकार अपनी साधना द्वारा आत्मसात कर उसे मूर्तरूप प्रदान करता है।

कला का चौथा अंग भाव को भौतिक धरातल पर उतारना है। इसे काव्य के लिए 'शब्द' और कला के लिए 'रूप' को प्रतिस्थापित करना है। शिल्प, चित्र, वास्तु की अभिव्यक्ति भिन्न हो सकती है, किन्तु सभी में भावों का सृजन कर रसाभीव्यक्ति द्वारा उसे कलाकार जीवन्त बना देता है। कला के इन चार तत्त्वों को तुलसीदास जी कहते हैं:-[5]

'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि'

मनोभाव और बाह्यरूप को कला जोड़ता है। मनोभाव को सौन्दर्य की पराकाष्ठा के साथ सृजन करना ही कला है। कला के माध्यम से मनोभावों को भौतिक पदार्थो पर कलाकार उकेर देता है। परिणामस्वरूप कला मानवीय मन को आनन्दातिरेक अनुभूति प्रदान करता है। मनोभाव ही कला का रूप ग्रहण करती है और सौन्दर्य बोध के साथ 'रूप' के माध्यम से नयन सुख प्रदान करता है। यही भाव हृदयंगम होकर सुक्ष्म रस को उत्पन्न कर कलाकार ब्रह्मानन्द का अनुभव कराता है। परिणामस्वरूप भोक्ता अमृतानन्द में डूबता-उपलाता है। इस तरह कलासौन्दर्य 'मुग्धानायका' बन मानसी शक्ति में संवेग का सृजन कर जाती है। इस तरह 'रसो वैस:' कला में ब्रह्मानन्द की अनुभूति करती है।

इस तरह रसास्वाद 'रूप' में एक होकर भी मुख्यत: आठ प्रकार के रस का सृजन करता है- 1. श्रृंगार रस, 2. हास्यरस, 3. रौद्र रस, 4. करुण रस, 5. वीर रस, 6. बीभत्स रस, 7. भयानक रस, 8. अद्‌भुत रस।

इन आठ रसों की कल्पना ही दृश्यकाव्य के प्रसंग में की जाती है तथा बाद में 'शान्त रस' को जोड़ दिया गया। अनुभूति के आधार पर रसो को दो भागों में विभक्त किया जाता है पहला सुखात्मक अनुभूति मेंश्रृंगार, वीर, हास्य, अद्‌भुत और शान्त रस को रखा गया है। दूसरा दु:खात्मक अनुभूति में-करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भयानक रस आता है।

कला का उद्‌गमस्थल सौन्दर्यबोध है और सौन्दर्यबोध मानसिक स्थिति को उद्वेलित करती है, जिससे उद्‌दाम काम का सृजन होता है और परिस्थितिओं के अनुकुल कल्पना में डूबकर कलाकार रसास्वादन करता है। दु:ख-सुख के साथ मनके संतोषार्थ कलाकृतिओं का निर्माण करता है। कलाचन्क्र की गति मन का रंजन और भोगे हुए अनुभवों की सुखद पुनावृत्ति का अनुभव करता है। आनन्द बांटना ही कला का चरम लक्ष्य है। देश, काल और परिस्थिति से ऊपर उठ कलाकार अपनी उद्‌दाम अभिलाषा को मूर्त्त रूप प्रदान करता है। कलाकार वैसे तो अन्य प्राणियों से इतर नहीं होता, किन्तु वह भावुक और कलाप्रेमी होने के नाते आमजन सदृश्य सुख और दु:ख से जुड़ा रहता है और वैचारिक संघर्ष के फलस्वरूप अपने भीतर उपजे भावों से संघर्ष कर उसे एक नई दिशा प्रदान करने हेतु आन्दोलित हो उठता है। कलाकार सदैव समरस नहीं रह सकता। कला के द्वारा वह अपनी अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है। एतदर्थ कला विविध आयामी रहते हुए भी मन की सृष्टि करता है-जिसके फलस्वरूप वह सौन्दर्य का अनुसंधान कर 'रस' की अनुभूति करता है। शिल्प में कलाकृतियाँ इनसे अवश्यमेव प्रभावित होती है।

रस में स्थायी भाव की स्थिति का प्रतिपादन आवश्यक है, जिसके संमिश्रण मात्र से रसाभाव सम्भव है–[6]

''रसानां दृश्यते यत्र तत्स्यादाभास लक्षणम्।''

श्रृंगार रस' के सृजन में 'रति' अर्थात् उद्दाम कामक्रीड़ा की स्थायी भाव अन्तरनिहित रहती है। मथुरा चित्रकला की मदमस्त नारी का चित्रण, कोणार्क, खुजराहो, पुरी का जगन्नाथ मंदिर उसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'हास्यरस' हास्य से सराबोर रहता है। अतः इसका स्थायी भाव हास्य है। बहुत सारे जातक कथाओं के चित्रण में और भरहुत साँची और अमरावती की वेदकाओं का चित्रण उसके प्रमाण है। 'करुण रस' का स्थायी भाव शोक है। 'सीता अशोक वाटिका में' का चित्रण करुणा रस का सर्वोत्तम उदाहरण है। 'सीताहरण' के दृश्य में शोक स्थायी भाव है। 'रौद्र रस' के प्रत्यक्ष उदाहरण शिव का सति के शव को कन्धे पर रख पृथ्वी परिभ्रमण में क्रोध स्थायी भाव है। महिषासूरमर्दनी भी 'रौद्र रस' का अच्छा उदाहरण है। 'वीर रस' का स्थायी भाव उत्साह है। गांधार शैली में निर्मित बुद्ध प्रतिभाएँ 'वीर रस' का प्रतिनिधित्व करता है। 'भयानक रस' का स्थायी रस भय है। भय का चित्रण हमें नरसिंहावतर में हिरण्यकश्यपमर्दन में दृष्टिगत होता है। 'वीभत्स रस' स्थायी भाव घृणा है। भगवान शिव द्वारा 'कालीसमन' विभत्त्सरस का स्थायी भाव घृणा प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है। 'अद्भुत रस' का स्थायी भाव आश्चर्य है। 'शान्त रस' शमस्थायी का द्योतक है। भगवान बुद्ध की प्रायः सभी प्रतिभाएँ 'शान्त रस' का प्रतिक है।

इस तरह रस के द्वारा लौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है तथा कला में अन्तर्चेतना का चित्रण होता है।[7]

'दुःखान्त रसों' में इष्ट के नाश होने के कारण 'करुण रस' की उत्पत्ति होती है। अतः 'करुण रस' की अभिव्यक्ति जटिल प्रश्न है। इसका स्थायी भाव शोक है। इसमें दुःख की अनुभूति नहीं होती, अपितु आँखों के आँसू निकलता है। दुःखान्त में 'रौद्र रस' की भी गणना होती है। चूँकि इसके देवता इन्द्र है, एतदर्थ इसे 'रौद्र रस' कहा जाता है। शिव या रूद्र का वर्ण श्वेत माना गया है, किन्तु 'वर्णस्य रक्तो देवतं रुद्रः' अर्थात् रुद्र देवता रक्त वर्ण का है का उल्लेख मिलता है। इसका कारण यह है कि रौद्र रस में क्रोध का संचार होना स्वाभाविक है और कोप की दशा में मनुष्य क्षोम के कारण उत्तेजित होने के कारण रक्त संचार बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप वह रक्ताभ दृष्टिगत होता है। इसे शत्रु द्वारा किये गए अनिष्ट कार्य, अपकार तथा अपमान का समावेश भी समझना चाहिए। 'वीभत्स रस' में करुण, रौद्र तथा भयानक रस समिश्रण है। इससे वैराग्य की प्रेरणा मिलती है। यह भयानक रस का सृजनकर्त्ता है। पौराणिक परम्परा में राक्षसों या दानवों के क्रिया-कलाप तथा नरक का चित्रण में वीभत्सता का विशेष समावेश रहता है। इसलिए घृणा इसका स्थायी भाव है।

कला एक उसके रूप अनेक। अनेक रूप अनेक रस। दृष्टिबोध से जो सुखानुभूति दे वह श्रृंगार रस के अन्तर्गत आता है। श्रृंग + आर =श्रृंगार: श्रृंग' से कामवृद्धि और 'आर' से प्राप्ति का बोध होता है। इस तरह श्रृंगार' का तात्पर्य कामवृद्धि की प्राप्ति। भारतीय कला सौन्दर्यबोध के द्वारा सुखानुभूति देती है और सुखानुभूति की प्राप्ति कला के विविध आयाम से होता है। श्रृंगार को उत्तम प्रकृति से संयुक्त कर कामचित्रण, विलासिता या कामुकता का रसाभाव प्रकट नहीं होता। श्रृंगार का स्थायी भाव रति है किन्तु रति को श्रृंगार रस' में स्त्री-पुरुष की नैसर्गिकी आसक्ति के रूप में भी ग्रहण करते हैं।[8]

रति के दो रूप हैं:-

1. लौकिक-बाह्यश्रृंगार
2. अलौकिक।

अलौकिक-इसमें देवताओं द्वारा अनुराग का आलम्बन है, श्रृंगार अर्थात् सजना अर्थात् अलंकरण धारणा करना या रूप सज्जा से है। भारतीय कला अलंकरण प्रधान है, अर्थात् श्रृंगार प्रधान है। प्रारम्भ से ही कलाकारों ने अपनी कला कृतियों को अनेक प्रकार के अलंकरणों से सजाया। अलंकरण या साज-सज्जा का अभिप्राय प्राकृतिक सुन्दरता से लिया गया है, जिसे कलाकारों ने अपनी कल्पनाशीलता के बल पर उसको अनेक रूप प्रदान किया। कहीं गौण आकृति के रूप में तो कहीं कलाकृति को सुसज्जित करने के लिए तो कहीं रिक्तता को भरने के लिए। इन सभी के पीछे कलाकार का एक मात्र उद्देश्य था सौन्दर्यबोध या रस का सृजन। कलाकार मांगलिक या अमांगलिक प्रतिकों के माध्यम से रस बोध को जीवन्तता प्रदान करता है। यहाँ हम देखते हैं कि कलाकार ने अपनी रचना के द्वारा विभिन्न रसों का जो बोध कराया है, उसके माध्यम से रसों के अन्तः सम्बन्ध भी स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। यथा हम देखते हैं कि हास्य रस की उत्पत्ति भी श्रृंगार रस से मानते हैं। इसके स्थायी भाव में विभाव, आचार, व्यवहार तथा रूपविन्यास आते हैं। करुण, वीभत्स आदि रसों से हास्य की उत्पत्ति होती है।

'वीर रस' कोश्रृंगार से प्रतिस्पर्धा रहती है। यह सर्वोत्तम स्वभाव वालो से जुड़ा है और उत्साह इसका स्थायी भाव है। 'अद्भुत रस' की परिगणना भी इसी श्रेणी में की जाती है। विस्मय, माया, इन्द्रजाल, असाधारण कर्म तथा अन्य कलाकृतियों द्वारा इस रस की उत्पत्ति होती है। दार्शनिक धारायें इसके द्वारा जीवन एवं जगत के गूढ़ रहस्यों को खोजने का प्रयास करती हैं।

आठ रसों के अतिरिक्त 'शान्तोऽपि नवमों रस:। अभिनवगुप्त तत्वज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव मानते हैं। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि सम्यक् ज्ञान, निर्विशेष चित्तवृत्ति तथा तृष्णाक्षय, सुख शान्त रस का स्थायी भाव है। कुछ आचार्यों ने वैराग्य, सन्तोष या तत्त्व के साक्षात्कार को शान्ति रस के रूप में स्वीकार किया है। भक्ति-भावना का सम्बन्ध इसी रस से है।

भारतीय कलाविदों ने यथास्थान परिस्थित्तियों के अनुकूल कलाकृतियों में रस का बीजारोपण किया है, जो उसमें प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है। अनुभूति से अनुभव किया जाता है। एक गज चिन्ह इन्द्र के श्वेत ऐरावत का प्रतीक है तो अश्व 'उच्चै:श्रवा' अश्व का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी उत्पत्ति समुद्रमंथन से हुई। सूर्य ही वह विराट अश्व है जो काल का सृजन करता है। जब हम गाय का अलंकरण उकेरते हैं तो अदिति संज्ञक देव माता का दिग्दर्शन करते हैं। वही नर रूप में वृशम है जो इन्द्र या रूद्र के रूप में माना जाता है। इस प्रकार भारतीय कला एक ओर धर्म और संस्कृति का द्योतक है तो दूसरी ओर रस का सृजन कर कला के विविध रूप को प्रतिस्थापित करता है। इस तरह भारतीय कला मनुष्य के मानसिक विकास के साथ-साथ कलात्मक विकास को स्थापित करता है। सैन्धव कला में भावात्मक अभिव्यक्ति नहीं दृष्टिगोचर होती। ऐतिहासिक युग में कलाकार अपनी कलाकृति में अपनी अनुभूति को मूर्तरूप प्रदान कर उनमें रसाभास की अनुभूति कर ब्रह्मानन्द की ओर अग्रसर होते हैं।

कलाकृतियों का मूल्यांकन रसभास के आधार पर होता है। किन्तु उनमें एकरूपता नहीं हो सकता। रस, व्यक्ति, काल और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता है। दीदारगंज की यक्षणी विश्व की सर्वोत्तम कलाकृति है, जिसमें रस की वर्षा होती है। दर्शक उस रस वर्षा में सराबार हो श्रृंगार रस का अनुभव करता है और उसका स्थायी भाव रति का मन में अनुभूति करता है। लियोनार्दो-दी वींची की कलाकृति 'मोनालिसा' भी विश्व की श्रेष्ठ कृतियों में है, किन्तु जितना रसबोध दीदारगंज की यक्षणी प्रतिमा कराती है, उस अनुपात में मोनालिसा का पलड़ा हल्का लगता है। मथुरा की मदमत्त नायिका सड़क पर अर्धनग्न दृष्टिगत होती है और दो पुरुष उसे दोनों तरफ से उसके बांह थामे हुए है। रस बोध में कामुकता उद्वोलित होती है, किन्तु श्रृंगार रस' के स्थान पर 'वीभत्स रस' का बोध कराती है। इस तरह समय, काल और परिस्थिति के अनुसार रस बोध बदलता रहता है।

गौतम की माता मायो देवी के गर्भ में 'हस्ति प्रवेश' का चित्रण मनुष्य को विश्मित करता है, जिससे 'अद्भुत रस' का नि:सरण होता है। काव्य तथा कला में जो रचना मानव हृदय की सुमधुरतम क्षण को उत्तेजित कर उसे तृप्ति प्रदान करे उसे श्रृंगार रस कहते हैं, जिसका दिग्दर्शन हमें उपरोक्त उद्धरणों में देखने को मिलता है। रसाचार्यों ने श्रृंगार को मनुष्य की सबसे प्रियतम भूख 'काम' से संबद्ध किया है। कला की अभ्यर्थना करते हुए कालिदास ने शब्द या रूप को जगन्माता और अर्थ को जगत्पिता कह उसमें श्रृंगार रस का प्रतिरूपण किया है-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ बन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ। ।

(रघुवंश-1/1)

जो जगत के माता-पिता हैं वे ही कला के अर्थ और रूप में जनक-जननी है। अर्थ अमूर्त्त लोक का और रूप मूर्त जगत का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों ही भगवान विष्णु के दो रूप हैं। एक को परमरूप और दूसरे को विषय रूप कहा गया है। [10] समस्त विश्व के नाना पदार्थों के मूल में अर्थतत्त्व ही नियमित है, जिसे भावना कहते हैं; अर्थात् मनुष्यों के हृदय में जो मनोभाव रहते हैं वे ही कला और साहित्य में मूर्त होते हैं। यह भावना तीन प्रकार की होती है[11]-

01. ब्रह्मभावना - जिसका तात्पर्य है विश्वात्मक, परम एक और अभिन्न मनोभाव जो ब्रह्म के समान निरपेक्ष और सर्वोपरि है। वही तो सब रसों और मनोभावों का मूल स्त्रोत है।

02. कर्म भावना - उच्चतम देवों से लेकर मनुष्य एवं इतर प्राणियों तक के जो प्राकृत मनोभाव हैं वे इसमें आते हैं।

03. उभयभावना - इसमें विश्वात्मक ब्रह्मतत्त्व और मानुषी कर्म इन दोनों का संयोग आवश्यक है। केवल कर्म भावना पर्याप्त नहीं है। यदि कला की सीमा वहीं तक हो तो कला का स्त्रोत सुख जायगा और वह मात्र

स्थिर चित्र के समान निर्जीव हो जायेगा। कला प्राणवन्त तभी बनती है, जब उसके रूपात्मक पार्थिक शरीर में भावात्मक देवांश प्रवेश करता है। कलात्मक रूप में भावात्मक देव की प्रतिष्ठा ही कला की सच्ची प्राण प्रतिष्ठा है। मानुषी कर्म के साथ ब्रह्मज्ञान के सम्मिलन से ही राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर बनते हैं जो कला के सच्चे आराध्य है।

कला के रूपों के मूल में छिपे हुए सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण और गम्भीर बनती है। कलाकार और रसिक दोनों केवल ध्यान और मन की शक्ति से ही कला की सुन्दरता का पूर्ण फल प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक मूर्ति का आदि अन्त-धार्मिक या आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में है।

प्रियदर्शी अशोक के कालखंड में निवृत्ति की प्रमुखता थी और प्रतीकात्मक कला प्रस्फुरण हो रहा था। किन्तु शुंगकाल में ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के फलस्वरूप पुनः प्राचीन कला परम्परों ने अपना आकार लेना प्रारम्भ कर दिया। जीवन से भागने की जगह जीवन जीने की भावना बलवति होने लगे। अर्थात् निवृत्ति मार्ग से लोग पुनः प्रवृत्ति मार्ग की ओर लोग अग्रसर होने लगे। पुरुषार्थ जीवन का चरम लक्ष्य बन गया। इस जीवन दर्शन ने कला के पथ को एक नई दिशा दी। सामाजिक संरचना में आमोद-प्रमोद, नृत्य संगीत आदि कलात्मक गति-विधियों ने अपना स्थान ग्रहण किया। रसिकजनों ने 'श्रृंगार रस' को प्रमुखता दिया, तद्नुरूप कलाकारों ने कला का सृजन करना प्रारम्भ किया। मथुराकला शैली में हम देखते ही कि मथुरा से प्राप्त यक्षणी प्रतिमा में यक्षणी स्तन पकड़े नग्नावस्था में प्रदर्शित है। अमरावली में स्त्री आकृतियों में कामुक्ता का भाव विशिष्टता से प्रदर्शित हुआ है। गुप्तकाल तो कला का चरम-उत्कर्ष का काल था, जो लावण्य और सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध था। अजन्ता गुफा की कृष्ण-यशोधरा का चित्रांकन लावण्य और सौन्दर्य का प्रतिरूप है। गुप्तकला में विलासिता की उच्चता का दिग्दर्शन हुआ है। श्रृंगार रस की भावना से ओत-प्रोत होकर युगल प्रतिमाओं में देवी को देवता की जाँघ पर अलिगनवद्ध दिखाया गया है। कुछ प्रतिमाएँ 'पीनाक हस्ताय सनातनाय' को चरितार्थ करता है। शिव की कल्याण सुन्दरमूर्ति के मूल मेंश्रृंगार का प्रदर्शन मानना असंगत न होगा।[12]

मध्ययुगीन प्रतिभाओं में श्रृंगार रस का विशिष्ट स्थान था। उड़ीसा के भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर के बाहरी दीवाल तथा कोणार्क मंदिर के रथ-चक्रो पर जिस कामुकता का दिग्दर्शन होता है वह श्रृंगार रस की पराकाष्ठा है। इन कामोदिप्त प्रतिमाओं में बाह्य श्रृंगार तथा अलौकिकता के भावों का कलाकार की कला की सर्वोच्चता है। जहाँ शिव-पार्वती को आलिंगनबद्ध दिखाया गया है वहीं अर्धनारीश्वर प्रतिमा में 'एकाकार ब्रह्म' या की कल्पना का प्रदर्शन है।

'वीर रस' तथा रौद्र भावों के प्रदर्शन में कलाकारों ने अपनी हस्त कुशलता का प्रदर्शन किया है। मध्य भारत की भारी-भरकम यक्ष-प्रतिमा बल को प्रदर्शित करती है। शारीरिक श्रोष्ठव एवं अंग-प्रत्यंग की जीवन्तता 'वीर रस' का दिग्दर्शन कराती है। यक्ष प्रतिमाएं अधिक मात्रा में उत्तरी तथा मध्य भारत में निर्मित हुई जो ग्रामीण जन की रक्षा का द्योतक था। वाराणसी का 'लहुराबीर' उसी भाव का प्रतिनिधित्व करता है। भगवान शिव ने रौद्रावस्था में अनेकों राक्षसों का मर्दन किया। अन्धकासुरवध तथा त्रिपुरान्तक प्रतिमा शिव के 'वीर रस' को स्थापित करती है। भैरव प्रतिमा भी 'वीर रस' तथा रौद्र स्वरूप की श्रेणी में है। देवियों में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा और संहारक काली 'रौद्र रस' का सर्वोत्तम दृष्टान्त है।

विष्णु का नरसिंहावतार 'भयानक रस' का सर्वोत्तम उदाहरण है। यहाँ क्रोध स्थायीभाव से विराजमान है। गुप्तकाल को स्वर्णकाल कहते हैं। कला का क्षेत्र इसका अपवाद नहीं था। कलाकारों ने गुप्तकाल में नये मानदण्डों की स्थापना की, जहाँ सभी रसों में प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। सारनाथ शैली की बुद्ध प्रतिमाएँ 'शांत रस' से भरा पड़ा है। इस कालखंड में बाह्य सौन्दर्य उपेक्षित होने लगा। मांसल शरीर वाह्य सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराती है साथ ही गुप्तकालीन रचनाओं में आध्यात्मिकत्ता तथा आन्तरिक सौन्दर्य प्रमुख रूप से प्रदर्शित किया गया है। आभूषणों का कम प्रयोग होने लगा। बौद्ध कला कृतियों में अधमुन्दी आँखें के साथ चिन्तन-मनन के भाव प्रमुखता से देखने को मिलता है। तत्वज्ञान को शान्तरस का स्थायी भाव माना जाता है। जिसका दिग्दर्शन हम बौद्ध प्रतिमाओं में करते हैं। सांसारिकता से विरक्त तथा आध्यात्मिकता में लीन बुद्ध प्रतिमा 'शांत रस' का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

उदयगिरी गुफा में उत्कीर्ण अनन्तशायी विष्णु की प्रतिमा से भी शान्त रस प्रस्फुटित होती है। इस तरह नवम् रस 'शान्त रस' का प्रदर्शन हिन्दू, जैन तथा बौद्ध प्रतिमाओं में दृष्टिगत होता है। वात्सल्य रस के भी अनेक उदाहरण भारतीय कला में देखने को मिलता है। बालकृष्ण और माता यशोदा का चित्र जो अजन्ता गुफा में है जो 'वात्सल्य रस' का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। साथ ही भारतीय कला में बच्चे के प्रेम की कथा हारीति के कथानक में मिलती है। यह बौद्ध देवी बच्चों का भक्षण किया करती थी। किन्तु

भगवान बुद्ध के आदेश से हारीति बच्चों का रक्षक बन गई। उस दिशा में बच्चे को गोद में लिए हुए, कन्धे पर बैठाये हुए तथा स्तनपान कराते दीख पड़ती है। यही 'वात्सल्य रस' का सर्वोत्तम दृष्टान्त है। इसी श्रेणी में शष्ठी की भी गणना की जाती है। वात्सल्य प्रेम के कारण उसे सन्तान जन्म के छठे दिन पूजित करते हैं। जिसे 'छठिहार' कहा जाता है।

भारतीय कला में रस विवेचन इस ऋग्वेदिक सूक्त में प्रतिपादित है-[13] 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' अर्थात् विश्व में जितने भी विविध रूप है वे सभी किसी मूलरूप के अनुसार उत्पन्न हुए हैं। वह मूलभूत रूप या प्रतिरूप अनेक रूप धारणा करता है और एक रूप सर्वरूप बन जाता है। जिसकी रचना की जाती है, उस सबको मूर्त्ति कहते हैं। कलाकार के सामने सृजन का विस्तृत विषयवस्तु है। कलाकार अपनी कल्पना लोक में प्रत्येक विषय को अपने मन में उतारता है, फिर उसे भौतिकता का अमली-जामा पहनाता है, अर्थात् उसे अमूर्त से मूर्त रूप में रूपायितकर देश और काल की परिधि से उपर उठा अमृत का सृजन करता है जो रसवान् है और तैतरीय उपनिषद के 'रसो वैसः' का अनुभूति करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

01. अग्रवाल वासुदेव शरण-भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन वाराणसी 2000 ई0, पृ0-03.
02. उपाध्याय वासुदेव-प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-1982.
03. तैत्तिरीय उपनिषद्।
04. अग्रवाल उपरोक्त, पृ0-03.
05. तुलसीदास-रामचरित्रमानस, गीता प्रेस गोरखपुर।
06. भाव प्रकाश।
07. उपाध्याय-उपरोक्त, पृ0-337.
08. उपरोक्त-पृ0-338.
09. कालिदास, रघुवंश अध्या-1 श्लोक-1.
10. विष्णुपुराण 6/7/54.
11. अग्रवाल उपरोक्त, पृ0-6.
12. उपाध्याय उपरोक्त, पृ0-239.
13. ऋग्वेद 6/47/18.

महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा की वर्त्तमान में प्रासंगिकता

अभिषेक कुमार

शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र, आर0के0डी0एफ0 विश्वविद्यालय
भोपाल, मध्य प्रदेश

वर्तमान युग में शिक्षा वह सबसे महत्वपूर्ण संस्था है जो व्यक्ति का समाजीकरण करने के साथ ही उसका बहुमुखी विकास करती है। वर्तमान शिक्षा ने विशेषीकरण तथा श्रम विभाजन के रूप में न केवल औद्योगिक विकास में योगदान किया है वरन सामाजिक तथा आर्थिक विकास की आवश्यकता को पूरा करने में भी इसकी एक उपयोगी भूमिका है। यही कारण है कि आधुनिक समाजों में शिक्षा को एक प्रमुख सामाजिक संस्था के रूप में देखा जाता हैं आरम्भ में ही यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा का तात्पर्य केवल पुस्तकीय ज्ञान से नहीं है अपितु समाज की विभिन्न संस्थाओं के अपने संचित अनुभवों के द्वारा व्यक्ति को जो व्यावहारिक ज्ञान मिलता है, उसका भी शिक्षा में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है। विकास के दृष्टिकोण से शिक्षा की प्रकृति को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है–अनौपचारिक शिक्षा तथा औपचारिक शिक्षा। अनौपचारिक शिक्षा सरल और परम्परागत समाजों की विशेषता है। इस शिक्षा का आधार मुख्यत: परिवार हैं जनरीतियाँ, प्रथाएँ, परम्पराएँ, धार्मिक तथा नैतिक नियम आदि अनौपचारिक शिक्षा के विभिन्न माध्यम अथवा विधियाँ है। ऐसी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपनी संस्कृति का प्रशिक्षण देना अपने सामाजिक मूल्यों से परिचित कराना तथा परम्परागत व्यवसाय या हस्तशिल्प का प्रशिक्षण देना था। मूल रूप से यह एक धर्म–प्रधान शिक्षा थी। इस शिक्षा को हम इसलिए भी अनौपचारिक कहते हैं कि यह मुख्यत: एक मौखिक तथा असंगठित शिक्षा थी। धीरे–धीरे जब समुदायों के आकार में वृद्धि हुई, संगठित राज्यों की स्थापना होने से व्यक्ति के जीवन पर राज्य का प्रभाव बढ़ने लगा तथा आर्थिक विकास के लिए कृषि और हस्तशिल्प के अतिरिक्त अनेक दूसरे व्यवसायों को विकसित करना आवश्यक समझा जाने लगा, तब अनौपचारिक शिक्षा अपर्याप्त प्रतीत होने लगी। इसके फलस्वरूप विभिन्न समाजों में औपचारिक शिक्षा–व्यवस्था का आरम्भ हुआ। औपचारिक शिक्षा, शिक्षा का वह रूप है जो तार्किक ज्ञान पर आधरित है तथा इसका मुख्य उद्देश्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करना है। इसकी व्यवस्था राज्य अथवा अन्य बड़े संगठनों द्वारा की जाती है। इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित विशेषीकृत ज्ञान को महत्व दिया जाता है। परीक्षा–पद्धति तथा प्रतियोगिता इस शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। औपचारिक शिक्षा भी सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन है लेकिन साथ ही यह शैक्षणिक योग्यता कये आधार पर समाज को एक दूसरे से उच्च और निम्न स्तरों में विभाजित भी करती है। इस आधार पर बॉटोमोर ने लिखा है कि शिक्षा निश्चय ही नयी पीढ़ियों का समाजीकरण करती है लेकिन सामाजिक आवश्यकताओं और संगठनों के अनुसार इसके रूप में सदैव परिवर्तन होता रहा है। [1]

सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि शिक्षा ज्ञान के संग्रह तथा उपयोग की व्यवस्था है। दुर्खीम ने शिक्षा की प्रवृत्ति और इसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, शिक्षा वह क्रिया है जो अधिक आयु के लोगों द्वारा उस पीढ़ी के लिए की जाती है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। इसका उद्देश्य बच्चों में उन भौतिक, बौद्धिक, और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज तथा पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है महात्मा गाँधी ने भी शिक्षा को लगभग इन्हीं उद्देश्यों के आधार पर स्पष्ट किया हैं उनके शब्दों में ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का विकास करना है'' स्पष्ट है कि शिक्षा एक ऐसा प्रशिक्षण है, जो व्यक्ति को अपने पर्यावरण

से अनुकूलन करने की कुशलता प्रदान करता है। शिक्षा का रूप चाहिये जैसा भी हो, इसका प्रारम्भ परिववार से होता है, जबकि पड़ोस खेल के साथी, विभिन्न संघ तथा स्वयं व्यक्ति के अनुभव शिक्षा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते रहते हैं।[2] महात्मा गाँधी के अनुसार, शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणें का सर्वागीण विकास है।[3]

फरवरी, 1938 में हरिपुरा में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में डॉ0 जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट को प्रस्तुत किया गया। कांग्रेस ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया, साथ ही इसे सभी कांग्रेस शासित प्रदेशों में लागू करने का निर्णय लिया। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस काल की युगप्रवर्तक घटना महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा की योजना थी।[4] आज इसे हिन्दी में वर्धा शिक्षा योजना, बुनियादी तालीम, बुनियादी शिक्षा और बेसिक शिक्षा कई नामों से जाना जाता है, अंग्रेजी में बेसिक एजूकेशन कहा जाता है उत्तर प्रदेश में इसे बेसिक शिक्षा का नाम दिया गया है।[5]

अंग्रेजी के बेसिक शब्द का हिन्दी अर्थ है-आधारभूत और उर्दू अर्थ है-बुनियादी, इसलिए इसका नाम बेसिक शिक्षा पड़ा है-[6]

1. यह शिक्षा-भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा-संगठन का आधार है।
2. यह प्रत्येक भारतीय बच्चे के लिए अनिवार्य आधारभूत शिक्षा स्वीकार की गई।
3. यह बच्चों की आधारभूत आवश्यकताओं, अभिरुचियों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करती है।
4. समुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों से सम्बन्धित है।
5. सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करती है, जो उनको अपने पर्यावरण को बुद्धिमतापूर्वक समझने और प्रयोग करने में सहायता देती है। गाँधी जी ने लिखा है-बुनियादी शिक्षा बच्चों को, चाहे वे नगरों के हों या ग्रामों के, भारत की समस्त सर्वोत्तम अस्थायी बातों से सम्बन्धित करती है।

स्वदेशी वस्त्र, स्वदेशी खानपान, स्वदेशी भाषा और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए गाँधीजी द्वारा सन् 1931 में स्वदेशी आन्दोलन का शुभारम्भ किया गया। हमारी शिक्षा प्रणाली भी उस समय अंग्रेजी शिक्षा की अनुकरणीय थी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण यह तत्कालीन बालकों की समझने योग्य भाषा नहीं थी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण 10 प्रतिशत से भी कम साक्षर थे तथा विदेशी सरकार द्वारा निःशुल्क सार्वदेशिक शिक्षा प्रणाली लागू करना आंग्रेज सरकार फिजूलखर्ची समझती थी। इन विपरीत परिस्थितियों के आगे झुकते हुए सन 1935 में अंग्रेजों सरकार द्वारा प्रान्तीय स्वायतत्ता का कानून पारित किया गया। इस कानून के अनुसार शिक्षा प्रणाली आयोजित करने का दायित्व भारतीय मन्त्रियों पर रखा गया। गाँधीजी द्वारा इससे पूर्व ही गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, दक्षिण-अफ्रीका तथा सेवाग्राम वर्धा में अपने शैक्षिक विचारों का व्यावहारिक प्रयोग किया जा चुका था। भारतीय मन्त्रियों ने, राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी दायित्वों को पूरा करने हेतु जो चार सूत्रीय योजनाएँ पेश की गयी वह इस प्रकार थी-[7]

1. भारत के प्रतयेक बालक-बालिका को 7 से 14 वर्ष की आयु तक अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो।
2. प्राथमिक शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम किसी समाजोपयोगी उत्पादक कार्य से जुड़ा हुआ होना चाहिए। इसका अर्थ है कि बालक की सम्पूर्ण शिक्षा किसी दस्तकारी के काम से समन्वित हो।
3. विद्यालय में आयोजित उत्पादक कार्य से होने वाली आमदनी से शिक्षक का वेतन निकाला जाना चाहिए तथा शेष व्यय सरकार तथा स्थानीय समुदाय मिलकर वहन करे इससे शिक्षा स्वावलम्बी होगी।
4. बालक को प्राथमिक शिक्षा मातृ-भाष के माध्यम से ही प्रदान की जाये।

गाँधीजी की उपर्युक्त शिक्षा योजना को बुनियादी शिक्षा कहा गया। गाँधीजी के इस शिक्षा-दर्शन का प्रमुख लक्ष्य समाज का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्थान था। गाँधीजी इस शिक्षा द्वारा एक शोषणहीन, अहिंसक व समाजवादी सर्वोदयी समाज होगा।

गाँधीजी अपने शिक्षा सिद्धांत को बुनियादी शिक्षा की संज्ञा देते हैं क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को केवल शिक्षित ही नहीं किया जाता बल्कि उसे जीना भी सिखाया जाता है। अपनी बुनियादी शिक्षा की परिभाषा देते हुए गाँधीजी ने कहा था, बच्चे और मनुष्य में जो कुछ सर्वश्रेष्ठता होती है उसी को बाहर ले आना शरीर, मन और आत्मा से ही शिक्षा है। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न प्रारंभ ही। वह तो मनुष्य और स्त्री को शिक्षित करने का साधन मात्र है।[8]

यह तभी संभव हो सकता है, जब शिक्षा द्वारा मनुष्य का शारीरिक और मानसिक विशुद्धि दोनों साथ-साथ हो सकें। गाँधीजी की यह निश्चित मान्यता है कि शिक्षा को सीमित अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ना या पढ़ाना ही नहीं हैं शिक्षा तो उससे कहीं बड़ी चीज हैं वे कहते हैं, ''साहित्यिक प्रशिक्षण अपने आप में मनुष्य की नैतिक उच्चता में और कुछ भी नहीं जोड़ती है क्योंकि चारित्रिक गठन साहित्यिक प्रशिक्षण से बिल्कुल अलग है।''[9]

गाँधीजी जिसे चरित्र निर्माण कहते हैं या जिसे वे हृदय की शिक्षा कहते हैं वह किताबों से संभव नहीं है। गाँधीजी कहते हैं, वह तो केवल शिक्षा के जीवंत स्पर्श के माध्यम से संभव है और प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओं के शिक्षक कौन है? क्या वे ऐसे पुरुष और स्त्री हैं जिनमें आस्था और चरित्र है तथा क्या उन्हें हृदय की शिक्षा प्राप्त हुई है? क्या उनसे यह अपेक्षा की जाये कि उनके अधीन जिन लड़कों और लड़कियों को सौंपा गया है, उनके स्थायी तत्वों की देख-रेख एकमात्र वे ही करेंगे। क्या निम्न शालाओं के शिक्षकों को भरती किये जाने की पद्धति उनके चरित्र पर कोई प्रतिबंध लगा सकती है? क्या शिक्षकों को जीवन धारण करने योग्य वेतन मिलता है? हमें मालूम है कि प्राथमिक शालाओं के शिखकों का चुनाव देशभक्ति के कारण नहीं होता वे इसलिए आते हैं कि उन्हें कोई और नौकरी नहीं मिलती है।[10]

गाँधीजी की शिक्षा व्यवस्था 7 वर्ष के बच्चे से लेकर 14 वर्ष के बच्चों के लिए है। वे हस्तकला उद्योग को अपनी शिक्षा का अंतरंग हिस्सा मानते हैं जिसके साथ शारीरिक व्यायाम, चित्रकला और संगीत भी होना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार यह सब बेहद गलत विचार है कि बुद्धि केवल पुस्तकों के पढ़ने से ही आती है। इसके स्थान पर इस सत्य को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए, कि मानस का तीव्र गति से विकास किसी हस्तकला कौशल कार्य को वैज्ञानिक पद्धति से सीखने से होता है। जब विद्यार्थी को यह बताया जाता है कि किसी विशेष मशीन को किसी विशेष ढंग से क्यों चलाया जाता है तभी उससे मानव का विकास होता है।[11]

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि गाँधीजी यह चाहते थे कि जहाँ एक ओर अध्ययन और अध्यापन द्वारा शिक्षा दी जाय वहाँ साथ ही हस्तकला कौशल से भी शिक्षा दी जाय। इसके विपरीत गाँधीजी कहते थे कि समूची शिक्षा हस्तकला कौशल या उद्योगों के माध्यम से ही दी जानी चाहिए। इसका अर्थ है कि हस्तकला को ही सभी विषयों के शिक्षण का केन्द्र मानते थे। गाँधीजी की शिक्षा व्यवस्था का एक बहुत महत्वपूर्ण आधार उसका आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना हैं बच्चों की पढ़ाई के साथ-साथ पढ़ाई का खर्च भी हस्तकला-कौशल के माध्यम से कमाते रहें। गाँधीजी की शिक्षा व्यवस्था का एक बहुत महत्वपूर्ण आधार उसका आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना हैं बच्चों की पढ़ाई के साथ-साथ पढ़ाई का खर्च भी हस्तकला-कौशल के माध्यम से कमाते रहें। गाँधीजी ने कहा कि मेरी नई तालीम अर्थ पर निर्भर नहीं है इसकी पढ़ाई का खर्च इसी शैक्षणिक प्रक्रिया के माध्यम से आना चाहिए।[12]

इसका अर्थ यह कदापि नहीं निकाला जाना चाहिए कि गाँधीजी यह चाहते थे कि बुनियादी शिक्षा में प्रारंभ से ही आत्म-निर्भरता आ जाय क्योंकि सात वर्ष की उम्र में जब बच्चा पढ़ता है तो वह एकदम कमाना शुरू नहीं कर सकता। उनके कहने का तात्पर्य यही है कि सात वर्ष की पढ़ाई में जो भी खर्च हो और उसी अवधि में हस्तकला कौशल के माध्यम से आय हो और उन दोनों का मीजान बराबर हो जाना चाहिए।

गाँधीजी ने बेसिक शिक्षा योजना प्रारम्भ की जिसमें उन्होंने शिक्षा में लचीलेपन के सिद्धान्त को प्रारम्भ किया। गाँधीजी की शिक्षा योजना में निम्न विषय थे-[13]

1. हस्तकला, 2. भाषा, 3. गणित, 4. सामान्य अध्ययन, 5. सामाजिक अध्ययन, 6. सामान्य विज्ञान, 7. ललित कला, 8. शरीर शिक्षा, 9. नैतिक शिक्षा और 10. धार्मिक शिक्षा।

इस प्रकार गाँधी जी ने एक ऐसी शिक्षा योजना प्रस्तुत की जो सुचारू और सरल हो, उन्होंने बेसिक शिक्षा के द्वारा यह प्रयास किया कि बालक को पूरा ज्ञान मिले। बेसिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक समाज की स्थापना, बालकों में नागरिकता के गुणों का विकास, विद्यालय एवं विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बनाना इत्यादि हैं अत: गाँधी जी ने व्यावहारिक शिक्षा को महत्व दिया और शिक्षा प्रणाली को बदलने तथा उसे उन्नत बनाने का सुझाव दिया। शिक्षा में दो चीजें महत्वपूर्ण है। 1. शिक्षक और 2. शिक्षार्थी। गाँधीजी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार दिये जिनका उपयोग वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक तथा विद्यार्थी का सम्बन्ध केवल कक्षा तक सीमित रह गया है। कक्षा के बाहर न तो शिष्य ही शिक्षक को पहचानता है और न तो शिक्षक को शिष्य में रुचि होती हैं शिक्षक केवल एक वेतनभोगी कर्मचारी के समान हो गया है जो कक्षा में अपनी औपचारिकता पूरी करने आता है, परन्तु गाँधी जी के अनुसार शिक्षक का कार्यक्षेत्र केवल क्लासरूम ही नहीं अपितु उसके बाहर भी है। उनके अनुसार छात्र पर अध्यापक के व्यक्तिगत जीवन और आचरण का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है और कक्षा के बाहर तो शिक्षक का आचरण बालक को और अधिक प्रभावित करता है। गाँधीजी का कथन है कि शिक्षक और छात्र का घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह छात्र के मस्तिष्क से ज्यादा उसके हृदय को प्रशिक्षित करने को

महत्व दे। गाँधीजी के अनुसार शिक्षक को अत्यनत पारखी होना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह बालक में उस प्रतिभा को उत्पनन करें जिससे वह विभिन्न पहलुओं के गुण-दोषों और भेद को पहचाने। यदि वह अपने कार्य को सफलतापूर्वक निभाता है तो उसके छात्र मशीन की भाँति नहीं होंगे और उसका ज्ञान सजीव होगा, यदि अध्यापक इस कार्य में असफल रहे तो उनके छात्रों और मशीनों में कोई अन्तर न होगा। गाँधीजी के अनुसार शिक्षा में शिक्षक का दायित्व तथा स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। अतः गाँधीजी के कथनानुसार शिक्षकों का प्रथम कर्तव्य यह है कि जो शिक्षा वह छात्रों को देता है उसे सर्वप्रथम अपने आचरण में उतारे। गाँधीजी की मान्यता थी कि शिक्षक को स्थानीय परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वे स्थानीय व्यवसायों, हस्तकार्यों एवं उद्योग-धन्धों के लिए शिक्षा का सफलतापूर्वक उपयोग कर सके। [14]

गाँधीजी की शिक्षा योजना में शिखार्थी को दूसरा स्थान प्राप्त है। आधुनिक युग में बालक को केवल किताबी ज्ञान में संलग्न रखा जाता है तथा ऐसा माना जाता है कि किताबी ज्ञान प्राप्त करके वह महारथी हो जायेगा, परन्तु सत्यता यह है कि जीवन में महारथ हासिल करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान किताबी ज्ञान से अधिक आवश्यक हैं अतः गाँधीजी के अनुसार शिक्षार्थी को उत्तम चरित्र वाला तथा श्रम का सम्मान करने वाला होना चाहिए। उसमें सत्य, अहिंसा, आत्म नियंत्रण, अस्तेय तथा अपरिग्रह आदि गुण होना चाहिए। गाँधीजी ने शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों के ही जीवन में अनुशासन को महत्व दिया है वे अनुशासन प्रिय थे और अनुशासन के सम्बन्ध में प्राचीन मान्यताओं को महत्व देते थे लेकिन गाँधीजी ने कभी भी दमनात्मक अनुशासन का समर्थन नहीं किया। गाँधीजी मुक्त लेकिन प्रभावशाली अनुशासन के प्रबल समर्थक थे। गाँधीजी ने अपनी विचारधाराओं तथा सेवाओं के माध्यम से भारतवासियों को ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति को जो कुछ भी दिया है उसे आँकना सम्भव नहीं है।

आज के युग में शिक्षा व्यापार बन गयी है। शिक्षा में योग्यता और ज्ञान को नहीं, बल्कि धन को महत्व दिया जा रहा हैं यदि कहीं ज्ञान है तो वह भी निर्जीव है, उसका मानव जीवन कसे कोई लेना-देना नहीं है। इसका कारण हमारा समाज हैं धन लोलुपता के कारण ज्ञान का कोई महत्व नहीं रह गया हैं ऐसी दशा में शिक्षा में व्यावहारिकता लाने में गाँधीजी की बेसिक शिक्षा योजना कुछ सहायता कर सकती है। आज भारत शिक्षित तो हो रहा है, किन्तु एक वर्ग तक के लोगों में ही इसे व्यावहारिक बनाने की जागरूकता हैं आज शिक्षा में स्वतन्त्रता खो गई है और भारत जो कि कभी विश्वगुरू था, आज शिक्षा के क्षेत्र में रसातल पर हैं यदि गाँधीजी के शिक्षा दर्शन को ध्यान में रखा जाए तो भारत को अपने विश्वगुरू का पद प्राप्त करने में सहायता अवश्य मिलेगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 आलोक कुमार कश्यप एवं डॉ0 सुरेन्द्र पाल-मुस्लिम महिलाओं में शिक्षा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस प्रथम संस्करण 2012 पृ. 0-64-65
2. उपर्युक्त, पृ.0-65-66
3. शोध संदर्भ में प्रकाशित डॉ0 अखिलेश कुमार का शोध आलेख गुणयुक्त शिक्षण, Issue-6, VOL-19 June 2018, पृ0-176-77
4. सुरेश प्रसाद-शिक्षा और समाज (1765-1947) जानकी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014 पटना, पृ0-75
5. डॉ0 सत्यनारायण दूबे शरतेन्दु-भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास समस्याएँ, अनुभव पब्लिशिंग हाउस द्वितीय संस्करण, 2013, इलाहाबाद पृ0-130
6. उपर्युक्त, पृ0-131
7. श्याम सुन्दर शेखावत-भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास, श्रीकविता प्रकाशन, नवीन संस्करण, इलाहाबाद पृ0-139
8. डॉ0 ब्रजेश्वर प्रसाद सिंह-गाँधी दर्शन और भारतीय समाज जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2012 पटना प0-56
9. उपर्युक्त, पृ0-वही
10. उपर्युक्त, पृ0-57
11. उपर्युक्त, पृ0-वही
12. उपर्युक्त, पृ0-वही
13. डॉ0 जय कुमार मिश्रा (सं0)-21वीं सदी में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता, में प्रकाशित डॉ0 श्रद्धा सिंह शोध आलेख गाँधी जी के शिक्षा दर्शन का वर्तमान शिक्षा पद्धति में महत्व, प्रत्यूश पब्लिकेशन्स, प्रामि संस्करण 2012 दिल्ली, पृ0-105
14. उपर्युक्त, पृ0-106

सिंधुधाटी सभ्यता : नगर निर्माण का वैज्ञानिक और ज्यामितिय विश्लेषण

डॉ० रूबी कुमारी

शोधप्रज्ञ छात्रा, इतिहास विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर, दरभंगा

सिंधु या हड़प्पा संस्कृति उन अनेकों ताम्रपाषाण संस्कृतियों से पुरानी है, लेकिन यह उन संस्कृतियों से कहीं अधिक विकसित है। इस संस्कति का उदय ताम्रपाषाणिक पृष्ठभूमि में भारतीय उपमहादेश के पश्चिमोत्तर भाग में हुआ। इसका नाम हड़प्पा संस्कृति पड़ा क्योंकि इसका पता सबसे पहले 1921 में पाकिस्तान के प्रांत में अवस्थित हड़प्पा नामक आधुनिक स्थल में चला। सिंध के बहुत से स्थल प्राक्-हड़प्पीय संस्कृति का केंद्रीय क्षेत्र बने। परिणामस्वरूप वह संस्कृति परिपक्व होकर सिंधु और पंजाब में शहरी सभ्यता के रूप में परिणत हुई। इस परिपक्व हड़प्पा संस्कृति का केंद्रस्थल पंजाब और सिंध में, मुख्यत: सिंधु घाटी में पड़ता है। यहीं से इसका विस्तार दक्षिण और पूरब की ओर हुआ। इस पकार हड़प्पा संस्कृति के अंतर्गत पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान के भाग ही नहीं, बल्कि गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रदेश के सीमांत भाग भी थे। इसका फैलाव उत्तर में जम्मू से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने तक और पश्चिम में बलूचिस्तान के मकरान समुद्रतट से लेकर उत्तर-पूर्व में मेरठ तक था। यह समूचा क्षेत्र त्रिभुज के आकार का हैं इसका पूरा क्षेत्रफल लगभग 1, 299, 600 वर्ग किलोमीटर हैं अत: वह क्षेत्र पाकिस्तान से बड़ा तो है ही, प्राचीन मिश्र और मेसोपोटामिया से भी निश्चय ही बड़ा है। ईसा-पूर्व तीसरी और दूसरी सहस्राब्दी में संसार भर में किसी भी संस्कृति का क्षेत्र हड़प्पा संस्कृति के क्षेत्र से बड़ा नहीं था।[1]

अब तक इस उपमहादेश में हड़प्पा संस्कृति के लगभग 2800 स्थलों का पता लग चुका हैं इनमें कुछ हड़प्पा संस्कृति की आरंभिक अवस्था के हैं, कुछ परिपक्व अवस्था के और कुछ उत्तर अवस्था के है। किन्तु परिपक्व अवस्था वाले स्थलों की संख्या सीमित है और उनमें केवल सात को ही नगर की संज्ञा दी जा सकी है। इनमें दो सर्वाधिक महत्व के नगर थे-पंजाब में हड़प्पा और सिंध में मोहनजोदड़ों (अर्थात प्रेतों का टीला)। दोनों पाकिस्तान में पड़ते हैं। दोनों एक-दूसरे से 483 किलोमीटर दूर थे और सिंधु नदी द्वारा जुड़े हुए थे। तीसरा नगर सिंध में मोहनजोदड़ों से 130 किलोमीटर के करीब दक्षिण में चन्हहुदड़ों स्थल पर था और चौथा नगर गुजरात में खंभात की खाड़ी के ऊपर लोथल स्थल पर। पाँचवाँ नगर उत्तरी राजस्थान में कालीबांगा (अर्थात काले रंग की चूड़ियाँ) और छठा नगर बनावली, हरियाणा के हिसार जिले में था। कालीबंगा की तरह इसने भी दो सांस्कृतिक अवस्थाएँ देखी-हड़प्पा-पूर्व और हड़प्पाकालीन। कच्ची ईटों के चबूतरों सड़कों और मोरियों के अवशेष हड़प्पाकालीन हैं। इन छहों स्थलों पर परिपक्व और उन्नत हड़प्पा संस्कृति के दर्शन होते हें। सुतकागेंडोर और सूरकोटदा के समुद्रतटीय नगरों में भी इस संस्कृति की परिपक्व अवस्था दिखाई देती है। इन दोनों की विशेषता है एक-एक नगर-दुर्ग का होना। इसके अतिरिक्त, गुजरात के कच्छ क्षेत्र में अवस्थित घोलावीरा में भी किला है, और इस स्थल पर हड़प्पा संस्कृति की तीनों अवस्थाएँ मिलती हैं। ये तीनों अवस्थाएँ राखीगढ़ी में भी मिलती हैं जो घग्गर नदी पर हरियाणा में स्थित है और घोलावीरा से बड़ा है। उत्तर हड़प्पा अवस्था गुजरात के कठियावाड़ प्रायद्वीप में रंगपुर और रोजदी स्थलों पर पाई गई है।[2]

प्रत्येक पीढ़ी अपने वंशजों के लिए भवन छोड़ जाती है, जो सैकड़ों और हजारों वर्ष तक अपने युग की भावना अपने में लिये रहते हैं। भवनों की आयु उनके निर्माताओं की आयु से काफी अधिक लंबी होती है और वे पीढ़ियों को जोड़नेवाली कड़ी बनते है। भवनों में इस या उस युग में उत्पादन शक्तियों के विकास का स्तर प्रतिबिम्ति होता है। भवन हमें अपने युग की समाजिक व्यवस्था की, तत्कालीन लोगों के व्यवसायों, आदतों, उनकी आस्थाओं और दृष्टिकोणों की गाथा सुना सकते हैं। सिन्धु काल में नगरों एवं भवनों के निर्माण में तत्कालीन शिल्पकारों ने वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया।

सिन्धु नगरों का अभिविन्यास शतरंज पट की तरह होता था, जिसमें मोहनजोदड़ों की उत्तर-दक्षिणी हवाओं का लाभ उठाते हुए सड़कें करीब-करीब उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम को जाती थी। ऐसे सावधानीपूर्ण विन्यास के पूर्व भूतमि का समोच्च सर्वेक्षण (कंटूर-सर्वे) होता गया। मोहनजोदड़ों तथा लोथल, दोनों से लंबाई नापने का सीप का उपकरण तथा एक कांस्य-शलाका मिल है। इन मापक शलाकाओं में दो प्रणालियाँ हैं, फुट तथा हाथ। सीप में 13.2 इंच के माप की फुटप्रणाली है और कास्य-शलाका में करीब 20.7 इंच के माप की हाथ-प्रणाली है। [3]

दीवारों की लंबवत सीध मिलाने के लिए साहुलों का प्रयोग किया जाता था। सांचे में बनी ईटों से भी सीध मिलाई जाती थी।[4] मकान तथा अन्य भवन प्राय: आयताकार होते थे, अत: वास्तुकला एवं अधिक जटिल तकनीकों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। मकान की नींव सावधानी से बनाई जाती थी। दो नीवों के बीच ईटों की भराव की जाती थी। बाढ़ से संरक्षण हेतु या धार्मिक दृष्टिकोण से चबूतरे बनाए जाते थे।[5]

ईटें भूसे-जैसी किसी संयोजी समाग्री के बिना ही असाधारण रूप से सुनिर्मित मिली हैं। ये खुले सांचे में बनाई जाती थी तथा इनके शीर्ष पर लकड़ी का टुकड़ा ठोका जाता था, परंतु उनके आधार एकरूपत: कठोर हैं जिससे यह संकेत मिलता है कि वे धूलभरी जमीन पर बनाकर सुखाए जाते थे। चटाई पर बनी ईटें नहीं मिली हैं, जबकि नेवासा, टक्कलकोटा तथा साथ ही बुर्जहोम से प्राप्त बड़े-बड़े संचय-पात्रों पर चटाई के दाग हैं। ईट बनाने के लिए लवणहीन जलोढ़-मिट्टी का उपयोग होता था। वे अच्छी तरह पकाई जाती थी किन्तु अपने रंग में अनुपातित नहीं होती थी। ईटों के ऊपर पालतू पशुओं, कौओ, कुत्तों तथा बिल्लीर जैसे किसी पशु के पैरों के चिह्न मिलते हैं, जिससे अनुमान किया जाता है कि ईट बनाने का स्थान खुले में होता था। इसका साक्ष्य गुजरात के अंतर्गत देवनीमोरी में मिला है।[6]

स्नानगृहों की सतह एकरूपत: अच्छी तरह बनाई जाती थी तथा सही जोड़ एवं समतल के लिए ईट बहुधा आरे से काटी जाती थी। इसके अतिरिक्त, उन्हं रिसाव-रोधी बनाने के लिए जिपसम से पलस्तर किया जाता था। इस कार्य के लिए डामर (बिटुमन) के प्रयोग के प्रमाण भी मिलते हैं। सामान्यत: गारे के रूप में पंक का उपयोग होता था। कभी-कभी बढ़िया चिनाई के लिए चूने को जलाकर इसका उपयोग सीमेंट की तरह किया जाता था।[7]

अधिकांश दीवारों में ईटें हेडर (ईटों का लंबवतृ अभिन्यास) तथा स्ट्रेचर (ईटों का दीवार की मुटाई के साथ-साथ लंबवत अभिन्यास) के अनुक्रम में बिछाई जाती थी। स्नानगृह में, खासकर किनारों तथा कोनों को ठीक-ठीक बनाने के लिए आकारानुकूल ईटें काटी जाती थी। स्नान-सतह को एक कोने की ओर, जिधर पानी बहनेवाली नाली रहती थी, ढालू बनाया जाता था। जब स्नानकुंड पूरे कमरे में होता था तब दीवारों के आधारों की पार्श्वभिन्यस्थ ईटों की तख्ताबंदी करके रक्षा की जाती थी, जिसे स्नान-कुंड के फर्श से 2-3 इंच ऊपर लगाया जाता था।

कमरों का फर्श या तो पकी अथवा धूप में सूखी ईटों से या फिर जमीन को पीटकर बनाया जाता था। यद्यपि गलियों में पकी ईटों की बंद नालियाँ रहती थी, पर मोहनजोदड़ों अथवा हड़प्पा के नालियों पर ईटें नहीं बिछाई गई थी। कालीबंगन के उत्खनन से एक गली मिली है, जिस पर पकी मिट्टी के ढेलों तथा टूटी-फूटी मृण्मय पिंडिकाओं से फर्श किया मिलता है।[8] पकी ईटों से निर्मित बंद नालियाँ रिसाव-रोधी थी और एक सीध में बनी हुई एवं सड़क तथा गलीवाली नालियों की ओर ढालू होती थी। ऊपरी तल्ले से पानी की निकासी के लिए टोंटी तथा जोड़युक्त पकी मिट्टी के पाइप भी होते थे। यह विकसित तकनीक का द्योतक था।[9]

लोथल में प्राप्त नौकाघाट का माप उत्तर से दक्षिण 219 मीटर तथा पूर्व से पश्चिम 37 मीटर था। यह चारों तरफ से भट्ठे में पकी ईटों की दीवारों से घिरा था जिनकी अधिकतम ऊँचाई 4.5 मीटर थी। कांबे की खाड़ी में प्रवेश करनेवाले जहाज ज्वार-भाटे के समय 7 मीटर चौड़े तथा 2.5 किलोमीटर लंबे जलमार्ग से होकर घाट मं लगाए जाते थे। यह मार्ग प्रवेश मार्ग पर पूर्वी तट बंध से मिलता था। ज्वार-भाटे के तेज पानी के आते हुए प्रभाव को ईटों की बनी दो दीवारों से रोका जाता था, जो प्रवेश मार्ग के दोनों और होती थी। इससे पता चलता है कि जल-विज्ञान तथा समुद्रीय इंजीनियरी का अच्छा ज्ञान हड़प्पावासियों को था।[10]

सिंधु नगरों की गृह निर्माण योजना अत्यंत उत्तम है विविध प्रकार एवं आकार के आवास स्थल मिलते है। आंगन सहित एक कक्ष वाले घरों से लेकर कई कक्षों वाले मकान उपलब्ध हुए हैं। सामान्यत: मकान के मध्य में एक आंगन और आंगन के चारो ओर तीन, चार या पाँच कमरे, एक रसोई घर और एक स्नानागार बना होता था। हाल में ही सरसीना ने अपने अध्ययन में कहा है कि मोहनजोदड़ों के अधिकांश घरों में आंगन की स्थिति के चारों ओर पाँच आधारभूत अंग बनते थे। ये मकान औसतन 30 फीट 27 फीट के होते थे और विशेष प्रकार के भवन प्राय: इसके दुगने होते थे। कतिपय बड़े आकार के भवनों में तीस कमरे तक मिले हैं कुछ दो मंजिले भवनों के भग्नावशेष भी प्राप्त हुए हैं। इनमें ऊपरी मंजिल जाने हेतु अंदर से सीढ़ियों की व्यवस्था की गई थी। कुछ घरों में ऊपरी मंजिल में जाने के लिए बाहर की ओर से भी सीढ़ियाँ पायी गयी है।[11]

जल निकास की दृष्टि से स्नानाधर प्राय: गली की ओर स्थित होते थे। हड़प्पा के स्नानधरों की फर्स में अच्छी किस्म की पक्की ईटों का प्रयोग किया जाता था। फर्स को एक तरफ से ढलुअ रखा जाता था। ईटों की जुड़ाई में गारे-चुने की लिपाई ऐसी की जाती थी कि इनमें पानी नहीं रिस कसता था। कहीं-कहीं सेलखड़ी चूने का प्रयोग भी मिलता है। दो तलीय घरों में प्रथम तल भी स्नानागार के साक्ष्य मिले हैं। संपन्न लोगों के घरों में शौचालय भी बने होते थे। कतिपय भवन अवशेषों में प्राप्त शौचगार का स्थान प्राय: स्नान कक्ष तथा गली की ओर की दीवार के बीच में मिला है। इसमें भी पक्की चौकोर फर्स बनायी जाती थी।[12]

हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों दोनों ही नगरों के भवन पक्की ईटों से बने हैं। यद्यपि कच्ची ईटों का भी प्रयोग किया गया था। उनकी नाप 10.5 x 2.5 ईंच से लेकर 20.5 x 8.5 x 2.5 ईंच तक है। फर्स की जुड़ाई तथा अन्य विशेष कामों के लिए ईटों को छोटे टुकड़ों में लेते थे और इनके किनारों को घिसकर साफ कर लिया जाता था। बड़े कक्षों में पक्की ईटों के बने एक या अधिक स्तंभ मिले हैं जिन पर छत टिकी थी। सभी स्तंभ वर्गाकार हैं तथा ऊपर से नीचे तक एक ही माप के हैं। केवल एक स्तंभ ऐसा देखने में आया है जिसका वर्गाकार आधार तीन फीट नाप का है तथा ऊपर की ओर पतला होता हुआ ढाई फीट ही रह गया है। कालीबंगन के घरों की सतह में पकी ईटों व उनके टुकड़ों और कहीं-कहीं टाईल्स को भी लगाया गया है। जिस पर मुख्यत: वृत्ताकार डिजाइन बनी हैं इसी प्रकार की डिजाइन कोटदीजी से प्राप्त स्नानपात्र पर भी बनाई गयी थी। कुछ क्षेत्रों में स्तंभ गर्त के चिह्न प्राप्त हुए हैं। लोथल, रंगपुर और कालीबंगन में घरों के निर्माण में कच्ची ईटों का भी प्रयोग हुआ था। कुछ भवनों की दीवार पर पलस्तर के साक्ष्य भी मिले हैं। मकानों की छतों के विषय में साक्ष्यों का आभाव है। अनुमान है कि छतें समतल होती थीं तथा छातों पर घास-फूस बिछा कर ऊपर से मिट्टी छाप दी जाती थी।[13]

लोथल एवं कालीबंगन से सूचत कतिपय भवनाशेषों में अण्डाकार या आयताकार वेदी अथवा अग्किुण्ड के अवशेष मिले हैं। इनमें मिट्टी निर्मित बेलनाकार मूसल जैसे अवशेष एवं मृत्पिण्ड रखे मिले हैं। बहूत संभव है कि इनका धार्मिक प्रयोजन रहा हो। मोहनजोदाड़ों में कई जगह चूने के पत्थर के बने 16 ईंच से 19 ईंच ब्यास (वृताकार) तक के छल्ले मिले हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि लकड़ी के लम्बे लट्ठों में उन्हें पिरोकर स्तंभ का काम लिया जाता था। इसके विपरीत कुद अन्य विद्वान इन वृत्ताकार खण्डों का योनि के रूप में धार्मिक उद्देश्य मानते हैं।[14]

सड़कें एवं गलियाँ

वास्तुविधा के अनुसार दुर्ग के तीन प्राचीन (पूर्व-पश्चिम) और तीन उदीचीनी उत्तर-दक्षिण मार्ग होते थे। इस दुर्ग में चारों ओर तीन-तीन करके बारह द्वार होते थे। पानी के प्रबंध से युक्त भूमिच्छन्न पथ (सुरंगे) भी होती राजमार्ग और द्रोणमुख के भीतर के मार्ग, स्थानीय तक (नगरों तक) जानेवाले मार्ग, राष्ट्र के विवित (धुमते, चक्करवाले) पथ और व्यापारी मंडियों के मार्ग 8 दंड चौड़ा (32 हाथ), सुेबनपथ 4 दंड चौड़ा, हस्तिक्षेत्रपथ 2 दंड चौड़ा राजपथ 5 हाथ चौड़ा और पशुपथ 4 हाथ चौड़ा होता था। 2 हाथ चौड़े क्षुद्रपशुपथ और मनुष्यपथ होते थे।[15]

वीथियों और गलियों के किनारे पंक्तिबद्ध तरीके से दोनों ओर मकान बनाये गये थे। चौराहों के मोड़ों पर बने भवनों के कोने, घिसे हुए मिले हैं। अनुमान है कि या तो ये भारवही पशुओं की रंगड़ से घिसे होंगे या इस बात का ध्यान रखकर मूलत: ऐसे ही बनाये जाते थे। ये भवन आपस में सटे बने हैं, पर कभी-कभी दो मकानों के बीच लगभग एक फीट जगह छोड़ी गई है। प्रत्येक छोटी सड़क पर एक सार्वजनिक कुआँ होता था। इन सड़कों पर एक सुनिश्चित दूरी पर खंभे के प्रमाण मिले हैं जो संभवत: प्रकाश व्यवस्था के सूचक है। उचित स्थलों पर कूड़ेदान की भी व्यवस्था थी। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की सड़के कच्ची थी किन्तु कालीबंगन के उन्हीं उसी स्तरों में सड़कों को पक्का करने के लिए पक्की मिट्टी की ईटों के टुकड़ों का प्रयोग किया गया था लोथल नगर

कई भागों में विभक्त था। उत्तर से दक्षिण एक सड़क पर बाहर घड़ी की एक कतार मिली हैं जिनमें दुकानें होने की संभावना व्यक्त की गयी हैं ये दुकानें अलग-अलग प्रकार की थी।[16] कालीबंगन की सड़कों के किनारे नालियाँ ना होने के कारण सड़के पानी के प्रवाह से कट गयी थी।

नालियाँ-हड़प्पा की नाली बनाने की विधि अत्यंत उच्चकोटि की है। सैंधववासियों ने गंदे पानी के निकास हेतु समुचित प्रबंध किया था। मकानों में ऊपरी मंजिल से वर्षा तथा स्नानागार आदि का पानी गिरने के लिए पक्के परनाले बनाये गये थे, जो नीचे घर से आने वाली, छोटी मोरियों के साथ मिलकर एक बड़ी नाली द्वारा मुहल्ले के नाले से जुड़े थे। नालियों एवं मोरियों की ईट भी इस प्रकार बिछाई जाती थी कि उनमें पानी भरने की संभावना न रहे। बड़ी नालियों थेड़ी-थोड़ी दूरी पर भानुसभोखे में खुलती थी। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों से कुछ ऐसी नालियाँ मिली हैं जो सीधे सोख्ता गडडों में गिरती थी। समय-समय पर नालियों की सफाई भी होती थी। नालियों को प्रस्तर पाटियों से और छोटी नालियों को बड़े आकार की ईटों से ढका गया था। सीमांतों पर नगर के गंदे जल-निर्गमन के लिए विशाल नाले बनाये गये थे। ये नाले ढाई फीट चौड़े एवं चार फीट ऊँचे हैं जिनको ढंकने के लिए घोड़ियाँ या पट्टेदार मेहराब की चिनाई काममें लाई गई थी। लोथल में स्नानागरों के पीछे सोख्ता गर्त भी प्राप्त हुए है। कहीं-कहीं काष्ठ निर्मित नालियाँ भी सड़कों के किनारे मिली है। इनमें कोष्ठ को मध्य से काटकर नालियों का काम लिया गया है। स्वच्छता एवं सफाई का इतना अच्छा प्रबंध अन्यत्र दुर्लभ है।[17]

सार्वजनिक भवन

हड़प्पा संस्कृति के नगरों से कुछ ऐसे विशाल भगनावशेष मिले हैं जिनका संभवत: विशिष्ट सार्वजनिक महत्व रहा होगा। मोहन जोदड़ों में सड़कों के मुहानो पर ऐसी इमारतें निर्मित है जिनके बड़े कक्षों में पक्का फर्स किया गया हैं इसमें सूजापट्टी की ईटों के बने कटोरे जैसे उथले गड्डे जगह-जगह बने है। अनुमान है कि इसका प्रयोग सार्वजनिक भोजनालय अथवा ढाबे के रूप में होता था। इसकी पुष्टी दो मुख्य सड़कों के मिलने की जगह बने एक ऐसे भवन से होती है जिसमें सीढी से चढकर एक विशाल मण्डप में जाने का मार्ग है एवं उससे सटी रसोई घर है। पी.के. अग्रबालका मानना है कि इन भोजन गृहों में से कुछ का उपयोग विशिष्ट लोंगो की सभा के लिए होता था।

मोहनजोदड़ों में ही नगर के उत्तर भाग में राजपथ के उत्तर की ओर एक विशिष्ट भवन के अवशेष मिले हैं जिसकी माप 24. 2 x 1.12 फीट है। इसकी बाह्य दीवार 5 फीट से भी अधिक मोटी है। इसमें प्रवेश द्वार दक्षिण एवं पश्चिम की ओर है। इसके उत्खाता के अनुसार यह एक विशाल महल का भवनावशेष प्रतीत होता है।[18]

इसके दक्षिण में 220 x 115 फीट आकार की एक और विशाल इमारत के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस इमारत में दो विशाल मण्डप है जिनके मध्य 5 फीट का बरामदा है। इसके चारों ओर कक्ष बने है जिनकी पहचान विद्वानों ने नौकरों की कोठरियों और भाण्डागारों से की है। मोहन जोदड़ों के डी.के. क्षेत्र से एक विशाल भवन के अवशेष ज्ञात है जिसे विद्वानों यात्रियों के लिए पंथागार या आवास भी के रूप में अभिज्ञात किया हैं इस भवन की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका मंडप अंग्रेजी के एल आकार का है जिसमें दीवार के निचले हिस्सों पर छत की भारी धरने टिकती थी ये हिस्से स्वयं चारों ओर की वीथी बनाते थे। इस प्रकार हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों से उपलब्ध विभिनन प्रकार के सार्वजनिक भवन उनकी लोकप्रियता को सुस्पष्ट करते है।

मोहनजोदड़ों से ही परकोटे के दक्षिण भाग में 10 फीट के एक विशाल वर्गाकार भवन के अवशेष मिले हैं। इसकी छत 20 चौकार खम्बों पर टिकी हुई थी जो 5-5 के समूह में चार कतारों में विभक्त थे। स्तंभों के मध्य से चार गलियारे उत्तर से दक्षिण की ओर जाते थे जिनकी भूमि पर ईटें बिछाई गई थी। 5-6 चौड़ी एक पट्टी उत्तर से दक्षिण में छोड़ दी गई थी। विद्वानों का अनुमान हैं कि इन खाली पट्टियों पर लम्बी-लम्बी आसन पट्टिकाएं लगाई जाती थी। मार्शल का सुझाव है होगी। कुछ विद्वानों ने इसे धर्म सभा-भवन के रूप में अभिज्ञात किया है तो कुछ अन्य विद्वान इसे राजकीय आपण या मण्डी कहते हैं। पी.के. अग्रवाल इसे राजसभा या सभागार मानते हैं। महाकुण्ड के उत्तरी-पूर्वी तरफ एक बहुत लम्बी इमारत मिली है जिसकी नाप 230 x 78 फीट है। इसे विद्वानों ने किसी उच्च पदाधिकारी (संभवत: मुख्य पुरोहित) के आवास के रूप में पहचाना हैं वहीं आल्चिन ने इसकी पहचान कॉलेज के रूप में की है। इसके अलावा मोहनजोदड़ों, हड़प्पा, कालीबंगन आदि सैंधव नगरों से प्राप्त विभिन्न भवनावशेषों की पहचान के विषय में पर्याप्त मतभेद है।[19]

विशाल स्नानागार

मोहनजोदड़ों का अब तक का सबसे प्रसिद्ध स्थल है विशाल सार्वजनिक स्नानागार, जिसका जलाशय दुर्ग के टीले में हैं। यह ईटों के स्थापत्य का एक सुंदर उदाहरण है। यह 11.88 मीटर लंबा, 7.01 मीटर चौड़ा और 2.43 मीटर गहरा है। दोनों सिरों पर तल तक जाने की सीढ़ियाँ लगी है। बगल में कपड़े बदलने के कमरे है। स्नानागर का फर्श पकी ईटों का बना हैं पास के कमरें में एक बड़ा-सा कुआँ है जिसका पानी निकालकर हौज में डाला जाता था। हौज के कोने में एक निर्गम हैं जिससे पानी बहकर नाले में जाता था। ऐसा माना जाता है कि यह विशाल स्नानागार धर्मानुष्ठान संबंधी स्नान के लिए बना होगा जो भारत में पारंपरिक रूप से धार्मिक कार्यो के लिए आवश्यक रहा है।[20]

डॉकयार्ड अथवा गोदी: सन् 1958-59 ई0 में उत्खनन के दौरान लोथल नगर के विशाल डॉकयार्ड, गोदी या बंदरगाह के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह बंदरगाह हड़प्पा संस्कृति का सर्वाधिक बृहद बंदरगाह था। इसका आकार विषम-समचतुर्भुज जैसा है जिसके पूर्वी तथा पश्चि.मी पुश्ते 710 फीट लम्बे तथा उत्तरी व दक्षिणी फीट है। इसकी रचना ऐसी की गई थी कि पानी के चढ़ाव के समय पुर्वी ओर के रास्ते से जहाज गोदी या बंदरगाह के भीतर आ सकते थे। दक्षिण की तरफ अधिक पानी के निकास हेतु एक उत्क्रमण कुल्या है जिसके मुहाने पर दरवाजे फंसाने के खांचे बने है। अंत में सिरे पर बनी सोपान नुमा मेड़ द्वारा इच्छित स्तर तक पानी रोक रखने की सुविधा भी थी।

पुरातात्विक स्तरीकरण के आधार पर इसका संबंध प्राचीन साबरमती नदी से जोड़ा गया हैं एस.आर. राव आदि विद्वानों ने इसे बंदरगाह के रूप में अभिज्ञात किया हैं जहाँ समुद्री जहाज आकर रूकते थे। अपने कथन की पुष्टि के लिए उपर्युक्त विद्वानों ने इस डॉकयार्ड पर बने बाँध मिट्टी के क्षारीय स्वभाव नजदीक प्राप्त पाँच बृहद पाषाण खण्ड जो नावों को बांधने की उपयोग में लाये जाते रहे होगे आदि साक्ष्यों का सहारा लिया है। लैसनिक महोदय इसे मीठे पानी के संग्रह का हौज मानते हैं।

संदर्भ

1. डॉ0 रामशरण शर्मा-प्रांरभिक भारत का परिचय, ओरियंट लॉग्मैन प्रा0लि0 2004 नई दिल्ली, पृ0-76
2. पूर्वोक्त, पृ0-वही
3. एच0 डी0 संकसलिया-भारत में प्रागैतिहसिक प्रौद्योगिकी, अनु0-सीता राम राय पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, आमुख, पृ0-
4. ई0 जे0 एच0 मैके-फर्दर एक्सवलेशंस एट मोहनजोदड़ो, जिल्द-1 दिल्ली 1938, पृ0-175
5. पूर्वोक्त, पृ0-वही
6. पूर्वोक्त, पृ0-वही
7. डॉ0 प्रतीक गौरव-प्रचीन भारत में विज्ञान, नोवेल्टी एण्ड कंपनी, 2006 पटना पृ0-62
8. पूर्वोक्त, पृ0-63
9. पूर्वोक्त, पृ0-वही
10. पूर्वोक्त, पृ0-वही
11. अरबिन्द कुमार सिंह एवं शिवकांत द्विवेदी-भारतीय वास्तु तथा कला के मूल तत्व, मध्यप्रदेश, हिंदी ग्रंथ अकादमी 2005, भोपाल, पृ0-05
12. पूर्वोक्त, पृ0-06
13. पूर्वोक्त, पृ0-वही
14. पूर्वोक्त, पृ0-वही
15. डॉ0 प्रतीक गौरव-प्राचीन भारत में विज्ञान, नीवेल्टी एण्ड कंपनी, 2006 पटना पृ0-67
16. अरबिन्द कुमार सिंह एवं शिवकांत द्विवेदी-भारतीय वास्तु तथा कला के मूल तत्व, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी 2005 भोपाल पृ0-07
17. पूर्वोक्त, पृ0-वही
18. पूर्वोक्त, पृ0-वही
19. पूर्वोक्त, पृ0-09
20. जसवन्त यादव-प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौधोगिकी राव प्रकाशन 2012 नई दिल्ली पृ0-07

पैसिव रेजिस्टेंस एवं सत्याग्रह का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० अर्चना कुमारी

अतिथि शिक्षक, राजनीतिशास्त्र विभाग,
ए०पी०एस०एम० कालेज, बरौनी

भारतीय सन्दर्भो में जहाँ बुद्ध अवतरण एवं उनका सन्देश स्वमेव एक क्रान्ति है वही, एतदश्यप्रसूत गाँधी का दलित मानव स्वातन्त्रय हेतु किया गया सत्याग्रह एक प्रतिक्रान्ति है। महात्माबुद्ध ने जहाँ मानव मात्र को बौद्धिक एवं चिन्तन की स्वतन्त्रता प्रदान की, वही गाँधी ने साम्राज्यवादी दासता से सहस्त्रों मानवों को मुक्ति का सन्देश दिया। बुद्ध के पूर्व भी औपनिषदिक चिन्तक वैचारिक क्रान्ति का निर्देशन कर रहे थे, परन्तु उसे विश्व-पटल पर वैज्ञानिक आधार बुद्ध ने दिलाया, यद्यपि गाँधी से पूर्व भारतीय स्वतंत्रता हेतु प्रयास किए जा चुके थे, राष्ट्रीय नेता ब्रिटिश दासता से त्राण पाने हेतु चेष्टित थे, किन्तु उनकी चेष्टाएं सर्वादेशिकता नहीं प्राप्त कर पा रही थी। उनका संघर्ष बौद्धिक असतोष के रूप में प्रस्फुटित प्रान्तीय सीमा तक ही परिसीमित था, किन्तु गाँधी के पदार्पण के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जनान्दोलन में परिणित होकर पूर्णतः राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त कर लिया। इसका स्वरूप एकपक्षीय न होकर बहुपक्षीय था। इसकी यही प्रकृति इसे पूर्व प्रयासों से सर्वथा पृथक करती हैं भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व राजनीतिक आदर्शो के निमित गाँधी की ओर उन्मुख हुआ। यह भी सत्य है कि गाँधीवादी पद्धति विश्व हेतु सर्वथा नवीन नहीं थी, परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत तो महात्मागाँधी ने ही किया। [1]

दक्षिण अफ्रीका मानव स्वातंत्रय हेतु गाँधी जी का कार्यक्षेत्र बना। प्रारम्भ में इस क्रान्ति का स्वरूप सामाजिक न्याय एवं समानता हेतु संघर्ष का रहा। यहाँ सफलता प्राप्ति के अनन्तर लिया, जिसे इतिहास की अनन्यतम पद्धति कहा जा सकता है। इसमें लाखों भारतीयों का अहिंसक बल एक अजस्त्र धारा में प्रस्फटित हुआ, जिसने विश्व की विशालतम साम्राज्यवादी शक्ति को धूल चटा दी।[2]

गाँधी ने यह विचार भी स्पष्ट किया है कि सत्याग्रह का विचार उनके मन में कैसे आया, किस प्रेरणा से उत्पन्न हुआ। गाँधी के शब्द हैं, सत्याग्रह के महत्व और उपयोग का अहसास पहले-पहल मुझे न्यू टेस्टामेंट से हुआ। भगवतद्गीता ने मेरे इस विचार को अधिक दृढ़ कर दिया और टॉल्सटॉय के ईश्वर का राज्य तुम्हारे हृदय में ही है ने विचार को स्थाई रूप दे दिया। यह भी सच है कि गाँधी जी अनाक्रामक प्रतिरोध शब्द को नापसंद करते थे लेकिन फिर भी स्वीकार कर लिया। गाँधी ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा बहुत दिनों से इस शब्द से प्रकट होने वाले विचार को कार्यरूप में परिणत करनेवाले लोग इसी शब्द का व्यवहार करते हैं। आत्मबल शब्द से यह विचार पूर्णतया और अधिक उत्तम रूप व्यक्त होता हैं ईसामसीह, डेनियल और सुकरात ने अनाक्रामक प्रतिरोध या आत्मबल को शुद्धतम रूप में प्रकट किया था। ये सभी गुरू अपनी आत्मा की तुलना में अपने शरीर को तुच्छ समझते थे। टॉल्सटॉय इस सिद्धांत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे। उन्होंने न केवल इसकी व्याख्या की बल्कि तदनुसार अपना जीवन-क्रम भी ढ़ाला।[3]

गाँधी जी ने काफी विचार-मंथन के बाद पाया कि अहिंसा के संदर्भ में टॉल्सटॉय प्रथम कोटि के युग-पुरुष हैं। उनके चिंतन और सृजन का पूरा पाठ या टेक्स्ट अहिंसा पर केंद्रित है। उनके चिंतन का बीजमंत्र है, अहिंसा दूसरों का नाश नहीं करती बल्कि उसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए एकदम अनिवार्य बना देती है। महावीर बुद्ध और टॉल्सटॉय सब योद्धा थे। इन लोगों ने अपने काम का बहुत ही गहन और सच्चा स्वरूप देख लिया था और सच्च प्रसन, प्रतिष्ठित और एक देवी जीवन का रहस्य जान लिया।[4]

दक्षिण अफ्रिका मानव स्वतंत्रय हेतु गाँधीजी का कार्य क्षेत्र बना। प्रारंभ में इस क्रांति का स्वरूप सामाजिक न्याय एवं समानता हेतु संघर्ष का रहा। दक्षिण अफ्रिका में गाँधी के आंदोलन के लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' इस्तेमाल किया जात था। गाँधीजी का कथन है 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अर्थ भी मैं पूरी तरह नहीं समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तु का जन्म हुआ है। लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों पैसिव रेजिस्टेंस नाम से उलझन पैदा होने लगी और इस महान युद्ध का अंग्रेजी नाम से ही परिचय देना मुझे लज्जाजनक जान पड़ा। फिर कौम की जबान पर यह शब्द चढ़ भी हीं सकता था। अत: इंडियन ओपिनियन में सबसे अच्छा नाम ढूंढ निकालने वाले के लिए छोटे-से इनाम की घोषणा की। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्ध के अर्थ की इंडियन ओपीनियन में भली-भाँती चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालों के पास खेज के लिए काफी मसाला हो गया था। मगनलाल गाँधी ने भी इस प्रतियोगिता में भाग लिया। उन्होंने सत्याग्रह नाम भेजा।[5] इस शब्द को पसंद करने के कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिन्दुस्तानी कौम का यह आन्दोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह सद अर्थात शुभ हैं इसलिए यह नाम पसंद किया। उनकी दलील का सार मैंने थोड़े में दिया हैं मुझे यह नाम रूचा। फिर भी जिस वस्तु का समावेश मैं करना चाहता था उसका समावेश उसमें नहीं होता था। इसलिए मैंने 'द' को 'त' और उसमें 'य' जोकर सत्याग्रह नाम बनाया। सत्य में शांति का अंतर्भाव माना और आग्रह में बल का भी समावेश किया, और भारतीय आंदोलन को सत्याग्रह अर्थात शांति से उत्पन्न होने वाले बल के नाम से पुकारना शुरू किया। तभी से इस संग्राम के लिए पैसिव रेजिस्टेंस शब्द का उपयोग बंद कर दिया गया, यहाँ तक कि अंग्रेजी लेखों में भी पैसिव रेजिस्टेंस का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले सत्याग्रह या कोई दूसरा अंग्रेजी शब्द लिखना आरंभ किया। इस प्रकार जिस वस्तु का परिचय सत्याग्रह के नाम से दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नाम का जन्म हुआ।[6]

आंदोलन ज्यो-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों अंग्रेजी को भी उसमें दिलस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रांसवाल के अंग्रेजी अखबार आमतौर से खूनी कानून के पक्ष में ही लिखते थे और गोरों के विरोध का समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशी से उसको छापते थे। भारतीय सरकार के पास जो अर्जियां भेजते उन्हें भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बड़ी सभाओं में कभी-कभी अपने रिर्पोटर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिर्पोट हम लिखकर भेज देते वही छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनता के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आंदोलन बढने पर कुछ प्रमुख युरोपियन भी उसमें रस लेने लगे इन मुखियों में जोहान्सबर्ग के लखपती मि0 हॉस्किन भी थे। इनमें वर्ण-द्वेष तो आदि से ही नहीं था। पर आंदोलन आरंभ होने के बाद हिन्दुस्तानियों के मसले से उन्हें गहरी दिलचस्पी हो गई। जर्मिस्टन नाम का एक नगर है जो जोहान्सबर्ग का उपनगर सा है। वहाँ के गोरों ने मेरा भाषण सुने की इच्छा प्रकट की। सभी हई। मि0 हॉस्किन ने उसमें हमारे आंदोलन का और मेरा परिचय देते हुए कहा-ट्रांसवाल के भारतीयों ने न्याय प्राप्ति के लि दूसरे उपाय निष्फल हो जाने पर पैसिव रेजिस्टेंस का अवलंबन किया हैं उन्हें चुनाव में मत देने का अधिकार नहीं। उनकी संख्या थोडी हैं वे निर्बल हैं, उनके पास हथियार नहीं। इसलिए उन्होंने पैसिव रेजिस्टेंस का जो निर्बलों का हथियार है, ग्रहण किया है। यह सुनकर मैं चौंका और जो भाषण करने मैं गया था, उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि0 हॉस्किन की दलील का खंडन करते हुए मैंने पैसिव रेजिस्टेंस को सोल-फोर्स यानी आत्मबल बताया। इस सभा में मैंने देखा कि पैसिव रेजिस्टेंस शब्द के उपयोग से भयानक भ्रम होने की संभावना ने ही और विचार करके मि0 कर्टिस की शास्त्रीय सरकारी पक्ष का कहना था कि सरकार ने भारतीयों के आंदोलन के कारण नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से विचार करके ही यह निश्चय किया हैं चाहे जो हो पर भारतीय जनता ने तो काकतालीय न्याय से यह मान ही लिया कि यह उसके आंदोलन का ही फल है और इससे लड़ने का उत्साह बढ़ा।[7]

प्रस्तुत आलेख में मैंने तो केवल पैसिव रेजिस्टेंस और सत्याग्रह के बीच के अंतर को ही समझाने की प्रयास की हूँ। हमने यह देख लिया कि दोनों शक्तियों के बीच मूल में ही बहुत बड़ा अंतर है। इस भेद को समझे बिना अपने-आपको 'पैसिव रेजिस्टेंस' या सत्याग्रही माननेवाले दोनों को एक ही चीज मान ले तो यह दोनों के साथ अन्याय है और इसके बुरे नतीजे भी होगें। गाँधी जी के अनुसार हम खुद दक्षिण अफ्रिका में पैसिव रेजिस्टेंस शब्द का उपयोग किया करते थे। उसमें मताधिकार के लिए लड़नेवाली स्त्रियों की वीरता और आत्मबल का हम पर आरोप करके हमें यश देने वाले बहुत थोड़े होते, पर हम भी उन स्त्रियों की तरह हृदय के सच्चे मित्र ने भी हमें कमजोर मान लिया। विचार में यह बल है कि मनुष्य अपने-आपको जैसा मानता है अंत में वैसा ही बन जाता हैं हम यह मानते रहें कि हम निर्बल है, इस लिए निरूपाय होकर पैसिव रेजिस्टेंस का उपयोग कर रहे हैं और दूसरों से भी यही मनवाया करें तो पैसिव रेजिस्टेंस करते हुए हम कभी बलवान हो ही नहीं सकेंगे और मौका मिलते ही इस निर्बलों के हथियार

को फेंक देंगे। इसके विपरीत अगर हमसे सत्याग्रही हो और अपने-आपकों सबल मानकर इस ताकत को इस्तेमाल करें तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते है। बल के विचार का पोषण करते हुए हम दिन-दिन अधिक बलवान होते और इस शक्ति का उपयोग छोड़ देने का मौका हम कभी ढूंढते ही नहीं। फिर पैसिव रेजिस्टेंस में जहाँ प्रेम भाव का अवकाश नहीं, वहाँ सत्याग्रही वैरभाव के लिए अवकाश नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि वह अधर्म माना जाएगा। पैसिव रेजिस्टेंस में मौका मिले तो शस्त्र-बल का उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रह में शस्त्र बल के उपयोग के लिए अच्छे से अच्छे अवसर उपस्थित हो तो भी वह सर्वथा त्याज्य है। पैसिव रेजिस्टेंस अक्सर शस्त्र बल के उपयोग की तेयारी समझा जाता है। सत्याग्रह का उपयोग इस रूप में किया ही नहीं जा सकता। 'पैसिव रेजिस्टेंस' हथियार की ताकत के साथ-साथ चल सकता हैं सत्याग्रह तो शस्त्रबल का नितांत विरोधी है इसलिए दोनों का मेल कभी मिल नहीं सकता। सत्याग्रह का उपयोग अपने प्रियजनों के साथ भी हो ही नहीं सकता है, पैसिव रेजिस्टेंस का उपयोग वस्तुत: प्रियजनों के साथ हो ही नहीं सकता, अर्थात प्यारों को बैरी मानिए तभी उसके साथ पैसिव रेजिस्टंस किया जा सकता हैं पैसिव रेजिस्टेंस में विपक्ष को दुख देने, हैरान करने की कल्पना सदा विद्यमान रहती और उसे दुख देते हुए खुद कष्ट सहना पड़े तो उसे सह लेने को तेयार रहना चाहिए। पर सत्याग्रह में विरोध को दुख देने का ख्याल तक नहीं होना चाहिए। उसमें तो स्वयं दुख को मोल लेकर सहकर विरोधी को जीत लेने की ही बात सोची जानी चाहिए।[8]

इस प्रकार गाँधीजी ने इन दो शक्तियों के बीच के मुख्य भेद गिना दिए। आगे गाँधीजी कहते हैं, मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि पैसिव रेजिस्टेंस के जो गुण-या दोष मैंने गिनाए हैं, वे हर प्रकार के पैसिव रेजिस्टेंस में पाये जाते हैं। पर यह दिखाया जा सकता है कि पैसिव रेजिस्टेंस के बहुतेरे उदाहरणों में ये दोष देखने आये हैं। मुझे यह भी बता देना चाहिए कि ईसा मसीह को बहुत से ईसाई 'पैसिव रेजिस्टेंस' के आदि-नेता के रूप में मानते हैं, पर वहाँ तो पैसिव रेजिस्टेंस का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इस अर्थ में पैसिव रेजिस्टेंस के अधिक उदाहरण इतिहास में नहीं मिलते। टॉल्सटॉय ने रूस के दूखोबोर लोगों की मिसाल दी है। वह ऐसे ही पैसिव रेजिस्टेंस यानी सत्याग्रह की है। हजरत ईसा के बाद हजारों ईसाईयों ने जो जुल्म बर्दाश्त किए हैं उस वक्त पैसिव रेजिस्टेंस शबद का उपयोग होता ही नहीं था। अत: उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते हैं उन्हें मैं तो सत्याग्रह ही कहूँगा और अगर आप उन्हें पैसिव रेजिस्टेंस की मिसाल माने तो पैसिव रेजिस्टेंस और सत्याग्रह में कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकार मेरा उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजी में पैसिव रेजिस्टेंस शब्द का व्यवहार आमतौर से जिस अर्थ में होता, सत्याग्रह की कल्पना उससे बिल्कुल जुदी है।[9]

जिस प्रकार महात्मा गाँधी पेसिव रेजिस्टेंस के लक्षण गिनाते हुए, शक्ति का उपयोग करनेवाले के साथ किसी भी रीति से अन्याय न हो इस ख्याल से चेतावनी देते है वैसे ही सत्याग्रह के गुण गिनाते हुए यह कहते है कि जो लोग अपने-आपको सत्याग्रही कहते हैं उनकी ओर से मैं उन सारे गुणों का दावा नहीं करता। मैं इस बात से अनभिज्ञ नहीं हूँ कि सत्याग्रह के जो गुण मैंने ऊपर बताये हैं उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान है। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलों का हथियार है। कितनों के मुंह से मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शस्त्र-बल से काम लेने की तैयारी हैं पर मुझे फिर से कह देना चाहिए कि सत्याग्रही किन गुणों से युक्त दिखने में आते हैं यह मैंने नहीं बताया है, बल्कि दिखाने का यत्न किया है कि सत्याग्रह की कल्पना में कौन-कौन सी बातें हैं और उसके अनुसार सत्याग्रही को कैसा होना चाहि। सत्याग्रही सत्य की विजय अपने वर्तमान शरीर में देखने के लिए अधीर नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि नश्वर शरीर के नष्ट होने के बाद भी आत्मा जीवित रहती हैं वास्तव में सत्याग्रही की जीत उस समय होती है जब वह अपने विरोधी के सत्य के दर्शन कराने के प्रयास में मारा जाता हैं हर सत्याग्रही का अस्त्र है, ईश्वर उसे चाहे किसी नाम से पुकारे। बिना ईश्वर के सत्याग्रही अपने विरोध के प्रचंड शस्त्रास्त के सामने निशस्त्र हो जाता है, किन्तु ईश्वर को अपने रक्षक के रूप में स्वीकार करते वह सर्वशक्तिमान पार्थिव, शक्ति के सामने भी वह नहीं झुकता है।[10] सत्याग्रही के संबंध में महात्मा गाँधी का कथन है, सत्याग्रही होना है तो आसान, पर जितना आसान है उतना ही मुश्किल भी है। चौदह वर्ष के बालक को सत्याग्रही बनते मैंने देखा हैं रोगी को भी सत्याग्रही होते हुए देखा है और यह भी देखा है कि जो लोग शरीर से तगड़े और दूसरी तरह से सुखी थे वे सत्याग्रही नहीं हो सके। मैंने देखा है कि जो लोग देश सेवा के लिए सत्याग्रह को अपनाना चाहते हो उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए सत्य का व्रत लेना चाहिए और निर्भय भी बनना चाहिए। [11]

गाँधीजी ने सत्याग्रह को समाज परिवर्तन की पद्धति के रूप में स्वीकार किया हैं इनका सत्याग्रह दर्शन और सत्य के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ हैं सत्याग्रह की पद्धति से व्यक्ति और समाज की सभी प्रकार की अन्तर्निहित बुराइयाँ तथा आपसी संघर्षो का प्रतिकार अहिंसक तीरके से हल किया जाता हैं सत्य के पुजारी का यह पुनीत कर्तव्य है कि सत्य की कसौटी अथवा उसके

आधारों की रक्षा करें। सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास में गाँधीजी को छोड़कर किसी दूसरे ने इसका प्रयोग इतना व्यापक ढ़ंग से आज तक नहीं किया इसलिए दावे के साथ कहा जा सकता है कि समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में गाँधीजी की यह अमूल्य देन हैं प्रचलित भाषा में सत्याग्रह का अर्थ अहिंसात्मक प्रतिरोध से लिया जा सकता हैं लेकिन सत्याग्रह केवल अहिंसक प्रतिरोध के विभिन्न रूपों-असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, धरना तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सत्याग्रह अहिंसात्मक प्रतिरोध से कही व्यापक है। इसका शाब्दिक अर्थ है-सत्य को मानकर किसी दूसरे वस्तु के लिए आग्रह करना अथवा सत्य और अहिंसा से उत्पन्न होने वाला बल। सर्वोच्य सत्य है आध्यात्मिक एकता और उसकी प्राप्ति का एकमात्र मार्ग अहिंसक होना अर्थात सबसे प्रेम करना और सबके लिए कष्ट सहना। सत्याग्रह सत्य के लिए तपस्या है और इस व्यापक अर्थ में इसके अंतर्गत सबविधायक सुधारों तथा सवैधानिक सेवा के कार्यों का समावेश हो जाता है।[12]

गाँधीजी का सत्याग्रह एक आदर्श है, कर्मयोग का एक व्यवहारिक दर्शन है और एक क्रियाशील अवधारणा है जिसकी परीक्षा गाँधीजी ने समाज के हर क्षेत्र में की और उन्हें सफलता भी मिली। सब प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के विरूद्ध आत्मबल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह एक आध्यात्मिक तरीका है जिसमें अपने अत्याचारियों के विरूद्ध द्वेष भाव न रखते हुए अपने अन्तरात्मा की आवाज का अनुसरण किया गया है और किसी भी परिस्थिति में सत्य के प्रतिपादन से पीछे नहीं हटा जा सकता हैं यदि सत्याग्रही की संघर्ष में मृत्यु भी हो जाए तो भी उसका अन्त नहीं होता है, बल्कि विरोधी को सत्य के दर्शन कराने के लिए कभी-कभी सत्याग्रही का मरना आवश्यक हो जाता हैं गाँधीजी का कहना था कि सत्याग्रही विचार और व्यवहार के विभेद से बचते हुए आत्मानुशासन तथा लोकाशासन से बंधा रहता है। जनता जर्नादन की सेवा का आजीवन व्रत लेना सत्याग्रही का श्रेष्ठ संकल्प है। सत्याग्रही का उद्देश्य है विरोध का अंत करना न कि विरोधी का। इस आदर्श की पूर्ति तभी संभव है जबकि व्यक्ति खुद अहिंसा के मार्ग पर चले। सत्याग्रह का संबंध मनुष्य के आन्तरिक चरित्र से है। आंतारिक चरित्र के अभाव में सत्याग्रह प्रभावहीन हो जाएगा। सत्याग्रह-सत्य आग्रह से निर्मित सामाजिक शब्द है जिसका अर्थ सत्य का आग्रह है, इसलिए सत्य के अर्थ में भी कुछ भिन्नता दिखाई पड़ती है। जयन्तनुजा बन्धोपाध्याय ने गाँधीजी के सत्य को तथ्य और मूल्य दो अर्थों में लिया हैं मूल्यात्मक अर्थ में सत्य न्याय का सूचक हैं अत: सत्य का अर्थ हुआ न्याय का आग्रह।[13]

इसी प्रकार डाक्टर सुगतदास गुप्ता सत्य को मौलिक धारणा नहीं मानकर इसे एक सामाजिक व्युत्पन्न वस्तु मानते है। उनके मतानुसार मौलिक धारणा अहिंसा है जिसका अर्थ है अशोषण। अत: सत्याग्रह सामाजिक सत्य के रूप में अशोषण के लिए अहिंसक प्रक्रिया हैं परंतु जब हम इस पर पूर्ण गहराई से विचार करते हैं तो ये दोनों अर्थ उतनी गहराई तक नहीं पहुँच पाते हैं जितना कि गाँधीजी ने इसे स्वीकार है। गाँधीजी ने सत्याग्रह को सत्यशक्ति के रूप में स्वीकार किया हैं सत्य का अर्थ उन्होंने आत्मा से लिया हैं अत: सत्याग्रह के संबंध में हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह एक प्रक्रिया है जिसमें आत्मशक्ति और प्रेमशक्ति का विकास होता हैं न्याय और अशोषण आत्मशक्ति तथा प्रेम शक्ति के विकास के लिए एक आवश्यक शर्त हैं लेकिन न्याय और अशोषण अन्तिम रूप से आत्मशक्ति में विलिन हो जाते हैं। इन दोनों की अपनी कोई सत्ता नहीं है, लेकिन आत्मशक्ति और प्रेमशक्ति अपने आप में पूर्ण है, तथा पूर्ण अर्थ रखते हैं। इसलिए यह स्वत: साध्य हैं सत्याग्रह एक प्रायोगिक शब्द है, जिसे हर मानव इसका प्रयोग समाज के साथ-साथ कर सकता है। आर्नयनेस ने सत्याग्रह के चार अर्थो पर विचार किया है।[14]

एक अर्थ में सत्याग्रह उस सामूहिक आंदोलनात्मक पद्धति का नाम है जिसे गाँधी ने स्वाधीनता अभियान में अपनाया। दूसरे अर्थ में यह गाँधी के कार्यो में अंतर्भूत सिद्धांत की ओर इशारा करता है। इस अर्थ में सत्याग्रह अहिंसक साधन का शक्ति या उसका पर्यायवाची है।

तीसरे अर्थ में यह उन सभी संभव अहिंसक पद्धतियों का सामान्य नाम है जिसे चाहे गाँधी ने अपनाया था या नहीं। इस व्यापक अर्थ में गाँधी का सत्याग्रह अहिंसक प्रतिकार का ही एक भेद है जिसे गाँधी ने विशेष परिस्थिति में अपनाया। इसका प्रयोग सामूहिक संघर्ष में सबसे शक्तिशाली शक्ति हैं अत: सत्याग्रही इसका प्रयोग तब करता है जब सभी साधन विफल हो जाते हैं। चौथे अर्थ में सत्याग्रह के प्रयोग के पहले सभी संभव प्रयत्नों से प्रतिपक्षी को समझाने का प्रयत्न किया जाता है।

सत्याग्रह सामूहिक संघर्ष की प्रतिक्रिया का नाम है। यह एक ऐसा शब्द है जो राजनैतिक तथा सामाजिक संघर्ष में खासकर के गाँधीवादी दृष्टिकोण का सूचित करता है।

अब यदि नैयस की सारी बातों पर विश्लेषण किया जाय तो उनका विचार एकांगी लगता है। पहली बात तो यह है कि सत्याग्रह का प्रयोग गाँधी ने सामूहिक संघर्ष के अर्थ में ही नहीं बल्कि घरेलू प्रश्नों के संबंधों में भी किया था। एक बार जब उन्होंने कस्तूरबा से दाल और नमक परहेज करने के लिए कहा तो इस पर कस्तुरबा ने इस कार्य को स्वयं करने के लिए गाँधी का ललकारा। गाँधी

ने बिना किसी डाक्टर की सलाह के एक साल के लिए नमक और दाल का परित्याग कर दिया। यह घटना घरेलू जीवन में सत्याग्रह के उदाहरण को ही दर्शाता हैं इन सारी बातों से यह सिद्ध होता है कि सत्याग्रह केवल सामूहिक संघर्ष और प्रतिकार की पद्धति ही नहीं है, बल्कि इसका संबंध व्यक्तिगत और घरेलू मामलों में भी है। इसलिए सत्याग्रह एक बहुमुखी संघर्ष की प्रेरणा है।[15]

'सत्याग्रह' की अवधारणा और अधिक स्पष्ट तब होती है जब हम इसे निष्क्रिय प्रतिरोध से अन्तर करते है। यद्यपि दक्षिण अफ्रिका में स्वयं गाँधीजी ने निष्क्रिय प्रतिरोध शब्द का प्रयोग सत्याग्रह के अर्थ में किया था, लेकिन बाद में वे सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में यह स्पष्ट भेद करने लगे। जो निम्न प्रकार है–[16]

1. निष्क्रिय प्रतिरोध कामचलाऊ राजनीतिक शस्त्र है जबकि सत्याग्रह नैतिक अस्त्र है जिसका आधार शारीरिक शक्ति की अपेक्षा आत्मशक्ति की श्रेष्ठता है।
2. निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बल का शस्त्र है, जबकि सत्याग्रह का प्रयोग वे वीर ही कर सकते है जिनमें बिना मारे जाने का साहस है।
3. निष्क्रिय प्रतिरोध में उद्देश्य होता हैं प्रतिपक्षी को इतना परेशान करना कि वह हार मान ले, जबकि सत्याग्रह का उद्देश्य है प्रेम और धैर्यपूर्वक कष्ट सहन करके विरोधी का हृदय परिवर्तन करना और उसकी भूल सुधारना।
4. निष्क्रिय प्रतिरोधी के लिए प्रेम की गुंजाइश नहीं जबकि सत्याग्रह में घृणा दुर्भावना आदि के लिए कोई स्थान नहीं। इस प्रकार सत्याग्रह गत्यात्मक है। निष्क्रिय प्रतिरोध स्थित्यात्मक है। निष्क्रिय प्रतिरोध निषेधात्मक रूप से कार्य करता है और उसका सहन अनिच्छापूर्वक और निष्फल होता है, जबकि सत्याग्रह के विधायक रूप से कार्य करता है, प्रेम के कारण प्रसन्नता से कष्ट सहन करता है और सहन को फलप्रद बनाता है।
5. निष्क्रिय प्रतिरोध में हिंसा से सामान्य रूप से दूर रहा जाता है, क्योंकि दुर्बल व्यक्ति हिंसा का प्रयोग नहीं कर सकता। फिर भी यह उचित अवसर पर हिंसात्मक उपायों के प्रयोग के विरूद्ध नहीं है। दूसरी और सत्याग्रह किसी भी रूप में, अनुकूलतम परिस्थिति में हिंसा के प्रयोग की आज्ञा नहीं देता।
6. निष्क्रिय प्रतिरोध में आंतरिक शुद्धता का अभाव हैं सत्याग्रह की तरह वह साधनों की शुद्धता को आवश्यक नहीं मानता और प्रयोग करने वालों व्यक्तियों के चरित्र की नैतिकता की उपेक्षा करता हैं दूसरी और सत्याग्रह में उद्देश्य सिद्धि और सत्याग्रही के आन्तरिक सुधार में घनिष्ठ संबंध है।
7. निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रयोग सार्वभौम नहीं हो सकता। सत्याग्रह की तरह उसका प्रयोग अपने घनिष्ठ संबंधियों के विरूद्ध नहीं किया जा सकता। दुर्बलता और निराशा की भावना से प्रयुक्त निष्क्रिय प्रतिरोध नैतिक दुर्बलता को बढ़ाता है। दूसरी ओर सत्याग्रह सदैव आन्तरिक शक्ति पर जोर देता है और वास्तव में उसका विकास करता है।
8. निष्क्रिय प्रतिरोध की अपेक्षा सत्याग्रह अन्याय और अत्याचार का अधिक प्रभावशाली और निश्चित विरोध है। लेकिन निष्क्रिय प्रतिरोध वास्तव में निष्क्रिय नहीं होता, क्योंकि प्रतिरोध सदैव सक्रिय है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न एक प्रकार की साक्षात अहिंसक प्रक्रिया है, जिसमें कफी सक्रियता है तथा परिवर्तन करने की शक्ति भी निहित है।

सत्याग्रह का आधार सापेक्ष सत्य हैं सत्याग्रही इस बात से परिचित रहते है कि मानव द्वारा प्राप्त ज्ञान सापेक्ष सत्य का ज्ञान हैं सत्याग्रही अपने विचारों को दूसरों पर लादने की कोशिश नहीं करते। सत्याग्रह संघर्ष का लक्ष्य सुलह और समझौता है, दबाव नहीं। सत्याग्रह प्रतिपक्षी को कभी भी नीचा दिखाना चाहते हैं। सत्याग्रही अपने स्वार्थों को समूह के स्वार्थों के लिए तिलांजलि दे देते हैं।[17]

इस प्रकार सत्याग्रह गाँधीजी के लिए एक समग्र जीवनदर्शन बन जाता है जिसका कर्म प्रधान लक्ष्य मानवता की निःस्वार्थ भाव से सेवा करना है तथा आध्यात्मिक या धार्मिक सीमाओं तक ही सीमित था परंतु गाँधीजी ने इसे अपने दैनिक जीवन तथा देश के स्वतंत्रता आंदोलन में प्रयोग कर जन आंदोलन को एक सरल एवं समर्थरूप प्रदान किया जो सहज भाव से लोक संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन चुका हैं इसकी प्रासंगिकता निरंतर बढ़ती जा रही है क्योंकि आज सर्वत्र हिंसा एवं रक्तचाप का तांडव नितनुतन भयानक रूप धारण करता जा रहा है, ऐसी विषम परिस्थिति में शांति की स्थापना का एकमात्र साधन सत्याग्रह का अधिक से अधिक प्रयोग के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। [18] गाँधीजी के सत्याग्रह के प्रयोग पर एक समय सारा संसार हंसता था और बड़े-बड़े लोग यह कहकर शंका से सिर हिलाया करते थे कि इतिहास में कभी भी अहिंसक क्रांति नहीं हुई किन्तु सत्याग्रह में जो शक्ति छिपती थी, उसे केवल गाँधीजी की दृष्टि देख कसती थी।[19] गाँधीजी के सत्याग्रह की लोकप्रियता स्वदेश तक सीमित नहीं रही बल्कि

विश्व के कोने-कोने तक फैलती गई। खान अब्दुल गफ्फार खान, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला जैसे प्रसिद्ध नेताओं एवं समाज सुधारकों ने गाँधीजी के बताए सत्याग्रह मार्ग का अनुसरण कर अपने उद्देश्य में सफलता के साथ-साथ अपने देश एवं संसार में भी ख्याति प्राप्त की।[20]

संदर्भ

1. डॉ0 जयकुमार मिश्रा-21वीं सदी में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता में प्रकाशित डॉ0 विमलेश कुमार पाण्डेय का शोध आलेख महात्मा गाँधी भारतीय क्रांति का परिवर्तित रूप, प्रतयूश पब्लिकेशन्स, 2012, नई दिल्ली, पृ0-5
2. उपर्युक्त पृ0-वहीं
3. लियो टॉल्सटॉय प्रतिनिधि रचनाएं-कष्णदत्त पालीवाल, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 2010 नई दिल्ली, पृ0-28
4. उपर्युक्त पृ0-वहीं
5. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा-मोहनदास करमचंद्र गाँधी अनुवादक, महावीर प्रसाद पोद्दार, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2010, नई दिल्ली, पृ0-210
6. दक्षिण अफ्किा में सत्याग्रह का इतिहास-मोहनदास करमचंद्र गाँधी अनुवादक, श्री कालिका प्रसाद, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2009 नई दिल्ली, पृ0-113
7. दक्षिण अफ्किा में सत्याग्रह का इतिहास मोहनदास करमचन्द्र गाँधी (अनु0)-श्री कालिका प्रसाद सस्ता साहित्य मंडल, 2009 पृ0-113
8. उपर्युक्त पृ0-117
9. उपर्युक्त पृ0-117-118
10. डॉ0 ब्रजेश्वर प्रसाद सिंह-गाँधी दर्शन और भारतीय समाज, जानकी प्रकाशन, 2012 पटना, पृ0-99
11. हिन्द स्वराज्य (महात्मा गाँधी का जीवन दर्शन)-महात्मा गाँधी अनुवादक-कालिका प्रसाद, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2010 नई दिल्ली।
12. डॉ0 रंगनाथ प्रसाद, डॉ0 आभा अखौरी एवं डॉ0 नूतन सिन्हा-गाँधी दर्शन-विश्वशांति की ओर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2001, पटना, पृ0-109
13. उपर्युक्त पृ0-110
14. उपर्युक्त पृ0-110-111
15. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा-मोहनदास करमचन्द्र गाँधी, अनुवादक, महावीर प्रसाद पोद्दार, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2010, नई दिल्ली, पृ0-214
16. डॉ0 ब्रजेश्वर प्रसाद सिंह-गाँधी दर्शन एवं भारतीय समाज, जानकी प्रकाशन, 2012 पटना, पृ0-113
17. डॉ0 रंगनाथ प्रसाद, डॉ0 आभा अखौरी एवं डॉ0 नूतन सिन्हा-गाँधी दर्शन-विश्वशांति की ओर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2001, पटना, पृ0-113
18. डॉ0 जयकुमार मिश्रा-21वीं सदी में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता में प्रकाशित डॉ0 सुधांशु त्रिपाठी का शोध आलेख महात्मा गाँधी का सत्याग्रह लक्ष्य एवं सिद्धि, प्रतयूश पब्लिकेशन्स 2012 नई दिल्ली, पृ0-191
19. रामधारी सिंह दिनकर-संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 1956 इलाहाबाद, पृ0-455
20. डॉ0 जय कुमार मिश्रा-21वीं सदी में महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता में प्रकाशित डॉ0 सुधांशु त्रिपाठी का शोध आलेख महात्मा गाँधी का सत्याग्रह लक्ष्य एवं सिद्धि, प्रतयूश पब्लिकेशन्स 2012 नई दिल्ली, पृ0-191

प्राचीन भारत में शिक्षा के विविध आयाम

डॉ० प्रतिभा किरण

अतिथि शिक्षक, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय
इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा-846004

मानव जब विकास की ओर अग्रसर हुआ तो उसने समाज के नैतिक उत्थान के लिए शिक्षा को विकल्प माना। अत: मनुष्य का ध्यान विकास के साथ-साथ शिक्षा की ओर भी गया। प्राचीन भारत में शिक्षा के प्रति लोगों की धारणा प्रारंभ से ही ऊँची रही है। ऐसा माना गया कि ज्ञान प्राप्त करना व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। शिक्षा से ही व्यक्ति का चतुर्दिक विकास संभव है। अत: यह एक सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्य है। यहाँ के लोग प्रारंभ से ही औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के प्रति सजग रहे हैं। औपचारिक शिक्षा केन्द्रों के रूप में मंदिर, आश्रम तथा गुरूकुल माध्यम थे तथा अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम परिवार, पुरोहित, पण्प्राचीन काल में शिक्षा संस्थान के रूप में विविध संस्थाएँ थी जो या तो महत्वपूर्ण थी या फिर महत्वहीन थी। प्रारंभिक काल में शिक्षा के केन्द्र गुरूकुल हुआ करते थे, जहाँ पर वैदिक शिक्षाएँ दी जाती थी। वैदिक काल में गुरूकुल ही शिक्षा के प्रधान केन्द्र होते थे। गुरूकुल का शब्दिक अर्थ होता है-घर से दूर गुरू के समीप रहकर शिक्षा अर्जित करना। औपचारिक शिक्षाएँ गुरू के समीप तथा अनौपचारिक शिक्षाएँ समाज में रहकर ही प्राप्त किए जाते थे। धर्मसूत्रों में भी कहा गया है कि मनुष्य की प्रथम गुरू माँ होती है।

परिवार का महत्व प्रारंभिक शिक्षण संस्थान के रूप में था। गुरूकुल प्रवेश के पूर्व घर में ही पिता, पितामह अथवा अभिभावकों के द्वारा बालकों को अक्षर बोध कराया जाता था। इन्हें शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। कथा अथवा आख्यान इनके माध्यम होते थे। इसके माध्यम से इन्हें विषयों का ज्ञान दिया जाता था तथा ब्रम्हचर्य जीवन के लिए उनका मार्ग प्रशस्त किया जाता था। ब्रम्हचर्य जीवन अनुत्तरदायी जीवन से उत्तरदायी जीवन की ओर मनुष्य को ले जाता है। अत: इसकी तैयारी परिवार में रहकर ही बालक को करना होता था।

उपनिषदों में ऐसा कहा गया है कि विद्या के द्वारा ही मनुष्य को अमृत तत्व की प्राप्ति होती है। ब्रम्हविद्या, अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध में ज्ञान प्रदान करनेवाली विद्या, को 'पराविद्या' कहा गया है। दूसरी तरफ अविद्या है, जिसको प्राप्त करने से मनुष्य न तो इस लोक में सुखी होता है और न परलोक में ही। वह मनुष्य को अंधकार की ओर ले जाती है, जिसे 'अपरा' कहते हैं। इस प्रकार ''पराविद्या'' ईश्वर की अनुभूति कराती है और ''अपराविद्या'' भौतिक तथा लौकिक विषयों का ज्ञान कराती है। अविद्या व्यक्ति को पतन की ओर उन्नमुख करता है। गीता में विद्या को श्रेय कहा गया है, जो अध्यात्म मार्ग की ओर उन्नमुख करता है और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

औपचारिक शिक्षा केन्द्र के रूप में गुरूकुल का स्थान सर्वोपरि था। दो शब्दों 'गुरू' और 'कुल' से बना यह शब्द जिसका अर्थ शिक्षक और परिवार से है, का अपना अलग ही महत्व था। गुरू गृह में रहकर शिक्षा प्राप्त करना तथा ब्रम्हचर्य का निर्बहन करना महत्वपूर्ण था। जिस प्रकार व्यक्ति अपने परिवार के साथ रहता है तथा परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेम तथा आदर का भाव रखता है उसी प्रकार गुरू का कुल अथवा परिवार भी शिष्य के लिए था। उसे वहाँ भी पिता का स्नेह और माँ का वात्सल्य, गुरू और गुरू पत्नी के द्वारा प्राप्त होता था तथा उनके पूत्र और पूत्रियाँ छात्रों के भाई-बहनों के समान थे। व्यक्ति गुरूकुल के माध्यम से पारिवारिक वातावरण में ब्रम्हचारी जीवन व्यतीत करते हुए शिक्षा अर्जित करता था। आचार्य के घर में छात्र के रहने के कारण

उसे ''आचार्य कुलवासी'' कहा जाता था और और घर से दूर जाकर अध्ययन करने के कारण ''अन्तेवासी'' भी। गुरूकुल में व्यक्ति का जीवन ब्रम्हचर्यपूर्ण हो जाता है। अत: उन्हें ब्रम्हचारी की संज्ञा दी गई। उपनिषदों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में छात्रगण अध्ययन के लिए गुरू के समीप जाते थे। महर्षि शौनक और गौतम के आश्रम प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रंथों में भी इस प्रकार के आश्रमों का उल्लेख है, जहाँ छात्र अध्यनार्थ जाते थे। उस समय प्रमुख आचार्य 'दिशा प्रमुख आचार्य' कहे जाते थे। मिथिला, कोसल तथा तक्षशिला में ऐसे अनेक आचार्य थे।

वैदिक कालीन शिक्षा के संदर्भ में ऋग्वेद के 10 वें मंडल में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। वेद के अतिरिक्त छात्रों को चार संहितायें (ऋक्, यजु, साम और अथर्व), ब्राम्हण, अरण्यक, उपनिषद, छ: वेदांग (शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छंद, ज्योतिष) आदि की शिक्षाएँ भी दी जाती थी। शिक्षा-ध्वनि और उच्चारण की विवेचना करनेवाला शास्त्र था। कल्प-यज्ञ अनुष्ठान की पद्धति का शास्त्र था। निरूक्त में वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति की व्याख्या की गई है। व्याकरण नाम से ही स्पष्ट है तथा छंद का अर्थ स्वत: सिद्ध है। वैदिक काल में ज्योतिष का अर्थ मुख्यत: नक्षत्रों और ग्रहों का अध्ययन था। राशि विज्ञान का प्रादुभार्व नहीं हुआ था। फलित ज्योतिष भी उस समय तक नहीं आई थी। वैदिक काल के अंत तक दर्शन, गणित, बीजगणित, ज्यामिति, राजनीतिशास्त्र, लोक प्रशासन, युद्धकला, तीरंदाजी, तलवारबाजी, ललित कला और चिकित्सा जैसे धर्मनिरपेक्ष विषय पाठ्यक्रम में शामिल हो गये थे। शड्दर्शन (पूर्व मिमांसा, वेदांत, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक), तर्कशास्त्र काव्यशास्त्र, साहित्य, वास्तुकला, चिकित्सा, ज्योतिष आदि की भी शिक्षा वैदिक कालीन गुरूकुल के पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे। इन सभी शिक्षाओं के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है, परन्तु हम यह जानते हैं कि चिकित्सा शास्त्र से संबंधित चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में भरपुर सामग्री उपलब्ध है। इन ग्रंथों के अनुसार प्रवीण वैद्य द्वारा इस शिक्षा को प्रदान किया जाता था। 6 वर्षो का यह पाठ्यक्रम होता था। चिकित्साशास्त्र की अलग आठ से शाखाएँ थी। इतिहासकारों के द्वारा यह अनुमान लगाया जाता है कि जिस प्रकार चिकित्सा उस समय अत्यन्त विकसित अवस्था में थी, उसी प्रकार अन्य महत्वपूर्ण लौकिक विषयों का भी अध्ययन-अध्यापन विशेषज्ञों द्वारा कराया जाता रहा होगा।

महाभारत की रचना के काल में शिक्षण-संस्था के रूप में चरण भी उल्लेखनीय हैं। किसी वेद की विशिष्ट शाखा के अध्ययन के लिए बहुत से छात्र होते थे। क्योंकि वेदों की सभी शाखाओं की शिक्षा एक स्थान पर नहीं दी जा सकती थी। वेद-विशेष की विशिष्ट शाखा के अध्ययन के लिए अलग-अलग शिक्षक थे और उनके छात्र भी। ऐसे स्थान को, जहाँ वेदों की विशिष्ट शाखाओं का अध्ययन होता था, 'चरण' कहलाते थे।

शिक्षा केन्द्रों के रूप में राजसभाओं का भी महत्व था। सभा को सभा इसलिए कहा जाता था कि उसमें सभ्य और शिक्षित लोग रहते थे। राजा लोग अपनी राजसभाओं में विद्वानों को प्रश्रय देते थे। वे उनके द्वारा प्रदत्त साधनों से अपना भरण-पोषण करते थे एवं शिक्षा देने, पुस्तकें लिखने तथा ज्ञान-विज्ञान के संवर्द्धन में लगे रहते थे।

महाभारत काल में भी स्त्रियों के शिक्षित होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। वैदिक शिक्षा स्त्रियों को भी दी जाती थी। जैसे-दुर्वासा ऋषि ने कुंती को अथर्ववेद की शिक्षा दी थी तथा कुंती ने माद्री को यह शिक्षा देकर शिक्षा की परंपरा को अग्रसारित किया। गान्धारी अर्थशास्त्र में तथा द्रौपदी नीतिशास्त्र में प्रवीण थी। सुभद्रा, दमयन्ती, विहुला एवं सत्यवती ने राजनीति के जिन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बातें कहीं हैं, उनसे विदित होता है कि उन स्त्रियों ने राजनीतिशास्त्र की शिक्षा पाई थी। आचार्यों के यहाँ ब्रम्हचारी के साथ-साथ उनकी कन्याएँ भी शिक्षा अर्जित करती थी। जैसे-शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और कच एक साथ पढ़ते थे। इसी प्रकार उद्यालक की पुत्री सुजाता का विवाह उनके शिष्य कहोड़ के साथ हुआ था तथा उत्तेक का विवाह उनकी गुरू पुत्री के साथ। जातकों से भी विदित होता है कि कुछ छात्रों का विवाह गुरू पुत्रियों से हो जाता था। तत्कालीन ग्रंथों से विदित होता है कि स्त्री शिक्षिकायें भी थी जो विधिवत् स्त्रियों को शिक्षा देती थी। पाणिनी ने भी अपने अष्टाध्यायी में आश्रमों में रहकर आचार्यों से पढ़नेवाली कन्याओं का उल्लेख किया है।

प्राचीन भारतीय समाज शास्त्रियों के द्वारा शिक्षा के लिए ऐसा पाठ्यक्रम तैयार किया गया था जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर आधारित था। कृषि, पशुपालन, चिनाई, बढ़ईगिरी, बुनाई, लोहार की कला, कुम्हार का काम, अन्य प्रकार के बर्त्तन बनाने की कला, हथियार बनाने की कला आदि भी परिवार में और निपुण कारीगरों के द्वारा सिखाई जाती रही होगी। छात्रों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वेदों तथा कर्मकांड के ज्ञान के अतिरिक्त समाज में उन्हें सभा-समीति में बोलने में वे सक्षम हों। अर्थात् उस समय शिक्षा का उद्देश्य व्यवहारिक था। उपनिषद् काल में ज्ञान का उद्देश्य और अधिक गहरा हो गया। मोक्ष को शिक्षा का अंतिम लक्ष्य

निरूपित किया गया। शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य व्यक्ति का चारित्रिक निर्माण था। तत्कालीन शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्भर और आत्म-नियमित बनाना होता था। वर्ण तथा आश्रम के अनुरूप आचरण के लिए प्रेरित किया जाता था।

जिस प्रकार प्राचीन भारत में वैदिक तथा अन्य शिक्षाओं का अध्ययन कराया जाता था उसी प्रकार 6 ठी शताब्दी ई0 पू0 में बौद्ध एवं जैन शिक्षाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बौद्धों के योगदान से आधुनिक विश्वविद्यालयों जैसे बड़े-बड़े शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई, जिसमें चीन, तिब्बत, कोरिया और दुनिया के कई अन्य हिस्सों से छात्र अपने ज्ञानवर्धन के लिए यहाँ आने लगे। बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार विनय पिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक-यह तीन बौद्ध धर्म ग्रंथ माने जाते हैं। बौद्ध विश्व विद्यालयों में वैदिक साहित्य की भी शिक्षा दी जाती थी। यहाँ शिक्षार्थी दो प्रकार के होते थे-भिक्षु और उपासक।

जैन धर्म की शिक्षाएँ भी अन्य शिक्षाओं की भाँति दिये जाते थे। जैन धर्म के 46 आगम हैं। इनमें महावीर के मूल उपदेश हैं, जो जैन धर्म साहित्य में सर्वोपरि हैं। यह सभी ग्रंथ प्राकृत भाषाओं में है। जैन मुनियों ने धार्मिक विषयों पर भी ग्रंथ लिखे। उपयुक्त समस्त साहित्य जैन पाठ्यक्रम का मुख्य अंग था।

जिस प्रकार गुरूकुल एवं बौद्ध बिहारों में शिक्षा दी जाती थी, उसी प्रकार जैन मठों में भी शिक्षा दी जाती थी। यहाँ भी शिक्षा का माध्यम मौखिक होता था। पाठ को कंठस्थ करना होता था और समय-समय पर उसे गुरू के समक्ष आवृत्ति करना आवश्य था। शास्त्रार्थ पर बल दिया जाता था। प्रारंभिक शिक्षा प्राकृत में होती थी।

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षण के जो पाठ्यक्रम थे वह वैदिक हों, बौद्ध अथवा जैन हों एक दूसरे से भिन्न नहीं थे। पाठ्यक्रम एवं शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण विधि, शिक्षक और शिक्षार्थी के पारस्परिक संबंध आदि की दृष्टि से इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं था। इनका उद्देश्य व्यक्ति का चरित्र निर्माण करना होता था। शिक्षा का दृष्टिकोण सर्वथा व्यक्ति का नैतिक उत्थान होता था।

आज की नई शिक्षा नीति 2020 पूर्णत: वैदिक चिन्तन पर आधारित है। जिस तरह वेदों में बुनियादि शिक्षा के माध्यम से छात्रों को शिक्षित किया जाता था उसी तरह नई शिक्षा नीति भी उसी सिद्धान्त पर आधारित है। आज की नई शिक्षा नीति में भारत का ज्ञान के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, गणित् खगोल, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, भाषा विज्ञान, साहित्य, खेल के साथ-साथ, शासन राजव्यवस्था, संरक्षण आदि को शामिल किया गया है। इस तरह स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठचर्या जो तैयार किया जा रहा है, वह वैदिक शिक्षा की तरह ही सर्वकालिक है। अत: हम कह सकते हैं कि वैदिक शिक्षा आज भी प्रासांगिक है, जिसपर हमारी नई शिक्षा नीति 2020 आधारित है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

01. डॉ0 राधेश्याम शर्मा, महाभारत में सामाजिक सिद्धांत एवं संस्थायें, एकेडमिक प्रेस, 1982.
02. राय, बी0 पी0 सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि उपनिषदिक एजुकेशन सिस्टम, शा0 मु0 के0 भा0।
03. ऋग्वेद, 8.91.1.
04. ए0 एस0 अल्तेकर, दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0-12-13.
05. वृहदारण्यक उपनिषद्-3.6.11.
06. ऐतरेय ब्राम्हण-12-11.
07. इण्डियन एन्टिक्वेरी (1933) पृ0-151.

आचार्य भरत से पूर्व रस शब्द की महत्ता एवम् अर्थगाम्भीर्य

डॉ० राजेश कुमार सिंह

एम.ए., पी-एच. डी., विश्वभारती, शान्तिनिकेतन (प.बं.)

प्रत्येक शब्द का एक अर्थ होता है किन्तु रस भारतीय साहित्य का एक ऐसा व्यापक शब्द रहा है जिसके अनेक अर्थ होते हैं। रसेन्द्रिय का संवेदन या ज्ञान। ''रस''-किसी पदार्थ का ''सार'' अर्थात् ''तत्व''। रस-मन में उत्पक्व होने वाला भाव परक आनन्द। सर्वप्रथम 'रस' शब्द को ऋग्वेद में पदार्थभूत रस के अर्थ में विवेचित करते हुए कहा गया है-''रसेन समङ्गस्महि[1] मध्वो रसो सुगमस्ति[2]

अर्थात प्रथम मन्त्रांश में जलसार का बोधक है स्वयं द्वितीय मन्त्रांश, पुनः प्रसंग में-वाग्रस अर्थात् वाणी के सारभूत अर्थ में भी रस शबद का व्यवहार हुआ है

यः पावमानीरध्येत्पृषिभिः संभृतं रसम्।

सर्वस पूतमसाति स्वदितं माता रिश्वना।।[3]

अर्थात् जो पवमान ऋचाओं के रूप ऋषियों द्वारा सम्भृत रस का अध्ययन करता है, वह पवित्र और स्वादिष्ट अन्न का आनन्द लेता है। यहां ऋषियों द्वारा सम्पादित सूक्त संघ को वेद का रस अर्थात् वेद का सार कहा गया है।

ऋग्वेद में ही रस का प्रयोग-गौ-दुग्ध, मधु आदि रस के अर्थ में करते हुए स्पष्ट किया गया है कि-''जम्भे रसस्य वावृधे''[4] स्वादु रसो मधुपेयोवराय[5]

ऋग्वेद में ही ''सोम रस'' के अर्थ में रस का प्रयोग करते हुए उदृत किया गया है -

''तं गोभिर्वृषणं रसंमदाय देववीतये। सूतं भराय सं सृज''[6]

अर्थात देवों को मत करने के लिए उस अभिभुत्त और अभिष्टवर्षक सोम में गव्य मिलाओ।

यजुर्वेद में आनन्ददायिनी क्षमता की ओर प्रकाश डालते हुए रस शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया गया है :-

''यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न उशतीरिवमातर।''[7]

अर्थात हे जलो! तुम्हारा जो कल्याणप्रद रस इस लोक में विद्यमान है, हमें उसी रस का भागी बनाओ, जैसे स्नेहमयी माता अपने शिशु को दुध देती है वैसी ही रस प्रदान करो।

यहाँ जिस जल सम्बन्धी रस को ''शिवतम'' या आनन्दमय बताया है वह काव्य रस की आनन्दमयता का बीज है।

अथर्ववेद में आह्लाद के अर्थ में रस शब्द का व्यवहार प्राप्त होता है-''रसो गोषुः प्रविष्टोयः, ''[8] ''रसेन तृप्तो न कुतश्चनो नः''[9]

अर्थात् यहां रस का अर्थ वीर्य है, वीर्य गाय में प्रविष्ट रहती है, अतः गाय से संयुक्त होकर वीर्यमान बनो और आनन्द रस से परितृप्त हो। वहीं इन्द्रिय-पोषक अर्थ में रस का प्रयोग करते हुए लिखा गया है -

''सोमो आर्वति धर्णर्सिर्दधान इन्द्रियं रसम्। सुवीरो अभिशस्तिपाः''[10]

अर्थात् संसार को धारण करने वाले सोम इन्द्रिय पोषक रस का धारण करते हुए उत्तम वीर और हिंसा से रक्षा करने वाले हैं।

अथर्ववेद में ही रस का प्रयोग ''आत्मानन्द'' के रूप में करते हुए कहा गया है -

अकामो धीरो अमृत: स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोन:।

तमेव विद्वान न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।।[11]

अर्थात अकाम, धीर, अमृत स्वयम्भू, ब्रह्म अपने रस से आप तृप्त रहता है। वह किसी विषय में भी न्यून नहीं है, उस धीर अजर सदा तरण आत्मा को जानने वाला मृत्यु से नहीं डरता।

तैत्तिरीय उपनिषद में द्रव्य से प्राप्त उर्जा और आह्लाद के अर्थ में रस का प्रयोग प्राप्त होता है -

''ओषधीभ्याऽक्म। अक्काद्रेत:। रेतस: पुरुष: स वा एष पुरुषोऽकरसमय:।''[12]

अर्थात् औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। वह यह पुरुष अन्न एवं रसमय ही है।

तैत्तिरीयोपनिषद में ही ब्रह्म की आनन्दरूपता के वर्णन के क्रम में रस का प्रयोग करते हुए कहा गया है --

रसो वै स:। रसंध्येवायं लब्धवानन्दी भवति। कोकृकृआनन्दो न स्यात।''[13]

अर्थात रसवह ईश्वरीय अनुभूति है, जिसे प्राप्त करके आत्मा आनन्दी हो जाता है। यदि हृदय आकाश में स्थित यह आनन्द (आनन्द स्वरूप आत्मा) न हो तो कौन व्यक्ति अपान क्रिया करता।

वृहदारण्यकोपनिषद् में रस का प्रयोग सारभूत तत्व के रूप में प्राप्त होता है-''सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रस: प्राणे वा अङ्गानां रस: प्राणो हि अङ्गानांकृकृकृ तदेव तच्छुष्यत्येष हि वा अङ्गानां रस:।''

अर्थात् वह प्राण अङ्गिरस है, क्योंकि वह अंगो का रस (सार) है। प्राण ही अङ्गों का रस है, निश्चय प्राण ही अङ्गों का रस है, क्योंकि जिस किसी अंग से प्राण उत्क्रमण हो जाता है, वह उसी जगह सुख जाता है, अत: यही अंगों का रस है।

इसके उपरान्त रस को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा गया है --''ते होच: क्व नु सोडभूधो न इल्थ्मसक्तेत्ययमास्येऽन्तरिति सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रस:। [15]

अर्थात जिसने हमें इस प्रकार असक्त देव भाव को प्राप्त किया है, वह कहां है? उन्होंने विचार करके निश्चय किया कि यह यास्य (मुख) के भीतर है, अत:अयास्य अङ्गिरस है, क्योंकि यह अंगों का रस है।

कठोपनिषद में रस का प्रयोग ब्रह्म विषयक ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त करते हुए स्पष्ट कया गया है:-

''येन रूपं रसं गधं शब्दान्स्पर्षाश्च मैथुनान्।

एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते, एतद्वैतत्।। [16]

अर्थात् जिस इस आत्मा के द्वारा मनुष्य रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श और मैथुन्य जन्य सुखों को निश्चयपूर्वक जानता है उस आत्मा से अविज्ञेय इस लोक में और क्या रह जाता है (तुम नचिकेता का पूछा हुआ) वह तत्व निश्चय यही है।

''छान्दोग्योपनिषद'' में इस को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि :-

''ते वा एते रसानांरसा वेदा हि रसास्तेषामेते।

रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ध्यमृतास्तेषामेतान्मृतानि। ।''[17]

अर्थात् वे (ब्रह्म) ये ही रसों के रस है, वेद ही रस है और ये उनके भी रस हैं। वे ही ये अमृतों के अमृत हैं-वेद ही अमृत है और ये उनके भी अमृत हैं।

मुण्डकोपनिषद् में रस को ब्रह्मजन्य अर्थ में परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि :-

''अत: समुन्द्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दने सिन्धव: सर्वरूपा:।

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनौष भूतैस्तिष्ठते हयन्तरात्मा। ।''[18]

अर्थात् इसी से (ब्रह्म से) समस्त समुन्द्र और पर्वत उत्पक हुये है; इसी से अनेक रूपोंवाली नदियां बहती है; इसी से सम्पूर्ण औषधियां और रस प्रकट हुऐ है। जिस (रस) भूतों से परिवेष्टित हुआ यह अन्तरात्मा स्थित होता है।

''अग्निपुराण में धनवन्तरी ने रसादि के लक्षण में कहा है–

''रसवीर्य विपाकशो नृपादीनक्षयेन्र:।''

रसा: स्वादवम्ल लवणा: सोमजा परिकीर्तिता:।

कटुविक्त कषायाश्च तथाङ्ग्नेया महाभुजा।''[19]

रस वीर्य और विपाक का जानने वाला राजा आदि की रक्षा कर सकता है। ये महाभुज, मधुर और लवण रस सोम से उत्पन्न कहे जाते हैं और कटुतिक्त एवं कषाय रस अग्नेय कहे जाते है।

अग्नि पुराण में ही श्रृंगारादि रस के निरूपण में अग्निदेव ने कहा है :-''अक्षरं परमं ब्रहम सनातनमजं विभुम्। वेदान्तेषुवदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्। आनन्द: सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन। व्यक्ति: सा तस्य चैतन्य चमत्कार रसाध्वया।।[20]

अर्थात् वह परब्रह्म परमेश्वर अक्षय है, वह वह शाश्वत, अजन्मा और परिव्याप्त है। वेदान्त ग्रन्थों में उसे अद्वितीय ज्योतिर्मान और सामर्थ्यवान कहा गया है। इसका आनन्द स्वाभाविक है पर उसकी अभिव्यक्ति कभी कभी होती है। उसकी अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य चमत्कार अथवा रस है।''

''चरकसंहिता में रस की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि–

''रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमाप: क्षितिस्तथा।

निर्वृतौ च विशेषं च प्रत्यया: खाद्यस्त्रय:।

स्वादुरमवलोडय लवण: कटुकस्तिक्त एवं च।

कषायश्चेति शट्कोऽयं रसानां सङ्ग्रह स्मृत:। ।''[21]

अर्थात् रसना (जीभ) द्वारा ग्राहय विषय का नाम रस है। जल और पृथ्वी प्रधान कारण है और दैव्य द्रव्य हैं। रस की निर्वृति (अभिव्यक्ति) में जल तथा एवं अग्नि अप्रधान कारण है। स्वाद (मधुर) अम्ल (खट्टाऋ, लवण (नमकीन) कटु, तिक्त, कषादि ये छ: रसो का संग्रह माना गया है।

''वैशेषिक दर्शन'' में महर्षि कणाद'' ने रसगुणों के अन्तर्गत रस को एक गुण के रूप में स्वीकार करते हुए लिखा है -

रूपरसगन्धस्पर्शास्संख्या परिमाणानिदृथकत्वं

संयोग.......प्रयत्नाश्य गुणा।[22]

अर्थात् रूप, रस गन्धादि 24 गुण हैं।

सांख्य दर्शन में रस का प्रयोग इन्द्रियजन्य एवं पेंयतन्मात्राओं के अर्थ में प्राप्त होता है-''एकादशपञ्चतन्मात्रं यत्कार्यम्''[23]

अर्थात् ग्यारह इन्द्रियां एवं पृङचतन्मात्राओं के भीतर रस की स्थिति को माना गया है।

''न्यायदर्शन'' में रस का प्रयोग विविध रूप में प्राप्त होता है-''गन्धरसरूपस्पर्शशब्द: पृथिव्यादिगुणास्तदर्था::''[24]

अर्थात् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पांचों पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों के गुण हैं। यहाँ पृथ्वी आदि गुणों के रूप में रस की चर्चा की गई है।

मीमांसा दर्शन में रस का प्रयोग निम्नांकित रूप में प्राप्त होता है -

''पृष्टे रस भोजनमावृते संस्थिते त्रयस्त्रिशेऽहनि स्यत्त दानंन्यमदि प्राकृतिवत''[25]

अर्थात पृष्ठ के रस भोजन आवृत और शडध्त्रयर्सित अहिन् के संस्थित होने पर करना चाहिए क्योंकि उनका आनतिर्थ है। जैसे प्रकृति में त्रायत्रिशान्तर रस भोनज वृत होता है। वैसे यहां भी करना चाहिए।

''वात्सयायन'' ने कामसूत्र में रस शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-''रसोरति: प्रतिर्भावो रागो वेग: समाप्तिरिति रतिपर्याय::।''[26]

अर्थात् यहां रस को रति, प्रीति, राग, वेग आदि का पर्याय कहा गया है। रस इस प्रकार वेदों, पुराणों, उपनिषदों, दर्शनों, में बहुविध प्रकार से परिभाषित-विश्लेषित होता रहा ओर विविध अर्थो में प्रयुक्त होता रहा। इन ग्रन्थों एवं शास्त्रों में रस का अलग रूप से कोई सिद्धांत की परम्परा प्राप्त नहीं होती। परन्तु रस सिद्धांत रूप में सर्वप्रथम आचार्य भरत की निजी मौलिक कल्पना थी ऐसी बात नहीं है। भरत ने भी अपने से पूर्वकाल की इस परम्परा का परिपालन और परिवर्धन किया तथा रस की युक्तिपूर्ण विवेचना करते हुए

इसे बिल्कुल नवीन अर्थो में परिभाषित किया। वैसे अनेक प्रमाण हैं कि भरत के पूर्व भी नाट्यशास्त्र की रचना हो चुकी थी और उसका एक लघु रूप अस्तित्व में था जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जाता रहा है कि रस शिष्य प्रशिष्य की परम्परा में पूर्व से ही चला आ रहा था, जिसे भरत ने एक ठोस आधार भूमि प्रदान किया। नाट्य शताब्दियों से प्रवर्तित काव्य शास्त्र का विघटित रूप है। पूर्व प्रतिष्ठापित रस सिद्धांत के समस्त साक्ष्य नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। इसलिए यह ग्रन्थ इस क्षेत्र में अपना खास महत्व रखता है।

आचार्य भरतमुनि रस को अथर्ववेद से गृहीत माना है, जो नाट्यशास्त्र में इस प्रकार प्रस्तुत है :-

''जग्राह, पाठयमृग्वेदात् सामभ्योगीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।''[27]

अर्थात (ब्रह्मा ने) ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनयों को और अथर्ववेद से रसों को ग्रहण किया।

नाट्यशास्त्र के आनुवांशिक श्लोक में रस के उद्भव के बारें में कहा गया है कि -

''योऽर्थोहहि्दयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।
शरीरं व्याप्ते तेन शुष्कंकाष्ठमिवाग्निना।।''[28]

अर्थात जब कोई हृदय संवादी अर्थ हमारी समस्त चेतना को व्याप्त कर लेता है, तभी रस का जनम होता है, जेसे सुखे काष्ठ में अग्नि सिप्त ही व्याप्त हो जाती है।

मूल रस की परिकल्पना के सन्दर्भ में आनुवांशिक श्लोक का उल्लेख करते हुए आचार्य ने कहा है:-

''यथाबीजाद्भवेद्वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावाव्यवस्थिताः।।[29]

अर्थात् जैसे बीज से वृक्ष होता है, वृक्ष से पुष्प और पुष्प से फल होते हैं, वैसे ही रस सबसे मूल में होते हैं और उन्ही से सारे भाव व्यवस्था प्राप्त करते हैं।

''रस'' की विशद् व्याख्या करते हुए आनुवांशिक में लिखा है :-

यथा बहुद्रष्य युतैर्व्यंजनैर्बहुभिर्युतम्।
आस्वादयन्ति......................भक्तविदोजना।।
भावाभिनय.........................बुधाः।
आस्वादयन्ति मनसातस्माकाट्यरसाः। ।[30]

अर्थात् जैसे भक्तविद अनेक द्रव्यों और बहुत से व्यंजनों से युक्त भात खाते हुए उसका स्वाद लेते हैं, वैसे ही बुधजन भावों और अभिनयों से संबद्ध स्थायी भावों का मन से आस्वाद लेते हैं और ये ही आस्वाद्यमान स्थायी भाव नाट्य रस के नाम से जाने जाते है।

इसी प्रकार :-

''नानाद्रव्यैर्बहुविधैर्व्यंजनभाव्यते यथा।
एवं भावा भवयन्ति रसानभिनयैः सह।।[31]

अर्थात् नाना द्रव्यों से जैसे व्यंजन भावित किये जाते हैं वैसे ही भाव अभिनय से मिलकर रसों का भावन करते हैं।

तथा :-

व्यंजनौषधिसंयोगो यथाक स्वादुतानयेत्।
एवं भावा रसाश्चैव भावयनित परस्परम्।।[32]

अर्थात् जैसे व्यंजनोंषधि के संयोग से अन्नस्वादुता को पहुँचाया जाता है, वैसे ही भाव और रस एक दुसरे को भावित करते हैं।

इस प्रकार आचार्य भरत से पूर्व ही वेदों, उपनिषदों, पुराणों, दर्शनों, वात्सायन के कामसूत्र एवम् भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध आनुवांशिक श्लोक तक रस ने जिह्वास्वाद (गोदुग्ध, दही, मधु, सोम आदि) से लेकर आनन्ददायिनीक्षमता के रूप में, कल्याणप्रद

के रूप में, अह्लाद, ब्रह्मनी आनन्दरूपता, ब्रह्मविषयक ज्ञान, आत्मानन्द, चैतन्यचमत्कार एवं गुण आदि अर्थों के रास्ते से गुजरते हुए बुधजन के भावों का रस के स्थायी भावों के साथ संगम तक की यात्रा पूरी कर ली थी।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद -मं. 1, अ. 23, सू.26
2. ऋग्वेद-5, 43, 4 सू.67
3. ऋग्वेद-9, 3, 6, 7, 31
4. ऋग्वेद-मं. 1, आ.-8, सू.-37-5
5. ऋग्वेद-मं. 6, 4, 44-21
6. ऋग्वेद-पं. 9, अ.-6, सू.-6
7. यजुर्वेद-अ.11, मं.51, पु. सं.-165, प्रकाशन संस्कृत सं. बरेली, सं. संस्करण-2001
8. अथर्ववेद-14-2-58
9. अथर्ववेद-10-8-44
10. ऋग्वेद-मं. 9, अ.-1, सूत्र -23-5
11. अथर्ववेद-10.5.44
12. तैत्तिरीयोपनिषद-वल्ली-2, अनुवाक-1, मंत्र-1, पृ.सं.-97, भाष्यकार-आदिजगत, गुरूशंकराचार्य, 15वां संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पुस्तक संख्या-71,
13. तैत्तिरीयोपनिषद-वल्ली-2, अनुवाक-7, मंत्र-1, पृ.सं.-173
14. वृहदारण्यकोपनिषद-अं.-1, ब्रह्मभोज-3 (उदगीथ, ब्राह्मण) मंत्र-19, पृ.सं.139
    पृ.सं.-577, गी.प्रे.गो.-शंकराचार्य, 8वां सं.।
15. वृहदारण्यकोपनिषद-अ.-1, ब्रह्मण-3, मयं.-8, पं.सं.-119, संख्या-8
16. कठोपनिषद-अं.-2, वल्ली-1, मंत्र-3, पु.995
17. छान्दोग्योपनिषद -अं.-3, खंड--5, मं.-4, पु. 255
18. मुण्डकोपनिषद -मुण्डक-2, खण्ड-1, मंत्र-9, पृष्ट-59, 17वां संस्करण, गी.प्रे.गो.
19. अग्निपुराण-अं. 281, श्लोक-1-2, पृ.-780, हिन्दीसाहित्यसम्मेलन, प्रयोग संख्या-2 अनुवादक डॉ. घनश्याम त्रिपाठी
20. अग्निपुराण-अ. 339, श्लोक-1-2, पृ. 146,
21. चरक संहिता (अग्निवेश)-सूत्रस्थान, दीर्घजीवितीयाध्याय, सूत्र सं. 64-65, पु.35 पे. संस्करण-चौ.सु.भा.प्र.वारा, व्या, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
22. वैशषिक दर्शन महर्षि कणाद, प्र.अ., प्र. आह्निक, सू.सं. 6, व्या. श्री राम शर्मा आचार्य
23. सांख्य दर्शन-महर्षि कपिल-अ.-2, सूत्र सं.-17, पृ-117 पूर्ववत
24. न्याय दर्शन-महर्षि गौतम, अ.-1, अह्निक-1, सूत्र-14, पृ.सं.32, 1995 उपरिवत
25. मीमांसा दर्शन-जैमिनि, 10/0627, पं.-301, 1996 उपरिवत
26. कामसूत्र -वात्सयायन 2/1/65
27. नाट्यशास्त्र-आ0 भरतमुनि, पृष्ट-56, श्लोक 114
28. नाट्यशास्त्र-आ0 भरतमुनि, व्याख्या, अभिनवगुप्त, अ. 7/10, पृ. 349
29. नाट्यशास्त्र '-6/42, पृ. 295, शेष उपरिवत
30. नाट्यशास्त्र -6/35, पृ. 291 शेष उपरिवत
31. नाट्यशास्त्र -6/39, पृ. 294 शेष उपरिवत
32. नाट्यशास्त्र-उपरिवत

भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की पृष्ठभूमिः एक अध्ययन

सत्यम कुमार केसरी

यूजीसी-नेट, शोधरत (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारसंक्षेप

भारत में पुनोरूत्थान की पीठिका को निर्मित करने में स्वामी दयानंद सरस्वती, तिलक, महर्षि अरविन्द एवं गांधी जी आदि की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। प्रारंभ में यह अवधारणा केवल सांस्कृतिक पक्ष से जुड़ी रही लेकिन कालांतर में इसका स्वरूप विस्तृत होकर जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने लगी एवं नवीन भारत के राष्ट्रीय पुनर्निमाण का सशक्त आधार सिद्ध हुई।

इस अवधारणा के विकास में भारत के शिक्षित वर्गो की भूमिका महत्वपूर्ण रही। भारत का नव शिक्षित वर्ग ब्रिटिश साम्राप्य के वास्तविक स्वरूप को समझ पाने में सक्षम था। चुंकि ब्रिटिश साम्राप्य ने अपनी वैज्ञानिक व तकनीकी श्रेष्ठता का दावा प्रस्तुत करते हुए भारत पर अपनी साम्राज्यवादी शिकंजे को वैद्य ठहराया था। यही कारण है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने हमेंशा ही भारत की विस्तृत व समृद्ध देशी ज्ञान परंपरा को अप्रासंगिक व अनावश्यक घोषित करते हुए उसे खारिज किया। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में इस उपेक्षापूर्ण नीति का भारतीय शिक्षित वर्गो ने प्रतिवाद किया। यह प्रतिवाद कोरा प्रतिवाद नहीं था बल्कि इसके पास देशी ज्ञान परंपरा के पुनरोत्थान का एक मॉडल भी था। यह मॉडल समाज, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था, विज्ञान व तकनीक आदि सभी क्षेत्रों से जुड़ा था।

भारत में राष्ट्रवादी चिंतन को प्रखरता के साथ स्थापित करने की प्रक्रिया स्वामी विवेकानंद के द्वारा आरंभ की गयी थी। इन्होंने वेदांत दर्शन की व्याख्या राष्ट्रवाद के संदभ्र में की थी। वेदांत दर्शन में छिपे सेवा-सक्रियता व स्वतंत्रता के संदेश को सरल रूप में जन-जन तक पहुंचाया। उन्होंने भारतीयों को इस तथ्य से अवगत कराया कि भारतीय अध्यात्मवाद वैज्ञानिक है। इसमें गर्व करने लायके बहुत कुछ है। इन्होंने सेवा को समाजसुधार के विकल्प के रूप में अपनाया था। इनके प्रभाव से भारतीय युवावर्ग निःस्वार्थ कर्म की ओर उन्मुख हुए तथा उनमें धर्म को रूढ़िवादी मानकर छोड़ने की जगह समय के अनुसार उसे परिमार्जित करने की प्रेरणाा का विकास हुआ।

स्वामी विवेकानंद ने भारत में विविधता के बीच विद्यमान साझी धार्मिक परंपरा को भारत की एकता व अखंडता का आधार बताया था। उनके इन विचारों का प्रभाव बंगाल के शिक्षित वर्ग पर हुआ। बंगाल में कई राष्ट्रवादी चिंतको का उदय हुआ। उनमें महर्षि अरविंद घोष प्रमुख थे। जिन्होंने राष्ट्रवादी आध्यात्मिक चिंतन को आक्रामक और उपनिवेश विरोधी बनाया। 1907 में भारत में हुए स्वदेशी आंदोलन को मजबुत बनाने में भी इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। वेदांत दर्शन के आधार पर चल रहे, हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण की प्रक्रिया को इन्होंने आगे बढ़ाया तथा आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का प्रसार किया। भारत के राष्ट्रीय जागरण में इन्होंने दो स्तर पर कार्य किया। अपने जीवन के प्रथम चरण में उन्होंने क्रांतिकारी के रूप में कार्य किया। किंतु क्रांतिकारी आंदोलन की अपनी कुछ सीमाएं थी। इसे सर्वप्रथम इन्होंने चिन्हित किया। साथ ही साथ आध्यात्म के सहारे साम्राज्यवाद के अंत की एक विस्तृत योजना बनायी।

दृष्टिकोण

प्रस्तुत अध्ययन में भारत में विकसित क्रांतिकारी आंदोलन एवं उसके सामाजिक आर्थिक आधार का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी-राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया, राष्ट्र की अवधारणा, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, गोरक्षा आंदोलन, अखिल हिन्दू पहचान, स्वराज, स्वदेशी आंदोलन,

परिचर्चा

प्रारंभिक राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया की मुख्य विशेषता राष्ट्र की अवधारणा थी और राष्ट्रवादी विचारकों को स्पष्ट रूप से प्रस्तावित राष्ट्र के घटकों की पहचान करना था।

प्रारंभिक चरण में राष्ट्रवादियों ने उन स्रोतों की पहचान की जो प्रारंभिक चरण में राष्ट्र के वैचारिक स्वर को निर्धारित करते है, इस्लाम और सहायक ग्रंथों का विरोध। मुसलमान को शामिल करना शायद राष्ट्र के विषय में उनके विचार का एक संकीर्ण आधार था। यह तो स्पष्ट है कि एक राष्ट्र की कला में इन विचारकों ने ऐतिहासिक या वातानुकूलित रूप से अपनी भूमिकाओं का निर्वहन किया।

राष्ट्र का विचार ऐतिहासिक परिस्थितियों के अधीन रखा गया संकुचित रूप से एक उत्पाद प्रतीत होता है। समाजसेवियों ने अपने-अपने ढ़ंग से कार्य किया। राजाराम मोहन राय को हिंदू समाज में बुरी प्रथाएं मिटाने की ज्यादा चिंता थी, बंकिमचंद्र के ऐतिहासिक उपन्यास 'आनंदमठ' में सन्यासी विद्रोह के समर्थन में शासक के खिलाफ राजनीतिक संदेश था।

ज्योतिबा फूले ने तदनुसार समाज की भूमिका को लिपिबद्ध किया। ब्रिटिश विरोधी रूख सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए और एक स्पष्ट राजनीतिक भूमिका से बचने के लिए थी। दूसरे शब्दों में पकड़वाने से उनके द्वारा किए गए मिशन को नुकसान इन विचारकों को बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के आने वैचारिक मिशन को आगे बढ़ाने के लिए एक एजेंडा अपनाने के लिए राजी किया गया। इन सब के बावजूद राष्ट्रवादी विचारों को जनता के समक्ष लाना ब्रिटिश सरकार के लिए शो-डाउन था।

स्वाभाविक रूप से भारत का राष्ट्रीय आंदोलन केवल राजनीतिक ही नहीं था बल्कि एक भावनात्मक आंदोलन था। सभी भारतीयों के लिए वैचारिक अनुभव प्रेरित रचनात्मक लेखन। उपन्यास इतिहास की एक निरंतरता है जो पूरी तरह से इतिहास नहीं हो सका। यूरोप के लिए भारतीय अधीनता आवश्यकता के रूप में प्रकट हुई। इस का वर्णन राष्ट्रवादी लेखकों के लिए अत्यावश्यक था।

भारतीय ऐतिहासिक उपन्यास के लिए और चेतना पुनर्जागरण के लिए भारत के अग्रदूतों जैसे-राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, बंकिमचंद्र चटर्जी ने जमीन तैयार की।

राष्ट्र की अवधारणा का अर्थ अस्पष्ट है। इस शब्द का उपयोग समुदाय के समान अर्थ पर होता है। इसका राजनीतिक और सांस्कृतिक अर्थ है।

'राष्ट्र' शब्द अपना लेता है। मूल फ्रांसीसी शब्द नालसी से जिसका अर्थ है 'जन्म लेना' जाहिर है, यह शब्द पहले उसी स्थान पर पैदा हुए लोगों के समूह को संदर्भित करता है। उन क्रांतियों ने यूरोप को अठारहवे और 19 वीं सदियों में नया आयाम जोड़ा। यह सुझाव आया धर्मनिरपेक्षता समानता और केन्द्रीकरण और इस प्रकार लोकप्रिय सरकार राष्ट्रवाद दुनिया के केन्द्र स्तर पर बना हुआ है। लेवी समयावधि के बाद समय के पाठ्यक्रम में उल्लेखनीय बदलाव आया है।

सांस्कृतिक विविधता एक ऐसी विशेषता है जिसे दुनिया के अधिकांश राष्ट्र ने साझा किया है। भारत के विभिन्न धार्मिक विविधता जैसा देश समकालिन दुनिया के किसी भी देश के पास नहीं है।

सीमांकन सन् 1902 में प्रदेशों के साथ था, डुरेड रेखा के डाइंग और मैकमोहन रेखा के 1914 में पहली बार सीमाओं की घोषणा की गयी थी। एक आरंभिक राष्ट्र : अलिस्ट प्रतिक्रिया-राष्ट्रवादी में केंद्री होने के आधार पर ऐतिहासिक परिस्थितियों में बनावट दृष्टि से राष्ट्रवादी विचार का अभिन्न अंग था।

बंकिमचंद्र चटर्जी 19 वीं सदी के भारतीय राष्ट्रवादी लेखकों में काफी प्रसिद्ध है। उन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन को निर्देशित करने वाले पाठ्यक्रम वाली विचारधारा को उजागर किया। विदेशी शासन के लंबे समय तक भारत में वशीकरण के कारण उन्होंने भारतीयों की स्वतंत्रता और राष्ट्रीय प्रेम की अनुभूति महसूस हुई।

उन्होंने सामाजिक रीति-रिवाजों को प्रगति में बाधा माना और हिन्दू धर्म को आधुनिक बनाने का प्रयास किया। उनके अनुसार राष्ट्रीय धर्म वह है जो जीवन को आकार दे सकता है।

उन्होंने एक राष्ट्र के भविष्य को निर्देशित करने में ऐतिहासिक प्रलेखन महत्व को पहचाना उन्होंने भारत के इतिहास को विकृत करने का आरोप विदेशी इतिहासकारों और आगंतुको पर लगाया।

उन्होंने देश की संस्कृति के उत्थान के लिए क्रांतिकारी बदलाव लाने की मांग की। बंकिमचंद्र चटर्जी की जीवनी एक प्रभावशाली धर्मनिरपेक्ष विषय रहा है। उन्हें संत के रूप में प्रसिद्धि मिली। उन्हें 'द्रष्टा और राष्ट्र निर्माता' भी कहा जाता है।

वे एक सच्चे क्रांतिकारी, रहस्यवादी और दूरदर्शी राष्ट्रभक्त थे। उन्हें हिंदू पुनरूत्थानवाद और राष्ट्रवाद के नेता के रूप में भी मान्यता दी गयी है। भारत और विदेश में बाद में विद्वानों ने बंकिम के स्वदेश चिन्ह या राष्ट्रवादी विचार का आलोचनात्मक और ऐतिहासिक रूप से विश्लेषण किया है।

बंकिमचंद्र एक तर्कसंगत विचारक थे, जिनकी राष्ट्रवादी चेतना ने भारत की जटिलताओं और विविधताओं को कभी नहीं समझा। उनके वर्ग जातीय और धार्मिक चेतना द्वारा उसी टोकन को सीमित किया गया था। वे अक्सर सार्वभौमिकता, महानगरीयता और भारतीय राष्ट्रवाद की ब्यानबाजी करते थे।

राष्ट्रवाद धर्म के रूप में बंकिम चंद्र चटर्जी पराश्रयी नहीं थे लेकिन उनमें व्यापक राष्ट्रवादी चेतना थी। बंकिम चंद्र का जन्म बंगाल के नए युग में हुआ था। यह नया युग ब्रिटिश शाही संस्कृति के तत्वाधान में आया जो यूरोपीय आत्मज्ञान और औद्योगिक क्रांति का उत्पाद था।

बंकिमचंद्र का जन्म 19 वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक की अवधि के आस-पास हुआ था। भारतीय उपमाद्वीप में अंग्रेजी के हिस्से में एक अभूतपूर्व सुधार से चिन्हित थे। ब्रिटेन में हुए आंदोलनों ने लोगों के सोच और जीवन में गहरे नैतिक परिवर्तन लाए। 19 वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक के अवधि में लगभग बंकिमचंद्र का जन्म हुआ था। बंकिमचंद्र घर पर और भारतीय उपमहाद्वीप में अंग्रेजी के हिस्से में एक अभूतपूर्व सुधार उत्साह से चिन्हित थे। अध्ययन से पता चलता है बंकिम की पीढ़ी भी देखी गई, व्यंग्य और किरायों का समूह 'ग्रब स्टीट' या बटाला (उत्तर कलकत्ता में एक शहरी वार्ड का नाम) साहित्य इसने आधुनिकता के खिलाफ एक सौम्य और अक्सर मनोरंजक हमला किया जो कि शहरीकरण वाला संस्कृति है। यह साहित्यिक घटना सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का एक पहलू था जो देहात की वापसी और औपनिवेशिक राजधानी की बदलती दुनिया में प्रमाणिक था। बंकिम की देशभक्ति चेतना वास्तव में ब्रिटिश इंडिया सोसायटी लंदन के अंग्रेजी समाज सुधारक जॉर्ज थाम्पसन के सलाह से प्रेरित थे। थाम्पसन 1842 के अंतम में कोलकाता में द्वाराकानाथ टैगो के साथ आए थे। 11 जनवरी 1843 को सोसायटी फार द एक्विजिशन ऑफ जनरल नॉलेज, बाद में बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी के रूप में पुनर्गठित होने के लिए अपने पहले भाषण में थाम्पसन ने बंगालियों को सलाह दी की वे अपने देश के कल्याण के लिए खुद काम करें, अपने अतीत के इतिहास और वर्तमान स्थिति से पूरी तरह परिचित हो और सरकारी उपायों पर अपनी राय खुलकर व्यक्त करें। अंग्रेजी न्याय की प्रभावकारिता में अपना भरोसा रखते हुए इन काउंसल्स ने बंकिम और उनकी पीढ़ी पर छाप छोड़ने की कवायद की। युवा बंकिम चंद्र पश्चिमी सकारात्मकता से काफी प्रभावित थे। बंकिमचंद्र चटर्जी ने पश्चिम की तर्कसंगत आलोचनात्मक पद्धति के बाद अपने धर्म की व्याख्या की।

बंकिमचंद्र चटर्जी की महत्वकांक्षा अपने समय के पश्चिमी बंगाली बाबुओं का विशिष्ट दृष्टिकोण थे बंकिमचंद्र ने घोषणा की-'हम सामाजिक क्रांति का अनुमोदन नहीं करते है।' बंकिम की महत्वकांक्षा उनकी धार्मिक संवेदनाओं में स्पष्ट है। अधिकांश आलोचकों ने उन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिक्रियावादी, और सांप्रदायिक मुद्रा के लिए दोष दिया है। उनकी मुस्लिम विरोधी भावनाओं को उनके उपन्यास 'मृणालिनी'', 'आनंदमठ', आनंद की अभय और विशेष रूप से सीता-राम' में उनकी अभिण्यक्ति मिली। बंकिम की भी स्वतंत्रता की अपनी समझ थी। अपने लेख 'भारत बैरासर स्वाधीनता में पराधिनता विकसित करे। भारत की स्वतंत्रता और अधीनता, बंकिम ने 'स्वतंत्रता और पराधिनता के बीच अंतर स्पष्ट किया है कि एक देश राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो सकता है।

उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया की 'हम एक आश्रित राष्ट्र है और लंबे वक्त तक निर्भर रहेंगे। हमारी यह समस्या है। यह स्पष्ट होना चाहिए की बंकिम की स्वतंत्रता की अवधारणा राजनीतिक स्वतंत्रता पर समर्पित नहीं थी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की प्रशंसा की और हिंदू कॉलेज के प्रोफेसर के समक्ष स्वीकार किया की मैने एक पल के लिए भी नही सोचा की आपका शासन समाप्त हो जाए।

बंकिम चंद्र चटर्जी एक उच्च कोटि के परिवार से संबंध रखते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भी उन्होंने पिछड़े और उपनिवेश समाज के नागरिक के रूप में असहज महसूस किया। उनकी महत्वाकांक्षा उनकी अपनी सामाजिक और व्यक्तिगत स्थिति का अनिवार्य परिणाम थी।

पार्थ चटर्जी बंकिम के पश्चिमी तर्कवाद से हिंदू आध्यात्मवाद के प्रतिशोध के लिए एक दिलचस्प विवरण प्रदान करता है। बंकिमचंद्र ने पूर्वी आध्यात्मिक संस्कृति पर जोर दिया जो पश्चिमी ज्ञान परंपरा के प्रभाव से मुक्त था। बंकिम चंद्र चटर्जी ने भारतीय संघ सहित कई शहरी राजनीतिक और सामाजिक संगठनों की सदस्यता ली और 1883 के इलबर्ट बिल ने नस्लवाद के खिलाफ सख्ती से अभियान चलाया।

उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1885 में स्थापित में शामिल होने से परहेज किया। उनके अनुसार उन्हें कांग्रेस से भी सहानुभूति थी परंतु उनकी गतिविधि का तरीका बड़े पैमाने पर भागीदारी के लिए उपर्युक्त नहीं है। इनका कोई आंदोलन किसी भी पदार्थ के पंचांग से रहित प्रतीत होता है। बंकिमचंद्र चटर्जी के अनुसार धार्मिक संवेदनशीलता उन्नती का आधार है। जीवन के अंत के क्षणों में अपने हिंदू मिशन और दृष्टि को शांत किया और देशभक्त के रूप में परिपक्व हुए और सांप्रदायिक सद्भाव की प्रभावशीलता की घोषणा की।

राष्ट्रीयता के विचार से संभवत: बंकिमचंद्र चटर्जी पहले व्यवस्थित प्रतिपादक थे। गीता के अनुवादित संस्करण में राष्ट्र की अवधारणा, मुस्लिम शासन का विरोध और राष्ट्रीय विकल्प प्रदान करने की मांग करने वालों की चिंताओं को दर्शाता है।

राष्ट्रीय एकजुटता की धारणा से बंकिम अब अनुशीलन था। उसकी अवधारणा अभयास में बदल गए। अपने 1888 के निबंध के शीर्षक में इस धारणा को विस्तृत करना धर्म का सिद्धांत और बंकिम ने इसे परिभाषित किया। संस्कृति की एक प्रणामी पश्चिमी से अधिक पूर्ण और अधिक परिपूर्ण संस्कृति की अवधारणा।

बंकिम चंद्र के लिए निस्वार्थ और गैर अधिकारी की धारणा, भक्ति धर्म या धर्म की आधारशीला है। राष्ट्रीय एकजुटता की अवधारणा से बंकिम अब अनुशीलन या उसकी अवधारणा अभ्यास में बदल गए। बंकिम चंद्र के इन विचारों को महत्व दिया गया–

1. राष्ट्रीय पहचान के निर्माता में
2. राष्ट्रीय विचार के गठन में

बकिमचंद्र चटर्जी के लेखन ने भी इस कार्य में सहयोगी भूमिका निभायी। आनंठमठ में उन्हों ने भारत माता का चित्राण किया। वही विवेकानंद ने भी राष्ट्रीय पुनरूत्थान के क्षेत्रों में हिन्दू परिकल्पनाओं को स्थापित किया।

पंजाब में लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक व बंगाल में विपिन चंद्र पाल ने स्वदेशी, बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार किया। इनके विचारों का प्रभाव व सार्दभिकता तथा कार्य करने का तरीका इतना प्रभावशाली था कि इन क्षेत्रों से नरमपंथीयों का प्रभाव लगभग समाप्त हो गया।

बाल गंगाधार तिलक ने अपने विचारों के प्रसार हेतु धार्मिक गणपति उत्सव की शुरूआत की। 1896 से उन्होंने शिवाजी उत्सव भी मनाना शुरू किया। इसका उद्देश्य अतीत की गरिमा को पुर्नस्थापित करना व सामाजिक संबंध का विस्तार करना था। 1896 में इन्होंने कपास कर का विरोध किया गया तथा 1897 में अकाल प्रभावित क्षेत्रों में 'कोई कर नहीं' अभियान चलाया। जिससे आम आदमी तिलक के विचारों के साथ जुड़ा। इस प्रकार कांग्रेस में तिलक के शामिल होने से कांग्रेस के जनाधर में वृद्धि हुई। तिलक ने 1897 में प्लेग पीड़ितों की सेवा का कार्यक्रम चलाया, जिससे इनकी लोकप्रियता और बढ़ गयी। 1890 के 'आयु सहमति विद्येयक'द्धजिसमें लड़की के विवाह के उम्र को 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष किया गया) का भी इन्होंने विरोध किया। इसके पीछे इनका उद्‌देश्य मात्र इतना था कि विदेशी शक्ति भारत के सामाजिक ढांचे में हस्तक्षेप ना करें, क्योंकि इससे राष्ट्रीय अस्मिता को खतरा है। तिलक गो संरक्षण सोसायटी के सदस्य भी थे। यह आंदोलन उत्तर भारत के गोरक्षा आंदोलन से प्रभावित था। गो संरक्षण अभियान ने अखिल हिन्दू पहचान का मजबुत किया। तथसा जिसने हिन्दु समाज के आंतरिक विभाजन को कम किया। 'गाय' ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार थी जो समाज के सभी वर्ग के लिए लाभप्रद था। अत: गौ रक्षा आंदोलन के माध्यम से हिन्दू वर्ग एक होने लगा। 'जातिप्रथा' की विकृति को दूर करने का यह उचित माध्यम था। 1893 ई0 में उभरने वाले 'अखिल हिन्दू पहचान' से ब्रिटिश शासक वर्ग इतना भयभीत हुआ कि अब व सांप्रदायिक तनाव पैदा करने की नीति बनाने लगा। बंगाल विभाजन, 1909 का एक्ट इसका उदाहरण है।

महर्षि अरविंद ने 'स्वराज; प्राप्ति व प्रतिरोध का स्वदेशी मॉडल दिया। उन्होंने स्वराज, स्वदेशी व राष्ट्रीय शिक्षा व बहिष्कार की बात कही। स्वराज का अर्थ यहां पूर्ण स्वतंत्रता से, स्वदेशी का अर्थ देश में बनी वस्तु के प्रयोग से, राष्ट्रीय शिक्षा से तात्पर्य भारतीय संस्कृति के अनुकूल शिक्षा से तथा बहिष्कार का मतलब इंग्लैण्ड में बनी वस्तु के बहिष्कार से था।

भारत में राष्ट्रीयता के विकास के लिए वो इन चार चीजो का पालन आवश्यक मानते थे। इन्होने भारतीय स्वतंत्रता का उद्देश्य एशिया व विश्व के सभी परतंत्र देश को स्वतंत्र करवाना माना था। इस प्रकार से इन्होंने भारत के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के पूर्ण विनाश का एक खाका खींच दिया। जिससे भारतीयों के आत्म विश्वास का स्तर बढ़ा।

महर्षि अरविंद व स्वामी विवेकानंद के चिंतन का प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ भारत के संवैधानिक विकास व कांग्रेस के संघटन पर भी पड़ा। इसके साथ-साथ समाज सुधार का जो पश्चिमी मॉडल था, उसकी जगह संस्कृति संरक्षण के साथ सामाजिक सुधार की प्रवृति बढ़ी। राजनीतिक व्यवस्था में भारतीय प्रणामी को स्थान मिलना शुरू हुआ। कांग्रेस का मध्यवर्गीय स्वरूप का अंत होने लगा, इसके अंदर राष्ट्रवादी प्रवृतियां प्रबल होने लगी। जिसे कांग्रेस में उग्रपंथ का आरंभ माना जाता है। बंगाल विभाजन के पश्चात स्वदेशी की अवधारणा ने आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। जिसने भारत के भौतिक विकास को गति प्रदान की।

स्वदेशी आंदोलनके दरम्यान कोलकाता पैटरीज, बंगाल कैमिकल, ऑयल मिल्स व कई स्वदेशी बैंक व स्टीम नेविगेशन कंपनीयां बनी। स्वदेशी शिक्षा संस्थानों की स्थापना भी की गयी। जिसमें बंगाल टेक्नीकल इंस्टीट्यूट, बंगाल नेशनल कॉलेज आदि प्रमुख थे। स्वदेशी का संदेश प्रकाशित करने वाली कई पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ था तथा कई स्वैच्छिक संस्थाएं बनी। स्वदेशी के प्रचार से बहिष्कार का दायरा भी बढ़ा। ब्रिटिश सरकार के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी, ब्रिटिश शासन के अधीन कार्य करने वाली एक धारा भी बन गयी। जिसे क्रांतिकारी आंदोलन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहे तो भारतीय जनता के बीच शक्ति केन्द्र का विकास हुआ तथा प्रतिरोध के भी कई तरीके विकसित होने लगे।

भारतीय जनता व सरकार के बीच संपर्क सूत्र के रूप में कार्य करने वाली कांग्रेस में भी जनसाधारण का प्रभाव दिखने लगा था। राष्ट्रवादी चिंतकों के सामूहिक प्रयास से युवाओं में संगठित होने की प्रेरणा जगी। इन युवाओं का विश्वास अंग्रेजों की चापलूसी करने में नहीं था। वे समाज सुधार के नाम पर भारत की पारंपरिकता को भंग करने के प्रयासों की आलोचक थी। बाल गंगाधर तिलक इन युवाओं को नेतृत्वकर्ता थे। बंगाल में विपिन चंद्रपाल और पंजाव में लाला लाजपत राय ने उग्र राष्ट्रवादी युवाओं का नेतृत्व किया। इनके नेतृत्व में युवाओं ने कई सरकारी कानूनों के विरूद्ध आंदोलन चलाया तथा प्राचीन भारतीय स्थानीय शासन व्यवस्था को पुनर्जीवित करने हेतु व्यापक अभियान भी चलाया।

इस प्रकार हिंदू धर्म के पुनर्जागरण के आधार बनाकर, राष्ट्रवाद के प्रसार का जो अभियान चला। वह बहुत अधिक सफल हुआ। किंतु असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद हिंदू धर्म पुन: उत्थान अभियान का स्वरूप थोड़ा नाकारात्मक हुआ। जो भारत में उत्पन्न सांप्रदायिकता की समस्या का एक कारक भी बना।

वी0 डी0 सावरकर के नेतृत्व में हिन्दू धर्म से भिन्न 'हिन्दूत्व' की अवधारणा का प्रचार किया गया। हिंदूत्व की अपनी विशेष राजनीतिक कार्य सूची थी। जो भारत में हिंदूराष्ट्र की स्थापना करना चाहती थी। असहयोग आंदोलन में मुस्लिम नेताओ का जो रूख था, उससे भारत के हित को नुकसान पहुंचा था। अत: राष्ट्रवादियों के मन में एक विद्वेष पैदा हो गया था जो भारत के संदर्भ में मुसलमान का अलग करके ही कोई योजना बनाना उचित समझने लगे थे। हिंदूत्व के समर्थक हिंदूओं को एकता की भावना का संखर कर रहे थे। वे हिंदूओं का राजनीतिक संरक्षण भी चाहते थे। ऐसा इसलिए क्योंकि ब्रिटिश सरकार पंथ निरपेक्षता की गलत अवधारणा को प्रचारित कर निरंतर हिंदूओं के साथ विश्वासघात कर रही थी।

वी. डी. सावरकर ने एक ओर हिन्दू धर्म की पारलौलिकता व अंधविश्वास पूर्ण प्रथाओं की आलोचना की थी। वही दूसरी ओर 'हिन्दूत्व का व्यवस्थित प्रचार भी किया था। वे हिंदू को भारत की पहचान मानते थे। हालांकि उन्होंने साझा जीवन व साझी परंपरा के महत्व को भी स्वीकार किया था। वे राजनीतिक व प्रशासनिक स्तर पर धर्म के आधार पर किसी भेदभाव के विरोधी थे। लेकिन उस समय भारतीय राष्ट्र-राज्य की कोई परिकल्पना नहीं थी, इसलिए इनके विचारो का सांप्रदायिकता माना गया। इस तथ्य से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है कि इनके विचरों में उपस्थिति अस्पष्टता ने हिंदू-मुस्मिल पृथक्‌तावदी विचार को बढ़ावा दिया।

'हिंदूत्व' के विचार के प्रसार के लिए डॉ0 हेडगेवार ने 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का गठन किया। सन् 1940 से माधव राव सदाशिव गोलवलकर के नेतृतव में इस संगठन ने भारत में हिंदूराष्ट्रवाद का व्यवहारिक व निष्पक्ष प्रचार किया। उनके प्रयास से 'हिन्दू राष्ट्र' का विचार युवाओं में 'प्रतिज्ञा' के रूप में लोकप्रिय हुआ।

माधवराव सदाशिव गोलवलकर भारतीय अध्यात्मवाद को पश्चिमी भौतिकवाद से श्रेष्ठ मानते थे। उन्होने भारत में निवास करने वाले सभी पंथ के लोगों की संस्कृति व आर्थिक हित को एक समान बताया था। उनके अनुसार राष्ट्र का अभिप्राय ही साझा संस्कृति थी। इसके अभाव में देश धर्मशाला हो जाएगा, जहा विभाजन की प्रवृतियां जन्मेगी।

इन्होंने भारत में रहने वाले सभी पंथ के लोगों को 'आर्य' कहा था। उनके अनुसार भारत में रहने वाले मुसलमान, इसाई अथवा पारसी सभी ने परिस्थितिवश धर्म परिवर्तित कर लिया था। अत: भारत में रहने वाले सभी पंथ के लोगों का ऐतिहासिक नायक एक ही है। वे सभी राष्ट्रीय परंपरा के अंग है। अत: देश की मजबुती के लिए यह आवश्यक है कि गैर हिंदू नागरिक बिना अपनी पहचान खोये भारत की राष्ट्रीय परंपरा का अंग बने।

इन्होंने हिंदू अध्यात्मवाद को विश्वशांति तथा विश्व के पुनरूत्थान के लिए भी उपयोगी बताया था। हिंदू अध्यात्मवाद व्यक्ति परिवर्तन पर जोर देती है। अत: व्यवस्था परिवर्तन दीर्घजीवी हो पाएगा और समाज व संस्कृति अगर मजबुत होती है तभी राजनीतिक स्वच्छता की स्थापना संभव हो पाती है।

बाल गंगाधर तिलक ने सर्वप्रथम 'स्वराज' का नारा दिया था। देश के शैक्षणिक विकास, औद्योगिक विकास व राष्ट्रीय जीवन के विकास के लिए स्वराज की आवश्यकता को दर्शाया था। उन्होंने बहिष्कार की बात भी कही थी। उनका मानना था कि यदि ब्रिटिश अपफसरशाही से भारतीय लोग हट जाए तो उनकी मशीनरी स्वत: ध्वस्त हो जाएगी। अत: उन्होंने लोगों से सरकारी पद त्यागने का आह्वान भी किया था। इतना ही नहीं उन्होंने आत्म बलिदान का भी समर्थन किया था। क्योंकि इससे शासक के मन में आतंक पैदा होता है।

जिस विज्ञान को आधार बनाकर ब्रिटिश सरकार भारत में अपने शासने को वैद्य बनाने का प्रयास कर रही थी। उस विज्ञान और अध्यात्म का तुलनात्मक अध्ययन महर्षि अरविन्द ने प्रस्तुत किया। जिस में उन्होंने विज्ञान को प्रकाश का सीमित कक्ष और अध्यात्म रूढ़िवाद का पर्याय नहीं बल्कि विज्ञान की जननी है। उनके उस वैचारिक परिवर्तन के प्रयास से ब्रिटिश सरकार की सर्वोच्चता स्थापित करने के प्रयासों को गहरा धक्का लगा। इसके पश्चात महर्षि अरविंद ने ब्रिटिश सरकार के अच्छी शासन व्यवस्था देने के वायदो पर प्रहार किया। उन्होंने तार्किक ढंग से यह साबित किया कि ब्रिटिश शासन ने भारत को एक भीड़ बना दिया है। जिस भीड़ का ना तो कोई शक्ति केन्द्र है और ना ही उनके पास प्रतिरोध को कोई तरीका है। इस परिस्थिति में यह मानना मुश्किल है कि अंग्रेजो के पास उदाहरण दिया। जिसका केन्द्र गांव होता था। ग्रामीण शासन व्यवहारिक विवेक व साझा निर्णय से चलती थी। इस प्रकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था सृजनात्मक शक्ति पर निर्भर थी। जब कभी इसकी उपेक्षा हुयी राजनीतिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। ब्रिटिश शासनकाल में तो व्यवस्था को मशीन के तरह इस्तेमाल किया गया। अत: जनता मानव संसाधन की जगह भीड़ बन गयी। इस प्रकार उन्होंने राजनीति के भारतीयकरण का प्रयास किया।

निष्कर्ष

19 वीं सदी भारतीय इतिहास का वह काल है, जब ब्रिटीश शासक भारत की विशिष्टता को समाप्त करने को प्रयास कर रहे थे ताकि व`अपनी शासन व्यवस्था की वैद्यता सिद्ध कर सके। उनके इस कार्य में यूरोपीय इसाई मिशनरी व समकालीन समाज सुधारक भी परोक्ष रूप से मददकर रहे थे। समाज के शिक्षित वर्ग में भारतीय संस्कृति को रूढ़िवादी व पश्चिमी संस्कृति को आधुनिकता का पर्याय मानने की प्रवृति तेजी से बढ़ रही थी। फलत: भारतीय समाज में आत्म गौरव का भाव समाप्त हो रहा था। इस परिस्थिति में बंकिमचंद्र चटर्जी, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, वीडी सावरकर जैसे प्रखर राष्ट्रवादी चिंतको ने भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता की सांदर्भिकता को स्पष्ट किया। उनके प्रयास से भारतीयों में आत्म सम्मान का भाव पैदा हुआ। उन्होंने ब्रिटिश शासकों के समक्ष भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता को स्पष्ट करके उनके भारत के यूरोपीयकरण के प्रयास को बाधा भी पहुंचायी। राष्ट्रवादी चिंतको ने इस तथ्य को प्रतिष्ठापित किया कि भारतीय आध्यात्मिक दर्शन से भी स्वराज प्राप्ति संभव है। इन चिंतको ने अपनी व्यक्तिगत कृति सभा संगठनों के माध्यम से सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास के स्वदेशी मॉडल

का सफलतम प्रयोग भी किया। इनके प्रयासो का ही परिणाम है कि भारत को मॉडल का सफलतम प्रयोग भी किया। इनके प्रयासो का ही परिणाम है कि भारत को स्वतंत्रता भी मिली और उसकी राष्ट्रीय अस्मिता भी अक्षुण्ण बनी रही।

संदर्भ

1. दिलीप एम0 मेनन; आधुनिक भारत का इतिहास
2. विमलेश कांति वर्मा; भाषा, साहित्य और संस्कृति
3. दीपक कुमार; साइंस एंड दी राज सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकलम प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 274-282
4. राजाराम, कल्पना; भारतीय संस्कृति; स्पैक्ट्रम बुक्स प्रा0 लि0, दिल्ली, पृ0 सं0 1-15
5. शर्मा, अमित कुमार; भारतीय संस्कृति का स्वरूप, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 20-53
6. मित्तल, डॉ0 ए0 के0; भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास; साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृ0 सं0 226-247
7. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 362-364
8. डॉ0 नागेन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स नोएडा, पृ0 सं0 622-627
9. राय, सत्या; भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवा; हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 368-370
10. सिंह, बच्चन; हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन (नई दिल्ली), पृ0 सं0 401-420
11. चतुर्वेदी, रामस्वरूप; हिन्दी साहित्य औश्र संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, पृ0 सं0 189-193
12. भट्टाचार्य, सब्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 सं 205-225
13. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, मैकमिलन इंडिया, पृ0 सं0 167-209

आधुनिक भारत में स्त्री शिक्षा के लिए किए गए शासकीय अथवा व्यक्तिगत प्रयासः एक अध्ययन

डॉ० संतोष कुमार

पी-एच0 डी0 (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारसंक्षेप

शिक्षा वह तत्व है जो किसी भी व्यवस्थाा की बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आधार तो देता ही है। साथ ही विकास की प्रक्रिया को भी बल देता है। स्त्री शिक्षा, स्त्री एवं शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़नेवाली अवधारणा है। भारत में स्त्री शिक्षा की व्यवस्था प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। आधुनिक काल में भारत में स्त्री शिक्षा को नए सिरे से महत्व मिलने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा 1854 ई0 में प्रस्तुत बुड्स डिस्पैच भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का मैग्नाकार्टा माना जाता है। थोड़े-बहुत संशोधनों क` साथ यह भारतीय शिक्षा पद्धति का आधार रहा। स्त्री शिक्षा की स्वीकार्यता सर्वप्रथम यही देखी गयी जो आगे भी चलती रही। स्त्री शिक्षा की व्यवस्था करने वाला प्रथम विश्वविद्यालय कोलकाता विश्वविद्यालय था। कालांतर में शिक्षा से संबंधित सभी सरकारी प्रयासों में स्त्री शिक्षा एक महत्वपूर्ण बिन्दू बना रहा। साथ ही, व्यक्तिगत एवं सांगठनिक स्तरों पर किये जानें वाले प्रयासों में भी स्त्री शिक्षा का मुद्दा महत्वपूर्ण था।

प्रस्तुत अध्ययन में आधुनिक भारत में स्त्री शिक्षा के लिए किए गए सरकारी अथवा व्यक्तिगत प्रयासों का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी-बौद्धिक, मैग्नाकार्टा, सांगठनिक, स्त्री शिक्षा।

परिचर्चा

1853 ई0 के चार्टर में भारत में शिक्षा के विकास की जांच करने के लिए एक समिति के गठन का प्रावधान था, जिसके अनुसार बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड की अध्यक्षता में एक कमिटी गठित की गई वुड ने भारत में शिक्षा की एक वुहत् योजना तैयार की जिसे 'भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा' कहा जाता है। वुड्स की प्रमुख सिफारिशें–

1. सरकार पाश्चात्य शिक्षा, कला, दर्शन, विज्ञान और साहित्य का प्रचार करे।
2. उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो, परंतु देशी भाषाओं को भी प्रोत्साहित किया जाए।
3. ग्रामों में देशी भाषा के विकास के लिए प्राथमिक पाठशालाएं, उनके उपर एंग्लो-वर्नाक्यूलर हाईस्कूल और कॉलेज खोले जाए।
4. अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए अध्यापक/प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की जाएं।

5. व्यवसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा पर बल दिया जाए।
6. स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए।
7. निजी शैक्षणिक संस्थाओं को बिना किसी भेदभाव के सरकारी अनुदान दिए जाएं।

वुड डिस्पैच में विप्रवेशन सिद्धांत का परित्याग कर दिया गया। शिक्षा का प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक विकास के लिए एक पदसोपानगत व्यवस्था की गई। इस योजना के अंतर्गत सरकार द्वारा भारत में शिक्षा के प्रसार का पूर्ण दायित्व लिया गया एवं कहा गया कि भारतीयों के नैतिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन को उपर उठाने के लिए उपयोगी ज्ञान की आवश्यकता है।

इस प्रकार, वुड्स डिस्पैच ने स्त्री शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने वाली व्यवस्था प्रस्तुत की। शासकीय स्तर पर उपलब्ध करायी जाने वाली शिक्षा का यह आधार बनी रही। 1854 के बाद सभी सरकारी शैक्षणिक निर्णयों का एक प्रमुख चिंतन केन्द्र स्त्री शिक्षा बना रहा। इन सरकारी प्रयासों के साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी इस दिशा में अनेक प्रयत्न हुए। उन प्रयत्नों को निम्न तरीके से व्याख्यायित किया जा सकता है-

ज्योतिबा फूले का योगदान

महाराष्ट्र महान समाज-सुधारकों की जन्मभूमि रही है। इनमें उन्नीसवीं सदी में महात्मा फुले का नाम सम्मान से लिया जा सकता है। जिन्होंने रूढ़िवादिता, ब्राह्मणवाद, संकीर्णता और जातिवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। स्त्री शिक्षा का आरम्भ उन्होंने किया और दलितों को भी शिक्षा के लिए प्रेरित किया।

1848 ई. में बालिकाओं को पढ़ाने के लिए उन्होंने एक पाठशाला की स्थापना की। इस संबंध में उन्होंने कहा था-मेरे देशवासियों में महार, मांग, चमार आदि निम्न समझी जाने वाली जाति के लोगों का बहुत कड़ा भाग है। यह अत्यधिक गहरे अज्ञानान्धकार दैन्य और गरीबी में बुरी तरह डूबे हुए हैं। भगवान ने मुझे प्रेरणा देकर मुझमें एक ऐसी आन्तरिक इच्छा जगाई है कि मैं इन सबकी दयनीय दशा में सुधार लाऊं। खूब विचार-विमर्श के बाद मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर गया है कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं को सर्वप्रथम शिक्षा की अधिक आवश्यकता है।

नारी जाति की विशुद्ध हित-कामना से ज्योतिराव द्वारा शुरू किए गए कार्य से परम्परावादी पूना के ब्राह्मणों में ईर्ष्या होने लगी। ज्योतिराव के बन्धु-बान्धवों के द्वारा उन्हें धमकी दी जाने लगी कि वे धर्म-विरोधी कार्य को छोड़ दें। किन्तु ज्योतिराव इससे विचलित नहीं हुए। ऐसे समय में बालिकाओं को पढ़ाने के लिए शिक्षिका का मिलना कठिन था, इसलिए अपनी पत्नी सावित्रीबाई को उन्होंने घर पर ही पढ़ाया और उन्हें बालिकाओं को पढ़ाने के लिए प्रेरित किया।

धर्मभीरू गोविन्दा ने ज्योतिराव को परम्परा न तोड़कर पाठशाला बन्द करने को कहा। जब ज्योतिराव अपने निश्चय पर दृढ़ रहे तो पिता ने पुत्र और पुत्रवधू को घर से निकाल दिया। घर से निकाले जाने के बाद ज्योतिराव पूना के गंजपेठ में आकर रहने लगे। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के लिए मकान, सड़क, पुल बनाने की ठेकेदारी करने लगे और छः महीने के लिए पाठशाला बन्द कर दी। वहीं पर पाठशाला खोलने का निश्चय हुआ। रानबा महार ने बहुत से बच्चों को स्कूल में भर्ती कराने में सहायता की। एक ब्राह्मण विष्णु पंत थे, उन्होंने बच्चों को पढ़ाने का जिम्मा ले लिया। ज्योतिराव ने गरीब और अस्पृश्य बच्चों के लिए पीने के पानी, पहनने के लिए वस्त्रों तथा पढ़ने के लिए पुस्तकों की जिम्मेदारी ली। यह पाठशाला चल निकली। 3 जुलाई, 1851 ई. में अण्णा साहेब चिपलूणकर के घर में एक और बालिका स्कूल की स्थापना की। इसमें ज्योतिराव चार घंटे स्वयं पढ़ाते थे। अपनी पत्नी सावित्रीबाई को पूर्व विद्यालय से स्थानान्तरित कर यहां स्कूल का प्रबंध सौंप दिया। इसके लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। इनके साथ कुल लोगों को मिलाकर एक प्रबंध समिति बना दी गई।

17 सितम्बर, 1851 ई. को बालिकाओं के लिए एक अन्य पाठशाला खोली गई। 15 मार्च, 1852 ई. को बेताल पेठ में एक अन्य बालिका विद्यालय की स्थापना की गई। 1853 ई. में तीनों पाठशालाओं में 231 बालिकाएं पढ़ रही थीं। शिक्षा विभाग के अधिकार ने इनका निरीक्षण किया। शिक्षा स्तर अच्छा बताया गया। इनमें बोधिकथा, बालबोध, देवनागरी, वर्णमाला, भूगोल, गणित, मराठों का इतिहास, एशिया, यूरोप, भारत के मानचित्र का ज्ञान कराया जाता था। बच्चों के अलावा अपने घर पर उन्होंने रात्रि पाठशाला खोली जिसमें रात्रि में दो घंटे पति-पत्नी प्रौढ़ों को शिक्षा देते थे।

आर्य समाज का योगदान

भारतीय राष्ट्रीय जागरण के इतिहास में आर्यसमाज का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसका समर्थन **एच. कोहन** ने किया है।[1] आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती हिंदू-समाज के एक रक्षक समझे जाते हैं। चूँकि 19वीं शताब्दी सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण का युग था, इसलिए ब्रह्मसमाज के साथ-साथ आर्यसमाज का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की सभी सुधारक संस्थाओं में आर्यसमाज सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती ने इस संस्था की स्थापना 1875 ई. में बंबई में की थी। आर्यसमाज के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनता में आत्मविश्वास पैदा किया।

स्वामी दयानंद सरस्वती को हिंदू-समाज का रक्षक कहा गया है। उनका जन्म 1824 ई. में कठियावाड़ में कट्टर ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। वे बहुत बड़े विद्वान और वेद के पुजारी थे। काफी परिश्रम और दिलचस्पी से उन्होंने वेदों का अध्ययन किया। वे बाल्यावस्था से ही सामाजिक कुरीतियों तथा धार्मिक बाह्याडंबरों के घोर विरोधी थे। उनकी पूरी आस्था थी कि वैदिक धर्म, वैदिक सभ्यता और संस्कृति विश्व में सर्वश्रेष्ठ है और विशुद्ध रूप से उनका पुनरुत्थान करने से ही भारत का कल्याण हो सकता है। स्वामी दयानंद सरस्वती को शिक्षित भारतीयों को पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित होकर बड़ा कष्ट होता था। इसलिए उन्होंने पुन: वेदों की ओर लौटने का संदेश दिया। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना करनके हिंदू-समाज में नवचेतना का संचार किया और देश में प्रचलित सभी धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध एक जबर्दस्त कदम उठाया। उन्होंने जाति-भेद, छुआछूत, सती-प्रथा, मूर्ति-पूजा, बहु-विवाद, बाल-विवाह, हिंसात्मक यत्र इत्यादि बुरी प्रथाओं और सामाजिक बुराइयों का विरोध किया और उनके स्थान पर पवित्र जीवन, विधवा-विवाह, नारी-शिक्षा तथा प्राचीन हिंदू-आदर्शों के पालन करने का संदेश दिया। स्वामी दयानंद ने जाति-व्यवस्था की कठोरता तथा अस्पृश्यता पर सबसे अधिक प्रहार किया और औरतों की दशा सुधारने के लिए बहुत-से अनाथालय, विधवा-आश्रम आदि की स्थापना की।

शिक्षासंबंधी कार्य

आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। बड़े-बड़े शहरों में आर्यसमाज की ओर से अनेक स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की गई है। इन शिक्षण-संस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण संस्था लाहौर का डी.ए.वी. कॉलेज था जिसको 1886 ई. में दयानंद सरस्वती के स्मारक के रूप में स्थापित किया गया था। लेकिन, देश-विभाजन के बाद लाहौर के पाकिस्तान में चले जाने के कारण उसका स्थान डी.ए.वी. कॉलेज, जालंधर ने ले लिया। इसी प्रकार अन्य स्थानोंपर भी डी.ए.वी. कॉलेजों की स्थापना की गई है। स्कूलों की संख्या बहुत अधिक है। गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार) का इन शिक्षण-संस्थाओं में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ बच्चों को शिक्षा के साथ-साथ अनुशासन का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। चूँकि स्वामीजी हिंदी भाषा के भी बहुत बड़े समर्थक थे, इसलिए आर्यसमाज की ओर से हिंदी के पक्ष में भी जोरदार प्रचार किया गया।

तिलक का योगदान

स्त्री शिक्षा के विषय में तिलक के विचार बहुत उच्च थे। उनका कहना था कि इस शिक्षा को सुधार कर इस योग्य बनाया जाना चाहिए कि वह समाज का हित कर सके। तिलक स्त्री को दासी मानने के विरोधी थे। स्त्री दास्य विमोचन पर 'केसरी' के चौवालीसवें अंग में लिखते हुए तिलक ने कहा था-''समस्त स्त्री जाति पुरुष वर्ग से कमजोर है, ऐसा कहना गलत तो है ही, झूठ भी है-ताराबाई, आनन्दीबाई, अहिल्या बाई, लक्ष्मीबाई, राधाबाई बुद्धि से कमजोर थी ऐसा कोई कहेगा क्या''? हाँ यह सच है कि स्त्रियों को पुरुष वर्ग के समान स्वतंत्रतापूर्वक विद्या प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। परन्तु महिला वर्ग पुरुषों के पीछे नहीं रह सकती। स्त्री कितनी ही योग्य और बुद्धिमान हो तो भी महामूर्ख पुरुष से भी मूर्ख है। इस धारणा की वजह से ही हम लोगों में स्त्रियों की समस्त स्वतंत्रता नष्ट करके उन्हें पशुतुल्य समझने की जो धारणा बन गयी है वह बहुत ही बड़ा पागलपन है। स्त्रियों को उचित शिक्षा दी जानी चाहिए। पुरुषवर्ग को उससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि विद्या और हक देने में हमने समता छोड़कर उनके साथ यदि कुछ पक्षपात भी किया तो भी गर्भधारण का काम उनके पास जब तक है तब तक उनके कोमल स्वभाव तथा रति-क्रीड़ा के काम में वह नादान हो जायेगी, ऐसा समझना ही गलत है। स्त्री का मातृत्व ही उसकी सबसे कोमल प्रवृत्ति है। उन्होंने कहा था कि स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। पहली बात शरीर पुष्टता और दूसरी मनपुष्टता।

इस दिशा में ठोस कदम 24 अक्टूबर, 1884 को उठाया गया जिसमें समाज गठित करने तथा न्यासी (ट्रस्टी) परिषद् का चुनाव करने के लिए सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों की एक सभा हुई। सभा में राष्ट्रभक्तों ने अपने उत्साह और योग्यता से जनता की सहानुभूति ही नहीं, अपितु सरकार का समर्थन भी प्राप्त कर लिया। इस प्रकार 'डेक्कन एजुकेशन सोसायटी' का उद्भाव एक शुभ मुहर्त में हुआ। आरम्भ होने के कुछ ही वर्षों बाद 'डेक्कन एजुकेशन सोसायटी' ने एक विशाल वट वृक्ष की भांति सारे महाराष्ट्र में अपनी शाखाएं फैला दी। यह अपने ढंग की प्रमुख संस्था थी जा कई स्कूल और कॉलेज राष्ट्रीय स्तर पर चलाती रही। अग्रगामी संस्था होने के कारण यह अन्य संस्थाओं के लिए प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुई। लाला लाजपतराय के अनुसार आर्य समाज तक ने भी डेक्कन ऐजुकेशन सोसायटी से प्रेरणा ग्रहण की थी।

मालवीय जी का योगदान

पं. मदनमोहन मालवीय ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना का श्रीगणेश 1904 ई. में किया, जब काशी नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता में संस्थापकों की प्रथम बैठक हुई। 1905 ई. में विश्वविद्यालय का प्रथम पाठ्यक्रम प्रकाशित हुआ। जनवरी, 1906 ई. में कुंभ मेले में मालवीय जी ने त्रिवेणी संगम पर भारत भर से आयी जनता के बीच अपने संकल्प को दोहराया। कहा जाता है, वहीं एक वृद्धा ने मालवीय जी को इस कार्य के लिए सर्वप्रथम एक पैसा चंदे के रूप में दिया। डॉ. ऐनी बेसेंट काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना में आगे बढ़ रही थीं। इन्हीं दिनों दरभंगा के राजा महाराज रामेश्वर सिंह भी काशी में ''शारदा विद्यापीठ'' की स्थापना करना चाहते थे। इन तीन विश्वविद्यालयों की योजना परस्पर विरोधी थी, अंततः मालवीय जी ने डॉ. बेसेंट और महाराज रामेश्वर सिंह से परामर्श कर अपनी योजना में सहयोग देने के लिए उन दोनों को राजी कर लिया। फलस्वरूप बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी सोसाइटी की 15 दिसम्बर 1911 को स्थापना हुई, जिसके महाराज दरभंगा अध्यक्ष, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रमुख बैरिस्टर सुंदरलाल सचिव, महाराज प्रभुनारायण सिंह, पं. मदनमोहन मालवीय एवं डॉ. ऐनी बेसेंट सम्मानित सदस्य थीं। तत्कालीन शिक्षामंत्री सर हारकोर्ट बटलर के प्रयास से 1915 ई. में केंद्रीय विधानसभा से हिंदू यूनिवर्सिटी ऐक्ट पारित हुआ, जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंज ने तुरंत स्वीकृति प्रदान कर दी। 14 जनवरी 1916 ई. (वसंतपंचमी) के दिन ससमारोह वाराणसी में गंगातट के पश्चिम, रामनगर के समानांतर महाराज प्रभुनारायण सिंह द्वारा प्रदत्त भूमि में काशी हिंदू विश्वविद्यालय का शिलान्यास हुआ। उक्त समारोह में देश के अनेक गवर्नरों, राजे-रजवाड़ों तथा सामंतों ने गवर्नर जनरल एवं वाइसराय का स्वागत और मालवीय जी से सहयोग करने के लिए हिस्सा लिया। अनेक शिक्षाविद् वैज्ञानिक एवं समाजसेवी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। गांधी जी भी विशेष निमंत्रण पर पधारे थे। अपने वाराणसी आगमन पर गांधीजी ने डॉ. बेसेंट की अध्यक्षता में आयोजित सभा में राजा-रजवाड़ों, सामंतों तथा देश के अनेक गण्यमान्य लोगों के बीच, अपना वह ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमें एक ओर ब्रिटिश सरकार की और दूसरी ओर हीरे-जवाहरात तथा सरकारी उपाधियों से लदे, देशी रियासतों के शासकों की घोर भर्त्सना की गई।

डॉ. बेसेंट द्वारा समर्पित सेंट्रल हिंदू कालेज में काशी हिंदू विश्वविद्यालय का विधिवत शिक्षणकार्य, 1 अक्टूबर 1917 से आरंभ हुआ। 1916 ई. में आयी बाढ़ के कारण स्थापना स्थल से हटकर कुछ पश्चिम में 1300 एकड़ भूमि में निर्मित वर्तमान विश्वविद्यालय में सबसे पहले इंजीनियरिंग कालेज का निर्माण हुआ तत्पश्चात क्रमशः आर्ट्स कालेज एवं साइंस कालेज स्थापित किया गया। 1921 ई. से विश्वविद्यालय की पूरी पढ़ाई कमच्छा कॉलेज से स्थानांतरित होकर नए भवनों में प्रारंभ हुई। विश्वविद्यालय का औपचारिक उद्घाटन 13 दिसम्बर 1921 को प्रिंस ऑव वेल्स ने किया।

निष्कर्ष

1854 ई0 में वुड्स डिस्पैच द्वारा भारत में स्त्री शिक्षा हेतु शासकीय स्तर पर सर्वप्रथम प्रावधान घोषित किये गए तत्पश्चात् इस दिशा में शासकीय एवं व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर किए जाने वाले प्रयासों की तीव्रता में वृद्धि हुई। इस प्रकार के प्रयासों का प्रतिफल स्त्री शिक्षा दर में वृद्धि के रूप में प्रकट हुआ।

संदर्भ

1. देशपांडे, जी0 पी0; सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ ज्योतिराव फूले, लेफ्ट वर्ड बुक (नई दिल्ली), पृ0 सं0 28
2. वही, पृ0 सं0 25
3. वही, पृ0 सं0 26
4. देसाई, ए. आर. -सोशल बैक ग्राऊंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, (पापुलर प्रकाशन), मुम्बई, 1976, पृ0 269, 290, 197, 141
5. बासु, अपर्णा-दि ग्रॉथ ऑफ एजुकेशन एंड पोलिटिक्ल डेवलपमेंट इन इंडिया (1929-1920) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1974, पृ. 197, 297-99, 270, 177.
6. बासु, अर्पणा-एस्सेज इन दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन एजुकेशन, (कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी) नई दिल्ली 1982, पृ. 28, 7, 17, 91-93.

आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के विकास में भगिनी निवेदिता का योगदान

संगीता कुमारी

नेट, शोधरत, (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारत में आज भी जिन विदेशियों पर गर्व किया जाता है उनमें भगिनी निवेदिता का नाम पहली पंक्ति में आता है, जिन्होंने न केवल भारत की आजादी की लड़ाई लड़ने वाले देशभक्तों की खुलेआम मदद की बल्कि महिला शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। भगिनी निवेदिता का भारत से परिचय स्वामी विवेकानंद के जरिए हुआ। स्वामी विवेकानंद के आकर्षक व्यक्तित्व, निरहंकारी स्वभाव और भाषण शैली से वह इतना प्रभावित हुई कि उन्होंने न केवल रामकृष्ण परमहंस के इस महान शिष्य को अपना आध्यात्मिक गुरु बना लिया बल्कि भारत को अपनी कर्मभूमि भी बनाया।[1]

प्रस्तुत शोध पत्र में सिस्टर निवेदिता के व्यक्तित्व, चिंतन एवं कृतित्व का संक्षिप्त वर्णन करते हुए भारत के राष्ट्रीय चेतना के विकास में उनके योगदान का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी-दीक्षा, रामकृष्ण संघ, नवजागरण, सेवाकार्य, भारतभक्ति, स्वदेशी।

परिचर्चा

मार्गरेट एलिजाबेथ नोबेल का निवेदिता बनना

भगिनी निवेदिता का मूल नाम **'मार्गरेट एलिजाबेथ नोबेल'** था। वे एक अंग्रेज-आइरिश सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं स्वामी विवेकानंद की शिष्या थी।

भगिनी निवेदिता जन्म से आयरिश और मूलतः स्कॉटिश थी। दिनांक 28 अक्टूबर 1867 ई0 को उनका आयरलैंड के उंगन्नोन जिले में टाइरोन नगर में हुआ। उनका पूर्ण नाम था-'मार्गरेट एलिजाबेथ नोबुल'। सेमुएल व मेरी हैमिल्टन की यह कन्या। उसके दादाजी तथा नाना जी दोनों भी आयरलैंड के स्वाधीनता-संग्राम में भाग लिया था। पिता जी धर्मोपदेशक-रेवरंड थे। वे गरीबों के मित्र थे। उनका धर्म था सेवा। मार्गरेट भी बचपन में उनके साथ गरीब बस्तिओं में जाया करती थी।

मार्गरेट के जन्म के पूर्व ही उसकी माँ ने आने वाली संतान परमेश्वर को अर्पण करने का निर्णय किया था। समर्पणभाव के संस्कार ले कर ही जन्मी यह कन्या कुशाग्र बुद्धि की थी। उसके प्रिय विषय थे संगीत, चित्रकला और प्राकृतिक विज्ञान। सत्रह साल की आयु में उनकी शिक्षा पूर्ण हुई। उनके छात्रावास की प्रमुख मिस लॉरट का उस पर काफी प्रभाव था। संयम और अनुशासन, त्याग और तपस्या, नेतृत्व और आज्ञापालन का मनोहारी संगम भविष्य में भगिनी निवेदिता के जीवन में दिखाई देता है उसकी जड़ यही है।

केवल 32 साल की आयु में ही सैम्युएल का देहांत हुआ। अब मार्गरेट के कंधों पर एक भाई, एकक बहन तथा विधवा माँ की देखभाल का दायित्व आया। मरने के पहले सेम्युएल ने मार्गरेट की माँ को विश्वासपूर्वक बताया कि वह महान कार्य करने के लिए निकलेगी, तब उसको रोकना नहीं। 1884 ई0 में इंग्लैण्ड में जा कर मार्गरेट ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। मार्गरेट प्रयोगशाला शिक्षिका थी। बहुत उद्दंड छात्रों का भी वश में रख कर उनके मन में पढ़ने की रुचि निर्माण करती थी। उस समय मान्यताप्राप्त फ्रोबुल शिक्षा प्रणाली उन्हें पसंद आयी। 1892 ई0 में विम्बल्डन में उन्होंने स्यं का विद्यालय प्रारंभ किया-नाम था 'रस्किन स्कूल'।

करुणा, औदार्य, आवेग, आत्मविश्वास और उत्कट उत्साह से परिपूर्ण उसका व्यक्तित्व बड़ा लुभावना लगता था। बचपन से ही वे मनस्विनी तथा थोड़ी जिद्दी थी। अपनी सहेलियों पर प्रभाव-रौब जमाये हुए रहती थी। उसके द्वारा प्रस्तुत कल्पनाएं उन सहेलियों को प्रारंभ में असंभव, आश्चर्यजनक लगती थी परंतु बाद में उनको अपने आप स्वीकार लेती।[2]

नोबेल के जीवन में निर्णायक मोड़ 1895 ई0 में उस समय आया जब लंदन में उनकी स्वामी विवेकानंद से मुलाकात हुई। स्वामी विवेकानंद के उदात्त दृष्टिकोण, वीरेचित व्यवहार और स्नेहाकर्षण ने निवेदिता के मन में यह बात पूरी तरह बिठा दी कि भारत ही उनकी वास्तविक कर्मभूमि है। इसके तीन साल बाद वह भारत आ गई और भगिनी निवेदिता के नाम से पहचानी गई।

स्वामी विवेकानंद ने नोबेल को 25 मार्च 1898 को दीक्षा देकर मानव मात्र के प्रति भगवान बुद्ध के करुणा के पथ पर चलने की प्रेरणा दी। दीक्षा देते हुए स्वामी विवेकानंद ने अपने प्रेरणाप्रद शब्दों में उनसे कहा-जाओ और उस महान व्यक्ति का अनुसरण करो जिसने 500 बार जन्म लेकर अपना जीवन लोककल्याण के लिए समर्पित किया और फिर बुद्धत्व प्राप्त किया। दीक्षा के समय स्वामी विवेकानंद ने उन्हें नया नाम निवेदिता दिया और बाद में वह पूरे देश में इसी नाम से विख्यात हुई। भगिनी निवेदिता कुछ समय अपने गुरु स्वामी विवेकानंद के साथ भारत भ्रमण करने के बाद अंततः कलकत्ता में बस गई। अपने गुरु की प्रेरणा से उन्होंने कलकत्ता में लड़कियों के लिए विद्यालय खोला। निवेदिता विद्यालय का उद्घाटन रामकृष्ण परमहंस की जीवनसंगिनी मां शारदा ने किया था। मां शारदा ने सदैव भगिनी निवेदिता को अपनी पुत्री की तरह स्नेह दिया और बालिका शिक्षा के उनके प्रयासों को हमेशा प्रोत्साहित किया।[3]

इसमें कोई संदेह नहीं कि निवेदिता एक विदुषी महिला थी। उन्होंने अपना मन-प्राण समर्पित कर जिस प्रकार भारतवर्ष की सेवा की है, इतिहास में उसका दूसरा उदाहरण खोज पाना कठिन है। उनका कार्य-क्षेत्र केवल रामकृष्ण संघ तक ही सीमाबद्ध नहीं था। समस्त भारतवर्ष को अपनी घेरे में लपेटे हुए था। उनके जीवन की विचारधारा और सेवाकार्य के माध्यम से मानों समग्र भारत ही जीवंत रूप धारण कर लिया था। उस समय भगिनी निवेदिता को केन्द्र में रख कर बंगाल के नवजागरण ने अपने शिखर को छू लिया था एवं वे उस राष्ट्रीय आंदोलन की केन्द्र बिन्दु बन चूंकि थी।

इस घटना को भारत में रहते समय स्वयं अभेदानंदजी अपनी आंखों से देख चुके थे तथा इस संवाद को इस प्रकार प्रकट किया था-'निवेदिता की विचार धारा एवं कर्म का प्रभाव केवल भारतीय राजनीति पर ही नहीं पड़ा था बल्कि कला, साहित्य, संस्कृत यहां तक कि राष्ट्रिय जीवन के सभी स्तरों में मानों एक नवजागरण की बाढ़ आ गई थी। प्रत्येक क्षेत्र में उनका प्रभाव कितना गम्भीर और आंतरिक था, उसको मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। उन दिनों 'सिस्टर निवेदिता' नाम बंगाल के शिक्षित समाज में जैसा सूपरिचित था, उतने ही श्रद्धा के साथ इस नाम को सर्वसाधारण के मुख से भी उच्चारित होते मैंने सुना था।'[4]

बनारस हिन्दू विश्वविद्याल में बांग्ला विभाग के पूर्व अध्यक्ष अमरनाथ गांगुली ने कहा कि मार्गरेट नोबेल को स्वामी विवेकानंद ने निवेदिता नाम दिया था। इसके दो अर्थ हो सकते है एक तो ऐसी महिला जिसने अपने गुरु के चरणों में अपला जीवन अर्पित कर दिया, जबकि दूसरा अर्थ निवेदिता पर ज्यादा सही बैठता है कि एक ऐसी महिला जिन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया।

गांगुली ने कहा कि सिस्टर निवेदिता में एक आग थी और स्वामी विवेकानंद ने उस आग को पहचाना। निवेदिता अपने गुरु की प्रेरणा से स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उस समय उतरी जब समाज के संभ्रात लोग भी अपनी लड़कियों को विद्यालय भेजना पसंद नहीं करते थे। ऐसे समाज में स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना निवेदिता जेसी जीवट महिला के प्रयासों से ही संभव हो सका। कलकत्ता प्रवास के दौरान भगिनी निवेदिता के संपर्क में उस दौर के सभी प्रमुख लोग आये। उनके साथ संपर्क रखने वाले प्रमुख लोगों में गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु, शिल्पकार हैमेल तथा अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और चित्रकार नंदलाल बोस शामिल है। उन्होंने रमेशचंद्र दत्त और यदुनाथ सरकार को भारतीय नजरिए से इतिहास लिखने की प्रेरणा दी। गांगुली ने भगिनी निवेदिता के

देशप्रेम की चर्चा करते हुए कहा कि आयरिश होने के कारण स्वतंत्रता प्रेम उनके रक्त में था। ऐसे में यह बेहद स्वाभाविक था कि उन्होंने भारत में स्वतंत्रता सेनानियों और क्रांतिकारियों का समर्थन किया और उन्हें सहयोग दिया। भारत प्रेमी भगिनी निवेदिता दुर्गा पूजा की छुट्‌टीयों में भ्रमणर के लिए दार्जलिंग गई थी। लेकिन वहां उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और अंत में अक्टुबर 1911 को 44 साल की उम्र में उनका निधन हो गया।

राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान

'धर्म' के बारे में वे नित्य सोचती थी। छात्रदशा में वे समझ गयी थी कि धर्म रसायन या भौतिकशास्त्र से व्यापक विज्ञान है। उसकी खोज स्वयं को ही करनी है। अनुभूति से ही आध्यात्मिक आशंकाओं को दूर करना है। मृत्यु के कारण जीवन सचमुच समाप्त होता है क्या? मृत्यु के बाद कुछ जीवन है क्या? ये प्रश्न उभरते थे।

विशिष्ट सिद्धांतो पर श्रद्धा यानी धर्म क्या? नहीं। धर्म अर्थात् प्रकाश! धर्म अर्थात् शाश्वत सत्य की खोज और बोध भी। उस बोध के लिए वे व्याकुल थी। ईसा का तत्वाज्ञान उसका समाधान करने में असमर्थ रहा। बुद्ध के जीवन-तत्वज्ञान का भी उन्होंने अभ्यास किया परंतु ज्ञान की प्यास बुझ नहीं पायी। आत्मानंद की प्रापित नहीं हुई। अचानक उन्हें आशा की किरण दिखायी दी। उनको ज्ञान की लौ मिल गयी एक संयासी से-स्वामी विवेकानंद से। वे उनके प्रवचनों से पगला गयी थी। उनकी प्रत्येक सभा में, चर्चासत्र में, प्रश्नोंत्तरी कार्यक्रम में वे उपस्थित रहती थी। अपनी शंकाओं का समाधान करने हेतु वे उनसे अनेक प्रश्न पूछती थी। समय-समय पर विवाद भी होते थे। उनके निस्संदिग्ध स्पष्ट उत्तरों से दृष्टांतों से चकित हो जाती थी। और अपने आप उनका मस्तक, आदर से श्रद्धा से स्वामीजी के सामने झुक जाता था।

एक सभा में स्वामी जी बोले-'आज विश्व को आवश्यकता है-कुछ लोगों की जो रास्ते पर खड़े हो कर कहें कि हमारे पास ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। बोलो, कितने लोग तैयार है?' यह आवाहन मार्गरेट के मन को छू गया। अब वे स्वामीजी के कार्य से पूरी जुड़ गयी। स्वामीजी पश्चिमी देशों की यात्रा समाप्त कर भारत लौटे। उनके द्वारा इंग्लैण्ड में स्थापित 'वेदांत केन्द्र' मार्गरेट ही चलाती थी। परंतु बार-बार मन में विचारों का तुफान उठता था-स्वामी जी के शब्द याद आते थे ''सर्वस्व त्याग कर, रास्ते पर खड़े हो कर कहे की मैं ईश्वर के लिए हूँ। बोलो कौन है?'' क्या इनमें से एक नहीं हो सकती?' मार्गरेट के मन में यह प्रश्न गूंजता था और उसने निश्चय किया की अब मैं इन बातों में लिप्त नहीं रहूंगी। मैं स्वामीजी के पास जाऊँगी और सचमुच वे अपनी जन्मभूमि, अपना पंथ, ममत्व के बंध, अपना प्यारा विद्यालय सभी छोड़कर हिंदुस्तान के रास्ते चल पड़ी। स्वामीजी ने पत्र द्वारा उनके सामने भारत का अत्युष्ण वातावरण, लोगों की रूढ़िवादिता, दरिद्रय, अज्ञान, यहां आने पर आनेवाली आपत्तियों का चित्रण रखा। परंतु मार्गरेट घबड़ायी नहीं क्योंकि उसे पता चला कि भारत की यात्रा, एक प्रकाशयात्रा है। अमरत्व की ओर ले जानेवाली यही राह है।[5]

दि0 28 जनवरी 1818 ! लगभग 30 साल की आयु में वे भारत पहुंची। पहुंचने पर उसके शब्द-धन्योद्‌गार थे Victory! I am in India! धन्य। मैं भारत में हूँ।

दूसरे दिन से ही स्वामी स्वारूपानंदजी उन्हें बंगाली सिखाने के लिए आने लगे। प्रारंभ में कुछ दिन वे चौरंगी होटल और बाद में बेलूर मठ में रही। मार्च महिना उनके लिये क्रांतिकारी सिद्ध हुआ।

11 मार्च को स्वामी विवेकानंद जी ने मार्गरेट का परिचय करवाने हेतु एक सार्वजनिक सभा आयोजित की। ''मार्गरेट, यह हमें इंग्लैण्ड ने दी हुई अनमोल देन हैं?'' इन शब्दों में स्वामीजी ने मार्गरेट का परिचय दिया। कई लोग इस गौरकाय अंग्रेजी स्त्री को देख कर बेचैन हुएं। सभा के अंत में मार्गरेट ने भारत आने की पृष्ठभूमि बतायी-''मैं भारत में आयी हूं-इस भूमि की, यहां के लोगों की सेवा करने के लिए। सेवासाधन से ही मुझे छोटी बच्चियों जैसा सब कुछ सीखना है। अध्यात्म ! भारतीय संस्कृति ! हिंदुधर्म ! मैं 'हिन्दु' बन कर रहूंगी। आपने मेरा जो स्वागत किया, उसक लिये मैं कृतज्ञ हूं। श्रीरामकृष्ण की विजय हो।'' उनके ये उद्‌गार श्रोताओं की सब आशंकाओं को दूर कर बैठें। मार्गरेट ने सभा को जीत लिया।[6]

दि0 17 मार्च। माँ शारदा से वे प्रथम बार मिली। अपनी दैनंदिनी में 'सब दिनों का राजा' ऐसा वर्णन उन्होंने लिखा। माताजी के कमरे में चटाई बिछी हुई थी। वास्तविक मार्गरेट को कभी जमीन पर नीचे बैठने की आदत नहीं थी। परंतु माताजी को वहाँ बैठी देख कर बिना झिझक वह चटाई पर बैठ गयी। इस प्रथम भेट में देश परदेश, पंथ, भाषा इन सभी बाधाओं के पर्वत चूर-चूर हो

गयें। एक ही रिश्ता शेष रहा-माँ बेटी का। माताजी ने उसके साथ फलाहार किया। शारदा माँ ने बेटी के रूप में उसका स्वीकार किया और स्वामी जी को संबल प्राप्त हुआ।

दि0 25 मार्च 1898 मार्गरेट का उपनयन हुआ। उस दिन अरुणोदय होते ही, सब आश्रम में उपस्थित हुए। मार्गरेट ने स्वामीजी को साष्टांग प्रणिपात किया। स्वामीजी ने आशीर्वाद दिये। मस्तिष्क पर विभूति लगायी। सभामंडप में स्वर गूंजने लगे-'असतो मा सद्गमय'। आज उसका नामकरण हुआ। 'निवेदिता'। प्रसादवितरण हुआ। स्वामीजी तानपुरा ले कर शिव पार्वतीस्तवन गाने लगे। शुचिता, निष्टा, भक्तिमय वातावरण निर्माण हुआ। निवेदिता मंत्रमुग्ध हो गयी।

भारत संबंधी जानकारी प्राप्त करना यह उसकी शिक्षा का प्रथम चरण था। अत: उसी ग्रीष्मकाल में वे स्वामीजी के साथ भारत भ्रमण के लिए गयी। अल्मोडा, पटना, कशमीर घाटी में उन्होंने पैदल यात्रा की। बाद में वे लाहौर, दिल्ली, आगरा, वाराणसी आदि क्षेत्रों में भी हो आयी। रामकृष्ण आश्रम की कठोर दिनचर्या का वे निर्धारपूर्वक पालन करती थी। परंतु अभी भी उनके भारत के साथ ताने बाने अच्छे से नहीं बुने गये थे। ऐसी उनकी धारणा थी। अपने देश के स्वामित्व का उन्हें गर्व था। साहित्य, इतिहास जैसे विषयों की कुछ विशेष धारणाएं थी। उनको स्वामीजी की बातें सुन कर भारत की स्थिति देख कर ठेस पहुंचती थी। कभी-कभी स्वामीजी का कहना जँचता नहीं था। अंतर्मन में द्वंद्व चलता रहता। कभी-कभी मन सोचता था कि स्वामीजी के प्रभाव से मुक्त हो जाऊं।

उनकी यह मानसिकता संवारी गयी-गीताध्ययन के कारण वे अब गीतापाठ तथा ध्यान करने लगी। पवित्र और शुभ वस्तुओं पर मन केंन्द्रित करती थीं ध्यान के कारण मन स्थिर होने लगा। अपने संदेह गलत है-अपना शत्रु यदि कोई होगा तो वह है अहंकार, यही अनुभूति हुई। अत: उसको कम करने के प्रयास में वे लगी। स्वामीजी भी उनकी मानसिकता निहारते थे। एक दिन उन्होंने बताया 'निवेदिता, मैं एकांत में जा कर शांति ले कर आता हूं।' और उन्होंने अभयमुद्रा धारण की। निवेदिता ने चरणों पर सिर रख कर प्रणाम किया। स्वामीजी ने मस्तिष्क पर हाथ रखा। उस स्पर्शमात्र से मानो शांतिसागर उसमें समा गया। ज्ञान की लहरों ने अहंकार संदेह डुबों दिये। 'स्व' के विभुत्व का बोध हुआ। उसी बोध में निरंतर रहने के लिए अगली सीढ़ी थी सादगी पूर्ण, निर्मल जीवन व्यतीत करना। ईश्वर का सर्वव्यापकत्व ध्यान में रखते हुए जनसेवा की साधना करना। स्वामीजी उसे बताते थे-'बेटी, आपके यहां आने का उद्देश्य सेवा और दूसरों की उन्नति करना है-उन्हें उपदेश देना नहीं। ज्ञान और बुद्धि में मैं आपसे श्रेष्ठ हूं यह आभास कभी नहीं कराना। पश्चिम से प्रभावित अपने विचार उनपर लादना नहीं। जिस परिस्थिति में उन्हें रहना है उसे पूरी तरह से अवगत करा लें।'

ब्रह्मचारिणी की दीक्षा

उपनयन के ठीक एक साल पश्चात् अर्थात् दिनांक 25 मार्च 1899 ई0 को स्वामीजी ने निवेदिता को ब्रह्मचारिणी की अंतिम दीक्षा दी। उसे बुद्धचरित्र बताया। उपदेश दिया-'मोक्ष नहीं वैराग्य, आत्मसाक्षात्कार नहीं आत्मसमर्पण, यही अब तुम्हारा जीतितध्येय।' निवेदिता ने तत्पश्चात् शिवपूजा की। स्वामीजी शिव महिमन गा रहे थे। भावभीने वातावरण में निवेदिता ने प्रतिज्ञा ली। जो कुछ 'मैं मेरा' था उसकी आहुति दे रही हूं।

अब वे ब्रह्मचारिणी बनी। रामकृष्ण आश्रम के कठोर व्रतों का निर्धारणपूर्वक पालन करते रहना स्वाभाविक था। शारदा माँ के साथ बागबाजार में परमहंसजी के अन्य शिष्यों के समवेत रहती थी। परंतु सामान्य लोग उससे बोलने में उसके साथ खाने पीने में हिचकिचाते थे। उसकी गौरकाया, विदेशीपन के कारण दूरत्व की भावना रहती थी। परंतु वे स्वयं साधना, लेखन-अनुवाद कार्य, विद्यालय तथा आश्रम के विविध कार्य करने में मग्न होती थी।

बालिका विद्यालय की स्थापना

दि0 13 नवंबर 1898, कालीपूजा का पवित्र दिन। 16 बोस पारा लेन में उन्होंने एक बालिका विद्यालय प्रारंभ किया। आशीर्वाद देने हेतु शारदा माँ उपस्थित थी। निवेदिताअपना प्रिय क्षेत्र पा कर खुश हुई।[7]

परंतु कुछ ही दिनों में प्लेग का तांडव प्रारंभ हुआ। स्वामीजी अपने शिष्यों के साथ सेवाकार्य में कूद पड़े। प्लेग सेवा समिति का गठन हुआ। उसका कार्यभार निवेदिता को सौपा गया। अज्ञान और अस्वच्छता प्लेग के मूलभूत कारण, उनको नष्ट करने का, निवेदिता ने निश्चय किया। कूड़े-कचरे के ढ़ेर ने इस बीमारी की जड़े। अत: गली-गली, रास्ता-रास्ता साफ करना उन्होंने प्रारंभ किया। वे सफाई करती थी और लोग उतनी ही गंदगी करते थे। वे स्वयं हाथ में फावड़ा लेकर बिना कुछ कहे, निकल पड़ती थी

सफाई के लिये। परंतु युवक मात्र हिचकिचाये थे, दूर से देखते थे। निवेदिता को बहुत दुख हुआ। इन युवकों में समाज के प्रति आत्मीयता व सेवाभाव जगाने हेतु उनका एकत्रित किया और 'प्लेग और छात्रों का कर्तव्य' इस विषय पर भाषण दिया। उनकी लगन, स्नेह, सेवावृति युवकों के मन को छू गयी। वे भी मददकार्य में उसके सहयोगी बने। स्वयं सीढ़ियों पर चढ़कर अनेक घरों की लिपाई पुताई की निवेदिता ने। 'करिए और यह मत करिए' ऐसे पत्रक निकाल कर इस परिस्थिति में कैसा रहना चाहिए यह सामान्य जनों को समझाया करती थी। वे स्वयं रोज दूध पीती थी, वह बंद कर पैसों की बचत की और उस राशि से दवाईयां खरीदी। धीरे-धीरे प्लेग का प्रकोप दूर हुआ। और निवेदिता ने अपना शिक्षा का कार्य प्रारंभ किया।

विद्यालय सुचारू रूप से चलाने के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अत: धन जुटाने के लिए वे अमेरिका गयी। न्यूयॉर्क में व्याख्यान दिये। अमेरिका में श्री रामकृष्ण सहायता समिति नामक संस्था स्थापना की। दस साल तक एक व्यक्ति प्रतिवर्ष एक पेनी मदद दे ऐसा आव्हान किया। लोग आश्चर्यचकित हुए। इतनी कम राशि में क्या होगा? तब निवेदिता ने कहा-'हमारे लिये इतना पर्याप्त है। ' वहां से वे फ्रांस, लंदन, मैनचेस्टर, स्कॉटलैंड गयी। कुल मिला कर 35 भाषण दियें। व्याख्यान के विषय थे-भारत का आध्यात्मिक जीवन भारत का सामाजिक जीवन, भारत की स्त्रियों का भवितव्य भारतीय स्त्रियों के आदर्श, धार्मिक शिक्षा में बालोद्यान पद्धति आदि। इसी प्रवास में अमेरिका में उन्होंने युरोपियन वेश त्याग कर श्वेत चोगा-कफनी जैसा वस्त्र पहनना प्रारंभ किया। अब वे अंतर्बाह्य भारतीय बन गयी।

सरस्वती पूजा के शुभ पर्व पर विद्यालय का शुभारंभ हुआ। घर-घर जा कर उन्हें अभिवावकों को समझाना पड़ा। क्यों कि अभिवावक उनको विद्यालय भेजने के लिए राजी नहीं थे। अपने घर के दरवाजे भी बंद कर लेते थे। परंतु वे हिम्मत नही हारी। अपने प्रयत्नों में कोई कसर नहीं छोड़ी।

विद्यालय में छात्राओं को वे लिखना, पढ़ना, सिलाई, चित्रकला, मिट्टी के बरतन बनाना आदि सिखाती थी। चरखे पर सूत कातना भी सिखाया जाता था। सिखाने वाली बहन को बहन को सब छात्राएं 'चरखा माँ' कहती थी। उनका विश्वास था कि मानवनिर्माण के संस्कार घर में माँ से ही प्राप्त होते है अत: बालिका विद्यालयों का महत्व अनन्य साधारण है। विद्यालय में बैठने की व्यवस्था भारतीय पद्धति की थी। लड़कियों को वे हमेशा बताती थी-' आप सब भारत माँ की पुत्रियाँ है। अत: प्रतिदिन जप करें 'भारत माता, भारत माता, भारत माता'। और वे स्वयं भी जाप करने लगती।

उन दिनों सार्वजनिक सभाओं में तथा खुलेआम वंदे मातरम् कहना राजद्रोह माना जाता था। परंतु निवेदिता ने निर्भयतापूर्वक संपूर्ण 'वंदे मातरम्' गीत का अपने विद्यालय की दैनदिन प्रार्थना में अंतर्भाव किया था। उनका संकल्प था कि राष्ट्रीय वृति से ही विद्यालय चलाना है। अत: विदेशी शासन से उन्होंने अनुदान नहीं स्वीकारा। उनके मि, उन्हें सब प्रकार से मदद करते थे। श्रीमति साराबुल उनका व्यक्तिगत व्यय वहन करती थी। विद्यालय का व्यय निभाने हेतु निवेदिता, समाचारपत्रों में निरंतर लेखन करती थी-वे थे डॉन, न्यू इंडिया, इंडियन रिव्युह, मॉडर्न रित्युह प्रबुद्ध भारत, हिन्दु बालभारती, अमृत बाजार पत्रिका, स्टेटस्मन, ॲडव्होकेट, टाईमस ऑफ इंडिया, मराठा, ट्रिब्यून आदि। श्रीमति लावण्यप्रभा बसुजी उन्हें विद्यालयीन कार्यो में सहयोग देती थी। इस विद्यालय का नाम उन्होंने 'रामकृष्ण बालिका विद्यालय' रखा था। वर्तमान में यह विद्यालय 'रामकृष्ण शारदा मिशन भगिनी निवेदिता विद्यालय' नाम से प्रसिद्ध है।

कलाप्रेम

प्राचीन भारतीय कलाओं का पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन यह उनकी रुचि का विषय था। श्री अवनींद्रनाथ ठाकुर, श्री नंदलाल बसु जेसे कलाकारों को उन्होंने अजंता, एलोरा की कला अध्ययन तथा कला के अंगप्रत्यंगों का मूल्यांकन करने के लिये प्रेरित किया। बंगाल की कला, उनके ही कारण, भारतीय ढ़ग से विकसित हुई।

वैज्ञानिक कार्य में सहभाग

एक ओर वे प्राचीन कलाओ के लिए प्रयास करती थी तो दूसरी ओर विज्ञान प्रमिओं को प्रेरित करती थी। जागतिक कीर्ति के वैज्ञानिक श्री जगदीशचंद्र बसु की वे हितचिंतक थी। डॉ0 बसुजी भारत जैसे गुलाम देश के वैज्ञानिक होने के कारण उनकी काफी उपेक्षा हुई-अपमान हुआ। अपने शोधप्रबंध प्रकाशित करने के लिये उन्हें कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। उनके Response

of Inorganic and Living Matters जैसे शोधप्रबंध लेखन में निवेदिता ने सहायता की, आर्थिक सहयोग भी दिया। श्री जगदीश चंद्र जी की उपेक्षा-अपमान देखकर निवेदिता के मन में क्षोप निर्माण होता था। मन में तुफान उठता था। 'मेरे भारतवर्ष के अपमान को कैसे धोये? कौन धोये? अर्थात् भारत के शूरवीर संतान। उन्हें चेतित करना चाहिए। ' डॉ0 जगदीशचंद्रजी ने उनके प्रति कृतज्ञता का प्रतीक रूप 'निवेदिता सभागृह' बनाया और अपनी प्रयोगशाला में दीप में तेल डालनेवाली महिला का छोटा पुतला बनाया, वो भी निवेदिता की स्मृति में।[8]

स्वदेशी आंदोलन

भारतभक्ति के इसी उद्रेक ने पूरे वंग में खलबली मचा दी। स्वदेशी आंदोलन से जनजागरण प्रारंभ हुआ। विदेशी चीनी, नमक आदि चीजों पर बहिष्कार डाला गया। श्री सुरेंद्रबाबू मंदिरों के सामने सार्वजनिक सभाओं में भाषण देते थे और अंत में स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करने की प्रतिज्ञा करवाते थे।

स्वदेशी प्रचारार्थ निवेदिता ने अपरिमित श्रम किये। स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया-सामान्य जनों को। स्वयं खादी के वस्त्र पहनना प्रारंभ किया और दूसरों को भी प्रेरित किया। स्वदेशी वस्तुओं के विक्री केंद्र खोले। हाथगाड़ी पर स्वदेशी वस्तुएं रख कर रास्ते पर बेचती थी, घर-घर जा कर प्रचार करती थी। घर के बंद दरवाजे खटखटा कर वे लोगों को स्वदेशी का महत्व समझाती थी। स्वदेशी वस्तुएं उपलब्ध होने पर भी विदेशी वस्तुएं खरीदना यह गोहत्या जैसा पाप है ऐसा भी आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करती थी। वे बहुत लोकप्रिय हुई। लोग उनको भगिनी नाम से बुलाने लगे। उनका दर्शन ने भारत माँ का दर्शन, ऐसी आबालवृद्धों की धारणाा बनी। लोग उन्हें पूजोघर तक ले जाते थे। उनकी पद्धूलि धारण करते थे। उनक लेखों के कारण सामान्य वस्तुओं में भी विशेष सौंदर्य प्रतीत हो कर लोग वे ही चीजें खरीदने लगे। कुछ युवकों को उन्होंने प्रशिक्षण के लिए विदेशों में भी भेजा।

अनुशीलन समिति के लोगों का वे ऊर्जा केंद्र थी। बरिंद्र घोष, तारकनाथ झा, भूपेन्द्र दत्त, उपाध्याय आदि क्रांतिकारी युवकों से उनका नित्य संपर्क था-वे कहते थे कि 'आप हमारी जोन ऑफ आर्क' है। स्व0 लोकमान्य तिलक जी जैसे गरम प्रकृति के लोगों के साथ आत्मीय संबंध थे वैसे ही श्री गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गांधी जैसे नरम प्रकृति के लोगों के साथ भी थे। सर्वसंग्राहक वृति का साक्षात्कार उनमें होता था।

मद्रास, मुंबई, पुणे, पटना, लखनऊ, वाराणासी, नागपुर आदि प्रमुख नगरों में भाषण हुए जिनके कारण वहां क्रांति के स्वर गूंजे, चेतना जाग उठी।

वंगभंग विरोधी आंदोलन को श्री अरविंद बाबू जैसे जननायक उनके ही कारण प्राप्त हुए। अत्यंत निर्भीकता से उन्होंने श्री अरविंद बाबू को बताया 'आपका जन्म प्राध्यापक की नौकरी करने के लिए नहीं हुआ है। बंगाल-आपकी जन्मभूमि आपको बुला रही है। ' और उध्वस्त बंगाल का यथार्थ चित्रण उनके सामने प्रस्तुत किया। वे बोले-'मुझे सहयोगी चाहिए' 'मैं हूँ आपकी सहयोगी'। निवेदिता ने झट् से उत्तर दिया। इतना ही नहीं तो जी जान से उनके साथ काम किया। श्री अरविंद बाबू कारागृह में जाने के बाद उनका 'कर्मयोगिन्' यह पाक्षिक समाचारपत्र भी समर्थता से चलाया। तेजस्वी हिंदुत्व के लिए उन्होंने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। 'प्रत्येक हिंदु मेरा भाई है और इससे भी बढ़ कर वह भारत माँ का सुप्रत्र है' ऐसा वे मानती थी। जो सुपुत्र माँ की मुक्ति के लिए हाथ बँटाता है उसके लिये वे क्या-क्या नहीं करती? भूपेन्द्र दत्त के लिए 20, 000 की जमानत राशि चंद घंटों में उन्होंने एकत्रित की।[9]

ब्रिटिश उन पर नाराज थे। जिस देश के वे शासक थे, जिस प्रजा की प्रशंसा एक गौरकाय महिला ने करना, उनको सहा"य करना, उन्हें अपमानकारक लगता था। जब उन्होंने जमानत ली तब 'इंग्लिशमन' समाचार पत्र में 'निवेदिता अपनी जाति से बेइमान हुई' इस तरह का लेख प्रसिद्ध किया। परंतु तेजस्वी वाणी, लेखनी को रोकने का साहस सरकार नहीं कर पायी।

निष्कर्ष

भारत वर्ष को जिन्होंने अपना सर्वस्व निवेदिता कर दिया था, उन्हीं का नाम था-निवेदिता। जन्म के अधार पर विदेशिनी होने पर भी अपने कर्म और मृत्यु के आधार पर वे, एक भारतवासी थी। जब 1911 ई0 में दार्जलिंग में उनका निधन हुआ। उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष ही भगिनी-विहिन हो कर शोकग्रस्त हो गया था।

किसी अन्य के प्रति ऐसा शोक व्यक्त करते कभी नहीं देखा गया था। किन्तु उस दिन मुट्ठी भर मनुष्यों की पुष्पांजली के लिए सोच्चार नहीं बन गया था। गणमाध्यम या विदेशी प्रथा के अनुसार श्रद्धांजली देने के लिए उनको आंतरिक अश्रु-जलांजली दे कर उनको अंतिम विदाई दी थी।

उनके पूतपवित्र नश्वर शरीर को पवित्र भारतीय-पद्धति के अनुसार पंचभूतों में विलीन कर दिया गया था, क्योंकि भारत को प्यार करते करते, वे भारतमयी जो बन गयीं थी। 'भारतवर्ष' नाम ही उनका जपमंत्र था, भारत-आत्मा के साथ घुलमिल कर वे एकाकार हो गयीं थी। इसलिए प्रत्यक्ष दर्शी रवीन्द्रनाथ कहते थे-'स्वयं को संपूर्णत-निवेदित कर देने की जो आश्चर्यजनक क्षमता, जैसी निवेदिता में थी, वह मैंने अन्य किसी और मनुष्य में कभी नहीं देखा है... उनका शरीर, उनकी आशैशव यूरोपीय आदतें, उनके अपने नाते-रिश्ते की स्नेह ममता, स्वजातीय समाज की उपेक्षा एवं जिनके लिए उन्होंने अपना प्राण-समर्पित कर दिया था, उनकी उदासीनता, दर्बलता और त्यागस्विकार अभाव, कोई भी कारण उनको लौट जाने के लिए मजबूर नहीं कर सका।'

यह बात ठीक है कि भारतवासियों से निवेदिता ने कोई भी वस्तु पाने की ईच्छा नहीं की थी; किन्तु भारतवासियों ने उनके प्रति, सौजन्यतावश ही सही थोड़ी सी कृतज्ञता भी प्रकट नहीं की थी। बल्कि उनकी समृति के प्रति भी अवमानना की गयी है, इस तथ्य को स्वामी अभेदानंदजी के एक प्रतिवेदन में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

'अमेरिका से अपने ऊपर सौंपे कार्य को समाप्त करने के बाद में 1921 ई0 में भारत लौटा एवं 1925 ई0 में 'रामकृष्ण वेदांत आश्रम' की स्थापना दार्जलिंग में की। उस समय मेरे मन में विचार उठा, अब से 14 वर्ष पूर्व निवेदिता का नश्वर शरीर भी तो दार्जलिंग में ही भष्मी-भूत हुआ था। किन्तु उनकी चिताभष्म के उपर कोई स्मरण-चिन्ह निर्माण करने की बात किसी ने भी नहीं सोचा।

भारत के बलिवेदी पर जिसने इस प्रकार अपने को निवेदित कर अपने गुरु द्वारा प्रदत्त नाम-'निवेदिता' को जिसने सार्थक कर के दिखा दिया, उनकी स्मृति के प्रति ऐसी अवहेलना से मैं अत्यंत व्यथित हो गया। तब मैंने अपनी निजी धन से 'रामकृष्ण वेदांत आश्रम' की ओर से एक 'स्मृति मंदिर' का निर्माण कराया। एक संगमरमर के पत्थर पर उनके संबंध में सिर्फ एक ही वाक्य लिखवाया था-'"Who gave her all to India"

संदर्भ

1. नैयर, सुशीला/मनकेकर, कमला; भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएं (संपादित), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2005, पृ0 सं0 17
2. भगिनी निवेदिता, सेविका प्रकाशन, नागपुर, पृ0 सं0 1, 2
3. भगिनी निवेदिता, सेविका प्रकाशन, नागपुर, पृ0 सं0 3
4. वही, पृ0 सं0 4
5. वही, पृ0 सं0 6
6. वही, पृ0 सं0 9
7. मुखर्जी, विश्वप्रिय; जगदीश चंद्र बोस, प्रकाशन विभाग (सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय) भारत सरकार, पृ0 सं0 118-123
8. भगिनी निवेदिता, सेविका प्रकाशन, नागपुर, पृ0 सं0 10
9. पाण्डेय, धनपति; आधुनिक भारत का इतिहास, मोती लाल बनारसी दास, पृ0 सं0 192-227

भारत का औपनिवेशीकरण एवं पारिस्थिति की तंत्र पर उसका प्रभाव

प्रिंस कुमार

नेट/जेआरएफ, शोधरत, (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बदलते रहते है। आधुनिक भारतीय इतिहास में युगानूकुल परिवर्तित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी एवं इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन बहुत कम हो पाया है। इतिहास के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए विभिन्न घटनाक्रमों की पृष्ठभूमि में पारिस्थितिकी तंत्र की भूमिका का अध्ययन भी आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध समस्या 'भारत का औपनिवेशीकरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर उसका प्रभाव' के अंतर्गत इस विषय का आकलन किया जाएगा की औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय प्राकृतिक परिवेश को किस सीमा तक क्षति पहुंची एवं भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्र इस परिवर्तन से किस प्रकार एवं किस सीमा तक प्रभावित हुए।

शोध समस्या के अध्ययन की पृष्ठभूमि में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में पर्यावरण के प्रति जागरूकता के तत्वों का वर्णन करते हुए इसके पर्यावरण के अनुकूल चलने की प्रवृति का अध्ययन किया जाएगा। यह स्पष्ट किया जाएगा कि प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण की मूल भारतीय प्रवृति को समाप्त करने में औपनिवेशिक शासन की भूमिका कितनी भयानक थी।

इस अध्ययन के निम्नलिखित लाभ होंगे-

1. इस ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन हो पायेगा किजलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापन जैसी समस्याओं की उत्पत्ति में उपनिवेशवादी एवं साम्राज्यवादी तत्वों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।
2. पारिस्थितिकी ताने-बाने को नष्ट करने में उपनिवेशवादी एवं साम्राज्यवादी प्रवृति की भूमिका का निर्धारण हो पायेगा।

शब्द कुंजी-पर्यावरण, उपनिवेशवाद, कृषि अर्थव्यवस्था, वैज्ञानिक वानिकी, गतिशील अर्थव्यवस्था, औद्योगिक पूंजीवाद।

परिचर्चा

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की मूल अवधारणा

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में लिखा गया है : 'हे धरती मां, जो मैं तुझसे लूंगा, वह उतना ही होगा, जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्म स्थल पर या तेरी जीवनशक्ति पर कभी आघात नहीं करूंगा। ' किन्तु वर्तमान में संसाधन के शोषण की प्रतिस्पर्धा उक्त ज्ञान को आचरण में उतारती नहीं दिखती। ऋगवेद की ऋचाओं में भी पर्यावरण के तत्वों-पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, के प्रति ऋषि नतमस्तक होकर प्रणाम करते है। भारत में नदियों को मां तुल्य सम्मान दिया गया है। जबकि पश्चिम के वैज्ञानिकों ने नदियों में गंदे जल को प्रवाहित कर दिया है इसलिए यहां नदियां प्रदूषित या जहरीली है।[1]

वस्तुतः पर्यावरण के वे सभी प्राकृतिक एवं मानव निर्मित कारक सम्मिलित है, जो चारों ओर से घेरे हुए है और प्रभावित करते है। दूसरे शब्दों में, पर्यावरण के अंतर्गत भौतिक, सांस्कृतिक अथवा जैविक-अजैविक प्रभावशली घटकों को सम्मिलित किया जाता है जो जीव की दशाओं और कार्यो को प्रभावित करता है। इस प्रकार भौतिक कारक के अलावा सांस्कृतिक कारकों के प्रभावों को भी सम्मिलित किया जाता है।[2]

भारतीय परंपर में पुरुष और प्रकृति परस्पर अभिन्न रूप से जुड़े है। जीव-जंतु, वनस्पतियां सभी प्रकृति की संतानें है, और पर्यावरण इनसे अलग कुछ नहीं। पर्वत, नदियां, वृक्ष-वन सभी को जीवंत एवं महत्वपूर्ण समझा जाता रहा है। आज तक ग्रामीण अंचल में नागपूजा, वृक्षापूजा का प्रचलन है। कुछ वृक्षों की महिमा अपार है, पीपल, बरगद, देवदार, आम और अशोक इस श्रेणी में आते है, साहित्य और संगीत में ही नहीं लोग-कथाओं और लोक परंपरा में समान रूप से प्रकृति को एक ऐसी सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है जिसे प्रदूषित नहीं किया जा सकता। भूमि को देवत्व प्रदान किया जाना इस बात के लिए परमावश्यक समझा गया कि पर्यावरण का संरक्षण अनायास ही संभव हो। प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवी-देवताओं के रूप में मूर्तिमान किया गया। सूर्य, मारुत, वरुण, अग्नि आदि वैदिक काल में महत्वपूर्ण अराध्य देवता समझे जाते थे। धरती माता के रूप में पहचानी जाती थी। ॠतु परिवर्तन को दैनिक जीवन के साथ जोड़ा जाता रहा है। क्योंकि मौसम का बदलाव मनुष्यों को ही नहीं वनस्पतियों को भी प्रभावित करता है।[6]

पर्यावरण के प्रति यह संवेदनशीलता सिर्फ सनातन हिन्दू धर्म में ही नहीं बौद्ध और जैन परंपरा में भी स्पष्ट दिखलाई देती है। जातक कथाओं में गौतम बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने के पहले विभिन्न पशु-पक्षियों के रूप में उनके विभिन्न योनियों में जीवन यापन संग्रहित है। बुद्ध की शिक्षओं में अहिंसा और करुणा पर विशेष जोर दिया जाता है। इसी तरह जैन संप्रदाय में भी अहिंसा और अपरिग्रह का पालन आस्थावान काफी कड़ाई के साथ करते है। इन नैतिक निर्देशों का ईमानदारी से अनुसरण करने वाला कभी भी पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचा सकता। इस संदर्भ में 'ईशावास्य' उपनिषद का आरंभिक श्लोक विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें विश्वव्यापी सजीव या निर्जीव चराचर सृष्टि के घनिष्ठ अंतर्संबंध को उजागर किया गया है। और यह सलाह दी गई है कि व्यक्तिगत उपभोग त्याग की भावना के साथ्ज्ञ ही किया जाना चाहिए-ईशावास्यमिदम् सर्व यत्किंचित-जगत्यामजगत, तेन त्क्तेन भुंजीथां मा कृधः कस्यस्विद् धनम। यही भाव राष्ट्रपिता बापू की उस सीख में भी है जहां उन्होंने दो-टूक यह बात कही है कि 'प्रकृति के भंडार में हर किसी की जरूरतें पूरा करने को यथेष्ट संसाधन है पर किसी का भी लालच पूरा करने में यह भंडार असमर्थ है।'[7]

भारतीय पारिस्थितिकीतंत्र पर औपनिवेशीकरण का प्रभाव

उपनिवेशवाद को भारत के इतिहास में सामान्यतः एक पर्यावरणीय मोड़ कहा जाता है। वहां से एक ऐसे युग का प्रारंभ होता है जिस में बेमिसाल संसाधनों का शोषण शुरू होता है तथा जहां से उभरते अंग्रेजी उद्योगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया जाता है। व्यापारिक स्वार्थ केन्द्रीय महत्व प्राप्त कर लेते है तथा समाज की बड़ी संख्या जो इन संसाधनों का अपनी आजीविका के लिए प्रयोग करती थी, उसे इन संसाधनों के प्रयोग से दूर कर दिया जाता है। औद्योगिककरण तथा उपनिवेश की दोनों प्रक्रियाएं एक साथ काम करना शुरू कर देती है जिस के चलते भारत में पर्यावरणी दरिद्रण होने लगता है। औपनिवेशिक शसन उपहनवेश के पर्यावरण का अपनी दृष्टि से बोध करती है तथा इस प्रक्रिया में पर्यावरण के स्रोतों के प्रयोग हेतु अपनी ही नीति बनाती है तथा उस नीति को लागू करना शुरू कर देती है।[8]

भारत की पारंपरिक आर्थिक संरचना में वन और कृषि को एक दूसरे के पुरक के रूप में देखा जाता था। वन भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग रहा है। जो कृषि, पशुपालन, दस्तकारी उद्योग के लिए कच्चा माल उपलब्ध करवाता था। इसके बदले वनवासी जातियों को आजीविका मिलती थी। पर्यावरण व संसाधन के बीच संतुलन भी बना रहता था। इस प्रकार भारत की अर्थव्यवस्था गतिशील थी। यहां आजीविका कई रूपों में उपलब्ध होती थी। वन और कृषि के बीच के संपर्क में अवरोध ब्रिटिश काल में उत्पन्न हुए। जब औपनिवेशिक शासन ने दो स्तरों पर वन अर्थव्यस्था में हस्तक्षेप किया। पहला वन की स्थानीय शासन को वैश्विक औद्योगिक पूंजीवाद के अनुरूप बनाया। भारतीय वन के वाणिज्यक इस्तेमाल से भारत की वन अर्थव्यवस्था व जनजातिय जीवन में असंतुलन पैदा हो गया। यह असंतुलन, स्वतंत्र भारत के समक्ष पर्यावरण प्रदूषण, कृषि की आधारभूत संरचना में कमी व आदिवासी जनजाति क्षेत्र में जारी नक्सल आंदोलन जैसी समस्या छोड़कर गया है।

'वन और कृषि पारंपरिक तौर पर अभिन्न रूप से जुड़े थे। 'वन' यह माध्यम था, जिसने वनवासी और सीमांत समुदाय को एक दूसरे से जोड़ा था। रंगरेज, चर्मकार, कुंभकार, लाख निर्माता व पशुपालक जनजातियों से वन की वस्तु लेते थे। बदले में वनवासी दैनिक जीवन के लिए उपयोग चीजे जैसे-अन्न, गृह निर्माण की वस्तु वस्त्र आदि देते थे। विंजीवार व गोंड जाति रेशम व लाख को कोया दस्तकार को बेचते थे। पशुपालक अहीर समाज गोंड जाति से पशु चरवाने का कार्य लेते थे। बैंगाओं जाति हंसिया, कुल्हाड़ी आदि औजार मरम्मत का कार्य करती थी, इसके बदले में अगरिया जो कि कृषक जाति थी, उन्हें अनाज उपलब्ध करवाती थी। इस प्रकार 'वन' और 'कृषक' दोनों क्षेत्र आजीविका उपलब्ध करवाने की दृष्टि से एक दूसरे पर निर्भर थे। राज्य का 'वन' क्षेत्र में न के बराबर हस्तक्षेप होता था।

परंतु ब्रिटिश शासन काल में वन भूमि पर राज्य ने एकाधिकार स्थापित करने का प्रयास शुरू किया। उसने 'वन अर्थ व्यवस्था' को इस प्रकार से पुर्नगठित किया कि उसका सामंजस्य औद्योगिक पूंजीवाद से बैठ सके। वैज्ञानिक वानिकी के नाम पर सरकार ने ऐसे वन कानून बनाए जिसमें स्थानीय जरूरतों को नजर अंदाज किया गया था। ये वन का प्रयोग वैश्विक जरूरतों के हिसाब से करने की छूट देते थे।

ब्रिटिश सरकार ने 'वन' और कृषक समाज को परस्पर विरोधी के रूप में प्रचारित किया। कृषक विस्तार के नाम झूम की खेती को बंद करवा दिया। ब्रिटिश पूर्व भारत में स्थानीय बस्तियों व कृषक समाज को वन क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त था। क्योंकि वे चारा, खाद, स्लेट, जलावन वन से प्राप्त करते थे।

वन और सार्वजनिक भूमि का इस्तेमाल चारागाह के रूप में किया जाता था। चारागाह में पशुचराने का पट्टा स्थानीय गांव वालों द्वारा दिया जाता था। चरवाहों का वनभूमि पर सामूहिक अधिकार होता था। अहीर, गड़ेरिया, बंजारा और किसान सभी की इस भूमि में हिस्सेदारी होती थी। किंतु अंग्रेजों ने इस प्रकार का भूमि पर किसानों को निजी अधिकार दे दिया। जिससे चरवाहों की आजीविका समाप्त हो गयी। ठीक ऐसे ही बंजारे जो किसानों से अनाज एकत्र करके उसे वीहड़ क्षेत्र में ले जाकर बेचते थे एवं वहां से हथियार खरीद कर सेना के शिविरों में पहुंचाते थे। इसे ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया तथा इन बंजारों को अपराधी जाति भी घोषित कर दिया। इस प्रकार ब्रिटिश वन कानूनों ने वनवासी की आजीविका छीनने का कार्य किया। कृषक समाज व वनवासी के बीच के पारस्परिक संबंध को भी भंग कर दिया।

वन और शहरी केन्द्र भी एक दूसरे से जुड़े थे। वन से दस्तकार कच्चा माल प्राप्त करते थे। वनवासी लोग दस्तकार को लाख उपलब्ध करवाते थे। गोंड, कोर कुआं बंगाओं आदि जातियों से दस्तकार लाख खरीदते थे। इस लाख से खिलौना वे चुड़ीयां बनती थी। रंगरेज लोग आल-कूलम, गोंद, रेशम के लिए टसर भी वनवासियों से ही प्राप्त करते थे। इस तरह वन व शहरी केन्द्र भी एक दूसरे को आजीविका उपलब्ध करवाते थे।

उपरोक्त तथ्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वन की एक अवरुद्ध नहीं बल्कि गतिशील अर्थव्यवस्था थी। जो कृषक कारीगरी, पशुपालन आदि कई व्यवसायों से जुड़ी थी। उपनिवेशवाद ने वन की गतिशील अर्थव्यवस्था को अवरूद्ध किया। इसके कई गंभीर परिणाम विभिन्न क्षेत्रों में वन पर निर्भर तमाम समूहों के उपर परिलक्षित हुए।

19 वीं सदी के मध्य में देश अधिकतर हिस्से में वैज्ञानिक वानिकी शुरू किया गया। जिसका लक्ष्य वनों पर नियंत्रण का विस्तार करना था। एक ओर रेलवे का विस्तार होने से स्लीपर के लिए इमारती लकड़ी की मांग बढ़ गयी थी। दूसरी ओर प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने से वन का सामरिक महत्व भी बढ़ गया था। इस परिस्थिति में मध्य प्रांत में वनक्षेत्रों में साल काटने का ठेका निजी एजेंसियों को दिया गया। इस क्रम टिहरी गढ़वाल के देवदार व चीड़ के जंगलो का भी पट्टे पर दिया गया। जिससे ब्रिटिश सरकार की आमदनी 1910-25 के बीच 1.6 लाख रूपये हुयी। सिक्किम, हिमाचल व मध्य भारत के क्षेत्रों में साझेदार बनया गया। 1914-18 के बीच युद्ध की अवधि में 228, 076 टन चारा भी भेजा गया। 1914-1917 के बीच 1.7 मिलियन धन मीटर प्रतिवर्ष लकड़ी का निर्यात किया गया। मध्य भारत से राल, फ्रांस और अमेरिका जाता था, जिससे बारूद बनता था। इस प्रकार अब भारतीय वन विश्वस्तर से जुड़ गया था। अत: अब वनों का नियंत्रित व व्यवस्थित दोहन होने लगा।

सन् 1865 में ही वन अधिनियम बनाकर अंग्रेजी सरकार ने वन पर राज्य का एकाधिकार स्थापित कर लिया था। 1878 में वन अधिनियम के अंतर्गत वन विभाग बनाया गया था तथा वन उत्पाद को प्रमुख व गौण दो भागों में वर्गीकृत किया गया था। इस वर्गीकरण का आधार वन उत्पाद का यह व्यवसायिक मूल्य था जो विश्व मंडी के आधार पर तय होता था।

मध्य प्रांत के वन क्षेत्रों में औद्योगिक पूंजीवाद ज्यादा सक्रिय था। यहां के वन उत्पादों में लाख सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद था जिसकी मांग अमेरिका, इंग्लैण्ड व जर्मनी में थी। लाख के एकत्रीकरण का कार्य सरकार निजी एजेसियों से लेती थी। इन गरीब जनजातियों को एजेंसी अग्रिम धन राशि उपलब्ध करवाती थी इस एवज में वनभूमि को पट्टे पर ले लेती थी। ऐसा करने से ये जनजाति वन उत्पाद को ऐजेंसी द्वारा तय मूल्य पर बेचने का विवश होती थी। ऐजेंसियों बाद में वैज्ञानिक ढंग से लाख का संग्रहण करवाने लगी। जनजातियों को इस तकनीक की शिक्षा नहीं दी। जिससे स्थानीय लोग लाख संग्रहण के कार्य से भी बेदखल होने लगे। उनकी भूमि तो पहले ही छीन चुकी थी। अब वनवासी लोग अपनी अर्थव्यवस्था से बेदखल हो गए।

विश्वयुद्ध कालावधि में भारत में चमड़ा उत्पादन की कई इकाईयां स्थापित की गयी। 20 वीं सदी के चौथे दशक तक छतीसगढ़ में ऐसे 35 कारखाने स्थापित किए जो चुके थे। उधर इमारती लकड़ी वाले वन क्षेत्र को संरक्षित वन घोषित कर दिया गया। जिससे उस पर राज्य का एकाधिकार हो गया। इन वन क्षेत्रों पर ईंधन व चारा के लिए निर्भर परिवार को अब ईंधन व चारा एकत्र करने के एवज में कर देना जरूरी हो गया। चारागाह में चरने वाले पशु को दो भागों में बांटा-

1. पेशेवर चरवाहे द्वारा चराये जाने वाला पशु और
2. कृषक द्वारा स्वयं चराया जाने वाला पशु। इन दोनों के लिए कर कि दर भिन्न-भिन्न थी।

ब्रिटिश सरकार ने 1871 में अपराधिक जनजाति अधिनियम के द्वारा तो जनजातियों के सम्मान पूर्वक जीवन जीने के अधिकार को ही छीन लिया। इस अधिनियम के अनुसार आदिवासी के 150 कबीलों को अपराधी घोषित कर दिया गया। इन्हें स्थानीय पुलिस के समक्ष नियमित रूप से उपस्थिति होना पड़ता था। इस प्रकार से इन्होंने आदिवासियों की भावनात्मक लगाव तथा एकता में फूट उत्पन्न किया। अब उनसे जबरन कार्य लिया जाने लगा।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साम्राज्यवादी व्यवस्था ने भारत की वन अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया। ऐसा करके वन व कृषक के बीच के संतुलन को भंग कर दिया। देशी प्रथाओं, कानूनों, प्रतिमानों जो साकारात्मक चीजे थी, उसकी अवहेलेना की जबकि नाकारात्मक चीजों को बचाए रखा। जैसे वन क्षेत्रों में भी ऊंची जाति के पुरुषों को विशेषाधिकार दिया। इससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार भारत के प्रथाओं व व्यवस्था में उतना ही परिवर्तन करना चाहती थी, जिससे उसकी सत्ता सुरक्षित रहे।

वैज्ञानिक वानिकी के नाम पर उन्होंने वनो पर राज्य के स्वामित्व को संस्थागत रूप दिया। देशी प्रथाओं को औपनिवेशिक आवश्यकता कि अनुकूल बदला तथा वैश्विक औद्योगिक पूंजीवाद व वन उत्पाद संग्रहकर्ता के कौशल व ज्ञान का एकीकरण किया। इन सब के पीछे उनका मूल उद्देश्य संसाधनों का वाणिज्यिक दोहन करना था। वन के प्रबंधन और प्रयोग के औपनिवेशिक तरीके ने आर्थिक विकास के विकृत प्रकृति का आरंभ किया। जिससे भारत में समावेशी, संतुलित व स्वतंत्र विकास की संभावनाओं का मार्ग बाधित हुआ।[9]

भारत का उपनिवेश महत्व की एक घटना थी। संसार का सबसे बड़ा उपनिवेश पारम्परिक पूंजीवाद सत्ता द्वारा स्थापित किया गया था। 18 वीं सदी के मध्य से लेकर तथा 20 वीं सदी के आरम्भिक समय तक अभूतपूर्व ढ़ंग से संसाधनों का शोषण इस पर्यावरणीय बोध के दायरे में होता रहा कि संसाधनों को मुख्यत: बाजार के लिए प्रेरित किया जाए। पर्यावरण पर उपनिवेशी वार्ता को आलफ्रेड कास्बी द्वारा रचित रचना इकोलॉजी इम्पेरियलिज्म : द बायोलोजिकल इक्सपेनशन ऑफ यूरोप (सी0यू0पी0, 1986) में विस्तार से बताया गया है। हम इस तर्क जिसे गाडगिल तथा गुहा ने दिया है यहां प्रस्तुत करेंगे तथा पर्यावरण पर उपनिवेशी वार्ता के परिणामों की व्याख्या अपने विवेचन सहित करेंगे-

1. यूरोपीय उपनिवेशकों ने देशीय पारिस्थितिक तंत्रों तथा जनसंख्याओं का संहार कर दिया।
2. यूरोपीय द्वारा लाए गए अपतृणों, पशुओं व बीमारियों ने उपनिवेशों के वनस्पति, जीव-जंतुओं तथा मानवीय समाजों का विनाश कर दिया।
3. अब ऐसे यूरोप का उदय हुआ जो आज नई दुनिया पर अधिपत्य स्थापित करने लगा।
4. यूरोप के इस जैविक विस्तार में तीन क्षेत्र जिन पर पहुंचा जा सकता था भले ही व पकड़ से परे थे वहथे-मध्यपूर्व, चीन तथा भारत।

5. जनसंख्या का घनत्व, रोग के प्रति प्रतिरोध, कृषिक प्रौद्योगिकी तथा परिष्कृत सामाजिक राजनीतिकम संस्थाओं आदि ने इन क्षेत्रों को यूरोप के पारिस्थितिक साम्राज्यवाद की लपेट से परे कर दिया था।
6. इस प्रकार नियम यह था कि यद्यपि यूरोपवासियों ने आयनमंडल पर विजय प्राप्त की थी, पर इसकायूरोपीकरण करने में सफल नहीं हो पाए थे।
7. पोर्टमाण्टी बायोटा (एक सामूहिक शब्द जो श्वेत उपनिवेशकों द्वारा लाए गए जीव समूह के लिए प्रयोग होता था) की सहायता से यूरोपीय ताकतों ने उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका तथा महासागरीय महाद्वीप के शीतोष्ण क्षेत्रों को रौंद दिया।
8. भारत तथा चीन जैसी अत्यधिक पारिस्थितिक प्रतिरोधी सभ्यताओं के लिए एक विभिन्न राजनीति अपनाए जाने की आवश्यकता थी।
9. भारत में अंग्रेज देशीय जनसंख्या तथा उनके प्राकृतिक संसाधन आधार का विनाश करके नव-यूरोप का निर्माण न कर सके।
10. परंतु उन्होंने तत्कालीन खाद्यान्न उत्पादन प्रणालियों तथा उनके पारिस्थितिक आधारों में हस्तक्षेप अवश्य किया।
11. इसके अतिरिक्त, औद्योगिक अर्थव्यवस्था तथा उपभोक्तासमता के विलोमन की ओर अनावृत करके अंग्रेजों ने हो रहे पारिस्थितिक परिवर्तन को न केवल जारी रखा, परंतु भारतीय तटीय को छोड़ने व भीतरी क्षेत्रों में प्रवेशके बाद भी और अधिक बढ़ाने का प्रयास किया।

भारत पर अंग्रेजी औपनिवेशिक नियंत्रण उनके द्वारा प्राप्त दीवानी अधिकारों से आरंभ हुआ जबकि अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में भू-राजस्व एकत्रित करने की शक्ति प्राप्त हुई थी। जो मात्र एक औपचारिक राजनीतिक प्रक्रिया दिखायी देती थी, उस के भारत पर अति महत्वपूर्ण व गंभीर परिणाम पड़े। इरफान हबीब ने इस प्रक्रिया तथा उस के अर्थ अतिसंवेदनशील रूप में बताए है-'ईस्ट इंडिया कंपनी जिसे राजस्व एकत्रित करने का अधिकार प्राप्त हुआ वह लंदन के महान व्यापारी पूंजीपतियों के नियंत्रण में थी। इन व्यापारियों ने अब तक जो व्यापार किया था, वह भारतीय उत्पादों जैसे मलमल, छींड, रेशम, नील, मसाले आदि के आयतन पर आधारित था जिसे अंग्रेजी खजाने से मुद्रा के नियमन द्वारा चलाया जाता था। अब अचानक ही उन्होंनें अपनी विजयों में अंतत: उस आनंद की अनुमति प्राप्त की जिस का हर एक व्यापारी सपना लेता है। बिना राशि दिए खरीद करना तथा उस खरीद को पूरी कीमत पर बेचना इस रूप में संभव हो पाया कि कंपनी ने देश के पूरे राजस्व को सफल लाभ के रूप में देखा। इस सफल लाभ से प्रशासन तथा क्षेत्र, कानून तथा व्यवस्था पर आवश्यक खर्च तत्कालीन व्यवस्था को बनाए रखने की कीमत चुकाने के बाद निकाल कर कंपनी को शुद्ध लाभ प्राप्त होने लगा। इस शुद्ध लाभ का निवेश कर भारतीय वस्तुओं को खरीदा जाने लगा। यह पूंजी निवेश था। इन वस्तुओं की खरीद में जहां खरीदार को ही खरीदने का एकाधिकार था तथा जिन वस्तुओं के बेचने के लिए संसार का पूरा बाजार उपलब्ध था। यह रोपी परिस्थिति थी जहां चारों ओर लाभ ही लाभ थे। यह लाभ कंपनी के माध्यम से इंग्लैण्ड तक पहुंचने लगा विजयों से प्राप्त लाभ तथा राजस्व की राशि अंग्रेजों द्वारा व्यापार में लगायी गयी सोने-चांदी रूपी राशि से इतनी अधिक थी कि अंग्रेजों की पूंजी बौनी दिखायी देनी लगी। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारतीय वस्तुओं का निर्यात अधिकाधिक बढ़ने लगा। 1750 में ईस्ट इंडिया का ब्रिटिश आयात 15 लाख पौंड था जो 1797-98 में 58 लाख पौंड हो गया, 12 प्रतिशत ब्रिटिश आयात 24 प्रतिशत तक पहुंच गया। इस के विपरीत ईस्ट इंडिया कंपनी का ब्रिटिश निर्यात 6.5 प्रतिशत से 9 प्रतिशत तक ही बढ़ा था। यह प्रतिशत कुल ब्रिटिश नियति का हिस्सा था। यह पूर्व औद्योगिक विजेता औपनिवेशिक वस्तुओं की तलाश करते थे जो समस्त विश्व बाजार में बिक सकती थी।

रुचिकर तथ्य यह है कि अंग्रेजों को मिलने वाला लाभ इतना व्यापार वाणिकी से नहीं आया जितना कि एकत्रित होने वाले भू-राजस्व से इसके परिणाम कृषि के विनाश के चलते काफी आतंकित करने वाले थे। संसाधनों के उपयोग की औपनिवेशिक सोच से अंतत: विनाशकारी परिणाम निकले थे।

19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध के दौरान औपनिवेशिक लक्ष्यों में परिवर्तन आने लगा। अब वस्तुएं प्राप्त करने के स्थान पर भारतीय बाजार मंडियां प्राप्त करने पर जोर दिया जाने लगा। इस परिवर्तित उद्देश्य ने ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय आंतरिक व्यापार तथा सुदूरपार व्यापार के एकाधिकार को व्यर्थ बना दिया। परंतु सकारात्मक रूप से व्यापार को स्वतंत्र अपश्य बना दिया गया था।

उत्पादन निर्माण के अंग्रेजी निर्यात ने जो आरंभ में वस्त्र आदि से संबंधित था न केवल कपासीय माल के भारतीय निर्यात को समाप्त कर दिया, अपितु भारत में प्रवेश कर भारतीय तैयार वस्त्रों को उनके भारतीय बाजार में चुनौती देनी शुरू कर दी। इस का परिणाम दूसरे विनाश में हुआ: भारत के औद्योगिकरण के विनाश की प्रक्रिया आरंभ होनी शुरू हो गई।

19 वीं सदी के मध्य तक इंग्लैण्ड में पूंजी निवेश संतृप्ति की स्थिति को छूने लगा। इस से पूंजी के निर्यात के लिए बाजार मंडियों हेतु प्रतिस्पर्धा तीव्र हो गयी। भारत में यह पूंजी रेलवे आदि पर लगायी जाने लगी। एक बार यह प्रक्रिया जैसे विकसित हुई, वैसे ही इंग्लैण्ड से आयात की मात्रा ने जोर पकड़ना शुरू कर दिया। आयात के भरमार से भारत के पारंपरिक हस्तकौशल उद्योगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। उनका इतना विनाश हुआ कि उन्हें पुन: खड़ा करना कठिन था। यह भारत तथा उस के विजयी औपनिवेशिकों अर्थात् अंग्रेजों के बीच पारिस्थितिकीय पर्यावणीय मुठभेड़ थी।[10]

निष्कर्ष

संपूर्ण औपनिवेशिक काल में पश्चिमी जगत में प्रचलित औद्योगिकरण की प्रक्रिया तथा उपनिवेशों में उपलब्ध संसाधनों के नियंत्रण की आवश्यकता पर्यावरण संबधी औपनिवेशिक बोध से प्रेरित रहे है। इस बोध की मुख्य विशेषता प्राकृतिक संसाधनों को वस्तुओं के रूप में प्रयोग करने पर बल देना था। इसमें स्थानीय संसाधन समुदाय जो इन प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी आजीविकाएं के लिए निर्भर रहते थे, उन्हें पीछे धकेल दिया गया तथा उनका स्थान अकेले व्यक्तियों ने ले लिया। इस का मुख्य परिणाम यह था कि संसाधनों परा सामुदायिक नियंत्रण की जगह वैयक्तिक पहुंच ने ले ली। प्राकृतिक संसाधनों को बाजार मंडियों की ओर मोड़ दिया गया जिस के फलस्वरूप उन पर निर्वाह शैलियां भंग होती चली गयी। पर्यावरण को समूचे रूप से ध्यान में रखने वाले परिलक्षण से जुड़े प्रचलन कभी भी लागू नहीं किए गए। प्राकृतिक संसाधनों के भंडार के रूप में भारत को एक उपनिवेश की स्थिति में समझा गया तथा जिस के शोषण को एक वैधपूर्ण अधिकार के रूप में ही देखा गया।

संदर्भ

1. अवस्थी, डॉ0 एन0 एम0; पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन (आगरा), प्राक्कथन
2. वही, पृ0 सं0 1
3. वही, पृ0 सं0 136
4. वही, पृ0 सं0 136
5. वही, पृ0 सं0 137
6. पंत, पुष्पेश; पर्यावरण, प्रकाशन विभाग ; सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकारऋ, पृ0 सं0 1
7. वही, पृ0 सं0 13-15
8. गाडगिल, माधव एवं गुहा, रामचंद्र, द फिसर्ड लैण्ड: एन इकॉलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया (दिल्ली), 1942, पृ0 सं0 10
9. गुहा, रामचंद्र, फारेस्ट्री इन ब्रिटिश एंड पोस्ट ब्रिटिश इंडिया (दिल्ली), पृ0 सं0 15
10. गाडगिल, माधव एवं गुहा, रामचंद्र, द फिसर्ड लैण्ड: एन इकॉलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया (दिल्लीऋ, 1992, पृ0 सं0 45

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर चंपारण सत्याग्रह का प्रभावः एक अध्ययन

दिलीप कुमार

यूजीसी-नेट/जेआरएफ, शोधरत (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

चंपारण की समस्या नवीन भू-राजस्व प्रणाली की उपज थी, जिसका विरोध स्थानीय स्तर पर हो रहा था। वहीं दूसरी तरफ गांधी जी अपने राजनीतिक गुरू की सलाह पर देश-दौरे पर थे तथा घूम-घूमकर वे तत्कालीन समस्याओं का अवलोकन कर रहे थे। उन दिनो गांधी जी की दक्षिण अफ्रिकी गतिविधियो की चर्चा से लोग परिचित थे। 1916 ई0 के कांग्रेस के अधिवेशन में गांधी जी लखनऊ आनेवाले है इसकी खबर चंपारण के स्थानीय नेतृत्व को मिली तो यह निश्चय किया गया कि गांधी जी चंपारण के समस्याओं के संदर्भ में अपना नेतृत्व प्रदान करें। चंपारण के ही एक स्थानीय किसान श्री राजकुमार शुक्ल संदेशवाहक बने और गांधीजी तक यह खबर पहुंचायी गई।

गांधी जी का दृष्टिकोण मानवतावादी था तथा साथ ही साथ उन्हें अवसर (भारतीय राजनीति में) की तलाश भी थी। गांधी जी ने श्री शुक्ल के आग्रह को स्वीकार किया तथा अप्रैल 1917 ई0 में चंपारण के तरफ प्रस्थान किया। यात्रा के दौरान मुजफ्फरपुर के पड़ाव में ही प्रतिष्ठित वकीलों द्वारा कृषको के मुकदमें के बारे में चर्चा कर समस्या से अवगत हुए। उन्होंने इस क्षेत्र में चिर प्रचलित तीनकठिया प्रणाली के दुष्परिणाम को भयानक रोग बताया तथा अपने पूर्व निर्धारण कार्यक्रम-अवधि को बढ़ाया तथा सहयोगियों को सत्याग्रह के लिए राजी किया।

चंपारण में एक स्थानीय व्यक्ति के निजी मकान को दफ्तर बनाया गया तथा गांधी जी ने अपने प्रयोग को शुरू किया। किसानो की समस्या सुनकर अवलोकन पश्चात् लेखबद्ध करके सरकारी दफ्तरों में तार्किक आधार से प्रेषित करने का कार्य भी शुरू किया गया। इस क्रम में उन्हे सरकारी कोपभाजन का शिकार भी होना पड़ा। परंतु जल्द ही गांधी ने पीड़ितो के अंतःकरण की आवाज के सामने सरकार को झुकने पर मजबूर कर दिया। सरकार द्वारा कानून बनाकर कृषक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया गया।

गांधी जी का ध्यान सिर्फ कृषक समस्याओं की ओर ही नहीं थी उन्होंने समग्र मानवीय समस्याओं के निराकरण हेतु एक मनोवैज्ञानिक आभामंडल का निर्माण किया। स्वच्छता की फलक को तन, मन तथा तंत्र तक विस्तारित किया। चंपारण सत्याग्रह की व्यापकता को देखा जाये तो उक्त दोनो ने अर्थात् गांधी जी ने चंपारण व चंपारण ने गांधी को प्रभावित किया।

Keywords- नवीन भूराजस्व प्रणाली, तीनकठिया, सत्याग्रह, समग्र, मनोवैज्ञानिक-आभामंडल, स्वच्छता।

शोध-प्रविधि

ऐतिहासिक विधि के अंतर्गत महात्मा गांधी से संबंधित मौलिक एवं गौण स्रोतो का अध्ययन पश्चात् तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति को उपागम बनाया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में चंपारण सत्याग्रह में गांधी जी के प्रयोगो का भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को राष्ट्रीयता प्रदान करने में योगदान का विवेचन किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य आंदोलन के शताब्दी वर्ष के अवसर पर गांधी जी के प्रयोग को पुनर्जिवित करना है।

परिचर्चा

चंपारण वर्तमान में उत्तर बिहार का प्रक्षेत्र है। गांधी के सत्याग्रह आंदोलन से पहले यह एक गुमनाम क्षेत्र (आधुनिक काल में) था हालांकि प्राचीन काल में यह राजा जनक के राज्य मिथिला का हिस्सा था। हिमालय के पद में स्थित होने से यहां की भूमि धान की खेती हेतु विशेष रूप से उपर्युक्त है

ईस्ट इंडिया कंपनी की भारतीय प्रदेश पर सत्ता की स्थापना के बाद यहां की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक समस्त कार्यकलापों में भारी फेरबदल हुआ। कंपनी अपने स्वार्थ साधने के लिए आर्थिक शोषण के नित्य नये हथकंडे अपनाये। नवीन भू-राजस्व प्रणाली, कृषि का विशिष्टकरण आदि। चूंकि चंपारण एक कृषि प्रधान इलाका था अत: यह भी अछुता न रह सका।

उन दिनो यूरोप में भारतीय उत्पादो की बड़ी मांग थी, इसमें सबसे ज्यादा मुनाफा नील व्यापार में हो रहा था जिससे कंपनी ने नील की कृषि को बढ़ावा दिया। नवीन भू-प्रणाली स्थायी बंदोबस्त ने यूरोपीयनो को जमींदार बनने को प्रोत्साहित किया अब वे विशेष लाभ के लिए जमींदारी लेकर नील की खेती कराने लगे। शुरूआत मे नील की खेती बंगाल में होती थी परंतु कलांतर में कृषको का पलायन बंगाल से बिहार की तरफ हो गया और बंगाल से नील की आपूर्ति आवश्यकतानुसार न हो रही थी। इसी काल में कुछ अंग्रेज जमींदारो ने बेतिया महाराज से भूमि पट्टे पर ले ली और उसमें नील की कृषि, कृषको को पेशगी देकर शुरू करवा दी। जबकि किसान अपने भूमि में धान की खेती करना चाहते थे। मतभेद दूर करने हेतु सरकार ने कानून बनाकर बीघे में तीन कठ्ठे पर नील की कृषि को अनिवार्य कर दिया। यह ''तीनकठिया प्रथा'' वैधानिक थी अत: किसानो ने कृषि को जारी रखा। तीन कठ्ठे की नील से जमींदारो के स्वार्थ की पूर्ति नहीं होती थी अत: वसूली का रकम बढ़ाने के लिए ''सरहवेशी'' नामक अवैध वसूली शुरू कर दी। किसानो की समस्या तो भयावह थी ही एक और पहाड़ उनपर टुट पड़ा। जब जर्मनी में बी0 ए0 एस0 ए0 नामक कंपनी ने बेंजीन, नैफ्थलीन आदि से बनावटी नील बनानी शुरू की। यह रसायनिक नील जैविक नील की अपेक्षा काफी सस्ता होता था। अब भारतीय नील का व्यापार बंदप्राय हो गया और जमींदारो को इसकी खेती बंद करनी पड़ी। इस नुकसान को उन्होने किसानो से वसूलने का विचार किया। किसानो को बताया गया कि वे अपने सम्पूर्ण भूमि का उपयोग अपने मन के मुताविक करे तथा नील के बदले रकम ही दे। जिसे ''तवान'' कहा जाता था।

अब चंपारण के कृषक इस ''सरहवेशी'' एवं ''तवान'' नामक दो अवैध वसूली से त्रस्त हो गये क्योंकि इसकी वसूली अत्याचारपूर्ण तरीके से होती थी। इसके विरोध में क्या किया जाये यह स्पष्ट रूप से यहां के किसानो को नही सूझ रहा था। यह प्रदेश तत्कालीन राजनीतिक उथल-पूथल से बिल्कुल अनभिज्ञ था यहां के लोग भोले-भाले थे व अत्याचार का सहन करते हुए जीवन व्यतीय करते थे। कमोवेश विरोधी भावना तो थी परंतु व्यापक रूप से कभी नही उभरा था। हाँ, कुछ लेखको ने इस समस्या की खबर को प्रताप (कानपुर) नामक पत्रिका आदि में प्रकाशित करवाया था। नीलहे जमींदार के अत्याचार का दौर लगभग वही था जब बिहार का नेतृत्व अलगाववाद (अलग राज्य-गठन) के दौर से गुजर रहा था। कांग्रेस अपने राजनीतिक भागीदारी की मांग में व्यस्त था। अत: 20 वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में कृषको की समस्या पर कोई ध्यान नहीं था। इसी समय चंपारण में स्थानीय नेतृत्व के द्वारा विरोध का तारतम्य शुरू होता है।

1915 ई0 में गांधी स्वदेश लौटते है तथा भारतीय राजनीतिक समस्या से प्रभावित होते है। गोखले को राजनीतिक शुरू स्वीकार करते है तथा उनके कहने पर भारत-भ्रमण शुरू करते है। इस नये नेता जो विदेश में सफलता पूर्वक अपना सत्याग्रह करते है के बारे में चंपारण के स्थानीय नेतृत्व को पता चलता है वो वे निश्चय करते है कि मिस्टर गांधी को अपना समस्या सुनाते है, शायद वे कहीं सुन ले।

चंपारण के कृषकों की व्यथा कथा लेकर एक स्थानीय पीड़ित किसान राजकुमार शुक्ल कांग्रेस के अधिवेशन में लखनऊ गये। उनकी गांधी जी से मुलाकात हुई तो उन्होने अपने समस्या की वेदना को सांझा किया। गांधी जी उनकी भावनाओ को समझ न सके भरसक टाल दिया। पुन: कानपुर में उक्त किसान की भेंट गांधी जी से होती है। इस बार गांधी चंपारण दौरा में समस्याओ का अध्ययन

करने का वचन देकर बंध गये। वर्ष 1917 ई0 के आरंभ में पुनः श्री शुक्ल गांधी जी से कलकत्ता में मिले व पटना, मुजफ्फरपुर होते हुए चंपारण की धरती पर पहुंचे।

उन दिनो चंपारण के किसानो का मुकदमा मुजफ्फरपुर के नामी वकील रामनवमी बाबू, शंभू बाबू, गया बाबू आदि लोग देखते थे। गांधी को किसानो की उत्पीड़न की लिखित जानकारी मौखिक रूप से इन वकीलो से सुना। उन्होने सलाह दी कि मुकदमें से थोड़ा न्याय ही संभव है। असल न्याय तो लोगो की डर को खत्म करना तथा तीनकठिया प्रथा को खत्म करना है। मुजफ्फरपुर में ही उन्होने कुछ लोगो को नीलहो के विरूद्ध संघर्ष में अपने साथ अंतिम परिणाम मिलने तक साथ निभाने का वचन प्राप्त कि और चंपारण की तरफ रवाना हो गये।

कुछ साथियो के नाम इस प्रकार है। आचार्य कृपलानी, रामनवमी प्रसाद, ब्रजकिशोर बाबू, राजेन्द्र बाबू, गया बाबू, अनुग्रह नारायण सिंह, धरणीधर प्रसाद, विंध्यावासिनी प्रसाद, जनकधारी प्रसाद।

गांधी जब चंपारण पहुंचते हैं तो कहते है कि चंपारण गंगा के उस पार ठेठ हिमालय की तराई मे नेपाल की सीमावर्ती प्रदेश है अर्थात् नई दुनिया है। वहां न कहीं कांग्रेस का नाम सुनाई देता है, न कांग्रेस का कोई सदस्य दिखाई देता है। जिन्होने नाम सुना था, वे कांग्रेस का नाम लेने में या उनमें सम्मिलित होने में डरते थे। आज कांग्रेस के नाम के बिना कांग्रेस ने और कांग्रेस के सेवको ने इस प्रदेश में प्रदेश किया और कांग्रेस की दुहाई फिर गई।

इस प्रदेश में कांग्रेस का अर्थ है-वकीलों की आपसी खींचातानी कानूनी गलियो से सटक जाने की कोशिश। कांग्रेस का अर्थ है बमगोला। कांग्रेस यानी कथनी एक, करनी दूसरी यह धारणा सरकार की और सरकार की सरकार नीलहे गोरो की थी। हमें यह सिद्ध करना था कि कांग्रेस ऐसी नही है कांग्रेस तो दूसरी चीज है। इसलिए हमने कही भी कांग्रेस का नाम तक न लेने और लोगो को कांग्रेस की भौतिक देह का परिचय न कराने का निश्चय किया था हमने यह सोच लिया था कि वे उसके अक्षर को न जानकार उसकी आत्मा को जाने और उसका अनुसरण करे तो बस है। यही असल चीज है।

गांधी जी चंपारण में स्थानीय लोगो की मदद से किसानो की समस्या की जानकारी प्राप्त करना शुरू करने से पहले वहां के अधिकारियो से भी बातचीत करना उचित समझे। तिरहुत प्रमंडल के आयुक्त तथा प्लांटर्स एसोसिएशन के सचीव से भेंट तथा वार्तालाप किये तथा अपने कार्यक्रम से अवगत कराना चाहें। दुर्भाग्यवश उन्होंने गांधी जी के आगमन के उद्देश्य का गलत अर्थ लगाया तथा गांधी जी को बाहरी आदमी बताकर उन्हे अविलंब जिला छोड़ने की आज्ञा दी। गांधी को यह प्रतिरोध अनुचित प्रतीत हुआ साथ ही उन्हे अब दृढ़ विश्वास हो गया कि किसानो की समस्या गंभीर अवश्य है। गांधी उन दिनों एक कुशल राजभक्त हुआ करते थे। वे कई मौके पर सरकार के हिमायती सिद्ध हुए थे। अतः पुनः उन्होने ऊपरी प्रशासनिक पदाधिकारियों से सम्पर्क साधा तथा विश्वास दिलाया कि वे सरकार का सहयोग करना चाहते है। गांधी जी पर जिलाधिकारी द्वारा किया गया मुकदमा सरकार के लिए अंकुश सिद्ध हुआ। सत्य के प्रबल समर्थक गांधी जी को जांच का आदेश दिया गया। गांधी जी अपने सहयोगियो के साथ रिपोर्ट लेना शुरू किये। रिपोर्ट खुले तौर पर सुना जाता था। पुलिस के खुफिया अधिकारी भी वहां उपस्थित होते थे। इसका एक महत्वपूर्ण लाभ हुआ कि लोगो में निर्भयता आई, क्योंकि उन दिनों लोग खुफिया पुलिस से डरते थे। अन्य लाभ हुआ कि रिपोर्ट में सही-सही बात ही लिखावाये जाते रहे।

रिपोर्ट में जो कुछ प्रासंगिक होता था उसको मुख्य-मुख्य समाचार पत्रो को भेज दिया जाता था साथ ही सरकारी अफसरो के कार्यालय में भी प्रसारित किया जाता था। गांधी के इस कार्य ने चंपारण की वास्तविक समस्या से सरकार के साथ-साथ तात्कालीन राजनीतिज्ञो को अवगत कराया। इसका प्रमाण खुद गांधी जी देते है कि *मालवीय जी ने मुझे कहला भेजा था कि जब जरूरत समझे मुझे बुला ले, मैं आने को तैयार हूं।* बिहार के अग्रणी कांग्रेसी नेता मजहरूल हक तो महीने में एक-दो बार अवश्य ही दौरा पर आते रहते थे।

कार्यक्रम ने चंपारण समस्या को राष्ट्रीय स्वरूप दिया। अब सरकार को गांधी जी का साथ देना अनिवार्य महसूस हुआ। लेफ्टिनेंट गवर्नर अल्बर्ट गेटे ने गांधी को रांची आने का निमंत्रण दिया। रांची में तीन दिन की वार्ता के फलस्वरूप जांच कमिटि गठित करने का निश्चय किया गया। इसकी जानकारी जून 1917 ई0 में ही तिरहुत आयुक्त को दी गई कि वे जांच में गांधी का सहयोग करे। एफ0 जी0 सलाई की अध्यक्षता में जांच कमिटि नियुक्त किया गया, गांधी भी सदस्य थे। रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया। गेटे के सहयोग से यह रिपोर्ट विधान परिषद् में चंपारण कृषि विधेयक के रूप में पास हुआ। इस कानून के निम्न प्रावधान थे।

1. तीनकठिया की समाप्ति हो।
2. सरहवेशी में तुरकौलिया में 20 प्रतिशत और अन्य क्षेत्र में 26 प्रतिशत की कमी की व्यवस्था।
3. रैयत को नील उपजाने के दायित्व से मुक्त किया गया और यदि वे चाहे तो स्वेच्छा से नील उपजाने को स्वतंत्र है। तथा
4. कानून के अंतर्गत की गई व्यवस्थाओ के संबंध में मुकदमेबाजी रोकने की व्यवस्था।

इस प्रकार किसानो की समस्या का समाधान गांधी जी ने कानून बनाकर कराने का प्रयास किया। साथ ही उन्होने चंपारण की समग्र मानवीय समस्याओ को भी सुलझाने का प्रयास किया था।

जब गांधी जी चंपारण गये थे, उन्हे वहां की समस्याओ के बारे में सूची सौंपी गई थी। उस सूचीपत्र को देखकर महात्मा गांधी चौंक गये कि क्या यहां स्त्रियों की कोई समस्या नही है? क्योंकि उसमें स्त्रियों से संबंधित कोई बात नही थी, न कोई स्त्री वहां उपस्थित थी। जबकि महात्मा गांधी की दृष्टि में स्त्रियां बहुत ही अच्छी प्रबंधक है क्योंकि गृह-प्रबंधन की कला उनके अंदर जन्मजात विद्यमान होती है, किन्तु गांधी को इस बात का अफसोस था कि वे अपनी प्रबंधन क्षमता को सिर्फ घर की चहारदीवारी तक सीमित क्यों रखती है? क्यों नही वे समाज और राष्ट्र को उस क्षमता से लाभान्वित करती है? उन दिनो बिहार में पर्दा-प्रथा बड़ी कठोरता से लागु होती थी। इसपर प्रहार करने हेतु उन्होने कांग्रेसियो को शपथ दिलवायी कि वे अपनी घर की महिलाओं को घर से बाहर लाकर सार्वजनिक कार्यो मे लगाये। एक सामाजिक क्रांति आ गई। घर से निकलकर गलियों, कूचों और सड़को पर खादी धारिणी स्त्रियां अपनी गरिमामयी उपस्थिति से लोगो को चकित और विस्मित करने लगी।

चंपारण में ग्राम-पाठशालाओं और ग्राम-सुधार के अलावा गोरक्षा का काम भी मैने हाथ में लिए था। गोरक्षा के विषय में मेरी कल्पना आज है वही उस समय बन चुकी थी।

चंपारण यात्रा तथा काम उनकी धारणा सत्य और अहिंसा का एक महान प्रयोग था। रैयत वर्षो की अत्याचारी अन्यायपूर्ण व्यवस्था से मुक्त हुए, सामाजिक अन्याय से मुक्त हुए, निर्भिकता एवं ईमानदारी का आदर करना सीखा। चंपारण के ग्रामीण इलाको मे समाज सेवा के प्रायोजित कार्य, शोषित पीड़ित जनसमूह की स्थिति में सुधार के माध्यम से स्वराज लेने की भावना वस्तुतः हमारे देश-प्रेम का स्वर्णिम आदर्श था। बिहार आने का गांधी जी का उद्देश्य *चंपारण के कृषको की स्थिति की जांच तथा नीलहे साहबो से उनकी क्या शिकायते थी इन बातो का अध्ययन करना था।* परंतु अनायास ही यह उद्देश्य व्यापक हो गया तथा आगामी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए महत्वपूर्ण गांधी के प्रयासो का प्रयोगशाला बन गया।

चंपारण का कार्य मूलतः मानवतावादी था। इस दौरान गांधी जी ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष मे एक नया अध्याय जोड़ा। एक नवीन पद्धति की शुरूआत हुई जिसका पटाक्षेप भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ ही सम्पन्न हुई। आगामी स्वतंत्रता संग्राम में नेता के रूप में नेतृत्व प्रदान करने हेतु उनके निर्देशन में सहयोगियो को महान नैतिक प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु उपयोगी सिद्ध हुई। बताया गया कि जबतक वे सार्वजनिक काम में लगे हो तो उनकी एक ही जाति होगी सहकर्मियो की जाति। आत्मानुशासन की प्रशिक्षण ने अभिजात्य रहन-सहन को भी सहज आम-जीवन जीने की प्रेरणा दी। परिणाम हुआ कि तृतीय श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करना अपमान-जनक नही रह गया। सच्ची राष्ट्रीय सेवा एवं जीवन में महत्व प्राप्त करने हेतु यह पहली आवश्यक शर्त है। इस प्रकार गांधी ने कांग्रेस को जनोंपयोगी संस्था बना दिया। आत्मानुशासन से नैतिक प्रशिक्षण देने का कार्य किया गया जो राष्ट्रीय नेतृत्व के विकास का आधार बना। सत्याग्रह के माध्यम से ब्रिटिश शासन का प्रतिरोध किया जिसका परिणाम स्थायी एवं दूरगामी रहा। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए स्वावलंबन को आधार बनाया। शिक्षा को सभी कष्टो का कारण बताकर इसके लिए समुचित व्यवस्था की गई। स्वच्छता का अभियान चलाकर समस्त स्वच्छता दैहिक, मानसिक स्वच्छता के साथ-साथ तंत्र की स्वच्छता को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया। गांधी जी के रचनात्मक कार्यो में सबसे महत्वपूर्ण कार्य था-स्त्रियों को अपनी शक्ति का भान कराना। उपर्युक्त वर्णित तत्व सम्पूर्ण गांधीवादी काल की प्रमुख विशेषता रही है। समग्रता मे विश्वास करने वाली गांधी जी के चंपारण कार्य ने उन्हे महात्मा की उपाधि से विभूषित करवा दिया। स्वतंत्रतापर्यंत आगामी कई दशकों तक गांधी भारतीय राजनीति की पहचान बने रहे। इसका प्रमुख कारण उनका विशिष्ट कार्यक्रम जिससे उन्होने कांग्रेस द्वारा शुरू किये अभिजात्य आंदोलन को जनआंदोलन में बदल दिया। इन समस्त कार्यक्रम को चंपारण में प्रायोजित एवं परीक्षित किया गया था। इसकी प्रामाणिकता को विशेषता प्रदान करने वाली एक महत्वपूर्ण जिराल्ट हर्डले की है-

दृष्टिकोण

गांधी जी के प्रयोग सारे जगत को दिलचस्पी है और उसका महत्व युगो तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होने समूह को लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करने की कोशिश की है।

संदर्भ

1. शर्मा, बी0 एम0; सविता; दत्त, आर0 के0; भारतीय राजनीतिक चिंतक, पृ0 सं0 270
2. वही; पृ0 सं0 282
3. गांधी, एम0 के0; सत्याग्रह, पृ0 सं0 347
4. जैन, प्रतिभा; गांधी चिंतन : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ0 सं0 26-38
5. यंग इंडिया, भाग-2 तथा 3, पृ0 सं0 148
6. वही; पृ0 सं0 296
7. आत्मकथा; पृ0 सं0 14, 102-105, 130-131, 209, 501
8. दत्त, डॉ0 के0 के0; बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, भाग-1, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 208, 283-285, 379-383, 298-300, 208, 180, 181, 269, 218
9. प्रसाद, राजेन्द्र; महात्मा गांधी एंड बिहार; पृ0 सं0 4, 191, 192, 26
10. ग्रोवर, बी0 एल0, यशपाल; आधुनिक भारत का इतिहास-एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चन्द एंड कम्पनी (प्रा0) लि0, नई दिल्ली, पृ0 446-449

भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का दक्षिण-पूर्व एशिया पर प्रभावः एक अध्ययन

डॉ० अरुण कुमार निराला

पी-एच० डी०, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

शोध-सारांश

दक्षिण पूर्व एशिया और भारत एक साझे ऐतिहासिक आधार के प्रतिनिधि है। इस ऐतिहासिक सह-संबंध की गहराई का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक इस क्षेत्र के लिए 'दक्षिण पूर्व एशिया' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था। इसकी प्रसिद्धि 'वृहत्तर भारत' के रूप में थी। इस क्षेत्र के जीवन मूल्य, परंपराएं, साहित्य व दर्शन, कला-स्थापत्य, प्रशासनिक प्रबंधन व राजत्व के सिद्धांत, आर्थिक मूल्य, धर्म, त्योहार, नामाकरण की शैली इत्यादि भारत से इतने प्रभावित है कि यह जुड़ाव अभिन्न प्रतीत होता है।

भारतीय सांस्कृतिकमूल्य व भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रंथ 'रामायण' व महाभारत का विशेष प्रभाव दक्षिणपूर्व एशिया पर परिलक्षित होता हैं। यह प्रभाव हमें स्थान, संस्थान, मंत्रालय इत्यादि के नामाकरण, कलाकृतियों नृत्य, नाट्य, लोककथा सामाजिक मूल्यों पर स्पष्ट रूप से दिखता है। उदाहरण स्वरूप-'नमस्कार' की अंजलिमुद्रा संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रचलित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक प्रविधि के द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारत के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रभावो का अध्ययन किया गया है।

इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो के ना केवल सांस्कृतिक जीवन बल्कि, वहा राजनीतिक, प्रशासिक सिद्धांतों, भौतिक स्थापनों को भी आच्छादित किए हुए हैं।

KEYWORDS- सांस्कृतिकमूल्य, भौतिक स्थापना, नामाकरण, वृहत्तर भारत, राजत्व सिद्धांत।

परिचर्चा

भारत का दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ प्राचीन काल से ही गहरा संबंध रहा है। यह क्षेत्र भारत से भौगोलिक एवं ऐतिहासिक रूप से अभिन्न रूप से जुड़ा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक इस क्षेत्र के लिए दक्षिणपूर्व एशिया के स्थान पर 'वृहत्तर भारत' शब्द प्रयुक्त किया जाता रहा है। भारतीय दर्शन, धर्म, लोक परंपरा, मिथक, भाषा-साहित्य, स्थापत्य, जीवन-मूल्य, प्रशासनिक नीति व राजत्व का सिद्धांत आदि का दक्षिण-पूर्व एशियाई समाज पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[1]

नामकरण की परंपरा

दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थानों के नामकरण की परंपरा भारतीय सभ्यता से प्रभावित प्रतीत होती है। जैसे-। लनजीपं (अयोध्या) जो थाईलैंड की प्रचीन राजधानी का नाम था। भारतीय महाकाव्य रामायण में भी 'अयोध्या' का वर्णन राम की राजधानी के रूप में हुआ है। संस्कृत व पालि भाषा को इस क्षेत्र में प्रशासनिक भाषा के रूप में अपनाये जाने के पश्चात्, भारतीय नामो को इस क्षेत्र में अपनाया गया।[2]

वर्त्तमान कंबोडिया, कंबोज के नाम से जाना जाता था। भारत में भी कंबोज महाजनपद था। यह क्षेत्र वर्त्तमान में अफगानिस्तान में है जो आर्यकालीन भारत का महत्वपूर्ण अंग हुआ करता था। इंडोनेशियाई (इंडोनेशिया की राष्ट्रीय भाषा) में संस्कृत के शब्द विद्यमान है, जैसे-निर्मला, अप्सरा, रति, देवी। यहां रक्षा मंत्रालय 'युद्ध गृह' कहलाता है। यहां कार्यालयों में उत्कीर्ण किए जाने वाले लेखो में प्रसिद्ध है-'चर्तुवर्ण-एक कर्म' चर्तुवर्ण एक कर्म यह भारतीय जीवन मूल्य है। यहां खेल मंत्रालय, क्रीड़ा भक्ति के नाम से जाना जाता है। इंडोनेशियाई एयरलाईन का नाम गरूड़ एयरवेज है। गरूड़ एक संस्कृत नाम है, जो भारतीय परंपरा में विष्णु के वाहन के रूप में प्रसिद्ध है। चम्पा, ध्रुवपुरा, ज्येष्ठपुरा, श्रेष्ठपुरा आदि नाम भारत से ही प्रभावित है। इसलिए क्योंकि स्थान के नाम में 'पुर' जोड़ने की परंपरा मौलिक रूप से भारतीय परंपरा है। वर्मा-अवंति, वाराणसी, मिथिला, पुष्करा, पुष्करावती, राजगृह, वैशाली आदि नाम भी मिलते है। ब्रुनेई के सुल्तान को सेरी भगवान कहा जाता है।[3]

'मेरू' भारतीय मंदिर स्थापत्य कला में प्रयुक्त किया जाता है। यह इंडोनेशिया व बाली में प्रचलित है। थाईलैंड में रॉयल परिवार स्वयं को मिथिला के राजा विदेह की तरह विदेहराजा कहा करते थे।[4]

थाईलैंड में संस्थान के नाम की साम्यता संस्कृत से स्थापित की जा सकती है। जैसे विद्यालय-विधि आलय, प्रथमा-प्रथोम, मध्यमा-मधोम, पंडित-वंडित कहते है। [5]

मलेशिया के एक पहाड़ी क्षेत्र का नाम 'संगोई पत्तनी' है जो प्राचीन संस्कृत नाम श्रीरंगपट्टनम से मेल खाता है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, पहाड़ी शहर। ठीक उसी प्रकार सेराभवन अर्थात् श्री रामवन एक अन्य शहर है।

मलेशिया में कमांडर इन चीफ को 'लक्ष्मणा' कहा जाता है। लक्ष्मण रामायण कथा के एक पात्र है, जो राम के अनुज भ्राता थे। लंका में राम-रावण युद्ध के समय राम की सेना में इसी भूमिका में थे।

जावा जो पूर्णतया भारतीय नाम है, में एक नहर का नाम चंद्रभागा है। वर्मा के इरावदी, चिंदवीन नदी के नाम संस्कृत नाम है। यहां शासक प्रमुख को अधिपति कहा जाता है जो कि संस्कृत शब्द है। कंबोडिया में नदी का नाम मेंकांग है जो मां गंगा का ही स्थानीय भाषायी रूपांतरण है। बाली में कई धाराओं के नाम भारतीय नदी गंगा, सिंधु, यमुना, कावेरी, नर्मदा आदि के नाम पर है।

कंबोडिया के शासको के नाम में वर्मन जुड़ा मिलता है। जैसे-जयवर्मन, यशोवर्मन, सूर्यवर्मन यह भी भारतीय परंपरा है।

राजत्व का सिद्धांत

दक्षिण-पूर्व एशिया में राजत्व का दैवीय सिद्धांत प्रचलित रहा है। यहां भी राजा को देवराज माना जाता है। खमेर, चाम, जावानीक शासको ने स्वयं को ईश्वर से जोड़ने तथा सत्ता पर आरूढ़ होने के पूर्व ब्राह्मणों व पुरोहितों द्वारा भारतीय परंपरा की तरह ही राज्याभिषेक की परंपरा का भी पालन करने का प्रचलन रहा है अर्थात् राजा को इसप्रकार वैश्विक-व्यवस्था के नियामक के रूप में देखने की दृष्टि मूलतः भारतीय दृष्टि क्षत्रियत्व है। 'राजा' को उस ईश्वर के तुल्य स्थापित किया गया जो वैश्विक व्यवस्था का संचालन करते हैं।

बाली, बर्मा, थाईलैंड पर हिंदूत्व का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। संपूर्ण दक्षिणपूर्व एशिया में सम्मान की 'अंजली मुद्रा' प्रचलित है। भले ही इसे कंबोडिया में 'झामपेह', इंडोनेशिया में सेमपाह, जापान में गस्साहो, थाईलैंड में 'बाई' कहते है।

थाईलैंड का रॉयलकोर्ट आज भी हिंदू ब्राह्मण द्वारा संचालित किया जाता है। 'गुरूड़' जो कि हिंदू परंपरा का प्रसिद्ध पवित्र पक्षी है। इंडोनेशिया, थाईलैंड की सेना का प्रतीक चिन्ह है। मॉयथाई, थाईलैंड में प्रचलित युद्ध कौशल है, जिसकी पद्धति व तकनीक भारतीय मुष्टिका प्रहार की तरह है।[6]

अलौकिक जीवन परंपरा

फिलीपींस में 'बथाला' प्रमुख देव माने जाते है। यहां की देवत्व की अवधारणा के साथ कर्म वाली अवधारणा जुड़ी है अर्थात् व्यक्ति का कर्म ही उसे देवत्व तक पहुंचाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश अर्थात् जन्मदाता, पालक व संहारकर्ता की तीन भिन्न शक्तियों की अवधारणा यहां भी प्रचलित है। 'हरिहर' की अवधारणा भी यहां मान्य है।

अंकोरवाट मंदिर विष्णु देवता को समर्पित है। इसकी सांस्कृतिक मान्यता का अनुमान हम इससे लगा सकते है। इसे कंबोडिया के झंडे पर दिखाया गया है। 'पद्मनाभ' मंदिर जावा में स्थित सबसे बड़ा हिंदू मंदिर है जो त्रिमूर्ति को समर्पित है। बोरोबदूर में बुद्ध का स्मृति चिन्ह है। जिसकी संरचना में मंडल व स्तुप है जो कि एक महत्वपूर्ण भारतीय संरचना है। थाईपुषम, इरावन साइन थाईलैंड में मानया जाने वाला त्योहार है जो हिंदू देवता ब्रह्मा को समर्पित है।

यहां दुर्गा देवी, भूमि मातरम्, शिवलिंग पूजन की भी परंपरा है। गुप्तकालीन मूर्ति के मानवीकरण के तरीके भी दक्षिणपूर्व एशिया में प्रचलित है।[7]

समाजिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था में जाति व्यवस्था व आश्रम व्यवस्था का प्रचलन रहा है। इंडोनेशिया में 'चर्तुवर्ण' की अवधारणा प्रचलित है। मलेशिया में शादी के वस्त्र व आभूषण भारतीय वस्त्र व आभूषण जैसे ही होते है। यहां देवदासी व सती प्रथा का भी प्रचलन रहा है।

लोकवार्ता के रूप में रामायण

भारतीय महाकाव्य रामायण की लोकप्रियता भी इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के प्रभाव को दर्शाती है। रामायण कथा दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में लोककथा के रूप में प्रचलित है। रामायण में वर्णित 'जीवन मूल्यों' को यहां आदर्श जीवन मूल्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। रावण पर राम के विजय के उपलक्ष्य में मानाया जाने वाला त्योहार दशहरा और राम के अयोध्या लौटने की खुशी में मनायी जाने वाली दिवाली का त्योहार यहां भी मनाया जाता है। थाईलैंड में ऐसी मान्यता है कि वाल्मिकी ने यहीं के तमसा नदी के किनारे से रामायण की रचना का आरंभ किया था। रामायण का शाब्दिक अर्थ भ्रमण/यात्रा होता है, इसमें कई संस्कृतियों को एक साथ जोड़कर एक कथा बनायी गयी है। सुग्रीव के द्वारा अपने आदमियों को सीता की खोज के लिए जावा-सुमात्रा भेजने का वर्णन भी आता है। इस प्रकार दक्षिणपूर्व एशिया व रामायण के बीच एक जुड़ाव देखा जा सकता है। थाईलैंड पर रामायण का प्रभाव इतना अधिक है कि यहां के राजपरिवार अपने नाम में 'राम' जोड़ने व राजा के द्वारा स्वयं को 'हिन्दू-अवतार' के रूप में स्थापित करने की परंपरा रही हैं। दक्षिणपूर्व एशियाई देशो के सामाजिक मूल्यों में 'बंधुता' को उच्च स्थान प्राप्त है। वहां के चित्रकला की मुख्य विषयवस्तु रामायण के विभिन्न पात्र है। इंडोनेशिया में 'नागपाश' प्रसंग वॉल पेंटिग के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध है। इतना ही नहीं नृत्यकला में भी 'रामकथा' की प्रस्तुति की जाती है। इसके साथ-साथ रामकथा व पंचतंत्र का अद्भूत संगम इन क्षेत्रों की लोककथाओं में शामिल है। यहां जानवरों के मुख से रामायण कथा-प्रसंग कहलवाये जाने की परंपरा है। जैसे-एक मेढ़क की कथा सुनायी जाती है कि उस मेढ़क को एक ऐसे तालाब में रखा जा रहा था, जहां सांप रहता था। मेढ़क रहने से इंकार कर रहा था, तब सांप ने उसे रामायण में वर्णित रावण-विभीषण कथा प्रसंग सुनाकर प्रभावित किया था।[8]

म्यान्मार में बौद्ध कथाओं में भी राम एक प्रमुख पात्र के रूप में विद्यमान है। कंबोडिया में रामायण कथा प्रसंग कविता रूप में सुनायी जाती है। वियतनाम, जावा, बाली में कठपुतली नृत्य की विषयवस्तु में 'रामायण कथा' मौजूद है।

मलाया में जटायू, गरूड़, नाग आदि हिंदुत्व के मिथकीय प्रतीक चिन्ह को भारत की तरह ही पवित्र आदर्श के रूप में देखा जाता है। इंडोनेशिया, कंबोडिया, मलेशिया, थाईलैंड में छाया-चित्र, नृत्य-नाट्य आदि के कथानक भी रामायण-महाभारत वाले ही होते है। इन क्षेत्रों में रामायण व महाभारत के कथा प्रसंग लोकगीत के रूप में भी गाए जाते है।

दक्षिण-पूर्व एशिया सांस्कृतिक रूप से भारत से जुड़ा है। बर्मा, थाइलैंड, कंबोडिया, लाओस, चंपा, इंडोनेशिया, मलेशिया, ब्रुनेई आदि देशो की संस्कृति के निर्माण में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण रही। अखंड भारत शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक रूप से इस क्षेत्र के लिए किया जाता है। लगभग 500 ई0 पू0 एशिया के साथ जो सामुद्रिक व्यापार होता था, उसने भी दक्षिणपूर्व पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ा। यहां वैदिक सामाजिक व धार्मिक मूल्यों की स्थापना हुयी।

यहां स्थित नगर व राज्यों के नामकरण पर स्पष्टयता भारतीय प्रभाव झलकता है, यथा-चंपा, द्वारवती, गंगानेगर, चेलना, कलिंग, कुताई, लंकासुक, पगान, श्रीविजय, तरूमनगड़ा इत्यादि संस्कृत, पालि, तमिल भाषाओं ने यहां की संचार व साहित्यिक भाषा को समृद्ध किया।

राजत्व के साथ क्षत्रित्व की अवधारणा को भी जोड़ा गया है। [9]

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय मिथ, विधि, दर्शन, भाषा, सभी का विशेष प्रभाव है। भौतिक स्थापनाओं के साथ-साथ मानवीय धर्मनिष्ठा मूल्यों पर भी भारतीय प्रभाव है। इस सह-अस्तित्व से एक परिपक्व संबंध की नींव पड़ी है।

दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्रों में नामाकरण की परंपरा भारत से प्रभावित हुयी। इसका प्रमुख कारण यहा रहा कि संस्कृत व पालि भाषा यहां कि प्रशासनिक भाषा रही है।

निष्कर्ष

1. दक्षिण-पूर्व एशियाई देश व भारत सांस्कृतिक-साहचर्यता का उत्तम उदाहरण हैं।
2. दक्षिण-पूर्व एशिया की भाषा, साहित्य, लोककला, लोक परंपरा का निर्माण व संवर्द्धन भारत के द्वारा हुआ है।
3. यहां के जीवन मूल्य, सामाजिक आदर्श व राजनीतिक व्यवस्थाएं सभी भारतीय दृष्टिकोण से विकसित प्रतीत होते है।
4. दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए वृहत्तर भारत शब्द का प्रयोग किया जाना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं है।

संदर्भ

1. सिंह, डॉ0 फणीश; दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 10-15
2. द्विवेदी, डॉ0 कपिलदेव; भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 सं0 407-409
3. तिवारी, डॉ0 भोलानाथ; भाषा विज्ञान, किताब महल, पृ0 सं0 115-118
4. मजुमदार, आर0 सी0; द हिन्दू कॉलोनीज इन द फार ईस्ट, पृ0 सं0 25
5. मजुमदार, आर0 सी0; द हिन्दू कॉलोनीज इन द फार ईस्ट, पृ0 सं0 30
6. विद्यालंकार, सत्यकेतु; दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति, पृ0 सं0 40
7. विद्यालंकार, सत्यकेतु; दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति, पृ0 सं0 54
8. पुरी, बी0 एन0; सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ0 सं0 35
9. पुरी, बी0 एन0; सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ0 सं0 40

महात्मा गांधी का खादी-दर्शन एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता

डॉ० अनामिका ब्रजवंशी

पी-एच0 डी0, (इतिहास विभाग)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

वर्तमान में खादी की चमक सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व मानचित्र पर कायम है। आजादी की लड़ाई के समय खादी हमारी ढ़ाल भी बनी थी। यही कारण है कि आज भी खादी को समाजसेवा का प्रतीक माना जाता है। वास्तव में खादी सिर्फ कपड़े का टुकड़ा नहीं है बल्कि एक विचारधारा है। खादी और चरखा, यह दो ऐसे प्रतीक है। जिन्होंने आजादी की लड़ाई में पूरे देश को संगठित किया था। खादी विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष का प्रतीक बन गई थी। खादी के शस्त्र से ऐसा हमला हुआ कि अंग्रेजों के पैर उखड़ गए। अब खादी का स्वरूप बदला है। महात्मा गांधी के काल की खादी अब आधुनिक खादी के रूप में युवाओं को लुभा रही है। जो खादी आजादी के आंदोलन के वक्त साम्राज्यवाद की खिलाफत का प्रतीक बनी वह अब युवाओं के लिए पैशन और फैशन भी बनती जा रही है। भारत ही नहीं बल्कि दुनियाभर के लोगों पर खादी अपना प्रभाव डाल रही है। यही वजह है कि अब खादी के वस्त्रों को लेकर बाकायदा फैशन शो का आयोजन किया जा रहा है। इतना ही न हीं पिछले दिनों इस दिशा में आगे बढ़ने के संकल्प के साथ भारत सरकार ने नई कपड़ा नीति तैयार की है जो बुनकरों के जीवन में नया आनंद और समृद्धि लाएगी। खादी और ग्रामाद्योग दोनों अलग-अलग है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने चरखा चलाकर और सूत कातकर स्वाधीनता की जंग के साथ ही स्वावलंबन की जंग भी जीती थी। महात्मा गांधी की ओर से शुरू किया गया खादी का अभियान सिर्फ कपड़ों तक सीमित नहीं रहा बल्कि यह तो आजादी की लड़ाई का प्रतीक बन गया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद उन्होंने भारतीयों की दीनता देखी और तय किया कि सिर्फ एक खादी की धोती ही धारण करेंगे। आज भी खादी के रूप में महात्मा गांधी का संदेश हमारे बीच मौजूद है। बदलते परिवेश में भी खादी की धाक बढ़ती जा रही है। गांधीजी ने कहा था कि खादी एक विचार है। खादी एक संदेश है। खादी एक दर्शन है। इसी दर्शन के दम पर आज खादी के जरिए रोजगार के साधन बढ़ रहे है।

परिचर्चा

महात्मा गांधी जिन्हें हम भारतवासी प्यार से 'बापू' कहते है, का आधुनिक भारत के इतिहास में योगदान मात्र 'स्वराज्य' प्राप्ति के संदर्भ में देखना उचित प्रतीत नहीं होता। मार्टिन लूथर किंग द्वारा अपने हाल के गांधी के देश की यात्रा को 'तीर्थयात्रा' कहना या फिर मंडेला एवं राष्ट्रपति ओबामा का इस महान व्यक्ति के प्रति श्रद्धापूर्ण संवेदना गांधी का विचारदर्शन, कार्यशैली की सार्वभौमिकता की ओर संकेत करता है। संत, राजनेता, समाज-सुधारक, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक और 'नंगा फकीर' जैसे विविध स्वरूपों के कारण ही शायद महान वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आइन्सटीन को यह कहना पड़ा कि, आने वाली पीढ़ी यह विश्वास नहीं करेगा कि गांधी कोई हाड़-मांस का व्यक्ति था।

गांधी जी की स्वयंनिर्मित एवं स्वयं पोषित विचार, दर्शन वाकई आधुनिक भारत अथवा इंडिया इन मेकिंग के लिए एक 'प्रकाश' अथवा एक दिशा-सूचक यंत्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसमें आदेश से ज्यादा व्यावहारिकता है जो इसे और जीवंत तथा शाश्वत बना देता है।

गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में यह स्वीकार किया है कि उनके अभिभावकों के दृष्टिकोण और उनके रहने के स्थान पर मौजूद सामाजिक और धार्मिक वातावरण ने उनको व्यापक रूप से प्रभावित किया था। उल्लेखनीय है कि गांधी जी के प्रारंभिक विचार एवं सोच पर 'वैष्णव मत' और 'जैन धर्म' की परंपराओं का विशेष प्रभाव पड़ा। गांधी जी 'भगवत् गीता' से भी प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त ईसा के 'पहाड़ पर उपदेश' टॉलस्टाय, थोरो और रस्किन के लेखों ने भी उनके चिंतन को प्रभावित किया था। लेकिन सबसे बड़ी चीज उनकी खुद की समझ थी जो उन्होंने अफ्रीका से भारत तक की अपनी संघर्ष में सीखा परखा था। अपने इसी समझ के द्वारा उन्होंने भारतीय समाज की स्थिति में परिवर्तन का प्रयास किया।

प्रस्तुत अध्ययन में गांधी जी के विचार एवं दर्शन के आलोक में भारत के सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में उनके विचारों का विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात् निष्कर्ष की प्राप्ति की गयी है।

महात्मा गांधी खादी को मात्र वस्तु का टुकड़ा नहीं बल्कि भारत में विद्यमान गरीबी की समाप्ति तथा स्वाबलंवन व स्त्री सशक्तिकरण का प्रमुख साधन मानते थे। वे मानते थे कि खादी से प्राप्त आत्मनिर्भर से जो आत्म सम्मान का भाव आएगा, वह ब्रिटिश शासन के आधार को कमजोर करेगा। दूसरे शब्दों में खादी उनके लिए ब्रिटिश प्रतिकार का एक रचनात्मक शस्त्र था। वर्तमान में भी खादी की यह व्यापक भूमिका निभा सकता है। यह शहर की ओर पलायन को रोकने तथा गांवों को आत्मनिर्भर बनाने तथा युवाओं को स्वालंबी बनाने की संभावना से युक्त है।

खादी की चमक सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व मानचित्र पर कायम है। आजादी की लड़ाई के समय खादी हमारी ढ़ाल भी बनी थी। यही कारण है कि आज भी खादी को समाजसेवा का प्रतीक माना जाता है। वास्तव में खादी सिर्फ कपड़े का टुकड़ा नहीं है बल्कि एक विचारधारा है। खादी और चरखा, यह दो ऐसे प्रतीक है। जिन्होंने आजादी की लड़ाई में पूरे देश को संगठित किया था। खादी विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष का प्रतीक बन गई थी। खादी के शस्त्र से ऐसा हमला हुआ कि अंग्रेजों के पैर उखड़ गए। अब खादी का स्वरूप बदला है। महात्मा गांधी के काल की खादी अब आधुनिक खादी के रूप में युवाओं को लुभा रही है। जो खादी आजादी के आंदोलन के वक्त साम्राज्यवाद की खिलाफत का प्रतीक बनी वह अब युवाओं के लिए पैशन और फैशन भी बनती जा रही है। भारत ही नहीं बल्कि दुनियाभर के लोगों पर खादी अपना प्रभाव डाल रही है। यही वजह है कि अब खादी के वस्त्रों को लेकर बाकायदा फैशन शो का आयोजन किया जा रहा है। इतना ही न हीं पिछले दिनों इस दिशा में आगे बढ़ने के संकल्प के साथ भारत सरकार ने नई कपड़ा नीति तैयार की है जो बुनकरों के जीवन में नया आनंद और समृद्धि लाएगी। खादी और ग्रामाद्योग दोनों अलग-अलग है। यह अलग बात है कि दोनों एक-दूसरे के सहायक है। गांधी जी ने भी कहा था कि खादी एक विचार है। खादी एक संदेश है।

खादी एक दर्शन

वास्तव में 1910 ई0 के आसपास चरखा अथवा करघा नहीं दिखाई पड़ता था। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ''चरखे के जरिये भारत की गरीबी मिट सकती है। और यह तो सबके समझ सकने जैसी बात है कि जिस रास्ते भुखमरी मिटेगी उसी रास्ते स्वराज्य मिलेगा। सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आया, तब भी चरखे के दर्शन नहीं किए थे। आश्रम के खुलते ही उसमें करघा शुरू किया था। करघा शुरू करने में भी मुझे बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हम सब अनजान थे, अतएव करघे के मिल जाने भर से करघा चल नहीं सकता था। आश्रम में हम सब कलम चलाने वाले या व्यापार करना जानने वाले लोग इकट्ठा हुए थे, हममें कोई कारीगर नहीं था। इसलिए करघा प्राप्त करने के बाद बुनना सिखाने वाले की आवश्यकता पड़ी। कोठियावाड़ और पालनपुर से करघा मिला और एक सिखानके वाला आया। उसने अपना पुरा हुनर नहीं बताया। परंतु मगनलाल गांधी शुरू किए हुए काम को जल्दी छोड़ने वाले न थे। उनके हाथ में कारीगरी तो थी ही। इसलिए उन्होंने बुनने की कला पूरी तरह समझ ली और फिर आश्रम में एक के बाद एक नये-नये बुनने वाले तैयार हुए। हमें तो अब अपने कपड़े तैयार करके पहनने थे। इसलिए आश्रमवासियों ने मिल के कपड़े पहनना बन्द किया और यह निश्चय किया कि वे हथकरघे पर देशी किल के सूत का बुना हुआ कपड़ा पहनेंगे। ऐसा करने से हमें बहुत कुछ सीखने को मिला।'' महात्मा गांधी की यह आत्मकथा के माध्यम से चरखे के इतिहास को समझा जा सकता है।

1920 के दशक में भारत में हाथ से बने खादी वस्त्रों की शुरूआत हुई शीघ्र ही इसने विचारधारा का रूप ले लिया था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सूती को भारत की आत्मनिर्भरता का प्रतीक बनाया गया। इसके पीछे कोई एक नहीं हजारों कारण थें। उस समय खादी को हाथ से तैयार किया जाता था। तमाम भारतीय महिला-पुरुष खादी के साथ जुड़कर जीविकापार्जन करने लगे। यह एक ऐसे विकल्प के रूप में सामने आया, जो कपड़ा भारतीय मौसम के लिए सबसे दुरुस्त था। यह गर्मी के मौसम में लोगों के लिए आरामदायक साबित होता था। इसे पहनने के बाद पसीने और गर्मी दोनों से राहत मिलने लगी। हालांकि सूती वस्त्र बनाने का काम बहुत मेहनत का होता है। लेकिन तब से लेकर अब तक खादी बनाने की प्रक्रिया में बहुत कम ही बदलाव हुआ है। इसी तरह महात्मा गांधी और चरखे की अवधारणा को समझने के लिए उनकी आत्मकथा के तमाम बिंदुओं को समझने की जरूरत है। उनकी आत्मकथा पढ़ने के बाद यह स्पष्ट होता है कि जब वह अफ्रिका से लौटे उस समय देश के बुनकरों का जीवन-स्तर सुधारने की जरूरत महसूस की। इसी के तहत सूत बुनाई का अभियान चला। देशी मिल के सूत का हाथ से बुना कपड़ा नहीं मिल पाता था। उस समय बुनकर सारा अच्छा कपड़ा विलायती सूत का ही बुनते थे, क्योंकि हमारी मिले सूत कातती नहीं थी। दूसरा बड़ा संकट यह था कि न कहीं चरखा मिलता था और न कहीं चरखे को चलाने वाला मिलता था।

महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा कि "सन् 1917 में मेरे गुजराती मित्र मुझे भड़ोच शिक्षा परिषद् में घसीट ले गये थे। वहां महासाहसी विधवा बहन गंगाबाई मुझे मिली। वे पढ़ी-लिखी अधिक नहीं थी, पर उनमें हिम्मत और समझदारी साधारणत्या जितनी शिक्षित बहनों में होती है उससे अधिक थी। इससे प्रेरित होकर खादी अभियान के जरिए महात्मा गांधी ने महिलाओं को भी रोजगार से जोड़ने की योजना बनाई थी।

दरअसल महात्मा गांधी का समूचा जीवन सादगी का प्रतीक भी है। उन्होंने कभी भी महंगे वस्त्र पसंद नहीं किए। खादी के वस्त्र पहन कर पूरा जीवन गुजार दिया। बिहार के चंपारण जिले में सत्याग्रह शुरू होने से पहले ही महात्मा गांधी वहां पहुंच गए। बताया जाता है कि प्रार्थना सभा में जुटने वाली महिलाओं की बड़ी हीन दशा थी। उनके पास पहनने तक के पर्याप्त कपड़े नहीं थे। इस बात से गांधी जी को बहुत आघात पहुंचा। गांधी जी ने महिलाओं से बात की तो पता चला कि उनके पास पहनने के लिए सिर्फ एक सेट कपड़ा ही है। कई लोगों के पास तो फटी हुई साड़ियां थे, जिससे तन ढ़कने में काफी दिक्कतें होती थी। इस बात ने भी महात्मा गांधी को बहुत परेशान किया। इसके बाद उन्होंने तय किया कि महिलाओं को इस बात के लिए जागरूक करेंगे कि वे अपने हाथ से बनाई साड़ी पहन सकें। इसके बाद से ही गांधी जी सूत कातने और खादी पहनने की बात को प्राथमिकता देने लगे। दिसंबर 1921 में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 'स्वराज' नाम से एक संगठन तैयार किया। इसमें अनुशासन की निगरानी के लिए पद्सोपान समिति बनाई गई। कुछ समय बाद महात्मा गांधी जी ने अपने अहिंसात्मक मंच को स्वदेशी नीति में शामिल करने के लिए विस्तार किया, जिसमें विदेशी वस्तुओं विशेषकर अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार करना था। उनका कहना था कि सभी भारतीय अंग्रेजों द्वारा बनाए वस्त्रों की अपेक्षा हमारे अपने लोगों द्वारा हाथ से बनाई गई खादी पहने। गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन को सहयोग देने के लिए पुरुषों और महिलाओं को प्रतिदिन खादी के लिए सूत कातने में समय बिताने के लिए कहा। यह अनुशासन और समर्पण लाने की ऐसी नीति थी जिससे अनिच्छा और महत्वाकांक्षा को दूर किया जा सके। इसके बाद तो सूत कातना इस आंदोलन से जुड़े लोगों की दिनचर्या में शामिल हो गया। महात्मा गांधी ने जो एक बार इसकी शुरूआत की तो फिर पूरा कारवां ही इस दिशा में चल पड़ा। इसके बाद तो उनके साथ चलने वाले ज्यादातर लोग खादी ही धारण करने लगे।

निष्कर्ष

जिस खादी को महात्मा गांधी ने स्वदेशी का प्रतीक मानते हुए स्वराज का आधार स्तंभ बनाया था उस खादी ने बीते 100 बरसों में कई रंग देखे और दिनोंदिन उसकी लोकप्रियता बढ़ती गई। आज खादी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर डिजाइनर स्वरूप में अपनी छटा बिखेर रही है। एक जमाना वह भी था जब खादी वस्त्रों को गांव का पहनावा माना गया, लेकिन इसका प्रभाव धीरे-धीर बढ़ता ही गया। अब स्थिति यह है कि महानगरों में खादी पर 'फैशन शो' का आयोजन किया जा रहा है। भारत में 10 लाख से ज्यादा लोग इस उद्योग में खादी की हिस्सेदारी 2 प्रतिशत है। आने वाले समय में यह हिस्सेदारी बढ़ सकती है। खादी को प्रोत्साहन देकर ग्रामस्तर पर, छोटे पूंजी वाले उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है। जिससे हर हाथ तक काम पहुंचाने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। अत: भारत जैसे श्रम गहनता वाले देश में खादी के प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है।

संदर्भ ग्रंथ

1. जोशी, डॉ0 एम0 सी0; गाँधी, नेहरू, टैगोर व अम्बेदकर; अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद 1996, पृ0 सं0 37
2. धर्माधिकारी, दादा; गाँधी की दृष्टि, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 सं0 12
3. वही, पृ0 सं0 18
4. बंग, ठाकुरदास; गाँधी विचार, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 सं0 35
5. गाँधी, मोहनदास करमचंद; सर्वोदय (अनुदित), अरावली प्रकाशन जयपुर, पृ0 सं0 60
6. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र; चंपारण में गाँधी (अनुदित), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ0 सं0 55
7. सुजाता; बापू और स्त्री; सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, पृ0 सं0 24
8. वही, पृ0 सं0 25
9. अरविंद मोहन; गांधी मार्ग
10. कुमार प्रशांत; जनसत्ता, पत्रिका, 22 मई 2016 ब्लौग
11. किरण ब्लौग; 8.02.2013
12. संजय कुमार उपाध्याय; अप्रैल 12/2017

आधुनिक भारत की जनोन्मुखी वैज्ञानिक नीति एवं गांधी विचार का संदर्भ (1900–1950 ई0)

डॉ० वेदवती

पी-एच0 डी0, इतिहास विभाग
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

20 वीं शताब्दी में भारत में साम्राज्यवाद व राष्ट्रीय आंदोलन दोनों का स्वरूप सृजनात्मक होना आरंभ हुआ था। इस कालखंड में विकास व जनहित दो बिंदु-विमर्श के प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरे। विकास व लोककल्याण में विज्ञान की भूमिका का निर्धारण करना भी इस विमर्श का महत्वपूर्ण भाग था। इस संपूर्ण विमर्श के द्वारा ही स्वतंत्र भारत की 'विज्ञान नीति' का स्वरूप निर्मित हुआ है। भारत की विज्ञान नीति की आत्मा महात्मा गांधी के विज्ञान एवं अनुप्रयोग संबंधी विचारों से निर्मित हुयी है। वे विज्ञान को उत्तरायित्वपूर्ण व विश्वसनीय बनाना चाहते थे। वे विज्ञान को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी बनाने पर बल देते थे।

प्रस्तुत आलेख में गांधी जी के विज्ञान विकास संबंधी विचार एवं वैज्ञानिकों के साथ उनका विरोधाभाष व सारोकार तथा परस्पर समन्वय की प्रक्रिया को क्रमशः उद्घाटित किया गया है।

KEYWORDS: साम्राज्यवाद, लोककल्याण, विज्ञान-निति, उत्तरदायित्वपूर्ण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था।

प्रस्तावना

1905 ई0 के पश्चात् भारत में विकास एक प्रमुख मुद्दा बना। विकास में विज्ञान की भूमिका का निर्धारण करने पर विचार विमर्श आरंभ हुआ था। इस विमर्श का रोचक पक्ष यह था कि विज्ञान व विकास का लाभ जनता तक कैसे पहुँचे। इस पर प्रमुखता से विचार किया गया। इस संपूर्ण विमर्श को गाँधी जी के विचारों ने दिशा देने का कार्य किया। हॉलाकि उनके विचारो से कई मतभेद भी उभरे। कहीं-कहीं अस्पष्टताएँ भी सामने आयी। परंतु निष्कर्ष स्वरूप गाँधी जी का विचार मान्य हुआ कि विकास अथवा विज्ञान का एक मात्र प्रतीक मशीन व उद्योग नहीं है। विकास व विज्ञान के अनुप्रयोग भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वावलंबन व आत्मनिर्भरता के पोषक होने चाहिए। जनसमूह को परालंबी बनाने वाले नहीं। जनता केवल लाभुक ना हो बल्कि लाभ के लिए किए जा रहे सभी कार्यो में उसकी साझेदारी भी हो। दूसरे शब्दों में उनकी विचारधारा ने विज्ञान के सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्धारण किया। जिसके अभाव में विज्ञान कभी भारत के शोषण व आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाने व सांस्कृतिक विजय की घोषणा का साधन बन गया था। गाँधी जी के विचारों ने विज्ञान के स्वरूप को व्यापक व सृजनात्मक बनाया। स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक विकास की राष्ट्रीय नीति में इसका समावेश देखने को मिलता है। अर्थात् भारत में विज्ञान के विकास की मूल आत्मा गाँधी जी के विचारों से निर्मित हैं जो विज्ञान के वैसे प्रयोगो को बाधित करता है, जहां विज्ञान कुछ लोगों के विकास व संपन्न होने का साधन बनकर रह जाए। वहीं विज्ञान के उस रूप को प्रेरित करता है जो श्रम की कुशलता व क्षमता में वृद्धि करे।

20 वीं शताब्दी में विऔपनिवेशिकरण की प्रक्रिया शुरू हुयी। इस समय ब्रिटिश सरकार ने 'सृजनात्मक साम्राज्यवाद' होने का परिचय देना आरंभ किया। इस काल में राष्ट्रीय नेतागण, के साथ-साथ सरकार भी भारत के विकास व आधुनीकीकरण का सहारा लिया तथा इसमें विज्ञान व तकनीक की भूमिका पर चर्चा करने लगी थी। 1945 ई0 तक इस विषय पर कई कमिटियाँ बनी, जिसने अपनी रिपोर्ट भी दी। सभी कमिटियों का उद्देश्य प्रथम द्रष्टया एक ही लगता है, परंतु वास्तविकता ऐसी नहीं थी। ब्रिटिश सरकार का अपना अलग एजेंडा व प्राथमिकताएँ थी, जबकि राष्ट्रीय नेतृत्व की माँग व सलाह अलग थी। ब्रिटिश सरकार विज्ञान व तकनीक का प्रयोग भौतिक विकास के लिए करना चाहती थी, जिससे वैश्विक संदर्भ में उसकी शक्ति का विकास हो, जबकि भारतीय राष्ट्र की पुनर्रचना में विज्ञान का प्रयोग करना चाह रहे थे।

सरकार के रूख में परिवर्तन के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन के केन्द्र में भी परिवर्तन आया। आंदोलन की लगभग सभी धाराओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनके कार्य का लाभुक समूह 'जन' है अर्थात् पूँजीवाद, समाजवाद, स्वतंत्रता इत्यादि सभी का लक्ष्य जन समूह है। अतः अब जनकल्याण में विज्ञान की भूमिका को निर्धारित करने की प्रक्रिया शुरू हुआ। राष्ट्रवादी शक्ति को संबल देने के लिए यह आवश्यक था कि आम जन में विज्ञान की लोकप्रियता बढ़े ऐसा तभी संभव था जब विज्ञान के अनुप्रयोगों का सामान्यीकरण सरल व सहज रूप में व्यक्ति को समझाया जाए ताकि वे विज्ञान का व्यवहारिक अनुप्रयोग कर सके। विज्ञान और समाज के बीच के सम्बन्धों को सबसे स्पष्ट तौर पर समझने वाले भारतीय नेताओं में जवाहर लाल नेहरू प्रमुख थे। उन्होंने टिप्पणी की थी कि ''विज्ञान मात्र परखनलियों पर नजर गड़ाने, इस या उस वस्तु को खोजने और बड़ी-छोटी चीजों के उत्पादन तक ही सीमित नहीं है। विज्ञान अंततः मस्तिष्क और सम्पूर्ण जीवन को वैज्ञानिक तौर तरीकों के अनुसार प्रशिक्षित करने का एक तरीका है।''

भारत में जब आम आदमी के जीवन में विज्ञान की भूमिका एवं राष्ट्रनिर्माण में विज्ञान की भूमिका पर बहस आरंभ हुआ, तो यह लंबे समय तक चला। भारत में विज्ञान का स्वरूप कैसा हो, सरकार विज्ञान की विकास में भूमिका को निर्धारित करने हेतु क्या करें इत्यादि। इस संपूर्ण विमर्श में राष्ट्रीय नेतृत्व व वैज्ञानिक समुदाय शामिल था। इस विमर्श की दिशा को गाँधी जी के विचारों ने विशेष रूप से प्रभावित किया।

परिचर्चा

भारत के विकास के लिए विज्ञान की भूमिका पर चर्चा का आरंभ भारत के लिए उपयुक्त उद्योग की चर्चा के साथ आरंभ हुआ।

राजनीतिक आंदोलन के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम आाए-1935 ई0 में प्रांतीय स्वायत्ता का काल आरंभ हुआ। देश की संपन्नता के लिए बहस शुरू हुआ। रिकंस्ट्रक्टिंग इंडिया एम0 विश्वेश्वरैया के द्वारा लिखी गयी। यह प्रथम प्रयास था जिसने भारतीयों को विकास के प्रति जागरूक बनाया गया। 1934 ई0 में उन्होंने प्लान्ड इकोनोमी फॉर इंडिया लिखी। इसमें उन्होंने लिखा कि लोगों को बड़ा कार्य करने के लिए सुविधाएं चाहिए। प्रशिक्षित लोगों का अशिक्षित जनता इंतजार कर रही है कि वे उन्हें उठाये, तराशे व उन्हें सेवा व उत्पादन प्रदान करने योग्य बनाए। [1] परंतु पी0 सी0 राय की तरह स्वदेशी व चरखा के स्थान पर उन्होंने भारतीय पूंजी से औद्योगीकरण पर जोर दिया। मेघनाथ साह ने मिश्रित अर्थव्यवस्था पर बल दिया जहाँ राज्य व निजी पूंजीपति मिलकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे। इसके लिए विश्वेश्वरैया ने अप्लाईड रिसर्च की बात कही। 1934 ई0 में जी0 डी0 बिडला जो गाँधी जी के अनुयायी भी थे, उन्होंने भी योजना निर्माण की प्रशंसा की।

1901 ई0 में पी0 सी0 घोष ने भारतीय पारंपारिक हथकरघे का नवीन व परिष्कृत रूप तैयार किया। जिसका प्रदर्शन 1901 ई0 के कलकत्ता में आयोजित प्रथम इंडस्ट्रियल इग्जिविजशन में किया गया। यह प्रदर्शनी इंडियन नेशनल कांग्रेस की कलकत्ते में वार्षिक सम्मेलन के साथ-साथ चली। गाँधी जी भी इसमें शामिल हुए। उस समय यह विमर्श का बिंदू बना कि भारत को उद्योग के विकास के लिए पश्चिम का अनुकरण करना चाहिए अथवा अपने पुराने कला कौशल को पुनर्जीवित कर पारंपरिक हुनरो से लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए। [2] 1905 ई0 के स्वदेशी आंदोलन से इस बहस को नयी उर्जा मिली। लेकिन स्वदेशी आंदोलन केवल पुरानी कला-कौशल के पुनरूद्धार की हिमायती मात्रा नहीं थी। इनका उद्देश्यय आर्थिक स्वाबलंवन व ब्रिटेन की प्रतिस्पर्द्धा में खड़ा होना भी था। 1909 ई0 में प्रकाशित गाँधी जी के हिंद स्वराज से विरोधाभाष सामने आया। इसमें उन्होंने मशीनीकरण का विरोध किया। उन्होंने बताया कि इससे श्रमिक गुलाम बनेगा, पारंपरिक कौशल नष्ट होगे। भारत एक अभागा देश बन जाएगा। [3] अतः

भारत को गाँवों की ओर लौटना चाहिए। इसके बाद चरखा व खादी भारत में स्वराज का प्रतीक बन गया। 1918-1920 ई0 के बाद गाँधी जी के उद्योगवाद के विरोध ने भारत के विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास पर अपना प्रभाव डाला।

उद्योग के संदर्भ में गांधी जी की मुख्यचिंता 'उत्पाद' के वितरण को लेकर थी। वे लोगों के लिए उत्पादन से अधिक लोगों के द्वारा उत्पादन के पक्षधर थे। वे उत्पादन प्रक्रिया पर 'धन' अथवा 'शक्ति' का प्रभुत्व नहीं चाहते थे। अपने विचार को उन्होंने इस प्रकार व्याख्यायित किया था-''जिस प्रकार वर्षा सभी लोगों तक जल का वितरण करती है, उस प्रकार कोई विभाग अथवा कोई कानून नहीं कर सकती। ठीक वैसे ही छोटे उद्योग संपत्ति व कार्य दोनों के वितरण का सबसे आसान तरीका है।''[4]

बड़े उद्योग अथवा छोटे उद्योग में से कौन भारतीय परिवेश के लिए उपयुक्त है। अब चर्चा का विषय यह हो गया। गाँधी जी ऐसा मानते कि बड़े उद्योग से लाभ का वितरण प्रभावित होगा। इससे आम आदमी का हित प्रभावित होगा। पी0 सी0 राय ने इकोनॉमिक्स ऑफ चरखा के माध्यम से समझाना चाहा कि वे कृषि में ट्रैक्टर का प्रयोग करना चाह रहे थे, जो दो व्यक्ति का काम एक दिन में कर सकता था। इससे श्रम की क्षमता व कुशलता बढ़ेगी। गाँधी जी का असहयोग ब्रिटिश स्थापना से था जो लालची था व कमजोर का शोषण करता है। वे ऐसा मिशनीकरण चाहते थे, जो उपयोग आधारित हो लालच आधारित नहीं। इन्होंने चरखा, मलेरियारोधी, स्वच्छता कैंपेन चलाया था। 1925 ई0 के बाद त्रिवेंद्रम में गाँधी जी ने विज्ञान पर प्रत्यक्ष रूप से बोला। जब वे इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस बंगलौर को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने विज्ञान व इससे संबंधित शोध को नैतिकता व मानवीयता की सीमा में बाँधने की बात कही तथा विज्ञान के वास्ततिक ज्ञान के प्रयोग के लिए छात्रों को प्रेरित किया था। उन्होंने जे0 सी0 बोस, पी0 सी0 राय का उदाहरण दिया था कि उन्होंने विज्ञान को विज्ञान के रूप में देखा है, ना कि पैसा व नाम कमाने के उद्देश्य से इसका प्रयोग किया है। उन्होंने बताया कि जे0 सी0 बोस ऐसा मानते है कि विज्ञान के शोध उन्हें इस सृष्टि के निर्माणकर्त्ता के निकट लाती है। उन्होंने छात्रों के लिए कुछ प्रश्न छोड़े थे कि-''विज्ञान का ज्ञान ग्रामीणों को कैसे मिले व गाँव के लिए इसका किस प्रकार व्यवहारिक प्रयोग हो, इस विषय पर सोचना होगा।'' उन्होंने कहा आप क्या करेंगे-गाँव वालो तक अपने अनुदान का लाभ पहुँचायेंगे या 'प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं' ऐसी व्यवस्था के लिए उन्हें प्रेरित करेंगे?[5]

पी0 सी0 राय ने गाँधी जी की प्रशंसा की थी। उन्होंने भारत में प्रथम केमिकल इंडस्ट्री स्थापित की थी। नवीन व आधुनिक मशीनों के प्रति पूर्णयता जागरूक होने के बावजूद उन्होंने चरखा के महत्व को भी स्वीकार किया था। उनका मानना था कि अगर कोई आत्मनिर्भर गाँव एक बार समाप्त हो जाए तो दुबारा निर्मित नहीं हो पाता है। जैसे गंगोत्री से निकलने के बाद गंगा को वापस नहीं ले जाया जा सकता। [6] गाँधी जी के सामाजिक नियंत्रण हेतु नैतिक मूल्यों को भी वे प्रासंगिक मानते थे। जो भारतीय समाज के पश्चिम समाज में परिवर्तन का विरोधी था। अपने जीवन के अंतिम चरण में उन्होंने गाँधी जी के दर्शन पर काम किया। गाँधी जी इन्हें वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक बुलाते थे। जे0 सी0 बोस भी गाँधी जी के समर्थक थे। हॉलाकि मेघनाथ शाहा गाँधी जी के विचारों को यूटोपीया मानते थे। साइंस एंड कल्चर पत्रिका के आलेख में उन्होंने कहा कि भारतीय जनता की गरीबी मॉर्डन तकनीक दूर कर सकती है, चरखा से नहीं।[7]

गाँधी जी को उनके विचारों के कारण कोई उन्हें पागल तो कोई संत कहता था। ब्रिटिश सरकार उन्हें राक्षस समझती थी। उनकी तुलना मेकिया वेली से करती थी। गाँधी जी के विचारों को समझना कठिन था। कई स्थानों पर उन्होंने ऐसे विचार दिए जो ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं माने जा सकते परंतु जनता को आंदोलन से जोड़ने के लिए यह आवश्यक था। गाँधी ने तकनीक या विज्ञान का विरोध नहीं किया। तकनीकवाद व विज्ञानवाद का विरोध किया जो उस समय की आवश्यकता थी। उन्होंने प्रत्येक कार्य करते समय सामाजिक उत्तरदायित्व व विश्वसनीयता पर बल देने पर जोड़ दिया था। यही उनके विचारो की महत्वपूर्ण देन है। नीति के स्तर पर भारत में इसे अपनाया भी गया। जब 1946 ई0 में जब साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रीयल रिसर्च बोर्ड की प्रथम बैठक हुयी तो राजगोपालाचारी ने गाँधी जी का उल्लेख किया था एवं कहा कि बोर्ड को गाँधी जी के विचारों के प्रति सचेत रहते हुए हमेशा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए कार्य करना होगा।[8]

गाँधी जी भारत में कुछ भी पश्चिमी तरीके का नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि मशीनीकरण विकास का प्रमुख प्रतीक नहीं हो सकता है, क्योंकि इसी ने भारत को अधीनस्थ बनाया था। उन्होंने लिखा कि मशीनीकरण में उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं दिखता यदि वह विकास के स्थान पर शोषण का प्रभुसत्ता का आधार बने। उनकी चिंता का मुख्य विषय यह था कि मनुष्य के जीवन को मशीन पर निर्भर बना दिया जाए लेकिन मशीन के उपयोग लायक उनकी क्षमता का विकास ना हो तो वह मशीन उनके लिए

अहितकर है। उन्हें ऐसा लगता था कि मशीनीकरण लोगों को बेरोजगार बनायेगी। बाद में 1946 ई0 में उन्होंने माना कि कुछ उद्योगो का विकास आवश्यक हैं। वे जनता के लिए उत्पादन के स्थान पर जनता द्वारा उत्पादन चाहते थे। वे ऐसे मशीनों को बढ़ावा देना चाहते थे, जिसे जनता आराम से चला सके। जो उन्हें सहज उपलब्ध हो, जिसके लिए उन्हें विशेष शक्ति व पैसे की आवश्यकता ना हो।[9]

गाँधी जी के भय व चरखा की उपयोगिता पी0 सी0 राय की रचना द इकानोमिक्स ऑफ चरखा से भी सिद्ध की गयी है। उन्होंने इसमें यह बताया है कि चरखा ग्रामीण महिलाओं की आमदनी का सहज स्रोत था। अकाल सहायता कैंपेन में काम करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि कृषि उपज कम होने की परिस्थिति में यदि एक पूरक आजीतिका का साधन हो तो अकाल की भयावहता कुछ कम होती। जब उन्हें चरखा व सूत दिया जाता था, तो उन्हें यह ईश्वर की उपहार की तरह लगता था। ''पी0 सी0 राय ने बंगाल में आए बाढ़ के समय पशु की क्षति होने के कारण कृषक की जुताई में सहायता हेतु एक ट्रैक्टर बनाया जिसे 2 व्यक्ति चला सकते थे, जो 50 बैल की तरह जुताई कर सकता था।'' यह मशीन रोजगार छीनने वाला नहीं, रोजगार में सहयोगी था।[10]

जब रविन्द्रनाथ टैगोर ने गाँधी जी के चरखा व बहिष्कार का विरोध किया। तब गाँधी जी ने स्पष्ट किया था कि भारतीय राष्ट्रवाद ना तो आक्रामक है ना विनाशक, इसका संघर्ष किसी देश या सभ्यता से नहीं बल्कि उस भौतिकवादी व्यवस्था से हैं जो लालच व कमजोरों के शोषण पर आधारित है। रविन्द्र नाथ टैगोर की आपत्तियों के जबाब में माहात्मा गांधी ने लिखा कि ''भारत में लोग इस लिए भूख से मर रहे है क्योंकि उनके पास भोजन खरीदने के लिए पैसे नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनके पास रोजगार नहीं है। अत: उनका संघर्ष उपयोगितावादी व्यवस्था है, जो लालख पर आधारित है और कमजोरों का शोषण करती है। अत: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को समावेशी बनाने के लिए चरखा स्वदेशी आवश्यक है।[11] गाँधी जी विकास में विज्ञान की भूमिका को उत्तरदायित्वपूर्ण व समाज के लिए विश्वसनीय बनाना चाहते थे। विज्ञान के अनुप्रयोगो में सामाजिक उत्तरदायित्व व विश्वसनीयता का समावेश गाँधी जी के विचारधारा की अनुपम देन है।

गांधी जी 'विज्ञान' से प्राप्त ज्ञान को प्रभुत्व स्थापना का साधन नहीं बनाना चाहते थे बल्कि परिवर्तन व वंचित समाज के उत्थान का साधन बनाना चाहते थे।

निष्कर्ष

20 वीं शताब्दी में विकास एवं जनकल्याण में विज्ञान की भूमिका को निर्धारित करने की प्रक्रिया शुरू हुयी। विज्ञान की लोकप्रियता के वृद्धि के साथ-साथ राष्ट्रनिर्माण व आम आदमी के जीवन में विज्ञान की भूमिका के निर्धारण को लेकर लंबा बहस चला। इस बहस को निर्णायक मोड़ गांधी जी ने दिया। उन्होंने विज्ञान को स्वावलंबन को आत्मनिर्भरता का साधन बनाने पर बल दिया। गांधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन को जनोन्मुखी बनाया ही था, साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन से जनता को जोड़ने का का काम किया था। अत: वे राष्ट्रनिर्माण की किसी भी प्रक्रिया में जनता की उपेक्षा नहीं चाहते थे। वे तकनीक से अधिक तकनीक के दुष्प्रभावों को लेकर चिंतित थे। उन्हें भय था कि कहीं तकनीक भारतीय समाज में नवीन प्रभुसत्ता की स्थापना कर सकती है जो वंचित वर्ग के शोषण का साधन बन सकता है।[12] अत: वे 'विज्ञान' को मानवीय व नैतिक बनाना चाहते थे। इसी आधार पर भारत की वर्तमान वैज्ञानिक विकास की रूपरेखा तैयार की गयी है। जहां विज्ञान को नैतिक रूप से सामाजिक उत्तरदायित्व से पूर्ण व विश्वसनीय रूप दिया गया।

संदर्भ

1. एम0 विश्वेसरैया, प्लांड इकोनॉमी ऑफ इंडिया, बंग्लोर, 1934 ई0, पृ0 सं0 6-7
2. हरिजन, 2 नवम्बर 1934, पृ0 सं0 301-02
3. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, अहमदाबाद 1939, पृष्ठ 55
4. ए0 जे0 परेल, गांधी : हिंद स्वराज एंड अदर राइटिंग्स (कैम्ब्रिज 1997), पृष्ठ 109-110
5. राघवन अफ्यर, द मोरल एंड पोलिटिकल राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, वाल्युम-1, आक्सफोर्ड 1986, पृष्ठ 310-315
6. यंग इंडिया, नवम्बर 1924 ई0, पृ0 सं0 377-78

7. शांतिमय चटर्जी, मेघनाथ रचना संकलन, कलकत्ता 1986 ई0, पृ0 सं0 113-16
8. प्रोसिडिंग्स ऑफ द बोर्ड ऑफ साइंटिफिक एंड इंड्स्ट्रियल रिसर्च, दिल्ली, 16 सितम्बर 1946 ई0
9. आशीष नंदी, ट्रेडिशन, ट्रायनी एंड युरोपिया, दिल्ली 1987, पृ0सं0 136-37
10. पी0 सी0 राय, द कॉल ऑफ चरखा, यंग इंडिया, 27 दिसम्ब्र 1923 ई0
11. यंग इंडिया, 20 नवम्बर 1924 ई0
12. शिव विश्वनाथन, रिइंवेटिंग गांधी, इंटरनेशनल यूनिट ऑन मिलिट्राइलजेशन एंड डिनिलिट्रीराइजेशन इन एशिया, वाल्यूम-4, पृ0 सं0 34-63

इंजीनियर्स ऑक्यूपेशनल स्ट्रेसः ए कम्पेरिजन

अदनान अहमद

जूनियर रिसर्च फेलो, आईआईटी खरगपुर, खरगपुर, वेस्ट बंगाल

एक स्वस्थ कार्य स्थल के साथ-साथ एक स्वस्थ और समृद्ध कर्मचारी भी हैं। कर्मचारी कल्याण, कर्मचारियों के समग्र कल्याण का वह हिस्सा है जिसे वे मुख्य रूप से कार्य स्थल के हस्तक्षेप से निर्धारित करते हैं। अपने काम में हर कोई तनाव और चिंता के संपर्क में है क्योंकि वे उन्हें सौंपे गए कर्तव्यों से गुजरते हैं। हाल ही में नौकरी के क्षेत्र में इंजीनियरों के अति प्रवाहने नौकरी को एक विधर्मी कार्य पकड़ा है। इसके अलावा एक बहु राष्ट्रीय संगठन में कार्यरत होने के लिए दिन के विषम समय के साथ-साथ सेवा करने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज सर्वे के एक अनुमान से पता चलता है कि तनाव से संबंधित विकारों सहित मानसिक स्वास्थ्य रोग वर्ष 2020 तक विकलांग होने का दूसरा प्रमुख कारण होगा।

एसोसिएटेड चौंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री ऑफ इंडिया (A SCHCHA M), 2007 में किए गए एक अध्ययन में, यह भी बताया गया है कि आईटी क्षेत्र में काम करने वाले ख्र दोनों सार्वजनिक और निजी-पर बल दिया जाता है क्योंकि उन्हें विभिन्न योजनाओं के लिए ग्राहकों के एक बड़े पूल को आकर्षित करना है इसके अलावा दैनिक कार्यों को समय पर पूरा करना सुनिश्चित करना है। हालांकि यह आंकड़े सरकारी सेवा में लगे कर्मचारियों के प्रति थोड़ा सुकून देते हैं।

एसोसिएटेड चौंबर्स ऑफ कॉमर्स एंडइंडस्ट्री ऑफ इंडिया (A SSOCHA M) द्वारा किए गए एक हालिया अध्ययन के अनुसार, यह पाया गया है कि हाल के दिनों में आईटी सेक्टर शीर्ष 10 उच्च तनाव कार्य स्थल में से एक है।

व्यावसायिक तनाव वह तनाव है जो किसी की नौकरी से संबंधित है। यह अप्रत्याशित जिम्मेदारियों और दबाव से उपजा है जो किसी व्यक्ति के ज्ञान, कौशल या अपेक्षाओं के साथ संरेखित नहीं करता है, जिससे किसी का सामना करने की क्षमता कम हो जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन परिभाषित करता है मानसिक स्वास्थ्य को 'एक भलाई की स्थिति के रूप में, जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं का एहसास करता है, जीवन के सामान्य तनावों का सामना कर सकता है, उत्पादक और फलदायी रूप से काम कर सकता है, और अपने या अपने योगदान करने में सक्षम है। ' उसका समुदाय व्यक्तियों के साथ-साथ संगठन भी तनाव की निरंतर स्थिति में नहीं रह सकते हैं। जिस तरह से वे तनाव के अनुकूल होते हैं, उसे मुकाबला करना कहा जाता है। नकल को मास्टर परिस्थितियों के लिए संदर्भित किया जाता है जो कर या अनुकूली संसाधनों से अधिक हो।

राशन

हाल के वर्षों में, एक वैश्विक अर्थव्यवस्था और विकेन्द्रीकृत बाजारों की ओर बढ़ने से सूचना प्रौद्योगिकी के काम करने के तरीके में कई बड़े बदलाव हुए हैं, यह विशेष रूप से संगठन और आई टी क्षेत्र में कार्य के निष्पादन के लिए सही है।

अधिकांश अध्ययनों से पता चला है कि आईटी क्षेत्र में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ गई थीं, और यह कि वे हर दिन लक्ष्य के कारण तनाव से संबंधित थे। जिसके परिणामस्वरूप उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है जिसके परिणामस्वरूप चिंता और अवसाद शुरू हो जाता है, आगे चलकर कुत्सित व्यवहारों से गुजरना पड़ता है, और नौकरी में जलन होती है। भारतीय परिदृश्य के संदर्भ में, डिजिटल प्रगति के संबंध में कई गतिशील परिवर्तन हुए हैं जो हमारे देश ने हाल के दिनों में किए हैं। वित्तीय समावेशन,

विमुद्रीकरण कुछ पहलें हैं, जिन्होंने निजी और सरकारी दोनों ही तकनीकी क्षेत्र के कर्मचारियों की कार्यस्थल की माँगों को बढ़ाया है। इस संदर्भ में, यह अध्ययन के को देखने का इरादार खता है व्यावसायिक तनाव देश के सार्वजनिक क्षेत्र और निजी आई टी फर्मों में तकनीकी क्षेत्र के कर्मचारियों।

कार्य प्रणाली

वर्तमान अध्ययन उन के व्यावसायिक तनाव के आधार पर आई टी कर्मियों (सरकार बनाम निजी) की तुलना करने के लिए किया जाएगा।

अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- यह निर्धारित करने के लिए कि उनके कब्जे तनाव पर आई टी कर्मियों (सरकारी बनाम निजी) के बीच कोई अंतर है या नहीं।

नमूना

- प्रतिभागी : N = 70, सार्वजनिक क्षेत्र की फर्म के 35 कर्मचारी और निजी क्षेत्र की IT फर्मके 35 कर्मचारी।
  डेटा को पर्पसिव सैंपलिंग मेथड का उपयोग करके तैयार किया गया था।

उपकरण:

1. **व्यावसायिक तनाव सूचकांक** (श्रीवास्तव और सिंह, 1981): पैमाने में 46 आइटम शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक को पांच बिंदुओं पर रेट किया जाना है। 46 वस्तुओं में से 2 true-सच-की' हैं और अंतिम 18ed झूठी की' हैं।

प्रक्रिया

अध्ययन के प्रतिभागियों को देश के उत्तरी अक्षांश में निजी क्षेत्र की आईटी फर्मों और सरकारी क्षेत्र की फर्मों से लिया गया था। अध्ययन के संचालन के लिए संबंधित प्राधिकरण से पूर्व सहमति ली गई थी। प्रतिभागियों को अध्ययन के बारे में अवगत कराया गया था और उनकी सूचित सहमति के बाद प्रश्नावली का उपयोग करके डेटा एकत्र किया गया था।

परिणाम और चर्चा: प्राप्त कच्चे स्कोर का मतलब के लिए विश्लेषण किया गया था, जहां उनके व्यावसायिक तनाव के संबंध में विषय के साथ खड़ा था की एक तस्वीर पाने के लिए परीक्षण।

Subscales (Dimension)	Obtained Mean
1. Role Overload	Private = 21.01
	Government = 20.30
2. Role Ambiguity	Private = 2.71
	Government = 7.66
3. Role Conflict	Private = 14.26
	Government = 12.35
4. Unreasonable Group & Pol. Pressure	Private = 12.61
	Government = 10.97
5. Underparticipation	Private = 6.00
	Government = 11.00
6. Powerlessness	Private = 10.34
	Government = 11.27
7. Poor Peer relations/ Intrinsic Impoverishment	Private = 9.74
	Government = 10.47
8. Low Status	Private = 7.37
	Government = 6.72
9. Strenous warning condition	Private = 11.28
	Government = 12.37
10. Profitability	Private = 8.03
	Government = 9.16

समग्र परिणामों पर एक करीबी नजर से संकेत मिलता है कि निजी क्षेत्र के आईटी फर्म के कर्मचारियों ने सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों की तुलना में व्यावसायिक तनाव पर अधिक अंक बनाए। यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि कई मामलों में निजी क्षेत्र की आईटी कंपनियों के काम के घंटे उनके मूल राष्ट्र के अनुरूप हैं, जो कि कई मामलों में पश्चिम में हैं और इसलिए कर्मचारियों के लिए काम करने वाले मेजबान देश में एक विशाल समय अंतराल के परिणाम सामने आते हैं। दिन के विषम समय में। इसके अलावा निजी क्षेत्र के कर्मचारियों ने अपने सरकारी समकक्षों की तुलना में भूमिका अधिभार, भूमिका संघर्ष और अनुचित समूह और राजनीतिक दबाव पर उच्च स्कोर किया।

जबकि अध्ययन का एक दिलचस्प निष्कर्ष यह है कि सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियों ने भूमिका अस्पष्टता पर और निजी क्षेत्र के कर्मचारियों की तुलना में अधिक भागीदारी की, जिसका श्रेय इस तथ्य को दिया जा सकता है कि सरकारी क्षेत्र में नौकरी की सुरक्षा और नियत कार्य समय एक के बाद एक सामाजिक अवसरों का भोग बनाता है। और इसलिए भागीदारी के परिणामस्वरूप। जबकि गरीब सहकर्मी संबंध, कठोर कामकाजी परिस्थितियां, लाभहीनता दोनों समूहों में लगभग समान थी।

संदर्भ

- अमिनाभवी, वी ए (2000). व्यावसायिक और गैर-पेशेवरों के बीच व्यावसायिक जीवन की व्यावसायिक तनाव और गुणवत्ता पर एक अध्ययन.पीएच.डी. थीसिस, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।
- चंदमोंगा, ओपी, 2007, नौकरी के तनाव औ रबाहरजला के सहसंबंध. J.Com.गुई.रेस., 24 (3): 243-252।
- धनकर, एस। (2015), बैंकिंग क्षेत्र 1 में व्यावसायिक तनाव (8): IJA R 2015, 132-135।
- हसार्ड, जे। , टेह, केआर, विस्कोसाइट, जी., डेव, पी., और कॉक्स, टी. (2017). समाज में काम से संबंधित तनाव की लागत: एक व्यवस्थित समीक्षा.जे.ऑक्यूप.स्वास्थ्य साइकोल। doi: 10.1037 / ocp0000069। [मुद्रण से पहले ई-प्रकाशन]।

मेहरुन्निसा परवेज का "समरांगण" उपन्यास में चित्रित नारी अस्मिता

डॉ० पठान रहीम खान

असिस्टेंट प्रोफेसर, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, गच्चीबौली, हैदराबाद-500032

शोध सारांश

स्त्री को हमारे धर्म ग्रंथों में जगत जननी कहा गया है, उसे सम्मानीय एवं आदरणीय माना जाता है। परन्तु आज स्थिति इसके विपरीत है, जिसे देवी कह कर मंदिर में फूल चढ़ाये जाते हैं, उसी देवी को आज घर की चारदीवारी के अंदर बंद करके रखा है। प्राचीन समय में मातृसत्तात्मक समाज प्रचलित था। परंतु वैदिक काल तक आते आते मातृसत्तात्मक समाज पितृसत्तात्मक समाज में परिवर्तित हो गया और पितृसत्तात्मक सोच ने स्त्री जीवन को अपने अनुसार ढाल कर, अपने बनाये नियम तथा बंधन से बाँध दिये। जहाँ पितृसत्तात्मक सोच परंपरागत ढंग से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर विकसित होती जा रही है। मेहरुन्निसा परवेज ने ''समरांगण'' (2002) में ऐसे ही स्त्रियों का चित्रण कियाहै, जिनका पितृसत्तात्मक समाज ने मानसिक रूप से अधिक शोषण होता है। इस उपन्यास में सुहासनी, बूदाँजन, प्रथा ऐसे ही स्त्री पात्र है, जो अंदर ही अंदर घुटती रहती हैं। मेहरुन्निसा परवेज ने अपने उपन्यासों में ज्यादातर शोषित एवं तनावग्रस्त स्त्रियों की पीड़ा कोही चित्रित किया है।

नारी, सृष्टि की एक सुंदरसृजन है। वह स्वयं एकसृष्टि है। मानव कीसृष्टि का आरंभ हैं। इसके संबंध में प्रो. एम. वेकटेश्वर कहते हैं कि-''स्त्रीसर्जकऔर संघर्ष है, तथा उसका स्वरूप देवी है, और मानवी दोनों मांगी धरातल पर स्वीकृत है। पौराणिक गाथा में स्त्रीजननी पोषक, संरक्षक और संहारक के रूप में वर्णित है।'' मेहरून्निसा परवेज के उपन्यास 'समरांगण' में स्त्री जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण किया है। इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्रियों की स्थिति का चित्रण सुख्रढ़ पूर्वक किया है कि-वे किस तरह अपने जीवन का सर्वस्व अपने पति पर न्यौछावर कर देती है, फिर भी उन्हें अकेलापन, उपेक्षा सहन करना पड़ता है। स्त्री के कई रूप है, कहीं वह माता है, तो कहीं वह बहन है, तो कहीं वह पत्नी है, तो कहीं बेटी। स्त्री का स्नेहमयी रूप उसे सबसे अलग बनाती है और वह अपने स्नेह से मकान को घर और घर को परिवार बनाती है और परिवार को स्वर्गधाम बनती है। इसलिए स्त्री का स्थान समाज में श्रेष्ठतम स्तान है। साहित्य में भी स्त्री के विविध रूपों का चित्रण कई साहित्यकारों की हैं। जैसे जयशंकर प्रसाद ने स्त्री को श्रद्धा का पात्र माना है, औरइस संबंध में कहा है कि-

"नारी तुम श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में"

साहित्यकार समाज में घटित घटनाओं का चित्रण अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त करता है। मेहरून्निसा परवेज ने अपने उपन्यास में स्त्री के हर पहलू का चित्रण किया है। मां के रूप में भी और प्रेयसी के रूप में भी। मां के एक आदर्श रूप का चित्रण 'समरांगण'में मिलता है। 'समरांगण' उपन्यास की सुहासिनी देवी भी अपने बेटे से प्यार और रक्षा चाहती हैं। लेकिन अपने बेटे मोहन से उपेक्षा पाकर सोचती है कि ख्र''स्त्री मां बनकर ही उसकी देह की माटी में जो खमीर का मिश्रण होता है, उससे उसके मुख

और शरीर पर नई आभा नई लोनाई नजर आने लगती है। वह त्याग ममता और बलिदान की मूर्ति बन जाती है, मां बनकर स्त्री देह की परिणति से परे पहुंच जाती है। वह जीती भी है, तो बच्चों के साथ और आत्महत्या करती भी है, तो बच्चों के साथ भी। ऐसा विचित्र संबंध स्त्री का ही होता है और किसी से होही नहींसकता है। बच्चों से आंतों का रिश्ता होता है, और यही आंतों का रिश्ता जीवन की डोर बन जाता है।'' स्त्री तभी संपूर्ण होती हैं, जब मां बनती है, परंतु जब बड़े होकर, वही बच्चे उसकी अवहेलना करते हैं, तब भी उसके मन में स्नेह कम नहीं होता। स्त्री का यही रूप है कि-जीवन भर उसकी अवहेलना की जाती है, और तब भी वह चुप चाप सहन करती रहती है। स्त्री का संपूर्णजीवन ही संघर्ष में व्यतीत होता है।

परंतु आज की स्थिति कुछ और है। समाज में स्त्री मात्र भोग्य की वस्तु बनकररह गई है। समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का अस्तित्व समान है। दोनों ही मानव रूप से धरती पर जन्म लेते हैं। परंतु जन्म के बाद उनके लिंग के आधार पर मानव अधिकारों में परिवर्तन हो जाता है। यदि पुरुष बाहर जाकर पैसा कमाता है, तो स्त्री घर को सँवारती है। वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरे नहीं चल सकते हैं। फिर भी पुरुष नारी को अपने अधीनमें रखना चाहता है। वह उसे सदैव अपने पैरों के तले दबाना चाहता है। इसका सही चित्रण हमें 'समरांगण' में मिलता है कि-मोहन अपनी पढ़ी-लिखी पत्नी प्रथा को हीन दृष्टि से देखता हैं, क्योंकि उसे अंग्रेजी नहीं आती है, वह उसे हमेशा दबाकर रखना चाहता है और जीवन भर ऐसा ही करता रहता है।

स्त्री के जीवन की यह विडंबना है कि-जिस पुरुष के सहारे वह अपने जीवन के सपने देखती है वहीं पुरुष उसको जीवन की राह में अकेला छोड़ देता है। वह उसके जीवन की कश्ती को बीच भंवर में छोड़ देता है। वह अकेले ही इस जीवन के भाव सागर को पार करती है। स्त्री के बहुत से रूप होते हैं, समय-समय पर वह कहीं मां, बहन, बेटी, प्रेयसीके रूप में अपना सब कुछ दे देती है। किसी के लिए तो जीवन देने के समान बात है और किसी के लिए इस बात के कोई मायने ही नहीं। जब उसका भोग कर लेता है, तो उसे वह वहीं प्रेयसी अब बुरी लगने लगती है।

समाज में अपनी प्रतिष्ठा की हानी होने लगती है, इसका चित्रण हमें 'समरांगण' उपन्यास में मिलता है कि बूदाँजान जानती है कि-अबगोपीलाल उसे त्यागना चाहता है, किख्''तुम अब विचार करने लगती है कि आगे पीछे सोचने लगे हो गुस्सा तो आएगा ही ना मैंने अपना साराजीवन तुम पर समर्पित कर दिया था हम नौटंकी वाले हैं, तो क्या हमारी भी इज्जत होती है, मर्यादा होती है, सात्विकता हमारा भी गुण होता है। गोपीलाल अपनी पत्नी के होते हुए भी बूदाँजान से प्रेम करता है और वह अपना संपूर्ण जीवन उसको अर्पित कर देती है, तो उसे अब लोकलाज की चिंता होने लगती है।'' स्त्री का एक और समर्पित रूप है तो दूसरी ओर प्रतिष्ठित एवं सम्मानित मर्यादा भी है। समाज में वह इन दोनों को संतुलित करते हुए अपने जीवन का निर्वाह करती है।

स्त्री अपने ऊपर हो रहे अन्याय और अत्याचार को अनदेखा कर देती हैं, इसका सही चित्रण'समरांगण'उपन्यास में मिलता है। सुहासनी को जब पता चलता है कि-जिस पति पर उसने इतना विश्वास कियाऔर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। वह पति दूसरी औरत के चक्कर में है, तो वह टूट जाती है और सोचती है कि-''पति चाहे कोई सुख दे या ना दे, परंतु वह पत्नी को पूर्ण प्रेम से प्रेम करता है, तो नारी इसको अपना सौभाग्य मानती है। सारे वैभव हो, वह राजमहल की मालकिन भी क्यों ना हो, परंतु यदि पति उससे प्रेम नहीं करता या उसका मन किसी स्त्री से जुड़ा हो, तो यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य ही होता है। शेष जीवन पाखंड ही होता है, जीते जी भी जीवित नहीं रह पाती। सारा जीवन पति और पत्नी के बीच का जीवन केवल भ्रमों के सहारे ही होता है। जिस दिन भ्रम टूट जाता है, उस दिन सब मिथ्यालगने लगता है।'' पति का दूसरी औरत के साथ संबंध की बात सुनकर कुछ ना कर पाने वाली निसहाय नारी का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि- 'स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं है, बचपन में पिता के संरक्षण में, फिर पति के संरक्षण में, और पुत्र के संरक्षण में कभी भी स्वतंत्र ना रहे।' परंतु वर्तमान काल में नारी अधिकारों के प्रति सतर्क है और अधिकारों का संरक्षण मिलने पर भी, नारी पर हो रहे अत्याचारों में कमी नहीं आई है। समाज में पुरुषों ने नारी को अपने अनुकूल बना कर रखा। कहने के लिए तो वह गृह स्वामिनी है, परंतु गृह स्वामी की आज्ञा के बिना घर का पत्ता भी नहीं हिल सकता है। फिर भी वह गृह स्वामिनी असहाय है। इसका सही उत्तर सुहासिनी का बेटा मोहन जब उसे उससे भारतीय नारी की स्थिति पर प्रश्न पूछता है, तो उसके पास इसका सही उत्तर नहीं मिलताहै। वह अपनी टीचर से पूछता है, तो मैं उसके सवालों का जवाब देते हैं, तो वह सोचता है कि-''मेरी मां ऐसा क्यों नहीं करती है, और मन ही मन सोचता है कि-अपनी विचारधाराओं के दलदल में फंस गई है। वहां से उसे निकालना नहीं जा सकता, उसे हटा देते हैं।'' अर्थात् स्त्री को लेकर पितृसत्तात्मक सोच जन्म से कोई मानव नहीं सीखता है, बल्कि वातावरण

के अनुसार वह ढल जाता है। माता के लिए हर पुत्र के मन में स्नेह रहता है, फिर भी वह अपनी माँ के सपक्ष में खड़ा नहीं हो पाता है।

ऐसी अवस्था में मरता देख सकता है। बचपन में, बचपन से ही निर्णय कर लिया था कि-भारतीय नारी सेवा नहीं करेगी। मोहन विवाह करने के बाद अपनी पत्नी को पत्नी होने का भी अधिकार नहीं देता है। उसके अधिकार की क्या बात करेगा, स्थिति कब हमको चारदीवारी के अंदर सीमित कर लिया है। पुरुष उस पर चाहे जितना अत्याचार करें, वह कभी कुछ नहीं करती है। हैरथया एक पढ़ी-लिखी स्त्री है, परंतु जब उसका पति उसे अंग्रेजी ना आने पर अपमानित करता है, तो वह सोचती है कि-आज पहले ही दिन उसे अयोग्य साबित कर दिया गया था। उसका संस्कृत और अनपढ़ करार दे दिया गया था। उसकी हिंदी और संस्कृत की पढ़ाई कोई अर्थ नहीं रखती थी। इससे यह प्रतीत होता है कि-पढ़ी-लिखी स्त्रियों की भी स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं है। मेहरून्निसा परवेज 'समरांगण' उपन्यास में स्त्री के मानसिक द्वंद का चित्रणऔर अपने साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को ढोते हुए, अंदर ही अंदरकिस तरह से टूटतीऔर मरती जाती है, इसका सही चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री के हर पहलू को गहराई से चित्रण किया हैं, भारतीय समाज में स्त्री घर के अंदर रहती है, उसे पुरुष के बीच हस्तक्षेप करने की स्वतंत्रता नहीं है। वह तो बस रसोई में ही अपना जीवन समर्पित कर देती है। इस उपन्यास का सुहासनी का भी यही हाल है। परंतु जब उसका पुत्र मोहन उसे अपनी स्कूल टीचरलोरामैम से मिलने को कहता है, तो सुहासनी कहती है कि-"हम तो बेटा कुएँ के मेंढक है, कुएँ में ही जन्में हैं और कुएँ में ही मर जाते है। स्त्री जीवन की सच्चाई समाज में स्त्री को स्वतंत्र रहने के अधिकार से वंचित रखा गया है।"

स्त्री अपने दुख को कभी भी किसी के सामने व्यक्त नहीं करपातीहै। सुहासिनी ने जो उपेक्षा जीवन भर सही और अंत में वह इस संसार से विदा हो गई, वही हाल उसकी बहू का भीहोता है। वह सदा मोहन के प्यार के लिए तरसती रहती है और इसका अर्थ यह हुआहै कि-मैं भी मर गई। भारतीय समाज में कहावत है कि-'डोलीमायके से उठती है और अर्थी ससुराल' से इस कहावत को सुहासनी ने सार्थक किया है। स्त्री की स्थिति समाज में दयनीय होती है। पुरुषवादी सोच उसे कभी ऊपर उठने नहीं देती। हमेशा उस पर पहरा होता है, समाज की विडंबना है कि-जिस देवी की मंदिर में पूजा की जाती है-उसी देवी को घर की चारदीवारी के अंदर प्रताड़ित किया जाता है।

मेहरून्निसा परवेज ने 'समरांगण' उपन्यास में स्त्री की स्थिति और उसकी मानसिक द्वंद एवं संघर्ष का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में सुहासनी जैसी स्त्रियां अपना जीवन, पुरुषों की उपेक्षा के साथ ही बितातीहैं। सुहासनी जीवन भर अपने पति को दूसरी स्त्री के चक्कर पड़ा देखती रही और यह सब जानते हुए भी, वह किस तरह चुपचाप सब कुछ सहती रहती है। उसका बेटा उससे कहता है कि-उसकी टीचर तो कहती है कि-स्त्री-पुरुष दोनों ही समान है, तो वह अपने पुत्र को भारतीय स्त्री की स्थिति से अवगत कराती है, तो उसका पुत्र सोचता है कि-धर्म ग्रन्थों में जो नारी हैं, वह अलग क्यों हैं। उसे सीता का चरित्र ज्यादा साहसी लगा और वह सोचता हैं कि-"क्या स्त्री थी, जिसने बिना पीछे मुड़े अपनें बच्चोंपति के बराबर खड़ा किया। उन्हें पति से भी ज्यादा बुद्धिमान और शक्तिशाली बनाया पति के घर लौटने के अनुरोध को ठुकरा कर धरती में समा गई।" वह स्वाभिमानी नारी थी। परंतु शायद ही सुहासिनी जैसी स्त्रियां इस तरह का साहसिक कदम उठा सकतीहै। भारतीय नारी की स्थिति का चित्रण इस उपन्यास में कियागया है।

आज भी हमारे समाज मेंसुहासिनी जैसी स्त्रियां देखने को मिल जाएंगी, जो जीवन में सिर्फ पुरुष की सेवा ही करती रहती हैं और फल स्वरुप उपेक्षा ही पाती हैं। कम पढ़े-लिखे, और पढ़ी-लिखी स्त्रियों में अंतर बहुत ही कम हैं। पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी अपने अधिकारों के लिए पुरुषवादी सोच से नहीं लड़ पाती हैं। जैसेइस उपन्यास में प्रथा पढ़ी लिखी होने के बावजूद भी, अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठा पाती है। लेखिका ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाजके इस पितृत्तात्मकसोच को व्यक्त किया है और स्त्री के मानसिकद्वंद को सही ढंग से चित्रित किया है। आज पुरुष वर्ग के साथ-साथ स्त्री के मानस में भी पितृसत्तात्मक सोच ने अपना घर बना लिया है, जिस कारण वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्वयं का शोषण होते देख रही है, साथ ही दूसरी स्त्री का शोषण भी कर रही है।

निष्कर्ष

आज भी समाज में स्त्रियों को हीन समझा जाता है। वर्तमान में तो स्थिति और भी भयावह हो गई है। कहने को तो स्त्री पढ़ी-लिखी सक्षम है और चांद तक पहुंच गई, पर कितनी स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो पढ़ी-लिखी होने के बावजूदभी प्रातड़ित की जाती हैं। इस तरह के सवाल आज भी हमारे समाज में व्याप्त हैं, जिनका कोई भी जवाब नहीं। लेखिका ने इस उपन्यास में इन्हीं सब का चित्रण किया है और आने वाली पीढ़ी का भविष्य भी अंधकारमय ही है। इसका भी सहीचित्रण हमें इसी उपन्यास में देख सकते हैं। प्रथा की दो बेटियां दोनों की परवरिश में जमीन आसमान का फर्क है। एक को दादाबेटा बनाना चाहते हैं, क्योंकि वह रूप रंग में सुंदर है, उसकी परवरिश एकदम उच्च घर की स्कूल की लड़कियों की तरह होती है। उसको हर ऐशो-आराम की चीजें मुहैया कराई जा रही है और वहीं दूसरी तरफ उस प्रथा की दूसरी बेटी जिसे भारतीय स्त्री का प्रतीक कह सकते हैं, जिसकी परवरिश एकदम साधारण से की जाती है। उसके मन में तरह-तरह के सवाल उठते हैं, पर उनका जवाब किसी के पास नहीं होतेहैं। यह हमारी समाज की हकीकत है, जिसे हम भुला नहीं सकते और यही विडंबना भी है। अर्थात् प्रथा की बेटियों के माध्यम से समाज में एक ओर बेटियों के विकास या यूँ कहें स्त्री के विकास के प्रति ध्यान दिया जारहा है, वहीं दूसरी ओर उसे परंपरागत सोच और बेड़ियों के बंधन में बांधा भी जा रहा है।

सन्दर्भ सूची

- पुरुष के जीवन में स्त्री की पात्रता, एम.वेकटेश्वर, पृ. सं 27
- कमायनी भाग-2, जयशंकर प्रसाद, लज्जा सर्ग
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं 197
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं 146
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं 196
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं 72
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं -165
- समरांगण, मेहरुन्निसा परवेज, पृ. सं ख्र 73

गांधीवाद का दिव्य संदेश

डॉ. दिवाकर कुमार कश्यप

UGC-NET/JRF, Philosophy
UGC-NET/JRF, Comparative Studies of Religion
UGC-NET, Budhhist, Jaina , Gandhian and Peace Studies

गांधीजी की महानता, उनके संघर्ष एवं उनके विचारों के बारे में विमर्श इतनी बार और इतनी तरह से कही गई हैं कि वह असाधारण प्रतीत होते हैं। आइंस्टीन ने उनके बारे में जो कुछ कहा था, वह हरगुजरते वक्त के साथ और पुख्ता सच बनता गया है। महात्मा गांधी का जिक्र आते ही यह प्रश्न पूछा जाता है कि आज के संदर्भ में गांधीवाद की प्रासंगिकता और अर्थवत्ता क्या है? क्या उनके विचार और उनका जीवन, क्योंकि स्वयं गांधीजी के अनुसार उनका जीवन ही उनका संदेश है, आज हमें कोई रास्ता दिखा पानी में समर्थ है?

इस सवाल में एक आत्म स्वीकृति भी अंतर्निहित है, क्योंकि अगर हम आज बनाए जा रहे वर्तमान और भविष्य से आश्वस्त होते तो इस सवाल के पूछे जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं महसूस होती। इस सवाल की जरूरत ही इस बात का प्रमाण है कि हम आज जिस रास्ते पर चल रहे हैं उसकी सार्थकता या प्रासंगिकता पर हम भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। किसी विकल्प की तलाश की आवश्यकता तभी महसूस होती है, जब हमारी नीतियां और कार्यक्रम किसी वांछित भविष्य तक ले जाने में असफल होने लगते हैं। इसलिए महात्मा गांधी के विचारों की प्रासंगिकता पर विचार आने के पहले यह देख लेना जरूरी है कि वह कौन सी व्याधि अथवा व्याधियों हैं, जिनके वैकल्पिक इलाज के लिए गांधी जी कुछ समाधान सुझा सकते हैं और जब हम कहते हैं कि आज हम एक विश्व समाज हैं तो यह मानना भी संगत कहा जाएगा कि जो विकल्प महात्मा गांधी सिखाते हैं, वह केवल भारत के लिए ही नहीं पूरे विश्व-समाज के लिए सार्थक होगा। विकास के प्रचलित रास्ते पर चलते हुए हम आज यहां तक पहुंचे हैं वहां दो समस्याएं प्रमुख रूप से उभर कर आई हैं जिन्हें लेकर दुनियाभर के विचारक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक और राजनेता समान रूप से चिंतित हैं। यह दो समस्याएं हैं आर्थिक असमानता में वृद्धि तथा पर्यावरणीयपारिस्थितिकीय असंतुलन। यहां यह समझ लेना जरूरी है कि यह समस्याएं आर्थिक वृद्धि के लिए अपनाए गए रास्ते की सफलता के बजाय उसकी सफलता के परिणाम हैं। हम यह नहीं कह सकते कि उत्पादन-वृद्धि नहीं हुई है, जो विकास की हमारी प्रचलित अवधारणा का लक्ष्य रहा है, लेकिन इस उत्पादन-वृद्धि के लिए जिन प्रक्रियाओं को अपनाया गया, उनके परिणाम-स्वरुप कुछ ऐसी नई समस्याएं पैदा हो गई, जिन्होंने विकास की हमारी प्रचलित अवधारणा पर ही पुनर्विचार के लिए बाध्य कर दिया है। यह समस्याएं मूलत:उस प्रौद्योगिकी के आवश्यक परिणाम हैं, जिसे हमने उत्पादन विधि के लिए अपनाया, क्योंकि अंतत: प्रौद्योगिकी ही प्रकृति और पारिस्थितिकी से हमारे संबंधों को तय करती है और स्वामित्व एवं लाभ के वितरण की प्रक्रिया को भी। जिस बड़े पैमाने की प्रौद्योगिकी को हमने अपना आया, उसी का परिणाम है स्वामित्व और प्रबंधन का केंद्रीकरण, श्रम के अवसरों अर्थात रोजगार में कमी तथा पर्यावरण-प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के तेजी से दोहन के फलस्वरूप उनके भंडार की समाप्ति काआसन्न खतरा।''

महात्मा गांधी इसके समाधान स्वरूप स्वदेशी प्रौद्योगिकी का सुझाव देते हैं। 'स्वदेशी' का मतलब है स्थानीय संसाधनों से स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति-इसमें प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ प्रौद्योगिकीय और श्रम संसाधन भी शामिल हैं। इसका आवश्यक परिणाम होता है श्रमिक परिवार या छोटे श्रमिक समूह का अपनी प्रौद्योगिकी और श्रम पर स्वामित्व व स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि। उत्पादन स्थानीयजरूरतों के लिए होने के कारण उसके परिवहन, विक्रय और प्रबंधन आदि की लागत में कमी होती है और लाभ के केंद्रीकरण की संभावना अत्यंत सीमित हो जाने के कारण आर्थिक असमानता में निरंतर कमी होती जाती है।

गांधी जी के अनुसार यह मानना एक भ्रम है कि इससे उत्पादन कम होने लगेगा। यहां इस प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य की भी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व पूरी दुनिया के निर्यात व्यापार का लगभग एक तिहाई केवल भारत का उत्पादन पूरा करता था, जो इसी स्वदेशी प्रौद्योगिकी और कुल सामाजिक समय अर्थात सब के लिए रोजगार के उपयोग की संभावना पर आधारित था। आधुनिक प्रौद्योगिकी की सारी कुशलता मानव-श्रम अर्थात रोजगार में कमी तथा प्राकृतिक संसाधनों के अस्वस्थ दोहन पर आधारित है। इस प्रक्रिया से उत्पन्न बीमारी से तभी छुटकारा पाया जा सकता है, जब हम इस प्रक्रिया के विकल्प को अपनाने के लिए प्रस्तुत हों, जिसका प्रस्ताव महात्मा गांधी और उनके विचारों से प्रेरित अनेकप्राच्य-पाश्चात्य विचारक और अर्थशास्त्री कर रहे हैं। अमर्त्य सेन विकास का तात्पर्य 'मनुष्य की स्वतंत्रता मानते हैंश। यह स्वतंत्रता केवल तभी पाई जा सकती है, यदि हम उसे केवल अंतिम लक्ष्य नहीं मानकर उसकी प्रक्रिया में ही उसे समाहित कर सकें, जिसकी पूरी संभावना स्वदेशी की अवधारणा से प्रेरित प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रक्रिया में दिखाई देती है।

राजनीतिक सत्ता के केंद्रीकरण से ऊपजी समस्याएं दरअसल आर्थिक केंद्रीकरण के आवश्यक परिणाम हैं। आर्थिक केंद्रीकरण की जरूरतें राजनीतिक विकेंद्रीकरण के बिना पूरी नहीं की जा सकती है। आज देश के वन्य-प्रदेशों में जो नक्सलवादी हिंसा और फिर उसकी प्रतिक्रिया में राज्य की सैन्यवादी हिंसा या आंतरिक उपनिवेशीकरण से उत्पन्न संरचनात्मक हिंसा-दिखाई दे रही है, उसकी जड़ में आर्थिक केंद्रीकरण ही दिखाई देता है। । यदि आज सरकार को भूमि अधिग्रहण के लिए ऐसा कानून बनाने पर विचार करना पड़ रहा है, जिससे गांव की अपनीसहमति के बिना उनकी भूमि का अधिग्रहण नहीं किया जा सके तो यह कहीं इस बात का स्वीकृति है कि आर्थिक केंद्रीकरण के लिए आज तक राज्य लोकतांत्रिक आकांक्षाओं और अधिकारों का दमन करता रहा है। महात्मा गांधी इसलिए स्वदेशी पर आधारित एक विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था की जरूरत के अनुसार एक राजनीतिक विकेंद्रीकरण का प्रस्ताव करते हैं, जो राज्य की हिंसक शक्ति का एक अहिंसक विकल्प है। इसे अव्यावहारिक मानना पुनः एक भ्रम होगा क्योंकि देश की श्रम शक्ति का बहुलांश यदि उपयोग में नहीं लाया जा रहा है और वर्तमान प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रक्रिया में रोजगार के अवसरों के बढ़ने अर्थात इस श्रम शक्ति के उपयोग की संभावना नगण्य है तो हमें ऐसा ही विकल्प खोजना होगा जो इस श्रम शक्ति और मानव ऊर्जा का उत्पादक उपयोग कर सकें-मानव स्वतंत्रता को पुष्ट करते हुए। यही स्वदेशी है और यही स्वराज।

यहां इस बात की ओर भी ध्यान दिया जाना वांछनीयहोगा कि महात्मा गांधी आर्थिक प्रक्रिया में केवल उत्पादन प्रक्रिया को ही नहीं बल्कि उपभोग प्रक्रिया को भी शामिल करते हैं। वह उपभोक्ता को भी यह सुझाव देते हैं कि वह ऐसी वस्तु का उपयोग नहीं करें जिसकी उसे आवश्यकता नहीं है। आज हो रहा है प्रकृति विरोधी अंधाधुन उपभोग, वास्तविक आवश्यकताओं के बजाय कृत्रिम जरूरतों पर आधारित है। अलफ्रेडमार्शल जैसे अर्थशास्त्री की प्रसिद्ध अवधारणा ही यही है कि उत्पादन को बढ़ातेजाना होगा, जिसका स्वाभाविक परिणाम पर्यावरणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन के साथ-साथ उपभोक्ता के मानसिक-शारीरिक स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ भी है। इस संदर्भ में गांधी जी के अर्थव्यवस्था संबंधी विचार उपभोक्ता के आर्थिक हित के साथ उसके मानसिक, शारीरिक और नैतिक आध्यात्मिक हितों की रक्षा करता है। महात्मा गांधी उपभोक्ता से भी यह उम्मीद करते हैं कि वह ऐसी किसी वस्तु का उपयोग नहीं करेगा जिसका उत्पादन हिंसा अर्थात किसी भी प्रकार के आर्थिक शोषण, राजनीतिक दमन अथवा सामाजिक उत्पीड़न पर आधारित हो। स्वराज यहां एक व्यक्तिगत अवधारणा और व्यवहार भी बन जाता है। यदि उपभोक्ता हिंसक प्रक्रियाओं से उत्पादित वस्तुओं को खरीदना बंद कर दें तो ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लिए अपनाई जाने वाली हिंसक और प्रकृति विरोधी प्रक्रियाओं को स्वतरू ही बंद कर देना पड़ेगा। सरकारें अंतरराष्ट्रीय दबाव में भूमंडलीकरण वाली आर्थिक नीतियों को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो भी जाए तो अपने नागरिकों को उस उत्पादित माल को खरीदने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। यदि उपभोक्ता समूह ऐसे माल को ना खरीदने का फैसला कर ले तो वह सरकारी नीतियों के बावजूद अपने को उससे बड़ी हद तक मुक्त रख सकता है। यह एक प्रकार का आर्थिक सत्याग्रह होगा और आर्थिक सत्याग्रह ही तो गांधीजी के जीवन और विचारों का आधार है। स्वदेशी और स्वराज्य की अवधारणा इसी विचार पर आधारित है। एक विशाल आर्थिक राजनीतिक तंत्र के सम्मुख असहाय महसूस करना-जो आजकल हम सभीमहसूस करते हैं-मनुष्य की स्वतंत्रता और गरिमा के खिलाफ है, जिसका उद्घोष मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र में किया गया है।

महात्मा गांधी जिस उत्पादन प्रक्रिया और उपभोग की अवधारणा का प्रस्ताव करते हैं, वह मनुष्य को अपनी उस स्वतंत्रता और व्यक्तित्व की गरिमा अर्जित करने की ओर ले जाता है, जो आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत विकास की वैकल्पिक अवधारणा

का लक्ष्य माना गया है, जो महात्मा गांधी के शब्दों में स्वदेशी, स्वराज और सत्याग्रह है और जो सामूहिक तो है ही, व्यक्तिगत स्तर पर भी पाया जाता है। बुद्ध ने कहा था-करुणा सबसे ऊपर है-पहले तीर को निकालो-हंस के दुख से दुखी बुद्ध का यह हृदय था। ठीक उसी तरह भारत के साधारण दुखी जन की आर्थिक बदहाली, अपमान, रोग, पीड़ा से विकल दुखी संतप्त देश को उसकी रीढ़ के बल पर खड़ा करने का महानकार्य गांधी जी ने किया।

संदर्भ

1. अमृत बाजार पत्रिका: कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक
2. एन ऑटोबायोग्राफी, ऑरद स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ: एम. के. गांधी, महादेव देसाई द्वारा गुजराती से अनूदित, नवजीवन पब्लिकेशन हाउस, अहमदाबाद, 1959
3. हिंद स्वराज ऑर इंडियन होम रूल : महात्मा गांधीय नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1958
4. गांधीजीइन इंडियन विलेजेज: महादेव देसाईय इसगणेशन, मद्रास, 1927

आदि शंकराचार्य और भक्ति आंदोलन

बलजीत बिहारी

Research Scholar
A IH, Archaelogy, Patna University

भारतीय इतिहास में गुप्तोत्तर काल से लेकर आरम्भिक मध्य काल तक का धार्मिक जीवन कुछ वैसा ही उथल-पुथल भरा था जैसा कि छठी सदी ईसा पूर्व में उत्तर भारत की स्थिति। एक ओर सनातन धर्म कई पंथों में विभाजित हो चुका था तो दूसरी ओर जैन तथा बौद्ध धर्म के भी कई उपसम्प्रदाय बन चुके थे। कुल मिलाकर भारतीय मूल के धर्मों को हिन्दू धर्म कहा जाए तो उसके आगे आन्तरिक और वाह्य स्तर पर कई चुनौतियाँ थीं। वैदिक समाज के दार्शनिक विभाजन धीरे-धीरे विभिन्न धार्मिक पंथों के निर्माण में सहायक हुआ और अंततोगत्वा यही समाजिक विभाजन का कारण बना। जबकि इसी दौर में पश्चिम एशिया में एक नई धार्मिक क्रांति समाज में समानता, एकता, बंधुत्व व संगठन के निर्माण द्वारा अपनी विस्तार कर रही थी। इसी परिदृश्य में सुदूर दक्षिण केरल के तट पर कलाडी नामक ग्राम में 788 ई. में आचार्य शंकर का जन्म हुआ। वे मात्र 32 साल की अपनी अल्पायु में अपने समय के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों से टकड़ाते हुए न सिर्फ अद्वैत वेदांत को नये रूप में प्रस्तुत किये, बल्कि भविष्य का भारत भी उसी विचार के इर्द-गिर्द बनता रहा।

भारतीय चिंतन परम्परा में आदि शंकराचार्य की उपलब्धियाँ न केवल अध्यात्मिक है, बल्कि वो अपने विचारों से लोगों को जोड़ने के लिए दक्षिण से उत्तर तथा पूर्व से पश्चिम भारत की यात्राएँ भी की और शास्त्रार्थ के द्वारा पराजित कर लोगों को जोड़ने का काम किये। उन्होंने अल्पायु में ही प्राचीन भारतीय चिंतन से जुड़ा वाङ्मय का अध्ययन कर पाया कि धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के निदान के लिए वेदांत दर्शन सबसे उत्तम है। वेदांत का मूल महावाक्य ''तत् त्वम् असि'' का अर्थ है कि न सिर्फ मानव बल्कि सभी जड़-चेतन उसी परमपिता परमेश्वर (ब्राह्म) से निष्पन्न है। अत: सभी जीव तत्वत: समान है और आपस में बंधु-बांधव है। इस प्रकार देखा जाए तो वेदांत की चिंतन धारा इस्लाम की समानता और बंधुत्व को प्रतिसंतुलित कर सकती थी। इसके अलावा हिन्दू धर्म के आंतरिक धार्मिक असहिष्णुता जो वैष्णव-शैव, सनातन-गैर सनातन जैसे विभाजन के कारण होता था, को रोका जा सकता था। धर्म के आधार पर राजनीतिक द्वेष का भी समाधान वेदांत में था। उस दौर में दक्षिण भारत में छोटे-छोटे राजवंश हुआ करते थे जो या तो शैव थे या वैष्णव तथा उनके तनाव का कारण धार्मिक विभेद भी था। आचार्य को लगा कि एक ऐसी चिंतन विकसित किया जाए कि जिसके आधार पर सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधा जा सके। इसी क्रम में वो सभी प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य लिखे, वादरायण के ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे तथा गीता की नयी व्याख्या हेतु गीताभाष्य लिखे। इसके अलावा आचार्य ने कई मौलिक ग्रंथों की रचना की।

आचार्य शंकर का बिहार आगमन का विशेष प्रयोजन यह था कि बिहार न सिर्फ नालंदा विश्वविद्यालय के कारण ज्ञान-विज्ञान व बौद्ध दर्शन का केन्द्र था, बल्कि आस्तिक चिन्तकों में सबसे तार्किक न्याय दर्शन का गढ़ भी था। नालंदा से सम्बन्धित कुमारिल भट्ट जो मीमांसा के आचार्य थे कि ख्याति आस्तिक खेमों में इसलिए अधिक थी कि वो कई समकालीन बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर चुके थे! ऐसा अनुश्रुति है कि जब आचार्य शंकर कुमारिल भट्ट के पास पहुँचे तो उन्हें आत्मदाह करते देखे। एक तो कुमारिल ने अपने बौद्ध गुरु को शास्त्रार्थ में पराजित किया तथा दूसरा मीमांसा के निरीश्वरवादिता को स्थापित करने के कारण प्रायश्चित हेतु वो आत्मदाह कर रहे थे। अत: आचार्य का शास्त्रार्थ कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डन मिश्र के साथ हुआ जो अपने गुरु कुमारिल के समान ही प्रतिभाशाली थे। मण्डन मिश्र और आचार्य शंकर के बीच शास्त्रार्थ आधुनिक सहरसा जिला के महिसी (महिष्मती) में हुआ जो मण्डन मिश्र का ग्राम था। शास्त्रार्थ में निर्णायक जज की भूमिका मिश्र की धर्म पत्नी उभय भारती ने निभायी

जो स्वयं एक विदूषी महिला थी। कई दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा अंततः मंडन मिश्र पराजित हुए। ऐसा माना जाता है कि मिश्र की पराजय गीता के दर्शन की व्याख्या को लेकर हुआ। मिश्र का मानना था कि गीता कर्मयोग को प्रतिपादित करती है। कर्मयोग यानि कर्म से जुड़ना! फल को लेकर आसक्ति रहितता ही विशुद्ध कर्मयोग है। परंतु आचार्य शंकर का मत था कि गीता कर्म संन्यास की शिक्षा देती है। वो यह कि कर्म करते हुए भी तुम कर्म नहीं कर रहे हो, वो तो करवाया जा रहा है। यानि कर्म करते हुए भी मन में अहमं भाव नहीं लाना ही कर्म संन्यास है। यह बड़ा विचित्र संयोग है कि गीता वेदांत दर्शन के प्रस्थान त्रय का प्रमुख स्तम्भ है, परंतु गीता का सार कई जगह सांख्य दर्शन से प्रभावित होता दिखता है। यहाँ भी शंकर में तर्कों में सांख्य का पूर्व स्थापित नियतत्ववाद झलकता है।

पति की पराजय का निर्णय उभय भारती ने तो कर दिया परंतु वो आचार्य शंकर को भी इतने दिनों में ताड़ गई। आगे उभय भारती और आचार्य के बीच में शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है। यह भारतीय इतिहास और उससे भी अधिक मिथिला के लिए गौरव की बात है कि जिस समाज पर लैंगिक विभेद का आरोप लगता रहा हो उसमें ही एक महिला अपनी पति के वैचारिक हार को जीत में बदलने के लिए आ डटती है। हालांकि स्त्री-पुरुष के बीच शास्त्रार्थ का उदाहरण प्राचीन भारत में कई जगह मिलता है। उदाहरण के लिए गार्गी और याज्ञवल्क्य संवाद, जनक और सुलभ संवाद को देखा जा सकता है। भारती समझ चुकी थी कि आचार्य को शास्त्र और तर्क के क्षेत्र में पराजित करना सम्भव नहीं है। परंतु आचार्य को लोक, आस्था, प्रेम और काम के परिधि में लाकर पछाड़ा जा सकता है। अतः भारती जब नारी सौंदर्य और कामक्रीड़ पर आचार्य से प्रश्न पूछने लगी तो आचार्य निरूत्तर हो गये। भारती ने कहा कि आचार्य जिस व्यक्ति ने गीता का उपदेश दिया तथा जिसकी व्याख्या को लेकर हमारे पति पराजित हुए हमारा प्रश्न उसी प्रभू श्रीकृष्ण के यौवन काल की लीलाओं से संबंधित है। ऐसा माना जाता है कि आचार्य ने सर झुका लिया और भारती को प्रत्युत्तर देने के लिए कुछ समय की याचना की। कुछ अनुश्रुति के अनुसार आचार्य पुनः गृहस्थ जीवन के अनुभव प्राप्त कर भारती को उत्तर दिये भी, परंतु आचार्य शंकर की पराजय शास्त्र पर लोक और तर्क पर आस्था की एवं वैराग्य पर राग यानि प्रेम की विजय थी। इसमें ही भक्ति का बीज आद्य रूप में छिपा था, जिसका प्रेरक कारक बिहार की धरती बनी। इसी का विकास आगे चलकर शंकर के शास्त्र और ज्ञान मार्ग की प्रतिक्रिया स्वरूप पूरे भारत में भक्ति आन्दोलन के रूप में हुआ। जिसके प्रणेता रामानुजाचार्य थे।

यह कहना पूर्णतः सही नहीं है कि रामानुज के दार्शनिक चिंतन से ही भक्ति का आगाज हुआ। क्योंकि भक्ति की परिपाटी ऋग्वैदिक समाज में भी थी तथा उत्तर वैदिक समाज में व्यवस्थित होते देव समूह का कारण भी भक्ति ही था। यहां तक कि उपनिषद के गूढ़ चिंतन में मुक्ति हेतु एक मार्ग भक्ति भी मान्य रहा तथा बुद्ध काल से पूर्व 7 वी सदी के भागवत आंदोलन ने भक्ति को एकमात्र प्रमुख मोक्ष प्राप्ति का उपागम माना। छठी सदी ईसा पूर्व नास्तिक पंथों का उभार ने भी भक्ति की धारणा को समाप्त कर दिया हो ऐसा नहीं है। प्राक मौर्य , मौर्य और मौर्योत्तर काल में भी सनातन पंथों और आस्तिक संप्रदाय ही भक्ति का वाहक बना क्योंकि मौर्योत्तर काल में महायान बौद्ध के द्वारा भक्ति की धारणा को अपनाना यह साबित करता है कि मुख्यधारा के धर्मो में भक्ति की धारा प्रवाहित थी यही कारण है कि गुप्त काल की मुख्य धर्म वैष्णव पंथ तथा शैव में भी भक्ति के तत्व उभरे।

परंतु जिस पर आचार्य शंकर में प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञान आधारित चिंतन को एक साथ समंवित कर बुद्धि और तर्क को दुखों से मुक्ति का अंतिम उपाय बताया, उसी प्रकार रामानुजाचार्य ने पहली बार ईश्वर के प्रति अनुराग, प्रेम और आस्था को दार्शनिक आधार प्रदान कर भक्ति के लिए दार्शनिक आधार तैयार किया। यही कारण है कि पूरे मध्यकाल में चला भक्ति आंदोलन और सूफी आंदोलन के केंद्र में तर्क बुद्धि नहीं बल्कि आस्था और प्रेम रहा।

आचार्य शंकर के दर्शन में मुक्ति जो परम आनंद है, उसकी प्राप्ति अज्ञान के समाप्त होने से होगा और वह अज्ञान परम तत्व और जीव को भिन्न समझने का है यानि परम तत्व और जीव के एकत्व का ज्ञान हो जाते हैं मुक्ति प्राप्त होगी। अतः वेदांत की व्याख्या के अनुसार जीवन मुक्ति भी संभव है यानि अज्ञानता के बादल हटते ही परम आनंद की प्राप्ति और तत्पश्चात मृत्यु उपरांत पूर्ण आनंद की प्राप्ति होगी परंतु प्रश्न यह उठता है कि जीव का परम तत्व में विलीन हो जाने के बाद जीव का पृथक अस्तित्व समाप्त हो जाएगा तो आनंद का अनुभव कौन करेगा? ब्रह्म जो आनंद प्रदाता है वह तो जीव को अपने में आत्मसात कर चुका है योनि परम आनंद मृत्यु की पूर्व की ज्ञानमय अवस्था होगी या फिर मृत्यु के बाद जीव का परम तत्व से पार्थक्य बना रहेगा।

आचार्य रामानुज कांची में यादव प्रकाश से आरंभिक शिक्षा प्राप्त किए। आगे उन्हें अपनी मौलिक चिंतन के कारण काफी विरोध का सामना करना पड़ा। अतः वे होइसाला यादव राजकुमार विष्णु वर्धन के राज्य में पहुंच गए। जहां वे शासक के भाई को वैष्णव बनाने में सफलता प्राप्त किए। रामानुज का दर्शन शंकर के अद्वैत दर्शन के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। उनकी धारणा थी कि आत्मा और

ईश्वर का संबंध अग्नि और चिंगारी के समान है। चिंगारी अग्नि के मूल स्रोत से ही निकलती है, परंतु धीरे-धीरे अपने मूल रूप से दूर होते जाने के बाद वह चमक खो देती है और बुझ जाने के बाद वह पुन: अपने मूल अग्नि पिंड में कहां मिलती है? उसी प्रकार जीव परम तत्व (ब्रहम) से निकलने के बाद पुन: ब्रह्म में नहीं मिलती है बल्कि जी जब तक ब्रह्म के निकट रहती है तो वह अपने चमक यानि पुर्णता का अनुभव करती है। यानि जीव का ईश्वर की निकटता प्राप्त करना ही पूर्णता है और उसी में परम आनंद है तथा मुक्ति का यही कारण है। रामानुज का मत था कि मुक्ति हेतु ज्ञान अनिवार्य तत्व नहीं हो सकता क्योंकि बड़े सत्ता की निकटता हेतु प्रसाद की जरूरत होती है जो प्रपत्ति भक्ति से प्राप्त की जा सकती है। यानि ईश्वर के आगे अपने स्व का पूर्ण समर्पण जो भक्ति की एक अवस्था होगी!

रामानुज ने दार्शनिक स्तर पर भक्ति की स्थापना के आगे सामान्य जन के लिए ईश्वर के सगुण रूप का भी वर्णन किया है। क्योंकि ईश्वर से अनुराग हेतु उसके रूम का निर्धारण अनिवार्य था वरना अमूर्त सत्ता से प्रेम में रहस्यवाद का खतरा था। जिससे तंत्र-मंत्र और एक खास प्रकार का वाह्याचार का विकास होता। अत: रामानुज का मत था कि त्याग और तपस्या द्वारा नि:स्वार्थ भक्ति से ईश्वर की निकटता प्राप्त की जा सकती है।

रामानुज के अनुयायियों की संख्या दक्षिण भारत में बढ़ने लगी तथा दक्कन होते हुए उनका विचार उत्तर भारत में भी फैलने लगा। यह बड़ा ही आश्चर्य की बात है कि इसी दौर में इस्लाम की सूफी मत उत्तर भारत में धीरे-धीरे अपनी और लोगों को आकर्षित कर रही थी जिसमें परम सत्ता (अल्लाह) से प्रेम की बात थी। इस्लाम में अल्लाह से प्रेम की बात भारतीय उपमहाद्वीप में एक अनोखी उपलब्धि के रूप में विकसित हुआ क्योंकि प्रेम दो सत्ता में बराबरी का भाव व्यक्त करता है जो इस्लाम के मूल सिद्धांत के खिलाफ था।

रामानुज के बाद निंबार्क, माधवाचार्य, वल्लभाचार्य आदि चिंतकों ने जीव और ब्रह्म के भेद को स्वीकारा जो भक्ति के लिए आवश्यक था परंतु रामानंद के यहां भक्ति का चरम विकास हुआ जो उत्तर भारत की जीवन धारा में आज भी प्रवाहित है। रामानंद ने प्रेम और भक्ति के सिद्धांत पर आधारित एक नया वैष्णव संप्रदाय चलाया था। उन्होंने जाति भेद की उपेक्षा की तथा मध्यकालीन रूढ़ियों से मुक्ति हेतु सभी जाति के लिए शिक्षा का द्वार खोल दिए। उनके शिष्यों में नीच जाति के लोग भी थे, उनमें कुछ चमार, जुलाहे, नाई और खेतिहर भी थे। उन्होंने भक्ति का एक नया आध्यात्मिक मार्ग दिखाया उनके एक गीत में कहा गया है कि:

मैं ब्रहम की पूजा-अर्चना के लिए चंदन तथा गंध द्रव्य लेकर जाने को था, किंतु गुरु ने बताया कि ब्रहम तो तुम्हारे हृदय में है। जहां भी मैं जाता हूं पाषान और जल की पूजा देखता हूं, किंतु यह परम शक्ति है जिसने सब जगह इसे फैला रखा है। लोग व्यर्थ में ही इसे वेदों में देखने का प्रयत्न करते हैं। मेरे सच्चे गुरु ने मेरी असफलताओं और भ्रांतियों को समाप्त कर दिया। यह उसकी अनुकंपा हुई कि रामानंद अपने स्वामी ब्रहम में खो गया। यह गुरु की कृपा है कि जिस से कर्म के लाखों बंधन टूट जाते हैं।

रामानंद ने धर्म के मध्यकालीन इतिहास में अपना अनुपम स्थान बना रखा है। मध्यकालीन अध्यात्म बाद में उनका सुखद अभ्युदय हुआ था। कबीर उनके शिष्यों में से एक थे। गंगा के मैदान में उनके शिष्य बड़ी संख्या में आज भी हैं। रामानंद की भक्ति आंदोलन में क्या देन थी उसके संबंध में आर के मुखर्जी ने कहा है कि उन्होंने दक्षिण भारत से तमिल संतों का भक्ति भाव लिया परंतु उसने उस कट्टर पंथियों का यह सिद्धांत ठुकरा दिया कि शूद्रों को धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती है और उसके साथ धार्मिक समानता और भ्रातृत्व का व्यवहार नहीं किया जा सकता। उसने मीमांसा के शुष्क सिद्धांतों को न अपनाया और ना ही वैदिक दृष्टिकोण को जो 14वीं शताब्दी के अनुकूल न था।

संदर्भ

1. शंकराचार्य (1985), दशश्लोकी, चौखम्बा, वाराणसी
2. मिश्र, वाचस्पति (1917), भामती, निर्णय सागर, बंबई
3. मिश्र, मण्डन (1937), ब्रह्मसिद्धि, सम्पादक म.म.एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री, मद्रास
4. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
5. मिश्र, जयशंकर (2012), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना

गुणाऽअलंकारतत्त्वविवेचनम्

डॉ० पवन कुमार राउत

(साहित्य विभाग), वि0 वि0-कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत, वि0 वि0 कामेश्वर नगर दरभंगा।
कार्यरत – राजकीय कृत प्राथमिक विद्यालय, मरार मझाऊर, खजौली, मधुबनी

आचार्यवमनस्तु शोभतिशयहेतु रूपादुपरि निर्दिष्टालङ्कारादतिरिक्त सौन्दर्य – रूपानलङ्का रानपि मान्यतां ददाति सौन्दर्यम लङ्कार:। सौन्दर्यरूपोऽयमलङ्कारो दोषहानात् गुणालङ्कारयोरादानाज्र कवे: येन काव्ये काम्येत्वुमुपादेयत्वञ्च समायाति-कायग्राह्रमलङ्कारात् अलङ्कृतिरलङ्कार: इति भावव्युत्पनो दोषापगमगुणा-लङ्कार संवयनकृत-भावार्थकघञ्प्रत्ययान्ता – लङ्कारशब्देऽस्मिन् सौन्दर्य बोधस्य क्षम ताऽस्ति – नवेति विवेयतीय: प्रश्न:। यथा – पचन पाक: अत्र, पाकशष्यात् प्रति पादितपचनत्यापारे पचति। क्रियायातोऽभहितत्यापारात् किञ्चित् भिन्ना सत्यति भाव: अर्थात् व्यापारे रूप स्वासीत्। तयैवालङाराणाम् अलङ्कार: अत्रापि भावप्रत्ययान्तालङ्कारशब्द लङ्कारण व्यापार स्यैव प्रत्याय को भविष्यति नतु सौन्दर्य जयति। गुणवचनबाह्मणादिभ्य: कर्मणिअनेन सूत्रेण सुन्दरस्य भाव: सौन्दर्यम् अत्र भावप्रत्ययान्ते सत्यति सौन्दर्यशब्दाभिहित: भाव: अलङ्कारशब्देन प्रतिपादितभावात् सर्वथां भिन्न स्वास्ति। विशेषवाचक: सुन्दरशब्दानिष्पन्नो सौन्दर्यम् 'सुन्दरस्य भाव: अर्थात तद्धर्मप्रतिपादक एव भवति। किञ्चालं पूर्वकात् कृ धातो निष्पन्न भाव प्रत्यायान्त: अलङ्कारणत्यापा रस्यैव बोधको भवति। अनेन रूपेणाभयो: अलङ्का सौन्दर्यशब्दयोर्मध्ये व्युत्पतिलभ्यार्थस्य भिन्नत्वात् अलङ्कारस्य सौन्दर्यनाम्ना व्यपारदेशो हि सुसङ्कगत: प्रतीतो न भवति। यद्यपि व्यकरणतद्धितान्तानुसारेण कृतप्रत्ययाप्रतिपादितो भाव: अर्थात् व्यापार: प्रत्यवत्प्रकाशितो भवति कृदयिहितो भाव: भव्यवत् प्रकाशते। कृदभिहितो भाव: भव्यवत् प्रकाशते। सौन्दर्याथ यदि अलङ्कार शब्देऽय योगरूदेशब्दश्येत् तर्हि परिवर्तिभिरायायैरिति तस्मिन्नथ परिगृहीतो भवति। किञ्चार्यवाम्। विहाय नै कोऽपि आचार्य: अलङ्कारशब्दस्य प्रयोग: सौन्दर्याऽर्थे कृतवानस्ति अत: यौकिकालङ्कार इव काव्येऽपि सौन्दर्यस्यातियाथाते साधनामात्र में वस्ति। अत: अलङ्कार: प्रक्रीत्यते इदमेव लक्षणम् तथा अलक्रियतेऽनेनेति करणव्युत्पत्तिनिष्पन्नो यमकोपमादिबोधकोऽयमलङ्कार शब्द इति।

अलङ्कार शास्त्रम्

यस्मिन् खल्ववगते काव्यस्य निर्माणस्वरूपदोषगुणाङ्कारा दी नामव धारण च शक्ति: निष्पताति तदलङ्कार शास्त्रम् यथा च व्याकरणम् भाषायां व्युत्पत्त्यै, अपेदये तथा अलङ्कारशास्त्रमपि काल नैपुण्यापेक्ष्यते। प्रारम्भत: स्व व्यासपरिसरे सुष्ठुपदार्थनवलोक पितुं सुमधुरशब्दांश्य शब्दान् श्रोतं जना अभिलषन्त: जीवन्ति। अत् स्व त्व स्मकिं ऋषय: परमात्मान प्रार्थयन्ति–

'सुचक्षाहमक्षीभ्यां भूयासम् सुश्रुतकर्णाभ्याम् भूयासम्। '

तेन शिवसुन्दराभ्यां सत्यस्य सहयोगे। भवत तदा भूवि मङ्गलो जायते। तथैवापारे काव्यं संसारे मनोहरशब्देन सह माङ्कल्यार्थस्य यदा परस्परं समन्वयो भक्ति तदैव तत्र चारूत्वस्य विद्यानोऽभक्ति। माङ्गल्याय य मनोहराय च। स्वाभाविक सौन्दर्यस्य तथ्योत्कर्षाधायकैरलङ्कारै: परिवर्धित सौन्दर्यस्य च श्रेयस्त्वमहत्त्वानाञ्चसम्बन्धे काव्य: समालोचकाश्य नैकमतो भवन्ति सर्वदा। परीक्ष्यवादी महाकविकालिदामस्तु कृत्रिमाभूषणापेक्षया स्वाभाविक सौन्दर्यस्यैव श्रेयस्त्व स्वीकरोति–

किमिव हि मधुराणा मण्डनं नाकृतीनाम।।

विपरीतस्त्वस्य भामहायार्येण कृत्रिमा भूषणं बिना कान्तमनोहर देहमपि सुशोभितो न भवंतीति मन्यते।

'न कान्तमपि नियूषं विभाति वतिता न नम्।'

रममेव दृष्टि द्वयं नीत्वा काव्ये गुणालङ्कारविषये तेषां कार्ययमहंत्त्वातारतम्पदीनां निरूपपणमलङ्कारशास्ये समजनि अलङ्कारसम्प्रदायस्य कतिपयीयार्या: अलङ्कारानेव काव्यसौन्दर्यस्य समुत्पादको धर्म: मात्वाऽलङारस्य विशालजाले एवं गुण – सन्धि – सन्ध्यङ्ग – वृत्ति-वृत्यङ्ग – लक्षण – रस – भावादीन् संग्रहीतुं प्रयत्नों विहितवन्त: कात्यशोभाकरान धर्मनलङारम प्रचक्षते।

तथा च –

यच्च सन्ध्यङ्ग – वृत्यङ्ग – लक्षणाद्यागमन्तरे।

व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्गारतयैव न:।।

रस वत् – प्रेय-उर्जस्वि – समाहिताद्यलङारा: रस भावादीं श्चात्मसात कृत्वा कात्ये भावपक्षोपरि कलापक्षस्य विजयधोषणा कृतवन्त:। किन्तु नीरक्षीरविवेकिमिराचा यरलङ्कारस्य कार्यमीसा तथा तदीया महत्तोया: युक्तिपूकेन निरूपणं कृतम् आचार्यदण्डिना प्रतिपादितालङ्कारस्य काव्यशोभासम्पादकत्वस्य खण्डनं कृत्वा काव्य शोभकरेण धर्मेण मण्डितं गुणमेव महत्त्वमदद्द्चार्यवामनेना। तथा काव्यशोभाया कात्तोरो धर्मो गुणा: पुनश्च गुणेन सम्पादितशोभायामुक्तषधियक कार्यमेवालङ्कार स्योति मान्यतौतस्य तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारा: (तत्रैव)। फलत: गुणस्य नित्यता स्पष्टमेव पूर्वे नित्या: तयादलङ्कारस्त्वनित्य: आनुषङिकश्यति वामनो वदति।

ऋग्वेदस्यास्मिन् मन्त्रे उत्तमकाल्य सर्वत्त्वानि सन्ति। अत्र श्रङार-वात्सल्यरसयोरभि व्यक्तिर्भवति। माधुर्यगुमस्तश्रापमालङारस्य चमत्कारिक सौन्दर्य मपि अस्ति। ऋग्वेदस्यैव निम्नलिखितमन्त्र: स्वातिशयोक्ललङ्कारस्य गहनतम भावानामभि व्यक्ति हेतो प्रसिद्धोस्ति –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षमभिष्वजयते तयोर्य: विप्पल स्वाख्रत्यनश्मन्त्रन्योऽभियाकशीति।[2]

अतिशयोक्तिवर्णनप्रसङ 'इय' चातिशयोक्तिर्वेदेऽपि दृश्यते। तथा द्वा सुपर्णेत्यादि। अत्र द्वौ सुपर्णौ सुयुजौ सखायौ इति लौककप्रयोगस्यानो छान्दसेर व्यत्यय:। जीवेश्वरौ नित्यौ मक्तवस्यायां समजौ संसारेण सम्बद्धौ, परं जीव: कर्मफल भुक्त ईश्वर कर्मफलमभुञ्जानोऽपि प्रकाशते। यजुर्वेदस्य निमनलिखितमन्त्रे वाचकलुप्तोरपमा तथा यद्दकालङारस्य सुन्दरविन्यासाऽपि दर्शनीय स्व

सप्ततेऽग्ने समिध: सप्तजिह्व सप्त ऋषय: सप्तामा प्रियाणि।

सप्तहोत्रा: सप्तधात्वा यजन्ति सप्तयो नीरापृणस्वधृत्रन स्वाहा।।[3]

अर्थर्ववेदस्य अप्सरायुक्त, राष्ट्रसक्त, सूयसूक्त यादिकाव्यस्योत्तमनि उदाहरणानि सान्ति यथा-

पश्य देवस्य काव्यं न मामर न जीर्यति।।

काव्ये गुणालङ्कारयो: स्थान – मत्त्व-कार्यादीनां निरूपण प्रसर्ङ्के आयायण वामनेन द्वाष्टान्त द्वयं समुपस्यापितम्। ललनाया: ललितरूपसख्ररश: केवल शुख्रगुणयुक्त काव्यमपि आहाद यको भवति। सुष्ठु अलङअकारौ। विभूषिते सति। तद्रूप: यथाधिकमनोहरो भवति तथैव गुणविष्टकाव्यमपि सुन्दरालङ्कारौ: विभूषिते सल्यधिकाहादको भवति।

यथा –

युवतेरिव रूपमङ काव्य स्वदतेशुद्धगुणं तदप्यतीव।

विहित प्रणयं निरन्तराभि: सदलङ्कार: विकल्प नाभि:।।

किञ्च जरती जीर्ण शरीरे विविद्यालङ्काराणामाऽम्बरो यथा हास्यास्पदो भवति ततैव गुमरहित काव्यऽलङ्काराणा समावेशन वैरस्यावहो भवति यथा –

यदि भवति वचनयुतं गुणोभयो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङअगनाया:।

अपि जनदयितानि दुर्भगत्वं नियतमलङ्करणानि सश्रयन्ते।।

स्नमलङ्कारशास्त्र कश्दाकेन प्रमममाविष्कृतमिति निणेतुं न शक्यमस्माभि:। किञ्च प्रसिद्धेषु सर्वेषु अलङ्कारनिबन्धे, कालिदासकृतोद्दरणात् कालिदासदुत्तरकाव्यमेवास्य बाहुल्येन यर्चाजनीति सम्भव्यते। दण्डिना भाभमीह वाक्दं शास्त्रप्रथममाविष्कृतमिति। तभ्या प्राक्तनस्यालङार शास्त्रनिर्मास्तुरनुपलाभात्। तयो परमप्राचीनत्व यथा–

जाते जगति वाल्मीकि कविरित्यमिधाऽभवत्।

करि इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

इति प्राचीनपदन प्राचीनतर – कविवरश्चायमिति नात्र सन्देहः। परन्तु शुप्रककविक्तते मृच्छकरिकनाम्नि नाट के विद्यमान्सय-

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि बषती वाञ्जन नभः।

असत पुरुषसेवेक दृष्टिर्विफलता गता। ।

सन्दर्भ-

1. सान्द0-1.1.2.
2. काय0-1.1.1
3. रा0 सू0 – 4.1.124
4. यजु0 निरूक्तः – 7.1.2
5. यभिजा शा0-1.20
6. भामहा0-1.13
7. ऋग्वेद – 3.33.1
8. वही – 3.164.20
9. यजुर्वेद – 17.71
10. अथर्ववेद – 17.08.32.
11. रा0 स0-4.1.124
12. काव्यादर्शः – 2.1
13. तत्रैव – 2.267
14. काव्य ल0-3.1.2
15. सौन्दर्य – 1.1.2
16. नाटड्शास्त्र – 6.37

गांधीजी के विचारों का प्रभाव

संध्या कुमारी

एम.ए. राजनीति विज्ञान (सामाजिक विज्ञान संकाय), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

गांधीजी 20वीं शताब्दी के महानतम् पुरूषों में पांक्तेय है, जिन्होंने तत्कालीन सामजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनकारी शक्तियों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। गांधीजी जिस समय भारत की आजादी के लिए लड़ रहे थे उस समय उनके मस्तिष्क में विश्व के उन तमाम लोगों को मुक्त कराने की अनुपम योजना थी, जो दासता के चंगुल में फंसे थे। न केवल स्वतंत्रता संग्राम अपितु नैतिक एवं सामाजिक संग्राम के सर्वश्रेष्ठ नायक, कोटि-कोटि जनता के प्रति कठिन राजनीतिक संघर्ष के अग्रणि नेता महात्मा गांधी एक संत थे या राजनीतिक। इस प्रश्न का उत्तर अनेक प्रकार से दिया गया है, किन्तु सत्य तो यह है कि ''गांधीजी ने धर्म और नीति का आचरण करते हुए, अपनी कथनी और करनी में सामजस्य स्थापित करते हुए, एक सच्चे ईशान की जिदगी जीने की कौशिश की। स्वंय को सत्य का शोधक कहा, उनका स्वरूप संतत्व प्रधान राजनीतिक था।'' उनके दर्शन के सत्य और अहिंसा के दर्शनप में देखा जा सकता है।

वास्तव में गांधीवादी दर्शन मानव समाज की बुनियादी समस्याओं से निजात पाने की दवा है। आज भी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक समस्याओं का निदान बापू के दर्शन एवं उनके द्वारा बताये गये मार्गपर चलकर ही किया जा सकता है, क्योंकि अधिकाधिक दुर्व्यसनों को आवरण में छिपाने की आकांक्षा से ही आधुनिक समाज में निराशा, दमन ओर शोषण का भाव है। उन्होंने इन सबको समाधान आध्यात्मिक ढंग से करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान के विषय के मूल में प्रवेश का अनुभव किया कि बिना जीवन के मूल उद्येश्यों को समझने तथा बिनास विकृत मस्तिष्क के उपचार के विश्व संगठन या विश्व बन्धुत्व की कल्पना को साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।

भारतीय राजनीति में गांधी के पदार्पण के पूर्व के दिनों में मुख्यत: जो दो विचारधाराओं का प्रचलन था, उनमें एक सामाजिक सुधार की पक्षपाती थी तो दुसरी यह दलील रखती थी कि औपनिवेशिक शासन ही मुख्य दुश्मन है और इसकी समाप्ति के बाद सामाजिक सुधार स्वंय स्वरूप ग्रहण कर लेगा। गांधी ने इन दोनों विचारधाराओं को एक साथ लेकर प्रस्थान किया- आजादी की लड़ाई का नेतृत्व संभला तथा सामाजिक सुधार कार्य के रूप में अस्पृश्यता मिटाने का सघर्ष भी शुरू किया। दुसरी तरफ जहां धार्मिक पुनरूत्थानवादी हिन्द यथास्थिति को परम्परा के नाम पर कायम रखना चाहतें थे, वहीं प्रबुद्ध जन ब्राह्मण संस्कृति के विरोध में उपद्रवी रूख अपना रहें थे, ऐसी स्थिति में गांधी ने कहा कि हिन्दु धर्म, अस्पृश्यता को नहीं मानता और इस परस्पर विरोध का समाधान अछुतों को बराबरी का दर्जा देकर तथा हिन्दु-हृदय को उनके प्रति सदभाव में परिवर्तित कर ही किया जा सकता है। सन् 1920 ई0 ओर 1921 के कांग्रेस के अधिवेशनों में, जिसमें असहयोग आन्दोलन शुरू करने का निर्णय लिया गया, प्रस्ताव पारित कर यह दर्शाया गया कि प्रत्येक सत्याग्रहीअस्पृश्यता के खिलाफ न सिर्फ संघर्ष करेगा, बल्कि अछुतों से सम्पर्क रख उनकी यथासंभव मदद करेगा। गांधी ने अस्पृश्यता उन्मूलन को राष्ट्रीय मूक्ति आन्दोलन का अन्योन्यश्रय अंग बनाया तथा स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के लिए यह ऐसा महत्वपूर्ण कर्तव्य बनाया, जिसे अखिल भारतीय पैमाने पर स्वीकृति मिली।

गांधी के इन प्रारंभिक कृत्यों से दलितों को अपनी स्थिति सही ज्ञान हुआ और उनकं अंदर सम्मान पूर्वक जीवन के लिए संघर्ष की वृत्ति जन्मी, जिसका प्रमाण था बायकाम महाद, नासिक आदि का आन्दोंलन। वास्तव में गांधी अस्पृश्यता को एक दोष मानते थे और इसके लिए हिन्दु संस्कृति में यह चेतना भरना चाहते थे कि वह इसे मिटा दें। उन्हें आर्य समाज द्वारा चलाये गये सुचिता आन्दोलन में रूचि नहीं थी, क्योंकि वे अछुतों को हिन्दु समुदाय का अभिन्न अंग मानते थे। यही कारण था कि जब ब्रिटिश सरकार ने अछुतों को हिन्दुओं से जब पृथक करना चाहा तब उन्होंने उसका प्रबल विरोध किया।

सन् 1917 के बादसे कांग्रेस ने अछुतों के प्रति जो एक नया दृष्टिकोण उपजा, वह गांधी के ही असर का कारण था। उसके पहले गांधी कांग्रेस सामाजिक सुधार विषयक कार्यो के प्रति उदास ही रहा करती आयी थी । सन् 1917 ई0 के अधिवेशन में कांग्रेस

ने प्रस्ताव पारित करते हुए कहा था, ''कांग्रेस भारतवासियों से इस बात की अपील करती है कि रूढ़िगत परम्पराओं के फलस्वरूप दलित वर्ग पर जाके अमानुषिक एवं दमन मूलक अयोग्यताएं थोप दी गई हैं, ओर जिनके कारण उन्हें असंख्य असुविधाओं तथा कठनाईयों का सामना करना पड़ता है, उनके निवारण के लिए आवश्यक पग उठावें, क्योंकि ऐसा करना पूर्णतया न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है।

उपर के प्रस्ताव को कांग्रस महाधिवेशन में पास कर दिया जाना एक सामान्य घटना नहीं थी और वह भी तब जब ऐनी वेसेन्ट जैसा व्यक्तित्व उनका सभापतित्व कर रहाहो। अछुतो के प्रति ऐनी वेसेन्ट का ख्याल स्पष्ट था, ''प्रत्येक समाज में एक ऐसा बहुसंख्यक समुदाय होता है।

गांधीवादी दर्शन नैतिक एवं आघ्यात्मिक मान्यताओं पर आधारित पर आधारित होने के कारण नास्तिकों को कुछ अटपटासा अवश्य लगता है। किन्तु आज के हिंसा एवं रक्तपात के समय में समस्याओं को शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझाने का यह सर्वोतम मार्ग दिखाई देता है। पश्चिमी देश भी अब गांधी के विचारों में वर्तमान राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास करने लगे है तथा उनकी ''अहिंसा'' एवं ''सत्याग्रह'' की तकनीक को अधिक उचित एवं कारगर समझनेलगे हैं। नाभकीय अस्त्रें के इस युग में गांधीवाद के अपनायें जाने से ही विश्व सर्वनाश की विभीषिका से बच सकता है। व्यक्तिगत जीवन में उनके प्रयोग से व्यक्ति उस शान्ति को प्राप्त कर सकता है, जिसको वह युगों-युगों से प्राप्त करने का प्रयास करता रहा है। यही है- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधी दर्शन की उपदेयता।

सामान्य जनमानस ने जहां जीवन में सामाजिक मुल्यों को मान्यता देना प्रारंम्भ कर दिया है वही विशिष्ट जनों की सोच अपने सामर्थ्य को अधिकाधिक धनार्जन के सम्बन्ध में लगाये हुए है उनकी मान्यताएं एवं धारणाए पुंजी द्वारा सब कुछ प्रदान करने में ही विश्वास करती है। जीवन को संतोष के साथ गुजारने की प्रकल्पना और उसका विकास समाज में एक लंबे अरसें से अपना आधिपत्य बनाये हुए हैं जिसका आधार सामाजिक मूल्यों के प्रति आस्थ्ताा एवं विश्वास रहा है।

सत्य, प्रेम और अहिंसा के विकल्प के स्वरूप में गांधीवाद को समाज में स्वीकार किया लेकिन जीवन के व्यवहार में जैसे ही सत्य के प्रतिबिम्ब को अनुसरण की स्थिति निर्मित हुई, अशिक्षित, गंदी आदतों और गंदे तथा छोटे काम करने वाला होता है। इंग्लैण्ड में भी ऐसा समुदाय है, जो कुल जनसंख्या का दसवां भाग है। स्वभाव एवं परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण समाज के तमाम अवांछनीय तत्व शराबी, गुडें, अपराधी, लोफर आदि इनमें घुले मिले रहते हैं। ''भारत में यह समुदाय कुल जनसंख्या का छठा भाग है और 'दलित वर्ग' के नाम से जाना जाता है। इसका निर्माण, आर्यो द्वारा विजित, भारत के आदिवासियों से हुआ है। वे सब अत्यन्त पतित और भोजन, शरीर तथा निवास की स्वच्छता के प्रति नितान्त उदासीन रहते हैं। यहां की अपराधशील जातियां अलग होती हैं, वे इस बहुसंख्यक वर्ग में नहीं घुलती-मिलती। यह दलित वर्ग बहुधाबड़े मेहनती, सरल और जब तक कोई विशेष बात न हो, थोड़े में ही संतुष्ट रहने वाला होता है।'' ऐसे लोगों के उत्थान के लिए स्वभाविक रूप से शिक्षा एक उपयुक्त माध्यम ज्ञात होता है। परन्तु इसमें एक कठनाई यह है कि दलित वर्ग के बालकों के शरीर शराब तथा अन्य तेज गंघ वाले भोज्य पदार्थो के खाने के कारण दुर्गधमय होते हैं। ऐसे बालकों को सुसंस्कृत समाज के बालकों का पतन होने की आशंका अधिक है। इसके साथ ही, बहुत सी अछुत की बिमारियाँ, जो दलित वर्ग के बच्चों में भोजन स्वच्छता आदि के अभावों के कारण बनी रहती है, वे सुसंस्कृत बालकों में फैल जायेंगी। इस प्रकार दलित उद्धार के जोश में हम पीढ़ियों से शिक्षा एवं अच्छे संस्कार प्राप्त बालकों का पतन कर डालेंगे।

''इासिलए हमें पहले इन दलित वर्गीय बच्चों को स्वच्छता तथा पवित्रता के स्तर तक उठाना चाहिए और जब तक ऐसा नहीं हो पाता, तब सुसंस्कृत बच्चों के साथ इनका सम्पर्क वांछनीय नहीं है।

गांधी के कांग्रेस में पदार्पण का एक परिणाम यह हुआ कि अस्पृश्यता, जिसे अब तक मात्र एक सामाजिक समस्या के रूप में अंगीकार किया जा रहा था, अब एक राजनीतिक प्रश्न बन गया। सन् 1922 ई0 में गांधी ने जब एक रचनात्मक कार्यक्रम पेश किया तो उनके प्रस्ताव में एक करोड़ कांग्रेस सदस्यता भर्ती, चरखा और खद्धर का प्रचार, मद्य निषेध आदि के साथ.साथ अछूत उद्धार का प्रश्न भी जोड़ा गया। अछूत उद्धार के संबंध में प्रस्ताव में कहा गया, ''दलित वर्गो को उत्तम जीवन.यापन हेतु संगठित करना, उनकी सामाजिक, मानसिक एवं नेतिक उन्नति करना, ''अपने बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों में भेलने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना तथा अन्य नागरिकों को उपलब्ध सभी सामान्य सुविधायें भी सुलभ कराना।'' उस समय केवल मजबूरी की स्मृतियों में गांधी के सम्मुख स्वयं को समर्पित कर अपने कर्तव्य की इति श्री कर दी। समपूर्णता के आईने में गांधी की परिकल्पनाएँ राष्ट्रीय संम्बल की यर्थाथता में परिणति हो चुकी है जिन्हें किन्हीं अभिव्यकितयों के सहारे की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राष्ट्रीयता की धुरी पर गाांधीवाद ने सदैव ही अपनी प्रगतिशीलता को अक्षुण्ण बनाए रखा है। राष्ट्रीयता के उदघोषण की सुदृढ़ता में गाांधीवाद की उपज और उसका वास्तविक स्वरूप अपने विराट चिंतन के लिए विख्यात रहा है जिसे समाज ने अपनी आवश्यकतानुसार आत्मसात किया है जिसके परिणामस्वरूप सुख शान्ति एवं कल्याणकारी यथार्थ की व्यवहारिक समाज के सम्मुख प्रकट हो सकी है।

गांधीजी के अवतरित हुए 150 वर्ष हो गये हैं। इतने लंबे अंतराल के बाद भी लोग आज तक उन्हें भूला नहीं पाये हैं। 'माओ', 'लेनिन', और 'अब्रहम लिंकन', 'नेल्सन मंडेला' को क्रमशः चीन, रूस अमेरिका ओर दक्षिण अफीका भूल रहा है। इसके ठीक 138 वर्ष के गांधी का जिक्र पूरे भारतवर्ष ही नहीं पुरे विश्व में तमाम नेता उन्हें अपने भाषणों में मार्गदर्शन के रूप में लाते रहे हैं। 'जार्ज बुश' हो या 'टोनी ब्लेयर', 'थामोम्बेकी' हो या 'पुतिन'- गांधी जी का जिक्र कई भाषणों में आता है।

गांधीजी ने यंग इंडिया में लिखा है ''मैंने किसी नवीन सिद्धान्त की सृष्टि न करके, प्रचीन सिद्धान्तों को ही नवीन ढंग से दुहराने की चेष्ठा की है। ''गांधीजी नेसिद्धान्तों की एक ऐसे ढंग से व्याख्या की जिससे कि उन्हें 21 वीं शताब्दीं का धार्मिक प्रवृति रहित मनुष्य भी ग्रहण कर सके, साथ ही उन्होंने इन सिद्धान्तों का प्रयोग सामाजि एवं राजनीतिक क्षेत्र में करते हुए एक ऐसी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था दो जो अपने आप में अनुठी है।

गांधीजी ऐसी व्यवस्था के पक्षधर थे, जिसमें शोषण तथा विषमता न हो, मनुष्य खाली बेकार होकर भूखा न रहे और जिसमें मनुष्य राजनीतिक दृष्टि से स्वाधीन हो तथा सामाजिक दृष्टि से भी उन्नत हो, प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताओं की पुर्ती हो। यही गांधी के सर्वोदया समाज की कल्पना थी। गांधी ने कहा एक स्थान पर है कहा कि व्यक्ति को कुटुम्ब के लिए और कुटुम्ब को गाँव के लिए गाँव को प्रान्त के लिए प्रान्त को देश के लिए होना चाहिए। आज भी सर्वोदय की इसी भावना से प्रेरित होकर कार्यरत होने पर ही व्यक्ति आौर समाज दोंनो का हित संभव हो सकता है। मनुष्य अथवा व्यक्ति समाज में रहकर कार्य करता है और उसी के माध्यम से सोचता है। इसलिए मानव-समाज में समानता लाने के लिए सामाजिक सुधार की महती आवश्यकता को उन्होंने कभी विस्मृत नहीं होने दिया। उनके अनुसार- एक सभ्य समाज के लिए अहिंसा एक साधन है और पूर्व स्वराज एक साध्य। अस्तु अहिंसा आत्मा का गुण है, इसलिए व्यापक है, अहिंसा सबके लिए है, हर समय के लिए है।

आदर्श समाज से गांधी का अभिप्राय एक ऐसे समाज की स्थापना से है-जहाँ शान्ति और आनंद का वास हो। उन्होंने मानव की सृष्टि एवं विकास के लिए स्त्री-पुरूष दोंनो को समान रूप से महत्व दिया है। समाज में व्याप्त तमाम विसंगतियों यथा- पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, अस्पृश्यता आदि को विनष्ट करने के लिए जीवन-पर्यन्त प्रयास करते रहना चाहिए। इनके अनुसार-छुआछूत या 'अस्पृश्यता' हिन्दू समाज में व्याप्त ऐसा कलंक है जो न केवल स्वंय को अपितु सम्पूर्ण समाज को विनष्ट कर देता है। इसलिए इन सर्प रूप विष को जड़ से समाप्त कर देना चाहिए। यह हिन्द धर्म के सर्प को खोखला कर रहा है।

निष्कर्ष

संक्षेप में गांधीजी केवल हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि पुरे दुनिया के पिता हैं। यह गौरव की गांधीजी का नाम पर सम्मान के साथ पुरे विश्व में लिया जाता है और लोग उनकी बातों पर अमल भी कर रहे हैं। उनकी समस्त विशेषताएँ हर व्यक्ति को आर्कषित करती है और आज का युवा पीढ़ी गांधीजी से प्रभावित हो रहे हैं। उनका विचार स्थायी है और हमेशा रहेगा। इस प्रकार गांधीजी का विचार वर्तमान समय में भी शाश्वत ही नहीं बल्कि प्राशंसिक भी है।

सन्दर्भ-सूची

1. प्रतियोगिता दर्पण, हिन्दी मासिक, आगरा, उपकार प्रकाशन, जुलाई 2000, पृ0 2113.
2. वही, वर्ष मार्च 2001,पृ0-1447-1448.
3. क्रांनिकल, , हिन्दी मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, सुचना एवं प्रसारण मंत्रालय, अक्टूबर 2006, पृ0-38.
4. ज0 भ0 कृपलानी, महात्मा गांधी, जीवन और चिंतन, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1978, पृ0-463,
5. हरभाऊ उपामयाय, बापू कथा, वाराणसी, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 2003, पृ0 144
6. वही, वर्ष 2004,पृ0 172।
7. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र वाराणसी संस्कारण 28 जनवरी 2007, गांधी जी के पुण्यतिथि पर विशेष प्रकाशित पत्र।
8. वही, वर्ष 30 जनवरी 2009.
9. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, इलाहाबाद संस्कारण, 3 अक्टूबर, 2007, पृ0-10
10. घटना चक्र, हिन्दी समसायिक द्विमासिक पत्रिका, अपैल 2009, पृ0 21

भारतीय शिक्षा प्रणाली और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार

डॉ० सुशील कुमार

हिंदी विभाग, बी.एन. कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एक चिंतक साहित्यकार थे। उनका चिंतक रूप उनके साहित्य में हर जगह मौजूद है, लेकिन ललित निबंधों में उन्हें अवकाश अधिक मिला है। फलक उनकी वैचारिकता उनके निबंध साहित्य का प्रमुख हिस्सा है। वह अपने निबंधों में अनेक प्रश्न उठाते हैं, उसके हर कोने की पड़ताल करते हैं। तत्पश्चात तार्किक और प्रगतिशील विचार प्रस्तुत करते हैं, जो भारत की परंपरा की सही पहचान कराते हुए उसकी श्रृंखला को आगे बढ़ाता है। भारत में अनेक समस्या रही है और युगानुरूप अनेक समाधान भी हुए हैं। वर्तमान समय जिस परिस्तिथि के अधीन है उसमें उसके सामने चुनौतियां भी है। भारत की प्राचीन संस्कृति संपदा, चिंतन परंपरा और ज्ञान संपदा उन चुनौतियों का सामना करने में अत्यंत प्रासंगिक है। द्विवेदी जी अपने निबंधों में बार-बार भारतीय संस्कृति की विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं और यह बताते हैं कि इन समस्याओं का हल अतीत में जाकर ढूंढा जा सकता है। सबसे गंभीर समस्या शिक्षा प्रणाली को लेकर उपस्थित है। मध्य युग में भी यह समस्या उत्पन्न हुई थी। मनीषियों ने बदली हुई परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लिया था, पिछले डेढ़ सौ वर्षो से मार्ग में बाधा पड़ी है। परिस्तिथि के साथ भारतीय मनीषा को निपटने का मौका नहीं दिया गया। विदेशी विद्वानों ने अपने लाभालाभ को सामने रखकर इस देश के लिए एक योजना बनाई और उस योजना के सांचे में आदमी ढाले जाने लगे। यही काल क्षेपक काल है। अब समय आया है कि बाहरी हस्तक्षेप की उपेक्षा कर हम संपूर्ण उपलब्ध साधनों का उपयोग करके हम संपूर्ण उपलब्ध साधनों का उपयोग करके बदली हुई अवस्था के साथ अपनी शिक्षा प्रणाली का सामंजस्य स्थापित करें। हमें पुराने साहित्य में कितने प्रकार के प्रयोग मिलते हैं कि किसी विशेष प्रथा को अपनी राष्ट्रीय प्रथा मनाने का बंधन स्वीकार करने की जरूरत नहीं है। केवल एक ही बात हमारी राष्ट्रीय परम्परा की देन है और हमारे स्वभाव संस्कारों से अविच्छेद रूप से संबंध है-गुरु का प्रधान्य। हमें बंधी योजना और प्रणालियों पर उतना जोर नहीं देना चाहिए जितना आदर्श गुरु की खोज पर। योजनाओं के सांचे में मनुष्य को नहीं ढालना है। मनुष्य के आधार पर योजनाओं को मोड़ना है। इसी एक अर्थ में भारतीय शिक्षा प्रणाली को गुरुकुल प्रणाली कहा जा सकता है, इस व्यवस्था के केंद्र में गुरु का रहना आवश्यक है।

द्विवेदी जी ऐसी शिक्षा प्रणाली को उचित नहीं मानते हैं जिनमें विकास की योजना बनाई जाती है और उन योजनाओं के सांचे में मनुष्य को डाला जाता है। जैसा कि आजकल हो रहा है। इससे बचने की जरूरत है, मनुष्य की रक्षा के लिए मनुष्य के आदर्श पर योजनाओं को मोड़ना होगा। इसके लिए जरूरी है कि हम योजनाओं और प्रणालियों पर इतना जोर ना दे जितना आदर्श गुरु खोजने पर। देश में शांति और सुरक्षा का वातावरण तैयार करने के लिए जिन भारतीय मूल्यों की आवश्यकता होती है उनकी प्रतिष्ठा और संवर्धना के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना की जाती है। विश्वविद्यालय मनुष्य को अंधकार से हटाकर ज्योति की ओर ले जाने के लिए संकल्प से चालित है। उसका लक्ष्य ज्ञान की साधना है। दीर्घकाल से मनुष्य सत्य की खोज में लगा रहकर, जिन महान मानवीय मूल्यों की स्थापना कर सकता है, उन्हें लोकगोचर बनाने और अधिक अधिक परिष्कृत करने का काम विश्वविद्यालय करते हैं। ज्ञान से बढ़कर पवित्र वस्तु कुछ भी नहीं है। विश्वविद्यालय के विभिन्न विभाग ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का अनुशीलन करते हैं और उनके प्रचार के द्वारा लोकचित को परिष्कृत और सत्य निष्ठा बनाते हैं। यद्यपि

ज्ञान की अनेक शाखाएं हैं, पर ज्ञान एक और अविचल है। ज्ञान के इस स्वरूप की उपलब्धि जिसे हो जाती है वह कभी भय का शिकार नहीं होता–'आबंध ब्राह्मणों विद्वानों न विभेति कदाचन'।

लेकिन वर्तमान समय में समस्त भारतवर्ष अशांत, असुरक्षित और भयभीत दिखाई पड़ रहा है। भारत की जनता आज नेताविहीन हो चुकी है। चीन के आक्रमण ने यह साबित कर दिया है कि भारतीय जनता में न फूट है, न वह वैमनस्यता है और न देशभक्ति का अभाव है। बल्कि उल्टी स्थिति है-हिचक, दुविधा, बुद्धिविवेक, भेद, फुट कलह अगर कहीं दिखाई पड़ते हैं तो इन लोगों में जो ऊपर के स्तर के हैं, जिनके पास खाने पहनने को आफरात पड़ा है और बौद्धिक कसरत दिखाने का अपार समय उपलब्ध है। देश की जनता इससे मुक्त है। वह रोग का निदान और उपचार दोनों को ही सीधे देखती है। जबकि उच्च स्तर के लोग की दृष्टि वह ग्रस्त और कुटिल है। आखिर इसका कारण क्या है जो लोग पढ़े लिखे और समझदार हैं, जो लोग आधुनिक व्यवसाय बुद्धि से संपन्न और जिन लोगों के पास देश को संपन्न बनाने के मजबूत साधन विद्वान हैं वे जनता के साथ एकमेक होकर नहीं चल पा रहे हैं? निश्चित तौर पर हमारी शिक्षा व्यवस्था में ही कहीं ऐसी त्रुटि रह गई, जिससे शिक्षित व्यक्ति अपने को साधारण जनता से पृथक अनुभव करने लगता है और ज्यों ज्यों कार्यक्षेत्र में अग्रसर होता जाता है और सफलता प्राप्त करता जाता है त्यों त्यों अपने आप में सिमटता जाता है। शिक्षित व्यक्ति वह है जिसको हमने शिक्षा दी है और शिक्षा देने का काम विश्वविद्यालय का है इसका सीधा मतलब है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में ही कोई ऐसी दोष-त्रुटि रह गई, जो हिंसा से चित्र को संकुचित सीमित और तेजहीन बनाती है। हमारी प्राचीन संस्कृति कहती है कि चराचर के साथ एकमेक हो जाने में ही सुख है, और आज स्थिति यह है कि थोड़े में सुख पाना कोई सुखी नहीं है। इतना भयंकर विरोध, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था वही परिणाम है जो यह भयंकर विरोध का दृश्य उपस्थित करता है। विश्वविद्यालय से मिलने वाले ज्ञान शिक्षित व्यक्तियों के चित्र में मोह और भय का संचार कर रहा है, स्वार्थ और लिप्सा का अनुयायी बनाता जा रहा है और सबसे बड़ी बात कि अपने देश की विशाल जनता से अलग कर दे रहा है। बाहरी बोझ में ही भारवाहक को तेज चला देने की क्षमता होती है, लेकिन सहज गति नहीं है। किसी प्रकार से जल्दी-जल्दी अपने को भार मुक्त कर देने की उतावली मात्र है। अगर सचमुच इस शिक्षा व्यवस्था ने हमें भार ढोने को बाध्य किया है तो इसका प्रतिकार आवश्यक है। इस शिक्षा व्यवस्था ने हमें एक ऐसी मानसिक गुलामी दी है जो विदेशियों की सत्ता के अधीन जीने से भी कहीं ज्यादा खतरनाक है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उक्त समस्या पर विचार प्रकट करते हुए कहते हैं देश की जनता के साथ देश के शिक्षितो के व्यवधान का एक प्रमुख कारण विदेशी भाषा का माध्यम है। हमारी शिक्षा व्यवस्था और सैनिक संगठनों में लोक भाषाओं की उपेक्षा की गई है। साधारण जनता की आशाओं आकांक्षाओं से हमारे शासन अनभिज्ञ सिद्ध हुए हैं। स्थानीय समस्याओं से भी एकदम अपरिचित साबित हुए हैं क्योंकि हमने अपनी शिक्षा व्यवस्था में बहुत दूर के लोगों का अंधानुकरण किया है। अपने देश की मिट्टी से अपरिचित रह जाते हैं। उन्हें वास्तविक देश से, उसकी रहन-सहन से, उसकी रीति-नीति से, उसकी भाषा से, उसके सुख-दुख से, उसकी आशा आकांक्षाओं से, उसके संस्कार से परिचित होने का अवसर ही नहीं मिलता। हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था उन्हें अपने घर में ही विदेशी बना देती है। अपनी ही भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ बना देती है। अपने ही समाज में उन्हें अजनबी कर देती है, तो दोष उनका नहीं है दोष उच्च शिक्षा व्यवस्था का ही है। इसलिए आज के संकट काल में हमें नए सिरे से सोचने की जरूरत है। सच तो यह है कि न देश कमजोर है, न जनता और न वह भाषा जो जनता को सही ढंग से सोचने की प्रेरणा देती है। किसी तरह से कमजोर नहीं कही जा सकती वस्तुत: उन्नति की कसौटी भाषा की उन्नति से ही मानी जानी चाहिए।

अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं दिवेदी जी के दृष्टि में आजादी के लंबे समय बाद भी हम अपनी एकता को परिभाषित करने में असमर्थ रहे हैं। इसका दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। विदेशियों को लगता है कि जमीन से उखड़ा हुआ यह भारतीय समाज जर्जर है, इसे एक झोंके में ही गिराया जा सकता है। इससे पहले जातिवाद, धर्म, भेद और भाषा-भेद ने एक लंबी गुलामी हमें दी और फिर वही स्थिति हमारे सामने है। ऐसे में हमारा दायित्व बनता है कि हम एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था स्थापित करें जिससे हमारा देश एकता की शक्ति अर्जित कर आगे बढ़े और किसी को एक तरफ आंख उठाकर देखने की हिम्मत ना पड़े। इसके लिए जरूरी है कि हम हिंदी की शक्ति को पहचाने। केवल उसके साहित्यिक सौंदर्य का ही आस्वाद न लें, अपितु दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी उसे स्थान देकर समूचे देश में उसकी शक्ति का प्रसार करें। अगर यह

नहीं हो सकता तो संभव है हम आने वाले दिन में और अधिक कमजोर हो जाएं और कभी न मिटने वाली परतंत्र के शिकार हो जाए। यह अतिरंजनापूर्ण बात नहीं है, बहुत संभव है ऐसा ही हो! ऐसा न हो इसके लिए जरूरी है हम अपनी शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन करें।

संदर्भ ग्रंथ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-57-5
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुटज, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या -16
3. कुटज 18, 20, 22

भारत के ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर एवं चुनौतियाँः एक विश्लेषण

डॉ० राजीव रंजन सिंह

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, देवघर महाविद्यालय, देवघर

महात्मा गांधी कहा करते थे कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता, स्वशासन की वकालत किया करते थे। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान खादी और चरखे का प्रचलन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता और स्वनिर्भरता को ध्यान में रख कर किया। आज की स्थिति वैश्वीकरण के साथ विकास की है। तीव्र गति से आर्थिक विकास के नए आयामों को गढ़ा जा रहा है। परंतु इस विकास के साथ भारी असमानता भी उजागर हुई है। ग्रामीण-शहरी, अमीरी-गरीबी के बीच का अंतर व्यापक रूप से दिखता है। आज ग्रामीण क्षेत्र विकास की राह पर शहरों जैसा दौड़ पाने में लाचार बने हुए हैं। इस लाचारी को दूर करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने कई अहम पहल की हैं। पीयूआरए, मनरेगा, ग्रामीण विद्युतीकरण, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, स्वरोजगार कार्यक्रम, आधारभूत संरचना निर्माण सहित ऐसी कई योजनाएं ग्रामीण विकास व रोजगार वृद्धि हेतु चलाई जा रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से इन योजनाओं के लाभकारी प्रभाव स्पष्ट दिखे हैं। ग्रामीण विकास, रोजगार में वृद्धि हुई है। साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था और ग्रामीणों की स्थिति में भी सुधार आया है। कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं व प्रयासों की चर्चा यहां प्रासंगिक है।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि शहरीकरण की व्यापक प्रक्रिया ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति उदासीनता पैदा की है। शहर न केवल उत्पादन, वितरण और प्रबंधन के केंद्र बने हैं बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था की दिशा भी तय कर रहे हैं। संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र विगत कई दशक से महज कच्चे माल के स्रोत बन कर रह गए हैं। पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था जोकि कृषि, हस्तशिल्प, लघु-कुटीर उद्योगों पर निर्भर थी, वे औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा वैश्वीकरण के आगमन के साथ समाप्त-सी होती चली गई। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि नवीन तकनीकों के इस्तेमाल के बावजूद संकट का सामना कर रही है। भारत की कुल श्रम शक्ति का करीब 60 प्रतिशत भाग कृषि व सहयोगी कार्यों से आजीविका प्राप्त करता है। इसके बावजूद देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल 16 प्रतिशत है। निर्यात के मामले में भी इसका हिस्सा महज 10 प्रतिशत ही है। ग्रामीण रोजगार के महत्वपूर्ण व आकर्षक क्षेत्र होने के बावजूद कृषि क्षेत्र से लोगों का पलायन जारी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट में पिछले दिनों बताया गया था कि करीब 40 प्रतिशत किसान अन्य रोजगार करना चाहते हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर भारी संख्या में पलायन भी ग्रामीण रोजगार की निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। परंतु खुशी की बात है कि सरकार की मनरेगा सहित अन्य योजनाओं ने ग्रामीण रोजगार के अवसरों को व्यापक स्तर पर बढ़ाया है।

ग्रामीण व्यापार केन्द्र

भारत तीव्र आर्थिक विकास के साथ विश्व की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बना है। परंतु इस तीव्र विकास के साथ असमानताएं भी बढ़ी हैं। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और कृषि क्षेत्र का पिछड़ापन विकास की समग्र परिभाषा के दायरे से बाहर है। तीव्र आर्थिक विकास का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचे, इसे ध्यान में रखकर 2007 में ग्रामीण व्यापार केन्द्र योजना शुरू की गई। चार

'पी' से निर्मित यह एक आदर्श योजना के रूप में सामने आई है। चार 'पी' अर्थात् पब्लिक, प्राइवेट पंचायत पार्टनरशिप के तहत इस योजना के व्यापक उद्देश्य हैं। इसका उद्देश्य रोजगार के साधनों में वृद्धि के साथ गैर-कृषिगत कार्यों से आय के स्रोत निर्मित करना, ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देकर ग्रामीण विकास को गति देना है। आरंभ में इस योजना के तहत 35 जिलों का चयन किया गया।

आधारभूत संरचना निर्माण में रोजगार

ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप से आधारभूत संरचना निर्माण कार्यों में भी रोजगार के नए अवसर सृजित हुए हैं। इसके अलावा संरचना निर्माण के बाद इसके उपयोग से भी ग्रामीणों की आय बढ़ी है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, जलापूर्ति, विद्युतीकरण, दूरसंचार क्षेत्रों में कार्यों के बढ़ने से रोजगार व आय में बढ़ोतरी देखी जा सकती है। स्वच्छ जलापूर्ति के लिए भारत में 35 लाख से अधिक चापाकल तथा एक लाख पाइप जलापूर्ति योजना चलाई गई। इसमें भारी संख्या में लोग लाभान्वित हुए हैं।

इसी प्रकार पिछले वित्त वर्ष में रोजाना औसतन 144 किमी सड़क का निर्माण किया गया। इस वित्त वर्ष में 151 किमी सड़क के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। विश्व बैंक के एक अध्ययन में बताया गया है कि जिन ग्रामीण क्षेत्रों का संपर्क पक्की सड़कों से है, उन क्षेत्रों में सन् 2000 से 2009 के बीच आमदनी में 50 से 100 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण पर जब 10 लाख का निवेश होता है तब करीब 163 लोग गरीबी से बाहर निकल जाते हैं। सरकार ग्रामीण सड़क नेटवर्क को मजबूत करने के लिए व्यापक प्रयास कर रही है। इसी का नतीजा है कि ग्रामीण सड़कों की लंबाई जहां 2005-06 में 22891 किमी थी वही 2009-10 में यह बढ़कर 54821 किमी हो गई।

ग्रामीण पर्यटन और सेवा क्षेत्र में रोजगार

ग्रामीण क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता व देशज विशिष्टताओं के कारण पर्यटकों के लिए हमेशा से आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए कई व्यापक कदम उठाए हैं। पर्यटन क्षेत्र में रोजगार की असीम संभावनाएं हैं। संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन क्षेत्र विश्व के कुल रोजगार का प्रत्यक्ष रूप से 7 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष रूप से इससे कई गुना अधिक रोजगार प्रदान करता है। भारत में ही देखें तो देश के सकल घरेलू उत्पादन में इसका योगदान 2007-08 में प्रत्यक्ष तौर पर 6 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष तौर पर 9 प्रतिशत रहा है। देश में ग्रामीण पर्यटन की असीम संभावना को देखते हुए सरकार देश में हस्तशिल्प, ज्ञान, संस्कृति आदि को बढ़ावा दे रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज सेवा क्षेत्र की भूमिका भी बढ़ती जा रही है। इस हेतु सरकार विभिन्न योजनाओं व कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीणों को प्रशिक्षित कर रही है। दूरसंचार, चिकित्सा, शिक्षा, मरम्मती कार्यों में सरकार व्यापक सहयोग दे रही है।

नवीन संभावनाएं

औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण का स्पष्ट प्रभाव गांवों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संरचना पर देखा जा सकता है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव ग्रामीण उपयोग स्तर में वृद्धि के मामले में दिखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं, सेवाओं की मांग लगातार बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग ने गांवों में रोजगार के नवीन अवसरों को भी बढ़ाया है। गांवों का भविष्य रोजगार की असीम संभावनाओं से युक्त दिख रहा है। जरूरत है इसके बेहतर तरीके से नियमन, संचालित प्रबंधन के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण भागीदारी का स्तर उठाया जाए।

आज सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा, कृषि, उद्योग सहित अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां गांवों की जरूरत महसूस की जा रही है। गांवों का बदलता स्वरूप अब कच्चे माल के स्रोत के तौर पर नहीं दिखता। बल्कि गांव शहरों से मुकाबला करने को तैयार हो चुके हैं। सस्ता श्रम बल, सस्ती संरचना, सस्ता परिवहन व्यय आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं कि अब उद्योग जगत गांवों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। संभावना है पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप और निजी दोनों रूपों में गांव औद्योगिकीकृत होंगे। इस संभावना

के साथ ग्रामीण रोजगार के असीम दरवाजे खुलेंगे। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने ग्रामीण क्षेत्रों में संभावनाएं पैदा की हैं। कॉल सेंटर, बीपीओ, इंटरनेट संबंधी रोजगार के नए अवसर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर रूख कर रहे हैं। यह ग्रामीण रोजगार क्षेत्रों के लिए क्रांतिकारी बदलाव होगा।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

1999 से चल रही स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना को एक नये कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन में 24 जून, 2010 को मिला दिया गया। इस नई योजना ने ग्रामीण रोजगार की संभावना को पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ाया है। यह योजना ग्रामीण स्वरोजगार के उद्देश्यों पर केंद्रित है जिसमें राज्यों को उपलब्ध धन, संसाधनों, कौशल के आधार पर गरीबी उन्मूलन की अपनी योजना चलाने की छूट है। दो वर्षो के लिए इस योजना के तहत 16400 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान किया गया जिसके तहत करीब 17 लाख गरीब युवाओं को कौशल विकास का प्रशिक्षण देना है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार और उद्यम पर विशेष बल दिया जा रहा है। ग्रामीण विकास विभाग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य उपलब्धता में सुधार के लिए निरंतर प्रयास कर रहा है। विभाग मनरेगा के अंतर्गत दिहाड़ी रोजगार के अतिरिक्त, कुशल, अर्द्धकुशल दिहाड़ी मजदूर को पीएनएवाई-ग्रामीण तथा पीएनजीएसवाई के अंतर्गत सड़क निर्माण क्षेत्र में प्रोत्साहन दे रहा है। 2012-13 से ग्रामीण विकास विभाग का बजट दोगुना से अधिक हो गया है। सभी कार्यक्रमों और ग्रामीण संरचना संबंधी 14वें वित्त आयोग के अंतर्गत बड़े अंतरण में राज्य के योगदान को जोड़ने से कुल उपलब्ध धन 5 वर्षो की तुलना में तिगुना से अधिक हो जाता है। 51 लाख मकान निर्माणाधीन हैं, एक लाख किलोमीटर सड़कें निर्माण के विभिन्न चरणों में है और कृषि तथा संबंधित गतिविधियों के लिए मनरेगा के अंतर्गत बड़े स्तर पर दिहाड़ी रोजगार के अधिक अवसर सुनिश्चित हुए हैं।

महिला स्वयं सहायता समूहों को मदद

दीनदयाल अंत्योदय राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएन) के अंतर्गत महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक ऋण संपर्क पर बल दे रहा है ताकि उद्यम को बढ़ावा मिले। अभी 47, 000 करोड़ रुपये से अधिक का संपर्क है, जिसका इस्तेमाल कस्टम हायरिंग सेंटर, ग्रामीण परिवहन, कृषि तथा संबंधित कार्य पशुपालन, बागवानी, हथकरघा तथा हस्तशिल्प, खुदरा व्यापार आदि जैसे उपयोगी उद्यमों को बढ़ावा में किया जा रहा है। पिछले तीन वर्ष में महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक संपर्क दोगुने से अधिक हो गया है। डीडीयू-जेकेवाई तथा आरएसईटीआई के माध्यम से स्वरोजगार कार्यक्रम में प्लेसमेंट आधारित दिहाड़ी रोजगार से परिवारों को आजीविका को बढ़ाने में मदद मिल रही है।

मनरेगा मांग आधारित कार्यक्रम है। राज्यों को भारत सरकार द्वारा 40, 000 करोड़ रुपये जारी किए गए हैं। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश जैसे सूखा प्रभावित राज्यों के लिए पर्याप्त धन जारी किए गए हैं। सूखे के कारण केरल, तमिलनाडु और तेलंगाना के कुछ हिस्सों में पहली तिमाही में अधिक धन जारी किए गए हैं। आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा पुदुचेरी के श्रमिक बजट में वृद्धि की गई है ताकि दिहाड़ी रोजगार की अतिरिक्त मांग पूरी की जा सके। अब समय से दिहाड़ी जारी करना सुनिश्चित किया जाता है और 85 प्रतिशत मामलों में 15 दिनों के अंदर दिहाड़ी जारी कर दी जाता है।

मोदी सरकार ने प्रत्यक्ष रोजगार सृजन के साथ स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए कई स्तरों पर नीतियां बनाई हैं और उन्हें जमीन पर उतारा भी है।

मुद्रा योजना से बढ़े स्वरोजगार के अवसर

मुद्रा योजना के तहत अगस्त के आखिरी हफ्ते तक 8.19 करोड़ लोगों ने ऋण लिया है। यदि कम से कम एक व्यक्ति के रोजगार मिलने का भी औसत मान लिया जाये तो 8.19 करोड़ लोगों को रोजगार मिला है। इस योजना के तहत अब तक 3.42 लाख करोड़ रुपए वितरित किए जा चुके हैं जिनमें ज्यादातर लघु उद्यमी हैं। इनमें से बड़ी संख्या उन लोगों की है जो इससे पहले किसी भी प्रकार के व्यवसाय से नहीं जुड़े थे। मुद्रा ऋण 10 लाख रुपए तक के गैर-कृषि कार्यकलापों के लिए उपलब्ध है।

मुद्रा योजना महिला सशक्तिकरण का भी एक बेहतरीन उदाहरण है। इस योजना के तहत 30 अगस्त तक 8, 63, 78, 23 लोग लाभ ले चुके हैं, इनमें 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। यानि लगभग छह करोड़ से अधिक महिलाओं ने इसका लाभ उठाया है।

घर से रोजगार कर रहीं 20 लाख महिलाएं

एक रिपोर्ट के मुताबिक देश में घर से बैठकर कम से कम 20 लाख महिलाएं 8 से 9 अरब डॉलर का व्यापार कर रही हैं, जिसमें आने वाले समय में और वृद्धि होने की संभावना है। डिजिटल लेनदेन के सरकार के प्रयासों में अब होममेकर्स भी बढ़-चढ़कर हाथ बंटा रही हैं। व्हाट्सऐप और फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के जरिए वो अपने द्वारा बनाये गए सामान को लोगों तक पहुंचा रही हैं। ऑनलाइन रीसेलिंग का व्यापार करने वाली महिलाओं की संख्या में अगले पांच सालों में हर वर्ष 50 से 60 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान है। इसके साथ ही 2022 तक ये व्यापार 48 से 60 अरब डॉलर तक पहुंच जाने का अनुमान है।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय लाभ प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि लोगों के अधिकतम कल्याण के लिए विभिन्न विकास योजनाएं बनाते हैं। कुछ योजनाएं जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, मनरेगा, भारत निर्माण आदि ग्रामीण भारत के विकास के लिए सरकार द्वारा शुरू किए गए हैं। मछुआरों और पशुपालकों को किसान क्रेडिट योजना में शामिल किया गया है। इसमें करीब 2 लाख करोड़ रुपये के रियायती कर्ज बांटे गए जिससे किसानों के साथ इन ग्रामीण उद्योगों से जुड़े लोगों को भी रोजगार बढ़ाने में मदद मिलेगी। इसके अलावा रबी और खरीफ की खराब फसल कटाई से किसानों को बचाने के लिए भी 30 हजार करोड़ की मदद आपात कार्यगत पूंजी के तौर पर दी गई है। यह राशि लघु एवं सीमांत किसानों तक नाबार्ड और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के जरिये पहुंचेगी। 3 करोड़ किसान इसका लाभ उठा सकेंगे। आदिवासी मजदूरों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने को सरकार ने 6 हजार करोड़ की राशि दी है, जो कैम्पा फंड के तहत जारी किए जाएंगे। इसका इस्तेमाल वनीकरण, पौधरोपण, कृत्रिम और प्राकृतिक उत्थान, वन प्रबंधन, मिट्टी एवं नमी संरक्षण, वन्यजीव संरक्षण एवं प्रबंधन में किया जाएगा। इससे शहरी, अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में नौकरी के अवसर पैदा होंगे।

ग्रामीण विकास विभाग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य उपलब्धता में सुधार के लिए निरंतर प्रयास कर रहा है। विभाग मनरेगा के अंतर्गत दिहाड़ी रोजगार के अतिरिक्त, कुशल, अर्द्धकुशल दिहाड़ी मजदूर को पीएनएवाई-ग्रमीण तथा पीएनजीएसवाई के अंतर्गत सड़क निर्माण क्षेत्र में प्रोत्साहन दे रहा है। 2012-13 से ग्रामीण विकास विभाग का बजट दोगुना से अधिक हो गया है। सभी कार्यक्रमों और ग्रामीण संरचना संबंधी 14वें वित्त आयोग के अंतर्गत बड़े अंतरण में राज्य के योगदान को जोड़ने से कुल उपलब्ध धन 5 वर्षों की तुलना में तिगुना से अधिक हो जाता है। 51 लाख मकान निर्माणाधीन हैं एक लाख किलोमीटर सड़कें निर्माण के विभिन्न चरणों में है और कृषि तथा संबंधित गतिविधियों के लिए मनरेगा के अंतर्गत बड़े स्तर पर दिहाड़ी रोजगार के अधिक अवसर सुनिश्चित हुए हैं।

विभाग दीन दयाल अंत्योदय राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएन) के अंतर्गत महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक ऋण संपर्क पर बल दे रहा है ताकि उद्यम को बढ़ावा मिले। अभी 47, 000 करोड़ रुपये से अधिक का संपर्क है, जिसका इस्तेमाल कस्टम हायरिंग सेंटर, ग्रामीण परिवहन, कृषि तथा संबंधित कार्य पशुपालन, बागवानी, हथकरघा तथा हस्तशिल्प, खुदरा व्यापार आदि जैसे उपयोगी उद्यमों को बढ़ावा में किया जा रहा है। पिछले तीन वर्ष में महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बैंक संपर्क दोगुने से अधिक हो गया है। डीडीयू-जेकेवाई तथा आरएसईटीआई के माध्यम से स्वरोजगार कार्यक्रम में प्लेसमेंट आधारित दिहाड़ी रोजगार से परिवारों को आजीविका को बढ़ाने में मदद मिल रही है।

मनरेगा मांग आधारित कार्यक्रम है। राज्यों को भारत सरकार द्वारा 40, 000 करोड़ रुपये जारी किए गए हैं। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश जैसे सूखा प्रभावित राज्यों के लिए पर्याप्त धन जारी किए गए हैं। सूखे के कारण केरल, तमिलनाडु और तेलंगाना के कुछ हिस्सों में पहली तिमाही में अधिक धन जारी किए गए हैं। आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा पुदुचेरी के श्रमिक बजट में वृद्धि की गई है ताकि दिहाड़ी रोजगार की अतिरिक्त मांग पूरी की जा सके। अब समय से दिहाड़ी जारी करना सुनिश्चित किया जाता है और 85 प्रतिशत मामलों में 15 दिनों के अंदर दिहाड़ी जारी कर दी जाता है।

संदर्भ सूची

1. कुरूक्षेत्र, फरवरी 2013
2. अमर उजाला, दैनिक पत्रिका
3. जागरण जोश, वेबसाइट
4. परफोर्म इंडिया, नेशनल मूवमेंट फॉर डेवलप्ड इंडिया
5. ग्रमीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार
6. नायक, स. डी. 2003, डब्ल्यू, टी.ओ., एडं एग्रीकल्चर 'विल इट, डवांटेज इंडिया, बिजनेस लाइन, नई दिल्ली, 22 जुलाई, पृ-5
7. सुब्रह्मण्यम जी, गणपति, 2003, 'चेंज इन परसेप्शन' इकोनॉमिक टाइम्स, नई दिल्ली, 20 सितम्बर, पृ-12
8. बलदेव कुमार, 1969 कैपीटल फॉरमेशन इन, एग्रीकल्चर, इंडियन जेनरल ऑफ, एग्रीकल्चर, एंड रूरल इकोनॉमिक्स।

बिहार के रोहतास जिला के कृषि संबंधी समस्याः एक भौगोलिक अध्ययन

कुमार पुरुषोत्तम सुमन

(एम.ए., नेट/जेआरएफ)
शोध-छात्र, भूगोल विभाग
पटना विश्विद्यालय, पटना

सारांश

इस शोध-पत्र में रोहतास जिला के कृषि संबंधी समस्याओं पर शोध-पत्र प्रस्तुत किया गया है। इस जिला में भूमि की क्या स्थिति है, विभिन्न श्रेणी की भूमियों का किस प्रकार परिवर्तन हो रहा है, इस पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ की भूमि किस प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रही है तथा इन चुनौतियों का कैसे सामना किया जा सकता है। इन सभी पहलुओं पर प्रकाश इस शोध-पत्र में डाला गया है।

उद्देश्य एवं विधितंत्र

इस शोध-पत्र का उद्देश्य बिहार के रोहतास जिला का कृषि संबंधी समस्या पर प्रकाश डालना है तथा इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करना है।

इस शोध-पत्र को प्रस्तुत करने के लिए शोधकर्ता शरा श्तिीयक आंकड़ों का संग्रह किया गया है। इन आंकड़ों का विवरणात्मक मूल्यांकन किया गया है।

परिचय

रोहतास की अर्थव्यवस्था के लिए कृषि क्षेत्र के टिकाऊ विकास के बड़े निहित्तार्थ हैं। समग्र अर्थव्यवस्था में विकास को बढ़ावा देने, रोजगार पैदा करने और गरीबी मिटाने में इसकी भूमिका इसकी प्रचुर अगर्वर्ती और पृष्टवर्ती कड़ियों के कारगा पैदा होती हैं

कृषि में फसल उत्पादन के अलावा पशुपालन, बागवानी, मत्स्पपालन रेशम उत्पादन वन-वर्धन आदि सभी संश्रित क्रियाओं को शामिल करते है। जो सीधे भूमि से जुड़ी हुई है।

नीचे की तालिका में रोहतास जिला के भूमि उपयोग प्रारूप को दर्शाया गया है। इसी तालिका के आधार कृषि समस्या को इस शोध-पत्र में प्रस्तुत किया है-

रोहतास जिला : भूमि उपयोग प्रारूप

क्र.सं	श्रेणी			1991	%	2001	%	2011	%	2014	%
1	कुल भौगोलिक क्षेत्रफल			733169	100.00	390722	100.00	390722	100.00	390722	100.00
2	वन			179762	24.51	66723	17.07	66723	17.07	66723	17.07
3	बंजर और गैर कृषि भूमि			36241	4.94	16952	4.33	16831	4.30	16831	4.30
4	गैर कृषि कार्य के लिए रखी गयी भूमि	स्थलीय क्षेत्र		61696	8.41	37468	9.58	38489	9.85	39375	10.07
		जलीय क्षेत्र	स्थायी	9309	1.26	8961	2.29	8977	2.29	8977	2.29
			अस्थायी	1591	0.21	344	0.08	309	0.07	605	0.15
5	कृषि योग्य परती भूमि			8952	1.22	1128	0.28	1102	0.28	1087	0.27
6	स्थायी चारागाह			398	0.05	115	0.02	99	0.02	90	0.02
7	बाग-बगीचों के अंतर्गत भूमि			1193	0.16	2645	0.67	2879	0.73	2925	0.74
8	अन्य परती भूमि			7582	1.03	900	0.23	789	0.20	704	0.18
9	चालू परती भूमि			26106	3.56	1148	0.29	15870	4.06	6049	1.54
10	कुल भौगोलिक क्षेत्रफल			311830	42.53	136391	34.90	152052	38.91	143366	36.69
11	शुद्ध बोया गया क्षेत्र			401339	54.74	254331	65.09	238670	61.08	247356	63.30
12	कुल बोया गया क्षेत्र			585075	79.80	364435	93.27	281796	72.12	362578	92.97
13	एक बार से अधिक बोया गया क्षेत्र			184536	25.16	110104	28.17	43126	11.03	11522	29.48

स्रोत : जिला सांख्यिकी कार्यालय ।

वनीय क्षेत्र

सन् 2014 में रोहतास में 17-07 प्रतिशत भू-भाग पर वनीय क्षेत्र का विस्तार था। जबकि सन् 1991 में अविभाजिते बिहार के 24-51 प्रतिशत भू-भाग पर वन था। वनीय क्षेत्र में कमी के कारण कैमूर जिला के अंतर्गत अधिकांश क्षेत्र का आना है। इसके अलावा जीवन-निर्वाह कृषि के कारण वनों की कटाई है।

बंजर, वं गैर-कृषि भूमि

तालिका से स्पष्ट है कि बंजर और गैर-कृषि भूमि के प्रतिशत भागीदारी में लगातार कमी आ रही है। सन् 1991 में 4-94 प्रतिशतभू-भाग पर इस प्रकार के मृदा का विस्तार था जबकि 2014 ई0 में यह हिस्सेदारी घटकर 4-30 प्रतिशत हो गई। इस भूमि के अमाव के कारण भविष्य में कृषि क्षेत्र विस्तार, चारागाह के विस्तार की सभावना समाप्त हो जाती है।

गैरकृषि कार्य के लिए रखी गई भूमि

इस प्रकार की भूमि का लगातार विस्तार हो रहा है। सन् 2014 में 12-51 प्रतिशत भू-भाग पर इस श्रेणी की भूमि का विस्तार था जबकि सन् 2001 में 11-95 प्रतिशत भूमि पर इस श्रेणी की भूमि का विस्तार था। इस श्रेणी के भूमि को जलीय स्थलीय भाग में बॉटा गया है। इनमें से स्थायी जलीय क्षेत्र स्थिर है जबकि अस्थायी जलीय क्षेत्र में नाम मात्र की बढ़ोत्तरी हुई है। इसका कारण मानसून की अनिश्चितता तथा नदियों के बेसिन में गाद का जमा होना-

स्थलीय वर्ग की भूमि का निरंतर विस्तार हो रहा है। इस विस्तार का मुख्य कारण पारिवारिक विभाजन के बाद नवीन भवन का सड़क मार्ग के किनारे बनाना है। इसके अलावा गॉवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ने के लिए नवीन जमीन का अधिग्रहण सड़क

मार्ग बनाने के लिए किया जा रहा है। इस कारण उपजाऊ भूमि का निंरतर अभाव होता जा रहा है। वी-न-पी-सिन्हा, मोहम्मद नाजिम, चंद्रशेखर पाढक तथा पिंस अहमद फिरोज (2014) में ''बिहार का भूगोल'' में इस बात पर प्रकार डाला है। उन्होंने बताया है कि विकास कार्यों के कारण इस श्रेणी की भूमि में लगातार कमी आ रहा है।

कृषियोग्य परती भूमि

रोहतास जिला में कृषि योग्य परती भूमि में लगातार कमी आ रही है। इस श्रेणी के भूमि में कमी आने का मुख्य कारण कृषि सुविधाओं का विस्तार है।

स्थायी चारागाह

रोहतास जिला में स्थायी चारागााह की स्थिति नियत् है। डेढ़ दशक (2001-2014), में मात्र 0-02 प्रतिशत की बृद्धि हुई है। स्थायी चारागाह की सही अनुपात न होने के कारण पशुपालक चारों की खरीद बाजार से करते है। चारा की उपलब्धता का प्रतिस्थापन बैलों के स्थान पर गायों एवं भैसों पर हो गया है। यह इस कारण है क्योंकि खेती में बैंल का स्थान ट्रेक्टर ले चुके है। ऐसे पशुपालक जिनके पास चारागाह के लिए खेत नहीं है वह अपना चारा बाहरसे खरीदते है और पशुउत्पाद का बाहर में ही बेचते है।

बाग-बागीचा

रोहतास में इस श्रेणी के भूमि का विस्तार हुआ है। सन् 2014 में 0-74 प्रतिशत भूमि पर बाग-बगीचा था वहीं 2001 ई0 में 0-67 प्रतिशत भाग पर बाग-बगीचा का विस्तार था। पिछले डेढ़ दशक के दौरान इस श्रेणी की भूमि में 0-07 प्रतिशत भूमि का विस्तार हुआ है। इतने कम भूमि पर बाग-बगीचा का विस्तार फल की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता है। अत: बाहर से फल खरीद कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते है।

मिट्टी से जुड़ी समस्या

रोहतास जिला में सिचाई की समुचित व्यवस्था है। सिंचाई भी अच्छी व्यवस्था के कारण यहॉ गहन कृषि की जाती है। इस गहन कृषि के मदद के लिए रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों तथा खर-पतवार नाशकों का उपयोग किया जाता है। इन घटकों के अनुचित उपयोग के कारण यहॉ की मिट्टी की गुणवत्ता में ह्रास हो गया है। गोपाल सिंह ने ''ज्योग्राफी ऑफ इंडिया'' में बताया है कि मिट्टी से जुड़ी समस्या का प्रभाव बहुआयामी होता है। रोहतास में खाद्याम फसल की प्रधानता है जबकि तेलहन फसल की खेती सिर्फ सुदूर दक्षिण रोहतास में की जाती है। स्पष्ट है कि फसल-चक्र का पालन नहीं किया जाता है।

कृषि समस्या दूर करने के उपाय

व्यक्तिगत प्रसास : निजी टयूबवेल 'फसल-चक्र' जैविक खेती के प्रति रूचि आदि सभी क्रियाएं व्याक्तिगत प्रयास में आते है। कृषक मृदा की उर्वरता को बनाय रखने के लिए कभी-कभी खेत को परती भी छोड़ देते है।

जिला स्तर पर सरकारी प्रयास : सोन नहर से इस जिले में सिंचाई कार्य प्रमुख रूप से किया जाता है। हाल ही में दुर्गावती जलाशय से भी सिंचाई कार्य किया जा रहा है। इन दोनों बृहत योजनाओं के साथ-साथ सूक्ष्म सिंचाई योजनाओं से भी सिंचाई कार्य किया जा रहा है। वर्त्तमान समय में कृषि फीडर स्थापित किया जा रहा है। इसके अलावा बीज वितरण भी किया जा रहा है ताकि कृषकों को उत्तम कोटी का बीज मिल सके।

बिहार सरकार का प्रयास : विद्यमान समस्याओं को दूर करने तथा बिहार के कृषि विकास को तेज करने के लिए कृषि रोड मैप जारी किया गया है। अब तक तीन कृषि रोड मैप जारी किया जा चुका है। प्रथम बिहार कृषि रोड मैप 2008-12 तथा दूसरा बिहार कृषि रोड़ मैप 2012-2017 तक प्रभावी रहा। सन् 2017 में कृषि रोड मैप 2022 तक प्रभावी रहेगा।

तीसरे कृषि रोड मैप का उद्देश्य 1-54 लाख रूपया खर्च कर अनाज उत्पादन को 2 करोड़ टन करना है। इसके लिए एक गहन समेकित कृषि विकास योजना शुरू की गई है।

इस रोड मैंप के मुख्य उद्देश्य

- भूमि सुधार को बढ़ाना देने के लिए दाखिल खारिज को ऑन लाइन करना तथा मालिकाना हक निर्धारित करना
- सभी जिलों में कम्प्यूटरीकृत भूमि सर्वेक्षण
- इन्द्रधनुशी क्रांति लाने के लिए सहकारिता क्षेत्र में सुधार
- नहरीय सिंचाई के द्वारा जल संसाधन का विकास
- कृषकों का बाजार से जुड़ाव के लिए सम्पर्क पथ का निर्माण
- बागवानी को बढ़ाना देने के लिए कई विशेष कार्यक्रम शुरू किया गया है।
- खाद्यान का इनता अधिक उत्पादन करना कि प्रत्येक भारतीय के थाली में, क व्यंजन हो
- पशुपालन के बढ़ावा देने के लिए गया में प्रोजेक्ट सेमेन स्कीम शुरू किया गया है। इसके अलावा पशु चिकित्सकों की नियुक्ति की जा रही है।

संदर्भ

- गौतम, अल्का-2001-भारत का वृहद भूगोल-शारदा पुस्तक भवन-इलाहाबाद
- सिंह, गोपाल-1992-ज्योग्राफी ऑफ इंडिया-आत्मा राम, एंड सन्स-नई दिल्ली
- ममोरिया, चतुर्भुज-2002-भारत का वृहद् भूगोल-साहित्य पब्लिकेशन-आगरा
- तिवारी, आर-सी-2013-भारत का भूगोल-प्रवालिका पब्लिकेशन-इलाहाबाद
- योजना-जनवरी 2019, प्रकाशन विभाग-लोदीरोड. नई दिल्ली

भारत का राजधर्म और प्रवासन का सभ्यतायी विमर्श: उपनिवेशवादी दृष्टि बनाम हिन्दू दृष्टि

डॉ० अनुज कुमार मिश्रा

सहायक आचार्य, राजनीतिशास्त्र
पी.पी.एन.पी.जी. कॉलेज, कानपुर

सारांश

आजाद भारत ने जिस प्रकार की नीति विकास और पुनर्निर्माण की अख्तियार किया उसमें दो विकल्प एकदम स्पष्ट थे कि विकास ग्रामाधारित या शहरों को केंद्र मानकर किया जाए। स्पष्टत: गांधी प्रथम के और नेहरू द्वितीय के पक्षपोषक थे। परन्तु प्रश्न सही और गलत का है, उपयुक्तता और अनुपयुक्तता का है, भारतीय और अभारतीय का है, देशज और वह्याधारित का है, है तो स्वावलंबन और परावलंबन का भी। विभिन्न वैचारिक आयामों से देखने पर यह प्रमाणित है कि आज जो प्रवासन के संकट पूरे राष्ट्र के समक्ष उपस्थित है उसमें उपनिवेशवादी दृष्टि पूर्णत: अप्रासंगिक हो जाने क्र बाद भी प्रभावी है। सरकारें बदलती रही, संकट के अवसर बदलते रहे परंतु अंतर्राष्ट्रीय मजबूरी का हवाला देते हुए हमारा राष्ट्र अपने स्वत्व को अपनाकर अपनी राह नहीं अपना सका। आज इस संदर्भ में ''लोकल के प्रति वोकल'' की अवधारणा एक स्वाभाविक घोषणा है। प्रवासन का वर्तमान का संकट सभ्यतायी संकट है, यह आत्मविनाशी आधुनिक सभ्यता जिसे गांधी जी चाण्डाल सभ्यता कहते थे, यह उसकी उपज है। पूरे विश्व को काल कवलित करने की क्षमता से युक्त ऐसे संकट इस विकासधारा के साथ आते रहेंगे, ऐसी मनीषी भविष्यवाणी करते हैं। इस शोधपत्र में मैं अपनी विचार विवेचना के पक्षों का पृष्ठपोषण उपनिवेशवादी दृष्टि बनाम हिन्दू दृष्टि के विचारों को आधार मानकर करूँगा। मेरी दृष्टि में तथाकथित व्यावहारिक नेहरू की उपनिवेशवादी दृष्टि भारत के लिए अव्यावहारिक है, विशेषकर बहुसंख्यक श्रमजीवी समाज के लिए तो श्रापतुल्य है। समाजवाद और मार्क्सवाद की वाममार्गी दृष्टि और उसके चालाक इरादे उजागर भी हो चुके हैं और विनाशकारी भी साबित हो चुके है। हिन्दू सनातन दृष्टि ही अंतिम आशा की किरण है, इस शोधपत्र में यह मेरी स्थापना है। प्रवासन के स्वावलंबी समाधान हेतु गांधी, अरविंद घोष, तिलक, आनन्द कुमारस्वामी, बद्रीसाह ठुलधारिया और दीनदयाल उपाध्याय जैसे मनीषी हमारे मार्गदर्शक बन सकते हैं। सावरकर की आत्मगौरव की सर्वव्यापक हिन्दूदृष्टि भारत की अस्मिता की रक्षा हेतु बुनियादी आवश्यकता है। हिन्दूदृष्टि और भारत राष्ट्र की चिति के उन्नयन हेतु हिन्दू दृष्टि के नेतृत्व की दीर्घजीवी आवश्यकता है। साथ ही हजारों वर्षों की गुलामी और उस पर पिछले सौ वर्षीय विनाशकारी कम्युनिस्ट दृष्टिवाद से राष्ट्रीय चिति को मुक्त कराना होगा।

सूचक शब्द: प्रवासन, सभ्यतायी, उपनिवेशवादी, हिन्दूदृष्टि, स्वावलंबन।

वर्तमान विषय का चयन जिस सन्दर्भ में किया गया है, वह है वर्तमान का कोरोना संकट तथा भारत सहित दुनिया में इससे उपजे अनेक प्रकार के भौतिक और मानसिक संकट, 24 मार्च 2020 को पहली बार सम्पूर्ण भारत पर तालाबंदी लगायी गयी और प्रधानमंत्री मोदी की घोषणा के अनुसार यदि जीवन को चुनना है तो घरों में संयम के साथ रहना होगा। लोगों ने सर्वप्रिय प्रधानमंत्री की इस अपील का स्वागत और पालन किया। परन्तु भारत जैसे अति-सघन और अति-जनसंख्या वाले राष्ट्र में जहाँ शहरों में ''29% जनसँख्या देहाड़ी वालों की है, जहाँ 2011 के आंकड़ों के अनुसार 45 करोड़ लोगों का आन्तरिक विस्थापन होता है। 1 इन लोगों का साहस

बहुत दिन तक टिक नहीं पाया। अपनों की पीड़ा, शहरीतंत्र की क्रूरता, सरकारों की लाचारी, मृत्यु का भय, खुद को बेसहारा महसूस करने की पीड़ा जैसे कारकों ने 'लॉकडाउन' में भारत के दूरस्थ अंचलों से लोगों ने परिवार सहित अपने गावों की ओर पलायन किया। यह पलायन पैदल, साईकिल, ट्रैक्टर, ट्रकों आदि जैसे भी संभव हुआ लोग करते रहे। पलायन के साथ जारी रहा कानून के नाम पर पुलिस का निर्मम अत्याचार, 'अतिथि देवोभव' की संस्कृति में उपेक्षा और तिरस्कार की पीड़ा, हिंसा और लूटपाट की छिटपुट घटनाएं भी। एक प्रकार की बदहवासी और अराजकता का दृश्य इलेक्ट्रानिक, प्रिंट और सोशल मीडिया में उभरा। इस संकट में केवल कुछ की जिन्दगी नहीं गयी अपितु चला तो गया वह विश्वास भी जिसके सहारे लोग अपने उज्जवल भविष्य, अपनी संतानों के सुखद भविष्य हेतु, सामाजिक और आर्थिक विभीषिकाओं को मिटाने हेतु शहरों की ओर पलायन करते थे। तात्कालिकता का यह संकट अन्य तात्कालिकताओं की तरह अवश्य दूर हो जायेगा, परन्तु क्या इनके मूल कारणों को समझकर दूर करने का प्रयास होगा? क्या फिर से यह पलायन दंश नहीं झेलना पड़े इसका आश्वासन मिलेगा? यह सोचनीय है।

'सबक' यही है कि हमें आत्मावलोकन की आवश्यकता है। इस संकट काल ने आत्मनिर्भरता का महत्त्व सिद्ध किया है। 'आत्मनिर्भरता' एक बहुआयामी धारणा है। इसके सन्दर्भ में व्यक्ति, परिवार, समाज, और राष्ट्र के स्तर पर हमें हमारी संस्कृति के दीर्घजीवी सबक याद करने होंगें, जीवन में उतारने होंगे। शोधपत्र के शीर्षक में प्रयुक्त 'राजधर्म' और 'सभ्यतायी विमर्श' जैसे वाक्यांश भारत की सुदीर्घ चिंतन प्रक्रिया से निसृत आत्मनिर्भरता की ओर संकेत करते है। वर्तमान संकट में प्रवासी मजदूरों के प्रति जिस प्रकार की असंवेदना दिल्ली और महाराष्ट्र जैसी सरकारों द्वारा दिखायी गयी वह भारत के राजधर्म सिद्धांत से विपथगमन के परिणाम है। भारतीय राजधर्म 'प्रजारक्षण' को राज्य का परम उद्देश्य मानता है। कौटिल्य का कहना है-''प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में ही राजा का हित है''[2] विष्णुधर्मसूत्र में भी यही बात कही गयी है[3] जिस राजा ने अपनी प्रजा की भरपूर रक्षा की उसे न तप करने की आवश्यकता है और न यज्ञ करने की[4]। प्रजारंजन के यह संकल्प भारतीय वांग्मय में सर्वत्र विद्यमान है-वैदिक वांग्मय, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्रनीति, राजनीतिप्रकाश, रामायण, महाभारत, हर्षचरित, के साथ आधुनिक भारतीय मनीषियों[5] के आख्यानों में प्राप्त होता है। भारतीय राजधर्म की यह शिक्षा आजाद भारत के तथाकथित धर्मनिरपेक्ष वातावरण में अपने स्रोतों की भावभूमि उनकी नैतिक बलवत्ता को सुखाने वाली साबित हुई[6]। नितांत भौतिकता पर आधारित राजनीतिक सिद्धांतों के संचालन से भारत की जनता और उसका राजनीतिक अभिजनवर्ग अपने दायित्वबोध से कट चुका है[7]। राजनीतिक अभिजनवर्ग की पिछले 70 वर्षों से जो कार्यशैली रही है, वह मात्र सत्ताभोग की पर्यायवाची बनकर कार्य करती रही है। भारत से अंग्रेज तो चले गये परन्तु अंग्रेजियत हावी होती जा रही है8। और आधुनिक नगरीय व्यवस्था के आपाधापीपूर्ण विस्तार ने तो भारतीय मानस को जैसे ग्रहण ही लगा दिया। समाज के योगक्षेमध्आत्मनिर्भरता की रक्षा राज्य का कर्तब्य माना गया है। पिछले हजार से अधिक सालों से भारत की इसी आत्मनिर्भरता पर अनेकानेक हमले हुए हैं। प्रारंभ में विनाश के यह हमले मुस्लिम आक्रमणकारियों के हुए, और एक लम्बे समय तक भारत को मुस्लिम पराधीनता का सामना करना पड़ा। मुस्लिम शासकों की कट्टरता और तलवार के जोर पर धर्मांतरण की नीति के चलते बहुसंख्यक हिन्दू समाज ने राज्यविमुखता तथा पारिवारिक सामाजिक एकान्तता के आवरण से अपनी संस्कृति की रक्षा का प्रयास किया। भारत के आपातकालीन समय में अपनाए इस 'कच्छप कवच' की नीचतापूर्ण आलोचना कैथरीन मेयो की पुस्तक 'द फेस ऑफ मदर इंडिया' में की गयी। इस पुस्तक में वह एक ओर महमूद गजनी की हिंसक लूट व अत्याचारों को महिमामंडित कर उसे बाइबिल में वर्णित जोसुआ, गीदेयोन, और डेविड के समतुल्य बताया, वहीं 'हिन्दू धर्म को भ्रष्ट और निराशाजनक धर्म' कहा। महात्मा गाँधी ने मेयो की इस पुस्तक को 'नाली की सफाई करने वाले निरीक्षक की रिपोर्ट' की संज्ञा दी[9]। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जहाँ ईरान और मिश्र जैसी सभ्यताओं को नष्ट कर उन्हें इस्लाम में परिवर्तित कर दिया, वहीं ''भारत ने पूर्ण पराजय कभी स्वीकार नहीं की। किसी न किसी रूप में स्वाधीनता का संघर्ष जारी रखा। भारत ने दिल्ली के मुस्लिम को, चाहे वो तुर्क हो या मुगल कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि उन्होंने भारतियों की चेतना शक्ति को अपने अधीन कर लिया। कृषक से लेकर राजा तक इस विशाल भारत के लोगों ने किसी न किसी रूप में स्वतंत्रता का संघर्ष जारी रखा। पंजाब के खत्री और जाट, मारवाड़ और मेवाड़ के राजपूत, विजयनगर के राजा, मध्य भारत के गोंड, मराठे, और सिक्ख आदि कई समूह इस काम में लगे रहे। इस संघर्ष को बल प्रदान के करने के लिए भारत ने इस काल में अनेक महापुरुषों, वीरों और संतों को जन्म दिया जिन्होंने अपने महान कार्यकलापों से भारतीय जीवन और परंपरा को बल प्रदान किया जैसे पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, कृष्णादेवराय, रानी दुर्गावती, महाराणा प्रताप, रानी चेन्नमा, अहोम साम्राज्य, शिवाजी महाराज, गुरुगोविन्द सिंह''[10] आदि प्रमुख रहे। इस तरह के अनेकानेक संघर्ष

पथों से भारत और भारतीयता का मूल भारतीय जनमानस में शेष रहा। मुस्लिम तंत्र के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत पर अपना शिकंजा कसा और यह उल्लेखनीय है कि सैकड़ों आक्रमणों और थपेड़ों को सहता हुआ भारत इतना नहीं टूटा जितना ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टूटा। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने 200 वर्षों के अपने शासनकाल में गिरगिट की तरह इतने रंग बदले कि उसके असली स्वरूप की पहचान ही मुश्किल हो गयी। मुस्लिमों का कभी विरोधी और अंततः पक्षधर बना, उदारवादियों और समाजसुधारकों के लिए वह उम्मीद की अंतिम किरण बना। राष्ट्रवादियों को दबाने का दमनतंत्र बना। उदारवादियों और अहिंसावादियों ने क्रांतिकारियों और राष्ट्रवादियों का इसलिए समर्थन नहीं किया ताकि ब्रिटिश साम्राज्य उन्हें चरमपंथी न समझ ले। इसलिए एक राष्ट्र के महानायकों को भी 'बांटों और राज करो' का हिस्सा बना लिया गया[11]। केवल राजनीतिक मोर्चे पर ही नहीं, आर्थिक मोर्चे पर भी विनाश किया[12]। जहाँ एक ओर आत्मनिर्भर उद्यमिता को नष्ट किया, वहीं परावलम्बी आर्थिक नीति के द्वारा भारत के गहन आर्थिक शोषण की प्रणाली प्रारम्भ की, रेल आदि के द्वारा भारत के अंतस्थल तक दोहन के शिकार हो गये। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत पर ब्रिटिश शासन के सभ्यतायी दायित्व को सिद्ध करने के लिए 'श्वेत लोगों पर भार'[13] की साम्राज्यवादी नीति का प्रचार किया। इसके पूर्वपक्ष के रूप में जहाँ भारतीय राज्य और राजनीति की पद्धति को बर्बरतंत्र के रूप में बदनाम करने की कोशिश की वहीं भोगवादी ब्रिटिशतंत्र को 'स्वतंत्रता, समानता और उत्तरदायित्व' के रूप में घोषित किया[14]। ध्यान रहे ब्रिटिशर्स ने स्वयं के घरेलू राजतंत्र को तो आज तक पूर्णरूप से समाप्त नहीं किया परन्तु दुनिया की इस पद्धति को बर्बर घोषित करते रहे, यह साम्राज्याभिमान नहीं तो क्या है? सबसे बढ़कर अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षातंत्र को नष्ट करने का कार्य किया[15]। क्योंकि भारतीय पद्धति के शिक्षातंत्र के बने रहते हुए अंग्रेजी राज और उससे भी भयानक ईसाईतंत्र भारत को कभी तोड़ने में सफल नहीं हो पाता[16]। भारत में शिक्षा की तृणमूल आधारित व्यवस्था समाजनीति, अर्थनीति, राजनीति और संस्कृति के संरक्षण का माध्यम हुआ करती थी[17]। इसलिए अंग्रेजों ने सर्वप्रथम स्वदेशी शिक्षातंत्र को अवैधानिक घोषित कर दिया और प्रतिस्थापन में अंग्रेजी माध्यम और यूरोपीय संस्कृतिमूलक शिक्षातंत्र को प्रभावी बनाया। पहली पीढ़ी से ही इस साम्राज्यवादी तंत्र ने जो उत्साहजनक परिणाम दिए उसने ब्रिटिश साम्राज्य को और ईसाईतंत्र को भविष्य के लिए पूर्ण आश्वस्त कर दिया। आज परिणाम सबके सामने हैं[18] इसलिए आज भी अश्रुपूरित गिजुभाई बधेका का 'दिवास्वप्न' भारतीय शिक्षा के लिए दिवास्वप्न ही बनता जा रहा है। परिणामस्वरूप अंग्रेजी मानस के अनुकूल उपजे बुद्धिजीवियों की पीढ़ियों ने भारत और भारतीयता की स्वयंभू अथॉरिटी बनने का प्रयास किया। अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप ही भारत पर उदारवादी-उपयोगितावादी, समाजवादी-मार्क्सवादी वैचारिकी के भयानक अभारतीय परिणाम उत्पन्न हुए। इस वर्ग के अधिकांश उन्नायकों के रोल मॉडल अमेरिका, यूरोप और रूस-चीन के साम्यवादियों में पाए जाते थे। दुर्भाग्यवश यही आजाद भारत के कर्णधार बने । इनका उद्देश्य यूरोपीय अवसंरचना पर भारत का पुनर्निर्माण करना था। आधुनिक भारत का प्रवासी मजदूरों का संकट इसी यूरोपीय अवसंरचना से उत्पन्न संकट है। विकास और पुनर्निर्माण का भारतीय मॉडल तो पिछले 70वर्षों में भारत में स्थान प्राप्त ही नहीं कर सका[19]। जैसा कि स्पष्ट है कि स्वाधीन भारत में पहला कार्य आत्मनिर्भरता की प्राप्ति ही था। जिसे गांधीजी और आनंद कुमारस्वामी 'स्वदेशी' कहते थे विवेकानंद, महर्षि अरविन्द और धर्मपाल जैसे चिन्तक गीतायी 'स्व-धर्म' मानते थे। परन्तु इस आत्मनिर्भरता को स्थापित करने के संसाधन कौन से हो? जो संसाधन जर्जर भारत के पास है अर्थात परंपरागत कृषि और हस्तशिल्प के संसाधन अथवा साम्राज्यवादियों की तिजोरी में बंद पूंजी, तकनीक और मशीनरी आधारित द्रुतगामी विदेशी संसाधन। बहुतों का तर्क है कि निश्चित रूप से भारत की करुणांत गाथा अतिशीघ्र समाधान की मांग करती थी, इसलिए भारत ने द्रुतगामी आद्योगीकरण का मार्ग चुना । नेहरुजी इसे 'आधुनिकता के मंदिर' कहा यद्यपि अपने जीवन काल में ही उन्होंने इसे भूल करार दिया था[20]। नेहरूजी पर यूरोप हावी था, यूरोप की चमक उन्हें चमत्कृत करती थी। इंग्लैण्ड के फेबियनवादी विचार को वामपंथी बुद्धिजीवियों की पूर्ण निष्ठा द्वारा अतिशीघ्र क्रियान्वित करना चाहते थे। स्टालिन की सफलता तथा नेहरूजी की नीति के पक्षपोषक भारतीय वामपंथी बुद्धिजीवी जिन्हें समाज को मात्र बुजुर्वा और सर्वहारा में ही देखने की आदत लगी थी के सहयोग से यह एकराय बनीं कि तीव्र आद्योगीकरण और शहरीकरण ही भारत की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का एकमात्र हल है। यद्यपि बाद में महालनोबिस ने गुन्नार मिर्डल के 'एशियन ड्रामा' के मुख्य तर्क ''भारत ने जिस सामाजिक और आर्थिक क्रांति का वादा किया था, उसे मूर्त रूप नहीं दिया जा सका'' पर लिखे अपने लेख में स्वीकार किया कि भारतीय अर्थव्यवस्था प्रगति के रास्ते पर 'प्रस्थान' ही नहीं कर पाई है, न ही उसमें 'स्व-उत्पादक विकास' का आवेग पैदा हो सका है और न ही 'आद्योगिक क्रांति' हो पाई है[21]। भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र के

काल्पनिक रूपांतरण का यह नाटक आज तक चल रहा है, बुद्धिजीविता का 'यूरोपीय और वामपंथी प्रेत' आज तक भारत मानस के उपनिवेशीकरण के रूप में हावी है प्रवासन का दंश इसी मूल में छिपा है।

आज भारत की आवश्यकता व्यापक हिन्दू-दृष्टि के विकास की है। हिन्दू दृष्टि पर आधारित विकास का भारतीय मॉडल वामपंथी दृष्टि के ''एक-आयामी जड़तत्व या अर्थाधारित'' मॉडल के विपरीत ''लोक-समग्र'' की निष्ठा पर आधारित है, जिसका विकास सनातन कालक्रम की वहनीय धारा से सम्पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना के साथ हुआ है। यहाँ केवल मानवीय उपभोग के बजाय प्रकृति के स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए मानवीय उपयोग का सिद्धांत प्रचलित रहा। यही हिन्दू-जीवन दृष्टि का मूल है। इसलिए यह अलग से पर्यावरण विमर्श की कभी आवश्यता नहीं पड़ी, वह तो प्रतिदिन के जीवन अभ्यास का हिस्सा था न कि बौद्धिक जुगाली मात्र। आधुनिक समय में इसकी प्रासंगिकता जिस रूप में मै देखता हूँ वह है-प्रथम, ग्रामोद्धार हेतु शरीर-श्रम एवं नागरिक समाज निर्माण की अहिंसा आधारित दृष्टिय द्वितीय, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टिय तृतीय, हिन्दू शक्तिवाद और राष्ट्रीय अखंडता की दृष्टिय चतुर्थ, हिन्दू तत्वशास्त्र की दृष्टिय।

श्री अरविन्द ने लिखा, ''भारत को अपनी रक्षा करनी होगी और इसके लिए उसे अपने सांस्कृतिक विधि-विधानों का इस प्रकार नया निर्माण करना होगा कि वे उसके प्राचीन आदर्श को अधिक तेजस्वी, अधिक घनिष्ठ एवं पूर्ण रूप में प्रकट करें। फिर उसे अपने आक्रमण के द्वारा इस प्रकार उन्मुक्त ज्योतिकी लहरों के आत्मप्रसारी विजयी चक्करों के रूप में उस समस्त जगत के ऊपर फैला देना चाहिए जिसे एक बार उसने सुदूर युगों में अधिकृत किया था''[22] हिन्दू चिंतन की धारा के चिन्तक वामपंथियों को कभी रास नहीं आए क्योंकि इनकी सोच लेनिन, माओ का पार ही नहीं कर पाई। इरफान हबीब तो इस हद तक गये उन्होंने ''गाँधी को 'सनकी' और उनके हिन्द स्वराज को पश्चिमी सभ्यता की आलोचना तथा ब्रिटिश पूर्व भारत का आदर्शीकरण काफी बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है''[23]। हिन्दू मनीषियों ने भारत की सुविचारित व्यवस्था का संकल्प सम्पूर्ण राष्ट्र की दृष्टि से एक सांस्कृतिक मानव की संकल्पना के साथ प्रतिपादित किया जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एवं समूह अपनी आवश्यकताओं में स्वावलंबी तथा अपनी सोच में स्वतन्त्र परन्तु ध्येय में सर्व-कल्याण की भावना से युक्त हो सके। डॉ विश्वनाथ मिश्र ने लिखा कि ''जबकि आज की आद्योगिक सभ्यता नौकरशाहों, राजनेताओं, अध्यापकों, वकीलों, डॉक्टरों, कार्पोरेट मालिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, आदि की जिस फौज पर टिकी है, वे आजीविका के लिए मानसिक श्रम पर ही तो निर्भर है, और अपनी जरूरतों के लिए दूसरों के श्रम पर निर्भर है। इस वर्ग-विभाजन और इसमें निहित शोषण का अंत कैसे होगा?........ इसके लिए जब गाँधी गाँव की लौटने की बात करते है तब समानता का घडियाली आंसू बहाने वाले इसे अव्यावहारिक करार देने में जुट जाते है। यह अव्याहारिक किस के लिए है? परजीवी बुद्धिजीवियों के लिए या श्रमजीवियों के लिए। श्रमजीवी तो श्रम कर ही रहा है, बस फर्क यह है वह शहरों में अपनी गुलामी को नहीं समझ रहा है और गावों से पलायन कर रहा है। गावों से श्रम का यह पलायन ही शहरों के श्रीमानों के देह-धर्म के पालन का आधार बना हुआ है। यह पलायन वास्तव में स्वेच्छा से शारीर धर्म के पालन की प्रवृत्ति के बजे बाध्यता में शरीर-धर्म के पालन की प्रवृत्ति का द्योतक है, क्योंकि आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को ऐसा बना दिया है और बनाता जा रहा है कि यदि मजबूरी न हो तो मनुष्य कोई शारीरिक श्रम ही न करे''[24]। इसलिए महात्मा गाँधी भारत का पुनर्निर्माण 'गावों' को केंद्र में रखकर करना चाहते थे। लघु-माध्यम और मझोले उद्योगों सहित कृषि वाणिज्य और गौरक्ष के सिद्धांत द्वारा वह भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। ग्राम आधारित इस पुनर्निर्माण के सभी संसाधन तत्कालीन भारत में भी मौजूद थे सिर्फ सामाजिक पुनरुथान और अनुकूल राज्यदृष्टि से एक समर्थ भारत खड़ा किया जा सकता था। पंचायत की स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को उसके जीवन को सर्वोत्तम बनाने के सभी उपाय पंचायत स्तर पर उपलब्ध कराने का इसमें प्रावधान था। रक्षा, शिक्षा, सेवा, कृषि, कला-शिल्प, स्वास्थ्य आदि के सभी उपादान प्राचीनतम ज्ञान के पुनर्जीवन से तब प्राप्त हो सकते थे जिसे आधुनिक आंधी में हम आज लगभग विस्मृत कर बैठे है। ग्राम आधारित इस दृष्टि में न तो सांप्रदायिक टकराव की सम्भावना थी न हिंसक प्रतिस्पर्धा की न तो अति-लालच को प्रोत्साहन संभव था और न अत्यंत दरिद्रता और सांस्कृतिक प्रदूषण की गुंजाइश। धर्मांतरण जैसे घिनौने कृत्य सामाजिक प्रभाव से दूर किये जा सकते थे। अनाथालय, वृद्धावस्था गृह, नारी निकेतन, बालिका संरक्षण गृह, विधवा आश्रमों, मनोविदग्लता की बढती महामारी, अवसादग्रस्तता जैसे ''आधुनिक आभूषण'' नियंत्रित ही होते। परन्तु दुर्भाग्यवश आधुनिक भारत ने इसे अव्यावहारिक समझा। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की हिन्दू दृष्टि हिन्दू संस्कृति के गौरवमय अतीत की निरंतरता को प्रतिपादित करती है। इस दृष्टि से जहाँ हिन्दू संस्कृति के आत्मगौरव की स्वीकारोक्ति पर बल दिया जाता है वहीं प्रतिपक्ष के आक्षेपों के निराकरण का कार्य भी हिन्दू दृष्टि से किया जाता है। स्वामी दयानंद[25] की ऋषितुल्य जीवनचर्या ने पराभव के काल में वैदिक ओजस्विता की अलौकिक दीप्ति माध्यम

से इस्लाम और ईसाईयत को ही चुनौती नहीं दी अपितु ब्रह्मसमाज की 'छद्म धर्मनिरपेक्षता' से हिन्दू संस्कृति की रक्षा की। तिलक[26] ने 'कर्मवाद' के सिद्धांत को गीतारहस्य में, विवेकानंद[27] ने शिकागो धर्मसभा से लेकर सर्वांग हिन्दू जनमानस तक गौरवशाली थाती को पुनर्जीवित किया। डॉ. आनन्द कुमारस्वामी[28] ने पश्चिमी बुद्धिजीवियों के निराधार कुतर्कों एवं आक्षेपों का जवाब हिन्दू संस्कृति के गौरवमय अतीत को नई व्याख्याओं के माध्यम से उजागर किया। इसमें हिन्दू जीवनपद्धति, उसके कला सिद्धांत, उसके राजनीतिक तत्वदर्शन, उसके दार्शनिक विचार, भारतीय ग्रंथों के परिशीलन के तरीकों की व्याख्या करके मैक्समूलर आदि से उपजी भ्रांतियों[29] आदि का निराकरण किया। महर्षि अरविन्द ने पश्चिमी समाज को 'आर्थिक बर्बर'[30] घोषित करते हुए अपने ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के आधार, द लाइफ डिवाईन, गीता प्रबंध, द सीक्रेट ऑफ वेदाज, द ह्यूमन साइकिल जैसे अनेक ग्रंथों लेखों एवं योगसाधना से निसृत तप:भूत तत्वज्ञान से हिन्दूसंस्कृति के वाह्य एवं आत्मतत्व को अतिमानस के धरातल तक विस्तारित किया। सर्वसमावेशी प्राकृतिक चिंतन की भावभूमि को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जीवंत किया तथा गीतांजली जैसे अनुपम महाकाव्य द्वारा गीता तत्व को सम्पूर्ण मानवजाति तक विस्तारित किया। डॉ. राधाकृष्णन, भगवानदास, कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य, जिद्दू कृष्णमूर्ति जैसे दार्शनिकों ने हिन्दू दर्शन की गम्भीर गवेषणा से जीवन और दर्शन की समग्र चुनौती को पश्चिमी भौतिकवादी दर्शन के घरौंधे में प्रविष्ट करा दी तथा भारतीय आत्मतत्व की शक्ति से रसेल जैसे नास्तिक को भी हिला दिया। हिन्दू शक्तिवाद एवं सांस्कृतिक राष्ट्रीय अखंडता की संकल्पना को आत्मविस्मृति एवं पराभव के काल में भी समर्थ रामदास[31], आचार्य राघवेन्द्र[32], स्वामी दयानंद, विवेकानंद, वीर सावरकर[33], हिन्दू महासभा, और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने अग्रिम पंक्ति में बनाए रखा। हिन्दू शक्तिवाद काल्पनिक अहिंसा के अभारतीय सिद्धांत का प्रबल विरोधी है। हिन्दू शास्त्र ब्रह्म और क्षत्र की शक्ति के समन्वय का प्रतीक है[34]। बृहस्पति, वशिष्ठ और व्यास ब्रह्मशक्तिध्ज्ञानशक्ति के रूपक हैं वहीं इंद्र, राम, और कृष्ण क्षात्रशक्तिध्पौरुष के प्रतिक है। वैदिक साहित्य, पौराणिक आख्यान, रामायण महाभारत जैसे महाकाव्य, स्मृतियां और परवर्ती दंडनीति का विपुल साहित्य इन रूपकों की सम्यक विवेचना का प्रबल प्रमाण और धर्मरक्षा का हेतु है। दुष्टबुद्धि के निवारण हेतु धर्मशक्ति की आधारशिला आवश्यक है। अर्ध-नारीश्वर संघार के देवता है, तथा कष्टों के निवारण का विग्रह स्वरूप। इसलिए व्यापक समाज एवं राष्ट्र रक्षा का चिंतन भारत का प्राचीनतम चिंतन है। आज भारत को समर्थ सैन्य शक्ति को अति-आवश्यकता है। अशोक और गांधीजी की अहिंसा तथा नेहरूजी का कल्पनावाद अपने सीमित सन्दर्भ में काल की सीमा के अंतर्गत उपयोगी हो सकता है। सर्वकालिक एवं सार्वभौम नहीं। हमें हिंसायुक्त नहीं शक्तियुक्त पौरुषयुक्त राष्ट्र की आवश्यकता है। राष्ट्र रक्षा में प्रतिकार की प्रबल सामर्थ्य की धारणा को बनाये रखते हुए भी, सावरकर तिलक और अरविन्द घोष एक शांतिपूर्ण विश्व के समर्थक है। सरदार पटेल की राष्ट्रीयता अखंडता की दृष्टि, हिन्दू शक्तिवाद एवं स्वाभिमान की सार्वभौम उद्घोषणा है। इन्होंने अपने चरित्र से यह स्थापित किया कि संघर्ष पथ में व्यक्तिगत आदर्श नहीं राष्ट्रीय गौरव ही यथार्थ का ध्येय है। किसी राष्ट्र का पतन उपयुक्त दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव में हो जाता है। ईसाई भोगवादी समाज दुनिया के उपनिवेशों से लूटे संसाधनों के आधार पर आज चरम आर्थिक समृद्धि के बावजूद सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से दिवालिया हो रहे हैं। कोरोना संकट से उपजे संकट ने सबकी पोल खोल दी। इस्लामिक राष्ट्र स्वयं के आततायीतंत्र के धार्मिक मूल्यों से ग्रस्त है। हिन्दू संस्कृति की 'छद्म धर्मनिरपेक्षता' और 'पाश्चात्य शिक्षा' ने जकड़ रखा है। अति-व्यापक राजनीतिकतंत्र के पिछले 70 वर्षों के स्वरूप ने ज्ञान के धर्मनिरपेक्षीकरण के नाम पर हिन्दू विरोधवाद की एक मुहिम चला रखी थी जिसमें ईसाईतंत्र और इस्लामिक समाज ने तो अल्पसंख्यकवाद की आड़ में अपनी मान्यताओं के अनुसार अपनी धार्मिक मान्यताओं का विस्तार किया परन्तु बहुसंख्यक हिन्दू जीवनदृष्टि को अपनी ही मात्रभूमि में ईसाई-इस्लाम और ''वामपंथी दुष्चक्र''[35] के साथ साथ क्षुद्र-राजनीतिक स्वार्थों के चलते विकृत किया जाता रहा। कला की स्वतंत्रता के नाम पर हिन्दू आस्था की प्रतीक देवियों की नग्न मूर्तियाँ बनाई गयी, वैदिक ऋचाओं के अनुशीलन के बजाय छिद्रान्वेषण को विद्वता माना गया। जब के. के. मोहम्मद, एला दानिएलु, डेविड फ्राले, राजीव मल्होत्रा, अरुण शौरी जैसे लोग अनेकानेक लोग इसे उजागर करते है तो उसे फासीवाद से जोड़कर मजाक बनाया जाता है। आज भी शिक्षातंत्र की वैधता का मानदंड विदेशियों और वामपंथियों के बौद्धिक दुष्चक्र पर अवलंबित है। भारतीय शोध पर इस दुष्चक्र का इतना बोझ है कि मूल प्रतिभा कुंठित हो चली है। इसलिए आज भी आवश्यक वही है जो हमेशा से रही कि हिन्दू वांग्मय के मूल्यों से युक्त, हिन्दू संस्कृति से निसृत भावों के आधार पर हिन्दू तत्वशास्त्र एवं आध्यात्मशास्त्र का समावेश शिक्षा की प्रत्येक विधा में होना अनिवार्य है। समर्थ मानव एवं गौरवशाली हिन्दू संस्कृति के वारिश को इस अभिज्ञान से पोषित होना आवश्यक है, तभी बौद्धिक लावारिश बनने से मुक्ति मिलेगी। आज प्रवासन की पीड़ा का मूल कारण मनुष्यता के पतन में, मनुष्यता का यह पतन हिन्दू मूल्यों की उपेक्षा का परिणाम है। अंग्रेज हिन्दुस्तानी बनकर रहें तो हम उन्हें अपने में मिला सकते हैं। हाँ अगर वे अपनी सभ्यता के साथ यहाँ रहना चाहें तो हिन्दुस्तान में उनके लिए कोई जगह नहीं हैं। ऐसी स्थिति पैदा कर देना हमारे हाथ में हैं''[36]। यही हिंदुत्व की मांग है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. भावनानी, रिखिल आर. एंड लेसिना, बेथानी. नेटिविज्म एंड इकोनोमिक इंटीग्रेशन एक्रोस द डेवलपिंग वर्ल्ड कोलिजन एंड एकोमोदेशन कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 2018। साथ ही देखें-https://www.downtoearth.org.in/hindistory/economy/rural.economy/Why-do-migrants-leave-the-cities-71156
2. काणे, पांडुरंगवामन. धर्मशास्त्र का इतिहास. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1965 पृष्ठ 603। राज्ञोंहिव्रतमुत्थानंयज्ञ:कार्यानुशासनम्। दक्षिणावृत्तिसाम्यंचदीक्षितस्याभिषेचनम्। प्रजासुखेसुखंराज्ञ:प्रजानांचहितेहितम्। नात्मिप्रयम्हितंराज्ञ:प्रजानांतुप्रियंहितम्।
3. काणे, पांडुरंगवामन. पूर्वोक्तपृष्ठ603। प्रजासुखेसुखीसुखीराजातद्दु:खेयश्चदु:खित:। स:कीर्तियुक्तोलोकोस्मिन्प्रेत्यस्वर्गमहीयते द्य।
4. काणे, पांडुरंगवामन. पूर्वोक्तपृष्ठ603। शांतिपर्व69। 72-73।
5. आनन्द कुमार स्वामी, काशी प्रसाद जायसवाल, एन.सी. बद्योपाध्याय, यू.एन. घोषाल, ए.एस. अल्टेकर, बद्री साह ठुलधारिया, अरोबिन्दो घोष, कृष्णचंद्रभट्टाचार्य, केवल मोटवानी जैसे चिंतकों ने यह कार्य किया।
6. स्वामी, सुब्रह्मण्यम. हिंदुत्व एवं राष्ट्रीय पुनरुथान (अनुवादक) प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2103, पृष्ठ 25।
7. उपाध्याय, दीन दयाल. एकात्म मानववाद दीनदयाल उपाध्याय प्रकाशन लखनऊ, 1998। स्वामी, सुब्रह्मण्यम पूर्वोक्त पृष्ठ 15।
8. गाँधी, महात्मा. हिन्द-स्वराज महात्मा गाँधी का जीवन दर्शन सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2011।
9. मल्होत्रा, राजीव. विभिन्नता पाश्चात्य सार्वभौमिकता को भारतीय चुनौती. हार्पर कालिंस इंडिया, 2013 पृष्ठ 199-200।
10. मधोक, बलराज. हिन्दू राष्ट्र एक ऐतिहासिक विवेचन. भारती साहित्य सदन नई दिल्ली, 1958 पृष्ठ 40।
11. तिलक महाराज और तत्कालीन कांग्रेस के मध्य का मर्मबिंदु यही था। सावरकर, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु आदि के मामले में नीति अनीति के मिथ्या प्रपंच राष्ट्र-नीति पर भारी पड़े। जेल से रिहा होने बाद भी सावरकर पर लगाये गये राजनीतिक प्रतिबन्ध को समाप्त करने के लिए क्या किया गया?
12. विस्तृत विवरण के लिए देखें-सुन्दरलाल. भारत में अंग्रेजी राज, प्रकाशन विभाग भारत सरकार 1961 पृष्ठ 43-69, बर्डवुड, जॉर्ज क्रिस्टोफर मोल्सवर्थ. द इंडस्ट्रियल आर्ट्स ऑफ इंडिया. चौपमैन एंड हॉल, 1884। हावेल, ई. बी. ''इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन एंड 'स्वदेशी', .एसेज ऑन इंडियन आर्ट, इंडस्ट्री एंड एजुकेशन 1907। चन्द्र, बिपिन. भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव एवं विकास पृष्ठ 40, दत्त, रजनी पाम. आज का भारत अनुवादक (रामविलास शर्मा) ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन 2000, पृष्ठ 109-132।
13. श्वेत लोगों के भार की तीव्र आलोचना भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा की गयी। यह वाक्यांश रुडयार्ड किपलिंग ने साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा दायित्व ग्रहण करने के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया। इसे एक अन्य नाम 'सिविलाइजिंग मिशन' भी दिया गया अर्थात पश्चिमी देश की गोरी जाति के लोगों का एशिया अफ्रीका के 'असभ्य' लोगों को सभ्य बनाने की ईश्वर प्रदत्त जिम्मेदारी। इसलिए उन्हें हरहालत में यह जिम्मेदारी निभानी है। इसमें ईसाई धर्म प्रचार की बात जोड़कर कहा गया कि 'अन्धकार में फंसे लोगों को प्रकाश में लाना' इसमें नस्लवाद को जोड़कर गोरी जाती की श्रेष्ठता को स्थापित करना। देखें-प्रधान, रामचंद्र राज से स्वराज, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2017।
14. ब्रिटिश दावों के खोखलेपन को साबित करने तथा भारतीय राजतन्त्र के व्यापक आख्यान राष्ट्रवादियों द्वारा सप्रमाण प्रस्तुत किये गये। जब मैक्समूलर ने यह कहा 'यूनानी के लिए जीवन और वास्तविकता से अस्तित्व परिपूर्ण है, लेकिन एक हिन्दू के लिए यह एक सपना या माया है' इसका खंडन भारतीय मनीषी भगवानलाल इन्द्रजी, आर. जी. भंडारकर, आर. एल. मिश्र, बालगंगाधर तिलक सहित अमेरिकी विद्वान् हॉपकिंस ने 'ए हिस्ट्री ऑफ एनसियंट संस्कृत लिटरेचर' में किया। इसके अलावा पूर्णेंदु नारायण सिंह, ए. सी. दास, एस. के. अभ्यंकर, शामाशास्त्री, काशीप्रसाद जायसवाल, पी. एन. बेनर्जी, के. वी. रंगास्वामी आयंगर, आर. पी. मजूमदार, एन.एन.लॉ, एन.सी बद्योपाध्याय, वी. आर. आर. दीक्षित, यू.एन. घोषाल, बेनी प्रसाद, एस. वी. विश्वनाथ आदि प्रमुख रहे। विस्तृत विवरण के लिए शर्मा, रामशरण भारतीय इतिहास एक पुनर्विचार हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011 पृष्ठ 27-37।
15. अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षातंत्र को नष्ट करने के प्रमाणों हेतु देखे सुन्दरलाल भारत में अंग्रेजी राज प्रकाशन विभाग भारत सरकार, 2000 पृष्ठ 169-190। धर्मपाल रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा पुनरुत्थान ट्रस्ट अहमदाबाद 2007, श्रीअरविन्द अर्ली कल्चरल राइटिंग वैल्यम-1 द कम्पलीट वर्क्स ऑफ श्री अरबिंदो, श्रीअरविन्द आश्रम ट्रस्ट पांडिचेरी 2003, पृष्ठ 353-430।
16. ईसाईतंत्र की करतूतों के बढ़ने के लिए भारतीय शिक्षातंत्र को नष्ट करना आवश्यक था। देखें उपरोक्त सुन्दरलाल, धर्मपाल, श्रीअरबिंदो, के अलावा वैल्यूम-16 धर्मपाल सम डाक्यूमेंट ऑफ क्रिश्चियनाइजेसन ऑफ इंडिया एंड अल्टरेशन इन स्ट्रेटजीज 1700-1900, आश्रम प्रतिष्ठान सेवाग्राम 2000। आज के समकालीन सन्दर्भ के लिए देखें-शौरी, अरुण भारत में ईसाई धर्म-प्रचारतंत्र निरंतरताएं, परिवर्तन और

दुविधाएं वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2014। मल्होत्रा, राजीव भारत विखंडन द्रविड़ और दलित दरारों में पश्चिमी हस्तक्षेप हार्परकालिंस पब्लिशर्स इंडिया 2013।

17. स्वदेशी शिक्षातंत्र को अवैधानिक घोषित किये बिना प्रतिस्थापन में अंग्रेजी माध्यम और यूरोपीय संस्कृतिमूलक शिक्षातंत्र को प्रभावी बनाना संभव नहीं था। राजसत्ता के समस्त दुरूपयोग किये गये।
18. भारतीय शिक्षा पर ब्रिटिश साम्राज्य और ईसाई तंत्र के परिणाम सबके सामने हैं। देखें आनंद कुमारस्वामी द डांस ऑफ शिव, बगबियर ऑफ लिटरेसी, एसेज इन नेशनल आइडियलिज्म, स्पिरिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर इन द इंडियन थ्योरी ऑफ गवर्नमेंट तथा एम. ए. बूच की पुस्तक राइज एंड ग्रोथ ऑफ इंडियन लिब्रलिज्म फ्रॉम राम मोहन राय टु गोखले बड़ोदा 1938, 54-56।
19. खिलनानी, सुनील. भारतनामा (अनुवादक) अभय कुमार दुबे राजकमल पेपरबैक्स, 2016 पृष्ठ 97-103। इसमें खिलनानी ने नेहरु के महलनोबिस मोह का बहुत सटीक वर्णन किया है।
20. हैरिस, ईश्वर सी. गांधियंस इन कंटेम्परारी इंडिया द विजन एंड द विजनरीज. द एडविन मेलन प्रेस, 1943 पृष्ठ 288। देखें, बंग ठाकुरदास का लेख चेलेंजिंग द मल्टीनेशनल्स एंड सेंट्रलाइज्ड पोलिटी।
21. खिलनानी, सुनील. पूर्वोक्त पृष्ठ 102।
22. अरविन्द, घोष. भारतीय संस्कृति के आधार. श्रीअरविन्द आश्रम पांडिचेरी (अनुवादक) जगन्नाथ वेदालंकार चन्द्रदीप त्रिपाठी 1968 पृष्ठ 16-17।
23. हबीब, इरफान. गाँधी एक पुनर्विचार नई दिल्ली सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट 2004, पृष्ठ 30 व 32।
24. मिश्र, विश्वनाथ. पश्चिमी ज्ञानोदय के वैचारिक संकट ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2019 पृष्ठ 184।
25. दयानंद, स्वामी. सत्यार्थ प्रकाश, भ्रमोच्छेदन, भ्रान्ति निवारण, अनु-भ्रमोच्छेदन जैसे अनेक ग्रंथों से हिन्दू रक्षा का संकल्प पूर्ण किया।
26. तिलक, बालगंगाधर. गीतारहस्य, आर्यो का मूल स्थान, वेदों का काल निर्णय और वेदांग ज्योतिष के साथ केसरी और मराठा में उनके लेख राष्ट्रीयता का विपुल साहित्य प्रदान करते है।
27. विवेकानंद, स्वामी. प्राच्य और पाश्चात्य तथा भारतीय व्याख्यान (अनुवादक) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अवलोकनीय है।
28. कुमारस्वामी, स्वामी. द डांस ऑफ शिव, बगबियर ऑफ लिटरेसी, एसेज इन नेशनल आइडियलिज्म, स्पिरिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर इन द इंडियन थ्योरी ऑफ गवर्नमेंट के अलावा द न्यू अर्प्रोचेस टु वेदाज, राजपूत पेंटिंग, द ट्रांसफार्मेशन ऑफ नेचर इन आर्ट' उल्लेखनीय है।
29. कुमारस्वामी, स्वामी. ने द न्यू अर्प्रोचेस टु वेदाज नामक ग्रन्थ में मैक्समूलर द्वारा प्रयुक्त अनुवाद की शब्दानुवाद पद्धति की आलोचना की तथा ऋचाओं का संस्कृतिमूलक सम्यक अनुवाद किस प्रकार किया जाये इसकी रूपरेखा प्रस्तुत की।
30. श्रीअरबिंदो ने अपने महाकाव्य 'सावित्री' में पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता को 'आर्थिक बर्बरता' की पराकाष्ठा माना।
31. रामदास, समर्थ जो शिवाजी महाराज के गुरु थे। इनके ग्रन्थ 'दासबोध' का प्रभाव मराठा शासन और बाद में तिलक, सावरकर, केशव बलिराम हेडगेवार और भविष्य स्वाभिमानी जनता पर देखा जा सकता है।
32. आचार्य राघवेन्द्र जो महाराणा प्रताप के गुरु थे। आप शस्त्र और शास्त्र दोनों में सिद्ध थे। आचार्य राघवेन्द्र के राजपूती स्वतंत्रता के लिए किये गये बलिदान के कारण आज वह अमर हो गये।
33. वीर सावरकर का जितना अपमान पिछले कांग्रेस शासन और वामपंथी शैक्षिक कुठारतंत्र द्वारा हुआ, वैसा अपमान किसी राष्ट्र पुरुष का उसकी स्वतन्त्र मात्रभूमि में नहीं हुआ। इरफान हबीब कहते है राष्ट्रीय संग्रहालयों में इनका योगदान खोजने पर भी नहीं मिलेगा, इस दोगले झूठ में तो बद्तोव्याघात ही है। अंडमान की जेल, ब्रिटिश संग्रहालय मराठी साहित्य भरा है। देखने वाली आँखे चाहिए।
34. यह सिद्धांत भारतीय राजधर्म का मूल सिद्धांत है। देखें-आनन्द कुमारस्वामी का ग्रन्थ स्पिरिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर इन द इंडियन थ्योरी ऑफ गवर्नमेंट, फेंच दार्शनिक रेने गेने का लेख 'स्पिरिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर', मनुस्मृति अध्याय 1 श्लोक 19, 100, अध्याय 9 श्लोक 322, अध्याय 11, श्लोक 83, । यजुर्वेद अध्याय 20, मंत्र 25।
35. वामपंथी दुष्चक्र हेतु देखें, शौरी, अरुण 'जाने माने इतिहासकार कार्यविधि दिशा और उनके छल, वाणी प्रकाशन 2002। 80 वर्ष की परिपक्व अवस्था में वामपंथियों के पाखंड को उजागर करता कमलेश का लेख जो कथादेश में सितम्बर 2013 में 'झूठ और अज्ञान का दुस्साहस' शीर्षक से छपा।
36. गाँधी, महात्मा. हिन्द स्वराज महात्मा गाँधी और उनका जीवन दर्शन सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 52।

कोरोना काल और प्रवसन: समस्या या संसाधन?

डॉ० अपर्णा

सहायक प्राध्यापक, राजनीति एवं अंतराष्ट्रीय संबंध विभाग
केन्द्रीय विश्वविद्यालय झारखंड, रांची

9 जून, 2020 को माननीय सुप्रीम कोर्ट ने पलायन कर रहे श्रमिक कामगारों के संदर्भ में एक अहम फैसला सुनाया। अपने फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र एवं राज्य सरकारों को यह निर्देशित किया कि सभी प्रवासी कामगारों का पंजीकरण के द्वारा पहचान किया जाए एवं अगले 15 दिनों में उन्हें कार्यस्थल से घर जाने के लिए समुचित व्यवस्था की जाये। प्रवासी श्रमिकों की वर्तमान समस्या की शुरुआत 24 मार्च से प्रारंभ हुए पूर्ण लॉक डाउन का प्रतिफल था। लॉकडाउन के कारण लोगों का व्यापक पलायन देखने को मिला है, जिसका प्रमुख कारण अंतर-राज्य प्रवासियों द्वारा वृहद पैमाने पर किया गया आवागमन है। हालिया लॉकडाउन के समय निश्चय ही श्रमिकों की घर वापसी एक विकट समस्या के रूप में परिलक्षित हुई जिसके कारण सुप्रीम कोर्ट ने उक्त फैसला सुनाया।

भारत में प्रवसन

भारत का संविधान सभी नागरिकों को पूरे भारत में स्वतंत्र रूप से स्थानांतरित करने व भारत के किसी हिस्से में निवास करने की स्वतंत्रता देता है (A rticle-19,1(D))। 2011 की जनगणना के अनुसार 45.36 करोड़ लोग रोजगार, व्यवसाय एवं अन्य हितसाधनों के लिए अपने जन्म के जिले से बाहर पलायन कर गए अर्थात प्रवासित हो गए। यह संख्या देश की कुल आबादी का 37% है। एक अध्ययन के अनुसार, वार्षिक शुद्ध प्रवाह की मात्रा कार्यशील जनसंख्या (15 से 64 वर्ष के आयु वर्ग की संख्या) का 1% है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में कार्यशील जनसंख्या का आकार 48.2 करोड़ था। 2016 में इसकी संख्या 50 करोड़ से अधिक अनुमानित है और इसी आधार पर आर्थिक सर्वेक्षण ने प्रवासी कार्यबल का आकार 20% या 2016 में 10 करोड़ से अधिक आंका गया।

देश में अंतर-राज्य प्रवासियों का आधिकारिक आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। विकासशील देशों के लिए अनुसंधान और सूचना प्रणाली के प्रोफेसर अमिताभ कुंडू द्वारा 2011 की जनगणना, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के सर्वेक्षण और आर्थिक सर्वेक्षण के आधार पर इसकी गणना की गई है। प्रोफेसर कुंडू के अनुसार, देश में अंतर-राज्य प्रवासियों की संख्या 65 मिलियन है। इन प्रवासियों में 33% अर्थात लगभग 20 से 22 मिलियन श्रमिक हैं। इन आंकड़ों में स्ट्रीट वेंडर सम्मिलित नहीं हैं। यदि उन्हें जोड़ा जाए तो सकल प्रवासी संख्या में और अधिक वृद्धि होगी। वर्तमान समय में प्रवासी श्रमिकों की जो भी समस्या दृष्टिगोचर हुई है उसका मूल कारण उपरोक्त प्रवासी कामगार हैं। लॉकडाउन के कारण से पूर्ण बंदी होने से उनका रोजगार समाप्त हो गया। उनकी आजीविका की चाहत ने उन्हें मूल स्थान से वर्तमान स्थान की ओर पलायन के लिए उन्मुख किया था। कोरोना काल में आजीविका के साधनों की तालाबंदी ने उन्हें पुनः मूल स्थान पर लौटने को विवश किया।

कोरोना काल में प्रवसन की प्रवृत्ति

लॉकडाउन के पश्चात सर्वाधिक अंतर राज्य प्रवास संकट दिल्ली, मुंबई, सूरत जैसे महानगरों में देखा गया। प्रवसन के आकर्षक और विकर्षक कारक (Push and Pull factor) होते हैं। महानगरों में रोजगार के अधिक अवसर और बेहतर जीवन निर्वाह जैसे आकर्षक कारकों ने सुदूर ग्रामीण एवं कम विकसित राज्यों के श्रमिकों को आकर्षित किया था। इन महानगरों की कुल जनसंख्या का एक वृहद हिस्सा प्रवासी श्रमिकों का था। आईआईएम अहमदाबाद के प्रोफेसर चिन्मय तुम्बे ने कहा कि दिल्ली में प्रवसन दर 43% है, जिसमें 88% अंतर-राज्यीय हैं। मुंबई में प्रवसन की दर 55% है, जिसमें 46% हिस्सेदारी अंतर-राज्यीय प्रवासियों की है। इसी प्रकार सूरत में प्रवसन की दर 65% है, जिसमें अंतर-राज्यीय प्रवासियों की भागीदारी 50% है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इन प्रवासी श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा भारत के मध्यवर्ती राज्यों से संबंधित है। प्रोफेसर अमिताभ कुंडू के अध्ययन के अनुसार, अंतर-राज्यीय प्रवासियों का एक-चौथाई केवल उत्तर प्रदेश से संबंधित है, जबकि बिहार के प्रवासी श्रमिकों की भागीदारी 14% है। राजस्थान 6% एवं मध्य प्रदेश 5% के साथ क्रमशः तीसरे एवं चतुर्थ स्थान पर है। कहने का तात्पर्य है कि कोरोना काल में श्रमिकों का जो अनैच्छिक प्रवास उत्पन्न हुआ है, उसका वृहत्तर भाग इन्हीं चार प्रदेशों से संबंधित है। यदि हालिया समय के श्रमिकों के पलायन से उत्पन्न समस्याओं पर दृष्टिपात किया जाए तो यह दृष्टिगोचर होता है कि जिन-जिन राज्यों से पूर्व में जितना अधिक प्रवसन हुआ कोरोना काल में वहां उतनी ही अधिक समस्याएं विकट हुई हैं। वर्षों तक क्रमिक रूप से जिन राज्यों से आजीविका हेतु श्रमिकों का प्रवास हुआ, वर्तमान कोरोनाकाल में प्रवास स्थल पर आजीविका और जीवन निर्वाह की और सुरक्षा की अपेक्षा में सभी श्रमिकों द्वारा एकबारगी पलायन के कारण यह संकट उत्पन्न हुई। इस संकट का पूर्वानुमान सरकारों द्वारा नहीं किया गया, इसी कारण श्रमिकों का पलायन एक विकट समस्या के रूप में परिलक्षित हुई। इसी के निदान हेतु सुप्रीम कोर्ट द्वारा संज्ञान लेते हुए श्रमिकों के घर वापसी हेतु समुचित व्यवस्था के लिए सरकार को दिशा निर्देश जारी किए गए।

प्रवसन के कारण

वर्तमान संकट के समय उन कारणों को जानना आवश्यक है जिसके कारण श्रमिकों या कामगारों का प्रवसन मूल निवास से अन्यत्र हुआ। बेहतर जीवन यापन, रोजगार अवसर की उपलब्धता, बेहतर स्वास्थ्य एवं शैक्षणिक सुविधा जैसे कारक प्रवसन के मूल कारण है। उपरोक्त सभी कारणों का मिश्रित आकर्षण श्रमिकों को मूल स्थान से वर्तमान निवास की ओर स्थानांतरण के लिए उत्तरदायी है। वर्तमान समय में भारत की अर्थव्यवस्था ''सेवा अर्थव्यवस्था'' है। इसकी शुरुआत 1990 के दशक के उदारीकरण की व्यवस्था से होती है। उदारीकरण के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्र विकास दर देखी गई। भारत के जनांकिकी आर्थिक अवसंरचना के अध्ययन से यह दृष्टिगोचर होता है कि उदारीकरण से पूर्व भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में जहां प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्र की प्रधानता थी, वही उदारीकरण और आर्थिक सुधारों के पश्चात सेवा क्षेत्र (service sector) में अत्यंत तीव्र वृद्धि दर्ज की गई। वर्तमान में भारत विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है तो इसमें सेवा क्षेत्र का योगदान सर्वाधिक है। 2019-2020 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान 55% से अधिक है जबकि कृषि एवं अन्य प्राथमिक क्षेत्र की सहभागिता सिमट कर 15% रह गई है। भारत में विदेशी निवेश का भी दो-तिहाई हिस्सा इसी सेवा क्षेत्र में रहा। सेवा क्षेत्र की विस्तृतता और कृषि क्षेत्र की संकुचनता के कारण ही प्रवास को बढ़ावा मिला है।

महानगरों के उपनगर एवं नगर सेवा क्षेत्रों के केंद्र के रूप में उभरे सेवा क्षेत्र के यह केंद्र राज्य के वह 'विशिष्ट क्षेत्र' थे जहां आधारभूत संरचनाएं उपलब्धि थी। वृहत्तर मुंबई, पुणे, बेंगलुरु, गुरुग्राम, गौतम बुध नगर (नोएडा) इसी सेवा क्षेत्र के विकसित खंडों के उदाहरण हैं, जहां वर्तमान में प्रवसन की उच्च दर देखी गई है। वर्ष 2016-2017 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार जिले से जिले प्रवास में सबसे अधिक प्रवसन गौतम बुध नगर (नोएडा) और गुरुग्राम जैसे नगरीय जिलों में हुआ है। 2011 की जनगणना के अनुसार पहली बार भारत में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि, ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि से अधिक रही। इस वृद्धि का एक प्रमुख कारण ग्रामीण जनसंख्या का स्थानांतरण नगर की ओर होना बताया गया है।

वर्तमान कोरोनाकाल में प्रवासी श्रमिकों की समस्या भी इन्हीं विकसित सेवा क्षेत्र के खंडों में सर्वाधिक परिलक्षित हुई है। भारत में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया ने अर्थव्यवस्था को निश्चय ही द्रुत गति प्रदान की साथ ही साथ इसके कारण क्षेत्रीय असमानता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई। हरित क्रांति के समय भारत के जो क्षेत्र पिछड़ गए थे वह क्षेत्र एक बार पुनः उपेक्षित ही रह गए, जिसके कारण पिछड़े क्षेत्रों से विकास खंड की ओर प्रवासियों का सतत प्रवाह अबाध रूप से होता रहा। वैश्विक महामारी के समय जब इन सेवा क्षेत्रों की सेवाएं बंद हो गई तो प्रवासी श्रमिकों को अपने मूल स्थान पर लौटने के सिवा अन्य कोई रास्ता भी नहीं बचा था। यहां यह कहना सर्वथा सत्य है की वर्तमान समस्या की कहानी दशकों पूर्व से लिखी जा रही थी जो कोरोना काल में दृष्टिगोचर हुई।

यद्यपि शुद्ध-प्रवसन (Net Migration) के संदर्भ में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे राज्यों से शुद्ध-प्रवसन सर्वाधिक होता है। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गोवा आदि राज्य शुद्ध-प्रवसन प्राप्तकर्ता हैं, जबकि झारखंड, मध्य प्रदेश आदि शुद्ध-प्रवसन दाता राज्य हैं। आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर-भारत से दक्षिण-पश्चिम भारत या पिछड़े राज्यों से अपेक्षाकृत अधिक विकसित राज्यों की ओर प्रवसन का ट्रेंड रहा है। यहां यह कहना भी जायज है कि विकास की असमानता प्रवास का मूल कारण है। अब यह प्रश्न समय समीचीन हो जाता है कि इस असमान विकास का उत्तरदायी कौन है? वह कौन से कारक हैं जिसके कारण विकास महानगरों तक ही सीमित रहा?

उपर्युक्त प्रश्नों के उचित जवाब के लिए भारतीय नीति-निर्धारण और विकास के विभिन्न योजनाओं के समेकित अध्ययन और अवलोकन की आवश्यकता है। स्वाधीनता के पश्चात योजना आयोग का गठन, यूएसएसआर (USSR) के तत्कालीन राष्ट्रपति जोसेफ स्टालिन के आयातित विचारों का देशीकरण करने की कोशिश थी। भारत ने समाजवाद का रास्ता जरूर चुना, किंतु भारत में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों की मौजूदगी की वजह से यूएसएसआर (USSR) की तरह व्यापक योजना लागू करना मुश्किल था। इसलिए यहां निजी क्षेत्र को अलग हटाकर केवल सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए योजनाएं बनाई जाने लगी।

विकास के इस केंद्रीयकृत मॉडल में केंद्र को असीमित वित्तीय अधिकार थे और इसकी आत्मा समानुपातिक धन आवंटन में निहित थी। परंतु केंद्र-राज्य के अंतर राजनैतिक संबंधों के कारण राज्यों में समानुपातिक वितरण नहीं हो पाया। धन एवं योजनाओं की असमान वितरण ने कालांतर में क्षेत्रीय असमानता को और भी अधिक गहरा किया। बिहार और झारखंड (एकीकृत बिहार) उपजाऊ मृदा और खनिज की प्रचुरता के बावजूद पिछड़े रहे। उत्पादन की असीमित क्षमता के बावजूद उत्तर प्रदेश सहित अन्य उत्तर भारतीय राज्य, हरित क्रांति से अछूते रहे।

बदलते राजनैतिक परिवेश में योजना आयोग, केंद्र सरकार के डंडे के रूप में कार्य करने लगा और राज्यों को उपकृत करने या दंड देने के रूप में भी इसका इस्तेमाल किया जाने लगा। इसका अप्रोच भी top-to-bottom था, जिससे राज्य अपने अनुरूप नीति ना बनाकर जबरन थोपी गई नीति पर ही कार्य कर रहे थे। उपयुक्त सभी कारणों से देश के अंदर असमान विकास की प्रवृत्ति परिलक्षित हुई। यहां तक कि एक ही राज्य के कुछ खंड विकसित हो गए और अधिकांश भाग पीछे रह गए। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरू, सूरत, हैदराबाद, गुरूग्राम, गौतम बुध नगर (नोएडा) आदि इसी असमान विकास के विकसित खंड के उदाहरण हैं। वर्तमान प्रवासी श्रमिकों की समस्या भी इन्हीं 'विकसित खंड' में सर्वाधिक परिलक्षित होती है। अत: यह कहना सर्वथा सत्य ही होगा कि वर्तमान की समस्या की कहानी दशकों पूर्व से लिखी जा रही थी जो कि इस महामारी के काल में दृष्टिगोचर हो रही है।

प्रवास स्थल पर प्रवासियों की समस्या

अपनी समस्याओं से छुटकारा पाने और एक बेहतर जीवन की कामना से श्रमिक मूल स्थान से पलायन करते हैं। प्रवासी श्रमिकों की कौशल हीनता उनके अवसरों को सीमित करता है। शहरी अनौपचारिक व्यवस्था में उनका शोषण और दोहन भी होता है। अधिकतर रोजगार असंगठित क्षेत्र में होने के कारण एवं स्पष्ट नियोजन इकाई की अनुपलब्धता न केवल रोजगार को खोजने में बाधा उत्पन्न करते हैं अपितु अपर्याप्त भुगतान भी करते हैं। दिल्ली विधानसभा चुनाव के पूर्व सीएसडीएस द्वारा आयोजित ''राजनीति और समाज के बीच चुनाव सर्वेक्षण 2017-19'' की रिपोर्ट के अनुसार आधे से अधिक श्रमिक कामगारों की पारिवारिक मासिक आय ?5000 है। एक चौथाई श्रमिक परिवार ऐसे हैं जिनकी मासिक आय 5000 से ध1000 है। 13% परिवार ऐसे हैं जो 10000 से /20000 प्रति माह कमाते हैं जबकि केवल 8% परिवार ऐसे हैं जिनकी मासिक आमदनी /20000 से अधिक है।

इसके अतिरिक्त परिवार से श्रमिकों को अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा ''प्रवास की लागत'' के रूप में चुकाना पड़ता है। स्वास्थ्य, शिक्षा, जन वितरण प्रणाली जैसी राज्य की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ केवल मूलनिवासी को प्राप्त होने के कारण प्रवासी श्रमिक इन योजनाओं से वंचित रह जाते हैं। इस कारण प्रवासी श्रमिकों की प्रवास लागत में प्राय: वृद्धि होती रहती है। वर्तमान समय में श्रमिकों की आय के साधन तो अवरुद्ध हो गए किंतु उनकी प्रवास लागत यथावत बनी रही। श्रमिकों के ''रिवर्स माइग्रेशन'' का यह सबसे बड़ा मुद्दा था।

श्रमिकों के रिवर्स माइग्रेशन से उत्पन्न चुनौतियां

लॉकडाउन के समय भले ही औद्योगिक प्रतिष्ठान और सेवा क्षेत्र का काम रुक गया था, परंतु उसकी समाप्ति के पश्चात श्रमिकों की मांग में तीव्र वृद्धि होगी। श्रमिकों की निर्बाध आपूर्ति के बिना उत्पादन नकारात्मक रूप से प्रभावित होगा। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तेलंगाना तथा हिमाचल प्रदेश में कृषि एवं कृषिजन्य कार्य हेतु बड़े पैमाने पर श्रमिकों की आवश्यकता होती है। रिवर्स माइग्रेशन के कारण इन राज्यों की कृषिक गतिविधियां बुरी तरह प्रभावित हो सकती है। यही कारण था कि तेलंगाना के मुख्यमंत्री के विशेष आग्रह पर श्रमिकों के एक समूह (222 श्रमिक) को बिहार के खगरिया जिले से 8 मई 2020 को स्पेशल ट्रेन से तेलंगाना के लिंगमपल्ली राइस मिल में काम करने के लिए भेजा गया। दैनिक जागरण की 7 जून 2020 की खबर के अनुसार, विभिन्न राज्यों में श्रमिकों के अभाव के कारण किसी कार्य और उत्पादन इस हद तक प्रभावित हुए हैं कि दूसरे राज्य से श्रमिकों की वापसी हेतु वातानुकूलित लग्जरी बसें भेजी जा रही है। ऐसी पहली बस बिहार के शिवहर जिले से 30 श्रमिकों को लेकर पंजाब गई। ऐसी ही बसें हरियाणा और हिमाचल प्रदेश से भी बिहार के अन्य जिलों में भेजी जा रही हैं।

रिवर्स माइग्रेशन के फलस्वरूप एक वृहत् जनसमूह के मूल स्थान पर लौटने से पूर्व से ही पिछड़े राज्यों पर अत्यधिक दवाब पड़ेगा। रोजगार के संकट के साथ-साथ सामाजिक अपराध यथा लूट पाट, भिक्षावृत्ति, देह व्यापार आदि में वृद्धि की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत औद्योगिक संकुल एवं सेवाक्षेत्र पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उद्योग एवं सेवाक्षेत्र अपनी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता खो देंगे क्योंकि श्रम लागत में उल्लेखनीय वृद्धि होगी। श्रम लागत में वृद्धि से विदेशी निवेश पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अत: यह आवश्यक है कि श्रम को संसाधन मानते हुए इसका उचित प्रबंधन किया जाए।

श्रम को संसाधन बनाए जाने की आवश्यकता है

स्पष्टतया विकसित स्थल में श्रम की मांग होती है जिसकी आपूर्ति श्रमाधिक्य क्षेत्रों से अबाध रूप से होती है। श्रम के कुशल प्रबंधन द्वारा श्रम-संतुलन कायम करके प्रवसन की समस्या से बचा जा सकता है। श्रमाधिक्य क्षेत्र में रोजगार का सृजन कर एवं गुणवत्तापूर्ण जीवनयापन का अवसर प्रदान कर, पलायन को अनुकूलतम स्तर पर स्थिर किया जा सकता है। श्रम, तकनीक और प्रकृति के सम्यक सामंजन से ही संसाधन निर्मित होते हैं। आवश्यकता है कि इनका प्रबंधन इस प्रकार हो कि संसाधन का इष्टतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

भारत में श्रमाधिक्य के कारण इसे बोझ के रूप में देखा जाता है, किंतु तकनीक का प्रयोग कर इसे संसाधन बनाए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि ग्रामीण-नगरीय प्रवास की बढ़ती दर को कम किया जाए। श्रमिकों को उनके मूल स्थान पर ही अवसर प्रदान किए जाएं। लघु और कुटीर उद्योग के जरिए स्वरोजगार को बढ़ाया जाना इस दिशा में सहायक साबित होगा। स्थानीय जरूरत की मांग का उत्पादन, स्थानीय स्तर पर हो और वहां स्थानीय श्रम को अवसर प्रदान किया जाए। बुनियादी अधिकार और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिये। प्रवासित परिवारों को गंतव्य क्षेत्रों में नागरिक अधिकार मुहैया कराया जाना चाहिये ताकि वे गरीबों को मिलने वाली बुनियादी सुविधाएँ, सार्वजनिक कार्यक्रमों के लाभ और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक पहुँच सकें और इन सभी सेवाओं को सुनिश्चित करने के लिये एक प्रमुख नीति की आवश्यकता है। प्रवासी श्रमिकों के लिये पूरे भारत में श्रम बाजार को विभाजित किया जाना चाहिये और कार्यकाल की सुरक्षा के साथ एक अलग श्रम बाजार विकसित किया जाना चाहिये।

भारत के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत के श्रम का 50% कृषि पर आश्रित है जबकि सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी महज 17% -18% है। यही श्रमाधिक्य कालांतर में प्रवास की ओर उन्मुख होता है और प्रवसन में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। अत: यह आवश्यक है कि 'जीवन निर्वाह कृषि व्यवस्था' को 'उद्यम कृषि' में बदला जाए, जहां प्रत्येक कृषक की भूमिका उद्यमी के रूप में हो और वह सेवा-प्रदाता बनकर अवसरों का सृजन करें। ग्रामीण क्षेत्रों में ढांचागत सुधार कर एवं पूंजी के प्रवाह को सुगम बनाकर ग्रामीण भारत को आत्मनिर्भर बनाए जाने की आवश्यकता है। तकनीकी सहायता से श्रम का डेटाबेस बनाया जाए एवं इसी आधार पर श्रमाधिक्य क्षेत्र से, श्रम की मांग के क्षेत्र में, श्रम का प्रवाह सुनिश्चित किया जाए। श्रम के उचित प्रबंधन के द्वारा ना केवल प्रवासी श्रमिकों की समस्या का निदान होगा बल्कि एक संसाधन के रूप में यह समग्र विकास का वाहक भी बनेगा।

References

1. Ahmad, Dreze, Hills, and Sen, ed. "Public A ction for Social Security: Foundations and Strategy in Social Security in Developing Countries," (1991): Oxford: Clarendon Press.
2. Bird, K., and P. Deshingkar. "Circular migration in India: policy brief no. 4." ODI World Development Report 2009 (2009).
3. De Haan, Arjan. "Livelihoods and poverty: The role of migration, a critical review of the migration literature." The journal of development studies 36, no. 2 (1999): 1-47.
4. De Haan, Arjan. "Livelihoods and poverty: The role of migration?a critical review of the migration literature." The journal of development studies 36, no. 2 (1999): 1-47.
5. De Hann, A . "Rural Urban Migration and Poverty in India." IDS Bulletin 28, no. 2 (2009): 35-47.
6. Deshingkar, Priya, Pramod Sharma, Sushil Kumar, Shaheen Akter, and John Farrington. "Circular migration in Madhya Pradesh: changing patterns and social protection needs." The European Journal of Development Research 20, no. 4 (2008): 612-628.

7. Deshingkar, Priya, Rajiv Khandelwal, and John Farrington. Support for migrant workers: the missing link in India's development. London: ODI, 2008.
8. Dreze, Jean, and Amartya Sen. India: Development and participation. Oxford University Press on Demand, 2002.
9. Dreze, Jean, John Hills, and Amartya Sen. Social security in developing countries. Edited by Ehtisham Ahmad. Oxford: Clarendon, 1991.
10. Government of India. "Census of India." (2001).
11. Government of India. "Census of India." (2011).
12. Government of India. "Economic Survey 2016-17." (2017).
13. Government of India. "Economic survey of india,2017-18." (2018).
14. Government of India. "Economic survey of india,2019-20." (2020)
15. Gupta, Indrani, and Arup Mitra. "Rural migrants and labour segmentation: micro-level evidence from Delhi slums." Economic and Political Weekly (2002): 163-168.
16. Hann, A . "Rural Urban Migration and Poverty in India" IDS Bulletin, Institute for Development Studies (2009): Vol. 28(2), pp. 35- 47.
17. Jagran, "Bihar: Reverse migration started with exemption in lockdown, buses started coming to call workers" Jagran (In Hindi), 7 June 2020, https://www.jagran.com/bihar/patna-city-reverse-migration-starts-with-relief-in-lockdown-in-bihar-buses-comimg-for-them-from-other-states-jagran-special-20357683.html(accessed on 10 June, 2020).
18. Kundu, Amitabh, and Lopamudra Ray Saraswati. "Migration and exclusionary urbanisation in India." Economic and Political Weekly (2012): 219-227.
19. Kundu, Amitabh, and Shalini Gupta. "Migration, urbanisation and regional inequality." Economic and Political Weekly (1996): 3391-3398.
20. Mohanty, B. B. "Land distribution among scheduled castes and tribes." Economic and Political Weekly (2001): 3857-3868.
21. Mukherji, Shekhar. "Poverty induced migration and urban involution in ESCAP countries." In UN-ESCAP, Expert Group Meeting on Poverty and Population in ESCAP Region, Bangkok, pp. 1-45. 1995.
22. Mukherji, Shekhar. "The nature of migration and urbanization in India: the search for alternative planning strategies." Dynamics of Population and Family Welfare by Srinivasan and Pathak (eds.), Himalaya Publishing Co., Bombay (1991): 203-249.
23. Sebastian, A. "Salient Features of Internal Migration in India." Dynamics of Population and Family Welfare,"(Himalaya Publishing House 1992) (1991).
24. Singh, Sushant," Explained: Indian Migrants, across India," Indian Express, 29 April 2020, https:// translate.google.com/translate? hl= hi&sl =en&tl =hi&u =https %3A%2F% 2Findianexpress.com% 2Farticle%2Fexplained%2Fcoronavirus-india-lockdown-migran-workers-mass-exodus-6348834%2F&anno=2&prev=search(accessed on 9 May, 2020).
25. Srivastava, Ravi, and S. K. Sasikumar. "An overview of migration in India, its impacts and key issues." In Regional Conference on Migration, Development and Pro-Poor Policy Choices in Asia, pp. 22-24. 2003.
26. UNDP. "India Urban Poverty Report." (2009).
27. UNDP. "Overcoming Barriers Human Mobility and Development, Human Development Report" (2009).

संस्कृति की बुनियाद पर आत्म निर्भर भारत का संकल्पः कोरोना संकट के विशेष संदर्भ में

डॉ० आदित्य कुमार मिश्रा

अतिथि व्याख्याता, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, रीवा परिसर, मध्य प्रदेश

सारांश

कोरोना एक वैश्विक महामारी है। भारत की तुलना में कम जनसंख्या और बड़ी अर्थव्यवस्था वाले यूरोपीय देश व अमेरिका, रूस आदि इस त्रासदी के आगे कहीं ज्यादा हैरान-परेशान हैं। कोरोना हेल्थ से ज्यादा वेल्थ को नुकसान पहुंचाने वाली त्रासदी बन चुका है। दुनिया के तमाम देश लॉकडाउन व्यवस्था के अधीन हुए, लेकिन जो स्थिति भारत के गरीब वर्गों खासकर मजदूरों की हुई वह कहीं और देखने को नहीं मिली। लॉकडाउन के कारण दूसरे राज्यों से पैदल, साइकिल, रिक्शा, ऑटो, ट्रक आदि से अपने घरों के लिए निकले तमाम मजदूरों के साथ अनेक दर्दनाक घटनाएं हुईं, जिनमें कुछ मजदूरों या उनके परिवार के सदस्यों को जान गंवानी पड़ी। ठप हुई कारोबारी गतिविधियों को फिर से शुरू कर मजदूरों, किसानों, कामगारों के साथ-साथ कारोबारियों को समस्याओं से बाहर निकालने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 20 लाख करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज का ऐलान किया। केंद्र सरकार ने लगभग 100 देशों को कोविड-19 से बचाव में मदद के लिए दवा मुहैया कराया। वहीं इस परिस्थिति में बेरोजगारी की मार झेल रहे लोगों में से कुछ के द्वारा गांवों में सुपर मार्केट खोलने, डेयरी उद्योग शुरू करने, ऑनलाइन आर्डर लेकर सब्जी बेचने का काम शुरू करने जैसी खबरें उत्साह पैदा करती हैं। इस शोध पत्र में भारत सरकार, राज्य सरकारों, अन्य संस्थाओं व व्यक्तियों द्वारा आमजन, उद्योग जगत व कामगारों के हित में किये जा रहे जमीनी प्रयासों का विश्लेषण करते हुए आत्म निर्भर भारत के संकल्प को भारतीय संस्कृति के आलोक में यथार्थ की कसौटी पर परखा और रेखांकित गया है।

प्रमुख शब्द (Key Words)-कोरोना, लॉकडाउन, आत्म निर्भर भारत, मजदूर, उद्योग, जनसंख्या।

प्रस्तावना

विश्वव्यापी कोरोना संकट से आज लगभग पूरी दुनिया जूझ रही है। लोग एक-दूसरे से सामाजिक दूरी का ध्यान रख रहे हैं। जहां कोरोना का प्रत्यक्ष असर रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, यातायात और पर्यटन आदि उद्योगों पर दिखाई दे रहा है वहीं दूरगामी असर का अध्ययन और दुष्परिणामों से निपटने की तैयारियां भी चल रही हैं। दुनिया के तमाम देशों की तरह भारत भी कोरोना से मुकाबला कर रहा है। जहां एक ओर भारत की विशाल जनसंख्या, अशिक्षा, जागरुकता की कमी, गरीबी, बड़ी संख्या में मजूदरों के प्रवास, बेरोजगारी, स्वास्थ्य सुविधाओं की अपर्याप्त उपलब्धता आदि समस्याएं कोरोना से निपटने में बाधा उत्पन्न कर रही हैं, वहीं भारतीय आयुर्वेद, योग, भारतीय परंपराएं और संस्कृति इस संकट से निपटने में मददगार साबित हो रही है। संकट के इस दौर में भारत सरकार द्वारा आर्थिक पैकेज के साथ-साथ आत्म निर्भर भारत का संकल्प सामने आया है। विभिन्न राज्य सरकारें और आम जनता केंद्र सरकार के आत्म निर्भर भारत अभियान से जुड़ रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में आत्म निर्भर भारत की संकल्पना के संदर्भ में केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, उद्योग जगत और आम जनता द्वारा यथार्थ की धरातल पर किये जा रहे प्रयासों व प्रभावों को रेखांकित किया गया है।

कोरोना वैश्विक संकट और भारतीय संस्कृति

अध्यात्म प्रधान भारत देश के प्रत्येक कार्य में व्यापक लोकहित का ख्याल करते हुए ईश्वर प्राप्ति का ध्येय रखा जाता है। भारत के संदर्भ में विष्णु पुराण में लिखा गया है-

फ्रगायन्ति देवाः किल गीतकानिधन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूतेभवन्ति भूयः पुरुषाः सुस्वात। ।

(विष्णुपुराण 2/3/24)

देवता लोग भी निरंतर यही गाया करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक सौभाग्यशाली हैं।"[1]

भारत की संस्कृति, इसकी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति आदि विशेषताएं यहां के निवासियों को हर स्थिति में सुखी, संतुष्ट और सुरक्षित रहने के लिए प्रेरित करती है। भारत में तुलसी, अदरक, काली मिर्च, लौंग आदि का काढ़ा पीना लोगों की दिनचर्या का हिस्सा है। गिलोय, एलोवेरा, शहद आदि के सेवन व योगाभ्यास से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। भारतीय आयुर्वेद में यहां के निवासियों का अनन्य विश्वास है। बाहर से घर लौटने पर दरवाजे पर ही जूते-चप्पल उतारना, पैर-हाथ और मुहं धोना और नहा लेने की आदत भारतीय संस्कृति में समाहित रही है। ‘‘प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान और आयुर्वेदाचार्य पंडित वामदेव शास्त्री (डेविड फ्राउले) कहते हैं कि भारत ने विश्व को योग, वेदांत, आयुर्वेद और अहिंसा जैसे विचार दिए हैं, न कि स्वार्थ, बाजारवाद, कट्टर रिलीजन या आतंकवाद। योग-वेदांत आधारित जीवन-पद्धति ही विश्व के लिए मूल्यवान है। विविध रोगों, समस्याओं के निदान में हिंदू ज्ञान परंपरा आज भी अत्यधिक लाभकारी है।’’[2] कोरोना के इलाज को लेकर आयुर्वेद के संबंध में चिकित्सकीय तथ्य भी सामने आए हैं। ‘‘कोरोना संक्रमण के आरंभकाल से ही आयुर्वेदिक चिकित्सा इस खतरनाक वायरस को पस्त करने की कोशिश में शिद्दत से जुटी है। काढ़ा इसमें काफी हद तक कारगर साबित हुआ है। इसके अलावा सोंठ के पाउडर और लहसुन ने भी मरीजों की इम्युनिटी बढ़ाने में कमाल किया है।’’[3] भारतीय अभिवादन शैली ‘नमस्ते’ को कोरोना से बचाव में मददगार बता रहे हैं। प्रो.शंकर शरण अपने लेख में लिखते हैं कि ‘‘भारतीय अभिवादन ‘नमस्ते’ के प्रयोग को भी अब विश्वव्यापी स्वीकृति मिल रही है। यह चीन, जापान, कोरिया, आदि एशियाई देशों में पहले से प्रचलित है।’’[4] भारतीय संस्कृति, आचार-विचार और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग निराशा में आशा का काम कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, मुंबई में असिस्टेंट प्रोफेसर लक्ष्मीकांत द्विवेदी लिखते हैं कि ‘‘कोरोना के चलते भौगोलिक रुप से अचानक बदले हुए जानसांख्यिकीय बोझ को संभालने की चुनौती बड़ी है। हालांकि सांस्कृतिक मूल्यों के धनी देश और मिल बांटकर खाने कमाने की प्रबल भावना महामारी के इन दिनों में देश की बड़ी संबल बनने वाली है।’’[5] शुरुआती समय में एक तरफ लोग भयभीत रहे तो दूसरी तरफ सरकारी और गैर सरकारी तंत्रों द्वारा जागरुकता अभियान एवं जरुरतमंदों की मदद के लिए भी हाथ बढ़ते दिखे। पैदल चलते मजदूरों की स्थिति भयभीत करने वाली थी लेकिन राज्य सरकारों व कुछ सेलिब्रिटिज ने जिस तरह से मदद के लिए हाथ बढ़ाया उसमें भारतीय संस्कृति की झलक दिखाई दी।

कृषि प्रधान देश में गौ पालन एवं आत्म निर्भरता

कृषि प्रधान देश भारत की संस्कृति में गाय को माता का दर्जा प्राप्त है। जिस प्रकार माता अपने पुत्रों का लालन-पालन करती है, उसी प्रकार गाय भी देशवासियों का पालन-पोषण करने के साथ देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज खेतों में रासायनिक खादों एवं रासायनिक कीटनाशकों से उत्पादित सब्जी, अन्न और फल मात्रा में भले ही अधिक हो लेकिन फसलों के स्वाद में कमी व उनकी विषाक्तता अधिक होती जा रही है। परिणामस्वरुप आज का मनुष्य कई जानी-अनजानी बीमारियों से ग्रस्त होता जा रहा है। कृषि क्षेत्र में सुधार के लिए गौ-पालन की ओर लौटना होगा। गोबर की खाद और गोमूत्र खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने के साथ ही धरती की उर्वराशक्ति को बरकरार रखने में भी मददगार है।

कोरोनाकाल में हमनें इस पशुधन की शक्ति को महसूस किया। लॉकडाउन के कारण उद्योग-धंधे बंद रहे, अशिक्षित, अकुशल मजदूरों से लेकर शिक्षित व कुशल युवाओं तक को रोजगार संकट का सामना करना पड़ा। जब बस, ट्रेन, वायुयान, कल-कारखाने, स्कूल-कॉलेज, दफ्तर, दुकानें सब कुछ बंद करनी पड़ी। ऐसी विषम परिस्थिति में भी डेयरी और कृषि उद्योग चलता रहा। पत्रकार

भरत कुमार झा विदेश से गांव लौटे विवेक नाम के युवक के बारे में लिखते हैं कि ''पूरी दुनिया में कोरोना त्रासदी से वाकिफ विवेक ने अपने गांव में ही रहने का फैसला कर लिया है। उन्होंने कुछ दिनों पहले ही उन्नत नस्ल की तीन गायें खरीदी और अब डेयरी उद्योग की योजना को आकार दे रहे हैं।''[6] जीतेजी गाय दूध और गोबर के रुप में खाद का लाभ देती है मरने के बाद भी उसके चमड़े, सींग और खुरों के उपयोग से चमड़ा उद्योग चलता है। मृत गाय की हड्डियों से बनी खाद रासायनिक खाद की तुलना में अधिक फसल पैदा करती है। ट्रैक्टर के चलन के कारण बैलों का उपयोग बंद हो गया है। इससे एक तरफ कृषि से जुड़े मजदूरों को पलायन की मार झेलनी पड़ती है, बछड़ों को चोरी-छिपे कत्लखाने भेजा जाता है वहीं ट्रैक्टरों से पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ता है। बैलों के उपयोग से मजदूरों का पलायन और पर्यावरण प्रदूषण कम किया जा सकता है और गोवंश को हत्या से भी बचाया जा सकता है। ''गोवंश के केवल गोबर, मूत्र तथा उनके खुरों से रौंदी हुई मिट्टी से इतनी खाद पैदा की जा सकती है कि उसको व्यापारिक दृष्टि से बेचकर जो लाभ कमाया जा सकता है, उससे गो-संरक्षण तथा अपना भरण-पोषण भली-भाँति किया जा सकता है।''[7] आधुनिकता की चकाचौंध से बाहर निकलकर हमें जमीन से जुड़ना होगा। ''बड़े उद्योगों के भरोसे गरीब परिवारों का जीवन स्तर उठेगा, यह कहना कठिन ही नहीं असम्भव-सा लगता है। किंतु गोपालन की मिक्स फॉर्मिंग से तत्काल उन्हें लाभ पहुँचाने की गारंटी दी जा सकती है।''[8] रोजगार सृजन की दृष्टि से अन्य उद्योगों के साथ ही डेयरी उद्योग पर भी वर्तमान केंद्र सरकार ध्यान दे रही है। 25 जून 2020 को प्रकाशित मीडिया रिपोर्ट में बताया गया कि ''डेयरी और मीट प्रोसेसिंग सेक्टर के साथ पशु चारा उत्पादन के क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने 15 हजार करोड़ रुपये के इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फंड को मंजूरी दे दी। सरकार के इस फैसले से 35 लाख रोजगार सृजन की संभावना है।''[9] पशुधन एवं डेयरी मंत्री गिरिराज सिंह ने भी इस फैसले को महत्वपूर्ण करार दिया। उन्होंने कहा, ''इससे पहले सरकार ने सहकारी क्षेत्र की डेयरी को प्रोत्साहित करने के लिए 10 हजार करोड़ रुपये का एक अलग फंड पहले से ही घोषित किया है। सरकार के इस फैसले से डेयरी प्रोसेसिंग क्षेत्र में बहुत प्रगति होगी। देश के 630 जिलों में अच्छी नस्ल के पशुओं के प्रजनन के लिए योजनाएं चल रही हैं।''[10] शहरों से बड़ी संख्या में लौटे कामगारों में से कुछ अगर गौ पालन को व्यवसाय के तौर पर अपना लें तो इससे वे स्वयं आत्मनिर्भर होने के साथ ही कुछ अन्य लोगों को भी रोजगार से जोड़ सकते हैं। इस काम में सरकारी योजनाएं व बैंक उनकी मदद कर सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के रचनात्मक प्रयास

भारत की आत्मा गांवों में बसती है। लक्ष्मीकांत द्विवेदी लिखते हैं कि ''प्राचीन समय में गांव स्वावलंबी हुआ करते थे। हर एक गांव में पर्याप्त काम करने का अवसर था। जैसे कोई खेत में, कोई मिट्टी के बर्तन बनाने में, कोई सब्जियां उगाने में, कोई बाल काटने में इत्यादि।''[11] आज पुनः ग्रामीण युवकों को इसके लिए प्रेरित करना है कि वे अपने गांव व आस-पास के क्षेत्र में ही अपना भविष्य बनाएं। वे आगे लिखते हैं, ''प्रधानमंत्री ने 20 लाख करोड़ के राहत पैकेज के अतिरिक्त भारत को आत्म निर्भर बनाने की भी बात कही है। उनके सपने को साकार करने के लिए कुछ मूलभूत परिवर्तन करना होगा। सबसे महत्वपूर्ण काम है कृषि को आधुनिक रुप देना।''[12] इसी तरह कृषि सुधारों को लेकर आइटीसी लिमिटेड के एग्रो बिजनेस डिविजन के सीईओ रजनीकांत राय लिखते हैं कि ''अब आवश्यक वस्तु अधिनियम, एपीएमसी एक्ट और एग्रीकल्चर प्रोडडूस प्राइस एंड क्वालिटी एश्योरेंस जैसे नियमों में सुधार के साथ पशुपालन, डेयरी, मछली पालन, खा। प्रसंस्करण जैसे कृषि क्षेत्र सहउद्यमों के लिए वित्तपोषण की व्यवस्था कर कृषि क्षेत्र के पंख लगाने का काम किया गया है।''[13] सरकार की कृषि सुधार योजनाओं के बारे में रजनीकांत आगे लिखते हैं कि ''यदि इन सुधारों का पारदर्शिता के साथ सही उपयोग किया जा सके तो न सिर्फ किसानों की आय दोगुनी करने का सपना पूरा हो सकता है, बल्कि कृषि क्षेत्र में भारत दुनिया के साथ कदमताल भी कर सकता है।''[14] कृषि सुधारों के अलावा लक्ष्मीकांत लिखते हैं कि ''दूसरा मुख्य जोर मनरेगा पर देना होगा जिससे गरीब लोगों को मजदूरी के लिए बाहर न जाना पड़े।''[15] पलायन रोकने के लिए मनरेगा में न्यूनतम मजदूरी बढ़ाने की आवश्यकता है। मनरेगा से ग्रामीण युवाओं को कुछ मदद मिलेगी, साथ ही युवा अपने गांव की आवश्यकता एवं अपने हुनर से तालमेल कर अपना उद्यम शुरु कर अपनी स्थिति मजबूत कर सकते हैं। कोरोनाकाल में गांव लौटे युवाओं के हुनर को बाजार से जोड़ना होगा। ग्रामीण क्षेत्र का आदमी तभी आत्म निर्भर होगा जब उस पर भी कोई निर्भर हो जाए। ग्रामीण क्षेत्र का आदमी अपने उद्यम व सरकारी योजनाओं का लाभ उठाकर इतना सशक्त हो जाए कि बाजार उस पर निर्भर हो जाए। गांव का युवक आत्म निर्भर होगा तो निश्चय ही भारत आत्म निर्भर होगा।

स्वदेशी की भावना से आत्म निर्भर भारत की संकल्पना को बल

अपने देश में तैयार उत्पादों का प्रयोग करने से दूसरे देशों पर निर्भरता कम होगी, साथ ही अपने देश के लोगों को रोजगार मिलेगा। इससे देश की अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और भारत तेजी से आत्म निर्भरता की ओर आगे बढ़ेगा। देशवासियों ने कोरोनाकाल में इस ओर कदम बढ़ाना शुरु कर दिया है। पिछले कुछ वर्षो से दीपावली में चीन से आयात की हुई सस्ती झालरें एवं लाइटें भारत के अधिकांश घरों में जगमगाती रही थीं। देखने में यह जितनी सुंदर होती हैं भारतीय कामगारों के रोजगार को छिनने में वे उतनी ही आगे रहती हैं। इस बार सीमा पर चीन की हरकत से पैदा हुए रोष के बहाने ही सही भारतीय थोक व्यापारियों ने वहां के इन उत्पादों का बहिष्कार करने का फैसला किया है। गोरखपुर और आसपास के जिलों में ही 50-60 करोड़ रुपये के चीनी झालरों एवं लाइटों का विक्रय दीपावली में हो जाता है। ''आसपास के जिलों में झालर एवं लाइटों की आपूर्ति करने वाले व्यापारी राजीव रस्तोगी बताते हैं कि चीन के सामान की यहां बहुत मांग रहती है, लेकिन उसकी हरकत के कारण व्यापारियों ने माल न बेचने का संकल्प लिया है। रुद्रपुर की कंपनी को भारत सरकार से लाइसेंस भी मिला हुआ है। हम सभी दुकानदारों ने वहीं से माल मंगाने का फैसला किया है।''[16] स्वदेशी उत्पादों के प्रति जनता में जागरुकता की जरुरत है। ''देश को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम (एलिम्को) ने सकारात्मक पहल की है। अब चीन, मलेशिया, ताईवान, जर्मनी और अन्य देशों से आ रहे कलपुर्जों और उपकरणों को मेक इन इंडिया के तहत स्वदेशी तकनीक पर तैयार किया जाएगा।''[17] भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को भी अपने स्तर से इस दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए। स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का कहना है कि ''इस संकट ने हमें बताया कि लोकल प्रोडक्ट और लोकल सप्लाई चेन कितनी जरूरी है। हमें लोकल प्रोडक्ट को बढ़ावा देना है, लोकल अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देना है। लोकल से ग्लोबल बनना है। आज से हर भारतवासी को लोकल के लिए वोकल बनना है।''[18] कोरोना महामारी फैलते ही भारत में मास्क और वेंटिलेटर की मांग बढ़ गयी। पहले वेंटिलेटर और मास्क हम नहीं बनाते थे। लेकिन वक्त की नजाकत को समझते हुए इस दिशा में भी भारतीयों ने मजबूती से कदम बढ़ा दिया है। आज गांव-गांव और शहर-शहर भारतीयों द्वारा बनाया गया मास्क बिक रहा है और लोगों को रोजगार भी मिल रहा है। वेंटिलेटर भी भारत में बनने लगे हैं। वेंटिलेटर के निर्माण से लेकर सप्लाई तक इसमें संलग्न लोगों को रोजगार मिल रहा है। भारतीय स्टील उद्योग में भी निर्यात से उम्मीदें परवान चढ़ रही हैं। सेल के चेयरमैन अनिल कुमार चौधरी का कहना है कि ''बड़ी इकोनॉमी वाले देशों में उत्पादन बंद हैं या वहां की फैक्ट्रियां अपनी क्षमता का 50 फीसद ही उत्पादन कर रही हैं। सामान्य हालात में इनका ऑर्डर हमें नहीं मिलता। इन देशों से हमने अप्रैल में चार लाख टन निर्यात का ऑर्डर बुक किया है। दो लाख टन का ऑर्डर जल्द ही जाने वाला है।''[19] स्वदेशी अभियान के तहत भारतीय क्रिकेट एवं ओलम्पिक खिलाड़ियों के लिए प्रायोजक चीनी कम्पनियों से करार खत्म करने व नये करार न करने की बात भी हो रही है। इस संबंध में ''साफ शब्दों में बीसीसीआई ने कहा कि वह किसी भी चीनी कंपनी के साथ आने वाले समय में कोई ताजा करार नहीं करेगा। बोर्ड के लिए देशहित सर्वोपरि है।''[20] आत्म निर्भरता के संबंध में आपदा को टर्निंग प्वाइंट बताते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि ''कोरोना वायरस ने हमें गति को तेज करने का सबक दिया है। आत्मनिर्भर भारत होने का मतलब है कि दूसरे देशों पर निर्भरता कम करें। हर वो चीज जिसका आयात करने को देश मजबूर है, उनका भविष्य में निर्यात करें।''[21] स्वदेशी के मामले पर अगर भारतवासी एक हो जाएं और लोकल उत्पादों को वरीयता देने लगें तो वह दिन दूर नहीं जब दीपावली में लोगों के घरों में चाइना में बने झालर और लाइटों की बजाय भारत में बनें मिट्टी के दीयों से हर घर झिलमिला उठेगा और दीयों का यह प्रकाश अन्य स्वदेशी उत्पादों की चमक भी बढ़ाएगा। ''प्रधानमंत्री ने देश को एक नई दिशा देने की बात यूं ही नहीं की थी। इसके पीछे अपार अवसर छिपे थे। तभी तो लोकल में वोकल की प्रतिध्वनि गूंजने लगी है।''[22]

प्रवासी श्रमिक-कामगार और आत्म निर्भर भारत

आमतौर पर बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिक-कामगारों के अपने गृह राज्यों में लौटने को एक समस्या के रुप में देखा गया किंतु उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने इसे अवसर के रुप में स्वीकार किया। उन्हीं के शब्दों में, ''उत्तर प्रदेश के माथे पर पलायन का जो कलंक है, उसे मिटाने का यह सर्वोत्तम अवसर है।''[23] सरकार ने दूसरे राज्यों से लौटे प्रवासियों का डेटा भी तैयार किया है। ''अब तक लगभग 32 लाख की स्किल मैपिंग हो चुकी है। इस बीच सरकार ने फिक्की, आइआइए, लघु उद्योग भारती और नरेडको के

साथ 11 लाख श्रमिक-कामगारों को रोजगार दिलाने का एमओयू साइन किया।''[24] उत्तर प्रदेश में वक्त की मांग के अनुसार श्रम कानूनों में बदलाव भी किया गया। ''यही कारण है कि चीन से निकलने वाली पहली कंपनी वॉन वेलेक्स ने उत्तर प्रदेश को चुना। इसके साथ ही कामगार/श्रमिक (सेवायोजन एवं रोजगार) कल्याण आयोग की युद्ध स्तर पर तैयारी हो रही है।''[25] उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में कामगारों को रोजगार देने के लिए एक नया प्रयोग किया जा रहा है। ''जिला प्रशासन प्रवासी कामगारों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराने के लिए एक खास एप तैयार करा रहा है। अर्बन एप के जरिये जहां एक ओर कामगारों को रोजगार के अवसर मिलेंगे वहीं दूसरी ओर जरुरतमंदो को एप के माध्यम से प्लबंर, इलेक्ट्रीशियन, मैकेनिक, कारपेंटर व राजगीर मिस्त्री उपलब्ध हो सकेंगे।''[26] कामगारों को अपने क्षेत्र में ही काम मिले इसके लिए उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार जैसे राज्यों को अपने राज्य में निवेश को बढ़ावा देना चाहिए। उ.प्र. सरकार इन दिनों इस दिशा में प्रयास करती नजर आ रही है। आत्म निर्भर भारत में प्रवासी श्रमिकों का योगदान महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। जो कम्पनियां चीन छोड़कर दूसरे देशों का रुख कर रही हैं उनके अनुकुल कानून और स्थितियां होने पर वे भारत में अपनी स्थापना कर सकती हैं जिससे भारत में भारतीयों द्वारा माल तैयार होगा और स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा, खुशहाली आएगी।

दवाओं के क्षेत्र में अन्य देशों पर आश्रित रहने की बजाय आत्म निर्भर होने का वक्त

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भारत काफी आगे बढ़ चुका है। भारतीय मूल के चिकित्सकों ने अमेरिका तक में अपना नाम स्थापित किया है किंतु दवाओं के लिए कच्चे माल और चिकित्सा उपकरण के क्षेत्र में अभी और काम करना होगा। ''भारत अपने कच्चे माल का करीब 68 फीसद चीन से प्राप्त करता है, जिसे एक्टिव फार्मास्युटिकल इंग्रीडिएंट्स (एपीआइ) के नाम से जाना जाता है।''[27] 2008 में चीन ने बीजिंग में आयोजित ओलंपिक के दौरान वायु प्रदूषण कम करने के उद्देश्य से कुछ सप्ताह के लिए एपीआई संयंत्र बंद कर दिये थे जिससे भारत को दवा के क्षेत्र में कठिनाई हुई थी। इसको लेकर भारत में एपीआई के उत्पादन हेतु मेगा फार्मा पार्कों को बनाने के बारे में योजना बनाई गयी लेकिन काफी खर्चीला होने के कारण यह परियोजना टाल दी गयी। वर्तमान परिस्थिति में इस बारे में फिर से सोचा गया। ''21 मार्च को केंद्र सरकार ने थोक दवाओं और निर्यात के घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए 1.3 बिलियन डॉलर के पैकेज के रुप में इस योजना को पुनर्जिवित किया है। भारत अमेरिका में बेची जाने वाली जेनेरिक दवाओं के 24.5 फीसद का स्रोत है। फार्मास्यूटिकल्स एक्सपोर्ट प्रमोशन काउंसिल के अध्यक्ष दिनेश दुआ ने कहा कि चीन पर निर्भरता खत्म करने में कम से कम 10 साल लगेंगे।''[28]

'डिजिटल इंडिया' व 'कैशलेस पेमेंट' से आत्मनिर्भर भारत की राह आसान

लॉकडाउन के दौरान अपने घरों को लौट रहे लोगों के मन में कोरोना संक्रमण को लेकर दहशत का माहौल रहा। नगद पैसों व एटीएम मशीन तक से संक्रमण की आशंका जताई गई। ऐसे में रास्ते में कुछ खाने-पीने के लिए कैशलेस पेमेंट का लाभ मिला। ऑनलाइन शॉपिंग के विकल्प ने भी कोरोना काल में किसानों की मदद की है। ''टाटा फाउंडेशन ने पूर्वी सिंहभूम के 110 बड़े किसानों को चिन्हित किया और उनकी सब्जियों की ऑनलाइन डिलीवरी करानी शुरू की। प्रतिदिन इन किसानों की हजारों किलोग्राम सब्जियां जमशेदपुर शहर में लोगों तक पहुंचाई जा रही हैं।''[29] इसी तरह गोरखपुर से भी जुड़ा प्रेरक किस्सा है। ''यहां भी छोटे स्तर के सब्जी कारोबारियों के सामने भूखमरी की नौबत थी। ऐसे में नवउद्यमी छात्रों के एक समूह ने उनकी चुनौतियों को अवसर में बदल दिया, उन्हें जमशेदपुर की तरह ही ऑनलाइन बाजार मुहैया करा दिया। नतीजा यह हुआ कि शहर के 30 से अधिक परिवारों की रोजी चल निकली है।''[30] लॉकडाउन व्यवस्था में लोग घर से बाहर कम से कम निकलना चाह रहे हैं। ऐसे में मोबाइल कॉल के जरिये या ऑनलाइन ऑर्डर लेकर होम डिलिवरी का चलन जोर पकड़ रहा है और रोजगार के अवसर भी दिला रहा है। होम डिलीवरी में लगे स्थानीय युवाओं को भी रोजगार मिल रहा है।

निष्कर्ष

कोरोना महामारी की चुनौती को सरकार और भारत की जनता एक साथ मिलकर अवसर में बदलने का प्रयास कर रही है। भारत सरकार की तरफ से वर्तमान कोरोना संकट के समय दिया गया '20 लाख करोड़ रुपये का आर्थिक पैकेज' और 'आत्म निर्भर भारत

अभियान' ही नहीं इससे पूर्व भी गरीबों भी बैंक से जोड़ने के लिए चलाई गई 'जन-धन योजना', 'मुद्रा योजना', 'स्किल इंडिया', 'किसान सम्मान योजना', 'आयुष्मान भारत', 'डिजिटल इंडिया' और 'कैशलेस व्यवस्था' से भारतीयों को आम दिनों की अपेक्षा कोरोना संकट में ज्यादा मदद मिल रही है। भारत के लोगों को इन योजनाओं का तात्कालिक लाभ उठाने के साथ-साथ दूरगामी लक्ष्यों के साथ परिश्रम करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है जिससे 'आत्म निर्भर भारत अभियान' अंजाम तक पहुंचाया जा सके।

आज स्वदेशी का नारा फिर से जोर पकड़ रहा है। यही भारत की खूबी है कि तमाम विविधताओं के बावजूद संकट के समय सभी एक हो जाते हैं। चीन से विवाद की स्थिति में चीनी सामानों के बहिष्कार की मुहिम चल रही है। योगगुरु बाबा रामदेव हों या स्वयं भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी स्वदेशी के लिए आमजन को प्रेरित करने में कोई कसर बाकी नहीं रख रहे हैं। भारत के व्यापारी और ग्राहक दोनों साथ मिलकर चीन के उत्पादों का बहिष्कार कर स्वदेशी अभियान को बढ़ावा दे रहे हैं।

कोरोना संकट ने जिस तरह भारतीय श्रमिकों-कामगारों को विदेश से या बड़े शहरों से अपने देश-अपने गांव लौटने के लिए बाध्य किया है उसने उनके आजिविका के लिए चुनौती तो पेश की है लेकिन भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हमारे नागरिक इन चुनौतियों को अवसर में बदल रहे हैं। मीडिया लगातार सकारात्मक और प्रेरित करने वाली खबरें दिखा रही है। युवाओं द्वारा सुपर मार्केट खोलकर ऑनलाइन ऑर्डर प्राप्त करने, होम डिलीवरी की शुरुआत करने, डेयरी उद्योग शुरु करने, खेतों में तैयार सब्जी व फल को ऑनलाइन ऑर्डर के जरिये उपभोक्ताओं तक पहुंचाने जैसी ढेरों खबरें उत्साह का संचार कर रही हैं। आयुर्वेद और योग का प्रभाव और प्रचार-प्रसार एक नया बाजार तैयार कर रहा है। कुल मिलाकर भारतवासियों ने मिलजुलकर आत्म निर्भर भारत की ओर कदम बढ़ा दिया है निकट भविष्य में इन प्रयासों का असर दुनिया के सामने होगा।

संदर्भ

1. पोद्दार, हनुमान प्रसाद. (जनवरी, 1950). हिंदू संस्कृति अध्यात्म प्रधान है. कल्याण-हिंदू संस्कृति अंक, 1, 901.
2. शरण, शंकर. (2020, अप्रैल 02). अपनी विशिष्टताओं को समझने का सही समय.
` https://www.uttamhindu.com/Politics/137234/perfect-time-to-understand-your-specifications
3. मिश्रा, धर्मेंद्र. (2020, जून 06). सोंठ और लहसुन से हार रहा कोरोना. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 07.
4. शरण, शंकर. (2020, अप्रैल 02) अपनी विशिष्टताओं को समझने का सही समय.
https://www.uttamhindu.com/Politics/137234/perfect-time-to-understand-your-specifications
5. द्विवेदी, लक्ष्मीकांत. (2020, मई 17). बेड़ा पार लगाएगी हमारी थाती. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 07.
6. झा, भरत कुमार. (2020, मई 11). गांव में आकार लेने लगे रुरल बिजनेस मॉडल. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 12.
7. भाभड़ा, श्रीहरिशंकरजी. (1995, जनवरी). गोसंवर्धन एवं समृद्धि. कल्याण, 198.
8. साधक, श्रीशरदकुमारजी. (1995, जनवरी). राष्ट्र-विकास में गोवंश का महत्वपूर्ण योगदान. कल्याण, 212.
9. डेयरी व मीट प्रोसेसिंग सेक्टर में मिलेंगे 35 लाख रोजगार. (2020, जून 25). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 01.
10. वही, पृ .12.
11. द्विवेदी, लक्ष्मीकांत. (2020, मई 17). बेड़ा पार लगाएगी हमारी थाती. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 07.
12. वही.
13. राय, रजनीकांत. (2020, मई 26). कृषि सुधारों पर अमल करें राज्य. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 06.
14. वही.
15. द्विवेदी, लक्ष्मीकांत. (2020, मई 17). बेड़ा पार लगाएगी हमारी थाती. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 07.
16. सामान के बहिष्कार से चीन को लगेगी चपत. (2020, जून 19). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 03.
17. स्वदेशी पुर्जों से बनेंगे कृत्रिम अंग व उपकरण. (2020, जून 25). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 11.
18. मिश्रा, विनय कुमार. (2020, मई 13). PM Modi का मंत्र : 'लोकल के लिए बनें वोकल', जानें मतलब. https://hindi.goodreturns.in/news/modi-mantra-becomea-vocal-for-local-know-the-meaning-014016-html-
19. कोविड-19 की वजह से कई बड़ी संभावनाओं के द्वार भी खुले. (2020, मई 19). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 09.

20. चीनी प्रायोजकों के बलिदान को तैयार भारतीय खेल. (2020, जून 19). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 12.
21. आपदा को बनाना है टर्निंग प्वाइंट: प्रधानमंत्री मोदी. (2020, जून 12). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 11.
22. मेहता, दुबे प्रियंका. (2020, जून 12). 'लोकल' से होगा श्रृंगार 'वोकल' होगा कारोबार, दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 11.
23. सिंह, प्रदीप. (2020, मई 28). चुनौतियों को अवसर में बदलते योगी. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 08.
24. 32 लाख प्रवासी श्रमिकों में सात लाख कुशल. (2020, जून 11). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 01.
25. सिंह, प्रदीप. (2020, मई 28). चुनौतियों को अवसर में बदलते योगी. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 08.
26. रोजगार उपलब्ध कराने में कारगर होगा अर्बन एप. (2020, जून 06). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 03.
27. जेनरिक दवाओं के लिए दुनिया भारत पर आश्रित, भारत चीन पर आश्रित. (2020, मई 22). दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 12.
28. वही.
29. प्रसाद, निर्मल व अली, काशिफ. (2020, मई 16). मददगारों का मिला साथ तो बनी किसानों की बात. दैनिक जागरण, गोरखपुर. पृ. 14.
30. वही.

कोविड-19 संकट एवं पलायनः चुनौतियां एवं संभावनाएं

हंसिका श्रीवास्तव

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग,
महादेव स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बरियासनपुर चिरईगांव ब्लॉक, वाराणसी

कोविड -19 महामारी एक ऐसा संकट है जो कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती बन गया है। इस महामारी का आरंभ 31 दिसंबर 2019 में चीन के वुहान शहर से माना जाता है जब उसने विश्व स्वास्थ्य संगठन को इस वायरस की सूचना दी थी। 9 जनवरी 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इसकी घोषणा किये जाने तक विश्व भर में इस वायरस से 3000 लोगों की मृत्यु हो चुकी थी।[1] तीव्रता से बढ़ते इस संक्रमण को देखते हुए 30 जनवरी 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना वायरस की घोषणा वैश्विक स्वास्थ्य संकट के रूप में की। अति तीव्रता से फैलते हुए आज इसने विश्व के लगभग 213 देशो में अपने पैर जमा लिए हैं।[2] कोविड -19 ने न केवल स्वस्थ समस्यायें खड़ी करी हैं बल्कि यह सामाजिक एवं आर्थिक विघटन का कारण भी है। इस महामारी को तो पूर्व में संबोधित नही किया गया परंतु अब इनके प्रभावों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह अवश्य ही सामाजिक एवं आर्थिक अशांति उत्पन्न करने वाला है। इस महामारी की गंभीरता का आशय इस बात से लगाया जा सकता है कि सिर्फ भारत में ही 17 जून 2020 तक इस महामारी से मारने वालों की संख्या 11, 903 पहुँच गयी।[3]

भारत में कोरोना वायरस से पहला संक्रमित मामला जनवरी 2020 में केरल राज्य के त्रिचूर जिले में प्राप्त हुआ था। तब चीन एवं विश्व के अन्य संक्रमित देशों की भयावह स्थिति को देखते हुए एवं इस बात को स्वीकार करते हुए की इस वायरस का अब तक कोई इलाज नही है और यह मनुष्य से मनुष्य में तेजी से फैल रहा है ऐसे में इस महामारी से बचने का एक ही मार्ग शेष नजर आता है कि 'घर पर रहें, सुरक्षित रहें।' और यही इसका सुरक्षा मंत्र है। इस महामारी के दूरगामी प्रभावों को देखते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्रमोदी ने 24 मार्च 2020 को देशव्यापी सम्पूर्ण लॉक डाऊन की घोषणा की। इन सब प्रतिबंधों के पश्चात भी संक्रमित मामलों की वृद्धि के कारणवश अप्रैल माह में इसकी अवधि को बढ़ाते हुए लॉक डाउन 2 की घोषणा की गई। वैसे तो यह पूरा लॉक डाउन भारत में चार चरणों में चला।

पहला चरण-25 मार्च 2020 से 14 अप्रैल 2020 तक

दूसरा चरण-15 अप्रैल 2020 से 3 मई2020 तक

तीसरा चरण-4 मई 2020 से 17 मई 2020 तक

चौथा चरण-18 मई 2020 से 31 मई 2020 तक।

जबकि पहला लॉक डाउन समाप्त होते होते ही देश की कुल जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की ''घर पर रहो, सुरक्षित रहो'' की क्षमता ने जवाब देना आरंभ कर दिया था। लॉक डाउन के आरंभ होते ही सभी फैक्टरियां एवं उद्योग धन्धे बन्द हो गए थे ऐसे में औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनो ही क्षेत्र में मजदूर बेरोजगार हो गए थे। ये वे प्रवासी मजदूर थे जो पुश एवं पुल कारक द्वारा निर्धारित परिस्थितियों से बाध्य होकर नए स्थान पर जाने को प्रेरित होते हैं जो उनको पुराने निवास को छोड़ने को बाध्य करती है।

ये आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय भी होती हैं। इसी कारण ये प्रवासी मजदूर थोड़े पैसे कमाने के चाहत में अपने पैतृक गांव से मीलों दूर शहरों में रहते हैं, इनके पास न तो कोई जमा पूंजी होती ह न ही इतना पैसा होता है कि वो दो चार दिन से ज्यादा खाने की भी व्यवस्था कर सकें। ये वो प्रवासी मजदूर थे जो प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रत्येक वर्ग को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं। इसके साथ ही लॉक डाउन 1.0 के अंत तक यह वायरस बस्तियों एवं झुग्गियों तक पहुंच गया ऐसे में इस वायरस को नियंत्रित करना और भी मुश्किल हो गया क्योंकि यह घर इतने पास-पास हैं और इतने कम क्षेत्र में इतने ज्यादा लोग रहते हैं और पानी एवं सफाई की जो मौजूदा स्थिति है ऐसे में जो मानदण्ड है वायरस से बचाव के उसे पूर्ण करने बहुत मुश्किल है। ऐसे में इन प्रवासी मजदूरों ने यहाँ शहरों में मरने से बेहतर अपने गांवों में इस वायरस से मरना बेहतर बताते हुए अपने परिवार के साथ वापस पैतृक गांव जाने को मजबूर हो गए और लॉक डाउन के समय में सभी सार्वजनिक यातायात के साधनों के बन्द होते हुए भी ये प्रवासी मजदूर अपने परिवार के साथ पैदल ही, तो कुछ साइकिल से अपने पैतृक गांव को निकल लिए। बड़े बड़े समूहों में जहाँ सामाजिक दूरी का पालन नामुमकिन दिखाई दिया। यहीं से इन परिस्थितियों में राजनीति का आरंभ भी हो गया।

लॉक डाउन के चलते यातायात के साधनों एवं रेलमार्गों के साथ ही राज्यों की सीमाएं भी बंद कर दी गयी थी। ऐसे में बड़ी संख्या में परिवार के साथ निकले प्रवासी मजदूरों को जो कि भूखे-प्यासे एवं नंगे पैर थे, लॉक डाउन में अन्तर राज्यीय सीमाओं के उल्लंघन के कारण बहुत से श्रमिकों को गिरफ्तार किया गया।[4] इस यात्रा के दौरान बहुत से मजदूर भूख और प्यास से ही मर गए तो कुछ सड़क दुर्घटनाओं का शिकार हो गए। 16 मई को औरंगाबाद में पटरियों पर सोते समय मालगाड़ी के चलने से उसके नीचे आने से 16 प्रवासी मजदूरों की मौत हो गई। वही 26 प्रवासी मजदूर ट्रॉलर के नीचे आने से दब कर मर गए। यह सब अत्यंत ह्दयविदारक घटनाएं रही फिर भी प्रवासी मजदूरों की समस्याओं का अंत यही नही हुआ बल्कि ये कह सकते हैं कि ये तो अभी शुरुआत थी, अभी तो बहुत कुछ होना बाकी था।

प्रवासी मजदूरों की समस्या ने भारतीय राज्यों को दो भागों में मुख्य रूप से विभाजित कर दिया (आयोजक राज्य एवं गृह राज्यऋ। प्रवासी मजदूर ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि जहाँ आयोजक राज्य और न ही गृह राज्य इनका उत्तरदायित्व लेना चाहते हैं। आयोजक राज्य चिंतित दिखे कि सामाजिक दूरी को बनाये रखने के साथ कैसे इतनी बड़ी संख्या में मजदूरों के लिए शेल्टर एवं भोजन का प्रबंध करेंगे और लॉक डाउन के नियमो का पालन करवाएं। गृहराज्यों की समस्या यह रही कि ये प्रवासी मजदूर वापस लौटते है तो इन राज्यों में कोरोना केसों की वृद्धि होने लगेगी। यह भी समस्या थी कि इन मजदूरों के 14 दिन के क्वारन्टीन करने की व्यवस्था स्वास्थ्य सेवाओं के साथ करनी होगी वो भी इतनी बड़ी संख्या में, जिसके लिए ये राज्य तैयार नहीं थे।

इन प्रवासी मजदूरों की समस्या ने यही से पूर्णत: राजनीतिक रूप ले लिया और केंद्र और राज्यों के मध्य एक दूसरे को दोषी ठहराने का सिलसिला आरम्भ हो गया। पूरे देश में सर्वाधिक मजदूरों का पलायन महाराष्ट्र से उत्तर प्रदेश एवं बिहार को देखा गया। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने इन मजदूरों की व्यवस्था करने के लिए केंद्र सरकार को उत्तरदायी ठहराया और बाद में गृह मंत्री अमितशाह के द्वारा बात करने के पश्चात महाराष्ट्र सरकार ने इन प्रवासी मजदूरों के लिए बसों की व्यवस्था की।

केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को आदेश दिया गया कि वो प्रवासी मजदूरों एवं उनके परिवारों को भोजन और आश्रय प्रदान करने के लिये राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया कोष (NDFR) का उपयोग कर प्रवासी मजदूरों को स्थानांतरित होने से रोका जाए। साथ ही मकान मालिकों को भी आदेश जारी किया गया कि वो किराये की जबरन मांग न करें और औद्योगिक संस्थाओं एवं अन्य क्षेत्रों के नियामकों से भी बिना कोई कटौती किये सभी के पूर्ण वेतन या मजदूरी देने का आग्रह किया गया। केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को वापस आने वाले श्रमिकों के 14 दिनों के क्वारन्टीन करने के लिए शिविरों की व्यवस्था करने को कहा गया। साथ ही सरकार ने राष्ट्रीय सूचना प्रणाली (NDMA I) द्वारा बनाये गए एक ऑनलाइन डेटाबेस की घोषणा की जो राज्यों में फंसे हुए मजदूरों एवं उनके स्थान का पता लगाने में मदद करेगा। सरकार ने अपने मोबाइल नंबर को सिस्टम में फीड करके मजदूरों को अपडेट करने की योजना बनाई।[5]

बाद में मई में सरकार द्वारा मजदूरों के लिए बसों एवं ट्रेनों का आरंभ किया गया। मजदूरों के लिए श्रमिक स्पेशल ट्रेनों की व्यवस्था की गयी परंतु अभी भी समस्या का समाधान नही हुआ। क्योंकि ट्रेनों के सामान्य किराये में अतिरिक्त शुल्क भी था, यह यात्रा ट्रेनों से मुफ्त नहीं थी। बाद में विपक्ष द्वारा आलोचना के पश्चात सरकार द्वारा घोषणा की गई कि 85 प्रतिशत किराये पर सब्सिडी रेलवे द्वारा दी जाएगी एवं अन्य 15 प्रतिशत का वहन राज्य सरकारों को करना पड़ेगा, परंतु इसके बाद भी मजदूरों द्वारा अज्ञात राशि का भुगतान करने को मजबूर होने के मामले सामने आये। इसके अतिरिक्त भी इन ट्रेनों से यात्रा के दौरान प्रवासी मजदूरों

को अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ा, क्योंकि यात्रा के दौरान भोजन एवं पानी की अव्यवस्था की सूचनाएं प्राप्त हुई। गोआ से मणिपुर जाने वाली ट्रेन तो 58 घंटे की देरी से पहुँची जिसमे स्वच्छ्ता सुविधा की कमी के कारण पथराव भी हुए। कही कही तो भोजन एवं पानी की ऐसी अव्यवस्था थी कि प्रवासी मजदूर उसे प्राप्त करने की होड़ में खुद ही आपस में लड़ पड़े। रेलवे सुरक्षा बल के अनुसार तो 9 मई 2020 से 27 मई 2020 तक इस यात्रा के दौरान लगभग 80 मौतें हो चुकी हैं। जबकि रेलवे का कहना है कि अधिकांश मृत्यु का कारण पूर्व की बीमारियाँ हैं।[6]

सरकारी राहत पैकेज

सरकार ने इन प्रवासी मजदूरों एवं गरीब लोगों का ध्यान रखते हुए लॉक डाउन के आरंभ में ही यह बात कही थी कि हमारे गोदाम में पर्याप्त मात्रा में अनाज है जिससे एक या डेढ़ वर्ष तक गरीबों को भोजन प्राप्त होता रहेगा।[7] इसी के साथ आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत दो महीने तक प्रवासी मजदूरों के लिए नि:शुल्क अनाज आपूर्ति की व्यवस्था की गई। इसके तहत जो प्रवासी मजदूर न तो एनपीएस या राज्य में राज्य कार्ड लाभार्थी है उनको भी दो महीने तक प्रति परिवार पांच किग्रा. अनाज और एक किग्रा. चना दिया गया। इससे लगभग आठ करोड़ प्रवासी मजदूरों को लाभ पहुचने की आशा है। दो महीने के लिये 300 करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे और यह पूरा खर्च भारत सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। राज्य सरकारों की जिम्मेदारी ये होगी कि वह इस योजना को लागू करते हुए, प्रवासी मजदूरों की पहचान कर वितरण करे तथा व्यापक दिशा-निर्देश दे।[8]

प्रवासी मजदूरों, किसानों, छोटे व्यापारियों, रेहड़ी-पटरी वालों सहित गरीबों की सहायता के लिए लघु एवं दीर्घावधि उपाय किये गए जिसके अंतर्गत मार्च 2021 तक भारत में किसी भी राशन की दुकान से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत ष्एक देश, एक राशनकार्डष् की व्यवस्था की गई। सभी मजदूरों एवं शहरी गरीबों को सस्ते किराये पर रहने के लिए घर उपलब्ध कराने की योजना की गई। छोटे कर्जदारों के लिए 12 महीनों के लिए दो प्रतिशत ब्याज पर वित्तीय सहायता 1500 करोड़ की राहत राशि की घोषणा की गई।[9]

गलत सूचनाओं का प्रसार

सरकारी योजनाओं एवं वास्तविक परिस्थिति के मध्य बड़ा अंतर देखने को मिला और इस सब अव्यवस्था का सबसे प्रमुख कारण गलत सूचनाओं का प्रसार रहा। इस भयावह महामारी के दौर में इन गलत सूचनाओं के प्रसार ने स्थिति को और भी विकट बना दिया। आपातकालीन स्थिति में यदि गलत सूचनाओं का प्रवाह हो तो समस्या विकराल रूप ले लेती है। आज के युग में घर-घर में सोशल मीडिया की पहुंच ने जहाँ एक ओर बहुत कुछ बहुत आसान बनाया है वही इसके गलत प्रयोग एवं ऐसी स्थिति में इसके द्वारा समय समय पर गलत सूचनाओं के प्रसार से स्थिति अनियंत्रित हो जाती है। हाल ही में यूक्रेन के एक नगर नोवा में कोरोना वायरस के विषय में गलत सूचनाओं के प्रसार के लिए जिम्मेदार 24 लोगों को भय एवं दहशत फैलाने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया। [10] भारत में भी कोरोना वायरस के काल में इन गलत सूचनाओं के प्रसार का प्रवासी मजदूरों की समस्याओं को बढ़ाने में अहम भूमिका रही। भारत में भी सरकार को यूक्रेन की ही भांति कुछ गंभीर कदम उठाने होंगे ताकि ऐसी सूचनाओ के प्रसार को नियंत्रित किया जा सके।

इन तमाम चुनौतियों के साथ ही सरकार को प्रवासी मजदुरो के विषय में गंभीरता से विचार करते हुए इनके मार्ग में आने वाली समस्याओं के निदान के विषय में सोचना पड़ेगा। इस समय सरकार द्वारा लागू की गई गरीब रोजगार कल्याण योजना एक प्रशंसनीय प्रयास है जिसके अंतर्गत छः राज्यों के 116 जिलों में वर्तमान में इसे लागू किया जा रहा है। इसे देश के उन जिलो में लागू किया जा रहा है जहाँ प्रवासी कामगारों की संख्या 25 हजार से अधिक हो। इस योजना के तहत 125 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा। अभी इस योजना में 50 करोड़ खर्च किये जायेंगे। इस योजना के तहत सभी मजदुरो के कौशल की पहचान कर इसके अनुरूप कार्य दिया जाएगा। साथ ही महिलाओं को भी स्वयं सहायता समूहों से जोड़ा जाएगा।[11]

इस संकट की घड़ी में कई देशों की तरह ही भारत में भी सहकारी समितियों के सहयोग से श्रमिकों के कौशल का उपयोग करके न केवल प्रधानमंत्री मोदी के आत्मनिर्भर भारत का सपना पूर्ण किया जा सकता है बल्कि यह विकास की प्रक्रिया में विकेंद्रीकरण की सुविधा भी प्रदान करने वाला होगा। राज्य सरकारों को ऐसी योजनाओं को व्यावहारिक रूप से सफल बनाने के लिए नए सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों की स्थापना के लिए बुनियादी ढांचे में सुधार, औद्योगिक संपदा के निर्माण आदि पर काम

करना पड़ेगा। जो आर्थिक विकास को आगे बढ़ाएगा। साथ ही आर्थिक मदद के साथ कुशल श्रमिक अपने गांवों में स्वरोजगार के नए अवसरों का सृजन भी कर सकते हैं।

यह ऐसा समय है जहाँ केंद्र एवं राज्य सरकारों को भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति, शहरी एवं ग्रामीण विभाजन, राज्यों के आसमान विकास एवं देश की सामाजिक और आर्थिक असमानताओं के विषय में जानने के लिए सम्मिलित प्रयासों को जारी रखना पड़ेगा। सरकार को निष्पक्ष रूप से प्रवासी मजदूरों एवं उनके परिवारों को लाभ और अवसर दोनों ही उपलब्ध कराना होगा। साथ ही व्यापार एवं उद्योगो की वृद्धि के लिए श्रमिको के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करना होगा। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि अभी आगामी परिस्थिति का अंदेशा तो नहीं है कि यह कितनी संवेदनशील होगी तथा आगे किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। ऐसे में यह समय सरकार और विपक्ष के मध्य आरोप-प्रत्यारोप का नहीं है बल्कि आपसी मतभेदों को भुनाने का नही भुलाने का है।

अनलॉक डाउन

अनलॉकडाउन एक की समाप्ति एवं अनलॉक डाउन दो के आरंभ के साथ ही अब तक अधिकांश प्रवासी मजदूर अपने घरों तक पहुँच गए हैं और जैसा कि पूर्वानुमान था इनके गृह राज्य पहुंचने के साथ ही कोरोना संक्रमितों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इससे भी बड़ी समस्या वर्तमान में यह है कि अनलॉक डाउन के साथ ही बहुत से लोगों के व्यवहार में भी परिवर्तन नजर आ रहा है और उनके द्वारा लापरवाही देखने को मिल रही है। परंतु यह समय यह समझने का है कि सरकार द्वारा इतने लंबे लॉक डाउन के द्वारा जनता को यह सिखला दिया गया है कि किस प्रकार का व्यवहार व कैसे जीवन यापन इस नई परिस्थिति में करना है। अब अनलॉक डाउन में भी हमे वैसे ही नियमों का पालन करते हुए मास्क और सेनिटाइजर का प्रयोग करना है और कही भी आनेजाने, उठने बैठने में 2 गज की दूरी का पालन अवश्य ही करना है। अन्यथा स्थिति को नियंत्रित कर पाना असंभव होगा।

यह समय इस महामारी से संगठित रूप से लड़ने का है इसीलिए न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर यह बात स्वीकार किया गया है। आम चुनौतियों का सामना करने में क्षेत्रीय सहयोग अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावी होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सार्क नेताओं ने वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिये 15 मार्च 2020 को संयुक्त कार्यवाही की संभावनाओं पर चर्चा की तथा साथ ही दक्षिण एशियाई नेताओं ने इस संकट से निपटने के लिए एक क्षेत्रीय फण्ड शुरू करने का फैसला लिया है। यह क्षेत्रीय प्रयास न केवल उत्तरदायित्वों को सांझा करने के लिए सार्क प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करने के लिए भी एक अच्छी शुरुआत है। G-20 देशो के नेताओं द्वारा भी ऐसे ही ऑनलाइन सम्मेलन का सफल आयोजन किया गया एवं सामाजिक तथा आर्थिक दोनो ही क्षेत्रों में सहयोग का आश्वासन दिया गया। [12]

यह तो निश्चित है कि इस वायरस का प्रभाव भारतीय एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था पर बहुत गहरा पड़ा है। परन्तु यह अभी कितना लंबा और चलेगा ये तो समय के साथ ही पता चलेगा। यह भी ज्ञात होना आवश्यक है कि इस संकट के पश्चात हम कहाँ पे होंगे या हमारी स्थिति क्या होगी। हालांकि इस वायरस के साथ ही चीन की मंशा का ज्ञान होने के पश्चात से ही भारत के लिए यह कोरोना वायरस का काल अवसर प्रदान करने वाला काल भी है। महामारी के पश्चात के विश्व में भारत की भूमिका क्या होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इस महामारी के संकट से कैसे निपटते हैं। यह बहुत कुछ-नेतृत्व की गुणवत्ता, सभी स्तर पर प्रशासन की गुणवत्ता, (केंद्र-राज्य , जिला और गाँवऋसंस्थागत ढांचों की सुदृढ़ता, स्वस्थ देखभाल की गुणवत्ता और लोगों के रूप में हमारी सामाजिक सुगमता जैसे बुनियादी कारकों पर निर्भर करता है।

बेशक विश्व के अन्य देशों की तुलना में जिस तरह भारत ने अब तक इस महामारी का सामना किया है, वह आत्मविश्वास बढ़ाने वाला है। इस समय दो भारत उभर के सामने आये हैं-एक भारत जिसमें सामाजिक दूरी संभव है और एक भारत जिसमे यह नहीं है। यदि सम्पूर्ण भारत इस समस्या से एकजुट होकर निपट गया तो वह निश्चित ही विश्व के समक्ष अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को प्रदर्शित करेगा, जो वैश्विक स्तर पर भारत के लिए नई संभावनाओं के अवसर प्रदान करेगा। वह दिन भी कहा जा सकता है कि दूर नहीं जब भारत विश्व गुरु के रूप में उभर कर सामने आएगा। आवश्यकता है तो बस नई धारणा, नये मूल्य और नए विश्वास की।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. The Hindu - 30 Jan2020
   https://www-thehindu-com/sci-tech/science/all-about-the-chaina-corona-virus-covid-19/article30692734-ece
2. https://www-worldometers-info/coronavirus/countries-where-coronavirus-has-spread/
3. https://inshorts-com/en/read/ -17th June 2020.
4. Dutt, Barkha (15 May 20200- "There is a humanitarian crisis in India- Lift the lockdown, now"- Hindustan Times- Retrieved 22 May 2020- 5- Tiwary, Deeptiman (17 May 20200- "To streamline movement of migrants, Centre launches portal"- The Indian Express- Retrieved 25 May 2020.
5. Krishna Prashad Suchita- ^^Pravasi and Arthik Vikash**- Yojna µ June 2020 Page no - 34 to 38-
6. "Shramik Special trains resume, five services operated"- The Hindu- 6 May 2020- ISSN 0971-751X- Retrieved 9 May 2020.
7. "India to Provide Free Food Grains to Millions of Migrant Workers"- The New York Times- Reuters- 14 May 2020- ISSN 0362-4331- Retrieved 16 May 2020.
8. Vadlamudi, Swathi (19April 20200- "Sans Aadhaar, no ration for migrants"- The Hindu- ISSN 0971-751X- Retrieved 19 May 2020.
9. https://economictimes-indiatimes-com/news/politics-and-nation/lockdown-in-india-has-impacted-40-million-internal-migrants-world-bank/
11. Amar Ujala — 20 June 2020
12. COVID 19, new normal and India, 9 April 2020 https://economictimes-indiatimes-com/blogs

एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में पलायन

नमो नारायण

सहायक प्राध्यापक, राजनीतिशास्त्र, दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई, जालौन (यू.पी.)

सारांश

पलायन या प्रवसन दूसरे राज्य के शहर अथवा दूसरे देश में सदियों से होता रहा है। इसलिए यह कोई नई घटना नहीं है परंतु पिछले 3 दशकों से प्रवसन की समस्या राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक विश्लेषकों समाजशास्त्रियों और शोधार्थियों के अध्ययन का प्रमुख विषय बनी हुई है। यह आज के संदर्भ में कुछ परिवर्तित नजर आती है। कोविड-19 या कोरोना वायरस के चलते भारतीय शहरों से दूर-दराज के गांव की ओर पलायन स्वतंत्रता के बाद पहली बार इस रूप में बड़े पैमाने पर देखने को मिला है। इसके अतिरिक्त दूसरे देशों में आजीविका के लिए गए भारतीयों का उल्टा प्रवसन (रिवर्स माइग्रेशन) देखने को मिल रहा है। लॉकडाउन से नौकरियां चली गई हैं और सामाजिक दूरी (सोशल डिस्टेंसिंग) के चलते प्रवसन और अधिक अस्त-व्यस्त हो गया है। वस्तुत: इस तरह के पलायन के मुख्य कारण राजनीतिक अदूरदर्शिता और असमान विकास रहे हैं। पलायन से उत्पन्न रोष भविष्य की राजनीति पर प्रभाव डालेगा। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य उक्त दो प्रमुख कारणों का विश्लेषण करना और भारत की राजनीति पर इसके दूरगामी प्रभावों का परीक्षण करना है।

सूचक शब्द-पलायन, प्रवसन, उदारवाद, साम्यवाद, औद्योगिक व्यवस्था, गांधीवाद, ग्रामोदय।

कोविड-19 या कोरोना वायरस के चलते भारतीय शहरों से छोटे शहरों तथा दूर दराज के गांवों की ओर पलायन स्वतंत्रता के पश्चात पहली बार इस रूप में बड़े पैमाने पर देखने को मिला है। साथ ही दूसरे देशों में आजीविका के लिए गये भारतीयों का उल्टा प्रवसन (रिवर्स माइग्रेशन) देखने को मिल रहा है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कोरोना के चलते लॉकडाउन में लगभग चार करोड़ कामगारों का आंतरिक पलायन होगा। संकट के चश्मे से देखने पर पता चलता है कि आंतरिक पलायन अंतरराष्ट्रीय पलायन से ढाई गुना अधिक है। लॉकडाउन के दौरान नौकरियां चली गई और सामाजिक दूरी (सोशल डिस्टेंसिंग) के चलते पलायन और अधिक अस्त-व्यस्त हो गया। सरकारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती पलायन करने वाले लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने, नकदी हस्तांतरण और अन्य सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की है। इससे पड़ोसी देशों में व्यापार, सुरक्षा, राजनीति आदि मुद्दों पर तनाव की स्थिति बन सकती है।

सामान्यत: श्रमिकों का पलायन उत्तर और पूर्व भारत से पश्चिम और दक्षिण भारत में देखने को मिलता है। ज्यादातर श्रमिक बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड और उड़ीसा से पलायन करते हैं। यह पलायन मुख्यत: गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में होता है। यह उत्तर और दक्षिण के बीच का जनसांख्यिकीय विभाजन एवं स्थानांतरण है। दिसंबर-जनवरी से लेकर जून-जुलाई तक श्रमिक विभिन्न राज्यों में विनिर्माण क्षेत्रों, ईंट भठे, धान मिलो तथा अन्य क्षेत्रों में काम करने के लिए प्रवसन करते हैं। अंतर्राज्यीय प्रवासियों को 2011 की जनगणना और आर्थिक सर्वेक्षण 2017 में शामिल किया गया। 2015 में शहरी मामलों के मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा प्रवासी मजदूरों से जुड़े बहुत सारे मुद्दों पर विचार करने के लिए एक कार्य समूह का गठन किया गया। इसने प्रवासी मजदूरों की आजीविका रहन-सहन और भविष्य में आने वाली विपदाओं के विषय में केंद्र और राज्यों को कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए। उन पर अमल करने की जरूरत है।

भारत की कुल जनसंख्या का 2001-2011 के बीच शहरीकरण की दशकीय वृद्धि 31.8 प्रतिशत रही। शहरीकरण की वृद्धि का मुख्य कारण पलायन है और भविष्य में इसमें और अधिक वृद्धि संभावित है। 2021 तक पलायन 55 करोड़ को पार कर जाएगा। स्मार्ट सिटी मिशन इसे को और बढ़ावा देगा। एक अध्ययन के तहत 2001-2011 के बीच भारत में 13.9 करोड़ प्रवासी श्रम शक्ति में वृद्धि देखने को मिली है। भारत में आंतरिक प्रवसन पिछले दो दशकों में दोगुना हो गया है। 1991 में यह 22 करोड़ था जबकि 2011 में 45.4 करोड़ हो गया। 2017 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार राज्यों से शिक्षा और कार्य की तलाश में औसतन 90 लाख लोगों ने प्रत्येक वर्ष प्रवसन किया। आर्थिक सर्वेक्षण के आंकड़े कहते हैं कि उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश के प्रवासी श्रमिकों ने दिल्ली, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा गुजरात जैसे राज्यों में सबसे अधिक पलायन किया।

पलायन की समस्या तब आती है जब किसी व्यक्ति को स्थानीय स्तर पर उद्योग या कृषि या व्यापार में रोजगार नहीं मिल पाता। तब वह श्रमिक दूसरे शहर अथवा प्रदेश में रोजगार प्राप्त करने के लिए प्रवासी मजदूर बन जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक एवं सामाजिक मामलों के जनसंख्या प्रभाग द्वारा अंतर्राष्ट्रीय प्रवसन स्टॉक, 2019 (इंटरनेशनल माइग्रेशन स्टॉक 2019) नामक रिपोर्ट के आंकड़ों के अनुसार भारत के अंतरराष्ट्रीय प्रवासियों की संख्या 1.7 करोड़ है जो कुल प्रवासियों का 6.4 प्रतिशत है।

पलायन एक वैश्विक परिघटना है। इसका केवल आर्थिक कारण नहीं है वरन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि कारण है जो पलायन को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी हैं। पलायन मुख्यत: दो प्रकार का होता है-एक, आंतरिक तथा दूसरा, बाह्य। आंतरिक पलायन राज्य के अंदर एक शहर से दूसरे शहर तथा देश के दूसरे राज्यों के शहरों को होता है। वाह्य प्रवसन एक देश से दूसरे देश को होता है। भारत में आंतरिक पलायन लगभग 30.5 करोड़ है। जो कुल जनसंख्या का लगभग 30% है। इसमें महिलाओं का प्रतिशत 70.7 है। महिलाओं के पलायन का मुख्य कारण विवाह है। 2011 की जनगणना के अनुसार 4.5 करोड़ भारतीय बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में दूसरे शहरों में पलायन कर गए। 2050 में भारत की 81.4 करोड़ जनसंख्या शहरों में रह रही होगी।

प्रश्न उठता है कि यह समस्या आती क्यों है? प्रवास के हैरिस टोडारो मॉडल (1970) से पता चलता है कि शहरी औद्योगिक क्षेत्र में अपेक्षित मजदूरी दर ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरों की वर्तमान मजदूरी से काफी अधिक हो तो ग्रामीण कृषि श्रमिक शहरीध्औद्योगिक स्थानों पर प्रवास करने का निर्णय लेते हैं। अपेक्षित वेतन वर्तमान शहरी वेतन दर का अनुपात है और नौकरी खोजने का मौका है। हर श्रमिक संगठित क्षेत्र में सुरक्षित नौकरी करना चाहता है लेकिन श्रमिकों की संख्या अधिक होने, शिक्षा और कौशल की कमी आदि के चलते उन्हें असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। साथ ही कृषि क्षेत्र की समस्या, पैतृक भूमि का विभाजन और स्थानीय स्तर पर घटते रोजगार के अवसर जैसे कारण अधिक से अधिक लोगों के बड़े शहरों की ओर पलायन का कारण बनते हैं।

पलायन की समस्या की तह तक जाने पर हम पाते हैं कि इस समस्या का मूल कारण केंद्रीकृत विकास मॉडल है। स्वतंत्रता के पश्चात देश के नीति-नियंताओं के समक्ष विकास के दो प्रमुख मॉडल थे एक, उदारवादी औद्योगिक विकास मॉडल जो उत्पादन, वितरण और विनिमय के निजी स्वामित्व पर आधारित था तथा दूसरा, साम्यवादी औद्योगिक विकास मॉडल जो उत्पादन, वितरण और विनिमय के राज्य/सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित था। भारत ने निजी और सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था के विकास मॉडल को अपनाया परंतु निष्पक्ष रूप से विचार करें तो औद्योगिक सभ्यता के उदारवादी प्रतिमान और मार्क्सवादी प्रतिमान केंद्रीकृत औद्योगिक प्रणाली उत्पादन, आदि की दृष्टि से समान अधिक हैं और असमानता अत्यंत कम है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रतिमान में उदारवाद और मार्क्सवाद/साम्यवाद के अंतर को कम करने का महती प्रयास किया गया परंतु औद्योगिक व्यवस्था का वैचारिक आधार कुछ भी हो उसका चरित्र एक जैसा होता है। औद्योगिक सभ्यता की आर्थिक नींव का स्तंभ केंद्रीकृत उत्पादन प्रणाली है जो औद्योगिक शहरीकरण का निर्माण करती है और रोजगार के अवसरों का तेजी से निर्माण होता है। सरकारों का विकास को लेकर पूरा फोकस शहरों की ओर होता है। लिहाजा गांव और दूरदराज के छोटे शहरों के बेरोजगार श्रमिक बड़े औद्योगिक शहरों की ओर पलायन करते हैं।

भारत में पिछले 70 बरस में विकास के लिए निवेश कुछ गिने-चुने राज्यों के प्रमुख शहरों यथा दिल्ली, मुंबई, पुणे, अहमदाबाद, बेंगलुरु, हैदराबाद जैसे शहरों के आसपास घूमता रहा है। कोई भी निवेशक पिछड़े क्षेत्रों में निवेश करने के लिए उत्सुक नहीं होता है। लिहाजा वह क्षेत्र, गांव विकास की इस दौड़ में बहुत पीछे छूट जाते हैं और उनके लोग तो और भी पीछे रह जाते हैं। ऐसे लोग

रोजगार की तलाश में शहरों का रुख करते हैं। वहां वह सड़कों के किनारे, नालों के किनारे, ओवर ब्रिज के नीचे तथा झुग्गियों में अमानवीय परिस्थितियों में जीवन गुजारने के लिए मजबूर होते हैं। इन श्रमिकों के गृह राज्यों में होने वाले प्रत्येक चुनाव में गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी दूर करने के वादे किए जाते हैं परंतु चुनाव के बाद राजनीति अपना काम करती है और मजदूर अपना और पलायन अनवरत चलता रहता है।

कोविड-19 के कारण लॉकडाउन के चलते प्रवासी मजदूरों की रोजी-रोटी छिन गई। इसके कारण लगभग चार करोड़ लोगों ने पुनः पलायन (रिवर्स माइग्रेशन) किया। सैकड़ों किलोमीटर और कई मामलों में 1000 किलोमीटर से ऊपर की पैदल यात्रा हर उम्र की महिलाओं, गर्भवती महिलाओं तथा छोटे बच्चों के साथ की गई जो कई मामलों में बहुत हृदय विदारक रही है। ऐसे में अपने गृह राज्य लौटे प्रवासी मजदूरों और उनके परिवार वालों का अपनी सरकारों से यही प्रश्न है कि रोजगार की व्यवस्था उनके अपने गृह राज्य में क्यों नहीं होती? आने वाले वर्षों में भारतीय राजनीति में पलायन एक बड़ा मुद्दा होगा। अब उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों की जातिवादी-राजनीति वर्ग-राजनीति में परिवर्तित होने की संभावना को दिखाती है। भारतीय राजनीति में सबाल्टर्न अर्थात शोषित-वंचित-केंद्रित राजनीति का नया अध्याय शुरू होने के संकेत भी हैं। सभी राज्य सरकारें केंद्र के साथ मिलकर उदारता के साथ समाज के निचले तबके के लोगों की मदद कर रही हैं। यदि इसके राजनीतिक लाभ का असर राजनीतिक दलों को हो जाए तो वह अपनी राजनीति को सबाल्टर्न केंद्रित बनाए रखने की चुनौती ही नहीं वरन उसे अपना राजनीतिक एजेंडा भी बना सकते हैं। यदि ऐसा हुआ तो भारतीय राजनीति में हमें परिवर्तन देखने को मिलेगा जो हमें जातिवादी-राजनीति वर्ग-राजनीति की ओर ले जाएगी क्योंकि प्रवासी मजदूर धर्म या जाति के आधार पर प्रवासी मजदूर नहीं बनते और न ही उनका पुनः पलायन जाति, धर्म के आधार पर होता है। प्रवासी मजदूरों की मदद करने में सरकारों ने जाति धर्म नहीं देखा है। ऐसा नहीं है कि भारतीय राजनीति में जातीयता खत्म हो जाएगी परंतु उसमें वर्ग-राजनीतिक की एक समानांतर धारा भी चल पड़ेगी जो भविष्य में उन संभावनाओं को जन्म दे सकती है जिसके हिमायती कभी लोहिया या कांशीराम हुआ करते थे।

भारत में असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों की संख्या लगभग 90% है। इतनी बड़ी संख्या होने के बावजूद भी उनका कोई डेटा न तो भारत सरकार के मंत्रालय के पास है और न ही राज्य सरकारों के पास है। ऐसे में उनके लिए समुचित कार्यक्रम योजनाओं का यथोचित लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता साथ ही नियोक्ता भी कानूनों के तहत उन्हें लाभ देने से बचते हैं। ऐसे में भारतीय राजनीति में आने वाली सरकारों पर पलायन प्रवसन की समस्या के युक्ति-युक्त समाधान का दबाव होगा। पलायन प्रवसन पर केंद्रित राजनीति अब भारतीय राजनीति के केंद्र में होगी कुल श्रमिक शक्ति के 90% का असंगठित क्षेत्र में होना मजदूरों के लिए एक व्यापक और समेकित नीति की आवश्यकता को दर्शाता है।

प्रवासी श्रम को असंगठित क्षेत्र में वर्गीकृत किया जाता है। इसलिए उन पर श्रम कानून प्रभावी नहीं होते हैं। 90% असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का सरकारों के पास कोई रिकॉर्ड नहीं है। इसलिए उन्हें न तो सरकारों के द्वारा बनाई गई नीतियों तथा कार्यक्रमों का लाभ मिलता है और न ही नियोक्ता के द्वारा उन्हें अवकाश, न्यूनतम मजदूरी, चिकित्सीय सुविधा आदि दी जाती है। यह अति आवश्यक है कि सबसे पहले असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के हितों की रक्षा तथा उनके कल्याण के लिए कानून का निर्माण किया जाए और यह राजनीतिक दलों के एजेंडे में प्राथमिकता पर हो।

असंगठित क्षेत्र के प्रवासी मजदूरों का डेटा जिलेवार तैयार किया जाए जिसकी जिम्मेदारी जिलाधिकारी तथा राजस्व विभाग के अधिकारियों को दी जाए। साथ ही डेटा त्रुटि विहीन और सत्य होने की जिम्मेदारी भी अधिकारियों पर डाली जाए। इस डाटा में प्रवासी मजदूरों को कुशल, अर्ध कुशल और अकुशल श्रमिकों की श्रेणियों में बांटा जाए। यह डेटा राज्य सरकार के श्रम विभाग और भारत सरकार के श्रम मंत्रालय के पास भेजा जाए। जब कोई श्रमिक दूसरे राज्य में जाए तो दूसरे राज्य की सरकार श्रमिक के गृह राज्य की सरकार से उसके डेटा को प्राप्त कर सकती है और उसकी योग्यता के अनुसार उसे रोजगार मुहैया करा सकती है।

राज्य सरकारों की यह जिम्मेदारी है कि वह स्थानीय स्तर के उद्योगपति, व्यापारी, रियल स्टेट के बिजनेसमैन होटल व्यवसायी आदि की आवश्यकताओं के अनुसार श्रमिक के तौर पर स्थानीय लोगों को प्राथमिकता के आधार पर रोजगार दें। इससे एक शहर के मजदूर को रोजगार हेतु दूसरे शहर नहीं जाना पड़ेगा और उसे वहीं उसी शहर में रोजगार मिल जाएगा, जहां का वह है। सरकारें यह सुनिश्चित करें कि स्थानीय नियोक्ता स्थानीय मजदूरों को विधि संगत सभी सुविधाएं मुहैया करा रही है। साथ ही दूसरे राज्यों में दूसरे राज्य के मजदूरों के कल्याण की जिम्मेदारी उस राज्य की राज्य सरकार निभाए मजदूर के गृह राज्य की सरकार मजदूर के

हितों को ध्यान में रखें। मजदूरों को अपने गृह राज्य की सरकार से ई-पोर्टल आदि के माध्यम से किसी भी संकट या समस्या के समय संपर्क स्थापित करने की सुविधा हो। इसके लिए राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में प्रवासी श्रमिक विभाग की स्थापना करें जिसका कार्य प्रवासी मजदूरों के हितों की रक्षा करना हो।

सभी राजनीतिक दलों को उक्त मुद्दे प्राथमिकता पर लेने चाहिए। इसके लिए नागरिक समाज सिविल सोसाइटी एनजीओ तथा अन्य सामाजिक संगठनों को पहल करनी चाहिए। प्रवासी मजदूरों को प्रदेश स्तर पर तथा राष्ट्रीय स्तर पर दबाव समूह का निर्माण करना चाहिए जिससे उनकी राजनीतिक स्तर पर प्रभावी भूमिका सुनिश्चित हो सके।

पलायन की समस्या के उक्त समाधान तात्कालिक हैं जबकि इस समस्या के दीर्घकालिक और सुनिश्चित समाधान हेतु विकास के गांधीवादी मॉडल पर विचार किया जा सकता है जिसे गांधीजी हिन्द स्वराज में आत्मनिर्भर आत्मपूरित ग्रामीण सभ्यता के नाम से संबोधित करते हैं। गांधीजी का विकास मॉडल भारतीय सामाजिक संरचना के अनुकूल है। इसमें हर व्यक्ति के लिए श्रम है, कुटीर-लघु उद्योग हैं, पर्यावरण का संरक्षण है, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, मनुष्य सभी की आने वाली पीढ़ियों के हित का विचार है और संपोषणीय विकास का दर्शन है। परंतु अफसोस कि स्वतंत्रता के पश्चात गांधी को नीतिनियंता भूल गये। सरकारों ने सिर्फ शहरों पर ध्यान दिया, गांव वीरान होते चले गये। तकनीक उन्मुखी समाज ने इसमें अहम भूमिका निभाई। शहर-केंद्रित विकास मॉडल के विकल्प भारत रत्न नानाजी देशमुख के 'ग्रामोदय से राष्ट्रोदय' के विकास मॉडल को अपनाया जा सकता है जिसे ग्रामीण विकास का चित्रकूट मॉडल भी कहा जाता है। नाना जी का यह मॉडल एकात्म मानववाद पर आधारित था। नाना जी का चित्रकूट मॉडल पूरे देश के लिए अनुकरणीय हो सकता है जो देश में पलायन की समस्या का दीर्घकालिक सुनिश्चित समाधान प्रस्तुत करता है।

संदर्भ

1. http://www-worldbank-org (Accessed June 24, 2020)
2. http://www-worldbank-org (Accessed June 24, 2020)
3. Frontline, 'The Way Forward on Migrant Issues' www-google-com/amp/s/frontline-thehindu-com-com/cover-story/artical31516414-ece/amp (Accessed June 24)
4. http://www-iom-intAccessed June 24, 2020
5. https://www-censusindia-gov-in Accessed June 25, 2020
6. http://www-faculty-washington-edu/Danny/todaro/Todaro-0htm Accessed June 25, 2020
7. कृष्णप्रसाद, सुचिता. ''प्रवासी और आर्थिक विकास'' योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अंक: 6, जून 2020, 34
8. मिश्र, विश्वनाथ. पश्चिमी ज्ञानोदय का वैचारिक संकट, नई दिल्ली, आक्सफोर्ड प्रेस, 2019, 205
9. https://www-jagran-comèeditorial/apnibaat-corona-crisis-will-change-look-charactor-democracy-politics-government-and-administration-around-world20312874-html (Accessed June 26, 2020)
10. https://www-jagran-com//ditorial/apnibaat-corona-crisis-will
11. मिश्र, विश्वनाथ. ज्ञानोदय, पश्चिमी का वैचारिक संकट, 209

कोविद संकट और पलायन में मास मीडिया की भूमिका

शालिनी प्रसाद

प्राध्यापक, पत्रकारिता और जनसंचार, जमशेदपुर विमेन्स कॉलेज, झारखंड

लोकतंत्र के चार स्तंभ न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधानमंडल और मीडिया हैं। लोकतंत्र का यह चौथा स्तंभ सुनिश्चित करता है कि देश के दूर-दराज के इलाकों में रहने वाले सभी लोग जान पाएं कि उनके देश के बाकी हिस्सों में क्या हो रहा है। मीडिया उपरोक्त तीनों प्रणालियों के काम में पारदर्शिता सुनिश्चित करता है। ये लोकतंत्र के चार स्तंभ हैं और यदि इनमे से कोई भी स्तंभ ठीक से काम नहीं कर रहा है तो कहीं न कहीं लोकतंत्र अभी भी पूरी तरह से कार्यशील नहीं है। यह मीडिया है जो सरकार को उसके अधूरे वादों की याद दिलाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीविजन, रेडिया और इंटरनेट के माध्यम से जनता को शिक्षित करता है और सिस्टम में खामियों को उजागर करता है। मीडिया के पास विभिन्न प्रमुख समस्याओं के प्रति सामाजिक और सरकारी दृष्टिकोण दोनों को बदलने की ताकत और क्षमता है। सभी पत्रकारों की जिम्मेदारी है कि वे विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्तनिष्पक्ष, सटीक जानकारी की रिपोर्ट करें।

माइग्रेशन एक्सपर्ट एस इरुदै राजन कहते हैं, ''इतिहास में पहली बार, प्रवासी खाली हाथ वापस जा रहे हैं। प्रवासी भिखारी नहीं होते हैं। वे उपहार देने आते हैं। वे ऐसे नायक हैं जो कई अन्य लोगों का समर्थन करने के लिए लड़ने के लिए अपने घरों को छोड़ देते हैं।'' हमने भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका निभाने वाले प्रवासियों को कम करके आंका है। हम उनके योगदान को पहचानने में विफल रहे हैं। हम जानते थे कि वे अस्तित्व में हैं, लेकिन उन्होंने कभी उनके परिमाण को स्वीकार नहीं किया। अनुमान है कि करोड़ों भारतीय आज आंतरिक प्रवासी हैं-या तो एक ऐसी जगह पर रह रहे हैं जहां वे पैदा नहीं हुए थे। इनमें से, मुख्य्य रूप से इस लॉकडाउन से प्रभावित होने वाले श्रमिक प्रवासी हैं। ये कुल प्रवासी आबादी का कम से कम 30% होगा। वे एक जगह जाते हैं, वहां कमाते हैं, पैसे घर वापस भेजते हैं, और एक नई जगह पर जाते हैं। क्या हम बिना प्रवासियों के मुंबई जैसे शहर की कल्पना कर सकते हैं? वास्तव में, प्रवासियों का गठन कई शहरों की अर्थव्यवस्थाओं का लगभग 30-40% है। हम उनके बिना अर्थव्यवस्था नहीं चला सकते। हम उद्योगों को फिर से खोल सकते हैं, लेकिन प्रवासी श्रमिकों के बिना वे कैसे कार्य करेंगे। केरल में पहले से ही बिखराव महसूस कर सकते हैं। कोविद का पहला सुनिश्चित मरीज भारत में30 जनवरी को मिला। जनता कर्फ़्यू रविवार 22 मार्च के बाद 21 दिन का पहला लॉक डाउन 25 मार्च से 14 अप्रैल तक के लिए लगा। प्रवासीय मजदूर लोग ट्रेन पर सवार उसके खुलने का इंतजार कर रहे थे और ट्रेन रद हो गई जिससे अब लोग घर आने के लिए मजबूर होकर सड़कोंसे निकल चुके थे।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने कोविद के प्रकोप को रोकने के लिए एहतियातन लॉकडाउन के बाद सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की परिचालन निरंतरता सुनिश्चित करने का निर्देश दिया है, और यह सुनिश्चित किया है कि किसी भी शहर में समाचारपत्रों की छपाई और वितरण में कोई बाधा न हो। यह निर्देश तब भी आया जब विशेषज्ञों ने सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट के दौरान समुदायों को एक जुट करने में अखबारों के महत्व पर जोर दिया और लोगों को जीवित रहने के लिए सूचित करने, चेतावनी देने और तैयार करने में इसकी भूमिका निभाई। बारामूला के पजवानपोरा क्षेत्रों में, युवा फहीम मीर ने अपने टू-जी फोन के साथ कोरोनोवायरस पर जानकारी डाउनलोड करने के लिए संघर्ष किया, ताकि इसे व्हाट्सएप समूह के माध्यम से स्थानीय ग्रामीणों के साथ साझा किया जा सके। लोग सूचनाओ के लिए नेट से जुड़ते हैं पर क्या ये सूचनाएं उन्हें सही मिलती है। तकनीकी विकस के बाद आज सबसे तेज और लोगों तक आसानी से पहुंच रखने वाला मीडिया सोशल मीडिया है स इन्टरनेट पर आज आपको

हर तरह की जानकारी आसानी से मिल जाएगी पर दु:ख की बात ये है कि आज फेक न्यूज का चलन भी उतनी ही तेजी से बढ़ रहा है कि सच और गलत का पता लगाना कठिन हो गया है स फेक न्यूज में खबरों का आधार सही नहीं होता। फेक न्यूज दो तरह के होते हैं-एक मिस इंफॉर्मेशन दूसरा डिस इंफॉर्मेशन। मिस इंफॉर्मेशन में सूचना गलत होती है पर उसे देने वाले को यह लगता है कि वह सूचना सही है। डिश इंफॉर्मेशन में सूचना देने वाले को यह पता होता है कि वह गलत सूचना है, परंतु फिर भी वह सूचना का प्रसार करता है। एबीपी का लोगो लगा एक ब्रेकिंग न्यूज में लिखा हुआ एक क्लिप था जिसमें ष्पाकिस्तान की मदद करना जरूरी है और हम यह जरूर करेंगे इस वक्तव्य को लिखकर राहुल गांधी का नाम नीचे लिखा था इस चित्र को फेसबुक पर काफी शेयर कर प्रचार किया जा रहा था जो कि फेक था। उसमें सिर्फ एबीपी के नाम के कारण लोगों का विश्वास बन जाता है क्योकि कि यह एक न्यूज चौनल के द्वारा प्रसारित खबर के रूप में प्रचार होती है। जिसके सही गलत की पहचान करना एक आम आदमी के लिए कठिन है क्योंकि यह टीवी का क्लिप था जोकि ब्रॉडकास्ट हो चुका था जिसका सही गलत पता लगाना कठिन था। इसी प्रकार से नरेंद्र मोदी की एक तस्वीर जिसमें उन्होंने आसाम में एक पैसेंजर ट्रेन को हरी झंडी दिखा रहे थे। उस चित्र में हरे झंडे में चांद और सितारा लगा के फेसबुक पर इस प्रकार प्रचार किया जा रहा था, मानो उनके हाथ में पाकिस्तान का झंडा हो।

जनता कर्फ्यू के बाद कोरोना वायरस को लेकर पूरी देश में अफवाहों का बाजार गर्म है। भारत में चल रहे कोरोना लॉकडाउन के बीच भी अफवाहों का बाजार चरम पर है। कोरोना वायरस और उसकी वजह से लागू लॉकडाउन को लेकर बीते कुछ समय से सोशल मीडिया पर तरह-तरह के झूठ तेजी से फैल रहे हैं। इनकी वजह से लोगों में घबराहट और चिंता पैदा होती है। आम धारणा के विपरीत, कोविड पहला श्डिजिटल इन्फोडेमिकश नहीं है। हाल के दिनों में, ब्राजील में जीका का प्रकोप, अफ्रीका में इबोला, यूरोप में इन्फ्लुएंजा और भारत में निफा के बीच मीडिया के साथ इसी तरह के अप्रत्यक्ष संबंध थे। हालाँकि मीडिया पैनिक की मात्रा कोविड के दौरान बहुत अधिक रही है। ब्रिटिश जर्नलिज्म रिव्यू में 'महामारी, विपत्तियां और दहशत' शीर्षक फिल हार्डिंग के एक लेख में बताया गया है कि बीमारी के प्रसार और परिणामी मानव व्यवहार को सूचना के प्रवाह के द्वारा काफी प्रभावित किया जा सकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्वास्थ्य संचार और समझ बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि किसी बीमारी के बारे में डेटा की व्याख्या जनता द्वारा कैसे की जाती है। खबरों के हर बिट के भीतर, नकली सूचनाओं का एक संभावित मिश्रण हो सकता है, जिसमें बड़ी चुनौती सच्चाई को मुंह चिढ़ाती है। यह स्वास्थ्य से संबंधित गलत सूचना इस तरह की महामारी के दौरान अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जब एक अज्ञात इलाज का डर बिना किसी निश्चित इलाज के साथ सामने आता है। लोगों में ये असुरक्षा का भाव पैदा कर देती है।

ऐसी कुछ अफवाह जनता कर्फ्यू के दोरान फैली और मीडिया के साथ लोग भी पैनिक हो गए। सबसे पहली अफवाह सोशल मीडिया पर चल रही थी कि सरकार लॉकडाउन आगे बढ़ा सकती है। जनता को सामान जमा करना चाहिए। माना यह खबर सही थी आगे जाकर लॉक डाउन का समय बढ़ा पर इस अफवाह को बताना उस वक्त सही नहीं था क्योकि इसी अफवाह के फलस्वरूप लोग अपने घरो में रह रहे प्रवासी मजदूरो कारीगरों और उनलोगों को घर से निकलना शुरु कर दिया जो रोज कमाते खाते है बड़ी मुश्किल से भाड़ा देकर रहते है जिनके पास कोई सेविंग नहीं होती। जिसके कारण बिना रोजगार और बिना आवास के लोग अपने पुराने स्थान की और लौटने को मजबूर हो गए। दूसरी अफवाह सोशल मीडिया पर कई ऐसे पोस्ट में दावा किया जा रहा है कि देश में आपाताकाल लगाया जा सकता है। देश में फैली आपातकाल लगाने की अफवाह भी पूरी तरह से फर्जी है। फर्जी दावा किया जा रहा है कि इसके लिए सेना तुरंत भर्ती भी शुरू करने जा रही है। मगर सेना ने इस पर सफाई देकर इसे पूरी तरह से खारिज कर दिया। तीसरा अफवाह सोशल मीडिया पर दावा किया जा रहा था कि दिल्ली में एक डॉक्टर की कोरोना वायरस से संक्रमित मरीज का इलाज करने के दौरान मौत हो गई। यह भी कतई झूठ है। जिस तस्वीर को प्रचारित किया जा रहा है वह दुबई के डॉक्टर की है, जो जीवित है। चौथी अफवाह सोशल मीडिया पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तस्वीर के साथ यह संदेश साझा किया जा रहा है कि देश में लॉकडाउन को सफल बनाने के लिए जल्द ही इंटरनेट सेवाएं बंद कर दी जाएंगी। हालांकि, यह भी पूरी तरह से अफवाह है और लोगों में भ्रम की स्थिति पैदा की जाने की महज एक कोशिश है। अगली अपवाह सोशल मीडिया पर एक फोटो वायरल हो रही है। इसमें जले हाथ दिख रहे हैं। दावा किया जा रहा है कि हैंड सैनिटाइजर इस्तेमाल करने से गैस चूल्हा चलाते ही महिला के हाथों तक आग पहुंच गई। डॉक्टरों ने इसे कोरी अफवाह बताया है। मुस्लिम समुदाय के कपड़े पहन कर मास्क ना पहनने और सोशल डिस्टेंस बनाने को मना करने वाले कई टिक टॉक वीडियो हमें सोशल मीडिया पे मिल रहे हैं। पारम्परिक मीडिया में इस तरह के वीडियो और खबरों की सचाई का पता लगाकर दिखाया जा रहा है। खुद चौनेल ने बताया की ये जी न्यूज की खबर गलत है और एबीपी न्यूज टिक टॉक वीडियो को जांच कर यह बताया की ये पाकिस्तान के करीबी इलाकों में बने और फैलाए जा रहे है। चौनल वायरल का सच या वायरल वीडियो की पड़ताल करते हैं मगर इससे दर्शक के मन में पत्रकारिता के बारे में जो

छवि बनती है, वह नहीं बदलती। क्योंकि यह जरूरी नहीं कि जब वायरल का सच दिखाया जा रहा हो तो वास्तव में वही दर्शक बैठा हो। एक गलत संदेश संवेदनहीन, गलत हाथों द्वारा फैलाव असुरक्षा को बढ़ा सकता है क्योंकि यह श्रृंखला के साथ चलता है। अक्सर, गलत सार्वजनिक स्वास्थ्य एजेंसियों के नाम जैसे डब्लूएचओ, सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन (सीडीसी), आदि को गलत खब्बरों के टुकड़े को अधिक स्वीकार्य बनाने के लिए गलत तरीके से टैग किया जाता है। चीन में संक्रमण की पहली लहर के दौरान इसी तरह की चीजों को परिचालित किया गया था, जो कोरोना वायरस की उत्पत्ति में श्जैविक हथियारश को दर्शाता है। कोरोना का संक्रमण जितनी तेजी से फैला है, शायद अतीत में किसी दूसरी बीमारी का नहीं फैला। इसी दौरान दुनिया में सच्ची-झूठी सूचनाओं का जैसा प्रसार हुआ है, उसकी मिसाल भी अतीत में नहीं मिलती। इस दौरान ऐसी गलतफहमियां सामने आई हैं। उदाहरण के लिए कोरोना संकट से लड़ने के लिए पीएम-केयर्स नाम से एक कोष बनाया गया, जिसमें पैसा जमा करने के लिए यूपीआई इंटरफेस जारी किया गया। देखते ही देखते सायबर ठग सक्रिय हो गए और उन्होंने उस यूपीआई इंटरफेस से मिलते-जुलते कम से कम 41 इंटरफेस बना लिए और पैसा हड़पने की योजनाएं तैयार कर ली। लोग दान करना चाहते हैं तो उस पर भी लुटेरों की निगाहें हैं। यह ठगी है।

सोशल मीडिया आने से सिटीजन जर्नलिज्म का विकस हुआ था। जो आम जनता द्वारा किया गया जर्नलिज्म है। परन्तु दुःख की बात यह है की अब उसी जर्नलिज्म में फेक न्यूज और सची खबर का मिक्स हो जाना आसान हो गया है। अब यह लोगों को फायदा कम नुकसान ज्यादा पंहुचा रही है। सूचना या गलत सूचना का मानव व्यवहार पर पड़ने वाला प्रभाव उल्लेखनीय है। यह दोषपूर्ण उपचारों और गैर-अनुपालन से लेकर आतंक, जन उन्माद और स्वास्थ्य संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा तक हो सकता है। जर्नल ऑफ ट्रैवल मेडिसिन में अभय कदम और सचिन अत्रे (2020) की समीक्षा बताती है कि भारत में लॉकडॉन अवधि के दौरान सोशल मीडिया की पहुंच तीन गुना बढ़ गई है, जिसमें कोविड से संबंधित सर्च स्पाइकिंग काफी है। लॉकडाउन के दौरान अंतर्निहित असुरक्षा और दैनिक संरचना की कमी हमें स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के निरंतर फीड के बिना अपर्याप्त महसूस करती है। यह वास्तव में प्रौद्योगिकी के विषाक्त अति प्रयोग और स्वास्थ्य संबंधी डेटा के स्वस्थ और व्यवस्थित दोहन के बीच एक अच्छा संतुलन खोजने के लिए चुनौतीपूर्ण है। सोशल मीडिया का बढ़ता उपयोग गलत सूचनाओं को हटाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण हो सकता है। आने वाले समय में हमें इसे सुधारने और मजबूत करने की जरुरत है।

पारम्परिक मीडिया में अखबार, रेडिओ और टेलीविजन आता है। पारम्परिक मीडिया हमारे साथ शुरु से जुडी हुई है हमे हर संकट में हमारे साथ हर कदम पर सूचनायें पहुंचाने का काम बड़ी बखूबी से निभाते आ रही है। जिनके घरों में डिस की सुविधा है वो टीवी के जरिये जिनके पास नेट है वो नेट के जरिये खबरें प्राप्त कर रहे है। हमें लोगों को जागरूक करने की जरुरत है कि अगर वो इन्टरनेट के सहारे खबरें ले रहे है, तो विश्वसनीय स्रोतों से खबरें लें ताकि सोशल मीडिया पर भी अगर वो खबरें शेयर करें तो वो सच हो और जो गलत शेयर कर रहे है उन्हें रोका जा सके। क्या बाहर सड़कों पर भीड़ में कोरोनावायरस का खतरा झेल कर भी अपने घर, गांव जाने को मजबूर इन लोगों के लिए कोई तैयारी नहीं की गई थी? पुलिस को भी पता ही नहीं था कि ये जो हजारों लोग सड़कों पर निकल चुके हैं, इनकी मदद करनी है या इन्हें डंडे मार कर बस कहीं भी भगा देना है। क्या केंद्र सरकार और राज्य सरकार के बिच तालमेल नहीं थी? क्या लॉक डाउन के पहले सरकार ने रोज कमाने खाने वाले मजदूरों के बारे में नहीं सोचा। इस तरह के सवाल पारम्परिक मीडिया द्वारा सरकार से पूछा जा रहा था। 27 मार्च को हिंदुस्तान ने खबर दी है कि बिना पैसे और साधन के अहमदाबाद से पैदल चल कर 2000 मजदूर राजस्थान पहुंचे। उसी दिन किसी दूसरे अखबार में ये खबर आई कि करीब 225 प्रवासी मजदूर तीन कंटेनर ट्रकों में छिपकर तेलंगाना से बीकानेर और नागौर लौटे। इन लोगों ने 2000 किलोमीटर की दूरी इन्हीं कंटेनरों में 60 घंटों तक छिपकर पूरी की। इस प्रकार अखबार हो या टीवी सभी ने प्रवासी मजदूरों का बुरा हाल जनता और सरकार के पास पहुंचाया है। महत्वपूर्ण रूप से, हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हमें जानकारी की आवश्यकता है, लेकिन वायरस के हर एक पहलू के बारे में आंकड़ों का भार जनता के लिए डराने वाला माहौल बनाता है। डॉ. रमन किशोर पटना रेलवे स्टेशन पर भूखे प्रवासियों को खिलाने का काम करने के लिए, बीमारों की देखभाल करने का जिमा उठाते है या प्रिया अमित बत्रा, जो अपना खाली समय महिलाओं के पहनावे में नवीनतम को पकड़ने में बिता सकती थी जो की परिधान उद्यमी है, इसके बजाय उसने अपने घर में जयपुर नेशनल हाईवे पर सवारी करने वाले कम से कम 15 प्रवासी परिवारों के लिए खाना बनाने का काम खुद तय किया है। देशव्यापी तालाबंदी के कारण गुरुग्राम में अटक गई, एक लड़की ज्योति ने अपने पिता को अपने सेकंड हेंड साइकिल के पीछे बिठाकरसात दिनों में 1200 किमी की दूरी तय करते हुए अपने मूल स्थान पर ले गई। साइकलिंग फेडरेशन ऑफ इंडिया के अध्यक्ष ओंकार सिंह ने पीटीआई को बताया कि अगर कक्षा आठ की छात्रा कुमारी ने ट्रायल पास कर लिया, तो उसे यहां के आईजीआई स्टेडियम परिसर में अत्याधुनिक नेशनल साइक्लिंग अकादमी में प्रशिक्षु के रूप में चुना जाएगा। इस प्रकार की खबरे लोगो में सकरात्मक उर्जा का संचार करती है और उनकी उमीदो को टूटने नहीं देती।

मीडिया की भूमिका एक बार फिर से चिंता का विषय बनी। जब इस आपदा में से अवसर तलाशते हुए महाराष्ट्र के पालघर जिले से मॉब लिंचिंग की एक खबर आई। एक भीड़ ने दो साधुओं और एक ड्राइवर को पीटकर मार डाला। पुलिस तमाशबीन बनी देखती रही। इस हत्याकांड के पीछे वॉट्सएप और दूसरे सोशल मीडिया के द्वारा भेजे गए संदेशों की भूमिका थी। लोगों को गलतफहमी थी कि ये लोग बच्चों का अपहरण करने वाले हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस इलाके में बच्चों के गायब होने की कोई घटना घटित नहीं हुई है। दूसरे लॉकडाउन के दौरान भारी भीड़ का जमा होना भी विस्मय का कारण बना। इसके पहले लॉकडाउन की शुरुआत तबलीगी जमात के प्रसंग से हुई थी। तबलीगी जमात का मामला तब सामने आया, जब लॉकडाउन के बाद दिल्ली के जमात मुख्यालय में बड़ी संख्या में एकत्र लोगों का मामला सामने आया। उससे पहले तेलंगाना और तमिलनाडु में संक्रमण के कुछ मामले सामने आए थे, जो तबलीगी जमात के कार्यक्रम से जुड़े थे। जमात प्रकरण ने कोरोना की मीडिया कवरेज को एक नया आयाम दिया। जब से कोरोना का संक्रमण शुरू हुआ था, टेलीविजन की बहसों के स्वर सौम्य थे। उसमें शामिल होने वाले लोग ज्यादातर चिकित्सा विज्ञान से जुड़े थे या जन चेतना के वाहक थे। इनके बीच असहमतियां होती भी हैं, तो उन्हें व्यक्त करने के तरीके सौम्य होते हैं। राजनीति का आभासी दौर करीब एक महीने तक टीवी के सौम्य और शालीन माहौल के बाद तबलीग प्रसंग के बाद अचानक मीडिया पर साम्प्रदायिक घृणा और द्वेष वाली खबर फिर से प्रकट हो गए। बीमारी किनारे चली गई और द्वेष की बातें फिर से होने लगीं। बेशक तबलीग ने गैर-जिम्मेदारी का परिचय दिया था, पर इसका दोष मुस्लिम समुदाय पर डालना उचित नहीं है। इंदौर, लखनऊ और मुरादाबाद में चिकित्सा कर्मियों पर हमलों की खबरें आने लगीं। माहौल बिगड़ने लगा। सच यह है कि यह बीमारी सभी समुदायों और सम्प्रदायों के लिए समान संकट के रूप में आई है। इसका सामना हमें मिलकर करना है। तबलीग के बाद पालघर प्रसंग ने आग में घी का काम किया। अचानक हमारी प्राथमिकताएं बदल गईं। ऐसे मौके पर मीडिया को अपनी जिम्मेदारियों को समझना चाहिए। साम्प्रदायिक दंगो को अनजाने में भड़का के हम इस महामारी में दूसरी मुसीबत नहीं मोल सकते है इस लिए हमे इस बात पर ध्यान रखना होगा की हम खबरों को कब और केसे लोगो तक पहुचाये। आप चौनलों पर नजर रखें तो पाएंगे कि सबकी दिलचस्पी अपने बढ़ते टीआरपी को प्रदर्शित करने में होती है। टीआरपी मायने शोर, हंगामा और सनसनी। दुर्भाग्य से इस मौके पर भी मीडिया ने अपने लिए मौके तलाश लिए। आप ज्यादातर चौनलों को ध्यान से देखें। एंकरों के बीच चीखने-चिल्लाने की प्रतियोगिता है। मामूली सी बात को भी नाटकीय बनाने पर जोर है। यह पत्रकारिता नहीं है। अफसोस यह बात मीडिया संचालकों को समझ में नहीं आती।

मगर बीते दिनों एक बड़ा वर्ग अवाम से पल्ला झाड़ता दिखाई दे रहा है। वह सिक्के का एक ही पहलू देख रहा है। अगर पटरियों पर श्रमिक कटते हैं तो यह कुतर्क दिया जाता है कि वे रेल लाइन पर सोए ही क्यों? अगर नंगे पांव धूप में पैरों में छाले पड़ जाएं, वे पत्थर की तरह सख्त हो जाएं, उनकी संवेदना चली जाए तो कहा गया कि तेज गर्मी में निकलेंगे तो ऐसा ही होगा। कोई भूखा सड़क पर चलते-चलते दम तोड़ दे तो कहा गया कि गर्मी के दिनों में खाली पेट निकलने से तो लू लगती ही है। किसी गर्भवती श्रमिक महिला को सड़क पर प्रसव हो गया तो यह समाचार प्रकाशित हुआ कि वह अस्पताल क्यों नहीं गई? श्रमिक सड़क पर इसलिए उतरे हैं क्योंकि उनके डेरों से मालिकों ने किराया नहीं देने के कारण बाहर कर दिया है। वे इसलिए भूखे हैं क्योंकि काम देने वालों ने बकाया मजदूरी नहीं दी है। घर बैठे पैसे देने का तो सवाल ही नहीं उठता। वे नंगे पांव इसलिए हैं क्योंकि हजार किलोमीटर चलने लायक चप्पल उनके पैरों में नहीं थी। चप्पलें टूटती गईं, श्रमिक उन्हें फेंकते गए और आगे बढ़ते गए। सड़क पर प्रसव इसलिए हुआ क्योंकि अस्पतालों में कोरोना के अलावा अन्य बीमारी का इलाज नहीं हो रहा है। वह भी केवल पैसे वालों का। वे रेल पटरियों पर इसलिए सोते हैं क्योंकि उन्हें इस हाल में पहुंचाने वालों ने छत और बिस्तर मुहैय्या नहीं कराए। वे अपने अस्थायी ठिकानों से पुश्तैनी गांव के लिए इसलिए निकले हैं क्योंकि गांव अभी महानगरों की तरह क्रूर और संवेदनहीन नहीं हुए हैं। सोच यह है कि महानगर में मौत लिखी है-चाहे भूख से हो या कोरोना से। कोरोना से भी गांव में मरना है। जब दोनों जगह मौत लिखी है तो अपने पुरखों के गांव में जाकर क्यों न मरें? कम से कम चार कंधे तो मिल जाएंगे। यानी करोड़ों श्रमिक जीने की चाह लेकर नहीं निकले हैं। वे सुकून से मरना चाहते हैं। संसार में क्या कोई दूसरा उदाहरण याद है, जब मरने के लिए इतनी बड़ी तादाद में मजदूर निकले हों? इस पीड़ित मानवता को पत्रकारिता के मंच पर कितना स्थान मिला है? यह सवाल आज भी मीडिया कर्मियों के लिए चुनौती का विषय है क्योंकि जल्दी और सबसे पहले खबर देने की होड़ में गलत और अमानवीय खबरों का प्रसारण होना फिर उस प्रसारण की माफी मांगना कहां तक उचित है क्योंकि उस खबर का असर देश के लिए भी और पत्रकारिता के लिए भी काफी नुकसान कर चुका होता है।

दुनिया दहशत में है। कोरोना काल बन गया है। मौत से अधिक मौत का डर है। हर बड़े मुद्दे पर गैर जिम्मेदारी दिखाता है हिंदी टीवी मीडिया। एक-दो चौनल छोड़ दें तो ज्यादातर कोरोना का कवरेज कोड़ा मारने जैसा कर रहे हैं। सूचनाएं इस अंदाज में परोसी जा रही हैं कि दर्शक का ब्लड प्रेशर बढ़ जाए। कमजोर दिल वालों को आघात का खतरा। अगर ऐसा ही कवरेज करना है तो एक सूचना पट्टी भी साथ में प्रदर्शित कर दें कि कमजोर दिल वाले कोरोना की खबरें नहीं देखें। समाचार देते समय बैकग्राउंड संगीत नहीं सुनाया जाता। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह स्थापित पैमाना है, लेकिन कोरोना की खबरें दिखाते समय सस्पेंस, सनसनी, साजिश भरा या भय संगीत क्यों सुनाया जाना चाहिए? कोरोना की इस भयावह कवरेज में हिंदी चौनल्स की तुलना में अंग्रेजी चौनल्स ने अधिक जिम्मेदारी, संयम, विश्लेषण, गहराई तक जाकर विवेचन और दर्शकों को जागरूक करने का काम किया है। हिंदी चौनल्स पल पल आती जानकारियों को डर का तड़का लगाकर पेश कर रहे हैं तो अंग्रेजी चौनल्स उसी खबर को धैर्यपूर्वक और बचाव के तरीकों के साथ दे रहे हैं।

कोरोना जैसी संक्रामक भयावह महामारी ने समूची दुनिया को आतंकित कर दिया है। इसका मुकाबला करने में लगे डॉक्टर्स, नर्सें, अस्पताल के अन्य सहकर्मी, पुलिस, सेना, अन्य सुरक्षा बल, प्रशासन, राजनेता और मीडिया सब एक ही मोर्चे पर लड़ने वाले सिपाही हैं। कोरोना का शिकार होकर प्राणों की आहुति देने वाले डॉक्टर्स को सलाम है कि वे कुछ मूर्खों के विरोध के बावजूद कर्तव्य पर डटे हैं। इसी तरह अनेक पत्रकार कोरोना से संक्रमित हो चुके हैं, लेकिन टीवी, अखबार, रेडियो और डिजिटल माध्यमों के जरिए ताजा सूचनाएं पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं तक पहुंचाने में दिन-रात लगे हैं। लेकिन पत्रकारों के सामने हालात बड़े विकट हैं। एक तरफ पत्रकारों-गैर पत्रकारों पर आर्थिक दबाव है। वेतन अनियमित मिल रहा है। कटौती और छंटनी की तलवार लटकी है। उनके खिलाफ मामले भी दर्ज हो रहे हैं। धमकियां दी जा रही हैं। इस संवेदनशील और नाजुक मौके पर कोई भी गारंटी नहीं ले सकता कि उसका सौ फीसदी तंत्र सही काम कर रहा है। अगर एक अफसर जान की बाजी लगा रहा है तो चार अफसर ऐसे भी हैं, जो पीड़ित मानवता की सेवा से जी चुराते हैं। एक विधायक, सांसद या मंत्री कोरोना से लड़ाई में दिन रात एक कर रहा है तो कई सियासतदान ऐसे भी हैं, जो घर में बंद रहकर सिर्फ अपनी और अपने परिवार की परवाह कर रहे हैं। ऐसे में पत्रकारों पर बिना जांच पड़ताल के गाज गिराना सरासर नाइंसाफी है। हम नहीं कहते कि सारे पत्रकार, एंकर और मीडियाकर्मी अपनी भूमिका के साथ न्याय कर रहे हैं। कुछ अपवाद भी हो सकते हैं, पर वे कोरोना से लड़ने में देश के साथ नहीं हैं-यह कोई भी नहीं कह सकता।

जैसे अगर एक भी डॉक्टर या एक भी पुलिसकर्मी अपना फर्ज सही तरीके से ना निभाए तो इसका बुरा प्रभाव पूरे देश को झेलना पड़ेगा। उसी प्रकार कोरोना जैसी महामारी के संकट में सही सूचनाओं की आवश्यकता सबसे ज्यादा होती है। इस समय अगर एक भी मीडियाकर्मी अपनी जिम्मेदारी गलत तरीके से निभाता है तो उसका परिणाम पूरे समाज और मानव जाति को उठाना पड़ेगा। इसलिए एक आम आदमी भी जब मास मीडिया में कुछ शेयर या फिर पोस्ट करे तो ये ध्यान में रखे की वो भी एक पत्रकार का काम कर रहे हैं और कोई भी गलत सूचना का प्रसार ना करे जिससे पूरे समाज को मुश्किलों का सामना करना पड़े।

संदर्भ

- हिंदुस्तान, न्यू डेल्ही, 31 मार्च 2020, शंकर, कोरोना लॉक डाउन पर अफवाहों से सावधान दो दिन में हवा से भी तेज फैले ये पांच झूठ।
- जनरल ट्रेवल मेडिसिन में अभेय कदम और सचिन अत्रे का समीक्षा पत्र 2020।
- बीबीसी न्यूज इंडिया कोरोना वायरसरूतबलीगी जमात गिव्स ब्लड फॉर प्लाज्मा थेरेपी 28 अप्रैल, जुबिल अहमद।
- आजतक, इंडिया टुडे, रिपब्लिक टी वी, ए बी पी न्यूज रेगुलर ब्रॉड कास्ट।
- जी न्यूज, 4 अप्रैल 2020, सोशल मीडिया पर वीडियो के जरिए इंडिया में लॉक डाउन और कोरोना वायरस को लेकर फैल रही अफवाह।
- सुरोजीत गुप्ता, दी टाइम्स ऑफ इंडिया, 1 जून 2020, 30 : ऑफ माईग्रंट्स विल नोट रिटर्न टू सिटीज।
- 16 अप्रैल 2020, प्रशांत चावला, बीबीसी, कोरोना खबरे देने वालों को अपने रोजगार के बारे में मिलती बुरी खबरें।
- दी इकनोमिक टाइम्स, 4 जून, लक्ष्मी पुरी, इंडिया शुड यूज माइग्रेंट लेबर क्राइसिस टू ट्रांसफॉर्म इकनोमिक सोसाइटी।

कोविड-19 और प्रवासी मजदूरों की सामाजिक आर्थिक समस्याएंः मध्य प्रदेश एवं बुंदेलखंड के संदर्भ में

स्नेहा खरे

असिस्टेंट प्रोफेसर शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजगढ़, मध्य प्रदेश

सारांश

आज कोविड-19 ने दुनिया के अस्तित्व के लिए तीसरे विश्व युद्ध से भी बड़ा खतरा उत्पन्न कर दिया है। विश्व के बड़े-बड़े देश आज इस महामारी और इसके चलते उपजे सामाजिक आर्थिक संकट से उबरने में असमर्थ साबित हो रहे हैं। यह केवल स्वास्थ्य संबंधी आपातकाल नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक आपातकालभी है। कोविड के चलते एक तरफ दुनिया के सभी देश चलते-फिरते अस्पताल में तब्दील हो गए हैं। छोटे-बड़े सभी देशों के बजट का ज्यादातर हिस्सा कोविड के मरीजों की जांच और इलाज की व्यवस्थाओं में खर्च हो रहा है। दूसरी तरफ सभी देशों में लंबे समय तक चली लॉकडाउन की स्थिति और कोरोना के डर के चलते अर्थव्यवस्था पूरी ठप्प हो गई है। इस प्रकार इस वायरस ने पूरी दुनिया के सामने भयावह आर्थिक और सामाजिक संकट पैदा कर दिया है। इतना ही नहीं कोरोना ने दुनिया भर की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना को भी छिन्न-भिन्न कर दिया है। लॉक डाउन के दौरान मुश्किल हालात में शहरों से वापस अपने गांव लौट रहे इन मजदूरों की तस्वीरों ने देश के संवेदनशील समाज को हिला कर रख दिया था। अध्ययन में मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड के प्रवासी मजदूरों को केन्द्र में रखा गया है। शोध पत्र में प्रवास के कारण, शहरों में मिलने वाली सुविधाएं, मजदूरी ओर कोविड के चलते पुनः प्रवास से उपजी समस्याओं और नई चुनैतियों के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। शोध पत्रमुख्य रूप से मध्य प्रदेश के मजदूरों की आर्थिक सामाजिक स्थिति के अध्ययन पर आधारित है। शोध में विशेषरूप से बुंदेलखंड की भौगोलिक-आर्थिक और सामाजिक स्थितियों, रोजगार की अवसर और रोजी की-रोटी की उम्मीद में गांव से शहर जाने वाले परिवारों की स्थिति का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना

प्रवासन यानी बेहतर रोजगार की तलाश मैं किसी व्यक्ति का अपना मूल स्थान छोड़कर कहीं और पलायन करना। यदि व्यापक परिपेक्ष्य में देखा जाए तो प्रवासन आज किसी क्षेत्र, राज्य, देश नहीं बल्कि पूरे विश्व की समस्या बन गया है। मजदूर जहां दिहाड़ी मजदूरी की उम्मीद मैं गांव से शहर पहुंचताहै, वहीं पढ़ा-लिखा युवा और बेहतर अवसरों की तलाश में छोटे शहर से बड़े शहर और कई बार अपना देश छोड़कर दूसरे जाने को मजबूर है।

स्पष्ट रूप से प्रवासन की मूल वजह आर्थिक ही हैहालांकि इसके पीछे बहुत सारे सामाजिक कारण भी हैं। प्रवासन को लेकर अब कई बड़े देशों में राजनीति भी होने लगी है। कुछ बड़े देशों के नेता विकासशील देशों से लगातार पहुंच रही युवाओं की फौज को रोकने के लिए नए-नए नियम बनाने की बात करने लगे हैं। ऐसे में कोरोना संकट के बाद निश्चित रूप से पूरे विश्व में इस समस्या को लेकर नए सिरे से विचार-विमर्श करना आवश्यक हो जाएगा। इसका सीधा असर भारत पर भी पड़ेगा क्योंकि भारत से

हर साल लाखों युवा बेहतर भविष्य की उम्मीद में दूसरे देश जाते हैं। इनमें से ज्यादातर उन्हीं देशों में बस जाते हैं लेकिन कोरोना संकट के बाद इन देशों की सरकारों ने इन युवाओं को यदि बाहर का रास्ता दिखा दिया या फिर वे स्वयं वापस नहीं जाने का निर्णय ले लें तोइसका सीधा प्रभाव हमारी अर्थव्यवस्थापर होगा।

इन लाखों युवाओं को रोजगार और बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना सरकार के लिए बड़ी समस्या होगी। दूसरी बड़ी समस्या देश के अंदर ही कुछ खास बड़े शहरों की ओर पलायन है। अब कोरोना के बाद इनकी क्या स्थिति होगी यह भी एकबड़ा प्रश्न है। कोविड 19 महज एक स्वास्थ्य सम्बन्धी आपातकाल नहीं है। यह एक सामाजिक और आर्थिक आपातकाल भी है, जिसने भारत को अनिश्चितता के भंवर में फंसा दिया है। इस अनिश्चितता के माहौल में सबसे ज्यादा मुसीबत में वे मजदूर जो घर का चूल्हा जलाने के लिए दिहाड़ी मजदूरी पर निर्भर हैं। कोरोना का डर और लगातार सवा दो माह तक चले लॉकडाउन ने इन मजदूरों को मुसीबत में डाल दिया है। रोजी के लिए शहर जाने का एकमात्र रास्ता भी अब इन्हें बंद होता नजर आ रहा हैं। ऐसे में यह बहुत जरुरी हैं कि हम इस कठिन दौर में इन मजदूरों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के आधार पर कोविड 19 के चलते उपजी चुनौतियों का अध्ययन करें और इन समस्याओं का कोई सार्थक समाधान खोजने का प्रयास करें।

प्रवासी मजदूर एवं पुन प्रवासन से उपजी समस्याएं

कोरोनो के बाद सरकार ने 25 मार्च को अचानक ही पूरे देश में लॉकडाउन की घोषणा कर दी है। रोज कमाकर खाने वाले इन मजदूरों के लिए काम धंधा बंद होना कोरोना से भी ज्यादा डरावना साबित हुआ। उनके पास इतनी बचत नहीं थी कि लंबे समय तक बिना कुछ काम किए परिवार का पेट भर सकें। यही नहीं किराए के कमरों और झुग्गियों में रह रहे इन मजदूरों के पास मकान का किराया देने का भी संकट भी सामने खड़ा था। ऐसे में उनके पास वापस गांव जाने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं था। लॉक डाउन के चलते ट्रेन, बस बंद थी। ऐसे में देश के लाखों-करोड़ो लोग छोटे-छोटे बच्चों और महिलाओं के साथ आटो, बाइक, साइकिल और पैदल ही घर की तरफ निकल पड़े। भूखे-प्यासे बिना चप्पल के चले जा रहे मजदूरों की ह्रदय विदारक तस्वीरों से अखबारों के पन्ने भर गए। सोशल मीडिया पर इनकी बेबसी के वीडियो वायरल होने लगे। इस दौरान एक के बाद हुई कई दुर्घटनाओं में सैकड़ों मजदूरों को अपनी जान तक गवांनी पड़ी जबकि कितने ही मजदूर घायल होकर अस्पताल पहुंच गए। इस प्रकार शहरों से अपने घरों की ओर निकले इन मजदूरों में से कितने ही लोग रास्तों की दुश्वारियां में ही अपने अपनों को खो बैठे।

मध्यप्रदेश में मजदूरों का पुन प्रवासन

सरकारी आंकड़ों के अनुसारमध्य प्रदेश में 20 मई तक चार लाख 4.5 लाख प्रवासी मजदूर किसी ना किसी साधन के वापस लौटे हैं। इनमें 1. 93 लाख मजदूर गुजरात से एक लाख मजदूर राजस्थान से 1.7 लाख मजदूर महाराष्ट्र से आए हैं। इन आंकड़ों के अलावा अलग-अलग सामाजिक संगठनों एवं गांवों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार लगभग 10 लाख मजदूर पैदल या फिर अपने स्वयं के साधनों से मध्यप्रदेश वापस लौटे हैं। इस प्रकार मध्य प्रदेश में लगभग 14 लाख प्रवासी मजदूर वापस आए हैं। एक महत्वपूर्ण तथ्ययह भी है कि राज्य सरकार के पास फिलहाल ऐसी कोई पुख्ता जानकारी नहीं है कि वास्तव में मध्यप्रदेश के कितने श्रमिक अन्य राज्यों में पलायन करके जाते हैं और कोविड19 महामारी की इन कठिन परिस्थितियों के बीच अभी कितने श्रमिक अन्य राज्यों में शेष हैं?प्रदेश के लगभग सभी जिलों में रहने वाले इन मजदूरों में काफी बड़ी संख्या बुंदेलखंड और अलीराजपुर, झाबुआ और बड़वानी जैसे आदिवासी बहुल जिलों के मजदूरों की हैं। इन मजदूरों को अपने गांव, शहर, प्रदेश में ही रोजगार देना अब राज्य सरकार के लिए बड़ी चुनौती होगी।

मध्य प्रदेश में प्रवासी मजदूर

प्रवासी मजदूरों की संख्या को लेकर सरकारों ने अभी तक कोई अध्ययन या सर्वे नहीं कराया है। अत: सरकारी दस्तावेजों में इस बारे में कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़े के लगभग 30 . 29 लाख लोग पलायन करके देश के 17 राज्यों में गए थे। इनमें 10लाख पुरुष और 20 लाख महिलाएं थी। हालांकि इनमें से 50% महिलाओं का पलायन विवाह के कारण हुआ था। यानी कि प्रदेश से लगभग 20 लाख लोग रोजगार के लिए देश के दूसरे राज्यों को पलायन कर गए थे। मप्र में जनसंख्या की वृद्धि दर 1.9% प्रतिवर्ष है। इस आधार पर कह सकते हैं कि नई जनगणनाके आंकड़ों मेंप्रवासी मजदूरों की संख्या काफी बढ़ी होगी।

मध्य प्रदेश एवं बुंदेलखंड में प्रवास के कारण

बढ़ती जनसंख्या के चलते साल दर साल कम होती जमीन, रोजगार के अवसरों का अभाव के कारण मध्यप्रदेश के लाखों मजदूर हर साल दूसरे राज्यों की ओर पलायन करते हैं। वही बुंदेलखंड देश के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। इस क्षेत्र का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि देश के दो बड़े राज्यों उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश का महत्वपूर्ण भूभाग होने के बाद भी यह क्षेत्र विकास से कोसों दूर है। बुंदेलखंड की लगभग 95% ग्रामीण आबादी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है। दूसरी तरफ सिंचाई के पर्याप्त साधन नहीं होने के कारण कृषि पूरी तरह मानसून की बारिश पर निर्भर है। बुंदेलखंड में पिछले 13 साल से लगातार सूखा पड़ रहा है। सूखे के चलते बीते सालों में इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पूरी तरह चौपट हो चुकी है। बड़ी जोत किसान तो किसी प्रकार सिंचाई के लिए व्यक्तिगत साधनों की व्यवस्था कर लेते हैं लेकिन छोटी जोत वाले किसानों की हालत खराब है। इनमें से ज्यादातर किसान तो अपनी आजीविका के लिए मजदूरी करने को मजबूर हैं। यही छोटे किसान रोजी रोटी के लिए शहर जाकर दिहाड़ी मजदूरी करते हैं। वर्षों से सूखे के शिकार रहे बुंदेलखंड में कोई ऐसा बड़ा उद्योग या कारखाना नहीं है जिसमें उन्हें रोजगार मिल सके। इस क्षेत्र में लघु कुटीर उद्योग धंधे का स्थिति एवं व्यापारिक गतिविधियां भी ना के बराबर हैं। ऐसे में इनके पास दूसरे राज्यों में जाने के सिवा कोई और विकल्प बचता ही नहीं। सूखे की मार झेल रहे इस क्षेत्र के ज्यादातर गांव से हरियाली गायब हो गई है। पीने के पानी के लिए कई किलोमीटर का सफर करने वाले ग्रामवासियों ने हरी सब्जियां तक लगाना बंद कर दिया है। क्षेत्र के लोगों का कहना है कि उनके पास जानवरों को पिलाने तक के लिए पानी नहीं है। कई किसानों ने सूखे के चलते गाय भैंस भी भेज दी हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र के लगभग सभी गांव से हर साल हजारों लोग मजदूरी के लिए दिल्ली, गुड़गांव और उत्तर प्रदेश जाते हैं। गांव के हर दूसरे घर में एक प्रवासी मजदूर तो मिल ही जाएगा।

मजदूरों की आर्थिक-सामाजिक समस्याएं

इन मजदूरों के लिए कोविड 19 केवल एक स्वास्थ्य संबंधी आपदा नहीं हैं बल्कि यह महामारी उनके लिए जीवकोपार्जन का भयावह संकट लेकर आई है। लॉकडाउन के दौर में तमाम मुसीबतों से जूझकर अपने घर पहुंचे मजदूरों की समस्याएं खत्म नहीं हुई हैं। वापस गांव पहुंच गए इन परिवारों के सामने अभी भी रोजी-रोटी का संकट मुंह फाड़े खड़ा है। लंबे समय से अपना गांव छोड़कर शहर में रह रहे इन मजदूरों के लिए गांव में न तो रोजगार है और न ही जीवनयापन के लिए आवश्यक सुविधाएं। इनमें से कई परिवार ऐसे हैं जो लंबे समय से शहरों में ही रह रहे थे ऐसे में परिवार की महिलाओं और बच्चों को कई प्रकार की सामाजिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा है। सबसे बड़ी समस्या है आवास की। गांव में दो से तीन कमरों के मकान में पहले से ही दो या तीन भाइयों के परिवार रह रहे हैं। ऐसे में एक और नए परिवार के रहने लायक जगह नहीं है। शहर से लौटे इन मजदूरों के पास इतनी पूंजी भी नहीं है कि वह अपने रहने के लिए एक और कमरा बनवा लें। शहरों में से पूरी तरह खाली हाथ लौटे इन मजदूरों को खुद उनके परिजन और गांव वाले भी मदद करने के लिए तैयार नहीं है यह भी इनके लिए भी एक बड़ी चुनौती है और हमारे समाज के लिएभी। इन मजदूरों को गांव में सस्ता राशन उपलब्ध कराना और इनके परिवारों को पीडीएस की सूची में शामिल करना भी फिलहाल एक बड़ी चुनौती है। हालांकि सरकार बिना राशन कार्ड के भी इन मजदूरों को मुफ्त राशन देने की बात कर रही है लेकिन अभी भी बहुत सारे गांव में इन्हें राशन लेने के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है। निवाड़ी जिले के कुछ गांव में कलेक्टर को शिकायत करने के बाद राशन के नाम पर केवल 20 किलो चावल दिया गया है। यही नहीं जिन परिवारों के पास राशन कार्ड है उन्हें भी 20 किलो चावल के साथ 2 किलो दाल दी जा रही है।

केस स्टडी

निवाड़ी जिले की ग्राम पंचायत टीला में रहने वाले मनीराम अहिरवार पत्नी के साथ हरियाणा मजदूरी के लिए गए थे। लॉकडाउन के बाद जब वह घर के लिए निकले तो उनके ठेकेदार ने उनकी मजदूरी के बचे हुए-22000 देने से साफ इनकार कर दिया। मनीराम के पास केवल-900 थे उन्हें ही लेकर पत्नी के साथ पैदल निकल पड़े। रास्ते में एक ट्रैक्टरवाला मिल गया जिसने 15 किलोमीटर के बाद रास्ते में छोड़ दिया। उसके बाद एक ट्रकवाले ने 400 लेकर दोनों को ग्वालियर तक छोड़ा। ग्वालियर से डबरा तक दूसरे ट्रक से आए।

पैसे खत्म हो चुके थे तो खाने पीने के लिए भी कुछ नहीं ले पाए। मनीराम बताते हैं कि पहले शहर से वापस आने पर गांव के लोग बड़े प्यार से बर्ताव करते थे लेकिन अभी सब हमें झिड़क रहे हैं। कोई हम से बात भी नहीं करता कि बीमारी लेकर आए हैं। यही नहीं वापस आने के 1 महीने बाद भी को ईमजदूरी करवाने के लिए तैयार नहीं। मनीराम ने परिवार का पेट भरने के लिए गांव के ही एक आदमी से भारी ब्याजपर-10000 क ाकर्ज लिया है।

चुनौतियां और समाधान

कोविड 19 और लॉकडाउन के चलते शहरों में इन मजदूरों के साथ जिस तरह का व्यवहार हुआ। जिस तरह उन्हें आर्थिक असुरक्षाका संकट और तकलीफ उठानी पड़ी। उसने इन्हें भीतर तक हिला दिया है। यही वजह है कि अब 54.6% मजदूर प्रवासन पर नहीं जाना चाहते हैं। 24.5% अभी तय नहीं कर पाए हैं कि अब वे पुन: जायेंगे या नहीं और यदि जायेंगे तो कब? 21% मजदूरों का कहना था कि स्थितियां सामान्य होते ही प्रवासन पर जाना चाहेंगे। 90.3% मजदूर मानते हैं कि परिवार में सभी सदस्यों को रोजगार दिया जाए, जो कामकाज की उम्र में हैं। 93.9% मानते हैं कि सस्ता राशन सभी को मिलना चाहिए। अभी भी कई परिवार पीडीएस की सूची में शामिल नहीं हैं। 100% प्रवासी मजदूर मानते हैं कि न्यूनतम मजदूरी डेढ़ गुना बढ़ना चाहिए। 100% प्रवासी मजदूर चाहते हैं कि बच्चों और किशोरवय समूह को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण मिलने से उनकी स्थिति में सकारात्मक बदलाव आएगा। 63.2% पेंशन या किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष आर्थिक सहयोग चाहते हैं। 87.7% प्रवासी मजदूर विकासखंड स्तर पर अच्छी स्वास्थ्य सेवाएं चाहते हैं। 76.8% प्रवासी मजदूर आजीविका और आवास के लिए भूमि का कानूनी अधिकार चाहते हैं।

सुझाव

अध्ययन में यह भी सामने आया है कि एक तरफ जहां मध्य प्रदेश के लाखों मजदूर गुजरात महाराष्ट्र में रोजगार प्राप्त करने के लिए जाने को मजबूर हैं, वहीं गुजरात महाराष्ट्र के लाखों मजदूर मध्यप्रदेश में रोजगार के लिए आते हैं। मध्य प्रदेश सरकार को पीथमपुर जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में प्रदेश के ही मजदूरों को रोजगार दिलवाने के लिए पहल करनी होगी। इसी प्रकार प्रदेश के शहरों में होने वाले बड़े सरकारी निर्माण कार्यों में भी इन मजदूरों का सहयोग लिया जा सकता है। बुंदेलखंड में प्रवासन को रोकने के लिए सरकार को यहां छोटे बड़े कुटीर एवं लघु उद्योग धंधे शुरू करने होंगे। बुंदेल खंड क्षेत्र की प्रवासी महिला मजदूरों को भी स्वयं सहायता समूह के माध्यम से अचार, बड़ी और पापड़ जैसे लघु उद्योगों से जोड़ा जाना चाहिए। बुंदेलखंड में सिंचाई के वैकल्पिक साधनों की व्यवस्था के लिए सरकार को सक्रिय प्रयास करने होंगे। छोटे किसानों को सिंचाई की व्यवस्था के लिए आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराना होगा। सरकार को इन क्षेत्रों में ग्रामीण युवाओं को स्किल डेवलपमेंट जैसे कार्यक्रमों से भी जोड़ना होगा ताकि वह इस हुनर का लाभ उठाकर अपने क्षेत्र में ही कोई रोजगार प्राप्त कर सकें।

भारत के संदर्भ में कोविड संकट और प्रवासनः मुद्दे एवं चुनौतियाँ

बेबी तबस्सुम

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

समकालीन युग में मानव प्रवासन अध्ययन का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। प्रवासन एक जटिल प्रक्रिया होने के साथ-साथ व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन का हिस्सा है। मानव प्रवास को मोटे तौर परस्थायीया अर्ध- स्थायी रूप से एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में लोगों की आवाजाही के रूप में परिभाषित किया जाता है। भारत जैसे विशाल देश में प्रवासियों की अंतरराज्यीय गतिशीलता अत्याधिक दिखाई देती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कोविड-19 महामारी अपने उच्च प्रसार और खतरनाक घातक दर के कारण वैश्विक चिंता का विषय बनी हुई है। इस समय भारत में जारी लॉकडाउन के दौरान श्रमिक वर्ग को रिवर्स माईग्रेशन की गंभीर समस्या से जूझना पड़ा है। कम वेतन व दैनिक मजदूरी पाने वाले अधिकतर श्रमिक असंगठित क्षेत्र में संलग्न हैं। वे इस संकट की स्थिति में सर्वप्रथम प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की श्रेणी में आते है। वे प्रवासी श्रमिक जो गरीब, अकुशल या जिनके पास जीवन निर्वाह के पर्याप्त संसाधन नहीं है, उन पर इसका अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा है। उपरोक्त चर्चा के परिदृश्य में इस लेख का मुख्य उद्देश्य इस बात को उजागर करना है कि क्या शरिवर्स माईग्रेशनश कोविड संकट की देन है? साथ ही आंतरिक प्रवासन को कारगर बनाने में बाध्यकारी कारक (Push Factors) कैसे इसमें संलग्न हैं? अगला भाग यह समझाएगा कि कोविड संकट के कारण पलायन कैसे विकसित हुआ? अंतिम प्रश्न इस मुद्दे के इर्द-गिर्द रहेगा कि उत्तर कोविड संकट के उपरांत रिवर्स माईग्रेशन संपन्न व पिछड़े दोनों तरह के राज्यों के लिए एक चुनौती अथवा अवसर साबित होने वाला है?

कुंजी शब्दः- प्रवासन, कोविड संकट, लॉकडाउन, रिवर्स माईग्रेशन, आतंरिक प्रवासन, पलायन।

मानव प्रवासन एक ऐतिहासिक तथा वैश्विक घटना है। प्रागैतिहासिक काल से प्रवासन मानव इतिहास का प्रमुख तत्त्व रहा है। समकाली नयुग में मानव प्रवासन एकेडेमिक रोचकता का विषय होने के साथ-साथ यह एक ज्वलंत मुद्दा भी है। भारत में प्रवासन कोई नवीन घटना नहीं है। काम की तलाश सहित विभिन्न कारणों से लोग प्रवासन करते हुए दिखाई देते है। इस विशाल आबादी के एक बड़े हिस्से में वे प्रवासी श्रमिक भी शामिल हैं जो बेहतर आजीविका की इच्छा को लिए हुए ग्रामीण बस्तियों को छोड़ कर शहरों में आते हैं। हालांकि अपेक्षित शिक्षा, कौशल और प्रशिक्षण की कमी के कारण वे अक्सर कम वेतन, खराब जीवन यापन और सामाजिक सुरक्षा की कमी के साथ जीवन निर्वाह करने के लिए विवश हैं। प्रवासी श्रमिक भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी हैं। राष्ट्र निर्माण, आर्थिक विकास, नवाचार, कौशल विकास और उद्यमिता में प्रवासियों का अहम योगदान रहा है। प्रवासी सस्ते श्रम प्रदान करने और कई जोखिमपूर्ण और असुरक्षित नौकरियां के लिए विकास और पूंजी संचय में मदद करते हैं जो मूल निवासी करना पसंद नहीं करते हैं। दूसरी ओर, भारत में शहरी विकास और नियोजन की नीतियों और कार्यक्रमों ने शायद ही प्रवासियों के लिए कोई विशेष कार्यक्रम शुरू किया हो क्योंकि उन्हें शहरी समुदाय का हिस्सा नहीं माना जाता था। पहचान और आवासीय प्रमाणों की कमी के कारण गरीबों के लिए कई कार्यक्रम उन तक नहीं पहुंचते हैं प्रवासियों के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की पूर्ति करना आज भी एक गंभीर मुद्दा बना हुआ है। भले ही वे औपचारिक नागरिक हो किंतु उनके मूल नागरिक अधिकारों को पूरा नहीं किया जाता है। प्रवासी समूह गरीब होने और प्रवासी होने के 'दोहरे बोझ' से पीड़ित हैं। शहरी आवास और

गरीबी उन्मूलन मंत्रालय द्वारा स्थापित श्वर्किंग ग्रुप ऑन माईग्रेशन ने देश में प्रवासी श्रमिकों की दुर्दशा की जाँच की और 2017 में केंद्र सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी। हालांकि रिपोर्ट पर कार्रवाई अभी भी प्रतिक्षित है।

रिवर्स माईग्रेशन

रिवर्स माइग्रेशन कोई नवीन परिघटना नहीं है। यह अपने थोड़े-थोड़े अंश में पहले भी विद्यमान रहा है। 1970 और 1980 के दशक के दौरान यह चिंता थी कि भारत पश्चिम में अपने शिक्षित कर्मचारियों को खो रहा है जिसे 'प्रतिभा पलायन' के रूप में जाना जाता है। लेकिन अभी हाल ही में इस बात के प्रमाण मिले है कि 'रिवर्स प्रतिभा पलायन' हो रहा है। प्रशिक्षित पेशेवर विकास और रोजगार के अवसरों का लाभ उठाने के लिए अपने देश लौट रहे हैं। इस दौर में बैंग्लौर और हैदराबाद भारत के अग्रणी तकनीकी शहरों के रूप में उभरे हैं। यह जो रिवर्स माईग्रेशन हुआ है, उसमें प्रशिक्षित प्रवासी अपने साथ ज्ञान, विशेषज्ञता, पूंजी और वैश्विक नेटवर्क तक पहुंच भी साथ लेकर आए हैं। जो देश के विकास और राष्ट्र-निर्माण प्रक्रिया में काफी मददगार रहा है। वर्तमान में कोविड संकट ने रिवर्स माईग्रेशन के उद्भभव में अहम भूमिका अदा की है। लॉकडाउन के दौरान होने वाला पलायन सामान्य दिनों की अपेक्षा होनेवाले पलायन से एकदम उलट है। आमतौर पर हमने रोजगार पाने व बेहतर जीवन जीने की आशा में गाँवों और कस्बों से महानगरों की ओर पलायन होते देखा है परंतु इस समय महानगरों से गाँवों की ओर हो रहा पलायन निरूसंदेह चिंताजनक स्थिति को उत्पन्न कर रहा है। इस स्थिति को ही विद्वानों ने 'रिवर्स माईग्रेशन' की संज्ञा दी है। सामान्य शब्दों में रिवर्समाईग्रेशन से तात्पर्य 'महा नगरों और शहरों से गाँव एवं कस्बों की ओर होने वाले पलायन' से है। लॉकडाउन के दौरान होने वाले पलायन अपने साथ बहुत सारी चुनौतियों को लेकर आया है। इन प्रवासी श्रमिकों के सामने आने वाली तात्कालिक चुनौतियां भोजन, आश्रय, स्वास्थ्य सेवा, संक्रमित होने या संक्रमण फैलने का डर और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित थी। कोरोना संकट काल में अपनी आजीविका छिन जाने, रहने की व्यवस्था न होने, संक्रमित होने के भय के कारण अपने मूल स्थानों की ओर पलायन करने पर विवश होना पड़ा है।

भारत में प्रवासनपर किए गए अध्ययन में पाया गया कि गरीबी, नौकरी की तलाश प्रवास के लिए मुख्य बाध्यकारी कारक (Push Factor) रहे हैं जबकि रोजगार की बेहतर सुविधाओं की उपलब्धता को प्रवासन के पीछे प्रमुख आकर्षण कारकों (Pull Factor) के रूप में पहचाना गया है। आमतौर पर प्रवासन आकर्षण कारक से प्रेरित होता है किंतु देशव्यापी लॉकडाउन के दौरान बाध्यकारी कारकों ने श्रमिकों के पलायन में अहम भूमिका अदा की है। कोरोना संकट ने भारत में आंतरिक प्रवासियों और लैटिन अमेरिका के कई देशों में बड़े पैमाने पर वापसी की एक अराजक स्थिति को जन्म दिया है। नौकरियों और आजीविका के नुकसान ने कई देशों में ग्रामीण परिवारों की जीवन रेखा तोड़ दी है। लॉकडाउन, यात्रा प्रतिबंध और सामाजिक दूरी बना कर रखने के उपायों ने आंतरिक प्रवासी श्रमिकों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। संसाधनों की गंभीर कमी, महामारी का डर और आजीविका विहीन होना जैसे कारकों ने इन श्रमिक प्रवासियों को अपने मूल स्थानों पर लौटने के लिए मजबूर कर दिया है। अत: यह प्रवासी संक्रामक जोखिमों के दौरान और भी कमजोर श्रेणी में आ गए हैं।

कोविड संकट और पलायन

काम और रोजगार के लिए अधिकांश प्रवासी शहरी केंद्रों की ओर अग्रसर रहते हैं। लगभग आधी शहरी आबादी प्रवासी हैं और उनमें से पाँचवा हिस्सा अंतरराज्यीय प्रवासी है। भारत में 484 मिलियन श्रमिकों में से 194 करोड़ स्थायी और अर्ध-स्थायी प्रवासी श्रमिक हैं। इसके आलावा लगभग 15 मिलियन अस्थायी और सर्कुलर प्रकृति के अल्पकालिक प्रवासी श्रमिक हैं। पूरे भारत में 55 मिलियन प्रवासी श्रमिक दैनिक मजदूरी पर जीवन निर्वाह करते है। कोविड-19 ने अखिल भारतीय लॉकडाउन के बाद श्रमिक प्रवासियों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। पूरे देश में 24 मार्च 2020 को 21 दिन की अवधि के लिए लॉकडाउन की घोषणा की गई। सभी राज्यों की सीमाओं को सील कर दिया गया। केवल आवश्यक सेवाओं को छोड़कर सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों को बंद कर दिया गया। यह उन सैकड़ों हजारों प्रवासी श्रमिकों के लिए दुरूस्वपन साबित हुआ। जो रातों-रात अपनी आजीविका खो बैठे और बेघर हो गए।

मुद्दे एवं चुनौतियाँ

कोविड-19 जिसने संपूर्ण दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है। इसने वर्तमान में लगभग सभी विकसित और विकासशील देशों को प्रभावित किया है। भारत इस समय महामारी के चरण-2 में है और इसे चरण-3 या उच्चतर में प्रवेश करने से रोकने के लिए

सख्त प्रबंधन की आवश्यकता है। इसके आकार और प्रसार को देखते हुए, लॉकडाउन के तहत प्रवासियों के प्रबंधन ने विशाल चुनौतियों का रूप धारण कर लिया है। इन चुनौतियों में कुछ तात्कालिक हैं जिनसे तुरंत निपटने की आवश्यकता है और कुछ दीर्घकालिक हैं।

1. तात्कालिक चुनौतियाँ फंसे हुए प्रवासियों से संबंधित है -

(a) इतिहास की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी में सरकार के समक्ष प्रमुख चुनौती प्रवासियों तक भोजन, आश्रय और बुनियादी आवश्यकताओं की आपूर्ति से संबंधित हैं।

(b) प्रवासियों को बुनियादी स्वास्थ्य देखभाल और निवारक किट (मास्क, सैनीटाइजर और दस्ताने) कैसे प्रदान की जाये?

(c) इतिहास की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी में सरकार के समक्ष प्रमुख चुनौती पीड़ितों तक भोजन, आश्रय और बुनियादी आवश्यकताओं की आपूर्ति से संबंधित हैं।

(d) उन सभी को बेहतर स्वच्छता (साबुन, पानी, शौचालय, अपशिष्ट प्रबंधन) बनाये रखकर शिविरों आश्रयों में भोजन और बुनियादी सुविधाएं कैसे प्रदान करें?

(e) इन स्थितियों को त्वरित रूप से कैसे समझा जाए जिससे कि संक्रमित व्यक्ति की स्क्रीनिंग करके उन्हें कॉरंटाइन में भेजा जा सके?

(f) संक्रमण के प्रसार की जाँच करने के लिए प्रवासियों के बीच सामाजिक दूरी को कैसे बनाएं रखें?

(g) इस संकट में प्रवासियों को परामर्श और मनोवैज्ञानिक सहायता कैसे प्रदान की जाए?

(h) प्रवासियों को सुरक्षित रूप से उनके मूल स्थानों पर स्थानांतरित करने की चुनौती? लॉकडाउन के पहले चरण की समाप्ति के बाद मुंबई, सूरत और दिल्ली में सामाजिक दूरी के नियमों का उल्लंघन करना, गांवों में अपने परिवारों को वापस जाने की उनकी हताशा को दर्शाता है।

दीर्घकालिक चुनौतियां

- गंतव्य स्थानों पर फंसे प्रवासियों, राजमार्ग शिविरों और गांवों में वापस लौटने वाले प्रवासियों के बारे में प्रामाणिक तथ्य कैसे एकत्र किए जाए? ताकि वर्तमान और भविष्य के प्रबंधन की जरूरतों के लिए सामाजिक कल्याण योजनाओं के लाभों को उन तक पहुँचाया जा सकें।
- जो प्रवासी श्रमिक दैनिक मजदूरी पर जीवन निर्वाह करते है और जो सामाजिक योजनाओं में पंजीकृत नहीं हैं। लॉकडाउन के दौरान और लॉकडाउन के बाद उनको बुनियादी आय सहायता कैसे प्रदान की जाए?
- इस संकट में यह सवाल उठता है कि क्या रिवर्स प्रवासी शहरों में काम करने के लिए वापस आएंगे या अपने मूल स्थानों में रहेंगे? यदि वे वापस नहीं आते हैं तो गंतव्य क्षेत्रों में संभावित आर्थिक तनाव से कैसे निपटें। राज्य सरकारों के सामने यह चुनौती बनी हुई है कि उनके मूल गाँवों में जहाँ संसाधनों की कमी है और अवसर सीमित है, वहाँ लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को कैसे पूरा करना चाहिए? वर्तमान में पंजाब, हरियाणा और अन्य राज्यों में प्रवासियों के बिना गेंहूँ की कटाई की कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

सरकार की भूमिका

कोविड-19 के प्रसार और इसके आगे के प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन ने लाखों लोगों के जीवन में उथल-पुथल ला दिया जो मुख्य रूप से अनौपचारिक क्षेत्र में शामिल हैं। हालाँकि इस समय कोई बेहतर सार्वजानिक नीति नहीं बन पाई लेकिन राहत पैकेज के जरिए सरकार ने इन श्रमिकों के कल्याण के लिए काम किया है। भारत सरकार ने कमजोर व असुरक्षित समूहों पर लॉकडाउन के प्रभाव को कम करने के लिए 26 मार्च 2020 को गरीब कल्याण योजना के तहत 1.70 लाख करोड़ रूपये के पैकेज की घोषणा की। इसके दायरे में स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता, कृषक, मनरेगा श्रमिक, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग विशेषकर महिलाएं, बुजुर्ग और असंगठित क्षेत्र के श्रमिक, जनधन खाताधारक और उज्ज्वला लाभार्थी शामिल हैं। वहीं अभी हाल ही में प्रवासी श्रमिकों के लिए शगरीब कल्याण रोजगार अभियानश प्रारंभ किया गया है। इसके अतिरिक्त केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों को भवन निर्माण और कामगरों के कल्याण के लिए सीधे लाभ हस्तांतरण के माध्यम से निर्माण श्रमिकों को राहत देने के लिए

52,000 करोड़ रूपये के राहत पैकेज का उपयोग करने का आदेश दिया है। राज्यों को 'राज्य आपदा राहत कोष' के धन का उपयोग करने की अनुमति दी गई थी ताकि बेघर प्रवासी श्रमिकों सहित जो लोग लॉकडाउन के कारण फंसे हुए थे और जो राहत शिविरों और अन्य स्थानों पर शरण लिए हुए थे, उन तक भोजन, आवास और चिकित्सा देखभाल मुहैया करवाई जा सके। 31 मार्च 2020 तक 6.6 लाख प्रवासी श्रमिकों को भोजन, आश्रय और बुनियादी आवश्यकताओं के प्रावधान के साथ 21,604 राहत शिविरों में समायोजित किया गया था। गृह मंत्रालय ने इस संकट के दौर में मकान मालिकों से किराया नहीं लेने को कहा और नियोक्ताओं को अपने श्रमिकों के वेतन का भुगतान कटौती के बिना करने के लिए कहा। इसके साथ ही गृह मंत्रालय ने किसी भी आवश्यक वस्तु तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए 24×7 निगरानी के लिए एक 'नियंत्रण कक्ष' स्थापित किया। हाल की एक रिपोर्ट में सरकार ने प्रशिक्षित परामर्शदाताओं और सामुदायिक समूह के नेताओं को किसी भी अड़चन से निपटने के लिए राहत शिविरों और आश्रय गृहों में भेजने का प्रस्ताव दिया है, जो कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर हो सकता है।

हालाँकि रणनीतियों को लागू करने के लिए उचित दिशा-निर्देशों की कमी ने राज्य सरकारों के सामने कई चुनौतियां पेश की किंतु केंद्र सरकार द्वारा दिए गए आदेशों के अनुरूप अधिकांश राज्यों ने अपनी रणनीतियों को तैयार किया। दिल्ली, बिहार, उड़ीसा, केरल और महाराष्ट्र आदि राज्यों ने सभी प्रवासी श्रमिकों को अस्थायी आश्रय प्रदान किया। वहीं उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उड़ीसा, केरल, तेलांगाना और कर्नाटक जैसे कई राज्य प्रवासी श्रमिकों, बेघर और गरीब लोगों को खाद्यान किट के वितरण के साथ मुफ्त भोजन और राशन बैग प्रदान करते दिखाई दिए। नगर निगमों ने भी प्रवासियों और असहाय लोगों की सहायता के लिए सामुदायिक रसोई, प्रवासियों की स्वास्थ्य देखभाल, उन्हें जागरूकता प्रदान करने और जरूरतमंदो की सहायता के लिए धन इकठ्ठा करने की पहल की। उदाहरण के लिए, केरल में कुछ प्रवासियों को स्थानीय भाषा समझने में समस्याएं हैं। इससे निपटने के लिए पुलिस अधिकारियों ने होमगार्ड की व्यवस्था की। उन्हें बीमारी और इसकी रोकथाम के बारे में प्रवासियों के बीच जागरूकता प्रदान करने की जिम्मेदारी दी गई थी और यह सुनिश्चित किया गया कि वे प्रवासियों को हर संभव सहायता प्रदान करेंगे केरल में भोजन और आवास के आलावा कुछ आश्रयोंधशिविरों में मनोरंजन की सुविधा भी प्रदान की गई है।

राहत कार्यों में सामाजिक संगठनों की भूमिका

सरकारी एजेंसियों के साथ-साथ सामाजिक संगठन भी कार्रवाई करने के लिए आगे आये हैं। राज्यों के इस प्रयास में उनका समर्थन करने के लिए गैर-सरकारी संगठनों, कोरोना योद्धाओं और स्वयंसेवकों ने भी भागीदारी शुरू की है। गैर-सरकारी संगठनों ने जरूरतमंद लोगों की मदद के लिए क्राउडफंडिंग प्रयास के तहत भोजन और स्वच्छता किट प्रदान किये हैं। इनके द्वारा नई पहल भी की जा रही है। उदाहरण के लिए केरल में COVID-19 के प्रवासियों की जाँच और विशिष्ट समूह को अन्य चिकित्सा सेवाएं प्रदान करने के लिए केरल की सरकार की सहायता से प्रवासी और समावेशी विकास केंद्र द्वारा 'बंधु' नामक एक मोबाईल परीक्षण इकाई शुरू गई है। इसके अतिरिक्त कई बड़े रेस्टोरेंट और आईटी कंपनियां भी भोजन आपूर्ति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सामने आयी हैं। उदाहरण के लिए, गुरुग्राम में कई फाइव स्टार रेस्टोरेंट रोजाना 75,000 से अधिक लोगों को भोजन परोस रहे हैं और WIPRO प्रति दिन 40,000 भोजन पैकेट दान कर रहा है। राज्य संगठनों ने पुलिस की मदद से भू-ट्रैकिंग प्रणाली शुरू करने का प्रस्ताव दिया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि केवल प्रवासियों को भोजन की सुविधा तथा भोजन तक पहुँच प्राप्त हो।

कोविड-19 के उपरांत राज्य के लिए अवसर

- गांव को खुशहाल बनाने एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का अवसर।
- स्वास्थय संबंधी बुनियादी ढाँचे में मात्रात्मक और गुणात्मक सुधार।
- प्रवासियों को एक जिला-एक उत्पाद कार्यक्रम में शामिल करने का अवसर।
- आवाजहीन व हाशिए पर पड़े व्यक्तियों के लिए जमीनी स्तर की नीति बनाने का अवसर।
- मौजूदा कानून श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए पर्याप्त नहीं है। अत: इस संकट ने श्रम कानून सुधारों पर जोर दिया।

भविष्य के लिए रणनीतियाँ

प्रवासी श्रमिकों और उनके परिवारों के भोजन और पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए साप्ताहिक आधार पर खाद्य अनाज और दालों की आपूर्ति की जानी चाहिए। सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बुनियादी ढाँचे का उपयोग करना चाहिए

और भारतीय खाद्य निगम के बफर स्टॉक के रूप पड़े हुए अनाज को वितरित करना चाहिए। इस संकट काल में दैनिक जरूरतों की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय निकायों को भी जुटाना चाहिए। प्रवासियों लंबे समय तक विकास में हितधारकों के रूप में उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। विकास के साथ प्रवासियों का एकीकरण समय की आवश्यकता है। सरकार को गंभीरता से यूनेस्को-यूनिसेफ की सिफारिशों पर गौर करना चाहिए साथ ही 'वर्किंग ग्रुप ऑन माईग्रेशन' की सिफारिशों को जल्द से जल्द लागू करना चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली विशेष रूप से प्राथमिक और माध्यमिक देखभाल को मजबूत करने की आवश्यकता है। इसको कारगर बनाने लिए निवेश में वृद्धि की जानी चाहिए। दवा और उपकरणों को बड़े पैमाने पर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की एक बुनियादी रणनीति के रूप में हमें विकेन्द्रीयकरण को स्वीकार करने की आवश्यकता है। प्रवासियों के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना की शुरुआत राज्य सरकार के साथ-साथ विशेष रूप से महामारी के दौरान गंतव्यों पर प्रवासियों के लिए सहायक हो सकती है। उदहारण के लिए, केरल में 'आवाज हेल्थ इंस्युरेन्स स्कीम' नाम से स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू की गई। इससे सरकार को प्रवासियों का रिकॉर्ड रखने में मदद मिलती है और प्रवासियों को स्वास्थ्य बीमा का लाभ मिलता है।

प्रवासियों के मूल और गंतव्य स्थानों पर परिवहन सुविधा प्रदान करने के लिए राज्य सरकार, केंद्र सरकार के साथ समन्वय कर सकती हैं और रणनीति बना सकती है। यह समय केंद्र और राज्य सरकार के बीच तालमेल और समन्वय स्थापित करने का है। यह इन आवाजहीन हाशिए के लोगों की मदद करने का समय है ताकि वे इस नुकसान से उभरे और धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था के सामान्य होने के बाद उनका पुनर्वास हो सके। केंद्र सरकार ने 'मेगा प्लान' के तहत कोरोना लॉकडाउन के दौरान अपने राज्यों और गांवों को लौटे करोड़ो प्रवासी मजदूरों के पुनर्वास, रोजगार, आजीविका, कौशल विकास और गरीब कल्याण सुविधाओं का लाभ सुनिश्चित कराने की योजना का खाका तैयार किया है। कोविड-19 से लड़ने के लिए हमें ग्राम पंचायत, स्वयं सहायता समूह, कॉरपोरेट्स और समाज के हितधारकों को सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इसके आलावा सह-ग्रामीणों द्वारा कलंक से बचने के लिए गैर-सरकारी संगठनों, स्वयं सहायता समूहों, स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं और स्थानीय निकायों के अधिकारियों की मदद से ग्रामीणों को जागरूकता प्रदान की जा सकती है।

निष्कर्ष

महामारी को रोकने का भरसक प्रयास भारत के इतिहास की सबसे बड़ी मानवीय त्रासदी में से एक में बदल गया है। बहरहाल सरकार और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा प्रदान की गई सहायता से प्रवासियों को थोड़ी बहुत राहत अवश्य मिल सकती है। किंतु इस विशाल प्रवासी आबादी को देखते हुए प्रदान की गई सेवाएँ अपर्याप्त साबित हुई हैं। इस समय कोई निश्चित अनुमान उपलब्ध नहीं है लेकिन करीब 10 मिलियन से कम प्रवासियों के फंसे होने की संभावना बताई जा रही है। 26 मार्च 2020 को घोषित की गई 'प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना' के तहत गांव व उनके मूल स्थान पर उनके परिवारों को विभिन्न उपायों के माध्यम से सहायता प्रदान की जा रही है। किंतु फंसे हुए प्रवासी श्रमिकों को शिविरों में भोजन के अलावा शायद ही कुछ मिल रहा हो। यह सुझाव दिया गया है कि शहरों में प्रत्येक फंसे हुए प्रवासी श्रमिक को कम से कम तीन महीने तक राज्य सरकार द्वारा वित्तीय सहायता के अलावा केंद्र सरकार द्वारा 6000 रु. ('मनरेगा योजना की न्यूनतम दर रु. 202 प्रतिदिन × 30 दिन) दिए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त गंतव्य आश्रयों और शहरों में अन्य स्थानों पर नकद में मौद्रिक सहायता देना उचित होगा। क्योंकि सर्वेक्षण में यह पाया कि 17 प्रतिशत मजदूरों का बैंकखाता ही नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाएं जैसे सड़क, बिजली, स्वच्छ पेयजल, स्वास्थ्य सुविधाएं, व्यवसाय और सेवा क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सरकार द्वारा विकसित किए जाने चाहिए ताकि ग्रामीण-शहरी पलायन को कम किया जा सके। ग्रामीण आबादी का एक बड़ा हिस्सा गैर-कृषि व्यवसायों के माध्यम से सभ्य जीवन जीने में सक्षम होना चाहिए।

References

- Bhagat, Ram B., "Migration and Urban Transition in India : Implications for Develpoment", United Nations Expert Group Meeting on Sustainable Cities, Human Mobility and International Migration, (September 5, 2017) : 2, Accessed June 3, 2020, https://www.un.org/en/development/desa/population/events/pdf/expert/27/papers/V/pa.
- Unlocking the Urban : Reimagining Migrant Lives in Cities Post-COVID 19. Rajasthan : Aajeevika Bureau, 2020. Accessed June 5, 2020 https://www.aajeevika.org/assets/pdfs/Unlocking%20the%20Urban.pdf.

- Bhagat, Ram B., "Report on world migration 2015 : Urban Migration Trends, Challenges and Opportunities in India", International Institute for Population Science, Mumbai, (2014) : 21, Accessed – June 3, 2020, https://www.iom.int/sites/default/files/our_work/ICP/MPR/WMR-2015-bACKGROUND-Paper.
- Bhagat, R.B., Reshmi R.S., Harihar Sahoo, Archana K. Roy, Dipti Govil, *"The COVID-19, Migration and Livelihood in India*", International Institute for Population Science, Mumbai, (2020) : 3-4, Accessed: June 3, 2020 https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli.pdf.
- Bhagat,*"The COVID-19, Migration and Livelihood in India*", 3.
- Government of India(a), *"Report of the Working Group on Migration",* Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation, New Delhi, (2017), Accessed: June 9, 2020 http://mohua.gov.in/upload/uploadfiles/files/1566.pdf.
- Chacko, Elizabeth, "From brain drain to brain gain : reverse migration to Banglore and Hyderabad, India's globalizing high tech cities", Springer 68, no.2/3, (2007) : 131-132, Accessed June 2, 2020, https://www.jstor.org/stable/41148150.
- Gmelch, George, "Return Migration", Annual Review of Anthropology 9, (1980) : 137, Accessed June 2, 2020, https://www.jstor.org/stable/2155732.
- Chacko, Elizabeth, "From brain drain to brain gain : reverse migration to Banglore and Hyderabad, India's globalizing high tech cities", Springer 68, no.2/3, (2007) : 131-132, Accessed June 2, 2020, https://www.jstor.org/stable/41148150.
- Kumar,Vikramendra, "Aspect of Human Migration in 21st- Century India", Madridge journal of Behavioural and Social Sciences 1, no.1 (2017) : 23-24, https://doi:10.18689/mjbss-1000104.
- Kumar, Naresh and A.S. Sidhu, "Pull and Push factors in Labour Migration : A Study of Brick-kiln Workers in Punjab", Indian Journal of Industrial Relations 41, no.2 (2005) : 225, Accessed May 31, 2020, https://www.jsor.org/stable/27768009.
- Singh, S.K. and Aditi, "socio-economic vulnerabilities to COVID-19 in India : Swimming against the Tide", International Institute for Population Science, Mumbai, (2020) : 11, https://www.researchgate.net/publication/341099767_socio-economic_vulnerabilities.
- Keshri,Kunal and R.B. Bhagat, "Temporary and Seasonal Migration : Regional Pattern, Characteristics and Associated Factors, Economic and Political Weekly 47, no.4 (2012) : 81 https://www.jstor.org/stable/41419769.
- Sahas, Jan, "*Voices of the Invisible Citizens : A Rapid Assessment on the Impact of COVID-19 Lockdown on Internal Migrant Workers"*, (April 2020): 1-2, Accessed June 5, 2020. https://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/pdf/Voices_of_the_invisible_citizens_jan.
- Government of India(b), Order no.40-3/2020-DM-I (A), Ministry of Home Affairs, New Delhi, March 24, 2020, Accessed-June 12, 2020, https://www.du.ac.in/du/uploads/PR Consolidated%20Guideline%20of%20MHA_28032020%20(1)_1.PDF.
- Kumar, "Modeling Geographical Spread of COVID-19 in India using Network-based Approach", 1.
- Bhagat, R.B., Reshmi R.S., Harihar Sahoo, Archana K. Roy, Dipti Govil, *"The COVID-19, Migration and Livelihood in India*", International Institute for Population Science, Mumbai, (2020) : 16, Accessed June 3, 2020, https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli.pdf,
- A Policy Brief, "The COVID-19, Migration and Livelihood in India : Challenges and Strategies", (2020) ; 4, Aceesed June 5, 2020, https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli_PB.Pdf
- DHNS. "A poorly thought-out package for the poor".Deccan Herald. March 27,2020. Accessed June 10, 2020. https://www.deccanherald.com/Opinion/first-edit/a-poorly-thought-outpackage-for-the-poor-818067.html.
- "Finance minister announces Rs.1.70 Lakh Crore relief package under Pradhan Mantri Garib Kalyan Yojna for the poor to help them fight the battle against Corona Virus". Ministry of Finance. March 26, 2020. Accessed June 16, 2020. https://pib.gov.in.
- "Coronavirus lockdown Narendra Modi launches 'Garib Kalyan Rojgar Abhiyan' for migrant workers". The Hindu. June 20, 2020. Accessed June 25, 2020. https://www.thehindu.com >news.
- Press Trust of India(b). "Coronavirus : MHA changes rules, State Disaster Relief Fund to be used to give food, shelter for migrant workers". (New Delhi), March 28, 2020. Accessed June 12, 2020. https://www.deccanherald.com/national/coronavirus-mha-changesrules-state-disaster-relief-fund-to-be-used-to-give-food-shelter-for-migrant-workers 818579.html.
- Kulkarni, Sharma. "6.6 lakh migrant workers in more than 21,000 camps : centre sagar. Deccan Herald. March 31, 2020. Accessed June 10, 2020. https://www.deccanherald.com/national/66lakh-migrant-workers-in-more-than21000-camps-centre-819809.html.

- Government of India. "Order no.40-3/2020-DM-I(A)". Ministry of home affairs. (New Delhi), March 29, 2020. Accessed June 12, 2020. https://labourcommissioner.assam.gov.in/sites/default/files/suf_utility_folder/departments/coi_labour_uneecopscloud_com_oid_14/latest/mha_order_restricting_movement_of_migrants_and_strict_enforement_of_lockdown_measures_29.03.2020.pdf.pdf.pdf.
- Press Trust of India(c). "Coronavirus : Centre asks states to arrange food, shelter for migrant workers". Deccan Herald. March 26, 2020. Accessed June 6, 2020. https://www.deccanherald.com/national/coronavirus-centre-asks-states-to-arragefood-shelter-for-migrant-workers-817995.html.
- Press Trust of India(d). "Take action for redressal of migrant labourer's grievances during lockdown : Health Secretory to states". Deccan Herald. April 1, 2020. Accessed June 6, 2020. https://www.deccanherald.com/national/take-actions-for-redressal-of-migrantlaburers-grievances-during-lockdown-health-secretary-to-states-820164.html.
- Government of NCT of Delhi. "Order F.No.15 (46)/CFS/Dist/2020/PMGKAY/1198-1211". Department of Food & Supplies. April 23, 2020. Accessed June13, 2020. https://www.fs.delhigovt.nic.in/wps/wcm/connect/93ae09004e1e821380cfe3d194e333e1/Allocation+and+Distribution+of+free+Ration+230420.pdf?MOD=AJPERES&Imod=-2118130335.
- Kuruvilla, Anu. "1st Mobile Covid Screening unit begins Operation among Migrant Labourers". The New Indian Express. April 3, 2020. Accessed June 13, 2020. https://www.newindianexpress.com/cities/kochi/2020/apr/03/1st-mobile-covid-screening-unit-begins-operation-among-migrant-labourers-2125005.html.
- Goel, Ayush. "Posh Restaurants in Gurugram Turn into Emergency Kitchens". The Week. April 4, 2020. Accessed June 13, 2020. https://www.theweek.in/news/india/2020/04/poshrestaurants-in-gurugram-turn-into-emergency-kitchens.html.
- Bhagat, R.B., Reshmi R.S., Harihar Sahoo, Archana K. Roy, Dipti Govil, *"The COVID-19, Migration and Livelihood in India*", International Institute for Population Science, Mumbai, (2020) : 16-17, Accessed June 3, 2020, https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli.pdf,
- Bhagat, *"The COVID-19, Migration and Livelihood in India*", 17.
- Express News Service. "' 'Aawaz', Insurance Scheme Rolled out for Migrant Labourers". The New Indian Express. November 2, 2020. Accessed June 14, 2020. https://www.newindianexpress.com/states/kerala/2017/nov/02/aawaz-insurance-scheme-rolled-out-for-migrant-labourers-1689627.html. , Staff Reporter. "Awaz Card for over 1 lakh Migrant Workers in District". March 6, 2020. Accessed June 14, 2020. https://www.thehindu.com/news/cities/Kochi/awaz-cards-for-over-1-lakh-migrant-workers-in-district/article30994684.ece.
- A Policy Brief, "The COVID-19, Migration and Livelihood in India : Challenges and Strategies", (2020) ; 4, Aceesed June 5, 2020, https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli_PB.Pdf
- पाण्डेय, नीरज कुमार. ''लॉकडाउन में घर लौटे मजदूरों को रोजगार देने के लिए मोदी सरकार ने बनाया 'मेगा प्लान', 6 राज्यों के 116 जिलों की पहचान की''. ABP न्यूज. जून 8, 2020. Accessed जून 8, 2020.

  https://www.abplive.com/news/india/modi-government-mega-plan-to-provide-employment-to-migrant-laborers-who-lost-job-in-lockdown-ann-142381.
- A Policy Brief, "The COVID-19, Migration and Livelihood in India : Challenges and Strategies", (2020) ; 4, Aceesed June 5, 2020, https://iipsindia.ac.in/sites/default/files/iips_covid19_mlli_PB.Pdf
- Sahas, Jan, "*Voices of the Invisible Citizens : A Rapid Assessment on the Impact of COVID-19 Lockdown on Internal Migrant Workers"*, (April 2020): 2, Accessed June 5, 2020. https://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/pdf/Voices_of_the_invisible_citizens_jan.

कोविड संकट एवं प्रवासनः चुनौतियां एवं संभावनाएं

डॉ. सुरेखा पिपलानी

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, जीयूपीजी कॉलेज, बहेड़ी, बरेली

संदर्भ

प्रवासन मानव विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग है और यह सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारे देश में प्रवासन सदैव से जीविकोपार्जन की रणनीति रही है जिसमें अधिकांश श्रमिक बेहतर रोजगार के अवसर, अच्छी शिक्षा एवं स्वास्थ्य की उपलब्धता तथा स्थानीय स्तर पर होने वाली अशान्ति से बचने के लिए गांवों और कस्बों से शहरों की तरफ पलायन करते हैं। हमारा संविधान सभी नागरिकों को पूरे भारत में स्वतंत्र रूप से संचरण करने और भारत के किसी भी हिस्से में निवास करने का अधिकार देता है। प्रवासन को आंतरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय दो रूपों में वर्गीकृत किया जाता है। किसी भी देश में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन की तुलना में आंतरिक प्रवासन कहीं अधिक व्यापक है। आंतरिक प्रवासन में आर्थिक विकास, सामाजिक सम्बद्धता तथा शहरी विविधता में योगदान दे पाने की भारी संभावना होती है। आंतरिक प्रवास देश के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का अपरिहार्य घटक है।

तथ्य एवं आंकड़े

आंतरिक प्रवास की व्यापकता उसकी प्रकृति तथा विस्तार से संबंधी आंकड़ों की गंभीर कमी है। जनगणना जैसे स्थूल डेटाबेस अल्पकालिक पलायनकर्ताओं की आवाजाही को सही तरीके से पकड़ नहीं पाते हैं और पलायन के गौण कारणों को दर्ज नहीं करते हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में आंतरिक प्रवासियों की संख्या 45.36 करोड़ थी जो देश की जनसंख्या का लगभग 37 प्रतिशत है। आर्थिक सर्वेक्षण 2017 के अनुसार देश में लगभग 14 करोड़ श्रमिक मौसमी तथा चक्रीय स्वरूप के हैं। ये श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों के स्थायी निवासी होते हैं लेकिन वर्ष का अधिकांश समय शहरों में व्यतीत करते हैं। इनकी आय का स्रोत भी नियमित नहीं होता और इनकी संख्या अधिक होने के कारण इन्हें असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भारत का असंगठित क्षेत्र मूल रूप से ग्रामीण जनसंख्या से ही विकसित हुआ है एवं इस क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिक फैक्टरी अधिनियम 1948 जैसे किसी कानून के अन्तर्गत नहीं आते हैं। श्रमिक अर्थव्यवस्था के तीनों क्षेत्रों कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र में अपना योगदान देते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के अभिलेखों से स्पष्ट होता है की विकास योजनाओं तथा नीतियों में पलायन के मुद्दे पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया जो चिंताजनक है। आर्थिक सर्वेक्षण 2017 के ही अनुसार 90 लाख लोग देश के भीतर प्रतिवर्ष पलायन करते हैं जिनमें से अधिकांश बेहतर रोजगार की तलाश में ऐसा करते हैं। प्रवासियों के लिए शीर्ष गन्तव्य दिल्ली, मुंबई है। हाल के वर्षों में दक्षिण राज्यों की तरफ भी प्रवासन की दर बढ़ गई है। इनमें से अधिकांश प्रवासी उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, झारखंड, बंगाल और असम से आते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश में इस समय लगभग 60 करोड़ आंतरिक प्रवासी हैं जो या तो किसी ऐसी जगह पर रह रहे हैं जहाँ वे पैदा नहीं हुए या 6 महीने पहले नहीं रहते थे।

कोविड संकट का प्रवासन पर प्रभाव

भारत सरकार द्वारा कोविड 19 महामारी को राष्ट्रीय आपदा घोषित करने के साथ पूरे देश में लॉकडाउन के कारण आवश्यक सेवाओं को छोड़कर सभी प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियाँ रुक गईं एवं उसका प्रभाव विनिर्माण से लेकर व्यापार, कृषि, आपूर्ति श्रंखला, खाद्य पोषण एवं सुरक्षा, पर्यटन, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं समेत अर्थव्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रों पर पड़ा। सभी आर्थिक गतिविधियों के बंद होने एवं कामकाज के समय में कटौती के कारण कई कर्मचारी काम से हटाए गए। अनेक छोटी इकाइयां एवं सेवा प्रदाता पतन के कगार पर आ गए तथा अपनी इकाइयों को चलाने के लिए संघर्ष करते दिखाई पड़े। ऐसी स्थिति में सबसे पहले उन लोगों का रोजगार खत्म हुआ जिनके रोजगार अनिश्चित थे जैसे कि अनुबन्ध, असंगठित क्षेत्र के मजदूर, दिहाड़ी मजदूर और अनौपचारिक मजदूर। इन मजदूरों की स्थिति सबसे ज्यादा नाजुक इसलिए थी क्योंकि आय का स्रोत खत्म हो जाने के कारण बेरोजगारी की स्थिति में इन्हें भुखमरी के जोखिम का सामना करने के लिए विवश होना पड़ रहा था, यद्यपि सरकार द्वारा राष्ट्रीय आपदा अधिनियम के अन्तर्गत नियोक्ताओं के लिए मजदूरी का भुगतान करना अनिवार्य कर दिया गया था लेकिन पर्याप्त प्रशासनिक मशीनरी के अभाव में इसके क्रियान्वयन का आकलन करना आसान कार्य नहीं था, इस प्रकार कोरोना के कहर ने प्रवासी श्रमिकों के सामने दोहरा संकट खड़ा कर दिया। उनके लिए पहला संकट रोजी रोटी बचाने का था और दूसरा महानगरों में फैले संक्रमण से खुद को बचाने का, क्योंकि इनके पास सुरक्षित दूरी तथा स्वच्छता के मापदण्ड बनाए रखने योग्य व्यवस्थित घर भी नहीं थे। 'घर पर रहें सुरक्षित रहें', यह नारा इन श्रमिकों के लिए अपना प्रभाव खो चुका था। ये वे प्रवासी श्रमिक थे जो हर क्षेत्र, हर वर्ग को सहायता एवं सेवाएं प्रदान करते हैं, जिन्होंने हमारे नगरों के आधारभूत ढाँचे का निर्माण किया है, जो हमारे नगर जीवन के प्राण तत्व हैं वही आज कोविड-19 महामारी के कारण अपने भविष्य को लेकर आशंकित थे। लॉकडाउन में कैद इन प्रवासी श्रमिकों की समस्याओं में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही थी। सरकार और सामाजिक संगठनों के द्वारा इन प्रवासी श्रमिकों के लिए लगातार भोजन एवं आश्रय की व्यवस्थाएं की जा रही थीं लेकिन इन तमाम कोशिशों और आश्वासनों के बावजूद इस महामारी के दौरान जीवन और आजीविका की इस जंग में एक अनजाने डर से ग्रसित इन श्रमिकों के कदम नहीं थमे और ये सैकड़ों किलोमीटर दूर अपने गृहराज्यों की तरफ पैदल ही निकल पड़े। ऐसे में प्रवासी कामगारों को राहत देने के लिए राज्य सरकारों के अनुरोध पर रेल मंत्रालय द्वारा श्रमिक स्पेशल ट्रेनें चलाकर सुरक्षित दूरी के मापदण्ड के साथ इन श्रमिकों को उनके गृहराज्यों में पहुँचाने का कार्य किया गया। इस दौरान सर्वाधिक अन्तर्राज्यीय प्रवासन संकट दिल्ली, मुंबई और सूरत जैसे शहरों में देखा गया।

कोविड संकट में लॉकडाउन के दौरान होने वाला यह पलायन सामान्य दिनों की अपेक्षा होने वाले पलायन से एकदम विपरीत था। सामान्यत: बेहतर रोजगार पाने एवं उन्नत जीवन जीने की आशा में गांवों और कस्बों से महानगरों की तरफ पलायन होता है लेकिन इस समय स्थिति बिल्कुल विपरीत थी क्योंकि अब रोजगार पाने के लिए नहीं बल्कि रोजगार छूट जाने के कारण महानगरों से गाँवों की तरफ पलायन हो रहा था। विशेषज्ञों ने इस स्थिति को ही पुन: प्रवासन कहा है।

अर्थव्यवस्था में प्रवासी श्रमिकों की भूमिका

आन्तरिक प्रवासन विकास का अभिन्न हिस्सा है एवं प्रवासी श्रमिक अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शहरों की उन्नति तथा आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन्तता इनके योगदान से ही सम्भव हो पायी है। मुंबई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई जैसे महानगरों के विकास में प्रवासियों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। करोड़ों प्रवासी कामगारों ने महानगरों की गगनचुम्बी इमारतों से लेकर देश भर में फैले उद्योग धंधों के विकास के लिए कड़ी मेहनत की है।

भारत में एक राज्य से दूसरे राज्य में तथा एक जिले से दूसरे जिले में जाकर काम करने वाले श्रमिकों की आय देश की जीडीपी की लगभग 6 प्रतिशत है। ये श्रमिक इसका एक तिहाई भाग अर्थात जीडीपी का 2 प्रतिशत घर भेजते हैं। वर्तमान जीडीपी के हिसाब से यह राशि लगभग 4 लाख करोड़ रुपये हैं। मुख्य रूप से यह धन राशि बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, ओडिशा, मध्य प्रदेश, और झारखंड जैसे राज्यों में भेजी जाती है। आर्थिक सर्वेक्षण 2017 के अनुसार वर्ष 1991 से 2001 के बीच प्रवासन में 2.4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई थी तो वहीं वर्ष 2001 से 2011 के बीच इसकी वार्षिक वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत रही। इन आँकड़ों से पता चलता है की प्रवासन से श्रमिकों और उद्योगों दोनों को ही लाभ प्राप्त हुआ है। श्रम गहन उद्योगों में बड़ी संख्या में ये श्रमिक काम करते हैं, जब अर्थव्यवस्था में मांग बढ़ती है तो इन श्रमिकों को बोनस, वेतन वृद्धि, मोबाइल फोन रीचार्ज, आने जाने का किराया

और कैन्टीन जैसी सुविधाएं देकर उद्यमी अपने साथ जोड़कर रखना चाहते हैं। वास्तव में ये श्रमिक हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ एवं नगरीय जीवन का आधार स्तम्भ हैं।

पुनः प्रवासन के प्रभाव एवं चुनौतियाँ

जीवन और आजीविका को बचाना दो अलग-अलग मुद्दे हैं और ऐसी स्थितियों से उबरने का उत्तर ढूंढना एक बड़ी चुनौती उत्पन्न कर रहा है। कोविड संकट के कारण पिछले कुछ महीनों से सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों में अभूतपूर्व गिरावट आई है और इस सब में होने वाली क्षति का अनुमान लगाना बहुत कठिन कार्य है। मोटर वाहन, आतिथ्य, सिनेमा, शॉपिंग मॉल, रीटेल, पर्यटन, घरेलू व्यापार तथा विनिर्माण जैसे क्षेत्रों के बंद होने से बड़े पैमाने पर बेरोजगारी के बारे में सोचना भी भयावह लगता है। सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमीद्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार लॉकडाउन के कारण कुल 12 करोड़ लोग नौकरी छूट जाने के कारण बेरोजगारी की कतार में शामिल हो गये हैं। कोरोना संकट से पहले भारत में कुल रोजगार से जुड़े लोगों की संख्या 40.4 करोड़ थी जो इस संकट के बाद 28.5 करोड़ हो चुकी है। अर्थव्यवस्था में मांग एवं पूर्ति आधारित सुस्ती के साथ-साथ बेरोजगारी का भीषण संकट उत्पन्न हो गया है। यह तो केवल संगठित क्षेत्र से जुड़ी चिंता है जबकि असंगठित क्षेत्र की स्थिति तो अत्यंत दयनीय है क्योंकि दुर्भाग्यवश असंगठित क्षेत्र से जुड़ी गतिविधियों के विषय में विश्वसनीय आँकड़ों का पूर्ण अभाव रहता है। इन परिस्थितियों में सम्पन्न एवं पिछड़े दोनों ही राज्यों में अर्थात जिन राज्यों से इन श्रमिकों का पलायन हुआ है और जिन राज्यों में ये श्रमिक पहुँचे हैं दोनों में ही चुनौतियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है क्योंकि इससे श्रमिकों की माँग एवं पूर्ति में असंतुलन उत्पन्न हो गया है। महानगरों में श्रमिकों की पूर्ति कम होने के कारण बड़े औद्योगिक केंद्रों में चिंता व्याप्त है।

भारत के सोलिसिटर जनरल ने सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल एक याचिका के जवाब में बताया कि कोविड 19 महामारी में लॉकडाउन के दौरान 28 मई 2020 तक 89 लाख प्रवासी श्रमिकों को उनके गाँवों तक पहुँचाया गया है। इनमें से 80 प्रतिशत श्रमिक बिहार और उत्तर प्रदेश के है। इन आँकड़ों में उन हजारों श्रमिकों की संख्या शामिल नहीं है जो विभिन्न राज्यों से पैदल वापिस लौट चुके हैं, जहाँ इनके समक्ष आजीविका को चलाने का संकट है। प्रवासी श्रमिकों के शहरों से गाँवों को पलायन करने से प्रछन्न बेरोजगारी के बढ़ने की संभावनाएं प्रबल हो गई हैं।

कोविड संकट में श्रमिकों के पुनः प्रवासन से कृषि, आपूर्ति श्रृंखला तथा खाद्य व पोषण सुरक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। पंजाब, हरियाणा, तेलंगाना, महाराष्ट्र, तमिलनाडु जैसे कृषि प्रधान राज्यों में श्रमिकों की कमी से कृषि गतिविधियाँ प्रभावित हो रही हैं साथ ही निर्माण कार्यो की धीमी प्रगति से परियोजना लागत में वृद्धि की संभावनाएँ बढ़ गई हैं। परिणाम स्वरूप निर्धनता के परिमाण और घातकता में भारी वृद्धि हो गई है। प्रवासी श्रमिकों की वापसी ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य जोखिम को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है क्योंकि वहाँ की स्वास्थ्य सेवाओं की बुनियाद प्राथमिक और सामुदायिक केंद्रों पर टिकी हुई है और यह बुनियाद भी बेहद कमजोर है।

आर्थिक गतिविधियों के दुष्प्रभाव के साथ ही कोविड की जांच में पाजिटिव आए रोगियों के लिए उपचार, संभाव्य रोगियों के लिए आईसोलेशन तथा क्वॉरन्टाइन की व्यवस्था, असहाय एवं निर्धन वर्गो को राहत पहुँचाने के लिए चलाए गए विशेष कार्यक्रमों एवं पटरी से उतरी अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए घोषित राहत पैकेज से जहाँ केंद्र एवं राज्य सरकारों के गैर उत्पादक व्ययों में भारी वृद्धि हो गई है वहीं उत्पादक गतिविधियाँ शिथिल हो जाने से कर राजस्व में भारी कमी आ गई है। यह कहना बहुत कठिन है की ये संकट कब खत्म होगा और इससे अर्थव्यवस्था एवं लोगों की आजीविका तथा उन्हें प्राप्त होने वाली प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को कितने क्षति पहुँचेगी। कोविड महामारी के संक्रमण एवं प्रसार के कारण प्रवासी श्रमिकों का प्रबंधन बहुत बड़ी चुनौती को दर्शाता है जिसके लिए तात्कालिक के साथ-साथ दीर्घकालिक रणनीति बनाना जरूरी है।

राहत पैकेज एवं चुनौतियों को अवसर में बदलने की रणनीति

लॉकडाउन के कारण भुखमरी और पलायन झेल रहे गरीबों को राहत पहुँचाने के लिए केंद्र सरकार ने 26 मार्च 2020 को 1.70 लाख करोड़ रुपये के प्रधानमंत्री गरीब कल्याण पैकेज की घोषणा की है। यह पैकेज उन लोगों के लिए था जिन्हें राहत की तत्काल आवश्यकता थी। इस पैकेज के दायरे में असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिकों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गो, किसानों, मनरेगा मजदूरों, विशेष रूप से महिलाओं, विधवाओं, वृद्धों, दिव्यांगों, जनधन, खाता धारकों एवं उज्ज्वला लाभार्थियों को शामिल

किया गया है। इस पैकेज के अन्तर्गत अगले तीन महीनों के लिए राशन की दुकानों से अतिरिक्त 5 किग्रा. अनाज (गेहूँ-चावल) व 1 किग्रा. दाल प्रदान कर 80 करोड़ लोगों को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया है।

किसानों, मनरेगा से जुड़े परिवारों, विधवाओं, वृद्धों, दिव्यांगों, व जनधन से जुड़ी महिलाओं के बैंक खातों में डीबीटी द्वारा सहायता राशि का अन्तरण करने तथा उज्ज्वला योजना के अन्तर्गत आने वाले परिवारों को 3 माह तक मुफ्त में सिलिन्डर देने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना से 8 करोड़ से अधिक गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को लाभ प्राप्त होगा। मनरेगा के अन्तर्गत दैनिक मजदूरी 182 रुपये से बढ़ाकर 202 रुपये कर दी गई है, इससे 5 करोड़ परिवारों को लाभ प्राप्त होगा।

इसी क्रम में 12 मई 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा आत्म निर्भर भारत अभियान के अन्तर्गत 20 लाख करोड़ रुपये के दूसरे आर्थिक पैकेज की घोषणा की गई। बाद में केन्द्रीय वित्त मंत्री ने पाँच प्रेस खण्डों में 20 लाख करोड़ रुपये का विस्तृत ब्योरा दिया तथा इसके प्रावधानों पर त्वरित गति से अमल भी किया गया।

पहले खण्ड में 5,94,550 करोड़ रुपये के राहत पैकेज से आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया गया, इसके लिए सूक्ष्म लघु तथा मध्यम उद्योगों के सशक्तीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया तथा उनके लिए परिभाषाओं में परिवर्तन किए गए। घरेलू कम्पनियों को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए 200 करोड़ रुपये तक के सरकारी कार्यों के लिए ग्लोबल टैन्डर के आमंत्रण पर रोक लगा दी गई है।

दूसरे खण्ड में 2 माह से परेशान व अन्य राज्यों में फंसे हुए प्रवासी श्रमिकों के लिए राहत पर विशेष ध्यान दिया गया -

- प्रवासी मजदूरों के लिए अगले 2 माह तक निःशुल्क अनाज की आपूर्ति।
- प्रवासी लाभार्थियों के लिए मार्च 2021 तक देश के किसी भी कोने से सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उपयोग कर उचित मूल्य की दुकान से राशन लेने की व्यवस्था-एक देश एक राशन कार्ड।
- प्रवासी श्रमिकों और शहरी गरीबों के लिए सस्ते किराये के आवास परिसरों की योजना शुरू की जाएगी।
- शिशु मुद्रा ऋण लेने वालों को 12 महीने के लिए 2 प्रतिशत ब्याज की छूट -1500 करोड़ रुपये की राहत प्रदान की जाएगी।
- रेहड़ी-पटरी वालों के लिए 5,000 करोड़ रुपये की ऋण सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी।
- क्रेडिट लिंक्ड सब्सिडी योजना के माध्यम से आवासन क्षेत्र और मध्यम आय समूह को 70,000 करोड़ रुपये का प्रोत्साहन दिया जाएगा।
- रोजगार उपलब्ध कराने के प्रतिपूरक वनीकरण कोश प्रबंधन एवं योजना प्राधिकरण (कैंपा) फंड से 6,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की जाएगी।
- नाबार्ड के जरिए किसानों को 30,000 करोड़ की अतिरिक्त आपातकालीन कार्यशील पूंजीगत निधि उपलब्ध कराई जाएगी।
- किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से 2.5 करोड़ किसानों को 2 लाख करोड़ का रियायती ऋण उपलब्ध कराया जाएगा।

तीसरे खण्ड में कृषि के लिए आधारिक संरचना व सहायक उद्योगों पर ध्यान केंद्रित किया गया। इसके लिए 1.50 लाख करोड़ के बजट में निम्नलिखित आबंटन शामिल है–

		करोड़ रुपये
1.	फूड माइक्रो एंटरप्राइजेज	10,000
2.	प्रधानमंत्री मत्स्य सम्पदा योजना	20,000
3.	टॉप टु टोटल : ऑपरेशन ग्रीन्स	500
4.	कृषि आधारिक संरचना कोश	1,00,000
5.	पशुपालन इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फंड	15,000
6.	औषधीय कृषि को बढ़ावा	4,000
7.	मधुमक्खी पालन	500

चौथा व पाँचवाँ खण्ड मुख्यत: आत्मनिर्भरता व ईज ऑफ डूइंग बिजनेस पर केंद्रित रहा। रक्षा विनिर्माणी उद्योगों में ऑटोमैटिक रूट के तहत एफडीआई की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दी गई है। मनरेगा के बजट में अतिरिक्त 40,000 करोड़ रुपये की वृद्धि की गई।

गरीब कल्याण रोजगार अभियान

यद्यपि प्रवासी श्रमिकों के साथ कौशल एवं हुनर अपने गाँव लौटा है लेकिन इन श्रमिकों के सामने इस समय रोजगार पाने का संकट बहुत बड़ा है। कोविड संकट के दौरान देश में तेजी से बढ़ी बेरोजगारी की चुनौति का अनुमान प्राइवेट थिंक टैंक, 'सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी' द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट सेल गाया जा सकता है। इसके अनुसार भारत में जनवरी 2020 में बेरोजगारीदर 7.2 प्रतिशतथी, यह फरवरी में 7.8 प्रतिशत और मार्च में 8.7 प्रतिशत हो गई। अप्रैल 2020 में यह 23.52 प्रतिशत तथा मई 2020 में 23.48 प्रतिशत हो गई। यद्यपि लॉकडाउन समाप्त होने के बाद बेरोजगारीदर में कमी दर्ज की गई है लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

बढ़ती बेरोजगारी के इसी संकट को दूर करने के लिए केंद्र सरकार ने गरीब कल्याण रोजगार अभियान की शुरुआत की है। इस अभियान में 6 राज्यों-बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, झारखण्ड और ओडिशा के 116 जिलों को शामिल किया गया है। इस अभियान के अन्तर्गत ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए श्रमिकों को रोजगार देने के लिए 50 हजार करोड़ रुपये का बजट प्रस्तावित है। इस राशि से गाँव में ही रोजगार हेतु विकास कार्यों के लिए लगभग 25 कार्य क्षेत्रों की पहचान की गई है जिसमें श्रमिकों को उनके कौशल के अनुसार कार्य दिया जाएगा। प्रवासी श्रमिकों को रोजगार देने के लिए 125 दिनों का यह अभियान मिशन मोड में चलाया जा रहा है। यह अभियान 12 विभिन्न मंत्रालयों/विभागों-ग्रामीण विकास, पंचायती राज, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग, खान, पेयजल, और स्वच्छता, पर्यावरण, रेलवे, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस, नई और नवीकरणीय ऊर्जा, सीमा सड़क, दूरसंचार और कृषि का समन्वित प्रयास है। यह अभियान आत्मनिर्भर भारत अभियान का ही हिस्सा है।

राष्ट्रीय रोजगार नीति पर भी सरकार द्रुत गति से कार्य कर रही है। इस नीति को 50 करोड़ श्रम शक्ति को संगठित क्षेत्र के दायरे में लाने के अनुरूप तैयार किया गया है। केंद्र सरकार के साथ-साथ विभिन्न राज्यों की सरकारें भी कोरोना संकट से उत्पन्न चुनौतियों को अवसर के रूप में परिवर्तित करने के लिए विभिन्न आयामों पर कार्य कर रही हैं। कोरोना काल में उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक श्रमिक वापिस लौटे हैं अत: इस राज्य द्वारा किए गए प्रयास सराहनीय एवं अनुकरणीय हैं।

उत्तर प्रदेश में कामगारों के रोजगार, कौशल मानचित्रण और कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए कामगार श्रमिक सेवायोजन एवं रोजगार कल्याण आयोग का गठन किया गया है। यह आयोग श्रमिकों एवं कामगारों के सेवायोजन, रोजगार, कौशल मानचित्रण और कौशल विकास के क्षेत्र की आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखेगा। अगर किसी राज्य को श्रमशक्ति की आवश्यकता होगी तो उनकी माँग पर सामाजिक सुरक्षा की गारंटी राज्य सरकार देगी, बीमा कराएगी और श्रमिक एवं कामगार को हर तरह की सुरक्षा देगी लेकिन इन श्रमिकों एवं कामगारों को दूसरे राज्यों में रोजगार हेतु ले जाने से पूर्व प्रदेश सरकार की अनुमति आवश्यक होगी। एक अनुमान के अनुसार उत्तर प्रदेश में देश भर से लगभग 35 लाख प्रवासी श्रमिक लौटे हैं। इनके लौटने के बाद से ही स्थानीय स्तर पर इन लोगों को रोजगार देने की मांग एवं चिंता जोर पकड़ने लगी। इसके लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने 'आत्मनिर्भर उत्तर प्रदेश रोजगार अभियान' को प्रारंभ किया है। प्रदेश में लगभग 30 लाख लोगों का कौशल मानचित्रण हो चुका है। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य प्रदेश में वापिस लौटे प्रवासी श्रमिकों के साथ-साथ स्थानीय लोगों को भी उनके ही क्षेत्र में कौशल व रुचि के अनुसार रोजगार प्रदान करना है। स्थानीय स्तर पर उद्यमिता को विकसित करने व रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए औद्योगिक संगठनों और अन्य संस्थानों के साथ जोड़ना इस अभियान का दूसरा महत्वपूर्ण लक्ष्य है। उत्तर प्रदेश सरकार की यह पहल अन्य राज्यों के लिए भी अनुकरणीय है। कौशल एवं हुनर से जुड़े आँकड़े भावी योजनाओं और नीतियों के निर्माण में भी सहायक होंगे।

एमएसएमई से जुड़े 'एक जनपद – एक उत्पाद' कार्यक्रम के अन्तर्गत सरकार ने मार्जिन मनी योजना एवं टूल किट योजना को ऑनलाइन किया है। इसका उद्देश्य 'एक जनपद – एक उत्पाद' के अन्तर्गत उत्पादित उत्पादों के समग्र विकास के लिए वित्तीय प्रोत्साहन के माध्यम से कारीगरोंध्श्रमिकोंध्उद्यमियों को लाभान्वित करना है। इसके अतिरिक्त मुख्यमंत्री युवा स्वरोजगार योजना एवं विश्वकर्मा श्रम सम्मान योजना को भी ऑनलाइन किया है। मुख्यमंत्री युवा स्वरोजगार योजना के द्वारा अपना रोजगार चलाने के लिए सरकार ऋण उपलब्ध कराती है जबकि विश्वकर्मा श्रम सम्मान योजना पारम्परिक एवं गैर पारम्परिक व्यवसाय से जुड़े लोगों को प्रशिक्षण देने की योजना है। आवेदकों से आवेदन माँगे गए हैं। प्रशिक्षण के बाद उनको टूल किट भी दिया जायेगा।

इस प्रकार इन सभी अभियानों और योजनाओं के क्रियान्वयन से श्रमिकों को सामाजिक आर्थिक एवं मानसिक सुरक्षा मिलने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था को पुनः सशक्त बनाने में मदद मिलेगी जिससे फिर कभी किसी कोविड जैसे संकट की स्थिति में इन श्रमिकों के पाँव थककर किसी सड़क पर आश्रय नहीं लेंगे, वे जहाँ हैं वहीं किसी उम्मीद एवं भरोसे का दामन थामे सुरक्षित एवं स्वस्थ रहेंगे। साथ ही चुनौतियों को अवसर के रूप में परिवर्तित करने के निरन्तर प्रयासों के बाद ये श्रमिक अपने हुनर एवं कौशल का सदुपयोग करके आने वाले समय में अपने गृहराज्यों के आर्थिक विकास का एक नया स्रोत बन सकते हैं और पलायन की राह छोड़कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास का एक नया अध्याय लिख सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. Dandekar, A jay and Rahul Ghai- **Migration and Reverse Migration in the age of Covid-19-**EPW,vol-55, Issue no-19, May 9,2020-
2. Financial Express. "गरीब कल्याण योजना से 33 करोड़ लोगों को मिली मदद, बैंक खाते में पहुँची PM-Kisan स्कीम की पहली fdLr-**financialexpress-com- अप्रैल 23,2020-https://www-financialexpress-com/hindi/india-news/pradhan-mantri-garib-kalyan-package-beneficiary-pm-kisan-women-jan-dhan-account-holders-ujjwala-yojana-mnrega-covid19-lockdown/1937814/
3. जागरण. "गरीब कल्याण रोजगार अभियान का शुभारंभः 25 तरह के कामों का विकल्प, नहीं करना होगा आवेदन."jagran-com- twu 20,2020- https://www-jagran- com/politics/national-prime-minister-narendra-modi-to-launch-garib-kalyan-rojgar-abhiyan-20414151-html
4. जागरण.''प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने की 20 लाख करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज की घोषणा, हर वर्ग को मिलेगी राहत.**jagran-com-ebZ 13,2020- https://www.jagran. com/business/biz-pm-narendra-modi-announces-big-economic-stimulus-package-to-mitigate-covid-19-impact-20264877-html
5. लाल,एस.एन और एस.के.लाल. भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण. प्रयागराजः शिवम पब्लिशर्स, 2014.p.1:40.
6. मिश्रा, जे.पी. जनांकिकी. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2016. चच.233-234.
7. Sengupta,J-ÞReverse migration:A n opportunity for the government-**ORF-April 4,2020-https://www-orfonline-org/expert-speak/reversemigration-opportunity-government-64123/
8. pib-gov-in
9. The Economic Times- ^^India*s May jobless rate at 23-48%, says private think-tank CMIE-**economictimes-indiatimes-com- June 1,2020- https: //economictimes-indiatimes-com/news/economy/indicators/indias-may- jobless-rate-at-23-48-says-private-think-tankcmie/articleshow/76129416- cms
10. तिवारी, मदन. ''1.25 करोड़ रोजगार, 31 जिले और 125 दिनः पी.एम. मोदी आज लॉन्च करेंगे आत्मनिर्भर U.P. रोजगार अभियान. ''हिंदुस्तान. जून 26,2020. https://www-livehindustan-com/national/story-pm-modi-will-launch-atma-nirbhar-up-rojgar-abhiyan-today-1-25-crore-jobs-31-districts-125-days-3306810-html

समकालीन भारत एवं नेपाल में पलायन एवं चुनौतियां

किशलय कीर्ति

शोध छात्र, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय

सारांश

भारत और नेपाल किसी अन्य राष्ट्रों की तरह ही दो संप्रभु राष्ट्र हैं, किंतु इनका पारस्परिक सहयोग इन्हें बाकी राष्ट्रों से भिन्न बनाता है। भारत और नेपाल एक दूसरे की आर्थिक ही नहीं बल्कि सुरक्षा के भी सहयोगी हैं। दोनों ही राष्ट्र के नागरिक एक दूसरे के देश में बिना किसी वीजा या पासपोर्ट के घूम सकते हैं, कार्य कर सकते हैं और वहां रह भी सकते हैं। यह पारस्परिक सहयोग इतना गहरा है कि दोनों ही देशों के बीच विवाह का प्रचलन भी है, यह व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। राजनीतिक स्तर पर भले ही कोई उतार-चढ़ाव हो किंतु व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्तर पर कभी कोई दूरी नहीं आई है। यही कारण है कि सत्ता परिवर्तन के बावजूद भी भारत नेपाल संबंध में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। लोग अपनी समान्य जरुरत के लिए सीमा पार कर लेते हैं और जब इच्छा हो लौट आते हैं, हालांकि वैश्विक स्वास्थ्य समस्या कोविड-19 में अंतर्राष्ट्रीय सीमा बंद होने के कारन सीमा के दोनों तरफ जीवन प्रभावित हुआ है। लोग अपनी सामान्य जीवन शैली से दूर हो गए हैं, उनका व्यपार प्रभावित हुआ है। इस संदर्भ में शोध का मुख्य उद्देश्य भारत नेपाल के बीच प्रवासन रुकने से लोगों के बीच बढ़ी चुनौती का अध्ययन करना है।

प्रस्तावना

भारत और नेपाल दक्षिण एशिया के दो प्रमुख संप्रभु राष्ट्र हैं। दोनों ही देश एक-दुसरे के आर्थिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक साझीदार हैं। इसका एक प्रमुख कारण इनकी भौगोलिक स्थिति है। भारत के लिए यह उत्तरी प्रहरी है, नेपाल से सहयोग भारत की सुरक्षा की ददृष्टिकोण से आत्याधिक महत्वपूर्ण है, वही नेपाल के लिए भारत एक प्रमुख आर्थिक सहयोगी है जो न सिर्फ व्यापार में सहयोग करता है बल्कि अपने बंदरगाह भी नेपाल को देता है जिससे वह किसी और देश से भी व्यापार कर सकता है। भारत और नेपाल की 1850 किलोमीटर लंबी सीमा विभिन्न प्राकृतिक जलाशय, जंगल, पहाड़, खेत - खलिहान आदि से होकर गुजरती है (Shukla, 2006; MEA , 2014)। कोई स्थाई पहचान (चिन्हित) न होने के कारण वास्तविक सीमा का पता कर पाना काफी मुश्किल होता है, यही कारण है कि दोनों ही देशों की अंतर्राष्ट्रीय सीमा एक विवादित मुद्दा रहा है।

वर्तमान भारत-नेपाल संबंध 1950 ईस्वी की संधि पर आधारित है, इसके अनुसार दोनों ही देश के बीच मुक्तध्खुली सीमा का प्रचलन है। इस संधि के अनुसार दोनों ही सरकार शिक्षा, रोजगार, व्यापार, जमीन खरीद-बिक्री इत्यादि के मामलों में एक दूसरे के नागरिकों के बीच भेद नहीं कर सकते हैं साथ ही यह समझौता बिना किसी पूर्व सूचना के तोडा भी नहीं जा सकता हैं (MEA, 1953)। दोनों देश के बीच खुली सीमा एवं सांस्कृतिक मेलजोल पलायन को बढ़ावा देता है। आदिकाल से ही दोनों देशों के बीच मित्रता एवं वैवाहिक संबंध रहा है। वर्तमान समय में भी दोनों देश के लोग विभिन्न कारणों से सीमा पार जाकर विभिन्न अवसर का लाभ उठाते हैं। नेपाल के लोग रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ एवं वैवाहिक कारणों से भारत में रहते हैं वहीं दूसरी तरफ भारत के लोग भी रोजगार, व्यापार, विवाह आदि कारणों से नेपाल में रहते हैं। खुली सीमा होने के कारण दोनों देश के लोग सामान्य खरीद बिक्री के लिए भी सीमा पार चले जाते हैं जिससे कि उन्हें कई प्रकार के सामान मिलते हैं साथ ही मूल्यों के अंतर के कारण उन्हें

आर्थिक लाभ भी होता है, सीमा के दोनों ही तरफ कई ऐसे मंडी एवं बाजार का प्रचलन है जो दूसरे देश के ग्राहकों को ध्यान में रखकर ही लगाया जाता है।

भारत नेपाल सीमा पर कुछ ऐसे भी घर हैं जिसका एक दरवाजा भारत की ओर खुलता है तथा दूसरा दरवाजा नेपाल की ओर खुलता है (Thapliyal, 1999)। किंतु ऐसा भी नहीं है कि सीमा पर कोई पहरेदारी नहीं होती है। सशस्त्र सुरक्षा बल के जवान हर समय पहरेदारी करते रहते हैं। । इस पहरेदारी के बावजूद लोगों के आवागमन में कोई रोक-टोक नहीं होती है, वो अपनी सुविधा के अनुसार सीमा के इस पार अथवा उस पर जा सकते हैं, यह सीमा सामान्यता चुनाव के समय ही कुछ देर के लिए बंद किए जाते हैं।

वर्तमान वैश्विक परिवेश में जहां अंतरराष्ट्रीय संबंध आर्थिक एवं राजनैतिक विचारधारा पर निर्भर करता हैय वही भारत और नेपाल का संबंध लोगों के आपसी सहयोग का एक आदर्श उदाहरण है। यही कारण है विभिन्न तरह के राजनितिक परिवर्तन के बाद भी भारत नेपाल का सम्बन्ध स्थिर माना जाता है। वैश्विक महामारी कोविड-19 में यह संबंध भी काफी प्रभावित हुआ है। लोग अपनी जरूरत के हिसाब से आना-जाना नहीं कर सकते हैं। वे हमेशा से चले आ रहे मंडियों में नहीं आ जा रहे हैं। सीमा पार करना प्रतिबंधित हो गया है। बिना किसी सरकारी आदेश के सीमा पार नहीं किया जा सकता। इस तरह हम कह सकते हैं कोविड-19 से वर्षो से चली आ रही सहयोग व सदभावना बहुत प्रभावित हुई है। दोनों देश के लोग इस समस्या से बराबर रूप में प्रभावित हैं। भारत नेपाल सीमा को बंद करने का आदेश सर्वप्रथम 22 मार्च को नेपाल सरकार द्वारा लिया गया। इसके तहत सिर्फ चार चेक प्वाइंट चुने गए जहां से लोग आ जा सकते थे, सीमा के दोनों ही ओर स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी स्क्रीनिंग के लिए लगाए गए। किन्तु भारत सरकार द्वारा पूर्ण रूप से लॉक डाउन की घोषणा से यह सीमा पूर्ण रूप से (अस्थायी) बंद हो गई। अचानक से लिया गया यह फैसला लोगों के लिए कई परेशानियां लेकर आया।

कोविड-19 का भारत नेपाल पर प्रभाव

नेपाल में कोविड-19 का प्रथम केस 23 जनवरी को आया जिसमें वुहान (चीन) से लौटा एक नेपाली छात्र संक्रमित पाया गया। यह नेपाल ही नहीं बल्कि दक्षिण एशिया का भी सर्वप्रथम कोविड-19 केस था। 30 जनवरी को भारत का प्रथम केस सामने आया, जिसमे वुहान से लौटा एक भारतीय नागरिक संक्रमित पाया गाया। नेपाल में इस समय 9,561 कोविड के मरीज है तथा अब तक 23 लोगों की इस से मृत्यु हो गई है। नेपाल ने 24 मार्च से 14 जून तक लॉकडाउन लगाकर संक्रमण को कम करने का प्रयास किया, साथ ही इस अवधि में उसने अपनी तैयारियों पर भी ध्यान दिया है (WHO, data on June, 23, 2020)।

दूसरी तरफ भारत में कोविड-19 संक्रमित मरीजों की संख्या 4,40,215 है जबकि 14,011 लोग इससे मर गए हैं (WHO, 23 जून, 2020), प्रथम केस से लेकर अब तक भारत ने कई प्रकार के व्यवस्था किए हैं जिससे कि संक्रमण को फैलने से रोका जाए। भारत ने भी 24 मार्च से 17 मई तक कठोर लॉकडाउन लगाया था। इसके बाद धीरे-धीरे ढील दी गई। देश को लॉकडाउन के कारण कई प्रकार के आर्थिक नुकसान हुए हैं। किंतु सरकारी प्रयास से टेस्टिंग सेंटर, अस्पताल में बेड आदि की संख्या में भी बढ़ोतरी दर्ज की गई है। इस दौरान सबसे ज्यादा पीड़ित प्रवासी श्रमिक ही रहे हैं। इसमें लोकल, विभिन्न राज्यों के श्रमिक, एवं विदेशी श्रमिक एवं पर्यटक भी शामिल हैं। सभी गैर जरुरी कार्य स्थगित कर दिए गए हैं, लोगो को भीड़भाड़ वाले स्थान से दूर रहने के निर्देश दिए गए हैं।

कोविड-19 का भारत नेपाल पलायन पर प्रभाव

नेपाल एक विकासशील देश है जो अभी आधारभूत चुनौतियों से उबर रहा है जिसके कारण वहां पर्याप्त मात्रा में रोजगार, शिक्षण संस्थाएं एवं अन्य कई प्रकार के आधुनिक सुविधाओं का अभाव है। इस कारण वहां के लोग दूसरों देशों की ओर पलायन करते हैं। भारत पलायन करने वालों के लिए हमेशा से एक आकर्षक स्थान रहा है, वीजा-फ्री एंट्री इसे और भी आकर्षक बनाता है। भारत का बड़ा बाजार, रोजगार आदि के लिए एक आसान विकल्प रहा है। हालांकि हाल ही के वर्षो में नेपाल के लोग का आकर्षण खाड़ी देशों की ओर हुआ है। कोविड-19 के समय अचानक से भारतीय बाजारों का बंद हो जाना, शिक्षण संस्थानों में अनिश्चितकालीन बंदी भारत में रह रहे नेपाली नागरिकों के लिए अधिक परेशानियों का सबब बन गया।

बंद होने के बाद से ही नेपाली नागरिक अपने देश की ओर लौटने लगे इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि अधिकांश लोग असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत थे। जहां सामान्य सामाजिक सुविधाओं का भी ध्यान नहीं रखा जाता है, अनिश्चितकालीन बंदी के बाद उन पर भोजन, आवास एवं सामान्य सुविधाओं का आभाव होने लगा जिसके कारण वे अपने घर को लौटना ज्यादा अच्छा विकल्प समझ रहे थे। दूसरी तरफ सरकार द्वारा कोई विशेष प्रबंध ना होने के कारण वे विभिन्न समस्याओं से जूझ रहे थे। इसमें सबसे प्रमुख यात्रा के लिए कोई साधन का ना होना था सभी ट्रेनें, हवाई जहाज, बस आदि पहले ही रोक दिए गए थे। इस परिस्थिति में लोग पैदल ही अपने घर को निकल पड़े। उनकी समस्याएं यहीं समाप्त नहीं हुई, लौटने के क्रम में जब वे भारत-नेपाल बॉर्डर पर पहुंचे तो वहां पाया कि सीमाएं बंद कर दी गई हैं। उन्हें सीमा के दूसरी तरफ ही रुकना पड़ा क्योंकि उनके लिए सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की थी।

लॉक-डाउन से पूर्व में स्क्रीनिंग की व्यवस्था की गई थी किंतु पर्याप्त संख्या में कर्मचारी ना होने के कारण लोगों को काफी इंतजार करना पड़ता था इससे ट्रैफिक की समस्या होती थी सो अलग। इन कर्मचारियों को बिना किसी उपकरण (ग्लव्स, मास्क्स एवं सेनेटाईजर) के ही नेपाल सरकार द्वारा लगाया गया था। इसी कारण कुछ लोग विकल्प के रास्ते चुनने लगे और खेत एवं नदी से होकर सीमा पार करने लगे। लोगों के बीच जागरूकता ना होने के कारण वो बिना स्क्रीनिंग के घर लौट रहे थे, उन्हें डर होता था कि समाज के लोग उन्हें अथवा उनके परिवार को बुरी नजरों से देखेंगे उन्हें महज एक बीमारी का वाहक माना जाएगा। इन समस्याओं पर कोई विशेष पहल करने में काफी देरी हुई।

इसके दूसरी तरफ भारी संख्या में रह रहे भारतीय भी नेपाल में मजबूर थे उनके पास लौटने का कोई विशेष विकल्प नहीं था क्योंकि नेपाल सरकार ने भी परिवहन पर रोक लगा दिया था बॉर्डर सील कर दिए गए थे। इस परिस्थिति में नियमों का उल्लंघन करना ही एकमात्र तरीका रह गया था। बाद में दोनों ही सरकार ने घोषणा किया कि वह एक दूसरे की नागरिकों के लिए उचित व्यवस्था करेंगे और उन्होंने सूचना जारी की की लोगों को अपने देश लौटने की आवश्यकता नहीं है यही उनका ख्याल रखा जाएगाप

कोविड-19 के आर्थिक प्रभाव

दोनों देश के लोगों के पलायन का एक प्रमुख कारण रोजगार एवं आय में अंतर है। इस पलायन में कुछ समानताओं के साथ कुछ विषमताए भी हैं। नेपाल के लोग अधिक मजदूरी एवं रोजगार के ज्यादा अवसर की तलाश में भारत आते हैं, वहीं भारतीय लोग रोजगार के लिए कम चुनौती वाला स्थान के रूप में नेपाल को चुनते हैंय साथ ही भारतीय लोग व्यापार, इसमें मुख्यत: सीमा के दोनों ही ओर होने वाला व्यापार शामिल है। अर्थात भारतीय व्यापारी आयात एवं निर्यात दोनों कार्य करते हैंप्नेपाल के छात्र भारत में अच्छी शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए आते हैं, प्रतिवर्ष भारत सरकार लगभग 3000 नेपाली छात्रों को विभिन्न संकाय में छात्रवृत्ति प्रदान करती है (MEA)। अकेले देहरादून में ही 10,000 से ज्यादा नेपाली छात्र अध्ययनरत हालांकि हाल ही के वर्षों में नेपाल में भी शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं का विकास हुआ है।

कोविड-19 के कारण सभी क्षेत्र प्रभावित हुए हैं। छात्र शिक्षण कार्य बंद होने के कारण अपने घर लौटे हैं, वहीं मजदूर कार्य के अभाव में घर लौटने को मजबूर हो गए थे। जिसका असर दोनों ही देशों पर पड़ा है। दोनों देशों के बीच व्यापार सिर्फ आवश्यक वस्तुओं तक सीमित हो गया। जिन क्षेत्रों में यह प्रवासी कार्यरत है वहां पर मजदूरों की भारी कमी महसूस की जा रही है, उदाहरण के लिए सेब के बागान में नेपाली मजदूर अधिक कुशलता के साथ पहाड़ी बगानों से फल तोड़ कर उसे मुख्य सड़कों पर ट्रकों तक पहुंचाने का कार्य करते थे, जो अब उनके बिना काफी मुश्किल हो गया है इसी प्रकार चाय के बागान में कार्य करने वाले मजदूरों के बिना चाय की फसल प्रभावित हो रही है किंतु इसका एक लाभ नेपाल को मिल रहा है क्योंकि नेपाल में भी अब चाय की खेती होने लगी है और वह भारत को भी निर्यात करता है। लौटते हुए कुछ मजदूरों से जब पत्रकारों ने बात की तो उन्होंने बताया कि लॉकडाउन के दौरान उनके पास खाने के लिए कोई अन्य विकल्प नहीं थे, ऐसे में उनके लिए लौट जाना ही सबसे अच्छा विकल्प था। एक नेपाली जो भारत में रहता था, वह अपने किसी रिश्तेदार से मिलने नेपाल आया था उसी दौरान लॉक डाउन की घोषणा हो गईय वह भारत लौटने के लिए काफी परेशान था, क्योंकि उसका पूरा परिवार भारत में था और उसे डर था कि यदि वह नहीं लौटा तो उसके घर वाले भूख से मर जाएंगे। ज्यादातर लोगों ने बताया कि कोविड-19 से ज्यादा उन्हें अपनी भूख की चिंता हैं, अगर ऐसा ही रहा तो वो कोविड से नहीं तो भूख से तो मर ही जाएंगे। सामान्य लोगों की तरह गरीब और मजदूर वर्ग के लोग हालत सुधारने की स्थिति का इंतजार नहीं कर सकते हैं, उन्हें जो भी साधन दिखेगा वो उसका उपयोग करेंगे।

निष्कर्ष एवं सुझाव

वैश्विक महामारी का यह समय काफी कठिन है, जिसमें कड़े फैसले लेकर लाधिक से अधिक लोगों को सुरक्षित रखना ही सभी सरकारों का मुख्य लक्ष्य होता है। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश देशों ने थोड़े या अधिक समय के लिए लॉकडाउन लगाया है। भारत और नेपाल के लॉक डाउन भी इसी तरह के थे, हालाँकि जब लॉक डाउन लगाया गया था तब दोनों ही देशों में काफी कम केस थे, किन्तु लॉक डाउन के बाबजूद संक्रमित लोगों की संख्या में भरी विर्धि हुई है खासकर भारत में। लॉकडाउन जैसी स्थिति में सामान्य जनजीवन प्रभावित होना स्वभाविक है, किंतु यदि इससे महामारी का प्रभाव कम हो अथवा इसका प्रसार धीमा हो जाये तो इसे एक उचित कदम कहा जा सकता है।

दोनों ही देश प्रजातांत्रिक सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं, जिनके पास जनहित के कार्यों के लिए असिमित शक्तियां होती है। इसका उपयोग करते हुए जनजीवन को अधिक सुविधाजनक एवं आसान बना सकते हैं किंतु जिस प्रकार से दोनों ही देशों ने अपने नागरिकों का ध्यान रखा हैय उसमें सुधार की काफी गुंजाइश थी। लॉकडाउन जैसे कड़े फैसले बिना किसी पूर्व तैयारी के लिए गए जिसके कारण गरीब एवं समाज के वंचित वर्ग अधिक प्रभावित हुए हैं, साथ ही महामारी का प्रकोप भी बढा है। सरकार द्वारा सही समय पर राहत कार्य न पहुंचाने से लोगों के बीच सरकार की छवि धूमिल हुई है।

भारत और नेपाल के बीच का पलायन एक अंतरराष्ट्रीय संबंध का उदाहरण है। किसी भी देश द्वारा दूसरे देश के नागरिक के प्रति किया गया व्यवहार उसकी महत्वकांक्षी एवं संबंध के प्रति ईमानदारी को दर्शाता है इस रूप में दोनों ही देश असफल रहे हैं, दोनों ही देशों ने मुश्किल समय में अपने देश की सीमा अपने ही नागरिकों के लिए बंद कर दिया था। ऐसी परिस्थितियां अंतरराष्ट्रीय संबंधों के हिसाब से भी महत्वपूर्ण होती है। ऐसे में यदि सरकारी मदद करें तो उनके संबंध सुधर सकते हैंं

सन्दर्भ

- Deeptima Shukla, India-Nepal Relations: Problems and Prospects, The Indian Journal of Political Science, Vol- 67, No- 2 (A pr-- June, 2006), pp- 355-374
- Ministry of ExternalA ffairs, (2014), Foreign Relations, Retrieved 21June 2019 https://www-mea-gov-in/Portal/ForeignRelation/Nepal½July½2014½-pdf
- Ministry of ExternalA ffairs, (1953), Treaty of Peace and Friendship between The Government of India and The Government of Nepal
- Sangeeta Thapliyal (1999) Movement of population between India and Nepal: Emerging challenges, StrategicA nalysis, 23:5, 777-789, DOI: 10-1080/09700169908455083

कोविड-19 : श्रमिकों का विस्थापन-आत्मनिर्भर भारत का नवद्वार

डॉ. कुलवीर सिंह चौहान

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश - चीन के वुहान शहर से पूरे विश्व में फैल गए विषाणु जनित महामारी कोविड-19 से भारत और अमेरिका सहित अनेक देशों में तबाही मची हुई है। लाखों लोग इस महामारी से संक्रमित होकर काल कलवित हो चुके हैं। महामारी के प्रसार की रोकथाम के लिए भारत में किए गए देशव्यापी लॉकडाउन से औद्योगिक शहरों से ग्रामीण क्षेत्रों में लाखों श्रमिकों का विस्थापन ग्रामीण भारत में हुआ है। उत्तर भारत से देश के औद्योगिक राज्यों में रोजगार की तलाश में गए श्रमिकों को लॉकडाउन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। जिससे विशेष श्रमिक रेलों के संचालन के आरम्भ होने के पहले ही हजारों श्रमिक पैदल ही अपने घरों की ओर निकल पड़े। इससे शहरों से वापस लौटे श्रमशक्ति के मानव पूंजी में बदलकर देश के समावेशी विकास में योगदान की रणनीति पर चर्चा प्रारम्भ हुई है। कोविड-19 प्रसारक के अभियुक्त के आरोपों के बीच चीन से भारत का सीमा विवाद हिंसक झड़प में बदल चुका है। अत: भारत को आर्थिक व सामरिक दोनों मोर्चों पर चीन को सबक सिखाने के लिए आत्मनिर्भरता व स्वदेशी के अस्त्र का प्रयोग आवश्यक हो गया है। इस शोधपत्र में प्रवासी श्रमिकों के पुन:प्रवासन से ग्रामीण श्रमशक्ति के कारगर नियोजन के साथ-साथ आत्मनिर्भर भारत की चुनौतियों और उनके संभावित समाधान का विश्लेषण किया गया है।

एक नये तरह के वायरस का प्रकोप पूरी मानवता के लिए विचित्र रोग बनकर खतरा पैदा कर कर रहा है। कई संबोधनो के बाद विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इस नये नोवेल कोरोना वाइरस SARS-CoV-2 रोग को 11 फरवरी 2020 को कोविड-19 नाम दिया गया। प्रकोप बढ़ने पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोविड-19 को आधिकारिक तौर पर 11 मार्च 2020 को वैश्विक महामारी घोषित किया।[1] इस महामारी ने भारत और अमेरिका सहित पूरी दुनिया में उथल पुथल मचा दी। विषाणु जनित इस महामारी से अब तक कई लाख लोग संक्रमित और मर चुके हैं। इस महामारी ने जहाँ अमेरिका, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस जैसी विश्व शक्तियों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया है वहीं भारत जैसे विशाल आबादी और असंगठित श्रमिकों वाले देश में देशव्यापी लॉकडाउन के चलते अप्रवासन की गंभीर समस्या खड़ी कर दी है। भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, झारखंड और मध्य प्रदेश जैसे बड़ी जनसंख्या व औद्योगिक रुप से पिछड़े प्रदेशों से दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई जैसे महानगरों व पंजाब, हरियाणा, गुजरात तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के औद्योगिक क्षेत्रों और दक्षिण भारत के बड़े शहरों में रोजगार की तलाश में गए श्रमिकों के सामने कोविड-19 के कारण किए गए लॉकडाउन ने रोजी-रोटी के साथ आवास व सुरक्षा की समस्या खड़ी कर दी। लॉकडाउन 1.0 काल में महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात, तमिलनाडु, पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों के औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश व झारखंड आदि अधिक श्रमशक्ति वाले राज्यों से रोजगार की तलाश में गए श्रमिकों के भरण-पोषण के लिए सम्बंधित राज्य सरकारों ने अपने स्तर से कई उपाय किए। जिसमें सामुदायिक रसोई, राहत शिविर और राशन वितरण के साथ स्वस्थ्य जाँच केन्द्रों की स्थापना सहित श्रमिकों की सुरक्षा के अनेक उपाय शामिल थे। किन्तु केन्द्र व राज्य सरकारों के विस्थापित श्रमिकों को औद्योगिक शहरों में रोके रखने के प्रयास नाकाफी साबित हुए। अत: रेलवे सहित सार्वजनिक-निजी परिवहन के स्थगित होने तथा मेजबान राज्यों व औद्योगिक नियोक्ताओं के अपपर्याप्त इंतजामों के कारण पैदल ही उनका पलायन शहरों से गाँवों की ओर होने लगा। देश के नीति निर्धारकों और जनता को पहली बार अहसास हुआ कि उनके शहरों में प्रवासी मजदूर नाम के जीव भी इतनी भारी संख्या में रहते है।[2] इसका एक सकरात्मक पहलू यह देखने को मिला कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के

पंजीयन की प्रकिया पहली बार मेजबान व निवासी राज्यों की सरकारों द्वारा मेडिकल जांच व गंतव्य प्रस्थान के लिए की गयी। इस महामारी जन्य श्रम गणना का लाभ भविष्य में श्रम बाजार सूचना प्रणाली जैसे तंत्र को विकसित करने में हो सकेगा। जिसे श्रम आयुक्त कार्यालयों के आकडों को अद्यतन करने में सहायता मिलेगी।[3] राजनीतिक परिदृश्य में भी कोविड-19 के बचाव में हुई देशब्यापी बन्दी से उपजे पुन: प्रवासन की दोहरी चुनौती से निपटने के लिए किए गए केन्द्र व सरकारों के उपायों पर आरोप-प्रत्यारोपों का दौर आरंभ हो गया। कोविड-19 काल में लाखों प्रवासी श्रमिकों के पैदल ही अपने घरों की ओर निकल पड़ने के इस जनसैलाब ने स्वातंत्रोत्त्यर भारत में किए गए औद्योगिक विकास व बेरोजगारी को दूर करने के प्रयासों पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए। असंगठित श्रमिकों का इतनी अधिक तादात में गाँवों से शहरों की ओर रोजगार के लिए हुआ पलायन भारतीय अर्थव्यवस्था के असंतुलित विकास व ग्रामीण भारत को आत्मनिर्भर बनाने की नीतिगत जड़ता का ही परिणाम है। यही कारण है कि कोरोना त्रासदी ने प्रतिवर्ती विस्थापन की स्याह तस्वीर देश के सामने लाकर खड़ी कर दी। भारत सहित पूरी दुनिया में फैल चुकी इस महामारी ने लाखों लोगों के जीवन को तो बुरी तरह प्रभावित किया ही है 'ग्लोबल इकोनामी' का दम भरने वाले आर्थिक विश्लेषकों और उनके समर्थकों को आइना भी दिखाया है। वैश्वीकरण की अवधारणा और उसके अनगिनत लाभ गिनाने वाले विद्वानों को कोविड-19 महामारी जैसे गैर राज्य अभिकर्ता (Non State Actors) ने इसकी प्रासंगिकता व इसकी विसंगतियों पर गहन चिंतन करने पर मजबूर कर दिया है। आज वैश्वीकरण-उदारीकरण की आंधी ने भारत जैसे विशाल आबादी और कृषि प्रधान देश को वैश्विक विनिर्माण कंपनियों के विशाल बाजार के रुप में परिवर्तित कर दिया है। इसी बाजार शक्ति ने गांवों को शहरों,शहरों को महानगरों और महानगरों को मेट्रोपोलिटन नगरों में ढालने का भूमण्डलीकृत अभियान चलाया है। कोविड-19 को विश्व महामारी में परिवर्तित करने का श्रेय भी इसी अभियान को दिया जा सकता है। कोरोना संकट को दुनिया में आर्थिक दबदबा (Economic Hegemony) स्थापित करने की गलाकाट प्रतिस्पर्धा से उपजे एक जैविक हथियार के वैश्विक विमर्श के बीच भारत में पुन: प्रवासन के बाद आत्मनिर्भरता की संभावनाओं की पड़ताल आवश्यक है। क्योंकि आर्थिक व सामरिक दोनों मोर्चों पर चीन जैसे साम्राज्यवादी देशों के आधिपत्य व चुनौती को तभी मुँहतोड़ जवाब दिया सकता है जब वर्तमान संकट को अवसर में बदलने की ठोस कार्ययोजना पर अमल कर 'मेक इन इण्डिया' को चरितार्थ किया जाए। कोरोना वैश्विक संकट के लिए चीनी भूमिका के आरोपों के बीच में गलवान घाटी में भारत-चीन के मध्य हुई सैन्य झड़प से उपजे तनाव ने भारतीय जनमानस में चीनी वस्तुओं के बहिष्कार की मांग तेजी से हो रही है। किन्तु यदि यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार करें तो हम पाते हैं कि चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा लगातार बढ रहा है। भारत जितना सामान चीन को बेचता है उससे कई गुना चीनी साजो सामान भारत चीन से खरीदता है। वर्तमान में चीन के साथ भारत का व्यापार घाटा 58.04 अरब डालर है। इसे नियंत्रित करने के लिए भारतीय सामानों के निर्यात की मात्रा चीन को बढानी होगी। कहने को तो भारत की जीडीपी विश्व की पांचवीं बड़ी अर्थव्यवस्था में शुमार है किन्तु यह चीन से पांच गुना कम है। 5 आज भारतीय बाजार में चीनी उपभोक्ता व पूँजीगत वस्तुओं का आधिपत्य है। इसका कारण भारत की तुलना में चीनी सामानों का सस्ती कीमत पर भारतीय बाजारों में उपलब्ध होना है। आज भारत के 2 लाख करोड़ के मोबाइल बाजार पर 72 प्रतिशत चीनी मोबाइल कम्पनियों का, स्मार्ट टेलीविजन बाजार के 45 प्रतिशत पर, संचार उपकरणों के 25 प्रतिशत बाजार पर चीन का एकाधिकार है। इसके आलावा उद्योग का 70 प्रतिशत, खेल- खिलौने का 90 प्रतिशत, स्टील का 20 प्रतिशत, आटोमोबाइल बाजार का 26 प्रतिशत, कार्बनिक रसायन का 10 प्रतिशत बाजार पर चीन का आधिपत्य है। मोबाइल बाजार के साथ ही मोबाइल एप के मामले में भी चीन का ही दबदबा है। जब वैश्विक महामारी से पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था पटरी से उतर चुकी है तो चीन अपने एप्स के उपयोग से लाभ प्राप्त कर रहा है। भारत और चीन के बीच भुगतान संतुलन के तुलनात्मक विवेचन का उद्देश्य भारत को कमतर आँकना नहीँ बल्कि उन पहलुओं पर गंभीरता से विचार करना है जिनसे भारत कोविड-19 महामारी के समय सामरिक व आर्थिक दोनों क्षेत्रों में चीन से मिल रही चुनौतियों से मुकाबला कर सके और प्रवासी श्रमिकों के विस्थापन को एक अवसर मानकर आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के लक्ष्य को प्राप्त करने में कुशल प्रबंधन व उसका क्रियान्वयन्वयन कर सके।

विस्थापित श्रमिकों की वापसी से आत्मनिर्भरता की राह

कोविड-19 ने भारत की श्रम शक्ति को राष्ट्रीय विमर्श का केन्द्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस चर्चित महामारी के कारण जैसे जैसे श्रमिक अपने गृहराज्यों को वापस लौटने लगे, श्रम बाजार का डाटाबेस तैयार करने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। देश के सकल घरेलू उत्पाद और रोजगार की उपलब्धता की दृष्टि से असंगठित श्रम बाजार का देशव्यापी डाटाबेस तैयार

हो जाने से श्रम शक्ति के व्यापक नियोजन में मदद मिलने की पूरी उम्मीद है। आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण, 2017-18 से पता चलता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आकस्मिक श्रम बेरोजगारी का स्थानांतरण औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र में होने के कारण ग्रामीण श्रम रोजगार में गिरावट आयी। 6 जिसके कारण हाल के वर्षों में गांवो से शहरों की ओर पलायन तेजी से हुआ था। लॉकडाउन के बाद श्रमशक्ति के प्रतिवर्ती विस्थापन से यह संतुलन स्थापित होगा। उत्तर भारत के विशाल जनसंख्या वाले राज्यों से औद्योगिक विकास वाले राज्यों में विस्थापित श्रम शक्ति से इन राज्यों की अर्थव्यवस्था को जो लाभ हुआ है। वह लाभ अब श्रमिकों की घर वापसी से घरेलू राज्यों को मिल सकता है बशर्ते कि गृह राज्यों में वापस आने वाले श्रमिकों का मानव पूंजी के रुप में रुपान्तरण करने में राज्यों की सरकारें सार्थक नीति बनाकर उन पर अमल कर सकें। इसके लिए उ.प्र.की एक जिला एक उत्पाद की तर्ज पर स्थानीय सहूलियतों को ध्यान में रखकर छोटी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना कर उनकी श्रम शक्ति का दीर्घकालिक सदुपयोग हो सकता है।

प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन आर. हैरिस और माइकल टोडरो ने प्रवासन के अपने आर्थिक मॉडल (1970) में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जब भी शहरी या औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरी दर ग्रामीण या कृषि क्षेत्र में नियोजित मजदूरी दर से अधिक होगी तब-तब श्रमिकों का विस्थापन ग्रामीण क्षेत्रों में से शहरी क्षेत्रों में होगा। ग्रामीण और शहरी प्रवास का विस्थापन वक्र तभी संतुलन बिन्दु पर पहुँचेगा। जब ग्रामीण या कृषि क्षेत्र की सीमांत मजदूरी आय शहरी क्षेत्र की श्रमिक आय के बराबर आ जाए। इस माडल को इन अर्थशास्त्रियों ने चीन में प्रवासन की अवधारणा को विवेचित करने के लिए किया था।[7]

लॉकडाउन से लाखों की संख्या में शहरों से गाँव आए श्रमिकों से कई सकारात्मक बदलाव हो सकते हैं। इनमें 1) लाखों श्रमिकों के कौशल व श्रम के सदुपयोग से आर्थिक विकास के नवीनीकृत स्रोत का निर्माण किया जा सकता है। 2) औद्योगिक क्षेत्रों में पुन: नियोजित होने पर उनकी काम की दशाओं में अभूतपूर्व सुधार होने की आशा है।

पहली दिशा में भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ मिलकर कार्ययोजना पर कार्य आरंभ कर दिया है। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित सूक्ष्म वित्त के विशेषज्ञ बांग्लादेश के अर्थशास्त्री मोहम्मद यूनुस का मानना है कि जब तक भारतीय उद्योगपति ग्रामीण अर्थव्यवस्था को शहरी अर्थव्यवस्था का परजीवी बनाए रखना छोड़कर स्वालंबन की ओर नहीं ले जाते, तब तक प्रवासी श्रमिकों के विस्थापन की समस्या चुनौती बनी रहेगी। उन्होंने इसे देशी माइक्रोफाइनेंस कम्पनियों के लिए सुनहरा अवसर बताया है कि वह अपनी रणनीति को नए सिरे से बनाएं और इस बात को न भूलें कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास ही माइक्रोफाइनेंस का पूर्ण लक्ष्य है।[8] इसी संदर्भ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 12 मई 2020 को आत्मनिर्भर भारत अभियान की शुरुआत की है। भूमि,श्रम,तरलता और कानूनी नियमन पर केंद्रित 20 हजार करोड़ (आर बी आई सहायता सहित) का यह पैकेज कुटीर उद्योग, सूक्ष्म और लघु और मध्यम उद्यमों से मजदूरों और मध्यम वर्ग के सहायतार्थ घोषित हुआ है। प्रधानमंत्री ने इस अभियान के संबोधन में स्पष्ट किया कि आत्मनिर्भरता का भारतीय लक्ष्य आत्म केन्द्रित न होकर वसुधैव कुटुंबकम के सर्वकल्याण को समाहित करने वाला है। तीव्र आर्थिक विकास,बुनियादी संरचना में सुधार,तकनीकी ग्राह्य व्यवस्था,जीवंत जननांकीय तथा मांग-आपूर्ति की मजबूत श्रंखला स्थापित कर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का इरादा इस अभियान में व्यक्त किया गया है।[9] आत्म निर्भर भारत अभियान की तरह ही प्रधानमंत्री गरीब कल्याण रोजगार अभियान (जीकेआरए), जिसकी घोषणा वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण द्वारा हुई थी की शुरुआत प्रधानमंत्री ने बिहार के खगड़िया जिले में 20 जून 2020 को वहां के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की उपस्थिति में की। इस अभियान का उद्देश्य भी कोविड-19 के कारण घनी आबादी वाले राज्यों में वापस आए श्रमिकों को उनके कौशल के आधार पर 125 दिन रोजगार में नियोजित करना है। यह योजना बिहार,उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, झारखंड और उड़ीसा के 116 जिलों में जहाँ 25,000 या अधिक प्रवासी मजदूरों की वापसी हुई हो, लागू करना है। बिहार के खगड़िया में आधिकारिक आंकड़ों के आधार पर अब तक 70,000 प्रवासी मजदूरों की वापसी हुई है। इस योजना में विभिन्न मंत्रालयों की रोजगार परक मौजूदा योजनाओं को भी समाहित करते हुए पचास हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। जीकेआरए में काम देने के लिए करीब 25 क्षेत्रों का चयन किया गया है। इनमें गाँव की सड़कों, राष्ट्रीय राजमार्ग, रेलवे का काम, जल संरक्षण परियोजनाएं, पंचायत भवन, आगंनबाडी केन्द्र और विविध उपयोगी सामुदायिक भवनों का निर्माण करने जैसे क्षेत्र शामिल हैं। फाइबर ऑप्टिक लाइन के विस्तार से सूचना प्रौद्योगिकी के ग्रामीण इलाकों में पहुंचाने का इस्तेमाल भी इस अभियान का हिस्सा होगा। अच्छा होता यदि उत्तर प्रदेश के प्राथमिक विद्यालयों में ढांचागत सुविधाओं के विकास के लिए चलाए जा रहे कायाकल्प अभियान की तर्ज पर स्थानीय स्तर पर राज्यों की प्राथमिक स्वास्थ्य व प्राथमिक शिक्षा की बुनियादी संरचना के विकास को भी इस रोजगार अभियान से जोड़ा जाता। इस अभियान में रोजगार

के लिए प्रवासी श्रमिकों को ऑनलाइन आवेदन करना होगा। पुन:प्रवासन को ग्रामीण विकास का उत्प्रेरक बनाने के लिए श्रमिकों के कौशल मैपिंग का कार्य भी बड़ी तेजी से चलाया जा रहा है। अनुमान है कि लगभग सत्तर प्रतिशत शहरों से गाँव आने वाले प्रवासी श्रमिकों का आच्छादन इस बहुउपयोगी रोजगार अभियान से हो सकेगा।[10]

केन्द्र सरकार के आलावा राज्यों में भी सरकारें प्रवासी श्रमिकों का सदुपयोग स्थानीय परिस्थितियों के सापेक्ष करने के लिए प्रयासरत हैं। योगी सरकार की प्रवासी श्रमिकों के कल्याण की दिशा में तेजी से किए जा रहे कार्यों की चर्चा मीडिया में भी हो रही है। उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने प्रयासों में प्रवासी आयोग (Migration Commission) के गठन का निर्णय लिया है। लौटकर आए श्रमिकों के कौशल मापन का कार्य पूर्ण हो चुका है। एक अनुमान के अनुसार उत्तर प्रदेश में 23-24 लाख प्रवासी कामगार औद्योगिक प्रदेशों से वापस लौटे हैं। कौशल मापन के बाद अकुशल श्रमिकों को कृषि की सेहत सुधारने के लिए उपयोग किया जा सकता है। आर्थिक समीक्षा-2019-20 अनुसार भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान 16.5 प्रतिशत है। भारत जैसे विकासशील देश का आर्थिक परिवर्तन मुख्यत: इसकी कृषि एवं सहायक क्षेत्रों के निष्पादन पर निर्भर करता है। यह क्षेत्र ग्रामीण आजीविका रोजगार एवं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में आजीविका का यह सबसे बड़ा साधन है। अधिकतम 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या आजीविका के लिए मुख्यत: कृषि पर निर्भर है। इसमें भी 82 प्रतिशत लघु एवं सीमान्त किसान है। इसलिए किसानों की आय को बढ़ाए बिना देश की आर्थिक सेहत को दुरुस्त करना व श्रमिकों का विस्थापन गाँव से शहरों की ओर रोक पाना मुश्किल है। इसके लिए कृषि आधारित चीनी, कपड़े, जूट, डेयरी, मत्स्यपालन के परंपरागत उद्योग के साथ साथ आलू, फूलों, फलों, तिलहन, दालों पर आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का क्लस्टर स्थानीय फसल उत्पादकता के आधार पर स्थापित करके राज्यों की आर्थिक सेहत को दुरुस्त किया जा सकता है। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे फल सब्जी और खाद्यान्न का अच्छा उत्पादन करने वाले और श्रमिकों की विशाल संख्या वाले राज्यों में इस तरफ ध्यान दिया जा सकता है। 11 वापस आए लाखों कामगारों के नियोजन के लिए राज्य सरकार ने भारतीय उद्योग संघ,फिक्की,लघु उद्योग भारती और नारडेको के साथ एक एमओयू पर हस्ताक्षर किए है। कोविड-19 के कारण भारी जनसंख्या और औद्योगिक रुप से पिछड़े प्रदेशों में लाखों की संख्या में अन्य औद्योगिक प्रदेशों से कामगार के रुप में विस्थापित श्रमिकों की घर वापसी से उन्हें मानव पूंजी में परिवर्तित कर सूक्ष्म,लघु और मध्यम उद्योगों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। क्योंकि भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सूक्ष्म, लघु और मझौले उपक्रम का बड़ा योगदान है (एमएसएमई) एक हिसाब से वे भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। यह उपक्रम जब अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य करता है तब औद्योगिक क्षेत्र में उनका योगदान 45 प्रतिशत और कुल निर्यात में 50 प्रतिशत योगदान करतें हैं। असंगठित क्षेत्र की कुल 18 करोड़ की श्रम शक्ति में उनकी हिस्सेदारी करीब 40 प्रतिशत है। 12 यदि अर्थव्यवस्था की सेहत को ठीक कर ऊंचे लक्ष्य निर्धारित करने हैं तो एमएसएमई क्षेत्र को विस्थापित श्रमि शक्ति के सदुपयोग का आधार स्तंभ बनाना आवश्यक है। इस दिशा में केन्द्र और राज्यों के स्तर पर प्रयास शुरु हो गए हैं,जो एक शुभ संकेत है।

कोविड-19 दौर में प्रवासन का एक दूसरा पहलू यह है कि अनलॉक के बाद अर्थव्यवस्था को गति देने का कार्य आरंभ किया गया है। इसके लिए उद्योग धन्धों का चलना भी जरूरी है। किन्तु इसके लिए श्रमिकों को उनके घरों से वापस काम पर ले जाने के लिए कार्यस्थल की दशाओं को और बेहतर करना होगा। क्योंकि काफी दिनों तक अपने घर गाँव से दूर रहें श्रमिकों ने अब कृषि कार्य व स्थानीय स्तर के रोजगार में हाथ आजमाना प्रारंभ कर दिया है। उत्तर भारत के राज्यों में यदि मानसून ने साथ दिया तो शहरों से गाँव लौटकर आए श्रमिकों की मेहनत रंग लाने वाली है। उ.प्र. के मैदानी क्षेत्रों में इस बार मक्का और धान की बम्पर बुवाई की खबरें आ रही हैं। इसलिए यदि इन श्रमिकों को पुन: औद्योगिक क्षेत्रों में लगाना है तो कार्यस्थल की सफाई, काम के घंटे, उनके बेहतर भोजन व आवास उचित व्यवस्थाएं नियोक्ताओं को करनी होगी। जिससे अगली बार किसी प्राकृतिक आपदा में इन श्रमिकों को नंगे पांव पैदल घरों को जाने के लिए न मजबूर होना पड़े। औद्योगिक प्रतिष्ठानों को इस ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा। तभी अर्थव्यवस्था का पहिया तेज गति से आगे बढ़ेगा। और किसी आपदा में भी वह सामाजिक सुरक्षा के कवच में रहकर मेजबान राज्यों से पलायन करने पर मजबूर नहीं होंगे।

आत्म निर्भरता और स्वदेशी की आवश्यकता

कोविड-19 महामारी ने स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा और अर्थव्यवस्था के समक्ष विविध चुनौतियां खड़ी की है और इन सब संकटों से तभी दृढ़ता से निपटा जा सकता है जब देश में नीति निर्धारण से लेकर उनके क्रियान्वयन तक आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के भाव

को आत्मसात किया जाए। सहकारिता और श्रमशक्ति के सम्यक् मेल से स्वालंबन एवं समृद्धि की राह प्रशस्त हो सकती है। कोरोना संकट के समय स्वदेशी की मूल भावना जन-जन में कैसे व्याप्त हो इस पर कार्य करने की आवश्यकता है। इसके लिए जीवन की सभी बुनियादी जरूरतों में हमें आत्मनिर्भर बनना होगा। आत्म निर्भर भारत अभियान के आरम्भ पर प्रधानमंत्री ने देश के उद्योगपतियों से उन सभी वस्तुओं का देश में ही निर्माण करने के लिए आह्वान किया है जो बाहर से आयात की जा रही है। किन्तु क्या भारत में उद्योगपतियों के लिए बेहतर माहौल और नौकरशाही की लालफीताशाही को सही करने के साथ देशी व विदेशी कम्पनियों के निवेश को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त ढांचागत सुविधाओं की दरकार नहीं होगी। चीन ने दो दशक पहले ही अपने देश में सुविधा युक्त आकर्षक विशेष आर्थिक जोन (एसइजेड) स्थापित किए। यही कारण है कि अमेरिका सहित यूरोप की भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने चीन में बंपर निवेश कर उसे विश्व का कारखाना बनाने में महती भूमिका निभाई है। कोरोना संकट और तानाशाही राजनीतिक माहौल में भले ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों का चीन से मोहभंग हो रहा हो किन्तु उन्हें भारत में आने के लिए मजबूत ढांचागत सुविधाओं वाले विशेष आर्थिक जोन (SEZ), कुशल श्रमिक नीतियों और शहरी सरंचना और नौकरशाही के रवैये को ठीक करना आवश्यक है। 13 आशा है प्रधानमंत्री मोदी आत्मनिर्भर भारत अभियान के पांच स्तम्भों (ई)-इंटेट, इनोवेशन, इनक्लूजन, इनवेस्टमेंट और इंन्फ्रास्ट्रक्चर,को अमल में लाने का लिए गंभीर प्रयास करेंगे जिसके संकेत पिछले बजट और वित्त मंत्रालय द्वारा बैंकिंग व कारपोरेट करों में भारी छूट से मिलने शुरु हो गए हैं। उक्त पांचों स्तंम्भो पर अमल के गंभीर प्रयास किए बिना चीन से जाने वाली कम्पनियों को भारत में लाना आसान नहीं होगा। संरचनात्मक सुविधाओं में वृद्धि के साथ, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में निवेश बढ़ाने से भी देश में तकनीकी प्रगति की राह आसान होगी। भारत को शोध और अनुसंधान (R-D) के क्षेत्र में अभी पर्याप्त उन्नति करनी होगी। भारत सरकार को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढते हुए जर्मनी, जापान, इजरायल, फ्रांस, दक्षिण कोरिया और अमेरिका जैसे देशो से सीख लेनी होगी जो भारत के अपने कुल जीडीपी के 0.7 प्रतिशत की तुलना में 2 से 5 प्रतिशत तक खर्च कर रहें हैं। हालांकि प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद ने 'आर.एंड डी.: व्यय परिवेश' शीर्षक से जारी अपनी रिपोर्ट में शोध व अनुसंधान के बजट का 2022 तक कुल जीडीपी का 2 प्रतिशत तक बढाए जाने की सिफारिश की है जो मौजूदा आवंटन का चार गुना होगा। 14 वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने भी पिछले बजट भाषण में विज्ञान में शोध अनुसंधान को बढ़ावा देते हुए नेशनल रिसर्च फाउंडेशन की स्थापना की घोषणा की है। इसकी प्रेरणा प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस में दिए गए उद्बोधन से मिली थी जिसमें उन्होंने देश में विज्ञान में शोध को बढ़ावा देने का आह्वान किया था। मौजूदा केन्द्र सरकार ने इस खर्च को पिछले दशक से बढ़ाकर 3 गुना कर दिया है जो विज्ञान में शोध को बढ़ावा देने की दिशा में एक शुभ संकेत है।

इन सबके साथ हम भारतीयों में राष्ट्रीयता व स्वाभिमान का जागरण भी कोविड-19 जैसी महामारी जनित समस्याओं का सामना करने में समर्थ बनाएगा। राष्ट्रीय मनोबल राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण अवयव है। इसलिये यह भी आवश्यक है कि बाजारों में वस्तुएं बेचने व खरीदने वालों के मन में अपनी सुख सुविधा व लाभ की जगह देश के सम्मान को वरीयता देने का दृष्टिकोण भी विकसित हो। वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व को इस तरफ भी सोचना होगा। साथ ही ग्रामीण रोजगार की सबके बडी योजना महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना में प्रवासी श्रमिकों की शक्ति को रचनात्मक व प्राकृतिक स्थानीय संसाधनों के प्रबंधन में लगाकर हम आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सकते हैं। झारखंड में मनरेगा के माध्यम से बहुउपयोगी व फलदार पौधे लगाकर संरक्षित किये जा रहे है। 15 गांधी जी ने अपनी पुस्तक श्ग्राम स्वराजश में बताया है कि अगर गाँव नष्ट हो जाए तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जाएगा। हमारे गाँवो की सेवा करने से ही सच्चे स्वराज्य की स्थापना होगी। उनका मानना था कि देश की पचहत्तर प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा गांवों में कृषिजीवी है। लेकिन यदि हम उनसे उनकी मेहनत का सारा फल खुद ले जाएँ या दूसरों को छीनने दे तो यह नहीं कहा जा सकता कि हममें स्वराज्य काफी मात्रा में है।[16] आज भारत के गाँवों के पुनर्जीवन के लिए यह महामारी एक अवसर लेकर आयी है। हमें वेदों की इस उक्ति 'विश्वं पुष्टि ग्राम अस्मिन् अनातुरण' अर्थात मेरे गाँव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन होना चाहिए। का अनुगमन करना होगा। इस स्वराज्य की प्राप्ति पर तभी हो सकती है जब गाँव व शहर का प्रत्येक नागरिक अपनी आंतरिक शक्ति से बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से जूझने की सामर्थ्य प्राप्त कर ले।[17]

आत्मनिर्भरता और स्वदेशी की संकल्पना तभी चरितार्थ हो पाएगी जब देश के नागरिकों में राष्ट्रीय चरित्र का प्रकटन होगा। गाँव आज वैदिक गणतंत्र व गांधी के सपनों के भारत से बहुत दूर जा चुके हैं। निहित स्वार्थ की लालसा ने राष्ट्र उत्थान के परम लक्ष्य को धूमिल कर दिया है। इसलिए अनेक कल्याणकारी सरकारी नीतियों व भारी-भरकम बजट आवंटन के बाद भी भारत भुखमरी, बेरोजगारी, कुपोषण, तथा आकंठ भ्रष्टाचार के दलदल से बाहर नहीं निकल पा रहा है। जब तक भारतीयों में नागरिकता बोध व

राष्ट्र धर्म के संस्कार समाहित करने वाली शिक्षा व्यवस्था का समावेश नहीं होता तब तक तृणमूल स्तर पर आत्मनिर्भरता व स्वदेशी को आत्मसात करना चुनौतीपूर्ण होगा। इन सबके बावजूद आशा है कि राजनैतिक नेतृत्व के दृढ़ संकल्प तथा सामाजिक शुचिता की राह पर चलकर भारत कोरोना संकट से उत्पन्न विविध समस्याओं को पराभूत करने में सफल होगा।

संदर्भ

1. वातवे डॉ. स्मिताय कोविड-19: एक नए तरह का खतरा, योजना-मई, 2020.
2. क्रांति, विजयय प्रवासी कामगार नीति के मूल मंत्र, दैनिक जागरण, संपा. पृष्ठ।
3. कृष्णप्रसाद, सुचिताय श्प्रवासी और आर्थिक विकासश, योजना, जून-2020, पृष्ठ-34
4. गाँधी, डॉ. सुरजीत सिंह, कैसे लड़े चीन से आर्थिक लड़ाई दैनिक जागरण, 23 जून, 2020.
5. जोशी, मोहन राकेश, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 27 जून, 2020.
6. आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण रिपोर्ट, 2017-18, सांख्यिकीय एवं कार्यान्वयन मंत्रालय।
7. हैरिस, जान आर. एंड टोडारो माइकल, माइग्रेशन, अन एम्प्लाएमेन्ट एंड टू सेक्टर एनालिसिसशरू अमेरिकन इकोनामिक रिव्यू, पृष्ठ-126-142
8. सिंह, प्रदीप, पर्वत बन गयी है मजदूरों की पीर दैनिक जागरण, 11 जून, 2020 संपा. पृष्ठ.
9. योजना जून, 2020 पृष्ठ-02, पत्र सूचना कार्यालय।
10. संपादकीय, बिजनेस स्टैंडर्ड (हिंदी), 24 जून, 2020
11. आर्थिक समीक्षा-2019-20, खण्ड-2, अध्याय-7 कृषि एवं खाद्य प्रबंधन, पृष्ठ-193
12. घोष, अरुणाभ, मजबूत एमएसएमई से सुदृढ़ होगी आर्थिकी, बिजनेस स्टैंडर्ड-24 जून, 2020, पृष्ठ-5
13. गुप्ता, संजय, अवसर को भुनाने का सही समय दैनिक जागरण, संपा. पृष्ठ

14.- 'R-D Expenditure Ecosystem'; EA C-PM-Report,July-2019-Pg-46-48-

15. डोगरा, भारत 'आत्मनिर्भरता और स्वदेशी' राष्ट्रीय सहारा, 18 जून, 2020. संपा. पृष्ठ।
16. स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ-323
17. गांधी, एम. के., मेरे सपनों का भारत, राजपाल प्रकाशन, जनवरी, 2008, पृष्ठ-8।

महासंकट में प्रवासन और स्वदेशी लहर

डॉ० युवराज कुमार

कोविड-19 या कोरोना वायरस के इस महासंकट ने पूरी दुनिया को 'जान' और 'जहान' दोनों से हाथ धोने पर मजबूर कर दिया है। जिसके कारण भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को 'प्रवासन की समस्या' का सामना करना पड़ रहा है। इस समस्या का प्रभाव भारत पर अत्यधिक पड़ा है क्योंकि यहाँ आधी से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों से सम्बन्धित है। यहाँ के लोग जिंदगी को सार्थक बनाने के लिए गाँवों से शहरों की ओर और शहरों से विदेशों की ओर पलायन करते है अर्थात निरंतर संघर्ष और प्रवासन के लिए मजबूर हैं। जिसका कारण वहां के लोगों की कमजोर आर्थिक स्थिति, आजीविका, अवसर, गरीबी, अकुशलता, नये क्षेत्रों की तलाश, व्यवसाय, इत्यादि प्रमुख रहे हैं।

महासंकट अर्थात् कोरोना वायरस की उत्पति

आज सम्पूर्ण विश्व को कोरोना वायरस के कहर ने जकड़ लिया है। इस लाइलाज वायरस ने अब तक विश्व में लगभग 84 लाख से अधिक लोगों को संक्रमित कर दिया है और 83 हजार से अधिक लोगों की जान ले चुका है अभी भी निरंतर यह आकड़ा बढता ही जा रहा है पता नहीं कब तक ? विश्व के शक्तिशाली विकसित देश विशेषकर सयुंक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के 'वीटो पावर' प्राप्त स्थायी सदस्य भी इसके समक्ष घुटने टेक चुके है। इस वायरस ने अभी तक लगभग 190 देशों को अपने प्रकोप से प्रभावित किया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (ॅभ्व्) ने इस कोरोना वायरस को 'कोविड-19' का नाम दिया है और 'महामारी' घोषित कर दिया है। अभी तक ॅभ्व् सहित कोई भी देश इसका समाधान ढूंढ पाने में सफल नहीं हुआ है लेकिन इसका प्रयास निरंतर जारी है।

इस 'कोरोना वायरस' की जानकारी सर्वप्रथम 31 दिसम्बर, 2019 को चीन के वुहान शहर के केंद्रीय चिकित्सालय में काम करने वाले 34 वर्षीय नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉक्टर ली वेनलियांग ने दी थी। डॉ. ली ने चीन के सोशल मीडिया श्वीचौटश पर सहयोगी चिकित्सकों के नाम संदेश भेजकर इस वायरस की चेतावनी दी थी। डॉ. ली ने बताया कि स्थानीय बाजार 'सी फूड बाजार' के 7 मरीजों का सार्स (सीवियर एक्यूट रेस्पीरेटरी सिंड्रोम) जैसे संकर्मण का इलाज किया जा रहा है। उन्होंने साफ किया कि यह विषाणु 'कोरोना वायरस' समूह का है। इसका परिणाम बहुत भयानक हो सकते है. जैसे ही डॉ. ली के इस संदेश की जानकारी सरकारी अधिकारियों को मिली। पुलिस ने उन्हें अफवाह फैलाने के आरोपी के रूप में प्रताड़ित करना आरम्भ कर दिया। दुर्भाग्य से डॉक्टर ली वेनलियांग स्वयं इस वायरस के शिकार हो गए और 6 फरवरी, 2020 को उनकी मृत्यु हो गई। अब तक पूरे चीन में कोरोना वायरस के संक्रमण के 31 हजार 161 मामले सामने आ चुके थे और 618 लोगों की संक्रमण से मौत हो चुकी थी। मृत्यु से पहले 1 फरवरी, 2020 को डॉ. ली ने अमेरिकी अखबार 'न्यायार्क टाइम्स' के प्रतिनिधि के शोधकर्ता को 'विचौट' के माध्यम से बताया कि अगर इस कोरोना वायरस की जानकारी समय रहते दे दी जाती, तो इसे फैलने से रोका जा सकता था। स्पष्ट है की चीन ने जानबूझकर इस कोरोना वायरस की जानकारी दुनिया से छुपाई और इसके प्रसार तथा कहर को बढ़ने दिया। परिणामस्वरूप आज पूरा विश्व चीन के इस मानवता विरोधी अपराध को भुगत रहा है। अगर समय रहते इसकी जानकारी दे दी होती तो लाखों की तादात में इस 'जैविक हथियार' से नरसंहार नहीं हो रहे होते।

भारत में कोरोना वायरस का महासंकट

भारत, अंतराष्ट्रीय स्तर पर कोरोना के कहर पर नियंत्रण करने के लिए महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक भूमिका निभाने में आगे रहा। भारत ने G-20 देशों के शासन अध्यक्षों की एक मीटिंग बुलाकर एक मजबूत नेतृत्व की शुरुआत की। इस संकट के समय में सभी

को इस वायरस से साझा लड़ाई और एक-दूसरे के सहयोग के लिए तैयार रहने के लिए सहमत किया। सभी देशों के साथ WHO ने भी इसकी सराहना की। भारत में भी नियंत्रित कोरोना (4,90,892 व्यक्ति संक्रमित और 15,308 की मौत) का प्रकोप है इसके बावजूद हर संभव मदद देने के लिए वह तैयार है। जिसका उदाहरण अभी हाल ही में देखने को मिला है। अमेरिका, ब्राजील, इजराइल सहित विश्व के 30 देशों ने कोरोना वायरस से लड़ने के लिए भारत से Hydroxy Chloroquine दवा की मांग की जोकि वायरस से लड़ने में काफी मददगार है। जबकि इस दवा पर भारत में स्वयं के नागरिकों की जरुरत के लिए निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा रखा था, इसके बावजूद मानव हित में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्रतिबन्ध हटाया और इन देशों की मदद की जिसके लिए अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप ने भारत और भारतवासियों को धन्यवाद दिया। ब्राजील के प्रधानमंत्री ने भारत को 'रियल हीरो' का दर्जा दिया तथा इजराइल के प्रधानमंत्री नेतानयाहू ने धन्यवाद किया। भारत के लिए यह गर्व का विषय है किवह इस संकट के समय में मददगार बना जिसका प्रतिफल आने वाले भविष्य में देखने को भी अवश्य मिलेगा।

कोरोना से बचाव के लिए सरकार द्वारा उठाये गए कदम

जैसा की आप जानते है भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरे स्थान पर है और वह विकासशील देशों के श्रेणी में आता है। यहाँ उच्च स्तर की मेडिकल सुविधाओं तथा व्यवस्था का अभाव है। इसके बावजूद भारत के करिश्माई प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी देश में कोरोना वायरस की स्थिति को नियंत्रित करने में लगे हुए है और इसकी रिकवरीदर पचास प्रतिशत से अधिक है। जिसके पीछे सरकार द्वारा उठाये गये व्यवस्थित प्रयास रहे हैं जो कि इस प्रकार हैं -

खकोरोना वायरस के फैलने को रोकने के सरकारी दिशा निर्देश जिसका पालन सभी के लिए अनिवार्य है। (सामाजिक दूरी, मास्क, हाथ का बार बार धोना, घर पर ही रहना इत्यादि)

खएक दिन का 'जनता कर्फ्यू' (22 मार्च, 2020)

- सम्पूर्ण भारत में चरणबद्ध तरीके से लॉकडाउन –

1. प्रथम चरण: 25 मार्च 2020 – 14 अप्रैल 2020 (21 दिन)
2. दितीय चरण: 15 अप्रैल 2020 – 3 मई 2020 (19 दिन)
3. तृतीय चरण: 4 मई 2020 – 17 मई 2020 (14 दिन)
4. चतुर्थ चरण: 18 मई 2020 - 31 मई 2020 (14 दिन)
5. पाँचवाँ चरण: 1 जून 2020 - 30 जून 2020 (30 दिन)

- घर में रहो, सुरक्षित रहो के मूलमंत्र की अवधारणा को लागु करना।
- समय समय पर प्रधानमंत्री द्वरा 'देश को संबोधित करना' तथा 'मन की बात' से देशवासियों का मनोबल बनाये रखना।
- इस कार्य में जुड़े स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा सफाई कर्मियों का हौसला अफजाई करके उन्हें सुविधायें और सुरक्षा का प्रदान करना।
- समय – समय पर एक निश्चित समय और स्थान पर एक साथ ताली बजाकर, दीपक, मोमबत्ती जलाकर कोरोना के संकट के अंधकार को चुनौती देने के लिए एकता की ताकत के प्रकाश का परिचय कराना (5 अप्रैल, रात 9 बजे, 9 मिनट)।
- अपने नागरिकों को सुरक्षित विदेशों से स्वदेश लाना।
- विदेशी हवाई यात्रा पर पूरी तरह आने जाने पर रोक लगा देना।
- राज्यों में सभी नागरिकों को यथास्थिति बनाये रखने के आदेश देना।
- समय समय पर सरकार द्वारा सभी नागरिकों, संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों को विशेष राहत देना।
- केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को विशेष सहयोग राशि प्रदान करना।
- इस वायरस से लड़ने के लिए आर्थिक सहयोग के लिए 'प्रधानमंत्री केयर फंड' का निर्माण करना तथा नागरिकों से सहयोग की अपील करना।

- प्रत्येक नागरिक को इंसानियत का धर्म अपनाने तथा इस मुसीबत के समय में एक दूदूसरे का सहयोग करने के लिए प्रो]त्साहित कहना।
- केंद्रीय मंत्रिमंडल ने अध्यादेश लाकर प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्रियों और सांसदों के वेतन में एक वर्ष के लिए 30% की कटौती करना।
- राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और सभी राज्यपालों ने भी स्वेच्छा से 30% कम वेतन लेने का निर्णय लेना।
- केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने सांसद स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (डच्स। वै) के संचालन को दो वर्षों (2020-21) और (2021-22) के लिए रोकने की स्वीकृति देना।
- उपरोक्त सभी राशि भारत सरकार के कंसॉलिडेटेड फंड में जाएगी, जिसका उपयोग ब्वट्पक-19 से लड़ाई में किया जाएगा।
- हॉट्स्पॉट स्थानों को पूरी तरह सील करना इत्यादि।

पीएम मोदी की जनता से अपील

- अपने घर के बूढ़े-बुजुर्गों का ख्याल रखें।
- गाइडलाइन का सख्ती से पालन करें।
- अपनी इम्युनिटी बढ़ाएं इसके लिए आयुष मंत्रालय द्वारा दिये गए दिशा-निर्देशों का पालन करें।
- आरोग्य सेतु ऐप जरुर डाउन लोड करें और दूसरों को भी करवाए।
- जितना हो सके उतना गरीब परिवार की मदद करें उनके लिए भोजन की व्यवस्था करें।
- आप अपने व्यवसाय, अपने उद्योग में अपने साथ काम करने वाले लोगों के प्रति संवेदना दिखाएं, किसी को भी नौकरी से न निकालें।
- देश के कोरोना योद्धाओं, हमारे डॉक्टर- नर्सेस, सफाई कर्मी, पुलिसकर्मी इन सभी का पूरा सम्मान करें।

भारत सरकार समय और परिस्थिति के अनुसार कोरोना के प्रकोप को फैलने से रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाने में बिलकुल भी नहीं चूक रही है क्योकि थोड़ी सी भी चूक देश में संकट पैदा कर सकती है जो बड़ा घातक होगा। इसलिए आज भारत में संक्रमित तो अधिक हैं लेकिन रिकवरी दर अन्य देशों की तुलना में काफी बेहतर है। लेकिन यह सब लोगों द्वारा सख्ती से निर्देशों के पालन करने पर ही निर्भर करता है।

महासंकट और प्रवासी श्रमिक का प्रवासन

देश में दो तरह के प्रवासी श्रमिक रहते है। एक आकलन के अनुसार देश में 30 करोड़ प्रवासी श्रमिक हैं। इनमे से करीब 3. 3 करोड़ श्रमिक दूसरे राज्यों में जाकर काम करते है। इस श्रेणी के श्रमिक अमूमन लौटकर अपने गाँव नहीं जाते और जहाँ काम करते है धीरे – धीरे वही बस जाते है। जबकि बहुसंख्यक श्रमिक अपने राज्य में ही दूसरी जगह काम करते है और वे अपने निवास लौट जाते हैं। सरकार के समक्ष इन दोनों प्रकार के प्रवासी श्रमिकों के पलायन को रोकना और उनकों हर प्रकार की सुरक्षा मुहैया करवाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। क्योंकि इनके पलायन से सभी काम धंधें बुरी तरह प्रभावित होने के साथ साथ देश की अर्थव्यवस्था को भी नुकसान होता है।

महासंकट में प्रवासन के मुख्य कारण

1. कोरोना वायरस से संक्रमित होने का भय।
2. लम्बी अवधि का लोकडाउन I
3. बेरोजगारी की समस्या I
4. खाद्य असुरक्षा I
5. कमजोर आर्थिक हालत।

6. अपनों से दुरी व चिंता।
7. अव्यवस्थित जिन्दगी।

सरकार द्वारा प्रवासियों के लिए उठायें गए कदम

1. 19 मई, 2020 प्रवासी मजदूरों के बड़े शहरों से चले जाने के कारण काफी बड़ी संख्या में श्रमिकों की कमी हुई है जिससे व्यवसायों और उद्योगों के काम पर बुरा असर पड़ा है। मजदूरों के काम पर फिर से लौटने को सुनिश्चित करने के लिए मंत्रालयी पैनल ने कुछ उपाय सुझाए हैं जिनमें मजदूरों के कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय रोजगार नीति को बनाना, माइग्रेंट वर्कर्स वेलफेयर फंड बनाना और उन्हें 'आयुष्मान भारत' के साथ जोड़ना शामिल है।
2. **'आयुष्मान भारत योजना'** - सभी प्रवासी मजदूरों को 'प्रधानमंत्री आरोग्य योजना' जो कि 'आयुष्मान भारत' नाम से भी जानी जाता है के साथ स्वयं को नामांकित करना होगा। ऐसा करने से वे अपने काम की जगह पर कैशलेस मेडिकल सुविधा पा सकेंगे।
3. **'माइग्रेंट वर्कर्स वेलफेयर फंड'** – इसके तहत प्रवासी मजदूरों को स्वयं इससे जोड़ा होगा जिसमें मजदूरों, काम मुहैया कराने वाले, गृह राज्य सरकार, जिस राज्य में काम कर रहे हैं और केंद्रीय प्रशासन की बराबर की हिस्सेदारी होगी। इस फंड की देखरेख श्रम मंत्रालय करेगा और अगर प्रवासी मजदूर अपनी नौकरी बदलता है तब उन मामलों में वो मजदूरों के रहने, स्वास्थ्य बीमा, और बेरोजगारी भत्ता की समस्याओं को हल करेगा।
4. **राष्ट्रीय रोजगार नीति (NEP)** - यह देश में समग्र श्रम कल्याण और श्रम बाजार प्रशासन सहित कौशल और मानव संसाधन विकास को बढ़ाने के लिए रोजगार और आर्थिक विकास के लिए एक अंतरक्षेत्रीय रणनीति के लिए एक रूपरेखा प्रदान करने वाले एक माध्यम से दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य के साथ एक दस्तावेज तैयार करना है।
5. **प्रवासी मजदूरों के बच्चों की स्कूलिंग** के लिए छात्रवृत्ति, आंगनवाड़ियों तक पहुंच, पाठ्‌पुस्तकों और स्कूल की वर्दी, पानी और स्वच्छता के उपायों के लिए उनके ठहरने के स्थान, राशन कार्ड पोर्टेबिलिटी और मनोरंजन जैसे विश्वास निर्माण भी राष्ट्रीय रोजगार नीति से सम्बन्धित रखना।
6. **निर्माण कार्यों में लगे श्रमिकों के लिए की गई सिफारिशें** - लगभग 2 करोड़ निर्माण श्रमिकों को पंजीकृत करने के लिए एक अभियान चलाया जा सकता है, जो पात्र हैं लेकिन उन्होंने भवन और अन्य निर्माण श्रमिक (BOCW) अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत नहीं किया गया। फिर भी इसके अंतर्गत मजदूरों के लिए पेंशन, सामाजिक सहायता, हाउसिंग लोन, शैक्षणिक सुविधाएं, ग्रुप बीमा, मैटरनिटी सुविधाएं और स्किल ट्रेनिंग मिलेगी ठव्ब् अधिनियमों को आसन बनाया जाएगा।
7. **'वन नेशन वन राशन कार्ड'** - सरकार ने प्रवासी मजदूरों के लिए देश में किसी भी उचित मूल्य की दुकान से च्वै लाभ का उपयोग करने के लिए प्रवासी श्रमिकों और उनके परिवार के सदस्यों को सक्षम करने के लिए 'वन नेशन वन राशन कार्ड' प्रणाली की घोषणा की। वन नेशन वन राशन कार्ड अगस्त से लागू किया जाएगा।
8. **असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों को भी मिले न्यूनतम वेतन** - निर्मला सीतारमण ने न्यूनतम वेतन को लेकर भी घोषणा की। उन्होंने कहा, न्यूनतम वेतन का लाभ 30% वर्कर उठा पाते हैं। समय पर उन्हें पैसा नहीं मिलता। गरीब से गरीब मजदूर को भी न्यूनतम वेतन मिले और क्षेत्रीय असामनता दूर हो इसके लिए कानून बनाया जाएगा।
9. **दो महीने तक फ्री में खाना** - वित्त राज्य मंत्री अनुराग ठाकुर ने कहा 8 करोड़ प्रवासी मजदूरों के राशन के लिए 3500 करोड़ का प्रावधान सरकार करने जा रही है। प्रति व्यक्ति 2 महीने मुफ्त 5-5 किलो चावल और और गेहूं और 1 किलो चना प्रत्येक परिवार को दिया जाएगा।
10. **मनरेगा** - सरकार द्वारा घोषित अन्य उपाय मनरेगा है जो मनरेगा गांव वापस लौटने वाले लोगों को आजीविका की सुरक्षा देगा। जिसके बजट में 40,000 करोड़ रुपये और दिए गए हैं जिसमें 60,000 करोड़ रुपये बजट में पहले आवंटित किया गया था
11. **'गरीब कल्याण रोजगार अभियान'** - सरकार 18 जून, 2020 को गांव में प्रवासी श्रमिकों को और गरीबों के लिए आजीविका के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से सरकार 'गरीब कल्याण रोजगार अभियान' शुरू करने जा रही है। 20 जून को

बिहार सरकार के साथ इसकी शुरुआत होगी। इसके अभियान के तहत मिशन मोड में 6 राज्यों में 50000 करोड रुपए के कार्य कराए जाएंगे।

प्रवासन और स्वदेशी लहर

भारतीय समाज की संवेदनशीलता और सरकार की सक्रियता लगातार रेखांकित कर रही है कि दुनिया के साथ साथ हम भी इस आपदा से जूझ रहे है, लेकिन इस आपदा को अवसर में बदलने के लिए सरकार अडिग दिख रही है। सरकार अब केवल किसी बड़े 'पैकेज' की बात ही नहीं कर रही बल्कि एक बड़े नीतिगत बदलाव की भी सोच कर रही है। जिसमे आत्मनिर्भरता, स्वदेशी, संगठित समाज, मजदूर, किसान, उद्यमियों, सूक्ष्म और मध्यम उधोग इत्यादि शामिल है।

कोरोना से आयी इस महामारी ने एक तरीके से श्ग्लोबल विश्व व्यवस्था' के खात्मे की घोषणा तो कर ही दी है। एक के बाद एक विश्व व्यवस्था के सिद्धांत असफल होते जा रहे हैं। पहले साम्यवाद और पूंजीवाद के ध्रुवीकरण का सिद्धांत असफल हुआ और रूस का साम्राज्य बिखर गया। अब प्रजातंत्र की खाल में चीन में पार्टी अधिनायकवाद भी ज्यादा दिन चलने वाला नहीं दिख रहा है। इस कोरोना वायरस की वजह से वायरस के जनक चीन की विदेशनीति का अमानवीय अर्थनीति का चहेरा अब दुनिया के सामने आ चूका है। विश्व समुदाय इसको अब सजा देने के लिए भी आतुर है। अधिकतर देशों ने चीनी वस्तुओं का बहिष्कार करना शरू कर दिया है। चीन की इस महामारी के पीछे जो मंशा थी वह अब इसी पर भारी होते दिख रही है।

इस कोरोना महामारी से प्रभावित भारत ने भी चीन से अधिकतर क्षेत्रों के सम्बन्ध तोड़ दिए। लेकिन इस महामारी के परिणामस्वरूप भारत को भी विकास के लिए एक नई रूपरेखा बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा जो भारत के हित में भी है। इस रुपरेखा में भारत ने विकास के लिए स्वदेशी से स्वावलंबन पर आधारित 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना को प्रमुखता दी। इस संकल्पना को अंजाम देने के लिए सरकार व देशवासियों दोनों में एक नया उत्साह भी देखा गया। हालांकि बीते कुछ साल पहले ही इस प्रक्रिया की शुरुआत हो गई थी, लेकिन कोरोना संकट काल में इसकी उपादेयता खुलकर सामने आई और उसी हिसाब से इसमें गति भी आ गयी। प्रधानमंत्री मोदी जी आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना की शुरुआत श्मेक इन इंडियाश की मुहिम से की और 20 लाख करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज की घोषणा के साथ आत्मनिर्भर भारत की नीव रखी। जिसका आधार स्वदेशी और स्थानीय बाजार रखा गया।

सरकार द्वारा समय समय महत्वपूर्ण कदम उठाएजाएंगे। जो इस प्रकार हैं -

- मजदूरों के प्रवासन के पलायन को रोकना के लिए उनको संरक्षण देना और दिलवाना।
- कोरोना वायरस का महासंकट और 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना को अपनाना।
- सरकार द्वारा स्वावलंबन के लिए विकास के नये-नये क्षेत्रों को आर्थिक सहयता देना।
- राज्य सरकारों को संसाधन तथा सहयता उपलब्ध करवाना।
- महामारी से लड़ने के लिए 'PM CA RE FUND' की स्थापना करना।
- छोटे कामगारों, कुटीर उधोगों, किसानों, मजदूरों, तथा स्थानीय उत्पादों को प्रमुखता देना।
- प्रधानमंत्री द्वारा स्थानीय वस्तुओं को ब्रांड बनाने व प्रमुखता देने के लिए 'VOCA L FOR LOCA L' का नारा देना।
- चीनी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर देना।
- स्वदेशी जागरण मंच दवारा सम्पूर्ण भारत में 'डिजिटल हस्ताक्षर अभियान' को शुरू करना।

भारतीय उघोगों के केंद्रीय नियम

- लघु, कुटीर एवं मध्यम उपक्रम, भारत सरकार (MSME) को प्रमुखता देना।
- 200 करोड़ रुपये तक की खरीद की निविदा में विदेशी भागीदारी पर प्रतिबंधित लगाना।
- गड़बड़ी को रोकने के लिए निविदा प्रक्रिया को ऑनलाइन किया गया।
- सैन्य और अर्धसैनिक बलों की कैंटीन में विदेशी माल प्रतिबंधित।
- छोटे उद्योगों की सहायता के लिए वित्तीय टेक्नोलॉजी कंपनियों की व्यवस्था करना।

उद्योग और श्रमिकों की सहायता के प्रावधान

- सरकार ने 15,000 रुपये मासिक आय वालों के लिए तीन महीने (जून से अगस्त, 2020) तक 24 फीसदी पीएफ में खुद जमा कराएगी। सरकार के इस कदम से 72.22 लाख श्रमिकों को, 3.67 लाख कंपनियों को लाभ होगा। इसके लिए सरकार को 2,500 करोड़ रुपये अतिरिक्त खर्च करने होंगे।
- लघु, कुटीर एवं मध्यम उपक्रम, भारत सरकार (MSME) भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। देश के सकल घरेलू उत्पादन में लगभग जीडीपी का 29 फीसदी योगदान करते है। यह रोजगार का सबसे बड़ा जरिया है .12 करोड़ लोगों की आजीविका इस क्षेत्र पर निर्भर करती है। 2024 तक सरकार के 5 ट्रिलियन डालर अर्थव्यवस्था के मिशन को साकार करने के लिए, इस क्षेत्र का जीडीपी में योगदान बढ़ाकर 50% तक करने की जरूरत है। यही वजह है कि सरकार का फोकस इस सेक्टर की तरफ बढ़ा है। MSME कारोबारियों को केंद्र सरकार राज्य सरकार की तरफ से कई प्रकार के प्रोहत्साहन दिए जा रहे है। हाल ही में वित्तमंत्री निर्मला सीतारमण ने एमएसएमई सेक्टर के लिए बड़ा एलान किया। उन्होंने कहा की इस सेक्टर के लिए 3 लाख करोड़ रूपये के लोन की गारंटी सरकार देगी।

छोटे उद्योगों को बड़ी राहत

- एमएसएमई के लिए तीन लाख करोड़ रुपये का बिना गारंटी का ऋण, 45 लाख सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग को मिलेगा लाभ।
- संकटग्रस्त एमएसएमई के लिए 20,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था।
- चीन से टक्कर लेने को लाभ में चलने वाले और बड़ा आकार पाने वाले एमएसएमई के लिए 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान।
- लघु उद्योग क्षेत्र के लाभ के लिए एमएसएमई की परिभाषा में बदलाव ताकि लघु उद्योग को न उठाना पड़े कर अदायगी में घाटा।
- उत्पादन और सेवा क्षेत्र के उद्यमों के लिए एक समान हुए नियम।

'वोकल फॉर लोकल' का नारा

- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने जरूरत की चीजों के विनिर्माण में आत्मनिर्भर बनाने पर जोर देते हुए जनता से 'वोकल फॉर लोकल' यानी स्थानीय उत्पादों को महत्व देने और उनकी मांग बढ़ाने के साथ ही उनका प्रचार करने पर भी जोर दिया। उन्होंने कहा कि संकट के इस दौर में लोकल ने ही हमें बचाया है। स्थानीय स्तर पर निर्मित उत्पादों ने ही आगे बढ़ने का रास्ता दिखाया है। हमें इसे ही अपने आत्मनिर्भर बनने का मंत्र बनाना चाहिए। मोदी के अनुसार आत्मनिर्भर भारत होने का सीधा सा मतलब है कि दूसरे देशों पर अपनी निर्भरता कम करें। हर वह चीज जिसका आयात करने के लिए देश मजबूर है, उन चीजों का भविष्य में निर्यात करें। साथ ही विदेशों से सामान मंगवाने की अपनी प्रवृत्ति पर भी रोक लगानी होगी। वास्तव में इस कोरोना आपदा को हमें अवसर में बदलना है अर्थात टर्निंग पॉइंट बनाना है। यह पॉइंट है – आत्मनिर्भर भारत। इस आत्मनिर्भर के लिए ही सरकार ने 20 लाख करोड़ का आर्थिक पैकेज की घोषणा की गई। मोदी जी के अनुसार अब 'मेड इन इंडिया' और 'मेड फॉर फॉरेन' की जरुरत है।

स्वावलंबन के पांच स्तंभ

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के अनुसार ३आत्मनिर्भर भारत' के अभियान से जो नया भारत बनेगा वह पांच मजबूत स्तंभों पर खड़ा होगा। जोकि इस प्रकार है -

1. अर्थव्यवस्था (Economy)-एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो वृद्धिशील परिवर्तन (Incremental change) ही नहीं, बल्कि लम्बी छलांग (iQuantum Jump) सुनिश्चित करती हो।
2. बुनियादी ढांचा (Infrastructure) -एक ऐसा बुनियादी ढांचा (Infrastructure) जो आधुनिक भारत की पहचान बने।

3. व्यवस्था (System) -एक नई व्यवस्था जो 21वीं सदी प्रोधोगिकी संचालित (Technology Driven) व्यवस्थाओं पर आधारित हो।
4. उत्सा, शील आबादी (Demography) -दुनिया की सबसे बड़ी लोकतंत्र (Democracy) में आबादी (Vibrant Demography) आत्मनिर्भर भारत के लिए ऊर्जा का स्रोत हो।
5. मांग (Demand) – इस के तहत मांग (Demand) और आपूर्ति श्रंखला (Supply Chain) की ताकत का उपयोग पूरीक्षमता से किया जाना चाहिए।

भारतीय 'स्वदेशी जागरण मंच' का स्वदेशी स्वावलंबन अभियान

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की आर्थिक शाखा 'स्वदेशी जागरण मंच' ने भी 25 मई, 2020 से सम्पूर्ण भारत में चीनी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने के संकल्प के साथ डिजिटल हस्ताक्षर अभियान चलाया। 22,000 से अधिक स्वदेशी वॉलिंटियर्स लोगों को जागरूक करने में जुटे हुए हैं। इस अभियान का 20 से अधिक देशों के लोगों का समर्थन मिला है तो देश के 700 से अधिक जिलों में भी इसको जरदस्जोत समर्रथन मिल रहा है। 17 जून, 2020 तक इस अभियान में छ: लाख से अधिक लोगों ने इस अभियान के साथ जुड़ चुके है और चीनी वस्तुओं के बहिष्कार का संकल्प लिया है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, जर्मनी, जापान और नेपाल जैसे 20 से अधिक देशों के 1430 निवासी भी इससे जुड़े है जिन्होंने स्वदेशी को अपनाने और चीन को सबक सिखाने का फैसला लिया है। इस अभियान में 100 से अधिक संगठन सहयोग कर रहे हैं। रोजाना 35 से 38 हजार रजिस्ट्रेशन हो रहे हैं। इस अभियान में श्री श्री रविशंकर, माता अमृतानंदमयी, गायत्री परिवार सहित संत महात्माओं ने भी इस अभियान का समर्थन किया है।

चीन को 17 खरब डालर का झटका देने की तैयारी

भारत के कुल चीनी आयात में से करीब 17 खरब डालर का सामान खुदरा व्यापारी देशभर में बेचते हैं। भारत में चीनी उत्पादों का बहिष्कार करने को लेकर राष्ट्रव्यापी आंदोलन के तहत व्यापारियों ने केंद्र सरकार से ई-कॉमर्स को चीनी वस्तुओं की बिक्री को प्रतिबंधित करने के लिए निर्देश देने का आग्रह किया है। वाणिज्य मंत्रालय ने घरेलू कंपनियों के लिए निर्यात के अवसरों का पता लगाने को कहा है और भारतीय मिशनों के कपड़ा और चमड़ा उत्पादों सहित 1500 उत्पादों की सूची साझा की है। 550 ऐसे उत्पाद है जिनमे भारत और चीन दोनों बड़े निर्यातक है। वाणिज्य मंत्रालय की कोशिश है कि निर्यात को ज्यादा मजबूती प्रदान की जाये।

भारतीय उधोगपति ने चीन की अलीबाबा से समझौता तोड़ा

गुजरात के नवसारी के उधोगपति परेश राठोड ने चीन की अलीबाबा से 11 साल पुराना समझौता तोड़ दिया और स्वदेशी कंपनी को प्रोत्साहन देने का संकल्प लिया है। परेश राठौर की सचिन क्षेत्र के सेज में कालिका इंटरनेशनल कंपनी है। यह कंपनी एशिया में सबसे ज्यादा ब्रेक फ्ल्युड का उत्पादन करने वाली मानी जाती है। इस कंपनी के चीन समेत करीब 30 देशों के साथ समझौते हुए पड़े हैं। कंपनी का 11 साल पहले चीन के ब्रांड अलीबाबा से कॉन्ट्रैक्ट हुआ था मगर अब उसके साथ किया गया यह कांटेक्ट रद्द कर दिया है जिसके कारण अलीबाबा डॉटकॉम ने अब गोल्ड सप्लायर का विशेष दर्जा भी खो दिया है।

भारतीय रेलवे ने चीन से 500 करोड़ का प्रोजेक्ट छीना

भारतीय कंपनियों में चाइना की कंपनी का बहिष्कार शुरू कर दिया है। अब इंडो-चाइना स्विच ऑफ के बीच मुंबई मेट्रोपॉलिटन रीजन डेवलपमेंट अथॉरिटी ने 500 करोड रुपए की मोनोरेल टेंडर को रद्द कर दिया है अब यह टेंडर भारतीय कंपनियों को देने का विचार किया जा रहा है।

उपरोक्त, सरकार तथा देश के स्वदेशी योधाओं द्वारा अपने स्वार्थों की परवाह किये वगैर देशहित में, स्वदेशी के परचम को लहराहने और अपराधी चीन को सबक सिखाने के लिए, जहाँ तक संभव हो सके उखाड़ फैकने का प्रयास किया है। जो देशहित में काबिले तारीफ है।

निष्कर्ष

वास्तव में कोरोना वायरस से आयी महामारी और प्रवासी की समस्या ने भारत को ऐतिहासिक, साहसिक, परिवर्तनकारी, अवसरों तथा सुधारों के लिए एक नए रूप में आन्दोलन के लिए तैयार किया है। यह आन्दोलन किसी जाति, वर्ग या समुदाय का नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत का राष्ट्रभावना से प्रेरित स्वैछिक आन्दोलन है। जो विकास के लिए स्वदेशी पर आधारित आत्मनिर्भर भारत का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते है और चीन को सबक सिखाना चाहता है।

चीन द्वारा तैयार इस कोरोना वायरस को अगर 'जैविक हथियार' की संज्ञा दे तो उचित ही है। क्योंकि चीन इस वायरस के माध्यम से (खुद को सुरक्षित कर विश्व को इसके कहर से तबाह होते देखना चाहता है) संपूर्ण विश्व पर बिना अपना नुकसान किये अर्थात बिना अस्त्र-शस्त्र के युद्ध से विश्व के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना वर्चस्व अर्थात आधिपत्य स्थापित करना चाहता है. इसे सोचा समझा विश्व तथा मनावता के विरुद्ध घिनौना अपराध का 'चीनी षड्यंत्र' कहे तो कम नहीं होगा। दुनिया को अब चीन का असली चेहरा समझ आ रहा है। इसलिए भविष्य में चीन के साथ सभी संबंधों को विराम देकर अर्थात पूरी तरह बहिष्कार करके सबक सिखाना ही होगा। जोकि न्यायोचित है।

दूसरी तरफ इस चीनी वायरस ने सम्पूर्ण विश्व को इस संकट के समय में एक नये 'स्वदेशी और 'आत्मनिर्भरता (Principle of Swadeshi and Self Dependence) के सिद्धांत पर सोचने पर मजबूर भी कर दिया है। क्योंकि ज्यादातर देश 'निर्भरता के सिद्धांत' (Theory of Dependency) को ही अपनाये हुए थे। लेकिन इस 'विश्व लॉकडाउन' की स्थिति ने इस सिद्धांत की धज्जियां उड़ा दी और दुबारा से पुन: विचार करने पर सबको मजबूर कर दिया। अब निकट भविष्य में इस प्रकार की महामारी से बचने के लिए विश्व के देशों को 'स्वदेशी व् आत्मनिर्भता के सिद्धांत' को अपनाने के लिए स्वयं को तैयार रखना होगा' इसमे विश्व की सभी समस्याओं का समाधान तथा कल्याण छुपा हुआ है।

मुन्नी मोबाइलः एक आलोचनात्मक अध्ययन

रेणु चौधरी

(शोधार्थी), जे.एन.यू

समाज की प्राथमिक इकाई व्यक्ति होता है। वह व्यक्ति जो एक परिवार में रहता है। परिवार संबंधों का एक ऐसा ताना-बाना है जिसमें एक भी ताने-बाने के न रहने पर परिवार की अवधारणा ही खण्डीत होने लगती है। इस परिवार की अवधारणा में सबसे महत्वपूर्ण संबंध पति-पत्नी का होता है। पति तो उसी घर में पूर्व से रह रहा होता है। पत्नी किसी और घर की बेटी होती है और उसे सामाजिक संस्कारों द्वारा पत्नी बना कर लाया जाता है। यही से उसके सामाजिक सरोकार (पत्नी या स्त्री) बदलने या व्यापक होने लगते हैं। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सदियों से दोयम दर्जे की रही है। सामाजिक रूप से स्त्रियां कभी भी पुरुषों के बराबर नहीं रही है। उसके साथ लैंगिक-भेद भाव बचपन से ही शुरु हो जाता है जिसे वह जीवन भर झेलती है।

प्रदीप सौरभ द्वारा रचित उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' समकालीन समय में काफी चर्चित रहा है। आनंद भारती पत्रकार होता है। अपना जीवन अपने तरीके से व्यतीत करता है लेकिन जब वह शिवानी से शादी करता है तो घर का दायित्व समझता है। वह कहता है ''अपनी पत्नी शिवानी के साथ दिल्ली में जब वह आए तो इस शहर में परिवार के प्रति दायित्व की अनुभूति उन्हें पहली बार हुई। इससे पहले विवाह पूर्व भी वह घर से लड़कर दिल्ली आए थे और कुछ महीनों तक फीलांसिंग करते रहे थे, पर तब उनके अक्खड़-फक्कड़ स्वभाव के लिए ज्यादा टीम-टाम की जरूरत नहीं थी। 'जहां चार यार मिल जाएँ, वहीं रात दें गुजार' की तर्ज पर आनंद भारती बेफिक्र से रहते थे। पर पत्नी शिवानी के साथ घर बसाने की कल्पना ने उन्हें जिम्मेदारियों का अहसास दिलाया था।'' अक्सर पत्नी के घर आने के बाद ही पुरुषों को अपनी जिम्मेदारियों का अहसास होता है। भूमंडलीकरण के दौर में रिश्तें बहुत तेजी से बदल रहे हैं और इस बदलते रिश्तों को हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त किया गया है। पति-पत्नी के रिश्तों को समझना बहुत मुश्किल है। आनंद भारती अपने रिश्ते के अच्छे पल को याद करते हैं। ''आनंद भारतीय जनता कॉलोनी में अपनी पत्नी के साथ खुश थे। उस मकान से उनकी सुखद और दुखद अनेक यादें हैं। इसी मकान में उनकी बेटी का जन्म हुआ था। बड़े प्यार से उसका नाम सूफी रखा था। सूफी के जन्म ने आनंद भारतीय को सचमुच पारिवारिक बना दिया था। शिवानी का स्नेह, बेटी की मोहक मुस्कान और आनंद भारतीय की नौकरी सब कुछ एक समीकरण में बंध गए थे। शिवानी भी दिल्ली आकर खुश थी। यहाँ उसका अपना स्वतन्त्र माहौल था। मासूम सी दिखने वाली शिवानी ने गृहस्थी के साथ साथ बाहर की दुनिया में भी अपना परिचय खूब बना लिया था। सब कुछ ठीक-ठाक था।'' इस तरह अच्छे संबंधों में भी कब घुन लग जाता है इसे स्त्री और पुरुष दोनें को समझना आसान नहीं होता है। उपन्यासकार प्रदीप सौरभ यह दिखाना चाह रहे हैं कि पहले पति को ईश्वर मान कर स्त्रियां चाहे जैसे भी अपना जीवन अपने पति के साथ ही बीता देती थी अब वैसा नहीं है क्योंकि समय के साथ चीजें बदल चुकी हैं। तभी तो शिवानी आनंद भारतीय के बदले दिनचर्या को बर्दाश्त नहीं कर पाती है। आनंद भारतीय अपने मित्रों में व्यस्त रहने लगे तथा ट्रेड यूनियन में सक्रिय भूमिका निभाने लगे। वह भूल गए की उनका अपना घर-गृहस्थी है जहां पत्नी औप बच्चे हैं। पुरुष अक्सर अपने जीवन में इस तरह के काम करता है। जिसका नतिजा होता है कि घर में खटपट शुरु हो जाती है। पति को कभी सहन नहीं होता है कि उसकी पत्नी उससे तू-तड़ाका से बात करे। ''गृह-कलह में शिवानी आम पत्नी की तरह तू-तड़ाक करे, ऐसा तो आनंद भारतीय बर्दाश्त ही नहीं कर सकते थे। अपनी पत्नी को प्यार करने का जज्बा उनमें भरपूर था, पर इसके लिए वह उनके निजी जीवन में दखल अन्दाजी करे, यह बात उन्हें कतई गवारा नहीं था। इस बीच हिरनी-सी आँखों वाली शिवानी का दायरा भी काफी बढ़ चला था। वह भी अपने अधिकारों का बेजा इस्तेमाल करने में कुशल हो गई थी। ...एक बार कुछ ऐसी खास घटना हो गई जिससे दरार और बढ़ गई और शिवानी ने अपना सामान बांध मायके जाने का निश्चय कर लिया। ...एक बार मायके जाने के बाद शिवानी दोबारा नहीं आई। ...अपने सुंदर से घर-परिवार के इस तरह तहस-नहस होने की उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।''

पति-पत्नी का संबंध अंतरंग और घनिष्ठ होता है जिसे समझना आसान नहीं होता है। 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास प्रदीप सौरभ का लिखा एक उत्कृष्ट कोटि का उपन्यास है। इस उपन्यास में समकालीन समय के बदलते रिश्ते का चित्रण मिलता है। आनंनद भारती जिस डर से मानसी से विवाह नहीं करना चाहते थे आखिर में उसी डर का सामना शिवानी के साथ करते हैं। आनंद भारती का पत्नी शिवानी से संबंध टूट जाता है। इस टूटते रिश्ते को जोड़ने का काम मानसी करती है परंतु असफल रहती है। मानसी आनंद भारती की अच्छी दोस्त रहती है। एक तरह से मानसी आनंद भारती से विवाह करना चाहती थी लेकिन आनंद भारती जाति, सामाजिक बंदिशों के कारण मानसी से शादी नहीं करते हैं। लेकिन एक अच्छे दोस्त रहते हैं। ''आनंद भारती को माँ से पता चलता था कि शिवानी के साथ उनके टूटते संबंधों को जोड़े रखने में मानसी, शिवानी को बेहद समझाया करती थी। फोन पर लम्बी-लम्बी बातचीत में वह शिवानी को हर बार यह अहसास दिलाती थी कि आनंद भारती अपने स्वभाव से खुरदुरे जरूर हैं पर शिवानी उनके भीतर की ऐसी डोर है, जिससे आनंद भारती अपने परिवार को बांधे रखना चाहते हैं। पर यहाँ भी वही हुआ था, जिसे आनंद भारती नहीं होने देना चाहते थे...शिवानी से उनका संबंध टूट गया था...इसी इलाहाबाद में वह शिवानी को ब्याह कर लाए थे...उसके साथ बेहद मधुर रिश्ता निभाया था...।'' संबंधों को बचाना किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं होता है। पति-पत्नी रिश्ता एक अलग तरह का रिश्ता होता है। अगर इनमें से किसी एक ने सोच लिया कि साथ नहीं रहना है तो बहुत मुश्किल होता है रिश्ते को बचाना। जैसे कि आनंद भारती अपना रिश्ता नहीं बचा पाते हैं। वे नहीं चाहते थे कि उनका संबंध शिवानी से टूटे लेकिन अंतिम समय में टूट ही जाता है। दोनों अपने परिवार रूपी गाड़ी को चलाने में असफल हो जाते हैं।

आज की दुनिया आभासी है जहां एक क्लिक पर सब कुछ मिल सकता है। पति-पत्नी, संतान तथा भाई-बहन का संबंध कई बार जीवन भर बना रहता है लेकिन कभी कभी इनमें भी दरारें पड़ जाती हैं। इसी तरह विवाह के तुरंत बाद भी तलाक हो सकता है क्योंकि स्त्री और पुरुष दो अलग-अलग परिवेश से आते हैं। दोनों अगर समझदारी से पारिवारिक दायित्व नहीं निभाते हैं तो पति-पत्नी संबंध टूटने में समय नहीं लगता है। पति-पत्नी के बीच मजबूत रिश्ते की नीव आपसी समझदारी और एक दूसरे के विश्वास पर टिका होता है। अगर संबंधों में विश्वास न हो तो वह संबंध ज्यादा मजबूत नहीं होता है। आशा रानी व्होरा का मानना है कि ''जब इस विश्वास को ही विवाह-पूर्व या विवाहेतर संबंधों से ठेस लगती है तो दाम्पत्य जीवन की शांति भंग होना अनिवार्य है। फिर चाहे पत्नी द्वारा बच्चों की खातिर अथवा अन्य किन्हीं मजबूरियों के तहत उसे नजरअंदाज कर दिया जाए या आधुनिक पति द्वारा तथाकथित प्रगतिशीलता का मुखौटा लगाकर झूठी उदारता दिखाने का असफल प्रयत्न किया जाए, संबंधों की स्निग्धता उन के बीच आ ही नहीं पाती है।'' एक तरह से पति-पत्नी के बीच विश्वास और एक दूसरे के प्रति वफादारी ही महत्वपूर्ण होता है जो दाम्पत्य जीवन को बचाए रखता है। इसके टूटते ही वैवाहिक जीवन में भूचाल आ जाता है। इसे बनाए रखने की जिम्मेदारी दोनों की होती है।

इस उपन्यास में दूसरी तरफ एक ऐसे ही स्त्री मुन्नी की कथा है जो बिहार के बक्सर जिले के रहने वाली है। रोजी-रोजगार के चक्कर में वह दिल्ली के पास के गांव साहिबाबाद में रहने लगती है। शुरूआती दौर में वह झुग्गी-झोंपड़ी में रहती है और बाद में उसने धीर-धीरे जमीन खरीद कर पक्का मकान बनाकर रहने लगी। मुन्नी सामाजिक रूप से काफी संघर्ष करती है। साहिबाबाद में लोगों के घर में झाड़ु-पोंछा और खाना बनाने का काम करती है। मुन्नी अपनी लगन और मेहनत से बहुत जल्दी ही तरकी की कई सीढ़ियां चढ़ जाती है। लेकिन मुन्नी की इच्छाएं अनन्त है। वह पहले तो अवैध गर्भपात की एजेंट बनती है। लेकिन डॉक्टरनी से मतभेद हो जाने के कारण उसे छोड़कर वह आनन्द भारती के यहां घरेलू नौकरानी बन जाती है। यानी आनन्द भारती के घर की पूरी जिम्मेदारी झाड़ू-पोंछा से लेकर खाना बनाने का पूरा काम करती है। मुन्नी का जीवन यहीं तक सीमित नहीं रहता है। वह एक ऐसी स्त्री है जो अपनी मेहनत और लगन से कुछ भी पाने और करने को तैयार रहती है। बाद में नुन्नी कई बसों की मालकिन बनती है। यहां तक वह कई गुर्जर, जाटों, ठाकुरों से लोहा लेती है। मुन्नी का जीवन यही तक सीमित नहीं रहता है। उसे पैसे कमाने की धुन सवार था और वह पैसा के पीछे भाग रही थी। अंत में मुन्नी का मर्डर हो जाता है क्योंकि वह लड़कियाँ सप्लाई करने का काम करने लगती है या यूं कहे कि वह सेक्स रैकेट चलाने लगती है। वह बिहार के गांव से गरीब लड़कियों को नौकरी देने के बहाने लाती है और उन सभी लड़कियों को इस काम में झोंक देती है। उपन्यासकार यह दिखाना चाहते हैं कि किस तरह भूमंडलीकरण के दौर में मानवीय संवेदनाए खत्म हो रही हैं। लोग इंसान से प्रेम न कर पैसे और स्वयं से प्रेम करने लगे हैं। जहां पर सिर्फ अपना मैं ही देखा जाता है। अपने बारे में सोचा जाता हैं। मुन्नी एक स्त्री है और एक स्त्री को कॉल गर्ल के रूप में इस्तेमाल करने लगती है। मुन्नी नहीं समझ पाती है कि वह जो कर रही है गलत है। स्त्रियों का शोषण ऐसे क्या कम हो गया है जो अब

स्त्रियां ही स्त्रियों का शोषण करने लगी है। पितृसत्ता ने स्त्री की मानसिकता को इस तरह कैद कर लिया है कि अब स्त्रियां भी पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रसित हो गई। मुन्नी इस तरह के काम करते समय न जाने कई लोगों से लोहा ले चुकी थी। जिसके कारण कॉल गर्ल के डॉन मुन्नी का मर्डर करवा देता है क्योंकि कोई भी बिजनेस करने वाले दूसरे के तरक्की को देख नहीं सकते। मुन्नी के मर्डर के बाद मुन्नी द्वारा फैलाया गया कॉल गर्ल की दुनिया खत्म नहीं होती। बल्कि इसे और अच्छे तरीके से उसकी बेटी रेखा संभालने लगती है। वह इस काम के लिए तकनीक का प्रयोग करती है। मुन्नी की बेटी रेखा के बारे में आनन्द भारती का कहना है '' वह मुन्नी के आशिक पलटू के साथ उसके घर में बैठ गई है। धंधे के दौरान मुन्नी के गाजियाबाद के गैंगस्टर पलटू से रिश्ता हो गए थे। उसकी और उसकी लड़कियों की वह ही रक्षा करता था। रेखा पर उसकी पहले से ही नजर थी। कॉर्ल गर्ल वर्ल्ड में मुन्नी मोबाइल की जगह रेखा चितकबरी ने ली थी। ...इसके अलावा रेखा के रास्ते किसी और दिशा में भला जाते भी कैसे? मुन्नी ने जो रास्ता चुना था, रेखा के लिए वही उसकी विरासत थी। उसने अपना नया नम्बर अपनी मम्मी के पक्के कस्टमरों को एसएमएस कर दिया था। मोबाइल पर वह पक्के कस्टमरों से ही डील करती थी। इंटरनेट के जरिये वह नये कस्टमर को बनाती। लड़कियों की तस्वीरें उसने अपने ब्लाग में डाल दी थीं। हाईफाई तरीके से वह धंधा करने लगी थी। पुलिस को नियमित हफ्ता देती। गुण्डों-लफंगों को भी पालती। अपनी मम्मी के हत्यारों को सजा देने की जुगत में रहती। उसने कॉल गर्ल वर्ल्ड के सभी बड़े गुर्गों को किनारे कर दिया था। कॉल गर्ल वर्ल्ड की नई अवतार बन चुकी थी रेखा चितकबरी।''

बिहार के बक्सर गांव से आने वाली बिन्दु यादव कब मुन्नी बन जाती है उसे खुद ही पता नहीं होता। वही मुन्नी कब मुन्नी मोबाइल में तब्दील हो जाती है। वह समझ नहीं पाती। मुन्नी एक अनपढ़ स्त्री है। लेकिन काफी बोल्ड होती है। सुदुर गांव से महानगरों में आने वाली स्त्री धीरे-धीरे गँवईपन को छोड़कर शहराती बन जाती है। इसे हम मुन्नी के माध्यम से देख सकते है। उसके सांस्कृतिक सरोकार बदल रहे थे। वह जैसे-जैसे घर बदलने लगी काम करने का वैसे-वैसे जीवन का अनुभव मिलने लगा। '' हर जगह उसे नये-नये अनुभव होने लगे। नये घरों में उसकी भोजपुरी भाषा की दीवार टूट गई। उसके नये घर मराठी, बंगाली और मारवाड़ी थे। महाराष्ट्र, बंगाल और राजस्थानी की मिट्टी और वहाँ की सांस्कृतिक पहचान से रूबरू होने की उसकी शुरूआत हुई। देश की गोबर पट्टी से उसका परिचय हो रहा था। वह रोमांचित हो रही थी। खाली वक्त में इन घरों में टीवी दर्शन उसके अनुभव को बढ़ाने में मददगार साबित हुआ। सास, बहू और घर-घर की कहानी जैसे सीरियल कारपोरेट परिवारों में वर्चस्व के लिए मचे घमासान से उसका परिचय करा रहे थे। उसके बिहारी गंवई मूल्य धूल धूसरित हो रहे थे। एक औरत के कई मर्दों के साथ रिश्ते उसे अचंभित करते थे। धन धान्य से भरे पूरे परिवार में पैसों के लिए होने वाले घमासान उसकी समझ से परे थे।'' उपन्यासकार ने गांव और शहर के सांस्कृतिक अंतर और बदलते सामाजिक परिदृश्य की ओर इशारा किया है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने बाजारवाद के प्रसंग को उठाया है। इस बाजारवाद से ग्रसित मुन्नी जैसी स्त्री का चरित्र चित्रण किया है। उपन्यासकार ने 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास के माध्यम से एक महत्वकांक्षी स्त्री का चरित्र गढ़ा है तथा उसकी सोच एवं क्रियाकलापों का वर्णन समकालीन परिदृश्य को उजागर करता है। इस तरह से इस उपन्यास में प्रदीप सौरभ स्त्री-जीवन के अनछुए यथार्थ को उजागर करते हैं। ग्रामीण स्त्री-जीवन के बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार को अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ

- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृ-48
- वही, पृ-49
- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृ-49-50
- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृ-71
- आशारानी व्होर, नारी शोषण आईने और आयाम, पृ-132
- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृ-156
- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृ-20

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का वस्तुवादी दृष्टिकोण: विद्यापति का साहित्य

डॉ० प्रियंका कुमारी

पी.एच.डी. (हिन्दी साहित्य), पांडिचेरी विश्वविद्यालय

शोध सार

आदिकालीन साहित्यकार विद्यापति ठाकुर के साहित्य में जहाँ घरेलू स्त्रियों के देह की शुचिता पर बल दिया जाता है, वहीं बाहर की स्त्रियां भोग की सामग्री समझी जाती है। जहाँ घरेलू स्त्रियां पितृसत्ता के दबदबा से आक्रांत रहती है, वहीं बाहर की स्त्रियां अपेक्षाकृत स्वतंत्र। ''कीर्तिपताका'' में स्त्री श्रृंगार की एक मांसल, कोमल, कमनीय वस्तु है, जो पुरुष के उपभोग के लिए बनी है। ''पदावली'' की स्त्री पितृसत्तात्मक समाज की चाभी वाली वह गुड़िया है, जो पुरुष के चाभी भरते ही रति क्रिया के लिए तुरंत तैयार हो जाती है।

शोध परिचय

पितृसत्ता की उत्पत्ति कब हुई? इसका उत्तर देना सवार्धिक कठिन होगा। क्योंकि यह एक प्रक्रिया थी, जो धीरे-धीरे विकसित हुई। इसी प्रक्रिया के क्रम में पुरुषों ने स्त्रियों पर अपना वर्चस्व स्थापित किया और उन्हें दोयम श्रेणी का दर्जा प्रदान किया। अपनी सत्ता कायम रखने के लिए पितृसत्ता ने स्त्रियों के लिए कई प्रकार के बंधन बनाये, अनेक मान्यताओं की स्थापना की, जो कालांतर संस्कृति कहलायी। संस्कृति के नाम पर बेड़ियाँ डालकर उन्हें दासी बना दिया गया। पितृसत्ता को परिभाषित करते हुए गार्डा लर्नर लिखती हैं – ''पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएँ ऐसी सत्ता के पहुँच से वंचित रहती हैं।'' स्त्रियों की इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए मैंने विद्यापति के साहित्य में स्त्रियों के प्रति पितृसत्तात्मक समाज का वस्तुवादी दृष्टिकोण को अपना शोध विषय बनाया है।

विद्यापति के जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में मत वैविध्य हैं। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ राधा-कृष्ण चौधरी ने ''मिथिला इन द एज ऑफ विद्यापति'' में विद्यापति के जन्म-काल को 1360 से 1490 के मध्य माना है। विकीपीडिया से प्राप्त स्रोत के आधार पर इनका जन्म 1352 ई. में बिहार के दरभंगा जिले के बेनीपट्टी थाने के अन्तर्गत बिफसी नामक गाँव के एक प्रतिष्ठत ब्राह्मण कुल में हुआ था और इनका निधन जनकपुर (नेपाल) में हुआ था। इनके पिता का नाम गणेश्वर ठाकुर और माता का नाम गंगा देवी था। कविकोकिल विद्यापति मिथिला (दरभंगा) के महाराजा शिवसिंह के दरवारी कवि थे। विद्यापति कोमहामहोपाध्याय, अभिनव जयदेव, सुकवि, महाकवि कविशेखर, कविरंजन, कवि-कोकिल और मैथिल-कोकिल की उपाधि से विभूषित किया गया। विद्यापति महाकवि होने के साथ-साथ बहुभाषाविद, कविराज, कहानीकार, भू-वृतान्त-लेखक, इतिहासज्ञ, संगीतज्ञ और धर्म व्यवस्थापक भी थे। वे संस्कृत, प्राकृत, अवहट्ट और मैथिली भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वानथे। उन्होने राजनीति, धर्मशास्त्र, दायभाग, यात्रावृतान्त आदि अनेक विषयों पर ग्रन्थ की रचना की। मिथिला के इतिहास में विद्यापति युग को स्वर्ण युग कहा गया है। उन्हे प्रकृति नटि की रंगस्थली मिथिला सी जन्म-भूमि तथा साहित्य-कल्पतरु, श्रृंगार-रस-रसिक, सद्‌गुण रत्नाकर प्रतापी महाराज शिवसिंह का आश्रय प्राप्त था।

तभी तो उनकी कविता-कामिनी ने अपनी वीणा की झंकार से दिल्ली के तुगलक-राजघराने से लेकर चौतन्य-महाप्रभु तक के हृदय को झंकृत एवं मंत्रमुग्ध सा कर दिया था। अन्य की क्या बात, स्वयं विद्यापति भी अपनी कविता पर मुग्ध होकर कह बैठे-

''ई निच्चअ नाअर-मन मोहइ''

शोध विषय

मैंने विद्यापति ठाकुर की दो रचनाओं-कीर्तिपताका (अवहट्ट) एवं पदावली (मैथिली) को अपना शोध विषय बनाया है। मैंने, इन साहित्यों का गहन शोध कर, स्त्रियों की दशा एवं स्थिति पर, शब्द परिसीमा को ध्यान में रखते हुए, बहुलांश प्रकाश डालने का अधिकतम प्रयास किया है-

1.'कीर्तिपताका' में स्त्री

'कीर्तिपताका' में स्त्री संभोग के उपादान के रुप में प्रस्तुत हुई है, जो सिर्फ पुरुष के उपभोग के लिए बनी है। पितृसत्ता उसे विवश कर ऐसा सिखाता है कि उसे कभी भी पुरुष का विरोध नहीं करना है। अन्यथा वह परिवार, समाज और घर के योग्य नहीं रह जाएगी और कुलटा, वेश्या बन जाएगी। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को जन्म से ही परिवार में अन्या की भाँति व्यवहार, पालन-पोषण और शिक्षा-संस्कार दी जाने लगती है। पुरुष पर कोई नियंत्रण नहीं लगाया जाता, जबकि स्त्री पर जन्म से मृत्यु तक नियंत्रण ही नियंत्रण रहता है।

किसी स्त्री के तन को बिना उनकी मनोस्वीकृति के स्पर्श करना, पुरुष अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। एक पुरुष कई स्त्रियों से शारीरिक एवं मानसिक संबंध स्थापित रख सकता है, किन्तु यही संबंध यदि कोई स्त्री स्थापित करे तो, पितृसत्तात्मक समाज में यह अनैतिक ही नहीं माना जाता, अपितु स्त्री जीवन के लिए बहुत बड़ी आंधी प्रमाणित होती है। प्रस्तुत प्रसंग में स्त्री पुरुष-वर्चस्ववाद से त्रासित होती है -

"काहु धरए धम्मिल्ल काहु अञ्चर धरि खञ्चय।
काहु मनोरथ पूर काहु आसा दए बंचए। ...
सन्तोस पूर रति विविह परि काहु उबारए काहु हस।
प्रतिबिम्ब सरोरुह चन्द नञ्ओ एक कान्ह सब हिअए परस।। 23।।''[2]

अर्थ-कृष्ण किसी का केशपाश पकड़ते हैं, किसी का आँचल धरकर खींच देते हैं, किसी की मनोकामना पूरी करते हैं, किसी को आशा देकर वंचित करते हैं, किसी को सदय होकर देखते हैं, किसी का निर्दय आलिंगन करते हैं, किसी को रोष दिखाने पर कुटील भ्रूभंगी से भग्न करते हैं, आनन्द प्रवाह से विविध रतियों में पड़कर किसी को उबारते हैं और किसी को हँसाते हैं। जैसे नवीन चंद्र का प्रतिबिम्ब कमल में हो, वैसे ही एक कृष्ण सबके हृदय का स्पर्श कर रहे हैं।

स्त्री पुरुष के लिए सम्मोहन की वस्तु है, जो अपने यौवन और सौन्दर्य से पुरुष को आकर्षित करती है-

"रुपक आगरि नारि कुसुमसर तन्ते वखनिअ।
तारून्य कहानी कहजु तेहि जुवति पर चित हर।''[3]

अर्थ-रूप की खान 'नारी' को कामतन्त्र कहा जाता है। गर्व से मादकता के मूल, जिसके गुण से सब उसे अपना जानते हैंय चन्दन, चन्द्र, चकोर, कमल और सुवर्ण ने मिलकर जिसे सजाया हैय जिसकी रत्नवलयों की झंकार से ध्यानावस्थित मुनिजन भी भग्न हो जाते हैंय अपने नयन, वचन, कर और चरणों की गति से जिसे जिस क्षण कुछ भी वह भा जाती है, मोह लेती हैय यौवन की कहानी क्या कहूँय वह युवती दूसरों के चित को हर लेती है।

स्त्री श्रृंगार की एक मांसल, कोमल, कमनीय वस्तु है, जो पुरुष के उपभोग के लिए बनी है-

"धम्मिल्ल धरि पिअ पास आनलि आंग विभम मोलई। ...
सन्तोस रोस विसेस विभु मह ससइ विहसइ रोअइ।''[4]

अर्थ-नायिका आलिंगनबद्ध होने पर परम सुख की अनुभूति करती हैय मधुपान की लोभी अधरदंश देखकर काँपती हैय गोरी, नखक्षत (नखों से खंडित) रेखा से शोभित, स्थूल स्तनों से मन हरती हैय स्वामी में विशेष अनुराग और रोष के कारण सी-सी करती है, हँसती है और रोती है।

युग बदलता है, पर स्त्री की समस्या यथावत रह जाती है। वह पुरुष द्वारा स्वयं पर होने वाले अनैच्छिक व्यवहार पर रोती है, पीड़ा से कराहती है, पर उत्पीड़न के विरोध में कुछ भी नहीं बोल पाती। प्रस्तुत प्रसंग में स्त्री भीरु प्रवृति की दृष्टिगत होती है-

"लुब्ध नाअक माग परिहास...

नारि नवोढा पिअ सबल अनुचित रसिक अनङ्ग...।। 26।।'[5]

अर्थ-नायक काम-लोलुप है। वह परिहास माँगता है। युवती कायर है। वह प्रण करती हैय ना ना करती है और हाथ से हाथ हटाती हैय आँखों से आँसू बहाती हैय काम की क्रीड़ाकला में थकावट अनुभव करती है। स्त्री नवविवाहिता (अबला) है। प्रिय सबल है। काम अनुचित रसिक बन गया है। दोनों का समागम संभव हो गया। काम हृदय में समा नहीं पाता है।

सिमोन द वोउवार 'द सेकेण्ड सेक्स' में लिखती हैं–

''बचपन से लेकर युवावस्था तक उसे जिन परिस्थितियों में रखा जाता है एवं जो शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, उसके कारण स्त्री पुरुष से भिन्न होती है। ...स्त्री बनती नहीं बनायी जाती है।'[6]

तसलीमा नसरीन लिखती हैं-

''स्त्री को डरना एंव लज्जालु होना पुरुष-प्रधान समाज ने सिखाया है, क्योंकि भयभीत एंव लज्जालु रहने पर पुरुषों को उसपर अधिकार जताने पर सुविधा होती है। इसलिए डर और लज्जा को स्त्री का आभूषण कहा जाता है।''[7]

इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं-

''समाज में नारी पुरुष की अपेक्षा कमजोर मानी जाती है....। पुरुष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट-कूट कर भर दी है कि वह एक शरीर है। वह शरीर के सिवा उसकी किसी भी पहचान से इनकार करता है। ...पुरुष नारी को उतनी ही शिक्षा देता है, जितनी उसके स्वार्थ में बाधक न हो।'[8]

3. पदावली में स्त्री

पदावली में तीन प्रकार के पद हैं-स्तुतिपरक पद, राधा-कृष्ण संबद्ध पद और भक्तिपरक पद।

स्तुतिपरक पद-

पुरुष प्रधान समाज के लिए स्त्री शरीर ही प्रमुख है। प्रस्तुत पद में पुरुष कामुकता के समक्ष विवश स्त्री की पीड़ा झलक रही है -

"जति-जति धमिअ अनल, अधिक विमल हेम।

रभस कोप कए कहु नागर, अधिक करए प्रेम। ।

साजनि मने न करिअ रोस।'[9]

अर्थ-सोना को आग में जितना फूँका जाता है, उतना ही अधिक विमल होता है। नागर आवेश में जितना अधिक क्रोध करता है, उतना ही अधिक प्रेम करता है। हे सखि, मन में रोष मत करो। स्वामी आर्त होकर जो कुछ बोलता है, उसमें उसका दोष नहीं। तुमने कितनी विवशता दिखलाई, कितनी शपथ ली, फिर भी वह मानने वाला नहीं। कारण वह अनंग भुजंग नहीं, जो हवा पीकर जीता है। अर्थात, अनंग की तृप्ति के लिए तुम्हारा रुप आवश्यक है। ...

राधा-कृष्ण संबद्ध पद

प्रस्तुत पद में राधा-कृष्ण के प्रणय के माध्यम से स्त्री का कामोत्तेजक स्वरुप छलक उठा है-

"दरसने लोचन दीघर धाब

दिनमणि तेजि कमल जनि जाब। ...

एकसर सब दिस देखिअ कान्ह।

भनइ विद्यापतीत्यादि। ।''[10]

अर्थ-कृष्ण के दर्शन पर आँखें दीर्घ होकर उनके पीछे दौड़ पड़ी, जैसे कमल को त्यागकर सूर्य जा रहा हो और कमल लालायित होकर उसके पीछे दौड़ रहा हो। दर्शन के बाद ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कुमुदिनी और चन्द्रमा का सहवास हुआ हो। मैनें छल से कामदेव

के विकास को छिपाया। हे सखी, आज मैनें कृष्ण को देखा और लज्जा से अपनी महिमा छोड़कर भाग गई। नीवी खिसककर भूमि पर गिर पड़ा और देह स्वयं देह के आश्रय में जा छिपा। अपना हृदय भी दूसरे व्यक्ति जैसा अनुभूत होने लगा। अकेले कृष्ण ही सभी दिशाओं में दिखाई देने संयोगश्रृंगार के इस प्रसंग में मैथिल बाला के प्रथम समागम का काव्यात्मक चित्र अनुभूतिगम्य ही नहीं अपितु दृश्यगम्य है-

"प्रथम समागम भूषल अनंड्ग धनि रस राषि करब रतिरंग।
लोभ न करबे आइति पाएबड़ेओ भुषल नहि दुइ करे खाए।। ...''[11]

अर्थ-प्रथम समागम है और कामदेव भूखा है, फिर भी नायिका के रस की रक्षा करके रति-रंग कीजिएगा। अधीन पाकर अधिक लोभ नहीं कीजिएगा। बहुत भूखा भी दोनों हाथों से नहीं खाता है। हे कृष्ण, यदि आप समर्थ हैं, तो कौन नहीं जानता कि महावत से हाथी झुकता है। यत्नपुर्वक बहुत अनुरोध करके इसे लायी हूँ, इसलिए पहले इसका प्रबोध कीजिए। बलपूर्वक कामक्रीड़ा नहीं कीजिएगा, कारण कामिनी कोमलांगी है। वह संग का विघटन कर देगी। जबतक नायिका में औत्सुक्य रहे तभी तक विलास कीजिएगा। एक बार छोड़कर फिर उसका हाथ नहीं पकड़िएगा। राहु एकबार चन्द्रमा उगलकर फिर नहीं निगलता है। लगे।

स्त्री पितृसत्तात्मक समाज की चाभी वाली वह गुड़िया है, जो पुरुष के चाभी भरते ही संभोग के लिए तैयार हो जाती है। ऐसी आज्ञाकारिणी कामिनी प्रत्येक पुरुष की आकांक्षा पर खड़ी उतरेगी?

"अधर मगइते अओध कर माथ
सहए न पार पयोघर हाथ......।''[12]

अर्थ-नायक द्वारा नायिका से अधरपान के माँगते ही, नायिका माथा नीचे कर लेती है। स्तन के उपर प्रिय का हाथ सहन नहीं कर सकती। खुली नीवी को हाथ से पकड़कर रखती है। ...

स्त्री का तन पुरुष के लिए सिर्फ संभोग का यंत्र होता है-

"आकुर चिकुर बेढ़ल सुख सोभ......
किङकिनि रनित नितम्बहि छाज
मदन महासिधि बाजत बाज
भनइ विद्यापतीत्यादि।।''[13]

अर्थ-3 प्रौढ़ नायक-नायिका का मिलन बड़ा अपूर्व है, क्योंकि कामिनी विपरीत रति-रुपी केली कर रही है। श्रमजनित जल-बिन्दु से नायिका का मुख शोभायमान है, ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव ने मोती से चन्द्रमा की पूजा की हो। 3 बजती हुई किंकणी नितम्ब पर शोभती है, ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव की महासिद्धि के बाजे बज रहे हैं।

भक्तिपरक पद

विद्यापति की साहित्य-साधना और भक्ति-साधना क्रमशरू संभोग से समाधि की ओर उन्मुख है। विद्यापति की भक्ति-भावना लौकिक है। इनके आराध्य राधा-कृष्ण पति-पत्नी नहीं, अपितु प्रेमी-प्रेमिका हैं। प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय सामाजिक बंधन-युक्त होने के कारण छिप-छिप कर होता है, जबकि पति-पत्नी का प्रणय बंधन-मुक्त और स्वतंत्र। यही कारण है कि प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय अधिक प्रगाढ़, तीव्र और उन्मादकारी होता है। वे जहाँ भी उन्मुक्त होते हैं, लौकिक मर्यादा को एक ओर कर प्रणय की पराकाष्ठा पर पहुच जाते हैं। यही प्रणय की पराकाष्ठा, विद्यापति के भक्तिभावना का मेरुदन्ड है। इसे ही भावक अश्लीलता कहते हैं। विद्यापति ने अपनी भक्ति-भावना के लिए इसी तीव्रता युक्त परकीया प्रेम को अपनाया है। इस लौकिक प्रणय को वे आध्यात्मिक भक्ति में परिणत कर देते हैं। राधा आत्मास्वरुपा है तो कृष्ण परमात्मास्वरुप है। आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

विद्यापति के भक्तिभावना के संदर्भ में प्रो. मैनेजर पाण्डे लिखते है कि लौकिक प्रेम ही ईश्वरोन्मुख होकर भक्ति में परिणत हो जाता है। लौकिक प्रेम भी जोड़ने का काम करता है और ईश्वरीय प्रेम भी। मिथिला की संस्कृति में स्त्री शक्ति को प्रधानता दी गई है। इसलिए शक्तिरुपा दूर्गा के विविध रुपों की प्रबल उपासना की परंपरा लक्षित होती है-

"कनक भूधर-शिखर वासिनी, चन्द्रिका चय चारु हासिनी।
दशन कोटि विकास, बंकिम तुलित चन्द्रकले। ...

जगति पालन-जनम-मारन रुप कार्य सहस्र कारण।

हरि विरंची महेश शेखर चुम्ब्यमान पदे। ..

कामना फलबे''[14]

प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय सामाजिक बंधन-युक्त होने के कारण छिप-छिप कर होता है, जबकि पति-पत्नी का प्रणय बंधन-मुक्त और स्वतंत्र। यही कारण है कि प्रेमी-प्रेमिका का प्रणय अधिक प्रगाढ़, तीव्र और उन्मादकारी होता है। वे जहाँ भी उन्मुक्त होते हैं, लौकिक मर्यादा को एक ओर कर प्रणय की पराकाष्ठा पर पहुच जाते हैं। यही प्रणय की पराकाष्ठा, विद्यापति के भक्तिभावना का मेरुदन्ड है। राधा आत्मास्वरुपा है तो कृष्ण परमात्मास्वरुप है। आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

पापनाशिनी काली के प्रचण्ड शक्ति से ब्रह्मांड कंपयमान हो जाता है-

"जय, जय, जय असुर भयाविनी, पसुपति-भामिनी माया।''

सहज सुमति बर दिअओ गोसाउनि, अनुगति गति तुअ पाया। । 3''[15]

अर्थ – हे असुर लोगों को भय प्रदान करने वाली भैरवी, तुम पशुपति की पत्नी माया हो। तुम्हारी जय हो! जय हो!....

बेमेल विवाह स्त्री-जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। मिथिलांचल में होनेवाले बेमेल विवाह प्रथा से उत्पन्न स्त्री के जीवन की करुण पीड़ा की हुक अनुभूत होती है। अभी भी मिथिलांचल के निम्न वर्ग के मध्य, बेमेल विवाह-प्रथा प्रचलित है। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक परिपक्व और कर्मठ होती है। विवाहोपरान्त उसके घर-गृहस्थी को अच्छी तरह से संभालती है। यह प्रथा पुरुष-समाज को जितनी लाभान्वित करती है, उतनी ही स्त्री समाज को हानि।

"पिया मोर बालक हम तरुणी, कौन तप चुकलहुँ भेलहुँ जननि।''

"पिया खेलि गोद कए चललि बजार, हटियाक लोक पुछे के लागु तोहार। ।''

"बाट रे बटोहिया तोंहि मोर भाइ, हमरो समाद नैहर लेने जाइ।

कहिहुन बाबा किनय धेनु गाय, दुघवा पिलाय कँे पोसता जमाइ। ।''[16]

राजा शिवसिंह के अन्तर्हित हो जाने के पश्चात रानी लखिमा देवी बारह वर्षों की प्रतीक्षा के अनन्तर अपने पति के पुतले के साथ सती हो जाती है। प्रस्तुत पद में पति विहीन मैथिल स्त्री की वेदना अनुभूत होती है-

"3सून सेज हिए सालय रे, पिया बिनु घर मोय आजि।

बिनति करउँ सहलोलिन रे, मोहि देह अगिहर साजि।''[17]

मैथिल समाज की स्त्रियां पितृसत्ता के कठोर नियंत्रण में रहती है। पति ही स्त्री का सर्वस्व होता है। जिस प्रकार मालती मधुकर को अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है ताकि लतिका में ही न सुख जाए, उसी प्रकार स्त्री को पतिव्रत धर्मिणी होनी चाहिए नहीं तो वह कुलटा कहलाएगी।

"कुलटा भए यदि प्रेम बढ़ाबिय तँ जीवन की काज।

तिला एक रंग रभस सुख पाओब रहत जनम भरि लाज। ।

कुल कामिनी भए निअ पिअ विलसए अपथे कतहु न जाई।

की मालति मघुकर उपभोगय किंवा लताहि सुखाई।''[18]

तत्कालीन पितृ-प्रधान मैथिल समाज में स्त्री को पति के दोष पर रोष नहीं, बल्कि अनुनय-विनय कर सदैव क्षमा करने के लिए बाध्य किया जाता था -

"परगट करब न सुपहुक दोस, राखब अनुनय अपन भरोस।''[19]

क्योंकि पति को स्त्री का सर्वस्व माना जाता था-

"धिक त्रिय जे कर प्रिय पर कोप, कुल कामिनी जन प्रेमक लोप। ।

भल जन महँ हो अपयश ख्यात, प्रियतम मन सँ होएव कात। ।''[20]

अर्थ-जो स्त्री स्वामी के अपराध को क्षमा नहीं करती, प्रत्युत उसपर हावी हो जाती है, उसे धिक्कार है! सभ्य समाज में उसकी निंदा होती है और साथ ही स्वामी उसको अपने हृदय से हटा लेता हैय जिससे स्त्री का जीवन सूना, कष्टकारक और विषमय हो जाता है, क्योंकि स्वामी को छोड़कर स्त्री की दूसरी गति इस संसार में नहीं है।

"नागरि सैह जगत गुन आगरि जे क्षेम पति अपराध।" [21]

तत्कालीन समाज में स्त्री को क्षमा की मूर्ति बनाया जाता था, ताकि कृत्रिम देवी बनकर, आजीवन पुरुष की गलती को क्षमा करती रहे।

साहित्य समीक्षा

विद्यापति के साहित्य के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मैथिल स्त्रियां पुरुष के दबदबा से आक्रांतरहती थीं। घरेलू स्त्रियों को प्रतिष्ठा के आढ़ में पतिव्रता बनने के लिए दबाव डाला जाता था। यदि वे ऐसा नहीं करती तो उन्हें कुलटा कहकर समाज और परिवार से बहिष्कृत कर दिया जाता था। पुरुष समाज इसका अपवाद था। अगर वह अन्यत्र प्रेम करता है तो उसे न समाज बहिष्कृत करता है, न ही परिवार। यदि स्त्री कुलटा बनती है, तो उसे कुलटा बनानेवाला पुरुष ही होता है। मैथिल समाज में स्त्रियों के साथ होनेवाला लिंगभेद पितृसत्ता के वर्चस्व को दर्शाता है।

निष्कर्ष

विद्यापतिअपने साहित्य में स्त्री कोपुरुषवादी दृष्टिकोण से देखते हैं। उन्हें स्त्री का कामिनी रुप अत्यधिक आकर्षित करता है। उनकी दृष्टि, स्त्री के तन पर जितनी तन्मयता से केन्द्रित होती है, उतनी तन्मयता से उसके मन पर नहीं। स्त्रीउनके साहित्य में श्रृंगार की एक मांसल, कोमल, कमनीय वस्तु है, जो पुरुष के उपभोग के लिए बनी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यापति के साहित्य का स्त्री-देह बोध समकालीन स्त्रीवाद के समानांतर है।

संदर्भ

1. कविकोकिल विद्यापति कृत विद्यापति ठाकुर, कीर्तिलता, पृ.सं.-38, संपा. डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
2. विद्यापतिः अनुशीलन और मूल्यांकन, खण्ड-2, पृ.सं. 50, संपा. डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
3. वही [प्रथम खण्ड, पृ.सं. 279, पं. 111-116,]
4. वही [प्रथम खण्ड, पृ.सं. 278, पं. 102-106,]
5. वही [पं.16-20,]
6. प्रभा खेतान, स्त्रीः उपेक्षिता, सीमोन द बोउवार (1992)
7. तसलीमा नसरीन, ''और मत रखो अँधेरे में, देखने दो मुझे'', पृ.सं.153, 3।
8. राजेन्द्र यादव, आदमी के निगाह में औरत, पृ.सं.15-16, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
9. विद्यापति पदावली (प्रथम भाग), पृ.सं. 143, पद सं. 108, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना।
10. वही, पृ.सं. 91, पद सं. 67
11. विद्यापतिः अनुशीलन और मूल्यांकन, खण्ड-2, पृ.सं.109, पद सं.49, संपा.डॉ.वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
12. विद्यापति पदावली (प्रथम भाग), पृ.सं.-330, पद सं-236, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना।
13. वही, पृ.सं. 123, पद सं. 93
14. विद्यापतिः अनुशीलन और मूल्यांकन, खण्ड-2, पृ.सं. 65-66, पद सं. 5, संपा. डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
15. वही, पृ.सं. 62, पद सं.1
16. नरेन्द्र नाथ दास विद्यालंकार, विद्यापति काव्यालोक, पृ.सं. 16, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
17. वही, पृ.सं. 171
18. वही, पृ. सं. 224
19. वही, पृ. सं. 225
20. वही, पृ. सं. 224
21. वही, पृ. सं. 224

विकासात्मक मनोविज्ञान और जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

अर्चना कुमारी

शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

परिचय

विकासात्मक मनोविज्ञान (डेवलपमेंटल साइक्लोजी) एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो मनुष्य के जीवन में हो रहे परिवर्तन के बारे में बताता है। मूल रूप से यह शिशुओं और बच्चों से संबंध रखता है पर इस क्षेत्र में किशोरावस्था, वयस्क विकास, उम्र बढ़ने और पूरे जीवनकाल को भी लिया गया है। विकासात्मक मनोविज्ञान के तीन लक्षय हैं-विकासात्मक को वर्णन करना, समझाना और अनुकूलन करना। एरिक एरिक्सन एक प्रभाविक मनोविज्ञानी हैं जिन्होंने 'ऐरिक्सन का मनोसामाजिक विकास सिद्धान्त' विकास के अपने चरणों का प्रस्ताव दिया। विकासात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा मानी जाती है।

मानसिक विकास के चरण

प्रसव-पूर्व विकास

शीघ्र मानसिक विकास को समझने के लिए मनोविज्ञानिको को प्रसव पूर्व विकास में चाह है। कीटाणु मंच, भ्रुण अवस्था और भ्रूण चरण प्रसव पूर्व विकास के तीन मुख्य चरण है। कीटाणु चरण की आरम्भ 2 सप्ताह तक गर्भाधान में हो जाती है। भ्रूण अवस्था का मतलब है विकास 2 सप्ताह से 8 सप्ताह तक और भ्रूण चरण बच्चे के जन्म तक नौ सप्ताह का प्रतिनिधित्व करता है। होश गर्भ में ही विकसित हो जाता है। दूसरी तिमाही (13-24 सप्ताह) में होने तक एक भ्रुण दोनो देख और सुन भी सकता है। स्पर्श की भावना भ्रूण चरण (5-8 सप्ताह) में विकसित हो जाती है। मस्तिष्क के ज्यादा तर न्यूरॉन दूसरी तिमाही तक विकसित हो जाते है।

कुछ मौलिक सजगता भी जन्म से पहले ही पैदा हो जाती है और नवजात शिशुओ में मौजूद भी र]ती है। अल्ट्रासाउंड में दिखाया जाता है कि शिशु गर्भ के अंदर आंदोलन कर सकते है। जन्म के बाद शिशु अपनी माँ की आवाज को सुन और समझ भी सकता है। अवैध ड्रग्स, तंबाकू, शराब, पर्यावरण प्रदूषण लेने से माँ और शिशु दोनो को नुकसान पहुँच सकता है और कई पर्यावरणीय एजेंडा जन्म के पूर्व की अवधि के दौरान नुकसान पहुँचा सकता है।

शैशव

जन्म से पहिले वर्ष तक बच्चा शिशु माना जाता है। ज़्यादा तर सारे नवजात शिशु अपना समय सोने में निकाल देते है। शिशु दिन-रात सोते है पर कुछ महीने गुजर जाने के बाद शिशु आमतौर पर प्रतिदिन सोता है। शैशव अनुभूति के ऊपर थोडी दृष्टि डालते है। शैशव अनुभूति का मतलब जो नवजात शिशु देख सकता, गंध, स्वाद और स्पर्श, सुन सकता हैं। ज्यादा तर शिशुओ की दृष्टि वयस्क बच्चों से खराब होती है।

शिशुओ की दृष्टि प्रारंभिक दौर में धुँधली होती है पर समय के साथ सुधरने लगती है। छह महीने हो जाने के बाद शिशु की दृष्टि अच्छी हो जाती है। सुनवाई दृष्टि के विपरीत, जन्म से पूर्व अच्छी तरह से विकसित है। शिशु एक ध्यानि से आती दिशा को

पता लगाने में काफी अच्छे है और 18 महीने से उनके सुनने की क्षमता एक वयस्क के लगभग बराबर है। नवजात शिशु गंध और स्वाद वरीयताओ के साथ जन्म लेता है। शिशु अलग अभिव्यक्ति दिखलाता है जब उसको सुखद या अप्रिय गंध और स्वाद से परिचित कराया जाता है।

स्पर्श और महसूस करना दोनो ऐसी समझ है जो पहले गर्भ में विकसित हो जाती है। भाषा विकास नवजात शिशु मानव के सभी भाषाओं की लगभग सभी धध्वनियों में भेदभाव करने की क्षमता के साथ पैदा होते है। छह महीने के आसपास के सारे शिशु अपनी भाषा में स्वनिम के बीच अंतर कर सकते है पर अलग भाषाओं में स्वनिम के बीच अंतर नही कर सकते। इस अवस्था में शिशु प्रलाप करना शुरू करते हुए स्वविम का उत्पादन करते है।

शिशु अनुभूति शिशु की अनुभूति को समझने के लिए 'जाँ प्याजे' एक प्रसिद्ध नामक विकासात्मक मनोविज्ञानी ने अनुभूति विकास के सिदधांत लिखे है। पियाजे के अनुसार शिशुओ को दुनिया की समझ और अनुभूति मोटर विकास के द्वारा हो सकती है और इसी के साथ वस्तु को छूने या पकडने से शिशु को वस्तु के बारे में पता चलता है। पियाजेट यह भी कहते है कि शिशुओं को 18 सप्ताह से पहले वस्तुओं की कोई समझ नही होती बल्कि शिशु उस वस्तु को बार-बार देखने और समझने की कोशिश करता है।

शिशु अवस्था

जब शिशु एक या दो वर्ष के हो जाते है तो उस विकासात्मक चरण को शिशु अवस्था कहते है। कैसे चलना, बात करना और कैसे अपने बारे में निर्णय लेना है, शिशुओ इस चरण में सीखना शुरू करता है। इस चरण में शिशुओ की भाषा में विकास होता है। आसपास के लोगो से संवाद करने और अपनी भावनाओं को दिखाने के लिए मुखर आवाज, बड्बडा और अंत में शब्दों का प्रयोग करते है।

बचपन

बचपन मानसिक विकास का चौथा चरण माना जाता है। इसको श्खोजपूर्ण उम्रश और शखिलौना उम्रश भी कहा जाता है। जब बच्चे बढ़ते है तो उनके अतीत अनुभवो से उनके जीवन का आकार होता है और दुनिया को समझने की क्षमता मिलती है। तीन वर्ष से ही बच्चों की भाषा का विकास होता है। बच्चे 900-1000 अलग शब्द और हर दिन 12000 शब्दो का उपयोग करता है। छह वर्ष होने तक बच्चा 2, 600 शब्द का उपयोग करता है और 20, 000 शब्दो को समझते है। बच्चों की समझने की क्षमता इस वर्ष तक बढ़ जाती है और विधालय जाने से उसको बहुत कुछ सीखने को मिलता है। बच्चे इस उम्र में आसानी से दोस्त बना लेते है। भाषा विकास होने से बच्चो को ज्ञान और कौशलता भी प्राप्त होता है और अपने लोगो से र्वातालाप करने और समझने में आसानी होती है। ब्च्चे लोगो को पहचानने लगते है। बच्चों के अच्छे या बुरे व्यवहार में परवरिश शैली और उसके आसपास के वातावरण का बड़ा योगदान होता है। मध्यम बचपन या बालपन : 9 वर्ष-11 वर्ष के बच्चे मध्यम बालपन के कहलाते है। बच्चों का मोटर विकास जारी रहता है। इस चरण में बच्चो को स्थानिक अवधारणाओ, करणीय संबंध, वर्गीकरण, अधिष्ठापन और वियोजक कारणो और संरक्षण में समझने की क्षमता बढ़ जाती है। बच्चो में लिखने की क्षमता पठन करने से ही बढ़ती है। इस चरण में बच्चो के लिए अपना आत्म स्म्मान बहुत महत्वपूर्ण लगता है। पैतृक प्रभाव और साथियों के दबाव से बच्चो के मानसिक विकास पर असर डालता है। मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण चरण बचपन है।

किशोरावस्था

समाज में बचपन से युवावस्था का आकलन एक बहुत बडेघ् समय के अतंराम में किया जाता है। इसकी शुरुआत यौवनारंभ के साथ होती है जिससे इंसान शारीरिक रूप से यौन संबंध बनाने हेतु और प्रजनन हेतु तैयार हौ जाता है। भावनात्मक परिपक्वता इस बात पर निर्भर करती है कि मनुष्य अपनी पहचान खुद बनाले, आत्म निर्भर हो जाए तथा समाज में उसकी प्रशंसा हो। परंतु कुछ लोग कभी भी मानसिक रूप से प्रौढ़ नही होते चाहे वे शारीरिक रूप से कितने भी बडेघ् क्यो ना हो जाए। शुरआती वयस्कता बचपन से जवानी की दहलीज पर कदम रखने से शुरु होती है, जहाँ सामाजिक रूप से भी बड़ा होता है। वह संभोग एवं प्रजनन तथा अपनी देखभाल करनेवाला हो जाता है।

यौवन-इसकी शुरुआत तेजी से सेक्स हार्मोन के बनने से होती है। लड़कियों में इसके लक्षण है-अंडाशय में एस्ट्रोजन बढ़ जाती है, जिसकी वजह से महिला जननांगों में विकास होता है। लड़कों में इसके लक्षण है-वृषण में एण्ड्रोजन बढ़ जाती है, विशेष रूप से टेस्टोस्टेरोन, जिसकी वजह से पुरुष गुप्तांग, मांसपेशियों और शरीर के बाल में विकास होता है।

शुरुआती अवस्था-यह करीब दो वर्षो तक चलती है। इसके खत्म होते ही इंसान यौन परिपक्वता करने योग्य हो जाता है। लडकियों में करीब 11-13 वर्षों की उम्र में अपने उम्र के लड़कों से उम्रदराज और मोती हो जाती है। लड़कों में यह अवस्था 14-16 वर्षो में आती है और इस वर्षो में लड़के अपने उम्र की लड़कियां से लंबे तथा शारीरिक रूप से मजबूत होते है। लड़कियाँ और लड़कों का अपना सारा विकास 18 वर्षो में हो जाता है। युवावस्था के प्रारंभिक लक्षण जननांग की वृद्धि तथा संभोग हेतु तैयार होने से जुडी होती है। व्दितीय लक्षण मानसिक रुप से संभोग हेतु तैयार होने से है। इस दौरान युवकों के गलत रास्ते पर चलने ड्रग्स इत्यादि के सेवन के खतरे बढ़ जाते है।

जवान युवावस्था

यह युवावस्था का सही समय होता है। इस समय में शारीरिक और मानसिक रूप से काफी सबल होने है। शरीर के सारे अंग सही काम कर रहे होते है। मध्यावस्था 20-15 वर्षों में, शरीर के अधिकतर अंग पूर्ण से विकसित होते है। 20-40 वर्षो के अंतराल में नजर, श्वान, स्पर्श तथा कानद्धसुनने हेतु) पूर्ण रूप से विकदित होते है। 45 के बाद कान के सुनने की शक्ति कम होने लगती है, खासकर ज्यादा हेज ध्वनि के प्रति।

अनुवांशिक संक्रमण तथा स्वास्थ्य बहुत सारी बिमारियाँ बहुत सारे तथ्यो पर निर्भर करती है। अनुवांशिक और प्रकृतिक दोनो का मनुष्य के जीवन पर काफी प्रभाव पडता है। श्मोटापाश इसका एक बहुत बड़ा कारण है। इसके अलावा अन्य कारण है, कसरत की कमी, धूम्रपान और कुपोषण।

माध्यामिक युवावस्था

उम्र के इस पडाव का कोई सामाजिक तथा जैविक संबंध नही है। स्वास्थ्य में सुधार तथा आपुमे बढोत्तरी हेतु यह उम्र का पडाव काफी महत्वपूर्ण है। 40-65 आयु अधिकतर लोगो के बीच दुरियाँ लाता है। इस उम्र में मनुष्य पर कफी जिम्मेदारियां आ जाती है तथा उसे अनेक भुमिकाएँ निभानी पडती है। मध्यमवयीन के अधिकतर लोग अपना स्थान बना चुके होते है तथा पूर्णत: स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत कर रहे होते है। सफलता, काम तथा समाजिक जिम्मेदारियों के बीच समाज का बंधन स्वीकार नही कर पाते।

वृद्धावस्था

आजकल मनुष्य की आयु लंबी होती जा रही है, खासकर विकसित देशो में। आर्थिक सपंन्नता, अच्छा खाना, रोगों का अच्छी तरह से उपचार, साफ पानी तथा अच्छे चिकित्सालय इसके कारण है। प्रारंभिक आयुवोदि धिरे-धिरे होती है तथा उम्र के शुरवाती आदतो पर निर्भर रहती है। इसे आप रोक नही सकते। द्वितिय आयुवृर्धि्द वीमारी के कारण।

जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक जीन पियाजे, स्विट्जरलैंड के निवासी थे। जीन पियागेट एक स्विस मनोवैज्ञानिक और आनुवंशिक एपिस्टेमोलॉजिस्ट थे। वह सबसे अधिक संज्ञानात्मक विकास के अपने सिद्धांत के लिए प्रसिद्ध है जो इस बात पर ध्यान देता है कि बचपन के दौरान बच्चे बौद्धिक रूप से कैसे विकसित होते हैं।

पियागेट के सिद्धांत से पहले, बच्चों को अक्सर केवल मिनी-वयस्कों के रूप में सोचा जाता था। इसके बजाय, पियागेट ने सुझाव दिया कि जिस तरह से बच्चे सोचते हैं, वह उस तरह से अलग है, जिस तरह से वयस्क सोचते हैं।

उनके सिद्धांत का मनोविज्ञान के भीतर एक विशिष्ट उपक्षेत्र के रूप में विकासात्मक मनोविज्ञान के उद्भव पर जबरदस्त प्रभाव था और शिक्षा के क्षेत्र में बहुत योगदान दिया। उन्हें रचनावादी सिद्धांत के एक अग्रणी के रूप में भी श्रेय दिया जाता है, जो बताता है कि लोग अपने विचारों और अपने अनुभवों के बीच की बातचीत के आधार पर सक्रिय रूप से दुनिया के अपने ज्ञान का निर्माण करते हैं।

2002 के एक सर्वेक्षण में पियागेट को बीसवीं शताब्दी के दूसरे सबसे प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक के रूप में स्थान दिया गया था।

- o सर्वप्रथम संज्ञानात्मक पक्ष का क्रमबद्ध व वैज्ञानिक अध्ययन स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे के द्वारा किया गया।
- o संज्ञान-प्राणी का वह व्यापक और स्थाई ज्ञान है जिससे वह वातावरण‍ उद्दीपक जगत‍ बाह्य जगत के माध्यम से ग्रहण करता है।
- o समस्या समाधान, समप्रत्ययीकरर्ण (विचारों का निर्माण), प्रत्येकक्षण (देखकर सीखना) आदि मानसिक क्रियाएं सम्मिलित होती है। यह क्रियाएं परस्पर अंतर संबंधित होती हैं।
- o जीन पियाजे का संज्ञानात्मक पक्ष पर बल देते हुए संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का प्रतिपादन किया था इसीलिए जीन पियाजे को विकासात्मक मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है।
- o विकासात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत शुरू से अंत तक अर्थात गर्भावस्था से वृद्धावस्था तक का अध्ययन किया जाता है
- o विकास प्रारंभ होता है – गर्भावस्था से
- o संज्ञान विकास – शैशवअवस्था से प्रारंभ होकर जीवन पर्यंत चलता रहता है।

1. संवेदी पेशीय अवस्था‍ इंद्रिय जनित अवस्था – 0 से 2 वर्ष
   - जन्म के समय शिशु वाह जगत के प्रति अनभिज्ञ होता है धीरे-धीरे व आयु के साथ साथ अपनी संवेदनाएं वह शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से बाय जगत का ज्ञान ग्रहण करता है
   - वह वस्तुओं को देखकर सुनकर स्पर्श करके गंध के द्वारा तथा स्वाद के माध्यम से ज्ञान ग्रहण करता है
   - छोटे छोटे शब्दों को बोलने लगता है
   - परिचितों का मुस्कान के साथ स्वागत करता है तथा आप परिचितों को देख कर भय का प्रदर्शन करता है
2. पूर्व सक्रियात्मक अवस्था : 2 से 7 वर्ष
   - अवस्था में दूसरे के संपर्क में खिलौनों से अनुकरण के माध्यम से सीखता है
   - खिलौनों की आयु इसी अवस्था को कहा जाता है
   - शिशु, गिनती गिनना रंगों को पहचानना वस्तुओं को क्रम से रखना हल्के भारी का ज्ञान होना
   - माता पिता की आज्ञा मानना, पूछने पर नाम बताना घर के छोटे छोटे कार्यों में मदद करना आदि सीख जाता है लेकिन वह तर्क वितर्क करने योग्य नहीं होता इसीलिए इसे आतार्किक चिंतन की अवस्था के नाम से भी जाना जाता है
   - वस्तु स्थायित्व का भाव जागृत हो जाता है
   - निर्जीव वस्तुओं में संजीव चिंतन करने लगता है इसे जीव वाद कहते हैं
   - प्रतीकात्मक सोच पाई जाती है
   - अनुकरण शीलता पाई जाती है
   - शिशु अहम वादी होता है तथा दूसरों को कम महत्व देता है
3. स्थूल / मूर्त संक्रिया त्मक अवस्थारू 7 से 12 वर्ष
   - इस अवस्था में तार्किक चिंतन प्रारंभ हो जाता है लेकिन बालक का चिंतन केवल मुहूर्त प्रत्यक्ष वस्तुओं तक ही सीमित रहता है
   - वह अपने सामने उपस्थित दो वस्तुओं के बीच तुलना करना, अंतर करना, समानता व असमानता बतलाना, सही गलत व उचित अनुचित में विविध करना आदि सीख जाता है
   - इसीलिए इसे मूर्त चिंतन की अवस्था के नाम से भी जाना जाता है

- बालक दिन, तारीख, समय, महीना, वर्ष आदि बताने योग्य हो जाता है
- उत्क्रमणीय शीलता पाई जाती है इसीलिए इसे पलावटी अवस्था के नाम से भी जाना जाता है
- भाषा एवं संप्रेषण योग्यता का विकास की अवस्था में हो जाता है

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्थारू 12 वर्ष के बाद
   - इस अवस्था में किशोर मूर्ति के साथ साथ अमूर्त चिंतन करने योग्य भी हो जाता है
   - इसीलिए इसे तार्किक चिंतन की अवस्था के नाम से भी जाना जाता है
   - इस अवस्था में मानसिक योग्यताओं का पूर्ण विकास हो जाता है
   - इस अवस्था में परीकल्पनात्मक चिंतन पाया जाता है

सन्दर्भ

- मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास (आनलाइन गूगल पुस्तकय लेखक-अनुण कुमार सिंह)
- मनोविज्ञान के जाँच एवं परीक्षण (गूगल पुस्तकय लेखक-राणाप्रताप सिन्हा)
- भारतीय मनोवैज्ञानिक संघ
- मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियाँ (गूगल पुस्तक य लेखक-रामजी श्रीवास्तव)
- मनोविज्ञान और इसकी विषय-वस्तु ('समय के साये में' पर प्रस्तुत मनोविज्ञान शृंखला से)
- मनोविज्ञान संबंधी धारणाएं-इतिहास के झरोखे से-('समय के साये में' पर प्रस्तुत मनोविज्ञान श्रृंखला से)
- व्यवहारवाद और मनोविश्लेषण (फ्रायडवाद) ('समय के साये में' पर प्रस्तुत मनोविज्ञान श्रृंखला से)
- सामान्य मनोविज्ञान की संकल्पना ('समय के साये में' पर प्रस्तुत मनोविज्ञान श्रृंखला से)

समकालीन हिन्दी कविता में चित्रित स्त्री-संवेदना

डॉ० प्रीति बैश्य

सहकारी अध्यापिका, हिन्दी विभाग, प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

सार-संक्षेप

समकालीन कविता आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य की वह काव्याधारा है जिसने नयी चेतना, नयी संवेदना और शिल्प के क्षेत्र में रूप-विधान के नए विकसित आयाम के साथ काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। समकालीन कविता अपने समय और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है। मानवीय संवेदना, स्त्री-अस्तित्व, स्त्री-शिक्षा, दया, करुणा, सहानुभूति आदि का चित्रण समकालीन कविता में मिलता है। स्त्री-संवेदना की दृष्टि से अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, गगन गिल, नीलेश रघुवंशी, नील कमल, अजंता देव, निर्मला पुतुल, वीरा, अनीता वर्मा आदि द्वारा लिखी गयी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समकालीन कविता में स्त्री-हत्या तथा भ्रूण हत्या की पीड़ा, दहेज का उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, स्त्री-मन की अंतर्व्यथा, असुरक्षित स्त्री-मन की भावदशा, कामकाजी स्त्री की पीड़ा, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-मुक्ति आदि के स्वर उभर आये हैं। समकालीन कविता में समकालीन युग-बोध, सामाजिक समस्याएँ, सामाजिक यथार्थ आदि का चित्रण हुआ है। समकालीन कवियों ने नारी जीवन से संबन्धित विविध पहलुओं को संवेदनात्मक दृष्टि से देखा और परखा है। समकालीन कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में हो रहे नारी का शोषण, अत्याचार आदि के चित्रण करके समाज में समता लाने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। स्त्री-जागरण की दृष्टि से ये कविताएँ अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं।

बीज शब्द: समकालीन हिन्दी कविता, स्त्री, शोषण, संवेदना, समता

1. प्रस्तावना

समकालीन कविता आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य की वह काव्याधारा है जिसने नयी चेतना, नयी संवेदना और शिल्प के क्षेत्र में रूप-विधान के नए विकसित आयाम के साथ काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। समकालीन कवि साहित्यिक और सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए नये विचारों से जुड़ता है, जिससे भाषा, बिम्ब, प्रतीक आदि में नवीनता देखी जाती है। समकालीन कविता अपने समय और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है। समकालीन कविता में समसामयिक समय की विविध विसंगतियों और विषमताओं के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। समकालीन कवियों ने समाज की शोषकीय शक्तियों के विरुद्ध आवाज उठाया है। इनमें स्त्री-मन के दर्द, विवशता, ऊब, घुटन, तनाव, अंतर्द्वंद्व, खीझ आदि का चित्रण हुआ है।

2. अध्ययन का महत्व

हिन्दी साहित्य में समकालीन कविता के पूर्व की कविताओं में भी स्त्री-संवेदना का चित्रण मिलता है। लेकिन समकालीन कविता में यह स्वर और भी प्रमुख रूप में उभर कर आया। अत: स्त्री संवेदना को समझने के लिए, समकालीन कविता को जानने के लिए, समकालीन कविता के ऐतिहासिक महत्व से परिचित होने के लिए समकालीन कविता में चित्रित स्त्री-संवेदना का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है।

3. अध्ययन का शीर्षक

अध्ययन का शीर्षक है ख़ समकालीन हिन्दी कविता में चित्रित स्त्री-संवेदना।

4. अध्ययन का उद्देश्य

समकालीन हिन्दी कविताओं की स्त्री-संवेदना का चित्रण करना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य रहा है।

5. अध्ययन का सीमांकन

प्रस्तुत शोध-पत्र में समकालीन कविताओं पर समीक्षा की गयी है। इस अध्ययन के अंतर्गत हिन्दी के प्रमुख समकालीन कवियों की 1980 के बाद से अब तक प्रकाशित उन कविताओं पर चर्चा की गयी है, जिनमें स्त्री-संवेदना मिलती है। लेकिन एक शोध

-पत्र में प्रमुख समकालीन हिन्दी कवियों की कविताओं में चित्रित स्त्री-संवेदना पर समीक्षा कर पाना असंभव होने के कारण विषय-वस्तु की दृष्टि से सविता सिंह की 'नमन करूँ छोटी बेटियों', 'मैं किसकी औरत हूँ', 'दुख का साथ', नील कमल की 'औरतें', निर्मला पुतुल की 'ढेपचा के बाबू', 'चुड़का सोरेन से', 'क्या तुम जानते हो', 'अपनी जमीन तलाशती बेचौन स्त्री', अनीता वर्मा की 'इस्तेमाल', सुमति अय्यर की 'छह', अजंता देव की 'अर्द्धसमाप्त जीवन', गगन गिल की 'देह की मुँडेर पर', 'ऊँघती हैं लड़कियाँ', 'एक उम्र के बाद माँएँ', कात्यायनी की 'स्त्री का सोचना एकांत में', 'नहीं हो सकता तेरा भला', वीरा की 'बेटी के लिए एक कविता', अनामिका की 'बेजगह', 'स्त्रियाँ', नीलेश रघुवंशी की 'स्त्री-विमर्श' शीर्षक कविताओं को ही इस अध्ययन में शामिल किया गया है।

6. अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय

इस अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। शोध-पत्र MLA (Modern Language Association) 'आधुनिक भाषा संस्था' के सप्तम संस्करण शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें समकालीन कवि और समकालीन कविता से संबन्धित विविध ग्रन्थों के साथ ही इन्टरनेट का भी उपयोग किया गया है।

7. विश्लेषण एवं निर्वचन

'समकालीन' का अर्थ है – एक ही समय में रहनेवाले, उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में होनेवाले आदि। समकालीन कविता के पूर्व की कविताओं में अपने समय का प्रभाव देखा जाता है लेकिन समकालीन कविताओं में इसका प्रभाव तीव्र रूप में देखा जाता है। यूरोप में 'समकालीन' शब्द का प्रयोग 1989 में हुआ था। एशिया में 'समकालीन' शब्द का अधिक प्रयोग संभवतः द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से शुरू हुआ। समकालीन साहित्य की समय-सीमा को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। डॉ. पुष्पपाल सिंह का इस संदर्भ में कहना है कि -

जिस प्रकार 'आधुनिक' और 'आधुनिकता' के प्रति एक व्यामोह सुदीर्घ समय तक परिव्याप्त रहा, उसी प्रकार 'समकालीन' और 'समकालीनता' की अनेक भ्रांत धारणाएँ समय समय पर सामने आयीं। हिन्दी शोध और समीक्षा दोनों में धड़ल्ले से इसका प्रयोग हो रहा है और कभी उसकी सीमा रेखा 1950 के बाद के साहित्य के लिए स्वीकार कर ली जाती है तो कभी 1960 के बाद के साहित्य को 'समकालीन' कहा जाता है। अब समय आ गया है कि हिन्दी-समीक्षा इस शब्द का सुनिश्चित अर्थ निर्धारण करे (सिंह 1986:20)।

डॉ. परमानंद श्रीवास्तव समकालीन कविता के स्वरूप विश्लेषित करते हुए कहते हैं-

सन '60 के बाद की कविता, उस कविता के बाद की कविता है जो 50 से 60 के बीच सूक्ष्म मानसिक एवं रागात्मक स्थितियों के उद्देश्य से लिखी जा रही थी (रोहिताश्व 1996: 10)।

डॉ. रामदरश मिश्र समकालीन कविता के संदर्भ में कहते हैं -

समकालीन हिन्दी-कविता को सीमित और विशिष्ट अर्थ की दृष्टि से देखें तो पायेंगे कि 1980 के बाद प्रकाश में आये कवियों की संख्या कम नहीं है, लेकिन उनमें ऐसे कवि अधिक नहीं हैं, जिन्होंने कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है या जिनमें उसकी संभावना अधिक है (नगेंद्र और हरदयाल 2019 : 653)।

समकालीन हिन्दी कविता अपने पूर्ववर्ती कविताओं से अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर भिन्न थीं। इसके पूर्ववर्ती कविताओं में मोहभंग का स्वर, निषेधात्मक प्रवृत्ति, विद्रोह की भावना देखी जाती हैं। समकालीन कवि निषेधवादियों की तरह सभी चीजों को नकारता नहीं। समकालीन हिन्दी कविता समकालीन राजनीति, समाज और जीवन से जुड़ता है। मानवीय संवेदना, स्त्री-अस्तित्व, स्त्री-शिक्षा, दया, करुणा, सहानुभूति, समाज की विविध समस्याओं का चित्रण आदि समकालीन कविता में मिलता है। हमारे समाज में नारी की स्थिति आज भी दयनीय है। समकालीन कवि सिर्फ स्त्री-संवेदना की अभिव्यक्ति करके चुप नहीं रहते, समाज से अन्याय को समाप्त कर शांति, न्याय, समता की स्थापना के लिए संघर्षरत रहते हैं।

सन 1980 से अब तक समकालीन कविता को विकसित करने में बहुत सारे कवियों का योगदान रहा है। स्त्री-संवेदना की दृष्टि से अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, गगन गिल, नीलेश रघुवंशी, नील कमल, अजंता देव, निर्मला पुतुल, वीरा, अनीता वर्मा आदि द्वारा लिखी गयी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समकालीन कविताओं में प्राप्त स्त्री-संवेदना को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

7.1 स्त्री-हत्या और भ्रूण हत्या की पीड़ा
7.2 दहेज का उत्पीड़न
7.3 यौन उत्पीड़न
7.4 स्त्री-मन की अंतर्व्यथा
7.5 असुरक्षित स्त्री-मन की भावदशा
7.6 कामकाजी स्त्री की पीड़ा
7.7 स्त्री-अस्मिता
7.8 स्त्री-मुक्ति

7.1. स्त्री-हत्या और भ्रूण हत्या की पीड़ा

समकालीन कविता में स्त्री के प्रति संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है। आज भी हमारे समाज में लड़का और लड़की में भेद-भाव देखा जाता है। स्त्री पर आज भी तरह-तरह के अत्याचार हो रहे हैं। कहीं उसे दहेज के लिए हत्या की जाती है तो कहीं

लड़की जन्म देने पर उत्पीड़न किया जाता है। यहाँ तक कि जोर-जबर्दस्ती से गर्भ के शिशु का लिंग परीक्षण कर मादा भ्रूण की हत्याएँ भी करा दी जाती हैं, जिसके कारण लैंगिक असमानता दिखायी दे रही है। आज भी लड़के के जन्म खुशी का और लड़की के जन्म दुख या चिंता का विषय है। सविता सिंह स्त्री की भ्रूण हत्या का चित्रण करती हुई 'नमन करूँ छोटी बेटियों' शीर्षक कविता में कहती है कि वे इस देश को नमन करती हैं, जहाँ हर दिन बहुत सारी औरतों को मार दी जाती हैं। इसमें एक नारी का जीवित रहना भी किसी चमत्कार से कम नहीं। वे उस माँ को भी नमन करती हैं जिसने बेटियों को जन्म दिया–

नमन करूँ इस देश का / जहाँ मार दी जाती हैं हर रोज

ढेर सारी औरतें / जहाँ एक औरत का जीवित रहना

एक चमत्कार की तरह है। (कोवप्रत 2011: 33)

7.2. दहेज का उत्पीड़न

दहेज एक सामाजिक कुप्रथा है। दहेज के कारण कितने ही घर बर्बाद होते हैं। विवाह के शुभ अवसर पर दुल्हन के मता-पिता, सगे-संबंधी अपनी इच्छा से दुल्हन का वैवाहिक जीवन सुखदायक बनाने के लिए उसे वस्त्र, अलंकार, व्ययहार उपयोगी समग्रियाँ आदि देते हैं तो कभी दहेज की मांग पूरी करने के लिए। कभी-कभी दहेज की मांग पूरी न होने पर विवाहिता स्त्रियों को तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती हैं। यहाँ तक कि उनकी निर्मम हत्याएँ भी की जाती हैं। समकालीन कविता में दहेज से पीड़ित स्त्री के प्रति संवेदना का स्वर सुनाई देता है। दुल्हन नाक-कान आदि छिदकर, गर्दन-बाजू-कमर-पाँव आदि में अलंकार रूपी दहेज से लदे दूल्हे के घर में प्रवेश करती है। लेकिन उसे जीवन-निर्वाह करने के लिए अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। उसे शारीरिक परिश्रम करने के साथ ही घर की इज्जत-आबरू बचाने के किए बेबस होकर पितृ-गृह से लाये हुए जेवर तक बेचना पड़ता है। नील कमल 'औरतें' नामक कविता में इसी परिस्थिति को दर्शाती हैं–

इनके नाक-कान छिदे रहते हैं / जिनमें दहेज में आई मुंदरी

या सोने चांदी के फूल / किसी सपने की तरह चिपके होते हैं

इनके आखिरी वक्त तक / बाकी जेवर तो गर्दन-बाजू-कमर

और पांवों से उतर ही जाते हैं / घर-गृहस्थी की आबरू बचाते (बच्छावत 2006:354)

7.3. यौन उत्पीड़न

समकालीन कविताओं में नारी से संबन्धित विविध समस्याओं के चित्रण के साथ ही नारी के शारीरिक शोषण का चित्रण भी मिलता है। उपभोक्तावादी संस्कृति में नारी मानो एक 'वस्तु' की भाँति है। कवयित्री निर्मला पुतुल की 'ढेपचा के बाबू', अनीता वर्मा की 'इस्तेमाल', सुमति अय्यर की 'छह' जैसी कविताएँ यौनगत स्त्री-शोषण की समस्या को प्रस्तुत करती है। निर्मला पुतुल 'चुड़का सोरेन से' शीर्षक कविता में एक ऐसी बस्ती की औरतों का दुर्दशापूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती हैं, जिसमें बस्ती का प्रधान एक बोतल दारू के लिए बिक जाता है और बाहरी लोगों को बस्ती की औरतों से दुर्व्यवहार करने की छूट देता है। 'बुधनी' जैसी अनेक आदिवासी औरतें आर्थिक स्थिति की सुधार हेतु रोजगार की तलाश में बस्ती से बहुत दूर बहिर्राज्यों तक भी जाती हैं, लेकिन वहाँ भी वे यौन-उत्पीड़न से नहीं बच पाती हैं -

कैसा बिकाऊ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान / जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है

पूरे गाँव को गिरवी / और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह

लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को / हजार-पाँच-सौ हथेलियों पर रखकर

पिछले साल / धनकटनी में खाली पेट बंगाल गयी पड़ोस की बुधनी

किसका पेट सजाकर लौटी है गाँव? (ांअपजांवी.वतह,कंजमक5/3/2020)

7.4. स्त्री-मन की अंतर्व्यथा

समकालीन कविता में स्त्री-मन की व्यथा का चित्रण पूरी गहराई के साथ हुआ है। स्त्री का पूरा जीवन दुख से भरा होता है। समकालीन कवयित्रियों ने नारी की इस व्यथा को भली-भाँति महसूस किया है। पुरुष प्रधान समाज में दुख झेलना मानो स्त्री की नियति बन चुकी है। स्त्री ने सब दुख चुपचाप सह लिया है। इस दुख का मानो कोई अंत ही नहीं है। स्त्री ने अपने मन को मना लिया है कि दुख ही अब उनके साथी है। सविता सिंह की कविता 'दुख का साथ' की पंक्तियाँ हैं–

मैंने मान लिया है / हमारे आस-पास हमेशा दुख रहा करेंगे

और कहते रहेंगे / 'खुशियाँ अभी आने वाली हैं

वे सहेलियाँ हैं / रास्ते में कहीं रुक गई होंगी

गपशप में मशगूल हो गयी होंगी

वैसे मैंने कब असंख्य खुशियाँ चाहीं थीं (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

स्त्री दुख में ही अपना जीवन व्यतीत करती है। मनुष्यों के दुखों की परिसमाप्ति मृत्यु पर होती है। लेकिन स्त्री की जीवन-दशा इतनी दयनीय है कि उसके लिए जीवन और मृत्यु का भेद नहीं है। उसे जीवन-भर कुछ न पाने की खीझ बनी रह जाती है और मृत्यु के बाद उसकी अशरीरी आत्मा प्यासी ही रहती है। उसके अर्द्ध समाप्त जीवन को मृत्यु भी पूर्णता प्रदान करने में असमर्थ रहती है। अजंता देव 'अर्द्धसमाप्त जीवन' में कहती हैं –

क्या यही मृत्यु है / जबकि सब-कुछ रह गया पहले सा
मैं भी मेरा जीवन भी / रह गया लोकस्मृति में
आशा रह गई पुनर्जन्म की / खीज रह गई कुछ नहीं पाने की
शरीर गया पर रह गया अशरीर / पृथ्वी रह गई विहंगम कोण से दिखती हुई
रह गई पिपासा जो नहीं मिटेगी जल से (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

गगन गिल की कविता 'देह की मुँडेर पर' स्त्री की निराशाजनक प्रेम-प्रसंग को चित्रित करती है जो अत्यंत व्यथापूर्ण है तो कात्यायनी की 'स्त्री का सोचना एकांत में' शीर्षक कविता एकान्त से अपने दुख बाँटती स्त्री जीवन का चित्रण प्रस्तुत करती है।

7.5. असुरक्षित स्त्री-मन की भावदशा

समकालीन कविता में असुरक्षित स्त्री-मन की भावदशा की अभिव्यक्ति मिलती है। आज स्त्री हर जगह असुरक्षा का अनुभव कर रही है। यद्यपि नयी सभ्यता-संस्कृति के कारण नारी स्वतंत्र हुई है, फिर भी वह शोषणमुक्त नहीं है। 'बेटी के लिए एक कविता' में वीरा एक मजबूर माँ की मजबूरी का चित्रण करती हुई कहती हैं –

देख मेरी बेटी / मैं तेरे पाँवों में
हवा, फूल और चिड़ियों के / पंखों की उड़ान नहीं पहना सकती

मेरी बेटी तू / देख मेरी मजबूरी
कि मैं तेरे पाँवों में / अपने आप को सुरक्षित
रखने की चालाक / तमीज पहना रही हूँ (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

7.6. कामकाजी स्त्री की पीड़ा

समकालीन कविता में कामकाजी स्त्री के मन की व्यथा के साथ ही शारीरिक पीड़ा की भी सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। कामकाजी स्त्री घर में जब रहती है तो घर का काम संभालती है और कार्यालय पर कार्यालय का काम। गगन गिल 'ऊँघती हैं लड़कियाँ' नामक कविता में इस व्यथापूर्ण परिस्थिति का चित्रण करते हुए कहती हैं कि कामकाजी स्त्री दफ्तर और घर एकसाथ संभालने के कारण काम से ऊँघ जाती है, थकान महसूस करती है–

दफ्तर में ऊँघती हैं लड़कियाँ / ऊँघती हैं काम से, थकान से
उबती हैं ऊब से, अधनींद से / चलती हुई नींद में। (कोवप्रत 2011: 32)

7.7. स्त्री-अस्मिता

हमारे समाज में आज भी लड़कियों को वह स्थान नहीं मिला जो लड़कों को मिला है। लड़कियों को बचपन से ही कुछ नीति-नियमों, मर्यादायों, परंपरायों के पालन की शिक्षा से गढ़ी जाती हैं। स्त्री की अस्मिता की खोज समकालीन कविता में देखी जाती है। लड़के को शिक्षित करने के लिए पाठशाला भेजा जाता है जबकि लड़कियों को खाना पकाना, झाड़ू लगाना आदि घरेलू काम सिखाया जाता है। एक ही घर में लड़का और लड़की को अलग-अलग परवरिश दी जाती है। स्त्री की अस्मिता पर छाये हुये गहरे संकट को प्रकट करते हुए 'बेजगह' कविता में अनामिका कहती हैं–

'राम, पाठशाला जा ! राधा, खाना पका !
राम, आ बताशा खा ! राधा, झाड़ू लगा !

राम, देख यह तेरा कमरा है ! 'और मेरा?'
ओ पगली, लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता !' (kavitakosh-org] dated 5/3/2020)

आज समय आ गया है कि लड़की अपना स्वत्व को पहचाने। लड़की खुद अपने भले-बुड़े का विचार करे। कवयित्री गगन गिल 'एक उम्र के बाद माँएँ' कविता में अपनी लड़की को स्वाधीन, स्वतंत्र विचार सम्पन्न बनानेवाली एक माँ का चित्रण करती है। एक माँ कदापि यह नहीं चाहेगी कि उसकी या उसकी माँ की जिंदगी जैसी कटी है, अपनी बेटी का जीवन भी वैसा कटे–

एक उम्र के बाद माँएँ / खुला छोड़ देती हैं लड़कियों को
उदास होने के लिए .../ माँएँ सोचती हैं
इस तरह करने से / लड़कियाँ उदास नहीं रहेंगी,
कम-से-कम उन बातों के लिए तो नहीं / जिनके लिए रही थीं वे
या उनकी माँ / या उनकी माँ की माँ (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

इनके अलावा अनामिका की 'स्त्रियाँ', निर्मला पुतुल की 'क्या तुम जानते हो', 'अपनी जमीन तलाशती बेचौन स्त्री' भी स्त्री-अस्तित्व की खोज की कविता है।

7.8. स्त्री-मुक्ति

समकालीन कविता में स्त्री-मुक्ति का स्वर प्रमुख रूप से उभर आया है। अब नारी पुरुषों के आश्रित रहना नहीं चाहती। पुरुषों के पाँव दबाना, उनके हाथों से मार खाना आदि से अब स्त्री मुक्त होना चाहती है। नारी को लेकर पुरुषों की कितनी ही अभिलाषाएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति करने में उनका पूरा जीवन बीत जाता है। अब वह इन सबसे मुक्त होकर स्वतंत्र होना चाहती है। सविता सिंह की कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' में एक ऐसी ही औरत का चित्रण है जिसकी मुक्ति की वे आशा करती हैं–

लेकिन वह हँसेगी मेरी ही तरह / फिर कहेगी -
उन्मुक्त हूँ देखो / और यह आसमान
समुद्र यह और उसकी लहरें / हवा यह
और इसमें बसी प्रकृति की गंध सब मेरी हैं / और मैं हूँ अपने पूर्वजों के शाप और अभिलाषाओं से दूर
पूर्णतया अपनी। (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

नीलेश रघुवंशी की कविता 'स्त्री-विमर्श' में भी स्त्री-मुक्ति का स्वर सुनाई देता है-

मिल जानी चाहिए अब मुक्ति स्त्रियों को / आखिर कबतक विमर्श में रहेगी मुक्ति
बननी चाहिए एक सड़क, चलें जिस पर सिर्फ स्त्रियाँ ही (kavitakosh.org, dated 5/3/2020)

कात्यायनी की 'नहीं हो सकता तेरा भला' जैसी कविता में भी स्त्री-मुक्ति का स्वर गूंज उठा है।

8. उपलब्धियाँ

इस अध्ययन की उपलब्धियाँ इसप्रकार हैं –

8.1 समकालीन कविता में नारी-संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है।
8.2 समकालीन कविता में स्त्री-हत्या तथा भ्रूण हत्या की पीड़ा, दहेज का उत्पीड़न, यौन उत्पीड़न, स्त्री-मन की अंतर्व्यथा, असुरक्षित स्त्री-मन की भावदशा, कामकाजी स्त्री की पीड़ा, स्त्री-अस्मिता, स्त्री-मुक्ति आदि के स्वर उभर आये हैं।
8.3 समकालीन कविता में प्राप्त संवेदना अत्यंत गहरा है।
8.4 समकालीन कवियों ने नारी जीवन की विडंबनाओं को सूक्ष्मता तथा गंभीरता से अंकित किया है।
8.5 इन कविताओं में नारी जीवन के अनेक रूपों का चित्रण उपलब्ध है।
8.6 समकालीन कविता में नारी जीवन के गूढ़ रहस्यों का उदघाटन, नारी की विविध स्थितियों का चित्रण, उदासीनता, ऊब, अकेलापन आदि का चित्रण गहरी संवेदना के साथ हुआ है।
8.7 समकालीन कविता में समकालीन युग-बोध, सामाजिक समस्याएँ, सामाजिक यथार्थ आदि का चित्रण हुआ है।
8.8 इन कविताओं में विद्रोह और व्यंग्य के स्वर मिलते हैं।
8.9 स्त्री-जागरण में इन कविताओं की अहम भूमिका है।
8.10 इन कविताओं में अपनेपन की भावना मिलती है।
8.11 समकालीन कवि सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाकर सृजनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।
8.12 समकालीन कविता में सकारात्मक मानव-मूल्यों की स्थापना हुई है।

9. निष्कर्ष

यथार्थ के धरातल पर लिखी गयी समकालीन कविता में शोषित नारी-हृदय की व्यथा की अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन कवियों ने नारी जीवन से संबन्धित विविध पहलुओं को संवेदनात्मक दृष्टि से देखा और परखा है। समकालीन कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में हो रहे नारी-शोषण, अत्याचार आदि के चित्रण करके समाज में समता लाने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं, जिससे उनकी सामाजिक जागरूकता का परिचय मिलता है। स्त्री-जागरण की दृष्टि से ये कविताएँ अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं।

ग्रंथ-सूची

कोवप्रत, प्रमोद. समकालीन हिन्दी कविता का ताप-मान. मथुराः गोविन्द पचौरी(प्रकाशक), 2011
नगेंद्र और हरदयाल, सम्पा. हिन्दी साहित्य का इतिहास. 69 वां. नई दिल्लीः मयूर बुक्स, 2019
रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्य बोध. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन,1996
शर्मा, योगेन्द्र. महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा. प्रथम. इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, 2018
सिंह, पुष्पपाल, समकालीन कहानी : रचना मुद्रा .नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, 1986

पत्रिका

बच्छावत, मानिक, सम्पा. समकालीन सृजन (कविता इस समय). 23 अंक, कोलकाताः आनंद प्रकाशन, 2006
Web: 5 मार्च, 2020 kavitakosh-org

भारत का क्षेत्रीय/भाषाई डायस्पोरा: सांस्कृतिक गतिशीलता का इतिहास

मुन्नालाल गुप्ता

पी-एच.डी., सहायक प्रोफेसर
प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन
महात्मागांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

शोध सारांश

भारतीय डायस्पोरा उन भारतीय समुदायों से मिलकर बना है, जो इतिहास के विभिन्न कालखंडों में क्रमिक रूप में अलग-अलग व्यवस्थाओं के अंतर्गत भारत से विश्व के अनेक स्थानों के लिए प्रवासित हुए और वहीं बस गए। इन्हें आज भारतीय डायस्पोरा/अप्रवासी भारतीय/ नया डायस्पोरा/ पुराना डायस्पोरा/ प्रवासी भारतीय जैसे नामों से भी जाना जाता है। भारतीय समाज विविधता में एकता को प्रदर्शित करती है। भारत में क्षेत्रीय, भाषायी, प्रजातीय, धार्मिक, जातिगत और सांस्कृतिक विविधता पायी जाती है। भारतीय लोगों का समुद्रपारीय देशों में प्रवासन ऐतिहासिक रूप से कई चरणों और स्वरूपों के साथ-साथ भारत के विविध भाषा और सांकृतिक क्षेत्रों से हुआ है। वे भारतीय समुदाय विदेशों में अपने देश की विविधता और सांस्कृतिक गठरी को साथ लेते गए। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में उनकी सांस्कृतिक गठरी के मूर्त और अमूर्त रूपों ने उन्हें विदेशी भूमि पर जीने का आत्मबल दिया और उनकी पहचान को बनाए रखने में मदद किया। प्रस्तुत आलेख में, समुद्रपारीय देशों में भारतीय डायस्पोरा की भाषिकक्षेत्रीय विविधता एवं पहचान गंतव्य भूमिहोस्ट लैंड में किस रूप प्रदर्शित होती है और इसे बनाए रखने के लिए उनके द्वारा किस प्रकार के प्रयास किए जाते हैं, आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

Keywords/मुख्य शब्द: डायस्पोरा, स्वभूमि, गंतव्यदेश, गिरमिटिया, पहचान, अनुबंधित श्रमिक।

किसी भी मानव समुदाय के पहचान की निर्मिती उस समुदाय के 'अन्य' (पड़ोसी या बृहद समुदाय) की तुलना में होता है। भारतीय डायस्पोरा समुदाय का विदेशी भूमि पर पहचान निर्माण का संबंध गंतव्य भूमि के 'मत्वपूर्ण अन्य' की तुलना में अपनी भाषायी और क्षेत्रगत पहचान को बनाए रखने से है। (Bhat and Bhaskar, 2007) इसी संदर्भ में भारतीय डायस्पोरा के विविध भाषायी और क्षेत्रगत पहचान जैसे: मराठी, तेलगू, तमिल, मलयाली, बंगाली, गुजरती, पंजाबी, भोजपुरी आदि के रूप में समझा जा सकता है।

मराठी डायस्पोरा

मराठी लोग प्रमुखत: महाराष्ट्र में बसे हुए हैं। मराठी लोगों की सांस्कृतिक परंपरा काफी प्राचीन है। महाराष्ट्र में बोली जानेवाली मराठी भाषा संस्कृत भाषा द्वारा निर्मित है। आज की वर्तमान स्थिति में मराठी भाषा यह महाराष्ट्री प्राकृत भाषा द्वारा निर्मित है। भारतीय डायस्पोरा के मराठी समुदाय में आज के समय में पुराने मराठी समाज की तुलना में कम मराठी भाषा बोली जाती है। सामान्यरू मराठी भाषा घरों के अंदर ही बोली जाती है। सामान्य बातचीत में तथा दूसरे समुदाय के साथ संवाद, संप्रेषण के लिए उस देश की क्रिओल भाषा का प्रयोग किया जाता है। नई पीढ़ी में मराठी भाषा की खराब होती स्थिति के कारण इसे मराठी समाज ने मंदिरों तथा संस्थाओं के माध्यम से इसका प्रचार-प्रसार पुन: प्रारंभ किया।

मॉरीशस में मराठी भाषी भारत के महाराष्ट्र से 1834 में अनुबंध श्रमिक के रूप में तथा कुछ मराठी स्वतंत्र रूप से प्रवासित हुए थे। मराठियों का प्रवासन 1852 में निम्नलिखित जिलों जैसे-कोंकण, सतारा, कोल्हापुर, सांगली, सोलापुर, रत्नागिरी, पूना, नागपुर, खानदेश से साम्राज्यवादी उपनिवेशों जैसे-मॉरीशस, फिजी, गुयाना और त्रिनिदाद-टोबागो के लिए हुए। मॉरिशस में अधिकांश मराठी डायस्पोरा हिंदु धर्म के लोगों का है और वे अधिकतर मुंबई बंदरगाह से प्रवासित हुए हैं। प्रवासित होनेवाले मराठियों में प्रमुख जातियां शामिल थीं-मराठा (ज्पदामत ⁊ 1974रू 58) पुरवारी, सुनेराने। (A Study of Marathi Settlements in Mauritius, 2012)

ग्रामीण स्तर पर मराठियों के संगठन का नाम लाकौर है। मराठियों के प्रवासन से संबंधित रजिस्टर में नाम के जगह कुलनाम (उपनाम) जैसे-महार लिखा है। आज मराठियों की करीब 50 से अधिक पंजीकृत संस्थाएं हैं। इनमें सबसे प्रमुख संस्था का नाम है-मॉरीशस मराठी मंडली फेडरेशन जिसे 1960 में बनाया गया था। सभी संस्थाएं मॉरीशस मराठी मंडली फेडरेशन के नेतृत्व में कार्य करती है। यह संस्थ्था समुद्रपारीय मराठियों के लिए प्रवक्ता का कार्य करती है। जाकरी, मारा, नामक प्रवासित मराठियों के प्रमुख नाच गान है। 'गमत', गिरमिटिया मजदूर शादी-ब्याह के समय झाल, ढोलक, चिमटा तथा तबला, परंपरागत वाद्य यंत्र का उपयोग नाचने गाने के लिए किया करते थे। मॉरीशस में मराठी भाषा के उत्थान के लिए, 1960 में मॉरीशस मराठी मंडली फेडरेशन की स्थापना की गई। मराठी डायस्पोरा मॉरीशस में मराठी भाषा के आधार पर पहचाना जाता है। सेंसस के अनुसार-करीबन 1888 लोगों ने घोषित किया कि वे घर में मराठी भाषा का प्रयोग करते हैं और 1656 लोगों ने घोषित किया कि वे घरों में क्रिओल और मराठी भाषा का उपयोग करते हैं।

इसके अलावा मराठी भाषी भारत की स्वतंत्रता के पश्च्यात अनेक विकसित देशों में भी प्रवासित हुए। 1970 के दशक में मराठी लोग अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा आदि विकसित देशों में प्रवासित हुए। अच्छे रोजगार के अवसर उपलब्ध होने की वजह से वे वहीं बस गये। इस शुरूआती दौर में चिकित्सीय शोध और शैक्षणिक क्षेत्रों में काम करने हेतु अनेक मराठी लोग अमेरिका में आकर बस गये। ये मराठी भाषी लोग अमेरिका के विविध शहरों में बसने के बाद हमेंशा एक दुसरे के आपसी के संपर्क में रहते थे। यहां पर मराठी डायस्पोरा के बीच नेटवर्क जुड़ाव देखने को मिलता है। इन्हें हम नृजातीयता के नाम से संबोधित कर सकते हैं। अमेरिका समाज में मराठी भाषी लोग परिवार में मराठी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसी वजह से सभी बच्चे मराठी भाषा से परिचित है। परंतु स्कूलों में भाषा संबंधि समस्या उत्पन्न होती है। क्योंकि किताबें प्रमुखतः अंग्रेजी में होती हैं। इस वजह से मराठी भाषी लोगों के बीच से दिन-प्रतिदिन भारतीय भाषा और संस्कृति लुप्त होती जा रही है। परंतु अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के प्रति मराठी लोगों का भावनात्मक लगाव इतना गहरा था कि उन्होंने अपनी संस्कृति और भाषा के संवर्धन हेतु अमेरिका में मराठी पाठशाला की स्थापना की ताकि उनके बच्चे अपने देश से, अपनी संस्कृति से और अपनी भाषा से हमेशा जुड़े रह सकें। मराठी डायस्पोरा समूह मराठी पहचान को कायम रखने हेतु मराठी भाषा की शिक्षा अपने बच्चों को देर हे हैं। मातृभाषा और सांस्कृतिक समृद्धि स्वयं की मूल पहचान को समूह के रूपमें कायम रखने का आत्मविश्वास प्रदान करती है। इस तरह से मराठी डायस्पोरा समूह गन्तव्य देशों के समाज में सफलतापूर्वक जीवन व्यतित कर रहा है और आपस में सांस्कृतिक जुड़ाव को बनाऐ हुए हैं।

मराठी डायस्पोरा विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक उत्सव के माध्यम से भी अपनी परंपरा, रिवाज और क्षेत्रिय विशेषताओं को बनाये हुए हैं। इसके लिये विविध भारतीय त्योहारों को वो गंतव्य स्थानों पर बड़े ही उत्साह से मनाते हैं। मराठी डायस्पोरा ने उत्सवों के माध्यमों से भी अपनी भारतीय संस्कृति को संजोये रखा है, जैसे गणेशोत्सव, लेसिम, फुगडी आदि महाराष्ट्र की नृत्य परंपरा के साथ भगवान गणेश का आगमन किया जाता है। संगीत, पुजा, श्लोक, आरती और भजन आदि सभी पूजा-पाठ की विधियां मराठी भाषा में करते हैं। जाकरी, मारा, नामक प्रवासित मराठियों के प्रमुख नाच-गान है। 'गिरमिटिया' मराठी मजदूर शादी-व्याह के समय गाते-नाचते थे जिसका नाथा 'गमत', झाल, ढोलक, चिमटा तथा संबल, तबला, परंपरागत वाद्य यंत्र थे।

इस प्रकार मराठी डायस्पोरा ने गन्तव्य स्थानों पर भी अपने सांस्कृतिक जीवन, प्राचीन महाराष्ट्रीयन संस्कृति, सभ्यता और विश्वास को संजोये रखा है। मराठी भाषा और मराठी साहित्य का विकास भी उन्होंने महाराष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान की अभिव्यक्ति के रूप में कर रखा है। स्थानीय व क्षेत्रिय देवताओं और संतों के प्रति आदरभाव को उन्होंने बनाये रखा है। इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में गणेश चतुर्थी, रामनवमी, मकरसंक्रांती, पोला इत्यादि त्योहारों का प्रमुख महत्व है। और इसके लिये उन्होंने गन्तव्य स्थानों पर विविध शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन बनाये रखे है और अपनी सामाजिक सांस्कृतिक प्रथाओं से, रीति-रिवाजों, मान्यताओं से मराठी समाज ने अपने को स्वभूमि के मराठी समाज और भारत से आज भी जोड़े रखा है।

तेलगू डायस्पोरा

19 वीं और 20 वीं सदी में दक्षिण भारत से प्रवासित भारतीयों में सर्वाधिक संख्या तेलगू भाषी समुदाय की है। यह प्रवासन ब्रिटिश भारत के मद्रास प्रेसिडेंसी से हुआ जिसका आज का नाम आंध्र प्रदेश राज्य है जो भारत का तीसरा बड़ा राज्य है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा, अकाल तथा बाढ़ने घरेलू और कुटीर उद्योगों को सिकोड़ दिया जिससे रोजगार की कमी ने तेलगू भाषी समुदाय को प्रवासित होने पर मजबूर किया। इसी समय, दूसरी ओर तेलगू भाषी समुदाय के लोगों ने ब्रिटिश उपनिवेशों में बागान श्रमिकों के रूप में अवसर को देखा। इसी अवसर ने तेलगू समुदाय को दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, फिजी, गुयाना, ट्रिनिदाद-टबैगो, सूरीनाम के लिए अनुबंध श्रमिक के रूप में प्रवासित होने पर मजबूर किया। 19 वीं सदी में कुछ तेलगू भाषी कंगनी और मैस्री प्रणाली के तहत बर्मा, मलाया, मलेशिया, इंडोनेशिया के बगानों में मजदूर बनाकर ले जाये गए जहां उनसे रबर, कहवा, चावल, चाय आदि के बागानों, खेतों में काम करवाया जाता था। (Bhat and Narayan 2010-18)

तेलगू लोगों का नटाल, दक्षिण अफ्रीका के लिए प्रवासन 1860 में अनुबंध श्रमिक प्रणाली के तहत भारत के तत्कालीन मद्रास प्रेसिडेंसी से हुआ था। यह प्रवासन 1911 तक चला। ये अनुबंधित मजदूर दक्षिण अफीका में गन्ने के खेतों तथा चाय बगानों, खानों-खद्दानों में, रेलवे निमार्ण में कार्य हेतु लगाये जाते थे। इन मजदूरों में मुख्य रूप से नायडू थे। इसके अलावा तेलगू समाज के काम सरलो (Blacksmith) तथा कुमारा (potter) लागों का प्रवासन दक्षिण अफ्रीका में हुआ जो कृषक, फार्म श्रमिक, किरानी, शिक्षक रूप में कार्य करते थे। कुछ तेलगू व्यापारियों, सौदागरों (कोमाटी) का भी स्वतंत्र प्रवासन हुआ परंतु आज वे अपनी पहचान खो चुके हैं। कुछ तेलगू लोग आज भी नटाल, पिट्समेरिजवर्ग के लिए प्रवासित हो रहें हैं। जहां वे खाद्य बटवारे, घरेलू वस्तुओं के व्यापारिक गतिविधियों से जुड़े हैं। कुछ तेलगू वहां सिनेमा और ट्रांसपोर्ट व्यवसाय से जुड़े रहे हैं।

भारत की स्वतंत्रता के बाद तेलगू भाषी लोगों में उच्च शिक्षित, व्यावसायिक पेशे से संबंधित कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, छात्र और वैश्वीकरण के दौर में साफ्टवेयर इंजीनियर आदि का प्रवासन अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, सिंगापूर, आस्ट्रेलिया, सिंगापूर और न्यूजीलैंड के लिए हुआ। 1931 में निर्मित 'आंध्र महासभा' दक्षिण अफीका के पहले तेलगू भाषी लोगों ने अपने को संगठित नहीं किया था पर महासभा निर्माण के बाद से काफी सक्रिय है। आज महासभा की 30 शाखाएं हैं जो प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय के स्तर पर तेलगू शिक्षा के लिए कार्य कर रही है, उदाहरण के लिए, डरबन यूनिर्वसिटी में तेलगू भाषा की शिक्षण की व्यवस्था है।

आंध्र प्रदेश सरकार ने 1975 में वैश्विक स्तर पर तेलगू भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को प्रोत्साहन देने एवं उसके प्रसार के लिए 'अंतरराष्ट्रीय तेलगू संस्थान' की स्थापना की। इस संस्था के कार्यों में मुख्यत: शामिल है, विदेशों में बसे तेलगू भाषी समुदाय को एकता के सूत्र में बांधना, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन करना, तेलगू भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की पढ़ाई विदेशी विद्यालयों में हो, के लिए काम करना। संस्थान ने इसी कड़ी में, तेलगू भाषियों का विदेशों में सम्मेलन का आयोजन मलेशिया (1981) और मॉरीशस (1990) (Bhat and Bhaskar 2011-119) में किया जहां बड़ी संख्या में तेलगू भाषी समुदाय के लोगों ने हिस्सा लिया।

'द वर्ल्ड तेलगू फेडरेशन' (WTF) की स्थापना 1992 में समुद्रपारीय तेलगू भाषाई समाज की भाषा एवं सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए किया गया। प्रथम WTF का उद्घाटन आंध्रप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री एन.टी. रामाराव के द्वारा न्यूयार्क में हुआ। WTF, आज विश्व के सभी देशों की तेलगू भाषी संस्थाओं और आंध्रप्रदेश सरकार के साथ समन्वय की भूमिका निभाती हैं। WTF, भाषा एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ तेलगू भाषी समाज के लिए व्यवसाय, पर्यटन, शिक्षा और विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी के विकास में भी मदद करती है। WTF ने समुद्रपारीय तेलगू डायस्पोरा को आंध्रप्रदेश में निवेश के लिए भी एक मंच उपलब्ध कराती है तथा तेलगू डायस्पोरा के लिए मार्गदशक की भूमिका निभाती है।

तमिल डायस्पोरा

भारत समेत पूरे भारत में करीब 70 मिलियन तमिल भाषी लोग हैं। (सिवा सुब्रमनीयम, 2010) तमिल भाषी लोगों का भारत से प्रवासन ब्रिटिश, डच और पुर्तगाली उपनिवेशों अनुबंध श्रमिक प्रणाली के अलावा फेंच प्रशासकों के द्वारा फ्रेंच उपनिवेशों में अनुबंध श्रमिक से पहले ले जाया गया था। तमिलों को कंगनी मेस्त्री व्यवस्था के तहत मलेशिया रबर उत्पादन के लिए ले जाया गया। (Jain, 2004,176-177) चोल शासकों के समय तमिलों का प्रवासन श्रीलंका में हुआ। (झा और श्रीमाली, 1981, 371) ब्रिटिश उपनिवेशों में सभी फ्रेंच उपनिवेशों जैसे-रियुनियन, मार्टिनिक और ग्वाडेलूप में तमिल भाषी समुदाय का फ्रांसिसी समाज और संस्कृति में समांगीकरण की ज्यादा कोशिश की गई। मॉरिशस के तमिलों का मानना है कि तमिल सिर्फ एक भाषा नहीं बल्कि एक संस्कृति और जीवन जीने का तरीका है जो तेलगू, मराठी, हिन्दू से अलग है। (Bhat and Bhaskar, 2011%118-119)

'द वर्ल्ड तमिल कांफ्रेंस' (WTC) संगठन तमिलनाडू सरकार से प्रेरित और संरक्षित संगठन है। यह संगठन, समुद्रपारीय तमिल भाषी समुदायों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए सालों भर सम्मेलन तथा कार्यक्रम करते हैं। तमिलनाडू के पूर्व मुख्य मंत्रियों ने WTC को तमिलों के वैश्विक सम्मेलनों के लिए हमेशा प्रोत्साहित करते रहे। ये सम्मेलन क्वालालंपुर (1967), चेन्नई (1965), पेरिस (1970), जाफना (1974), मदुरई (1981), क्वालालंपुर (1987), मॉरिशस (1989), तंजौर (1995), और कोयंबटूर (2010), में हुए। (जयप्रकाश, 2010) श्रीलंका जाफना प्रान्त में बसे तमिल डायस्पोरा के साथ श्रीलंका सरकार द्वारा भेद-भाव किया जाता रहा है। इस कारण श्रीलंका में बसे तमिल समाज में असंतोष व्याप्त है। इसी कारण जाफना के तमिल अपने लिए अलग तमिल प्रान्त 'तमिल ईलम' की मांग करते है और अपने इस मांग में भारत सरकार का समर्थन चाहते हैं।

तमिल अध्ययन का पहला अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस मलया विश्वविद्यालय, क्वालालंपुर मलेशिया में 16 अप्रैल से 23 अप्रैल 1966 में हुआ जिसके प्रायोजक थे-अंतरराष्ट्रीय तमिल शोध संगठन, राष्ट्रीय शिक्षा विकास परिषद, मलाया और मलाया विश्वविद्यालय, मलाया। इस अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेस का उद्घाटन मलेशिया के तत्कालीन प्रधान मंत्री टी. अब्दूल रहमान ने किया तथा इसमें 21 देशों के 132 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तमिल अध्ययन का द्वितीय अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास में, 1968 में हुआ जिसके प्रायोजक थे-अंतरराष्ट्रीय तमिल शोध संगठन और मद्रास सरकार, भारत। इसी प्रकार, चतुर्थ 1974, जाफना, श्रीलंका में, चतुर्थ सम्मेलन के लिए श्रीलंका के तत्कालीन प्रधानमंत्री सिरिमाओ भंडारनायके की चाहत थी कि वह श्रीलंका की राजधानी, कोलंबो में हो परंतु तमिल कांफ्रेंस के संगठनकर्ताओं ने इसे श्रीलंका के तमिल बहुसंख्यक प्रदेश/क्षेत्र जाफना में करने का निर्णय लिया।

तमिल अध्ययन का पांचवा अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस तमिलनाडू के मदुरई में हुआ। इसी कांफ्रेंस के बाद तमिलनाडू विश्वविद्यालय, तंजौर में बनाया गया। यह आशा थी कि राज्य स्तर के तमिल कांफ्रेंस के बाद तमिलनाडू विश्वविद्यालय नौवां अंतरराष्ट्रीय तमिल कांफ्रेंस के बाद 'विश्व तमिल विश्वविद्यालय' में तब्दील हो जाएगा। परंतु राजनैतिक अंतर्विरोध के कारण जनवरी 2010 में होने वाला 9 वां विश्व तमिल कॉँफ्रेंस कोयंबटूर में नहीं हुआ। तत्कालीन तमिल तमिलनाडू सरकार ने विश्व क्लासिकल तमिल कांफ्रेस के नाम से कोयंबटूर में करवाया। इस प्रकार 2010, तक आठ 'विश्व तमिल सम्मेलनों का सफलतापूर्ण आयोजन करवा कर, तमिलनाडू सरकार ने विश्व स्तर पर फैले हुए तमिल भाषी डायस्पोरा को एकता के सूत्र में बांधने की कोशिश की। तमिल भाषी समुदाय एक अन्य विश्वस्तरीय तमिल संगठन बनाने की कोशिश में है जो विश्व स्तर पर फैले तमिल संगठनों के बीच एकता एवं समन्वय का कार्य कर सके। साथ ही, यह संगठन तमिल समुदाय के लिए मौद्रिक क्रिया-कलापों, उद्यम, व्यापार जैसे कार्य-व्यापार में भी मदद कर सके। 'विश्व तमिल कनफेडरेशन' विश्व स्तर पर फैले तमिल समुदाय का एक दूसरा महत्वपूर्ण संगठन है जिसकी स्थापना, 2002 में की गई थी। उत्तरी अमेरिका का 'तमिल संगम' संस्था तथा आस्ट्रेलिया का 'तमिल संगम' 2010 में, विश्व तमिल कन्फेडरेशन के साथ सूची बद्ध हुआ। (Bhat and Narayan 2010:20)

गुजराती डायस्पोरा

गुजराती समुदाय का समुद्रपारीय प्रवासन की शुरूआत 19 वीं सदी में अनुबंध श्रमिक प्रणाली के तहत अफ्रीका महादेश के लिए और 20 वीं सदी में यह प्रवासन दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के लिए छोटे-छोटे तथा पेट्टी व्यापारियों (जैसे: बोहरा, इस्माइल, खोजा) की तरह के ब्रिटिश उपनिवेशों में हुआ। दक्षिण अफ्रीका के लिए भारतीयों का प्रवासन 1860 से प्रारंभ हुआ जब पहली बार पानी का जहाज अनुबंधित श्रमिकों को लेकर वहां पहुंचा। (GoolamVahed, 2010) 1893 दक्षिण अफ्रीका के लिए महात्मा गांधी का जाना हुआ। गांधी का दक्षिण अपीका जाना जीवन के साथ-साथ विदेशों में बसे भारतीयों के मानवाधिकार के लिए संघर्ष में बहुत मददगार सिद्ध हुआ। (दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास, 1968) इनके कठिन परिश्रम और लगन ने इन्हें समृद्ध बनाया और यही समृद्धि मेजबान देशों की स्थानीय जनता के लिए इर्ष्या का कारण बना। मेजबान देशों तथा समाजों के विभेदकारी नीतियों, व्यवहारों के कारण भारतीय व्यापारी, उद्यमी, कृषक गुजराती समुदाय के लोग अफ्रीकी देशों यथा: युगांडा, केन्या को छोड़कर द्वितीय प्रवासन के तहत यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, यू.एस.ए. जाना पड़ा। द्वितीय प्रवासन के शिकार हुए गुजरातियों को तो अपने कठिन परिश्रम से उपार्जित धन, संपत्ति को भी अपने साथ अफ्रीका से नहीं लाने दिया गया।

गुजरात सरकार और श्री स्वामी नारायण गद्दी संस्थान (गुरूदेव जीवन प्राण श्रीमुक्त जीवन स्वामीबाबाजी द्वारा स्थापित अध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाज कल्याण के लिए विश्व स्तरीय केंद्र) द्वारा प्रायोजित 'विश्व गुजराती कांफ्रेंस' का आयोजन, 'विश्व गुजराती समाज' द्वारा किया गया, जिसमें विश्व स्तर पर फैले अनिवासी भारतीय गुजरातियों को निमंत्रित किया गया। प्रत्येक

वर्ष, प्रवासी भारतीय दिवस के तुरंत बाद गुजरात सरकार अनिवासी गुजरातियों और स्थानीय गुजरातियों और एन.जी.आर. निवेशकों के लिए एक सप्ताह हेतु पतंगबाजी और दांडिया नाचनृत्य का आयोजन पूरे गुजरात के विकास के लिए करती है। (Bhat and Narayan 2010:20-21)

'विश्व गुजराती समाज' (VGS) की स्थापना विश्वभर में फैले गुजराती डायस्पोरा के लिए एक अंतरराष्ट्रीय संगठन के रूप में 1989 में की गई। VGS ने अपने 18 वर्षों की आयु में फैलते-विकसित होते विश्व के 17 देशों के गुजरातियों को अपनी सदस्यता से जोड़ा है। VGS, गुजरात के अहमदाबाद में 'पब्लिक ट्रस्ट' के रूप में निबंधित है और इस का संचालन चुने हुए पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है, जो विश्वभर में फैले हैं। VGS की एक निबंधित शाखा न्यूयार्क में भी है। VGS की सदस्यता विश्व भर में रहने वाले सभी गुजरातियों तथा गुजराती संगठनों के लिए खुली है। आज इसके सदस्यों में प्रभुत्वशाली गुजराती व्यावसायिक संगठन भी शामिल है। VGS विश्व भर में फैले गुजराती डायस्पोरा की समृद्धि, विकास और प्रगति के साथ-साथ उनमें भाई-चारे की भावना को विकसित करने के लिए और उन्हें गुजराती भाषा, परंपरा, संस्कृति के अनुरक्षण के लिए प्रेरित करने का कार्य करती है।

विश्व गुजराती समाज के द्वारा तीन 'विश्व गुजराती सम्मेलनों' का आयोजन 1989 में अहमदाबाद, 1996 में मुंबई, और 1999 में बड़ोदरा में किया गया। चौथा 'विश्व गुजराती सम्मेलन' को 'स्वर्णिम गुजरात' (Golden Jubilee Year of Gujrat) के रूप में अहमदाबाद में मनाया गया। विश्वभर में रहनेवाले गुजराती समुदाय को 'स्वर्णिम गुजरात सम्मेलन' ने एक ऐसा मंच दिया जहां पर वे आपस में मिल सके और गुजराती समाज से संबंधित विभिन्न प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक मुद्दों पर बात-चीत कर सके।

'गजराती समाज' एक दूसरा संगठन है जो विश्व भर में फैले गुजरातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को प्रोत्साहन देने के लिए वैश्विक नेटवर्क के रूप में कार्य करता है। nrigujratis.co.in पोर्टल गुजराती समाज के लिए विवाह से लेकर रियल स्टेट के व्यवसाय से संबंधित सूचना उपलब्ध कराती है। भारतीय डायस्पोरा समुदाय में गुजरातियों के अलावा अपने समाज से संबंधित ऐसा विश्वस्तरीय नेटवर्क नहीं है। गुजरात की सरकार स्वयं इन नेटवर्क को प्रोत्साहित करती है। गुजराती के और गुजरात के विकास के लिए दो प्रमुख वेवसाईट-htt://nri_gujarat.com/guj_samaj_sa.htm.

भोजपुरी डायस्पोरा

भारत में भोजपुरी भाषी लोग उत्तरप्रदेश, बिहार में मुख्य रूप से रहते हैं। परन्तु आज भोजपुरी भाषी लोगों की उपस्थिति पूरे भारत में ही नहीं बल्कि समुद्रपारीय देशों में भी है। 19 वीं सदी से पूरे विश्व में फैले भोजपुरी भाषी लोगों को एक साथ एक मंच पर लाने के लिए द्वितीय 'विश्व भोजपुरी सम्मेलन', 2009 में मॉरीशस में आयोजित किया गया। यह सम्मेलन इस उद्देश्य के साथ प्रारंभ हुआ कि विश्व में निवास करनेवाले 80 मिलियन भोजपुरी लोगों के आर्थिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक के साथ-साथ राजनैतिक गतिशिलता गतिकी को प्रोत्साहित व संवर्धित कैसे किया जाय। भारतीय मूल के लोगों की कुल जनसंख्या में भोजपुरी भाषी लोगों की जनसंख्या अच्छी-खासी है। भोजपुरी भाषी लोगों की जनसंख्या मॉरीशस, त्रिनिदाड, (Jayaram, 2004%149-150) और टोबैगो, गयाना, सूरीनाम, फिजी और नेपाल में काफी है। (Hookoomsing 2009/36-37, 2011/111, Jagannathan 2003/148-150) इसलिए इन देशों में भोजपुरी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की मांग यदा-कदा उठती रहती है (Boodhoo, 2009)। उभरते हुए वैश्विक भोजपुरी डायस्पोरा को अपने पुर्वजों की भोजपुरी माटी से जोड़ने के लिए बिहार की सरकार ने साकारात्मक कदम उठाए हैं। आज संचार माध्यमों के उभार के कारण वैश्विक भोजपुरी समाज आपसी क्षमता का प्रयोग एक दूसरे की मदद व विकास के लिए कर सकते हैं। द्वितीय 'विश्व भोजपुरी कांफ्रेस' में करीब 200 समुद्रपारीय भोजपुरी प्रतिभागी विश्व के विभिन्न भागों यथा-दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैंड, फ्रांस, नीदरलैंड और भारत से आए। वे विशेषज्ञ यथा शिक्षा, साहित्य, जनसंचार, वाणिज्य-व्यापार और उद्योगों, कानून, फिल्म और नाट्यकला, और चिकित्सा से थे। इस सम्मेलन में मुख्य मांगों के अलावा तीन सामानांतर सत्र भी चलाए गए जिनके केंद्रीय विषय थे-भोजपुरी भाषा और साहित्य, खाद्य-परंपराएं और व्यावसायिक अवसर। इस सम्मेलन में एक प्रस्ताव यह पारित किया गया कि भारत सरकार से अनुरोध किया जाए कि भोजपुरी को संविधान की 8 वीं अनुसूची में शामिल किया जाए। दूसरा प्रस्ताव पारित हुआ कि तीसरा विश्व भोजपुरी सम्मेलन का आयोजन 2013 में हालैण्ड में किया जाए। अन्य महत्वपूर्ण प्रस्तावों में था कि भोजपुरी की पढ़ाई को पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, सेकेंडरी एवं विश्वविद्यालयीय स्तर अलग-अलग डायस्पोरीय देशों की परिस्थिति के अनुसार प्रारंभ करने की मांग की जाए। एक प्रस्ताव यह भी पारित किया गया कि भोजपुरी भाषा, साहित्य-संस्कृति के विकास एवं प्रचार-प्रसार के लिए भारत और भोजपुरी डायस्पोरा के बीच विनिमय कार्यक्रम हो। इस सिलसिले में एक बेबसाईट

Vishwa Bhojpuri Sammellan बनायी गयी। सम्मेलन में इस बात पर भी जोर दिया गया कि भोजपुरी अनुबंध श्रमिक के रूप में भारत से समुद्रपारीय देशों में गए भोजपुरी लोगों के लिए एक केंद्र की सुविधा प्रदान की जाए, जहां से वे अपने मूल देश के मूल स्थान की तलाश कर सकें।

आज भी कोई भी व्यक्ति यह जानकर विस्मृत हो सकता है कि भोजपुरी से संबंधित बहुत-सारे वेबसाईट दशकों से कार्य कर रही है। उनमें कुछ प्रमुख है–njoria.com: the Bhojpuri Sansar.com, Bhojpuri Duniya.com, Bhojpuri Film A wards और उत्तरी अमेरिका का भोजपुरी संगठन (BA NA)। (Bhat and Narayan 2010, 21-22)

इस प्रकार समुद्रपारीय भोजपुरी डायस्पोरा ने अपने संघर्ष और लगन से विदेशी धरती पर पहचान और जगह बनायी है। फिर भी आज के बहुसंख्यक भोजपुरी डायस्पोरा के बीच पारदेशीय नेटवर्क को मजबूत करने की जरूरत है ताकि वे आपस में जुड़कर अपने को सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से और ज्यादा मजबूत कर सकें और भारत जो उनकी पूर्वज भूमि है, के साथ जुड़ सकें।

बंगाली डायस्पोरा

बंगाली लोग एक नृजातीय समूह है जिनका निवास बंगाल (अब राजनीतिक रूप से विभाजित भारत और बांग्लादेश में) है। भारत में बंगाली समुदाय मुख्यत: पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा राज्य में रहते हैं। परंतु इसके अलावा बंगाली लोग भारत के झारखंड, असम, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा और दिल्ली में भी रहते हैं। बंगाली लोग बड़ी संख्या में ब्रिटेन, न्यूयार्क, खाड़ी देशों, पाकिस्तान, मलेशिया, दक्षिण कोरिया, कनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया और सिंगापुर में भी रहते हैं। 1947 के भारत का विभाजन भारत और पाकिस्तान के रूप में हुआ और 1971 में पाकिस्तान का विभाजन पाकिस्तान और बांग्लादेश के रूप में हुआ। इसलिए आज का समुद्रपारीय बंगाली डायस्पोरा से संबद्ध तीनों देशों से है। बंगाली डायस्पोरा में अमिताभ घोष का बड़ा नाम है, जिन्होंने भारतीय प्रवासन के इतिहास, संस्कृति आदि से संबंधित कई साहित्य की रचना की जिनमें प्रमुख है-'द सर्कल ऑफ रिजन', 'द शैडो लाइन' (साहित्य अकादमी पुरस्कार), 'द कलकत्ता क्रोमोजोम' (आर्थर सी क्लार्क अवार्ड), 'द ग्लास पैलेस' आदि।

औपनिवेशिक काल में सिद्धदोष, अनुबंध श्रमिक के रूप में बंगाली समुदाय का प्रवासन ब्रिटिश उपनिवेशों यथा-मॉरीशस, फिजी, गयाना और ट्रिनिडाद, सुरीनाम आदि के लिए हुआ। पूर्व औपनिवेशिक काल में पाल शासकों के समय व्यापारियों तथा धार्मिक गुरूओं संतों का प्रवासन दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में हुआ। 1962 में ब्रिटिश सरकार ने प्रथम 'कॉमन वेल्थ इमिग्रेशन एक्ट' पारित किया। इस एक्ट का उद्देश्य था कॉमन वेल्थ के देशों से सीमित संख्या में प्रवासन ब्रिटेन के लिए। इस एक्ट के द्वारा भारत के बंगाल से बंगालियों का काफी संख्या में प्रवासन हुआ। बाद में बाद में बंगाली नेटवर्क ने और बंगाली लोगों का प्रवासन ब्रिटेन में सरल किया। ये बंगाली अर्धकुशल, कुशल श्रमिक थे। बंगाली का नया प्रवासन 1990 के बाद के दशक में हुआ। 1990 से 2004 के समय में यूनाइटेड किंगडम के लिए जिन बंगालियों का प्रवासन हुआ उनमें अधिकतर दूल्हा, विद्यार्थी, एसाइलम सीकर और अवैध श्रमिकों का था। 07 जुलाई 2012 को North American Bengali Conference (NA BC) का आयोजन लास वेगास, अमेरिका में हुआ। बंगाल की तत्कालीन मुख्यमंत्री ने कांफ्रेंस में उपस्थित बंगाली डायस्पोरा से बंगाल राज्य के नवनिमार्ण तथा विकास के लिए मदद की अपील की। ममता का संदेश कांफ्रेंस में रिकार्डेड ऑडियो विजअल द्वारा सुनाया गया।

मलयाली डायस्पोरा

केरल के लोगों की भाषा मलयालम है। मलयाली बोलने वाले केरल के अलावा कर्नाटक, तमिलनाडू और महाराष्ट्र में है। बड़ी संख्या में मलयाली भाषी लोगों का प्रवासन मध्य एशियाई, यू.एस.ए. और यूरोपीय देशों में हुआ। मलयाली समाज में हिंदू, मुसलमान लोग हैं। हिंदुओं में अम्बालावासी, इज्हासा, कनियार, नायर, नम्बूदरी, पुलावा और विश्वकर्मा प्रमुख हैं। मुसलमान मलयाली में मोप्पिला या मोपला प्रमुख हैं। केरल के मलयाली भाषी लोगों की बड़ी तादाद में खाड़ी देशों में है। 2008 के एक अनुमान के अनुसार, केरल के खाड़ी डायस्पोरा जिन्हें केरल खाड़ी डायस्पोरा के नाम से भी जाना जाता है, की संख्या 2.5 मिलियन से अधिक थी। केरल खाड़ी डायस्पोरा का मतलब है वे केरलियन (मलायाली) लोग जो पर्सिया की खाड़ी में मध्यपूर्व के अरब राज्य में रहते हैं।

खाड़ी में 'आयलबूम' ने केरल से मलयाली लोगों की बड़ी संख्या को 1972 से 1983 के बीच खाड़ी देशों में प्रवासन को प्रोत्साहित किया। इन मलयाली प्रवासित लोगों में मुख्यत: शामिल थे : श्रमिक, अर्धकुशल और कुशल श्रमिक। 2008 में खाड़ी देशों

में कुल केरलियन की संख्या 2.5 मिलियन से ज्यादा थी और इनके द्वारा अपने घरों में लगभग 6.81 मिलियन यू.एस.ए. डालर थे जो भारत सरकार को 2008 में प्राप्त कुल रिमिटेंस के 15.13 प्रतिशत से ज्यादा थे। (भारत सरकार) खाड़ी प्रवासन के कारण से निम्न-मध्यवर्ग की आर्थिक-सामाजिक में बढ़ोतरी हुई। खाड़ी प्रवासित दुल्हों की मांग बढ़ गई। खाड़ी के सपनों की अभिव्यक्ति मलयाली सिनेमा, साहित्य में भी नजर आने लगी। एम. मुकुन्दन की 'दैवाथिनते विक्रिथिकाल' में खाड़ी में प्रवासन से माहे में खाड़ी प्रवासित इन्क्लेव बना है। जिसमें सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को देखा जा सकता है। खाड़ी देशों में 'आयल बूम' के कारण मलयाली महिला नर्सों का भारी संख्या में प्रवासन हुआ है। केरल से मछली और गरम मसालों का निर्यात जोहांसबर्ग, लंदन, न्यूयार्क और सिडनी के लिए होता है। इसके कारण केरल में विश्व के सभी देशों के बैंक और मुद्राएं यथा-डालर, दिरहम, दिनार, यूरो, पाउंड, रियाल, और येन उपलब्ध है। टेलीफोन और इंटरनेट ने दूरियों को छोटा कर दिया है। सिने स्टार, मनोरंजन करनेवाले, राजनीतिज्ञ और धार्मिक नेता अपने मलयाली डायस्पोरा के लिए लगातार विदेश जाते हैं। मलयाली डायस्पोरा अपने मूलदेश, राज्य की राजनीति, आर्थिक, उद्योगों, उद्यम और दान से संबंधित नीतियों को अपने ज्ञान, कुशलता और धन से स्वभूमि और गंतव्य देशों को प्रभावित करते हैं।

1996 में केरल सरकार ने अनिवासी मलयाली डायस्पोरा को अपने साथ जोड़ने के लिए Non Resident Keralites Affairs Department (NORKA) की स्थापना की। (Zachariah, Rajan 2015, 7) यह भारत के किसी राज्य की पहली-पहल थी जिसके द्वारा राज्य के बाहर बसे मलयाली डायस्पोरा को राज्य के साथ जोड़ने की पहल एक स्वतंत्र विभाग बनाकर किया गया। केरल की सरकार ने मलयाली डायस्पोरा के लिए कल्याणकारी योजनाओं के साथ इन्श्योरेंस और जन कल्याणकारी योजनाओं को भी प्रारंभ किया। इसके लिए केरल सरकार के द्वारा इन्वेस्टर मीट' का आयोजन किया गया। साथ ही एक वेवसाईट भी बनयी गयी जिसका नाम gimkerala-com है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समुदाय अलग-अलग कालों और परिस्थितियों में विदेशों में प्रवासित होकर अपनी स्वभूमि के भाषायी एवं क्षेत्रगत पहचान से जुड़ी विविधता को अपने संघर्ष और सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा को विदेशी गंतव्य होस्ट भूमि पर भी बनाये रखा है।

संदर्भ

1. Jayaram]N (2004): The Dynamics of Language in Indian Diaspora:The Case of BhojpurièHindi in Trinidad in The Indian Diaspora: Dynamics of Migration (pp:148&165), New Delhi, Sage publication.
2. Jain, R.K. (2004): Race Relations, Ethnicity, Class and Culture: A Comparision of Indians in Trinidad and Malaysia in The Indian Diaspora: Dynamics of Migration (pp:148-165 (New Delhi) Sage publication.
3. Bhat, Chandrashekhar, K. Laxmi Narayan (2010): Indian Diaspora, Globalization and Transnational Networks: The South African Context, J of Social Science, 25(1-2-3): 13-23(2010)http://www.krepublishers-com/02-Journals/JSS/JSS-25-0-000-10-Web/JSS-25-1-2-3-000-10-A bst-PDF/JSS-25-1-3-013-10-1147-Bhat-CèJSS-25&1-3&013-10-1147-Bhat-C-Tt-pdf
4. Bhat, Chandrashekhar and Bhaskar, T.L.S. (2011): Locality and Identity in the Indian Diaspora: Reinvention of Regionalè Linguistic Diversities in Mauritius in Jayaram, N.(ed) Diversities in the Indian Diaspora: Nature, Implication, Responses, (119). New Delhi: Oxford University Press.
5. Hookoomsing, Vinesh (2009): Language Loss, Language Maintenance: The Case of Bhojpuri and Hindi in Mauritius, Kadekar, Laxmi N, Sahoo Ajay K, Gauri Bhattacharrya (Eds), The Indian Diaspora: Historical and Contemporary Context (pp: 35-53). New Delhi: Rawat Publications.
6. Jagannathan, V.R. (2003): The Linguistic Diaspora in Dubey Ajay (ed). Indian Diaspora, Global Identity (pp:147-153). Delhi: GOPIO International - Kalinga Publication.
7. Tinker, Hugh (1974): A New System of Slavery (page: 48). London: Oxford University Press.
8. Zacharia, K.C. and Rajan, S. Irudaya (2015). Dynamics of Emigration and Remittances in Kerala: Results from the Kerala migration survey 2015, working papers, www.cds.edu.
11. Vahed, Goolam (2010): A. N. Imagined Community in diaspora: Gujaratis in South Africa, South Asian History and Culture, Vol. 1, No. 4, October 2010, page: 615/629.

बेगूसराय जिला से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएं

डॉ० सुशान्त कुमार

शिवपुरी, बेगूसराय
(बिहार) 851101

बेगूसराय जिला सम्प्रति उत्तरी बिहार का एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जिला है, जिसका महत्त्व प्रारंभिक मध्यकालीन प्राचीन गढ़, टीले, मूर्तियों आदि पुरातात्विक महत्व के प्राप्त अवशेषों के कारण है। इस धरती का निर्माण तीन प्रमुख नदियों गंगा-बुढ़ी गंडक-बागमती के द्वारा लाये गये रेत और मिट्टी के जमाव से हुआ है। बेगूसराय जिला गंगा से उत्तरी और बागमती के दक्षिणी हिस्से में अवस्थित है लेकिन इन दोनों नदियों के बीच बाया, बैती, बलान और बुढ़ी गंडक जैसी नदियाँ बहती है। बेगूसराय जिला उत्तर में समस्तीपुर जिला, पूर्व में खगडिय्या जिला, दक्षिण में लखीसराय तथा पश्चिम में समस्तीपुर जिला एवं पटना जिला से घिरा हुआ है। यह 06 जनवरी, 1870 ई0 में अनुमंडलीय मुख्यालय बनाया गया तथा 02 अक्टूबर 1972 ई. को प्रोन्नत होकर जिला बना।

इस क्षेत्र का वर्त्तमान जिला मुख्यालय आधुनिक काल में बेगूसराय हो गया है लेकिन यह इलाका मध्यकाल में बलिया (लखमिनिया) और तेघड़ा जैसे महत्वपूर्ण बाजार के कारण प्रसिद्ध रहा है। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी के दौरान बेगूसराय, तेघड़ा और दलसिंहसराय व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। 1863 में मि. जेम्स हेनेसी बेगूसराय फैक्टरी बनवायी। इसके बाद मध्यकालीन सरकार ए तिरहुत, सरकार ए हाजीपुर और सरकार ए मुंगेर के छोटे बड़े क्षेत्रों को काटकर अंग्रेजों ने बेगूसराय अनुमंडल का निर्माण किया। इसके साथ ही बेगूसराय में प्राचीन भारतीय जनपदों के तीन महत्वपूर्ण जनपद अंग, मगध और विदेह का त्रिकोणात्मक संगम हजारों साल बाद हो सका। गंगा के उत्तर में प्राचीन विदेह का इलाका रहा है जबकि मगध और अंग का इलाका गंगा के दक्षिण। इन जनपदों के बीच प्राचीन कालीन बौद्ध साहित्य, अंगुत्तरनिकाय में अंगुत्तराप की चर्चा मिलती है। इस अंगुत्तराप की सही-सही भौगोलिक स्थिति क्या थी, अभी तक अस्पष्ट है। कुछ विद्वान बेगूसराय, समस्तीपुर आदि को अंगुत्तराप में शामिल कर लेते हैं लेकिन मेरे दृष्टिकोण में गंगा-बुढ़ी गंडक के संगम से उत्तर वर्तमान कोसी वाला वृहत इलाका अंगुत्तराप का हो सकता है या फिर गंगा-बुढ़ी गंडक के मध्य बेगूसराय में छोटी सी पट्टी मिर्जापुर बनद्वार से बनद्वार और बेगूसराय से बलिया-खगड़िया तक का इलाका हो सकता है। भौगोलिक स्थिति में बेगूसराय का पश्चिमी भाग एवं उत्तरी भाग किसी भी दृष्टिकोण से अंगुत्तराप का हिस्सा नहीं हो सकता है। अंगुत्तराप और इसके प्रधान नगर आपण की स्थिति पर गम्भीरता से कार्य करने की संभावना अभी भी बनी हुई है।

डॉ. बी. पी. अम्बष्ट 'बिहार इन द् एज आफ द ग्रेट मुगल अकबर' में लिखते हैं कि मुंगेर, बिहार सूबे के पूरब में स्थित अंतिम क्षेत्र था और बंगाल और बिहार सूबों की सीमा का रोल अदा करता था। मुंगेर से मात्र 130 किमी की दूरी पर तेलियागढ़ी का किला मौजूद है जिसे पार करके ही, उन दिनों, बंगाल की सीमा में प्रवेश किया जा सकता था। 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार बादशाह अकबर के समय में बिहार प्रांत सात 'सरकारों' में बंटा था जिसमें एक मुंगेर था। 'मुंगेर सरकार' में 31 'महाल' थे जो सूरजगढ़ा के पश्चिम क्यूल नदी से लेकर बंगाल की सीमा तेलियागढ़ी तक फैले थे। बलिया एक परगना था, जो मुंगेर सरकार के अधीन था। गंगा के उत्तर में हाजीपुर सरकार के अन्दर तेघड़ा एक महाल था, जिसका उल्लेख आईने अकबरी में किया गया है। कई परगनों को मिलाकर एक महाल का निर्माण किया जाता था और एक सरकार में कई महाल रहते थे। तुर्क अफगान काल और मुगल काल से संबंधित अनेक प्राचीन अवशेष बेगूसराय क्षेत्र में आज भी उपलब्ध हैं।

बेगूसराय जिला में मुगल सल्तनत और दिल्ली सल्तनत से संबंधित साक्ष्य नहीं मिले हैं बल्कि इसके पूर्व प्रारंभिक मध्यकालीन अवशेष भी बहुतायत में मिले हैं। इस क्षेत्र में बिखरी कलाकृतियों के उदाहरण मंदिरों एवं ग्रामीण स्थलों में विद्यमान हैं। ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि में पुरातात्विक महत्व की बहुत सारी सामग्री बेगूसराय जिला के संग्रहालयों में संरक्षित हैं। बेगूसराय के इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति पर बहुत अधिक कार्य हुए हैं लेकिन और अधिक कार्य किये जाने की आवश्यकता है। राधाकृष्ण चौधरी जैसे यशस्वी इतिहासकार के द्वारा इस क्षेत्र का गहण पुरातात्विक अन्वेषण 1950 एवं 60 के दशकों में किया गया। कई शोधपरक आलेख एवं पुस्तकों का लेखन किया गया। जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय के प्राध्यापकों ठाकुर हरेन्द्र दयाल और फुलेश्वर सिंह के द्वारा राधाकृष्ण चौधरी के विरासत को बढ़ाने का कार्य छिट फुट तरीके से किया गया किन्तु इसके बावजूद यह क्षेत्र आज तक उपेक्षित ही रहा है। 2000 के दशक में बेगूसराय में जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय के स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के विभागध्यक्ष डॉ. शैलेश कुमार सिन्हा के निर्देशन में बृहत पैमाने पर बेगूसराय में जिला स्तर पर अन्वेषण का कार्य हुआ और इन कार्यों के आधार पर 'आर्कियोलॉजी ऑफ बेगूसराय' नामक पुस्तक का लेखन और प्रकाशन किया गया। बेगूसराय जिले में व्याप्त पुरातात्विक साक्ष्यों को आधार बनाते हुए पिछले कुछेक दशक में सुजीत कुमार, शंकर सुमन, विवेक रंजन, कर्ण कुमार सरीखे युवाओं ने बेगूसराय जिले के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है।

बेगूसराय जिला में पुरातात्विक सामग्रियों के संरक्षण के लिए दो-दो संग्रहालय हैं। जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय में मार्च, 1947 में प्रख्यात इतिहासकार राधाकृष्ण चौधरी के द्वारा के. पी. जायसवाल संग्रहालय की स्थापना की गयी तो राज्य सरकार के द्वारा 1981 में जिला मुख्यालय बेगूसराय में संग्रहालय की स्थापना की गई। इन दोनों संग्रहालयों में शताधिक पुरावशेष संरक्षित हैं जिनमें प्रस्तर मूर्ति, अभिलेख, द्वार स्तम्भ, सिक्के, हस्तलिखित तालपत्र आदि हैं। प्रस्तुत आलेख 'बेगूसराय जिला से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएं' मुख्य रूप से बेगूसराय के विभिन्न स्थानों एवं संग्रहालयों में प्रदर्शित बौद्ध प्रतिमाओं को केन्द्रित करते हुये लिखने का विनम्र प्रयास किया गया है ताकि बेगूसराय के विभिन्न स्थलों से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाओं के संबंध में जानकारी एकत्रित किया जा सके।

बेगूसराय के इलाके में अभी तक दर्जनाधिक बुद्ध की प्रतिमा मिली है। बुद्ध के प्रतिमा का निर्माण बेगूसराय के क्षेत्र में कब से प्रारंभ हुआ, यह अस्पष्ट है। बौद्ध धर्म के इतिहास में बुद्ध के प्रतिमा का निर्माण कोई आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि यह विलक्षण बात थी क्योंकि बुद्ध मूर्तिपूजा के विरोधी थे। दीघ निकाय के ब्रह्मजालसुत्त में गौतम बुद्ध ने अपनी प्रतिमा के निर्माण का स्पष्ट निषेध करते हुए कहा था कि जब तक उनका शरीर है, उसे देवता और मनुष्य देख सकते हैं, किन्तु शरीर के नष्ट हो जाने पर न तो देवता, न ही मनुष्य उन्हें देख पाएँगे। इसीलिये भरहुत और सांची के शुंगकालीन स्तूपों पर जातक-कथाओं के रूप में अंकित हीनयान पक्ष के कथा-दृश्यों में बुद्ध का अंकन सदैव प्रतीक-रूप में किया गया है, मानव रूप में नहीं। बौद्ध धर्म के निरंतर विकास में सदियों बाद बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण संभव हुआ। हीनयान में बुद्ध श्रेष्ठ समझे गये। हीनयान यह नहीं मानता कि पूजा से बुद्ध वरदान दे सकते हैं, किन्तु वह इतना अवश्य मानता है कि बुद्ध का ध्यान करने से चित्त शुद्ध होगा और व्यक्ति को निर्वाण की दिशा में अग्रसर करने के लिए तैयार करेगा। पालि साहित्य में बुद्ध को लोकोत्तर कहा गया है। बुद्ध ने निर्वाण का मार्ग दिखाया। अतः हीनयान में बुद्ध की मूर्ति-रूप में पूजा का प्रश्न ही नहीं है।

भक्ति भाव से बौद्ध मताबलियों में बुद्ध आराध्य माने जा चुके थे। कुषाण काल में कनिष्क के नेतृत्व में महायान परम्परा के उत्कर्ष के साथ ही मथुरा और गांधार में बुद्ध की प्रतिमा बनायी जाने लगी। बुद्ध की पहली प्रतिमा मथुरा में बनी या गांधार में बनी, यह विवाद का विषय बन गया है। वस्तुतः हीनयान से अलग महायानियों ने मूर्ति निर्माण की अनुमति दी। भारतीय इतिहास में कुषाण काल से बुद्ध के मानव रूप में प्रतिमा का अंकन दिखाई देता है। कुषाण काल में प्रारंभ में यद्यपि बुद्ध की सामान्य मूर्तियाँ ही बोधिसत्व के नाम से बनाई गई थी किन्तु बाद में बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तियों को उनकी साज-सज्जा के आधार पर अलग-अलग पहचाना जाने लगा। बुद्ध मूर्तियाँ पूर्णतया अलंकरण-विहीन होती थीं, जबकि बोधिसत्व-मूर्तियाँ सभी वस्त्रालंकारों से अलंकृत बनाई जाती थीं। कालान्तर में बौद्ध मताबलियों में विभिन्न सम्प्रदाय के कारण बुद्ध की प्रतिमा भिन्न भिन्न रूपों और अलग अलग लक्षणों के साथ बनाया गया। गुप्तोत्तर काल में पाल शासकों के संरक्षण में बिहार, बंगाल और उड़ीसा में बौद्ध-धर्म का विशेष विकास हुआ। इस समय वज्रयान सम्प्रदाय अपने उत्कर्ष पर था और उसमें पंचध्यानी बुद्धों से उत्पन्न एक विशाल देवता-मण्डल की कल्पना की जा चुकी थी।

बेगूसराय के क्षेत्र में बुद्ध की कई प्रतिमाएं मिली हैं। बेगूसराय के बौद्ध मताबलम्बी बौद्ध धर्म के किस शाखा के अनुयायी थे, तो महायान शाखा का नाम आसानी से लिया जा सकता है। महायान के तर्क में यह कहा जा सकता है कि जब हीनयान में बुद्ध की मूर्ति पूजा का प्रश्न ही नहीं उठता है तो बेगूसराय जैसे प्रक्षेत्रों में जहाँ बुद्ध की प्रतिमाएं मिल रही है संभवतः महायानी संप्रदाय के मानने वाले लोग रहते होंगे और बुद्ध की मूर्ति पूजा करते रहे होंगे। इस क्षेत्र में बौद्ध प्रतिमाओं की संख्या अन्य ब्राह्मण

देवी-देवताओं के प्रतिमा की संख्या में अन्य की अपेक्षा कम है परंतु ये सभी बौद्ध प्रतिमाएं महत्त्वपूर्ण हैं। बेगूसराय जिला में बौद्ध प्रतिमाओं के अध्ययन के लिए बेगूसराय से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाओं को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है, यथा-

1. क्षेत्र के मन्दिरों में पूजित,
2. काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय, जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय में संरक्षित मूर्तियाँ एवं
3. राजकीय संग्रहालय, बेगूसराय में संरक्षित मूर्तियाँ।

बेगूसराय जिला के विभिन्न हिस्सों बीरपुर, बरौनी और संघोल से बुद्ध की प्रतिमा मिली है। इनमें से कुछ मूर्तियों को संग्रहालयों में संरक्षित किया गया है और कुछ मूर्तियों को ग्रामीणों द्वारा गाँव के मंदिरों, ब्रह्मस्थानों में पूजा अर्चना के लिए रखा गया है। वीरपुर के ब्रह्मस्थान में अवलोकितेश्वर (90'36 से. मी.) एवं भैरवस्थान में अवलोकितेश्वर (49'24 से. मी.) की प्रतिमा थी। बलान नदी तट पर पीपल पेड़ के नीचे बौद्ध देवी मारीचि की प्रतिमा (40'24 से. मी.) मिली थी। यह मारीचि की चतुर्भुजी प्रतिमा है। बरौनी के रजवाड़ा गुमटी के पास दुर्गास्थान के सामने अभिलेख युक्त बौद्ध देवी मारीचि (54'45.5 से. मी.) की खंडित प्रतिमा एक पेड़ के नीचे रखी हुई है। कुछ वर्ष पूर्व वीरपुर के भैरवस्थान की अवलोकितेश्वर प्रतिमा चोरी हो गयी। बलिया में भी कहीं बुद्ध प्रतिमा के होने की जानकारी मिली, लेकिन मुझे अपने अन्वेषण के दौरान बुद्ध की प्रतिमा नहीं मिली। ठाकुर हरेन्द्र दयाल ने अपने एक आलेख में लिखा है कि बलिया थाना में बुद्ध की दो प्रतिमा (30'22.2 से. मी. एवं 29.5'20 से. मी.) और विष्णु की एक प्रतिमा संरक्षित है। इस संबंध में मुझे विस्तृत जानकारी नहीं है।

काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय, जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय में भी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ संरक्षित हैं। इस संग्रहालय में मूलतः प्रोफेसर राधाकृष्ण चौधरी के द्वारा लाये गये पुरातात्विक महत्व की वस्तुओं का संग्रह किया गया है। फुलेश्वर सिंह एवं शैलेश कुमार सिन्हा के कार्यकाल में भी कुछ नयी सामग्री आयी। इस संग्रहालय में सूर्य, विष्णु, बुद्ध आदि कई प्रकार की पाषाण प्रतिमा हैं।

1. काले कसौटी पत्थर की बनी संघोल से प्राप्त स्थानक बुद्ध की प्रतिमा द्विदलीय कमलासन पर खड़े हैं। यह 48'33 से. मी. की है।
2. काले कसौटी पत्थर की बनी संघोल से प्राप्त पद्मासन व्याखयान मुद्रा में बुद्ध द्विदलीय कमलासन पर बैठे हैं।
3. काले कसौटी पत्थर की बनी संघोल से प्राप्त पद्मासन भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध द्विदलीय कमलासन पर बैठे हैं। अभिलेख युक्त इस प्रतिमा का दाहिना हाथ भूमि स्पर्श मुद्रा में है तथा बायाँ हाथ गोद में है।
4. इस संग्रहालय में नोलागढ़ से प्राप्त एक खंडित प्रतिमा के बुद्ध होने का अनुमान है। यद्दपि इसमें वराह का अंकन भी है, जिसके कारण यह विष्णु होने का भ्रम हो जाता है।

राजकीय संग्रहालय, बेगूसराय में बुद्ध की पाँच प्रतिमा संरक्षित हैं। इनमें से चार प्रतिमाएं स्वतंत्र रूप से अलग-अलग बनी हुई है जबकि एक अलग पैनल में बुद्ध की तीन प्रतिमाएं दृष्टिगोचर होती है। इन सभी प्रतिमाओं का स्टेला या तो आंशिक रूप से खंडित है या पूर्ण रूप से। किसी प्रतिमा का शिरोभाग खंडित है तो किसी का स्टेला। आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से खंडित होने के बावजूद प्रतिमाएं बौद्ध धर्म से संबंधित हैं।

बेगूसराय संग्रहालय में संरक्षित बौद्ध प्रतिमा इस प्रकार है-

क्रम संख्या-1. संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-114 (पुराना सूचीकरण संख्या-6)-काले पत्थर में बनी भूमिस्पर्श मुद्रा के बुद्ध की यह खंडित प्रतिमा कला के पूर्वी भारतीय शैली का प्रतिनिधित्व करता है। जिसकी लम्बाई 8.8 से. मी. है। इस प्रतिमा को किसी के द्वारा दानस्वरूप बेगूसराय संग्रहालय में दिया गया है।

क्रम संख्या-2. संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-26 (पुराना सूचीकरण संख्या-401)

यह प्रतिमा 13'10 से. मी. की काले पत्थर की बनी हुई है। भूमिस्पर्श मुद्रा की इस प्रतिमा पर बुद्ध द्विदलीय कमलासीन हैं। इसे भी पूर्वी भारतीय शैली के अंतर्गत रखा जा सकता है। यह वीरपुर से प्राप्त हुई जिसे किसी दानकर्ता द्वारा बेगूसराय संग्रहालय को प्रदान किया गया।

क्रम संख्या-3. संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-107 (पुराना सूचीकरण संख्या-602)

पूर्वी भारतीय शैली से संबंधित कला को प्रतिनिधित्व करती हुई भूमिस्पर्श मुद्रा की यह बुद्ध प्रतिमा 30.5'20 से. मी. की है। इस प्रतिमा के पृष्ठ भाग में अभिलेख खुदा हुआ है। इस प्रतिमा के संबंध में जानकारी मिली कि यह प्रतिमा भी वीरपुर से प्राप्त हुई और किसी दानकर्ता के द्वारा संग्रहालय में संरक्षित कराया गया।

क्रम संख्या-4. संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-109 (पुराना सूचीकरण संख्या-603) वीरपुर से प्राप्त पूर्वी भारतीय शैली में बनी भूरे रंग की यह प्रतिमा किसी दानकर्ता द्वारा बेगूसराय संग्रहालय को दिया गया। इस प्रतिमा की लंबाई, चौड़ाई 30.5'23 से. मी. है। द्विभुजा की यह प्रतिमा द्विदलीय कमल पर बुद्ध को बैठे हुए दिखाया गया है। स्टेला के निचले हिस्से में सिंह की आकृति दृष्टिगत होती है। इसमें की गई नक्काशी अत्यंत सुन्दर है। यद्यपि इस प्रतिमा के स्टेला का ऊपरी हिस्सा क्षतिग्रस्त है।

क्रम संख्या-5. संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-6 (पुराना सूचीकरण संख्या-अज्ञात)

यह एक प्रतिमा न होकर तीन प्रतिमाओं का समूह है। यह 20 से. मी.' 34 से. मी. के खंडित प्रस्तर स्तंभ का हिस्सा है। इसमें पहली मूर्ति भूमिस्पर्श मुद्रा है, दूसरी मूर्ति ध्यान और तीसरी मूर्ति अभयदान मुद्रा में प्रदर्शित है। वीरपुर से प्राप्त हुई इस प्रतिमा को भी बेगूसराय संग्रहालय में किसी सज्जन के द्वारा दानस्वरूप प्रदान किया गया। काले पत्थर का यह पैनल पूर्वी भारतीय कला शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

क्रम संख्या-6, संग्रहालय की सूचीकरण संख्या-1 (पुराना सूचीकरण संख्या-397)

यह बुद्ध की प्रतिमा न होकर स्तूप है। यह स्तूप वस्तुत: एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाला स्तूप का छोटा रूप है। जिसे पूजक स्तूप भी कहा जाता है। बौद्ध धर्म में इसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि संन्यासी अपने साथ इस प्रकार के रखने वाली स्तूप को कहीं से कहीं ले जाते थे। यह संभावना भी है कि बौद्ध धर्म के भिक्षु अपने साथ इस प्रकार के ढोने वाले स्तूप को अपने साथ ले जाने के लिये साथ में रखते थे। जिसकी आवश्यकतानुसार या समय-समय पर पूजा-अर्चना की जाती थी। इस प्रकार के कई पूजक स्तूप इस क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। बेगूसराय संग्रहालय के अलावे स्थानीय जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय में स्थापित काशी प्रसाद जायसवाल संग्रहालय में भी पूजक स्तूप रखे हुए हैं। पूजक स्तूप भी किसी दानकर्ता द्वारा प्राप्त है जो वीरपुर से मिला था। 25'19 से. मी. के आकृति में यह स्तूप बेगूसराय संग्रहालय में सुरक्षित है।

शिल्पकला में पूजक स्तूप की कलाकृति से यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस क्षेत्र में लघु एवं दीर्घ स्तूप भी रहे होंगे। वीरपुर जैसे स्थलों पर आज भी पुरातात्विक अवशेष अन्वेषण के दौरान मिलते रहते हैं। संग्रहालय में इन प्रतिमाओं के बारे में जो जानकारी मिली है उससे यह स्पष्ट होता है कि इन प्रतिमाओं में से अधिकांशत: बुद्ध की प्रतिमाएं, पैनल और स्तूप बेगूसराय जिले के वीरपुर से ही प्राप्त हुए हैं। वीरपुर नामक स्थल से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाएं बेगूसराय संग्रहालय के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि सम्पूर्ण क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्य स्थलों की अपेक्षा वीरपुर से बौद्ध प्रतिमाएं अधिक संख्या में उपलब्ध हुई है। बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं से युक्त प्रतिमाओं में अलंकरण एवं आभूषण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इन प्रतिमाओं का विशिष्ट देन यह है कि वीरपुर जैसे उपेक्षित स्थल को कलात्मक केन्द्र के रूप में ख्याति प्रदान करती है। वस्तुत: वीरपुर बलान नदी के तट पर बेगूसराय के उत्तरी मध्य हिस्से में जिला मुख्यालय से मात्र 14 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय के द्वारा वीरपुर की खुदाई प्रो. फुलेश्वर सिंह एवं डॉ. शैलेश कुमार सिन्हा के निर्देशन में हुई थी। डॉ. शैलेश कुमार सिन्हा के द्वारा वीरपुर उत्खनन से संबंधित एक रिपोर्ट धरोहर नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि वीरपुर क्षेत्र का विस्तृत अन्वेषण, सर्वेक्षण और खुदाई के आधार पर नवीन अनुसंधान की आवश्यकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बेगूसराय में संरक्षित बौद्ध प्रतिमाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान एवं अवदान है और बेगूसराय की प्रतिमाओं का शिल्पगत दृष्टिकोण से अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है। के. पी. जायसवाल संग्रहालय, जी. डी. कॉलेज, बेगूसराय एवं राजकीय संग्रहालय, बेगूसराय में संग्रहित एवं संरक्षित बौद्ध प्रतिमाओं से यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि यह क्षेत्र पाषाण प्रतिमाओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में प्राप्त अधिकांश बौद्ध प्रतिमाएं छोटी-छोटी हैं किन्तु कलात्मक दृष्टि से ये मूर्तियाँ कला-अनुसंधान के लिये ध्यान आकर्षित करती हैं। इस क्षेत्र में केवल बौद्ध प्रतिमा ही नहीं मिली है बल्कि यहाँ ब्राह्मण मत से संबंधित प्रतिमा भी बहुत अधिक संख्या में मिले हैं। कुछ प्रतिमाओं में अभिलेख भी हैं, जिनको स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बेगूसराय जिला से प्राप्त सभी तरह की पाषाण प्रतिमाओं का अन्वेषण एवं सूचीकरण अतिआवश्यक है। मैंने व्यक्तिगत अपने अध्ययन के लिये बेगूसराय जिले की पूर्व मध्यकालीन पाषाण प्रतिमाओं का अवलोकन कभी अकेले किया तो कभी अपने

शोध-निर्देशक शैलेश कुमार सिन्हा के साथ बेगूसराय के पुरातात्विक महत्व की वस्तुओं के अन्वेषण के दौरान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर्ण कुमार के शोधकार्य के दौरान एवं नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी, शिकागो (संयुक्त राज्य अमेरिका) के कला इतिहास के प्रोफेसर रॉब लिंगरौथ के साथ किया है। बेगूसराय की प्रतिमाओं का गम्भीरता से अवलोकन करने की आवश्यकता है क्योंकि मुझे बेगूसराय की प्रतिमा में कालक्रम के दृष्टिकोण से यहाँ की प्रतिमाओं में शिल्पगत अन्तर दिखाई देता है। यहाँ की क्षेत्रीय विशेषता को समझने के लिये बिहार के नालन्दा, कुर्कीहार तथा बंगाल की प्रतिमाओं के साथ शैलीगत स्तर पर देखने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. बेगूसराय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा नामक राधाकृष्ण चौधरी का लेख बेगूसराय अभिज्ञानग्रंथ में प्रकाशित, 02 अक्टूबर, 1973, बेगूसराय।
2. आर्कियोजिकल साईट्स ऑफ बेगूसराय, डॉ. शैलेश कुमार सिन्हा एवं डॉ. अमिय कृष्ण, दिल्ली, 2013
3. बेगूसराय संग्रहालय का फोल्डर (विवरणिका) कला, संस्कृति एवं युवा विभाग (संग्रहालय निदेशालय) पटना' बिहार द्वारा प्रकाशित।
4. Birpur excavation-2004:A Brief Report-Dr- Shailesh Kumar Sinha धरोहर, शोध पत्रिका, अंक-3 जुलाई-2013, संपादक-डॉ. शेलैश कुमार सिन्हा, बेगूसराय।

बिहार में वामपंथी दलों की वैचारिक कशमकश और पिछड़े वर्ग की राजनीति का उभार

डॉ० आशुतोष कुमार

अतिथि अध्यापक,
राजधानी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), पीएचडी, ज.ने.वि.,
(नई दिल्ली)

परिचय

बिहार एक ऐसा राज्य है जहाँ राजनीतिक शक्ति लम्बे समय तक उच्च जाति एवं वर्ग के पास रही। लेकिन मध्यम वर्ग भी राजनीतिक-आर्थिक हिस्सेदारी के लिए लम्बे समय से अपनी पैठ बनाने की कोशिश में लगा रहा। यहाँ की पारंपरिक सत्ता को तथा राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व को चुनौती 1970 के दशक में मिलनी शुरू हुई। और 1990 के दशक में पिछड़े वर्ग की राजनीति का उभार अपने चरम पर था जब लालू यादव ने बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में सत्ता संभाली। सत्ता का लोकतांत्रिकरण एक झटके में नहीं हुआ बल्कि इसके लिए एक लम्बा समय लगा जिसकी जड़े स्वतंत्रता से पहले से देखी जा सकती हैं। कृषि योग्य भूमि पर मुख्य रूप से बिहार में तीन जातियों के पास एकाधिकार था–राजपूत, भूमिहार और ब्राह्मण। पिछड़े वर्ग के पास जैसे कोइरी, कुर्मी और यादव के पास जमीन का एक छोटा सा हिस्सा था। जबकि निम्न वर्ग के पास कुछ अपवाद को छोड़ दिया जाये तो अधिकांश लोग भूमिहीन खेतिहर मजदूर बने रहे। हालांकि स्वतंत्रता से पहले स्वाधीनता आन्दोलन के समय से कुछ लोग भूमि सुधार की मांग को लेकर लड़ रहे थे। जैसे की स्वामी सहजानंद किसान सभा के बैनर तले किसान आन्दोलन को नेतृत्व दे रहे थे। कहा जाता है की ये इस अन्दोलन का सबसे ज्यादा फायदा पिछड़ी जातियों को मिला और उच्च वर्ग को इसका घाटा झेलना पड़ा। भूमि सुधार का अधिकतम फायदा पिछड़ी वर्ग की जातियों को मिला जो एक नए कृषक वर्ग के रूप में उभर कर आया जिसे कुलक कहा जाने लगा। आर्थिक उभार के साथ साथ इस वर्ग में राजनैतिक उभार की भी आकांक्षा जगी और इस वर्ग ने राजनैतिक तौर पर भी अपनी जगह बनानी शुरू की। 1980 के दशक के आन्दोलन से दबे कुचले पिछड़े समाज को सशक्तिकरण का भान हुआ हालाँकि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में कुछ खास सफलता हासिल करने में अक्षम रही। क्यूंकि शीघ्र ही पिछड़ा वर्ग खुद में टूटने और बिखरने लगा। पहले खेमे का नेतृत्व लालू यादव के जनता दल और दूसरा खेमा जिसमे कुर्मी और कोइरी शामिल थे समता पार्टी के रूप में संगठित हुए।

मुख्यधारा की वामपंथी पार्टिया जैसे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया मार्क्सिस्ट ने जनता दल के प्रमुख गठबंधन साथी की भूमिका निभाई। CPIML मात्र एक बार समता पार्टी का गठबंधन साथी रहा। हालाँकि जनता दल ने अपना वर्चस्व बनाये रखा लेकिन फिर भी एक लम्बे समय तक CPI और CPM इसके प्रमुख साथी रहे।

लालू प्रसाद के चारा घोटाले के बावजूद जनता दल बिहार में सत्ता में बनी रही। क्यूंकि इन्होने सामाजिक न्याय के मुद्दे को जिन्दा रखा और गरीब पिछड़ों के हक की लड़ाई में डटे रहे. चाहे और जो भी कमियां रही हो, लालू के नेतृत्व वाले जनता दल ने धार्मिक उन्माद के खिलाफ धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में अपना मोर्चा खोले रखा।

वामपंथी पार्टियों का आत्मविश्लेषण

जहाँ तक वामपंथी पार्टियों की बात है तो उन्होंने समय-समय पर अपने पुनरीक्षण रिपोर्ट में इस बात को स्वीकारा है कि उनके वर्ग आधारित जनाधार में गिरावट आई है। (राष्ट्रीय कार्यकारिणी CP परिपोर्ट मार्च 1998)। पार्टी का यह भी मानना है कि सामाजिक न्याय के नाम पर पार्टी के अन्दर के भटकाव को रोकने में भी वे अक्षम रहे. सक्षिप्त में यदि कहें तो CPI ने इस बात को स्वीकारा कि जबसे उन्होंने लालू सरकार में गठबंधन धर्मनिभाया तब से उनकी अपनी पार्टी की वर्गीय पहचान में गिरावट आई है। हालाँकि जाति का सवाल कम्युनिस्ट पार्टी में लम्बे समय से रहा है किन्तु इसकी वजह को इन्होने कभी भी गंभीरता से पार्टी के भीतर नहीं रखा. इन्होने उत्तर मंडल कमिशन परिघटना को ठीक ढंग से नहीं समझा और अपने बचे खुचे जनाधार को भी खोते गए। यहाँ दूसरी दलील ये भी दी जाती है कि पार्टी खुद अपने राजनैतिक पहचान और सिधान्तों से भी भटकती गई जिसकी वजह से धरातल पर उनके वोट में भी काफी गिरावट आई. क्यूंकि न वो अपने वर्गीय चरित्र को बचा पाए और ना ही पिछड़े वर्ग के उभार को समझ पाए। वो धारा के साथ बहते गए।

कम्युनिस्ट पार्टी अपने जनाधार को पिछड़े वर्ग के उभार के बाद भी बचा सकती थी यदि वो अपने जनाधार के बीच आर्गेनिक संवाद बना कर रखती, कृषक और मजदूर वर्ग के लड़ाई में अपनी अहम् भूमिका में रहती, और धीरे धीरे जाति को भी समझकर उसका हल निकालती.हालाँकिब्च्। ने चारा घोटाला के बाद अपने वर्गीय छवि और बचे खुचे सैधांतिक मूल्यों को बचाने के लिए जनता दल से अलग अपनी खुद की पहचान फिर से स्थापित करने की बात को अपने पार्टी डॉक्यूमेंट में इंगित किया परन्तु इतना काफी नहीं था। कुछ बुद्धिजीवियों का कहना था कि मुख्यधारा की वाम दल का जनता दल से केवल भ्रष्टाचार के मुद्दे पर ही विचारधारा का टकराव कैसे हो सकता है? क्या और सारे लोकतंत्रिक मुद्दे पर उनकी जनता दल से सहमति है? संक्षिप्त में कहें तो मुख्यधारा के वाम दलों को कुछ बुनियादी बदलाव अपनी पार्टी के ढांचे में करने ही होंगे नहीं तो संभव है कि शेष जनाधार का भी ह्रास हो जाये।

बिहार के वाम दलों ने 2009 के लोक सभा चुनाव में एक ऐतिहासिक फैसला लिया जिसमे उन्होंने (CPI, CPM, CPI-ML) ने मिलकर यूनाइटेड लेफ्ट ब्लॉक बनाया. हालाँकि राजनीतिक हलके में वाम दलों के संगठित रूप से चुनाव लड़ने की बात काफी समय से चल रही थी. क्यूंकि वाम दलों के वोटो का बंटवारा भी इनके खराब चुनावी प्रदर्शन का एक कारण माना जाता रहा है. जिसके कारण 1998 और 2004 के लोक सभा चुनाव में बिहार से एक भी वाम दल का उम्मीदवार चुनकर नहीं जा सका. जाहिर है चुनाव के सभी वाम दलों के अपने अलग रणनीति रही है. जैसे ब्च्। और ब्च्ड चुनावकेवल कुछ सीटों पर लड़ते हैं जहाँ उनकी अच्छी पकड़ है, जीत की उम्मीद है या फिर वोट शेयर बढ़ने की उम्मीद ज्यादा है जबकि CPI-ML (LIBERA TION) हमेशा ज्यादा से ज्यादा सीटों पर अपने उम्मीदवार देती रही हैं क्यूंकि उनका मानना है कि चुनावी प्रचार में शामिल होने से वो अपना जनाधार बचा पाएंगे या फिर बढ़ने की भी उम्मीद रखते हैं। लिबरेशन चुनाव में जीत और हार की चिंता कम करता है और अपने वजूद और पहचान को बचाना ज्यादा आवश्यक मानता है।

इसके अलावा तीनों वाम दलों के भूमि सुधार को लेकर अपनी लड़ाई भी अलग-अलग वर्ग पर जोर देते हैं। हालाँकि भूमि की लड़ाई में वाम दलों के आन्दोलन को देखकर BJP ने बिहार विधान सभा में लालू सरकार को इसके परिणाम की चेतावनी भी दी थी। जमीन बंटवारे के मामले में कांग्रेस पार्टी BJP के साथ खड़ी रही। पहली बार विधान सभा में फ्लोर का बंटवारा वर्ग के आधार पर हुआ। लालू ने इस बात के लिए वाम को यकीन दिलाया की वो अपनी पुलिस को आन्दोलनरत कृषकों पर गोली नहीं चलने देगी।

एक बार फिर से वाम दलों के बीच अपने वर्ग चरित्र को लेकर फूट हुआ जब सी पी आई-एम् एल (लिबरेशन) ने जमीन के राष्ट्रीयकरण की बात की। जमीन का राष्ट्रीयकरण CPA और CPM के एजेंडे में नहीं था. इनकी पार्टी लाइन के मुताबिक जो बनी बनाई नीति जमीन को लेकर पहले से ही अस्तित्व में है उसको लागू किया जाये। इस प्रकार वाम दलों के अपने सांगठनिक चरित्र में भिन्नता भी इनकी यूनिटी में आड़े आई। वाम दलों ने बिहार की मुख्यधारा की क्षेत्रीय दलों (JDU, RJD, LJP) के चरित्र का आंकलन भी अलग-अलग इस आधार पर किया किया कि भाजपा और कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय पार्टियों से इस क्षेत्रीय पार्टियों के कैसे संबंध रहे हैं।

जब लालू यादव ने जनता दल के बैनर तले यादव और मुस्लिम का फार्मूला बनाकर सोशल इंजीनिरिंग किया वामदलों की अपनी आत्मनिर्भर राजनीतिक दावेदारी और मुश्किल हो गया। उदाहरण के तौर पर सीपीआई पटना पार्लियामेंट्री सीट से मध्यावधि चुनाव में सारी वाम दलों के सहयोग के बावजूद बुरा प्रदर्शन करती है। इसके बावजूद सीपीआई ने अपना आंतरिक मुल्यांकन करना ठीक नहीं समझा. बल्कि राष्ट्रीय पार्टियों पर आरोप लगाया की भाजपा और कांग्रेस जैसी सत्ताधारी पार्टियों द्वारा इलेक्शन के दौरान धांधली की गई। जहाँ तक धांधली की बात है तो बिहार के चुनावी राजनीति में यह उतनी पुरानी है जितनी की बिहार इलेक्शन की शुरुआत। यह दर्शाता है की जनता से प्रत्यक्ष जुडाव का आभाव पार्टी की सबसे बड़ी कमजोरी रही और उससे भी ज्यादा चिंताजनक बात ये रही की मुख्यधारा की लेफ्ट पार्टी अपनी अलग पहचान और अस्तित्व खो कर क्षेत्रीय पार्टियों/सत्ताधारी की पिछलग्गू बन गई। इस बात को सीपीआई ने अपने 14 वे पार्टी कांग्रेस के रिपोर्ट में भी इंगित किया कि कमजोर इलाकों में कुछ सीटें पा लेने की चिंता में उन्होंने अपने बचे खुचे आधार को भी क्षेत्रीय पार्टियों को सौंप दिया।

भूमि सुधार का सवाल

बिहार जैसे जाति और वर्ग विभाजित समाज में जहाँ गैरबराबरी की पराकाष्ठा है वहां भूमि सुधार का मुद्दा सबसे अहम् हो जाता है। क्यूंकि यहाँ की सच्चाई ये है की जो भूमिहीन हैं वो जाति में भी समाज के सबसे हाशिये पे खड़े लोग हैं, ज्यादातर दलित हैं। लेकिन जब जब इन मुद्दों को उठाया गया है सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाली पिछड़े वर्ग की राजनीतिक पार्टियों ने हमेशा से हाथ खड़े किये हैं। डी. बंदोपाध्याय कमिटी (2008) की रिपोर्ट जो बिहार में भूमि सुधार की बात करती है, उसके अनुसार बिहार की नब्बे फीसदी जनसँख्या जो की गाँव में रहती है, उसमें से 74 प्रतिशत रोजी रोटी के लिए केवल कृषि पर निर्भर है. बंदोपाध्याय कमिटी ने कहा की बिहार में गरीब भूमिहीन मजदूरों की संख्या लगातार बढ़ रही है -1993-94 जहाँ 67 परसेंट लोग भूमिहीन थे वहीं सन 2000 आते आते ये संख्या बढ़कर 75 फीसदी तक हो गयी। 1991 से 2001 के बीच बिहार से पलायन में 200 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भूमिहीनता गरीबी का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ है और यही गरीबों को पलायन करने को मजबूर करता है।

कमिशन ने ये सुझाव दिया था की कम से कम 10 डेसीमल जमीन बेघर लोगों को दिया जाए और 5.84 लाख रूपए भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों को दिया जाए क्यूंकि वे लगभग बंधुआ मजदूर की हालत में दूसरे के खेतों में रोजी रोटी के लिए पुर्णत: आश्रित हैं। लेकिन इस रिपोर्ट को लागू करना तो दूर इसको टालने के लिए नीतीश सरकार ने कमिटी पर कमिटी गठित करके इसको लटकाए रखा यहाँ तक कि इसके रिपोर्ट को भी लम्बे समय तक बाहर नहीं आने दिया।

2011 के सामाजिक आर्थिक जातीय जनगणना की रिपोर्ट की अनुसार बिहार में पांच में से तीन घरों के पास कोई भी जमीन नहीं है, वो भूमिहीन है। लेकिन इन सब रिपोर्टों की फाइलें धूल फांकने के अलावा सरकार के किसी काम नहीं आई क्यूंकि तथाकथित रूप से सामाजिक न्याय की पार्टियों की राजनीतिक इच्छाशक्ति कभी इसको लागु करने की नहीं रही है। हालाँकि इस मुद्दे पर वामपंथी दलों के बीच भी काफी मतभेद रहे लेकिन तब भी मंडल परिघटना के बाद भूमि के सवाल को मुख्य मुद्दा न बना पाने के कारण इनके जनाधार में लगातार ह्रास होता गया। हालाँकि वाम धडों में भाकपा माले ने लगातार इस मुद्दे पे आन्दोलन जारी रखा लेकिन राज्य द्वारा इस धड़े को नक्सलवादी गत्तिविधियों का आरोप लगाकर लगातार दमन किया जाता रहा।

हालांकि यदि बिहार की चुनावी दृष्टि से आंकलन करें तो 1960 से 1990 के बीच सी पी आई के तरफ से बड़ी संख्या में एम एल ए विधान सभा के लिए चुने जाते रहे हैं लेकिन इसका असर समाज में बदलाव के रूप में कम ही दिखा क्यूंकि ये लोग ज्यादातर सामाजिक बदलाव की जगह चुनावी गुणा-गणित में और किसी तरह कांग्रेस या राजद और जदयू सेगठबंधन हो के चुनाव जीता जा सके, इसी फिराक में लगे रहे। वहीं यदि इन जाति आधारित दलों (राजद-जदयू) का मूल्यांकन किया जाए तोसत्ता मिलने के बाद पिछड़ों-दलितों का ही लोगों का भला नहीं कर सके। जैसे नीतीश कुमार ने मुख्यमंत्री पद सँभालने के बाद अमीर दास आयोग को भंग कर दिया जो बथानी टोला जैसे नरसंहार की जांच करने के लिए बिठाई गयी थी. लक्ष्मणपुर बाथे, बथानी टोला, शंकरबीघा, नगरी, मियांपुर जैसे जनसंहार रचाने वाले रणवीर सेना (जमींदारों की निजी सेना) के खिलाफ करवाई तो दूर उल्टा संरक्षण देने का काम इन सरकारों ने किया। वहीं सीपीआई और सीपीएम इन सवालों पर जनता को संगठित करने के बजाय राजद-जदयू से गठबंधन करके कुछ सीट मिल जाने को ही तरजीह देती रहीं। इस से सबसे बड़ा नुकसान ये हुआ की अपनी अलग पहचान के रूप में संगठित वाम आन्दोलन चलाने के बजाए ये पूरी तरह से इन क्षेत्रीय के भरोसे रह गयीं।

निष्कर्ष

यदि बिहार के भीतर वामपंथी पार्टियों के चुनावी क्षय को ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखें तो हम पाते हैं की जब सीपीआई ने 1960 से 1990 के बीच जब बंधुआ मजदूरी की खिलाफ, बकश्त भूमि संघर्ष, न्यूनत्तम मजदूरी का सवाल, मधुबनी, चंपारण और पूर्णिया में बड़े जमींदारों के खिलाफ 'साठी भूमि संघर्ष' और 1990 में संगठित भूमि आन्दोलन चलायातब सीपीआई को चुनावी राजनीति में भी बढ़त मिली लेकिन जैसे ही आन्दोलन से रिश्ता कमजोर पड़ा वैसे ही चुनाव में भी प्रदर्शन कमजोर होता चला गया।

अंत में यदि हम निष्कर्ष पर पहुचें तो बिहार की राजनीति काफी उतार चढ़ाव के दौर से गुजरी है जिसके कई सारे आयाम और पडाव रहे हैं। इन उतार चढ़ावों में सभी दलों चाहे वो वामपंथी दल हों या फिर पिछड़े वर्ग की पार्टियाँ सभी वैचारिक उहापोह और कशमकश से गुजरी हैं जिनका प्रभाव जमीन पर इनके जनाधार में क्षय के रूप में साफ तौर दिखा ह। हालाँकि समय के साथ इन दलों ने अपने रणनीति और विचारधारा में बदलाव या लचीलापन भी लाया है लेकिन एक बार खिसकी हुई जमीन वापस प्राप्त करने में या फिर कहें जनता का विश्वास फिर से जीतने में काफी वक्त लग जाता ह। हमें इसी परिप्रेक्ष्य इन राजनीतिक परिघटना को समझना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. संजय कुमार, न्यू फेज इन बैकवर्ड क्लास पॉलिटिक्स इन बिहार: जनता दल ऑन डिक्लाइन, इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, खंड 34, न.34/35, 2472-2473।
2. देखें Kafila-org आदित्य निगम द्वारा लिखित आर्टिकल, 'द डिक्लाइन ऑफ कम्युनिस्ट मास बेस इन बिहार: जगन्नाथ सरकार', सितम्बर 2011।
3. चिराश्री दासगुप्ता, 'द यूनाइटेड लेफ्ट ब्लॉक् इन बिहार', इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, खंड 44, न.10, 2009, पृ 15।
4. तिलक डी गुप्ता, 'प्रोब्लम्स ऑफ लेफ्ट असर्सन इन बिहार रूपटना पोल लेसन्स', इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, खंड 28, न. 25, 1993. 1279-80।
5. डी बंदोपाध्याय.रिपोर्ट ऑफ द बिहार लैंड रिफॉर्म्स कमिशन, पटनारू द सेक्रिटारियट, 2008।
6. डी.एन. धनाग्रे. पीजेंट्स मूवमेंट इन इंडिया, न्यू डेल्हीरू ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983।
7. अरविन्द एन. दास, द रिपब्लिक ऑफ बिहार, न्यू डेल्ही : पेंग्विन, 1992।
8. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया। 15जी पार्टी कांग्रेस हेल्ड इन हैदराबाद.। न्यू डेल्ही : 1992. 104-111।
9. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, ड्राफ्ट ऑफ अपडेटेड पार्टी प्रोग्राम, 2000।
10. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, पोलिटिकल आर्गनाईजेशन रिपोर्ट अडॉपटेड बाय नेशनल काउंसिल, हैदराबाद, न्यू डेल्ही : सीपीआई, 2010।
11. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया. सीपीआई, पार्टी प्रोग्राम .पार्टी प्रोग्रामडॉक्यूमेंट, न्यू डेल्ही : सीपीआई, 2000।
12. लुईस प्रकाश, 'द नकसलाइट मूवमेंट इन सेंट्रल बिहार' वर्ड्सवथरू दिल्ली, 2002, 138-141।

गुजराती सिनेमा का विविध कालखंड और फिल्मों का बदलता विषय

डॉ० मनीष कुमार जैसल

सहायक प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग,
मंदसौर विश्वविद्यालय, मंदसौर

देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति पर चर्चा बिना गुजरातराज्य को शामिल किए संभव नहीं है। पूरे देश की राजनीति वर्तमान में गुजरात मॉडल के आस पास से गुजरती हुई ही दिखाई पड़ती है। यह विकास का मॉडल क्या और क्यों लोकप्रिय है इसकी चर्चा राजनीति-शास्त्री करते ही आए हैं। लेकिन हमारा उद्देश्य यहाँ भारतीय सिनेमा में गुजरात की स्थिति को जानना है। गुजरात का विकास मॉडल क्या सिनेमा माध्यम में भी उतनी ही प्रगति से दौड़ रहा है या सिर्फ केवल दिखावा है? हिन्दी सिनेमा अर्थात बॉलीवुड की बढ़ती सीमाओं पर गुजराती सिनेमा कहाँ टिक पा रहा है यह जानना आज की जरूरत है।

शुरुआती दिन

यह सच है कि गुजराती सिनेमा की वास्तविक शुरुआत भारतीय सिनेमा के सवाक युग में हुई है। नानुभाई वकील द्वारा निर्देशित पहली गुजराती फिल्म 'नरसिंह मेहता'1932 में रिलीज हुई थी। इस फिल्म के अभिनेता मोहन लाला, मारुती राव, मास्टर मनहर और मिस मेहताब थे। संत परंपरा को आगे बढ़ाने वाली फिल्मों की श्रेणी में गिनी जाने वाली इस फिल्म में कोई चमत्कारिक संदेश को संप्रेषित नहीं किया गया। जैसा की बाकी संतों पर पर बनी फिल्मों में चमत्कारिक स्थिति को दर्शाया जाता रहा है। 1920 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे तथा भारतीय दर्शन और संस्कृत साहित्य पर कई किताबें लिखने वाले लेखक आनंद शंकर ध्रुव का मानना है कि यह फिल्म गांधी के विचारों से प्रभावित थी तथा गांधी वादी व्याख्या को संप्रेषित करती हुई आगे बढ़ती है। समय के बढ़ते क्रम में 1921 में कांजी भाई राठौर द्वारा निर्मित गुजराती फिल्म 'भक्त विदुर' अंग्रेजो की आँख में पहली बार खटकी। इसमें समकालीन राजनैतिक दशा पर कडा प्रहार था। फिल्म का नायक महात्मा गांधी से मेल खाता था। विदुर की भूमिका निभाने वाले द्वारका दास सम्पत ने फिल्म में गांधी-टोपी पहनी हुई थी। इसी कारण अंग्रेजो ने इस फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया। बाद में 1922 में इसे धर्म विजय नाम से रिलीज किया गया। गौरतलब है कि एक लंबे समय तक कांजी भाई राठौर ने अपनी फिल्म कंपनी के माध्यम से महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, मुहम्मद अली के जुलूसों और कांग्रेस पार्टीकी बैठकों से संबन्धित कई वृत्तचित्रों का निर्माण कर इस विधा का इस्तेमाल जन सम्प्रेषण हेतु किया। आजादी की लड़ाई में जन समुदाय को एकत्रित करने और उनमे देशप्रेम की भावना जगाने के उद्देश्य में भी यह फिल्में काफी उपयोगी सिद्ध हुई थी। यही कारण रहा की उन दिनों ब्रिटिश शासकों ने इस विधा पर सेंसर जैसी कड़ी व्यवस्था लागू कर दी थी।

ऐसा नहीं है कि फिल्म 'नरसिंह मेहता' से पूर्व गुजराती सिनेमा से जुड़े लोग प्रयासरत नहीं थे। 1924 में जयशंकर द्विवेदी ने जहां पहली भारतीय फिल्म पत्रिका 'मौज मजा' शुरू की। वहीं 1928 से 1976 तक प्रकाशित होने वाली सिने पत्रिकाओं में 'चित्र पट' का एक जरूरी पत्रिका के रूप में उभरी। जिसका सम्पादन नगीनदास शाह ने किया था। फिल्म 'नरसिंह मेहता' से पूर्व 1931 में ही माणिक लाल पटेल ने दो सवाक लघु फिल्मों का सफल प्रयास किया। ये फिल्में हिन्दी मराठी और गुजराती तीनों ही भाषाओं में थी। इन दोनों फिल्मों 'मुंबई नी शेठानी' तथा 'चाव चांव नो मुरब्बो' ने गुजराती समुदाय को इस नयी विधा से जुड़ने में सकारात्मक दिशा प्रदान की। गुजरात के कई उद्यमी इसी फिल्म के बाद से फिल्म उद्योग से जुड़ने लगे। मूक दौर का इतिहास उठा कर देखे

तो पाएंगे कि उस दौर की मशहूर सात फिल्म कंपनियों में से पाँच का प्रबंधन और पैसा गुजरातियों के हाथ में था। 1919 से 1932 तक का एक आंकड़ा बताता है कि इस बीच बंबई में फिल्म निर्माण का काम गुजरात की 20 कंपनियां ही सम्हालती थी। इन कंपनियों में मदन थियेटर, ओरिएंटल थियेटर, कोहिनूर, नेशनल फिल्म्स, श्री कृष्ण फिल्म, सरस्वती फिल्म, सौराष्ट्र फिल्म, रॉयल स्टुडियो, लक्ष्मी पिक्चर्स, इंपीरियल फिल्म कंपनी, जगदीश फिल्म कंपनी, रणजीत फिल्म, सरोज फिल्म कंपनी, सागर फिल्म कंपनी, पाटणकर फिल्म कंपनी आदि प्रमुख थी जिनका प्रबंधन गुजरातियों के साथ में था।

गुजराती सिनेमा का मूक दौर 1917 से 1932 तक माना जाता है। इस दौर में ज्यादातर गुजराती बंबई में ही रहा करते थे। बंबई भाषाई विविधता के लिए शुरुआत से ही जाना जाता रहा है। ऐसे में वहाँ गुजरातियों की धमक भी स्वत: जमने लगी थी। हम जिसे आज गुजराती सिनेमा या गौलीवुड (ढोलीवुड) कह रहे है वह राजनैतिक इकाई व भाषाई क्षेत्र के वास्तविक रूप में 1960 के बाद अस्तित्व में आया था। जब 1960 में गुजरात स्वतंत्र राज्य बना।

मुंबई के वाटसन होटल में में 7 जुलाई 1896 को ल्युमियर बंधुओ द्वारा दिखाई गयी फिल्मों के प्रदर्शन के दौरान समारोह में कई गणमान्य गुजराती भी थे। सर्वप्रथम इस समारोह को देख सिने विधा से प्रभावित होने वालों में बोहरा समुदाय के गुजराती अब्दुल अली युसुफ अली तथा गुजराती सेठ जमसेद जी मदन थे। 1901 में सिंगापुर में अब्दुल अली युसुफ अली तथा 1902 में जे जे मदन सेठ ने कोलकाता में तंबू के सहारे विदेशी फिल्मों केप्रदर्शन की शुरुआत की थी। यह गुजरातियों द्वारा फिल्म व्यवसाय का आरंभिक दौर था। बाद में जमसेद जी ने फिल्म निर्माण, वितरणव प्रदर्शन तीनों में अपने व्यवसाय को पुख्ता किया। सन 1907 में जमसेद जी ने कलकत्ता में देश का पहला पक्का सिनेमाघर बनवाया जिसका नाम 'एल्फिस्टन पिक्चर पैलेस' था। 1923 में जब भारत में सिनेमा घरो की संख्या लगभग 150 के करीब थी तब उनमे एक तिहाई संख्या के थियेटर मालिक जमसेद जी मदन ही थे। आगे चलकर 1904 में द्वारका दास सम्पत भी इस विधा से जुड़ गए। जिन्होने भक्त विदुर जैसी फिल्मों में अभिनय भी किया। इसके पूर्व वह थॉमस एल्वा एडिसन से 400 रुपये में काइनेटोस्कोप खरीद कर फिल्में दिखाने का काम भी कर चुके थे। उनकी गणना आज भी आरंभिक सिने प्रदर्शकों की सूची में की जाती है। उनके ही स्थापित किए कोहिनूर फिल्म कंपनी के माध्यम से उस दौर की प्रसिद्ध अभिनेत्री सुलोचना, जुबेदा, फातिमाआदि, तथा होमी मास्टर चंदूलाल शाह, मोहन मावनानी जैसे निर्देशको ने अपना कैरियर बनाया था।

यहाँ यह तथ्य प्रशंषनीय है कि दादा साहब फाल्के ने जिस 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट फिल्म' को देखकर भारतीय फिल्म बनाने की प्रेरणा मिली थी उसके संदर्भ में यह तथ्य प्रचिलित है कि जिस सिनेमा घर ''अमेरिका-इंडिया पिक्चर पैलेस'' में यह फिल्म लगी थी उसका संचालन एक गुजराती व्यवसायी पी.वी. मेहता कर रहे थे। यहाँ यह जान लेना भी जरूरी है कि दादा साहब फाल्के को थ्री कलर प्रिंटिंग प्रोसेस सीखने के लिए जर्मनी भेजने वाले गुजरात के ही व्यवसायी पुरुषोत्तम विश्राम मावजी थे। ऐतिहासिक सर्वेक्षण बताता है कि दादा साहब फाल्के दारा निर्मित सभी फिल्मों के वितरक एक गुजराती कंपनी 'मायाशंकर ठक्कर' ही थी।

उपरोक्त कथनों के आधार पर यह तो सुनिश्चित किया ही जा सकता है कि भारतीय सिनेमा के आरंभिक दौर में भले ही दादा साहब का योगदान उल्लेखनीय है, परंतु गुजराती व्यवसायियों का इस विधा से जुड़ाव ही दादा साहब की फिल्मी यात्रा में बड़ी सकारात्मक दिशा थी। 1902 से लेकर 1920 में बनी सफल पहली मूक गुजराती फिल्म का इतिहास जानने पर गुजराती व्यक्तित्व के सिने संघर्ष को आसानी से समझा जा सकता है।

यह वही समय था जब दादा साहब फाल्के लंका दहन 1916 जैसी फिल्में बना चुके थे। इसकी सफलता से प्रभावित होकर द्वारकादास सम्पत ने पाटणकर सेठ और गोधरनदाससेठ के साथ मिलकर 'पाटणकर एंड फेंड्स फिल्म कंपनी' बनाई। कंपनी नेअपने अथक प्रयासों से फिल्म 'सेठ सगालशा' का निर्माण किया भी किया लेकिन रसायनिक प्रक्रिया में कमी के चलते फिल्म का प्रिंट खराब हो गया और यह फिल्म पहली गुजराती फिल्म होने से वंचित हो गयी। 'पाटनकर एंड फ्रेंड्स फिल्म कंपनी' ने इस फिल्म की असफलता के बाद हार नहीं मानी। उनकी टीम ने विद्युत साधनों से चालित फिल्म रसायनशाला खरीदी और बाद में 'विश्वामित्र मेनका' 'कच-देवयानी' 'नृसिंहावतार' जैसी गैर-गुजराती फिल्में बनाई। पूर्ण गुजराती फिल्म होने से भले ही इन फिल्मों को नकारा जाता रहा हो परंतु इनमें गुजराती नृत्य परंपरा और वेषभूषा को काफी हद तक शामिल किया गया था। इसी यात्रा में द्वारकादास संपत 'पाटनकर एंड फ्रेंड्स फिल्म कंपनी' से आपसी मतभेदो के चलते अलग हो गए और माणिक बी पटेल की कंपनी 1920 से जुड़ गए। इसी कंपनी के तत्वावधान से श्री कृष्ण सुदामा नाम की पहली मूक गुजराती फिल्म का निर्माण हुआ। इसी आधार पर द्वारका दास सम्पत को गुजराती सिनेमा का प्रथम पथ-प्रदर्शक और गुजराती फिल्म निर्देशक कह सकते है।

'पाटनकर एंड फ्रेंड्स फिल्म कंपनी' से अलग होने के बाद द्वारकादास सम्पत ने लगभग 100 कथा-फिल्मों का निर्माण किया। जिनमें भक्त विदुर, मीनल देवी, कालो-नाग, गुल बकावली, आदि का पूर्ण गुजराती होने का दावा साहित्यकारों और पत्र पत्रिकाओं द्वारा किया गया। कोहिनूर कंपनी और गुजराती फिल्म इतिहास के लिहाज से भक्त विदुर को मील का पत्थर माना जा सकता है। यही वह फिल्म थी जहां से यह माध्यम अंग्रेजों की आँख का नासूर बनने लगा। सेंसर जैसी व्यवस्था को और कठिन बनाए जाने के पीछे भक्त विदुर फिल्म की कहानी भी मानी जाती है। वहीं मीनल देवी गुजरात के प्रादेशिक इतिहास तथा कालो नाग मुंबई के चांपशी हरिदास मर्डर जैसी तत्कालीन घटना पर आधारित थी। बाद में 'काला नाग' नाम से हिन्दी में भी बनाया गया। क्राइम-थ्रिलर जोनर के इतिहास को खंगाले तो गुजराती फिल्म 'कालों नाग' शायद ही इस जोनर ही पहली फिल्म साबित हो। गुजराती फिल्म के इतिहास में कोहिनूर कंपनी अपना बेहतर दे ही रही थी कि 1923 में कोहिनूर फिल्म कंपनी में आग लगी जिससे कारण कई बड़ी फिल्में और पाँच लाख रुपये की सामग्री जल कर खाक में तब्दील हो गयी। द्वारका दस सम्पत इस हताहत से परेशान नहीं हुए। उन्होने 1925 में एक बार फिर गुजराती फिल्मों के विकास के लिए एक दूसरी कंपनी 'लक्ष्मी फिल्म कंपनी' स्थापित की। जिसका उत्तरदायित्व उनके बेटे रामदास को दिया। द्वारका सम्पत के सिने कैरियर में उनकी फिल्म 'नवी शेठानी' 'कन्या विक्रय की कहानी' के जरिये उनकी सिने क्षमता को पहचाना जा सकता है। इन फिल्मों के सहारे उन्होने तत्कालीन गुजराती समाज में प्रचिलित कुप्रथाओं को सिनेमाई रूप दिया तथा समाज में बड़े सवाल छोड़ने में कामयाब रहें।

1932 तक के गुजराती सिने इतिहास पर गौर करते हुए कहा जा सकता है कि डी. सम्पत, कांजीभाई राठौर, माणिक बी. पटेल के अलावा प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक मोहन लाल दवे का गुजराती सिनेमा से विस्तार में सराहनीय योगदान है। दवे का सिने योगदान उनके ही फिल्मी आंकड़े से समझा जा सकता है जिसमें उन्होने 1932 तक 125 फिल्मों की पटकथाएं लिख डाली थी। सवाक युग में भी उनका योगदान सराहनीय है। गुजराती मूक सिनेमा का दौर बिना नवल गांधी, चंदूलाल शाह, नानू भाई देसाई, हर्षदराय मेहता, चिमनलाल मूल जी लोहार, इन्दु लाल याज्ञिक, नगेंद्र मजूमदार, नन्दलाल जसवंतलाल जैसे निर्देशकों और सर्जकों के अधूरा है। उपरोक्त नाम सिनेमा में एक से अधिक विभागों की जानकारी रखने वाले व्यक्तित्व के लिहाज से भी जरूरी है। चंदूलाल शाह ने तो मूक दौर में ही सिनेमा में पौराणिक कथाओं से इतर विषय परिवर्तन करने की शुरुआत कर दी थी। बाद में उन्होने जयशंकर द्विवेदी के साथ मिलकर उन्होने 'गुणसुंदरी' नाम की सामाजिक मुद्दे को सिनेमाई पर्दे पर उकेरती फिल्म का निर्माण किया। फिल्मकार इंदुलाल यागिनक खुद स्वतन्त्रता सेनानी थे और बाद में 'महागुजरात मूवमेंट' के करता धर्ता भी। उन्होने अपनी फिल्म कंपनी 'यंग इंडिया फिल्म कंपनी' के अधीन 10 फिल्मों का निर्माण किया जिसमें से 'पावागढ़ नूं पतन' लोकप्रिय फिल्म साबित हुई। कुछ अन्य फिल्मों में 'कली नो एक्को' 'कश्मीर नू गुलाब' 'यंग इंडिया' और 'रखपट रखपट' जैसी फिल्में थी। यागिनक यंग इंडिया (अंग्रेजी), नवजीवन (गुजराती) नामक साप्ताहिक पत्रिकाओं, मुंबई समाचार, नूतन गुजरात बॉम्बे क्रोनिकल का सम्पादन भी कर चुके थे। वहीं सत्याग्रह आंदोलन पर आधारित नाटक में भी वह काम कर चुके थे।

सीधे तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय सिनेमा के परोक्ष गुजराती सिनेमा ने अपने पैर पसार लिए थे। वहीं यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारतीय फिल्मों के आरंभिक दौर में गुजराती व्यक्तियों का योगदान सराहनीय है। फिल्म कंपनी से लेकर फिल्म वितरण तक की कमान गुजरातियों ने संभाल रखी थी। इसी सहारे भारतीय सिनेमा अपने मूक दौर से सवाक दौर में भी चले आने के लिए तैयार था।

गुजराती सिनेमा में आवाज

भारतीय सिनेमा के संदर्भ में आलम आरा को प्रथम सवाक फिल्म का दर्जा प्राप्त है जिसे इंपीरियल कंपनी ने बनाई थी। यह कंपनी 1926 में स्थापित हुई जिसका प्रबन्धन आर्देशिर ईरानी के साथ-साथ गुजराती व्यवसायी अब्दुल अली युसुफ अली तथा अहमद अली 'रंगवाला' के हाथों में था। वहीं दूसरी सवाक फिल्म शीरी फरहाद को मदन थियेटर के तत्वावधान में बनी जिसका जिम्मा जमशेद जी मदद के हाथों में था। दोनों ही भारतीय प्रथम सवाक फिल्मों की निर्माता कंपनी गुजराती थी। बात पूर्ण रूप से गुजराती भाषा में बनी गुजराती फिल्म कि करें तो इसक श्रेय नानुभाई वकील को जाता है।

हिन्दी और गुजराती फिल्मों के प्रसिद्ध फिल्मकार नानुभाई वकील की सवाक फिल्म 'नरसिंह मेहता 1932' पहली गुजराती फिल्म मानी जाती है। इस फिल्म का निर्माण चिमनभाई देसाई की फिल्म कंपनी 'सागर मूविटोन' ने किया था। फिल्म की कहानी 15वीं सदी के महान संत नरसिंह मेहता के जीवन दर्शन पर आधारित थी। उनके गाये भजन 'वैष्णव जन को तेने रे कहिए' को

फिल्म में शामिल किया गया। इस गीत को स्वयं गांधी जी ने अपनी प्रार्थना सभा में भी शामिल किया था। इस फिल्म की सफलता के बाद 'गुण सुंदरी', 'सती सावित्री' और 'संसार लीला 1934' जैसी गुजराती फिल्मों का बाद में निर्माण हुआ। फिल्म गुणसुंदरी का विषय अपने आप में ही तत्कालीन समाज की बुनावट से काफी विद्रोही स्वर रखता हुआ हमें दिखता है। यही कारण है कि फिल्म का 1927 से 1948 के बीच में तीन बार निर्माण हुआ। चंदुलाल शाह ने पहले इसे 1927 में बनाया फिर इसको 1934 में भी निर्मित किया। बाद में 1948 में फिल्मकार रतिलाल पुनन्तर ने इस कहानी को भी सिनेमाई रूप दिया। इस फिल्म की मूल कहानी एक महिला के इर्द गिर्द केन्द्रित है जिसका पति उसके स्वभाव की वजह से पसंद नहीं करता। वह महिला सड़कों पर सोने को विवश है वहीं उसे एक ऐसा व्यक्ति मिलता है जो उसे काफी करीब से जानने पहचानने और समझने लगता है। इस कहानी की बुनावट उस मौजूदा समाज के ढांचे से बिलकुल अलग थी जहां महिलाओं का किसी के सामने आना तो गुनाह था ऐसे में दूसरे आदमी के साथ वह कैसे रह सकती थी।

नानु भाई वकील ने ही अपनी फिल्म 'उसने क्या सोचा' 1937 में हिन्दी सिनेमा की स्टार अभिनेत्री सुरैया को बाल कलाकार के रूप में मौका दिया था। सुरैया को फिल्म ताजमहल में मुमताज की भूमिका भी नानुभाई वकील ने ही दी थी। वकील के सिने कैरियर को खँगालने पर पता चलता है कि उन्होने पारसी थियेटर पर आधारित कई मूक फिल्मों का निर्माण किया है। 1931 में बनी फिल्म आलम आरा के गीत 'दे दे अल्लाह के नाम पे प्यारे' के रीमेक आलम आरा 1973 में इस्तेमाल किए गए गीत में 71 वर्षीय नानुभाई को देख सकते है। जिसे मफतलाल शाह ने प्रोड्डूस की थी। बात गुजराती सिनेमा के सवाक युग कि करें तो 1932 से 1946 के बीच 12 गुजराती फिल्मों का निर्माण हुआ। यह वहीं समय था जब द्वितीय विश्व-युद्ध चल रहा था और रॉमैटेरियल की वजह से फिल्में बना पाने में काफी मुश्किले आ रही थी। इसी कारण 1933, 37-38 तथा 1941 से 1946 तक एक भी गुजराती फिल्म का निर्माण नहीं हुआ। इस दौर में चंदूलाल शाह की 'सिपाही नी सजनी 1936', 'अछूत 1937', द्वारका सम्पत की 'घर जमाई 1935', 'अक्कल न बारदान 1936', होमी मास्टर द्वारा निर्देशित कॉमेडी फिल्म 'फांकड़ों फितूरी', हरिहर दीवाना निर्देशित 'समाजना बाँके' जैसी फिल्मों का निर्माण हुआ था।

आजाद भारत और गुजराती सिनेमा

आजादी के बाद सबसे बड़ा परिवर्तन गुजरातियों के अपने व्यवसाय परिवर्तन क्षेत्र में आया। आजादी के बाद बंटे हुए टुकड़ो का अपना दर्द हम साहित्य सिनेमा और मीडिया जगत से जान सकते है। गुजरात ने भी इस बँटवारे का दर्द झेला। बँटवारे से उनके व्यवसाय का तरीका और व्यवसाय का स्वरूप भी बदल गया। हालांकि पंजाब और सिंध प्रांत के लोगों ने इस क्षेत्र में प्रवेश करना शुरू कर दिया था। गुजरातियों का इस विधा से दूरी का ही कारण है कि 1947 में गुजराती में सिर्फ नौ फिल्मों का निर्माण हुआ। फिल्म 'बहार वटियों', 'कुँवरबाइनूं मामेरू', 'सती जसमा', 'होटल पद्मणी', 'सेठ सगालशा', 'भक्तसूरदास', 'जनेता', 'कृष्ण सुदामा', तथा 'मीरा बाई'। इनमें से अधिकतर लोक कथाओं पर आधारित थी। भक्त सूरदास का नायक अरविंद पाण्ड्डा अच्छे अभिनेता होने के साथ अच्छा गायक भी थे। फिल्म में 'मधुकर श्याम अजब छे चोर' वाला गीत उन्होने ही गाया। फिलहाल अभी तक फिल्मों में पार्श्व गायन की तकनीकी विकसित नहीं हुई थी।

समय के साथ गुजराती सिनेमा की गति में भी तेजी आने लगी। 1948 में जहां एक ओर विश्व युद्ध का अंत हुआ वही भारत को आजादी भी मिली। ऐसे में गुजराती सिनेमा में एकाएक परिवर्तन देखने को मिलते है। वर्ष 1948 में लगभग 26 फिल्मों का निर्माण होता है। जिसमें निर्देशक मनहर रस्कापुर की 'जोगीदास खुमाण', वी एम व्यास की 'भाभिना हेत', 'भाई बहन', और 'श्यामलशानो विवाह' आदि उल्लेखनीय फिल्म है।

इसी वर्ष की एक फिल्म 'रूप छायाचित्र' ने सौराष्ट्र के लोक जीवन और दांत कथाओं का जो मनोहारी सिने चित्रण पेश किया उसे आज भी इतिहासकार याद रखते है। यह गुजराती सिनेमा का वहीं दौर है जब रतिलाल पुनन्तर की 'मंगल फेरा 1949"गदा नो बेल 1950', तथा 'जेर पिदान' जैसी फिल्में बनी है। इन फिल्मों कीआर्थिक सफलता ही इनकी लोकप्रियता का पैमाना नहीं है, बल्कि इनके विषयों में भी आए बदलाव से गुजराती सिनेमा में एक बड़ा परिवर्तन देखने को हमें मिलता है। इसी दौर में हम देखे तो गुजराती सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर आधारित सिनेमा भी निर्मित होने लगा। मलेला-जीवद्धपन्ना लाल पटेल), जन मटिप (पटेलीकर), गुणसुंदरी, नो घर संसार (गोवर्धन राम), लिलुड़ी धरती (मादिया) जैसी फिल्में इसका प्रमुख उदाहरण है। लिलुड़ी धरती को पहली गुजराती रंगीन फिल्म का दर्जा प्राप्त है।

1960 के दशक में जब स्वतंत्र गुजरात राज्य अस्तित्व में आया तब मात्र 2 फिल्में कांतिलाल राठौर की 'कंकू' तथा मनहर रस्कापुर की 'मेहँदी रंग लाग्यो' बनी। मेहँदी रंग लाग्यो ही वह पहली गुजराती फिल्म है जिसे राष्ट्रीय पुरस्कार (सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट) दिया गया। इस फिल्म में राजेंद्र कुमार और उषा किरण की जोड़ी ने अभिनय किया। इस फिल्म में लता मंगेशकर, मन्ना डे, मोहम्मद रफी जैसे गीतकारों ने इसमें गीत गाये। इसी फिल्म का गरबा गीत 'मेहँदी ते वाई माल्वे' आज भी नवरात्रि के दिनों तथा शादियों में सबसे ज्यादा सुना जाने वाला गीत है।

गौरतलब है कि फिल्मों के प्रचार-प्रसार और विस्तार के उद्देश्य से एन. एफ. डी. सी. की स्थापना हो चुकी थी ऐसे में गुजराती सिनेमा भी कैसे पीछे रहता। जल्द ही 'अखंड सौभाग्यवती' नाम की फिल्म का निर्माण एन एफ डीसी के सौजन्य से हुआ। गुजरती सिनेमा के छ्ठें और सातवें दशक में देखें तो पाएंगे कि इस क्षेत्रीय सिनेमा का विस्तार अब बृहद रूप लेता जा रहा था। अभिनेताओं में जहां अरविंद पंडया, मनहर देसाई, भगवान दास, कमलेश ठक्कर, दीना गांधी, शालिनी, उर्मिला भट्ट, नर्मदाशंकर, चांपशी भाई नागड़ा थे वहीं निर्देशकों में धीरु भाई देसाई, रमन भाई देसाई, रानी भाई पूनतर, मनहर रस्कापुर, युसुफ मूलजी, राजा याग्निक, मगनलाल ठक्कर आदि चर्चित और लोकप्रिय थे।

इन्हीं दौर में गुजराती सिनेमा की 'कन्यादान' 'भक्त तुलसी दास' 'मंगलसूत्र (1951)' 'आणल दे 1956' 'भारत नी वाणी 1958' 'हीरो सलात 1961' 'रमत रमाड़े राम 1964' 'कसूम्बी नो रंग 1965' 'काल्पी 1966' 'कंकु 1969' तथा 'जिगर आमे अमी 1970' जैसी फिल्में बनी है। यह वही दौर था जब गुजरात सरकार ने राज्य चचित्र पुरुस्कार देने तथा गुजराती फिल्मों को कर मुक्त करने का प्रावधान किया था। हालांकि इस सरकारी प्रावधान का उस समय कोई खास असर देखने को नहीं मिला। धीरे धीरे गुजराती निर्माता इस शासकीय सुविधा से जुड़ने लगे तथा फिल्मों की निर्माण संख्या में इजाफा होने लगा। आगे के वर्षों में जहां छठे और सातवे दशक में 60 के करीब फिल्में बन रही थी वह आंकड़ा अब 193 फिल्मों तक पहुँच चुका था। हालांकि अभी भी छ्ठे और सातवे दशक तक गुजराती सिनेमा से जुड़े फिल्मकारों को महाकाव्य और पौराणिक कथाएँ इतनी अभिभूत कर रही थी कि वें गुजरात की वास्तविकता से कोसो दूर होते चले गए। गुजराती सिनेमा सामाजिक संदर्भ के तौर पर सिर्फ पौराणिक कथा कहानियाँ ही ज्यादा देखने को मिल रही थी।

गुजराती सिनेमा में बदलाव के स्वर य कितना दूर कितना पास

गुजरात सरकार की कर मुक्ति नीति और कार्य कुशल विशेषज्ञ पूनम भाई पटेल द्वारा खोले गए लक्ष्मी स्टूडियों ने गुजराती सिनेमा के पक्ष में आशाजनक वातावरण का निर्माण किया। इस स्टूडियों में रामभाई पटेल, शिवभाई पटेल, जी एल नायकऔर बी एल भट्ट जैसे निर्देशकों ने जुड़कर गुजराती सिनेमा के विकास में अपना सराहनीय योगदान दिया। इसी दौरान फिल्मकार रवीद्र दवे का इस विधा से जुड़ना गुजराती फिल्म उद्योग के लिए वरदान साबित हुआ। दवे ने अपनी फिल्मों के जरिये एक बड़ा दर्शक वर्ग विशेषकर ग्रामीण दर्शक को लुभाने का काम किया। गुजराती ग्रामीण दर्शक का फिल्म से जुड़ना एक बड़ी परिघटना थी। दवे ने अपनी फिल्मों में नारी पात्रों के जरिये भी महिला दर्शकों को जोड़ना भी शुरू किया। फिल्म 'होथल पद्मिनी' की नायिका 'सती तोरल' तथा पद्मिनी, फिल्म 'कुँवरबाई नूं मामेरु' की नायिका कुँवर बाई, फिल्म 'शेतल ने काथे' की नायिका आणल दे आदि को गुजराती महिला दर्शकों ने खूब पसंद किया।

यह वही दौर था जब 1970 से 1987 के बीच बनी 33 गुजराती फिल्मों में से 22 फिल्में सामाजिक मुद्दों पर तथा 11 फिल्में महाकाव्यों, इतिहास पुराणों पर आधारित थी। यह ऐसी फिल्में हुआ करती थी जिनकी कहानियों को लेकर दर्शक निश्चिंत रहा करते थे क्योकि वह कहानियां दर्शक के अन्तर्मन से पहले से ही रची बसी रहती थी। कोई अलग कल्पना होने की गुंजाइश ही नहीं थी। इन्ही 33 फिल्मों के संदर्भ में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि इनमें 102 महिला पात्रों में से केवल 12 पात्र ही ऐसे थे जिन्होने कमाई धंधे वाला कार्य किया बाकि 87 ने ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे परिवार के आर्थिक सहयोग में उनका योगदान दिखता हो। शिक्षण के मामले में भी इनमे से केवल 20 प्रतिशत महिला पात्र ही शिक्षित थी। अध्ययन बताता है कि इन 102 पात्रों में से 85 फीसदी का चित्रण नकारात्मक ही रहा। जिनकी या तो हंसी उड़ाई गयी या उनका यौन शोषण हुआ। सकारात्मक भूमिका में भी आदर्शवादी माँ, पति की पूजनीय तथा पति व्रता पत्नी, या फिर त्याग की मूर्ति पूजा पाठ करने वाली स्त्री का ही चित्रण था। ये सभी एक ऐसे घर में निवास करती थी जहां हुक्म मर्दो का ही चलता था। वाकई मौजूदा समय में भी समाज में महिला कि स्थिति बेहतर नहीं है। ऐसे में उस दौर का गुजराती सिनेमा अपने मूल विषयों से कितना दूर था यह समझा जा सकता है। सिनेमा

में बदलाव के नाम पर पगड़ी बाधे देहाती हीरो, घिसा पिटा चरित्रांकन, फूहड़ कॉमेडी, संवादों में अतिनाटकीयता, गीत और रास गरदा के अलावा और कुछ भी देखने को नहीं मिलता था। इस दौर में गाँव के देहाती अभी भी घुड़सवारी करते हुए देखे जा सकते थे, स्त्रियाँ अपने प्रेमी का नाच गाकर प्रतीक्षा करती और उनके लंबे जीवन की कामना के लिए देवी देवताओं की पूजा अर्चना करती पायी जा सकती थी। यह सब कुछ हिन्दी व्यावसायिक सिनेमा की फूहड़ नकल पर आधारित महसूस होता है।

इस दशक की प्रमुख फिल्मों पर चर्चा करते हुए यह कहा जा सकता है की फिल्मों का आंकड़ा हाले ही प्रति वर्ष 200 फिल्में बनने लगी हो लेकिन उनके विषयों पर नवीनता और समाज से जुड़ाव नगण्य ही रहा। जेसल तोरल 1971, डाकू रानी गंगा 1975, वेरणों वारस 1976, पंखी नो मालों, माँ बाप 1977, वीर मांगड़ा वालों 1976, जय महाकाली 1978, मेना गुर्जरी 1975 आदि फिल्में उपरोक्त कथन को सत्य साबित करती हुई हमें दिखती है। इन फिल्मों का कंटेन्ट हिन्दी सिनेमा के व्यावसायिक दौर से काफी मेल खाता दिखता है। जिनमें या तो नायक अकेला ही दुश्मन से लोहा ले रहा है या फिर वह सरकार से बगावती तेवर में बात करता हुआ सिनेमाई पर्दे पर हमें देखने को मिलता है। 50-60 गुंडों के बीच फंसी नायक की बहन का चीर हरण इसी सिनेमा में देखने को मिलता है।

1980 आते आते गुजराती सिनेमा अपने शवाब पर था। जल्द ही वह अपने उम्र के पचास वर्ष भी पूर्ण करने वाला था। ऐसे में केतन मेहता की असाइंत ठाकुर द्वारा रचित 'अछूत नो वेश' से प्रेरणा लेती हुई फिल्म 'भवनी भवानी' ने एक नया परिदृश्य खड़ा किया। इस फिल्म को कई राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए। 28 वें राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह में इस फिल्म को 'राष्ट्रीय एकता पुरस्कार' से भी नवाजा गया। फिल्म 1981 में न्यूयार्क में हुए अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह के लिए चयनित हुई तथा फ्रांस में इसे उनेस्को ह्यूमन राइट्स अवार्ड भी प्राप्त हुआ। लेकिन दुखद यह रहा कि भारतीय सिनेमा की आरंभिक फिल्मों को जिस प्रकार गुजराती व्यवसायियों ने हाथों हाथ लिया खुद के सिनेमा की इस मशहूर और पुरस्कृत फिल्म के लिए कोई वितरक सामने नहीं आया। फिल्म बनने के 18 महीने बाद भूले भटके से एक वितरक सामने आता है और अहमदाबाद के एडवांस सिनेमा हॉल में यह फिल्म लगती है। फिल्म लगातार बीस सप्ताह चलने के साथ एक रिकॉर्ड भी बनाती है। केतन मेहता की यह फिल्म दृश्यों की ऐसी पहेली थी जिसका बेजोड़ नमूना उनकी अन्य फिल्मों 'होली' और 'मिर्च मसाला' में भी देखा जा सकता है। भारतीय फिल्म संस्थान और खेड़ा इसरो से उन्होने जो भी सीखा उनकी फिल्मों में वह बखूबी देखा जा सकता है। केतन की फिल्मों के संपादन में ब्रेख्त का सिद्धान्त हमें देखने को मिलता है। फिल्म के दो अंतिम सिरे दर्शकों को अछूतो की समस्या पर सोचने को मजबूर कर देते है। इसी दौर में गोविंद सरईया की 'माणसाई ना दीवा' 1983 गुजरात के संतकोटि के सामाजिक कार्यकर्ता श्री रविशंकर महराज द्वारा डाकू सुधार आंदोलन पर केन्द्रित थी। वहीं अरुण भट्ट की 'पूजा न फूल' और 'पर्सी 1989' को क्रमशय राज्य तथा राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए। रामानन्द सागरकृत रामायण में रावण की भूमिका में रहे गुजराती अभिनेता अरविंद त्रिवेदी की अध्यक्षता में गुजरात चलचित्र विकास निगम की 1985 में स्थापना गुजरात फिल्म के इतिहास का जरूरी फैसला बना।

गौर तलब है की इसी दौर से निकले गुजराती अभिनेता अभिनेत्रियों ने हिन्दी सिनेमा में भी अपनी छाप छोड़ी। असरानी, अरुणा ईरानी, अरविंद त्रिवेदी, स्मिता पाटिल, बंदिनी जैसे कलाकारों ने एक ओर गुजराती सिनेमा को विस्तार दिया वही हिन्दी सिनेमा ने भी उन्हे हाथों हाथ लिया। गुजराती सिनेमा में अपने पचास वर्ष 1982 में पूर्ण किए। लक्ष्मी स्टुडियो, लकी स्टुडियो, वृन्दावन स्टुडियो, बोहरा स्टुडियो इस दौर में सक्रिय थे।

गोलीवुड या ढोलीवुड के इतिहास में सत्तर और 80 का दशक सुनहरा दौर माना जाता है। इसी दौर में संजीव कुमार, किरण कुमार, अरुरा ईरानी, रीता भादुरी, उपेंद्र त्रिवेदी जैसे स्टार कलाकारों के फिल्म में होने से फिल्म में लगाया पैसा निर्माताओं की झोली में वापस भी आ रहा था। साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों के अलावा कुमकुम और भवानी भवानी जैसी सामाजिक फिल्मों का शुभारंभ भी इसी दौर में हो गया था। यह सच है कि इस दौर के बाद की स्थिति में गुजराती सिनेमा जल्द ही धराशायी हो गया। टेलीविजन क्रांति और हिन्दी सिनेमा का चस्का गुजराती सिनेमा को काफी महंगा पड़ने लगा।

उदारीकरण के बाद का गुजराती सिनेमा

अब तक का गुजराती सिनेमा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बताता है कि अब तक की बनी गुजराती भाषा की फिल्मों के कथ्य में पौराणिक और ऐतिहासिक और पौराणिक कथानक की प्रगाढ़ता देखने को मिलती है। वहीं सामाजिक मुद्दों पर बनी फिल्मों में भी मुद्दों को सशक्त रूप से चित्रित कर पाने में गुजराती सिनेमा असफल ही दिखाई दिया है। देर से ही सही पर गुजराती सिनेमा में

भवनी भवानी जैसी फिल्मों से एक अलग पहचान मिलती शुरू हुई थी। उदारीकरण के बाद के गुजराती सिनेमा में भी यह स्थिति देखने को मिलती है। इस दौर की एक प्रमुख फिल्म 'हुना हुनशी हुनशी लाल' में जिस प्रकार शासकों और शासितों की कहानी प्रतिकात्मक और व्यंगात्मक रूप में प्रस्तुत की गयी वह काबिल-ए-तारीफ है। फिल्म जर्मन अभिव्यंजना वाद से काफी प्रभावित दिखाई पड़ती है। सीधे तौर पर कहें तो एक ऐसा यूटोपिया रचती हुई फिल्म आगे बढ़ती है जिसमें दर्शकों को व्यंग के साथ संदेश भी आसानी से मिलरहा था। फिल्म में एक ऐसा काल्पनिक देश खोजपुरी है जहां जो भी राजा सिंहासन पर बैठता है उसे मच्छर सपनों तक में बुरी तरह से परेशान करते है। फिल्म में इस्तेमाल साउंड ट्रैक, अद्भुत ध्वनि, और प्राकृतिक और कृतिम के इस्तेमाल से निर्देशक संजीव शाह ने एक ऐसी दुनियां रची जिसमें आनंदित होने से कोई भी दर्शक पीछे नहीं हट सकता। काशी नो डिकारों, कुंकु, जेर तो पिघान जैसी गुजराती साहित्यिक फिल्मों को छोड़ दिया जाए तो अकाल और सूखे पर बनी पन्नालाल पटेल की 'मानवी भवई' भी 'हुना हुनशी हुनशी लाल' के आगे कहीं नहीं टिक पाती। यह एकमात्र ऐसी गुजराती फिल्म मानी जाती है जिसमें तकनीकी क्रांति देखने को मिलती है। हालांकि मानवी भवई को राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हए थे। कुंकु 1969 को भी 17वें राष्ट्रीय फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ गुजराती फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

यह सच है कि एन एफ डी सी और गुजरात राज्य फिल्म निगम, गुजरात राज्य चलचित्र पुरस्कार, कर मुक्ति, चार स्टुडियो होने के बावजूद गुजराती फिल्मों में सांस्कृतिक नीति का कोई समंजस्य देखने को नहीं मिलता है। जनता की मांग की दलीले दे-देकर निर्माताओं ने घिसे-पिटे फार्मूले वाली फिल्मों पर अपना समय जाया किया था। इसी दौर में 'देश रे जोय दादा परदेश जोया' जैसी फिल्म सुपरहिट हुई। अन्य फिल्मों में लाजु लखन राज राजवान, त्रान थोबा तौबा तौबा1991, ऊंचा मेदिना ऊंचा मोल 1993, कदनाली जोड़ 1994, प्रीत पंगारे चोरी चोरी 1999 जैसी सफल फिल्में थी।

फिल्म पर लगे पैसे की प्रतिपूर्ति के चक्कर में निर्माताओं ने फिल्मों के स्वरूप में किसी भी प्रकार के बदलाव पर जोर नहीं दिया। कम बजट वाली फिल्मों के सहारे ही निर्माता अपना लगाया पैसा निकाल लेना चाहते थे ऐसे में शहरी दर्शक जल्दी ही हिन्दी फिल्मों और टेलीविजन की मुड़ गए।

नयी सदी का गुजराती सिनेमा य क्या अभी भी बदलाव सकारात्मक है?

पिछले दशकों में कम बजट पर फिल्में बना निर्माताओं ने गुजराती सिनेमा को जिस हाल में छोड़ रखा था वह अपने आप में दयनीय थी। ऐसे में गुजराती सिनेयम नयी सदी में फिर से जीवित हो पाने की राह का इंतजार कर रही थी। 2000 के बाद से गुजराती सिनेमा ने युवाओ को ध्यान में रखकर फिल्में बनानी शुरूआत की। युवाओ के नाम पर भले ही इस उद्योग ने इस दौर में अपनी शुरुआत की लेकिन उनका जोनर कॉमेडी से ऊपर नहीं उठ पाया। कॉमेडी की चासनी में लपेटकर रोमांटिक कहानियाँ पेश की गयी। राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली 5 लाख की सब्सिडी का लाभ मिलने से अब फिल्मों का बजट एक करोड़ तक पहुँचने लगा। लोकप्रिय स्टार कास्ट ने दर्शकों से अपना मेल तो बना लिया लेकिन विषय के साथ न्याय कर पाने क्या गुजराती सिनेमा सफल हो पाया यह सवाल आज भी प्रासंगिक है। 2005 से गुजरात सरकार ने मनोरंजन कर को 100 फीसदी हटाने के साथ ही फिल्म निर्माण में 5 लाख की सब्सिडी देने की घोषणा भी की। गुजरात सरकार के इस सकारात्मक प्रयास वाली घोषणा से उत्तरी गुजरात से जुड़े फिल्मकारों में वहाँ के लोकल संगीत और भाषाई विविधता से जुड़ी फिल्म बनाने की ओर लगाव बढ़ा। 2009 -10 में प्रति वर्ष गुजराती फिल्म निर्माण का आंकड़ा 60 पार हो गया वही 2012 आते यह संख्या 100 के पार हो गयी।

इस दौर में फिल्म राजमाता 2004, एक बार पिउ ने मालवा आवाजे 2006, चोटीले बैठी चामुंडे 2007, ढोली थरो ढ़ोल बाजे, डिक्री होय तो राखे कुलनी लाज, लक्ष्मी आवे आँगन 2008, बंधन, हारुण-अरुण 2009, हैप्पी फैमिली प्राइवेट लिमिटेड 2013, केवी रिते जैस और बेयार 2014 (अभिषेक जैन), आ ते केवी दुनिया 2015 जैसी फिल्मों के विषय ऐसे थे जिनसे पैसा तो कमाया जा सकता था पर दर्शकों के दिलों पर एक मजबूत छाप छोड़ पाने में यह असफल रही। 2008 में आशीष कक्कड़ की शहरी दर्शकों को ध्यान में रखकर बनाई गयी फिल्म द बेटर हाफ भले ही कमर्सियल सफल न रही हो लेकिन समीक्षकों और शहरी दर्शको का ध्यान इस फिल्म ने जरूर खींचा। 2009 में सूनी तारोपोवला की फिल्म लिटल जीजों, 2012 में ज्ञान कोरिया निर्देशित द गुड रोड और 2014 में चौतन्य अहाण्डे निर्देशित कोर्ट फिल्म को क्रमश 56वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार, गुजराती भाषा का में बनी सर्वोत्तम फिल्म का पुरस्कारतथा सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का पुरस्कार गुजराती सिनेमा के हिस्से में आए जिससे यह सिनेमा गौरवशाली इतिहास बना पाने में सक्षम हुआ है। नीलेश मोहिते की 2012 में बनी फिल्म 'वीर हमीरजी' भारत की तरफ

से ऑस्कर में भेजी जाने वाली फिल्म बनी थी। गुजराती सिनेमा के लिए यह गौरवशाली क्षण था। वहीं 2013 में ज्ञान कोरिया की गुजराती फिल्म ड् गुड रोड जिसका निर्माण छथ्क्ब ने किया था इसे बेस्ट विदेशी भाषा फिल्म कैटेगरी में ऑस्कर के लिए भेजा गया था। फिल्म क्रिटिकली हिट रही।

वर्तमान दौर में गोलीवुड की चर्चा करें तो पाते है गुजरात के अंदर ही जिस तरह हिन्दी फिल्मों ने अपनी पकड़ मजबूत की है उसी तर्ज पर गुजराती फिल्मों का अपना साम्राज्य फैल चुका है। फिल्मों के बढ़ते बजट और युवाओ पर केन्द्रित सिनेमा खासकर कॉमेडी और रोमांटिक कथाओं के जरिये जो फिल्म बेचने का चलन इन दिनों गुजराती सिनेमा में ट्रेंड कर रहा है यह इसका दूसरा स्वर्ण युग माना जा सकता है। अब स्क्रीन पर 50 दिनों तक श्छेल्लो दिवसश और श्हू तू तूश जैसी गुजराती फिल्में भी दर्शकों की पहली पसंद बन कर सामने आई है। दोनों ही फिल्में उस समय रिलीज हुई जब हिन्दी की ब्लॉकबोस्टर बाजीरॉव मस्तानी और वजीर जैसी फिल्में सिनेमा हॉल में लगी थी। यह ढ़ोलीवुड का रंगीन भविष्य ही तो है। वर्ष 2015 में हुई गुजराती फिल्मों की कमाई पर गौर करें तो पाएंगे कि इसने 55 करोड़ की कमाई की। यह आंकड़ा वर्ष 2014 में हुई 7 करोड़ की कमाई का आठ गुने से अधिक था।

एकाएक आए इस बदलाव को हम साल दर साल हुए फिल्मों के विषय परिवर्तन के सहारे और भी पुख्ता तरीके से समझा सकते है। पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक कृतियों पर बने गुजराती सिनेमा के बाद गांवों की तरफ भी एक लंबे समय तक गुजराती सिनेमा ने अपना कैमरा एंगल बनाए रखा था। वर्तमान में आए बदलाव की एक खास बात गांवों से निकल कर शहरों की तरफ आए फिल्मों के विषय भी माने जा सकते है। 'छेल्लो दिवस', 'बे यार', 'गुज्जुभाई ध ग्रेट' जैसी फिल्मों में शहर की कहानियां हमें देखने को मिलती है। कॉमेडी ड्रामा थ्रिलर के सहारे उभर रहा गुजराती सिनेमा में अपनी सांस्कृतिक पहचान शायद ही देखने को मिली हो पर कमाई के आंकड़ों में यह अन्य क्षेत्रीय सिनेमा से कड़ी टक्कर लेता दिखाई पद रहा है। 2016 में बनी फिल्म रोंग साइड राजू को बेस्ट फिल्म इन गुजराती भाषा के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। इस फिल्म में अनुराग कश्यप की फिल्म कंपनी फैन्टम का भी सहयोग था।

अंतत

अंतत: हम कह सकते है कि गुजराती सिनेमा भले ही कहने को क्षेत्रीय सिनेमा हो मगर इसके सम्बन्धों का अध्ययन एक नयी पहेली को जन्म देता है। भारतीय सिनेमा में गुजरातियों के योगदान पर बात की जाएगी तो यह कहा जा सकता है कि सिनेमा को भारत में खड़ा करने और प्रासरित करने का जितना श्रेय महाराष्ट्र की सिने अभिभूतियों को है उतनी ही गुजराती व्यवसायियों को। जिन्होने अपने धन के सकारात्मक प्रयोग द्वारा इस नयी विधा को अपनाने का जोखिम उठाया। आज भी यह उद्योग उतना ही खर्चीला है जितना अपने आरंभिक काल में था। गुजराती सिनेमा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझते हुए हम कह सकते है कि अपने आरंभिक काल से लेकर अब तक गुजराती सिनेमा में बदलाव के स्वर देखने को मिलते रहे है। शुरुआती वर्षो में पारिवारिक, संत परंपरा, पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों पर नरसिंह मेहता और गुणसुंदरी जैसी फिल्मों का निर्माण हुआ वहीं द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यह उद्योग पूरी तरह ठप हो चुका था। चालीस पचास के दशक में साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों कि शुरुआत ने गुजराती साहित्य को और मजबूत किया। इसी दौर में 'काशी नो डिकरो' जैसी फिल्में बनी है। आजादी के बाद का गुजराती सिनेमा अपने वजूद को ढूंढ पाने कि जद्दोजहद में एक बार बार फिर खड़ा हुआ। वही राज्य सरकार तथा एन एफ डी सी के सहयोग ने इस उद्योग को संभलने में मदद की। 70 और 80 के दाशक में हिन्दी सिनेमा के व्यावसायिक युग से प्रभावित गुजराती सिनेमा का स्वर्ण दौर तैयार हुआ। इसी दौर मेन ग्रामीण दर्शकों को जोड़ने के लिए निर्देशकों ने ग्रामीण अंचल की कहानियों और महिला दर्शकों को जोड़ने के लिए महिला पात्रों का प्रयोग किया। हालांकि इन महिला पात्रों का अधिकतर चित्रण नकारात्मक ही रहा। सकारात्मक चित्रण में ऐसी ही महिलाए रही जो पति व्रता, पूजा पाठ करती हुई और आदर्श माँ की भूमिका में थी। लंबे समय तक लो बजट और घिसे पिटे चिंत्रांकन के जरिये जिन गुजराती निर्माताओं ने फिल्मों का निर्माण किया उससे शहरी दर्शक कटने लगा। ऐसे में 2000 के बाद कॉमेडी रोमांटिक एक्शन वाली फिल्मों के आने से जो दर्शक टेलीविजन और हिन्दी सिनेमा की तरफ भाग रहे थे उन्हे वापस लाने का काम जो सराहनीय काम गुजराती सिनेमा ने किया है वह काबिले तारीफ है। गुजराती सिनेमा ने 2000 के बाद से जिस प्रकार प्रोद्योगिकी, मनी इन्वेस्मेंट, स्टोरी टेलिंग टेक्निक, टार्गेटिंग यूथ आदि पैमाने पर अपना ध्यान आकर्षित किया है यही इस उद्योग की अपनी पूंजी है। आज यह उद्योग 'मेघधनुश्या 2013' जैसी एलजीबीटी समुदाय पर केन्द्रित सिनेमा भी बनाता दिख रहा है।

संदर्भ

1. फिर तेजी से उभर रहा है गुजराती सिनेमा संसार –ढोलीवुड, एनडीटीवी, (https:èèkhabar-ndtv-comènews/bollywoodèrise-of-gujarati-cinema-world–1264949) 12 दिसंबर 2017
2. Gujarati cinema:A battle for relevance, DNA , (http:èèwww-dnaindia-com/lifestyle/comment-gujarati-cinema-a-battle-for-relevance-1777960) 15 fnlacj 2017
3. https://en-wikipedia-org/wiki/List (of) Gujarati (films) of (2017 13 fnlacj
4. From Cinema then to Cinema Today: The case of Gujarati and Marathi Cinema,(https://creativeyatra-com/culture/from-cinema-then-to-cinema-today-the-case-of-gujarati-and-marathi-cinema/)11 fnlacj 2017
5. Gujarati film shortlisted for Oscar nomination, TOI (https://timesofindia-indiatimes-com/city/ahmedabad/Gujarati-film-shortlisted-for-Oscar-nomination/articleshow/16498971-cms(12 fnlacj 2017
6. First Gujarati film on gays released,(http://www-deccanherald-com-content/328552/first-gujarati-film-gays-released-html) 13 fnlacj 2017
7. The Good Road' Goes To Oscar!,(https://www-indiatimes-comèentertainment/gujarati-film-the-good-road-is-indias-entry-for-oscar-102581-html) 13 fnlacj 2017

अंग्रेजी किताबें

1. Trivedi, Hiren H. (A pril 2009)- "VI: Study of Representation of Women in Gujarati Films"- Representation of women in selected Gujarati and English novels and Gujarti and Hindi popular Films (PhD)- Saurashtra University- Retrieved 3 March 2017
2. Jhala, Jayasinhji (1998-01-01): "The shaping of Gujarati Cinema: Recognizing the new in traditional cultures"- Visual Anthropology, 11 (4): 373n`385- doi:10-1080/08949468-1998-9966761- ISSN 0894-9468.
3. Jambhekar, Shruti (6 July 2016)- "Gujarati films turn socially relevant"- The Times of India- Retrieved 21 October 2016.
4. D. P. Chattopadhyaya; Bharati Ray: Different Types of History: Project of History of Science, Philosophy and Culture in Indian Civilization, Volume XIV Part 4- Pearson Education India- p- 585- ISBN 978-81-317-8666-6.

हिंदी किताबें

1. सिनेमा विजन, इंडियन पत्रिका का प्रवेशांक pioneers of Indian cinema;the silent era जनवरी 1980
2. योजना, समाज और सिनेमा, स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक, अगस्त 1995
3. भारतीय सिनेमा का इतिहास, 1896–2015, अनिल भार्गव, सिने साहित्य प्रकाशन जयपुर राजस्थान
4. शताब्दी की दहलीज पर भारतीय सिनेमा, संघर्ष और मुक्ति के नए क्षितिज, डॉ वीरेंद्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली

जाति, संस्कृति और जेंडर के बीच परस्पर सम्बन्ध : ग्रामीण भोजपुर क्षेत्र का अध्ययन

डॉ० चिंटू

सहायक अध्यापक अन्जबित सिंह कॉलेज, बिक्रमगंज (रोहतास),
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

डॉ० आशुतोष कुमार

अतिथि अध्यापक, राजधानी कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय),
पीएचडी, ज.ने.वि., (नई दिल्ली)

हाल के वर्षों में अपने शोध अध्ययन के दौरान बिहार के भोजपुर इलाके में महीनों सैकड़ों गाँव में घूमने और वहां के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक खासकर जाति, वर्ग और जेंडर आधारित भेदभाव के अलग-अलग आयामों को गहराई से समझने का मौका मिला. इससे पहले अपने गाँव और समाज में, जहाँ पैदा हुए और पले – बढ़े, को इतनी गहराई से समझने-परखने का मौका नहीं मिला था। खासकर मेरे अचेतन मन ने भी ग्रामीण महिलाओं की दयनीय हालत को तो स्वाभाविक रूप से आत्मसात कर ही लिया था. दिल्ली में पढाई के लिए प्रवास के दौरान बहुत से दोस्तों को अपने गाँव, खेत-खलिहान, हरियाली, पेड़ पौधे, खानपान, ताजी दही, घी, मलाई त्यौहार आदि का बड़ा ही रूमानी और मनोहर चित्रण करते सुना और देखा है. लेकिन मुझे न जाने क्यूँ मेरा ग्रामीण जीवन इतना मनोहर नहीं लगा। बल्कि जैसे-जैसे सचेत हुए, नारीवादी चिंतन के प्रति मेरा स्नेह और आभार बढ़ता गया। मेरे मन में नारी विमर्श के कई अनछुए पहलुओं को भी गहराई से समझने का मौका मिला और खासकर ग्रामीण मजदूर महिलाओं पर परत दर परत हो रहे शोषण, जुल्म और अत्याचार के बहु आयामों को कुरेदने और असल जड़ तक पहुचने का मौका मिला। गाँव का सुन्दर चित्रण मुझे इसलिए भी बेमानी या कहें कि अतिश्योक्ति लगी क्योंकि गाँव में रहने का लम्बा और प्रत्यक्ष अनुभव मुझे प्राप्त है और इससे भी महत्वपूर्ण बात ये है कि मेरा ग्रामीण माहौल और समाज के दूसरे पक्ष से ज्यादा वास्ता रहा या सामना करना पड़ा। ग्रामीण क्षेत्र को देखने के कई नजरिए हो सकते हैं। मसलन, यदि कोई गाँव में किसी बड़े जाति या वर्चस्व वाले जमींदार या सामन्ती खानदान में पैदा हुआ हो तो उसके अनुभव गाँव को लेकर खुशनुमा या मनोरंजक हो सकते हैं। लेकिन एक दूसरा नजरिया भी हो सकता है जो स्थापित नजरिये से भिन्न हो। यहाँ मै यह स्पष्ट कर दूँ की ग्रामीण भारत का स्थापित नजरिया यह है कि बलात्कार शहरी इंडिया में होते हैं ग्रामीण भारत में नहीं। (मोहन भगवत, सरसंचालक आर.एस.एस के 8 जनवरी 2013 का कथन, इंडियन एक्सप्रेस।) इस धारणा के विपरीत गाँव के लोगों खासकर दलित-पिछड़ी, गरीब, मजदूर महिलाओं की दिनचर्या ही जेंडर आधारित शोषण से ही शुरू होती है। मसलन, महिलाओं का घर में सबसे पहले सूर्योदय से पहले उठ जाना और सबसे अंत में सोना, जलावन का इन्तजाम करना, सबके लिए घर में जो भी उपलब्ध अनाज है उसे पकाना और मालिक (बड़े बाबू साहेब) के खेत में दिन भर के लिए काम पर निकल जाना इत्यादि। बात यहीं खतम नहीं होती। खेत में अपने पुरुष साथी से दोहरा शोषण और कम मजदूरी इसके ऊपर गाली, चरित्र हनन, बलात्कार और छेड़खानी का अतिरिक्त दमन भी पुरुष मजदूर की तुलना में महिला मजदूर को अधिक झेलना पड़ता है। दिहाड़ी महिला मजदूरों, जो कि पत्थर तोड़ने, मिट्टी – ईट ढोने, मनरेगा मजदूर हो या फिर भूमिहीन खेतिहर मजदूर

की यही दिनचर्या होती है। शाम को अपने घर आने के बाद फिर से चूल्हा-चौका और उसके बाद अपने पति से पिटाई खाना भी लगभग जीवन का स्थाई हिस्सा होता है।

विदित हो कि इस प्रक्रिया का खासकर ग्रामीण जीवन में बहुत हद तक समान्यीकरण हो चुका है। ये मजदूर महिलाएं या तो निरक्षर हैं या अक्षर का थोड़ा बहुत ज्ञान है. जबकि सामंती घराने की ग्रामीण महिलाएं फिर भी पढ़ी लिखी होती हैं, हाथ बंटाने के लिए नौकर चाकर होते हैं तथा रोजमर्रा के पेट पालने के जद्दोजहद का अतिरिक्त भार उन पर नहीं होता। (हालाँकि इन महिलाओं के भी शोषण के अपने भिन्न अनुभव होते हैं)। इसलिए मुझे लगा की दोहरे शोषण के हथकंडे से गाँव में उपजी हरियाली, ताजा गुड़, मलाई, ताजी दही या घी का स्वाद लेने वाले मेरे दोस्त शायद इसके पीछे की श्रम के प्रक्रिया से अनभिज्ञ होते हैं शायद इसलिए गाँव में उनको सब कुछ अच्छा दिखाई देता है। मेरा अचेतन मन भी इन चिंताओं से परे था। गाँव में प्रकृति का दिया सब कुछ है, नदी और पहाड़, खेत और हरियाली, झूमती लहलहाती फसलें हैं लेकिन ये सभी चीजें अधिकतर उच्च वर्ग और जाति के अधिकार क्षेत्र में हैं। दलित या मजदूर आम तौर पर इस प्रकृति के रखवाले हैं लेकिन हकदार नहीं। धीरे-धीरे बड़े होने के साथ-साथ मेरे सचेतन मन में सवालों और शंकाओं की लम्बी फेहरिश्त जमा होने लगी. अपने शोध के दौरान इन तमाम पहलुओं पर सोचने और गहराई से शिनाख्त करने का मौका मिला। मसलन ये कि हमारे गाँव में हर जाति की अलग टोली क्यूँ होती है? एक जाति का दूसरी जाति से रोटी बेटी का रिश्ता क्यूँ नहीं होता, अभी भी निम्न जाती और उच्च जाति के बीच खाई गहरी होती क्यूँ दिखती है? अभी भी निम्न जाति के पत्तल में ऊपर से खाना (जूठन) फेंकेने की परंपरा क्यूँ नहीं खत्म हुई? दलित और महादलित टोली गाँव के दक्षिण दिशा में क्यूँ होती है? दलित के शव को गाँव के उच्च जाति के लोग अपनी टोली से क्यूँ नहीं गुजरने देते? क्यूँ आज भी किसी दलित के लाश को चिता से हटा दिया जाता है? समाज के साथ-साथ शमशान का बंटवारा किसने किया? गाँव के हाशिये के समाज की उस टोली में विकास पहुचने में और कितना समय लगेगा? दलित घोड़ी पर क्यूँ नहीं चढ़ सकता? क्या आधुनिक सुसंस्कृत सभ्य समाज की यही पहचान है? साथ में यह भी सवाल मन में आया कि शोषण की ये परते केवल निम्न तबके में हैं या उच्च तबके में भी।

खासकर जेंडर, जाति और वर्ग के परस्पर संबंधों को समझने के लिए मुझे उच्च वर्गीय रहन-सहन और तौर तरीकों का भी समाजशास्त्रीय अध्ययन करना पड़ा। और लम्बी प्रक्रिया के जरिये मैंने यह भी पाया की उच्च वर्गीय महिलाओं के शोषण के आयाम और अनुभव भिन्न हैं। मसलन उच्च जाति की महिलाघर के दहलीज के बाहर कदम तक नहीं रख सकती, ग्रामीण उच्च वर्गीय महिलाएं अपनी मर्जी से बाजार नहीं जा सकती, अपनी मर्जी का पहन नहीं सकती, घूँघट में रहना अनिवार्य है, महिलाएं मांस नहीं खा सकती, आर्थिक मामलों में तो दखलंदाजी दूर की बात है। सब्जी और पकवान स्वादिष्ट नहीं हुआ या अनचाहा कोई सवाल मर्द से कर लिया तो पिटाई भी होगी और हाँ पिटते वक्त इस बात का खास ख्याल रखना भी औरत की जिम्मेवारी है की रोने की आवाज दहलीज से बाहर न जाने पाए। इस बात की पुष्टि खुद मेरी मां करती हैं जो कि एक दिहाड़ी मजदूर हैं और घर-घर जाकर चूड़ियाँ बेचने का काम करती हैं। एक पल को ऐसा लगा जैसे इन ग्रामीण उच्चवर्गीय महिलाओं की हालत तो ग्रामीण निम्न वर्गीय मजदूर महिलाओं से भी बद्तर है। कम से कम कृषि कार्यों में उनकी भागीदारी की वजह से निम्न वर्गीय मजदूर महिलाओं को कुछ अधिक स्वतंत्रता प्राप्त तो होती है।

अक्सर ऐसा भी संभव है कि मेहनत और श्रम से जुड़ी महिलाएं बाजार घूमने पति की इजाजत के बिना निकल जाएँ, खेतों में लकड़ी तोड़ते वक्त खुली हवा में सांस ले सकती हैं. ये महिलायें हमेशा पिटती नहीं बल्कि पीटने का भी साहस रखती हैं। ऐसा इसलिए हो पता है क्यूंकि ये गरीब मजदूर महिलाएं खेती में पति के साथ बराबर की हिस्सेदारी निभाती हैं।

लेकिन गरीब, भूमिहीन, खेतिहर मजदूर के लिए अपनी चिंताएं हैं? भूख से बड़ा कोई दूसरा दर्द नहीं हो सकता। भूखे बच्चे के लिए मजदूर गरीब वर्ग की महिलाएं घर में अपनी ही जात के मर्दों से पिटती हैं तो खेत में जमींदार और लठैतों की शक्ति और अहंकार का शिकायत होती हैं। खेतों में मर्द के काम करने के घंटे बंधे होते हैं लेकिन महिलाओं के नहीं। भोजपुर के तरारी क्षेत्र में में महिलाओं से बात करते हुए इस बात का भी पता चला कि धान की रोपनी और कटनी के समय उनको डंडे से घेर-घेर कर उनके श्रम का दोहन किया जाता था। भोजपुर के ही मुआप गाँव की एक महिला बताती हैं की ''हमनी के खेत में गारी बात सब कुछ सुने के पडला, खेत में डंडा से घेर घेर के काम करवावेला और मजूरीके समय जमींदार बड़ी झंझट करेला'') हमको खेत में गाली बात सब कुछ सुनना पड़ता है, खेत में डंडा से घेर-घेर कर काम करवाता है और जब मजदूरी देने की बारी आती है तो आनाकानी करते हैं।) इस तरह से जातीय और वर्गीय अहंकार को गरीब दलित मजदूरों को कई तहों में झेलना पड़ता है।

संगठित श्रम के बाजार में महिलाओं की संख्या काफी कम है लेकिन यदि जहाँ है भी वहां भी संस्थागत और संरचनात्मक भेदभाव खुले आम होता दिखता है। उदाहरण के लिए बिहार ग्रामीण क्षेत्रों में आशा, आंगनबाड़ी, जीविका, सेविका, मिड दे मील वर्कर्स का वेतन या मानदेय न्यूनतम मजदूरी से भी कम है। इस तरह से इन महिलाओं के श्रम का सरकार द्वारा खुले आम दोहन होता है। ग्रामीण गरीब महिलाओं के श्रम के शोषण और भेदभाव की जड़ों का यदि हम विश्लेषण करें तो हमें जाति, वर्ग और जेंडर के बीच के शक्ति सम्बन्धों को समझना जरूरी ही नहीं बल्कि अनिवार्य हो जाता है। इस शक्ति सम्बन्ध की यथास्थिति को बनाये रखने में राजनीति और संस्कृति के गठजोड़ की विशेष भूमिका देखने को मिलती है। बिहार के संदर्भ में यहाँ के फिल्मी गीतों या एल्बम की संस्कृति का अगर हम विश्लेषण करें तो पाएंगे की जाति-वर्ग के वर्चस्व को बनाये रखने के लिए यहाँ की संस्कृति का विशेष यन्त्र के रूप में इस्तेमाल होता है। जैसे हम कई भोजपुरी गानों के उदाहरण से जाति, वर्ग और जेंडर के बीच के सम्बन्ध को समझते हैं। ''हमके मरदे चाहिले भूमिहार रजा जी'' (हमको भूमिहार मर्द ही चाहिए) या फिर ''हिये यादव जी के माल" (यादव जी की माल है), ''जिद्दी राजपूत हैं, बाबु साहेब के हा टोला खोलालो पर केस न होलाय्द्ध हम तो जिद्दी राजपूत हैं, ये बाबूजी का टोला है यहाँ छेड़खानी करने पर भी इनके ऊपर कोई केस दर्ज नहीं कर सकता), ''रहा राजपूत पर'') सिर्फ राजपूत पर रहो) इस प्रकार के दर्जनों गाने बनाये जा रहे हैं और समाज में फैलाये जा रहे हैं। इस तरह भोजपुरी संस्कृति के नाम पर बाजार में लैंगिक भेद को (मिसोजिनी), स्त्री देह को सांस्कृतिक माल बनाकर मुख्यधारा का व्यापार किया जाता है. इस तरह से सांस्कृतिक उपभोक्ताओं द्वारा अपना बड़ा नेटवर्क स्थापित किया जाता है। ताकि जाति, वर्ग और जेंडर पर आधारित भेद के पहिये को चलायमान और स्थापित रखा जा सके। यहाँ थियोडोर अडोर्नो और मैक्स होर्खेइमर की ''कल्चरल इंडस्ट्री'' का सिद्धांत अपनी पूर्णता में सफल होते नजर आता है। यही कारण है कि समाज का एक बड़ा तबका इस पूंजीवादी संस्कृति का उपभोगता बनकर रह जाता है और उनमें आलोचनात्मक चिंतन गौण होता दिखता है। यह संस्कृति जातीय और वर्गीय चेतना को भी अपने नियंत्रण में रखता है। इस तरह से संस्कृति, जाति और वर्ग विभाजित समाज की यथास्थिति बनाये रखने में मदद करता है।

यहाँ लेनिन और अल्थुजर के बीच का आधार और अधिरचना के डिबेट को समझना भी रोचक होगा। इसकी रोशनी में यह कि क्या भोजपुरी 'कल्चरल इंडस्ट्री' में आधार सर्वोच्च भूमिका निभाता है या अधिरचना? भोजपुरी क्षेत्र के 'कल्चरल इंडस्ट्री' के आलोचनात्मक अध्ययन या अनुभव यह दर्शाता है की आधार और अधिरचना के विवाद को नए नजरिए देखना होगा और संस्कृति को आधार से न कमतर आंका जा सकता है न ही उच्चतर। बल्कि जाति, वर्ग और जेंडर के यथास्थिति को बनाये रखने में आधार और अधिरचना दोनों की बराबर की भूमिका होती है दोनों पूरक का काम करते हैं. अतः सामाजिक यथास्थिति को बदलने में भी कला एक मजबूत माध्यम हो सकता है। भोजपुरी क्षेत्र में अध्ययन के दौरान मैंने यह भी पाया कि कला के माध्यम से सामाजिक बदलाव की चेतना जगाने वाले कलाकारों को दरकिनार करने की राजनीति उन्नत हुई है। इसलिए भिखारी ठाकुर, चन्दन तिवारी या निर्मोही जैसे अपने समाज से जन्मे नैसर्गिक ग्रामीण कलाकारों को न कोई पहचान मिलती है, न लोकप्रियता के लिए माध्यम मिलता है और न ही नेटवर्किंग। यहाँ बाजार ही निर्णायक होता है कि कौन सी कला या सृजन लोकप्रिय होगा।

यूनाइटेड नेशन रिपोर्ट (1980) के घोषणा के मुताबिक महिलाएं विश्व की जनसँख्या की आधी आबादी हैं, जो कि पूरी आबादी के काम के घंटे का दो तिहाई घंटे काम करती हैं लेकिन पारश्रमिक के रूप में केवल एक दहाई ही आमदनी होती है. उससे भी ज्यादा चौंकाने वाली बात ये है कि ''महिलाओं को विश्व के कुल सम्पत्ति के मात्र सौवें हिस्से का ही मालिकाना हक प्राप्त है।'' यह स्थिति इस बात की गवाही देता है की मानव श्रम के इतिहास में महिलाएं यदि अपने श्रम का हिसाब करने लगेंगी तो यह पूंजीवादी विकास के इतिहास का सबसे बड़ा भ्रष्टाचार होगा।

जेंडर के आधार पर गैरबराबरी की बात करते करते हम भूल जाते हैं कि इससे भी महत्वपूर्ण और प्रमुख चुनौती जो है वो ''इंटर-सेक्सनालिटी'' को समझने की . समाज में सभी महिलाओं की चुनौतियाँ और परिस्थितियाँ एकसमान नहीं होती। इस आधार पर हम कह सकते हैं की महिलाएं समाज में अलग अलग स्तर पर दमन और शोषण का शिकार होती है लेकिन शोषण की ये सारी संरचना का आधार जाति, वर्ग और जेंडर आधारित शक्ति संरचना और पहचान होती है। काले नस्ल की महिलाओं के अनुभव गोरे नस्ल से भिन्न हैं, उसी प्रकार अल्पसंख्यक और दलित महिलाओं के अनुभव बहुसंख्यक और उच्च वर्ग और वर्ण से भिन्न होते है। दमन का इतिहास, इसकी परिभाषा और मानक सबके लिए भिन्न होते है। अतः शोषण के भिन्न-भिन्न कारकों का विश्लेषण भी भिन्न होना चाहिए और जेंडर को एक ही खाके में रखते हुए भी दलित आदिवासी, अल्पसंख्यक और नस्ल की चुनौतियों को अलग से रेखांकित करने की आवश्यकता है। साथ ही दिहाड़ी और बंधुआ मजदूरों की भी अपनी वर्ग पर आधारित बिरादरी है जिसके

मुद्दों का समावेश उच्च वर्ग और वर्ण की महिलाएं करने से हिचकती है क्यूंकि उनकी शिकायत सिर्फ जेंडर आधारित असमानता से है, पूंजीवादी व्यवस्था से नहीं। इस प्रकार हम पाते हैं कि जाति-वर्ग और जेंडर आपस में पहचान के आधार पर आपस में जुड़े भी हैं और स्वतन्त्र भी हैं। ऐसा कई नारीवादी लेखकों की लेखनी में भी देखने को मिलता है।

महिला मामलों की जानकार उमा चक्रवर्ती लिखती हैं कि हिन्दू धर्मशास्त्रों में जाति और वर्ण पर आधरित सामाजिक संरचना का विकास किया गया जिसमें कुछ लोगों को 'ऊँचा' कुछ को 'नीचा' तथा कुछ को 'पवित्र' और कुछ को 'अपवित्र' कि श्रेणी में डाला गया। उन्होंने सगोत्र विवाह का रिवाज शुरू किया और इस तरह से जातिगत भेद को बनाये रखने में उनको सहयोग मिला. इस प्रकार 'अरेंज मैरिज' एक औजार की तरह था जिसके द्वारा जातिगत भेद और स्तरीकरण को कायम रखा जा सकता था। एक ही जाति में विवाह को बढ़ावा दिया गया ताकि वंश परंपरा को बनाये रखा जा सके और इस तरह से ऊँची जाति कि समाज में ऊँची, मजबूत और प्रभुत्वशाली पहचान भी बनी रहे। और इस तरह से सजातीय विवाह करके महिलाओं से ये उम्मीद की गई कि वो पवित्रता और अपवित्रता के नियमों को बनाये रखे और अपने वंश परंपरा को आगे बढ़ाये। इस पूरी कि पूरी व्यवस्था को ''ब्राह्मणवादी पितृसत्ता'' का नाम दिया गया। इस तरह कि जातिवादी व्यवस्था और ''ब्राह्मणवादी पितृसत्ता'' ने जाति और वर्ण व्यवस्था के सबसे शीर्ष पर बैठे कुछ लोगों के लाभ के लिए काम किया। यही कारण है कि ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने महिलाओं कि लैंगिकता को हमेशा से नियंत्रित करके रखा ताकि उनका 'शुद्ध रक्त' यानि जाति में उनका ऊँचा स्थान और वर्चस्व बना रहे। एक तरह से उन्होंने 'जेनेटिक इंजीनियरिंग' करके अपनी तथाकथित शुद्धता का आचरण बनाये रखा (चक्रवर्ती 2009:25-30)। एक और लेखक नैमिशराय लिखते हैं कि महिलाओं कि त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। (नैमिशराय 2007रू 230-242)

मनुस्मृति के अनुसार राजा को यह कहा गया है कि वो वैश्य और शूद्रों से उनके कर्तव्यों का पालन करवाएं नहीं तो पूरी दुनिया नष्ट भ्रष्ट हो जाएगी। जबकि सच्चाई यह थी कि यदि इस अनुशासन का पालन नहीं किया गया तो कथित और पर ऊँची और पवित्र जातियों कि राजनीतिक शक्ति, भूमि, ज्ञान और उत्पादन के साधनों पर उनका प्रभुत्व समाप्त हो जाता और इसीलिए पारिभाषित और व्यवस्थित तरीके से विवाह नियम ब्राह्मणों ने मौलिक रूप से बनाया ताकि परिवार को यूनिट मानकर विवाह और परिवार जैसी संस्थाओं को ब्राह्मणवादी शक्तियों द्वारा अनुशासित किया जा सके। इसलिए विवाह को हिन्दू समाज का हृदय माना जाता है। यह हिन्दू धर्म का केंद्र हैं जिसमें शादी को मनुष्य के जीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता है। विवाह प्रणाली सीधे तौर पर जाति से जुड़ा मामला है। विवाह जैसी संस्था ने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया जिससे वंशानुगत संपत्ति और जातिगत विशिष्टता को हमेशा जारी रखा जा सके। (चक्रवर्ती 2009, 52-53)। विवाह संरचना वर्ग और जाति पर आधारित असमानता को न केवल बढ़ाती है बल्कि उत्पादन व्यवस्था को भी नियंत्रित करती है। (चक्रवर्ती 2009, 27)

वेलेरियन रोड्रिग्स अपनी पुस्तक 'दलित बहुजन डिस्कोर्स' में इस बात को दर्शाते हैं की स्वाभिमान/आत्मसम्मान दलित बहुजन डिस्कोर्स का अभिन्न और केंद्रीय सरोकार रहा है क्योंकि जाति विभाजित समाज में जाति पर आधारित पद्सोपान व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति के आत्मसम्मान को सबसे ज्यादा चोट पहुँचाया गया है। वास्तव में उनको उन सब स्रोतों से भी अलग रखा गया जो उनके आत्मसम्मान के विकास में आवश्यक होते। अत: ये ब्राह्मणवादी व्यवस्था व्यक्ति के आत्मसम्मान का सबसे बड़ा दुश्मन है क्योंकि इस व्यवस्था में ही निहित है की कुछ लोगों को हीन और कुछ को श्रेष्ठ होने का भाव पैदा करता है। वो आगे लिखते हैं की केवल ब्राह्मण ही ब्राह्मणवाद को नहीं उत्पन्न करते बल्कि वो सब लोग जो ब्राह्मणवादी नक्से कदम पर चलते हैं उसे जीते हैं चाहे वो अछूत ही क्यों न हो ब्राह्मणवाद की सोच को बढ़ावा देते हैं। रोड्रिग्स आगे लिखते हैं की दलित बहुजन चिंतकों के अनुसार ब्राह्मणवाद न केवल पद और हैसियत का असमानता पर आधारित सोच है बल्कि ये आर्थिक शोषण का भी आधार है (रोड्रिग्स 2008, 5-9)।

इसके अलावा प्रोफेसर गोपाल गुरु ने 'इकोनोमिक्स एंड पोलिटिकल वीकली' के लेख, जिसका शीर्षक था 'दलित वीमेन टॉक डिफरेंटली' में इस बात को अच्छे से उजागर किया कि कैसे दलित महिलाओं के मुद्दे अभिजात य मध्यमवर्गीय महिलाओं से भिन्न है और किन वजहों से दलित महिलाओं ने अपना स्वतंत्र संगठन बनाकर स्वतंत्र पहचान बनाकर स्वतंत्र तरीके से चलने का निर्णय लिया।

शर्मीला रेगे अपनी एक पुस्तक 'अगेंस्ट द मैडनेस ऑफ मनु' में लिखती हैं कि अम्बेडकर द्वारा हिन्दू कोड बिल का प्रावधान और उस कोड बिल के तोड़ मरोड के खिलाफ उसको स्थापित करने के लिए एक कानून मंत्री के के रूप में अपने पद से इस्तीफा

देना बताता है कि संविधान निर्माता इस सवाल को कितना महत्वपूर्ण मानते हैं। वो आगे बताती हैं कि हिन्दू कोड बिल महिलाओं की मुक्ति के घोषणापत्र के रूप में है। (श. रेगे 2013: 46)। शर्मीला रेगे अपनी किताब 'अगेंस्ट द मैडनेस ऑफ मनु' में अम्बेडकर कि उन रचनाओं से हमें परिचित कराती हैं जो महिलाओं के सवालों पर बोलते हैं। अम्बेडकर कि 'ग्रेडेड पैट्रियार्की'/ब्राह्मणवादी पितृसत्ता कि समझदारी हमें यह बताती है कि कैसे जाति व्यवस्था और महिलाओं पर हिंसा एक दूसरे से जुड़े हैं। कैसे सजातीय विवाह महिलाओं को ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के अधीन करने के लिए बनाये गए थे। इसके अलावा हिन्दू कोड बिल में उनका योगदान को कोई भुला नहीं सकता। (रेगे 2013, 53 -54)।

मार्क्सवादी नारीवादी चिन्तक क्लारा जेटकिन के अनुसार मजदूर महिलाओं के लिए स्वतंत्रता संघर्ष के मायने बुर्जुआ महिलाओं के समान केवल अपने वर्ग के पुरुषों के खिलाफ संघर्ष करना मात्र नहीं है, न ही उनके संघर्ष का अंतिम उद्देश्य केवल पुरुषों के खिलाफ बराबरी का लड़ाई है बल्कि, उनका अन्तिम उद्देश्य मजदूर वर्ग का शासन स्थापित करना है। मजदूर महिलाऐं अपने पुरुष साथियों के साथ मिलकर पूंजीवादी समाज के खिलाफ लड़ती हैं और इस पूंजीवादी शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का अंत करके ही महिलाओं को भी सशक्ति मिल सकती है। अत: मजदूर महिलाओं और पूंजीपति महिलाओं के हित भी सामान नहीं हैं। मजदूर महिलाओं कि सशक्ति कि लड़ाई अन्य महिलाएं नहीं बल्कि खुद मजदुर वर्गद्ध बिना किसी लैंगिक भेद के) के लोग ही लड़ेंगे (जेटकिन 2015, 6 -7)।

निष्कर्ष: शोषण के हथियार जाति, वर्ग और लैंगिक भेदभाव सभी हैं। उत्पीड़न के हर परत का यदि जड़ से उन्मूलन करना है तो जाति, वर्ग और जेंडर पर आधारित संरचना पर गहरी चोट करनी होगी। शोषण की कई तहें हैं, हर तह की अपनी चुनौतियाँ है और अपने विशेष अनुभव है। समस्याएं व्यक्तिगत या सामाजिक दोनों की अपनी गहराइयाँ हैं इसलिए जाति, वर्ग और लिंग आधार शोषण के हर पहलु पर विचार किये या उनके अनुभवों को सुने बिना महसूस किया बिना उनके बीच के इंटरसेक्शनेलिटी (आन्तरानुभागीय) की अनुभूति किया बिना या समझे बिना सदियों से बनी सामाजिक, आर्थिक और जेंडर पर आधारित शोषण के पहिये को रोके बिना नए समतामूलक समाज का निर्माण बेहद कठिन है।

संदर्भ सूची

1. वेलेरियन रोड्रिग्स, दलित बहुजन डिस्कोर्स. न्यू देल्ही: क्रिटिकल क्वेस्ट, 200.
2. सुभाष गाताडे, ''हेडगेवार गोलवलकर बनाम ."हमारा सबसे बड़ा में, अजेय कुमार द्वारा, 86-87. दिल्ली : प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, 2016।
3. उमा चक्रवर्ती, जेंडरिंग कास्ट थ्रू अ फेमिनिस्ट लेंस. कोलकाता: मंदिर सेन फॉर स्त्री, एंन इंप्रिंट ऑफ भक्त्कल एंड सेन, 2009।
4. एल .जी. मेश्राम 'विमलकीर्ति'। महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली। दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2009।
5. क्लारा जेटकिन, मूवमेंट्स फॉर द एमेंसिपेशन ऑफ वीमेन . दिल्ली: कामगार प्रकाशन, 2015।
6. गेल ओम्वेद्त, दलित विजन. दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटे, 2010।
7. गोपाल गुरू, ''दलित वीमेन टॉक डिफरेंटली। "जेंडर एंड कास्ट में, अनुपमा राव द्वारा, 80-85. नई दिल्ली : काली फॉर वीमेन, 2003।
8. निवेदिता मेनन, सीइंग लाइक आ फेमिनिस्ट. नई दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, 2012।
9. मोहनदस नैमिशराय, ''दोनों गलों पर थप्पड़ .''आधुनिकता के आइने में दलित में, अभय कुमार दुबे द्वारा, 230-242. शाहदरा : नदरी प्रिंटर्स, 2007।
10. शर्मीला रेगे, ''अ दलित फेमिनिस्ट स्टैंडपॉइंट.''जेंडर एंड कास्ट में, अनुपमा राव द्वारा, 90-99. नई दिल्ली : काली फॉर पब्लिकेशन, 2003।
11. शर्मीला रेगे, राइटिंग जेंडर राइटिंग कास्ट. नई दिल्ली : जुबान, 2006।
12. शामिल रेगे, अगेंस्ट द मैडनेस ऑफ मनु. नई दिल्ली: नवयाना पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2013।

ग्रामीण महिलाओं के विकास एवं सशक्तिकरण में सरकारी योजनाओं की भूमिकाः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुनीता चौहान

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

किसी भी समाज के विकास का सीधा संबंध उस समाज की महिलाओं के विकास से जुड़ा है। महिलाओं के विकास के बिना व्यक्ति, परिवार और समाज के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भारत गांवों का देश है। जब तक गांव में बसने वाली महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में नहीं लाया जाता है तब तक हम भारत की एक विश्वशक्ति के रूप में सोच भी नहीं सकते हैं। समृद्ध गांव ही समृद्ध भारत की पृष्ठभूमि है। ग्रामीण महिला विकास से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर, पीड़ित लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने एवं सशक्त बनाने के लिए केंद्र व राज्य सरकारों ने विभिन्न योजनाओं व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया है। जिनका समुचित रूप से मूल्यांकन किया जाना ग्रामीण विकास के लिए बहुत आवश्यक है ताकि ग्रामीण महिलाओं के विकास में आने वाली बाधाओं का पता लगाया जा सकें। इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध आलेख में ग्रामीणविकास कार्यक्रमों के समुचित क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं तथा ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में इन कार्यक्रमों की भूमिका का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। यह शोध लखनऊ जिले के मोहनलालगंज विकासखंड के समेसी ग्राम के एक गहन क्षेत्रीय कार्य पर आधारित है।

मुख्य शब्द-विकास, ग्रामीण महिला विकास, महिला सशक्तिकरण, सरकारी योजनाएं।

प्रस्तावना

विकास के विषय ने कुछ दशकों से सरकार और लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इसके पीछे मुख्य कारण विकास संबंधी मुद्दों के प्रति जागरूकता में वृद्धि होना है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां विकासशील देशों की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा रहता है। उसके लिए बेहतर जीवन स्थितिउपलब्ध कराने के लिए क्रमबद्ध विकास की आवश्यकता है, ग्रामीण समाज का सर्वाधिक विकास का पहलू सामाजिक असमानता को दूर करके ग्रामीण महिला जो कि विकास की पंक्ति में सबसे पीछे खड़ी है, उसको सबके साथ अग्रिम पंक्ति में लाना है जिसको ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने राष्ट्रीय महिला नीति 2016 का प्रारूप जारी किया। इसका उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना है। महिलाओं को लेकर बुनियादी अवधारणा में बदलाव लाए बगैर समाज का विकास नहीं हो सकता। यह बदलाव की बात केवल कल्पना करने से नहीं होगा उनकी भागीदारी और अधिकारों की बात होनी चाहिए। सन 2001 महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया गया था। इसी वर्ष केंद्र सरकार द्वारा देश में पहली बार एक नीति बनाई गई, जिसका नाम राष्ट्रीय महिला उत्थान एवं विकास और समानता के लिए आधारभूत व्यवस्थाएं निर्धारित किया जाना संभव हुआ है।

भारतीय समाज शुरू से ही पुरुष प्रधान रहा है। यहां महिलाओं को हमेशा से दूसरे दर्जे का माना जाता रहा है लेकिन अब महिला उत्थान को मानते हुए कई प्रयास किए जा रहे हैं और पिछले कुछ वर्षों में महिला सशक्तिकरण के कार्यों में तेजी भी आयी है। इन्हीं प्रयासों के कारण महिलाएं अब हर क्षेत्र में अपनी खुद की पहचान बना रही हैं। पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। महिलाओं को और भी सशक्त बनाने के लिए सरकार कई बड़े कदम भी उठा रही है जिससे महिलाओं के विकास से उनका सशक्तिकरण संभव हो और प्रत्येक महिला का खुद की एक पहचान हो इसके लिए सरकार ने कई योजनाओं को लागू किया। जैसे-बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, मनरेगा, सुकन्या समृद्धि योजना, उज्जवला योजना, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना आदि की शुरुआत की है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के विकास से संबंधित मुख्य समस्याओं का विश्लेषण करना।
2. विभिन्न सरकारी योजनाओं के प्रति महिलाओं की जागरूकता के स्तर की जानकारी करना।
3. सरकारी योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में हुए बदलाव का अध्ययन करना।
4. महिला सशक्तिकरण में सरकारी योजनाओं की भूमिका को बढ़ावा देने हेतु सुझाव देना।

साहित्य सर्वेक्षण

दुबे (1958) के अनुसार, ग्रामीण विकास में सरकारी अभिकरणो की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है।

कोरेथ जॉर्ज एवं बड़ेहरा किरण (2017) की पुस्तक ''ग्रामीण महिला सशक्तिकरण'' उपलब्धि अभिप्रेरणा के माध्यम से सूक्ष्म उद्यम प्रस्तुत पुस्तक में महिला सशक्तिकरण में विभिन्न उधमों के माध्यम से क्या प्रभाव पड़ा है। जिसका स्पष्ट विश्लेषण प्रस्तुत है जिसमें विशेषकर उद्यमों परियोजनाओं की संरचना ग्रामीण महिलाओं में योजनाओं का प्रभाव विशेषकर गरीब एवं अशिक्षित ग्रामीण महिलाओं पर योजनाओं के प्रभाव से उनके विकास के अवसर उपलब्ध हुए हैं।

श्याम सुंदर प्रसाद (2015) की योजना पत्रिका ''ग्रामीण विकास की प्रवृतियाँ एवं सामाजिक परिवर्तन'' में लेखक ने पाया कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण समाज के उपेक्षित दलित वर्गों के विकास के लिए विशेष अवसर उपलब्ध हुए हैं। गरीब महिलाएं कमजोर वर्ग और विशेषकर निर्बल वर्गों के विकास के लिए संबंधित कई कल्याणकारी विकास उन्मुख योजनाएं चलाई जा रही है।

देसाई ए. आर.(2012) की पुस्तक ''भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र'' में बहुरूपी तथा जटिल ग्रामीण जीवन के वास्तविक स्वरूप भारतीय ग्रामीण समाज में हुए परिवर्तन का विश्लेषण प्रस्तुत है। ग्रामीण समाज का उद्भव एवं ग्रामीण जनता का आर्थिक जीवन, ग्रामीण बैंक बेरोजगारी की समस्या शिक्षा का विकास, सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं पंचवर्षीय योजनाएं आदि का विवरण उल्लेखित है।

चौरसिया (2008) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल, परिवहन तथा संचार साधनों की कमी चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य कर्मियों का ग्रामीण क्षेत्रों में कम ठहराव तथा वित्तीय संसाधनों की कमी इत्यादि समस्याएं ग्रामीण विकास को प्रभावित करती है। यह परामर्श देते हैं कि संपूर्ण विकास के लिए कल्याणकारी योजनाओं से सामाजिक आर्थिक विकास को बेहतर ढंग से तथा शीघ्र प्राप्त किए जा सकते हैं।

सुमन पामेचा और मीनाक्षी अहीर (2018) ने अपने अध्ययन ''नए उभरते भारत की परिकल्पना'' में स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि सरकार द्वारा चलाई गई विभिन्न योजनाओं के माध्यम से देश के सभी क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई है। देखा जाए तो भारत तकनीकी शिक्षा, सुरक्षा, चिकित्सा तथा महिलाओं के क्षेत्र में काफी पिछड़ा हुआ माना जाता रहा है परंतु विभिन्न क्षेत्रों के अंतर्गत चलाई गई योजनाओं के परिणाम स्वरुप देश प्रगति पथ पर तेजी से अग्रसर हो रहा है।

शोध प्रविधि एवं अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध अन्वेषणत्मक शैली पर आधारित है। तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची, प्रत्यक्ष अवलोकन आदि का प्रयोग किया गया हैएवं द्वितीयक स्रोतोंमें पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु चयनित गांव के 50 ग्रामीण महिलाओं का चयन सरल दैव निदर्शन विधि

द्वारा किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत लखनऊ जिले के मोहनलालगंज विकासखंड के समेसी ग्राम में सरकारी योजनाओं से लाभान्वित महिलाओं का चयन किया गया है।

महिला सशक्तिकरण हेतु विभिन्न सरकारी योजनाएं

महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं और कार्यक्रम लागू किए जा रहे हैं। जो इस प्रकार हैं।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ कार्यक्रम

बालिकाओं के अस्तित्व संरक्षण और शिक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 22 जनवरी 2015 को हरियाणा के पानीपत से भारत सरकार द्वारा प्रारंभ की गई। इस महत्वाकांक्षी योजना का उद्देश्य बालिकाओं के लिए सकारात्मक माहौल के साथ-साथ उन्हें शिक्षा के द्वारा सामाजिक व वित्तीय तौर पर आत्मनिर्भर बनाते हुए उनके अस्तित्व की सुरक्षा को सुनिश्चित करना है।

मनरेगा योजना

2006 में संचालित मनरेगा योजना के अंतर्गत ग्राम पंचायतों को ये जिम्मेदारी दी गई कि सरकार द्वारा निर्धारित कार्यों में से एक तिहाई स्थानों पर महिलाओं को रोजगार दिलाया जाए। इतना ही नहीं कार्यस्थल पर उनके बच्चों को पालना सुनिश्चित हो तथा समान कार्य के लिए महिला को पुरुष के बराबर मजदूरी प्रदान की जाए, यह भी सुनिश्चित किया गया ग्रामीण विकास मंत्रालय ने स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत वर्ष 2006-07 में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को स्वरोजगार शुरू करने के लिए सहायता प्रदान की।

सुकन्या समृद्धि योजना

यह योजना बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ की विस्तार योजना है। इसका उद्देश्य भी बालिकाओं की सुरक्षा के साथ उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए शिक्षा का समान अधिकार और पढ़ने के लिए बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इसकी शुभारंभ 21 जनवरी 2015 में की गई इस योजना के अंतर्गत बच्ची के माता-पिता या विधिक अभिभावक किसी भी डाकघर या अधिकृत बैंक में न्यूनतम 1000 के साथ उक्त खाता खोल सकते हैं। इस योजना के तहत एक परिवार से 2 लड़कियों के खाता खोले जा सकते हैं।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना

1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले से आरंभ की गई। प्रधानमंत्री उज्जवला योजना के तहत गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों को एलपीजी गैस कनेक्शन उपलब्ध कराए गए हैं। स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से संचालित इस योजना के तहत पुनर्वास गृह में उनके रहने, भोजन चिकित्सा सुविधाओं और वोकेशनल ट्रेनिंग की व्यवस्था की जाती है। वर्ष 2016-17 में 1.5 करोड़ परिवारों को तथा 2017 तक 2.12 करोड़ महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन प्रदान करने से लकड़ी के चूल्हे व धुएँ से आजादी मिली है। जिससे महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है और उनकी सेहत में सुधार आया है।

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना को जनवरी 2017 में शुरू किया गया। इस योजना को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित किया जाता है। इस योजना के तहत गर्भवती महिलाओं और धात्री माताओं का संबंधित शर्तों को पूरा करने पर 5000 का नगद रुपए तीन किस्तों में दिया जाता है। इसके लिए संबंधित शर्ते हैं-गर्भावस्था का प्रारंभिक पंजीकरण, प्रसवपूर्व, जांच, बच्चे के जन्म का पंजीकरण और टीकाकरण के पहले चक्र को पूरा करने पर महिला को उनके पहले जीवित बच्चे के जन्म के लिए औसतन 6000 का नगद लाभ दिया जाता है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

इस योजना का शुभारंभ 2004 में किया गया। यह योजना उन सभी पिछड़े क्षेत्रों में क्रियान्वित की जा रही है। जहां ग्रामीण महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय स्तर से कम है इस योजना का मुख्य लक्ष्य 75% अनुसूचित जाति, जनजाति, अत्यंत पिछड़ा वर्ग तथा

अल्पसंख्यक समुदाय की बालिकाओं तथा 25% गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवार की बच्चियों का दाखिला कराना है। जिसका खर्च केंद्र व राज्य सरकारें क्रमसरू से 75% और 25% का योगदान करेंगे योजना में मुख्य रूप से ऐसी बालिकाओं पर ध्यान देना जो किन्हीं कारणवश विद्यालय छोड़ चुकी हैं।

प्रधानमंत्री धन लक्ष्मी योजना

देश की महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए भारत सरकार द्वारा शुरू की गई। इस योजना के अंतर्गत देश की जो महिलाएं अपना खुद का व्यवसाय शुरू करना चाहती हैं, उन्हें केंद्र सरकार द्वारा ‎₹500000 तक का लोन मुहैया कराया जाएगा जो भी ब्याज इस धनराशि में लगेगा वह सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। इस प्रधानमंत्री धन लक्ष्मी योजना 2020 के तहत देश की गरीब और मध्यमवर्गीय महिलाओं को लाभान्वित किया जाएगा जिससे अनेक सशक्त होने का आधार मिल सके।

मातृत्व लाभ (संशोधन) विधेयक वर्ष 2016 में कामकाजी महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह (केवल पहले दो बच्चों के लिए) करने का प्रावधान किया गया है।

इनके अलावा कई अन्य योजनाएं और कार्यक्रम है, जो महिला सशक्तिकरण को साकार कर रहे हैं जैसे महिला शक्ति केंद्र, महिला हेल्पलाइन योजना, बालिका अनुदान योजना, फ्री सिलाई मशीन योजना, वन स्टॉप सेंटर योजना, सखी केंद्र, कामकाजी महिलाओं के लिए छात्रावास प्रशिक्षण व रोजगार कार्यक्रम 'स्टैंप' स्वाधार गृह योजना, नारी शक्ति पुरस्कार, महिला ई हॉट, निर्भया फंड, संकटग्रस्त महिलाओं की मदद करने के लिए महिला पुलिस स्वयंसेवक योजना।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका संख्या-1

स्थिति	आवृति	प्रतिशत
निम्न	30	60
मधयम	14	28
उच्च	6	12
योग	50	100

उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि 60% उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति निम्न है जिनकी संख्या सर्वाधिक है जबकि 28% उत्तरदाताओं की स्थिति मध्यम एवं 12% उत्तरदाताओं की स्थिति उच्च है।

तालिका संख्या-2

महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी योजनाओं की जानकारी

सरकारी योजनाओं की जानकारी	आवृति	प्रतिशत
जानकारी है	35	70
जानकारी नहीं है	15	30
योग	50	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 70% स्त्रियों को ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा संचालित की जा रही योजनाओं की जानकारी है 30% ने अनभिज्ञता प्रकट की।

तालिका संख्या-3

ग्रामीण विकास योजनाओं की जानकारी का माध्यम

जानकारी का माध्यम	आवृति	प्रतिशत
क्षेत्रीय लोगों से	20	40
ग्राम प्रधाान से	16	32
इलेक्ट्रानिक मीडिया/समाचार पत्रों से	10	20
अन्य माध्यम	04	08
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 40% उत्तरदाताओं को क्षेत्रीय लोगों से जानकारी प्राप्त हुई है 32% ग्राम प्रधान से, 20% उत्तरदाताओं को इलेक्ट्रॉनिकध्मीडिया समाचार पत्रों से जानकारी मिली जबकि 8% उत्तरदाताओं को अन्य के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई है।

तालिका संख्या-4

सरकारी योजनाओं से जुड़ने के कारण

कारण	आवृति	प्रतिशत
आर्थिक	16	32
समय का सदुपयोग	10	20
आत्मनिर्भरता	20	40
अन्य	04	08
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 32% उत्तरदाता आर्थिक कारणों से सरकारी योजनाओं से जुड़े हैं, 20% उत्तरदाता खाली समय का सदउपयोग की, सर्वाधिक 40% महिलाएं आत्मनिर्भर होने हेतु तथा 8% उत्तरदाताओं ने समाज सेवा व अन्य कार्यो से प्रेरित होकर सरकारी योजनाओं से जुड़ी हैं।

तालिका संख्या-5

सरकारी योजनाओं से उठाया गया लाभ

योजनाएँ	आवृति	प्रतिशत
मनरेगा	14	28
महिला स्वशक्ति योजना	08	16
इन्दिरा आवास	06	12
शौचालय	10	20
राष्ट्रीय मातृत्वलाभ	04	08
वृद्धावस्था पेंशन	06	12
अन्य	02	04
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका के आंकड़े दर्शाते हैं कि 28% उत्तरदाताओं ने मनरेगा योजना का लाभ उठाई जिनकी संख्या सर्वाधिक है जबकि 16% उत्तरदाता महिला स्वशक्ति, 12% इंदिरा आवास, 20% शौचालय, 8% राष्ट्रीय मातृत्व लाभ, 12% वृद्धावस्था पेंशन तथा 4% अन्य विभागों की योजनाओं से लाभान्वित हुई है बाकी योजनाओं के प्रति उनका रुझान धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है।

तालिका संख्या-6

महिलाओं से संबंधित चलाई गई ग्रामीण विकास योजनाओं से सहमत

सहमत	आवृति	प्रतिशत
पूर्णरूप से सहमत	35	70
असहमत	05	10
आंशिक रूप से सहमत	10	20
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि 70% उत्तरदाताओं ने पूर्ण रूप से सहमत हैं, 10% उत्तरदाता असहमत जबकि 20% उत्तरदाता आंशिक रूप से सहमत है।

तालिका संख्या-7

सरकारी योजनाओं से प्राप्त सुविधाओं से महिलाओं पर प्रभाव

प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
अतिउत्तम	28	56
उत्तम	16	32
सामान्य	04	08
कह नहीं सकते	02	04
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका संख्या 7 से यह ज्ञात होता है कि 56% उत्तरदाताओं को सरकारी योजनाओं से प्राप्त सुविधाओं से महिलाओं पर अतिउत्तम प्रभाव पड़ा है जबकि 32%उत्तम, 8% सामान्य एवं 4% उत्तरदाताओं ने कहा कि हम इसके बारे में कह नहीं सकते।

तालिका संख्या 8

महिलाओं के उत्थान हेतु योजनाओं का क्रियान्वयन

उत्थान हेतु योजनाओं का क्रियान्वयन	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	45	90
नहीं	05	10
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 90% उत्तरदाताओं ने महिलाओं के उत्थान हेतु योजनाओं का क्रियान्वयन हो रहा है जबकि 10% उत्तरदाताओं ने नहीं बताया।

तालिका संख्या-9
लाभान्वित महिलाओं के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां

कठिनाइयां	आवृत्ति	प्रतिशत
पूरी राशि का भुगतान नहीं	08	16
भ्रष्टाचार	12	24
कर्मचारियों की असहयोग पूर्ण रवैया	10	20
बार-बार चक्कर लगाना	16	32
अन्य	04	08
योग	**50**	**100**

उक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 16% उत्तरदाताओं की पूरी राशि का भुगतान नहीं किया गया, 24% उत्तरदाताओं ने सरकारी योजनाओं में भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण आर्थिक ऋण व सहायता प्राप्त करने में कठिनाइ बताया जबकि 20% कर्मचारियों की असहयोग पूर्ण रवैया, 32% उत्तरदाताओं ने बार-बार चक्कर लगाना, जिनकी संख्या सर्वाधिक है तथा 8% लोगों को अन्य कारणों को उत्तरदायी बताया है।

तालिका संख्या-10
सरकारी योजनाओं द्वारा ग्रामीण गरीबी की समस्या का समाधान

समस्या का समाधान	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	38	76
नहीं	12	24
योग	**50**	**100**

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 76% उत्तरदाताओं ने बताया कि सरकारी योजनाओं से ग्रामीण गरीबी समस्या का समाधान हुआ है जबकि 24% उत्तरदाताओं सहमत नहीं है।

इस प्रकार सरकार द्वारा संचालित की जा रही योजनाओं से ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण एवं विकास हेतु सरकार द्वारा संचालित की जा रही योजनाओं जैसे-मनरेगा, वृद्धावस्था पेंशन, सामाजिक सुरक्षा योजना, स्वास्थ्य आंगनबाड़ी, पोषाहार और महिला समृद्धि इत्यादि योजनाओं से लाभान्वित हुई हैं। उनका आत्मविश्वास बढ़ा है आर्थिक रूप से सशक्त, उन्नत जीवन-स्तर जागरूकता एवं शिक्षा के अवसरों में वृद्धि और उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है। इस प्रकार से उत्तरदाताओं के जीवन में सरकारी योजनाओं के फलस्वरुप किसी न किसी प्रकार का बदलाव अवश्य आया है। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में सरकारी योजनाओं की महती भूमिका है।

संदर्भ सूची

1. कोरेथ, जॉर्ज.और बड़ेहरा. किरण. (2017). ग्रामीण महिला सशक्तिकरण उपलब्धि अभिप्रेरणा के माध्यम से सूक्ष्म उद्यम. नई दिल्ली रूसेज पब्लिकेशन।
2. प्रसाद, श्याम. सुंदर. (2015). ग्रामीण विकास की प्रवृतियां एवं सामाजिक परिवर्तन.नई दिल्ली रूयोजना. जनवरी सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. सं.65-67।

3. देसाई, ए. आर. (2012).भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र. जयपुर रूरावत पब्लिकेशन।
4. पामेचा, सुमन., एवं अहीर, मीनाक्षी. (2018). नए उभरते भारत का परिकल्पना. कुरुक्षेत्र. जून वर्ष 64 अंक 8 पृ. सं.11-14।
5. दुबे, एस. सी. (1958) .इंडियन चेंजिंग विलेज. नई दिल्ली : इन लंदन राट्लेज एंड कीगन पाल।
6. चौरसिया, मुकेश. (2008). ग्रामीण विकास में स्वास्थ्य सेवाओं का महत्व. कुरुक्षेत्र. वॉल्यूम 54 अंक 12।
7. शर्मा, प्रेम. नारायण., एवं झा, संजीव. कुमार. (2018). महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास. लखनऊ: भारत बुक सेंटर.पृ. सं. 209-240।
8. श्रीनिवास, एम. एन. (1966). सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. मुंबई. ऑलाइडपब्लिकेशन।
9. सिंह, अलका. (1955). ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक मूल्यांकन. कुरुक्षेत्र अगस्त अंक 27।

गोरख पाण्डेय की रचनाओं में जन-संघर्ष

राकेश कुमार कश्यप

(यूजीसी नेट)
शोधार्थी हिंदी, मगध वि.वि., बोधगया

हिंदी साहित्याकाश के उज्ज्वल नक्षत्र गोरख पाण्डेय मूलत: जन संघर्षो के रचनाकार हैं। इनकी जनवादी प्रगतिशील रचनाओं शोषकों के विरुद्ध शोषितों के हित में उद्घोष करती है। सत्तर-अस्सी के दशक में इस जनकवि की रचनाएं उभार पर रही हैं। इनकी अनेक जनवादी रचनाएं भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलती हैं और जनहित के लिए विद्रोह करती हैं। पाण्डेय जी सर्वहारा और मजलूमों के जीवन को शोषण से मुक्त देखना चाहते हैं। वे लोगों में वर्गीय चेतना पैदा कर व्यवस्था परिवर्तन की बुनियाद को मजबूत कर भ्रष्ट व्यवस्था की जड़ता को तोड़ने का उद्घोष करते हैं।

"फौलादी घोड़ों की गति से
आग बर्फ में जले रे साथी
समय का पहिया चले, ।
उठा आदमी जब जंगल में
अपना सीना ताने
रफ्तारों को मुठ्ठी में कर
पहिया लगा घुमाने
मेहनत के हाथों से
आजादी की सड़कें ढले रे साथी
समय का पहिया चले।''

गोरख पाण्डेय सामयिक परिस्थिति के साथ समायोजन के बजाय उससे उत्पीड़ित होकर मोहभंग की स्थिति में आ जाते हैं। वे टूटते सपनों का दर्द और रोटी न मिलने की कसक के साथ-साथ व्यवस्था परिवर्तन के लिए कह उठते हैं-

"रोटी मयस्सर होती नहीं तो
हुस्न की गजलें क्या सुनिए।''[2]

गोरख पाण्डेय सच्चे क्रांतिकारी, जनकवि और क्रांतिधर्मी रचनाकार के रूप में ख्यात रहे हैं। चाहे उनकी कविता हो या कहानी, नाटक हो या वैचारिक लेख, सबों में वे उत्पीड़ितों, असहायों और गरीबों के पक्ष में संघर्षरत दिखते हैं। जन संघर्षो के बारे में डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं-"जनवादी रचनाएं जनता के जीवन के बीच उगते हुए सूर्य की तरह आभा प्रदान करती है। जनता की आशा, आकांक्षा, सपनों और संघर्षो को वाणी देती है। उसमे देश की संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। वह जनता में चेतना भर कर उन्हें जागृत करती है। उनके आकांक्षाओं की पूर्ति को आकार प्रदान करती है। जनकवि गोरख पाण्डेय की तमाम रचनाओं को हम इन विशेषताओं से युक्त पाते हैं।''[3]

"जनवादी रचना का आधार राष्ट्र की जनता का जीवन प्रवाह होता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्र या देश के निवासियों के दिलों की धडकनें होती हैं। उनके जीवन की सम्पूर्णता होती है अपने व्यापक जनाधार के कारण काल और युग में शोषकों के समक्ष चुनौती के रूप में प्रस्तुत होती रही है गोरख पाण्डेय की जनवादी रचनाएं।"

गोरख पाण्डेय की रचनाओं के सृजन का आरम्भ वाम-जनवादी आंदोलनों के गर्भ से होता है। इन आंदोलनों का गहरा प्रभाव इनकी रचनाओं पर है। इनकी तमाम रचनाओं में जनवादी प्रतिरोधात्मक स्वर तीव्रतर होती गयी है। जन आंदोलनों के दौरान किसान, मजदूरों के पक्ष में उनके गीत आज भी प्रासंगिक है 'गुहार' नामक भोजपुरी गीत में शोषण से मुक्ति का उद्घोष करते हुए वे कहते हैं–

"सुरु बा किसान के लड़ईया
चल तुहूं लड़े बदे भईया।
कब तक सुतब मुंदि के नयनमा
कब तक ढोवब सुख के सपनमा
फूटल ललकी किरिनियां
चल तुहूं लड़े बदे भईयाद्य'[4]

लोक धुनों से युक्त इस भोजपुरी गीत में परिवर्तन का आवाहन है। शोषित जनों को सामयिक आंदोलनों में उतर कर सपनों को साकार करने की प्रेरणा इस गीत में दी गयी है। ऐसे गीत कालान्तर में भी अप्रासंगिक नहीं हो सकते। ऐसे गीतों से लोकतंत्र की झूठी बुनियाद हिल उठती है। ये गीत जन संघर्षों के बल पर जनकंठों में बस जाते हैं,

"दिनमा खदनियाँ से सोना निकारलीं
रतिया लगवलीं अंगूठा
सगरो जिनिगिया करजे में डूबलि
कईले हिसबवा झूठा
जिनिगिया अब हम नहीं डूबइबों,
अछरिया हमरा के भावेलेद्य'[5]

लोकभाषा भोजपुरी के इस गीत में श्रम के शोषण का दर्द है। किसान, मजदूर, श्रमिक आज भी ठगा महसूस कर रहा है। शोषण से मुक्ति की छटपटाहट इन गीतों में है। यह शोषण मुक्ति का आवाहन गीत है। यह गीत तब रचा गया जब बिहार में किसान आंदोलन चरम पर थाद्य जनकवि गोरख पाण्डेय ने इन गीतों के माध्यम से शोषित जनों को जगाने का शंखनाद किया है।

गोरख पाण्डेय के जन गीत लोकभाषा के लोक धुनों में पगे हैं। सोहर, झूमर, रोपनी, पूर्वी, कजरी, बारहमासा आदि के उदाहण द्रष्टव्य हैं-

"दुरूख रोवेले से मिली नाहीं पार सजनी
कोड़ि खनि धरती दिहली संवार सजनी
ओपर कब्जा कइले ठग बटमार सजनी।'[6]

नक्सलबाड़ी का किसान आंदोलन अपने आप में ऐतिहासिक रहा है। इसमें जन संघर्षो द्वारा जन चेतना का उभार देखा जा सकता है। यह आंदोलन एक नई दिशा प्रदान करता है। जिसमें गीतों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन रचनाओं में कवि की ललकार और धिक्कार दोनों शामिल है। अधिकांश रचनाओं में समस्या के साथ उसका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। पाण्डेय जी की रचनाएं मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करती है।

गोरख पाण्डेय सिर्फ एक रचनाकार ही नहीं एक कुशल संगठनकर्ता भी रहे हैं। इन्होंने खुद 'जन संस्कृति मंच' जैसी सांस्कृतिक संस्था की स्थापना भी की थीद्य ऐसे बहुत कम रचनाकार होते हैं जो सांस्कृतिक चेतना के साथ राजनैतिक चेतना पर बल देते हैं। जनता को व्यवस्था के प्रति सचेत रहने का सन्देश देते हैं। पाण्डेय जी आजीवन मुक्ति के लिए संघर्षरत रहे। कविता को वे अँधेरा दूर करने वाला मशाल मानते रहे। ''हमारी स्थिति सिर्फ ऊपर से फैले अंधकार के बीच नहीं है। हम नीचे से उत्पीड़ितों के संघर्ष से फूटती रौशनी के बीच में जी रहे हैं। कविता सिर्फ अंधकार के बारे में नहीं अंधकार को दूर भगाने वाले औजारों के बारे में लिखी जा रही है और लिखी जाएगी।''

वास्तव में गोरख पाण्डेय की कविताओं में उत्पीड़ित लोगों का स्वर है। यही वजह है कि उनकी कविताओं में क्रांति की पुकार है।

"संगठित करो
करोड़ो करोड़ आग्नेय हाथों को
संगठित करो,
आवाज देता हूँ
मैं तुम्हें करोड़ कंठो से
अरबों पैरो में बांधकर तूफान उठो
धधको बगावत की
लोहू सी लाल अदम्य
लपटों मेंद्य"[8]

किसानों, मजदूरों, गरीबों और असहायों को ललकारती यह कविता जनसंघर्षो का सबूत है। इस कविता में यह बताने की कोशिश है कि अपने वर्गीय शत्रुओं के खिलाफ संगठित हो जाओ। सर उठा कर खड़ा होना सीखो, कभी झुको नहीं, संघर्ष से ही परिवर्तन सम्भव है। पाण्डेय जी को पता है कि कविता क्रांति की शुरुआत करती है। यह बौद्धिक जागृति प्रदान करती है। वे कविता को जन पक्षधरता का माध्यम बनाते है। क्रांतिकारी कवि गोरख पाण्डेय जन संघर्षो एवं जन सरोकारों के अनूठे कवि हैं। उनकी चेतना मार्क्सवादी विचारधारा को सान चढ़ाने का काम करती है। उनकी सम्पूर्ण रचना मुक्ति की आहट है। कवि का प्रयास है कि मजदूर, किसान, दलित, वंचित, असहाय और सर्वहारा जहाँ कहीं भी हैं, उनकी मुक्ति क्रांति से ही सम्भव है। (तुम जहाँ कहीं भी हो), शीर्षक कविता में वे लिखे हैं-

"अंधेर कमरों और
बंद दरवाजों से
बाहर सड़क पर
जुलूस में और
युद्ध में तुम्हारे होने के
दिन आ गये हैं।"[9]

ऐसा लगता है कि पाण्डेय जी का हृदय मुक्ति के लिए बेचौन है। वे शोषित जनों को कह उठते हैं-"तुम्हें जन आंदोलनों से मुंह नहीं मोड़ना है, तुम्हारे सामने इसके अलावे और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आंदोलन और प्रतिरोध ही तुम्हारे मुक्ति के हथियार हैं।"

गोरख पाण्डेय अपनी कहानी 'अपनी आवाज' में लिखते हैं-"तुमने शोषितों की लड़ाई को बदलाव की घटना मानने से इनकार क्यों कर दिया। यही संघर्ष तो बदलाव की दिशा तय करता है। यही कार्रवाई समाज को एक झटके में बदल देने के लिए काफी है।"[10]

कवि आशान्वित है कि एक दिन सब कुछ ठीक हो जायेगा।

समतामूलक समाज की स्थापना होगी हीं, समाज शोषणमुक्त होगा ही। गरीब भी सुख का जीवन जियेगा। सामाजिक और राजनैतिक आजादी किसान मजदूरों को अवश्य मिलेगी। तभी तो वे 'आशा' नामक कविता में लिखते हैं-

"आएंगे अच्छे दिन आएंगे
गर्दिश के दिन ये कट जाएंगे
सूरज झोपड़ियों में चमकेगा

बच्चे सब दूध से नहाएंगे
आएंगे अच्छे दिन आएंगे।''[11]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गोरख पाण्डेय की सम्पूर्ण रचनाएं शोषण से मुक्ति की उम्मीद लिए है। समाज में गैरबराबरी, वर्ग-भेद, शोषण-दमन और मुक्ति का आवाहन ही उनकी सृजनशीलता का परम उद्देश्य है। पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ समाजवादी व्यवस्था की स्थापना ही गोरख पाण्डेय की रचनाओं का परम लक्ष्य है। जन-संघर्ष ही उनकी रचनाओं की आत्मा है।

संदर्भ

1. गोरख पाण्डेय, समग्र कविताएँ, जन संस्कृति-मंच, द्वितीय संस्करण, प्रकाशन वर्ष 2014 इलाहबाद पृ.-46
2. गोरख पाण्डेय, समग्र कविताएँ, जन संस्कृति-मंच, द्वितीय संस्करण, प्रकाशन वर्ष 2014 इलाहबाद पृ.-179
3. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृ.-157
4. गोरख पाण्डेय, समग्र कविताएँ, जन संस्कृति-मंच, द्वितीय संस्करण, प्रकाशन वर्ष 2014 इलाहबाद, इलाहबाद पृ.-150
5. वही पृ.-151
6. वही पृ.-160
7. वही भूमिका पृ.-1
8. वही पृ.-90
9. वही पृ.-99
10. वही पृ.-21
11. वही पृ.-119

प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग तथा क्षेत्र के प्रभाव का अध्ययन

योगेश कुमार पाल

शोधार्थी-शिक्षाशास्त्र, डी.वी.कॉलेज उरई, जालौन (उ. प्र.)

डॉ० राजेश पालीवाल

शोध निर्देशक, असि.प्रो., शिक्षक-शिक्षा विभाग, डी.वी.कॉलेज उरई, जालौन (उ.प्र.)
बुंदेलखण्ड विश्वविद्याल झाँसी (उ.प्र.)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य जनपद झांसी, जालौन, ललितपुर तहसील के अंतर्गत आने वाले प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग तथा क्षेत्र के प्रभाव का अध्ययन करना था। शोधार्थी ने प्रतिदर्श के रूप में 400 शिक्षकों का चयन किया है। शिक्षकों का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि से किया गया है। शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। इस अध्ययन में 2*2 कारकीय अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। डॉ. एस.के. सक्सेन द्वारा निर्मित कृत्य-संतोष मापनी एवं डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। विश्लेषण में यह पाया गया कि प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का प्रभाव पड़ता है, लेकिन कृत्य-संतोष पर लिंग तथा क्षेत्र का अंतरक्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। प्राथमिक शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) का प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का प्रभाव पड़ता है। और वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग तथा क्षेत्र का अंतरक्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शब्द कुंजी-प्राथमिक शिक्षक, कृत्य-संतोष, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, लिंग, क्षेत्र

प्रस्तावना—आज के प्रगतिशील, तकनीकी, कंप्यूटर एवं सूचना क्रांति के युग में शिक्षा को सही एवं उन्नतशील शिखर तक पहुंचाने हेतु आवश्यक है, कि शिक्षक को उचित प्रभावोत्पादक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। आज की वर्तमान स्थिति में शिक्षण कार्य को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला कारण सामाजिक परिवेश में विद्यमान राजनैतिक हस्तक्षेप हो गया है। प्राय: शिक्षक संस्थानों में प्रवेश से पूर्व शिक्षकों में अध्ययन व्यवसाय के प्रति रुचि, उत्साह व कुछ नया करने की इच्छा रहती है। कुछ वर्षो में देखा गया है कि शिक्षक निरुत्साही, निराशावादी, तनावग्रस्त एवं थका हुआ सा महसूस करते हैं और स्वयं को कुछ नया न करने योग्य मानने लगते हैं। शिक्षण व्यवस्था में कार्यरत शिक्षकों को स्कूल में अनेक प्रकार से समायोजन करना होता है। इस प्रक्रिया में कई बार शिक्षक जहां संतुष्ट होते हैं, वही असंतुष्ट की स्थिति का भी सामना करना पड़ता है। शिक्षकों को अत्यधिक कार्यभार और अनुकूल

परिस्थितियों के न होने के कारण शिक्षकों में कार्य के प्रति असंतोष देखने को मिलता है। यह असंतोष केवल शारीरिक, मनोवैज्ञानिक प्रशासनिक, बौद्धिक और सामाजिक कारणों से ही नहीं, अपितु कार्यक्षमता से भी होता है। इसका प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिससे शिक्षकों की अभिवृत्ति प्रभावित हो सकती है। अत: शिक्षकों के अंदर वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना आवश्यक है। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जो शिक्षकों के अंदर विज्ञान के प्रति लगाव व समझ को उत्पन्न कर सके और शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास कर सके। वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विकसित होने से शिक्षक प्रकृति की विभिन्न घटनाओं के बीच उत्पन्न समस्याओं को समझकर वैज्ञानिक नीति से उनका हल निकाल सकते हैं। कुछ अध्ययन प्रदर्शित करते हैं कि शिक्षकों में कार्य के प्रति संतुष्टि पाई गई। खातूर (2002), गोस्वामी (2003) मैकलिन जेनिफर (2005), विजयलक्ष्मी (2005), गुप्ता (2008), दीक्षित (2013) आदि। वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर हुए अध्ययन गुप्ता. एमपी (2007) पटेल (2012) आर्य भारती (2014), रश्मि (2016) आदि। लेकिन बुंदेलखंड क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले झांसी, जालौन, ललितपुर में प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कृत्य संतोष और वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शोध परक अध्ययन नहीं हुए हैं। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत विषय को शोध के लिए चुना गया है। जिसमें यह देखने का प्रयास किया गया है, कि प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग तथा क्षेत्र का क्या प्रभाव पड़ता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (शहरी-ग्रामीण) के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. प्राथमिक शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (शहरी-ग्रामीण) के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं

1. प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (शहरी-ग्रामीण) का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. प्राथमिक शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (शहरी-ग्रामीण) का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध अध्ययन का सीमांकन

1. प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के झांसी, जालौन, ललितपुर जिले से 400 शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है।
2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत 200 शिक्षक एवं 200 शिक्षकों का चयन किया गया है।
3. प्रस्तुत शोध अध्ययन में 200 ग्रामीण एवं 200 शहरी शिक्षक -शिक्षिकाओं को लिया गया है।
4. प्रस्तुत शोध अध्ययन झांसी, जालौन, ललितपुर जिले तक ही सीमित है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

गुप्ता, विनीता (2013) ने सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का सामुदायिक योगदान के परिपेक्ष में अध्ययन किया और पाया कि सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों के पुरुष और महिला शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं समुदाय के योगदान के मध्य धनात्मक संबंध है।

वर्मा, नीलम एवं हंसराज पाल, आशा पाल (2015) ने शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के सहसंबंध तथा कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर पर लिंग एवं अनुभव के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के मध्य कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है। महिला एवं पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सिंह, भीमशंकर एवं रश्मि शर्मा (2016) ने महाविद्यालयों में शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक आवृत्ति का अध्ययन किया और पाया कि शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक आवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

पाण्डेय, दीपक कुमार (2008) ने ग्वालियर नगर के हायर सेकेंडरी विद्यालयों के 16 वर्ष की आयु के छात्रों की वैज्ञानिक आवृत्ति के विकास में विद्यालय की भूमिका पर अध्ययन किया और पाया कि विद्यालय के शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का छात्र एवं छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध अध्ययन की विधि

शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध अभिकल्प

इस अध्ययन में 2*2 कारकीय अभिकल्प का प्रयोग किया गया है।

शोध अध्ययन के प्रतिदर्श

शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया गया है। एवं 400 शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

डॉ. एस.के. सक्सेना द्वारा निर्मित कृत्य संतोष मापनी एवं डॉ.एन.एन.श्रीवास्तव द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधि

प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी ने प्रतिदर्श के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण प्रसरण विश्लेषण सांख्यिकी (एनोवा) का प्रयोग करते हुए शून्य परिकल्पना की जांच की है।

आंकड़ों का विश्लेषण

परिकल्पना 1-प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी-1

विचलन के स्रोत	वर्गों का योग	स्वतंत्रता के अंश	मध्यमान वर्ग	एफ अनुपात	सार्थकता स्तर
मुख्यप्रभाव लिंग (महिला-पुरुष)	265.86	1	265.86	21.96	.05 स्तर पर सार्थक
क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी)	78.66	1	78.66	6.50	.05 स्तर पर सार्थक
अंतर्क्रियात्मक प्रभाव लिंग + क्षेत्र	28.15	1	28.15	2.32	.05 स्तर पर सार्थक
त्रुटि	4794.16	396	12.10		
कुल	5112.68	399			

मुख्य प्रभाव

सारणी 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित मान 21.6, (1 व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एफ अनुपात का मान 3.86 से बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सारणी 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित मान 6.50, (1 व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एक अनुपात का मान (3.86) से अधिक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षकों के कृत्य संतोष पर क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

अंतर्क्रियात्मक प्रभाव

सारणी 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित मान 2.32, (1व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एफ अनुपात का मान (3.86) से बहुत कम है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का अंतर्क्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात शून्य परिकल्पना, प्राथमिक शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है, स्वीकृत की जाती है

परिकल्पना 2-प्राथमिक शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) का क्षेत्र ग्रामीण शहरी का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी-2

विचलन के स्रोत	वर्गों का योग	स्वतंत्रता के अंश	मध्यमान वर्ग	एफ अनुपात	सार्थकता स्तर
मुख्यप्रभाव लिंग (महिला-पुरुष)	121.27	1	127.27	2.28	.05 स्तर पर सार्थक
क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी)	371.51	1	371.51	6.98	.05 स्तर पर सार्थक
अंतर्क्रियात्मक प्रभाव लिंग * क्षेत्र	159.74	1	159.74	3.00	.05 स्तर पर सार्थक
त्रुटि	21074.91	396	53.22		
कुल	21873.48	399			

मुख्य प्रभाव

सारणी 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित मान 2.28, (1व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एफ अनुपात का मान (3.86) से कम है। इससे स्पष्ट है, कि शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

सारणी 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित मान 6.98 (1 व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एफ अनुपात का मान (3.86) से अधिक है। इससे स्पष्ट है, कि शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर क्षेत्र (ग्रामी -शहरी) का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

अंतर्क्रियात्मक प्रभाव

सारणी 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि एफ अनुपात का आकलित 3.00, (1व 396) स्वतंत्रता के अंशों पर .05 स्तर पर एफ अनुपात का मान (3.86) से कम है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण -शहरी) का अंतर्क्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात शून्य परिकल्पना, प्राथमिक शिक्षकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (शहरी-ग्रामीण) का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है, स्वीकृत की जाती है।

सुझाव

शिक्षकों के कृत्य संतोष पर लिंग (महिला-पुरुष) तथा क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी) के आधार पर प्रभाव पड़ने का कारण मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना हो सकता है। एक समान परिवेश, स्थिति के कारण, कृत्य संतोष पर लिंग और क्षेत्र का अंतर्क्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: शिक्षकों के लिए मूलभूत आवश्यकताओं जैसे-सुरक्षा, प्रेम, स्नेह, आत्मसम्मान, रूचि का कार्य, वेतन, प्रगति के अवसर, प्रोत्साहन, आदि को बढ़ाया जा सकता है। उच्च कार्य संतोष वाले शिक्षकों का लाभ विद्यालय या समाज द्वारा लिया जा सकता है।

महिला एवं पुरुष शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विकास के लिए विद्यालय में स्वतंत्र वातावरण तथा नवाचार के साधन उपलब्ध होने चाहिए। एक ही क्षेत्र में रहने वाले शिक्षकों में लगभग एक जैसी वैज्ञानिक अभिवृत्ति पाई गई। एक समान परिवेश, स्थित के कारण वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर लिंग और क्षेत्र का अंतर्क्रियात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। अध्ययन से स्पष्ट है, कि विभिन्न समस्याएं शिक्षकों के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है, जैसे-बुनियादी सुविधाओं की कमी, कार्य की अधिकता, कमजोर मनोबल, सामाजिक आर्थिक स्थिति, जिम्मेदारियां, स्कूल की दूरी आदि शिक्षकों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इन समस्याओं को दूर कर तथा विद्यालयों में आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध करा कर, शिक्षकों के कृत्य संतोष और वैज्ञानिक अभिवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है और विद्यालय, समाज, संस्थान तथा सरकार लाभ उठा कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बना सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- आरा, जहाँ (2016), प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षकों के कार्य संतुष्टि पर एक अध्ययन, । sian journal of Multidisciplinary Studies, Vol-4(10), Sept-2016, retrieved from https://www.ijms.co.in
- कपिल, एच .के. (2012), सांख्यिकी के मूल तत्व (सामाजिक विज्ञानों में), आगरा: श्री विनोद पुस्तक मंदिर, पेज नं. 480।
- के.यू. लिविंगियों (1974) यपी-एच.डी. एजुकेशन, गुजरात विश्वविद्यालय, एम.बी.बुच सेकंड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन, बड़ौदा, सोसायटी फॉर एजुकेशन रिसर्च एंड डेवलपमेंट, पेज नं., 439।
- गैरेट, ई. हेनरी एवं आर.एस. वुडवर्थ (2011), शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिर्शस, पेज नं. 61।
- गुप्ता, एस.पी. एवं अलका गुप्ता (2010), व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकी विधियां, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन:, पेज नं. 72।
- गुप्ता, विनीता (2013), सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का सामुदायिक योगदान के परिपेक्ष में तुलनात्मक अध्ययन, शिक्षा चिंतन, वर्ष 12, अंक 4, पेज नं. 6-7।
- गुप्ता, एम.पी. (2007), धार्मिक अभिवृत्ति, वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में किशोरों की पर्यावरण जागरूकता का अध्ययन, पी-एच.डी. शिक्षाशास्त्र, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान, पेज नं. 265-295।
- गुप्ता, एस.पी. एवं अलका गुप्ता (2009), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबादय शारदा पुस्तक भवन, पेज नं. 553।
- तिवारी, अशोक कुमार (2003), शिक्षक कार्य संतुष्टि पर लिंग, वासस्थली एवं विद्यालय प्रबंध का प्रभाव, आधुनिक भारतीय शिक्षा, नई दिल्लीय प्रकाशन विभाग एन.सी.ई.आर.टी. अक्टू. 2003।
- पांडेय, दीपक कुमार (2008), ग्वालियर नगर के हायर सेकेंडरी विद्यालयों के 16 वर्ष की आयु के छात्रों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विकास में विद्यालय की भूमिका, पी-एच.डी. शोध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, पेज नं. 140-150।
- बावल, जगदीश एवं सरिता मेनारिया (2017), सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कंप्यूटरअभिवृत्ति का एक अध्ययन, श्रंखला एक वैचारिक पत्रिका, वॉल्यूम 4 फर. 2017, पेज न.60-61।
- रामिरेज, गार्सिया (2005), संयुक्त राज्य अमेरिका में लाभ के स्थापित कालेजों में पूर्णकालिक विभागीय शिक्षकों का कृत्य संतोष तथा पृष्ठभूमीय गुणों का अध्ययन, पी-एच.डी. एजुकेशन, हावर्ड विश्वविद्यालय, डिजरटेशन आब्सट्रैक्टस इंटरनेशनल, वैल्यू. 66 (ए), पेज न. 187।
- वर्मा, नीलम एवं हंसराज पाल, आशा पाल (2015ऋय शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के सहसंबंध तथा कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर पर लिंग एवं अनुभव के प्रभाव का अध्ययन, Indian Journal of Educational studies and Interdisciplinary journal vol-2 (1), Pp-54-58.
- सिंह, अरुण कुमार (2008), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, पटनारू भारती भवन पब्लिकेशन:, पेज नं. 525।
- सुलेमान, मोहम्मद (2006), मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, पटनारू जनरल बुक एजेंसी, पेज न .11।
- सिंह, भीमशंकर एवं रश्मि शर्मा (2016), महाविद्यालय में शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पी-एच.डी. शोध प्रबंध, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, पेज नं. 221-229।

नारी समस्या और चेतना विशेष संदर्भ 'वह लड़की' उपन्यास

अनिता देवी

*(पीएच.डी शोधार्थी, एम.ए., एम.फिल., बी.एड.,
नेट, सेट हिंदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-06)*

सार: नारी और पुरुष समाज के अभिन्न अंग है। दोनों के सहयोग से समाज का निर्माण होता है परंतु पुरुष सत्ताधारी होने के कारण स्त्री को दबाने का प्रयास करते हुए उसका शोषण करता है। आज नारी भी शिक्षित होकर अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के प्रति जागरूक है तथा पूर्ण रूप से विद्रोह भी कर रही है। उपन्यास 'वह लड़की' में विभिन्न नारी पात्रों के द्वारा नारी समस्या तथा बाद में उन समस्याओं का विद्रोह करते हुए संघर्षशील रहकर नारी चेतना की ओर संकेत करते नजर आते हैं। लेखिका ने भिन्न-भिन्न नारी पात्रों के माध्यम से अनमेल विवाह, घरेलू हिंसा, बेटे-बेटी में अंतर, पुरुष की कामुकता तथा इन समस्याओं के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है।

बीज शब्द: अनमेल, अंतर्जातीय, भेदभाव, अत्याचार, परिवार नियोजन, पश्चाताप, जागरूकता, विद्रोह।

मानव समाज को जन्म देने वाली और पालन पोषण करने वाली जननी स्त्री है इसलिए ईश्वर के पश्चात माता या जननी को महत्व दिया गया है। पुरुष का अस्तित्व स्त्री के अस्तित्व के बिना अधूरा है। स्त्री माता रूप के अतिरिक्त बहन, पत्नी, पुत्री तथा अन्य पारिवारिक संबंधों से जुड़कर पुरुष समुदाय को जीवन दायिनी स्नेह भावना से प्रेम व स्नेह का रसपान कराती है। परंतु पितृसत्ता के अहं में चूर पुरुष प्रधान समाज ने उसे अत्याचारों की जंजीरों में जकड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उसे दबाने मसलने तथा उपभोग से भिन्न अस्तित्व स्वीकारने में पुरुष समाज का दोहरा मानदण्ड रहा है। पुरुष समाज से प्राप्त पीड़ा स्त्री सहन करने के लिए विवश हो जाती है। इसका कारण यह है कि उसका बचपन से ही इन संस्कारों में पालन-पोषण हुआ है। पति ही परमेश्वर है तथा पति का विरोध भगवान का विरोध है इन सब परंपरागत तथ्यों से ही वह शोषित हैं।

आज इक्कीसवीं सदी का दौर है। इस दौर में स्त्री पढ-लिख कर अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हुए पुरुष वर्चस्वता का विरोध करती है तथा अपने पैरों पर खुद खड़ी होकर वह नारी चेतना का परिचय देती है। नारी चेतना के विषय में बात करने से पूर्व चेतना पर विचार करना अति आवश्यक है। चेतना का संबंध बुद्धि, ज्ञान, भाव और व्यक्ति अथार्त क्रियाशीलता की अनुभूति से है। मानव मन की समझने की शक्ति, बौद्धिक प्रवणता और प्रेरणा ही चेतना है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका संबंध मनोविज्ञान से है। चेतन व्यक्ति निरंतर परिवर्तनशील रहकर विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति करता है। इसलिए चेतना के अभाव में व्यक्ति का विकास संभव नहीं हो सकता। इस प्रकार जब तक नारी पूर्ण रूप से जागरूक नहीं हो जाती तब तक उसकी समस्या समाप्त नहीं होगी। नारी की स्थिति में परिवर्तन प्रत्येक युग में हुआ है कभी समाज में उसे पूजा गया तो कभी उसकी अवहेलना की गई। पुरुषवादी समूह द्वारा जिस साहित्य की रचना की गई उसमें नारी के परंपरागत रुप को ही दर्शाया गया। उन्होंने नारी के चेतन रूप की चर्चा अपने साहित्य में नहीं की। नारी स्थिति को फिर महिला साहित्यकारों द्वारा अपने साहित्य में प्रस्तुत करते हुए उनके अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई। इन्होंने नारी अस्मिता को साहित्य में प्रस्तुत करते हुए उसे जागरूक करने का प्रयास किया उनके इन प्रयासों से नारी में जागरूकता आने लगी तथा हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों की तादाद बढ़ने लगी। आधुनिक युग में महिला लेखन बहुत ही तीव्र गति से कई नारी समस्याओं का विवेचन कर रहा है। दलित महिला साहित्यकार सुशीला टाकभौरे का उपन्यास

'वह लड़की' उनकी अन्यतम कृति है जिसमें नारी जीवन की व्यथा को व्यक्त करते हुए नारी चेतना की बात की गई है। शिक्षित और स्वावलंबी नारी परंपरावादी समाज में परिवर्तन की मांग कर रही है।

लेखिका ने उपन्यास में भिन्न-भिन्न नारी पात्रों के माध्यम से नारी चेतना का उल्लेख करते हुए उस पर किए जाने वाले अत्याचारों का विरोध किया है। घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री को परिवार के अत्याचारों से प्रताड़ित होना पड़ता है। शम्मा अपने पति तथा सास के अत्याचारों का वर्णन करती हुई कहती है कि "मेरी सास बड़ी जल्लाद है। हर दिन किसी ना किसी बात पर मुझे मारती पीटती है। जब उसे बहुत गुस्सा आता है तब अपने बेटे से कहती है इसके पांव बांध दें और इसको खूब पीठ। ... कई बार मेरी सास मेरे हाथ पकड़ के रखती है और मेरे भरतार मुझे लात घुसों से मारते हैं।"[1] इस प्रकार आज भी नारी घरेलू हिंसा का शिकार है। उस पर इतने अत्याचार किए जाते हैं कि वह बार-बार मरने से एक ही बार मरने के लिए विवश भी हो जाती है। एक तरफ शम्मा जैसी नारी चुपचाप पति की हिंसा का शिकार है तो दूसरी तरफ शैला जैसी शिक्षित नारी इस हिंसा का विरोध करते हुए शम्मा को समय परिवर्तन की बात समझाते हुए मायके में रहने की सलाह देकर नारी चेतना का परिचय देती है। "पुराने जमाने में और आज के जमाने में बहुत अंतर होता जा रहा है। फिर औरतों के लिए पहले जैसे रीति परंपराओं के बंधन क्यों? क्या वह अपने अन्यायी, अत्याचारी पति को छोड़कर, दूसरा विवाह नहीं कर सकती।"[2] नारी के ऊपर हो रहे अत्याचारों का कारण स्वयं नारी की परंपरावादी विचारधारा भी है जो उसे पति द्वारा किए अत्याचारों के बावजूद भी चुप रहने पर विवश करती है। शम्मा को शैला द्वारा दूसरी शादी करने की सलाह देने पर शम्मा का कहना है कि "अपने धर्म में ऐसा करना गलत है। परंपराओं को मानना ही धर्म है।"[3] इस प्रकार ऐसी परंपराएं जो नारी के साथ अन्याय करती हैं उन्हें मानना धर्म नहीं है उनका विरोध करना चाहिए।

हमारे समाज में पति और सास अपनी वर्चस्वता को कायम रखने के लिए बहू पर अत्याचार करते हैं। आज के समय में भी ऐसी सास हैं जिन्हें लगता है कि अगर वह बहू को डरा-धमकाकर नहीं रखेगी तो उसका बहू पर नियंत्रण न होने पर बहू उसकी बात नहीं सुनाएगी। इसलिए बेटे की शादी होते ही सास द्वारा बहू पर दबाव आरम्भ हो जाता है। वह बहू को आत्मनिर्भर बनने नहीं देना चाहती क्योंकि आत्मनिर्भर बहू पर राज करना मुश्किल होता है। ममता की सास उसे नौकरी करने नहीं देना चाहती। ममता की नौकरी की बात करने पर राजेश्वरी (सास) की सोच इन शब्दों में व्यक्त होती है। "ममता की सास ने यह कभी नहीं चाहा कि उनकी बहू सक्षम बने। वह चाहती है कि बहू ऐसी ही कमजोर और बेवकूफ बनी रहेय ताकि वे उस पर मनचाहा जुलम ढाते रहे।"[4]

एक नारी की दूसरी नारी के प्रति यह मानसिकता भी नारी जागरूकता में अवरोधक है। जबकि अब वह समय नहीं है कि कोई भी पढ़ी-लिखी नारी आत्मनिर्भर न बनना चाहती हो परंतु घर का वातावरण तथा परिवार वालों के साथ न देने पर वह घर के चूल्हे चौके तक ही उसकी जिंदगी सीमित रह जाती है।

यदि किसी नारी के साथ कोई दुष्कर्म हो जाए तो उस नारी को समाज में कलंकित माना जाता है फिर चाहे नारी का कोई दोष न भी हो तब भी। ऐसी स्थिति में नारी को घर और बाहर दोनों स्थानों पर प्रताड़ित होना पड़ता है। नारी को अकेला पाते ही कामुक व्यक्ति उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। पर वह किसी तरह बच-बचाकर घर पहुंचती है तो उसे तुच्छ मानसिकता वाले परिवार की हिंसा का शिकार होना पड़ता है। उपन्यास की गंगा मौसी से रामरतन द्वारा जबरदस्ती करने पर बचकर घर आने पर पति और सास द्वारा उसी की गलती मानते हुए खूब पिटाई की जाती है। शैला के शब्दों में "गंगा वहां से बचकर अपने घर पहुंची तब घर में तूफान उठा। पति और सास ने उसकी जमकर पिटाई की, कि तुम्हारी ही कोई गलती होगी। बेचारी गंगा मौसी क्या करती? बस रोती रही।"[5] नारी की गलती न होने पर भी सारा दोष उसे ही देकर समाज उसे मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है। ऐसी परिस्थितियों में घर वालों की संतावना से ही नारी में आत्मविश्वास की उत्पत्ति हो सकती है परंतु जब उसे घर वालों का सहयोग नहीं मिल पाता तो वह मानसिक रूप से दुखी होने के लिए विवश हो जाती हैं।

शिक्षा ऐसा साधन है जिससे प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होकर अपने अच्छे बुरे की पहचान करता है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत होता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता। यदि नारी भी शिक्षित हो तो उसे भी उस पर लगाए गए परंपरावादी बंधनों की जानकारी मिलेगी। बिना शिक्षा के समाज की रूढ़ीवादी परंपरावादी सोच पर चलने पर उसे शोषण का शिकार होना पड़ता है। शैला द्वारा शम्मा की दूसरी शादी करने के प्रस्ताव पर उसकी रूढ़िवादी मानसिकता का परिचय इन शब्दों में मिलता है। "अरे लड़की की शादी जिंदगी में सिर्फ एक बार होती है। दूसरी शादी उसके लिए पाप है। आदमी भले ही दस शादी कर ले। मगर औरत एक ही बार दुल्हन बनती है। इसके बाद में चिता में ही...।"[6] इस तरह की मानसिकता ही नारी को अबला बनाती है। अत: नारी

शिक्षा जरूरी है जब तक उसे शिक्षित नहीं किया जाएगा तब तक उसे इस रूढ़िवादी मानसिकता से मुक्ति नहीं मिल सकती। शिक्षा का अभाव नारी शोषण का बहुत बड़ा कारण है। आधुनिक युग सभ्यता के विकास का युग है। यह स्त्री पुरुष की समानता की बात करता है। आज स्त्री पुरुष के साथ प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से कार्यरत है परंतु रूढ़िवादी मानसिकता के कारण स्त्री पुरुष में भेदभाव आज भी हो रहा है। बेटे और बेटी में अंतर आज भी माना जाता है। बेटे को बेटी से श्रेष्ठ मानते हुए लोगों की धारणा है कि बेटे तो वंश को आगे बढाते हैं। इसलिए एक बेटा होना चाहिए। इस सामाजिक मानसिकता के कारण परिवार वालों के दबाव में औरतों द्वारा बेटे की चाह में एक के बाद एक लड़की पैदा करने के कारण उसे अवहेलना मिलती है। औरत को भय रहता है कि यदि वह एक बेटा पैदा नहीं कर पाई तो उसका पति दूसरी शादी कर सकता है ऐसे में उसका क्या होगा। इस भय के कारण वह बार-बार गर्भवती होकर लड़के की राह देखती है। शम्मा की लड़कियां हैं उसका सोचना है कि अगर उसे एक लड़का हो जाएगा तो परिवार के अत्याचारों से वह बच जाएगी। शैला उसकी इस बात का विरोध करते हुए उसे समझाती है कि ''तुम अपने दुष्ट पति का बेटा पैदा करने का सपना देखती हो? तुम्हारे जैसी मुर्ख औरतों के कारण ही यह पुरुष आंतक मचाते हैं।''[7] स्त्री की यह मानसिकता उसे शोषण का शिकार बनाती है। इस मानसिकता की अनेक स्त्रियों के उदाहरण हैं जो पति द्वारा त्याग के डर से फैमिली प्लानिंग न कराकर बेटियों को जन्म देती है तथा बाद में पश्चाताप करती है कि बेटियां भी बेटों के समान हैं तथा उनसे ज्यादा देखभाल करती हैं। यदि यह बात वे पहले ही समझ जाएं तो परिवार भी छोटा रहेगा तथा आर्थिक परेशानियां भी नहीं आएंगी। उपन्यास के पात्र ममता का कहना है कि ''बेटा नहीं होगा तो बेटे के लिए वे दूसरी शादी कर लेंगे। तब मेरा क्या होगा।''[8] इस प्रकार बेटे की चाह में चार लड़कियां पैदा करके पश्चताप करती है। यदि बेटे और बेटी को समान समझा जाए तथा बेटी को ही बेटा समझा जाए तो नारी को प्रताड़ना को सहन ही नहीं करना पड़ेगा।

स्त्री शोषण का एक मुख्य कारण उसके माता-पिता की लापरवाही भी है। यदि बेटी पर हो रहे अत्याचारों को सुनने के बाद भी वे उसका साथ न दे सकें तो स्त्री शोषण लाजमी है। क्योंकि ससुराल वाले मानसिक रूप से स्वतंत्र हो जाते हैं कि वे चाहे कितने ही अत्याचार करेंगे उन्हें कौन पूछने वाला है। बेचारी लड़की भी विवशतापूर्ण अत्याचार सहन करने के लिए विवश रहती है। शैला द्वारा शम्मा के माता-पिता को शम्मा को मायके में लाने की बात की जाती है तो उनका कहना है कि ''अरे बेटी जो शमा की किस्मत में है वह भोग रही है। अब अपन का कर सकते हैं? यहां लाकर भी का करेंगे?''[9] यदि शादी के बाद भी माता-पिता का सहयोग बेटी को प्राप्त होता रहे तब वह हिंसा से बच सकती है। मां-बाप कभी-कभी गरीबी तथा सामाजिक प्रतिष्ठा खो जाने के भय से बेटी का साथ न देकर उसे ससुराल की हिंसा का शिकार होने के लिए अपना नहीं पाते। पति-पत्नी का पारस्परिक अविश्वास व सन्देह दांपत्य जीवन को पीड़ादायक बना देता है। विवाह के उपरांत पत्नी का पति के प्रति संपूर्ण समर्पण होता है। वह पति को परमेश्वर के रूप में देखते हुए उसके सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानना अपना धर्म समझती है। पति अपने धर्म को बखूबी नहीं निभा पाता यह दुखदाई बात है बल्कि कदम-कदम पर पत्नी को शंका की दृष्टि से देखकर उसे अपमानित करता है तब उस लड़की के सारे सपने जो उसने विवाह पूर्व संजोए होते हैं वे उसी क्षण टूट जाते हैं। उपन्यास में नवीन नाम का पात्र ऐसा ही शंकालु पति है जो शादी की पहली रात ही पत्नी नमिता के साथ दुर्व्यवहार करता है तथा उस पर चरित्रहीन होने का आरोप लगाता है। ''हाँ मुझे सच-सच बताओ, गांव में तुम्हारी किस-किस से यारी थी? कितने यार हैं गांव में तेरे? और तेरा जीजा? बड़ा छैल छबीला जीजा है तेरा तेरी बड़ी फिक्र करता है। जीजा के साथ कब से है तू?''[10] नारी पर लांछन लगाकर पुरुष उसके पत्नी धर्म को तिरस्कृत करता है। पत्नी के लिए सबसे बड़ा लांछन होता है उसका पति के अतिरिक्त किसी और गैर पुरुष से संबंध। आज स्त्री समाज में यहां अनेक भूमिकाएं निभा रही है वहीं उसे पति की शंका का भी सामना करना पड़ता है। नवीन को नमिता द्वारा उसका महीना आने की बात न बताने पर वह नमिता को पीटता है। ''उसने एक हाथ से नमिता की बांह पकड़ी तथा दूसरे हाथ से सिर के बालों को खींचते हुए, उसने सिर को झटका देकर बोला क्यों छुपाने वाली कोई बात है क्या? शादी के पहले किसी के साथ।''[11] सन्देह रूपी धुन रिश्तों को खा जाता है और फिर पति-पत्नी जैसे नाजुक रिश्ते को एक बार यह धुन लग जाए तो दांपत्य जीवन दुखद होते देर नहीं लगती।

नारी शिक्षित होने से अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का विरोध करती है तथा चेतना का प्रमाण देती है। नमिता पति और सास के अत्याचारों के बारे में कहती है कि ''अपने जीवन की इन समस्याओं का सामना मैं खुद करूंगी और इनका निराकरण भी करूंगी?''[12] अपने पति तथा ससुराल वालों की रिपोर्ट पुलिस में करके उन्हें वह सुधारती है। अक्सर देखा जाता है कि समाज में नारी के लिए आज के युग में भी पिछड़ी मानसिकता के कारण अनेक नियम है। वह घर में सबसे पहले उठे और सब के बाद

सोए। अगर नारी परिवार के इन नियमों पर पूरा नहीं उतरती तो उसकी निंदा की जाती है। केवल बहू के लिए ऐसे नियम है बेटी के लिए नहीं यह संकुचित मानसिकता का प्रमाण है। आधुनिक नारी अगर घर के काम के साथ-साथ बाहर भी नौकरी करते हुए पुरुष के समान काम करती है। ऐसे में वह ऐसे दकियानूसी नियमों का विरोध करती है। नमिता भी सास के इस नियम का विरोध मन ही मन करती है। ''मैंने कौन सा पाप किया है। जो मैं इतनी सुबह ठंडे पानी से नहाऊँ? सास-नन्द के लिए तो यह नियम नहीं है? केवल नई बहू के लिए नियम सास ने बनाया है।''[13] उपरोक्त विचार नारी चेतना का प्रतीक है। शैला का पति द्वारा बात-बात पर उसे लज्जित करना तथा शैला को पति को छोड़ने का फैसला नारी चेतना की ओर संकेत करता है।

अनमेल विवाह भी स्त्री पीड़ा का सबसे बड़ा कारण है। अनमेल का अर्थ है बेमेल। फिर चाहे पति आयु में बड़ा हो या समान मानसिकता का न हो। अनमेल विवाह का सबसे बड़ा उदाहरण है प्रेमचंद का उपन्यास निर्मला जिसमें निर्मला का अनमेल विवाह होने से उसका जीवन कष्टदायक बन जाता है। लड़कियों की शादी मां-बाप जब उनसे बड़े आयु के पुरुष से करते हैं तो भी लड़की को पीड़ा सहन करनी पड़ती है। बड़ी उम्र के व्यक्ति को पति के रूप में अपनाने में लड़की को समय लगता है या उसका उसके साथ साम्य नहीं बैठ पाता। जब तक लड़की को समझ आती है पति या तो बीमार होता है या मर जाता है। उस समय अनमेल विवाह के कारण वह विधवा जीवन जीने के लिए विवश होती है। विधवा होने के कारण कामुक पुरुष की कामुकता का भी सामना उसे करना पड़ता है। उपन्यास की स्त्री पात्र रेणुका शैला को अपनी जीवन गाथा सुनाते हुए कहती है कि ''जब हमारी शादी हुई थी। तब हम बहुत छोटे थे-10 या 11 साल की उम्र थी सिर्फ। उस समय हमारे पति होंगे 30 साल के।''[14] रेणुका का बेटा पैदा होने से पूर्व ही उसके पति की मृत्यु हो जाती है। उसके पश्चात उसका जीवन दुखदायी बन जाता है उसके अपने ही जेठ, ससुर तथा जीजा उसे वासना का शिकार बनाने के प्रयास भी किए जाते हैं। ''मेरा जेठ मेरे उपर बुरी नजर रखने लगा। वह मेरा सोना मुश्किल कर्ता। लैट्रिन, बाथरूम जाना मुश्किल करता। जहाँ मैं जाती मेरे पीछे-पीछे आता रहता।''[15] अपने शील की रक्षा करने के लिए वह दिल्ली में नौकरी करने लगती है वहां भी दफ्तर का बाबू उसे कामुकता से ही देखता है। नौकरी छोड़कर दलित समाज सेविका निशा की सहायता से पति की जायदाद में हिस्सा लेकर नारी चेतना का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

विधवा नारी की स्थिति का चित्रण डोगरी साहित्यकार पद्मा सचदेव के उपन्यास श्अब न बनेगी देहरीश में बहुत ही सुंदरता से प्रस्तुत किया गया है। विधवा जीवन का उदाहरण देते हुए पद्मा सचदेव का कहना है कि 'रेवती पति की मृत्यु के बाद सुरक्षित नहीं रह पाती, उसका भतीजा देवराज उसका शीलभंग करने का प्रयत्न करता है।' अत: विधवा नारी के जीवन में बहुत कष्ट आते हैं। वह न घर पर सुरक्षित रह पाती है न ही बाहर। जब तक स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हो जाती तब तक उसकी समस्याओं का समाधान होना असंभव है। आलोच्य उपन्यास में कई नारी पात्रों के माध्यम से उनकी समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए नारी का उन समस्याओं के प्रति विद्रोह भाव दिखाना नारी चेतना का प्रतीक है। जहां अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे नारी पात्र शोषण को झेलने के बाद उसका विद्रोह करते दिखाई देते हैं वहीं पढ़ी-लिखी महिलाएं भी अंतर्जातीय विवाह तथा दत्तक बच्चा लेकर महिला विचारधारा में परिवर्तन को भी व्यक्त करती हैं। शम्मा की बेटी बबली का गुप्ता परिवार में विवाह तय होना अंतरजातीय विवाह का उदाहरण है। अंतरजातीय विवाह से जातिगत भेदभाव की दीवार टूट सकती है। वह निर्णय लेती है कि वह शादी करेगी तो अंतरजातीय ही। आज नारी आत्मनिर्भर है वह पुरुष के समान नौकरी करते हुए अपने जीवन के निर्णय लेने में सक्षम है। शैला की बेटी मोनी दलित समाज सेविका है जो एक स्लम बच्ची को गोद लेकर उसका पालन पोषण करती है तथा अपना बच्चा पैदा नहीं करती। मोनी के शब्दों में ''मैं किसी स्लम बस्ती की गरीब अभावग्रस्त परिवार की लड़की को दत्तक लेकर उसे उच्च शिक्षा दूंगी।''[16] वह ऐसा करके समाज में नारी चेतना को व्यक्त करती है। शैला द्वारा बेटे पुनीत की शादी अनाथ आश्रम की लड़की से करना उच्च विचारधारा का उदाहरण है। इस प्रकार अनेक मुद्दों को उठाते हुए लेखिका समाज में स्त्री समानता की बात करती है फिर चाहे वह स्त्री दलित है या गैर दलित। स्त्री को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हो इसके लिए नारी शिक्षा अतिआवश्यक है। नारी पढ-लिख कर अपने अधिकारों के प्रति सचेत होती है तथा अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विद्रोह करते हुए समाज में नारी चेतना का निर्माण करती है।

आधार ग्रंथ

1. टाकभौरे सुशीला, वह लड़की, नई दिल्लीरू वाणी प्रकाशन, 2017, पृष्ठ संख्या 18
2. वही, पृष्ठ संख्या 24

3. वही, पृष्ठ संख्या 24
4. वही, पृष्ठ संख्या 82
5. वही, पृष्ठ संख्या 23
6. वही, पृष्ठ संख्या 24
7. वही, पृष्ठ संख्या 28
8. वही, पृष्ठ संख्या 85
9. वही, पृष्ठ संख्या 28
10. वही, पृष्ठ संख्या 37
11. वही, पृष्ठ संख्या 48
12. वही, पृष्ठ संख्या 51
13. वही, पृष्ठ संख्या 43
14. वही, पृष्ठ संख्या 101
15. वही, पृष्ठ संख्या 103
16. वही, पृष्ठ संख्या 168

सहायक ग्रंथ

1. रजवार शीला, स्वातन्त्रयोतर हिन्दी कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, दिल्लीः ईस्टर्न बुक लिंक्स, 1989
2. शर्मा कुमुद, स्त्रीघोष, नई दिल्लीः प्रतिभा प्रतिष्ठान, 2002
3. जैन सुधा, आधुनिक नारी दशा और दिशाएं, दिल्लीः सूर्य भारती प्रकाशन, 2004
4. पटेल राजेश, निराला के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, कानपुररू ज्ञान प्रकाशन, 2006
5. नाटाणी प्रकाश नारायण, कन्या भ्रूणहत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, नागपुरः बुक एंक्लेव, 2007
6. पाण्डेय मृणाल, परिधि पर स्त्री, इलाहाबादरू राधाकृष्ण प्रकाशन, 2015
7. shodhganga.inflibnet.ac.in Kshama Sharma Ke Katha Sahitya Me Nari Chetana

वैश्विक महामारी कोरोना के कारण पर्यावरण में आए बदलाव का अध्ययन

विकाश कुमार

शोधछात्र, राजनीति विज्ञान विभाग
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

आज भारत सहित पूरा विश्व एक वैश्विक समस्या से जूझ रहा है। जिसकी पहचान (Covid-19) कोरोना महामारी के रूप में हुई है। कोरोना से अबतक पूरे विश्व में लाखों लोगों की जान जा चुकी हैं। यह महामारी किसी संक्रमित व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आने से फैलती है। इस वैश्विक समस्या से निपटने के लिए एक समाधान के रूप में विश्व के लगभग सभी देशों ने लॉकडाउन को लगाया। यानी आवश्यक कार्य को छोड़कर संपूर्ण ताला बन्दी की। हमारे देश भारत में भी 24 मार्च 2020 से ही सम्पूर्ण लॉकडाउन लगाया गया। इस लॉकडाउन के कारण पुरा देश थम सा गया। देश की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में भी बड़ा बदलाव देखने को मिला। कोरोना महामारी ने जहाँ एक ओर मानव को बहुत सी परेशानिया दी है तो वही दूसरी ओर प्रकृति को स्वच्छ व स्वस्थ किया। इसके प्रमाण भी हमें देखने को मिलने लगे। हमारी जीवन दायनी नदिया स्वच्छ हो गई व हवा में प्रदूषण की कमी दर्ज की गई। इन परिवर्तनों से यह बात सामने आती हैं कि प्रकृति ने मानव को आईना दिखाने का कार्य किया है, की हम पर्यावरण को कैसे स्वच्छ व स्वस्थ रख सकते हैं।

विशिष्ट शब्द–कोरोना महामारी, पर्यावरण, मानव-जाति, प्रदूषण।

प्रस्तावना

आज भारत सहित पुरा विश्व एक ऐसी समस्या से जूझ रहा है जिसकी पहचान बवअपक-19 कोरोना महामारी के रूप में हुई हैं। (Covid-19) कोरोना महामारी को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 11 मार्च 2020 को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया। WHO, 11.03.2020) कोरोना वायरस से संक्रमित पहला मरीज चीन के शहर वुहान से मिला। जिस वुहान शहर से इस वायरस से संक्रमित मरीज निकला वहा पर एक प्रयोगशाला भी है जिसमें जीव-जंतुओं के ऊपर कई तरह के वायरसों का प्रयोग होता था। शायद यही वजह रही जिसके कारण दुनिया भर में सवाल यह उठ खड़ा हुआ कि क्या यह वायरस प्राकृतिक हैं या मानव निर्मित यह अभी जाँच का विषय है। कोरोना महामारी से पूरी दुनिया में 25 मई 2020 तक संक्रमितों की संख्या 54 लाख 36 हजार 911 हो गई हैं एवं 3 लाख 44 हजार 548 लोगों की मृत्यु हो गई है। तो वही इस महामारी से स्वस्थ होने वाले लोगों की संख्या 22 लाख 73 हजार 225 हैं। दिन व दिन यह आकड़ें बढ़ती ही जा रही हैं। 25 मई 2020 तक भारत में भी इस महामारी से संक्रमितों की संख्या 1 लाख 31 हजार 868 हो गई है। वही 3 हजार 867 लोगों की मृत्यु हो गई व 54 हजार 441 लोग इस महामारी से स्वस्थ हुए हैं। (दैनिक जागरण, 01.05.2020) इस महामारी के लक्षणों की बात करें तो इसके दो प्रकार के लक्षणों की पुष्टि हुई है। (1) इसमें संक्रमित व्यक्ति में सुखी-खासी, तेज-बुखार, सीने में दर्द व सर्दी-जुकाम के लक्षण दिखलाई पड़ते है। (2) दूसरे लक्षण की अगर बात की जाए तो इसमें कोई लक्षण ही दिखाई नहीं दे रहे हैं। यह तो और गम्भीर स्थिति को दर्शाता है। यह महामारी किसी कोरोना संक्रमित व्यक्ति के स्पर्श से या उस संक्रमित व्यक्ति के खाँसने, छीकने से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति में फैलती है। (आजतक

न्यूज, 5.04.2020) इस तरह की समस्या पूर्व में भी कई बार मानव जीवन को प्रभावित करती आई हैं। ऐसी समस्याओं का मानव सभ्यता के उत्थान और पतन में भी अहम भूमिका रही हैं। कुछ साल पहले भी शर्स और मर्श का प्रकोप मानव जीवन पर देखा गया है। आज से करीब सौ साल पहले स्पेनिश फ्लू नामक महामारी का इतिहास भी किताबों में दर्ज है। इससे यह तो साफ हो जाता है कि यह कोई पहला अवसर नहीं है जब किसी अदृश्य शक्ति से मानव जाति प्रभावित हुई हैं। (सचिन पायलट, दैनिक जागरण-22-04-2020)। इस खतरनाक बीमारी से इलाज के लिये अभी तक कोई निश्चित दवा या टिका उपलब्ध नहीं हो पाया है। लेकिन इस महामारी पर दवा की खोज विश्व के बहुत से देशों द्वारा कि जा रही हैं। इसके उपचार की खोज में कुछ समय लग सकता है। (गिरीश्वर मिश्र, दैनिक जागरण, 24.04.2020) तब-तक इस विकट समस्या से निपटने के लिए एक समाधान के रूप में विश्व के लगभग सभी देशों ने लॉकडाउन लगाया। यानी आवश्यक कार्य को छोड़कर संपूर्ण ताला बन्दी की। इसमें सभी प्रकार के सामाजिक व आर्थिक गतिविधियां प्रतिबंधित कर दि गई। जिससे कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में नहीं आए यानी सामाजिक दूरी को बनाए रखना हैं। कोरोना से रोक थाम में सामाजिक दूरी सबसे ज्यादा कारगर साबित हो रहा है। जिस कारण भारत में भी 24 मार्च 2020 से ही सम्पूर्ण लोकडॉन लगाया गया। इस लॉकडाउन के कारण पुरा देश थम सा गया है। मानव जीवन में आए इस प्रकार के बदलाव के कारण पर्यावरण में भी बदलाव देखने को मिला।

पर्यावरण में आए बदलाव

कोरोना के संक्रमण चेन को रोकने के लिए लगाये गए इस लोकडॉन ने लोगों को सीमित संसाधनों में ही जीने को मजबूर कर दिया जिस कारण पर्यावरण में अभूतपूर्व बदलाव देखा गया। भारत की राजधानी दिल्ली में लोकडॉन से पहले 19 फरवरी 2020 को प्रदूषण का स्तर 404 अंक तक आ गया था जो मानव जीवन के लिए खतरनाक माना जाता है। लेकिन जब लोकडॉन लगा और जैसे-जैसे तारीखें आगे बढ़ती गई उसके बाद प्रदूषण में कमी देखी गई 5 अप्रैल को यह मात्र 133 पर आ गया। (अंनत प्रकाश, BBC News, 10.04.2020) बिहार की राजधानी पटना की हवा में घुला प्रदूषण 80 फीसदी तक कम हो गया है। ध्वनि प्रदूषण में भी गिरावट दर्ज की गई है। (निरज कुमार, दैनिक जागरण, 22.04.2020) कियोंकि वाहन भी सीमित मात्रा में ही चल रहे हैं। ऐसे में प्रकृति की खूबसूरती बढ़ गई हैं। लॉकडाउन से कुछ दिनों पहले तक जो आसमान प्रदूषण के कारण साफ-साफ दिखाई नहीं दिया करता था। वह आज रातों में खुलकर तारों को टिमटिमाते हुए दिखलाई दे रहा हैं। बिहार के सीतामढ़ी से सैकड़ों किलोमीटर दूर हिमालय पर्वत को नंगे आँखों से देखा जा रहा है। (दैनिक जागरण, 2020 मई 6) तो वही पंजाब के जलन्धर से धौलाधार पर्वतमाला की चोटिया दिखाई दे रही है। (अंनत प्रकाश, BBC news, 2020 अप्रैल 10) हम अपनी जीवन दायनी गंगा, जमुना, कावेरी, नर्मदा आदि जैसी नदियों की सफाई हेतु प्रयत्न पर प्रयत्न कर-कर के थक गए पर उसको साफ नही कर पाएं। लेकिन वही नदी आज इस महामारी के कारण साफ नजर आने लगी हैं। जिन शहरों में प्रदूषण बहुत ज्यादा रहता था, जिस कारण लोगों को सांस् लेने में भी दिक्कत होती थी, वहाँ की हवा आज गुणवत्तापूर्ण हो गई हैं। मानव जीवन के लिए भोजन, पानी और हवा इन सभी प्रकृतिक चीजों की आवश्यकता होती है। पर सायद हम इस बात से बेफिक्र हैं कि इसका तो पर्याप्त भंडार है यह तो कभी समाप्त ही नहीं होगा। पर शायद हम यह भूल गए हैं की प्रकृति हमसे नहीं है वरन हम प्रकृति से है। हम लोग अपने भौतिक सुख सुविधाओं में इतने अंधे होते जा रहे हैं कि हम अपने लिए ही खुद से अपनी कब्र खोदने में लग गए हैं। आज हमें इन सभी बातों पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। प्रकृति और मानव का सम्बंध बहुत ही पौराणिक हैं यानी कई युग-युगान्तर से हैं। प्रकृति और मानव एक दूसरे के पूरक दिखलाई पड़ते हैं। प्रकृति ही पृथ्वी की जननी है। और हम प्रकृति को तरिस्कृत कर आगे नहीं बढ़ सकते। पिछले कई दशकों में मानव जाति ने अपनी सुविधानुसार प्रकृति का बहुत दोहन किया है। एक आकड़ें के अनुसार दुनिया में लाखों पेड़ रोज काटे जाते हैं, हजारों विभिन्न वन्यजीवों को मारा जाता हैं, अनेकों नदियों की धारा अपने सुविधा अनुसार मोर दी गयी है। प्रकृति का संतुलन इन्हीं सब चीजों पर टिका हुआ है। (डॉ. अलका गुप्ता, दैनिक जागरण-22.04.2020)।

पर्यावरण में आए बदलाव के कारण

भारत में Covid-19 कोरोना से लड़ने के लिए 22 मार्च को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा जनता कर्फ्यू का ऐलान किया गया जिसे भारत वासियों ने बहुत ही शिद्दत से पूरा किया पर अभी तक भारत के लोग इस बात से अंजान थे कि यह एक दिवसीय कर्फ्यू आगे और कुछ दिनों के लिए बढ़ जायेगी। लेकिन उसी के एक दिन बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा पुरे देश में 21 दिनों

के सम्पूर्ण लॉकडाउन का ऐलान किया जिसे 24 मार्च 2020 से लागू किया गया। (दैनिक जागरण, 24.03.2020) और इसे कई चरणों में विस्तार भी किया गया। इस लॉकडाउन में अनेक प्रकार की पाबंदियां लगाई गई जो इस प्रकार है -

- किसी भी व्यक्ति को अपने घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं थी। लेकिन कोइ व्यक्ति जीवन से जुड़ी जरूरी कार्य हेतू अपने घर से बाहर निकल सकता था।
- सभी तरह के दुकानों, शॉपिंग मॉल, कल-कारखाने, कार्यालय आदि को भी बंद करवा दिया गया।
- सभी प्रकार के यातायात के साधनों जैसे-रेलवे, हवाई यात्रा, सड़कों पर चलने वाले वाहनों को प्रतिबंधित कर दिया गया। जीवन से जुड़ी जरूरी साधनों को छोड़कर।
- सभी प्रकार के सामाजिक आयोजन जैसे-शादी विवाह, पार्टी, सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रम, खेल कूद प्रतियोगिता आदि पर भी रोक लगा दी गई।
- सभी प्रकार के कल-कारखाने, छोटे-बड़े उद्योगों को भी बंद करने का आदेश जारी कर दिया गया।

पर्यावरण संरक्षण के लिए दिये गए महत्वपूर्ण टिप्पणी एवं सुझाव

हमारे पौराणिक वेद (अर्थवेद) में एक श्लोक का वर्णन मिलता हैं वह इस प्रकार है-

हे धरती माँ हम जो कुछ भी तुझसे लेंगे, उतना ही तुझको वापस करेंगे।

तेरी जीवन शक्ति, सहन शक्ति पर नहीं कभी भी आघात करेंगे।

क्या हम इस संकल्प को पुरा करतें हैं। यह भी एक विचारनीय प्रश्न है।

(अमित दुबे, दैनिक जागरण, 24.04.2020)

23 अप्रैल 2020 अंतराष्ट्रीय पृथ्वी दिवस के अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने देश वासियों को ट्विटर पर दिये संदेश में यह कहा कि हमें धरती माँ को स्वच्छ, स्वस्थ एवं समृद्ध बनाये रखने के लिए एक संकल्प लेना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि हम सभी को इस अंतराष्ट्रीय पृथ्वी दिवस पर हमारी देखभाल करने एवं हम सभी पर करुणा बरसाने वाली इस धरती माँ का आभार व्यक्त करना चाहिए। (@narendramodi, 23.04.2020)

पर्यावरण गांधी, वृक्ष मित्र के नाम से प्रसिद्ध महान पर्यावरणविद सुंदर लाल बहुगुणा ने चिपको आंदोलन के दौरान जो वाक्य लिखकर समाज को जागरूक करने का काम किया वह इस प्रकार है—

"क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी, पानी और बयार"

"मिट्टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार"

(विश्वास, अमित कुमार. हिंदी समय पत्रिका) इस महामारी में पर्यावरणविदों का मानना है कि आज खुद प्रकृति अपना इलाज कर रही हैं। जब वह खुद अपने आप को स्वच्छ व स्वस्थ कर लेगी तब वह मानव को स्वस्थ रखने में सहायता प्रदान करेंगी। (डॉ0 अनील प्रकाश जोगी, दैनिक जागरण-26.04.2020).

निष्कर्ष

इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि कोरोना महामारी ने हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ हमारे रहन-सहन में भी अनेक बदलाव करने को मजबूर किया है। इसके कारण विश्व के कई देशों में लॉकडाउन को लगाया गया। लोग कई-कई दिनों तक अपने घरों में बंद रहे। सभी एक दूसरे से मिलने जुलने से परहेज कर रहे हैं। छात्र-छात्राएं स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। कामगारों को कार्यालय जाने पर पाबंदी लगाई गई। किसी तरह के कार्यक्रम का आयोजन नही हो सका। जिस कारण प्रकृति में अभूतपूर्व बदलाव देखने को मिला। हमारी जीवन दायनी नदियों का जल स्वच्छ हो गया व हवा में प्रदूषण की मात्रा में भी भारी गिरावट दर्ज की गई। जिस कारण आसमान भी नीला वह सुंदर दिखाई देने लगा। हम सभी यह जानते हैं कि प्रकृति का जो भी नियम होता है वह बेहतर होता है। इस बेहतरी को हमें जल्द से जल्द अपनाना चाहिए। 'जान है तो जहांन हैं।' यह कहावत चरितार्थ होते हुए नजर आ रही हैं। लोग अब अपने जीवन जीने के तौर तरीके बदल रहे हैं। इन सभी बातों से प्रकृति मानव को

आईना दिखाने का कार्य कर रही हैं की हम अब भी नहीं सम्भले तो वह दिन दूर नहीं जब प्रकृति अपना विनाशकारी रूप अख्तियार कर ले। जिससे मानव जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पर जाए। इस महामारी ने हमें अनेको समस्या देने के साथ ही पर्यावरण को संरक्षण दे कर पूरी मानव जाति को यह संदेश देने का कार्य किया हैं की हम अपने जीवन जीने की तरीकों में परिवर्तन करें ताकी हमें जीवन देने वाली यह प्रकृति स्वच्छ और स्वस्थ रह सकें।

संदर्भ सूची

(1) विश्व स्वास्थ्य संगठन का ट्विटर अकाउंट, (2020, मार्च 11). "@who"
(2) कोरोना अपडेट, (2020, मई 1). दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-01
(3) कोरोना अपडेट्स, (2020, अप्रैल 5). आज तक न्यूज
(4) पायलट, सचिन. (2020, अप्रैल 22). सबक सिखाने वाला संकट. दैनिक जागरण. पृष्ट संख्या-06
(5) मिश्र, गिरीश्वर. (2020, अप्रैल 24). जीवन को नए ढंग से जीने का दौर. दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-06
(6) प्रमुख खबर, (2020, मार्च 24). दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-01
(7) प्रकाश, अंनत. (2020, अप्रैल 10). B.B.C News
(8) कोरोना खबरें, (2020, मई 6). दैनिक जागरण
(9) प्रकाश, अंनत, (2020, अप्रैल 10). B.B.C News
(10) गुप्ता, डॉ0अलका. (2020, अप्रैल 22). संपादकीय. दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-06
(11) कुमार, नीरज, (2020 अप्रैल 22). "लॉकडॉन पी गया पटना की हवा में घुला 80 फीसदी जहर", दैनिक जागरण. पृष्ट संख्या-01
(12) दूबे, अमित. (2020, अप्रैल 24). प्रकृति की नैसर्गिकता का एहसास. दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-06
(13) श्री नरेन्द्र मोदी जी का twitterA ccount. (/narendramodi)
(14) विश्वास, अमित कुमार, (2020, मई 30).ISSN हिंदी शोध पत्रिका, / हिंदी समय।
(15) जोगी, डॉ. अनिल प्रकाश. (2020, अप्रैल 26). विकास की लक्ष्मण रेखा. दैनिक जागरण, पृष्ट संख्या-08

समाज में सकारात्मक ऊर्जा के संचार में मीडिया की भूमिका

डॉ० प्रमोद कुमार

सहायक आचार्य, दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

शोध सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतके अधिसंख्य मीडियाकर्मियों में यह भाव निरंतर दृढ़ होता गया कि ''सवाल खडेघ करना उनकाकाम है और जवाब देना सरकार की जिम्मदारी''। चूंकि यही बात देशभर के मीडिया संस्थानों में अध्ययनरत मीडिया विद्यार्थियों को भी सिखायी जाती है, इसलिए मीडिया में आ रही भावी पीढ़ी भी इसी दृष्टिकोण के साथ पत्रकारिता प्रारंभ करती है। विशेषज्ञों का मानना है कि ''सवाल खड़े कर भाग खड़े होने'' की इस प्रवृत्ति ने मीडिया को उसके मूल उद्देश्य से भटका दिया है। इसी कारण मीडिया में आज समाज के नकारात्मक पक्ष की अधिक चर्चा होती है और समाज में यदि कहीं कुछ रचनात्मक कार्य हो रहा है तो उसे समुचित स्थान नहीं मिलता। इसीलिए अधिकतर समाचार पत्रों के पन्ने पलटते हुए अथवा न्यूज चौनलों पर समाचार देखते हुए पाठकों दर्शकों के मन में अक्सर नकारात्मक भाव अधिक पैदा होता है। अध्ययन से पता चलता है कि 'दैनिक जागरण', 'दैनिक भास्कर' और 'अमर उजाला' जैसे जिन समाचार पत्रों ने थोड़े भी सकारात्मक समाचार प्रकाशित करने प्रारंभ किए वे गत एक दशक में शिखर पर पहुँच गए हैं। सकारात्मक समाचारों से अनेक पाठकों का भी मानस परिवर्तन हुआ और उन्होंने समाज परिवर्तन की किसी न किसी रचनात्मक गतिविधि में भाग लेना प्रारंभ कर दिया। इसका अभिप्राय है कि पाठक चाहते हैं कि मीडिया सिर्फ समस्या ही नहीं, बल्कि समाधान की भी बात करे। तभी मीडिया समाज जागरण के अपने मूल उद्देश्य को पूरा करने में सफल हो पाएगा। चूँकि गत दो दशक से मीडिया संस्थान भी कॉर्पोरेट स्टाइल में काम करने लगे हैं, इसलिए समाज के रचनात्मक पक्ष को अपनी 'कॉर्पोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी' मानकर ही वे उजागर करना प्रारंभ कर दें तो बड़ा बदलाव हो सकता है। इस बदलाव के लिए मीडियाकर्मियों के बीच से भी आवाज उठनी चाहिए और मीडिया संस्थानों में पढ़ रहे भावी पत्रकारों में यह भाव विश्वविद्यालय स्तर से ही पैदा किया जाना चाहिए।

की वर्ड्स–समाज का रचनात्मक पक्ष, मीडिया में नकारात्मकता, मीडिया प्रशिक्षण संस्थान, भावी पत्रकार, समाधानपरक पत्रकारिता, मीडियाकर्मी, कॉर्पोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी, सकारात्मक ऊर्जा का संचार

प्रस्तावना

एक से चार मई 2019 के बीच शोधकर्ता को 'डायलागइंडिया एकेडेमिया कॉन्क्लेव-2019' में भाग लेने के लिए दुबई और शारजाह जाने का अवसर प्राप्त हुआ। मीडिया का विद्यार्थी होने के नाते वहां के दो प्रमुख समाचार पत्रों 'खलीज टाइम्स' और 'गल्फ न्यूज' में समाचारों की कवरेज का अध्ययन करने का पहले से निश्चय किया था। इसलिए आयोजकों की सहायता से इन दोनों समाचार पत्रों के अप्रैल माह के सभी अंकों की फाइलें दुबई पहुंचते ही उपलब्ध हो गयीं। उस अध्ययन में जिस एकतथ्य ने शोधकर्ता को सबसे अधिक चकित किया वह था दोनों में से किसी भी समाचार पत्र के मुखपृष्ठ परपूरे महीने में एक भी नकारात्मक समाचार का प्रकाशन न होना। मुखपृष्ठ पर वे ही समाचार प्रकाशित हुए जो पाठकों को सकारात्मक सोचने के लिए प्रेरित करें। उसकी जब

भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों से तुलना की गयी तो तस्वीर एकदम विपरीत नजर आई। ऐसी ही एक घटना का जिक्र पूर्व राष्ट्रपति स्व. डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम किया करते थे। एक बार जब वे तेल अवीव (इजराइल) गए तो जिस होटल में वे ठहरे हुए थे उसके बाहर भीषण विस्फोट हुआ। हमास के उस हमले और विस्फोट में काफी लोग मारे गए थे। परन्तु अगले दिन डॉ. कलाम को उस विस्फोट व हमले की खबर किसी भी समाचार पत्र के मुखपृष्ठ पर नजर नहीं आई। जिस खबर को सभी पत्रों ने प्रमुखता दी वह एक ऐसे यहूदी नागरिक के बारे में थी, जिसने पांच साल में रेगिस्तान के एक टुकडे को हराभरा कर दिया था। (कलाम, 2006)। भारतीय मीडिया में ऐसा क्यों दिखाई नहीं देता? भारत के टेलीविजन, रेडियो अथवा समाचार पत्रों में नकारात्मक समाचार ही 'लीड' क्यों बनते हैं? भारतीय समाचार पत्रों में सकारात्मक खबरों को प्रमुखता क्यों नहीं मिलती? क्या पाठक ऐसे समाचारों को पसंद नहीं करते? ऐसे बहुत से सवाल हैं जिनका जबाव ढूँढने की आवश्यकता है।

मीडियाकर्मियों की मानसिकता

इस तथ्य के अधिक विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है कि समाचार मानव मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालते हैं। 'मैजिक बुलेट थ्योरी' अथवा 'हाइपोडरमिक नीडल मॉडल' (राजगढ़िया, 2008) सहित अनेक मीडिया संचार अध्ययनों में यह बात प्रमाणित हो चुकी है। यदि समाचार नकारात्मक है तो मन में नकारात्मक भाव उत्पन्न होता है और यदि सकारात्मक है तो सकारात्मक भाव पैदा होता है। यह परीक्षण समाचार पत्रों के पाठक, वेबसाइट के 'यूजर्स', टेलीविजन के दर्शक और रेडियो के श्रोता किसी भी दिन स्वयं कर सकते हैं। नकारात्मक समाचार पढ़कर, देखकर अथवा सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि समाज की स्थिति बहुत खराब हो गयी है और अबयह रहने लायक नहीं बचा है। परन्तु इसके विपरीत यदि पाठक अथवा दर्शक सकारात्मक समाचार पढ़ते, देखते और सुनते हैं तो मन में भाव आएगा कि नहीं, समाज में अभी भी अच्छा काम करने वाले लोग हैं और हमें भी ऐसी किसी न किसी गतिविधि में सहयोग करना चाहिए। बहुत से लोग समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सकारात्मक समाचार पढ़कर स्वयं भी समाज में कोई सकारात्मक गतिविधि प्रारंभ कर देते हैं, जबकि कुछ ऐसी ही किसी न किसी गतिविधि में हाथ बंटाना प्रारंभ कर देते हैं। अच्छे भाव से अच्छा काम करने की प्रेरणा मिलती है और नकारात्मक भाव से मन में घृणा और नफरत का भाव पनपता है। परन्तु जब हम वर्तमान जनसंचार माध्यमों यानि समाचार पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन समाचार चौनलों आदि पर नजर डालते हैं तो दिखायी देता है कि मीडिया को समाज में घट रही नकारात्मक घटनाएँ ही अधिक दिखायी देती हैं और उनकी नजर में समाज में कुछ भी अच्छा काम नहीं हो रहा है। दरअसल, इसके लिए मीडिया का प्रशिक्षण दोषी है। प्रशिक्षण किसी मीडिया प्रशिक्षण संस्थान से मिला हो अथवा समाचार पत्र-पत्रिका या फिर टेलीविजन के कार्यालय में वरिष्ठों के साथ काम करते हुए, उसमें एक बात प्रमुखता से बतायी जाती है कि 'मीडिया का काम सवाल खडे करना है और जवाब देना सरकार का काम है'। वास्तव में गलती यहीं पर होती है। मीडिया का काम सवाल खड़े करना है, परन्तु उसे समाधान की भी बात करने से कौन रोकता है? यदि मीडियाकर्मी समस्या को उजागर करने के साथ समाधान की भी चर्चा कर दें तो उससे लोगों को उस समाधान की दिशा में भी सोचने की प्रेरणा मिलेगी। यदि सरकारी एजेंसियों से कोई चूक हो रही है तो उन्हें भी समाधान के विकल्प पर सोचने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। अर्थात लोकतंत्र में सरकार के कामकाज पर सवाल खड़े करना गलत नहीं है, परन्तु सवाल के साथ विकल्प की भी चर्चा होनी चाहिए।

मीडिया का उद्देश्य

मीडिया का मूल उद्देश्य समाज जागरण है। इसी भाव से स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान लोगों से प्रभावी संवाद कायम करने के लिए मीडिया माध्यमों का भरपूर उपयोग किया। गांधीजी ने 1903 में जब 'इंडियन ओपिनियन'प्रारंभ किया तभी से स्वस्थ पत्रकारिता पर उनका जोर रहा। 'इंडियन ओपिनियन' में 1903 में वे लिखते हैं, ''इंडियन ओपिनियन प्रारंभ करने के बाद प्रथम माह में ही मैंने यह समझ लिया था कि पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य सेवा करना है'' (देसाई, 2018)। पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय मीडिया में 'भारत की बात' करने के पक्षधर थेऔर वे इस बात के आग्रही थे कि संवाददाता समाज को रचनात्मक दिशा प्रदान करे। 'हिन्दुस्थान समाचार' बहुभाषी समाचार एजेंसी की पंद्रहवीं वर्षगाँठ पर 1963 में प्रकाशित एक स्मारिका को दिए गए सन्देश में वे लिखते हैं, ''जनरुचि और जन जिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल दृष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है'' (शर्मा, 2011)। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी मीडिया का उद्देश्य ''समाज का पथ प्रदर्शन'' बताया (जाटव, 1964)।

मीडिया के माध्यम से जिस सेवा की बात गांधीजी करते थे, उसकी अपेक्षा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी थी। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मीडिया का स्वरूप तेजी से बदला और यह पूरी तरह एक उद्योग बन गया, जहां लाभ और हानि के हिसाब से समाचारों की अहमियत और आकार निर्धारित होता है। जैसे-जैसे मीडिया में कॉर्पोरेट मानसिकता हावी होती गयी, वैसे-वैसे मालिक ही संपादक की भूमिका में आते गये और हर खबर का महत्व उसकी 'कमर्शियल वैल्यू' के आधार पर निर्धारित होने लगा है। इसलिए सारा ध्यान मुनाफे पर केन्द्रित हो गया। मीडिया में संपादक की भूमिका भी नगण्य हो गयी है। चूंकि नकारात्मकता से नकारात्मकता पैदा होती है इसलिए आज बड़ी संख्या में विचारवान लोगों ने समाचार पत्र पढ़ने बंद कर दिये हैं। परन्तु इसके विपरीत तमाम बदलावों के बावजूद जो समाचार पत्र आज समाज के रचनात्मक पक्ष को थोड़ा भी स्थान देते हैं उन्हें पाठकों ने पसंद किया और उनकी प्रसार संख्या में निरंतर उछाल देखा जा रहा है। ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन के विगत कुछ वर्षो के आंकड़े इसकी पुष्टि करते हैं। 'पंजाब केसरी', 'नवभारत टाइम्स' और 'हिंदुस्तान' जैसे समाचार पत्र, जो कभी शीर्ष पर हुआ करते थे, वे आज बहुत पीछे चले गये हैं और 'दैनिक भास्कर, 'दैनिक जागरण' और 'अमर उजाला' जैसे पत्र शिखर पर पहुँच गए हैं।

शोध प्रविधि

मीडिया में समाज के रचनात्मकता पक्ष की कवरेज का अध्ययन करने के लिए शोधकर्ता नई दिल्ली से प्रकाशित चार प्रमुख समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों का फरवरी 2019 से अध्ययन कर रहा है। अध्ययन के लिए 'दैनिक भास्कर', 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला' और 'द इंडियन एक्सप्रेस' का चयन किया गया है, क्योंकि इन्हीं समाचार पत्रों में समाज के रचनात्मक पक्ष को नियमित स्थान मिलता है। अन्य पत्रों में ऐसी खबरों को छिटपुट स्थान ही मिलता है। इस संबंध में मीडिया दिग्गजों की राय भी ली गयी। इसके अलावा इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, डॉ भीमराव अम्बेडकर, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जैसे विचारकों के मीडिया के सम्बन्ध में विचारों का भी अध्ययन किया गया।

दैनिक जागरण

समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने के लिए वैसे तो 'राजस्थान पत्रिका' ने पांच दशक पहले प्रयास प्रारंभ कर दिए थे, परन्तु गत एक दशक से इस संबंध में बढ़त हासिल की है 'दैनिक जागरण' ने। इंडियन रीडरशिप सर्वे-2019 के अनुसार यह देश का सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला समाचार पत्र है। ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन के जुलाई-दिसम्बर 2019 के आंकड़ों के अनुसार यह देश का दूसरा सर्वाधिक प्रसारित समाचार पत्र है। जागरण ने समाज के रचनात्मक पक्ष को महत्व देते हुए वर्ष 2000-01 में 'सात सरोकार' निर्धारित किये और उनसे संबंधित समाचारों को पत्र में स्थान देना प्रारंभ किया। जनवरी 2006 में इसे संगठित रूप प्रदान किया गया और वर्ष 2008 से वर्ष की शुरूआत 'सात सरोकारों' से जुड़ी खबरों से की जाने लगी। वर्ष 2010 से शारदीय नवरात्र में 'या देवि सर्वभूतेषु' अभियान के तहत महिलाओं से जुड़े समाचारों व लेखों को स्थान दिया जाने लगा। इसी प्रकार शिक्षक दिवस पर शिक्षा और 26 जनवरी पर 'तंत्र के गण' नाम से उन लोगों के बारे में लेख व समाचार प्रसारित किये जाते हैं जो संविधान में वर्णित मूल अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। स्वतंत्रता दिवस पर 8 से 15 अगस्त तक 'स्वतंत्रता के सारथी' अभियान के तहत सामग्री प्रकाशित की जाती है। गत कुछ वर्षों से जागरण ने प्रतिदिन मुखपृष्ठ पर प्रथम समाचार 'सरोकार' स्तंभ के तहत रचनात्मक समाचार हेतु सुरक्षित किया। हालांकि मुखपृष्ठ पर यह समाचार संक्षिप्त रहता है और विस्तार से खबर अंदर के पृष्ठ पर रहती है, परन्तु पाठक की नजर सबसे पहले रचनात्मक समाचार पर ही पडे‍ इस दृष्टि से जागरण का यह प्रयास प्रशंसनीय कहा जा सकता है। रविवार के दिन ऐसे समाचारों हेतु 'रविवार विशेष' नाम से एक पूरा पृष्ठ दिया जाता है। इस पूरे प्रयास पर टिप्पणी करते हुए 'दैनिक जागरण' के कार्यकारी संपादक विष्णु त्रिपाठी बताते हैं: ''देश में जहां भी अच्छा काम हो रहा है हम उसे स्थान देने का प्रयास करते हैं ताकि समाज के अन्य लोग भी उससे प्रेरणा ग्रहण करें। इस प्रयास को पाठकों ने बेहद पसंद किया है।'' (त्रिपाठी, 2020)। कोविड-19 के दौर में जब मीडिया का एक बड़ा वर्ग लोगों को डराने का काम अधिक कर रहा था उस समय दैनिक जागरण न्यू मीडिया ऐसे समाचारों को लेकर आया जो सकारात्मक संदेश देने के साथ-साथ कुछ बेहतर करने की प्रेरणा देंते हैं। 'पॉजिटिव इंडिया' सीरीज के माध्यम से शिक्षा, इनोवेशन, रिसर्च और उद्यमिता के क्षेत्र में हो रहे अच्छे कार्यो को शेयर किया जाता है। यह 'सीरीज' ट्विटर पर जागरण न्यू मीडिया का पहला 'इनीशिएटिव' है जो सोशल मीडिया के अन्य प्लेटफॉर्म के साथ-साथ 'जागरण.कॉम' व 'जागरण जोश' पर भी साझा किया जाता है। इसके तहत हर सप्ताह दो खबरें दीजाती हैं। जागरण न्यू मीडिया के

सीईओ भरत गुप्ता बताते हैं कि 'पॉजिटिव इंडिया' ऐसी सीरीज है जिससे कुछ नया करने की प्रेरणा मिल सके, पाठकों के दिलोदिमाग पर सकारात्मक असर डाल सके और नकारात्मक विचारों से लड़ने के लिए प्रेरित कर सके। इस सीरीज के तहत हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रेरणादायक समाचार 'शेयर' किये जाते है (जागरण न्यूज नेटवर्क, 2020)।

अमर उजाला

'दैनिक जागरण' के बाद रचनात्मक समाचारों को प्रतिदिन स्थान देने में 'अमर उजाला' का स्थान है। ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन के जुलाई-दिसम्बर 2019 के आंकड़ों के अनुसार 'अमर उजाला' देश का पांचवा सर्वाधिक प्रसारित समाचार पत्र है (एबीसी, जुलाई-दिसम्बर 2019)। वर्ष 2016 से यह संपादकीय पृष्ठ पर प्रतिदिन 'मंजिलें और भी हैं' स्तंभ के तहत रचनात्मक कार्य में संलग्न किसी ने किसी व्यक्ति का अनुभव उसी की भाषा में प्रकाशित करता है। प्रेरक जानकारी प्रतिदिन इस स्तंभ में प्राप्त होती है। इस स्तंभ के प्रति पाठकों के रूझान का जिक्र करते हुए नई दिल्ली में 'अमर उजाला' के स्थानीय संपादक सुदीप ठाकुर बताते हैं, ''इस स्तंभ में प्रकाशित सामग्री के संबंध में हमारे पास प्रतिदिन पाठकों के फोन और मेल हैं। वे उन लोगों के बारे में जानकारी मांगते हैं। बहुत से पाठकों ने तो अपने स्तर पर भी इसी प्रकार के कुछ प्रयास करने प्रांरभ किये हैं। इस प्रकार के लेख प्रकाशित करने के पीछे हमारी सोच भी वास्तव में यही है (ठाकुर, 2020)।

दैनिक भास्कर

रचनात्मक गतिविधियों से जुडेघ् समाचार प्रकाशित करने में अग्रणी 'दैनिक भास्कर' देश का सर्वाधिक प्रसारित समाचार पत्र है (एबीसी, जुलाई-दिसम्बर 2019)। इसने रचनात्मक गतिविधियों के समाचारों को नया आयाम प्रदान किया है। करीब छह साल पहले इस पत्र ने ''आज नो नगेटिव अखबार'' नाम से एक साप्ताहिक प्रयोग शुरू किया था। तभी से प्रत्येक सोमवार को मुखपृष्ठ पर रचनात्मक समाचारों को ही प्रमुखता से छापा जाता है और यदि कोई नकारात्मक समाचार छापना भी पडता है तो उसे 'नगेटिव न्यूज' बताकर ही छापा जाता है। सामान्यत: देशभर में समाचार वितरण का काम पुरुष हॉकरों द्वारा किया जाता है, परन्तु 11 फरवरी, 2019 के अंक में भास्कर के प्रथम पृष्ठ पर गुजरात, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र से कुछ महिला हॉकरों के अनुभव प्रकाशित किये गये (भास्कर न्यूज, फरवरी 11, 2019)। इसी प्रकार 4 फरवरी, 2019 के अंक में 'मंडे पॉजिटिव स्टोरी' के तहत आल इंडिया इंटर यूनिवर्सिटी बॉक्सिंग चौम्पियनशिप का समाचार प्रकाशित किया गया, जिसमें 1000 महिला बॉक्सर भाग ले रहीं थीं (भास्कर न्यूज, फरवरी 4, 2019)। एक अध्ययन के दौरन 6 फरवरी, 2017 को 'दैनिक भास्कर' के तत्कालीन नेशनल एडिटर कल्पेश याज्ञनिक ने इंदौर में विस्तार से रचनात्मक समाचार प्रकाशित करने के पीछे की सोच को इस प्रकार स्पष्ट किया था: ''चूँकि आजकल पूरे मीडिया में नकारात्मक समाचारों को प्रमुखता दी जाती है और समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, इसलिए 'दैनिक भास्कर' ने निर्णय लिया कि हम अपने पाठकों में रचनात्मक दृष्टि को सुदृढ़ करेंगे। सोमवार का दिन रचनात्मक समाचारों के लिए इसलिए चुना गया, क्योंकि हम चाहते थे कि पाठकों के सप्ताह की शुरूआत रचनात्मक दृष्टि व सोच के साथ हो। सोमवार के दिन यदि हमें कोई नकारात्मक समाचार मुखपृष्ठ पर छापना भी पड़ता है तो हम उसके साथ स्पष्ट रूप से 'नेगेटिव न्यूज' का 'हैडर' लिखते हैं ताकि पाठकों की भावनाओं के साथ किसी प्रकार का खिलवाड़ न हो'' (याज्ञनिक, 2017ऋ। इस प्रकार के सभी सकारात्मक प्रयासों को भास्कर समूह ने नाम दिया है 'बुलंद भारत की तस्वीर'। इस अभियान के तहत कई प्रकार के रचनात्मक प्रयास प्रारंभ किये गये हैं जिनमें प्रमुख हैं 'जिद करो दुनिया बदलो', 'सफलता और प्रसन्नता', 'सार्वजनिक परिवहन से यात्रा', 'एक पेड़-एक जिंदगी', 'हमारी विरासत, हमारा भविष्य', आदि।

द इंडियन एक्सप्रेस

अंग्रेजी समाचार पत्रों की बात करें तो 'टाइम्स ऑफ इंडिया' व 'हिन्दुस्तान टाइम्स' जैसे पत्र समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने के लिए कोई संगठित प्रयास अथवा नियमित स्तंभ के रूप में कोई प्रयास नहीं करते। सिर्फ 'द इंडियन एक्सप्रेस' सोमवार के दिन एक रचनात्मक समाचार अपने साप्ताहिक स्तंभ 'ट्रैकिंग चेंज एवरी मंडे' के तहत प्रकाशित करता है। हालांकि कभी-कभी इस स्तंभ में जो समाचार प्रकाशित होते हैं वे पूरी तरह रचनात्मक भी नहीं कहे जा सकते। 11 फरवरी, 2019 को बेंगलुरु के एक क्लिनिक के बारे में समाचार प्रकाशित किया गया, जहां डिजिटल तकनीक यानि गेमिंग, सोशल मीडिया, सेल्फी आदि की लत के

शिकार लोगों का इलाज किया जाता है (जोन्सन, फरवरी 11, 2019)। 4 फरवरी को वर्धा के एक गांव का समाचार प्रकाशित किया गया जहां गांव के लोगों की सुविधा के लिए ए.टी.एम. शहर से चलकर गांव आता है (देशपांडे, फरवरी 4, 2019)। हालांकि 'इंडियन एक्सप्रेस' के सहयोगी हिन्दी प्रकाशन 'जनसत्ता' में इस प्रकार के रचनात्मक समाचारों को संगठित रूप से प्रकाशित नहीं किया जाता। हिन्दी में 'नवभारत टाइम्स' तथा 'हिन्दुस्तान' की स्थिति भी कमोबेश ऐसी ही है।

मीडिया विशेषज्ञों की राय

मीडिया विशेषज्ञों तथा पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों के प्रमुखों की राय है कि मीडिया को सिर्फ नकारात्मक चीजें ही नहीं, बल्कि समाज की रचनात्मक तस्वीर को भी उजागर करना चाहिए। कुछ मीडिया संस्थानों द्वारा रचनात्मक समाचारों को स्थान देने पर टिप्पणी करते हुए भारतीय जनसंचार संस्थान नई दिल्ली के पूर्व महानिदेशक के.जी. सुरेश कहते हैंरू ''सरकार व समाज की कमियों को उजागर करना मीडिया का काम है परन्तु समाज में जो कुछ अच्छा हो रहा है उसे मीडिया को बिल्कुल नजरअंदाज नहीं करना चाहिए'' (सुरेश, 2020)। 'हिन्दुस्थान समाचार' बहुभाषी समाचार एजेंसी के पूर्व संपादक डा. रवीन्द्र अग्रवाल का मानना है कि ''समाज जागरण मीडिया की भी जिम्मेदारी है। यदि मीडिया समाज की कमियों पर टिप्पणी करता है तो उसे समाज में हो रहे अच्छे काम को भी स्वर देना चाहिए। यह अच्छी बात है कि कुछ मीडिया संस्थानों ने समाज के रचनात्मक पक्ष को भी स्थान देना प्रारंभ किया है। इस प्रयास को और अधिक मजबूत करना चाहिए ताकि सभी देशवासी एक बेहतर बदलाव के लिए अपने स्तर पर कुछ न कुछ प्रयास अवश्य करें'' (अग्रवाल, 2020)।

मीडिया विशेषज्ञ ही नहीं, बल्कि ओपिनियन लीडर भी चाहते हैं कि मीडिया नकारात्मकता की बजाए रचनात्मकता पर अधिक ध्यान दे। इस सम्बन्ध में परमार्थ निकेतन ऋषिकेश के प्रमुख स्वामी चिदानंद सरस्वती कहते हैंरू''अब मीडिया में भी स्वच्छ और सकारात्मक पत्रकारिता पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। पत्रकार जो समाचार लिखते हैं, पत्र-पत्रिकाएं जो सामग्री प्रकाशित करते हैं, टेलीविजन चौनल जो कुछ दिखाते हैं और वेब पोर्टल्स जो कुछ 'अपलोड' करते हैं वह सीधे पाठकों अथवा श्रोताओं के मन-मस्तिष्क में प्रवेश करता है। मीडिया मस्तिष्क को दूषित भी कर सकता है और शुद्ध भी। समाचार माध्यमों से प्राप्त जो समाचार, लेख अथवा चित्र व्यक्ति को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं वह उन्हीं के बारे में दिनभर सोचता रहता है। यदि वे सकारात्मक हैं तो व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में सकारात्मक भाव ही पैदा होगा और यदि वे नकारात्मक हैं तो दिनभर पर उन पर नकारात्मकता ही हावी रहेगी। इसलिए पत्रकारों के ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। सामान्यतः पत्रकारिता का काम सिर्फ सूचना प्रदान करना रहता है, परन्तु मेरा मानना है कि पत्रकारिता लोगों को प्रेरित करने का काम भी करे। इसलिए मैं पत्रकार मित्रों को अक्सर कहता हूं कि सिर्फ समाचार लिखें ही नहीं, बल्कि समाचार बनें भी'' (सरस्वती, 2018)। भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू ने 2 फरवरी, 2019 को केरल में कोल्लम प्रैस क्लब की स्वर्ण जयंती का उद्घाटन करते हुए कहा कि नकारात्मकता की बजाए मीडिया को विकास पत्रकारिता को बढ़ावा देना चाहिए, ताकि पूरा देश चुनौतियों का मिलकर सामना करे (नायडू, 2019)।

सामाजिक उत्तरदायित्व

गत दो दशकों में मीडिया संस्थान बहुत तेजी से कॉर्पोरेट घरानों में परिवर्तित हुए हैं। इसका कारण मीडिया का तेजी से बदलता चरित्र भी है। मीडिया 'मिशन' से 'प्रोफेशन' बना, परन्तु अब यह 'बिजनेस' बन गया है। जब से मीडिया में विदेशी निवेश की अनुमति मिली है तब से समाचार पत्र, पत्रिका, टेलीविजन न्यूज चौनल अथवा रेडियो लाभ कमाने के माध्यम बन गए हैं। इसलिए यदि मीडिया संस्थान कॉर्पोरेट हाउस की तरह काम कर रहे तो उन्हें समाज के रचनात्मक पक्ष को अपनी 'कॉर्पोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी' मानकर ही प्राथमिकता देनी चाहिए। इस संबंध में 'दैनिक जागरण' एक अच्छा उदहारण है। उसने सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत समाज के रचनात्मक पक्ष को न केवल समाचार पत्र में स्थान देना प्रारंभ किया, बल्कि समाज को रचनात्मक गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रेरित करना भी प्रारंभ किया है। 'दैनिक भास्कर' और 'राजस्थान पत्रिका' ने भी इस दिशा में प्रेरक प्रयास किए हैं। ऐसे प्रयासों को पूरा मीडिया संबल प्रदान करे।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि मीडिया यदि सवाल खडेघ् करने के साथ-साथ समाधान की भी बात करता है तो इससे समाज में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होगा और लोग सिर्फ सवाल खड़े करने की बजाए समाधान की भी बात करने लगेंगे। समाज में आ रहे बदलाव के प्रयासों

को यदि मीडिया प्रमुखकता से स्थान दे तो ऐसे प्रयासों का अनुसरण करते हुए समाज अपने बलबूते ही अनेक समस्याओं का समाधान कर लेगा। स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में सरकारों द्वारा हर काम के लिए सरकारी एजेंसियों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया गया। इस कारण आज हर छोटे से छोटे काम के लिए लोग सरकारी एजेंसियों की प्रतीक्षा में पूरी जिंदगी गुजार देते हैं। इस मानसिकता को बदलने में मीडिया बड़ी भूमिका निभा सकता है। यदि बदलाव के प्रयासों को प्रमुख से प्रस्तुत किया जाए तो तो गंदगी, गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, छुआछूत जैसी समस्याएं लंबे समय तक हमारा मार्ग नहीं रोक सकती। गांधीजी की 150वीं जयंती इस प्रकार के सार्थक बदलाव का एक बड़ा अवसर थी। परन्तु उस दौरान अधिक कुछ नहीं हो सका। दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का अनुसरण करने वाली राजनीतिक पार्टी इस समय सत्ता में है। दीनदयालजी जी समाज में बदलाव के लिए समाज की शक्ति को जगाने पर भरोसा करते थे। हालांकि भारत सरकार ने गत कुछ वर्षों में समाज के सक्रिय सहयोग से अनेक बड़े काम किये हैं, जिनमें स्वच्छता अभियान का प्रमुख रूप से जिक्र किया जा सकता है, परन्तु यदि सरकार को मीडिया का सक्रिय सहयोग मिल जाए तो आने वाले कुछ ही वर्षो में पूरे देश का परिदृष्य बदल सकता है। इसलिए सभी बड़े मीडिया संस्थानों को समाज परिवर्तन में सहयोग करने के लिए कोई न कोई रचनात्मक अभियान शुरू करना चाहिए। और कुछ नहीं, कम से कम कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत ही कुछ प्रयास प्रारंभ कर दें। ऐसी सैंकड़ों रचनात्मक गतिविधियां हैं जिनके लिए पैसे की भी जरूरत नहीं है। उनके संबंध में जागरूकता पैदा की जा सकती है। चूंकि आने वाले समय में न्यू मीडिया यानि वेब मीडिया प्रमुख भूमिका में आने वाला है, इसलिए इन माध्यमों पर सकारात्मक समाचारों की कवरेज को बढ़ावा देने की जरूरत है। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, द्वारा गत वर्ष प्रकाशित लेखक की पुस्तक 'आधुनिक भारत के गुमनाम समाज-शिल्पी' (कुमार, 2019) में समाज में समाज के ही सहयोग से आ रहे बदलाव से जुड़े 40 प्रयोगों का विस्तार से जिक्र किया गया है। ऐसे प्रयोगों की सूची बहुत लंबी है। बहुत से प्रयोग ऐसे हैं जो चल तो रहे हैं बहुत छोटे स्तर पर, परन्तु वे देश में बहुत बड़े बदलाव का माध्यम बन सकते हैं। दिल्ली के एक व्यवसायी श्रवण गोयल गांव से आकर शहरों में नौकरी अथवा व्यवसाय करने वाले लोगों को वापस अपने-अपने गांव के विकास में सहभागी बनने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। उनके प्रयासों से देश के नौ राज्यों में ऐसे सफल प्रकल्प चल रहे हैं। यदि इस प्रकार के प्रयासों को मीडिया का सहारा मिल जाए तो समाज की शक्ति को जगाकर देश में बहुत बडा बदलाव आ सकता है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भी यदि इस प्रकार विशिष्ट प्रयासों को अपनाने के लिए देशवासियों का आह्वान करें तो भी बड़ा बदलाव आ सकता है। बदलाव की इस मानसिकता का प्रशिक्षण भावी पत्रकारों को मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों से ही प्रदान करने की जरूरत है। प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में इस संबंध में आवश्यक बदलाव कर इसे मीडिया प्रशिक्षण का आवश्यक अंग बनाने की जरूरत है। चूँकि आज मीडिया मालिक ही संपादक की भूमिका में हैं, इसलिए मीडिया मालिकों को भी इस सम्बन्ध में जागरुक करने की आवश्यकता है। इसके अलावा देशभर में जितने भी पत्रकार संगठन हैं उन्हें भी पत्रकारिता को यह नई दिशा प्रदान करने में अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। सभी प्रयासों का लक्ष्य समाधानपरक पत्रकारिता को मजबूत करना होना चाहिए।

संदर्भ

- अग्रवाल, डा. रवीन्द्र. (2020ऋ. पूर्व संपादक, हिन्दुस्थान समाचार. नई दिल्ली में साक्षात्कार. 11 फरवरी, 2020.
- ए.बी.सी. (जुलाई-दिसम्बर 2019ऋ. ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन, जुलाई-दिसम्बर 2019 की रिपोर्ट.
- कलाम. डॉ. ए.पी.जे. (2006). Kalam: Why is the Indian Media so Negative\-22 जून, 2020 को सायंकाल 6-15 बजे https://indianjournalismreview-comè2006/11/16/kalam-why-is-the-indian-media-so-negative/से प्राप्त।
- कुमार, डॉ. प्रमोद. (2019). आधुनिक भारत के गुमनाम समाज-शिल्पी. नई दिल्लीः गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति.
- जागरण न्यूज नेटवर्क. (2020, 1 अप्रैल). जागरण न्यू मीडिया लाया 'पॉजिटिव इंडिया' सीरीज, नई दिल्लीः दैनिक जागरण, पृष्ठ 7.
- जाटव, डॉ. डी. आर. (1964). डॉ बी. आर. अम्बेडकरः व्यक्तित्व एवं कृतित्व. जयपुरः समता साहित्य सदन. पृष्ठ 223.
- जोन्सन, टी.ए. (11 फरवरी, 2019). गेमिंग, सोशल मीडिया सेल्फीज... द इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 1.
- ठाकुर, सुदीप. (2020). स्थानीय संपादक, अमर उजाला. 26 फरवरी, 2020 को दूरभाष पर टिप्पणी.
- त्रिपाठी, विष्णु. (2020). कार्यकारी संपादक, अमर उजाला. 5 मार्च, 2020 को दूरभाष पर बातचीत.

- देसाई, जितेन्द्र. (2018). गांधीज वीकलीज. Retrieved from https://www-mkgandhi-org/articles/indianopinionyindiaharijan-htm
- देशपांडे, विवेक. (4 फरवरी, 2019). इन वर्धा विलेज, बैंकिंग मीन्स एटीएम कमिंग होम. द इंडियन एक्सप्रेस. नई दिल्ली, पृष्ठ 1.
- नायडू, एम. वैकैया. (2019). भारत के उपराष्ट्रपति. कोल्लम प्रेस क्लब स्वर्ण जयंती समारोह. आल इंडिया रेडियो.Retrieved from http://www-newsonair-com/Main-News-Details-aspx\id=359110-
- भास्कर न्यूज. (11 फरवरी, 2019). दैनिक भास्कर. नई दिल्ली. पृष्ठ 1.
- भास्कर न्यूज (4 फरवरी, 2019). दैनिक भास्कर. नई दिल्ली. पृष्ठ 1.
- याज्ञनिक, कल्पेश. (2017). संपादक. दैनिक भास्कर. इंदौर न्यूजरूम में 6 फरवरी, 2017 को साक्षात्कार.
- राजगढ़िया, विष्णु. (2008). जनसंचाररू सिद्धांत और अनुप्रयोग. नई दिल्लीरू राधाकृष्ण प्रकाशन.
- सुरेश, के.जी. (2020). पूर्वमहानिदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान. नई दिल्ली में साक्षात्कार, 17 फरवरी, 2020.
- सरस्वती, स्वामी. चिदानन्द. (2018). प्रमुख परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश. साक्षात्कार, 15 नवम्बर, 2018.
- शर्मा, डा. महेश. चन्द्र. (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्लीः दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी.

मिचिंग जनजाति का सांस्कृतिक अवलोकन

डॉ० जशोधरा बोरा

अतिथि अध्यापिका
हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय
असम, भारत

सार-संक्षेप

आधुनिक भारत की रचना में अनेक जाति-जनजातियों का योगदान रहा है। राष्ट्र की सांस्कृतिक रचना में इन जनजातियों का केवल योगदान ही नहीं, अपितु मातृभूमि की रक्षा में इनका सर्वस्व त्याग भी बहुत बड़ा है। ये जनजातियाँ ही हमारी लोकसंस्कृति और लोककलाओं के संरक्षण और विकास में सबसे आगे रही हैं। सच बात तो यह है कि यदि लोक-संस्कृति और लोककलाएँ आज जीवित है, तो उसका मूल श्रेय जन-जातियों को जाता है।

'मिचिंग' असम की एक अन्यतम जनजाति है। असम के सपाट इलाके के नदी किनारे शदिया से लेकर तेजपुर तक इसमिचिंग जनजाति के लोगों का आवास स्थल है। असम की दो नदियों (सुबनसिरी और ब्रह्मपुत्र) के किनारे अधिकांश लोगों की आवासभूमि होने के अलावा भी अन्य अनेक नदियों के किनारे मिचिंग लोग अवस्थित है। मिचिंग समाज की जरूरतें बिलकुल सामान्य व सीमित हैं। इनका इतिहास, समाज, त्यौहार, नृत्य-संगीत अपने आप में परिपूर्ण है। मिचिंग संस्कृति एवं प्रकृति में एक गहरा संबंध है और यह सांस्कृतिक निरालापन ही उनके समूह-जीवन की आधारशिला है।

बीज शब्द : मिचिंग, जनजाति, लोक-संस्कृति, लोक-कला

भूमिका

भारत के उत्तर-पूर्वाञ्चल में अवस्थित असम प्रदेश अनेक जाति-जनजाति, भाषा-भाषी तथा विभिन्न संस्कृति की आवास-भूमि है। यहाँ के सौं-सौं साल पुरानीसंस्कृति से असमिया जाति का जन्म हुआ है। इसलिए असमिया जाति के जीवन प्रवाह में विभिन्न प्रकार के जनगोष्ठीय सांस्कृतिक उपादान को देखा जा सकता है। असमिया जाति की गठन प्रक्रिया में उत्कर्ष साधन करने वाली एक अन्यतम जनगोष्ठी है-मिचिंग जनगोष्ठी।

1.ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐसा कहा जाता है कि तिब्बत-बर्मी गोष्ठी के अंतर्गत मिचिंग लोग उत्तर-पूर्व पहाड़ से सपाट इलाके में रहने के लिए आए थे। असम में चुटियासाम्राज्य के अंत और आहोम साम्राज्य के आरंभ काल में ये लोग सपाट इलाके में रहने लगें। इन लोगों के शारीरिक गठनमांगोलीय कीतरह हैं, न ज्यादा कद न कम। वर्ण प्रायरू गोरा है।

मिचिंग शब्द के अर्थ की ओर ध्यान दे तो-'मि' शब्द से तात्पर्यहै'आदमी' और 'याचिंग' का अर्थ है गोरा अथवा अच्छा, अर्थात 'अच्छा आदमी'। मिचिंग लोग चन्द्र और सूर्य को अपने पितृ-मातृ मानते हैं और अपने को चन्द्र-सूर्य के वंशधर के रूप में परिचय देते हैं।

सन् 1991 की लोकगणना के अनुसार मिचिंग लोगों की कुल जनसंख्या 4, 65, 086 थीं। नृतात्विक के अनुसार मिचिंग लोग मंगोलीय गोष्ठी के है। भाषा तात्विक दृस्टिकोण के अनुसार इन लोगों की भाषा चीनी-तिब्बतीय भाषा परिवार की तिब्बत-बर्मी शाखा

की उत्तर असम उपशाखा के अंतर्गत आती है। वर्तमान ये लोग असम के ब्रह्मपुत्र के उत्तर दिशा के धेमाजि, लखिमपुर, शोणितपुर और दक्षिण दिशा के तिनिसुकीया, डिब्रुगढ़, शिवसागर, जोरहाट और गोलाघाट जिला में स्थित हैं। इसके उपरांत अरुणाचल प्रदेश के लोहित, चियांग और दिवांग उपत्यका में भी मिचिंग लोगों को देखा जा सकता है।

2. समाज व्यवस्था

अन्य जनगोष्ठी की तरह मिचिंग लोग भी कई प्रकार के गोत्र अथवा वर्ग में विभक्त है। प्रधान रूप से इन लोगों को आठ वर्गों में विभक्त किया गया है और वे हैं-छायांग व छायेंगीय, अयान व आयेंगीय, मयि व मयेंगीय, देलो, तायोताये, पागर, दांबुक, चामुगुरिया आदि। इनलोगों के रहने के स्थान के आधार पर भी कई सारे वर्गों के नाम हुएहैं। ब्रह्मपुत्र के दक्षिण दिशा में रहनेवाले लोगों को 'देलो' बोलते हैं। इसीप्रकार मयिङ्ग नाम की जगह पर काम करनेवाले लोगों से मयिङ्ग व मयेंगीयाकी उत्पत्ति हुई है। प्रत्येक वर्ग में अलग-अलग गोत्र हैं फिर भी एक गोत्र के लोग अलग-अलग वर्गों में रह सकते हैं। मिचिंग समाज में बहुत सारे गोत्र हैं और उसी प्रकार एक ही गोत्र में पायेंग, पेगु, दले आदि अनेक जातियाँ हैं। एक ही गोत्र के लोग एक दूसरे को भाई-बहन मानते हैं, इसलिए एक ही गोत्र के लोगों के बीच कभी भी शादी नहीं कर सकते हैं। नदी किनारे रहने वाले मिचिंग लोग 'चांघर' बनाकर रहते हैं। एक ही चांघर में कई सारे परिवार रहते हैं। इन लोगों में पुरुष महिला दोनों ही समान रूप से परिश्रमी होते हैं।

3.सांस्कृतिक अवलोकन

मिचिंग लोगों की संस्कृति अनेकानेक रंग-बिरंगी त्यौहार-पर्वों, संगीत, नृत्य आदि से सुसज्जित है।

3.1 त्यौहार

असम की अन्य जनगोष्ठी की तरह मिचिंग जनगोष्ठी में भी कृषिभित्तिक उत्सव के साथ अन्य कई उत्सवपरंपरागत रूप से मनाए जातेहैं। मिचिंग जनगोष्ठी के कुछ उत्सव तथा अनुष्ठान निम्नलिखित हैं:

3.1.1 कृषिभित्तिक उत्सव

-आलि-आये-लृगांग:

आलि-आये-लृगांगमिचिंग समाज का प्रधान कृषिभित्तिक लोक उत्सव है। मिचिंग लोग इस उत्सव को फागुन महीने के प्रथम बुधवार में पालन करते हैं, क्योंकि वे लोग बुधवार को पवित्र दिन के रूप में मानते हैं। आलि-आये-लृगांग पालन करने के पीछे मूल उद्देश्य है-भूमि उर्वरता वृद्धि और इस जगत को फसल से हरियाली करने का प्रयास। इसलिए यह उत्सव फागुन महीने में पालन किया जाता है। फागुन में 'पृथ्वी' को 'युवती' के रूप में माना है और बुधवार पवित्र वार है अथवा 'लक्ष्मी' वार के रूप में मानते हैं। 'आलि-आये-लृगांग' नाम में यथार्थ रूप से इस उत्सव का तात्पर्य छिपा है। 'आलि' का मतलब है दृ आलु के जैसा पौधा या मिट्टी में ही होने वाला आलु व मूली', 'आये' का मतलब है पेड़ में उगने वाले फल व बीज और 'लृगांग' का मतलब है-फसल लगाने की शुरुआत करने का कार्य। अत: इस उत्सव को नए बीज लगाने के कार्यक्रम के रूप में मनाया जाता है।

न-खोवा और हल जोतने का अनुष्ठान:

मिचिंग लोग 'न-खोवा' साधारण रूप से नए चावल खाने के लिए मनाते हैं। नये धान काटने के बाद उस धान से वे लोग आपोंग बनाकर न-खोवा उत्सव मनाते हैं। लेकिन खुद उस धान को ग्रहण करने से पहले ये लोग अपने पूर्वजों को नए धान का एक भाग चढ़ाते हैं। इसके उपरांत नये धान काटने के दिन से नये चावल खाने के दिन तक ये लोग घर में किसी भी प्रकार की जीव-हत्या नहीं करते हैं। इस उत्सव में गाँव के अन्य लोगों को भी बुलाया जाता है।

नए चावल खाने के नियम की तरह ही, खेत की समापन प्रक्रिया के साथ संगति रखकर हल जोतने का उत्सव भी मिचिंग लोग मनाते हैं। इस उत्सव में कृषि कार्य से जुड़े लोग घर के प्रत्येक जन के लिए एक-एक मुर्गा मारने की प्रथा का पालन करते हैं। इसके उपरांत गाँव के जितने भी लोग कृषि कार्य से जुड़े हुए होते हैं, उन सभी को उस दिन घर बुलाकर एक दावत का आयोजन करतेहैं। अन्य उत्सव की तरह इस उत्सव में भी आपोंग का होना अनिवार्य होता है।

लक्ष्मी-आमंत्रण का अनुष्ठान

असम की अन्य जनगोष्ठी की तरह मिचिंग लोगों के बीच भी खेत में कटौती के समय में लक्ष्मी को आमंत्रण करने का अनुष्ठान किया जाता है। खेत में कटौती के समय से लेकर एक अच्छा दिन देखकर, उस दिन भक्ति भाव से नए कपड़े पहनकर खेत से मुट्ठी भर धान गामोचा में ले आते हैं। जिस दिन धान काटकर लाया जाता है उस दिन धान रखनेवाली जगह पर दीया जलाया जाता है। उस दिन धान की एक मुट्ठी को घर के गोदाम के एक कोने पर लटकाया जाता है, जिसे लक्ष्मी के प्रतीक के रूप में माना जाता है। साथ ही उस दिन घर से किसी को कुछ भी नहीं दिया जाता है, जैसे कि पैसा, धान-चावल आदि। ऐसी चीजों को देने से घर की लक्ष्मी निकल जाती हैं, यह उन लोगों का लोक विश्वास है।

परू राग:

मिचिंग लोगों की अगली कृषिभित्तिक लोक उत्सव है-परू राग। परू राग उत्सव आघोण और फागुन महीने में मनाया जाता है। इस उत्सव को एक महंगे उत्सव के रूप में माना गया है। इसलिए गाँव वालों की सुविधानुसार यह पूजा तीन-चार साल के अंतराल में मनाया जाता है। इस परूराग उत्सव को सही तौर से सम्पन्न करने के लिए एक-एक राजा-रानी सबकी सन्मति से बनाया जाता है। राजा को मिगम बरा और रानी को मिगम बरानी कहा जाता है। 'बरा' लड़कोंका और 'बरानी' लड़कियों का निरीक्षण करते हैं। इन लोगों के आदेशानुसार काम करना उन लड़के-लड़कियों का कर्तव्य होता है।

यह उत्सव बुधवार से शुक्रवार तक मनाया जाता है। लेकिन अलग-अलग जगहोंमें पाँच दिनों के लिए भी मनाए जाते हैं। परू राग के प्रथम दिन को इसांग कहा जाता है। इस उत्सव के अंतिम दिन में सम्मान सहित, आनंद के साथ सभी लड़के-लड़कियाँ बिहु नृत्य-गीत करते हैं।

बिउ (बिहु):

बिहु को मिचिंग लोग बिउ कहते हैं। बिउमिचिंग लोगों का अपना उत्सव नहीं है। फिर भी मिचिंग समाज में बिउ का एक अलग रूप देखने को मिलता है। इस उत्सव में गाने वाले गीत, पद, नृत्य आदि मिचिंग समाज ने अपने से ही निर्माण किया है। ढोल का शब्द भी उनका अपना ही है और बिहु में गाने वाले गीत आदि असमिया होने के बाद भी मिचिंग शब्द के संयोजन और उच्चारण से इनको मिचिंग समाज में ढाल दिया है।

गरु बिहु के दिन गाय को नहलाने का नियम असमिया समाज की तरह मिचिंग समाज में भी प्रचलित है। उसदिन गाय को नहलाने के बाद बेंगन, लौकी आदि से बनाया हुआ माला पहनाया जाता है और उसे निकालकर गाय की तरफ फेंककर 'लाओ खा', 'बेंगेना खा' अर्थात लौकी और बेंगन खाने के लिए कहा जाता है और फिर शाम को नई रस्सी से गाय को बाँधा जाता है साथ ही पीठा (असमिया खाद्य) भी खिलाया जाता है।

शाम को गाँव के लड़केतथा लड़कियाँ मिलकर गाँव के मुखियाल के घर जाकर हुसोरीगाते हैं। असमिया समाज की तरह 'बिहुआन' देने की प्रथा मिचिंग समाज में नहीं है। मिचिंग समाज में नृत्य-गीत के जरिये ही लड़का-लड़की अपने प्रेम को एक-दूसरे से जाहिर करते हैं।

'रंगाली बिहु' की तरह 'माघ बिहु' ने भी मिचिंग समाज में अपना एक अनन्य स्थान लाभ किया है। इसको मिचिंग लोग 'मरूग'कहते हैं। ये लोग उरुका की रात को मेजि जलाते हैं। मिचिंग लोग नदी किनारे मेजि बनाते हैं। ये लोग दो मेजि बनाते हैं-एक को स्त्री और दूसरे को पुरुष के रूप में मानते हैं। मेजि बनाने के काम को 'मारूग पारूनाम' कहते हैं। मेजि को जलाने के बाद ये लोग नदी में नहाकर 'आमबुग' और 'काठआलु' मेजि के आग में देते हैं, साथ ही चन्द्र-सूर्य, अग्नि, मेघ-बारिश तथा पूर्वजों आदि को स्मरण करके अपने परिवार की मंगल कामना करते हैं।

असमिया समाज में तीन बिहु माने जातेहैं। लेकिन मिचिंग समाज में सिर्फ इन दो बिहुओं को ही मनाया जाता है। काति बिहुको ये लोग ज्यादा नहीं मानते हैं।

कृषिभित्तिक लोक उत्सव कहने से मिचिंग लोग 'आलि-आये-लृगांग' और 'परू राग' उत्सवों को प्रधान रूप से मानते हैं।

3.1.2 विवाह अनुष्ठान

मिचिंग लोग विवाह को एक सामाजिक अनुष्ठान के रूप में मनाते हैं। इन लोगों की शादियों में अन्य लोगों की तरह पूजा तथा हवन आदि नहीं किया जाता है। एक ब्राह्मण को घर में बुलाकर देव-देवियों से आशीर्वाद लेकर दूल्हा-दुल्हन को एक साथ आशीर्वाद देकर विवाह कार्य सम्पन्न करते हैं। शंकरी धर्म में दीक्षित होने वाले लोग असमिया शंकरी समाज की तरह ही विधि-पाठ करके विवाह सम्पन्न करते हैं।

विवाह को लेकर मिचिंग समाज में नीति-नियम सु-निश्चित एवं कठोर हैं। एक गोत्र के लोग आपस में शादी नहीं कर सकते हैं। मिचिंग पुरुष एक से अधिक शादियाँ कर सकते हैं, लेकिन महिलाएँ एक से अधिक शादियाँ नहीं कर सकती हैं। इन लोगों में विधवा-विवाह का भी प्रचलन है। विवाहित स्त्री पति की मृत्यु होने के बाद उसके भाई से शादी कर सकती है। मिचिंग समाज में बाल्य-विवाह और दहेज-प्रथा देखा नहीं जाता है। मिचिंग समाज में प्रधान रूप से चार प्रकार की विवाह-प्रथा प्रचलित हैं, वे हैं-

-दारूर मिदांग (सच्चा विवाह)

-दुगला लारू नाम (गंधर्व विवाह)

-कुमसु दरूचुला लानाम (आशीर्वादीय विवाह)

-चला लारू नाम (भगा के ले आने के बाद का विवाह)

दारूर मिदांग:

मिचिंग भाषा में 'मिदांग' शब्द का अर्थ है-विवाह। दारूर मिदांग का अर्थ है सच्चा विवाह। कई स्तरों में सम्पन्न करने वाली इस शादी में गाँव के समग्र लोगों का सक्रिय रूप से रहना अनिवार्य है। इसके प्रथम स्तर में लड़के के पिता घटकके द्वारा लड़की के घर में विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। फिर उसी घटक के द्वारा लड़की के घर से उत्तर भेजा जाता है।

दुगला ला: नाम

लड़का-लड़की दोनों ही जब भागकर शादी करते हैं, उस शादी को मिचिंग समाज में 'दुगला ला: नाम' कहते हैं। लड़का लड़की को भगाकर अपने रिश्तेदार के घर ले जाता है। फिर घर के लोगों की अनुमति से लड़की को अपने घर ले जाता है।

कुमसु दरूचुला लानाम

कुमसु दरूचुला लानाम का अर्थ है-आशर्वादीय विवाह। लड़का और लड़की दोनों के परिवार की सम्मति होने के बाद भी आर्थिक स्थिति से दुर्बल होने के कारण लड़का शादी के दिन अपने कुछ रिश्तेदार, दोस्त आदि को साथ लेकर लड़की के घर जाता है और अपने से बड़ों का आशीर्वाद लेकर सांसारिक जीवन में प्रवेश करता है।

चला ला: नाम

यहाँ लड़की कीशादी करने का मन न होने के बावजूद भी लड़का लड़की को बलपूर्वक शादी करने के लिए मना लेता है। प्राचीन काल में यह विवाह मिचिंग समाज में प्रचलित था, लेकिन वर्तमान समय में यह प्रथा सम्पूर्ण रूप से खत्म हो गई है।

3.1.3धार्मिक अनुष्ठान

मरनेवालों के लिए श्राद्ध:

मिचिंग लोगों के बीच शव-दाह करने का नियम नहीं होता है। मृत्यु होने के बाद शव को मरे हुएस्थान से ले जाकर उसे नहलाकर नया कपड़ा पहनाकर अच्छे से बांधकर घर के पीछे के बायें कोणे से बाहर निकाला जाता है। कोई-कोई शव को सामने के द्वार से भी ले आते हैं। और इससे पहले मृत शरीर की लंबाई का हिसाब लेकर जमीन खोदते हैं। जमीन खोदने के भी कई सारे नियम होते हैं। जमीन खोदने से पहले ये लोग उस जमीन के लिए उचित मूल्य देकर जमीन खरीद लेते हैं, इसके बाद अनेक संस्कार पालन किए जाते हैं।

-उरम:

ददगांग के बाद मृत व्यक्ति के लिए 'उरम' पालन किया जाता है। प्रपितामह के लिए यह उरम मिचिंग लोग पालन करते हैं। कोई जीव जन्तु अगर अस्वभाविक हरकतें करने लगता है तो उन लोगों के अनुसार मरनेवालें की आत्मा को शांति नहीं मिलती है। इसलिए यह मृतकों की याद में घर में सुअर पालते हैं और सटीक समय में यह अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं। इस अनुष्ठान में सबको नहीं बुलाया जाता है, सिर्फ अपने परिवार के लोगों को ही बुलाया जाता है।

तालौंग उई:

'तालौंग' का मतलब है-ऊपर अर्थात आकाश और 'उई' का मतलब है-कर्म। आकाश के तूफान, बिजली आदि से छुटकारा पाने के लिए मिचिंग लोग' तालौंगउई' मनाते हैं। साधारण रूप से घर में धान आदि रखने की जगह जिसे 'गोदाम' कहा जाता है, वहाँ में यह अनुष्ठान मनाया जाता है। इसके अलावा खेत में पेड़-पौधों में बिजली गिरने से यह अनुष्ठान मनाया जाता है।

डांगरिया (देव) कर्म:

अपने घर को एक डांगरिया की देख-रेख में रखा जाता है, ऐसा मिचिंग लोगों का मानना है। घर के किसी भी तरह के मांगलिक कर्म से पहले ये लोग घर की ''कालिकाडांगरिया'' की पूजा करते हैं। उन लोगों के अनुसार उनके घर के आस-पास के नदी, झील आदि में भी एक डांगरिया होते हैं और उनके लिए 'बूढ़ा डांगरिया' का पूजा किया जाता है। असमिया के अन्य हिन्दू समाज की तरह मिचिंग लोगोंके गाँव में भी नामघर होता है। लेकिन वे लोग असमिया लोगों की तरह नामघर में नाम-कीर्तन नहीं करते हैं, इनके नामघर में भगवान की प्रतिमा भी नहीं रहती है, वहाँ सिर्फ 'नामघर के डांगरिया' रहते हैं।

डबुर पूजा:

डबुर पूजा मिचिंग समाज में प्राचीन काल से चलती आ रही है। डबुर पूजा प्रधान रूप से तीन प्रकार की होती हैं-डालुंग डबुर, बुरती डबुर और आरिग डबुर।

i. डालुंग डबुर:

गाँव के सभी लोग एक साथ डालुंग डबुर मनाते हैं। यह पूजा जेठ और कार्तिक महीने की 15 तारीख को मनाया जाता है। डबुर पूजा के नीति नियम अभी भी मिचिंग समाज में कट्टर रूप से मनाए जाते हैं।

ii. बुरती डबुर:

यह डबुर साधारण रूप से दो व्यक्तियों अथवा दो गाँवों के बीच हुए खून खराबा आदि जैसी घटनाओं के बाद मनाया जाता है। ऐसी घटना को मिचिंग समाज में पिइयांग कहा जाता है। यह पिइयांग कार्य अगर हत्या तक पहुँच जाता है तब यह डबुर और भी गहरा हो जाता है।

iii. आरिग डबुर:

खेती-बारी नष्ट होने की आशंका में, और उसके प्रतिकार तथा खेती के प्राचुर्य के लिए आरिग डबुरमनाया जाता है।

3.2 संगीत :

मिचिंग लोग लोकगीत के क्षेत्र में बहुत संवृद्ध होते हैं। मिचिंग लोक-गीत बड़ी ही दिलचस्प होती हैं। यद्पि ये लोकगीत कहीं भी लिखे हुए नहीं मिलेंगे। तथापि ये कई पीढ़ियों से जीवित है। पूर्वोत्तर भारत की बाकी सभी जनजातियों की तरह, मिचिंग लोग भी गीतों में पारंगत है। इन लोकगीतों को भाषातात्विक पंडित नाहेन्द्र पादुन ने आठ भागों में विभक्त किया हैं-

1. आ:बाङ निरूतम अथवा स्तुतिमूलक गीत
2. का:बान निरूतम अथवा करुण गीत
3. बृ:रग निरूतम अथवा ऋतु उत्सवमूलक गीत

4. लुप निरूतम अथवा कथपोकथनमूलक गीत
5. मिदांग निरूतम अथवा शादी के गीत
6. ममान निरूतम अथवा खेल-कूद के गीत
5. बृनि: कनि:नाम निरूतम अथवा लोरी
8. अइनि:तम अथवा प्रेम-प्रणयमूलक गीत :

इसे 'बनगीत' भी कहा जाता है। इन गीतों में प्रेमिक प्रेमिका की आशा निराशा, सुख-दुख आदि का वर्णन होता है। यह गीत गाते समय 'ढोल', 'पेपा' आदि भी बजाए जाते हैं।

मिचिंग लोगों की अपनी भाषा में रचना किए गए अनेक मौखिक गीत हैं। बनगीत दो पंक्ति के होते हैं। जैसे-

बारूबा दर तुम तेइ नारूना दर तुम तेइ,

दर तुम मारूमृल बनबगौम गृयेपेय (पृ: 45, मिसिंग संस्कृति आलेख्य)

(आई, बाबा आप को जितना भी पैसा चाहिए मैं दे दूँगा, अगर यह नहीं हुआ तो मैं वनवास के लिए चला जाऊँगा)।

बानगीतों के उपरांत 'निसुकनि' गीत भी मिचिंग समाज में प्रचलित है।

मोर मइना सरु, राखे बरे गरू,
एसारि हेरुआइ कांदे हे (मिचिंग संस्कृति आलेख्य)

मिचिंग समाज में यह गीतगाकर बच्चे को सुलाते हैं।

3.3 नृत्य

मिचिंग समाज में नृत्य कैसे उत्पन्न हुआ यह कहना कठिन है। यह लोकगाथा अथवा किंवदंती में नहीं मिलता है। 'मिबु' अथवा 'मिरि' नाम के ब्राह्मणों के द्वारा गाए हुए प्राचीन गीतों में नृत्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। संभवत: आदिम कोई भी जनजाति के बीच प्रचलित नृत्य की तरह इनका नृत्य उत्पन्न हुआ था। परवर्ती समय में उत्सव, मृतदेह शतकार आदि को केंद्र करके मिचिंग समाज में भी विविध प्रकार के नृत्य का प्रचलन हुआ है। नृत्य प्रकृत भाव, अनुभव-अनुभूति अथवा कोई कहानी वर्णना करने के समय शरीर के अंगों केहिलने की प्रक्रिया को माना गया है।

मिचिंग भाषा में नृत्य अथवा नाच को समझाने के लिए 'पाकचांग' अथवा 'माकचांग' इन दो शब्दों का व्यवहार किया है। दोनों शब्द ही कोई गीत अथवा वाद्य यंत्र के साथ नाचने वाले छंदोमय अंगी-भंगी को समझते हैं। इन दोनों को सम्य और छंदायित करने के लिए पैर की घुटने, हाथ की कुहनि, हाथ की कलाई, तलवे का संकोचन, संप्रसारण अथवा चक्राकार रूप में घूमकर प्रकट करते हैं। आँख और गले का संचालन मिचिंग नृत्य में कम है। साधारणत: मिचिंग भाषा में 'बिहु' शब्द को समझाने के लिए 'छरूमान' शब्द का व्यवहार किया जाता है। छरू धातु का अर्थ है-नृत्य करना और मान का अर्थ है-आनंद करना अथवा स्फूर्ति करना। अर्थात् छरूमान का अर्थ है-आनंद के साथ बिहु नाचना। छ: मान नृत्य के साथ गीत और वाद्य यंत्र भी जुड़े हुए होते हैं। पाकचंग अथवा माकचंग से केवल नाचने के अंगी-भंगी को ही जाना जाता है। मिचिंग नृत्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है -क. धर्ममूलक (Ritual), ख. कृषि उत्सवमूलक (A griculturalFestival), ग. विश्राममूलक (Recreational)।

3.3.1 धर्ममूलक

धार्मिक लोक विश्वास, पूजा आदि को केंद्र करके जो नृत्य किए जाते हैं, उसे धर्ममूलक श्रेणी में रखा जा सकता है। 'मिबु' और 'मिरि' नाम के ब्राह्मणों के नेतृत्व में नाचने वाले नृत्य को धार्मिक नृत्य कहा जाता है। मिबु और मिरि के नृत्य में साधारणत: 'मिबु गालुग' अथवा 'मिबु' नामक पोशाक पहनते हैं। घुटनों तक धोती, गले में 'दगनौ' नामक एक तिब्बतीय लाल और पीले रंग का माला पहना जाता है। सिर पर 'दुम लूंग' अर्थात लाल, पीला, सरसों के फूल के जैसे रंगों का एक लंबा 'गामोचा' पहना जाता है। यह गमोचा मिबु मिरि को उपहार के रूप में पहनाया जाता है। इसमेंसंगीत के लिए विशेष रूप से कोई भी वाद्य यंत्र बजाया नहीं जाता है। वे सिर्फ तांबा और पीतल से बने हुए ताल बजाते हैं।

धर्ममूलक नृत्य केवल एक निर्दिष्ट समय में नाचा जाता है। इस दिशा से देखने पर 'रंगाली बिहु' में नाचे जाने वाले हुसोरि नृत्य भी धर्ममूलक नृत्य की श्रेणी में आते हैं क्योंकि यह नृत्य सिर्फ बिहु के समय ही नाचा जाता है। असमिया हुसोरि में एक लड़कों का दल होता है जो चक्राकार में घूमकर नाचते हैं, लेकिन मिचिंग समाज की हुसोरि में विशेष प्रकार के पेड़ों की भंगिमा करके हुसोरि गाते हैं। हुसोरि के लिए ढोल और ताल प्रधान रूप में व्यवहृत होते हैं।

3.3.2 कृषि उत्सवमूलक

फसल के उत्पादन और वृद्धि के लिए आनुष्ठानिक काम करने के बाद जो नृत्य किया जाता है उसे कृषिमूलक उत्सव कहा जाता है। आलि-आये-लृगांग, मरूपुन, आरृग, दबुर के लिए कोई निर्दिष्ट समय नहीं है। धान से बीज निकलते ही यह पूजा किया जाता है। नृत्य के लिए भी इस उत्सव में कोई विशेष शैली नहीं मिलती है।

कृषिमूलक नृत्य में प्रधानत: आलि-आये-लृगांग नृत्य का उल्लेख किया जाता है। गाँव के मुखिया के घर में यह नृत्य किया जाता है। साथ में मिबु अथवा मिरि लृगांग में गाने वाले गीत गाते हैं। लृगांग नृत्य हुसोरि की तरह ही होते हैं। मिबु के साथ नाचने वाले लड़के भी गीत गाते हैं।

3.3.3 विश्राममूलक

मिचिंग समाज में होने वाले बिहु के अलावा कभी-कभी लड़का-लड़की अलग-अलग गाँव में घूमने के समय में बिहु अथवा चरूमान करते हैं, उसे ही विश्राम मूलक नृत्य कहा जाता है। ऐसे चरूमान में किसी तरह की पूजा-पाठ अथवा नीति-नियम का पालन नहीं किया जाता है। एक प्रकार से यह लड़के-लड़कियों के लिए आनंदमूलक अनुष्ठान होता है।

मिचिंग नृत्य की एक उल्लेखनीय बात यह है कि लड़कियाँ नाचने के समय किसी भी तरह की गीत नहीं गाती हैं। लड़कियाँ सिर्फ नाचती हैं और लड़के नाचने के साथ-साथ गाना भी गाते हैं।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण रूप से मिचिंग जनजाति के इतिहास, भूगोल, समाज, त्यौहार, नृत्य-गीत आदि के अध्ययन से यह पता चलता है कि मिचिंग जनजाति अपने आप में एक सम्पन्न जनजाति है। लेकिन अब जरूरी है कि इस जनजाति के इतिहास को जीवित रखना ज्योंकि साहित्य के द्वारा रखा जा सकता है। इसलिए इस जनजाति को केंद्र में रखकर और भी शोध कार्य होने चाहिए जिससे कि भव्य पीढ़ी इसका लाभ उठा सके।

सहायक ग्रंथ-सूची

1. दास, अंशुमान, (संपा.). असमर जनगोष्ठीय उत्सव पार्वण. पानबाजार: आँक-बाँक प्रकाशन. 2013. पृ. 53
2. दास, नारायण, राजबंशी, परमानंद (संपा.). असमर संस्कृति कोश.पान बाजार: ज्योति प्रकाशन. 2014
3. बरुवा, शांतनु कौशिक.संक्षिप्त असमीया विश्वकोष. द्वितीय खंड. पानबाजार: ज्योति प्रकाशन. 2009. पृ. 326
4. भृगुमणि (संपा.). मिचिंग संस्कृतिर आलेखा. पानबाजार: लयार्स बुक स्टल. 1989. पृ. 45
5. संपर्क सूत्र : 8761870277 (दूरभाष), jashodhara-borah@gmail-com (ई मेल)

ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान-विश्लेषणात्मक अध्ययन

(वाशीम जिले के संदर्भ में)

डॉ. प्रमोदकुमार केशव नंदेश्वर

उत्तमचंद बगडिया कला व वाणिज्य महाविद्यालय,
रिसोड, जिला-वाशिम (महाराष्ट्र), पिन-444506

सारांश

भारतीय संदर्भ में जहाँ हर प्रकार के शासन तंत्र में आरम्भ से ही पंचायत का महत्व सर्वोपरि रहा है। उसके निर्णयों को सर्वमान्य मानते हुए किसी ने भी उनका विरोध किसी स्तर पर नहीं किया है, उस बात का द्योतक है कि पंचायत व्यवस्था एक ठोस और परिपक्व सामाजिक व्यवस्था के रूप में भारतीय जनमानस में व्याप्त रही है। विदेशी कुशासन के कुछ अन्तराल के पश्चात् इस व्यवस्था का पुनरुत्थान एवं लोकतांत्रिक भारतमें पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम रहा है। पंचायतीराज व्यवस्था ने स्त्रियों को पंचायतों की सहभागिता में आरक्षण प्रदान किया है। इस आरक्षण के कारण वो आज के पंचायतीराज व्यवस्था के विभिन्न पदों पर है। इस व्यवस्था से ग्रामीण महिला नेतृत्व कहाँ तक प्रभावित है? इसके द्वारा ग्रामीण नेतृत्व विकास कितना हुआ हैं? यह अध्ययन का हेतू हैं। आज महिला पंचायत चुनाव में हिस्सा ले रही है। पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं यह अध्ययन से दिखाई देता हैं

मुख्य शब्द-पंचायत, पंचायतराज, महिला मतदाता, महिला प्रतिनिधित्व, नेतृत्व

प्रस्तावना

स्थानीय संस्थाएं राजनीति की तृणमूल संस्थाएं होती है। इन संस्थाओं को राजनीति की प्रथम पाठशाला भी कहा जाता है। यहीं से प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यक्ति महत्वपूर्ण राजनैतिक पद पर सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है। स्थानीय स्वराज्य संस्था के महत्व को देखकर पंचायत राज व्यवस्था की सुरुवात की गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महात्मा गॉधी के ग्राम-स्वराज की महती अवधारणा को मूर्त रूप देने की ओर अग्रसर होने के लिए भी इस कदम को बहुत महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इसी अवधारणा को कार्यान्वित करने एवं ग्रामीण समाज को स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से 1950 के दशक में सामुदायिक विकास योजनाओं को लागू किया गया किन्तु इन योजनाओं की असफलता के कारण भारत सरकार नेबलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति की इन्हीं अनुशंसाओं के तहत 1960 में महाराष्ट्र में त्रिस्तरीय लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकण किया गया। अर्थात् जिला स्तर पर जिला परिषद तथा विकासखण्ड स्तर पर पंचायत समीती एवं ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत का गठन किया गया। 1

अध्ययन के उद्देश्य

वाशीम जिला निजाम रियासत का एक अंग था। वाशीम जिले का समाज परम्पराओं तथा रूढ़ियों से जकड़ा था। यहाँ शिक्षा का अभाव था, स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उदासीनता थी। पंचायतीराज व्यवस्था ने स्त्रियों को पंचायतों की सहभागिता में आरक्षण प्रदान

किया है। इस आरक्षण के कारण वो आज के पंचायतीराज व्यवस्था के विभिन्न पदों पर है। प्रस्तावित अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ''ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमानो का विश्लेषणात्मक अध्ययनश्श करना है। शोध कीआवश्यकता को पूरा करते हुये इसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं। प्रस्तावित अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था में ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमानों का अन्वेषण करना।
2. महिला नागरीको की मतदान स्थिति का अध्ययन करना।
3. पंचायत चुनाव में महिला नागरीको के सहभाग का विश्लेषण करना।
4. विभिन्न स्तरो पर महिला नेतृत्व निर्माण में महिला के सहभाग का विश्लेषण करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ

किसी भी अध्ययन के लिये राजकीय, आर्थिक एवं सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। प्रारम्भिक ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर शोधार्थी अपने अध्ययन विषय के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित पक्षों का एक सामान्य अनुमान लगा लेता है। इस अनुमान के आधार पर शोधार्थी को एक नयी दिशा मिलती है जिससे उसका ध्यान विषय पर ही केन्द्रित रहता है। गुड तथा स्केट्स के अनुसार-''उपकल्पना एक अनुमान है, जिसे अन्तिम अथवा अस्थायी रूप में किसी निरीक्षित तथ्य अथवा दशाओं की व्याख्या हेतु स्वीकार किया गयाहो एवं जिससे अन्वेषक को आगे पथ प्रदर्शन प्राप्त होता है। 2 संक्षेप में अनुसंधान प्रारम्भ करने से पहले अनुसंधान के कारणों और परिणामों के बारे में हम जो एक निश्चित अवधारणा लेते हैं उसे ही उपकल्पना कहते हैं। अतः शोधार्थी ने अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया है-

(1) ग्रामीण महिला नेतृत्व अनेक कारकों से प्रभावित होती है।
(2) ग्रामीण महिला नेतृत्व निर्माण में विभिन्न स्तर में भिन्नता पायी जाती है।
(3) ग्रामीण महिला पंच नेतृत्व को बढ़ाते है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन ''ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान-विश्लेषणात्मक अध्ययन "प्राथमिक एवं द्वितीयक संमको पर आधारित है। शोध प्रविधि का आशय उन सुव्यवस्थित तरीकों, विधियों से है जिनके द्वारा शोधार्थी अध्ययन विषय से सम्बन्धित विश्वसनीय एवं यथार्थ तथ्यों का संकलन करता है तथा उन्हें व्यवस्थित करता है। शोध पत्र को पूर्ण करने के लिए उपलब्ध प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। समंक संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों के समस्त स्रोतों से समंक प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक समंक व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं प्रश्नावली द्वारा संकलित किए गए हैं। द्वितीयक समंक समाज में उपलब्ध साहित्य, शासकीय एवं अशासकीय प्रकाशनों, पत्र-पत्रिकाएँ, जर्नल्स एवं दैनिक समाचार पत्रों का अध्ययन कर प्राप्त किए गए हैं।

न्यादर्शो की संख्या

अध्ययन के लिए चयनित वाशीम जिले के 6 विकासखंड में से 120 महिला सरपंच, 150 महिला पंच, 60 जनपद सदस्य, 280 महिला नागरिक ऐसे कुल 610 महिलाओं का दैव-निदर्शन पद्धति से चयन करने के पश्चात् उनका सर्वेक्षण किया गया। आंकडो का विश्लेषण-तालिका क्रमांक के अंतर्गत महिला सहभागीता के लिए किया गया प्रयास का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

शोध क्षेत्र का सामान्य परिचय

इस अध्ययन हेतु वाशीम जिले का चयन किया गया है। वाशिम जिला महाराष्ट्र के विदर्भ में है। 2011 की जनगणना के अनुसार, जिले में 5150 वर्ग किमी का भौगोलिक क्षेत्र है। इसकी आबादी 1297160 है। इसमें से क्रमशः अ.जाती और अनु. जाती की आबादी क्रमश 229462 और 80471 है। इस जिले के लोगों का घनत्व 244 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। वाशिम जिले के लिंग अनुपात में 1000 पुरुषों के मुकाबले 930 महिलाएं है। लोगोकी साक्षरता 83.25% है। जिले के अधिकांश लोग मराठी बोलते है। उसके बाद हिंदी और अन्य भाषाएँ बोली जाती है। वाशिम जिले की जलवायु में गर्मी के मौसम में गर्मी और उच्च आर्द्रता और सर्दियों के मौसम

में शुश्क स्थिती रहती है। अधिकांश आबादी कृषि क्षेत्रो में काम करती है। 2011 की जनगणना के अनुसार, कुल जनसंख्या में से 17.7% लोग शहरी क्षेत्रों में रहते है जबकी 82.3% ग्रामीण क्षेत्रो में रहते है। शहरी क्षेत्रों में आसत साक्षरता दर का लिंग अनुपात 947, जबकी ग्रामीण क्षेत्रों का लिंगानुपात 926 है।

वाशीम महाराष्ट्र के उत्तर पूर्वी सीमा के मध्य स्थित वर्तमान अमरावती संभाग का एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रधान जिला है। जिला अपनी धार्मिक विरासतों, औद्योगिक संस्थानों, सांस्कृतिक ऐतिहासिक परिदृश्यों, प्रमुख वनोपज एवं खनिज के कारण सर्वोच्च शिखर पर है। जिला वीर, पराक्रमी, योद्धाओं, वीरांगगाओं, आदि से जाना पहचाना जाता है। जिले का निर्माण सन् 1998 में हुआ इसके पूर्व वाशीम यह अकोला जिले के अधीन था। जिले को वाशीम, रिसोड, मालेगाव, मानोरा, कारंजा, मंगरुलपीर कुल आठ विकासखण्डों में बांटा गया है।

शोध कार्य की आवश्यकता एवं महत्व

प्रस्तुत शोध ''वाशीम जिले के ग्रामीण महिला नेतृत्व में उभरते प्रतिमान -विश्लेषणात्मक अध्ययन अत्यंत उपयोगी होगा तथा भारत में पंचायती राज व्यवस्था के क्रियान्वयन में इसकी अहम भूमिका होगी। 73वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा देश में पहली बार महिलाएँ प्रजातांत्रिक राज व्यवस्था के विभिन्न पदों पर कार्य कर रही हैं। 3 उनकी यह सहभागिता उन्हें कितना संतोष प्रदान करती हैं तथा क्या वे अपनी आकांक्षाओं और निर्णयों से संतुष्ट हैं? पंचायती राज में महिलाओं को कानूनी अधिकार तो मिल गया हैं किन्तु वे मतदान का राजकीय अधिकार भी प्राप्त कर सकी हैं। प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जायेगा। इस अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि क्या महिलाओं की क्षमताओं का विकास हुआ है या नहीं? प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि यह प्रभाव सकारात्मक हैं या नहीं। इस प्रकार प्रस्तुत शोध की एक महत्वपूर्ण उपयोगिता होगी। साथ ही भावी शोधार्थियों के लिये यह एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करेगा जो इस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं, जिससे कि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें।

महिला नेतृत्व

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को पहले 33 फीसदी अब 50 फीसदी आरक्षण देने से वे राजनीतिक रूप से सशक्त हुई हैं। अब वे न सिर्फ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई हैं बल्कि समाज के वाजिब फैसले भी ले रही हैं। वर्ष 2006 में 50 प्रतिशत आरक्षण देने का कारवाँ बिहार से चलकर राजस्थान, हिमांचल प्रदेश, अरूणांचल, महाराष्ट्र में भी पहुँच चुका है। ऐसे में केन्द्र की ओर से सभी राज्यों में 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था किये जाने की पहल मील का पत्थर साबित हो रही है। भारतीय संविधान में महिला तथा पुरुषों के बीच लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं किया है। और दोनों को समान रूप से अधिकार दिये गये हैं। आजादी के बाद संविधान द्वारा लिंग भेद की समस्त परम्पराओं को दरकिनार करते हुए महिलाओं को भी समान अधिकार और समाज सहभागिता के अवसर दिये गये थे लेकिन महिलायें अपने अधिकारों का प्रयोग धरातल पर नहीं कर पा रही है तो इसका कारण इनमें राजनैतिक व सामाजिक चेतना की कमी होना ही है। पुरुषों की मानसिकता भी इसके लिए बराबर की जिम्मेदार है। आज भी पुरुष प्रधान समाज महिला को सिर्फ भोग्या बनाये रखने की अपनी सदियों की पुरानी मानसिकता से उतर नहीं पाया है। पंचायती चुनावों में हमें ऐसे एक नहीं कई उदाहरण देखने को मिले हैं जिनमें महिलाओं के लिए अनारक्षित स्थानों पर खड़ी महिला उम्मीदवारों के पूरे चुनाव का संचालन उनके पतियों, भाईयों या अन्य पुरुष रिश्तेदारों द्वारा किया गया। समूची निर्वाचन प्रक्रिया में महिला उम्मीदवार के दर्शन सिर्फ नामांकन के समय ही हुये और बाकी का काम पुरुष रिश्तेदारों द्वारा ही किया गया। उम्मीदवार घर की दहलीज के भीतर चूल्हे में खटती रही और उनके पतियों ने उनके लिए वोट माँगें। महिला उम्मीदवारों के पति देवर या भाई उन्हें जितवाना तो चाहते थे लेकिन उनकी सत्ता में भागीदारी के लिये नहीं अपितु अपने राजनैतिक स्वार्थों के लिए। ऐसी डमी महिला उम्मीदवार जीती भी लेकिन फिर भी घर की दहलीज लॉघने की उन्हें इजाजत नहीं मिली। वे जीत कर भी चार दीवारी के भीतर तक ही सीमित रहीं। पुरुषों ने उन्हें सिर्फ कागज या रजिस्टर पर अंगूठा लगाने या हस्ताक्षर करने भर का अधिकार दिया था।

पिछले पंचायती चुनावों के तुरंत बाद एक गैर सरकारी स्वैच्छिक संगठन ने राज्य सरकार की एक एजेंसी के साथ मिलकर उत्तर प्रदेश में एक सर्वेक्षण किया।[4] सर्वेक्षण के नतीजे चौकानें वाले थे। सर्वेक्षण के मुताबिक उत्तर प्रदेश के पंचायती चुनावों में आरक्षण का लाभ लेकर 80 प्रतिशत से भी अधिक ऐसी महिलायें जीत कर आयी जिन्हें घर स्टैम्प के अलावा ओर कुछ कहा ही नही जा सकता

था। उत्तर प्रदेश बिहार और उड़ीसा जैसे बीमारू प्रदेश हो या फिर महाराष्ट्, गुजरात, पंजाब और आंध्रप्रदेश जैसे अपेक्षाकृत काफी विकसित व शिक्षित राज्य हों स्थिति सभी जगह कमोवेश एक ही जैसी है। इन सभी राज्यों में ऐसे एक नही कई-कई उदाहरण हैं जहाँ ग्राम पंचायत, विकास खण्ड या जिला पंचायतों में निर्वाचित महिलाओं के स्थान पर उनके पति, भाई या पुरुष अभिभावक ही बैठक में भाग लेते हैं। अधिकारियों से बातचीत करते है। सर्वेक्षण के मुताबिक अधिकतर निर्वाचित महिला जन प्रतिनिधियों को तो अपने राजनैतिक अधिकारों तक का पता नहीं है उन्हें नहीं पता कि सत्ता में रहते हुए वे क्या-क्या कर सकती है, कैसे जनसेवा के कार्यों को अंजाम दे सकती हैं।

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का बस एक ही कारण समझ में आता है, शिक्षा और राजनैतिक जागरूकता की कमी सत्ता में भागीदारी के लिए आवश्यकता है, राजनैतिक सोच की, राजनैतिक विचारधारा की, और राजनैतिक समझदारी की और इस राजनैतिक सोच को पैदा किया जा सकता है मात्र राजनैतिक जगरूकता से। विश्व परिप्रक्ष्य में देखे तो हमारे यहाँ शिक्षा का प्रसार बेहद कम है। महिला शिक्षा के मामले में तो हमारी स्थिति और भी दयनीय है। महानगरों और कुछ शहरों को छोड़ दे तो दूरदराज के हमारे गॉवों में आज भी लड़कियों का दिन सुबह चूल्हे से शुरू होता है और रात को रसोई की सफाई के साथ खत्म होता है। अधिकतर लड़कियाँ स्कूलों का मुँह तक नहीं देख पाती और जो किसी तरह गॉव की प्राइमरी पाठशाला में पहुँच भी जाती है तो पॉचबी के बाद उनकी पढ़ाई खत्म करवा दी जाती है। क्योंकि उनके परिवार वाले आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें नजदीक के दूसरे गॉव या पास के कस्बे में नहीं भेजना चाहते इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को आरक्षण के साथ-साथ सरस्वती की प्रतीक किताबे भी दी जाये उनके हाथों में चकले-बेलन के साथ-साथ कलमें भी थमाई जाएं।

पंचायती चुनावों में आरक्षण देने के बाद निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के लिये विशेष प्रशिक्षण शिविर चलाये जाते, जिनमें उन्हें राजनैतिक अधिकार क्या है, सामाजिक दायित्व कौन कौन से हैं, और सत्ता में भागेदारी उन्हें कैसे प्राप्त करनी है? लेकिन हमने ऐसा कुछ भी नहीं किया क्योंकि इससे उनके जागरूक होने का खतरा था। 5 उनके समझदार बन जाने का भयथा और उनके बराबर होने की आशंका थी। और फिर महिला आरक्षण का झुनझुना उनके हाथों में थमाकर हमारा मकसद तो पूरा हो ही गया था। आधी दुनिया के इस बोट बैंक को रिझाने और दुनिया को दिखाने में तो हम सफल हो ही गये थे।

पंचायतों के चुनाव मेंमहिला सरपंचों का सहभाग

पंचायतों के चुनाव में महिला सरपंच द्वारा बढ़-चढ़करभाग लेने सम्बंधी अध्ययन तालिका क्र-1 में किया गया है।

तालिका क्रमांक-1

पंचायतों के चुनाव में महिला सरपंचों के भाग लेने सम्बंधी अध्ययन

अ. क्र.	विकासखंड का नाम	उत्तरदाता महिला सरपंच की संख्या	पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर					
			भाग ले रही हैं।		भाग नहीं ले रही हैं।		पता नही	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	वाशीम	20	17	85	02	10	01	05
2	रिसोड	20	16	80	03	15	01	05
3	मालेगाव	20	16	80	03	15	01	05
4	मानोरा	20	15	75	04	20	01	05
5	कारंजा	20	16	80	02	10	02	10
6	मंगरूळपीर	20	16	80	03	15	01	05
	योग	120	96	80	17	14.17	07	5.83

(स्त्रोत-महिला सरपंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

उपरोक्त तालिका क्रमांक -1 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श हेतु चयनित 20 महिला सरपंचों कुल मिलाकर 120 महिला सरपंचों से शोध क्षेत्र में पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी जानकारी का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-1 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श हेतु चयनित कुल 120 महिला सरपंचों में से 96 महिला सरपंचों ने कहा कि शोध क्षेत्र में पंचायतों के चुनाव में महिलाएँ बढ़-चढ़कर भाग ले रही है, जबकि 17 महिला सरपंचों ने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 07 महिला सरपंचों ने कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इस प्रकार उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 80 प्रतिशत महिला सरपंचों का मानना है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही है, जबकि 14.17 प्रतिशत महिला सरपंच मानती हैं, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 5.83 प्रतिशत महिला सरपंच ऐसी भी थी कि जिन्होंने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही है, कि नहीं इस सम्बंध में उन्हें नहीं पता है।

पंचायतों के चुनाव में महिला पंचों का सहभाग-

पंचायतों के चुनाव में महिला पंचो द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी अध्ययन तालिका क्र-2 में किया गया है।

तालिका क्रमांक -2

पंचायतों के चुनाव में महिला पंचो की सहभागीता

अ.क्र.	विकासखंड का नाम	उत्तरदाता महिला पंचो की संख्या	पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर					
			भाग ले रही हैं।		भाग नहीं ले रही हैं।		पता नही	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	वाशीम	25	18	72	04	16	03	12
2	रिसोड	25	17	68	05	20	03	12
3	मालेगाव	25	19	76	04	16	02	08
4	मानोरा	25	20	80	03	12	02	08
5	कारंजा	25	18	72	04	16	03	12
6	मंगरूळपीर	25	19	76	05	20	01	04
	योग	150	111	74	25	16.67	14	9.33

(स्त्रोत-महिला पंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

उपरोक्त तालिका क्रमांक-2 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श मेंचयनित 25-25 महिला पंचों कुल मिलाकर 150 महिला पंचों से शोध क्षेत्र में पंचायतोंके चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी जानकारियों का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-2 के ऑकड़ों से स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श हेतु चयनित कुल 150 महिला पंचों में से 111 महिला पंचों ने कहा कि महिलाएं, पंचायतों के चुनावमें बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि 25 महिला पंचों ने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 14 महिला पंचोंने इस प्रश्न के जवाब में कहा कि उन्हें इस

सम्बंध में नहीं पता है। इस प्रकार उपरोक्त तालिका के अध्ययन से यह तथ्योद्घाटन होता है, कि शोध क्षेत्र के 74 प्रतिशत महिलापंचों के अनुसार पंचायातें के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि 16.67 प्रतिशत महिला पंचों का मानना है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 9.33 प्रतिशत महिला पंचों ने कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहींपता है।

पंचायतों के चुनाव में महिला जनपद सदस्योंध्अध्यक्षों का सहभाग

पंचायतों के चुनाव में महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी अध्ययन तालिका क्र-3 में किया गया है।

तालिका क्रमांक-3

पंचायतों के चुनाव महिला जनपद सदस्योंध्अध्यक्षों का सहभाग

अ.क्र.	विकासखंड का नाम	उत्तरदाता जनपद सदस्य/ अध्यक्ष	पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर					
			भाग ले रही हैं।		भाग नहीं ले रही हैं।		पता नही	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	वाशीम	10	08	80	01	10	01	10
2	रिसोड	10	07	70	02	20	01	10
3	मालेगाव	10	09	90	01	10	00	00
4	मानोरा	10	08	80	01	10	01	10
5	कारंजा	10	07	70	01	10	02	20
6	मंगरूळपीर	10	08	80	02	20	00	00
	योग	60	47	78.33	08	13.33	05	8.33

(स्त्रोत-महिला जनपद सदस्योंध्अध्यक्षों की साक्षात्कार अनुसूची)

उपरोक्त तालिका क्रमांक-3 में शोध क्षेत्र के प्रत्येक जनपद पंचायत से न्यादर्श

हेतु चयनित 10-10 महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों कुल मिलाकर 60 महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों से शोध क्षेत्र में पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर भागलेने सम्बंधी जानकारी का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-3 के आॅकड़े यह द्शाते हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श में चयनित कुल 60 महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों में से 47 ने कहा कि शोध क्षेत्र में पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि 08 महिला जनपदसदस्यों अध्यक्षों ने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 05 महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों ने अपने जवाब में कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इस प्रकार उक्त तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र के 78.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों का मानना है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि शोध क्षेत्र की 13.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्यों अध्यक्षों का मानना है कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं तथा 8.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्य अध्यक्ष ऐसी भी थीं जिन्होंने अपने जवाब में कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है।

पंचायतों के चुनाव में महिला नागरिकों का सहभाग-

पंचायतों के चुनाव में महिला नागरिकों द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी अध्ययन तालिका क्र-4 में किया गया है।

तालिका क्रमांक -4

पंचायतों के चुनाव में महिला नागरिकोंका सहभाग

अ.क्र.	जिला पंचायत वार्डों के नाम	उत्तरदाता महिला नागरीक की संख्या	पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर					
			भाग ले रही हैं।		भाग नहीं ले रही हैं।		पता नही	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	वार्ड क्र-1	20	17	85	02	10	01	05
2	वार्ड क्र-2	20	16	80	03	15	01	05
3	वार्ड क्र-3	20	19	95	01	05	00	00
4	वार्ड क्र-4	20	17	85	02	10	01	05
5	वार्ड क्र-5	20	13	65	02	10	05	25
6	वार्ड क्र-6	20	13	65	05	25	02	10
7	वार्ड क्र-7	20	14	70	04	20	02	10
8	वार्ड क्र-8	20	15	75	04	20	01	05
9	वार्ड क्र-9	20	13	65	03	15	04	20
10	वार्ड क्र-10	20	17	85	02	10	01	05
11	वार्ड क्र-11	20	14	70	04	20	02	10
12	वार्ड क्र-12	20	15	75	04	20	01	05
13	वार्ड क्र-13	20	17	85	02	10	01	05
14	वार्ड क्र-14	20	13	65	04	20	03	15
	योग	280	213	76.07	42	15	25	8.92

(स्त्रोत-महिला नागरिकों की साक्षात्कार अनुसूची)

उपरोक्त तालिका क्रमांक-4 में शोध क्षेत्र के न्यादर्श में चयनित 14 जिला पंचायत वार्डो में से न्यादर्श हेतु चयनित 20-20 महिला नागरिकों कुल मिलाकर 280 महिला नागरिकों से शोध क्षेत्र में पंचायतों के चुनाव में महिलाओं द्वारा बढ़-चढ़कर भाग लेने सम्बंधी जानकारियों का संकलन किया गया है।

उपरोक्त तालिका क्रमांक-4 के ऑकड़े यह दर्शातें हैं, कि शोध क्षेत्र में न्यादर्श हेतु चयनित कुल 280 महिला नागरिकों में से 213 ने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि 42 महिला नागरिकों ने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं तथा 25 महिला नागरिकों ने इस प्रश्न के जवाब में कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इस प्रकार उपरोक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है, कि शोध क्षेत्र की 76.07 प्रतिशत महिला नागरिकों के अनुसार पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग ले रही हैं, तथा 15 प्रतिशत महिला नागरिकों ने अपने जवाब में कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं, साथ ही 8.92 प्रतिशत महिला नागरिक ऐसी भी थीं जिन्होंने कहा, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़ चढ़कर भाग ले रही हैं, कि नहीं इस सम्बंध मेंउन्हें नहीं पता है।

अध्ययन का निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त चारों तालिकाओं (तालिका क्रमांक-1, 2, 3, 4,) के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है, कि शोध क्षेत्र में अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं। शोध क्षेत्र में ग्रामीण महिला नेतृत्व के उभरते प्रतिमान के अध्ययन हेतु शोधार्थी ने कुछ शोध उपकरणों की सहायता ली, जिसके द्वारा एकत्रित तथ्यों का सारणीयन, विश्लेषण एवं व्याख्या द्वारा वस्तु स्थिति की जानकारी प्राप्त की। इनके आधार पर शोध कार्य के जो अंतिम निष्कर्ष प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं -

1. शोध क्षेत्र के 80 प्रतिशत महिला सरपंचों का मानना है, कि पंचायतों के चुनावमें महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही है, जबकि 14.17 प्रतिशत महिला सरपंच मानती हैं, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 05.85 प्रतिशत महिला सरपंच ऐसी भी थी कि जिन्होंने कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही है, कि नहीं इस सम्बंध में उन्हें नहीं पता है। इससे महिला सरपंच चुनाव में बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं यह सिद्ध होता है। (तालिका क्रमांक-1)
2. शोध क्षेत्र के 74 प्रतिशत महिला पंचों के अनुसार पंचायातें के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि 16.67 प्रतिशत महिला पंचों का मानना है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं। तथा 9.33 प्रतिशत महिला पंचों ने कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इससे महिला पंच चुनाव में बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं यह सिद्ध होता है। (तालिका क्रमांक-2)
3. शोध क्षेत्र के 78.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं, जबकि शोध क्षेत्र की 13.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्यों/अध्यक्षों का मानना है कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं तथा 8.33 प्रतिशत महिला जनपद सदस्य/अध्यक्ष ऐसी भी थीं जिन्होंने अपने जवाब में कहा कि उन्हें इस सम्बंध में नहीं पता है। इससे महिला जनपद सदस्यों/अध्यक्षों चुनाव में बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं यह सिद्ध होता है। (तालिका क्रमांक-3)
4. शोध क्षेत्र की 76.07 प्रतिशत महिला नागरिकों के अनुसार पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग ले रही हैं, तथा 15 प्रतिशत महिला नागरिकों ने अपने जवाब में कहा कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं, साथ ही 8.92 प्रतिशत महिला नागरिक ऐसी भी थीं जिन्होंने कहा, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़ चढ़कर भाग ले रही हैं, कि नहीं इस सम्बंध में उन्हें नहीं पता है। इससे महिला नागरिक चुनाव में बढ़-चढ़कर भाग नहीं ले रही हैं यह सिद्ध होता है। (तालिका क्रमांक-4)

इस प्रकार उपरोक्त चारों तालिकाओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है, किशोध क्षेत्र में अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है, कि पंचायतों के चुनाव में महिलाएं बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माहेश्वरी, एस.आर. (1999) भारत में स्थानीय शासन, अविष्कार प्रकाशन, जयपूर, पृष्ठ 23-36
2. भसीन, अनीस (2009) : विश्व में महिला अधिकारों की स्थिति, प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका, मुद्रक एवं प्रकाशक महेन्द्र जैन, आगरा, पृ.-70-79
3. कड़ा, पुष्पा, (2004) : वर्तमान में नारी अधिकारों के संरक्षण का स्वरूप, प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका, मुद्रक एवं प्रकाशक महेन्द्र जैन, पृष्ठ-527-529
4. अग्रवाल उमेश चन्द्र (2004) : भारत में महिला समानता और सशक्तिकरण के प्रयास, 'योजना', मासिक सूचना ओर प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, मार्च, पृ. 34-38
5. दत्त, विजय रंजन (2009) : महिला सशक्तिकरण की क्रांतिकारी पहल, प्रतियोगिता दर्पण, मासिक पत्रिका, मुद्रक एवं प्रकाशक महेन्द्र जैन, पृ. 420-422
6. महिपाल (2002) : ग्रामीण पुनर्निर्माण में पंचायत की भूमिका, योजना, मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली जनवरी पृ.-69-72
7. पॉल, देविका (2005) : स्त्री पुरुष समानता और आयोजन, योजना मासिक पत्रिका, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली जनवरी पृ.-61-63

ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक काल का सामाजिक जीवन में परिवर्तन

बिरेन्द्र कुमार सिंह

यूनिवर्सिटी डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री

वैदिक काल को अध्ययन की सुविधा से दो भागों में बाँटा गया है। किसी भी सभ्यता के काल का विभाजन अत्यंत कठिन कार्य है। आर्यों के भारत में प्रवेश से लेकर ऋग्वेद की रचना और उसके बाद की सभ्यता ऋग्वैदिक काल के नाम से जानी जाती है। इस सभ्यता की जानकारी का मूल स्रोत ऋग्वेद ही है। अत: ऋग्वैदिक काल से अभिप्राय उस युग से है, जिसका विवेचन ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वैदिक काल के बाद जिस काल में सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रंथों अरण्यकों तथा उपनिषदों की रचना हुयी, उसे उत्तर वैदिक काल के नाम से जाना जाता है।

समाज

समाज की न्यूनतम इकाई परिवार थी। होमरकालीन यूनानी पिता के समान ऋग्वैदिक पिता के अधिकार भी असीम थे। ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक पिता ने अपव्यय के अपराध में अपने पुत्र को अंधा बना दिया था। ऋग्वेद कालीन समाज की व्यवस्था का प्रमुख आधार वर्णव्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप कार्य के चयन की स्वतंत्रता थी।

अत: व्यक्ति के कर्म का विशिष्ट महत्व था, क्योंकि व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण उसके कर्म से होता था। अपने गुण एवं कर्म के अनुरूप किये गये कर्त्तव्य समाज में वर्ण-धर्म के नाम से अभिहित किये जाने लगे। 'वर्ण' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृज वरणे' धातु से हुयी है, जिसका अभिप्राय है 'वरण करना।' इस प्रकार 'वर्ण' से तात्पर्य किसी विशेष व्यवसाय (या वृत्ति) से लिया जाता है। ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग 'रंग' अथवा 'प्रकाश' के अर्थ में हुआ है। कहीं-कहीं वर्ण का संबंध ऐसे जन वर्गों से दिखाया गया है, जिनका चर्म काला या गोरा है। प्रारंभ में आर्य एक ही वर्ण के थे और आर्यों का समूह विश कहलाता था। इस समय वर्ण, रंग का बोधक था। आगे चलकर दास भी उनसे जुड़ गये। ऋग्वेद की प्रारंम्भिक स्थिति में समाज के दो वर्ण थे, अर्थात् आर्य और दास। इस ग्रंथ में उल्लिखित है कि उग्र प्रकृति के ऋषि अगत्स्य ने दोनों वर्णों का पोषण किया।

जब उत्पादन अधिशेष की स्थिति उत्पन्न हुयी तो विश का विभाजन योद्धा, पुरोहित एवं सामान्य लोगों में हो गया। इस तरह वर्ण व्यवस्था का आधार अब कर्म हो गया। ऋग्वेद में एक छात्र लिखता है– 'मैं कवि हूँ, मेरे पिता चिकित्सक हैं; और मेरी माता आटा पीसती हैं....।' ब्रह्मक्षत्र की अवधारणा ऋग्वैदिक काल में ही सामने आयी, जिसका तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से था, जो जन्म से क्षत्रिय, किंतु कर्म से ब्राह्मण हो।

इससे संकेत मिलता है कि ब्राह्मण-क्षत्रिय द्वंद्व प्रारंभ हो चुका था और क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी जा रही थी। कर्म से एक राजन पुरोहित हो सकता था एवं पुरोहित राजन। महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुये भी कर्म से ब्राह्मण थे। उसी तरह ऋषि भृगु के बारे में कहा जाता कि 'भृगु' के वंशज ने अनेक राज्यों की स्थापना की। ऋग्वेद में ब्राह्मण की चर्चा चौदह बार हुयी है, जबकि क्षत्रिय शब्द की चर्चा नौ बार हुयी है। प्रथम बार शूद्र की चर्चा ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में हुयी है। वैश्य शब्द का भी प्रथम बार प्रयोग यहीं मिलता है। इसमें चारों वर्णों की तुलना ब्रह्मा के शरीर के अंगों से की गयी है। ब्राह्मण की तुलना ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय की भुजा से, वैश्य की जंघा से एवं शूद्र की पैर से की गयी है। सामाजिक व्यवस्था का आधार रक्त संबंध था। समाज पितृसत्तात्मक था। परिवार का मुखिया स्वाभाविक रूप में मानवीय एवं करुणाशील होता था। सिर्फ एक-दो

उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि घर का मुखिया कभी-कभी संतान को क्रूर रूप में भी दण्डित करता था। ऋजास्व एवं भुज्यु की कथा में इसका उल्लेख है।

ऋजास्व का आख्यान, जिसमें उसे सौ भेंड़ों को गंवा देने के अपराध में अपने पिता द्वारा अंधा कर दिये जाने की चर्चा मिलती है। इसके द्वारा पुत्र के ऊपर पिता का पूर्ण नियंत्रण प्रदर्शित होता है। इस तरह के आख्यान को अपवाद स्वरूप ही लिया जाना चाहिए, क्योंकि ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पुत्र के कल्याण की कामना हेतु निवेदन भी किया गया है। वैदिक समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था थी।

पुत्र का समाज में विशेष महत्व था। पुत्र न होना दरिद्रता के समान कहा गया है। पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र को संपत्ति में अधिक हिस्सा मिलता था। वैदिक काल में विवाह पवित्र संस्कार माना जाता था, जो व्यक्ति एवं सामाजिक विकास के लिए आवश्यक था। याजक कार्यों हेतु पति एवं पत्नी दोनों की उपस्थिति वांछनीय थी। अग्नि से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि 'हे अग्ने! तुम कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधान कर्ता के तुल्य हो, तुम जब पति-पत्नी को समान मन वाला बनाते हो, तब वे तुम्हें धृत-दुग्ध द्वारा बंधु के समान सींचते हैं।' लड़कियों को अपने पति का चयन करने की स्वतंत्रता थी। परिवार का प्रधान 'कुलप' कहलाता था।

स्त्रियों की स्थिति

ऋग्वैदिक काल में साधारणतया एक पत्नीव्रत की प्रथा ही प्रचलित थी। समाज पितृसत्तात्मक था, किंतु स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। लड़कियों का विवाह 16 या 17 वर्ष की उम्र में होता था। विधवा एवं अंतर्जातीय विवाह भी होता था।

बहुपतित्व विवाह एवं रक्त संबंध में विवाह के कुछ चिह्न मिलते हैं, उदाहरण के लिए यमी ने अपने भाई यम से विवाह का अनुरोध किया, परंतु यम ने उसे अस्वीकार कर दिया। रोदसी को मारुतों ने मिलकर भोगा। उसी तरह अश्विन कुमार दोनों भाई सूर्य की पुत्री सूर्या के साथ रहते थे, किंतु इस विषय में हम कह सकते हैं कि यह आदिम अवस्था के अवशेष थे। बहुपतित्व की प्रथा वास्तव में ऋग्वैदिक काल में नहीं थी। संभवतः उच्च कुल के संपन्न लोग एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि पुरुषों में बहुविवाह की प्रथा थी। स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी और उन्हें भी उपनयन संस्कार का अधिकार था। बहुत-सी महिलायें विदुषी थीं। उदाहरण के लिए लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्वारा, सिक्ता आदि।

लोपामुद्रा क्षत्रिय वर्ण की थी, किंतु उसकी शादी ऋषि अगत्स्य से हुई। तलाक, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नीत्व का प्रचलन नहीं था। दूसरी तरफ विधवा विवाह एवं नियोग प्रथा का प्रचलन था। नियोग प्रथा में विधवा स्त्री को पुत्र प्राप्ति के लिए अपने देवर के साथ पत्नी के रूप में रहना था।

विदुषी महिलाओं को 'ऋषिका' या 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। जीवन भर अविवाहित रहने वाली लड़कियों को 'अमाजू' कहा जाता था और इस स्थिति में यदि पुत्री पिता के घर में ही रहती है तो वह पिता की संपत्ति की हिस्सेदार होती थी। अपाला द्वारा अपनी पैतृक संपत्ति में हिस्सा प्राप्ति का उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मंडल में है। स्त्रियाँ 'सभा' एवं 'समिति' में भाग लेती थीं। साथ ही, वे पति के साथ यज्ञ में भी भाग लेती थीं। ऋग्वेद में समनो (उत्सवों) का उल्लेख हैं, जिनमें कन्यायें स्वयं अपनी पति को वरण कर लेती थीं। कभी-कभी शारीरिक बीमारी के कारण विवाह में विलंब भी हो सकता था। उदाहरण के लिए चर्म रोग के कारण घोषा का विवाह बहुत समय तक नहीं हुआ।

दास व्यवस्था

दास व्यवस्था ऋग्वैदिक काल में प्रचलित थी। इनके दान देने का भी उल्लेख मिलता है। दासों की तुलना में दासियों के दान के अधिक उल्लेख मिलता है। दासों का उपयोग घरेलू दासों के रूप में होता था। कृषि में अभी इन्हें नहीं लगाया गया था।

शिक्षा

शिक्षा की चर्चा सातवें मंडल में है। ऋग्वैदिक कालीन शिक्षण संस्थाओं का स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता है, तथापि एक सूक्त से तत्कालीन शिक्षा प्रणाली के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद के इस सूक्त में मेंढकों के टर्राने की तुलना गुरु द्वारा उच्चारित शब्दों के विद्यार्थियों द्वारा सामूहिक स्वर में दोहराने से की गयी है। इससे वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षण संस्थाओं के अस्तित्व का बोध होता है। निश्चित रूप से इनमें वैदिक मंत्रों की शिक्षा दी जाती होगी। इसके अतिरिक्त छंदशास्त्र, ज्यामिति, इतिहास

आदि के शिक्षण की व्यवस्था रही होगी। शिक्षा में वाद-विवाद का भी प्रचलन रहा होगा, ऐसे संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद से बारह महीनों की चर्चा के साथ-साथ वर्ष विशेष में पड़ने वाले अधिक मास का उल्लेख आया है।

उत्तरवैदिक समाज में शिक्षा

इस काल में अपार साहित्य की रचना हुई। वैदिक साहित्य का अपार भंडार इस तथ्य का द्योतक है कि प्राचीन काल में शिक्षा की सुनियोजित व्यवस्था थी। उत्तर वैदिक काल को बौद्धिक विकास का युग कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि इसी काल में विशाल वैदिक साहित्य का सृजन हुआ, जिसका आधार था उपनयन संस्कार के द्वारा विद्यार्थी जीवन के साथ ही सुनियोजित शिक्षा प्रणाली का प्रारंभ। वैदिक शिक्षा पद्धति का प्रधान आधार था शिक्षक, जिसे आचार्य या गुरु कहा जाता था। शिक्षा का अभिप्राय प्राचीन काल में केवल पुस्तकीय ज्ञान न होकर अंतर्दृष्टि का विकास भी कहा गया है, ऐसी अंतर्दृष्टि का विकास जिससे मोक्ष प्राप्त हो सके।

पिता से ही प्रारंभ में पुत्र को शिक्षा मिलती थी, जैसा कि हमें बृहदारण्यक उपनिषद् के श्वेतकेतु आरुणेय आख्यान से ज्ञात होता है। गुरुकुल प्रणाली प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रमुख विशेषता थी, जिसके अंतर्गत विद्यार्थी को 'अंतेवासी' अर्थात् आचार्य के सान्निध्य में रहना (आश्रम में) होता था। विद्यार्थी का प्रमुख कार्य इस दौरान गुरु के पास रहकर गुरु की सेवा तथा अध्ययन करना था। प्रत्येक शिष्य का स्तर आश्रम में समान था, सबको समान रूप से जलाने की लकड़ियाँ (समिधायें) एकत्र करना, गौचारण तथा भिक्षाटन करना होता था। इस प्रक्रिया से विद्यार्थियों में छोटे-बड़े की भावना का विकास नहीं हो पाता था। अध्ययन का साहित्य वैदिक काल में बहुत विशाल था। शतपथ ब्राह्मण ने स्वाध्याय के अंतर्गत ऋचाओं, यजुष्, साम एवं अथर्ववेद, इतिहास, पुराण व गाथाओं का उल्लेख किया है।

गोपथ ब्राह्मण में सभी वेद, कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, अनुशासन आदि को अध्ययन योग्य साहित्य कहा गया है। एक विवरण छान्दोग्य उपनिषद् में मिलता है, जिसमें नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि—उन्होंने (नारद ने) चारों वेद, इतिहास, पुराण (पंचम वेद रूप), व्याकरण, राशि (अंकगणित), दैव (लक्षण विद्या), निधि (खनिज उत्खनन विद्या), एकायन (राजनीति), देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या (छन्द एवं ध्वनि विद्या), क्षत्र विद्या (धनुर्वेद), नक्षत्र विद्या, सर्प विद्या एवं देवजन विद्या (गान एवं नृत्य) सीख ली थी। इससे प्रतीत होता है कि उस युग में इन विषयों की शिक्षा दी जाती थी। आश्रमों में विशेष रूप से ब्रह्मविद्या सीखने का अवसर मिलता था, जिससे शिष्य का आत्मिक विकास एवं नैतिक उत्थान होता था। यही भारतीय शिक्षा पद्धति की रीढ़ थी। इसी परिप्रेक्ष्य में विशाल वैदिक साहित्य का सृजन संभव हुआ। जिससे सारे विश्व को आर्य सभ्यता का ज्ञान हुआ।

मनोरंजन

मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन संगीत था। ऋग्वेद के मंडूक सूत्र में सोम रस निकालने में जुटे ब्राह्मणों के संगीतपूर्ण पाठ के उल्लेख है। पुरुष नर्तक को 'नृत्य' तथा स्त्री नर्तक को 'नृतु' कहा जाता था। ऋग्वैदिक आर्य जीवन के उल्लास के गीत गाते थे एवं मृत्यु की चर्चा शत्रुओं के अतिरिक्त अन्य किसी परिप्रेक्ष्य में नहीं करते थे। रथ दौड़, शिकार, जुआ खेलना आदि भी नृत्य और संगीत के अतिरिक्त मनोरंजन के साधन थे। ऋग्वैदिक आर्यों के घर लकड़ी, बांस और मिट्‌टी के बने होते थे। घुड़दौड़ भी मनोरंजन का साधन थी। विश्वला नामक त्वरित अश्व का उल्लेख मिलता है।

रीति-रिवाज

वैदिक कालीन रीति-रिवाजों के प्रसंग में तत्कालीन 'समन' नामक उत्सव का उल्लेख करना होगा। ऋग्वेद में वर्णन आया है कि जब कन्या सुंदर है और आभूषित है तो स्वयं पुरुषों के झुंड में से अपना मित्र ढूँढ़ लेती है। एक विशेष परिधान 'वाधूय' का प्रयोग वधू द्वारा विवाह के अवसर पर किया जाता था।

नर्तकियों द्वारा विशिष्ट परिधान 'पेशस' धारण करने का विवेचन मिलता है। कभी-कभी मुनि लोग चर्म को वस्त्र के रूप में उपयोग करते थे। आर्य लोगों की आभूषण प्रियता का विवेचन भी अनेक मंत्रों में हुआ है। अनेक आभूषणों के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं, गले में 'निष्क' धारण किया जाता था। कान में 'कर्णशोभन' एवं शीश पर 'कुम्ब' नामक आभूषण पहनने की प्रथा थी। इनके अतिरिक्त 'खादि', 'रुक्म', 'भुजबंद', 'केयूर', 'नूपुर', 'कंकण' एवं 'मुद्रिका' आदि आभूषण भी धारण किये जाते थे। एक सूक्त में अश्विनों को स्वर्ण कमल की माला पहने हुये, होने का उल्लेख किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

A Gate to Ancient Indian Architecture : Malati Mahajan, Sharada, 2004.
Administration of Law and Justice in Ancient India : Anjali Kaul, 1993.
An Encyclopaedic Dictionary of Eminent Personalities : Ancient India : A.N. Kapoor, V.P. Gupta and Mohini Gupta, Radha Pub, 2005.
An Integral Approach to the Political History of Ancient India : Shankar Goyal, Kusumanjali, 2001.
An Introduction to Ancient Indian Metallurgy : K T M Hegde, Geological Society of India, 1991.
Ancient India : Sangh Mittra and S.R. Bakshi, Commonwealth, 2003.
Ancient India : A Multidisciplinary Approach : Shankar Goyal, Kusumanjali Book World.
Ancient India : An Historical Outline : D.N. Jha, Manohar, 2001.
Ancient India : From the Earliest Times to the First Century A.D. : E.J. Rapson, Logos Press, 2009.
Ancient India : From the Origins to the XIII Century AD : Marilia Albanese, Om Books, 2001.
A.A. Macdonell: History of Vedic Mythology, Sanjay Prakashan, Delhi, 2004.
A.C. Clyton: The Rgveda and Vedic Religion, Panda, Bharatiya Kala Prakashan, Delhi, 2006.
Ashvini Agrawal: In Search of Vedic-Harappan Relationship, Aryan Books International, Delhi, 2005.
B.N. Sharma: A Nation on Fire : Hinduism Under Siege, Manas, Delhi, 2006.
Bharat Jhunjhunwala: Hindu Approach to Indian Economy : Global Challenges and Opportunities, Rawat, Delhi, 2005.
Dandekar, R.N.: Some Aspects of the History of Hinduism, Radhey Shayam Press, Poona. 1967.
G Naganathan: Ecological Spirituality : Hindu Scriptural Perspectives, New Age Books, Delhi, 2004.
Gough, A.E.: The Philosophy of the Upanisads and Ancient Indian Metaphysics, MacMillan, London, 1882.
H.C. Mathur: A Text Book of Hindu Psyche : Scientific Rationale of Hindu Faith, JBD Book, Delhi, 2002.
Hans, W.: Vedanta: Heart of Hinduism, Grove Weidenfeld, New York, 1985.
Harman, William: The Sacred Marriage of a Hindu Goddess, Indiana University Press, Bloomington, 1998.
Herbert, V.: Yuganaddha: The Tantric View of Life, Chowkamba Publications, Calcutta, 1969.

मौर्योत्तर काल में भारत का वैश्विक संबंध

डॉ० सोनी भगत

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

200 ई.पू. से 200 ई. तक शिल्प का असाधारण विकास हुआ। दीघनिकाय में दो दर्जन व्यवसायों का उल्लेख है।

भारतीय व्यापार में मौर्य काल के बाद विकास के साथ मुद्रा प्रणाली में विशिष्ट प्रगति हुई। ई.पू. और ई. सदी के प्रारंभ में रोम से आने वाले सोने का बड़ी मात्रा में व्यापारिक लेन-देन किया जाने लगा। स्वर्ण मुद्राओं का पश्चिमी जगत में प्रचलन हुआ तो भारतीय राजाओं ने परस्पर व्यापार में सुविधा एवं अन्य राष्ट्रों की तुलना में राष्ट्रीय 'मान' को बनाये रखने के लिए सोने के सिक्के जारी किये। व्यापारिक विकास के साथ मौद्रिक व्यवस्था में परिवर्तन एवं बड़ी तादाद में प्रचलन इस युग का विशिष्ट लक्षण रहा है। बड़ी संख्या में इस काल से संबद्ध मुद्राओं की प्राप्ति न केवल समृद्धि का प्रतीक है, बल्कि व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार को इंगित करती है। विदेशों में भारतीय माल की मांग बढ़ती जा रही थी। इन दिनों पश्चिम में रोमन साम्राज्य एवं चीन में उत्तर हान साम्राज्य का विकास हो रहा था। रोमन सम्राज्य के अंतर्गत पूर्व के उत्पादों जैसे गर्म मसाले, सुगंधित लकड़ी, रेशमी एवं अन्य वस्त्रों की मांग थी। उत्तर हान साम्राज्य ने इसी प्रकार व्यापारियों को काफी प्रोत्साहन दिया, जिसके कारण भारत, मध्य एशिया तथा चीन के संपर्क बढ़ते गये। बढ़ते विदेशी व्यापार ने स्थानीय आभूषण निर्माताओं, वस्त्र उत्पादकों एवं कृषकों को विविध व्यापार योग्य सामग्री के उत्पादन को प्रेरित किया। इस काल में व्यापार एवं वाणिज्य को प्रोत्साहन देने वाले कारक थे 1. नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में नये वर्गों का उदय हुआ, 2. रोम एवं चीन के साथ व्यापारिक संबंधों का विकास, 3. रोम के साथ व्यापारिक संबंधों के फलस्वरूप दक्षिण-पूर्व एशिया के मसालों के साथ जुड़ाव। मौर्योत्तर काल में शिल्पियों का विशेषीकरण हुआ। मौर्य पूर्व काल की एक कृति, दीघनिकाय, में 24 प्रकार के शिल्पों की चर्चा है, जबकि महावस्तु में 36 प्रकार के शिल्पों की चर्चा है। मौर्योत्तरकाल के एक ग्रंथ **मिलिन्दपञ्हों** में 75 प्रकार के व्यवसायों की चर्चा है, जिनमें 60 विभिन्न प्रकार के शिल्प आते हैं। इस ग्रंथ में विवेचित व्यवसायों में से सोना, चांदी, तांबा, टिन, सीसा, पीतल, लौहा आदि धातुओं से संबंधित थे। पतंजलि के महाभाष्य से भी विविध शिल्पों का ज्ञान होता है। स्वर्णकार, बढ़ई (वर्धकी), माली (मालाकार), बांस की टोकरी निर्माता (बेसकार), गांधिक, मछुये (धनक), कुम्हार (कुलाल), लुहार, धनुषनिर्माता (धनुष्कार), रंगरेज (रंजक) आदि व्यवसायों से संबंधित लोगों के गांवों में निवास करने का उल्लेख मिलता है। इस काल में कपड़ा बनाना महत्वपूर्ण दस्तकारी कला थी तथा सूती कपड़े भारत से निर्यात किये जाते थे। मथुरा, वाराणसी आदि कपड़ा उत्पादन के कई केंद्र थे। मन के बनाने का मुख्य केंद्र उत्तर में उज्जैन था। यहां मनके अर्द्ध-बहुमूल्य पत्थरों, कांच, हाथीदांत तथा मिट्टी के बनाये जाते थे। उत्तर में अनेक नगरों में इनकी बड़ी मांग थी। अफगानिस्तान के प्राचीन कपिसा में हाथी दांत गठित आकृतियां भारी संख्या में प्राप्त हुयी हैं। इस काल की प्रमुख विशेषता वास्तुकला का विकास रही है। शुंग काल में भरहुत, बोध गया और सांची कला के प्रमुख केंद्र थे। वास्तु कलाकारों ने न केवल स्तूपों का निर्माण किया, बल्कि मंदिर, प्रासाद एवं भवनों का निर्माण भी बड़ी संख्या में किया। कात्यायन ने शिल्पों के लिए **'कारि'** शब्द का प्रयोग किया है। इस काल में अपने कार्य में कुशल एवं प्रवीण शिल्पी 'राजशिल्पी' के रूप में राजा से सम्मान प्राप्त करते थे। इस समय वास्तु शिल्प इतना अधिक विकसित हो गया था कि एक प्रासाद को बनाने में 18 शिल्पों के जानने वाले कर्मकारों के काम करने की चर्चा मिलती है।

संभवत: इन शिल्पकारों में मूर्तिकार, वास्तुशिल्पकार, चित्रकार, जौहरी, लुहार, बढ़ई, स्वर्णकार आदि रहे होंगे। मूर्तिकला का विकास मौर्यकाल में ही हो गया था और इस युग में भी उत्कृष्ट मूर्तियों का निर्माण संभव हुआ। कुषाण काल में मूर्तिकारों को

पश्चिमी जगत के कलाकारों ने प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप गांधार कला का विकास हुआ। दूसरी ओर स्वदेशी भावना से प्रेरित कलाकारों ने ऐसी कला को विकसित किया जो पाश्चात्य कला से पूर्णत: अप्रभावित थी, जिसे 'मथुरा कला' के नाम से जाना जाता है।

बहुत-सी लोहे की सामग्रियां आंध्र क्षेत्र में करीमनगर और नालगोंडा जिले में प्राप्त हुयी हैं। शिल्पी गांव में भी बसते थे। तेलांगाना के करीमनगर गांव में विभिन्न प्रकार के शिल्पी अलग-अलग बसते थे। कपड़े की बुनायी, रेशम बुनने और अस्त्रों के निर्माण एवं विलास की वस्तुओं का निर्माण मुख्य व्यवसाय था। पतंजलि के अनुसार मथुरा में 'शाटक' नाम के एक विशेष वस्त्र का उत्पादन होता था। दक्षिण भारत के नये नगर में रंगरेजी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। एक प्रकार का रंगायी 'हौज उरैयूर' में प्राप्त हुआ है। ऐसा ही हौज अरिकमेडु में प्राप्त हुआ है। मगध में लोहा बहुत अधिक मात्रा में होता था और वहां से बाहर भेजा जाता था। तांबे की खान राजस्थान में मिली है। हिमालय की ढलान में कस्तूरी और केसर का उत्पादन होता था।

''नमक'' का प्रमुख स्रोत पंजाब की नमक की पहाड़ी थी। दक्षिण भारत में मसाला, सोना, रत्न तथा चंदन की लकड़ी मिलती थी। कश्मीर, कोसल, विदर्भ और कलिंग हीरे के लिए विख्यात थे। मगध वृक्षों के रेशों से बने वस्त्र के लिए प्रसिद्ध था। मलमल के लिए बंगाल प्रसिद्ध था। मिलिन्दपन्हो के अनुसार बुद्ध की मौसी गौतमी ने वस्त्र निर्माण के पांच प्रकार बताए हैं। महाभारत, मिलिन्दपन्हों एवं दिव्यावदान के अनुसार गंगा बेसिन, वाराणसी, कोयम्बटुर और अपरांत (महाराष्ट्र) में विभिन्न प्रकार के सूती वस्त्र निर्मित किये जाते थे। बंग और पुंड्र क्षेत्र के मलमल को 'गंगई' कहा जाता था। मंसलीपट्ठय और अरगुरु (उरैयूर) भी मलमल के लिए प्रसिद्ध थे। प्लिनी के अनुसार भारत में पीतल और सीसा का उत्पादन नहीं होता था। पेरीप्लस के अनुसार भारतीय इस्पात इतना विकसित था, जो विश्व में अद्वितीय था और यह भारत में अरियाका (काठियावाड़) से पूर्वी अफ्रीका भेजा जाता था। भारत में सोना का उत्पादन कम था। महाभारत से ज्ञात होता है कि सोना पूरब से आता था अर्थात् दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से। नदी के रेत से भी छोटानागपुर एवं असम क्षेत्र में सोना प्राप्त किया जाता था। पेरिप्लस के अनुसार सुवर्ण (बुलियन) फारस की खाड़ी से पूर्वी अरब क्षेत्र होकर पश्चिम भारत में आता था।इसी तरह **मोती** पेरिप्लस के अनुसार कोलची से प्राप्त होता था (कोरकोई क्षेत्र से)। पेरिप्लस के अनुसार मोती निचले गंगा क्षेत्र से भी निकाली जाती थी। टॉलमी के अनुसार यह सुदूर दक्षिण से प्राप्त होता था। प्लिनी के अनुसार मोती पेरीमोला (आधुनिक चौल) बंदरगाह से प्राप्त होता था। भारत को प्लिनी ने रत्नों की एकमात्र जननी कहा है। साथ ही भारत को सबसे महंगी वस्तुओं की जन्मदात्री कहा है। टॉलमी के अनुसार हीरे, कोसा (बैराट), सबराई (संबलपुर) और एडम नदी के मुहाने से प्राप्त किया जाता था। पेरिप्लस के अनुसार गोमेद और कार्लेनियन दक्कन के पहाड़ों में पाया जाता था। इसके अनुसार दौशाहन दशारन (पूर्वी मालवा) से एक प्रकार के हाथी दांत का उत्पादन होता था। मनके बनाने का एक महत्वपूर्ण केंद्र मध्य प्रदेश में उज्जैन था। **अर्थशास्त्र** में मदिरा के उत्पादन पर विशेष विचार किया गया है। इसकी लोकप्रियता की पहचान इस काल की मूर्तिकला में विशेषकर संघोल एवं मथुरा में चित्रित मद्यपान में की जाती है।टकसाल कला का विकास होना इस काल की एक महत्वपूर्ण देन है। भारत में स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन कुषाणों से प्रारंभ होता है। कुषाणों से पूर्व ईरानी सम्राट डेरियस ने सोने के सिक्के **'डेरिक'** तथा चांदी के **'सिगलाय'** का प्रचलन किया था। लेकिन इन मुद्राओं का प्रचलन सुदूर पश्चिमोत्तर भारत के उस छोटे से प्रदेश तक सीमित रहा जहां ईरानी आधिपत्य स्थापित हो गया था। कालान्तर में इण्डोग्रीक शासक यूक्रेटाइडीज ने सोने के सिक्के प्रचलित किये, किंतु इनकी संख्या सीमित थी। अपने आप में कुषाण शासक **विम कदफिसस** द्वारा स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका बहुत कुछ श्रेय तत्कालीन रोम के साथ भारत के व्यापारिक संबंधों को जाता है। रोम के साथ व्यापारिक संबंधों के कारण प्रभूत मात्रा में रोमन स्वर्ण मुद्राओं का भारत में आगमन हुआ। भारत एवं रोमन साम्राज्य के मध्य व्यापारिक संबंध आगस्टस (ई.पू. 31 से 14) से नीरो के काल तक अपनी पराकाष्ठा पर थे। अपनी बनावट एवं योजना में कुषाण सिक्के पूर्व सिक्कों की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर हैं। कुषाणकालीन ठप्पा बनाने की कला में पश्चिमी शैली का स्पष्ट अनुकरण दिखायी देता है। उस काल में रोमन मुद्रा ओरेई अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जगत में स्वीकृत थी। अत: कुषाण शासकों ने इन्हीं सिक्कों के तौल एवं मान का अनुकरण किया। कुषाणकालीन सिक्कों में ग्रीक, पार्थियन, रोमन एवं भारतीय तत्वों का अनूठा मिश्रण देखा जा सकता है। स्वर्ण एवं ताम्र मुद्राओं के अतिरिक्त कुषाण शासकों ने सीमित मात्रा में रजत मुद्राओं का प्रचलन किया। सोने एवं तांबे के सिक्के एक निश्चित

तौल परंपरा पर आधारित हैं। कुषाणों की सोने की दीनार मुद्राएं प्रात: रोम 'ओरई' सिक्कों के तौल एवं मान के प्राय: निकट हैं। सिक्कों को ढालने एवं ठप्पा अंकित करने से पूर्व साफ किये जाने की प्रक्रिया का मिलिन्दपन्हों आदि में विवरण आया है।

सोने के सिक्के निष्क, सुवर्ण और पल कहलाते थे। चांदी के सिक्के शतमान्, पूरण और धरण थे। तांबे एवं रांगो के सिक्के को 'काकणि' कहा जाता था। कई प्रकार के सिक्के सातवाहन भी चलाते थे-अवंति से प्राप्त तांबे के एक सातवाहन सिक्के पर नाव का चिह्न है। सातवाहन के सिक्के कार्षापण सोना, चांदी, तांबा और सीसा चारों धातु के होते थे। सीसे के सिक्के भी सातवाहनों ने चलाये। कार्षापण सोना, चांदी, तांबा और सीसा चारों धातु का होता था। कुषाणों ने 35 देवताओं का अंकन अपने सिक्कों पर किया है। कनिष्क के सिक्के पर निम्नलिखित देवताओं के चित्र मिलते हैं-**बौद्ध देवता**-अद्वैत बुद्ध, शाक्यमुनि। उनके सिक्कों पर **ब्राह्मण देवता**-महासेन, स्कंद, कुमार, विशाख, उमा, वरुण (हेरोन), भवेस थे। इसी प्रकार **इरानी देवता**-मित्श्रा, हेलियोस, शेलेन, हेराक्लीज आदि थे।

पुरातात्त्विक स्थलों के उत्खनन से प्राचीन नगरों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। तक्षशिला (आधुनिक इस्लामाबाद से 30 कि.मी. उत्तर पश्चिम में) के उत्खनन में मौर्यकाल के अवशेष प्राप्त हुये हैं। सर जॉन मार्शल ने 1913 ई. में इसकी खुदायी प्रारंभ करवायी थी जो दो दशक तक चलती रही। पक्की ईंटों का प्रयोग किया जाता था। अर्द्धवृत्ताकार ईंटों से गोलाकार इमारतें बनायी जाती थीं। यमुना के किनारे पुराना किला, मथुरा एवं कौशाम्बी जैसे नगरों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। अहिच्छत्र (जिला बरेली) उत्तरी पांचालों की राजधानी थी। वाराणसी कपड़ा उत्पादन एवं हाथीदांत का महत्वपूर्ण केंद्र था। वैशाली (उत्तरी बिहार स्थित आधुनिक वैशाली) से भारी संख्या में मुहरें आदि प्राप्त हुयी हैं, जो व्यापारिक गतिविधियों को इंगित करती हैं। बंगाल के प्रमुख व्यापारिक केंद्र तामलुक तथा चन्द्रकेतुगढ़ थे। मध्य पश्चिमी भारत में उज्जैन मनका उत्पादन के लिए विख्यात था।

श्रेणी, संघ और निगम-ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने भी वर्णव्यवस्था में ढिलायी के फलस्वरूप व्यापार और वाणिज्य को अपना लिया था। बौद्ध साहित्य में भी हमें इस प्रकार का विवरण मिलता है। वैश्यों ने अन्य वर्णों की प्रतिस्पर्द्धा से बचने के लिए नये संघटनों को जन्म दिया, जो श्रेणी, निगम, पुग और सार्थ कहलाते थे। श्रेणी सदस्यों के व्यवहार को एक श्रेणी न्यायाधिकरण के माध्यम से नियंत्रित किया जाता था। श्रेणी धर्म के कानून के सदृश मान्यता प्राप्त थी। श्रेणी अपने सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करती थी। यह इस नियम से सिद्ध होता है कि यदि कोई विवाहित स्त्री भिक्षुणी बनकर संघ में शामिल होना चाहती थी तो उसे पति के साथ-साथ उसकी श्रेणी की भी अनुमति लेनी होती थी। प्रसिद्ध सूत्रकार गौतम का कहना है कि व्यापारी और शिल्पियों को अपने सदस्यों को नियमित करने के लिए विधि बनाने का अधिकार था। श्रेणी और अन्य संघ अध्यक्ष या मुखिया के अधीन होता था। इसे परामर्श देने के लिए एक समिति होती थी, जिसमें 2, 3 या 5 सदस्य होते थे। इस समिति की समुकहितवादिन कहा जाता था। बृहस्पति के अनुसार संघ प्रमुख को दोषी सदस्यों को दंडित करने का अधिकार था। सामान्यत: श्रेणी के विधि निर्माण में राजा हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, किंतु अगर अध्यक्ष और उसकी समिति के बीच कोई विवाद होता तो राजा निर्णय दे सकता था। कर्मचारियों की अन्य संस्था भी श्रेणी के अलावा थी, जिसे **कर्मचारी सहकारी** कहते थे।

श्रेष्ठि-ये वित्त से संबंधित होते थे। वित्तीय व्यवस्था श्रेष्ठी के हाथों में होती थी। वे संयुक्त उद्यम कंपनी के रूप में काम करते थे।

श्रेणी : यह श्रेणी एक सामान्य शब्द था, जिसमें सभी प्रकार के **गिल्ड** आते थे।

निगम : व्यापारियों के संघ के लिए पृथक् शब्द 'निगम' आता था।

पुग : पुग किसी विशेष क्षेत्र के विभिन्न व्यापारियों, शिल्पियों और व्यवसायियों के हितों का संरक्षण करता था।

सार्थ : नामक व्यापारिक गिल्ड पारगमन व्यापार से जुड़ा था और एक प्रमुख के अधीन होता था। इसे 'सार्थवाह' कहते थे। विक्रेता और क्रेता के मध्य सौदेबाजी **'पणितव्य'** कहलाती थी और वस्तुओं की कीमत मांग और उपलब्धि के अनुसार बढ़ती-घटती रहती थी।

कुछ वस्तुएं बेची नहीं जा सकती थीं, जैसे गाय का मांस, तिल आदि। मौर्योत्तर काल में अधिकांश शिल्पी शूद्र जाति के थे। श्रेणियों के पास अपना सैनिक बल होता था। मलचुरी अभिलेख से यह ज्ञात होता है। उद्दलपुत्र नामक व्यक्ति, जिसकी पास पांच सौ कार्यशालाएं थीं, कुंभकारों की एक श्रेणी से संबद्ध थे।

महाजनी व्यवस्था : ब्याज की चर्चा प्रारंभिक धर्मसूत्रों में मिलती है। सामान्यत: प्रचलित दर 1.25 प्रतिशत मासिक (15 प्रतिशत वार्षिक) थी, किंतु अलग-अलग सूत्रकारों ने अलग-अलग दरें भी बतायी हैं। इसकी दर गौतम 2 प्रतिशत मासिक मानता है। दूसरी

तरफ मनु ने विभिन्न वर्णों के लिए अलग-अलग दरें बतायी हैं। ब्राह्मण 2 प्रतिशत, क्षत्रिय 3 प्रतिशत, वैश्य 4 प्रतिशत और शूद्र 5 प्रतिशत मासिक।इसके अलावा असुरक्षित कर्ज के लिए अधिक दर थी। सामान्य रूप से अर्थशास्त्र के अनुसार कर्ज का सामान्य दर 5 प्रतिशत मासिक था। लेकिन जंगल में गुजरने वाले से 10 प्रतिशत और समुद्र यात्रा करने वाले से 20 प्रतिशत मासिक लिया जाता था। जब सूद की दर उधार ली गयी रकम से अधिक हो जाती थी, तो सूद की अदायगी बंद हो जाती थी। पति पत्नी के ऋण के लिए उत्तरदायी था, किंतु पत्नी, पति के ऋण के लिए नहीं।

व्यापारिक मार्ग : मौर्यकाल में ही अधिकांश व्यापारिक मार्गों का विकास हो चुका था। नंद एवं मौर्य वंश के शासन में एक साम्राज्य का निर्माण हुआ था। सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् नये मार्गों की खोज हुई। मुख्यत: दो मार्ग आंतरिक व्यापार में प्रचलित थे। पहला मार्ग उत्तर से दक्षिण जाता था और तक्षशिला को निम्न सिंधु घाटी से जोड़ता था और वहां से भड़ौच चला जाता था।इसमें उतरापथ (दूसरा पथ) अधिक चालू था। वह तक्षशिला से होकर आधुनिक पंजाब होते हुये यमुना के तट पर पहुंचता था और यमुना का अनुसरण करते हुये मथुरा पहुंचता था। फिर मथुरा से मालवा में उज्जैन में आकर एक और मार्ग से मिलता था। फिर वह उज्जैन से भड़ौच चला जाता था।

वाट, माप और विनिमय-इस काल के वाटों में प्रस्थ, आढ़क, द्रोण और खारी होते थे, जो क्रमश: बढ़ते हुये क्रम से थे। खारी और द्रोण अनाज का माप था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अन्य प्रकार के वाटों का भी उल्लेख हैं। उदाहरण के लिए पल, माष, कर्षापण, सर्प, कुडव। कुडव अनाज का वाट था जो लकड़ी या लोहे का बना होता था। दिव्यावदान में अंजलि, मनिका, विलभागम और प्रबोध का उल्लेख है। उत्तरकालीन अभिलेखों में कुछ स्थानीय माप मणि, पलिका, तली और तुला का उल्लेख है। काल और स्थान से संबंधित मापों में अक्ष, पद, अरत्नी, प्रदेश, वित्सती और दिष्टि महत्वपूर्ण हैं। जाली वाटों का भी मिलिन्दपञ्हों में उल्लेख है, जिसका प्रयोग निषिद्ध था। मनु ने सिक्कों की एक तालिका दी है, जो वजन पर आधारित है। 5 रति बराबर 1 माष, 16 माष - 1 सुवर्ण, 4 सुवर्ण - 1 निष्क, 10 निष्क - 1 धरण। 'दैक्रम' नामक सिक्का इंडो-ग्रीक शासकों ने चलाया। इसका 1/6 भाग ओवोल कहलाता है। भारत में कुछ यूनानी शासकों एवं शकों ने चांदी के सिक्के चलाये थे।

कुषाणों के चांदी के कोई सिक्के नहीं मिले हैं। पेरीप्लस ने लिखा है कि दक्षिणापथ में इंडोग्रीक एवं शकों के सिक्के प्रचलित थे। कुषाणों के सिक्कों का वजन औसतन 123.2 ग्राम होता था, जबकि इंडोग्रीक के सोने के सिक्के का वजन 134.4 ग्राम होता था। कुषाणों के अधिकतर सिक्के 1 दीनार, 2 दीनार और चौथाई दीनार के मिले हैं। कृषि के बारे में मनु ने स्पष्ट लिखा है ''खेत का स्वामी वह व्यक्ति होता है, जिसने जंगल साफ करके भूमि को आबाद किया है।'' इसी प्रकार का विचार मिलिन्दपञ्हो का है। कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए ऐसा संभवत: कहा गया था। मनु ने लिखा है कि ब्राह्मणों के लिए बिना जुती जमीन का लेना उतना पाप नहीं, जितना जुती जमीन का लेना। मनुस्मृति में लिखा गया है कि राजा 1, 10, 20 और 1000 ग्रामों को राजस्व कर्मचारियों को कुछ भूमि खंड दे सकता था। इसका अर्थ यह है कि मनु के काल में गैर धार्मिक कार्यों के लिए भी भूमि देना वैध समझा जाता था। सिंचाई के विकास के लिए भी उस युग में कार्य किया गया। खारवेल ने कलिंग में एक नहर का विकास (विस्तार) किया और शक राजा रुद्रदामन ने सुदर्शन झील का निर्माण किया। इसी प्रकार गाथा सप्तशती से ज्ञात होता है कि सिंचाई के लिए सबसे पहले रहट का प्रयोग इसी काल में हुआ था। राजस्व के लिए कौटिल्य ने ''राष्ट्र'' शब्द का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत उसने सीता, भाग बलि, कर, पिंडकर सेनाभक्त और उत्संग का उल्लेख किया है। कौटिल्य 'सेनाभक्त' नामक कर की भी चर्चा करता है। कुछ अन्य कर निम्नलिखित हैं-आचायनिक (उपहाहार), अधिक लाभ पर अतिरिक्त कर पार्श्व था, पानी भूमि पर कर कौष्ठेयक कहलाता था, पशुओं द्वारा की गयी क्षति की क्षति-पूर्ति मराहनक नामक अधिकारी करता था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

Balkrishna Govind Gokhale: Ancient India : History and Culture, Popular, 1995.
Upinder Singh and Nayanjot Lahiri: Ancient India : New Research, Oxford University Press, 2009.
Sabir Hussain Khan: Ancient Indian and Iranian Art : A Comparative Study, Janaki Prakashan, 2008.
John W. McCrindle: Ancient India as Described by Ptolemy, Munshiram, 2000.
G.P. Singh: Ancient Indian Historiography : Sources and Interpretations, D K Printworld, 2003.
Ratan Lal Basu and Raj Kumar Sen: Ancient Indian Economic Thought : Relevance for Today, Rawat Pub, 2008.
Ramprakash Mathur: Ancient Indian History, Murari Lal and Sons, 2006.
N.N. Bhattacharyya: Ancient Indian History and Civilization: Trends and Perspectives, Manohar, 1988.

Justice M. Rama Jois: Ancient Indian Law - Eternal Values in Manu Smriti , Universal Law Pub, 2007.
P. Kutumbiah: Ancient Indian Medicine, Orient Longman, 1999.
R.N. Dhar: Ancient Indian Law Before and After Coming Islam, Cyber Tech, 2010.
Ashoka K. Mishra: Ancient Indian Metallurgy : Theory and Practice, Agam Kala Prakashan, 2009.
Romila Thapar: Ancient Indian Social History : Some Interpretations, Orient Blackswan, 2010.
Vijay Kumar: Ancient Indian Society : Continuity and Change, Snajay Prakashan, 2002.
Sharad Hebalkar: Ancient Indian Ports : With Special Reference to Maharashtra, Munshiram Manoharlal, 2001.
Shankar Goyal: Ancient Indian Numismatics : A Historiographical Study, Kusumanjali, 1998.
Sanjay Narula: Ancient Indian Social and Political Thought, Murari Lal and Sons, 2007.
N.N. Bhattacharyya: Ancient Indian Rituals and Their Social Contents, Manohar, 2005.

भारत-पाक सन्दर्भ में अमेरिकी नीति: एक अध्ययन

डॉ० प्रीति कुमारी

एस.पी.एस महिला कॉलेज, जमुई

भारत और पाकिस्तान दक्षिण एशिया की दो प्रमुख शक्तियाँ एवं पड़ोसी राष्ट्र हैं जिनके सम्बन्ध, विभाजन के समय से ही तनावपूर्ण रहे हैं। दोनों के मध्य एक चिनगारी कभी भी एक युद्ध को जन्म दे सकती है। दोनों के मध्य तीन युद्ध (1948, 1965 और 1971) तथा एक छद्म कारगिल युद्ध (1999) को हो चुका है।

अमेरिका की नीति आरंभ से ही दक्षिण एशिया में अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप रही है। स्वतन्त्रता के बाद अमेरिका लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के कारण भारत को अपने गुट में शामिल करना चाहता था। इस कारण सन् 1952 तक उसका कुछ झुकाव भारत की तरफ था। परन्तु भारत द्वारा शीतयुद्ध की आलोचना करने के कारण व गुटनिरपेक्ष नीति अपनाने के कारण तथा पाकिस्तान द्वारा सेन्टो सैनिक संगठन में सम्मिलित होने के कारण और साथ ही साथ सोवियत संघ के सन्दर्भ में पाकिस्तान की भौगोलिक निकटता के कारण अमेरिका ने पाक समर्थक नीति अपनाई। अमेरिका ने भारत-पाक सन् 1965 व सन् 1971 के युद्ध में भी समर्थक नीति अपनाई। सन् 1971 के युद्ध में भारत को हराने के लिए अमेरिका ने हिन्द महासागर में एक बेड़ा भी भेजा था। इस दौरान कश्मीर मुद्दे पर भी अमेरिका ने पाक का साथ दिया।

सन् 1991 में सोवियत संघ के विघटन और शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिकी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और भारत ने भी एकध्रुवीय विश्व और वैश्वीकरण के युग में अमेरिकी महत्ता को समझा। इस कारण भारत-अमेरिका सम्बन्धों में गुणात्मक सुध ार हुआ। अमेरिका की इस परिवर्तित नीति के निम्न कारण थे-

1. सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी रूस अमेरिका का कठोर विरोधी नहीं रहा, इसलिए अमेरिका के लिए पाक प्रथम पंक्ति का राष्ट्र नहीं रहा।
2. वर्तमान में चीन महाशक्ति के रूप में उभर रहा है और अमेरिका चीन को नियन्त्रित करने के लिए भारत को महत्वपूर्ण मानता है।
3. भारत-अमेरिका दोनों लोकतान्त्रिक राष्ट्र है।
4. भारत में एक बड़ा मध्यम वर्ग अंग्रेजी बोलने वाला है जो अमेरिकी वस्तुओं का अच्छा उपभोक्ता है।
5. अमेरिकी व्यापार विभाग के अनुसार भारत भविष्य की आर्थिक शक्ति है, इसलिए अमेरिकी कम्पनियों का भारत में निवेश महत्वपूर्ण हो सकता है।
6. क्रिस्टाइलर जैसे बुद्धिजीवियों का कहना है कि भारत सन् 2025 तक एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरेगा। अत: अमेरिका को भारत के साथ रक्षा क्षेत्र में हर स्तर पर सहयोग करना चाहिए।
7. भारत-अमेरिका दोनों आतंकवाद से ग्रस्त हैं। आतंकवाद का उन्मूलन दोनों मिलकर कर सकते हैं और इस्लामी आतंकवाद को समाप्त कर सकते है।

उपर्युक्त सभी कारणों से भारत-अमेरिका रक्षा क्षेत्र, व्यापारिक-आर्थिक, यूरेनियम ऊर्जा क्षेत्र आदि में आधारभूत प्रगति हुई और दोनों के मध्य सम्बन्ध रणनीतिक साझेदार की द्वितीय अवस्था तक पहुंच चुके हैं। इन सबके बावजूद, अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ विरोधी नीति नहीं अपनाया है। वह पश्चिमी एशिया के मामले में और इस्लामिक आतंकवाद के मामले में आज भी पाकिस्तान को महत्वपूर्ण मानता है। अत: अमेरिका आज दक्षिण एशिया में एकतरफा भारत के साथ सम्बन्ध नहीं बढ़ा रहा है, अपितु पाकिस्तान को भी अमेरिकी सहयोगी बनाए हुए है। वस्तुत: दक्षिण एशिया में वह अपने हितों के अनुरूप संतुलन की कूटनीति (Balance diplomacy) का प्रयोग कर रहा है। अमेरिका की इस संतुलन-कूटनीति को निम्न उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है -

1. कारगिल युद्ध (1999) के दौरान अमेरिका ने एक ओर भारतीय दृष्टिकोण की सराहना की तो दूसरी ओर यह भी कहा कि भारत को नियन्त्रण रेखा का सम्मान करना चाहिए। उसने नवाज शरीफ को कारगिल युद्ध से छुटकारा दिलवाने का आश्वासन भी दिया।
2. पाकिस्तान में नवाज शरीफ के तख्ता पलट के बाद सैनिक शासक परवेज मुशर्रफ के काल में जब भारत में सीमा पार से आतंकवादी गतिविधियां बढ़ने लगी तो अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने सन् 2000 की यात्रा के दौरान एक ओर पाकिस्तान की आलोचना करते हुए उस पर सीमा पार से आतंकवाद को कम करने के लिए दबाव डाला तो दूसरी ओर उसने भारत-पाक दोनों से वार्ता के लिए दबाव डाला। इसी के परिणामस्वरूप पाकिस्तान सैन्य प्रमुख आगरा शिखर वार्ता (2001) में सम्मिलित होने आए, जिसका कोई परिणाम नहीं निकला।
3. 13 दिसम्बर, 2001 को पाक आतंकवादियों ने भारतीय लोकतंत्र के दुर्ग भारतीय संसद पर हमला किया तो अमेरिका ने पुन: संतुलन की कूटनीति का प्रयोग करते हुए एक ओर पाक को भारत में आतंकवाद प्रोत्साहन में कमी लाने को कहा तो दूसरी ओर अफगानिस्तान में कार्यवाही में सहयोग के लिए उसे F-16 लड़ाकू विमानों की आपूर्ति का आश्वासन दिया।
4. जब भारत ने F-16 लड़ाकू विमानों की आपूर्ति का विरोध किया तो अमेरिका ने पुन: पाक पर दबाव डालकर भारत से वार्ता करने के लिए कहा। जिसका परिणाम था कि भारत-पाक सार्क सम्मेलन के दौरान इस्लामाबाद में शिखर बैठक की।
5. जब भारत ने मार्च 2004 में अमेरिकी विदेश सचिव कोलिन पावेल की भारत यात्रा के दौरान पाकिस्तान परमाणु तकनीक लीक होने तथा आतंकवाद प्रोत्साहन के लिए पाकिस्तान को नियंत्रित करने की बात की तो पुन: अमेरिका ने संतुलन की कूटनीति का प्रयोग करते हुए एक ओर पाकिस्तान को फटकार लगाई तो दूसरी ओर पाकिस्तान को प्रसन्न करने के लिए गैर-सदस्य नाटो सहयोगी राष्ट्र का दर्जा देने की घोषणा की।
6. जब भारत ने पाकिस्तान को गैर-सदस्य नाटो सहयोगी राष्ट्र का दर्जा देने का विरोध किया तो अमेरिका ने भारत को परमाणु ईंधन आपूर्ति की घोषणा की जिसका ही परिणाम है 123 समझौता या हेनरी हाइड एक्ट।
7. 26/11 मुम्बई आतंकवादी घटना (नवम्बर 2008) के कारण जब भारत ने अमेरिका से पाक को नियंत्रित करने के लिए कहा तो अमेरिका ने भारत को आतंकवाद उन्मूलन के लिए हर प्रकार से समर्थन देने की घोषणा की। दूसरी ओर पाकिस्तान का सहयोग प्राप्त करने के लिए कैरी-लूगर बिल लाने की घोषणा की, जिसमें पाकिस्तान को गैर-सैन्य आर्थिक सहायता देने की घोषणा हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सन् 1991 के बाद भी अमेरिका एकपक्षीय भारत- समर्थक नीति नहीं अपना रहा है। वह आज भी पश्चिमी एशिया और अलकायदा के उन्मूलन के लिए पाकिस्तान को महत्वपूर्ण मानता है। अमेरिका का उद्देश्य दक्षिण एशिया में शांति स्थापित करना नहीं है, अपितु अपने हितों की पूर्ति करना है, इसलिए वह दक्षिण एशिया में संतुलन की कूटनीति का प्रयोग कर रहा है।

वर्तमान में भारत के प्रति, अमेरिकी नीति मुख्यत: आर्थिक रही हैं। भारत अमेरिकी आर्थिक सहयोग की गरज के पीछे अमेरिका का खास मकसद अपनी संकट में फंसी युद्ध अर्थव्यवस्था को राहत देना है। भारत अमेरिकी परमाणु समझौते के जरिये अमेरिका

की रणनीति दक्षिण एशिया के उभरते बाजार पर कब्जा करने की रही है। आर्थिक सुधारों पर जोर देते रहने के बाद इसीलिए अब अमेरिका की ओर से पेंटागन के साथ भारत के सैन्य सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है। वैसे भी आतंक के विरुद्ध अमेरिका के युद्ध में इजराइल के साथ भारत मुख्य साझेदार है, जो भारतीय सत्तावर्ग के वर्चस्ववादी हिन्दू राष्ट्रवाद को ही अंततः मजबूत करता है और बहिष्कृत बहुसंख्य जन-गण को अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज से बाहर हाशिये पर ढकेलने के तंत्र में ऑक्सीजन फूंकता है।

भारत के लाखों डॉलर के सैन्य आधुनिकीकरण कार्यक्रम को देखते हुए अमेरिका के दो वरिष्ठ सीनेटरों ने पेंटागन से आग्रह किया है कि उसे भारत के साथ नजदीकी रक्षा संबंध स्थापित करना चाहिए, जिसमें सैन्य हथियार प्रणालियों का सह-निर्माण व सह-विकास शामिल हो। गौरतलब है कि बराक ओबामा ने हाल ही में भारत के खिलाफ टिप्पणी करते हुए कहा था कि यहाँ निवेश के लिए अच्छा माहौल नहीं है।

वहीं, उससे पहले मशहूर पत्रिका टाइम ने भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को 'अंडर अचीवर' बताया था। रिपब्लिकन बहुमत वाली अमेरिकी प्रतिनिधि सभा ने सर्वसम्मति से पाकिस्तान को मिलने वाली सैन्य सहायता में 65 करोड़ डॉलर (करीब 36 अरब रुपये) कटौती के प्रस्ताव का समर्थन किया है। अगर यह कटौती प्रस्ताव अमल में आता है तो आतंक के विरुद्ध अमेरिका की लड़ाई में भारत की भूमिका और प्रबल हो जाएगी और इससे अंततः पेंटागन के साथ भारत के रिश्ते और गहराने की संभावना है। भारत और अमेरिका, दोनों देशों का सत्तावर्ग इसके लिए भरसक कोशिश में लगा है।

भारत के रक्षा बाजार में पैठ बढ़ाने का सिलसिला जारी रखते हुए अमेरिका ने एक बड़ी खरीददारी अपने हक में कर ली है। भारतीय वायु सेना ने अपने हमलावर हेलीकॉप्टर बेड़े के लिए अमेरिकी हेलीकॉप्टर को चुन लिया है। वायु सेना के सूत्रों के अनुसार 22 हमलावर हेलीकॉप्टर का यह सौदा करीब 3500 करोड़ रुपये का है और इसकी होड़ में उतरे दो हेलीकॉप्टरों में से अमेरिका के अपाचे एएचडी-64डी को चुन लिया गया है। होड़ में दूसरा हेलीकॉप्टर रूस का एमआई 28 था। दोनों हेलीकॉप्टरों के उड़ान परीक्षण की रिपोर्ट रक्षा मंत्रालय को सौंपी गई थी। सूत्रों ने कहा कि अब इस सौदे पर अंतिम मुहर सुरक्षा मामलों पर कैबिनेट की समिति की लगेगी।

अमेरिका में प्रतिनिधि सभा ने पाकिस्तान को दी जाने वाली सैन्य सहायता में 65 करोड़ डॉलर की कटौती के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित कर दिया है। वहीं, एक शीर्ष रिपब्लिकन सांसद ने पाकिस्तान को विश्वासघाती 'बेनेडिक्ट अनरेल्ड' भी करार दिया है। यह प्रस्ताव कांग्रेस के रिपब्लिकन सांसद टेड पोए ने पेश किया, जिसे सदन में ध्वनि मत से मंजूरी दे दी गई। पोए ने 1.3 अरब डॉलर कटौती की मांग की थी, लेकिन सिर्फ 65 करोड़ डॉलर की ही कटौती की गई। अब यह संशोधन मंजूरी के लिए सीनेट के पास भेजा जाना है। सदन की विदेश मामलों की समिति के सदस्य टेड पोए ने कहा, "आतंकवाद के खिलाफ युद्ध में पाकिस्तान अमेरिका के लिए 'बेनेडिक्ट अनरेल्ड' है। यह विश्वासघाती, छलिया के साथ-साथ अमेरिका के लिए खतरा है।" बेनेडिक्ट अनरेल्ड एक अमेरिकी जनरल था, जो क्रांतिकारी युद्ध के दौरान ब्रिटिश पक्ष से जुड़ गया था।

पेंटागन ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि अमेरिका भारत सैन्य अभ्यासों का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। अब हम नियमित अभ्यास करते हैं जिससे हमें हमारे सैन्य एवं रक्षा संबंधों को गहरा करने में मदद मिलती है। रिपोर्ट में कांग्रेस को बताया गया है कि वर्ष 2011 में दोनों देशों की सेनाओं के बीच ऐसे 56 सहयोगात्मक आयोजन हुए जो भारत द्वारा किसी अन्य देश के साथ किये गये संयुक्त अभ्यासों में सर्वाधिक है। इसमें कहा गया है कि वर्ष 2010 में यूएस पैसिफिक कमाड (यूएसपीएसीओएम) और इंडियन इंटीग्रेटेड डिफेन्स स्टाफ (आईडीएस) ने अलास्का में आयोजित 'ज्वाइंट एक्सरसाइज इंडिया' (जेईआई) में भाग लिया था।

पेंटागन ने आतंक के विरुद्ध लड़ाई और समुद्री सुरक्षा के क्षेत्र में भारत के साथ सहयोग बढ़ाने की इच्छा जताई है। अमेरिकी कांग्रेस को सौंपी गई एक रिपोर्ट में पेंटागन ने आतंक के विरुद्ध लड़ाई और समुद्री सुरक्षा को दोनों देशों के बीच सैन्य सहयोग का एक महत्वपूर्ण आधार बताया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि समुद्री सुरक्षा अमेरिका-भारत रक्षा सहयोग के क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

इसके अनुसार, "अपनी सफलताओं को देखते हुए, हम समुद्री सुरक्षा सहयोग के लिए भारत-अमेरिका के बीच उस तंत्र को मूर्त रूप देने के लिए साथ-साथ काम करेंगे, जिस पर वर्ष 2006 में ही सहमति बन गई थी।" रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि भारत के साथ समुद्री सुरक्षा सहयोग बढ़ने से अगले पांच सालों में समुद्री क्षेत्र में जागरुकता व समुद्री डकैती के खिलाफ अभियान जैसे कई अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति होगी। आतंकवाद पर इस रिपोर्ट में कहा गया है कि अमेरिका का ध्यान अभी भी दक्षिण एशिया में सक्रिय अलकायदा व अन्य आतंकी खतरों पर केन्द्रित है। इसके अनुसार भारत अभी भी लश्कर-ए-तैयबा जैसे आतंकी समूहों का पहला निशाना है।

इस तरह हाल की घटनाओं की समीक्षा से स्पष्ट है कि वर्तमान में भारत-अमेरिका संबंधों में काफी सुधार हुआ है। यह बदलाव सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हो रहा है। राजनीतिक रूप से शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भारत के प्रति अमेरिका के रुख में स्पष्ट बदलाव आया है। भूमंडलीकरण के दौर में अर्थ का महत्व राजनीति से ज्यादा हो गया है। इसीलिए अमेरिका ने भारत के साथ अपने आर्थिक संबंधों पर विशेष ध्यान दिया है और इस क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. वैदिक वेद प्रताप, भारतीय विदेश नीतिः नए दिशा संकेत, दिल्ली, 1990.
2. वेंकटरमानी एम.एस., द अमेरिकन रोल इन पाकिस्तान (1947-1981), दिल्ली.
3. वर्मा एस.पी. एवं मिश्रा के.पी., फॉरेन पालिसी इन साउथ एशिया, दिल्ली, 1991.
4. महापात्रा सी., इंडो यूएस. रिलेशन्स इन टू 21स्ट सेंचूरी, दिल्ली, 2000.
5. शर्मा ए.डी., राजनीति विज्ञान, अरिहंत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010.

मध्यकालीन भारत में मुगल-राजपूत संघर्षः विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० आशीष कुमार

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलाका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

राजपूतों ने साम्राज्य के विकास में बड़ी सहायता की थी। औरंगजेब उनकी मित्रता का मूल्य समझने में असफल रहा। 'उसने उनके प्रति राज्य की नीति में परिवर्तन कर दिया। अम्बर के राजा जयसिंह को वह अपनी नीति के विरुद्ध राजपूत विरोध का एक प्रबल नेता समझता था। उसे (राजा जय सिंह को) 1667 ई. में दक्कन में अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद एक से अधिक कारणों से मारवाड़ की विजय की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। इसका युद्धकौशल की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि मुग़ल राजधानी से पश्चिमी भारत के समृद्ध नगरों एवं बन्दरगाहों के कुछ सैनिक एवं व्यापारिक रास्तों पर इसका नियंत्रण था। उस समय उत्तर भारत में एक प्रबल सैनिक राज्य के रूप में इसकी स्थिति औरंगजेब को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती थी। उसे संदेह था कि इसका प्रधान जसवन्त सिंह, जो पहले दारा शिकोह के दल का था, उसकी नीति के विरोधियों का नेता बनकर खड़ा हो सकता है।

शीघ्र ही बादशाह को मारवाड़ के विरुद्ध अपनी योजनाएँ कार्यान्वित करने का अनुकूल अवसर मिल गया। राजा जसवन्त सिंह खैबर की घाटी और पेशावर जिले में मुगल सीमान्त दस्तों का संचालन कर रहा था। इसी समय 10 दिसम्बर, 1678 ई. को जमरूद में उसकी मृत्यु हो गयी। इस समाचार को सुनते ही औरंगजेब ने तुरंत मारवाड़ को मिला लेने के लिए कदम उठाया। उसने वहाँ अपने अफ़सरों को फौजदार, किलादार कोतवाल एवं अमीन के रूप में नियुक्त कर लिया तथा उसे सीधे मुग़ल शासन में ले आया।

राठौर अपने राजा की मृत्यु से व्यग्र एवं त्रस्त हो जाने के कारण संयुक्त राष्ट्रीय प्रतिरोध उपस्थित करने में असफल रहे। मई के महीने में नागौर के नायक तथा जसवन्त के पोते (भतीजे के बेटे) इन्द्र सिंह राठौर को उत्तराधिकार शुल्क" के रूप में छत्तीस लाख रुपये देने पर जोधपुर का राणा मान लिया गया। परन्तु मुग़ल अफ़सरों से घिरा हुआ वह केवल नाम का शासक रहा। इस प्रकार बादशाह की नीति सफल प्रतीत होने लगी। परन्तु मारवाड़ वास्तव में अधीन नहीं किया गया था। उस राज्य का प्रत्येक राजपूत गृह बादशाह के तीव्र आघात का अन्त करने को कृतसंकल्प हो गया। "अब शाही नीति को बाधा पहुँचाने तथा अन्त में उसे पराजित करने को एक नया तत्त्व घटनास्थल में आ घुसा।"

इधर फरवरी, 1679 ई. में जसवन्त की मृत्यु के पश्चात् लाहौर में उसके दो पुत्रों का जन्म हो चुका था। एक तो जन्म के तुरंत बाद मर गया; परन्तु दूसरा, जिसका नाम अजीत सिंह था, जीवित रहा। उसके पिता के प्रमुख अनुगामी उसे दिल्ली ले आये। उन्होंने औरंगजेब से उसे मृतक राजा का उत्तराधिकारी स्वीकार करने का अनुरोध किया। बादशाह ने उसका पोषण अपने अन्तःपुर में करने का प्रस्ताव किया अथवा, एक अन्य समकालीन विवरण के अनुसार "अजीत को जोधपुर का राजसिंहासन उसके मुसलमान बन जाने की शर्त्त पर देने का वादा किया गया।" बादशाह के इस असाधारण प्रस्ताव से राठौरों की भावनाओं पर कठोर आघात पहुँचा। उन्होंने इन शर्तों को स्वीकार करने के बदले अपने प्राणों की आहुति देने की प्रतिज्ञा की। परन्तु शाही दल की संगठित शक्ति के विरुद्ध केवल भक्ति एवं अपरिणामदर्शी साहस किसी काम के नहीं हो सकते थे। संकट के इस क्षण में राठौरों के सौभाग्य से उन्हें दुर्गादास

(जसवन्त के मंत्री आसकरन का पुत्र) जैसा योग्य नेता मिल गया। जो "राठौर वीरता का पुष्प था।" राजस्थान के इतिहास में दुर्गादास को भयानक बाधाओं के होने पर भी अपने देश के प्रति निःस्वार्थ भक्ति के लिए एक अमर व्यक्ति माना जाता है, जो उचित ही है।

एक शाही फौज रानियों तथा अजीतसिंह को पकड़ने के लिए भेजी गयी। "सत्य का वरण करने वाले" राजपूतों की एक टुकड़ी उस पर टूट पड़ी। फैली हुयी गड़बड़ी से लाभ उठा कर दुर्गादास रानियों एवं अजीत सिंह को पुरूषों के परिधान में घोड़े पर लेकर भाग चला। उसके नौ मील जाने पर शाही दल उस तक पहुँच गया। यहाँ रणछोड़दास जोधा के अधीन राजपूतों की एक छोटी टुकड़ी ने जब तक हो सका तब तक पीछा करने वालों को रोकने का प्रयत्न किया तथा दुर्गादास रानियों एंव अजीत के साथ 23 जुलाई, 1679 ई. को जोधपुर पहुँचने में समर्थ हुआ। जब औरंगजेब ने विभिन्न प्रांतों से बहुत सी फौजें मँगवाई और तीनों शहज़ादों - मुअज्ज़म, आज़म एंव अकबर- को सेना के भिन्न-भिन्न दस्तों का कमान दे दिया गया। वह स्वंय सैनिक कार्यवाइयों का निर्देशन करने के लिए अगस्त, 1679 ई. में अजमेर गया। जोधपुर को जीत कर वहाँ लूटपाट मचायी गयी।

परन्तु मुग़ल बादशाह की इस आक्रमणकारी नीति के कारण मेवाड़ के वीर सिसोदिया मारवाड़ के निराश राठौरों से जा मिले। औरंगजेब ने तुरंत मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राणा ने मुग़लों की प्रबलतर शक्ति का सामना करना अनुचित समझा। इसलिए वह मेवाड़ के नगरों तथा पुरवों को त्यागकर अपनी सारी प्रजा के साथ पहाड़ी किलों में चला गया। नीचे के मैदान बंजर पड़ गये। मुग़लों ने सुगमता से चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। सफलता के लिए निश्चित होकर बादशाह अकबर के अधीन एक प्रबल सेना चित्तौड़ में छोड़ अजमेर के लिए चल पड़ा। परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखें खुल गयी। राजपूत छिप कर युद्ध करते रहे। वे मुग़लों की चौकियों पर इतने अधिक साहस के साथ टूट पड़ते थे कि "मुग़ल चौकियों का कमान स्वीकार करनेवाला कोई न रहा; एक-के-बाद दूसरे कप्तान इस खतरनाक सम्मान को बहाने बनाकर अस्वीकार करने लगे।" अपनी सफलताओं से प्रोत्साहित होकर राजपूतों ने मई, 1680 ई. में शाहजादा अकबर के अधीन रहने वाली मुग़ल सेना पर हमला कर दिया। बादशाह ने इस पराजय के लिए शाहज़ादा अकबर को उत्तरदायी ठहराया। उसने चित्तौड़ की सेना को शाहजादा आज़म के अधीन कर दिया तथा अकबर को मारवाड़ भेज दिया।

शाहज़ादा अकबर ने अपने हटाये जाने के अपमान की पीड़ा का तीव्र अनुभव किया। वह राजपूतों की योग्यता उनके साथ युद्ध करते समय अच्छी तरह समझ ही गया होगा। अब यह उनके साथ मिलकर अपने पिता से दिल्ली का राजमुकुट छीनने के सपने देखने लगा। राजपूत नायकों ने उसे बतलाया कि किस प्रकार उसके पिता की नीति से मुगलसाम्राज्य की स्थिरता नष्ट हो रही थी। "उन्होनें दो सबसे महान् राजपूत जातियों सिसोदिया एंव राठौर, की सैनिक शक्ति से उसकी सहायता करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उनकी आशा थी कि दिल्ली के राजसिंहासन पर एक सच्चा राष्ट्रीय राजा बैठा सकेंगे।" लगभग सत्तर हजार व्यक्तियों की एक सेना लेकर,"जिसमें राजपूताना का सर्वोत्कृष्ट रक्त था," शाहजादा अकबर 15 जनवरी, 1681 ई. को अजमेर के निकट पहुँचा।

उस समय औरंगजेब की स्थिति संकटपूर्ण थी, क्योंकि उसकी सेना की दो प्रमुख टुकड़ियां चित्तौड़ एंव राजसमुद्र झील के निकट थी। यदि शाहजादा तुरंत इस "सुअवसर" का उपयोग कर लेता, तो बादशाह दिक्कत में पड़ सकता था। उसने आलस्य एंव विषय-सुख में अपना समय गँवा दिया और इस प्रकार अपने चतुर पिता को अपनी प्रतिरक्षा के लिए तैयारियाँ करने का अवसर दे दिया। बादशाह ने अपने विद्रोही पुत्र के पास एक पत्र लिखा। उसने ऐसा प्रबंध किया जिसमें वह पत्र राजपूतों के हाथ पड़ जाए। इससे अकबर के मित्रों को यह विश्वास हो गया कि मुग़ल शाहजादा उनके साथ छल कर रहा है। बादशाह की यह चतुराईपूर्ण युक्ति सफल सिद्ध हुई। अकबर के राजपूत मित्रों ने विश्वासघात का संदेह कर उसे त्याग दिया तथा वह शीघ्रता से "अपनी जान बचाकर राजपूतों के पास से भाग गया।" परन्तु राजपूतों को तुरंत अपने प्रति किये गये छल का पता चल गया।

वीर राठौर नायक दुर्गादास को शाहजादे के निर्दोष होने का पता चल गया। उसने वीरता के साथ उसे अपने पिता के प्रतिरोधों से बचाया तथा उसे खानदेश एवं बगलाना होकर मराठा राजा शम्भूजी के दरबार में पहुँचा दिया। पर शिवाजी का विलासी उत्तराधिकारी इस भगोड़े मुग़ल शाहजादे को कोई कार्यसाधक सहायता न दे सका। इसका "हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्य और मेल पर आधारित"भारतीय साम्राज्य का स्वप्न "निरर्थक ही रहा"। लगभग छः वर्षो के बाद निराश मुग़ल शाहजादा फारस चला गया। वहीं 1704 ई. में उसकी मृत्यु हुई। शाहजादा अकबर के विद्रोह से दिल्ली का बादशाह बदला नहीं जा सका। परन्तु इससे मेवाड़ के राणा

को बहुत चैन मिला। किन्तु मुग़लों के विरूद्ध उसकी क्षणिक सफलता से उसकी प्रजा को बहुत कष्ट हुआ। मुग़लों को भी काफी तकलीफ हुयी तथा उन्हें राजपूतों के विरुद्ध किए गये कार्यो से कोई निश्चित लाभ नहीं हो सका। इन विचारों से बादशाह तथा राजसिंह के पुत्र एंव उत्तराधिकारी राणा जयसिंह ने जून, 1681 ई. में संधि कर ली। राणा ने जजिया के बदले कुछ जिले दे दिये तथा मुग़ल मेवाड़ से हट गये। परन्तु मारवाड़ के साथ सम्मानपूर्ण शर्तो पर संधि नहीं हुयी और उसे "तीस वर्षीय युद्ध करते रहे। उन्होंने मुगल चौकियों को तंग किया। इसलिए मुग़ल अफ़सरों को उसके (दुर्गादास के) आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए अपने शत्रु को विवश होकर चौथ देना पड़ा। युद्ध चलता ही रहा। अंत में औरंगजेब की मुत्यु के पश्चात् उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम ने 1709 ई. में अजीत सिंह को मारवाड़ का राणा स्वीकार कर लिया।

संदर्भ

- Harbans, M.: *Perspectives on Medieval History*. New Delhi: Vikas, 1993.
- Hardy, Peter: *Historians of Medieval India: Studies in Indo-Muslim Historical Writing*. London, 1960.
- Henry Beveridge : *The Akbarnama of Ab-ul-Fazl,* Bibliotheca Indica Series, 1897.
- Hunter, William : *The Imperial Gazetteer of India,*Turbner & Co.: London 1886.
- Irvine, William: *Later Mughals*, New Delhi, 1971.
- Kamal Kishore: *Economic History of Moghul India: An Annotated Bibliography, 1526-1875*. Calcutta: Santiniketan, 1991.
- Koch, Ebba: *Mughal Architecture*, Munich: Prestel-Verlag, 1991.
- Krishnamurti, R.: *Akbar: The Religious Aspect*. Baroda, 1961.

रूढ़िवादी हिन्दू और डॉ० भीमराव अम्बेडकर का संघर्ष: एक ऐतिहासिक विवेचन

डॉ० प्रणीता कुमारी

सहायक प्रोफेसर, के.पी.एस. टीचर ट्रेनिंग कॉलेज, टेका विगहा, बख्तियारपुर, पटना

डॉ० बी०आर० अम्बेडकर अस्पृश्य मानी जानेवाली 'महार' जाति में पैदा हुए थे। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होंने पारम्परिक वर्णव्यवस्था और उसके पोषक रूढ़िवादियों को झकझोरते हुए एक नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। यद्यपि हिन्दू वर्णव्यवस्था की संकीर्णतओं पर यह कोई पहला आक्रमण नहीं था। पूर्व में बुद्ध और महावीर के दार्शनिक धार्मिक आन्दोलनों के अतिरिक्त तात्कालीन वर्णाधारित सामाजिक विभाजन के विरुद्ध उठाये गये आन्दोलन, विशेषकर महाराष्ट्र में कम नही थे। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जिस निष्ठा से इस आन्दोलन को खड़ा किया, उसके फलस्वरूप विश्व की सामाजिक क्रांति के इतिहास में इसने एक विशिष्ट स्थान ग्रहण किया।

निम्न जाति में पैदा होने की पीड़ा को उन्होंने संवेदना के स्तर पर बहुत दूर तक महसूस किया था इसलिए उन्होंने दलित-चेतना को नई ऊर्जा देते हुए पारम्परिक वर्णव्यवस्था और रूढ़िवादियों के विरुद्ध युद्ध का ऐलान कर दिया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुयायियों को धर्म परिवर्तन करने की न सिर्फ प्रेरणा दी वरन् घोषित किया कि ''भारत को आजादी मिलने के पहले दलितों को आजादी मिले। दोनों के पीछे एक ही उद्‌देश्य है - स्वतंत्रता की कामना।''[1] डॉ. अम्बेडकर मानवता के झुलसते प्राणों को अभयदान करना चाहते थे। हिन्दू समाज व धर्म तब अंध व रूढ़ परम्पराओं से बेतरह आवृत्त था और उसमें विवेक की दीपशिखा जाग्रत करने वाले को पागल व धर्मविरोधी समझा जाता था।

डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि वर्ग-धर्म का उन्मूलन हो, जबकि रूढ़िवादी मनुस्मृति के आधार को स्वीकार करते थे। वर्णाश्रम व्यवस्था को उससे बल मिलता है। वे प्रत्येक स्त्री-पुरुष को शास्त्रों की गुलामी से मुक्ति चाहते थे। शास्त्रानुमोदित हानिप्रद विचारों से उनके मन को मुक्त कराया जाये और निर्भीक होकर परस्पर शादी-विवाह तथा खान-पान कर सके।[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती वर्णधर्म के पक्षधर थे। केवल वह उसमें गुणधर्म सिद्धांत को अपनाने पर जोर देते थे, जो संभव नहीं हो सकता था। डॉ. भगवान दास ने मनु के विधान द्वारा मानव-जीवन की व्यवस्था का सर्वोपरि मार्ग सिद्ध किया था। उनकी दृष्टि में वर्गविहीन समाज की अपेक्षा वर्गाधृत समाज अधिक श्रेष्ठ और मानवोपयोगी था।[2]

स्वामी विवेकानन्द भी जाति-व्यवस्था के न केवल प्रशंसक थे बल्कि सशक्त पक्षधर भी थे। उन्होंने कहा था- ''मैं जाति के लिए पैदा हुआ हूँ, मैं जाति के लिए जीवित हूँ... जाति में पैदा होने के नाते सम्पूर्ण जीवन जातिगत नियमानुसार जिया जाना चाहिए।'' निष्कर्षत: सभी युगपुरुष व महात्मा 'मनुस्मृति' और उसमें वर्णित वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर थे। डॉ. अम्बेडकर इनके विरोधी थे। उनका निष्कर्ष कि बिना जाति वे वर्ण-व्यवस्था को समाप्त किये हिन्दू धर्म व समाज छूआ-छूत, भेदभाव आदि के दुर्गुणों से मुक्त नहीं हो सकता है। चूँकि डॉ० अम्बेडकर की 'मनुस्मृति' व वर्ण-व्यवस्था में कोई आस्था नहीं थी, फलत: डॉ. अम्बेडकर का विरोध होना अवश्यम्भावी था। तमाम हिन्दू उनके पीछे पड़ गये और उन्हें धर्म विरोधी व भारतीय संस्कृति का विध्वंसक घोषित कर दिया गया।[3]

गांधीजी स्वयं वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर थे क्योंकि उनकी दृष्टि में ''वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर मनुष्य के मिशन को, शरीर और आत्मा की एकता के लक्ष्य को लेकर परिभाषित करता है।[4]'' गांधीजी ने इस व्यवस्था की तुलना न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम से

करते हुए कहा कि जिस प्रकार वह नियम न्यूटन की खोज से पूर्व भी था उसी प्रकार वर्णाश्रम प्रकृति नियम है, जो उसकी खोज से पूर्व (गुरुत्वाकर्षण नियम) क्रियाशील था। उससे हिन्दू धर्म की रक्षा हुई है। वह ''आनंद तथा वास्तविक धार्मिक अनुसरण के लिए सबसे उत्तम सुरक्षा का मार्ग है।''[5] फलतः उनमें व गांधीजी में विरोध होना स्वाभाविक था। हालांकि गांधीजी छूआ-छूत के विरोधी थे, परन्तु वे उससे दूर करने के लिए प्रयत्नशील नहीं थे। डॉ० अम्बेडकर छूआ-छूत को जड़ से मिटाना चाहते थे, फलतः वे हिन्दू धर्म की समीक्षा करते हुए उस 'मनुस्मृति' आश्रित व्यवस्था से अपना विरोध जताते थे। उनकी दृष्टि में गांधीजी द्वारा अछूतों को 'हरिजन' संज्ञा अनुचित तथा अवैज्ञानिक थी जबकि वे अछूत सत्ता के अस्तित्व को हिन्दू धर्म से मिटा देना चाहते थे। अछूत का अस्तित्व 'हरिजन' नाम देने से नहीं मिटेगा, यह उनकी दृढ़ मान्यता थी।[1]

वह गांधीजी जैसे व्यक्ति को अपना विरोधी पाकर यह कहते थे कि उनकी जगह कोई सामान्य व्यक्ति उनका विरोध करता तो वह कदापि उस ओर ध्यान नहीं देते; गांधीजी का जनता पर गहरा प्रभाव होने के कारण उनके विरोध का प्रत्युत्तर नहीं देना स्पष्ट कर देता कि गांधीजी अपनी जगह पर ठीक हैं। इस ठीक होने का आशय है कि अछूत अछूत बने रहें या सवर्णों की दया पर रहें। डॉ. अम्बेडकर को मूर्तिभंजक, धर्म का शत्रु तथा अराष्ट्रीय कहा गया क्योंकि वह समाज-सुधार को राजनीतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक महत्व देते थे।[2]

डॉ. अम्बेडकर वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणवाद के घोर विरोधी थे। उन्होंने स्पष्टतः कहा कि समस्त ब्राह्मण अछूतों के दुश्मन हैं। ब्राह्मणवाद से उनका तात्पर्य स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व की भावना का निषेध करने वाली शक्तियों से था। उनका कहना था कि यह ब्राह्मणवाद सभी वर्गों में व्याप्त है और मात्र ब्राह्मणों तक सीमित नहीं है, हालांकि यही लोग उसके जन्मदता रहे हैं; जो समाजिक, धार्मिक, राजनीतिक अधिकारों को अपने में केन्द्रीभूत किये हुए है। वस्तुतः ब्राह्मण वर्णाश्रम व्यवस्था का मूल कारण है। ये दोनों ही शास्त्रों की देन है अतः शास्त्रों से धर्म को मुक्त करना होगा। वर्णवाद ब्राह्मणवाद के द्वारा ही फलीभूत हुआ है। अतः उसको भी हटाना होगा।[3]

रूढ़िवादि हिन्दुओं के प्रति उन्होंने बहुत कुछ कहा; वे चाहते थे कि हिन्दू धर्म अपने सनातन रूप को ग्रहण करे। उनकी दृढ़ मान्यता थी: ''वे दुख, जिनसे अछूत पीड़ित हैं, यद्यपि उनका इतना प्रचार नहीं हुआ है जितना कि यहूदियों का, तो भी किसी तरह कम यथार्थ नहीं है। न ही दमन के वे साधन व पद्धतियाँ, जिनका हिन्दुओं ने अछूतों के प्रति प्रयोग किया, इसलिए कम प्रभावशाली हैं कि वे उन तरीको से कम भयंकर हैं जिनका प्रयोग नाजियों ने यहूदियों के विरुद्ध किया। यह यहूदियों के विरुद्ध नाजियों का एन्टी-सीमेटिज्म, विचार एवं प्रभाव में अछूतों के विरुद्ध हिन्दुओं के सनातनवाद से किसी तरह भी भिन्न नहीं है।''[4]

इतना ही नहीं उन्होंने मनुवादी व्यवस्थाओं के प्रति जो सफल एवं ऐतिहासिक विद्रोह किया उसकी झलक हमें डॉ. अम्बेडकर द्वारा संसद में पारित 'हिन्दू कोड बिल' में मिलती है, उसे देखते हुए उन्हें भारतीय नारी का उद्धारक कहा जा सकता है। उन्होंने भारतीय समाज में नारियों को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिए हिन्दू समाज में व्याप्त आर्थिक, सामजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक असमानताओं के खिलाफ इस बिल को प्रस्तुत किया था। यह बिल मूलतः नारियों की दासता मुक्ति का शंखनाद था। इस बिल में नारियों को पिता की सम्पति में पुत्र के समान अधिकार, विधवा विवाह का अधिकार, अपनी इच्छा से विवाह करने का अधिकार, पति की प्रताड़ना से त्रस्त होने पर तलाक लेने का अधिकार, बच्चों को गोद लेने का अधिकार आदि की व्यवस्था थी। इस बिल का मुख्य उद्देश्य था हिन्दू ब्राह्मणवादी परम्परा पर आधारित सामाजिक, आर्थिक, भेदभाव व अत्याचारपूर्ण मान्यताओं को जड़ से उन्मूलन कर समताधारित समाज का निर्माण करना।

भारतीय इतिहास में यह काला अध्याय है कि हिन्दू धर्मावलम्बियों ने इसे संसद में पारित नहीं होने दिया। यहाँ तक की नेहरू जैसे प्रगतिशील प्रधानमंत्री ने भी इसे संसद में पारित कराने में सकारात्मक सहयोग नहीं दिया। अंततः डॉ० अम्बेडकर ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। डॉ. अम्बेडकर जैसे अछूत की बात सवर्ण जाति के युगपुरुष कैसे स्वीकार कर लेते? फिर एक अछूत का नाम उनसे उपर नहीं आ जाता![1]

निष्कर्षतः डॉ० अम्बेडकर हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता से क्षुब्ध हो उठे थे। उन्होंने प्रयास किया था कि अछूतों को हिन्दू धर्म में सवर्णों जैसा सम्मान मिले। परन्तु वहाँ भी अछूतों को सम्मान के स्थान पर 'हरिजन' एक नया शब्द मिला। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार

हरिजन तो सब ही हैं फिर अछूतों को यह नाम क्यों दिया गया? यह भी अछूतों के लिए भ्रम जाल था। उन्होंने नारियों की मुक्ति के लिए जो उपाय सुझाये थे, वे भी सवर्ण रूढ़िवादियों को नागवार लगा। फलत: उन्होंने जितना प्रयत्न सम्मान हिन्दू धर्म में बने रहने का किया वे उतने निराश होते गये। इसी का यह फल है कि उनको यह कहना पड़ा- ''यद्यपि मैंने अभी तक अपना धर्म नहीं बदला किन्तु मैं शपथपूर्वक आपसे कहना चाहता हूँ कि मै एक हिन्दू के रूप में नहीं मरूँगा।[2] 14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने अंत में बौद्ध धर्म स्वीकार कर अपनी शपथ को पूरा किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कीर, धनंजय, डॉ अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन; पोपुलर प्रकाशन, बंबई, 1987.
- अम्बेडकर, बी. आर. : एनहिलेशन ऑफ कॉस्ट, भीमपत्रिका प्रकाशन जालंधर.
- भटनागर, राजेन्द्र मोहन, डॉ. अम्बेडकर : जीवन और दर्शन, किताब घर गांधीनगर, दिल्ली.
- सोशलिष्ट थॉट इन मॉर्डन इण्डिया.
- यंग इण्डिया : 24 नवम्बर 1927
- कुबेर, डबल्यू. एन., बी.आर.अम्बेडकर : बिल्डर्स ऑफ मॉर्डन इण्डिया, पब्लिकेशन्स डिविजन, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया, फरवरी 1987.
- दास भगवान, दस स्पोक अम्बेडकर, वाल्यूम-I (स्पीच, 1956)
- कुबेर, डबल्यू. एन., डॉ. अम्बेडकर -ए क्रिटिकल स्टडी, पी.पी. हाउस, नई दिल्ली, 1973.
- जाटव, आर., द सोशल फिलॉसफी ऑफ अम्बेडकर, 1965.
- जाटव, आर., द पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ अम्बेडकर.
- अम्बेडकर्स एसेज ऑन द राइज एण्ड फॉल ऑफ द हिन्दू वूमैन, महाबोधि पत्रिका.

महिला हिंसा एवं कानून व्यवस्था

डॉ० निखिल कुमार

अतिथि व्याख्याता समाजशास्त्र विभाग
एम०एच०एम० महाविद्यालय, सोनवर्षा
बी०एन०एम०यू०, मधेपुरा

शोध-सारांश

अपराध सार्वभौमि होते है। ये होते रहे है, हो रहे है तथा सदैव होते रहेगें। मानवीय सामाजिक जीवन बिताने के कर के रूप में अपराधो को सहन करना पड़ता है परन्तु पिछले कुछ दशकों में महिला के प्रति हिंसा अथवा हिंसात्मक अपराध की धटनाओं में काफी वृद्धि हुई है तथा यह समाज वैज्ञानिकों, नीति निर्धारको, समाज-सुधारको एवं अन्य सभी के लिए एक गहन चिन्ता का विषय बना हुआ है। वास्तविकता यह है कि महिला को सुरक्षा व सुख प्रदान करने के बदले पुरुषों ने महिलाओं को तिरष्कृत किया है उसकी उपेक्षा की है, उसका अपमान व शोषण किया है, तथा यहाँ तक कि उसके साथ अमानवीय हिंसात्मक व्यवहार भी किया है। इसमें घरेलू हिंसा, लैंगिक हिंसा, दहेज हत्याएँ आदि शामिल है।

मुख्य शब्द :- घरेलू हिंसा, लैंगिक हिंसा, दहेज हत्याएँ, सामाजिक निन्दा, शारीरिक हिंसा, मानसिक हिंसा, दोहरी मानसिकता।

परिप्रेक्ष्य-

भारत तथा संसार के अधिकांश देशो में महिलाओं की स्थिति को लेकर सिद्धान्त एवं व्यवहार के बीच एक बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। एक ओर संसार के सभी धर्म एवं सामाजिक कानून महिलाओं की प्रतिष्ठा और सम्मान को सबसे अधिक महत्व देते है, तो दूसरी ओर व्यवहार में अधिकांश समाजो द्वारा महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक अधिकारो से वंचित किया जाता रहा है। आमतौर पर घरेलू हिंसा को पति-पत्नी के बीच का निजी मामला समझ लिया जाता है और इसमें आम-लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं होती जोकि उचित नहीं है। यह सिर्फ पति-पत्नी के बीच का मामला नहीं बल्कि समाज में व्याप्त एक विरूपता है जो हर तरह से समाज व राष्ट्र को हानि पहूँचाती है। महिला की यह मजबुरी रहती है कि उसके साथ धरेलू हिंसा का व्यवहार होने पर भी वह आर्थिक, समाजिक कारणों तथा बच्चो के प्रति अपने दायित्वों एवं सामजिक निन्दा से बचने आदि कारणों के चलते वे सब कुछ शांत भाव से सहन करती है।

वास्तव में महिलाओं के प्रति धरेलू हिंसा पग-पग विद्यमान है। लगभग 95 प्रतिशत महिलायें किसी न किसी रूप मे धरेलू हिंसा का शिकार है। ये धरेलू हिंसा तीन प्रकार की होती है, शरीरिक हिंसा, मानसिक हिंसा एवं यौनिक हिंसा। ज्यादातर महिलायें हिंसा के साथे में जीवन बिताने को बाध्य होती है। यह समस्या हर आयु वर्ग स्तर, जाति एवं धर्म समाज आदि की महिलाओं के साथ जुड़ी है।

महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के कारण :-

1. पितृसत्तात्मक समाज।
2. महिलाओं की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता।
3. अशिक्षा।

4. महिलाओं के प्रति विद्वेष भावना।
5. पारिवारिक तनाव।
6. सामाजिक कुप्रथायें।
7. व्यसनों का दुष्प्रभाव।
8 अपराधी के प्रति उदासीनता।
9 अहमवादी रवैया।
10 परिस्थितिवश प्रेरणा।

महिला हिंसा की घटनाओं में हो रही वृद्धि पर विभिन्न दृष्टिकोण :-

महिला हिंसा की घटनाओं में उत्तरोतर वृद्धि हो रही है। राजकीय आँकडों से स्पष्ट है। इस वृद्धि के अनेक कारण है-महिला द्वारा प्रतिरोध नहीं करना व अत्याचार या हिंसा को चुपचाप सह जाने की उनकी प्रवृति उतरदायी है, क्योंकि इस चुपचाप सह लेने वाली प्रवृति के कारण पुरुष निडर हो जाता है और वह हिंसा या अत्याचार की पुनरावृति करने से नहीं झिझकता है। पुरुषों का यौन उत्पीड़न के वारे में दोहरा मापदण्ड या दोहरी मानसिकता है एक ही पुरुष एक ही आचरण को बहन और पत्नी के मामले मे अभद्रता, अश्लीलता की श्रेणी में रखता है और उसी आचरण को अपनी अधीनस्थ, सहयोगी महिलाओं के मामले में भद्रता की श्रेणी में रखता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 70 प्रतिशत पुरुष यौन उत्पीड़न को गंभीर अपराध नहीं मानते, उनके अनुसार यह हल्की-फुल्की मस्ती भर है। महिलाओं के प्रति हिंसा रोकने में स्वयंसेवी संगठनों व सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका महिलाओं के प्रति हिंसा रोकने में निम्न प्रकार भूमिका निभा सकती है।

महिलाओं के प्रति हिंसा रोकने के सामाजिक उपाय:–

1 महिला शिक्षा की व्यवस्था करके।
2 व्यवसायपरक शिक्षा की व्यवस्था करके।
3 निर्णय की स्वतंत्रता देकर।
4 महिला को मानव समझा जाये वस्तु या उत्पाद नहीं।
5 आश्रय की व्यवस्था करके।
6 मानवीय सम्बन्धों के विकास के द्वारा।
7 अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देकर।
8 महिलाओं के प्रति स्वस्थ मानसिकता विकसित करके।

सरकार द्वारा महिला हिंसा को रोकने के उपाय:–

1 नि:शुल्क कानूनी सहायता व परामर्श।
2 दण्ड की व्यवस्था।
3 महिला संगठनों का निर्माण।
4 महिला सेलों एवं न्यायालयों की स्थापना।
5 महिलाओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम -1956।
6 हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम-1956।
7 दहेज अधिनियम -1961।
8 धरेलू हिंसा अधिनियम -2005
9 मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम -2017
10 वन स्टॉप सेन्टर

इनके अलवा महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए बोग इंडिया ने, लड़के रूलाते नहीं, अभियान चलाया, जबकि वैश्विक मानवाधिकार संगठन 'ब्रेक थ्रू द्वारा धरेलू हिंसा के खिलाफ 'बेल बजाओं' अभियान चलाया गया।

निष्कर्ष एवं सुझावः-

यदि हम सही मायनों मे ''महिलाओं के विरूद्ध हिंसा से मुक्त भारत'' बनाना चाहते है, तो वक्त आ चुका है कि हमें एक राष्ट्र के रूप में सामूहिक तौर पर इस विषय पर चर्चा करनी चाहिये। एक अच्छा तरीका यह हो सकता है कि हम राष्ट्रव्यापी, अनवरत तथा समृद्ध सामाजिक अभियान की शुरूआत करें।

संदर्भ सूचीः-

1. सिंह अमित, लिंग एवं समाज।
2. राय बाबा अजीत, महिला उत्पीड़न।
3. आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ।
4. गोबसेल्स लीना, वुमेन एण्ड हनुमन राइट्स।
5. शर्मा प्रज्ञा, महिलाएँ लैंगिक असमानता एवं अपराध।

पटना के हरित क्षेत्र पर शहरीकरण के प्रभाव का विश्लेषण भू-स्थानिक तकनीक का उपयोग करके

अल्पना कुमारी

शोधार्थी, भूगोल विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

वर्तमान पत्र का उद्देश्य पटना के हरित क्षेत्र पर शहरीकरण के प्रभाव का विश्लेषण करना है। यह आज की विकास की स्थिति के संदर्भ में एक बहुत ही ज्वलंत मुद्दा है जहाँ बढ़ती आबादी और बेहतर आजीविका के अवसरों के लिए प्रवासन शहरी केंद्रों के तेजी से विस्तार के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। शहरी सुविधाओं के प्रावधान के कारण पेड़ों की कटाई होती है, बड़े पैमाने पर जंगल और बाग साफ हो रहे हैं। हरियाली का सिकुड़न और निर्मित क्षेत्र में वृद्धि। इसलिए, चार दशकों (1973-2011) के डेटा का उपयोग करके शहरी हरित क्षेत्र का अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है। वर्ष 1973 के टोपोसीट को आधार मानचित्र के रूप में लिया गया है और रिमोट सेंसिंग डेटा और गूगलछवि का उपयोग करके तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। आरएस, जीआईएस और जीपीएस की भू-स्थानिक तकनीकों का उपयोग करते हुए पटना में शहरी हरित क्षेत्र की घटती मात्रा तथा उसका तापमान पर प्रभाव के संबंध का भी विश्लेषण करता है।

अध्ययन से पता चलता है कि पटना शहरी क्षेत्र वर्ष 1973 में 39.78 वर्ग किमी से बढ़कर वर्ष 2011 में 130.45 वर्ग किमी हो गया है, जबकि शहरी हरित क्षेत्र वर्ष 1973 में 26.19% से घटकर वर्ष 2011 में 18.85% हो गया है। जबकि संबंधित क्षेत्र का तापमान में 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पटना में निर्मित क्षेत्र लगातार बढ़ने से हरे क्षेत्रों की घटती प्रवृत्ति के साथ तापमान में बढ़ोतरी हो रही है।

मुख्य शब्दः हरित क्षेत्र, नगरीकरण,तापमान जीआईएस, रिमोट सेंसिंग, और कंप्यूटर कार्टोग्राफी

परिचय

जैसे-जैसे पृथ्वी की आबादी बढ़ रही है, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ कृषि आधारित प्रणालियों से दूर होती जा रही हैं। शहर बढ़ रहे हैं। शहरी फैलाव या विस्तार अक्सर कृषि या उत्पादक वनभूमि पर अतिक्रमण करता है, कोई भी शहरीकरण की गति का विरोध नहीं कर सकता है। शहर का विकास औद्योगिकीकरण (विकास) का एक संकेतक है तथा आमतौर पर एक क्षेत्र के पर्यावरणीय स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण से शहरी तक भूमि उपयोग में परिवर्तन की निगरानी, अनुमान लगाने और डेवलपर्स के लिए शहरी फैलाव की योजना की दिशा, और आस-पास के पर्यावरण के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों या खतरों की निगरानी के लिए सुदूर प्रणाली से निगरानी की जाती है। कृषि बनाम शहरी भूमि उपयोग का विश्लेषण यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि शहर का विकास मूल्यवान कृषि भूमि का अतिक्रमण करके तो नहीं हो रहा है, और इसी तरह यह सुनिश्चित करना है कि कृषि सबसे उपयुक्त भूमि पर हो रही है या नहीं ।

शहरी विकास की सीमा पर सटीक जानकारी शहरी नियोजन, जल और भूमि संसाधन प्रबंधन, विपणन विश्लेषण, सेवा आवंटन, आदि जैसे विविध प्रयोजनों के लिए बढ़ते शहरी और उपनगरीय क्षेत्रों के नगरपालिकाओं के लिए बहुत रुचि है, शहरी प्राधिकरणों और नगर निगमों की आवश्यकता है। विस्तारित जनसंख्या या अन्य शहरी भूमि उपयोग को समायोजित करने के लिए भूमि और अन्य संसाधनों के उपयोग के प्रबंधन के लिए अधिक समय, ध्यान और प्रयास समर्पित करना। शहरी फैलाव की निगरानी और भविष्यवाणी बुनियादी जानकारी है जो उन्हें दीर्घकालिक योजना के लिए आवश्यक है। संतुलित विकास के लिए, नगरपालिका अधिकारियों को इस बात की निगरानी करने के लिए उपकरणों की आवश्यकता होती है कि वर्तमान में भूमि का उपयोग कैसे किया जाता है, भविष्य की मांग का आकलन करें और भविष्य की आपूर्ति की पर्याप्तता को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाएं। भविष्य के शहरी विकास और बुनियादी ढांचे की योजना की बेहतर योजना के लिए, नगरपालिका के अधिकारियों को शहरी फैलाव घटना को जानने की जरूरत है और यह आने वाले वर्षों में किस तरह से आगे बढ़ने की संभावना है।

दुर्भाग्य से, पारंपरिक सर्वेक्षण और मानचित्रण तकनीक शहरी फैलाव के आकलन के लिए महंगी और समय लेने वाली हैं और ऐसी जानकारी अधिकांश शहरी केंद्रों के लिए उपलब्ध नहीं है, खासकर विकासशील देशों में। परिणामस्वरूप, जीआईएस और रिमोट सेंसिंग तकनीकों का उपयोग करके शहरी फैलाव/विकास की मैपिंग और निगरानी के लिए बढ़े हुए अनुसंधान हित को निर्देशित किया जा रहा है।

रिमोट सेंसिंग लागत प्रभावी और तकनीकी रूप से अच्छा है, इसलिए तेजी से शहरी फैलाव के विश्लेषण के लिए उपयोग किया जाता है। लगभग तीन दशकों से, दूरस्थ रूप से संवेदी चित्रों का उपयोग करके शहरी परिवर्तन के लिए व्यापक शोध प्रयास किए गए हैं। भारत में, 31.16: जनसंख्या (भारत की जनगणना, 20011) शहरी केंद्रों में रह रही है जिससे शहर में हरित क्षेत्र में कमी हो रही है।

अध्ययन क्षेत्र

पटना भारतीय राज्य बिहार की राजधानी और बिहार में सबसे अधिक आबादी वाला शहर है। पटना गंगा नदी के दक्षिण तट पर स्थित है। पटना के भूगोल की एक विशेषता इसकी नदियों का संगम है। पटना में मार्च के अंत से जून की शुरुआत तक गर्म ग्रीष्मकाल के साथ आर्द्र उपोष्णकटिबंधीय जलवायु होती है, जून के अंत से सितंबर तक मानसून का मौसम और नवंबर से फरवरी तक हल्की सर्दी होती है। अब तक का सबसे अधिक तापमान 46.6 ° C (In, 1966), सबसे कम 2.3 ° C (In, 2003) और उच्चतम वर्षा 204.5 मिमी (In, 1997) थी। भारत के 2011 की जनगणना के अनुसार पटना के नगरपालिका क्षेत्र की जनसंख्या 1.683 मिलियन है और घनत्व 1,803/ km^2 है। पटना की कुल जनसंख्या 2.04 मिलियन है। लिंगानुपात (1000 पुरुष प्रति महिला) 882 है। कुल साक्षरता दर 84.71% है, पुरुष साक्षरता दर 87.71% है और महिला साक्षरता दर 81.33% है ।पटना नगर निगम चार क्षेत्रों/मंडलों और 72 वार्डों में विभाजित है, पटना के विकास और रखरखाव के बेहतर नियंत्रण के लिए।

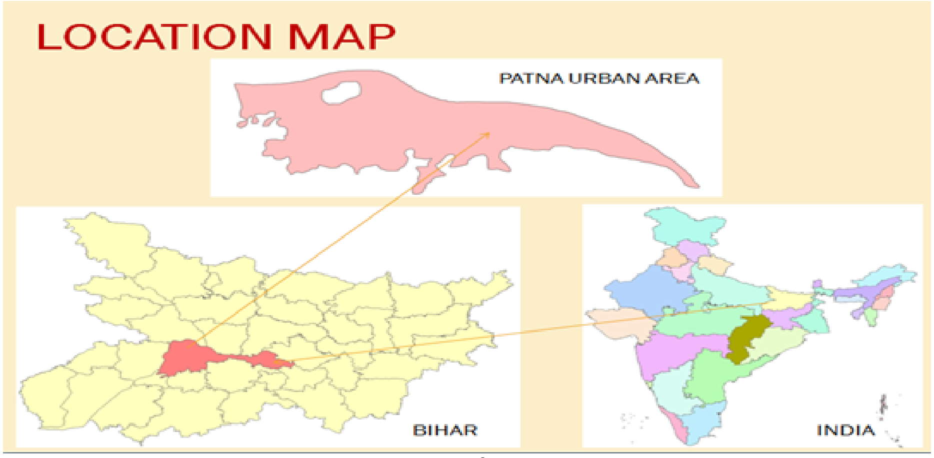

चित्रः 1 अध्ययन क्षेत्र का मानचित्र

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य नीचे दिया गया है।

- पटना शहरी फैलाव के अध्ययन वर्ष (1973-2011) ।
- पटना हरित क्षेत्र पर शहरी फैलाव का प्रभाव का विश्लेषण ।
- जलवायु पर प्रभाव मुख्य रूप से तापमान पर केंद्रित है ।

क्रियाविधि

अध्ययन के लिए सर्वप्रथम वर्ष 1973 टोपोसीट का आधार मानते हुए उसका

डिजिटलीकरण किया उसके बाद नगरीय क्षेत्र तथा हरित क्षेत्र को मानचित्र भू-स्थानिक तकनीकों (भोगोलिक सुचना प्रणाली तथा सुंदर संवेदन) का उपयोग करते हुए बनया हमने इस अध्ययन निम्न डाटा काउपयोग किया है ।

(अ) स्थानिक डेटा इनपुट

प्रकार (Types)	**वर्ष (Years)**	**स्रोतों (sources)**
Toposheet	1973	Survey of India
Landsat TM,	2001	GLCF
Landsat ETM Plus	2006	GLCF
Googol Earth imageries	2011	Googol Earth

(ब) गैर स्थानिक डेटा इनपुट

तापमान (स्रोत: भारतीय मौसम विभाग)

पटना शहरी क्षेत्र का डिजिटल डेटाबेस तैयार किया गया है निम्न सॉफ्टवेयर का उपयोग करके ।

GIS (जीआईएस)	**Image Processing (इमेज प्रोसेसिंग)**	**Data Analysis (डेटा विश्लेषण)**
Arc GIS 9-1	ERDAS 9-1	MS office 2007

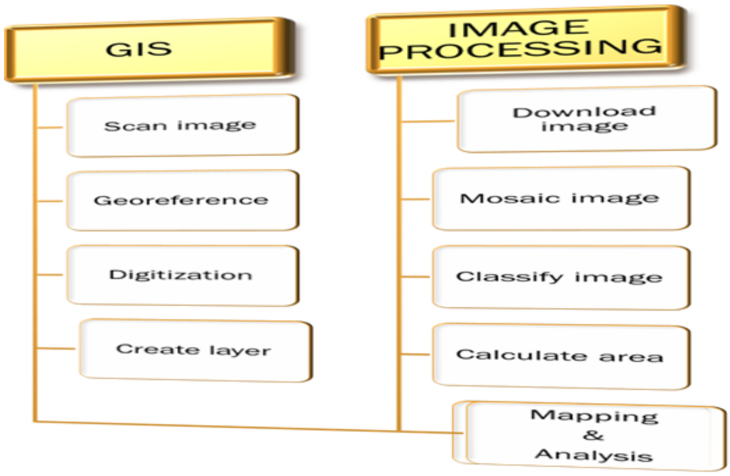

चित्र 2: वर्तमान अध्ययन की विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं को दर्शाने वाले फ्लो चार्ट।

परिणाम और चर्चा

अध्ययन वर्ष के दौरान पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार को निचे के तालिका 1 से समझा जा सकता है।

वर्ष	कुल विस्तारित क्षेत्र
1973	39.78 वर्ग किलोमीटर
2001	82.87 वर्ग किलोमीटर
2006	07.24 वर्ग किलोमीटर
2011	130.45 वर्ग किलोमीटर

तालिका: 1 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ग किलो मीटर में

वर्ष 1973 में पटना नगर कुल 39.78 किलोमीटर फैला हुआ था जो की गंगा नदी के किनारे मुख्यत: बांस घाट से पश्चमी दरवाजा तक था। धीरे धीरे इसका विकाश दक्षिण दिशा की तरफ होने लगा है जिसे निचे के मानचित्र से समझा जा सकता है।

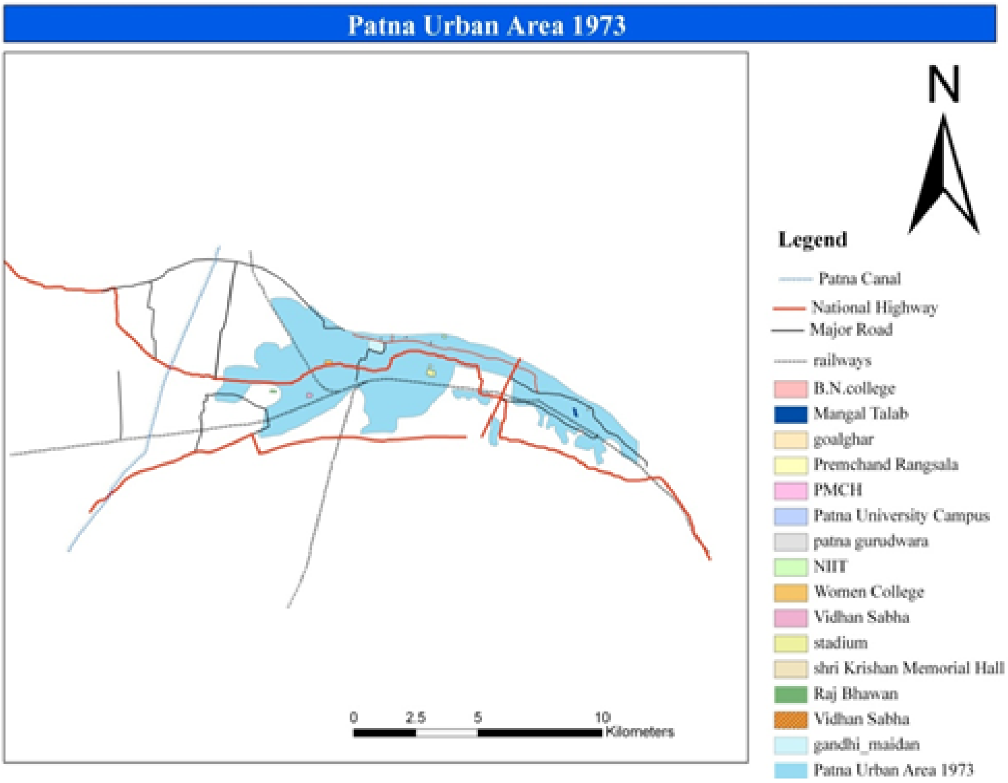

चित्र: 3 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ष 1973

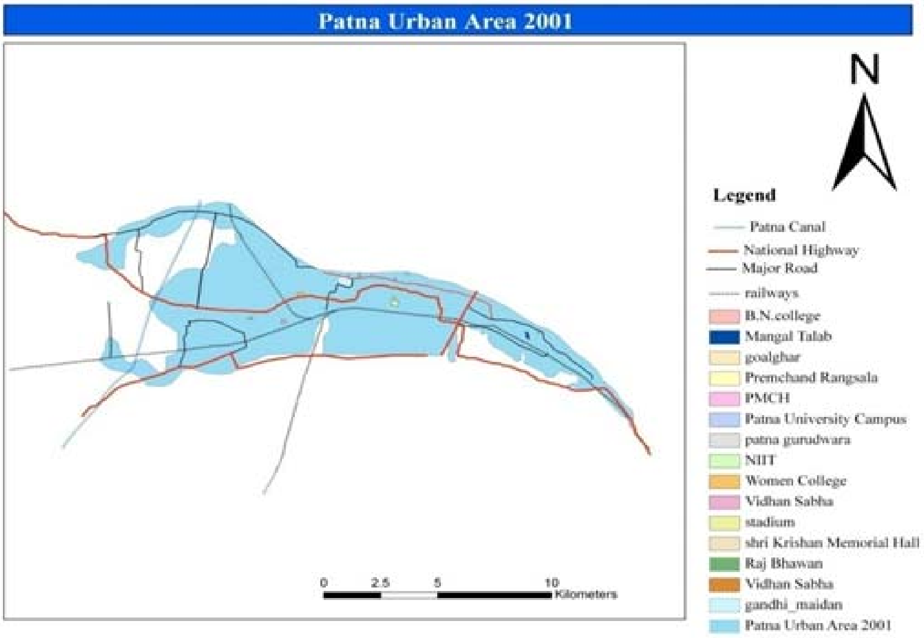

चित्र: 4 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ष 2001

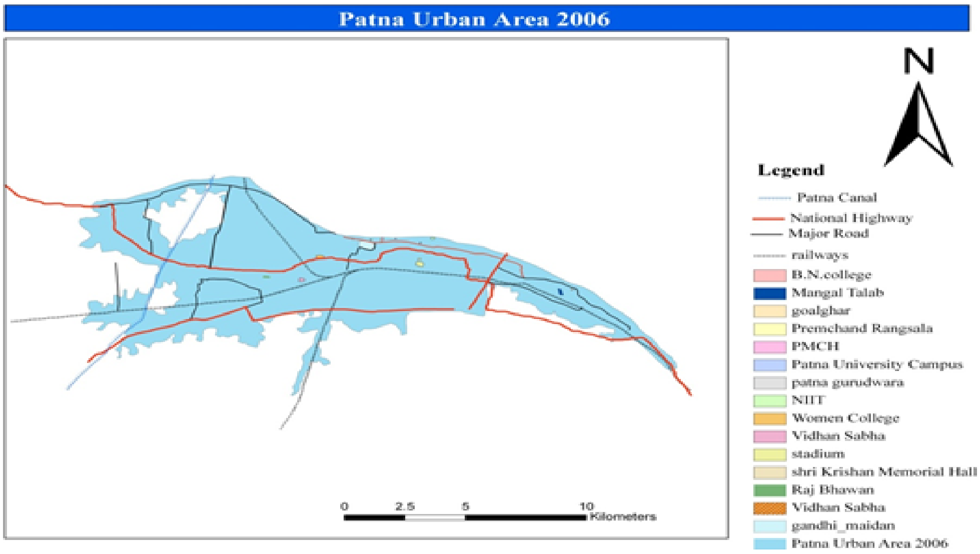

चित्र: 5 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ष 2006

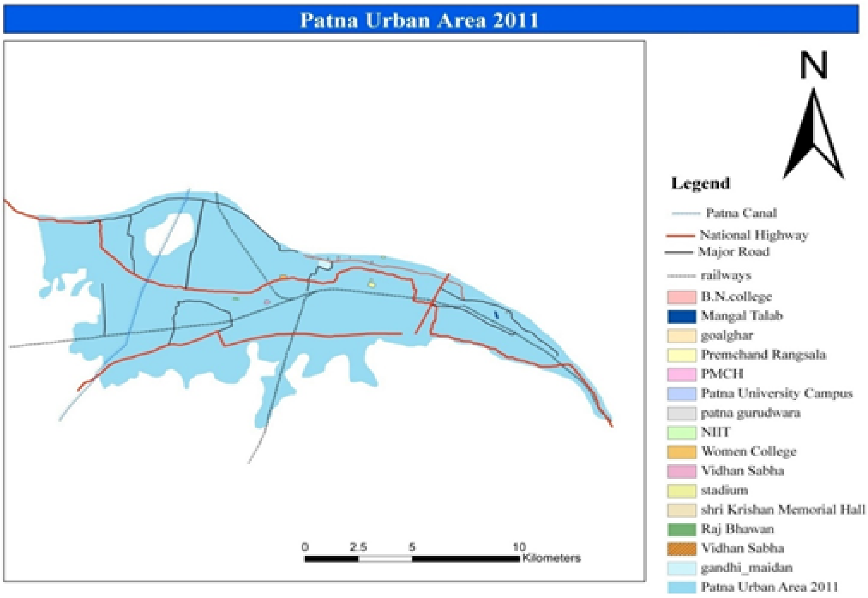

चित्रः 6 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ष 2011

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1973 में कुल शहरी क्षेत्र 39.78 वर्ग किमी है जो शहरी क्षेत्र के रेखीय पैटर्न को विकसित करता है। 2001 के कुल शहरी क्षेत्र का वर्ष 82.87 वर्ग किमी और 43.09 वर्ग किमी का वृद्धि हुआ है जो कि ज्यादातर वृद्धि पटना का पूर्वी भाग में हुआ है। वर्ष 2006 में 107.24 वर्ग किमी का कुल शहरीकरण क्षेत्र, इस वर्ष में पटना के पूर्वी भाग के शहरी क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है। वर्ष 2011 में कुल शहरी क्षेत्र 130.54 वर्ग किमी में फैला,यह फैलाव शहरी क्षेत्र के पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी हिस्से में हुआ जिससे कि पटना शहरी क्षेत्र में आयताकार पैटर्न विकसित हुआ है।

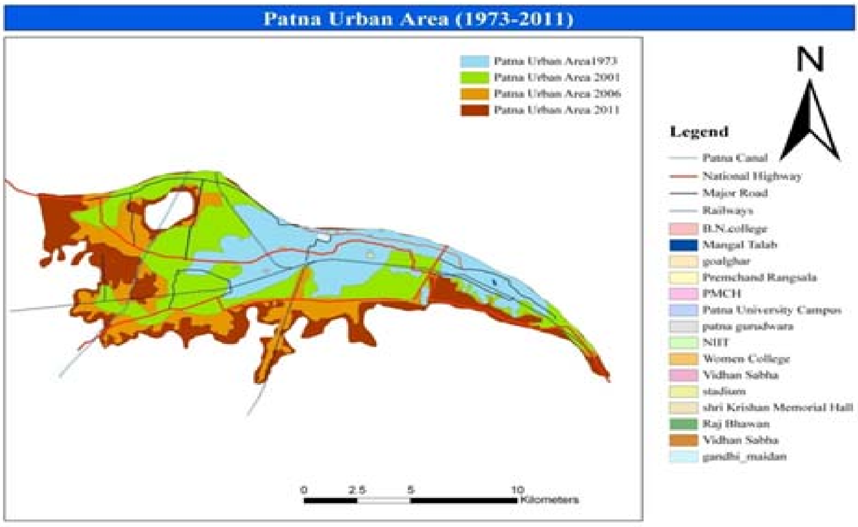

चित्रः 7 पटना नगरीय क्षेत्र का विस्तार वर्ष 1973-2011।

वर्ष 1973 में पटना नगरीय क्षेत्र में हरित क्षेत्र. 26.19% थी जबकि वर्ष 2011 में मात्र 18.85% थी। जिसे चित्रः 8 तथा 9 से आसानी से समझा जा सकता है ।

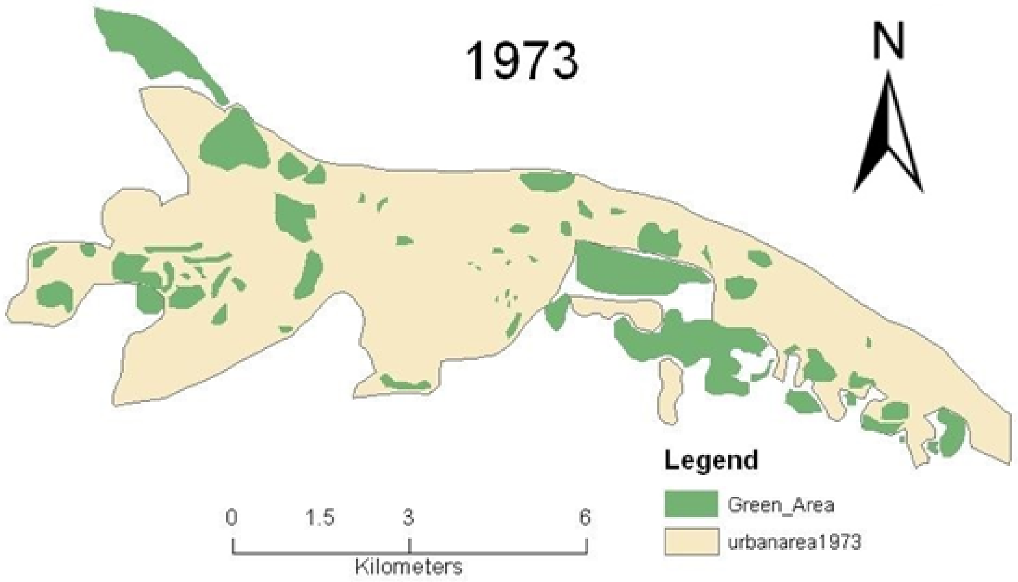

चित्रः 8 पटना नगरीय क्षेत्र तथा हरित क्षेत्र वर्ष 1973

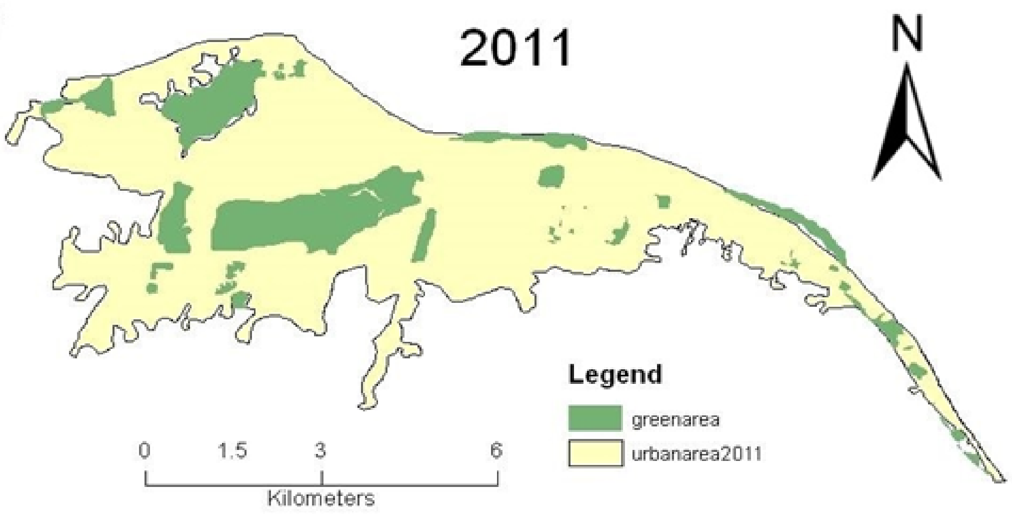

चित्रः 9 पटना नगरीय क्षेत्र तथा हरित क्षेत्र वर्ष 2011

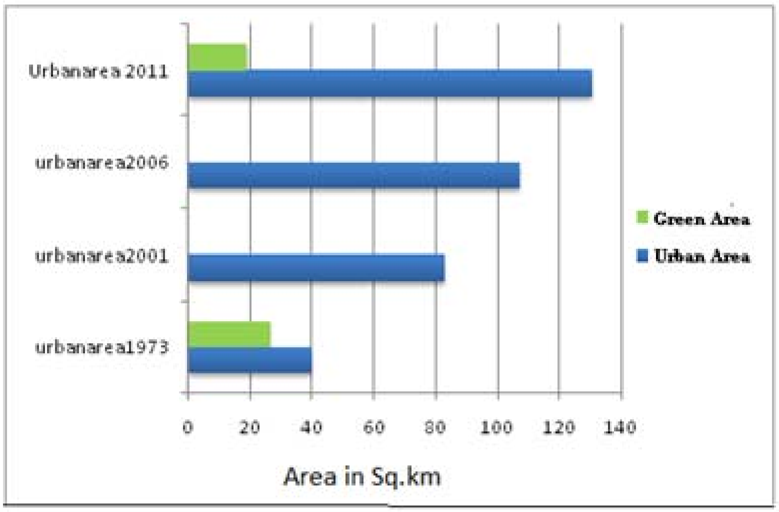

चित्र: 10 पटना नगरीय क्षेत्र तथा हरित क्षेत्र वर्ष (1973-2011) का सचित्र प्रदर्शन

पटना के हरित क्षेत्र कम होने से वहां के तापमान में बढ़ोतरी हुई है जिसे चित्र: 11 से समझा जा सकता है ।

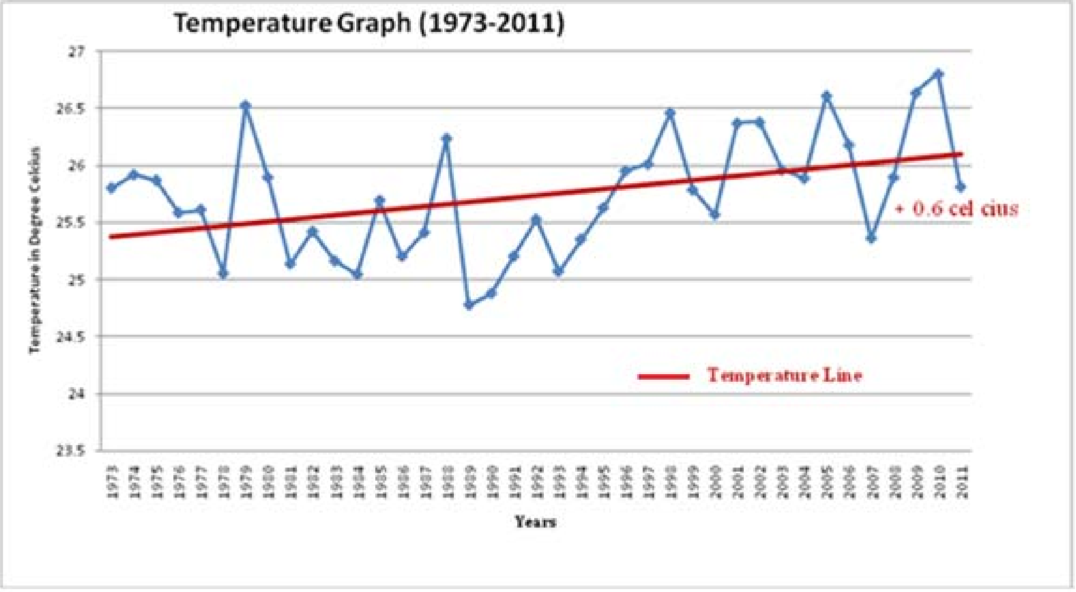

चित्र: 11 पटना नगरीय क्षेत्र के तापमान का ग्राफिक प्रदर्शन वर्ष (1973- 2011)

निष्कर्ष

वर्ष 1973 से 2001 के बीच पटना नगरीय क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल में 2 गुना वृद्धि हुई है जबकि जनसंख्या में 3 गुना वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 से 2011 के बीच पटना नगरीय क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल में लगभग 1.5 गुना वृद्धि हुई है, लेकिन जनसंख्या में 1.25 गुना वृद्धि हुई है। अध्ययन से पता चलता है कि पटना शहरी क्षेत्र 1973 में 39.78 वर्ग किमी से बढ़कर 2011 में 130.45 वर्ग किमी हो गया है जबकि शहरी हरित क्षेत्र 1973 में 26.19% से घटकर 2011 में 18.85% हो गया है। जिससे वहां के तापमान में 0.6 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई ।

संदर्भ सूची

- T-R Detwyler: (Urbanization and Environment)
- A-P- Subudhi, B-S- Sokhi, P-S- Roy: “Remote Sensing and GIS, Application in Urban and Regional studies”
- F- Stuart Chapin and Edward J-Kaiser “Urban land use planning”
- Debajit Mishra: Monitoring and modeling urban sprawl by Remote sensing and GIS (A case study of Bhubaneswar city)
- Bounphong Pheng Khouane NGD, LAO, PDR: “Urban sprawl mapping and land use change analysis”
- http://www-ospcboard-org/plan/Chap%203%20: Chapter- 3 structure of the city
- Wilson A-G, John Willy and sons, London- : “Urban and Regional models in Geography and planning”
- R-Chorley & P-Haggett, 1967: Models in geography- Edward Arnold Ltd, London-
- David Clark: Urban geography: an introductory guide
- Lillesand, T-M and Kiefer, R-W- (2000): Remote sensing and image interpretation
  www-censusindia-gov-in
  www-imd-gov-in

अनुसूचित जाति और सामाजिक परिवर्तन

पल्लवी कुमारी

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
ति0मा0भा0 विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सारांश

भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संपूर्ण ढाँचा जातिवाद के नागपाश से जकड़ा हुआ है। कानून से पाँच हजार वर्ष पूर्व पूरानी सामाजिक संस्था का उन्मूलन एक कठिन कार्य है। यद्यपि संविधान एकता व अखण्डता की बात करता है, परन्तु व्यवहार में यह सरकार के अतिरिक्त सामाजिक संस्थाओं को अनुसूचित एवं नीची जातियों को अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास के घेरे से बाहर लाना होगा। साथ ही समाज के ङ्मत्येक वर्ग में ऊँच-नीच, छुआछूत जैसे कुंठित मनोवृति से उपर उठने का आवाह्‌न करना होगा।

मुख्य शब्द :-अनुसूचित जाति सामाजिक व्यवस्था, जातीवाद मनोवृति, सामाजिक बहिष्कार, अन्तरजातीय विवाह।

परिप्रेक्ष्यः- जाति प्रथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक आधारभूत अंग है। समाज का सबसे निम्न व दुर्भाग्यशाली वह वर्ग है जिसे अनुसूचित या अछूत के नाम से जाना जाता है। यदि हम इस समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करते है तो साफ पता चलता है कि सभ्य समाज कि तुलना में इसकी स्थिति बहुत ही दयनीय है। अपितु सरकार एवं अन्य स्वयंसेवी संस्थाएँ अनुसूचित जातियों के विकास एवं उत्थान के लिए निरंतर प्रयासरत है। लेकिन जब तक समाज में लोगों की इनके प्रति मनोवृति एवं धारणा में परिवर्तन नहीं होगा, अनुसूचित जातियों को समान अवसर मिलना दुश्कर है। अनेक योजनाओं एवं परियोजनाओं के बावजूद भी इनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है, कागजी आँकड़े विकास को तीव्रगति प्रदान करती नजर आ रही है, किन्तु व्यवहारिक तस्वीर बिल्कुल ही विपरित है। राष्ट्रीय एकता तथा समरसता के मार्ग का एक बड़ा रोड़ा यह जातिय भेद्‌भाव है। धीमी गति से ही लेकिन अनुसूचित जातियों के सामाजिक अस्मिता एवं स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। ब्रिटिश काल में ही सभी जातियों को रोजगार के नये अवसरों के लिए जातिगत स्वतंत्रता प्रदान किया गया। हर जाति के व्यक्ति के लिए शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये गये। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपने पूरे जीवनकाल में अनुसूचित एवं दलित जातियों के उत्थान के लिए कई कार्य किये । गाँधी जी सर्वोदय समाज की कल्पना करते थे। जिसमे समाज के प्रत्येक वर्ग का उदय और विकास हो। भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलितों, पिछड़ों के मसीहा तथा सामाजिक न्याय के संघर्षशील योद्धा थे। उन्होंनें हिन्दुओं में नीची मानी जाने वाली जातियों को संगठित करके उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय हेतु संघर्ष करने के लिए बहुत प्रेरित किया। अम्बेडकर ने संविधान में कानून बना सामाजिक समता और न्याय को सुनिश्चित किया। महात्मा ज्योतिबा फुले ,साबू महाराजा ,जगजीवन राम जैसे कई महापुरुषों ने अनुसूचित जातियों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु कई प्रयास किये। वर्तमान समाज में जाति के स्वरुप में इन्ही प्रयासो के कारण परिवर्तन दिखाई देने लगा है। पुराने समय मे अनुसूचित जाति के व्यक्ति को छोटे अपराध के लिए कठोर दंड और सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता था। अत्याचारों में जूते की माला पहनाना, सामाजिक अपमान ,जल एवं अन्य सार्वजनिक सुविधाओं से वंचित करना, जाति सूचक गाली देना ,अनुसूचित जाति की महिलाओं का वस्त्र हरण और दण्ड के रुप में यौन-शोषण अनुचित टीका-टिप्पणी आदि किये जाते थे। परन्तु आज के समय में ऐसे मामलों में काफी कमी आयी है। अनुसूचित जातियों मे शिक्षा और आत्म चेतना का प्रसार हुआ है जो उन्हें अन्याय के विरोध में आवाज उठाने की शक्ति देता हैं इसके अतिरिक्त कानून ने भी उन्हें सशक्त किया है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति

अत्याचार निवारण संशोधन अधिनियम, 2015 इनके खिलाफ अत्याचार की रोकथाम के लिए और अधिक कठोर प्रावधानों को सुनिश्चित करता है।

आज के समय में जातिगत घृणा एवं विषमता का प्रबुद्ध लोगों के बीच कोई स्थान नहीं है। अब किसी भी जाति के व्यक्ति के लिए शिक्षा, धर्म, खानपान रहने तथा व्यवसाय करने के नियम पूर्व निर्धारित और कठोर नहीं है। औद्योगिकरण, नगरीकरण, शिक्षा व पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण जातिप्रथा टुटती जा रही है। अन्तरजातीय विवाह, प्रेम विवाह से जातीय दीवार कमजोर हो रही है। विज्ञान और डिजिटल क्रांति के इस युग मे अनुसूचित जातियों को भी अपने पंख फैलाने के सुनहरे अवसर मिल रहे है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार समाज में अनुसूचित जाति के सामाजिक स्थिाति मे परिवर्तन लाने मे उचित शिक्षा, विभिन्न जातियों में आर्थिक व सांस्कृतिक समानता को प्रोत्साहन, व्यवहारकि कानूनों का निर्माण जातिगत राजनीति की समाप्ति अन्तरजातीय विवाह इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह सत्य है कि अनुसूचित जातियों के प्रति सामाजिक भेद्भाव अभी पूर्णत: समाप्त नहीं हुआ है। परन्तु बदलाव की इस राह ने कई महत्वपूर्ण पड़ाव पार किये है और यह निरतंर जारी है।

संदर्भ सूंची :-

1. इ. जे. हॉब्सबॉन-इनोवेशन ऑफ ट्रेडिशन।
2. सुमित सरकार, तानिका सरकार, तपन वसु-रवाकी नेफर झंडे।
3. फिलिप लुटग्लेनडार्ट- रामा स्टोरी इन शिवाज सिटी।
4. एम. एस. गोलवलकर (पम्पलेट) - बी. आर. आवर नेशनहुड डिफाइन्ड।
5. बी. डी. सावरकर-हिन्दू राष्ट्र दर्शन।

समकालीनता की अवधारणा

अरमान आनंद

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समकालीनता कि अवधारणा शीर्षक इस शोध पत्र में समकालीनता शब्द की गूढता और उसमें अन्तर्निहित अर्थ को समकालीन हिन्दी कविता के सन्दर्भ में व्याख्यायित करने की चेष्टा की गयी है। इस शोध पत्र में हम जानेंगे कि कैसे समकालीनता शब्द हिन्दी कविता के साथ जुड़ने पर अपने मूल अर्थ से ऊपर उठ कर एक सरोकारी शब्द हो जाता है? कैसे समकालीनता ने अपने भीतर स्त्री, दलित और आदिवासी जैसे अस्मितामूलक जनांदोलनों को समेत रखा है? समकालीनता का परम्परा से कितना और कैसा सम्बन्ध है?

पृष्ठभूमि : साहित्य में समकालीनता एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। किसी भी रचना की महत्ता इसी बात से सिद्ध होती है की वह कितनी समकालीन है। फिर प्रश्न यह उठता है कि समकालीनता क्या है?

डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर ने समकालीनता के तीन अर्थ बताये हैं –

1. काल विशेष से सम्बद्ध
2. व्यक्ति विशेष के काल-यापन से सम्बद्ध
3. साहित्य अथवा प्रवृति विशेष से सम्बंधित संश्लिष्ट काल खंड[1]

समकालीनता अंग्रेजी शब्द CONTEMPORARY का शाब्दिक अनुवाद है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार इसका अर्थ है- 1. BELONGING TO THE SAME TIME AS SB/STH ELSE समकालीन, समकालिक इसी समय का, 2. OF THE PRESENT TIME, MODERN वर्तमानकालिक, आधुनिक।[2]

तो क्या हम यह मान लें कि जो रचना जिस कालखंड में लिखी जाती है, वह उसके समकालीन होती है। नहीं। सिर्फ निश्चित कालखंड में लिखी हुयी रचना अपने समय के समकालीन हो जरुरी नहीं। महत्वपूर्ण यह है कि क्या उसे अपने समय की पहचान है या नहीं। अपने समय की मूलभूत आवश्यकताओं या विशेषताओं को अपने भीतर रचा-पचा पाई है अथवा नहीं। यदि 2014 में लिखी किसी रचना का आधार मुगलिया सल्तनत है। उसमें मुगल साम्राज्यगत विशेषताओं और समस्याओं का वर्णन है तो निश्चय ही वह रचना समकालीन नहीं होगी। लेकिन मुगलिया सल्तनत को आधार बनाकर वर्तमान समस्याओं पर विचार किया गया है तो यह समकालीन मानी जाएगी।

शम्भू गुप्त इस सम्बन्ध में लिखते हैं : ''समकालीनता साहित्य में ठीक उसी रूप में ग्रहित नहीं होता जैसा शाब्दिक अर्थ द्वारा परिलक्षित होता है। समकालीन साहित्य का जब दौर शुरू हुआ तो लम्बे समय तक यह विमर्श का विषय बना रहा कि समकालीनता के शाब्दिक और साहित्यिक तात्पर्य में कितनी फांक है। समकालीनता वर्तमान को उसके अतीत और संभावित तथा संभावनाशील भविष्य के साथ पूरी समग्रता से देखती है। ऐसा नहीं है की यहाँ अतीत नहीं है। वह है और अनिवार्यत: है। पर केवल उतना, जितना वह अपनी तात्कालिक प्रक्रियाओं से मुक्त है। तात्कालिक प्रतिक्रियावाद स्थिरता का सूचक है क्योंकि इसके पीछे हमारा मानवीय विवेक न होकर, हमारी अह्मन्य कुंठाएँ होती हैं। स्थिर अतीत समकालीनता के किसी काम नहीं आता। समकालीनता उस हिस्से को पुरस्कृत करती है, जो अपनी तात्कालिक सीमाओं में बंधा न रह कर अपने आगे आने वाले समय तक गतिशील रहता हो और जितना वह अपने ऐतिहासिक समय में महत्वपूर्ण, नया और प्रासंगिक था, उतना बल्कि कभी-कभी उससे कुछ ज्यादा ही अपने आगामी समय बल्कि आगामी समय में महत्वपूर्ण, नया और प्रासंगिक ठहरता हो।''[3]

समकालीनता के लिए वर्तमान जितना महत्वपूर्ण है उतनी ही परम्परा। समकालीनता सिर्फ वर्तमान को लेकर चलती है ऐसा नहीं है। वह वर्तमान के साथ-साथ परम्परा, इतिहास और भविष्य बोध की चेतना की माँग करती है। ''समकालीनता हवा में विकसित नहीं होती। समकालीनता की जड़ें दूर तक जीवंत परम्परा में फैलकर उससे जीवन रस प्राप्त करती हैं। हमारा आग्रह केवल यह है कि परंपरा समकालीनता के लिए होती है, समकालीनता परंपरा के लिए नहीं। समकालीनता और परम्परा के सार्थक सम्बन्ध के लिए यह जरुरी है कि समकालीनता की दृष्टि से परम्परा का मूल्यांकन किया जाये न कि परम्परा को सही साबित करने के लिए समकालीनता का अवमूल्यन हो।''[4] इसी तथ्य का विस्तारीकरण करते हुए देवीशंकर अवस्थी कहते हैं- ''साथ ही यह भी ध्यान रहे समकालीनता एक कटा हुआ टुकड़ा नहीं है, वह भी परंपरा यानी इतिहासबोध का अंग होता है और जब हम प्रमाणिकता की बात उठाते हुए समकालीनता को उसकी एक कसौटी मानते हैं तब यह निहित होता है कि परम्परा की प्रत्यक्ष या परोक्ष अविछिन्नता को भी कहीं स्वीकार करते हैं। यहीं यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि समकालीनता से हमारा तात्पर्य समय की वर्ष, दिवस, मास जैसी इकाइयों से न होकर उस रुख से है जो तमाम समसामयिक जीवन की प्रक्रियाओं के प्रति हमें उन्मुख रखता है, उससे प्रतिबद्ध करता है और जिसके कारण हम उन तमाम असंगतियों या दबाबों का अनुभव करते हैं।[5]

समकालीनता स्वरूप क्या हो? कौन से तत्व हैं जो किसी रचना को समकालीन बनाते हैं? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसकी पड़ताल करते हुए मैनेजर पाण्डेय कहते हैं। ''जो विचार हमारे वर्तमान समाज और रचनाकर्म की प्रगति के लिए प्रासंगिक नहीं हैं वे हमारे लिए न समकालीन हैं न स्वदेशी। हमारे लिए वे ही विचार समकालीन हैं जो शोषण से मुक्ति के लिए संघर्षशील जनता और उससे जुडी रचना को आगे बढ़ने में सहायक हों। जो विचार या विचारधारा समकालीन जनवादी रचना के विकास में सहायक है वही समकालीन है।''[6]

मैनेजर पाण्डेय ने समकालीनता के साथ स्वदेशीपन की जरुरत पर भी जोर दिया है। किसी समाज में बदलाव की बयार न तो उधार की वैचारिकी पर संभव है न उधार की क्रांति पर। प्रश्न अगर भारतीय समाज के हों तो उत्तर आयातित दर्शन से देना असंभव ही नहीं मूर्खता को भी प्रदर्शित करता है। प्रो0 पाण्डेय इसे महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं और मानना भी चाहिए। समकालीनता को जितना जनवादी होने की जरूरत है उतनी ही स्वदेशी भी।''[7] समकालीनता की चर्चा करते हुए जिस भारतीय समाज की तस्वीर उनकी आँखों में है वह आजादी के टूटे सपनों का भारत है। मोहभंग से हताश और निराश जनसमूह है जिसे सरकार संसाधन समझती है। तत्कालीन साहित्य भी इस हताशा से बच नहीं सका। क्रांति के गीत अवसाद ग्रस्त हो गये। इस समय कविता को अपनी महत्वपूर्ण भूमिका में होना चाहिए। उसका फर्ज है राख से कुरेद कर आग निकाले। संघर्ष के अलाव जलाये। तात्पर्य यह कि 1960 के बाद जिस समकालीनता की चर्चा हिन्दी साहित्य में होती है उसकी पहली मांग है जनता के संघर्ष में रचना की सहभागी भूमिका, जब तक रचना अपने भीतर इसकी गुंजाईश नहीं रखती उसे समकालीनता के दायरे में रखना असंभव है। संघर्ष की जो स्वाभाविक मांग है वह है जड़ता से मुक्ति।

शम्भू गुप्त आगे लिखते हैं 'समकालीनता स्थायी होते हुए भी गतिशील मूल्य है अग्रगामिता समकालीनता में अन्तर्निहित है। समकालीनता एक व्यापक अवधारणा है, जिसे मतवाद-विशेष के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। किसी मतवाद-विशेष के साथ सन्नद्ध समकालीनता एक रूढ़ि बन जाती है यथास्थितिवाद को प्रश्रय देने लगती है। गति मतलब क्या? दौड़ते भागते शब्द-चित्र और बिम्ब? नहीं। समकालीन कविता का मतलब लघु मानव की वृहत जीवनचर्या, आकांक्षाओं, उसकी जीत-हार और संघर्ष का जीवंत आख्यान।'[8] डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय कहते हैं- ''समकालीनता में जो हो रहा है उसका सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है- क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते बौखलाते, तड़पते, गरजते और ठोकर खा कर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।''[9] बलदेव वंशी इसी परिभाषा को अपने शब्दों कहते हैं-''परिवेशगत यथार्थ चित्रण समकालीनता नहीं है। उसकी भीतरी हलचलों, गतिविधियों की ज्ञानात्मक संवेदना जगाना समकालीन व्यवहार है। इसे पकड़ना समकालीनता के निकट आना है।''[10]

मैनेजर पाण्डेय समकालीन साहित्यिक दौर को बड़ी उम्मीदों के साथ देखते हैं और चाहते हैं कि भारतीय समकालीन रचनाशीलता का अपना सौदर्यशास्त्र विकसित हो। ''हिन्दी का अपना कोई सौंदर्यशास्त्र विकसित नहीं हो पाया है इसलिए यहाँ जो सौन्दर्यशास्त्र

विकसित होगा- अगर वह समकालीन रचना को ध्यान में रखकर विकसित किया जाएगा तो नया ही होगा।[11] 'समकालीन सन्दर्भ में नया सौंदर्यशास्त्र विकसित करने का उद्देश्य है ऐसा सौदर्यशास्त्र विकसित करना जो वर्तमान भारतीय समाज, इतिहास और साहित्य के लिए प्रासंगिक हो, जिसमे हमारी कला-परम्परा और कला-चिंतन की परम्परा के जनवादी तत्वों का समावेश हो, देशी-विदेशी भाववादी अध्यात्मवादी सौन्दर्यशास्त्रीय चिंतन के जीवन निरपेक्ष कलावादी मूल्यों के भ्रमों और भटकावों से बचाव हो और जो समकालीन रचनाशीलता के लिए उपयोगी हो।'[12] अर्थात भारतीय रचनाशीलता और चिंतन धारा में जो समकालीनता है, उसने अपने अन्दर जो मूल्य विकसित किये हैं वह कलावादी भ्रमों से बचाकर सभ्यतागत चिंतन-धारा को सुनिश्चित दिशा प्रदान करता है। इस समकालीनता की सबसे बड़ी विशेषता है इसका जनवादी होना। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो समकालीनता ने लेखन को उसके मूल उद्देश्य तक पहुँचाया है।

''अल्थूसेर कहते हैं कि कला से यथार्थ का अनुभव होता है ज्ञान नहीं। वे कला और विज्ञान में अंतर बताते हुए कहते हैं कि कला से यथार्थ का अनुभव प्राप्त होता है और विज्ञान से से यथार्थ का ज्ञान।''[13] यहाँ इस प्रसंग का जिक्र मैं मात्र इस सन्दर्भ में करना चाहता हूँ कि कला का सीधा सम्बन्ध यथार्थ और यथार्थ के अनुभव से है जो कि समकालीनता की एक बड़ी विशेषता है। बाकी बात रही विज्ञान और कला से यथार्थ से बोध और अनुभव की बात तो इस बात का बिलकुल विरोध होना चाहिए कि कला और विज्ञान अलग-अलग हैं। कला भी एक प्रकार का विज्ञान है। हम अध्ययन की सुविधा के लिए भले इसे अलग-अलग वर्गीकृत कर लें लेकिन अनुभव और ज्ञान को वर्गीकृत या अलग करना शिक्षा की प्रक्रिया के क्रम को भंग करना है।

वीरेंद्र मोहन लिखते हैं ''इस प्रसंग में मुक्तिबोध को याद किया जा सकता है जो कलात्मक अनुभव के सन्दर्भ में संवेदना और ज्ञान के अलगाव के बदले दोनों की एकता को महत्त्व देते हैं और 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' की बात करते हैं।[14] अब जब यह कहते हैं कि समकालीनता यथार्थ को आधार बनाकर छा जाती है तो यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि कौन सा यथार्थ? कैसा यथार्थ? उसका स्वरूप क्या हो? सत्ता छद्म संघर्ष, क्रांति और क्रांतिकारी पैदा करने में भी माहिर होती है। वह यथार्थ के नाम पर ऐसे भ्रम भी पैदा कर सकती हो जो यथार्थ जैसा ही हो लेकिन यथार्थ न हो। बकौल वीरेंद्र मोहन : ''समकालीन कविता के लिए यथार्थ फैशन की तरह नहीं है। फैशन का यथार्थ अलग से दिख जाता है।... फैशन केवल यथार्थ का ही नहीं भाषा और अभिव्यक्ति का भी होता है।''[15] लेकिन क्या वह सबको दिखता है? नहीं। आलोचक या वैचारिक प्रबुद्ध व्यक्ति को छोड़ दिया जय तो जन-सामान्य इससे अनभिज्ञ रहता है। सत्ता का दमन-चक्र और उनके प्रति समकालीन रचनाओं का जनवादी प्रतिरोध इन्हीं आम जनता के के लिए होता है।

समकालीन कविता का यथार्थबोध कैसा होना चाहिए? इसपर वीरेंद्र मोहन लिखते हैं : ''समकालीन कविता यथार्थ की अनदेखी नहीं कर सकती। यहाँ यथार्थ के कई-कई रूप हैं और यह यथार्थ निरंतर परिवर्तनशील है। विगत यथार्थ और आज के यथार्थ में भी मूलभूत अंतर है। उसी प्रकार से विचार दर्शनों का यथार्थ कविता मात्र का यथार्थ नहीं हो सकता। ऐसा यथार्थ कविता को सीमित करता है। कविता के यथार्थ को सीमित नहीं किया जा सकता। इसलिए कविता के लिए यथार्थ का कोई एक रूप स्वीकार करना उसकी भूल होगी। यथार्थ के अनेक रूपों की पहचान कवि की आँख पर निर्भर है। कवि की आँख अँधेरे परतों को भेदकर यथार्थ की पहचान करती है। उस यथार्थ की अभिव्यक्ति कविता की सामर्थ्य की भी पहचान करा देती है। इसलिए भीतर से टूटती-छटपटाती आत्मा को यथार्थ के प्लास्टर से चिपका कर उसे ढंका तो जा सकता है, छिपाया नहीं जा सकता। अन्दर की जीवन शक्ति जब कमजोर हो जाती है तब आत्मा में इतने छेद हो जाते हैं कि उन्हें पैबन्दों से नहीं छिपाया जा सकता। सबकुछ उद्घाटित हो जाता है। और यही वह यथार्थ है, जिसे समकालीन कविता निरंतर पहचानने का प्रयास कर रही है।[16]

निष्कर्ष : समकालीनता अब अपने शाब्दिक अर्थ से कहीं उठकर सरोकारी शब्द हो गयी है। यह विचारधारा रचना को जनवादी मूल्यों से जोड़ती है। भारतीय हिन्दी काव्यधारा अपने अब तक के सबसे कठिन दौर से गुजर रही है। समाज बदलाव के तमाम दवाबों और कठिनाइयों से होकर गुजर रहा है। मूल्यों की लगातार टकराहट कभी-कभी दिशाहीन होने का भ्रम भी पैदा करती है, जिससे समाज पर मनोवैज्ञानिक दवाब भी बढ़ता है। समकालीनता का दौर साहित्य के प्रसव काल का दौर है। समाज और साहित्य के संबंधों के बीज का प्रस्फुटन इसी काल में होना है। अत: लाजिमी है कि साहित्य के इस दौर में हर्ष, दु:ख और अवसाद के एक साथ दर्शन हों।

Endnotes

1 डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर, समकालीन कविता की भूमिका - राजेश प्रकाशन, दिल्ली 1972, पृ0 19

2 oxford dici onary editers Dr. Suresh khanna, Dr. Ramnath sahai , oxford university press 2014, ISBN 0-19-807640- , page 269

3 शम्भु गुप्त, कहानी-समकालीन चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ0 53

4 मैनेजर पाण्डेय, आलोचक की समकालीनता; शब्द और कर्म, पृ0 72-73

5 देवीशंकर अवस्थी, दूरचना और आलोचना, वाणी प्रकाशन, 1995

6 मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, 1997, पृ0 72

7 शम्भु गुप्त, कहानी-समकालीन चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ0 53

8 शम्भु गुप्त, कहानी-समकालीन चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, 2009, पृ0 53

9 डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, प्रथम संस्करण, 1976, पृ0 10

10 बलदेव वंशी, समकालीन कविता वैचारिक आयाम, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ0 17-18

11 मैनेजर पाण्डे, शब्द और कर्म, पृ0 51

12 मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ0 14

13 मैनेजर पाण्डेय, शब्द और कर्म, पृ0 14

14 वीरेंद्र मोहन, शताब्दी कविता, संपादक लीलाधर मंडलोई शिल्पायन, दिल्ली, 2008, पृ0 346

15 वीरेंद्र मोहन, शताब्दी कविता, संपादक लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन, दिल्ली 2008, पृ0 346

16 वीरेंद्र मोहन हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 610

अलाउद्दीन खिलजी का बाजार नियंत्रण नीति : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ० मो० इन्तेखाब आलम

उमरी, मधुबनी (बिहार)

1296 ई0 में अपने चाचा और श्वसुर जलालुद्दीन का वध करके दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण व्यवस्था भारतीय इतिहास में एक विलक्षण पद्धति है। इस पद्धति के माध्यम से अलाउद्दील खिलजी ने बाजार व्यवस्था में सीधा हस्तक्षेप किया। इन सुधारों को लागू करने के पीछे सुल्तान के उद्देश्यों या बाजार नियंत्रण व्यवस्था के क्रियान्वयन के कारणो के बारे में विवाद है।

इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी के अनुसार इन सुधारो को लागू करने के पीछे मूलभूत उद्देश्य मंगोलों का मुकाबला करने के लिए विशाल एवं शक्तिशाली सेना खड़ी करना था। बरनी के अनुसार जब तक वस्तुओं की कीमतों को कम नहीं किया जाता, तब तक राज्य के सामान्य वित्तीय साधनों के द्वारा इतनी विशाल सेना के गठित एवं संतुष्ट नहीं रखा जा सकता था। इस प्रकार बरनी के अनुसार आर्थिक अधिनियमो को सैनिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत करके लागू किया गया था। परन्तु बरनी का विचार बहुत प्रभावशाली नहीं प्रतीत होता। क्योंकि इस व्यवस्था के अंतर्गत ऐसी अनेक वस्तुओं की कीमते निर्धारित की गई जिसका सैनिको द्वारा केवल नाममात्र के लिए या बिल्कुल ही उपयोग नहीं किया जाता था। इसके अतिरिक्त सैनिक आवश्यकताओं मात्र के लिए इतनी व्यापक व्यवस्था को लागू करने की जरूरत भी नहीं थी। अतः अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन इतिहासकार अमीर खुसरो का इस संबंध में विचार अधिक विश्वसनीय एवं तार्किक लगता है। खुसरो का कहना है कि सुल्तान ने इन सुधारों को सामान्य जन - कल्याण की दृष्टि से लागू किया था। खुसरो के अनुसार इस सुधारों का लक्ष्य सामान्य लोगो के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण वस्तुओं की आपूर्ति तथा साथ ही अकाल का सामना करने के लिए निर्धारित दरों पर शाही गोदामों के लिए खाद्यन्न संग्रह सुनिश्चित करना था। कुछ लेखको का मानना है कि सुल्तान का यह कदम लोक - कल्याण के भाव से प्रेरित था। परंतु इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है क्योंकि जैसा कि हम जानते है कि अलाउद्दीन खिलजी की नीति का उद्देश्य कुछ लोगों की दशा गिरा देना था, ताकि किसी के होठ पर विद्रोह जैसा शब्द न हो।

डॉ0 के0 एस0 लाल ने लिखा है **'यह गणित की एक साधारण गणना और साधारण आर्थिक सिद्धांत था। क्योंकि उसने सैनिको के वेतन को कम करने का निर्णय किया था, अतएव उसने दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के मूल्य को भी कम करने का निर्णय लिया।'**

डॉ0 यू. एन. डे. के अनुसार अलाउद्दीन की बाजार - व्यवस्था का मुख्य कारण सैनिकों के वेतन में कमी करना न होकर वस्तुओं के मूल्यों को बढ़ने से रोकना था। समस्त प्रधान व्यवसायों के लिए अलग अलग बाजारों की व्यवस्था की। इन बाजारो का प्रबंध करने के लिए अलग अलग शहना नियुक्त किये गये। शहना को अपने बाजारों और उसके व्यापारिको पर नियंत्रण रखने का पूर्ण अधिकार था। शहना को अपने बाजारों और उसके अधीनस्थ बाजारों में निर्धारित वस्तुओं की सूची दी जाती थी और उसका यह कर्त्तव्य था किवे व्यापारियों से सर्म्पक करे और ग्राहको से जानकारी प्राप्त करे कि किसी न किसी वस्तु विशेष के लिए निर्धारित दर से अधिक मूल्य तो नहीं लिया गया है और यदि ऐसा हुआ है, तो अपराधी को कठोर दडं दिया जाए। शहना अपने - अपने बाजारों में बाँट की जाँच - पड़ताल और निरीक्षण का कार्य भी करते थे।

प्रत्येक बाजार की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएँ थी। किन्तु ऐसी समस्याएँ भी थी जो समान रूप से भी सभी बाजारों में व्याप्त थी। सुल्तान ने यथासंभव इन्हें सुलझाने का प्रयास किया उसने व्यापारियों को मोटे तौर पर दो भागो में बाँटा। बाहर से माल लाकर नगर के व्यापारियो को देने वाले तथा नगर के बाजार में दुकान रख कर जनता के हाथ बेचने वाले फुटकर अथवा थोक व्यापारी। अलाउद्दीन ने प्रत्येक व्यवसाय से संबंधित दोनो ही प्रकार के व्यापारियों की सूची तैयार करायी, उनको व्यापार करने के लिए अनुमति – पत्र दिये गये और उनसे निर्धारित मूल्य पर सामान बेचने के लिए लिखित प्रतिज्ञा पत्र ले लिए गये। तमाम व्यापारियो को अपने परिवार सहित दिल्ली में रहने का आदेश दिया।

व्यापारियो की बेईमानी की जाँच करने के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त थे और गुप्तचर भी सदा सतर्क रहते थे। निर्धारित भावो को स्थायी बनाए रखने का उत्तरदायित्व इन्हीं अधिकारियो पर था। ये अधिकारीगण गुप्तचरो की सहायता से स्वंय गुप्त रूप से बाजार में विभिन्न वस्तुओं के भावो की सूचनाएँ प्रदान करते रहते थे।

यदि नाप – तौल में अथवा मूल्य में गड़बड़ी रहती तो सम्बद्ध व्यापारी को कठोर दडं दिया जाता था। बाजार में व्यापारियो के भ्रष्टाचार, बेईमानी, तस्करी, काला बाजारी आदि का अंत करने के लिए सुल्तान ने कठोर नियम बना दिये थे। अधिकारियो और कर्मचारियो को व्यापक अधिकार दे दिया था।

दिल्ली में अनाज लाने वालों के लिए बयाना तथा दोआब में अन्न खरीदने की व्यवस्था कर दी गयी। दोआब तथा बयाना के किसानों को अपने खर्च के अतिरिक्त बाड़ी अनाज व्यापारियो के हाथ बेचने की आज्ञा दी गई। इस क्षेत्र में भूमि कर अन्न के रूप में वसूल की गयी।इन क्षेत्रों से संबद्ध अधिकारियो को आदेश दिया गया किवे अधिक से अधिक अन्न दिल्ली भेजने में व्यापारियो को मदद करें तथा भूमिपतियों एवं किसानो को अपनी जरूरत से अधिक नहीं रखने दे।

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल आदि से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करने के लिए अलाउद्दीन ने राजधानी में अनेक सरकारी गोदाम में अन्न भरे रखने के उद्देश्य से दिल्ली के आसपास तथा दोआब क्षेत्र के भूमिपतियो और कृषकों से भूमि कर के रूप में नकद के स्थान पर अन्न लिए गये। सरकार ने किसानो से अनाज खरीद कर भी सरकारी गोदामों को भरा। राजधानी दिल्ली में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं था जहाँ दो या तीन अनाज भंडार नहीं हो इन गोदामों से व्यापारियो को अनाज बेच दिया जाता था। किसानो को भी अनाज संचय करने की अनुमति नहीं थी।

अलाउद्दीन ने बदायूँ से सराय अदल के अंदर वस्त्र के बाजार की व्यवस्था की। वस्त्रों का समस्त व्यापार यही केन्द्रित कर दिया गया। वस्त्र के व्यापारियो को अपना नाम दीवान-ए-रियासत में पंजीकृत कराने पड़ते थे। वस्त्र के व्यापारियो को यह लिखित आश्वासन देना पड़ता था कि वे निर्धारित मात्रा में वस्त्र प्रतिवर्ष सराय अदल के वस्त्र बाजार में पहुँचा दिया करेंगे और उसे सुल्तान द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही बेचेंगे।

अलाउद्दीन ने कपड़े का व्यापार सुल्तानी व्यापारियो को सौप दिया। इन व्यापारियो को निर्धारित मूल्य पर वस्त्र बेचने के लिए सूल्तान ने ऋण दिये तथा राजकोष से उन्हे अग्रिम रूप में धन देने की व्यवस्था की गयी। इस प्रकार सुल्तान ने लगभग बीस लाख तक व्यापारियो के बीच वितरित किया। जल्द ही बाजारों में कपड़े की प्रचुरता हो गयी और नियमित रूप से उपलब्ध होने के कारण कपड़ा स्थायी रूप से सस्ता हो गया।

रेशम और उच्च कोटि के कपड़ों को खरीदने के लिए क्रेता को दीवान-ए-रियासत से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती थी। अपने आवेदन पत्र में उन्हें यह भी बताना पड़ता था कि वे कितनी मात्रा में और क्यों इन कपड़ों को खरीदना चाहते है। इन प्रतिबंध के कारण अच्छे वस्त्रों में कालाबाजारी बंद हो गयी।

सेना का कम वेतन पर लोग कार्य कर सके दूध और दूध से बने सामान तथा मांस लोगों को सस्ते भाव में उपलब्ध हो इन सारी बातो को ध्यान में रख कर सुल्तान ने पशु एवं दास-दासियों के बाजार को भी नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। विभिन्न पशुओं के नस्ल आदि के आधार पर तथा दास-दासियों की योग्यता एवं सौन्दर्य के आधार पर बजार में मूल्य निर्धारित कर दिये गए।

वस्तुत: सुल्तान ने अपने सैनिको को सहूलियत देने के लिए बाजार नियंत्रण की नीति को अपनाया था किन्तु सैनिक केवल दिल्ली में ही नहीं करते थे। साम्राज्य के अन्य क्षेत्रो में भी सैनिक छावनियाँ थी। अत: ऐसा मानना अनुचित और तर्कहीन नहीं होगा। कि कम-से-कम सभी सैनिक छावनियाँ में सुल्तान ने अपनी बाजार नियंत्रण और मूल्य निर्धारित की नीति का विस्तार किया होगा। अत: बहुत से विद्वानों को मत है कि उसने अपनी नीति का विस्तार कम से कम दिल्ली के अतिरिक्त अन्य सैनिक छावनियों में भी किया होगा।

अलाउद्दीन के मूल्य नियंत्रण के संबंध में एक विचारष्टीय प्रश्न यह है कि मूल्य नियंत्रण की आज्ञा केवल दिल्ली के लिए दी गई थी या पूरी सल्तनत के लिए मोरलैड का विचार है कि भाव नियंत्रण के विषय में दिल्ली को शेष साम्राज्य से अलग कर दिया गया था। उसके अनुसार सारेदेश में भाव घटाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। प्रयास केवल दिल्ली तक ही सीमित रखा गया जहाँ सेना केन्द्रित थी।

प्रोफेसर के0 एस0 लाल मोरलैड के विचारो से सहमति प्रकट करते है और इसके पक्ष में विस्तृत प्रमाण देने का प्रयत्न भी करते है। प्रोफेसर बनारसी प्रसाद सक्सेना इससे सहमत नहीं हैं। वे लिखते है कि यह तर्क इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि दिल्ली में ही मूल्यो की कमी सेना के लिए सहायक सिद्ध नहीं होगी जिससे की समस्त देश से भरती की जाती थी। सैनिक व अश्वारोही साम्राज्य के सभी भागों में रहते थे, इसलिए केवल दिल्ली के मूल्य नियंत्रण से उनकी कोई सहायता नहीं हो सकती थी।

आधुनिक इतिहासकारों में से कुछ ने यह विचार प्रकार किया है कि बाजार-नियंत्रण और उसके परिणामस्वरूप वस्तुओ के मूल्य निर्धारित करने में अलाउद्दीन का उद्देश्य मानवीय था। वह अपनी प्रजा को सभी वस्तुएँ उचित मूल्य पर और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना चाहता था। इसके विपरित जिस कठोरता से इस बाजार-व्यवस्था को लागू किया गया और जिस प्रकार जनसांधारण पर इसका प्रभाव पड़ा उससे यह स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन ने इस व्यवस्था को लागू करने में किसी विशेष आर्थिक सिद्धांत अथवा प्रजा की भलाई पर ध्यान नहीं रखा था।

अलाउद्दीन ने बाजार नियंत्रण की संपूर्ण व्यवस्था का दायित्व दीवान-ए-रियासत नामक अधिकारी को सौपा। दिल्ली में स्थित तीनो बाजारो शहना-ए-मंडी (खाद्यन्न का बाजार) सराय-अदल (कपड़ा बाजार) तथा इसके अन्य वस्तुओ के बाजार, जिसके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है, दीवान-ए-रियासत के पूर्ण नियंत्रण में कर दिये गए। दीवान-ए-रियासत के अधीन विभिन्न अधिकारी और कर्मचारीगण थे जो इन तीनो बाजारो में होने वाले विभिन्न वस्तुओं के क्रय-विक्रय का प्रबंध नियंत्रण एवं निरीक्षण करते थे।

प्रत्येक बाजार में तीन उच्च अधिकारी नियुक्त किये गए थे। बाजार का निरीक्षक या अधीक्षक (शहना-ए-मंडी) बारीद जो बाजार में निरंतर घूम-घूम कर बाजार का निरीक्षण करते थे और बाजार के माल के क्रय-विक्रय संबंधी विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करके उच्च अधिकारी को भेजते थे और मुनहियान अथवा गुप्तचर बारीद बाजार का समस्त हाल शहना के पास और शहना इस सूचना को दीवान-ए-रियासत के पास और दीवान-ए-रियासत तमाम सूचनाओ को सूल्तान के पास भेज देता था। मुनहियानो की नियुक्ति सुल्तान स्वंय करता था। यदि बारीद, मुनहियान तथा शहना-ए-मंडी की सूचना में कोई अंतर होता तो शहना को कठोर दडं दिये जाते थे। ये अधिकारी एक दूसरे से भयभीत होने के कारण अपना कार्य बड़ी सतर्कता से करते थे।

अलाउद्दीन की बाजार नियंत्रण का मूल्य निर्धारण की नीति पूर्व मध्यकालीन युग का अनोखा प्रयोग था। यह सुल्तान की मौलिकता और बौद्धिक शक्ति का परिचायक है। मध्यकालीन युग में बाजार में वस्तुओं की कीमत का निश्चित कर दिया जाना एक बड़ी सफलता थी। यहा पर अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था उसके साथ ही समाप्त हो गयी लेकिन इससे इसका महत्व कम नहीं हो जाता है।

इस सुधार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य कम खर्च पर एक विशाल सेना स्थापना करना था। इस दृष्टिकोण से यह लाभदायक साबित हुआ। अलाउद्दीन ने एक विशाल एवं संगठित सेना की स्थापना की और उसके सहयोग से अपने अन्य महत्वकांक्षी योजनाओं की सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया। इस सेना के सहयोग से उसने सिर्फ षडयंत्रों और विद्रोहो का दमन करके साम्राज्य मे शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना की बल्कि सल्तनत का अद्वितीय विस्तार भी किया तथा मंगोल आक्रमणों से साम्राज्य को सुरक्षित भी रखा। इससे सुल्तान की राजसत्ता और केन्द्रिय शक्ति में काफी वृद्धि हुई और अलाउद्दीन के निरंकुशवाद का उत्थान हुआ।

बाजार नियंत्रण नीति से मौलिक उद्देश्य की पूर्ति होने लगी सैन्य सुद्धढ़ीकरण एक प्रभावी माध्यम के रूप में उभर कर सामने आया। बाजार नीति एक अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था के रूप में और एक अर्थ में राज्य के आय के स्त्रोत के रूप में सामने आयी। वेतन की निम्न स्तर पर रखे जाने का लाभ राज्य को निम्न व्यय के रूप में हुआ जो कि एक अप्रत्यक्ष कर की तरह से राज्य को मिला। करो के प्रकार व करो की दर अधिकतम सीमा पर थी जिसमे वृद्धि एक विस्तार की कोई गुंजाइश नहीं थी इस संदर्भ में इसका विशेष महत्व था। बाजार नीति में नए अधिकारी वर्गो की नियुक्ति हुई जैसे शाहना, बरीद, मुनहियान। इस प्रकार की व्यवस्था में प्रशासनिक ढाँचे के विकास को बल प्रदान किया।

दिल्ली के नागरिक एवं सैनिक जनसंख्या पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। एक लम्बे समय लगभग 12-13 वर्षो तक कीमतो में स्थायित्व की स्थिति बनी रही जिससे दिल्ली के लोगों को लाभ मिला। दिल्ली का क्षेत्र सूखा व अकाल से अप्रभावित रहा।

जलालुद्दीन खिलजी व मुहम्मद तुगलक के समय के प्रकार के अकालो का कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है। खाद्यन्नों की प्रचूरमात्रा में उपलब्धता से आकाल की स्थिति नहीं उभरी दिल्ली के बाजार में जमाखोरी व्यापारिक गतिविधियों में भ्रष्टाचार की प्रवृत्तियाँ पर अंकुश लगा। राशनिंग व्यवस्था एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली के रूप में स्थपित हुआ।

कृषि उत्पादों के मूल्यो का निम्न स्तर पर निर्धारण किया गया। उत्पादो का एक बड़ा भाग राज्य द्वारा अधिग्रहित किया जाता था। कृषको का निवास क्षेत्र दिल्ली से बाहर का क्षेत्र था, जिससे वे मूल्य नियंत्रण के लाभ से वंचित रहे। अधिक मूल्य पर खरीदारी व कम मूल्य पर विक्रय कृषको को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिल्ली के बाजारो तक नियमित रूप से नहीं पहुँच सकी। कृषि उत्पाद को राज्य को बेचे जाने की अनिवार्यता थी। कृषको के पास बाजार का कोई विकल्प नहीं होने के कारण वे उचित मुनाफा प्राप्ति नहीं कर पाते थे क्योकि मुनाफे का स्तर निम्न था।

यद्यपि कृषक पूर्व की कुछ समस्याओं से सुरक्षित रहे जैसे बाजार तक अपने अनाज को ले जाना, बिचौलियो का प्रभाव भी नहीं रहा परंतु तब भी इनकी अच्छी स्थिति नहीं बनी। मोरलैण्ड का कथन -'अलाउद्दीन का उद्देश्य धनी बिचौलियो का शोषण करना था कि कृषक का' सत्य प्रतीत नहीं होता। खाद्यन्नो को निश्चित मूल्यो पर बेचे जाने का प्रावधान था सरकारी मूल्यो से अधिक पर बेचे जाने पर दडं की व्यवस्था थी। स्थानीय अधिकारियों को एक बॉन्ड पर हस्ताक्षर करना होता था कि वे कि कृषको को ऐसा करने से रोके। बरनी का कथन कृषको का दस मन से अधिक अनाज रखने की अनुमति नहीं थी। कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए कोई प्रावधान नहीं था, केवल सुलिश्चित मूल्य पर खाद्यन्नो की वितरण का ही प्रावधान था। इस व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ।

भूराजस्व के 50 प्रतिशत के साथ अन्य कर भी लगाए गए। जिसके कारण बाजार नियंत्रण का प्रभाव और अधिक हो गया। प्रशासिन्त मूल्यो की स्थिति के कारण मुनाफे को पूरी तौर पर वर्जित किया गया। व्यापारिक वाणिज्यिक गतिविधियो की कुछ मौलिक सिद्धांत को नकारा गया, इसके अंतर्गत युक्तियुक्त मुनाफा को बल नहीं मिला। कठोर प्रकार के नियम लागू किए गए तथा व्यापारिक स्वतंत्रता को समाप्त हो गई। व्यापारियो के द्वारा एक दूसरे के चरित्र एवं क्रियाकलाप पर नजर रखनेके उतरदायित्व की स्थापना हुई। राज्य क नियंत्रण में व्यापारी ही नहीं बल्कि उनके परिवार के सदस्य भी थे। अत्यधिक नियंत्रण की स्थिति में व्यापारिक गतिविधियों का कोई विशेष लाभ नहीं मिलता था, जिससे व्यापारियों की स्थिति बिगड़ी।

वस्तुओ के मूल्यो के विनियमन के कारण वस्तुओ के मूल्यो में गिरावट आई जिस के परिणामस्वरूप कच्चे मालो के मूल्यों अर्थात लागत मूल्य बढ़ा। बाजार नीति के प्रभाव से श्रमिको के शिल्पकार्य की मजदूरी का ह्रास हुआ। सामान्य तौर पर बिचौलियो व व्यापारियो द्वारा शिल्पो का शोषण होने लगा क्योंकि इन वर्गो को कम मूल्य पर राज्य को वस्तु बेचनी पड़ती थी जो शिल्पियो की मजदूरी कम करती थी जिससे शिल्पी प्रभावित होते थे।

अलाउद्दीन का बाजार एवं मूल्य-नियंत्रण इस बात को लेकर महत्व पूर्ण नहीं है कि इससे वस्तुएँ सस्ती हो गई बल्कि इस बात से है कि बाजार में वस्तुओ की कीमतें निश्चित हो गई। यद्यपि अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था उसके साथ ही समाप्त हो गई तथापि इससे इनका महत्व कम नहीं हो जाता है। इस व्यवस्था से सबसे अधिक लाभन्वित सैनिक वर्ग ही हुआ। प्रो0 के0 एस0 लाल के शब्दों में अलाउद्दीन ने साधारण जनता की आवश्यकताओ से ऊपर सैनिक आवश्यकताओं को रखा तथा ऐसी सुसंगठित सेना रखी, जिसने देश तथा विदेश में सदैव अपने शत्रुओं को पराजित किया।

अनेक विद्वानों का तर्क है कि सुल्तान का उद्देश्य केवल दिल्ली की प्रजा को ही संतुष्ट करना था जिससे वे निरंकुश शासन के विरूद्ध आवाज नहीं उठा सके। दिल्ली की प्रजा के लिए सीमावर्ती लोगों का शोषण किया गया। के0 एस0 लाल के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी मानते है कि अपने सुधारो द्वारा अलाउद्दीन केवल सैनिक और सामंत वर्ग को संतुष्ट रखना चाहता था इन्हीं के आधार पर उसकी सत्ता टिकी थी। प्रो0 इरफान हबीब का भी मानना है कि इस योजना का लाभ वास्तव में सामंत और सैनिक ही उठा सके, मूल्य में कमी और मजदूरी की दर में कमी का असर समाज के छोटे तबके पर पड़ा। जिनकी क्रय शक्ति अधिक थी अथवा जिनके पास संचित धन था वे ही अलाउद्दीन की योजनाओं से लाभन्वित हो सके। अलाउद्दीन के बाद व्यापारियो का विरोध उभर कर सामने आया। इनके बावजूद यह तथ्य को स्वीकर करना ही पड़ेगा कि मूल्य-नियंत्रण की नीति अलाउद्दीन की एक विशिष्ट उपलब्धि थी।

अलाउद्दीन चाहता था कि सभी वस्तुएँ निश्चित मूल्य पर बेची जाए और वह इसमें सफल हुआ। बरनी ने लिखा है-ष्जब तक अलाउद्दीन ने शासन किया तब तक वस्तुओं के मूल्य न बढ़े और न घटे बल्कि सर्वदा निश्चित रहे। वस्तुओं के मूल्य को निश्चित रखने में अलाउद्दीन का उद्देश्य था कि वह एक बड़ी सेना रख सके। वह उसमें भी सफल हुआ। उसकी सेना बड़ी ही नहीं बल्कि

प्रत्येक युद्ध में सफल रही। अलाउद्दीन के समय में मंगोलो के भीषणतम् आक्रमण हुए परंतु अलाउद्दीन न केवल उन्हें परास्त करने में सफल रहा। अपितु भारत के दूरस्थ प्रदेशों को विजय करने में भी उसने सफलता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त दिल्ली के नागरिको को भी उससे लाभ था क्योंकि उन्हें सभी वस्तुएँ सामान्य मूल्यो पर प्राप्त होती थी और बेईमानी का कोई गुंजाइश नहीं थी निस्सन्देह वस्तुओं को निर्धारित मूल्यों पर बेचे जाने की अलाउद्दीन की व्यवस्था सफल और अद्वितीय थी।

डॉ0 के0 एस0 लाल जो अन्य विभिन्न प्रकार से उस व्यवस्था के दोषों को बताते है यह स्वीकार करते है कि **'अलाउद्दीन के शासन का वास्तविक महत्व वस्तुओं के मूल्यो के कम करने में नही है बल्कि बाजार की कीमतों को निश्चित रखने में है जो अपने युग का एक महान आश्चर्य समझा गया था।'**

अलाउद्दीन को उसकी सफलता का उचित श्रेय प्रदान करने के पश्चात यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि अलाउद्दीन की बाजार व्यवस्था न तो जनसाधारण के हित में थी न राज्य के, अंतिम हितो की पूर्ति में सहायक और न स्थायी। इस व्यवस्था से किसानो को कोई लाभ न था। जिन किसानो को अपनी पैदावार का आधा भाग लगान के रूप में देना पड़ता हो वे अपनी दैनिक आवश्यकताओ की वस्तुओ को अपनी स्थानीय बाजार के मूल्यो पर खरीदकर सुखी और सम्पन्न कैसे रह सकते थेदिल्ली के नागरिक तो अलाउद्दीन द्वारा निर्धारित मूल्यों से लाभ प्राप्त कर सकते थे परन्तु बाकी अन्य नागरिको को यह सुविधा कैसे मिल सकती थी।

कारीगरो को भी इस व्यवस्था का लाभ नहीं मिला था। क्योंकि उनके द्वारा निर्मित वस्तुएँ अधिक से अधिक उत्पादन मूल्य से कुछ अधिक मूल्य पर ही बिक सकती थी। व्यापारी वर्ग भी इससे संतुष्ट नहीं हो सकता था क्योंकि उसका लाभ राज्य की इच्छा पर निर्भर करता था। अलाउद्दीन ने व्यापारियों को वस्तुएँ खरीद कर लाने और बेचने के लिए बाध्य किया था और वह उन्हें एक - दूसरे के लिए तथा उनके परिवार के सदस्यों को उनके लिए बंधक के रूप में ररखता था। ऐसी स्थिति में व्यापार तथा उद्यगो को प्रोत्साहन मिलने का कोई प्रश्न नहीं था। डॉ0 के0 एस0 लाल ने लिखा है- 'चाहे सुल्तान का उद्देश्य उन निर्धन किसानों पर जुल्म करने का न रहा हो जिनके विरूद्ध, सम्भवतया उसे किसी शिकायत का कारण न था परन्तु राज्य की तीव्र आवश्यकताओ ने उसे ऐसे कदम उठाने पर बाध्य किया जिनके कारण व्यापार और कृषि के हितो को सेना के हितो की पूर्ति के लिए त्याग दिया गया।

इसी प्रकार डॉ0 एस0 राय ने अलउद्दीन की बाजार- व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए लिखा है-ष्जबकि संपूर्ण देश का धन निचोड़ा गया राजधानी का पेट भरा गया। दिल्ली में इतनी अधिक मात्रा में अनाज का संग्रह किया गया था कि 1334 ई0 में वहाँ आने वाले इब्नबतूता ने अलाउद्दीन के द्वारा संग्रहित चावल को खाया। इन नियमों से केवल सेना और अनजाने में दिल्ली की जनता को लाभ हुआ। जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वे बनाए गए थे उस दृष्टि से वे अत्यधिक सफल हुए। परंतु क्योंकि वे आर्थिक सिद्धांतो के विरूद्ध थे। अतएव वे अपने निर्माता के साथ ही समाप्त हो गए।ष

इस प्रकार अलाउद्दीन की व्यवस्था में मूल आधार पर दोष थे। यह व्यवस्था अलाउद्दीन के समय में ही सफल रही। कुतुबुद्दीन मुबारकशाह को न तो साम्राज्य विस्तार की आवश्यकता थी और न बाजार व्यवस्था की। मुबारकशाह इन कर्यो के योग्य मीन था। उसे युद्धो से अधिक स्त्रियों से प्रेम था। इसके अतिरिक्त शक्ति पर आधारित यह व्यवस्था बहुत लम्बे समय तक स्थापित नहीं रखी जा सकती थी। अतएव अलाउद्दीन की मृत्यू क साथ ही उसकी बाजार - व्यवस्था समाप्त हो गई।

अत: अलाउद्दीन के आर्थिक अधिनियम सल्तनत काल की महानतम प्रशासनिक उपलब्धि है। जहाँगीर के शासन काल में लिखते हुए फरिश्ता ने यह टिप्पणी की है- 'अलाउद्दीन के शासन के अंत तक ये कीमते स्थिर रही तथा वर्षा के अभाव के कारण या किसी अन्य कारणों से उनमे कोई परिवर्तन नहीं आया।यह एक अनुपम तथा विस्मयकारी उपलब्धि थी। इन आर्थिक सुधारों की सफलता प्रमुख रूप से सुल्तान की प्रतिमा तथा व्यक्तिगत मनोयोग के कारण सम्भव हो सकी। परन्तु उसकी मृत्यु के साथ इन सुधारो का भी अंत हो गया। अलाउद्दीन की बाजार व्यवस्था के स्थायी न रह पाने का मुख्य कारण यह था कि यह अधिनियम आर्थिक था अर्थशास्त्र के सुस्थापित सिद्धांतो पर आधारित नहीं थे।

संदर्भ ग्रंथ

1. एल0 पी0 शर्मा : मध्यकालीन भारत (1700-1761AD)
2. हरिश्चंद्र वर्मा : मध्यकालीन भारत (750-1540 ई0)
3. सतीश चंद्रा : मध्यकालीन भारत
4. इरफान हबीब : मध्यकालीन भारत
5. Teach yourself History : History of India
   (AD 1206 - 1526) Bharti Bhawan (P&D)

वाल्मीकि रामायण की प्रासंगिक कथाओं में आधुनिक स्त्री की समस्याएं एवं समाधान

डॉ० अमृत कौशल

संस्कृत अध्यापक (टी.जी.टी.)
आर्मी पब्लिक स्कूल, अम्बाला कैंट, हरियाणा
मोबाईल-9467541979

संक्षेपिका-भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा मान-सम्मान समाज की आधारशिला स्त्री की गौरवमयता से युत है। लौकिक व पारलौकिक उभयविध दृष्टि से स्त्री सम्माननीय है। परन्तु आधुनिक समाज में स्त्री का आदर प्रतिष्ठा शोचनीय स्थिति में है। इस प्रकार इस शोचनीयता रूप समस्या के समाधानार्थ दण्ड का विधान समाज में भय दिखाकर सन्मार्ग पर चलनार्थप्रेरित किया जाता है। रामायण में वर्णित अनेक नारियों के दृष्टान्त समुपस्थापित कर आधुनिक समाज में परिव्याप्त स्त्री की दुर्दशा रूप समस्या को जड़ से उखाड़ने के लिए स्त्री को सशक्त बनाना होगा। अपने तथा दूसरों की अन्तर्निहित ऊर्जा के अनुरूप स्त्रोत के बल पर समाज को एक नयी दिशा, एक नयी पहचान देनी होगी। इसी हेतु से रामायण स्त्री विषयक कुछ आदर्श व्यक्तित्व शोध-पत्र में दर्शाए है।

मुख्यविषयः-

रामायणकाल भारतीय समाज का स्वर्ण युग माना जाता है। उस समाज में चोरी-डकैती नहीं थी, पापकर्म की ओर कोई प्रवृत्त नहीं होता था। सभी लोग अपने-अपने धर्म-कर्तव्य का एकनिष्ठ होकर पालन करते थे। एक-दूसरे को मनसा वाचा कर्मणा कष्ट नहीं पहुँचाते थे। स्त्रियाँ भी अपने धर्म का पालन करती हुई घर-परिवार में प्रसन्न थी। सीता, शची आज भी अपने पातिव्रत्य के लिए प्रख्यात है तो कैकेयी ने अपने सैन्य-कौशल के लिए उस समय भी ख्याति अर्जित की थी। परन्तु ऐसा नहीं है कि रामायण की आधिकारिक एवं प्रासांगिक कथा के प्रधान एवं सहायक सीता, कैकेयी आदि स्त्री-पात्रों को समाज से कोई शिकायत नहीं थी या फिर परपुरुष ने उन पर कुदृष्टि नहीं डाली। इसी प्रकार रामायण की आनुषङ्गिक कथाएं जिनका उल्लेख साहित्य शास्त्रियों ने कथावस्तु के भेदों[1] के अन्तर्गत नहीं किया, इनके स्त्री-पात्रों ने जिन समस्याओं का सामना किया, वे समस्याएं ज्यों कि त्यों आधुनिक युग में भी देखने को मिलती है। ऋषियों ने नारी के प्रति पुरुष के इस असद् आचरण को अपराध माना और शाप देकर दण्डित किया। स्मृतिकारों तथा भारतीय दण्ड निर्माताओं ने भी इन्हें अपराध माना और दण्ड का विधान किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में कुछ कथाओं के माध्यम से कुछ समस्याओं के समाधानार्थ इन तीनों पक्षों का विवेचन किया जायेगा।

(1) प्रणय-प्रस्ताव को अस्वीकार करने पर शरीर को विकृत कर देना

बालकाण्ड के 32वें से 34वें सर्ग में राजा कुशनाभ की कन्याओं की कथा वर्णित है। राजा कुशनाभ की रूप-लावण्य से युक्त सौ कन्याएं थी[2]। एक दिन वस्त्र और आभूषणों से स्वयं को सुसज्जित करके सभी राजोद्यान में गाती, बजाती और नृत्य करती हुई आमोद-प्रमोद में मग्न थी।[3] तभी वायुदेव की दृष्टि उन पर पड़ी और उसने प्रणय-प्रस्ताव रखा।[4] कन्याओं के मन में वायु के प्रति कोई आकर्षण नहीं था और न ही उनके मन में वायु से विवाह करके अप्सराओं की भाँति दीर्घ आयु और अक्षय यौवन प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।[5] कुशनाभ की कन्याओं के अनुसार वायु धर्म के मार्ग पर चलकर पिता के पास जाकर वरण करना नहीं

चाहता था[6], अपितु अपनी प्रेयसी बनाकर दुराचार करना चाहता था[7] और हमारे मना करते ही बिना किसी अपराध के क्रोधित होकर कुबडी बना दिया।[8] कुशनाभ की कन्याएं चाहती तो देवता होने पर भी वायु को शाप देकर पद से भ्रष्ट कर सकती थी[9] परन्तु उन्होंने उसे क्षमा कर दिया।[10]

वाल्मीकि ने कुब्जत्व को 'भृशम्' अर्थात् गहरी चोट कहा है।[11]आयुर्वेद में भी स्नायुगत वायु विकार के कारण कुब्जत्व रोग की उत्पत्ति कही है।[12] कुब्जत्व रोग प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर ठीक भी हो सकता है और कभी ठीक भी नहीं होता।[13]

कुशनाभ की कन्याओं की 'शत' संख्या ऐसी घटनाओं की बहुतायत की ओर संकेत करती है। आज भी हम देखते हैं कि लड़की के द्वारा प्रणय-प्रस्ताव अथवा विवाह से पूर्व शारीरिक सम्बन्ध बनाने को अस्वीकार कर दिये जाने पर, तो कभी यूँ ही मौज-मस्ती करते हुए राह चलते सुन्दर लड़की को देखकर तेजाब फेंककर उसके चेहरे को विकृत कर देते है तो कभी चलती कार से पानी अथवपा शराब फेंककर स्त्री की अवमानना की जाती है। कुछ दिन पहले ही साउथ कैंपस की छात्रा राधिका की हत्या कर दी गयी। प्राय: ऐसे पुरुष वायुदेव की तरह कुकृत्य करके अदृश्य हो जाते है।

स्मृतिकारों के अनुसार समाधानार्थ दण्ड का विधान

स्मृतिकारों ने दूसरे के शरीर पर हाथ, पैर तथा आयुध से मार-पीट करने से अथवा धूल, कीचड़ एवं पुरीष (विष्ठा) आदि के फेंकने से उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक कष्ट को 'दण्डपारुष्य' के अन्तर्गत रखा है।[14] याज्ञवल्क्य ने मार-पीट करने वालों में पहल किसने की? किसने प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं कहा। इन सबका विचार करके दण्ड के कुछ नियम बनाये है जिसके अनुसार दण्ड निर्धारित किया जा सके। आहत किये जाने पर भी जो व्यक्ति (जैसाकि कुशनाभ की कन्याओं ने) प्रतिकार नहीं करता वह दण्ड का भागी नहीं, अपितु पूजनीय है।[15]

याज्ञवल्क्य ने अंग विशेष के भंग करने पर कम से कम पांच सौ पण के दण्ड का विधान किया है।[16] मनु ने अर्थदण्ड के साथ-साथ चिकित्सा व्यय को वहने करने की भी निर्देश किया है।[17]

भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार समाधानार्थ दण्ड का विधान

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 325 के अनुसार स्वेच्छया घोर उपहति (चोट) करने पर सात वर्ष की कारावास की अवधि या जुर्माना या दोनों से दण्डित किये जाने का प्रावधान है।

(2) योग्य वर की समस्या

उत्तरकाण्ड के नवमें सर्ग में रावणदि के जन्म की कथा के सन्दर्भ में तथा सत्तरवें सर्ग में वेदवती की कथा के व्याज से शिक्षित कन्या के लिए योग्य वर की समस्या का वर्णन मिलता है।

कैकसी के पिता सोमाली ने सर्वगुणसम्पन्न, साक्षात् लक्ष्मी के समान ही अपनी पुत्री के लिए समान सर्वगुणसम्पन्न वर के लिए बहुत प्रयास किया, परन्तु कोई सुयोग्य वर नहीं मिला।[18] स्वयं निर्णय लेने में समर्थ युवती से श्रेष्ठ वर इस भय से विवाह का प्रस्ताव नहीं रख रहे थे कि कहीं कैकेसी इंकार न कर दे।[19] पिता चिन्तित थे कि युवावस्था बीत जाने पर विवाह होना मुश्किल हो जायेगा। अत: पिता ने आयु से अधिक, एक युवा पुत्र के पिता, उच्च कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न मुनिवर विश्रवा से विवाह करने का निर्णय लिया।[20]पिता ने पुत्री की आयु से अधिक आयु के वर का चयन, वर के सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र कुबेर के समान ही भावी संतान की श्रेष्ठता और शुद्धता का विचार करके किया था।[21]

वेदवती वेदों को जानने वाली, सर्वगुणसम्पन्न एवं तीनों लोकों की अद्वितीय सुन्दरी थी।[22] वेदवती के विवाह योग्य होने पर अनेक श्रेष्ठ देवता, गन्धर्व, यक्ष, रावण और नागों ने स्वयं आकर पिता कुशध्वज से पुत्री का हाथ माँगा किन्तु पिता को इनमें से कोई भी पसंद नहीं था।[23] वे देवताओं के स्वामी, तीनों लोकों के अधिपति विष्णु से ही वेदवती का विवाह करना चाहते थे।[24] पिता कुशध्वज के इंकार से कुपित दैत्यराज शम्भु ने उनकी हत्या कर दी। पिता के शोक में माता भी अग्नि में प्रविष्ट हो गयी।[25] माता-पिता के न रहने पर वेदवती अकेली रह गयी। पिता की इच्छा को ही अपना मनोरथ बनाकर वेदवती ने विष्णु को पति रूप में पाने के लिए 'तपस्या' करना प्रारम्भ कर दिया।[26] निरन्तर तपस्या में संलग्न उसकी कांति देवा्गना के समान हो गयी। एक दिन उसके रूप सौन्दर्य को देखकर रावण कामजनित मोह के वशीभूत हो गया।[27] रावण वेदवती को उसके रूप और युवावस्था की सार्थकता को समझाता

हुआ तपस्या से विमुख करने का प्रयास करता है।[28] इसके साथ ही वह स्वयं को बल, पराक्रम, तप और भोग-वैभव में विष्णु से श्रेष्ठ बतलाता है।[29] वेदवती इसे विष्णु को अवहेलना समझती है और इंकार कर देती है।[30] इंकार से क्रुद्ध रावण केश पकड़कर दुराचार (घर्षण) करने का प्रयास करता है।[31] वेदवती इस तिरस्कार को सहन न करती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाती है।[32]

आज के युग में माता-पिता पुत्र के समान ही पुत्रियों का लालन-पालन करते है। उन्हें स्वालम्बी तथा उच्च पद की प्राप्ति हेतु उचित शिक्षा-दीक्षा देते है। बी0ए0, एम0ए0 अथवा इन्टरमीडिएट के पश्चात् इंजिनियरिंग, मेडिकल की शिक्षा की बाइस-तैईस वर्ष की आयु में पूर्ण हो पाती है। शिक्षा समाप्ति के बाद नौकरी मिल जाने के पश्चात् ही माता-पिता एवं लड़कियाँ विवाह करने की सोचते है। फलतः विवाह के लिए लड़की की आयु बाधक नहीं है। वर-वधु दोनों पक्ष ही समान शिक्षा, समान व्यवसाय, समान रूचि एवं समान जीवन-स्तर पर विशेष ध्यान देते है। दोनों समान रूप से घर-परिवार के उत्तरदायित्व को वहन करते है। कैकेसी के पिता की तरह आज का पिता इस बात से चिन्तित नहीं है कि कैसा पुरुष कन्या का वरण करेगा।[33] यह भी सत्य है कि वधु की बड़ी आयु, शिक्षा एवं पद के उच्च होने पर वर पक्ष को परस्पर सामञ्जस्य की आशंका बनी रहती है। मनोवांछित वर न मिलने पर कन्याएं निराश एवं दुःखी नहीं होती अपितु वेदवती की तरह 'तप' करती हुई जीवन व्यतीत करती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, भूख-प्यास, मान अपमानदि द्वन्दों को सहन करना ही 'तप' है।[34] योगभाष्यकार के अनुसार इस तप से जन्म-जन्मान्तरों की चित्त में स्थित वासना और क्लेशों से मुक्ति मिल जाती है।[35]

घर से दूर नौकरी करती हुई लड़कियाँ एकाकी ही उचित आवास की व्यवस्था में कभी समाज के सहयोग कभी तिरस्कार को, घर में स्वयं के खाने-पीने, सोने, उठने-बैठने के समुचित प्रबन्धन की व्यवस्था में सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास को सहन करती हुई यथार्थ रूप में तप की अग्नि में अपने चित्त में स्थित काम-वासनाओं को जलाकर त्रिविध दुःखों से जनित संताप से मुक्त होकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी क्षमताओं को पहचान कर समाज में अपना एक स्थान बनाती है।

(3) पुत्रवधू से दुराचार

उत्तरकाण्ड के 26वें सर्ग में वर्णित कथा के अनुसार रावण ने अपने बड़े भाई कुबेर के पुत्र 'नलकूबेर' की पत्नी रम्भा से बलात्कार किया था।[36] रम्भा ने सारी घटना नलकूबेर को सुनाई। नलकूबेर ने रावण को शाप दिया कि यदि वह कामपीडित होकर उसे न चाहने वाली युवती के साथ दुराचार करेगा तो तत्काल उसके मस्तक के सात दुकड़े हो जायेगें।[37] इसी शाप के भय के कारण रावण ने बिना स्वीकृति के सीता का स्पर्श नहीं किया।

कन्या के साथ दुराचार

उत्तरकाण्ड के 79-81वें सर्ग में राजा दण्ड के अपने गुरू शुक्राचार्य की पुत्री अरजा से दुराचार की कथा वर्णित है। राजा दण्ड रूप-सौन्दर्य से युक्त अरजा के परिचयपूर्वक समागम की इच्छा व्यक्त करते है। अरजा के विवाह के बिना शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए इंकार कर देने प रवह बलपूर्वक दुराचार करता है।[38] पुत्री के प्रति भीषण अत्याचार को सुनकर तथा धूल से लिपटी, रोती हुई पुत्री को देखकर[39] शुक्राचार्य राजा दण्ड को शाप देते है कि तू सात दिन के अन्दर पुत्र, सेना और सवारियों सहित इन्द्र द्वारा की गयी धूल की वर्षा से नष्ट हो जायेगा।[40] इस वर्षा से राज्य के समस्त चराचर प्राणी भी अदृश्य हो जायेगे। शापवश राजा राज्य सहित सात दिन में नष्ट हो गया।[41]

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि शुक्राचार्य ने पुत्री को 'दुर्मेधा'[42] (दुर्बुद्धि) कहकर उसकी भर्त्सना की है क्योंकि उसने भी तो कामातुर राजा के दुराचार को सहनकर इस पापाचरण में सहयोग दिया था।[43] इसीलिए मुनि प्रायश्चित करने के लिए आश्रम में अकेला छोड़कर चले गये।[44] शुक्राचार्य का यह दृष्टिकोण कुछ समय पहले तक न्यायालय में आरोपी के वकील का रहता था जो स्त्री से अनेकानेक प्रश्न पूछकर यह सिद्ध करने का प्रयास करता था कि इसमें स्त्री की भी सहमति थी। और इसी आधार पर वह आरोपी को निरपराधी साबित कर देता है। किन्तु इन प्रश्नों को आपत्तिजनक माना गया। आज स्त्री का कथन और मेडिकल जांच की अपराध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

आज भी 'घरेलू यौन शोषण' की समस्याएं विद्यमान है। पिता का अपनी औरस पुत्री के साथ किये गये दुराचार की घटनाएं भी देखने को मिलती है। रामायणकालीन समाज में स्त्रियाँ ऐसी घटनाओं को छिपाती नहीं थी, अपितु घर-परिवार वाले भी अपराधी को

दण्डित करने में सहयोग देते थे। वही दूसरी ओर अरजा की कहानी में पिता ने पुत्री को भी अपराधी मानकर उसे निर्वासित कर दिया। परिवार की यहीं दुर्लभ स्थिति आज भी देखने को मिलती है। एक ओर परिवार एवं समाज में तिरस्कार के भय से ऐसी घटनाओं को छिपा दिया जाता है तो दूसरी ओर स्त्रियाँ संगठित होकर आत्मसम्मान हेतु न्याय दिलवाने के लिए प्रयासरत रहती है।

स्मृतिकारों के अनुसार समाधानार्थ दण्ड का विधान

स्मृतिकारों ने संभोग वर्जित स्त्रियों की सूची में वधू (पतोहू) तथा कुमारी को भी परिगणित किया है।[45] ऐसी स्त्री को दूषित करने पर लिंगच्छेदन दण्ड का विधान दिया है।[46]

भारतीय दण्ड संहिता समाधानार्थ दण्ड का विधान

धारा 376 के अनुसार स्त्री की इच्छा के विरुद्ध अथवा सहमति के बिना दुराचार करने वाला काम सात वर्ष अथवा आजीवन या दस वर्ष तक की कारावास और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार इन समस्याओं के समाधानार्थ दण्ड का विधान समाज में भय दिखाकर सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया जाता है। सत्ता और धन से गर्वित व्यक्ति को भय कैसा? ये समस्याएं समाज में तब तक रहेगी जब तक नारी स्वयं को अबला और असहाय मानकर दुराचार को सहन करती रहेगी। कुशनाभ की सौ कन्याएं अपने तप के बल को जानती थी। चाहती तो वायुदेव को दण्डित कर सकती थी परन्तु उन्होंने क्षमा का मार्ग अपनाया। वेदवती के पास भी इतना सामर्थ्य था कि बिना किसी औजार की सहायता के अपने हाथ से रावण के द्वारा स्पर्श किये हुए अपने केशों को काट दिया परन्तु रावण का विनाश करने के स्थान पर स्वयं को नष्ट कर दिया। अरजा की तरह प्रायश्चित से भी समस्या का समाधान नहीं होने वाला। समस्या को जड़ से उखाड़ने के लिए नारी को सशक्त बनाना होगा। अपने तथा दूसरों की अन्तर्निहित ऊर्जा के अजस्त्र स्त्रोत के बल पर समाज को एक नयी दिशा, एक नयी पहचान देनी होगी।

संकेत सूची

1. इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्पयते।
   आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासङ्गिमथापरम्।। साहित्यदर्पण, 6.42-44, दशरूपक, 1.11-13
2. कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्। रामायण, 1.32.11
3. वही, 1.32.12-13
4. ताः सर्वा गुणसम्पन्ना रूप्यौवनसंयुताः।
   दृष्ट्वा
   सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत्।। वही, 1.32.11
5. अहं वः कामये सर्वा भाया र्मम भविष्यथ। मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्थ।।
   चलं हि यौवनं नित्यं मानुषेषु विशेषतः। अक्षयं यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यथ।। रामायण, 1.32.
6. वायुः सर्वात्मको राजन् प्रधर्षयितुमिच्छति। अशुभं मार्गस्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते।। वही 1.33.2-3
7. धर्ममवमन्यतेबलात्कारं करोतीति। रामायण, तिलकटीका, 1.32.26
8. तासां तु वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः।। रामायण, 1.32.23
9. कुशनाभसुता देव समस्ताः सुरसत्तम।
   स्थानानाच्च्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम्।। वही, 1.32.20
10. वही, 1.33.6-8
11. वही, 1.33.2
12. बाह्याभ्यन्तरमायामं खल्लिं कुब्जत्वमेव च।

सर्वांगकाांगरोगांश्च कुर्यात् स्नायुगतोशर्षनित्ल:।। चरक, चिकित्सास्थान, 28.35

13. (क)

परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधाधिभि:।

भस्मादिभिश्चोपघातो दण्डपारुष्यमुच्यते।। नारदस्मृति, 15.4

(ख)

परगात्रेषु स्थावरजंगमात्मकद्रव्येषुकृभस्मना आदिग्रहणाद्रज: पङ्कपुरीषाद्यैश्यकृदण्डपारुष्यम्। मिताक्षरा, 2.212 से पूर्व

14. मिताक्षरा, 2.212 से पूर्व, नारदस्मृति, 15.9,10,11-14

15. उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ।

परस्परंतु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहस:।। याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.216

16. अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा।

समुत्थानव्ययं दाप्य: सर्वदण्डमथापि वा।। मनुस्मृति, 8.287, याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.222

17. त्वत्कृते व वयंसर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धय:।

त्वं हि सर्वगुणोपेता श्री: साक्षादिव पुत्रिके।। रामायण, 7.9.8

18. पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते।

प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरै: प्रतिगृह्यसे।। वही, 7.9.7

19. सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम्।

भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम्।। रामायण, 7.9.11

20. ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्रा: पुत्रि न संशय:।

तेजसा भास्करसमो तादृशोऽयं धनेश्वर:।।

21. त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम्।

त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते।। वही, 7.17.22, 10

22. ततो देवा: सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा:।।

ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे।

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेश्वर।। वही, 7.17.10-11

23. पितुस्तुमम जामाता विष्णु: किल सुरेश्वर:। वही, 7.17.12, 26,

24. वही, 7.17.13-15

25. ततोमनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति।

करोमीतितमेवाहं हृदयेन समुद्वहे।।

इतिप्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तप:। वही, 7.17.16

26. आर्षेण विधिना चैनां दीप्यन्तीं देवतामिव।। वही, 7.17.2

27. वही, 7.17.3

28. रूपंतेश्नुपमं भीरू कामोन्मादकरं नृणाम्।

न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णय:।। वही, 7.17.4

29. वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च।

स मया नो समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने।। रामायण, 7.17.24-25

30. वही, 7.17.27

31. मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत्। वही, 7.17.28, 31

32. वही, 7.17.29

33. न ज्ञायते च क: कन्यां वरयेदिति कन्यके। वही, 7.9.9

34. तपो द्वन्द्वसहनम्। द्वन्द्वं च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च। योगभाष्यम्, 2.32
35. अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तेण तपः संभेदमापद्यत इति तपस उपादानम्। योगभाष्यम्, 2.1
36. तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते।....स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले।
कामभोगासिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे। रामायण, 7.26.30-40
37. यदाह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम्।
मूर्धातु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा।। वही, 7.26.55-56
38. वही, 7.80.1-18
39. रामायण, 7.81.1-2
40. सप्तरात्रेण राजासौ सपुत्रबलवाहनः। पापकर्मसमाचारो वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः।।
समन्ताद् योजनशतं विषयं चास्य दुर्मतेः। धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः। वही, 7.81.7-8
41. वही, 7.81.9
42. सप्ताहाद् भस्मसाद् भूतं यथोक्तं ब्रह्मवादिनां। वही, 7.81.18
43. इहैव वस दुर्मेधे आश्रमे सुसमाहिता। वही, 7.81.13
44. यस्माद्दण्डधर्षणसहिष्णुदुर्मतिरसि। वही, तिलकटीका, 7.81.13
45. यस्माद्धर्षणसहिष्णुर्बुद्धिरसि, ततः तादृशमलमोचनार्थं समाधिमती सती वसेत्यर्थः। गोविन्दराजटीका, 7.81.13
46. नारदस्मृति, 15.73-75, मनुस्मृति, 11.170
47. वही, 15.73-75, मनुस्मृति, 8.364

आधुनिक मिथिला में सामाजिक सुधार आन्दोलन का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० प्रमोद गाँधी

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय, सरिसबपाही, मधुबनी
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

डॉ० बेबी कुमारी

पी-एच. डी. (इतिहास)
महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय, सरिसबपाही, मधुबनी
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

सार-संक्षेपः

मिथिला में सामाजिक सुधार आन्दोलनों का उद्देश्य मुख्य रूप से समाज से कुरीतियों को समाप्त करना रहा है तथा इसमें आंशिक रूप से सफलता भी मिली। इन आंदोलनों के परिणामस्वरूप नागरिकों में सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध एक जनमत तैयार हुआ। स्त्री शिक्षा का प्रचलन हुआ और तेजी से इसका विस्तार हुआ। सती-प्रथा की सामाप्ति में इन आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। पर्दा-प्रथा, विधवा-विवाह पर रोक व बाल-विवाह को समाप्त करने के लिए इन आंदोलनों ने एक उपयुक्त वातावरण तैयार किया और लोगों में जागृति पैदा की। अस्पृश्यता व जातिवाद के प्रभावों को शिथिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन आंदोलनों के प्रभाव से सरकार ने भी अनेक सामाजिक विधान बनाकर विभिन्न कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयास किया। नशाखोरी पर थोड़ी-बहुत रोक लगी और नशा निषेध के कार्यक्रम बनाये जाने लगे। धार्मिक अंधविश्वासों व आडंबरों का प्रभाव कम हुआ और धार्मिक समानता की भावनाओं को प्रोत्साहन मिला। दहेज-प्रथा के प्रचलन में थोड़ी-बहुत कमी आई।

मुख्य-बिन्दु *: परिचय, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक पहलू, मिथिला का क्षेत्रीय इतिहास, मिथिला में इतिहास लेखन.*

परिचयः

भारत में जब सामाजिक सुधार आंदोलन का क्रम जारी था, इसी क्रम में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि ने अपने ज्ञान-विज्ञान के द्वारा समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रूढिवादिता, धार्मिक कट्टरता को शिथिल करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके सत्प्रयास से सती-प्रथा, बाल-विवाह, छुआछूत आदि का अंत हुआ और विधवा पुनर्विवाह, नारी-शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ जिसका व्यापक प्रभाव मिथिला के सामाजिक दशा पर पड़ा। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मिथिला के कुछ सपूतों ने सामाजिक उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्ष, खादी के प्रचार-प्रसार, महिलाओं की शिक्षा, पर्दा-प्रथा के

उन्मूलन एवं आध्यात्मिक उन्नयन में अपना योगदान दिया। चाहे वे सूरज नारायण सिंह हों या कर्पूरी ठाकुर, जानकी नन्दन मिश्र हों या बाबू सत्यनारायण मिश्र; चाहे हरिनाथ मिश्र हों या राधानंदन झा, अपने योगदान की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखनेवालों में से एक रहे हैं पंडित रामनंदन मिश्र। एक अर्से तक मिथिला का समाज रूढ़िवादी और कट्टरपंथी रहा। घोर रूढ़िवादी ब्राह्मण कुल की संतान श्री रामनंदन मिश्र ने अपने ही घर से पर्दा प्रथा के उन्मूलन हेतु गृहत्याग को भी शिरोधार्य किया। विद्रोही पुत्र ने अपने पिता के धन का भी त्याग कर दिया था। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा था कि प्राचीन प्रथा के कारण स्त्री जाति के उत्कर्ष पक्ष को वे रोकना उचित नहीं मानते। अत: पर्दा-प्रथा के विरूद्ध युद्ध ठान लिया था। इसके कारण परिवार समाज से वहिष्कृत हरिजन बना दिया गया था।

गांधीजी के परामर्श एवं स्व0 जगदीश चौधरी के आर्थिक सहयोग से मगन आश्रम की स्थापना की गई जो लहेरियासराय से 5 मील दूर मझौलिया गांव में है। मगन आश्रम जाति भेद विरोधी, पर्दा विरोधी तथा सरकार विरोधी केन्द्र था। उस समय आश्रम के परिवार में कुछ व्यक्ति राम नंदन मिश्र एवं उनकी पत्नी राज किशोरी देवी, मझौलिया गांव के जगदीश चौधरी एवं उनकी पत्नी जिन्होंने मगन आश्रम के लिए जमीन दान की थी, पिपरा गांव के वृज विहार कुंवर मझौलिया के ही श्री नारायण चौधरी तथा उनकी पत्नी जगदंबा देवी, श्री नीरस चौधरी एवं उनकी पत्नी सावित्री देवी शामिल हुए।

रचनात्मक कार्यक्रम के दौरान मगन आश्रमवासी भी विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार के साथ खादी के प्रचार-प्रसार में रत रहे। वे मझौलिया से कंधे पर खादी बेचने जाते और उसके कमीशन से ही अपने भोजन का खर्च निकालते। एक बार गांधी जन्म दिवस के अवसर पर वे खादी फेरी के काम में अपनी पत्नी राज किशोरी देवी, श्री नारायण चौधरी एवं जगदंबा देवी के साथ मुसलमानो की बस्ती पुरखोपट्टी चले गये और उन्होंने वहां मुहम्मद बाबू के यहां आतिथ्य स्वीकार करते हुए भोजन किया। समाज का विरोध तो वे सह ही रहे थे, यह कार्य तो और भी अग्नि में घी का काम किया।

इस प्रकार मिथिला के सपूतों, यथा- पंडित रामनंदन मिश्र, जानकी नन्दन मिश्र, सत्य नारायण मिश्र, सूरज नारायण सिंह, कर्पूरी ठाकुर आदि के सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध आंदोलन, महिलाओं को राष्ट्र निर्माण के कार्यों में भाग लेने को प्रोत्साहन, छुआछूत हटाना, मजदूर वर्ग की असुविधाएं दूर करना एवं ग्राम पुनर्निर्माण आदि में सक्रिय योगदान दिया।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

मिथिला का क्षेत्र 1929 से पूर्व परंपरावादी सोच से अधिक प्रभावित रहा। यहां वेद, दर्शन, ज्योतिष आदि संस्कृत शिक्षा के माध्यम से लोग अधिक प्रभावित थे। लोग शास्त्रों के अनुरूप अपने क्रियाकलापों को संचालित करते थे। जाहिर है कि आधुनिकता से मिथिलावासी अलग रहना चाहते थे लेकिन मिथिला के तत्कालीन महाराजा कामेश्वर सिंह ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर लोगों को भी इस हेतु उद्वेलित किया। यदुनाथ ने जो तत्काल मेडिकल स्कूल में पढ़ रहे थे, पढ़ाई छोड़कर लोगों में व्याप्त कुरीतियों को दूर किया। बाबा नागार्जुन ने अपनी रचनाओं द्वारा जनमानस में क्रांति के बिगुल फूंक दिए। बाल - विवाह एवं छुआछूत को दूर करने में बाबा नागार्जुन ने महती भूमिका निभाई। उनके द्वारा रचित रचना में उपन्यास, कहानी, कविता आज भी मिथिला को झकझोड़ती है।

आधुनिक मिथिला के प्रसिद्ध पं0 श्री प्रतिपाल झा जो मधुबनी जिला के गोनौली गांव के निवासी हैं, उन्होंने मैथिल समाज में व्याप्त रूढ़िवादी कर्मकाण्ड का प्रबल विरोध किया। उन्होंने मिथिला में प्रचलित बलिदान प्रथा का विरोध किया। प्रारंभ में उन्हें काफी विरोध का सामना करना पड़ा लेकिन एक दो करके उन्होंने एक बलिदान विद्रोही संगठन का निर्माण कर बलिदान प्रथा को रोकने के लिए मुहिम चलाई। इस आंदोलन से काफी लोग उनके साथ हुए। इसी का परिणाम है कि मिथिला में, अब अनेक घरों में जहां पहले मुंडन, उपनयन आदि शुभ संस्कारों के अवसर पर कुलदेवता को छागर बलिदान दिया जाता था वहां अब खाजा - लड्डू आदि मिठाइयों का भोग लगाया जाता है।

सामाजिक सुधार का कार्य एक अन्य प्रमुख सामाजिक कार्यकर्त्ता डॉ0 संजीव कुमार झा ने किया। उन्होंने मैथिल ब्राह्मणों में विवाहादि संस्कारों में लगने वाले समय में शिथिलता बरती। मैथिल ब्राह्मण में पहले विवाह के दिन से चौथे या पांचवें दिन वर -वधू का मिलन होता था। इन दिनों कई वैवाहिक कर्मकाण्ड से वर - वधू को गुजरना होता था। साथ ही चौथे या पांचवें दिन चतुर्थी विवाह जिसे द्वितीय विवाह भी कहा जाता है, होने पर विवाह पूर्ण माना जाता है। इसके बाद साल भर कुछ-न-कुछ विवाह से जुड़े

विधि-व्यवहार मनाये जाते रहते थे, उसके बाद द्विरागमन होता था। लेकिन डॉ0 झा ने वर्त्तमान समय के तकाजा को देखते हुए इस नियम के शिथिलता के लिए जन समूह को प्रेरित किया। मिथिला के सभ्य समाज पर इसका व्यापक असर हुआ और इसका परिणाम है कि अब विवाह के दिन ही वधू प्रवेश हो जाता है और साल भर विधि व्यवहार या पर्व त्योहार मनाने की भी आवश्यकता नहीं होती। बीच का एक - दो पर्व जैसे मधुश्रावणी एवं कोजागरा मनाया जाता है। इस तरह वर - वधू के एवं सगे संबंधियों के समयाभाव को देखते हुए विवाहादि संस्कार में सुधार करने में डॉ0 झा की भूमिका उल्लेखनीय है।

मिथिला में सामाजिक सुधारकर्त्ता के रूप में महाराजा कामेश्वर सिंह, यदुनाथ झा, कर्पूरी ठाकुर, पं0 रामनन्दन मिश्र, बाबा नागार्जुन, पं0 श्री प्रतिपाल झा एवं डॉ0 संजीव कुमार झा का नाम उल्लेखनीय है। मुख्य आंदोलन अंग्रेजी शिक्षा को स्वीकारने, विदेश जाने, छुआछूत एवं जातीय भेदभाव को दूर करने, बाल विवाह, पर्दा प्रथा को दूर करने, बलिप्रथा को दूर करने, वैवाहिक कर्मकाण्ड को शिथिल एवं समय को कम करने आदि के रूप में देखा जा सकता है।

सांस्कृतिक पहलू

मिथिला की संस्कृति की संपूर्ण विश्व में एक अलग पहचान रही है। यहाँ की प्रचलित व्यवहार एवं प्रथाएँ शास्त्र -सम्मत तो है ही, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अनुकूल है। मिथिला में सामाजिक समरसता पाया जाता है। यहाँ के लोग सहिष्णु एवं युग के अनुसार सामंजस्य स्थापित करनेवाले रहे हैं। इसीलिए यहाँ शंकराचार्य एवं गौतम बुद्ध जैसे महात्माओं का आगमन हुआ। विद्यापति, वाचस्पति मिश्र, मंडन मिश्र एवं शंकर मिश्र की ख्याति तो संपूर्ण भारत में फैली है।

फ्रांस की राज्य क्रांति, ब्रिटिश शासन की स्थापना, अँग्रेजी शिक्षा का विकास, औद्योगीकरण की प्रक्रिया तथा स्वतंत्रता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में इतिहासकारों ने सामाजिक सुधार आंदोलन का विश्लेषण किया है। उल्लेखनीय है कि संस्कृति ही भारत की विशिष्टता है। यहाँ संस्कृति में काफी उतार-चढ़ाव देखने में आया है। इसपर मुगल एवं योरोपीय संस्कृति की छाप पड़ी है। यहाँ स्पष्ट करना उचित प्रतीत होता है कि आधुनिक काल में भारतीय समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था में काफी परिवर्त्तन दिखाई पड़े हैं। भारत में राजा राममोहन राय ने पुनर्जागरण आंदोलन की शुरूआत की। उन्होंने सती प्रथा के खिलाफ निर्णायक संघर्ष किया अंग्रेजी भाषा तथा आधुनिक शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया। ब्रह्मसमाज , आर्यसमाज, प्रार्थना समाज तथा रामकृष्ण मिशन के स्थापना के आधार पर भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन को नई दिशा प्राप्त हुई। आधुनिक मिथिला के इतिहास के अण्वेषण से स्पष्ट होता है कि इस विभाग में आधुनिक शिक्षा का विकास विलंब से हुआ। महाराज लक्ष्मीष्वर सिंह के सत्प्रयास से 1878 ई0 में राज इंग्लिश स्कूल की स्थापना की गई। परन्तु मिथिला में संस्कृत तथा कर्मकाण्ड का वर्चस्व मौजूद था। दरभंगा राज तथा अन्य जमींदारों ने भी अंग्रेजी शिक्षा के विकास के लिए प्रयत्न नहीं किया। फलतः मिथिला में सामाजिक - सांस्कृतिक सुधार आंदोलन व्यवस्थित रूपों में दिखाई नहीं पड़ता है। परन्तु हाल के वर्षों में विभिन्न विद्वानों के अनुसंधानों तथा शोध - निबंधों के आधार पर स्पष्ट होता है कि मिथिला में भी सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार आंदोलन में प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने लगातार संघर्ष किया है।

वैदिक ऋचाओं में एवं औपनिषदिक गाथाओं तथा पुराणों में मिथिला का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण तथा महाभारत में भी मिथिला की संस्कृति, दर्शन तथा परंपरा का विवरण प्राप्त होता है। यह दर्शन और चिन्तन की भूमि है। यह न्याय तथा साहित्य का केन्द्र स्थल है। जनक विदेह के लिए चर्चित है। भारती-मंडन का आख्यान जन-जन को ज्ञात है। तांत्रिक परंपरा के क्षेत्रों में भी मिथिला के सिद्ध पुरुषों का योगदान अविस्मरणीय है। स्पष्ट है कि संस्कृति एवं दर्शन के क्षेत्रों में मिथिला एक विषिष्ट भू-भाग के रूप में अर्चित-चर्चित है। उल्लेखनीय है कि महाराज जनक के समय में मिथिला के योगीन्द्र महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा उनकी पत्नी मैत्रेयी को दिया गया उपदेश 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो कृकृ, जो मंत्र आध्यात्म विद्या की जड़ है एवं समस्त वेदान्त दर्शन का मूल आधार है, इससे स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में अध्यात्म विद्या एवं दर्शन की उत्पत्ति स्थल मिथिला है। मिथिला बिहार के उत्तर में अवस्थित एक विशिष्ट क्षेत्र के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है। अतः मिथिला की परिधि को स्पष्ट करना अपेक्षित है। मिथिला के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूरब में कोशी एवं महानन्दा तथा पश्चिम में गंडक नदी समूह अवस्थित है।

आचार्य रमानाथ झा[1] ने अपने शोध-निबंध "The Maithil way of Life" में स्पष्ट किया है कि मिथिला में सांस्कृतिक दर्शन का विशेष महत्त्व रहा है। सांस्कृतिक दर्शन आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, कर्मकाण्ड एवं संस्कार से जुड़ा हुआ है। उनके अनुसार मिथिला

के सांस्कृतिक दर्शन में गृहस्थाश्रम का विशेष महत्त्व है। गृहस्थाश्रम के द्वारा ही व्यक्ति पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है। गीता के कर्मयोग के प्रति मिथिला में अटूट आस्था है।

मिथिला में उत्पादन का मुख्य साधन कृषि अर्थव्यवस्था से संबंधित है। अत: लोक पर्वों के प्रति इस क्षेत्र के जनमानस में अप्रतिम आस्था है। उदाहरणस्वरूप छठ पर्व का आयोजन पवित्रता के साथ किया जाता है। साथ ही चौठचन्द्र का भी पर्व मनाने की परंपरा है। कृषि पर्व के अन्तर्गत नवान्न तथा मकर संक्रांति आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

मिथिला में वर्ण व्यवस्था के नियमों तथा मानदण्डों का अनुपालन किया जाता है। वर्ण व्यवस्था के संरक्षण हेतु कुछ विशिष्ट जातियों में पंजी व्यवस्था का संरक्षण किया जाता है। वस्तुत: पंजी व्यवस्था वंश परंपरा, नातेदारी संबंध, पारिवारिक संरचना तथा वैवाहिक प्रकरणों के लिए व्यवस्थित है। ज्ञातव्य है कि मिथिला में कुलदेवता एवं कुलदेवी के पूजन की परंपरा रही है। इसके अंतर्गत गोसाउनि की पूजा घर-घर में की जाती है।

मिथिला में उपवास एवं व्रत का भी विशेष महत्त्व है। उदाहरणस्वरूप बिहुलाव्रत, जयन्ती व्रत, कृष्णाष्टमी, सोमवारी, हरितालिका, चौठचन्द्र, जितिया, छठ एवं नवरात्रा पर्व, गणेश चौठ आदि प्रसिद्ध व्रत है। एकादशी, प्रदोष एवं चतुर्दशी का व्रत भी प्रसिद्ध है। पुरुष की तुलना में व्रत तथा उपवास का प्रचलन महिलाओं में अधिक है। उल्लेखनीय है कि मिथिला में वास्तुशास्त्र की महती परंपरा रही है। गृह निर्माण कार्य से संबंधित विधि नियमों की स्पष्ट संरचना है। अन्न, जल, वस्त्र और शरीर की शुचिता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। विवरणों के आधार पर स्पष्ट होता है मिथिला में दार्शनिक चिंतन की एक विशिष्टता मौजूद है। यह शास्त्रीय नियमों तथा परंपरागत व्यवस्थाओं पर केंद्रित है। इस क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का अधिक प्रचार तथा प्रसार है। सामाजिक जीवन शास्त्रीय पद्धतियों के द्वारा अनुशासित है। पर्व, त्योहारों तथा उत्सव संस्कारों के आधार पर मिथिला के सांस्कृतिक जीवन को एक अलग पहचान प्राप्त है।

प्रो0 रमानाथ झा ने भी स्पष्ट किया है कि भारत में मिथिला की अपनी एक प्रतिष्ठा है, सम्मान है, आदर है और यह सब राजनीतिक कारणों से नहीं प्रत्युत मिथिला के सामाजिक मूल्यों के कारण है जो, बहुत अंशों में अक्षुण्ण है। प्रो0 रमानाथ झा ने यह भी स्पष्ट किया है कि मैथिली की स्वतंत्र सत्ता अभी भी सुरक्षित है। इसका कारण एक ही है, मैथिली का सामाजिक सुसंगठन और सांस्कृतिक परंपरा में उसकी अटल आस्था- 'धर्मस्य निर्णयो ज्ञेयो मिथिलायां व्यवहारत:'। अर्थात् मिथिला की सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-नीतियों एवं व्यवहारों में ही धर्म निहित है, उसके तत्त्व हैं। इसलिए मिथिला में शास्त्र से अधिक व्यवहार को मान्यता प्राप्त है।

मैथिलों ने राजनीतिक प्रतिष्ठा को कभी भी महत्त्व नहीं दिया, अधिकार की कभी लिप्सा नहीं की। धन को कभी भी अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बनाया। इनके लिए जाति की रक्षा, धर्म का आचरण, विद्या का व्यवसाय साधन के रूप में नहीं, साध्य रूप में है। धर्मबुद्धि से और योजनाबद्ध सुसंगठित समाज के नियमों का धार्मिक नियमों से भी अधिक दृढ़ता से परिपालन करे-यही मैथिल जाति की सांस्कृतिक परंपरा रही है। इनके जीवन-धर्म के गुण हैं- त्याग, संयम और मर्यादा। इन्ही कारणों से मैथिल समाज पिछड़ी हुई अवश्य है, पर है जीवित और सनातन धर्म के रक्षक के रूप में अभी भी आदृत है।

मिथिला का क्षेत्रीय इतिहास

मिथिला के क्षेत्रीय इतिहास लेखन की स्थिति और संभावनाओं का सर्वेक्षण-विश्लेषण करने से पूर्व बिहार में मिथिला की स्थिति-अवस्थिति पर किंचित् प्रकाश डालना वांछनीय है। एक भौगोलिक इकाई के लिए बिहार शब्द का प्रयोग पहली बार जब मिनहाज लिखित तबकाते-नासिरी में तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में किया गया तो वह मात्रबिहारशरीफ और उसके आसपास के क्षेत्रों को इंगित करता था। बिहार नामक सूबा का गठन शेरशाह के प्रयासों से आरंभ होकर अकबर के काल में लगभग 1575 ई0 में अधिक व्यवस्थित रूप में सामने आता है। आज जिसे बिहार कहा जा रहा है वह पहले 1912 में बंगाल से पृथक् होने के बाद, 1936 में उससे भी उड़ीसा के निकल जाने पर और अन्ततोगत्वा 2000 में झारखंड का पृथक् राज्य के रूप में निर्माण कर दिए जाने के बाद जो अवशिष्ट है, वही है। आज का अवशिष्ट बिहार भी मात्र राजनैतिक गठन की दृष्टि से ही एक है, अन्यथा किसी और तरह से वह सुगठित इकाई नहीं है। परिणामत: 2000 के बाद के बिहार में भी प्राचीन मगध और मिथिला तो पृथक् व्यक्तित्त्व के साथ विद्यमान हैं ही, प्राचीन अंग, वज्जि और परवर्ती भोजपुर भी कई प्रकार से विशेष रूप से भाषाजन्य विशिष्टता के आधार

अपने भिन्न अस्तित्व का दावा करते हैं। बिहार सहित उपर्युक्त सभी क्षेत्रीय दावे भावनात्मक अधिक तथा तथ्यगत कम लगते हैं। इन दावों में तथ्यात्मकता की झलक कभी-कभी मिल जाती है जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में बंगाल से बिहार को पृथक् करने के आन्दोलन के क्रम में दिखाई पड़ा था, किन्तु इस तथ्य पर शीघ्र ही उड़ीसा को अलग करने अथवा झारखंड के निर्माण के सन्दर्भ में प्रश्नचिन्ह लगना भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ा और अब पृथक् मिथिला अथवा कभी कभार मध्य बिहार राज्य की माँग के साथ भी दिखाई पड़ता है। सी. पी. चौधरी ने 1972 में प्रकाशित द क्रिएशन ऑफ मॉडर्न बिहार[2] नामक अपने निबन्ध के माध्यम से बंगाल से भिन्न बिहार के जिस निजत्व को रेखांकित किया था उससे हटकर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा पैम्फ्लेट्स द्वारा और कभी-कभी पुस्तकों द्वारा भी वर्त्तमान बिहार से कम-से-कम दो भागों- मिथिला और गंगा के दक्षिणवर्त्ती क्षेत्रों-के अलग व्यक्तित्व के आधार पर अलग राज्यों की मांग के सन्दर्भ में ऐतिहासिक लेखन किसी-न-किसी रूप में हो रहा है।[3] आज बिहारी चेतना के ह्रास की सर्वत्र चर्चा है।[4] ऐसी चर्चाएँ अनायास नहीं होती हैं, उनके निश्चित आधार होते हैं। बंगाल से पृथक्करण के बाद बिहार के दो विभाजन हो चुके हैं और जब तक समस्त बिहार के लोगों में ऐक्यानुभूति नहीं होती तबतक बिहार के किसी भावी विभाजन को परिहार्य नहीं कहा जा सकता है।

यहाँ विवेच्य विषय बिहार का विभाजन नहीं, अपितु मिथिला का क्षेत्रीय इतिहास लेखन है, किन्तु किसी स्तर पर दोनों एक से दिखने लगे तो वह रोका भी नहीं जा सकता। ऐसा इसलिए, क्योंकि क्षेत्रीयता का अभ्युदय किसी भूखंड के निवासियों द्वारा संसाधनों अथवा सत्ता प्राप्ति की प्रतिद्वन्द्विता में समान संस्कृति और निवास के आधार पर अपने लोगों के बीच ऐक्यानुभूति की स्थापना की चेष्टा से होता है। क्षेत्र-निर्माण की यह प्रक्रिया केन्द्र और परिधि के पारस्परिक सम्बन्धों से भी प्रभावित होती है।[5] केन्द्र और परिधि की अभिकल्पना कोई भौगोलिक अवधारणा न होकर राजनीतिक अथवा अन्य सम्बन्धित सत्ता से निकटता अथवा दूरी के आधार पर की गई है। सत्ता प्राप्ति की होड़ में नेतृत्व प्रत्येक क्षेत्र के अभिजन वर्ग के लोग करते हैं और ऐसा वे अपने हितों को सामने रखकर करते हैं। परिणामत: संघर्ष के दिनों में भी तथा उसके बाद भी वंचित वर्ग ठगा - सा अनुभव करता है और इसलिए क्षेत्रीयता के लिए किए गए आन्दोलन सफल होने पर भी असंतोष को जन्म देनेवाले सिद्ध होते हैं। बिहार की विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयों में मिथिला तिथिक्रम से सर्वप्रथम एक सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ, किन्तु बाद में राजनैतिक वर्चस्व के संग मगध के आविर्भाव से वह मात्र परिधि होकर रह गया। केन्द्रस्थ बंगाल के सन्दर्भ में जिस तरह कभी बिहार, आसाम, उड़ीसा परिधीय हो गए थे उसी तरह बिहार के संदर्भ में मिथिला मगध के उदय के बाद से परिधीय हो गया और केन्द्र और परिधि का यह अन्तर्संघर्ष केन्द्र द्वारा परिधि के आत्मसातीकरण अथवा परिधि के नवीन केन्द्र के रूप में स्थापित होने से ही समाप्त हो सकता है। केन्द्र और परिधि के इस द्वित्व का निरूपण मिथिला के इतिहास लेखन की एक बड़ी समस्या ही है। इस सन्दर्भ में 2002 में प्रकाशित पंकज कुमार झा की पुस्तक 'द कोलोनियल पेरिफेरी: इमैजिनिंग मिथिला: 1875-1955' उल्लेखनीय है। यह सम्भवत: एक राष्ट्रीय अथवा उपराष्ट्रीय इकाई के रूप में मिथिला की पहचान बनाने की चेष्टा और उसके विफलता के कारणों की सम्यक छानबीन का सराहनीय प्रयास है। पंकज कुमार झा की इस स्थापना से असहमत होने का कोई कारण नहीं है कि ''औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था वाले विश्व में अपनी परिधीय अवस्थिति के कारण यह (मिथिला) अर्थपूर्ण औद्योगिक विकास के दर्शन करने में असफल रहा जिससे इस क्षेत्र में पुनर्जागरण की शक्तियाँ एक तरह से बाधित रही और शिक्षा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हुई।''[6]

मिथिला में इतिहास लेखन

मिथिला में इतिहास लेखन मौलिक रूप से स्थानीय परम्पराओं में पले-बढ़े पंडितों-विद्वानों के हाथों में रहा और वे मुख्य रूप से मिथिला के गौरवमय अतीत के गुनगान में ही संलग्न रहे। औपनिवेशिक भारत में हुए अनेक कृषक तथा जनजातीय आन्दोलनों में भी एक स्वर्णिम अतीत के चित्रण की प्रवृत्ति होती थी किन्तु जब उसे पुनर्स्थापित करने के लिए औपनिवेशिक सत्ता के साथ आभ्यान्तरिक रूप से समाज में व्याप्त कुरीतियों के विनाश को सर्वोपरि प्राथमिकता भी दी जाती थी। मिथिला में दोनों में से प्राय: कुछ भी नहीं किया जा सका और परिणामत: इतिहास की जो पुस्तकें लिखी गई वे संतचरित - सी हो गई। उनमें विरोधियों से आगे निकलने तथा अपने समाज को सुधारने की चेष्टाएँ यदि कहीं दिखती भी है तो अत्यन्त गौण रूप में और वह भी इतिवृत्तात्मक ही, विश्लेषणात्मक नहीं। इस सन्दर्भ में मैथिली भाषा में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख वांछनीय है जो मिथिला के इतिहास का अपने काल में दर्पण भी रहे और मिथिला के भावी इतिहास के स्त्रोत भी हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं का एक समेकित इतिहास चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर' द्वारा मैथिली में रचित मैथिली पत्रकारिताक इतिहास[7] के रूप में प्रकाशित है। यहाँ कह देना प्रासंगिक होगा कि मैथिली

पत्र-पत्रिका की यात्रा गाथा 1905 से आरंभ होकर आजतक अनवरत चली आ रही है और इस बीच शायद ही कोई कालावधि रही हो जब कई दर्जन पत्रिकाएँ मैथिली में प्रकाशित न होती रही हों-यह अलग बात है कि अधिकांश पत्रिकाएँ अल्पजीवी थीं। इन पत्रिकाओं में मैथिली भाषा साहित्य के स्वरूप निर्धारण, संरक्षण तथा प्रसार के अतिरिक्त कतिपय मौलिक समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। मैथिली भाषा के विरोध का रूप था-जनगणना की सांख्यिकी को दुष्प्रभावित करना जिसका परिणाम हुआ कि जहाँ 1911 में मैथिली भाषियों की संख्या एक करोड़ से अधिक थी वहीं 1951 में वह घटकर 49 हजार मात्र रह गई। मैथिली भाषी कतिपय कारणों से अपने को हिन्दी भाषी लिखवाने लगे थे। इस स्थिति की आशंका मिथिला ज्योति नामक पत्रिका में 1948 में ही व्यक्त की गई थी।[8] जो भी हो मैथिली पत्र-पत्रिकाओं की सजगता के कारण मैथिली भाषा को पहले साहित्य अकादमी में और पुन: संविधान की अष्टम अनुसूची में स्थान प्राप्त हुआ। ऐसी अनेक पत्रिकाओं में मिथिला, मिथिला मोद, श्रीमैथिलीहित साधन, मैथिल प्रभा, मैथिल प्रभाकर, मैथिल बन्धु, मिथिला आलोक आदि के नाम लिये जा सकते हैं। ये पत्रिकाएँ अपनी उपादेयता के बावजूद अनेक अर्थों में साहित्यिक, पारम्परिक और पुनरूद्धारवादी थीं। राजदरभंगा से पोषित होने के कारण मिथिला मिहिर सर्वाधिक लम्बे समय तक चलने वाली पत्रिका थी और दैनन्दिन घटनाओं पर सम्पादकीय टिप्पणी तथा आलेख प्रकाशित करने के कारण यह मिथिला के इतिहास का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। मैथिली की पत्र-पत्रिकाओं ने मैथिली भाषा आन्दोलन के माध्यम से पृथक मैथिल अस्मिता को बनाए रखने में निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

पत्र-पत्रिकाएँ तो इतिहास के स्त्रोत मात्र हैं, इतिहास नहीं। इतिहास के नाम पर राज्याश्रित जिन दो व्यक्तियों की रचनाओं को मिथिला में इतिहास लेखन का प्रस्थान बिन्दु माना जा सकता है। वे हैं-मिथिला तत्व विमर्श[9] के लेखक परमेश्वर झा तथा मिथिला भाषामय इतिहास[10] के रचयिता मुकुन्द झा बख्शी, परन्तु दोनों ही पुस्तकें वैज्ञानिक इतिहास लेखन की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। वैसे परमेश्वर झा ने उन्नीसवीं शताब्दी तक मिथिला में अवस्थित राजवंशों, व्यक्तियों, स्थलों तथा अन्य सम्बन्धित बातों की अच्छी विवरणी प्रस्तुत की हैं। लेखक ने उन दिनों उपलब्ध अभिलेखों में प्राप्त सामग्रियों को भी अपने निष्कर्षों का आधार बनाया है। वैसे यह दुर्भाग्य की बात है कि उन दिनों तो नहीं ही, आज भी मिथिला में पुरातात्विक अण्वेषण की दिशा में कुछ विशेष नहीं किया जा सका है। जो भी हो, मिथिला तत्व विमर्श इतिहास लेखन की दिशा में प्रथम महत्त्वपूर्ण चेष्टा है। मिथिला भाषामय इतिहास, इतिहास कम और मिथकों तथा दन्त कथाओं का संग्रह अधिक है। यह मोटे तौर पर मिथिला के खण्डवाला राजवंश की प्रशस्ति गाथा है, किन्तु इसमें उल्लिखित घटनाओं से अन्यत्र ज्ञात तथ्यों की सम्पुष्टि में पर्याप्त सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ, राज दरभंगा के पूर्णियाँ जिला अन्तर्गत स्थित धर्मपुर परगना की जमीन्दारी की देखभाल के लिए भेजे गए बीरू खबास की राज के प्रति कृतघ्नता का मात्र क्षणिक उल्लेख पूर्णियाँ के इतिहास[11] से सम्बन्धित पुस्तकों तथा अभिलेखों में मिलता है, किन्तु इस पुस्तक में घटना का बड़ा विस्तृत विवरण दिया गया है ऐसा अन्य कई और सन्दर्भों में द्रष्टव्य है। उपर्युक्त टिप्पणियों के बावजूद इन दोनों पुस्तकों के लेखकों का मिथिला के इतिहास लेखन में पुरोगामी होने का महत्त्व तो है ही। इनके समकालीन चन्दा झा ने विद्यापति कृत पुरुष परीक्षा का सम्पादन करते हुए ही पाद-टिप्पणी के रूप में कतिपय ऐसे उपस्थापन किए जिनके ऐतिहासिक महत्त्व हैं।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से श्याम नारायण सिंह[12] उपेन्द्र ठाकुर तथा राधाकृष्ण चौधरी और उनकी पुस्तकों का मिथिला के इतिहास लेखन में निश्चय ही अबतक सर्वोच्च स्थान है, किन्तु इनका लेखन बड़े पैमाने पर मिथिला के प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास से सम्बन्धित है। 1922 में लिखित श्याम नारायण सिंह की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ तिरहुत' आधुनिक इतिहास लेखन के दृष्टि से मिथिला के इतिहास की पहली प्रमाणिक पुस्तक कही जा सकती है, किन्तु तथ्यों के संचय में मिथिला तत्व विमर्श से यह बहुत भिन्न नहीं है। 1956 में प्रकाशित उपेन्द्र ठाकुर की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ मिथिला' आज की तिथि में भी मिथिला के समेकित इतिहास पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और व्यवहृत कृति है, किन्तु मिथिला का आधुनिक काल इसमें सम्मिलित ही नहीं है। इसी तरह राधाकृष्ण चौधरी ने भी मिथिला के इतिहास पर हिन्दी, मैथिली तथा अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें लिखीं परन्तु किसी में भी मिथिला का आधुनिक काल प्रतिपाद्य विषय नहीं रहा। हिन्दी में रामप्रकाश शर्मा की पुस्तक मिथिला का इतिहास, जो 1979 में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई, कई नवीन तथ्यों विशेषकर द्रोणवार राजवंश के सम्बन्धों में अबतक अल्पज्ञात तथ्यों को प्रकाशित के कारण पर्याप्त चर्चित हुई। वैसे यह पुस्तक इतिहास की अपेक्षा इतिवृत्त अधिक है।

उपर्युक्त पुस्तकों से भी पूर्व उर्दू में रियाज-ए-तिरहुत तथा आईन-ए-तिरहुत क्रमश: अयोध्या प्रसाद 'बहार' तथा बिहारी लाल फितरत द्वारा और एक हिन्दी पुस्तक 'मिथिला दर्पण' रास बिहारी लाल दास द्वारा लिखी जा चुकी थी। रियाज-ए-तिरहुत एवं आइन-ए-तिरहुत क्रमश: 1868 और 1883 में प्रकाशित हुई और मिथिला दर्पण 1915में। ये तीनों पुस्तकें अप्राप्य - सी थी, किन्तु

हेतुकर झा ने महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाउन्डेशन, दरभंगा के तत्त्वाधान में इनका सम्पादन तथा प्रकाशन कराकर इन्हें सर्व सुलभ करा दिया है। ये सभी मिथिला के राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ बीसवीं शताब्दी में उसके सामाजिक-आर्थिक तथा पर्यावरणीय इतिहास पर भी प्रकाश डालती है। रास बिहारी लाल दास की तो मान्यता है कि इतिहास के ज्ञान बिना मनुष्य को अपने अस्तित्व का बोध नहीं होता और वह अपनी सभ्यता-संस्कृति का संरक्षण-संवर्द्धन तो नहीं ही कर सकता है। स्पष्ट: रासबिहारी लाल दास इतिहास लेखन की पौराणिक पद्धति से तो परिचित थे ही औपनिवेशिक शासन के अधीन आई पाश्चात्य पद्धति से भी परिचित थे। उन्होंने जनसांख्यिकी प्रतिवेदनों, गजेटियरों, पंजी प्रबंधों आदि से भी अपने तथ्यों का संग्रह किया, मात्र महाभारत, पुराण और धर्मशास्त्रों से ही नहीं। उन्होंने विद्वानों, जमीन्दारों, महन्थों, तालाबों, लोकोक्तियों तथा अन्य बातों के विषय में विज्ञ लोगों से मौखिक सूचनाएँ एकत्र कर अपनी पुस्तक लिखी। अयोध्या प्रसाद बहार ने भी पुस्तकीय सूचनाओं के अतिरिक्त अपने अवलोकन तथा अनुभव का उपयोग कर अपनी पुस्तक तैयार की, किन्तु सर्वाधिक आकर्षित करने वाली पुस्तक है आईन-ए-तिरहुत जिसके लेखक बिहारी लाल फितरत के लिए इतिहास का ज्ञान सभी प्रकार के ज्ञान से श्रेष्ठ है तथा यह शत्रु और मित्र दोनों से सम्यक व्यवहार की सीख देता है। अपनी पुस्तक को लिखने में उनका उद्देश्य शुद्ध रूप से अकादमिक था। उन्होंने घटनाओं का तिथिक्रम बिल्कुल सही-सही देने के लिए विक्रम, हिजरी, फसली, बंगला तथा ईस्वी सभी संवतों का उपयोग किया है। मिथिला के इतिहास को फितरत ने राष्ट्रीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की तथा उनकी आँखें महत्त्वपूर्ण घटनाओं के लिए सदैव सजग दिखती है। मिथिला के बौद्धिक इतिहास के लिए उनकी पुस्तक में बहुत सामग्री उपलब्ध है। जगदीश चन्द्र झा अपनी पुस्तक माइग्रेशन एण्ड अचीवमेंट्स ऑफ मैथिल पंडित्स के लिए फितरत की रचना से बहुत लाभान्वित हो सकते थे किन्तु दुर्भाग्यवश इसका सानुवाद प्रकाशन बहुत बाद में हो सका। संभवत: आईन-ए-तिरहुत मिथिला में लिखित और प्रकाशित पहली रचना है जिसमें विद्यापति को मैथिल कहा गया हैं। पर्यावरणीय सूचना भी इस पुस्तक की विशेषता कही जा सकती है नील की खेती की विवशता उर्वरा भूमि के लिए उनकी दृष्टि में अभिशाप थी तथा कृषि उत्पादों की मँहगाई और दुर्भिक्षों का कारण। इस पुस्तक को आधार मानकर मिथिला के बौद्धिक, पर्यावरणीय तथा स्थापत्य सम्बन्धी इतिहास पर शोध कार्य किए जा सकते हैं। 1866 और 1875 के मिथिला के दुर्भिक्षों का इस पुस्तक का विवरण ब्रिटिश शासन के अधीन क्षेत्रीय इतिहास लेखन के लिए महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। स्थानीय इतिहास के लिए दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर नगरों के विकास का बिहारीलाल का चित्रण भी रोचक है। समेकित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी पुस्तक वस्तुत: इतिहास की पुस्तक है, जिसकी तथ्यपरकता, समग्रता तथा सूचना प्रदता अनुकरणीय विशेषताएँ हैं और मिथिला के उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के लिए यह विलक्षण स्त्रोत पुस्तक है। 1857 की घटनाओं का इसमें कोई उल्लेख नहीं होना इस पुस्तक की कमी कही जा सकती है। वस्तुत: पाश्चात्य इतिहास लेखन विधि को बहार और फितरत जैसे उर्दू भाषा के लेखकों ने अन्य किसी की तुलना में पहले ही उपयोग किया।[13] सम्मिलित रूप से ये तीनों पुस्तकें उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी की मिथिला के इतिहास के लिए सर्वतोभावेन महत्त्वपूर्ण देन कही जा सकती है।

आधुनिक मिथिला के इतिहास लेखन में जटाशंकर झा[14] का महत्त्वपूर्ण नाम है। उनकी पुस्तके 'बायोग्राफी ऑफ एन इन्डियन पेट्रियॉट: महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ऑफ दरभंगा तथा बिगनिंग ऑफ मॉडर्न एजुकेशन इन बिहार' तथा अन्य, सम्बंद्ध विषयों पर महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देती है और लक्ष्मीश्वर सिंह पर लिखी पुस्तक का एक महत्त्व यह भी है कि उसमें मिथिला की सामाजिक-सांस्कृतिक और एक सीमा तक आर्थिक दशा पर भी प्रकाश पड़ता है। इन दोनों पुस्तकों के प्रणयन में जटाशंकर झा ने तथा अपनी पुस्तक 'ए ग्रेट स्टैट ऐन्ड इट्स लैंडलॉर्ड्स इन कोलोनियल इन्डिया: दरभंगा 1860-1942' के लेखन में स्टीफन हेनिंगम[15] ने राज दरभंगा के अभिलेखागार में उपलब्ध सूचनाओं के विशाल भंडार का खुलकर उपयोग किया है। यह ठीक है कि जमींदारी लेखन खतरनाक हो सकता है, किन्तु विधिवत् प्रशिक्षित शोधकर्त्ता इनमें उपलब्ध तथ्यों का उपयोग कर न केवल गांवों और परगनों का बल्कि किसी भी स्तर का अधिकारिक और विश्वसनीय इतिहास तैयार कर सकते हैं। और तब हन्टर की चिन्ता निर्मूल हो जायगी कि ऐसे गाँव, जिले और परगने देश के इतिहास में क्षण भर के लिए अपना नाम लिखाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते, उनके सुख-दुख: जीवन के उठा-पटक, उद्योगों के उत्थान-पतन, समुदाय के लिए बलि हो जाने वाले विलक्षण लोगों आदि का कोई इतिहास नहीं बना पाता। इन्हीं जमीन्दारी अभिलेखों का उपयोग कर दरभंगा के जमींदारों ही नहीं बल्कि वहाँ के सामान्य जन का जो इतिहास हेनिंगम ने लिखा वह सराहनीय है। मिथिला दर्पण में महाराज दरभंगा के अतिरिक्त पाँच सहस्त्रा मुद्रा से अधिक भू-राजस्व से आय पाने वाले पचास से अधिक जमींदारों की सूची दी गई है, जिनके विषय में अभीतक कोई छोटी या बड़ी पुस्तक प्रकाशित नहीं है।[16] वैसे, जमींदारों की यह सूची पूरे मिथिला का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती, क्योंकि इसमें भागलपुर, पूर्णियाँ, मुंगेर,

मुजफ्फरपुर और चम्पारण की जमींदारियों का कोई उल्लेख नहीं है जबकि वे भी मिथिला के अंग थे। इसमें लेखक की यह स्वीकारोक्ति कि बीसवीं शताब्दी का आरंभ होते-होते मात्रा पुराना दरभंगा जिला को ही लोग मिथिला समझने लगे थे[17], निश्चय ही अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए विचारणीय तथ्य है। सद्यः प्रकाशित बनैली राज[18] विषयक इतिहास-ग्रंथ में यह तो नहीं कहा गया है कि पूर्णियाँ अथवा भागलपुर मिथिला में नहीं थे, और ऐसा कहना संभवतः वांछित भी नहीं था क्योंकि बनैली राजवंश के पूर्वज दरभंगा जिलान्तर्गत नवादा-बैगनी के निवासी थे एवं आरंभ से लेकर आजतक बनौली के जमींदारों तथा उनके सम्बन्धियों के वैवाहिक सम्बन्ध पुराने दरभंगा जिला के श्रोत्रिय तथा योग्य ब्राह्मण कुल में होते रहे, किन्तु दरभंगा और बनौली राज के पारस्परिक सम्बन्धों पर उक्त पुस्तक में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और दिखलाया गया है कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध स्वयं बनौली राजपरिवार के सदस्य हैं और इसके लेखन में उपयोग किए गए अधिकांश प्राथमिक स्त्रोतों को प्रकाशित कर दिया जाना वांछनीय है। जो भी हो, इस पुस्तक के प्रकाशन से एक बहुत बड़ी कमी पूरी हुई है और उसे देखने से प्रथम दृष्ट्या लगता है कि लेखक ने इतिहासकार की निरपेक्षता का यथासंभव पालन किया है।

मिथिला की सीमा और विस्तार, पृथक् राष्ट्रीय इकाई के रूप में इसकी पहचान, मिथिला के आर्थिक पिछड़ापन के कारण आदि की सर्वोत्तम और तर्कपूर्ण व्याख्या लक्ष्मण झा की अनेक पुस्तकों[19] में विद्यमान है और उन्हें पढ़ने के बाद एक बार फिर केन्द्र और परिधि के अन्तर्सम्बन्धों के कारण मिथिला के पिछड़ेपन की विवेचना कर पाना संभव होता है। मिथिला की राजनीति का संचालन मगही-भोजपुरी भाषा पटना से किया जाना ही उनकी दृष्टि में मिथिला के दुर्भाग्य का सबसे बड़ा कारण है। मिथिला का विषमांगी और अव्यवहार्य बिहार राज्य से पृथक्करण तथा राज्य के रूप में निर्माण ही इसकी भोजन, स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा, संचार आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समस्याओं का एक मात्रा समाधान है।[20] वे भारत ही नहीं विश्वभर के देशों में विद्यमान राष्ट्र के निर्माणक तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन कर कहते हैं कि, भाषायी, भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई के रूप में अथवा इसके क्षेत्रा के विस्तार, जनसंख्या का परिमाण आदि की दृष्टि से मिथिला का राज्य बनाए जाने का दावा बनता है।[21] मिथिला में राष्ट्र निर्माण की शक्तियों की विद्यमानता को पॉल आर. ब्रास ने अपनी प्रशंसनीय पुस्तक लैंग्वेज, रेलिजियन ऐन्ड पौलिटिक्स इन नार्थ इन्डिया[22] में रेखांकित किया है, किन्तु वे मानते हैं कि मैथिली भाषा यहाँ की राष्ट्रीयता का सबसे प्रमुख आधार रही है परन्तु उसका जाति-विशेष की भाषा मान लिया जाना और पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं की तरह इसको किसी धर्म का सहारा न मिलना एक बात है तो दूसरी बात पंजाबी की तरह इस भाषा का प्रबल नृतात्विक विरोध का रूप अख्तियार न कर पाना इसे अपेक्षित सफलता न दिला पाने के कारण कहे जा सकते हैं। मिथिला में अभिजन और शेष वर्गों के बीच सांस्कृतिक खाई को भी उन्होंने इसके लिए उत्तरदायी माना है। पंकज कुमार झा की दृष्टि में अभिजन वर्ग के नेतृत्व में लम्बी अवधि से चलाए जाने वाले आन्दोलन की विफलता का सबसे बड़ा कारण है मिथिला का कृषिक समाज से पूँजीवादी समाज में रूपान्तरण नहीं होना। यदि ऐसा हो पाता तो समाज विभक्त नहीं रहकर समंजक स्वरूप धारण कर पाता।[23] हेतुकर झा[24] ने मिथिला की समेकित पहचान बनाने में विफलता के कारणों को जाँचने की चेष्टा की है और पाया है कि पंजी व्यवस्था, मैथिल महासभा के क्रियाकलाप, वंचितों को जमीन के लाभ से पृथक् रखनेवाली भू-प्रथाएँ इस क्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण थीं, परन्तु विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि सामन्ती संरचना के बने रहने के कारण पुरानी सामाजिक व्यवस्था पर कोई दवाब नहीं बन पाया। वर्त्तमान पंक्तियों के लेखक ने राज दरभंगा के पूर्णियाँ जिला स्थित धर्मपुर परगना में स्थायी भू-राजस्व व्यवस्था के क्रिया कलाप की जाँच करते हुए अपने एक लेख में स्थापित करने की चेष्टा की है कि शोषण की एक जैसी परिस्थिति रहने पर भी शोषित वर्ग के रूप में एकजुट नहीं हो पाते हैं।[25] इस विषय पर और अधिक छानबीन का प्रयोजन है और उसके परिणामस्वरूप वंचितों का इतिहास और मुखर रूप में सामने आ पायेगा।

आधुनिक मिथिला के इतिहास पर उपलब्ध दो और पुस्तकों की चर्चा की जा सकती है। सम्पूर्ण पुराने पूर्णियाँ जिला को मिथिला का अंग न भी माना जाय तब भी तत्कालीन कोशी नदी के पश्चिम अवस्थित धर्मपुर परगना के कारण पूर्णियाँ जिले के भूराजस्व इतिहास और वहाँ स्थायी भूराजस्व व्यवस्था के उद्भव, विकास तथा पतन का समीक्षात्मक सर्वेक्षण करते हुए आम कृषकों और सामान्य जन की दशा तथा उनका जमीन्दारों और उनके अमलों से सम्बन्धों का जो चित्रण मदनेश्वर मिश्र द्वारा अपनी पुस्तक सम आस्पेक्ट्स ऑफ लैन्ड रेभेन्यू हिस्ट्री ऑफ पूर्णियाँ डिस्ट्रिक्ट[26] में किया गया है वह मिथिलान्तर्गत अवस्थित विभिन्न जिलों का ऐसा ही इतिहास लिखे जाने के लिए उपयुक्त प्रतिमान हो सकता है। इस सन्दर्भ में दूसरी पुस्तक है शैलेन्द्र कुमार झा और भानु कुमार झा द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई द इकौनोमिक हेरिटेज ऑफ मिथिला[27] जिसमें आर्थिक सांख्यिकी का विलक्षण संग्रह है जिसका उपयोग मिथिला रूपान्तरण तथा उसके परिणामस्वरूप क्षेत्र की सामाजिक-राजनीतिक दशा की व्याख्या करने के लिए किया जा

सकता है। किसी व्यक्ति की तरह किसी क्षेत्रा के परिचय को स्थापित करने में उसकी अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हाथ हो सकता है।

मिथिला में कृषक आन्दोलनों तथा समस्याओं पर गिरीश मिश्र, स्टीफेन हेनिंग्म, के.के. शर्मा, जी. पी. शर्मा आदि ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए है, किन्तु उनकी रचनाओं की समष्टि या तो बिहार है, या चम्पारण सत्याग्रह सदृश कोई एक घटना जिस कारण समस्त मिथिला का कृषिक स्वरूप समेकित रूप में नहीं विश्लेषित हो पाया है और ऐसा हुए बिना सामन्तवाद से पूंजीवाद में मिथिला का रूपान्तरण न हो पाना कैसे स्पष्ट किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में मौखिक इतिहास को इतिहास के स्त्राेत के रूप में उपयोग किये जाने का उल्लेख उपेक्षित है। वंडी सिंगर ने इस प्रणाली का उपयोग कर पंडौल के नील खेतिहारों और मजदूरों का इतिहास क्रिएटिंग हिस्टरीज[28] नाम से लिखा है। इसी प्रणाली से स्वतंत्रता सेनानियों का जिलावार इतिहास लिखवाने की महत्त्वाकांक्षी परियोजना पटना के के.पी. जायसवाल रिसर्च इन्स्टिट्‌यूट के तत्त्वाधान में कार्यरत है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भू-सर्वेक्षण के समय तैयार किए गए एक-एक गाँव के अधिकारिक विलेज नोट्स का हेतुकर झा जैसे समाजशास्त्रियों ने उपयोग कर ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्त्तनों को समझने की चेष्टा की है, किन्तु विलेज नोट्स के संग नोट्स फॉर द सक्सेसर तथा जमीन्दारी अभिलेखों के अध्ययन और मौखिक इतिहास प्रणाली के समेकित उपयोग से अलग-अलग गाँवों तथा परगनों का प्रमाणिक इतिहास तैयार किया जा सकता है।[29] उन क्षेत्रों, व्यक्तियों या विषयों का इतिहास लिखने में मौखिक इतिहास प्रणाली का विशेष महत्त्व हो सकता है जिनके लिए इतिहास के दूसरे साधन अनुपलब्ध से हैं केन्द्र तथा परिधि वाले विवाद के सन्दर्भ में इस तरह के इतिहास लेखन का एक लाभ यह भी हो सकता है कि जो प्रांत, देश या उससे भी बड़े क्षेत्र इतिहास में अपने आपको हाशिये पर पाते हैं वे स्वयं कथावाचक होने के कारण अपने को इतिहास के केन्द्र में ले आ सकते हैं।

निष्कर्ष

अध्ययन के आधार पर स्पष्ट हुआ है कि भारत में अंग्रेजों के समय से जो सामाजिक सुधार आन्दोलन प्रारंभ हुआ उसका असर मिथिला पर भी पड़ा। आधुनिक शिक्षा का विकास, छुआछूत की भावना को हटाना, महिलाओं के अधिकार में वृद्धि, दहेज-प्रथा को दूर करना, पर्दा-प्रथा एवं सती-प्रथा का अन्त आदि मिथिला में भी शुरू हुए। आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिकीकरण के कारण धार्मिक आडम्बर में कमी आई। इस तरह मिथिला में सामाजिक सुधार आन्दोलन जो प्रारंभ हुआ वह आज भी चल रहा है। इसका व्यापक असर यहाँ के लोगों पर पड़ा है।

सन्दर्भ-

1. झा रमानाथ "The Maithil Way of Life",'द इंडियन नेशन', संडे मैग्जिन, पटना, फरवरी-मार्च 1971; के तीन आलेखों के सिरीज में प्रकाशित।
2. चौधरी सी.पी., द क्रिएशन ऑफ मॉडर्न बिहार, पटना, 1972
3 चौधरी शरदिन्दु कुमार (सं0), अभिमत, पटना, 2003
4 मिश्र रत्नेश्वर, 'बिहार चेतना का ह्रास', बिहार इतिहास परिषद् कार्य विवरणिका, पंचम अधिवेशन, नरकटियागंज 1994
5 ठाकुर विजय कुमार 'रिजिनल हिस्टौरिकल स्टडीज विद स्पेशल रेफेरेन्स टु बिहार: प्रॉब्लेम्स ऐन्ड प्रौस्पेक्ट्स', रत्नेश्वर मिश्र (सं0) रिजियन इन हिस्ट्री, पर्सपेक्टिवाइजिंग बिहार, पटना, 2002, पृ. 11-19
6 पंकज कुमार झा, द कोलोनियल पेरिफेरी: इमैजिनिंग मिथिला: 1875-1955, पटना, 2002, पृ200
7 मिश्र चन्द्रनाथ 'अमर', मैथिली पत्राकारिता इतिहास, पटना, 1981
8 मिथिला ज्योति, वर्ष-1, किरण-7, पृ 41
9. झा परमेश्वर, मिथिला तत्त्व विमश्र, पटना, 1977
10 बश्खी मुकुन्द झा, मिथिला भाषामय इतिहास, बनारस, तिथि अज्ञात
11 मिश्र,आर. हिस्ट्री ऑफ पूर्णियाँ, कलकत्ता, 1978, पृ.27, 28,132
12 सिंह श्याम नारायण, हिस्ट्र ऑफ तिरहुत, कलकत्ता, 1922
13 लाल बिहारी 'फितरत', आईना-ए-तिरहुत, दरभंगा, 2001, पृ.1-46

14 झा जटाशंकर, बिगिनिंग्स ऑफ मॉडर्न एजुकेशन इन मिथिला सेलेक्शन्स फॉम एजुकेशनल रिकॉर्डस, दरभंगा राज, 1860-1930, पटना, 1972

15 हेनिंग्म स्टीफेन, ए ग्रेट इस्टेट ऐन्ड इट्स लैण्डलॉर्डस इन कोलोनियल इन्डिया, दरभंगा 1860-1942, नई दिल्ली, 1990

16 मिथिला दर्पण, पूर्वोक्त, पृ.125-126

17 वहीं, पृ.105-106

18 सिन्हा गिरिजानन्द I, बनैली: रूट्स टू राज, नई दिल्ली, 2005

19 झा लक्ष्मण, मिथिला ए यूनियन रिपब्लिक, दरभंगा, 1952

20 मिथिला ए यूनियन रिपब्लिक, पूर्वोक्त, पृ.153

21 वही, पृ.155

22 ब्रास पॉल आर. . लैंग्वेज, रेलिजियन ऐन्ड पौलिटिक्स इन नॉर्थ इन्डिया, नई दिल्ली, 1974

23 झा पंकज कुमार, पूर्वोक्त, पृ.28-29

24 झा हेतुकर, नेशन बिल्डिंग इन ए नॉर्थ इन्डियन रिजियन: द केस ऑफ मिथिला, पटना, 1976

25 मिश्र रत्नेश्वर, ''लैंड, लेबर ऐन्ड पावर: परगना धर्मपुर ऑफ राजदरभंगा अन्डर द परमानेन्ट सेटलमेंट'' प्रोसीडिंग्स ऑफ द इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, बरेली, 2004, दिल्ली, 2005, पृ.468-476

26 मिश्रमदनेश्वर, सम आस्पेक्टस ऑफ लैन्ड रेवेन्यू हिस्ट्री ऑफ पूर्णिया डिस्ट्रिक्ट 1765-1950 पटना, 1979

27 झा शैलेन्द्र कुमार और भानु झा, द इकॉनोमिक हेरिटेज ऑफ मिथिला, पटना, 1996

28 सिंगर वेंडी, क्रिएटिंग हिस्ट्रीज: ओरल नैरेटिव्ज ऐन्ड द पौलिटिक्स ऑफ हिस्ट्री मेकिंग, ओ.यू.पी., 1997

29 मिश्र रत्नेश्वर, ''दरभंगा राज रिकॉर्ड्स-ए सोर्स, फॉर हिस्ट्री ऑफ रूरल मिथिला (सी. 1860 ऑनवार्ड्स), सी.पी.सिन्हा (सं.) प्रज्ञा भारती, अंक 6 1992, पृ.271-278

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में छत्तीसगढ़ की महिलाओं की भूमिकाः एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० सबा मसउद

डॉ० जाहिद अली

आर0 बी0 मेमोरियल हॉस्पीटल, लहेरियासराय, दरभंगा

सार

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई केवल पुरुषों की हिस्सेदारी से फतह नहीं की गई बल्कि इस महायज्ञ में महिलाओं की भूमिका भी उल्लेखनीय है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेजों के विरूद्ध पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर देश की बेटियों ने अपना कर्त्तव्य निभाया। उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध कदम उठाए, वीरता और साहस तथा नेतृत्व की क्षमता का अभूतपूर्व परिचय दिया। 1857 के बगावत के समय राजघराने की महिलाएं आजाद भारत का सपना पूरा करने के लिए पुरुषों के साथ एकजुट हुईं। इतिहास गवाह है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में जहां पुरुषों ने बढ-चढकर हिस्सा लिया, वहीं महिलाएं भी पीछे नहीं रहीं। महिलाओं ने समय-समय पर अपनी बहादुरी और साहस का परिचय देकर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चली। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सन् 1857 में झांसी की रानी बेगम हजरत महल ने अंग्रेजी शासन के खिलाफ आवाज उठाई। उसके पश्चात् गांधीजी के आगमन के बाद स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, जैसे कि स्त्रियों ने दांडी मार्च और असहयोग आंदोलन में बढ-चढ़कर भाग लिया। कुछ स्त्रियों जैसे एनी बेसेंट और सरोजिनी नायडू आदि ने कुछ संगठनों और कांग्रेस की अध्यक्षता संभाल ली और स्त्रियों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका का ऐतिहासिक अध्ययन का विवरण किया गया है।

मुख्य -बिन्दुः *महिला राष्ट्रीय आंदोलन; असहयोग आंदोलन; सविनय अवज्ञा आंदोलन; भारत छोड़ो आंदोलन*

भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में पुरुषों और महिलाओं ने समान रूप से भाग लिया। भारतीयमहिलाओं का योगदान इसमें इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि उनका सामाजिक उत्थानहुए बहुत लंबा समय व्यतीत नहीं हुआ था। घर का मोर्चा हो या राजनीति का रणक्षेत्र, महिलाओं ने जिस साहस, सहिष्णुता और वीरता से स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाई, वह इतिहास की धरोहर है। सन् 1857 का विद्रोह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का पहला ऐसा विस्फोट था, जिसकी नायक एक महिला थी, जिसने अद्भुत वीरता, पराक्रम और दिलेरी का परिचय दिया। उसके लिये स्वयं अंग्रेज शासक भी प्रशंसा किये बगैर नहीं रह सके। सरहयूरोज को

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के अद्‌भुत पराक्रम से चकित होकर कहना पड़ा कि ''सैनिक विद्रोह के नेताओं में महारानी लक्ष्मीबाई सर्वाधिक बहादुर और सर्वश्रेष्ठ थीं।'' रामगढ़ की रानी ने जहाँ रणक्षेत्र में लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये वहीं बेगम हजरत महल अंग्रेजों के समक्ष आत्म समर्पण कर अपमानित होने के बजाए नेपाल की ओर चल पड़ी, जहाँ वनवास में उनकी मृत्यु हुई और जीनत महल को बर्मा में निर्वासित कैदी के रूप में जीवन व्यतीत करना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की 1885 में स्थापना ने महिलाओं को एक राजनीतिक मंच प्रदान किया। इसकी स्थापना के कुछ वर्षों बाद काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में भारतीय महिलाएं प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए आने लगीं। 1890 के कलकत्ता अधिवेशन मेंस्वर्ण कुमारी देवी और श्रीमती कादम्बिनी गांगुली ने भाग लिया। श्रीमती गांगुली प्रथम महिला थीं जिन्होनें राष्ट्रीय काँग्रेस के मंच से अपना पहला भाषण दिया। यह सम्भवतया भारतीय महिलाओं के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश का शुभारम्भ था और इसके बाद तो मातृभूमि की खातिर राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने वाली महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ती ही चली गयी।[1]

इन महिलाओं को उत्साहित कर एवं उन्हे संगठित कर एक लक्ष्य दिया महात्मा गांधी ने 1920 में असहयोग आन्दोलन चलाकर। इससे महिलाओं को न केवल एक उद्धेश्य मिला अपितु उन्हे एक नयी दिशा भी मिली। जब 1930 में गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया, तो बड़ी संख्या में महिलाओं ने सत्याग्रह में भाग लेकर अपनी शक्ति का परिचय दिया। स्वदेशी प्रचार के पक्ष में वातावरण बनाने के लिये विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाने लगी। शराब की दुकानें धरना देकर बंद कराई जाने लगी। उसी तरह 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में तो हजारों की संख्या में महिलाएँ घरों से बाहर निकल आई। उन्होंने तन-मन से इस आन्दोलन में सहयोग दिया। संगठित रूप से कर्तव्य के प्रति समर्पित होकर और अनेक यातनाओं को सहते हुए उस समय राजनीतिक गतिविधियों की बागडोर सम्भाली जब अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं को ब्रिटिश सरकार ने सींखचों में जकड़कर रखा था। उस समय राष्ट्रीय स्तर पर श्रीमती सरोजनी नायडू , अरूणा आसिफ अली, श्रीमती सुचेनाकृपलानी, कमला देवी चटोपाध्याय, कस्तूरबा गांधी, विजय लक्ष्मी पंडित, मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी, एनीबेसेंट, हन्सा मेहता तथा राजकुमारी अमृता कौर जैसी अनेक महिलाओं के योगदान को इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा।[2]

नि:संदेह गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन से लेकर भारत की स्वाधीनतातक महिलाओं का राष्ट्रीय आंदोलन में जो योगदान था, वह भारतीय परिवेश में उनकी जागरूकता एवं परिवर्तनों को दर्शाता है। महिलाओं में सदियों से चली आ रही रूढ़िवादिता, अंधविश्वास तथा सामाजिक पिछड़ेपन की स्थिति को गांधीजी के दर्शन ने बदल दिया था। उनकी भीरूता का स्थान साहस ने ले लिया, उनके अंधविश्वास तथा रूढिवादिता के स्थान पर जागरूकता दिखाई देने लगी तथा उनमें राजनीतिक परिपक्वता का बोध होने लगा। कुल मिलाकर भारतीय महिलाओं के उत्थान का यह स्वर्णिम काल था। जिस समय सम्पूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रवाह में बह रहा था, छत्तीसगढ़ उससे कैसे अछूता रहता? छत्तीसगढ़ में भी राष्ट्रीयता की भावना का उद्‌भव एवं विकासहुआ। 1857 की क्रान्ति से लेकर 1907 ई. में सूरत की फूट तक छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीयता कापर्याप्त विकास हो चुका था। 1857 की क्रान्ति से राष्ट्रीयता की भावना का जो प्रादुर्भाव इस क्षेत्र में हुआ उसमें काँग्रेस की स्थापना के पश्चात् धीरे-धीरे बढ़ोत्तरी होने लगी।[3] गांधी जीके छत्तीसगढ़ आगमन कि साथ ही यह क्षेत्र राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से जुड़ गयाऔर कालान्तर में गांधीवादी आन्दोलनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधीवादी दर्शन ने छत्तीसगढ़ क्षेत्र के जनमानस को गहराई से प्रभावित किया। गांधीवादी विचारधारा क्षेत्र की भोली भाली और बेहद शांतप्रिय जनता के विचारों के काफी अनुकूल थी। यही कारण है कि इस क्षेत्र में गांधी जी अत्यंत लोकप्रिय और सफल रहे उनके नेतृत्व में पुरुषों के साथ-साथछत्तीसगढ़ क्षेत्र की शहरी और ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी अत्यन्त उत्साहवर्धक थी।[4]

भारत में महिला आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयास स्वयं चुनौतीपूर्ण कार्य था। गांधीजी नेइस संदर्भ में अनेक दूरगामी प्रयोग किये। उन्होंने सत्याग्रह में महिलाओं को केवल इस कारण ही प्राथमिकता नहीं दी कि वे उन्हें पुरुष से श्रेष्ठ समझते थे, अपितु इस कारण भी कि वे अनेक क्षेत्रों में महिलाओं को पुरुष से श्रेष्ठ समझते थे। उनके अनुसार अहिंसक संघर्ष में महिलाएं अपने धैर्य एवं सहिष्णुता के गुणों के करण पुरुषों की अपेक्षा सत्याग्रह आन्दोलन को सफलतापूर्वक संचालित कर सकती थी। उनके विचार में महिला को अबला कहना पुरुष की विकृत दृष्टि एवं संकीर्ण मानसिकता का परिचायक था। वे मानते थे कि महिला में पुरुषों से अधिक नैतिक शक्ति है जो सभी शक्तियों से अधिक महत्वपूर्ण है।[5]

इस प्रकार गांधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को महत्वपूर्णस्थान देकर भारतीय समाज में उनके गौरव एवं स्थान को ऊंचा उठाने का प्रयास किया।उन्होंने महिला शक्ति को जागृत कर समाज में महिलाओं को पुरुषों के समान दर्जा दिया तथास्वाधीनता आन्दोलन में उनकी भागीदारी निश्चित कर दी। महिलाओं की भागीदारी के बिनाउनके नेतृत्व में चलाये गये राष्ट्रीय आन्दोलन जनआन्दोलन नहीं बन सकते थे। गाांधीजी कानारीवादी दृष्टिकोण भारतीय महिलाओं के उत्थान का एक प्रमुख कारक कहा जा सकता है।

असहयोग आन्दोलन

प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों ने अंग्रेजों की तन-मन-धन से सहायता की थी। उनको यह विश्वास था, कि युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार अवश्य प्रदान करेंगी। परन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद भारतीयों को निराशा ही हाथ लगी। वास्तव में यह ब्रिटिश कूटनीति थी। इससे जनता में रोष व्याप्त हो गया। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध से भारतीयों में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना में और अधिक वृद्धि हुई। रॉलेट एक्ट, जलिया वाला बाग हत्याकांड, हंटर रिर्पोट, तथा खिलाफत आन्दोलन इन सभी घटनाओं से संपूर्ण भारत की जनता के साथ-साथ गांधी जी भी असंतुष्ट थे। उन्होंने सरकार द्वारा प्रदत्त 'कैसरे-ए-हिन्द' की उपाधि को लौटा दिया तथा सत्याग्रह के माध्यम से असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया। भारतीय राजनीति और स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में 1928 का वर्ष नये युग का प्रतीक था। इस वर्ष महात्मा गांधी का सक्रिय रूप से भारतीय राजनीति के रंगमंच पर पदार्पण हुआ जब उन्होंने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार से असहयोग आन्दोलन के लिये यह उपयुक्त अवसर था। सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन इस उद्धेश्य से आयोजित किया गया था, जिसके अध्यक्ष लाला लाजपत राय थे। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। चितरंजन दास जैसे नेताओं के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकार किया गया था। दिसम्बर 1920 में नागपुर में हुए कांग्रेस के नियमित अधिवेशन में गांधी जी के प्रस्ताव को अनुमोदित किया गया। इसके साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन एवं कांग्रेस पर महात्मा गांधी का असाधारण प्रभाव स्थापित हो गया। आन्दोलन को सफल बनाने के लिये न केवल पुरुषों ने बल्कि महिलाओं ने भी अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। गांधी जी ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का आहवान किया जिसका उन्होंने अनुकूल प्रतिवाद दिया।[6]

असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य ब्रिटिश शासन तंत्र को पूरी तरह ठप्प करना था।इसके लिये ब्रिटिश भारत की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक संस्थाओं के बहिष्कारका निश्चिय किया गया। इस आन्दोलन के मुख्य प्रस्ताव में गांधी जी ने पूरे देश से आह्वान किया था, कि इस अहिंसात्मक आन्दोलन को तब तक चलाया जाये जब तक खिलाफत संबंधी अन्याय दूर न हो जाये और स्वराज्य प्राप्त न हो जाये।[7] आन्दोलन का कार्यक्रम निम्नवत् था :-

1. सरकारी स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार।
2. सरकारी पदों का त्याग।
3. चुनाओं का बहिष्कार।
4. सरकारी अदालतों का बहिष्कार।
5. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।
6. सरकारी उत्सवों का बहिष्कार।
7. भारतीयों द्वारा मैसोपोटामिया में जाकर कार्य करने से इंकार।

गांधीजी इन सभी निषेधात्मक कार्यो को पूर्णतया अहिंसात्मक रीति द्वारा करने काध्यान बार-बार सबको दिलाते रहते थे, ताकि आन्दोलन को पूर्णतया सफल बनाया जा सके।[8]

स्पष्ट था कि गांधी जी अपने असहसयोग आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के पक्षधर थे। उनके विचार में जब तक आंदोलन में महिलाओं का सहयोग नहीं मिलेगा, तबतक स्वराज्य की आशा करना व्यर्थ था। वे महिलाओं के द्वारा निषेधात्मक तथा रचनात्मक कार्यक्रमों में सहभागिता की अपेक्षा करते थे। निषेधात्मक कार्यक्रम अर्थात् विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तथा रचनात्मक कार्यक्रम अर्थात् चरखा एवं खादी का प्रचार इन दो माध्यमों द्वारा महिलाएं निश्चित ही ब्रिटिश शासन को नतमस्तक कर सकती थी।

असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत गांधी जी ने स्वदेशी के प्रोत्साहन तथा विदेशीवस्तुओं के बहिष्कार का कार्यक्रम रखा। इस कार्यक्रम के दो पक्ष थे- पहला, खादी का प्रचारएवं दूसरा विदेशी वस्त्रों की होली। इस कार्यक्रम में महिलाओं ने अपना पूर्ण सहयोग दिया।[9]

असहयोग आन्दोलन के अंतर्गत सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार सम्मिलित था। उन दिनों छत्तीसगढ़ में अनेक सरकारी स्कूल थे जिसमें लड़कियों को भी शिक्षा दी जाती थी। एक अनुमान के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत छात्राओं ने सरकारी स्कूलों का बहिष्कार किया था। फरवरी 1921 में पं. सुंदर लाल शर्मा के आह्वान पर रायपुर स्थित बुनियादी प्रशिक्षण संस्था के 53 प्रशिक्षुओं ने इस संस्था का त्यागकर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया।[10]

असहयोग आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का एक और महत्वपूर्ण पक्ष था-विदेशी वस्त्रों की होली जलाना। छत्तीसगढ़ की महिलाओं ने खादी कार्यक्रम में जिस उत्साहसे भाग लिया था, उसी उत्साह का परिचय उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाने में दिखाया। कांग्रेस स्वयं सेवकों ने घर-घर जाकर महिलाओं से विदेशी वस्त्रों की मांग की तथा उसे सार्वजनिक स्थानों पर जलाया। ऐसा लगता था कि जैसे होली का उत्सव आ गया हो। रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, राजनांदगांव आदि स्थानों में विदेशी वस्त्रों की होली महीनों तक जलाई जाती रही।[11]

नि:संदेह छत्तीसगढ़ की महिलाओं के त्याग का यह ऐसा ज्वलंत उदाहरण था जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है। सामान्यत: महिलाएं अपनी कीमती वस्त्रों विशेषकर विदेशी वस्त्रों को अपनी जान से भी अधिक सुरक्षित रखती हैं उन महिलाओं को अपनी प्रिय वस्त्रों की होली जलाने के लिए देने हेतु प्रेरित करना बहुत बड़ी बात थी। छत्तीसगढ़ की महिलाओं के अदम्य त्याग और उत्साह का एक और उदाहरण असहयोग आन्दोलन में देखने को मिला। जनवरी 1922 में रायपुर जिले के नगरी सिहावा क्षेत्र में जंगल सत्याग्रह प्रारंभ हुआ। यह सत्याग्रह जंगल के उन अधिकारियों के विरूद्ध था जो आदिवासियो से बेगार लेते थे। इसके विरोध में नगरी सिहावा के समस्त आदिवासी पुरुष और महिलाओं ने एकजुट होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करना प्रारंभ किया। उनके विरोध को समाप्त करने के लिए उनके मकान लूट लिए गये तथा बर्तन तोड़ दिए गए, परंतु वे अपनी बातों पर कायम रहे यहां तक सरकारी अधिकारियों को नाई, धोबी, रसोईया मिलना तक बंद हो गया। अंतत: अधिकारियों को झुकना पड़ा और वहां बेगार की प्रथा बंद कर दी गई।[12]

यह स्वीकार करना होगा कि असहयोग आंदोलन में छत्तीसगढ़ की शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की महिलाओं की भागीदारी अत्यंत उत्साहवर्धक थी। जिनका कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित था, उनमें इतनी जागरूकता आ गई थी, कि वे घर से बाहर निकलकर राजनीतिक आंदोलन में भाग लेने लगी। इस कार्य में संपन्न एवं संभ्रान्त परिवार की महिलायें भी शामिल थीं। शहरी क्षेत्र की महिलाएं जुलूस निकालना, चरखा चलाना तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलाना आदि कार्यक्रमों में उत्साह से भाग लेती थीं। जुलूस निकालकर और सभाएं आयोजित करके इन महिलाओं के द्वारा अन्य लोगों को जागृत करने का कार्य भी किया जाता था। यह महिला जागृति का बहुत बड़ा प्रमाण था। खादी प्रदर्शनी में भी बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया था। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं ने चरखा कातकर स्वदेशी कार्यक्रम में उत्साह से भाग लिया। नगरी-सिहावा में तो आदिवासी महिलाओं ने सरकारी अधिकारियों का बहिष्कार कर अपने साहस का अद्‌भूत परिचय दिया था। इस प्रकार महात्मा गांधी के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ की महिलाओं ने सक्रिय रूप से भाग लेकर महिला उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण को सार्थक कर दिया। महिलाओं के उत्थान में गांधी दर्शन के योगदान का यह एक महत्वपूर्ण प्रमाण था।

संविनय अवज्ञा आंदोलन

साइमन कमीशन की असफलता, नेहरू रिपोर्ट का अस्वीकार किया जाना तथा 1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा पारित किये गये पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव से राजनीतिक घटनाक्रम काफी तेज हो गया। गांधी जी द्वारा वायसराय के सम्मुख रखे गये ग्यारह सूत्री मांग पत्र पर विचार न करने के कारण एक जनआंदोलन आवश्यक हो गया था। गांधी जी ने इस आंदोलन के लिए अहिंसात्मक ढंग से ब्रिटिश सरकार के कानूनों की अवज्ञा करने का आह्वान किया, जिसे सविनय अवज्ञा आंदोलन कहा गया। गांधी जी ने 12 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से ऐतिहासिक दांडी यात्रा प्रारम्भ की और 6 अप्रैल 1930 को दाण्डी समुद्र तट पर नमक बनाकर नमक कानून तोड़ा और सविनय अवज्ञा आंदोलन का शंखनाद कर दिया। उन्होने स्पष्ट कर दिया था कि आंदोलन के दौरान सत्य, अहिंसा और शांति रहेगी।[13]

1930 के सत्याग्रह में महिलाओं ने जो कार्यशीलता दिखाई उसकी पूरी दुनिया में चर्चा हुई। सुप्रसिद्ध कवियत्री सरोजनी नायडू ने धारसाड़ा के नमक सत्याग्रह में दो हजार लोगों का नेतृत्व करते हुए नमक कानून तोड़ा। भीषण वर्षा और शारीरिक आघातों को झेलते हुए महिलाओं ने जगह-जगह नमक कानून का उल्लंघन किया। महिलाएं घरों से निकलकर शराब की बिक्री के विरूद्ध सत्याग्रह में शामिल हुई और जेल गई। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिये धरने पर बैंठीं, अपमान सहा, लेकिन संघर्ष में सक्रियता कम नहीं हुई। 'चरखा नमक कानून तोड़ना, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, आभूषण दान जैसी गतिविधियों से महिलाओ ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को सशक्त बनाया। प्रार्थना सभायें, रचनात्मक कार्य, संगठन, मेला यात्रा तथा विविध प्रदर्शनियों के माध्यम से महिलाओं की राष्ट्रीय आन्दोलन में सहभागिता बढ़ती गई। सैकड़ों हजारों की संख्या में पढ़ी -लिखी और अनपढ़ सभी तरह की महिलाएं सविनय अवज्ञा आंदोलन में शामिल हो गई।[14]

इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधी जी द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं को भारतीय राजनीति में आने का भरपूर अवसर मिला। गांधी जी द्वारा राजनीति में धर्म की प्रधानता और उनका प्रचार इन दोनों से महिलायें उनकी ओर आकर्षित हुई। समुद्र के पानी को उबालकर नमक बना देने, जुलूस निकालने तथा धरना देने जैसे साधारण कार्यो से समाज में महिलाओं की प्रतिष्ठा बढ़ी। पुलिस द्वारा उन्हें गिरफ्तार कर जेलों में बंद किए जाने से भी उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तथा उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी भूमिका का भली-भांति ज्ञान हो गया।[15] छत्तीसगढ़ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान सत्याग्रह में भाग लेने वाली महिलाओं में डॉ. राधाबाई अग्रणी थीं। वे उन महिलाओं में से थीं जिन्होंने राष्ट्र सेवा को अपनाधर्म बना लिया था। सेवा उनकी साधना थी और लक्ष्य था स्वराज्य।[16]

उनके नेतृत्व में 23 महिलाओं ने रायपुर में सत्याग्रह किया। जून 1932 को उन्हें उनके जत्थे सहित गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। तथा 6 माह की सजा और 25 रू. का जुर्माना किया गया। सत्याग्रह के समय कुछ सत्याग्रही महिलाओं पर पुलिस ने गोलियां चलाई, उनके साथ बर्बर व्यवहार किया और उन्हें माफी मांगने के लिए बाध्य किया किंतु उन वीर महिलाओं ने पुलिस के आतंक की जरा भी परवाह नहीं की। नि:संदेह यह डॉ. राधाबाई के कुशल और शौर्यपूर्ण नेतृत्व का ही कमाल था। महिला सत्याग्रहियों के साथ किये गये असभ्य और कायरतापूर्ण व्यवहार की भर्त्सना करने के लिये डॉ. राधाबाई ने नागरिकों की एक सभा बुलाई जिसमें पुलिस के असभ्य आचरण का पर्दाफाश किया। 1932 में उनकी आयु 57 वर्ष की थी, किंतु राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी सक्रियता किसी युवा से कम नहीं थी।[17]

इस प्रकार सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रथम चरण में छत्तीसगढ़ की महिलाओं ने सक्रियता से भाग लिया। रायपुर नगर, धमतरी, महासमुंद, बलौदाबाजार के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों के समक्ष धरना देकर सत्याग्रह का उदाहरण प्रस्तुत किया। अनेक स्थानों पर महिलाओं ने प्रभातफेरियों तथा जुलूसों के माध्यम से जनजागृति फैलाने का कार्य किया। कुछ महिलाएं जंगल सत्याग्रह में भी सक्रिय रहीं। गांधी जी के दर्शन को कार्यान्वित कर महिलाओं ने उनके महिला शक्ति में विश्वास को साकार कर दिया। तथापि 5 मार्च 1932 को गांधी इरविन समझौते के फलस्वरूप पूरे देश में प्रथम सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस ले लिया गया। छत्तीसगढ़ में भी यह आंदोलन समाप्त हो गया और बन्दी बनाये गये सत्याग्रहियों को छोड़ दिया गया। तथापि द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के उपरान्त गांधी जी जब 4 जनवरी 1932 को गिरफ्तार कर लिये गये। तब सम्पूर्ण देश के साथ-साथ छत्तीसगढ़ में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ हो गया। 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में रायपुर जिला की अनेक महिलाओं ने भाग लिया, जिनमें से 11 महिला सत्याग्रहियों को जेल की सजा हुई। केतकी बाई, रूकमणी बाई और रामबती बाई ने दो-दो बार पिकेटिंग में भाग लिया। कीकाभाई की दुकान के सामने धरना दे रही स्त्रियां श्रीमती फूटेनियाबाई, मनटोरा बाई, मटोलिन बाई, मुटकी बाई तथा केजाबाई को घसीटकर पुलिस के द्वारा कोतवाली तक ले जाया गया। ऐसी ही दूसरी घटना अप्रैल में कीकाभाई की दुकान के सामने घटी। श्रीमती रामबती बाई, कुंवरबाई, अमृत बाई को गिरफ्तार किया गया तथा धक्का देते हुए कोतवाली ले जाया गया।[18]

इस आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं ने सक्रियता और जागरूकता की अनूठी मिसाल कायम की। कुछ महिलाएं तो अपनी पति से पहले जेल पहुंच चुकी थीं। पार्वती बाई, बेलाबाई, रोहणी बाई ऐसी ही महिलाएं थीं, जिन्होंने कीकाभाई की दुकान के सामने पिकेटिंग करते हुए अपनी गिरफ्तारी दी थी। स्थानीय मोतीबाग में स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्‌घाटन महात्मा गांधी द्वारा हुआ। सप्रे हाईस्कूल में भी महिलाओं की सभा हुई और महात्मा गांधी ने हरिजनों के लिए चंदा एकत्रित किया। छत्तीसगढ़ की जिन महिलाओं ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेकर क्षेत्रीय स्तर पर जागृति लाने का प्रयास किया। उनमें प्रमुख थीं श्रीमती फुलकुंवर बाई

श्रीवास्तव जिन्हें 4 माह 25 दिन का कारावास दिया गया, श्रीमती रूकणी बाई तिवारी को 6 माह का कारावास दिया गया, श्रीमती जौहरी बाई को 1932 में विदेशी वस्तु के बहिष्कार आन्दोलन के दौरान 2 माह के लिए बन्दी बनाया गया, डॉ. राधाबाई को 6 माह का कारावास हुआ तथा श्रीमती श्यामाबाई को भी 6 माह की सजा हुई।[19]

हरिजनोद्धार कार्यक्रम के अंतर्गत गांधीजी के बिलासपुर आगमन पर नागरिकों ने जरहाभाठा में उनका स्वागत किया। गांधी जी वहॉ महिलाओं की बैठक में गए। उन्हें हरिजनकोष के लिए 688 रू. की नकद राशि प्रदान की गई थी। महिलाओं की यह सभा नगरपालिका उद्यान में आयोजित की गई थी। रायपुर की महिला स्वतंत्रता संग्राम सेनानी डॉ. श्रीमती राधाबाई सन् 1930 से 1942 तक सत्याग्रह में भाग लेती रही। उनकी प्रेरणा से छत्तीसगढ़ की अनेक महिलाओं ने सत्याग्रह में भाग लिया।[20]

स्वंत्रता संग्राम सेनानी इनमहिलाओं के अतिरिक्त ऐसी अनेक महिलाएं भी थी जो जेल तो नहीं गई मगर देश की आजादी की लड़ाई में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करती रहीं, इन्होंने आन्दोलनकारियों की खूब सेवा की। उन्हें समय पर भोजन खिलाना उनका उपचार करना आदि इनके प्रमुख कार्य थे। सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय महिलाओं में बहुत अधिक जागृति आ गई थी। इस आंदोलन में असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा भाग लेने वाली महिलाओं की संख्या में अभूतपूर्व रूप से वृद्धि हुई। महिलाओं के द्वारा शराब की दुकानों पर धरना देना, पिकेटिंग करना आदिकार्य किये जा रहे थे। इन कार्यो को करने के कारण इन्हें ब्रिटिश सरकार के द्वारा दिए गए कष्ट एवं यातनाएं सहन करनी पड़ी परन्तु वे इस कार्य से पीछे नहीं हटी। उन्होंने अपने बच्चों को शासकीय विद्यालयों के स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा। यह महिला जागृति का ही परिणाम था कि पर्दे में रहने वाली तथा अशिक्षित महिलाएं यातनाएं सहकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती थीं। नि:संदेह सत्याग्रह आंदोलन का सफलतापूर्वक संचालन कर छत्तीसगढ़ की महिलाओं ने अपने साहस और जागरूकता का परिचय दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन ने पुन: एक बार महिलाओं को गतिशीलता प्रदान की। 8 अगस्त को महात्मा गांधी की घोषणा तथा उनके सहित कांग्रेस के शीर्ष नेताओं की 8-9 अगस्त मध्यरात्रि को हुई गिरफ्तारी से पूरे देश में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध क्षोभ और उत्तेजना की लहर दौड़ गई। गांधी जी ने लोगों को 'करो या मरो' का संदेश दिया, जिससे उनमें क्रांति की भावना उत्पन्न हो गई और वे हिंसात्मक गतिविधियों में लग गये। रेल पटरियां उखाड़ना, पोस्ट ऑफिस तथा सरकारी कार्यालयों में आग लगाना और ऐसे कार्य करना जिससे ब्रिटिश प्रशासन पंगु हो जाये। इस आंदोलन का कार्यक्रम बन गया। जिस समय मुंबई में शीर्ष कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी हुई, कुछ महिला कांग्रेसियों ने सफलतापूर्वक गिरफ्तारी से बचकर भूमिगत कांग्रेस के गठन का निश्चय किया था। उनमें सुचेता कृपलानी, अरूणा आसफ अली तथा मृदुला साराभाई प्रमुख थी। पुलिस से बचने के लिए कांग्रेस का कार्यालय बार-बार बदलना पड़ता था। इस संस्था से सफलतापूर्वक देश के विभिन्न प्रान्तों के कार्यशील नेताओं से संपर्ककर भारत छोड़ो आन्दोलन का संचालन किया।[21]

इस भूमिगत आंदोलन में सुचेता कृपलानी और अरूणा आसफ अली जैसी महिलाओं का सक्रिय योगदान था। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध देश की जनता को जागृत करने के उद्देश्य से विभिन्न स्थानों की गुप्त यात्राएं की। अनेक बार वस्त्र बदलकर वे विभिन्न प्रान्तों के भूमिगत आन्दोलनकारियों से संपर्क करती तथा उन्हें आंदोलन से संबंधित निर्देश देती थी। इन महिलाओं के साहस और योग्य नेतृत्व से लगभग एक वर्ष तक क्रांतिकारी भूमिगत आन्दोलन चलता रहा। अपने अभियान के दौरान उन्हें साधारण जनता, व्यवसायी, उद्योगपति तथा सेना एवं सरकारी अधिकारियों से भी भरपूर सहयोग मिला। उन दिनों भारतीय वायु सेना के एक पायलेट बीजू पटनायक ने, जिन्हें सेना के लिये सामग्री लेकर अनेक स्थानों में जाना पड़ता था, अरूणा आसफ अली को अपने हवाई जहाज में छुपाकर विभिन्न स्थानों में ले गये थे।[22]

इस क्रांतिकारी और भूमिगत आंदोलन में महिलाओं ने एक और महत्वपूर्ण कार्यसंपादित किया। यह था भूमिगत रेडियो स्टेशन की स्थापना और इसका प्रसारण। इस कार्य में मुंबई की एक छात्रा उषा मेहता विशेष रूप से भूमिगत रेडियो के कार्यक्रमों का प्रसारण करती थी। प्रारंभ में इस रेडियो से सीमित कार्यक्रम प्रसारित होते थे परंतु बाद में इससे भारत छोड़ो आंदोलन संबंधित समाचार तथा प्रमुख भूमिगत कांग्रेसी नेताओं के भाषण प्रसारित होने लगे। सरकार ने इस रेडियो स्टेशन का पता लगाने का बहुत प्रयास किया परंतु उषा मेहता औरउनकी सहेलियों द्वारा बार-बार प्रसारण केन्द्र बदले जाने से पुलिस को सफलता नहीं मिली।बाद में उषा मेहता और उनके साथियों को गिरफ्तार कर उन्हें आजन्म कारावास का दंड दियागया।[23]

भारत छोड़ो आंदोलन में जहां एक ओर पुरुष सक्रिय थे, तो दूसरी ओर महिलाएं भी पीछे नहीं थीं। छत्तीसगढ़ में जिन महिलाओं ने स्वाधीनता आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें डॉ. राधाबाई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिन्होंने तन-मन-धन सब कुछ देश सेवा में अर्पित कर दिया।[24] सविनय अवज्ञा से लेकर भारत-छोड़ोआंदोलन तक वे सक्रिय रहीं। 1942 के आंदोलन में भाग लेकर वे जेल गई। जेल में उनकी सहयोगी बहनें थी- राजकुंवर बाई बघेल, श्रीमती मोची बाई श्रीवास्तव, श्रीमती लीलाबाई, श्रीमती सुमिरित बाई, श्रीमती रूक्मणीबाई एवं श्रीमती नोटरी बाई। डॉ. राधाबाई जेल में महिलाओं को आध्यात्मिक उन्नति तथा सत्याग्रह की प्रेरणा देती रहतीं व जेल से बाहर छूटते ही पुनः आंदोलन में रत् हो जाती थी।[25]

भारत छोड़ो आंदोलन ने छत्तीसगढ़ की महिलाओं में एक नये उत्साह का संचारकिया। महिलाओं ने एक बड़ी संख्या में इस आंदोलन में खुलकर भाग लिया और कारावास का दंड भोगा। इन महिलाओं में श्रीमती इन्द्रोतिन बाई, श्रीमती दयाबाई, श्रीमती भवन्तीन तथाश्रीमती भागवती को 6-6 माह का कारावास की सजा हुई। कुछ सत्याग्रही महिलाओं के साथपुलिस द्वारा बर्बर व अभद्र व्यवहार किये जाने पर उन्हें माफी मॉंगने के लिये बाध्य किया गया। इस प्रकार इन महिलाओं द्वारा पुलिस आतंक की जरा भी परवाह न कर लगातार आंदोलन में सक्रियता से भाग लिया। जूलूस में भाग लेने के कारण श्रीमती भवानीबाई को 5 माह 22 दिन की सजा काटनी पड़ी। श्रीमती भागीरथी बाई ने इस आन्दोलन में भूमिगत रहकर सहयोग दिया। श्रीमती मनटोरा बाई तथा श्रीमती मनमत बाई ने क्रमशः बंगोली एवं खुटेरी जैसे पिछड़े क्षेत्रों में रहकर महिला जागरण का कार्य किया। जिसके कारण इन दोनों को 6-6 माहके कारावास की सजा काटनी पड़ी।[26]

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का छत्तीसगढ़ क्षेत्र में काफी प्रभाव रहा। असहयोग आन्दोलन से लेकर भारत छोड़ो आन्दोलन तक लगभग समस्त आन्दोलनों में इस क्षेत्र की महिलाओं ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की महिलाओं की आंदोलन में भागीदारी अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। जहॉं एक ओर शहरी क्षेत्र की महिलायें जुलूस निकालने, खादी कार्यक्रम, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने आदि कार्यक्रमों में भाग लेती थी, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण महिलाएं जंगल सत्याग्रह में भाग ले रहीथीं। महिलाओं ने आन्दोलन के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं का भी डटकर मुकाबला किया। इनके सम्मुख तो समस्याओं का अम्बार ही लगा हुआ था। पुरुष वर्ग में कई ऐसे भी थेजो घर से बाहर निकल कर नारे लगाने वाली, जेल जाने वाली, तथा शराब की दुकान में पिकेटिंग करने वाली महिलाओं को अच्छा नहीं समझते थे। इन समस्याओं के अलावा इन्हें पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इन महिलाओं को उस समय आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता जब इनके पति जेल में डाल दिये जाते। फिर भी हजारों प्रकार कीमुसीबतों का सामना करते हुए महिलाओं ने देश की आजादी में अपना सहयोग दिया। निःसंदेह गांधीजी की प्रेरणा से छत्तीसगढ़ की महिलाओं में जो जागृति आई वह अभूतपूर्व थी। पुरुष प्रधान समाज के बंधनों के बावजूद उन्होंने जिस त्याग और निष्ठा से सत्याग्रह किया, जेलों में रही तथा पुलिस अत्याचार का सामना किया वह इनके साहस और शक्ति का प्रमाण था। गांधी जी ने जिस उत्साह का संचार इन महिलाओं में किया उससे ये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में आगे बढ़ती गई। अनेक महिलाओं ने अपने पतियों के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। पुरुषों के समान राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर इन्होंने महिला उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में गांधी दर्शन के प्रभाव को सार्थक कर दिया।

संदर्भ

1. सक्सेना, शालिनी- स्वाधीनता आंदोलन में मध्यप्रान्त की महिलाएं, राजधानी ग्रंथसागर, दिल्ली 1969, पृ. -2
2. व्होरा, आशारानी - महिलाएं और स्वराज्य, राजधानी ग्रंथसागर, दिल्ली 1967, पृ.-146
3. शुक्ल, प्रयागदत्त- क्रांति के चरण, भारतेन्दु साहित्य समिति, विलासपुर, 1960 पृ.- 84
4. शमीम? मोहम्मद- छत्तीसगढ़ में गांधीवादी आन्दोलन में छात्रों की भूमिका (अप्रकाशित शोध प्रबंध), पृ 19
5. गांधी, एम.के. - वीमेन्स रोल इन सोसायटी, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 8-9
6. गौड़, राज लक्ष्मी- नारी जागरण और गांधी जी (लेख), मध्यप्रदेश संदेश, 1971
7. भगवानदास, जीवंतराम- महात्मा गांधी जी जीवन और चिंतन, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1970, पृ. 91
8. चांदीवाला, बृजभूषण- महात्मा गांधी जी की दिल्ली डायरी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1971, पृ.-101

9. गिरी,वी.वी. - 1921 के सहयोग आन्दोलन की झांकिया, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1975, पृ. 33
10. शर्मा,जे.पी. - छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय आन्दोलन (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ. - 78
11. हितवाद, नागपुर - 2 अप्रैल 1981
12. देवांगन, शोभाराम-धमतरीनगर और तहसील के स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन, दिव्य प्रकाशन, कांकेड़, 1997, पृ.-34-35
13. जैदी,एस.जी. (सं.) - इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, नचिकेता प्रकाशन, बाम्बे, 1970, भाग-10, पृ.- 19
14. प्रकारा, सुमंगल- स्वराज्य की कहानी (भाग दो), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1975, पृ. - 34-35
15. प्रकाश, विश्व एवंमोहिनी गुप्त - स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएं, एलिट प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969, पृ. - 177
16. परमार, नारायण लाल- छत्तीसगढ़ के रत्न (भाग-2), चिनगारी प्रकाशन, बनारस, 1954,पृ. 45
17. वही पृ. -46
18. कर्मवीर, खण्डवा, 19 मार्च 1932, पृ. - 13
19. सहयोग दर्शन स्वाधीनता रजत जयंती विशेषांक 1972, पृ.195
20. वही, पृ. 195
21. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2018, पृ. 316
22. आजाद, एम.के. - इण्डिया विन्स फ्रीडम, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 1988, पृ. 117
23. एग्न्यू, विजय- द इलीट वीमेन ऑफ इंडिया, विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1979, पृ.-74
24. सक्सेना, शालिनी- पूर्वोद्धृत, पृ.-116
25. अग्रदूत - रायपुर, 26 जनवरी, 1984, पृ. -10-11
26. केयूर भूषण - स्व. डॉ. राधाबाई (छत्तीसगढ़ सांस्कृतिक परिषद् द्वारा प्रसारित लेख), पृ.-48

भारत में महिला स्वास्थ्य: मातृत्व समस्याएँ एवं समाधान

आरती कुरील

पी-एच0डी0, शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ, यू0पी0

शोध सार

भारत ने समय-समय पर आर्थिक उन्नति की नयी परिभाषायें गढ़ी हैं, लेकिन यह उन्नति तब तक अर्थहीन है, जब तक कि देश का प्रत्येक नागरिक स्वस्थ न हो। विशःषकर देश की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं के लिये स्वास्थ्य का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण इसलिये हैं, क्योंकि उन पर भावी पीढ़ी के सृजन की जिम्मेदारी होती है। भारत जैसे विकासशील देश में मातृत्व स्वास्थ्य की स्थिति आज भी चिंताजनक है। डब्ल्यू0एच0ओ0 (2016) के अनुसार लगभग 830 महिलाएँ गर्भावस्था व बच्चे के जन्म के दौरान हुई समस्याओं से मर जाती है। जिसमें सिर्फ विकासशील देशों का 99 प्रतिशत है। भारत में 15 प्रतिशत महिलाएं इस समस्याओं से पीड़ित है। वैश्विक स्तर पर कई स्वास्थ्य संगठनों द्वारा महिला स्वास्थ्य के स्तर में सुधार लाने के प्रयासों के बावजूद भी स्थिति संतोषजनक ही है। महिलाओं में मातृत्व स्वास्थ्य का प्रत्यक्ष संबंध उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति से जुड़ा हुआ है। अशिक्षा, कुपोषण, कम आयु में विवाह, निर्णय लेने के अधिकार, अस्वच्छता आदि समस्याओं के कारण महिलाओं का स्वास्थ्य स्तर निरंतर गिरता जाता है। जिसका परिणाम गर्भकाल में 20 प्रतिशत से ज्यादा मृत्यु, समय पूर्व शिषु के जन्म में 3 गुना वृद्धि तथा नौ गुना अधिक प्रसव पूर्व मृत्यु संबंधी मामलों के रूप में आता है। प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य महिला स्वास्थ्य की स्थिति व मातृत्व समस्याओं का विश्लेषण करना है। यह शोध पत्र सामान्यत: प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक तथ्यों को लखनऊ जिले के गांवों से लिया गया है। द्वितीयक स्रोतों में राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3, 4, जनगणना-2011, एस0आर0 एस0 (2013, 2016) भारत द्वारा किए गए सर्वेक्षण रिपोर्ट के आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

कुंजी शब्द-स्वास्थ्य, मातृत्व स्वास्थ्य, कुपोषण

1. शोध अध्ययन की पृष्ठभूमि

भारत में महिलायें कुपोषण व मातृत्व संबंधी गंभीर समस्याओं से ग्रसित है। यह समस्याएं गरीब, कमजोर वर्गो एवं ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में व्यापक रूप से विद्यमान है। मुख्यत: महिलाओं के स्वास्थ्य का आंकलन समाज में उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति से लगाया जाता है। मातृत्व स्वास्थ्य कास्तर सामाजिक-आर्थिक विकास के एक संकेतक के रूप में काम करता है। जो उनकी शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य संस्थानों में कुशल कर्मियों, सामाजिक स्थिति से जुड़ा होता है। (जॉनसन, 2010) इनके अभाव में महिलाओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिसके कारणवश वह कई समस्याओं से ग्रसित रहती है। चैम्बरलीन एट ऑल (2007) के अनुसार मातृत्व समस्यायें एक महिला के लिये अद्वितीय होती है, जिसमें निवारण और देखभाल कई कारणों से जुड़ी हुई होती है जैसे आय, शिक्षा, रीति-रिवाज व मान्यताएँ, समाज व परिवार में महिला के निर्णय लेने में शक्ति और स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता आदि। एक गर्भवती महिला इस संरचनाओं की प्रतिकूल स्थितियों की उपस्थिति में मातृत्व स्वास्थ्य सेवाओं व देखभाल की कल्पना

नहीं कर सकती है। डब्ल्यू0एच0ओ0 के अनुसार मातृत्व स्वास्थ्य महिला के गर्भावस्था, प्रसव व प्रसव के पष्चात् स्वस्थ होना है। वैष्विक स्तर पर कई स्वास्थ्य संगठनों द्वारा सुरक्षित मातृत्व सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से गर्भावस्था के दौरान महिलाओं को कम से कम चार प्रसव पूर्व परिचर्या देखभाल सेवाएँ उपलब्ध करायी जा रही है किन्तु इसके बावजूद भारत में मातृत्व स्वास्थ्य संबंधी जटिलताओं के कारण अभी भी लाखों की संख्या में महिलाएँ पीड़ित है, जिसके कारण कभी-कभी तो उनकी मृत्यु भी होती है।

ग्राफ-1

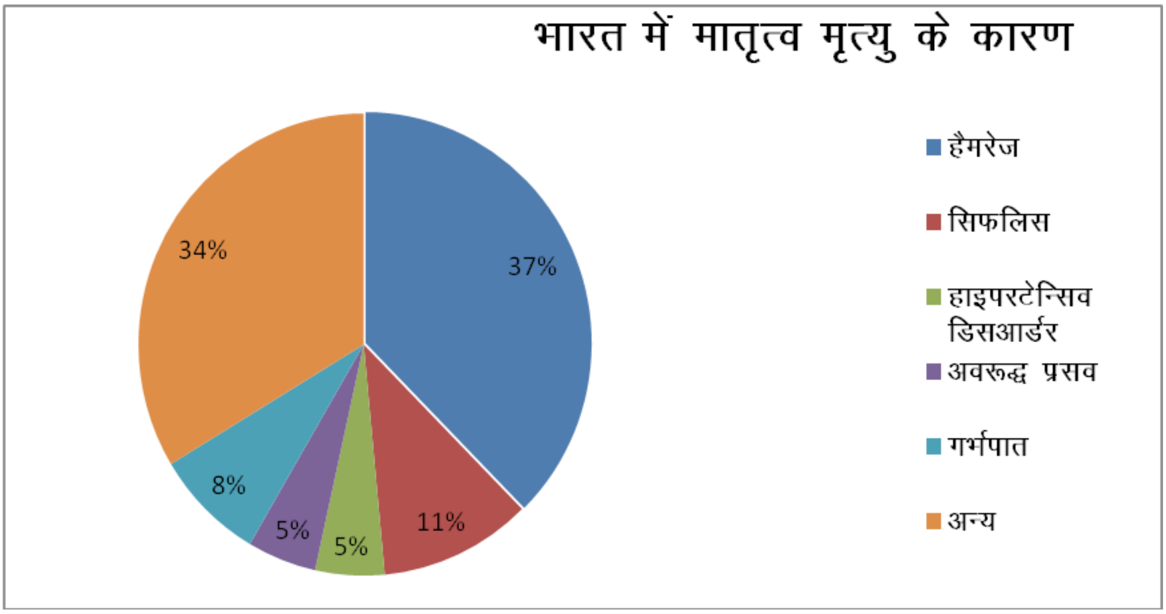

स्त्रोत : एस.आर.एस.; भारत में मातृत्व मृत्यु : 1997 से 2003

उपरोक्त ग्राफ के अनुसार भारत में मातृत्व मृत्यु के मुख्य कारणों में सर्वाधिक 37 प्रतिशत हैमरेज है, जिसमें प्रसव के दौरान महिला के अधिक रक्तस्राव होने पर उसकी मृत्यु हो जाती है, सिफलिस (संक्रमण) 11 प्रतिशत, 5: प्रतिशत, हाइपरटेन्सिव डिस्आर्डर, बाधक प्रसव समस्या का 5 प्रतिशत, गर्भपात 8 प्रतिशत व अन्य में 34 प्रतिशत है, जिसमें एनीमिया व अन्य समस्याएँ महिलाओं की मृत्यु के मुख्य कारण है।

2. शोध उद्देश्य

1. महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति का विश्लेषण करना।
2. मातृत्व स्वास्थ्य समस्याओं का विश्लेषण करना।
3. सरकारी व गैर सरकारी स्वास्थ्य सर्वेक्षणों का महिला स्वास्थ्य के संदर्भ में मूल्यांकन करना।

3. शोध प्रविधि

शोध हेतु लखनऊ जिले के गांवों का चयन किया गया। इस शोध में दैव निर्देशन व उद्देश्यपरक विधि द्वारा 100 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। इस अध्ययन में क्षेत्रीय कार्य से प्राप्त अनुभवों के साथ, अवलोकन, साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया है।

तालिका-1

भारत में मातृत्व स्वास्थ्य संबंधी सामाजिक-आर्थिक संकेतक

स्वास्थ्य संकेतक	भारत	स्रोत
मातृत्व मृत्यु दर	167	एस0आर0एस0 (2013)
कुल प्रजनन दर	2.4	एन0एफ0एच0एस0-III
घर पर प्रसव	60%	एन0एफ0एच0एस0-III
एनीमिया की समस्या :	57.9	एन0एफ0एच0एस0-III
विवाह की आयु (माध्य)	21 वर्ष	एन0एफ0एच0एस0-III
प्रसव पूर्व परिचर्या :	76.4	एन0एफ0एच0एस0-III
प्रसव पश्चात् देखभाल :	41.2	एन0एफ0एच0एस0-III
विवाहित महिलाओं में परिवार नियोजन के साधन का प्रयोग :	53.0	एन0एफ0एच0एस0-III

स्रोत : एन0एफ0एच0एस0-3, एस0आर0एस0 2011-2013

भारत में वर्ष 1990 में प्रति एक लाख जीवित जन्मों पर मरने वाली महिलाओं (एम0एम0आर0) की संख्या काफी अधिक थी अर्थात् प्रति एक लाख जीवित जन्मों पर 556 महिलाओं की मृत्यु हो जाती थी जो कि भारत में एस0आर0एस0 (2013) के अनुसार 167 तक की कमी देखी गयी है किन्तु अभी भी यह वैश्विक सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य (2000) को प्राप्त नहीं कर पायी है।

भारत में ज्यादातर मातृत्व संबधी समस्याएँ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में पायी जाती है। अशिक्षा व अज्ञानता के कारण वह गर्भावस्था में होने वाली जटिल समस्या के लक्षणों को पहचान नहीं पाती, जिससे कभी-कभी उनकी मृत्यु भी हो जाती है। चिकित्सकीय देखभाल के अभाव के अलावा महिलाओं के स्वास्थ्य को सामाजिक-आर्थिक कारक अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।

4. सामाजिक-आर्थिक कारक

महिला साक्षरता

महिला शिक्षा का संबंध उनके स्वास्थ्य स्तर से सीधे तौर पर संबंधित है, क्योंकि यदि महिला शिक्षित व जागरूक है, तो वह मातृत्व स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं का प्रयोग समय पर करती है। मैकर्थी एवं माने (1992) के अनुसार शिक्षित महिला अपने विवाह की उम्र, परिवार नियोजन के तरीके के प्रयोग, आर्थिक सुरक्षा, बच्चों में अंतर, गर्भावस्था व उसके पूर्व सभी निर्णय ले सकती है। शिक्षा के स्तर का प्रभाव महिला में मातृत्व स्वास्थ्य में सुधार के साथ उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित करता है। (बास्केट 2006) जैन (2012) के अनुसार भारत के मुख्य राज्यों में मातृत्व मृत्यु अनुपात को शिक्षा से संबंधित किया और पाया कि महिला शिक्षा द्वारा गर्भावस्था में पोषण जरूरतों के प्रति जागरूकता के साथ कम वजन, एनीमिया व हैमरेज आदि समस्याओं के प्रति जागरूक करती है। एन0एफ0एच0एस0-4 के अनुसार भारत में 15-49 वर्ष तक महिला की साक्षरता 68.4 है, जो कि 55.1 प्रतिशत एन0एफ0एच0एस0-3 में थी। जिसमें महिला की साक्षरता दर में वृद्धि हुई है किन्तु साक्षर होने से ही महिला के स्वास्थ्य में पूर्ण रूप से सुधार नहीं लाया जा सकता।

तालिका-2 महिलाओं की शिक्षा

क्र0सं0	शिक्षा	बारम्बारता	प्रतिशत
1	अशिक्षित	33	33
2	प्राथमिक	16	16
3	मिडिल	22	22

4	हाईस्कूल	10	10
5	इण्टर	10	10
6	स्नातक	7	7
7	परास्नातक तकनीकी शिक्षा	2	2

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रें में अभी भी महिलाओं का शैक्षिक स्तर निम्न पाया गया है। सर्वाधिक गर्भवती महिलाएं अशिक्षित हैं जिनका प्रतिशत 33 है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 16 है। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 22 है। हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त गर्भवती महिलाओं का प्रतिशत 10 है। इण्टरमीडिएट शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 10 है। अध्ययन क्षेत्र में उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त महिलाओं की कमी पायी गयी है, जिसमें सिर्फ स्नातक तक शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 7 है और परास्नातक शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 2 है। यह शिक्षा उन्होंने व्यक्तिगत प्रणाली द्वारा प्राप्त की है क्योंकि शिक्षण संस्थान शहर में है और अधिक दूरी पर भी स्थित है।

विवाह की आयु

महिला स्वास्थ्य के स्थिति निर्धारण करने में विवाह के समय आयु एक प्रभावष्ठाली कारक है क्योंकि शीघ्र व अपरिपक्व आयु में लड़कियों काविवाह करने पर गर्भावस्था के जोखिम की संख्या में वृद्धि होती है साथ ही वह अपने स्वास्थ्य संबंधी निर्णय लेने में असमर्थ होती है। जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। निम्न तालिका महिला उत्तरदाता के विवाह के समय आयु का वर्गीकरण प्रस्तुत करती है।

तालिका-3 विवाह के समय महिला की आयु

क्र0सं0	विवाह के समय आयु	बारम्बारता	प्रतिशत
2	15-18 वर्ष	26	26
3	19-25 वर्ष	71	71
4	26-30 वर्ष	3	3
	कुल योग	**100**	**100**

स्रोत : क्षेत्रीय कार्य

तालिका 3 द्वारा स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 15 से 18 वर्ष्ठा की उम्र की महिलाओं का 26 प्रतिशत है और 19 वर्ष से 25 वर्ष की महिलाओं का प्रतिशत 71 है। 3 उन महिलाओं का प्रतिशत है जो 26 से 30 वर्ष तक उम्र की है। इससे यह प्रतीत होता है कि लड़कियों का विवाह कम आयु में ही दिया जाता है।

कुपोषण

भारत में कुपोषण एक सामाजिक समस्या के रूप में विद्यमान है, विशेषकर महिलाओं व बच्चों में। परिवार में बचपन से भेदभाव का दंश सहती आयी लड़कियां शनैः शनैः कुपोषित होती जाती है, जो उनके सम्पूर्ण विकास दर नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। वह कम वजन व एनीमिया से ग्रसित हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप गर्भावस्था में अत्यधिक रक्तस्राव, गंभीर एनीमिया, प्री-मैच्योर प्रसव, कम वनज के शिशु का जन्म तथा साथ ही शिशुओं में विकृति की समस्याएं भी हो जाती है। कुपोषण का मुख्य कारण गरीबी भी है जिसके कारण परिवार में भौतिक संसाधन के अभाव के साथ महिलाओं को पोषक आहार भी नहीं मिल पाता। एन0एफ0एच0एस0-3 के अनुसार 55 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से पीड़ित है, जिसमें 39% सेवीयर एनीमिया, 15% मोडरेट एनीमिया, 2% माइल्ड एनीमिया है। एन0एफ0एच0एस0-4 में एनीमिया के स्तर में आंशिक कमी आयी। इसके अनुसार महिलाओं में एनीमिया का प्रतिशत 50.4 है।

स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता

महिलाओं के निम्न स्वास्थ्य होने का एक कारण स्वास्थ्य केन्द्रों में मिलने वाली सुविधाओं व देखभाल सेवाओं का अभाव भी है। स्वास्थ्य केन्द्रों में महिला कर्मियों, दवाओं आदि के अभाव के कारण महिलाएं गर्भावस्था में सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों में जाने से पीछे हट जाती है। जिसके कारण वह मातृत्व स्वास्थ्य सेवाओं से लाभान्वित नहीं हो पाती।

5. निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समाज में महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाने में भारत सरकार द्वारा कई स्वास्थ्य कार्यक्रम चलायें जा रहे है। जिससे मातृत्व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण किया जा सकें। किन्तु यह तब तक संभव नहीं होगा जब तक उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आता। महिलाओं की दोयम दर्जे के भूमिका व समाज में लैंगिक भेदभाव होने के कारण उनका सम्पूर्ण विकास अवरूद्ध हो जाता है। जिसका प्रभाव उनके मातृत्व स्वास्थ्य पर पड़ता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- शर्मा, मोनिका (1991), ''वूमेन एण्ड हेल्थ प्रोव्लम एण्ड इशू इन सोशियोलॉजी ऑफ हेल्थ इन इण्डिया'' संपादन टी0एम0 डॉन जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स, पेज 196-216
- कुमार अशोक एण्ड खान (2010) ''हेल्थ स्टेट ऑफ वूमेन इन इण्डिया : इवीडेन्स फॉम नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-3 (2005-2006) फ्यूचर आउट लुक'' शोध लेख रिसर्च एण्ड प्रैक्टिस इन सोशल साइन्स वाल्यूम-6 संख्या-2
- Akram, Maternal health in India: An Overview, Ed., M. Akram, Maternal Health in India: Contemporary Issues and Challenges, Jaipur: Rawat Publications, p. 19, 2014a.
- Millennium Development Goals-India Country Report http://www.undp.org/content/india/en/home/library/mdg/mdg_india_country_report_2011.html (accessed on July 12, 2014).
- Jain, G.(2012). female Literacy and its Relevance with maternal and infant mortality Rates. Intrnational Journal of Mangement, Vol-3, No-2, 65- 79.
- Jahnson, S.A.(2010).Health and delopement as Concepts in the International System.In S.A. Johnson, Challlenges in health and Delopement: From Global to community perspectives (pp.42-44).USA: Springer.
- McCarthy,J., & Maine,D.(1992). A Framework For Analyzing The Determinants of Maternal mortality. Studies in Family Planning, Vol.23, No.1, 23-33.
- Chamberlain, J., Watt, S., Mohide, P.,Muggah, H., Trim, K., & Kyomuhendo, G. B. (2007). Women perception of Self-Worth and access to health care. International journal of gynecology and obstestrics, Vol. (8,75-79.
- Desai,S., & Alva, S. (1998). Maternal Education And Child Health: Is There A Strong Causal Relationship? Demography, Vol:35,No:1, 71-81
- World Health Organization, Women and Health: Today's Evidence Tomorrow's Agenda, 2009 [online] available at http://whqlibdoc.who.int/publications/2009/9789241563857_eng.pdf (accessed on 5 July 2012).
- WHO, (2015). Trends in Maternal Mortality:1990 to 2015. Geneva:WHO.
- National Family Health Survey (NFHS-4).Mumbai,India 2015-2016
- National Family Health Survey (NFHS-3).Mumbai,India 2005-2006
- National Family Health Survey (NFHS-2).Mumbai,India 1998-1999
- National Family Health Survey (NFHS-1).Mumbai,India 1992-1993

स्वतंत्रता आंदोलन में जयप्रकाश नारायण की भूमिका

डॉ० दीपक कुमार

ग्राम- अहिला, पो0 -सिनुआरा, जिला- दरभंगा
पिन-846003 (बिहार)

जे0 पी0 अथवा 'लोकनायक' के नाम से मशहूर जयप्रकाश नारायण एक भारतीय स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक और राजनेता थे। उन्हें मुख्यत: 1970 में इंदिरा गांधी के विरूद्ध विपक्ष का नेतृत्व करने के लिए जाना जाता है। भारत सरकार ने उन्हें सन् 1998 में मरणोपरांत देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा। सन् 1965 में उन्हें समाज सेवा के लिए 'मैगसेसे' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। वर्ष 1957 में उन्होंने राजनीति छोड़ने का निर्णय लिया पर 1960 के दशक के अंत में वे राजनीति में पुन: सक्रिय रहे। जे0 पी0 इंदिरा गांधी की प्रशासनिक नीतियों के विरूद्ध थे और गिरते स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने 1977 में विपक्ष को एकजुट कर इंदिरा गांधी को चुनाव में धूल चटा दिया।

जयप्रकाश नारायण पढ़ाई के लिए 1920 ई0 में अमेरिका चले गए तथा वहाँ से आने के बाद स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। जयप्रकाश नारायण जब 1929 में अमेरिका से लौटे उस समय स्वतंत्रता संग्राम तेजी पर था। धीरे-धीरे उनका संपर्क जवाहर लाल नेहरू और महात्मा गांधी से हुआ और वे स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बने। 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जब गांधी, नेहरू समेत अन्य महत्वपूर्ण कांग्रेसी जेल चले गए तब उन्होंने भारत के अलग- अलग हिस्सों में आंदोलन को दिशा दी। ब्रिटिश सरकार ने अन्तत: उन्हें भी मद्रास में सितंबर 1932 में गिरफ्तार कर लिया और नासिक जेल भेज दिया। नासिक जेल में उनकी मुलाकात अच्युत पटवर्धन, एम0 आर0 मसानी, अशोक मेहता, एम0 एच0 दांतवाला, और सी0 के0 नारायणस्वामी जैसे नेताओं से हुई। इन नेताओं के विचारों ने कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी (सी0 एस0 पी0) की नींव रखी। जब कांग्रेस ने 1934 में चुनाव में हिस्सा लेने का फैसला किया तब कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी ने इसका विरोध किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व किया और ऐसे अभियान चलाये जिससे सरकार को मिलने वाला राजस्व रोका जा सके। इस दौरान उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 9 महीने की कैद की सजा सुनाई गई। उन्होंने गांधी और सुभाष चन्द्र बोस के बीच मतभेदों को सुलझाने का प्रयास भी किया। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान वे हजारीबाग जेल से फरार हो गए थे।

आजादी के बाद कई सरकारों ने घोटाले और षड्यंत्र किए जिनसे देश और समाज का बहुत नुकसान हुआ। देश में महंगाई, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी व्याप्त थी ऐसे समय में जयप्रकाश नरायण ने आगे आकर युवाओं के माध्यम से जनता को एकत्रित किया। उन्होंने कहा ये सारी समस्याएँ तभी दूर हो सकती हैं, 'जब सम्पूर्ण व्यवस्था बदल दी जाए और सम्पूर्ण व्यवस्था के परिवर्तन के लिए सम्पूर्ण क्रांति आवश्यक है। उनके अहिंसावादी आंदोलन की सूरत को देखकर कुछ लोगों ने उन्हें आजाद भारत के गांधी की उपाधि दी थी।

अमेरिका से लौटने के पश्चात् कुछ समय तक वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्रवक्ता रहे। लेकिन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के उद्देश्य से उन्होंने नौकरी छोड़ दी और कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गए। 1934 ई0 में कांग्रेस

की नीतियों से असंतुष्ट नवयुवकों ने जब अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी के स्थापना की तो जयप्रकाश नारायण इसके संगठन मंत्री बनाए गए। इस पार्टी में उनके साथ राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता और आचार्य नरेंद देव जैसे राजनेता भी थे। आचार्य नरेन्द्र देव एवं जयप्रकाश दोनों ने मिलकर समाजवादी आंदोलन को आगे बढ़ाया। जयप्रकाश नारायण देशभर में घूमकर समाजवादी आंदोलन का प्रचार किया करते थे। इसके कारण 1934 से 1946 ई0 के बीच ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कई बार जेल की सलाखों के पीछे भेजा, किन्तु बार – बार वे जेल कर्मचारियों को चकमा देकर फरार होने में सफल रहे। विचारों में मतभेद होने के बावजूद गांधीजी जयप्रकाश जी से काफी अनुराग रखते थे। 7 मार्च 1940 ई0 को जब उनको पटना में गिरफ्तार कर चाईबासा जेल में बंद कर दिया, तब गांधीजी ने कहा था ''जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। वे कोई साधारण कार्यकर्त्ता नहीं हैं, बल्कि समाजवाद के महान विशेषज्ञ हैं।''

देश की आजादी के प्रति उनकी ललक और इसे शीध्र प्राप्त करने के लिए उनके अदम्य साहस भरे कारनामों के बिना उनकी जीवनगाथा अधूरी रह जाएगी। 1942 ई0 में जब पूरा देश गांधी जी के 'करो या मरो' के नारे के उद्घोष के साथ अंग्रेजों को मुंह तोड़ जबाव दे रहा था, उस समय से हजारीबाग जेल से फरार होने के उपाय ढूंढ रहे थे। 9 नवम्बर, 1942 को दीपावली की रात्रि का समय भी आया जब उन्होंने साबित कर दिया कि दुनिया में कोई ऐसी जेल बनी ही नहीं थी जो अधिक दिनों तक जयप्रकाश को कैद कर रख सकती थी। उस रात जब सभी बंदी दीपावली का त्यौहार मनाने में व्यस्त थे, अपने छह मित्रों के साथ जयप्रकाश धोतियों से बनाई रस्सी की मदद से जेल की दीवार को लांघकर फरार होने में कामयाब रहे।[1] उनके फरार होने से जेल अधिकारियों के होश उड़ गए। सरकार ने उन्हें जिंदा या मुर्दा पकड़ने के लिए 10,000 के इनाम की घोषणा की। जयप्रकाश का आजाद घूमना ब्रिटिश सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी। 1942 ई0 से 1946 ई0 तक कई बार जेल भेजा गया, पर अपनी मातृभूमि का सच्चा सपूत जयप्रकाश नारायण अपनी जान की परवाह किए बिना हर बार अंग्रेजों को तब तक चकमा देता रहा जब तक 1946 ई0 में सरकार ने स्वयं उन्हें कारागार से मुक्त नहीं कर दिया।

1947 ई0 में देश की आजादी के बाद भी वह राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे। 1957 ई0 में वे सर्वोदय आंदोलन से जुड़ गए और आजीवन समाजवादी विचारधारा को बढ़ाते रहे। सर्वोदय के संदेश को पूरे विश्व में फैलाने के लिए उन्होंने कई देशों की यात्रा की। 1972 ई0 में जयप्रकाश जी ने चंबल के डाकुओं के आत्मसमर्पण में अग्रणी भूमिका अदा कर उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का वह कार्य कर दिखाया जो कोई और नहीं कर सकता था। 1970 ई0 में उन्होंने तत्कालीन सरकार की नीतियों का विरोध करना प्रारंभ किया। 1974 ई0 में बिहार तथा गुजरात के छात्र आंदोलन का उन्होंने सफलतापूर्वक नेतृत्व करते हुए संपूर्ण क्रांति की घोषणा की।[2] यही वह समय था जब जयप्रकाश अपने संक्षिप्त नाम जे0 पी0 के रूप में विख्यात हुए और लोकनायक कहलाने लगे। 1975 ई0 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने जब राष्ट्रीय आपातकाल लागू किय, तब जयप्रकाश जी ने इसका भरपूर विरोध किया। इस विरोध को दबाने के लिए उन्हें जेल में डाल दिया गया। अंतत: वे अपने संघर्ष में कामयाब हुए और अपने अभूतपूर्व नेतृत्व के बल पर जनता पार्टी को 1977 ई0 के चुनाव में विजयश्री दिलवाई। वे चाहते तो उस समय सरकार में कोई भी उच्च पद प्राप्त कर सकते थे, किन्तु सभी पदों को अस्वीकार कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि उन्हें केवल देश सेवा से लगाव था न कि पद और सत्ता से।

महात्मा गांधी के आदर्शो से प्रेरित जयप्रकाश नारायण एक ऐसे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे जिन्होंने अहिंसा का सिद्धांत नए विचार के साथ अपनाते हुए अल्पसंख्यकों की समस्या का हल निकाला और टकराव दूर करने की स्थितियाँ बनाई। भारत और पाकिस्तान के कश्मीर को लेकर विवाद के रास्ते में जयप्रकाश नारायण ने एक समझदारी भरा संधि प्रस्ताव सामने रखा जिस पर सोंच विचार शुरू हुआ, इसी तरह नागालैण्ड की अलग राज्य की मांग को लेकर विद्रोही नागाओं का हृदय परिवर्तन करने में जयप्रकाश नारायण का योगदान रहा जिससे भारतीय अधिकारियों के साथ बातचीत सम्भव हो सकी। चीन और अधिनायकवाद लादे जाने के विरोध में तिब्बतियों के मामले में भी जयप्रकाश नारायण ने समझदारी भरी सक्रिय भूमिका निभाई और आगे बढ़कर देश के लोगों को उस सन्दर्भ में सचेत किया। आधुनिक भारत के निर्माण में जनचेतना जगाने और रचनात्मक संगठन तैयार करने की अद्‌भुत क्षमता का उदाहरण सामने लाने के लिए जयप्रकाश नारायण को वर्ष 1965 का मैग्सेसे पुरस्कार प्रदान किया गया। अपने अमेरिका प्रवास के दौरान जयप्रकाश समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे और जीवन भर इसे बढ़ाने के लिए संघर्ष करते रहे। इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर उन्होंने 'फ्रॉम सोशलिज्म टू सर्वोदय', 'टूवर्ड्स स्ट्रगल', 'स्टेट पिक्चर ऑफ सर्वोदय सोशल आर्डर', 'सर्वोदय एंड पीस' नामक कई पुस्तकें भी लिखीं। उनकी रचनाओं का संग्रह 'ए रिवोल्यूशनरी क्वेस्ट' के नाम से प्रकाशित है। उनका मानना था कि

भारत की समस्याओं का समाधान समाजवादी तरीके से ही संभव है। समाजवाद का अर्थ उनके लिए स्वतंत्र, समानता तथा बंधुत्व की स्थापना था। उनकी दृष्टि से समाजवाज, सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए एक पूर्ण विचारधारा थी। वास्तव में जयप्रकाश नारायण लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के आलोचक थे। वे ऐसे समाज की स्थापना पर जोर देते थे जो सहकारिता, आत्मानुशासन और उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण हो। वे सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्राम स्वराज्य की स्थापना को महत्त्वपूर्ण मानते थे।

भारत की आजादी के बाद 1952 के चुनाव में समाजवादी पार्टी को कांग्रेस के आगे हार का मुँह देखना पड़ा लेकिन नेहरू जी ने जयप्रकाश नारायण को मंत्रिमंडल में आने का अवसर दिया। यह जयप्रकाश नारायण के लिए महत्वपूर्ण अवसर था लेकिन जयप्रकाश नारायण के पास उनका एक चौदहसूत्री कार्यक्रम था जिसमें संविधान में सुधार, प्रशासन तथा न्याय व्यवस्था में सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भूमिहीनों को जमीन देने का प्रस्ताव था। जयप्रकाश स्वदेशी नीति को आगे लाना चाहते थे और उनकी योजना सहकारी इकाईयों के गठन की थी। जवाहरलाल नेहरू का प्रस्तावों को लागू करने की दिशा में कोई ठोस उत्तर देने के पक्ष में नहीं दिखे, तो जयप्रकाश नारायण ने मंत्रिमंडल में जाने से इंकार कर दिया।[3]

जयप्रकाश नारायण सरकार, मंत्रिमंडल तथा संसद का हिस्सा नही रहे, लेकिन उनकी राजनैतिक सक्रियता बराबर बनीं रही। इन्होंने ट्रेड यूनियन के अधिकारों के लिए संघर्ष किया तथा कामगारों के लिए न्यूनतम वेतन, पेंशन, चिकित्सा - सुविधा तथा घर बनाने के लिए सहायता जैसे जरूरी मुद्दे लागू करने में सफल हुए। आजादी के बाद के दौर में जयप्रकाश नारायण की नजर रूस की ओर थी और उन्हें समझ में आ गया था कि कम्युनिज्म भारत के लिए सही राह नहीं है। अपने जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना के तौर पर 19 अप्रैल 1954 को जयप्रकाश नारायण ने एक असाधारण-सी घोषणा कर दी। उन्होंने बताया कि वह अपना जीवन विनोबा भावे के सर्वोदय आंदोलन को अर्पित कर रहे हैं। उन्होंने हजारीबाग में अपना आश्रम स्थापित किया जो कि पिछड़े हुए गरीब लोगों का गांव था। यहाँ जयप्रकाश नारायण ने गांधीजी के जीवन - दर्शन को आधुनिक पाश्चात्य लोकतंत्र के सिद्धान्त से जोड़ दिया। इसी विचार की उनकी पुस्तक 'रिकंस्ट्रक्शन ऑफ इण्डियन पॉलिसी' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने जयप्रकाश को मैग्सेसे पुरस्कार के लिए चुने जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1971 के वर्ष में जयप्रकाश ने नक्सली समस्या का समाधान निकाल कर तथा चम्बल में डाकुओं के आत्मसमर्पण में अगुवा की भूमिका निभाई। 8 अप्रैल, 1974 को 72 वर्ष की आयु में एक अद्‌भुत नेतृत्व क्षमता तथा सचेत गतिविधि का प्रदर्शन किया। उस सल देश बेहद महंगाई, बेरोजगारी तथा जरूरी सामग्री के अभाव से गुजर रहा था। इसके विरोध में जयप्रकाश नारायण ने एक मौन जुलूस का आयोजन किया जिस पर लाठी चार्ज किया गया। 5 जून 1974 को पटना के गांधी मैदान में एक जनसभा को संबोधित करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा, ''यह एक क्रांति है, दोस्तों ! हमें केवल एक सभा को भंग नहीं करना हे, यह तो हमारी यात्रा का एक पड़ाव भर होगा। हमें आगे तक जाना है। आजादी के सत्ताइस बरस बाद भी देश भूख, भ्रष्टाचार, महँगाई, अन्याय तथा दमन के सहारे चल रहा है। हमें सम्पूर्ण क्रांति चाहिए उससे कम कुछ नहीं।

12 जून, 1975 में इलाहाबाद हाईकोर्ट ने प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी को चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने का दोषी पाया और आदेश दिया कि इंदिरा गांधी सुप्रीम कोर्ट का फैसला आने तक अपने पद से त्यागपत्र दे दें। लेकिन इंदिरा गांधी ने ऐसा करने के बजाए इमरजेंसी घोषित कर दी तथा जयप्रकाश नारायण को चंडीगढ़ के एक अस्पताल में कैद कर दिया।

वर्ष 1977 को इमरजेंसी उठाई गई और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बहुत सी पार्टियों ने संगठित होकर एक जनता पार्टी बनाई और इस जनता पार्टी ने इंदिरा गांधी की कांग्रेस पार्टी को हराकर बहुमत से सत्ता हासिल की। जनता पार्टी की इस विजय में उसके चुनाव घोषणा पत्र का बड़ा महत्त्व था, जिसमें जयप्रकाश नारायण के लक्ष्यों को सामने रखा गया था।

8 अक्टूबर , 1979 को उनके इस दुनिया से विदा लेने के साथ ही उनकी क्रांति मंद पड़ गई, किन्तु देश को सर्वोदय एवं समाजवादी क्रांति की जो राह उन्होंने दिखाई, उस पथ पर चलते हुए भारत आज भी समाजवादी, लोकतंत्र के रूप में अपने राजनीतिक पथ पर सफलतापूर्वक एवं तीव्र गति से अग्रसर है।

संदर्भ :

1. अमित कुमार एवं स्नेहलता, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृ0 146
2. विजय कुमार, बिहार का इतिहास एवं संस्कृति, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2012, पृ0 145
3. अमित कुमार एवं स्नेहलता, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2011, पृ0 147

धर्म और नैतिकता का स्वरूपात्मक अध्ययन

सिमरन शर्मा

रिसर्च स्कॉलर, दर्शनशास्त्र विभाग

ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

धर्म और नैतिकता दोनों का संबंध मानव के स्वभाव से है। नीति एवं धर्म का सबसे बड़ा कार्य आत्मचेतना मानव प्राणियों को अपने परम शुभ के विषय में सोचने को प्रेरित करता है। इन दोनों की महत्ता आदर्श उपस्थित करने में नहीं, बल्कि व्यक्ति को चिंतनशील तथा आत्म चेतन जीवन का महत्व बतलाने में और उस दिशा में प्रेरित करने में है। इनका संबंध मानव के सर्वांगीण विकास से है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का अर्थ उसके सभी पक्षों का विकास है। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, संकल्पनात्मक तथा आध्यात्मिक सभी स्तरों पर परिमार्जन करना ही नीति एवं धर्म का नैसर्गिक भाव रहा है।

कुछ विचारकों का मानना है कि धर्म और नैतिकता का संबंध बहुत ही गहरा है तथा पुराना भी। कुछ लोग तो धर्म और नैतिकता को परस्पर पूरक मान लेते हैं। साथ ही साथ धर्म का उद्‌भव और नैतिकता की शुरुआत सहोदर घटनाएँ मानते हैं। लेकिन कुछ विचारकों का मानना है कि धर्म और नैतिकता दोनों अलग-अलग है तथा दोनों का अपना अलग महत्व है क्योंकि जितना खून धर्म के नमा पर बहा है दुनिया में शायद ही किसी और नाम पर बहा हो। यहाँ धर्म का केन्द्र बिन्दु ईश्वर है जबकि नैतिकता का केन्द्र बिन्दु मानव है। नैतिकता में संघर्ष और विरोध की प्रबलता रहती है किन्तु धर्म में इसके विपरीत परमशांति एवं विजय का साम्राज्य रहता है। इस प्रकार हमारे समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं कि क्या धर्म और नैतिकता का एक मात्र अनिवार्य आधार है अथवा वह स्वयं ही नैतिकता पर पूर्णत: निर्भर है क्या हम दोनों को परस्पर भिन्न मानते हुए भी परस्पर संबद्ध मान सकते हैं? क्या धर्म और नैतिकता परस्पर पूरक तथा एक दूसरे के लिए अनिवार्य है? इस प्रकार धर्म और नैतिकता के संबंध में निम्न मौलिक बिन्दुओं का विश्लेषण वांछनीय दृष्टिगत होता :-

1. धर्म का स्वरूप : परिचय
2. नैतिकता का स्वरूप
3. धर्म और नैतिकता में संबंध
4. दोनों में अन्तर
5. निष्कर्ष

1. धर्म का स्वरूप : परिचय :-धर्म की उत्पति संस्कृत भाषा धृ धातु से हुई है जिसका अर्थ है धारण करना ''धार्यते इति धर्म:'' अर्थात् जो धारण किया जाय वह धर्म है इस प्रकार धर्म किसी एक या अधिक परलौकिक शान्ति में विश्वास और इसके असाथ-साथ जुड़ी रीति रिवाज मनुस्मृति में धर्म की परिभाषा इस प्रकार दिया गया है-

धृति: क्षमा दमोस्तेय: शोचं इन्द्रिय निग्रह:।
धीर्विधा सतयमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं।।

इस प्रकार धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली वह व्यापक अभिवृति है जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र, सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपस्थित विषय के प्रति अखण्ड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और जो मनुष्य के दैनिक आचरण तथा प्रार्थना पूजापाठ तथा जप-तप आदि वाहन कर्मकाण्ड में अभिव्यक्त होती है। सामान्यत: धर्म का अर्थ मंदिर मस्जिद गिरजाघर आदि में उपासना में जाकर पूजा प्रार्थना करने से है। धर्म

का आधार आत्मा-परमात्मा स्वर्ग नरक, ईश्वर कर्मकाण्ड पूजा, पाप-पुण्य किन्तु यह धर्म का बाह्य पक्ष है। मूल रूप में धर्म वह है जो कि मानव-मानव में एकता तथा प्रेम की भावना का संचार करता है। वैसे तो धर्म की अनेक परिभाषाएं दी गई है जिसमें प्रो0 गैल्बे का मत सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गैल्बे के अनुसार ''अपने से परे शक्ति में मानव का ऐसा विश्वास धर्म है जिसके द्वारा वह अपने संवेगात्मक आवश्यकताओं की संतुष्टि एवं जीवन की स्थिरता प्रदान करता है। साथ ही जिसे पूजा एवं उपासना के द्वारा व्यक्त किया जाता है''। इस परिभाषा में धर्म के तीनों पक्षो सैद्धांतिक (बौद्धिक), भावनात्मक और क्रियात्मक का संबंध है जिसमें धर्म के सैद्धान्तिक (बौद्धिक) पक्ष के अन्तर्गत कुछ सैद्धान्तिक पक्षो को अनिवार्य माना गया है। जो उसके अस्तित्व और विस्तार के लिए आवश्यक है जैसे हिन्दू धर्म में जगत आत्मा ईश्वर, ईसाई इस्लाम धर्म और यहुदी धर्म में ईश्वर के अस्तित्व स्वरूप तथा जगत के साथ उसके संबंध भी भिन्न-भिन्न अपने सिद्धान्त है। इसी प्रकार धर्म में सैद्धान्तिक पक्ष के अलावे एक संवेगात्मक पक्ष भी है जिसका संबंध उपास्य विषय की पूजा तथा उसके प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता और समर्पण की भावना से है यहॉं संवेगात्मक पक्ष के अन्तर्गत श्रद्धा, सम्मान, भय, विनम्रता, प्रेम आदि अनेक संवेग सम्मिलित रहते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मका एक क्रियात्मक पक्ष भी है जिसका संबंध मनुष्य के आचरण तथा विशेष प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों या कर्मकाण्डों से है। यह धर्म का व्यावहारिक या क्रियात्मक पक्ष कहा जाता है। यहॉं यह बताया जाता है कि कौन से कर्म करना चाहिए कौन से कर्म नहीं यही धर्म का क्रियात्मक पक्ष है।

2. नैतिकता का परिचय :- नैतिकता मानव समाज का एक अभिनन अंग है जिसका विकास समाज में ही होता है तथा जिसकी सार्थकता एवं महत्ता मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने के कारण ही है। समाज से पृथक नैतिकता की न तो कोई संभावना है और न ही आवश्यकता है क्योंकि हमारे द्वारा किए गए सिी भी निर्णय में नैतिकता आधार होता है। इस प्रकार नैतिकता एक दार्शनिक अवधारण है जिसमें सही और गलत की अवधारणाओं को व्यवस्थित करना, बचाव करना और अनुशंसा करना शामिल है। नैतिकता अच्छे और बुरे सही और गलत और उपाध्यक्ष और अन्याय की चिंताआं से संबंधित है। इस प्रकार एक अनुशासन के रूप में, नैतिकता के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलु भी है। सैद्धान्तिक रूप से नैतिकता बुनियादी सिद्धांतों को प्रदान करती है और जानती है कि हम किस नैतिक निर्णय पर पहुँचे हैं एक व्यावहारिक अनुशासन के रूप में नैतिकता व्यक्ति के जीवन से संबंधित है, विशेष सिरो से संबंधित है और उन्हें प्राप्त करने का साधन है।

इस प्रकार हम नैतिकता को परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि ''नैतिकता रीति-रिवाजों, प्रथाओं, नियमों, सिद्धांतों, मूल्यों एवं आदर्शों से संबंधित है वह सामाजिक व्यवस्था है जिसका उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तिगत कल्याण तथा सामाजिक हित एवं समायोजन के लिए उसके आचरण का नियमन, नियंत्रण तथा मार्गदर्शन करना है और जिसे वह सामाजिक दबाव अथवा स्वयं अपनी इच्छा के कारण स्वीकार करता है।'' इस प्रकार नैतिक नियम सार्वजनिक होते हैं तथा समान परिस्थितियों पर समान रूप से लागू होते हैं।त्ए डण् भ्तमका कहना है कि प्रत्येक नैतिक नियम के लिए सार्वजनिकता का होना अनिवार्य है। उनका यह भी कहना है कि इसके उल्लंघन से हमारे अन्दर अपराध बोध की भावना का जन्म होता है तथा इसमें सामाजिक हित की भावना निहित होती है।

3. धर्म और नैतिकता का संबंध :- जब हम मानव विकास के इतिहास का सिंहावलोकन करते हैं तो धर्म और नैतिकता के बीच गठबंधन पाते हैं। आदिम काल से ही दोनों के बीच आवश्यक और वियोज्य संबंध रहा है। नीतिशास्त्र में ईश्वर की सत्ता, इच्छास्वतंत्र्य तथा आत्मा की अमरता को मान्यताओं के रूप में माना गया है। इसी प्रकार धर्म भी किसी न किसी रूप में इन्हीं मान्यताओं पर आधारित है। धर्म में ईश्वर को नैतिक पूर्ण और सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकारा गया है।

यहॉं ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिकांश भारतीय विचारकों ने धर्म और नैतिकता को संबंधित मानते हैं। मनु ने भी धर्म और नैतिकता में कोई भेद नहीं किया है। महात्मा गांधी ने भी कहा है कि नैतिकता धर्म की रीढ़ है और जैसे ही हम नैतिकता को खोते हैं वैसे ही हम धर्म से विमुख हो जाते हैं।

इस प्रकार इतना स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और नैतिकता में घनिष्ठता का संबंध है। प्रो0 हौफडिंग ने भी कहा है कि "Religion is faith in the conservation of value". अर्थात् धर्म का आधार नैतिक मूल ही है। नैतिकता धर्म का आवश्यक अंग है दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। नैतिकता की महत्ता अध्यात्म में समावेश होने पर ही परिलक्षित होता है। फिर धर्म में भी आचरण की पवित्रता पर अतयधिक बल दिया गया है। प्रत्येक धर्म में नीति एवं आचार संबंधित सिद्धांतों का स्पष्टीकरण हुआ है। यहॉं नैतिक

गुणों को ईश्वरीय गुणों के रूप में चित्रित किया गया है। धर्म और नैतिकता में अवियोज्य संबंध दिखाने के लिए विभिन्न विचारकों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार है-

प्रो0 क्लिन्ट ने धर्म और नैतिकता में संबंध स्थापित करते हुए कहते हैं कि नैतिकता के लिए धर्म वैसे ही आवश्यक है जैसे बीज के लिए जल इसी प्रकार विलियम लिलि ने भी कहा है कि व्यक्ति अथवा समाज जितना अधिक धार्मिक होगा उतना ही अधिकवह नैतिक होगा।

एच0डी0 लेविस ने धर्म और नैतिकता में संबंध स्थापित करते हुए कहते हैं कि वस्तुत: नैतिकता धर्म के लिए तथा धर्म नैतिकता के लिए समाज रूप से अनिवार्य है तथा दोनों को पूरक मानते हैं।

कुछ ईश्वरवादी दार्शनिकों की मान्यता है कि नीति के अभाव में धर्म की तात्विकता विनष्ट हो जाती है और धर्म स्वयं अधर्म का प्रचारक बन जाता है। इस प्रकार नैतिक सद्‌गुणों के अभाव में किसी भी व्यक्ति को धार्मिक नहीं कहा जा सकता है। वे ऐसा मानते हैं कि धर्म और नैतिकता का आधार एक ही है।

धर्म और नैतिकता में संबंध स्थापित करते हुए J.E. S उपजी ने लिखा है- धर्म के बिना नैतिकता उसी प्रकार निराधार है जिस प्रकार पतवार के बिना नदी में चलती हुई नौका केवल धर्म ही नैतिकता को उचित दिशा प्रदान करके उसे पथभ्रष्ट होने से बचा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धर्म और नैतिकता में अनिवार्य और अवियोज्य संबंध है।

4. धर्म और नैतिकता में अन्तर :- उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि धर्म और नैतिकता में आवश्यक संबंध है। परन्तु फिर भी धर्म और नैतिकता पूर्णत: अभेद नहीं कहे जा सकते हैं। इनके बीच अनेक विषमताएं भी है। जो इस प्रकार है-

- जहॉ धर्म विश्वासों, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं और विश्व के विचारों का एक संगठित संग्रह है जो मानवता को अस्तित्व के आदेश से संबंधित वही 'नैतिकता' नैतिक दर्शन की वह शाखा है जिसमें सही और गलत आचरण को व्यवस्थित करने, बचाव करने और विचारों को सिफारिश करना शामिल है।
- जहॉ धर्म समाज में छुआछुत, जात-पात, कर्मकाण्ड हिंसा को प्रश्रय देता है वही नैतिकता यह बताता है कि हमें कैसा आचरण करना है। हमें सबके साथ समान व्यवहार करना है और आपसी प्रेम तथा भाईचारा बनाये रखना है।
- धर्म का केन्द्र बिन्दु ईश्वर है जबकि नैतिकता का केन्द्र बिन्दु मानव है। नैतिकता में संघर्ष और विरोध की प्रबलता रहती है परन्तु धर्म में परम शान्ति का साम्राज्य रहता है।
- नैतिकता का आधार मानवीय स्वतंत्रता है। संकल्प स्वतंत्र के अभाव में नैतिकता का कोई महत्व नहीं रह जाता है परन्तु धर्म इसके विपरीत अनिवार्यता स्तर पर निवास करता है।
- नैतिकता अनन्त की ओर अप्रगतिशील है परन्तु धर्म अनन्त में प्रगतिशील है। नैतिकता हमें अनंत के निकट पहुॅचा देती है। परन्तु यह हमें अनन्त की प्राप्ति में असक्षम सिद्ध होता है। धर्म इसके विपरीत आध्यात्मिकता का विकास करता है तथा अनंत की प्राप्ति में सफल होता है।
- धर्म नैतिकता से वृहत् शब्द है। नैतिकता का संबंध शुभ से है परन्तु धर्म सभी प्रकार के मूल्यों को अपनाता है।
- कुछ विचारकों का मानना है कि नैतिकता धर्म के बिना भी संभव है एक व्यक्ति बिना आध्यात्मिक हुए भी चरित्रवान हो सकता है। नीति धर्म पर आश्रित न होकर आत्मनिर्भर है इसलिए नैतिकता में धर्म को पुट खोजना अनावश्यक है इसके समर्थक मिल, कम्पटे, स्पेंसर हैं।

धर्म और नैतिकता में संबंध और विरोध पर विचार करने के पश्चात् हमारे मन में एक प्रश्न अनायास ही उठ खड़ा होता है कि क्या धर्म से नैतिकता की उत्पत्ति हुई है या नैतिकता से धर्म की उत्पत्ति हुई है? इसके उत्तर में विद्वान दो दलों में बट जाते हैं। कुछ विचारकों का मानना है कि धर्म नैतिकता की तुलना में पुराना है। मनुष्य ने प्रारंभ में धार्मिक प्रचलन को अपनाया तथा समय के विकास के साथ ही साथ नैतिक प्रचलन के संबंध में मानव को ज्ञान हो जाय इसके समर्थक देकार्त, लॉक आदि हैं। दूसरे दल के अनुसार धर्म का आविर्भाव नैतिकता से हुआ है। नैतिकता मनुष्य को नैतिक व्यवस्थापक में विश्वास के लिए बाध्य करती है इसके फलस्वरूप ईश्वर का विचार आता है, जो धर्म का आधार है। इसके समर्थक कांट, मार्टिन्यु आदि हैं। इन दोनों विचारों में कौन सा अधिक युक्तिसंगत है यह बताना कठिन है लेकिन धर्म और नैतिकता में अनिवार्य एंव अवियोज्य संबंध है।

5. निष्कर्ष :- उपर्युक्त विवेचनोपरान्त ऐसा कहा जा सकता है कि धर्म और नैतिकता में अवियोज्य और अनिवार्य सम्बन्ध है। ये दोनों एक ही सिरे के दो पहलु हैं। जिस प्रकार नैतिकता के विकास के आध्यात्मिक चेतना आवश्यक है। उसी प्रकार धर्म के लिए नैतिक मूल्य आवश्यक है। नैतिकता धर्म का एक अभिनन अंग अवश्य है परन्तु प्रचलित सामान्य अर्थ में धर्म केवल नैतिकता ही नहीं वह नैतिकता के अतिरिक्त कुछ और भी है लेकिन मेरा मानना है कि ये दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर है क्योंकि संसार में ऐसे व्यक्ति भी हैं जो धार्मिक नहीं होते हुए भी नैतिक हैं क्योंकि वे अपने जीवन में धार्मिक मूल्यों को अधिक महत्व न देते हुए उनके स्थान पर नैतिक मूल्यों दया, करूणा, ममता, स्नेह, भाईचारा को अधिक महत्व देते हैं और वैसे भी व्यक्ति हैं जो धार्मिक होते हुए भी अनैतिक जो बाह्य आडंबर का दिखावा करके नैतिक मूल्यों का हनन करते हैं। इस प्रकार सामान्य अर्थ में धर्म वस्तुत: नैतिकता के लिए न तो अनिवार्य है और न ही उसका आधार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समकालीन भारतीय दर्शन, बसन्त कुमार लाल
2. समकालीन भारतीय चिन्तक, रमेश चन्द सिन्हा-विश्रय श्री
3. सन्त कबीर एवं गुरु नानक के नैतिक एवं धार्मिक विचार- डॉ0 हिमांशु शेखर सिंह
4. धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ-वेद प्रकार वर्मा
5. धर्म दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन-डॉ0 शिव भानु सिंह

बहुसंस्कृतिवाद भारतीय संदर्भ में

डॉ० विजय प्रताप सिंह

असि० प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग डी०ए०वी० कालेज, कानपुर

बहुसंस्कृतिवाद से तात्पर्य एक ऐसे समाज से है, जहाँ बहुत से सांस्कृतिक समूह स्वंय की विशेषताओं को बनायें रखते हुए एक साथ निवास करते है। ऐसे समाज को टैगौर के शब्दों में विविधता में एकता (Unity in Diversity) वाला समाज माना जाता है, चूंकि भारतीय समाज में यह प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही रही है इसलिए भारतीय समाज को बहुसंस्कृतिवाद का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। यदि हम उत्तर औपनिवेशिक राष्ट्रों पर दृष्टि डाले तो हमें यह प्रतीत होगा कि ये बहुसंस्कृतिवादी राष्ट्र है, जबकि आधुनिक राष्ट्रों (राज्यों) में एक ही संस्कृति की प्रधानता रही है। आधुनिक राज्य का विचार एक राज्य और एक संस्कृति पर आधारित रहा है, जबकि यदि हम पिछले 50 वर्षो के कालखण्ड पर दृष्टिपात करें तो यह पायेंगे कि सभी राज्यों में अनेक संस्कृतियों के लोग साथ-साथ रहते है। इसका कारण है संचार और यातायात कें साधनों जिनके विकास ने मनुष्यों में अधिकाधिक गतिशीलता लादी अब व्यक्ति कुछ ही समय में सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण कर सकता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां के आने के एवं व्यापार, वाणिज्य के विविध द्वारा खुल जाने के पश्चात् अब यह और भी आसान हो गया है कि व्यक्ति कही भी जाकर रह और बस सकता है। इस प्रकार उत्तर आधुनिक राज्य बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है।

बहुसंस्कृतिकवाद दो धरातलों पर दिखाई देता है एक ओर जहाँ (Life Style) जीवन पद्धति की विविधता बहुत तेजी से बढी, इसे Life-Style Revolution भी कहा जाता है। वही दूसरी ओर दर्शन विश्वासों, विचारों और मान्यताओं की विविधता भी बढ रही है। आज के राज्य दोनो अर्थो में बहुसांस्कृतिक हैं। बहुसांस्कृतिवाद का संबंध राजनीतिक नीतियों से है सन् 1970 के आसपास पाश्चात्य राष्ट्रों ने इसे एक शासकीय नीति के रूप में स्वीकारा किन्तु अलग-अलग राष्ट्रों में इसकी स्वीकारोक्ति के कारण भिन्न-भिन्न रहे। जहाँ अमेरिका, अफ्रीका एवं एशिया जैसे महाद्वीपों में सांस्कृतिक विविधता स्पष्टत; परिलक्षित होती है, वही दूसरी ओर यह पश्चिमी बहुसंस्कृतिवाद की नीतियों से भी समानता रखता है।

वैश्विक स्तर पर यदि हम दृष्टि डाले तो हमें बहुसंस्कृतिवाद के तीन स्वरूप दिखाई देते हैं। अमेरिका, भारत और कनाडा। अमेरिका की खोज के पश्चात् वहाँ लोगो का अप्रवासन आर्थिक प्रयोजन से हुआ, इसलिए अमेरिका में दिखाई देने वाले बहुसांस्कृतिक लक्षण का आधार मुख्यत: आर्थिक ही है। जबकि भारत में विभिन्न कारणों से अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न धर्म संस्कृति के लोगो का आगमन हुआ और समय के साथ ये लोग यहीं रच बस भी गये। इस प्रकार भारत में दृष्टिगत बहुसांस्कृतिक लक्षण का आधार ऐतिहासिक है, भारत में रहने वाले लोगो से अपने आप बहुसांस्कृतिक का वर्तमान स्वरूप निर्मित हुआ है। आजादी के पश्चात् भारत ने संवैधानिक तौर पर कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान किये जिससे भारत में बहुसांस्कृतिक तत्वों को और भी बल मिला हैं। जबकि कनाडा ने अपने देश के विकास के लिए राजनीतिक स्तर पर नीतियों का निर्माण कर ऐसी सुविधाएं प्रदान की गयी जिससे प्रभावित होकर अन्य देशों के भी नागरिक वहाँ आकर बस गये, इस प्रकार कनाडा की बहुसंस्कृतिक का आधार राजनीतिक है।

बहुसंस्कृतिवाद के संदर्भ में Melting Pot तथा Cultural Mosaic या Salad Boul जैसे 2 रूपकों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से प्रथम का समर्थन अमेरिका जैसे पूंजीवादी राष्ट्र करते है। Melting Pot का प्रयोग कई संस्कृतियों को मिलाकर एक नई संस्कृति के निर्माण के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है, परन्तु स्वंय अमेरिका जैसे देश, जो कि Melting Pot जैसे बहुसंस्कृतिवादी पक्ष का समर्थन करते है। उनकी सांस्कृतिक परिवर्तनो एवं संघर्षो के परिप्रेक्ष्य मे वर्तमान स्थिति का यदि आकलन करे तो हम यह पाते है कि उनका भी जनसांख्यकी आंकड़ों के परिप्रेक्ष्य मे सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहा है, जिससे वे सवयं भी अनभिज्ञ नही है। अमेरिका के वर्तमान जनसांख्यकी आंकड़े बताते है कि उनकी जनसंख्या के प्रत्येक चार में से एक अमेरिकी हिस्पैनिक मूल का है। इसी आधार

पर एण्ड्रिया विलियम्स जैसे विचारको का मानना है कि 21वीं शताब्दी के मध्य तक हिस्पैनिक समुदाय बहुसंख्यक अमेरिकी समाज का पुर्नगठन करेगा। पुन: द्वितीय अवधारणा का समर्थन कनाडा तथा आस्ट्रेलिया जैसे देश करते है। Cultural Mosaic की अवधारणा Melting Pot के प्रतिवाद स्वरूप प्रस्तुत की गयी तथा जिसे बहुसंस्कृतिवाद की अधिक सुसंगत व्याख्या के तौर पर देखा गया। यह अवधारणा वस्तुत: एक से अनेक को अस्वीकार करते हुए विभिन्न नृजातीय समूहों के सहअस्तित्व को स्वीकार करती हैं, जहॉ विभिन्न समूह मिलकर एक नई इकाई का निर्माण करते है। इस अवधारणा की वास्तविक स्थिति तथा स्वरूप की समीक्षा के संदर्भ मे भारती मुखर्जी के कनाडा के अनुभव का उदाहरण महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार-कनाडा आधिकारिक तौर पर तथा गर्व से सांस्कृतिक संलयन तथा एकीकरण की नीतियों का विरोध करने वाला देश है जो कि अपनी स्वंय निर्मित परम्परागत पहचान के नवीनीकरण से इंकार करता है तथा जिसका Cultural Mosaic होने का दावा आत्मतुष्टि हेतु प्रस्तुत शब्दाडम्बर मात्र है। इसी प्रकार ब्रिटेन भी इस प्रकार की सामाजिक प्रथकता को बढावा देने वाला वाद कहकर बहुसंस्कृतिवाद को खारिज कर देता है।

बहुसंस्कृतिवाद के अनेक राजनीतिक परिणाम भी देखने को मिलते है जैसे बहुसंस्कृतिवाद के परिणाम स्वरूप राजनीतिक जीवन में सहिस्णुता का सिद्धान्त अपने विस्तृत स्वरूप में आया। यघपि यूरोप में सहिस्णुता का सिद्धान्त-18 वी शाताब्दी में ही धार्मिक संघर्षो को रोकने के लिए आया था, इसका मुख्य श्रेय इग्लैण्ड के विचारक जॉन लॉक को जाता है।

वहीं दूसरी ओर अल्पसंख्यकों का प्रश्न भी अब राजनीतिक जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया। अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से कोई खतरा न हो इसलिए अल्पसंख्यकों को कुछ संरक्षण दिये गये। भारतीय संविधान भी अल्पसंख्यकों को अनेक अधिकार देता है।

तीसरा प्रश्न राज्य की भूमिका का रहा है। चार्ल्स टेलर जैसे विचारकों ने राज्य की भूमिका के प्रश्न को बड़े सशक्त ढंग से उठाया और उनका मानना है कि राज्यों को किसी धर्म, भाषा या संस्कृति के प्रश्न में खडा नहीं होना चाहिए वरन् उसे निस्पक्षता पूर्वक अपनी भूमिका का स्पष्ट निर्वाहन करना चाहिए।

अब वर्तमान स्थिति मे यह प्रश्न और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है कि राज्य में यह तटस्थता स्थापित कैसे की जाये। इसके लिए बहुसंस्कृतिवाद के प्रतिपादक यह मानते है कि सरकार और प्रशासन में विविध संस्कृतियों की भागीदारों सुनिश्चित हो जैसे भारत के प्रधानमंत्री मन्त्रीमंडल का गठन करते हुए विविध क्षेत्रों और धर्मो को विभिन्न स्तरों पर प्रतिनिधित्व प्रदान करते है।

बहुसंस्कृतिवाद के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह वरदान है या अभिशाप। आमतौर पर इसे वरदान की ही श्रेणी में रखते है। लोगो में परस्पर निकटता का प्रसार होता है। राज्यों की सांस्कृतिक समृद्धि सामने आती हैं। विभिन्न संस्कृतियों के लोग जब एक साथ रहते है तो इससे मानव-मूल्यों का संर्वधन होता है जाति, धर्म आदि की संर्कीणता दूर होती है। इसलिए बहुसंस्कृतिवाद एक नई मानववादी संस्कृति को जन्म देता है लेकिन यह केवल एक प्रश्न है।

भीखूपारिख जैसे बुद्धिजीवियों ने यह प्रश्न उठाया कि बहुसंस्कृतिवाद हमें समृद्ध बनाता है अथवा हमारी अपनी संस्कृति को विकृत करता है। व्यक्ति अपनी जडों, इतिहास और संस्कृतियों से दूर होता जा रहा है। बहुसंस्कृतिवाद राष्ट्र की अस्मिता के लिए एक चुनौती है, और लोग बहुसंस्कृतिवाद के नाम पर अपनी स्वंय की अस्मिता खोते जा रहे है, इसलिए बहुसंस्कृतिवाद के संदर्भ में कुछ विद्वान यह मानते है कि यह राज्य की अस्मिता के लिए एक खतरा है। जॉन राल्स ने अपनी पुस्तक Theory of Justice में एक प्रकार से बहुसंस्कृतिवाद की पराजय को स्वीकार कर इसे Thin Theory of Good को प्रतिपादित करता है, इसमें मानव कल्याण की अवधारणा बहुत ही सतही है। सरकारे समझौतावादी दृष्टिकोण से कार्य करती है, इसलिए समाज का न्यूनतम कल्याण होगा, इससे श्रेष्ठ समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों के आधार पर राज्यों के कार्यो का संचालन नहीं होता है, वरन् उनका संचालन जीवन के सतही मूल्यों के आधार पर होता है।

बहुसंस्कृतिवाद भारत जैसे देश की आरम्भ से ही अपनी ही एक पहचान रही हैं। 'जिओ और जीने' दो जैसे मूल भूत सिद्धान्त यहाँ छठी ईसवीं पूर्व से ही प्रचलित रहे है। जिसमे अनेकता मे एकता का सार है जो हमें बल्कि 3000 ई0 पूर्व से ही उपनिषद के माध्यम से वसुधैव कुटुम्बकम का संदेश दे रहा है। बहुसंस्कृतिवाद की यह प्रचलित अवधारणा तो कफी बाद की है जब 70 के दशक में आस्ट्रेलिया में यह महसूस किया गया कि देश में मूल लोगो के अलावा दूसरे देशों के लोगों का भी प्रतिशत बढा है। ओर इसके लिए उनके साथ समन्वय एक अवश्य तथ्य था, लेकिन भारत जैसे देश जहाँ पर बाहरी आक्रमण कारियों ने इस देश की मूल संस्कृति को चौथी शताब्दी ई0 पूर्व से ही प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। वहा पर हूण शक कुशाण मुस्लिम ईसाई के निवास

स्थान भी बन गये थे और इसीलिए भारत जैसे देश में जिओ ओर जीने दो की परम्परा में सभी को जीवन का पर्याप्त अवसर मिलने लगा परन्तु 1948 में सार्वभौमिक मानवधिकार धोषणा पत्र के आने के पश्चात् कालान्तर में यह महसूस किया जाने लगा कि किसी भी देश में किसी भी संस्कृति के लोग भले ही निवास कर रहे हो लेकिन उनके जीवन और जीवन यापन के अधिकार को सुरक्षित तथा सुनिश्चित किया जाय, और इसी कारण से विश्व के ज्यादातर देशों में उस देश की मूल संस्कृति और मूल निवासियों के साथ अन्य प्रकार के लोगों की संस्कृति को बहुलतावादी संस्कृति के संदर्भ में समझने और उसको स्थापित करने से मानवाधिकार के आयाम अधिक मुखर हो गये, जिन्होने बहुलतावादी संस्कृति को एक विमर्श का केन्द्र बना दिया।

भारत अनेक भाषाओं और संस्कृतियों की भूमि है, यहाँ प्राचीनकाल से ही भाषिक एवं सांस्कृतिक जडों की विपुल धाराएं पायी जाती रही है। इसकी सांस्कृतिक अस्मिता को इसके इतिहास लेखन, पौराणिक कथाओं और सांस्कृतिक व्यवहार जैसे तत्वों के साथ निर्धारित किया जाता है। भारतीय संदर्भ में सांस्कृतिक परम्पराएं उतनी ही विस्तृत है जितनी की यहां के लोगो का इतिहास, जो युगों से संजोई व संवारी गई सामाजिक व्यवस्था की प्रचुरता को दर्शाता है विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने वाले लोगो के विभिन्न समूहों, समुदायों या समाज द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली ये मूल व्यवस्थाएं वे उपकरण है, जिनके माध्यम से उनकी अस्मिता तथा उनके अस्तित्व को व्याख्यायित किया जाता हैं। भारत की बहुसंस्कृति मध्य उत्तरी, पूर्वोत्तर, पश्चिमी, दक्षिणी पट्टी इत्यादि क्षेत्रों जैसी विविध क्षेत्रवार भिन्नताओं या वर्गीकरण से आती है। इन सभी क्षेत्रों के अपने भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मान्यताएं रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और सामाजिक नियम है, तथा वे अनिवार्य रूप से राज्य निर्धारित भेद को नहीं मानते है। इसके विपरीत वे अधिकतर क्षेत्रीय सीमांकन के भेद में निस्ठा रखते है, और उनकी जड़े उनके पूर्वजो के इतिहास एवं सांस्कृतिक व पारम्परिक अतीत में है। भारत की बहुसंस्कृति धरोहर की वास्तविक पहचान और उसकी अद्वितीय विशेषताओं का अवस्थापन लोगों के इतिहास एवं नृजातीय वर्णन के माध्यम से ही सम्भव है। इस तरह की पहचान निर्मित करने में भाषा की एक निर्णायक भूमिका होती है। इसलिए भारतीय बहुसांस्कृतिकता का अध्ययन विभिन्न समाजों की भाषिक परम्परा को भी सम्मिलत करता है।

भारतीय संदर्भ में बहुसांस्कृतिकता धार्मिक बहुलता तथा एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास लेखन नामक दो भिन्न धाराओं से प्रतिबिम्वत होती है, मुख्यतः हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, पारसी, जैन, बौद्ध, वहाखी, अहमदी जनसंख्याओं के साथ भारत सम्पूर्ण विश्व मे अपनी एक विशिष्ट पहचान के साथ निरन्तर प्रगतिशील हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. किमिल्का, विल:-मल्टीकल्चरल सिटिजन शिप : ए लिबरल थ्योरी ऑफ़ माइनारिटी राइट्स आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1995।
2. दधीचि नरेश:- समसमामयिक राजनीतिक सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन 2015।
3. टेलर, चार्ल्स:- शोरशेज ऑफ सेल्फ : द मेकिंग ऑफ मार्डन आइडेन्टटी कैम्ब्रिज यूनिवर्सटी प्रेस 1987।
4. रॉल्स जॉन:- ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, हावर्ड यूनिवर्सटी प्रेस 1971।
5. नरेश दधीचि:- जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धान्त अविष्कार पब्लिसर्स जयपुर 2003।
6. भट्टाचार्य, एच0:- मल्टीकल्चरलिज्म इन कन्टेपरेरी इण्डिया, International Journal of Multicultural Sciences.vol-5 No.2
7. पारिख, भीखू:- रीथिकिंग मल्टीकल्चरलिज्म, हावर्ड यूर्निवसिटी प्रेस 2000
8. भीदूद, तारीख:-मल्टी कल्चरलिज्म ए सिविक, आइडिया पालिटी प्रेस कैब्रिज 2007
9. Phillips, Anne ;- Multiculturalism without culture Preston University Press.
10. www.knowledge commission.gov.in
11. www.immmi.gov.au

सार्क और भारत

शिप्रा भारती

शोध छात्रा
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश :-

आज जब पूरा विश्व वैश्वीकरण और संचार क्रांति के कारण एक छोटा सा गाँव बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में 'सार्क' देशों में अपार संभावनाए है। अभी विभिन्नताओं के बावजूद इन देशों की समानताएँ स्पष्टत: परिलक्षित होती है। आपसी वाणिज्य और व्यापार के अलावा सार्क देश पर्यटन उधोग को साथ मिलकर बढ़ावा दे सकते है। ये देश प्राचीन धर्मों से तो जुड़े है ही इनकी जैव विविधता, नृत्य-संगीत, विविधता तथा इन देशों की प्राचीन संस्कृतियाँ और इनके नागरिकों के जीवनशैली विदेशी के लिए निरंतर आकर्षण का विषय बनी रहती है।

दक्षिण एशिया के देशों के बीच अगर पारस्परिक सहयोग बढ़ता है तो उत्तर के विकसित देशों के साथ राजनीतिक और आर्थिक सौदेबाजी बढ़ जाएगी और आपसी निर्भरता का विकास करने पर विकसित देशों पर इनकी निर्भरता में कमी आएगी। इस तरह के कदम से इस क्षेत्र के देश स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सशक्त गुट के रूप में प्रस्तुत कर सकते है। भले ही सार्क का मकसद किसी भी रूप में गुटों की राजनीति से संबंधित नहीं था। सार्क के सशक्त बनने से गुटनिरपेक्ष आंदोलन और भी मजबूत होगा तथा इन सभी देशों की स्थिति में भी सुधार आएगा।

प्रस्तावना :-

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का वातावरण इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया कि पूरे विश्व में अशांति व असहयोग का माहौल बन गया था। जिस कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप नए गठित हुए राष्ट्रों ने आपसी सहयोग को बढ़ावा देने का सोचा, जिसका उद्देश्य आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान करना तथा क्षेत्रीय सुरक्षा को बढ़ावा देना था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस क्षेत्र में मुख्यत: दो प्रकार से संगठनों का बढ़ावा मिला। एक सैन्यसंधि पर आधारित थे, तो दूसरे आपसी समझौते पर। जिनका उद्देश्य था आपसी समझौते पर आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में रिश्तों को बढ़ावा देना। ऐसे ही प्रयासों का एक अनोखा परिणाम है ''सार्क (SAARC)"।

"South Asian Association for Reginal Co-opretion" दक्षिण एशियाई देशों का क्षेत्रीय सहयोग समूह, जिसका गठन 7-8 दिसम्बर, 1985 को किया गया, दक्षिण एशिया के उन विकासशील देशों का सहयोग समूह है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्व में आए थे। ये वे देश थे जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह तस्वीरों से यह सीख लिया था कि शांति व सुरक्षा का माहौल आपसी सहयोग से ही बन सकता है। इसके सदस्य देश एक लंबे समय से उपनिवेशवाद की जंजीरों से निकल कर अपनी स्वतंत्र छवि बनाने के लिए प्रयासरत थे। वे हर कीमत पर आत्मनिर्भर होना चाहते थे और कहीं-न-कहीं इसी सोच एवं संघर्ष का परिणाम था "SAARC"। 7-8 दिसम्बर, 1985 को ढाका में आयोजित सात देशों (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, बांग्लादेश और मालदीव) के सम्मेलन में इनके राष्ट्राध्यक्षों द्वारा इस क्षेत्रीय सहयोग समूह को गठित किया गया, जो दक्षिण एशिया की राजनीति

में एक नया अध्याय जोड़ती है। यह विश्व राजनीति में दक्षिण एशिया के इन सात नवोदित पड़ोसी देशों की इस दिशा में पहली शुरूआत थी। हालांकि इससे पूर्व भी कुछ क्षेत्रीय संगठनों का गठन आर्थिक आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के धारा - 52 के तहत किया गया था, जैसे - अमेरिकी राज्यों का संगठन 1948, अरब लीग 1945, यूरोपियन यूनियन 1947 (वास्तविक उद्भव 1993) आदि।

विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला यह संघ उन देशों का है जो प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण तो थे, परंतु इनकी की तत्कालिन समस्या थी - जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण आदि। इन्हीं समस्याओं से निजात पाने की सोच में इस क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने वाला संघ की स्थापना को प्रेरणा दी। 'सार्क' का विकास इन्हीं विचारधाराओं का परिणाम है जो श्नै-श्नै विश्व राजनीति में एक नए अध्याय के तौर पर जुड़ा। इस संगठन को गठित करने का विचार बांग्लादेश के पूर्व राष्ट्रपति जिया-उर-रहमान ने किया।

हालांकि इस तरह के संगठन की स्थापना काफी पहले से की जानी चाहिए थी, लेकिन दक्षिण एशिया की राजनीति में संघर्षों की बहुलता के कारण ऐसा नहीं हो पाया। भारत की विशालता को देखते हुए इसके अन्य पड़ोसी देश इससे भय खाते थे और वे इस बात से चिंतित थे कि कहीं भारत अपनी विशालता के बल पर उन्हें खुद में समेट न ले। इसका बहुत बड़ा कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की भूमिका भी रही। इसके कारण भारत के छोटे पड़ोसी देश भारत के विरोधी शक्तियों स संबंध स्थापित करने के लिए हमेशा प्रयासरत रहते थे। जिससे भारत इनके प्रति आशांकित हो गया था। इस स्थिति ने भारत को ''बौनो (लीलीपुट) के बीच दैत्यों'' की संज्ञा दिला दी थी। और यह कहा जाने लगा कि भारत इन क्षेत्रों पर अपना अधिपत्य जमाना चाहता है। परंतु इन तर्कों ने बहुत अधिक लंबा समय नहीं बिताया, धीरे-धीरे स्थिति सामान्य होती गई। और विश्व राजनीति में नए-नए अध्याय जुड़ते चले गए।

इन्हीं प्रयासों एवं विचारों ने "SAARC" जैसे महासंगठनों की नींव रखने में मदद की। दिसम्बर 1985 में ढाका में सम्पन्न एक सम्मेलन में "SAARC" का विधिवित उद्घाटन किया गया, जिसकी अध्यक्षता बांग्लादेश के तत्कालिन राष्ट्रपति ने की। जिसमें सदस्य के तौर पर भारत के तत्कालिन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी, वर्मा के राष्ट्रपति ज्याऊल हक, श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने, मालदीव के राष्ट्रपति अब्दुल करीम तथा नेपाल व भूटान नरेश शामिल हुए। इस सम्मेलन मेंै।।त्ब् के विधिवत संचालन हेतु दस सूत्री चार्टर अपनाया गया तथा "SAARC" का विधि अनुसार शुभारंभ किया गया। चार्टर के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया कि सदस्य देशों की राजनीति समस्याओं पर चर्चा की जाएगी। इसके स्थाई सचिवालय के लिए भी व्यवस्था की गई थी। साथ ही यह भी तय किया गया कि यह क्षेत्रीय संगठन किस दिशा या किन-किन क्षेत्रों में कार्य करेगा। हालांकि इस दिशा में 1983 को कुछ क्षेत्र इंगित किए जा चुके थे परंतु इस सूची को पूर्णता मिला 'सार्क' की स्थापना के साथ वर्ष 1985 में आयोजित ढाका में। इसमें कृषि, स्वास्थ्य सेवाएँ, मौसम विज्ञान, डाक-तार सेवाएँ, ग्रामीण विकास, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र, दूर-संचार तथा यातायात, खेलकूद व सांस्कृतिक सहयोग के साथ-साथ आतंकवाद की समस्या, मादक-द्रव्यों की तस्करी और क्षेत्रीय विकास में महिलाओं की भूमिका को शामिल किया गया।

"SAARC" अपने स्थापना के साथ ही अपने अन्तर्गत शामिल सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका का निर्वहन करना प्रारंभ कर चुका था। "SAARC" की जिन उद्देश्यों व क्षेत्रों को ध्यान में रख कर की गई थी उनको प्राप्त करने के लिए सार्क के चार्टर में कुछ संस्थाओं का जिक्र किया गया। सार्क के चार्टर में कुछ दस (10) धाराएँ हैं, जिनके अन्तर्गत सार्क के उद्देश्यों, सिद्धांतों संख्याओं एवं इसके संचालन का विवरण दिया गया है।

चार्टर के अनुच्छेद - एक (1) में इसकी स्थापना के उद्देश्यों का जिक्र किया गया जो इस प्रकार देखे जा सकते है :- "(i) दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में निवास करने वाली समस्त जनता का कल्याण व उनके जीवन स्तर में सुधार करना; (ii) सदस्य देशों में सामूहिक आत्म-निर्भरता में वृद्धि करना; (iii) क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना; (vi) आपसी विश्वास, सूझ-बूझ तथा एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना; (v) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि; (vi) अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग में वृद्धि करना; (vii) सामान्य हितों के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग मजबूत करना।''[1]

चार्टर के अध्याय - 2 में इसके सिद्धांतों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है : -

- संगठन के ढांचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतंत्रता, दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा आपसी लाभ के सिद्धांतों का सम्मान करना।
- सहयोग द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सहयोग नहीं बल्कि पूरक होगा।
- इस प्रकार सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोध नहीं होगा।

चार्टर के 3 से 10 तक "SAARC" के संस्थाओं का विवरण दिया गया है। अनुच्छेद - 3 में "SAARC" के शिखर सम्मेलन होने की बात कही गई। और यह यह कहा गया कि इस शिखर बैठक में सदस्य देशों के शासनाध्यक्ष भाग लेगे। इसका पहला शिखर बैठक इसकी स्थापना के वक्त किया गया था।ै।त्ब् के अबतक के हुए शिखर सम्मेलनों का विवरा हम इस प्रकार देख सकते है :-

काल	**स्थान**	**दिनांक**
पहला	ढाका (बांग्लादेश)	7-8 दिसम्बर, 1985
दूसरा	बंगलौर (भारत)	16-17 नवम्बर, 1986
तीसरा	काठमांडू (नेपाल)	2-4 नवम्बर, 1987
चौथा	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)	दिसम्बर, 1988
पाँचवां	माले (मालदीव)	22-23 नवम्बर, 1990
छठा	कोलंबो (श्रीलंका)	21 दिसम्बर, 1991
सातवां	ढाका	10-11 अप्रैल, 1993
आठवां	नई दिल्ली (भारत)	2-4 मई, 1995
नौवां	माले (मालदीव)	12-14 मई, 1997
दसवां	कोलंबो (श्रीलंका)	29-31 जुलाई, 1998
ग्यारहवां	काठमांडू (नेपाल)	5-6 जनवरी, 2002
बारहवां	इस्लामाबाद (पाकिस्तानअ	5-6 जनवरी, 2004
तेरहवां	ढाका (बांग्लादेश)	12-13 नवम्बर, 2005
चौदहवां	नई दिल्ली (भारत)	3-4 अप्रैल, 2007
पंद्रहवां	कोलंबो (श्रीलंका)	2-3 अगस्त, 2008
सोलहवां	थिम्पू (भूटान)	28-29 अप्रैल, 2010
सत्रहवां	अड्डू सिटी (मालदीव)	10-11 नवम्बर, 2011
अठारहवां	काठमांडू (नेपाल)	26-27 नवम्बर, 2014
उन्नीसवां	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)	9-10 नवम्बर, 2016 (रद्द)
बीसवां	प्रतीक्षारत	प्रतीक्षारत

चार्टर के अनुच्छेद - 4 से 10 तक "SAARC" के मंत्रिपरिषद्, स्थायी समिति, तकनीकी समितियाँ, कार्यकारी समिति, सचिवालय, वित्तीय प्रावधान आदि का जिक्र किया गया है।

सार्क और भारत :-

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत आज विश्व की नई शक्ति के रूप में उभर कर सामने आ रहा है जिसका स्वागत पूरी दुनिया कर रही है। सार्क देशों के सभी सदस्य देशों में लगभग 70% आबादी वाला भारत सार्क देशों में अपनी मजबूत पकड़ बना चुका है। आर्थिक दृष्टि से भी देखा जाए तो भारत का अन्य सार्क देशों के साथ व्यापार 15 बिलियन डॉलर यानि 1002 अरब

रू0 के बराबर का है जो भारत की भूमिका को मजबूती प्रदान करता है। अफगानिस्तान, हो या पाकिस्तान, या फिर मालदीव, नेपाल, श्रीलंका भारत मदद करने में कभी पीछे नहीं हटा है। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो ये सब कभी–न–कभी भारत का अभिन्न अंग हुआ करता था इसलिए इस दृष्टिकोण से भी भारत इस संगठन में केन्द्र की तरह है जो सबको एक परिधि में बांधे हुए है। साहित्यिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंधों के ऐसे प्रभाव में और क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण एवं विकास के अदान–प्रदान ने दक्षिण एशियाई देशों को पुनर्बल प्रदान किया है

भारत सार्क संगठन से संबंधित विभिन्न गतिविधियों में हमेशा से ही अपनी अहम भूमिका का निर्वहन करते आया है। सार्क शिखर सम्मेलन की सिफारिशे भारत एवं अन्य सदस्य देशों द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित की गई और उसने अपने संसाधन एवं सामर्थ्य के अनुकूल उनकी सफलता में सर्वोत्तम संभव तरीके के योगदान किया। सार्क का झुकाव आर्थिक सहयोग, पर्यावरण, गरीबी, उन्मूलन आदि प्रमुख क्षेत्रों में ठोस विकासोन्मुख विचार–विमर्श की ओर है। चूँकि भारत सार्क देशों के बीच सामूहिक आत्मनिर्भरता के प्रति वचनबद्ध है इसलिए उसने उसके मंच पर सदैव इस बात का समर्थन किया है कि क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का इसके कार्यों और क्रियाकलापों के लिए उपयोग किया जाए।

भारत कई बार सार्क का अध्यक्ष रहा। यह अन्य सार्क देशों के साथ सीमाओं के अलावा भाषा, धर्म और संस्कृति के आधार पर जुड़ा हुआ है। भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के शपथ ग्रहण समारोह (2014) में सभी सार्क राष्ट्राध्यक्षों की मौजूदगी यह साबित कर चुकी है कि भारत के लिए सार्क की महत्ता क्या है ? प्रथम सार्क व्यापार मेला जनवरी 1996 में नई दिल्ली में संपन्न हुआ था तब इस क्षेत्र में हितों का उल्लेख करते हुए नई दिल्ली में ही 19 से 21 नवम्बर, 1996 में ही अग्रगामी बहुआयामी सार्क आर्थिक सहयोग सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। सार्क सम्मेलन में इस बात की घोषणा की गई कि दक्षिण एशिया क गैर सरकारी संगठनों और स्वयंसेवी संगठनों के बीच सहयोग का संवर्धन करने के संबंध में विशिष्ट सिफारिशें की जाएगी। सार्क के दसवें शिखर सम्मेलन में भारत द्वारा महत्वपूर्ण पहल की गई। तत्कालिन प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने यह घोषणा की भारत 1 अगस्त, 1998 से सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबंध हटा लेगा। साथ ही यह भी कहा गया कि त्वर मार्ग प्रक्रिया के अन्तर्गत सार्क देशों में भारत के विदेशी निवेश के लिए 80 लाख से 150 मिलियन अमेरिकी डॉलर कर दिया जाएगा।

भारत ने हमेशा ही सार्क देशों का साथ मजबूती से दिया है और निरंतर यह प्रयास करता रहा कि कैसे दक्षिण एशिया के ये विकासशील देश विकसित देशों पर निर्भर होने के बजाए आत्मनिर्भर बने। इसी दिशा में वर्ष 2004 में सार्क के बारहवें शिखर बैठक में तत्कालिन भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा ठोस कदम उठाया गया, जिसमें सार्क देशों के मध्य कई तरह के कार्यक्रमों की पेशकश की गई। जिसमें गरीबी उन्मूलन के लिए कोष बनाने की बात कही गई साथ ही यह भी कहा गया कि भारत इसके लिए एक बड़ी राशि दान देगा, जो की भारत को छोड़कर अन्य सार्क देश अपने विकास के लिए उपयोग में ला सकेंगे। साथ ही इस बात की पेशकेश की गई कि सार्क देशों के मध्य रेल, सड़क, वायु एवं जलमार्ग परिवहन व्यवस्था मजबूत करने के लिए दक्षेस कार्यदल का गठन किया जाए तथा साथ ही सूचना–प्रौद्योगिकी, जैव तकनीक एवं विज्ञान के क्षेत्र में आपसी सहयोग की बात कही गई।

वर्ष 2007 में सार्क के गठन से अब तक के सफर में तीसरी बार भारत ने सार्क सम्मेलन की मेजबानी की जिसमें भारत की ओर से क्षेत्र के अल्पविकसित देशों के लिए शुल्क मुक्त व्यवस्था की एक तरफा घोषणा सम्मेलन बड़ी प्रमुख उपलब्धि रही। भारत सार्क का एक मात्र सदस्य है जिसने सार्क विकास निधि (SDF) में 18.9 मिलियन अमरीकी डॉलर का सहयोग किया है। नई दिल्ली में दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग के नए आयाम को छूने की आशा है। सार्क क्षेत्र में लोगों में आपस में गतिविधियों में क्रमिक वृद्धि हुई है। भारत ने नई दिल्ली में द्वितीय सार्क बैंड उत्सव, आगरा में सार्क साहित्य उत्सव तथा चंडीगढ़ में द्वितीय सार्क लोकगीत उत्सव की सफलतापूर्वक मेजबानी की। तथा निरंतर इस दिशा में प्रयासरत रहने की भी बात कही।

भारत 'सार्क' में हमेशा से ही अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है और यह आशा करता रहा है कि सार्क देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, तकनीकि, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए एक प्रभावी साधन के रूप में इसका विकास हो जैसा की इसके चार्टर में उल्लेख कर अपेक्षा की गई है।

निष्कर्ष :-

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने जो परिवर्त्तन का दौर देखा है उसे शब्दों में बांध पाना उतना आसान नहीं। पूरा विश्व एक ऐसी परिस्थिति से गुजर रहा था जहाँ कई समस्याएँ अचानक से जन्म लेकर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों एवं राजनीति को प्रभावित कर रही थी। इनमें सबसे बड़ी समस्या थी ''द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नए उदित हुए राष्ट्रों का विकास''। यह विकास सिर्फ उन्हें जीवंत करने के लिए आवश्यक नहीं था, अपितु उन्हें आत्मनिर्भर करने के लिए जरूरी था। इन्हीं जरूरतों ने नवोदित राष्ट्रों के मध्य क्षेत्रीय सहयोग की भावना को जागृत कर 'सार्क', जैसे क्षेत्रीय सहयोग संगठनों को गठन करने के प्रेरणा डाली।

''दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'' (दक्षेस) की स्थापना दक्षिण एशिया के उन नवोदित राष्ट्रों (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव और अफगानिस्तान) के आपसी संबंधों एवं क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से किया गया था। सार्क का विकास धीरे-धीरे हुआ है। इसकी नींव में इन सभी सदस्य देशों के मध्य आपसी सहयोग एवं तनाव को समाप्त करने की भावना है। इस संगठन का जन्म से इन देशों के बीच सद्भावना, भाईचारा और सहयोग की भावना का एक नया युग आरंभ होता है। हालांकि इनके मध्य की विभिन्नताएँ इसके विकास के मार्ग में बाधक रहीं परंतु समय-समय पर इसे कम करने का प्रयास भी किया जाता रहा है।

सार्क के माध्यम से सरकारों की तरफ से अनेक क्षेत्रों में सहयोग के विकास का सार्थक प्रयास तो किया ही गया है। साथ ही गैर सरकारी संगठनों के स्तर पर भी अनेक प्रयास किए गए है। सार्क के सदस्य देशों के नागरिकों के बीच श्रव्य-दृश्य (Audio-Video) के अदान-प्रदान के माध्यम से संबंधों में विस्तार हुआ है। दक्षिणी एशियाई देशों के प्रति पर्यटन की भावना का भी विकास हुआ है तथा सांस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ हुए है। सार्क ने कृषि सूचना केन्द्र खोला है तथा प्राकृतिक विपदाओं को रोकने के लिए, पर्यावरण में सुधार के लिए, मानव संसाधनों के विकास के लिए, सार्क देशों से प्रत्यक्ष पूँजी निवेश की संभावना के विकास के लिए भी विचार किया जा रहा है।

सार्क के अन्तर्गत खाद्यानों की सुरक्षा के लिए भी भंडार बनाया गया है। आतंकवाद को दबाने के लिए क्षेत्रीय समझौता किया गया है; जिसमें प्रत्यर्पन का विषय भी शामिल है। इस तरह के आपसी सहयोग व समझौता से क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा मिला है तथा इसे आगे भविष्य में भी निरंतर जारी रखने के प्रयास करते रहने होगें। भौगोलिक रूप से जुड़े हुए सार्क देशों को आर्थिक लाभ लेने के लिए एकीकृत परिवहन प्रणाली को अपनाना होगा। सार्क देशों के लिए वायुमार्ग से जुड़ने से ज्यादा आवश्यक है कि वे सड़क मार्ग के जुड़ने का प्रयास करें। जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं होगी, तब तक दक्षिणी एशिया के देशों के मध्य व्यापार बढ़ने की संभावना कम ही रहेगी। हालांकि 'साफ्टा' के माध्यम से दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय व्यापारिक एकता न सिर्फ ऊँची होने की गुंजाईश रखती है अपितु इन देशों को आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से भी लड़ने में मदद दे सकती है। इतना ही नहीं साफ्टा से अंतरक्षेत्रीय कारोबार हर पाँच साल में दोगुना हो जाएगा और साफ्टा से ही सार्क को क्षेत्रीय व्यापार की इकाई और आर्थिक संघ में तब्दील किया जा सकेगा। इससे यह आशा की जा सकती है कि 'साफ्टा' के तहत सार्क देश एकजुट होकर आर्थिक-सामाजिक इतिहास को पलटने के लिए तेजी से कदम बढ़ाएगें और इन देशों की जनता विकास का जश्न मानएगी।

सन्दर्भ :-

1. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट, 1998-99, पृ0 - 13
2. फड़िया, बी0 एल0, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, पृ0 - 367-375, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2011
3. http://www.saarc-sec.org/SAARC-summit/7/
4. http://www.saarc-sec.org
5. डा0 पदभाषा, राजीव गांधी का नेतृत्व, पृ0 - 32, साहित्य निधि पब्लिकेशन, दिल्ली, 1988

ललित-विस्तर का कुलशुद्धिपरिवर्त (बोधिसत्त्व के अवतरण की महागाथा)

डॉ0 रिंकु कुमारी

पिता-स्व0 किशोरी पासवान, मु0-सुन्दरपुर बीरा, पो0-वासुदेवपुर
जिला-दरभंगा, पिन-846005

विषय-प्रवेश

बोधिसत्त्व के विविध अवतारों की कल्पना ही महायानी पंथ का मूलाधार कही जाती है। महायानियों की इस सिद्धांत के प्रति भी गहरी निष्ठा दिखती है कि लोकहित के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले बुद्ध कोई एक ही नही थे। ये पहले भी थे आज भी हैं और कल भी रहेंगे - इसी का गहन मंथन महायानी परम्परा से जुड़े हुए गंथों में किया जाता रहा है। कई तरह की कथाओं और दृष्टान्तों के आधार पर निष्कर्ष यही निकलता है कि इस धरा (पृथ्वी) पर प्राणियों का जबतक वास रहेगा उनके दुःख संताप और वेदना का हरण करने के लिए बुद्ध अवतरित होते रहेंगे। समझने की बात यही है कि महायानियों की पूरी की पूरी दार्शनिक पृष्ठभूमि बुद्ध किंवा बोधिसत्त्व के विविध अवतारों पर ही केन्द्रित कही जाती है। अवदानों से पता चलता है कि बोधिसत्त्व की चार ऐसी चर्चायें थी जिनका लोप कल्पान्त तक नहीं हुआ करता। महायानी पंथ इन्हें क्रमशः, प्राणिधान, अनुलोभ और अनिवर्तन का नाम देता है। अवदानों में इसका भी स्पष्ट संकेत कर दिया गया है कि अतीत में बुद्ध को शाक्यमुनि कहा जाता था तो वर्तमान में उनके नाम के आगे तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध आदि विशेषण जोड़े जा रहे थे। महायानी पंथ इस अटूट श्रद्धा से भी बंधा हुआ है कि काल की अंतहीन श्रृंखला में बुद्ध की भूमिका कभी भी विराम नहीं लेती है। ये कभी शाक्यमुनि तो कभी तथागत, अर्हत्, और सम्यक्संबुद्ध की भूमिका में खड़े होकर प्राणियों का उद्धार करते हुए देखे जा सकते हैं।[1]

महायान की चिन्तन परम्परा में बोधिसत्त्व की चार उपसंपदायें खास महत्त्व रखती हैं। इन्हें स्वामउपसंपदा, एहिभिक्षुकाय उपसंपदा, दशवर्गेन गणेन उपसंपदा और पंचवर्गेन गणेन उपसंपदा कहा जाता है। प्रथम उपसंपदा वह हुई जिसे भगवान् ने बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर अपने कठोर अभ्यास से पाया था। सम्बोधि अर्थात् पूर्ण ज्ञान को पाना सरल काम नहीं था। महायानी यह तर्क देते हैं कि दस तरह के कुशल धर्म को पाने के बाद ही इसे पाया जा सकता था। धर्म का यही विशिष्ट स्वरूप था। बुद्ध का चरित सुकृत था। श्रावक संघ भी दर्शनीय और चित्त को आ]लादित कर देने वाला था। महायान बौद्ध दर्शन की यह अनूठी विशेषता है कि बुद्ध लोकोत्तर प्राणी नहीं हो सकते। उनकी लोकप्रियता और सर्वव्यापी प्रभाव का यही मूल कारण था। बुद्ध का इस लोक में पदार्पण लोकहित के निमित्त ही होता रहा है। जीवन के अंतिम क्षण तक प्राणि हित को छोड़कर उनके लिए कोई दूसरा साध्य नहीं था।[2] शाक्य कुल में जन्म लेना कोई साधारण सी बात नहीं थी। महायानियों की प्रतिबद्धता यही रही है कि देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के निमित्त ही बोधिसत्त्व स्वर्ग से च्यूत होकर इस धरती पर अवतरित हुए थे। उनका अवतरण मनुष्य के रूप में जरूर हुआ था, पर उन्हें पुरुष सिंह, अग्रपुरुष, सत्पुरुष और पुरुषोत्तम आदि के नाम से पुकारा जाता था। ये लौकिक उपाधियां भले ही हों पर इनके पीछे कर्म की वह शानदार भूमिका थी जिसमें विराम बुद्ध के जन्म से लेकर उनके निर्वाण तक कभी भी दिखाई नहीं दिया था। थेरवादी भी यही मानते हैं कि बुद्ध के उपदिष्ट धर्म को बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना से जोड़कर देखना होगा। महायानियों ने इसी मौलिक सिद्धांत को थोड़ा और भी विस्तार देते हुए यह कहना शुरू किया था कि बोधिसत्त्व का अवदान इससे

भी कहीं ज्यादा गहरा और महनीय था क्योंकि उनका पूरा जीवन ही समष्टि के कल्याण के प्रति समर्पित था। महायानी अपने इस सिद्धांत पर भी अटल रहे हैं कि बोधिसत्त्व एक -एक प्राणी के जीवन मुक्त होने तक अपने निर्वाण की चिन्ता से विलग थे। दान, सदाचार पालन, और उपवास - ये शुभकर्म थे जिनसे वे कभी विरक्त नहीं हुए थे। इस तरह की सर्वव्यापी करूणा का भाव कहीं और दिखाई नही देता। महायानी पंथ की यही सोंच उसे भारतीय दर्शन की अन्य परम्पराओं से अलग करती है। दान से दु:खी प्राणी को उपकृत करना और चारों ही कल्प में केवल प्राणियों के उद्धार का ही संकल्प लेना - इसे छोड़ बोधिसत्त्व के जीवन का कोई दूसरा मकसद नहीं था। सांसारिक विभूतियां उनके मन को भ्रमित नही कर सकती थीं। वे याचक को देखकर प्रसन्न होते थे। उनके लिए पुत्रा, स्त्री, धन-धन्य और यहां तक कि स्वयं का उत्सर्ग कर देने में भी उनका कदम डगमगाता नहीं था।[3]

अवदानों से लेकर ललित - विस्तार तक या यह कहें कि महायानी बौद्धों की संपूर्ण दार्शनिक चिन्तन धारा तक में बोधिसत्त्व के अवतरण की मिथकीय गाथा की अन्तर्भुक्त है। इसके ऐतिहासिक महत्त्व को लेकर तरह-तरह के प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं, पर अ बोधिसत्त्व को लेकर महायानियों की जिस तरह की संवेदनशीलता दिखाई देती है उसे तर्क के द्वारा न तो खण्डित किया जा सकता है और न अमान्य। इस धरा पर अवतरित होने के पहले बोधिसत्त्व स्वर्ग में महाविमान से निकल कर देवताओं को धर्मदेशना दे रहे थे। इसका कुछ खास तरह का महत्त्व था। उनकी धर्मदेशना से कई देवपुत्र धर्म के दायाद बन गये थे। धर्म की इस गूढ़ चर्चा में दशों - दिशाओं से आये हुए बोधिसत्त्व भी सहभागी हुए थे। चारों ओर से अप्सरायें कतार में खड़ी थीं। बोधिसत्त्व के मुख से धर्म वाणी का अविरल प्रवाह निकल रहा था। ललित- विस्तार के इस तरह के प्रसंग उनके अवतारवादी स्वरूप का मानवर्द्धन करते हैं। ये अपने आप में पूरी तरह पौराणिक और मिथकीय कहे जा सकते हैं। महायानी मानते हैं कि स्वर्ग में आहूत की गयी इस धर्मपरिषद् के सामने यही प्रश्न उठा था कि इस जगत के कल्याण के लिए बोधिसत्त्व एक बार फिर से अवतरित होने जा रहा है। ठीक बारह वर्ष के व्यतीत होने पर वे अपनी माता के गर्भ में प्रविष्ट होंगे। परंतु बोधिसत्त्व का अवतरण कहाँ और किस के कुल में होगा - इस गंभीर प्रश्न का उत्तर खोजना बहुत आसान नहीं था।[4] ललित-विस्तार से पता चलता है कि बोधिसत्त्व के अवतरण के पहले स्वर्ग के देवपुत्रों का आगमन इस धरती पर हुआ था। ये ब्राह्मणों का वेश धारण करके ब्राह्मण बटुकों को वेद का पाठ पढ़ा रहे थे। बीच - बीच में इसका भी प्रचार कर रहे थे कि बत्तीस लक्षणों से युक्त बोधिसत्त्व किसी स्त्री के गर्भ में प्रवेश करने वाले हैं। इनके जन्म के साथ जैसा कि कई संदर्भो में वर्णित है दो ही तरह की गति जुड़ी हुई थी तीसरी नहीं। बोधिसत्त्व कदाचित् गृहवास करते तो उनका उन्नयन चक्रवर्ती सम्राट के रूप में होता। अपने चतुरंगिणी सेना के साथ वे संपूर्ण पृथ्वी को अधिकार में कर लेने के लिए प्रस्थान कर जाते। सप्तरत्न के स्वामी होते क्योंकि इनके शासन का मूलाधार धर्म को छोड़ कुछ और नहीं हो सकता था। बौद्ध मानते हैं कि चक्र, हस्ति, अश्व, स्त्री, मणि, गृहपति और परिणायक इनकी गणना सप्तरत्न के रूप में किये जाने का प्रचलन था।[5] सप्तरत्नों को पाना आसान नहीं होता। महायानियों ने उन परिस्थितियों का आकलन किया है जिनके प्रबल होने से चक्रवर्ती को एक-एक करके सात तरह के रत्न प्राप्त हुए थे। चक्र रत्न मूर्धाभिषिक्त राजा को छोड़कर कोई दूसरा प्राप्त नहीं कर सकता था। बौद्ध मुक्त भाव से यह स्वीकार करते हैं कि दिव्य चक्र रत्न का प्रवर्तन धर्म के द्वारा ही किया जा सकता था अधर्म के रास्ते पर चल कर नहीं। यह वह चक्ररत्न था जिसकी परिक्रमा इस पृथ्वी के कोने- कोने में उस समय तक होती रहती थी जब तक क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ भ्रमण करने से विरत नहीं होता था। भारतीय राजतंत्रा में प्रतिहत चक्र वाले राजा को यही चक्रवर्ती कहने की परम्परा रहीं है। ऐतिहासिक काल के कई राजनेताओं के नाम के आगे यह महनीय उपाधि जुड़ती रही है। माण्डलिक राजा जिसकी अधीनता स्वीकार करने पर विवश हों उन्हें चक्रवर्ती राजा का मान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दिया गया है। वैदिक वाम्य से लेकर महाकाव्यों तक में इस पद का यही मापदण्ड निर्धारित किया गया है। बौद्धों ने चक्रवर्ती राजा के सम्बन्ध में जिस तरह की टिप्पणी की है उसे राजतंत्रीय परम्पराओं से ज्यादा भिन्न नहीं कहा जा सकता। परंतु ये शासन के मूल में धर्म को ज्यादा महत्व देते हैं। इनकी दृष्टि में चक्रवर्ती राजा का अभियान किसी राज्य को पददलित करना नहीं होता था। ये धर्म और नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए अपने अभियान पर निकला करते थे। ऐसे प्रदेश जिनके ऊपर छोटे -छोटे राजाओं का अधिकार होता था वे प्राणी धात, अदत्तादान, कामाचार, मिथ्यावचन से दूर होकर शासन करें - यही चक्रवर्ती राजा द्वारा प्रवर्तित धर्मराज्य की सही पहचान होती थी। ललित- विस्तार से पता चलता है कि समुद्र तट और इसके पार वाले देश तथा पूरब से दक्षिण और फिर दक्षिण से उत्तर पश्चिम तक फैले हुए जितने भूक्षेत्र थे उन सब के ऊपर चक्रवर्ती मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का विजय ध्वज फहराया था।[6]

सप्तरत्नों के बारे में महायानियों की बड़ी ही मनोरम कल्पना है इनमें से कुछ का संबंध उन सम्पदाओं से है जिसे राज्य का मूलाधार कहा जाता है। स्त्रीरत्न का विशेष महत्त्व इसीलिए ज्यादा है कि बोधिसत्त्व उसी के गर्भ से जन्म लेकर प्राणियों का उद्धार करने का संकल्प लिया करते हैं। बौद्धों ने बगैर किसी लागलपेट के यह स्वीकार किया है कि मूर्धाभिषिक्त चक्रवर्ती क्षत्रिय राजा को ही स्त्रीरत्न प्राप्त हो सकता है किसी और को नहीं। यह स्त्री भी क्षत्रिय कुल में जन्मी थी। यह न तो ज्यादा लम्बी और न ज्यादा छोटी थी। इसकी काया भी न तो ज्यादा स्थूल और क्षीण थी। रूप न ज्यादा गोरा और न ज्यादा सांवला था। उसके रोमकूपों से चन्दन का गन्ध प्रवाहित होता था। मुख खिले हुए कमल के समान था। उसके आलिंगन से वर्णनातीत सुख का अनुभव होता था। शीतकाल में उसका शरीर उष्ण और ग्रीष्म काल में शीत का अनुभव करता था। उसके मन में चक्रवर्ती राजा को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष का ख्याल तक नहीं आता था।[7]

बोधिसत्त्व के अवतरण के पूर्व जैसा कि महायानियों ने संकेत किया है- दो युगान्तकारी घटनायें परिलक्षित हुई थी। इनमें से एक का सम्बन्ध मातंग नाम के उस प्रत्येक बुद्ध से था जिन्होंने राजगृह नगर के गोलांगल पर्वत पर विचरण करते हुए तेज धातु को पार करके निर्वाण को प्राप्त कर लिया था। उनके शारीरिक विकास जब पूरी तरह उच्छिनन हो गये तो शुद्ध शरीर के साथ वे पुन: इस धरती पर अवतरित हुए थे। दूसरी घटना का सम्बन्ध वाराणसी के ऋषिपतन मिगदाय से था। यहाँ कभी पाँच सौ प्रत्येक बुद्ध विचरण करते हुए देखे गये थे। इन्हें भी तेज धातु को पार कर लेने के बाद निर्वाण प्राप्त हुआ था। ये भी विकास रहित शुद्ध शरीर के साथ इस धरती पर कभी अवतरित हुए थे। चूँकि इन ऋषियों का पतन एक साथ इस धरती पर हुआ था इसीलिए यह ऋषिपतन इस नाम से विख्यात हुआ था। यहाँ के रहने वाले मृगों को अभय प्राप्त होने के कारण इसका एक अपर नाम मृगदाव भी रखा गया था।[8]

महायानियों द्वारा बहुप्रचारित सिद्धांत यह है कि स्वर्ग से च्युत होकर इस धरा पर अवतरित होने के पहले बोधिसत्त्व ने चार तरह की अवस्थाओं का गहन विचार किया था। बौद्ध व(्गमय में ये क्रमश: काल, द्वीप, देश और कुल के नाम से उद्धृत हुए हैं। काल के विचार का सीधा अभिप्राय जाति, जरा, व्याधि और मरण के दुश्चक्र से प्राणी कैसे बचें-इसी के मार्ग का अन्वेषण करने के निमित्तबोधिसत्त्व अपनी माता के गर्भ में बुद्धमूल हुआ करते हैं। द्वीप विलोकन का अर्थ यह है कि बोधिसत्त्व प्रत्यन्त (सीमान्त), पूर्व विदेह, अपरगोदानीय और उत्तरकुल जैसे द्वीप में जन्म नहीं लेते। उनके जन्म ग्रहण का सर्वाधिक उपयुक्त द्वीप जम्बूद्वीप ही है। देश विलोकन के पीछे का उद्देश्य भी कुछ खास तरह का होता था। प्रयन्तजनपद अनूकूल इसीलिए नहीं कि यहां के लोग जाति हीन और जड़बुद्धि के होते थे। ये न तो सुभाषित - असुभाषित के बीच के भेद को समझते थे और न उचित - अनुचित का विचार करने में ही समर्थ थे।[9]

बोधिसत्त्व के लिए कुलविलोकन का महत्त्व सर्वाधिक था। यह प्रसंग हमें चकित कर देता है कि बौद्धों का सारा जोर वर्णव्यवस्था के खण्डन पर रहा हे फिर भी बोधिसत्त्व के जीवन के साथ वर्ण किंवा जाति श्रेष्ठता का सम्बन्ध कितना गहरा था -इसे रेखांकित करने में उनका उत्साह देखते ही बनता है। यह कहने में कोई विरोध नहीं दिखता कि बौद्धों ने किसी- किसी प्रसंग में स्पष्टत: सामाजिक विभेदीकरण की नीति का त्याग नहीं किया है। अपनी इसी दोरंगी सोच के कारण वे चाण्डाल, वेणुकार, रथकार, और पुक्कुस जैसे हीन कुल में बोधिसत्त्व के अवतरण को सिरे से खारिज कर देने में तनिक भी संकोच का प्रदर्शन नहीं करते। बौद्धों का तर्क यही है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय - इन दो कुलों को छोड़कर कोई तीसरा कुल बोधिसत्त्व के अवतरण के योग्य सिद्ध नहीं हो सकता। क्षत्रिय कुल के साथ रक्तशुद्धि एवं अन्य सांसारिक उपलब्धियों की एक लम्बी दास्तान का जुड़ा रहना आवश्यक था। बौद्धागमों से लेकर महायान पंथ के और जितने भी ग्रंथ हैं उनमें द्विपदों (मनुष्यों) में क्षत्रिय से बढ़कर किसी और वर्ण को महत्त्व दिया ही नहीं गया है। बौद्धों क बीच विभेदीकरण की यह प्रवृत्ति इसीलिए ज्यादा उग्र दिखाई देती है कि गौतम अभिजात्य क्षत्रियों के शाक्यकुल से आते थे। अस्तु ! जैसा कि ललित - विस्तार द्वारा प्रसंग वर्णित है, बोधिसत्त्व ने अपने अवतरण के पूर्व इन्हीं चार मौलिक बातों का पूरी गहराई के साथ सोच- विचार किया था।[10]

बोधिसत्त्व के मौन होते देख देवपुत्रों में परस्पर यह संवाद छिड़ा कि आखिर इस पृथ्वी पर ऐसी कौन सी माता है जिसके गर्भ से उनका जन्म होगा? एक ने कहा कि मगध जनपद का वैदेही कुल धनधान्य से भरा हुआ है। परन्तु दूसरे की दृष्टि में यह उनके जन्म के लिए अनुकूल नहीं हो सकता था। इसका कारण यह था कि इस कुल में मातृपक्ष की शुद्धता बरकरार नहीं थी। यहां के लोग भी चंचल बुद्धि और मन वाले थे। पुण्यकर्म में रूचि भी नहीं दिखती। यहाँ न रमणीक उद्यान थे और न शुद्ध जल से भरे

हुए तड़ाग। अतः यह सर्वथा त्याज्य था। दूसरा यह कहने लगा था कि कौशल कुल की शालीनता बेदाग है। इसके पास श्रेष्ठ वाहन, विशाल परिवार, और सभी तरह की भौतिक सम्पदाओं का अक्षय भण्डार है। बोधिसत्त्व के अवतरण के लिए यह कुल सर्वथा योग्य कहा जायेगा। परन्तु दूसरे ने यह कह कर प्रतिवाद किया मातृ पक्ष से कौशल कुल को शुद्ध नहीं कहा जा सकता। इसकी मूल उत्पत्ति ही संदेह के घेरे में हैं। वंशों का कुल भी समृद्ध कहा जाता था। फिर भी बोधिसत्त्व के अवतरण के लिए इसकी पात्रता को स्वीकार नहीं किया गया। तर्क दिया गया कि वंशराज की प्रकृति कठोर और मानवीय संवेदनाओं से रहित है। इसके उद्‌भव में पर- पुरुष का योग था। यही कारण है कि माता-पिता दोनों में तेजस्विता से भरपूर कर्म करने की अभिलाषा ही मृतप्राय हो गयी थी। यहां का राजा भी उच्छेदवादी था।[11]

वैशाली नगरी बौद्धों के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु रही है। यह जनसंकुल होने के साथ - साथ श्रेष्ठ भोगों से पटी हुई थी। इसके तोरण, गवाक्ष, हर्म्य, कुटागार और प्रसाद अपने भव्य अलंकरण से किसी भी का भी मन मोह सकते थे। सुन्दर- सुन्दर फूलों से सजी हुई वाटिका इस नगर की शोभा में चार चांद लगा रही थी। परंतु इन तमाम खूबियों के होते हुए बोधिसत्त्व यहाँ अवतरित नहीं हो सकते थे। इसका कारण यह बताया गया है कि वैशाली के लोगों में न्याय का आग्रह नहीं है। धर्माचरण से दूर- दूर तक कोई रिश्ता नहीं दिखता। यहाँ का एक - एक नागरिक स्वयं को राजा मानता है। चालढाल और बोली विचार में सिर्फ अकड़न को छोड़ कुछ और दिखाई नहीं देता। कोई भी किसी के शिष्यत्त्व को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं होता। इस तरह यहाँ के लोगों की प्रकृति में समरसता का भाव है ही नहीं।[12] कुछ की दृष्टि में अवनित के प्रघोतों के कुल का मान बड़ा था। ये महाबलशाली विशाल वाहन वाले और जूझारू सेना के साथ छोटे छोटे राज्यों को अपने अधीन करते जा रहे थे। यह कुल भी बोधिसत्त्व के लिए अनुकूल नहीं था। तर्ब यह दिया गया कि प्रघोतों का कुल आरंभ से ही चण्ड, कठोर, चपल, रौद्र एवं दुस्साहसी रहा है। अतः महाकरूणा की प्रतिमूत्ति बोधिसत्त्व जैसे महामानव का इस कुल में जन्म लेना कैसे संभव हो सकता है? किसी- किसी की दृष्टि में मथुरा नगरी भी कोई कम प्रसिद्ध नहीं है। जनसंकुल और धनधान्य से भरी होने के कारण यहां कंस कुल के राजा सुबाहु और शूरसेन की राजधानी को कायम किया गया था। परंतु इसका अतीत बड़ा ही भयावह रहा है। यह वही कुल है जिसमें कभी मिथ्यादृष्टि वाला दस्युराज कंस पैदा हुआ था। जिसका मूल ही मिथ्याचार और पापाचार से शुरू हुआ हो उसमें बोधिसत्त्व भला कैसे जन्म लेंगे ?[13]

मिथिला नगरी का रमणीयता का तो कुछ कहना ही नहीं था। यही राजा सुमित की निवास भूमि कही जाती थी। इसके पास में हाथी, छोड़े, रथ, पदातिकी विशाल सेना थी। सोने, चांदी और रत्नों का भण्डार भी कुछ कम नहीं था। यहां के राजा का अपने सामन्तों के प्रति व्यवहार भी स्नेह से भरा हुआ था। इसके अनेक गुण थे फिर भी अपनी वृद्धावस्था के कारण संतान पैदा करने में असमर्थ हो चुका था। ऐसी स्थिति में यह देश भी बोधिसत्त्व के अवतरण के योग्य नहीं रह गया था।[14]

भिक्षुओं ने स्वयं ही मंथन करना शुरू किया था कि इस जम्बूद्वीप के सोलह जनपदों में फैले हुए जितने भी राजकुल हैं उनमें एक न एक दोष के होने से बोधिसत्त्व के अवतरण में व्यवधान उपस्थित हो गये हैं। इस पूरे द्वीप में कहीं कोई ऐसा कुल हैं जिसे इनके अवतरण के लिए सर्वथा निष्कलंक माना जाय? यह प्रश्न अपने आप में बेहद जटिल और उलझा हुआ था। बोधिसत्त्व को छोड़कर कोई दूसरा इसका उत्तर नहीं दे सकता था। ललित- विस्तर बताता है कि देवपुत्रों में इस बात की सहमति बनी कि बोधिसत्त्व से ही यह पूछा जाय कि वे वहाँ और किस कुल में अवतरित होकर लोककल्याण का काय्र करना चाहते हैं? बोधिसत्त्व ने देवपुत्रों की ओर उन्मुख होते हुए यह कहा कि वे चौसठ गुणों से युक्त कुल में ही अवतरित होने की कामना रखते हैं। ललित - विस्तर एवं महायानी पंथ के प्रायः सभी ग्रन्थों में चौसठ गुण वाले कुल का अत्यंत ही विस्तार के साथ मानमण्डन किया गया है। बोधिसत्त्व उस कुल में अवतरित होना चाहते थे जिसे परम्पत्या अभिजात्य माना जाता रहा हो। उसकी क्षुद्र प्रकृति नहीं होती थी। जाति और गोत्र से सम्पन्न कुल होता था। पूर्व पुरुषों से सत्कर्म की थाती संजोयी गयी रहती थी। इस तरह यह कुल दिग दिगन्त तक अपनी शानदार विरासत के लिए जाना पहचाना जा रहा था। उसमें स्त्री और पुरुषों का बाहुल्य रहता था। यह किसी तरह के भय से पीड़ित नहीं था और न उसके ऊपर अदिन्नादान, लोभ, मत्सर आदि का कभी दोष ही लग था। इस कुल में शिल्प को प्रोत्साहन देने की नीति चलायी जा रही थी। दृढ़ मित्रों का साहचर्य भी इसे प्राप्त था। पशु पक्षियों के प्रति करूणा का भाव रहता था। कृतज्ञता और परोपकार के भाव से यह कुल कभी विरत नहीं हुआ था। कुमार्ग की ओर प्रवृत्ति नहीं थी। मोह से चित्त आक्रान्त नहीं हुआ था। भय से जिसके कभी पैर डगमगाये नहीं थे और न मन कभी दीनता का ही शिकार हुआ था। मोह से अलग होकर जहाँ विहार करने की सहज प्रकृति थी। क्रिया, त्याग और दान में जिसकी स्वाभाविक रति थी। पुरुष को (कठोर) वचन बोलने की जहाँ आदत नहीं

थी। दूढ़ता और बल विक्रम जिसकी रगों में समाया था। ऋषि, देवता और चैत्य को पूजने की जिस कुल की परम्परा थी। जिसका किसी के साथ वैर भाव न कभी था और न आगे जाकर इसकी कोई संभावना ही थी। दशों दिशायें जिसकी ख्याति से सम्मोहित थीं। विशाल परिवार वाले इस कुल की एकता कभी खण्डित नहीं हुई थी। महायानियों के अनुसार यह वही कुल था जिसकी गणना अनुत्तर, कुलज्येष्ठा और कुलश्रेष्ठ-इन तीनों ही रूपों में की जा रही थी। अपनी परम्पराओं और विरासत को लेकर इस कुल का मान कभी भी क्षरित नहीं हुआ था। माता और पिता दोनों ही पक्ष से जिस कुल की रक्त शुद्धि के ऊपर किसी तरह का प्रश्न चिन्ह खड़ा नहीं हुआ था। श्रमणों और ब्रा]मणों के प्रति इसके श्रद्धा भाव में भी किसी तरह की कमी नहीं आई थी। प्रभूत धन, कठोर, तथा हिरण्य, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, रजत आदि से भण्डार भरा था। दासी, दास और कर्मकर को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उसमें संकट का सामना करते रहने का अदम्य साहस था। सभी तरह की सिद्धियों को पाने की क्षमता थी। यह कुल उन लोगों की विमल कीर्ति से उद्भासित था जिन्हें अपने पराक्रम से चक्रवर्ती का पद हासिल हो गया था। इसके पास कभी क्षीण नहीं होने वाली सत्कर्मो की पूंजी थी। बोधिसत्त्व जैसा कि वर्णित है इसी कुल में पैदा हुए थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चौंसठ गुणों से युक्त कुल को छोड़ बोधिसत्त्व का अवतरण किसी अनय कुल में नहीं हो सकता था।[15]

ललित-विस्तर में कुलशुद्धि के बाद उस स्त्री की शुचिता एवं अन्य शारीरिक लक्षणों का विचार हुआ है जिसके गर्भ से बोधिसत्त्व का जन्म होने वाला था। यह वह स्त्री थी जिसमें एक साथ बत्तीस गुणों का समाहार दिखाई दे रहा था। इसकी जाति एवं कुल छिद्रहीन था। पहले कभी प्रसूता नहीं बनी थी। शील, त्याग की प्रतिमूर्त्ति और स्मित हास्य को प्रकट करने वाली थी। कोई भी पुरुष उसे सहज भाव से स्वीकार कर सकता था। विनीत, विशारद, बहुश्रुत, पण्डिता, और व्यवहार में नम्रता का त्याग नहीं करने वाली थी। माया से विलग क्रोध और ईर्ष्या रहित, मत्सर चंचलता आदि गुणों का त्याग करके जीवन बिताने वाली थी। रागद्वेष से शून्य, मातृदोष रहित पतिव्रता सर्वाकारगुण सम्पन्न - ऐसी स्त्री ही बोधिसत्त्व की माता बन सकती थी।[16] महायानियों के अनुसार मास के कृष्णपक्ष में नहीं बल्कि शुक्ल पक्ष में बोधिसत्त्व अपनी माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए थे। यह पूर्णिमा का दिन और नक्षत्र पुष्य था। उनकी माता ने इस पुण्यदायी अवसर पर उपोषध (व्रत) रखा था।[17]

कुलपरिशुद्धि और मातृपरिशुद्धि के बाद बोधिसत्त्व के अवतरण के निमित्त इसका अन्वेषण पूरी तल्लीनता के साथ किया जाने लगा था कि इस जम्बूद्वीप में ऐसा कौन सा कुल है जिसमें इतने सारे गुणों का एक साथ समन्वय दिखाई दे रहा था। चिन्तन - मनन के इस लम्बे दौर में उस शाक्यकुल का नाम सामने आया था जिसमें समृद्धि, रमणीयता, जनसंकुलता आदि गुणों को देखकर कोई भी महापुरुष वहाँ अवतरित होने की इच्छा व्यक्त कर सकता था। महायानी पंथ के अवदानों से लेकर ललित-विस्तार तक में मातृ - पितृ पक्ष से नितान्त शुद्ध राजा शुद्धोदन का चरित बखान हुआ है। उनकी पत्नी पूर्णतया शुद्ध, निर्मल और पुण्यशाली महासमन्त कुल से आती थी। राजा शुद्धोदन चक्रवर्ती राजाओं के कुल में पैदा हुए थे। यह धनधान्य से पूर्ण पाप से कभी दूषित नहीं होने वाला कुल था। समस्त शाक्यमण्डल में वही एक ऐसे राजा थे जिनकी श्रद्धा के साथ पूजा करने में लोगों को असीम आनन्द की अनुभूति हो रही थी। श्रेष्ठि गृहपति और अमात्य परिषद् उन्हें देख कर प्रसन्न होता था। वे न ज्यादा वृद्ध थे और न ज्यादा युवा। गुणों के आगार कहे जाते थे। शिल्पज्ञान से सम्पन्न और धर्म के ज्ञाता थे। कपिलवस्तु पर शासन करते समय उन्होंने धर्म का कभी त्याग नहीं किया था। इस प्रकार उनकी ख्याति एक धर्मराजा के रूप में बनी हुई थी।[18] ग्रतव्य यह कि यहाँ जिस किसी महापुरुष का अवतरण होता वह भी उन्हीं की जैरो स्वभाव और गुणधर्म को धारण कर सकता था। राजा शुद्धोदन की धर्मपत्नी माया देवी स्वयं प्रबुद्ध और शाक्याधिपति की पुत्री थी। वे युवती और रूप यौवन सम्पन्न थीं। बोधिसत्त्व के पहले उन्होंने किसी और संतान को जन्म नहीं दिया था। उनका रूप मनोरम चित्र के समान था। देवकन्या की तरह दर्शनीय और सर्वालंकार भूषिता थीं। उनमें किसी तरह का मातृदोष नहीं था। सत्यवचन को छोड़ कभी कर्कश वाणी नहीं बोलती थी। स्वभाव में चपलता नहीं थी। वाणी कोयल के समान मीठी थी। प्रलाप नहीं करती थीं और साथ ही क्रोध मद, मान और दर्प से बिल्कुल अलग थीं। त्याग, शील से राम्पन्न होकर पति को संतुष्ट कर देने वाली थी। मन के भीतर किसी अन्य पुरुष को ध्यान नहीं करती थीं। शिर, वर्ण और नासिका के ऊपर सौन्दर्य का प्रभामण्डल चमकता था। उनकी केशसज्जा के भ्रमर के समान कालिमा लिए हुए थी। यह स्त्री कोई और नहीं मायादेवी थीं। वह नन्दनवन की अप्सरा की तरह राजा शुद्धोदन के अन्तःपुर में निवास करती थीं। इन्हें छोड़ कोई दूसरी स्त्री बोधिसत्त्व की माता बनने के योग्य नहीं थी-यही ललित-विस्तर के इस परिवर्त का प्रतिपाद्य है। कुल परिशुद्धि शाक्य कुल को छोड़ कहीं और लक्षित हुई थी-ऐसा महायानियों में नहीं माना है।[19]

संदर्भ स्रोत :

1. महावस्तु प्रथम ख0–पृ0 01–02 और आगे।
2. साधु साधु अहं लोकमेव अभियूय लोके लोकार्थ परो लोकस्य हिताय जायेयं – वही पृ0–03
3. दृष्टवान च याचनकं भूयोऽस्य मनो प्रसाहित्वा चक्षूणि च मनसानि च पुत्रदारं धनं च धान्यञ्च आत्मा जीवितं च भूयो परित्यक्ता, वही पृ0 – 04
4. ललितविस्तर–तीसरा परिवर्त, पृ0 –11
5. सचेदगारमध्यावसति, राजा भवति चक्रवर्ती चतुरङ्गो विजितवान् धार्मिको धर्मराजः सप्तरत्नसमन्वागतः। वही
6. वही पृ0 –12
7. शीतकाले चास्या उष्णसंस्पार्शानि गात्राणि भवन्ति, उष्णकाले च शीत संस्पर्शानि। सा राजानं चक्र वर्तिनं मुक्त्वा न्यान्यस्मिन् मनसापि रागं करोति किं पुनः कायेन। वही पृ0 – 13
8. वही पृ0 –14
9. वही पृ0 – 15
10. वही
11. वही पृ0– 16
12. तेषां नास्ति परस्परन्यायवादिता, नास्ति धर्माचरणाम्, नोच्चमध्यवृद्धज्येष्ठानुपालिता। एकैक एव मन्यते अहं राजा अहं राजेति। न च कास्यच्छिष्यत्वमभ्युपगच्छति न धर्मत्वम् तंत्रसाप्यप्रतिरूपा– वह
13. वही पृ0 – 16
14. अस्त्यसौ राजा सुमित्र एवं गुण युक्तः किं त्वतिवृद्धो न समर्थः प्रजामुप्तादयितुमति बहु पुत्रश्च। तस्मात्तदपि कुलमपतिरूपमस्य बोधिसत्त्वस्य गर्भ प्रतिसंस्थानायेति।। वही पृ0– 17
15. वही पृ0 –17–18
16. वही पृ0 –18
17. न खलु पुनर्मार्षाः कृष्णपक्षे बोधिसत्त्वो मातु कुक्षाववाक्रमति, अपि तु शुक्लपक्षे। एवं पञ्चदश्यां पूर्णिमायां पुष्यनक्षत्रयोगे पोषध परिगृहीतायाः मातुः कुक्षौ चरमभविको बोधिसत्त्वो वक्रमति।।
18. सर्वगुणोपेतः शिल्पज्ञः कालज्ञ आत्मज्ञो धर्मस्तत्त्वज्ञो लोकज्ञो लक्षज्ञो धर्मराजो धर्मेणानुशास्ता अवरोपित कुशलमूलानां च सत्त्वानां कपिलवस्तु महानिलयः। वही
19. वही पृ0 – 19–20

मैथिल निबन्धकार वर्धमान उपाध्याय का दण्ड विमर्श

डॉ० संजय कुमार

पिता-स्व0 किशोरी पासवान, मु0-सुन्दरपुर बीरा, पो0-वासुदेवपुर
जिला-दरभंगा, पिन-846005
इतिहास विभाग
ल0 ना0 मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा

विषय - प्रवेश

मध्यकालीन मिथिला के निबन्धकारों में वर्धमान उपाध्याय की विशेष ख्याति रही है। दण्ड की प्रकृति और इसके प्रभेदों का विचार करते समय उन्होंने धर्मशास्त्र के मानक ग्रंथों को सामने रखा है। इनके प्रसिद्ध निबन्ध दण्ड विवेक में स्मृतियों के उद्धरण देखे जा सकते हैं। यत्रतत्र पुराणों एवं महाकाव्यों की सामग्रियों के आधार पर भी निष्कर्षों की स्थापना की गयी है। दण्ड के संबंध के वर्धमान का दृष्टिकोण पारम्परिक है। इस जगत के प्राणियों एवं धर्म की रक्षा के लिए साक्षात् ईश्वर ने ही दण्ड की सृष्टि की थी। स्थावर हो जा जंगम - इस सृष्टि के कण - कण में भोग की प्रवृत्ति दण्ड के भय के कारण ही कायम है। यह नहीं होता तो धर्म कब का अपने स्थान से भ्रष्ट हो गया रहता। राजा ही पुरुष के रूप में दण्ड का प्रतीक समझा जाता है। यही शास्ता और नेता है। चार तरह की आश्रम व्यवस्था का संचालन धर्म के द्वारा ही होता है। सभी तरह की प्रजाओं के ऊपर शासन अंततः दण्ड का ही होता है। इसी के ऊपर जन - जन की रक्षा का भार है। शास्त्रकारों का यही अभिमत है कि दण्ड सोते हुए भी जागता है। सभी तरह के धर्म इसी एक में निहित माने गये हैं।[1]

दण्ड - अदण्ड के दोषों के ऊपर धर्मशास्त्रों का विचार कहीं अधिक व्यापक और गहरा है। अपराध में लिप्त लोगों को दण्डित नहीं किये जाने पर दुर्बल लोग कांटे में फंसी हुई मछली की तरह बलवान लोगों द्वारा खींच कर समाप्त कर दिये जाते हैं। स्वामी अर्थात् राजा नहीं रहे तो दण्ड को लागू किये जाने का अधार ही समाप्त हो जाता है। दण्ड के संबंध में वर्धमान मनु को उद्धृत करते हुए यही कहते हैं कि जल के भीतर से कांटे में फंसा कर जिस तरह मछली को बाहर करके अपना ग्रास बना लिया जाता है उसी तरह दुर्बल और विवश हो गये लोगों को भी हिंसा का शिकार बना लिया जाता है। यह बलवानों की स्वेच्छाचारिता का ही दुष्परिणाम है कि दुर्बल लोग अकारण हिंसा की भेंट चढ़ जाते हैं। शास्त्रकारों की दृष्टि में यही मात्स्यन्याय हैं। छोटी मछली जिस तरह बड़ी मछली का शिकार बनती है उसी तरह निर्बल लोगों को बलवान प्रताड़ित करके उनका सबकुछ हरण कर लेते हैं। दण्ड के आरोपित नहीं होने के कारण ही मात्स्यन्याय अपना विनाशकारी प्रभाव दिखाने में कामयाब हो जाता है। राज्य के आर्थिक साधनों को बढ़ाने में अंततः दण्ड की भूमिका ही प्रबल हुआ करती है।[2] प्रजा के धन को लुटेरों (तस्कर) के रक्षा करने के कारण ही राजा को बलि अर्थात् भोग पाने के अधिकार का समर्थन शास्त्रकारों ने किया था। दण्ड के प्रयोग से लुटेरों को नियंत्रित नहीं किया गया तो राष्ट्र क्षुब्ध हो जाता है और ऐसी स्थिति में राजा सद्गति को प्राप्त नहीं कर सकता। कामन्दक ने यह कहा है कि चोरों लुटेरों से प्रजा की रक्षा में विफल, जान माल की रक्षा से विमुख, लोभ में आकर बलात् धन का मोचन करते रहना - ये पांच तरह के भय जहाँ होंगे वहां के लोगों को सुख चैन का कथमपि अनुभव नहीं हो सकता।[3]

प्रजा का रक्षण ही राजा का पहला कर्तव्य है। शास्त्रकारों ने राजधर्म के जिस व्यापक स्वरूप का विचार किया है उसके मूल में प्रजा का रक्षण भाव ही निहित हुआ करता था। धर्म का विखण्डन उसे कहेंगे जब प्रजा की रक्षा किये बगैर ही राजा षड्भागी कर की उगाही के लिए दबाव की नीति का अनुसरण करने लग जाता है। गांवों से लेकर निगमों एवं नगरों में हरने वाले लोगों तक से धन वसूली करने का सिलसिला चल निकलता है। वणिकों से व्यवसाय के नाम इतनी ज्यादा चुंगी वसूल की जाती है कि वे तंग और बदहाल हो जाते हैं। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के ऊपर अपना ही अधिकार जाता कर शेष को उनके भोग के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। शास्त्रकारों की दृष्टि में यही अनुचित दण्ड है जिसे राजा की गनमानी के कारण लोग उसे भोगने के लिए विवश कर दिये जाते हैं। राजा का षड्भागी होने का अर्थ है कि उसने प्रजा रक्षण का गहानतम दायित्त्व का निर्वहन करते रहने में किसी तरह की शिथिलता नहीं बरती है। वस्तुत: षड्भागी होने का आधार ही धर्म के ऊपर टिका हुआ था। कदाचित् ऐसा नहीं हो पा रहा हो तो प्रजा से षड्भागी कर लेना एक तरह से अधर्म का सूचक समझा जाता था।[4] दण्ड की प्रकृति का विचार करते हुए शास्त्रकारों ने यही कहा है कि असमय अनुचित और कठोर दण्ड देने से लोग क्षुब्ध हो जाते हैं। यह धर्म को विचलित करने के साथ साथ राजा को उसके बन्धु -बांधवों सहित नष्ट कर देता हैं। तीक्ष्ण दण्ड से राष्ट्र, मुनि और यहां तक कि देवता भी पीड़ित होकर अपना सत्त्वाधिकार गंवा देते हैं।[5]

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्द्धरं कृतात्मभि:।

वर्धमान ने दण्ड के संबंध में मनु की इस उक्ति को प्रमाण माना है कि अधर्म अर्थात् अन्याय से प्रेरित होकर दिया गया दण्ड राजा के यश और उसकी कीर्ति का नाशक है। निबन्धकारों ने इसे परिभाषित करते हुए यही कहा है कि राजा जबतक जीवित है वह यश का भागी है। मृत्योपरांत उसे कीर्ति का लाभ होता है। ये दोनों ही उपलब्धियां उसे तभी हासिल होगी जब अधर्म का त्याग करके अपराध की प्रकृति का विचार कर लेने के बाद दण्ड को निर्धारित किया जाता है।[6]

दण्ड देते समय अतिशय सावधानी और संयम की अपेक्षा होती थी। वर्धमान स्मृतिपरम्परा को देखते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि ऐसे लोग जिन्होंने अपराध किया ही नहीं उन्हें दण्डित कर देना और अपराधी को इसके दायरे से बाहर रख देना – ये दोनों ही कृत्य राजा को अपयश के सिवाय कुछ और नहीं देते। इसका एक अर्थ तो यह भी है कि दण्ड के भागी को छोड़ देना और निर्दोष को मिथ्या आरोप में फंसा देना – न्याय की गरिमा को नष्ट कर देने वाले कृत्य को छोड़ कुछ और नहीं है। यह एक तरह का पाप कर्म भी है जिसे नरकगमन का मूलक कारण समझा जा सकता है। दण्ड का ठोस कारण न हो फिर भी दण्डित कर देना वस्तुत: धर्मविरूद्ध नीति का परिचायक कहा जाता है। जिन लोगों ने बन्धन में जकड़े जाने वाला काम किया है उन्हें छुटा छोड़ देना तो सीधे तौर पर राजा के पक्ष में घृणित कार्य ही कहा जायेगा।[7] कात्यायन जैसे स्मृतिकार का यह मानना है कि दण्ड का प्रयोग करते समय प्रमाद ईर्ष्या, या पूर्वाग्रह का त्याग नहीं किया गया तो इसे पापकर्म के सिवाय कुछ और नहीं कहा जा सकता। प्रकारान्तर से यही अधर्म का सूचक है। विनीत लोगों को भी दण्डित अपमानित या लांछित किये जाने का प्रयास न तो शास्त्रसम्मत है और न विधान के अनुकूल।[8]

दण्ड के संबंध में वशिष्ठ का विचार पूरी तरह से मानवीय मूल्यों से प्रभावित और नैतिकता का आग्रही है। शास्त्रकारों ने यह नियम बनाया था कि निर्दोष एवं निरीह लोगों के ऊपर मिथ्या आरोप लगा कर दण्डित कर देने वाले राजा को एक रात का उपवास करना पड़ता था। यह प्रच्छन्न रूप से दण्ड का उतसर्ग अर्थात् उसके दुरूपयोग को इंगित करने वाली प्रवृत्ति कही जाती थी। चूंकि न्यायाधिकरण में पुरोहित भी सहभागी रहता था अत: उसे भी आधारहीन दण्ड का समर्थन करने पर तीन रात्रि का उपवास करने का निर्देश दिया गया था। कदाचित् दोषी को दण्ड नहीं दिया गया तो यह भी राजा के पक्ष में उचित व्यवहार का परिचायक नहीं कहा जा सकता। एतदर्थ उसे एक रात का उपवास करना पड़ता था। शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि सभ्यों अर्थात् न्याय कर्म को पूरा करने वाले अधिकारियों को अनुचित दण्ड का अनुमोदन किये जाने से तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करना होता था।[9]

दण्ड की प्रकृति के संबंध में याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण कहीं ज्यादा व्यापक और समीचीन कहा जायेगा। अन्याय और लोभ का परिचय देते हुए राजा बलात् किसी से जितना भी धन इकफ्ा करे तो उसका कुछ भाग जल में विसर्जित करके शेष को संकल्प विधि के साथ ब्राह्मणों को दान कर दे। यह एक तरह का प्रायश्चित विधान है जिसे अविचारित दण्ड को लागू करने के बाद पूरा करना पड़ता था। वर्धमान याज्ञवल्क्य के वचन के आधार पर यही कहते हैं कि दण्ड के तौर पर वसूल की गयी राशि कदाचित् विधान

के अनुकूल न हो तो उसे असली मालिक को लौटा देना समीचीन व्यवहार का परिचायक है। ऐसा नहीं हुआ तो यह एक तरह का अपहार दोष कहा जायेगा।[10]

प्राचीन भारत के विधि शास्त्रियों ने एक स्वर से यही कहा है कि सम्यक् दण्ड देने के लाभ ही लाभ है। राजा निष्पक्ष होकर सुविचारित दण्ड देने की दिशा में कदम बढ़ाता था तो उसके लाभ ही लाभ थे। उसे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति से कोई नहीं हो सकता। दण्ड देने के पहले विवाद की गहरी समीक्षा की जानी चाहिये। ले देकर यही दण्ड लोक कल्याणकारी हुआ करता है। याज्ञवल्क्य का यह कथन ठीक ही है कि सम्यक् और सुविचारित ढ़ंग से दिया गया दण्ड राजा की कीर्ति और जय के विस्तार का निमित्त हुआ करता था। जघन्यतम अपराध के लिए वध दण्ड दिया जानाठीक है क्योंकि इससे लोगों का जीवन सुरक्षित रहता है। प्रजा के हित को देखते हुए दुण्ड का निर्धारण शास्त्रोचित व्यवहार का सूचक कहा जाता है। मिताक्षरा का यह निर्देश है कि किसी अपराध के कुकृत्य की सूचना देने में विलम्ब हो सकता है। उसे दण्डित करने में ज्यादा समय लग सकता है। अपराधी का मनोबल ऊंचा न हो इसीलिए चोरों, लुटेरों और हत्यारों का वध करने के लिए किसी और का उद्यत हो जाना किसी भी दृष्टि से अप्रत्याशित नहीं होता। मनु ने दुष्ट दलन के लिए ब्राह्मणों द्वारा भी शस्त्र उठाये जाने की प्रवृत्ति को ठीक ही माना है। जहां धर्म के लुप्त हो जाने का खतरा उपस्थित हो जाय तो उसकी रक्षा के लिए द्विजातियों के ऊपर भी शस्त्र प्रयोग करने पर किसी तरह का दोष नहीं लगाया जा सकता। ब्राह्मण हो या उससे भिन्न कोई दूसरा वर्ण विप्लव के समय शस्त्र के प्रयोग से अपनी एवं समष्टि की रक्षा के लिए सन्नद्ध होता है तो उसका यहा कार्य धर्म विरूद्ध नहीं कहा जायेगा। शास्त्रकारों का यह कथन कहीं से भी अप्रमाणिक नहीं कि शस्त्र के द्वारा आततायियों को समय रहते रोका नहीं गया तो वर्णाश्रम व्यवस्था छिन्न भिन्न होकर रह जायेगी। राष्ट्र में अराजकता के छा जाने के साथ - साथ स्त्रियों में स्ंकरादि दोष पैदा होंगे। अत: हिन्दू विधान के तहत यह माना गया है कि आत्म रक्षा के साथ साथ स्त्री, ब्राह्मण, धर्म और निर्दोष लोगों की प्राण रक्षा के लिए दुर्दान्त अपराधी का वध कर देने पर किसी तरह का दण्ड नहीं दिया जा सकता।[11] वर्धमान मनु की इस उक्ति के आधार पर यहीं कहते हैं कि गुरू, बालक, वृद्ध, ब्राह्मण और बहुश्रुत अपनी रक्षा के लिए समर्थ नहीं होते। इनके ऊपर अत्याचार करने वाली अपराधी हो या वध के लिए उतारू हो गये आततायी - उनका वध आगे पीछे सोचे बगैर कर भी दिया जाय तो यह कृत्य दण्ड के दायरे में नहीं आता।[12]

गुरूं वाबाल वृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।।

टीकाकारों ने मनु के इस कथन को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। आत्म रक्षा के लिए आततायी का वध उचित कहा गया है। नारायण ने मनु के इस वचन की व्याख्या का एक दूसरा ही आधार बताया है। आततायी वध करने पर आमादा हो जाये तो इसके लिए उसे मात्र अंगच्छेदन का दण्ड दिया जाना ठीक है। ब्राक्रण ही आततायी के रूप में खड़ा हो जाये तो उसके वध का पाप अपेक्षाकृत कम ही होता है। स्मृतिकारों एव निबन्धकारों ने इसके लिए अत्यल्प प्रायश्चित का विधान रखा है। मिताक्षरा भी इसी का समर्थन करती हुई देखी जा सकती है। मेधातिथि और गोविन्दराज का भी यही मानना है कि आचार्य, माता-पिता, गुरू, ब्राह्मण और गौ का वध किसी भी दृष्टि से मान्य नहीं है क्योंकि ये पूज्य कोटि के माने जाते हैं। स्मृतिकारों एवं निबन्धकारों का सर्वमान्य मत यह है कि किसी भी प्राणि के साथ हिंसा का व्यवहार उचित नहीं होता। आचार्य कोटि के लोग और माता-पिता प्रभृति श्रद्धेय एवं पूजनीय लोगों के साथ तो कथमपि हिंसा का व्यवहार नहीं किया जाना चाहिये। परंतु आततायी जब गुरू ही हो जाये तो उसके वध से भी किसी तरह का दोष नहीं लगता। वर्धमान मानते है कि कठोर और मन को विचलित कर देने वाली वाणी भी एक तरह की हिंसा ही कही जाती है। वचन द्वारा किसी को जान से मान देने की धमकी भी हिंसा है। एतदर्थ दण्ड का प्रावधान लागू किया जाना सर्वथ विधिसम्मत् कहा जायेगा।[13]

राजा जघन्य काण्ड में लिप्त अपराधी को दण्ड देकर पाप मुक्त हो जाता है। पाप के लिए दण्ड को छोड़कर कोई दूसरा विकल्प नहीं होता। गोवध के लिए प्रायश्चित का विधान है। यह भी एक तरह के दण्ड का पर्याप्त माना जा सकता है। शास्त्रकारों ने इसके लिए पापमोचन जैसे शब्द का प्रयोग किया है। वस्तुत: जघन्यतम अपराध और पापकर्म में लिप्त लोगों को दण्डित कर देने से राजधर्म अपनी अर्थवत्ता को प्रमाणित करने में सफल हुआ करता है। कुल्लुक भ– मुन के वचन के आधार पर यही कहते हैं कि दण्ड भी एक तरह का प्रायश्चित हुआ जिसके द्वारा पापों का क्षय करने में अपराधी एक सीमा तक सफल हो सकता है।[14]

शास्त्रों द्वारा निर्धारित विधान के अनुसार दण्ड का निर्धारण जब पूरी तरह से पवित्र एवं निर्लोभ भाव से किया जाता है तो उसका परिणाम सदा सकारात्मक होता है- यही विधिशास्त्रियों का अभिमत रहा है। दण्ड का निर्धारण अपराध की प्रकृति को देख कर किया जाना ठीक समझा गया था। इसके लिए राजा के विचारवान सहायकों की भूमिका का खास महत्त्व होता था। मनु ने दण्ड की इसी प्रक्रिया का अनुमोदन किया है।[15] राजा द्वारा अधिकृत किंवा नियुक्त किये गये प्राड्विवाह (मुख्य न्यायधीश) की सहायता के लिए मंत्री, पुरोहित, गणक और लेखक आदि को रखा गया था। स्वर्ण, अग्नि और जल-इनका स्पर्श करके शपथ ली जाती थी। राजा और राज्य के अंग के रूप में स्मृतियां है। भुजाओं के रूप में सभ्य हैं तो गणक और लेखक न्यायालय की जंघाओं के समान कहे गये हैं। स्वर्ण अग्नि और जल - ये न्याय के पाद कहे जाते हैं। विवाद चाहे किसी भी तरह का क्यों न हो - उसकी सुनवाई के लिए जिस तरह का न्यायालय गठित किया जाता है उसका वैधानिक तौर पर अध्यक्ष राजा हुआ करता है। सभ्य अर्थात् मंत्री, पुरोहित और ब्राह्मण आदि की राय से विवाद का निर्णय किया जाता था। स्मृतियों में जिस तरह का व्यवहार निर्दिष्ट है उसी के आलोक में किसी के पक्ष में जयपत्र जारी किया जाता था तो किसी को दण्डित करके न्याय की गरिमा को कायम रखा जाता था। वादी - प्रतिवादी के सत्य वचन को प्रमाणित करने के लिए सोना, अग्नि, और जल का स्पर्श कराया जाता था। यह एक तरह से शपथ दिलाने की पुरानी परिपाटी थी जिसका अनुमोदन प्रायः सभी स्मृतिकारों ने किया है। गुणक दायर किये गये वाद का आर्थिक महत्त्व कितना है - इसकी ठीक ठीक गणना करता था। लेखक इसे साफ साफ शब्दों में मसविदे में शामिल कर लेता था।[16]

वादी जब किसी के खिलाफ न्यायालय में वाद दायर करता था तो इसकी सूचना दूत के जरिये प्रतिवादी को भिजवायी थी। इस पर जितना भी खर्च आता था उसका वहन वादी को करना पड़ता था। याज्ञवल्क्य की यह व्यवस्था सभी के लिए मान्य रही है कि वादी प्रतिवादी - इन दोनों से प्रतिभू (जामिन) लेने के बाद ही अपना - अपना पक्ष रखने का आदेश जारी कया जा सकता था। दण्ड चाहे वह धन से संबंधित हो या शरीर दण्ड से - इन दोनों पर निर्णय देते समय प्रतिभू का रहना कानूनी तौर पर जरूरी समझा गया था।[17] कात्यायन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वादी की ओर से किन्हीं कारणों से प्रतिभू पेश नहीं किया गया है तो ऐसी स्थिति में दिन के बीतने एक उसे (वादी को) एक दूत की देखरेख में रखा जाना चाहिये जिसका व्यय भार उसको छोड़ कोई दूसरा नहीं उठा सकता।[18] वर्धमान मनु की इस उक्ति को सामने रखकर यह व्यवस्था देते हैं कि व्यवहार अर्थात् सम्पत्ति एवं आपराधिक मामलों से संबंधित विवादों की सुनवाई के लिए विद्वान ब्राह्मणों का सहयोग अपेक्षित है। लोकपाल का स्मरण करके वाद की सुनवाई के लिए राजा को आगे आना चाहिये।[19] वाद की प्रकृति चाहे जैसी भी हो उसकी सुनवाई के लिए राजा के सामने यदि कोई आवेदन प्रस्तुत किया जाता है तो उस ओर ध्यान नहीं देना और उस पर निर्णय को ज्यादा दिनों तक लम्बित रखा जाना- ये दोनों की तरह के कृत्य अंततः राजा के लिए दुःखदायी सिद्ध होते हैं। चूंकि उसे ही दण्डधर कहा गया है; अतः अपने इस तरह के वह दायित्त्व से मुक्त नहीं हो सकता। न्याय की अपेक्षा कर देने का मतलब है कि राजा अपने धर्म का पालन नहीं करके भोगों में आसक्त हो गया है। उसके पतन का द्वार यही से खुला करता है।[20]

शास्त्रकारों के बीच इसे लेकर आम सहमति बन गयी थी कि दीवानी या फौजदारी से संबंधित मामले की सुनवाई करते समय शास्त्र विशारद ब्राह्मणों से ली गयी राय से अन्याय की संभावना क्षीण हो जाती है। मिताक्षरा में इसका अनुमोदन है कि विद्वान ब्राह्मणों की राय से विवाद की सुनवाई प्रारंभ की जाय तो इससे न्याय की गरिमा में कहीं ज्यादा वृद्धि की बात सोची जा सकती है। टीकाकारों ने भी यही कहा है कि न्यायकर्म में इनको सहभागी नहीं बनाना एक तरह से राजा की शिथिलता और उसकी अकर्मण्यता का ही सूचक हुआ करता है। न्याय कर्म से अलग रहने के लिए ब्राह्मण को नहीं बल्कि राजा को दोषी ठहराया जाना चाहिये। कात्यायन ने यह माना है कि राजा के ऊपर शासन का अप्रत्याशित भार होने के कारण विवादों की सुनवाई के लिए सफल शास्त्र निष्णात ब्राह्मणों को नियुक्त किया जा सकता था। स्मृतिकारों एवं निबन्धकारों के बीच इस बात को लेकर सहमति दिखती है कि न्याय कर्म के निमित्त कदाचित् ब्राह्मण का मिल पाना कठिन है तो इसके विकल्प के तौर पर क्षत्रिय को अथवा धर्मशास्त्र निष्णात वैश्य को नियोजित किया जा सकता था; पर किसी भी स्थिति में न्याय कर्म के लिए शूद्र को प्राधिकृत करने का सिद्धांत मान्य नहीं हो सकता।[21]

यदा कार्त्यवशाद्राजा न पश्येत कार्त्यनिर्णयम्।

वर्धमान जैसे निबन्धकार के लिए मनु की यह उचित अब भी मान्य थी कि जिस देश की न्याय व्यवस्था के संचालन का भार शूद्रों पर डाल दिया गया हो उसके पतन को टाला नहीं जा सकता था। उसकी दुर्गति पंक में धंसी हुई गाय के समान हो जाती थी।[22]

व्यास का भी यह कहना था कि द्विजों को छोड़कर दण्ड के निर्धारण में शूद्रों को सहायक बनाने से राष्ट्र का बल और कोश इन दोनों का नाश अवश्यंभावी है।[23] शास्त्रकारों की दृष्टि में निष्पक्ष न्याय लोक कल्याण का प्रथम सोपान है। राजा के शत्रु हो या मित्र अथवा सभासद - ये सब के सब न्याय के सामने एक हैं।[24] धर्मशास्त्रों द्वारा यह विधान प्रारंभ से ही मान्य रहा है कि न्याय कर्म में सहभागी बने लोगों का सत्यवादी रहना अनिवार्य है। वृहस्पति कहते हैं कि वादों की सुनवाई करने के बाद उसके लिए दण्ड का अनुमोदन प्राड्विवाक की सहमति से ही किया जा सकता है। वर्धमान ने प्राड्विवाक पर टिप्पणी करते हुए यह कहा है कि वह वादी - प्रतिवादी - दोनों की बातों की सुनता था। पुनः सच्चाई का पता लगाने के लिए सोच विचार करता था। धर्माधिकरण में स्थित होकर निष्पक्ष न्याय करने वाला ही प्राड्विवाक कहा जाता था। स्मृतिकारों ने यह व्यवस्था दी है कि प्राड्विवाक को वाद की सुनवाई करते समय मंत्रियों, पुरोहितों एवं ब्राह्मणों से भी अपेक्षित सहायता लेनी चाहिये।[25] गौतम ने यहां तक कहा है कि प्राड्विवाक का सत्यवचन सभी धर्मों पर भारी पड़ता है।[26]

दण्ड का निर्धारण करते समय देशाचार पर भी ध्यान देने की जरूरत होती थी। वृहस्पति जैसे स्मृतिकार का यही मत था। अरण्यवासी लोगों से मामला जुड़ा हो तो उसका निपटारा उन्हीं के बीच प्रचलित आचार नियमों के तहत किया जाना चाहिये। सैनिकों के साथ भी यही विधि अनुमान्य हो सकती है। सार्थवाहों और वणिकों के अपने कुछ खास तरह के नियम होते हैं। इनसे संबंधित विवादों का निपटारा उन्हीं के पारंपरिक विधान के तहत किया जाना शास्त्रोचित व्यवहार कहा जाता था। कुल, श्रेणि और गण आदि से संबद्ध गंभीर अपराध से जुड़ा हुआ मामला न हो तो अन्य मामले की सुनवाई के समय उनके अध्यक्षों की राय लिये जाने का औचित्य बनता है। गंभीर अपराध करने पर किस तरह का दण्ड दिया जाय - इसे लेकर कदाचित् मतभेद पैदा हो तो उस पर अंतिम निर्णय का अधिकार राजा को छोड़ किसी और का नहीं हो सकता। नारद ने यह कहा है कि सभ्यजनों की सहमति से जिस विवाद की सुनवाई प्रारंभ की जाती है उससे कोई पीड़ित नहीं होता। परन्तु जहां इस तरह की विधि का अनुसरण नहीं होता वहां निष्पादित मामले का परिणाम कुछ का कुछ होकर उभय पक्ष को पीड़ित ही नहीं करता बल्कि वे अपने आप को ठगा हुआ भी महसूस करते हैं।[27]

वर्धमान न्यायकर्म के सहयोगी माने जाने वाले सभ्यों की योग्यता काविचार करते समय धर्मशास्त्रकारों के अभिमत को सामने रखते हैं। जिन्हें देशाचार का ज्ञान नहीं, नास्तिक और शास्त्रज्ञान से शून्य हैं, उन्मत्त और क्रोधी स्वभाव के हैं - ऐसे लोगों को विवाद की सुनवाई से अलग रखा जाना चाहिये। यह माना गया है कि धर्म अर्थात् न्याय किंवा अन्याय से दूषित हो जाता है। शास्त्रकारों ने यह कहकर अपने वक्तव्य पर एक तरह से विराम दे दिया है कि ऐसे सभासद जिनकी प्रवृत्ति धर्म वे विलग होकर न्याय करने की साफ साफ लक्षित हो रही हो वहाँ जाकर बोलने या नहीं बोलने पर भी मनुष्य पाप का भोजन बन जाता है। यह मामला इतना संवेदनशील है कि अधर्म में प्रवृत्त होकर न्याय कर रहे राजा को दम साधे देखने वाले सभ्य भी शास्त्रकारों की दृष्टि में गर्हित माने गये हैं। स्मृतिकार यह भी कहने से नहीं चूकें हैं कि अन्याय जैसे लोक विरोधी कृत्य से आँख फेर लेने वाले मुँह नरक में गिरने से कथमपि बच नहीं सकते। सभासदों का कर्तव्य यही बनता है कि वे न्याय मार्ग से विचलित राजा को न्याय की गरिमा का पाठ पढ़ाते रहें। न्याय के पक्ष में खुल कर नहीं बोलने का निहितार्थ यही है कि सभ्य सत्य का नहीं बल्कि असत्य का साथ देने पर आमादा हैं। बृहस्पति का यह कथन बिल्कुल समीचीन है कि अन्याय का साथ देने वाले और घूस की रकम को चट कर जाने के अभ्यस्त सभ्यों से निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा किसी को नहीं हो सकती। जिन्हें लेकर आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता ऐसे लोगों को न्यायकर्म का सहभागी बनाने का अर्थ है कि राजा और राज्य के कल्याण की अपेक्षा किसी को नहीं रह गयी है।[28]

वर्धमान के दण्ड विवेक में प्रधानतया दण्ड के चार भेद ही निर्दिष्ट हैं। इन्हें क्रमशः वाग् धिक्, धन और वध दण्ड के रूप में चिन्हित किया गया है। अपराध की गुरूता का विचार करके दण्ड देने का समर्थन शास्त्रकारों ने किया है।[29] वाग् दण्ड एक तरह से निन्दा सूचक व्यवहार का द्योतक था। एक अन्य टीकाकार ने इस तरह के दण्ड में ताड़न का भाव भी निहित मना है। धिग् दण्ड वह है जिसमें किसी को पापी कहकर उसकी भर्त्सना की जाती थी। धन दण्ड दो प्रकार का होता था: - व्यवस्थित और अव्यवस्थित। व्यवस्थित धन दण्ड नियत संख्या में बंधा रहता था और यह तीन तरह का होता था:- प्रथम, मध्यम और उत्तम। अपराध की गुरूता को देखते हुए सामान्य से लेकर दुगुना अर्थदण्ड लगाया जा सकता था और इसे पण या माष कीएक निर्धारित संख्या तक सीमित भी किये जाने का प्रावधान लागू था। वध दण्ड तीन तरह का होता था:- पीड़न, अ्ंगच्छेद ओर प्रमापण। पीड़न कोटि के दण्ड के भी चार भेद थे:- ताड़न, अवरोधन, बन्धन और विडम्बन, ताड़न बेंत की छड़ी से शरीर पर आघात करने की क्रिया को कहते थे। अवरोधन दण्ड की वह प्रक्रिया थी जिसके तहत अपराधी को कारावास में डाल कर उसकी समस्त गतिविधियों को ठप कर दिया

जाता था। बन्धन अर्थात् जंजीर से शरीर को जकड़ देने की क्रिया का नाम था। विडम्बन की अनेक विधियाँ थी। अपराधी के शिर का मुण्डन कराकर उसके मुँह पर कालिख और चूने की पोत चढा दी जाती थी। फिर उसे गदहे पर चढ़ाकर डुगडुगी बजाते हुए गांव या शहर की गलियों में घुमाया जाता था। बीच -बीच में जोर - जोर से उसके अपराध की घोषणा करायी जाती थी। वृहस्पति ने अंगच्छेद की भी चार तरह की विधियों का उल्लेख किया है। इनके तहत लिंग, नयन, जिह्वा, कान, नासिका का छेदन अथवा उत्पादन का कठोर दण्ड दिया जा सकता था। आधी जियवा काटने से लेकर ललाट के ऊपर अष्ट अंगुल प्रमाण का गहरा घाव कर दिया जाता था। प्रमापण दण्ड का वह भेद था जिसके द्वारा अपराधी की देह का नामोनिशान मिटा दिया जाता था। कुल्लुक भट्ट ने देहदण्ड को सीधे मारण ही कहा है। यह भी ज्ञात होता है कि प्रमापण शुद्ध और मिश्र - दो तरह का होता था। अविचित्र और विचित्र ये शुद्ध के दो भेद थे। खड्ग का प्रहार अविचित्र कहा जाता था जबकि विचित्र में अपराधी को शूली पर चढ़ा कर उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी जाती थी। मिश्र दण्ड का वह भेद था जिसके तहत अंगच्छेद आदि करके अपराधी को कुरूप बना दिया जाता था।[30]

संदर्भ स्रोत

1. तदर्थ सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
   ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत् पूर्वभीश्रुवरः।...
   दण्डा शास्ति प्रजा: सर्व्वा दण्ड एवाभिरक्षति दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति
   दण्डं धर्म्म विदुर्बुधा:।। दण्डविवेक पृ0 - 02
2. यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येषतन्द्रितः।
   शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन् दुर्वलान् बलवत्तरा:।। वही पृ0 - 03
3. वही पृ0 - 04
4. सर्व्वतो धर्म्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षणात्।
   अधर्म्मादपि षड्भागी भवत्यस्य च यरक्षणात्।। वही पृ0 -
   धर्म्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव स बान्धवम्।। वही

6 अधर्म्मदण्डनं लोके यशोध्नं कीर्तिनाशनम्। वही

7. अदण्डयन् दण्डयन् राजा दण्ड्यां चैवाप्यदण्डयन्।
   अयशो महदाप्नोति नरकञ्चैव गच्छति। वही पृ0 - 06
8. राजानो मन्त्रिाणञ्चैव विशेषादेनमाप्नुयः।
   अशासनस्तु पापानां नतानां दण्ड धारणात्।। वही
9. दण्डोत्सर्गे रपाजैकरात्रमुपवसेत्, त्रिरात्रं पुरोहितः।
   कृच्छमदण्डेन पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा च।। वही
10. राज्ञा*न्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरूणाय तम्।
    निर्वध दद्याद्विप्रेभ्य: स्वयं त्रिंश्गणीकृतम्।। याज्ञवल्क्य, पृ0 - 07 पर उद्घृत
11. वही पृ0- 08
    नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवतिकन्। वही पृ0 - 09
13. वही पृ0 - 10
14. राजर्मिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवा:।
    निर्मला: स्वर्गमायान्ति सन्त: सुकृतिक्षो यथा।। वही पृ0 - 11
15. शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसन्धिना।
    दण्डं प्रणयिंतु शक्य: सुसहायेन धीमता -वही पृ0 - 12
16. वही पृ0 - 12 - 13

17. उभयोः प्रतिभूग्राह्यः समर्थः कार्यनिर्णये। वही
18. अथे चेत् प्रतिभूर्नास्ति कालर्ययोगस्य वादिनः।
    स रक्षितो दिनस्यान्ते दधाछूताय् वेतनम्।। वही
19. वही
20. अर्थिनामुपसन्नानां यस्तु नोपैति दर्शनम्।
    सुखे प्रसक्तो नृपतिः स तप्येत् नृगो यथा। वही
    तदा तत्र नियुजीत ब्राह्मणं शास्त्रपारगम्।।
22. यस्य राष्ट्र प्रकुरूते शूद्रो धर्मविवेचनम्।
    तस्य सीदति तद्राष्ट्रंपं के गौरिव पश्यतः।। वही
23. द्विजान् विहायः यः पश्येत् कालर्याणि वृषलै सह।
    तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं बलं कोष नश्यति।। वही
24. समाः शत्रौ च मित्रे च नृपते स्युः सभासदाः। वही
25. वही पृ0 - 15
26. सर्वधर्मेभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनम्।। वही
27. यत्र सभ्यजनः सर्व्वः साध्वेतदिति मन्यते स निःशल्यो विवादः स्यात् सशल्यः स्यादितोऽन्यथा। वही पृ0 - 16
28. वही पृ0 - 16 - 19
29. वाग् धिक् धनं वधैव चतुर्द्धा कथितो दमः।
    पुरुषं विभवं दोषं ज्ञात्वा तु परिकलपयेत्।। वही पृ0 20
30. वही पृ0 - 20 - 21

राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययनः राजस्थान राज्य के संदर्भ में

डॉ० अमित कुमार सिंह

प्रस्तावना

क्रिकेट से न केवल छात्रों में नेतृत्व गुणों का विकास होता है अपितु ये मनोरंजक एवं आनन्ददायक भी होते हैं। इनको छात्र अपनी इच्छा के अनुसार अपनाते हैं। छात्रों को क्रिकेट को अपने विद्यार्थी जीवनकाल में आजमाने का अवसर मिलता है। खेल ही छात्रों के लिए एक ऐसा साधन हैं जिनके द्वारा छात्रों में संघर्ष-प्रवृति को बहुत अच्छी तरह से प्रेरित किया जा सकता है। क्रिकेट कुछ विशेष नियमों पर आधारित होते हैं, जिनका पालन करना प्रत्येक खिलाड़ी का कर्त्तव्य होता है। खिलाड़ी छात्रों का उददेश्य भाग लेने वाले विपक्षियों के कौशलों को मात देकर अन्त में सफल होना होता है। खिलाड़ी छात्र के जीवन में इस भावना का बहुत अधिक महत्व होता है क्योंकि प्रतिस्पर्द्धा की भावना व्यक्ति के जीवन काल के साथ ही शुरू हो जाती है। इसके अलावा खेलों का छात्रों के जीवन में शैक्षिक मूल्य भी होता है। इन खेलों में भाग लेने वाले छात्रों में निष्ठा, दृढ़ विश्वास, सहयोगी भावना तथा आत्मविश्वास एवं नेतृत्व जैसे अच्छे खिलाड़ी के गुणों का विकास होता है। क्रिकेट के द्वारा छात्रों में वांछनीय सुधार एवं परिवर्तन लाए जा सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने सभी नागरिकों से यह आशा रखता है कि वे शारीरिक रूप से स्वस्थ हों क्योंकि किसी भी राष्ट्र का उत्पादन और दक्षता बहुत हद तक उसके देशवासियों के स्वास्थ्य पर निर्भर करती है।

उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने का निर्णय लिया है। इस प्रकार का अध्ययन कार्य आज तक बहुत ही कम हो पाया है, बल्कि राज्य स्तर एवं जिला स्तर क्रिकेट खिलाड़ियों को लेकर शोध अध्ययन नहीं हुआ है। अतः राज्य स्तर एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की समस्याओं का अध्ययन कर सरकार, संचालकों, समाज एवं राष्ट्र को एक नई दिशा दिखाने में यह शोधकार्य मार्गदर्शन कर सकेगा।

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, आईएएसई मानित विश्वविद्यालय, गांधी विद्या मंदिर, सरदार शहर, राजस्थान-331403

अध्ययन का महत्व

प्रस्तुत अनुसन्धान का उद्देश्य राज्य स्तर एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों के मध्य शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

शारीरिक क्रियाओं में योग साधनाएं, खेलकूद, व्यायाम एवं प्राणायाम भी महत्वपूर्ण है। प्राणायाम श्वास के नियंत्रण से सम्बन्धित है। प्राणायाम के भी कई प्रकार हैं तथा उनके शरीर तथा मस्तिष्क पर अलग-अलग प्रभाव पड़ते हैं। जैसे उज्जायी प्राणायाम फेंफड़ों तथा स्नायु तन्त्रिकाओं को स्वस्थ बनाने में, कपालभाति प्राणायाम जिगर, प्लीहा, अग्नाशय को स्वस्थ रखने में व पेट व पाचन तन्त्र के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। शीतली प्राणायाम शरीर को शीतल रखने, आंखों, जिगर, प्लीहा आदि के स्वास्थ्य तथा पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण प्राणायाम है। स्वस्थ, सबल एवं निरोग शरीर हमारी सबसे बड़ी पुंजी है। जिसके अर्जन में जहाँ

वंशानुक्रम आधार होता है वहीं वातावरणजन्य प्रयास इस लक्ष्य को ऊँचाई तक पहुंचाने में सहायता पहुंचाता है। इसके लिए निजी प्रयास करने की आवश्यकता होती है।

शारीरिक रूप से सक्रिय रहने वाले बालक हर क्षेत्र में उन बालकों से आगे रहते हैं जो इनमें भाग नहीं लेते हैं। उनमें नेतृत्व की क्षमता का विकास तो होता ही है साथ ही अनुशासन, आज्ञापालन, निर्णयक्षमता, आपसी सामंजस्य स्थापित करना जैसे उदात्त गुणों का भी विकास होता है जो वर्तमान समाज में 'शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व' की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। यह जनतांत्रिक नेतृत्व गुण के विकास में सहायक है न कि तानाशाही नेतृत्व के। शारीरिक क्रियाओं का महत्व तो स्वयं सिद्ध है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता के मन में इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई।

अध्ययन का औचित्य

पूर्ववर्ती अनुसंधायकों के अध्ययनों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि कुछ अनुसंधायकों ने समस्या में लिये गये किसी एक चर पर अध्ययन किया है तथा कुछ अनुसंधायकों ने किसी दूसरे चर पर अध्ययन किया है। शोधकर्ता ने अध्ययन हेतु जिस समस्या का चयन किया है उस पर कोई भी अनुसंधान अभी तक प्रकाश में नहीं आया है यह पक्ष अछूता रह गया है इसलिए शोधकर्ता ने अपने अध्ययन हेतु समस्या का शीर्षक ''राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन : राजस्थान राज्य के संदर्भ में'' चयनित किया है और इस पर अध्ययन करने का निश्चय किया। अनुसंधानकर्ता की मान्यता है कि प्रस्तुत शोध के जो परिणाम एवं निष्कर्ष प्राप्त होंगे वे निश्चित रूप से शारीरिक शिक्षा जगत एवं क्रिकेट खेल में अपना आंशिक योगदान अवश्य देंगे।

समस्या कथन

''राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन : राजस्थान राज्य के संदर्भ में''

अध्ययन के उद्देश्य

1. राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन करना।
2. जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन करना।
3. राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का कोई निश्चित स्तर नहीं होता है।
2. जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं का कोई निश्चित स्तर नहीं होता है।
3. राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिसीमन

1. शोधकर्ता द्वारा शोधकार्य में केवल क्रिकेट खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत शोधकार्य में राज्य स्तर के 50 एवं जिला स्तरीय 50 क्रिकेट खिलाड़ियों को सम्मिलित किया गया है।
3. प्रस्तुत शोधकार्य में 16 से 19 वर्ष के क्रिकेट खिलाड़ियों को ही सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोधकार्य को न्यादर्श राज्य एवं जिला स्तर के कुल 100 क्रिकेट खिलाड़ियों तक ही सीमित किया गया है।

क्रिकेट खिलाड़ी 100

राज्य स्तरीय 50 जिला स्तरीय 50

शोधविधि

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि अनुसंधान की यह एक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

स्वनिर्मित शारीरिक क्रिया मापनी :-

शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोधकार्य हेतु स्वनिर्मित शारीरिक क्रिया मापनी का प्रयोग किया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता, मध्यमान (M), प्रमाणिक विचलन (SD) एवं क्रान्तिक अनुपात मान (ब्ण् टंसनमद्ध की गणना की जायेगी।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण

प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है -

सारणी संख्या - T.IV.1

राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना

iklrkd ifr'kr			ifr'kr dh lkFkZdrk		
mPp	vkSlr	fuEu	mPp	vkSlr	fuEu
76.00	24.00	0.00	72.30 से 79.70 तक	20.30 से 27.70 तक	0.00 से 0.00 तक

उक्त सारणी में राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों के मध्य शारीरिक क्रियाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाएं उच्च स्तर पर 76 प्रतिशत तथा 72.30 से 79.70 के बीच पायी गयी। औसत स्तर पर 24 प्रतिशत तथा 20.30 से 27.70 के बीच पायी गयी। अतः यह पाया गया कि राज्य स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाएं उच्च स्तर पर सबसे अधिक पाई गई।

सारणी संख्या - T.IV.2

जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना

iklrkd ifr'kr			ifr'kr dh lkFkZdrk		
mPp	vkSlr	fuEu	mPp	vkSlr	fuEu
16	72	12	8.66 से 23.33 तक	63.02 से 80.97 तक	5.50 से 18.49 तक

उक्त सारणी में जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों के मध्य शारीरिक क्रियाओं के प्राप्तांकों का प्रतिशत एवं प्रतिशत की सार्थकता की गणना की है जिसके अनुसार जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाएं उच्च स्तर पर 16 प्रतिशत तथा 8.66 से 23.33 के बीच पायी गयी। औसत स्तर पर 72 प्रतिशत तथा 63.02 से 80.97 के बीच पायी गयी। इसके अलावा निम्न स्तर पर 12 प्रतिशत तथा 5५50 से 18.49 के बीच पायी गयी। अत: यह पाया गया कि जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाएं औसत स्तर पर सबसे अधिक पाई गई।

सारणी संख्या - T.IV.3

राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

खिलाड़ी	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मान (T.Value)	सार्थकता स्तर	
					.05	.01
राज्य स्तरीय	50	8.74	2.10	1.08	सार्थक अन्तर नहीं हैं।	
जिला स्तरीय	50	9.16	2.29			

($df=N_1+N_2-2=50+50-2=98$)

विश्लेषण :-

उपर्युक्त सारणी में क्रान्तिक अनुपात मान 1.08 है जो कि स्वतत्रंता के अंश 98 के विश्वास के स्तर 0.05 तथा 0.01 दोनों सार्थकता स्तरों पर तालिका मान क्रमश: 1.98 व 2.63 है अत: क्रांतिक अनुपात मान दोनों स्तरों पर कम है, इसलिए इस स्तर पर निर्धारित शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है, अर्थात् राज्य एवं जिला स्तरीय क्रिकेट खिलाड़ियों की शारीरिक क्रियाओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता

शारीरिक क्रिया कलापों के माध्यम से ही सामान्य एवं विशिष्ट शिक्षा सम्भव है। अत: आन्तरिक प्रवृत्तियों एवं भावनाओं को आत्म प्रकटन के द्वारा प्रकट करके किशोरों को अन्तर्द्वन्द्व से बचाया जा सकता है और उनका सर्वांगीण विकास सुचारू रूप से विकसित किया जा सकता है। यह सब क्रिकेट जैसे खेलों के माध्यम से ही सम्भव है।

संदर्भ साहित्य

1. उपाध्याय, संतोष कुमार: 'शारीरिक शिक्षा का संगठन एवं प्रशासन' मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल। (1987)
2. कपिल एच. के.:'अनुसंधान विधियां' हर प्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा। (1992)
3. कपिल एच. के.:'सांख्यिकी के मूलतत्व' हर प्रसाद भार्गव, कचहरी घाट आगरा। (1993)
4. कमलेश, एम. एल.: 'शारीरिक शिक्षा एवं खेल मनोविज्ञान' मेट्रो पोलियन बुक कं.प्रा.लि., नई दिल्ली। (1983)
5. कमलेश, एम.एल.: 'शारीरिक शिक्षा के तथ्य एवं आधार' पी.पी. पब्लिकेशन प्रा. लि., फरीदाबाद। (1983)
6. कमलेश, एम. एल. एवं: 'शारीरिक शिक्षा के सिद्धान्त एवं इतिहास' प्रकाश ब्रदर्स, संगराल, एम.एस. जालन्धर, लुधियाना। (1994)

आलोचक अज्ञेय के निबंधों में छिपा आलोक

डॉ० अनिल कुमार

(पूर्व शोधार्थी एल. एन. एम. यू., दरभंगा, हिन्दी विभाग)
पता- भवदेपुर (अम्बेदकर नगर), वार्ड नं0 -12
पोस्ट- भवदेपुर गोट, थाना - रीगा
जिला- सीतामढ़ी (बिहार)
पिन कोड-843302
मो0 नं0 -8789922996

अज्ञेय पेशेवर समीक्षकों, आलोचकों की भंगिमाएँ न अपना कर एक अलग लीक पर चलंत दिखाई पड़ते हैं। वे आलोचक का एक बड़ा वृत्त बनाते हैं जो देश और काल सहित सभ्यता, संस्कृति, भाषा, सौंदर्य, आधुनिकता, परंपरा, इतिहास, स्वाधीनता, संप्रेषण, सामाजिक प्रतिबद्धता तथा प्रासंगिकता पर बेबाकी और गहराई से विचार करता है। ये उनके निबंधात्मक चिंतन के बीज शब्द हैं। अज्ञेय का जीवन उनके जन्म से लेकर जिस तरह एकांतिक, यायावर और अध्यवसायी रहा है उसने उन्हें हर मामले में आत्मनिर्भर बनाया है। वे न केवल अपनी जरूरतों को लेकर बल्कि अपने विचारों और अपनी सैद्धांतिकी को लेकर भी आत्मनिर्भर थे। अज्ञेय अपनी कविताओं में जितने कोमल और संवेदी दिखते हैं उतने ही प्रचंड बौद्धिक वे अपने निबंधों में नजर आते हैं। छुटभैयों की परवाह उन्होंने कभी नहीं की। बढ़ईगिरी से लेकर बागवानी तक जितने भी शौक हो सकते हैं, सबमें महारत न सही, दक्षता तो प्राप्त थी ही।

यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि आलोचकों के एक बड़े वर्ग में हमारी सभ्यता और संस्कृति के विधायक तत्त्वों के प्रति वह जिज्ञासु प्रवृत्ति नहीं रही जो उनके और उनके समकालीनों-मुक्तिबोध, शमशेर और साही जैसे लेखकों में रही है। 'अज्ञेय पहली बार ऐसे पदों, प्रत्ययों को गहराई से संज्ञान में लेते हैं और समाज, व्यक्ति और राष्ट्र के साथ उनके अन्त:सम्बन्धों को विवेचित करते हैं। सभ्यता और संस्कृति पर बात करते हुए वे सभ्यता को बाह्य ओर संस्कृति को आभ्यंतर जीवन की अभिव्यक्ति मानते हैं।'[1]

साहित्य के बारे में उनका मानना है कि जो साहित्य या काव्य अपने समय की चिन्ताओं को, संदेहों को व्यक्त करता है, मूल्यों का संकट पहचान कर उन नए मूल्यों को पाने को छटपटाता है जो इस संकट के पार बचे रह सकते हैं, वही आज का साहित्य है। सभ्यता और संस्कृति के तारों से जुड़ने वाली एक और महत्त्वपूर्ण चीज भाषा है। यह अभिव्यक्ति और बोलचाल का माध्यम है किन्तु एक लेखक के लिए भाषा का वही अर्थ नहीं है, जो आम पाठक के लिए या सर्वसाधारण के लिए। भाषा, लेखक का आयुध है, 'भाषा अपने को पहचानने का साधन है। भाषा मूल्यों की, सृष्टि करना संभव बनाती है। भाषा के द्वारा हम यथार्थ की एक नये ढ़ंग की पहचान करते हैं।'[2] रूढ़ि और मौलिकता में अज्ञेय टी.एस. इलियट के विचारों को आधार बनाकर भारतीय मानस के प्रति जड़ीभूत अवधारणाओं की शल्य-क्रिया करते हैं। आधुनिकता की रौ में रूढ़ियों से दूरी बरतने का रिवाज रहा है। जैसे कि रूढ़ियाँ नितांत अग्राह्य हों। रूढ़ियों को परंपरा से जोड़कर देखने का चलन रहा है और परम्परावादी होना अतीतजीवी होना माना जाता रहा है। विडम्बना है कि हमने रूढ़ियों को इस रूप में देखा ही नहीं कि वे भी सौन्दर्य का वाहक हो सकती हैं और अज्ञेय तो आलोचना की उस प्रवृत्ति की ही आलोचना करते हैं जो परंपरा के नाम पर मुँह चिढ़ाती है। उनके अनुसार रूढ़ियाँ मौलिकता की राह में रोड़े नहीं अटकाती बल्कि देखा जाए तो कभी-कभी अर्थ के उत्कर्ष का निमित्त बनती हैं।

साहित्य में आधुनिकता का बोध, कला के साथ आधुनिकता के बोध से भिन्न हैं। साहित्य में आधुनिकता का एक अर्थ संवेदना की आधुनिकता भी है। सभ्यता के आधुनिकीकरण को साहित्य की आधुनिकता से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। हो सकता है, अत्यंत आधुनिक समाज में मानवीय संवेदना नितांत आधुनिक और सतही हो। अज्ञेय आधुनिकता के इस परिप्रेक्ष्य को संवेदना के नए अर्थों में तलाशते हैं। भारतीय, भारतीय साहित्य, भारतीय समाज में लेखक, लेखक और राज्याश्रय पर भी अज्ञेय जी ने गंभीरता से विचार किया है। उनके आलोचनात्मक निबंधों की प्रशस्त भूमि पर ये सभी मुद्दे विचारणीय रहे हैं। इस दौर में अज्ञेय के अलावा शायद ही कोई लेखक रहा हो जिसने इस परिप्रेक्ष्य में भारतीयता को इतनी गहराई तक खंगाला हो। निर्मल वर्मा की बात उठाई जा चुकी है कि उनकी भारतीयता पश्चिम से अभिभूत दिखती है, जबकि अज्ञेय की भारतीयता भारतीय चिन्तन-मनन और भारतीय समाज के विश्वासों, आस्थाओं और अवधारणाओं पर आधारित है। अज्ञेय के अनुसार, 'महाभारत काल से ही इस देश में यह समझ काम करती रही है कि भारत एक इकाई है, भौगोलिक इकाई भी एवं सांस्कृतिक इकाई भी और भारतीय रचना में भारत भूमि को एक इकाई के रूप में ही देखा गया है।'[3] सांस्कृतिक समग्रता पर विचार करते हुए अज्ञेय ने लिखा है, 'मेरे पात्र चाहें भारतीय हों, चाहे अभारतीय और भारतीय होकर चाहे एक प्रदेश के हों, चाहे दूसरे संप्रेष्य बात यह हो कि भारतीय उस तरह देखता, सोचता, भोगता और जीता है कि इस तरह देखने, सोचने, भोगने और जीने वाले को भारत ने बनाया है-एक समग्र भारत ने।'[4]

लेखक और राज्याश्रय कोई नया मुद्दा नहीं है बल्कि आज लेखकों को ज्यादा राज्याश्रय प्राप्त है। पद, पीठ, पुरस्कार, विदेश यात्राएँ और प्रलोभन के तमाम अवसर उपलब्ध हैं। आज के जमाने में कोई बोरिस पास्तरनाक की तरह पुरस्कार ठुकराने का नैतिक साहस नहीं करता कि इससे उसका स्वप्न छिनता है या वह राज्याश्रयी लेखक बनकर अपनी स्वाधीनता का वैसा उपयोग न कर सकेगा जैसा वह पहले करता आया है। बल्कि आज लेखकों के समक्ष ऐसे बहुतेरे अवसर और प्रलोभन हैं, जिनसे वे उपकृत हैं। इसलिए उनके विरोध में बल नहीं रहा। बाजार से अनुकूलित हैं वे। अज्ञेय उस लेखकीय स्वाधीनता के हिमायती हैं जो न तो राज्याश्रीय प्रलोभनों, दबाबों को महत्त्व देती हो और न ही बाजार की शर्तों से अनुकूलित होती हो।

अज्ञेय ने इतिहास और कला की समस्या पर कई निबंध लिखे हैं। इतिहास को उन्होंने आत्मप्रत्यभिज्ञा का साधन माना है और उनका कहना है कि 'जिनमें यह आत्मप्रत्यमिज्ञा है, न उन्होंने अस्मिता बोध खोया है, न ही उन पर स्वतंत्रता का आतंक लक्षित हुआ है। संस्कृति और इतिहास को आमने-सामने खड़ा कर वे पाते हैं कि सांस्कृतिक संदर्भ के अभाव में इतिहास और ऐतिहासिक संदर्भ के अभाव में संस्कृति का कोई सार्थक अस्तितव नहीं रह जाता।'[5] अगर व्यावहारिक समीक्षा की बात करें तो इसमें अज्ञेय की ज्यादा दिलचस्पी नहीं रही। वे साहित्य को वस्तुत: विचार का विषय मानते थे, समीक्षा का नहीं। साहित्य उनके लेखे संवेदना के परिमार्जन का संसाधन है। उसे संस्कारित करने का उपक्रम है। फिर भी ऐसे बहुतेरे लेख लिखे हैं जिनसे उनकी व्यावहारिक समीक्षा-दृष्टि का पता चलता है। औपन्यासिक लेखक को लेकर उनके कई निबंध है। केवल हिन्दी ही नहीं, विश्व के स्तर पर किए गए औपन्यासिक लेखन के वस्तुगत मूल्यांकन से लेकर प्रेमचंद और परवर्ती अनेक उपन्यासकारों-अश्क, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, रांगेय राघव, यशपाल, नागर के यहाँ शिल्प, तकनीक और अन्य प्रयोगों की पड़ताल करते हुए वे इस मत पर पहुँचते हैं कि 'आख्यान साहित्य ने प्रेमचंद के आख्यान साहित्य से आगे जाकर सफर तय किया है किन्तु मुख्यतया शिल्प की दिशा में। प्राय: उससे बड़ी मानवीय संवेदना अभी हमारे बीच प्रकट नहीं हुई है।'[6] यह बात लगभग 60 के दशक की है किन्तु आज भी क्या उपन्यास या कथा साहित्य में उतनी बड़ी और विलक्षण प्रतिभा हुई है जिसके आगे प्रेमचंद की संवेदना कमतर जान पड़ती हो? यों आधुनिक उपन्यास की विधा भी तो पश्चिम से ही आयात है क्योंकि हमारे यहाँ तो हितोपदेश, पंचतंत्रा या कथा सरित्सागर तुल्य कथा-साहित्य की ही सर्जना की जाती रही है।

अज्ञेय को इस बात की चिन्ता थी कि पाठक साहित्य से कट रहा है तो इसकी जवाबदेही कहीं-न-कहीं उस समय के अध्यापक-आलोचक वर्ग पर भी है जिसके द्वारा बनाये जा रहे समाज से न तो अच्छे पाठक निकल रहे हैं न अच्छे आलोचक या कवि। कुँवर नारायण यों नहीं कहते कि आज गुणग्राहक वर्ग या साहित्य और साहित्यकार के बीच पुल बनाने वाला रसिक संप्रदाय गायब है। एक दूसरी समस्या संप्रेषण की भी है। अज्ञेय बहुधा संप्रेषणीयता पर बल देते हैं, पर कहीं-न-कहीं उनके काव्य प्रयोग चमत्कृत तो करते हैं-संप्रेषित नहीं होते। यही समस्या अन्य कवियों को लेकर भी आती है। कथा भाषा तथा यथार्थ संप्रेषण की समस्या भी पाठक के समक्ष आती है जिसके कारणों पर अज्ञेय ने गहराई से प्रकाश डाला है। एक निबन्ध में अज्ञेय ने चौपाई की लोकप्रियता को रेखांकित करते हुए तुलसीदास के कवित्व की परख की है। भले ही रामचंद्र शुक्ल ने माना हो कि तुलसी की चौपाई

के पीछे मुसलमान कवियों की मसनवी शैली की प्रेरणा रही है किन्तु अज्ञेय ने 'इसके सापेक्ष तुलसी के अप्रतिहत कद को सराहते हुए तत्कालीन देश, काल और परिस्थिति में तुलसी के छन्द-चयन की प्रशंसा की है।'[7]

अज्ञेय का प्रमुख क्षेत्र कविता का रहा है। प्रयोगवादी होने या कहे जाने के नाते विवादास्पद भी रहे। सो कविता, नई कविता या नई कविता गीत को लेकर कथोपकथन शैली में बातें रखी गई हैं। इनमें कविता के संकटों को लेकर तथा नई कविता के बारे में फैलाये गये विभ्रमों का निराकरण किया गया है। दिलचस्प यह है कि नई कविता निबन्ध के प्रश्नोत्तर अज्ञेय ने खुद ही रचे हैं। उन्होंने छायावादी और प्रश्नोत्तर की शंकाओं का समाधान अध्येता के रूप में दिया है। नई कविता उन दिनों जो व्यंग्यवाण झेल रही थी, उसका एक विहंगम दृश्य यहाँ खिंच-सा जाता है। अचरज नहीं कि अज्ञेय ने नई कविता का काव्यशास्त्र रचने या परिभाषित करने की कोशिश अवश्य की किन्तु उसे प्रमाणित और पुष्ट करने वाली व्यावहारिक आलोचना का सम्यक आधार नहीं खड़ा कर सके। इसीलिए अशोक वाजपेयी ने उनके आचार्य सुलभ वर्गीकरणों और व्याख्यानों की सीमाएँ भी गिनाईं तथा यह पाया कि वे नए लेखकों के लिए न तो उत्तेजक हैं, न नई। उनका मानना था कि अज्ञेय का चिन्तन भी कहीं-न-कहीं आचार्यों की चिन्तन रूढ़ियों और पद्धतियों का शिकार रहा है। केशव की कविताई भी वार्तालाप विधा में किया गया प्रश्नोत्तर ही है। कदाचित यह वह समय था जब अज्ञेय अपने आलोचकों को एक ओर प्रत्युत्तर भी दे रहे थे, दूसरी ओर साहित्य के मानक प्रश्नों से जूझ भी रहे थे। बहुतों को उनका काव्य चिन्तन आत्मग्रस्तता और समकालीन रचना और जीवन से असम्पृक्त जान पड़ता था।

एक जमाने में कविता वाचिक और लिखित परंपरा रही है। हमारी संस्कृति में भी एक समृद्ध वाचिक काव्य-परंपरा रही है। अव्वल तो हमारा प्राचीनकाल वाचिकश्रुत परंपरा से ही आज लिखित रूप में निबद्ध हो सका है किन्तु मुद्रण के आविष्कार के बाद कविता के वाचिक आस्वाद के साथ-साथ अपने पाठ्य बल पर भी लोगों का ध्यान गया और कहना न होगा कि कविता जितना अपने वाचिक पाठ में सँवरती है आस्वाद के नए शिखर छूती है, सर्वसाधारण और रसिकों को आनंदित करती है, उतना ही आस्वाद्य रूप उसके लिखित और अस्वाद्य रूप उसके लिखित और मुद्रित पाठ में भी होता है। कविता की नानाविध व्यंजनाएँ वित्त को बाँध लेती है। कविता एक साथ सामाजिक और व्यक्ति के एकांतिक उपयोग की वस्तु बनती और व्यवहृत होती है। अज्ञेय काव्यास्वाद के धरातल पर उसके श्रव्य और पठ्य दोनों आयामों की गहराई में उतरते हैं और मेरे ख्याल से पठ्य रूप से सापेक्ष श्रव्य रूप को कमतर नहीं आँकते। अज्ञेय के काव्य का प्रारंभिक दौर छायावादी कविता से प्रेरित-प्रभावित रहा है। उनके प्रेरकों में मैथिलीशरण गुप्त तथा हरिऔध जैसे कवि रहे हैं। दूसरे, वह दौर गीत रचना और छन्दों के बहुविध प्रयोगों का भी था। लिहाजा, अज्ञेय ने बहुतेरे गीत लिखे हैं।

अज्ञेय की आलोचना-दृष्टि पर दृष्टिपात करते हुए सप्तकों की भूमिकाएँ जरूर देखनी चाहिए। कविता के नए प्रयोगों के पुरस्कर्ता होने के नाते वे तमाम जरूरी बातें इन भूमिकाओं में रहते हैं। इस पर साहित्य में बहुत सी बातें हुईं और दुहराई जा चुकी हैं। उनके पुनरावर्तन की आवश्यकता नहीं है। उस दौर की आलोचनाओं को अज्ञेय खुद उत्तेजनापरक मानते हैं और उनसे उलझते रहे हैं। नए कवि का मूल्यांकन करते हुए वे 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में कहते हैं जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है, वे लीक पीटने वाले से अधिक कुछ नहीं हैं-भले ही जो लीक वह पीट रहे हैं, वह अधिक पुरानी हो, उनकी चिन्ता थी कि धातु उतनी खोटी नहीं है जितनी कि कसौटियाँ ही झूठी हैं।

संदर्भ :

1. 'अज्ञेय का निबंधकार रूप', रूपम मिश्र, प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली, 1946, पृ.-52
2. 'केन्द्र और परिधि', अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृ.-140
3. 'अज्ञेय के निबन्ध', रमाकांत पाराशर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ.-267
4. 'केन्द्र और परिधि', अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृ.-07
5. 'अज्ञेय का आलोचना साहित्य', शाश्वती परमार, अभिनव प्रकाशन, जयपुर, 1997, पृ.-140
6. वही, पृ.-187
7. 'हिन्दी के प्रमुख निबंधकार', जटाशंकर तिवारी, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, 1977, पृ.-176

सम्पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा

डॉ० कुमार आलोक रंजन

मु0 प्रगति नगर
वार्ड नं0-30
पो0 - भौआरा
प्रखण्ड-रहिका
थाना + जिला - मधुबनी-847212 (बिहार)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की यात्रा सिर्फ मार्क्सवाद, समाजवाद, गाँधीवाद, सर्वोदय तक ही सीमित नहीं था, उनकी यात्रा और आगे की थी। यात्रा के अगले पड़ाव के रूप में उन्होंने 'सम्पूर्ण क्रांति' को चुना। 'सम्पूर्ण क्रांति' गाँधीवादी कोख की उपज थी। उनके हर काम तथा विचार में सबसे ज्यादा जोड़ जनता पर होता था। लोकतंत्र में वे 'लोक' को सर्वोपरि मानते थे और बाकी सभी चीजों को उनके बाद। इसी भावना से उपजी थी–'सम्पूर्ण क्रांति' की उनकी अवधारणा।

जयप्रकाश नारायण संघर्ष पथ के पथिक थे। उनका अपराध यह था कि मानव मुक्ति के अपने सपने को लेकर वे लकीर के फकीर नहीं बने रहे, बल्कि नई लकीरें खींचते रहे। उनकी जीवन यात्रा या विचार यात्रा अन्ततः 'अधिक से अधिक राज्य' से शुरू होकर 'अधिक से अधिक लोक' की ओर अग्रसर होती रही। वास्तव में बीसवीं सदी में अगर भारत में राजनीतिक विचारधाराओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना हो, राजनीतिक परिवर्त्तनों का आकलन करना हो तो जयप्रकाश इसके लिए सबसे विश्वसनीय सन्दर्भ-स्रोत है। वे मार्क्सवादी हुए तो ऐसे ही उनकी किताब 'व्हाई सोशलिज्म' (1936) पढ़कर कितने लोग कम्यूनिस्ट हो गये। स्वयं गाँधीजी ने कहा–'मार्क्सवाद के बारे में जो जयप्रकाश नहीं जानते, वह दूसरा कोई नहीं जानता।' लेकिन सटालिन मार्का समाजवाद और परतंत्र भारत में कम्यूनिस्टों की भूमिका से वे निराश हुए, दूसरी ओर 'अच्छाई की प्रेरणा' को उन्होंने पदार्थवादी चेतना के ऊपर रखा। गाँधीजी की मृत्यु से वे बेहद विचलित हुए और अपनी और अपनी पार्टी की राजनीतिक भूमिका का गहन मूल्यांकन किया और गाँधीवाद की ओर उन्मुख हुए। फिर उन्हें 'सर्वोदय' में संभावना नजर आयी और जीवनदानी बन गये। लेकिन उन्हें सर्वोदय से भी मोह भंग हुआ, क्योंकि उसमें गांधी की अस्त्रों की उपेक्षा हुई, समाज को बदलने के लिए सिर्फ हृदय परिवर्त्तन का ही सहारा लिया गया और तब युवाओं में उन्हें संभावना नजर आई, अवसर गुजरने के बाद बिहार ने दिया। युवाओं को परिवर्त्तन को वाहक मानकर उन्होंने 5 जून, 1974 को पटना के गाँधी मैदान में 'सम्पूर्ण क्रांति' का उद्घोष किया।[1]

'सम्पूर्ण क्रांति' के उद्देश्य मूलतः भारतीय लोकतंत्र को 'रीयल' यानी वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, जनता का स्वराज्य कायम करना, समाज में अन्याय, शोषण आदि का अंत करना और नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रांति करना, नया बिहार बनाना और अन्ततोगत्वा नया भारत बनाना।[2] उनके लिए सम्पूर्ण क्रांति दुहरी क्रांति थी–व्यक्ति और सामाजिक संरचना दोनों में स्पष्ट परिवर्त्तन करना उनका उद्देश्य था। संक्षेप में इसका उद्देश्य था सामाजिक संरचना को पूरी तरह बदलना क्योंकि उनके विचार में व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो चुकी थी कि बिना पूरी व्यवस्था बदले नैतिक और समतामूलक समाज का निर्माण नहीं हो सकता था। जयप्रकाश नारायण ने 1969 में ही लिखा था–''गांधी की अहिंसा सिर्फ कानून और व्यवस्था की वकालत या यथास्थितिवाद के लिए पर्दा नहीं थी, बल्कि एक क्रांतिकारी दर्शन थी। दरअसल संपूर्ण क्रांति एक दर्शन है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक आचारों और मूल्यों को उतना ही समावेश है, जितना आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं का।[3]

सम्पूर्ण क्रांति क्या है? इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् जे.पी. ने इसे प्राप्त करने की प्रक्रिया पर विचार किया। सम्पूर्ण क्रांति की विधि के बारे में इमरजेंसी में लिखी गयी अपनी जेल डायरी 'कारावास की कहानी' में प्रश्न उठाते हुये जयप्रकाश ने कहा है ''जिसे मैंने संपूर्ण क्रांति का नाम दिया है वह कैसे हो ? समाज के हर पहले, हर क्षेत्र में क्रांति कैसे हो ? ऐसे सत्याग्रह का एक अव्यक्त गूढ़ार्थ होगा आत्मपरिवर्त्तन अर्थात् परिवर्त्तन चाहने वाले ऐसी कोई कार्रवाई शुरू करने के पूर्व अपने आपको परिवर्त्तित कर लें।''[4]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण क्रांति शांतिमय और लोकतांत्रिक क्रांति है। इसके अन्तर्गत हिंसा और किसी प्रकार की तानाशाही के लिये कोई स्थान नहीं है अपितु इसमें शांतिमय जन संघर्ष का समावेश है। वस्तुत: जयप्रकाश यह मानते थे कि जन संघर्ष के बिना क्रांति संभव नहीं है।[5] उनके और विनोबा के दृष्टिकोण में यही प्रमुख अन्तर था। क्रांति के स्थान पर विनोबा आत्मशुद्धि एवं हृदय परिवर्त्तन द्वारा साध्य को प्राप्त करने की बात कहते थे, जबकि जे.पी. समय-समय पर संघर्ष की बात भी करते थे।

जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति की प्रक्रिया में निम्न बातें सन्निहित हैं :-

शांतिमयता :

शांतिमयता को जयप्रकाश सम्पूर्ण क्रांति की एक अनिवार्य शर्त मानते थे। उन्हीं के शब्दों में क्रांति का लक्ष्य है वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना और इस लक्ष्य को हिंसा के माध्यम से नहीं प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि शांति और लोकतंत्र एक ही सिक्के के दो पहले हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है।[6] 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान जयप्रकाश को हिंसा का रास्ता अपनाने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं थी लेकिन अपने चिंतन के लोकतांत्रिक समाजवादी दौर में ही वे मानने लगे थे कि लोकतांत्रिक परिस्थितियों में हिंसा का रास्ता, प्रति क्रांतिकारी का रास्ता है। 1974 में जब जयप्रकाश ने बिहार आंदोलन का नेतृत्व संभाला और संपूर्ण क्रांति के लिये आवश्यक शर्त बतलाया। दरअसल, 1974 के आंदोलन की शुरूआत के पहले ही जयप्रकाश हिंसा-अहिंसा के प्रश्न पर विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि- (1) भारत में हिंसक तरीकों से क्रांति संभव नहीं है। (2) सिर्फ संवैधानिक तरीकों से भी क्रांति संभव नहीं है और (3) अहिंसक तरीकों से संभव है। हालांकि इस संभावना की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है।

अत: जयप्रकाश नारायण जनता की अहिंसक शक्ति मुख्यत: विचार परिवर्त्तन और जहाँ आवश्यक हो सत्याग्रह द्वारा क्रांति लाये जाने के पक्ष में थे। जयप्रकाश नारायण के अनुसार क्रांति का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि पुरानी व्यवस्था को नष्ट कर दिया जाये। क्रांति का लक्ष्य क्रांति के मूल्यों के अनुरूप नयी समाज व्यवस्था को नष्ट कर किया जाये। क्रांति का लक्ष्य के मूल्यों के अनुरूप नयी समाज व्यवस्था का निर्माण होता है। शांतिमय क्रांति में यह विशेषता होती है कि जड़ हो चुकी पुरानी व्यवस्था को नष्ट कर दिया जाये। क्रांति का लक्ष्य क्रांति के मूल्यों के अनुसार नये समाज व्यवस्था का निर्माण होता है। शांतिमय क्रांति में यह विशेषता होती है कि इसमें पुराने समाज को बदलने और नये समाज के निर्माण का काम साथ-साथ होता रहता है। इसे ही जयप्रकाश ने संघर्ष और रचना की दोहरी प्रक्रिया कही है।

निर्दलीयता :

सम्पूर्ण क्रांति की प्रक्रिया के अन्तर्गत जयप्रकाश ने लोकशक्ति के जागरण और निर्दलीय गैर-दलीय दृष्टिकोण को बहुत महत्व दिया था। दूसरी ओर वर्त्तमान संसदीय लोकतंत्र के संदर्भ में जयप्रकाश राजनीतिक दलों के महत्त्व और आवश्यकता को भी स्वीकार करते थे। 1977 में जनता पार्टी के गठन और केन्द्र में तीस वर्षो से लगातार चले आ रहे कांग्रेसी शासन का अंत करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। अपने चिंतन के सर्वोदयी दौर में जयप्रकाश ने जनता की व्यापकतम हिस्सेदारी वाले सामुदायिक एवं दलविहीन लोकतंत्र की वकालत की थी। लेकिन 1974 के बिहार आंदोलन के दौरान उन्होंने स्पष्ट तौर से कहा था कि यह एक अति दूरगामी उद्देश्य है जिसे एक वर्गविहीन और जातिविहीन समाज में ही प्राप्त किया जा सकता है।[7]

शांतिमय वर्ग संघर्ष :

सम्पूर्ण क्रांति के विधि के अन्तर्गत जयप्रकाश की अवधारणा शांतिमय वर्ग संघर्ष की थी। वर्ग संघर्ष का विचार जयप्रकाश ने 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार के गठन के बाद अपने जीवन के अंतिम दिनों में रखा था। आज के संदर्भ में यह विचार अत्यधिक प्रासंगिक भी है। अगस्त 1990 में तत्कालीन राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की प्रक्रिया के आरंभ के बाद से भारतीय समाज और राजनीति में जो मंथन हुआ है और जिस तरह भारतीय समाज आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में लगभग जाति के आधार पर बंट चुका है उसे ध्यान में रखते हुये अब शांतिमय वर्ग संघर्ष के जरिये ही संपूर्ण क्रांति की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

इन परिस्थितियों को देखते हुये जयप्रकाश इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उच्च वर्ग के लोगों को समझा-बुझाकर उन्हें जो विशेष सुविधाएँ मिली हैं, छुड़ाना और विभिन्न जातियों के बीच एकता का वातावरण बनाना काफी कठिन काम है। जो नीचे दबे हैं वे जब तक अपनी ताकत प्रतिपादित नहीं करते हैं, और उनमें आत्मसम्मान की भावना पैदा नहीं होती तब तक ऊपर वालों में परिवर्त्तन कराना कठिन है।[8]

जयप्रकाश नारायण के वर्ग संघर्ष की अवधारणा को गांधीवादी शब्दावली में भी व्यक्त किया जा सकता है। अपनी मार्क्सवादी पृष्ठभूमि के कारण जयप्रकाश ने वर्ग संघर्ष शब्द का प्रयोग किया, लेकिन जयप्रकाश एवं मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की अवधारणाओं में महत्वपूर्ण असमानताएँ हैं, यथा :

* मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की अवधारणा का संबंध ऐतिहासिक भौतिकवाद से है। इसके अनुसार सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। दूसरी ओर जयप्रकाश का वर्ग संघर्ष वांछनीय दिशा में तेजी से सामाजिक परिवर्त्तन लाने की एक तकनीक है जैसा कि जयप्रकाश ने स्वयं कहा है कि इसके लिये ''स्थायी संघर्ष चलते रहने की साम्यवादी कल्पना की कोई आवश्यकता नहीं है।''[9]
* जहाँ मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के अन्तर्गत हिंसा को स्थान दिया गया है वहाँ जयप्रकाश का वर्ग संघर्ष पूर्णत: शांतिमय वर्ग संघर्ष है।
* मार्क्सवादी हिंसक वर्ग संघर्ष के उद्देश्य ''सर्वहारा की तानाशाही'' की स्थापना करना होता है जबकि जयप्रकाश का वर्ग संघर्श संपूर्ण क्रांति के उनके चिंतन का अंग है।
* मार्क्सवाद के अन्तर्गत सर्वहारा वर्ग को ही एक मात्र क्रांतिकारी वर्ग माना गया है और पूंजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच की संघर्ष की कल्पना की गयी है। जयप्रकाश के अनुसार यह वर्ग विश्लेषण औद्योगिक देशों पर ही लागू हो सकता है, भारत जैसे कृषि प्रधान देश पर नहीं, जयप्रकाश की क्रांतिकारी आशाएँ मुख्यत: युवा शक्ति और खेतिहर वर्ग के इर्द-गिर्द केन्द्रित थी।[10] इसके अतिरिक्त जयप्रकाश यह भी स्वीकार करते थे कि ग्रामीण भारत में वर्ग और जाति लगभग मिली-जुली है।

स्पष्टत: जयप्रकाश नारायण ने गाँधी मार्ग से भारत में एक ऐसी संपूर्ण क्रांति की परिकल्पना की थी जिसमें एक नये समाज की रचना की बात समाहित थी। उन्होंने ''ऐसे समाज की रचना के लिये एक ऐसी क्रांति की जरूरत महसूस की जो संपूर्ण भी हो, समग्र भी हो। जो समाज के एक-एक अंग को छूती हो।''[11] जयप्रकाश के संपूर्ण क्रांति के विचार, क्रांतिकारी विचारों में विभाजित है। उनका कहना है ''सात प्रकार की क्रांतियाँ मिलकर संपूर्ण क्रांति होती है, ऐसा मैं कहता रहा हूँ। वे हैं-(1) सामाजिक क्रांति, (2) आर्थिक क्रांति, (3) राजनीतिक क्रांति, (4) सांस्कृतिक क्रांति, (5) वैचारिक क्रांति अथवा बौद्धिक क्रांति (6) शैक्षणिक क्रांति, एवं (7) आध्यात्मिक क्रांति। सात की इस संख्या को बढ़ाया जा सकता है और घटाया भी। उदाहरणार्थ सांस्कृतिक क्रांति में शैक्षणिक एवं वैचारिक क्रांतियाँ सन्निहित हो सकती हैं और यदि सांस्कृतिक शब्द का मानवशास्त्रीय अर्थ बताया जाय तो उसमें लगभग सभी कुछ समा जाते हैं। किन्तु जो पुरातन समाज के संदर्भ में सांस्कृतिक का अर्थ है वह, आमतौर पर सभ्य समाज के संदर्भ में नहीं लिया जाता। उसी प्रकार सामाजिक क्रांति को यदि मार्क्सवाद की भूमिका 'सोशल रिवॉल्यूशन' के अर्थ में लिया जाये तो आर्थिक और राजनैतिक क्रांति अवश्य आ जाती है। अन्य बातें भी उसमें समाज सकती हैं। उसी प्रकार इसकी संख्या बढ़ाने हेतु एक-एक क्रांति को ''ब्रेक-अप'' (खंडित) किया जा सकता है। आर्थिक क्रांति के बदले औद्योगिक क्रांति, कृषि क्रांति, यांत्रिक क्रांति आदि जुड़े जा सकते हैं या नैतिक क्रांति को सांस्कृतिक क्रांति का एक विभेद माना जा सकता है, आदि।''[12]

(1) सामाजिक क्रांति :

जयप्रकाश नारायण समाज के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्त्तन लाना चाहते थे। वे तत्कालीन समाज में व्याप्त जातीयता को अभिशाप मानते थे। वे मानते थे कि राजनीति ने जाति व्यवस्था को मजबूत किया है। गाँवों में हरिजन अलग बस्तियों में रहते हैं। वे सवर्णों के कुँओं से पानी ले सकते, या तो एकाध कुँआ होता है जिसे अछूतों का मान लिया जाता है। उससे सवर्ण ही पानी पीते हैं, हरिजन नहीं। अगर आदमी की जैसी इज्जत चाहने पर जरा-सा भी जोर दिया जाता है तो उसके भयंकर नतीजे होते हैं। कभी-कभी तो उन्हें जिन्दा जला दिया जाता है।[13]

(i) जातिवाद उनमूलन :

जयप्रकाश सामाजिक क्रांति के तहत जातिवाद और समाज में व्याप्त कुरीतियों के उन्मूलन पर जोर देते थे। जातिवाद उन्मूलन के लिये मनुष्य-मनुष्य में भेद मिटाना होगा। जाति-पाति, छुआछूत सभी समाप्त करने होंगे। वह कहते थे कि जनेऊ यदि उच्च जाति का प्रतीक माना जाता हो, तो जनेऊ भी तोड़ना होगा। हिन्दुस्तान में अधिकतर वे लोग बसते हैं जिन्हें जनेऊ पहनने का अधिकार नहीं है। अत: जातिवाद से जुड़ी सभी परंपराओं को तोड़ना होगा। वे मानते थे कि मनुष्य के गुण-कर्म के अनुसार उसकी इज्जत हो। यदि कोई दुराचारी, अन्यायी, लोभी हो और ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ हो तो उन्हें ब्राह्मण नहीं मानना चाहिए। उनका मानना था कि कोई मनुष्य अच्छा है तो अपनी जाति के कारण नहीं बल्कि अपने चरित्र के कारण वैसे ही कोई बुरा आदमी है तो वह अपनी जाति के कारण नहीं, बल्कि अपने चरित्र के कारण है। जयप्रकाश अपने सामाजिक क्रांति के तहत् समाज के मानस में इस प्रकार के परिवर्तन लाना चाहते थे। संपूर्ण क्रांति में शामिल होने के लिए तो हर व्यक्ति को यह सब करना होगा। आपस में जाति के व्यवहार को पूर्णतया छोड़ना होगा, खान-पान में एकता रखनी होगी। जयप्रकाश का मानना था कि विज्ञान, टेक्नॉलोजी और औद्योगीकरण के विकास के साथ-साथ छुआछूत की भावना कम होती जायेगी। छुआछूत उन्मूलन के लिये वे कहते थे कि-''जब हम गाँव जाते हैं तो अक्सर सवर्णों के यहाँ ठहरते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन अभी अवर्णों के यहाँ भी ठहरना चाहिए। उनके यहाँ भी खाना-पीना करना चाहिए, ब्राह्मण-हरिजन के सहभोज का कार्यक्रम भी इस दिशा में सहायक सिद्ध हो सकता है।''[14]

(ii) समाज में व्याप्त कुरीतियों का उन्मूलन :

जातिप्रथा उन्मूलन के साथ-साथ जयप्रकाश समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे शादी, जन्म और मृत्यु से जुड़े बुरे रिवाज को भी संपूर्ण क्रांति के द्वारा समाप्त करने की बात करते थे। उनका मानना था कि शादी-ब्याह का पवित्र संस्कार बाजारू बनकर रह गया है। तिलक दहेज जैसी कुरीतियाँ परिवार की प्रतिष्ठा और कुल की मर्यादा का अंग बनकर रह गई है। इनके सामने कानून विवश है। इनसे मुक्ति पाने के लिए जयप्रकाश ने युवक और युवतियों को विद्रोह का नारा बुलंद करने को कहा है। वे युवकों को भारतीय संस्कृति को याद दिलाते हुये यहाँ पूर्व में प्रचलित स्वयंवर की बात करते हैं जिसमें लड़की अपना वर स्वयं चुनती है। इसी तरह कई ढकोसलापूर्ण विचार तथा मृत्यु के बाद ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देना आदि जन्म से जुड़ी कुरीति सभी तो तोड़ना होगा। जयप्रकाश के अनुसार यह जो क्रांति का विचार है वह समाज जीवन के एक-एक अंग का एक-एक तंत्र को स्पर्श करता है। दिवाली-दशहरा के पर्व के संदर्भ में जयप्रकाश ने अपील की है कि ''पूजा कीजिए पर पूजा का तमाशे से कोई संबंध नहीं है। अब जो रेकॉर्ड उत्सव में बजाये जाते हैं उनका पूजा से क्या

संबंध? अरे बाबा दुर्गाजी के बारे में कोई गीत को भजन हो तो समझ में आता है। यह फिल्मी गाने गाते हैं, रातभर यह सब बजता है। यह क्या हमारी संस्कृति है? इसको हम हिन्दू संस्कृति कहते हैं? संपूर्ण क्रांति में इन सब में भी परिवर्त्तन होगा। पूजा के लिये पूजा की भावना होनी चाहिए, तमाशे की भावना नहीं होनी चाहिए। इसी तरह शादी-ब्याह तथा अन्य दूसरे तीसरे प्रसंगों पर धनवान लोग एवं मंत्रीगण दिखावा और वैभव प्रदर्शन करते हैं वह सब बन्द होना चाहिए। देश में आज जो गरीबी है उसे देखते हुये यह सब भी भद्दा लगता है।''[15]

(2) राजनीतिक क्रांति :

जयप्रकाश ने अपने संपूर्ण क्रांति के तहत राजनीतिक क्रांति की बात कही है और उसमें एक बेहतर राजनीतिक व्यवस्था पर जोर दिया है। उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई है तथा उसे रोकने के उपाय सुझाये हैं। साथ ही चुनाव संबंधी कानून

एवं पद्धति में सुधार लाने की आवश्यकता बतायी है। जयप्रकाश ने राजनीतिक क्रांति के तहत सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर जोर दिया है। उन्होंने राजनीति की नयी शैली और पद्धति की चर्चा की है। उनके अनुसार, ''संपूर्ण क्रांति के संदर्भ में जब मैं राजनीति शब्द का प्रोग करता हूँ तब उसका प्रचलित अर्थ सत्ता की राजनीति से नहीं लेता हूँ। इस शब्द के प्रचलन के कारण ही उस शब्द का प्रयोग करता हूँ, किन्तु वह राजनीति प्रचलित राजनीति से सर्वथा भिन्न होगी। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात जैसे ही हम स्वीकार करते हैं वैसे ही राजनीति का स्वरूप आमूल बदल जाता है। यह तभी होगा जब जनता की शक्ति निखरेगी। ऐसी जनशक्ति निखरे, यही संपूर्ण क्रांति के संदर्भ में अपना मूल लक्ष्य है। हमें ऐसी बुनियादी कार्य में लगना है ताकि सत्ता का केन्द्रीय प्रभुत्व से राजनीति को मुक्त किया जा सके।''[16]

(iii) सत्ता का विकेन्द्रीकरण :

जयप्रकाश नारायण ने राजनीतिक क्रांति के संदर्भ में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात की है। सत्ता के केन्द्रित होने में उन्हें खतरा महसूस हुआ। अत: उन्होंने स्थानीय स्वायत्त शासी संस्थाओं की ओर जाने की बात कही। उनके अनुसार ग्राम, प्रखण्ड और जिला स्तर की स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएँ ही हमारे लोकतंत्र की बुनियाद को मजबूत बना सकेंगी। सत्ता हथियाने तानाशाही लादने के वृत्ति के विरुद्ध विकेन्द्रित व्यवस्था ही ढाल बन सकती है। इसलिए हमारा झुकाव सत्ता के विकेन्द्रीकरण की ओर होगा। इसके परिणामस्वरूप आम जनता के जीवन को प्रभावित करने वाले सवालों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में देश के दूर-दराज के गाँव वालों को भी शामिल किया जा सकेगा।[17]

(3) आर्थिक क्रांति :

भारत के समक्ष आर्थिक समस्याएँ विकराल रूप धारण करके उपस्थित हैं। हालांकि यह समस्या समस्त विश्व के लिये चुनौती का विषय बनी हुई हैं। अर्थशास्त्री, मनीषी, समाज सुधारक इसके लिये विभिन्न फार्मूला तैयार करके समस्या के समाधान हेतु चिंतित हैं। जयप्रकाश जी गाँधी के सपनों के भारत के निर्माण हेतु चिंतित थे, उनके हृदय में देशोत्थान की तड़प थी और देशेत्थान के संपूर्ण सपने आर्थिक समस्या की आधारशिला पर ही आश्रित है। जयप्रकाश ने भारतीय ग्रामीणों के महत्त्व को भली प्रकार परखा तथा समझा। वे देश की प्रगति की लहर को ग्राम से नगर की ओर ले जाना चाहते थे। उनके मानस में यह बात स्थायी रूप से घर कर चुकी थी कि ग्रामों की आर्थिक समस्या का समाधान गाँधीवादी तथा सर्वोदयी विचार से ही संभव है।

(i) आर्थिक विकेन्द्रीकरण :

जयप्रकाश आर्थिक सत्ता को भी राजनैतिक सत्ता की भाँति विकेन्द्रित करने के हिमायती दीखते हैं। उनका कहना था कि राजनैतिक विकेन्द्रीकरण आर्थिक विकेन्द्रीकरण के बिना संभव नहीं है और न व्यावहारिक विकास की मापदंड अंतिम व्यक्ति ही माना जाना चाहिए। उसे केन्द्र में रखकर आर्थिक रचना और साधनों का संयोजन इस प्रकार हो कि विकास में प्राथमिकता जीवन की मूल आवश्यकता को मिले।[18] उत्पादन के साधनों और पद्धति का संयोजन इस प्रकार हो कि हर हाथ को काम मिले। कोई भी परिवार ऐसा न बचे जिसके पास जीविका के लिए उत्पादन का समुचित और स्थायी साधन न हो। यह तभी संभव होगा जब विकास के लिये खेतिहर औद्योगिक योजना अपनायी जाये जिससे खेती और उद्योग दोनों साथ-साथ चलें।[19]

(ii) कृषि क्रांति :

जयप्रकाश आर्थिक क्रांति के तहत् खेतिहर क्रांति की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनका विश्वास था कि खासकर उन प्रदेशों में जहाँ जमींदारी रही है, वहाँ के ग्रामीण समाज में खेतिहर क्रांति के बिना कोई बुनियादी परिवर्त्तन होने वाला नहीं है। उनका मानना था कि परिवर्तन कानून से नहीं होता है। इसके लिये आवश्यक है कि उसके दर्शन को स्वीकार्य करने वाला कार्यकर्त्ताओं का एक बड़ा समुदाय हो जो सिर्फ कानून बन जाने के कारण किसी नीति को स्वीकार न करते हों, बल्कि इसलिए कि यह नीति सही है, उसमें उनकी निष्ठा है, रूचि है, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि मैं गर्व नहीं करता लेकिन आपको बता दूँ कि सीलिंग का कानून बनने के पहले ही मैंने अपनी जमीन भूमिहीन परिवारों के बीच बाँट दी थी। मेरे कई समाजवादी साथियों ने ऐसा किया था।

(iii) थातेदारी (ट्रस्टीशीप) :

जयप्रकाश नारायण आर्थिक क्रांति लाने हेतु गाँधीयन थातेदारी के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। उनके विचार में समस्याओं का हल कानून बनाकर डरा-धमकाकर नहीं किया जा सकता। उनका मानना था कि जब तक लोगों के ह्रदय का स्पर्श नहीं किया जाता समस्याएँ सुलझती नहीं है। जब तक किसी भी कार्य को करते हुये मानवीय मूल्यों को कोई प्रेरणा सामने नहीं होगी कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। थातेदारी सिद्धांत के अनुसार यदि किसी व्यक्ति ने बड़ी मात्रा में धन एकत्र किया है तो संपूर्ण सम्पत्ति उसकी नहीं वरन् सारे समाज की है। वास्तव में जिस व्यक्ति ने उस सम्पत्ति उसकी नहीं वरन् सारे समाज की है। वास्तव में जिस व्यक्ति ने उस सम्पत्ति का संचय किया है वह केवल उतने ही हिस्से का अधिकारी है जो उसको सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है। उस संचित धन का शेष भाग संपूर्ण राष्ट्र का है और सभी के कल्याण पर खर्च होना चाहिए। पूंजीपति की तुलना एक चोर से की जा सकती है। किन्तु शक्ति द्वारा धनी व्यक्तियों का विध्वंस नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि समाज में धनी व्यक्तियों का भी महत्व है। वास्तव में पूंजीपतियों को सुधारना होगा और उन्हें यह बताना होगा कि जिस धन को उन्होंने एकत्र किया है वे उसके अधिकारी नहीं है वरन् वे केवल उसके थातेदारी (ट्रस्टी) है। थातेदारी का आशय यह है कि सभी सामाजिक सम्पत्ति थातेदारी के अंतर्गत रहनी चाहिए।

(iv) उत्पादन तकनीक :

जयप्रकाश विदेशों पर निर्भर रहने की अपेक्षा देश में ही उत्पादन वृद्धि के पक्ष में थे। उनका मानना था अधिक उत्पादन से ही दिन प्रतिदिन सुरसा की भांति मुँह फैलाये बढ़ती हुई जनसंख्या का भली प्रकार भरण-पोषण किया जा सकता है। चूँकि हमारे यहाँ मनुष्यों की बहुतायत है। अतः जयप्रकाश उत्पादन की श्रम गहन तकनीक अपनाने के पक्षधर हैं। इसमं पूंजी कम से कम लगेगा और श्रम का अधिक उपयोग होगा।

(4) शैक्षिक क्रांति :

सम्पूर्ण क्रांति के लिये राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्त्तन आवश्यक है किन्तु पर्याप्त नहीं। बाहरी व्यवस्था में परिवर्तन सार्थक होगा और परिवर्तन का प्रवाह जारी रहेगा तब जब शिक्षा द्वारा मनुष्य का चित्त बदलेगा क्योंकि सारे परिवर्तनों का उद्गम मनुष्य ही है। मनुष्य के भीतर परिवर्तन शिक्षण पर निर्भर है। शिक्षण मनुष्य को समान बनाने की, एक साँचे में ढ़ालने के प्रक्रिया नहीं है। हर व्यक्ति विशिष्ट हैं उसकी विशिष्टता कायम रहे और उसकी जन्मजात प्रतिभापूर्ण विकसित हो यह शिक्षण का उद्देश्य है।

(i) मौजूदा शिक्षा का बहिष्कार :

जयप्रकाश शिक्षा के क्षेत्र को सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र मानते थे। वे स्वीकार करते थे कि शिक्षा का संबंध समाज रचना से है। जो नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, शिक्षा का तत्व आत्मा है वो हर अवस्था में है। लेकिन हमें परिस्थिति के अनुसार लोगों को शिक्षित करना चाहिए। अतः मौजूदा सड़ी हुई व्यर्थ की शिक्षा पद्धति के विरुद्ध वे जेहाद छेड़ने के पक्ष में थे, क्योंकि विद्यमान शिक्षा व्यवस्था एक ओर अधिकांश बच्चों को अशिक्षित छोड़ देती है तो दूसरी ओर उसे गलत ढंग से शिक्षित करती है।

जयप्रकाश नारायण ने कहा था-''शिक्षा ऐसी हो जो जीवनोपयोगी हो। जिस शिक्षा को प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़ा हो सकें, कुछ कर सकें। वर्त्तमान शिक्षा से तो इतना होता है कि हम नौकरियाँ खोजते हैं और दर-दर ठोकरें खाते हैं। नौकरियाँ नहीं मिलती है तो कोई जीवन यापन का रास्ता ही नहीं रहता।[20] जयप्रकाश चीन के माओ की तरह अपने युवकों से कहते थे कि कारखानों, खेतों में जाओ, वहाँ जाकर सीखो समझो। वही आपका विश्वविद्यालय है। शिक्षा में क्रांति लाने के क्रम में जो गाँधी जी के हिमायती दीखते हैं जिन्होंने यही कहा था कि विद्यार्थी स्वावलम्बी बनें उसका आत्मविश्वास बढ़े, ऐसी शिक्षा चाहिए। उसके बदले आज तो नौकरी दो, नौकरी दो यानी गुलामी दो-यही शिक्षण है। ऐसी शिक्षा का बहिष्कार होना चाहिए।

(ii) डिग्री, योग्यता का प्रमाण-पत्र न हो :

शिक्षा में कोई मौलिक परिवर्त्तन तब तक संभव नहीं है जब तक कि या तो (क) उपाधियाँ समाप्त न कर दी जाय या (ख) उपाधियों का रोजगार से कोई संबंध न रहे। आज तो विद्यार्थी कुछ सीखे हों या न सीखें हों, फिर भी नाम के सामने बी.ए., एम.

ए. की डिग्री हो जाने से नौकरी के लायक मान लिये जाते हैं और अधिक लोग इसलिए पढ़ते हैं, सीखने के लिए नहीं क्योंकि नौकरी के लिये दरवाजा खुलता है। अतः जयप्रकाश का सुझाव था कि घोषणा कर दी जाये कि केवल डिग्री के आधार पर नौकरी नहीं मिलेगी। हम जिस काम के लिए लोगों को नौकर रखेंगे उसके लिए अलग से परीक्षा लेंगे तो हो सकता है किसी को यूनिवर्सिटी की औपचारिक शिक्षा नहीं मिली हो वह उस परीक्षा में पास कर जाये और जो बी.ए., एम.ए. है, वह फेल कर जाये। अतः जब डिग्रियों और नौकरी का संबंध तोड़ा नहीं जायेगा तब तक डिग्री का वह झूठा मोह दूर नहीं होगा।

(iii) श्रममूलक न्यूनतम शिक्षा सबके लिये :

जयप्रकाश नारायण यह मानते थे कि ऐसी व्यवस्था हो कि न्यूनतम शिक्षा सबको मिले। विद्यार्थी के बुद्धि का विकास हो, किसी भी प्रश्न पर बुद्धिपूर्वक विचार करने की शक्ति पैदा हो ऐसी योग्यता होनी चाहिए। अब शहर में शिक्षा का एक रूप होगा तो देहात में दूसरा रूप। किन्तु शिक्षा में श्रम का स्थान होगा। उनके अनुसार शिक्षा में क्रांति का पहला चरण यही हो सकता है कि शिक्षा श्रममूलक हो और नयूनतम शिक्षा सबको प्राप्त हो।[21] अतः वे इस बात पर बल देते थे कि छात्रों एवं नौजवानों को भी खुद लोकतंत्र के तरीके से बर्ताव करना होगा।

(5) सांस्कृतिक क्रांति :

संस्कृति क्या है? और जीवन में सांस्कृतिक बंधन का क्या महत्त्व है? दो प्राणियों के बीच जो प्रेम का बंधन हुआ करता है उसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी भाषा का उपयोग आवश्यक नहीं है। पशु भी प्रेम प्रदर्शित करते हैं और मनुष्य भी वैसा करते हैं, बिना भाषा का सहारा लिये। यह प्रेम सांस्कृतिक बंधन का मौलिक आधार है। आकृति की मौलिक आवश्यकता है संगठन विकृति की धारा विघटन।[22]

(6) आध्यात्मिक क्रांति :

मानव एक पार्थिव अथवा स्थूल पदार्थ भी है और चेतन भी है। जीवन में उसे इन दोनों तत्वों की पोषक परिस्थिति प्राप्त होनी चाहिए। मनुष्य की पार्थिव या स्थूल आवश्यकताएँ अर्थात् भोजन, वस्त्र और आवास आदि की आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। इस संदर्भ में जयप्रकाश का मत था कि मनुष्य के आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति लायक ही हर मनुष्य का कोष, साधन की प्राप्ति हो। इसमें अतिरेक होने के वह सख्त विरोधी थे। इस संदर्भ में उनका कहना था कि आहार पर्याप्त सादा, पोषक और स्वादिष्ट हो; वस्त्र केवल उपयोगिता पूरी करने के साथ-साथ आँखों स्पर्श करने की रूचने लायक तथा सब ऋतुओं में शरीर की रक्षा करने की दृष्टि से भी पर्याप्त हो, मकान सादे किन्तु भरपूर हवा और उजाले वाले हो।

(7) वैचारिक क्रांति अथवा बौद्धिक क्रांति :

इसके तहत् जयप्रकाश नारायण लोगों के विचार एवं बुद्धि में परिवर्तन लाना चाहते थे। वे चाहते थे कि चूँकि एक वर्गविहीन समाज तैयार करना है। अतः अपने पुराने विचारों को मिटाना होगा। अतः हमारे विचार ऐसे होने चाहिए कि सभी मानव समान है। मनुष्य के बीच मौजूद अन्तराल को मिटाना चाहिए। उनका कहना था कि अपने पराये का भेद मिटाना ही मानव धर्म है। वे चाहते थे कि एक जगह रहने वाले लोग खासकर गाँवों में रहने वाले लोग, एक-दूसरे की चिंता करें, एक-दूसरे की मदद करें, जब जरूरत आ पड़े तो एक-दूसरे के लिए त्याग करें। प्रत्येक के सुख-दुःख में एक-दूसरे के भागीदारी हो। वे इसे व्यक्ति के लिए, समाज के लिए आध्यात्मिक मानवीय मूल्य मानते थे।

जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक 'मेरी विचार यात्रा' (भाग-1) में स्पष्ट लिखा है कि ''संपूर्ण क्रांति के लिए ऐसी पद्धति अपनानी होगी, जिसके कारण मनुष्य के मानस में परिवर्त्तन आए, उसके जीवन मूल्यों में परिवर्त्तन आए, वस्तुओं के प्रति, मानवों के प्रति और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्त्तन हो।'' पहली बार किसी क्रांतिकारी राजनेता ने ''प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में 'परिवर्तन' की बात कही थी, जो अत्यंत सारगर्भित है और आज पर्यावरण की चिन्ता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रही है, उस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। आज सभी यह महसूस करने लगे हैं कि प्रकृति के 90 प्रतिशत साधनों और शक्तियों का उपयोग दुनिया के 10 प्रतिशत लोग करते हैं और शेष 10 प्रतिशत का उपभोग या उपभोग 90 प्रतिशत जनसंख्या करती ह। इसके कारण जो

वैज्ञानिक-तकनीकी असमानता उत्पन्न हुई है, उसका दंश 'तीसरी दुनिया' झेल रही है और उसमें विशेषत: वे जो अत्यंत विकसित हैं।[23]

'सम्पूर्ण क्रांति' का यह नैतिक आयाम उसे बीसवीं सदी में हुई समस्त सत्तालिप्सा क्रांतियों से ऊपर उठाता है, जयप्रकाश अपने अंतिम वर्षों में एक ऐसे कवि-क्रांतिकारी हो गये थे, जिन्हें जीवन-भर भटकने के बाद अपने भीतर उमड़ते स्वप्न के लिए एक जीवन्त शब्द रूप और आकार मिल गया था।[24]

संदर्भ :

1. शिवदयाल : 'जेपी आंदोलन का क्षितिज', विकास सहयात्री (त्रैमासिक पत्रिका), पटना, अप्रैल-सितम्बर, 2014, पृ. 60
2. जयप्रकाश नारायण : 'सम्पूर्ण क्रांति के लिए आह्वान', पृ. 6
3. द टाइम्स (लन्दन), 13 अक्टूबर, 1969
4. जयप्रकाश नारायण : कारावास की कहानी, बिहार सर्वोदय मंडल, पटना, 1978, पृ. 47
5. वही, पृ. 81
6. रमेन्द्र : जयप्रकाश विचार संकलन, पृ. 67
7. वही, पृ. 34-35
8. वही
9. वही, पृ. 10
10. वही, पृ. 3-8
11. जयप्रकाश नारायण : सम्पूर्ण क्रांति, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1979, पृ. 30
12. जयप्रकाश नारायण : कारावास की कहानी, पृ. 103-104
13. जयप्रकाश नारायण : मेरी विचार यात्र-संपूर्ण क्रांति की खोज में, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1986, पृ. 97
14. वही, पृ. 98
15. जयप्रकाश नारायण : सम्पूर्ण क्रांति, पृ. 30
16. वही, पृ. 38-39
17. जयप्रकाश नारायण : सम्पूर्ण क्रांति, पृ. 38-39
18. आचार्य राममूर्त्ति : पूर्वोक्त, पृ. 14-15
19. वही, पृ. 15
20. जयप्रकाश नारायण : सम्पूर्ण क्रांति, पृ. 32
21. वही, पृ. 34
22. अमरेन्द्र भारती : सम्पूर्ण क्रांति, पृ. 16-17
23. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव : लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 2002, पृ. 142
24. निर्मल वर्मा : हमारे समय का नायक, सम्पूर्ण खोज, सितम्बर, 2001

मैथिली महाकाव्य में सीता

डॉ० रीता कुमारी

फ्लैट नं0 302, बासुदेवझड़ी अपार्टमेन्ट
वेदनगर रूकनपुरा, बेली रोड, पटना-800014

मैथिली में महाकाव्य रचनाक विकास संस्कृत महाकाव्यक अनुप्रेरणाक परिणाम थिक। **'महाकाव्य'** शब्द महत् आ काव्य दू गोट शब्दक योगसँ बनल अछि। महत्क अर्थ थिक महान आ काव्यक अर्थ कविकर्म।

संस्कृत महाकाव्य परम्पराक श्रीगणेश आदिकाव्य **'वाल्मीकि रामायण'**सँ होइत अछि। एहू सँ पूर्व संस्कृतमे वैदिक संहिता अथवा वैदिक साहित्य तथा वेद मात्र उपलब्ध अछि।

'सीता' शब्दक व्युत्पत्ति थिक-**षिञ् (सि) बन्धने**[1] धातुसँ 'त' प्रत्यय भेला पर पूर्व स्वरकँ दीर्घ कय **'सीता'**[2] शब्द बनैत अछि, से स्त्रीलि थिक, तेँ टाप (आ) प्रत्यय लगाय **'सीता'** शब्द व्याकरणसँ सम्पादित होइत अछि। जकर अर्थ होइत अछि खेतकँ बन्हबाक हेतु फारसँ रेघा बनायब। तदनुसार प्रसिद्ध अर्थ भेल **सिराउर, कृषि**।[3] खेतक सिराउर सँ उत्पन्न होयबाक कारणँ जानकीक नाम **'सीता'** पड़ल। संस्कृतकोषक अनुसार सीताक अर्थ **लक्ष्मी**[4] होइत अछि आ जानकी साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा छथि।

मैथिली महाकाव्यक प्रेरणा स्रोत रामायण, महाभारत, पुराण आ इतिहास अछि। किछु मैथिली महाकाव्य स्वतंत्र रूपसँ सेहो लिखल गेल अछि। मैथिली भाषाक माध्यमसँ मनीषी महाकविलोकनि अनेक सीता-राम विषयक महाकाव्यक रचना कयलनि अछि जे क्रमश: एहि प्रकारेँ प्रमुख रूपसँ उपलब्ध होइत अछि। **मिथिला भाषा-रामायण, रमेश्वर चरित मिथिला रामायण, अम्बचरित, रावणवध, व्यथा, सीतायण, सीताशील, व्यथा, सीतावतरण, सीता रामायण श्रीसीताचरित मानस, रामसुयश सागर, श्रीसीता रामायण प्रज्ञान रामायण, हनुमान चरित, मैथिली बाल रामायण, मेघनाद वध,** एवं **मैथिली रामचरित मानस** तथा विश्वामित्र आदि। उपर्युक्त सभ महाकाव्यमे **सीतारामक** अलौकिक स्वरूपक वर्णन भेल अछि।

सीताक शील मिथिलासँ लंका धरि, स्वजन परिजनसँ अरिजन धरि, जन्मक आँनसँ रणक प्रागण धरि, सभ्य नागरिकसँ बनेचर धरि, अनुरागी सँ बीतरागी धरि एवं पापात्मा सँ पुण्यात्मा धरि सभके ँ प्रभावित, आलोकित करैत अछि। राम दिग्विजयी भेलाह तकर अधिकांश श्रेय सीताकेँ देल जाइत अछि। सीताक जीवनमे आर्य आदर्श आ स्त्री धर्मक जे विकास भेल ओ एहि देश द्वारा एहि रूपमे स्वीकृत भेल जे स्त्री समाजक लेल एक दिव्य अखण्ड प्रकाश स्तम्भ बनि गेल अछि।

मैथिली साहित्य मे महाकाव्य पूर्णत: आधुनिक युगमे लिखल गेल अछि। महाकवि कवीश्वर चन्दा झा पहिल राम विषयक महाकाव्यकर्त्ता भेलाह जे मैथिली महाकाव्यक श्रीगणेश आध्यात्मक रामायणक आधार पर **'मिथिला भाषा रामायणक'** प्रणयणसँ कयलनि। जाहिमे सीताक उदात्त चरित्रक विस्तृत वर्णनक अभाव अछि। सीता सदा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामक परिपूरक रूपमे दृष्टिगत होइत छथि। जे स्वयं ओ रामानुरागी हनुमानके ँ कहैत छथि-

जानब अहाँ हनुमान परब्रह्म श्रीरामकाँ,
ई निश्चय करू ज्ञान मूल प्रकृति हमही थिकहुँ।
उद्भव पालन नाश हमही स्वतंत्रकारिणी
हमरहुँ हुनकि आश तनिक-सन्निधि मुख्य बल।।[2]

आद्या शक्ति सीता अयोनिजा होइतहुँ व्यवहार दशामे जनकनन्दिनी कहि परिचित छथि जे मिथिला भाषा रामायणक बालकाण्डमे एहि रूपमे कहलनि अछि–

'जगत जननि काँ जग कह रे जन जानकि नाम'[6] *कवीश्वर के अपन रामायणमे*

जतय कतहु पुरुष तत्त्वक दुर्बलता बुझि पड़लनि ताहिठाम मायाके शरण लय ओ. हुनक लीला वर्णन बालकाण्ड मध्य एना कयने छथि–

योगमाया थिकथि सीता, राम विभु भगवान।

देव तनिकहि हिनक पति ओ थिकथि सत्य न आन।[7] *एवं*

सकल सृष्टि कारणि जगतारणि महिमा कहल न जाय।[8] *ओ माया लीला अति विस्तार। तथा*

परमात्मा की करता काज। सभटा होइछ माया ब्याज।।[9]

जगदम्बा सीताक एक गोट महान

रूपक वर्णन कवीश्वर भावके मुर्त्त रूप दय देलक अछि–

कालरात्रि सीता का आनल कीई जानल प्राकृति नारि।

काल विवश लंकेश्वर निश्चय भावी विषय सकय के टारि।।[10]

ई सर्वविदित अछि जे शक्तिमानहुँ के क्रियाशीलता ओ कुशलताक साक्षी हुनक शक्ति छथि यथा– रामके सीता, कृष्णके राधा एवं शिवके दुर्गा छथि। ते ने कवीश्वर के एहन धारणा छनि–

ओ सावित्री ओ ओंकार। ओपूर्ण सत्य समस्ताधार।।[11]

रामकाव्य पर आधारित ओ सीताचरित पर आश्रित मैथिलीक दोसर महाकाव्य थिक–**'रमेश्वर चरित मिथिला रामायण'**। जे वाल्मीकि रामायण पर आधारित अछि आ महाकाव्यकर्त्ता थिकाह कविवर लालदास। ओ अपन रामायणमे सीताक प्रधानताक हेतु एक अतिरिक्त **पुष्करकाण्ड** जोड़ि शक्ति सीताक महीमा देखौने छथि।

ई कन्या लक्ष्मी अवतार सीता नाम करब परचार। ओ पुन: कहैत छथि–

शिव धनु उठ नहि ककरो बूत, से सीता धयलनि अजगूत।

बुझलहुँ निश्चय दृढ़ अनुमान, थिकथि योगमाया नहि आन।।

प्रकृति स्वरूपा शक्ति प्रधान। जगदम्बा सीता नहि आन।।[13]

राम विषयक नायिका आधार पर दोसर ओ महाकाव्यक आधार पर तेसर कृत **'अम्बचरित' थिक।** जकर रचनाकार ज्योतिषी कविवर सीताराम झा थिकाह। जे नमस्कृया पद्धतिक अनुकूल देवीभागवत पुराण ओ विश्व प्रसिद्ध रामायण पर आधारित अछि।

एहि 'अम्बचरित' महाकाव्यक आधार सीताक जन्मसँ लय हुनक द्विरागमन धरिक कथा वर्णित अछि। मुदा ताहिमे हुनक **आदर्शकन्या, आदर्श सखी आदर्श पत्नी, ओ आदर्श पुतहु रूपमे।** सीताक जीवनक जे पक्ष कवि ग्रहण कयलनि अछि सभमे आदर्शक उच्च मानदण्ड स्थापित कयलिनि अछि। सीताक गरिमा महिमा–मण्डित करब बुझना जाइत अछि देखल जाय–

जँ निज जननी सँ उऋण होयबाक हो मन काम।

तँ देहहु कँ बेचि की भेटि सकै अछि दाम।।

ई बुझि अम्बक चरण पर हम केवल अनुयाम।

अर्पण अरचि करैत छी, अपन अनन्त प्रणाम।।[14]

ग्रन्थक आरंभमे जननीक जेहन निश्छल, निष्कपट, निर्लेप, निराडम्बर, आ पावन भाव रसक चित्राण कयल गेल अछि। सयह कविवर अपन जननीक प्रति असीम श्रद्धा स्वाभाविक, ओकर वर्णन कवि ओतबहि सहजताक संग कयने छथि–

'उर लगाय राखथि सतत, बुझि हमरा निज प्राण।
बुझथि हमर मल-मुत्रके अतर फुलेल समान।।
पड़ल हमर मल मुत्रके आँचर कोचा दाग।
देखि होथि मुदमे मगन, मानि अपन धनिभाग।।
छन भरि हमरा सुनमे, छोड़ि कतहु नहि जाथि।
रहथि लगौने हृदयमे, यदि कौखन बहराथि।।
बैसथि शिशिर समयमे, लै बोरसि में आगि।
सेदथि हमर शरीर पुनि, राति-राति, भरि जागि।।[15]

''**व्यथा**'' करूण रस प्रधान महाकाव्यक रचयिता थिकाह श्रीरमाकान्त झा। एहिमे वनवास क्रममे रामक वनगमनकालक सीताक दुःख व्यथा वर्णित अछि। कविके अनायास एक दिन भावना हृदयमे जागृत भेलनि-

'मन होइछ, हमहुँ मैथिलीमे मैथिलीक कथा लिखी।
श्रीरामकेर वनगमन कालक, जानकीक व्यथा लिखी।।[16]

पण्डित जीवनाथझा रचित **'रावणवध'** महाकाव्यक कथावस्तु आध्यात्म रामायण पर आधारित ओ मैथिलीक लघु महाकाव्य थिक। कविवर कवीश्वर चन्दा झा रामक वियोगमे सीताक करूण विलापक वर्णन कयने छथि। मुदा पण्डित जीवनाथ झा सीताक वियोगमे रामक व्याकुलता अत्यन्त स्वाभाविक अछि। सीता-रामक दूत बुझि अपन मनोभावके व्यक्त करैत कहि उठैत छथि-

कतय राम छथि करय नाश राक्षसके आवथु।
अपन तेज प्रलयाग्नि तुल्य जल्दी चमकाबथु।।[17]

मूल रूप सँ सीता पर आधारित श्रीबैद्यनाथ मल्लिक 'विधु' विरचित **'सीतायन'** सप्तसर्गी सुमन नामे ख्याति विशालकाय महाकाव्य जे साहित्य अकादमी दिल्ली सँ सेहो पुरस्कृत अछि। एहिमे सीताक जन्मसँ लय पाताल प्रवेश घरिक कथा वर्णित अछि। सीताचरित्रक त्याग, संतोष तथा मर्यादाक उत्कर्ष एहिमे वर्णित अछि।

बंगला भाषाक साहित्यक प्रधान उन्नायक माइकेल मधुसूदन दत्तक अनुपम कृति एवं सर्वोत्कृष्ट रचना **'मेघनाद वध'**क अनुवाद श्रीगौरीशंकर झा कयलनि। मेघनाद वधक चारिम सर्गमे सीता उल्लेख भेटैत अछि।

महाकवि तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस'क अनुवाद मैथिली साहित्यमे **'मैथिली रामचरितमानस'** नामे आचार्य रामलोचन शरण कयने छथि जाहिमे सर्वत्र सीताक चरितक उत्कर्षक वर्णन भेल अछि।

एहि तरहें कहि सकैत छी जे मैथिली महाकाव्यक स्थिति सन्तोषप्रद अछि एवं ताहि मध्य सीताक उत्कर्ष, महिमा-गरिमा मण्डित अछि।

सन्दर्भ-स्रोत

1. सिद्धान्त कौमुदी-भट्टोजी दीक्षित धातु संख्या-1248 एवं 1477.
2. संस्कृत-हिन्दीकोश-वी0एस0 आप्टे-सीताशब्द।
3. अमरकोष-अमर सिंह-सीताशब्द।
4. संस्कृतकोषक अनुसार।
5. मिथिला भाषा-रामायण-कवीश्वर चन्दा झा।

6. तत्रैव
7. तत्रैव
8. तत्रैव
9. तत्रैव
10. तत्रैव
11. तत्रैव
12. रमेश्वरचरित मिथिला रामायण–कविवर लालदास
13. तत्रैव
14. अम्बचरित–पण्डित सीताराम झा
15. तत्रैव
16. व्यथा–रमाकान्त झा
17. रावणवध–जीवनाथझा

रहीम की नीति और भक्ति के दोहे और श्रीकृष्ण

डॉ० शालिनी मिश्रा

काली स्थान, शिवाजीनगर, दरभंगा

भारत मनीषियों का देश रहा है। उन्होंने विवेक को सर्वोपरि माना है और उसकी पुष्टि के लिए स्वाध्याय और सत्संगति की अवधारणा की है जिसके लिए नीतिशास्त्रा एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक है। यह मनुष्य की चित्तवृत्ति को शुद्ध करता है और व्यक्तित्व को उदात्त बनाता है नीतिमंजरी में उल्लेख है – **एवं कर्त्तव्यमेव न कर्त्तव्यमित्यात्मको धर्मः सा नीतिः।**[1] कहने का अर्थ कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को स्पष्ट करने वाले विचार को ही हम 'नीति' कहते हैं। नीति की यह बात साहित्य के माध्यम से ही व्यक्त हो सकती है। अतः साहित्य का दूरगामी उद्देश्य ही होता है मानव-समाज को कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की शिक्षा देना क्योंकि ज्ञान के संचित कोश को साहित्य कहते हैं।[2] नीतिसाहित्य लोकमंगल का पक्ष है और कृष्ण लोकमंगल के महामानव जिसकी साहित्य में एक दीर्घ परंपरा रही है। समस्त संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में नीति-पक्ष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेष तौर पर प्राचीन साहित्य का तो आधार ही नीति – साहित्य है। अगर गौर से देखा जाय तो यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि नीति – साहित्य जनता का साहित्य होता है। साहित्य का नीति से पृथक होना, जनता से कट जाना है। जो साहित्य जनता से कट गया, वह कालजयी नहीं हो सकता। वह दरबारी – साहित्य होकर रह जाता है और जनता उसे भुला देती है। हिन्दी – साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल और कुछ हद तक रीतिकाल में नीति – साहित्य की भरपूर रचना हुई।

रहीम हिन्दी – साहित्य में भक्तिकाल के उन गिने – चुने मुसलमान कवियों में से हैं जिन्होंने अपने व्यापक एवं बहुआयामी व्यक्तित्व और काव्य – फलक द्वारा जन – जीवन को मानवीय संवदेना से तुलसी की तरह जोड़ने का काम किया। रहीम ने जन – जन के मन में बसकर, सदियों से सोयी हुई विराट अनुराग – वृत्ति को जगाने के उद्देश्य से उदात्त मानवतावादी दृष्टि को अपनाते हुए अपनी अलग पहचान बनायी तथा जाति, धर्म और संप्रदाय आदि के बंधनों से ऊपर उठने हेतु उत्प्रेरित – उत्साहित करने की कोशिश की।

हम आज तक जिस भक्तिकाल को हिन्दू – नवजागरण का काल मानते आये हैं उसे रहीम और रसखान प्रभृति कवियों के आलोक में संपूर्ण मानवजाति के जागरण के काल के रूप में देखने और विचारने की जरूरत है। इसका कारण है कि उनका साहित्य हिन्दू को मुसलमान शासन के प्रतिरोध भाव से नहीं भरता, बल्कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ऐसे शासन की प्रजा के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें न हिन्दू – हिन्दू रह जाता है और न मुसलमान – मुसलमान ही रह जाता है। भक्तिकाल में रहीम और रसखान ने ऐसी ही भूमिका अदा की कि शासक वर्ग से आकर भक्ति से प्रेरित होकर हिन्दूत्व और वैराग्य को अंगीकार किये अगैर अनुराग की उस ऊँचाई तक पहुँचने में कामयाब हुए, जहाँ विधिवत् दीक्षा ग्रहण कर साधु बनने वाले भी प्रायः पहुँच पाते हैं।[3]

जिस रचनाकार को हम आज तक उसके रहीम उपनाम से जन – जन की जिह्वा पर विराजमान देखते आए हैं, वह मध्यकालीन साहित्य के गौरव के रूप में जाने जाते हैं। रहीम अंतर में भाव और मस्तिष्क में बुद्धि की आभा लिये जहाँ एक तरफ अपने कृपाण से विजय के इतिहास की रचना कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ नीति एवं भक्ति की स्याही को अपनी तूलिका में डालकर साहित्य की रचना द्वारा जन – मानस में नयी ऊर्जा का संचार कर रहे थे। संस्कृत कवि भर्तृहरि के शब्दों में कहें तो साहित्य, संगीत और

कला के प्रति उनकी अटूट निष्ठा थी। मृदुभाषी, प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं कौतुकप्रियता के बावजूद सांसारिक होने की वजह से जो वस्तु हितकर जान पड़ती उसे अपनाने की कला में भी वे माहिर थे। वीरता, उदारता एवं सेवा – भाव जैसे मानवीय गुणों के कारण ही युद्ध की परिस्थिति में भी इनके भीतर दया का भाव देखा जाता था। विद्वानों, फकीरों, शेखों तथा कलाकारों के दामन ये दान से भर देते थे।

परंपरा बतलाती है कि हिन्दू से इतर धर्मावलंबी साहित्यकारों में ईसाइयों की दृष्टि राम पर ठहरी, शायद उन्हें राम के चरित्रा में ईसा की शुद्धता और निष्ठा दिखलाई पड़ी। मुसलमान कवियों का आकर्षण कृष्ण के प्रति जगा, क्योंकि कृष्ण के चरित्रा में वैविध्य ज्यादा है। यह ध्यातव्य है कि कृष्ण को हम पूर्णावतार कहते हैं। जबकि राम भी अंशावतार ही हैं। सूफी चिंतन – दर्शन ने रहीम सरीखे मुसलमान कवियों को जो उदात्त दृष्टि दी, उसके कारण कृष्ण के व्यक्तित्व के मर्म से वे प्रेरित और प्रभावित हुए तथा कृष्ण की लीला के अर्थ को इन्होंने समझा। प्रेम की जो अंत: – सलिला कृष्ण के व्यक्तित्व में प्रवाहित होती है वह सूफी चिंतन के करीब पड़ती है। इस्लाम का एकेश्वरवाद भी शायद उन्हें कृष्ण के उस व्यक्तित्व की ओर ले जाता है जहाँ श्रीमद्‌भागवत के कृष्ण कहते हैं कि शेष सब तो निमित्त मात्रा हैं। कर्ता तो वही है – कृष्ण। इस तरह कहना चाहिए कि रहीम प्रभृति मुसलमान कवियों पर (क) अकबरकालीन धार्मिक उदारता (ख) तत्कालीन भारतीय समाज में भक्मित्मत की प्रबलता (ग) कृष्ण – भक्ति और सुफीमत का साम्य –तीनों का मिश्रित प्रभाव पड़ा। एक तो फारसी कविता में श्रृंगारिकता का महत्व अधिक था। मानीयपन अर्थात् ऐहिक स्त्राी – पुरुष और आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा – परमात्मा तो पहले से प्रचलित था ही। रहीम ने कृष्ण का चित्राण इस रूप में किया कि उसकी श्रृंगारिकता भी बनी हुई है और आध्यात्मिकता भी बनी हुई है। यह सुविधा कृष्ण – काव्य और सूफी–काव्य दोनों में बनी हुई है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें केवल श्रृंगारिक या लीला प्रसंगों का वर्णन भर नहीं है अपितु एक मुसलमान का कृष्ण के प्रति भक्ति भाव है। अपने एक संस्कृत की भक्ति विषयक रचना में रहीम ने स्वयं श्रीकृष्ण से कहा है कि मैंने तुम्हें प्रसन्न करने के लिए कौन – कौन नाटक नहीं किये, कौन – कोन स्वाँग नहीं रचे? हे श्रीकृष्ण, अगर मेरे इस अभिनय और स्वाँग से तुम्हारा किंचित भी मनोरंजन हुआ हो तो उससे मुक्ति देने की कृपा करो। यदि मेरा यह स्वाँग तुम्हें रूचिकर नहीं लगा तो मुझे यह आज्ञा दो कि पुन: मैं स्वाँग करने हेतु इस धराधाम पर न लाया जाऊँ –

आनती नटवन्मया तव पुर: श्रीकृष्ण: या भूमिका।
*व्योमाकाशखखांबराब्धवसस्त्वत्प्रीयेत*द्यावधि।।*
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन स्वप्रार्थित देहि मे।
नोयेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वतादृशीं भूमिकाम्।।[4]

रहीम अधिकांशत: अवध में रहे थे। फलत: उनकी भाषा पर अवधी का रंग गहरा है। साथ ही उनकी सूक्तियों पर कबीर की छाप है और कृष्णभक्त कवियों में हरिराम व्यास और सूरदास की भी छाप है। ध्यातव्य यह है कि भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उनका तादात्मय गोस्वामी तुलसीदास के साथ अपेक्षाकृत अधिक है। दोनों ने एक – दूसरे से लिया है।

यद्यपि रहीम ईरान के मुसलमान थे किन्तु उनमें भारत की संस्कृति के प्रति लगाव था। वे पूर्णत: भारतीय प्रतीत होते हैं। अन्य सूफी कवियों की तुलना में रहीम में हिन्दू – मुस्लिम धर्म में कहीं खटास नजर नहीं आती। उनकी भाषा शुद्ध ब्रज रही है। इसलिए रहीम और रसखान की भक्तिपरक काव्य रचनाओं से पता चलता है कि भारत के कण – कण से उनकी आत्मीयता है। ईश्वर और जीव के परस्पर संबंध को उन्होंने अपनी कविता में अभिव्यक्त किया है। ध्यान रहे कि यहाँ कृष्ण ईश्वर हैं और जीव का अभिप्राय विस्तृत अर्थों में जगत् से है –

अमर बेलि बिन मूल के प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिए काहि।।[5]

विपत्ति के समय में सब ओर से सहारा छूट जाता है। माया के लोभी विपत्ति में सब छोड़ जाते हैं तब केवल ईश्वर ही नजर आता है। रहीम पहले सम्राट के साथ रहते थे तब कितना वैभव था और जब कैद में डाल दिए गए तब उन्हें मात्रा कृष्ण नजर आते थे –

जेहि रहीम मन आपनो कीन्हों चारू चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहे कृष्णचंद्र की ओर।।[6]

भक्ति के मार्ग में व्यक्ति अभिमान से शून्य हो जाता है। जहाँ अभिमान होता है वहाँ भक्ति नहीं होती। जब हृदय अभिमान शून्य होता है, तभी विनम्रता का उदय होता है। विनम्र और निर्मल भाव ही प्रभु की ओर आकर्षित होता है। दीनता में ही भक्ति होती है-

मुनि-नारी पाषाण ही, कपि, पशु, गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग।।[7]

जब ईश्वर जिसको बचाने वाला होता है तब कोई कुछ नहीं कह सकता। चाहे सारा संसार ही विपरीत क्यों न हो जाये -

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत-राखनहार है, माखन-चाखन हार।।[8]

प्रभु का स्मरण सर्वोपरि है अगर अजामिल की तरह धोखे से भी प्रभु का नाम मुँह से निकल जाता है वह तब भी पुकार सुन लेता है -

रहिमन धोखे भाव से मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम।।[9]

रहीम भारतीय दर्शन को आत्मसात कर चुके थे। उन्होंने भारतीय पौराणिक कथाओं के मर्म को जान लिया था। उन्होंने क्षमा के महत्व को भी पहचाना। भृगु द्वारा विष्णु पर किये गये पद प्रहार का प्रयोग भी अपने काव्य में किया है -

छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन कौ उत्पात।
काह रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।[10]

मित्राता हो तो सुदामा और श्रीकृष्ण सा हो, जो दो आत्माओं के मेल की तरह थी। उन्होंने पुनीत कथाओं से प्रसंग लेकर जन साधारण में मित्राता के भाव को संचारित किया -

जो गरीब पर हित करै, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।।[11]

रहीम ने मनुष्य का जन्म लेकर भीख माँगने को लघुता का रूप दिया है। चाहे आप कितने भी बड़े हैं। लेकिन अगर आप किसी के सामने याचक बनकर जाते हैं तो आप लधुता को ही प्राप्त होंगे। जैसे त्रिलोकीनाथ विष्णु राजा बलि के यहाँ वामन अंगुल के बन कर भिक्षा माँगने गये -

रहिमन माँगत बड़ेन की लधुता होत अनूप।
बलि भख माँगन को गए, धरि बावन को रूप।।[12]

भाग्य की प्रबलता को भी रहीम ने अपने अनुभवों के साथ जोड़ा। पुरुषार्थ भी कभी - कभी निष्फल हो जाता है। विधि के विधान को श्रेष्ठ बताकर भाग्य की प्रबलता का उल्लेख किया -

जो. पुरुषारथ ते कहूँ संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम।। [13]

भाग्य के साथ - साथ रहीम ने समय की श्रेष्ठता को भी काव्य में स्थान दिया। समय बलवान् होता है। किसी का समय एक-सा नहीं रहता -

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहै नारि के भेष।[14]

कुल मिलाकर रहीम, राजनीति के क्षेत्रा में सफल सेनापति, कुशल शासनाधिकारी तो थे ही, काव्यजगत में कुशल कला - पारखी, गुण - ग्राही एवं गुणी - जनों के लिए कल्पवृक्ष के रूप में माने गए, रस - नीति के सिद्ध रचनाकार थे। वे व्यक्ति ही नहीं, एक संस्था कहे जा सकते हैं। तत्कालीन समाज में उनका व्यक्तित्व पूरे समाज का प्रतिनिधि अधिवक्ता रहा है। नीति - रचना के तो वे स्वयं मंदिर - मस्जिद ही नहीं, उदार मौलवी और भक्त - पुजारी भी थे। इस प्रकार की रचना करने वालों में वे सर्वाधिक

आदर के पात्रा थे। आज सर्वधर्म समभाव के प्रचार युग में, रहीम एक आदर्श रचनाकार के रूप में प्रस्तुत हो सकते हैं। हिन्दी – रचना में व्यक्तित्व और कृतित्व के रूप में जो स्थान नीति – रचनाकार भर्तृहरि को प्राप्त है, वही स्थान नीति अभिव्यक्ति के माध्यम से नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले निष्ठावान् हिन्दू की तरह जीवन जीने वाले मुसलमान रचनाकार रहीम को दिया जाना चाहिए। भक्ति के क्षेत्रा में वे तुलसी की तरह श्रीराम से और सूर की तरह कृष्ण के केन्द्र से तो बंधे नहीं रह सके। बावजूद इसके उनकी गिनती राम एवं कृष्णभक्त कवियों की भक्तिधाराओं में आदरपूर्वक होती है। मित्र – बंधुओं ने तो रहीम के कृष्ण – इष्ट होने की बात तक कही है। ऐसे भक्ति – विचार के होने का मूल कारण, रहीम द्वारा जीवन – पद्धति के प्रति समर्पित भाव का होना ही कहना चाहिए।

आज की सभी राजनीति और सामाजिक समस्याओं की जड़ में राष्ट्रीयता और सामाजिकता की कमी होना है। मनुष्य प्रगति तो कर रहा है किन्तु वह केवल भौतिक है। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति अवरूद्ध है। आध्यात्मिक और धर्मगुरूओं की चरित्राहीनता ने आम आदमी की आस्था को बुरी तरह कुचल दिया है। उनसे लोगों ने केवल अपकर्म के सहारे आगे बढ़ना सीखा है। नीतिगत विचार पीछे छूट गये हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में रहीम के दोहों का स्वाध्याय उन्हें गलत और सही के बीच का फर्क बताता है।

संदर्भ :-

1. साहित्यिक निबंध, राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981, पृष्ठ – 745
2 व्याकरण निधि (भाग-1) कौमुदी शर्मा, ज्योति, सरस्वती हाउस प्राइवेट लिमिटेड, चेन्नई, 2006, पृष्ठ – 16
3. रहीम ग्रन्थावली (काव्य – यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ – 11
4. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 297 – 300
5. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 107 – 113
6. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 108
7. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 109
8. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 109
9. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 110
10. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 113
11. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 113
12. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 113
13. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 113
14. रहीम ग्रन्थावली (काव्य यात्रा), डॉ0 विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ – 113

बंजर एवं चारागाह भूमि- एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० संजय कुमार

राम दयाल साह, मु0 -बेंता शाहगंज, पो0 -बलभद्रपुर
जिला-दरभंगा-846001

संभाग में कृष्य बंजर भूमि के अन्तर्गत 50.7 हजार हेक्टेयर भूमि है जो कुल क्षेत्रफल का 0.9 प्रतिशत है। इस संभावित कृषि भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाये जाने हेतु प्रत्येक जिले में इसका सर्वेक्षण किया गया है। इसे निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा गया है-

1. तुरंत कृषि योग्य,
2. कुछ सुधार के पश्चात कृषि योग्य,
3. बहुत अधिक खर्च करने पर कृषि योग्य।

संकलित आँकड़ों के अनुसार कृष्य बंजर भूमि का 54.4% कृषकों को प्रोत्साहन दिये जाने पर लगभग 25 प्रतिशत कुछ सुधार के पश्चात् कृषि योग्य बनाई जा सकती है। यदि यह संभव बना दिया जाता है, तो फसल के निरा बोये गये क्षेत्रफल में 40 हजार हेक्टेयर अथवा 0.73 प्रतिशत की वृद्धि हो जायेगी।

मैदानी भागों के विकास खण्डों में कृष्य बंजर भूमि वनों के अन्तर्गत सम्मिलित है। इन क्षेत्रों में मध्यम एवं बड़े आकार के गाँव के आसपास संरक्षित वन विस्तार के लिये काट डाले गये हैं, परंतु इसका कुछ भाग कृषि योग्य होने के बावजूद ये वन विभाग के अन्तर्गत है और इन पर कृषि करने की अनुमति नहीं हैं।

जनसंख्या में वृद्धि होने से इस कृष्य बंजर भूमि को कृषक सरकारी सहायता से कृषि के अन्तर्गत लाने का प्रयास कररहे है। इस प्रकार के प्रयत्नों से कृषि क्षेत्र तथा उत्पादन में कई विशेष वृद्धि संभव नहीं है। कृष्य बंजर भूमि का कुछ भाग पिछले 30 वर्षो से पहले ही कृषि के अन्तर्गत लायी जा चुकी है।

सन् 1978-79 में 88.8 हजार हेक्टेयर कृष्य बंजर भूमि भी, जो 1990-91 में घटकर 50.7 हजार हेक्टेयर हो गयी। इस प्रकार की कृष्य बंजर भूमि पर वृक्षारोपन करने अथवा उपयुक्त फदान वृक्ष उगाकर भी उसे उपयोगी बनाया जा सकता है। इनके विकास में एक बड़ी कठिनाई यह है कि इनके छोटे-बड़े टुकड़े सैकड़ों गाँव में बिखरे हुए हैं जिससे योजनाबद्ध विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

परती भूमि : परती भूमि के अन्तर्गत वे सभी भूखण्ड सम्मिलित है जिस पर पहले कृषि की जाती थी पर पिछले एक से पाँच वर्ष के भीतर अस्थायी रूप से उस पर फसलें नहीं ली गई।

"All Lands which were taken up for cultivation but are temporarily out of cultivation for a period of not less then one year and not more then five years are classed as fallow Lands."

परती भूमि को दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता हैं -

1. चालू परती : जिसमें केवल चालू वर्ष के लिये ही कृषि नहीं की गई हैं।

2. पुरानी परती : जब भूमि को दो से पाँच वर्ष के लिये परती छोड़ दी जाती है, अथवा उसमें फसलें नहीं ली गयी है। यदि किसी भूमि पर पिछले पाँच वर्षो से अधिक समय से फसलें नहीं ली गई हे, तो उसे इस वर्ग के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

निम्न उर्वरता वाली कृषि योग्य भूमि पर हर साल फसल लेने में वह लाभप्रद नहीं होती। भूमि के उपजाऊपन को पुनः प्राप्त करने के लिए एक छोड़कर दूसरे वर्ष में फसलें उगाने की पद्धति रही है ऐसी भूमि पर नियमित फसल लेने के लिये भूमि की उर्वराशक्ति में बहुत अधिक जैविक एवं रासायनिक खाद से कृषि संभव है। भारत सरीखे घने-बसे देश में और बढ़ती जनसंख्या वाले क्षेत्र में किसान भूमि को परती नहीं छोड़ना चाहता, जब तक कि भूमि के उपजाऊपन से ऐसा करने को बाध्य न हो जाय। मधुबनी संभाग में लगभग 110.2 हजार हेक्टेयर भूमि चालु परती के अन्तर्गत है। जो फसल के निरा बोये क्षेत्रफल का 5.60 प्रतिशत हैं। पुरानी परती के अन्तर्गत लगभग 105 हजार हेक्टेयर भूमि है जो निरा बोये गये क्षेत्रफल का लगभग 11 प्रतिशत भाग परती भूमि के अन्तर्गत है। परती भूमि का अधिकांश भाग संभाग के मध्य व उत्तर के मैदानी भागों में 8 से 12 प्रतिशत तक पायी जाती है। इन क्षेत्रों में अनुपजाऊ और अपरदित मिट्टियों के कारण तथा आदिवासी कृषकों में कृषि तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण अधिक परती छोड़ दी जाती है। दूसरी ओर मैदानी भाग से यह 5 प्रतिशत से कम है। परती भूमि की मात्रा में क्रमिक ह्रास होता जा रहा है। यद्यपि ह्रास की दर बहुत कम है जैसा कि निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट है -

तालिका

मधुबनी संभाग की परती भूमि का विवरण (सन 1978-79 से 1990-91)

(क्षेत्रफल-हजार हेक्टेयर में)

वर्ष	पुरानी परती	चालु परती	परती भूमि
1978—79	134.0	105.6	239.6
1990—91	109.3	99.2	208.5
ह्रास	24.7	6.4	31.1

स्रोत : बिहार प्रदेश कृषि सांख्यिकी, 1978-79 से 1990-91

1978-79 से 1990-91 के बीच परती भूमि में लगभग 31 हजार हेक्टेयर भूमि की कमी आई है। परती भूमि को नियमित कृषि के अन्तर्गत लाने में भूमि सुधार के अतिरिक्त सिंचाई की व्यवस्था और पर्याप्त मात्रा में खाद उपयोग की आवश्यकता है।

फसल का निरा बोया गया क्षेत्राफल : फसल के निरा बोये गये क्षेत्रफल से तात्पर्य वह वास्तविक क्षेत्रफल होता है जिस पर फसलें उगाई जाती है, तथा दो फसली क्षेत्र को एक ही बार गिना जाता है। व्यावहारिक कारणों से खेत के मेड़ों को निरा बोये गये क्षेत्रफल के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। 1988-89 से 1990-91 तक औसत निरा बोया गया क्षेत्राफल 19 लाख 61 हजार हेक्टेयर है जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 36 प्रतिशत है।

तालिका में मधुबनी संभाग के निरा बोये गये क्षेत्रफल के पिछले तीस वर्षों के आँकड़े दिये गये हैं-

तालिका

मधुबनी संभाग में 1960-61 से 1990-91 तक निरा बोये गये क्षेत्रफल का विवरण

वर्ष	निरा बोये गये क्षेत्रफल (00 हे.में)	कुल भौगोलिक क्षेत्र का :	वर्ष	निरा बोये गये क्षेत्रफल (00 हे.में)	कुल भौगोलिक क्षेत्र का :
1960–61	1776	32.5	1978–79	1909	35.0
1965–66	1827	33.4	1979–80	1855	34.0
1966–67	1802	33.4	1980–81	1885	34.5
1967–68	1811	33.1	1981–82	1895	34.7
1968–69	1836	33.6	1982–83	1914	35.0
1969–70	1837	33.6	1983–84	1930	35.6
1970–71	1848	33.8	1984–85	1944	35.6
1971–72	1856	34.0	1985–86	1958	35.8
1972–73	1861	34.0	1986–87	1965	36.0
1973–74	1874	34.5	1987–88	1961	35.9
1974–75	1867	34.2	1988–89	1958	35.8
1975–76	1873	34.3	1989–90	1957	35.8
1976–77	1867	34.2	1990–91	1968	36.0
1977–78	1895	34.7			

स्रोत : बिहार प्रदेश कृषि सांख्यकी, 1960-61 से 1990-91

सन् 1960-61 में निरा बोये गये क्षेत्र का न्यूनतम 1776 हजार हेक्टेयर तथा 1990-91 से अधिक 1968 हजार हेक्टेयर रहा है। इन पिछले तीन वर्षों में फसल के निरा बोये गये क्षेत्र में 192 हेक्टेयर की वृद्धि हुई है जो जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण हैं। उपरोक्त आँकड़ों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात होता है कि निरा बोये गये क्षेत्र में विचलनशीलता बहुत कम (6 प्रतिशत से कम) है।

कृषकों को बहुत सारी सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन दिये जाने के फलस्वरूप पिछले 12 वर्षों में निरा बोये गये क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि दर्ज की जा रही है। 1979 - 80 में निरा बोये गये क्षेत्रफल का आकार 1855 हजार हेक्टेयर था जो 1990 - 91 में बढ़कर 1968 हजार हेक्टेयर हो गया है। इस तरह पिछले 12 वर्षों में इसमें 113 हजार हेक्टेयर की वृद्धि हुई है जो जनसंख्या के बढ़ते तथा कृषि उत्पादनों की बढ़ती कीमतों, से अधिक उत्पादन देने वाले बीजों की पूर्ति, उर्वरकों की पूर्ति, सिचाई सुविधाओं की पूर्ति, नई कृषि पद्धतियों का विकास तथा यातायात के साधनों में वृद्धि होने से कृषकों को अधिक से अधिक भूमि फसलों के अन्तर्गत लाने में प्रोत्साहन मिला है।

चारागाह

इस श्रेणी के अन्तर्गत संभाग की 439 हजार हेक्टेयर भूमि वर्गीकृत है, जो कुल क्षेत्रफल का 8.0 : है। मुस्तकील या स्थायी चारागाह प्रदेश में श्रम की स्थिति पैदा करने वाला शब्द है, क्योंकि संभाग के जलवायु की दशा में फरवरी से जून तक एक ऐसी भूमि पर घास का आवरण नहीं होती। स्थायी अथवा मुस्तकील शब्द से तात्पर्य है कि यह भूमि चारागाहों के लिये स्थायी रूप से आवंटित है, चाहे इसमें साल भर घास रहे अथवा न रहे। संभाग की कृषि पद्धति में कृषि यंत्रों के स्थान पर बैलों या पशुओं का

उपयोग अधिक किया जाता है। संभाग के लगभग 50 लाख पशुओं के लिये उपलब्ध चारागाह पर्याप्त नहीं है। चूँकि इनमें घास, के पाँच महीनें पायी जाती है, अंत: शेष छ: - सात महीनों के लिए पशुओं का किसानों द्वारा प्रदत्त खाद्य - सामग्री पर निर्भर रहना पड़ता है। पुराने जमाने में प्रत्येक गाँव का 10: क्षेत्र चारागाहों के लिए आरक्षित हुआ करता था। जिसे गोचर भूमि कहा जाता था। पर पिछले 30 वर्षों में इन चारागाहों पर व्यापक अतिक्रमण हुआ है जिससे इसका क्षेत्र सिमट कर बहुत छोटा हो गया है। और कई गाँव में तो यह लगभग समाप्त सा हो गया है। मैदानी भागों में वन क्षेत्रों में कुछ चराई की सुविधा है पर आरक्षित वनों में अब चराई भी बन्द कर दी गई है। वर्षा मौसमी होने और भूमि एक फसली होने के कारण किसान पशुओं के लिये चारा भी नहीं उगा पाते जिससे पशुओं की हालत दयनीय है। संभाग में लगभग समान रूप से पाया जाता है। उत्तर - पश्चिम के मैदानी भागों की तुलना में दक्षिण के मैदान भागों में इसका क्षेत्र अधिक है। इस क्षेत्र में पशुपालन महत्वपूर्ण व्यवसाय है पर ये चारागाह समृद्ध न होने के कारण पशुपालन तथा दुग्ध उत्पादन व्यापरिक स्तर पर उतना अधिक सफल नहीं है जितना होना चाहिए।

मुस्तकील एवं दीगर चारागाहों के अन्तर्गत पिछले 12 वर्षों की अवधि में लगभग 51 हजार हेक्टेयर क्षेत्र की वृद्धि पाई जाती है जो कि वास्तविक न होकर सांख्यिकी है। पहले जो भूमि कृष्य बंजर भूमि एवं पुरानी परती भूमि के रूप में वर्गीकृत की जाती थी उसका अधिकांश भाग कृषि योग्य न होने के कारण उसे दीगर चारागाहों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है जिससे उसमें कमी और मुस्तकील एवं दीगर चारागाह के क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

5. दीगर झाड़ो के झुण्ड एवं झाड़ियों के समूह - इसके अन्तर्गत संभाग के लगभग 74 हजार हेक्टेयर भूमि सम्मिलित है जो कूल भौगोलिक क्षेत्रफल की 1.4% है। इस प्रकार की लगभग समस्त भूमि सरगुजा जिले के पहाड़ी - पठारी भागों में पायी जाती है तथा मधुबनी एवं दरभंगा में लगभग शून्य है। गाँवों के किनारे विविध प्रकार के छोटी ऊँचाई के वृक्ष तथा झाड़ियों से युक्त यह भूमि चराई के काम में आती है। मधुबनी जिले के गाँवों को कुछ ईधन की पूर्ति भी इस क्षेत्र से होती है।

REFERENCES & RESOURCES :

1. Datye, V. S. Diddee Jay Mala & Gaikwad, G. D. (1983) : Process of Land Fragmentation and Effect of Land Consolidation on Cropping and Productivity.A case Study of village Nirgudi, Pune District.Annals of the NationalAssociation of India. Vol. III, No. 1.
2. Dharm, N. (1977) : Growth of Productivity in IndiaAgriculture, India Journal ofAgriculture Economics Vol. XXXUU No. 1 PP. 1-44.
3. Dhondyal, S. P. (1964) : Regional Variation inAgricultural Development and Productivity in the Estern and Western Regions of Uttar Pradesh, India Journal ofAgricultural Exonomics, Vol. 19 (1¼ PP. 193-197.
4. Dantwala, M. L. & Shah, C. H. (1971) : Evaluation of Land Reforms (Central Report Department of Economics University of Bombay).
5. Dube, R. S. (1984) :Agricultural Productivity in Mahya Pradesh,Annals of the NationalAssociation of Geographers, India, Vol. IV. No. 2 PP. 13-34.
6. Dol, K. (1957) : The Industrial Structure of Japanese Proceedings of I. G. U. Regional Conference in Japan.
7. Gupta, H. S. (1986) : Relation between CroppedArea and Irrigation in Madhya Pradesh, Geographical Review of India, Vol. 48, No. 1, PP 12-45.
8. Hirsch, H. G. (1943) : Crop Yield Index, Journal of Farm Economics, Vol. 25, (3¼ P - 583.
9. Hussain, N. (1976) :Agricultural Productivity of India,And ExploratoryAnalysis, N. G. J. I. Varanasi, Vol - 22 (3 & 4) Sept. Dec. PP 113-123.
10. Izhari Niolofar (1978) :Agricultural Productivity and Standard Nutrition Units in Uttar Pradesh a study in special Co relation, N. G. J. I. Varanasi, Vol. 24 (1 & 2) PP. 47-49.
11. Joshi, Y. G. and J. Dube (1879) : Measurement of Regional Disparity ofAgricultural Development in M. P. The Decaan Geographer.

मानवाधिकार और हमारा समाज

डॉ0 संतोष कुमार राय

मु0-एकमीघाट
पो0-लहेरियासराय
जिला-दरभंगा
पिन-846001 (बिहार)

भारतीय समाज एक बहुलतावादी समाज है जिसमें अनेकानेक धर्म, संप्रदाय, जाति के लोग शामिल है। इस समाज की शक्ति इसी में है कि सभी समूहों के लोग सद्‌भाव के साथ रहें और एक-दूसरे के कल्याण में योगदान करें। उन्हें यह स्वीकार करना चाहिए कि सत्य पर किसी का भी एकाधिकार नहीं है और प्राय: एक ही सत्य को लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से देखते व अनुभव करते हैं। यह बात ऋषियों ने बहुत पहले कहीं थी: 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' वैदिक काल से ही भिन्न-भिन्न मार्गो से सत्य की साधना की चर्चा मिलती है। यही नहीं उस काल में यह भी कहा गया कि सभी ओर से अच्छे विचार आवे आने भ्रदा: क्रतवो यन्तु विश्वत:। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न विचारों और जीवनशैलियों के लिए खुलापन हमारे देश की परंपरा रही है।[1] समाज में समरसता हो, सभी साथ-साथ चले और आगे बढ़े ऐसी कामना की गई, संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनॉसि जानताम्।

भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पाऐंगे कि यहां शक, हूण, किरात, पारसी, मुसलमान अनेक जाति-प्रजाति के लोग आते रहें, समाज में घुलते-मिलते रहें और सामाजिक जीवन के अंग बन गए। उसके परिणामस्वरूप जिस विशिष्ट समाज का ढ़ांचा खड़ा हुआ उसमें विविधताएं आई पर समय के साथ-साथ बदलाव भी आया। बहुत सारी प्रथाएं एक समाज से दूसरे समाज में आई और उन्हें समादर भी मिला।

आज देश के सामने उभरती समस्याओं के बीच सबसे बड़ी समस्या पारस्परिक सद्‌भाव की कमी की है। इस कमी के कारण लोग एक-दूसरे पर भरोसा कम करने लगे है और संदेह से दूरी बढ़ती गई।[2] पर आज भी ऐसे अवसर दिखते हैं जब किसी दरगाह या फकीर पीर की मजार पर या किसी सिद्ध की धुरी पर अधिकांशत: बिना किसी धार्मिक भेदभाव के लोग एकत्र होते है। जीने की कामना सबकी एक ही तरह की है।[3]

मानवाधिकार एवं मानव गरिमा की धारणाओं के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् वह अधिकार जो मानव गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानवाधिकार कहा जाता है। मानवाधिकारों का सम्बन्ध मानव की स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा के साथ जीने के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने से होता है। मानवाधिकार ही समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ निर्भीक रूप से मानव गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर पाते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक हेरोल्ड लास्की के अनुसार, ''अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ होती हैं, जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता।'' उल्लेखनीय है कि मानवाधिकारों को मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, नैसर्गिक अधिकार व जन्मजात अधिकार भी कहा जाता है।[4]

मानवाधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय परम्परा को देखें तो स्पष्ट होता है कि पुरातनकाल में हमारे यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सभी प्रकार की आवश्यक व्यवस्थाएँ की गई हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सार्वभौमिक सिद्धान्त हमारी संस्कृति का मूल रहा है, जिसमें न केवल देश, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सभी प्राणियों को एक ही परिवार का सदस्य माना गया है।[5]

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं भारत के संविधान में उल्लिखित मूल अधिकार सामान्य जनों को पिछले 65 वर्षों में उपलब्ध नहीं कराया जा सका है जिसके कारण पिछले वर्षों में मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है और उसने लोकतांत्रिक ढ़ाँचे को कठिनाईयों से घेर दिया है। देश के अधिकांश जनता के लिए मौलिक अधिकारों का तब तक कोई मतलब नहीं रह जाता है जबतक राज्य के निर्देशक तत्त्वों की नींव पर नयी समाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था खड़ी नहीं की जाय। संविधान के तहत भारत का उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय मूल अधिकारों को लागू किए जाने के सम्बन्ध में सरकार को निर्देश जारी कर सकते है लेकिन निर्देशक तत्वों के मामले में ऐसा नहीं कर सकते। वर्त्तमान परिदृष्टि में आज सारा राष्ट्र मानवाधिकार के संदर्भ में अत्यन्त जटिलता एवं विविधता का सामना कर रहा है। भारत के नागरिकों को संवैधानिक मूल अधिकार एवं संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवाधिकार संबंधी सार्वभौम घोषणा से वंचित किए जाने के चलते उग्रवाद, आतंकवाद और नक्सलवाद आदि द्वारा हिंसात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती रही है। फलत: मानवाधिकार अत्यन्त ही विविधता एवं जटिलता का अनुभव एवं सामना कर रहा है।[6]

आज भारतीय समाज हिंसा और घृणा के दौर से गुजर रहा है। आज की अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, अल्पसंख्यकों, पिछड़ों एवं गरीब संवर्ग जातियों पर गंभीर अत्याचार होते हैं। पुलिस की हिरासत में आज भी मौतें हो रही है और ये मौते केवल ग्रामीण एवं दूर दराज के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजधानी दिल्ली में भी हो रही है। हवालात में बंद कैदियों पर अमानवीय दंड दिया जाता है। महिला सशक्तिकरण की घोषणा के बावजूद भी महिलाओं पर अत्याचार की घटना बढ़ती ही जा रही है। सन् 2001 में देश भर में महिलाओं पर विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के 119964 मामले प्रतिवेदित हुए हैं। पुरुष एवं महिलाओं को समानता का दर्जा हासिल होने पर भी आजादी के 58 वर्ष बाद समाज की सोच नहीं बदली है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में महिलाओं को शिक्षित बनाने और उनके विकास पर जोड़ दिया गया है। लेकिन उनके लिए ठोस नीतियाँ नहीं बनायी गई। भारतीय समाज नारी के साथ सदियों से भेदभाव बरतता रहा है तथा कई सामाजिक कुरीतियों के चलते दहेज, बाल विवाह, भ्रूण हत्या जैसे नासूर उसके विकास में बाधक बने रहे। अत: आवश्यकता इस बात की है कि समाज और सरकार दोनों को इसके लिए अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन करना पड़ेगा और महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक सोच में बदलाव लाकर उनकी उन्नति के पर्याप्त अवसर बनाने का ठोस प्रयास करना पड़ेगा।[7]

मानवाधिकार का संबंध मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में होनेवाली मृत्यु से भी है और ऐसी घटनायें कई राज्यों के साथ-साथ उत्तर बिहार में भी घटी है जिनमें जीविका का आधार क्षीण जाने से या परिवार का भरण-पोषण करनेवाले के अक्षम अथवा अशक्त बन जाने पर उनके पूरे परिवार ने आत्महत्या कर ली। प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा सुविधा तथा शुद्ध पेयजल की आपूर्ति तथा लघु एवं सीमान्त किसानों को कृषि की मूलभूत आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं कराना या बड़े खेतीहरों को अपनी जमीन जोतने से बलात् रोका जाना मानवाधिकार हनन के बोलते प्रमाण है। इस प्रकार पिछले एक दशक में उत्तर बिहार में मानवाधिकार का हनन व्यापक स्तर पर हुआ है। उत्तर बिहार के इलाकों में हुए लगातार बाढ़ की तबाही एवं इससे हुई बर्बादी, अकाल का प्रकोप, भुखमरी, बेकारी की समस्या, जनसंख्या का विस्थापन एवं पलायन आदि समस्यायें मानवाधिकार के हनन के ज्वलन्त उदाहरण है जो आलेख का गंभीर मुद्दा है। उत्तर बिहार में मानवाधिकार का हनन जिस रूप में हुआ है कि उससे राज्य का सर शर्म से झुक गया है। यह एक ऐतिहासिक विषय बनकर रह गया है कि उत्तर बिहार में बच्चों, महिलाओं तथा निर्दोष लोगों की निर्मम हत्यायें, पुलिस उग्रवादी संगठनों तथा अपराधिक गिरोहों द्वारा किए जा रहे हैं। दलितों तथा जनजातियों तथा गरीब सवर्णों पर गंभीर अत्याचार तो नये-नये रूप पकड़ते रहते हैं तथा उनके द्वारा हत्यायें तथा सामूहिक नरसंहारों की जो कड़ी बना दी गई है, उससे जन-जीवन भयत्रस्त एवं अस्त-व्यस्त बन गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उत्तर बिहार में सामाजिक, साम्प्रदायिक और जातीय तनाव किस वीभत्स मुकाम पर पहुँच गया है, जो आज समाज के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। प्रस्तुत आलेख के जरिये मानवाधिकार हनन की विभिन्न समस्याओं को तलाशने का प्रयत्न किया जायेगा तथा उसके निदान की सम्भावनाओं का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा, ताकि उत्तर बिहार के समाज के विभिन्न वर्गों के बीच समानता समरसता, सद्भाव एवं समुन्नता की स्थिति बहाल किया जा सके।[8]

प्रस्तुत आलेख में उत्तर बिहार के विभिन्न जिले अर्थात पश्चिमी चम्पारण से पूर्णिया एवं किशनगंज तक पड़ने वाले लोगों के जीवन में मानवाधिकार हनन से जो प्रभाव पड़ा है, मानवाधिकार हनन के फलस्वरूप जो अमानवीय स्वरूप उभर कर आया है तथा

आम जन-जीवन के सभी पहलुओं में जो एक आमूल परिवर्तन का दौर परिलक्षित हुआ है, उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन इस आलेख के जरिये करने का प्रयास किया गया है।[9]

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार संरक्षा विषय पर पर्याप्त चिंतन, परिसंवाद, संगोष्ठि, वाद-विवाद आदि व्यापक पैमाने पर हुए हैं जिनसे विषय-वस्तु के निरुपण एव विश्लेषण में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है। परन्तु बिहार जैसा पिछड़ा एवं अविकसित राज्य के उत्तरी हिस्सा में जिस रूप में मानवाधिकार का हनन हुआ है, वह बिल्कुल ही जाँच का विषय बन जाता है। उत्तर बिहार में सामाजिक न्याय का एक संकीर्ण तथा विकृत रूप उभर कर सामने आया है, लोकतंत्रा कमजोर हुआ है तथा मानवाधिकार का व्यापक तौर पर हनन हुआ है जो एक ज्वलंत विषय है। मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम 1993, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालयों का सृजन एवं संचालन, गैर सरकारी संस्थाओं के कतिपय प्रस्तावों, संसद एवं राज्य विधान सभा एवं परिषद में मानवाधिकार हनन के कतिपय दिए गए सुझावों, प्रस्तावों, प्रतिवेदनों आदि से पर्याप्त सामग्रियाँ प्राप्त होने की पर्याप्त संभावनाएँ है।

इस बहुलता और वैकल्पिकता की स्वीकृति के लिए स्थानीय स्तर पर समुदायों में परस्पर संबध के विकास की चेष्टा की आवश्यकता है। स्थानीय का विलोपन धीरे-धीरे व्यक्ति और राज्य के बीच किसी भी इकाई को नहीं रहने देता है। तब संकट में पड़े व्यक्ति के लिए एक समुदाय का समर्थन कम हो जाता है। निजी स्तर पर दूरियां बढ़ती जाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों के द्वारा स्थानीय तर्कों के आधार पर स्थानीय इतिहास और भूगोल के भरोसे स्थानीय अर्थव्यस्था और सांस्कृति बुनावट को ध्यान में रखते हुए सांप्रदायिक सद्भाव को और प्रगाढ़ तथा मजबूत बनाने की ओर अग्रसर हों जरथुष्ट्; ने कहा था-

''पूजा के हजारों मंदिरों का निर्माण करने से ज्यादा अच्छा है कि अगर हम किसी एक व्यक्ति को खुशी दें सके।''

बाहर के थोपे गए, उपदेश, कानून और उचित और अनुचित के बीच का विवेक एक सीमा तक ही कारगर हो सकता है। किन्तु इस बात का इतिहास गवाह है कि जिस विवेक और प्रेमभाव को स्थानीय परिचय और स्थानीय बनावट का समर्थन नहीं हासिल है उसकी नींव कमजोर होती है और एक मामूली उलट-फर से उसका समाजशास्त्र बिगड़ सकता है प्रकृति और मनुष्य के बीच सामंजस्य बिठाकर सम्मानित जीवन जीने के मनुष्य के नैसार्गिक अधिकार की भावनात्मक गूंज से निकली कविवर रवींद्रनाथ टैगोर की ये पंक्यिां संपूर्ण मानव जाति का सबब बन सकती हैं:

मैं जीना चाहता हूँ
इंसानों की फौज के बीच में
मैं जीना चाहता हूँ
उगते सूरज की फूटती किरणों के बीच में
सुदंरता और सुगंध के बीच में
मेरी इच्छा है काश मिल जाए
मुझे थोड़ी-सी जगह जीने वालों के दिलों
के बीच में।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय मानवाधिकार हनन में उत्तर प्रदेश नं0-1' अरूण कुमार त्रिपाठी, 28 मार्च 2006।
2. अंतर्राष्ट्रीय विधि एवं मानवाधिकार - डॉ0 बसंती लाल बावेल
3. हिन्दुस्तान, पटना, 10जनवरी 2006
4. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट-2002-03, पृ0 सं0 -202, केस न0 7882/95-96/रा0 मा0अ0आ0
5. एशिया का आधुनिक इतिहास - सत्यकेतु विद्यालंकार
6. 10 दिसम्बर 2005 को मानवाधिकार पर आयोजित एक कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी।
7. वही
8. संपादकीय 'दैनिक जागरण' मानवाधिकार हनन पर चिंता, 12 दिसम्बर 2005
9 वही

गाँधी जी और उनके रचनात्मक कार्यक्रम

डॉ० सोनी कुमारी

(अतिथि शिक्षक-डॉ0 एस0 के0 एस0 महिला महाविद्यालय, मोतीहारी, पूर्वी चम्पारण)
पता -भवदेपुर, वार्ड नं0 -12
पोस्ट-भवदेपुर गोट, थाना -रीगा
जिला-सीतामढ़ी (बिहार)
पिन कोड-843302

सत्ता बदलने से देश बदलता नहीं है। सत्ता पर बैठे हुए व्यक्ति बदलते हैं, परन्तु जनता की स्थिति नहीं बदलती। महात्मा गाँधी को इस बात का पता स्वाधीनता आंदोलन के दौरान चल गया था। इसलिए अफ्रिका से लौटने के पश्चात् उन्होंने देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करने के साथ-साथ स्वराज्य में आपराधिक दोषों से बचने के लिए एक के बाद एक रचनात्मक कार्यक्रम दिये।

स्वातंत्रय संग्राम के दौरान उन्होंने सिर्फ कार्यक्रम ही नहीं दिये, बल्कि उनके लिए संगठन या संघ खड़े किये। अस्पृश्यता दूर करना है और उसके लिए 21 दिन के उपवास करने की नौबत आयी तो किये और दूसरी ओर हरिजनों के हृदय को जीतने के लिए, उनकी सेवा करने के लिए 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की, उसके लिए चंदा इकट्ठा किया तथा अपनी पत्रिका का नाम 'हरिजन' रखा। उसी तरह यंत्रों के परिणाम से पैदा होती बेरोजगारी से देश को बचाने के लिए उन्होंने खादी का विचार दिया। सूत कातने को उन्होंने यज्ञ का स्थान दिया। उसके चिन्तन तथा संशोधन में उनके साथी जुट गये। चरखे में सुधार हुए। मगन लाल गाँधी, किशोर लाल भाई तथा पूज्य विनोबा जी जैसे अनेक साथी चिन्तकों ने लेख लिखकर जनता का मार्गदर्शन किया।

'बापू ने जो-जो रचनात्मक कार्यक्रम दिये, उन्हें उन्होंने अपने जीवन में तो उतारा ही, साथ ही देश भर में उन्हें व्यापक करने के लिए उच्च कोटि के सेवकों को काम में लगाया। नयी तालीम का विचार उन्होंने दिया तो उसे व्यापक और स्थिर करने के लिए 'नयी तालीम संघ' की स्थापना की। इतना ही नहीं आर्यनायकम् और आशा देवी ने तो उस काम के लिए अपना जीवन ही समर्पित कर दिया।'[1] वैसे रचनात्मक कार्यक्रम का आरंभ चार कार्यक्रमों से हुआ, मगर जैसे-जैसे गाँधीजी गहरे उतरते गये और आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे उसमें बढ़ोतरी होती गयी। फिर दस कार्यक्रम हुए और उसके बाद तो बढ़कर अट्ठारह और अंत में उसमें एक और कार्यक्रम जुड़ गया। यह बात इसलिए महत्त्व की है कि गाँधी जी अपने विचारों से अत्यंत गतिशील थे। जो समस्या पूरे देश के जीवन को पंगु बनाती हो, उस समस्या के निराकरण के लिए वे कार्यरत हो जाते तथा उसके लिए रचनात्मक कार्यक्रम शुरू कर देते थे।

हमारे देश में मध्यकाल में संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया था। इनमें कबीर और नानक आदि प्रमुख थे। 17वीं-18वीं सदी में इस देश में ईसाइयों का आना प्रारंभ हुआ। वे आये तो थे व्यापार के लिए, परंतु धीरे-धीरे इस देश में अपने पाँव जमाते गये और अपना साम्राज्य स्थापित किया। उनकी नीति हिन्दू-मुस्लिम को लड़ाकर अपनी रोटी सेंकने की रही। इसके विरूद्ध 'सबसे पहला प्रयत्न 1857 के प्रथम स्वातंत्रय-संग्राम के रूप में हुआ जिसमें हिन्दू-मुस्लिम दोनों साथ थे। अंग्रेजों ने उसे सख्ती से दबा दिया, परंतु उनकी धर्म-परिवर्तन कराने की नीति चलती रही। इस्लाम में भी धर्म-परिवर्तन कराने का रिवाज रहा।'[2] इसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप सन् 1875 में स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' की स्थापना हुई। 1915 में गाँधीजी भारत आये और गुजरात, अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की तथा वहाँ एकादश व्रत नियमावली बनायी, जिसमें एक सर्वधर्म 'समभाव' भी था।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में महात्मा गाँधी पैदा हुए। बचपन से उनकी अभेद दृष्टि थी। वे उका नामक भंगी बालक के साथ खेलते थे। गाँधीजी को रंगभेद का सबसे पहला अनुभव दक्षिण अफ्रीका में हुआ। प्रथम श्रेणी का टिकट होने पर भी रेलगाड़ी के डब्बे से उन्हें जबरदस्ती उतार दिया गया। बापू के एकादश व्रतों में 'अस्पृश्यता-निवारण' को एक व्रत के रूप में रखा गया। वे अस्पृश्यता को अधर्म मानते थे। उनके अनुसार, 'अस्पृश्यता निवारण का अर्थ था जगतमात्र के साथ मैत्री रखना। ऐसी क्रांति धीरे-धीरे भारत में भी होने लगी और शहर-शहर से अस्पृश्यता का अंत हो गया किन्तु भारत गाँवों का देश है और गाँवों में अभी तक अस्पृश्यता बनी हुई है।

1930 में उन्होंने आंदोलन के समय मद्य-निषेध के लिए बहनों को तैयार किया। शराब की दुकानों पर चौकसी करने के लिए देश की हजारों बहनें निकल गयीं। अनैतिकता के सामने नैतिकता की बड़ी दीवार खड़ी कर दी गयी। इस बारे में बापू की कितनी दूर दृष्टि थी कि शराबी लोगों के सामने उन्होंने बहनों के नैतिक बल को खड़ा कर दिया। इस कार्यक्रम के द्वारा बहुत-सी बहनें आगे आयीं, जिन्होंने बाद में भी समाज के अनेक उपयोगी कामों में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। गाँधी जी ने कहा था, 'शराब' अफीम की आय जनता में अत्यंत अद्य:पतन पैदा करने वाला एक रूप है। आय की कमी दिखाई देना तो आभास मात्र है। इस आय का मोह छूट जाए तो शराबी यानि करदाता अधिक पैसे पैदा करके खर्च कर सकता है। यानि, इससे राष्ट्र को नैतिक लाभ के साथ-साथ आर्थिक लाभ बहुत अधिक होगा।'[4]

19वीं सदी में औद्योगिक क्रांति देश में आयी और शहरों में कारखाने स्थापित होने लगे। कपड़े की मिलें स्थापित हुई। कपड़े बनने लगे। विदेशी कपड़ों द्वारा देश का भयंकर शोषण होने लगा। ऐसे शोषण से मुक्ति के लिए बापू ने चरखे को पुनर्जीवित किया। इन चरखों से सूत कातने का काम होता था और इन्हीं सूतों से खादी का कपड़ा तैयार होता था। खादी का मतलब है हाथ से काता हुआ और हाथ से बुना हुआ कपड़ा। यह स्वदेशी वस्त्र के नाम से जाना जाता है। बापू ने एकादश व्रतों में एक व्रत 'स्वदेशी' को भी रखा।

खादी के उपरांत अन्य अनेक ग्रामोद्योग, जो प्राचीन भारत के गाँवों में चलते थे और आज भी कहीं-कहीं कम- ज्यादा मात्रा में मृतप्राय दशा में चल रहे हैं। उनको फिर से नयी चेतना देने का काम हमें करना पड़ेगा। ये सारे उद्योग खादी के काम के लिए सूचक हैं। 'ऐसे कई उद्योग ग्रामीण जीवन के साथ एक रूप हो गये हैं, उनमें हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और फटकना, साबुन बनाना, कागज बनाना, दिया-सलाई बनाना, चमड़ा पकाना, तेल पेरना आदि फिर से जीवन्त और जागृत करने पड़ेंगे।'[5] गाँधी जी का इस बारे में स्पष्ट अभिप्राय है कि 'हरेक आदमी को और हर हिन्दुस्तानी को अपना यह धर्म समझना चाहिए कि जब-जब और जहाँ से मिले, वह हमेशा गाँव की बनी चीजें ही उपयोग में लायें।'[6]

अंग्रेजों ने हमारे देश में श्रम और श्रमिक की प्रतिष्ठा को खत्म कर दिया। गाँधी जी के अनुसार उसे फिर स्थापित करना चाहिए। इसीलिए गाँधीजी ने अपने एकादश व्रतों में शरीर-श्रम को स्थान दिया और संडास-सफाई के काम को भी उतना ही महत्त्व दिया, जितना देवदर्शन के लिए जाना। ग्राम स्वराज्य में सप्त स्वावलंबन का कार्यक्रम अत्यंत महत्त्व का है। इसके अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में भी गाँव को स्वावलंबी बनना चाहिए। यह कैसे हो सकता है। इसका एकमात्र उपाय है बच्चों को बुनियादी तालीम देना। बापू की यह भेंट हमें 1937 में मिली जब देश में प्रांतीय स्वराज्य आया। समाज में शिक्षा प्राप्त करने वाला वर्ग गरीब जनता को निरक्षर रखकर स्वयं शिक्षित बनता है, इसलिए उस वर्ग को समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का भान कराने का उद्देश्य भी प्रौढ़ शिक्षा के पीछे था। जो पढ़े, वह दूसरे को पढ़ाये और इस तरह दीये से दीया जले, इस न्याय से प्रौढ़ जन समाज में सही शिक्षा की धारा बहने लगी, यह भी राष्ट्रोत्थान का एक महत्त्वपूर्ण कदम गिना जाने लगा। गाँधी जी के अनुसार, 'बड़ी उम्र के अपने देशवासियों की शिक्षा का सबसे पहला अर्थ मैं यह मानता हूँ कि उन्हें जबानी तौर पर यानि सीधी बातचीत के जरिये सच्ची सामाजिक या राजनीतिक तालीम दी जाए।'[7]

19वीं सदी में समाज-सुधार के क्षेत्र में स्त्री-समाज को ध्यान में रखकर सती होने का रिवाज, बालविवाह, वृद्धविवाह, जन्म होती बच्चियों को मार डालना, पर्दा-प्रथा आदि अनेक अपराधों का विरोध किया गया। धीरे-धीरे विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, सह

शिक्षा आदि में सुधार दाखिल होने लगे। महात्मा गाँधी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन के दौरान आखिरी बारी बहनों के सत्याग्रह का आता है। इसके लिए गाँधीजी बहुत सुन्दर ढ़ंग से कस्तूरबा को तैयार करते हैं और उनकी अगुआई में अनेक बहनें सत्याग्रह करके जेल भी जाती हैं। इस तरह एक लंबी लड़ाई सफलतापूर्वक सम्पन्न होती है।

महात्मा गाँधी का मानना है कि जो समाज सुव्यवस्थित है उसमें रहने वाले सभी लोग-स्त्री और पुरुष तन्दुरूस्ती के नियम को जानते हैं और उस पर अमल करते हैं। ईश्वर ने आत्मा के निवास के लिए शरीर का निर्माण किया है। इसलिए जब तक शरीर में आत्मा है, तब तक शरीर और स्वास्थ्य की रक्षा करना मनुष्य की पहली जिम्मेवारी है। गाँधीजी ने इसे तन्दुरूस्ती की शिक्षा कहा है।

भाषा का सीधा सम्बन्ध शिक्षा के साथ है। शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा का माध्यम दुनिया भर में स्वीकृत सिद्धांत है। चीन, जापान, रूस, फ्रांस आदि अनेक देशों ने तमाम क्षेत्रों में अपनी भाषाओं द्वारा ही विकास किया है। गाँधी जी इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहते हैं, 'मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देने से अंग्रेजी भाषा के ज्ञान को धक्का पहुँचेगा कि नहीं, यह विचार करने की आवश्यकता मैं स्वीकार नहीं करता। उस भाषा पर सब शिक्षित भारतीयों का अधिकार हो और उसके लिए रूचि पैदा हो, यह जरूरी नहीं है, ऐसी मेरी नम्र मान्यता है।'[8] 1909 में गाँधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में राष्ट्रभाषा हिन्दी के बारे में लिखा था, 'समग्र हिन्दुस्तान को जो चाहिए वह तो हिन्दी भाषा ही है और उसे नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए।'[9] दक्षिण अफ्रीका के दोनों आश्रमों में उन्होंने शिक्षा का काम किया था, तभी उनके ख्याल में आया कि सारे भारतीयों को जोड़ने वाली एकमात्र भाषा हिन्दी है।

हमारे देश के आर्थिक सवालों में सबसे महत्त्व का सवाल गरीबी और बेरोजगारी का है। अंग्रेजों की गुलामी के समय इस देश में भयंकर शोषण होता रहा, उस कारण आजादी के बाद आज जितने भी प्रश्न हैं उनमें गरीबी और बेकारी भयंकर स्थिति में है। इसको कैसे दूर कर सकते हैं, यह भी एक रचनात्मक कार्यक्रम है। इसके लिए बापू ने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत दिया है। हम जो कुछ भी आर्थिक सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, उसमें समाज का भी हिस्सा है। मनुष्य अपनी जरूरत के अनुसार अपने पास जरूर रखे किन्तु बाँकी का समाज उपयोग करे, यह इसमें अपेक्षित है। ट्रस्टीशिप द्वारा मालिक और मजदूर दोनों का हित होता है और भाईचारे की वृत्ति की वृद्धि होती है।

19वीं सदी में आर्थिक समानता के लिए मार्क्सवादी विचारधारा आयी, परंतु उसमें साधन की शुद्धि का आग्रह नहीं था। रूस और चीन में उसके मारफत 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में क्रांतियाँ हुईं, परंतु वहाँ भी इस आर्थिक समानता का प्रश्न उलझ गया। रूस का साम्यवादी शासन टूट गया और साम्राज्य बिखर गया। वास्तव में इसके लिए जरूरी था-हृदय-परिवर्तन। हिसंक मार्ग से कभी स्थायी शांति नहीं आती, अहिंसा का रास्ता हृदय-परिवर्तन का रास्ता है। बापू ने कहा, 'आजाद हिन्दुस्तान में देश के बड़े-से-बड़े धनवानों के हाथ में हुकूमत का जितना हिस्सा रहेगा, उतना ही गरीबों के हाथ में भी होगा और तब नयी दिल्ली के महलों और उनकी बगल में बसी हुई गरीब मजदूर बस्तियों की टूटी-फूटी झोपड़ियों के बीच जो भयंकर फर्क आता है, वह एक दिन भी नहीं टिकेगा।'[10]

गाँधीजी आर्थिक समानता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, 'आर्थिक समानता यानि हरेक व्यक्ति के पास समान माल-मिल्कियत हो, यह मतलब नहीं है, परंतु समानता का यह अर्थ तो जरूर है कि हरेक को रहने योग्य घर, पूरा और समतोल भोजन तथा शरीर ढ़ँकने के लिए जितनी चाहिए, उतनी खादी मिले। उपरांत यह भी अर्थ है कि आज जो निर्दय विषमता है, उसे शुद्ध अहिंसक साधन द्वारा दूर किया जाए।'[11] यह तब हो सकता है, जब ऊपरी समाज अपरिग्रही बने। हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मो में अपरिग्रह को व्रत के रूप में गिना गया है किन्तु हमलोग तो इतनी संग्रह पूर्ति में पड़े हैं कि दूसरों की चिन्ता ही नहीं करते, फिर सबको जरूरत के अनुसार कैसे मिल सकता है ? दूसरों को नहीं मिलता है, क्योंकि हमने उसको संग्रह कर के रखा है।

संदर्भ :

1. 'महात्मा गाँधी', रामजी पोद्दार, अर्चना पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1950, पृ.-372
2. वही, पृ.-07
3. वही
4. 'गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम', रजनी कोठारी, अखिल भारतीय चरखा संघ, वर्धा, 1951, पृ.-57
5. 'ग्रामोद्योग और गाँधी', सुनील पाराशर, ओरियंट लांगमैन्स, कलकत्ता, 1965, पृ.-127
6. वही
7. 'गाँधी जी का शिक्षा-दर्शन', नित्यानंद तिवारी, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1945, पृ.-176
8. वही, पृ.-210
9. वही
10. 'महात्मा गाँधी', विश्वनाथ प्रसाद, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 2007, पृ.-63
11. वही, पृ.-97

भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक समस्याएँ

डॉ० सुमन कुमार पोद्दार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
अर्थशास्त्र विभाग
ए0 एन0 डी0 महाविद्यालय, समस्तीपुर

रोजगार की समस्या आधुनिक युग की एक विकट समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की क्षेत्रों में रोजगार की समस्या से आशय उस व्यवस्था एवं दशा से है जो ग्रामीण जन जीवन में निष्क्रियता भूख, निम्न जीवन स्तर आदि को जन्म देती है। कृषि ग्रामीणों का मूल व्यवसाय ही नहीं बल्कि गाँवों का क्रम है। इस क्रम से वहाँ के जन-समुदाय को वंचित करने की दशा ग्रामीण बेकारी के नाम सम्बोधित की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या एक सामाजिक तथा आर्थिक समस्या है। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था के अनुसार वहाँ ऐसी दशाये व्याप्त रहती है। जिसके फलस्वरूप समुदाय का विशिष्ट अंग कार्य विहीन रहता है। ग्रामीण बेकारी प्रवृत्ति प्राकृतिक सामाजिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित हुई परिस्थितियों प्राकृतिक बेरोजगारी का विकास करती है, लेकिन प्राकृतिक जीवन पर आधारित ग्रामीण संगठन प्राकृति के प्रकोप से सदा प्रभावित होते रहते हैं। अत: वे प्राकृतिक दशायें जो ग्रामों में निवास करने वाले मानव श्रम का रचनात्मक परिणाम नहीं प्राप्त होने देती, ग्रामीण बेरोजगारी कहलाती है। साथ ही साथ सामाजिक परिस्थितियों जिनके फलस्वरूप व्यक्तियों को भूमिहीन होने के लिए बाध्य होना पड़ता है, ग्रामीण बेकरी का प्रमुख आधार है। भारतवर्ष में ग्रामों में रोजगार मौसमी होता है। किसान केवल रबी और खरीफ के समय व्यस्त रहते हैं। और उनका शेष समय बेकार रहता है। केवल 60 प्रतिशत समय का उपयोग ग्रामीण जनता कर पाती है और शेष समय में वह बेकार रहता है। इस प्रकार इन लोगों में कम रोजगार पाया जाता है। ''गाँव में खेती योग्य भूमि लगातार घटती जा रही है और इसी के साथ घटते जा रहे हैं रोजगार के अवसर। आज गाँव का युवा बेरोजगार है और बदहाली के ऐसे कगार पर है कि उसे कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा।'' प्रो. पी. जे. थामस के अनुसार भारतीय कृषक केवल 5 माह कार्य करते है। श्री जैक का मत है कि पाट बनाने वाले 9 माह और चावल बोने वाले $7^1/_2$ माह बेकार रहते हैं। डॉ. राधा कमल मूखर्जी ने लिखा है कि उत्तरी भारत के कृषक केवल 200 दिन कार्य करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के कारण -

ग्रामीण तथा कृषि दोनों ही पर्यायवाची शब्द है। ग्राम के लोग कृशि पर निर्भर है। अत: कृषि सम्बन्धी बेरोजगारी के कारक ही ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के प्रमुख कारण है। हमारे देश में कृषि की प्राकृति एवं व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या को जन्म देती है। ''आज भी भारत में कुल आबादी का 68.32 प्रतिशत हिस्सा गाँवों में रहता है परन्तु विकास का स्तर प्रति व्यक्ति आय, अवसंरचनात्मक सुविधा रोजगार के अवसर इत्यादि जैसी कई प्रमुख समस्याएं है।'' रायल कृषि आयोग के अनुसार, भारत में ग्रामों में कृषक 6 माह तक बेकार रहते है। राष्ट्रीय आय समिति की रिपोर्ट के अनुसार कृषि द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की आय अन्य व्यवसायों की तुलना में-

(1) जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि –भारत में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। $1^1/_4$ प्रतिशत अर्थात 4.5 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष बढ़ती हुई जनसंख्या को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर रहना पड़ता है लेकिन कृषि की वर्तमान व्यवस्था इस अतिरिक्त जनसंख्या को रोजगार का प्रयास दिन पर दिन बढ़ने का एक और कारण है कि गाँव में परिवार नियोजन की न तो समुचित विधियाँ ही है और न ग्रामीण लोग इसे स्वीकार करते हैं। ''अल्प विकसित देशों में सामान्यत: जनसंख्या आधिक्य की स्थिति होती है। इन देशों में उपलब्ध साधन अपनी जनसंख्या की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं।

(2) खेतों का विभाजन –खेतों का विभाजन बढ़ती हुई आबादी के कारण ही हमारे देश के किसान पहले से ही निर्धन है, उस पर पीढ़ी में उनकी संतानों के मध्य भूमि का बँटवारा हो जाने से भूमि बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाती है और खेती के लिए अलाभकारी हो जाती है। यही पर विस्तस्त खेती की जाती है जो इस प्रकर के खेतों में असम्भव होती है। और साथ ही साथ गहरी खेती के लिए न तो उपयुक्त साधन ही है और न किसान ही प्रशिक्षत है जो गहरी खेती में सफलता प्राप्त कर सके। फलस्वरूप खेतों पर व्यक्तियों का दबाब अधिक हो जाता है।

(3) भूमि का सीमित एवं विखरा होना – कृषि हेतु भूमि की अधिक आवश्यता होती है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि होने से निवास व्यवस्था में भूमि काम में आने लगी है। औद्योगिकीकरण के कल कारखानों में अधिक भूमि घेर ली है। इस प्रार कृषि भूमि कम हो गयी है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण सामाजिक जीवन में विघटन होने एवं परिवार व्यवस्था का संयुक्त रूप भी विघटन होने से जनजीवन में पारस्परिक झगड़े एवं तनाव उत्पन्न हो गये हैं।

(4) अवैज्ञानिक एवं प्राचीन कृषि पद्धति –अन्य देशों की तुलना में हमारे किसान कम उपज कर पाते हैं। इसका कारण उसके पास खेती के पुराने और अवैज्ञानिक साधनों का होना है। यहाँ सुधरे हुए बीजों, उपजाऊ खाद और अच्छी नस्ल के पशुओं की कमी है। इन सभी असुविधाओं के कारण किसान को अच्छी फसल नहीं मिल पाती है।

(5) कृषि का वर्षा पर आधारित होना –हमारे देश में नहरों और बाँधों का समुचित प्रबन्ध न होने से किसानों को खेती क लिए प्राकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। यहाँ अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण खेती को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ती है, साथ ही ओला और पाला ऐसे प्राकृतिक कारण है जिनसे खेती असुरक्षित रहती है और बहुत जल्दी अकाल पड़ता है, फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ जाती है।

(6) कुटीर उद्योगों का पतन –ग्रामीण जन जीवन में कृषि को अस्थायी एवं प्राकृतिक निर्भरता की प्राकृति होने के कारण प्रारंभ में कुटीर उद्योगों की व्यवस्थ थी। इससे कृषक के उपरान्त अन्य सहायक उद्योगों में अपने श्रम या जन समुदाय का सदुपयोग कर लेते थे, लेकिन अंग्रेजी शासन काल में अतिरिक्त राजकीय हस्तक्षेपों से इस व्यवस्था का विनाश हो गया। इसके अलावा औद्योगिक ग्रामीण क्रांति के फलस्वरूप मशीनों आदि के उपयोग से कुटीर उद्योगों का ह्रास हो गया। इससे ग्रामीण जन जीवन बेकार गया। ''ब्रिटिश सरकार अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में भारत को कच्चा माल का निर्यातक तथा पक्के निर्मित माल का आयातक बनाये रखने की पक्षधर थी। ऐसे वातावरण में लघु एवं कुटीर उद्योगों का अस्तित्वसे बाहर हो जाना स्वाभाविक ही था।'

(7) विशाल उद्योग धन्धों में विकास न होना –इसका एक कारण यह है कि ग्रामीण उद्योग धन्धों के ह्रास के बाद आवश्यकता के अनुरूप विशाल उद्योग धन्धों का विकास नहीं हुआ। यदि उनका विकास होता तो गाँव के बेकार लोगों की समस्या कुछ मात्रा में कम हो सकती थी।

(8) नगरीकरण –नगरीकरण ने भी ग्रामीण बेरोजगारी को विकसित करने में सहयोग दिया। है। नगरों के आकर्षण एवं कल कारखानों से प्राप्त चाँदी के चन्द टुकड़ों ने ग्रामीण जनता को अपनी ओर खीचा पुन: गाँवों की ओर आये। लेकिन शहरी भौतिकवाद से बनाव ठनाव ने उनमें श्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। उनका मन कृषि कार्य से हटने लगा, अब वे कही के न रहे। इधन उधन भटकते रहे और बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि हुई।

(9) शहरी शिक्षा का कुप्रभाव –स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात गाँवों में शिक्षा का प्रयास किया गया। परम्परागत एवं बुनियादी शिक्षा के आधार पर गाँवों नवयुवक शिक्षिक हाने लगे, लेकिन शिक्षा पद्धति में क्रियात्मक कार्यो का विशेष रूप से ग्रामीण उद्योगों की शिक्षा का अभाव रहा ग्रामीण जनता भी शिक्षित होकर शहरों की ओर नौकरी की तलाश में इधर-उधर घूमने लगी। उनके कृषि से घृणा हो गयी है और इसे अशिक्षितों का कार्य समझने लगे। अपनी इस मूर्खतापूर्ण समझ के परिणामस्वरूप न नौकर प्राप्त कर सके और न अपने वंश के परम्परागत व्यवसायों में रूचि ली। इस प्रकार काफी संख्या में ग्रामीण युवक बेकार रहे।

(10) मशीनो का उपयोग-सरकारी प्रयत्नों ने कृषि का दृष्टि से परम्परागत प्रविधि का समाप्त किया। खेतों में ट्रैक्टर चलने लगे। कुँओं से बिजली की मशीनों से पानी निकाला जाने लगा। इससे उत्पादन एवं क्षमता में वृद्धि हुई, लेकिन ग्रामीण जनता बेरोजगार हो गयी।

(11) ग्रामीण सामाजिक विघटन -ग्रामीण सामाजिक विघटन ने भी बेरोजगारी और इसकी समस्या को प्रोत्साहित किया है। पहले ग्रामीण जनता में समुदायिक भावना विशेष रूप से पायी जाती थी। वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर इकाइयों में संगठित थे। विज्ञान की ज्योति से गाँवों के लोग भी शहरों के लोगों से प्रभावित हुए। सामुदायिक भावना के स्थान पर व्यक्तिवादी भावना का विकास हुआ। इस वैयक्तिकता ने आर्थिक वैयक्तिकता को जन्म दिया। जिससे कृषि उत्पादन में ह्रास हुआ। भूख ने लोगों की विचलित कर लिया और बेकरी की समस्या भीषण हो गयी।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगर समस्या के दुष्प्रभाव -

रोजगार मानव जीवन का महत्वपूर्ण आधार है। यह एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मानव अपनी मूलभूत आवश्यकता की संतुष्टि करता है। स्पष्ट ही है कि यदि किसी भी व्यक्ति को रोजगार नहीं मिलेगा तो इसके परिणाम कितने भयंकर होंगे। दूसरे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म होता है। इन समस्याओं का समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। रोजगार समस्या के जो प्रमुख दुष्प्रभाव है, उन्हें निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) राजनैतिक दुष्प्रभाव -आधुनिक युग में रोजगार की समस्या के बुरे प्रभाव राजनैतिक जीवन पर भी पड़ते है। इससे सामाजिक और आर्थिक दुष्परिणाम अत्यन्त ही भयंकर होते है। ये सामाजिक, आर्थिक दुष्प्रभव राजनैतिक दोशों को जन्म देते है। रोजगार की समस्या से देश की अर्थिक स्थिति शिथिल हो जाती है और देश में शान्ति तथा स्थापना में कठिनाई होती है। इस अशान्ति और अव्यवस्था से देश में राजनैतिक अस्थिरता व्याप्त हो जाती है। इससे युद्ध और क्रान्ति की संभावना बढ़ जाती है। इससे देश में स्वतन्त्र राजनैतिक दशाओं की स्थापना नहीं हो पाती है।

(2) व्यापार पर दुष्प्रभाव :-रोजगार की समस्या से व्यापार को भीषण हानि होती है। इसका अर्थ यह है कि व्यापार में लगी पूँजी पर लाभ कम हो रहा है। इसके साथ ही दूसरे रर्क्टा चलते रहते है। चाहे मशीन काम कर रही हो या नहीं जैसे कि टैक्स, किराया बीमा आदि। इसी तरह इस्तेमाल होने पर मशीन आदि भी खराब होती रहती है।

(3) रोजगार की समस्या का मजदूरी पर पाँच प्रकार का दुष्प्रभाव पड़ता है -

(क) रोजगार की समस्या उत्पन्न होने पर मजदूर मिलना बन्द हो जाती है जिससे कारीगर की आमदनी बिल्कुल ही खत्म हो जाती है। (ख) कुछ खास तरही के जैसे मौसमी धन्धों में अनियमितता होने के कारण खर्चो में भी अनियमितता होती है। (ग) रोजगार की समस्या के कारण यानी बाजार में माँग से अधिक मजदूरों के होने के कारण जो लोग काम में लगे होते है उनकी मजदूरी में कटौती कर दी जाती है। यह विशेषकर उन उद्योगों में होता है जहाँ मजदूरों में कोई संगठन नहीं होता है। (घ) मजदूरों की भरमार होने का नाजायज फायदा उठाते हुए उनके मिल मालिक अपने मजदूरों की मजदूरी देने में ढील देते है और एक दो महीने तक उसका भुगतान नहीं करते। (ड.) रोजगार की समस्या आने से मजदूरों में कमी आती है क्योंकि बेकारी के दिनों अभ्यास टूट जाने के कारण कारीगर की कार्य कुशलता में कमी हो जाती है और बाद में ज वह कार्य करने आता है तो अपनी कार्य कुशलता में हुई कमी के कारण उसकी मजदूरी भी कम मिलती है।

(4) व्यक्ति के क्रयशक्ति पर दुष्प्रभाव -मजदूरी में कमी होने के कारण व्यक्ति की क्रयशिक्त कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप बाजार में माल की खपत कम होने के कारण व्यापार मन्द पड़ जाता है और व्यापारी की मजदूरी देने की शक्ति में कमी आ जाती है। रोजगार की समस्या प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों की प्रकार से क्रयशक्ति में कमी लाती है।

(5) परिवार पर दुष्प्रभाव -परिवार के आर्थिक साधनों और करीगर की कार्य कुशलता पर प्रहार करने के साथ ही रोजगार की समस्या उस प्रत्येक हाल पर प्रहार करती है जो एक सुखद पारिवारिक जीवन बनाती है। वहाँ माँ को परिवार की आय बढ़ाने के लिए घर से बाहर कार्य कने के लिए मजदूरी करती है। वह बच्चों को स्कूल से हटाकर उद्योग में लगाने में लगाने को बाध्य करती है। माँ को परिवार से हटाकर बच्चों के उसकी देख-रेख से वंचित करती है जो न केवल अच्छे स्वास्थ्य बल्कि नैतिकता की नींव डालती है। रोजगार की समस्या परिवार को टूटे या गन्दे मकन में रहने को बाध्य करती है। जो आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है और स्वास्थ्य तथा शक्ति के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या को दूर करने के उपाय -

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के अध्ययन एवं निवारण के प्रयत्नों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। विभिन्न विचारकों ने इस दिशा में अनेक रचनात्मक सुझावों का प्रतिपादन किया है। लेकिन इस सुझावों में देश काल और गति के अवरोध ऐसे रहे है, जिनसे वांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई। विशेष रूप से ग्रामीण जनता का रूढ़ि होना एवं नये प्रयोगों के प्रति उदासीनता का व्यवहार आदि उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात तो इस दिशा में सरकार तथा समाज का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। रोजगार की समस्या न केवल ग्रामीण समस्या ही है बल्कि यह भारत की महानतम समस्याओं में से एक है। ''यद्यपि सरकार द्वारा रोजगार की दिशा में कई रोजगार मूलक योजनाओं का अनुसरण एवं क्रियान्वयन किया गया है जिससे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नये-नये अवर उत्पन्न हुए और ग्रामीण बेरोजगार पर नियंत्रण पाया जा सका है।''[5] ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या को निम्न प्रकार से दूर किया जा सकता है-

(1) कृषि में सुधार -कृषि ग्रामीण भारत की महान समस्या होने के साथ ही अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की केन्द्र बिन्दु है। यदि कृषि का वर्तमान में पूर्णरूप से पुनरूद्धार कर दिया जाय तो न केवल भारत की आर्थिक दशा एवं बेरोजगारी का ही उन्मूलन होगा। वरन् अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ भी समाप्त हो जायेगी। इस संबंध में निम्न उपाय उल्लेखनीय है -

(1) अनार्थिक जोतों का अंत करने के लिए भूमि का अपखण्डन रोका जाय और भूमि-विभाजन तथा भूमि उत्तराधिकार के नियमों में महान परिवर्तन किये जाये।

(2) चकबन्दी करके आर्थिक जोतों एवं सामुदायिक कृषि तथा संतुक्त खेती को बढ़ावा देना है। ''इस व्यवस्था में छोटे किसान अपनी भूमि एकत्र कर देते हैं, जिनकी भूमियों पर अलग-अलग रूप में लाभप्रद कृषि संभव नहीं है। अत: छोटे भूखण्डों को एक इकाई के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है और संयुक्त रूप से कृषि की जाती है, किन्तु प्रत्येक किसान का भूमि पर स्वामित्व बना रहता है।''

(3) कृषि कार्य को सहकारी समितियों द्वारा संचालित किया जाय।

(4) कृषि उत्पादन वृद्धि हेतु नये बीज, खादों का समुचित मात्रा में उपयोग किया जाये।

(5) गहरी खेती पद्धति को अपनाया जाय।

(6) फसलों के फेर का निश्चित क्रम निर्धारित किया जाय।

(2) कुटीर उद्योगों का विकास -ग्रामों में कुटीर उद्योगों का पुन: विकास करना सबसे अधिक अनिवार्य है। ग्रामीण सन्तति को कुटीर उद्योगों की व्यवस्थित शिक्षा प्रदान कर प्रोत्साहित किया जाय। कुटीर, उद्योगों के विक्रय एवं सामूहिक बाजार व्यवस्था को संगठित करनाा चाहिए। शहरों में ग्राम उद्योगों की बनी वस्तुओं का अधिक से अधिक मात्रा में विक्रय एंव उपयोग के प्रति प्रोत्साहन एवं सुविधाएँ विकसित की जाये। गाँवों में इन उद्योगों हेतु बिजली एवं छोट मशीन लगायी जाये। कुटीर उद्योगों में नवीन। उद्योगों को स्थान दिया जाय। ग्राम स्तर पर संगठित उद्योगों के कारखानों को बढावा दिया जाय। यातायात के साधन एवं उपयुक्त शिक्षा एवं प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास हो। ''सरकार कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास हेतु सतत् प्रयत्नशील है। सरकार द्वारा कुटीर एवं लघु उद्योगों पर दिये गये ध्यान के फलस्वरूप इन उद्योगों का देश में पर्याप्त विकास हुआ है एवं रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए है।''[7]

(3) जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम -जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम एवं परिवार नियोजन के कार्यक्रम का ग्रामों में विकास किया जाय। सन्तति निरोध आन्दोलन प्रदर्शन एवं शिक्षा द्वारा रचनात्मक पक्ष पर बल दिया जाय। ग्राम जीवन के रहन-सहन के स्तर एवं शिक्षा विशेष रूप से महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया जाय। मनोरंजन चिकित्सा के समुचित साधनों का ग्रामों में विकास हो।

(4) नगरीकरण का बहिष्कार -ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या को दूर करने के लिए नगरीकरण का बहिष्कार भी आवश्यक है। ग्रामीण जनसंख्या की गतिशीलता को कम कियाजाय। कृषि हेतु उपयुक्त भूमि पर कल करखाने न खोले जाये। इस हेतु बाजार बंजर या पहाड़ियों पर नवीन-बस्तियां एवं औद्योगीरण का विकास किया जाये।

(5) सार्वजनिक निर्माण कार्य -सार्वजनिक निर्माण की योजना भी ग्रामीण बेरोजगार को दूर करने में अच्छा योग दे सकती है। यातायात बिजली व सिंचाई की योजनाएं पंचायत, स्कूल, अस्पताल, भवन-निर्माण के कार्यों भूमिहीन कृषकों को स्थन दिया जाना चाहिए। इससे बहुत कुछ बेकारी को दूर किया जा सकता है।

(6) उपयुक्त शिक्षा-शिक्षितों को खेती संबंधी शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षित लोगों को विभिन्न राज्यों में भूमि का उपजाऊपर बनाये रहना, फर्टिलाइजर्स के प्रयोग, गहरी सिंचाई के साधनों का सदुपयोग फसलों की हेर-फेर और दोहरी फसल सुधरे हुए औजारों के प्रयोग आदि से संबंधित शिक्षा मिलनी चाहिए। जिला अधिकारियों के अधीन प्रत्येक गाँव में एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो कि खेती के प्रारंभिक ज्ञान से किसानों को अवगत करा सके।

(7) पंयायतों का पुनर्गठन -पंचायते भारतीय जीवन की आत्मा थी। अंग्रेजी शासन काल में इनका विनाश हो गया। अब ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के उन्मूलन के लिए पंचायतों का पुनर्गठन करना आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के हल -

भारत का कृषि प्रधान देश है, यहाँ की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या के दबाव के कारण लोगों को पर्याप्त मात्रा में रोजगार नहीं मिल पा हा है। इस समस्या ने देश के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक की है कि इस समस्या का निदान किया जाए। इस समस्या का हल निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया सकता है। ''भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर 2.35 प्रतिशत के कारण प्रतिवर्ष 1.50 करोड़ लोगों की संख्या बढ़ रही है अर्थात प्रतिवर्ष एक नये आस्ट्रेलिया का जन्म हो रहा है इस विस्फोटक गति से बढ़ रही जनसंख्या के लिए भोजन, कपड़ा एवं मकान की न्यूनतम आवश्यकता उपलब्ध कराना भी नितान्त दुष्कर कार्य है। फलस्वरूप उनमें निर्धनता बढ़ी है।

(1) अन्तर्राष्ट्रीय समितियों द्वारा योजनाएँ - अन्तर्राष्ट्रीय समितियों ने रोजगार की समस्या के समाधान के लिए निम्न बिन्दुओं की चर्चा की -***(1) यान्त्रिक सहायता*** - रोजगार की समस्या को समाप्त करने के लिए यांत्रिक सहायता है। इस यांत्रिक सहायता से कृषि और उद्योगों की प्रगति होगी और बेरोजगारी को समाप्त करने में मदद मिलेगी यांत्रिक सहायता के संदर्भ में दो निम्न संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है (अ) खाद्य और कृषि संगठन (ब) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ। ***(2) ऋण और सहायता*** - बेरोजगारी की समस्या को दूर करने का दूसरा उपाय, जो अन्तर्राष्ट्रीय समितियों ने दिया है तथा अन्य सहायता से संबंधित है। अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस बैक उन देखों को आर्थिक सहायता देता है। जहाँ धन या पैसे की कमी होती है। ***(3) व्यापारिक सहायता*** - व्यापारिक सहायता के द्वारा भी रोजगार की समस्या को समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अर्न्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का निर्माण हुआ है।

(2) योजना आयोग द्वारा प्रयत्न :-योजना आयोग ने रोजगार की समस्या को समाप्त करने के लिए जो सुझाव है वे निम्न है -

1. व्यक्तियों अथवा समूहों को विशेष आर्थिक सहायता।
2. कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा उनसे उत्पन्न वस्तुओं के वितरण और विक्रय की उचित व्यवस्था करना।
3. प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना।
4. औद्योगिक शिक्षा का प्रसार।
5. यातायात के साधनों को विकसित करना।
6. शिक्षा-प्रणाली क पुनर्गठन करना तथा व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना।
7. कार्य एवं प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना। ''भारत में पूँजी निर्माण की दर कम है। पूँजी निर्माण की दर कम होने के कारण भारत में आर्थिक विकास की दर कम है, फलत: राष्ट्रीय आय का है और लोग निर्धन है।''[9]

संदर्भ :-

1. डॉ. रेणू त्रिपाठी : ग्रामीण विकास और निर्धनता उन्मूलन, ओमेगा पब्लिकेसन्स दिल्ली 2011, पृ. 15
2. कुरूक्षेत्र, अक्टूबर 2014, पृ. 13.
3. गोयल अनुपम : अर्थशास्त्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी खजूरी बाजार इंदौर 2011 पृ. 204
4. डॉ. माथुर, रीता : औद्योगिक अर्थशास्त्र, अर्जुन पब्लिकेशन्स हाउस, दिल्ली 2009, पृ. 296
5. कुरूक्षेत्र, अक्टूबर 2014, पृ. 48
6. राय, विनय कुमार : भारतीय अर्थशास्त्र, विकास पनोरमा प्रकाशन दिल्ली 2013-14 पृ. 138
7. कुरूक्षेत्रा, अक्टूबर 2014, पृ. 48
8. पंत डी.सी. : भारत में ग्रामीण विकास कालेज बुक डीपी जयपुर 2002-03 पृ. 83
9. सिन्हा वी.सी. : अर्थशास्त्र एस.बी.पी. डीपब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृ. 24

कुन्दमाला नाटक में रसों की अवस्थितिः एक विश्लेषण

डॉ० विश्वजीत

ग्राम + पो0- बौंसी
जिला-बाँका (बिहार)

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति रस् धातु में अच् प्रत्यय लगने से हुआ है। 'आस्वाद्यते इति रस:' अर्थात् जो आस्वादित किया जाय, वह रस है। आचार्य मम्मट की दृष्टि में ''लोक व्यवहार में रति आदि भावों के जो कारण, कार्य या काव्य में रति आदि स्थायी भावों के कारण कार्य और सहकारी कारण कहे क्रमश: विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं और विभावादिकों के द्वारा स्थायीभाव व्यक्त होकर 'रस' कहा जाता है।''[1]

भरत मुनि ने 'रस' को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिश्पति:'' अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव का संयोग होने पर रस की निष्पत्ति होती है। उन्होंने अभिनव का अन्तिम उद्देश्य सहृदय जन में रस की निष्पत्ति को माना है। विभाव, अनुभाव और चारी भाव के पुष्ट होने पर ही स्थायी भाव नाट्य रस कहलाते हैं। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने भी इन्हीं के मत का समर्थन किया है-

विभावा अनुयावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणा:।
व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायी भावो रस: स्मृत:।[2]

कविराज विश्वनाथ ने भी कहा है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से व्यक्त होकर सहृदय-हृदय में स्थित रति आदि स्थायीभाव ही 'रसत्व' प्राप्त कर लेते हैं। इन्होंने तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। ये रस से हीन रचना को काव्य की संज्ञा नहीं देते।

''कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादे: स्थायिनो लोके तानि चेन्नाद्यकाव्यो:।[3]

'रसे सारष्चमत्कार:' अर्थात् रस जीवन का सार है। वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी रस शब्द का प्रयोग हुआ है, परन्तु काव्यानन्द के रूप में नहीं बल्कि ब्रह्मानन्द के रूप में हुआ है। ब्रह्मानन्द को भक्तिरस कहा गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार 'रसो वैश:' अर्थात् वह ब्रह्मनिश्चय ही रस है और रस को पाकर आनन्दित हो जाता है। अभिनवदर्पण के प्रणेता नन्दकेश्वर नाट्यशास्त्र से प्राप्त होने वाले आनन्द को ब्रह्मानन्द से भी अधिक अच्छा मानते हैं। परन्तु आचार्य भरत काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द से श्रेष्ठ न मानकर ब्रह्मानन्द सहोदर मानते हैं। ब्रह्मानन्द शाष्वत, नित्य और स्थायी हैं, जबकि काव्यानन्द क्षणिक और अनित्य है। जिस प्रकार निर्विकल्प समाधि में ध्यान करता हुआ योगी परमानन्दका अनुभव करता है, उसी प्रकार काव्यानन्द प्रस्ति की अवस्था में पाठक, श्रोता या संसार से पूर्णत: विरक्त होकर आनन्द का अनुभव करता है, यही काव्यानन्द रस है।

मानव का हृदय भावनाओं का समुद्र कहा जाता है, जिसके अन्दर कई भावनाएँ सुसुप्तावस्था में रहते हैं। इन भावों को रति, शोक, उत्साह, आश्चर्य, हास्य, क्रोराम आदि कई श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। काव्य को पढ़ने-सुनने अथवा नाटक को देखने से

हृदय में अवस्थित रति, शोक, उत्साह, आश्चर्य आदि भावों में से किसी एक के निष्पन्न होकर प्रकाशित हो जाने से जिस अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे दृष्य या श्रव्य काव्य में रस कहते हैं।[4]

करुण रस से ओत-प्रोत कुन्दमाला नाटक में नाटककार ने काव्यस्थापना के प्रसंग में ही श्रोता के हृदय में शोक का संचार कर देते हैं-

लंकेश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति
रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन।
निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वी
*सीतां वनाय परिकर्शति लक्ष्णो*यम्।।*[5]

अर्थात् लंकापति रावण के दरबार में चिरकाल तक रही इस हेतु लोक के दोशारोप के भय से कातर हुए राम ने अपने राज्यक्षेत्र से भी निकाली गई। आभूषणों के भार से लदी सीता को ये लक्ष्मण वन ले जाने के लिए खींचते हैं।

यहाँ लंकेश्वर के दरबार में सीता दीर्घकाल तक रही है जिससे श्रोता के हृदय में रति अवस्थित हो जाती है। लोकापवाद के भय से निर्वासित सीता को देखकर हृदय में शोक उमड़ जाता है। क्योंकि सीता गर्भगुर्वी है, यह करुणा का विषय बनता है। जनपद से उस करुणावस्था में सीता का निर्वासन हो रहा है, यह सब देखकर दर्शक के हृदय में सुशुप्तावस्था में स्थित भाव जाग्रत एवं उद्दीप्त होकर रसावस्था में निष्पन्न हो जाता है। इस कारण रस को हृदय में विद्यमान रखते हुए नाटककार ने सीता के परित्याग से दु:खी वन के पशु-पक्षी आदि के कारुणिक विलाप का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है–

''ऐते रुदन्ति हिरणा हरितं विमुच्य
हंसाश्च शोकविधुरा: करुणं रुदन्ति।
नृत्तं त्यजन्ति षिखिनोधपि विलोक्य देवीं
तिर्यग्गता वरममी न परं मनुश्यं।।[6]

अर्थात् देवी सीता को देखकर ये हरिण घास छोड़कर रोते हैं, शोक से व्याकुल हंस दैन्य के साथ रोते हैं, मोर भी नाचना छोड़ देते हैं, पशुयोनि में प्राप्त ये उत्तम हैं परन्तु मनुष्य नहीं।

तीसरे अंक में राम वनवासकालीन जीवन को स्मरण कर व्यथित हो उठते हैं। सीता के साथ व्यतीत किये गये जीवन का चित्र उनके समक्ष आ जाता है और अनायास ही उनके मुख से निकल पड़ता है-

''किसलयसुकुमारं पाणिमालम्ब्य देव्या
विविधरतिसखीभि: सकंधामिर्दिनान्ते।
चरणगमनवेगान्मन्थरस्य स्मरामि
स्त्रुतपयसि तटिन्या: सैकते चंमस्य।।[7]

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने दाम्पत्य जीवन की मधुर स्मृति का चित्रण कर विरह व्यथा को और भी अधिक कारुणिक बना दिया है। नाटक के चतुर्थ अंक में राम की व्यथित अवस्था का वर्णन किया गया है।

राम का कथन है-

''सीताविरहवाश्पेण क्षरता नित्युद:खिते।
बाठमायासिते भूयो धूमेन ममलोचने।।[8]

राम के इस कथन से उनकी कारुणिक दशा अभिव्यंजित हो रही है। करुण रस के साथ-साथ कवि ने बीच-बीच मेंशृंगार की भी मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है। जैसे राम के इस कथन पर दृष्टिपात करते हैं-

आद्यास्माकं रमयति मनो गोमतीतीरवायु
नूंनं तस्यां दिषि निवसिति पोशिता सा वराकी।।[9]

और भी,

कदा बाहूपद्यानेन पटान्तशयने पुनः।

गमयेयं त्वया सार्धं पूर्णचन्द्रां विभावरीम्।।[10]

शृंगारात्मक विलास के लिए उद्दीपन विभाव के रूप में अनेक वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं। यथा–

''मरकतहरितानामम्यसामेकयोनि

र्मदकलकलहंसीगीतरम्योपकण्ठा

नलिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्

नरवर पुरतस्ते दृष्चते गोमतीयम्।।[11]

सुरभिकुसुमगन्धैर्वासिताषामुखानां

फलभरनमितानां पादपानां सहस्त्रौः।

विरचित-परिवेश-श्यामलोपानतरेखो

रमयति हृदयं ते हन्त कश्चिद् वनान्तः।।[12]

शानतरस की छटा भी देखने योग्य है। चतुर्थ अंक के कुछ श्लोकों में शान्त रस का भी प्रयोग कवि ने बड़ी सरलता के साथ किया है।

''अस्मिन् कपोलमदपानसमाकुलानां

विध्वं न जातु जनयन्ति मधुव्रतानाम्।

सामध्वनिश्रवणदत्तमनोघ्वथान

निश्पन्दमन्दमदवारणकर्णताला:।।[13]

अस्मिन् सन्निवसन्महेष्वरषिरस्ताराधिपज्योत्स्नया

मिश्रीभूय कवोश्णतामुपगतस्तिग्मो निदाधातपः।

न म्लानिं तरुपल्लवेशु सरसां तोयेशु नैव क्षयं

सन्तापं न जनस्य किन्तु जनयत्यालोकपात्रां दृषाम्।।[14]

यूँ तो नाटककार ने अपने इस नाटक मेंशृंगार, शान्त आदि रसों का भी वर्णन किया है परन्तु अंगी रस करुण होने के कारण कारुणिक भावना को अपने चरम बिन्दु पर पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। जिस भावना का बीज वन प्रथम अंक में किया गया है, उस भावना का परिपाक राम की मूर्च्छावस्था है। इस अवस्था में वाणी मूक हो जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है तथा शरीर वियोगाग्नि में जलता रहता है। राम को जैसे ही कुश और लव का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है वे कुश का आलिंगन कर मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी प्रकार सीता के पुर्नमिलन के पश्चात् भी राम अपने हृदय की भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाते हैं और परिणामस्वरूप मूर्च्छा अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। नाटकवार ने यथार्थ में मानव हृदय की मर्मस्पर्शी भावनाओं को मूर्त्त रूप देने के लिए ही करुण रस स्वीकार किया है। 'करुण' ही एक ऐसा रस है, जिसमें मनुष्य अपनी मनोभावनाओं को मनीभूत कर सकता है। इसका माध्यम कभी शब्द होता है तो कभी केवल शारीरिक व्यथा प्रदर्शन। इन्हीं माध्यमों से कवि ने रस की अभिव्यक्ति प्रस्तुत नाटक में की है।

इस प्रकार कुन्दमाला नाटक में करुण रस का प्रमुख्य दृष्टिगोचर होता है लेकिनशृंगाररस कीशृंगारिकता की मनोरम छटा नाटक के रस परिपाक को सुललित, सुगम्य एवं सुरभिमय बनाकर इसे कालिदास, भवभूति, भास आदि नाटककारों के रस विवेचन की कोटि में लाकर सुप्रतिष्ठित करता है।

संदर्भ सूची :

1. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, कारिका-28, पृ.-95
2. साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ.-46
3. साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ.-19
4. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, कारिका-27, पृ.-95
5. कुन्दमाला, प्रथम अंक, श्लोक संख्या-3, पृ.-5
6. कुन्दमाला, प्रथम अंक, श्लोक संख्या-18, पृ.-27
7. कुन्दमाला, तृतीय अंक, श्लोक सं0-12, पृ.-77
8. कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, श्लोक सं0-12, पृ.-104
9. कुन्दमाला, तृतीय अंक, श्लोक सं0-6, पृ.-64
10. कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, श्लोक सं0-17, पृ.-111
11. कुन्दमाला, तृतीय अंक, श्लोक सं0-5, पृ.-63
12. कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, श्लोक सं0-3, पृ.-97
13. कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, श्लोक सं0-9, पृ.-102
14. कुन्दमाला, चतुर्थ अंक, श्लोक सं0-6, पृ.-99-100

भवभूतिनाट्यसाहित्ये लोकधर्मः

डॉ० गीता झा

ग्राम + पो०-बौंसी
जिला-बाँका (बिहार)

प्रास्ताविकम्- ''शिक्षा'' शब्दस्य व्युत्पत्तिः शिक्ष विद्योपादाने इत्यस्माद्धातोः ''गुरोश्व हल्''[1] सूत्रेण भावार्थे अप्रत्यये सति जायते ज्ञानार्जनम् अथवा विद्याप्राप्ति माध्यमेन संस्काराणां व्यवहाराणाञ्च निर्माणं शिक्षा इति अभिधीयते।

शिक्षा बालकाय नवनवानुभवान् प्रदाय तं सुयोग्यं निर्माति। एतेन सः स्वीयवातावरणेव सह सामञ्जस्यं स्थापयन् स्वस्मिन् निहित शक्तिः योग्यताश्च पूर्णतया विकासयति। परिणामतः स स्वयोग्यतानुसारं स्वपरिवारस्य समाजस्य राष्ट्रस्य च विशिष्टक्षेत्रे योगदानं कर्तुं शक्नोति शिक्षायाः तात्पर्यं बालकव्यवहारेषु अपेक्षितपरिवर्तनस्य सम्पादनम् शिक्षाया-बालकस्य दुष्प्रवृत्तयः परिमार्जिता भवन्ति। अत एवोच्यते-

''मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिम् किं-किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।[1]

शिक्षा नाम बालकस्य सर्वत्रेण विकासस्य एकं शक्ति शलिशाधनम्। बालकस्य स्वभावे संस्कारे च परिवारिकवातावरणस्य महती भूमिका वर्त्तते। तेषां व्यक्तित्व विकासार्थं गृहस्य विद्यालयस्य च वातावरणं प्रेरणाप्रदं भवति अतः वातावरणमेव महान्तं प्रभावं बालकेषु जनयति। यतो हिं बाल्यावस्थायां बालानं ग्रहणशक्तिः अत्यन्तं तीव्रा भवति। अतः अस्माभिः स्ववातावरणे काऽपि विकारः नोत्पादनीयः, येन बालकेषु प्रतिकूलप्रभावः उत्पद्यते, किन्तु स्वं परितः विद्यमानं शिष्टाशिष्टवातावरणं दृष्ट्वा समीचीनः असमीचीनः वा जायते सुसंस्कार कुसंस्कार बीजवपनं गृहस्य विद्यालयस्य च सम्पर्क भवति।

परिवारः समाजस्य प्रधान संस्था जननादारभ्य मरणपर्यन्तं बालकः परिवारेण शिक्षणं प्राप्नोति, परिवारे एव बालकस्य सुखदुःखानुभवः जायते। मातापित्रादिबन्धूनां वात्सल्यादिव्यवहारेण, आदर्शेण बालकस्य विकासे परिवारः प्रमुखपात्रं जनयत। मानवः समाजस्य भवति। जाति-क्रीडा-साहित्यादि समुदायानां मानवः सक्रियसदस्यः भवति एवं समुदायानां र्संगत्या तत्रव्यविभिन्नपरिस्थितिषु भागं गृहीत्वा समाजोपयोगिसदस्यो भवति।[2]

मनुष्यः स्वहितापेक्षया अन्यहितबुद्धिं समाजे प्राप्नोति, समाजे जायमानघटनानि दृष्वा श्रुत्वा च मानवः अर्थात् बालकः गुणावगुणान् अधिगच्छति, बालकः दुष्टसमाजे जीवति चेत् तस्मिन् दुर्गुणाः एवम् अन्तर्भवन्ति ससमाजे जीवति चेत् सुनागरिकः सज्जनश्च भवति, सुभाषितानि, पुराणानि, इतिहासा अपि समाजस्य महन्महत्त्वं बोधयन्ति। शिक्षा समाजस्य कृते अपि भिन्न-भिन्न प्रकारेण सहयोगं करोति यदि उत्तमशिक्षा भवति तर्हि समाजः एव उत्तमः भवितुमर्हति, अर्थात् उत्तमसमाजस्य कृते उत्तमशिक्षा आवश्यकता वर्त्तते। उत्तमसमाजस्य निर्माणार्थं प्रशिक्षणमेव शिक्षणम्। शिक्षणेन उत्तमप्रकारेण समाजस्य निर्माणं कर्तुं शक्यते। अतः उत्तमसमाजस्य कृते उत्तमशिक्षा आवश्यकी वर्त्तते। अतः वर्त्तमान समये यदि उत्तमरूपेण शिक्षाप्रणाली प्रचलिता भवति तर्हि सुष्ठुरीत्या समाजस्य कल्याणं भवति।[3]

समाजिकीकरणम्-समाजिकसदस्यरूपेण बालकानां निर्माणप्रक्रिया एव समाजिकसदस्यानां प्रमुखलक्षणं भवति। समाजिकीकरणम् इदृशी प्रक्रिया वर्त्तते यस्याः अनुपालनेन व्यक्तिः सामाजिकपरम्परानुरूपम् आदर्शानुरुपञ्च स्वीयं व्यक्तित्वं निर्माति। यस्य व्यक्तित्वस्य स्वीकृतिः समाजे समयानुक्रमेण प्रदीयते अन्या व्यक्तिः अपरैः समाजिकसदस्यैः सह अन्तः क्रियां सम्पादयति अनया प्रक्रियया समाजिकसदस्यत्वेन व्यक्तिः मानवकल्याणसाधनाय अनन्याश्रयात्मकव्यवहारस्य अधिगमं कर्तुं पारयति येन अधिगमेन व्यक्तिषु सामाजिक-उत्तरदायित्वभावनाया आत्मनियन्त्रणक्षमतायाः समतुल्य व्यक्तित्वस्य च परिप्रकाशः भवति।[4]

बालकानां कांश्चन् जैवावश्यकता वर्त्तन्ते परन्तु कालस्य आयुवृद्धि-अनुसारं पारिवारिक-सदस्यानाम् अपरानां परिचितानां संसर्गेण च बालक: समाजसम्मतव्यवहाराणाम् अर्जनं करोति। अत: सा एव प्रक्रिया व्यक्ते: सामाजिकीकरणमिति अनेन पदेन परिभाषितं भवति। अनया समाजेन सह तादात्म्यं संस्थाप्य समान्तरूपेण स्वीयअस्तित्वस्य सुरक्षां कर्त्तुं मानव: सक्षम: भवति। अत: सामाजिकीकरणस्य प्रक्रिया स्वकीयसमायोजनमेव न तु समपर्णमिति। सामाजिकरणस्य तत्त्वानि-

1. वंशानुक्रम:
2. परिवार:
3. सामाजिकस्तर:
4. आर्थिकस्तर:
5. विद्यालय:
6. धर्म:
7. विवाह:
8. जाति:
9. समवयस्कसमूह:
10. प्रतिवेशिन:
11. नैतिक आदर्श:

भवभूतिनट्यसाहित्यम्-महाकविभवभूति: संस्कृतसाहित्यस्य महानकवि: एवञ्च नाटककार: आसीत् 700 ई0 पूर्व भवभूति एक: भारतीय: नाट्यकार: तथा कवि आसीत् एतेषां द्वारा लिखितसंस्कृतनाटकानां रहस्यं तथा चरित्रचित्रणम् अद्वितीयमस्ति एतेषां नाटकानां तुलना महाकवि कालिदासस्य नाटकेषु तुलनां क्रियते। भवभूतिना स्वविषये महावीरचरितस्य प्रस्तावनायामुल्लिखितमस्ति एते विदर्भदेशस्य 'पद्म' नामकस्थानस्य निवासिन: श्री स्वविषये महावीरचरितस्य प्रस्तावनायामुल्लिखितमस्ति एते विदर्भदेशस्य 'पद्म' नामकस्थानस्य निवासिन: श्री भट्ठगोपालस्य पुत्र: आसन्।[5]

चिन्तनम्-नाटके यद्यपि चिन्तनविहीनं न किमपि प्रवर्त्तते तथापि विशिष्टां समस्यां नट: कथं समादधाति, कीदृक् चिन्तनमत्रश्रयते तत्सर्वमत्र परिशील्यते, महावीरचरिते माल्यवत: पुर: एतादृशी एका समस्या आयाति यस्या: चिन्तनं स: मनोवैज्ञानिकरीत्या विद्याति, सर्वमायत: रामप्रतापं निशम्य माल्यवत: रावणशत्रुरूदित इति चिन्ताऽगता। मानसिकस्थिरता वर्धिता ताडका-सुबाहु मारीचादीनां वध: शिवधनुभङ्ग:, रावणस्य सीतायाचनतिरस्कार:, रामस्य जृम्भकास्त्रप्राप्तौ देवानां पुष्पवृष्टि:, रामस्य सीताविवाह:, इत्यादय: विषया: रावणतिरस्कार रूपा: इति चिन्तयति माल्यवान। तस्य लङ्कारक्षणभावना रामेण नाशयिष्यते इति विचिन्त्यासौ विषण्ण: भवति, केवलं रामदमनेन समस्यासमाधानं भविष्यतीति एकैव भावना तस्य एवदर्थमुपाय: प्रस्तुत: शिवसय प्रियाशिष्य: परशुराम: स: तस्य गुरोपमानं न कदापि सहिष्यते।[6]

लोकधर्म:-राम: शिवधनुष: भग्नं कृत्वा जामदग्न्यस्य शत्रु: जातोऽस्ति। अत: परशुरामे विश्वासमुत्पाद्य द्वयो: अभिमुखार्थं स्वयं माल्यावान् परशुरामं निकषा बजति युधि परशुरामस्य पराजये तद्वैपरीत्ये वा रावणपक्षस्य लाभ:। यत: राम: मरिष्यति चेत् रावणरिपुनाश: जामदग्न्यपराजये*पि स: अस्त्राणि विसृज्य वनं प्रति गमिष्याति अत: पुन: रावणपक्षं न कदापि तर्जयिष्यति एतत् चिन्तनं तार्किकचिन्तनमुच्यते यच्च मनोविज्ञानस्य चिन्तनस्वरूपं सूचयाति। पुनरापि चतुर्थाङ्के माल्यवत: विचारोऽपि चिन्तनतत्त्वं प्रकाशयति परशुराम: रामेण पराजित: अत: रामप्रतापानले दग्धचेता: माल्यवान् मानसिकसंघर्षं प्राप्नोति। रामप्रतापे*मर्षमिच्छन् एष: उपायं सतर्कं चिन्तयति। तदर्थं रामं वनमानीय तत्र सीता प्रहृत्य तस्य वीरत्वदमनं श्रेय: मनुते, रामस्य वनं प्रति आगमनोपायचिन्तनमापि सतार्किकम्। कैकेयी वरद्वयप्रार्थनार्थं मन्थरां मिथिलां प्रेषयति मन्थराशरीरे शूर्पणखा प्रविश्य वरद्वयप्रदानरूपेण रामस्य सीतालक्ष्यमणाभ्यां सह चतुर्दशवर्षनगमनं तथा भरतस्य राज्याधिकारप्राप्तिविषयञ्च कथयिष्यति इत्थं वरद्वयप्रर्थनां निशम्य राघवोऽवश्यं पितृसत्यपालनार्थं वनमागमिष्यति इत्थमत्र दूरदृष्टिसम्पन्नस्य साचित्यपदान्वर्थकृतस्य माल्यवत: चिन्तनं मानसिकशक्ते: परिचायकमिति।[7]

अनूभूतस्य विषयस्य स्मरणं स्मृतिरूच्यते-नाटके पात्राणामनुभव: परामुहूर्ते स्मरणविषयो भवति, सुष्टु स्मरणेन नाटकीयकथावस्तु लक्ष्यपथमासादयति। महावीरचरितेऽपि स्मृति तत्वं कुत्रचित् दृश्यते। तदत्र विमृश्यते। ध्रुवमिति माल्यवान चिन्तयति अत्रेत्थं चिन्तनमभिप्रेरणमुच्यते,

यतः युद्धार्थमनभिलषन्तं परशुरामं माल्यवान् प्रचोदयति न तु परशुरामः स्वतः युधि प्रवृत्तो भवति, ईदृश स्थलविशेषं नकारात्मकप्रेरणं कथयन्ति यदा सख्यः सीताबोधने विफलमनोरथाः जाताः तदा स्वयं रामभद्रः स्वजातिधर्मादिविषयमुपस्थाप्य सीताबोधनतत्परो दृश्यते, क्षत्रिये भयशील भावः न शोभते सीताऽपि क्षत्रिया तस्यामयं कातरगुणनोचितः तथैव क्षत्रियः रामः कथं वा परशुरामः तपोधनः न तु युद्धविद्याभ्यासनिपुणः क्षत्रियवत् अतः भीतिर्नोचिता। इत्थं रामस्याश्वसनं केवलं सीता प्रतिबोधनार्थम्।[8]

रामात् लक्ष्मणस्य परिचयमवाप्य सुग्रीवविभीषणौ तमालिङ्गतः, लक्ष्मणोऽपि तावाभिवादितवान्, अत्र लक्ष्मण सुग्रीवविभीषणादीनां परस्परालिङ्गनस्य आनन्दः भातृप्रेम्णः निदर्शकः मनोविज्ञानदृशा सहानुभूतितत्त्वप्रकाशकश्च, संसूचना-परामर्शः संसूचनं वा सामान्यसहजप्रवृत्तिः कथ्यते मक्डूगलमहाशयः विना तर्कणंविश्वासाधारेण सन्देशस्य परिपालनं परामर्श इति परामृशति।[9]

महावीरचरिते सुबाहुमारचीयोः वधः करणीयः इति विश्वामित्रस्य रामलक्ष्मणौ प्रति आदेशः आसीत्, तावपि विना द्विधाम् 'आज्ञा गुरुणां हयविचारणीया' इति अभियुक्तवचनेन तमादेशं पालयितुमभिललाषतुः। नाटकान्ते वसिष्ठश्विामित्रदयोः रामाय राज्यशासनविषये शिक्षादानमापि संसूचनतत्वं सूचयति।

यद्यपि सीताराममेव अनुरागपात्रत्वेन निर्धारयति, किन्तु तत्र शिवधनुः व्यवधानं स्थापयति, यतः जनकस्य स एव निर्दोषः आसीत्। येन शिव धनुः तादृशस्य धनुःष भग्नं चेत् न किरष्यते तर्हि सीतामनोभावः अपूर्णो भविष्यतीति शंया सा नैराश्यमनुभवति। मानसिकसङ्घर्षं प्राप्नोति किन्तु एषः सङ्र्षः अल्पावधिरासीत् यतः शिवधनुषः भग्नं रामेण अनायासेन सम्पादितम्, एतेन आन्नदातिशयसंवेगाविष्टा सीता यथा रामे समर्पित मना तथा तावत्परिमाणेन लज्जाभावपमि प्राकटयदिति तन्मनोभावः समीक्ष्यते।[10]

उपसंहारः- मासलोव्मतेन पञ्चापेक्षासु तृतीयाऽनुरागापेक्षा, या मानवं सम्बन्धिषु प्रीत्यर्थं प्रेरयति जनैरिष्यमाणत्वमत्र प्रधानम्, तद्वदत्र रामलक्ष्मणे वीक्ष्यसीतोमिलयोः भावं ते विलोक्य रामलक्ष्मणयोश्च मनोभावः अनुरागतिशयं व्यवताः अहल्यारामभद्रेण शापद्विमुक्ता अतः समस्त प्रभावातिशयः विश्वामित्रेण सीतोर्मिलाकुशध्वजानां सविधे वर्ण्यते 'एतेन तुष्टा सीता रामप्रभावेण तस्मै अनुरागं प्रकाशयति, अयं मनोभावः कामभावसम्बद्धाः यच्च लिविडोशक्ति मनोविश्लेषणवादिनां मतम्' सीता रामं वीक्ष्य उर्मिला च लक्ष्मणं वीक्ष्य नेत्रनन्देन अनुरागं प्रकटयतः।[11]

विवेच्य समाजे शिक्षायाः महत्त्वं पूर्णरूपेण भवति। आलोच्य युगे साहित्यकला दृयोम्ध्ये पर्याप्तरूपेण विकसनमासीत्। साहित्ये एदं कात्यमुक्तवाव्यवहीयते काव्ये गद्यपद्ययोर्मध्ये समानरूपेण कवीनमा विदुषां गतिरासीत् विद्वज्जना स्व कीर्त्यर्थम् उत्तमकाव्यानां रचनां कुर्वन्ति स्म। अयं भावः भवभूतिविषयेऽपि दृग्गोचरी भवति। भवभूतिनाटकानां तेषां काव्यकलायाः प्रौढत्वं रसभावमयतायाः ज्वलन्तप्रतीकमस्ति। ललितयुक्तछन्दसां रचनाएवञ्च अर्थगौरवत्वेन पूर्ण करूणरस्य प्रयोगं जनानां साहित्यिकअभिरूचेः द्योतकमस्ति।

समाजे विदुषां तथा साहित्यकारणाम् अतीव आदरमासीत्। नृपाः स्वयं ज्ञानेन परिपूर्णाः आसन् ते विद्वतकवीनां कृते सर्वदा आदरेण सम्मानयन्ति स्म। समये-समये विदुषां गोष्ठाः तथा साहित्यिक सम्मेलनानि भवन्ति स्म, तथापि विशेषरचना एतस्मिन् समये दग्गोचराः नावलोक्यते स्म, भवतितुर्महन्ति यत् वर्त्तमानकाले तदानीन्तन् कालस्य कृतयः अनुपलब्धाः स्युः अध्ययन-अध्यापनस्य पूर्णरूपेण तदानीं समयेप्रचलनमासीत्।।

सन्दर्भ :

1. अष्टाध्यायी-73/3/103
2. वही
3. वही, 73/3/104
4. भोजप्रबन्धः 5
5. वही
6. महावीर चरितम् 2/9/2, 3
7. वही
8. महावीर चरितम् 2/12
9. वही
10. म. च. पृ. 67
11. वही

नेपाली के गीतों में उनकी प्रगतिशील-चेतना

डॉ० आर्य सिन्धु

नेट, पी-एच०डी० (हिन्दी)

कविवर गोपाल सिंह नेपाली उत्तर-छायावाद के एक ऐसे लोकप्रिय गीतकार हुए हैं, जिन्होंने अपने गीतों के माध्यम से अपनी वाणी को जन-जन तक पहुँचाया है। उनकी रचना में जहाँ एक ओर प्रेम, प्रकृति और देशभक्ति की त्रिवेणी है तो वहीं दूसरी ओर उदात्त मानवीय समाज की कल्पना, दुखी, दरिद्र व शोषित जनता के प्रति आत्मीय लगाव व सामाजिक-चेतना भी है-

''जब-जब जतना पर दुख की बदली छाई है
तब-तब हमने विप्लव बिजली चमकाई है
मानवता का परिहास बदलने वाले हैं
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।''[1]

युवा मन की मस्ती, प्रकृति-प्रेम, देश के प्रति सच्ची श्रद्धा व रागात्मकता का रंग लिए उनकी रचनाओं में एक सामाजिक यथार्थ का भी दर्शन देखने को मिलता है -

''समाज पर कभी रहे न व्यक्ति की प्रधानता
मनुष्य माँगता यही, यही मनुष्य मानता
कि हो समाज-राज में मनुष्य की समानता।''[2]

अपने देश, समाज और जीवन के प्रति चिंतनशील नेपाली के गीत यथार्थ की जमीन पर खड़े नजर आते हैं, जिसमें एक प्रगतिशील-चेतना की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। प्रसिद्ध विद्वान रधुनाथ उपाध्याय शलभ ने ठीक ही लिखा है - ''नेपाली के गीतों में सामाजिक विसंगति और विद्रूपता के विरोध के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना का उद्गार है। शोषण और कदाचार के प्रतिरोध के साथ सांप्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता का आह्वान भी है। दलित विमर्श के साथ प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा और अखंड भारत के लिए त्याग और बलिदान का जज्बा भी है। समय, समाज और सत्ता से लड़ने की हिम्मत और हौसला भी है। वेबाक बोलने की ताकत के साथ आम आदमी की उम्मीदों की कसौटी पर खरा उतरने की जद्दोजहद भी है।''[3] कवि नेपाली का आगमन उस युग में हुआ था, जब देश में अंग्रेजों की सत्ता व उसके दमनचक्र की बर्बरता व्याप्त थी। जहाँ एक ओर स्वाधीनता आन्दोलन तीव्रतर हो रहा था वहीं दूसरी ओर विदेश सत्ता के दलाल-चाटुकार, जमींदारों व रायबाहदुरों के दुष्प्रचार की मुहिम भी तेज थी। ऐसे समय में कविवर नेपाली ने अपनी भूमिका इन पंक्तियों से तय कर दी -

''हुआ देश खातिर जनम है हमारा
कि कवि हूँ तड़पना करम है हमारा
कि कमजोर पाकर मिटा दे न कोई
इसी से जगाना धरम है हमारा।''[4]

इस देश में जो भी क्रांतिकारी कवि हुए, उन्होंने आजादी का मतलब तीन स्तरों पर देखा - पहला राजनीतिक, दूसरा आर्थिक तथा तीसरा सामाजिक। यह हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि हमें राजनीतिक आजादी, तो मिली पर आर्थिक और सामाजिक आजादी के लिए हमें संघर्ष करना पड़ा। नेपाली की कई कविताओं में यह दर्द दिखाई देता है -

''दिन गए बरस गए यातना गयी नहीं
रोटियाँ गरीब की प्रार्थना बनी रहीं।''[5]

नेपाली ने अपने गीतों में शोषित, पीड़ित और दलित जनता के प्रति गहरी संवेदनाएँ व्यक्त की हैं। उनकी नजरों में देश में आज भी गरीबी व्याप्त हैं। विकास की नदियों में आज भी सूखापन है –

''घनश्याम कहाँ जाकर बरसे, हर घाट गगरिया प्यासी है
उस ओर ग्राम इस ओर नगर चहुँ ओर नजरिया प्यासी है
धरती प्यासी, परती प्यासी, प्यासी है आस लगी खेती
बागों की चर्चा कौन करे, जब यहाँ डगरिया प्यासी है।''[6]

कवि नेपाली एक सामाजिक-मानवता के निर्माण के कवि हैं इसलिए उनके गीतों में ग्राम-नगर और संपूर्ण भारत का चित्र उपस्थित है –

''पौ फटते ही चमक उठे जब, गाँव खेत खलिहान
कंधे पर हल डाल कुटी से, चला गरीब किसान
उसके स्वेद रूधिर ने सींची जल बन क्यारी-क्यारी
जैसे उसकी मुट्ठी से ही निकली फसलें सारी।''[7]

नेपाली की काव्य भाषा भी इतनी सहज व सरल है कि जिससे वो सीधे-सीधे दीन-हीनों, दलितों और उपेक्षित स्त्रियों की बात करते हैं। उनकी नजरों में गरीबों को न ही उचित शिक्षा मिल पा रही है और न ही भरपेट भोजन –

''उथला-उथला हो गया है, गाँव का कुँआ
सारा पानी पी गया है, आग का धुँआ
ठोकरों के सामने लुढ़क रहे हैं डोल
कोयला और राख में जिंदगी का मोल।''[8]

वे समाज और सत्ता के सामने उपस्थित होकर जीवंत सवाल पूछते हैं –

''चर्चा तो सदियों से है, पर हर कुटी अटारी कब होगी
जो क्रांति पली झोपड़ियों में वह राज दुलारी कब होगी
घर-घर का तिमिर बुझाने को जो दीप बुझे वे पूछ रहे
अब मुझको-जलना नहीं पड़े, ऐसी उजियारी कब होगी।''[9]

ृोषित-पीड़ित समाज को देखकर नेपाली आहत और उदास होते हैं। उसके अंत के लिए सर्जनात्मक स्तर पर लड़ाई लड़ते हैं। अमीर गरीब की खाई को पाटकर एक सुखी समाज की संरचना पर बल देते हैं। जब तक समाज में भेदभाव दूर नहीं होगा तब तक कल्याणकारी समाज की कल्पना नहीं हो सकती। इसलिए कवि को लगता है कि अब अश्रु बहाने से काम नहीं चल सकता –

''जंजीर टूटती न कभी अश्रुधार से
दुख दर्द दूर भागते नहीं दुलार से
हटती न दासता, पुकार से, गुहार से।''[10]

नये समाज के निर्माण के लिए आज एक नवीन कल्पना की आवश्यकता है। इसलिए कवि संपूर्ण समाज को उद्बोधित करता है –

''अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ

अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ
है दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ
निज राष्ट्र के शरीर में सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो।''[11]

ईश्वर ने मनुष्य को इतनी शक्ति दी है कि वह सबकुछ कर सकता है, लेकिन उसके लिए सबसे बड़ा दुर्भाग्य है गुलामी की जंजीरें। इसलिए नेपाली सभी प्रकार की गुलामी से मुक्ति की बात करता है, चाहे वह गुलामी मानसिक, आध्यात्मिक, आर्थिक हो या सामाजिक–

''दुनिया में न गुलामी होगी मानव की मानव पर कायम
बढ़ो तुम्हारे संघर्षों से एक नया संसार बनेगा
बढ़ों लगा दें आग चिता पर आज गुलामी को जलना है
बढ़ो गीत विप्लव का गाते थोड़ी दूर और चलना है।''[12]

नेपाली का संपूर्ण जीवन कष्ट व अभावों में बीता, लेकिन उन्होंने कभी भी अपनी दरिद्रता के सामने रोना नहीं रोया। इसलिए उन्हें लगता है कि जब देश का युवा जागेंगे तो एक नया संसार बनाकर प्रगतिशील चेतना का परिचय देंगे –

''युवक बसायेंगे हिल मिलकर एक नया संसार
तरूण बनायेंगे रच-रचकर एक नया संसार
एक नयाश्रृंगार सृष्टि का
एक नया संसार दृष्टि का
एक नया जीवन का घेरा
एक नया मानव का डेरा
एक नया वैभव का फेरा
नया उजाला नया अँधेरा
जगती की प्राचीन बीन में नये सजेंगे तार
नये बजेंगे तार।''[13]

और यह नया संसार गरीबी व शोषण से मुक्त होगा तथा जिसमें एक नई सामाजिक चेतना और मानव कल्याण का पर्याय होगा–

''सामाजिक पापों के सिर पर चढ़कर बोलेगा अब खतरा
बोलेगा पतितों-दलितों के गरम लडू का कतरा-कतरा
होंगे भस्म अग्नि में जलकर धरम-करम औ पोथी-पत्रा
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा
सड़ी गली प्रचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे, दुर्ग ढ़हेंगे
युग प्रवाह पर कटे वृक्ष से दुनिया भर के ढ़ोंग बहेंगे
पतित-दलित मस्तक ऊँचाकर संघर्षों की कथा कहेंगे
और मनुज के लिए मनुज के द्वार, खुले-के-खुले रहेंगे।''[14]

इस प्रकार नेपाली गुलाम और आजाद भारत के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक घटना क्रम से उभरते परिदृश्य पर अपनी सजग एवं संवेदनशील नजर रखकर लोगों में एकता का भाव स्थापित कर एक नये समाज के नवनिर्माण में महती भूमिका स्थापित करते हैं –

''है देश एक, लक्ष्य एक, कर्म एक है
हम कोटि-कोटि हैं, मनुष्य, मर्म एक है
पूजा करो पढ़ो नमाज धर्म एक है
बदनाम हो अगर स्वराज, तो शर्म एक है
चाहो की एकता बनी रहे जनम-जनम
तुम भेद न करो, मनुष्य भेद न करो
तुम कल्पना करो, नवीन कलपना करो।''[15]

प्रसिद्ध विद्वान दिवाकर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है - ''नेपाली काव्य में प्रकृति है, प्रेम है, नारी है, राष्ट्रीयता है, मानवता है, प्रगतिशील है, स्वच्छन्दता है, संघर्ष है, यथार्थ है, विद्रोह है और सबसे ऊपर है एक नवीन चेतना का आग्रह। एक नवीन लोक के सृजन का आग्रह।''[16]

नेपाली ने अपने गीतों के माध्यम से एक समाजोन्मुख वस्तुपरकता को अंगीकार करते हुए प्रगतिशील चेतना के प्रसार में महती भूमिका निभाई। आज भी उनके गीत अपने लोक और समाज से सीधा संवाद करते हैं तथा उनमें नई उर्जा व स्फूर्ति प्रदान कर एक आदर्श समाज की कल्पना पर बल देते हैं। नेपाली ने सच ही लिखा है -

''मैं गाता हूँ जीवन की सुन्दरता
यौवन का यश भी मैं गाया करता
मधु बरसाती मेरी वाणी-वीणा
बाँटा करती समता-ममता-करूणा।''[17]

सन्दर्भ -

01. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/528
02. वही / 530
03. आजकल / नवंबर - 2011/20
04. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/457
05. अलाव, नेपाली जन्मशती विशेषांक, मार्च-अप्रैल-2012/355
06. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/551
07. परिषद् पत्रिका/ त्रैमासिक आलोचना/मार्च-2000/70/71
08. वही / 71
09. आजकल/नवबंबर-2011/24
10. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/496
11. वही/495
12. अलाव: नेपाली जन्मशती विशेषांक / मार्च-अप्रैल-2012/389
13. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/392
14. वही / 392
15. वही / 495
16. जनपथ/दिसम्बर-2011/39
17. नेपाली: चिंतन-अनुचिंतन / 60

जाट राजा सूरजमल और प्रथम अफगान अभियान: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० कुलराज व्यास

सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
शिक्षा विभाग, आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर (चुरु) राजस्थान

अफगान विद्रोह के पुनरावर्तन से सफदरजंग चिंतित था। अत: उसने वहाँ चढाई करने की एक योजना बनाई और 25 जुलाई 1750 ई. को रवाना हो गया। मार्ग में उसे अपने सहायक नबलराय की मृत्यु और उसकी पराजय का दु:खदायी समाचार मिला। परिस्थिति की गंभीरता को महसूस करते हुए उसने अतिरिक्त फौज एकत्रि करने का फैसला किया तथा अन्य लोगों के अलावा जाटों को भी सूचित किया। उसने सूरजमल को पत्र लिखकर उससे तुरंत सहायता देने का अनुरोध किया।[1] तदनुसार, बजीर के साथ शामिल होने के लिए जुलाई 1750 ई. के अंत में सूरजमल कोल आया। सुजान चरित्र के अनुसार बजीर ने अपने इस मूल्यवान सहयोगी का स्वागत करने के लिए अपने अधिकारीयों में से एक को भेजा। जब सूरजमल उसका अभिवादन करने के लिए गया तो बजीर ने अत्यधिक आत्मीयता दिखाई तथा नई समस्या पर बातें करते हुए वह उसके हाथों को अपने हाथों में थामे रहा। सूरजमल ने राय दी कि भदावर के हिम्मत सिंह सदृश व्यक्तियों से कुछ और सहायता जुटा लेनी चाहिए। फिर शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए बजीर भी उसके पास आया।

सूरजमल ने यह कहते हुए उसका अभिवादन किया ''हम जमींदार आपके अभ्यागम से सम्मानित महसूस करते है।'' वार्तालाप करते हुए सफदरजंग ने अपने अतिथेय से अनुरोध किया कि वह उसका पूरी तरह और हार्दिक समर्थन करें। सहायता का आश्वासन देते हुए सूरजमल ने बुलाई गई फौज की संख्या बढ़ाकर 15,000 कर दी।[2] कोल से निवृत्त होकर बजीर फिर अगस्त के प्रारंभ में मरहरा गया, जहाँ वह अन्य सहयोगियों की सेनाओं की प्रतीक्षा करने के लिए एक माह रुका अंतत: इन सेनाओं की पूरी संख्या लगभग 70,000 सैनिक आ जाने पर सफदरजंग ने अपना प्रस्थान किया तथा आखिरी पड़ाव रामचतौनी के निकट बनाया। दूसरी तरु 20,000 अपनी सेना तथा 10,000 रुहेलों को लेकर अहमद खाँ वंगश शत्रु का मुकाबला करने के लिए तैयार खडा था। 'सुजान चरित्र' के अनुसार अहमद खाँ ने अपने वकील को सूरजमल के पास भेजकर उससे अनुरोध किया कि वह उसके विरुद्ध न लडें। किंतु जाटों के राजा ने बजीर से मित्रता तोड़ने से इनकार कर दिया।[3] आखिरकार 13 सितम्बर 1750 ई. को प्रात: 9 बजे युद्ध शुरू हो गया। सफदरजंग अपनी अधिकतर सेना को लेकर केन्द्र में खड़ा था, जबकि सूरजमल सैन्याग्र के लगभग निकट बजीर की दाहिनी ओर, सेना का संचालन कर रहा था और इस्माइल खाँ बजीर के बाँए था उधर अहमद खाँ वंगश ने अपनी सेना को दो भागो में विभाजित कर रखा था, पहले भाग में 10,000 सैनिक शत्रु के विरुद्ध रुस्तम खाँ अफरीदी के नेतृत्व में तैनात थे, और दूसरी तरफ की सेना को बंगश ने अपने अधीन छिपाकर तैनात किया था।, ताकि अचानक हमला किया जा सके। एक रोचक कहानी यह भी बताई जाती है कि रुस्तम खाँन ने वंगश सरदार को सलाह दी कि सैनिक (अर्थात् वह स्वयं) दूसरे सैनिक (अर्थात् सूरजमल) से लड़े और नबाव (अर्थात् अहमद खाँ) दूसरे नबाव (अर्थात् सफदरजंग) से लड़ें।[4]

पठानों के बढ़ने और दोनों ओर की तोपों की गरज के साथ युद्ध प्रारंभ हुआ। सूरजमल और इस्माइल खाँ ने आगे बढ़कर रुस्तम खाँ का मुकाबला किया। बल्लभगढ़ के बलराम जाट ने दोंनो सेनाओ के बीच एक ऊँचे टीले पर कब्जा करके अपनी तोपें जमा दी। जाटों की तोपों ने पठानों पर प्राणंतक हमले में आग उगलनी शुरू कर दी और एक बार तो उन्हें पीछे हटा दिया, किंतु शीघ्र

ही 7,000 सैनिकों को लेकर रुस्तम खाँ अपने साथियों से जा मिला और अन्तत: जाटों की तोपों सहित वह जगह भी छीनने में सफल हो गया। बलराम और उसके जाट साथी बहुत बहादुरी से लडें, किंतु शत्रु के अधिक सैनिक आ जाने से उन्हें भारी क्षति उठानी पडी। चैन सिंह, साहेबराम और तिलक सिंह तोमर उन लोगों में शामिल थे जो इस लड़ाई में काम आए। इस पर सूरजमल ने अपने मामा सुखराम को तुरंत बलराम की सहायता के लिए भेजा और यह आदेश दिया कि तलवारों की बजाय तीर और तोड़ेदार बंदूकों से युद्ध किया जाए, और वह स्वयं इस्माइल खाँ और हिम्मत खाँ के साथ अर्द्धचन्द्राकार स्थिति में आगे बढ़ गया तथा तोडेदार बंदूको और तीरो का उपयोग करते हुए पठानों पर झपटा। रुस्तम खाँ और उसके साथी बहुत वीरता से लडें किंतु वे शत्रु का मुकाबला नहीं कर सके। लगभग 6-7 हजार पठानों के साथ रुस्तम खाँ मारा गया। दूसरी तरफ 3-4 हजार जाट खेत हुए। सूरजमल ने भागते हुए शत्रुओं का अलीगंज तक पीछा किया उनसे खूब लूटपाट की। इस प्रकार उसने युद्ध के क्षेत्र में पूरी तरह विजय प्राप्त कर ली।[5] लेकिन जो कुछ सूरजमल ने प्राप्त किया उसका स्वामी वह नहीं बन सका। उससे इस युद्ध का नक्शा ही बदल गया तथा सूरजमल की मेहनत बेकार गई। अहमद खाँ से सफदरजंग के युद्ध के विवरणों से हमारा अधिक मतलब नहीं है। यहाँ इतना ही याद रखना पर्याप्त होगा कि अपने सैनिकों का मनोबल बढाने के लिए अहमद खाँ बंगष ने यह अफवाह फैला दी कि रुस्तम ने लड़ाई जीत ली। अब यदि वे ऐसा नहीं कर सके अर्थात अपने शत्रु, जो इस समय उनसे लड रहा है यानि बजीर को पराजित नहीं कर सके तो अफरीदी उन पर हसेगें। अत: अफगानों ने निष्चिय करके बजीर पर हमला बोल दिया, जिसने पीछा करने वालों को कुमुक भेजकर अपनी स्थिति बहुत खतरनाक ढंग से कमजोर कर ली। स्थिति उस समय और भी गंभीर हो गई जब रावबहादुर सिंह, मीरबका, कामगर खाँ विलोच और शेरगंज जैसे हरावल सेना में तैनात सेनापति रणक्षेत्र से भाग निकले। अफगानो ने सफदरजंग की मजबूरी का लाभ उठाकर उस पर दो तरफ से आक्रमण कर दिया। बंदूक की एक ही गोली ने हाथी पर बैठें बजीर को हौदे में ही ढ़ेर कर दिया। पूरी तरह पिट जाने के बाद उसे किसी प्रकार से बचाकर युद्ध क्षेत्र से बाहर लाकर मरहरा में सुरक्षित लाकर दिल्ली की ओर रवाना कर दिया गया।[6]

अफरीदियों का पीछा करके जब विजयी सूरजमल लौटा तो उसने सफदरजंग की पराजय और पलायन की खबर सुनी। कुछ समय के लिए उसने पलाष वृक्षों की छाया में प्रतीक्षा की तथा आगे नहीं बढा। अहमद खाँ बंगष को इससे चिंता हुई, तथा उसने अपने आदमियों को जाटों की तरफ जाने से मना कर दिया सूरजमल स्वयं भी अफगानियों की गतिविधियों के प्रति सषंकित था। अत: वह रणभूमि से बाहर आ गया और नदी के किनारे रात व्यतीत करने के पश्चात् अपने घर वापस हो गया।[7]

रामचतौनी की पराजय ने अंतत: सफदरजंग को समस्याओं के त्रिकोण में फँसा दिया। अत्यधिक अपमान और उससे उत्पन्न मानसिक पीडा में ग्रस्त होकर उसे अब अपने राज्य क्षेत्रों की सुरक्षा की चिंता होने लगी जो अब असुरक्षित हो गए थे। उसके विजयी शत्रुओं ने उसके क्षेत्र के काफी भाग को रौंद डाला और शेष को हड़पने के प्रयास करने लगे। कोढ में खाज तो तब पैदा हुई जब उसके दरवारी विरोधियों को भी लाभ उठ़ाने का स्वर्ण अवसर मिल गया।

शहंशाह के इशारे पर जावेद खाँ, ऊधम बाई और इंतजाम ने उसकी सम्पत्ति और महल के अधिग्रहण की योजना बना डाली और बजारत से उसको हटाकर इसके पुराने दाबेदार इंतजाम-उद-दौला को सौंपने का प्रबन्ध कर लिया।[8] उपलब्ध साक्ष्य से ज्ञात होता है कि इस विषम कष्टावस्था में उसका ध्यान आषाभरी दृष्टि से पुन: अपने विश्वस्त और शक्तिशाली मित्र सूरजमल की ओर गया। 'मेम्बोआर दे यात' में बताया गया है कि उसे (सूरजमल) अपने बच्चों की श्रेणी में रखने का सम्मान देते हुए उसने (सफदरजंग) और कई जागीरे देने का वादा करके वापस भेजा, तथा इसी तरह के और भी कई इनामात बख्शते हुए उसे अपनी मैत्री में और भी अधिक मजबूती से जकड़ लिया।[9]

अत: स्पष्ट होता कि अपने साहसिक कार्यों में सूरजमल पर बजीर की निर्भरता और उसी अनुपात में तत्कालीन राजनीतिक लेन-देन में सूरजमल की भागीदारी बढती जा रही थी। जो उसकी प्रतिष्ठा का प्रतीक था।

तथापि, इधर सफदरजंग द्वारा सूरजमल से अपनी मैत्री को मजबूत करने के प्रयास किए जा रहे थे, उधर उतनी ही तत्परता से उसके दरबारी विरोधी उसे गिराने की सोच रहे थे। इस कार्य के जावेद खाँ ने एक कुचक्र रचा और उसके लिए सूरजमल के पुत्र जवाहर सिंह को मोहरा बनाया। जावेद ने जवाहर सिंह को बुलाकर सम्राट के सामने पेष किया, सम्राट ने उसे 'राय' की उपाधि से विभूषित किया जो सामान्यतया अत्यधिक सम्मानीय व्यक्तियों को दी जाती थी, वैसे उचित तो यह होता कि इस तरह के उपहार उसके पिता को दिए जाते या पितामह को दिए जाते। इस तरह भारी आषाओं से भरकर जवाहर सिंह को फिलहाल वापस भेज दिया

गया और उस दिन की प्रतीक्षा की जाने लगी कि जब उचित अवसर आने पर उसके पिता की शक्ति को क्षीण करने और इस तरह सफदरजंग को कमजोर करने के लिए उपयोग किया जाना था। वैसे तो इसका निषाना सफदरजंग ही था।[10]

संदर्भ-

1. सुजान, 54।
2. वही, 56-64।
3. वही, 69-70।
4. इर्विन कृत वंगष नवाब्ज, 71।
5. सुजान, 72-90 (सियर प्प्295।
6. श्रीवास्तव कृत, अवध 160-162।
7. इर्विन कृत वंगष नवाब्ज, 75।
8. श्रीवास्तव कृत, अवध 163-164।
9. मेम्वोआर दे यात, 34।
10. वही, 34-35।

हिन्दी कथा साहित्य में किन्नरविमर्श की प्रासंगिकता

अजीत कुमार सिंह

गेस्ट फैकल्टी, एस.ओ.एल
दिल्ली विश्वविद्यालय

जेन्डर (लिंग) और सेक्स (यौन) दो भिन्न अवधारणाएं हैं। जेन्डर शब्द का प्रयोग बहुधा पुरुषोचित (मैस्क्युलिन) और स्त्रियोचित (फेमिनिन) की सामाजिक रूप में निर्मित कोटियों (कैट्गॅरीज) के लिए किया गया है। यह स्त्री एवं पुरुष संबंधित विभिन्न प्रकार के विश्वासों और व्यवहारों की भी संकेतक एक अवधारणा है। लिंग से संबंधित एक सार्वभौमिक समान विशेषता हमें लिंग-असमानता में देखने को मिलती है और यह विशेषता एक सार्वभौमिक विशेषता है। कई क्षेत्रों में लिंग की रचना और अभिव्यक्ति की जाती हैं। यह लिंग असमानता स्त्री-पुरुष और एल.जी.बी.टी. के सन्दर्भ में साफ तौर पर देखी जा सकती है।

भारतीय सामाजिक ढाँचा समाज में पुरुष और महिलाओं की अलग-अलग भूमिकाएँ निर्धारित करता। विश्व के लगभग सभी समाजों में महिलाओं का स्तर पुरुषों के समान नहीं है। यही स्थिति कमोबेश एल.जी.बी.टी. की भी है या ये कहें कि बद्त्तर तो गलत नहीं होगा। ऐतिहासिक विश्लेषणों और अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि जाति, वर्ग, नस्ल लिंग और भाषा आदि की तरह ही यौनिक समुदाय और उनकी पहचान एक सांस्कृतिक उत्पाद है जो राज्य, धर्म, औपनिवेशिक सत्ताओं और जैवचिकित्सा विज्ञान द्वारा मानकीकरण और स्तरीकरण से उत्पन्न होती हैं। अगर हम इस बारे में यौनिकता की बात करे तो पाते है कि यौनिकता का अस्तित्व केवल सामाजिक रूपों और सामाजिक रचना के जरिए ही है। और तो और जो शक्तियाँ देह की कामुक संभावनाओं को निर्धारित करती हैं और ढालती हैं, वे अलग-अलग समाजों में अलग-अलग तरह की होती है। यौनिकता की सामाजिक सरंचना में मोटे तौर पर पाँच क्षेत्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं: कुटुंब और परिवार व्यवस्थाएँ, आर्थिक व सामाजिक ढाँचा, सामाजिक नियमन, राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रतिरोध की संस्कृतियों का विस्तार। यह बहुत सारे प्रभावों और सामाजिक हस्तक्षेपों की उपज होती है। यह इतिहास के बहर नहीं होती बल्कि यह एक ऐतिहासिक उत्पाद है। हैं। लेकिन इसी के समान्तर बौद्धिक और राजनैतिक धरातलों पर इसी स्तरीकरण से पैदा होने वाले बहिष्करण और भेदभाव के विरोध में यौन अस्मिताओं और लैंगिक समूहों की अस्मिताओं के लिए पहचान सूचक नये नाम भी दिए जाते रहें है(जैसे हिजड़ों के लिए 'किन्नर'। उत्तरआधुनिक वैश्विक समाज में यौनिक और लैंगिक आधार पर कल तक पद्च्युत माने जाते रहे लोग आज अपनी विशिष्ट पहचान और अपनी अस्मिता के वाजिब अधिकारों की वकालत कर रहे हैं। इस प्रकार के यौनिक और लैंगिक अस्मिताओं के विभिन्न रूप देखने को मिल रहे हैं, जैसे विषमलिंग कामी स्त्री, समलैंगिक पुरुष (गे), लिंग परिवर्तित व्यक्ति (ट्राँससेक्सुअल), स्त्रैण पुरुष (ट्रावेस्टीज) और उभयलिंगी (इंटरसेक्सुअल) पुरुष-स्त्री की सार्वभौमिक-सार्वकालिक छवियों और उनके जिस वर्चस्व की स्थापना यूरोपीय पुनर्जागरण ने की थी, उस वर्चस्व, उस वैधानिकता का प्रतिकार करती हैं ये सब यौनिक-लैंगिक अस्मिताएँ। जिस पुंसवादी विषमांगी पाारिवारिक मानक का आदर्श पाश्चात्य श्वेत सभ्यता ने प्रस्तुत किया और औपनिवेशिक गुलाम मानसिकता ने जिसे सिर आँखों पर धारण किया अब भारत में उसे अर्थात गे, लेस्बियन, हिजड़ों या किन्नरों द्वारा उस लैंगिक द्वैत पर आधारित पुरुषवादी पारिवारिक ढांचे को नकारा जा रहा है। उसकी वैधानिकता पर यहाँ भी समलैंगिक पुरुष और स्त्री सवाल उठा रहे हैं। और भारतीय संस्कृति के स्वंयभू ठेकेदार उन

पर अभारतीय होने, पश्चिमी मानसिकता रखने, असभ्य होने के लांक्षन लगा रहे हैं। वास्तव में अगर हम भारतीय इतिहास की पड़ताल गहराई से करें तो उपर्युक्त सवालों और उनके उत्तरों को समझता जा सकता है।

वास्तव में अगर देखें तो यह स्पष्ट है कि भारत में सन् 1871 तक हिजड़ो को समाज में स्वीकार्यता प्राप्त थी। महाभारत काल से लेकर मुगल काल तक इनका राजमहलों में विशिष्ट स्थान हुआ करता था और ये यौन अक्षम होने कारण मध्य काल में हरमों की सुरक्षा हेतु सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। किन्तु चूँकि 19 वी शताब्दी में हिजड़ों ने स्वतंत्रता आदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई थी अत: ब्रिटिश सरकार ने इन पर क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट या जरायमपेशा अपराध अधिनियम 1871 पारित करके इस पूरे समुदाय को अपराधी और एडिकटेड घोषित कर दिया। धारा 377 के अंतर्गत इनके कृत्यों को गैर-जमानती अपराध धोषित किया गया। आजादी मिलने पर इन्हें जरायमपेशा जातियों की सूची से हटा दिया गया। अपने ऐतिहासिक निर्णय में सन् 2009 मं दिल्ली हाई कोर्ट ने समान लिंग के व्यक्तियों के बीच एंकांत में सेक्स करने को उनके अधिकार के रूप में मान्यता देकर धारा 377 को खारिज कर दिया था लेकिन बाद के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय ने इसे यथावत बनाए रखा। इसलिए धारा 377 की तलवार अब भी उनके उपर लटक रही है, नवम्बर 2009 में भारत सरकार ने इनकी पुरुषों एवं महिलाओं से अलग पहचान को स्वीकृति प्रदान की तथा निर्वाचन सूची एवं मतदाता पहचान पत्रों पर इनका 'अन्य' के तौर पर उल्लेख किया। 15 अप्रैल 2014 को उच्चतम् न्यायालय ने तीसरे लिंग के रूप में इनके अधिकारों को मान्यता दी और सभी आवेदनों में तीसरे लिंग को उल्लेख अनिवार्य कर दिया।

राजनीतिक तौर पर भी कुछ रियायत मिलने के बाद भी समाजिक तौर पर किन्नर समुदाय की स्वीकृति ना के बराबर हैं। उनकी स्वीकृति को व्यापक बनाने के लिए जरूरी होगा कि राजनीतिक अधिकारों और,समाजिक अधिकारों के दिए जाने के साथ शिक्षा को माध्यम बनाकर किन्नरो के प्रति जागृति पैदा की जाए। आज अस्मिता को मनुष्य की वैयक्तिकता या समुदाय के साथ उसके संबंध को व्यक्त करने के लिए किया जाता हैं। फायड के अनुसार मनुष्य की अस्मिता स्थिर नहीं है वही एरिक एरिकसन के अनुसार अस्मिता (दो के बीच व्यक्तिगत पहचान और सामुदायिक संस्कृति से प्राप्त पहचान के बीच) निहित होती है। इस सन्दर्भ में अगर हम भाषा की बात करें तो हम पाते हैं कि भाषा भी व्यक्ति और उसकी अस्मिता को संरचित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाती हैं। इसको इस बात के द्वारा समझाया जा सकता है कि भाषा साध्य नहीं है, भाषा का साध्य तो सम्प्रेषण है और यह सम्प्रेषण न केवल एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक समय से दूसरे समय,एक युग से दूसरे युग तक होता हैं। इसमें व्यक्ति विशेष में,ग्रुप विशेष में और समाज विशेष में संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्परा से आए मूल्य तथा सबसे बढ़कर व्यक्तिव का निर्माण होता हैं इस निर्माण में अस्मिता का भी सृजन होता है। इस अस्मिता के सृजन को सामाजिक तौर पर और साहित्यिक स्तर पर तथा इसके द्वारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर निर्मिति में देखा जा सकता है। सकारात्मक तौर पर प्रसंग के रूप में इस उद्धरण को ले सकते हैं- हिजड़ो की बिरादरी में लड़कियों को हिजड़ा बनाने की मनाही हैं। हिजड़ों की गुरू सन्त आशामाई बराबर कहती हैं, ''कुदरत से खिलवाड़ करने का किसी को हक नहीं है। अपने फायदे के लिए किसी को हिजड़ा बनाना पाप है। ऐसा करने पर हिजड़े को सौ बार हिजड़े का ही जनम लेना पड़ता है और फिर भी उसका पाप कम नहीं होता है।" (तीसरी ताली:पृ.30) इसी सन्दर्भ में इस टिप्पणी को देख सकते हैं- "असली हिजड़े तो वे हैं जो जनता के वोटों से संसद और विधानसभा में जाकर उन्ही का खून चूसने की योजनाएं बनाते हैं और अपना पेट भरते हैं। हमें अपनी पार्टी बनानी होगी। हमारी पार्टी का नाम होगा -तीसरी योनि और नारा होगा-नकली को परखा, अब असली को परखो।"(तीसरी ताली: पृ.139)

इस संदर्भ में गौर करने वाली बात यह है कि किन्नरों के पहचान निर्माण में उनकी परंपराओं का, रीति-रिवाजों का सही प्रस्तुतीकरण जरुरी हो जाता है नहीं तो उनके अस्मिता निर्माण में बाधा पहुॅचती है। मिथ उनकी अस्मिता को नुकसान पहुॅचाता है। इस उद्धरण के द्वारा इसे काफी हद तक समझा जा सकता है- "दिल्ली में आमतौर पर हिजड़े के शव को रात को डंडो से मारते, उस पर चप्पल-जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए श्मशान घाट ले जाते हैं। इस तरह शव को श्मशान घाट ले जाने के पीछे मान्यता है कि मरने वाला दोबारा तीसरी योनी में जन्म नहीं लेगा।"(तीसरी ताली:पृ.147)

साहित्य सृजन में रचनाकार की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह भाषा का सही तरह से मिथ से मुक्त होकर प्रयोग करे जिससे उसके सर्जना कर्म द्वारा समाज के किसी वर्ग,जाति, लिंग, प्रजाती की अस्मिता को नुकसान न पहुॅचे। भाषा का साध्य वास्तव में सम्प्रेषण है, अर्थ व्यापार है जो व्यक्तियों को चिन्तन के धरातल पर और जीवन-दृष्टि के धरातल एक दूसरे के समीप लाती है, एक दूसरे के साथ संगठित करती है और व्यक्तिगत अस्मिता के साथ-साथ सामूहिक अस्मिता का भी निर्माण करती हैं।

भाषा ने स्त्रियों को तो मुख्य भूमिका से तो बाहर किया ही है, वहीं उसी भाषा ने अपने कुछ बदले स्वरूप में किन्नरों को भी सामाजिक रूप सबसे ज्यादा हासियाकृत किया हैं। समाज द्वारा इनके लिए निर्मित भाषा में भेदीकृत शब्द,वंचना पर आधारित शब्द एवं पद तथा गालीयुक्त भाषा का निर्माण किया है, जिसने न सिर्फ उनके व्यक्तित्व को प्रभावित किया है हैं बल्कि उनकी अस्मिता को पुन:विकृत रूप से संरचित किया है। कहने का तात्पर्य है कि 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक की पहचान को इस समाज द्वारा नए तरिके से निर्मित भाषा ने विरूपित किया हैं। इस विरूपण का परिणाम यह हुआ कि किन्नर जो पहले मुख्य समाज का हिस्सा हुआ करते थे वे समाज में हासियाकृत हुए समुदायों में प्रथम हो गए। इनको इस नए रूप में समाज द्वारा निर्मित करने ने, इन्हें न सिर्फ समाज की नजरों में गिराया है, अपितु उनकी खुद की नजरों में भी तुच्छ एवं ईश्वर द्वारा बेकार निर्मिति के रूप में स्थापित किया हैं।

यह सर्वविदित है कि जेन्डर हमारे जीवन के हर पहलू से गहरे रूप से जुड़ा है। इसका प्रभाव हमारी संस्थाओं,हमारे परिवार तथा स्कूल आदि में बड़े तौर पर महसूस किया जा सकता है, और देखा जा सकता हैं। जेन्डर संबंधित विचार हर जगर मौजूद है– हमारे विचारों में, हमारे विश्वास में, कहानियों, फिल्मों और उत्पादों के प्रचार में। ये सभी पुरातन समय से चली आ रही अपरिवर्तित शोच के परिणामस्वरूप हमारे में अन्दर तक पैठ बना चुके हैं। फेयरक्लॉग (1995) कहते हैं, ''हम तब तक इच्छित परिवर्तन को प्राप्त नहीं कर सकते जब तक इन सामाजिक संस्थाओं पर ध्यान नहीं केन्द्रित करते, जो नकारात्मक विचारधारा और विमर्शपरकता को लोगों पर लादते हैं।"

ग्राम्सी (1994) मानते है कि समस्या की जड़ वहाॅ है जब स्कूल जेन्डर और पितृसत्ता जैसी हेजेमनिक विचारधाराओं को प्रसारित करने में सीर्फ एक एजेन्ट के रूप में कार्य करते हैं (ग्राम्सी, 1994 उद्धृत, मुतेकवे एण्ड मोदिबा, 2012, 366-367) हम जानते है कि सीखने-सीखाने की प्रक्रिया औपचारिक और अनौपचारिक दोनों रूपों में स्कूल तथा स्कूल के बाहर घटित होती रहती हैं, उसी क्रम में हम देखे तो पाते हैं कि स्कूल के बाहर बाजार में तथा बाजार से प्राप्त साहित्य जनता की विचारधारा को बनाने और गढ़ने का कार्य बखूबी करता हैं। टेक्सबुक्स तो बच्चों की जेन्डर पहचान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते ही हैं वहीं उनके मूल्यों एवं एटिट्यूड को भी गढ़ते हैं। (ल्यूक, 2004)

मालूवा-बान्दा (2004) के अनुसार शिक्षा को एक प्रभावकारी तरिके के रूप में देखा जाता है जो जेन्डर संबंधित मुद्दों को प्रभावी तौर पर हल कर सकता है। वास्तव में शिक्षा महिलाओं को सशक्तिकृत करती हैं। वह उन्हे सक्रिय रूप से सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं में भागीदारी के लिए तैयार करती हैं उस संदर्भ में किन्नरों का सशक्तीकरण नहीं हो पाता क्योंकि समाजिक रूप से बड़े तौर पर अस्वीकृत होने के कारण ये बहुत जगह से अदृश्य है, स्कूल तो दूर की बात है। पुरानी सरकारों ने भी इन्हें हाशिए से उठाकर उपर लाने का प्रयास नहीं किया। अगर प्रयास किया होता तो आज यह किन्नर समाज पढ़ भी रहा होता, अपने अस्तित्व का नया खॉचा भी तैयार कर रहा होता और जेन्डर विभेद की प्रताढ़ना से मुक्त भी हो गया होता। डार्थी स्मिथ (1987) का मानना है कि, "टेक्सबुक्स शक्ति से संपन्न करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है क्योंकि यह निर्धारित करता है कि बच्चे अपने और समाज के बारे में किस प्रकार का नजरिया तैयार करें।" मैकबेथ एट ऑल (2011) का मानना है कि, "बच्चों की पुस्तकों में साफ तौर पर क्या सही है, क्या गलत है, क्या सुन्दर है, वे क्या प्राप्त कर सकते हैं और क्या उनकी पहुँच के बाहर है के बारे में व्यापक रूप से संदेश निहित होता है जो कि मुख्य तौर पर उनकी जेन्डर संबंधित पहचान को निर्मित करता है।"

सदरलैड (2001) ने अपने अध्ययन में बताया की बच्चे अपने अध्ययन के लिए लगातार टेक्सबुक्स का प्रयोग करते हैं जो उनके चेतन और अवचेतन को प्रभावित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आत्म-सम्मान प्रभावित होता हैं, इसलिए इस बात से एकदम इन्कार नहीं किया जा सकता कि टेक्सबुक्स बच्चों की जेन्डर संबंधित समझ और पहचान संबंधित समझ को प्रभावित करता रहता हैं। नाज एट आल (2004) के अनुसार,''वस्तुनिष्ट ज्ञान जैसी कोई चीज़ मौजूद ही नहीं है और न ही बच्चों के लिए रानीतिक तौर पर तटस्थ किताबे और तो और स्कूलों में बच्चों को जो पढ़ाया जाता है वह पुरुष दृष्टिकोण से पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए निर्मित हैं।" उपर्युक्त समालोचना स्त्रीवादियों के उस दावे को सही साबित करती है जिसके अनुसार, ''स्कूल उन कारखानों की तरह हैं जहाँ राज्य द्वारा मंजूर पुस्तकों के आधार पर निर्मित अनुदेशनों द्वारा लैंगिककृत व्यक्ति का निर्माण होता हैं।" (वुड, 2003)

समाज में विभिन्न वर्गो की समाजिक स्वीकृति और उनका श्रेणीक्रम सामाजिक संस्कृति, परंपराओं और विमर्श से निर्मित होती है। 1871 में अग्रेजों द्वारा इनके खिलाफ बने कानून और उसके प्रतिक्रिया स्वरुप जिस विमर्श का निर्माण और फैलाव हुआ उसने

पूरी तरह से तृतीयलिंगिय और विशेषकर किन्नर समाज को नकारात्मक रुप से स्थापित करके हासिए पर कर दिया। इस बात को समझना होगा कि मूलभूत सुविधाओं से वंचित और समाज की प्रताड़ना के शिकार किन्नरों की स्थिति पर कम लोगों का ध्यान जाता है। इस वर्ग (किन्नर वर्ग) को अगर समाज की मुख्य धरा में लाना है तो इसे सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विमर्शों में शामिल करना होगा। इसके लिए विभिन्न साधनों (प्रिंट मिडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया) को माध्यम बनाना होगा। साहित्य इसमे मुख्य भूमिका निभा सकता है। साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्य जहाँ समाज से लेता है वहीं अप्रत्यक्ष रूप से उसे देता भी है। साहित्य के द्वारा समाज का मानस तैयार किया जा सकता है परिवर्तित किया जा सकता है। अत: साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण हैं।

मेम फॉक्स (1993) के अनुसार, ''हम जो भी पढ़ते है वो हमे निर्मित करता हैं।'' उपर्युक्त अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट है कि साहित्य चाहे वह प्रारंभिक स्तर के लिए लिखित हो या उच्च स्तर के लिए वह हमारे चेतन को प्रभावित करता है और हमारे अस्तित्व और पहचान को सृजित करता हैं।

इस संदर्भ में अगर किन्नरो पर लिखे साहित्य पर बात करें तो एक बात जो जहन में आती है वह यह है कि तृतीयलिंगिय समुदाय तथा इस समुदाय में शामिल किन्नर समुदाय पर अगर सार्थक जीवंत एवं यथार्थ के पुट को समाहित किया हुआ साहित्य बड़े स्तर पर लिखा एवं पढ़ा जाए तो निश्चित रूप से जनमानस के मस्तिष्क में व्यापत और रूढ़ हो चुकी गलत धारणाओं और मिथकों को तोड़ा जा सकता है, और यथार्थ आधारित तथ्यों के प्रस्तुतीकरण द्वारा किन्नरों के लिये समाज सार्थक अवधारणाओं एवं विचार को उत्पन्न एवं निर्मित किया जा सकता हैं और उनके लिए एक स्वस्थ एवं मानवतावादी समाज बनाया जा सकता है इसलिए सही साहित्य का सृजन हमारा कर्तव्य बन जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

- सौरभ, प्रदीप (2011) .'तीसरी ताली',वाणी प्रकाशन,दरियागंज ,नई दिल्ली,
- सौरभ, प्रदीप (2011) .'तीसरी ताली', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
- Bhasin, Kamla (2011). 'Understanding Gender', Raj Press, inderpure, New Delhi.
- Fox, M. (1993). Men who weeps, boys who dance: The gender agenda between the lines in children's literature'.LanguageArts. 70(2):84-93
- Gramscik,A.1994. Media discourse. London: EdwardArnold.
- Maluwa - Banda. D (2004) .Gender sensitive educational policy and practice: The case of Malawi. Prospects, 12(1):71-84
- Mutekwe, E. & Modiba, M. Evaluation of the Gender Senstive Nature of Selected Textbook in the Zimbabwean Secondary School Curriculum.Anthropologist, 14(4):365-373
- Naz, Arab, et.all (2014). 'Role of Language in Gender Identity Formation in Pakistani School Textbooks', Indian Journal of Gender Studies, Sage Publication, Vol-2
- Smith, D. (1987). The everyday world as problematic:A feminist sociology. Boston: Northeastern university Press.
- Sunderland. J, M. Cowley, F.A. Rahim.C. Leontzakou and J. Shattuck, (2001). From bias "in the text" to "teacher talk around the text" an exploration of teacher discourse and gendered foreign language textbook texts. Linguistics and education 11(3):251-286
- Ullah, H. & Ali, J & Naz, A (2014).Gender Representation in Children's Books: A critical Review of Empirical Studies, world Applied Sciences Journal 29 (1):134-141,2014,IDOSI Publication

भारतीय संस्कृति में नाट्यकला: एक अध्ययन

कृष्ण कुमार

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय,
आईएएसई (मानित विश्वविद्यालय)
गाँधी विद्या मंदिर, सरदारशहर

दुनिया एक रंगमंच है और हम सब इस रंगमंच की कठपुतलियां हैं। किसी ने ये पंक्तियां यूं ही नहीं कह दीं। अगर आप गहराई से देखें तो हम सब कहीं न कहीं जिन्दगी में हर रोज कोई न कोई किरदार में होते हैं और हर पल हमारे हाव भाव, बोलचाल का अंदाज और तमाम घटनाक्रमों के बीच हमारी भूमिका एक नई कहानी गढ़ती है। भारतीय संस्कृति में रंगमंच की परंपरा बेहद समृद्ध है और ये कहीं न कहीं हमारे जीवन के तमाम पहलुओं को स्वांग के जरिये सामने लाती है। फिल्मों और टेलीविजन के आने के बाद से रंगमंच की दुनिया में हलचल मच गई और इसके अस्तित्व पर सवाल उठाए जाने लगे। लेकिन हर दौर में देश के तमाम हिस्सों में रंगमंच उसी शिद्दत के साथ मौजूद है और रहेगा। इसकी अपनी दुनिया है और अपने दर्शक हैं। यहां भी नए नए प्रयोग होते रहते हैं और देश भर में लगातार नाटकों का मंचन होता रहता है। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध संस्कृतियों में से एक मानी जाती है, जिसका प्रत्येक पक्ष इसकी खूबसूरती को दर्शाता है। भारतीय रंगमंच भारतीय संस्कृति का ही हिस्सा है, जो एशिया और यूरोप के सबसे प्राचीन रंगमंचों में से एक है। भारत के शास्त्रीय रंगमंच का प्रारंभिक रूप संस्कृत रंगमंच है।

भारत में रंगमंच में एक समृद्ध परंपरा है जो देश के प्राचीन अनुष्ठानों और मौसमी उत्सवों से निकटता से संबंधित है। भरत मुनि द्वारा लिखित नाट्य शास्त्र विश्व का सबसे प्राचीन नाट्य ग्रन्थ है, जिसमें नाटक के दस वर्गीकरणों का वर्णन किया गया है। भारतीय पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रारंभ में नाटक देवताओं की असुरों पर विजय जैसे दिव्य प्रसंग में प्रदर्शित किया जाता था। भारत में रंगमंच एक कथा के रूप में प्रारंभ हुआ, जिसमें सस्वरपाठ, गायन और नृत्य रंगमंच के अभिन्न अंग बन गए। भारतीय कथाओं, साहित्यों और कला के अन्य सभी रूपों को भौतिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए रंगमंच का निर्माण किया गया।

भारतीय संस्कृति:- भारत की नाट्यकला भारतीय संस्कृति की वाहिका है। नाट्यकला संस्कृति को लेकर चलती है। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही खड़ा हो जाता है कि नाट्यकला जिस संस्कृति को लेकर चलती है, वह संस्कृति क्या है? अंग्रेजी में हम लोग उसको कल्चर कहते हैं। कल्चर और संस्कृति दोनों समानार्थी नहीं हैं। हमारी संस्कृति में अध्यात्म है और कल्चर अध्यात्म से कोसों दूर है। कल्चर का मतलब है, जो सुसभ्य है, अच्छे से कपड़े पहनता है, अच्छे से बोलता है, अच्छे से व्यवहार करता है, आने वाले लोगों को अच्छे से बैठाता है, वेल बिहेव्ड है, वेल मैनर्ड है। इसको हम वेल कल्चर्ड बोलते हैं। इसका संस्कृति से कुछ लेना-देना नहीं है।

कल्चर बाह्य रूप है, संस्कृति आंतरिक है। हो सकता है, कोई वेल कल्चर्ड हो और सुसंस्कृत नहीं हो लेकिन जो सुसंस्कृत है, वह वेल कल्चर्ड होगा ही। हमारे यहाँ परिभाषाएँ अलग हैं। हो सकता है, रामकृष्ण परमहंस को वेल कल्चर्ड कहें या नहीं लेकिन वे सुसंस्कृत हैं। वे सैकड़ों सुसंस्कृत लोगों को गढ़ सकते हैं। हमारी संस्कृति का मूलाधार, आत्मा क्या है? हम जिसे कहते हैं कि सुसंस्कृत है तो उसमें शुचिता चाहिए, पवित्रता चाहिए, प्रामाणिकता चाहिए। सत्य के प्रति निष्ठा चाहिए। जिसमें ये संस्कार हैं, वह सुसंस्कृत है लेकिन कल्चर में संस्कारों की आवश्यकता नहीं पड़ती। तो सबसे पहली बात है कि जो सुसंस्कृत है, वह इन गुणों वाला होना चाहिए। सत्यनिष्ठ, प्रामाणिक, शुचितापूर्ण, क्षमावान, धैर्यवान, धर्मज्ञ जो है, वह ही सुसंस्कृत है। विशेष बात यह है कि कल्चर और संस्कृति में जो पर्याप्त भेद है, उसको अपने को ध्यान में रखना चाहिए।

सभ्यता और संस्कृतिः- बहुत से लोगों के मन में भ्रम हो जाता है। सिविलाइजेशन और संस्कृति, सभ्यता और संस्कृति में क्या घालमेल है, यह समझ में नहीं आता। वास्तव में हमारी नाट्यकला सभ्यता के साथ-साथ चलती है लेकिन संस्कृति को लेकर चलती है। हमारी नाट्यकला सभ्यता की सहयोगिनी है लेकिन संस्कृति को कंधे पर बैठाए हुए लेकर चलती है। अब प्रश्न यह है कि सभ्यता क्या है? सभ्यता का केंद्रबिंदु है विज्ञान, अर्थ और बाजार। जैसे-जैसे विज्ञान नए-नए आविष्कार करता है, वैसे-वैसे इन आविष्कारों के अनुसार व्यापारी नए-नए सामान मार्केट में उतार देता है। नया-नया सामान मार्केट में आता है तो हम खरीदते हैं। समाज उसका उपयोग करता है और सभ्यता आगे बढ़ती है। सभ्यता नए वस्त्र देती है, नए मकान देती है, नई सड़क देती है, नए वाहन देती है, विद्यालय के भवन देती है, तरह-तरह के माध्यम देती है, तरह-तरह के औजार देती है, तरह-तरह की मशीनें देती है, कारखाने देती है। यह सब सभ्यता देती है।

संस्ख्रति अलग चीज है। संस्कृति का केंद्रबिंदु अलग है। संस्कृति का केंद्रबिंदु जो है, वह भारत में अध्यात्म है। भारत की संस्कृति अध्यात्म को लेकर चलती है। भोजन कैसे करना है, यह जरूर सभ्यता तय कर सकती है। आप पत्तल में भोजन कीजिए, मेज पर कीजिये, बैठ कर या खड़े होकर कीजिए। कुछ और तरीके निकल सकते हैं। यह सभ्यता तय करेगी। सभ्यता अन्न का उत्पादन बढ़ा सकती है। सभ्यता तमाम आविष्कार कर सकती है, ढेर सारा अन्न पैदा कर सकती है लेकिन भोजन और अन्न के प्रति दृष्टिकोण क्या हो, यह संस्कृति तय करेगी। संस्कृति कहती है-अन्न ब्रह्म। भोजन की थाली ईश्वर का प्रसाद है। इसे बिगाड़ना नहीं, पैर के नीचे पड़ने नहीं देना।

भूखे के लिए भोजन देने की बात संस्ख्रति तय करेगी। भोजन की दृष्टि संस्कृति तय करेगी, भोजन का विस्तार सभ्यता तय करेगी। नए-नए इंस्ट्रूमेंट लाना सभ्यता तय करेगी, बजाना क्या है, यह संस्कृति तय करेगी। नए-नए वस्त्र पैदा करने का काम सभ्यता करेगी, वस्त्र कैसा पहनना है, यह संस्कृति तय करेगी। दोनों चीजों का अंतर समझिए। संस्कृति हजारों वर्षों में आती है और हजारों वर्षों तक टिकती है। जन्म-जन्मांतर तक चलती है। जन्म से लेकर अंत तक साथ नहीं छोड़ती, उसका नाम संस्कृति है।

मुझे नाम मिला ख्रष्ण। क्यों मिला, क्योंकि संस्कृति है। मेरे माता-पिता, पड़ोसियों या समाज के लोगों को कृष्ण से लगाव होगा। हजारों साल से ये नाम चले आ रहे हैं, यह संस्कृति तय करती है। जैसे फूल में सुगंध है, दूध में मक्खन है पर दिखता नहीं लेकिन है। उसकी अनुभूति होती है। यह संस्कृति का मर्म है। हमारे संस्कारों की जो आधारभूमि है, वह अध्यात्म है। सिविलाइजेशन आधारभूमि नहीं है। जो हजारों साल से चले आ रहे हमारे तमाम काम हैं, उनके अन्दर जो बैठा है, उसका अधिष्ठान, वह अध्यात्म है। सभ्यताएँ आएँगी और चली जाएँगी। नाटङकला इस संस्कृति के आध्यात्मिक भाव को लेकर चलती है। नाट्यकला भावों को व्यक्त करती है। कला अपने अन्दर के भाव गीत में व्यक्त करेगी, नृत्य में व्यक्त करेगी, नाट्य में करेगी, शिल्प में करेगी, चित्र में करेगी, मन में जो है, उसको प्रकट करेगी। ये सब कला के भिन्न-भिन्न आयाम जो हमको दिखते हैं, भाव को व्यक्त करने के साधन हैं। भाव संस्कृति तय करेगी, भाव अध्यात्म तय करेगा।

साध्य क्या होगा? साध्य परमानंद होगा। जो साधक है कला का, उसके मन में सांस्कृतिक अधिष्ठान स्पष्ट है तो साधन वह कोई भी लेगा। वह चित्रकला का सहारा लेगा, नाट्य का लेगा, नृत्य का लेगा, भित्तिचित्र का लेगा अथवा मूर्ति बनाएगा। साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। साधन कितने ही प्रकार के विकसित कर सकता है साधक लेकिन उसके अंतर्मन में जो अध्यात्म बैठा है, प्रकटीकरण उसका होता है। इस तरह साधन, साध्य और साधक तीनों एकरूप हो जाते हैं तो साधना उत्कृष्ट होती चली जाती है। मीरा का साधन उसका तानपुरा है, गीत है। वह भजन, कविता लिखती है, गाती भी है। वाद्य भी है उसके पास, कंठ भी है। उसको कविता लिखने की भगवान् ने क्षमता दी है।

साधना करते-करते कृष्ण के साथ एकरूप हो जाने का उसका अपना निर्णय है। मीरा अपने साधनों से साधना करते-करते एक ऐसा स्थान पाती है कि आज भी कालजयी दिखती है। कला व्यक्ति को कालजयी बनाती है। भारतीय संस्कृति में नाट्यकलाः- भारत की कला के बारे में मैथिलीशरण गुप्त कह रहे हैं कि जो हो रहा है, वही आप कर रहे हैं, इसमें क्या विशेष किया, किंतु जो होना चाहिए, वह आपने किया तो वास्तव में कला ही इसको अभिव्यक्त करती है। भारत में नाट्यकला का इतिहास कहाँ से प्रारम्भ होता है? वैसे कला वेदों से ही शुरू होती है, इसमें कोई दो राय नहीं है। नाट्यकला की शुरुआत ही संस्कृति एवं संस्कार की रक्षा के लिये हुई।

उसकी शुरुआत भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में दी है। लंबी कहानी है, बहुत छोटे में आपको बताता हूँ। कथा है कि स्वर्ग में भी संकट आ गया। क्यों? इसलिए कि स्वर्ग में सब साधन थे। भोग के, उपभोग के सारे साधन स्वर्ग में थे तो रजोगुण बढ़ता चला गया तो ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सर भी बढ़ते ही चले गए। जब रजोगुण बढ़ता है तो ये सब भी बढ़ते हैं। देवता दु:खी हो गए, ब्रह्माजी के पास आए। क्या करें? देवताओं ने सोचा कि ब्रह्माजी दृश्य व श्रव्य कुछ नाटक की रचना करें, क्रीड़ा करें तो उससे यह वातावरण सुधर जाएगा। लोगों में संस्कार आ जाएगा। ऐसी इच्छा रखकर देवतागण इंद्र के साथ ब्रह्माजी के पास पहुँचे।

ब्रह्माजी ने कहा कि ठीक है, करते हैं कुछ रचना। रचना की तो चारों वेदों से कुछ-न-कुछ लिया। ऋग्वेद से पाठ ले लिया, सामवेद से गीत ले लिया, यजुर्वेद से अभिनय लिया, अथर्ववेद से रस लिया। फिर एक बड़े नाट्यशास्त्र का निर्माण किया और भरत मुनि को दे दिया। देवताओं ने कहा कि यह हमारे यहाँ संभव नहीं है, देवता लोग नाटक नहीं कर सकते। यह तो कलाकार ही कर सकते हैं। क्योकि देवता लोग आलसी हो गए हैं। कला साधना चाहती है। साधना करना इनके बस का नहीं है। सोचिए कि कितनी प्रामाणिकता से उन्होंने स्वीकार कर लिया लेकिन जो नाट्यशास्त्र बना, उसके बहुत सारे गुण हैं। मैं समझता हूँ, भारत के इतिहास में यह बहुत बड़ा है। बहुत सुन्दर शास्त्र है। कहा गया है कि इस नाट्यशास्त्र में जो-जो भाग लेंगे, उनमें कोई भेद नहीं होगा। कोई छोटा है या बड़ा, संपन्न है या विपन्न, इससे फर्क नहीं पड़ेगा।

इस जाति का या उस जाति का, इस प्रांत का या उस प्रांत का, कोई भी भेद नहीं माना जाएगा। 'कला' कला है। पहली बात कि कला भेद नहीं मानती, सारे भेद में अभेद की सृष्टि करती है। दूसरी बात कि जो आएगा, उसको साधना करनी पड़ेगी, कला साधना चाहती है। तीसरी बात कि यह केवल विषय मात्र नहीं है अर्थात् किसी भी पात्र को कोई भी हमने यदि काम, जिसे आजकल रोल बोलते हैं, दे दिया तो नाराज नहीं होना है उसको। कथा कुछ यों है कि नाटङशास्त्र का मंचन शुरू हुआ तो असुरों और देवताओं का संघर्ष मंचन करना था। असुरों को असुरों का काम दे दिया, देवताओं को देवताओं का काम दे दिया। इसमें असुरों को हारना ही था। बेचारे मंच पर भी हार गए। असल में हारे, नाटक में भी हार गए तो ब्रह्माजी के पास गए। बोले-ब्रह्माजी, हमारी दुर्गति क्यों कराते हैं आप? तो ब्रह्माजी ने कहा-नहीं-नहीं, नाटक में कोई हार-जीत नहीं होती। तब से चला आ रहा है कि नाटक में पराजय नहीं होती।

ब्रह्माजी कहते हैं कि नाटक में जो पात्र हैं, वे नाटक तक ही हैं, यह ध्यान रखना और नाटङशास्त्र का काम है समाज में भेद को समाप्त करना, एकाग्रचित्त होकर लंबी, दीर्घ साधना करने का मन बनाना और जो भी भूमिका मिले, उसके अनुसार अभिनय करना। वे आगे बढ़ते हैं और कहते हैं कि स्वर्ग में जो नाटङ की आवश्यकता हुई, वह इसीलिए हुई कि भोग व विलास इतना बढ़ गया कि नींद तक नहीं आती, विश्रान्ति नहीं होती। वे कहते हैं कि इस नाट्य में नृत्य है, कला भी है, चित्र भी है, सबकुछ है तो जिनको विश्रान्ति नहीं मिलती, उनको विश्रान्ति मिलेगी। 'विश्रान्ति जनमं काले नाट्यमेतद् भविष्यति'। जिनको नींद नहीं आती, उनको नींद आ जाएगी। जिसको अपनी रूचि का जो चाहिए, उसको वह सब नाट्य में मिल जाएगा। संस्कार, विचार जैसा सबकुछ मिल जाएगा। विशेष बात यह कि यह नाट्य आध्यात्मिक उन्नति के लिए है। केवल भौतिक उन्नति हो गई, यह पर्याप्त नहीं है।

भरत मुनि लिख रहे हैं- स्वर्ग में भी नाट्य की आवश्यकता है, भले ही वहाँ भौतिक उन्नति बहुत है। वास्तव में भौतिक उन्नति पर्याप्त नहीं है। भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए नाट्य की भी आवश्यकता है। यह कला आध्यात्मिक उन्नति के लिए है। धर्म के सत्य मार्ग का दर्शन कला के माध्यम से होगा। समाज आनन्द पाएगा। समाज में आनन्द की प्रणाली विकसित हो जाए, यह महत्त्वपूर्ण है।

इसके अलावा जो लोगों को उचित दिशा-निर्देश देने होते हैं, कई बार वे बड़ी कठोर भाषा में हो जाते हैं। 'ये ऐसा क्यों किया? ऐसा कीजिए, ऐसा नहीं' वगैरह। कर्कश भाषा में बोलना अच्छा नहीं है। नाट्य में मधुर भाषा में, सुंदर दृश्य में चीजें प्रस्तुत की जाती हैं। उसको लोग बुरा नहीं मानते उसको सीख जाते हैं इसलिए नाट्य सब दृष्टि से परिवर्तन का एक अच्छा साधन बन जाता है।

नाट्य जो लोकमत है, लोकमन है, उसको ध्यान में रखता है। जो लोकसिद्धि है, यह उसको प्राप्त करने का साधन है। लोकमन को ध्यान में रखकर, लोकधर्म को ध्यान में रखकर लोकसिद्धि प्राप्त करना नाट्य कला का बड़ा उद्देश्य है। लोकभाव को ध्यान में रखना जरूरी है, अत: जैसा समाज है, उस समाज के मनोभाव को ध्यान में रखकर नाट्यकला आगे बढ़ती है यही भारतीय संस्कृति का परम उद्देश्य भी है। लोकमंगल, लोकहित, लोकमन का सम्मान, लोकभावों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना और इस प्रकार से इस नाट्यकला ने भिन्न-भिन्न प्रकार से इस समाज के आध्यात्मिक उन्नति के भाव को, लोकधर्म व लोक आदर्शों को फिर से

लोगों के मन में स्थापित करने का कार्य किया। नाट्यकला का उद्देश्य यही है-लोगों की आत्मा विशुद्ध हो जाए। लोगों का मन विस्तीर्ण हो जाए। लोगों की सहनशक्ति बढ़ जाए। सारे भेदों के बीच भी मेल और सामंजस्य करने की प्रवृत्ति बन जाए।

भारत में एक सुन्दर परंपरा प्रारम्भ काल से ही चली आ रही है कि जितना भी सुंदर साहित्य, दर्शन, विचार हो, सबको कला के साथ जोड़कर चलिए। कुछ वैसे ही जैसे शिव के साथ लास्य है। वैदिक परंपरा से लेकर आज तक हम लोग देखते हैं कि हर सुंदर साहित्य किसी-न-किसी कला के रूप में लोकमन में बैठ जाता है। इसका सुंदर उदाहरण देखना है तो हमें बारहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक भक्तिकाल के सारे संतों को देखना चाहिए। वे संत अपना कोई साहित्य लिखते हैं तो कला के साथ।

चाहे गुरू नानकदेव हों, चाहे नामदेव, तुकाराम हों, असम के शंकरदेव हों, सूरदास और मीराबाई हों, हजारों संत रहे हैं देश में। उन सबने कला का सहारा लिया। सबने अपने-अपने वचनों को एक स्वर में बाँध दिया। सबका कोई-न-कोई राग है। सब किसी-न-किसी वाद्य के साथ गाए जाते हैं। सारा-का-सारा समाज विद्वान् भले न होगा लेकिन कबीर के दोहे, मीरा के पद, सूर के भजन, तुलसी की चौपाइयाँ, नानक के शब्द गाए तुलसी ने रामचरित मानस लिखने के बाद रख नहीं दिया। रख देते तो रखा ही रह जाता। उसको नाट्यकला ने पकड़ लिया। तुलसीदास ने उसको नाट्यकला दी, गाना सिखाया। चौपाइयों को स्वर दिया, छंदों को अलग स्वर दिया। सोरठा अलग तरह से गाया गया। वाद्य अलग तरह से बजे, मंचन हुआ। पात्र आ गए, रामलीला शुरू हुई।

सारे देश में रामलीला, कम-से-कम उत्तर भारत में गाँव-गाँव में होने लगी। इसका श्रेय नाट्यकला को है। नाट्यकला के कंधे पर बैठकर पूरा का पूरा साहित्य दर्शन गाँव-गाँव चला गया और घोर अंधकार के समय, घोर निराशा के क्षणों में तुलसीदास हजारों कलाकारों को लेकर प्रस्तुत हो गए। समाज के सब तरह के लोगों को साथ ले लेते थे। कोई छूत-अछूत नहीं, कोई छोटा-बड़ा नहीं। यह रावण की सेना है, यह राम की सेना है। सुग्रीव, नल-नील सब आ गए। कोई भी पात्र बनता है। चलो, इस बार तुम सुग्रीव बनो, अगली बार तुमको भरत बनाएँगे। हर जाति-बिरादरी को लेकर, वाद्यों को लेकर, गायकों को लेकर मंचन शुरू हुआ तो गूढ़ दर्शन जो था राम का, वेदों का, सब नीचे तक आ गया घर-परिवार के दर्शन जैसा। रामनगर की रामलीला इसका उदाहरण है। घर-घर में राम जैसा। धर्म कैसा, राम जैसा। राम धर्मज्ञ हो गया। राम परिवार में आदर्श हो गया। जब मंचन हुआ तो लोगों ने मन से देखा, हृदय से देखा। कई बार रामलीला देखने चले जाते थे, देखते थे कि राम-सीता का वनवास हो रहा है। कल तो इनका राजतिलक होना तय था, आज वनवास हो रहा है। सीता ने सबका चरण स्पर्श किया है। सबके चरणों में सिर रखकर जैसे ही सीता कैकेयी के चरणों में सिर रखती हैं, पूरा-का-पूरा समाज रोने लगता है।

जो लोग रामलीला देख रहे हैं, सब रोने लगते हैं। क्यों? क्योंकि उनको लगता है कि यह ज्यादती हो गई। हजारों साल पहले घटना घटी थी लेकिन नाट्यकला ने उसको रूप दिया है, नाट्यकला ने उसको भाव दिया है, नाट्यकला ने उसको संवेदना दी है। नाट्यकला ने इस भाव को लोगों के मन में इतना गहरा उतार दिया कि लोगों को लगने लगा कि सीता हमारी हैं, राम हमारे हैंय भरत, लक्ष्मण, हनुमान हमारे हैं। यह विचार-दर्शन लोगों के मन में बैठ गया। यह है नाट्य कला का यश, नाट्यकला का दर्शन, नाट्यकला का मर्म, नाट्यकला का धर्म। मिश्र में भी बहुत कहानियाँ हैं। राम कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम लोगों के हृदय में विराजमान ऐसे व्यक्ति हैं, जो हट नहीं सकते, क्योंकि कला उसको जीवित रखती है। बहुत सी कहानियाँ हैं, मिश्र में, ग्रीक में, रोम में, पर्सिया में लिखी गई। लेकिन किसी कहानी का मंचन कहीं रामायण की तरह नहीं होता।

हाँ, रामायण होती है तब लोग रोने लगते हैं, भागवत होती है तब लोग रोने लगते हैं, क्योंकि समाँ ऐसा बँधता है। दर्शन तो गूढ़ होता है, नीरस होता है। दर्शन सरस नहीं होता लेकिन नाट्यकला उस गूढ़, नीरस दर्शन को सरस बनाकर लोगों के हृदय में कैसे बैठा देती है, यह अद्भुत है। मैंने प्रारम्भ में ही कहा कि नाट्यकला संस्कृति के अन्दर बैठा जो अध्यात्म रूपी दर्शन है, उसको अपने कंधे पर लेकर चलती है। लोगों के हृदय में जब तक नहीं बैठा देती, तब तक नाट्यकला सफल नहीं है। नाट्यकला चरित्र के उत्थान की सबसे सरल विद्या है। चरित्र-उत्थान कैसे होता है, यह नाट्यकला सिखाती है।

निष्कर्षः- महान राजनीतिज्ञ व अर्थशास्त्र के प्रणेता चाणक्य ने एक बार मार्ग में कुछ बालकों को नाटक खेलते देखा। राजा बने बालक के न्यायाधीश रूप के अभिनय ने चाणक्य को न केवल विस्मित किया वरन उस बालक में उन्होंने अखंड भारत की परिकल्पना के मूर्त रूप व उज्ज्वल भविष्य को पहचाना। यही बालक उनकी छत्रछाया में पोषित होकर प्रथम सम्राट बना- चंद्रगुप्त

मौर्य। शेष इतिहास गवाह है कि इस एक छोटी-सी घटना ने भारत के इतिहास की धारा बदल दी। रंगमंच की प्राचीनता व उपादेयता के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

जब टी.वी. संस्कृति ने हमारे घरों में प्रवेश नहीं किया था तब घर-घर, गली-मोहल्लों के बच्चे अपने खेलों में छोटे-छोटे नाटक प्रहसन किया करते थे। माँ की पुरानी साड़ियों, पन्नियों व दफ्ती से बने मुकुटों, इधर-उधर से जोड़ी दादी-नानी के पिटारों की चीजों, घर के तख्तों के मंच पर चादरों के पर्दे बनाकर खेले जाने वाले नाटकों की मधुर याद आज भी ताजा है। राम-कृष्ण लीलाएँ, सत्य हरिश्चंद्र कथा जैसे पौराणिक विषयों के साथ अकबर-बीरबल के हास्य भरे किस्से, लाल बुझक्कड़ बूझिया और अँग्रेजों के खिलाफ आंदोलन आदि प्रिय विषय हुआ करते थे। बच्चों के अति प्रिय इन नाटकों के प्रभावी पक्ष की गंभीरता को नकारा नहीं जा सकता। कला की विभिन्न विधाओं, रचनात्मकता और सर्जनात्मकता का विकास, सद्वृत्तियाँ, सही सोच की प्रेरणा और इसके एक राष्ट्रीय सद्चरित्र का निर्माण किसी भी संस्कृति के विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। यह भी कि ये आयोजन उनके लिए ऐसे झरोखे खोलते हैं जहाँ वे किताबी दुनिया से बाहर झाँक पाते हैं, छोटी बँधी दुनिया से परे विशाल आकाश में उड़ती कल्पना में। जहाँ भय की सिहरन होती है वहीं नव उपलब्धियों का रोमांच भी। उनको एक मंच मिलता है अपनी अप्रतिबंधित निर्मल सोच की प्रस्तुति का, जो अद्‌भुत पहलुओं को उजागर कर हमें चिंतन-मंथन पर विवश करता है। नाट्यकला द्वारा भारतीय संस्कृति से परिचय होता है और होता रहेगा।

हम सभी जानते हैं कि भारतीय संस्कृति की भूमिका हमारे व्यक्तित्व विकास के लिए जरूरी है। यह भी कि गंभीर व जटिल विषयों का रोचक रूप से सरलतापूर्वक मंचीकरण जन-जन को प्रभावित कर सकता है। हर वर्ग के दर्शकों तक पहुँचने वाले नुक्कड़ नाटक इसमें सर्वाधिक सक्षम हैं। ऊर्जावान आत्मविश्वास से लबरेज बच्चों की इस दिशा में भागीदारी की कोशिश की जानी चाहिए। भारतीय संस्कृति में नाट्यकला की सार्थकता विशिष्ट कही जा सकती है। भारत के बहुरंगी-बहुभाषी स्वरूप में न केवल रंगमंचीय स्वरूप व प्रस्तुतियाँ भी बहुरंगी हैं जो एक-दूसरे को नए-नए तरीके सिखाती हैं, अभिनव कलाएँ दिखाती हैं वरन् एक-दूसरे को समीप लाते हुए देश की एकता और अखंडता में सहायक होती हैं।

संचार साधनों के विकास के कारण तेजी से सिमटते विश्व में किसी भी देश की घटनाओं व समस्याओं से पूरा विश्व प्रभावित होता है चाहे वह प्राकृतिक प्रलय हो अथवा जनसंख्या वृद्धि, भयंकर रोग हों या रंगभेद के सवाल, धर्म की आड़ में पनपते असामाजिक तत्व हों या शैक्षिक सामाजिक प्रश्न। सर्वोपरि हैं पर्यावरण और आतंकवाद से उपजते खतरे। विभिन्न देशों द्वारा मेज के आप-पार बैठकर वैचारिक आदान-प्रदान और सहयोग के वायदे ही पर्याप्त नहीं। जिस तेज गति से विश्व विनाश के कगार पर जा रहा है, उसे बचाने के लिए चौतरफा प्रयत्न ही इस गति को रोक सकते हैं। यह एक सार्वभौम सत्य है कि आपसी द्वेष-लड़ाइयाँ, हथियारों की बढ़ोतरी व शक्ति प्रदर्शन से हम इन विभीषिकाओं को नहीं रोक सकते। यह भी उतना ही सत्य है कि आतंक पर अपनत्व की ही विजय हो सकती है। संवेदना, बंधुत्व, जियो और जीने दो के मानवीय भाव व भारतीय संस्कृति के मूल्यों द्वारा ही इन पर रोक लगा सकते हैं। इस दृष्टि से नाट्यकला की सामयिकता और बढ़ जाती है। रंगमंच पर अभिनीत दृश्य ही नहीं, उसके साथ-साथ उनके पीछे दूसरे देशों से सौहार्द भरे आपसी संवाद जो समीपता बढ़ाते हैं वे समन्वय और सामंजस्य के विलक्षण प्रतीक हैं।

राजनैतिक परिदृश्य में राजनेता चाहे जो रूप प्रकट करने को विवश हों किंतु कलाकार केवल सौहार्द लाता-ले जाता है। इनके कैनवास का विस्तार संपूर्ण विश्व को समेट लेता है। भारत के 'वसुधैव कुटुंबकम' के संदेश वाहक इनसे बेहतर कोई नहीं। इसी के साथ हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत विश्व मंच पर उभरकर जो प्रकाश फैला रही है उसमें इसकी महत्वपूर्ण पात्रता से इंकार नहीं किया जा सकता। वस्तुत: यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान ही है जो सदियों से मनुष्य को समीप ला रहा है, जहाँ सीमाएँ, जातीय रंगभेद कोई मायने नहीं रखते। भारतीय संस्कृति एवं नाट्यकला के इस बहुपक्षीय रूप में कुछ बातें विरोधात्मक-सी लगती हैं तो कहीं प्रश्नों के उत्तरों की चर्चा से नए प्रश्न उभरते दिखाई देते हैं। प्रश्नों के पूरे उत्तर ढूँढे ही जाएँ या मिल ही जाएँ, यह जरूरी नहीं होता, हो भी नहीं सकता। चिंतन-मंथन की प्रक्रिया की निरंतरता ही विकास की ओर बढ़ता कदम होता है। फिर भी प्रयत्न तो चलते ही रहने चाहिए

दूर हैं मंजिलें गर तो क्या हर्ज है
हाय-तौबा मचाने से क्या फायदा

काम करते चलो, ये बड़ी बात है
सिर्फ बातें बनाने से क्या फायदा!

सन्दर्भ सूची

1. रिचमंड फर्ले, पी. स्वान, डेरियस एल., जेरिली, फिलिप बी, 1993, भारतीय रंगमंचः प्रदर्शन की परंपरा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. वरद पांडे, एम. एल., 1987, भारतीय रंगमंच का इतिहास, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भरुचा, रुस्तम, 1998, द थियेटर ऑफ कन्हाईलाल, सीगल प्रकाशन, कोलकाता।
4. वाजपेयी, उदयन, 2012, के .एन. पनिक्कर : द थियेटर ऑफ रसा. नियोगी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. इन एक्ट , मार्च-अप्रैल 1982, द इंडियन ड्रामा , एन.एस.डी. प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कन्हाई लाल, एच., 2016, थियेटर ऑफ अर्थ : निबंध और साक्षात्कार, सीगल कोलकाता।
7. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, 2009, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
8. वात्सायन, कपिला, 01-जनवरी 2005, पारंपरिक भारतीय रंगमंचः कई धाराएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत।
9. गोपाल कृष्ण भारतीय कला और संस्कृति, संस्कृति नेमिषेय।
10. शुक्ल रामचन्द्र रंग मीमांशा काशी नागरी प्रचारिणी सभा सम्वत 2006।
11. आनंद, महेश, कहानी का रंग मंच, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा प्रकाशन, 1997, नई दिल्ली।

विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षैत्र

कुमार गौरव

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, आईएएसई, मानित विश्वविद्यालय
गां.वि.मं. सरदारशहर

आज वर्तमान भारत में जिन अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उनमें राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता का विघटन मुख्य है। यद्यपि भारतीय समाज एवं संस्कृति का स्वरूप प्राचीनकाल से ही विविधतापूर्ण रहा है। और विविधता में एकता इसकी एक प्रमुख विशेषता रही है जिस पर प्रत्येक भारतीय को गर्व है किंतु जब-जब हमारी राष्ट्रीय एकता विघटित हुई और हमारे सांस्कृतिक और आत्मीयता के बन्धन शिथिल हुए है, हमें इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़े है। और वर्तमान में इसके बहुत हद तक प्रभाव समाज एवं संस्कृति में भी दैखने को मिल रहे है।

इस सन्दर्भ में डॉ. सम्पूर्णानन्द के कथन है कि ''आजादी के बाद के वर्षो में भारत ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है किन्तु इन वर्षो में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन में अलगाव की प्रवृतियों में भी उतरोतर वृद्धि दिखाई दी है।''

आज भाषा, धर्म जाति एवं प्रान्त के नाम पर देशभर में आन्दोलन एवं झगडे चलते है क्योकि वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र हित और संस्कृति के संरक्षित मूल्यों को भूलकर अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ है, जिस कारण हमारी राष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता पर धोर संकट के बादल मंडरा रहे है। यही वह मुख्य कारण है कि आज की शिक्षा में हम समाज के नवनिर्माण के लिए एक भिन्न प्रकार के नागरिकों की आवश्यकता महसूस कर रहे है। इस हेतु यद्यपि हमारे सविधान निर्माताओं ने बहुत सोच-समझकर हमारे समक्ष समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं प्रंजातात्रिक समाज एवं संस्कृति की स्थापना का उदेश्य रखा है। किन्तु दुख का विषय यह है कि जिस शिक्षा जगत एवं विद्यालयी संगठन पर इनके संरक्षण का उतरदायित्व है वही राष्ट्रीय संस्कृति के उच्च मूल्यों के अर्थ को समझ नहीं पा रहे है। जिससे ना तो किसी मूल्यपरक संस्कृति का और न ही किसी वाछित संस्कारी व्यवहारों का ही निर्माण हो रहा है हमारी स्वयं की क्रियाओं ने आदर्शवादी विचारों का अनुसरण नहीं किया है। इसी घोर उदासीनता एवं निष्क्रियता का दुष्परिणाम वर्तमान में भिन्न-भिन्न रूपों में राष्ट्रीय संस्कृति के विकास मार्ग में अवरोधन के रूप में प्रकट हो रहे है। आज शिक्षा में अराजकता जैसी स्थिति पैदा हो गई है जिसका निदान शीध्रताशीध्र करना होगा।

और इस रोग को जड़ से पकड़कर उपचार करना होगा ताकि राष्ट्रीय शिक्षा जिस पर की सम्पूर्ण राष्ट्र के निर्माण में सहयोग का उदेश्य निर्भर है को प्राप्त किया जा सके। वर्तमान में इन रोगों के भंयकर कीटाणु आदर्शहीनता, समाज से नैतिक मूल्यों की अपेक्षा मौलिकता को महत्व, राजनीति दुष्प्रभाव, असंस्कारी तथा अनुपयुक्त विद्यालयी संगठन के कारकों में देखे जा सकते है। इसके साथ ही आज की युवा पीढ़ी अपने शारीरिक एवं भौतिक सुखो की प्राप्ति के लिए तो भरसक प्रयत्न करते है किन्तु स्वयं अपने नैतिक स्तर को ऊचां उठाने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं कर रहे है। सबसे अधिक सोचनीय तथ्य तो यह है कि वे भौतिक सुखो जैसे निम्न कोटि के उदेश्यों की प्राप्ति के लिए जिन साधनों को अपना रहे है उन्हें प्राप्त करने के साधन तो और भी तुच्छ है।

वर्तमान समाज की चारित्रिक जड़ता की स्थिति का सीधा प्रभाव हमारे विद्यालयों और शिक्षा पर पड़ रहा है ऐसे में समाज एवं इसमें व्याप्त परिस्थितियां राष्ट्रीय संस्कृति को क्या रूप प्रदान कर पा रही है एक चितंन का विषय है।

शिक्षा मानव समाज की एक अमूल्य पूंजी है प्रत्येक समाज अपने नागरिकों की शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का कुछ हिस्सा इसलिए खर्च करता है ताकि शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगे। इस प्रकार यह एक निवेश है जिससे समाज भविष्य हेतु सुसंस्कृत नागरिकों का निर्माण सुनिश्चित करवाता है इस कार्य हेतु विद्यालयी शिक्षा सम्पूर्ण उदेश्य की आधारभूमि होती है जिसमें सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शो का समावेशन नितान्त आवश्यक है।

अत: इन सब दोषों को दूर करने का अचूक उपाय वर्तमान परिप्रेक्षय में यह है कि शिक्षा में विशेषकर विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के तत्वों का समावेशन प्राथमिकता से किया जाए। उतम आदर्शवादी शिक्षकों द्वारा संस्कृतिमूलक एवं नैतिक मूल्य आधारित नवीन तथा प्रगतिशील शिक्षा विधियों को अपनाकर अपने विद्यार्थियों के समग्र एवं सास्कृतिक विकास को निश्चित किया जाए। शिक्षा का माध्यम मानवतावादी एवं आदर्शवाद के सिद्धान्तों पर आधारित करके राष्ट्र निर्माण की परिकल्पना को पूर्ण किया जा सकता है।

राष्ट्रीय संस्कृति के समावेशन की प्रांसगिकता- यदि किसी राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाना हो तो यह तब संभव है जब उसके उदेश्यों का समन्वयन राष्ट्रीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा समाज की आवश्यकता के अनुरूप हो जाए आज देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं में तेजी से परिवर्तन आ रहे है और साथ ही जन साधारण को लोक कल्याणकारी प्रंजातान्त्रिक जीवन शैली की और अग्रसर करने में कई प्रकार की समस्याओं का सामाना करना पड़ रहा है। पुराने मूल्यों के स्थान पर नित नये मूल्य स्थापित हो रहे है, इन बदलती हुई परिस्थितियों के सामान्तर हमारी विद्यालयी शिक्षा और उसके उदेश्य प्रगतिशील आदर्शो पर आधारित नहीं प्रतीत हो रही है, जिस कारण विद्यालयी शिक्षा के संगठन में कोई मूल्यपरक परिवर्तन नहीं हो सकता है। स्वतन्त्रता पूर्व यह शिक्षा मुख्यत: पुस्तकीय थी और रटन पद्वति पर आधारित थी जिसका उदेश्य विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय की शिक्षा हेतु तैयार करना था। होना तो यह चाहिए था कि इसके उदेश्य की सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक और मूल्य परक आवश्यकताओं और आंकाक्षाओं के अनुरूप होते जबकि वर्तमान सिद्धान्त स्वरूप तो इसके और विपरीत है। पांश्चात्य रंग से रंगी हमारी विद्यालयी शिक्षा न तो राष्ट्र के आर्थिक विकास में योगदान दे रही है और न ही यह विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण करनें, भावनात्मक और विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करने में सहायक है।

स्कूली शिक्षा किसी भी राष्ट्र एवं उसकी उन्नत सभ्यता एवं संस्कृति की रीढ़ होती है इसलिए यदि हम राष्ट्रीय संस्कृति का संर्वधन और राष्ट्र उन्नति को सुनिश्चित करना चाहते हे तो सर्वप्रथम हमे विद्यालयी शिक्षा को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास का सशक्त साधन बनाना होगा एवं इसके उदेश्यों को भी राष्ट्र की आवश्यकताओं और आंकाक्षाओं के अनुकूल बदलना होगा।

इस सन्दर्भ में जब देश में कही भी मूल्यों के अवनयन की स्थिति प्रकट होती है तो विद्यालयों और इसकी शिक्षा का उतरदायित्व और बढ जाता है, किन्तु यथार्थ में हो तो इसका उल्टा ही रहा है। विद्यालयों में मूल्य शिक्षा के नाम पर केवल आदर्शो की चर्चा भर होती है, मूल्य आधारित आचरण की नहीं। इसलिए अब समय आ गया है जब शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े सभी व्यक्ति अपने इस पुनित कर्तव्य को समझे और तदनुकूल कार्य करे वर्तमान मानव कितना भी आधुनिक क्यो ना हो जाए पर वह अपनी संस्कृति और परम्पराओं से विमुख नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञात ओर अज्ञात रूप से परम्पराएं मानव जीवन को पूर्णत: प्रभावित करती रहती है। अत: मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी संस्कृति और परम्पराओं को अच्छी तरह से जाने और समझे।

राष्ट्रीय संस्कृति के समावेशन का औचित्य- पं. जवाहर लाला नेहरू एक जगह स्पष्ट किया था कि ''संस्कृति से परे किसी भी प्रकार के अलगाव का तात्पर्य विनाश से ही है'' यद्यपि आज सर्वत्र आदर्शवादिता के परे परिवर्तन बडे तेजी से हो रहे है और सामाजिक बन्धन टूट रहे है मानव जीवन अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है, फिर भी आज के युग में कोई भी देश दूसरे देश से पूर्णतया पृथक होकर नहीं रह सकता है। यही बात व्यक्ति पर भी लागू होती है। सामाजिक प्राणी के नाते व्यक्ति अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के बारे में सोच भी नहीं सकता है। इसलिए विद्यालयी शिक्षा में यह एक मुख्य कर्तव्य समझा जाना अनिवार्य है ताकि बच्चों में प्रारम्भ से ही एक दूसरे के साथ रहने की भावना का विकास किया जा सके।

भारतीय संस्कृति पर आधुनिकीकरण का एक वर्तमान दुख यह भी स्पष्ट हो रहा है, आज जैसे-जैसे मानव आधुनिक हुआ है वह पहले से और अधिक अकेला हुआ है। अब वह केवल स्वयं तक सीमित होता चला जा रहा है। अपनी दुनिया में बहुत से मामलों में तो वह अपने परिवार के सदस्यों का हस्तक्षेप भी सहन नहीं करता है। इस स्थिति में अकेले होते जा रहे व्यक्ति की समस्याओं को और बढ़ाया हे। उसे अवसाद और निराशा के निकट कर दिया है। पारिवारिक संगठन का यह विद्यटन पहले नहीं था। अब से पूर्व जहा पहले घर, परिवार संस्कृति के क्षेत्र के अन्तर्गत व्यक्ति के दुख दर्द में बराबर शामिल थे, जो उसे आत्मबल प्रदान करते

थे। किंतु आज की परिस्थितियों में पहले जैसी संस्कृति का प्रभाव नहीं है और व्यक्ति की पहले से ज्यादा एकान्तिक हो गया है। अतः यदि मानव जीवन को सुखी जीवन देना है तो उसे एक बार पुनः परम्परागत सामाजिक दायित्वों और सांस्कृतिक बन्धनों की और लौटना होगा वर्तमान समय की यह मुख्य मांग राष्ट्रीय संस्कृति के पोषक तत्वों द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है जिस प्रकार एक बालक की आवश्यकता की पूर्ति उसके माता पिता पर निर्भर है वैसे ही एक छात्र की आवश्यकता आदर्शवादी स्कूली शिक्षा की प्रणाली पर निर्भर है। मानव के व्यक्तिगत जीवन में संस्कृति के समावेशन का यह विचार छात्र मस्तिष्क में समय पर ही बैठाने की आवश्यकता है। इस हेतु बालक की शिक्षा को अन्तःनिर्भरता के सिद्धान्त से सहयोगात्मक रूप से संकलित करना होगा। इसी सन्दर्भ में हमारे प्राचीन वेद शास्त्र भी विश्व बन्धुत्व भावना को सुदृढ़ करने के लिए संस्कृति संबंधित प्रार्थना का उपदेशन करते रहे है कि ''सम्पूर्ण जीवों को सुख प्राप्त हो सभी प्राणी निरोग रहे, सबका कल्याण हो तथा किसी को कभी दुख न पहुंचे।'' इसके लिए उन्होने ''वसुधैव कुटुम्बकम'' पर मुख्य बल दिया जिसके अनुसार सभी मनुष्य राष्ट्र धर्म जाति आदि विभिन्नताओं का ध्यान न रखकर भाई-भाई के रूप में साथ रह सकें। स्कूली शिक्षा में ऐसे ही सिद्धान्तों का स्थापन करने के लिए राष्ट्रीय संस्कृति समावेशन नितान्त आवश्यक है।

राष्ट्रीय संस्कृति के समावेशन के अधिक्षेत्र- विद्यालयी शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेशन के कार्य को निम्नलिखित अधिक्षेत्रों एवं कार्यों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है-

- सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन पर बल देना।
- शिक्षा में अनुशासन की स्थापना करना
- सृजनात्मक शिक्षा में विकास
- बहुउदेश्यीय एवं सांस्कृतिक स्कूलों की स्थापना।
- उच्च चारित्रिकशिक्षकों का चयन एवं नियुक्ति करना।
- संस्कृति संर्वधन पाठयक्रम एवं शिक्षण विधियों का प्रावधान।
- प्रंजातान्त्रिक एवं अभिप्रेरणात्मक वातावरण का सृजन करना।
- कार्य अनुभव आधारित शिक्षण सुनिश्चित करना।
- विभिन्न समाजोपयोगी उत्पादक कार्यो का आयोजन।
- भविष्य के लिये साथ रहकर सीखने की शिक्षण व्यवस्था।
- आदर्श, नागरिक एवं मानवीय गुणों के चिन्तन पर चर्चाऐं।
- सामाजिक एवं सांस्कृतिक सेवा के कार्यक्रम आयोजित करना।
- राष्ट्रीय चेतना एवं सेवा के कार्य का आयोजन।
- विभिन्न धर्मो के नीतिमूल्क संत्संगो का आयोजन।
- यौन एवं योग शिक्षा के विशेष प्रावधान।
- रचनात्मक एवं सामाजिक सहगामी क्रियाओं का आयोजन।
- स्थानीय समुदायों के साथ अभिभावक सम्बलन कार्यक्रमों का आयोजन आदि।

निष्कर्ष- शिक्षा वह प्रकिया है जिसके द्वारा स्कूल कालेज और अन्य संस्थाऐं विचारपूर्वक अपनी सांस्कृतिक विरासत प्रसारित करती है संस्कृति शिक्षा का अभिन्न अंग है और उसका स्कूल के प्रशासन से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए वास्तव में स्कूली शिक्षा में ही राष्ट्रीय संस्कृति के समावेशित का कार्य किया जाना चाहिए ताकि राष्ट्रीय संस्कृति एवं विरासत का स्थानान्तर पारस्परिक सहयोग द्वारा सुनिश्चित हो। शिक्षा ही किसी देश के निवासियों में राष्ट्रीयता के भाव को उत्पन्न कर सकती है जिसका निर्धारण वह विभिन्न औपचारिक और अनौपचारिक स्वरूपों के द्वारा करती है।

एक बालक पर उसकी रूचि, वातावरण एवं वंशगत भावनाओं एवं संस्कृति का सीधा सम्बन्ध होता है। जिसमें की उसका विकास हआ है इन सभी तत्वों को स्कूली शिक्षा के द्वारा सम्मिलित रूप में बालक के जीवन में विविध सांस्कृतिक पहलुओं द्वारा

जोड़कर विकास होना चाहिए। चूंकि हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से बहुआयामी है इसलिए विद्यालयी शिक्षा के द्वारा उन सार्वजनिक शाश्वत मूल्यों का विकास होना ही चाहिए जो कि बहुसख्यक लोगों को एकता के सूत्र में बांध सके।

सन्दर्भ सूची -

1. यादव, एच,एस, 21वी शताब्दी के सन्दर्भ में भारत में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप, टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना
2. शेख, जी, क्यू, - उभरते भारतीय समाज में शिक्षा, टण्डन पब्लिकेशन, लुधियाना
3. पाण्डेय, डॉ. राम शकल: भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याए, आर,एस, ए, इण्टरनैशलन, आगरा
4. श्रीवास्तव, एस,बी,एन,- भारतीय शिक्षा और इसकी समस्या, राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा
5. चौधरी संतोष, शिक्षा सिद्धान्त एवं आधुनिक भारत में शिक्षा, आस्था प्रकाशन, जयपुर
6. अग्निहोत्री रवीन्द्र: भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याए, रिसर्च पब्लिकेशन सोसल साइसेज दिल्ली
7. ओड, एल,के : शिक्षा के नूतन आयाम राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर
8. पाण्डेय रामशकल: भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयाम, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
9. सक्सेना, एन,आर, स्वरूप, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, आर लाल बुक डिपो, मेरठ
10. भटनागर, सुरेश- शैक्षिक प्रबन्ध और शिक्षा की समस्याये आर लाल बुक डिपो, मेरठ।

वेदों के द्वारा मानव कल्याण

सुनिता सारस्वत

सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय)
आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय सरदारशहर (चुरु)

वेद दुनिया के प्रथम धर्मग्रंथ है। इसी के आधार पर दुनिया के अन्य मजहबों की उत्पत्ति हुई जिन्होंने वेदों के ज्ञान को अपने अपने तरीके से भिन्न भिन्न भाषा में प्रचारित किया। वेद ईश्वर द्वारा ऋषियों को सुनाए गए ज्ञान पर आधारित है इसीलिए इसे श्रुति कहा गया है। सामान्य भाषा में वेद का अर्थ होता है ज्ञान। वेद पुरातन ज्ञान विज्ञान का अथाह भंडार है। इसमें मानव की हर समस्या का समाधान है। वेदों में ब्रह्म (ईश्वर), देवता, ब्रह्मांड, ज्योतिष, गणित, रसायन, औषधि, प्रकृति, खगोल, भूगोल, धार्मिक नियम, इतिहास, रीति-रिवाज आदि लगभग सभी विषयों से संबंधित ज्ञान भरा पड़ा है।

शतपथ ब्राह्मण के श्लोक के अनुसार अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ने तपस्या की और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को प्राप्त किया। प्रथम तीन वेदों को अग्नि, वायु, सूर्य (आदित्य), से जोड़ा जाता है और संभवत: अथर्वदेव को अंगिरा से उत्पन्न माना जाता है। एक ग्रंथ के अनुसार ब्रह्माजी के चारों मुख से वेदों की उत्पत्ति हुई। वेद सबसे प्राचीनतम पुस्तक हैं इसलिए किसी व्यक्ति या स्थान का नाम वेदों पर से रखा जाना स्वाभाविक है। जैसे आज भी रामायण, महाभारत इत्यादि में आए शब्दों से मनुष्यों और स्थान आदि का नामकरण किया जाता है।

वेद मानव सभ्यता के लगभग सबसे पुराने लिखित दस्तावेज हैं। वेदों की 28 हजार पांडुलिपियाँ भारत में पुणे के 'भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट' में रखी हुई हैं। इनमें से ऋग्वेद की 30 पांडुलिपियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं जिन्हें यूनेस्को ने विरासत सूची में शामिल किया है। यूनेस्को ने ऋग्वेद की 1800 से 1500 ई.पू. की 30 पांडुलिपियों को सांस्कृतिक धरोहरों की सूची में शामिल किया है। उल्लेखनीय है कि यूनेस्को की 158 सूची में भारत की महत्वपूर्ण पांडुलिपियों की सूची 38 है।

वेदों के उपवेद : ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गंधर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्यवेद ये क्रमश: चारों वेदों के उपवेद बतलाए गए हैं। वेद के विभाग चार है: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग-स्थिति, यजु-रूपांतरण, साम-गतिशील और अथर्व-जड़। ऋक को धर्म, यजु: को मोक्ष, साम को काम, अथर्व को अर्थ भी कहा जाता है। इन्ही के आधार पर धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र की रचना हुई।

ऋग्वेद : ऋक अर्थात् स्थिति और ज्ञान। ऋग्वेद सबसे पहला वेद है जो पद्यात्मक है। इसके 10 मंडल (अध्याय) में 1028 सूक्त है जिसमें 11 हजार मंत्र हैं। इस वेद की 5 शाखाएं हैं - शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन। इसमें भौगोलिक स्थिति और देवताओं के आवाहन के मंत्रों के साथ बहुत कुछ है। ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं की प्रार्थना, स्तुतियां और देवलोक में उनकी स्थिति का वर्णन है। इसमें जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा और हवन द्वारा चिकित्सा आदि की भी जानकारी मिलती है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में औषधि सूक्त यानी दवाओं का जिक्र मिलता है। इसमें औषधियों की संख्या 125 के लगभग बताई गई है, जो कि 107 स्थानों पर पाई जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवनऋषि को पुन: युवा करने की कथा भी मिलती है।

यजुर्वेद : यजुर्वेद का अर्थ : यत्. जु = यजु। यत् का अर्थ होता है गतिशील तथा जु का अर्थ होता है आकाश। इसके अलावा कर्म। श्रेष्ठतम कर्म की प्रेरणा। यजुर्वेद में यज्ञ की विधियां और यज्ञों में प्रयोग किए जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ के अलावा तत्वज्ञान का वर्णन है। तत्व ज्ञान अर्थात रहस्यमयी ज्ञान। ब्रह्माण, आत्मा, ईश्वर और पदार्थ का ज्ञान। यह वेद गद्य मय है। इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिए गद्य मंत्र हैं। इस वेद की दो शाखाएं हैं शुक्ल और ख्रष्ण।

कृष्ण : वैशम्पायन ऋषि का सम्बन्ध कृष्ण से है। कृष्ण की चार शाखाएं हैं।

शुक्ल : याज्ञवल्क्य ऋषि का सम्बन्ध शुक्ल से है। शुक्ल की दो शाखाएं हैं। इसमें 40 अध्याय हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में च्ब्रीहिधान्यों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अलावा, दिव्य वैद्य और कृषि विज्ञान का भी विषय इसमें मौजूद है।

सामवेद : साम का अर्थ रूपांतरण और संगीत। सौम्यता और उपासना। इस वेद में ऋग्वेद की ऋचाओं का संगीतमय रूप है। सामवेद गीतात्मक यानी गीत के रूप में है। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। 1824 मंत्रों के इस वेद में 75 मंत्रों को छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गए हैं। इसमें सविता, अग्नि और इंद्र देवताओं के बारे में जिक्र मिलता है। इसमें मुख्य रूप से 3 शाखाएं हैं, 75 ऋचाएं हैं।

अथर्ववेद : थर्व का अर्थ है कंपन और अथर्व का अर्थ अकंपन। ज्ञान से श्रेष्ठ कर्म करते हुए जो परमात्मा की उपासना में लीन रहता है वही अकंप बुद्धि को प्राप्त होकर मोक्ष धारण करता है। इस वेद में रहस्यमयी विद्याओं, जड़ी बूटियों, चमत्कार और आयुर्वेद आदि का जिक्र है। इसके 20 अध्यायों में 5687 मंत्र है। इसके आठ खण्ड हैं जिनमें भेषज वेद और धातु वेद ये दो नाम मिलते हैं।

वेदों का महत्त्व

वेद का महत्त्व अनेक दृष्टियों से माना जाता है। वेद तो हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं। भारतीय जनमानस में ईश्वरीय ज्ञान के रूप में वेदों में परम आस्था देखी जाती है। पारम्परिक मत में 'आस्तिक वह है जो वेद की प्रामाणिकता में विश्वास रखता है, और 'नास्तिक वह है जो वेद की निन्दा करता है।

(क) धार्मिक महत्त्व- भारतीय धर्म, संस्कृति और चिन्तन में वेद को अत्यधिक गौरवपूर्ण पद प्राप्त है। हिन्दुओं के समस्त आचार-विचार, धर्म-कर्म का आधार वेद है। वेद की महत्ता धार्मिक दृष्टि से सर्वोपरि है।

धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद परम प्रमाण हैं। वे धर्म के मूल तत्त्वों को जानने का एकमात्र साधन हैं। वस्तुत: वेद समस्त धमो के श्रेष्ठ तत्त्वों से संकलित हैं इसलिए मनु ने इनको धर्ममात्र का मूल स्रोत कहा है।मनु ने साथ ही वेद को देवों, पितरों और मनुष्यों सभी का 'सनातन चक्षु कहा है।

यज्ञ, संस्कार, वर्णाश्रम-व्यवस्था, पुरुषार्थ-चतुष्टय, तीन ऋण, पंच महायज्ञ आदि सभी मुख्य धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण वेद में प्राप्त होता है।

(ख) दार्शनिक महत्त्व- सभी 'आस्तिक दर्शनों का आदिस्रोत वेद ही हैं। वेद की सहायता से भारतीय दर्शनों के विकास को समझा जा सकता है। उपनिषद ग्रन्थ समस्त आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों के मुख्य स्रोत माने जाते हैं। विशेषकर वेदान्त एवं सांख्य दर्शन के प्रधान ग्रन्थ वेद (उपनिषद) ही हैं। वेद के गौरव को बढ़ाने के लिए मीमांसा दर्शन का आविर्भाव हुआ है।

(ग) सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक महत्त्व- भारतवर्ष के अनेक सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सिद्धान्त और विश्वास वेद पर ही प्रतिष्ठित हैं। मानव मात्र के कर्तव्य बोध के लिए सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ वेद हैं। इनमें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, माता-पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, विश्व-बन्धुत्व, परोपकार, दान, दया, अतिथि-सत्कार आदि का विस्तृत प्रतिपादन मिलता है।

प्राचीन भारत के समाज, सभ्यता और संस्कृति की जानकारी के लिए वेदाध्ययन अनिवार्य है। तत्कालीन व्यवसाय, उधोग धन्धे, वाणिज्य, शिल्प आदि की जानकारी के अतिरिक्त समाज के विभिन्न वर्गो के कर्तव्यों और विशेषताओं के विवरण वेद में प्राप्त होते हैं।

राजा, राज्य, सभा, समिति, शासन-प्रणाली, शासन के सिद्धान्त आदि की जानकारी भी वेदों में उपलब्ध होती है, जिससे प्राचीन भारत के राजनैतिक चिन्तन और व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

(घ) ऐतिहासिक महत्त्व- वेद भारतीय इतिहास के प्रारमिभक काल का उदघाटन करने में सहायक हैं। इनमें भारतीय इतिहास और भौगोलिक विवरण ही नहीं, अपितु यदु, तुर्वश आदि जनसमूहों के विवरण भी मिलते हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री आदि नदियों के नाम तत्कालीन भूगोल का परिचय देते हैं, तो 'दाशराज्ञ युद्ध के उल्लेख को ऐतिहासिक महत्त्व दिया जाता है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि कई विद्वान वेद के गंभीर अर्थ को ध्यान में रखकर वेद में इतिहास ढूंढ़ने को अनुचित और असंगत बताते हैं।

(ड) भाषा वैज्ञानिक महत्त्व- वेद का महत्त्व भाषाशास्त्रीय अध्ययन की ख्रष्टि से भी कम नहीं, क्योंकि ये प्राचीनतम भाषा की जानकारी देते हैं। वैदिक भाषा की लौकिक संस्कृत भाषा से तुलना करने पर अनेक भाषापरक रोचक तथ्य प्रकाश में आते हैं।

निरुक्त और प्रातिशाख्य ग्रथों में ध्वनि, पद, वाक्य और अर्थ-सभी इकाईयों की कृषिट से भाषा का विशद विश्लेषण किया गया है।

(च) साहित्यिक और काव्यशास्त्रीय महत्त्व- वेद का साहितियक महत्त्व सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। वेद के मंत्रो में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। उषा देवी के सूक्त उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण माने जाते हैं। महाकाव्य, नाटक, गध, कथा, गीतिकाव्य आदि साहित्यिक विशेषताओं का उदगम वेद से दिखाई देता है।

(छ) शास्त्रीय और वैज्ञानिक महत्त्व- वेद सभी ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत है इसलिए यह स्वाभाविक है कि वेद में दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, गणित, जीवविज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, आयुर्विज्ञान, भौतिकी, पर्यावरण आदि विभिन्न विशेषतओं और संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि सभी कलाओं की सामग्री विकीर्ण रूप में प्राप्त हो। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद को सभी सत्यविधाओं से युक्त बताया है। मनु ने भी 'सर्वज्ञानमयो हि स: कहकर वेदों की इस महत्ता पर प्रकाश डाला है। कुछ विद्वानों के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टि से यदि वेदों का अध्ययन किया जाये तो वेद मंत्रों में अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के संकेत प्राप्त होते हैं।

वेद की महत्ता के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट बात यही है कि भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन का भव्य प्रासाद वेद की आधारशिला पर ही प्रतिष्ठित हुआ है इसलिए प्रारम्भ से ही शिक्षा और ज्ञानार्जन के अन्तर्गत वेदाध्ययन की उपयोगिता एकमत से स्वीकार की गई है।

निष्कर्ष

वेद मानव जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन है। जैसे कोई इंजीनियर किसी यंत्र को बनाता है तो वह किस उपयोग के लिए बना है और उसको उपयोग में लेने की क्या रीति है उसे दूसरा कोई मनुष्य नहीं बता सकता इसी प्रकार इस संसार को किस लिए बनाया गया है इस बात की पूर्ण जानकारी ईश्वर ने हमें वेद के रूप में प्रदान की है।

पं. लेखराम आर्य ने वेदों का महत्व बताते हुए कहा कि जैसे बिना पढ़ाए कोई बालक विद्वान होकर दूसरों को सही रास्ता नहीं बता सकता उसी प्रकार वेद बढ़े बिना कोई भी मनुष्य इस संसार में स्वयं को और दूसरों को आनन्द में नहीं रख सकता। वेदों में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रशासनिक व्यवस्था परस्पर संबंध आदि विषयों का विस्तृत ज्ञान भरा हुआ है।

वेद की उत्पत्ति सृष्टि के आदि में मानव की प्रथम पीढ़ी को 'श्रुति के रूप में चार ऋषियों के द्वारा ईश्वर ने प्रदान की तभी से यह श्रवण परंपरा से चलती रही साथ ही ताम्र पत्रों, भोजपत्र आदि के बाद कागज के पत्रों में पुस्तक रूप में मानव समाज को उपलब्ध हुई है। वस्तुत: वेद समस्त सत्य विद्याओं का ग्रंथ या क्षेत्र के लोगों के लिए सीमित नहीं है। अपितु यह ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान समस्त सृष्टि का पोषण एवं कल्याण के लिए है।'

वेद मंत्रों के तत्व को समझने के लिए हमें उपनिषद् एवं आरण्यकों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए क्योंकि प्रज्ञा शक्ति के द्वारा उपनिषद् आदि को हमें उनके भाष्य, कथा प्रसंग एवं उद्धरणों को समझने के लिए प्रदान किया है। अत: स्वाध्याय के बिना वेदों की ऋचाओं को समझना कठिन हो जाता है।

आज समाज में भ्रांति का मुख्य कारण यह है कि अधूरे अध्ययन एवं सीमित ज्ञान के कारण समाज वेदों के रहस्य से अछूता हो रहा है, अत: हमें तप स्वाध्याय एवं जिज्ञासा के साथ वेद मंत्रों को पढ़ना, पढ़ाना, समझना और समझाना होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सैनी, धर्मपाल, 2005, मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश, स्वरूप एंड संस, नई दिल्ली।
2. पचौरी, गिरीश 2009 शिक्षा के सामाजिक आधार आर लाल बुक डिपो मेरठ।
3. शर्मा राकेश, 2010, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
4. सिंह शिवपाल, रूपम फैन 2011, जीवन शैली प्रबंधन, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
5. सिंह सौरभ, सुशील कुमार 2011 शांति शिक्षा एवं सतत विकास और लाल बुक डिपो मेरठ।
6. सिंह फरर्वाण डिगर, 2012, शिक्षा का दर्शन और समाजशास्त्र, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
7. बिहारीलाल रमन, पलोड़ सुनीता, 2013, शिक्षा का दर्शन और समाजशास्त्र आर लाल बुक डिपो मेरठ।
8. अग्रवाल कैलाश. शोभा, 2014, मूल्य शिक्षा, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
9. कुमार संजय ,2017, भारतीय शिक्षा एवं आर्थिक मुद्दों का इतिहास, आर लाल बुक डिपो मेरठ।

उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र

राजपाल सिंह यादव

सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय)
आई.ए.एस.ई. मानित वि.वि. सरदारशहर (चुरु)

राष्ट्रीय संस्कृति जीवन की विधि है। जो भोजन हम खाते हैं, जो कपड़े हम पहनते हैं, जो भाषा बोलते हैं और जिस भगवान की पूजा करते हैं ये सभी सभ्यता कहलाती है तथापि इनसे संस्कृति भी सूचित होती है। सरल शब्दों में हम कह सकते है कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे अमूर्त अभौतिक भाव और विचार भी सम्मिलित हैं जो हमने एक परिवार और समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं। कला, संगीत, साहित्य, वस्तु विज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीति रिवाज, परम्पराएं, पर्व, जीने के तरीके और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित है।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की धातु ह्कृह से बना है। जिसका अर्थ है करना। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं। प्रकृति, संस्कृति और विकृति जब कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो वह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो विकृत हो जाता है। अंग्रेजी में संस्कृति के लिए कल्चर शब्द प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के कल्ट या कल्टस से लिया गया है। जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना।

संस्कृति जीवन के निकट से जुड़ी है। यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है। और न ही कोई आभूषण है जिसे मनुष्य प्रयोग कर सके। यह केवल रंगों का स्पर्श मात्र भी नहीं है। यह वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाता है। संस्कृति के बिना मनुष्य ही नहीं रहेंगें। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से एवं भौतिक पक्ष से निरंतर जुड़ी है। यह हमें जीवन का अर्थ, जीवन जीने का तरीका सिखाती हैं सत्यम, शिवमं, सुन्दरम ये तीनों शाश्वत-मूल्य हैं जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है। यह हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है और सौन्दर्यानुभूतिपरक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट सम्पर्क में लाती है। और इसी के साथ हमें प्रेम, सहिष्णुता और शान्ति का पाठ पढ़ाती है।

हमारी सतत कामना है कि हमारा नव जागरण अक्षुष्ण रहे, निरन्तर गतिशील रहे किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि हमारे (विश्वविद्यालयों में ऐसी शिक्षा दें विद्यार्थी को इस प्रकार आदर्श नागरिकता के साँचे में ढालें कि वे राष्ट्र के नवजागरण को स्थाई बनाये रखने में समर्थ हों।) आज हमें वे विद्वान और कलाकार नहीं चाहिए जो ब्रिटिश सत्तावाद की जड़ के पोषक थे, आज तो हमें ऐसे व्यक्ति चाहिए जो राष्ट्र की सूखी नसों में नए रूधिर का संचार कर सकें और कंकाल को पुन: युवक बनाकर राष्ट्र के द्वार पर खड़ा कर दें।

शिक्षा कला है। हमारे जीवन की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के विभिन्न विषय शिक्षा के अन्तर्गत ही आते हैं। हमारे प्राचीन आश्रम, गुरूकुल, तथा विद्यापीठ इसी सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए अपनी साधना में तत्पर रहते थे। हमारे

आज के विश्वविद्यालयों के आश्रमों की शिक्षा पद्धति ही अपनानी चाहिए। आज के शिक्षक को केवल शिक्षा ही नहीं देनी है, उसे यह भी देखना है कि उनका विद्यार्थी संयमी, साहसी और गौरवशाली बनता है या नहीं। विद्यार्थी को जीवन निर्माण की शिक्षा में पारंगत होना है। आत्मोन्नति की कला सीखना है और अपने में जिज्ञासा की प्रवृति जाग्रत करनी है।

अतः आज के विद्यार्थी को अपने शिक्षा काल में ही नागरिकता के समस्त गुणों को आत्मसात् कर लेना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि उसे निर्धारित समय तक सांस्कृतिक उत्थान-पतन की शिक्षा दी जाये। साथ ही राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थियों को आरम्भ में सभ्यता और संस्कृति की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे जीवन की पूर्णता की प्राप्ति ही अपनी साधना तप बना लें।) ऐसी निर्माण शिक्षा विद्यार्थी को अपने जीवन-निर्माण में बड़ी सहायक होगी।

उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र-

1. **कलाकारों की कलाओं का महाविद्यालयों में प्रदर्शन**- उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के लिए विभिन्न प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन महाविद्यालयों में समय-समय पर किया जाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी अपनी संस्कृति के बारे में जान सकेंगे और समय-समय पर कत्थक, भरतनाट्यम जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए एवं महान कलाकारों को महाविद्यालय में बुलाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी अपनी संस्कृति को जान सकेंगे।
2. **सांस्कृतिक कार्यक्रम**- उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के लिए महाविद्यालयों में समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाना चाहिए जैसे लोक गीत, लोक नाटक लोक नृत्य के माध्यम से विद्यार्थी अपनी संस्कृति से संबंधित लोक गीतों, लोक नृत्य के बारे में जान सकें।
3. **साहित्यिक कार्यक्रम**- वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर, निबन्ध लेखन, पोस्टर, सुलेख, आशुभाषण आदि प्रतियोगिता का आयोजन करके भी विद्यार्थियों को राष्ट्रीय संस्कृति से अवगत करवाया जा सकता है।
4. **जीवनी साहित्य** - उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को राष्ट्र निर्माताओं की जीवनी साहित्य को भी पढ़ाया जाना चाहिए एवं समय-समय पर महापुरुषों की जयंतियाँ मनाई जानी चाहिए जिससे विद्यार्थियों में आदर्शों, जीवन मूल्यों से संबंधित जानकारी विस्तृत रूप में विद्यार्थियों के समक्ष रखी जा सके।
5. **कौशल विकास कार्यक्रम**- उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को कौशल विकास कार्यक्रम के महत्व के बारे में बताना चाहिए एवं विभिन्न प्रकार के कौशलों को सिखाना चाहिए जिससे कि वे भविष्य में किसी भी प्रकार के कौशल से संबंधित कार्य शुरू करके अपनी आजीविका को चला सकते हैं।
6. **शिल्प कलाओं का ज्ञान**- शिल्प कलाओं का ज्ञान भी विद्यार्थियों को अवश्य होना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी अपने स्थान विशेष पर बनने वाली शिल्प कलाओं को जान सकेंगे और यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे कि हमारी शिल्प कलाओं के द्वारा हमारी संस्कृति का प्रदर्शन होता है।
7. **सर्व धर्म समभाव की भावना** -उच्च शिक्षा में महाविद्यालयों में शिक्षकों द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि सभी धर्म के विद्यार्थियों को समान दृष्टिकोण से देखा जाये जिससे कि विद्यार्थियों में प्रेम, करूणा, भाईचारा, त्याग, सहयोग की भावना का विकास होगा और विद्यार्थी किसी भी धर्म एवं संस्कृति को कम नहीं समझेंगे एवं सभी धर्मो का समान आदर करेंगे जिससे कि साम्प्रदायिकता जैसी समस्याओं का सामना न करना पड़े।
8. **दर्शनों का अध्ययन** - उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में दर्शन विषय को अवश्य सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि भारतीय दर्शन के अन्तर्गत भाईचारा, त्याग, करूणा, ईर्ष्या न करना, चोरी न करना आदि बातों के बारे में बताया जाता है जोकि विद्यार्थी जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इन दर्शनों का अध्ययन करने के पश्चात विद्यार्थियों के व्यवहार में भी परिवर्तन लाया जा सकता है।
9. **जीवन मूल्य से संबंधित संगोष्ठी एवं गोष्ठी का आयोजन** -उच्च शिक्षा में समय-समय पर विद्यार्थियों के लिए जीवन मूल्यों पर आधारित संगोष्ठी एवं गोष्ठी का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी जीवन मूल्यों के बारे में जान सकेंगे एवं एक अच्छे नागरिक बनकार देश का कल्याण करने में योगदान दे सकेंगे।
10. **सामूहिक कार्यों का आयोजन** -उच्च स्तर पर महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को समय-समय पर सामूहिक कार्य करने को दिया जाना चाहिए जिससे कि वे अपनी संस्कृति को लम्बे समय तक बनाये रखने में अपना योगदान दे सकेंगे और

सामूहिक कार्य करने से विद्यार्थियों में एक-दूसरे के प्रति मित्रता, सहयोग, दया, करूणा की भावना का विकास होगा।

निष्कर्ष-

अत: निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय संस्कृति के समावेश के क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की कलाओं, साहित्यिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम, दर्शनों का ज्ञान, सर्व धर्म समभाव, शिल्प कलाओं, साहित्य का अध्ययन, महापुरुषों की जीवनी, जीवन मूल्य से संबंधित ज्ञान, सामूहिक कार्य विद्यार्थियों के द्वारा महाविद्यालयों में करवाकर विद्यार्थियों को एक अच्छा नागरिक बना सकते हैं एवं अपनी संस्कृति का सम्मान किस प्रकार किया जा सकता है इसके लिए शिक्षक को विशेष वार्ताओं का आयोजन करवाना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी संस्कृति के महत्व को जान सके और यदि इन सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाये तो बहुत सी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति को जानने का पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए जिससे कि वे अपने आप को गौरवान्वित महसूस कर सकें और दूसरी संस्कृति की ओर जाने का प्रयास नहीं कर सकेंगे। विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति को बनाये रखने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि वह संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. दिनकर रामधारी सिंह, 1970, संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल प्रकाशन पटना।
2. पाण्ड्ेय रामशकल, 2005, उद्‌यमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद प्रकाशन पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. गोयल राजकुमार, 2005, पाठ्‌यक्रम विकास, आर.लाल बुक डिपो मेरठ।
4. द्विवेदी रोली, 2007, ज्ञान एवं पाठ्‌यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. आचार्य तुलसी, 2009, शिक्षा को बनायें विकास और आनन्द की दीक्षा आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. सिंहा मनोज, 2012, समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकरवान प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
7. मैनी धर्मपाल, 2015, साहित्य शिरोमणि मानव मूल्य परख शब्दावली का विश्वकोश, खण्ड द्वितीय, स्वरूप एण्ड संस, नई दिल्ली।
8. कोठारी अतुल, 2017 शिक्षा में नये विकल्प का प्रारूप, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, नई दिल्ली।
9. माथूर एस.एस. 2017, ज्ञान एवं पाठ्‌यक्रम अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
10. pib.nic.in>pressreleaseaselframepage
11. mhrd.80v.in>home>highereducation
12. www.hindikunj.com>sanskriti

शिक्षक ही समाज का शिल्पकार और मार्गदर्शक

डॉ० परमानन्द त्रिपाठी

वी.एड. विभागाध्यक्ष
एल0एन0डी0 कॉलेज, मोतिहारी, बिहार
पिनकोड. 845401

सारांश

शिक्षक का दर्जा समाज में हमेषा से ही पूजनीय रहा है। कोई उसे गुरू कहता है, कोई शिक्षक कहता है, कोई आचार्य कहता है, तो कोई अध्यापक या टीचर कहता है ये सभी शब्द कए ऐसे व्यक्ति को चित्रित करते हैं, जो सभी को ज्ञान देता है, सिखाता है और जिसका योगदान किसी भी देश या राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करना है। सही मायनों में कहा जाये तो एक शिक्षक ही अपने विद्यार्थी का जीवन गढ़ता है। शिक्षक ही समाज की आधारशिला है। एक शिक्षक अपने जीवन के अन्त तक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है और समाज को राह दिखाता रहता है, सभी शिक्षक को समाज में उच्च दर्जा दिया जाता है। माता-पिता बच्चे को जन्म देते हैं। उनका स्थान कोई नहीं ले सकता, उनका कर्ज हम किसी भी रूप में नहीं उतार सकते, लेकिन शिक्षक ही हैं जिन्हें हमारी भारतीय संस्कृति में माता-पिता के बराबर दर्जा दिया जाता है क्योंकि शिक्षक ही हमें समाज में रहने योग्य बनाता है। इसलिये ही शिक्षक को समाज का शिल्पकार कहा जाता है। गुरू या शिक्षक का संबंध केवल विद्यार्थी को शिक्षा देने से ही नहीं होता बल्कि वह अपने विद्यार्थी को हर मोड़ पर उसको राह दिखाता है और उसका हाथ थामने के लिए हमेशा तैयार रहता है। विद्यार्थी के मन में उमड़े हर सवाल का जवाब देता है और विद्यार्थी को सही सुझाव देता है अबौर जीवन में आगे बढ़ने के लिए सदा प्रेरित करता है। एक शिक्षक या गुरू द्वारा अपने विद्यार्थी को स्कूल में जो सिखाया जाता है या जैसा वो सीखता है वे वैसी ही बन जाती है जैसा वह अपने आसपास होता देखते हैं। इसलिए बढ़ने के लिए प्रेरित करता है सरल जीवन के लिए शिक्षा बहुत उपयोगी है जो हमें गुरू द्वारा प्रदान की जाती है। विश्व में केवल भारत ही ऐसा देश है जहाँ पर शिक्षक अपने शिक्षार्थी को ज्ञान देने के साथ-साथ गुणवत्तायुक्त शिक्षा भी देते हैं, जोकि एक विद्यार्थी में उच्च मूल्य स्थापित करने में बहुत उपयोगी है। जब अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश का राष्ट्रपति आता है तो वह भी भारत की गुणवत्तायुक्त शिक्षा की तारीफ करता है।

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है। अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति अच्छी है तो उस देश को आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं सकता अगर राष्ट्र की शिक्षा नीति बेकार हो, लेकिन एक शिक्षक बेकार शिक्षा नीति को भी अच्छी शिक्षा नीति में तब्दील कर देता है। शिक्षा के अनेक आयाम हैं, जो किसी भी देश के विकास में शिक्षा के महत्व को अधोरेखांकित करते हैं। एक शिक्षक द्वारा दी गयी शिक्षा ही शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का मूल आधार है। शिक्षकों द्वारा प्रारंभ से ही पाठ्यक्रम के साथ ही साथ जीवन मूल्यों की शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा हमें ज्ञान, विनम्रता, व्यवहारकुशलता और योग्यता प्रदान करती है। शिक्षक को ईश्वर तुल्य माना जाता है। आज भी बहुत से शिक्षक शिक्षकीय आदर्शों पर चलकर एक आदर्श मानव समाज का स्थापना में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। लेकिन इसके साथ-साथ ऐसे भी शिक्षक हैं जो शिक्षक और शिक्षा के नाम को कलंकित कर रहे हैं, ऐसे शिक्षकों ने शिक्षा को व्यवसाय बना दिया है, जिससे एक निर्धन शिक्षार्थी

को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है और धन के अभाव से अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। आधुनिक युग में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षक वह पथ प्रदर्शक होता है जो हमें किताबी ज्ञान ही नहीं बल्कि जीवन जीने की कला भी सिखाता है। आज के समय में शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण देश के समक्षप बड़ी चुनौती है। पुराने समय में भारत में शिक्षा कभी व्यवसाय या धंधा नहीं थी। गुरू एवं शिक्षक ही वो है जो एक शिक्षार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करते हैं और सही मार्ग दिखाते है। एक शिक्षार्थी को अपने शिक्षक या गुरू प्रति सदा आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। किसी भी राष्ट्र का भविष्य निर्माता कहे जाने वाले शिक्षक का महत्व यहीं समाप्त नहीं होता क्योंकि वह ना सिर्फ हमको सही आदर्श मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सफल जीवन की नींव भी उन्हीं के हाथों द्वारा रखी जाती है।

(1) शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली:-महर्षि अरविंद ने शिक्षकों के सम्बन्ध में कहा है कि ''शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से सींचकर उन्हें शक्ति में निर्मित करते हैं।'' महर्षि अरविंद का मानना था कि किसी राष्ट्र के वास्तविक निर्माता उस देश के शिक्षक होते हैं। इस प्रकार एक विकसित, समृद्ध और खुशहाल देश व विश्व के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। आज कोई भी बालक 2-3 वर्ष की अवस्था में विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आता है। इस बचपन की अवस्था में बालक का मन-मस्तिष्क एक कोरे कागज के समान होता है। इस कोरे कागज रूपी मन-मस्तिष्क में विद्यालयों के शिक्षकों के द्वारा शिक्षा के माध्यम से शुरूआत के 5-6 वर्षों में दिये गये संस्कार एवं गुण उनके सम्पूर्ण जीवन को सुन्दर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

(2) समाज के वास्तविक शिल्पकार होते हैं शिक्षक: एक अच्छा शिल्पकार किसी भी प्रकार के पत्थर को तराश कर उसे सुन्दर आकृति का रूप दे देता है। किसी भी सुन्दर मूर्ति को तराषने में शिल्पकार की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इसी प्रकार एक अच्छा कुम्हार वही होता है जो गीली मिट्टी को सही आकार प्रदान कर उसे समाज के लिए उपयोगी बर्तन अथवा एक सुन्दर मूर्ति का रूप दे देता है। यदि शिल्पकार तथा कुम्हार द्वारा तैयार की गयी मूर्ति एवं बर्तन सुन्दर नहीं है तो वह जिस स्थान पर रखे जायेंगे उस स्थान को और अधिक विकृत स्वरूप ही प्रदान करेंगे। शिल्पकार एवं कुम्हार की भाँति ही स्कूलों एवं उसके शिक्षकों का यह प्रथम दायित्व एवं कर्तव्य है कि वह अपने यहाँ अध्ययनरत् सभी बच्चों को इस प्रकार से संवारे और सजाये कि उनके द्वारा शिक्षित किये गये सभी बच्चे 'विश्व का प्रकाश' बनकर सारे विश्व को अपनी रोषनी से प्रकाशित कर सकें। इस प्रकार शिक्षक उस शिल्पकार या कुम्हार की भाँति होता है जो प्रत्येक बालक को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप, एक सुन्दर आकृति का रूप प्रदान कर, उसे 'समाज का प्रकाश' अथवा उसे विकृत रूप प्रदान कर 'समाज का अंधकार' बना सकता है।

(3) बालक के जीवन को सफल बनाने की आधारशिला हमें बचपन में ही रखनी चाहिए:- एक कुशल इंजीनियर वहीं होता है जो एक भव्य इमारत या भवन के निर्माण में उसकी नींव को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हुए उसे मजबूत बनाता है। और जब किसी भवन की नींव मजबूत हो तो फिर आप उसके ऊपर बनाये जाने वाले भवन को जितना चाहें उतना ऊँचा बना सकते हैं। और इस प्रकार से बनी हुई इमारत अन्य भवनों एवं इमारतों की अपेक्षा अधिक समय तक अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल होती है। ठीक इसी प्रकार से हमें बच्चों के बारे में भी सोचना चाहिए क्योंकि आज के बच्चे ही कल अपने परिवार, समाज, देश तथा विश्व के भविष्य निर्माता बनेंगे। इसलिए हमें प्रत्येक बच्चे की नींव को मजबूत करने के लिए बचपन से ही उसे उसकी वास्तविकताओं के आधार पर भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उद्देश्यपूर्ण एवं संतुलित शिक्षा देनी चाहिए।

(4) उद्देश्यपूर्ण शिक्षा के माध्यम से ही एक सुन्दर एवं सभ्य समाज का निर्माण संभव:- हमें प्रत्येक बच्चे को सभी विशयों की सर्वोत्तम शिक्षा देकर उन्हें एक अच्छा डॉक्टर, इंजीनियर, न्यायिक एवं प्रषासनिक अधिकारी बनाने के साथ ही उसे एक अच्छा इंसान भी बनाना है। क्योंकि सामाजिक ज्ञान के अभाव में जहॉ कस ओर बच्चा समाज को सही दिशा देने में असमर्थ रहता है तो वहीं आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में वह गलत निर्णय लेकर अपने साथ ही अपने परिवार, समाज, देश तथा विश्व को भी विनाष की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए प्रत्येक बच्चे को सर्वोत्तम भौमिक शिक्षा के साथ ही साथ उसे एक सभ्य समाज में रहने के लिए सर्वोत्तम सामाजिक शिक्षा तथा एक सुन्दर एवं सुरक्षित समाज के निर्माण के लिए बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने के लिए सर्वोत्तम आध्यात्मिक शिक्षा की भी आवष्यकता होती हैं।

(5) प्रत्येक बालक को विश्व का प्रकाश बनायें:- शिक्षक एक सुन्दर, सुसभ्य एवं शांतिपूर्ण राष्ट्र व विश्व के निर्माता हैं। शिक्षकों को संसार के सारे बच्चों को एक सुन्दर एवं सुरक्षित भविष्य देने के लिए व सारे विश्व में एकता एवं शांति की स्थापना के लिए बच्चों के कोमल मन-मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति, संस्कार व सभ्यता के रूप में भारतीय संस्कृति, संस्कार व सभ्यता के रूप में 'वसुधैव कुटुम्बमि् व भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51' के विचार रूपी बीज बचपन से ही बोने चाहिए। हमारा मानना है कि भारतीय संस्कृति, संस्कार व सभ्यता के रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' व भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51' रूपी बीज बोने के बाद उसे स्वस्थ और स्वच्छ वातावरण व जलवायु प्रदान कर हम प्रत्येक बालक को विश्व नागरिक के रूप में तैयार कर सकते हैं।

(6) समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करती है उद्देश्यपूर्ण शिक्षा:- डॉ. राधाकृष्णन अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण व्याख्याओं, आनंदमयी अभिव्यक्ति और हँसाने, गुदगुदाने वाली कहानियों से अपने छात्रों को प्रेरित करने के साथ ही साथ उन्हें अच्छा मार्गदर्शन भी दिया करते थे। ये छात्रों को लगातार प्रेरित करते थे कि वे उच्च नैतिक मूल्यों को अपने आचरण में उतारें। वे जिस विषय को पढ़ाते थे, पढ़ाने के पहले स्वयं उसका अच्छा अध्ययन करते थे। दर्शन जैसे गंभीर विषय को भी वे अपनी शैली की नवीनता से सरल और रोचक बना देते थे। उनकी मान्यता थी कि यदि सही तरीके से शिक्षा दी जाए तो समाज की अनेक बुराईयों को मिटाया जा सकता है। उनका मानना था कि करूणा, प्रेम और श्रेष्ठ परंपराओं का विकास भी शिक्षा के उद्देश्य हैं। वे कहते थे कि जब तक शिक्षक शिक्षा के प्रति समर्पित और प्रतिबद्ध नहीं होता और शिक्षा को एक मिशन नहीं मानता तब तक अच्छी व उद्देश्यपूर्ण शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती।

(7) शिक्षकों के श्रेष्ठ मार्गदर्शन द्वारा ही धरती पर ईश्वरीय सभ्यता की स्थापना संभव:- भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक गुणों से ओतप्रोत शिक्षकों के द्वारा ही समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करके एक सुन्दर, सभ्य एवं सुसंस्कारित समाज का निर्माण किया जा सकता है। सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन भी ऐसे ही महान शिक्षक थे जिन्होंने अपने मन, वचन और कर्म के द्वारा सारे समाज को बदलने की अद्भुत मिसाल प्रस्तुत की। वास्तव में ऐसे ही श्रेश्ठ शिक्षकों के मार्गदर्शन द्वारा इस धरती पर ईश्वरीय सभ्यता की स्थापना होगी। अत: आइये, शिक्षक दिवस के अवसर पर हम सभी डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी को शत्-शत् नमन करते हुए उनकी शिक्षाओं, उनके आदर्शों एवं जीवन-मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात् करके एक सुन्दर, सभ्य, सुसंस्कारित एवं शांतिपूर्ण समाज के निर्माण के लिए प्रत्येक बालक को टोटल क्वालिटी पर्सन (टी.क्यू.पी.) बनायें।

शिक्षक-एक अनोखा किरदार- शिक्षक ईश्वर का दिया हुआ वह उपहार है, जो बिना किसी स्वार्थ व भेद-भाव के अपने हर शिष्य को अच्छी से अच्छी शिक्षा देने का प्रयास करता है। शिक्षक का दर्जा हमेशा से ही पूजनीय रहा है। एक शिष्य के लिए उसके शिक्षक की बताई हुई बात पत्थर की लकीर के समान होती है, वह अपने पूजनीय माता-पिता को तो मलत बता देता है परन्तु अपने शिक्षक की बात को समर्थन उदेने में पीछे नहीं हटता। शिक्षक ही अपने विद्यार्थी का जीवन गढ़ता है। वर्तमान में विद्यार्थी अपना आधा समय अपने शिक्षक, जो उसके जीवन में अलग-अलग किरचार निभा रहें हैं उनके साथ व्यतीत करता है। वह सही-गलत से लेकर जीवन के अनेक रंग अपने शिक्षक को देख व सुन कर सीखता है। शिक्षक के योगदान से ही एक व्यक्ति समाज में रहने योग्य बनता है। इसीलिए शिक्षक को समाज का षिल्पकार भी कहा जाता है। जिस प्रकार एक डॉक्टर मरीज को ठीक करने का हर मुमकिन प्रयास करता है, ठीक उसी प्रकार एक शिक्षक अपने विद्यार्थी को हर मोड़ पर राह दिखाता है। हर परिस्थिति में उसका हाथ थामने के लिए सदैव तैयार रहता है। तभी शिक्षक को ईश्वर तुल्य माना जाता है।

इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि एक सफल व्यक्तित्व के लिए गुरू का हाथ होना अनिवार्य है। इतिहास में ऐसे काफी उदाहरण हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं तथा गुरू की महिमा का गुणगान करते है। वह गुरू ही है, जो बच्चों को उनके व्यक्तित्व से परिचित कराते हैं। उनके अवगुणों को दूर कर, उनके समस्त गुणों से अवगत कराते हैं और उन्हें प्रोत्साहित कर सर्वहित की ओर उनका मार्गदर्शन करते हैं।

आचार्य द्रोणाचार्य जी ने कहा था- ''शिक्षक कभी साधारण नहीं होता, प्रलय और निर्माण उसकी गोद में खेलते हैं''। आज हर चीज का व्यसायीकरण व बाजारीकरण हो गया है। कुछ लोग शिक्षा को भी एक व्यवसाय के रूप में देखते हैं। अब तो लोग कहने भी लगे हैं- शिक्षकों की तो चाँदी है कुछ करते हैं नहीं पर फीस भरपुर चाहिए। शिक्षा के व्यवसायीकरण के कारण शिक्षा के स्तर में लगातार गिरावट देखी जा सकती है। पुराने समय में शिक्षा कभी भी व्यवसाय या धंधा नहीं थी परंतु आज जिस प्रकार लोग इसको

एक अच्छे व्यवसाय के रूप में इसको अपना रहे है वह अफसोसजनक है। यहां तक कि शिक्षा के व्यापारी शिक्षकों द्वारा विद्यार्थी पर दवाब डलवाते हैं कि उनको उनके उपयोग की वस्तुएं कहाँ से लेना है और यदि ऐसा ना किया जाए तो उसको अपेक्षा का सामना करना पड़ता है। शिक्षक कभी नहीं चाहता कि उसके विद्यार्थी को प्रताड़ना या उपेक्षा सहनी पड़े, परन्तु शिक्षा के व्यापारियों के कारण उसको ऐसा करना ही पड़ता है। शिक्षा का व्यवसायीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती है। एक शिक्षक ही हमें इस समस्या का हल बता सकता है। शिक्षक ही है, जो एक शिक्षार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करता है, व पथप्रदर्शक भी है। एक शिक्षार्थी को अपने शिक्षक का सम्मान करना चाहिए व आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए।

निष्कर्ष-

एक शिक्षक द्वारा दी गई शिक्षा ही शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का मूल आधार है। प्राचीनकाल से आजपर्यंत शिक्षा की प्रासंगिकता एवं महत्ता का मानव जीवन में विशेष महत्व है। शिक्षकों द्वारा प्रारंभ से ही पाठ्यक्रम के साथ ही साथ जीवन मूल्यों की शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा हमें ज्ञान, विनम्रता, व्यवहारकुशलता और योग्यता प्रदान करती है। शिक्षक को ईश्वरतुल्य माना जाता है। आज भी बहुत से शिक्षक, शिक्षकीय आदर्शों पर चलकर एक आदर्श मानव समाज की स्थापना में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। लेकिन इसके साथ-साथ ऐसे भी शिक्षक हैं, जो शिक्षक और शिक्षा के नाम को कलंकित कर रहे हैं और ऐसे शिक्षकों ने शिक्षा को व्यवसाय बना दिया है जिससे एक निर्धन शिक्षार्थी को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है और धन के अभाव से अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। आधुनिक युग में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक वह पथ-प्रदर्शक होता है, जो हमें किताबी ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला सिखाता है। आज के समय में शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण हो गया है। शिक्षा का व्यवसायीकरण और बाजारीकरण देश के समक्ष बड़ी चुनौती हैं। पुराने समय में भारत में शिक्षा कभी व्यवसाय या धंधा नहीं थी। इससे वर्तमान छात्रों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षक ही भारत देश को शिक्षा के व्यवसायीकरण और बाजारीकरण से स्वतंत्र कर सकते हैं। गुरू एवं शिक्षक ही वो हैं, जो एक शिक्षार्थी में उचित आदर्शों की स्थापना करते हैं और सही मार्ग दिखाते हैं। कई शिक्षार्थी को अपने शिक्षक या गुरू के प्रति सदा आदर और कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। किसी भी राष्ट्र का भविष्य निर्माता कहे जाने वाले शिक्षक का महत्व यहीं समाप्त नहीं होता, क्योंकि वे न सिर्फ हमको सही आदर्श मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं बल्कि प्रत्येक शिक्षार्थी के सफल जीवन की नींव भी उन्हीं के हाथों द्वारा रखी जाती है। किसी भी देश या राष्ट्र के विकास में एक शिक्षक द्वारा अपने शिक्षर्थी को दी गई शिक्षा और शैक्षिक विकास की भूमिका का अत्यंत महत्व है।

संदर्भ

1. Lodico, Marguerite, G: spaulding, dean T. Voegtle, Katherine H (2010¼. Methods in Educational Research From Theory to Practice. tkWu foys ,aM lal vkbZ-,Wl-ch-,Wu- 978-0-470-58869-7
2. Anderson. Garry:Arsenault, Nancy (1998¼. Fundamentals of Educational Research. :Vyst vkbZ-,Wl-ch-,Wu- 978-0-203-97822
3. Yates, Lyn (2004¼. What Does Good Educational Research Look Like? Situating a Field and Its Practices. Conducting Educational Research. eSd;k&fgy baVjus"kuy-vkbZ-ch-,Wu 978-0-335-21199-9
4. *"IAR: Glossary. (n.d.¼" InstructionalAssessment Resources* VsDlkl fo'ofo|ky; vkWfLVu *21 September 2011.*

ग्रामिण महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, स्वयं सहायता समूह एवं संवैधानिक सुरक्षा

प्रगति ओझा

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर गृह-विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० विजय लक्ष्मी

शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर-सह-विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर गृह-विज्ञान विभाग, एम० एम० महिला कॉलेज, आरा, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश - सशक्त महिला व सशक्त समाज ही राष्ट्र की उन्नति में एक-दूसरे के पूरक हैं। ग्रामीण महिला सशक्तीकरण यानी महिलाओं को आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक व व्यावहारिक रूप से सशक्त करना। ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के द्वारा मानव विकास की बुनियादी संरचना सुदृढ़ होती है। ग्रामीण महिलाओं के शारीरिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक सशक्तीकरण से सकारात्मक प्रभाव उनके जीवन पर पड़ता है और ग्रामीण महिला ज्यादा आत्मविश्वास के साथ अपना जीवन निर्वाह कर सकती हैं।

मुख्य शब्द - ग्रामीण महिलाएँ, आर्थिक सशक्तीकरण, संवैधाणिक सुरक्षा, स्वयं सहायता समूह आदि।

प्राक्कथन - भारतीय संविधान महिलाओं को न र्सिफ समानता का दर्जा देता है बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक रुख अपनाने के उपायों के लिए सरकार को सशक्त भी बनाता है। सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण महिलाओं की उन्नति के उद्देश्य से विभिन्न विकास नीतियां, योजनाएं, कार्यक्रम और कानून भी कार्यान्वित किए हैं। क्रमिक पंचवर्षीय योजनाओं (पहली से बारहवीं) में ग्रामीण महिलाओं संबंधी मुद्दों में कल्याण, विकास तथा सशक्तता की ओर बढ़ने के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। ग्रामीण महिला सशक्तीकरण के प्रति विविध प्रोत्साहक प्रयासों के बावजूद संविधान, कानूनों के साथ नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों में निर्धारित लक्ष्यों तथा महिलाओं की वास्तविक स्थिति के बीच आज भी अंतर है।[1] सरकार व स्वैच्छिक संगठनों के सतत प्रयासों से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कार्य करके नीतियों और कार्यक्रमों को वास्तविकता का रूप दिया जा रहा है।

आर्थिक सशक्तीकरण

ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का अर्थ है- महिला संबंधी समस्याओं की पूरी जानकारी के लिए उनकी योग्यता व कौशल में वृद्धि कर सामाजिक एवं संस्थागत अवरोधों को दूर करने का अवसर प्रदान करना, साथ ही आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी को बढ़ावा देना, ताकि वे अपने जीवन की गुणवत्ता में व्यापक सुधार ला सकें। भारत जैसे विकासशील देश में ग्रामीण महिलाओं के व्यापक सशक्तीकरण के लिए आर्थिक रूप से महिलाओं को मजबूत बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह एक सर्वोत्तम साधन है। सशक्तीकरण से संबधित नीतियों का क्रियान्वयन इस प्रकार से करना होगा कि वंचित महिलाओं को आर्थिक रूप से लाभ प्राप्त हो सके तथा इसमें आने वाली दैनिक समस्याओं को दूर किया जा सके। ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण पूरी दुनिया भर के देशों में प्रगति व सुधार का एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।[2] इस प्रकार स्वयंसहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण से परिवार, समाज व राष्ट्र की स्थिति में सुधार संभव है।

गरीबी उन्मूलन के एक सशक्त साधन के रूप में लघु उद्यमों के विकास से ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बढ़ावा मिलता है। गरीब ग्रामीण महिलाओं में लघु उद्यमों को बढ़ावा देने में स्वैच्छिक संस्थाएं एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। लघु उद्यम स्थापित करने के लिए कारगर ऋण सेवा सहायक सेवाएं उपलब्ध कराने में वित्तीय संस्थाओं और महिलाओं के बीच एक महत्वपूर्ण सम्पर्क

का कार्य करती है। चूंकि अकेले ऋण से आमदनी अर्जित नहीं की जा सकती। अत: सरकारी व गैर-सरकारी संगठन इस अंतराल को भरने में तथा अन्य कमियों को खोजने और

इन कमियों को दूर करने का कार्य बेहतर तरीके से कर सकते हैं। इससे गरीब महिलाओं को स्थानीय संसाधनों और बाजार पर आधारित सामूहिक गतिविधियों में संलग्न किया जा सकता है।

गरीबी-रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ ही हैं जो कि प्राय: अत्यधिक गरीबी की स्थिति में जीवन व्यतीत करती हैं उन्हें कठोर घरेलू परिस्थितियों व सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है। फलत: इस वर्ग में ग्रामीण महिलाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के निदान हेतु विशेष रूप से व्यापक आर्थिक नीतियां तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं तथा महिलाओं के लिए विशेष लक्ष्यों वाले महिला-उन्मुख कार्यक्रमों को और अधिक कारगर ढंग से कार्यान्वित किया जा रहा है। निर्धन ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक व सामाजिक विकास के साथ-साथ समर्थन सेवाएं प्रदान करके संगठित करने के कदम उठाए जा रहे हैं इस माध्यम से उनकी क्षमताओं का विकास सतत रूप से किया जा रहा है।

उपयोग व उत्पादन हेतु ऋण तक ग्रामीण महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के सम्बन्ध में नए तंत्रों की स्थापना तथा मौजूदा अल्प-ऋण तंत्रों तथा अल्प-वित्त संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण किया जा रहा है, ताकि ग्रामीण महिलाओं की ऋण तक पहुंच को बढ़ाया जा सके।[3] वर्तमान वित्तीय संस्थाओं तथा बैंकों के माध्यम से ऋण के उचित प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए अन्य सहायक उपाय शुरू किए जा रहे हैं, ताकि गरीबी-रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली महिलाओं की ऋण तक पहुंच आसान हो सके।

ग्रामीण महिला उद्यमियों में सूक्ष्म आर्थिक सशक्तीकरण के लिए पहल

राष्ट्र का निर्माण ग्रामीण महिलाओं के बिना अकल्पनीय है। सामाजिक सशक्तीकरण महिलाओं के आर्थिक विकास के बिना संभव नहीं है। उभरती आर्थिक शक्ति में देश की कुल आबादी की लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की है। यद्यपि आर्थिक सशक्तीकरण में एशिया में भारत 15वें स्थान पर है, इसे ध्यान में रखकर ग्रामीण विषमता राष्ट्र के संतुलित आर्थिक विकास के अभाव का एक महत्वपूर्ण कारण है। लघु उद्यम और लघु व्यवसाय विकास कार्यक्रम की महिलाओं के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (एम.एस.एम.ई.) अधिनियम 2006 के अंतर्गत विनिर्माण क्षेत्र में लघु उद्यमों पर निवेश करता है, अधिकतम 10-25 लाख रुपये सेवा क्षेत्र में निवेश किए जा सकते हैं।

उद्यमशीलता एक स्वस्थ अर्थव्यवस्था के रखरखाव के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह नवाचार व रचनात्मकता है जिसके फलस्वरूप नए रूप से बेहतर आर्थिक विकास के आविश्कार का कारण बन सकता है जो कि ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों और उद्यमिता के लिए विभिन्न सहायक उपाय है। यद्यपि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयकृत बैंकों, राज्य वित्त निगम, राज्य औद्योगिक विकास निगम, जिला उद्योग केंद्र, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी), राज्य लघु औद्योगिक विकास निगमों द्वारा वित्तीय सहायता कर रहे हैं। नेहरू रोजगार योजना, ग्रामीण युवाओं के स्वरोजगार के लिए (ट्राईसेम) योजना, प्राथमिकता क्षेत्र में महिलाओं के विकास के लिए विशेष रूप से प्रधानमंत्री रोजगार योजना, माइक्रो क्रेडिट, स्वयंसहायता समूहों इत्यादि के द्वारा महिला उद्यमियों में सूक्ष्म आर्थिक सशक्तीकरण संभव है।[4] सरकार ने यह योजना महिलाओं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं, में नई चेतना विकसित करने और उन्हें सामाजिक परिवर्तन तथा पुनरूद्धार की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनने के लिए सक्षम बनाने के उद्देश्य से लागू की है।

महिलाओं के लिए लघु उद्यम

किसी भी राष्ट्र, राज्य व क्षेत्र का विकास उसकी उपलब्ध मानव शक्ति की कार्यक्षमता, सामर्थ्य, गुणवत्ता एवं शिक्षा आदि बातों पर निर्भर करता है। ग्रामीण महिलाएँ किसी भी राष्ट्र का विशिष्ट मानव संसाधन है। वर्तमान में ग्रामीण महिलाओं का राष्ट्रीय विकास में योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी स्तरों पर देश की प्रगति में भारतीय महिलाओं ने निर्विवाद रूप से सहयोग किया है, किन्तु राष्ट्रीय विकास की प्रमुख गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका विशेष है। आर्थिक विकास सामाजिक संरचना से भी प्रभावित होता है। समाज की संरचना में महिला का स्थान सर्वोच्च होता है। इस प्रकार भारतीय समाज में ग्रामीण महिलाओं का सामाजिक - आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण रूप से आर्थिक योगदान है। आर्थिक दृष्टिकोण से क्रियाशील जनसंख्या के अध्ययन में तीन धारणाएं दी गई हैं-

1. जीविकोपार्जन की धारणा,
2. कार्य वाले कामगार की सोच तथा
3. वर्तमान कार्य की अवधारणा।

हमारे देश की ग्रामीण महिलाएँ पुरुषों के समान ही आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभा रही हैं। यदि हम आर्थिक गतिविधियों के आधार पर भारत की व्यावसायिक संरचना पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि सर्वाधिक

ग्रामीण महिला (लगभग 60 प्रतिशत) श्रम शक्ति कृषि क्षेत्र में लगी हुई हैं, जबकि सिर्फ 9 प्रतिशत महिलाएँ सेवा क्षेत्र में लगी हुई हैं। अत: विश्व भर में आर्थिक गतिविधियों में ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता अति महत्वपूर्ण है।

लघु उद्यम विकास गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली ग्रामीण महिलाओं को लाभकारी रोजगार प्रदान करने का एक अवसर है और इस प्रकार वे अपनी आय और जीवन-स्तर में सुधार ला सकती हैं। लघु उद्यम विकास एक उभरती हुई प्रक्रिया है जो कम पूंजी, कम जोखिम और शुरुआत में कम लाभ के साथ आरंभ होती है। लघु उद्यम विकास से महिलाओं की आर्थिक स्थिति का पोषण गरीबी उन्मूलन का एक सशक्त साधन है। ग्रामीण महिलाओं की बढ़ती संख्या आय उत्पादन के माध्यम से व्यापार स्थापित करती है और तभी ये उद्यम आगे बढ़ेंगे और बड़े स्थापित उद्यम बन जाएंगे। इनमें से अनेक महिलाओं के लिए, खासतौर पर गरीब ग्रामीण महिलाओं के लिए इनके व्यापार बहुत छोटे बने रहेंगे और आमतौर पर इन्हें लघु उद्यम कहा जाता है। महिलाओं के लघु उद्यम बड़े पैमाने पर आर्थिक अनिवार्यता से फलते-फूलते हैं। तकनीकी प्रशिक्षण या कुशलता का उन्नयन आमतौर पर महिलाओं के व्यापार उद्यम के आरंभिक चरण की पूर्व आवश्यकता है।[5] यहां तक कि स्थापित व्यापार के स्वामियों को भी एक व्यापार विचार के व्यावहारिक कार्यान्वयन में शामिल अनिवार्य तकनीकी की जानकारी नहीं होती है। जबकि ऋण योजनाओं और उद्यमशीलता प्रशिक्षण की उपलब्धता महिलाओं के लिए अब भी बहुत सीमित है।

स्वयंसहायता समूह की भूमिका

स्वयंसहायता समूह के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण को एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में अपनाया गया है। स्वयंसहायता समूह, जो अधिकांश रूप से बचत और ऋण गतिविधियों से शुरू किए जाते हैं, महिलाओं को स्व-विकास, दूसरों से मेल-जोल, स्वामित्व की भावना, आत्माभिव्यक्ति, स्वयं और दूसरों की समस्याएं सही परिप्रेक्ष्य में देखने और उनका विश्लेषण करने एवं निर्णय लेने आदि का अवसर उपलब्ध कराते हैं। ये सभी सशक्तीकरण के महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं। महत्वपूर्ण विकास कार्यक्रमों में स्वयंसहायता समूहों का गठन विकास के घटक का आधार स्तम्भ है।

ग्रामीण महिलाएँ स्वयंसहायता समूहों के जरिए सामाजिक व आर्थिक बदलाव ला रही हैं। समाज के गरीब वर्गों में महिलाओं के आर्थिक सषक्तीकरण में स्वयंसहायता समूह के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है क्योंकि महिलाएँ परिवार व समाज की ऐसी सदस्य होती है, जिनके कंधों पर आने वाली पीढ़ियों की परवरिश की जिम्मेदारी होती है। महिलाएँ गरीबी और सामाजिक उत्पीड़न से सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं। सरकार व स्वैच्छिक संगठन महिला स्वयंसहायता समूह के माध्यम से महिलाओं का सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्तीकरण कर रहे हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओं ने मेहनत व लगन के बल पर यह साबित कर दिया कि स्वयंसहायता समूह के साथ जुड़कर एक नया मुकाम हासिल किया जा सकता है। इसके साथ ही ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण की दिशा में स्वयंसहायता समूह सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। वर्तमान समय में देखा जाता है कि महिलाएँ घर-गृहस्थी का काम निपटाने के बाद स्वयंसहायता समूह में काम करती हैं। समूहों में कार्य करने वाली महिलाओं को सरकार एवं स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से हमेशा सहयोग प्राप्त होता है।

ऋण प्रदान करने व व्यक्तियों के बीच आपसी सहयोग से आर्थिक रूप में एक बड़ी भूमिका के साथ ही ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक विकास को देख सकते हैं जो कि लोगों को स्वयंसहायता समूहों में अपनी उद्यमिता के लिए नई संभावनाओं के बारे में जागरूकता व कौशल में सुधार करने में मदद करेगा।[6] उद्यमियों को विकास के लिए प्रेरित करने और उसे प्रत्येक दौर में ग्रामीण क्षेत्रों में सूक्ष्म उद्यमों के विकास के लिए पर्याप्त धनराशि प्रदान कर सकते हैं, जो कि आने वाले समय में उनके विकास के लिए माध्यम बनेगी।

कठिन परिस्थितियों में ग्रामीण महिलाएँ

ग्रामीण महिलाओं की अलग-अलग परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा विषेश रूप से वंचित वर्गो की आवष्यकताओं को देखते हुए सरकार ने विशेष सहायता प्रदान करने के उपाय और कार्यक्रम शुरू किए हैं। इन वर्गों में अत्यधिक निर्धन महिलाएँ, संघर्ष की परिस्थितियों में रहने वाली ग्रामीण महिलाएँ, अक्षम विधवाएं, वृद्धाएं, कठिन परिस्थितियों में रहने वाली एकल महिलाएँ, वैवाहिक हिंसा की शिकार महिलाएँ शामिल हैं।

ग्रामीण महिलाओं के संवैधानिक प्रावधान व सुरक्षा उपाय

ग्रामीण महिलाएँ हमारे समाज का एक सुभेद्य खण्ड बनाती हैं, जो अधिकांश अवसरों पर अपने अधिकारों का उपयोग करने और ज्ञान की इच्छा में एक सम्मानजनक अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम नहीं है। जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता की कमी होना ही इसका मुख्य कारण है। यह स्थिति सीमित गतिशीलता के अलावा निर्धनता, साक्षरता, महिलाओं

की स्थिति, शिक्षा, स्वास्थ्य और कानून पर दुर्बल पहुंच द्वारा और भी विकट हो जाती है। पुनः लिंग (जेंडर) संबंधी हिंसा और महिलाओं के खिलाफ अपराध में वृद्धि हुई है, जिससे उनकी स्थिति समाज में और भी अधिक असुरक्षित हो जाती है। बलात्कार, यौन उत्पीड़न, दहेज के कारण मौत, पति तथा उसके संबंधियों द्वारा अत्याचार देश में महिलाओं के खिलाफ प्रमुख अपराध हैं।[7] महिला-पुरुष समानता के सिद्धांत भारत के संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्त्तव्यों, नीति-निर्देशक तत्वों व मानवाधिकार के सिद्धांतों में निहित हैं।

भारतीय संविधान महिलाओं को न केवल समानता प्रदान करता है, बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव करने के लिए राज्य को शक्ति भी प्रदान करता है। अतः महिलाओं को बराबरी का अधिकार वैधानिक रूप से प्रदत्त है, या दिया गया है। इसके साथ ही सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम, योजनाएँ, परियोजनाएँ व नीतियाँ चलायी जा रही है। जैसे कि इंदिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना, सबला, किशोरी शक्ति योजना, किशोरी बालिकाओं के लिए पोषण कार्यक्रम इत्यादि।

इस क्रम में ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के लिए लघु उद्योग व स्वरोजगार स्थापना हेतु सरकार के द्वारा वित्तीय सहायता की व्यवस्था की जाती है। जैसा कि सेवा व बाजार क्षेत्र को मुख्य रूप से ध्यान में रखकर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। उसमें भी तीन तत्वों की मुख्य भूमिका होती है, जिसमें (क) धन, (ख) कौशल व (ग) उद्यमशीलता है। प्रायः स्थानीय आधार पर रोजगार की आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है जिसके अंतर्गत महिलाओं को लोगों से संबंधित जानकारी प्रदान की जाती है व समय-समय पर उनके उत्थान के लिए उद्योग, सेवा, व्यापार, मार्केटिंग, सरकारी योजनाओं से संबंधित अनेक जानकारियां प्रदान की जाती है। जैसे कि देश के सभी 640 जिलों (जनगणना 2011 के अनुसार) में शिक्षित बेरोजगारों को उद्योगों की ओर आकर्षित करने हेतु उद्यमीयता जागरूकता शिविरों का आयोजन किया जाता है। इन शिविरों में उस क्षेत्र के उत्पादन, सरकार की नीति, नियम व अनुदान के बारे में संपूर्ण जानकारी दी जाती है। इसके अंतर्गत सूक्ष्म, लघु, मध्यम और वृहद् उद्यम की आधारशिला प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा सशक्त रूप से सकारात्मक सिद्ध होगी। उपरोक्त में महिलाओं के प्रशिक्षण के लिए सरकार के द्वारा मानदेय की भी व्यवस्था की जाती है। उदाहरणस्वरूप कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम हैं। राजीव गांधी उद्यमी मित्र योजना, तकनीकी परामर्श, प्रधानमंत्री रोजगार गारंटी कार्यक्रम, उद्यमीयता जागरूकता शिविर, सहायक उद्योगों का विकास आदि। अतः अपने सभी संसाधनों का निर्धारण करना, अपूर्ण संसाधनों में इजाफा करना, संसाधनों में वृद्धि करना, संसाधनों के अधिकतम प्रभावी व संतुलित इस्तेमाल के लिए योजना बनाना और प्राथमिकता तय करना, जोकि मुख्य रूप से आवश्यक है।

प्रजातांत्रिक राजनीति के ढांचे के अन्दर हमारे कानूनों, विकास नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं का विकास करना है। भारत सरकार की पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1978) से लेकर आगे तक महिलाओं के मुद्दों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से विकास की ओर परिवर्तन रहा है। पिछले दो दशक (1991-2011) में महिलाओं के स्तर के निर्धारण में केन्द्रीय मुद्दे के रूप में महिलाओं की शक्ति सम्पन्नता को मान्यता दी गई है। महिलाओं के अधिकारों व कानूनी हकों की सुरक्षा हेतु वर्ष 1990 में संसद में एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। स्थानीय स्तर पर निर्णय में महिलाओं की भागीदारी के लिए मजबूत नींव डालते हुए महिलाओं हेतु पंचायती राज तथा नगरपालिकाओं के स्थानीय निकायों में भारत के संविधान में 73वें तथा 74वें संशोधन (1993) द्वारा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटों का आरक्षण प्रदान किया गया है, जिसके तहत् कुछ राज्यों में पंचायती राज चुनावों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत सीटों को आरक्षित कर दिया गया है।[8] कालांतर में महिलाओं के सम्पूर्ण सशक्तीकरण हेतु यह मील का पत्थर साबित होगा, ऐसी आशा है।

संदर्भ

1. गोयल, प्रीतिप्रभा, ''भारतीय नारी विकास की ओर'', राजस्थानी ग्रन्थसागर, जोधपुर, 2009, पृ. 18
2. कुमार विपिन, ''वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण'', रीगल पब्लिकेशन्स, 2009 पृ. 28
3. प्रगति प्रतिवेदन, 2015-16, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, पृ. 121
4. कुमार विपिन, ''वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण, विविध आयाम'', रीगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009 पृ. 38
5. प्रगति प्रतिवेदन, 2015-16, महिला एवं बाल विकास विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 126
6. बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017), समाजिक क्षेत्रक, सेज पब्लिकेशन इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 176
7. खंडेला, मानचन्द, ''महिला राजनैतिक सशक्तीकरण'', अरिहंत पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. 108
8. मौर्य शैलेन्द्र, ''महिला राजनैतिक नेतृत्व एवं महिला विकास'', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2011, पृ. 65

नगरीय परिवार में पारिवारिक विलगावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० शम्भू कुमार साहु

C/O श्री भातु साहु
ग्राम-कोरिगामा, पोस्ट-निमैठी,
थाना-बहेड़ी, जिला-दरभंगा
847101 (बिहार)

भारतीय महिला का बाहरी कार्य क्षेत्र में पदार्पण करना समाज की दृष्टि में अभी कुछ दशक पहले तक वांछनीय नहीं था। लेकिन स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के प्रसार द्वारा वैज्ञानिक सोच ने उन्हें रूढ़ियों को तोड़ कर आत्मनिर्भर बना कर जीने की प्रेरणा दी। पुरुष और महिला समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए के समान है। परिवार समाज रूपी गाड़ी की धुरी है। पुरुष और स्त्री इसी धुरी के दो पहिए हैं। अतीत में संयुक्त परिवारों का ढाँचा जिन विशेषताओं पर आधारित था, उन सभी में आज तेजी से परिवर्तन हो रहा है। एक ओर, संयुक्त परिवार वर्तमान युग की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो रहे हैं तो दूसरी ओर व्यक्तियों के विचारों और मनोवृत्तियों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि अब संयुक्त परिवार के परम्परागत स्वरूप को बनाये रखना कठिन हो गया है। आज संयुक्त परिवार के ढाँचे इसके कार्यो ं तथा आधारभूत विशेषताओं में होने वाले विघटन को कुछ समाजशास्त्री केवल परिवर्तन की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में देखते हैं लेकिन सच यह है कि यह एक सामान्य परिवर्तन न होकर परिवार में होने वाला विघटन है जिसे जल्दी ही रोक सकना संभव प्रतीत नहीं होता है। सुयंक्त परिवार में विघटन की प्रक्रिया को इसकी संरचना तथा कार्यो ं में होने वाले विघटन के रूप में रेखा जा सकता है।

वास्तव में औद्योगीकरण तथा नगरीकरण संयुक्त प्रक्रियाएँ हैं लेकिन नगरों के विकास के पृथक रूप से अनेक ऐसी दशाएँ उत्पन्न की जिनके फलस्वरूप संयुक्त परिवार विघटित होने लगे। सर्वप्रथम, नगरों के विकास से एक नगरीय मनोवृत्ति का विकास हुआ। नगरीय मनोवृत्ति वह है जिसमें व्यक्ति परिवार का स्वागत करता है, व्यक्तियों से उतना ही संबंध रखता है जितना से उसे लाभ मिल सके, आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए सैदव स्थान - परिवर्तन करता रहता है तथा उन नियमों को स्वीकार नहीं करता जिन्हें तर्क के द्वारा न समझा जा सकता हो। उक्त सभी विशेषताएँ संयुक्त परिवार के ढाँचे को विघटित करने लगी। दूसरी बात यह है कि नगरीकरण से औद्योगिक नगरों में जनसंख्या का दबाव इतना अधिक बढ़ा गया कि अधिकांश व्यक्ति किराये के मकानों में रहने लगे। ऐसे मकानों में स्थान का अभाव होने के कारण यह संभव नहीं था कि वहाँ संयुक्त परिवार के सभी सदस्य साथ- साथ रह सकें। इसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार एकाकी परिवार के रूप में बदलने लगे। नगरों का वातावरण भी संयुक्त परिवार की स्थिरता में बाधक सिद्ध हुआ। नगरों में व्यक्ति को मनोरंजन के वे व्यावहारिक साधन उपलब्ध होने लगे जो स्वतंत्र जीवन के पक्ष में थे। यहाँ व्यक्ति को प्राप्त होने वाली शिक्षा तथा भौतिक आकर्षण उसे संयुक्त परिवार के परम्परागत जीवन से दूर ले जाने लगे इस प्रकार संयुक्त परिवारों को विघटित करने में नगरीकरण की प्रक्रिया ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। नगरीय परिवारों का आई. पी. देसाई, कपाड़िया और एलन रास जैसे विद्वानों द्वारा किये गये आधुनिक अध्ययन ने बतलाया है कि नगरीय संयुक्त परिवार का स्थान धीरे - घीरे एकाकी परिवार के रूप में परिवार का आकार सिकुड़ रहा है, और रिश्तेदारी के संबंध केवल दो या तीन पीढ़ीक ही सीमित हो गये हैं।[2]

आज कल एकाकी परिवारों को रखने की प्रवृति लोकप्रिय होती जा रही है। शिक्षित स्त्रियाँ विशेषकर (नगरीय) संयुक्त परिवारों को पसंद नहीं करती और विवाहित होने के बाद से ही अपने पतियों को अलग अपना घर बसाने कीसलाह देने लगती है। आधुनिक भारतीय परिवारों में कर्त्ता की परम्परागत शक्ति समाप्त नहीं हुई है, लेकिन एक सीमा तक कम अवश्य हुई है। ऐसा कई कारणों से हुआ है यथा स्त्रियों के विवाह आदर्श का प्रसार, स्त्रियों में शिक्षा एवं रोजगार करने की प्रवृत्ति, प्रजातंत्रीय भावना का प्रसार तथा हिन्दू कोड बिल जिसके अनुसार स्त्रियों को भी अपने पतियों से विवाह- विच्छेद प्राप्त करने एवं सम्पत्ति अर्जित करने के अधिकार मिल गए हैं। विशेष कर नगरीय स्त्रियों ने जीवन के विविध क्षेत्रों, यथा- राजनीति, व्यापार, शिक्षा, समाज प्रशासन आदि में कई महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की है। और उनमें स्वाधीनता और आधुनिकीकरण की आवाजें उठने लगी हैं।[3]

नगरीय परिवारों में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के सामाजिक मूल्यों में अन्तर आने के फलस्वरूप संघर्ष पूर्ण स्थिति होने लगी है। ग्रजुएट माताओं और उनकी पुत्रियों तथा ग्रेजुएट पिताओं और उनके पुत्रों में शिक्षा संबंधी कोई संघर्ष देखने में नहीं आया है, लेकिन नन- ग्रजुएट माताएँ शिक्षा के महत्व को भली -भाँति समझ पाई हैं। वे यह सोचती हैं कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा उनकी पुत्रियों को बिगाड़ सकती है। युवा पीढ़ी और उनके बुजुर्गो ं धार्मिक , वैवाहिक , अनुशासन, धंधा, व्यय, मनोरंजन व बाहर धूमने फिरने की स्वतंत्रता के मामलों को लेकर प्राय: संघर्ष होने लगा है। विशेष कर नगरों के मध्यम श्रेणी में परिवारों में तो यह बहुत अधिक होता है। इन संघर्षो ं के फलस्वरूप परिवार के कर्त्ता अथवा मुखिया के विशेषाधिकारों तथा सम्मान में अवश्य ही कमी आ रही है।

नगरों में लड़कियाँ घर पर देर से आने पर माता- पिता के बंधन को नहीं चाहते जबकि माता-पिता ऐसे बंधन लगाए रखना चाहते हैं। आजकल बड़े - बड़े नगरों में नौकरी करने और उच्च शिक्षा या शोध करने में लगी हुई कई अविवाहित महिलाएँ अकेली रहने लगी हैं। यद्यपि ऊपर से देखने में यह ज्ञात होता है कि ये बहुत आधुनिकता और स्वतंत्रता का जीवन बिताती है, लेकिन वास्तव में यह देखने में आया है कि आज भारत में ऐसी अकेली स्त्रियों को भी अपने शरीर की सुरक्षा और कार्य करने की पूर्ण सुविधा उपलब्ध नहीं है। अन्तर्पीढ़ी संघर्षो ं और परम्परागत सामाजिक मूल्यों के फलस्वरूप उन्हें आज भी एक प्रकार का हतोत्साही विरोध सहना पड़ता है। टी. वी. पर अनेक ऐसे कार्यक्रम देखे जा सकते हैं, जिनमें पत्नी को अपने पति से पटरी नहीं बैठती है या विवाद हो जाती है तो इसका समाधान खोजने के बजाय दूसरे पुरुष के सम्पर्क में आ जाना या पति को तलाक दे देना, सामान्य सी बात होती दिखायी जा रही है। इन हालातों में हम टीवी के माध्यम से हमारी बच्चियों का विकास और समाजीकरण कर रहे हैं और फिर भी हम चाहते हैं कि हमारी बच्चियों विवाह के बाद एक परम्परागत गृहणी के रूप में अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से निर्वाह करें। यह असंभव है। इसी कारण परिवार बनने के साथ ही बिखर रहे है।[4]

नगरों के पारिवारिक जीवन का एक अत्यंत वास्तविक चित्रण नीरद चौधरी ने किसी नगर का उदाहरण देकर किया है। उसके अनुसार, आधुनिक दिल्ली में पारिवारिक जीवन घटिया किस्म का हो गया है। परिवार वास्तव में परिवार नहीं रहा, वह एक प्रकार से होटल या धर्मशाला का रूप धारण कर चुका है जिसमें कामकाजी माता-पिता केवल रात में आकर मिलते है। जल्दबाजी में खाना पका कर खाते हैं। पाँच दस मिनट अपने बच्चों से बोलते हैं या नहीं भी बोल पाते हैं और फिर सो जाते हैं। सुबह भाग भाग-दौड़ में नाश्ता निगल कर, बस पाने के लिए घंटो कतारों में खड़े रहने के उपरान्त पुरुष और कई कामकाजी स्त्रियाँ अपने - अपने दफ्तर, दुकानों या रोजगार के स्थानों पर पहुँचते हैं तथा सारे दिन वहाँ बन्द रहते हैं। जो स्त्रियाँ रोजगार करने बाहर नहीं जाती। वे दोपहर को सड़कों पर, बाजारों में सुन्दर रंग -बिरंगे वस्त्र पहने घूती हुई, बाजारों में वस्तुओं के भाव पूछती हुई, खरीदारी करती हुई और अपनी सहेलियों से मिलने जाती हुई देखने में आती हैं, जबकि उनके पुरुष, दफ्तरों, दुकानों या रोजगार के अन्य स्थानों पर दिन -भर बंद रहते हैं।[5]

नगरों में मकानों की तंगी के फलस्वरूप पारिवारिक सुख- शांति एवं उपयुक्त प्रकार का समाजीकरण संभव नहीं हो पाता। नगरों में बढ़ती हुई शराब पीने वेश्यावृत्ति, फैशन परस्ती, असुरक्षा, गरीबी, निराशा, दुर्घटनाओं और मनोवैज्ञानिक तनावों एवं वर्ग संघर्षो ं के फलस्वरूप भारतीय परिवार को कई प्रगकार के झटके झेलने पड़ रहे हैं। जिनके फलस्वरूप बाल अपराधों, विवाह -विच्छेद यौन अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा असंतुलित व्यक्तियों के विकास में द्रुतगति से वृद्धि हो रही है। आधुनिक नगर जहाँ एक ओर आधा नगर ऊँची - ऊँची अटालिकाओं, चौड़ी सड़कों सुरक्षा बाग - वगीचों के बीच स्थित कोठियाँ और बंगलों में रहने वाले उच्च एवं उच्च-मध्यम वर्ग के आधुनिक संपन्न परिवारों से भरा होता है, वहाँ शेष आधा नगर निम्न -मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग को गंदी और

भीड़पूर्ण बस्तियों से घिरे हुए दु:खी, निर्धन एवं निम्न स्तरीय संस्कृति के परम्परागत परिवारों का वास होता है। धनिकों के उस आधे नगर में फैशन परस्ती, यौन- उच्चश्रृंखला, उच्च शिक्षा, आमोद -प्रमोद, इठलाहठ, सामाजिक संतोश सुख-समृद्धि एवं आधुनिकता से परिपूर्ण परिवार देखने में आते हैं, जबकि सामान्य जन के इस पार के आधी नगर में पारिवारिक जीवन हर प्रकार से निराशाओं, असुरक्षा और परम्परागत अंधविश्वासों से त्रस्त देखने में आता है।

नगरीय परिवारों में पति-पत्नी के बीच में और तो सब कुछ है, लेकिन दाम्पत्य सुख कहीं दूर- दूर तक भी नगर नहीं आता। ऐसे हालातों में आपसी विश्वास और परिवार का सुकून खो चुके अनेक नव दम्पतियों के विवादों को सुनकर उनका निराकरण करने के दौरान यह पाया गया कि समाज का समाजीकरण अब दादी - नानी के हाथ से पूरी तरह से निकल चुका है। पुरुष भी अपने दादा या पिता में नहीं, बल्कि फिल्मी और टीवी कलाकरों के बारे में छपने वाली खबरों से अधिक प्रभावित होता है। वह अपने साथियों के अधकचरे ज्ञान के सहारे दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करता है जहाँ दो विपरीत ध्रुव एक दूसरे से मिलते ही टकराने की स्थिति में होते हैं।[6]

वैश्वीकरण के कारण मोबाईल, कम्पयूटर, इंटरनेट, लैपटॉप तथा सूचना तकनीकों का तीव्र विकास हुआ है। जिसका व्यापक प्रभाव भारतीय सामाजिक संरचना पर पड़ा है। तथा नगरीय महिलाओं पर इसका व्यापक असर हुआ है। परिवार के सदस्यों के भूमिका संबंधी परम्परागत आदर्श नियमों में परिवर्तन हो रहा है। जिससे महिलाओं को परिवार में अधिक स्वतंत्रता मिलने लगी है। अब महिलाएँ अकेले रेलवे डब्बों में बैठकर लम्बी सफर करती है। साधन ने तो महिलाओं के जीवन को ही बदल दिया है। विवाह के बाद आधुनिक कहलाने वाली पत्नियाँ अपने पतियों पर जरूरत से ज्यादा शिकंजा कसना चाहती है। पति - पत्नी के आपसी टकराहट के कारण दाम्पत्य जीवन संकट ग्रस्त हो जाता है। बच्चों के माता- पिता के उक्त विषय व्यवहार का बुरा असर पड़ता है। परिणामस्वरूप परिवार में विलगाव होने लगता है।

परिवारों को विघटित करने वाली वर्तमान दशाओं का विश्लेषण कर यह स्पष्ट होता है कि भविष्य में इनके गाँव में कोई कमी होने की आशा करना बहुत कठिन है। परिवारों के विघटन के लिए यद्यपि अनेक कारण उत्तरदायी हैं लेकिन इनमें औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा की वृद्धि तथा नवीन सामाजिक मूल्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं महिला अधिकार को प्रबलता के कारणा खास कर नगरीय परिवार में सामंजसय का अभाव हो जाता है। परिणामस्वरूप परिवार में अशांति कायम हो जाती है। अशांति के कारण परिवार बिगड़ने लगता है।

संदर्भ :

1. जी0 के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र, एस0 बी0 पी0 डी0 पब्लिकेशन्स, आगरा , 2008, पृ0 182
2. राम अहूजा, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007, पृ0 286
3. नूर मोहम्मद, एण्ड एम0 एम0 लबानियाँ, भारतीय समाज का विस्तृत अध्ययन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2007-08, पृ0 246
4. विश्वनाथ झा, सोसाइटी , टूडे, वोल्यूम-13, पृ0 1, जनवरी -मार्च, 2013 महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह रिसर्च सोसाइटी, शुभंकरपुर, दरभंगा
5. नूर मोहम्मद एण्ड एम0 एम0 लवानिया, उपर्युक्त, पृ0 5
6. कृष्ण चक्रवर्ती, फेमिली इन इंडिया, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007, पृ0 167

बिहार में असहयोग आंदोलन और शिक्षा

रश्मि रूपम

गवेषिका, इतिहास विभाग
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

बिहार में राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष और शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में विस्मयकारी परिवर्त्तन हुए हैं जिनके अध्ययन भी किए गये हैं। भारत के स्वाधीनता संघर्ष में बिहार की जनता ने अपनी अग्रणी भूमिका अदा की, इसे कैसे भूला जा सकता? 1920 में असहयोग आंदोलन काल में बिहार में बिहार विद्यापीठ तथा राष्ट्रीय विद्यालय, महाविद्यालय, 1922 तक 41 उच्च विद्यालयों में 4500 विद्यार्थियों, 600 प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में 1700 विद्यार्थियों एवं व्यवसायिक प्रशिक्षणार्थियों का आना एक आंदोलन जैसा था। राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, जाकिर हुसैन, बद्रीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद, प्रेमशंकर बोस, जगतप नारायण लाल, रामचरित्र सिंह, अब्दुलबारी, मजरूल हक, मोहम्मद शाफी दाउदी आदि का अध्यापन कार्य करना 1920 के दशक में बिहार में स्वाधीनता संघर्ष और शिक्षा को जन्म देने जैसा था। अध्यापकों एवं विद्यार्थियों का स्कूल एवं कॉलेजों का बहिष्कार पटना, भागलपुर, तिरहुत, मुजफ्फरपुर एवं अन्य स्थानों पर यही सिलसिला 1920 के दशक तक काफी जोर पर था। इस समय में बिहार नेशनल कॉलेज, पटना कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय परिसर, पटना मेडिकल कॉलेज एवं दयानन्द इंगलिश स्कूल, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र ट्रेनिंग स्कूल एवं ट्रेनिंग कॉलेज, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज, माड़वारी स्कूल, तिरहुत टेक्निकल इंस्टीच्यूट आदि जगह अध्यापक एवं छात्रों के आंदोलन के केन्द्र थे।

असहयोग आंदोलन काल में बिहार के शिक्षण संस्थाओं के बहिष्कार का कार्यक्रम धीरे-धीरे गति पकड़ रहा था। अक्टूबर के अंतिम समय में पटना के नुरूल हुदा मदरसा के 25 छात्रों ने स्कूल को छोड़ दिया तथा वे अंग्रेज के खिलाफ आंदोलन में जुट गये।[1]

पटना लॉ कॉलेज के छात्र सैयद मोहम्मद शेर और बिहार नेशनल कॉलेज के छात्र अब्दुल बारी तथा मोहम्मद शफी ने अपने कॉलेज छोड़ दिए।[2] महात्मा गाँधी के बिहार यात्रा के दौरान अक्टूबर 1920 के प्रारंभ में उन्होंने भगवानपुर के स्थानीय मिड्ल स्कूल में एक सभा बुलाई[3] और कहा कि सरकार नियंत्रित स्कूल कॉलेज को खाली कर दें। गाँधीजी बिहार में अपनी दिसम्बर यात्रा के दौरान सभाओं में भाषण के अतिरिक्त विशेष बैठकों में छात्रों से मिलते थे। त्रिपक्षीय बहिष्कार के अपने कार्यक्रम में विदेशी वस्तुओं, न्यायालयों, सरकारी स्कूलों एवं कॉलेजों का बहिष्कार, अब वे स्कूल और कॉलेजों पर अधिक जोर दे रहे थे।[4] इसके साथ ही राष्ट्रीय स्कूल कॉलेज तथा विद्यापीठ की स्थापना की दिशा में प्रयास किया गया।

दिसम्बर 1920 की अपनी अल्पकालिक बिहार यात्रा के क्रम में गाँधीजी के प्रभाव स्वरूप 1921 के आरंभ में कुछ राष्ट्रीय विद्यालय खोले गये तथा कुछ वर्त्तमान स्कूलों को विश्वविद्यालय से असम्बद्ध करके उन्हें राष्ट्रीय संस्थाओं में परिणत कर दिया गया। इन स्कूलों ने सरकार से अनुदान लेना बन्द कर दिया।[5] लगभग जून 1922 तक बिहार भर में 41 हाईस्कूल थे। इनमें 4500 विद्यार्थी पढ़ते थे। इसके अतिरिक्त 600 प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय भी थे। इनमें लगभग 17000 छात्रों का अध्यापन होता था।[6] गाँधीजी निश्चित रूपेण बिहार में एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना के पक्ष में थे।[7]

आंदोलन को गति प्रदान करने के उद्देश्य से महात्मा गाँधी ने दिसम्बर 1920 में बिहार यात्रा के दौरान मुजफ्फरपुर के तिलक मैदान में बहुत बड़ी भीड़ के समक्ष भाषण दिया सभा में बाबू मनोरंजन प्रसाद सिन्हा रचित 'फिरंगिया'[8] संगीत का गायन राजेन्द्र कॉलेज छपरा के भूतपूर्व प्राचार्य बाबू मनोरंजन प्रसाद ने किया था।

गाँधीजी के बिहार यात्रा के दौरान जो कुछ धन राशि मिला उसे एकत्रित करके उसका उपयोग सरकारी एवं सरकार नियंत्रित संस्थाओं को छोड़ने वालों छात्रों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण व्यवस्था उपलब्ध कराने हेतु तथा प्रान्त के नौजवानों को सही तरीके से शिक्षण की व्यवस्था करने के उद्देश्य से जिसमें वे देश की सेवा हेतु तैयार हो सके एवं आजीविका अर्जन के लिए उन्हें व्यवहारिक किस्म की शिक्षा[9] दी जा सके, करने की व्यवस्था की गई। जनवरी 1921 को बिहार में राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई।[10] गाँधीजी ने कुछ दिन बाद इन संस्थाओं का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया।

वास्तविकता यह थी कि अनेक छात्रों ने असहयोग आंदोलन में भाग लेने हेतु स्कूल और कॉलेज का बहिष्कार किया था। 7 छात्रों ने राँची जिला स्कूल छोड़ दिया। गोड्डा हाईस्कूल के प्राध्यापक व उसका पुत्र दोनों को निकाल दिए गये थे, जिसका कारण था कि इसी हाईस्कूल के प्राध्यापक ने अपने लड़के को विद्यालय से निकालने का आवेदन दिया था पटना लॉ कॉलेज के सहायक अध्यापक तथा एक प्रोफेसर, जगन्नाथ प्रसाद पाण्डेय ने भी त्याग पत्र दे दिया था। बी0एन0 कॉलेज के 26 छात्रों ने 22 नवम्बर तक कॉलेज छोड़ने का आवेदन दिया तथा 08 दिसम्बर तक 20 अन्य छात्रों ने भी कॉलेज छोड़ने हेतु आवेदन दिया। बिहार इंजीनियरिंग स्कूल के 15 छात्रों ने नवम्बर तक स्कूल छोड़ने का आवेदन दिया था। किन्तु बाद में 6 छात्रों ने अपनी इच्छा बदल दिया। न्यू कॉलेज के 25 छात्रों ने तथा लॉ कॉलेज के 6 छात्रों ने नवम्बर तक कॉलेज छोड़ दिया था। सरकारी मदरसा के 8 छात्रों ने 17 नवम्बर 1920 ई. तक मदरसा छोड़ दिया था। वहीं अनेक स्कूलों, कॉलेजों मदरसों आदि के विद्यार्थियों को सरकारी शिक्षण संस्थाओं को छोड़ने की संभावनाएँ बन रही थी।[11]

6 फरवरी 1921 को गाँधीजी पटना पहुँचे और उनके साथ उनकी पत्नी और मौलाना मोहम्मद अली भी थे।[12] उसी दिन उन्होंने राष्ट्रीय महाविद्यालय तथा बिहार विद्यापीठ का औपचारिक उद्घाटन किया। बिहार विद्यापीठ का उद्देश्य था प्रांत में खोली गई सभी राष्ट्रीय संस्थाओं का समायोजन करना तथा नियंत्रण एवं निदेशन करना।[13] इस अवसर पर भाषण करते हुए गाँधीजी ने चम्पारण के आंदोलनकाल के अपने दो सहकर्मियों -राजेन्द्र प्रसाद एवं ब्रजकिशोर प्रसाद के स्नेह की चर्चा की और प्राध्यापकों को उन्होंने प्राचीन भारत के महान ऋषियों के आदर्शों के अनुरूप बनने को कहा। छात्रों को इस प्रकार रहने की एवं आचार व्यवहार ऐसा बनाने की सलाह दी जिसमें संस्थाएँ देश भर के लिए आदर्श बन सके। पटना से गाँधीजी दानापुर गये, वहाँ उन्होंने एक राष्ट्रीय विद्यालय का उद्घाटन और तीसरे पहर पटना स्थित राष्ट्रीय विद्यालय का उद्घाटन भी किया।[14]

बिहार विद्यापीठ के कुलपति एवं उप-कुलपति के पदों पर श्री मजहरूल हक एवं ब्रजकिशोर प्रसाद आसीन हुए। राष्ट्रीय महाविद्यालय के प्राचार्य के पद पर श्री राजेन्द्र प्रसाद थे। बद्रीनाथ वर्मा उन दिनों बिहार नेशनल कॉलेज के अंग्रेजी विभाग के प्राध्यापक थे और जगन्नाथ प्रसाद पटना कॉलेज के संस्कृत विभाग, प्रेम सुन्दर बोस, टी0 एन0 बी0 कॉलेज भागलपुर के दर्शनशास्त्र विभाग के प्रध्यापक थे। ये लोग एवं बाबू रामचरित्र सिंह, अब्दुल बारी एवं जगत नारायण लाल महाविद्यालय के प्राध्यापक नियुक्त हुए। मोहम्मद साफी दाउदी के कहने पर ऐसे छात्रों के लिए जो सरकारी कॉलेजों की परीक्षा में बैठना नहीं चाहते थे, उनके लिए विशेष व्यवस्था की गई। एक तत्कालीन सरकारी रिपोर्ट में लिखा गया है कि राष्ट्रीय महाविद्यालय की परीक्षाएँ 14 मार्च 1921 को प्रान्त के मात्र दस केन्द्रों में शुरू हुई। मैट्रिकुलेशन की परीक्षाएँ हर केन्द्रों पर सम्पन्न हुई और आई0ए0, आई0 एस0 सी0, बी0 एस0 सी0 की परीक्षाएँ पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर और मुंगेर में हुई। कुल मिलाकर 387 परीक्षार्थी मैट्रिकुलेशन परीक्षा में और 43 डिग्री परीक्षाओं में बैठे। सरकारी विश्वविद्यालय परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों के अनुसार परीक्षा ली गई।[15]

राष्ट्रीय महाविद्यालय मुट्ठी भर छात्रों के साथ ही शुरू किया गया, किन्तु 1921 में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने इस संबंध में लिखा ''कुछ ही काल बाद विश्वविद्यालय के कुछ सबसे मेधावी छात्र सरकारी कॉलेजों का परित्याग करके राष्ट्रीय महाविद्यालय में आ गये। इनमें से कुछ को छात्रावृत्तियाँ मिलती थी एवं विभिन्न पुरस्कार मिल चुके थे।[16] राष्ट्रीय महाविद्यालय राष्ट्रीय शिक्षा मंडल द्वारा संचालित होता था। मंडल के सदस्यों की चार श्रेणियाँ थी। संरक्षक-चंदा देने वाले बड़े और छोटे तथा अवैतनिक सदस्य 15000 या उससे अधिक एक मुस्त देने वाले संरक्षक 500 या अधिक देने वाले डोनर 5 रु. प्रतिवर्ष देने वालों की एक अलग श्रेणी थी एवं राष्ट्रीय शिक्षा के कार्य में उल्लेखनीय सेवाएँ करने वालों के सामान्य सदस्य बनने का अधिकार था। शिक्षा मंडल को संस्था बनाने का अधिकार था। शिक्षा मंडल संस्था की आम नीति निर्धारित एवं निदेशित करता था। उसके प्रेक्षण का कार्य कॉलेज, कॉन्सिल नामक एक अन्य संस्था के हाथ में था। इसके कुलपति, उपकुलपति, कुलसचिव, राष्ट्रीय महाविद्यालय के प्राचार्य कॉलेज प्राध्यापकों के पाँच प्रतिनिधि और राष्ट्रीय शिक्षा मंडल द्वारा निर्वाचित 6 अन्य सदस्य होते थे।[17]

राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना एवं बिहार छात्र सम्मेलन के आदर्शवाद में परिवर्तन का उल्लेख से पता चलता है कि वास्तव में बिहारी छात्र समुदाय देश प्रेम की नई भावना से ओत प्रोत हो रहा था और सैकड़ो छात्र-छात्रा राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के

लिए स्कूल और कॉलेज छोड़ने लगे थे। बिहार से असहयोग आंदोलन के प्रमुख नेता डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने मार्च 1921 के मध्य तक स्कूल और कॉलेज छोड़ने के कार्यक्रम में कहाँ तक प्रगति हुई थी, उसका विवरण प्रस्तुत किया था जो प्राध्यपाक एंव शिक्षकों ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं में अथवा अन्य राष्ट्रीय कार्यो में लग गए थे उनके नाम निम्नलिखित हैं-

1.	बाबू ब्रदीनाथ वर्मा	-	बी0 एन0 कॉलेज, पटना
2.	बाबू जालेश्वर प्रसाद	-	बी0 एन0 कॉलेज, पटना
3.	बाबू जगत नारायण	-	पटना कॉलेज, पटना
4.	पाण्डेय जगन्नाथ प्रसाद	-	पटना कॉलेज, पटना
5.	श्री एन0 आर0मलकानी	-	जी0वी0वी0 कॉलेज
6.	श्री प्रेम सुन्दर बोस	-	टी0एन0 जे0 कॉलेज
7.	श्री जगदीश शर्मा	-	शिक्षक, बिहारशरीफ
8.	बाबू विन्वेश्वर प्रसाद	-	शिक्षक, हाईस्कूल, हाजीपुर
9.	बाबू बुलाकी साहू	-	सब इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल
10.	बाबू द्वारिका प्रसाद	-	सब इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल
11.	बाबू जगदानन्द झा	-	शिक्षक, हाईस्कूल, हाजीपुर
12.	श्री नजीर अहमद	-	शिक्षक, छपरा
13.	बाबू फूलदेव सहाय वर्मा	-	बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

श्री वर्मा ने पटना के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में कार्य करने का वचन दिया था। वे त्यागपत्र दे चुके थे लेकिन अभी तक कार्यमुक्त नहीं किया गया था। पटना में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई थी, इसमें छात्रों की संख्या 62 थी।[18] असहयोग काल से बिहार में प्राध्यापकों, शिक्षकों का बहिस्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं में योगदान के लिए अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यालय खोले गये जिसकी सूची निम्नलिखित है[19]-

गया	-	नवादा, अरवल
मुजफ्फरपुर	-	सतीमढ़ी, हाजीपुर
छपरा	-	सीवान, गोपालगंज
दरभंगा	-	मधुबनी
मोतिहारी	-	बेतिया, मेहसी
भागलपुर	-	भागलपुर
मुँगेर	-	नसरगंज

असहयोग काल में प्राध्यापक, शिक्षकों का सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार एवं नए राष्ट्रीय विद्यालय का खोला जाना स्पष्ट साबित करता है कि बिहार में स्वाधीनता संघर्ष और शिक्षा काफी जोर पर था। 1924 में बिहारी छात्र सम्मेलन को उसके पुराने ढॉचे पर फिर स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इस संबंध में अप्रैल 1924 में एक प्रारम्भिक सभा में श्री राजेन्द्र प्रसाद ने श्रोताओं से कहा देश भक्ति की भावना विकसित करने, स्वदेशी धारणा करने एवं खाद्यी, अछूतोद्धार तथा रात्रि पाठशालाओं में अछूतों की शिक्षा आदि कामों के हेतु अपने को उत्सर्ग करने का आग्रह किया।[20] 1924 में ही हजारीबाग से गाँधीजी पटना के लिए रवाना हुए तथा पटना में खुदाबक्श लाईब्रेरी देखने गये और वहाँ गाँधीजी ने उद्योग विभाग द्वारा परिचालित कारखाना देखने गये। उसके हैण्डलुम की बुनाई एवं खिलौना बनाने के विभागों को देखकर उन्होंने कहा कि यहाँ प्रमुख वस्तु चरखा नहीं है और उन्होंने चरखा विभाग खोलने का परामर्श दिया।[21]

गाँधीजी को 1700 से ऊपर धन राशि प्राप्त हुई, जिसका कुछ अंश बिहार विद्यापीठ के लिए सुरक्षित था।[22] गाँधीजी के बिहार यात्रा हाजीपुर में समाप्त हुई। यहाँ लगभग 5000 रू0 की थैली उन्हें भेंट में मिला। हाजीपुर में गाँधीजी स्थानीय स्कूल में ठहराए गए थे। दीपनारायण सिह ने इसकी सारी व्यवस्था की थी। इसके विषय में उन्होंने इस प्रकार लिखा कि बिहार के सभी राष्ट्रीय विद्यालयों से संभवत: इसका प्रबन्धन सबसे अच्छा है। इसके अध्यापक भी योग्य हैं। इसके प्रचार्य जानकधारी बाबू एक उच्च चरित्र वाले असहयोगी वकील हैं।[23]

गाँधीजी की दूसरी बिहार यात्रा 11 जनवरी 1926 से शुरू हुई, जब वे मुजफ्फरपुर के तिलक मैदान से एक सभा में भाषण किया। मुजफ्फरपुर में कुछ छात्रों ने उन्हें घेर लिया। बिहार यात्रा में गाँधीजी कई जगह राष्ट्रीय विद्यालय देखने गये। 1921 से अनेक बाधाओं और कठिनाईयों के बावजूद किसी तरह चलते आ रहे थे और उनकी स्थिति आम तौर पर अच्छी नहीं थी।[24] 1924 ई0 के पश्चात गाँधीजी ने सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लिया था। तथापि वे देश के विभिन्न हिस्से में घूम-घूम कर रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए लोग को प्रोत्साहित कर रहे थे।[25]

निष्कर्ष

1920-25 के बीच बिहार में स्वाधीनता संघर्ष और शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसमें छात्र अध्यापक एवं शिक्षा से जुड़े लोगों ने अपनी भागीदारी देकर आंदोलन को आगे बढ़ाया। बिहार के स्कूल, कॉलेज, विघापीठ एवं मदरसों आदि शिक्षण संस्थाओं ने विदेशी बहिष्कार को तीव्रता प्रदान किया। जिसका असर बिहार पर ही नहीं पूरे देश पर पड़ा।

बिहार में स्वाधीनता संघर्ष और शिक्षा का व्यापक प्रभाव व्यावसायिक शिक्षा पर सर्वाधिक पड़ा। मजहरूल हक जैसे महान क्रांतिकारी के द्वारा व्यावसायिक शिक्षा पर काफी बल दिया गया। खास कर व्यावसायिक शिक्षा में सूत कातना प्रमुख था। मजहरूल हक के द्वारा चरखा कारखाना खोला गया, जिसमें छात्रों को कटाई-बुनाई की शिक्षा दी जाती थी। वहाँ पर छात्रों को नैतिक शिक्षा का पाठ भी पढ़ाया जाता था।

संदर्भ

1. हो0 पो0 डि0 फाईल न0 66, दिसम्बर, 1920, बिहार
2. ननकॉऑपरेशन एण्ड खिलाफत मूवमेंट इन बिहार एण्ड उडीसा, पृ0 11
3. बाबू जनकधारी प्रसाद की आत्मकथा, खण्ड-1, पृ0 94
4. के0 के0 दत्त : बि0 स्व0 आ0, खण्ड 1, पृ0 330
5. वही, पृ0 331
6. बिहार विद्यापीठ और उसमें संबंध संस्थानों का प्रतिवेदन, 1921, पृ. 261 श्री वद्रीनाथ वर्मा, कुल सचिव, बिहार विद्यापिठ द्वारा प्रस्तुत, पृ0 2
7. दत्त: बि0 स्व0 आ0, खण्ड-1, पृ0-331
8. बाबू जनकधारी प्रसाद की आत्मकथा, खण्ड-1, पृ0-94
9. बिहार विद्यापीठ की रिर्पोट, पृ0 4
10. राजेन्द्र प्रसाद के यंग इंण्डिया (1919-22 ई0) में प्रकाशित ब्रीफ स्कैच ऑफ ननकोऑपरेशन मूवमेन्ट शीर्षक निबंध
11. दि डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन, बिहार एण्ड उड़ीसा की रिर्पोट, रामसेवक, बिहार, पृष्ठ-121
12. सर्चलाईट, 9 फरवरी 1921
13. बिहार विद्यापिठ की रिर्पोट, 1921, पृ0 4-5
14. के0 के0 दत्त, बि0 स्व0 आ0, खण्ड-1, पृ0 332-33
15. ननकोऑपरेशन एण्ड खिलाफत मूवमेंट इन बिहार एण्ड उड़ीसा, पृ0 33-34
16. के0 के0 दत्त, बि0 स्व0 आ0, खण्ड-1, पृ0-333
17. बिहार पिद्यापिठ की रिर्पोट, पृ0-12
18. के0 के0 दत्त, बि0 स्व0 आ0, खण्ड-1, पृ0 343-44

राष्ट्रवाद के विकास में पंडित मोतीलाल नेहरू का योगदान

डॉ० रणजीत कुमार

(इतिहास), ल० ना० मि० वि०वि०, दरभंगा
ग्राम -चक्का, पो०-जोरजा, थाना - बहेड़ी, जिला - दरभंगा

6 मई 1861 को पंडित मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ था। 6 फरवरी, 1931 को उनका निधन हुआ। भारत में स्वाधीनता संग्राम तथा स्वाधीनता के बाद देश के निर्माण में नेहरू परिवार का योगदान स्वर्णाक्षर में अंकित है। परन्तु नेहरू परिवार की बुनियाद में पंडित मोतीलाल नेहरू के मन-प्राण और आत्मा का अमृत बिन्दु अंतरनिहित हैं। वे मूलत: राष्ट्रवादी थे। व्यवसाय से एक कानूनविद् रहे। परन्तु स्वाधीनता संग्राम के दौरान उन्होंने उपनिवेशवाद के खिलाफ अविराम संघर्ष किया। इन्दिरा गाँधी के द्वारा देश के नाम समर्पित आनन्द भवन आज भी इलाहाबादमें उनके अमर स्मारक को संजोये हुए है। वे दो बार काँग्रेस के सभापति भी हुए। काँग्रेस से उनका मतभेद भी हुआ। परन्तु देश की एकता तथा अखण्डता की रक्षा के लिये उन्होंने अविराम संघर्ष किया। पंडित मोतीलाल नेहरू के संबंध में अधिक अध्ययन संभव नहीं हुआ है। स्वाधीनता संग्राम की बुनियादी तथ्यों एवं राष्ट्रवाद की धारा के विश्लेषण में प्रस्तुत शोध सहायक सिद्ध हो सकता है। वे एक कुशल अभिभावक भी थे। उन्होंने पंडित जवाहर लाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गाँधी तथा विजया लक्ष्मी पंडित को देश की सेवा तथा तपस्या की रहा दिखलाई। शोध के आधार पर पंडित मोतीलाल नेहरू के व्यक्तित्व तथा विचारधारा का अनुशीलन किया जायेगा। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के उद्भव तथा विकास में उनके योगदानों का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक शिक्षा तथा किसान आंदोलन के क्षेत्र में उनके प्रयोगों का मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन पूर्णत: पंडित मोतीलाल पर केन्द्रित है।[1]

मोतीलाल वैभवशाली, अंग्रेजियत से सराबोर जीवन के शौकीन हो गए थे। बार-बार की यूरोप की यात्राएं उनकी इस आदत में साल गुणित वृद्धि करती जाती थीं। अंग्रेज उनसे मैत्री के लिए स्वयं हाथ बढ़ाते थे। कहते हैं कि कलक्टर और कमिश्नर तक उनसे दोस्ती करना और उनके आतिथ्य का आनंद लेने में अपना बड़प्पन महसूस करते थे। अंग्रेजों की जमात में मोतीलाल किसी भी अंग्रेज को मात दे देते थे।[2] सर हारकार्ट बटलर आईसीएस अधिकारी थे। तभी से उनकी मोतीलाल से गहरी दोस्ती थी। बाद में बटलर लेफ्टिनेंट गवर्नर बन गए थे। तक कहा जाता था कि आनंद भवन और राजभवन के बीच संबंध बहुत मधुर हुआ करते थे। मोतीलाल की प्रतिभा और उनकी अंग्रेजियत से प्रभावित होकर उन्हें इलाहाबाद हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर जान ने उच्च न्यायालय के चार श्रेष्ठ वकीलों की सूची में शामिल किया था। इनमें से तीन अन्य थे-सुंदरलाल (बाद में सर सुंदरलाल बने), मुंशी रामप्रसार और जोगेन्द्र नाथ चौधरी। यही नहीं, चीफ जस्टिस ने मोतीलाल का नाम यूरोपियों के 'इलाहाबाद क्लब' की सदस्यता के लिए प्रस्तावित किया था। इस प्रस्ताव का समर्थन इलाहाबाद सब-एरिया के ब्रिगेडियर जनरल कमांडिग से कराने को कहा था। हालांकि मोतीलाल ने इस प्रस्ताव को बहुत विनम्रतापूर्वक नामंजूर कर दिया था।

मोतीलाल नेहरू ने जब पहली बार यूरोप की यात्रा की यात्रा की तो उन्हें बहुत गंभीर किस्म के सामाजिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। तत्कालीन हिन्दू समाज में एक रूढ़ि थी कि विदेश यात्रा से हिंदू धर्म का उल्लंघन होता है। सामाजिक बहिष्कार इसका दंड था। इलाहाबाद के वकील पं. विशन नारायण दर ने इस रोक अवहेलना की। बाद में उन्होंने स्वदेश लौटकर स्वयं ही

प्रायश्चित करने का प्रस्ताव भी किया था। मोतीलाल की यूरोप यात्रा विदेशी शानों शौकत की दृष्टि से बहुत अच्छी थी लेकिन सामाजिक बहिष्कार के भय ने उनमें फांस पैदा कर दी थी। यही नहीं, सेवामुक्ति के बाद मोतीलाल के बड़े भाई पं. वंशीधर नेहरू ने भी यूरोप और अमेरिका की यात्रा की। हालांकि पूरे जीवन वह जटिल किस्म के कश्मीरी पंडित रहे और हिन्दू रीति-रिवाजों का पूरी दृढ़ता के साथ पालन किया। लेकिन जब विदेश यात्रा से लौटे, तो पूरे अंग्रेज या विलायती बाबू बनकर। मोतीलाल नेहरू जब विदेश यात्रा से लौटे, तो उनके ऊपर भी प्रायश्चित के दंड का दबाव था। लेकिन उन्होंने दृढ़ता के साथ प्रायश्चित करने से इंकार कर दिया। जब उन्हें समाज के आकाओं ने सामाजिक बहिष्कार का भय दिखाया, तो वह और आक्रामक हो गए।[3] उन्होंने 22 दिसम्बर, 1899 को कानपुर के पं. पृथ्वीनाथ को पत्र लिखा- 'मेरी मस्तिष्क पूरी तरह स्थिर हो चुका है। चाहे जो हो, मैं किसी भी कीमत पर प्रायश्चित जैसी किसी भी बेवकूफी के काम में नहीं फंसूंगा। चाहे इसके लिए हमें जान ही क्यों न देनी पड़े। मुझे संसार के सामने तमाशा गया है। लेकिन मेरे दुश्मनों के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे। मैं जरूरत पड़ने पर आत्मरक्षा में बिरादरी के जर्जर ताने-बाने को उधेड़ने में तनिक भी संकोच नहीं करूंगा। मैं पूरी तरह तैयार हूं और किसी भी दुश्मन से मैदान में भिड़ने की प्रतिक्षा कर रहा हूँ। ...मैं हर चिल्लाने और भौंकने वाले को उदासीनता, अनसुनेपन से जबाव दूंगा और मुस्कराता, मौन साधे उसके पास से निकल जाऊँगा।[4] मोतीलाल नेहरू ने इस तरह सामाजिक प्रतिरोध का बड़ी दृढ़ता और अहिंसा के साथ जवाब दिया था लेकिन सामाजिक दबाव के आगे कतई झुके नहीं। उन्हें अंततः जाति से बहिष्कार कर दिया गया। पर मोतीलाल बहुत जिद्दी किस्म के व्यक्ति थे इसलिए मौका पड़ने पर जाति के अलमबरदारों पर कटाक्ष किए बिन नहीं रहते थे। एक बार उनसे भेंट करने आए अपने एक रूढ़िवादी चाचा से कहा, 'अपने को भ्रष्ट किए बगैर आप मेरे साथ भोजन तो नहीं कर सकते पर मेरा ख्याल है हमलोग व्हिस्की और सोडा साथ-साथ ले सकते है। इस सामाजिक द्वंद्व की स्थिति में वह एक नए सामाजिक संगठन के साथ निकले जिसका नाम तो 'मोती सभा' रखा गया था, लेकिन बाद में इसे 'सत्य सभा' कर दिया गया था। उनके बाद तो जैसी कश्मीरी तरूणों के लिए विदेश यात्रा का दरवाजा खुल गया हो।

दो साल बाद यानी 1891 ई. में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में वह पुनः विषय निर्वाचक समिति के सदस्य चुन लिए गए। 1892 में जब डब्लू सी बनर्जी की अध्यक्षता में कांग्रेस का पुनः इलाहाबाद में अधिवेशन हुआ, तो मोतीलाल नेहरू स्वागत समिति के मंत्री बनाए गए। भव्यता की दृष्टि से यह अधिवेशन सबसे आगे रहा।[5]

लेकिन उसके बाद मोतीलाल नेहरू की राजनीतिक चेतना पर उनका पेशा और पारिवारिक जुड़ाव भारी पड़ गया। वह बाद में कई वर्षो के कांग्रेस अधिवेशनों और उसकी गतिविधियों में संभवतः शामिल नहीं हुए। इन बीच के कई वर्षो तक वह वकालत में पैसा पैदा करने की मशीन बनकर काम किए और ऐशो-आराम, अपने बेटे जवाहरलाल नेहरू की विदेश में बेहतरीन शिक्षा पर सर्वाधिक ध्यान केन्द्रित किया। उसके बाद उनका राजनीति में प्रवेश उस समय सक्रिय रूप से हुआ, जब महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन गति पकड़ने लगा। 1905 के बंगाल विभाजन ने आजादी के उदास आंदोलन को नया जीवन और दिशा दे दिया। लार्ड कर्जन की विध्वंसकारी नीतियों के तहत बंग-विभाजन को अंजाम दिया गया था। इसका पूरे बंगाल में जबरदस्त विरोध हुआ। विदेशी का बहिष्कार और स्वदेशी का प्रयोग करके देशवासियों ने एकता और आजादी के प्रति समर्पण एवं प्रतिबद्धता का परिचय दिया। कर्जन के शासनकाल को ब्रिटिश शासनकाल का चरम उत्कर्ष कहा जाता था। हर तरह से इंग्लैंड का खजाना भरने का काम लार्ड कर्जन ने किया था। बंगाल की जनता ने इसे अपना अपमान समझा और विराट एकजुटता का परिचय दिया। लेकिन कर्जन भी इसके खिलाफ और आतंककारी हो गया। उसने 1906 में होने वाले कांग्रेस के बंगाल प्रांत के अधिवेशन को भंग कर दिया। दमन जारी रहा। वंदे मातरम् के नारे पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[6]

बंग-भंग के विरूद्ध आंदोलन के दौरान हालत यह थी कि लोग उन जलसों का बहिष्कार करने लगे जहां भोजन में विदेशी नमक का इस्तेमाल होता था। छह वर्षीय लड़की अपने सन्निपात में चिल्लाई मैं विदेशी दवा नहीं खाऊँगी। जब पूर्वी बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर दौरे पर फरीदपुर स्टेशन पहुंचे, तो उन्हें अपना सामान ले जाने के लिए एक भी कुली नहीं मिला। इस आंदोलन ने आजादी की लड़ाई को गति प्रदान की। कांग्रेस और ब्रिटेन सरकार के बीच की खाई और चौड़ी हो गई। कांग्रेस के भीतर नरम और गरमपंथियों की जमात खड़ी हो गई बीसवीं सदी का दूसरा दशक इसी तरह के द्वंद्वों से होकर गुजरा। पं. मोतीलाल नेहरू इससे अलग नहीं रह सके और जल्द ही संघर्ष में कूद पड़े।[7]

मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरू के विचारों में शुरू से ही काफी फर्क रहा। जवाहर लाल नेहरू शुरू से अंग्रेजी के प्रति किसी भी तरह की नरमी बरतने के खिलाफ थे। खासकर पूर्ण आजादी के मसले पर। मोतीलाल नेहरू के बाद के दिनों में अपने आप में काफी कुछ संशोधन किया। 22 जून, 19174 को इलाहाबाद में हुई एक आमसभा में मोतीलाल नेहरू ने जो कहा वह उनके बदले हुए दृष्टिकोण को दर्शाता है – ''देश इस समय संक्रांति काल से गुजर रहा है। सरकार ने सारे राष्ट्रीय लक्ष्यों के प्रति खुला जेहाद घोषित कर दिया है। क्या हम उन अफसरी नाराजगी के आगे झुक जाएंगे? आइए हम सब लोग होम रूल लीग के झंडे को ऊंचा उठा दें तथा तैंतीस करोड़ कंठ होम रूल का नारा बुलंद करें। नौकरशाही तो प्रारंभ से ही होम रूल के लिए अर्थी तैयार कर रही है।इस सभा के तीन दिन बाद मोतीलाल ने इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री को तार भेजा। तार में ब्रितानी सरकार द्वारा भारत पर किए जा रहे असंवैधानिक व्यवहार की निंदा की गई थी।[8]

यह एक अजब विरोधाभास है कि मोतीलाल स्वभाव से गरमपंथी होते हुए विचारों से नरमपंथी थे। उनका मिजाज गुस्सैल और अड़ियल था। उन्हें ब्रिटिश नौकरशाही का दंभ काटे की तरह चुभता था। उनका खून खौल उठता था। इसीलिए जब पंजाब में लाला लाजपत राय पर फिरंगी हुक्मरानों ने बेवजह हाथ उठाया और उन्हें गिरफ्तार कर निर्वासित किया, तो मोतिलाल उबल पड़े थे। लेकिन वैचारिक तौर पर गरमपंथियो के प्रति बहुत कटु और आक्रामक थे। यह बात उनके पुत्र जवाहर लाल नेहरू को कभी रास नहीं आई। जवाहर गरमपंथियों के नजदीक थे। मोतीलाल द्वारा लिखे गए एक लेख पर जवाहर लाल की टिप्पणी बहुत चोट करने वाली थी– ''लेख ने मुझे यह सोचने के लिए विवश किया कि आप जरूरत से ज्यादा नरमदलीय है। अगर मैं आपको अच्छी तरह न जानता होता, तो यही कहा होता कि लेख किसी अत्यधिक राजभक्ति की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति द्वारा लिखा गया है।[9]

प्रस्तुत आलेख ऐतिहासिक अनुशीलन पर आधारित है। पक्षपात रहित तथा वस्तुनिष्ठ पद्धति के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया है। फ्रांस की राज्य क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति ने राष्ट्रवाद को एक नई दिशा दी। दुनिया में स्वतंत्रता के लिये संघर्श चल रहा था। स्वतंत्रता के संघर्ष की चिंगारी ने भारतीय जनमानस को आलोकित किया। फलत: भारत में भी राष्ट्रवाद का विकास हुआ। ए0आर0 देसाई ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति ''Social Background of the Indian Nationalism'' में स्पष्ट किया है कि आधुनिक शिक्षा, औद्योगिकीकरण, श्रमिक संघ, मजदूर आंदोलन तथा पत्रकारिता आदि के आधार पर राष्ट्रवाद का विकास हुआ। पंडित मोतीलाल नेहरू पत्रकारिता से भी जुड़े हुए थे। वे राष्ट्रवाद की चिंतनधारा के प्रति समर्पित थे। उन्होंने काँग्रेस सभापति के रूप में राष्ट्रवाद तथा स्वाधीनता संग्राम को नई दिशा दी। प्रस्तुत शोध में इन सभी बिन्दुओं का विश्लेषण तथा विवेचन किया गया है।[10]

पंडित मोतीलाल नेहरू के संदर्भ में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पंडित जवाहर लाल नेहरू की आत्मकथा है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में मोतीलाल नेहरू के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं सूचनाओं को रेखांकित किया है। पंडित मोतीलाल नेहरू के निधन के समय महात्मा गाँधी मौजूद थे। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में इस दृश्य का मार्मिक विश्लेषण किया है। उनके व्यक्तित्व, स्वभाव, जीवन दृष्टि तथा चिंतन के संबंध में भी पंडित जवाहर लाल नेहरू का विवरण प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण है।[11]

"Selected Works of Motilal Nehru (Volume-1-6) का संपादन डी0एन0 पनिग्रही तथा रवीन्द्र कुमार ने किया है। इस ग्रंथ के आधार पर मोतीलाल के चिंतन तथा राष्ट्रवाद के संबंध में उनके विचारों को जाना समझा जा सकता है। यू0सी0 भटाचार्य ने ⁄च्ंदकप डवजपसंस छमीतन रू भ्पे स्पमि ंदक ॅवताष में उनके संबंध में कतिपय महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं सूचनाओं को प्रस्तुत किया है। बलराम नन्दा द्वारा लिखित तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के द्वारा प्रकाशित ''मोतीलाल नेहरू'' नामक ग्रंथ में उनसे संबंधित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का बिन्दु-बिन्दु विश्लेषण किया गया है। महात्मा गाँधी तथा देशरत्न डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने भी अपनी आत्मकथा में पंडित मोतीलाल नेहरू के संबंध में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उपस्थापित किया है।

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों को रेखांकित किया गया है :

(क) प्रस्तुत शोध के आधार पर पंडित मोतीलाल नेहरू के जीवन, व्यक्तित्व तथा विचारधारा का विश्लेषण किया जायेगा। साथ ही देश सेवा में समर्पित नेहरू परिवार के बुनियादी स्तंभ के रूप में पंडित मोतीलाल नेहरू के योगदानों का मूल्यांकन किया गया है।[12]

(ख) राष्ट्रवादकी सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि की व्याख्या की जायेगी। भारत में राष्ट्रवादके विकास की ऐतिहासिक धारा को स्पष्ट किया जायेगा तथा राष्ट्रवाद के विकास में मोतीलाल नेहरू के अप्रतिम योगदानों का गहन एवं गंभीर विश्लेषण किया गया है।

(ग) स्वाधीनता आंदोलन में पंडित मोतीलाल नेहरू के योगदानों का विवेचन किया गया है। साथ ही शिक्षा, संस्कृति एवं पत्रकारिता के विकास में उनके अविस्मरणीय भूमिका की व्याख्या की गयी है।

पंडित मोतीलाल नेहरू का जन्म एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काल-खंड में हुआ था। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। विभिन्न रूपों में भारतीय राष्ट्रवादके विकास के अभियान को एक नई ऊर्जा प्राप्त हुई। मोतीलालनेहरू कुशल तथा प्रखर अधिवक्ता थे। उन्होंने देश की राजनीति तथा स्वाधीनता संग्राम की दिशा को एक नया स्वरूप प्रदान किया। शिक्षण संस्थानों के विकास में उनका योगदान था। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने प्रयोग किये। उन्हें जेल की कठिन यातना से भी गुजरना पड़ा। उनके कुशल पारिवारिक संरक्षण में उनके परिवार के सभी बच्चें देश के लिए समर्पित हो गये। वे चिंतक भी थे। उनके भाषणों का संकलन भी प्रकाशित हुआ है। उनके विचारों से देश की जनता को एक नई रचनात्मक ऊर्जा प्राप्त होती थी। वे लोकतंत्र तथा मानवतावाद के संदेशवाहक थे।[13]

भारतीय राष्ट्रवाद के अध्ययन के लिये स्वाधीनता आंदोलन तथा राष्ट्रवाद से जुड़े महत्त्वपूर्ण महापुरुषों तथा चिंतकों का अध्ययन प्रासंगिक सिद्ध हो सकता है। वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के आधार पर किसी एक महापुरुष सिद्ध हो सकता है। वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के आधार पर किसी एक महापुरुष का सूक्ष्म एवं संपूर्ण अध्ययन होता है तथा इस अध्ययन के आधार उनसे जुड़े महत्त्वपूर्ण काल-खंड के संबंध में परिज्ञान प्राप्त होता है। इतिहास के अध्ययन में सूक्ष्म अध्ययन तथा वैयक्तिक अध्ययन पर बल दिया जा रहा है। इस तरह का अध्ययन प्रामाणिक, सूक्ष्म एवं गंभीर होता है। फलत: इस प्रकार के अध्ययनों का ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वर्त्तमान अध्ययन इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास होगा।

प्रस्तुत आलेख पंडित मोतीलाल नेहरू तथा उनके काल-खंड पर केन्द्रित है। अत: उनसे जुड़े अभिलेखों, पत्रों, संस्मरणों तथा अन्य संबंधित संदर्भ स्रोतों का गहन उपयोग किया गया है। पंडित मोतीलाल नेहरू द्वारा लिखित पुस्तक, संस्मरण, निबंध तथा अन्य रचनाओं का उपयोग किया गया है। उनके भाषणों के संकलन का भी घटनाओं के विवेचन के लिये उपयोग किया गया है। उनके समकालीन कतिपय महापुरुषों ने आत्मकथा का लेखन किया है। उन आत्मकथाओं का भी अध्ययन एवं अवलोकन किया गया है। अध्ययन का केन्द्र स्थल इलाहाबाद में अवस्थित आनन्द भवन है। आनन्द भवन में उनसे संबंधित पर्याप्त एवं प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है।[14]

पंडित मोतीलाल नेहरू के पारिवारिक सदस्य आज भी राजनीति तथा सत्ता के शीर्ष पर है। अत: यथासंभव उनके पारिवारिक सूत्रों से भी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन किया गया है। अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर होगा। नये तथ्यों की व्याख्या की गयी है तथा पुराने तथ्यों का सत्यापन किया गया है। घटनाओं की क्रमबद्धता का अध्ययन किया गया है। सूचना तकनीक के साधना का भी उपयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध आलेख पंडित मोतीलाल नेहरू के अध्ययन एवं अनुशीलन पर केन्द्रित है। वस्तुत: भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पंडित मोतीलाल नेहरू का योगदान बहुमुखी है। पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रवाद की विचारधारा में उग्र राष्ट्रवाद का कोई स्थान नहीं है। रवीन्द्र नाथ टैगोर की तरह मोतीलाल नेहरू का भी यह दृष्टिकोण था कि राष्ट्रवाद के साथ वैश्विक चेतना जुड़ा हुआ है। उनका माना था कि व्यक्ति को अपने देश के साथ साथ दुनिया के कल्याण की चिंता भी करनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. ए0आर0 देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1948, पृ0 78
2. विपिन चन्द्रा, इंडिया स्ट्रग्ल फॉर इन्डेपेन्डेन्स, पेंग्विन बुक्स, न्यू दिल्ली, 1989, पृ0 78
3. डी0एन0 पनिग्रही, रवीन्द्र कुमार, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ मोतीलाल नेहरू, विकास पब्लिकेशन्स, 1995, पृ0 123
4. पंडित जवाहर लाल नेहरू, आत्मकथा, पेंग्विन, युनाइटेड किंगडम, 2004, पृ0 45

5. यू0सी0 भट्टाचार्य, पंडित मोतीलाल नेहरू: हिज लाइफ एण्ड वर्क, पॉपुलर, प्रकाशन, बॉम्बे, 1990, पृ0 135
6. वही
7. वही, पृ0 136
8. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 2011, पृ0 40
9. रवीन्द्र नाथ टैगोर, राष्ट्रवाद नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली, 2003, पृ0 174
10. लाल बहादुर वर्मा, आधुनिक विश्व का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015 पृ0 96
11. लाल बहादुर वर्मा, आधुनिक विश्व का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015 पृ0 96
12. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ 96
13. सव्यसाची भट्टाचार्य, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ0 47
14. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ0 12

भारत में गरीबी के *बदलते आयाम : एक अध्ययन*

राकेश कुमार

शोध-छात्र
अर्थशास्त्र विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गरीबी एक बहु-आयामी और जटिल मुद्दा है जिसके अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति, संसाधनों पर नियंत्रण का अभाव, शिक्षा और कार्य-कुशलता की कमी, खराब स्वास्थ्य एवं कुपोषण, घर का अभाव, पेयजल और स्वच्छता तक पहुँच न होना, हिंसा और अपराध का आसानी से शिकार हो जाना तथा राजनीतिक एवं वैचारिक स्वतंत्रता की कमी जैसी बातें शामिल होती हैं गरीबी की परिभाषा बहुत कम आय अथवा अपर्याप्त सम्पदा के कारण जीवन, स्वास्थ्य और सक्षमता जैसी न्यूनतम आवश्यकताओं तक पहुंच हासिल न कर पाने के रूप में की जाती है।

कृष्ण कुमार के अनुसार, भारत में लोग व्यापक रूप से एकमत हैं कि निम्नांकित बातों का समावेश होना चाहिए : 1. पर्याप्त पोषण वाला आहार, वस्त्र तथा आवास एवं अन्य अत्यावश्यक वस्तुएँ तथा 2. न्यूनतम स्तर की शिक्षा, हेल्थकेयर, स्वच्छ जल की आपूर्ति एवं साफ-सुथरा परिवेश। दोनों ही श्रेणियों के अंतर्गत विशिष्ट वांछित तत्वों के बारे में विधि-विधान निर्धारित हैं पहली श्रेणी के तत्वों तक पहुंच हासिल कर सकने की लोगों की क्षमता 'गरीबी रेखा' को परिभाषित करती है। किसी देश में कितनी गरीबी व्याप्त है इसे इस बात से मापा जाता है कि गरीबी रेखा से नीचे कितने लोग रह रहे हैं तथा कुल जनसंख्या में उनका अनुपात क्या है, जिसे 'गरीबी अनुपात' कहते हैं।[1]

गरीबी रेखा का निर्धारण कार्य और क्षमता की दृष्टि से स्वीकार्य जीवन-स्तर सुनिश्चित करने के लिए वांछित व्यय के आधार पर किया जाता है। चूंकि भोजन हमारी सभी बुनियादी आवश्यकताओं में सबसे प्रमुख है और जीवन तथा कार्य के लिए इससे आवश्यक पोषण प्राप्त होता है, अत: गरीबी रेखा का निर्धारण कैलोरी ग्रहण करने की दृष्टि से न्यूनतम राष्ट्रीय मानक के आधार पर किया जाता है। योजना आयोग ने ''न्यूनतम आवश्यकताओं तथा खपत की प्रभावी मांग के प्रक्षेप के लिए नियुक्त कार्यबल'' द्वारा दी गई गरीबी की परिभाषा स्वीकार की है। आय एवं गरीबी पद्धति का इस्तेमाल करते हुए, इस कार्यबल ने गरीबी रेखा की परिभाषा प्रति व्यक्ति मासिक व्यय के उस मध्य बिंदु के रूप में की है जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति दैनिक 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी ऊर्जा ग्रहण की जाती हो। इस आधार पर, 1973-74 के मूल्यानुसार, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 49.06 रुपया तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 56.64 रूपया का कट-ऑफ बिंदु निर्धारित होता है। इस आधार पर, वर्ष 2004-05 के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 259.89 रूपया तथा शहरी क्षेत्रों के लिए 523.18 रूपया का कट-ऑफ बिंदु तय किया जाता है। पांच सदस्यों वाले किसी परिवार के लिए, गरीबी रेखा ग्रामीण क्षेत्रों में 21593 रूपया तथा शहरी क्षेत्रों में 31390 रूपया की वार्षिक आय पर निर्धारित होती है।[2]

उपरोक्त कट-ऑफ बिंदुओं के साथ, 1972-73, 1977-78, 1987-88, 1993-94 एवं 2004-05 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी का प्रतिशत जिसे 'हेड काउंट अनुपात' कहते हैं, तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1

गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी का प्रतिशत

	1972&73	1977&78	1987&88	1993&94	2004&05	2007*
xkeh.k	54-10	51-20	39-09	37-27	28-30	21-0
'kgjh	41-20	38-20	38-20	32-36	25-70	14-6
lai.k Hkkjr	51-50	48-30	38-86	35-97	27-50	19-2

उपरोक्त तालिका से यह पता चलता है कि योजना आयोग के अनुसार भारत की कुल आबादी का करीब एक-चौथाई भाग अर्थात लगभग 315 मिलियन गरीबी रेखा से नीचे रहता है। यह गरीबी का अफीका से भी बदतर चित्र उपस्थित करता है। किंतु पूरे देश में गरीबी का समान वितरण नहीं है। प्रतिशत की दृष्टि से कहें तो सभी राज्यों में संदिग्ध रूप से ओड़िसा में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात सबसे ज्यादा (46.4 प्रतिशत) है। इसके बाद बिहार (42 प्रतिशत), छत्तीसगढ़ (41 प्रतिशत), उत्तराखंड (39.7 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (32.7 प्रतिशत) तथा महाराष्ट्र (30.8 प्रतिशत) का स्थान आता है। लेकिन यदि केवल संख्यात्मक दृष्टि से बात करें तो उत्तर प्रदेश इस सूची में सबसे आगे है जहाँ करीब 6.4 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं। दूसरा स्थान बिहार का है जहां करीब 5.1 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे रहकर गुजर-बसर करते हैं। उसके बाद है मध्य प्रदेश (3.3 करोड़), महाराष्ट्र (3.2 करोड़), पश्चिम बंगाल (2.2 करोड़), ओड़िसा (1.8 करोड़) और आंध्र प्रदेश (1.2 करोड़)। देश के कुल गरीबों की 51 प्रतिशत जनसंख्या बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में रहती है। यदि इस सूची में असम, ओड़िसा, पश्चिम बंगाल तथा कुछ केंद्रशासित प्रदेशों को भी जोड़ दें तो ये सारे राज्य मिलकर देश के 70 प्रतिशत गरीबों का प्रतिनिधित्व करेंगे।[3]

तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट

सुरेश तेंदुलकर समिति ने वर्ष 2009 के आखिर में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस समिति को गरीबी रेखा और इसके नीचे रहने वाली आबादी के अनुपात की संगणना करने का आदेश दिया गया था और कहा गया था कि जरुरी होने पर समिति गरीबी-रेखा का पुन:निर्धारण करे। प्रति व्यक्ति कैलोरी गणना के ऊपरी बिंदु को खत्म करके समिति ने नियमों को फिर से नियत किया। उसने मूल्य सूचियों को आदर्श रूप दिया और साथ ही व्यक्ति के उपभोग के दायरे में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं किराया तथा परिवहन पर होने वाले वास्तविक व्यय को शामिल करने के लिए मानदंड का विस्तार किया तथा इसने ग्रामीण एवं शहरी गरीबों के लिए एक ही मानदंड का प्रयोग किया जो कि पहली बार हुआ।

इस नए मानदंड के आधार पर, समूह ने पूर्व में आकलित गरीबी संबंधी आंकड़ों का पुनरीक्षण किया। तदनुसार, संपूर्ण भारत स्तर पर 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्रों में 50.1 प्रतिशत गरीबी थी, शहरी क्षेत्रों में 31.8 प्रतिशत तथा पूरे देश में 45.3 प्रतिशत जबकि 1993-94 के आधिकारिक अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 37.2 प्रतिशत गरीबी थी, शहरी क्षेत्रों में 32.6 प्रतिशत तथा पूरे देश में 36 प्रतिशत। इसी तरह, 2004-05 के आधिकारिक अनुमान अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र में 28.3 प्रतिशत, शहरी क्षेत्र में 25.7 प्रतिशत तथा समग्र देश में 27.5 प्रतिशत के मुकाबले गरीबी संबंधी नए अनुमान ग्रामीण, शहरी एवं पूरे देश के लिए क्रमश: 41.8 प्रतिशत, 25.7 प्रतिशत तथा 37.2 प्रतिशत हैं।[4]

गरीबों का पता लगाना

गरीबी रेखा में जो परिवर्तन हुआ है उसका आशय यह भी है कि 29 में से प्रत्येक राज्य में गरीबों की प्रति व्यक्ति गणना भी बदल गई है। सबसे अधिक गरीब ग्रामीण जनसंख्या वाले छह राज्य संयोगवश वे ही राज्य हैं जहाँ माओवादियों की समस्या गंभीर है जिसे सरकार ने देश की सबसे बड़ी आंतरिक चुनौती करार दिया है।

एनएसएसओ के 61वें चक्र में वर्ष 2004-05 के लिए दो विधियों के आधार पर गरीबी संबंधी पूर्वानुमान लगाया गया है: 1. यूआरपी (यूनिफॉर्म रीकॉल पीरियड यानी समरूप स्मरण अवधि) तथा 2. एमआरपी (मिक्स्ड रीकॉल पीरियड यानी मिश्रित स्मरण अवधि)। एक ओर जहां यूआरपी के लिए खपत की सभी वस्तुओं के लिए 30 दिनों की स्मरण/संदर्भ अवधि का प्रयोग किया जाता है, वहीं एमआरपी हेतु 5 गैर-खाद्य वस्तुओं के लिए-जिन्हें कभी-कभार खरीदा जाता है-365 दिनों की स्मरण/संदर्भ अवधि का प्रयोग किया जाता है, वहीं एमआरपी हेतु 5 गैर-खाद्य वस्तुओं के लिए-जिन्हें कभी-कभार खरीदा जाता है- 365 दिनों की स्मरण/संदर्भ अवधि का प्रयोग किया जाता है। इन वस्तुओं में शामिल हैं- वस्त्र, टिकाऊ वस्तुएं, शिक्षा एवं संस्थात्मक मेडिकल व्यय तथा बाकी वस्तुओं के लिए 30 दिनों की स्मरण/संदर्भ अवधि। इन दोनों ही विधियों पर आधारित आंकड़े तालिका-2 में प्रस्तुत है। एनएसएसओ के 61वें चक्र के अनुसार, 2004-05 में पूरे देश में गरीबी का अनुपात यूआरपी के आधार पर 27.5 प्रतिशत तथा एमआरपी के आधार पर 21.8 प्रतिशत था। यूआरपी के आधार पर, ग्रामीण भारत का गरीबी अनुपात से बहुत ज्यादा है जबकि एमआरपी के आधार पर दोनों प्राय: एक समान हैं।

तालिका-2

61वें एनएसएस चक्र के आधार पर गरीबी का पूर्वानुमान (2004-05)

lnHk vof/k	li.k Hkkjr	xkeh.k	'kgjh
यूनिफॉर्म रीकॉल पीरियड विधि	27.5	28.32	5.7
मिक्स्ड रीकॉल पीरियड विधि	21.8	21.8	21.7

स्रोत : भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण, 2007-08 (दिल्ली, 2008)

गरीबी के कारण

गरीबी के आधारभूत कारण निम्नांकित माने जा सकते हैं[5]:

अल्प विकास एवं बढ़ती बेरोजगारी

भारतीय आर्थिक स्थिति के दो महत्वपूर्ण तथ्य हैं- अभी हाल के दिनों तक आर्थिक प्रगति की मंद गति तथा रोजगार में कम लोच का होना। सबसे निर्णायक कारक यह रहा है कि कृषि सेक्टर जिसमें पारंपरिक रूप से सबसे ज्यादा संख्या में श्रमिकों की जरुरत रही, उसने रोजगार के क्षेत्र में नगण्य विकास दर्शाया है। दो करोड़ (2003-04 में) बेरोजगार लोगों के साथ, भारत बेरोजगारी की चिर-प्राचीन समस्या की गिरफ्त में है। इसके कारण उत्पादन कम होता है और इसलिए आय भी कम होती है और कर्ज बढ़ता है। बेरोजगारी और कर्ज की समस्या गरीबी को और अधिक उग्र बनाती जा रही है।

कमजोर विकास नीति

हमारी योजनाओं, खासतौर पर पिछले छह दशकों में कृषि क्षेत्र के लिए बनाई गई योजनाओं, में गरीबी उन्मूलन के लिए गंभीर विकास कार्यनीति नहीं बनाई नहीं गई है। वास्तविक अर्थों में, विकास कार्यनीति की मुख्य कमजोरी यह है कि देश के पिछड़े क्षेत्रों

में रहने वाले छोटे-छोटे खेतिहरों की विशाल संख्या के बजाय यह बड़े उत्पादकों से ज्यादा वास्ता रखती है। इसके निम्नांकित परिणाम हुए हैं[6]:

1. राष्ट्रीय दृष्टिकोण से, भूमि, श्रम और पूंजी का उपयोग क्षमता से बहुत कम किया गया है।
2. आधुनिक टेक्नोलॉजी और इनपुट के लिए जनता के धन पर बहुत ज्यादा निर्भर होने के कारण इस पर काफी फालतू खर्च आता है तथा पारंपरिक, स्थानीय एवं स्व-सृजित संसाधनों के उपयोग की बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाती है।
3. यह परजीवी स्वभाव का है क्योंकि आधुनिक कृषि से सृजित अतिरिक्त उत्पादन पूंजी एवं गैर-फॉर्म सेक्टर के निर्माण में पर्याप्त योगदान नहीं दे पाते, बल्कि उन्हें विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष उपभोग की दिशा में लगा दिया जाता है।

संक्षेप में, वृहत् अर्थशास्त्रीय विकास गांवों के गरीब लोगों के लिए उत्पादक परिसंपदाओं, लाभदायक रोजगार, ठोस आमदनी या गुणात्मक जीवन-शैली के सृजन की दृष्टि से बेहतर परिप्रेक्ष्य उपस्थित करने में नाकाम रहा है। इस परिदृश्य का सारांश प्रस्तुत करते हुए लॉर्ड मेघनाद देसाई उचित ही कहते हैं कि ''भारत का 'गरीबी लाओ' कार्यक्रम इसके 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम से ज्यादा बड़ा है।''

आय के वितरण में असमानता

भारत में गरीबी का एक अन्य प्रमुख कारण है ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के अर्थतंत्र में घोर असमानताओं का होना। इन असमानताओं का कारण है परिसंपत्तियों या 'एॅसेट्स' के स्वामित्व में अंतर। ग्रामीण क्षेत्रों में इस 'एॅसेट्स' से तात्पर्य है भूमि और शहरों में भौतिक संपदा। उत्पादक 'एॅसेट्स' के पुनर्वितरण के लिए किये जा रहे प्रयास निम्नांकित कारणों से सीमित हो जातें:

1. प्राकृतिक संसाधनों, जिनमें भूमि भी शामिल है, पर पड़ने वाला जनसांख्यिक दबाव एॅसेट्स के स्थानांतरण के कार्य को परिसीमित कर देता है।
2. लोकतांत्रिक राजनीतिक वातावरण के कारण उत्पादन एवं वितरण की प्रक्रिया में कोई आमूलचूल परिवर्तन किया जाना संभव नहीं हो सकता।

सामान्य संपदा संसाधनों का निजीकरण

कुछ विद्वानों में संवितरण के एक अन्य परिदृश्य की ओर हमारा ध्यान खींचा है, अर्थात् सामान्य संपदा संसाधन जो कि ग्रामीण गरीबों के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सीपीआर का निजीकरण, कृषि का गहनीकरण, पर्यावरणीय क्षरण तथा आर्थिक कार्यकलापों का व्यवसायीकरण इत्यादि ने कमजोर वर्ग के लोगों को एकदम हाशिये पर ला दिया है। इससे महिलाओं तथा सीमांत वर्ग के लोगों की स्थिति पर सीधा असर पड़ता है तथा उन्हें और अधिक संवेदनशील बना देता है। उनके सीमित संसाधन जोखिम से जूझने और उसे कम करने में उनकी कार्यनीति को प्रभावित करते हैं। साथ ही, निजी अथवा सार्वजनिक बीमा प्रणालियों तक उनकी पहुंच बहुत ही सीमित होती है।[7]

स्वास्थ्य एवं सामाजिक कारक

हेल्थकेयर की अच्छी स्थिति का न होना, पारंपरिक रूप से सामाजिक कार्यों पर होने वाले फिजूलखर्च एवं उच्च ब्याज पर निजी उपभोग क्रेडिट इत्यादि लोगों को गरीबी की ओर धकेलने वाले कुछ अन्य कारक हैं।

पर्यावरणीय क्षरण एवं पेड़ों का विनष्ट होना

पर्यावरणीय क्षरण, पेड़ों का विनाश तथा प्राकृतिक संसाधनों के समुचित प्रबंधन में हमारी असफलता इत्यादि गरीबी के कुछ प्रमुख कारण हैं- खासतौर पर सूखी खेती वाले क्षेत्रों में। जनसंख्या विकास एवं गरीबी के अलावा, उच्च आय वाले वर्ग से (जिनमें शहरी क्षेत्र भी शामिल हैं) ईंधन, लकड़ी, मांस एवं ऊन इत्यादि की मांग पर्यावरणीय क्षरण का एक प्रमुख कारण रहा है।[8]

हाल में हुए तकनीकी परिवर्तन

व्यापक कंप्यूटरीकरण एवं इसके फलस्वरूप संपूर्ण अर्थव्यवस्था में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार के कारण, 1980 के बाद के दशक से महत्वपूर्ण तकनीकी क्रांति हुई हैं। इस परिवर्तन के कारण कॉलेज शिक्षित एवं कार्यकुशल लोगों का महत्व बढ़ा है जबकि अल्पकुशल एवं अकुशल कारीगरों की मांग घटी है जिन्हें गरीबी रेखा से नीचे धकेल दिया गया है।

गरीबों में जनसंख्या का तीव्र विकास

भारत में, खासतौर पर गरीब समुदायों के बीच, जनसंख्या की उच्च वृद्धि-दर देश में बढ़ती गरीबी की समस्या के लिए जिम्मेदार है। गरीबों के बीच जनसंख्या दर तेज होने के अनेक कारण हैं, जैसे-निरक्षरता, पारंपरिक दृष्टिकोण, परिवार नियोजन का अभाव, बेटा पाने की चाहत, इत्यादि। स्पष्ट है कि बड़े परिवारों और कम आय के कारण वे परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी सक्षम नहीं हैं।

मुद्रास्फीति के दबाव

मूल्यों में अनवरत, वृद्धि, विशेषकर अत्यावश्यक वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने, से गरीबों की मुसीबतें बढ़ी हैं। मूल्यों में हुई इस बेतहाशा बढ़ोत्तरी के कारण निश्चित एवं कम आमदनी वाले लोगों की वास्तविक आय पर असर पड़ा है। इससे उनकी क्रय-शक्ति घटी है और इसके फलस्वरूप उनके जीवन-स्तर में कमी आई है।

पूंजी की कमी

पूंजी का निर्माण एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है जिससे आर्थिक विकास हो सकता है और गरीबी में कमी आ सकती है। भारत में, पूंजी का अभाव है। इससे कम उत्पादन क्षमता प्रतिफलित होती है और गरीबी का जन्म होता है।

वैश्वीकरण ने कई घर-परिवारों को गरीबी-रेखा से नीचे धकेल दिया है, क्योंकि कुछ अति महत्वपूर्ण तयशुदा फसलों का उत्पादन कम हो गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के लोकप्रिय होने के बाद से, कृषि भूमि का उपयोग निर्यात-उन्मुखी फसलों के उत्पादन के लिए किया जाने लगा है। साथ ही उदारीकरण के कारण छोटे-छोटे किसान वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्द्धा करने पर मजबूर हुए हैं जहां कृषि संबंधी उत्पादों की कीमत बहुत कम है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. सिंह, कृष्ण कुमार, ''गरीबी के चक्र में ग्रामीण गरीब'', *कुरुक्षेत्र*, वर्ष-46, अंक-10, अगस्त 2001.
2. उपरोक्त.
3. सिंह रहीस, ''गरीबी निर्धारण का अर्थशास्त्र'', *योजना*, वर्ष-52, अंक-11, 2008.
4. उपरोक्त.
5. सुमन, अनुपम कुमार, ''गरीब भारत की भावी चुनौतियाँ'' *कुरुक्षेत्र*, वर्ष-46, दिसम्बर 2011
6. उपरोक्त
7. उपरोक्त.
8. प्रधान, वसंत के. एण्ड एम.आर सलूजा, 'पोवर्टी स्टडी इन इंडिया : एक रिव्यू'', *एसीईआर वर्किंग पेपर*, नवम्बर 1998.

बदलते मूल्य एवं भारतीय दर्शन

सत्यप्रकाश तिवारी

सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय)
आई.ए.एस.ई. मानित विश्वविद्यालय, सरदारशहर (चुरू)

किसी भी इंसान के जीवन में मूल्यों का अहम् योगदान रहता है। क्योंकि इन्ही मूल्यों के आधार पर अच्छा या बुरा सही या गलत की परख की जाती है। इन्सान के जीवन की पहली पाठशाला उसका अपना परिवार ही होता है और परिवार समाज का एक अंग है उसके बाद उसका विद्यालय, जहाँ से मनुष्य शिक्षा हासिल करता है। परिवार,समाज और विद्यालय के अनुरूप ही एक व्यक्ति में सामाजिक गुणों और मानव मूल्यों का विकास होता है I हमारे समाज में प्रत्येक कार्य हेतु नियम बने हुए हैं उन्ही को जीवन मूल्य कहते हैं जैसे संप्रभुता, भाषा, संस्क्रति, अंत:करण की शुचिता, सतत सात्विकता से पूर्ण आनंदित,निष्ठापूर्वक जीवन जीने वाला तथा संयम, क्रोध न करना, ईर्ष्या का त्याग करना, ईमानदारी की भावना, उदारता, दया, करुणा, सहिष्णुता के भावों का सृजन करना इत्यादि हमारे मूल्य हैं। जीवन मूल्य या मानव मूल्य इस पर देश के विद्वानों में मत भिन्नता है वस्तुत: दोनों में बहुत अंतर नहीं है। दोनों को मिलाकर मूल्य आधारित शिक्षा कहना अधिक उपयोगी है। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक शिक्षा भी इसी में सम्मिलित है। मूल्य के अर्थ को हम इस प्रकार समझ सकते हैं:-

1. मूल्य शब्द का अर्थ कीमत, क्रय-विक्रय के अर्थ में उपयोग होता है।
2. जिसमें आदर्श और पुरुषार्थ हैं, जिसमे मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास हो सके।
3. मूल्य के अंतर्गत सभी गुण समाविष्ट होने चाहिए जिनका सम्बन्ध अभ्यंतर (आत्मनेपद) बाह्य (परस्मैपद) और एक साथ दोनों (उभयपद)।

अरविन्द के अनुसार :-''जब से जीवन मूल्यों का शिक्षा से विछोह हो गया है तब से देशवासी धर्म भ्रष्ट तथा लक्ष्य भ्रष्ट हो गये हैं।''

आज का मानव केवल अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए किसी भी व्यक्ति को दुखी कर सकता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा तक का सहारा ले सकता है। व्यक्ति अपने स्वार्थ में इतना आगे बढ़ गया है की उसे सही एवं गलत का ध्यान तक नहीं रहता है वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, चाहे वह लक्ष्य किसी भी साधन के द्वारा प्राप्त हो। केवल उसे अपना लक्ष्य ही दिखाई देता है। इसलिए वर्तमान समय में मूल्यों में परिवर्तन देखने को मिलता है जो कि हमारे समाज व राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है। हमारे देश में दिन प्रतिदिन जो हिंसा बढाती जा रही है उसका मूल उद्देश्य मानव जाति का स्वार्थ ही है। किन-किन क्षेत्रों में मूल्यों का परिवर्तन हुआ है उसके बारे में जानना आवश्यक है जो अग्रलिखित हैं।

बदलते मूल्य के क्षेत्र

1. स्वंत्रता से पहले देश में जहाँ एक और हमारे नेताओं ने अपने व्यवसाय को त्याग कर स्वयं को राजनीति में समर्पित कर दिया था, किन्तु उन्होंने राजनीति को कभी अपनी जीविका का साधन नहीं बनाया, जबकि आज राजनीति को एक खास लाभकारी व्यवसाय कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा।

2. आज राजनीतिक दलों और उनके नेताओं में उनकी अपनी कोई विचारधारा दिखाई नहीं देती है उनका एकमात्र कार्य सिर्फ अपना प्रभाव स्थापित करना सा ही दिखाई देता है, उनके संचार माध्यमों का वास्तविक प्रयोग तथ्यों से परिचित कराने के लिए नहीं अपितु जनता को अपने दलबल और शक्ति प्रदर्शन करने जैसा रह गया है।
3. जब भ्रष्टाचार एक क्रूर एवं पूर्णकालिक राजनितिक नियोजक और संयोजक होता है, तब अवसरवादिता और हिंसा परस्पर सहयोगी होते जाते हैं, आज इस बात को देश में आसानी से देखा जा सकता है।
4. आज देश में सांप्रदायिक घृणा, जातीय संघर्ष, भाषाई व क्षेत्रीय उग्रवाद की भावना ने सरकार के सम्मान व सत्ता के साथ जन जीवन के सामान्य स्वरूप को पूरी तरह से अशांत सा कर दिया है।
5. वैयक्तिक हितों के अनुरूप कानून एवं नियमों को तोड़ मरोड़कर और संशोधित किया जाना एक सामान्य सी प्रक्रिया होती जा रही है, कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि विधि या कानून की जगह अब सत्ताधारी व्यक्तियों ने ले ली है।
6. आज देश में लोग अपने को भारतीय कहने से पहले हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई कहना ज्यादा पसंद करते हैं।
7. कौमियत का मतलब मजहब से न होकर अपने मुल्क से होता है, कौमियत इंसानियत और मोहब्बत का एक पैगाम होती है जबकि मजहब लड़ने भिड़ने या मरने -मारने के नाम को नहीं कहते हैं, जबकि आज देश में ऐसी विचारधारा चन्द लोगों के व्यक्तिगत प्रभाव से प्रभावित हो रही है।
8. आज की राजनीति सफलता सहयोग और सेवा के लिए नहीं बल्कि व्यापार और व्यापारी के धन और बाहुबल से कहीं ज्यादा प्रभावित दिखाई देने लगी है।
9. आज की राजनीती में जाति एक बेहद अहम् मसला है, हर पार्टी और चुनाव का समीकरण सिर्फ जाति के इर्द-गिर्द घूम रहा है, सही अर्थों में देश राज्यो में नहीं जातियों में बँटा सा दिखाई देता है।
10. गरीबी और महंगाई को किसी ने कैसे भी कम नहीं किया है, ऐसे में किसान का भी कोई भला करेगा ये सोचना व्यर्थ और मजाक सा ही लगता है।
11. सरकारी ऑफिस और सरकारी नियमों की अफसरशाही ने जनता के कुछ लोग जो कि सज्जन, स]दय, सुशील और ईमानदारी से अपना काम और सहयोग चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिए दरवाजे बंद किये हुए है।
12. आज की मीडिया और पत्रकारिता को सत्य का दर्पण कहना इस सदी का शायद सबसे बड़ा झूठ साबित होगा।
13. कवि की कविता जो कभी जीवन का कटु सत्य कही जाती थी, चाटुकारिता, बाजीगरी ने उसे भी अछुता नहीं छोड़ा है।
14. आज अध्यात्म का रास्ता कुछ स्वयंभू गुरुओं के उत्पात से मुक्ति की जगह कोर्ट कचहरी और जेल के लिए खुल गया है।

खैर आज के समय में बातें तो बहुत हैं करने के लिए लेकिन सबसे बड़ी बात ये है कि आज हम इस गलतफहमी में रहने लगे हैं कि हम और हमारा समाज आधुनिक हो गया है और हमारे युवा यानि आज की पीढ़ी पुरातनवादी सोच से कहीं उपर उठ चुकी है, यदि ये सच है तो सबसे पहले हमे अपनी सोच में सुधार लाने की ज्यादा जरुरत है।

आधुनिकता को हम विकास का पर्याय कैसे भी नहीं मान सकते हैं, लेकिन हमारी सोच में आधुनिकता का होना विकास की ओर एक कदम कहा जा सकता है॰ देश में सोच का विकास हो और उसका लाभ देश के सभी वर्गों तक उचित प्रकार से पहुंचे ऐसी अपेक्षा हर देशवासी रखता है।

लेकिन जातिगत आरक्षण के आधार पर ही देश में विकास होगा ऐसी मान्यता को लेकर हम सामाजिक न्याय के लिए जाति को एक माध्यम बना सकते हैं किन्तु ऐसा करना भी कोई सरल काम नहीं है, इसका कारण जाति की अवधारणा में वोट का राजनीतिकरण है जो कि एक स्वयंसिद्ध नकारात्मक तथ्य है।

आज हर राजनेता और राजनितिक पार्टी के द्वारा देश में जाति को एक औजार की तरह प्रयोग में लेने की कोशिश की जा रही है, तो हमें भी ये समझने की जरुरत है कि औजार सिर्फ एक माध्यम होता है जिसका संचालन सिर्फ पूर्व निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति करना है, ऐसे संचालन से सिर्फ लक्ष्य तक पहुँचना आसान बनाया जा सकता है किन्तु लक्ष्य को पाना केसे भी संभव नहीं हो सकता है।

एक बार जरा सोचें, हमारे जन गन मन और शस्यश्यामला में भारत को रूप स्वरूप में वर्णित किया गया है, ये सिर्फ एक भौगोलिक व्याख्यान ही नहीं अपितु उसमे रहने वाले विभिन्न लोगों की सामाजिक और सांस्क्रतिक अस्मिता का रूप और भारतीय बहुआयामी संस्कृति की पहचान की परिभाषा भी है।

आज टिप्पणीकार के नजरिये से यदि हम देश और समाज की वस्तुस्थिति को देखते है तो नैतिकता का अभाव सर्वत्र दिखाई देता है, जबकि नैतिकता का विचार हमारे आर्थिक और तकनीकी विकास के क्षेत्र ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभी भी उतना ही प्रासंगिक है जितना की हम सोचते हैं।

स्वतंत्रता के बाद हमने एक अच्छा सा कानून और नियमावलियां तो बना डाली हैं लेकिन नैतिकता की नियमावली शायद कहीं किन्ही तालों में बंद होकर सी रह गई है, वैसे सच तो ये है कि नैतिकता के ह्रास का मूल कारण भ्रष्टाचार है, जब हम अनुचित तरीके से बिना किसी निश्चित योग्यता के होते हुए भी सब कुछ पाने की चाहत करने लगते हैं तो यहाँ से नैतिक पतन का प्रारंभ होकर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलने लगता है।

आज कहीं न कहीं हमारा ज्ञान और आत्मविश्वास इतना ढुलमुल है कि हम सत्य और न्याय की धुरी पर टिकी अपनी ही भारतीयता की अवधारणा की सोच को एक खुद्दारी न मानकर न जाने क्यों पुरानी और दकियानूसी सोच जैसा मानने लगे हैं।

आज का मानव केवल लोगों से बराबरी के चलते अपने मूल्यों व संस्कारों को बदल रहा है वह वास्तविकता को नहीं समझता वह केवल अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहता है इसके लिए मानव को भारतीय दर्शन का अध्ययन करना अति आवश्यक है क्योंकि जब तक वह भारतीय दर्शन का अध्ययन नहीं करेगा तब तक वह स्वयं को पहचान नहीं सकता एवं न ही अपने मूल्यों का सृजन कर सकता है।

दर्शन शब्द पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'दृशिर प्रेक्षने' धातु से ल्युट प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। अतएव दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना, जिसके द्वारा देखा जाए या जिसमे देखा जाए होगा। दर्शन श्ब्द का शब्दार्थ केवल देखना या सामान्य देखना ही नहीं है इसलिए पाणिनि ने धात्वर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग किया है। प्रदृष्ट ईक्ष्ण, जिसमे अन्तःचक्षुओं के द्वारा देखना या मनन करके सोपपत्तिक निष्कर्ष निकालना ही दर्शन का अभिधेय है। इस प्रकार के परिदृष्ट ईक्ष्ण के साधन और फल दोनों का नाम दर्शन ही होगा, जहा पर इन सिद्धांतों का संकलन हो उन ग्रंथो का भी नाम ही दर्शन होगा जैसे न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा आदि; आदि।

भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके, 'तत्त्व दर्शन' या 'दर्शन' का अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार। मानव के दुखों की निवृत्ति के लिए औरध्यान तत्त्व साक्षात्कार कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है। हृदय की गाँठ तभी खुलती है और शोक तथा संशय तभी दूर होते है जब एक सत्य का दर्शन होता है।

मनु का कथन है कि सम्यक दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बंधन में नहीं डाल सकता तथा जिनको सम्यक दृष्टि नहीं है वे ही संसार के महामोह और जाल में फँस जाते हैं। भारतीय ऋषियों ने जगत के रहस्य को अनेक कोनो से समझने की कोशिश की है। भारतीय दार्शनिकों के बारे में इलियट ने कहा था– भारतीय दार्शनिकों की सूक्ष्मताओं को देखते हुए यूरोप के अधिकांश महान दार्शनिक स्कूल के बच्चों जैसे लगते हैं।

भारतीय दर्शन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अस्तित्व में आया, कुछ भी प्रमाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना स्पष्ट है की उपनिषद काल में दर्शन एक पृथक शास्त्रके रूप में विकसित होने लगा था। तत्त्वों के अन्वेषण की प्रवृत्ति भारतवर्ष में उस सुदूर काल से है, जिसे हम 'वैदिक' युग के नाम से पुकारते हैं। ऋग्वेद के अत्यंत प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते है। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रग्यमुलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है। प्रज्ञा के बल से ही पहली प्रवृत्ति तत्त्वों के विवेचन में कृतकार्य होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क के सहारे तत्त्वों के समीक्षण में समर्थ होती है। अंग्रेजी शब्दों में पहली को हम 'इंटडुशनिस्टिक' कह सकते हैं और दूसरी को 'रेशनलिस्टिक'। लक्ष्य भी आरम्भ से ही दो प्रकार के थे; धन का उपार्जन और ब्रह्म का साक्षात्कार।

प्रग्यमूलक और तर्कमूलक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से आत्मा के औपनिषदिक तत्त्वज्ञान का स्फुट आविर्भाव हुआप् उपनिषदों के ज्ञान का पर्यवसान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करने वाले प्रतिभामूलक वेदांत में हुआ।

भारतीय मनीषियों के उर्वर मष्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्‌भूत हुआ उसने दूर दूर के मानवों के अध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र, नित्य शुद्ध; बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धरा को लोग दर्शन के नाम से पुकारते हैं। अन्वेषकों का विचार है कि इस शब्द का वर्तमान अर्थ में सबसे पहले प्रयोग वैशेषिक दर्शन में हुआ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मानव के बदलते मूल्य को अगर पूर्व की स्थिति में लाना है तो यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है अगर इन मूल्यों में इसी प्रकार परिवर्तन आता रहा तो एक समय ऐसा आएगा कि इस पृथ्वी पर केवल दानव ही पैदा होंगे एवं मानव कल्याण की भावना केवल कल्पना मात्र ही रह जाएगी। कोई व्यक्ति किसी से सहयोग की भावना एवं आशा नहीं कर सकता केवल इस पृथ्वी पर स्वार्थ ही रह जाएगा हर व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दुसरे व्यक्ति को नीचा दिखायेगा।

मूल्यों में सुधार करने हेतु सुझाव

1. विद्यालयों में सामूहिक प्रार्थना और प्रेरक प्रसंगों को महत्व दिया जाए।
2. नैतिक, अध्यात्मिक विकास के लिए सर्वधर्म सम्भाव की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाए।
3. परिवार, समाज और विद्यालय का परिवेश बालकों के नैतिक एवं चरित्र विकास में सहायक हो।
4. सभी शिक्षण संस्थाओं में कुछ मिनटों तक विद्यार्थियों को मौन रहकर ध्यान करवाना चाहिए और इसके बाद शिक्षण कार्य प्रारंभ करे इसमें शिक्षक भी शामिल हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सैनी, धर्मपाल, 2005, मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश, स्वरूप एंड संस, नई दिल्ली।
2. पचौरी, गिरीश 2009 शिक्षा के सामाजिक आधार आर लाल बुक डिपो मेरठ।
3. शर्मा राकेश, 2010, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
4. सिंह शिवपाल, रूपम फैन 2011, जीवन शैली प्रबंधन, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
5. कृसिंह सौरभ, सुशील कुमार 2011 शांति शिक्षा एवं सतत विकास आर लाल बुक डिपो मेरठ।
6. सिंह फरर्वाण डिगर, 2012, शिक्षा का दर्शन और समाजशास्त्र, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
7. बिहारीलाल रमन, पलोड़ सुनीता, 2013, शिक्षा का दर्शन और समाजशास्त्र, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
8. अग्रवाल कैलाश .शोभा, 2014, मूल्य शिक्षा, आर लाल बुक डिपो मेरठ।
9. कुमार संजय, 2017, भारतीय शिक्षा एवं आर्थिक मुद्दों का इतिहास, आर लाल बुक डिपो मेरठ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षणिक दर्शन के वर्तमान सन्दर्भ में समालोचनात्मक अध्ययन

शालू तिवारी

अस्स्टेिंट प्रोफेसर, बीएड तपेश्वर सिंह टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, आरा, बिहार

स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक, सत्य के अनिवेषक थे। उन्होंने हमारे आत्मसम्मान और प्रबल मानसिक जागरण के लिए भारत के गौरवमय अतीत को जागृत करने भारतीय संस्कृति की महनता हिन्दु पुनरूद्धर्वावाद की आवश्यकता को महसूस की और देशवासियों को यह चेतावनी दी कि वे विदेशी प्रभाव में अपने राष्ट्र गौरव को न भुलाये। फेंच लेखक रिचर्ड की मान्यता है कि महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त कराने और जाति बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। उनका आदर्श है आर्यवर्त उठ जाग और आगे बढ़ राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख आन्दोलनकारी, पटाभि सीतारमैया ने महात्मा गाँधी को ''राष्ट्रपितामाह'' के रूप में देखा।

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा के क्षेत्रा में जितनी व्यवहारिक रूचि ली, उतनी बहुत कम समाज सुधारकों ने ली। उनका अटल विश्वास था कि समुचित शिक्षा के अभाव में देशवासी कभी प्रगति नहीं कर सकेंगे। उन्होंने शिक्षा के व्यापक अर्थ के सन्दर्भ में कहा कि शरीर का निर्माण इन्द्रियों के साधन से और बौद्धिक शक्तियों का विकास व्रह्मचर्य पालन एवं शिक्षा पद्धति द्वारा अनिवार्य माना और शिक्षण कार्य को चरित्रवान तथा विद्ववान व्यक्तियों के हाथों में रखना चाहा। शिक्षा के सम्बंध में उन्होंने मनु के विचार का वर्णन किया कि ''राज्य तथा समाज के सब लोगों के लिए अनिवार्य कर देना चाहिए कि वे अपने बच्चों को पाँचवे अथवा आठवें वर्ष के बाद विद्यालय भेजे। इस अवस्था के बाद बालक को विद्यायल नहीं भेजना दण्डनीय अपराध है।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी सत्ता के शिखर पर थीं तब एक बार सार्वजनिक भाषाओं में उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमसे दो गलती हुई है। पहली हमने अंग्रेजों के जाने के बाद उनके द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली को जैसे का तैसे स्वीकार कर लिया है, और दूसरी गलती यह है कि हमने अंगेजों के समय की नौकरशाही और अफसरशाही को अपनी शासन व्यवस्था में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। आज देश में जितनी भी समस्याएँ है, उनका मुल्य कारण इन दोनों गलतियों को माना जा सकता है। किसी भी देश का विचारशील व्यक्ति अपने देशकाल परिस्थितियों के अनुसार शिक्षण प्रणाली में परिवर्तन की बात कहते है। भारत में भी यह बात उसी दिन से कही जा रही है जब स्वतंत्रता प्राप्त की गयी। किन्तु स्थिति आज भी ज्यों को त्यों बनी हुई है।

शिक्षा प्रणाली में स्थायित्व के ऐसे तत्व है कि यह बारम्बार प्रयत्न करने पर भी हटती नहीं और बज्रलेप की तरह चिपक कर बैठ गई है? या यह स्वीकार किया जाय कि इस प्रणाली के विरोधी यथार्थदर्शी है वे इसके गुणों को नहीं जानते। इसलिए इसके अवगुणों को आज तक नहीं जान पाये? या यह माना जाय कि भारत के निवासी कायर है जो इस प्रणाली में परिवर्तन तो बात को जोर-शोर से करते है, किन्तु हटाने के प्रश्न पर महाभारत के अर्जुन के व्यायमोह की स्थिति पैदा हो जाती है और वे अपने हाथ से गाण्डिव फेंककर ''**सीदन्ति गम गात्राणि... वेपथुश्च शरीरे में...**'' की मुद्रा किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर बैठ जाते है? या यह माना जाय कि भले ही अधिकांश जनता इस शिक्षण प्रणाली के परिवर्तन के पक्ष में हो, किन्तु इस शिक्षण प्रणाली के समर्थक लघुसंख्यक होकर भी इतने चतुर है कि वे अपने चतुराई से इस परिवर्तन को रोकने में सफल हो जाते है।

वर्तमान शिक्षण प्रणाली को अंग्रजों ने लार्ड मैकाले के दर्शन पर आधरित किया था कि जिसका परिणाम दीर्घकालीन समय तक भारतीयों को भोगना पड़ रहा है। इस सम्बंध में भारत के प्रथम प्रधनमंत्री प्रिंस ऑफ दि पार्लियामेन्ट की उपाधि प्राप्त स्व0 पं0 नेहरू का मत है कि 'I will we the last Englishman to be the Prime Minister of India' इस बात को अमेरिका के पूर्व राजदूत जॉन केनेथ, गैलब्रैथ ने अपनी पुस्तक एज ऑफ अनसर्टेण्टी में वर्णित किया।

अर्थात् वर्तमान शिक्षा प्रणाली सकारात्मक सोच के बजाय नकारात्मक सोच उत्पन्न करती है जबकि महर्षि दयानन्द की शिक्षा शिक्षक और शिक्षार्थियों में सदैव सकारात्मक सोच को बढ़ाती है। शिक्षा का वैदिक आदर्श क्या है? यदि इसका अर्थ स्पष्ट हो जाय जो समूल विवाद शांत हो जायेगा। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता को हृदय से अनुभव करते हुये भी उस दिशा में दिशाहीनता की स्थिति के कारण विद्यमान व्यवस्था समाप्त हो सके। एक बार मंजिल का नक्शा सामने आ जाने पर मार्ग तक पहुँचने का ज्ञान हो जायेगा।

उपनिषदकालीन ऋषियों ने, शिक्षा कैसी होनी चाहिए? इस सम्बंध में (बृहदारण्यकोपनिषद्) के मंत्रों का वर्णन निम्नवत् है:-

सहनावस्तु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

इस मंत्र के अनुसार गुरू और शिष्य शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही मंत्र का सम्बंध है 'अधिनतम शब्द'। अधीनतम् का अर्थ है विद्या स्वाध्याय- जो कुछ हम पढ़ते हैं, जिस धतु से स्वाध्याय का निर्माण होता है। अधीनता में भी यही धातु है। अधीनता अध्याय और अध्ययन तीन समानार्थक शब्द है। व्याकरण की दृष्टि से तीनों में केवल प्रत्यय का अन्तर है। इस मंत्र के अनुसार शिक्षा का पाँच उद्देश्य स्पष्ट होता है:-

1. आत्मरक्षा (सह नौ अवतु)
2. रोजी रोटी की व्यवस्था (सह नौ भुनक्तु)
3. सामाजिक प्राक्रम (सह वीर्य करवावहै)
4. तेजस्विना (तेजस्वि नौ अधीतमस्तु)
5. अविद्वेष (मा विद्विषावहै)।

जो शिक्षा छात्रों को आत्मरक्षा और शत्रुओं से देश रक्षा के योग्य न बना सके, जो शिक्षा छात्रों के रोजी-रोटी की समस्या हल न कर सके उन्हें श्रम से जी चुराना सिखाए, जो शिक्षा विजिगीषु समाज का निर्माण न कर सके, जो शिक्षा छात्रों को तेजस्वि बनाने के बजाय उनका तेज छीनकर अकाल वृद्धि बनाने के लिए छोड़ दे और जो शिक्षा हमारे समाज को ऐक्यबद्ध के बजाय रागद्वेष में फँसाकर नाना वर्गो जातियों में विभाजित करने की प्रवृति बना दें, जो शिक्षा समाज को जोड़ने के बजाय तोड़े वह सही शिक्षा नहीं है।

महर्षि दयानन्द द्वारा वर्णित शिक्षा का उद्देश्य वैदिक शिक्षा के आदर्श को स्थापित कर दिशाहीन शिक्षा को समाप्त कर राष्ट्र उत्थान के लिए, विश्व मानव की एकता के स्वपन्न को धरातल पर उतारने के उद्देश्य के साथ बालक के शरीर मन बुद्धि को उचित विकास, ज्ञान, विज्ञान के प्रकाश में सृष्टि को समझकर उसमें अपनी उचित भूमिका निभाने का आत्मविश्वास अपनी जीविका के लिए परोपजीवी बनाने के बजाय स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने का साहस, शोषण रहित समतामूलक, प्रबुद्ध समाज का निर्माण, वर्ग विद्वेष से हटकर सर्वभूतहित की कामना, मानवता और मानवीय संवेदनाओं का आदर और अपनी स्मिता का उचित अभियान, बुद्धि विरूद्ध, अन्धविश्वासों, पाखण्डों को दूर कर तर्कविशुद्ध, विज्ञान-सम्मत विचारधरा को अंगीकार करने के साथ मानव को चेतना और बुद्धितत्व प्रधान-प्राणी बनाना जिससे सत् और असत् का विवेक करने में समर्घ है वहीं आधुनिक शिक्षा ने हमें मानसिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से गुलाम बना दिया है। इसके साथ ही स्कूलों और कॉलेजों में गलत बात पढ़ायी जाती है। आज का शिक्षित वर्ग इसी गलत विचारधरा से अनुप्रमाणित है। इस विचारधारा से भारतियों में राष्ट्र प्रेम की भावना कैसे जागृत की जा सकती है? वेद तो स्पष्ट कहता है- ''अहम् भूमिम् उद्दाम आर्याय''- मैंने यह भूमि आर्यो को दी है। उक्त गलत विचारधारा कितनी बद्धमूल हो गई है उसका प्रमाण यह है कि हाल में ही दूरदर्शन पर एक शेर बार-बार दोहराया जाता है:-

सर-जमीने पर, अखलाके आवामे फिराक।

काफिले बसते गए, हिन्दोस्ताँ बनता गया।

पाश्चात्य् शिक्षा युवकों के लिए आत्मघाती व नकारात्मक सोच की कुंजी बन गई

ऋषि दयानन्द में तर्कणा, शास्त्रों को समझने की कुंजी, निर्भिकता और विचारों की

दृढ़ता के साथ बुद्धि को परिष्कार करने तो वहीं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सहिष्णुता, समन्वय, स्थिति प्रज्ञत्या और धैर्य की प्रवृति मिलती है।

महर्षि दयानन्द के चिंतन प्रारम्भ करने के पूर्व भारत की स्थिति को दो खण्डों में जान सकते है:-

1. वैदिक खण्ड
2. अवैदिक खण्ड

वेद विहिन होने के पश्चात् तंत्र, बाम मार्ग, शैव मत, शाक्य मत, चारवाक मत, आभाणक, बौद्ध, जैन मत प्रचलित हुये। सन् 1000 ई0 से लेकर आज तक आर्य जाति को आत्मरक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। इस्लाम, ईसाई के मुकाबले अपनी आत्मरक्षा के लिए तरह-तरह के उपाय अपनाने पड़े। भारत इस दौर से गुजर रहा था कि 18वीं शदी में एक नया तुफान शुरू हो गया। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की आकांक्षाओं को पालने वाले यूरोपीय जातियों का आखेट स्थलीय बन गई। 18वीं शदी तक उद्योग की दृष्टि से विकसित देश उत्पादित माल इटली की जेनेवा और वेनिस, ब्रिटेन के लंदन एवं पेरिस लोकप्रिय हो गये कि वहाँ की सरकारों ने भारतीय समानो पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया। लार्ड वैल्जली की रिपोर्ट के अनुसार कलकत्ता के बन्दरगाह पर भारत निर्मित 10 हजार टन की जहाज मौजूद है जो इंगलैण्ड तक की सामान ढ़ोने की पूरी सामर्थ्य रखते थे। ब्रिटिश जहाज निर्मिताओं ने इसे देखकर आश्चर्यचकित होने लगे। यही नहीं भारत निर्मित जहाज पोर्ट माउथ के बन्दरगाह पर खड़ा है। यह स्थिति देखकर अंगेजों ने यह नीति अपनाई थी कि देशी निर्मित उद्योग को हतोत्साहित किया जाए और ब्रिटिश उत्पादों को आसानी से लोकप्रिय बनाया जाए।

हजारो वर्षो की ग्राम व्यवस्था जिसने भारत को समृद्ध बनाया था। उसे अंगेजी राज्य व्यवस्था और शिक्षा ने समाप्त कर दिया। मुगलों के शासन में भारत के गाँव सुरक्षित थे। बड़ी लड़ाईयों के बाद भी ग्राम सुरक्षित थे। किन्तु अंगेजों ने स्थानीय स्वशासन, ग्रामीण शिक्षा, ग्रामीण उद्योग, प्रजातांत्रिक प्रणाली को समाप्त कर दिया। जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन, सम्पूर्ण राष्ट्र और जनता का जीवन प्रभावित हुआ। उसके बाद भारत खड़ा नहीं हो सका। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने इण्डिया ए नेशन्स नामक पुस्तक में लिखा कि-"Indians hesitate, where they should act; they ask where they should take; they submit where they should resist; lack self confidence and the audacity that commands success."

इसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 1765 में राज्य सत्ता हथियाने के साथ आंग्ल सभ्यता और शिक्षा का प्रसार बढ़ा। बर्क, काण्ट, सेक्सपियर, मिल्टन के सामने कालिदास और सूरदास को महत्वहीन बनाया गया। ऐसी परिस्थितियों में ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपना चिंतन प्रारम्भ किया जो समाज की कुरीतियों, जाति-द्वेष, पंथ निरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता, आरक्षण, राष्ट्रीय चेतना, देश, राज्य, राष्ट्र जैसे तत्वों पर गहन चिंतन देकर भारतीय जनमानस को जागृत करने के लिए संस्कृत शिक्षा, वेद शिक्षा के साथ, शिक्षा का प्रसार जनजातियों, गुरूकुल शिक्षा, शिक्षा राष्ट्रहित एवं देशभक्त बनाने के लिए अपने विचार को व्यक्त करते रहे। महर्षि का व्यक्तित्व धर्मिक, सामाजिक, राजनैतिक दर्शन के तरफ इंगित करता है। उनके जीवनकाल में दी गई शिक्षा विषयक विचार आज के परिवेश में वशुधैव कुटुम्बकम् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सद्भावना, स्वदेशी स्वावलम्बन के माध्यम से नवयुवकों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए गुरूकुल शिक्षा पद्धति एवं डी0 ए0 वी0 स्कूल की स्थापना इसका प्रमाण है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेद एवं संस्कृत शिक्षा के माध्याम से उत्थान तो हो सकता है किन्तु तकनीकि दौर में संस्कृत वेद शिक्षा कठिन के साथ समसामयिक और तर्कसंगत नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ-85
2. शिवचन्द्र हिन्दुस्तान, 29 अक्टूबर, 1970
3. श्रीराम गोपाल, भारतीय राजनीति, विक्टोरिया से नेहरू तक, पृष्ठ-57
4. स्वामी दयानन्द, श्रीमद्दयानन्द प्रकाशन, पृष्ठ-484
5. चयनिका, क्षितीश वेदालंकार, पृष्ठ-145
6. डी0 ए0 वी0 शताब्दी स्मारक, 15 नवम्बर, 1987

आजाद हिन्द फौजः नेताजी, अंतर्राष्ट्रीय संबंध और सहयोग

पूजा शर्मा

शोधार्थी, इतिहास अध्ययन शाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

डॉ० डी०एन० खुटे

शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक
इतिहास अध्ययन शाला पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

भारत की आजादी की एक धारा गांधीवादी है, एक धारा क्रांतिकारी है और एक धारा नेताजी सुभाषचंद्र बोस की विचारधारा है, जो मिलिटरी है, दुस्साहसी है और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग पर आधारित है, किन्तु इस धारा में आत्मसम्मान से, राष्ट्रीयता से और भारत की आजादी से कोई समझौता नहीं है, क्योंकि इसका मूल लक्ष्य भारत की आजादी है।

ऐतिहासिक घटनाओं के आलोक में नेताजी ने यह पाया कि साम्राज्यवाद से प्रताड़ित हर राष्ट्र ने अपनी स्वतंत्रता कतिपय विदेशी सहायकों के समर्थन से प्राप्त की है। प्रबल देशभक्त होने के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु मार्ग से अधिक लक्ष्य उन्हें प्रिय था। वे विदेश नीति को एक यथार्थ वादी विषय मानते थे, जिसका निर्धारण राष्ट्रहित के दृष्टि से होना चाहिये, न कि भावनाओं के आधार पर।[1] तत्कालीन विश्व में ब्रिटेन की भूमिका, भारत के पक्ष में अंतर्राष्ट्रीय समर्थन और विश्व में एशिया के बढ़ते महत्व की दृष्टि से उनका यह कदम समय की मांग थी। सिक्के का दूसरा पहलू भी विचारणीय है कि नेताजी के इस प्रयास पर विदेशों की प्रतिक्रिया क्या थी? नेताजी ने देखा भी कि प्रतिक्रियाएँ संबंधित स्वार्थो से संचालित, मिलीजुली दोहरी प्रकृति की थी, परन्तु वह भी पूरी तरह से इन पर निर्भर नहीं थे। 7 दिसंबर 1942 को रेडियो प्रसारण में तत्कालीन यूरोपीय स्थितियों का वर्णन करते हुए नेताजी ने कहा था कि ''ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शत्रुओं ने हमारी सहायता की तो इसे उखाड़ फेंकना हमारे लिये आसान होगा, परन्तु यदि यह नहीं हो सका तो हमें अपनी शक्ति समंजित कर, अपने प्रयासों और बलिदान से उसे प्राप्त करना होगा।''[2] इन सबके बीच महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हमने अपने नैतिक बल, कूटबुद्धि और रणनीतिक कौशल से न सिर्फ नैतिक, अपितु आर्थिक और सैन्य सहयोग भी प्राप्त किया।

भारत को स्वतंत्र कराने की नेताजी की योजना का पहला पड़ाव 'सोवियत संघ' था जो कि जर्मनी के साथ अनाक्रमण की संधि के कारण तब युद्ध से अलग था। अफगानिस्तान की सीमा रूस के साथ लगी हुई थी, जिससे उससे सहायता कम समय में और आसानी से प्राप्त की जा सकती थी। वैचारिक रूप से भी एक समाजवादी देश होने के कारण भारत की सहायता करने में रूस की आपत्ति का कोई कारण नहीं बनता था, परन्तु जब नेताजी अफगानिस्तान पहुँचे, उन्हें अपेक्षा के अनुरूप रूसी दूतावास और अधिकारियों से कोई सकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं मिली। ''दूसरी ओर उन्होंने यह महसूस किया कि रूस से अधिक रूचि जर्मनी दिखा रहा था।''[3] परन्तु जर्मनी पहुँचने की व्यवस्था हेतु भी रूस की ओर से कोई आश्वासन नहीं मिला। ''इटैलियनों ने नेताजी को यह

तर्क दिया कि कोई सोवियत यूनियन में उन्हें आने वाली दिक्कतों का कारण उनके द्वारा स्वयं को कलकत्ता में एण्टी कम्यूनिस्ट बताया जाना था।''[4] धुरी राष्ट्रों के निवेदन पर रूस ने नेताजी के अपनी सीमा से होते हुए बर्लिन जाने पर कोई आपत्ति नहीं की। यद्यपि जर्मनी के आक्रमण के पश्चात सोवियत संघ मित्र राष्ट्रों के साथ हो लिया परन्तु जापान द्वारा हथियार डाले जाने पर नए विकल्प के रूप में सोवियत संघ के प्रति नेताजी अंतिम समय तक आशावादी रहे।

जर्मनी पहुँचने के प्रयास में इटली के दूतावास ने नेताजी की सहायता की। नेताजी ने इटेलियन मंत्री एल्बर्टो कुअरोनी को बताया कि ''भारत क्रांति के लिए पूरी तरह तैयार है परन्तु ब्रिटिश शक्ति के महान होने की झिझक के कारण वह पहला कदम उठाने का साहस नहीं कर पा रहा। यदि जापान, जर्मनी और इटली के 50,000 लोग भारतीय सीमा पर खड़े हों तब भारतीय जनता और सेना दोनों ही बहुत कम समय में ब्रिटिश आधिपत्य को समाप्त कर सकती है।''[5] ज्यादा संतुष्ट ना होते हुए भी उन्होंने हमारी सहायता की। सोवियत यूनियन को विश्वास में लेते हुए धुरी राष्ट्रों की ओर से योजना बनाकर नेताजी को एक इटेलियन डिप्लोमेट 'ओर्लान्डो मोजेट्टा' के पासपोर्ट द्वारा रूस के मार्ग से मास्को भेजा गया। मास्को से वायुयान द्वारा वे बर्लिन पहुँचे।

इटली की भूमिका यहाँ पर समाप्त नहीं होती है। समय-समय पर धुरी राष्ट्रों की ओर से नेताजी को हर संभव सहायता पहुँचाने में उसने सहयोग किया। इटली में एक 'इंडियन पॉलिटिक्स डिपार्टमेंट' खोला गया था। यद्यपि इटली की नीतियाँ जर्मनी से इस बात में भिन्न थी कि वे उपमहाद्वीप में मुस्लिम शरणार्थियों पर ध्यान केन्द्रित करना चाह रहे थे, जो नेताजी के राजनीतिक विचारों के विरूद्ध था, क्योंकि नेताजी एकता के पक्षधर थे।''[6] फिर भी भारत की स्वतंत्रता के मुद्दे पर धुरी राष्ट्रों को साधने में इटली की मुख्य भूमिका रही। परंतु नेताजी की राह इतनी आसान नहीं थी। ''प्रारंभ में इटली उनसे किसी भी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं था। इकबाल शेदाई इटली के अधिक करीब था जो नेताजी से वैचारिक भिन्नता रखता था और उसने जर्मन अधिकारियों को यह भी कहा था कि नेताजी ने बर्लिन में कम्युनिस्टों का अड्डा बना रखा है परन्तु नेताजी उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल रहे कि भारतीय सेना के युद्धबंदी अंदर से अंग्रेजों से शत्रुता रखते हैं और जर्मनी की ओर से 'ट्राट और रेथ' ने अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई में इनके उपयोग हेतु इटली को तैयार किया।''[7] इस प्रकार सभी विपरीत परिस्थितियों को अपने पक्ष में लाने का संघर्ष करते हुए अंततः नेताजी ने मुसोलिनी को भी इतना प्रभावित किया कि उसने भारत की स्वतंत्रता की घोषणा की।

''17 जून 1942 को देश की आंतरिक एवं बाह्य नीति में अंतर बताते हुए नेताजी ने कहा था कि जर्मनी, इटली और जापान की आंतरिक नीतियाँ हमारे लिए चिंता का विषय नहीं है। देश के ऐसे समय में वैचारिक कारणों से यदि हम अकेले पड़ जाते हैं तो यह एक भूल होगी। हमारी बाह्य नीति ब्रिटेन के शत्रुओं के साथ समन्वय की होनी चाहिये और आंतरिक नीति का निर्धारण भारत की जनता द्वारा किया जाना चाहिये।''[8] अस्तु वैचारिक रूप से जर्मनी की आंतरिक नीतियों के विरूद्ध होते हुए भी उन्होंने उससे भार की स्वतंत्रता के लिए मित्रता का हाथ बढ़ाया।'' उनका पहला काम जर्मनी को यह बताना था कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य की धुरी है और इसे उनसे अलग कर उन्हें पराजित करना सरल हो जाएगा।''[9]अतः उन्होंने उत्तर पश्चिमी भारत के मार्ग से स्वाधीनता संघर्ष की अपनी योजना स्पष्ट रूप से जर्मनी के समक्ष रखी।

''हिटलर रूस पर आक्रमण करने की योजना बना चुका था और भारत के सैनिक मध्य ऐशिया में संघर्षरत थे। इसके साथ ही धुरी राष्ट्रों की सेना को इटली के बचाव हेतु लीबिया भेजना था। इन सभी स्थितियों में भारत की सामरिक महत्ता बढ़ती ही जा रही थी।''[10] अतः नेताजी और हिटलर की भेंट से पूर्व ही नेताजी को बहुत सी भौतिक सुविधाएँ दे दी गयी तथा उनकी रेडियो प्रसारण, आर्थिक सहायता, अहस्तक्षेप तथा इंडिया आर्मी की स्थापना जैसी मांगों को स्वीकार कर लिया गया। ''नेताजी द्वारा यह आर्थिक सहायता स्वतंत्र भारत के नाम ऋण के रूप में ली गयी थी और पूर्वी एशिया में भारतीयों द्वारा प्रदत्त चंदे से इकट्ठे धन से 5,00,000 येन की उन्होंने सांकेतिक अदायगी भी की।''[11] जर्मनी का सबसे महत्वपूर्ण कार्य नेताजी को 'इंडियन लीज़न' के लिए सहायता करना था। नेताजी ने जर्मन विदेश विभाग के इस आश्वासन पर कि यह सिर्फ भारत की स्वतंत्रता के लिए कार्य करेगी, इसका गठन किया। यह ब्रिटिश सेना में भर्ती भारतीय युद्ध बंदियों से मिलकर बनी थी। इन्हें जर्मन सैनिकों की ही तरह भोजन कपड़े, वेतन अवकाश की सुविधा, प्रशिक्षण, शस्त्र आदि प्रदान किये गए।''[12] इस सेना ने संघर्षो में कई उपलब्धियाँ प्राप्त की।

इन सबके बावजूद जब नेताजी हिटलर से मिले तब ''उसने भारत को सिर्फ आर्थिक सहायता का वचन दिया और नेताजी की स्वतंत्रता की घोषणा की मांग को यह कहकर टाल दिया कि इस प्रकार की घोष्णणा का वर्तमान परिस्थितियों में व्यवहारिक महत्व नहीं है।''[13] इससे पूर्व भी नेताजी ने जर्मनी राज नायिकों को भेजे गए अपने स्मरण पत्रों में बार-बार इस घोषणा की गंभीरता की

व्याख्या करते हुए लिखा था कि ''भारत की जनता को धुरी राज्यों के पक्ष में लाना समय के साथ कठिन होता जाएगा। सोवियत यूनियन की क्षति ने जर्मनी की छवि को नुकसान पहुँचाया है। अगर भारतीय जनता एक बार सोवियत-ब्रिटेन-अमेरिकी पक्ष में चली गयी तो इस स्वतंत्रता की घोषणा का कोई महत्व नहीं रह जाएगाऔर धुरी राष्ट्रों की सेना जो उनकी सीमा पर पहुँचेगी उन्हें मित्र के स्थान पर शत्रु की दृष्टि से देखा जाएगा।''[14] परन्तु इटली और जापान द्वारा इस प्रकार की घोषणा के बाद भी जर्मनी द्वारा भारत की स्वतंत्रता की घोषणा नहीं की गयी।

वास्तव में जर्मनी द्वारा भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा से मना करने का कारण तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ थी।''1940 के अंत में रूस से जर्मनी का गुप्त समझौता हुआ था कि ब्रिटेन के पराजित हो जाने के बाद भी भारत रूस के निकट प्रदेशों में शामिल था। अत: जर्मनी उस पर हस्तक्षेप नहीं करेगा। 1941 तक रूस के साथ आक्रमण संधि में होने के कारण सार्वजनिक रूप से वह समझौते के विरूद्ध कोई घोषणा नहीं कर सकता था।''[15] यद्यपि हिटलर नेताजी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ।'' नेताजी के अनुरोध पर उसने अपनी आत्मकथा से भारतीयों के संबंध में आपत्तिजनक शब्द हटा लिय। स्वयं द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा में असमर्थता जाहिर करते हुए उन्हें जापान से सहायता लेने की सलाह हिटलर द्वारा दी गयी और यह भी कहा कि यदि जापान भारत की स्वतंत्रता के संबंध में आपके विचारों का समर्थन करने से मना करता है तो मैं जापान के साथ की गयी संधि फेंक दूँगा।''[16] इतनी सहायता के बाद भी जब हिटलर तथा नेताजी से स्वतंत्र भारत के आंतरिक मामलों के संबंध में सलाह देने का प्रयास किया गया तब नेताजी ने उसे कठोरता से अस्वीकार कर दिया।

इधर सुदूर पूर्व में 15 फरवरी 1942 को सिंगापुर की अंग्रेज और भारतीय सेना ने आत्मसमर्पण किया। इस अवसर को नेताजी गंवाना नहीं चाहते थे। 22 मई 1942 को नेताजी ने जर्मन विदेश मंत्री को लिखा कि ''मैं जर्मन सरकार के आतिथ्य, सहायता और सहृदयता के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। सिर्फ भारत के लिए अपितु हमारे साझा उद्‌देश्यों के लिए किया जाने वाला संघर्ष सुदूर पूर्व में मेरी उपस्थिति और मार्गदर्शन में अधिक तीव्र और प्रभावशाली होगा।''[17]अत: एक जर्मन पनडुब्बी के माध्यम से वे जापान पहुँचे। यूरोप में धुरी राष्ट्रों के समक्ष उनकी जो छवि बाहर आयी, इसके प्रतिफल में जापान में नेताजी का भव्य स्वागत हुआ। जापानी प्रधानमंत्री तोजो ने अपनी डायट (संसद) में घोषणा की कि हमने ब्रिटिश शत्रु को उखाड़ फेंकने हेतु भारत की हर संभव सहायता का निर्णय लिया है और इससे भारतीय सच्चे अर्थों में स्वाधीनता को प्राप्त कर सकेंगे।''[18] 16 जून 1943 को नेताजी को जापानी संसद को संबोधित करने का सम्मान प्राप्त हुआ। जापान द्वारा भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा तत्कालीन परिस्थितियो में एक अभूतपूर्व उपलब्धि थी।

जापानी सरकार से पूर्णत: आश्वस्त होने के पश्चात नेताजी अपने दूसरे दायित्वों की ओर उद्‌यत हुए। रास बिहारी बोस ने 4 जुलाई 1943 को नेताजी को इंडियन इंडिपेन्डेंस लीग का अध्यक्ष पद सौंपा। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में जापानी सरकार के भूमिका को नेताजी के सुदूरपूर्व में आगमन के पूर्व भी समझने की आवश्यकता है। ''सिंगापुर के पतन के बाद भारतीय युद्धबंदियों के प्रति जापानियों ने सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया। मेजर फूजीवारा का मानना था कि चूँकि भारतीय स्वेच्छा से अंग्रेजों की प्रजा नहीं है। अत: पूर्वी एशिया में उन्हें शत्रु नहीं माना जाएगा और स्वतंत्रता संघर्ष में उनकी सहायता की जाएगी।''[19] उन्हीं की प्रेरणा व सहयोग से आजाद हिन्द फौज साकार रूप धारण कर सका।

यद्यपि बैंकाक सम्मेलन में साझा उद्‌देश्यों की प्राप्ति हेतु इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के गठन के समय कुछ मामलों पर सहमति बनी। हम आर्थिक स्त्रोतों, भोजन, शस्त्र प्रशिक्षण के लिए जापान पर निर्भर थे। उन्होंने हर प्रकार की सहायता की, परन्तु भारतीय सेना की गतिविधियों में उनका अवांछित हस्तक्षेप बढ़ता गया। कैप्टन मोहन सिंह को सेना की संख्या सीमित करने के लिए विवश किया गया।[20]पूर्वी एशियाई देशों से विस्थापित भारतीयों की संपत्ति पर भी अधिकार का प्रयास किया गया। रसद और सामग्री की गुणवत्ता भी संतोषजनक नहीं थी। भारतीय सैनिकों से कठपुतली की तरह व्यवहार किया जाता था।''कैप्टन मोहन सिंह के समर्पण से पूर्व जापानियों ने एक मेडिकल सर्विस आफिसर कैप्टन पटनायक को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम हेतु सैनिकों का दल गठित करने को कहा। उन्होंने अपनी मेडिकल पृष्ठभूमि की वजह से असमर्थता प्रकट की, तब जापानियों ने उन्हें देशभक्ति की भावना नहीं होने के लिए आड़े हाथों लिया।''[21] इन सबसे अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि ''बार-बार मांग करने पर भी जापान की सरकार द्वारा भारत की स्वतंत्रता की घोषणा नहीं की गयी जो इस समय आजाद हिन्द फौज के विघटन का कारण बनी।''[22]

नेताजी के जापान आने के बाद परिस्थितियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन आए। वास्तव में भारत की सहायता के पीछे जापान सरकार के अपने हित थे। वे भारतीय राष्ट्रवाद का उपयोग पूर्वी एशिया में होने वाले अपने युद्धों के समर्थन में और उन्हें नैतिक

छवि प्रदान करने के लिए करना चाहते थे, परन्तु चीन पर आक्रमण और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा इसके पुरजोर विरोध के चलते यह कठिन प्रतीत होता चला गया। अत: ''भारत में सैन्य शिविरों की अस्थिरता और गुप्त सूचनाओं के आधार पर फूजीवार भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को सक्रिय सहयोग देने लगे। दक्षिणपूर्व एशिया के प्रवासी भारतीय आसन्न जापानी गतिविधियों में सहायक सिद्ध हो सकते थे।''[23] नेताजी अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम की व्यापक समझ रखते थे। अस्तु आजाद हिन्द फौज की कमान संभालने के बाद उन्होंने जापन से न सिर्फ आर्थिक व सैन्य सहायता प्राप्त की अपितु स्वतंत्रता की घोषणा और अस्थायी सरकार के लिए मान्यता प्राप्त करने जैसे कूटनीतिक सहयोग भी प्राप्त किये।

यह सिक्के का एक पहलू है परन्तु दूसरा पहलू यह था कि अपनी स्थापना के समय से ही आजाद हिन्द संघ को जापान से पर्याप्त सहयोग मिला। 26 दिसंबर 1943 को ले कर्नल राजू ने कहा था कि ''आज हमारे पास बंदूक के बदले बंदूक, टैंक के बदले टैंक और वायुयान के बदले वायुयान है। अब हम अकेले नहीं है, जापान ने हमारी स्वतंत्र सरकार के लिए हर संभव सहायता दी है।''[24] भारत को लेकर उनकी अपनी शंकाएँ थी। अत: कुछ दुर्व्यवहार भी हुए परन्तु नेताजी ने संतुलन बनाकर रखा। एक ओर अंग्रेजी अमेरिकी सेना के विरूद्ध वे जापान के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़े, वहीं दूसरी ओर ''अपने सैनिकों को स्पष्ट निर्देश दिया कि कोई भी जापानी देश की स्वतंत्रता के विरूद्ध जाए तो उसे वहीं गोली मार दी जाये।''[25]

जापान ने इस संतुलन को निभाया। हमें हमारे दो भारतीय प्रदेश अंडमान और निकोबार भेंट किये और जब नेताजी ने उन्हें अंडमान के जापानियों द्वारा भारतीयों को प्रताड़ित करने की शिकायत की तो उस पर त्वरित कार्यवाही की और उन्हें मुक्त किया। अपनी पराजय के बाद भी उन्होंने नेताजी को इनके नए विकल्प के लिये मंचूरिया पहुँचाने तक का साथ निभाया। अत: जापान आजाद हिन्द फौज के इतिहास में जापान की भूमिको को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

''ब्रिटिश नहीं चाहते थे कि नेताजी भारत वापस आएँ, क्योंकि उनके आने पर देश की दशा क्या होगी, यह उन्होंने भॉप लिया था। उन्हें जेल में रखना, फॉसी देना कुछ भी उन परिस्थितियों में उकसाने वाला कृत्य था।''[26] भारत के बाहर उसने नेताजी को मित्रविहीन करने, उनके प्रति महाशक्तियों में शंका उत्पन्न करने और स्वयं के मित्र बढ़ाने का कार्य किया। ब्रिटेन ने विश्व में भारत को ऐसे देश के रूप में प्रचारित किया है जो आंतरिक संघर्षो से अशांत है और यहाँ शांति सिर्फ ब्रिटिश शासन के द्वारा स्थापित की गयी है।[27] साथ ही अपने मित्रों के सहयोग से आजाद हिन्द फौज पर सैन्य आक्रमण कर उसे पराजित करने का भरपूर प्रयास किया। आंतरिक नीति के रूप में भारत में नेताजी की छवि बिगाड़ने के लिए उन्हें धुरी राष्ट्रों की कठपुतली प्रमाणित करने का प्रयास किया। ''सरकारी कार्यो को उचित ठहराने का कार्य समाचार एजेंसियॉं करती थी। 'द स्टेट्समैन' कलकत्ता ने लिखा है कि सुभाष चंद्र बोस के संबंध फांसीवादी देशों से थे, जब वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य थे तब भारत में पॉचवा स्तंभ खड़ा करने के लिए तानाशाहों की ओर से उन्हें नियमित रूप से धन दिया जाता था।''[28] साथ ही भारतीय जनता को उनसे महाशक्ति होने से रोकने के लिए नेताजी के सहयोगियों के नैतिक चरित्र पर दोषारोपण करना प्रारंभ किया।

नेताजी के भारत छोड़कर जाने के बाद से ही ब्रिटिश सरकार द्वारा इनकी जासूसी का कार्य किया गया। उन्हें मित्र विहीन बनाने के प्रयास में नेताजी को अपने इंटेलीजेंस MI-5 का एजेंट बताकर उनके प्रति सोवियत संघ के मन में संशय डालने का कार्य किया ताकि कदाचित मंचूरिया में उन्हें सोवियत संघ की सहायता प्राप्त न हो जाए। इतना ही नहीं उनके बर्लिन से सुदूर पूर्व की यात्रा के समय रूसी क्षेत्र से उनकी वायुयान या स्थलमार्ग से यात्रा को रोकने का प्रयास किया।''[29] धुरी राष्ट्रों द्वारा आजाद हिन्द फौज को सहायता मिलने पर ब्रिटेन का कोई वश नहीं था। इंफाल में होने वाली लड़ाई के प्रति अंग्रेज कितने सतर्क थे, इसका पता इसी बात से लग जाता है कि ''माउंटबेटन मुख्यालय से इंफाल को किसी भी दशा में बचाने की आज्ञा दी गयी थी।''[30] अमेरिका की हवाई सेना का पूरी ताकत के साथ प्रयोग किया गया।

आजाद हिन्द फौज के विरूद्ध अंग्रेजों की आंतरिक नीति के संबंध में 15 अगस्त 1941 को अपने एक पत्र में नेताजी ने लिखा था कि ''दिन-प्रतिदिन अंग्रेजों का प्रचार तंत्र भारतीय जनता को यह समझाने में लगा है कि जर्मनी विश्व प्रभुत्व की दौड़ से बाहर हो गया है। मैं यह देखना चाहता हूँ कि समय के साथ उनका यह दावा वे किस प्रकार प्रमाणित कर पाएंगे''[31] क्योंकि तत्समय जर्मनी मजबूत था और उसकी लगातार विजय हो रही थी। अत: पहले उन्होंने धुरी राष्ट्रों की स्थिति कमजोर बनाने का प्रयास किया। उसके पश्चात सोवियत संघ पर आक्रमण को लेकर नैतिक रूप से धुरी राष्ट्रों के विरूद्ध इतना प्रचार किया कि यदि नेताजी सुदूरपूर्व के मार्ग से विजय भी प्राप्त कर लें तो भी धुरी राष्ट्रों की सहायता से स्वतंत्रता पाने के स्थान पर भारतीय जनता अंग्रेजों से कोई शांतिपूर्ण समझौता करना अधिक श्रेस्कर माने। हमारे मनोबल को इतना गिरा दिया गया था कि 11 मई 1939 के एक पत्र में ''सरदार पटेल

नेताजी को ''ब्रिटिश सरकार को चुनौती देने से मना करते हुए कहते हैं कि हम कमजोर हैं और यदि हम चेतावनी देते हैं और असफल रहते हैं तो हमारी बदनामी होगी।''[32] इसके अतिरिक्त आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के साथ मुल्तान जेल में भीअमानवीय व्यवहार किया गया।[33] और भारत आने पर उन पर अपराधियों की भाँति मुकदमा चलाया गया परन्तु इससे यही प्रमाणित होता है कि आजाद हिन्द फौज की उपलब्धियाँ इतनी महान थी कि ब्रिटेन जैसी साम्राज्यवादी शक्ति भी उससे भयभीत रही और इससे संघर्ष में उसे काफी परिश्रम करना पड़ा।नेताजी का शत्रुओं द्वारा भारत के विरूद्ध प्रचार करने पर भी पूरे विश्व की यात्रा कर टोकियो पहुँचना, उनके मुँह पर तमाचा था। इसे दबाने के लिए यह प्रचारित किया गया कि उनकी जर्मन सरकार से मतभिन्नताएँ हैं परन्तु जब जर्मनी ने अस्थायी सरकार को समर्थन दिया और बधाई संदेश भेजा तो उन्हें इसका जवाब मिल गया।[34]

साम्राज्यवादी शक्तियों में अमेरिका का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। अमेरिका का द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल होना मित्र राष्ट्रों के लिए काफी सहायक रहा और इस घटना ने विश्व के साथ-साथ भारत के भाग्य को भी प्रभावित किया। इस बात की आशंका व्यक्त करते हुए 15 अगस्त 1941 को नेताजी ने जर्मन विदेश मंत्री को लिखा था-''अमेरिका प्राच्य देशों जैसे चीन के आंतरिक मामलों में बड़ी भूमिका निभा रहा है। उसने च्यांग काईशेक और कम्युनिस्ट पार्टी के साथ समझौते किये हैं। भारत के मुद्दे पर यदि वह गांधी जी और अंग्रेज सरकार के मध्य इसी प्रकार कोई समझौता कराने में सफल हो जाता है तो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वालों की स्थिति बहुत कमजोर हो जाएगी।[35]

''अमेरिका ने अपनी सेना और वायुयान भेजकर आक्रामक और रक्षात्मक दोनों रूपों में ब्रिटिश आधिपत्य की सहायता की, क्योंकि वह भारत में ब्रिटेन के साम्राज्यवाद का समर्थक था।''[36]जहाँ तक चीन का विषय है नेताजी को जब च्यांग काईशेक और अमेरिकी समझौते का पता चला वे उससे सहायता की मांग करने ही नहीं गए।

जापान के अतिरिक्त पूर्वी एशिया के देश भी हमारे सहायक हुए। कुछ ही समय में मलाया, जावा, सुमात्रा, अंडमान, फिलिपींस, बर्मा, थाईलैण्ड, बोर्नियो आदि देशों में आजाद हिन्द फौज की शाखाएँ खोली गयी। इन उपर्युक्त देशों से ही अधिकाधिक संख्या में सैनिकों की भर्ती हुई। इन्हीं स्थानों से नेताजी के आह्वान पर धन राशि भी प्राप्त हुई। थाईलैण्ड के एक व्यक्ति हबीब और श्रीमती बेताई ने अपना सर्वस्व दान कर एक आदर्श स्थापित किया। विस्थापित भारतीयों की भूमि स्थानीय भारतीयों को दे दी गयी। जियावाड़ी का प्रदेश इसका उदाहरण है। मलाया प्रादेशिक कमेटी के अध्यक्ष थिवी लिखते हैं-''मलाया में स्थित श्रीलंकाई भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदार बने, क्योंकि उनका विश्वास था कि भारत जैसा एक शक्तिशाली पड़ोसी देश ही उन्हें अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने में मदद कर सकता है।''[37] इसी प्रकार जनशक्ति के साथ-साथ थाईलैण्ड से युद्धकाल में लगातार रसद की पूर्ति होती रही। बैंकाक सम्मेलन में रासबिहारी बोस ने थाईलैण्ड की सरकार को वहाँ के भारतीयों को प्रभावित करने वाले निर्णयों में इंडियन 'इंडिपेंडेंस लीग' को उचित परामर्श देने का निवेदन किया।[38]

क्वालालंपुर में एक सार्वजनिक सहायता केन्द्र और बैंकाक में उच्च गुणवत्ता युक्त नि:शुल्क अस्पताल खोला गया, जहाँ उपचार के साथ-साथ राहत और पुनर्वास के कार्य किये जाते थे। प्रवासी भारतीयों ने थाईलैण्ड-बर्मा रेलमार्ग के निर्माण कार्य में भी भाग लिया।[39] आजाद हिन्द संघ के निरीक्षण दल के लिए स्थानीय जनता हर प्रकार का सहयोग देने के लिए तैयार थे। जावा में 'बटाविया ब्रॉड कास्टिंग' स्टेशन से आजाद हिन्द रेल्वे का संचालन होता था। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य था पूर्वी एशियाई देशों से मिलने वाला नैतिक बल। इस विषय में कर्नल राजू ने कहा था कि ''हमारे पास बर्मी लोगों और पूर्वी एशियाई लोगों का नैतिक बल है, संघर्ष प्रारंभ होने की देर है, दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रयासों से एशिया का स्वर्णयुग प्रारंभ होने वाला है।''[40] सहयोग के साथ-साथ 9 देशों की सरकारों ने शीघ्र ही आजाद हिन्द संघ के अस्थायी सरकार को मान्यता दे दी। आंग-सांग ने नेताजी के विषय में कहा था कि ''भारत और बर्मा के कुछ लोग हमारे द्वारा आजाद हिन्द संघ के समर्थन पर आक्षेप करते हैं, लेकिन हमारा यह कदम उचित है। कोई भी नेताजी या हमारे देशभक्त होने को चुनौती नहीं दे सकता। केवल इतिहास ही इसका न्याय कर सकता है।''[41]

इस प्रकार हम पाते हैं कि सहमतियों में या असहमतियों में दोनों ही प्रकार से हम परिस्थितियों को अपने पक्ष में लाने में सफल रहे।''हमारा मुख्य उद्देश्य भारत को अंतर्राष्ट्रीय पटल पर प्रचारित करना था। सकारात्मक रूप से भारत की समृद्ध संस्कृति के विषय पर और नकारात्मक रूप में ब्रिटिश एजेंटों द्वारा भारत के बारे में फैलाये गये झूठों की सत्यता प्रचारित करना।''[42] धुरी राष्ट्रों में से इटली और जापान ने हमारी स्वतंत्रता की घोषणा के साथ-साथ हर संभव सहायता की, वहीं जर्मनी की अपनी कूटनीतिक विवशताएँ रहीं, फिर भी उसने हमें आर्थिक तौर पर सहायता दी और जापान का विकल्प सुझाया। पूर्वी एशिया के देश हमारे साथ कंधे से

कंधा मिलाकर लड़े और श्रीलंका जैसे देशों का हमने भरोसा जीता, परन्तु बात जब मित्र राष्ट्रों या ये कहें कि ब्रिटेन के मित्र राष्ट्रों की होती है तो वहाँ भी हमारी उपलब्धियाँ कम नहीं रही। ब्रिटेन द्वारा नेताजी का मार्ग अवरूद्ध करने का बार-बार प्रयास, उनकी छवि खराब करने के प्रपंच और पूर्वी एशिया में युद्ध के समय अमेरिका की सहायता लेना यह प्रमाणित करता है कि आजाद हिन्द फौज के प्रति उसके मन में भय था। अमेरिका ने यद्यपि ब्रिटिश सेना की सहायता की परन्तु चीन की भाँति भारत के आंतरिक मामलों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का प्रयास नहीं किया। ये सभी बातें इंगित करती है कि विश्व पटल पर नेताजी भारत की स्वतंत्रता हेतु अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने और भारत के पक्ष में माहौल बनाने में सफल रहे।उन्होंने कहा था कि ''हमारी पिछले 12 महीनों की उपलब्धि पूर्वी एशिया में इतने लम्बे समय तक चलने वाली हमारी गतिविधियाँ और हमारी भावी योजनाएँ हैं। हमारी योजनाओं की सफलता इस बात पर निर्भर है कि सभी भारतीयों को हम अपने पक्ष में कर सकें। अपनी निडरता और बेबाकपन से ही हम उन्हें विश्वास में ले सकते हैं।''[43]

यद्यपि युद्ध में हमारी पराजय हुई, हम पर वैदेशिक शक्तियों की कठपुतली बनने के आरोप लगे, हमारे आत्म-सम्मान को यदा-कदा चोट पहुँचायी गयी फिर भी हमने भारत की स्वतंत्रता को एक अंतर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना दिया। वैचारिक रूप से ब्रिटेन कमजोर पड़ने लगा, भारतीयों पर गोली चलाने के संबंध में वैश्विक पटल में उससे उत्तर की अपेक्षा की जाने लगी। इसी अंतर्राष्ट्रीय दबाव की आकांक्षा नेताजी ने की थी। जनवरी-फरवरी 1943 में अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था कि ''भारतीय इतिहास के इस दुखद समय में वैचारिक कारणों से विश्व में अकेला पड़ जाना एक भूल होगी। अभी विश्व में लोग ब्रिटिश अत्याचार और क्रूरता की घटनाओं पर विश्वास नहीं करते और ब्रिटेन द्वारा इस प्रकार सफाई दी जाती है कि भारतीयों को ही विद्रोही समझ लिया जाता है। हमारे अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों से हम पर होने वाले अत्याचारों का प्रचार ग्लोब के हर देश तक हो रहा है। भारत ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं से सिर्फ सहानुभूति ही नहीं हमारे संघर्ष में सहायता भी चाहता है। यहाँ तक अमेरिका और सुदूरपूर्व के देश भी भारतीयों द्वारा ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंकने का इसे स्वर्णिम अवसर मानते हैं। यह ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने का अंतिम युद्ध होगा, जिसके अंत में भारतीय सेना को भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।''[44]

अस्तु नेताजी न सिर्फ भारतीय परतंत्रता की समस्या को वैश्विक पटल पर प्रकाशित करने में सफल रहे बल्कि विश्व के देशों से सहानुभूति और सहयोग भी प्राप्त कर सके। भारत की दुर्दशा सभी के विचारों का केन्द्र बिन्दु बन गयी। यद्यपि हर राष्ट्र अपने हितों को प्राथमिकता में रख रहा था परन्तु इन सबसे ब्रिटेन पर भारत को स्वतंत्र करने का अंतर्राष्ट्रीय दबाव निर्मित होने लगा। सेना के मनोविज्ञान को भी इसी प्रयास से बदला जा सका। अपनी छवि विकृत होने के भय ने ब्रिटेन को पराजित कर दिया।

संदर्भ ग्रंथ

1. तंवर, श्याम सिंह एवं मृदुलता '*भारतीय स्वाधीनता के पितामह : सुभाषचंद्र बोस*' साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2018 पृ. 223.
2. बोस, शिशिर कुमार '*नेताजी कलेक्टेड' वर्क्स*टवस.11 राइटिंग एण्ड स्पीचेस, 1941-43, आजाद हिन्द नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता, 2016, पृ 175.
3. कुल्मान, जॉन '*नेताजी इन यूरोप,*' (अनु. क्रिस्टल दास) रूपा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 36.
4. पूर्वोक्त, पृ. 36
5. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 35
6. कुल्मान, जॉन, पूर्वोक्त, पृ. 81
7. गार्डन, लियोनार्ड *'ब्रदर्स अगेन्स्ट द राज'* रूपा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 270.
8. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 120
9. बोस, शिशिर कुमार, *'आजादी की लड़ाई में आजाद हिन्द फौज'* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2019, पृ. 26
10. टोई, ह्यूज '*सुभाषचंद्र बोस : द स्प्रिंगिंग टाइगर',* जाइको पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2018, पृ. 91.
11. अय्यर, एस.ए. '*आजाद हिन्द फौज की कहानी',* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2019, पृ. 21.
12. मूलर और भट्टाचार्य, *'सुभाषचंद्र बोस एण्ड इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल* आशीष पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 51.

13. कुल्मान, जॉन, पूर्वोक्त, पृ. 116
14. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 64
15. टोई, ह्यूज, पूर्वोक्त, पृ. 93.
16. सिंह, आर.पी., '*आजाद हिन्द फौज'*, एरागॉन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 93
17. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 100-101.
18. टोई, ह्यूज, पूर्वोक्त, पृ. 118.
19. सिंह, आर.पी., पूर्वोक्त, पृ. 35.
20. पूर्वोक्त, पृ. 37.
21. खान, शाहनवाज, '*माई मेमोरी ऑफ आई.एन.ए. एण्ड इट्स नेताजी'*, राजकमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1946, पृ. 15. (archives.org).
22. अय्यर, एस.ए., पूर्वोक्त, पृ. 34.
23. बक्शी, जी.डी. '*बोस : एन इंडियन समुराई'* के.डब्ल्यू.पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 82.
24. कुमार, रविन्द्र, '*द सलेक्टेड वर्क्स ऑफ सुभाषचंद्र बोस'*, ग्रोस अंडर नेताजी, 26 दिसम्बर, 1943, क्व्2 प्छाए
25. कुमार, दिनकर '*आजाद हिन्द फौज'*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 101.
26. बक्शी, जी.डी., पूर्वोक्त, पृ. 236.
27. बोस, सुभाषचंद्र, '*फण्डामेंटल क्वेश्चंस आफ इंडियन रेवोल्युशन'*, नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता, 1959, पृ. 23. (NIA).
28. सिंह, दुर्लभ 'द रिबेल प्रेसीडेंट', हीरो पब्लिकेशन, लाहौर, 1944, पृ. 145.*(NIA).*
29. बक्शी, जी.डी., पूर्वोक्त, पृ. 235.
30. अय्यर, एस.ए., पूर्वोक्त, पृ. 53.
31. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 63.
32. चोपड़ा, पी.एन., '*सरदार पटेल : गांधी-नेहरू-सुभाष'*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 102.
33. प्रेसनोट 22/02/1946, आई.एन.ए. जनरल (1946), प्राइवेट पेपर्स, सरदार पटेल, *(NIA).*
34. बोस, सुभाषचंद्र, 'ब्लड बाथ', कलेक्शंस ऑफ स्पीचेस आफ नेताजी, जुलाई 1944, जयश्री पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1944, पृ. 73. *(NIA).*
35. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 64.
36. थिवी, जॉन, '*द स्ट्रगल इन ईस्ट एशिया'*, नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता, 1971, (सम्पादन शिशिर कुमार बोस) पृ. 67.
37. पूर्वोक्त, पृ. 31.
38. शर्मा, जगदीश शरण '*इंडियन स्ट्रगल फार फीडम : सलेक्टेड डाक्यूमेंट्स एण्ड सोर्सेस'*, टवस.II, 2016, पृ. 330.
39. थिवी, जॉन, पूर्वोक्त, पृ. 53.
40. कुमार रविंद्र, पूर्वोक्त, पृ. 6
41. नेताजी एण्ड बर्मा, 23 जनवरी 1979, इन्फार्मेशन सर्विस आफ इंडिया, ऐंबेसी रंगून, पृ. 23 *(NIA).*
42. बोस, सुभाषचंद्र, '*फण्डामेंटल क्वेश्चंस आफ इंडियन रेवोल्युशन'*, नेताजी रिसर्च ब्यूरो,कलकत्ता, 1959, पृ. 24. (NIA).
43. बोस, सुभाषचंद्र, 'ब्लड बाथ', पूर्वोक्त, पृ. 71.(NIA).
44. बोस, शिशिर कुमार, राइटिंग एण्ड स्पीचेस, पूर्वोक्त, पृ. 193.

पत्रकारिता, राष्ट्रवाद तथा पंडित मोतीलाल नेहरू

डॉ० रणजीत कुमार

(इतिहास)
ल0 ना0 मि0 वि0वि0, दरभंगा
ग्राम -चक्का, पो0-जोरजा
थाना -बहेड़ी, जिला - दरभंगा

इलाहाबाद में पंडित मोतीलाल नेहरू यदाकदा ज्वलंत विषयों पर गंभीर लेखन करते थे। एक मजे हुए पत्रकार की तरह उनकी प्रतिभा विभिन्न पत्रिकाओं में दिखाई देती थी। गौरतलब है कि मोतीलाल नेहरू मूलत: देश की चुनौतियों तथा ज्वलंत समस्याओं पर विचारोत्तेजक लेख लिखते थे। फलत: उनके लेखों में स्वाभाविक रूप से कई विचारोत्तेजक पहलुओं का विवेचन होता था। मोतीलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं उनके जीवन के गंभीर अध्येता डी0 एन पनिग्रही[1] ने मोतीलाल नेहरू की पत्रकारिता के संबंध में स्पष्ट किया है कि उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद के बुनियाद को सुदृढ़ किया। डी0 एन0 पनिग्रही ने मोतीलाल नेहरू के ग्रंथों एवं रचनाओं का संकलन किया है। वस्तुत: मोतीलाल नेहरू भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सेनानी थे। पनिग्रही ने भी स्वीकार किया है कि उनके लेखन में स्वतंत्रता का स्वर मुखरित होता था। वे फ्रांस की राज्यक्रांति की चिंतन और चेतना से प्रभावित थे। रूसो ने फ्रांस की राज्यक्रांति में समता, स्वतंत्रता, न्याय और भ्रातृत्व की वकालत की है। जाहिर है कि उनका लेखन बिना किसी दबाव और लोभ का होता था।

जवाहरलाल नेहरू[2] ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट किया है कि पिताजी के मन, प्राण और आत्मा में पत्रकारिता की चिंगारी मौजूद थी। अत: वे आरंभ में लीडर, हिन्दुस्तान टाइम्स, द स्टेट्समैन तथा दूसरे अन्य समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं से जुड़े। परन्तु उन्होंने सुनिश्चित किया कि स्वतंत्रता के आंदोलन के दौरान एक स्वतंत्र पत्र का प्रकाशन किया जाए। कई दिनों तक आनन्द भवन में इस पर विचार विमर्श हुआ। उनके समकालीन महापुरुषों ने समाचार पत्र के प्रकाशन में प्रचुर सहयोग किया। महात्मा गाँधी के अधिकतर विचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। इससे इतिहास के अध्येताओं को गाँधीवाद का समझने में आज भी सहुलियत होती है। प्रसिद्ध इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने स्पष्ट किया है कि महात्मा गाँधी के सहयोगी के रूप में पंडित मोतीलाल नेहरू का योगदान अतिउत्तम है।

समाचार पत्र के प्रकाशन के क्रम में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति तथा प्राच्य विद्या के जाने माने विद्वान म0 म0 डॉ0 गंगानाथ झा ने भी पंडित मोतीलाल नेहरू को सहयोग प्रदान किया। वस्तुत: उस जमाने में इलाहाबाद शिक्षा, संस्कृति, प्रकाशन और पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। पंडित मोतीलाल नेहरू का विशाल आवास परिसर आनन्द भवन शिक्षा, संस्कृति, पत्रकारिता तथा विचार मंथन का एक महत्वपूर्ण स्थल था। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट किया है कि पंडित मोतीलाल नेहरू के निधन के बाद उन्होंने 1938 में 'द नेशनल हेरॉल्ड' की स्थापना की। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि जिस काम का संकल्प मेरे पिताजी के मन में था परन्तु जेल यंत्रणा, गंभीर बीमारी तथा विभिन्न संघर्ष से जुझते हुए उनका निधन 1931 में हो गया, परन्तु उस काम को मैंने 'द नेशनल हेरॉल्ड' के रूप में पूरा किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि जीवन में इससे हमको बहुत संतोष प्राप्त हुआ। उन्होंने मोतीलाल नेहरू के पत्रकारिता के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को स्पष्ट किया है[3] :

पंडित मोतीलाल नेहरू के लेखन में धर्म निरपेक्षता के आधारभूत तत्वों का विश्लेषण एवं विवेचन किसी भी अध्येता को चिंतन के लिए मजबूर करता है। वस्तुत: उनका विचार सर्व धर्म सम्भाव का पोषक था। धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव के साथ वे समझौता नहीं कर सकते थे। भारतीय राजनैतिक चिंतन के इतिहास को उनकी सबसे बड़ी देन राजनैतिक यथार्थवाद के अतिरिक्त धर्मनिरपेक्ष राजनीति थी। उनके विचार लौकिक और सांसारिक ही नहीं थे बल्कि उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित थे। वह उस युग में राजनैतिक नेता के रूप में उभरे, जिस युग में साम्प्रदायिक भेदभाव की नीति, विघटना प्रवृतियाँ, शक्तिशाली थी। अंग्रेजों के द्वारा अपनाई गई नीति ''फूट डालो और विभाजन करो'' ने इन प्रवृतियों को अधिक प्रेरणा दी थी और यह प्रवृतियाँ तत्कालीन राजनीति पर इतनी छाई हुई थी कि राजनीतिज्ञ इनका निकालने में पूर्णत: सफलता नहीं कर पाये थे। धर्म राजनीति पर इतना छाया हुआ था और हिन्दू-मुसलमानों के मतभेदों की खाई इतनी बड़ी हुई थी कि राजनैतिक समझौता प्रभावशाली नहीं बन पाया। स्वराज पार्टी जिसके निर्माता मोतीलाल नेहरू थे, के पतन का एक मुख्य कारण धार्मिक संकीर्णता थी।[4]

मोतीलाल नेहरू ने यह अनुभव किया था कि देश में सार्वजनिक कल्याण तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि धर्म तथा राजनीति को एक-दूसरे से पृथक नहीं कर दिया जाता। मोतीलाल नेहरू के लिये राजनीति में धर्मनिरपेक्षतावादी मार्ग अपनाना इसलिए सख्त था क्योंकि उनका किसी परंपरागत धार्मिक पंथ से कोई गहरा अनुराग नहीं था। इसलिए राजनीतिक की समस्याओं के संबंध में उनका दृष्टिकोण लौकिक था, न कि धार्मिक या लोकातीत। उन्हें साम्प्रदायिक कटुता तथा मूर्खतापूर्ण दंगों को देखकर भारती मानसिक वेदना होती थी। ये धर्मों के पृथकतावादी प्रभाव को नष्ट करना चाहते थे। नेहरू रिपोर्ट, जो मोतीलाल नेहरू अत्यधिक परिश्रम का परिणाम थी, ने देश में व्याप्त साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के लिए महत्वपूर्ण उपाय प्रस्तुत किए थे। नेहरू रिपोर्ट में साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचनों का विरोध किया गया था और पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचनों की व्यवस्था समाप्त करने की आकांक्षा की गयी थी। मोतीलाल नेहरू का विश्वास था कि साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन राजनीति पर दूषित प्रभाव डालते हों। इस भाँति मोतीलाल नेहरू राजनीति में धर्मनिरपेक्षता के सफल प्रतिपादक थे और धर्म तथा राजनीति के पूर्ण पृथक्करण के समर्थक थे। वे उनमें से किसी एक को भी दूसरे एक साधन नहीं बनाना चाहते थे। उनके भाषणों और राजनीतिक नेतृत्व ने भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षतावाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। नेहरू रिपोर्ट[5] ''जियो और जीने दो'' का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

पंडित मोतीलाल नेहरू के अनुसार राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुत: स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जनसंवाद तथा जनचेतना को पैदा करने में भारतीय पत्रकारिता का योगदान स्वर्णाक्षर में अंकित किया जाता रहा है। विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में समाचारों, लेखों, शोध निबंधों, क्रांति गाथाओं, महापुरुषों की जीवनी तथा राष्ट्रीय कविताओं के प्रकाशन के जरिए राष्ट्र चेतना को अमृत बिन्दु प्राप्त होता था। स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े अधिकांश चिंतक नेता अंग्रेजी शिक्षा में निपुण थे। गौरतलब है कि समाचार पत्रों के उद्भव तथा विकास में तीन प्रमुख क्रांतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 16वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के कारण दुनिया में एक नये युग का आरंभ हुआ। वस्तुत: विज्ञान के आविष्कारों ने औद्योगिक क्रांति को बुनियादी आधार प्रदान किया। औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादक शक्ति, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन प्रबंधन तथा बाजारवाद का विकास हुआ। पहले कुटरी उद्योगों का प्रचलन था। घर में ही विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का उत्पादन होता था। औद्योगिक क्रांति ने कारखाना संस्कृति को विकसित किया। कुटीर उद्योगों में परिवार के दो-चार लोग कुछ और लोगों के सहयोग से वस्तुओं का उत्पादन करते थे। परंतु कारखानों में भारी संख्या में विभिन्न पदों पर लोगों की नियुक्ति हुई। उत्पादन में तीव्रता आई। उत्पादन प्रबंधन का विस्तार हुआ। जाहिर है कि औद्योगिक क्रांति ने ही प्रेस के लिए मशीन तथा आधारभूत संरचनाओं की व्यवस्था की। औद्योगिक क्रांति के कारण प्रेस और प्रकाशन का विस्तार हुआ। फलत: भारत में भी औद्योगिक क्रांति के दौरान विभिन्न लोगों ने छोटे अविा बड़े पैमाने पर प्रेस तकनीक का उपयोग करना आरंभ किया। फलत: 1780-81 के कालखंड में भारत में पत्रिकाओं के प्रकाशन का दौर आरंभ हुआ। इस प्रकार निश्चित तौर पर औद्योगिक क्रांति का योगदान समाचार पत्रों के उद्भव तथा विकास में रहा है।

पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्पष्ट किया है कि समाचार पत्रों के साथ वैचारिक आयाम भी जुड़ा होता है। समाचारों के ताजगी तथा विचारों के पैनापन के आधार पर ही समाचार पत्रों की बिक्री बढ़ती है। समाचार पत्र लोगों को वैचारिक स्तर पर प्रबद्ध करते है तथा समय-समय पर गंभीर एवं ज्वलंत मुद्दों का विश्लेषण करते है। समाचार पत्रों के प्रकाशन के आरंभिक दौर में फ्रांस की राज्यक्रांति से लोगों को एक नई ऊर्जा प्राप्त हुई थी। लोग उपनिवेशवाद के कारण बेचैन थे। उपनिवेशवाद ने कई देशों के समक्ष चुनौती खड़ कर दिया था। समाचार पत्रों के लिए उपनिवेशवाद एक प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा था। अत: 1821 से 1947 के कालखंड

में भारत में पत्रकारों को फ्रांस के राज्यक्रांति के चिंतन से एक नई ऊर्जा प्राप्त हुई थी। विशेष तौर पर उपनिवेशवाद के खिलाफ जंग में पत्रकारों को फांसीसी राज्यक्रांति ने एक नई ऊष्मा प्रदान की।[6]

उपनिवेशवाद के अंतर्गत ब्रिटिश शासकों ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत मौजूद लोकतांत्रिक गतिशीलता के तत्वों को शिथिल एवं सीमित कर दिया। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अंतर्गत गांव-पंचायत के अधिकारों में काफी कमी आई। ब्रिटिश शासन ने गाँव की प्रशासनिक व्यवस्था को बदल दिया। पुलिस तथा राजस्व अधिकारी जैसी सरकारी मुलाजिमों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति ग्रामीण स्तर पर भी की गई। ब्रिटिश शासन से जुड़े पदाधिकारियों ने जमींदारों, साहूकारों तथा भूमिपतियों के हितों की सदैव रक्षा की।

औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था के अंतर्गत आधुनिक शिक्षा की शुरूआत की गई। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव अनुभव किया जाने लगा। विश्वविद्यालयों की सीापना की गई। विज्ञान तथा आधुनिक तकनीकी के विकास के पथ को प्रशस्त किया गया। परंतु दलितों, वंचित समूहों तथा महिलाओं को आधुनिक शिक्षा के अवसरों से ब्रिटिश शासनकाल के दौरान लगातार अलग-थलग रखने का प्रयास किया गया।[7]

भारतीय समाचार पत्रों का इतिहास यूरोपीय लोगों के आने के साथ-साथ आरंभ हुआ। पूर्तगाली पहले लोग थे जो मुद्रणालय भारत में लाए और 1557 में गोवा के पादरियों ने पहली पुस्तक भारत में छापी। 1684 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने बम्बई में एक मुद्रणालय लगाया। लगभग 100 वर्ष तक कंपनी के प्रदेशों में कोई समाचार पत्र नहीं छपा क्योंकि कम्पनी के कार्यकर्त्ता यह नहीं चाहते थे कि उनके अपकर्म तथा निजी व्यापार के समाचार लंदन पहुँचे।

पंडित मोतीलाल नेहरू ने भारत में समाचार पत्रों के उद्‌भव तथा विकास पर प्रकाश डाला है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि भारत में पहला समाचार पत्र निकालने का प्रयत्न कंपनी के असंतुष्ट कार्यकर्त्ताओं ने किया था जिनका उद्देश्य इन अपकर्मो तथा दुष्कर्मो का भण्डाफोड़ करना था। 1776 में विलियम बोल्ट्स की कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने निजी व्यापार के लिए निन्दा की और उसने त्यागपत्र देकर यह इच्छा प्रकट की कि वह समाचार पत्र निकालेगा और फिर यह भी कहा कि उसके पास ''हस्तलिखित रूप में बहुत से तथ्य है जो सभी व्यक्तियों से गहरा संबंध रखते है।'' शासकीय पक्ष में तुरंत प्रतिक्रिया हुई और बोल्ट्स की योजना गर्भ में ही समाप्त हो गई। यह जेम्स ऑगस्टस हिक्की के ही भाग्य में था कि वह भारत में 1780 में पहला समाचार पत्र प्रकाशित किया जिसका नाम 'द बंगाल गैजेट' अथवा 'द कलकत्ता एडवरटाइजर' था। उसकी सरकारी अधिकारी, गवर्नर-जनरल तथा मुख्य न्यायाधीश की निष्पक्ष आलोचना के कारण उसका मुद्रणालय जब्त कर लिया गया।[8]

हेस्टिंग्ज के अधीन नियमों में ढील दे दी गई और गवर्नर-जनरल ने अपने उदारवादी और प्रगतिशील विचार देश में लागू कर दिए और 1818 में समाचार-पत्रों का पूर्व-पत्रेक्षण बन्द कर दिया गया। परंतु फिर भी सरकार ने समाचार पत्रों के संपादकों के मार्गदर्शन के लिए सामान्य नियम बनाए ताकि उन विषयों की विवेचना न हो जिनसे सरकार के अधिकार अथवा जनहित को क्षति पहुँचे। गवर्नर-जनरल ने अपनी परिषद् तथा विशेषकर जॉन एडम्ज की इच्छा के विरुद्ध जेम्स बकिंघम, जो 'द कलकत्ता जर्नल' का सम्पादक था, की अनुज्ञप्ति का रद्द करने से अथवा से उद्वासित करने से मनाही कर दी।

लॉर्ड विलियम बैंटिक ने समाचार पत्रों के प्रति उदारवादी रूख अपनाया। परंतु यह श्रेय कार्यवाहक गवर्नर-जनरल चार्ल्स मेटकाफ को ही मिला कि 1823 के कुत्सित नियमों को रद्द करके वह भारतीय समाचार पत्रों का 'मुक्ति दाता' कहलाए। लॉर्ड मैकाले जो सच्चे उदारवादी थे उन्होंने भी समाचार पत्र की स्वतंत्रता के लिए समर्थन दिया। उनका तर्क यह था कि सरकार के पास देश में खतरे के समय अनन्त और निस्संदेह शक्ति हैं तो फिर शांतिकाल में ऐसे नियमों को बनाए रखने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है। अब एक ऐसे अधिनियम बनाया गया कि मुद्रक और प्रकाशक को अब केवल प्रकाशन के स्थान की निश्चित सूचना ही देनी थी और वह सुगमता से कार्य कर सकता था। यह कानून 1856 तक चलता रहा और इसी काल में देश में समाचार पत्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई।

1857 के विद्रोह से उत्पन्न हुई आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए 1857 के अधिनियम संख्या 15 के अनुसार अनुज्ञप्ति व्यवस्था पुन: लागू कर दी गई। इसके अनुसार बिना अनुज्ञप्ति के मुद्रणालय रखना और प्रयोग रोक दिया गया और सरकार को किसी समय भी अनुज्ञप्ति देने अथवा रद्द करने का अधिकार था। सरकार को किसी भी समाचार पत्र, पुस्तक अथवा कुछ अन्य मुद्रित

विषय के प्रकाशन तथा चलन को रोकने का अधिकार था। यह केवल एक संकटकालीन व्यवस्था थी और इसकी अवधि केवल एक वर्ष थी। उसके समाप्त होने पर मैटकॉफ के बनाए अधिनियम ही चलते रहे।

1867 का समाचार पत्र तथा पुस्तकों के पंजीकरण अधिनियम संघ 25 से 1835 के मैटकाफ के अधिनियम को परिवर्तित कर दिया गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य समाचार पत्रों अथवा मुद्रणालयों पर रोक लगाना नहीं था अपितु केवल नियमित करना था। प्रत्येक मुद्रित पुस्तक तथा समाचार पत्र पर मुद्रक, प्रकाश और मुद्रण स्थान का नाम होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त प्रकाशन के एक मास के भीतर पुस्तक के एक प्रति बिना मूल्य के स्थानीय सरकार को देनी होती है। यह अधिनियम 1890, 1914, 1952 और पुनः 1953 से संशोधित किया गया।

पंडित मोतीलाल ने स्पष्ट किया है कि देशी भाषा निहित समाचार पत्रों के कारण देश की जनता एक हुई। 1857 के महान विद्रोह की एक देन, शासित और शासक जातियों के संबंधों में कटुता थी। फलस्वरूप अंग्रेजी समाचार पत्र सरकार का सदैव समर्थन करते थे। देशी समाचार पत्र 1857 के पश्चात् अभूतपूर्व मात्रा में बड़े और वे अधिक मुखर थे तथा सरकार की आलोचना करते थे। फलस्वरूप लॉर्ड लिंटन की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध दृढ़ सार्वजनिक भावना उत्पन्न हो गई। 1876-78 के अकाली से लगभग 60 लाख लोग मृत्यु की गोद में सो गए और दूसरी ओर जनवरी 1877 में दिल्ली दरबार पर बहुत अधिक धन व्यय किया गया। इन सभी समाचारों से जनता में असंतोष बढ़ता जा रहा था। दूसरी ओर लिंटन यह अनुभव करता था कि इस अशांति का कारण ''मैकाले और मेटकॉफ'' की नीतियाँ थी और उसने इन सभी भावनाओं को दबाने का प्रयत्न किया।[9]

1878 के देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम से सरकार ने भारतीय भाषा समाचार पत्रों को अधिक नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया और इसे राजद्रोही लेखों को दबाने और दंडित करने का अधिक सफल अस्त्र बनाया। इस अधिनियम से -(1) जिला दण्डनायकों को स्थानीय सरकार की आज्ञा से किसी भारतीय भाषा के समाचार-पत्र को आज्ञा देने का अधिकार दे दिया कि वे बंधन-पत्र पर हस्ताक्षर करें कि वे कोई ऐसी सामग्री प्रकाशित नहीं करेंगे, जिसे सरकार विरोधी भावना भड़कें अथवा साम्राज्ञी की प्रजा के भिन्न-भिन्न जाति, वर्ण और जमानत देने पर भी बाध्य कर सकता था और आज्ञा भंग करने पर जब्त कर सकता था। पुनः अपराध करने पर मुद्रणालय भी जब्त किया जा सकता था। (2) दण्डनायक का निर्णय अंतिम होगा और उसमें अपील की अनुमति नहीं होगी। (3) यदि कोई देशी भाषा समाचार पत्र पर अधिनियम की कार्यवाही से बचना चाहे तो लोग उसे अपने पत्र को इच्छा प्रति सरकारी पर्यवेक्षण को पहले से देनी होगी।[10]

20वीं शताब्दी के चौथे दशक में राजनैतिक आंदोलन में आई गति तथा महात्मा गांधी द्वारा आरंभ किए सविनय अवज्ञा आंदोलन के आरंभ करने के कारण सरकार ने 1930 में समाचार पत्रों पर अधिक अच्छा नियंत्रण करने की भावना से एक नया समाचार-पत्र अध्यादेश जारी कर दिया। इसके अनुसार 1910 के अधिनियम के सभी आदेश पुनः लागू कर दिए गए। 1931 में सरकार ने भारतीय समाचार पत्र (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम पारित किया जिसने प्रांतीय सरकारों को सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रचार को दबाने के लिए अत्यधिक शक्तियाँ दे दी। अधिनियम की धारा 4(1) के अनुसार सरकार को शब्द, संकेत अथवा ऐसे अपराध की प्रशंसा अथवा अनुमोदन करने पर, कड़ा दण्ड देने की अनुमति थी।

हरिश्चन्द्र मुखर्जी ने 'हिन्दू पेट्रिऑट' की स्थापना की। शिशिर कुमार घोष ने कोलकाता में 'अमृत बाजार' पत्रिका की शुरूआत की। 19 फरवरी, 1891 से यह दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशित किया गया। 1861 में 'बंगाली' नामक एक साप्ताहिक पत्र का श्रीगणेश किया गया। तिलक ने 'मराठा' तथा 'केसरी' के द्वारा राष्ट्रवाद की चिंगारी पैदा की। ए.आर. देसाई के अनुसार इन पत्रों ने सरकारी नीतियों तथा उनके क्रियाकलापों पर सीधा प्रहार किया। राष्ट्रवाद की भावना को सुदृढ़ करने में इन पत्रों का योगदान महत्वपूर्ण है।[11]

पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्पष्ट किया है कि सांस्कृतिक विविधताओं एवं आर्थिक असमानता के बावजूद भारतीय जनता में अपने देश के प्रति अनन्य आस्था रही है। राम ने भी रामायण में स्पष्ट किया कि-हे लक्ष्मण ! सोने की लंका होने के बावजूद मुझे इसके प्रति कोई आसक्ति नहीं है। जननी तथा जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर प्यारी होती है। इस प्रकार, इस देश के निवासियों ने भारत को मातृभूमि के रूप में रेखांकित किया है तथा इतिहास के अनेक कालखंडों में मातृभूमि के स्वाभिमान, सम्मान एवं आन-बान एवं शान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है।

राष्ट्रवाद नवजाग्रत समाज का परिचायक है। जनसंघर्ष एवं विक्षोभ के साथ राष्ट्रवाद का स्पष्ट संबंध रहा है। 1789 में फ्रांसीसी क्रांति ने राष्ट्रवाद का एक नया आधार प्रदान किया। इसने जनविक्षोभ को एक राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तित किया। राष्ट्र को जनता का पर्याय बना दिया। वस्तुत: राष्ट्रवाद का आधार-स्रोत जनता की शक्ति में निहित है। अत: राष्ट्रवाद के साथ लोकतंत्र का भी संबंध रहा है। विवरणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी क्रांति ने वैज्ञानिक चिंतन तथा प्रखर बौद्धिक चेतना का एक नया स्वरूप प्रदान किया। स्वतंत्रता तथा समानता के ज्वलंत मुद्दों को रेखांकित किया गया। मॉन्टेस्क्यू, लॉक, वॉल्टेयर तथा रूसों ने मानवीय तथा स्वतंत्र चेतनाओं का सवाल उठाकर संपूर्ण दुनिया को झकझोर कर रख दिया। मॉन्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिट ऑफ लॉ' में स्पष्ट किया कि सत्ता का केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए।

पंडित मोतीलाल ने स्पष्ट किया है कि राष्ट्रवाद ने भारतीय समाज के बहुआयामी पक्षों को प्रभावित किया। जड़ता तथा अंधविश्वास पर प्रहार किया। भारतीय जनमानस में सम्मान एवं स्वाभिमान की चेतना को प्रखर किया। भारतीय समाज में मौजूद दुष्प्रकार्यात्मक पक्षों के खिलाफ देश के कोने-कोने में आंदोलन का विवरण उपलब्ध होता है। इतिहासकार विपिन चन्द्र के अनुसार-''राष्ट्रवाद तथा लोकतंत्र की वह उठती लहर, जिसने स्वतंत्रता के संघर्ष को जन्म दिया था, उन आंदोलन के रूप में भी सामने आई जिनका उद्देश्य सामाजिक संस्थाओं तथा भारतीय जनता के धार्मिक दृष्टिकोण का सुधार करना और उनका लोकतंत्रीकरण करना था। राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास, नई आथिर्सक शक्तियों का उदय, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक पश्चिमी विचारों तथा संस्कृति का प्रभाव तथा दुनिया के बारे में पहले से अधिक जानकारी, इन सभी बातों में भारतीय समाज के पिछड़ेपन तथा पतन के बारे में लोगों की चेतना को बढ़ाया ही नहीं बल्कि सुधार के संकल्प को और मजबूत किया।''[12]

पंडित मोतीलाल का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि शिक्षा के कारण भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ। ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद भारत में आधुनिक शिक्षा का आधार सुदृढ़ हुआ। ज्ञातव्य है कि भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में आधुनिक शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। सैयद नरूला तथा जे.पी. नाइक ने अपनी पुस्तक "History of Education in India" में स्पष्ट किया है कि नई शिक्षा में प्रसार के ईसाई मिशनरियों, अंग्रेज शासक तथा आधुनिक प्रगतिशील विचार वाले कुछ भारतीयों का प्रमुख हाथ था। यद्यपि ईसाई मिशनरियों का मुख्य लक्ष्य धार्मिक प्रचार करना था तथापि उन्होंने भारतीयों में आधुनिक शिक्षा फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैकाले तथा चार्ल्स वुड ने भारत में आधुनिक शिक्षा की बुनियाद को सुदृढ़ किया।

आधुनिक शिक्षा के विकास के कालखंड में यूरोप के अनेक विद्वानों तथा चिंतकों ने भारतीय विद्याशास्त्र का गहन अध्ययन किया। वी. चीरोल ने अपनी पुस्तक 'इंडिया' में स्पष्ट किया है कि यूरोप के भारतीय विद्याशास्त्र के विद्वानों ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर भारतीयों के आत्मविश्वास की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। विशेष रूपों में विकिन्स जोन्स, कोलब्रुक, विल्सन आदि ने संस्कृत के महत्वपूर्ण ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। साथ ही इन विद्वानों ने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया। रॉथ, बोहटालिग्क, लासेन तथा अन्य विद्वानों ने भी भारतीय विद्याशास के महत्व को रेखांकित किया। ई0 सेनार्ट, एस0 वैबर, लुडबर्ग, लॉवी आदि का योगदान भी उल्लेखनीय है। इस संदर्भ में शापेन हॉवर, श्लीगन, मैक्समूलर, डायसन आदि विचारकों ने भारतीय ग्रंथों के चिरकालिक महत्व को विश्व-स्तर पर रेखांकित किया। विवरणों एवं तथ्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षा के उदय तथा विकास के कारण भारतीय समाज में पश्चिमीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई।

प्रो0 ए0 आर0 देसाई[12] के अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण तथा विकास में प्रेस की भूमिका एक प्रभावी कारक के रूप में थी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सामाजिक, सांस्कृति, राजनीतिक, आर्थिक तथा राष्ट्रवादी आंदोलन में प्रेस की भूमिका उल्लेखनीय है। प्रो0 देसाई ने उदाहरण के रूप में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित यंग इंडिया का उल्लेख किया है। 1930-32 के जन आंदोलन के दौरान कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्त्ता तथा समर्थक यंग इंडिया के माध्यम से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

भारत बहुलवादी समाज का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। प्रो0 के0 एल0 शर्मा के अनुसार भारत को एक ऐसे समाज के रूप में चित्रित किया जा सकता है। जिसमें अनेकता में एकता और एकता में अनेकता पाई जाती है। क्योंकि यह लेखन और व्यवहार दोनों में बहुलतावादी समाज है। बहुलवादी समाज होने के कारण भारत में राष्ट्रवाद का विकास बहुपक्षीय आयामों के आधार पर अनुभव किया जा सकता है। विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के विकास का स्वरूप अलग-अलग रहा है। प्रो0 एच0 एन0 त्रिपाठी के अनुसार उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के चेन्नई आदि क्षेत्रों में पुनर्जागरण का रूप मुख्यत: आध्यात्मिक तथा धार्मिक था। पश्चिमी भारत

में पुनर्जागरण प्रधानतः सामाजिक तथा शैक्षिक था। बंगाली राष्ट्रवाद के महानायक थे। 1872 में उन्होंने बंगदर्शन की स्थापना की। 'वंदेमातरम' कविता की रचना की। संन्यासी विद्रोह पर आधारित अपनी ऐतिहासिक उपन्यास 'आनंद मठ' प्रकाशित किया।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट किया है कि भारत में पुनर्जागरण आंदोलन तथा राष्ट्रवाद के बीच स्पष्ट एवं तर्कपूर्ण संबंध मौजूद है। यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदय में इटली का पुनर्जागरण तथा जर्मनी के धर्म सुधार आंदोलन ने बौद्धिक आधार प्रदान किया। भारत में भी राष्ट्रवाद के उदय तथा विकास में पुनर्जागरण आंदोलन की प्रखर बौद्धिक चेतना का योगदान उल्लेखनीय है। उल्लेखनीय है कि भारत में पुनर्जागरण आंदोलन का नेतृत्व नव शिक्षित वर्ग ने किया। अतः पुनर्जागरण आंदोलन में तर्कपूर्ण चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टि, वैश्विक चेतना तथा मानवतावादी दृष्टिकोण का अनुभव किया जा सकता है। पुनर्जागरण आंदोलन के कालखण्ड में विवेकानन्द का स्वर गूंज रहा था। ''*मैं एक ही ईश्वर को मानता हूँ, जो सभी आत्माओं की एक आत्मा हैं और सबसे ऊपर है। मेरा ईश्वर दुःखी मानव है, मेरा एक ही ईश्वर पीड़ित मानव है, मेरा ईश्वर हर जाति का निर्धन मनुष्य है।*''

इतिहासकार विपिन चंद्र[13] ने लिखा है-''मानवतावादी राहत कार्य तथा समाज कार्य को जारी रखने के लिए 1896 में विवेकानन्द रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। देश के विभिन्न भागों में इस मिशन की अनेक शाखाएँ थी और इसने स्कूल, अस्पताल, और दवाखानें, अनाथालय, पुस्तकालय आदि खोलकर सामाजिक सेवा के कार्य किए। इस तरह इसका जोर व्यक्ति की मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण और समाज सेवा पर था।''

पुनर्जागरण आंदोलन में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। वे प्रकांड विद्वान थे तथा नारी समाज की पीड़ा एवं यातना से विचलित होकर उन्होंने महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्रदान करने हेतु लगातार प्रयास किया। अनेक बालिका विद्यालय स्थापित किए तथा अनेक व्यक्ति एवं समूहों को नारी शिक्षा के विकास हेतु उत्प्रेरित किया। उन्होंने अनमेल विवाह का विरोध किया। बाल विवाह के खिलाफ संघर्ष किया। पुनर्जागरण आंदोलन में एनी बेसेंट का योगदान भी उल्लेखनीय है। उन्होंने सर्वधर्म-समभाव, शिक्षा तथा सामाजिक एकता के विचारों को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार राष्ट्रीय भावना का विकास और भारतीय आदर्शों पर आधारित ऐसी शिक्षा, जो पश्चिमी संस्कृति, विचारधारा तथा संस्कृति पर आधारित हो, परंतु जिस पर पश्चिमी संस्कृति का वर्चस्व न हो, भारत की प्रमुख आवश्यकताएँ है।

संदर्भ :

1. ए.आर. देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1948, पृ. 260
2. वही
3. जी.एस. घुर्ये, कास्ट एण्ड रेस इन इंडिया, पॉपुलर, प्रकाशन, बॉम्बे, 1932, पृ. 252
4. डी. एन. पनिग्रही, रवीन्द्र कुमार, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ मोतीलाल नेहरू, विकास पब्लिकेशन्स, 1995, पृ. 252
5. पंडित जवाहर लाल नेहरू, आत्मकथा, पेंग्विन, यूनाइटेड किंगडम, 2004, पृ. 171
6. वही, पृ. 252
7. यू. सी. भट्टाचार्य, पंडित मोतीलाल नेहरू : हिज लाइफ एण्ड वर्क, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1990, पृ. 135
8. राधाकृष्ण, एस., द वाइस ऑफ फ्रीडम सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ मोतीलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1961, पृ. 161
9. वही, पृ. 259
10. राधाकृष्ण, एस., द वाइस ऑफ फ्रीडम सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ मोतीलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1961, पृ. 161
11. विपिन चन्द्र, इंडिया स्ट्रगल फॉर इन्डेपेन्डेन्स, पेंग्विन बुक्स, न्यू दिल्ली, 1989, पृ. 78
12. वही, पृ. 166
13. श्रीनिवास, एम. एन, सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया, ओरियन्ट लॉग्मैन, नई दिल्ली, 2002

जयप्रकाश नारायण और समाजवाद

डॉ० कुमार आलोक रंजन

मु0 प्रगति नगर
वार्ड नं0-30
पो0 - भौआरा
प्रखण्ड-रहिका
थाना + जिला-मधुबनी-847212 (बिहार)

जयप्रकाश नारायण समाजवाद प्राप्ति के लिये एक सुसंगठित एवं शक्तिशाली समाजवादी दल की आवश्यकता पर बल देते हैं। जिसको मुख्यत: श्रमिक एवं कृषक संगठन तथा युवा संगठनों का और शहर के गरीब लोगों का समर्थन प्राप्त हो तथा जिनसे पीड़ित जनता की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हो सके।

समाजवाद प्राप्ति के लिये साधनों का सम्यक् विचार करना सर्वाधिक महत्त्व की बात है। विभिन्न लोगों के लिये समाजवाद के विभिन्न अर्थ हैं। समाजवाद से जे.पी. का तात्पर्य समाज का वह रूप है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताएँ पूर्ण होंगी और साथ ही जिसमें व्यक्ति एक सुसंस्कृत, सुसभ्य, निर्भिक एवं साहसी तथा सज्जन एवं सहृदय बनता है। जयप्रकाश मानते थे कि समाजवाद के लक्ष्य पर कुछ माननीय मूल्यों तथा आचरण के प्रतिमानों के सम्यक् पालन के बिना कभी नहीं पहुँच सकते।

जयप्रकाश आध्यात्मिक पुनर्जीवन की बात करते थे। उनकी उक्ति है-''मेरा जो दर्शन है वह पार्थिव है, मानवीय है। समाज में जैसे लोगों के साथ मैं जीना चाहता हूँ उनका रूप क्या हो यही चिन्ता का विषय है। स्पष्टत: मैं ऐसे समाज में जीना चाहता हूँ जो मिथ्याभाषियों और हत्यारों का समाज है, ऐसे लोगों का समाज है जिनमें सज्जनता, सहिष्णुता और बन्धुत्व की भावना नहीं।''[1]

जयप्रकाश नारायण का कहना था कि हमारा लक्ष्य सुप्रबंधित भोजन, वस्त्र एवं आवासयुक्त पशु पैदा करना नहीं बल्कि अच्छे मनुष्य भी पैदा करना है। अत: उनके विचार में समस्त राजनैतिक अर्थ कुछ नैतिक मूल्यों से अवश्यमेव प्रेरित होना चाहिए। वे मानते थे कि यदि हम अपने रचनात्मक कार्य से उद्योग का संचालन करने में समर्थ एक ठोस श्रमिक संघ आंदोलन का निर्माण करने में सफल होते हैं, श्रमिक वर्ग को नागरिकता के विषयों में शिक्षित कर सकते हैं, गाँवों में सहयोगी समुदायों का निर्माण कर सकते हैं, ऐसे सांस्कृतिक प्रभावों का निर्माण कर सकते हें, जो जनता के अत्यंत पिछड़े हुये वर्गो तक पहुँचने में सफल हो सकते हैं, ऐसे हजारों-लाखों नि:स्वार्थ कार्यकर्त्ताओं का जिन्हें सत्ता के पदों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है, तो एक समाजवादी समाज का निर्माण करने में हम सफल होंगे और अंतत: राज्य अनिवार्य रूप से एक समाजवादी राज्य बनेगा अपनी अनिवार्य एवं नियत भूमि अदा करेगा, और राज्य समस्त सत्ता एवं संकल्प का स्रोत एवं उद्‌गम स्थल होने के बजाय, लोकप्रिय समाजवादी आंदोलन के हाथों में एक औजार मात्र होगा।

जयप्रकाश नारायण लोकतांत्रिक समाजवाद को समाजवाद के आदर्श के रूप में अमिट रूप में अंकित किये हैं। ऐसा उन्होंने भारतीय इतिहास और पृष्ठभूमि तथा अपने अनुभवों और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी विचारधारा एवं यूरोप में तथा अन्यत्र समाजवादी पुनर्निर्माण के अनुभवों के आधार पर ही किया है।

जयप्रकाश नारायण मानते थे कि समाजवाद केवल पूंजीवाद का विरोध नहीं है, न वह राज्यवाद है। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और कृषि का समूहीकरण समाजवादी अर्थ रचना के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं वे अपने आप में समाजवाद नहीं है। समाजवाद के अन्तर्गत

मनुष्य का शोषण नहीं होगा, अन्यय और उत्पीड़न नहीं होगा, असुरक्षा नहीं रहेगी, उसके अन्तर्गत सम्पत्ति एवं सेवाओं तथा अवसरों का समान वितरण होगा।

जयप्रकाश नारायण महसूस करते थे कि यदि समाजवाद के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर उनका दृढ़तापूर्वक अनुसरण नहीं होगा तो पुनः क्रांति के साथ विश्वासघात होने का खतरा है। समाजवादी आंदोलन के जिन लक्ष्यों पर बल देने की आवश्यकता है, वे केवल पूंजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन और दलीय तानाशाही की स्थापना नहीं, बल्कि एक ऐसा समाज का निर्माण करना है जिसमें सभी लोग स्वतंत्र और समान होंगे और जो ऐसे मानवीय एवं सामाजिक जीवन के मूल्यों पर आधारित होगा जिनका कभी भी बलिदान नहीं किया जा सकेगा। समाजवाद केवल एक विचार पंथ नहीं है बल्कि एक नयी संस्कृति, एक नयी सभ्यता है।

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद की प्राप्ति के लिए लोकतांत्रिक तरीके को स्वीकार किया है। उनके विचार में सामाजिक क्रांति के दो मार्ग हैं-पहला सशस्त्र जनविद्रोह अथवा विप्लव का मार्ग तथा दूसरा शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक मार्ग। भारत की वर्त्तमान परिस्थिति में लोकतांत्रिक तरीका ही समाजवाद के लिए काम करने का एक मात्र सही तरीका है।[2]

लोकतांत्रिक समाजवाद में उनकी घोषित आस्था को समाजवादी दल के कुछ सदस्य व्यंग्य भावना से स्वीकार करते है। उनके बुनियादी सिद्धांतों का उपहास भी करते हैं। इनके विरोधियों का मानना था कि यह कहना कि बिना रक्तपात का सहारा लिये समाजवाद स्थापित किया जा सकता है। कार्यकर्त्ताओं को मूर्ख बनाना है। उनके लिये समाजवाद की स्थापना का केवल एक ही माग्र है और वह है-रक्त-रंजित क्रांति का मार्ग। यहाँ जयप्रकाश स्पष्ट करते हैं कि यह मान्यता कि समाजवाद सशस्त्र क्रांति के द्वारा स्थापित हो सकता है उतनी ही मार्क्स विरोधी है जितनी यह मान्यता कि समाजवाद शांतिमय साधनों से ही स्थापित हो सकता है। सही स्थिति यह है कि दोनों ही तरीकों का उपयोग समाजवाद के लिये किया जा सकता है। परंतु उनमें से कौन एक विशेष परिस्थिति में उपयुक्त होगा यह निर्णय प्रासंगिक ऐतिहासिक एवं वास्तविक स्थितियाँ ही कर सकती है। एक विशेष स्थिति में एक ही तरीका हो सकता है और कौन तरीका सही है उसका निर्णय परिस्थिति के तथ्यों के आधार पर ही किया जा सकता है, न कि ''पूर्व सिद्ध'' मत घोषणाओं के आधार पर।

जयप्रकाश नारायण के समाजवाद की सैद्धांतिक समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है तथा अपने अनुभवों एवं विद्यमान परिस्थिति में उसके समाधान के उपाय सुझाये हैं। इस संदर्भ में स्वयं जयप्रकाश समाजवाद को नब्बे प्रतिशत व्यवहार और दस प्रतिशत सिद्धांत मानते हैं। उनका मानना है कि व्यवहार और सिद्धांत में परस्पर संबंध होना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक सिद्धांत की कसौटी व्यवहार में ही होती है।

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद के व्यावहारिक, वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित पाँच समस्याओं पर विचार किया है। सर्वप्रथम उन्होंने जिस समस्या की ओर संकेत किया है वह है समाजवादी स्वयंसिद्धियों की समस्या। इस समस्या के हल हुये बिना, समाज के समाजवादी पुनर्निर्माण के सभी प्रयास फेल हो जायेंगे। जयप्रकाश नारायण ने इन समस्याओं को दो स्रोतों की ओर संकेत किया है जहाँ से इसकी उत्पत्ति हुई। प्रथमतः रूस में समाजवाद के निर्माताओं ने माना था कि यदि समाज में, सामाजिक वातावरण में, सामाजिक ढाँचा के बुनियाद में और स्वयं उस ढाँचे में ही परिवर्तन करते चलें तो उस समाजवादी समाज का निर्माण करना संभव हो सकेगा। लेकिन जहाँ समाजवादी समाज की आर्थिक बुनियाद डाली जा चुकी है, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और कृषि का समूहीकरण किया जा चुका है, वहाँ जो सामाजिक रचना बनी है, वह समाजवाद के अनुरूप नहीं है। रूस में सत्ता प्राप्ति के बाद शासक दल के अन्दर ही सत्ता के लिये अति तीव्र संघर्ष छिड़ गया। सत्ता के लिये होने वाले इस संघर्ष की कोई मर्यादा नहीं रह गयी। इस सत्ता की प्राप्ति के खेल में हर साधन का उपयोग किया गया। परंतु सोवियत रूस के साम्यवादी दल ने जो साम्यवादी समाज का अंतिम चित्र सामने रखा था उसे प्राप्त करने में अत्यंत असफल रहे।

जयप्रकाश नारायण कहते थे विश्व के प्रत्येक समाजवादी दल को इस समस्या के प्रति जो सत्ता के संघर्ष के दौरान, दल के नैतिक अंश एवं आदर्शों की भ्रष्टता के कारण उत्पन्न होती है सदैव सजग रहना होगा। इस समस्या के उत्पन्न होने के जिस दूसरे स्रोत का जयप्रकाश ने जिक्र किया है। वह है सार्वत्रिक स्रोत-जैसे मानवीय सवभाव की दुर्बलता, हर जगह वैयक्तिक मानवता की दुर्बलता, उसकी आकांक्षा, उसका स्वार्थीपन, उसकी मूर्खता, उसकी घृणा आदि।

जयप्रकाश मानते हैं कि इतिहास में व्यक्ति को सुधारने के प्रयत्न तो हुये हैं लेकिन जिस वातावरण में व्यक्ति रहता है उसका भूलकर ये प्रयत्न किये गये हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि समाजवादी आंदोलन के पास आर्थिक एवं राजनैतिक तथा सामाजिक कार्यक्रमों के साथ-साथ एक ऐसा भी कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें मूल्यों का प्रश्न सम्मिलित हो।[3]

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद की जिस दूसरी समस्याओं की ओर संकेत किया है वह है समाजवादी समाज के विकास के लिये समुचित राजनीतिक ढांचे के निर्माण की समस्या। यदि समाजवाद के शास्त्रीय साहित्य की ओर देखा जाये तो मार्क्स या एंजेल्स ने त्रत्स्की या लेनिन ने समाजवादी समाज के राजनीतिक लक्षणों का विस्तार से वर्णन किया है। मार्क्स तथा एंजेल्स की मुख्य चिंता का विषय पूंजीवादी समाज का विश्लेषण करना तथा उक्त समाज के गति विज्ञान की खोज करना था, जिससे पूंजीवाद में से समाजवादी समाज का निर्माण करने में सहायता मिले। समाजवाद की पहली राजनीतिक अभिव्यक्ति रूस की राजनैतिक व्यवस्था है। रूसी राजनीतिक व्यवस्था एक दलीय अधिनियम तंत्र का ढाँचा है। उसमें लोकतंत्र का अस्तित्व नहीं है। इसे श्रमजीवी राज्य का जनवादी राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। स्पष्टत: विश्व के समाजवादी आंदोलन के लिये रूस का राजनीतिक संगठन अपूर्ण और अस्वीकार्य होगा। अत: जयप्रकाश नारायण किसी दूसरे ढाँचे के निर्माण पक्षधर थे।

जयप्रकाश नारायण मानते हैं कि यदि समाजवाद जनता के हित के लिये हैं और केवल समाजवाद के माध्यम से ही जनता आश्वस्त होगी तो लोकतंत्र को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है कारण कि लोकतंत्र के द्वारा ही हम जनता तक पहुँच सके हैं। जयप्रकाश का दृढ़ विश्वास था कि यदि हम सामान्य जनों को राजनीतिक व्यवस्था में वह स्थान देना चाहते हैं जिसके वे समुचित अधिकारी हैं तो एक विकेन्द्रित राज्य का विकास करना होगा। समाजवाद को निम्नतम स्तर पर लोक शासन में परिवर्तित करने का एक मात्र यही संभव उपाय है।[4]

समाजवाद की तीसरी समस्या जिसका जिक्र जयप्रकाश ने किया है वह समवर्गीय समस्या। यह उस आर्थिक रचना से संबंध रखती है जो समाजवादी समाज के लिए आवश्यक है। मार्क्सवादी के अनुसार उत्पादन के साधनों से उत्पादन के संबंध की आर्थिक रचना का निर्धारण करते हैं। रूस में यदि समाजवाद के बदले राज्यगत पूंजीवाद है तो इसका कारण इसके आर्थिक व्यवस्था में विद्यमान केन्द्रीयकरण, अधिकारी तंत्रीकरण, औद्योगिक लोकतंत्र का अभाव, उद्योग के प्रबंध में श्रमिक भागीदारी का अभाव-संक्षेप में आर्थिक प्रक्रियाओं पर लोक नियंत्रण का अभाव।[5]

समाजवाद के आर्थिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण विषय है-उद्योगों का राष्ट्रीयकरण। सोवियत रूस में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण होने के बावजूद समाजवाद उत्पन्न नहीं हो सका। इसका कारण उपभोक्ता या उत्पादक का उद्योग के प्रबंध में और नियंत्रण में तथा प्राप्त लाभों के वितरण में कोई हाथ नहीं होना है।

जयप्रकाश के अनुसार इस समस्या का हल यह है कि केन्द्रिय सरकार के हाथों में केन्द्रीय स्वामित्व के बदले, विभिन्न स्तरों पर नीचे की ओर सहकारी समिति तक, ग्राम संगठन या नगर निगम तक स्वामित्व का विकेन्द्रीकरण किया जाये। यह एक मार्ग है जिसके द्वारा हम बहुत थोड़े हाथों में आर्थिक सत्ता के अत्यधिक केन्द्रीकरण का और राजनीतिक तंत्र के साथ-साथ आर्थिक तानाशाही का निश्चत रूप से निवारण करते हैं।

समाजवाद की चौथी सैद्धांतिक समस्या है संघर्ष की पद्धति की समस्या। समाजवादी विचारधारा का एक अंग है संघर्ष की पद्धति। जयप्रकाश नारायण लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिये लोकतांत्रिक साधनों के अनुसरण पर बल देते थे। जयप्रकाश पूर्णत: विश्वस्त थे कि यह मान्यता कि लोकतांत्रिक तरीकों से हम एक हद तक ही आगे बढ़ सकते हैं, गलत आधार पर खड़ी है। जयप्रकाश कहते हैं जब मैं लोकतांत्रिक तरीकों की चर्चा करता हूँ तो स्पष्टत: मेरा तात्पर्य केवल संसदीय तरीकों, वैधानिक तरीकों से नहीं है। मैं गंभीर, वृहद आंदोलन, अहिंसक ढंग की जन कार्रवाई के बारे में भी सोचता हूँ जो अवैधानिक होते हुये भी शांतिपूर्ण साधन है।[6]

जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी आंदोलन की एक समस्या की जो व्याख्या की है वह है समाजवादी देशों के बीच संबंध कैसा हो ? जयप्रकाश नारायण के विचारानुसार जिस प्रकार किसी देश के अन्दर समाजवाद का काम आंतरिक अवसरों का समीकरण, उत्पादित सम्पत्ति का पुनर्वितरण और छोटे से वर्ग के हाथों में केन्द्रित आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण काल है। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में समाजवाद का काम वर्त्तमान विसंगति को दूर करने तथा किसी जाति विकास समुच्य या जागतिक विकास

संगठन के द्वारा पिछड़े देशों का स्तर उठाने में सहायता करने का होना चाहिए। स्वदेशिक दायित्व का काम वैदेशिक क्षेत्र तक किया जाना चाहिए। हम अपने देश के अन्दर जो कुछ करने का प्रयास कर रहे हैं वही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जयप्रकाश नारायण का पूर्ण विश्वास था कि ''यदि सम्पन्न देशों द्वारा पिछड़े देशों की सहायता का विचार ध्यान में रखें और कम से कम उसको आधार मानकर उसे ईमानदारी से क्रियान्वित करने का प्रयत्न करें तो समाजवादी आंदोलन जिसका हमारे देश में प्रतिनिधित्व हो रहा है, विश्व समाजवादी आंदोलन को नयी दिशा प्रदान करेगी।''[7]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि समाजवाद का तात्पर्य है उत्पादन एवं वितरण के साधनों का सामूहिक स्वामित्व स्थापित करना और आर्थिक विषमताओं को मिटाकर शोषण विहीन समाज की स्थापना करना। गरीबी, विषमता एवं शोषण जेसी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का समाधान समाजवाद से अलग हटकर कतई संभव नहीं है। अत: जयप्रकाश ने समाजवाद की जोरदार वकालत की है जे.पी. सम्पत्ति के असमान वितरण (जिसमें मुट्ठी भर लोग के पास सभी सुख के साधन हो और विशाल जनसमूह बेकारी, गरीबी, भूख, बीमारी आदि समस्याओं से पीड़ित हों) को समाप्त करने के लिये निजी स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व की स्थापना के प्रबल पक्षधर थे। आर्थिक शोषण उन्मूलन और आर्थिक विषमताओं के अंत के लिए ऐसा करना उन्होंने आवश्यक माना है।[8]

जयप्रकाश नारायण के समाजवादी विचारधारा की आधारशिला मार्क्सवाद है, किन्तु वे उसकी कुछ स्थापनाओं में सुधार की आवश्यकता समझते थे। वे मार्क्स की इस मान्यता से सहमत नहीं थे कि सामाजिक विकास के दौरान मध्यम श्रेणी समाप्त हो जायेगी और इस वर्ग का सामाजिक विकास में कोई महत्व नहीं रह जायेगा। जयप्रकाश की मान्यता है कि सामाजिक प्रगति के साथ अध्यापकों, इंजीनियरों, डॉक्टरों आदि नये वर्ग का पैदा होना स्वाभाविक है और वर्ग संतुलन की विवेचन में इसकी उपेक्षा संभव नहीं है। जयप्रकाश नारायण समाजवाद के सोवियत रूस जैसी तानाशाही स्वरूप को भी स्वीकार नहीं करते थे। इस अर्थ में महात्मा गाँधी के विचार के पोषक जान पड़ते हैं। सबको योग्यतानुसार काम एवं आवश्यकतानुसार वस्तु उपलब्ध कराने संबंधी विचार उन्हें मार्क्स एवं गाँधी के विचारों में साम्य का अनुभव होता था और वे स्वयं भी इसके पक्षधर थे। सारांशत: जयप्रकाश के समाजवादी दर्शन के आईने में झाँकने से ऐसा प्रतीत होता है कि जयप्रकाश मार्क्स के दृष्टिकोण से सहमत होकर जीवन की परिवर्त्तित परिस्थितियों में उसे लागू करने के पक्ष में थे।[9]

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद समाज के निर्माण को दो मंजिल का बताया है। प्रथम संक्रमण काल की मंजिल है जो पूंजीवाद से समाजवाद की ओर है और दूसरी समाजवाद का लाभ राज्य के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने का मंजिल है। वे ऐसे समाजवादी राज्य की कल्पना करते थे जो लोक सत्तात्मक हो तथा लोग पूंजीवाद एवं राज्य के गुलाम न हों बल्कि पूर्ण स्वतंत्र हो, व्यक्ति समाज की सेवा करे और समाज उसे जीविका का साधन प्रदान करे।[10]

जयप्रकाश नारायण का मानना था कि सम्पत्ति संग्रह के नियम तथा उसे रोकने की प्रक्रिया अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तरह भारतीय अर्थव्यवस्था में भी समान रूप से लागू होता है। सम्पत्ति का असमान वितरण की समाप्ति अन्य देशों की तरह भारत के लिये भी समान रूप से आवश्यक है। जयप्रकाश के मत में भारतीय व्यक्तिवाद का तात्पर्य संकीर्णता नहीं है, 'वरन् व्यक्ति की पूर्णता है और यह पूंजीवाद का प्रेरक तत्व नहीं है। वे भारतीय समस्या और परिस्थितियों के अनुकूल समाजवाद की स्थापना तथा लोगों के दु:ख-दारिद्रय को मिटाने के लिए जनता को सत्ता सौंपने, नियोजित एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था बहाल करने, आधारभूत उद्योगों का समाजीकरण, विदेशी व्यापार पर राजकीय एकाधिकार, जमींदारी उन्मूलन, भूमि का पुनर्वितरण तथा सहकारी कृषि को प्रोत्साहन देने के पक्ष में थे। वे समाजवाद के अंतर्गत नैतिकता के तत्व का समावेश चाहते थे। नैतिकता के तत्व के बिना समाजवाद की स्थापना संभव नहीं है ऐसा उनका मानना था।

समाजवाद को प्राप्त करने के लिए जयप्रकाश नारायण लोकतांत्रिक तरीके के हिमायती थे। वे वस्तुत: समाजवाद की प्राप्ति हेतु सशस्त्र जन विद्रोह के विरुद्ध थे और शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक तरीके से इसे हासिल करने की बात करते थे। इस प्रकार जयप्रकाश के समाजवादी दर्शन में शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक पद्धति द्वारा शोषणविहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की गई है।[11]

नि:संदेह जयप्रकाश क्रांतिकारी समाजवाद के स्थान पर लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना के इच्छुक थे। इनके अनुसार मार्क्स द्वारा क्रांतिकारी समाजवाद के प्रतिपादन के पश्चात् लोकतंत्र के विकास ने काफी शक्ति प्राप्त कर ली है, अत: समाजवाद की स्थापना लोकतांत्रिक तरीकों से ही होनी चाहिए स्वयं मार्क्स ने 'हेग' में दिये गये भाषण में शांतिपूर्ण परिवर्तन द्वारा समाजवाद की

स्थापना को संभव बताया। जयप्रकाश ने समाजवाद के माध्यम से अपने सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का निदान ढूँढ़ा है। उनके अनुसार समाजवादी राज्य को मूलभूत मूल्यों की स्थापना करनी चाहिए और नैतिकता विहीन जीवन को अस्वीकार करना चाहिए। वे साधन और साध्य के पारस्परिक संबंध को महत्व देते है। उच्च आदर्शों के अनुरूप किये गये कार्य उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति संभव बना है। इसके विपरीत आचरण द्वारा लक्ष्य प्राप्ति संभव नहीं है। नवीन समाज की स्थापना के लिए स्वीकृत आदर्श मूल्यों को द्वंद्वात्मक पद्धति परिवर्तित नहीं कर सकती। समाजवाद की सफलता के लिए जयप्रकाश ने लोकतांत्रिक राज्य की अनिवार्यता पर बल दिया। राजनीतिक दृष्टि से समाजवाद की यथार्थता इसी पर आधारित है कि समाजवाद को निम्नतम स्तर पर लोक शासन में उतार दिया जाए। केवल राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद की चर्चा निरर्थक है।''[12]

''जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी समाज की आर्थिक संरचना पर प्रकाश डालते हुए यह बतलाया कि केवल उद्योगों का राष्ट्रीयकरण वेतन की समानता तथा श्रमिकों का नियंत्रण प्रस्तुत नहीं कर सकता। वस्तुत: उद्योगों के राष्ट्रीयकरण ने नौकरशाही का शासन स्थापित कर दिया है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की संरचना विकेन्द्रित होनी चाहिए। बड़े पैमाने पर तथा केन्द्रित उत्पादन एशिया के देशों में समाजवाद नहीं ला सकता। इसके लिए गृह, उद्योगों कुटीर उद्योगों एवं छोटे उद्योगों की देशभर में स्थापना कर उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करना चाहिए। केवल अर्थव्यवस्था ही नहीं किन्तु स्वामित्व का विकेन्द्रीयकरण भी आवश्यक है। केवल केन्द्रीय सरकार द्वारा उद्योगों का स्वामित्व नहीं होना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर स्वामित्व होते हुए ग्राम संगठन या नगर निगम तक स्वामित्व बंटा हुआ होना चाहिए। जयप्रकाश के ये विचार राममनोहर लोहिया के विचारों को प्रतिध्वनित करते हैं। राममनोहर लोहिया के विचारों के समान आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीयकरण पर जयप्रकाश का सुझाव यह दर्शाता है कि चन्द व्यक्तियों के हाथ में पूंजी का केन्द्रीयकरण न हो। इस बात की आवश्यकता है कि समाजवादी समाज आर्थिक अधिनायकतंत्र से मुक्त रहे।[13] जयप्रकाश नारायण समाजवादी समाज की स्थापना के लिए शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक साधनों के प्रयोग को आवश्यक नहीं मानते। उनका यह अभिप्राय नहीं कि समाजवाद संसदात्मक अथवा संवैधानिक पद्धतियों से ही स्थापित किया जाय। वे अहिंसक जनांदोलन से समाजवाद की स्थापना का विचार प्रकट करते हैं। यदि जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सके तो ऐसे शांतिपूर्ण प्रयत्न असंवैधानिक होते हुए भी उचित है। लोहिया के विचारों के विपरीत जयप्रकाश यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि हिंसा के बिना समाजवादी क्रांति अपूर्ण है। वे गांधी के आदर्शों को ध्यान में रखकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि अनुचित साधनों से इच्छित साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। समाजवाद की सफलता के लिए जयप्रकाश ने व्यक्ति की इच्छाओं को सीमित करने की आवश्यकता पर बल दिया। समाज के हित में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण सथापित करना समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व के लिए उपयोगी ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। जब तक व्यक्ति की मांग को नियंत्रित नहीं किया जाता तब तक समाजवादी समाज का प्रयोग संभव नहीं। जयप्रकाश के अनुसार सामाजिक नियंत्रण के स्थान पर आत्म-नियंत्रण द्वारा एक ओर व्यक्ति तथा व्यक्ति के मध्य तथा दूसरी ओर समूहों एवं राष्ट्रों के मध्य संघर्ष नहीं टाला जा सकता।''[14]

''जयप्रकाश नारायण के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना दीर्घकालीन विकास एवं प्रयत्नों पर आधारित होती है। संक्रमणकाल की अवधि पूरी होने के पश्चात् ही नवीन आदर्श की प्राप्ति होती है। वर्ग-संघर्ष के बिना समाज में समाजवाद की चेतना मात्र दिखाई देती है। केवल समाजवादी बुद्धिजीवियों से समाजवाद स्थापित नहीं होता है। वास्तविक शक्ति काम करने वाले श्रमिकों तथा पूंजीवादी समाज के शोषित वर्गो के समर्थन से ही संभव है। शोषित वर्ग द्वारा शोषण का विरोध सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करके एक शोषण विहीन समाजवादी समाज की स्थापना में सहायक बनता है। बुद्धिजीवियों द्वारा इस संघर्ष में वैचारिक भूमिका निभाई जाती है तथा आंदोलन को विचारवाद की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। समाजवाद की स्थापना के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दो स्तर दिखाई देते हैं-एक समाजवादियों द्वारा वर्ग-संघर्ष के माध्यम से शक्ति पर नियंत्रण तथा दूसरा शक्ति सम्पन्न समाजवादियों द्वारा समाजवाद की स्थापना।''[15]

नि:संदेह गांधीवाद एवं सर्वोदयी कार्यक्रम को अंगीकार करने के बावजूद जयप्रकाश नारायण समाजवाद को मजबूत बनाने में अनवरत् प्रयत्नशील रहे और किसी प्रकार यथार्थ में इसकी प्राप्ति हो, उसका मार्ग भी प्रदर्शित करते रहे। यदि हम दलगत दृष्टिकोण से उनपर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है मानो इससे पृथक ही रहे, पर यदि व्यक्तित्व के विकास के सिद्धांत को ध्यान में रखकर विचार करते हैं तो हमारे सामने समाजवाद, प्रजातंत्रवाद एवं सर्वोदय का जो सम्मिलित साकार रूप दृष्टिगोचर होता हे, वह है-जयप्रकाश ![16]

नि:संदेह, जयप्रकाश नारायण भारतीय समाजवाद के क्षेत्र में माने हुए तथा सुविख्यात व्यक्ति थे। यह उनका महत्वपूर्ण योगदान था कि उन्होंने भारत में समाजवादी आंदोलन को कांग्रेस के झण्डे से नीचे चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के साथ सम्बद्ध कर दिया। नरेन्द्रदेव के साथ जयप्रकाश नारायण ने समाजवादी विचारधारा को जनता को साम्राज्यवादी राजनीतिक आधिपत्य तथा देशीय सामंतवाद की दासता से मुक्त करवाने की दिशा में मोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने समाजवादी दर्शन को दो युद्धों का समर घोष बनाया-राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम तथा सामाजिक क्रांति। भारत के जर्जरित ग्रामीण समाज की विकराल दरिद्रता के संदर्भ में जयप्रकाश नारायण ने उन सामाजिक तथा यांत्रिक बंधनों के उन्मूलन पर बल दिया जो कृषि के उत्पादन में बाधा डाल रहे थे।[17]

इस तरह स्पष्ट है कि समाजवाद के ज्ञाताओं में जयप्रकाश नारायण अतुलनीय थे। हालांकि उनका मन मानसिक कष्ट इस संदर्भ में बड़ा ही तीक्ष्ण था। अभी तक पूर्ण रूप से कोई भी देश, चाहे वह साम्यवादी हो, समाजवादी हो, पूंजीवादी हो, औद्योगिकवादी हो, या फिर प्रजातांत्रिक हो, जनसाधारण के कष्टों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकता है। यदि मनुष्य समाजवादी देश में भौतिक दृष्टि से खुशहाल है तो दूसरी ओर उसे विचार एवं कामनाओं की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार हर जगह मनुष्यों ने यदि कुछ प्राप्त किया है, तो कुछ का अभाव भी उसे टीसता रहा, उसने कुछ खोया भी है। भारत में भी स्वराज्य का अनुभव सभी लोग एक जैसा नहीं कर पा रहे हैं। कुछ तो स्वाद के मीठास से सर्वथा ही अनभिज्ञ है। अत: जयप्रकाश नारायण सही मायने में स्वराज को जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते थे। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि जनता जनार्दन स्वतंत्र जीवन की अनुभूति प्राप्त करे और इसी में देश के सभी नागरिकों के कल्याण की भावना निहित है।

संदर्भ :

1. समाजवादी दल का छठा राष्ट्रीय अधिवेशन में जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन, नासिक (महाराष्ट्र), 1948
2. जयप्रकाश नारायण : 'सोशलिज्म, सर्वोदय एण्ड डेमोक्रेसी', पूर्वोक्त, पृ. 13
3. जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रथम एशियाई समाजवादी सम्मेलन में दिया गया भाषण, रंगून, 1953
4. वही
5. वही
6. जयप्रकाश नारायण : "समाजवाद ही क्यों ?" बनारस, 1936, पृ. 1
7. वही
8. वही
9. वही
10. अमरेश्वर अवस्थी एवं राम कुमार अवस्थी : पूर्वोक्त, पृ. 516
11. वही
12. वही
13. कुमार अमरेन्द्र : "जयप्रकाश नारायण : व्यक्तित्व और विरासत", गतिमान (पत्रिका), पटना, अक्टूबर, 2001, पृ. 6
14. वही
15. वही
16. अर्चना सिन्हा : सर्वोदय का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1989, पृ. 259
17. अमरेश्वर अवस्थी, एवं राम कुमार अवस्थी : पूर्वोक्त, 529

मोदलता की रचनाओं में व्यक्त दार्शनिकता का अध्ययन

डॉ० दिलीप कुमार झा

ग्राम+पो0-ठाढ़ी
भाया-अंधराठाढ़ी
जिला-मधुबनी (बिहार)
पिन कोड-847401
पूर्व शोधार्थी (हिन्दी)
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मोदलताजी ने मधुर-रस और मधुरोपासना के आलोक में अपनी भाव - साधना को व्यक्त कर, अप्रतिमानन्द की सृष्टि की है। इन्होंने रस-ब्रह्म पुरुषोत्तम की लीला - वैचित्री का गायन कर मिथिला-मण्डल की वैष्णव-साधना की चारुता को प्रकट किया है। श्रुति में ब्रह्म को प्राणियों का एक मात्र पति कहा गया है।[1] **'पत्यादिशब्देभ्य:'** के रूप में ब्रह्मसूत्र में भी ईश्वर को पति पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। चिजगत् में भगवान् का ही भोक्तृत्व प्रकट होता है। प्रकृति रूप जीव भोग्य आख्य से अभिमण्डित है।[2]

अवतारी ब्रह्म की संज्ञा ही भगवान् हैं। 'भग, आस्यते इति भगवान:' - इस उक्ति के अनुसार ऐश्वर्यादि गुणों का विस्तार भगवान के द्वारा ही संभव है। भगवान् की त्रिविधा शक्तियाँ संवित्, संघिनी एवं आह्लादिनी हैं। सत्तात्मिका, ज्ञानात्मिका एवं आनन्दात्मिका शक्तियों के द्वारा ही भगवान् का अवतारत्व सिद्ध होता है।

त्रिपाद विभूति भगवान्, भक्तों के मानस में आनन्द को प्रथित करते हैं। आनन्द को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्मानन्द से भक्त्यानन्द की श्रेष्ठता प्रकट होती है। भक्त्यानन्द की प्राप्ति महाभाव तथा चिन्मयकाया के द्वारा होती है। सम्बन्ध स्थापना के द्वारा जो दिव्यानन्द अवतरित होता है, उसकी मीमांसा विहित प्रतीत होती है। ईश्वर के प्रति राग - रोष के समर्पण को देखा जा सकता है। मिथिला - वासियों ने रस - ब्रह्म के प्रति अपने राग का समर्पण कर महत्वपूर्ण कार्य किया, जिसका पल्लवन आवश्यक हो जाता है।

मिथिला तथा अवध की सम्बन्ध शाश्वतता निरूपित होती है -

मिथिला-अवध है एक समान।
याको करिये छान।
ब्रह्मपुरी श्रुति उनको कहयत
तैसोई कहत पुरान।
दोउन ब्रह्पुरिन में काको
करिये लघु - गुरु ज्ञान।
सीयराम से बना ब्रह्मपद
लड़त तहाँ अज्ञान।

यह रहस्य संतन ही को घर

का जनिहें रुखरान।[3]

दशरथ को वैदिक तथा जनक को वेदान्ती कहा गया है। वैदिक सकाम यज्ञ करते हैं – पुत्रकाम सुभजज्ञ कराबा।'' वेदान्ती निष्काम होते हैं। जनक ने कन्यादान किया था। कन्या के प्रति पिता निष्काम होता है। मिथिला शब्द के तीन वर्ण – 'म', 'थ' तथा 'ल' क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के वाचक हैं। क्रमशः इनकी तीन शक्तियाँ – महासरस्वती, महालक्ष्मी, तथा महाकाली परिकथित हैं। इस प्रकार मिथिला की वीथियों तीन देवों तथा तीन देवियों का चंक्रमण होता है।

मिथिला की तुलना सप्त स्वर्गो से नहीं हो सकती है, यथा –

मिथिला को न पाबत सात सरग।

कर्मन को फल सरग कहत श्रुति,

करम – धरम जैमिनि को बरग।

सो जैमिनि जेहि भजत निरंतर

चलत न कतहूँ एक परग।।

गौतम कपिल महानुमि एहि थल

विश्व वरद सम जितने करग।

जहँ जागती जोति कमला की

जिनको सेबत आप भरग।[4]

यहाँ आनन्तर तथा बाह्य शत्रुओं का मंथन होता है –

अन्तर्बहिश्च सर्वत्र

मथ्यन्ते रिपवः सदा।

मिथिला नाम सा ज्ञेया

जनकैश्च कृपा महि।[5]

मिथिला आद्या सीता की प्रसवस्थली है। विवाहावसर पर श्रीराम की श्यामला काया पर, जब किशोरी की काया की पीतिमा तथा उज्जवलता का संचार हुआ, तब हरि में हरित्व का आगमन हुआ। यह किशोरी की कृपा का ही चमत्कार है। मोदलता जी ने लिखा है –

देखियनु देखिअनु ए बहिना

हरिअर हरिओ भेला होइते

वैदेही दहिना।

जिनकर उपमा देश – शारदा

कल्पहुँ नहिं कहिना।

पार पबै छथि से सिय सनमुख

जुगुनि जोति जहिना।[6]

आह्लादिनी शक्ति ही ब्रह्म को प्रेरित करती हैं। वस्तुतः भगवान् की स्वरूप शक्ति का प्रकाश ही मिथिला – मण्डल में प्रकट हुआ है। मिथिलावासी अवध की कामना नहीं करते हैं।[7] अयोध्या के राजा श्रीराम से भुक्तिक्या, मुक्ति की भी याचना नहीं की जाती है। मामाजी (श्रीमन्नारायण) ने लिखा है –

सब जन ग्रहीता तूँ दाता जगत के

दानी सिरोमनि कहै लऽ

मिथिला में दाता जानकीजी उदार अति
जिनकर ग्रहीता तू भइलऽ[8]

श्रीमोदलता की दर्शनिक चेतना सम्बन्ध - स्थापना के धरातल पर अवतरित है। इन्होंने महाभाव की उस तन्मयासक्ति का वर्णन किया है, जिसमें विरहावस्था में प्रियतमा - प्रियतम के रूप में परिणता हो जाती हैं -

प्रियतम प्यारी अहाँक अनन्या।
रोम-रोम रँग स्याम में रँगलनि
त्यागि सकल रँग अन्या।
स्याम वसन तन, स्याम कंचुकी,
स्याम बरांक लसन्या।
अंजन-पलक पूतिरिहिं स्यामहिं
स्याम बिन्दु अधरन्या।
'मोद' प्रेम-पथ में श्री मैथिलि
अहाँ सँ सौगुन धन्या।[9]

महाभाव की मोदन स्थिति में ऐसी तन्मयासक्ति सृष्ट होती इसकी परम्परा दृष्टिगत होती है।[10]

राधा हुई आप घनश्याम।
-- भारतेन्दु।
राधा रटती, अधिक विलखती
वेणु अधर अभिराम।
इस गोरी की रति डोरी ने
बाँध लिया है श्याम।
राधा हुई आप घनश्याम।[10]

इस प्रकार महाभाव की तन्मयासक्ति के वर्णन की एक व्यापक परम्परा मिलती है।

श्री मोदलता की रचनाओं में सखी - भाव प्रतिष्ठित है। 'सखा सख्भ्यि: ईड्य:' के रूप में श्रुति में इसका समर्थन किया गया है। मधुर - रस में एकादश आसक्तियों का प्रकाट्य होता है। रूपमाधुरी, नाममाधुरी, लीलामाधुरी और धाममाधुरी का सौन्दर्य अवलोकनीय है। इस प्रकार जीवात्मा - परमात्मा के बीच इस आनन्द को आगमन होता है। और जीवन में कृत - कृत्यता का सौन्दर्य प्रकट होता है।

श्रीमोदलता की रचनाओं में प्रभु की ये माधुरियाँ अवतरित हुई हैं, जिनकी सम्यक मीमांसा आवश्यक है। भारतीय चिन्तन प्रणाली में आत्मसुख का अनुसंधान किया गया है। आत्म शब्द 'अतसातत्य गमने' धातु से बना है। निरूक्तकार यास्क 'अततेर्वा आप्तेर्वा के रूप में आत्मा के अर्थ को प्रकट किया है। अग्नि इसकी मूर्धा है। सूर्य - चन्द्र चक्षु हैं दिशाएँ श्रोत्र (काम) है। वेद - वाणी इसकी वाणी है। वायु को इसका प्राण तत्व कहा गया है। पृथिवी पद - प्रान्त है यही सर्वभूतान्तरात्मा है। वेदान्त में आत्मा की तीन कोटियाँ कथित है -

1. - महानात्मा,
2. भूताम एवं
3. असुर सृगात्मा।

महानात्मा के कारण ही जीव का गर्भ में अधिवास होता है। भूतात व्यापकात्मा है। असुरसृगात्मा शरीरस्थ है।

आत्मा के अधिष्ठाता को परमात्मा कहा गया है। वेदान्त में उसे अक्षर – तत्व कहा गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार, जनकजी के बहुदक्षिणा यज्ञावसर पर, उपस्थित विद्वानों ने मैथिल याज्ञवल्क्य से कई गूढ़ प्रश्न किए। इनमें से एक प्रश्न के अनुसार नयनों का रहस्य पूछा गया। याज्ञवल्क्य ने कहा कि दक्षिण नयन में 'इन्ध' का निवास है। 'परोक्ष प्रियो हि देवा' – इस उक्ति के अनुसार इन्ध का उच्चारण इन्द्र किया जाता है। वाम नयन में पुरुष का निवास है। रक्त हृत् पर्यक पर दम्पति की लीला – वैयित्री प्रकट होती है। 'तिष्ठद्दशांगुलम्' इस श्रुति के अनुसार हृदय के ऊपर प्राणवाहिनी नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। आचमन – विधान के द्वारा कर्मजन्य संस्कारों का चयन किया जाता है। इस प्रकार शक्ति शिव – संगम के रहस्य को आयत्त किया जाता है। यह आत्म – तत्व विधान – कोटि में परिगणित है।

मोदलताजी ने उद्भव स्थिति संहारकर्त्री भगवती सीता के विषय में लिखा है –

अगनित ब्रह्माण्डन की उतपति थिति प्रलय करैं
जाकी एक बारन की दिव्य भौंह फेरनी।
जाकी कृपा कोर बस भये दीनबन्ध
टूटे भव फंद छूटै मेरी और तेरनी।
संभु सखि वेष धारि जाकी महल टहल करैं
ठाढ़ी रहैं जोड़ि कर सक्तिन की ढेरनी।
'मोद' अलि भाखै उर अन्तर प्रमोद यह
काको नहि चेरी कहै सिया जू की हेरनी।[11]

कवि की कामना है कि प्रभु श्रीराम के सुकृत का ही परिणाम है कि सीताजी से इनका विवाह हुआ। यह इनकी महती तपश्चर्या का ही परिणाम है। वस्तुतः उनके जीवन की यह परम सफलता है –

केहन सुकृत अहॅं कैलहुॅं यो पाहुन
केहन सुकृत अहॅं कैलहुॅं।
श्री सिय सुंदरि पैलहुॅं यो पाहुन
केहन ... .।
की अहाँ परम उग्र तप तपलहुँ,
की बहु जोग जगैलहुँ।
की अहॉं सकल सुतीर्थि नहैलहुँ,
जुग – जुग जलहिं समैलहुँ
यो पाहुन......।[12]

वस्तुतः शक्ति संयुक्त ब्रह्म की ही पूर्णता प्रकट होती है। रस स्वरूप ब्रह्म की एक रसता का विनाश शक्ति, बल और क्रिया का ही परिणाम है। ब्रह्माभिन्न शक्ति है। इसका प्राकट्य बल के रूप में होता है और इसकी परिणति ही क्रिया है।

भक्ति – दर्शन में जगत् का मित्यात्व सिद्ध नहीं होता है। यह जगत जगत प्रभु की लीला स्थली है फलतः इसका मिथ्यात्व अनुचित है। जगत् के नानात्व में मिथ्यात्व है। मिथिला माहात्म्य के अनुसार साकेत के निजांश से ही मिथिला भूमि प्रकट हुई है। मिथिलावासी शुद्ध – मुक्त तथा महामंगल विग्रह हैं, इन्हें आत्मविद्या में विशारद कहा गया है।[13] तिरहुमण्डल ! हाथ कमण्डल ! इस उक्ति के अनुसार तिरहुत मण्डल में कमण्डल हाथ में लेकर घूमने से वह अन्न और जल से पूर्ण हो जाएगा। हृदय कमण्डल को भी आनन्द जल से भरना है।

ब्रह्म की षोडश कलाएँ कही गई हैं। श्रीराम पूर्णावतार हैं। इनकी कलाओं का प्राकट्य किशोरी की कृपा का ही परिणाम है।

सरयू पुलिन पर भी कवि ने सिय प्रिय को झूलते हुए देखा है।[13] इस आनन्द का वर्णन असंभव है। श्रीयुगलानन्य शरण ने लिखा है।

नेह हिंडोला डारा दरदिल पटरी प्रीति लगाई है।
जुगलानन्य हमेशा झूलैं सिय सहित सुखदाई है।[13]

मोदलता ने झूलन - लीला वर्णन के माध्यम से विश्वव्यापी गतिशीलता को ही प्रकट किया है।

दर्शनशास्त्र में जीव को सुख - दु:ख का भोक्ता कहा गया है। 'सप्तदशैकेलिङगम्' इस सांख्य सूत्र के अनुसार जीव में अहंकारादि सत्रह तत्व होते हैं। जीव का अधिष्ठाता ब्रह्म है। वह उसी का अंश है। जीव और ब्रह्म में प्रकार - प्रकारी सम्बद्ध को सिद्ध किया गया है। जिस प्रकार समुद्र प्रकारी है और उसकी लहरें प्रकार हैं।

मोदलता जी दुल्हा सरकार के रमणीय रूप का वर्णन करते हुए कहा है -

रघुनंदन आबहिं बिलोकु सखियो
नजरवाली नजरी सम्हारि रखियो
माथे मनि मौरबा विलाकू सखियो
केसर की खौरब बिलोककि हि सखियो
जुलूमी नजरबा विलोइ सखियो
'मोद' चित चोरबा बिलोकू सखियो।[14]

यह रूपासक्ति का अद्‌भुत उदाहरण है। वस्तुत: साकार ब्रह्म के प्रति निष्ठा और आकर्षण का आगमन स्वाभाविक ही है। सगुणोपासक निर्गुणोपासना की कामना नहीं करते। वे मोक्ष काम भी नहीं। वे तो बारंबार मिथिला में जन्म धारण कर विवाहोत्सव का आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। मिथिला बिना सम्बन्ध निरूपण संभव नहीं है।[15]

मोदलताजी ने मिथिला - भाव के वर्णन के क्रम में सौन्दर्य - निरूपण की संवेदनाओं की संप्रेषणीयता प्रकट की है।[16] सौन्दर्य को परम शिव की आँखों का विषय कहा गया है -

''तथा ते सौन्दर्यं परम शिव दृग्मात्र विषय:।''

कवि ने दूल्हा सरकार के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन कर, रसिकों को चमत्कृत कर दिया है। श्रीकिशोरी की कान्ति की दिव्यता भी अवलोकनीय है। ''मोद त्यों किसोरी मुख प्रीतम ते नीके है'' ऐसा कहकर कवि ने इसी रस - रहस्य को सिद्ध किया है। उन्होंने लिखा है -

सीय मुख देखि ब्रह्म जोति तो हेराय जात
पूर्णचन्द्र जोति होत अति ही अधूर हैं।
चंद्रमा ओ चपला की चर्चा चलाबे कौन
कमला कमिनीयताइ होत चूर - चूर हैं।
दिव्यता बखानन में बानी हूँ अयानी रहैं
ऐसी जाकी भूमि भव्यताई भरपूर है।
लालहूँ लुभाये रहें लखिके लुनाई सदा
'मोद' झाँकि लीजै अबै राजते हजूर हैं।[15]

मोदलता जी ने शाश्वत सुषमा का वर्णन करते हुए, भाव - जगत् में परमानन्द को प्रथित किया है। दुल्हा सरकार के कमनीय नयनों के प्रति कवियों की उक्तियाँ अतीव प्रभावशालिनी प्रतीत होती हैं। यथा द्रष्टव्य -

बड़े बाँके पिय प्यारे के नैना।
चितबन ही घायल करि डारत।
पुरत न घाव मलम टाँके

कासो कहुँ बैना।
-- मौनमुदितजी।
चितबन साँग चलाय यार मन,
तन - मन छेद किया है।
टॉका लगे न सीने माफिक
ऐसा दरद दिया है।
अगर हकीम मसीहा आबै
तौ भी मत हिया है।
'जुगलानन्य शरण' केवल
मुस्कान विलोकि जिया है।
--इश्ककानित।
आँख लगै घरबार छुटै
अरु भ्रात - पिता सुनिके मन माखे
आँख लगै वैराग्य चढ़ै
दुख दूनो बढ़ै दुख ही दुख ब्यापै।
-- मैथिली विवाह - पदावली - 57
चारेहुँ ओरन ते चरचा भइ
चाहति हैं मुख चंद चकोरी।
खंजन सी उड़ि जात तहाँ
मृग सी भरि चौकरि प्रीति में बोरी।
-- श्यामल गौर मनोहर जोड़ी
डॉ0 कृष्णचन्द्र झा 'मयंक'

मोदलता जी ने दुल्हा सरकार के नयनों का वर्णन करते हुए कहा है -

नयन अहाँक किए एहन पाहुन
नयन अहाँक किए एहन।
चैन चित चर चूर करै छथि -
आगाँ की कहु जेहन।
लोक लाज कुलकानि अपन पौ
लै लइ छथि ई केहन।
रोम - रोम मादक भरि दै छथि
जुड़िताहिं मद भरि तेहन।[16]

इस प्रकार रूपासक्ति के द्वारा परम तन्यमसक्ति सृष्ट होती है। इस रहस्य को जानना आवश्यक है। कवि ने अलौकिकता को संयुक्त करते हुए अपनी वाणी का परम चमत्कार प्रकट किया है। कवि की साधना सहृदय संवेद्य है। वस्तुतः सहृदय साध का ही मोदलता जी की रस - साधना से अवगत हो सकते हैं।

कवि ने मायिक संसार के मिथ्यात्व का वर्णन करते हुए, जानकी जीवन के प्रति ही अपनी तन्मयासक्ति प्रकट की है -

जोनिन में जन्म लै लै सहते क्यो महादु:ख
विमुखन की संगति ते अब हीं मुख मोड़ दे।
छीजति है छिन - छिन यह देवहूँ को दुर्बल देह।
संतन के संग कै - कै छल छंद छोड़ दे।
तिया ओ तनय तेरो अन्त को साथी याते
ममता के तागन को तरातर के तोड़े दे।
'मोद' जदि चाहै जमालय में न जाना तो
जानकी जू के जीवन में जियरा को जोड़ दे।[17]

इस प्रकार मोदलताजी की दार्शनिक चेतना कई रूपों में प्रकट हुई है। उन्होंने जीवन की नश्वरता का वर्णन करते हुए हमें सावधान किया है -

बने लापरवाह धन धाम के अरामन में
कामन में मग्न हो गुलाम बने जनिया के।
भावे सोइ खाबे दृढ़ि ताहि को हराबे
भल लोगन के बीच धरे लाह की लबनिया को
सुनिक हित जरते अधिकारी पै गुफरते
सरकार को न भजते जो हरैंगे पाजि पनिया को।
भक्ति को न गनै रामकथा को न सुनै आखिर
खोपरि धुनेगो 'मोद' खोयके जबनिया को।[18]

इसमें कवि के कथन की सार्थकता स्वाभाविक रूप से सिद्ध होती है।

मोदलता जी की रचनाओं में दार्शनिकता के अनुसंधान क्रम में भावगत सहजता की प्राप्ति होती है। कवि ने हमें आश्वस्थ किया है कि जानकी नाथ शरणागति ही सर्वोपरि है। पतित मन रामभक्ति के प्रति स्थिर ही नहीं होता है, यथा -

मन थेथरा से तोरा लाजो नहीं
ब्रह्मा विष्णु महेस रटै छथि
सदा राम केर नाम।
ताहि नाम में तर्क करै तों
सकटा नमक हराम।[19]

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. भूतस्य जातः पतिरेकः आसीत्। (ऋग्वेद)
2. ''शरीर में प्रकृति के चौबीस तत्वों की विद्यमानता है। मूला प्रकृति त्रिगुणात्मिका हैं। इन गुणों की विविध विकृतियाँ परिकथित हैं। परमा - परा प्रकृति - शक्ति की कृपा ही भक्ति है।'' -मिथिलामयंकमाधुरी, डॉ0 कृष्णचन्द्र झा 'मयंक' - 27
3. श्रीजानकीविन्दु, श्रीकाष्ठजिह्वा स्वामी 'देवतीर्थ' - 37
4. श्री जानकी बिन्दु - श्री काष्ठजिह्वा स्वामी देवतीर्थ - 38
5. मिथिलामाहात्म्य - 17
6. मोदलताविवाहपदावली - 23
7. मिथिला बसि औध सहाय चहैं तो

उपासक कौन कहाँ भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नहीं,
करै आस दमादन के बल की।।
-श्रीसूरकिशोर - मिथिला - विलास - 19

8. मैथिली विवाह पदावली - 37
9. मोदलताविवाहपदावली - 121
10. प्रिया प्रियस्य प्रतिरूठमूर्तयः। (श्रीमद्भागवत - 10)
राधा रूपं धरं कृष्णं, कृष्णं रूपं कलत्रकम्।
- श्रीमद्देवीभागवत।
मुहुरवलोकित मण्डन लीला।
मधुरिपुरहमित भावनशीला।
- गीतगोविन्दम् - 17
अनुखन माधव - माधव सुमिरति
सुंदरि भेलि मधाई
-विद्यापति - 03
सुनो स्याम यह बात और कौउ क्यों समुझाय कहे
दुहुँ दिसि की रति विरहे विरहिणी, केसे करि जू सहै।
-सूर - 74
पिय के ध्यान गही गही रही वहै ह्वै नारि।
- बिहारी - 34
जब राधिका कान्हा को ध्यान करै
तब कान्ह ह्वै राधिका के गुण गाबै।
- (देव कवि।)
11. मधुमंदाकिनी, डॉ0 कृष्णचन्द्र झा 'मयंक' - 26
12. मोदलता विवाह पदावली - 77
13. मोदलताविवाहपदावली - 13
14. एते वै मैथिलाराजनात्मविद्या विशारदाः।
योगेश्वेण प्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्त्वागृहेष्वपि।। (श्रीमद भागवत्)
15. इश्ककांति - 05
16. मोदलताविवाहपदावली - 112
17. मोदलताविवाहपदावली - 47
18. मोदलताविवाहपदावली - 49
19. मोदलताविवाहपदावली - 136

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में नल के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० अमृत कौशल

संस्कृत अध्यापक (टी.जी.टी.)
आर्मी स्कूल, अम्बाला कैंट (हरियाणा)

प्रस्तावना

इस महामाया प्रकृति जननी की व्यापक ब्रहमाण्ड विराट क्रोड में जब सर्वप्रथम आदि मानव ने जन्म लिया होगा तो विविधचित्ररूपमयी अनन्त सृष्टि को विस्मय चकित एवं अवाक् बना देखता रहा होगा। धीरे-धीरे उसे इन्द्रिय बोध के विकास के साथ-साथ उसे संसार की कुछ वस्तुओं से अनुकूल संवेदन हुआ होगा। और कुछ से प्रतिकूल अपने चित्तवृत्ति के अनुकूल कार्य न होने पर उसे क्रोध आया होगा। जगत व जीवन का आरम्भ और अवज्ञान इन भावात्मक अनुभूतियों से ही होता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मनुष्य के अन्तर्जीवन का उनकी विभिन्न अनुभूतियों एवं व्यवहारों का ही एक जागृत रूप है।

जिस अवस्था में जीव जीवन-यापन करता है। उसी को व्यवहार कहा जाता है। किसी जीवन में कोई व्यवहार या अनुभव क्यों होता है। तथा उसका स्वरूप क्या है। इन्हीं प्रश्नों की जिज्ञासा से ही मानस शास्त्र का जन्म हुआ। अत: मनोविज्ञान भी जीवन का शास्त्र है। मनोविज्ञान के माध्यम से शोधकर्त्ता ने नैषधीयचरित में पात्र व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया है।

मनोविज्ञान क्या है- मनोविज्ञान ने जीवन के प्रत्येक तथ्य को स्पर्श किया है। जैसे-जैसे समाज ने प्रगति की उसमें जटिलताए बढ़ी है। उसी प्रकार मनोविज्ञान ने मानव समस्याओं को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। प्रारम्भ से ही मनुष्य ने अपने व्यवहारों को समझने का प्रयास किया है। आरम्भ से ही मनुष्य अपने व्यवहारों को कुछ पूर्व निश्चित विश्वासों के आधार पर जिन्हे आज हम अन्धविश्वास से संज्ञापित करते है। जानने का प्रयास किया करता था। उसका विश्वास था कि सुख-दुख, हंसने रोने, आदि का कारण व्यक्ति स्वयं नहीं होता वह एक अज्ञात शक्ति होती है। मनोविज्ञान हमें बताता है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व को सामाजिक वातावरण में कैसे व्यवस्थित करता है।

मनोविज्ञान व साहित्य का परस्पर घनिष्ट सबंध है साहित्य बृहत्त्रयी में विद्यमान महाकवि श्री हर्ष एक विलक्षण कोटि के मनोवैज्ञानिक है। इनके द्वारा रचित नैषध नामक काव्यकुसुम अपने पात्रोंकी श्रेष्ठ मानसिकता के द्वारा पग पग पर सामाजिकों का मार्ग प्रशस्त करता है। आज के इस भौतिक युग में मनुष्य स्वार्थवश अपने संकुचित भावों से ग्रसित होकर समाज व परिवार से दूर जा रहा है। उसके मनोगत भावों में विकृति आ गई है। क्रोध, ईर्ष्या द्वेष जैसे भाव उसकी आत्मिक शान्ति को क्षत-विक्षत कर रहे हैं। श्री हर्ष ने अपने साहित्य में मानव मन के गूढ़-भावों का अंकन कुशलतापूर्वक किया है। हर्ष ने पात्रों के व्यवहृत कार्यो द्वारा उनका आदर्श व्यक्तित्व समाज के समक्ष उपस्थापित किया है। उनके पात्रों के मनोगत भाव, आदर्श विचारों, संस्कारों से युक्त है। जिसका कारण इस महाकाव्य में चित्रित-पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सार्थकता अनिवार्यतया सिद्ध होती है।

नैषधीयचरित महाकाव्य में नल का मनोवैज्ञानिक अध्ययन:-

हर्ष काव्य में पात्रों का परस्पर कथोपकथन, अनुपम मानसिकता तथा संवेदनाओं से युक्त चरित्र-चित्रण आदर्श व्यक्तित्व उपस्थित होने के कारण संस्कृत जगत में इसका विशिष्ट स्थान है। अनेकविध भावों, संवेगों, संवेदनाओं से युक्त होने के कारण नैषध के पात्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त है। राजा नल के चरित्र में महापुरुष, धीरोदात्त नायक, एकरूप चरित्र उत्तम कोटि का राजा, पराक्रमी, दानी, अनेकों विद्याओं के ज्ञाता, सफल प्रेमी, धर्मपरायण, दयावान, आदि आदर्श प्रेरक गुणों की विद्यमानता अध्ययन सर्वथा उपयुक्त है। प्रस्तुत महाकाव्य में नल के विशिष्ट मनोभावों का विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है।

राजा नल में विशिष्ट मनोभावों का विश्लेषण-

1) नल की मानसिकता में बुद्धिजीवी भाव- नैषधचरित में नल का चरित्र आरंभ से अन्त तक एक रूप रहा है। काव्य के प्रारंभ में ही नल को पुण्य-श्लोक, तेजस्वी, गुणसंपन्न विद्वान, शास्त्र-चक्षु, सैन्यशक्ति संपन्न, शूर, अच्छा प्रजा पालक, त्यागी तथा गुणानुरागी के रूप में चित्रित किया गया है। सूर्य सदृश तेजस्वी, राजा नल निरंतर अभ्यास करने वाले कवि तथा पंडित के साथ हर्ष-पूर्वक समय को व्यतीत करते हुए उसी प्रकार समृद्धि को प्राप्त कर रहे थें। जिस प्रकार निरंतर समीप में स्थित शुक्र तथा बुध नामकग्रहद्वय के साथ समय को व्यतीत करते हुए तेजस्वी सूर्य प्रतिदिन उदय को प्राप्त करते है।[1] दम्यन्ती के अनुराग में अत्यंत काम तप्त होकर भी नल विदर्भराज से उनकी कन्या के लिए याचना नहीं करते।[2] नल की मानशीलता का यह सुंदर उदाहरण है। (नै0 1/4-5)

अर्थात् राजा नल अत्यधिक विद्वान थे। साथ ही समस्त विषयों का ज्ञान उनको गहन था। बुद्धि पर अधिक प्रभाव वंशानुक्रम का होता है। अत: कहा जा सकता है। कि विद्वता उनको अपने वंशानुक्रम से प्राप्त है। इससे उनकी मानसिकता में उच्च बुद्धिजीवी भाव को वाणी मिली है।

2) नल में त्याग की भावना-राजा नल के त्याग के संबध में कहना न होगा कि उनके समान त्यागी विरल रूप में ही प्राप्त हो सकते है। किसी के याचना करने पर अपने प्राण-पर्यन्त समस्त का न्योछावर वह कर सकते है। श्री हर्ष नल की दानशीलता के संबध में लिखते है कि-

''विभज्य मेरूर्नयदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरूत्सर्गजलव्ययेर्मरू:।
अमानितत्तेननिज यशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुरा: शिर: स्थितम्।।

(नै0 1/17)

3) नल मनोभावों में काम भावना (Feeling of Lust)–अपनी मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति काम के कारण नल अन्त:पुर में सुखोपभोग के लिए अनेक रानियों के होते हुए भी दम्यन्ती की चाह करते है और उसको पाने के लिए तत्पर हो जाते है[3] तथा हंस को भी शीघ्र ही दूत कार्य करने के लिए कहते हुए आशीर्वाद देते है।[4] यौवनावस्था में प्रवेश करते ही दमयन्ती के प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण, दमयन्ती के गुणश्रवण मात्र से पूर्वानुराग की स्थिति में ही उसके वियोग में विह्वल होना, बार-बार मूर्च्छित होना तथा आगे चलकर इन्द्रादि की याचना के प्रति विमुख होने आदि प्रसंगों में उनकी काम-प्रवृत्ति का प्रबलतम रूप दिखायी देता है। यह काम प्रवृत्ति नल जीवन में जीवनदायिनी शक्ति के रूप में विद्यमान है।

4) नल मानसिकता में जिज्ञासा का भाव (Feeling of Curisity)–इस मूल प्रवृत्ति के दर्शन भी नल में होते है। नल अत्यधिक बुद्धिमान एवं सर्वगुणसम्पन्न है। तीक्ष्ण बुद्धि होने से स्वभावत: उनके व्यक्तित्व में जिज्ञासा प्रवृति का याग है। सामान्यत: यह देखा जाता है कि जो जितना जिज्ञासु होता है उसका ज्ञान एवं बुद्धि भी उतनी ही विस्तृत एवं प्रखर होती है। इसी कारण नल में भी विद्धता की हेतु-जिज्ञासा निसर्गत: विद्यमान है। प्रथम सर्ग में ही स्वर्णिम हंस के प्रति उनकी जिज्ञासा का परिचय मिलता है।[5]महाकाव्य के एक दो स्थलों में भी उनकी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते है। देवों के नल से यह कहने में कि हम आपसे याचना करने आए है तथा कुछ समय मार्ग की थकावट दूर करके तुमसे प्रार्थना करेगें। नल का मनही मन यह सोचना कि इन देवताओं के लिए मुझसे क्षमा याचना करने योग्य क्या हो सकता है।[6] आत्म रक्षा संबधी जिज्ञासा प्रवृत्ति जल की मानसिकता में आश्चर्य (wonder) संवेग से युक्त है।

5) नल की मानसिकता में अहम् (Ego) तथा नैतिक अहम् (Super Ego) की भावना-संस्कृत साहित्य शास्त्र की महाकाव्य परंपरा के धीरोदात्र नायक होने के कारण स्वभावत: नल के व्यक्तित्व में नैतिक अहम् की प्रधानता है। श्रीहर्ष की मान्यता भी है। कि रूप गुण का कभी विरोधी नहीं होता।[7]आदर्श राजा होने के कारण सुखेच्छा संवेग उनके व्यक्तित्व में बीज रूप में आ गया-

''अर्चना मयि भवद्भिरिवास्यै कर्तुमर्हति मयापि भवत्सु।

भीमजार्थपरयाचनचाटौ यूयमेव गुरव: करणीया:।। (नै0 5/103, 105, 112)

अपने प्रबल नैतिक अहं के कारण ही वे दमयन्ती के गुणश्रवण से उसके वियोग में विहवल होने पर भी भीम से उसकी याचना नहीं करते है।[8] तथा जब तक उनका दमयन्ती से विवाह नहीं हो जाता। तब तक उस पर अपना कुछ भी अधिकार नहीं समझते है। साथ इन्द्रादि का दौत्य कर्म ले लेने पर उसे पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ निभाने का प्रयत्न भी करते है। दमयन्ती जब नल के अतिरिक्त अन्य किसी का भी वरण करने के लिए मना कर देती है। तो नल अपने नैतिक अहं की तीव्रता के कारण ही उसे विभिन्न प्रकार से देवताओं का भय दिखाकर देवताओं में से किसी एक का वरण करने के लिए कहते है।[10] अन्तत: जब उनका दौत्य पूर्णत: विफल हो जाता है। तो स्वयं पर पश्चाताप भी करते है।[11] यदि उनमें सुखेच्छा का प्राधान्य होता है तो वे निष्ठापूर्वक दौत्य कदापि नहीं कर पाते और विफल दौत्य होने पर प्रसन्न होते, क्योंकि दमयन्ती स्वयं उनकी प्राण-प्रिया थी। इस तरह नैतिक अहम् की प्रबलता नल के व्यक्तित्व की एक मनोवैज्ञानिक विशेषता प्रतीत होती है।

6) नल की मानसिकता में आत्माभिमान भाव (Positive Self Feeling)–राजा नल की मानसिकता में अहं भाव नैतिक अहं से संपृक्त है। जो कि उनके व्यक्तित्व की अनुपमता का असाधारण दिग्दर्शन हैं कारण दमयन्ती नल की प्राणवल्लभा है। वह उनको अपने प्राणों से भी प्रिय है। दमयन्ती से कहा गया उनका कथन कि मेरे प्राणों से यदि तुम्हारा कल्याण हो तो मैं सहर्ष तत्पर हूँ।[12] इससे स्पष्ट है अपने आत्माभिमान के कारण ही वे दमयन्ती के गुणप्रवण से उसके वियोग में विह्वल होने पर भी भीम से उसकी याचना नहीं करते।[13] इससे उनकी मानसिकता में आत्माभिमान भाव संवेग विद्यमान है।

7) नल व्यक्तित्व में स्थायी भावों का विश्लेषण-मनोवैज्ञानिक स्थायीभाव (Sentiments) नल के व्यक्तित्व की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। प्रजाप्रेम, पत्नीप्रेम, नैतिकता प्रेम, शरणागतवत्सलता आदि भाव उनके व्यक्तित्व में दर्शनीय है।

8) प्रजाप्रेम -नल का प्रजा प्रेम संवेग अत्युच्च कोटि का होने से अद्वितीय है। उनके राज्य में सर्वदा, प्रसन्नता, वैभव, और श्रीयुक्त साम्राज्य[14]उनके प्रजा प्रेम के कारण है। अपनी शरणागतवत्सलता तथा प्रजा प्रेम के कारण ही वे विवाह के बाद अमात्यों को कार्यभार समर्पित कर विविध काम-क्रीड़ाओं में व्यक्त होते हुए भी कुछ समय निकालकर शरणागत राजाओं को शिष्य-भाव से पिता के सदृश शिक्षित करते है[15] इससे नल की मानसिकता में विद्यमान श्रेष्ठता की भावना संवेग शरणागतवत्सलता भाव से युक्त होकर उसे पूजा प्रेम स्थायीभाव में प्रस्तुत करता है।

9) नैतिकता प्रेम-राजा नल का व्यक्तित्व नैतिकादर्शो का संगठित रूप है। जो कि उनमें नैतिक प्रेम स्थायीभाव को दिखाता है। कारण उनकी दयालुता[16] सत्यप्रेम[17] अद्वेष भावना[18] आदि उनके नैतिक प्रेम के ही कारण है। नल राज्य में पुरुषार्थ-चतुष्ट्य का संगठित वर्णन उनके नैतिक-प्रेम को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त राजा नल में विविध स्थलों पर मित्रप्रेम,[19] धर्मप्रेमआदि अनेक स्थायीभाव दर्शनीय है। इनका पत्नी प्रेम काव्य-जगत का अनुपम दिग्दर्शन है।

10) पत्नी प्रेम- प्रेमिका होते हुए भी दमयन्ती को श्रीहर्ष ने प्रारंभ से ही राजा नल की पत्नी रूप में चित्रित किया है। अत: नल का दमयन्ती के प्रति अनुराग का वर्णन तथा चित्रण उनके पत्नी प्रेम का ही द्योतक कहा जा सकता है। दमयन्ती से उनकी उक्ति कि ''मेरे प्राणों से यदि तुम्हारा हित हो तो उसके लिए मैं सहर्ष तैयार हूँ[20] उनके पत्नी प्रेम के स्थायी भाव को दिखाता है। इसी दाम्पत्य प्रेम स्थायीभाव के कारण दमयन्ती के प्रति उनके प्रेम में कभी भी अन्तर नहीं आता है।

11) नल की मानसिकता में धार्मिक प्रेमभाव-नल की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण उनके सम्पूर्ण राज्य में धार्मिकता व्याप्त थी। वे अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति के थे। धार्मिक कार्यो के प्रति अत्यधिक सचेत रहते थे। उनके सन्ध्योपासना, देवतर्पण, पितृतर्पण आदि नित्यकार्यो का वर्णन महाकाव्य में मिलता है।[21] युग की मान्यता है कि धार्मिक प्रभाव प्रतीक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी व्यक्ति के मन में विद्यमान होते है।[22] अत: नल की धार्मिकता को देखने से स्पष्ट है कि यह उनके वंशानुक्रम की देन है। उनकी धार्मिकता के

कारण ही पाप का चिह्न उनके राज्य में प्रवेश भी नहीं कर पाता था।[23]वंशानुक्रम तत्व के कारण ही इनकी मानसिकता में धार्मिक प्रेम की भावना जन्मजात रूप में विद्यमान है।

12) नल की मानसिकता में कर्त्तव्य पालन की भावना– अंत में जब नल देवों के दौत्य भार को स्वीकार करते हैं तब उन्हें केवल कर्त्तव्य-पालन का ही ध्यान रहता है- न दमयन्ती का और न उनके प्रेम का। तब तो, जैसे अगस्तय मुनि ने समुद्र-पान के समय दुर्धर्ष वाडवाग्नि की कोई चिन्ता नहीं की थी, उसी प्रकार नल भी दूत धर्म के निर्वाह में दमयन्ती की विरहाग्नि को कोई स्थान नहीं देते।[24] कुण्डिनपुर में दमयन्ती के अन्त:पुर में स्त्रियों की सविश्रम एकान्त चेष्टाओं को देखकर नल को जो लज्जा एवं ग्लानि आदि भावों का अनुभव होता है।[25] वह उनकी शालीनता, महत्ता, महापुरुषता तथा उनके उत्तम चरित्र को प्रमाणित करता है। सज्जनों को दूसरों से अधिक स्वयं अपने से लज्जा होती है। दमयन्ती के प्रति नल का प्रेम इन्द्रियार्थ-लोभ न होकर हृदय का पवित्र प्रेम था। अन्त:पुर में अप्सरा-सदृश सुंदरी कन्याओं को देखकर भी नल के हृदय में उनके प्रति कोई अनुराग जागरित नहीं होता है। कल्पित दमयन्ती की सत्ता के विषय में उन्हें मिथ्या भ्रम होता था, किंतु अन्य सुंदरियों में नल को दमयन्ती-भ्रम नहीं होता था। दमयन्ती के सम्मुख उसकी वाणी रूप वीणा से उपगीत होकर भी नल धैर्यच्युत नहीं होते। काम का कोई विकास उनमें नहीं आने वाला। यह उनकी विवेक शक्ति भाव का सूचक है।[26] नल दमयन्ती से देवों के संदेश को अपने प्राणों से भी बढ़कर बताते हैं।[27] यहां नल में विद्यमान कर्त्तव्य परायणता की भावना उनकी मानसिकता में श्रेष्ठता की भावना (Feeling of Superiority) नामक संवेग से युक्त है।

13) नल की मानसिकता में वीरता का भाव– प्रथम सर्ग में नल का युद्ध-वीर रूप सामने आता है। उनकी युद्ध वीरता का वर्णन करते हुये कवि की उक्ति है- 'दिग्विजय में जलाये गये बहुसंख्यक शत्रु नगरों की अग्नि से प्रकाशमान अपने प्रतापों से देदीप्यमान भूमंडल की प्रदक्षिणा कर स्थित वे नल विजय के लिये की गई नीराजना से शोभित होते थे।[28] यहां युद्ध वीर नल के उत्साह संवेग की व्यंजना होने से वीरता का भाव प्रकट होता है। इसी प्रकार नल का युद्ध में बाणों की वर्षा कर शत्रुओं की प्रतापग्नि को शांत करना[29] तथा उनका शत्रु स्त्रियों के नेत्रों में देर तक रहने वाली अतिवृष्ठि का प्रयोजक बनना[30], उनके युद्ध विषयक उत्साह संवेग का व्यंजक है। नल अपने शिष्यों राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देते हैं।[31] यह उनके युद्ध-वीर रूप को ही पुष्ट करता है। युद्ध वीर रूप में पुष्ट व्यक्तित्व वाले नल की मानसिकता में युयुत्सा संवेग (Combat Emotion) को वाणी मिली है।

14) नल की मानसिकता में आश्चर्य संवेग (Wonder Emotion)– नैषधचरित में विस्मय भाव की भी सुंदर व्यंजना हुई है। प्रिया-विरह-व्यथित भी वे नल नितान्त मनोहर उस हंस को देखकर कुछ कौतुक युक्त हो गये।[32] उनका यह कौतुक उनके हर्ष-मिश्रित विस्मय भाव को ही व्यक्त करता है। आश्चर्य युक्त होकर नल उस विचित्र पक्षी की जो प्रशंसा करते हैं[33], वह भी उनके विस्मय गर्भ हर्ष की परिचायक है। जिस प्रकार हंस को देखकर नल को आश्चर्य होता है, उसी प्रकार दमयन्ती के क्रीडोद्यान में पहुँचे हुये उस हंस को देखकर दमयन्ती की सखियों के नेत्र भी विस्मय मिश्रित हर्ष के सागर में मग्न हो जाते हैं।[34] यहां नल द्वारा हंस दर्शन कुतुहल (Curiosity) मूलप्रवृत्ति से युक्त है जो कि आश्यर्च (Wonder) संवेग की परिचायक है।

निष्कर्ष (Conclusion)- उपर्युक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य बृहत्त्रयी में नैषधीयचरित महाकाव्य का तृतीय स्थान है। हर्ष प्रणीत इस महाकाव्य का मनोवैज्ञानिक सामाजिक विविध दृष्टियों से बहुत महत्व है। संवेग, मनोभाव, संवेदनाएं इन पात्रों में प्रत्येक स्थान पर प्राप्त होते है। इस महाकाव्य में नल के विशिष्ट मनोभावों, संवेदनाओं, संवेगों का अध्ययन कर आधुनिक युग के पुरुषों की मानसिकता पर आदर्श प्रभाव पड़ता है। और उचित दिशा-निर्देश प्राप्त होते है। नल की उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक भावों के विश्लेषण स्वरूप यह निष्कर्ष निकलता है कि जुंग द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व-विभाजन की दृष्टि से नल व्यक्तित्व उभयमुखी है। उभयमुखी से तात्पर्य यह है कि अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी सिद्ध करती है तो उनकी काम-प्रवृत्ति, धार्मिक प्रेम उनको अन्तर्मुखी होना सिद्ध करते है। दोनों प्रकार की विशेषताएं होते हुए भी नल के व्यक्तित्व में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की प्रधानता है।

संकेत सूची

1. नैषध 1/27
2. नैषध 1/53
3. वही 2/57,59,60

4. वही 2/62
5. वही 2/132
6. वही 2/143
7. वही 2/51
8. वही 2/50
9. वही 9/18,21
10. वही 9/47,48,49,83
11. वही 9/22,125
12. नै0 9/135
13. नै0 1/50
14. वही 1/11,15
15. वही 21/4,6
16. वही 1/142-143
17. वही 10/159
18. वही 13/16
19. वही 13/91
20. वही 9/135
21. वही 21/17, 20
22. दृष्टव्य प्रस्तुत शोध प्रबंध, पृ.39
23. नै0 17वें सर्ग के कलि प्रसंग में 158 से अधिकांश श्लोक
24. वही 6/2
25. वही 6/18, 20, 21, 27, 28
26. वही 8/54
27. वही 8/55
28. वही 1/10
29. वही 1/9
30. वही 1/11
31. वही 21/5
32. वही 1/119
33. वही 1/129
34. वही 3/3

भीड़ का मनोविज्ञानः हिंसा, हिंसक भीड़ और सोशल मीडिया

डॉ० मनोज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक मनोविज्ञान विभाग, नारायण कॉलेज गोरियाकोठी सिवान
(जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा बिहार)

हिंसा एक परिचय

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार, हिंसा "स्वयं के विरुद्ध, किसी अन्य व्यक्ति या किसी समूह या समुदाय के विरुद्ध शारीरिक बल या शक्ति का साभिप्राय उपयोग है, चाहे धमकीस्वरूप या वास्तविक, जिसका परिणाम या उच्च संभावना है कि जिसका परिणाम चोट, मृत्यु, मनोवैज्ञानिक नुकसान, दुर्बलता, या कुविकास के रूप में होता हैं", हालांकि संगठन यह स्वीकार करता है कि इसकी परिभाषा में "शक्ति का उपयोग" शामिल करना शब्द की पारंपरिक समझ को बढ़ाता है। इस परिभाषा में क्रिया को ही करने की साभिप्रायता शामिल है, चाहे उससे कुछ भी परिणाम उत्पन्न हो। हालांकि, आम तौर पर, जो कुछ भी हानिकारक या क्षतिकारक तरीके से उत्तेजित किया जाता है, वह हिंसा के रूप में वर्णित किया जा सकता है, भले ही वह हिंसा के मतलब से नहीं हो (किसी व्यक्ति द्वारा और किसी व्यक्ति के विरुद्ध)।

हिंसक भीड़ और मोब लिंचिंग

हाल ही में देश भर में कई जगहों पर मॉब लींचिंग की घटनाएं हुई हैं। झूठी अफवाहों के चलते भीड़ ने कई लोगों को मौत के घाट उतारा है। आखिर अचानक इतने लोग एक साथ एक ही मकसद से कैसे इकट्ठे हो जाते हैं।

भीड़ का मनोविज्ञान सामाजिक विज्ञान का एक छोटा-सा हिस्सा रहा है। यह एक अजीब और पुराना तरीका है जिसकी प्रासंगिकता समाज में स्थिरता आने और कानून-व्यवस्था के ऊपर भरोसे के बाद ख़त्म होती गई।

भीड़ के मनोविज्ञान के ऊपर चर्चा एक अलग तरह की घटना के तौर पर शुरू हुई, जब हम फ्रांसीसी क्रांति की भीड़ या फिर कु क्लक्स क्लान की नस्लीय भीड़ को इसका उदाहरण मानते थे।

तब भीड़ के मनोविज्ञान में एक काले व्यक्ति को सफेद लोगों की भीड़ द्वारा मारने का पुराना मसला ही चर्चा का विषय होता था। यहां तक की गॉर्डन ऑलपोर्ट और रोजर ब्राउन जैसे बड़े मनोवैज्ञानिक भी भीड़ के मनोविज्ञान को एक सम्मानजनक विषय नहीं बना सके।

कुछ लोग इसे समाज विज्ञान और मनोविज्ञान तक पैथोलॉजी के तौर पर और अनियमित घटनाओं के रूप में सीमित रखते हैं।

हीरो बनती भीड़

आज के समय में मार डालने वाली यह भीड़ हीरो बनकर उभरी है। विशेषज्ञों का कहना है कि नायक के रूप में ये भीड़ दो अवतारों में दिखाई देती है।

पहला, भीड़ बहुसंख्यक लोकतंत्र के एक हिस्से के तौर पर दिखती है जहां वह खुद ही कानून का काम करती है, खाने से लेकर पहनने तक सब पर उसका नियंत्रण होता है।

आप देख सकते हैं कि भीड़ ख़ुद को सही मानती है और अपनी हिंसा को व्यावहारिक एवं जरूरी बताती है। अफराजुल व अख़लाक के मामले में भीड़ की प्रतिक्रिया और कठुआ व उन्नाव के मामले में अभियुक्तों का बचाव करना दिखाता है कि भीड़ ख़ुद ही न्याय करना और नैतिकता के दायरे तय करना चाहती है।

यहां भीड़ (इसमें जान से मारने वाली भीड़ शामिल है) तानाशाही व्यवस्था का ही विस्तार है। भीड़ सभ्य समाज की सोचने समझने की क्षमता और बातचीत से मसले सुलझाने का रास्ता ख़त्म कर देती है।

भीड़ का दूसरा रूप

लेकिन, बच्चे उठाने की अफवाह के चलते जो घटनाएं हुई उनमें भीड़ का अलग ही रूप देखने को मिलता है। इसमें भीड़ के गुस्से के पीछे एक गहरी चिंता भी दिखाई देती है।

बच्चे चोरी होना किसी के लिए भी बहुत बड़ा डर है। ये सोचने भर से लोगों की घबराहट बढ़ जाती है। यहां भीड़ की प्रतिक्रिया के पीछे अलग कारण होते हैं। यहां हिंसा ताकत से नहीं बल्कि घबराहट से जन्म लेती है।

इसका मकसद अल्पसंख्यकों को नुकसान पहुंचाना नहीं बल्कि अजनबियों और बाहरियों को सजा देना होता है जो उनके समाज में फिट नहीं बैठते। दोनों मामलों में शक तो होता है, लेकिन मारने का कारण अलग-अलग होता है।

एक मामले में अल्पसंख्यकों से सत्ता को चुनौती मिलती है और दूसरे में बाहरी और अनजान पर किसी अपराध का आरोप होता है।

बढ़ती तकनीक, बढ़ती मुश्किलें

दोनों ही मामलों में तकनीक इस गुस्से के वायरस को और फैलाने का काम करती है। तकनीक के इस्तेमाल से अफवाहें तेजी से फैलती हैं और एक-दूसरे से सुनकर अफवाह पर भरोसा बढ़ता जाता है।

पहले तकनीक का विकास बहुत ज्यादा न होने के चलते अफवाहें ज्यादा ख़तरनाक रूप नहीं लेती थीं।

यहां तक कि ये डिजिटल हिंसा छोटे शहरों और दूर-दराज के गांवों में ज्यादा भयावह तरीके से काम करती है।

ये साफ है कि हिंसा का ये तरीका एक महामारी जैसा है। हर बार शुरुआत एक जैसी होती है, हिंसा का तरीका एक जैसा होता है। हर मामले में अफवाहें आधरहीन होती हैं। फिर ये तरीका एक से दूसरी जगह पहुंचता जाता है।

त्रिपुरा में बच्चे उठाने के शक में तीन लोगों को भीड़ ने मार दिया। एक झूठे सोशल मीडिया मैसेज के चलते क्रिकेट बैट और लातों से मार-मार कर बेरहमी से उनकी जान ले ली गई।

एक व्हाट्सऐप मैसेज ने तमिलनाडु में हिंदी बोलने वाले लोगों को संगठित कर दिया। अगरतला में बच्चे उठाने की अफवाह में दो लोगों को मार दिया गया। इस सबके पीछे सोशल मीडिया जिम्मेदार है।

यहां सबकुछ बहुत तेजी से होता है। किसी को शक हुआ, उसने मैसेज भेजा और भीड़ जमा हो गई। ऐसे में न्याय होने की संभावना न के बराबर रह जाती है।

स्थानांतरण एक बड़ी समस्या

इस हिंसा के पीछे चिंता और घबराहट के उस माहौल को जिम्मेदार माना जा सकता है जो ऐसे इलाकों में पैदा हुआ है जहां स्थानांतरण बहुत ज्यादा है। इन इलाकों में दूसरे राज्यों से रोजगार या अन्य कारणों के चलते लोग आकर बसने लगते हैं।

उन्हें रहने की जगह तो मिल जाती है, लेकिन उन पर लोगों को विश्वास नहीं हो पाता. उन पर भरोसा होने में समय लगता है।

यहां तक कि कुछ इलाकों में तो बाहर के लोग यानी प्रवासियों की संख्या पहले से रहने वाले लोगों के मुकाबले बढ़ भी गई है।

प्रशासन इसे नियंत्रित करने की कोशिश करता है, लेकिन ये पूरी तरह कानून व्यवस्था का मसला नहीं है।

इसे कानून व्यवस्था की समस्या के तौर पर नहीं बल्कि सामाज में बनी विसंगतियों के तौर पर ही सुलझाया जा सकता है।

स्थानांतरण इनमें से एक समस्या है। इसके चलते किसी इलाके में बाहरी लोगों की संख्या बढ़ जाती है। पर सच ये भी है कि वो बाहरी तो होता है, लेकिन हाशिये पर भी होता है।

दुखद ये है कि उसे ही ख़तरा मान लिया जाता है। फिर सोशल मीडिया पर फैली अफवाहें उसके खिलाफ पहले से बनी सोच को और मजबूत कर देती हैं।

तकनीक और तर्कहीनता

सबसे बुरा तो ये था कि अगरतला में भीड़ ने उस 33 वर्षीय शख़्स को मार दिया जिसे लोगों को जागरूक करने का जिम्मा सौंपा गया था। यहां भी कहानी का एक अलग पहलू सामने आता है।

पीड़ित सुकांत चक्रवर्ती को अफवाहों से बचने के लिए गांव-गांव में घूमकर लाउड स्पीकर से लोगों को जागरुक करने का काम दिया गया था। उनके साथ घूम रहे दो और लोगों पर भी भीड़ ने हमला किया।

यहां लाउड स्पीकर से संदेश पहुंचाने की कोशिश एसएमएस और सोशल मीडिया की तेजी और ताकत के सामने पीछे रह गई।

जान लेने वाली ये भीड़ सोशल मीडिया के नियमों पर चलती है और हिंसा को आगे बढ़ाती है। भीड़ जुटाने वाली इस डिजिटल हिंसा को एक अलग तरह की समझ की जरूरत है।

भारत के इस मौखिक, लिखित और डिजिटल दौर में इन तीनों से हिंसा का ख़तरा और ज्यादा बढ़ सकता है। तकनीक की रफ्तार और भीड़ की तर्कहीनता बदलते समाज का ख़तरनाक लक्षण है।

सन्दर्भ

- Borch, Christian. *The Politics of Crowds: An Alternative History of Sociology*. Cambridge University Press 2012, ISBN 978-1-107-62546-4
- Buford, Bill. *Among the Thugs: The Experience, and the Seduction, of Crowd Violence*. New York, NY: W. W. Norton & Co., Inc. (1990)
- *Canetti, Elias (1960). Crowds and Power. Viking Adult. ISBN 0-670-24999-8.*
- Allen, James (ed.), Hilton Als, John Lewis, and Leon F. Litwack, *Without Sanctuary: Lynching Photography in America* (Twin Palms Pub: 2000), ISBN 0-944092-69-1 accompanied by an online photographic survey of the history of lynchings in the United States
- Arellano, Lisa, *Vigilantes and Lynch Mobs: Narratives of Community and Nation.* Philadelphia: Temple University Press, 2012.
- Abhimanyu Kumar, 'The Lynching That Changed India' (*Al Jazeera*, 5 October 2017). https://www.aljazeera.com/indepth/features/2017/09/lynching-changed-india-170927084018325.html. Accessed 15 July 2020.
- Hawkins E.R., Brice J.H. Fire jumpers: description of burns and traumatic injuries from a spontaneous mass gathering and celebratory riot. J Emerg Med. 2010 Feb; 38(2):182–187. [Google Scholar]
- Sampsel K., Godbout J., Leach T., Taljaard M., Calder L. Characteristics associated with sexual assaults at mass gatherings. Emerg Med J. 2016 Feb; 33(2):139–143. [Google Scholar]

अज्ञेय की साहित्यिक अवधारणाएँ

डॉ० अनिल कुमार

भवदेपुर (अंबेडकर नगर), पो.- भवदेपुर गोट, वार्ड नं.- 12, थाना- रीगा, जिला- सीतामढ़ी

'अज्ञेय' का प्रारम्भिक जीवन शान्त प्रकृति की गोद और विद्वान् पिता की छाया में व्यतीत हुआ है। इसलिए प्रकृति के एकान्त सौन्दर्य के प्रति प्रबल आकर्षण और स्वतंत्र चिन्तन की प्रवृत्ति आपका संस्कार बन चुकी है। बौद्धिक परिष्कार और सांस्कृतिक सौन्दर्य-चेतना के कारण हिन्दी का गद्य-साहित्य आपके व्यक्तित्व-संघटन के प्रमुख उपादान हैं। प्रारम्भिक परिस्थितियों ने आपको अन्तर्मुख बना दिया। आपने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है- "क्योंकि हम सबका बाल्य-काल अधिकतर वन-पर्वतों या देहाती प्रदेशों में बीता, सभी ने स्वतंत्र या आत्मनिर्भर स्वभाव पाया, प्राय: सभी किसी हद तक अन्तर्मुख हो गये-अर्थात् अनुभव अधिक करते हैं, भाव प्रदर्शन कम।"(1) अपने स्वभाव का ही परिचय देते हुए अन्यत्र आपने कहा है- "दुनिया में बहुत कुछ बदलना चाहता हूँ, कुछ उखाड़-पछाड़कर भी, पर जीवन के प्रति मेरा बुनियादी भाव आक्रोश का नहीं है? जीवन एक विस्मयकर विभूति है, और मानवीय सम्बन्ध और भी विस्मयकर।"(2) जीवन को 'एक विस्मयकर विभूति' मानने के कारण अज्ञेय जी इसके रहस्यों के प्रति सतत जिज्ञासु हैं। इसलिए यदि जीवन के प्रति उनका कोई दृष्टिकोण हो सकता है तो वह जिज्ञासा या प्रकारान्तर से सतत सत्यान्वेषण का ही हो सकता है। एक सच्चे जिज्ञासु की भाँति वे आधुनिक युग के अनेक जीवन-दर्शनों की परीक्षा करके विविध क्षेत्रों में होने वाली शोधों और उपलब्धियों के समन्वय के आधार पर आधुनिक जीवन-दृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं। वे कहते हैं- "आधुनिक युग का कोई भी सन्तोषजनक जीवन-दर्शन किसी एक व्यक्ति के अवदान पर आधारित नहीं हो सकता। वह कई क्षेत्रों की कई प्रतिभाओं के अवदान और कई विज्ञानों के शोध की उपलब्धियों का समन्वय माँगता है।"(3) आपकी दृष्टि में इस प्रकार के समन्वय का प्रयत्न बहुत कम हुआ है। भारत में मानवेन्द्रनाथ राय ने कई क्षेत्रों में होने वाले शोधों के समन्वय के आधार पर नवीन मानवतावाद की स्थापना की थी। श्री 'अज्ञेय' राय महोदय से प्रभावित हैं। श्री मानवेन्द्रनाथ राय ने नवीन मानवतावाद के अन्तर्गत पूर्ण जीवन-दर्शन की सम्भावनाओं की ओर संकेत करते हुए कहा है- "नवीन मानवतावाद एक समाजदर्शन है; किन्तु यह एक सामान्य प्रकृतवादी जीवन-दृष्टि से उदभूत है, जिसमें पदार्थ-जगत् एवं मानसिक-जगत् दोनों समाविष्ट हैं। इसकी तत्त्व दृष्टि भौतिक-यथार्थवादी है और इसका सृष्टि-विज्ञान यान्त्रिक है। यह बौद्धिक चिन्तन और इन्द्रियबोध दोनों को प्रमाण मानता है। यह मनोविज्ञान को शरीर विज्ञान में समाहित करके देखता है और शरीर-विज्ञान को रसायनशास्त्र के माध्यम से भौतिक-शास्त्र से सम्बद्ध कर देता है। यह नीतिशास्त्र को बुद्धिवाद पर आधृत मानता है और तार्किकता को भौतिक जगत् की समंजसता और प्रकृति की सुव्यवस्थितता से उद्भूत मानता है।"(4) इस प्रकार नवीन मानवतावाद आधुनिक जान-विज्ञान की व्यापक परिधि को आत्मसात् कर सका है। इसका लक्ष्य मनुष्य को उचित प्रतिष्ठा देना है। आज की प्राय: सभी राजनीतिक विचारधाराएँ-अनुदार, उदार, समाजवादी, साम्यवादी-मनुष्य को जनसाधारण में विलीन कर देना चाहती हैं। समाज मनुष्य की रचना है। इतिहास मानवीय क्रिया-कलापों का ही विवरण है। राजनीतिक संस्थाएँ भी मनुष्य निर्मित हैं। विडम्बना यह है कि मनुष्य के निर्माण ने ही मनुष्य को महत्त्वहीन बना दिया है। नवीन मानवतावाद मनुष्य की प्रमुखता स्थापित करना चाहता है। जीवन में सबसे बड़ा मूल्य स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता की भावना मानव-अस्तित्व का तात्त्विक आधार है। सारे नैतिक मूल्य मनुष्य की जैविक परम्परा से ही उद्भूत हैं, इसलिए उनकी स्वीकृति और समर्थन के लिए किसी मानवेतर सत्ता की आवश्यकता नहीं है। नैतिक होने के लिए मानवीय होना ही पर्याप्त है। इस विचार-पद्धति को 'अज्ञेय' भी स्वीकार करते हैं। वे 'स्वातन्त्रय' को चरम उपलब्धि मानते हैं।(5) 'शान्ति' और 'स्वतंत्रता' दोनों में से एक का वरण करना हो तो 'अज्ञेय' स्वतंत्रता को वरण करना चाहेंगे। आपकी दृष्टि में "संस्कृति के विकास के लिए मानसिक स्वतंत्रता अनिवार्य है : अलग सोचने की, भिन्न प्रकार से सोचने की, प्रयोग करने, भूल करके शिक्षा पाने, लीक छोड़कर भटकने, शोध करने, असहमत होने, अपने क्षेत्र को

प्रसृत या संकुचित करने, गहराई या ऊँचाई देने, बोलने और न बोलने की स्वाधीनता के बिना सांस्कृतिक विकास नहीं है।"[6] इसलिए 'अज्ञेय' 'कम्यूनिज्म' और 'लोकतन्त्र' में लोकतन्त्र को वरीयता देते हैं। वे मार्क्सवाद को एक सीमा तक ही महत्त्व देना चाहते हैं। उसे पूर्ण जीवन-दर्शन नहीं मानते। आपकी दृष्टि में जीवन-दर्शन के निर्माण में डार्विन, आईन्सटाइन और फ्रॉयड की देन कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। तात्पर्य यह कि 'अज्ञेय' की दृष्टि उदार और व्यापक है। वे वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं कलात्मक सभी मूल्यों के प्रति जिज्ञासु हैं और सभी को मुक्त हृदय से स्वीकार करना चाहते हैं, क्योंकि सभी के मूल में मनुष्य का विवेक प्रधान है। किसी सिद्धान्त या मत के प्रति वे आग्रही नहीं हैं। वे मतभेद की स्वतंत्रता के कायल हैं। वे मनुष्य की निर्भयता, विवेक और स्वतंत्रता के विश्वासी हैं। वे वैदिक आर्यो की 'अभीता नो स्याम' अथवा 'एषा मे प्राण मा विभे:' को मनुष्य की चरम आकांक्षा का प्रतीक मानते हैं। वे सम्पूर्ण सत्य को ग्रहण करना चाहते हैं और उसे रागदीप्त करके कला का रूप देना चाहते हैं।

श्री 'अज्ञेय' ने कला और साहित्य के सम्बन्ध में विभिन्न संदर्भों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके विचारों को सूत्र रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है'

- कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न-अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह हैं।
- सच्ची कला कभी भी अनैतिक नहीं हो सकती। प्रत्येक शुद्ध कला-चेष्टा में अनिवार्य रूप से एक नैतिक उद्देश्य निहित है।[7]
- कला भी ज्ञान का एक प्रकार या क्रिया है, अर्थात् सत्य की उपलब्धि की एक साधना है, सुन्दर उसकी रागदीप्ति का उपकरण या साधन है।[8]
- वास्तव में काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है, जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएँ चमत्कारिक योग में युक्त होती है। काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं, एक माध्यम की अभिव्यक्ति है।[9]
- साहित्य की प्रेरणा करने वाली मूल शक्ति साहित्यकार की एक आन्तरिक विवशता है। साहित्यकार यद्यपि किसी एक दिशा में जाता है अवश्य, तथापि वह दिशा बाह्य आदेशों द्वारा निश्चित नहीं होती, कवि की व्यक्तिगत परिस्थिति-उसकी आन्तरिक और बाह्य परिस्थिति से उत्पन्न व्यक्तिगत विवशता-उसे निश्चित करती है।[10]
- साहित्यिक-कोई भी कलाकार-अनिवार्य रूप से अपनी परिस्थितियों का परिणाम होता है। वह अपने आस-पास व्याप्त रहे संघर्ष का फल है। ....कला संघर्ष का फल है। अत: कलाकार अनिवार्य रूप से गति मात्र है। उसमें एक बलवती प्रेरणा काम कर रही है, जो उसे स्थिर नहीं होने देती, और जिसके दबाव के कारण वह किसी प्रकार के सामंजस्य की ओर बढ़ता है।[11]
- जो संवेदना साहित्य-बोध या कला-बोध कही जा सकती है, वह वास्तव में सांस्कृतिक बोध ही है, इसलिए संस्कृति के साथ-साथ बदलती भी रहती है।[12]

'अज्ञेय' की उपर्युक्त मान्यताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें साहित्य और कला सम्बन्धी अनेक प्रश्नों और शंकाओं का समाधान निहित है। 'अज्ञेय' ने इन मान्यताओं को अपने अनुभव और अध्ययन दोनों के बल पर निर्दिष्ट किया है। यहाँ, इन मान्यताओं के मूल स्रोतों का अनुसंधान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना यह कि हम विवादास्पद प्रश्नों को उचित संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए एक अन्विति या सामंजस्य लक्षित करें। श्री 'अज्ञेय' ने जो कुछ कहा है, वह आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, दर्शन एवं कलाबोध-सम्मत है, किन्तु वह अन्तिम नहीं है। निर्विवाद भी नहीं है। उसके पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा गया है और कहा जा सकता है। सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न कला-रचना का प्रेरक-तत्त्व है, यह कथन प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता एडलर के 'हीनता-ग्रन्थि' के सिद्धान्त के अनुकूल है और आज के साहित्य-चिन्तन में स्वीकृत हो चुका है। फ्रॉयड का दमित काम-भावना का सिद्धान्त और एडलर का क्षति-पूर्ति का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक चिन्तन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं और इनसे बहुत दूर तक कला-रचना की मूल प्रेरणा की व्याख्या हो जाती है। भारतीय आचार्यो ने 'यश की आकांक्षा' को काव्य-रचना का मूल प्रयोजन स्वीकार किया है। यह आकांक्षा भी अपने को स्थापित करने की भावना का ही द्योतक है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिन्तन से इसको समर्थन मिल जाता है। 'सच्ची कला अनैतिक नहीं होती', यह स्थापना भी सिद्धान्तत: ठीक है। वस्तुत: सच्चे कलाकार के सामने नैतिक-अनैतिक का द्वन्द्व ही नहीं रहता। वह अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदार होता है- बस स्वयं नीतिशास्त्र नैतिकता को अन्तर्बोध या अन्तरात्मा की आवाज (conscience) ही मानता है।[13] बाह्य शक्ति द्वारा आरोपित नियम-विधि निषेध-प्रारम्भिक समाज-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। विकसित समाज-चेतना आत्म-बोध से भिन्न शुभ या नैतिक तत्त्व की स्थिति नहीं मानती, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कला-कृति के संदर्भ में नैतिक-अनैतिक का प्रश्न बराबर उठता रहा है। कोई भी

रचना हर स्तर के पाठक के दृष्टि-पथ में आती है। अपरिपक्व पाठक में सौन्दर्य-चेतना की वह पूर्ण दृष्टि प्रतिष्ठित नहीं होती जो रचना की स्थूल सत्ता को न देखकर उसके माध्यम से व्यक्त सूक्ष्म संवेदना को लक्षित करती है। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि कुछ विशेष प्रकार की स्थितियों, भंगिमाओं और मुद्राओं के अंकन का निषेध करती है। श्री 'अज्ञेय' इसे साहित्य का प्रश्न न मानकर 'सेंसरशिप' का प्रश्न मानते हैं। वे अनुरागबद्ध प्रणयीयुगल के नग्न चित्र को भी अश्लील नहीं मानते। वे अभिव्यक्ति की पूर्णता में औचित्य देखते हैं। शुद्ध-कला रचना को ध्यान में रखकर विचार किया जाय तो 'अज्ञेय' की स्थापना उचित है। उन्होंने अनेक बार यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि उनकी रचना सबसे पहले स्वयं उनके लिए है और उसके बाद संवेदनशील, विचारवान् और प्रौढ़ अनुभूति के पाठक के लिए। कला भी ज्ञान का एक प्रकार है, अर्थात् सत्य की उपलब्धि की एक साधना है, यह कथन कला-सम्बन्धी सामान्य धारणा से कुछ भिन्न प्रतीत होता है, किन्तु असंगत नहीं है। सामान्यत: कला का सम्बन्ध 'सुन्दर' से जोड़ा जाता है, सत्य से नहीं। 'ज्ञान' शास्त्रज्ञों की वस्तु है। यह दार्शनिक चिन्तन या वैज्ञानिक परीक्षण का परिणाम है। 'कला' अनुभूत सत्य की सामंजस्यमयी अभिव्यक्ति है। यह धारणा साहित्य-जगत् में स्वीकृत है। श्री 'अज्ञेय' का इससे मतभेद नहीं है, किन्तु वे कला को अभिव्यक्ति के सामंजस्य और सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं रखना चाहते। जिसे हम 'ज्ञान' कहते हैं। वह वस्तुत: चित्त और वस्तु की एकान्विति है। ज्ञाता और ज्ञेय के एकान्ववयन को ही ज्ञान कहते हैं। कला-जगत् में भी कलाकार के चित्त में जब वस्तु-सत्य उद्‌भासित होता है, अर्थात् उसको पूर्ण ज्ञान होता है, तभी वह श्रेष्ठ कला-रचना में प्रवृत्त होता है। इसीलिए हर महान् कलाकृति 'सत्य' समन्वित होती है। अत: 'अज्ञेय' की कला-सम्बन्धी यह व्याख्या प्रचलित मान्यता के विरुद्ध नहीं है। 'काव्य एक माध्यम की अभिव्यक्ति है', 'काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं वह माध्यम प्रकाशित होता है, जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएँ चमत्कारिक योग में युक्त होती हैं' 'अज्ञेय' की यह मान्यता विवाद से परे है। निश्चय ही साहित्यकार अपने भीतर की विवशता के कारण ही-आत्म-प्रेरणा से ही-साहित्य-सृजन में प्रवृत्त होता है। किसी बाहरी तकाजे या आदेश से कला-रचना नहीं हो सकती। बाहरी प्रेरणा से जो सृष्टि होगी, वह यान्त्रिक और निष्प्राण होगी। तुलसी ने जिसे 'स्वान्त:सुखाय' कहा है वह एक प्रकार की आन्तरिक विवशता ही है। साहित्यकार जब तक अपने को व्यक्त नहीं कर लेता तब तक उसको मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसलिए वह एक प्रकार से सृष्टि के लिए विवश होता है। इसी प्रकार 'अज्ञेय' का यह मत कि कलाकार अनिवार्य रूप से अपनी परिस्थितियों का परिणाम होता है या वह अपने आस-पास व्याप रहे संघर्ष का फल है भी स्वीकार्य हो सकता है; किन्तु इसके साथ ही जब वे यह कहते हैं कि 'कला संघर्ष का फल है, अत: कलाकार अनिवार्य रूप से गतिमात्र है' तो आपत्ति के लिए गुंजाइश हो जाती है। 'गतिमानता' स्वस्थ साहित्य का लक्षण नहीं है। गतिमानता तो अस्थिरता का पर्याय भी हो सकती है। 'गति' तो-जैसा कि 'अज्ञेय' ने स्वयं कहा है- 'प्र-गति', 'प्रति-गति', 'अधोगति' सब में विद्यमान है। वे कहते हैं- "यह गति आगे की ओर है या पीछे की ओर? प्र-गति है या प्रति-गति है, या अधोगति है? इसका निर्णय साहित्य के, कला के, भीतर से नहीं होता, भीतर से केवल इतनी ही गूंज आती है कि वह गति है, अरोक गति है।"(14) कला में अन्तर्निहित 'गति' को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित करना 'अज्ञेय' की दृष्टि में उसे बाहरी कसौटी पर परखना है। यह बाहरी कसौटी अनुचित है, क्योंकि यह अर्थ-नीति, समाज-नीति या राजनीति से प्रेरित हो सकती है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कला के सत्य को इन सारे बाह्य उपादानों से नितान्त निरपेक्ष कैसे किया जा सकता है? जब कला-ज्ञान का एक प्रकार या क्रिया है, सत्य की उपलब्धि की एक साधना है, तो उसमें अन्तर्निहित सत्य की सापेक्षता स्वत: सिद्ध हो जाती है। जीवन का कोई भी सत्य निरपेक्ष नहीं है। कला का संघर्ष भी किसी भीतरी असामंजस्य की ही उपज है और यह मन के भीतर का असामंजस्य बाहर के असामंजस्य से नितान्त भिन्न नहीं हो सकता। गति स्वयं भी एक सापेक्ष्य प्रक्रिया है। 'गति' का बोध भी किसी स्थिति-शील निचेष्ट वस्तु-बोध की सापेक्षता में ही मान्य हो सकता है। वस्तुत: 'अज्ञेय' ने 'प्रगतिवाद' का प्रतिवाद करने में प्रयत्न में गतिमात्र को कला का धर्म सिद्ध किया है। वे कहते हैं- "जब निर्णय के आधार बाह्य हो जाते हैं, तब निर्णय आलोचक के रुख पर निर्भर करता है। निर्णेता की कसौटी राजनीति की हो सकती है, अर्थनीति की हो सकती है, धर्मनीति, समाजनीति या और कोई नीति भी हो सकती है। उसका कोई न कोई 'नीति' होना अनिवार्य है, क्योंकि आलोचक को एक स्थान चुनना है, एक रेखा खींचनी है, जिसे रूढ़ि मानकर, वह सापेक्ष्य दृष्टि से देखेगा कि कौन-सी वस्तु इस रेखा के आगे है, कौन-सी पीछे, क्या ऊपर है और क्या नीचे। ठीक यहीं पर प्रगति के 'वाद' की पराजय है, यहीं पर साहित्य अपने को उसके बन्धन से मुक्त घोषित करता है।"(15) प्रगति के 'वाद' को पराजित करने के लिये 'अज्ञेय' ने जो तर्क दिये हैं, वे वस्तुत: 'वाद' की पराजय के निमित्त दिये जाने चाहिए 'प्रगति' की पराजय के लिए नहीं। साहित्य किसी भी 'वाद' की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। 'वाद' की सीमा से मुक्त होने की चेष्टा स्वाभाविक है, क्योंकि 'वाद' ही रूढ़ बन जाता है। 'प्रगति' जीवन का धर्म है।

इसीलिए वह कला का भी धर्म है। मात्र छटपटाहट कला नहीं है। स्वयं 'अज्ञेय' ने कला की गति का लक्ष्य सामंजस्य की ओर बढ़ना स्वीकार किया है।[16] इसी को, सामंजस्य की उपलब्धि के उद्देश्य से गतिशील होने को, हम प्रगति मानते हैं। इसी अर्थ में हम साहित्य को प्रगतिधर्मी कहना चाहते हैं। जो भी हो, 'अज्ञेय' की साहित्य-सम्बन्धी स्थापनाओं में उनका अध्ययन और चिन्तन व्यक्त हुआ है। 'अज्ञेय' के इस चिन्तन से कहीं-कहीं मतभेद हो सकता है, किन्तु यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य में स्वतन्त्र और गम्भीर चिन्तन की पम्परा को आगे बढ़ाया है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. आत्मनेपद-अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960ई., पृ. 181
2. वही, पृ. 187
3. वही, पृ. 200
4. वही, पृ. 225
5. वही, पृ. 97
6. वही, पृ. 98
7. त्रिशंकु- अज्ञेय, मयूर पेपर बैक्स, दिल्ली, 1967 ई., पृ. 28
8. आत्मनेपद- अज्ञेय, पृ. 208
9. त्रिशंकु- अज्ञेय, पृ. 39
10. वही, पृ. 69
11. वही, पृ. 76
12. हिन्दी-साहित्य का आधुनिक परिदृश्य, नंददुलारे वाजपेयी, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1996 ई., पृ. 18
13. नीतिशास्त्र- शांति जोशी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1946 ई.- पृ. 125
14. त्रिशंकु- अज्ञेय, पृ. 76
15. वही, पृ. 76
16. वही, पृ. 86

संसदीय व्यवस्था, हिन्द स्वराज और गाँधी

डॉ० कुमारी विजेता

प्राइमरी टीचर, डी.ए.भी. पब्लिक स्कूल, नरहन, पानापुर, पूर्वी चम्पारण

महात्मा गाँधी दार्शनिक अराजकतावादी थे। उन्होंने अपने भाषणों और लेखों में बिखरे हुए रूप में आदर्श अहिंसक समाज की रूपरेखा को मोटे तौर से समझाया था। एक आदर्श जनतंत्रवादी समाज में वे यद्यपि किसी भी रूप में राज्य के अस्तित्व के विरोधी थे, लेकिन व्यवहारवादी विचारक होने के नाते उन्होंने 1946 में स्पष्ट रूप से कहा था कि संसार में कहीं भी बिना सरकार के राज्य का अस्तित्व नहीं है तथापि यदि हम इस प्रकार के आदर्श अहिंसक समाज के लिए निरन्तर कार्य करते रहें तो धीरे-धीरे ऐसे समाज का आविर्भाव इस सीमा तक हो सकता है जो लोगों के लिए कल्याणकारी हो। 'स्वराज्य' से गाँधीजी ने अपनी राज्य सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्ट किया है। यह उपयुक्त होगा कि हम राज्य और समाज के बारे में गाँधीजी के विभिन्न बिन्दुओं को स्पष्ट करते हुए 'स्वराज्य' की उनकी धारणा को स्पष्ट करें।

राज्य के बारे में गाँधीजी के विचार दार्शनिक अराजकतावादी जैसे थे। उनका विचार था कि राज्य एक आवश्यक दुर्गुण है जो मानव-जीवन के नैतिक मूल्यों पर आघात करता है। गाँधीजी ने जिस आदर्श जनतंत्रवादी समाज की कल्पना की, उसमें तो वे किसी भी रूप में राज्य के अस्तित्व के विरोधी थे। उन्होंने नैतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक आधारों पर राज्य का विरोध किया। गाँधीजी का तर्क था कि प्रत्येक राज्य में सरकार सजा का भय दिखा कर नागरिकों से काम करवाती है और उन्हें कानून के अनुसार चलने पर बाध्य करती है। शासन-व्यवस्था चाहे कितनी भी लोकतांत्रिक हो, फिर भी राज्य की जड़ में सदैव हिंसा होती है अर्थात् गरीबों का शोषण करने की प्रवृत्ति होती है। ''राज्य हिंसा का संगठित एवं केन्द्रित रूप है। व्यक्ति के भीतर आत्मा है, लेकिन राज्य तो आत्मा-रहित मशीन है। राज्य को हिंसा से कभी नहीं बचाया जा सकता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही हिंसा से हुई है।''[1] गाँधीजी ने कहा कि राज्य पुलिस, न्यायालय, सैनिक शक्ति आदि के माध्यम से व्यक्तियों पर अपनी इच्छा थोपता है।

राज्य के विरोध में गाँधीजी का दूसरा सबल तर्क यह था कि राज्य एक बाध्यकारी शक्ति है जो मानव व्यक्तित्व के विकास को कुंठित करती है। उन्होंने एक अवसर पर कहा था ''मैं राज्य की शक्ति में किसी भी प्रकार की वृद्धि को अधिकतम भय की दृष्टि से देखता हूँ।''[2] यद्यपि देखने में ऐसा लगता है कि राज्य कानून द्वारा शोषण को कम करने का प्रयत्न कर रहा है तथापि वास्तविकता यह है कि राज्य व्यक्तित्व का विनाश करके मनुष्य मात्र को सबसे बड़ी हानि पहुँचाता है। गाँधीजी की मान्यता थी कि राज्य आज्ञा देता है और जब कोई आज्ञा दी जाती है तो वह आज्ञा अपने साथ व्यक्ति के कार्यों का नैतिक मूल्य नहीं रखती। राज्य के विरोध में गाँधीजी का तीसरा मुख्य तर्क यह था कि अहिंसा पर आधारित किसी भी आदर्श समाज में राज्य सर्वथा अनावश्यक है। यद्यपि बाकुनिन, क्रोपोटेकिन तथा अन्य अराजकतावादी भी राज्य को अनावश्यक समझते थे, लेकिन उनकी युक्तियों के विपरीत गाँधीजी की युक्तियाँ पूर्णत: नैतिकता प्रधान थीं। गाँधीजी का कहना था कि ''आदर्श समाज शुद्ध अराजकता की वह दशा है जिसमें सामाजिक जीवन ऐसी पूर्णता को पहुँच गया हो कि वह स्वयं संचालित बन जाए। इस दशा में प्रत्येक मनुष्य अपना शासक स्वयं होता है। वह अपने ऊपर इस तरह शासन करता है कि अपने पड़ोसी के रास्ते में कभी रुकावट नहीं डालता। आदर्श समाज में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि उसमें कोई राज्य नहीं होता।''[3]

महात्मा गाँधी ने राज्य संस्था में अविश्वास व्यक्त करते हुए एक आदर्श अहिंसक समाज की कल्पना की।[4] उन्होंने कहा कि यह आदर्श समाज विकेन्द्रित समाज होगा। समता उसके प्रत्येक क्षेत्र की विशेषता होगी। विकेन्द्रीकरण इसलिए आवश्यक है कि केन्द्रीकरण से थोड़े-से मनुष्यों के हाथ में शक्ति एकत्र हो जाती है और केन्द्रित शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना रहती है। कोई

भी समाज जिस परिमाण में सत्ता का केन्द्रीकरण करेगा, उसी परिमाण में वह अजनतंत्रवादी हो जाएगा। केन्द्रीकरण समाज की अहिंसक व्यवस्था से मेल नहीं खाता। आदर्श समाज अहिंसा पर आधारित होगा जिसमें बल प्रयोग का नहीं वरन् नैतिक नियंत्रण का शासन होगा।

गाँधीजी ने कल्पना की कि आदर्श जनतंत्र लगभग स्वावलम्बी और स्वशासित सत्याग्रही ग्राम समाजों का संघ होगा। उन्हीं के शब्दों में ''अहिंसा पर आधारित समाज गाँवों में बसे हुए ऐसे समुदायों का ही हो सकता है जिनमें स्वेच्छापूर्ण सहयोग-सम्मानपूर्ण और शान्तिमय जीवन की शर्त है।'' अहिंसक समाज में संघ और समुदायों का संगठन स्वेच्छा के आधार पर होगा। लगभग प्रत्येक व्यक्ति उच्च स्तर की अहिंसा का विकास कर चुका होगा और लगभग पूर्ण आत्मनियंत्रण प्राप्त कर चुका होगा। गाँधीजी ने आदर्श ग्राम समुदायों का भी अपने लेखों में संक्षिप्त वर्णन किया। उन्होंने लिखा कि प्रत्येक गाँव पूरे अधिकारों से सम्पन्न एक पंचायत या जनतंत्र होगा। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी होगा और इस योग्य होगा कि वह अपने मामलों का प्रबन्ध यहाँ तक कर सके कि सम्पूर्ण संसार से अपनी रक्षा भी वह स्वयं कर ले। बाहरी आक्रमण के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के प्रयत्न में उसे मरने की शिक्षा मिलेगी और वह इसके लिए तैयार रहेगा। अगणित ग्रामों से निर्मित इस सामाजिक संगठन में व्यक्ति ग्राम के लिए और ग्राम ग्राम-समुदायों के लिए मरने को तैयार रहेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण संगठन में व्यक्तियों से विनिर्मित एक समग्रता होगी। इन ग्राम-समाजों का प्रत्येक कार्य यथासम्भव सहकारिता के अनुसार होगा। इस आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी विशिष्ट क्षमता के आधार पर समाज-सेवा करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। अपरिग्रह और शरीर श्रम के आदर्शों पर प्रतिष्ठित यह समाज कृषि प्रधान होगा और ग्रामीण सभ्यता को अपनाएगा। शोषण, पूँजीवाद और मालिक-नौकर के कृत्रिम सम्बन्धों का अभाव होगा। उत्पादन ग्रामीण उद्योग-धंधों द्वारा होगा। बड़े-बड़े मिल-कारखाने नहीं होंगे, लेकिन ऐसे सादे औजारों और मशीनों का स्वागत होगा जो बिना बेकारी बढ़ाये लाखों ग्रामीणों के बोझ को हल करते हैं और जिनको गाँवों के निवासी स्वयं बना सकते हैं और प्रयोग में ला सकते हैं। यह समाज स्वदेशी के आदर्श को अपनायेगा और इतना स्वावलम्बी होगा कि शायद ही उसको दूसरे देशों से व्यापार करना पड़ेगा। आदर्श समाज में न तो यातायात के भारी साधन होंगे, न वकील और न कचहरियाँ होंगी, न आजकल के डॉक्टर और दवाइयाँ होंगी, न बड़े नगर होंगे। अहिंसक मुनष्यों में गम्भीर झगड़े ही बहुत कम होंगे और जो होंगे भी तो उनका निपटारा आपसी विवेचना से तथा समझाने-बुझाने से, कभी-कभी पंचायतों से और यदि ये साधन काफी न हों तो अहिंसक प्रतिरोध से हो जायेगा। जीवन सरल, प्राकृतिक और संयमित होने से आज के अनेक रोगों का नाम भी न रहेगा और जो छोटी-छोटी बीमारियाँ रह जाएँगी, उनके इलाज के लिए प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ होंगी।

गाँधीजी ने इस बात पर भी विचार किया कि उनके राज्य-रहित, हिंसा-रहित आदर्श समाज की एकता की रक्षा कैसे होगी? व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज के प्रति कर्त्तव्य की भावना दोनों साथ-साथ कैसे चलेंगे? इसका उत्तर, गाँधीजी के अनुसार यह था कि आदर्श अराजकतावादी समाज की एकता का महत्वपूर्ण साधन होगा—धर्म या सामाजिक नीति-भावना। धर्म व्यक्ति की अन्तरात्मा पर प्रभाव डालेगा और स्वतंत्रता तथा सामाजिक एकता में सामंजस्य करेगा। जो बच्चे इस नये अहिंसक समाज में पैदा होंगे और शिक्षा पाएँगे, वे इस अराजकतावादी नीति-भावना को सुगमता से अपना लेंगे। आज भी तो हम अपने कर्त्तव्यों का पालन कानून और सजा के डर से इतना नहीं करते जितना दूसरे कारणों से—विशेष रूप से अपनी आदतों, आंतरिक नीति-भावना और जनमत के दबाव के कारण।

गाँधीजी कोरे स्वप्निल कल्पनावादी नहीं थे। वे आमूलचूल एक व्यावहारिक विचारक, संत और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने एक आदर्श की कल्पना की, लेकिन व्यवहार में यही आशा प्रकट की कि हम उस आदर्श की ओर पहुँचने का प्रयत्न करें ताकि एक ऐसी स्थिति पर आ सके जो हमारे लिए कल्याणकारी हो। गाँधीजी इस बात को समझते थे कि उनका अहिंसक समाज एक ऐसा प्रेरणा देने वाला आदर्श है, जिसको जीवन में उतारना निकट भविष्य की बात नहीं है। समाज राज्य-रहित तभी बन सकता है जब मनुष्य पूरी तरह आत्मसंयमी बन जाये और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन बिना राज्य के अनुशासन के करने लगे, पर इतना आत्म संयम अभी मनुष्य के बस की बात नहीं है इसलिए 1931 में राज्य-रहित समाज के संदर्भ में उन्होंने कहा, किन्तु जीवन में आदर्श कभी पूरी तरह कार्यान्वित नहीं होता। वास्तव में गाँधीजी का मत था कि राज्य-रहित समाज के आदर्श को मनुष्य अपने जीवन में कभी भी पूरी तरह कार्यान्वित नहीं कर सकेगा। सन् 1940 में एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि ''सरकार पूरी तरह अहिंसक होने में कभी सफल नहीं हो सकती, क्योंकि वह (राज्य में रहने वाले) सब मनुष्यों का प्रतिनिधित्व करती है। आज मैं ऐसे स्वर्णकाल

की बात नहीं सोचता, लेकिन मैं ऐसे समाज के अस्तित्व की सम्भावना में विश्वास करता हूँ जो प्रमुख रीति से अहिंसक हो और मैं उसके लिए ही काम कर रहा हूँ।''

सन् 1946 में उन्होंने स्वीकार किया कि उनको इस प्रश्न में कोई रुचि नहीं है और संसार में कहीं भी बिना सरकार के राज्य का अस्तित्व नहीं है, परन्तु उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि यदि लोग इस प्रकार के समाज के लिए निरन्तर कार्य करते रहें, तो धीरे-धीरे ऐसे समाज का आविर्भाव इस सीमा तक हो सकता है, जो लोगों के लिए कल्याणकारी हो। उनका यह भी विचार था कि ''यदि ऐसे समाज का कभी आविर्भाव होगा तो वह भारत में ही होगा, क्योंकि केवल भारत ही ऐसा देश है जहाँ इस प्रकार का प्रयास हुआ है। इस ओर काम करने का मार्ग है मृत्यु के भय का पूर्ण परित्याग।''

वास्तव में गाँधीजी का आदर्श अहिंसक समाज, जो मनुष्य की अपूर्णता के कारण अप्राप्य है, गन्तव्य की अपेक्षा दिशा की ओर अधिक संकेत मिलता है। हमारा कर्तव्य है कि हम उसे एक प्रेरणादायक आदर्श के रूप में ग्रहण करें, उसकी ओर निरन्तर बढ़ते रहने का प्रयत्न करें ताकि हम अपने वर्तमान कष्टों से छुटकारा पाकर सुखकर स्थिति में पहुँच सकें।

'स्वराज्य'[5] शब्द को गाँधीजी एक प्राचीन शब्द मानते हैं। उनके अनुसार–''स्वराज्य शब्द एक पवित्र शब्द है, एक स्वनियंत्रण है। इस स्वतंत्रता का अर्थ अनियत्रित स्वतंत्रता कदापि नहीं है।''

स्वराज्य की परिभाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महात्मा गाँधी व्यक्तिगत नैतिकता की बातों को राज्य पर आरोपित करते हैं। इस 'स्वराज्य' शब्द का विकास व्यक्ति के नैतिक मूल्य के विकास के साथ होता रहेगा, जब तक वह स्थिति नहीं आ जाती जब कि एक उदात्त अराजकता अपने चरमोत्कर्ष की स्थिति में पहुँचे। गाँधीजी मानते हैं कि 'स्वराज्य' शब्द इतना व्यापक है कि इसकी सही-सही परिभाषा असम्भव है। इसी को वे रामराज्य की संज्ञा भी देते हैं। गाँधीजी कहते हैं–''निश्चिय ही 'स्वराज्य' शब्द सर्वव्यापक है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण स्वतंत्रता के साथ-साथ और भी बातें आ जाती हैं। इसे अर्थ और परिभाषा के सीमित घेरे में बाँधना इसके दृष्टिकोण को संकीर्ण बनाना है और जो कुछ आज असीम है उस सीमित कर देना होगा। स्वराज्य के अन्तर्गत जो कुछ भी आता है उसका विकास उसी तरह होने दे जिस प्रकार राष्ट्रीय चेतना और आकांक्षाओं का होता है। आज हम उपनिवेश की स्थिति से ही प्रसन्न हो सकते हैं। भावी पीढ़ी शायद उससे संतुष्ट न हो। वह शायद कुछ और चाहे। स्वराज्य के साथ किसी निश्चित परिभाषा को न जोड़ कर यह कहा जा सकता है कि इसके अन्तर्गत वे बातें आती हैं जो आज की सर्वश्रेष्ठ धारणाओं से भी अधिक श्रेयस्कर हैं। उपनिवेश की स्थिति में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ है कि हम अपनी इच्छानुसार स्वतंत्रता की घोषणा कर सकें। जब तक हम में वह क्षमता पैदा नहीं होती तब तक स्वराज्य निरर्थक है। यही इस शब्द का न्यूनतम अर्थ है। यह स्वतंत्रता व्यक्तियों की हिस्सेदारी है।''[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'स्वराज्य' शब्द 'स्वतंत्रता' शब्द से कहीं अधिक व्यापक है, किन्तु स्वशासन इसकी प्राथमिक आवश्यकता है। इस स्वशासन के महत्व को स्पष्ट करते हुए महात्मा गाँधी कहते हैं–''व्यक्तिगत रूप से मैं अंग्रेजी जुए से स्वतंत्रता की कामना करता हूँ। मैं इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हूँ। मैं इसके बदलने में घोर अराजकता करने को प्रस्तुत है, क्योंकि यह अंग्रेजी शान्ति कब्र की शान्ति है। यह निश्चय ही एक समूचे जन समुदाय की जीवन मृत्यु से श्रेयस्कर होगा। इस सुन्दर धरती को इस शैतानी शासन ने भौतिक, आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों से समाप्तप्राय कर दिया है।''[7]

जिस तरह से हर देश खाने पीने के लिए, हवा में श्वास लेने के लिए स्वतंत्र है उसी तरह हर देश अपने आंतरिक मामलों को समझने और सम्भालने के लिए भी स्वतंत्र है। इसलिए जातीयता या धार्मिकता के आधार पर भेदभाव करना तथा किसी जाति का दूसरी जाति पर तथा किसी धर्म का दूसरे धर्म पर शासन लादना एवं किसी वर्ण का दूसरे वर्ण पर शासन लादना कभी भी न्याय-संगत नहीं हो सकता। जातीय अहंकार, राष्ट्रीय अहंकार, धार्मिक अहंकार, वर्ण अहंकार कितना खोखला है उसे गाँधीजी ने स्पष्ट शब्दों में चित्रित किया है। इसलिए उनकी राजनीतिक मान्यताओं के अन्तर्गत साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, जाति-भेद, रंग-भेद आदि नीतियों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे हर प्रकार की तानाशाही के विरुद्ध हैं चाहे वह देशी या विदेशी। उनका स्वशासन केवल शासनतंत्र के घेरे में ही बँधा हुआ नहीं है। यह ठीक है कि जिस स्वशासन द्वारा गाँधीजी शासन चाहते हैं वह चरम आदर्शवादी है, लेकिन उस आदर्शवादिता की उच्चता को स्वीकार करते हुए वे उस आदर्श को भी स्वीकार करते हैं, जिसके अन्तर्गत प्रतिनिधि प्रजातंत्र भी आ जाता है।

प्रतिनिधि प्रजातंत्र की धारणा स्वराज्य की धारणा के विरुद्ध तो नहीं है, लेकिन इस प्रतिनिधि प्रजातंत्र को केवल एक संस्था के रूप में ही गाँधीजी स्वीकार नहीं करते थे। वे तो उन सबमें नैतिकता भर देना चाहते हैं जो शासन से सम्बन्धित हो। इसलिए

गाँधीजी संसदात्मक शासन को केवल एक संक्रमणकालीन स्थिति में ही स्वीकार करने को तैयार हैं। इसलिए गाँधीजी ने कहा है मेरा स्वराज्य केवल कुछ समय के लिए ही आधुनिक अर्थ में प्रस्तुत संसदात्मक शासन के रूप को स्वीकार करता है।''

गाँधीजी ब्रिटिश राजनीति जीवन के तीव्र आलोचक रहे थे। उन्होंन ब्रिटिश संसद की तुलना एक बाँझ औरत और वेश्या से की थी क्योंकि वे मानते थे कि संसद ने अपनी तरफ से आज तक कोई अच्छा काम नहीं किया और जो भी किया है वह बाहरी दबाव से प्रभावित होकर किया है। इसलिए वह एक बाँझ जैसी है और यह एक वेश्या जैसी इसलिए है कि वह मंत्रियों द्वारा संगठित है जो समय-समय पर बदलते रहते हैं। नाजीवाद और फासीवाद का ही हल्का स्वरूप है। वह तो साम्राज्यवाद की नाजी और फासीवादी प्रवृतियों को छिपाने का एक जामा मात्र है। गाँधीजी के आदर्शों की संसद तो बिना बाहरी दबाव के अच्छे-से-अच्छा कार्य करेगी, क्योंकि उसमें अच्छे-से-अच्छे लोग चुनकर जायेंगे।

हिन्द स्वराज्य गाँधीजी की संसद विरोधी मान्यताओं से भरा पड़ता है। वे संसदात्मक प्रजातंत्र की इस बात से दुखी हैं कि वह मनुष्य के नैतिक उत्थान के लिए कुछ नहीं करता है, केवल लच्छेदार बातों का जाल बुनता है जिसके भ्रम में लोग पड़े रहते हैं। गाँधीजी पार्टी के उस अनुशासन को अस्वीकार करते हुए उसे अनैतिक बताते हैं। संसदात्मक ढाँचे में अखबारों की भी गाँधीजी ने तीव्र निन्दा की है। उन्होंने उसे ऐसा माध्यम बताया है जो लोगों को गुमराह करता है।

यद्यपि महात्मा गाँधी संसदात्मक व्यवस्था के तीव्र आलोचक थे, फिर भी उन्होंने प्रतिनिधि प्रजातंत्र को दोषों से मुक्त करने के बाद स्वीकार किया। जॉन स्टुअर्ट मिल भी एक ऐसे विचारक हुए हैं जो प्रतिनिधि प्रजातंत्र को स्वीकार तो करते थे, लेकिन उसमें बहुत से दोष पाते थे, जिन्हें संशोधित करना चाहते थे।

गाँधीजी ने प्रचलित संसदीय लोकतंत्र में अविश्वास व्यक्त किया। लोकतंत्र जिस रूप में पश्चिम में स्वीकृत है और जिसमें संसदीय प्रतिनिधित्व के लिए सार्वभौम वयस्क मतदान होता है, उससे गाँधीजी सहमत न थे। संसदीय लोकतंत्र की उनकी आलोचना का मुख्य आधार यह था कि उसमें ईमानदारी और जन-कल्याण की भावना से बहुत कम काम होता है और ढोंग तथा प्रदर्शन का अधिक। गाँधीजी ने कहा कि अहिंसा और नैतिक शुद्धता में विश्वास न होने के कारण पश्चिम के राज्य नामपात्र के लोकतंत्र हैं। उनमें लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति वास्तविक लगाव नहीं पाया जाता। शस्त्रीकरण की होड़ का, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद तथा शोषण का, राजनीतिक अस्थिरता और नैतिकता तथा दुर्बल नेतृत्व का यही कारण है। गाँधीजी ने संसदों की जितनी ब्रिटिश संसद की कटु आलोचना करते हुए उसे बाँझ की संज्ञा दी, क्योंकि उसने कभी कोई अच्छा काम अपने आप नहीं किया। गाँधीजी का कहना था कि यदि मतदाता समझदार हैं और अच्छे-से-अच्छे सदस्य चुनकर संसद में भेजते हैं तो ऐसी संसद को प्रार्थना-पत्रों अथवा दबाव की जरूरत नहीं होनी चाहिए। ऐसी संसद का काम तो इतना अच्छा होना चाहिए कि दिन-प्रतिदिन उसका तेज बढ़ता नजर आये और लोगों पर उसका असर पड़ता जाये, लेकिन आज इससे उल्टा ही है और सभी लोग इस बात से सहमत हैं कि संसद के सदस्य अधिकांशत: ढोंगी और स्वार्थी होते हैं। ''सदस्य अपनी खींचा-तानी में लगे रहते हैं। यदि संसद कोई अच्छा काम करती है तो स्वेच्छा से नहीं वरन् भय से ही करती है। मंत्रियों के प्रति संसद की निष्ठा में कोई स्थिरता नहीं पाई जाती। उसके मालिक आये दिन बदलते रहते हैं। यदि आज उसके मालिक अस्क्विथ हैं तो कल बालफोर और परसों कोई और। संसद में बहुत अधिक अस्थिरता पाई जाती है और यही कारण है कि उसके फैसलों में कोई पक्कापन नहीं होता। आज का फैसला कर रद्द कर दिया जाता है और सम्भवत: अभी तक एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि संसद ने कोई काम करके उसे अन्त तक पहुँचाया हो। यही नहीं, संसद के सदस्य महत्वपूर्ण और बड़े मसलों पर विवाद के समय बैठे-बैठे ऊँघा करते हैं। कभी संसद में वे इतना शोर मचाते हैं कि सुनने वालों की हिम्मत टूट जाती है।''[8]

गाँधीजी ने प्रधानमंत्री के नेतृत्व का भी उपहास उड़ाया। उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा था कि 'प्रधानमंत्री को पार्लमेंट की उतनी चिन्ता नहीं होती जितनी कि अपनी सत्ता की होती है। वह तो हमेशा अपने पक्ष की जीत के फेर में ही पड़ा रहता है। इस बात का उसे बहुत ध्यान नहीं रहता कि पार्लमेन्ट ठीक काम करे। प्रधानमंत्री अपने पक्ष को मजबूत बनाने के लिए पार्लमेन्ट से क्या-क्या काम नहीं कराते, इसके चाहे जितने उदाहरण मिल सकते हैं। उन्हें सच्चे देशभक्त नहीं माना जा सकता। सामान्यत: जिसे घूस कहते हैं वह वे नहीं लेते-देते, इससे भले ही उन्हें ईमानदार समझा जाये, लेकिन सिफारिश और उपाधियों वगैरा के रूप में तो निश्चय ही वे घूस देते हैं। ...उनमें शुद्ध भावना और सच्ची ईमानदारी का अभाव है।'

गाँधीजी का मत था कि पश्चिम में लोकतंत्रवाद के सफल न हो सकने का कारण संस्थाओं की अपूर्णता उतनी नहीं है जितनी सिद्धान्तों की अपूर्णता है, विशेष रूप से हिंसा और असत्य की उपयोगिता में विश्वास। लोकतंत्र उन गलत विचारों और आदर्शों से

विकृत होता है जो मनुष्यों का संचालन करते हैं। यदि जनता ने शुद्ध अहिंसा के मार्ग को अपनाया तो लोकतंत्रवादी राज्य के ये दोष बहुत कम हो जायेंगे। गाँधीजी ने विश्वास प्रकट किया कि लोकतंत्र का विकास बल-प्रयोग से नहीं हो सकता। लोकतंत्र की सच्ची भावना बिहार से नहीं, अपितु भीतर से उत्पन्न होती है।[9] कानून पास करने से बुराइयों दूर नहीं की जा सकतीं, मूल बात तो यह है कि हृदय को बदला जाये। यदि हृदय बदले बिना व्यवस्थापन कर दिया तो महत्वहीन होगा। गाँधीजी ने यह भी कहा कि कानून सदैव आत्मरक्षा के लिये बनाए जाने चाहिए। यदि वे उन्नति और विकास को रोकते हैं तो वे बेकार हैं। कोई भी मानवीय कानून स्थायी रूप से व्यक्ति के लिए बाध्यकारी नहीं हो सकते।

महात्मा गाँधी निर्वाचन और प्रतिनिधित्व के विरोधी नहीं थे, लेकिन उसके प्रचलित स्वरूप से उन्हें कोई आकर्षण न था। उन्होंने कहा कि निर्वाचन के सम्बन्ध में लोग प्रसन्नतापूर्वक विश्वास करते हैं कि ऐसा करके ही वे अपने शासन की स्थापना करते हैं, लेकिन उनका यह विश्वास वस्तुतः कभी पूर्ण नहीं हो पाता। चुनावों द्वारा एक शोषणकारी वर्ग जन्म लेता है जिसके द्वारा व्यक्ति का नैतिक पतन कर दिया जाता है। अपने 'स्वराज्य' का अर्थ बताते हुए गाँधीजी ने लिखा–"स्वराज्य से मेरा अर्थ है उन वयस्क स्त्री-पुरुषों की अधिकतम संख्या की निश्चित अनुमति द्वारा भारत का शासन, जो भारत में या तो उत्पन्न हुए हों या बस गये हों, जिन्होंने शरीर-श्रम राज्य की सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम दर्ज करवाने का कष्ट उठाया हो।" गाँधीजी ने कहा कि यदि अपने विवेक के अनुसार संविधान बनाने की उन्हें स्वतंत्रता होती तो राज्य का शासन उन थोड़े-से प्रतिनिधियों के हाथ में होता जिनको जनता चुनती और हटा सकती। उनका स्पष्ट मत था कि चुनाव का उम्मीदवार वही हो सकता है जो स्वार्थहीन होकर, समाज-सेवा की भावना से प्रेरित होकर चुनाव लड़ना चाहता है।[10] चुनाव के उम्मीदवारों की पदलोलुपता, आत्म-विज्ञापन, विरोधियों की निन्दा और मतदाताओं के मनौवैज्ञानिक शोषण से बचना चाहिए, जो आज के निर्वाचनों में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं। उम्मीदवार को वोट उसकी सेवा के फलस्वरूप मिलना चाहिए, न कि वोट माँगने से।[11] गाँधीजी ने यह भी कहा कि संसद सदस्यों को अपना जीविकोपार्जन अपने पसीने की कमाई से करना चाहिए। इन लोगों को किसी भी हालत में राष्ट्रीय आय की तुलना में अधिक नहीं मिलना चाहिए। गाँधीजी की भावना का अनुमान इन शब्दों से लगाया जा सकता है कि "यदि व्यक्ति अपने साधारण जीवन में 25 रुपये प्रतिमाह से संतुष्ट रहता है तो उसे एक मंत्री बन जाने पर या शासन में और कोई पद मिल जाने पर 250 रुपये पाने का कोई अधिकार नहीं है।"

मताधिकार के सम्बन्धा में गाँधीजी का कहना था कि वयस्क मताधिकार को व्यापक बनाना चाहिए लेकिन मताधिकार के लिए आवश्यक योग्यता सम्पत्ति या पद नहीं, अपितु शरीर-श्रम होना चाहिए। शारीरिक श्रम ही एक ऐसी चीज है जो हर एक को अवसर प्रदान करती है कि वह शासनतंत्र और राज्य के कल्याण में हिस्सा ले सके। मतदाताओं की आयु-मर्यादा के सम्बन्ध में गाँधीजी 21 वर्ष से ऊपर के या 18 वर्ष के ऊपर के सब वयस्कों के मताधाकार के पक्ष में थे, लेकिन वे अपने जैसे बूढ़े आदमी को इस अधिकार से अलग रखना चाहते थे। जो लोग मरणोन्मुख हैं, उनके मताधिकार की कोई उपयोगिता नहीं है। सारांशतः गाँधीजी का मत था कि जो 18 और 50 वर्ष के बीच की अवस्था के हों और जो शरीर-श्रम द्वारा राज्य की सेवा करते हों, उन्हीं के लिए मताधि कार सुरक्षित रहना चाहिए। 50 वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों का केवल नैतिक प्रभाव होगा, परन्तु उनके हाथ में मत द्वारा प्राप्त राजनीतिक सत्ता नहीं होगी।[12]

गाँधीजी का लोकतंत्र तो आध्यात्मिक लोकतंत्र था, अतः उनकी मान्यता थी कि साधारणतः सामान्य मामलों में निर्णय बहुमत द्वारा लिये जाने चाहिए, लेकिन इसे सैद्धांतिक रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। राज्य के किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक समुदाय से सम्बन्धित मामलों में निर्णय का अधिकार उसी समुदाय को होना चाहिए। महत्वपूर्ण मामलों में बहुमत अल्पमत की उपेक्षा नहीं कर सकता, बल्कि उसका बहुत ध्यान रखना आवश्यक है। अहिंसक क्रान्ति द्वारा स्थापित गाँधीजी के लोकतंत्र में लोग भेड़ों की तरह कार्य नहीं कर सकते। उसमें विचारों और कार्यों की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। बहुमत चाहे किसी प्रकार निर्णय क्यों न करे, उसके लिए दासभाव नहीं होना चाहिए। बहुमत के नियम पर सीमित रूप से ही व्यवहार हो सकता है। "अंतरात्मा संबंधों मामलों में बहुमत के नियम के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। कोई भी विचारधारा सही निर्णय के एकाधिकार का दावा नहीं कर सकती। हम सब गलती कर सकते हैं और बहुधा हमें अपने निर्णयों को बदलना पड़ता है। अतः आवश्यक है कि हम अपने विरोधी के विचारों को समझें और यदि उनको स्वीकार न करें तो उनका आदर अवश्य करें।" इसी सिलसिले में उन्होंने आगे कहा कि "बहुमत का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम किसी एक के विचार को, यदि वह सही मालूम पड़ता है, दबाएँ। यदि किसी एक व्यक्ति का विचार सही मालूम पड़ता है तो वह निश्चित रूप से अधिक वजनदार माना जाना चाहिए। सच्चे प्रजातंत्र के लिए मेरी यही मान्यता

है।'' गाँधीजी के विचारों का भाव वह है कि बहुमत और अल्पमत को अपना दिमाग खुला रखना चाहिए। दोनों को आत्म-परीक्षण करना चाहिए कि कौन-सा निर्णय सही है और उसी पर अमल करना चाहिए।[13]

पश्चिमी यूरोपीय वेस्टमिंस्टर मॉडल, जो संसदीय लोकतंत्र का जनक और प्रतीक माना जाता है, वह मूल रूप से गाँधी की स्वराजवादी व्यवस्था की आत्मा है जिसे गाँधी ने श्रेयस्कर मानकर स्वीकार किया है। लेकिन साथ ही साथ, उन्होंने उसकी कमियों, त्रुटियों और दोषों की कटुतम निन्दा भी की है। वह चाहते थे कि उनके स्वराजवादी राज्य में वे सब दुर्गुण न हों जो इंग्लैंड के संसदीय लोकतंत्र के परिचायक से बन गए हैं। सबसे पहली बात तो वह है कि ब्रिटिश संसदीय जनतंत्र एक ऐसी एकात्मक व्यवस्था है, जो अत्यन्त शक्तिशाली है, तथा जिसकी शक्ति में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। सत्ता के इस अविरल केन्द्रीकरण से व्यक्ति की पहल और अवसर की स्वतंत्रता का निरंतर हनन हो रहा है, इसके सदस्य न केवल स्वार्थी और मक्कार हैं बल्कि भ्रष्टाचारी भी हैं जो न केवल घूस लेते हैं बल्कि अपने समर्थकों को राजनीतिक घूस देते भी हैं।

गाँधी ने ब्रिटिश संसद की तुलना, उसकी कार्य-प्रणाली के संदर्भ में, एक बांझ और वेश्या से की है। गाँधी ने ब्रिटिश संसद को इसलिए बांझ कहा क्योंकि वह स्वयं अपने लोगों की भलाई के लिए भी तब तक कार्य नहीं करती, जब तक वह उसके लिए एक लम्बा संघर्ष न करे और उस पर राजनीतिक दबाव न डाले। दूसरी ओर गाँधी ने वेश्या की संज्ञा इसलिए दी क्योंकि अपने आपको सर्वप्रमुख सम्पन्न करने वाली ब्रिटिश संसद अपने प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी मंत्रिमंडल का मार्ग निर्देशन करने के बजाय, हर प्रधानमंत्री के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है तथा उसके वशीभूत होकर, उसके प्रति अपनी दासता का प्रदर्शन करती है। इसके अलावा ब्रिटिश सांसद व्यक्तिगत तौर पर अपनी आत्मा और विवेक से काम न लेकर बिना सोचे-समझे, हर बात में भेड़चाल की तरह अपने दल का ही समर्थन करते हैं तथा जनहित का कार्य करने के बजाय प्राय: अपने दल की स्वार्थसिद्धि ही करते हैं।

गाँधी ने यह भी पाया कि जिस प्रकार ब्रिटिश संसद दुर्बल और निर्धन लोगों का शोषण करती है उससे न केवल समय और धन की बर्बादी होती है, बल्कि उससे पूंजीवाद का पोषण तथा दुर्बल और निर्धन लोगों का शोषण भी होता है। गाँधी की यह आलोचना टॉलस्टॉय द्वारा की गई आलोचना जैसी ही है।

गाँधी ने यह भी पाया कि समानता और स्वतंत्रता का दम भरने वाली ब्रिटिश संसद दक्षिण अफ्रीका तथा अमेरिका जैसे राष्ट्रों की रंगभेद की नीति का समर्थन भी करती है। हिंसा पर आधारित ब्रिटिश शासन व्यवस्था अपने धर्मगुरु ईसा मसीह के सर्वव्यापी प्रेम के संदेश की अवहेलना करके हिंसा और जोर-जबर्दस्ती का सहारा लेती है और इसीलिए उसे अपने कानूनों का पालन करवाने के लिए भी दंड व्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है, जो सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को और अधिक हिंसक और पाशविक बना देती है। प्लेटो की तरह, गाँधी भी चाहते थे कि ऐसी अनुचित तथा अनैतिक व्यवस्था के स्थान पर एक ऐसी व्यवस्था कायम हो जाए जो ब्रिटिश व्यवस्था में विद्यमान सभी दुर्गुणों से मुक्त हो तथा जो जोर-जबर्दस्ती का सहारा लेने के बजाय अपनी बात को समझा बुझाकर मनवाए।

महात्मा गांधी की छोटी मगर सबसे महत्वपूर्ण वैचारिक पुस्तक ''हिन्द स्वराज'' के प्रकाशित हुए एक सौ वर्ष हो गए हैं। यह पुस्तक गांधी जी के विचारों और दृष्टिकोण को समझने के लिए अपरिहार्य है। उन्होंने बार-बार रेखांकित किया कि तफसील के स्तर पर भले ही कोई बदलाव लगे, उनके विचारों में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने पुस्तक के हिन्दी अनुवाद की प्रस्तावना में 1921 में लिखा ''यह पुस्तक मैंने सन् 1909 में लिखी थी। 12 वर्षों के अनुभव के बाद भी मेरे विचार जैसे उस समय थे वैसे ही आज हैं।'' इसके ठीक लगभग एक चौथाई शताब्दी बाद 3 अक्टूबर 1945 को पंडित जवाहर लाल नेहरू को एक पत्र में लिखा कि वे ''हिन्द स्वराज'' में प्रस्तुत विचारों विशेषकर शासन प्रणाली की अवधारणा पर अब भी कायम हैं। चूंकि वे जेल से कुछ महीने पहले बाहर आए थे और उनके कागज उन्हें आसानी से उपलब्ध नहीं थे और देश की तत्कालीन पुस्तक से उद्धरण देने के बदले उन्होंने एक बार फिर उसमें रखे गए विचारों को सार रूप में प्रस्तुत किया।

आगे बढ़ने के पूर्व पुस्तक की पृष्ठभूमि पर एक निगाह डालें। जिस समय पुस्तक लिखी गई थी उस समय गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में सक्रिय थे यद्यपि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा देश की समस्याओं पर उनकी पैनी नजर थी। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए वे यदाकदा स्वदेश आकर यहां के नेताओं से मिलते रहते थे। एक बार लंदन होकर दक्षिण अफ्रीका वापस जाते समय उन्होंने संवाद के रूप में ''हिन्द स्वराज'' लिखा जो उनके द्वारा संपादित समाचार पत्र ''इंडियन ओपीनियन'' में छपा। काका कालेलकर ने पुस्तक के 1959 के संस्करण के ''दो शब्द'' में उसकी रचना की पृष्ठभूमि के बारे में लिखा ''दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों

के अधिकारों की रक्षा के लिए सतत लड़ते हुए गांधी जी 1909 में लंदन गए थे। वहां कई क्रांतिकारी स्वराज्य-प्रेमी भारतीय नवयुवक उन्हें मिले। उनसे गांधी जी की जो बातचीत हुई उसी का सार गांधी जी ने एक काल्पनिक संवाद में ग्रंथित किया है।''

''हिन्द स्वराज'' रेखांकित करता है कि गांधी जी अंग्रेजों और शासन को भारत से हटाने को अपना अंतिम लक्ष्य नहीं मानते थे। वे चाहते थे कि अंग्रेजों द्वारा भारत पर लादी गई व्यवस्था का एक सच्चा विकल्प विकसित किया जाए। काका कालेलकर के शब्दों में, ''गांधी जी का कहना था कि भारत से केवल अंग्रेजों को और उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता और उन्हीं का आदर्श को स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। भारत के लिखे-पढ़े चंद लोग पश्चिम के मोह में फंस गए हैं।'' गांधी जी ने अहिंसा, साम्प्रदायिक एकता, सविनय अवज्ञा के रास्ते अन्याय के प्रतिरोध, अपरिग्रह, हिन्दी तथा सामाजिक समरसता के साथ ही साथ के साधन की पवित्रता पर जोर दिया। उनके अनुसार ऐसी अर्थव्यवस्था विकसित होनी चाहिए जिससे रोजगार के अवसर में अधिकतम वृद्धि के साथ ही संवृद्धि का लाभ बहुसंख्यक जनता को मिले और उसका आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन-स्तर ऊंचा उठे। दूसरे शब्दों में, आर्थिक संवृद्धि का मुख्य लक्ष्य थोड़े से लोगों द्वारा मुनाफा कमाना न हो।

''हिन्द स्वराज'' को लेकर मतवैभिव्य आरंभ से ही रहा। उदाहरण के लिए श्री गोपाल कृष्ण गोखले जो अर्थशास्त्र के ज्ञाता और अध्यापक थे उसकी स्थापनाओं से सहमत न थे। काका कालेलकर के अनुसार, ''स्व. गोखले जी ने इस किताब के विवेचन को कच्चा कहकर उसे नापसंद किया था और आशा की थी कि भारत लौटने के बाद गांधी जी स्वयं इस किताब को रद्द कर देंगे।

पंडित नेहरू और गांधी जी के बीच ''हिन्द स्वराज'' को लेकर वर्षों तक शास्त्रार्थ चला परन्तु कोई सहमति नहीं बन सकी। नेहरू ने 11 जनवरी 1928 को इलाहाबाद से गांधी जी को एक लंबा पत्र भेजा जिसमें कांग्रेस संगठन और राजनीति से जुड़े मामलों की चर्चा के साथ ही रेखांकित किया कि वे गांधी जी के प्रति अपार श्रद्धा रखते हैं मानते हैं कि वे ही ऐसे नेता हैं जो देश को विजय एवं स्वतंत्रता तक पहुंचा सकते हैं यद्यपि ''हिन्द स्वराज'' में व्यक्त उनके विचारों से कोई सहमति नहीं है। मात्र छ: दिनों बाद गांधी जी ने पंडित जी को लिखा कि उन्हें पूरी स्वतंत्रता है कि वे उनके साथ असहमत हों और चाहें तो खुला वैचारिक युद्ध छेड़ सकते हैं।

वर्ष 1945 में 9 अक्टूबर को पंडित नेहरू ने ''हिन्द स्वराज'' को यथार्थ से परे बतलाया और गांव और ग्रामीण जीवन के महिमा मंडन पर आपत्ति की। पंडित जी के शब्दों में, ''संक्षेप में कहें तो हमारे सामने सवाल सत्य बनाम असत्य, या अहिंसा बनाम हिंसा का नहीं है। यह मानकर चलना चाहिए कि सच्चा सहयोग और शांतिपूर्ण तरीके हमारे लक्ष्य बनें और जो समाज इसमें मददगार हो उसकी स्थापना हो हमारा लक्ष्य होना चाहिए। मैं नहीं समझ पाता कि गांव ही अनिवार्य रूप से सत्य और अहिंसा का प्रतीक होना चाहिए। गांव आमतौर से बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा होता है और इस पिछड़े पर्यावरण में कोई प्रगति नहीं हो सकती। संभवत: संकीर्णमना व्यक्ति अधिक मिथ्यावादी और हिंसक होंगे।''

खाद्य पदार्थों, कपड़ा, आवास, शिक्षा और सफाई के मामले में आत्मनिर्भरता देश और हर निवासी के लिए होनी चाहिए। इस उद्देश्य को जल्द से जल्द पाने के प्रयास होने चाहिए। परिवहन के आधुनिक साधनों सहित अन्य आधुनिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी उपलब्धियों को जारी रखना चाहिए। उनके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। इसको देखते हुए हम भारी उद्योगों के बिना आगे नहीं बढ़ सकते। हिन्दुस्तान की परिस्थितियों को देखते हुए भारी एवं हल्के उद्योगों के बीच तालमेल बैठाना आवश्यक है। यह कार्य बिजली की शक्ति के विकास से संभव है।

नेहरू का मानना था कि भारत की स्वतंत्रता और विदेशी आक्रमण से सुरक्षा तब तक सुनिश्चित नहीं की जा सकती जब तक वह आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित अर्थव्यवस्था विकसित न करे। वर्तमान वैश्विक संदर्भ में हमारे देश का कोई भी क्षेत्र वैज्ञानिक अनुसंधान की सुदृढ़ पृष्ठभूमि के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। आज की दुनिया में व्यक्ति हों या समूह या फिर राष्ट्र, सब परिग्रह की भावना से प्रेरित हैं और यही टकराव और युद्ध की जड़ में है। इसमें बदलाव लाने की जरूरत है जो शेष विश्व से अलग-अलग रहकर संभव नहीं है। हमारे समाज का आधार परस्पर सहयोग होना चाहिए। हमें ऐसी अर्थव्यवस्था नहीं विकसित करनी चाहिए जो हमें बाकी दुनिया से अलग-थलग करे बल्कि उसके साथ सहयोग के धागे से बांधे। अलग-थलग रहकर विकास के पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास करने वाला भारत सफल नहीं होगा। वह वस्तुत: शून्य में भटकेगा और परिग्रह की भावना से प्रेरित विदेशी उसे हथियाने की कोशिश करेंगे।

हमारे यहां करोड़ों लोगों के लिए महलों की व्यवस्था करने का प्रश्न नहीं उठता। जरूरत है कि सादे मगर आरामदेह आवास उपलब्ध कराए जाएं जिससे वे एक सुसंस्कृत जीवन जी सकें। हमारे अपने अनेक शहरों में भीड़-भाड़ बढ़ रही है और दुर्गुण पनप रहे हैं। हमें इसे रोकना होगा। गांवों के जीवन को सुविधा संपन्न और रोजगार के प्रचुर अवसर पैदा कर बेहतर बनाएं जिससे गांवों से शहरों की ओर पलायन रूके। कहना न होगा कि नेहरू की उपयुक्त टिप्पणियां सही ही नहीं बल्कि वर्तमान काल में अधिक उपयुक्त हैं। इस प्रकार ''हिन्द स्वराज'' का दृष्टिकोण अवास्तविक और भाववेश के शिकंजे में है। सूचना, संचार और परिवहन के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के कारण हम चाहते हुए भी शेष विश्व से अलग नहीं कर सकते। हम शेष विश्व में पनपने वाले विचारों, आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों और जीवन शैली में होने वाले बदलावों से चाहे-अनचाहे प्रभावित होंगे। हममें उनको अपनाने की लालच बढ़ेगी। इस लालच को दबा पाना असंभव होगा। एक छोटे-छोटे समुदाय के लिए संभव हो सकता है कि वह अपने को बाकी दुनिया से अलग-अलग रखकर जिंदगी बिताए मगर भारत जैसे देश के लिए यह कतई मुमकिन नहीं है। अपवाद के तौर पर हमें अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ऐसे आदिम जाति समुदाय और अमेरिकन में आमीष लोग हैं जो आधुनिक सभ्यता और उसकी उपलब्धियों से अलग-थलग रखे हुए हैं। रेलवे, हवाई यात्रा, इंटरनेट आदि के साथ कुछ दुर्गुण भी पनपते हैं जिनके कारण हम उनका परित्याग नहीं कर सकते। हम उनसे बचाव का इंतजाम करते हुए आगे बढ़ सकते हैं। डरकर इन महान उपलब्धियों का परित्याग करना सही नहीं होगा।

गांधी जी और अन्य महान पुरुष पुराने जमाने के गांवों का कितना भी महिमामंडन क्यों न करें, आज की दुनिया में वे प्रगति के वाहक नहीं बन सकते। ज्ञान और विवेकशीलता का सूर्य उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकता। बिजली, संचार एवं परिवहन के साधनों से वंचित तथा सूचना क्रांति के उपकरणों से अछूते वे शेष विश्व से कटे रहेंगे। वहां से रोजी-रोटी तथा उन्नति के अवसरों की खोज में लोगों का पलायन जारी रहेगा। अगर हम गांधाी जी की कल्पना की अर्थव्यवस्था बनाते हैं तो उसको अभेद्य बाड़े से शेष दुनिया से अलग करना होगा जो सर्वथा असंभव है जैसा कि सोवियत संघ के अनुभव से स्पष्ट है। याद रहे कि तस्करी तथा भूमिगत मार्गों से विदेशी वस्तुओं और विचारों का लगातार प्रवेश होता रहा नई वस्तुओं और सेवाओं के प्रति ललक बढ़ती गई। हो सकता है राजकीय बल द्वारा नई व्यवस्था को बचाए रखने में कुछ समय तक सफलता मिले परन्तु ऐसी व्यवस्था को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। कम्बोडिया की पोलापोट सरकार अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद धाराशायी हो गई।

कहना न होगा कि ''हिन्द स्वराज'' अपने मूल्यवान विचारों और उच्च भावनाओं के बावजूद वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक नहीं है। ऐसा कहना किसी भी प्रकार से गांधी जी के प्रति अनादर प्रकट करना नहीं है। कोई भी कृति या विचार हर काल और स्थान के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए हम श्रीमद भागवतगीता को ले सकते हैं जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा कि विजयी होने पर उन्हें राज्य मिलेगा और युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग। इस प्रकार युद्ध करना उनके लिए घाटे का सौदा कतई नहीं हो सकता। यह बात उस समय के लिए सही थी जब युद्धबंदी की अवधारणा नहीं आई थी। युद्धबंदी को दास बनाकर काम लेने की चलन नहीं था क्योंकि अर्थव्यवस्था की तत्कालीन स्थिति में उसके लिए कोई गुंजाइश न थी। आज तीसरा विकल्प युद्धबंदी का है। अत: श्रीकृष्ण की हम जितनी भी पूजा करें और उनके वचन को जितनी भी अहमियत क्यों न दें उनका उपयुक्त वचन को जितनी भी अहमियत क्यों न दें उनका उपयुक्त वचन न्यायशास्त्र की दृष्टि से हेत्वाभास से ग्रस्त है क्योंकि वह द्विपाश के फंदे में फंसा है। अंत में, उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर हम कह सकते हैं कि गांधी जी तर्क को काफी अहमियत देते थे। जैसा कि हम ऊपर जिक्र कर चुके हैं, गांधी जी और पंडितजी के बीच स्वतंत्र भारत के स्वरूप को लेकर अच्छा खासा विवाद रहा। यह 1930 के दशक के दौरान आरंभ हुआ और 1940 के दशक में उसने स्पष्ट रूप ले लिया। अंतत: नेहरू ने गांधी जी से अपनी बात मनवाने में सफलता प्राप्त कर ली। अभी तक जो दस्तावेज उपलब्ध है उनके अनुसार अप्रैल 1940 में कभी नेहरू, गांधी जी और अर्थशास्त्री डॉ. वी. के. आर. वी. राव के बीच गहन चर्चा हुई। राजकुमारी अमृत कौर जो उस समय वहां मौजूद थीं, पूरी बहस को रिकार्ड किया। उनके अनुसार नेहरू ने स्वतंत्र भारत में औद्योगिक अर्थव्यवस्था की स्थापना का विशेष रूप से समर्थन किया। इसके जरिए उत्पादन बढ़ाकर जनता का जीवन-स्तर ऊंचा उठाया जा सकेगा और देश शक्तिशाली बनेगा। कोई भी देश औद्योगिक रूप से विकसित हुए बिना अपनी स्वतंत्रता को बनाए नहीं रख सकता। नेहरू जी ने गांधी जी से कहा: ''मैं कुटीर उद्योगों को उस हद तक आगे ले जाना चाहता हूं, जहां तक हम लोग ले जा सकते हैं। परन्तु मैं औद्योगीकरण के बिना भारत की कल्पना नहीं कर सकता। ये उद्योग ही कुटीर उद्योगों की सहायता करेंगे। उन्होंने चेतावनी दी कि अगर आप अपने बड़े उद्योगों को दबा कर बैठे रहेंगे तो दूसरे देश आपके ऊपर चढ़ बैठेंगे।''

आखिरकार गांधी जी ने यह वक्तव्य दिया कि औद्योगीकरण को लेकर उनके और नेहरू के बीच कोई मतभेद नहीं हैं। उन्हें ''भारत के औद्योगीकरण और बड़े उद्योगों को लेकर कोई समस्या नहीं है। मैं करांची प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूं, जिसे तैयार करने में मेरा भी योगदान था।''

इधर कुछ समय से कतिपय निहित स्वार्थ वाले यह प्रचार करते दिख रहे हैं कि नेहरू ने गांधी जी के साथ वैचारिक धोखा किया और उनकी सैद्धांतिक विरासत को नकार दिया। इन लोगों का यह भी दावा है कि ''हिन्द स्वराज'' आज भी भारत के लिए पूर्णतया प्रासंगिक है। कहना न होगा कि आजादी के बाद, विशेषकर 1959 के दशक के दौरान, पश्चिमी देशों के अर्थशास्त्रियों के एक समूह ने तत्कालीन भारतीय नेतृत्व पर यह दबाव बनाने की कोशिश की थी कि वह भारत को कृषि, कुटीर उद्योगों आदि तक ही सीमित रखे क्योंकि यही अर्थशास्त्र के तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत का तकाजा है। वस्तुत: वे भारत को नवउपनिवेश बनाए रखना चाहते थे।

संदर्भ

1. N. K. Bose : Studies in Gandhism, p. 202-03.
2. N. K. Bose : Studies in Gandhism, p. 202-03.
3. गोपीनाथ धवन : वही, पृ. 310.
4. गोपीनाथ धवन : वही, पृ. 310.
5. डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य : वही, पृ. 122-24.
6. यंग इण्डिया, भाग 3, पृ. 25-26.
7. यंग इण्डिया, भाग 3, पृ. 25-26.
8. पी. के. भट्टाचार्य : वही, पृ. 325.
9. गोपीनाथ धवन : वही, पृ. 328.
10. डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य : वही, पृ. 129
11. गोपीनाथ धवन : वही, पृ. 330.
12. गोपीनाथ धवन : वही, पृ. 330.
13. डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य : वही, पृ. 126.

गांधी का राज्य

डॉ० सुनील कुमार

व्याख्याता, बी. डी. डिग्री कॉलेज, जलालपुर, छपरा (सारण)

मार्क्सवाद की तरह गांधीवाद भी एक सम्पूर्ण तथा संश्लिष्ट सिद्धान्त है जो निर्माण की प्रक्रिया में है, जिसमें अनेक और बहुआयामी घटक घुले-मिले हैं। यही कारण है कि उनके चिंतन को, उनके विचारों को चाहे वे चिंतन दार्शनिक हों, समाजशास्त्रीय हों या राजनीतिक हों उन्हें परम्परागत रूपों में ही श्रेणीबद्ध करना प्राय: आसान काम नहीं है। गांधी जी की पेचीदी गुत्थियों को देखिए, वे एक ही साथ मौलिक हैं और सारसंग्रहवादी भी, वे सिद्धांतकार भी हैं तथा सिद्धांतों को अमलीजामा पहनाने वाले भी, वे रहस्यवादी भी हैं तो तार्किक चिंतक भी, वे एक ऊँचे दर्जे के अध्यात्मवादी भी हैं तो धरती की सोंधी-सोंधी महकों से लिपटे हुए इंसान भी है। वे एक आदर्शवादी, व्यक्तिवादी एवं अराजकतावादी सभी कुछ एक ही साथ थे। गांधी बहुत सारे विचारों के एक पुंज रूप थे, सभी विचारों के फूल को एक ही लड़ी में पिरोने वाले माली की तरह कभी-कभी विचार-पुंज छितर जाते थे, मानो लड़ी टूट गयी हो पर वे पुन: समेटने लगते थे। इन्हीं खुबियों के कारण गांधी का व्यक्तित्व राजनीतिक, दार्शनिक विचारों के इतिहास में कवित्वमय प्रतिभा के साथ मुस्कराहट की छटा बिखेरता है। कोई दार्शनिक उनके विचारों में असम्बद्धता पा सकते हैं, तार्किक चिंतन करने वाले इनके रहस्यवाद के खिलाफ हो सकते हैं, धर्मनिरपेक्षता को कबूल करने वाले इनके धार्मिक रुझान से नाक-भौं सिकोड़ सकते हैं साथ ही विज्ञान एवं आधुनिकता से नाता जोड़ सकते हैं, कोई भी व्यक्ति गांधी के अंदर पुनरुत्थानवाद का गाढ़ा रंग पा सकता है और वह है भी, फिर भी कुछ ऐसी चीजें हैं जो गांधी को पहाड़ जैसा व्यक्तित्व प्रदान करती हैं तथा इतिहास में उन्हें एक सम्मानित, देदीप्यमान एवं विशालकाय महामानव के रूप में ढालती हैं।[1]

महात्मा गांधी एक आदर्शवादी जरूर थे पर उनका आदर्शवाद हेगेल या बोसान्के के आदर्शवाद की तरह ऊटपटाँग एवं अतिवादी नहीं था। इसके विपरीत इनका आदर्शवाद, ग्रीन की तरह सभ्य, सौम्य एवं सुरक्षित प्रतिमा की तरह खड़ा है। गांधीजी वस्तुगत धरातल पर तथा आचार शास्त्रीय रूपों-दोनों में समभाव से आदर्शवादी बने रहे। एक विलक्षण प्रतिभा गांधी में थी पर उनकी विनम्रता देखिए कि वे कभी भी प्रतिभा सम्पन्न होने का दावा पेश नहीं करते, बस इतना ही कहते हैं—"हम तो हिन्दुओं के सनातन धर्म को मानने वाले हैं।''

गांधी के आदर्शवाद का स्रोत ग्रहण उपनिषद, वेद और गीता से हुआ था। उन्हें भगवान पर आस्था थी। वे कहा करते थे कि मानव में एक अविनाशी आध्यात्मिक अस्तित्व होता है जिसे हम आत्मा कहते हैं। मानव मात्र हाड़-माँस का पुतला ही नहीं है वरन् उसके अन्दर एक आध्यात्मिक सत्ता मौजूद है। अत: किसी स्थायी सामाजिक-आर्थिक संगठन को न्यायपूर्ण होने के लिए दोनों तत्त्वों को लेकर चलना पड़ेगा।

वेदान्ती आदर्शवाद को मानने वाले की हैसियत से गांधी की पूर्ण आस्था मोक्ष प्राप्त में थी। उनकी मान्यता थी कि हर व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति का ही अपना उद्देश्य मानना चाहिए तथा उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए पर गांधी जी इस उद्देश्य प्राप्ति को अलग मार्ग बताते हैं। वे कहते हैं कि मोक्ष प्राप्ति हिमालय की गुफाओं में जाकर तपस्या और आत्मपीड़ा से नहीं हो सकती है बल्कि इसके लिए समाज के लोगों की जिन्दगी से घुल-मिल जाने से काम आगे बढ़ेगा।

महात्मा गांधी बार-बार इस बात पर जोर देते थे कि हम अपनी गुफा साथ लेकर चलते हैं, समाज के लोगों से अलग हमारी नियति नहीं। एक सौन्दर्यमय कठोर नैतिक अनुशासन पर चलने वाले गांधी कोई नैतिक संयासी नहीं थे। हो सकता है कि ऐसा ही हो, यही सब मिलकर गांधीजी की समाजीकृत आचार सहिताओं के मूल तत्वों का निर्माण करते हैं। इसी अर्थ में गांधी जी आदर्शवादी

आचार शास्त्रियों से न केवल भारत में भिन्न दिखाई पड़ते हैं वरन् पाश्चात्य चिंतकों को भी अलग छोड़ देते हैं और ग्रीन के आस-पास खड़े दिखाई देते हैं जो कहते हैं कि सच्चा नैतिक जीवन सामाजिक जीवन है तथा सच्चा नैतिक जीवन आम लोगों की जिन्दगी से कटकर हो ही नहीं सकता। यह जीवन तो मातृत्व, मैत्री, कॉमरेडशिप, दिलों का मिलन और प्यार में पल्लवित एवं पुष्पित होगा। यहीं पर सामाजिक अस्तित्व के लिए स्वाभाविक एवं नैतिक औचित्य निवास करता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक अस्तित्व ही मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य है! मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाज एक साधन है, एक शर्त है, एक जरिया है। यह साधन है पर यह साध्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि एक व्यक्ति का जीवन पूरा-पूरा सामाजिक जीवन में गर्क नहीं हो सकता है। व्यक्ति समाज में रहता है यह सोलहो आना सच है पर व्यक्ति का सच्चा उत्कर्ष, उसकी सच्ची आकांक्षा इस समाज से आगे है। यह एक वास्तविकता है कि एक स्वस्थ आध्यात्मिक जीवन के लिए स्वस्थ शरीर रचना एक अनिवार्य अंग है। अत: सच्चे जीवन के लिए समाज एक आवश्यक शर्त के रूप में है। वैयक्तिकता और सामाजिकता को किसी भी आदर्श मानवीय गरिमा के लिए साथ-साथ होना ही चाहिए।

बहरहाल, गांधी जी का आस्तिक आदर्शवाद बिना लाग-लपेट के, बिना गहरे तर्क में गये भी इसके पक्ष में प्रतिबिम्बित होता है। गांधी जी ने इस धारणा को ग्रहण किया था, बहुत लोगों की तरह उनका यह दृढ़ मत था कि आस्तिकवादी अनुभव एक भोगा हुआ अनुभव है, एक स्वयं की अनुभूति है जो तर्कों से बड़ी चीज है, यह जाँची-परखी वस्तु है तथा प्रदर्शित सच्चाई भी है। गांधी जी की आस्था थी कि ईश्वर सत्य है और सत्य ईश्वर है।[2]

गांधी का नैतिक आदर्शवाद अतिवादी आदर्शवाद से भिन्न है फिर भी यह आलोचना के लिए सबके सामने सीना खोलकर खड़ा है, इस अर्थ में कि यह सिद्धांत जीवन के भौतिक परिवेश और सामाजिक अस्तित्व का लेखा-जोखा करता है पर इसका यह भी मानना है कि मोक्ष ही मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य है क्योंकि सांसारिक जीवन एक गौण दर्जा ही पाने योग्य है, इसके साथ विमाता का व्यवहार ही हो सकता है। इस तर्क के पक्ष में गांधीजी का अपना कठोर जीवन ही एक सबूत के रूप में पेश है। इस किस्म का दार्शनिक पक्ष अंततोगत्वा इस दुनिया में विना मायाजाल के जीवन बिताने की ओर ले जायेगा।

किन्तु आदर्शवादी गांधी एक व्यक्तिवादी भी थे। पर इनका व्यक्तिवाद 19वीं सदी के मुक्त बाजार अर्थतंत्र की तरह नहीं, एक भौतिकवादी धारणाओं एवं अणुवादी अहंवाद की तरह नहीं वरन् वह व्यक्ति को मूल्य प्रदान करने वाला, स्वत: स्फूर्त्तता को, स्वयं पेशकदमी लेने वालों को और अपने पाँव पर स्वयं खड़े होने वाले लोगों को गरिमा प्रदान करने वाला है। ग्रीन की तरह वे कहा करते थे कि एक सच्चा नैतिक जीवन स्वतंत्र आकांक्षा का जीवन है, स्वयं अर्जित, अपने-आपमें विकसित होने वाला, एक ठोस प्रवाह है जिसमें दूसरे मात्र अप्रत्यक्ष रूप से मददगार हो सकते हैं, एक बाह्य सहायक भर हो सकते हैं। लेकिन समाज का अस्तित्व एक नैतिक मानव के लिए अनिवार्य ही माना जायेगा।

अरस्तू और ग्रीन से गांधीजी का एक बात में मतभेद है। अरस्तू और ग्रीन के अनुसार स्वाभाविक सामाजिकता और मानव की नैतिकता में राज्य एक आवश्यकता है। इस किस्म के तमाम चिन्तक सामाजिक मानव को राजनीतिक मानव में संक्रमण को औचित्य प्रदान करते हैं, इसके पास जो व्याख्या है वह असंतोषप्रद है।

यहीं पर गांधीजी थोरो और तालस्ताय जैसे अराजकतावादी दार्शनिकों की टोली में जा मिलते हैं जिनके अनुसार नैतिक मान्यताओं के आधार पर राज्य एक अनावश्यक वस्तु है। एक नागरिक जीवन के लिए जहाँ स्वतंत्र इच्छाशक्ति है, स्वत: स्फूर्त्तता है वहाँ राज्य का अस्तित्व मेल नहीं खाता है क्योंकि राज्य एक दमन की मशीन है जो शक्ति, भय एवं हिंसा पर आधारित है। राज्य का अर्थ है अलगाव, लाचारी और दमन। बहरहाल राज्य नामक संस्था शक्ति के केन्द्रीयकरण की ओर ले जाता है, गांधी इसी केन्द्रीकृत शक्ति के खिलाफ थे क्योंकि यह वैयक्तिकता के खिलाफ जाता है, व्यक्ति की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के विरुद्ध जाता हैं। इस प्रकार राज्य और नैतिक जीवन एक-दूसरे के विपरीत धारा में खड़े है। गांधी का विश्वास था कि आदर्श स्थिति वही है जहाँ राज्य नहीं हो क्योंकि वहाँ राज्य की आवश्यकता ही नहीं है।

किन्तु इस सवाल पर कि राज्य क्यों है गांधीजी का विचार संतोषजनक नहीं है। इनका विचार इस व्यक्तिवादी धारणा की ओर मुड़ता है जो कहता है कि राज्य एक आवश्यक बुराई है क्योंकि मानव स्वभाव में कुछ निहित गड़बड़ियाँ मौजूद हैं, जो एक आदर्श समाज की अवस्था में ही दूर हो सकती हैं किन्तु गांधीजी इस बात की व्याख्या नहीं कर पाते हैं कि मानव स्वभाव की ये कमजोरियाँ क्यों हैं, अगर वे हैं तो राज्य का लोप क्योंकर होगा?

एक व्यक्तिवादी की हैसियत से 19वीं सदी के व्यक्तिवादियों जैसे बेनथामाइट/उपयोगितावादियों से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न मत रखते हैं, उनके अहंवादी सिद्धान्तों से मतभेद रखते हैं जिसमें यह कहा गया है कि मानव स्वभावतया स्वार्थी है और सुख-दुःख के आधार पर निर्णय लिया करता है। गांधी का व्यक्ति एक आदर्श पर, ऊँचे विचार पर खड़ा है। इंद्रिय सुख ही मानव जीवन का उद्देश्य है, गांधीजी इस धारणा के विरुद्ध हैं और इसलिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्था का उद्देश्य अगर सांसारिक सुख मात्र है तो गांधीजी इसके भी खिलाफ हैं किन्तु आनन्द अगर व्यापक पैमाने पर ग्रहण किया जाये, जैसा कि वेदान्त कहता है, जिसके अनुसार आनन्द मानव व्यक्तित्व के तमाम अंगों की संपूर्ण संतुष्टि कर सके तो यह जीवन का उद्देश्य अवश्य होगा और इसमें गांधीजी को कोई आपत्ति नहीं है। गांधीजी तो उपभोगवादी आधार पर भौतिक सुखों के खिलाफ खड़े दिखाई पड़ते हैं।3

इन कारणों से गांधीजी बेंथामाइट के उस आदर्श के प्रति आलोचनात्मक रुख लेते हैं जिसमें कहा गया है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं का उद्देश्य होना चाहिए-सबसे बड़े मानव समुदाय को सबसे बड़ा सुख मुहैया कराना। इस बात का जवाब दिया गांधी ने अपने सर्वोदय के सिद्धांत से, जिसमें कहा गया है कि समाज में तमाम व्यक्तियों का समग्र विकास, सभी का उदय अगर एक भी व्यक्ति पीछे छूट जाता है तो उस समाज को सर्वोदय समाज नहीं कहा जायेगा ऐसा गांधीजी का मत था।

इस आधार पर गांधी जी का सर्वोदय बेन्थामाइट के सर्वाधिक संख्या को सर्वाधिक सुख से ज्यादा आकर्षक है पर व्यावहारिक रूप से बेन्थामाइट का आदर्श गांधी की सर्वोदय विचारधारा के ज्यादा बोधगम्य है, क्योंकि यह गुत्थी सुलझने लायक लगती है पर गांधी के विचारों की गुत्थी उलझकर रह जाती है।

सर्वोदय विचारधारा काफी प्रेरणा प्रदान करने वाली है किन्तु इसे प्राप्त करने के जो नुस्खे हैं उन आधारों पर यह अप्राप्त है। एक नैतिक पूर्णतावादी के नाते महात्मा गांधी का जोर, व्यक्ति की पूर्णता, व्यक्ति के प्रयत्नों को ही समाज की बेहतरी का आधार बनाने पर जाता है। यहाँ पर महात्मा गांधी संस्थागत प्रयत्नों की तुलना में व्यक्ति को ऊँचा मानते हैं तथा संस्थागत तरीके को एकांगी समझकर तिरस्कार करते हैं। किन्तु अगर संस्थावादी विचारक अपने पक्ष का बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं तो पूर्णतावादी भी अपने दावे को अतिरंजित कर, ज्यादा बढ़ाकर ला खड़ा करते हैं, सत्य यह है कि दोनों पक्षों को सर्वांगीण रूप से मिलाकर आगे बढ़ाया जाये जिसमें संस्थागत विचार पर थोड़ी प्राथमिकता अवश्य हो। ऐतिहासिक रूप से कहा जाये तो नैतिक पूर्णतावादी विचार को व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा हुई है और यह पाया गया कि परिस्थिति को सुलझाने में यह नाकाफी है। यह तथ्य भी है कि कोई भी व्यक्ति आज के समाज में अपने को उन्नत और पूर्ण बनाने के प्रयत्न में असहाय हो जाता है। व्यक्ति शून्य में काम नहीं कर सकता है बल्कि उसे तो ठोस सामाजिक परिवेश में काम करने की बाध्यता है जो उसके सामने कुछ सीमाएँ खड़ी करता है। व्यक्ति और परिवेश के रिश्ते ऐसे हैं जो आपस में अन्योन्य क्रिया करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।[4]

गांधीवाद का दूसरा अंग भी पेचीदा ही है। वह अंग है आमतौर पर सम्पत्ति का सिद्धांत तथा खासतौर पर ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त, लॉक और ग्रीन की तरह गांधीजी की मान्यता है कि आमतौर से सम्पत्ति और खासकर भूसम्पत्ति ईश्वरीय है – 'सबै भूमि गोपाल की' अतः सम्पत्ति वाले को चाहिए कि वे केवल थातीदार समझें पर इस प्रश्न पर सवाल उभरते हैं। क्यों सम्पत्तिधारी वर्ग सम्पत्ति के थातीदार (ट्रस्टी) बनें, उन्हीं को यह हक क्यों मिलना चाहिए। वे संपत्तिधारी ऐसा दावा कर सकते हैं कि उनकी सम्पति उनके दिमाग, मेहनत, मशक्कत और पूँजी की ऊपज है अतः पूर्णतः उनकी है, इसे ले लेने का कोई औचित्य नहीं है तथा इसके रास्ते में कोई बाधा या रुकावट खड़ी करना गैरवाजिब है, किन्तु इसके विपरीत अगर उनकी सम्पत्ति यह नहीं है तो उनके पास इसे छोड़ा क्यों जाये? यहाँ पर दो विकल्प हैं: यह तो यह साबित करें कि उनकी सम्पत्ति गलत तरीके से अर्जित की गयी है तथा उसके सामाजिक स्वायित्व की माँग की जाये या यह मान लें कि यह अर्जन सही है, यह सम्पत्ति वैध रूप से उनकी ही है तो उन्हें उसका पूर्ण उपभोग करने का हक दिया जाये। संभवतः मानव समाज के गहरे में जड़ जमाये इस गंभीर समस्या के समाजशास्त्रीय पहलू पर गांधी की नजर गयी ही नहीं। वे तो पूँजी और श्रम के बीच, जमींदार और रैयत के बीच अच्छे संबंध बनने-बनाने पर ही ज्यादा सोच रहे थे जिसमें गांधीजी का कहना था कि इन अच्छे सम्बन्धों का आधार समान साझेदारी का सिद्धांत होना चाहिए।

गांधीवाद का एक और पहलू है जिस पर आलोचनात्मक रुख होना चाहिए। वह पहलू है औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण पर गांधीजी का रूख। यद्यपि गांधीजी का रुख इस प्रश्न पर विरोध का है, नैतिकता तथा व्यक्ति के हित दोनों दृष्टिकोण से, व्यक्ति की स्वाधीनता एवं स्वयं की पेशकदमी के अर्थ में भी यह तर्क किया जा सकता है। इसमें औद्योगीकरण तथा बड़े पैमाने पर मशीनों का उपयोग दोषी नहीं है जो केन्द्रीकरण कर देता है बल्कि औद्योगीकरण के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल तथा स्वामित्व का मूल प्रश्न

ही समस्या की जड़ में मौजूद है। बहरहाल यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस विषय पर गांधीजी का विचार चाहे जो हो औद्योगिक सभ्यता के पेचीदे प्रश्न की ओर उन्होंने ऊँगली उठाई है।[5]

गांधीवाद के इन आलोचनात्मक मुद्दों के बारे में चर्चा के सिलसिले में हमें उसमें निहित स्थायी मूल्य पर भी विचारना चाहिए। यह स्वीकार करना चाहिए कि क्रियाशील गांधी विचारक गांधी से बहुत-बहुत आगे हैं। क्रिया के मैदान में, आन्दोलन में गांधीजी एक उत्कृष्ट मानव, पूर्ण मानव तथा मानवतावादी दिखाई पड़ते हैं। संभवतः समाजशास्त्रीय राजनीतिक दृष्टिकोण से गांधीजी अपने अंतिम क्षणों में निर्भय होकर, अपने प्राणों को खतरे में डालकर दंगाग्रस्त क्षेत्रों में घूमते दिखाई पड़ते हैं।

भाईचारे और साम्प्रदायिक सद्भाव का जो संदेश दिये चलते हैं वह गांधीजी का सर्वोच्च एवं मूल्यवान पहलू है। यह अंतिम चरण गांधीजी के अन्दर जो कुछ अच्छा था, गांधीवाद के अन्दर जो कुछ मूल्यवान है उन्हें उजागर कर देता है। गांधीजी का दूसरा उल्लेखनीय पहलू उनके अंतिम दिनों का ही है जिसकी ओर अपने देश के राजनीतिज्ञों का ध्यान अवश्य जाना चाहिए क्योंकि आज वे लोग सत्ता और रुपये-पैसों की ओर ज्यादा आकर्षित हैं। वह उल्लेखनीय पहलू क्या है ? जब सारा राष्ट्र 15 अगस्त, 1947 को खुशियाँ मना रहा था, राष्ट्रीयता स्वाधीनता-संग्राम का मूर्धन्य नेता महात्मा गांधी दिल्ली से दूर इन खुशियों और चहल-पहल से दरकिनार अलग-थलग पड़ा हुआ था।

संदर्भ

1. आधुनिक भारतीय राजनीतिक-चिन्तक, साहित्य संसद पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 75
2. वही, पृ. 77।
3. वही, पृ. 78।
4. वही, पृ. 79।
5. वही, पृ. 80।
6. वही, पृ. 81।

राजनीति में भ्रष्टाचार

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, डी.सी. कॉलेज, हाजीपुर, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

यह सबको मालूम है कि जिन देशों में मताधिकार पर आधारित लोकतंत्रीय व्यवस्था है, वहाँ राजनेताओं और राजनीतिक दलों को अपनी गतिविधियाँ को चलाने तथा चुनाव लड़ने के लिए भारी मात्रा में पैसों की दरकार होती है। कतिपय दलों को छोड़कर, जिसको प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं की कमी नहीं होती और वर्ग विशेष का जोरदार समर्थन होता है, शेष को व्यवसायियों तथा काले धंधे वालों पर निर्भर रहना ही पड़ता है। बाल्जाक को दुहराते हुए कहा जा सकता है कि व्यवसायी और काले धंधे वाले 'कुएँ' होते हैं, जिनमें राजनेता और राजनीतिक दल 'बाल्टी' बनकर धन निकालते हैं।

हमारे अपने देश में आज के दौर में यह उपमा बिल्कुल सटीक है। आजादी के दौरान और उसके बाद, विशेषकर नेहरू युग में, राजनीति और व्यवसाय के बीच निर्भरता बहुत कम थी। उनके बीच जो भी संबंध थे, वे खुले थे। कारण यह था कि प्रमुख राजनीतिक दल आजादी की लड़ाई में शामिल थे, इसलिए उनका आमजन से घनिष्ठ एवं सीधा सम्बन्ध था। जनता उन्हें श्रद्धा से देखती थी और उनका अनुसरण करती थी। इसलिए न समर्पित कार्यकर्ताओं की कमी थी और न ही राजनीतिक गतिविधियाँ को चलाने के लिए बहुत पैसों की जरूरत थी। हिंदू महासभा और भारतीय जनसंघ जैसे इक्के-दुक्के दल थे, जिनका आजादी की लड़ाई से कुछ लेना-देना नहीं था। लिहाजा उनका जुड़ाव भूमिपतियों, राजे-रजवाड़ों और व्यवसायियों के एक समूह के साथ था, जो उनका वित्त पोषण करते थे। मार्के की बात यह थी कि कांग्रेसी, कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट बहुत सादगी से रहते तथा अपरिग्रही थे। अपनी राजनीतिक गतिविधियों और चुनावी मुकाबलों के दौरान कोई तड़क-भड़क और भोंड़ा प्रदर्शन नहीं करते थे। चुनावी खर्च कम होता था क्योंकि लोकसभा और विधानसभा के चुनाव बहुधा साथ-साथ होते थे। और भोड़ा प्रदर्शन नहीं करते थे। चुनावी खर्च कम होता था, क्योंकि लोकसभा और विधानसभा के चुनाव बहुधा साथ-साथ होते थे।

यह सब नेहरू युग समाप्त होते-होते काफी कुछ बदल गया। स्वतंत्रता सेनानियों की संख्या तेजी से घटी, समर्पित कार्यकर्ताओं का अभाव हुआ और जनता के साथ जीवंत संबंध खत्म होने लगा। सभी दलों का प्रबंधन नौकरशाही की गिरफ्त में आ गया। लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव प्रायः अलग-अलग होने लगे। जनता से जीवंत संपर्क न होने के कारण उम्मीदवारों, नेताओं और दलों को भाड़े के कार्यकर्ताओं का सहारा लेना पड़ा। थोड़े समय में पूरे चुनाव क्षेत्र का दौरा करने तथा मतदाताओं से संपर्क बनाने के लिए द्रुतगामी वाहनों और प्रचार सामग्रियों का सहारा लेना पड़ा। पेशेवर प्रबंधकों, सर्वेक्षकों, विज्ञापन-विशेषज्ञों आदि को भारी-भरकम फीस देकर काम पर लगाना पड़ा। जैसा कि इधर के दिनों में देखा गया है, मीडिया में विज्ञापन और अपने पक्ष में खबरें छपवाने के लिए पैसों की दरकार बढ़ी है। बहुत कम दल और नेता हैं, जो जनता से चंदे माँगते या लोग उन्हें चंदा देते हैं। वस्तुतः थोड़े से पैसों के लिए द्वार-द्वार घूमना समय और ऊर्जा की बर्बादी मानी जाती है। अब देशी-विदेशी व्यवसायियों, काले धंधेबाजों, ठेकों, नियुक्तियों एवं स्थानांतरणों तथा सरकारी खरीद-फरोख्त को धन उगाही का मुख्य स्रोत बना दिया गया है। जो धनवान राजनेताओं और दलों को पैसों से मदद करते हैं, वे उनके सत्तारूढ़ होने पर उनके संरक्षण में बेखौफ कई गुना बना लेते हैं। इधर कुछ दशकों से दलित एवं अन्य पिछड़ा वर्गों के दलों का उदय हुआ है। उनके अपने नव-धनाढ्य एवं शिक्षित नौकरीपेशा तथा कारोबारी लोगों ने उनकी भरपूर मदद शुरू की है। इसके पीछे जातीय स्वाभिमान और धन बटोरने के अवसर मिलने की उम्मीद होती है।

जब से गठबंधन की राजनीति शुरू हुई है, तब से अस्थिरता और अस्थायित्व प्रमुख हो गए हैं। उसमें शामिल दल और नेता 'कल क्या होगा' की चिंता से पीड़ित रहते हैं और जल्द-से-जल्द अपनी जेब भरना और अपने समर्थकों का भला करना चाहते

हैं। हम देख सकते हैं कि भारत में 1967 से कितने गठबंधन और कितनी पार्टियाँ बनीं और उनकी औसत आयु क्या रही है। यह भी जानना दिलचस्प होगा कि तब से भ्रष्टाचार के मामलों में कितनी वृद्धि हुई है। सन् 1967 के बाद लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव प्रायः अलग होने लगे और कई बार उन्हें अपना नियत कार्यकाल पूरा करने के पहले ही भंग करने का सिलसिला भी आरंभ हो गया।

देशी-विदेशी कारोबारियों को इस नई स्थिति में अपार संभावनाएँ दिखीं और उन्होंने सत्ता के गलियारों में अपनी पैठ बढ़ाई। एक और बात यह हुई कि पार्टी फंड और व्यत्तिक्तगत कोष का अंतर मिटने लगा।

गठबंधन की राजनीति शुरू होते ही बेलगाम वादों की भरमार हो गई, क्योंकि यह अहसास हो गया कि गठबंधन के बिखरने के बाद उनके कार्यान्वयन की जिम्मेदारी समाप्त हो जाएगी। उदाहरण के लिए, जब एच. डी. देवगौडा प्रधानमंत्री बने, उसके कुछ समय बाद ही उन्होंने घोषणा की कि वे गोरखपुर स्थित भारतीय उर्वरक निगम का कारखाना फिर से चालू करवा देंगे। मगर कुछ ही समय बाद उन्हें गद्दी छोड़नी पड़ी। उन्होंने इस वादे से उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव पर थोड़ा-बहुत असर जरूर डाला। उनकी ही तरह संयुत्तक्त मोर्चा की सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वचन दिया कि वह अयोध्या में हिंदू संप्रदायवादियों द्वारा तोड़ी गई मस्जिद का पुनर्निर्माण करेगी, मगर इस दिशा में कुछ नहीं किया। इस प्रकार राजनीति झूठे वादों और धोखाधड़ी का कारोबार हो गई। ऐसी स्थिति में जनता की उदासीनता बढ़ी।

अनेक शहरों में राजनेता ग्रामीण क्षेत्रों से रोजी-रोटी के लिए आने वाले मजदूरों को सरकारी जमीन पर अनाधिकृत तौर पर बसाकर अपना वोट बैंक बनाने की कोशिश करते पाए गए हैं। कई राजनेता मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे के निर्माण द्वारा सार्वजनिक भूमि पर सीधे या अपने गुर्गों के जरिए कब्जा जमाने की कोशिश करते हैं और अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर बिजली-पानी ले लेते हैं। इस प्रकार राजनेता अपने समर्थकों का एक गिरोह तैयार करते हैं, जो उन्हें राजनीतिक कार्यों विशेषकर चुनावों में मदद करते हैं। इनके जरिए बूथों पर कब्जा जमाने और विरोधियों को डराने-धमकाने में सहायता मिलती है। राजनेता अपने समर्थकों को मकान, दुकान, नौकरी, ठेके आदि दिलवाते हैं। कई बार उनके द्वारा किए जाने वाले अवैध कार्यों, जैसे गैरकानूनी शराब का धंधा, तस्करी, अपहरण आदि को वे संरक्षण प्रदान करते हैं तथा पुलिस एवं कर विभाग से बचाव करते हैं। इस प्रकार राजनेताओं और अपराधियों के बीच गठजोड़ हो जाता है और कहीं-न-कहीं उसमें पुलिस और प्रशासन तंत्र भी जुड़ जाते हैं।

देश के अनेक भागों में सार्वजनिक भूमि, वन संपदा और खनिज पदार्थों पर कब्जा जमाने वाले आपराधिक गिरोहों की सक्रियता बढ़ी है। इनको राजनीतिक संरक्षण मिलने के तथ्य आए दिन सामने आते हैं। झारखंड में इस परिघटना के सबूत आसानी से देखे जा सकते हैं। वहाँ आपराधिक गिरोहों ने अवैध खनन और खनिज चोरी में महारथ हासिल कर ली है। चोरी के धंधे से जुड़े आपराधिक तत्त्व सत्ता में भी घुसकर कब्जा जमा लेते हैं। ऐसा झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक में स्पष्ट रूप से देखा गया है। अभी हाल में कर्नाटक के सत्ताधारी दल से जुड़े रेड्डी बंधुओं के अवैध खनन की काफी चर्चा सार्वजनिक मंचों पर हुई है।

कुछ वर्षों पहले जैन-हवाला मामला सामने आया था। लेकिन यह इस तकनीकी आधार पर न्यायालय में आगे नहीं बढ़ सका कि जैन बंधुओं की निजी डायरी को प्रमाण नहीं माना जा सकता। जो भी हो, जिन तथ्यों को इस मामले ने उजागर किया, उन्होंने रेखांकित किया कि कारोबारियों, अफसरों, तस्करों, विदेशी विनिमय के धंधेबाजों और आम आपराधिक तत्त्वों का राजनेताओं के साथ गहरा जुड़ाव है। इन राजनेताओं में विविध वैचारिक रंगों वाले हैं। इनमें हिंदुत्ववादियों से लेकर जनतांत्रिक समाजवादी भी हैं। झारखंड मुक्ति मोर्चा के सांसदों के समर्थन के लिए रिश्वत देने की बात 1990 के दशक के पूर्वार्ध में सामने आई। इसी तरह लक्खू भाई पाठक धोखाधड़ी, सेंट किट्स जालसाजी, चारा घोटाला, आयुर्वेदिक दवाओं की हेराफेरी, अलकतरा घोटाला, यूरिया घोटाला, सरकारी आवासों के आवंटन में अनियमितता, पेट्रोलियम उत्पादन की बिक्री के अधिकार का मामला आदि ने दिखलाया कि देश के राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार का दीमक कितनी गहराई तक पहुँच गया है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त वोहरा कमिटी ने अपनी छोटी, परंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट में संगठित आपराधिक गिरोहों के फैलते जाल पर प्रकाश डाला और बतलाया कि वे कैसे लगातार ताकतवर होते जा रहे हैं। समिति ने मेनन बंधुओं और दाऊद इब्राहिम के शक्तिशाली गिरोहों का विशेष जिक्र किया। उसने यह भी बतलाया कि समिति के कतिपय सदस्य अपने विचार खुलकर रखने में हिचक रहे थे। उनको यह विश्वास नहीं था कि सरकार उनकी सिफारिशों पर कोई कार्रवाई करेगी।[1]

समिति के अनुसार, पूरे देश में आपराधिक गिरोह या क्राइम सिंडिकेट्स अपनी मनमानी चलाते हैं। वे देश के संविधान और कानून-कायदों की तनिक भी परवाह नहीं करते। भाड़े के हत्यारे इन गिरोहों के साथ जुड़े हैं। छोटे शहरों और ग्रामीण इलाकों में

भी दादा लोग हमेशा दिखते हैं। 'देश के विभिन्न भागों में आपराधिक गिरोहों, पुलिस, अफसरशाही और राजनेताओं के बीच गठबंधन स्पष्ट रूप से सामने आया है।'[2] न्याय की वर्तमान प्रणाली इस गठबंधन से निपटने में सक्षम नहीं है, क्योंकि उसको मूलतः व्यक्तिगत अपराधों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। आर्थिक अपराधों को दंडित करने में वह समर्थ नहीं है।[3]

इंटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक ने समिति को बतलाया कि देश के सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों में गिरावट के साथ ही अपराध की दुनिया, राजनीति और अफसरशाही के गठबंधन के विषय में नियमित और स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। जरूरत है कि इस गठबंधन की ठीक से पहचान की जाए और उसकी कार्य पद्धति को उजागर किया जाए।[4]

संगठित आपराधिक गिरोहों का संबंध विदेशी माफिया गिरोहों से होने की बात भी रेखांकित की गई। देश के अंदर विभिन्न प्रकार की अवैध सशस्त्र सेनाओं, नशीली दवाओं के कारोबारियों तथा आर्थिक लॉबियों के फैलाव और राजनेताओं, मीडियाकर्मियों और गैर-सरकारी क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों के साथ उनके बढ़ते संपर्क को चिंताजनक बतलाया गया। बिहार, हरियाणा और उत्तर प्रदेश-जैसे राज्यों में स्थानीय स्तरों पर इन गिरोहों को राजनेताओं का संरक्षण मिला हआ है। ये राजनेता विभिन्न वैचारिक रंगों के हैं। इन आपराधिक गिरोहों और अवैध सेनाओं के सरगनाओं ने कालक्रम में राजनीति में प्रवेश कर अपना दबदबा बनाया है। इनमें से कई विभिन्न स्तरों पर निर्वाचित होकर स्थानीय निकायों, विधानसभाओं और संसद में भी आ गए हैं।[5] परिणामस्वरूप, लोग उनसे खौफ खाने लगे हैं।[6]

वोहरा कमिटी की रिपोर्ट को आए लगभग डेढ़ दशक हो चुके हैं। यह रिपोर्ट बहुत ही संक्षिप्त थी और सरकार से उम्मीद थी कि वह गहरी छानबीन कराकर विस्तृत रिपोर्ट तैयार कराए, मगर ऐसा अब तक नहीं हो सका है। इधर राजनीति का तेजी से अपराधीकरण हुआ है और आपराधिक तत्त्वों का राजनीति में धड़ल्ले से प्रवेश जारी है। समय-समय पर निर्वाचन आयोग की रिपोर्टों में दागी जनप्रतिनिधियों के बारे में सूचनाएँ आती हैं, मगर लोग इतने निराशाग्रस्त हो गए हैं कि उन्हें मुक्ति की कोई संभावना नहीं नजर आ रही।

अन्यत्र न जाकर अविभाजित बिहार और उत्तर प्रदेश का दौरा करें तो मालूम होगा कि राजनीति का किस हद तक अपराधीकरण हो चुका है। झारखंड के एक भूतपूर्व मुख्यमंत्री भ्रष्टाचार के भयंकर अभियोगों में फँसने के बाद जेल में न्याय की प्रतीक्षा में हैं। उनके भ्रष्टाचार की गतिविधियों का दायरा बड़ा ही विस्तृत बतलाया जा रहा है। उसमें देश ही नहीं, बल्कि सुदूर अफ्रीकी देश भी शामिल हैं। उनके बाद मुख्यमंत्री बने राजनेता पर भ्रष्टाचा की कौन कहे, हत्या के मामले भी चल रहे हैं। बिहार के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री चारा घोटाले में अभियुक्त हैं। एक पर ज्ञात आय से अधिक संपदा रखने का भी अभियोग लग चुका है।

उत्तर प्रदेश में कई पूर्व मुख्यमंत्री भ्रष्टाचार के घेरे में हैं। उन पर लगे इल्जाम सीबीआई और न्यायालयों में विचाराधीन हैं। इससे उनमें पहले-जैसा दम नहीं दिखता।

भारत में राजनेताओं, कारोबारियों और आपराधिक तत्त्वों का गठबंधन कमजोर होने के बदले निरंतर बढ़ता जा रहा है। राजनेताओं और उनके दलों को चुनाव अभियान तथा दैनिक सांगठनिक कार्यों के लिए धन और बल की जरूरत होती है। धन मुख्य रूप से कारोबारियों तथा बल आपराधिक गिरोहों या बाहुबलियों से मिलता है। आम जनता के पास जाकर चंदा माँगना अब समय जाया करना माना जाता है। इस कार्य के लिए योग्य एवं समर्पित कार्यकर्ता होने चाहिए जो दल विशेष की नीतियों और कार्यक्रमों के विषय में लोगों को अवगत करा सकें तथा उनके प्रश्नों और शंकाओं का निराकरण कर सकें। कहना न होगा कि ऐसे कार्यकर्ताओं का सर्वथा अभाव है। इतना ही नहीं, अगर कोई आम जनता के साथ बैठकर बहस द्वारा उसको पार्टी की नीतियों का कायल बनाकर चंदा लेने में सफल हो जाए तो व्यय समय को देखते हुए प्राप्त राशि असंतोषजनक होगी, जबकि अगर उतना ही समय और श्रम कारोबारियों और बाहुबलियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने के लिए लगाया जाए तो प्राप्त चंदाराशि और समर्थन काफी अधिक होगा।

मुद्रास्फीति बढ़ने के साथ चुनाव तथा पार्टी चलाने के खर्च में भारी वृद्धि हुई है। पूरा वक्ती कार्यकर्ताओं की कमी दूर करने के लिए बेरोजगार युवकों को काम पर लगाया जाता है, जिन्हें दैनिक भत्ते और राह खर्च देने पड़ते हैं। इस प्रकार खर्च में होने वाली वृद्धि को पूरा करने के लिए कारोबारियों तथा आपराधिक तत्त्वों से पैसे उगाहने के अतिरिक्त सरकारी तंत्र का सहारा लेना पड़ता है। नियुक्तियों, स्थानांतरणों, सरकारी खरीद, ठेकों आदि के जरिए कमाई की जाती है। बिहार, उत्तर प्रदेश, असम आदि राज्यों में जहाँ कॉरपोरेट सेक्टर की उपस्थिति नाममात्र है, प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर निर्भरता कहीं अधिक है।

यह मान्यता ध्वस्त हो गई है कि लाइसेंस, परमिट, कोटा आदि के समाप्त होने पर भ्रष्टाचार में कमी आएगी। 1990 के दशक से चल रहे आर्थिक सुधार कार्यक्रमों ने अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका और हस्तक्षेप को काफी कम कर दिया है। कोटा, परमिट, लाइसेंस आदि खत्म हो गए हैं। सूचना के अधिकार से जुड़े कानून से प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया में खुलापन लाने का प्रयास हुआ है। इसके बावजूद भ्रष्टाचार बढ़ा है। यह निष्कर्ष 10 सितंबर 2008 को बंबई चैंबर ऑफ कॉमर्स में रघुराम जी. राजन ने अपने 11 पन्नों के भाषण में रेखांकित किया।

राजन अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के अर्थशास्त्री हैं और मशहूर शिकागो स्कूल ऑफ इकॉनमिक्स के प्रमुख सदस्य हैं। वे अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रधान अर्थशास्त्री रह चुके हैं। फिलहाल वे भारतीय प्रधानमंत्री के मानद आर्थिक सलाहकार हैं। स्पष्ट है कि उनकी बात को हल्के-फुल्के ढंग से नहीं लिया जा सकता।

उनके अनुसार जब नेहरू युग से चले आ रहे लाइसेंस-परमिट राज को खत्म कर नवउदारवादी आर्थिक विकास का रास्ता अपनाया गया, तब उसका फायदा मुख्य रूप से समुद्रतटीय राज्यों को मिला। अन्य राज्य रोजगार के अवसरों तथा सार्वजनिक सेवाओं से काफी कुछ वंचित रहे। नए निवेश का रुख तटीय राज्यों की ओर हो गया। अविभाजित मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार अधिक पिछड़ते गए। यही हाल उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि के आदिवासी बहुल इलाकों का हुआ। इन सब जगहों में कुशासन बढ़ा। शिक्षा और स्वास्थ्य की दशा बिगड़ी। राजन के शब्दों में,

सार्वजनिक वस्तुओं को मुहैया कराने वाली हमारी संपूर्ण प्रशासनिक प्रणाली का रुख गरीब-विरोधी है। कार्ड होने के बावजूद उन्हें राशन की दुकानों से वे सामान नहीं मिलते, जिनके वे हकदार हैं। शिक्षक विद्यालयों में नहीं आते, पुलिस धनवानों और समर्थवानों द्वारा गरीबों की संपत्ति हड़पने और सताने के मुकदमे नहीं दर्ज करती, सार्वजनिक अस्पतालों में कर्मचारी नहीं होते और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक उन्हें आसानी से ऋण नहीं देते... यह सूची लंबी है...गरीबों के पास सेवाएँ खरीदने या सरकारी कर्मचारियों को रिश्वत देने के लिए पैसे नहीं हैं।

मगर गरीबों के पास वोट का अधिकार है, जिसे लेने के क्रम में राजनेता उनकी कुछ सहायता करते हैं। सरकारी सेवाएँ उपलब्ध कराते और उन्हें अपने अधिकार पाने में मदद देते हैं। इस प्रकार स्थानीय राजनेता आमजनों को पूरी तरह भ्रष्ट व्यवस्था के चक्रव्यूह से बाहर निकलने में मदद देता है। आम तौर से वोटर को भी एहसास है कि इस व्यवस्था को बदलना आसान नहीं है और उसकी भलाई जुगाड़ बैठाने में सिद्धहस्त नेता के साथ रहने में ही है।

राजन प्रश्न करते हैं कि राजनेता के पास पैसे कहाँ से आते हैं, जिससे वह वोटरों को संरक्षण देता है। अब लाइसेंस-परमिट राज तो रहा नहीं कि वह बिचौलिया बनकर कमाई करे। राजन इसका उत्तर यों स्वयं देते हैं,

सोवियत संघ के अवसान के बाद रूस में 87 अरबपति पनपे, जिन्हें 'ओलिगार्क' या अल्पतंत्राधिकारी कहा गया। इन्होंने राज्य की संपदा हड़पी। भारत में 55 अरबपति हैं, जबकि हमारा सकल राष्ट्रीय उत्पाद 11 खरब डॉलर है और रूस का 13 खरब डॉलर। रूस की तुलना से हमारी प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है, क्योंकि हमारी जनसंख्या उसके मुकाबले चौगुनी है।

यह गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि हमारे अरबपति नई सूचना प्रौद्योगिकी से उपजे दूरद्रष्टा उद्यमी हैं। इनके उत्कर्ष के पीछे मुख्य कारण है : जमीन, प्राकृतिक संसाधन और सरकारी ठेके को हड़पना। राजनेता उन्हें इस लूट में सहायता देते हैं और बदले में धन पाते हैं और उससे वे गरीबों को संरक्षण देकर उनका समर्थन प्राप्त कर सत्ता में बने रहते हैं। साथ ही अपनी जमीन जायदाद भी बढ़ाते जाते हैं। वे मीडिया को अपने अनुकूल रखने के लिए पत्र-पत्रिकाओं, टीवी चैनलों और प्रभावशाली टिप्पणीकारों को अपनी और मिलाते जाते हैं। यह सब कुछ खुले और छद्‌म, दोनों तरीकों से किया जाता है।

यह उजागर हो चुका है कि गैरकानूनी होते हुए भी हमारे देश में लॉबिंग का कारोबार धड़ल्ले से जारी है। देशी-विदेशी उद्योगपति सरकार की नीतियों में परिवर्तन लाने के लिए हर प्रकार के बिचौलियों का इस्तेमाल कर रहे हैं। मुख्य रूप से खुदरा व्यापार, रक्षा, खनन, नागरिक उड्डयन, दूरसंचार और ठेकों में मनोनुकूल परिवर्तन लाने के लिए इन बिचौलियों की मदद ली जाती है। इनमें हर प्रकार के देशी-विदेशी व्यक्ति शामिल हैं। इनमें सभ्रांत जनों के बीच आम तौर से देखी जाने वाली महिलाएँ, मीडिया से जुड़े प्रभावशाली लोग, वाणिज्य-व्यापार-उद्योग से संबंधित व्यक्ति तथा राजनेता हैं। आउटलुक के अनुसार, इनमें नीरा राडिया, दीपक

तलवार, दिलीप चेरियन, अमर सिंह, सुहैल सेठ, टोनी जेसुदासन, राजीव चंद्रशेखर, अमित मित्र प्रमुख हैं।[7] एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, हिन्दुस्तान टाइम्स के स्तंभकार वीर सिंधवी और एनडीटीवी से जुड़ी बरखा दत्त के नाम स्पेक्ट्रम आवंटन के सिलसिले में आए हैं। वे कथित तौर पर केंद्रीय मंत्रिमंडल में व्यक्ति विशेष को शामिल कराने या बाहर रखने के लिए जोर लगाते पाए गए।[8] वैसे यह कोई नई बात नहीं है। इंदिरा गाँधी के शासनकाल में तुलमोहन राम और योगेंद्र झा-जैसे सांसदों पर इसी तरह के कार्य में लिप्त होने के कारण मुकदमे चले थे और सजा हुई थी। अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के दौरान तहलका पत्रिका ने रक्षा मंत्रालय से जुड़े मामलों में कथित रिश्वतखोरी को लेकर भाजपा के तत्कालीन अध्यक्ष एवं तत्कालीन रक्षा मंत्री की एक महिला मित्र के नाम उछाले थे।

आने वाले दिनों में राजनीतिक जगत में भ्रष्टाचार घटने की संभावना काफी कम है। इसका सबसे बड़े कारण स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ी राजनीतिक नेताओं की पीढ़ी की पूरी तरह से समाप्ति और राष्ट्रीय आंदोलन के मूल्यों में भारी ह्रास हैं। उधर, वामपंथी आंदोलन के स्वरूप में बदलात के कारण पुरानी आदर्शवादिता लगातार लुप्त होती जा रही है। सोवियत संघ के अवसान के बाद बहुत कम लोग भविष्य के प्रति आशावान रह गए हैं। यह माना जा रहा है कि अमरीकी मॉडल और मूल्यों का कोई विकल्प नहीं है और राजनीति का मुख्य उद्देश्य कॉरपोरेट जगत के हितों को साधना है। जहाँ तक दक्षिणपंथी दलों का प्रश्न है, वे तो आरंभ से ही बड़े व्यवसायियों के हितैषी रहे हैं, भले ही वोट के लिए गोहत्या, राम मंदिर आदि की बात भी करते पाए गए हैं। जहाँ तक क्षेत्रीय पार्टियों का प्रश्न है, उनका कोई दीर्घकालीन दृष्टिकोण और व्यापक परिप्रेक्ष्य नहीं रहा है। 'बहती गंगा का यथासंभव लाभ उठाओ', उनका मोटो है। वे परिवार, जाति या समुदाय आधारित हैं। उनके लिए दीर्घ जीवन और लंबे काल-क्षितिज की कल्पना करना सर्वथा निरर्थक है। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे आपराधिक गिरोहों और कॉरपोरेट जगत के प्रभावों से अपने को मुक्त रख पाएँगी।

अंतत: भ्रष्ट राजनेताओं को कोई डर नहीं है, क्योंकि तमाम जाँच आयोगों, मुकदमों आदि के बाद सजा पाने वालों की संख्या नगण्य है। रमेशचंद्र सिन्हा और अरविंद अडिगा ने अपने उपन्यासों में लालू-नीत राजद शासनकाल का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, उससे काफी कुछ समझा जा सकता है।

संदर्भ

1. भारत सरकार, *वोरा कमिटी रिपोर्ट,* पैरा 2.1 और 2.2
2. वही, पैरा 3.3
3. वही।
4. वही, पैरा 6.1.
5. वही, पैरा 6.2.
6. वही, पैरा 9.1, 10.1.
7. *आउटलुक,* 17 मई 2010.
8. देखें, www.bhadashmedia.com, *मेल टुडे,* रिपोर्ट।
9. रमेशचंद्र सिन्हा, *अभय कथा,* दिल्ली, 2008; अरविंद अडिगा, पूर्वोक्त।

बिहार में असहयोग आंदोलन और किसानः सन्दर्भ और मुद्दे

डॉ० नेहा कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

1919 के आरंभ तक अखिल-भारतीय राजनीति में गाँधीजी का हस्तक्षेप अपेक्षाकृत कम रहा। यह एनी बेसेंट को नजरबंद किए जाने के विरोध एवं अली बंधुओं की रिहाई की बारंबार मांग तक ही सीमित रहा (जिनके माध्यम से वे पहले ही लखनऊ के अब्दुल बारी जैसे मुसलमान धार्मिक नेताओं के साथ संपर्क स्थापित करते आ रहे थे)। उन्होंने सुधार-प्रस्तावों में भी कोई खास दिलचस्पी नहीं ली, जबकि अधिकांश दूसरे राजनीतिज्ञों का ध्यान इन्हीं में लगा हुआ था। लेकिन फरवरी 1919 में रौलट एक्ट के पारित होने के फलस्वरूप जो उत्तेजना फैली, उसके चलते उन्होंने पहली बार एक अखिल-भारतीय सत्याग्रह आंदोलन आरंभ किया।

6 अप्रैल 1919 को पटना में एक जबर्दस्त हड़ताल हुई। सभी दुकानें बंद हो गई। बिहार के अन्य शहारों, जैसे-छपरा, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, गया, झरिया आदि स्थानों में भी पूर्ण हड़ताल तथा शांतिपूर्ण प्रदर्शन हुए। सवारियों का चलना बंद था। गाँव के लोगों ने तो बैलगाड़ी चलना तथा हल जोतना भी उस दिन बन्द कर दिया था।[1]

दिल्ली, पंजाब, अमृतसर, कसूर, गुजरवाला आदि स्थानों में सरकार का दमन-चक्र तेजी से चलता रहा, जिसमें कितने लोग मौत के घाट उतारे गये। पंजाब के जनप्रिय नेता डॉ. किचलू तथा डॉ. सत्यपाल को गिरफ्तार कर पंजाब के बाहर भेज दिया गया। गाँधीजी को जब इस बात का पता चला, तब वे पंजाब की ओर चल पड़े, परन्तु उन्हें भी रास्ते में ही गिरफ्तार कर बम्बई भेज दिया गया।

इन घटनाओं के विरोध में 13 अप्रैल को अमृतसर के निवासी जब जालियाँवाला बाग में शांतिपूर्वक एक सभा कर रहे थे, उसी समय जनरल डायर ने 100 भारतीय तथा 50 गोरे सिपाहियों के साथ वहाँ पहुँचकर, लोगों को बिना चेतावनी दिए ही, गोली चलाने का आदेश दे दिया। 1650 चक्र गोलियाँ चलीं, जिसमें 379 आदमी मरे तथा 1137 घायल हुए। जब कारतूस समाप्त हो गयी, तभी गोली का चलना बन्द हुआ। सरकार ने इस समाचार के फैलने पर रोक लगा दी। इसकी जानकारी लोगों को तब हुई, जब महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस हत्याकाण्ड के विरोध में अपनी 'सर' की उपाधि वापस कर दी तथा शंकरन् नायर ने वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् से त्यागपत्र दे दिया।

पटना में 11 अप्रैल को महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी के विरूद्ध हसन इमाम की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें राजेन्द्र प्रसाद के पास भेजे गये महात्मा गाँधी के सत्याग्रह-प्रतिज्ञा-पत्र के महत्व को समझाया गया। प्रतिज्ञा-पत्र गाँधीजी ने वैसे सत्याग्रहियों के हस्ताक्षर के लिये भेजे थे, जो इस बात के लिये तैयार हों कि वे अहिंसा का पालन करते हुए सरकार के वैसे कानूनों की अवज्ञा करेंगे, जिन्हें तोड़ने की अनुमति एक मनोनीत समिति देगी तथा उसके लिए जो सजा होगी, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे। सबसे पहले इस पर हसन इमाम ने हस्ताक्षर किया[2] तथा उसके बाद मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, चन्द्रवंशी सहाय आदि अन्य नेतागण।

जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की खबर बिहार में कुछ महीने बाद मिली जिसकी भर्त्सना 17-18 अगस्त, 1919 ई. को बिहार प्रदेश कांग्रेस की बैठक में की गयी। इस संबंध में अनुग्रह नारायण सिंह ने इस तरह लिखा है, ''रॉलेट-एक्ट आन्दोलन को लेकर जो हत्याकाण्ड अमृतसर और लाहौर में हुआ तथा जालियाँबाला बाग में जिस निर्दयता के साथ लोग मारे गए, उनकी खबरें उड़ती-उड़ती पहुंचने लगी थीं, परन्तु उनको विशेष जानकारी नहीं हो पाई थी। कई महीनों बाद, जब विस्तृत समाचार लोगों को मिलने

लगे और अखबारों तथा व्यवस्थापिका सभा में इस विषय पर वाद-प्रतिवाद होने लगे, तब उसकी भयानकता का पता हमलोगों को मालूम होने लगा।''

इधर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने युद्धकाल में मुसलमानों को दिए गए अपने वायदों को भंग कर दिया। युद्ध के दौरान भारतीय मुसलमानों को वचन दिया गया था कि ब्रिटिश सरकार खिलाफत की रक्षा करेगी और मेसोपोटामिया, अरेबिया और फिलस्तीन खलीफा के ही अधीन रहेंगे। परन्तु युद्ध के पश्चात् सेवरिस संधि द्वारा तुर्क साम्राज्य का विघटन कर दिया गया। इस संबंध में 19 जनवरी, 1920 ई. को अली बन्धुओं तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल वायसराय से मिला और ब्रिटिश सरकार के वचन-भंग की तरफ उनका ध्यान आकृष्ट किया, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। फरवरी, 1920 ई. में मुहम्मद अली के नेतृत्व में दूसरा शिष्टमंडल इंगलैण्ड गया और तत्कालीन प्रधानमंत्री लॉयड जार्ज के सामने क्षोभ प्रदर्शित किया। परन्तु, वह भी व्यर्थ साबित हुआ।[3]

अप्रैल, 1920 ई. में पटना की एक सार्वजनिक सभा में मौलवी शौकत अली का भाषण हुआ, जहाँ असहयोग का एक कार्यक्रम भी तैयार किया गया। असहयोग के समर्थकों में ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरणीधर प्रसाद, मजहरूल हक, शाह मुहम्मद जुबैर, मौलवी मुहम्मद शफी तथा मौलाना नुरुल हसन थे। परन्तु हसन इमाम, नवाब सरफराज हुसेन खाँ तथा सच्चिदानन्द सिन्हा असहयोग के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी, बिहार प्रदेश की यह खूबी थी कि मतभेदों के बावजूद आपस में प्रेम-व्यवहार ज्यों-का-त्यों बना रहा।

अगस्त, 1920 ई. बिहार प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन की बैठक भागलपुर में हुई, जिसके सभापति राजेन्द्र प्रसाद थे। इस अवसर पर गाँधीजी ने तार द्वारा यह सूचना दी कि सम्मेलन असहयोग आन्दोलन का समर्थन करे, जिसका कारण पंजाब हत्याकाण्ड तथा खिलाफत था। परन्तु, ब्रजकिशोर प्रसाद के सुझाव पर असहयोग के कारणों में स्वराज्य भी जोड़ दिया गया। भागलपुर सम्मेलन के दो-तीन दिन पहले गुजरात प्रांतीय राजनीतिक सम्मेलन ने भी असहयोग का समर्थन किया था। इस तरह पूरे देश में केवल गुजरात और बिहार ही ऐसे दो प्रांत थे, जिन्होंने प्रांतीय सम्मेलन में कलकत्ता अधिवेशन के पूर्व ही असहयोग का समर्थन किया था।

सच्चिदानन्द सिन्हा तथा हसन इमाम ने 1918 ई. से ही पटना से सर्चलाईट निकालना प्रारंभ किया था। परन्तु, चूँकि यह अखबार असहयोग का समर्थक नहीं था, इसलिये 1920 ई. में सर्चलाईट प्रेस से ही राजेन्द्र प्रसाद ने एक हिन्दी साप्ताहिक *देश* का प्रकाशन प्रारंभ किया, जिसके सम्पादक वे स्वयं थे। देश असहयोग का समर्थक था। राजेन्द्र प्रसाद ने हसन इमाम तथा सच्चिदानन्द सिन्हा से यह समझौता किया था कि अपने सम्पादकीय लेखों में सर्चलाइट न तो असहयोग का समर्थन करेगा, न विरोध। फिर भी, अन्य लोगों का लेख, चाहे वह असहयोग के पक्ष में होगा या विपक्ष में प्रकाशित करेगा।[4]

इसी बीच बिहार के जनकधारी प्रसाद ने गाँधीजी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने असहयोग-सम्बन्धी कुछ चिंता व्यक्त की थी। जनकधारी प्रसाद की महत्वपूर्ण शंका यह थी कि अहिंसात्मक ढंग से चलाये गये असहयोग आंदोलन में हिंसा की कुछ संभावना रह जाती है, क्योंकि भावावेश में आकर कोई भी आदमी हिंसा पर उतारू हो सकता है। गाँधीजी ने जनकधारी प्रसाद के प्रश्नों के उत्तर 15 दिसम्बर, 1920 ई. के यंग इंडिया में प्रकाशित किया। अपनी सहमति व्यक्त करते हुए गाँधीजी ने जबाव दिया था कि निश्चय ही अहिंसात्मक आन्दोलन के हिंसात्मक होने की संभावना रहती है, परन्तु जिस तरह स्वाधीनता के दुरूपयोग के खतरे से डरकर स्वाधीनता आन्दोलन से पीछे नहीं हटा जा सकता, उसी प्रकार किसी अहिंसात्मक आन्दोलन के आगे चलकर हिंसात्मक होने की संभावना से डरकर उसे बन्द नहीं किया जा सकता।[5]

असहयोग आन्दोलन के दौरान बिहार में मजहरूल हक, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, धरणीधर प्रसाद तथा मुहम्मद शफी परिषद् की उम्मीदवारी से हट गए। अपनी उम्मीदवारी वापस लेते हुए मौलाना मजहरूल हक ने कहा कि एक मुसलमान के नाते वे उस सरकार से सहयोग नहीं कर सकते, जो इस्लाम को बरबाद करने पर तुली हो तथा एक हिन्दू के रूप में भी वे उस सरकार से सहयोग नहीं करेंगे, जिसके हाथ पंजाबी भाईयों के खून से रंगे हों।

छपरा के अवैतनिक दण्डाधिकारी महेन्द्र प्रसाद ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। नागपुर प्रस्ताव के अनुसार अनुग्रह नारायण सिंह तथा ब्रजनन्दन प्रसाद ने अपनी वकालत छोड़ दी। वकालत छोड़नेवाले अन्य लोगों में पटना से मो. खुरशेद हसनैन, गया से कृष्णप्रकाश सेन सिंह, मुकुटधारी प्रसाद, छपरा से जकरिया हुसेन हाशमी, मथुरा प्रसाद, विंधेश्वर प्रसाद, रामदयालु सिंह, रामवनमी

प्रसाद, दरभंगा से ब्रजकिशोर प्रसाद, धरणीधर, मोतिहारी से गोरख प्रसाद, भागलपुर से दीपनारायण सिंह, मुंगेर से श्रीकृष्ण सिंह, तेजेश्वर सिंह, नेमधारी सिंह, पुरुलिया से अतुलचन्द्र घोष, हजारीबाग से रामनारायण सिंह तथा पलामू से शेख साहब थे।

प्रसंगवश, यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है कि 1919 और 1923 के दरम्यान उत्तरी बिहार में प्लांटर्स के विरूद्ध बहुत से आंदोलन हुए। लेकिन उसके लिए कांग्रेस का समर्थन नहीं था। धनी किसानों और फैक्टरी के अमला रह चुके लोगों ने आंदोलन की अगुआई की। इस आंदोलन को मझोले और गरीब किसानों का भी समर्थन हासिल था जब कि वे गरीब किसान फैक्टरी अमला के जुल्म झेल चुके थे।[6]

यहाँ इस तथ्य को रेखांकित करना प्रासंगिक जान पड़ता है कि चंपारण सत्याग्रह और होमरूल मूवमेंट के बाद कांग्रेस ने अनेकों किसान सभाएं स्थापित की ताकि किसानों की परेशानियों पर ध्यान दिया जा सके। राजेन्द्र प्रसाद ने कथनानुसार संविधान में परिवर्तन कर दिए जाने से उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। उन्होंने जमींदार प्लांटर्स के बीच ताल-मेल बैठाने की कोशिशें की। स्थायी बंदोबस्त के विरूद्ध प्रस्तावित कानून का विरोध करने के लिए नवंबर 1919 में जमींदार व प्लांटर्स का एक सुंयक्त संगठन बनाया गया जिसके अध्यक्ष थे दरभंगा के महाराजा।

इस बात के मद्देयनजर राजेन्द्र प्रसाद ने यह गारंटी दी कि ''कांग्रेस का सबसे योग्य और सक्षम कार्यकर्त्ता स्थायी बंदोवस्त पर किसी भी तरह के हमले का विरोध करेगा।'' इसमें दो राय नहीं कि इस मामले पर कुछ लोग परस्पर विरोध-रुख अख्तियार किए हुए हैं। इस संघर्ष में जो लोग कुछ मदद कर सकते हैं वे जल्द से जल्द आगे आएं, नहीं तो बहुत देर हो जाएगी।[7]

प्रसाद ने इस बात का विस्तृत उल्लेख किया किया कि जो लोग पहले छोटे जमींदार थे, वे ही आज शिक्षित वर्ग हैं। इनकी उस बंदोबस्त को अस्त-व्यस्त करने के व्यर्थ के काम में काई 'खास दिलचस्पी' नहीं है, चूंकि जमींदारों और 'शिक्षित वर्ग' में कोई द्वन्द्व नहीं है। इसलिए यह गठजोड़ किसी 'परछाई' से लड़ रहा है। यदि उसे नहीं तोड़ा गया तो यह 'शिक्षित वर्ग' (यानि कि छोटे जमींदार) और असामियों को जमींदारों के खिलाफ भड़काएगा।

1919 में रौलट सत्याग्रह के दौरान गाँधी के प्रति जनता की सहानुभूति बहत 'सघन और व्यापक' थी। लोग अंग्रेजों को भारत से खदेड़ देने की बातें खुलकर कर रहे थे। यह भी कहा जा रहा था कि सरकारी कर्मचारियों और पुलिस से बात करके उन्हें अपने पक्ष में कर लिया गया था। मुंगेर और शाहाबाद के वकीलों ने भी बहुत अहम भूमिका अदा की। उन्होंने अपने मुवक्किलों के जरिए हर तरह की अफवाहें, फैलाई। बेतिया राज के गुदरी बाजार में दुकानें बंद रही, धनबाद में रह रहे कच्छ मारवाड़ी और पंजाबी के लोगों ने भी सत्याग्रह का समर्थन किया। झरिया, करकेन्द्र और कटरा में आम हड़तालें हुई। कुछ खदानों में लोगों ने कोयल लादने का काम अपने-आप बंद कर दिया। यह आंदोलन झरिया से हजारीबाग में इसरी तक फैल गया। कुछ ऐसी भी मनगढंत कहानियां सुनने में आ रही थीं जिससे यह लग रहा था कि मुसलमानों को सत्याग्रह में हिस्सा लेने के लिए जान-बूझकर ऐसा किया जा रहा था (जैसे कि यह अफवाह फैली हुई थी कि अंग्रेजों की मंशा धार्मिक शहरों में सूअर का मांस परोसने वाले होटल खोलने की है) यद्यपि छोटे मौलवी उत्तर प्रदेश के मौलानाओं से संपर्क में थे। लेकिन फुलवारी के मौलाना और वेहाबी मौलाना फिरंगी महल उलेमाओं के विरूद्ध थे। वे नहीं चाहते थे कि मुसलमान सत्याग्रह में हिस्सा लें।

1920 के शुरू में दरभंगा के महाराजा ने कुछ रियायतें दी। लेकिन ये रियायतें केवल संपन्न असामियों के लिए ही थीं। सारण में एक कब्जेदार संपन्न असामी के पुत्र विद्यानंद 1917 के गाँधी के सत्याग्रह से बहुत प्रभावित हुए (हालांकि गाँधी ने उसके साथ किसी संबंध से इंकार किया)। 1919 और 1920 में दरभंगा राज में एक जबरदस्त आंदोलन में वे संपन्न असामियों के परम्परागत अधिकारों की ही बात करते थे। उन्हें मध्य और निचली जातियों के मझौले और गरीब किसानों का भरपुर समर्थन मिला। क्योंकि ये लोग 'अमला' दमन से बुरी तरह पीड़ित थे। शुरू-शुरू में कांग्रेस ने भी विद्यानंद को समर्थन दिया, लेकिन बाद में समर्थन देना बंद कर दिया। इसकी वजह यह बताई गई कि वह ग्रामीणों में एकता बनाए रखना चाहती है। अप्रैल 1920 में विद्यानंद ने एक मुहिम चलाई कि दरभंगा राज के असामियों की समस्याएं सुलझाने के लिए एक समिति बनाई जाए। लेकिन राजेन्द्र प्रसाद ने इसका विरोध किया क्योंकि उनके अनुसार वह विश्वास करने लायक नहीं था। हालांकि विद्यानंद द्वारा जमा किए गए तथ्यों का दरभंगा जिला कांग्रेस कमेटी ने मुआयना किया (विद्यानंद ने 100 गवाहों से 13 घंटे बात की थी) लेकिन उस रिपोर्ट को दरभंगा जिला कांग्रेस की मीटिंग में पढ़ा भी नहीं गया।[8]

ऐसा लगता है कि कांग्रेस की किसान सभाएं केवल चम्पारण में ही केन्द्रित रहीं। इन सभाओं की स्थापना गोरख प्रसाद की पहल पर हुई। वे ही मोतिहारी, केसरिया और मेहसी की सभाओं के अध्यक्ष थे। इनमें से पहली दो सभाओं में 50-50 सदस्य थे और तीसरी में 100 सदस्य। बेतिया कस्बा और मचेरगांव की सभाओं में क्रमशः दस और सदस्य ही थे। चम्पारण में अपने अनुभव के आधार पर गोरख प्रसाद ने टिनैंसी एक्ट में कुछ संशोधन करने के सुझाव दिए जो उनके कथनानुसार 'अत्यंत' आवश्यक थे। ये संशोधन कब्जेदार असामियों से संबंधित थे (मसलन, नामांतरण शुल्क निर्धारित करना, कब्जे का हस्तांरण, लकड़ी का अधिकार आदि)। उन्होंने यह भी कहा कि उनके सुझावों को जमींदारी की मुखालफत न समझा जाए क्योंकि अब समय एक जुट होने का आ गया है।

बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में राजेन्द्र प्रसाद ने कृषि के सवाल पर कांग्रेस के रूख को जोरदार शब्दों में दुहराया: ''हर एक कांग्रेसी का यह कर्त्तव्य है कि जरूरत की घड़ी में वह आततायी भू-स्वामियों के खिलाफ रैयतों की मदद करे। जहां रैयत आक्रामक हो गए हो वहाँ जमींदारों को समर्थन दें। हमारी विलक्षण सामाजिक संरचना के विविध तत्वों को 'उचित' स्थान पर रख कर ही समाज में सद्भावना बनाए रखी जा सकती है। हमारा संगठन केवल रैयतों के लिए है।''[9]

यह बात साफतौर पर कही गई कि रैयत कांग्रेस की सभाओं में आते रहें ताकि उनकी परेशानियों का पता लगता रहे। लेकिन वे तुरंत किसी हल की उम्मीद न करें। खैर, किसान प्रतिनिधियों के वोट की बदौलत ही बिहार प्रादेशिक सम्मेलन में 'असहयोग' का प्रस्ताव पारित हो सका।

निष्कर्ष

जहाँ तक असहयोग आन्दोलन और किसानों के मुद्दे का सवाल है तो बिहार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस आंदोलन के अलग-अलग रूप रहे। नवम्बर 1921 में चम्पारण में मोतिहारी के निकट चराई के अधिकार को लेकर हुए विवाद के फलस्वरूप चौतरवा नील कारखाने को आग लगा दी गई, जबकि मुजफ्फरपुर का सीतामढ़ी उपसंभाग तूफान के केन्द्र के रूप में विख्यात हुआ और वहां जनवरी 1922 में करों की नाअदायगी के संभावित आंदोलन को रोकने के लिए दंड देने के आदेश से लैस पुलिस बल को भेजा गया। किन्तु वैसा जमींदार-विरोधी किसान आंदोलन फिर नहीं हुआ जिसने 1920 में दरभंगा रियासत की नाक में दम कर दिया था और जिससे बिहार कांग्रेस के नेताओं ने अपने-आपको अलग कर लिया था।

संदर्भ सूची

1. ज्यूडिथ ब्राउन, *गाँधीज राईज टू पॉवर : इंडियन पॉलिटिक्स, 1915-1922*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1972, पृ. 125.
2. उपरोक्त.
3. और ब्यौरें के लिए देखें वांधोपाध्याय, शेखर *पलासी से विभाजन तक*, ओरियंट लॉग्मैन, हैदराबाद, 2007, पृ. 310-311.
4. उपरोक्त.
5. उपरोक्त.
6. रवींदर कुमार, *एस्से इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983, पृ. 26-31
7. उपरोक्त.
8. सुमित सरकार, *मार्डन इंडिया*, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1983, पृ. 174 में उद्धृत.
9. ब्राउन (1972), पूर्वोक्त, पृ. 46.

गुप्तकालीन विदेशी व्यापारः एक विश्लेषण

डॉ० रेखा चौधरी

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग, नीतीश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गुप्तकाल में विदेशी व्यापार काफी अच्छा था। इस काल में स्थल एवं जल दोनों प्रकार के मार्गो से भारत का अन्य देशों से व्यापार उन्नति पर था। समुद्री व्यापार में अपेक्षाकृत अधिक प्रगति हुई थी। पश्चिमी भारत में देबल, सिंध, सूरत, भृगुकच्छ, शूर्पारक और कल्याण आंतरिक एवं विदेशी व्यापार के प्रमुख बंदरगाह थे। कासमास ने मलाबार तट के निकट मंगरौल (मंगलूर), सलोपतन, नलोपतन एवं पोंदोपतन के अतिरिक्त सिबोर (चौल) का भी उल्लेख किया है।[1] इनमें पूर्ति का अभिज्ञान निश्चित रूप से नहीं किया जा सका है। सलोपतन, नलोपतन और पोंदोपतन को मंगलूर एवं कालीकट के मध्यवर्ती तटीय भू-भागों में स्थित माना गया है।[2] पूर्ति भी संभवतः इसी क्षेत्र में स्थित रहा होगा। उपर्युक्त के अतिरिक्त कालीकट भी मलाबार तट का महत्वपूर्ण बंदरगाह था। धर्मादित्य के राज्यकाल के 531 तथा 567 ई. के ताम्रपत्राभिलेखों में पोताश्रयों का उल्लेख आया है।[3] वराहमिहिर ने समुद्रीजहाज (अर्णवयान)[4] एवं दक्षिण भारत के कुशल नाविकों (वारिचर)[5] का उल्लेख करने के साथ-साथ ऐसे बंदरगाहों का भी विवरण दिया है जहां बहुमूल्य व्यापारिक सामग्री से लदे जहाजों की भीड़ लगी रहती थी।[6] किंतु इन साक्ष्यों में किसी बंदरगाह का नामोल्लेख नहीं किया गया है। कालिदास ने बंगाल के नाविकों को जलीय यात्रा में सिद्धहस्त बताया है।[7]

अमरकोष में (नौ)[8] नाव चालक (नाविक)[9] पोतवाह[10] एवं पोतवणिज[11] वर्णित हैं। धर्मादित्य के फरीदपुर अभिलेख में नौ दंड एवं नावाता के उल्लेख है।[12] बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, आवश्यकचूर्णि तथा ज्ञाताधर्म कथा में समुद्री व्यापार के विस्तृत विवरण मिलते हैं[13] और नायाधम्मकहाओ में समुद्री व्यापार करने वाले चंपा नगर के वणिजों के उल्लेख हैं। चंपा के कुछ व्यापारियों द्वारा तेरह बार लवण समुद्र पार किए जाने के विवरण हैं।[14]

फाहियान ने समुद्री यात्राओं में आने वाली कठिनाईयों का विस्तृत विवरण किया है। उसने लिखा है कि श्रीलंका से चीन जाने के लिए वह एक व्यापारिक जहाज पर सवार हुआ, जिसमें 200 अन्य यात्री थे। सुरक्षा की दृष्टि से इस जहाज में एक छोटी नाव बांधी गई थी। यात्रा के दौरान जब जहाज में पानी भरने लगा तो यात्री जहाज छोड़कर नाव में बैठने लगे। जो यात्री पहले नाव में पहुंच गए, उन्हें यह सोचकर उस रस्सी को काट दिया कि अधिक यात्रियों के बोझ से वह डूब जाएगी। जहाज का भार कम करने के लिए व्यापारियों ने अपना समान समुद्र में फेंक दिया और इस प्रकार जहाज डूबने से बच गया। कुछ समय बीत जाने के बाद समुद्र में एक तूफान उठा जो कई दिन तक शांत नहीं हुआ। इन कठिनाईओं का सामना करते हुए फाहियान का जहाज यात्रा प्रारंभ होने के तेरहवें दिन एक द्वीप में पहुंचा। वहां जहाज की मरम्मत कराई गई और तदुपरांत पुनः यात्रा प्रारंभ की गई। फाहियान ने यह भी लिखा है कि समुद्री यात्रा करते समय नक्षों को देखकर दिशा की जानकारी प्राप्त की जाती थी। किंतु अंधेरे में दिशाओं का सही ज्ञान नहीं हो पाता था। समुद्र में कभी-कभी जहाज चट्टानों से भी टकरा जाते थे।[15] इस प्रकार उन दिनों समुद्री यात्रा में अनेक खतरे थे और जहाज प्रायः भग्न हो जाते थे। अभिज्ञान शाकुंतलम नाटक से हमें पता चलता है कि हस्तिनापुर के एक व्यापारी की मृत्यु पोतभंग के कारण हुई थी।[16]

गुप्त काल में पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रतटीय बंदरगाहों से भारत का श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलयप्रायद्वीप, ईरान, चीन, मिस्र एवं अलेग्जेंड्रिया आदि देशों से व्यापार होता था। समुद्रगुप्त ने श्रीलंका तथा कुछ अन्य द्वीपो अथवा देशों से मित्रतापूर्वण संबंध बनाए थे और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के शकों एवं कुषाणों ने उसकी अधिसत्ता स्वतः स्वीकार की थी। इन संबंधों से भारत के श्रीलंका, दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों से व्यापार को बढ़ावा मिला होगा। समुद्रगुप्त के पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी भारत के शकों पर विजय

प्राप्त कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया था। परिणामस्वरूप उसका पश्चिमी समुद्र तट के बंदरगाहों एवं व्यापारिक केंद्रों पर नियंत्रण हो गया और भारत के पश्चिमी देशों से होने वाले व्यापार में गुप्त साम्राज्य की भागीदार में पर्याप्त बढ़ोत्तरी हुई थी।

गुप्तकाल में निम्नलिखित देशों से भारत के घनिष्ठ व्यापारिक संबंध थे–

श्रीलंका, भारत, चीन और पश्चिमी देशों से होने वाले सामुद्रिक व्यापार में श्रीलंका की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण थी। भारत से व्यापारिक जहाज ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से श्रीलंका जाते थे और श्रीलंका से व्यापारिक वस्तुओं से लदे पोत मलाबार, कल्याण तथा सिंध के बंदरगाहों में आते थे।[17] दक्षिण भारत से रेशम, चंदन की लकड़ी, अगरू, लवंग आदि श्रीलंका को निर्यात किए जाते थे।[18] भारत के कुछ क्षेत्रों से श्रीलंका को हाथी तथा घोड़े भेजे जाने का उल्लेख है। हाथियों के लिए असम, कलिंग एवं अंग राज्य प्रसिद्ध थे। किंतु सिंधु घाटी तथा कंबोज के अतिरिक्त भारत के किसी भी अन्य क्षेत्रों में अच्छी नस्ल के अश्व नहीं पैदा होते थे। इसलिए भारत स्वयं दूसरे देशों से घोड़ों का आयात करता था। इन्हीं आयातित अश्वों में से कुछ श्रीलंका को कदाचित निर्यात कर दिए जाते थे। श्रीलंका के शासक इन्हें मंहगे दामों में खरीद लेते थे और भारतीय व्यापारी घोड़ों के व्यापार में बिचौलिए के रूप में लाभ कमाते थे। इसी प्रकार श्रीलंका के व्यापारी भी भारतीय वस्तुओं का अन्य देशों को आयात करते थे। श्रीलंका से भारत में उत्कृष्ट मोती, पुखराज तथा अन्य रत्नों का आयात किया जाता था।[19]

महाभारत के दिग्विजय पर्व में भीम के विषय में उल्लिखित है कि वह ताम्रलिप्ति से सागरद्वीप गया था और वहां के राजा को पराजित कर उससे चंदन की लकड़ी, कीमती पत्थर तथा सोना, चांदी आदि प्राप्त किए थे।[20] महाभारत में अन्यत्र मछलीपट्टिनम एवं कोरकै के बंदरगाहों से भी सागरद्वीप जाने का विवरण है।[21] मोतीचंद्र सागरद्वीप को सुमात्रा से समीकृत किया गया है।[22] बृहत्कथाश्लोक संग्रह (अध्याय 18) से हमें पता चलता है कि सानुदेव ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से सुवर्णद्वीप गया था वहां पर्याप्त धन कमाने के पश्चात वह स्वदेश लौट आया था। सैलोदा नदी पार करने के बाद वह किरातों के देश में पहुंचा। उसने किरातों से अपनी वस्तुओं के बदले में केसर, रंगीन वस्त्र, चावल तथा सीसा प्राप्त किए। इन वस्तुओं को लेकर वह सुवर्णभूमि (बर्मा) गया था।[23]

चीन के साथ भारत के व्यापार में पर्याप्त बढ़ोत्तरी हुई थी। गुप्त काल में अनेक भारतीय यात्री, धर्मप्रचारक जल और थल दोनों ही मार्गों से चीन गए थे तथा चीन के यात्री भारत आए थे। इस काल में दक्षिण पूर्वी ऐशियाई देशों से होने वाले सामुद्रिक व्यापार में चीन की भागीदारी बढ़ गई थी। चीनी जहाज इंडोनेशिया होकर श्रीलंका तथा भारत के समुद्री तट से होते हुए फारस, अरेबिया तथा इंडोनेशिया तक जाने लगे थे। माल देने का कार्य अधिकांशत: फारस के जहाज करते थे और वे इसे बिजेंटियन साम्राज्य तक पहुंचाते थे। शुंग-चू (Shung-chu) के अनुसार भारत गैंडे के सींग से निर्मित वस्तुएं, सांप की मणियां, रत्न, वस्त्र एवं कश्मीर का केसर चीन को निर्यात करता था।[24] वसुदेवाहिंडी में वर्णित है कि चंपा का व्यापारी चारूदत्त आभूषण, लाख, लाल वस्त्र एवं अन्य वस्तुएं लेकर हूण एवं खास राज्यों में पहुंचा और वहां से वह चीन गया था।[25] चारूदत्त की कथा बुद्धस्वामी के बृहत्कथा श्लोक संग्रह में भी वर्णित है। इस ग्रंथ के अनुसार चारूदत्त (सानुदत्त), प्रियंगुपट्टन बंगाल का कोई बंदरगाह से चीन गया था और चीन से मलेशिया गया।[26]

महानिद्देस के विवरणानुसार भारतीय व्यापारी ताम्रलिप्ति तथा पोलोरा (उड़ीसा में गोपालपुर) के बंदरगाहों से पहले तक्कोल जाते थे और तक्कोल से जावा, चंपा एवं चीन जाते थे। कश्मीर के गुणवर्मा (367-443 ई.) नामक एक राजकुमार के विषय में उल्लिखित है कि वह पहले श्रीलंका गया और श्रीलंका से जावा होते हुए अंतत: चीन के कैंटन नगर में पहुंचा था।

चीन से भारत आने वाली वस्तुओं में रेशम सर्वप्रमुख था। कासमास तथा ह्वेनसांग ने चीन को रेशम का देश कहा है। गुप्तकालीन कई साक्ष्यों में चीन के रेशम के उल्लेख प्राप्य है। इस युग के संपन्न नगरीय समाज में रेशम की मांग में वृद्धि होना स्वाभाविक था। किंतु कुमारगुप्त तथा बंधुवर्मा के राज्यकाल की मंदोर प्रशस्ति का साक्ष्य कुछ सीमा तक उक्त अनुमान के विपरीत स्थिति का संकेत देता है। इस प्रशस्ति के अनुसार कुमारगुप्त प्रथम (415-455 ई.) के शासनकाल में लाट में रहने वाले रेशम के बुनकरों की श्रेणी के सदस्यों को अपना देश छोड़कर मंदसोर नगर में जाकर बसना पड़ा था जहां उनमें से अनेक बुनकर नितांत भिन्न व्यवसायों में लग गए थे। क्या इससे यह अनुमान करना चाहिए कि भारत के कुछ प्रदेशों में स्वदेश में निर्मित रेशम की मांग घटने लगी थी?

भारत का फारस के साथ व्यापार भी उन्नति पर था। उत्तराध्ययनटीका से हमें ज्ञात होता है कि उज्जयिनी का अयल नामक एक वणिज व्यापारिक भांड के साथ पारसकूल (फारस) गया था जहां उसने पर्याप्त धन-संपत्ति अर्जित की थी। भारत से फारस को मुख्यत: काली मिर्च तथा अन्य गर्म मसालों का निर्यात किया जाता था। फारस के व्यापारी भारत से रेशम भी खरीदते थे और इसे अन्य देशों को निर्यात करते थे।

फारस में उत्कृष्ट मोती उत्पादन का उद्योग बहुत विकसित था और भारत में इस देश के मोतियों की काफी मांग थी। फारस के मोती श्रीलंका के माध्यम से भारत आते थे। भारत में फारस से दासी शंख, चंदन, अगरू, मंजीष्ठ, सोना, चाँदी एवं मूंगे आदि का भी आयात किए जाने के उल्लेख है। इस सूची में चंदन तथा अगरु को कदाचित भूल से शामिल कर लिया गया है क्योंकि ये वस्तुएं तो भारत स्वयं अन्य देशों को निर्यात करता था और फारस इनके उत्पादन के लिए कभी प्रसिद्ध नहीं रहा।

अरब, फारस तथा यवन देशों (पश्चिमी देशों) के घोड़े प्रसिद्ध थे। इसलिए भारतीय साक्ष्यों में पारसी कों और यवनों को 'अश्वसाधन' कहा गया है। बुद्धस्वामी ने फारस तथा अन्य देशों से भारत में आयात किए जाने वाले घोड़ों का उल्लेख किया है। भारतीय साक्ष्यों में अरब और फारस दोनों ही देशों के घोड़ों के लिए वनायुज शब्द प्रयुक्त हुआ है। भारत बड़े पैमाने पर इन देशों से घोड़ों का आयात करता था। वराहमिहिर ने घोड़ों को रत्नों की कोटि में रखा है तथा उनकी प्रजातियों और मूल्यों आदि पर भी प्रकाश डाला है। वसुदेवहिंडी के विवरणानुसार सानुदास अपने सार्थ के साथ टंकण देश गया था जहां उसने अपनी वस्तुओं की बकरे-बकरियों तथा भोजन-सामग्री से अदल-बदल की थी।

कासमास के विवरण से हमें पता चलता है कि इस काल में भारत का यूथेपिया के साथ भी व्यापार होता था। यूथेपिया के हाथी दाँत भारत के हाथियों के दाँतों से आकार में बड़े तथा अधिक वजनदार होने के कारण भारत में आयात किए जाते थे। जैन साक्ष्यों में बर्बर देश (अलेग्जेंड्रिया) से भारत में दासियों के आयात किए जाने का उल्लेख आया है।

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (अध्याय 18) के अनुसार चंपा के व्यापारी सानुदत्त ने देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा संपन्न करने के उपरांत एक शुभ मुहूर्त में ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से अलेग्जेड़िया (बर्बर देश) के लिए प्रस्थान किया था। किंतु मार्ग में जब उसका जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया तो उसने पोतभंग का ध्वज लगा दिया। ध्वज देखकर एक नाविक अपना जहाज लेकर उसकी सहायता के लिए गया। दोनों के बीच यह तय हुआ कि सानुदत्त की सहायता के बदले में नाविक उसके भांड के विक्रय-मूल्य का आधा लेगा। दुर्भाग्यवश दूसरा जहाज भी मार्ग में भग्न हो गया और सानुदत्त किसी प्रकार समुद्र के किनारे पहुंच गया जहां की भाषा से वह अनभिज्ञ था। दुभाषिए की सहायता से उसे पता चला कि यह पांड्य राज्य में था। मोतीचंद के अनुसार महाभारत (2/27/49) में यवनपुर अलेग्जेंड्रिया के लिए आया है। परंतु यह अभिज्ञान संदेह से परे नहीं है।

गुप्तकाल में भारत के रोमन साम्राज्य से व्यापारिक संबंध समाप्त नहीं हुए थे। 530 तथा 552 ई. में भारतीय दूतमंडल रोम के सम्राट जस्टीनियन के यहां भेजे गए थे और भारत के दक्षिण पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्रों से चौथी तथा पांचवीं सदियों के रोमन सम्राटों के सिक्के भी पाए गए हैं। परंतु इन सिक्कों की संख्या पूर्ववर्ती काल में मिले रोमन सिक्कों से बहुत कम है। वस्तुत: तीसरी सदी के बाद भारत के रोमन साम्राज्य से होने वाले व्यापार में पर्याप्त गिरावट आ गई थी।

दूसरी सदी तक तो भारत में सोना अधिकांशत: रोमन साम्राज्य से आता रहा। किंतु रोमन साम्राज्य के पतन के उपरांत भारत का रोमन के साथ व्यापार निरंतर कम होता गया। इसलिए भारत ने श्रीलंका तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों से व्यापारिक संबंध बढ़ाए। इन देशों से भारत के मित्रतापूर्ण संबंध समुद्रगुप्त के शासनकाल में ही स्थापित हो गए थे। गुप्त युग में भारत में सोने का आयात मुख्यत: सुवर्णभूमि तथा सुवर्णद्वीप से किया जाता था।

कासमास ने भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर भी प्रकाश डाला है। उसके अनुसार सिंध से अंडी के तेल, कस्तूरी एवं जटामांसी का कल्याण के बंदरगाह से कपड़े और शीशम के लट्ठों का और सिंध, सूरत, चौल तथा मालाबार तट के पांच बंदरगाहों से पश्चिमी देशों को काली मिर्च का निर्यात किया जाता था। सोने के जाली के काम वाले सूती, रेशमी एवं ऊनी वस्त्रों को भी भारत दूसरे देशों को निर्यात करता था।

अमरकोष में तुला तुलामान एवं तुलाकोटि के उल्लेख मिलते हैं। वराहमिहिर ने एक व्यस्त दूकानदार का विवरण प्रस्तुत किया है। उसकी दुकान मुख्य बाजार में थी। उसके एक हाथ में तराजू तथा दूसरे हाथ में तोली जाने वाली वस्तु रहती थी वह वस्तुओं की नाप-तौल एवं मूल्यादि का अनुमान करने में माहिर था।[155]

याज्ञवल्क्य के प्रावधनों से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि राजा द्वारा कम से कम कुछ वस्तुओं के मानक मूल्य निर्धरित किए जाते थे और वह आवश्यकतानुसार उनके मूल्य घटा-बढ़ा सकता था। याज्ञवल्क्य ने व्यापारियों को निर्देश दिया कि वे राजा द्वारा निश्चित की गई कीमतों पर ही वस्तुओं का क्रय-विक्रय करें और व्यापार में आए खर्चे के अतिरिक्त स्वदेशी एवं विदेशी वस्तुओं को क्रमश: 5 तथा 10 प्रतिशत लाभ पर बेचें। राजा द्वारा किसी वस्तु के मूल्य में कमी या वृद्धि किए जाने की जानकारी रखने के बावजूद (माल तैयार करने वाले) शिल्पियों आदि को मनमानी कीमतें देकर कष्ट पहुंचाने वाले व्यापारियों के लिए उत्तम साहस के दंड का प्रावधान किया गया था।

अधिकांश व्यापारिक वस्तुओं पर कर अथवा शुल्क लिया जाता था। तेल के व्यापारियों तथा नील के निर्माताओं को एक मुश्त तीन पण कर के रूप में देने पड़ते थे। नावों से ले जाने वाली वस्तुओं पर 12 पण, भैसों तथा ऊँटों पर ढ़ोए जाने वाले माल पर 1/4 पण, सामान के हर बंडल पर 1/4 पण और खाद्य-सामग्री पर दो विशोपक सिक्के लिए जाते थे। जीरा, धनिया तथा सरसों के गट्ठरों से दो अंजुलि निकाल लिया जाता था। सीधु, सुरा आदि के विक्रेताओं द्वारा इनके विक्रय मूल्य का चतुर्थांश देय था। विदेश में एक वर्ष तक रहने वाले व्यापारियों से स्वदेश लौटने पर कोई कर नहीं लिया जाता था। किंतु जो व्यापारी प्राय: परदेश जाया करते थे, उन्हें कर देने पड़ते थे।

हितोपदेश के एक संदर्भ में कहा गया है कि सरकारी शुल्क के भय से कोई व्यापारी अपना व्यापार नहीं छोड़ देता। परंतु कर अथवा शुल्क से बचना कुछ व्यापारियों का स्वभाव बन गया था। अनाज का व्यापारी यदि कर बचाने के प्रयास में पकड़ा जाता था तो उसे निर्धरित कर से आठ गुना दंड स्वरूप देना पड़ता था और नकली वस्तुएं बनाने बेचने वाले पर संबंधित वस्तु के मूल्य का 1/4 गुना जुर्माना किए जाने का नियम था।

व्यापार में धोखाधड़ी एक सामान्य बात थी। शूद्रक के अनुसार ऐसा व्यापारी जो धोखेबाज न हो और स्वर्णकार जो (सोने की) चोरी न करता हो, मिलना बहुत दुर्लभ है। व्यापारी लोग अच्छी वस्तुओं के साथ खराब वस्तुओं के और नई वस्तुओं के साथ पुरानी वस्तुओं को मिलाकर बेच देते थे। याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति ने ऐसे व्यापारियों से बिक्रीत वस्तु के मूल्य का दो गुना क्रेता द्वारा तथा दो गुना राजा द्वारा दंड के रूप में वसूल किए जाने का प्रावधन किया था। यही दंड नकली सोना या जवाहिरात बेचने वालों के लिए था। याज्ञवल्क्य के अनुसार घटिया मिट्‌टी, चमड़ा, मणि, सूत, लोहा और लकड़ी से बनी वस्तुओं को अच्छा बताकर बेचने वालों के लिए बिक्रीत वस्तु के मूल्य का आठ गुना दंड के रूप में वसूल किया जाना चाहिए। कौटिल्य ने भी इस प्रकार की धोखाधड़ी करने वाले व्यापारियों के लिए कठोर दंड दिए जाने का प्रावधान किया गया था।

नारद के अनुसार विक्रय के पश्चात बिक्रेता यदि किसी कारणवश बिक्रीत वस्तु क्रेता को तुरंत न देकर अपने पास रोक ले और उसी बीच यदि उस वस्तु का मूल्य बढ़ जाए, तो बिक्रेता क्रेता से बढ़ा मूल्य नहीं ले सकता था। यदि वस्तु क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाती थी तो क्षतिपूर्ति करना बिक्रेता का ही दायित्व था। परंतु यदि क्रेता स्वेच्छा से क्रीत वस्तु बिक्रेता के पास छोड़ जाता था और बाद में उसका मूल्य बढ़ जाता था तो बिक्रेता उससे बढ़ा मूल्य लेने का अधिकारी था। नारद ने इस बात पर भी बल दिया कि क्रेता को खरीदने से पूर्व वस्तु की भलीभांति जांच कर लेनी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो दूसरे अनुभवी व्यक्ति की भी राय ले लेनी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. बृहत्सं, 86/39
2. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य, मोती चंद्र, सार्थवाह
3. काममास, 11, पृ. 366-67
4. शास्त्री, फोरेन नोटिसिज, पृ. 89
5. से. ई. 1, पृ. 366-67, 369
6. बृहत्स, 4/52
7. वही 14/14

8. वही, 47/2
9. रघु, 4/36
10. अमर 1/10/10
11. वही, 1/10/12
12. वही
13. वही, 1/10/13
14. से.इ. 1. पृ. 367-68
15. मजुमदार, सवर्णद्वीप, भाग 1, पृ. 37 तथा आगे,
    सार्थवाह, पृ. 132, 148-49, 169 तथा आगे
16. जैन, पृ. 149
17. लेगे, पृ. 111-13
18. अंक 6, पृ. 400
19. बृहत्कथा श्लोक संग्रह, 18/314 तथा आगे
20. क्रिश्चियन टोपोग्राफी, पृ. 36373, हरिपाद चक्रबर्ती, पूर्वोक्त, पृ. 241-42
21. चक्रबर्ती, ट्रेड ऐंड कामर्स, पृ. 281
22. महाभारत, 2/27/25-27
23. वही, 2/27/45
24. मोतीचन्द्र, पूर्वोद्धत, पृ. 130
25. वही, पृ. 136-37
26. मैती, पूर्वोद्धत, पृ. 173

सविनय अवज्ञा आंदोलन और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

डॉ० विवेक कुमार

एकेडेमिक काउंसलर इतिहास विभाग इग्नू (IGNOU)
(पी.एस.सी.-0566, एस.आर.के. गोयनका कॉलेज सीतामढ़ी)

असहयोग आंदोलन की अचानक समाप्ति से देश की राजनीति में एक रिक्तता आ गई। काँग्रेस इस स्थिति में नहीं थी कि फिर से एक नया आंदोलन चलाया जा सके। 1924 ई. में जेल से रिहाई के पूर्व तक गाँधी और सक्रिय राजनीति से दूर रहे। इन दिनों से उन्होंने अपना ध्यान और उर्जा रचनात्मक कार्यक्रमों जैसे अश्पृश्यता निवारण स्वयं सहायता के रूप में चरखा के उपयोग को प्रोत्साहन देना और साबरमति आश्रम का निर्माण कार्य जहाँ से उन्हें भविष्य के सत्याग्रहियों और स्वतंत्रता सेनानियों का तैयार करना था। औपनिवेशिक सत्ता ने माना कि गाँधी एक खत्म हो चुकी उर्जा का नाम है। वह एक ऐसा नेतृत्व है जो असहयोग आंदोलन की असफलता के उपरांत हाशिये पर चला गया। इस दौरान भारतीय राजनीति निराशा और विभाजन की दौर से गुजर रहा था। 1919 का अधिनियम लागु हो गया था। इस अधिनियम के अनुसार प्रान्तीय शासन को दो समान्तर शाखाओं में बाँट दिया गया। इसे द्वैध शासन भी कहा गया। इसकी एक शाखा सरंक्षित कहलायी तो दूसरी हस्तांतरित। हस्तांतरित शाखा की शासन व्यवस्था निर्वाचन से चुन कर आई मंत्रिमंडल को देखना था। इस प्रकार ब्रिटिश भारत में ऐसा पहली बार था कि कार्यपालिका के अधिकारों का कुछ हिस्सा भारतीयों के हाथ में मिल रही थी। साथ ही यह लोकप्रिय और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की झाँकी प्रस्तुत करती थी।

प्रान्तों में लागू होने वाली द्वैद्य शासन व्यवस्था ने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के दो भागों में बाँट कर रख दिया। इसकी एक शाखा परिर्त्तनवादी थी जो गाँधीवादी राजनीति की धारा को विराम दे कर मंत्रिमंडल में शामिल होना चाहती थी तथा उसका उद्देश्य था कि विधानमंडलों की कार्यवाहियों में यह साबित कर देना कि यह अधिनियम दोष पूर्ण है तथा यह भारतीय अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है।

दुसरी ओर 'अपरिवर्त्तनवादी' थे जो गाँधीवादी राजनीति को धारा से अलग होना नहीं चाहते थे। उनका यह विचार था कि अगर वे गाँधीवादी राजनीति का परित्याग करेंगे और अगर विधान मंडलों में मंत्री पद स्वीकार करेंगे तो इससे उनके विरोध की धारा कमजोर पड़ जायेगी। वे सरकार के सहयोगी हो जायेंगे तथा वेतन भत्ता आदि के आकर्षण में फंस कर नैतिक राजनीति और स्वतंत्रता आंदोलन के सत्याग्रही पृष्ठभूमि से अलग हो जायेंगे।

परिवर्त्तनवादियों का मानना था कि चुनाव जीत कर विधानमंडलों की आवाज आसानी से विधान मंडलों में सुनाई जा सकेगी। वे सरकार के कार्य करण को अपने विरोध के बल पर अंसभव बना देंगे तथा अधिनियम की खामियों और जन अपेक्षाओं के इसके प्रतिकुल होने का संदेश भी सरकार को दे देंगे। इससे ब्रिटिश सरकार सोचने पर मजबूर हो जायेगी और अंततः उसे नपे और अधिक कारगर अधिनियमों के प्रति विचार करना ही पड़ेगा। परिवर्त्तन वादियों का अन्य विचार यह भी था कि अगर काँग्रेस विधान मंडलों में प्रवेश नहीं करते है तो यह समाज के प्रति क्रियावादी ताकतों के कब्जे मे आ जायेगा और तब ये राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के मार्ग में एक बाधा के रूप में ही उपस्थित होंगे।

परिवर्त्तनवादियों को संविधानवादी भी कहा गया। उनकी शक्ति और उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उन्हें काँग्रेस के दो नेताओ सी. आर. दास तथा मोतीलाल नेहरू का नेतृत्व मिला। इन दोनों नेताओं ने स्वराज पार्टी का गठन किया। स्वराज पार्टी ने काँग्रेस का

विभाजन नहीं किया। परंतु इसने काँग्रेस के एक शाखा के रूप में ही काम करना शुरू किया। गया में काँग्रेस का अधिवेशन में हुआ। इसमें परिवर्त्तन वादियों का बहुमत था। अत: सी. आर. दास काँग्रेस के इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये।

स्वराज्यिों का लक्ष्य था कॉन्सिल की राजनीति में प्रवेश करना। परन्तु इसके अलावा अन्य लक्ष्यों के प्रति उनका समर्पण नहीं था। कॉन्सिल में प्रथा के नाम पर सभी एकमत थे परंतु 1919 के अधिनियम की कमियों को सदन में उजागर किये जाने पर उनमें एकमतता नहीं थी। उनके अन्तर में अखिल भारतीय स्तर पर सांगठनिक मजबूती नहीं थी। इसके अलावा उन दिनों काँग्रेस में समाजवादी विचार धारा बलवती होती जा रही थी। पार्टी के अन्दर में इस विचारधारा के वाहक काँग्रेस के युवा सदस्य थे जिनका गाँधीवादी राजनीति की धारा पर भरोसा नहीं था। इनका नेतृत्व जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस कर रहे थे। इस प्रकार दल में वामपंथ और दक्षिण पंथ की धारा बहने लगी थी।

मुस्लिम लीग और काँग्रेस का गठबंधन भी अल्पायु साबित हुआ। खिलाफत आंदोलन की समाप्ति के बाद मुस्लिम लीग दो गुटो में बँट गया। उसकी एक शाखा विभाजित निर्वाचन मंडल का समर्थक थी तो दुसरी सामान्य (अविभाजित निर्वाचक मंडल)। कोहट में सम्प्रदायवादी आंदोलन शुरू हो गया। कोहट उत्तर-पश्चिम सीमांत में अवस्थित है। हिन्दु-मुस्लिम एकता में बढ़ रही इस दरार के कारण कलकत्ता में 1926 ई. में भयानक साम्प्रदायिक दंगे फैल गये। दंगो की इस श्रृंखला के बीच 1926 से 1931 में बीच 'मस्जिदों के सामने संगीत बजाने' का मुद्दा अत्यंत संवेदनशील हो चला।[1] इसका परिणाम दंगो की विभिषिका के रूप में सामने आया। उत्तर प्रदेश में इस दौरान 1923 ई. से 1927 ई. तक 88 दंगे हुए और इससे हिन्दु-मुसलमान एकता पूर्ण रूपेण क्षति ग्रस्त हो गई।[2] बिहार की दंगो की हवा बच नहीं सका तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच स्थापित एकता टूटने लगी। 1925-1926 के आम चुनावों से साम्प्रदायिक मुद्दो का नेताओं के द्वारा मुक्त रूप से उपयोग किया गया। कट्टर हिन्दुओं सोंच के नेताओं ने काँग्रेस के धर्म निरपेक्ष छवि वाले नेताओं को आसानी से पराजित कर दिया। मदन मोहन मालवीय जो परंपरावादी हिन्दू नेता के रूप में जाने जाते थे। उन्होनें धर्म निरपेक्ष सोंच के नेता मोतीलाल नेहरू को हरा दिया। अखिल भारतीय हिन्दु महासभा ने उत्तर और मध्य भारत में लोकप्रियता हासिल कर ली। उस दल का काँग्रेस से कोई घोषित रिश्ता नहीं था लेकिन इसके कई नेता काँग्रेसी भी थे। इस तथ्य ने मुसलमान समुदाय में भय पैदा किया तथा वह काँग्रेस से मुसलमानों के अलगाव का एक कारण भी बना। इस प्रकार से इसी दौरान से भारतीय मुसलमानों का एक वर्ग राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से कटने लगा।[3]

गाँधी ने रचनात्मक कार्यो के द्वारा भारत के साथ-साथ बिहार में अस्प्रस्थता निवारण आंदोलन प्रारंभ किया। उन्होंने अस्पृश्यों को हरिजन कहा। परंतु इस आंदोलन की ओर दलितों और अस्पृश्यों का झुकाव कम हीं रहा। अस्पृश्यों में अशिक्षा थी तथा गरीबी भी। गाँधीजी का आन्दोलन उनकी समस्या में सुधार का तीव्र उपाय नहीं सुझ रहा था। अत: यह वर्ग भी काँग्रेस की राजनीति और गाँधी जी से पूर्णत: सहमत नहीं था। अस्पृश्य 1926 ई. में राव बहादुर एम. सी. राजा के द्वारा निर्मित संस्था की ओर आकर्षित हुए। 1930 ई. में डॉ. बी. आर. अम्बेदकर ने ऑल इण्डिया डिप्रेस्ट क्लासेज की स्थापना की। इस संस्था का एजेन्डा पूर्णत: काँग्रेस विरोधी था। इस संस्था की ओर दलितो और अस्पृश्य का सर्वाधिक झुकाव हुआ। अम्बेदकर स्वंय दलित वर्ग से आते थे तथा इस संस्था का आन्दोलन गाँधीवादी अछूतोद्धार से कहीं अधिक तीव्र था। यह दलितों के समान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों से जुड़ा हुआ था।

औपनिवेशक सत्ता ने भी 1920 के दशक में कुछ बदलाव देखे। इस दशक में आर्थिक मंदी निर्यात किये जाने वाले कृषि नकदी उत्पादों के मूल्यों में तेजी से गिरावट आई। इसमें लगभग 50 प्रतिशत तक की गिरावट आई। इससे कृषि को भारी धक्का लगा। कुछ नकदी फसलों के मूल्य में बड़ी तेजी से गिरावट आई। कपास की खेती पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र में की जाती थी। इसके मूल्य में 0.70 रूपये जो कि 1920 के दशक में था से 0.22 तक की गिरावट आई, जो कि 1930 के दशक में हुआ। इसी प्रकार गेहूँ की खेती में पाँच रूपये प्रति मन से 3 रूपये प्रति मन तक की गिरावट आई। चावल का मूल्य भी धीरे-धीरे गिरने लगा। 1931 ई. से यह प्रवृति देखी गई। जूट के बाजार में भी गिरावट आई। एक ओर कृषि उत्पादों का मुल्य घटा और इससे किसानों की आमदनी भी घट गई। दूसरी ओर राजस्व दर कृषि उत्पादों के आधार पर तय की गई थी वह स्थिर रही। इससे किसानों की अतिरिक्त आमदनी में भारी गिरावट आई। वे अगले फसल के लिए पूँजी निर्मित करने में असमर्थ रहे। सरकार ने मूल्य में आई गिरावट को व्यवस्थित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और न हीं राजस्व दर में कई कमी लाया। परिणाम स्वरूप जमींदार काश्तकारों पर कर अदायगी

के लिए दवाब डालने लगे जो किसान समुदाय के बीच अंसतोष का एक कारण था। अतिरिक्त आमदनी नहीं बचने के कारण तथा किसानों को एक अदायगी के लिए महाजनों के द्वारा इन पर जबरदस्त दवाब डाला जाता था। इस प्रकार किसान जमीन्दार और महाजन दोनों से शोषण और दमन के शिकार बन रहे थे। कई क्षेत्रों में ऐसा हुआ कि महाजनों के पास भी कर्ज देने के लिए पूँजी नहीं बची तो किसानों ने कर अदायगी के लिए अपने जमीन का एक टुकड़ा बेच दिया।[4] यद्‌यपि यह स्थिति क्षेत्रवार परिवर्त्तनीय थी। यह कृषक समाज, जोत की भूमि, उसकी भौगोलिक स्थिति के साथ-साथ उत्पादन के संगठन पर निर्भर करती थी।[5]

फिर भी कृषकों पर बढ़ता आर्थिक बोझ और शोषण ने उन्हें विद्रोही बना दिया। भारतीय राष्ट्रीय काँगेस और गाँधी जी की राजनीति इस मामले में स्पष्ट नहीं थी। उन्हे ऐसा लगता था कि किसानों के हितो की चिन्ता की जायेगी तो जमीन्दारों के हितों की अनदेखी होगी।

ऐसी परिस्थिति में किसान समाजवाद की ओर बढ़ने लगे। कृषकों में अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ रही थी। बिहार में जय प्रकाश नारायण समाजवादी काँग्रेसी के रूप में ऊभर रहे थे। 1934 ई. में आचार्य नरेन्द्र देव, मीनू मसानी और जय प्रकाश नारायण ने मिल कर समाजवादी पार्टी की स्थापना की। काँग्रेस के अन्दर समाजवाद की हवा युवा काँग्रेसियों में भी फैल रही थी जिसका नेतृत्व जवाहर लाल नेहरू जैसे युवा काँग्रेसियों के हाथ में था। काँग्रेस समाजवादी पार्टी भी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के घड़े के रूप में ही उद्रित हुआ था।

इसी दौरान भारत में नव उद्योगपति और पूँजीपति वर्ग का उदय हो रहा था जो भारतीय मध्य वर्ग था। इसमें अधिकांश कपड़ा और जूट उद्योग से जुड़ा हुआ था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान वित्तीय कारणों से ब्रिटिश सरकार ने अपने मालों के निर्यात रोकने के लिए भारत में ब्रिटिश सामानों के आयात पर शुल्क लगा दिया गया था और इसी वजह से भारतीय बाजारों में विदेशी सामानों की मात्रा घट गई और इस वजह से भारतीय सामानों के लिए बाजार में स्थान बना। सरकार की इस नीति से चाहे-अनचाहे भारतीय वाणिज्य और औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला। 1920 के दशक में इन सब कारणों से भारत में एक शक्तिशाली पूँजीवादी वर्ग का उदय हुआ। इसे 1927 ई. में फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री (फिक्की) की स्थापना के साथ ही उसे एक संस्थागत् पहचान भी मिल गई और राजनीतिक दवाब समूह के रूप में वह काम भी करने लगी। इसी समय से भारत मध्य वर्ग साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार में कई मुद्‌दों पर संघर्ष करने लगा। इस वर्ग के नेता जी. डी. बिरला, पुरूषोत्तम दास ठाकुर दास और लालजी नाराजी ने यह पाया कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के साथ रहने से उनके पक्ष के संघर्ष की अधिक मदद मिल सकेगी। इनमें से कई पश्चिम भारत के कपड़ा उद्योग से जुड़े मिलो के मालिक थे। परंतु 1930 के दशक में उन्हें जापानी कपड़ो से प्रतियोगिता करना पड़ी। 1930 में बॉम्बे मिल मालिको के पास 120,000 बेल कपड़ा 19,000 बेल धागा बचा हुआ था।[6] अपने हितों की रक्षा के लिए भारत पूँजीपति वर्ग काँग्रेस की ओर झुका। काँग्रेस ने भी इन लोगों को हाथो हाथ लिया तथा उनके मुद्‌दों को राष्ट्रीय मुद्‌दों से जोड़ कर देखना प्रारंभ किया।

मिलों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ उनमें काम करने वाले कामगारों की संख्या बढ़ी। इन कामगारों में भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता भी बढ़ी जिसमें काँग्रेस का समर्थन नहीं था। 1928-29 में मजदूरों में असंतोष अपने चरम सीमा पर थी। इस दौर में एक वर्ग में करीब 203 हड़ताले हुई। पूर्वी भारत में किसान-कामगार पार्टी के माध्यम से और मुम्बई और उसके आस-पास के इलाके में गिरनी कामगार युनियन के माध्यम से मजदूर वर्ग में साभ्यवाद की पकड़ मजबूत होती जा रही थी। उनके कार्यो और विरोध में अधिक स्वायत्तता दिखने लगी थी। 1930 के दशक में सरकार मजदूरों के आंदोलनों के प्रति अधिक दमनात्मक हो गई। दुसरी ओर कॉमिन्टर्न के निर्देशानुसार काँग्रेस के आंदोलन से एक दूरी रखने की सलाह दी गई। इसके बावजूद काँग्रेस स्वयं को वर्ग पर आधारित निहित स्वार्थ से ऊपर रखना चाहती थी। इस प्रकार उसने यह प्रयास किया कि पूँजीवाद और कामगार दोनों को एक ही बैनर के अंर्तगत् लाया जाये।

इस प्रकार असहायोग आंदोलन की समाप्ति के बाद 1920 का दशक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का एक दिशाहीन दशक के रूप में स्थापित हुआ, जिसमें अखिल भारतीय स्तर पर सभी वर्गो तथा सभी पक्षों को मिला कर एक धारदार आंदोलन खड़ा किया जा सके। परंतु इस परिस्थिति में परिवर्त्तन वर्ष 1927 ई. में हुआ। ब्रिटेन की गोरी सरकार ने लंदन में एक स्थायी कमिशन का गठन किया जिसके सभी सदस्य युरोपीय थे तथा इसका अध्यक्ष सर जॉन साइमन था। उस कमिशन का गठन भारत में सरकार

के संचालन के विधायी पक्ष की समीक्षा करना था तथा वह आवश्यकता पड़ने पर भारत के भविष्य की सरकार का फैसला भी कर सकता था।

साइमन कमिशन में कोई भी युरोपीय सदस्य में नहीं होने से भारत के प्रत्येक वर्ग नेता और दल ने इसका विरोध किया। इस प्रकार साइमन कमिशन की प्रकृति ने भारत में अखिल भारतीय एकीकृत संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। साइमन कमिशन का आगमन वर्ष 1928 ई. भारत आया। भारत की धरती पर उसकी आगवानी 'साइमन गो बैक' के नारों के साथ हुआ। इस संदर्भ में मोतीलाल नेहरू हिन्दु और मुसलमान दोनों वर्गों से बातचीत करन शुरू किया। अगस्त 1928 में लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का परिणाम नेहरू रिपोर्ट के रूप में सामने आई। मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट को दिसम्बर 1928 में होने वाले कलकत्ता काँग्रेस अधिवेशन के पटल पर रखना चाह रहे थे। उनका विचार था कि नेहरू रिपोर्ट को गाँधी जी का समर्थन प्राप्त हो। परंतु गाँधी जी के लिए स्वराज का अर्थ कोई संवैधानिक उपलब्धि नहीं था। परंतु स्वतंत्रता से उनका अभिप्राय देश की जनता को आंदोलन के लिए तैयार करने से था। वे स्वतंत्रता आन्दोलन को न तो विद्वत समूह के बुद्धि विलास के रूप में देखते थे और न हीं काँग्रेस के द्वारा नियंत्रित आंदोलन के रूप में।

बिहार में नमक सत्याग्रह के नेतृत्व की जिम्मेदारी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को दी गई। उनकी तबियत खराब थी। अत: वे दो मीटिंग में ही भाग ले पाये। इसी दौरान सीवान से लौटने के क्रम में उनकी कार टूट गई। परन्तु उन्हें एक पुलिस अधिकारी के द्वारा वापस सुरक्षित भेज दिया गया। स्वतंत्रता दिवस पुरा उत्साह के साथ भारत के सभी शहरों में मनाया गया। ऐसी प्रतीत होता था कि पूरे देश किसी बड़े आंदोलन के लिए तैयार हो रहा है। जनता सत्याग्रह की उद्घोषणा का इंतजार कर रही थी और गाँधी जी अपने लेखों तथा भाषणों के माध्यम से आन्दोलन की पृष्टभूमि तैयार कर रहें थे।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद समेत काँग्रेस के कई नेताओं में नमक को आधार बना कर सत्याग्रह किये जाने के प्रस्ताव पर सफलता में संदेह दिखता था। तटीय राज्यों में नमक बना कर कानून तोड़ा जा सकता था लेकिन जो स्थलीय राज्य थे उन में ऐसी स्थिति निर्मित करना कठिन था। बिहार में नमक बनाने के काम एक जाति विशेष करती थी जिसे नोनिया कहा जाता था। वे यह जाति नमक का निर्माण लवण युक्त मिट्टी (नोनी मिट्टी) से करते थे। परन्तु इसकी मात्रा नगण्य थी। अत: डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने नमक का कानून तोड़ने के स्थान पर चौकीदारी कर को तोड़ने का विकल्प रखा। परन्तु गाँधी जी को कोई संशय न था। वे अपनी योजना पर अक्षरश: अडिग रहे। तय किया गया कि साबरमती से डांडी जिसकी दूरी 150 मील है उसे पैदल चल कर पूरा किया जाये। उन दिनों डांडी सूरत जिले में पड़ता था। गाँधी जी ने आंदोलन की पूरी योजना साबरमती आश्रम में रहने वाले एक अंग्रेज रिनॉल्ड्स के द्वारा वायसराय लार्ड इरविन को प्रेषित कर दिया। पद यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व उन्होंने काँग्रेस वर्किंग कमिटी को स्पष्ट निर्देश दिया कि पदयात्रा के दौरान कोई नया आंदोलन शुरू नहीं किया जाये। साबरमती आश्रम से निकलने के बाद काँग्रेस वर्किंग कमिटी के सदस्य साबरमती आश्रम पहूँचे। परन्तु गाँधी जी निकल पड़े थे। जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और मोतिलाल नेहरू से यात्रा के दौरान हीं जम्बूसार में मिले।[7] कुछ दूर तक काफिले का साथ देने के बाद वे लोग वापस लौट आये।

6 अप्रैल, जिस दिन गाँधी जी ने डांडी में नमक का कानून तोड़ा पूरे देश में सत्याग्रह चरम सीमा पर थी। गाँधी जी के इस अभियान में बहुत से नेता शमिल होना चाहते थे। परन्तु उनमें से कई अलग-अलग कारणों से शामिल नहीं हो सके। जैसे सरदार पटेल को पदयात्रा में भाग लेने से पूर्व ही गिरफ्तार कर लिया गया। अलग-अलग राज्यों में आंदोलन के प्रति जन जागरण का काम शुरू हुआ। बिहार में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने जवाहरलाल नेहरू के साथ मिल कर जनजागरण की योजना बनाई। इसके लिए कुछ स्वयं सेवकों को तैयार किया गया। तीन कारें ली गई। योजना बनी कि सभा स्थल पर सबसे पहले स्वयं सेवक एक कार से पहूँचेगें। राष्ट्रभक्ति गीत गा कर माहौल तैयार करेंगे तथा आगे बढ़ जायेंगे। उसके बाद उस स्थान पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद अगली कार से पहूँचेंगे, व्यवस्था का मुआयना करेगे और स्वयं सेवको का अनुकरण करते हुए दुसरे सभी स्थल तक पहूँचेंगे। तीसरी कार से अंत में उस स्थल पर जवाहलाल नेहरू पहँचेंगे और सभा को संबोधित करेंगे। इस प्रकार कम समय में अधिक से अधिक जगहों के दौरा की योजना बनाई। गई।

इस योजना पर काम करते हुए महाराजगंज (छपरा- सीवान) में जवाहरलाल नेहरू एक जन सभा को सम्बोधित कर रहे थे कि गाँधी जी का निर्देश मिला कि 6 अप्रैल से भारत के अलग-अलग जगहों पर नमक सत्याग्रह प्रारंभ किया जाये। इस तरह की कोई

योजना नहीं बनाई गई थी। अत: डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को कुछ कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। जवाहलाल नेहरू उत्तर प्रदेश में नमक सत्याग्रह का नेतृत्व करने चले गये।

सर्वप्रथम चम्पारण (मोतिहारी) में विपिन बिहारी वर्मा के नेतृत्व में आंदोलन प्रारंभ हुआ। उन्होंने मोतिहारी से जोगापट्टी की पदयात्रा की और इस स्थल के रूप में मुजफ्फरपुर जा कर विपिन बिहारी वर्मा को नमक का कानून तोड़ते हुए देखने के लिए गये। परन्तु उन्हें रास्ते में ही बताया गया कि विपिन बिहारी वर्मा को गिरफ्तार करके जोगापट्टी कोर्ट में सुनवाई के लिए प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जोगापट्टी कोर्ट गये। जिस रास्ते से विपिन बिहारी वर्मा गये थे उसे उत्साही जनता के द्वारा खूब अच्छी तरह सजाया गया था। कोर्ट में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने देखा कि न्यायाधीश एक पूर्व असहयोगी भारतीय था जिसने असहयोग आंदोलन के दौरान पटना कॉलेज से पढ़ाई छोड़ कर बिहार विद्यापीठ में शिक्षा के लिए शामिल हुआ था।

पून: आंदोलन का जोर थमने पर वह पटना कॉलेज में पढ़ने लगा। पूरे नयिक कार्यवाही के दौरान उसने आँखें नही उठाई और कागज और दस्तावेजों पर आँखें गड़ाये रखा। विपिन बिहारी वर्मा को सजा सुनाई गई तथा उन्हें मोतिहारी जेल में रखा गया।

इस प्रकार सत्याग्रह पूरे देश में पूरे जोश के साथ प्रारंभ हुआ। बहुत से नेताओं को गिरफ्तार नहीं किये गये। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी सम्पूर्ण बिहार का दौरा करने की योजना बनाई। कुछ क्षेत्रों का दौरा करने के बाद पटना वापस लौटने पर उन्हें पता चला कि बाकरगंज में सत्याग्रहियों का जत्था सुल्तानपुर में नमक बनाने के लिए अग्रसर हुआ। परन्तु उसे रास्ते में ही पुलिस के द्वारा एक घेराबंदी में रोक लिया गया। सत्याग्रहियों में दृढ़ संकल्प था।

इस प्रकार डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में बिहार सविनय अवज्ञा की राष्ट्रव्यापी आंदोलन के मार्ग पर चल पड़ा।

Footnotes

1. एस. दास कम्यूनल राइट्स इन बंगाल, 1905–1947, 1991 दिल्ली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
2. जुडिथ ब्राउन गाँधी एण्ड सिविल डिसऑबिडिएन्स : द महात्मा इन इण्डिया पॉलिटिक्स 1928–1934, (01977), कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस पृ. 10
3. मुशिरूल हसन, रिलिजन एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया : द उलेमा एण्ड द खिलाफत मुवमेंट कम्यूनल एण्ड रीवाइवलिस्ट ट्रेन्ड इन काँग्रेस, मनोहर, नई दिल्ली, पृ. 17–42
4. डी. रूथरमंड, इण्डिया इन द ग्रेट डिप्रेशन 1929–1939 मनोहर दिल्ली 1992 पृ. 79
5. सुगता बोस : एग्रेरियन बंगाल : इकोनॉमी, सोशल स्ट्रक्चर एण्ड पॉलिटिक्स 1919–1947, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1986 पृ. 144
6. डी. रूथरमंड : वही : पृ. 140, 160
7. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : ऑटोबायोग्राफी : पेंग्युइन बुक, नई दिल्ली पृ. 296

समस्तीपुर शहरी क्षेत्र में गली व फुटपाथ के 10-14 वर्ष के बच्चों की संवेगात्मक स्थिति का एक अध्ययन

डॉ० पूनम कुमारी

अतिथि असि. प्रोफेसर, रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय बेतिया पश्चिमी चम्पारण (बिहार)

प्रस्तुत शोध कार्य में समस्तीपुर जिले के 60 गली व फुटपाथ शहरी क्षेत्र के 10-14 वर्ष के बच्चो का कार्य दशा, स्वास्थ्य दशा, शिक्षा, परिवार एवं समाजिक दशा, वातावरण एवं संवेगात्मक स्थिति का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना

समस्तीपुर शहर में गली, मुहल्लो में घुमते खेलते बच्चो की वास्तविकता हमाारी गरीबी बिमारी तथा शोषण की नंगी कुल्सित तस्वीर है। बिडम्बना तो यह है कि जो इससे प्रभावित है वे निर्दोष, अकेला तथा भयग्रस्त बच्चे ही है। गल्ली नुक्कड़ के बेसहारा वे अभागे बच्चे है जो मूल रुप से परिवार से कटे रहते है तथा यदा कदा ही अपने रिश्तेदारो से मिलने की प्रयास करते है और अपने जिन्दगी का ज्यादा हिस्सा या समय समस्तीपुर शहरी क्षेत्रो के मुहल्ले के गली में आवारा की तरह घुमते है। एक बच्चा जो सड़को पर घुमता रहता हो, स्कूल से भागने की आदत वाला हो, आवारा लड़को के साथ रहता हो, जुआ से सम्बंधित खेल खेलता हो, छोटी उम्र में खेल खेलता हो, बड़ो की आज्ञा का उल्लंघन करता हो तथा इसके पश्चात् वह अपने माता-पिता या सगे सम्बंधियों से त्याग दिया गया हो। जीवन के प्रारंम्भिक दिनो में ही गली में छोड़ दिया हो अथवा एसे ही बच्चे जो अपने घर में होने वाले दुर्व्यवहार के कारण घर छोड़ना पसंद किया हो। वे बच्चे जो अपने घर से भाग गए है उनको दो भागो में विभक्त किया गया है–

भौतिक कारण: परिवार के सदस्य की मृत्यु हो जाना, लम्बे समय तक अस्पताल, जेल आदि मे रहने के कारण अथवा तलाक और पृथक्करण के कारण सदस्यो का परिवार मे साथ-साथ नही रहना है।

मानसिक कारण: गली मुहल्ले के बच्चे के समाज विरोधी कारणो के दूसरे कारण मे मानसिक कारण है जिसमे परिवार एक साथ तो रहते है, किन्तु उनमे मनमुटाव, मानसिक संघर्ष एवं तनाव पाया जाता है। सौतेले माता पिता होने पर भी बच्चो को परिवार में जो स्नेह और प्यार मिलना चाहिए वह नही मिल पाता है। उसके प्रति पक्षपात दुर्व्यवहार किया जाता है। परिणामस्वरुप बच्चो मे ऐसे माता-पिता के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। और वे उनसे घृणा करने लगते है। वे परिवार के दूषित वातावरण से मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ देता है और गली और फुटपाथ का सहारा लेता है। पक्षपात परिवार मे पक्षपातपूर्ण व्यवहार होने पर भी बच्चो मे निरशा और घृणा की भावना जन्म लेती है। यदि परिवार में किसी बच्चो को अधिक प्रेम, स्नेह तथा किसी बच्चो को कम प्रेम, स्नेह मिलने वाले बच्चो के मन मे माता-पिता के प्रति मन मे घृणा उत्पन्न होता है तथा माता पिता का बात न मानकर दोस्तो का बात मानना पसन्द करता है और अपना परिवार छोड़ कर गली मुहल्ले में रहना पसन्द कर लेता है।

गरीबी: इस शोध में इस बात को प्रकट करता है कि गरीबी मे बच्चो को अपराधी बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिका है। गरीब लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताए, चिकित्सा, मनोरंजन की सुविधाए नही जुटा पाते है। ऐसी स्थिति मे माता पिता दोनो नौकरी करने लगते

है। उस अवधि मे बच्चे आवारा गर्दी करते है। उस समय उनपर कोई नियंतरण नही रख पाता। परिवार मे बच्चो पर अधिक नियंत्रण रखने पर वे कठोरता से बचने के लिए भागना चाहते है और ज्योही उन्हे मौका मिलता है वे उन कार्यो को करने मे जुट जाते है। जिनको करने के लिए परिवार के लोग रोकते है। दोषपूर्ण अनुशासन कठोर नियंत्रण से बच्चो का विकाश रुक जाता है। वह अपनी दमित इच्छाओ की पूर्ती के लिए भी अपराध करते है इसके विपरित बच्चो को अत्यधिक ढील देने एवं अंकुश न रहने पर भी उसमे स्वच्छन्दता की प्रवृति पैदा होती है। कुछ विद्वान शारीरिक दुर्बलता को भी समाज विरोधी कार्यो के लिए उत्तरदायी ठहराते है। स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। मस्तिष्क एवं शरीर का घनिस्ट सम्बंध होता है। कमजोर दृष्टिहीन, बहरापन, अशुद्ध उच्चारण बच्चो के स्कूली जीवन को असफल बनाते है। इस प्रकार बच्चो की संख्या 70% हिन्दू 18% मुस्लिम इसाई तथा अन्य होते है।

न्यादर्श

इस शोध-कार्य को पूरा करने के लए केवल समस्तीपुर जिला के शहरी क्षेत्र के अन्तर्गत शहर के 10 मुहल्ले का चयन कर प्रेक्षण विधि का प्रयोग करके तथा इनसे सम्बंधित समस्त सूचनाएँ प्राप्त किया गया है। इस शोध-कार्य को पूर्ण करने के लिए घर-घर जाकर प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क कर के और प्रश्नावली पत्र भरवाई गई है।

विधि

उपकरण का चयन–

1. इस शोध-कार्य को पूर्ण करने के लिए वैज्ञानिक तकनीकी का सहारा लिया गया है।
2. इस शोध-कार्य के लिए घर-घर जा कर सूचनाओ को प्राप्त किया गया है। इसके लिए सर्वप्रथम अभिभावक पढे लिखे थे इसलिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया।
3. इसके बाद प्राप्त सूचनाओ की तालिका बनाई गई तथा प्राप्त आकड़ो का प्रतिशत निकाला गया तथा इसके बाद कितने प्रतिशत अभिभावक ने अध्ययन के सम्बंध में क्या क्या कहा, इसकी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की गई है।
4. आकड़ो का विश्लेषण करने के लिए प्राप्त उत्तरो का प्रतिशत निकाल कर भिन्न-भिन्न प्रतिशतो को तालिका द्वारा दर्शाया गया है।
5. इस प्रकार इस शोध-कार्य को पूर्ण करने के लिए अध्ययन विधि मे प्रश्नावली तकनिकी का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त आँकड़ो का विश्लेषण

तालिका न. 01: समस्तीपुर जिले के शहरी क्षेत्र के मुहल्ले एवं फुटपाथ के बच्चे

क्रम संख्या	विकल्प	उत्तरदाताओ	प्रतिशत
1	हाँ	39	.65
2	नही	12	20
3	थोड़ा बहुत	09	15
4	बिल्कुल नही	00	00
	कुल योग	60	100

विश्लेषण: उपरोक्त आकड़ो का प्रतिशत करने से स्पस्ट होता है कि 65 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो हेतु प्रयास करना चाहिए, 20 प्रतिशत के अनुसार नही करना चाहिए तथा 15 प्रतिशत के अनुसार गली एवं फुटपाथ के बच्चो के लिए सरकार को थोडा बहुत प्रयास करना चाहिए।

तालिका न. 02: गलियो एवं फुटपाथ के बच्चे हेतु अलग से स्कूलो की व्यवस्था करना चाहिए।

क्रम संख्या	विकल्प	उत्तरदाताओ	प्रतिशत
1	हाँ	12	20
2	नही	33	55
3	थोड़ा बहुत	09	15
4	बिल्कुल नही	06	10
	कुल योग	60	100

विश्लेषण: उपरोक्त आकड़ो का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि 20 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो के लिए अलग से स्कूलो की व्यवस्था करनी चीाहए, 55 प्रतिशत के अनुसार नही करना चाहिए तथा 15 प्रतिशत के अनुसार गली एवं फुटपाथ के बच्चो के लिए सरकार को थोडा बहुत प्रयास करना चाहिए। 10 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो के लिए अलग से स्कूलो की व्यवस्था नही करनी चाहिए।

तालिका न. 03: गली एवं फुटपाथ ें बच्चो को शिक्षित करने से समाज का कल्याण होगा।

क्रम संख्या	विकल्प	उत्तरदाताओ	प्रतिशत
1	हाँ	39	65
2	नही	12	20
3	थोड़ा बहुत	09	15
4	बिल्कुल नही	00	00
	कुल योग	60	100

तलिका न. 04: गली एवं फुटपाथ के बच्चो को व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना चाहिए।

क्रम संख्या	विकल्प	उत्तरदाताओ	प्रतिशत
1	हाँ	24	40
2	नही	12	20
3	थोड़ा बहुत	24	40
4	बिल्कुल नही	00	00
	कुल योग	60	100

विश्लेषण: उपरोक्त आकड़ो का प्रतिशत करने से स्पस्ट होता है कि 40 प्रतिशत लोगो के अनुसार व्यवसायिक शिक्षा देनी चाहिए, 20 प्रतिशत के अनुसार नही देना चाहिए तथा 40 प्रतिशत को इस बारे में मालूम नही है।

तालिका न. 05: गलियो एवं फुटपाथ के बच्चे हेतु अलग से स्कूलो की व्यवस्था करना चाहिए।

क्रम संख्या	विकल्प	उत्तरदाताओ	प्रतिशत
1	हाँ	24	20
2	नही	12	40
3	थोड़ा बहुत	10	20
4	बिल्कुल नही	14	20
	कुल योग	60	100

विश्लेषण: उपरोक्त आकड़ो का प्रतिशत करने से स्पष्ट होता है कि 20 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो को नियमित चेकअप करनी चाहिए, 40 प्रतिशत के अनुसार नही करना चाहिए तथा 20 प्रतिशत को इस बारे में मालूम नही है। 20 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो को नियमित चेकअप बिल्कुल नही करनी चीहिए।

उद्देश्य

1. इस शोध-कार्य से संग्रह समस्तीपुर जिले के शहरी क्षेत्र के गली व फुटपाथ से लिया गया हैं।
2. यह शोध-कार्य मुख्यरुप से गली व फुटपाथ के 10-14 वर्ष के बच्चे पर किया गया हैं।
3. यह शोध- कार्य गली व फुटपाथ के बच्चे की स्थिति जानने के लिया किया गया हैं।
4. इस शोध-कार्य द्वारा प्राप्त विशिष्ट प्रतिदिन गली व फुटपाथ के बच्चों पर है किसी और पर नही।
5. समय का अभाव होने के कारण अन्य किसी विधि का उपयोग नही हो पाये।

निष्कर्ष

प्राप्त आँकड़े से इस निष्कर्ष पर पहुचते है :

1. 65 प्रतिशत लोगो के अनुसार सरकार को गली व फुटपाथ में बच्चे हेतु प्रयास करना चाहिए, 20 प्रतिशत के अनुसार नही करना चाहिए तथा 15 प्रतिशत गली व फुटपाथ के बच्चों हेतु थोड़ा बहुत प्रयास करना चाहिए।
2. 20 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो के लिए अलग से स्कूलो की व्यवस्था करनी चीहिए, 55 प्रतिशत के अनुसार नही करना चाहिए तथा 15 प्रतिशत के अनुसार गली एवं फुटपाथ के बच्चो के लिए सरकार को थोडा बहुत प्रयास करना चाहिए। 10 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो के लिए अलग से स्कूलो की व्यवस्था नही करनी चीहिए।
3. 65 प्रतिशत लोगो के अनुसार समाज को गली और फुटपाथ के बच्चो को शिक्षित करने से समाज का कल्याण होगा। 20 प्रतिशत लोगो के अनुसार ऐसा नही होगा तथा 15 प्रतिशत लोगो के अनुसार गली और फुटपाथ के बच्चो को शिक्षित करने से समाज का थोड़ा बहुत कल्याण होगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. सपरा आर. (2011): स्टोरीटेलींग टु इन्हेन्स सोशल एण्ड इमोशनल स्कील्स इन इंडियन पेस्पेक्टीव।
2. लुथर एस. सी. (2000) ए कन्सट्रक्ट ऑफ रेजीलेन्स: एक क्रिटिकल एभुलुवेशन ऑफ गाईड लाइन्स फॉर फियुचर वर्क, चाइल्ड डेवलपमेन्ट 543-562
3. गली के बच्चे, डॉ. पी. एस. रे.: साहित्य भवन पब्लिकेशन।
4. वंचित बालकों, डॉ. आर. एस. दुबे: साहित्य भवन पब्लिकेशन।

समकालीन हिन्दी कहानी की मूल प्रवृत्तियाँ

डॉ० विनय कुमार

टीजीटी इंग्लिश, जीबीएसएसएस नं. 3, नजफगढ, नई दिल्ली-110043

सन् साठ के बाद आयी कथा-पीढ़ी 1964-65 ई. तक अपने को पूरी तरह प्रतिष्ठित कर आधुनिक हिन्दी कहानी को नया तेज, शक्तिमता और नयी तेवर प्रदान कर उसे समकालीन कहानी के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इस प्रकार 'समकालीन कहानी' नयी 'नयी कहानी' के विकास का अगला चरण है। 'समकालीनता नवलेखन के संदर्भ में प्रयुक्त अत्यंत परिचित शब्द है। समकालीन अपने मूल अर्थ में अंग्रेजी के कंटेंपोरानेटी (ब्वदजमउचवतंदमपजल) का समतावाची है, जिसका अर्थ है, उसी समय या कालखंड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखंड में जी रहे व्यक्ति'[1] लेकिन 'समकालीन' कहानी आंदोलन से जुड़े कुछ कहानीकार और आलोचकों ने समकालीन के कालपरक अर्थ को नकार 'समकालीनता' को एक प्रवृत्तियुक्त धारणा मानकर विशेष अर्थ-गौरव से युक्त किया, लेकिन आज 1960 ई. के बाद के साहित्य के लिए 'समकालीन' संज्ञा प्रचलन में आ चुकी है।

दरअसल समकालीन हिन्दी कहानी समकालीन समय के दबाव से निर्मित है मनुष्य और समाज की कलात्मक एवं वैचारिक निर्मित है। समकालीन कहानी का अध्ययन अपने समय और समाज का भी अध्ययन है। समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से रूपायित करती है। इसलिए V कहानियों में वर्तमान युग की सभी विसंगतियों का बड़ा हृदय विदारक वर्णन हुआ है। फलतः कहानी की नयी पीढ़ी ने जिस यथार्थ को अभिव्यक्त किया वही नयी कहानी की मुख्य विभाजक भूमि थी।[2] यथार्थ चित्रण के इस बदलाव को मुख्य विभाजक रेखा मानते हुए यहाँ उन बिन्दुओं को रेखांकित करने का प्रयास किया जा रहा है जो समकालीन कहानी को नयी कहानी से प्रथक करते हैं। समकालीन हिन्दी कहानी की मूल प्रवृत्तियों को निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है।

1. युगजीवन के बदलते यथार्थ का चित्रण

समकालीन कहानी में जीवन यथार्थ का कोई भी अंग अनुछुआ नहीं रहा है। सामान्य मनुष्य की जिंदगी में जीने की विषम आर्थिक स्थितियाँ, नैतिक रूढ़ियों और मान्यताओं का विघटन, व्यक्ति के जीवन में घर का गई निराशा, महानगरीय जीवन और उसकी विविधमुखी समस्याएँ, भ्रष्ट राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष, प्रेम और सेक्स का नूतन भाव-बोध, खंडित पारिवारिक संबंध आदि जीवन की अनेक स्थितियों का सूक्ष्मति सूक्ष्म विवरण समकालीन कहानियों में मिलता है। समकालीन कहानियों ने युग जीवन के बदले हुए यथार्थ को वाणी देना अपना कर्तव्य समझा, क्योंकि वह जो जीवन भोग रहा था, उससे अलग जीवन कहानी में रूवायित करना उसे बेमानी और बेइमानी लगा। आज कहानी में चित्रित यथार्थ का यह रूप उसे नयी कहानी से एकदम अलग करता है।[3]

2. परिवेश से जुड़ी रचना-प्रक्रिया

परिवेश से गंभीर रूप से जुड़कर ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती है। आज लेखक अपने चारों ओर जो जीवन देख रहा है, उसी को अपनी रचना में जी रहा है। परिवेश की जीवन स्थितियों से वह अपने पात्र और कथ्य को उठाता है। आज की कहानियों में अधिकोश में अधिक समस्याओं का चित्रण अथवा कुछ राजनीतिक संदर्भ जो पाया जाता है, उसका मूल कारण यही है कि कलाकार अपने परिवेश से जुड़ा हुआ है। विभिन्न कहानियों में आज के जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि पक्ष बड़ी खूबसूरती से चित्रित हुए हैं।

3. जीवन मूल्यों में परिवर्तन

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में बड़ा भारी परिवर्तन आया है। प्रेम, विवाह, परिवार में माँ-बाप, भाई-बहन, पिता-पुत्र, पुत्र-पुत्री, मित्र आदि के जितने भी सुदृढ़ संबंध हो सकते थे, उन सबके संबंध में हमारी सोच और चिंतन प्रक्रिया में बड़ा भारी अंतर दिखायी पड़ता है। 'संयुक्त परिवार की इकाइयाँ टूटकर छोटे-छोटे परिवार अस्तित्व में आ गये, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता चला गया।[4] इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि सारे मानवीय और आत्मीय रिश्ते अर्थाश्रित हो गये। इस नये परिवेश ने जो नयी मूल्य-दृष्टि विकसित की, स्थान-स्थान पर उसका परिचय समकालीन कहानी विविध रूपों में दे रही है।

4. नयी नैतिक दृष्टि

मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ आज नैतिकता का परंपरागत अर्थ भी लुप्त प्राय हो गया। धर्म और ईश्वर की धारणा में भी परिवर्तन आ गया। विभिनन दार्शनिकों द्वारा ईश्वर की सत्ता की अस्वीकृति पाप-पुण्य और उनके आधार पर दंड की मान्यता को बदल दिया। व्यक्ति का कोई भी कृत्य आज पाप-बोध नहीं जगाता। उसे एक जैविक प्रवृत्ति के रूप में मानने लगा। समकालीन कहानी ने इस नये नैतिकताबोध को ग्रहण कर प्रेम, विवाह और यौन-संबंधों में एक बहुत खुली दृष्टि अपनायी। महिला कलाकारों ने भी बहुत अधिक 'बोल्ड कहानियाँ' लिखकर इस नयी नैतिकता का परिचय दिया।[5]

5. स्त्री-पुरुष संबंधों में परंपरागत दृष्टि का नकार

वर्तमान युग में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन विवाह और विवाहेत्तर प्रेम-संबंधों दोनों में दिखाई देता है। नैतिकता के नये बोध ने यौन-सुचिता की धारणा को माँज कर काम को मात्र दैहिक, जैविक आवश्यकता के रूप में स्वीकार। इस दृष्टि ने प्रेम और विवाह की समरूाएँ और स्थितियाँ समकालीन कहानीकारों को परंपरागत धारणाओं को मटियारमेट करने के लिए उत्त्साहित किया। इन कहानियों में परंपरावादी दृष्टि को पूर्णत: नकारकर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की स्थापना में सामाजिक परंपरागत नैतिक मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर कहानीकारों ने अपने मन की बात पूर्ण निस्संगता से कहीं।

6. जीवन के आर्थिक पक्ष की प्रधानता

बढ़ती बेरोजगारी विशेषकर शिक्षित बेरोजगारी ने देश में नैराश्य और अवसाद को जन्म दिया। शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा की दारुण अवमानना, भ्रष्ट-व्यवस्था, आई-भतीजावाद के प्रश्रय ने युवा मानस के सपनों को तोड़ उसे घोर आर्थिक यंत्रणा में डाल दिया। सामान्य मनुरूय जिंदगी में विभिन्न मोर्चो पर अपने अस्तित्व के लिए जो भी लड़ाई लड़ रहा है, उसकी मुख्य धूरी अर्थ-व्यवस्था पर करारे प्रहार करना ही है। समकालीन कहानी मनुष्य की इस लड़ाई में सहभागी बनकर आयी है।

7. तीव्र-व्यवस्था-विरोध

समकालीन हिन्दी कहानी ने अपने चतुर्दि के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक सभी व्यवस्थाओं को भ्रष्ट पाया तो उसमें उनके प्रति एक तीव्र रोष प्रापत होता है। देश में वामपंथी चिंतन और नक्सलवाद जैसे आंदोलनों ने व्यवस्था से लड़ते कहानीकार की वाणी को और भी तुर्शी प्रदान की।[6] भ्रष्ट-व्यवस्था पर रोष के साथ-साथ समकालीन कहानी में एक विद्रोही भाव है। कथानक भ्रष्टव्यवस्था से समझौता नहीं करते, अपितु उसके प्रति तीव्र रोष व्यक्त करते हैं।

8. नयी भाषा और समृद्ध शिल्प

समकालीन कहानीकार ने भाषा को जीवन के निकट लाकर सहज और स्वभाविक रूप प्रदान किया। फलस्वरूप भाषा की संप्रेषण क्षमता बढ़ गयी। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि राष्ट्र भाषा के रूप में समकालीन हिन्दी कहानी में ही हिन्दी गद्य की सर्वाधिक संभावनाएँ और क्षमताएँ उद्घाटित हो रही हैं। समकालीन कहानी का शिल्प अत्यंत आकर्षक और समृद्ध है। व्यंग्य, फंतासी, लोक कथा, शैली, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, वैताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी आदि शैलियों के नूतन प्रयोगों ने कहानी के प्रचलित रूपबंध को तोड़ा है। भाषा की नयी तराश और समृद्ध शिल्प के कारण समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य की इतनी सशक्त विद्या बन गयी है कि उसे सगौरव विश्व कथा-साहित्य की तुलना में रखा जा सकता है।

अतएव समकालीन कहानियों की उक्त सभी प्रवृत्तियों के आधार पर इस कहानी परंपरा के वैशिष्ट्य को उसके अंत निहित अथ्य को, तथा कहानी के रचाव को सहजता से समझा जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास–डॉ. हेतु भारद्वाज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 205-6
2. वही. पृ. 213
3. समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ–डॉ. पुष्पपाल सिंह, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ-67
4. आजकल, फरवरी, 2013, संपा. सीमा ओझा, पृ.-41
5. कथा देश–अप्रैल, 2009, संपा. हरिनारायण, पृ.-36
6. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली–डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली. 2012, पृ. 205-6

भारतीय दार्शनिक परंपरा में पर्यावरण

डॉ० बिरेन्द्र कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, जमतारा कॉलेज, जमतारा

प्राचीन काल से ही मानव और पर्यावरण के बीच सीधा संबंध देखने को मिलता है और जब तक मनुष्य प्रकृति को अपना आध ार मानकर रह रहा था एवं उसके साथ सहयोगात्मक तथा सामंजस्य पूर्ण संबंध बनाए हुए था तब तक मनुष्य का अस्तित्व निफ्कंटक और सुरक्षित था। जैसे– जैसे इंसानों के भीतर सुविधाओं की चाहत बढ़ती चली गई वैसे-वैसे प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण भी बदलता चला गया। परिणामस्वरूप आज पूरी मानवता संकट के दौर से गुजर रही है। अगर देखा जाए तो प्रकृति और पर्यावरण के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति की देन है। इस भौतिकवादी दृष्टिकोण ने प्रकृति के दोहन की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। जहां तक भारतीय दार्शनिक परंपरा का प्रश्न है इसमें प्रकृति की महत्ता को स्वीकार किया गया है। वैदिक युग में भारतीय मनीषियों ने मनुष्य को प्रकृति का अंग मानते हुए लोक कल्याण के साथ-साथ स्वकल्याण एवं वनस्पतियों के कल्याण की कामना की है। सृष्टि की अवधारणा में ही मनुष्य को पर्यावरणीय तत्व पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, प्रकाश आदि के साथ अद्‌भुत माना गया है। अनेक वैदिक मंत्रा में धावा, पृथ्वी, अंतरिक्ष, वनस्पतियों के कल्याण की कामना के साथ– साथ घोड़े तथा मनुष्य की समान रूप से भलाई की बात कही गई है। यहां तक कि जीव हिंसा से परहेज का भी उल्लेख किया गया है। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वृक्ष की कटाई अनुचित माना गया है और बताया गया है कि इन की कटाई बहुत ही अल्प मात्रा में किया जाना चाहिए और वह भी उतना ही करना चाहिए जिससे स्वर्ग और अंतरिक्ष का नुकसान ना हो। ऋग्वेद में पेड़ पौधों को पर्याप्त महत्व दिया गया है।

अगर देखा जाए तो प्रकृति से परे इस दैहिक जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य इसी में सांस लेता है। प्रकृति की रक्षा के लिए मनुष्य के लिए यह जरूरी है कि वह आवश्यकता और लोभ के बीच के अंतर को समझें। वेद में पर्यावरण के समस्त तत्व के प्रति आदर प्रकट किया गया है, उन्हें देवी स्वरूप प्रदान कर उनके प्रति सम्मान के साथ साथ कृतज्ञता ज्ञापित की गई है। धावा, पृथ्वी, अग्नि, वर्षा, उषा, निशा, मित्र, वरुण आदि को देवी स्वरूप प्रदान कर यज्ञ आदि कर्मों में आदर के साथ उनका आह्वान किया जाता है। इन्हें केवल प्राकृतिक तत्व नहीं बल्कि अति प्राकृतिक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वेद में उल्लेखित ऋत् की अवधारणा संपूर्ण पर्यावरण व जागतिक व्यवस्था के प्रति सम्मान का द्योतक है और इसका स्पष्ट प्रभाव लोक जीवन पर सदियों तक रहा। भारतीय लोक संस्कृति में पेड़– पौधे, वनस्पतियों, नदी, जल, वर्षा, पर्वत, सूर्य, चंद्र, पशु आदि की पूजा का प्रचलन आज भी देखने को मिलता है। वैदिक साहित्य के साथ-साथ संहिता उपनिषद आदि ग्रंथों में पर्यावरण की शुद्धता पर बहुत अधि क बल दिया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद, छांदोग्य उपनिषद, कठोपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद आदि में अग्नि, जल, वायु, आकाश के महत्व को प्रतिष्ठित करते हुए उन्हें परम तत्व का रूप माना गया है। यह इस बात का संकेत है कि प्राचीन ऋषि पर्यावरण के प्रति बहुत अधिक जागरूक थे। ऐतरेय उपनिषद में पंच भूतों का स्पष्ट उल्लेख देखने को मिलता है। संहिता और भागवत ग्रंथों में जल और वायु को प्रदूषण रहित रखने की कामना की गई है क्योंकि इससे स्वास्थ्य प्रसन्नता और दीर्घ जीवन का स्रोत माना गया है। इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि हजारों वर्षों में रचित उक्त सभी ग्रंथों में पर्यावरण के तत्व घटकों की शुद्धता, सफाई के महत्व को दर्शाते हुए उनसे निजी रिश्ता रखने का संकल्प व्यक्त किया गया है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी प्रकृति और पर्यावरण के महत्व के बारे में स्पष्ट रूप से बताया गया है। इसमें पर्यावरण और उसके घटकों को पर्याप्त संरक्षण देने की बात कही गई है। इसमें बताया गया है कि राजा का प्रमुख कार्य होता है– वन, वन्य जीव, पशुओं आदि को संरक्षण प्रदान करना इसमें बताया गया है कि कृषि, मौसम, वर्षा आदि के पूर्वानुमान के साथ-साथ बाढ़, सूखा आदि पर राज्य को निरंतर दृष्टि रखनी चाहिए। इतना ही नहीं प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने वालों को दंड भी देना चाहिए। पौधों और वृक्षों को प्राचीन भारतीय संस्कृति के हर एक संप्रदाय में उच्च स्थान दिया गया है। अगर पतंजलि के महाभाष्य को देखा जाए तो उसमें भी पौधों को मानव जीवन यापन का प्रमुख स्रोत माना गया है।

प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत में भी प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, पर्यावरण की शुद्धता और स्वच्छता पर बल दिया गया है। इतना ही नहीं उसकी अशुद्धता और अस्वच्छता की निंदा भी की गई। इसमें स्पष्ट रूप से बताया गया है मानव जीवन सार्वभौम के अंतर्गत है, सार्वभौम का संतुलन बना रहना चाहिए। मनुष्य, पशु, पेड़, पौधे, प्रकृति की शक्तियां, ईश्वर, नक्षत्रा, पृथ्वी, तथा अन्य ग्रह के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखा जाना आवश्यक है। इस सकारात्मक सोच के आधार पर ही महाभारत इस विचार का प्रतिपादन करता है कि मनुष्य को अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए और इसके लिए उसे अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए, तभी स्वस्थ पर्यावरण बनेगा और स्वस्थ पर्यावरण से ही एक व्यवस्थित समाज का निर्माण हो सकता है। महाभारत में वैश्विक व्यवस्था हेतु यज्ञ की अवधारणा तथा लोक संग्रह की धारणा का विकास हुआ है। इसमें पारिस्थितिकी संतुलन तथा प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण को सार्वभौम बताया गया है। इस सार्वभौमिकता की प्राप्ति के लिए अपने कर्म के प्रति जागरूक रहने को कहा गया है। पंचतंत्रा और हितोपदेश की कहानियों में भी प्राकृतिक संतुलन, वृक्षों के संरक्षण, वन एवं वन्य जीवो के संरक्षण के साथ-साथ मानव प्रकृति के संबंधों का अभिव्यक्ति करण हुआ है। जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में भी इस को रेखांकित करते हुए अहिंसा को परम धर्म माना गया है।

मनुस्मृति में भी पारिस्थितिकी संतुलन के प्रति जागरूकता को देखा जा सकता है। इसमें बताया गया है कि मनुष्य का परम धर्म है पर्यावरण और उसमें रहने वाले जीव जंतुओं की रक्षा करना। इस साहित्य में बताया गया है कि वृक्षों में भी चेतना होती है तथा वे सुख- दुख का अनुभव करते हैं जो एक वैज्ञानिक ज्ञान है। इस साहित्य में जल में मल मूत्रा त्याग से बचने की बात कही गई है जो जल प्रदूषण के प्रति व्यक्त की गई चिंता को स्पष्ट करता है। इतना ही नहीं किसी जीव को कष्ट नहीं देने की बात कहकर मनुस्मृति वन्यजीवों के संरक्षण के प्रति सचेत है। योगवाशिष्ठ और वेदांत दर्शन में भी पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण स्वच्छता की धारणा का विकास हुआ है। इनमें संपूर्ण सृष्टि को परमात्मा या परम तत्व की अभिव्यक्ति माना गया है। प्राय: सभी भारतीय दार्शनिकों ने प्रकृति और पर्यावरण को परम सत्ता की अभिव्यक्ति या उसके द्वारा रचित मानकर उसके संरक्षण पर बल दिया है। सृष्टि के सभी तत्वों के प्रति अध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रेम, दया, करुणा और सामंजस्य जैसे मूल्यों पर भी बल दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है वेद से लेकर वेदांत दर्शन तक भारतीय दार्शनिक परंपरा में प्राकृतिक शक्तियों की महत्ता तथा पर्यावरण के घटकों की शुद्धता, शुचिता एवं विशुद्धता पर बल देकर पर्यावरण संरक्षण को सिद्धांतत: स्वीकृति प्रदान की गई है। अधिकांश भारतीय दार्शनिकों, धार्मिक ग्रंथों, धर्मवेत्ताओ, साहित्यकारों, चिंतको तथा कौटिल्य के विचारों में मनुष्य और पर्यावरण के बीच सहयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करने पर बल दिया गया है। यजुर्वेद की एक प्रार्थना में कहा गया है आकाश, पृथ्वी, वायु मंडल, जल और पौधे शांतिमय रहे सभी विद्वतजन, ईश्वर और वेद शांतिमय रहे। शांति स्वय शांतिमय रहे तथा मुझे शांति की प्राप्ति हो। अथर्ववेद में पृथ्वी को शांति मय स्नेहमयी मां कहा गया है समस्त प्राणियों को संरक्षित करती है, इसीलिए प्रार्थना की गई है कि मां पैर-स्पर्श के अपराध के लिए क्षमा करें। अत: कहा जा सकता है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में कभी भी प्रकृति के शोषण, उसके अधिकतम उपभोग और उसे साधन मात्रा मानने की अवधारणा नहीं रही है। आज भी भारतीय चिंतक अपनी परंपरा पर कायम है। आज भी उनके चिंतन में सर्वकल्याण का भाव देखने को मिलता है। वर्तमान समय में महात्मा गांधी इसका ज्वलंत उदाहरण बन कर सामने आते हैं।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

- ऋग्वेदः 10-31-7
- ऐतरेय उपनिषद–33
- अर्थशास्त्रः II-1. 22. 24
- पतंजलि महाभाष्य–पृ. 5.1-12; 1.3.11
- महाभारत शांति पर्व– पृ. 143
- मनुस्मृतिः 1-49
- यजुर्वेदः 36-17
- अथर्ववेद (पृथ्वी सूक्त): 12

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में प्रयुक्त विशिष्ट क्रियापद

डॉ० विवेक शर्मा

संस्कृत-विभागाध्यक्ष
आर्मी पब्लिक स्कूल, अम्बाला कैंट, हरियाणा

मानव के अन्तस्थल में उमड़े भावों, विचारों एवम् संवेदनाओं को व्यक्तकरने का माध्यम भाषा ही रही है। भले ही, भावों के अभिव्यंजन में भाषाओं की विविधता देखी जा सकती है। इस विषय में आनन्दवर्धन ने भी अपने लक्षणग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में अपना मन्तव्य दिया है:

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः यः समाम्नातः पूर्वः।'

वस्तुतः व्याकरण में वैदुष्यता प्राप्त किए बिना कोई भी कवि एवं गद्यकार अपनी कृति में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। श्रीहर्ष के बहुज्ञ होने का मूल कारण भी उनका व्याकरणशास्त्रीय वैदुष्य ही है। काव्य में गरिमा लाने का प्रमुख कारण सुबन्त पद एवं तिङन्त पद ही होते हैं तथा इन पदों का संयोजन प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से होता है। प्रकृति के दो भेद हैं- नाम प्रकृति और धातु प्रकृति। इसी तरह से प्रत्यय के भी विविध प्रकार हैं, यथा- सुप, तिङ्, कृत्, तद्धित व स्त्री प्रत्यय। ये प्रत्यय अनेक अर्थों को अपने अंदर सहेजे हुए होते हैं, जो प्रकृति के साथ मिलकर एक नए शब्द के रूप में प्रस्फुरित होते हैं और यह प्रकृति और प्रत्यय का संयोग ही एक विशेष रचना की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। मेरे शोध का विषय भी ये प्रकृति एवं प्रत्यय ही हैं तथा प्रकृति में धातु एवं प्रत्ययों में तिङन्त एवं कृदन्त क्रियापदों का विश्लेषण करना ही मेरे शोध का प्रयोजन हैय क्योंकि व्याकरण की दृष्टि से श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' ग्रन्थ महाकाव्य की कोटि में आता है। 2828 श्लोकों में निबद्ध यह महाकाव्य संस्कृत के गौरवपूर्ण महाकाव्यों में अनन्यतम है। भारवि का 'किरातार्जुनीयम्' माघ का शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' ये तीनों ही प्रमुख रचनाएँ हैं, जिन्हें संस्कृतजगत् में 'बृहत्त्रयी' के नाम से जाना जाता है। इस उतरोत्तर श्रेष्ठता के क्रम में जहाँ एक ओर भारवि ने अपनी रचना के द्वारा पहल की है, वहीं माघ ने उसको परिमार्जित करके विकास की राह दिखाई है तथा श्रीहर्ष ने इसे विकास की चरमसीमा तक पहुँचाया है। बृहत्त्रयी में श्रीहर्ष के काव्य को अन्तिम मणि के रूप में स्वीकार किया गया है, तभी तो 'नैषधीयचरितम्' से सम्बन्धित यह लोकोक्ति प्रचलित है:

''तावद्भाभारवेर्भाति: यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।''

अतः यहाँ प्रस्तुत शोधपत्र में मैंने नैषधीयचरितम् में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट तिङन्त एवं कृदन्त क्रियापदों पर विचार किया है, जिसमें से कुछ क्रियापदों का परिचय इस शोधपत्र में दिया जा रहा है।

नैषधीयचरितम् महाकाव्य व्याकरण शास्त्र के गूढ़ एव सूक्ष्म सिद्धान्तों से ओतप्रोत है। महाकवि श्रीहर्ष व्याकरणशास्त्र के पारदृश्वा विद्वान् थे। उनके द्वारा अपनी कृति में यत्र-तत्र स्थलों में किए गए व्याकरणिक प्रयोगों से व्याकरणशास्त्र में उनका वैदुष्य स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में कुछ ऐसे पद्यों का निर्माण किया है जिससे व्याकरण के सूत्रों एवं नियमों

में श्रीहर्ष की सिद्ध हस्तता का ज्ञान सहज ही हो जाता है। अब आगे उनके वैदुष्य का परिचायक प्रथम श्लोक प्रस्तुत है, जो धात्वर्थ के प्रयोग के औचित्य की दृष्टि से द्रष्टव्य है:

''निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां तथाऽऽद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।
नलः सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः''।।

इस श्लोक में श्रीहर्ष द्वारा पठित 'निपीय' शब्द विशिष्टता को लिए हुए है। यहाँ 'निपीय' का अर्थ स्वाद लेकर पीना है, यद्यपि यहाँ 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'पा पाने' धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' सूत्र द्वारा 'क्त्वा' प्रत्यय का नियम है, परन्तु 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वोल्यप्' इस सूत्र से क्त्वा का निषेध होकर 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग हो जाता है। इसके बाद यद्यपि 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' सूत्र से 'ईत्व' प्राप्त होता है, परन्तु 'न ल्यपि' इस सूत्र से यह ईकार आदेश नहीं होता है, अतः इस दृष्टि से यहाँ 'निपाय' शब्द के प्रयोग की औचित्यता थीय क्योंकि यहाँ 'निपीय' के स्थान पर 'प्रदाय' इत्यादि के समान 'निपाय' ऐसा प्रयोग होना चाहिए था, परन्तु कवि ने अपना शास्त्रीय वैदुष्य दिखाते हुए उक्त प्रयोग को 'नि' उपसर्गपूर्वक 'पा' धातु से न मानकर 'नि' उपसर्गपूर्वक दिवादिगणीय 'पीङ् पाने' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय और उसको 'ल्यप्' आदेश करके व्युत्पन्न किया है। यदि उक्त प्रयोग को 'पा पाने' धातु से बनाया जाता तो फिर 'निपाय' ऐसा प्रयोग होता। अर्थ की दृष्टि से भी यह प्रयोग विशेष चमत्कारपूर्ण होने का कारण यह है कि 'पा पाने' धातु का अर्थ तो साधारण रूप से किसी चीज को पीना है, जबकि 'पीङ् पाने' धातु का अर्थ स्वादपूर्वक अथवा सतृष्ण भाव से पीना या ग्रहण करना होता है। इसलिए यहाँ कवि का प्रयोग सोद्देश्य है, अर्थात् बुध लोग नल की कथा को अत्यंत लालसा या उत्कण्ठापूर्वक अथवा सतृष्ण भाव से सुन रहे थे। इस प्रकार कवि ने अपनी वैदुष्यता का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए दिवादिगण की 'पीङ्' धातु से ही 'निपीय' शब्द की उत्पत्ति को स्वीकार किया है।

'आद्रियन्ते' यह आङ् उपसर्गपूर्वक 'दृङ् आदरे' धातु से आत्मनेपद का बहुवचनान्त रूप है। 'निपीय' एवं 'आद्रियन्ते' दोनों का कर्ता समान है। 'निपीय' पूर्वकाल की क्रिया है और इसका सम्बन्ध 'आद्रियन्ते' के साथ है। अतः नल कथा के आस्वादनोपरान्त विद्वान् की अमृत चखने की लालसा भी गौण हो जाती है। इस प्रकार अमृत की अपेक्षा नल की कथा की अतिशय दुर्लभता एवं उत्कृष्टता का द्योतन होता है।

श्रीहर्ष द्वारा रचित यह श्लोक भी द्रष्टव्य है, जिसमें इन्होंने व्याकरण के सूत्रों को व्यावहारिकता प्रदान की है। यह श्लोक 'आशंसायाम् भूतवच्च' सूत्र का विषय है:

''विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजाऽयशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरः स्थितम्।''

यहाँ पर 'अमानि' क्रियापद का विशिष्ट प्रयोग है। दिवादिगण की 'मन ज्ञाने' धातु से 'अमानि' रूप सिद्ध हुआ है। यहाँ 'अमानि' यह लुङ् लकार का रूप है, परन्तु श्रीहर्ष ने यहाँ सामान्य रूप से लुङ् का विधान न करके ''आशंसायां भूतवच्च'' सूत्र के नियमानुसार इसे निष्पन्न माना है। आशंसा पद का अर्थ होता है–'अप्राप्त की अभिलाषा' अर्थात् नल ने अपने केशों को दो भागों में बाँधकर उसे अपना अकीर्ति रूप समझाय नैषधकार के द्वारा केशों में कृष्णता की समता होने के कारण उसे अपयश के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया हैय क्योंकि नल न तो याचक जनों को सुमेरु पर्वत खण्ड-खण्ड करके दे सकते हैं और न ही दान के निमित्त सङ्कल्प जल के रूप में समुद्र को मरुस्थल बना सकते हैं, अतः सम्पूर्ण कीर्ति को प्राप्त न करने के कारण उनकी श्रेष्ठ दाता बनने की अभिलाषा की अप्राप्ति प्रतीत हो रही है। अतः 'अमानि' क्रियापद में आशंसा अर्थ के कारण 'आशंसायां भूतवच्च' सूत्र की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इस श्लोक में राजा नल की प्रजा के प्रति अतिशय उदारता एवं सर्वश्रेष्ठ दानदाता बनने की अभिलाषा व्यक्त होती है।

नैषधकार द्वारा प्रयुक्त अग्रिम श्लोक 'यावत्पुरानिपात्योर्लट्' सूत्र का विषय है:

''अधोविधानात्कमलप्रवालयोः शिरःसु धानादखिलक्षमाभुजाम्।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा पदं किमस्याऽङ्कितमुर्ध्वरेखया''।

यहाँ पर 'पुरा भवति' पद विशिष्टतापूर्ण है, क्योंकि श्लोक के अर्थानुसार यहाँ ब्रह्मा जी के विधानानुसार नल का चरण संपूर्ण राजाओं के मस्तक में स्थापन करने से उच्च स्थान में रहेगा अर्थात् यहाँ 'भू' धातु का सामान्य रूप से भविष्यत् काल के अर्थ में

प्रयोग होना चाहिए, अत: 'उर्ध्वं भविष्यति' ऐसा चरण होना चाहिए था, परन्तु श्रीहर्ष ने इसे सामान्यरूप से न कहकर व्याकरण के 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' इस सूत्र के अनुसार 'पुरा' निपात के प्रयोग के कारण 'भू' धातु से लट् लकार तथा शप् अनुबन्ध एवम् 'श्' व 'प्' का लोप करके निष्पन्न 'भवति' रूप का ही प्रयोग किया है। अत: यहाँ भवति रूप सामान्य लृट् लकार की अपेक्षा अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

अग्रिम श्लोक 'लृट: सद्वा' सूत्र का विषय है, जिसमें भविष्यत् की कल्पना के आधार पर शतृ प्रत्यय का भविष्यत् अर्थ में प्रयोग किया गया है:

''अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा विधेरवन्ध्येच्छतया व्यलासि तत्।
अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणैर्यदस्य पौष्पैरपि धैर्यकञ्चुकम्।।''

इसका अर्थ है नल के साथ दमयन्ती का संयोग कराने वाले ब्रह्मा जी की इच्छा के अमोघ होने से ऐसा हुआ कि कामदेव के पुष्पमय बाणों से भी नल का धैर्यरूप कवच भिन्न हो गया। यहाँ श्रीहर्ष का 'घटयिष्यत:' पद विचारणीय है। भ्वादिगण की 'घट चेष्टायाम्' धातु से यह क्रियापद निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है बनाने वाले। ब्रह्मा जी के विशेषण के रूप में इस क्रियापद का प्रयोग किया गया है। यह शतृ प्रत्ययान्त रूप है। सामान्यत: 'लट: शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' सूत्र के अनुसार पढ़ता हुआ, लिखता हुआ इत्यादि अर्थों को प्रकट करने के लिए वर्तमानकालिक कृदन्त 'शतृ' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'तौ सत्' सूत्र नियमानुसार इन्हें 'सत्' भी कहते है। 'सत्' का अर्थ है 'वर्तमान' या 'विद्यमान'। 'शतृ' प्रत्ययान्त शब्द कर्ता के विशेषण होते है। परन्तु 'घटयिष्यत:' पद में 'वर्तमानकालिक कृदन्त' का प्रयोग न करके 'भविष्यत्काल' के अर्थ में विकल्प से 'लृट: सद्वा' सूत्र के अनुसार 'शतृ' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। यहाँ मिलाने वाले ब्रह्मा का दृढ़ निश्चय प्रतीत होता है। नल का दमयंती के साथ संयोग अभी हुआ भी नहीं है तथा नल ने दमयंती को देखा भी नहीं है, ब्रह्मा जी ने अभी नल-दमयंती का मेल भी नहीं कराया, केवल भविष्य की कल्पना की गई है। अत: भविष्यत् अर्थ में 'शतृ' प्रत्यय का प्रयोग श्रीहर्ष की व्याकरणसूत्रों के प्रति निष्ठा का सूचक है।

प्रस्तुत अग्रिम श्लोक 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र के अर्थ से सम्बन्धित है। इस सूत्र के अनुसार सुबन्त और तिङन्त की पदसंज्ञा होती है। व्याकरणशास्त्र की यह प्र सिद्ध संज्ञा है। शास्त्र के नियमों को देखते हुए कोई भी शब्द तब तक प्रयुक्त नहीं हो सकता, जब तक वह पारिभाषिक रूप से पदसंज्ञक न हो जाए– 'अपदं न प्रयुञ्जीत'। श्रीहर्ष ने किस प्रकार इस प्र सिद्ध व्याकरण संज्ञा को राजा नल के व्यवहार में चरितार्थ किया है, इसके उदाहरणार्थ निम्न श्लोक द्रष्टव्य है:

''क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता, व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाऽभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमा नामपदं बहु स्यात्।।''

उक्त पद्य में महाकवि श्रीहर्ष ने अपनी वैदुष्यता का परिचय देते हुए व्याकरण की प्रथमा विभक्ति की तुलना तेजस्वी, बलशाली एवं सौन्दर्य की प्रतिमा नल से की है। हंस कहता है कि यदि साधु या सज्जनपुरुषों को श्रेणियों में विभाग या विभक्त कर दिया जाए तो 'नल' ही वह प्रथम व्यक्ति होगा, जो अपने पराक्रम के विलासों से बहुत से शत्रुस्थानों को वश में करने में क्षम या समर्थ है। इसका अर्थ व्याकरण पक्ष में यह है कि यदि साधु विभक्तियों पर विचार किया जाए तो प्रथमा नाम से प्र सिद्ध वह विभक्ति होगी जो सु, औ, जस् (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) के विलासों के द्वारा बहुत से नाम, प्रातिपदिक पदों को सिद्ध करने में क्षम या समर्थ है। व्याकरणशास्त्र में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' सूत्र के नियमानुसार सभी विभक्तियों में से किसी विभक्ति विशेष की प्राप्ति न होने पर प्रातिपदिक अर्थ में सामान्यत: 'प्रथमातिक्रमे कारणाभाव:' इस न्यायानुसार प्रथमा विभक्ति का प्रयोग तो होता ही है। वह प्रथमा विभक्ति ही सु, औ, जस् रूप प्रत्ययों के लोप, दीर्घ तथा वृद्धि आदि कार्यों के विलास से 'प्रातिपदिक' पद को सिद्ध करने में समर्थ होती है। किसी विभक्तिविशेष की आकांक्षा न रहने पर प्रयोग की योग्यता 'प्रथमा विभक्ति' या 'सु' प्रत्यय में ही होती है, उसी प्रकार राजा नल के अर्थ में यदि महापुरुषों को श्रेणियों में विभक्त कर दिया जाए तो वही व्यक्ति प्रथम माना जाएगा, जो कि अपने ओज एवं बल से असंख्य शत्रुओं के पदों को अपने अधीन करने में समर्थ हुआ है। उक्त श्लोक में 'स्वौजसां' पद नल के पक्ष में 'स्व' अर्थात् 'अपने' एवं 'ओजसा' अर्थात् 'प्रताप से' अर्थ में एवं व्याकरणपक्ष में 'सु औ जस्' आदि प्रत्ययों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार श्रीहर्ष ने 'व्यक्तिस्तदा सा' इस चरण में 'सा' पद का प्रयोग नल नाम से विशिष्ट व्यक्ति के लिए एवं सु आदि से युक्त प्रथमा विभक्ति के लिए किया है। 'नल' शब्द पुंलिङ्ग एवं 'विभक्ति'

स्त्रीलिंग है। अतः यहाँ 'सा' पद का भी चामत्कारिक प्रयोग किया गया है। इसके लिए हर्ष ने 'वि' उपसर्गपूर्वक 'अञ्च' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करके निष्पन्न 'व्यक्ति' पद का प्रयोग किया है, अतः यह स्त्रीलिंग प्रयोग है। इस प्रकार 'सा' इस पद से 'नल' नामक व्यक्ति एवं 'प्रथमा विभक्ति' दोनों का संकेत मिलता है। इसी सन्दर्भ में 'क्षमा' पद को भी इसी प्रकार समझा जा सकता है। इस श्लोक के माध्यम से विभक्ति शब्द के प्रयोग का निदर्शन श्रीहर्ष की व्याकरणविषयकप्रतिबद्धता को सूचित करता है।

अग्रिम श्लोक 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र का विषय है। इसमें व्याकरण के नियम के अनुसार इन्द्र को स्थानी व नलरूप को आदेश बनाकर चित्रित किया गया है :-

''स्वं नैषधादेशमहो विधाय कार्यस्य हेतोरपि नानलः सन
किं स्थानिवद्भावमधत्त दुष्टं तादृक्कृतव्याकरणः पुनः सः?''

'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र के अनुसार आदेश स्थानी के तुल्य होता है, किन्तु स्थानी के किसी अल् के आश्रय से यदि कोई व्याकरण सम्बन्धी विधान करना होता है तो आदेश स्थानिवद्भाव को प्राप्त नहीं होता है। इन्द्र का दमयन्ती की प्राप्ति के लिए नल का वेश धारण कर स्वयम्वर में पहुँचने पर श्रीहर्ष के द्वारा इन्द्र के प्रति कहे गए श्लोक में उक्तसूत्रको अर्थवैचित्र्यता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन्द्र पक्ष में- ''कार्य- साधन के लिए अपने आप कोनलरूप आदेश बनाकर (नानल) अर्थात् नल न होते हुए भी साक्षात् नल बनकर भीमिथ्याभाषी होकर (स्थानी) इन्द्र के समान भाव को परस्त्रीविषयक अथवा वास्तविक नीच भाव को धारण किया था, यह आश्चर्य हैय क्योंकि नल का रूप धारण कर लेने पर भी इन्द्र ने अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ा तो क्या यह स्थानिवद्भाव दोषयुक्त नहीं हुआ। नल का रूप धारण कर लेने पर तो इन्द्र को नल के समान साधु स्वभाव का हो जाना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। पक्षान्तर में - प्र सिद्ध व्याकरण शास्त्र के निर्माता होकर भी विद्वान् इन्द्र ने भी अनल्विधि में क्या दूषित स्थानिवद्भाव न किया अर्थात् जिस प्रकार अल् को आश्रित करके स्थानिवद् भाव कर देने पर वह दोषयुक्त हो जाता है, उसी प्रकार (नानल्) अर्थात् अल् होते हुए भी दमयंती लाभरूप कार्य के लिए 'अनल् विधौ' इससे निषिद्ध स्थानिवद्भाव को नलरूप आदेश होकर दूषित स्थानिवद्भाव को किया, यह आश्चर्य है। इस श्लोक में प्रयुक्त 'नानल' पद का भी विशिष्ट प्रयोग है। इस पद की दो प्रकार से व्युत्पत्ति की गई हैरू इन्द्र पक्ष में – 'न नलः' इति 'अनलः', एवं 'न अनलः' इति 'नानलः' अर्थात् जो नल नहीं है वह अनल है और जो अनल नहीं है, वही नल है। व्याकरण पक्ष में 'न अल्' इति 'अनल्', न अनल् इति 'नानल्' अर्थात् जो अल् का आश्रयभूत नहीं है, वह अनल् है, और जो अल् के आश्रय से रहित नहीं है, वह अल् है। इस प्रकार व्याकरणपक्ष में उस माहेन्द्रव्याकरणकर्ता इन्द्र ने 'अनल् विधौ' इससे निषिद्ध स्थानिवद्भाव को किया है, यह आश्चर्य है।

श्रीहर्ष का निम्न प्रयोग भी द्रष्टव्य है, इसे श्रीहर्ष का विचित्र व अपाणिनीय प्रयोग भी कहा जा सकता है:-

''हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य न।
त्रपा हरीणामिति नम्रिताऽऽननैर्न्यवर्ति तैरर्धनभः कृतक्रमैः।।''

यहाँ पर महाकवि श्रीहर्ष के इस श्लोक में 'अक्रामि' पद का प्रयोग किया है। विष्णु जी ने इस श्लोक के अर्थानुसार एक चरण से लंघन किया था। 'यह लंघन किया था' इसकी उत्पत्ति श्रीहर्ष के अनुसार 'क्रमु पादविक्षेपे' इस भौवादिक धातु से निष्पन्न 'अक्रामि' पद से हुई है। 'अक्रामि' पद लुङ् लकार का है तथा यहाँ 'चिण् भावकर्मणोः' इस सूत्र से 'चिण' एवम् लकार संबंधी तकार का 'चिणोलुक' सूत्र से लोप तथा और अडागम करके 'अक्रामि' पद की सिद्धि मानी जाती है, परन्तु 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इस सूत्र के अनुसार 'आङ्' पूर्वक 'चम' धातु को छोड़कर 'मान्त' व 'उदात्तोपदेश' धातु की उपधा को चिण् तथा ञ्ति, णित, कित् के परे वृद्धि नहीं होती है। इसलिए 'अक्रामि' पद को नैषधीयचरितम् का अपाणिनीय प्रयोग भी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती। ध्यान रहे कि यदि यहाँ वृद्धि न भी मानी जाए तो 'चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम' इस सूत्र से वैकल्पिक दीर्घ विधान से भी 'अक्रामि' इस प्रयोग की सिद्धि हो सकती है। इस प्रकार की व्याकरणसम्मत गुत्थियाँ नैषधीयचरितम् में यत्र-तत्र देखने को मिलती है।

प्रस्तुत अग्रिम श्लोक एक ही क्रियापद का तीनों वचनों में समान प्रयोगरूपी व्याकरणसम्बन्धी प्रभूतविशिष्टता से युक्त है:

''अपि लोकयुगं दृशावपि श्रुतदृष्टा रमणीगुणा अपि।
श्रुतिगामितया दमस्वसुर्व्यतिभाते सुतरां धरापते।।''

उक्त श्लोक में 'व्यतिभाते' इस एक ही क्रियापद का प्रयोग कितनी विलक्षणता से महाकवि हर्ष ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य के एक ही श्लोक में एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन तीनों रूपों में किया है। यह क्रियापद 'वि' उपसर्गपूर्वक 'भा दीप्तौ' धातु से 'विनिमय' अर्थ में 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' सूत्र से आत्मनेपद में निष्पन्न हुआ है। कर्म व्यतिहार का अर्थ है – अन्य के योग्य काम को जब कोई अन्य करता है। 'व्यतिभाते' का अर्थ है–'परस्परोत्कर्षेण विनिमयेन वा भाते'। इस श्लोक का अर्थ है कि दमयंती के संबंध से पितृकुल के समान ही मातृकुल तथा मातृकुल के समान ही पितृकुल सुशोभित होता है। यह सादृश्य श्रुतिगामी होने से ही विशिष्ट होता है और जगत् प्र सिद्ध त्वरूप मातृकुल का सादृश्य पितृकुल की अपेक्षा तथा पितृकुल का सादृश्य मातृकुल की अपेक्षा से है। इस प्रकार सादृश्यता से इनमे विनिमय द्योतित होता है। इसी प्रकार दमयंती के नेत्र भी कर्णपर्यन्त विस्तृत होने के कारण परस्परोत्कर्ष से शोभायमान होते हैं। अत: दाहिने नेत्र के विशालस्वरूप शोभा को वाम नेत्र तथा वामनेत्र की विशालस्वरूप शोभा को दाहिना नेत्र स्वीकार करता है। इस प्रकार से पुराण आदि में सुने गए, एवं किन्हीं स्त्रियों में देखे गए दमयन्ती के सौन्दर्य- औदार्य आदि स्त्रीगुण लोक से श्रवणविषय होने से परस्पर में अत्यंत शोभित होते हैं।

यहाँ पर एकवचन रूप में व्याकरण की दृष्टि से 'वि' उपसर्गपूर्वक 'भा' धातु से शप्, शप् का लुक्, 'टित् आत्मनेपदानां टेरे' से टि को एत्व करके 'व्यतिभाते', एवं द्विवचन में वि्अति्भा्आताम् इस अवस्था में सवर्ण दीर्घ, टेरेत्व करके 'व्यतिभाते' एवं बहुवचन में भी 'आत्मनेपदेष्वनत:' सूत्र से '७' को 'अत्' आदेश तथा 'टि' को एत्व विधान करके भी 'व्यतिभाते' रूप की सिद्धि प्राप्त हुई है, अत: यह एक अनूठा वैयाकरणिक प्रयोग है।

इसी विशिष्ट भाव से युक्त बीसवें सर्ग का निम्न श्लोक भी द्रष्टव्य है:-

''अपयातमितो धृष्टे! धिग् वामश्लीलशीलताम्।
इत्युक्ते चोक्तवन्तश्च व्यतिद्राते स्म ते भिया।।''

उक्त श्लोक का अर्थ है कि 'ढीठ छोकरियों, यहाँ से भाग जाओ, तुम दोनों की अश्लील बोलने की गँवारु प्रवृत्ति को धिक्कार है, यह कहे जाने पर डरकर वे दोनों और कहने वाले कञ्चुकी भी वहाँ से पलायित हो गए। यहाँ पर 'व्यतिद्राते स्म' इस क्रियापद में द्विवचन व बहुवचन का श्लेष है। दोनों सखियों के वहाँ से जाने के लिए द्विवचन में 'व्यतिद्राते' क्रियापद का प्रयोग है एवं बहुत से कञ्चुकियों के वहाँ से पलायन करने अर्थ में बहुवचन में '७' को 'अत' एवं 'टि' को 'एत्व' करके निष्पन्न बहुवचन में 'व्यतिद्राते' रूप का प्रयोग हुआ है। 'उक्ते' पद यहाँ सप्तमी विभक्ति के एकवचन का भी हो सकता है एवं 'ते भिया' इस चरण में 'ते' पद का अर्थात् सखियों के लिए प्रयुक्त 'तद्' शब्दरूप के स्त्रीलिङ्ग की प्रथमा विभक्ति, द्विवचन का विशेषण भी हो सकता है।

यद्यपि 'व्यतिद्राते' प्रयोग को यहाँ 'द्राति' धातु के परस्मैपदी होने के कारण कुछ विद्वानों ने 'चिन्त्य' कहा है, उनके अनुसार यहाँ 'व्यतिद्रान्ति स्म' का प्रयोग अधिक उत्तम है, परंतु मल्लिनाथ ने इसे 'द्रा कुत्सायाम् गतौ वा' धातु से लट् लकार में 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' सूत्र के नियमानुसार निष्पन्न आत्मनेपद प्रयोग बताया है। कुछ अन्य विद्वानों ने इस आत्मनेपद के प्रयोग में भी चिन्ता व्यक्त करते हुए तर्क दिया है कि 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' सूत्र द्वारा जो व्यतिहार अर्थ में कर्ता आत्मनेपद होता है, उसका 'न गतिहिंसार्थेभ्य:' द्वारा निषेध होता हैय क्योंकि इस सूत्र के अनुसार गत्यर्थक व हिंसार्थक धातुओं से आत्मनेपद का निषेध होता है, फिर भी सुखावबोधा (जिनराज) व्याख्या में इस प्रयोग को 'यथाकथञ्चित्समर्थनीय' माना है। उनके अनुसार यहाँ 'व्यतिद्राते' द्वारा बाहर जाने मात्र की विवक्षा है, गत्यर्थता की नहीं। 'बहिर्भाविमात्रविवक्षायां गत्यर्थत्वाभावादात्मनेपदमिति यथा कथञ्चित्समर्थनीयम्'। अत: इस तर्क के अनुसार इस प्रयोग के साधुत्व के विषय में संदेह नहीं है। इस प्रकार श्रीहर्ष द्वारा रचित नैषधीयचरितम् ज्ञानपिपासुओं के लिए अमृततुल्य है, जहाँ एक-एक क्रियापद में व्याकरणगुत्थियों को सुलझाते हुए उनके ज्ञान में वृद्धि होती है।

प्रस्तुत अग्रिम श्लोक 'आशंसायांभूतवच्च' सूत्र का विषय है:

''तदहं विदधे तथा तथा दमयन्त्या: सविधे तव स्तवम्।
हृदये निहितस्तया भवानपि नेन्द्रेण यथापनीयते।''

श्रीहर्ष ने इस श्लोक को हंस के द्वारा नल के लिए इस प्रकार कहलवाया है कि मैं दमयन्ती के समीप आप की ऐसी प्रशंसा करूँगा कि दमयन्ती के हृदय में स्थित आपको इन्द्र भी नहीं हटा सकेंगे। यहाँ 'विदधे' व 'अपनीयते' दोनों क्रियापदों में लट् लकार का प्रयोग भविष्यत् अर्थ में 'आशंसायांभूतवच्च' सूत्र के अनुसार किया गया है। यहाँ लट् लकार का वैकल्पिक प्रयोग हुआ है। ये पद हंस की कर्त्तव्यपरायणता, नल के प्रति अतिशय आदर और अत्यधिक कृतज्ञता को अभिव्यक्त करते हैं। हंस नल से वार्ता करके

दमयन्ती के पास जाता है, यह वर्तमान का समीपवर्ती भविष्यत् काल है। अत: 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानाद्वा' सूत्र से लट् लकार की प्राप्ति थी, परन्तु नल का दमयंती के पास जाकर उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न करने की अप्राप्त अभिलाषा के कारण यहाँ पर 'आशंसायाम् भूतवच्च' सूत्र से वैकल्पिक लट् लकार का प्रयोग ही सम्यक् प्रतीत होता है।निम्न श्लोक 'यावत्पुरानिपात्योर्लट्' सूत्र का विषय है :-

''अये कियद्यावदुपैषि दूरं व्यर्थं ? परिश्राम्यसि वा किमर्थम्।

उदेति ते भीरपि किन्नु बाले! विलोकयन्त्या न घना वनाऽऽली:।।

इस श्लोक के अनुसार जब हंस ने पसीने की बूँदों से शोभित दमयंती को देखा, तब मनुष्य की सी वाणी में कहा- अरी दमयंती कितनी दूर तक चली आती रहोगी। हे बाले, घनी वनपंक्तियों को देखते हुए तुम्हें डर भी क्यों नहीं लग रहा। उक्त श्लोक में 'आओगी' इस क्रिया के लिए 'उप्एषि' में ''एत्येधत्यूठ्सु' इस सूत्र से वृद्धि होकर निष्पन्न 'उपैषि' रूप का प्रयोग हुआ है, यद्यपि अर्थ के अनुसार भविष्यत् अर्थ में 'अपैष्यसि' इस क्रियापद का प्रयोग होना चाहिए था, परन्तु ''यावत्पुरानिपात्योर्लट्'' इस सूत्र के अनुसार 'यावत' निपात के योग के कारण भविष्यत् अर्थ में भी लट् लकार का प्रयोग किया गया हैय क्योंकि दमयंती ने यहाँ चलने की क्रिया को आरम्भ तो किया हुआ है, परंतु भविष्य में उसके पँहुचने की सीमा का निर्धारण नहीं हुआ है। यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह कितनी दूर जाकर ठहरना स्वीकार करेगी। अत: भविष्य के विषय में संदेह होने पर कवि ने 'यावत' निपात का प्रयोग करके काल की अपेक्षा की संभावना को ही समाप्त कर दिया है।

अग्रिम श्लोक 'लिप्स्यमान सिद्ध ौ च' सूत्र का विषय है :-

''तस्यैव वा यास्यसि किं न हस्तं दृष्टं विधे: केन मन: प्रविश्य।

अजातपाणिग्रहणाऽसि तावद्रूपस्वरूपाऽतिशयाऽऽश्रयश्च।।

यहाँ हंस दमयन्ती को नल प्राप्ति के प्रति आशायुक्त बनाता हुआ कहता है कि आप नल के हाथों में क्यों नहीं पडेग्गी अर्थात् अवश्य नल को प्राप्त करेंगीय क्योंकि आपका सौन्दर्य अद्‌भुत है, आप अपने सौन्दर्य से नल को वशीकृत करने में समर्थ है। अत: आपको नैराश्य को प्राप्त नहीं होना चाहिए। उक्त श्लोक में 'प्राप्त करोगी' इस अर्थ के लिए 'यास्यसि' क्रियापद में 'या प्रापणे' धातु से अभीष्ट की सिद्धि गम्यमान होने से 'लिप्स्यमान सिद्धौ च' सूत्र से वैकल्पिक लृट् लकार का प्रयोग हुआ हैय क्योंकि प्रस्तुत श्लोक में दमयंती का सौन्दर्य अतिशय और नलरूप अभीष्ट की सिद्धि गम्य है। अत: भविष्य में दमयंती को नल की प्राप्ति होने की पूर्ण संभावना है।

''वेलाऽतिगस्त्रैणगुणाऽब्धिवेणी न योगयोग्याऽसि नलेतरेण।

सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन।।''

इसका अर्थ है कि असंख्य स्त्रियों के गुण रूप समुद्र की प्रवाह सरीखी आप, नल से भिन्न पुरुष से संबंध के योग्य नहीं हैय क्योंकि कोमल चमेली की माला को अत्यंत कठोर कुश की रस्सी से नहीं गूँथा जाता है। यहाँ 'गूँथने' के लिए श्रीहर्ष ने 'सन्दर्भ्यते' इस क्रियापद को चौरादिक 'दृभी भये' धातु से लट् (कर्मवाच्य) में निष्पन्न माना है। यह धातु पाणिनि के मतानुसार डरना, सम्बन्ध लगाना एवं सन्दर्भ लगाना आदि अर्थो में प्रयुक्त की जाती है। तुदादिगण की 'दृभी ग्रन्थे' धातु से 'सन्दर्भ्यते' क्रियापद को निष्पन्न नहीं माना गया है, क्योंकि श्रीहर्ष का मुख्य लक्ष्य फूलों की माला को धागे में गूँथना नहीं है, अपितु नल का दमयन्ती के साथ संबंध बताना है। अत: सम्बन्ध लगाने अर्थ में दृभी (भये) चुरादिगण की धातु का ही प्रयोग किया जाता है। यदि यहाँ तुदादिगण की दृभी ग्रन्थे धातु का प्रयोग किया जाता तो 'सन्दृभ्यते' रूप ही निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ मात्र गूँथना ही होता है। अत: यह भी एक सार्थक प्रयोग है। यद्यपि यहाँ टीकाकारों का आपसी मतभेद भी है, क्योंकि विद्याधर तथा मल्लिनाथ जैसे टीकाकारों ने पाठान्तर्गत चुरादिगण की धातु से निष्पन्न 'संदृभ्यते' रूप को ही श्लोक में प्रयुक्त किया है।

अग्रिम श्लोक में लिङ् लकार के प्रयोग से कवि ने दमयंती के अमर्ष और भविष्य में नल-दमयंती के संयोग की सम्भावना को अभिव्यक्त किया है-

''अभ्यर्थनीय: स गतेन राजा त्वया न शुद्धान्तगतो मदर्थम्।

प्रियाऽऽस्यदाक्षिण्यबलात्कृतो हि तदोदयेदन्यवधूनिषेध:।।''

इसका अर्थ यह है कि यहाँ से गए हुए तुम्हें अन्तः पुर में रहे हुए राजा से मेरे लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उस समय प्रिय स्त्रियों के सामने उनके मन के अनुसार चलने के विचार से बलात् किया गया दूसरी स्त्री का निषेध उत्पन्न होगा।

यहाँ 'उत्पन्न होगा' इस अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए श्लोक में 'इण् गतौ' धातु से विधिलिङ् लकार के 'उदयेत' इस क्रियापद का प्रयोग किया है। अष्टाध्यायी में सामान्यतः लिट् लकार का प्रयोग 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' इस सूत्र के अनुसार विधि अर्थात् प्रेरणा, निमन्त्रण, आमन्त्रण अर्थात् कामचारानुज्ञा, अधीष्ट अर्थात् विनय, संप्रश्न अर्थात् संप्रधारण और प्रार्थना अर्थ में विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है। अतः यदि विधि अर्थ में इस रूप को प्रयुक्त मान लिया जाए, तो दमयन्ती और हंस का स्वामी- सेवक भाव ही स्पष्ट होता है, जो कि भविष्य में नल-दमयंती के मिलने की सम्भावना को स्पष्ट करता हैय क्योंकि हंस नल का सेवक है एवं नल-दमयन्ती के मिलने के बाद उसका दमयन्ती का भी सेवक बनना निश्चित ही है एवं यदि अमर्ष अर्थ में अर्थात् असंभावना अर्थ में इसे स्वीकार किया जाए तो 'अनवक्लृप्यमर्षयोरकिंवृत्ते अपि' इस सूत्र से असंभावना अर्थ में ही इसे स्वीकारना होगा, क्योंकि तब नल अन्य रानियों के सम्मुख रहने पर दमयन्ती सम्बन्धी नल की बात को अनसुना भी कर सकता है। अतः यहाँ 'उदयेत' क्रियापद सामान्य की अपेक्षा विशिष्ट स्थान रखता है।

इस प्रकार नैषधीयचरितम् में यत्र-तत्र स्थलों पर श्रीहर्ष ने वैयाकरणसम्बन्धी गुत्थियों से खेलने का प्रयास किया है। इस प्रकार श्रीहर्ष की विविध विषयों में वैदुष्यमत्ता, काव्यशैली में भव्यता, उदात्तता, कल्पनाशीलता, पदलालित्य तथा अर्थप्रौढ़ता के प्रभाव के कारण नैषधीयचरितम् महाकाव्य विद्वानों की परीक्षा की एक कसौटी बन गया है। नैषधीयचरितम् के विषय में विद्वानों का कथन है कि संस्कृत के अपकर्ष काल में आलोचकों की दृष्टि श्रीहर्ष के महाकाव्य की ओर गड़ी हुई हैय क्योंकि अंधकार युग को आलोकित करने वाला यह गौरवयुक्त प्रशंसनीय महाकाव्य है। अतः यह कहना उचित प्रतीत होता है कि नैषध अज्ञानरूप अंधकार से मुक्ति प्रदान करने वाला प्रकाश-पुंज है। यह महाकाव्य ज्ञान का अथाह सागर हैय क्योंकि इसमें अपने समस्त ज्ञान-भण्डार का प्रयोग उन्होंने इस प्रकार से किया है कि नैषध केवल काव्य ही न रहकर विविध विषयों के ज्ञान का एक बृहद्-कोश बन गया है। श्रीहर्ष ने स्वयं अपने काव्य के विषय में घोषणा ही की हुई है कि:

''ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु।''

अर्थात् मैनें प्रयत्नपूर्वक इस महाकाव्य में व्याकरणात्मक गुत्थियाँ संजोई हैं, जिससे कोई पण्डितम्मन्य अर्थात् अपने को सुविज्ञ मानने वाला खल अवज्ञापूर्वक इस ग्रन्थ में खिलवाड़ न कर सके।''

इसलिए ही नैषधीयचरितम् महाकाव्य के विषय में यह प्र सिद्ध लोकोक्ति चरितार्थ है–

'नैषधम् विद्वदौषधम्'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ध्वन्यालोक-अभिनवगुप्तविरचित लोचन टीकासहित, निर्णयसागर प्रैस, मुम्बई, 1891
2. नैषध परिशीलन-डॉ. चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तान एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, 2009
3. नैषध समीक्षा-प्रो. देवनारायण झा, नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली, 2001
4. नैषधीयचरितम्-आचार्य शेषराज शर्मा 'रेग्मी', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नैषधीयचरितम्-कृष्णदास संस्कृत सीरिज 52, जीवातु संस्कृत कमैंटरी आफ मल्लिनाथ, 1987
6. पाणिनीय धात्वनुक्रम कोश-अवनीन्द्र कुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, 1960
7. वैयाकरण सिद्ध ान्तकौमुदी-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1961

1. ध्वन्यालोक – 1.1
2. नैषधीयचरितम् (नैषध.) - 1.1
3. पाणिनीय धात्वनुक्रम –ृ कोश (पा. धा.) - भ्वादिगण- 659, परस्मैपदी, अनिट्

4. पाणिनीयाष्टाध्यायी (पा.) - 3.4.21
5. पा. - 7.1.37
6. पा. - 6.4.66
7. पा. - 6.4.69
8. पा. धा. - दिवादिगण - 32, आत्मनेपदी, अनिट्
9. पा. धा. - तुदा.-120, आत्मनेपदी, सेट्
10. पा. - 3.3.132
11. नैषध. - 1.16
12. पा. धा. - दिवादिगण-65, आत्म., अनिट्
13. पा. - 3.3.132
14. नैषध. - 1.18
15. पा. - 3.3.4
16. पा. - 3.3.14
17. नैषध. - 1.46
18. पा. धा. - भ्वादिगण - 514, आत्मनेपदी, सेट्
19. पा. - 3.2.124
20. पा. - 3.2.127
21. पा. - 1.4.14
22. नैषध.-3.23
23. पा.-2.3.46
24. पा. धा. - भ्वादिगण-604, उभय., सेट्
25. पा. - 1.1.56
26. नैषध. - 10.136
27. नैषध. - 1.70
28. पा. धातु. - भ्वादिगण -319, परस्मैपदी, सेट्
29. पा. – 3.1.66
30. पा. - 6.1.103
31. पा. - 7.3.34
32. पा. - 6.4.93
33. नैषध. – 2.22
34. पा. धा. - अदादिगण-44, परस्मैपदी, अनिट्
35. पा. - 1.3.14
36. पा. - 3.4.79
37. पा. - 7.1.5
38. नैषध. - 20.138
39. पा. - 1.3.15
40. पा. - 3.3.132
41. नैषध. - 2.47
42. पा. - 3.3.31

43. नैषध. - 3.13
44. पा. - 6.1.89
45. पा. - 3.3.7
46. नैषध. - 3.47
47. पा. धा. - अदादिगण 42, परस्मैपदी, सेट्
48. नैषध. - 3.49
49. पा. धा. - चुरादिगण 246, उभयपदी, सेट्
50. पा. धा. - तुदादिगण 34, परस्मैपदी, सेट्
51. पा. धा. - तुदादिगण 34, परस्मैपदी, सेट्
52. नैषध. - 3.92
53. पा. धा. - अदादिगण 38, परस्मैपदी, अनिट्
54. पा. - 3.3.161
55. पा. - 3.3.145
56. नैषध. – कविप्रशस्ति – तृतीय श्लोक

अशोक एक महान सम्राट (268-232 B.C.)

डॉ० शिवेंदु आलोक

पीएचडी मगध यूनिवर्सिटी बोध गया बिहार

सारांश

अशोक बिंदुसार का बेटा था। अपने पिता के शासन के दौरान वह तक्षिला और उज्जैन का राज्यपाल था। अपने भाइयों को सफलतापूर्वक हराने के बाद अशोक 268 B . C. के लगभग सिंहासन पर बैठा। अशोक के राजगद्दी पर पद ग्रहण(273 B. C.) तथा उसके वास्तविक राज्याभिषेक(268 B . C.) में चार साल का अन्तराल था। अत:, उपलब्ध साक्ष्यों से यह पता चलता है कि बिंदुसार की मृत्यु के बाद राजगद्दी ''अशोक के जीवन के सभसे बड़ घटना कलिंग के लड़ाई रहल जेकरे बाद ऊ लड़ाई आ हत्या से बैराग ले के बौद्ध धरम अपना लिहलें आ शांति के परचार में लाग गइलें। अशोक के समय में तीसरका बौद्ध संगीति पाटलिपुत्र में भइल आ ऊ भारत से बाहर के देस सभ में बुद्ध के उपदेश फइलावे खातिर धर्मप्रचारक भेजलें। अशोक कय जगह प खम्भा गड़ववलें जिनहन प नैतिक उपदेश खोदवावल रहल। इन्हन के आज अशोक स्तंभ कहल जाला। भारत के राष्ट्रीय चीन्हा सारनाथ के अशोक स्तंभ से लिहल गइल बाटे।

अशोक का परिवार

अशोक की माँ का नाम सुभदरंगी था। उसकी पत्नी का नाम देवी या वेदिसा था, जोकि उज्जयिनी की राजकुमारी थी। उसकी दो अन्य पत्नियों के नाम असंधिमित्रा व करुवकी थे। महेंद्र, तिवारा (सिर्फ एक जिसका अभिलेख में वर्णन किया गया है), कुणाल और तलुका अशोक के मुख्य बेटों में थे। इसकी दो बेटियाँ संघमितरा व चारुमति थीं।

कलिंग के साथ युद्ध

अशोक ने कलिंग पर अपने शासन काल के 9वें साल में जीत हासिल की। कलिंग वर्तमान ओड़ीशा था। अशोक ने कलिंग पर उसके युद्ध कौशल क्षेत्र की वजह से आक्रमण किया। कलिंग युद्ध एक भयावह घटना थी जिसका उल्लेख शिलाराजाज्ञा में किया गया है। लगभग, 1.5 लाख लोग घायल हुए जबकि कई हजार लोग युद्ध के दौरान मारे गए द्यइस भयावह घटना ने अशोक पर गहरा प्रभाव डाला और उसके हृदय को परिवर्तित कर दिया। उसने कभी युद्ध ना करने की शपथ ली। उसने अब दिग्विजय के ऊपर धर्मविजय को वरीयता दी।

इतिहास में अशोक का स्थान

अशोक ने लोगों को जियो व जीने दो सिखाया। उसने जानवरों के प्रति सहानुभूति पर बल दिया। उनकी शिक्षा ने पारिवारिक संस्था तथा वर्तमान सामाजिक वर्ग पर बल दिया द्यअशोक देश में राजनीतिक एकीकरण लाये। उसने इन्हें एक धर्म, एक भाषा, तथा व्यवहारिक दृष्टि से एक लिपि जिसे ब्रहमी कहा गया में सीमित किया जिसका इस्तेमाल अशोक के अभिलेख में किया गया है। अशोक ने अपने उत्तराधिकारियों को विजय व आक्रमण की नीति को त्यागने के लिए कहा।

अशोक व बौद्ध धर्म

अशोक ने बौद्ध धर्म को अपने शासन काल के 9वें साल में एक भिक्षु लड़का जिसका नाम निगरोध से प्रेरित होकर समाविष्ट किया। अशोक ने बौद्ध धर्म को उपगुप्ता नामक बौद्ध भिक्षु से प्रभावित होकर समाविष्ट किया। अशोका ने अपने भबरू राजाज्ञा में कहा है कि उसे बौद्ध, संघ तथा धम्मा पर पूर्ण विश्वास है द्यउसने अपने संदेशों को जन जन तक पहुंचाने के लिए उन्हें शिला राजाज्ञा तथा स्तम्भ राजज्ञों पर उत्कीर्ण करवाया। अशोक ने शांति तथा सत्ता बनाए रखने के लिए एक बड़ी और शक्तिशाली सेना बनाई। अशोक ने अपने दोस्ताना संबंध एशिया, यूरोप के अन्य राज्यों तथा आर्थिक संरक्षित बौद्ध धर्म मंडलों से बढ़ाए। चोल तथा पाण्डड राज्यों और ग्रीक राजाओं द्वारा शासित पाँच राज्यों में अशोक द्वारा धर्म प्रचारक मण्डल भेजे गए द्यउसने के"लोन और सुवर्णभूमि (बर्मा) और दक्षिण पूर्व एशिया के कई भागों में भी धर्म प्रचारक मण्डल भेजे।

बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेने के बाद अशोक के जीवन में अनेक परिवर्तन आये जो निम्नलिखित हैं-

- अशोक ने अहिंसा तथा सदाचार पर चलना प्रारंभ कर दिया।
- अशोक ने मांस-भक्षण त्याग दिया तथा राजकीय भोजनालयों में मारे जाने वाले पशुओं की संख्या कम कर दी गयी। आखेट तथा विहार यात्रायें रोक दी गयी और उनके स्थान पर धर्म यात्राओं का प्रारंभ हुआ।
- इन धार्मिक यात्राओं के दौरान वह देश के विभिन्न भागों के लोगों से मिला तथा उन्हें धम्म के विषय में बताया।
- अशोक महात्मा बुद्ध के चरण-चिन्हों से पवित्र हुए स्थानों में गया तथा उनकी पूजा की। महात्मा बुद्ध का जीवन परिचय।
- अशोक ने सर्वप्रथम बोधगया की यात्रा की। इसके बाद अपने अभिषेक के 20 वें वर्ष वह लुंबिनी ग्राम में गया। उसने वहां पत्थर की सुदृढ दीवार बनवाई तथा शिला-स्तंभ खड़ा किया। चूँकि वहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, अतः लुंबिनी ग्राम कर-मुक्त घोषित किया गया तथा केवल 1⁄8 भाग लेने की घोषणा की गयी।
- अशोक ने नेपाल की तराई में स्थित निग्लीवा में कनकमुनि (एक पौराणिक बुद्ध) के स्तूप को सम्बर्द्धित एवं द्विगुणित करवाया।

अशोक को 84 हजार स्तूपों के निर्माता के रूप में स्मरण किया जाता है।

अशोक के अभिलेख इस बात के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि वह बौद्ध मतानुयायी था, अतः अब किसी को उसके बौद्ध होने में संदेह करने की जरुरत नहीं है।

अशोक को बौद्ध धर्मावलंबी बताने वाला सबसे ठोस प्रमाण उसका भाब्रू (वैरट-राजस्थान) से प्राप्त लघु-शिलालेख है, जिसमें अशोक स्पष्टतः बुद्ध, धम्म, संघ का अभिवादन करता है। इस लेख के साम्प्रदायिक स्वरूप के विषय में संदेह नहीं किया जा सकता। उसे बौद्ध सिद्ध करने वाला दूसरा अभिलेख उसका शासनादेश है, जो सारनाथ, सांची, कौशांबी के लघु-स्तंभों पर उत्कीर्ण मिलता है। इसमें अशोक बौद्ध धर्म के रक्षक के रूप में हमारे सामने आता है।

साँची के लघु स्तंभलेख में वह बौद्ध संघ में फूट डालने वाले भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों को चेतावनी देता है- जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी संघ को भंग करेगा, वह श्वेत वस्र पहनाकर अयोग्य स्थान पर रखा जायेगा। इस प्रकार यह आदेश भिक्षुसंघ और भिक्षुणीसंघ में सूचित किया जाना चाहिए, क्योंकि मेरी इच्छा है कि संघ समग्र होकर चिरस्थायी हो जाय। इसके अतिरिक्त किसी भी धार्मिक अथवा लौकिक ग्रंत से अशोक का किसी बौद्धेतर धर्म से संबंधित होना सूचित नहीं होता।

अशोक की मृत्यु

अशोक की मृत्यु 40 साल के शासन के बाद 232 B.C. में हुई। यह माना गया है कि इसकी मृत्यु के बाद इसका साम्राज्य पश्चिमी तथा पूर्वी हिस्से में विभाजित हो गया। पूर्वी हिस्से पर अशोक के पोते दसरथ ने शासन किया जबकि पश्चिमी हिस्से को संप्रति ने संभाला। उसके साम्राज्य का विस्तार 265 B.C. में काफी बड़ा था। नक्शा देखें:

योगदान

सांची के स्तूप

एगो बौद्ध राजा होला के नाते,अशोक मानत रहन की बुद्ध धरम आदमी,जानवर, पौधा सभ जीव जंतु खातिर निक बा, एही चलते उ ढेरे स्तूप आ बौद्ध भिख्छु के रहे खातिर घर बनववलें। अशोकवदन में लिखल बा कि अशोक बुद्ध के अवशेष के रखे खातिर 84000 स्तूप बनाए के आदेश देले रहन। अशोक आपन बेटा महेंद्र आउर बेटी संघमित्रा के बौद्ध धर्म के परचार खातिर श्रीलंका भेजले रहन।

व्यवस्थापक के रूप में

मौर्य काल के एगो पत्थर

अशोक के सेना बरियार रहे, बाकिर बौद्ध धर्म के अपनवला के बाद, ऊ दक्षिण में तीन गो प्रमुख तमिल राज्य चेरस, चोल आ पंडिा के जोरे संघतिया नियन संबंध बनईलन। हुनकर शिलालेखन में कहल गईल बा कि ऊ आपने राज्य आ पड़ोसी राज्यन में लोग आउर जानवरन के चिकित्सा खातीर प्रावधान कईले बाड़न। उ आम लोगन के लाभ खातीर सड़कन पऽ ईनार खोदववले आ पेड़ लगववले बाड़े।

जानवर सभ के कल्यान

अशोक के शीलालेखन में ई बात साफ लिखल गईल बा की जानवर सभ के दुख देवल केनियो ले नीक काम नईखे। हालाकि ऊ गाय के मांस खाए पऽ रोक ना लगवले रहन।

ऊ उ सभ चार गोड़ वाला जानवरन के मारे पऽ रोक लगा देले रहन जवना के ना कवनो इस्तेमाल रहे आउर ना खाईल जा सकत रहे। संगे-संगे कुछ बिशेष परजाति के चिड़ई आ जानवर के मारे पे रोक लगा देले रहन। एतने ना बलुक उ सभ मादा बकरी, सुअर आ भेड़ के मारे पऽ रोक रहे जवन आपन बच्चा के देखभाल करत होखे।

अशोक जानवर के मरला पऽ रोक लगवले रहन आ ओखिनी के इलाज ला अस्पतालो बनववले रहन। अशोक के घड़ी के मौर्य साम्राज्य दुनिया के गीनल चुनल साम्राज्य में आवेला जे आपन जानवर के नागरिक नियन राखत रहे।

अशोक चक्र

अशोक चक्र

अशोक चक्र धर्मचक्र के एगो चित्रण बा। एह में चौबीस गो तिली होखला। अशोक चक्र के जगह-जगह बनवावल गईल रहे। आज-काल अशोक चक्र सभ से जादे भारत के झंडा पऽ लउकेला। अशोक चक्र के भारत के झण्डा के उजरका पटी पऽ आसमानी रङ्ग से बनावल गईल बा। अशोक चक्र के अशोक स्तंभ पे भी देखावल गईल बा।

वास्तुकला

अक्सर अशोक के भारत में पत्थर पऽ वास्तुकला चालू करवाए के श्रेय दिहल जाला, जवन की संभवत: यूनानी सभ से सीखल गईल रहे।ख19, अशोक से पहिले घर आ मकान अस्थाई समान से बनत रहे जईसे लकड़ी, बांस आ खपड़ा।ख20, पाटलिपुत्र में अशोक आपन लकड़ी के महल के पत्थर के बंववलें।ख21,ओह महल के बनवावे में उ बिदेसी कारीगर के इस्तेमाल कईले रहन।

अशोक स्तंभ

लुंबिनी, नेपाल (जहवाँ बुद्ध जन्मल रहन) में बनवावल स्तम्भ

अशोक जगह जगह स्तंभ बनववले रहन। अईसे तऽ अशोक के ढ़ेरे स्तंभ होखे के चाहीं लेकिन अभी खाली दसे गो बा। स्तंभ सभ के औसत ऊंचाई ङ्ख.-क्क. फीट आ वजन क्क.,... किलोग्राम बा। सँवसे स्तंभ सभ के बनारस में तरासल गईल रहे आ फिर जगह जगह ले जा के खड़ा कईल गईल रहे।स्तंभ सभ के खोज सोरहवाँ शताब्दी में थॉमस कॉर्यात कईलें रहन।

सिंह चतुर्भुज स्तंभ शीर्ष

भारत के राष्ट्रीय चिह्न

सिंह चतुर्भुज स्तंभ शीर्ष अशोक के सारनाथ के स्तंभ पऽ धईल रहे, बाकिर अब उ सारनाथ संग्रहालय में धईल बा।एकरा भारत के राष्ट्रीय चिन्ह के रूप में भी अपनावल गईल बा।

निष्कर्ष

अशोका की देखरेख में मौर्यन साम्राज्य अपने चर्मबिंदु पर पहुँचा। पहली बार, हिंदुस्तान के तमाम महाद्वीप, दक्षिण का अधिकतम हिस्सा, राजसी नियंत्रण में था। इस चीज ने हिंदुस्तान के राजनीतिक एकीकरण को राष्ट्र के तौर पर मदद की। अशोक ने बौद्ध धर्म को विश्व धर्म बनाने में सहायक का काम किया द्यअशोक आ जीवन उपासक ही रहा और वह भिक्षु अथवा संघाध्यक्ष कभी नहीं बना।संघ-भेद रोकने का आदेश भी उसने राजा की हैसियत से ही दिया था। इस समय बौद्ध संघ में कुछ ऐसे अवांछनीय तत्व प्रविष्ट हो गये थे, जिनसे संघ की व्यवस्था गड़बड़ हो रही थी। संघ की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने के लिये इन तत्त्वों का विष्कासन आवश्यक था। महावंश से ज्ञात होता है, कि अपने अभिषेक के 18 वें वर्ष अशोक ने लंका के राजा के पास भेजे गये एक संदेश में बताया था, कि वह शाक्यपुत्र (गौतम बुद्ध के) धर्म का एक साधारण उपासक बन गया है।

संदर्भ

1. Lars Fogelin (1 अप्रैल 2015)-AnArchaeological History of Indian Buddhism- Oxford University Press- ii- 81- ISBN 978-0-19-994823-9.
2. Fred Kleiner (1 जनवरी 2015)A Gardner'sArt through theAges:A Global History- Cengage Learning- ii- 474- ISBN 978-1-305-54484-0.
3. Upinder Singh 2008, p- 331.
4. Chandra,Amulya (2015-05-14). "AshokaA biography & emperor of India"- Britannica-com- पहुँचतिथी 2015-08-09-
5. Thapur (1973)] p- 51.

6ण के ए नीलकंठ शास्त्री (2007). नंद-मौर्य युगीन भारत. मोतीलाल बनारसीदास. पप. 233-. ISBN 978-81-208-2104-0.

7. https://en-m-wikipedia-org/wiki/Ashoka#CITEREFStrong1989
8. https://books-google-fr/books\id?sMoLhNiQ9KRoC&pg=PA393#v=onepage&q&f=false
9. द ब्रीफ हिस्टरी ऑफ इंडिया

10. फौरन इन्फ्लुएंस ऑन इंडिया, कृष्णा चन्द्र सागर, 1992
11. http://www-tandfonline-com/doi/abs/10.1080/02666030.2012.725581
12. रेलिक्स ऑफ द बुद्ध, स्ट्रॉन्ग जॉन
13. Ashoka by मुखर्जी रधकुमुंद
14. http://www-cs-colostate-edu/~malaiya/ashoka-html
15. https://en-m-wikipedia-org/wiki/Ashoka#CITEREFFitzgerald2004
16. https://books-google-co-in/books?id=JwGZTQunH00C&pg=PA108&redir_esc=y#v=onepage&q&f=false
17. https://en-m-wikipedia-org/wiki/Special:BookSources/1590561066
18. Ashoka was known to be a great builder who may have even imported craftsmen from abroad to build royal monuments- " Monuments, Power and Poverty in India: FromAshoka to the Raj,A- S- Bhalla, I-B-Tauris, 2015 p-18

दलितविमर्श: डॉ. अंबेडकर एक अध्ययन

डॉ० बाबुल कुमार

पी0एच0डी0 (समाजशास्त्र) ल0ना0मि0 विश्वविद्यालय,
दरभंगा मोहल्ला किलाधार, सेनापत जिला-दरभंगा (बिहार)
पोस्ट- लालबाग, पिनकोड-846004

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रख कर हुए साहित्यिक आंदोलन से है जिस का सूत्रपात दलित पैंथर से माना जा सकता है। दलितों को हिन्दू समाज व्यवस्था में सब से निचले पायदान पर हो ने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूतया अस्पृश्य माना गया। दलित साहित्य की शुरूआत मराठी से मानी जाती है जहां दलित पैंथर आंदोलन के दौरान बडी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीडाओं, दुखों-दर्दोंकोलेखों, कविताओं, निबन्धों, जीवनियों, कटाक्षों, व्यंगों, कथाओं आदि केमाध्यम से पहुंचाया। दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर लंबी बहसें चलीं। यह सवाल दलित साहित्य में प्रमुखता से छाया रहा कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है, यानी स्वानुभूति ही प्रामाणिक होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। प्रमुख दलित साहित्य कारों ने कहा चूंकि सवर्णो ने दलितों की पीड़ा को भोगा नहीं, इसलिए वे दलित साहित्य नहीं लिखसकते. हालांकि यह मत ज्यादा दिनों तक टिका नहीं, लेकिन आरंभ में बहस का मुद्दा बना रहा। यह प्रश्न मराठी की तुलना में हिंदी में अधिक उठा. अंत में इस बात पर राय बनती नजर आई कि दलित साहित्य अस्सी और नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आंदोलन है जिस में प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किया।

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र उर्फ अंध-श्रद्धा के राज में समीक्षा का निवार्सन

दलित -साहित्य आंदोलनधर्मी-बहसधर्मी है। सन 2001 में प्रकाशित ओम प्रकाश वाल्मीकि की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' दलित -साहित्य की बहसों को समेटने और अंबेडकरवाद को दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र का केंद्र बना ने का प्रयास है। दलित-साहित्य के सौंदर्य शास्त्र या समीक्षा शास्त्र के निर्माण का यह प्रयास दलित-साहित्य की परिपक्वता और दलित-बहस की अपरिपक्वता दोनों को सामने लाता है।

वाल्मीकिजी अपने सौंदर्यशास्त्र का आधार डॉ. अंबेडकर के जीवन -संघर्षों और विचारों को बताते हैं। डॉ. अंबेडकर का सम्पूर्ण जीवन अगर किसी एक सामान्य कार्य में पूर्ण होता है, तो वह है छुआछूत और जाति-व्यवस्था का विरोध। उन्हों ने उच्च-शिक्षा प्राप्त की, बहिष्कृत हितकारिणी सभा का निर्माण किया, मुकनायक, बहिष्कृत भारत और इक्वालिटी जनता जैसे पत्र निकाले, गाँधीवादी राजनीति पर प्रश्न-चिह्न लगाए, महाड़ सत्याग्रह किया, मनु स्मृति जलाई, जाति-प्रश्न को राजनीति का प्रश्न बनाया, काला राम मंदिर में प्रवेश का प्रयास किया, इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी बनाई, कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल हुए, बौद्ध हुए, शेडडूल्ड कास्ट्स फेडरेशन का निर्माण किया। यथा, उनका जीवन -संघर्ष किसी सीधी लकीर की तरह नहीं है, उस में पर्याप्त पेंच हैं। उनके विचार जाति-व्यवस्था से मुक्ति की राजनीति के सापेक्ष तैयार होते जाते हैं। बने-बनाए ढाँचे में नहीं अनुभव, प्रयोग और व्यवहार के आधार पर बदलते हुए। एक तीखा भाव जो नहीं बदलता, वह है—जाति-भेद का बीज नाश। इस अर्थ में डॉ. अंबेडकर किसी वाद के अनुसरणकर्ता या निर्माता नहीं हैं, अपने गुरु जॉन डडूई की तरह अनुभवों से शिक्षा पाते हुए, किसी भी प्रकार की हिंसा से बचते हुए, वे जाति-व्यवस्था के उद्‌भव, विकास और नाश का अपना सिद्ध ान्त विकसित करते जाते हैं। अपनी राजनीति के लिए तात्कालिक लाभ

प्राप्त करने के प्रक्रम में वे किन्हीं निश्चित आचार-विचार पर टीके नहीं रहते, वे मुख्यत: भौतिक-विकास का पूंजीवादी और आध्यात्मिक विकास का धार्मिक मार्ग सुझाते हैं। वे व्यवहारवाद के आधार पर संघर्ष करते जाते हैं, इन संघर्षों का अंतिम प्रयोग बौद्ध-धर्म अपनाना था और इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे आगे भी नए प्रयोग कर ने से हिचकते नहीं।

अंबेडकरवाद ी राजनीति डॉ. अंबेडकर को फरिश्ता, मसीहा, देवता की तरह प्रस्तुत करती है, इस से डॉ. अंबेडकर एकऐ से व्यक्तित्त्व के रूप में उभरते हैं, जिनकी जय की जा सकती है या मूर्ति तोड़ी जा सकती है, लेकिन जिन से संवाद नहीं स्थापित किया जा सकता। उत्तर-उपनिवेशी भारत में अंबेडकरवादी राजनीति कई धाराओं और उप-धाराओं में बंटती चली गई। मुख्य धारा एकालापी या असंवादी है। इस धारा के बौद्धिक डॉ. अंबेडकर को भगवान नहीं, तो उस से कम भी नहीं मानते। वे किसी भी तरह डॉ. अंबेडकर को विश्व का महानतम बौद्धिक सिद्ध करना और मनवाना चाहते हैं। बौद्धिक को बौद्धिक कह ने में या क्रांतिकारी को क्रांतिकारी कहने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन किसी के जीवन और विचारों का सुव्यवस्थित अध्ययन किए बिना क्या यह उचित है कि हम उसे कुछ कहें? वाल्मीकि जी डॉ. अंबेडकर के जीवन और विचारों को पूर्णता में नहीं देखते। उन्हें सर्वदर्शी सर्वज्ञाता की तरह से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त उनके सौंदर्यशास्त्र में डॉ. अंबेडकर के व्यक्तित्त्व और दर्शन के बारे में कोई सही जानकारी नहीं मिलती। अंध-श्रद्धा के राज में समीक्षा निर्वासित रहती है।

निश्चित ही, डॉ. अंबेडकर बौद्ध-धर्म का विशेष उपयोग करते हैं, बौद्ध-दर्शन से अधिक वे बौद्ध-संगठन पर ध्यान देते हैं, उनके बुद्ध आधुनिक राजनैतिक बुद्ध हैं। भारत में जाति-व्यवस्था की समाप्ति के संघर्ष में विकसित हुआ उनका व्यवहारवादी-दर्शन विशिष्ट हो कर भी व्यवहारवाद के सामान्य सिद्धांतों से विचलित नहीं होता। इस अर्थ में वे ड्डूई के सच्चे शिष्य हैं। बुद्ध के अनित्यवाद पर वे विशेष ध्यान नहीं देते। वाल्मीकिजी ने भी यही रास्ता पकड़ा है।

डॉ. अंबेडकर ने सौंदर्यशास्त्र पर सीधे कलम चलाई है, ऐसा हमें ज्ञात नहीं, लेकिन जॉन ड्डूई ने सौंदर्यशास्त्र पर लिखा है। वाल्मीकिजी का सौंदर्यशास्त्र चाहे अनुभव की द्वंद्वात्मकता की उपेक्षा करे, ड्डूई ऐसा नहीं करते। उनकी पुस्तक 'आर्टएजएक्सपीरिएन्स' 1934 में प्रकाशित हुई थी। उनके अनुसार, अनुभव स्थानीय-माहौल में कार्य करते हुए अर्जित किए जाते हैं, ये अनुभव स्थानीय-संस्कृति में निर्मित सामुदायिक अनुभव होते हैं। उनके अनुसार ये समुदाय निरंतर टकराव में रहते हैं। वे खंडित और यांत्रिक अनुभव से जन्य कला को असौंदर्य कहते हैं, सुव्यवस्थित पूर्ण अनुभव को ही वे अनुभव मानते हैं। वे कला को उत्पादक/कलाकार का पक्ष मानते हैं और सौंदर्य को उपभोक्ता/सामाजिक का। निश्चित ही कला कृति का उपभोक्ता केवल उदासीन ग्राहक नहीं होता, वह अपने रिस्पांस से कलाकृति को विभिन्न अर्थ देता है। उनके अनुसार कलाकार एक व्यक्ति की तरह अपने स्थानीय माहौल में कार्य करते हुए अनुभव अर्जित करता है, कला इन अनुभवों का विशेष रूप है। कलाकार के अनुभव विशिष्ट होते जाते हैं, लेकिन सामान्य अनुभवों से एकदम अलग वे नहीं होते। ड्डूई के अनुसार सोचना भी सुंदर होता है। वाल्मीकिजी ने अपने सौंदर्यशास्त्र में, यदि वह डॉ. अंबेडकर के दर्शन से निर्मित हुआ है, अनुभव के सौंदर्य पर सोच ने का कष्ट नहीं उठाया। उनको यही कह देना काफी लगा-'एक दलित जिस उत्पीड़न को भोग कर दुख, वेदना से साक्षात्कार करता है, वह आनंददायक कैसे हो सकता है?'

पीड़ा से आनंद नहीं उपजता, इस मान्यता के साथ वाल्मीकि जी अपने सौंदर्य-चिंतन में आनंद के पक्ष को नकारते हैं। निश्चित ही, आनंद के पक्ष को सीमित अर्थों में ग्रहण करने से ऐसी मान्यता निर्मित हुई है। आनंद का पक्ष केवल मनोरंजन से नहीं जुड़ा है, अरस्तू द्वारा प्रस्तावित विरेचन से भी सम्बद्ध है। कला कृति के उपभोग से सम्बद्ध है। सौंदर्यशास्त्र के निर्माण में पहला प्रश्न साधारणीकरण का ही रहा आया है। वाल्मीकि जी इस प्रश्न से पल्ला झाड़ लेते हैं या उपरोक्त प्रश्न उठाकर उस पहले प्रश्न को खारिज मान लेते हैं। पाठक/दर्शक/श्रोताकलाकृति में वर्णित भाव-विचार-अनुभव को अपने भाव-विचार-अनुभव से अनुकूलित करता है, इस प्रक्रिया में अपनी पीड़ा के लिए दवाई पाता है। जिस तरह घाव पर मरहम लगाने से घायल को लाभ मिलता है, उसी तरह पीड़ा के अनुभव पढ़ना पाठक के मन-मस्तिष्क के घावों को, जो उसकी अपनी पीड़ा के अनुभव हैं, भरता है। इसका अर्थ फिर यह नहीं कि पाठकको दूसरे की पीड़ा के अनुभव पढ़कर राहत मिलती है, नहीं, बल्कि उसको अपनी पीड़ा के अनुभव पर सोचने-समझने में सहयोग मिलता है, साथ ही पीड़ा क ेसामूहिक अनुभव पर सोचने-समझने में भी वह अधिक सक्षम हो पाता है। इससे वह अपनी व समाज की पीड़ा को समाप्त करने की प्रेरणा भी पाता है। यह समझ और प्रेरणा अनुभवों की पूर्णता और संतुष्टि को जन्म देती है, जो पाठक के लिए कलाकृति का भिन्न अर्थ निर्मित करती है। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ पाठक के लिए कृति अपूर्ण और असंतुष्टिकर होती है, उसकी सौंदर्य-पीपासा शांत नहीं होती।

कला को एक माध्यम की तरह देखने से यह दृष्टि पैदा होती है कि कला का उद्देश्य केवल शिक्षा देना है, कला को स्वयं पूर्ण मान लेने पर यह दृष्टि पैदा होती है कि कला का उद्देश्य केवल आनंद या मनोरंजन है। ये दोनों ही दृष्टियाँ अधूरी हैं और कला में फाँक पैदा करती हैं। शिक्षा और आनंद का जितना बेहतर संतुलन कोई कलाकृति स्थापित कर पाती है, उतनी ही सुंदर वह कही जाती है-एक स्वयं पूर्ण-माध्यम। लेकिन कला का उद्देश्य यहीं तक सीमित नहीं है, कला का अंतिम उद्देश्य सत्य को पुनर्प्रस्तुत करना है, वास्तविकता का कलात्मक प्रकाशन करना है। वाल्मीकिजी अपने सौंदर्यशास्त्र में कला को एक माध्यम, वह भी सीमित, मानते दिखते हैं। निश्चित ही, वे बाजार-केन्द्रित कला-उत्पादन के विरोध में और विचारधारा-केन्द्रित कला-उत्पादन के पक्ष में हैं, लेकिन सत्य और सुंदर की पूर्णता की उपेक्षा करते हैं।

अपनी पुस्तक में उन्होंने ड्डूई द्वारा किए गए विषय और अंतर्वस्तु के भेद की चर्चा की है, लेकिन वे यह नहीं बताते कि अंतर्वस्तु से डडूई का अर्थ साहित्यिकता से ही है, शायद इस से वे अपनी इस मान्यता को तुष्ट करना चाहते हैं कि अंतर्वस्तु ही प्रमुख है, रूप नहीं। जबकि डयूई के लिए रूप का महत्त्व कम नहीं। फिर वाल्मीकिजी कला की सामान्य अंतर्वस्तु संबंधी डडूई के विचार पर भी नहीं सोचते, इसीके परिणामस्वरूप वे दलित -साहित्य और अनुभव की अंबेडकरवादी अनन्यता पर जोर दे कर उसकी महत्ता स्थापित करते दिखते हैं। वैज्ञानिक जागरण के अभाव में सौंदर्यशास्त्र का निर्माण किस तरह होता है, इसे समझने के लिए वाल्मीकिजी का सौंदर्यशास्त्र एक उत्तम उदाहरण है। डॉ. अंबेडकर के विचारों और साहित्य दोनों के संबंध में उनका विवेचन धार्मिक-आस्थामय है, दर्शन और विज्ञान से वे दूर हैं। कहीं इसलिए तो नहीं कि दर्शन और विज्ञान धर्म पर संदेह और धर्म के नकार का प्रस्ताव भी रखते हैं!

अंबेडकरवाद विचार, आंदोलन और प्रकार्य की दृष्टि से एक जटिल विचारधारा है। हिन्दी-क्षेत्र में भी दलित -आंदोलन के निर्माण में और प्रकारांतर से दलित-साहित्य के निर्माण में अंबेडकरवाद के प्रचार-प्रसार की मुख्य भूमिका रही है। 80 के दशक में विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में, अनुसूचित-जाति के सामाजिक राजनैतिक संगठनों के निर्माण, प्रचार-प्रसार और चुनावी विजयों के साथ ही साथ, हिन्दी-दलित-साहित्यिकों के आंदोलन का भी प्रारम्भ होता है। अनुसूचित-जाति के शिक्षित-जन अंबेडकरवाद और वाया अंबेडकरवाद, बौद्ध-धर्म की ओर मुड़ते हैं। 90 के दशक में दलितों की आत्म कथाएँ सामने आने लगती हैं, जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। ओम प्रकाश वाल्मीकि, मलखान सिंह, मोहनदास नैमिशराय, कौशल्या बैसन्त्री, सुशीला टाकभौरे दलित-साहित्यिकों की सूची बढ़ती जाती है। वाल्मीकिजी का कहना ठीक है कि सिद्धों, संतों और दलित -साहित्य के विचारों में मूलभूत अंतर है, तबभी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में और किसी धारा से इसकी सादृश्यता नहीं खोजी जा सकती। स्वयं वे भी घुम-घूमकर वहीं पहुँचते हैं।

उत्तर-उपनिवेशी भारत में समाज के लोकतांत्रिकरण और पूंजीवादी प्रसार ने भारत की सदियों पुरानी ग्रामीण-व्यवस्था का अधिकाधिक विखंडन किया, साथ ही अनुसूचित-जाति के एक हिस्से की राजनैतिक-आर्थिक उन्नति ने उनके अपने बौद्धिकों के निर्माण में आधारभूत भूमिका निभाई। यह बौद्धिक-वर्ग अंबेडकरवाद का निर्माता बना। अनुसूचित-जाति का यह वर्ग हिन्दी-दलित-साहित्य को जन्म देने वाला भी बना। महाराष्ट्र में दलित-साहित्यिकों के उभार और हिन्दी-क्षेत्र में-विशेषकर पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में-कांशीराम और मायावती के बहुजन-आंदोलन और फुले-अंबेडकर-विचार के प्रचार-प्रसार ने हिन्दी-दलित-साहित्य के निर्माण की तात्कालिक भूमिका तैयार की। आज भी, दलित-आंदोलनों के निरंतर प्रचार-प्रसार के बाद भी, दलित-साहित्यिक हिन्दी-क्षेत्र में पूरी तरह सामने नहीं आ पाए हैं।

उनके जीवन-संघर्ष और चिंतन-मनन से जो दर्शन प्राप्त होता है उसे परिणामवाद, व्यवहारवाद या अनुभववाद कहा जा सकता है। जॉन डडूई से अलग उन्हों ने अपनी विशेष समस्या के संबंध में इस दर्शन का प्रयोग और विकास किया। जहाँ डडूई अमेरिका की उभरती पूंजीवादी-साम्राज्यवादी-संसदीय-व्यवस्था में कार्यरत थे, वहीं डॉ. अंबेडकर सामंती-पूंजीवादी उपनिवेशी भारत में। उत्तर-उपनिवेशी भारत में डॉ. अंबेडकर की राजनीति का दूसरा रूप दिखाई देता है-तेलंगाना के जन-संहारका विरोध न करना, बौद्ध-धर्म को अपनाना और शेडडूल्डकास्ट्स फेडरेशन का निर्माण करना आदि। वे कभी भारत में लोकतन्त्र के विकास और नागरिक-समाज के निर्माण के प्रति आशावान दिखते हैं, तो कभी उनका मोह भंग प्रकट होता है। सिद्धांतों की व्यवस्था उनके चिंतन में नहीं है। वे अपने जीवन-संघर्ष में भी स्थिति-सापेक्ष कोई भी कार्य करते दिखते हैं। हिंसा का पक्ष लेते भी उन्हें देखा जा सकता है। वे मार्क्स के विचारों को जाने बिना ही उनके प्रति घृणा और तिरस्कार प्रदर्शित करते हैं, बौद्ध-धर्म को जाति-व्यवस्था ही नहीं,

सम्पूर्ण मानवता की सभी समस्याओं का हल बताते हुए वे मार्क्सवाद को (बिना ठीक से जाने-समझे ही) खारिज कर देते हैं। अवसरानुकूल स्वीकार और त्याग की यह प्रक्रिया चलती रहती है। बौद्ध-धर्म के स्वीकार से जाति-व्यवस्था या उत्पीड़न का अंत संभव नहीं, इतिहास और वर्तमान दोनों इसका सबूत देते खड़े हैं। क्या म्याम्मार और श्रीलंका में बौद्ध-धर्म प्रभावी नहीं, क्या वहाँ सभी प्रकार का उत्पीड़न समाप्त हो चुका है, सभी लोग सुखी हैं, करुणा और मैत्री आधारित जीवन जी रहे हैं?

अंबेडकरवादी राजनीति डॉ. अंबेडकर को फरिश्ता, मसीहा, देवता की तरह प्रस्तुत करती है, इस से डॉ. अंबेडकर एक ऐसे व्यक्तित्त्व के रूप में उभरते हैं, जिनकी जय की जा सकती है या मूर्ति तोड़ी जा सकती है, लेकिन जिन से संवाद नहीं स्थापित किया जा सकता। उत्तर-उपनिवेशी भारत में अंबेडकरवादी राजनीति कई धाराओं और उप-धाराओं में बंटती चली गई। मुख्य धारा एकालापी या असंवादी है। इस धारा के बौद्धिक डॉ. अंबेडकर को भगवान नहीं, तो उस से कम भी नहीं मानते। वे किसी भी तरह डॉ. अंबेडकर को विश्व का महानतम बौद्धिक सिद्ध करना और मनवाना चाहते हैं। बौद्धिक को बौद्धिक कहने में या क्रांतिकारी को क्रांतिकारी कहने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन किसी के जीवन और विचारों का सुव्यवस्थित अध्ययन किए बिना क्या यह उचित है कि हम उसे कुछ कहें? वाल्मीकि जी डॉ. अंबेडकर के जीवन और विचारों को पूर्णता में नहीं देखते। उन्हें सर्वदर्शी सर्वज्ञाता की तरह से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त उनके सौंदर्यशास्त्र में डॉ. अंबेडकर के व्यक्तित्त्व और दर्शन के बारे में कोई सही जानकारी नहीं मिलती। अंध-श्रद्धा के राज में समीक्षा निर्वासित रहती है।

समाज और व्यक्ति की पारस्परिकता में अनुभव निर्मित होते हैं, वाल्मीकिजी का सौंदर्यशास्त्र इस मूलभूत बात की उपेक्षा कर अनुभव के स्वामित्व को ही महत्त्वपूर्ण मानता है। फिर अनुभव के स्वामित्व की विविधता भी वे स्वीकार नहीं कर पाते, अंबेडकरवादी अनुभव ही उन के लिए दलित -अनुभव है। निश्चित ही, दलित-अनुभव सामाजिक यथार्थ में एक दलित-व्यक्ति के हस्तक्षेप को प्रस्तुत करता है और दलित-साहित्य दलित-अनुभव के सत्य का प्रकाशन करता है, लेकिन वाल्मीकिजी के अनुभव क्या कौशल्याबैसंत्री के अनुभवों से सादृश्यता दिखलाते हुए भी अलग नहीं हैं? वाल्मीकिजी दलित-आत्मकथाओं के अंतर्संबंधों की भी उपेक्षा करते हैं। आज दलित-साहित्य के विस्तार के साथ हिन्दी में दलित-आत्मकथाओं में भी शुभ वृद्धि हुई है, तब भी अभी वह बहुत कम है। आत्मकथा आमतौर पर बुढ़ापे में लिखी जाती है और दलित-साहित्य अभी मुख्यत: युवाओं के हाथ में है। अभी हजारों दलित-आत्मकथाओं की भूमिका बन रही है। इन भविष्य की आत्मकथाओं की संगति में इन प्रारम्भिक आत्मकथाओं को और बेहतर समझा जा सकेगा। दलित-आत्मकथाओं और स्व-कथनों ने भारत के निम्न-वर्ग के दलित-अनुभवों को दर्ज कर अभूतपूर्व कार्य किया है। स्व-कथा नहीं, तोस्व-कथन के माध्यम से ही, लेकिन अन्य उत्पीड़ित वर्गों को भी इस कार्य में सहयोग के लिए आगे आना चाहिए। भारत के अन्य उत्पीड़ित-वर्गों के लिए दलित-साहित्य प्रेरणा और बहस का स्रोत है।

कुछ समीक्षक डॉ. अंबेडकर को पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद के विरोधी के रूप में प्रस्तुत करने पर जोर देते हैं, जबकि डॉ. अंबेडकर की चिंता और चिंतन का मुख्य विषय पूंजीवाद-विरोध नहीं रहा। अंबेडकरवादी आंदोलन भी पूंजीवाद का सचेत-सक्रिय विरोधी नहीं है। अगर हम डॉ. अंबेडकर के जीवन और विचारों का भावुक-श्रद्धापूर्ण अनुशीलन भर न करें और अंबेडकरवादी आंदोलनों के जमीनी कार्यों को देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि भारत में ब्राह्मणवाद-विरोधी चेतना के निर्माण में जितना सहयोग डॉ. अंबेडकर और अंबेडकरवाद का है, उतना किसी वामपंथी-संगठन का नहीं, साथ ही यह भी कि पूंजीवाद-विरोधी चेतना के निर्माण में डॉ. अंबेडकर के विचारों और अंबेडकरवादी-संगठनों का सहयोग न के बराबर है। पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद के संयोजित रूप का विरोध अंबेडकरवादी और मार्क्सवादी आंदोलन की नई दिशा है। ऐसे प्रयास अभी अपने प्रारम्भिक दौर में हैं।

भारत का पूंजीवाद विशिष्ट है, वह विभिन्न जातियों-जनजातियों-समुदायों से निर्मित, एक बहुराष्ट्रीय सामाजिक-संरचना में कार्यरत है। भारत में पूंजीवाद उपनिवेशी-शक्तियों, स्थानीय भू-स्वामियों और व्यापारियों के संयोग से निर्मित हुआ है। उच्च-वर्ग की सहभागिता के बिना उपनिवेश का निर्माण असंभव था। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्तमान भारत का एक बड़ा भाग कभी सीधे उपनिवेश के अंतर्गत नहीं रहा। भारत का समाज उत्तर-उपनिवेशी-काल में भी पारंपरिक उच्च-वर्ग के नियंत्रण में ही विकसित होता रहा है। पारंपरिक बौद्धिक ही उत्तर-उपनिवेशी भारत में शासक-वर्ग के रूप में उभरे। यह वर्ग ही पूंजीवाद का लाभ लेने में सक्षम था और है, वह अपने रहते उत्पीड़ित-वर्गों को स्वतन्त्रता या लोकतन्त्र का लाभ नहीं ले ने देगा, इसी कारण उत्पीड़ित-वर्गों की मुक्ति पूंजीवाद के नाश से सीधे सम्बद्ध है। भारत के पारंपरिक उच्च-वर्ग के आचार-विचार ही मुख्य-धारा के आचार-विचार हैं। वर्तमान भारत की समाज-व्यवस्था भी इन्हीं पारंपरिक उत्पीड़क-वर्ग के पूँजीपतियों के अधीन है। भारत में पूंजीवाद, फूले से लेकर

अंबेडकर के समय तक, वह भी सीमित अर्थों में, दलितों के लिए उपहार था। लेकिन पूंजीवाद के अपने हित थे, जो दलितों के हित के विपरीत थे और हैं, इसी कारण भारत में विकसित पूंजीवादी-साम्राज्यवादी-संसदीय-प्रणाली अनुसूचित-जाति के लिए सुविधा नहीं दुविधा बनती गई। संविधान भारत के निम्न-वर्ग और उच्च-वर्ग के बीच एक ऐसे समझौते के रूप में उभरा, जिसे बोटी देकर बकरा लेना कहा जा सकता है। डॉ. अंबेडकर ने इस स्थिति के संबंध में अपने विचारों को 1955 में बी.बी.सी. को दिए एक साक्षात्कार में रखा है। वे कहते हैं कि हमारे देश में एक ऐसी सामाजिक संरचना है, जो संसदीय प्रणाली के साथ पूरी तरह असंगत है। उनके अनुसार भारत की आजादी के बाद विकसित हो रहा लोकतन्त्र 'अछूतों' की मुक्ति में विशेष सहयोगी नहीं हो पाएगा। वे संसदीय-चुनावों में जीत-हार, भाषण और लोकतन्त्र के भरोसे बैठे रहने की बजाय, दलित-मुक्ति के लिए ठोस कार्यक्रम/योजना और संस्थाओं/संगठनों के निर्माण की वकालत करते हैं।

निष्कर्ष

भारत भर के शोषण-उत्पीड़न-विरोधी आंदोलनों का संयोजन और निम्न-वर्ग की एकजुटता इतनी आसान नहीं। भारत के निम्न-वर्ग के खाते में निरंतर विजय दर्ज करते जाने वाली विचारधारा, आंदोलन और ने तृत्त्व अभी तक विकसित नहीं हो सका है। मिजोरम और राजस्थान की, कश्मीर और केरल की सामाजिक-व्यवस्था और निम्न-वर्ग की चेतना और संगठन का स्तर एक-से नहीं है, यद्यपि पूरे भारत में शोषण-उत्पीड़न का कारोबार जारी है, पूंजीवाद हावी है। निम्न-वर्ग के पास विचारधारा के नाम पर देसी कट्टे हैं, और शत्रु एके-47 लिए खड़ा है। हिन्दी-दलित-साहित्य और अंबेडकरवाद नाभिनालबद्ध हैं, लेकिन अंबेडकरवादी आंदोलन की सीमा को दलित-साहित्य की सीमा नहीं माना जा सकता। डॉ. अंबेडकर के विचारों को सभी दलित-साहित्यिकों पर भी नहीं थोपा जा सकता। आज डॉ. अंबेडकर के विचारों और अंबेडकरवादी आंदोलनों को पूर्णता में परखने की जरूरत है, साथ ही बुद्ध या कबीर या फुले या पेरियार या अयंकाली के कार्यों-विचारों को डॉ. अंबेडकर के मातहत करने से बचने की भी। दलित-साहित्य का सौंदर्यशास्त्र भौतिक इतिहास के नकार और सामाजिक यथार्थ की उपेक्षा पर नहीं तैयार हो सकता।

सन्दर्भ

1. वीर भारत तलवार- दलित साहित्य की अवधारणा, चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, पृष्ठ-75
2. भारतीय दलित आंदोलन: एक संक्षिप्त इतिहास, लेखक: मोहनदास नैमिशराय, बुक्सफॉरचेन्ज, आई.एस.बी.एन.: 81-87830-51-1
3. ताकि बचा रहे लोकतन्त्र, लेखक - रवीन्द्र प्रभात, प्रकाशक-हिन्दयुग्म, 1, जियासराय, हौजखास, नई दिल्ली-110016, भारत, वर्ष-2011, आईएसबीएन 8191038587, आईएसबीएन 9788191038583
4. दलित साहित्य के प्रतिमान: डॉ. एन.सिंह, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली -190002, संस्करण: 2012

बिहार की गोंड जनजाति पर आधुनिकीकरण का प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० राकेश कुमार गोंड

शोधार्थी, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

निबंध सार

बिहार की गोंड जनजाति मे परम्परा और आधुनिकता दोनो देखा गया है। परम्परा के अंतर्गत वह अपने धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हुए देवी देवताओं की पुजा करते है तथा दुसरी तरफ आधुनिकीकरण के फलस्वरूप हिन्दु जाति ब्यवस्था के सम्पर्क में आने के कारण हिन्दुओ के धार्मिक विशेषताओं को ग्रहण करने लगे है। पर संस्कृति ग्रहण की निति के फलस्वरूप गोंड जनजातियों का एकीकरण हिन्दु संस्कृति के अनुसार हो रहा है। ये लोग धार्मिक उत्सव पर ब्राह्मण पंडितो को बुलाने लगे है तथा हिन्दु मंदिरो मे भी जाते है। इस जनजाति के परम्परागत जीवन मे कोई भी धार्मिक, समाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम बिना मांस और मदिरा के आरम्भ नहीं होता था। किन्तु आधुनिकीकरण के कारण अब लोग भगत हो गये है।

मुख्य शब्द: गोंड, जनताति, आधुनिकीकरण

परिचय: बिहार कि गोंड जनजाति पर अधुनिकीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। आधुनिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप गोंड जनजाति बाह्‌ जगत के संपर्क में अधिक आयी है। संस्कृतिकरण और हिन्दुकरण कि प्रक्रियाओं में गोंड जनजाति का अजनजातिकरण हुआ है। हिन्दु जाति व्यवस्था के कुछ नाकारात्मक पक्षो को भी इन लोगो ने अपना लिया है। इस दिशा में 'जाति-जनजाति निरन्तरता' कि प्रक्रिया चल रही है। यह जनजाति अपनी परम्परागत अर्थिक कार्यो गोंसार झोकना, बहंगी/डोली ढोना, गोंडऊ नाच करना, धुरछक का पानी छिड़कना इत्यादि कार्यो को छोड़कर मजदुरी, विदेशो में नौकरी, सरकारी नौकरी कर रहे है। अब ये मुख्यरूप से मजदुरी पर निर्भर हो गये है। बिहार में इस जनजाति कि जनसंख्या 2011 में 256738 थी जिसमें 129927 पुरूष एवं 126811 महिलाएं थी। शहरी क्षेत्रे में इसकी संख्या 16305 तथा ग्रामीण क्षेत्रे में 240433 थी।

अध्ययन क्षेत्र

बिहार राज्य का विस्तार 24°20,10, से 27°31,15, उत्तरी अक्षांश तथा 83°19,50, से 88°17,40, पूर्वी देशांतर के बीच है। इसका कुल क्षेत्रफल 94.16 लाख हेक्टेयर है तथा इसकी आकृति आयताकार है। उत्तर से दक्षिण 345 कि. मी. लंबा और पूरब से पश्चिम 483 कि. मी. चौड़ा है। क्षेत्रफल कि दृष्टि से यह भारत का 12 वां राज्य है। भारजीय जनगणना 2011 के अनुसार बिहार राज्य की कुल जनसंख्या 104.80 करोड़ है जो कुल जनसंख्या का 8.06 प्रतिशत है। इसमें अनुसुचित जनजातियों का कुल योग 2011 के अनुसार 1336573 है जो बिहार के कुल जनसंख्या का 1.28 प्रतिशत है। जिसमें संथाल 406076 (40 प्रतिशत) के बाद गोंड राज्य कि दूसरी सबसे बड़ी जनजाति है। जिसकी जनसंख्या 256738 है। जो राज्य कि कुल अनुसूचित जनजाति कि जनसंख्या का 19.2 प्रतिशत है।

परिकल्पना

गोंड जनजाति पर अधुनिकीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

अध्ययन का उद्देश्य

अधुनिकीकरण का गोंड जनजाति पर कितना प्रभाव पड़ा है इसकी जानकारी प्राप्त करना।

विधि तंत्र

यह अध्ययन मुख्य रूप से प्राथमिक आकड़ों पर आधारित है, इसके लिए बिहार के 6 जिला (सिवान, गोपालगंज, छपरा, पश्चिमी चम्पारण, बक्सर और कैमुर) का चयन किया गया हैं, जहा इस जनजाति की 95 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती हैं। इन्ही 6 जिलों से 200 ग्रामीण परिवारो तथा सिवान जिले से 40 नगरीय परिवारो का अध्ययन सर्वेक्षण विधि द्वारा प्रश्नावली तैयार कर आकड़ों का संकलन किया गया है।

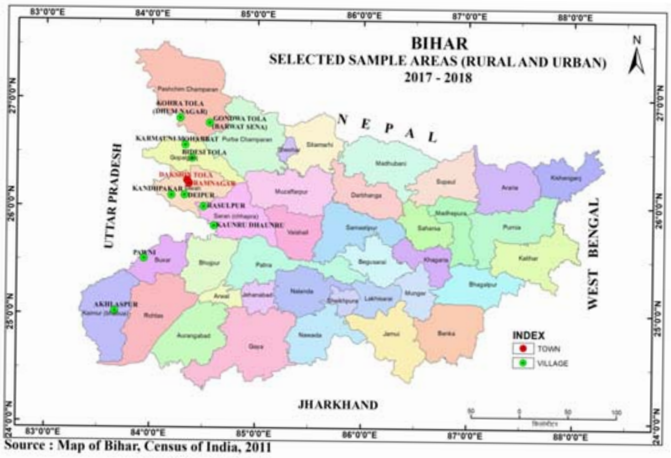

Source : Map of Bihar, Census of India, 2011

Fig. : 1.3

अध्ययन के दौरान इस जनजाति पर अधुनिकीकरण के पडे प्रभाव की चर्चा की गयी है-

आवास की स्थिति संबंधी अधुनिकीकरण

आवासीय स्थिति से लोगों की आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

तालिका-1

घर के प्रकार के आधार पर उत्तरदाताओं का वितरण

क्र.सं.	घर का प्रकार	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	कच्चा	10	5.00	1	2.00
2	पक्का	124	62.00	30	75.00
3	अर्द्धपक्का	44	22.00	7	17.00
4	झोपड़ी (घास फूस की बनी)	20	10.00	2	6.00
5	झोपड़ी (लकड़ी से बनी)	2	1.00	0	6
	कुल	200	100	40	100

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

उपरोक्ततालिका से स्पष्ट होता है कि 5 प्रतिशत ग्रामीण गोंड परिवार के घर कच्चे, 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मकान पक्के, 22 प्रतिशत परिवार के मकान अर्द्धपक्के, 10 प्रतिशत परिवार के मकान झोपड़ी तथा 1 प्रतिशत परिवार के मकान लकड़ी से बनी है। उपर्युक्त सारणी गोंड जनजाति के आवास संबंधी आधुनिकीकरण को दिखाता है।

जन्म संस्कार संबंधी आधुनिकीकरण

आधुनिक समय में अब बेटे के समान ही बेटियों को भी बराबर का हक मिलता है। अध्ययन क्षेत्र में आंगनबाड़ी, आशा सेविकाओं एवं स्वास्थ्य की सेवा उपलब्ध है, जिससे बच्चे के जन्म के समय की विभिन्न क्रियाओं में परिवर्तन देखने को मिलता है। अब शौरी घर का प्रचलन खत्म हो गया है। गर्भवती महिलायें सरकारी अस्पतालों में रेगुलर स्वास्थ्य जाँच कराती है तथा नवजात बच्चों को बी.सी.जी., डी.पी.टी. का टीका भी लगवाती हैं।

तालिका-2

शिशु का जन्म कहाँ हुआ के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

क्र०स०	जन्म का स्थान	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	सरकारी अस्पताल	124	62	28	70.00
2	निजी अस्पताल	40	20	11	27.5
3	शिशु के पिता के घर	34	17	1	2.5
4	शिशु के माता के घर	2	1	0	2.5
	योग	200	100	40	100

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण गोंड परिवार के 62 प्रतिशत शिशु का जन्म सरकारी अस्पताल में, 20 प्रतिशत निजी अस्पताल में, 17 प्रतिशत शिशु के पिता के घर जबकि 1 प्रतिशत शिशु का जन्म माता के घर पर हुआ।

इसके अलावे नगरीय क्षेत्र के 70 प्रतिशत शिशु का जन्म सरकारी अस्पताल में, 27.5 प्रतिशत शिशु का जन्म निजी अस्पताल में, 2.5 प्रतिशत शिशु का जन्म पिता के घर पर हुआ।

उपयुक्त सारणी गोंड जनजाति के जन्म संस्कार संबंधी आधुनिकीकरण को दिखाता है।

रौशनी की सुविधा में परिवर्तन :

सरकार के अथक प्रयास तथा लोगों के सोच में बदलाव के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र बिजली की सुविधा के मामले में नगरों को टक्कर दे रहे हैं तथा गाँवों में आज 16 से 18 घंटे बिजली की आपूर्ति हो रही है।

तालिका-3

रौशनी का विवरण

क्र.सं.	रौशनी	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	बिजली	174	87.00	38	97.00
2	सोलर	8	4.00	1	1.00
3	लालटेन/डिबिया	18	9.00	1	2.00
	कुल	200	100	40	100

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 87 प्रतिशत ग्रामीण गोंड परिवारों के घर बिजली की सुविधा है जबकि 13 प्रतिशत ग्रामीण गोंड परिवार रौशनी के लिए सोलर, लालटेन, डिबिया का उपयोग करते हैं।

वहीं 97 प्रतिशत नगरीय गोंड परिवारों के घर बिजली का कनेक्शन है, जबकि मात्र 3 प्रतिशत नगरीय गोंड परिवार जो एकदम गरीब है के यहाँ बिजली का कनेक्शन नहीं है। गरीबी की तरह ही उनके घरों में भी अंधेरा छाया रहता है। जिसे वहाँ के लोग भूत बंगला कहकर उनका मजाक उड़ाते हैं।

खाना पकाने के लिए ईंधान की सुविधा में परिवर्तन :

अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश गोंड परिवारों को गैस चूल्हा तथा सिलेन्डर दिया गया है।

तालिका-4

खाना पकाने के लिए ईंधन का विवरण

क्र.सं.	खाना पकाने के लिए ईंधन	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	गैस चुल्हा	126	63.00	36	92.00
2	लकड़ी/गोयठा	68	34.00	3	7.00
3	किरोसीन स्टोव	6	3.00	1	1
4	अन्य	4	2.00	–	–
	कुल	**200**	**100**	**40**	**100**

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 63 प्रतिशत ग्रामीण गोंड परिवार गैस चूल्हा पर खाना बनाते हैं, 34 प्रतिशत लोग लकड़ी या गोयठा पर खाना पकाते हैं, जबकि मात्र 3 प्रतिशत लोग अभी भी किरोसिन, स्टोव का प्रयोग खाना बनाने के लिए करते हैं।

वहीं 93 प्रतिशत नगरीय गोंड परिवार खाना पकाने के लिए गैस चूल्हा का उपयोग करते हैं। 7 प्रतिशत परिवार अभी भी लकड़ी, गोयठा पर खाना पकाते हैं तथा 1 प्रतिशत परिवार किरोसिन स्टोव का प्रयोग खाना पकाने में करते हैं।

नगरीय क्षेत्र के लोगों के पास गोयठा, लकड़ी की अनुपलब्धता होती है, लगभग सभी लोग गैस चुल्हा पर ही खाना पकाते हैं।

गोंड समाज के भेद-भाव में परिवर्तन :

तालिका-5

गोंड समाज के भेद-भाव में परिवर्तन का विवरण

क्र.सं.	परिवर्तन	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1.	हाँ	136	68	36	89
2.	नहीं	64	32	4	11
	कुल	**200**	**100**	**40**	**100**

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 68 प्रतिशत ग्रामीण गोंड परिवारों ने माना कि पहले की अपेक्षा समाज के भेद-भाव में परिवर्तन हुआ है, जबकि 32 प्रतिशत गोंड परिवार ने माना कि अभी भी समाज में भेद-भाव है। इसके अलावे 89 प्रतिशत नगरीय

गोंड परिवार मानते हैं कि समाज के भेद-भाव में परिवर्तन हुआ है, जबकि 11 प्रतिशत नगरीय गोंड परिवारों का मानना है कि भेद-भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

वर्तमान में ग्रामीण तथा नगरीय परिवारों के आर्थिक स्रोत :

किसी भी समाज के जीवन स्तर की व्याख्या उसकी आर्थिक क्रियाओं से होती है।

तालिका-6

वर्तमान में परिवार के आर्थिक स्रोत का विवरण

क्र.सं.	आर्थिक स्रोत	ग्रामीण		नगरीय	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	कृषि	62	31.00	-	-
2	कृषि मजदूरी	69	34.5	-	-
3	गैर-कृषि मजदूरी	28	14.00	16	40.00
4	गोसार	6	3.00	4	10.00
5	पशुपालन	1	0.5	1	2.5
6	सरकारी नौकरी	5	2.5	3	7.5
7	व्यवसाय	9	4.5	8	20
8	विदेश में नौकरी	5	2.5	1	2.5
9	प्राईवेट नौकरी	9	4.5	5	12.5
10.	वहंगी ढोना/डोली ढोना	1	0.5	0	0
11	अन्य सेवायें	5	2.5	2	5.00
	कुल	200	100	40	100

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 2017-18

तालिका में गोंड जनजाति के आर्थिक स्रोत के बारे में जानकारी ली गई है। ग्रामीण क्षेत्रों के 31.00 प्रतिशत उत्तरदाता ने कहा कि वर्तमान में परिवार का आर्थिक स्रोत कृषि है। 34.5 प्रतिशत परिवारों का आर्थिक स्रोत कृषि मजदूरी, 14 प्रतिशत परिवारों का आर्थिक स्रोत गैर-कृषि मजदूरी, 3 प्रतिशत परिवार का आर्थिक स्रोत गोसार झोकना, 0.5 प्रतिशत परिवार पशुपालन, 2.5 प्रतिशत परिवार सरकारी नौकरी, 4.5 प्रतिशत व्यवसाय, 2.5 प्रतिशत परिवार विदेशी नौकरी से प्राप्त अर्थधान, 4.5 प्रतिशत परिवार प्राइवेट नौकरी, 0.5 प्रतिशत परिवार बहगी/डोली ढोना तथा 2.5 प्रतिशत परिवार का आर्थिक स्रोत अन्य सेवाएँ है।

निष्कर्ष: कहा जा सकता है कि गोंड जनजाति पर अधुनिकीकरण का प्रर्याप्त प्रभाव पड़ा हैं। नगरो में परिर्वतन और अधुनिकीकरण कि प्रक्रिया जितनी तीव्र है उतनी ग्रामीण क्षेत्रे में नहीं हैं। आधुनिकीरण का प्रभाव इनके घरो, जन्म संस्कार, विवाह, कर्मकाण्ड, रहन-सहन,पोशाक, परम्परागत कार्य सभी जगह दिखाई देने लगा है।

संदर्भ-सुची :

1. Sinha, V.N.P, M. Nazim, Ahmad, Firoz (2017) "Bihar Land, People and Economy" Vol-1 Rajesh Publication
2. श्रीवास्तव ए.पी. समाजशास्त्र, राम प्रसाद एण्ड सन्स पृ. सं. 51
3. तिवारी, ए0के0 : आदिवासी समाज में आर्थिक परिवर्तन 1990, नार्दन बुक सेन्टर, नई दिली।
4. योयाती, अनिता (2001) : गोंड जनजाति में सामाजिक परिवर्तन, एम.फिल. शोध-प्रबंध।
5. कुमारी, लक्ष्मी (2003) : आदिवासी क्षेत्रों का सामाजिक-आर्थिक विकास (अविभाजि बिहार के संदर्भ में) जिासा प्रकाशन, पटना
6. दास, गुप्तेश्वर (2008) : छत्तीसगढ़ के भूंजिया जनजाति में सामाजिक परिवर्तन-एक अध्ययन, पी.एच.डीशोध-प्रबंध, 2005
7. Census of Bihar, 2011

मधुबनी (मिथिला) से प्राप्त सूर्य की प्राचीन मूर्तियाँः एक अध्ययन

डॉ० अखिलेश कुमार सिंह

यूजीसी-नेट, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

साहित्यों, पुरावशेषों एवं विदेशी वृतांतों से विदित है कि प्राचीन मिथिला वैदिक संस्कृति की उर्वरा भूमि रही है। वहाँ एक से बढ़कर एक मूर्तियाँ, पुरातात्विक अवशेष अन्वेषण एवं उत्खनन में मिले हैं। शोध के क्रम में हमने मधुबनी के विभिन्न स्थलों का भ्रमण किया और सूर्य मूर्तियों का अध्ययन किया। ऐसा प्रतीत हुआ कि यहाँ से प्राप्त सूर्य मूर्तियों की आत्मा वैदिक है परन्तु हृदय मैथिल परम्पराओं में सीमटी हुई है। भारतवर्ष से सूर्य की जो अन्य मूर्तियाँ मिली हैं उससे अलग क्षेत्रीय भिन्नता दिखाई देता है। सूर्य की मूर्तियों में आसन, वाहन, मुद्रा, आयुद्ध एवं माध्यम शास्त्रीय होते हुए भी देश, काल एवं पात्र का प्रभाव दिखता है। हमने जो प्रमुख मूर्तियों की खोज की उसके विशेषताओं पर विचार किया जा सकता है। ये मूर्तियाँ या तो संग्रहालय में प्रदर्शित है या निजी संकलनों में संग्रहित है। उसकी विभिन्नता निम्नलिखित प्रकार से देखी जा सकती है-

मधुबनी के अररिया संग्राम पंचायत के परसा ग्राम में एक तालाब से फरवरी, 1983 में सूर्य की एक अद्भूत मूर्ति प्राप्त हुई। वर्तमान में इस सूर्य मूर्ति को एक मन्दिर बनाकर स्थापित किया गया है। सूर्य मूर्ति काले प्रस्तर की बनी हुई है। अलंकरण एवं शैली की दृष्टि से यह मूर्ति लगभग दसवीं शताब्दी की बनी प्रतीत होती है।

मूर्ति 110 से० मी० ऊँची तथा 55 से०मी० चौड़ी है। सूर्य मूर्ति खिले हुए कमल पर समभंग मुद्रा में खड़ी है। दोनों हाथों में दो खिले हुए कमल पुष्पों का अंकन है जिनके नाल दोनों हाथों के अंगुलियों के बीच बने हैं। मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, भुजाओं पर केयूर तथा गले में कण्ठहार तथा वक्षस्थल पर यज्ञोपवित अंकन किया गया है।[1]

इसी मूर्ति में नीचे दोनों पैरों के मध्य में सारथी अरुण के ऊपर एक स्त्री मूर्ति उत्कीर्ण है, जो उषा है। इसके पैर के नीचे बिना पैर के सारथी अरुण का अंकन है जिसके उठे हुए दाहिने हाथ में चाबुक तथा बायें हाथ में घोड़ों की लगाम है। निचले पाद पीठ पर तीन-तीन घोड़े बाएँ-दाहिने दौड़ते हुए दर्शाये गये हैं तथा एक घोड़ा सम्मुख दौड़ता हुआ दिखाया गया है। इसके उठे हुए दोनों पैर तथा मुख खण्डित है। सभी घोड़े रस्सी से बंधे हैं।

सूर्य के दाहिने खड़ी स्त्री चामर लिए हुए हैं। इसके दाहिने ओर दाढ़ी युक्त पुरुष खड़ा दिखलाया गया है जिसके दाहिने हाथ में कलम तथा बायें हाथ में दवात है। इन दोनों के बीच में तीर चलाते हुए एक छोटी स्त्री छवि का अंकन है। सूर्य के बायीं ओर भी इसी प्रकार की तीन मूर्तियाँ खड़ी है। इसमें भी स्त्री के हाथ में चामर है। इसके बाएँ खड़े पुरुष के हाथ में संभवतः शंख है। इन दोनों के सामने भी एक छोटी स्त्री तीर चलाते हुए खड़ी है।

इसका मुख खण्डित है। सूर्य एवं दोनों पुरुष आकृतियाँ जूता पहने है। मूर्ति के दोनों पार्श्व के खाली परिकर में नीचे से ऊपर के क्रम में हस्ति, अश्व-व्याल, हंस तथा मालाधरी विद्याधर का अंकन किया गया है। मूर्ति के ऊपरी मध्य भाग में कीर्तिमुख का अंकन है। इस मूर्ति के दोनों किनारों पर सवार अश्व-व्याल का अंकन है, जो आमतौर पर इस काल की सभी मूर्तियों में नहीं पायी जाती है। संभवतः सूर्य के साथ अश्व का संबंध होने से इसका निर्माण किया गया है।

मधुबनी के परसा ग्राम से प्राप्त सूर्य मूर्त्ति

मधुबनी के भीठ भगवानपुर ग्राम से प्राप्त सूर्य मूर्त्ति

मधुबनी (अंधराठाड़ी) के कमलादित्य स्थान से प्राचीन सूर्य मंदिर के भग्नावशेष से दो द्वार स्तभों पर गंगा-यमुना की मुर्तियाँ

दूसरी प्रमुख सूर्य मूर्त्ति अंधराठाढ़ी प्रखण्ड के रखवारी ग्राम से तालाब की खुदाई के क्रम में प्राप्त हुई है जो वर्तमान में ग्राम के मध्य एक पेड़ के नीचे रख कर पूजा की जा रही है। यह मूर्ति काले प्रस्तर से निर्मित सूर्य समपाद स्थानक मुद्रा में खड़े हैं। इनके दोनों भूजाओं में कमल का अंकन है।[2] पाद पीठ पर 7 घोड़े सारथी अरुण तथा उषा का अंकन है। इनकी बायीं ओर दंड तथा दाहिनी ओर पिंगल की आकृति अंकित है। मूर्ति 155 से०मी० ऊँची एवं 50 से०मी० चौड़ी है। इस मूर्ति के पीछे एक लेख भी है परन्तु कुछ वर्ष पूर्व ग्राम में आग लग गई थी जिससे मूर्ति का कुछ भाग खण्डित हो गया है। प्रस्तर एवं शैली की दृष्टि से मूर्ति लगभग बारहवीं शताब्दी की है।

तीसरी मूर्त्ति का प्राप्ति स्थल भीठ भगवानपुर ग्राम जो मधेपुरा प्रखण्ड से लगभग 5 कि०मी० दक्षिण में स्थित है। यहाँ से सूर्य की एक मूर्ति पाल-सेन कालीन मंदिर के अवशेश से अन्य मूर्तियों के साथ मिली है। यह सूर्य मूर्ति 105 से० मी० ऊँची तथा 60

से॰ मी॰ चौड़ी है। इसका अंकन सूर्य मूर्ति के उल्लेख के अनुरूप ही किया गया है। मूर्ति का परिकर सादा तथा नुकीला है। इसके दोनों ओर केवल एक-एक विद्याधर का अंकन है। ऊपरी भाग में कीर्तिमुख का अंकन है। इसके पत्थर का रंग स्लेटी है।

विवेच्य उपर्युक्त के अलावे मधुबनी के अंधराठाढ़ी से सूर्य की एक मूर्ति प्राप्त हुयी है जिसका आकार 71ग 32 ग 9 से॰मी॰ है जो ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का है।[3] यहाँ से ही कमल के आकृतियुक्त पाषाण भी प्राप्त हुआ है। सम्भवत: यह कमलादित्य अर्थात सूर्य का रूप हो सकता है। वेदों में भी सूर्य का प्रथम रूप कमल पुष्प ही माना गया है। अंधराठाड़ी के कमलादित्य स्थान से प्राचीन सूर्य मंदिर के भग्नावशेष से दो द्वार स्तंभ प्राप्त हुआ है।[4] जो चिकने काले पत्थर से बने हैं। दोनों स्तभों पर गंगा-यमुना की सुंदर मुर्तियाँ बनी है। इन मूर्तियों के साथ सूर्य देव से संबंधित दंड और पिंगल को भी उत्कीर्ण किया गया है जो अन्य कहीं नहीं मिलता है। संभवत: दंड एवं पिंगल को कलाकारों ने गंगा-यमुना से जोड़ने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त मधुबनी जिलांतर्गत बनकट्टा ग्राम से से पाल कालीन विष्णु की मूर्ति के साथ दो छोटे-छोटे सूर्य की मूर्ति भी प्राप्त हुयी है। एक सूर्य मूर्ति सामान्य तथा दूसरा ज्यादा अलंकृत है।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथलांचल के मधुबनी से पुरातात्विक अन्वेषण एवं उत्खनन में जो मूर्तियाँ मिली है उसपर क्षेत्रीय भिन्नता दिखाई देती है। स्थानीय लोग अनेक परम्पराओं से संबद्ध कर इसकी व्याख्या करते हैं। टी॰ ए॰ गोपीनाथ राव (इलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी)[6], जे॰ एन॰ बनर्जी (डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी)[7] तथा नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी (प्राचीन भारतीय मूर्तिकला)[8] में भी सूर्य मूर्तियों की क्षेत्रीय विभिन्नता को स्वीकार किया है। इस बात की पुष्टि एल॰ पी॰ पाण्डेय एवं वी॰ सी॰ श्रीवास्तव (सन वर्शिप इन एन्शियेन्ट इंडिया)[9] में भी की है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि मिथिलांचल से जो सूर्य की मूर्तियाँ मिली है वह साम्भपुराण[10] तथा मयूर के सूर्य शतक[11] में वर्णित लक्षणों में समानता दिखती है। इन मूर्तियों के आसन, वाहन, मुद्रा, आयुद्ध से तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी होती है।[12] ऐसा लगता है कि मूर्तियाँ समय का प्रतिनिधित्व करती है।

संदर्भ :

1. आर्ट एण्ड आर्कियोलोजी ऑफ मिथिला, बिहार सरकार, पटना, 2006 पृ॰ 84
2. वही, पृ॰ 86
3. मिथिला भारती (त्रैमासिक शोध पत्रिका), पटना, 2015, पृ॰ 219
4. मिश्र, विजयकांत : मिथिला आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, इलाहाबाद, 1978, पृ॰ 34
5. सिंह, अखिलेश कुमार : मधुबनी एवं दरभंगा जिला का पुरातात्विक अध्ययन, 2017, पृ॰ 105 (अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पटना विश्वविद्यालय)
6. गोपीनाथ, टी॰एस॰ : इलिमेंट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, मद्रास, 1904 भूमिका
7. बनर्जी, जे॰एन॰ : डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, 1958, पृ॰1
8. जोशी, नीलकंठ पुरुषोत्तम : प्राचीन भारतीय मूर्ति कला, बनारस, 1990, सूर्य मूर्तियाँ
9. पाण्डेय, एल॰ पी॰ एवं श्रीवास्तव, वी॰ सी॰ : सन वर्शिप इन एन्शियेन्ट इंडिया, (दोनों लेखक के अलग-अलग पुस्तकें हैं दोनों ने ही भूमिका में इस बात की चर्चा की है।)
10. साम्भ पुराण, चौखम्बा, वाराणसी, 1998, प्राक्कथन
11. मयूर की सूर्य शतक, चौखम्बा, 1984, पहला अध्याय
12. कल्याण (सूर्य विशेषांक), गीता प्रेस, 1988, पृ॰ 1

बाँका जिला में ग्रामीण बस्तियों का चरणबद्ध उद्भव

डॉ० मनोज कुमार सुमन

पीएच.-डी., नेट-जेआरएफ, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

ग्रामीण बस्मियों के विशेषताओं, समस्याओं एवं नियोजित विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन बस्तियों के उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ है और किन भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होकर बस्तियाँ विकसित हुयी है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट आवश्यक है कि अध्ययन क्षेत्र का संबंध मध्य गंगा के मैदान भाग से रहा है जिसका इतिहास गौरवपूर्ण है। वस्तुत: यह क्षेत्र ऐतिहासिक घटनाओं, धार्मिक विचारधाराओं तथा सामाजिक परिवर्तन का क्रीड़ा स्थल रहा है। अत: इस क्षेत्र में ग्रामीण बस्तियों के उद्भव एवं विकास का इतिहास काफी प्राचीन है। परतु इसके संबंध में जानकारी का अभाव है। वस्तुत: हजारों वर्ष के मानव अधिवास का इतिहास आलेखित है तथा धर्मग्रंथों, प्राचीन साहित्यों तथा विद्वानों के अनुमान पर आधारित है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक शोध द्वारा पुराने बस्तियों के संदर्भ में उद्भव की जानकारी हो पा रही है क्योंकि इस क्षेत्र में भी पुरानी बस्तियाँ हैं और इनके समीप खंडहरों के पुरातात्विक विश्लेषण से खुदाई में उपलब्ध सामग्रियों के कार्वन डेटिंग के आधार पर बस्तियों के उद्भव का इतिहास मिल पा रहा है। कुछ विद्वानों का यह भी मतहै कि भारत का मैदानी भाग कभी भी मानव बसाव में वंचित नहीं रहा और इस क्षेत्र में अनेक सभ्यता विकसित हुयी है। इस संदभ में इतिहास के विद्वान, धर्मशास्त्र के विद्वान तथा अन्य समाजशास्त्र के विद्वानों ने क्षेत्र की बस्तियों का अध्ययन किया है और इसके इतिहास का विवरण दिया है।

प्राक ऐतिहासिक काल की बस्तियाँ

इस क्षेत्र की सभी ग्रामीण बस्तियों के उद्भव का विवरण करना संभव नहीं है अत: प्राककालीन बस्तियों के संदर्भ में धर्मग्रंथों, पुरातात्विक सर्वेक्षणों के क्रम में उपलब्ध प्राचीनकालीय बस्तियों के विश्लेषण से कुछ जानकारी मिल पा रही है। वस्तुत: आर्यों के आगमन के पहले भी इस क्षेत्र में मानव अधिवास का प्रमाण उपलब्ध है और इसका वर्णन सही जानकारी के अभाव में कठिन है। परंतु पुराने साहित्य, धर्मग्रंथ में वर्णित बस्तियों तथा पुरानी अस्तियों के संदर्भ में वर्णन किया गया है। प्राकऐतिहासिक काल के अंतर्गत द्रविड़ीयन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। इस संदर्भ में लोगों का मत है कि मेसोलिथिक काल में ही कुछ प्रवासी इस क्षेत्र में अस्थायी गृह का निर्माण किया। इस क्षेत्र में उपलब्ध मानव के कंकाल के वैज्ञानिक शोध द्वारा यह अनुमान लगाया गया है किइस क्षेत्र में 7000-10000 ईसा पूर्व का बसाव का इतिहास प्रमाणित होता है। मजुमदार महोदय[1]ने अपने ऐतिहासिक अध्ययन में भी हजारों वर्ष पूर्व में चावल की खेती गन्ना से निर्मित खाण्डसारी का वणन किया है। विद्वानों का यह भी मत है कि इस क्षेत्र में आर्य के पूर्व के लोगों की विकसित सभ्यता थी और कृषि, अधिवास तथा अन्य विशेषतायें आर्यकालीन बस्तियों से कम नहीं थी। ये भी ग्रामीण बस्ती के साथ-साथ नगरीय अस्तियों का बसाव, व्यापार तथा अन्य कार्यों में दक्ष थे। प्रो. रामलोचन सिंह[2] ने भी मध्य गंगा के मैदानी भाग के बस्तियों के उद्भव के विश्लेषण में पुरानी बस्तियों के विशेषताओं का उल्लेख किया है। द्रविड़ीयन बस्तियों के इतिहास का प्रमाण बस्तियों के नाम हिन्दुओं के सांस्कृतिक विचारधाराओं तथा रीति रिवाजों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है। उदाहरण स्वरूप देवता के पूजा-पाठ भी द्रविड़कालीन से संबंध रखता है। ऋगवेद में आर्य के पहले के निवासियों को दस्यु और असूर कहा जाता था। इन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला है कि आर्य के आने के क्रम में द्रविड़कालीन निवासियों को इस क्षेत्र से स्थानांतारित होने

के लिए बाध्य किया अथवा आर्य के रहन-सहन, तौर तरीके एवं सभ्यता को अपनाने के लिए मजबूर किया। इस संदर्भ में यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आर्यों का मध्य एशिया से आना और गंगा के मैदानी भाग में फैलना वद-विवाद का सवाल है। कुछ विद्वान इस बात से सहमत है कि आर्य लोग इसी क्षेत्र से मध्य एशिया में गए और पुन: वापा आए। क्योंकि आर्य और अनार्य के सभ्यता में बहुत जल्दी एकीकरण हो गया।

अंग प्रदेश का अभिन्न भाग बांका जिला का क्षेत्र भी प्राचीनकाल में आर्य पूर्व बस्तियों के विकास से परिपूर्ण रहा है। इसका विवरण वेदों में भी उपलब्ध है। अथर्ववेद[3] में अनार्य का विवरण है। बांका जिला का क्षेत्र प्राचीनकाल में अंग प्रदेश के प्रशासक के अधीन रहा जिसका प्रशासनिक केंद्र मालिनी था जो वर्तमान समय में चम्पा मालिनी के नाम से जाना जाता है तथा इसका विवरण मत्स्य पुराण[4] में है। इसका वर्णन महाभारत में भी एक धार्मिक जगह के रूप में है। जैसे-कमरडीह (प्रखजुरी प्रखंड)।

आर्यकालीन बस्ती

आर्यों के आगमन एवं गंगा के मैदान भाग में इनके फैलाव के संबंध में समाजशास्त्रियों में कुछ मतांतर भी है परंतु अधिकांश लोगों ने इस बात पर सहानुभूति प्रदान किया है कि आर्य सर्वप्रथम लगभग 2500 वर्ष ईसा पूर्व पंजाब के मैदानी भाग में बसे और वहाँ से हिमालय के तराई भाग होते हुए तथा गंगा नदी के किनारे फैलते हुए मैदान के अधिकाश भाग में विस्तृत हो गये। इस प्रक्रिया में आर्यों नें मूल निवासियों पर अधिपत्व जमाया अथवा उन्हें मैदानी क्षेत्र से पहाड़ी क्षेत्र की ओर स्थानांतरण के लिए बाध्य किया। ये लोग मूल निवासियों को अपने विचारधाराओं एवं संस्कुति द्वारा सभ्यता के अपनाने के लिए बाध्य किया तथा इस काम में प्रशासनिक प्रक्रिया को भी अपनाया तथा जो लोग इनके विचारधाराओं से सहमत नहीं हुए वे दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में स्थानांतरित हुए। इसका विवरण प्रो. रामलोचन सिंह[5] के शोध लेख में है। आर्यो ने सर्वप्रथम विभिन्न जगहों पर ऋषि और मुनियों का आश्रम विकसित किया जो आर्य सभ्यता एवं रहन-सहन के तौर तरीके के प्रसार में अहम भूमिका का निर्वाहन किया। इस विचारधारा पर इतिहास के विद्वान सनकालिया महोदय[6] का भी विचार है। इन्होंने आर्य के प्रसार के संबंध में अपने शोध प्रबंध में जिक्र किया है जिसका विवरण पन: प्रो. रामलोचन सिंह[7] के लेख में उदृत है। इन्होंने भी आर्य आधिपप्य का विस्तार उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम से पूरब की ओर तथा कालांतर में दक्षिण की ओर माना है।

जैसा कि इतिहास के विशेषज्ञ का अनुमान है कि आर्यकाल 1000 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक मानते हैं। इस समय में न केवल मध्य गंगा के मैदानी भाग ही बल्कि देश के अन्य भाग में भी इनका प्रसार एवं अधिपत्य फैला। इस क्रम में वैदिक, आर्यन, संस्कृति का विकास हुआ जो नये हिन्दू संस्कृति पर अधिक प्रकाश डाला। जिसमें जाति प्रथा, धार्मिक विचारधारा तथा मूल निवासियों को हिन्दूत्व अपनाने की प्रथा पर अधिक बल था। आर्य सभ्यता में चार स्तर के राजनैतिक प्रथा थी जिसके अंतर्गत राष्ट्र तथा जनजातिय गाँव की प्रधानता थी और सबसे निम्न स्तर पर कूल एवं घरको रखा गया था। उस समय छ: प्रकार की बस्तियाँ विकसित थीं जो घोष (Ghosa or Gopal) जो पशुपालन की दृष्टिकोण से विकसित था। दूसरा पल्ली (pali) एयह छोटी बस्ती थी। तीसरा दुर्ग (Durgaor Forte) चौथा ग्राम (Grama or Village) यह किला के चारो ओर विकसित होती थी। पाँचवां खरवट (Kharwat or pattana pt Ypem) तथा छठा नगर (Nagar or City)[1] यह सारी बस्तियाँ आकार तथा कायिक सांचना की दृष्टि से कुछ भिन्न होती थी। उस समय के गांवों का प्रबंधन छिस्मिल पद्धति पर आधारित थी क्योंकि गाँव का समूह 10, 20, 100 तथा 1000 की संख्या के अनुसार निर्धारित होती थी दस ग्रामी (Das Grami) सत ग्रामी (Sat Grami), एवं अधिपति (adhipati) के रूप में विकसित थी। अधिकांश बस्तियाँ आर्यन तथा अनार्य का मिश्रित अधिवास था और ये बस्तियाँ मुख्यत: कृषि पर आधारित थी। गांवों में अधिवास का क्षेत्र कृषित भूमि से घिरा होता था तथा अधिक दूरी पर जंगल, चारागाह का भाग होता था। इन बस्तियों के अतिरिक्त सीमावर्ती बस्तियाँ (Paccanta Grama) ओर सीमावर्ती गांव विकसित था। इन बस्तियों में जनजातीय लोगों का अधिवास होता था औद तीसरे प्रकार के ग्रामीण बस्तियाँ उद्योग तथा सेवा कार्य में संलग्न लोगों का अधिवास होता था जिसे आर्टीजियन का गांव माना जाता था।

भारत का दो महत्वपूर्ण धर्मग्रंथ रामायण एवं महाभारत भी आर्यकालीन बस्तियों विकसित नगरों राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत करता है। उस समय राम का वनवास तथा पांडवों का मुख्य स्थल से निस्कासन इस क्षेत्र में आर्यों की विरल बस्ती, जंगलों का फलाव, प्रमाणित करता है। आर्यकालीन बस्तियाँ छ: स्तर की विकसित थी। वस्तुत: इनकी बस्तियाँ नियोजित रूप में बसी थी जो आछ प्रकार की थी। ये नियोजित बस्तियाँ (1) दण्डाका (Dandaka) और Resembling a staff

(2) सर्वोभदरा (Happy in allrespects)(3) नंदवार्ता (Abode of happiness) (4) पदमाका (Like lotus flower) (5) स्वास्तिका (Like mystical figure so named) (5) प्रसतारा (Conch_shaped)(6) कर्मुकर (Bew shaped)(7) चतुर्मुखा (Having fourt faces or walls)। इन बस्तियों के संरचनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि गावों में गलियाँ, नालियाँ, घरों के बसाव के क्षेत्र तथा सामाजिकता निर्वाहन हेतु निर्धारित जगह हुआ करता था। बस्ती का मध्य प्रायः मंदिर, तालाब आदि से निध रित होता था। एवं समीपवर्ती गाँवों से जंगली क्षेत्र द्वारा ही विभाजित होता था।

अध्ययन क्षेत्र में कुछ बस्तियों का महत्वपूण इतिहास माना जाता है। बौसी, धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं यहाँ मधुसूदन का मंदिर है और मकर संक्रांति के समय विशाल मेला का आयोजन होता है। इस बस्ती के संबंध में पुराने लोगों का मत है कि खुदाई के क्रम में प्राचीनकालीन अवशेश मिले थे जो पुरातात्विक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था। ठीक इसी तरह का ऐतिहासिक महत्व इदिरावरन नामक बस्ती का है जो कटोरिया-देवघर मार्ग पर स्थित है। यहाँ पुराना मंदिर है और इस बस्ती के संदर्भ में भी लोगों का विश्वास है कि इसका उद्भव प्राचीनकालीन है। अध्ययन क्षेत्र का जेस्ठ गौरमद नामक स्थल भी काफी पुराना मंदिर का है। यहाँ शिवालय तथा काली मंदिर भी है एवं प्राचीनकालीन कुँआ भी। यहाँ शिवरात्रि के समय मेला आयोजित होता है और इस जगह के संबंध में भी यहाँ के पुराने लोगों की धारणा प्राचीनकालीन संबंधित है। मंदार हिल का अपना ही ऐतिहासिक महत्व है, यह हिन्दू धर्म के दृष्टिकोण से काफी पवित्र है क्योंकि स्कंद पुरान में इसका विवरण है। पहाड़ के निम्न भा में पुराने मंदिर है और इस जगह के संबंध में भी प्राचीनकालीन उदभव का संकेत मिलता है। जैसे-रायपुर धरही (शंभुगंज प्रखंड), नारायनपुर (बरहट प्रखंड), लक्ष्मीपुर, महादेवपुर (अमरपुर प्रखंड) तथा रणजोधा (धुरैया प्रखंड)।

बौद्धकालीन बस्ती

अध्ययन क्षेत्र का बौद्धकालीन इतिहास भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि अंग प्रदेश मगध का अभिन्न अंग बन गया था। इस समय मौर्य प्रशासक, सड़क निर्माण एवं व्यापार पर अधिक ध्यान आकृष्ट किया था विशेषकर अशोक के शासनकाल में बुद्धिस्ट विचारधारा काफी आगे फैल गया था और अशोक ने अनेक विहार का निर्माण किया था। इस विकास के क्रम में अनेक नगरीय तथा ग्रामीण बस्तियाँ विकसित हो गयी थी। मौर्यकालीन केंद्र स्थानीक के रूप में माना जाता था तथा अनेक गाँव जिसका प्रभारी गोपा होते थे। प्रत्येक गाँव में प्रमुख होता था जिसे ग्रामीका (Gramika) कहा जाता था। इसका चयन गाँव के बुजुर्ग लोग किया करते थे। इस प्रकार बौद्धकाल में बस्तियाँ विभिन्न नाम से जानी जाती थी जो गामक (Gamak) अथवा Small Village अथवा Ordinary Village, निगम गाम (Nigam Gama) अथवा Big Village द्वारगामा (Dwara Gama), Sub Urban Village (Pachant Gama) A Territorial Village जो विभिन्न संख्या में लोगों के अधिवास से निर्धारित था। बस्ती के समीप बगीचा, छिटपुट जंगल तथा कृषि क्षेत्र का विस्तार होता था। ग्रामीण चारागाह पशुचारण तथा समीपवर्ती जंगल जलावन के लिए लकड़ी प्रदान करता था। मंदार पहाड़ी के निकट दो पुराने मंदिर हैं और इसके निकट कृत्रिम तालाब है। इस तालाब के ख्नन के क्रम में बुद्ध मूर्ति उपलब्ध हुआ था जिस आधार पर लोगों का अनुमान है कि बौद्धकाल में इस जगह बस्ती का विकास था। ठीक इसी तरह कटोरिया के निपार बस्ती में बौद्धकालीन अधिवास का प्रमाण मिला है जिसके आधार पर लोगों का अनुमान है कि इस क्षेत्र में भी बौद्धकाल में ग्रामीण बस्तियाँ विकसित थी। जैसे- तेलगनवान, झखरा (शंभुगंज प्रखंड), खरवा, चेचरा (बरहट प्रखंड) तथा खरदौरी (अमरपुर प्रखंड)।

गुप्तकालीन बस्ती

बौद्धकाल के बाद इस क्षेत्र में मौर्य तथा गुप्त शासनकाल में बड़ी बस्तियाँ विकसित हुई। शिशुनाग नंदा, मौर्य, शुंग तथा गुप्त ये सभी क्रमशः अंग प्रदेश में शासन किया। मंदार हिल के निकट आदित्य सेन का शिलालेख की उपलब्धि से गुप्ताकालीन अधिवास प्रमाणित होता है। उसी समय चम्पा जो अभी भागलपुर शहर के निकट है वहाँ भी माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन का प्रमाण शिलालेख द्वारा उपलब्ध है परंतु गुप्त शासन के समाप्ति के बाद मगध प्रशासन के गुप्त तथा शशांक प्रशासन का इतिहास वर्तमान है और इस समय भी बाँका जिला में अधिवास का प्रमाण है। ह्वेनशांग भी इस क्षेत्र के भ्रमण के उपरांत चम्पा जगह का वर्णन किया है और मंदार पर्वत जो बौसी के निकट अवस्थित है इसका भी वर्णन किया है। ह्वेनशांग के पर्यटक विवरण के आधार पर कलिंघम ने गुप्त शासन का विस्तार उत्तर में गंगा नदी से दक्षिण में पारसनाथ की पहाड़ी तक जिक्र किया है। पाल प्रशासन में इस क्षेत्र में गोपाल

का शासन था जो आठवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक रहा। इसके बाद गोपाल के पुत्र धर्मपाल का शासन और अधिक सोन नदी तक फैल गया। उस समय विक्रमशिला विश्वविद्यालय का प्रमाण उपलब्ध है। इस जिलामें बौसी, बाँका, धुरैया, रजौन, अमरपुर आदि जगहों में अधिवास का प्रमाण उपलब्ध है। मंदार हिल के निकट भी खुदाई के उपरांत गुप्तकालीन प्रशासन का प्रमाण मिलाहै। चानन के निकट भी पुरानी बस्ती में कुँआ के खुदाई के क्रम में गुप्तकालीन बस्ती के अवशेष उपलब्ध हुए हैं परंतु बाँका जिला के मैदानी तथा पहाड़ी भाग में भी खास-खास जगह पर तालाब, कुँआ की खुदाई के क्रम में गुप्तकालीन बस्ती के प्रमाण मिले हैं जिसके आधार पर इतिहास के विद्वान बाँका जिला में बस्ती के विकास का विवरण प्रस्तुत किया है। जैसे- रूदपई (शंभुगंज प्रखंड), चासिया (बरहट प्रखंड), सुरीहारी, कजरा (अमरपुर प्रखंड) तथा भैरोपुर, तिलैया (कटोरिया प्रखंड)।

मुगलकालीन बस्ती

मुगलकाल में भी अध्ययन क्षेत्र मुगल प्रशासन से अछूता नहीं रहा। वस्तुत: मुगलकाल में सुगम मैदानी भाग में प्रशासन जल्दी फैल गया परंतु पहाड़ी भाग में प्रशासन कालांतर में फैला। इस क्रम में मुगल प्रशासन सर्वप्रथम इस्लाम धर्म के प्रचार हेतु सूफी तथा संत विभिन्न केंद्रों पर स्थापित किया जो धर्म प्रचार एवं लोगों के धार्मिक विश्वास को बदलने में सफल हुए और उसके उपरान्त शासन का तानाबाना फैलाया। अंग तथा बंग दोनों ही क्षेत्र दिल्ली के मुगल प्रशासक के अधीन हो गया। इस समय यह क्षेत्र मुंगेर जिला के अधीन था जो मुस्लिम प्रशासन के क्रम में विभाजित हुआ। आइने-अकबरी में अकबर के राजस्व वसूली के संबंध में विवरण से यह स्पष्ट हुआ कि मुंगेर के अधीन ही भागलपुर एवं बाँका था और उसी समय किसानों से राजस्व वसूली हेतु जमीन का स्वामित्व प्रदान किया गया। अकबर ने अपने प्रशासित क्षेत्र को सूबा (Province), सरकार (Division), दस्तुर (District), परगना (Sub Division) तथा महाल का विकास किया। स्थानीय जमींदार की भी भूमिका थी। यह क्षेत्र दो शताब्दी तक दिल्ली प्रशासन के अधीन रहा। इस काल में बस्तियों का विकास कुछ भिन्न रूप में हुआ। बहुत सुगम जगहों पर इस्लाम धर्म के पोषक की बस्तियों का विकास हुआ, चाहे वह धर्म परिवर्तन के रूप में हो अथवा प्रशासन के दृष्टिकोण से हो। परन्तु जो लोग इनके दबाव से वंचित रहना चाहते थे वे मैदानी भाग से दक्षिण के पहाड़ी भाग में स्थानांतरित हुए अथवा कठिनाई से पहुँच वाले जगहों में बसे ताकि मुगल प्रशासक के दबाव से वंचित रह सकें तथा उनके बुरे निगाह से बच सकें। यही कारण है कि बस्तियों के नाम का विश्लेषण से मुगलकालीन बस्ती के विकास का आभास मिलता है। शंभुगंज प्रखंड में मिर्जापुर, फतमाचक, अब्दुलमालीचक, अमरपुर में मोहिउद्दीन नगर तथा मोहिउद्दीन नगर एराजी, सुल्तानपुर, कासिमचक, मोजाहिदपुर, मुगलानीचक, मुहम्मदपुर, सलेमपुर, रजौन प्रखंडमें मुसिमचक, महमुदचक, फतमाचक, अलीपुरचक, इस्लामपुर, दर्जीफिता, मिर्जापुर, धुरैया प्रखंड में फकिराचक, मुहम्मदपुर, साहिकपुर, बरहट प्रखंड में हैबतपुर आदि।

ब्रिटिशकालीन बस्ती का विकास

मुगलशासन के उपरान्त ब्रिटिश शासन का इस क्षेत्र के अधिवास पर विशेष प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश शासन के शुरूआत होने पर सुरक्षा एवं शांति का माहौल स्थापित हो गया और आवागमन के साधन एवं प्रशासन के दृष्टिकोण से प्रशासनिक केंद्रों के विकास का भी प्रभाव बस्तियों पर पड़ा। 1769 ई॰ में भागलपुर जिला का प्रशासनिक केन्द्र राजमहल था परन्तु इस क्षेत्र में वर्तमान भागलपुर एवं बाँका जिला के पहाड़ी भाग के लोग ब्रिटिश शासन से उतना संतुष्ट नहीं थे, इस कारण पहाड़ी भाग के जनजातियों को रक्षक के रूप में बहाल किया, जिससे अंग्रेजों को शासन करने में सुविधा मिली। इस क्रम में पहाड़ी क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों पर शासन करने में भी आसानी हो गई। प्रशासन अंग्रेज मुख्यत: भागलपुर के नगरीय भाग में रहने वाले और अन्य क्षेत्रों पर शासन सरल हो गया। इस भाग में भी अंग्रेज ने निल की खेती शुरू की, जो कालांतर में स्थानीय जमींदार को स्थानांतरित कर दिया गया। ब्रिटिश काल में बस्तियों के विकास में अहम भूमि का सर्वेक्षण, भूमि का स्वामित्व तथा लेखा-जोखा से हुआ। सर्वेक्षण के उपरान्त किसानों के खेत का नक्शा, खतियान तथा अन्य कागजात उपलब्ध कराया गया जिससे गाँवों के निवासी एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होने से वंचित हो गए। ग्रामीण क्षेत्र में कच्ची सड़कों का विकास हो गया। सड़क मार्ग के विकास से बस्ती के बसाव पर प्रभाव पड़ा, परंतु जो लोग अंग्रेजों के शासन के त्रस्तता से वंचित रहना चाहते थे वे दुर्गम क्षेत्र में ही बसना पसंद किये परंतु ब्रिटिश काल में प्रशासन हेतु खासकर लगान वसूली हेतु एवं सुरक्षा हेतु पुलिस स्टेशन का प्रबंध हुआ और सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र विकसित किया गया जिससे उन जगहों पर ग्रामीण सेवा केन्द्र का विकास हुआ। जितने भी पुलिस स्टेशन हुए वे सभी ग्रामीण सेवा

केन्द्र के रूप में विकसित हो गए। उनमें मुख्य सेवा केन्द्र बौसी, बाँका, कटोरिया, अमरपुर, धुरैया, फुलीडुमर, बरहट, चानन इत्यादि है। उस समय भी थाना तथा राजस्व थाना का विकास हुआ था और एक राजस्व थाना के अन्तर्गत कई थाना होता था।

ब्रिटिश काल में बस्तियों के विकास पर जमींदारी प्रथा का अधिक प्रभाव पड़ा क्योंकि जमींदार छोटे किसानों को अपनी सुविधानुसार गृह निर्माण हेतु जगह देते थे। लोग स्वेच्छानुसार बसने के लिए स्वतंत्र नहीं थे जिससे बस्ती का विकास जमींदार के घरों के आस-पास हुआ करता था ताकि जमींदार भूमिहीन लोगों की सेव अपनी सुविधानुसार ले सके। उस समय भी बस्ती के विकास में सामाजिक परिस्थितियों की भी भूमिका थी क्योंकि उस समय समाज सुधारक लोग अहम भूमिका का निर्वहन नहीं कर पाए थे और जाति, धर्म के आधार पर बस्तियों का विकास होता था। छुआछूत एक जटिल समस्या थी और बस्ती के विकास में धर्म, जाति की अहम भूमिका थी। जैसे- मुलहर गाँव (अमरपुर प्रखंड), खैरा, कदमा (धुरैया प्रखंड), बरकेरा (चानन प्रखंड) तथा सदपुर (फुलीडुमर प्रखंड)।

स्वतंत्रोपरांत बस्ती का विकास

स्वतंत्रता प्राप्त होने के उपरान्त प्रशासनिक बदलाव, सामाजिक चेतना में परिवर्तन, समाज सुधारक के प्रचार-प्रसार, आर्थिक विकास एवं अन्य परिवर्तन का प्रभाव बस्ती पर पड़ा। सर्वप्रथम स्वतंत्रता के उपरान्त जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ और भूमिहीन किसान एवं अन्य लोग जमींदारों के दबाव से वंचित हो गए। स्वेच्छानुसार गाँव के विभिन्न भाग में घर बनाकर रहने के लिए स्वतंत्र हो गए, साथ-साथ जमींदारों तथा सम्पन्न किसानों के भूमि पर बसे लोगों के स्वामित्व का पर्चा प्रदान किया गया। इस क्रम में सामाजिक कुरीतियों में भी कमी आयी। समाज सुधारक के प्रचार और प्रसार से जाति, धर्म, छुआछूत आदि में काफी परिवर्तन आया और विभिन्न जाति के लोग एक साथ गृह निर्माण कर रहने लगे। धार्मिक उन्माद एवं अन्र्तजातीय कलह में काफी कमी आयी।

वर्तमान समय में सड़कों के जाल बिछने से बस्तियों पर अहम प्रभाव पड़ा। लगभग सभी मुख्य बस्तियाँ पक्की सड़कों से संबंधित हो गयी और अन्य बस्तियाँ भी कच्ची सड़क तथा पगडंडी से सम्पर्क स्थापित कर दिया गया है। परिणामस्वरूप जो लोग दुर्गम क्षेत्र में रहते थे वे अब सड़क के किनारे घर बनाकर रहना पसंद कर रहे हैं ताकि वे गैर कृषि कार्य में संलग्न हो सकें। यही कारण है कि पक्की एवं कच्ची सड़कों के किनारे बस्ती का विकास अधिक हुआ है और निवासियों के आर्थिक संरचना में बदलाव आया है। मुख्य सड़कों के चौराहों पर बाजार का विकास हुआ है। वर्तमान समय में लगभग सभी पंचायतों में शैक्षणिक संस्थान, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, ग्रामीण बाजार आदि की सुविधा विकसित हो गयी और छोटे-बड़े ग्रामीण सेवा केन्द्र का विकास हो गया है। प्रखंड कार्यालय के निर्माण सोसमन प्रखंड मुख्यालय महत्वपूर्ण सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो गया है। प्रखंड मुख्यालय पर अस्पताल, शैक्षणिक संस्थान तथा अन्य सुविधाओं का विकास हुआ है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र के लोग छोटे बाजार की सुविधा से लाभान्वित हो सके।

वर्तमान समय में अति पिछड़े तथा दलित वर्ग के लिए सरकार की अनुदान की सुविधा से बस्ती के रूप में परिवर्तन आया। सर्वप्रथम दलितों के लिए घर बनाकर प्रदान किया गया। कालांतर में उन्हें आर्थिक सहायता दी गयी ताकि वे अपने घर की स्थिति को सुधार सकें और पेयजल, शौचालय तथा अन्य सुविधाओं का विकास कर सकें। इस काम में विभिन्न सामाजिक संस्थान, बैंक तथा अन्य लोगों का भी सहयोग रहा है। हुडको ने भी लोगों को सहायता प्रदान किया है। बस्तियों में पहले पेय जल की कठिनाई होती थी और साधारण किसान अथवा भूमिहीन श्रमिक वर्ग सम्पन्न किसानों द्वारा विकसित पेयजल पर ही निर्भर करते थे और लोगों के गृह निर्माण में भी पेयजल सुविधा का भी आकर्षण रहता था, परन्तु आज ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी पेयजल की सुविधा उपलब्ध है, जिससे एक-दूसरे पर निर्भरता नहीं के बराबर है। सरकारी सहायता से साधारण किसान अपना पेयजल विकसित कर पा रहे हैं।

बस्तयों के विकास में वर्तमान समय में लोगों के विचारधाराओं में परिवर्तन का भी महत्व है। पहले लोग अपने पूर्वजों के मूल स्थान पर ही धार्मिक दृष्टिकोण से अथवा अंधविश्वास के कारण कठिनाई से रहते थे। परन्तु शिक्षा में विकास, विचारधाराओं में परिवर्तन तथा अन्य कारणों से अब सड़क के किनारे घर बनाने लगे हैं और पैतृक स्थान से उतना अधिक जुड़ाव नहीं रह गया है। उल्लेखनीय है कि बस्ती के विकास में खासकर हिन्दू के बस्ती में ग्रामीण देवता तथा घरेलू देवता का महत्व रहता था। आज बहुत सीमित लोग ही इन विचारों से ग्रसित रह गये हैं और स्वेच्छानुसार सुविधा के अनुकूल विभिन्न जगह में बसना प्रारम्भ कर दिया है।

बस्तियों के विकास में खासकर गृह निर्माण में, घरों की सुविधाओं के विकास में तथा रहन-सहन के तौर तरीकों में अहम परिवर्तन आया है। इन परिवर्तन में शिक्षा, अन्य क्षेत्रों के लोगों से सम्पर्क, प्रचार-प्रसार के सुविधा साथ-साथ ग्रामीण शहरी प्रवास का भी महत्व है। आज ग्रामीण क्षेत्र से काफी संख्या में देश के विभिन्न भागों में सम्पर्क स्थापित किए हुए हैं। आर्थिक लाभ उठाते हैं और घर आने पर घर की स्थिति में सुधार लाते हैं एवं रहन-सहन, तौर-तरीके आदि में परिवर्तन लाये हैं। जैसे- काभडिह, रायपुरा (शंभुगंज प्रखंड), परसा, चंगेरी, लोहिरया (बरहट प्रखंड), राजपुर, कैथा, महेशपुर (रजौन प्रखंड), औरया, दरहा (बेलहर प्रखंड), अमहारा, नयाडीह (चानन प्रखंड) तथा जोगी पहाड़ी, देवपुर, सारभ (बाँका प्रखंड)।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. Majumdar, R.C. (1977) : Ancient India, Delhi, MOtilal Banarsi Das, P.17.
2. Singh, R.L. (1955) : Op. Cit.
3. Atharva Veda, V. – 22-14 : Mention in District Gazetteer, Bhagalpur, P.36.
4. Matsya Puran, Describe in Bhagalpur District Gazetteer, P. 36.
5. Singh, R.L. (1975) : Evaluation of Clan Territorial Unit through Land Occupances in the Middle Ganga Valley in readings in Rural Settlement Geography, National Geographical Society of India, Varanasi, P. 355.
6. Sankalia, H.D. (1974) : The Pre History and Proto History of India and Pakistan, Decean College, Post Graduate and Research Institute, Poona, P. 135, see also G.S. Rathore on "The Uni Basin : A Note on Pre Historic and Historic Settlement" in Rural Settlements in Monsoon Asia (eds.) R.L. Singh et.al. (1972) NGSI, IGU Pub. PP. 241-248.
7. Singh, R.L. (1953) : Banaras and its Umland, Varanasi Nand Kishore and Sons, P. 296.

श्रमिक संत कवि रविदास : सामाजिक चेतना के प्रणेता

डॉ० रवि कुमार

हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

भक्तिकाल के निर्गुण काव्य धारा के ज्ञानमार्गी शाखा के प्रणेता महानायक एवं रविदास और कबीर घुमक्कड़ और निर्भीक संत कवि थे। इन्होंने अपने सारे विरोधी पंडितो-महंतों और मुल्ला-मौलवियों के सामाजिक और धार्मिक वर्चस्व को खत्म करते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों और धार्मिक ढकोसलों पर खुल्लम-खुल्ला गंभीर चोट की है। भारतीय इतिहास के बर्बर मध्यकाल में भी संत रविदास के इतने निर्भीकतापूर्ण बेबाक विचर उनकी आंतरिक दृढ़ता, उनसे सामाजिक चेतना की तड़पन और अपने दलित भाइयों एकजूट करने के प्रति दीवानगी की दमदार मौजूदगी का एहसास होता है। रविदास जी की सघुक्कड़ी जीवन-वृत्ति और वाणियों में समाज चेतना के क्रांतिकारी तत्व मिलते हैं। रविदास के दोहों में मानवता की आवाज मिलती है। उन्होंनें भक्तिमय जीवन शैली अपनाते हुए भी ईश्वरीय अवतारों के सिद्धांतों-योग-यज्ञ, कर्मकाण्ड, बलि, धार्मिक संकेत, तीर्थयात्र, मूर्ति-पूजा, जातीय भेदभाव तथा वेद-शास्त्रों की खोखली मान्यताओं को सिरे से खारिज कर दिया है। वे कुछ भी कहने के लिए छोड़े नहीं है। मनुष्य की बुरी वृत्तियों तथा विनाशकारी नीतियों पर करारा प्रहार करते हैं। छल-प्रपंच का सहारा लेकर समाज में ऊँच-नीच और अवर्ण-सवर्ण का सिद्धांत रच कर चतुर और चालाक ब्राह्मण सदियों से समाज के एक बड़े वर्ग का सांस्कृतिक शोषण करता आया है। दलित वर्ग दीन-हीन-मलिन रहने को विवश था। बहुत कुछ आज भी वैसी ही स्थिति है। अगर रविदास जी का पद जन-जन तक पहुँचे और इसे हृदयंगम किया जाय तो निश्चय ही शोषक और शोषित तथा दमनकारी और दमित वर्ग के बीच की खाई पर जाएगी। इससे समाज और देश चहुँमुखी प्रगति के पथ पर प्रशस्त होगा। व्यक्तिगत स्तर पर संदेह ग्रंथियों को मिटा कर हर मानव आत्मिक विकास कर सकेगा। गुरु रविदास जी का एक-एक पद मानव मन की गहराइयों को छू देने वाला है। यह सच्चे मार्गदर्शक की भुमिका निभाता है तथा बुराइयों से लड़ने के लिए व्यक्ति में आत्मविश्वास और जोश भरता है।

जति-पाति के जाल में उलझे भारतीय समाज को संत रविदास ने स्वयं जातीय घृणाओं से जलील होते हुए भी अपनी बेबाक वाणी और विचार से झंकृत किया है। उनके विचार ऐसी मानसिकता को धिक्कारता है जो श्रेष्ठ-निकृष्ट और जात-कुजात का भेद बनाकर समाज को बाँटते हैं और सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध करते हैं। विद्वत्ता किसी की विरासत नहीं है और न ही जन्म से ही तोहफा के रूप में मिलती है। यह सब तो श्रेष्ठ कर्मो से किसी को भी प्राप्त हो सकती है। मनुष्य स्वयं ही एक जाति है तो मानव में पुनः जाति-भेद कैसा?

रविदास कहते हैं-

रविदास एकै ब्रह्म का, होई रह्यो सगल पसार।
एकै माटी सब घट स्रजै, एकै सभ कूं सिरजनहार।।

-संत रैदासः वाणी और विचार, पृ.252

ब्राह्मन, वैस, सूद अरु खत्री, डोम चंडाल मलेछ मन सोई।

होई पूनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि तारे कुल दोई।।

-संत रैदास: वाणी और विचार, पृ.223 (गुरुग्रंथ, पृ.858)

संसार के सारे प्राणी एक ही मिटी (तत्व) से निर्मित है। इन सब का रचनाकार भी एक ही ब्रह्म है। अर्थात् सभी मानव का शरीर एक जैसा हाड़, मांस और रक्त से बना है और सबों की उत्पत्ति भी एक ही बिन्दु से होती है तो आपस में भेद कैसा? ब्राह्मण-अब्राह्मण तथा वर्ण-अवर्ण की बात ही कहाँ रह जाती है? इसमें जन्माधारित श्रेष्ठता का सवाल ही कहाँ उठता है? श्रेष्ठ तो व्यक्ति पुनीत कर्मो से होता। उत्तम विचार और उत्तम कर्म सारे समाज को लाभान्वित करता है, दोनों कुल अर्थात् मातृपक्ष और पितृपक्ष के वंशों का उद्धार कर देता है, चाहे वह व्यक्ति किसी भी जाति का हो। अत: जाति-भेद और वर्ण-भेद अव्यावहारिक और निंदनीय विचार है। इससे व्यक्ति और समाज को हानि ही हानि है।

गुरु रविदास इस जड़ को एक ही झटके में कबाड़ते हुए कहते हैं-

ब्राह्मण खतरी वैस सूद, रविदास जनम ते नाहि।

जो चाहइ सुबरन कउ, पावइ करमन मांहि।।

-संत रैदास: वाणी और विचार, पृ.239

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का जनमगत आधार समाज विरोधी सिद्धांतों पर आधारित है। जन्म से ही कोई प्रज्ञावान, बलवान और धानवान पैदा नहीं होता है। कोई भी व्यक्ति कर्म से ही श्रेष्ठ ओर कर्म से ही निकृष्ट होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'कबीर' पृ.109 में सरोरुहपाद के पदों की व्याख्या करते हुए कहते हैं- ''ब्राह्मण, ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे वैसे ही पैदा होते हैं जैसे दूसरे लोग, तो फिर ब्राह्मण कहाँ रहा? यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है तो चांडाल को भी संस्कार देकर क्यों नहीं ब्राह्मण हो जाने देते?''

गुरु रविदास को जात-पात वाली समाज में मानवीय एकता का पनप पाना मुश्किल लगता है। जाति ने सदा से ही इंसानियत को कभी पनपने नहीं दिया है। जाति-भेद के कारण कितने ही इंसान कत्ल हुए हैं और मानवता कलंकित हुई है। यथा-

जात पांत के फेर महि, उरझि रहइ सभ लोग।

मानुष्ता कूं खात हइ, रविदास जात कर रोग।।

-संत रैदास: वाणी और विचार, पृ. 238

टाज समाज में यह जाति का रोग बड़ा ही गंभीर समस्या बन चुका है। आपसी प्रेम और भाईचारे की भावना पनप नहीं पा रही है। न मानव से मानव जुड़ पा रहा है क्योंकि जातिरूपी रोग ने मनुष्यता को ही नष्ट कर डाला है।''

जति-पाँति से इतनी हानि के बावजूद लोग इसका पोषण करते ही आ रहे हैं, वर्ना उन्नीसवीं शताब्दी में मानवता के मसीहा डॉ. भीमराव अम्बेडकर को 'एनीटिलेशन आर्फ कास्ट' नहीं लिखना पड़ता। डॉ. अम्बेडकर ने इस पुस्तक के पृ. 56 में लिखा है- ''जाति ने जन-चेतना को नष्ट कर डाला है। जाति ने लोगों में जन-कल्याणकारी भावों को कुचल दिया है। लोगों में दया है, प्रेम है, सहानुभूति है और अपनत्प भी है, परन्तु यह सब जाति तक ही सीमित है, जाति के साथ शुरु होता है और जाति के साथ खत्म भी होता है।''

जाति-पाँति से होने वाले गंभीर दुष्परिणामों से समाज विखंडित हो जाता है। जन्माधारित जाति मानव-मानव में विकर्षण पैदा करती है तथा मानवीय संवेदनाओं का अंत कर देती है। संत रविदास समाज को आगाह करते हुए कहते हैं

जात पात में जात है, जौं केलन की पात।

रविदास न मानुष जुड़ सकैं, जौ लौं जात न जात।।

-संत रैदास : वाणी और विचार, पृ. 239,

भारतीय समाज में जाति-पाँति की जड़ बड़ी गहरी है। जातीय व्यवस्था वाली समाज में कई जातियाँ हैं। इन जातियों में भी कई उपजातियाँ हैं। इनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव भी है, जिस वजह से सभी जाति के लोग आपस में जुड़ नहीं पाते हैं। जाति-पाँति वाली इस समाज व्यवस्था की तुलना संत रविदास केले के पत्ते से करते हैं। जिस प्रकार केले के एक पत्ते के बाद दूसरा पत्ता, दूसरे

पत्ते के बाद तीसरा पत्ता और इसी तरह पत्ते के बाद पत्ते का अंतहीन सिलसिला चलता रहता है ठीक उसी प्रकार हमारे समाज में जातियों और उपजातियों का एक के बाद एक का क्रम बना रहता है। इससे मनुष्यता का ह्रास होता है। वर्गीकृत जाति-व्यवस्था के कारण एक जाति के लोग दूसरी जाति से नहीं जुड़ पाते, जो देश और समाज दोनों को प्रभावित करता है। जब तक जातियों का यह अंतहीन सिलसिला खत्म नहीं होगा, मानव-मानव कभी आपस में नहीं जुड़ सकेगा। प्रेम और बंधुत्व की भावना कभी पनप नहीं पाएगी।

रविदास के उपर्युक्त पदों से यह पता चलता है कि वे एक जातिविहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। इस आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने जातिवाद के उच्छेद के लिये अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। उन्होंने इस जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के लिये सहभोज और सहजीवन (अन्तर्जातीय विवाह) का मंत्र दिया क्योंकि खून का संबंध ही व्यक्ति में अपनत्व का भाव पैदा कर सकता है। गीता हिन्दू धर्म का एक प्रमुख धार्मिक ग्रंथ है जिसमें लिखा है कि व्यक्ति में गुण-अवगुण जन्मजात होता है। इसी के आधार पर चारों वर्णों द्धब्राह्मण,क्षत्र्यि, वैश्य और शूद्रऋ के गुणों का निर्धारण होता है और यह चारों वर्गों वाली व्यवस्था ईश्वरख्रत है। देखिए-

चातुर्वयं मया सृटं गुणकर्मविभागशः। -गीता-4-13

''हे अर्जुन! यह जो ब्राह्मण, क्षत्र्यि, वैश्य और शूद्र चारों वर्गों का विभाग है, यह गुण कर्म के अनुसार मेरे द्धईश्वरऋ द्वारा ही रचा गया है।'' परन्तु गुरु रविदास इस मान्यता को मानने से इनकार करते हैं। गुण तो व्यक्ति के कर्मों के अनुसार निर्धारित होता है। यह कैसे मान लिया जाय कि जो गुण व्यक्ति में जन्म के समय था वह मृत्युपर्यन्त बना रहेगा। स्थिति-परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति में मौजूद गुण, स्वभाव में भी परिवर्तन होता रहता है अतः व्यक्ति को एक वर्ण के दायरे में सीमित नहीं रखा जा सकता है, वह भी जन्म से ही। अतः रविदास कहते हैं-

रविदास जन्म के कारने, होत न कोई नीच।
नर कूं नीच कर डारी है, ओछे करम की कीच।।
-संत रैदास : वाणी और विचार , पृ. 124

''किसी जाति विशेष में जन्म लेने से कोई व्यक्ति नीच नहीं होता . है। नीच तो व्यक्ति अपनी बुरे कर्मों से ही होता है।''

इस पंद में सांत्वना भी है और झूठे अहंकार पर चोट भी हैं। सांत्वना उनके लिये है जो अपने को नीची जाति का होने की हीनता का भाव लिये बैठे हैं और अहंकार पर चोट उसके की गई है जो यह समझता है कि मैं उच्च हूँ क्योंकि मैंने ऊँची जाति में जन्म लिया है। ऐसे लोग झूठे दंभ में जीते हैं। गुरु रविदास स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बतलाते हैं कि ''मैं तो नीची जाति कहे जाने वाले चमार जाति का हूँ और मृत पशुओं की लाश ढोता हूँ, फिर भी मेरे श्रेष्ठ कर्मों के कारण समाज में श्रेष्ठ माने जाने वाले ब्राह्मण भी मेरा सम्मान करते हैं, प्रणाम करते हैं।'' यथा-

मेरी जाति कुट बांढला ढोर ढोवंता नितहि बनारसी आसपासा।
अब विप्र परधाम तिहि करहि डंडउति तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा।।
-संत रैदास रू वाणी और विचार, पृ. 220
(गुरुग्रंथ, राग मलार, पृ. 1298)

अतः अछूत समाज को अपनी जाति के कारण हीनभाव को त्याग कर श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त होकर श्रेष्ठ पद पाकर स्वाभिमानपूर्वक जीना चाहिए। हीन भाव को त्यागे बिना कोई भी दलित स्वाभिमानी, ऊर्जावान और ज्ञानवान नहीं हो सकता क्योंकि हीनता का भाव उसे कठिन संघर्ष कर ऊपर उठने से रोकेगा।

गुरु रविदास न केवल जात-पात के चंगुल में ऱ्से भारतीय समाज की आलोचना करते हैं बल्कि वे इस चंगुल से मुद्र होने का उपदेश भी देते हैं, उपाय भी बताते हैं। जाति रोग से ग्रसित हिन्दुस्तानी समाज का वे सटीक इलाज भी बताते हैं ताकि सदियों से रुग्ण हिन्दू समाज स्वस्थ होकर दुनिया में पुनः अपनी प्रतिष्ठा कायम कर सके। संत रविदास समानतावाद के कितने बड़े पैरोकार थे, यह उनके इस पद से पता चलता है

जन्मजात मत पूछिये, का जात अरु पात।

रविदास पूत सभ प्रभ के, कोउ नहि जात कुजात।।

-संत रैदास : वाणी और विचार , पृ. 238

समता और समरसता का कितना बड़ा मंत्र दिया है हमें गुरु रविदास ने। वे कहते हैं-''किसी से जाति पूछने से क्या लाभ। सारा मानव तो एक ही जाति का है। और वैसे भी किसी की जाति से उसके ऊँच-नीच और गुण-अवगुण का पता थोड़े ही चलता है। सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं तो फिर ब्राह्मण और शूद्र में भेद कैसा! विचार और भेद तो अच्छे-बुरे कर्मों पर होता है। अतः कोई भी मानव कुजात अर्थात् निकृष्ट वर्ण का नहीं है।''

रविदास एक मानवतावादी संत कवि थे। वे सच्चे कर्म में विश्वास रखते थे। जीवन के व्यावहारिक एवं मानवीय पक्षों को केन्द्र में रख कर ही वे धार्मिक वृत्ति अपनाने एवं ईश-भजन करने का उपदेश देते थे। मन में ईर्ष्या, लोभ, मोह और घृणा का कुभाव रख कर साधुई वेष बनाना, मंत्रोच्चार और धार्मिक कर्मकाण्ड में निरत रहना तो केवल छलावा है। यह सब बाह्य रूप से दिखाने के लिए है, ऐसा संत रविदास मानते थे। समाज को भ्रमित करने वाले ऐसे दोरंगी लोगों को लताड़ते हुए रविदास कहते हैं-

भेष लियो पै भेद न जान्यो।

अमृत लेई विषै सो मान्यो।।

तिलक दियो पै तपनि न जाई।

माला पहिरि धानेरी लाई।।

-संत रैदास : वाणी और विचार, पृ. 219

गुरु रविदास का मानना है कि केवल धर्म ग्रंथों के पठन-पाठन से ही भगवान की उपासना नहीं हो सकती, सच्ची बात तो यह है कि शुद्ध मन, वचन और कर्म से मात्र नाम स्मरण ही व्यक्ति को निर्मल और निर्विकार बना देता है। अपने शरीर, पंडिताई ब्राह्मणत्व, धान-दौलत, बड़बोलेपन और धर्मग्रंथों के पाठ के नियम तथा मंदिर में बैठकर पूजा-अर्चना करने की बनावटी दिनचर्या पर गर्व करना व्यर्थ है। इससे कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है, सिवाय कीमती समय की बर्बादी के। रविदास इन बातों का खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं-

थोथी काया, थोथी माया, थोथा हरि-बिनु जन्म गंवाया।

थोथा पंडित थोथी बानी, थोथी हरि-बिनु सबै कहानी।

थोथा मंदिर भोग विलासा, थोथी आन देव की आसा।

सांचा सुमिरन, नाम बिसासा, मन बच कर्म कहै रैदासा ।

-संत रैदास की मूल विचारधारा, पृ. 41

अर्थात् तुम्हारा यह शरीर झूठा है, इस पर अहंकार करना व्यर्थ है क्योंकि शरीर तो गंदगियों का पिटारा है, सिर से लेकर मलद्वार तक सिर्फ गंदगी ही गंदगी भरी है और अन्त में यह जर्जर होकर नष्ट भी हो जाता है। फिर भी लोग अपनी जाति पर झूठा घमंड करते हैं और अपने को देवताओं की तरह पुजवाते हैं। धान-दौलत भी झूठा है क्योंकि इससे भी व्यक्ति के चरित्र और आचरण में कोई फर्क नहीं पड़ता है। मानवीय संवेदनाओं से रहित जो लोग अपने को पंडित (ज्ञानी) होने का दंभ भरते हैं, यह दावा उनका बकवास मात्र है। मंदिर तो मात्र ढकोसला है तथा उसमें स्थापित देवी-देवता भी झूठे हैं अर्थात् भगवान के अलावा सब थोथे ही हैं। अतः बनावटीपन और भोग-विलास को छोड़कर निराकार ईश्वर का नाम सुमिरन ही श्रेयष्कर और लाभकारी है।''

गुरु रविदास कहते हैं कि कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो यह जानते हुए भी कि सच्चे प्रेम के बिना कुछ भी हासिल नहीं होने वाला है, अपने शरीर पर सिर से पैर तक नाना प्रकार की चित्रकारी कर (तिलक-त्रिपुण्ड धारण कर) समाज को ठगकर अपना रोजगार चलाते हैं किन्तु उन्हीं हाथों से कितने कुकर्म करते हैं, इसका कोई हिसाब नहीं। ऐसे लोग सुमार्ग पर से कुमार्ग पर भटक जाते हैं और सच्चे प्रेम भाव के अभाव में ईश्वरानुभूति से वंचित रह जाते हैं। यथा-

माथे तिलक हाथ जप माला। जग ठगने को स्वांग बनाया।

मारग छाड़ी कुमारग डहक । सांची प्रीति बिनु राम न पाया।।

वास्तव में साधुता का मतलब आत्मसंयम तथा वाणी और मन पर नियंत्रण है। सच्चा साधु तो वही हो सकता है जिसके दृष्टिकोण में विश्वबंधुत्व भय कल्याणकारी भाव अन्तर्निहित हो। छापा और तिलक तो बाहरी दिखावा भर है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ- डॉ.डी॰आर॰.।
2. देख कबीरा रोय- डॉ. भगवती जाटव चरण मिश्र ।
3. संत रैदास : वाणी और विचार ।
4. गुरु रविदास : जीवन और दर्शन-धर्मपाल सिंहल ।

पिछड़ी जाति के प्रवासी मजदूरों में बेरोजगारी की समस्या एवं सामाधान (गया जिले के ग्रामीण क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० संध्या कुमारी

गेस्ट असिसटेंट प्रोफेसर, ए. एन. डी. कॉलेज, शाहपुर पटोरी, समस्तीपुर, एल. एन. एम. यू., दरभंगा

प्रवासी का मतलब खासकर वैसे लोगों से है जो अपने देश या राज्य को छोड़कर रोजगार की तलाश में दूसरे राज्यों/प्रांतों में जाकर रहते हैं। उन्हें प्रवासी कहा जाता है या इसे इस रूप में भी कह सकते हैं एक प्रवासी श्रमिक वह व्यक्ति होता है जो या तो अपने देश के भीतर या बाहर काम करने के लिए पलायन करता है। प्रवासी श्रमिक आमतौर पर उस देश या क्षेत्र में स्थायी रूप से रहने का इरादा नहीं करते हैं जिसमें वे काम करते हैं। प्रवासी अन्तर्देशीय, अन्तरप्रांतीय और एक ही प्रांत में हो सकते हैं। प्रवासी जन अपनी इच्छा से लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का इस्तेमाल करते हुए दूसरे क्षेत्रें में जाते हैं। प्रवासी विषम परिस्थितियों में ही शहर की ओर पलायन करते हैं। इन्हीं कारणों से प्रवासी मजदूर शहरों की कच्ची कोलोनियों, पूर्णवास बस्तियों या झुग्गी-झोपड़ियों में बस जाते हैं।

लेकिन मोटे तौर पर प्रवासी मजदूर उन्हें माना जा सकता है जिनका शहरों में अपना घर ना हो, उनके पास शहर का राशन कार्ड न हो और नागरिकता प्राप्त न हो। प्रवासी मजदूरों का विकास भारत में होने का मुख्य वजह है जनसंख्या विस्फोट, कृषि अर्थव्यवस्था में भयानक संकट, कृषि यांत्रिकरण, ग्रामीण व्यवस्था में जातिवादी शोषण तथा असमान विकास के चलते संभव हो पाया है।

शिक्षा- व्यवस्था में अवसरों की समान्ता की सिद्धांत को ही नष्ट कर दिया है। सरकारी शिक्षा का उद्‌देश्य तो केवल साक्षर बनाना एवं मजदूरों को पुनरूत्पादन से ज्यादा बनने नहीं दिया गया है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामंती-भूपति, ऋसरसाही, गठजोड़ एवं उस पर आधारित राजनीति में दलितों एवं पिछड़ी जातियों, गरीबों को प्रवासी बनाने पर मजबूर कर दिया गया है।

सरकार का ग्रामीण विकास की योजनाएं- मनरेगा फीसस्त्री साबित हो रही है। ज्यादातर प्रवासी मजदूर अकुशल होते हैं जिसके कारण असंगठित क्षेत्रें में कार्य करना पड़ता है। आमतौर पर रोज कमाओं-रोज खाओ जैसी स्थिति है। सोचनेवाली बात है कि इतने काफी दिनों के लॉकडाउन में सामाजिक दूरी इन प्रवासी मजदूरों के लिए आफत साबित हो गयी है। पैदल चलकर आनेवाले प्रवासियों पर क्या बीती होगी, यह तो वही बता सकते हैं।

प्रवासी मजदूर शहर में अकुशल मजदूर के रूप में आते हैं। इन मजदूरों का प्रवास 03 महीनों से लेकर वर्षो तक हो सकता है। इन प्रवासी मजदूर के कारण ही बड़े-बड़े शहरों के पूँजीपति, अमीर, उच्च वर्ग एवं मध्य वर्ग को हर प्रकार की सुविधा एवं सम्पन्नता मिल पाती है।

सस्ता वेतन, कमरतोड़ काम
यही है प्रवासी की पहचान
उपर से शून्य सम्मान।

स्टेट ऑफ वर्ल्ड पोपुलेशन के अनुसार दुनियॉ की आधी आबादी शहरों में रहने लगी है। भारत की जनगणना रिर्पोट के अनुसार भारत में आंतरिक प्रवासी मजदूरों की संख्या एक सौ उन्चालीस मिलियन है। जिसमें ज्यादातर प्रवासी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बंगाल, झारखण्ड एवं उत्तराखण्ड से आते हैं एवं दिल्ली, महराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तामिलनाडु, गुजरात एवं केरल को जाते हैं।

गया जिले के ग्रामीण क्षेत्र के विशेष संदर्भ में- गया जिले के ग्रामीण क्षेत्र में जो मानपूर प्रखंड में स्थित हैं वो पूर्ण रूप से कृषि प्रधान, अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्र हैं। वहां के अधिकांशत: जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और दूसरी बात यह है कि यह क्षेत्र औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े की श्रेणी में आता है। इस क्षेत्र में कोई भी ऐसा वृहत उद्योग नहीं है जो यहां के स्थानीय जनसंख्या को विशाल मात्र में रोजगार की उपलब्धाता करवा सके। इस क्षेत्र में मौसमी एवं अदृश्य बेकारी विद्यमान हैं। यहां कृषि आज भी पिछड़ी हुई है परिणाम स्वरूप कृषि वर्ष भर इस क्षेत्र की जनसंख्या को रोजगार उपलब्ध कराने में असमर्थ है। कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत बहुत से ऐसे क्रियाकलाप हैं जो कृषि और ग्रामीण जीवन को मदद करने के लिए और वे ग्रामीण भारत में लोगों की जीवका का श्रोत है। जैसे- कुम्हार, खाती, जुलाहे, लोहान, सोनार एवं बढ़ई ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक हिस्सा या खंड है। लेकिन औपनिवेशिक काल से ही जनसंख्या में कम होते जा रहे है। क्योंकि मशीन से बने समानों के आगमन ने इनकी हाथों से बनी हुई वस्तुओं का स्थान ले लिया। बहुत से अन्य विशेषज्ञ एवं दस्तकार जैसे कहानी सुनाने वाले ज्योतिषि, पुजारी, भिस्ती एवं तेली इत्यादि भी ग्रामीण जीवन मेंलोगों को सहारा देते हैं। ग्रामीण भारत में व्यवसायों की भिन्नता यहां की जाति व्यवस्था में प्रतिबंधि त होती है। जहां कुछ क्षेत्रें में विशेषज्ञ और अपनी सेवाएं देनेवाले धोबी, कुम्हार एवं सोनार इत्यादि सम्मिलित होते है। इनमें से कुछ परम्परागत व्यवसाय आज टूट रहे है और ग्रामीण नगरी आर्थिकी के परस्पर अन्त: संबंध से कई व्यवसाय गावों में आ रही है जिसके कारण वहां केलोगों को अपने इस क्षेत्र से प्रवास होने को मजबूर होना पड़ रहा है। लेकिन इन प्रवासियो के लिए सबसे बड़ी संकट तब देखने को मिला जब कोविड- 19 के कारण इन प्रवासी मजदूरों को लौटने की बारी आयी।

गया जिले के ग्रामीण क्षेत्रें के प्रवासी मजदूरों की समीक्षात्मक अध्ययन के दौरान पिछड़ी जाति की वर्त्तमान स्थिति-लॉकडाउन शुरू होते ही इन क्षेत्रों के प्रवासी मजदूर अपने घर की ओर लौटना प्रारम्भ हो गये, कुछ आये, कुछ आने का विचार करने लगे, कुछ यह मन बना लिया की अब जो होगा, यही रहेंगे। कुछ ने सोचा कि घर जाकर क्या कर सकते हैं। इन हजार सवालो से घिरे रहे। जिस क्षेत्र की जिन पिछड़ी जातियों की मैंने अध्ययन की वह वैसे थे जिनके पास जीने के लिए कोई आधारभूत चीजें नही के बराबर थी और न ही तो उस क्षेत्र में वैसा कोई रोजगारपरत व्यवस्था थी कि वे कुछ दिनों तक अपना जीवकोपार्जन कुछ दिनों तक कर सकें। गया जिले के ग्रामीण क्षेत्रें से कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग प्रवासी मजदूर है। प्रवासी मजदूरी से ही अपना परिवार, गांव, पंचायत तथा प्रखंड में ही संतुलित बनाये हुए है। अब जब वे अपने घर की ओर लौट रहे हैं तो उनके समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएं खड़ी हो गई है।

यह समस्याएं निम्नलिखित है:-

1. रोजगार की कमी:- लॉकडाउन के कारण जब प्रवासी मजदूर अपने घर की ओर लौट रहे है तो उनके बीच सबसे बड़ी समस्या रोजगार की कमी आयी, क्योंकि इन्हीं समस्या के कारण तो वे पलायन हुए थे। अब लौटने के बाद कोई उपाय नहीं है। पहले से जो लोग यहां रह रहे थे वे तो किसी प्रकार अपने परिवार का जीवन यापन करने को विवश थे ही और किसी प्रकार अपने को संतुलित कर पा रहे थे। इनके आने पर तो भारी समस्या उत्पन्न हो गयी।

2. उपलब्धा ग्रामीण संशाधान पर अतिभारण:- इस क्षेत्र में पहले से ही ग्रामीण संशोधान कम थे वहां पर रहने वाले लोग किसी तरह से गुजर बसर कर रहे थे और जब प्रवासी मजदूर लौटे तो जो संशोधान था उस पर अतिरिक्त भार उत्पन्न हो गया। जिसके कारण लोगों के समक्ष भुखमरी की समस्या, रहने की समस्या उत्पन्न हो गयी। ऐसी स्थिति में वह फिर से जहां से आये थे वहां जाने का मन बना लिया।

3. घरेलू विवाद:- लॉकडाउन होने के कारण प्रवासी मजदूरों को परिवार के सभी सदस्यों के साथ रहने की नौबत आ गयी। संशोधानों के अभाव में घर में कलह का अखाड़ा बन गया और एक साथ रहना मुश्किल हो गया। इस स्थिति में परिवार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी और वो किसी भी स्थिति में प्रवास होने को मजबूर हो गये।

4. समाज में विवाद:- लॉकडाउन के कारण सभी लोगों को एक जगह मिलने का मौका मिल गया। काम नहीं रहने के कारण अधिक समय अपने समाज के साथ बिताना महंगा पड़ा क्योंकि 'खाली दिमाग सैतान का' होता है। छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ाई-झगड़ा होना आम बात है।

5. उपलब्धा संशोधानों का बंटवारा:- जब लोग एक-दूसरे से अलग रहते हैं तो प्रेम बना रहता है। लॉकडाउन के कारण सभी सदस्यों को घर में साथ रहना पड़ा और संशोधान न होकर वही एक मात्र बचा तो उसके बीच बंटवारा होना सौभाविक है जिसके कारण विवाद होना निश्चित है।

6. पेशे की चुनाव में स्वतंत्रता के कारण जातिगत व्यवसायियों का खत्म होना:- प्रत्येक जाति का अपना पेशा होता था लेकिन पेशे की चुनाव की स्वतंत्रता दिए जाने के कारण अन्य जातियों को पिछड़ी जातियों के व्यवसाय में हस्तक्षेप करने का मौका मिला। लेकिन ये अपने से वंचित हो गये। हमारे ग्रामीण क्षेत्र में जाति व्यवस्था के कारण प्रत्येक जाति समुदाय के लोगों के अपने जातिगत पेशा निर्धारित थी जिस पर सिर्फ उन्हीं जातियों का अधिकार होता था। लेकिन प्रवासी मजदूर ये कार्य करने से भी वंचित हो गये और इनके बीच जीने- मरने की समस्या आ खड़ी हुई और वे फिर से पलायन करने को विवश हो गये।

7. अनैच्छिक जनसंख्या वृद्धि:- लॉकडाउन के कारण हमारी प्रवासी मजदूर को घर की चाहर-दिवारी के बीच कैद में रहना पड़ा। इस स्थिति में मनोरंजन का साधान घर में तलाश्ना अनैच्छिक जनसंख्या बढ़ाने की ओर इंगित करती है।

अत: इन समस्याओं के अतिरिक्त कई और समस्याएं भी हैं जो प्रवासी मजदूरों को पुन: प्रवास करने को विवश कर रही है।

इन समस्याओं के समाधान के निम्नलिखित सरकारी प्रयास होना चाहिए:-

1. कोविड- 19 से लड़ने के लिए सरकार पानी की तरह पैसा बहा रही है। अगर उसी पैसे के एक हिस्से का इस्तेमाल रोड, कॉलेज, स्कूल बनाने का कार्य किया जाता तो भवन निर्माण के क्षेत्र में बहुत मजदूर को रोजगार मिल जाता तो लॉकडाउन का असर नहीं पड़ता।

2. जिला स्तर, प्रखंड स्तर, पंचायत स्तर पर लघु एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने की व्यवस्था की जाती।

3. मनरेगा के तहत मिलने वाले कामों का वास्तविक कार्य का वास्तविक मजदूरी मिलती तो लॉकडाउन का एहसास नहीं होता एवं कामों के दिनों की संख्या बढ़ाने पर प्रवासी मजदूरों को बहुत हद तक मदद मिलती।

4. छोटे किसानों एवं व्यक्ति व्यवसायिओं को बढ़ाने के लिए बहुत कम दर पर लोन देने की व्यवस्था की जाती तो प्रवासी लोगों को बहुत हद तक मदद मिलती।

5. पिछड़ा वर्ग उद्यमी योजना के तहत वित्तीय सहायता दी जाय ताकि वे लोग स्वरोजगार कर सके।

6. इच्छुक प्रवासी श्रमिकों को राज्य सरकार के निर्देश के आलोक में सुगमता पूर्वक ऋण उपलब्ध करायी जाय ताकि प्रवासी मजदूरों का रोजगार मुहैया कराया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. ग्रामीण समाज शास्त्र-वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा
2. भारतीय ग्रामीण समाज शास्त्र-ए0 आर0 देसाई
3. जिला सांख्यिकी कार्यालय, गया-जिला सांख्यिकी पुस्तिका व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार
4. ब्रेमन जॉन, 1985 आर्फ पीजेंटस माईग्रेंटस एण्ड पॉपर्स रूरल लेबर सरकुलेशन एण्ड केपिटिलिस्ट, प्रोंडक्शन इन बेस्ट इण्डिया-ऑक्स्फोड यूनिववर्सिटी प्रेस, दिल्ली
5. श्रीनिवास, एम0 एन0, 1987 ''द डोमिनेन्ट कास्ट एण्ड अदर ऐसेज'', ऑक्सफोंड यूनिववर्सिटी प्रेस, दिल्ली
6. 1961- कास्ट क्लाश एण्ड ऑकूपेशन, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे
7. गोल्ड हैरोल्ड ए, 1987 ''द हिन्दु कास्ट सिस्टम'' चाणक्य पब्लिकेशन, दिल्ली।
8. ग्लोबल कम्यूनिकेशन ऑन इन्टरनेशनल माईग्रेशन 2005, माईग्रेशन इन एन इन्टरकोनेकटेड वर्ल्ड, न्यू डाइरेक्शन फॉर एक्शन जेनेरल।
9. एप्लीटेरिया अर्जून 1999 डिस्जुरेक्टर एण्ड डिफरेंश इन द ग्लोबल कल्चरल इकोनॉमिक इन स्टेव भरटस एण्ड रोबिन कोहेन माईग्रेशन डिस्पोरा एण्ड ट्रान्सनेशलिजम एल्डस हांट इडवर्ड इल्गर।

बिहार के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व की प्रासंगिकता

संजीत कुमार

शोधकर्त्ता, प्रा० भा० इ० एवं पुरातत्त्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

बिहार का प्राचीन भूगोल

प्राचीन भारत में अनेक राज्यों और प्रांतों की सीमाएँ राजनैतिक या प्रशासनिक कारणों से बदलती रही है। बिहार के प्राचीन भूगोल की जब हम बात करते हैं तो यह सीधे तौर पर प्राचीन मगध के उदय से जुड़ जाता है। बिहार के पटना, गया तथा शाहाबाद जिलों की भूमि में स्थित मगध प्राचीन भारत का एक महत्वपूर्ण जनपद रहा है। एक जनपद के रूप में मगध का विस्तार आधुनिक बिहार राज्य के पटना, गया, शाहाबाद जिलों से अधिक क्षेत्रों तक भी हो सकता है। आरंभिक भारतीय इतिहास में छठीं शताब्दी ई0 पू0 को एक मूहत्वपूर्ण परिवर्तनकारी काल माना जाता है। इस काल को प्रायः आरंभिक राज्यों, नगरों में लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के साथ जोड़ा जाता है। इसी काल में बौद्ध तथा जैन सहित विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। इसी का परिणाम था कि एक जनपद अपनी लघुता को लांघता हुआ पहले महाजनपद और फिर साम्राज्य के रूप में उभरकर सामने आया और एक समय ऐसा भी था, जब भारत का भूगोल या इतिहास का मतलब मगध का भूगोल या इतिहास था।[1]

बिहार की प्राचीन भौगोलिक स्थिति ने मगध को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित होने में बड़ी मदद की। हालांकि समय के साथ प्राचीन मगध या बिहार की सीमायें बदलती रहीं, लिहाजा बिहार का भूगोल भी परिवर्तनशील रहा यानी भौगोलिक चौहद्दी बदलती रही। बदलती यदि हर्यकवंशकालीन मगध के भूगोल पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि साम्राज्य की सीमा या भौगोलिक विस्तार वहीं नहीं है, जो बाद में नंदवंश, मौर्यवंश, मौर्यात्तर कालीन या गुप्तवंश के दौरान अपना आकार ग्रहण करता है। निश्चय ही राजनैतिक और प्रशासनिक जरूरतों ने सरहद की सीमाओं में बड़े बदलाव हेतु जमीन तैयार किया।

इस क्रम में यदि हर्यकवंशकालीन बिहार या मगध के भूगोल पर चर्चा की जाए तो ज्ञात होता है कि बिम्बिसर ने अपने समय के सभी प्रमुख राजवंशों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी सीमाओं को महफूज किया था। लिच्छवी गणराज्य के साथ इसके संबंधों ने मगध की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। मगध की उत्तरी सीमा गंगा नदी से मिलती थी, जो व्यापारिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण जरिया थी। कोशल से संबंध स्थापित कर बिम्बिसार ने अपने साम्राज्य को कोशल और वत्स दोनों से सुरक्षित कर लिया। मध्य देश के साथ वैवाहिक और अवन्ति के साथ मैत्री संबंधों ने इसकी उत्तर-पश्चिम सीमाओ को सुरक्षित किया। इसके अलावा पूर्व में स्थित अंग देश पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य की भौगोलिक अवस्थित को सार्थक विस्तार दिया।[2]

प्राचीन भारतीय इतिहास के लिए ऐतिहासिक साहित्य का अभाव रहा है। ऋग्वैदिक काल से ही भारतीय इतिहास के लिए केवल एकमात्र श्रोत नगरों की खुदाई द्वारा प्राप्त की गई वस्तुएँ है। उस समय को न तो कोई लिखित ग्रंथ प्राप्त है और न ही उस समय की भाषा को समझा जा सकता है। वैदिक काल से चौथी शताब्दी के ज्ञान के लिए हमें पूर्ण रूप से हिन्दू, बौध व जैनियों के धार्मिक के ग्रंथों पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में हेरोडोटेस (यूनानी) व लिवी (रोमन) जैसे इतिहासकार नहीं हैं, इसलिए पाश्चात्य विद्वानों में भी यह धारणा बन गई थी कि भारत का कोई प्राचीन इतिहास नहीं है। भारतीय लोग अपने अतीत के गौरव को नहीं

पहचानते हैं। महाभारत के अनुसार जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की शिक्षा मिले वह साहित्यिक या धार्मिक इतिहास है। इसलिए भारतीय इतिहास सांस्कृतिक अधिक है और राजनीतिक कम। प्राचीन भारतीय इतिहास को इतिहासकार तीन भागों में विभाजित करते हैं[3]:-

1. प्रागैतिहासिक काल
2. आद्यैतिहासिक काल
3. ऐतिहासिक काल

प्रागैतिहासिक काल के कोई लिखित साक्ष्य मौजूद नहीं है जिसमें मानव जीवन के सांस्कृतिक पहलू की कोई लिखित जानकारी नहीं मिलती है। इसे प्रागैतिहासिक काल कहा गया है। हड़प्पाई सभ्यता आद्यैतिहासिक काल के अंतर्गत आती है। क्योंकि इसमें लिपि संबंधी साक्ष्य तो हैं लेकिन वे अपाठ्य है। इसलिए यह आद्यऐतिहासिक काल के अंतर्गत रखा गया है। जिस साहित्य के लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं जिसे पढा जा सकता है जैसे वेद, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, कल्हाण की राजतंरगणी, अष्टध्यायी, रेहला, तवकाते नासिरी, तुजके-बाबरी, हिस्ट्री ऑफ इंडिया आदि यह ऐतिहासिक काल कहलाता है। अर्थात वैदिककाल से वर्तमान तक का समय ऐतिहासिक काल के अंतर्गत आता है। इतिहास निर्माण में सहायक उपलब्ध स्रोतों को तीन भागों में बांटा गया है-

1. पुरातात्विक स्रोत
2. साहित्यिक स्रोत
3. विदेशियों के विवरण

पुरातत्व संबंधी स्रोतों का प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रागैतिहासिक इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए इतिहासकार पूर्ण रूप से पुरातात्विक सामग्री पर निर्भर हैं। भारतीय ग्रंथों की रचनात्मकता की दृष्टि से समय, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के बारे में ठीक से ज्ञात नहीं है। साथ ही लेखक का खुद का भी दृष्टिकोण भी बहुत बार सही चित्रित करने में बाधक हो जाता है। जैसे चीनी यात्रियों ने भारतीय समाज की झंकी बौद्ध दृष्टिकोण से प्रस्तुत की है। अतः इनके विवरण को पूर्णतः ठीक नहीं माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त ग्रंथों की प्रतिलिपि करने वालों ने अपनी इच्छानुसार अनेक प्राचीन प्रकरणों को छोड़ दिया और नए प्रकरण जोड़ दिए। पुरातात्त्विक स्रोतों के द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास को एक नया तथा वास्तविक रूप दिया गया है। पुरातात्विक स्रोत साहित्यकार स्रोतो की अपेक्षा अधिक प्रमाणिक और सत्य प्रतीत होते हैं। पुरातात्विक स्रोतों से भारतवर्ष के अनेक तथाकथित अंध युगों पर प्रकाश पड़ा है। अनेकानेक संदिग्ध ऐतिहासिक मतों का निश्चित रूप से खंडन मंडन हुआ है। पुरातत्व का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि आज एकमात्र इतिहास ही नहीं रहा बल्कि एकमात्र स्वतंत्र विकास बन गया है। इतिहास निर्माण में यह शास्त्र हमारे समक्ष दो रूप में आता है।[4]

1. प्रतिपादक के रूप में (निर्माता)
2. दूसरा समर्थक के रूप में आर्थत् (ग्रहणकर्ता)

प्रथम रूप में यह उन ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करता है जो हमें अन्य साधनों से विदित नहीं होते। उदाहरणार्थ समुद्रगुप्त की दिग्विजय का वर्णन विस्तार हमें एकमात्र उसके प्रयोग स्तम्भ लेख से ही विदित होता है। यदि यह स्तम्भ लेख न होता तो हम भारतीय इतिहास के एक अति महत्वपूर्ण गुप्त काल से अनभिज्ञ रहते। इस प्रकार हाथीगुफा (उड़ीसा) अभिलेख न मिलता तो हमें एक प्रतिभाशाली नरेश खारवेल का पता न चलता। दूसरे रूप में पुरातत्व हमें किसी नई वस्तु का ज्ञान नहीं कराता बल्कि यह अन्य साधनों से ज्ञात किसी न किसी वस्तु का समर्थन करता है। उदाहरणार्थ पतंजलि के महाभाष्य से कतिपय वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता था कि पुष्पमित्र शुंग ने कोई यज्ञ किया था।[5]

बाद में अजातशत्रु ने अपनी विस्तारवादी नीति से मगध के भूगोल को और विस्तारित किया और लिच्छवियों के वज्जि संघ को मगध में मिला लिया। अजातशत्रु के काल तक मगध साम्राज्य की सीमा उत्तर मे हिमालय की तलहट्टी तक पहुँच गई थी। शिशुनाग के समय अवन्ति पर विजय ने मगध की सीमा को पश्चिम में मालवा तक पहुँचा दिया। वत्स पर अधिकार होने से पाटलिपुत्र से लेकर वत्स, अवंति होते हुए एक व्यापारिक मार्ग भड़ौंच तक खुल गया और पाटलिपुत्र को पश्चिमी विश्व के साथ व्यापार-वाणिज्य हेतु एक नया मार्ग प्राप्त हो गया।

इस प्रकार देखें तो इस काल में मगध की सीमा बंगाल से लेकर मालवा तक विस्तृत हो गई। उत्तर प्रदेश का एक बड़ा भाग भी इसके अधीन था। वैशाली नई राजधानी और व्यापार केन्द्र के रूप में उभर कर सामने आई।

इसी रूप में नंदवंशकालीन मगध के भूगोल पर यदि दृष्टिपात की जाए तो पता चलताहै कि इस समय मगध साम्राज्य द्वारा इक्ष्वाकु वंश का उन्मूलन कर वर्तमान के अवध प्रांत तक, पांचाल को उन्मूलित कर वर्तमान रूहेलखंड क्षेत्र तक कौशल एवं हैहय को विजित कर क्रमश: काशी एवं नर्मदा के तट तक, कलिंग को विजित कर उड़ीसा तक अश्मक, कुरू, मैथिल, शूरसेन एवं वीतिहोत्र को विजित कर क्रमश: आंध्र प्रदश की गोदावरी नदी, दिल्ली, मिथिला, मथुरा तथा नर्मदा की सीमा तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर मगध के भूगोल को और ज्यादा विस्तृत एवं समृद्ध किया। इससे न सिर्फ लोहे को प्रमुख धातु के रूप में स्थापित किया, वरन् व्यापार-वाणिज्य की संभावनाओ को भी तेज गति प्रदान की।[6]

मौर्य साम्राज्य के उदय होते ही मगध की सीमा ने एक ऐसा व्यापक फैलाव किया, जो बाद के कालों के कालों के लिए भी एक नजीर बन गया। प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार विश्व के या भारत के सभी साम्राज्यों से ज्यादा फैला हुआ था। इस काल में मगध की सीमा वर्तमान के अफगानिस्तान तक पहुँच गई। यानी सिंधु एवं गंगा के मैदान तथा सुदूर उत्तर-पश्चित के क्षेत्र मगध के अधीन थे। दक्षिण में दक्कन और मैसूर तक विस्तारित करते हुए संभवत: अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के बीच के क्षेत्र मगध के अधीन आ गये थे। दक्षिण के प्रारंभिक तमिल कवियों द्वारा भूमि पर मौर्य रथों के गुजरते हुए चलने और उसकी धवल पताका को धूल में चमकने की बात कही गई है, जो इसी ओर संकेत करता है।[7]

इस प्रकार देखें तो बिहार या मगध का भूगोल प्राचीन काल में एक छोटे से जनपद से शुरू होकर महाजनपद, राज्य और फिर साम्राज्य बनने की कहानी है। मगध के भूगोल के इस ऐतिहासिक क्रमिक विकास में इसकी भौगोलिक अवस्थिति (पर्वत, नदियों की श्रृंखला), उपलब्ध भूगर्भीय संसाधन (लोहा इत्यादि) एवं हाथियों की उपलब्धता ने इसे व्यापकता दी और मगध के प्राचीन इतिहास के अध्ययन को ही भारत के प्राचीन इतिहास का पर्याय बना दिया।

संदर्भ

1. डॉ. ए.सी. अरोड़ा, प्राचीन भारतीय इतिहास, पृ0-32
2. डॉ. विमचन्द्र पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ0-18
3. प्रतियोगिता दर्पण, भारतीय इतिहास, पृ0-32
4. सिविल सर्विसेज क्रोनिकल, भारतीय इतिहास
5. मनिक लाल गुप्त, इतिहास प्रतियोगिता साहित्य सीरिज, पृ0-10
6. डॉ. ए.एस. पांडेय, द प्राचीन भारतीय इतिहास, पृ0-20
7. किरण कम्पीटिशन्स टाइम्स, पृ0-05

बौद्ध धर्म में भिक्षु एवं भिक्षुणी की भूमिका: एक अध्ययन

डॉ० उपेन्द्र कुमार

नेट (इतिहास एवं शिक्षा), पीएच.डी. (इतिहास), इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

ईसा पूर्व छठी सदी में बौद्ध धर्म का उदय सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से एक युगान्तकारी घटना थी। महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त अपना प्रथम उपदेश सारनाथ में दिया था। इसे बौद्ध धर्म में 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा जाता है। प्रथम उपदेश के पश्चात् बुद्ध ने सारनाथ में ही संघ की स्थापना की। बौद्ध धर्म के त्रिरत्न में-बुद्ध, धम्म एवं संघ थे। प्राय: संघ के द्वार सभी मनुष्यों के लिए खुले थे, परन्तु संघ में स्त्रियों का प्रवेश कुछ समय बाद हुआ। महात्मा बुद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश के पक्ष में नहीं थे, लेकिन गौतमी महाप्रजापति के दृढ़ संकल्प तथा बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह पर उन्होंने संघ में स्त्रियों के प्रवेश की स्वीकृति प्रदान की। समकालीन समाज को बौद्ध धर्म का यह सबसे बड़ा योगदान है, जिसके अन्तर्गत पुरुषों एवं स्त्रियों को समान रूप से आध्यात्मिक उत्कर्ष का अवसर प्राप्त हुआ। इस तरह भिक्षुणी संघ की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। लेकिन समेकित रूप से अध्ययनोपरान्त पता चलता है कि भिक्षुओं की तुलना में भिक्षुणियों का स्तर तथा उनके प्रति नजरिया निम्न था। इस निम्न दृष्टिकोण का बीज भिक्षुणी संघ की स्थापना में ही अन्तर्निहित थे। कोई भी भिक्षुणी अपनी वरिष्ठता में कितना भी ऊँचा क्यों न रहा हो, किन्तु उसे प्रत्येक दशा में भिक्षुओं का सम्मान करना पड़ता था।[1] साहित्यिक स्रोत चुल्लवग्ग से जानकारी मिलती है कि प्रत्येक दशा में भिक्षुणियों के लिए भिक्षुओं को सम्मान करना नियमबद्ध था। भिक्षुणियों में अंजलि जोड़ना पड़ता था, कई बार भिक्षुओं के सम्मान में खड़ा होना पड़ता था। दूसरी ओर किसी भिक्षु से भिक्षुणी के सम्मान में इस प्रकार की आशा वर्जित था। ऐसा करना दण्डनीय भी था।[2] इस योग्यता के स्थान पर लिंग आधारित वरीयता वलवती थी। इस अनुचित विभेद के प्रति प्रतिक्रिया अपेक्षित थी। गौतमी महाप्रजापति के अष्टगुरुधर्म स्वीकार करने के बाद बुद्ध से यह अनुमति मांगी कि भिक्षु-भिक्षुणियों के बीच अभिवादन, अभ्युत्थान तथा समीचीकर्म (कुशल क्षेत्र पूँछना) परिष्ठता के आधार पर होना चाहिए न कि लिंग के आधार पर।[3] यद्यपि, गौतमी के द्वारा उठाए गए प्रश्न महत्वपूर्ण एवं तार्किक थे तथापि महात्मा बुद्ध ने इसे अस्वीकार कर दिया।[4] डॉ. मदन मोहन सिंह यह बताते हैं कि-''गृह त्यागी भिक्षुओं द्वारा उनके प्रति इस प्रकार की अवज्ञा व्यक्त करने के पीछे संभवत: यह कारण हो सकता है कि नारी गृहस्थता की प्रतीक मानी जाती थी, वही भिक्षु वैराग्य का। अत: उस सांसारिक जीवन के प्रति भिक्षु किस प्रकार नतमस्तक होता जिसका उसने परित्याग कर दिया? इस प्रकार भिक्षुणियों की दशा भिक्षुओं की अपेक्षा निम्न थी।''[5]

भिक्षुणियों के लिए प्राय: 'भिक्षुणी आर्या' तथा 'थेरी' शब्द बौद्ध साहित्यों में प्रयुक्त होता था। इनमें थेरी शब्द का प्रयोग बहुत कम मिलती है। इस थेरी शब्द का प्रयोग संबंधियों के लिए अनेक बार हुआ है। यह महावंश में मिलता है।[6] अभिलेखों में भिक्षुणियों के लिए 'भिक्खुनी', 'अन्तेवाचिनी' तथा 'पवजिता' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ हुआ है। वहीं थेरी शब्द का प्रयोग बहुत कम हुआ है। उन्हेरी बौद्ध गूफा अभिलेख में थेरी शब्द के साथ-साथ मदन्त या मदन्ती शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[7] इस शब्द का उल्लेख अमरावती बौद्ध प्रतिमा अभिलेख में भी किया गया है।[8]

अधिकार की दृष्टिकोण से देखें तो यहाँ भी स्पष्ट अंतर दिखायी गई है। उपसंपदा के पश्चात् भिक्षुओं के लिए चार नियम तथा चार अकरणीय कर्म बताए गए हैं। वहीं, भिक्षुणियों के लिए तीन नियम तथा आठ आकरणीय कर्म बताए गए हैं। कुछ विशेष दशा में भिक्षुणियों को भिक्षु संघ पर आश्रित रहना पड़ता था। जैसे-अष्ठगुरुधार्मानुसार भिक्षुणियाँ, भिक्षुओं के साथ वर्षावास कर सकती

थी। उन्हें अरण्यावाद की अनुमति प्राप्त नहीं थी। अकेले यात्र करना भी भिक्षुणियों के लिए मनाही थी। लेकिन भिक्षुओं के साथ ऐसी मनाही नहीं थी। कोई भिक्षु किसी भिक्षुणी का शिष्य नहीं हो सकता था, किन्तु भिक्षुओं की एक से अधिक शिष्या हो सकती थी। इसके लिए अभिलेखों में अन्तेवासिनी शब्द का प्रयोग किया गया है।[9] अभिलेखों में हमें भिक्षुणियों के शिष्याओं का उल्लेख यदा-कदा प्राप्त हो जाते हैं। अमरावती से प्राप्त एक अभिलेख में किसी भिक्षुणी के लिए 'उपाध्यायिनी' शब्द का प्रयोग हुआ है।[10] बौद्ध गुफा अभिलेख में 'लोहिता' और 'विष्णुका' के अन्तेवासिनी के रूप में वर्णन है।[11] इसी प्रकार का उल्लेख डॉ. अरुण प्रताप सिंह ने अपनी पुस्तक में किया है।

जहाँ तक ज्ञान की बात है तो भिक्षुणियाँ कहीं से भी भिक्षुओं से कम नहीं थीं। अनेक विद्वान भिक्षुणियों का विवरण थेरीगाथा से प्राप्त होते हैं, फिर भी इनका स्तर भिक्षुओं से निम्न था। जितनी भी बौद्ध धर्म में संगतियाँ हुई, उनके अध्यक्ष कोई न कोई भिक्षु ही थे। स्वयं महात्मा बुद्ध ने भिक्षुणियों की अपेक्षा भिक्षुओं को अधिक महत्ता प्रदान की। संयुक्त निकाय में सारी पुत्र एवं मौगदलायन को किसी बड़े वृक्ष की बड़ी शाखा कहा गया है, जिनके बिना संघ सुना-सुना लगता है।[12] जैसा कि अंगुत्तर निकाय में कहा गया है-स्त्रियों को सम्यक् सम्बुद्ध नहीं हो सकती है।[13] फिर भी डॉ. अरुण कुमार लिखते हैं कि इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि भिक्षुणियों का जीवन अत्यन्त निम्न स्तर का था। स्वयं महात्मा बुद्ध ने संघ के अन्दर महिलाओं एवं पुरुषों को एक समान दर्जा प्रदान की थी।[14] भारतीय बौद्ध साहित्य में पाए जाने वाले महिला विरुद्ध वक्तव्य बिहार के विशिष्ट वर्ग के उन सदस्यों द्वारा बुद्ध वचन में जोड़े गए क्षेपक हैं, जिसके अन्तर्गत महिलाओं के प्रति रूख को कम से कम कुछ सीमा तक विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों ने आकार प्रदान किया।[15] तृतीय बौद्ध संगति में पालित्रिपिटक का बहुत बड़ा भाग संकलित हुआ मिलता है। इस तृतीय संगति के साथ-साथ पूर्व की संगति में पितृसत्तात्मक विचार मिलते हैं। प्राचीन भारतीय बौद्ध साहित्य में उल्लिखित आरंभिक स्तर पर इस बात को स्वीकार करता है कि महिलाएँ 'अर्हत' बन सकती थी, अनेक बनी भी। प्रसेनजित (कौशल नरेश) का भिक्षुणी खेमा से दार्शनिक वार्तालाप एक उदाहरण है।[16] बौद्ध साहित्य त्रिपिटक में बहुत-सी महिलाओं को दूसरी महिलाओं की अध्यापिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी इन ग्रंथों के प्रति संकुचित मानसिकता रखने वाले संपादकों ने धाम्मदिन्ना जैसी महिलाओं के कुछ वृत्तांत बचाकर रख लिए। चुल्लदेवल्लवसुत्त में कहा गया है कि धम्मदिन्ना भिक्षुणी ने अपने पति विशाख द्वारा सिद्धान्त व्यवहार की पहलुओं से संबंधित बहुत से पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देती है। इससे जाहिर होता है कि भिक्षुणियाँ गूढ़ दर्शन के क्षेत्र में निपुण होती थी तथा प्रवीणतापूर्वक किसी भी विषय पर वार्तालाप कर सकती थी।[17] अभिलेखों में इन्हें 'त्रिपिटिका' तथा 'सुतातिकिनी' के रूप में भी जाना जाता है। यह उनकी विद्वता का परिचायक के रूप में इसे देखा जा सकता है। पटाचारा व सोणा जैसी अनेक प्रसिद्ध महिलाएँ अनुचर धर्म-प्रवचन में निपुणता के लिए विख्यात थीं।[18] ये भिक्षुओं के मध्यस्थता के बिना नये लोगों को संपूर्ण मुक्ति तक पहुँचा सकती थी। जिस तरह भिक्षुओं के स्मृति में स्तूप आदि बनाए गए कालान्तर में उसी तरह भिक्षुणियों के लिए भी स्तूपों का निर्माण किया गया, जसका विवरण फाहियान[19] तथा ह्वेनसांग[20] दोनों ने किया है, जो कौशल में गौतमी महाप्रजापति के सम्मान में बना था। इस प्रकार हम पाते हैं कि महिलाएँ न केवल आरंभिक बौद्ध समुदाय में स्पष्ट रूप से उपस्थित थीं, बल्कि साधिकाओं एवं शिक्षिकाओं दोनों रूपों में सम्माननीय जगह बनाई हुई थीं।

महात्मा बुद्ध ने बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश के लिए आठ शर्तें रखी थीं।[21] भिक्षुणियों की शारीरिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर नियम बनाए गए थे। स्त्रियों की शारीरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए कुछ अतिरिक्त कपड़े प्रदान किए गए थे, ताकि समाज में हँसी न हो। स्त्रियों के लिए बनाए गए नियमों एवं शर्तों को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में शारीरिक संरचना के अनुसार अपेक्षाकृत अधिक वस्त्र प्रदान किए गए थे। दूसरे भाग में उन नियमों को रखा जा सकता है जो स्त्री स्वभावजन्य है तथा जिनसे उनके द्वारा संघ के विरु) क्रिया-कलाप होने का भय हो। सजना-सँवरना स्त्रियों का जन्म-जात गुण होता है तथा नारियाँ स्वभाव से ही संचयी होती हैं। साजश्रृंगार के बाद नारियाँ अत्यन्त कामुक प्रतीत होती हैं और उनके प्रति विपरित लिंग का आकर्शित होना स्वभाविक है। इन-प्रवृत्तियों को रोकना ही इन नियमों का उद्देश्य था।[22] इसी कारण उनके लिए शील से संबंधित नियमों का विधान किया गया। तृतीय भाग में भिक्षुणियों को कामुकता से दूर रहने का विधान है। इससे संबंधित नियम भिक्षु प्रतिमोक्ष में प्राप्त नियमों से अधिक हैं।[23] इसका कारण यह था कि स्वभाव से स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक कामुक होती हैं तथा इसके साथ ही समाज में व्यभिचारी पुरुषों की कमी नहीं है जो हमेशा उनका शील भंग करने का विचार करते रहते हैं। अत: भिक्षुणी के ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे नियम बनाए गए।[24]

बौद्ध संघ के नियम कठिन परिस्थितियों में भी सुचारू एवं सुव्यवस्थित रूप से संचालित हो, इसके लिए आवश्यक कठोर दण्ड की भी व्यवस्था की गई थी। नियमों के उल्लंघन पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों को दण्डित किया जाता था। हालांकि, महात्मा बुद्ध ने आनंद को सलाह दी थी कि वे भिक्षु एवं भिक्षुणियों को छोटी-छोटी गलतियों को माफ कर दे। परन्तु, दुर्भाग्यवश आनंद उन गलतियों को पूछना भूल गये। इसी कारण महात्मा बुद्ध के मृत्यु के बाद आयोजित प्रथम बौद्ध संगति में नियमों, बुद्ध धर्म एवं संघ को कठोरता से पालन का वचन लिया था।[25] भिक्षुणी संघ से संबंधित नियम बौद्ध साहित्य में प्रतिमोक्ष के नाम से संकलित है। एक ओर जहाँ भिक्षुओं के लिए उपोसध क्रिया का विधान था, वहीं दूसरी ओर प्रत्येक मास की अमावश्या एवं पूर्णिमा को भिक्षुणियाँ प्रतिमोक्ष का पाठ करती थीं।[26] इस पाठ के दौरान प्रत्येक भिक्षुणी से यह आशा की जाती कि जैसे ही उसे अपने अपराध का अभान हो वह स्वयं उठकर उसे स्वीकार कर ले, जिससे उसका अग्रीम जीवन संयमपूर्वक व्यतीत हो। हालांकि यह कोई नवीन परम्परा नहीं थी। भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न सम्प्रदायों में ऐसी परम्परा लगभग विद्यमान थी। परन्तु महात्मा बुद्ध ने इसे नैतिक अर्थ देकर इसे संस्थागत स्वरूप प्रदान किया।[27] स्वेच्छापूर्वक अपने अपराधों को स्वीकार कर लेना भिक्षुणियों के लिए अप्रत्याशित माना जाता था। इससे प्रतिमोक्षा नियमों के प्रति उनके संकल्प की दृढ़ता बढ़ जाती थी। अपराध को स्वीकार करने के बाद भिक्षुणी दोषमुक्त हो जाती थी। प्रतिमोक्ष नियम का मुख्य लक्ष्य यही था कि भिक्षुणियाँ अपने पापों को स्वीकार करें, क्षमा याचना करें तथा संघ के नियमों के प्रति अपने संकल्प को दृढ़ करें। एक प्रायश्चितिका में उल्लखित है कि-यो तं पाटिक्खति तं मोक्खति मोसेति आपायकादि दुच्खेही तत्मा पाटिमोक्खम् वुच्चति।[28] अर्थात् जो प्रतिमोक्ष नियमों की रक्षा करता है उसे यह दुर्गति अर्थात दुखों से मोक्ष दिलाता है। इसलिए यह प्रतिमोक्ष कहलाता है। भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए प्रदत्त शिक्षा पदों में भी भिन्नता थी। पालि विनय पिटक में भिक्षुओं के लिए इनकी संख्या 'दो सौ सत्ताइस' और भिक्षुणियों के लिए 'तीन सौ ग्यारह' है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म में भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों की प्रस्थिति समान होते हुए भी भिक्षुओं को वरीयता दी गई थी। इस प्रस्थिति का निर्धारण स्वयं महात्मा बुद्ध ने ही किया था। इसका कारण तत्कालीन समाज में स्त्रियों के प्रति नजरिया था। दूसरी बात पितृप्रधान समाज होने के कारण सामाजिक दर्जा में स्त्रियों को अपेक्षाकृत निम्न स्तर पर मानी जाती थीं। इस निम्न स्तरीय दृष्टिकोण के लिए कहीं न कहीं पुरुष मानसिकता उत्तरदायी मानी जा सकती है। शायद महात्मा बुद्ध इसी कारण आरंभ में महिलाओं को संघ में स्वीकृति देने के पक्ष में नहीं थे। फिर भी, अनेक विदुषी एवं प्रवीण भिक्षुणियों ने भिक्षुओं के समक्ष सम्मान प्राप्त कर सकीं।

संदर्भ-सूची

1. राहुल साकृत्यायन : विनय पिटक, पृ.-520
2. चुल्लवग्ग : पृ.-378
3. वही
4. डॉ. मदन मोहन सिंह : बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ.-178
5. सेक्रेड बुक्स ऑफ द इस्ट : 13, पृ.-56
6. मदंत आनंद कौशल्यायन : महावंश, पृ.-34
7. एच. लुडर्स : लिस्ट आर्फ ब्राह्मणी इन्सक्रिप्सन्स, पृ.-1006
8. वही, पृ.-1240
9. एच. लुडर्स : लिस्ट ऑफ ब्राह्मणी इन्सक्रिप्सन्स, पृ.-1020
10. एच. लुडर्स : लिस्ट ऑफ ब्राह्मणी इन्सक्रिप्सन्स, पृ.-1286
11. वही, पृ.-1060
12. संयुक्त निकाय : 4.5.1.2.1.3(4.5.1.2.1.4
13. अंगुत्तर निकाय : 1.1.1.5
14. डॉ. अरुण प्रताप सिंह : जैन और बौद्ध भिक्षुणी संघ, पृ.-198
15. के.टी.एस. सराओ : प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म उद्‌भव, स्वरूप और पतन, पृ.-94

16. वही, पृ.-95
17. थेरीगाथा : 12
18. प्रो. के.टी.एस. सराओ : प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म उद्भव, स्वरूप और पतन, पृ.-95
19. बुद्धिष्ट रिकॉर्डस ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, प्रथम भाग, पृ.-25
20. वही, तृतीय भाग, पृ.-260
21. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.-150
23. पाचित्तिय : पृ.-304, 306, 310, चुल्लवग्ग, पृ.-382
24. डॉ. कोमल चन्द्र : बौद्ध जैनागम में नारी, पृ.-182
25. चुल्लबग्ग, पृ.-306
26. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.-146
27. भरत सिंह उपायाय : पालि साहित्य का इतिहास, पृ.-355
28. ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ द प्रतिमोक्ष, पृ.-104

नगरीय प्रसारः पटना नगर के संदर्भ में

डॉ० विकाश महतो

यू.जी.सी.-नेट (जे.आर.एफ.), शोध छात्र, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार

प्रस्तुत शोध-पत्र में पटना नगर के नगरीय प्रसार के कारणों तथा स्वरूपों के अध्ययन का प्रयास किया गया है। पिछले दो दशकों में पटना नगर की जनसंख्या लगभग दोगुनी हो चुकी है, जिससे मुख्य नगर के आस-पास के क्षेत्रें में नगर का प्रसार तेजी से हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि, अधिवास हेतु भुमि का अभाव, प्रदूषण आदि कई ऐसे कारक हैं जिन्होंने नगरीय प्रसार को गति प्रदान की है। शोध-पत्र के माध्यम से मुख्य नगर के चारों ओर प्रसार के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा की गई है, जो कालान्तर में मुख्य नगर का अनिवार्य अंग बन जाते हैं। उन क्षेत्रें के भूमि उपयोग में परिवर्तन किस सीमा तक हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रसार के कारण संपूर्ण क्षेत्र में कृषि भूमि में कमी आई है, जिसके लिए आवश्यक है कि नगर प्रसार के क्षेत्रें में प्रादेशिक नियोजन को अनिवार्य अंग मानकर भूमि-उपयोग नीति का निर्धारण तथा विकास में प्राथमिकता प्रदान की जाए।

महत्वपूर्ण शब्द :- नगरीय प्रसार, जनसंख्या वृद्धि, नगरीय उपान्त, उपग्रह नगर, उपनगर, नगरीय ग्राम भूमि-उपयोग, प्रादेशिक नियोजन।

भूमिका

नगरों का अपने समीपवर्त्ती क्षेत्रें पर विस्तृत होना नगरीय प्रसार कहलाता है। किसी भी क्षेत्र या प्रदेश में जनसंख्या विस्फोट के साथ ही नगरीय फैलाव या प्रसार की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है अर्थात् मुख्य नगर के आस-पास का क्षेत्र नगरीय बस्ती के जैसा ही प्रतीत होने लगता है अथवा कालान्तर में मुख्य नगर में शामिल हो जाता है।

1991 में पटना नगर की जनसंख्या 9,16,889 थी जो 2001 में बढ़कर 13,76,950 हो गई। 2011 के ऑकड़ों को देखा जाए तो यह 16,83,200 हो गया है अर्थात् पिछले 20 वर्षों में जनसंख्या लगभग दोगुनी हो चुकी है। जनसंख्या के इस वृद्धि के फलस्वरूप अधिवास तथा अन्य कार्यों हेतु अपसारी शक्तियाँ कार्य करने लगती हैं, जो नगरीय प्रसार का कारण बनती है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

शोध-पत्र निम्न तथ्यों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया जा रहा है :-

1. नगरीय प्रसार के क्या कारण हैं?
2. मुख्य नगर से बाहर किस प्रकार की बस्तियों का विकास हुआ है?
3. नगरीय प्रसार से उत्पन्न समस्याओं की चर्चा करना।
4. समस्याओं के समाधान की दिशा में विचार प्रस्तुत करना।

आँकड़े एवं विधितंत्र

प्रस्तुत शोध-पत्र द्वितीयक आँकड़ो पर आधारित है जो जनगणना निदेशालय, पटना नगर विकास योजना तथा मास्टर प्लान 2021 से एकत्रित किए गए हैं। इसके साथ ही तथ्यों को प्रकट करने के लिए मानचित्र तथा आरेखों का प्रयोग किया गया है। पटना नगर के प्रसार को दिखाने के लिए मानचित्र में कोरोप्लेथ विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

पटना नगर का भौगोलिक विस्तार $25^{0}59'41''$ से $27^{0}42'42''$ उत्तरी अक्षांश तथा $77^{0}09'96''$ से $85^{0}13'76''$ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। 2001 की जनगणना के अनुसार पटना नगर की जनसंख्या 13,76,950 है, जबकि 2011 के संभावित आँकड़ो के अनुसार यह 16,83,200 है। पटना नगर का क्षेत्रफल 97.52 वर्ग कि0मी है। अतः जनसंख्या के इस दबाव के फलस्वरूप नगर का लंबवत् तथा क्षैतिज प्रसार हो रहा है।

पटना नगर का प्रसार

नगरीय प्रसार के अन्तर्गत नगरीय जनसंख्या ही नगर के बाह्य क्षेत्र में परिवहन सुविधा को ध्यान में रखते हुए अधिवासित होने लगती है या नगर के बाहर अपने कार्यिक गतिविधियों का फैलाव करती है। इस प्रसार के कई कारण हैं :-

1. सबसे बड़ा कारण ग्रामीण-नगरीय स्थानांतरण है, जिससे मुख्य नगर में जनसंख्या विस्फोट होता है और अधिवास कार्य हेतु उपसारी शक्तियाँ विकसित होती हैं, जो नगरीय प्रसार कारण बनती है। इसे दिए गए मॉडल की सहायता से समझा जा सकता है।

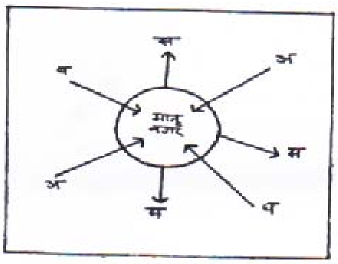

अ= ग्रामीण क्षेत्र, ब = छोटा नगर,

स उपग्रह नगर, म स्थानांतरण प्रवाह

2. मुख्य नगर में भूमि के मूल्य और किराये में वृद्धि,
3. निर्माण कार्य हेतु भूमि का अभाव,
4. उच्च आय वर्ग का बाहरी क्षेत्र में अधिवासित होने की प्रवृत्ति
5. मुख्य नगर में प्रदुषण की समस्या।
6. नगर के बारी क्षेत्रें में शुद्ध वायु एवं वातावरण का पाया जाना।
7. नगर के बाहरी क्षेत्रों में भीड़-भाड़ तथा नगरीय कोलाहल से शांति मिलना।

इन कारकों के फलस्वरूप पटना नगर के चारों ओर नगर का प्रसार कई रूपों/स्वरूपों में हुआ है, जो नगरीय प्रसार के परिणाम हैं। नगरीय प्रसार से मुख्य नगर के चारों तरफ निम्न प्रकार की पेटी या बस्तियों का विकास हुआ है या फिर विकास के क्रम में है:-

1. ग्रामीण-नगरीय उपान्तः- ग्रामीण-नगरीय उपान्त गाँव और नगर के बीच की पेटी है, जहाँ नगर और गाँव दोनों की विशेषता पायी जाती है। एम0एम0पी0 सिन्हा ने पटना नगर के ग्रामीण नगरीय उपान्त का विशेष अध्ययन किया है। यह वह क्षेत्र है जहाँ भूमि का मूल्य ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक होता है जबकि नगर की तुलना में मूल्य कम होता है। यह दैनिक अभिगमकर्त्ता का क्षेत्र होता है, जहाँ दिन में जनसंख्या घनत्व कम हो जाता है लेकिन रात में घनत्व बढ़ जाता है।

डॉ0 एम0 एम0 पी0 सिन्हा ने पटना के ग्रामीण-नगरीय उपान्त पेटी का सीमांकन सांख्यिकीय विधि से किया है। इन्होंने आइसोक्रोन (समदूरी रेखा), नगरीय प्रभाव, जनउपयोगी सेवाएँ, भूमि का मूल्य, दैनिक यात्री, अकृषिगत क्रियाकलाप, जनसंख्या

घनत्व, प्राथमिक क्रियाकलाप, निर्मित क्षेत्र आदि कारकों का प्रयोग करते सहसंबंध विधि द्वारा पटना शहर के ग्रामीण-नगरीय उपान्त को दो वर्गों में बांटा गया है:-

1. आंतरिक उपान्त
2. बाह्य उपान्त।

आंतरिक उपान्त के अंतर्गत इन्होंने फुलवारी, दानापुर तथा फतुहा को शामिल किया। मुख्य मार्ग से जुड़े होने के कारण इन क्षेत्रों का तीव्र विकास हुआ है। इन क्षेत्रें में दैनिक अभिगमकर्त्ता की संख्या अधिक है तथा भूमि उपयोग की सघनता भी अधिक है। एम0 एम0 पी0 सिन्हा ने इसे नगरीय अनगरीय उपान्त भी कहा है।

बाह्य उपान्त के विकास की गति धीमी रहता है। इसमें मनेर, बिहटा, पुनपुन, खुसरूपुर, बख्तियारपुर, हाजीपुर तथा सोनपुर के कुछ क्षेत्रों को मिलाकर सीमांकन किया गया है। इन क्षेत्रों में ग्रामीण विशेषताएँ अधिक तथा नगरीय विशेषताएँ अथवा क्रियाकलाप कम देखने को मिलती है। एम0 एम0 पी0 सिन्हा ने इसे ग्रामीण अर्द्धनगरीय उपान्त भी कहा है।

अत: स्पष्ट है कि नगर में जनसंख्या दबाव और आवास की समस्या उपान्त को जन्म देती है। यह क्रिया निरंतर होतीं रहती है और नगर का प्रसार होता रहता है। अत: नगर प्रसार का माध्यम उपान्त ही है। दिए गए मानचित्र में पटना नगर के आंतरिक तथा बाह्य उपान्त को दिखाया गया है।

2. उपग्रह नगर (सेटेलाइट नगर)

सेटेलाइट नगर का अस्तित्व मुख्य नगर पर निर्भर करता है। इसका क्रियाकलाप मुख्य नगर की तरह होता है। यह नगर मुख्य नगर पर ही निर्भर करता है। सेटेलाइट नगर मुख्य नगर से दूर भी हो सकता है। वर्तमान समय में हाजीपुर, सोनपुर, फतुहा, बिहटा, मनेर, दानापुर को उपग्रह नगर के रूप में तेजी से विकसित किया जा रहा है। ग्रेटर पटना के मास्टर प्लान 2021 में हाजीपुर को सेटेलाइट नगर के रूप में विकसित किया जा रहा है। हाजीपुर पटना से मात्र 10 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है तथा यह सड़क परिवहन द्वारा सुगमता से जुड़ा है। इसी प्रकार नगर विकास योजना (2010-30) में बिहटा, मनेर, ुतुहा तथा दानापुर को सेटेलाइट नगर के रूप में विकसित किया जा रहा है। मास्टर प्लान 2021 में पुनपुन प्रखण्ड में शाबाजपुर गाँव के 860 एकड़ भूमि का अधि ग्रहण सेटेलाइट नगर के लिए किया गया है, जो पूर्णत: आवासीय होगा। इस क्षेत्र में सेटेलाइट नगर का विकास निम्न तथ्यों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है:-

* पटना रेलवे स्टेशन से इसकी दरी 18 कि0मी0 है
* पटना एयरपोर्ट से इसकी दूरी 14 कि0मी0 है
* बस स्टैण्ड से यह 15 कि0मी0 की दूरी पर है
* यह राष्ट्रीय उच्च मार्ग - 83 तथा राज्य उच्च मार्ग-78 से संबंद्ध है
* पुनपुन का प्रस्तावित एयरपोर्ट इससे 6 कि0मी0 दूर है
* अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) इस भूमि से 6 कि0मी0 दूरी पर स्थित है।

अत: स्पष्ट् है कि पुनपुन और बिहटा जैसे क्षेत्रें को उपग्रह नगर के रूप में शामिल हो चुके हैं, लेकिन इनका विकास अभी बाकी है, वहीं दूसरी ओर दानापुर, फतुहा, मनेर, हाजीपुर, जैसे क्षेत्र आंशिक रूप से विकसित हो चुके हैं तथा इनके विकास की गति भी तीव्र है।

3. उपनगर

मुख्य नगर के बगल में छोटे-छोटे नगर विकसित होते हैं, जो सड़क द्वारा जुड़े होते हैं। साथ ही इन नगरों का विकास सड़क के किनारे होता है, जिसे रीबन विकास कहते हैं, यह मुख्य नगर के बाहर वाला नगर होता है, जहां लोग रात में विश्राम करते हैं, पुन: दिन में मुख्य नगर मे काम करने चले जाते हैं। प्रारंभ में पाटलीपुत्र कॉलोनी का विकास इसी दृष्टिकोण से किया गया था। वर्तमान समय में दानापुर और हाजीपुर इसके उदाहरण है। इन क्षेत्रें की 50 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या पटना नगर में कार्यरत

हैं क्योंकि यहाँ के मकान का किराया पटना नगर की तुलना में कम है। सस्ते परिवहन के साधान और सस्ते मकान इसके विकास में सहायक है। कालान्तर में यह उपनगर मुख्य नगर का भाग बन जाता है कयोंकि इसका क्षैतिज प्रसार इतना तीव्र गति से होता है कि यह मुख्य नगर में मिल जाता है और पुन: नए उपनगर का विकास होता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

उपनगर में उच्च तथा निम्न दोनों ही आय वर्ग के लोग रहते हैं। उच्च आय वर्ग के लोग कोलाहल तथा प्रदूषण से बचने के लिए उपनगर में मकान बनाकर रहते हैं तथा निजी वाहन की सहायता से मुख्य नगर में अपने व्यवसाय के लिए जाते हैं, जबकि निम्न आय वर्ग के लोग सस्ते किराये पर मकान उपलब्ध होने के कारण उपनगर में निवास करते हैं।

4. नगरीय ग्राम

पाँच हजार से कम जनसंख्या वाले वैसे गाँव जहाँ कम से कम 30 प्रतिशत पुरूष कार्यकारी जनसंख्या गैर प्राथमिक कार्यों में लगी हो तथावहां नगरीय सुविधाओं का प्रसार हुआ हो उसे नगरीय ग्राम कहा गया है। प्रारंभ में पटना का गौरीचक, गोलारोड, दानापुर, आर0पी0एस0 कॉलोनी, पुनाईचक आदि मोहल्ले इसी रूप में थे, जिनका परिवर्तन बाद में ग्रामीण-नगरीय उपान्त में हुआ और वर्तमान समय में यह मुख्य नगर का हिस्सा है।

नगरीय प्रसार की इन प्रवृत्तियों को दिए गए मॉडल से समझा जा सकता है।

नगरीय प्रसार से उतपन्न समस्याएँ

हाल के वर्षो में नगरीय प्रसार की गति तीव्र होने से कई जटिल समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं, जैसे-

1. मुख्य नगर के बाहर निम्न स्तरीय संरचना के मकान तेजी से बढ़ते जा रहे हैं, इससे मुख्य नगर में शामिल होने से पूर्व ही मलिन बस्ती जैसी समस्या उत्पन्न हो जाती है।
2. नगर के बाह्य क्षेत्र में भूमि उपयोग में परिवर्तन होता है।
3. बाह्य क्षेत्र में सार्वजनिक तथा नगरीय सुविधाओं का भी अभाव पाया है। बाह्य क्षेत्र में मेडिकल तथा शिक्षण संस्थाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता है। पुन: ड्रेनेज तथा सीवरेज जैसी समस्याएँ भी यहाँ विद्यमान रहती है।
4. परिवहन के साधान पर्याप्त रूप से उपलब्धा नहीं होते हैं। आंतरिक उपान्त के क्षेत्रों के लोगों को अपने कार्यालय या शिक्षण संस्थान पहुँचने में कोई समस्या नहीं होती है लेकिन बाह्य क्षेत्र के लोगों को (जैसे बिहटा, खुसरूपुर, मनेर, बख्तियारपुर) एक निश्चित समय सीमा का पालन करना पड़ता है क्योंकि इन क्षेत्रों में परिवहन के साधान कम तथा गंतव्य स्थान तक बारंबारता बहुत कम होती है।

समस्याओं का समाधान

उपर वर्णित समस्याओं के संदर्भ में ही भारत जैसे विकासशील देश में नगरीय प्रसार, नियोजन तथा विकास का अनिवार्य अंग बन गया है। अत: आवश्यक हे कि महानगरीय नियोजन तथा प्रादेशिक नियोजन में नगर प्रसार के क्षेत्र के विकास हेतु कोई स्वतंत्र किन्तु समन्वित महानगरीय विकास योजना बनाई जाय। इसकी तुलना राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश से भी की जा सकती है।

पटना नगर के संदर्भ में आवश्यक हैं कि इसके प्रसार क्षेत्रों/उपान्त/उपनगरों के लिए नगर भूमि उपयोग निर्धारण की नीति निश्चित की जाए, जिससे इसके बाह्य क्षेत्रों/उपान्त में स्वस्थ नगरीय पारिस्थतिकी का विकास हो सके।

पुन: बाह्य क्षेत्रों को परिवहन के साधान से जोड़ने की आवश्यकता है। इसमें रेलवे विशेषकर मेट्रो रेलवे का विकास आवश्यक है। लेकिन यह मात्र पटना दानापुर और दीघा तक ही सीमित है, अत: आवश्यक है कि इसका और भी विस्तार भविष्य में किया जाए। सितम्बर-2011 को भारत सरकार के योजना आयोग ने मेट्रो रेलवे को अनुमति प्रदान की है।

पटना मेट्रो का विकास मुख्यत: चार लाइनों के तहत किया जा रहा है जिसके तहत रूट नं 1 में 24 मेट्रो स्टेशन हैं।

रूट नं0 1 - दानापुर, सगुना मोड़, आर0पी0एस0 मोड़, आई0एस0एस0 कॉलोनी, रूपसपुर, रूकनपुर, राजा बाजार, जे0डी0 वीमेंस कॉलेज, राजभवन, सचिवालय, हाई कोर्ट, पटना जैविक उद्यान, विश्वसरैया भवन, विद्युत भवन, आयकर गोलम्बर तथा पटना जंक्शन इत्यादि मेट्रो स्टेशन हैं।

रूट नं0 2 - इसके तहत पटना जंक्शन, डाकबंगला, गाँधी मैदान, कारगिल चौक, पीएमसीएच, पटना विश्वविद्यालय, प्रेमचंद रंगशाला, दिनकर गोलंबर, मलाही पकड़ी, खेमनीचक, भुतनाथ, जीरो माईल तथा नया आई0एस0बी0टी0 इत्यादि मेट्रो स्टेशन हैं।

रूट नं0 3 - बाईपास चौक, मीठापुर, एम्स, अनीसाबाद, एन0एच0 30 बाईपास, बाईपास रोड, तथा फुलवारी शरीफ इत्यादि मेट्रो स्टेशन हैं।

रूट नं0 4 - दीदारगंज से फतुहा जंक्शन तक है।

स्मार्ट सिटी योजना के तहत पटना नगर के विकास से संबंधित विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वन किया जा रहा है जिससे पटना एक स्मार्ट सिटी का रूप ले सकता कि यहाँ रहने वाले लोगो से बहुत सारी सुविधाये प्रदान हो जिससे उनके जीवन-यापन में वृद्धि हो सके। पटना नगर के गंगा किनारे रिवर फ्रंट रोड, तथा फुटपाथ का निर्माण होने से पटना नगर के सौंदर्यीकरण में इजाफा देखने को मिल रहा है। पटना नगर के बाहरी शहरो को जोड़ने वाली पटना रिंग रोड परियोजना के तहत हाजीपुर, सोनपुर, दीघवारा, शेरपुर, मनेर, नौबतपुर, कन्होली, रामनगर, बिहटा, कच्ची दरगाह, बिदुपुर, मसौढ़ी, फतुहा, आदि शहरो को समाहित करते हुए एक विस्तृत स्मार्ट पटना नगर का रूप ले लेगा।

अत: स्पष्ट है कि उपान्त/ उपनगरीय क्षेत्रों के विकास को प्राथमिकता दी जाए क्योंकि ये क्षेत्र ही कालान्तर में मुख्य नगर का अंग बन जाते हैं।

संदर्भ-सूची

1. सिन्हा, मुरली मनोहर प्रसाद एवं बाला, सीमा (2007), नगरीय भूगोल, राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-78-83 एवं 152-153.
2. सिंह, यू0 बी0 (2001) अधिवास भूगोल, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ-111
3. जनगणना निदेशालय, पटना, 1991, 2001 एवं 2011 (संभावित)।
4. नगर विकास योजना रिपोर्ट-2008.
5. पटना नगर का मास्टर प्लान-2021, रिपोर्ट।

प्राचीन बिहार में प्रचलित रोग एवं उनके उपचारः एक अध्ययन

डिम्पल

प्रा0 भा0 इ0 एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

रोग एवं उपचार

गौतमबुद्ध के देहावसान के पश्चात उनके प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध द्वारा किए गए उपदेशों एवं वचनों की सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें 3 भागों में संगृहित किया। पिटारियों की भाँति होने से ये त्रिपिटक-विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक कहे जाते हैं। विनयपिटक के 5 ग्रंथ संग्रहित है जिसमें से महावग्ग एक है। यह ग्रंथ गौतमबुद्ध के जीवन की उस घटना के वर्णन से प्रारंभ होता है जबसे अभिसंबोधि प्राप्तकर 'बुद्ध' हो चुके थे और धर्मचक्रप्रवर्तन हेतु सन्नद्ध हो रहे थे। महावग्ग के रचनाकाल पर विद्वान एकमत नहीं है। इस ग्रंथ के अध्ययन से अकाल, महामारी, अपाहिजों, बौद्धभिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के बीच चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग, सामान्य प्रजा की निम्न या सामान्य दशा आदि की जानकारी होती है।

आधुनिक बिहार और इस राज्य के पड़ोसी क्षेत्रों में होनेवाली बीमारियों एवं उनके उपचार का वर्णन इस महावग्ग नामक ग्रंथ में किया गया है। प्रसिद्ध वैद्य जीवक की जीवनी एवं कार्यो का भी वर्णन इसमें है। गौतमबुद्ध और मगध नरेश बिंबिसार के काल में होने वाले रोगों का इसमें विशेष वर्णन है। कुछ बीमारियों का संबंध बदलते हुए मौसम से बताया गया है। वैदिककालीन समाज की तुलना में बौद्धकालीन समाज वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से ज्यादा जागरूक था। वैदिककाल में अधिकांश बीमारियों का इलाज जहाँ जादू-टोना, मणिबंध और वैदिक मंत्रों के सहारे किया जाता था वही बौद्धकाल में अधिकांश बीमारियों का इलाज औषधियों एवं संयम तथा सफाई के आधार पर करने की बात पाते हैं। यह भी कम महत्वपूर्ण तथ्य नहीं लगता है कि बुद्ध के काल में बिहारवासी जिन-जिन रोगों से पीड़ित होते थे उनमें से अधिकांश बीमारियों के रोगी आज भी पाए जाते हैं।

बीमारियों के कारण और निदान

वर्षा ऋतु में और विशेषकर काली घटाओं के दिन बहनेवाली ठंड हवा को रोगदायक बताया गया है। इस मौसम में मच्छर, मक्खी, साँप और बिच्छु के काटने का डर सदा बना रहता था।[1] बाहर से आने पर पैर धोना और लकड़ी (पादकठली) पर पैर रगड़कर साफ करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता था।[2] एड़ी रगड़ने से बेवाय रोग नहीं होता था।[3] बनारस आदि नगरों के धनाढ्य लोग हेमंत ग्रीष्मऋतु तथा वर्षाऋतु में अलग-अलग भवनों में रहते थे। प्रत्येक मौसम 4 मास का होता था। हेमंत में हड्डियों तक में घुस जानेवाली ठंडी हवा जब गया नगरी और उसके आसपास बहती थी तो लोग अंगीठियों में आग लगाकार तापते थे।[4] भोजनपात्र साफ करने के बाद धूप में सूखा दिया जाता था। स्वास्थ्य लाभ के लिए जंताधर (यंत्रगृह) में जाकर वाष्प स्नान किया जाता था। कमरे में थूकने के लिए पीकदान का प्रयोग किया जाता था। मकड़ी के जाले झाड़ू के अग्र कोने से साफ किया जाता और पुराना कपड़ा जल में भिंगोकर फर्श साफ किया जाता था। पूरब की ओर बहने वाली धूलभरी तेजहवा चलती थी तो पूरब की खिड़की बंद कर दी जाती थी। पश्चिमी तेज हवा चलने पर पश्चिम की खिड़की बंद कर दी जाती थी। शरद् ऋतु में रात्रि में खिड़की बंद की दी जाती और दिन में खोल दी जाती थी। इसके विपरीत गर्मी के दिनों में रात्रि में खिड़की खोल दी जाती और दिन में बंद

कर दी जाती थी। शौचालय स्वच्छ रखने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। तत्कालीन समाज की ऐसी जीवन शैली स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का घोतक था। स्वस्थ्य रहने के लिए स्वच्छ रहना आवश्यक समझा जाने लगा था।

पादकील

गाँव के लोग आज भी पादकील[5] नामक रोग से अपरिचित नहीं है। चलते-चलते पैर का एड़ी फट जाने से घाव हो जाता था। पैर में कांटा गड़ जाने से भी घाव हो जाता था। इस रोग को पादकील कहा जाता था। ऐसे घाव को ठीक करने के लिए पैरों में मर्दन (मालिश) किया जाता था।[6] इस रोग से बचने के लिए काठ का बना खड़ाऊँ या छोटे-छोटे ताड़ वृक्षों को करवाकर उनके कोमल पत्रों का खड़ाऊँ बनाया जाता था।[7] पैर में विवाई (खील) फटे होने पर रोगी किसी पशु के पीठ पर बैठककर आना जाना करता था।

शीतज्वर

मगध के अलावा श्रावस्ती के कई लोगों की शरद् ऋतु में शीतज्वर से पीड़ित होने की चर्चा है। मलेरिया की भांति शीतज्वर रोगी जो भी खाता उसकी उल्टी हो जाती थी। फलत: यह अतिदुर्बल रक्ष, दुवर्ण एवं पीला पड़ जाता और शरीर की सभी छोटी-बड़ी स्नायुएँ दूर ये भी दिखाई देती थी।ऐसे रोगी को ऐसा भोजन दिया जाता जो आसानी से पच सकें। ऐसे रोगी को दिन में घी, मक्खन, तेल, मधु एवं फाड़ित (गुड़) जाने को दिया जा सकता था क्योंकि इन पदार्थो को हल्का भोजन माना जाता था किन्तु वास्तविकता यह थी कि ऐसे रोगी को कुछ भी खाना अच्छा नहीं लगता था और अगर कोई रोगी घी, मक्खन, तेल, मधु एवं गुड खा भी लेता तो वमन कर देता था।

नेत्र रोग

नेत्र रोग काफी पीड़ादायक होता था। जिसके कारण दिखाई नहीं देता था। इस रोग के उपचार के लिए चंदन, तगर, कालानुसारी, तालीस एवं भद्रमुक्ता आदि को मिलाकार अंजन तैयार किया जाता था। इसे अंजनदानी में रखा जाता था जो सोना, चाँदी, हड्डी, दाँत, सींग, नड़ (वेत), बाँस, काष्ठ, लाख, सुखे-फल, शंख की नाभि का बनता था। यह ढक्कन से ढका होता और रस्सी से बाँध कर रखा जाता ताकि ढक्कन खुले नहीं। अंगुलियों से अंजन आँख में डाला जाता था किन्तु इससे ऑखों को बड़ा कष्ट होता था। अत: शंख की सलाई का प्रयोग किया जाने लगा। लुंबिनी में 'चंदन-सार' नामक औषधि से अंधापन और बहरापन की बीमारी का इलाज किया जाता था।[8]

दादरोग

दादरोग से भी काफी लोग पीड़ित रहते थे। इसमें खुजली बहुत होती थी और ऐसा करने से घाव हो जाता था। इससे निकलने वाला द्रव वस्त्र में लगाकर शरीर से सट जाता था। इसके उपचार के लिए पशुओं का मल, मिट्टी ओर हल्दी को ओखल, मूसल में कूटकर चूर्ण बनाया जाता और किसी कपड़ा से छाना जाता था तथा तैयार पाउडर दादस्थान पर लगाया जाता था।

सिरोरोग

सिरोरोग अति पीड़ादायक होता था। इसे दूर करने के लिए सिर पर तेल लगाया जाता था। इससे ठीक नहीं होने पर नाक में नस्त्र डाला जाता था। इससे भी ठीक नहीं रहने पर रोगी को औषधियुक्त धुम्रपान कराया जाता था। औषधियाँ बत्ती पर लेपकर शिरो रोगी उसका धुँआ पीते थे। इससे कंठ जलने लगता था, अत: इन औषधियों को चिलम (धूम्रनेत्र) में रखकर घूम्रपान किया जाता था।

वातरोग

वातरोगी को पकाया हुआ तेल पिलाया जाता था। इससे रोग ठीक नहीं होने पर पकाए हुए तेल में शराब या नशीला पदार्थ डालकर रोगी को पीने के लिए दिया जाता था। सम्पूर्ण शरीर में वातरोग होने पर स्वेदकर्म अर्थात् भाप देकर पसीना निकाला जाता था। पसीना लानेवाले पत्तों के बीच रोगी को सुलाया जाता था। इससे अगर रोग ठीक नहीं होता तो 5-6 फीट गहरा गड्ढा खोदकर

उसे जलते हुए आंगारों से भरकर मिट्टी-बालू से बंद कर नाना प्रकार की वातरोगनाशक औषधियों के पत्ते बिछाकर उनपर लेटाकर पसीना (महास्वेद) निकाला जाता था। इस उपचार से अगर यह रोग ठीक नहीं होता तो वातनाशक औषधियों के रस को शरीर पर डालते हुए पसीना निकाला जाता था। इससे ठीक नहीं होने पर उष्ण जल से भरे धड़ों से परिपूर्ण कमरे में बैठकर पसीना निकाला जाता था और इस उपचार को उदक कोष्ठक कहते थे।[9] वातरोग वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग था। उसका रोगी ज्वर से पीड़ित रहता था। गठिया रोग और वातरोग में काफी अंतर नहीं होता था।

गठिया

अस्थिसंथियों में होनेवाली पीड़ा को गठिया कहते थे। इस रोग के उपचार के रोगी के अंगों से रक्त निकाला जाता था। इससे रोग दूर नहीं होने पर श्रृंग (विषाण) विधि से रोगी का रक्त चूसा जाता था।[10]

घाव

किसी कीड़ा के काटने, चोट लगने या रक्त में विकार होने से घाव होता था। इसे ठीक करने के लिए औषधियुक्त गर्म जल से धोया जाता था। घाव पर रूई से तिलपट्टी का लेप किया जाता था। औषधि मिश्रित रूई को घाव पर रखकर पट्टी बांधा जाता था। सूखने पर घाव में खुजली होती थी, फलत: सरसों को एक कपड़ा में बाँधकर उससे घाव को सहलाया जाता था। घाव से पानी बहने पर धुंआस किया जाता था। घाव में अगर मांस बाहर निकल जाता तो उसे लवणाक्षर से काटा जाता था। घाव अगर नहीं भरता तो उस पर व्रजरोपण तेल लगाकर पट्टी बांध दिया जाता था। पीसी हुई सरसों की लुगदी भी घाव पर सुखाने के लिए रखा जाता था।[11]

ज्वरपित्ती

ज्वरपित्ती के रोगी को ज्वर के साथ सम्पूर्ण शरीर में लाल ददोड़े हो जाता था। इस रोग के इलाज के लिए रोगी के शरीर पर गंधक का लेप किया जाता था।

पांडुरोग

पांडुरोग को पीलिया भी कहते हैं। इस रोग में शरीर का रंग सफेद-पीला पड़ जाता था। इस रोग को ठीक करने के लिए रोगी को गोमूत्र हरीतकी (हर्रे) पिलाया जाता था।

शून्यरोग

शून्यरोग में रक्तसंचालन रूक जाया करता था। इससे शरीर शून्य हो जाता था। ऐसे रोगी को जुलाब पिलाया जाता था। इस प्रक्रिया को विरेचन कर्म कहते थे।

वायु गोलक

वायुगोलक नमक बीमारी में रोगी को नमकीन सिरका जल में दिया जाता था। तिल, चावल एवं मूंग को मिलाकर पतली खिचड़ी खाने को दिया जाता था। मगध देश में इस रोग का प्रचलन काफी था।

दाह

शरीर में जलन होनेवाली बीारी को दाह कहते थे। इसे ठीक करने के लिए रोगी को कमल की जड़ एवं कमलनाल खाने को दिया जाता था।

भंगदर

मगध प्रदेश में भंगदर रोग से काफी लोग पीड़ित थे। इस रोग में गुदामार्ग में घाव हो जाता था। 'आकाशगोत्र' नामक वैद्य द्वारा इस रोग का इलाज करने की चर्चा है। किन्तु इस रोग को ठीक करने में उसे सफलता नहीं मिली तथा रोग और बढ़ गया क्योंकि

शल्यचिकित्सा विधि (शस्त्रकर्म) से इसका इलाज किया गया था। ऐसे रोग का इलाज औषधियुक्त जल गुदामार्ग में पिचकरी से डाल कर किया जाता था। इस उपचार से रोग अगर घटता नहीं तो बढ़ता भी नहीं था।[12]

इलाज

वात, गठिया, व्रण, पांडुरोग, ज्वर, रक्तशून्यता आदि को शरद् ऋतु का रोग बताया गया है। मगध देश में इन रोगों के रोगी काफी थे। सामान्य लोग इन बीमारियों के इलाज में सर्पी, नवनीत, तैल, मधु, गुड़, चर्बी, पत्ते, फल, लाख, नमक, सूखा गोबर आदि का प्रयोग करते थे। इन औषधियों को कूटकर कपड़ा से छानकर पाऊडर एकत्रित कर लिया जाता और इनका प्रयोग किया जाता था। मगध देश में फीलपाव (श्लीपद), शोष (सुखंडी रोग) जिसमें शरीर का रंग पीला पड़ जाता था। गलगंड (फोड़ा-फुंसी, घेघा), श्वेतकुष्ठ (किलास), गलित कुष्ठ[12],अपस्मार (मिर्गी) एवं पक्षाघात आदि बीमारियों से काफी लोग पीड़ित थे।

वैद्य

वैद्य पहले किसी गुरू को खोजकर उसके पास जाता और वेतन या अपनी सेवाएँ देकर सारी विद्या जैसे, धुरी पकड़ना, घाव चीरना, निशान लगाना, छुरी भोंकना, चुभे हुए कांटा को खींचना, घाव को धोना, उसे सुखाना, उस पर मलहम लगाना रोगी को उल्टी कराना, जुलाव देना और रसायन खिलाना सीखाता था। ये सारी बाते सीखने के बाद ही वह स्वतंत्र रूप से किसी रोगी का इलाज करता था। वैद्य जड़ी-बूटियों को पीसकर दवा तैयार करते और रोगी को पिलाते थे। बीमारी ठीक हो जाने के बाद दवा का सेवन नहीं किया जाता था।[13]

फोड़ा के कारण जब मांस सड़ जाता था तो वह काफी पीड़ा देता था। इसके कारण पित्त, कफ तथा सन्निपात की बीमारी भी हो पाया करती थी। इसे ठीक करने के लिए वैद्य पहले घाव पर दवाई का लेप लगाता जिससे फोड़ा पक जाता था। फिर छुरी से नस्तर लगा फोड़े को सलाई से दागकर उस पर थोड़ा नमक छिड़कर दवा का लेप चढ़ा जाता था।[14] इस इलाज से पूर्व छुरी को साफ किया जाता, सलाई को आग में तपाया जाता और सिलाट पर नमक को पीसा जाता था। कुछ रोगों में वैद्य रोगी को औषधि देते, वमन कराते, जुलाब देते, लेप चढ़ाते और सेंकते थे।[15] दवा के रूप में गो-मूत्र पान भी कराया जाता था।[16] ठीक होने पर कुछ रोगी वैद्य को इनाम देते थे। बूढ़े रोगी जड़ी-बूटी खाने पर भी स्वस्थ्य नहीं हो पाते थे।[17] कुछ बीमारी में रोगी को 4-5 दिनों तक तेल पिलाया जाता और और उसका शरीर जब चिकना से जाता और ताकत आ जाती तो वैद्य उसे जुलाब देता था।[18] झाड़-फूंक और दवा से रोग जब ठीक नहीं हो पाता तो उल्टी कराया जाता और जुलाब दिया जाता था।[19] जुड़ी-बूटी की दुकानें होती जहाँ नाना प्रकार की जड़ी-बूटियाँ बिकती थी।[20] जड़ी-बूटी में कोई वभाने पड़ते थे।

प्राय: 8 कारणों से लोग बीमार पड़ते थे-वायु का बिगड़ जाना, पित्त का प्रकोप, कफ का बढ़ना, सन्निपात को दोष, ऋतुओं का बदलना, खाने में गड़बड़ी, बाह्य प्रकृति के अन्य प्रभाव और कर्मो का फल।[21] वायु बिगड़ने के कारण 10 कारण थे-सर्दी गर्मी, भूख, प्यास, अतिभोजन, अधिक खड़ा रहना, अधिक परिश्रम करना, बहुत तेज चलना, बाल प्रकृति के दूसरे प्रभाव और अपने कर्म का फल। सर्दी गर्मी और बेवक्त भोजन करने के कारण पित्त की बीमारी होती थी। सर्दी, गर्मी और खाने-पीने में गड़बड़ी से कफ की बीमारी होती थी।

अनेक प्रकार के चिकित्सक (तिकिच्छका) और वैद्य (वेज्ज) थे, जो जड़ी-बूटियों से औषधोपचार करते थे। चीर-फाड़ करने वाले (सल्लकता) वैद्य भी थे। बाल रोगी के विशेषज्ञ वैद्य क्षारक तिकिच्छा कहे जाते थे। चिकित्सा में महोषध कुमार नामक प्रसिद्ध वैद्य था। उसे ऐसी जड़ी की जानकारी थी जिसे पत्थर पर घिसकर उसके चूर्ण में थोड़ा पानी मिलाकर घोल बना दिया जाता और उसे पीने से 7 वर्ष पुराना सिर दर्द दूर हो जाता था। मिथिला में एक वैद्य को राजा ने मृत्युदंड दिया क्योंकि राजपुत्र को वह निरोग नहीं कर सका। छुरी और कांटा से चिकित्सा की जाती थी। कोई मनुष्य औषधि सेवन किए बिना वैद्य को देखने मात्र से ठीक नहीं हो जाता था। राजगृह में रोगियों की शारीरिक अवस्थाओं को पूरा-पूरा विचार कर उन्हें उचित औषधि बताना वैद्य का काम होता था।[22] हवा, सूर्याकिरण एवं धूल के कारण बीमार पड़नेवाले कृषकों को सूख, शांति और प्रसन्नता नहीं रहती थी।

कपिलवस्तु में काफी धन प्राप्त करने के बाद ही वैद्य रोगी का इलाज करते थे।[23] समाज में काने-कुबड़ें, अंधे-बहरे, गूंगे, टेढ़े-मेढ़े अंगवाले होते थे। 57 वर्णो से बिगड़े रंग-रूप वाले, सब इंद्रियों से क्षीण, भारी सांस लेनेवाले, सब अंगों में सूखा, पेट के रोगी और मल-मूत्र में पड़े रहने वाले रोगी पाए जाते जिनका इलाज वैद्य करते थे। मायादेवी द्वारा कपिलवस्तु में वात, पित्त, कफ,

सनिपात, आँख, कान, नाक, जीभ, होठ, दांत और गला के करोग गलगंड, उरगंड (छाती के गंड), कुष्ठ, किलास, (श्वेत कुष्ठ),शोष (सूखना नामक शिशु रोग), उंमाद, अपस्मार (मिर्गी), ज्वर, पिटक (फोड़े-फुंसी) विसर्प (दाह के साथ फैलाने वाले फोड़े) तथा विचर्चिका (बहने वाले एग्जिमा) जैसे रोगों का इलाज किया जाता था। बुद्ध स्वयं वैद्य थे। शल्यों को निकालनेवाले वैद्य की चर्चा है।

जनसाधारण का इलाज

रोगों का उपचार साधारण लोगों के लिए अति मुश्किल था। हाथ कटे हुए, पैर कटे हुए, हाथ-पैर कटे हुए, कान कटे हुए, नाक कटे हुए, कान-नाक कटे हुए, अंगुली कटे हुए, कुबड़े (कुब्ज), बौने (वामन), लोहे से दागे गए, कोंड़ों से पीटे हुए एक आंख के कोने, हाथों से लूलू, लंगड़े, अंधे, बहरे आदि को रोगी की श्रेणी में रख सकते हैं। जिनका इलाज संभव नहीं था।

जनसाधारण के बीच कुछ औषधियाँ काफी प्रचलित थीं। इनका प्रयोग वे अंदाज से करते थे किन्तु कुछ रोगों के उपचार में ये औषधियाँ काफी उपयोगी सिद्ध होती थीं। खिचड़ी (यवागू) को औषधि की श्रेणी में रखते हुए इसके 10 गुण बताए गए हैं। इसे आयु देनेवाला, रूप (वर्ण) देनेवाला, सूख, बल, प्रतिभा, भूख मिटानेवाला, प्यास मिटानेवाला, वायु को अनुकूल बनानेवाला, मलाशय का शोधन तथा अनपच को दूर करनेवाला बताया गया है। मक्खन, तेल, मधु या शर्करा औषधि के रूप में प्रयोग किए जाते थे। शहद का बना लडडू सुन्दरता, प्रतिभा एवं बल में वृद्धि करनेवाला बताया गया है।[24] रोगी के पश्य के रूप में गुड़ दिया जाता था। कुछ रोगियों को चर्बीयुक्त औषधि दी जाती थी जिसमें रीछ, मछली, सुसुका या सोंस (बड़ी मछली), सुअर और गध े की चर्बी मिली रहती थी। इन्हें बिना पकाए संतुलित मात्रा में मिलाकार तेल के साथ रोगी को खिलाया जाता था। इन्हें पकाकर भी खाया जाता था।[25]

हल्दी, अदरख, वच, वचत्य, अतीस, चिरायता (कुटकी) खरस और नागरमोथा जड़-मूल औषधियाँ थीं जिन्हें बहुत से लोग जीवन भर प्रयोग करते थे इन्हें चक्की या खरल में कूट-पीसकर तैयार किया जाता था। नीम, कुटज (कुड़े की छाल), पटोलपत्र, पग्गव और नक्तमाल का काढ़ा बनाकर सेवन किया जाता था। तुलसी का पत्ता, कपास का पत्ता, कुड़े का पत्ता, और पटोल का पत्ता कई प्रकार के रोगी खाते थे। विंडग, पीपल, मरीच, हर्रे, बहेडा एवं आंवला फल-औषधियाँ थीं। हींग, हींग का सत्त, हींग की गांठ, तवक, तवक्पर्णी, सर्जु आदि जतुमय या गोंदवाली औषधियाँ थीं। समुद्री नमक, कालानमक, सैंधानमक, खान से निकाला गया नमक और बिड़ नामक सारयुक्त औषधियाँ थीं।

राजगृह में शरीर की बनावट की चर्चा करते हुए महासंपत्तिशीली सेठ की लड़की कहती है-शरीर हड्डी और नसों का संयोग है, ऊपर से त्वच् और मांस का लेप है और इसके ऊपर चमड़ी से ढंका है। इसलिए इस शरीर का यथार्थ स्वरूप नहीं दिखाई देता। यह आंतों, अमाशय, यकृत, उदरस्थ (वस्ती) हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, फ्लीहा, सींढ, थूक, पसीना, वन (भेद), रक्त, लसिका पित्त और चर्बी (वसा) से भरा है। इसके 9 स्रोतों से सदा गंदगी बहती रहती है-आंखों से आंख का मैल, कानों से कान कान का मैल, नाक से सीढ़, कभी-कभी मुंह से उल्टी, पित्त और कफ एवं शरीर से पसीना। इसका छिद्रोंवाला शीस मृत्थुलुंग से भरा है।

परिचायक (नर्स)

कुपश्य (प्रतिकूल) करनेवाले रोगी, पथ्य का अनुकूल महत्व नहीं समझने वाले रोगी, समय पर औषध का सेवन नहीं करनेवाले रोगी, वास्तविक स्थिति नहीं बताने वाले रोगी और रोग से उत्पन्न पीड़ा एवं दु:ख को नहीं सहन करने वाले रोगी की सेवा करना कठिन था। पश्य (अनुकूल) से रहनवाले रोगी, कुपथ्य (प्रतिकूल) के दुष्परिणाम जाननेवाले रोगी, औषधि का समय पर सेवन करनेवाले रोगी, अपने रोग के उतार-चढ़ाव को स्पष्ट ढंग से बताने वाले रोगी और रोग से उत्पन्न प्रचंड वेदनाओं को सहन करनेवाले रोगी की सेवा करना आसान होता था। योग्य दाई, नर्स या परिचायक वही माना जाता था जो औषध को ठीक से बनाकर देना जानता था। अनुकूल और प्रतिकूल के भेद को समझनेवाला, रोगी का मल-मूत्र, कफ एवं वमन उठाने में घृणा नहीं करनेवाला, रोगी को कहानियाँ सुनाकर मन बहलानेवाला और रोग को सहने का साहस बघाते रहनेवाला हो।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीन बिहार में रोग एवं उनके उपचारों के प्रति न केवल प्राचीन राजवंशों बल्कि साधारण जनमानस में भी जागरूकता देखने को मिलती है। तत्कालीन समाज को ऐसी जीवन शैली स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का द्योतक था। स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छ रहना आवश्यक समझा जाने लगा। पादकील (पैर में फट जाना) से बचने के लिए खडाऊ पहनने की सलाह दी जाती थी। शीतज्वर के रोगी को वैसा भोजन दिया जाता जो आसानी से पच सके, दाद खुजली के उपचार के लिए पशुओं का मल, मिट्टी आदि का चूर्ण बनाकर दाद स्थानों पर लगा जाता था। चंदन, तगर, कालानुसारी, तालीस और भ्रदमुक्ता आदि को मिलाकर अंजन बनाया जाने लगा जो नेत्र रोगों को दूर करने के लिए उपयोग होता है। सिररोग को दूर करने के माथे पर तेल मले जाते थे। औषधियों युक्त धुम्रपान कराये जाते थे। औषधियुक्त नशीले पदार्थ पीलाकर वात रोग का इलाज किया जाता था। गठिया का इलाज रोग स्थान से रक्त निकाल कर किया जाता था। पीसी हुई सरसों की लुग्दी का प्रयोग घाव सुखाने में किया जाता था गंधक का लेप लगाने पर ज्वरपीति का इलाज किया जाता था। पारे या पीलिया के रोगी को गोमुत्र में हरें मिलाकर पिलाया जाता था। शल्य चिकित्सा विधि से भंगदर का इलाज किये जाते थे। जनसाधारण द्वारा खिचड़ी, मधु, गुड़, सूरा, नागर मोथा, नीम, कुटज, पटोज पत्र, पग्गव, स्वतमाल्या, तुलसी का पत्ता, कपास का पत्ता, पटोल का पत्ता, विडंल पीपल, मरीच, हर्रे, बहेड़ा, आवला, हींग, समुद्र नमक, काला नमक आदि का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता था जिससे अधिकांश का प्रयोग मौर्य, कुषाण और गुप्तकाल के अलावा आज तक किया जाता है।

संदर्भ-सूची

1. सत्यप्रकाश-वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1999 पृ0-158
2. वहीं पृ0-159
3. वहीं पृ0-164
4. The figure of Nagaryuna, so prominent in the history of the rise of Mahayanism. Shows a double character It is, aon the one side the name of an influential person, the fisrst eminent leader of a school imbued with Himdusim and the methods of Indian scholastic philosophy one the other hand, Naraguna is simply a comprhenhive name of the cativity of mahayanism in the fisrt of its onwards course kern.
5. रीलिजिन्स ऑफ इंडिया, 1891, पृ0-210-211
6. पी.सी.राय, हिन्दू केमिस्ट्री, 1, 1902, पृ0-43
7. शुक्लत्वात् सौम्य तस्य सौम्यस्यापि सतों दहनपचनक्षरणदिशाक्तर विरूद्धा सूत्र-11 । 5।।
8. पानीयस्तु गरगुलमोदरागिन संगाजीर्णरोचकानाह
शर्कराश्मर्चाम्यंतरविद्राधि-कृमिविषार्थः सूपयुज्यते ।। सू0 11। 8 ।।
9. क्षार जिन वृक्षों की राख से बनता था वे ये हैं-
कुटजपलाशाश्वकर्णपारिभद्र-कविभीतकारग्वध
तिल्वकार्कस्नुह्वनपामार्ग पाटलानक्तमालव्रुाकदलीचित्रकपूती केन्द्र-
वृक्षोंस्फोताश्वारकससप्त चछदाग्निमन्थगुंजतस्रश्र कोशातकी
समूलफलपत्रभाषा-दहेत् ।। सूत्र ।।11 ।।
10. चरक-चरक संहिता, चौखम्बा, बनारस,1938, पृ0-105
11. चक्रपाणिदत्त- व्याख्या, चरकसंहिता निर्णयसागर, बम्बई, 1941, पृ0-104-52
12. चरक संहिता, 1.125
13. वहीं, 10.5
14. वहीं, (1.11, 12.57-5.8)
15. चरक, चरक संहिता, चौखम्बा, बनारस, 1938, पृ0-105-13

16. चरक संहिता, अध्याय-12.13
17. प्रियव्रत शर्मा-चरक चिंतन चौखम्बा, वाराणसी, 1970, पृ0-205
18. रघुवीर शरण शर्मा, चरकसंहिता का निर्माणकाल, चौखाम्बा, वाराणसी, 1959, पृ0-41
19. हरिदत्त शास्त्री, चरकसंहिता, मोतीलाल बनारसी दास , लाहौर, 1940, पृ0-67
20. चंद्र चक्रवर्ती-चरक संहिता, जाम नगर 1949 पृ0 संख्या-301
21. चरक संहिता का अरबी अनुवाद 8वीं शती में हुआ था। जो शरक इंडियानस के नाम से नाम जाना जाता है।
22. महाउमम्गजातक संख्या 546, पृ0-340
23. वही, पृ0 संख्या-341
24. वही, पृ0 संख्या-353-354
25. महावग्ग, संपादक एवं अनुवादक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, 1 महाखंधक, 3 मुलिचंद कथा, प्रतिहार्य 5, बौद्ध भारती, वाराणसी, 1998, पृ0-06
26. वही, 6 पंचवग्गियाकथा, 12, पृ0-16,18 उपाध्यायवर्तकथा, 67 पृ0-68

नालंदा के प्रमुख अभिलेख और उसके विविध आयाम

डॉ० कृपा शंकर प्रसाद

प्रा. भा. इ. एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

अभिलेख एक ऐसा पुरातात्विक साक्ष्य है जो किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति को जानने में दूसरे साक्ष्यों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रमाणिक साबित होता है। अभिलेखीय साक्ष्यों की दृष्टि से अगर देखा जाए तो मध्य गंगा घाटी का क्षेत्र भी काफी समृद्ध दिखता है। नालंदा का उल्लेख प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्यों में मिलता है।[1] अभिलेख एवं मुहरों के इतिहास में नालंदा का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ से एक से बढ़कर एक अभिलेख मिले है जिससे गुप्तकाल से लेकर पालकाल तक की सांस्कृतिक जानकारी प्राप्त होती है। इन अभिलेखों के विभिन्न प्रकार और विविध आयाम है जिसे हम क्रमबद्ध रूप से यहाँ बताना चाहते है।

नालंदा से प्राप्त मुहरें तथा अभिलेख

नालंदा से हजारों की संख्या में मुहरें और अभिलेख मिले हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण अभिलेख हैं जैसे शर्ववर्मा का नालंदा मृत्तिका मुहर-लेख, अवंतिवर्मा का नालंदा मृत्तिका मुहर लेख, महाराजाधिराज सू- का नालंदा मृत्तिका मुहर लेख यशोवर्मा का तिथिविहीन नालन्दा पाषाण अभिलेख, समुद्रगुप्त का जाली लेख, समुद्रगुप्त का नालंदा दान-पत्र[2], विपुलश्रीका नालंदा प्रस्तर अभिलेख तथा हर्ष की नालंदा मृत्तिका मुहर आदि। इसके अलावा छोटी-बड़ी मुहरें जो मुहरें नहीं बल्कि मुहर छापें हैं, मिली हैं। मुहरों के साँचे या ठप्पे केवल दो ही मिले हैं। पर हम इन्हें भी सुविधा के लिए मुहरें ही कहेंगे। ये गुप्तकालीन भी है, गुप्तोत्तर काल की भी तथा पाल शासकों के समय की भी। लेकिन इनको कालक्रमानुसार अलग-अलग वर्गीकृत करना संभव नहीं है क्योंकि ये मुहरें प्रायः इतनी होती है कि इनकी तिथि का निर्धारण सिवाय लिपि के किसी अन्य आधार पर नहीं किया जा सकता-केवल उन राजकीय मुहरों को छोड़कर, जिन पर राजाओंके नाम लिखे हैं बाकी का काल विभाजन कानून भी कठिन है, क्योंकि ये छोटी-छोटी है, और इनमें से कुछ के ही चित्र उपलब्ध हैं। दूसरा मात्र लिपि के आधार पर इनका काल निर्धारण करना असंभव है कि कोई मुहर छठी सदीं की है या साँतवी की अथवा यशोवर्मा के समय की है या गोपाल के समय की। इसलिए मैंने यहाँ कुछ महत्वपूर्ण मुहरों को उसके विषय के आधार पर वर्गीकृत कर दिया है- केवल शासकों या राजाओं की मुहरों को उनके अभिलेखों के साथ रखा है।[3]

नालंदा बौद्ध शिक्षा शिक्षा का एक महान केन्द्र था, इसलिए यहाँ से प्राप्त बहुसंख्यक मुहरें बौद्ध धर्म एवं संघ से संबंधित है। इसके अलावा कुछ ब्राह्मण धर्म, कुछ धर्मनिरपेक्ष मुहरें हैं, कुछ जनपद, कुछ ग्रामों की, कुछ व्यक्तिगत, कुछ विभिन्न अधिकरणों, कुछ अधिकारियों और कुछ राजकीय मुहरें हैं।[4] बौद्ध धर्म एवं संघ से संबंधित मुहरों पर धर्मचक्र तथा हिरण आदि बने मिलते हैं जबकि बौद्धेत्तर मुहरों पर गजलक्ष्मी, मंगलकलश, पादुका, शंख, त्रिशुल, वेदी, ध्वज, वृषभ, सिंह, सूर्य, चन्द्र आदि उत्कीर्ण किए गए हैं। राजकीय मुहरों में गुप्त सम्राटों (समुद्रगुप्त, नरसिंह गुप्त, द्वितीय कुमारगुप्त, बुधगुप्त, वैन्यगुप्त तथा विष्णुगुप्त) के अलावा बंगाल के समाचारदेव चन्द्रवंशी नरेशों, पाल सम्राट देवपाल, कन्नौज के मौखरियों एवं कामरूप के भौम नरेशों की मुहरें हैं। गुप्तकाल के पहले की न तो कोई मुहर मिली है और न अभिलेख। इन सभी प्राप्त मुहरों तथा अभिलेखों में संस्कृत भाषा तथा उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी अथवा प्रारंभिक नागरी लिपियों का प्रयोग किया गया है। इन्हें पृष्ठ भाग पर मजबूत आगे से बाँधा जाता था जिसके चिह्न अब तक प्रायः मिलते हैं। कुछ पर कपड़े या ताड़पत्रों से बाँधे जाने के चिह्न अभी भी हैं।[5]

बौद्ध संघ से संबंधित मुहरें

नालंदा से प्राप्त मृत्तिका मुहरों में बौद्ध संघ से संबंधित मुहरों की संख्या सर्वाधिक है। विहार संख्या 9 के एक ही कमरे से 690 मुहरें मिली थीं। हीरानंद शास्त्री द्वारा उनकी प्रदत्त संख्या दी गई है –

(1) एस. आई. 1005 फलक 2 सी. (2) एस. आई. 310, (3) एस. आई. 819, (4) एस. आई. 675, फलक 3ए (5) एस. आई. 938, (6) एस. आई. 1046, (7) एस. 9, आर. 15 (8) एस. आई. 348 फलक 3 एक दाहिनी ओर।

कुछ अन्य मुहरें दूसरी छाप में 'सेवत्थिक ग्रामस्य', 'नन्दन ग्रामस्य', 'तटाक ग्रामस्य', 'वेताल ग्रामस्य', 'कालवीनाक ग्रामस्य' आदि लेख लिखे हुए हैं।[6]

जनपद मुहरें

नालंदा से प्राप्त जनपद मुहरों की संख्या 13 हैं : (9) एस. 9, आर. 16, फलक 4 आई., (10) एस. 9, आर. 144, फलक 5ए., (11) एस. 9, आर. 92, फलक 5सी.।

इन मुहरों में जनपद को ग्राम से उच्चतर संख्या माना गया है तथा दो में उनका नालन्दा से संबंध बताया जाता है क्योंकि इनमें एक मुहर में जनपद को विहार में स्थित कहा गया है इसलिए जनपद से आशय किसी संख्या से होगा न कि ग्रामवासियों से।[7]

अधिकरणों तथा अधिकारियों की मुहरें

नालंदा से अनेक अधिकरणों (कार्यालयों या न्यायालयों) और अधिष्ठानों (नगर केन्द्रों) की मुहरें प्राप्त हुई है जिनमें ग्राम नय (परगना), विषय (जिला), मंडल (विषय से बड़ी इकाई यानि कमिश्नरी) और भुक्ति (प्रांत) के अधिकरण सम्मिलित हैं। 'अधि करण' शब्द गुप्तकाल में कार्यालय तथा न्यायालय के रूप में प्रचलित था।[8] अपने वर्गीकरण में हीरानंद शास्त्री ने क्रम संख्या 12 से 48 तक का विवरण दिया है। इसके बाद उन्होंने एक अलग क्रम में अधिकारियों और अधिकरणों की मुहरों को रखा है जो निम्नलिखित है:-(12) एस. आई. 794, (13) एस. आई. 687, (14) एस. आई. 823, (15) एस. आई. 829, (16) एस. आई. 825, (17) एस. आई. 828, (18) एस. आई. 90, (19) एस. आई. 798, (20) एस. आई. 797, (21) एस. आई. 669, (22) एस. आई. 647 इत्यादि।

नालंदा से तीन मुहरें ऐसी भी मिली है, जिनमें पदाधिकारियों का नाम से उल्लेख है।इनमें दो में उस मुद्रा को लक्ष्म कहा गया है।

व्यक्तिगत मुहरें

नालंदा से बहुत से नागरिकों की व्यक्तिगत मुहरें भी मिली हैं जिनमें कुछ पर एक से अधिक नाम भी मिले हैं। किसी-किसी छाप पर पाँच-पाँच नाम भी हैं। इनमें बहुतों को शोभा-प्रतीकों से अलंकृत किया गया है। ऐसी मुहरों की संख्या बहुत अधिक है। इनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित हैं –

(41) उदयेन्द्रकविः (एस. आई. 337)

(42) अमरसेनस्य (एस. आई. 378)

(43) श्री कुमारसेन (एस. आई. 101)

(44) श्री शुक्रायुधदेव (एस. आई. 687)

(45) स्थ भानुदेवस्य

(46) श्री यशोवर्म्मदेव (एस. आई. 681) फलक 7 आई.

(47) श्री आदित्यसेन (एस. आई. 796)

(48) श्री इज्जा देवी (एस. आई. 701 ए, फलक 7 जे.

यह मुहर किसी स्त्री के होने के कारण उल्लेखनीय है क्योंकि स्त्रियों की मुहरें नगण्य ही मिलती हैं।

समुद्रगुप्त का नालन्द ताम्रलेख

यह अभिलेख 1927-28 ई0 में नालन्द के पुरातात्विक उत्खनन के समय विहार संख्या 1 के उत्तरी बारमदे में मिला था जो साढ़े दस इंच लंबे और नौ इंच चौड़े ताम्र फलक पर अंकित था। हीरानंद शास्त्री ने इसके संबंध में पहले एक छोटी-सी सूचना प्रकाशित की। तदनुपरांत अमलानंद घोष और दिनेशचन्द्र सरकार ने इसे संपादित कर प्रकाशित किया जिससे इसका महत्व उभरकर सामने आया। इस लेख की भाषा संस्कृत एवं शैली गद्यात्मक है तथा इसकी लिपि भी ब्राह्मी है। इस लेख के माध्यम से गुप्तवंशावली की भी जानकारी मिलती है तथा समुद्रगुप्त के लिए विभिन्न उपाधियों जैसे-सर्वराजोच्छेता, अप्रतिरथ, धनद, वरूण, इन्द, अन्तक (यम)के तुल्य, परमभागवत महाराजाधिराज का उल्लेख मिलता है। इस लेख में समुद्रगुप्त द्वारा अग्रहार देने की बात कही गयी है। इस लेख में यह भी चर्चा की गई है कि यह पत्र पूर्णनाग ग्राम को अग्रहार दान देने की अक्षपटलाधिकृत महापीलुपति, महाबलाधिकृत गोपस्वामी के आदेश से लिखा गया।[9]

नालंदा ताम्रशासन मे एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि उसमें दूतक के रूप में कुमार चन्द्रगुप्त का उल्लख है। दूतक का तात्पर्य यहाँ कदाचित यह है कि सम्राट समुद्रगुप्त ने इस शासनादेश को कुमार चन्द्रगुप्त के माध्यम से मौखिक रूप से गोस्वामी को दिया था। इस प्रकार दूतक का तात्पर्य आदेशवाहक अथवा राज-प्रतिनिधि लिया जा सकता है। इस रूप में कुमार चन्द्रगुप्त का उल्लेख अपना महत्व रखता है।[10]

यह अभिलेख भू-व्यवस्था की दृष्टि से देखा जाए तो भी महत्वपूर्ण साबित होती है क्योंकि इसमें वलत्कौषन (भू-कर पदाधिकारी), अग्रहार (राज्य की ओर से ब्राह्मणों को दिया जाने वाले ग्राम), उपरिकर (किसानों पर लगाया जाने वाला कर जिनका भूमि पर अपना कोई स्वामित्व न था), मेय और हिरण्य (तौलकर दी जानेवाली वस्तु अर्थात अन्न तथा सुवर्ण सोना) जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो समकालीन अर्थव्यवस्था के बारे में बतलाती है। इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अर्थशास्त्र, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में भी मिलता है।

शर्ववर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख

इस मुहर लेख की प्राप्ति बिहार राज्य के पटना जिले के नालंदा स्थल से हुई है। इस लेख की भाषा संस्कृत है जो संपूर्णतः गद्य में है। इसकी लिपि उत्तर भारतीय वर्ग की परवर्त्ती ब्राह्मी हैं, जिस लिपि में यह मुहर-लेख उत्कीर्ण किया गया है।[11]

अवन्तिवर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख

यह लेख बिहार राज्य के नालंदा नामक स्थल से मिला है। इस लेख की भाषा संस्कृत है जो पूर्णतः गद्य में है। इसकी लिपि भी परवर्ती ब्राह्मी है। इस लेख के माध्यम से अवन्तिवर्मा की वंशावली का उल्लेख मिलता है जिससे उस वंश के अन्य शासकों के बारे में भी जानकारी मिलती है। इस मुहर लेख में उनकी माता का वर्णन मिलता है।[12]

महाराजाधिराज सु- का नालंदा मृत्तिका मुहर-लेख

इस मृत्तिका मुहर लेख की प्राप्ति नालंदा नामक स्थल से हुई है जिसकी भाषा संस्कृत है एवं गद्यात्मक शैली में है। इस लेख को ब्राह्मी लिपि में लिखा गया है। मौखरी इतिहास के पुनर्निर्माण में इस मुहर-लेख का विशेष महत्व है।[13] इसी से स्पष्ट होता है कि ग्रहवर्मा की हत्या के बाद मौखरी राजवंश में उनके अनुज के रूप में सिंहासन का एक दावेदार मौजूद था जिसने हर्ष के द्वारा कन्नौज के हस्तगत किये जाने का विरोध ही नहीं किया वरन् किसी समय 'महाराजाधिराज' रूप में शासन भी किया। हर्षचरित के अनुसार ग्रहवर्मा पुत्रहीन मरा था इसलिए 'सु' का दावा वैधानिक रूप से सहा था। मौखरि राजवंश के अन्य शासकों एवं उनके उपाधियों का भी उल्लेख इसमें मिलता है।[14]

यशोवर्मा (मौखरिनृपति?) का तिथिविहीन नालंदा पाषाण-अभिलेख

मौखरि नरेश यशोवर्मा का यह अभिलेख बिहार के नालंदा नामक स्थल से प्राप्त हुई है जिसके भाषा संस्कृत और लिपि परवर्ती ब्राह्मी है। इस अभिलेख को उत्कीर्ण करवाले में शार्दूलविक्रीडित, स्त्रग्घरा तथा वसन्ततिलका जैसे छंदों का प्रयोग किया गया है। इस लेख में यह भी उल्लेख है कि इसकी रचना शीलचन्द्र तथा करणिक स्वामिदत्त ने संघ के आदेश से मिलकर की थी[15]

यह अभिलेख बुद्ध की स्तुति से प्रारंभ होता है जिन्हें इन्द्रादि देवता भी नमस्कार करते बताये गये है। इसके बाद यशोवर्मा की प्रशंसा है जिसे सुन्दर, शत्रुओं का विजेता और यशस्वी बताया गया है। इस अभिलेख में गुप्त सम्राट बालादित्य का एवं उसके द्वारा निर्मित विशाल महाविहार का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार यह लेख उसे परंपरा को सही प्रमाणित करता है कि जिसके अनुसार बालादित्यराज एक मिष्ठावान बौद्ध थ। बालादित्यराज द्वारा निर्मित इस भवन के ऊँचे और भव्य चैत्यों और विहारों का इसमें प्रदत्त शुआन-च्वांग के साक्ष्य को समर्थित करता है। अभिलेख में नालंदा के महान विद्वानों की भी चर्चा है। इस प्रसंग में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि स्वयं यशोवर्मा की रूचि सम्भवत: बौद्ध धर्म में भी थी क्योंकि धोस्त्रावज्र-अभिलेख में (नवीं-दसवीं शती ई0) यशोवर्म्मपुर विहार का उल्लेख मिलता है जिसका निर्माण इसी यशोवर्मा ने कराया होगा।[16] इस अभिलेख को प्रकाश में लाने तथा कन्नौज के यशोवर्मा का ही अभिलेख बताने या सिद्ध करने में जे.ए0 पेज, हीरानंद शास्त्री तथा मजूमदार की भूमिका सराहनीय रही।

हर्ष की नालंदा मृत्तिका-मुहर

हर्ष का यह मुहर लेख बिहार राज्य के नालंदा स्थल से प्राप्त हुई है जिसकी भाषा संस्कृत तथा शैली पद्यात्मक है। इस लेख की लिपि भी ब्राह्मी ही है। यह मुहर लेख दो भागों में विभक्त मिली है। दोनों टुकड़े मिलकर ही पूरा लेख प्रस्तुत करते है। प्रथम सात पंक्तियों के अक्षर कुछ बड़े है। नालंदा से हर्ष की और कई मुहरों के टुकड़े मिले है। मुहर के ऊपर वृषभ अंकित है। इस अभिलेख लेख में हर्ष की वंशावली तथा उनकी उपाधियों का विस्तृत उल्लेख भी मिलता है।[17]

नालंदा से प्राप्त अन्य मुहरें

बिहार का प्राचीन पुरातात्विक स्थल नालंदा बौद्धों का प्रसिद्ध महाविहार था, जहाँ खुदाई से स्तूप विहार एवं मिट्टी की मुहरें प्रकाश में आई है। बौद्धमत से संबंधित होने के कारण मुहरों पर धर्मचक्र का प्रतीक स्वाभाविक है। कई मुहरें संघ के भिक्षुओं की है। इनकी बनावट साधारण रीति से हुई थी। किन्तु मिट्टी के दो ठप्पे भी खुदाई से मिले है। उनके उपरी भाग में धर्मचक्र के अतिरिक्त बौद्धमंत्र **(ओ धम्मा हेतु प्रभवा)** भी खुदा है। उस समय संस्कृत भाषा का बोलबाला था। अत: मुहरों के लेख भी संस्कृत में ही है। मध्यकालीन नागरी अक्षरों का प्रयोग हुआ है। मिट्टी के मुहरों पर अक्षरों का सुंदर अंकन देखते बनता है जैसे किसी सुलेखक ने कागज पर लिखा हो। नालंदा वज्रयान का प्रसिद्ध केन्द्र था, अतएव वज्रयान संबंधी देव आकृतियाँ तथा चिन्ह मिलते है।

गुप्तकालीन छब्बीस मुहरें नालंदा से प्राप्त हुई जिनमें अधिकतर क्षतिग्रस्त है। ऊपरी भाग में लेख अंडाकार खुदे है। चारों तरफ एक पतली लकीर बनी है। जिसकी सीमा में लघुलेख तथा प्रतीक घिरे है। लेख के ऊपरी भाग में गरूड़ की आकृति अंकित है जो ऊँचा सतह बनाता है। इससे प्रकट होता है कि वैष्णव मतावलंबी नरेश ने उस मुहर को तैयार किया था। गुप्त सम्राट वैष्णव थे अतएव गरूड़ की आकृति की सार्थकता है। नालंदा की मुहर ही यह घोषित करता है कि प्रथम कुमारगुप्त का पुत्र पुरूगुप्त था। उसका पुत्र नरसिंह तथा उसी का भाई बुद्धगुप्त था। बुद्धगुप्त के संबंध में अन्य कोई साथ नहीं है। द्वितीय कुमारगुप्त की नालंदा मिट्टी की मुहर तथा भितरी (वाराणसी के समीप) रजत मुद्रा में एक ही मिलता है। वह है द्वितीय कुमारगुप्त की माता का नाम। नालंदा मुहर में नरसिंह की स्त्री (यानी द्वितीय कुमार की माता) का नाम मित्रदेवी लिखा है। किन्तु भितरी रजतमुद्रा में उसी राजा की पत्नी का नाम महालक्ष्मी अंकित है। इस प्रकार के विश्लेषण से सामाजिक आयाम प्रकाश में आती है।

गुप्तकालीन नरेश वैन्यगुप्त की एक मुहर नालंदा से प्राप्त हुई है। जिसके अंतिम पंक्ति में **'परम भागवतो महाराजाधिराज श्री वैन्यगुप्त'** अंकित है।इसी शासक का एक ताम्रपत्र लेख तिपेरा (बंगाल) जिले के गुणैधर स्थान से प्रकाश में आया है। जिसमें राजा के लिए केवल महराज की पदवी उल्लिखित है। दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैन्यगुप्त शक्तिशाली राजा था तथा उसका राज्य बंगाल से बिहार (नालंदा) तक विस्तृत था। वह वैष्णव मतावलंबी भी था। उस नरेश की महान पदवी लघुलेख से ज्ञात होती है। अन्यथा नहीं। सभी लेख संस्कृत भाषा तथा उत्तरी ब्राह्मी लिपि में खुदे है।

बुद्धगुप्त का नालंदा मुद्रालेख जिसमें गुप्त शासकों की उपाधियों एवं उनकी वंशावली का उल्लेख किया गया है लेकिन महाराजाधिराज स्कन्द गुप्त का इसमें नामोल्लेख नहीं है। इन सभी लेखों के अलावे भी कई लेख नालंदा से प्राप्त हुए है जिनकी पुरातात्विक महत्व है जैसे-कुमारगुप्त-......का नालंदा मृत्तिका मुहर लेख, नरसिंहगुप्त का नालंदा मृत्तिका मुहर लेख, विष्णुगुप्त का नालंदा मृत्तिका मुहर लेख, नालंदा ईट अभिलेख, पूर्णवर्मन का नालंदा पाषाण अभिलेख, प्रागज्योतिष के भास्करवर्मन का नालंदा मुहर

अभिलेख, धर्मपाल का नालंदा ताम्रपत्र लेख, देवपाल का नालंदा धातु प्रतिमा लेख, देवपाल का कांस्य प्रतिमा लेख, देवापल का नालंदा ताम्रपत्र लेख गोपाल-प्प्का नालंदा प्रतिमा लेख, महिपाल-1 का नालंदा पाषाण अभिलेख इत्यादि।[18]

निष्कर्ष

उपर्युक्त प्रकार से हम देखते है कि नालंदा में पुरातात्विक अण्वेषण एवं उत्खनन में जो विविध प्रकार के अभिलेख एवं मुहर मिल है तात्कालीन इतिहास जानने के प्रमुख स्रोत है। इन अभिलेखों एवं मुहरों में विभिन्न राजाओं की उपाधियों की चर्चा है। साथ ही विभिन्न शासकों के बारे में जो बातें बतायी गयी है। वह नालंदा महाविहार के ध्वंसावशेष के बाद भी प्रासंगिक रही है।

संदर्भ-सूची

1. डी. आर. पाटिल, दि एण्टिक्वेरियन रिमेन्स ऑफ बिहार, 1963, पटना, पृ.-300-35य सिग्नीफिकेन्स ऑफ नालंदा सीलय आई. एन. सी., 4, भाग-2 पृ0-135-46
2. गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ,1984
3. श्रीरामगोयल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,2007, पृ0-157
4. वही पृ0-157
5. हीरानंद शास्त्री, एम.ए.एस.आई-66 (1942) और आई.एच.क्यू. तथा ई. आई. पत्रिकाएँ
6. पूर्वोक्त, पृ0-158
7. वहीं, पृ0-159
8. शूद्रक, मृच्छकटिकम
9. हीरानंद शास्त्री, नालन्द एण्ड इट्स एपीग्राक्स, पृ0-77य एन्युएल रिपोर्ट, आर्कियोलॉजिकल एर्वे ऑफ इंडिया, 1927-28 पृ0-138
10. दिनेशचन्द्र सरकार, एपीग्रेफिया इंडिका,25 (1939-40), पृ0-52य सेलेक्ट इन्सकृप्शन्स, पृ0-271-274, फ्लीट कार्पस इन्सकृप्शन्स इण्डिकेरम,3 पृ0-254
11. हीरानंद शास्त्री, ए. एस. आई. ए. आर., 1927-28 पृ॰ 139; इ. आई., 21, पृ॰ 73-74; धपल्पाल के. के. इन्सिक्रिप्शन्स ऑफ दि मौखरिज लेटर गुप्तज, पुष्पभूतिज एण्ड यशोवर्मा ऑफ कन्नौज 1985, पृ॰ 149
12. घोष, ए0 ई0 आई0, 24, पृ0-283, थपल्याल, के.के. इन्सिक्रिप्शन्स ऑफ दि मौखरिज नई दिल्ली,1958, पृ0-153
13. पूर्वोक्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, जोधपुर, 2007, पृ0-71
14. ए. घोष, ई. आई. 24, पृ0-283
15. हीरानंदशास्त्री ए. एस. आई. ए. आर., 1925-26 पृ0-131,158, मजूमदार, आई एच0 क्यू0,7, पृ0-664
16. ई0 आई,20, पृ0-43
17. एच. शास्त्री, ई0 आई,21, पृ0-75
18. भगवंत सहाय, दि इंस्क्रिप्शन्स ऑफ बिहार, पटना,1983 पृ0-50-77

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में परिवार की टूटती-बनती अवधारणा

डॉ० प्रेम कुमार

यू. जी. सी. (नेट), हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

परिवार सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई है। परिवार के अभाव में मानव समाज का संचालन संभव नहीं हो सकता। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है। ''समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है।''[1] मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। ''संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाए या निम्न, किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यत: पाया जाता है।''[2] शारीरिक एवं कामवासना की पूर्ति ने ही परिवार को जन्म दिया।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। न केवल प्रकृति ने बल्कि, समाज और संस्कृति में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। ऐसे में परिवार, जो समाज का आधार स्तंभ है, भला इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है। परिवर्तन की इसी धारा को लेकर श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यासों में परिवार की टूटती-बनती अवधारणा के साथ उपस्थित होते हैं। आज आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक कारक व्यक्तित्व की अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इससे परिवार प्रभावित हो रहा है। यही कारण है कि आज परिवार बदल रहा है, परिवार के बहुत-से कार्य सिमटते जा रहे हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अनेक परिवार विघटित हो रहे हैं। कई परिवार टूट कर छोटे परिवारों में बदल रहे हैं। बदलाव के इस पूरे यथार्थ को श्रीलाल शुक्ल व्यक्ति, समाज, घर, परिवार तथा रोजमर्रा की जिन्दगी में घटने वाली उन तमाम घटनाओं को समाजशास्त्रीय आशयों से चित्रित करते हैं। उनका लेखनकर्म जहाँ 'अज्ञातवास', 'सूनी घटी का सूरज', 'रागदरबारी', जैसे उपन्यासों में ग्रामीण समाज की पारिवारिक गतिविधियों की पड़ताल करता हे, वहीं दूसरी ओर 'आदमी का जहर', 'सीमाएँ टूटती हैं' ओर 'मकान' में शहरी पारिवारिक व्यवस्था का पर्दाफाश नजर आता है। इन सबसे इतर 'पहला पड़ाव' में वे ग्रामीण और शहरी दोनों तरह की पारिवारिक स्थितियों को रेखांकित करते हैं। 'अज्ञातवास' का रजनीकांत एक ऐसा वर्ग चरित्र है जो नौकरशाही और निम्न मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों का चरम प्रतिनिधि है। उसे अपने परिवार में कोई आस्था नहीं है। बचपन की ब्याही अपनी बीवी को छोड़कर घूस के पैसे से ऐय्याशी करता है। इस संदर्भ में उपन्यास के पात्र विनायक के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं-''किसी मित्र की बीवी से सीधा संबंध रखने की कोशिश करते हैं। मैं मानता हूँ कि यह बात भी किसी हद तक समझ में आती है। इससे आपके जीवन में नवीनता आती है, थकान और घुटन कम होती है, अपनी बेसिक वाइफ को छोड़कर किसी दूसरे की पत्नी को आप अपनी ओर खींच सकते हैं।''[3] 'अज्ञातवास' की यह घटना भारतीय परिवार की परंपरागत व्यवस्था के टूटने की ओर संकेत करती है। रजनीकांत अपनी पत्नी रानी को अपने पास नहीं रखता। वह उसे गाँव में उसके पिता के पास ही मरने के लिए छोड़ देता है। अंतत: उसकी मृत्यु हो जाती है। पति-पत्नी के संबंध में उत्पन्न यह तनाव ग्रामीण परिवार के विघटन को दर्शाता है। रजनीकांत अपना व्यवस्थित परिवार नहीं बसा पाया, इसका दु:ख उसे जीवन के अंतिम दिनों में होता है। वह अपनी बेटी से कहता है-''प्रभा, तुम्हारी माँ का मैं आदर नहीं कर सका। तुम्हारे पैदा होने के दो साल बाद उनका देहान्त हो गया। जब मुझमें समझ आयी कि मैं उनका आदर कर सकूं, तब वे नहीं रही। यह हमारा तुम्हारा दोनों का दुर्भाग्य है, बेटी।''[4] यह उत्तरआधुनिकता के दौर में शामिल वह मानव

है, जिसका परिवार पीछे छूट गया है। नगरीकरण ने पारिवारिक विघटन को जन्म दिया। नगरीय केन्द्रों में स्त्रियों की प्रस्थिति और भूमिकाओं में अनेक परिवर्तन आये; उनकी स्वतंत्रता में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप परिवार के बाहर अन्य लोगों के साथ उनके सम्पर्क का दायरा बढ़ा। स्त्रियाँ अपने पारिवारिक दायित्वों का ठीक से निर्वाह नहीं कर पायी। ऐसी स्थिति में परिवार के अन्य सदस्य नाराज होने लगे, जिसने आगे चलकर पारिवारिक तनाव और विघटन को बढ़ाया। 'सीमाएँ टूटती हैं', की चाँद इसका उदाहरण है। चाँद अपनी उम्र से बड़े व्यक्ति बिमल से प्यार करती है। चाँद का यह व्यवहार परिवार के अन्य सदस्यों को अच्छा नहीं लगता। परिणामस्वरूप परिवार में तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। चाँद अपने परिवार का विरोध करती है–''हमलोग न जाने किन कमीनों की बसती में रह रहे हैं। उन्हें यही बड़ा अजीब लग रहा है कि एक लड़की एक आदमी से अकेले में मिलती है। सदियों पुराने बुजुर्गों की तरह वे हमें एक-दूसरे से अलग करने की कोशिश कर रहे हैं।''[5] पारिवारिक विघटन का उत्स, शहरी मध्यमवर्गीय परिवार की स्थिति और द्वंद्व को केन्द्र में रखकर श्रीलाल शुक्ल ने यह रचना की है। पिता दुर्गादास हत्या के आरोप में जेल चले गये हैं, जिसे छुड़ाने के लिए पुत्रों व परिवार के अन्य सदस्यों के बीच निरंतर वैचारिक मतभेद होता रहता है। समस्या वह हत्या नहीं, जिसकी वजह से दुर्गादास को जेल हुआ है, बल्कि उससे भी कहीं विकट मानवीय संबंधों की हत्या है, जो बार-बार होती है। मानवीय मूल्यों की यह पतनशीलता परिवार नामक संस्था को निर्धारित करने का एक साधन है। सरकारी कामकाजी मध्यमवर्गीय परिवार की विभिन्न समस्याओं को रेखांकित करते हुए श्रीलाल शुक्ल 'मकान' लिखते हैं। नौकरी पेशा आदमी के लिए मकान का न मिलना एक बहुत बड़ी समस्या है। इसके विचित्र, कठोर और हास्यापद अनुभव इस उपन्यास का आधार हैं। नारायण बनर्जी मकान के अभाव में अपनी पत्नी व बच्चे को दिल्ली में ही छोड़कर खुद होटल के एक दूसरे कमरे में रहकर नगर निगम की नौकरी करता है। वह अपने साथ अपना परिवार नहीं रखता। ऐसा लगता है कि नारायण बनर्जी का मानवीय संबंधों के बारे में भी रवैया, एक मकान के साथ बनने वाले संबंध जैसा ही है (घर के साथ संबंध जैसा नहीं)। श्यामा के साथ का सम्बन्ध श्यामा की मृत्यु के साथ ही खत्म हो जाता है। सिम्मी से उसका संबंध भी उतना ही है। वह कहता भी है, ''मत भूलो कि श्यामा से मेरे सम्बन्ध पारिवारिक नहीं थे, पूरे तौर से व्यक्तिगत थे। श्यामा के साथ ही मेरे संबंधों की मृत्यु हो गई।.....यह वैसा ही है जैसा तुम्हारे संबंधों की भी मृत्यु हो जाएगी।''[6] इस प्रकार इन संबंधों में कहीं भी पारिवारिकता नहीं है, निरंतरता नहीं है। आत्मीयता के बावजूद निर्वैयक्तिकता है। परिवार समाज की इकाई है। सामाजिक स्तर पर होने वाले परिवर्तन का प्रभाव परिवार पर परोक्ष रूप से पड़ता है, जिससे पारिवारिक संबंधों के बीच खटास उतपन्न हो जाती है। रागदरबारी की अधिकांश गतिविधियाँ वैद्य जी के संयुक्त परिवार पर केन्द्रित है, जिसके मुखिया वे खुद हैं। स्वार्थ के कारण पिता पुत्र का संबंध टूटता नजर आता है। रूप्पन विरोधी दलों के साथ खड़ा दिखता है। वैद्य जी कहते हैं–''और यह रूप्पन! यह मूर्ख है! नीच है! पशु है! पतित है! विश्वासघाती है! जा, अब तूझे कुछ नहीं मिलेगा।''[7]- यह कहते हुए उसे (रूप्पन) अपने उत्तराधिकार से वंचित करते हैं। इसी तरह रूप्पन भी अपने पिता वैद्य जी के लिए कहता है, ''उनकी शादी चौदह साल की उमर में हुई थी। पहली अम्मा मर गई तो सत्रह साल की उमर में दूसरी शादी की। साल भर भी अकेले रहते नहीं बना। यह तो किया कायदे से और वेकायदे कितना किया सुनोगे वह भी-।''[8] पिता-पुत्र के बीच यह व्यवहार परिवार के बिखराव की ओर संकेत करता है। ठीक यही बात कुसहर प्रसाद तथा उसके पुत्र छोटे पहलवान के संबंध में भी लागू होती है। कुसहर प्रसाद अपने बेटे छोटे पहलवान से मार खाकर पंचायत से अपनी व्यवस्था उससे अलग करने की गुहार लगाता है। इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यासों में परिवार की बनती-बिगड़ती अवधारणाओं के साथ उपस्थित होते हैं।

मानव समाज के विकास के साथ-साथ परिवार के भी अनेक रूप अस्तित्व में आये हैं। प्रत्येक स्थान की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने परिवार की संरचना व रूपों को परिवर्तित किया है।

श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यासों में परिवार के ऐसे ही परिवर्तित रूपों की तलाश व पड़ताल करते नजर आते हैं। अपनी तमाम रचनाओं के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल परिवार की एक सार्थक परिभाषा की खोज निरंतर जारी रखते हैं। ''परिवार से संबद्ध परम्परागत मूल्य व्यवस्था में बड़ों का अधिकार और परम्परा की पवित्रता सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं।''[9] स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज में संयुक्त परिवार का विघटन होने पर न तो बड़ों के अधिकार सुरक्षित रहे हैं और न परंपरा ही सुरक्षित रही। परिणामस्वरूप परिवार का रूप निरंतर बदलता चला गया। नगरों तथा महानगरों में इसका रूप ही केवल नहीं बदला बल्कि पारिवारिक प्रभाव अंचलों में भी पड़ा, जिससे पारिवारिक व्यवस्था की जड़ें हिलती हुई नजर आती हैं। 'रागदरबारी' में न केवल पिता-पुत्र के प्रति श्रद्धा, सम्मान अपितु अन्य बड़ों की प्रतिष्ठा, बंधुत्व और आपसी नातेदारी पर गहराते संकट को देखा जा सकता है। अर्थाभाव, नई रोशनी, पीढ़ियों का अंतराल आदि अनेक कारणों से परिवार का आधार माता-पिता को आज वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो कभी आचरण के प्रतिमान

में प्रमुख था। 'श्रवण कुमार', 'राम' आदि के निथक बहुत-से युवकों को प्रभावित नहीं करते। 'रागदरबारी' का छोटे पहलवान अपने आप को श्रवण कुमार की हालत में नहीं देखना चाहता। बल्कि वह जब-तब अपने पिता कुसहर प्रसाद को मार बैठता है। जब उसे समझाया जाता है कि आखिर कुसहर ने तुम्हें पैदा किया है, तब छोटे पहलवान बिगड़ उठता है "कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरखास्त दी थी हमें पैदा करो चले साले कहीं के पैदा करनेवाले"[10] परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त होती है परन्तु 'रागदरबारी' में वैद्यजी का परिवार स्त्री विहीन है। उपन्यास की अधिकतम गतिविधियाँ उस परिवार पर केन्द्रित हैं, जिसमें रंगनाथ शिवपालगंज में रहता है। घर के मुखिया रंगनाथ के मामा वैद्यजी हैं, जो आयुर्वेद के चिकित्सक हैं और तमाम मामलों में हाथ डाले रहते हैं। गांव की सभी प्रमुख संस्थाओं के काम-काज परवह अपनी तगड़ी पकड़ बनाये रखते हैं। लेकिन गॉड फादर की तरह किसी गंदे व्यापार में अपने हाथ मैले नहीं करते। वैद्यजी जिन्हें 'वैद्यजी महाराज' कहा जाता है, गांव के सामंती ढ़ाँचे के शिखर बिन्दु हैं।

इस परिवार में एक बड़ा पुत्र है 'बद्री पहलवान' जिसके माध्यम से सत्ता पर कब्जा और नियंत्रण किया जाता है। एक छोटा पुत्र रूप्पन भी है जो अठारह वर्ष का विद्यार्थी है। कुछ ऐसा ही कुसहर प्रसाद का भी परिवार है, जहाँ कोई स्त्री दिखाई नहीं देती। यहाँ केवल पिता कुसहर प्रसाद और पुत्र छोटे पहलवान हैं। यहाँ श्रीलाल शुक्ल के अनुसार परिवार के लिए नारी चरित्रों का कोई अस्तित्व नहीं दिखाई देता है। इस संदर्भ में श्रीलाल शुक्ल स्वयं कहते हैं "दरअसल भारतीय ग्राम पुरूष प्रधान है। वहाँ स्त्री अनुषंगिक अस्तित्व मात्र है। मगर 'रागदरबारी' में स्त्री चरित्रों के न होने के पीछे यह कारण अनिवार्य नहीं है। रागदरबारी में जो तंत्र है, कथा का जो सूत्र है, उसमें स्त्री चरित्रों की गुंजाइश नहीं बनती।"[11] उसी बांव में गयादीन का परिवार है, जिसमें उनकी बेटी बेला और उसकी बूढ़ी विधवा बुआ है। बेला के संबंध में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं- "बेला स्वस्थ, सुन्दर, गृहकार्य में कुशल और रामायण और माया-मनोहर कहानियाँ पढ़ लेने भर को पढ़ी-लिखी थी। उकसे लिए एक सुन्दर और सुयोग्य वर की तलाश थी। बेला तबीयत और जिस्म दोनों से प्रेम करने लायक थी।"[12] निम्न मध्यमवर्गीय परिवार व उनकी तमाम हसरतों की पड़ताल करते हुए श्रीलाल शुक्ल 'मकान' लिखते हैं। नायक नारायण बनर्जी जिसके केन्द्र में हैं, जो कलाकार है और नगर निगम में असिस्टेंट एकाउंटेण्ट है। मकान नहीं मिलने के कारण पत्नी और बच्चे को दिल्ली में ही छोड़ आए हैं और खुद एक होटल के कमरे में किराया पर रहते हैं। मकान नहीं है पर मकान की खोज एक अविराम खोज है। मकान के अभाव में वे पत्नी और बच्चे को अपने साथ नहीं रख पाते हैं- "मैं जिस होटल में हूँ, क्या बताऊँ सर, वहाँ बड़ा खर्च पड़ रहा है। फैमिली......"[13] यूँ कहा जा सकता है कि अपने जीवन में परिवार को परिभाषित नहीं कर यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति हेतु परिवार निर्माण होता है परन्तु, नारायण बनर्जी के साथ श्यामा है, जो थोड़ी छूट देकर भी एक दूरी बनाती है। श्यामा से नारायण के संबंध कई तरह के थे, रमणी, सचिव, सखी और शिष्या। दूसरी ओर श्यामा की सहेली सिम्मी है, जो चिरंतन विलास की सहचरी है। पारिवारिक दृष्टिकोण से देखें तो लगता है कि श्रीलाल शुक्ल नारायण बनर्जी के माध्यम से परिवार की एक सार्थक परिभाषा की खोज करना चाहते हैं परन्तु, नहीं कर पाते हैं। नारायण बनर्जी को नियति शायद होटल के उस कमरे में बने रहना ही है। एक अस्थिर स्थिति। मकान मिलने के बाद भी वह एकदम उसमें चला नहीं जाता, वह होटल में बना रहता है। नये मकान में जाने को जैसे टालता रहता है। वह दस पंद्रह दिन तक उस मकान को देखने भी नहीं जाता। यह वही मकान है, जिसके लिए उसने अनेक चक्कर लगाये हैं। आज अर्थप्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण वैयक्तिक स्वार्थों में अभिवृद्धि हुई है; परिणामस्वरूप, सामाजिक संरचना में दरार आ गई है। परिवार के सदस्यों के बीच स्नेह, मधुरता और पारस्परिक विश्वास का अभाव नजर आने लगा है। "आज व्यक्ति परिवार के अनुशासन से अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर रहा है। क्योंकि वैज्ञानिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिवाद का विकास हुआ और समाज को व्यक्ति के सामने निमित्त माना जाने लगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा के अत्यधिक प्रसार के कारण व्यक्ति में व्यक्तिवादी भावनाओं का प्राधान्य होता गया। अधिकारपूर्ण अनुशासन उन्हें अप्रिय एवं असत्य प्रतीत होने लगा। परिणामस्वरूप परिवार के सदस्यों में ही औपचारिक संबंधों का विकास हुआ तथा व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के समक्ष पारस्परिक कर्त्तव्य की भावना धुंधली होती जा रही है।"[14] शहरी समाज में विकसित परिवार की परिकल्पना के साथ श्रीलाल शुक्ल 'सीमाएँ टूटती हैं' जैसी कृति में उपस्थित होते हैं। जहाँ दुर्गा दास नाम के व्यक्ति को एक हत्या के जुर्म में उम्रकैद हो गयी है। दुर्गादास के परिवार में उनका बड़ा पुत्र राजनाथ, पुत्रवधू नीला, छोटा पुत्र तारानाथ और पुत्री चाँद है। इस परिवार को केन्द्र में रखकर श्रीलाल शुक्ल जिस संसार की रचना करते हैं, वहाँ वास्तविक संसार

जैसी ही उलझाव में निरंतर उलझती रहती है। इसकी सबसे बड़ी समस्या वह हत्या नहीं, जो हो चुकी बल्कि उसके बाद परिवार में मानवीय संबंधों की हत्या के प्रयास और उन संबंधों के बचाव का द्वंद्व है। परिवार के सारे सदस्य वैचारिक स्तर पर एक-दूसरे से अलग-अलग दिखाई देते हैं। परिवार के मुखिया के न रहने पर अन्य सदस्य किस प्रकार स्वतंत्र हो जाते हैं, इसका सशक्त प्रमाण है 'सीमाएँ टूटती हैं'। पिता के जेल जाने के कारण राजनाथ खुद अपनी संतान की चाह नहीं रखता। वह अपनी पत्नी नीला से कहता है। ''तुम समझ सकती हो। पापा के जेल में रहते हुए मैं बाप नहीं बनना चाहता। मैं यही चाहता कि हमारा बच्चा जैसे ही हमारी बोली समझने लगे, वैसे ही उसके कान में पड़े कि उसके दादा ने खून किया है और वे जेल काट रहे हैं। जो भी हो, हमें अभी सात-आठ साल सिर्फ लवर्स की तरह रहना होगा। तब तक हम माँ-बाप नहीं बन सकेंगे।''[15] संतान के अभाव में परिवार की कल्पना संभव नहीं जान पड़ती। परिवार में पिता की गैर मौजूदगी के कारण एक जवान पुत्री किस हद तक जा सकती है इसका सशक्त उदाहरण चाँद है। चाँद अपने पिता के मित्र विमल, जो उम्र में उससे लगभग दोगुना है, से प्रेम करती है। उसके दोनों भाई और भाभी चाहकर भी उसे नहीं रोक पाते हैं। एक जगह राजनाथ कहता है, ''पापा की गिरफ्तारी के पहले ही उसकी (चाँद) शादी हो गई होती तो झंझट खत्म होता। पर देरी हमीं ने की, उसके बाद पापा पर मुकदमा चल निकला और उन लोगों ने शादी की बात तोड़ दी।''[16] इसी संदर्भ में मुकर्जी, जो चाँद का सहपाठी है, राजनाथ से कहता है-''आप कुछ करते क्यों नहीं भाई साहब? चाँद हमलोगों की आँखों के आगे अपने को बरबाद कर रही है। किसी को तो कुछ करना चाहिए।''[17] वही नीला राजनाथ से कहती है-''तुम्हारी, बहिन खुलेआम कुत्तिया की तरह घूम रही है। नीला के चेहरे की कमनीयता और जबान के फूहड़पन की असंगति राजनाथ को हमेशा लड़खड़ा देती थी। अकचकाकर उसने कहा ''सबेरे-सबेरे शुरू कर दिया न अपना खटराग।''[18] परन्तु चाँद को इन सभी बातों से कोई लेना-देना नहीं है। उसे उसके प्यार से कोई अलग नहीं कर सकता। इसके लिए वह सभी संबंधों को तोड़ सकती है। अपने प्रति परिवार के सदस्यों का यह व्यवहार देख चाँद कभी-कभी प्रतिक्रिया भी करती है। वह कहती है-''हमलोग न जाने किन कमीनों की बस्ती में रह रहे हैं। उन्हें यही बड़ा अजीब लग रहा है कि एक लड़की एक आदमी से अकेले मिलती है।'' सदियों पुरानी बुजुर्गों की तरह वे हमें एक-दूसरे से अलग करने की कोशिश कर रहे हैं।''[19] स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में परिवार का नया रूप है, जिसे श्रीलाल शुक्ल यथार्थ रूप में चित्रित करते नजर आते हैं। कदम-कदम पर पारिवारिक संबंधों के तार टूटते बिखरते दिखाई देते हैं। परिवार का यह रूप केवल नयी पीढ़ी के मानसिक अलगाव की सूचना मात्र नहीं देता है बल्कि, उस भयानक मनोवैज्ञानिक अन्तराल का दर्शन भी कराता है। इसी कारण पूरा सामाजिक व पारिवारिक परिवेश स्थाई रूप से तनाव, घुटन और कुंठाओं के धुएँ से व्याकुल दिखाई देता है। परिवार की सार्थकता और पारिवारिक संबंधों की पड़ताल करते हुए श्रीलाल शुक्ल 'अज्ञातवास' लिखते हैं। यहाँ पति-पत्नी और संतान के बीच उत्पन्न भावात्मक प्रतिक्रिया को बड़ी सार्थकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। रजनीकांत अपनी पत्नी को अपने साथ नहीं रखते। वे गांव में अपने पिता के साथ रहती है। वह एक पुत्री प्रभा को जन्म देकर मर जाती है। प्रभा अपने पिता से बार-बार अपनी माँ के संबंध में सबकुछ जानना चाहती है। रजनीकांत के मित्र विनायक प्रभा को सबकुछ बताते हैं-''पापा ने माँ का तिरस्कार किया। उन्हें अपने पिता के यहाँ छोड़े रहे। उन्हें अपनी उन्नति को सामाजिक बाधा मानते रहे। घर आने पर भी इनका तिरस्कार किया और उनके चले जाने पर उन्हें वापस लाने का कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया और अभी भी वे क्लब में ब्रिज खेलते हैं, विस्की पीते हैं, हंसते हैं, शिकार करते हैं, और पाश्चाताप से जल रहे हैं। प्रायश्चित नहीं कर पाते, इसलिए दुःखी हैं।''[20] परिवार में पत्नी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उसके नहीं रहने पर परिवार बिखर जाता है। इसका भान श्रीलाल शुक्ल को है। तभी तो रजनीकांत के माध्यम से कहते हैं-''प्रभा, तुम्हारी माँ का मैं आदर नहीं कर सका। तुम्हारे पैदा होने के दो साल बाद उनका देहांत हो गया। जब मुझमें इतनी समझ आई कि मैं उनका आदर कर सकूँ, तब वे नहीं रहीं। यह हमारा तुम्हारा दोनों का दुर्भाग्य है; बेटी। मैं उन्हें ठीक से पहचान नहीं सका।''[21] यह उस दौर की व्याख्या है जब मनुष्य अपनी उन्नति और विकास के लिए अपने परिवार को पीछे छोड़ आगे बढ़ने की होड़ में बदहवास था। प्रगति के क्षेत्र में यह स्वतंत्रता केवल पुरुषों में ही नहीं बल्कि महिलाओं में भी देखने को मिलती है। डॉ. सीता दत्ता के संबंध में श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं-''उन्होंने अपने पति को छोड़ दिया था। सरकारी अस्पताल में डॉक्टर थी। आकर्षक युवती और आर्थिक रूप से स्वतंत्र! कहती ''मैं नई रामायण लिख रही हूँ। सीता को राम ने बिना अपराध छोड़ दिया था। मैं वैसी सीता नहीं। अपना अपमान करने वाले राम को मैं स्वयं छोड़ चुकी हूँ।''[22] परिवार की बनती बिगड़ती

अवधारणाओं के साथ भूदान आंदोलन को केन्द्र में रखकर श्रीलाल शुक्ल ने 'विश्रामपुर का संत' लिखा। वहाँ एक ऐसा परिवार है, जहाँ पिता-पुत्र के विचारों के बीच एक गहरी खाई नजर आती है। कुंवर जयंती प्रसाद अंतर्विरोधों से घिरे एक राजपुरुष, जमींदार, पदलोलुप, कामुकता की मानवीय कमजोरी से ग्रस्त पिता के रूप में सामने आते हैं। वह अपने ही बेटे की प्रेमिका (सुंदरी) से अपनी शादी का प्रस्ताव रख देता है। उसके साथ स्वयं घर बसाना चाहता है। सुंदरी कहती है-"..........वह घटना इतनी छोटी भी नहीं है। यह एक बेजा हरकत भर नहीं है। ऐसा होता तो भुलाया जा सकता था। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के साथ ऐसा होता ही रहता है, जिन्हें बहुत विश्वास योग्य माना जाता है, वे भी महिला सहकर्मी के साथ अवांछित चेष्टाएँ कर बैठते हैं। हमें समझदारी और संतुलन के साथ ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुंवर साहब ने कुचेष्टा भर नहीं की। उन्होंने बाकायदा विवाह का प्रस्ताव रखा। भले ही वह प्रस्ताव आवेश में किया हो, अपने अपराध को ढकने के लिए। पर प्रस्ताव उन्होंने किया और उसके बाद सबकुछ बदल जाता है।"[23] सुंदरी आगे कहती है-"मैं यही मानती हूँ कि यह भाग्य का इशारा था। उसके तीन दिन पहले ही विवेक ने अपने मन की बात खोली थी। मेरा मन मेरा रोम-रोम हाँ कहने के लिए उतावला था पर मेरी अंतरात्मा मुझे रोक रही थी। समाज के प्रति मेरे आदर्श, मेरे संकल्प मुझे चुनौती दे रहे थे। फिर भी लगता था कि विवेक के प्रस्ताव के सामने वे अपने हथियार फेंकनेवाले हैं। तभी कुंवर साहब का आक्रमण हुआ और उस आक्रमण ने मुझे बचा लिया। वे मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं। इसी से तय हो गया कि मैं उनके पुत्र की पत्नी नहीं बन सकती, उनके महल में पुत्रवधू की तरह रहते हर सबेरे उनसे आर्शीवाद पाने का अभिनय नहीं कर सकती।"[24] इसप्रकार "विवेक के विवाह की सारी संभावनाएँ उन्हीं के हाथों नष्ट हुई। उन्होंने महसूस किया, विवेक के आगे उनका यह सुझाव नहीं था, मजाक भी नहीं था, उनकी क्रूरता का प्रदर्शन भर था।"[25] विवेक का परिवार बसने से पहले ही उजड़ गया। आधुनिक जीवन में परिवार न बसने की यह घटना मानवीय संबंधों का त्रासद अन्त है। परिवार स्नेह, प्रेम, सहयोग और सद्‌भावना जैसे तंतुओं के सहारे एक इकाई के रूप में बंधा रहता है। इन तंतुओं के टूटते ही परिवार में विघटन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जब परिवार के सदस्यों के बीच हितों, उद्देश्यों एवं आदर्शों की एकरूपता तथा समानता कम होने लगी तब परिवार अपनी धुरी से अलग टूटता-बिखरता नजर आने लगा। श्रीलाल शुक्ल अपने उपन्यासों में परिवार की सार्थक परिभाषा की निरंतर खोजन करते नजर आते हैं। परन्तु बदलते हुए समाज और आधुनिक परिवेश में उन्हें कहीं भी समाजशास्त्रीय परिभाषा पर आधारिक एक सम्पूर्ण परिवार नहीं दिखाई देता है। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार का चलन, पारंपरिक विवाह की जगह प्रेम विवाह और रोमांस साथ ही, विवाह विच्छेदों की दर में वृद्धि को देखते हुए श्रीलाल शुक्ल परिवार को अपनी ही तरह से परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। आधुनिक समाज की पारिवारिक संस्था के यथार्थ को वे बिना लाग-लपेट निर्भीकता के साथ हमारे समक्ष रखते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ

1. Maciver and page, Society (Hindi)p.238
2. श्यामचरण दुबे, मानव और संस्कृति, पृष्ठ-99
3. अज्ञातवास, श्रीलाल शुक्ल, राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ-32 संस्करण-2008
4. वही पृ.-68
5. 'सीमाएँ टूटती हैं' श्री लाल शुक्ल राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-97 दूसरा संस्करण चौथी आवृति-2007
6. 'मकान' श्री लाल लाल शुक्ल राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-45, पहला संस्करण-दूसरी आवृति-2004
7. 'रागदरबारी' श्रीलाल शुक्त राजकमल प्रकाशन पृष्ठ-325, दसवाँ संस्करण-तेरहवीं आवृति-2007
8. "रागदरबारी" श्रीलाल शुक्ल राजकमल प्रकाशन पृष्ठ-126, दसवाँ संस्करण-तेरहवीं आवृति-2007
9. Maciver and page, Society (Hindi)p.238
10. 'रागदरबारी', श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-94, दसवाँ संस्करण-तेरहवीं आवृति-2007

11. श्रीलाल शुक्ल की दुनिया, सम्पादक-अखिलेश, पृष्ठ-139 पहला संस्करण-2000
12. 'रागदरबारी', श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-94, दसवाँ संस्करण-तेरहवीं आवृति-2007
13. 'मकान', श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन पृष्ठ-26 पहला संस्करण-दूसरी आवृत्ति-2004
14. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों के मुस्लिम उपन्यासकार डॉ. दिलशाद जीलानी, प्रथम संस्करण-1998, पृ0-98
15. सीमाएँ टूटती हैं, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-37 दूसरा संस्करण चौथी आवृत्ति-2007
16 वहीं पृष्ठ-50
17. वहीं, पृष्ठ-129
18. वहीं, पृष्ठ-49
19. सीमाएँ टूटती हैं, श्रीशुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-97,दूसरा संस्करण चौथी आवृत्ति-2007
20. अज्ञातवास श्रीलाल शुक्त, राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ-89 संस्करण-2008
21. अज्ञातवास, श्रीलाल शुक्ल, राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ-68
22. वहीं पृष्ठ-76
23. विश्रामपुर का संत, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-167 पहला संस्करण आवृत्ति-2010
24. वहीं, पृष्ठ-168
25. वहीं, पृष्ठ-169

प्राचीन बौद्ध युगीन वाणिज्य एवं व्यापारिक केन्द्र के रूप में चम्पा का योगदान।

डॉ० प्रीति कुमारी

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रस्तावना

वाणिज्य के क्षेत्र में इस नगर की महत्ता का निर्देश प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। यहाँ के व्यापारी व्यापार के निर्मित सुवर्णभूमि तक जाया करते थे मललसेकर के अनुसार चम्पा के ही नागरिक ने इन्डोचीन में इस नाम के उपनिवेश की स्थापना की थी। प्राचीनकाल में चम्पा प्रमुख राजमार्गो से जुड़ा हुआ था। डॉ0 मोतीचन्द्र के अनुसार श्रीवस्ती से महाजनपथ वैशाली पहुँचकर पुरब चलता हुआ भद्यिया (मुंगेर) पहुँचता था और फिर प्रसिद्ध व्यापारिक नगर चम्पा। यहाँ से वह कजंगल (कांकजोल, राजमहल, बिहार) होते हुये बंगाल में घुसकर ताम्रलिप्ति (तामलुक) पहुँच जाता था। जैन ग्रंथ कल्पसूत्र भाष्य में दी हुई राज्यों की तालिका को डॉ मोतीचन्द्र ने मौर्य साम्राज्य की भुक्तिया माना है। इस तालिका में अंग राज्य या भूक्ति की राजधानी चम्पा कहीं गई है। इस तालिका में कपिलवस्तु का नाम नहीं मिलता। डॉ0 मोतीचन्द्र का विचार है कि मौर्य युग में बहुत से प्राचीन नगर नष्ट हो चुके थे। फिर भी इस काल में चम्पा अंग की राजधनी बनी रही, परन्तु बंग की राजधानी ताम्रलिप्ति इसलिये हो गई कि महापथ वहीं समाप्त होता था। वृहत् कथा संग्रह में चम्पा के एक व्यापारी मित्र वमा के पुत्र सानुदास की कहानी मिलती है।

दिव्यावदान के अनुसार मगध और चम्पा की सीमा पर एक पक्ष मंदिर था, जिसका घंटा चोरी से माल ले जाने पर बजने लगता था। चम्पा में समुद्री व्यापारी रहते थे। ये व्यापारी नाव द्वारा विदेशों से व्यापार करते थे। फाह्यान स्वयं तीन साल तक पाटलिपुत्र में रहकर चम्पा पहुँचा था, जहाँ ये गंगा के साथ-साथ ताम्रलिप्ति पहुँचा, और वहाँ से एक बड़े जहाज पर चढ़कर पन्द्रह दिन में सिंहल पहुँचा। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि अंग की राजधानी चम्पा की देश के भीतर तथा देश के बाहर के समुद्री व्यापार-दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका थी युगल किशोर मिश्र का विचार है कि देश के भीतर विभिन्न प्रदेशों से व्यापार में अंग से देनन्दित में प्रयोग मे आनेवाली वस्तुयें भेजी जाती थीं। उदाहरणस्वरूप अंग चावल, दाल, तेल, सुर्ती, रेशम, हाथी, चुना-पत्थर तथा ऊँनी और सूती कपड़ों का देश के विभिन्न भागों को निर्यात करता था। इसके विपरीत अभ्रक, कागज, सूती वस्त्र, जड़ी-बूटियाँ और लाख इस प्रदेश में आयातित होता था। ताम्रलिप्ति होकर समुद्र के रास्ते दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से व्यापार में चम्पार की महत्वपूर्ण भूमिका था।

अंग का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्वमेद में मिलता है। गोपथ-ब्राह्मण में इसका उल्लेख मगध के साथ हुआ है। रामायण में अंग प्रदेश को गंगा और सरयू नदियों के बीच स्थित कहा गया है। संभव है कि रामायण का यह प्रसंग उस परम्परा का द्योतक हो जिसके अनुसार अंग निवासी पश्चिम से पूर्व की ओर आये हों। आजकल अंग प्रदेश का मिलान वर्तमान भागलपुर, मुंगेर तथा संथाल परगना जिलों से किया जाता है। संभव है कि इस क्षेत्र की सीमा समय-समय पर बदलती रही हो। उत्तर में इसकी सीमा गंगा नदी थी। चम्पेय क्षेत्र के अनुसार चम्पा नामक नदी मगध और अंग राज्यों के बीच विभाजक रेखा का काम करती थी। डॉ0 युगल किशोर मिश्र के अनुसार अंग राज्य की सीमा मुख्यतः वर्तमान भागलपुर तथा मुंगेर जिलों के भीतर थी। उत्तर में इसकी सीमा संभवतः कोसी नदी तक थी और आधुनिक पूर्णिया जिले का पश्चिमी भाग भी उसके अन्तर्गत आता था। दक्षिण में संथाल परगना जिले का भी

कुछ भाग इस राज्य के अंतर्गत आता था। अंग एवं चम्पा का संबंध बहुत घनिष्ठ रहा है। चम्पा अंग की राजधानी थी। परम्परा के अनुसार लोमपाद के पौत्र चम्प नामक राजा ने इस नगर की स्थापना की थी, परन्तु यह भी सम्भव है कि चम्पा नाम पड़ने का मुख्य कारण यहाँ प्राप्त चम्पक पुष्पों की प्रधानता थी। इस नगर का दूसरा नाम शामिनी था।

बौद्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि यह नगर वणिकों, व्यापारियों, सुनारों और जौहरियों आदि के लिए प्रसिद्ध था। यह नगर एक प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र था। यहाँ पर पूर्णभद्र तथा अन्य पक्षों के मंदिर थे। बुद्ध ने इस नगर की कई बार यात्रा की थी,तथा यहाँ निवास किया था। यहीं पर बुद्ध ने भिक्षुओं को पदत्राण धारण की आज्ञा दी थी। महागोविन्द सुत्तक में चम्पा के प्राचीरों से सुरक्षित नगर बसाये जाने का उल्लेख मिलता है। जैन मतावलम्बियों के लिये चम्पा एक बड़ा पवित्र नगर है। क्योंकि यहाँ पर बारहवें जैन तीर्थकर वसुपूज्य पैदा हुये थे और भगवान महावीर ने यहाँ तीन वर्षा ऋतुयें बिताई थीं बुद्ध एवं महावीर के समकालीन तथा आजीविकमत के प्रवर्तक मोक्खलि गौशाल बहुधा चम्पा आते थे। इस प्रकार चम्पा निश्चय ही एक बड़े राजनैतिक, धार्मिक और व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्राचीन नगर था।

मध्य गंगा घाटी का भौगोलिक स्वरूप

मध्य गंगा घाटी में इस नगर की भौगोलिक स्थिति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। नन्दुलाल डे के अनुसार चम्पा का समीकरण बर्दवान जिले में दमुद नदी के तट पर स्थित चम्पा नगर से करना चाहिए। परन्तु यह मत निश्चय ही भ्रामक है, क्योंकि महाकाव्यों, पुराणों, बौद्ध तथा जैन स्रोतों से यह ज्ञात है कि यह नगर पूर्वी भारत में गंगा के दायें तट पर स्थित था। कनिंघम ने चम्पा का समीकरण पथरघाटा से 24 मील पश्चिम भागलपुर के पास स्थित चम्पानगर और उसके समीप चम्पापुर से किया है। रिस डेविड्स मललसेकर, राहुल सांस्कृत्यायन तथा हेमचन्द्र रायचौधरी इस समीकरण से सहमत है। विमलाचरण लाहा का भी मत है कि यह नगर आधुनिक भागलपुर के पश्चिम लगभग चार मील की दूरी पर स्थित था। चम्पा नगर नामक एक स्थान पूर्णिया जिले में तथा कर्णगढ़ नामक स्थान स्थान प्राचीन चम्पा से समीकृत किये जा सकते है। प्रो0 बी0 पी0 सिन्हा ने कर्णगढ़ स्थान की जाँच-परख करके ज्ञात किया है कि यहाँ पर गुप्तकाल तथा उसके बाद के अवशेष ही वर्तमान हैं। अत: प्रो0 सिन्हा की मान्यता है कि प्राचीन चम्पा का समीकरण भागलपुर जिले में नाथ नगर रेलवे स्टेशन तथा टी0 एन0 बी0 कॉलेज प्रांगण के समीप स्थित चम्पा के प्राचीन अवशेषों से करना उचित होगा। ह्वेनसांग सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में जब चम्पा पहुँचा था तो यहाँ से 140 या 140 मील की दूरी पर एक पहाड़ी पर एक मंदिर देखा था। यह पहाड़ी का समीकरण कनिंघम ने कोलगंगा के निकट पत्थरघाट से किया है। यह पहाड़ी के ऊपर ईटो के बने किसी भवन के अवशेष आज भी वर्तमान हैं। पत्थरघाट से भागलपुर के समीप चम्पा गाँव की दूरी 24 मील है। जो ह्वेनसांग के विवरण के बिल्कुल ठीक बैठती है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार चम्पा नदियों तथा गंगा और चम्पा नदियों के संगम पर बसा हुआ कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि चन्दन, मालिनी और चम्पा नामक नदियाँ एक ही या एक-दूसरे की सहायिका थी। उल्लेखनीय है कि नाथ नगर के समीप ही चम्पा नगर के पास गंगा में चंदन नदी आज भी मिलती है। यह नदी देवघर के पास से निकलती है। यहीं पर पश्चिम से पूर्व की ओर बहता हुआ चम्पा नाला बहता है, जो चंदन नदी में जाकर मिलता है। चंदन की एक शाखा भागलपुर से पश्चिम नाथनगर के पास गंगा में मिलती है। इसी संगम के पास बेहुला घाट है, जहाँ से सती बिहुला ने अपने मतक पति के साथ मनसा देवी का आशीष प्राप्त करने के लिये नदी पार किया था। इन सारे प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलना उचित होगा कि चम्पा के प्राचीन नगर के अवशेष भागलपुर के समीप चम्पानगर क्षेत्र में होने चाहिये। उल्लेख है कि चम्पापुरी और चम्पानगर नाम इस क्षेत्र में आज भी प्रचलित है। अंग देश तथा चम्पा का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलत है। इसका प्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है, जहाँ पर शब्द गंधार, मुजवान और मगधों के साथ जन-विशेष का बोधक बनकर आता है। गोपथ-ब्राह्मण में भी एक समस्त पद अंगमगध आता है। उत्तरवर्ती काल में ये लोग सोन और गंगा के किनारे बसते थे। अत: सम्भव है कि वे पहले भी वहीं रहे हो। पार्जिटर के अनुसार अंग एक अनार्य जाति थी जो समुद्री मार्ग से पूर्वी भारत में आई थी। परन्तु वैदिक साहित्य में इन अनुमान की पुष्टि के लिये सामग्री नहीं है। वेद धरातल में इसे एक प्रदेश के अर्थ में ग्रहण किया गया है। अष्टाध्यायी में अंग का नाम बंग, कलिंग तथा पण्ड्र नामों के साथ दिया हुआ है। रामायण, महाभारत तथा पुराणों में अंग के राजाओं के नामों की एक लम्बी तालिका प्राप्त होती है। तथा चम्पा नगर का वर्णन प्रशंसात्मक शब्दों में मिलता है। रामायण काल में लोमपाद नाम का अंग का राजा था। एक अन्य प्रसंग के अनुसार राजा दधिवाहन ने अंग राज्य की स्थापना की जिसकी राजधानी मालिनी थी। कालांतर में इस नगर का नाम चम्प नामक राजा के नाम पर चम्पा पड़ा। बुद्ध के काल में अंग सोलह महाजनपदों में एक था। अंग का मगध

और काशी राज्य से निकट का संबंध था। अंग के राजा ब्रहादत्त ने महिप को पराजित किया था कालंतर में मगध के राजा बिम्बिसार द्वारा छठी शती ई0 पूर्व के मध्य में विजय के आद अंग की स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई।

बौद्ध केन्द्र के रूप में चम्पा

पालि त्रिपिटक में अंग देश के चार मुख्य नगरों चम्पा, भद्धिय, अस्स्पुर और आपण का नाम मिलता है। चम्पा अंग की जनपद की राजधानी थी। चम्पा नदी अंग और मगध के बीच सीमा निर्धारण करती थी। महापरिनिब्बाण सुत्त में इस नगर का उल्लेख आता है। बुद्ध के जीवनकालीन भारत के छः प्रसिद्ध नगरों (महानगरानि) का इस सुत्त में उल्लेख है। भगवान के इस निर्णय को सुनकर कि वे कुसीनारा में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। आनंद ने उनसे प्रार्थना की कि वे इस क्षुद्र नगले में परिनिर्वाण प्राप्त न करें। भंते और भी महानगर हैं जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशम्बी और वारणसी। वहाँ भगवान परिनिर्वाण प्राप्त करें। महागोविन्द सुत्त के अनुसार महागोविन्द ने महागोविन्द ने महापृथ्वी को बाँटकर कलिंग में दंतपुर, अश्वक देश में पोतन, अवन्ति देश में महिष्पति, सौवीर देश मे रोरूक, विदेह देश में मिथिला तथा अंग में चम्पा का निर्माण किया है। महात्मा बुद्ध चम्पा में कई बार आ चुके थे। वे यहाँ गग्गरा पोखरणी के तट पर निवास करते थे। इस गग्गरा पोखरणी का निर्माण गग्गरा नामक सामाग्री ने किया था। इस का कासार के तट पर चम्पक वृक्षों का एक गुल्म था जिसके कारण आसपास के क्षेत्र में सौरभ्युक्त वातावरण बना रहता था। दीघनिकाय के अनुसार यह एक विशाल नगर था। बुद्ध घोष ने गग्गारा सरोवर के समीप पाँच प्रकार के चम्पक फूलों के वृक्षों का उल्लेख किया है। दीघनिकाय के सोमदंड सुत्त के अनुसार स्वर्ण दंड नामक ब्राह्मण का शास्ता के साथ संवाद अंग की राजधानी चम्पा में हुआ था। राजा बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त जनाकीर्ण, तृणकज्उदक-धान्य सहित राजभोग्य, राज दाय, ब्रहादेय चम्पा नगरी की आय का उपयोग सोमदंड नामक ब्राह्मण करता था। यहीं गग्गरा पुष्कारिणी के तीर पर बुद्ध का इस ब्राह्मण से मिलाप हुआ। विनयपिटक के चाम्पेय स्कंध के अनुसार बुद्ध भगवान चम्पा में गग्गरा पुष्कारिणी के तीर पर विहार करते थे। भगवान बुद्ध के गग्गरा पुष्करिणी में निवास का हवाला अंगुत्तर-निकाय में मिलता है। इसी प्रकार का हवाला मज्झिम-निकाय के कन्दरक सुत्त में भी मिलता है। यही पर शास्ता ने कन्दरक-सुत्तन्त का उपदेश दिया था। इसी प्रकार जब भगवान गग्गरा पुष्कारिणी के तौर पर विहार कर रहे थे तो उनके कवि-शिष्य सीविर वंगीश ने एक गाथा के द्वारा भगवान की स्तुति की थी जो संयुक्त-निकाय के गग्गरा सुत्त में प्राप्त होता है। भिक्षुओं को एक तल्ले के जूते पहनने की अनुमति भगवान ने चम्पा में दी थी। जातकों में वर्णन मिलता है कि यह नगर खाई तथा प्राचीर के द्वारा परिवेष्ठित था। चम्पेय जातक में अंग और मगध दोनों राज्यों का साथ-साथ उल्लेख मिलता है। यहाँ एक नाग भवन था जिसमें चम्पेय नामक नाग राजा राज्य करता था।

चम्पा नगर की अट्टालिकाओं और प्राकार का उल्लेख महाजनक जातक में भी मिलता है। इस प्रसंग के अनुसार मिथिला के राजा अरिटठजनक की पटरानी ने पोलजनक से अपनी गर्भ-रक्षा के निमित्त भागकर इस नगर में आश्रय लिया था। इस समय यहाँ के निवासी महाशाल नामक सुप्रसिद्ध आचार्य ने शरण देकर उसका पालन-पोषण किया था। भगवान् बुद्ध ने इस नगर में कुछ अन्य आचार्यो ने भी अपने मतों का प्रचार किया था। इनमें पुरण-कस्सप, मौख्खलि गौसाल, अजित केसकम्बलिन, पकुधकच्चायन तथा निगंधनाथ्पुप्त के नाम उल्लेखनीय है। विनयपटक के एक प्रसंग के अनुसार अंग राज्य में अस्सी हजार गाँव थे। विनयपटक के ही एक अन्य प्रसंग के अनुसार इस नगर में बुद्ध भगवान गग्गरा पुष्वरिणी के तट पर निवास करते थे। तथा इस नगर में बीस करोड़ का धनी सोण नामक श्रष्ठिपुत्र रहता था। गग्गरा पुज्वरिणी के तीर पर तथागत के निवास का हवाला अंगुत्तरनिकाय के कई प्रसंगों में मिलता है।

गुप्तकालील सामग्री इस चरण के तुरंत बाद मिलती है। इस काल के आवासीय भवन पककी ईटों से निर्मित हैं और इसके कई अवशेष खुदाई में मिले हैं। इस काल की उल्लेखनीय वस्तुओं में पकाई मिट्टी के साँचे तथा मानव मृण्मूर्तियाँ तथा पत्थर के मनके उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार का एन0 बी0 पी0 काल का आभूषण बनाने के प्रयुक्त होने वाला पत्थर का एक साँचा भी मिला था। इसी प्रकार का एक साँचा गुप्त काल से भी मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि एन.बी.पी. काल से गुप्त काल तक चम्पा आभूषण निर्माण का एक केन्द्र था। कुछ पुरावस्तुयें गुप्तकाल के बाद का भी है। खुदाई से स्पष्ट हो चुका है कि नगर की सुरक्षा-प्राचीर प्रारंभ में कच्ची मिट्टी को कूट कर बनाई गई थी। उत्तरी एन.बी.पी. चरण में उस पर पक्की ईटों का प्रतिधार लगाया गया। इस प्राचीर के ऊपर बने सुरक्षा प्रहरियों के स्थान और पत्थर के गुटकों का भंडार मिला है। शत्रु के आक्रमण के समय गोफन द्वारा इन प्रस्तर

खंडों से उन पर प्रहार किया जाता था। यह सुरक्षा प्राचीर सबसे पहले कब बनी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भूमिगत जल के बढ़ाव के कारण निचली सतहों का उत्खनन संभव नहीं हो सका। फिर भी पम्पों द्वारा पानी निकालकर एन.बी.पी. स्तरों के नीचे से ब्लैक एण्ड रेड वेयर के टुकड़े प्राप्त किये गये थे, जिससे ज्ञात होता है कि चम्पा के प्रथम निवासी इसी संस्कृति के लोग थे। परन्तु प्राचीरों का प्रथम बार निर्माण एन.बी.पी. संस्कृति के लोगों ने ही किया।

आवासीय क्षेत्र से भी इसी प्रकार के प्रमाण मिले हैं। साढ़े नौ मीटर तक की गहराई तक खुदाई करने पर एन.बी.पी. वेयर के ही अवशेष मिलते गये। परन्तु वर्ष 1972 की खुदाई में इस क्षेत्र से प्राचीनतम स्तरों से बलैक एण्ड रेड वेयर के बर्तन मिले है जिनमें डिश-ऑन-स्टैण्ड आकति का बर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त एक गर्त में एन.बी.पी. वेयर के नीचे इसका स्वतंत्र स्तर भी मिला है। इस नये तथ्य से सिद्ध होता है। कि एन.बी.पी. संस्कृति से पूर्व भी ताम्र पाषाणकालीन ब्लैक एण्ड रेड वेयर संस्कृति के लोग यहाँ निवास करते थे। एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि एन.बी.पी. स्तरों से पहले के स्तरों में एक प्रकार के धूसर मृद्भांड के टुकड़े भी चम्पा की खुदाई में मिले हैं। इन ग्रे वेयर के बर्तनों के साथ एन.बी.पी. के टुकड़े नहीं मिलते। इसी प्रकार के प्रमाण बक्सर की खुदाई से भी प्राप्त हुए थे।

संदर्भ-सूची

1. बी.पी. सिन्हा, आर्कियोलाजी एण्ड आर्ट ऑफ इंडिया, पृ0-70
2. पी.एल. भार्गव, इंडिया इन दि वैदिक एज, पृ0-227
3. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ0-177
4. मललसेकर, वहीं, जिल्द-1 पृ0-755, तुलनीय उदयनारायण राय, वही, पृ0-178
5. भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ0-12
6. अनुशासनपर्व, अध्याय, तुलनीय उ0 ना0 राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ0-189
7. विनयपिटक हिन्दी अनुवाद, राहुल सांस्कृत्यायन, महाबोधिसभा सारनाथ, 1934 पृ0145
8. युगल किशोर मिश्र, सोश्यो-इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ईस्टर्न इंडिया, पृ0-120-124
9. कनिंघम, दि एश्येंट ज्येग्राफी ऑफ इंडिया, अपेडिक्स, पृ0-477
10. वाटर्स, जिल्द-2 पृ0-172-183
11. बी.पी. सिन्हा, वही, भूमिका, पृ0-07
12. उल्लेखनीय है कि चम्पा में एन.बी.पी. वेयर से संबंधित स्तरों की कुल मोटाई 3.47 मीटर से भी अधिक है। अत: इस संस्कृति के अर्ली, मिडिल और लेट-तीन चरण किये गये हैं। बी.पी. सिन्हा, वहीं पृ0-12-13
13. एस.एन. सहाय, दि पाटरीज ऑफ चम्पा, जर्नल ऑफ दि बिहार पुराविद परिषद् जिल्द-1, पृ0-143-148

निर्गुणधारा के कवियों की स्त्री-संबंधी धारणाएँ

राजेश कुमार राजन

एम. ए. हिन्दी (इग्नू, नई दिल्ली), यू. जी. सी. नेट

हिन्दी साहित्य के 'मध्यकाल' को विद्वानों ने साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर दो भागों में विभक्त किया है-पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल तथा उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल। मोटे तौर पर भक्तिकाल को दो भागों में बाँटा गया है-निर्गुण काव्य-धारा और सगुण काव्य-धारा। इन दो प्रमुख धाराओं को पुन: दो भागों में विभाजित किया गया है। निर्गुण काव्य-धारा के अन्तर्गत एक भाग में ज्ञानाश्रयी काव्य-धारा के कवियों को स्थान दिया गया है तो दूसरे भाग में प्रेमाश्रयी काव्यधारा के कवियों को स्थान दिया गया है। इसी प्रकार सगुण काव्य-धारा के अन्तर्गत एक ओर कृष्ण काव्य-धारा के कवियों को स्थान दिया गया है तो दूसरे भाग में रामभक्ति काव्य-धारा के कवियों को स्थान दिया गया है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों की स्त्री संबंधी धारणाएँ

स्त्रियों के प्रति ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों का दृष्टिकोण परम्परागत ही रहा है। इस व्यवहार के पीछे उनके सामाजिक एवं जातीय संस्कार हैं। इनके काव्य में परम-तत्त्व की प्राप्ति ही मुख्य विषय है। इन कवियों ने अपनी कविताओं में या तो ईश्वर की महिमा का गुणगान किया है या साधना-पथ में व्यवधान डालने वाले तत्त्वों की व्यंजना की है। संतों ने स्त्री को साधना-पथ के बाधक रूप में देखा और उन्होंने स्त्री के रम्या एवं माया रूप की निंदा की है। स्त्री को जैन और नाथ कवियों ने भी योग-मार्ग की बाधा और उसके संसर्ग को पुरूष का नाश करने वाला बताया है। गोरखनाथ ने स्त्री-संसर्ग से होने वाले दुष्परिणामों का उल्लेख किया है "नदी तीरे विरवा नारी संगे पुरुषा अलप जीवन को आसा।"[1] अर्थात् नारी के संसर्ग में लीन पुरुष सरिता के तट पर स्थित अनिश्चित जीवन वाले वृक्ष के समान है। संतों का मानना यह था कि स्त्री का कामिनी रूप मोक्ष-प्राप्ति में बाधक है। उन्होंने जहाँ स्त्री को देवी, माता, पत्नी, पतिव्रता एवं सती के रूप में वर्णित किया है, वहाँ उसका गुणगान किया है। मोक्ष-प्राप्ति उसका उद्देश्य था, अत: उस तक पहुँचने में जिस तत्त्व ने व्यवधान उपस्थित किया, उसी की निंदा संतों ने की है। संतों ने स्त्री के विभिन्न रूपों की कल्पना की है- कामिनी, माया, पत्नी, दासी, गुरू, पतिव्रता, सती और कहीं-कहीं स्वयं को स्त्री के रूप में कल्पित किया है। मूल रूप से देखा जाय तो संतों ने स्त्री के दो रूपों की चर्चा की है- एक तो उसका कामिनी रूप जिसे संत कवियों ने गर्हित एवं त्याज्य बताया है, दूसरा उसका सती एवं पतिव्रता रूप जो संतों को मान्य एवं ग्राह्य है।

संतों ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कामिनी एवं कनक की निंदा की है। स्त्री के प्रति आसक्ति एवं प्रेम बुद्धि एवं विवेक का हरण कर लेता है-

> "नारी सेती नेह, बुधि विवेक सबही हरै।
> कार गंवावै देह, कारिज कोई नां सरै।।"[2]

कबीरदास कहते हैं कि स्त्री के प्रति प्रेम, बुद्धि एवं विवेक सबका ही हरण कर लेता है। हे जीव! तुम इस स्त्री-प्रेम में अपनी शक्तियों का ह्रास क्यों कर रहा है? इससे कोई कार्य भी सफल नहीं होता है। स्त्री तीन गुणों का नाश करती है। वह जिस पुरुष के पास रहती है, वह भक्ति, मुक्ति एवं ज्ञान को कभी नहीं प्राप्त कर सकता है-

"नारी नसावै तीन गुन, जौ नर पासै होई।
भगति मुकुति निज ग्यांन में पैसि न सकई कोई।"[3]

संत कवियों ने जीवन के परमार्थ के रूप में भक्ति को स्वीकार किया है और इस परमार्थ की उपलब्धि में बाधक होने वाले सभी विषयों की निंदा की है। लौकिक जीवन के वे सारे तत्त्व जो साधक के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं, संतों की दृष्टि में त्याज्य हैं। उन बाधक तत्त्वों में कनक और कामिनी आते हैं। कनक या सम्पत्ति के भोग के द्वारा मनुष्य आत्मविनाश करता है। इसी प्रकार आत्मविनाश का दूसरा प्रबल माध्यम स्त्री है। स्त्री के व्यक्तित्व के विविध पक्ष हैं-किन्तु उसका कामिनी रूप साधक के साधना-पथ में बाधक बनता है। इसी कारण संतों ने स्त्री के कामिनी रूप की निंदा की। स्त्री जो केवल रमणी है, शरीर है, माया है, उसकी निंदा करना संतों का उद्देश्य था। कबीर आदि संत जब नारी की निंदा करते हैं, तो उनका आशय नारी के सामंती रूप की निंदा करना होता है। ध्यातव्य है कि स्त्री को सामंती व्यवस्था में सम्पत्ति या धन के रूप में देखा जाता था। सामंती दृष्टि स्त्री को कभी पूर्ण मनुष्य के रूप में नहीं देखती थी। वह स्त्री को मात्र शरीर समझती थी और संत जब स्त्री की निंदा करते हैं तो उसके सामंती रूप की निंदा करते हैं अर्थात् उसके कामिनी रूप की भर्त्सना करते हैं।

संतों के अनुसार सच्ची स्त्री वही है जो पतिव्रत्य का पालन करती है और सदैव पति की आज्ञा मानती है। पतिव्रता स्त्री का सर्वस्व पति होता है, इसलिए पतिव्रता की लज्जा भी उसके पति की लज्जा है। कबीरदास पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा करते हैं। वे भक्त एवं पतिव्रता स्त्री को एक ही कोटि में रखते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "कबीरदास भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है, दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनों के सामने प्रलोभन के दुस्तर-जंजाल है, दोनों ही कांचन धर्मी हैं....बाहर से मृदु भीतर से कठोर, बाहर से कोमल, भीतर से पुरुष। सबकी सेवा में व्यस्त पर एक ही आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।"[4] इस प्रकार संतों ने पतिव्रता स्त्री को महान माना है। उन्होंने पतिव्रता स्त्री को अनन्य भक्ति का आदर्श माना है। वे पतिव्रता स्त्री के प्रति अत्यंत विनत हैं क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ मंगल-विधायनी शक्ति से सम्पृक्त होती हैं। इसीलिए स्त्री के कटु निंदक कबीर भी पतिव्रता स्त्री को सम्मान-जनक दृष्टि से देखते हैं। उनके अनुसार वह स्त्री सम्मान योग्य है जो पति के प्रति एकनिष्ठ भाव से समर्पित है और निष्ठापूर्वक पतिव्रता का पालन करती है।

पतिव्रत्य का चरम विकास सतीत्व में होता है। मध्यकालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था धर्मप्रायणता के कारण सती प्रथा में कोई दोष नहीं देखती थी, वरन् उसे सम्माननीय समझा जाता था। संतों ने सती को साधना का आदर्श माना। सती जो पति प्रेम में चिता पर बैठकर भस्म हो जाती है। इस अनन्यता और परम त्याग को वे संत साधना का आदर्श मानते हैं। कबीर कहते हैं-

"डगमग छांड़ि दे मन बौरा।
अब तौं जरें मरें बनि आवै, लीन्हौं हाथि सिंघौरा।
होइ निसंक मगन होइ नाचै, लोभ मोह भ्रम छांड़ै।
सूरा कहा मरन तैं डरपै, सती न संचे भांड़ै।"5

सूफी कवियों की स्त्री संबंधी धारणाएँ

सूफी कवियों ने स्त्री की पराधीनता एवं विवशता को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। सूफी कवियों ने लोक-प्रचलित आख्यानों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। लैला-मजनू, शीरी-फरहाद के जो किस्से लोक में प्रचलित थे, जिन प्रेम कथाओं को जनता में लोकप्रियता मिली हुई थी, उनका पुनर्प्रस्तुतीकरण और उसके माध्यम से अलौकिक प्रेम व्यंजना, ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति उन्होंने की। सूफी काव्य में प्रेमाभिव्यंजना के व्यापार में ईश्वर को हमेशा 'स्त्री' का रूपक दिया गया। जायसी का 'पद्मावत' जो सूफी प्रेमाख्यान परम्परा का सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है, उसमें पद्मावती ईश्वर का रूपक है, जिसकी खोज में जीवात्मा (रत्नसेन) भटकता है, माया (नागमती) बार-बार उसके मार्ग को रोकती है, लेकिन आत्मा-परमात्मा से मिलन के लिए व्याकुल है। सूफी प्रेमाख्यानों में इसी प्रकार के ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनमें स्त्री को महत्ता एवं उत्कृष्ट स्थान दिया गया है।

जायसी के 'पद्मावत' की कथा चाहे सिंहलद्वीप की हो या चित्तौड़गढ़ की या दिल्ली दरबार की, वह एक ओर मध्यकालीन भारत के सामंती समाज में स्त्री की पराधीन स्थिति, उसे भोग की वस्तु समझने की पुरुष मनोवृत्ति को प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर वह पुरुष की तुलना में स्त्री को नैतिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट दिखाती है। 'पद्मावत' के

'मानसरोदक खंड' में स्त्री की पराधीन स्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है। पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने जाती है। वहाँ वह विवाहोपरांत जीवन की पराधीनता के बारे में सखियों से वार्त्तालाप करती है-

''ऐ रानी मन देखु विचारी। एह नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहि जौं खेलहु आजू।।
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम, कित एह सरवर पाली।।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलिकै खेलब एक साथा।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारून ससुर न आवे देहीं।।
पिउ पिआर सब ऊपर सो पुनि करै दहुं काह।
दहुँ सुख राखै की दुख दहुं कस जनम निबाह।''[6]

इसी प्रकार 'मधुमालती' में रूपमंजरी मधुमालती व प्रेमा को विदाई के समय उपदेश देती है-

''सासुही उतर न दीनी काऊ। सइं दुइ जूनि परवारनि पाउ।
हँसि के पेलबि सासु कै मार। पलटि उत्तर नहीं दीवी वारी।
सासु क बोहव परिधि सिर लीबी। ऊँच बोल नहीं उत्तर दीबी।''[7]

अर्थात् ससुराल में सास के किसी भी बात का प्रत्युत्तर नहीं देना। उनके बोल या वचन को हमेशा सुनना व मानना। ऊँचे आवाज में कभी किसी से नहीं बोलना। 'मृगावती' में रूपमति की माँ रूपमति को ससुराल जाते समय यही उपदेश देती है-

''सासु ननद कहुँ उतर न दीजै। जौ वै कहहिं सो सिर पर कीजै।।
बिनु पूछै बकत न मुंह खोली। मधुरे वचन परजन सैं बोली।।
पिउ चाहैं सहज इन चलिए। नित नौत नौत सेंउ रहिये।।''[8]

यह स्त्री पराधीनता का चित्रण तुलसी की अपेक्षा कम स्पष्ट नहीं है। सूफी काव्य में स्त्री की स्थिति के विषय में कहा गया है कि ''स्त्री का सम्मान नहीं था, उसे सदैव अपना सीस चरणों पर झुकाए रहना पड़ता था। उसकी बुद्धि तुच्छ एवं हीन मानी जाती थी। स्त्री शिक्षा का अभाव था। कुमारी कन्याओं की स्थिति समाज में दयनीय थी। वे अपने विचार व्यक्त करना चाहती थीं किन्तु भय एवं लोकलज्जा उन्हें नहीं करने देती थी। विवाह के संबंध में नायिका अपनी स्वतंत्र सम्मति देना चाहती थी, किन्तु ऐसा देवी संयोग से ही संपन्न हो पाता है। माता-पिता स्त्री के स्वतंत्र चुनाव को कुल-कलंक समझते थे और उसके प्रेम की सूचना पाकर उसे महल में बंद कर देते थे। कन्या को केवल सुनने का अधिकार था अपना मत प्रकट करने का नहीं।''[9] इस प्रकार स्त्री की पराधीनता एवं विवशता को निःसंदेह व्याकुल बनाती है।

सूफी कवियों ने स्त्री को 'प्रेम-साधना' के साध्य के रूप में देखा। सभी सूफी कवियों ने स्त्री के सौन्दर्य का चित्रण किया है। ''इस स्त्री-सौन्दर्य-चित्रण के दो पक्ष हैं-आध्यात्मिक एवं नख-शिख वर्णन। सूफियों का मानना है कि ईश्वर सौन्दर्य-रूप है। सृष्टि का समस्त सौन्दर्य ईश्वर का ही प्रतिरूप है। जागतिक सौन्दर्य की सृष्टि ईश्वर की ही इच्छा से हुई है। जहाँ सौन्दर्य है वहीं प्रेम है तथा सौन्दर्य और प्रेम मिलकर सुख की सृष्टि करते हैं।''[10] इस प्रकार, स्त्री सौन्दर्य-चित्रण में आध्यात्मिक पुट भी है। जायसी के 'पद्मावत' में अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ पद्मावती दिव्य सुंदर स्त्री है-

''प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो माथे मनिभई।।
पुनि वह जोति मातुघट आई। तेहि आंदर आदर बहुपाई।।''[11]

सूफी कवियों का स्त्री सौन्दर्य चित्रण का आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दोनों पक्ष है। स्त्री के सौन्दर्य से जो प्रेम उत्पन्न होता है, वह आध्यात्मिक इश्क-हकीकी होता है और उस प्रेम को पुष्ट करने वाला विरह भी आध्यात्मिक ही है। अर्थात् परमात्मा के सौन्दर्य से साधक के मन में प्रेम उत्पन्न होता है। प्रेम की अनुभूति चार प्रकार की होती है-दाम्पत्य भाव से, परिग्रह भाव से (अनेक पत्नी के प्रति), प्रकृति के उद्दीपन से (प्रथम दृष्टि से) और पूर्वराग जनित प्रेम। प्रेममार्गी कवियों के प्रेमाख्यानों में चौथे प्रकार के प्रेम को प्रधानता दी गयी है। पूर्वराग की उत्पत्ति प्रिय के गुणों को सुनने से, चित्र दर्शन से, स्वप्न दर्शन से अर्थात् साक्षात् दर्शन से होती

है। 'पद्मावत', 'अनुराग बांसुरी' आदि में गुणों के सुनने से प्रेम की उत्पत्ति हुई है। 'चित्रावली' आदि में चित्र दर्शन से, 'इंद्रावती', 'युसुफ-जुलेखी' आदि में स्वप्न-दर्शन से और 'मधुमालती' आदि में साक्षात् दर्शन से पूर्वराग का उदय होता है।

इस प्रकार सूफी काव्य में स्त्री के प्रति सर्वोच्च आदर-भाव की व्यंजना हुई है। जहाँ वीरगाथाओं में स्त्री को बलपूर्वक तलवार की नोंक पर वरण करने का उल्लेख मिलता है, विद्यापति के काव्य में स्त्री को विलास के उपकरण के रूप में देखा गया, संतो के काव्य में स्त्री को कामिनी, माया आदि के रूप में समझा गया, वहीं सूफी काव्य में पुरुष प्रेम का याचक बना और स्त्री प्रेम की स्वामिनी बनी। यहाँ स्त्री शुद्ध मानवी के रूप में समादृत हुई है। मध्यकालीन समाज के सूफी काव्य में स्त्रियों की स्थिति को भी विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। मध्यकालीन भारत के सामंती समाज में स्त्री की पराधीन स्थिति एवं उसे भोग की वस्तु समझने की पुरुष मनोवृत्ति को भी सूफी कवियों ने दर्शाया है। अतीत की सारी उपलब्धियों का वर्त्तमान के साथ संबंध को परिभाषित करने से ऐतिहासिक अनुशासन से परिभाषित बोध और अनुभूति का क्षेत्र हमारे सामने खुलता है और तब अतीत के अनुभव के प्रति हम उत्साहित नहीं बल्कि जिज्ञासु हो जाते हैं। अनुभव के भीतर एक नई अंतर्वस्तु पैदा हो जाती है, जो निरंतर प्रश्नों और व्याकुलताओं का सामना करने में सार्थक बनाने वाली महत्त्वपूर्ण संकल्पना रही है। मनुष्य निरंतर प्रगति की ओर उन्मुख रहा है-यह प्रगति या विकास कैसे हुआ है? क्या मनुष्य का विवेक और अविवेक समय के साथ बदलता है या मनुष्य के विवेक और अविवेक इतिहास के भीतर सामाजिक-आर्थिक शक्तियों के संघर्ष में प्रतिफलित होते हैं जिनमें सनातन या तत्त्व बोधात्मकता के मुकाबले ऐतिहासिक अंतर्वस्तु होती है।

जायसी उन सूफी कवियों में से हैं जिन्होंने सत्य की उपलब्धि कर ली थी कि लोक कथाएँ लोकरूचि को आकर्षित करने के साथ समाज के शिष्ट वर्ग को भी आकर्षित करती है। इसीलिए जायसी समेत सभी प्रमुख सूफी कवियों ने एक ओर अपने धर्म को लोक बोध के रूप में उतारा और वहीं साहित्य द्वारा अपनी भावाभिव्यंजना को लोकोन्मुखी बनाया। लोक प्रचलित कथानक को सूफी कवियों ने बड़ी कुशलता से काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। सामाजिक, आर्थिक शक्तियों के संघर्ष बिन्दु पर ऐसे कथानक एक ओर रचना का सिर्फ मनोवेगों की अभिव्यक्ति बनकर ही नहीं रहते हैं बल्कि साथ ही मनोवेगों को भावों में संघटित करने के उद्देश्य से किसी उपयुक्त प्रसंग के उद्भावना के काम आते हैं। इन कथानकों के बिना मानवी कल्पनाशीलता का वह प्रतिफल प्रकट नहीं हो सकता जो व्यावहारिक यथार्थ में गूँथा हुआ है। जायसी कृत 'पद्मावत' के कथानक को इस दृष्टि से विश्लेषित करने पर एक साथ मध्ययुगीन समाज में पुरुष मानसिकता और स्त्री की स्थिति सामने आ जाती है।

प्रेममार्गी कवियों का उद्देश्य सिर्फ आख्यान कहना नहीं है। वे मध्ययुग में स्त्री की स्थिति को व्याख्यायित करते हैं। स्त्री आध्यात्म में भी सबसे बड़ी बाधा है और काम के क्षेत्र में वह केवल उपभोग की वस्तु है। ''उसकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता और अस्मिता नहीं है। कवि ने उस आध्यात्मिकता और कामुकता से भरे समाज में नागमती की 'प्लेसिंग' इस तरह से की है कि नारी की सामाजिक हैसियत अत्यंत त्रासद रूप में उभरती है।''[12] पति पुरुष है और उसे मध्ययुगीन समाज में अपरिचित अधिकार है। दूसरी ओर स्त्री यदि वह रानी भी है, जिसे राज-काज में भी भाग लेने का भी प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होता है, अपनी पटरानी होने की स्थिति के बावजूद सामाजिक तौर पर शून्य से अधिक कुछ भी नहीं है। एक तोता मारने पर उसे उसका पति मृत्युदंड सुना सकता है। ऐसे समाज में वह स्त्री जिसको कोई प्रशासनिक अधिकार नहीं हो, उसकी स्थिति क्या होगी? जायसी इसकी कल्पना पाठक के ऊपर छोड़ देते हैं। नागमती का राजमहिषी पद से स्खलन यही नहीं रूकता। रत्नसेन पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसके प्रति आकर्षित हो जाता है और पद्मावती से मिलने के लिए वह राज-काज छोड़कर योगी वेश में निकल पड़ता है। नागमती प्रेमाकुल होकर पति से गृह-त्याग न करने का निवेदन करती है। 'हमहुँ साथ होइब जोगनी' का आग्रह करती है। 'जहवाँ राम तहवाँ सँग सीता' वाले आदर्श का अनुगमन करना चाहती है लेकिन सामंती मनोवृत्ति से ग्रसित उसका पति रत्नसेन उसकी बातों पर ध्यान नहीं देता और कहता है-''तुम्ह तिरिआ मति हीन तुम्हारी। मरखा सों जो मतै घर नारी।'' अर्थात् स्त्री होने के कारण वह अल्पबुद्धि वाली है और घर में स्त्री की बातों को मानने वाले मूर्ख होते हैं। ऐसी उक्ति एक राजा अपनी पटरानी के लिए कहता है। इससे स्पष्ट है कि स्त्री-जाति के लिए पुरुष वर्ग की सोच क्या थी? जो स्त्री रानी है, उसे प्रशासनिक अधिकार प्राप्त है, पटरानी है, लेकिन उसकी सलाह का कोई महत्त्व नहीं है और यही स्त्री के प्रति पुरुष मानसिकता है।

निष्कर्षत: संतों ने परमात्मा को पुरुष रूप में एवं आत्मा को स्त्री-रूप में कल्पित किया है। परब्रह्म के प्रति वही प्रतीति है जो पति के प्रति पत्नी की होती है। वे दाम्पत्य जीवन के अंतरंग प्रसंगों की अनुभूतियों को प्रस्तुत करते हैं। उनकी रति-भावना का स्वरूप

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्मपीड़क माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि स्त्री के आत्मसमर्पण स्वभाव होने के कारण संतों ने स्वयं को स्त्री के रूप में कल्पित किया है। संतों ने स्त्री के पतिव्रता, सती, कामिनी, माया आदि रूपों के अतिरिक्त उसको पत्नी, माता, दासी एवं गुरू के रूप को भी चित्रित किया है। संतों ने जहाँ स्त्री के कामिनी एवं माया के रूप को निंदनीय माना वहीं उसके पतिव्रता, सती, माता एवं पत्नी के रूप को सराहा।

भक्तिकालीन कवियों में जायसी एकमात्र ऐसे कवि हैं जो समाज में स्त्री-जाति की दयनीय स्थिति को लेकर समग्र रूप से गंभीर हैं, इसलिए वे कहीं भी स्त्रियों के संबंध में हल्के ढंग से कोई टिप्पणी नहीं करते। जहाँ भी मौका मिलता है, चाहे रत्नसेन का सिंहलद्वीप के लिए प्रस्थान करते समय उसकी माता का विलाप हो या पत्नी नागमती की करूणगाथा या रणभूमि में जाते समय बादल की माता की गाथा के प्रसंग हो, जायसी के स्त्री की पुरुष निर्भरता को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। स्त्री के ऊपर सदियों से स्थापित इस पुरुष प्रभुत्व को यथावत् दिखाने के बाद जायसी यहीं पर अपने कवि-कर्म की इतिश्री नहीं समझ लेते अपितु उसे वे चुनौती देते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. गोरखबानी, गोरखनाथ, पृ॰-137
2. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, पृ॰-31
3. वही, पृ॰-40
4. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ॰-161
5. कबीर वाङ्मय, डॉ. जयदेव सिंह एवं डॉ. वासुदेव सिंह, पृ॰-170
6. पदमावत् (मानसरोवर खण्ड), माताप्रसाद गुप्त, पृ॰-120
7. मधुमालती, मंझन, पद-501, पृ॰-449
8. मृगावती, कुतुबन, पद-13, पृ॰-406
9. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ. सरला शुक्ला, पृ॰-185
10. चित्रावली, उसमान, पृ॰-13
11. पदमावत्, माताप्रसाद गुप्त, पद-50, पृ॰-112
12. उपन्यास का समाजशास्त्र, गरिमा श्रीवास्तव, पृ॰-303

कोरोना काल और एचआईवी/एड्स मरीजों की समस्याओं का अध्ययन

डॉ० अरूणा कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, एम.एच.एम., महाविद्यालय, सोनवर्षा (बिहार)

शोध सारांश :- दुनियाभर में फैली कोरोना वायरस महामारी के चलते एचआईवी मरीजों का इलाज प्रभावित हो रहा है। साल 1998 में एचआईवी/एड्स अपने चरम पर था, तो उस दौरान करीब 28 लाख लोग संक्रमित हुए थे। 2019 के आखिर तक दुनिया भर में 80 लाख लोग एचआईवी (ह्यूमन इम्यूनोडिफिशिएंसी वायरस) से संक्रमित थे। संयुक्त राष्ट्र की जारी हुई वार्षिक रिपोर्ट में इस बात की जानकारी दी गई है। रिपार्ट में कहा गया दुनियाभर में 71 लाख लोग ऐसे है, जिन्हे ये नहीं पता कि वे संक्रमित है। रिपोर्ट में कहा गया , यदि कोविड-19 की वजह से एचआईवी से रोकथाम और इलाज प्रभावित होता रहता है तो रोकने की प्रक्रिया दस या उससे अधिक सालों तक पीछे जा सकती है। अब तक दुनियाभर में सात करोड़ 57 लाख लोग एचआईवी से संक्रमित हुए हैं, और तीन करोड़ 27 लाख लोगों ने इसके चलते अपनी जान गवाई है।

मुख्य शब्द :- एड्स का प्रभाव और फैलने की प्रवृति, कोरोना काल में देश और शहरों का हाल, एचआईवी मरीजो की संमस्याएँ और सरकार का प्रयास।

एड्स एक ऐसी जानलेवा बीमारी है जो मानवीय प्रतिरसों अपूर्णता विषाणु (एचआईवी) संक्रमण के बाद होती है। एचआईवी संक्रमण के बाद मानवीय शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घटने लगती है। एड्स का पूर्ण रूप उपचार अभी तक संभव नहीं हो सका है। एचआईवी संक्रमित व्यक्ति में एड्स की पहचान संभावित लक्षणों के दिखने के बाद ही हो पाती हैं जैसे-बुखार, पसीना आना, ठंड लगना, थकान, भूख कम लगना, बजन घटना, उल्टी आना, गले में खराष रहना, दस्त होना, खांसी होना सांस लेने में समस्या, शरीर पर चकते होना, स्किन प्रॉब्लम आदि।

एचआईवी संक्रमित व्यक्ति, जो किसी गंभीर बीमारी से ग्रसित नहीं है, में एड्स के लक्षणों की जाँच विशेष रक्त जाँच (बकल कोशिका गणना) के आधार पर की जा सकती है। एचआईवी संक्रमण का अर्थ यह नहीं है कि वह व्यक्ति एड्स से भी पीड़ित हो। एड्स की पुष्टि चिकित्सकों द्वारा जाँच के बाद ही की जा सकती है। एचआईवी संक्रमण शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को इस हद तक कम कर देता है इसके बाद शरीर अन्य संक्रमणों से लड़ पाने में सक्षम नहीं रह जाता है। इस प्रकार के संक्रमण को ''अवसरवादी'' संक्रमण कहा जाता है, क्योंकि ये अवसर पाकर कमजोर हो रहे प्रतिरक्षा प्रणाली पर हावी हो जाते है जो बाद में एक बीमारी का रूप ग्रहण कर लेती हैं एड्स प्रभावित लोगों में हुए कई संक्रमण, जो गंभीर समस्या पैदा कर लेती है। एड्स प्रभावित लोगों में हुए कई संक्रमण जो गंभीर समस्या पैदा कर सकते है या जानलेवा हो सकते है, की शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली नियंत्रि करती है। एड्स शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को इतना दुश्प्रभावित कर देता है कि इस गंभीर बीमारी की रोकथाम या इसका उपचार करना आवष्यक हो जाता हैं।

भारत एचआईवी/एड्स उन्मूलन की दिशा में लगातार कठिन प्रयास कर रहा है। एड्स नामक इस भयानक बीमारी ने देश की एक बड़ी आबादी को अपने प्रभाव में जकड़ रखा है। एचआईवी से संबंधित मामलों को पूर्ण रूप से खत्म किये जाने के प्रयास किये जा रहे है एवं पिछले कुछ वर्षो में भारत ने इस प्रयास में अंशत : सफलता भी पाई है। भारत को ''पूर्णत: एड्स मुख्त'' होने में अभी काफी समय लगेगा क्योकि अभी भीदेश में 15 से 49 वर्श की उम्र के बीच के लगभग 25 लाख लोग एड्स से प्रभावित है। यह आँकड़ा विश्व में एड्स प्रभावित लोंगो की सूची में तीसरे स्थान पर आता है।

एचआईवी आकलन 2012 के अनुसार भारतीय युवाओं में वार्षिक आधार पर एड्स के नए मामलों में 57: की कमी आई है। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रणकार्यक्रम के तहत किये गए एड्स के रोकथाम संबधी विभिन्न उपायों एवं नीतियों का ही यह प्रभाव था कि 2000 में एड्स प्रभावित लोगों की जो संख्या 2.74 लाख थी वह 2011 में घटकर 1.16 लाख हो गई। 2001 में एड्स प्रभावित लोगों में 0.41: युवा थे जो प्रतिशत 2011 में घटकर 0.27 का हो गया। 2000 में एड्स प्रभावित लोंगो की संख्या लगभग 24.1 लाख थी जो 2011 में घटकर 20.9 लाख रह गई। एंटी रेट्रोवायरल थैरेपी (एआरटी) के प्रयोग में आने के बाद एड्स से मरने वालों की संख्या में कमी आई। 2007 से 2011 के बीच एड्स से मरने वालो लोगों की संख्या में वार्षिक आधार पर 29: की कमी आई। ऐसा अनुमान है कि 2011 तक लगभग 1.5 लाख लोगों को एंटी रेट्रोवायरल थेरेपी (एआरटी) की मदद से बचाया जा चुका है।

भारत ने एचआईवी संबंधी आँकड़ों देने वाले इन व्यापक स्त्रेतों का इस्तेमाल एड्स संबंधी कार्यक्रमों के निर्धारण में किया है ताकि एचआईवी की रोकथाम एवं इसके उपचार के उपाया से होने वाले प्रभावों की जानकारी प्राप्त की जा सके एचआईवी/एड्स पर संयुक्त राष्ट्र कार्यक्रम (यूएनएड्स) के अनुमान यह दिखाते है कि पूरा विश्व एचआईवी संक्रमण को ैलने से रोकने का प्रयास कर रहा है, ताकि इस महामारी को जड़ से मिटाया जा सके। विगत दस वर्षो में इस दिशा में सराहनीय प्रयास किये गए है, फिर भी आज हमारे सामने यह एक विकट समस्या है।

एचआईवी के फैलने की प्रवृति :- एचआईवी/एड्स से निपटने का एकमात्र उपाय है इसकी रोकथाम व जागरूकता । भारत की 99 प्रतिशत जनसंख्या अभी एड्स से मुक्त है बाकि 1 प्रतिशत जनसंख्या में इसके फैलने की प्रवृति के आधार पर इस महामारी की रोकथाम एवं इस पर नियंत्रण करने संबधी नीतियाँ बनाई जा रही है।

देश इस वक्त कोरोना वायरस से लड़ने की कोशिश कर रहा है, जिसके लिए पूरी स्वास्थ्य व्यवस्था का ोकस कोरोना के मरीजों पर है। इस वजह से प्रमुख अस्पतालों की ओपीडी और दूसरी स्वास्थय सेंवाएँ बंद कर दी गई है, साथ ही गैर -जरूरी सर्जरी रोक दी गई है, हाँलाकि इमजैसी सेवाएँ चल रही है।

देश भर के शहरों का हाल :- दिल्ली , मुंबई के बड़े अस्पतालों के अलावा उत्तर प्रदेश और बिहार जैसी घनी आबादी वाले राज्यों के प्रमुख अस्पतालों में ओपीडी और अन्य सेवाएँ बंद है। बिहार में पटना मेडिकल कॉलेज एंड हास्पिटल, नांलदा मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल, इंदिरा गाँधी इंस्टिटयूट आर्फ मेडिकल साइंसेस और मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल को पूरी तरह कोरोना के मरीजों के लिए डेडिकेट कर दिया गया है। और ओपीडी समेत सभी अन्य स्वास्थय सेवाएँ रोक दी गई है। वहीं उत्तर प्रदेश में के0 जी0 एम0 यू0 अस्पताल यानी किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी, पीजीआई लखनऊ स्थित राम मनोहर लोहिया समेत तमात बड़े अस्पतालों में इमर्जेसी या अन्य बेहद जरूरी सेवाओं को छोड़कर सब बंद कर दिया गया है।

एचआईवी मरीजों की समस्याएँ :-एचआईवी/एड्स पर संयुक्त राष्ट्र कार्यक्रम (यूएनएड्स) की रिपोर्ट में बताया गया है कि 2019 में अकेले 17 लाख कें करीब लोगो एचआईवी से संक्रमित हो गए। इसमें बताया गया है, दुनियाभर में ैली कोरोना वायरस महामारी के चलते एचआईवी रोगियों का इलाज प्रभावित हो रहा है इसके निम्न उदाहरण है :-

1. एचआईवी से पीड़ित 32 वर्षीय रवि (बदला हुआ नाम) कुछ दिन पहले ही टीबी की चपेट में भी आ गया। उन्होने मुंबई में बांद्रा स्थित भाभा अस्पताल में खुद को दिखाया, जहाँ हाल में ही टीबी के लिए उसकी दवा शुरू की गई थी। लेकिन दोनों दवा साथ लेने की वजह से उन्हें उल्टी घबराहट, नींद ना आना जैसे कुछ साइड इफेक्ट शुरू हो गए इस बीच भाभा अस्पताल में ओपीडी समेत सभी दूसरी स्वास्थ्य सेवाएँ बंद कर दी गई। साइड इफेक्ट की वजह से परेशान रवि ने किसी दूसरे डॉक्टर को नहीं दिखाया और खुद ही एचआईवी और टीबी दोनों की दवा लेना बंद कर दी।

2. 17 साल की प्रतिभा (बदला हुआ नाम) का परिवार उनके दलाज के लिए हरियाणा के पलवल से दिल्ली आया था वो प्रतिभा को लेकर कई अस्पतालों में गए लेकिन एम्स समेत दूसरे बड़े अस्पतालों की ओपीडी बंद होने की वजह से किसी डॉक्टर को नहीं दिखा सके परिवार का आरोप है कि इलाज ना मिलने की वजह से प्रतिभा ने दम तोड़ दिया।

3. मुंबई के कलवा इलाके के रहने वाले मुकेश (बदला हुआ नाम) एचआईवी से पीड़ित है। उनकी दवाइयाँ खत्म होने को थी दवा लेने के लिए वो ठाणे स्थित नजदीकी एआरटी केन्द्र जाने के लिए घर से निकले , लेकिन रास्ते में उन्हें रोक दिया गया। मुकेश ने पुलिस को बताया कि उनके लिए दवा लेना बहुत जरूरी है, लेकिन पुलिस वालो ने उन्हे फिर भी घर वापस भेज दिया। हलाकि बाद में वो किसी तरह दूसरे अस्पताल पहूँचे और दवा ली।

सरकार का प्रयास में :- लॉकडाउन को देखते हुए सरकार ने एचआईवी मरीजों के लिए किसी भी नजदीकी एआरटी केंन्द्र से दवा लेने की सुविधा दी है, लेकिन ट्रांसपोर्ट बंद होनेकी बजह से मरीज नहीं ले पा रहे है ऐसी शिकायत कई एचआइवी से पीड़ितो की है।

एचआइवी और एड्स के मरीजों के लिए काम करने वाली संस्था हमस्फ़र ट्रस्ट से जुड़े तिनेष चोपड़े कहते है '' हमारे पास भी परेसान मरीजों के फोन आ रहे है, जो दवा लेने नहीं जा पा रहे है एचआईवी के कई मरीज बहुत गरीब तबके से आते है वो मुफ्त दवा के लिए सरकारी केन्द्रों पर निर्भर है मरीज की स्थिति के हिसाब से उन्हें एक महीने तक का दवा का स्टॉक दे दिया जाता है, लेकिन जब महीने के आखिर में लॉकडाउन की घोषणा हुई तो बहुत मरीजो की दवा खत्म हो रही थी। अब कई लोग दवा लेने के लिए सरकारी केन्द्र तक पहुंच ही नहीं पा रहे है।

एचआईवी मरीजों की दवाएँ रखने वालें एआरटी सेंटर खुले है, लेकिन मरीज वहाँ तक पहुँच नहीं पा रहे है। हलाकि दवा लेने जाने वाले को ग्रीन कार्ड जारी करने की बात कही जा रहा है, जिसे दिखाकर वो जा सकते है। लेकिन मरीज पुलिस बालों से बात करने में घबरा रहे है, कुछ पुलिस वाले बताने पर भी उन्हें रोक रहे हैं कई मरीजों का कहना है कि कोनोना के कारण वो किसी और के घर में ॅंसे है और उनकी दवाइयाँ कही और रखी है। कई लोगों के ग्रीन कार्ड कहीं दूसरी जगह छूट गया है। एचआईवी मरीजों को लेकर समाज में एक तरह का टैबू है, जिसकी वजह से इस बीमारी कें मरीज पुलिस वालों को खुलकर वजह नहीं बता पा रहे है। सरकार ने आदेश तो दिया है, लेकिन जब ये आदेश ग्रांउड पर उतरता है तो मुश्किलें आती हैं इस तरह के मेडिकल शट डाउन से ये होगा कि कोरोना के मरीजों से पहले कई एचआईवी के मरीज मर जाऐगा।

एक भी दिन दवा छूटी तो क्या होगा

एचाआईवी/एड्स के मरीजों के लिए हर रोज दवा लेना बेहद जरूरी है। अगर एक भी दिन दवा छूटी तो एचआईवी विषाणु फिर से सक्रिय होने का खतरा होता है इससे उनके पूरे पुराने ईलाज पर पानी फिर सकता है। एचआईवी यानी रेट्रोवायरस थेरेपी की दवाइयों की तीन लाइन होती है। अगर किसी वजह से दवाइयाँ रूक जाए तो दूसरी लाइन शुरू करनी पड़ती है और दूसरी लाइन की दवा हर अस्पताल में मौजूद नहीं होती हैं, फस्ट लाईन की दवा हर सेंटर में मिल जाती है, लेकिन सेकेंड और थर्ड लाइन की दवा सिर्फ प्रमुख अस्पतालों में ही है। थर्ड लाइन की दवाएँ गिने-चुने सेंटर में मिलती है। महाराष्ट्र में मुंबई में मिलती है, यूपी में बीएचयू में मिलती है, दिल्ली में भी एक-दो अस्पताल में ही मिलती है।

निष्कर्ष :- 2019 में 6.90,000 लोगों को एचआईवी/एड्सबीमारी के चलते मौत हो गई और एक करोड़ 26 लाख संक्रमित लोग एचआईवी/एड्स के इलाज प्रयोग की जाने वाली ''एंटीरेट्रोवाइरल थेरेपी से वंचित रहे। यूएनएड्स की कर्यकारी निदेशक विनी व्यानयीमा ने कहा कलंक भेदभाव और बड़े स्तर पर फैली असमानता एड्स को खत्म करने में सबसे बड़ी बाधाएँ है अगले दशक के हर दिन हमें निर्णायक कदम उठाने होगों ताकि दूनिया से 2030 तक एड्स महामारी को खत्म किया जा सके।

संदर्भ-सूची

* राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) www.maco.gov. org
* india.gov.in
* Newsot bihar.com
* B.b.c.com 03 अप्रैल, 2020
* अमर उजाला 07 जुलाई, 2020
* मुक्त एचआईवी हेल्पलाइन
* www.muutahivhelp line. Org

वैदिककालीन आर्थिक जीवन : एक अध्ययन

राजेश कुमार सिंह

शोध छात्र, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ०प्र०)

सिंधु सभ्यता के विनाश व पतन के पश्चात् सप्त सिंधु प्रदेश में आर्यों की एक नवीन सभ्यता का विकास हुआ जिसे इतिहास में 'वैदिक सभ्यता' के नाम से जाना जाता है। वैदिक सभ्यता के अध्ययन के लिए जानकारी हमें वेदों से प्राप्त होती है। वैदिक सभ्यता से आर्यों की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है। वैदिक युग को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) ऋग्वैदिक सभ्यता (2) उत्तरवैदिक सभ्यता।

ऋग्वैदिककालीन आर्थिक जीवन

आर्यों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन और कृषि था। ऋग्वैदिक काल के प्रारम्भ में पशुपालन सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा तथा पशुओं, मुख्यतया गायों को प्रमुख धन अथवा सम्पत्ति के रूप में माना जाता था।[1] दूध और गोबर देने के अतिरिक्त गाय मुद्रा की भाँति प्रयुक्त होती थी। गायों के लेन-देन से वस्तुएँ खरीदी और बेची जा सकती थी। गाय दक्षिणा में भी दी जाती थी। दूध, माँस और खाल के लिए भैंस भी पालतू पशु था। भेड़ और बकरी से भी आर्य लोग परिचित थे। घोड़ा उन लोगों का परम उपयोगी पशु था। युद्ध में उसकी विशेष उपयोगिता थी। घोड़ा भी दान-दक्षिणा में दिया जाता था और कदाचित् उसका माँस भी खाया जाता था। हाथी का प्रयोग भी वे लोग लड़ाई में करते थे। गाड़ी और रथ खींचने में घोड़ी और ऊँट के साथ बैलों का भी व्यवहार होता था। पालतू पशुओं में कुत्ता, सुअर, गदहा और हिरण भी प्रमुख थे।[2] बाद के समय में कृषि भी उनका मुख्य व्यवसाय बना। इसी कारण, ऋग्वैदिक आर्यों की प्रारम्भिक सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर कबाइली व्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, यहाँ तक कि इस समय में भूमि और गृह अचल सम्पत्ति के रूप में स्थान प्राप्त नहीं कर सके थे। आर्य हल से खेती करना जानते थे और कई बैलों की सहायता से हल चलाते थे। कृषि में हल (जो लकड़ी का बना होता था) का प्रयोग आर्यों की एक मुख्य विशेषता थी। वे सिंचाई के साधनों का प्रयोग करना जानते थे और उसके लिए गहरे कुएँ खोदते थे।[3]

कृषि और पशुपालन के सिवा कुछ शिल्प भी प्रचलित थे। बढ़ई या रथकार का काम बड़े महत्व का था। वे लोग ही युद्ध के लिए रथ, कृषि के लिा हल और गाड़ी बनाते थे। युद्ध की सामग्री तैयार करने के कारण लोहार-कर्म्मार का काम भी बड़े गौरव का था। अयस (लोहा) का व्यवहार वे लोग जानते थे। राजस्थान के झुनझुनु नामक स्थान में जो उत्खनन हुआ है, वहाँ से प्राचीनतम लोहा गलाने का प्रमाण मिला है। चमड़ा रँगने और ऊनी कपड़ा बुनने के शिल्पों का भी बड़ा गौरव था। स्त्रियाँ चटाई आदि भी बनाती थीं। शिल्पकारों का पेशा सम्मानजनक था।[4]

पशुपालन और कृषि के अतिरिक्त आखेट भी इनकी आजीविका का साधन था। धनुष-बाण, जाल-फंदा इत्यादि इनके आखेट-सम्बन्धी हथियार थे।[5] वे पक्षियों को पकड़ने के लिए जाल का प्रयोग करते थे और हिरण, सिंह आदि पशुओं को पकड़ने हेतु गड्ढा खोदते थे।[6] गृह-उद्योग, शिल्प और दस्तकारी की भी काफी प्रगति हुई थी। लकड़ी पर सुंदर नक्काशी का काम भी होता

था। लोहा, सोना और चाँदी से ये लोग अच्छी तरह परिचित थे। कपड़े के लिए वस्त्र, वास और वसन शब्दों का व्यवहार ऋग्वेद में हुआ है। सूत, रेशम और ऊन के कपड़ों का प्रचलन था। व्यावसायिक संघ के रूप में ऋग्वेद में 'गण' और 'व्रात' शब्द का व्यवहार हुआ है। सुवर्णकार, रथकार, चर्मकार, रँगरेज, जुलाहे, रज्जुकार, रजक, कुम्हार, लोहार, गायक, नर्तक, सूत, व्याध, मछुए, गोप, कर्षक, वेणुकार, रसोइए, कलाबाज, महावत आदि अनेक शिल्पों का उल्लेख मिलता है।[7]

डॉ० आर० एस० शर्मा का विचार है कि आर्यो ने समुद्री-यात्राएँ आरम्भ नहीं की थीं और निरन्तर युद्धों में लगे रहने के कारण वे विदेशी व्यापार के हेतु पर्याप्त उत्पादन नहीं कर पाते थे। परन्तु डॉ० आर० सी० मजूमदार और वी० एम० आप्टे जैसे विद्वानों का कथन है कि आर्य समुद्री-यात्राएँ करते थे और उनका व्यापार बेबीलोन तथा पश्चिमी एशिया के देशों से होता था। ऐसे विवरण प्राप्त हुए हैं जिनमें 100 डाँड़ों से चलने वाले पानी के जहाजों का उल्लेख है। आन्तरिक व्यापार नदियों और स्थल मार्गों से होता था, इस बारे में सभी विद्वान सहमत हैं।[8] इस काल में व्यापार अधिकतर वस्तु-विनिमय के द्वारा होता था किन्तु इसी काल में गाय को व्यापार का माध्यम मान लिया गया। निष्क पहले सोने का एक आभूषण था किन्तु बाद में संभवत: इसका प्रयोग सिक्के के रूप में किया जाने लगा।[9] आर्यो ने किसी प्रकार के सिक्के का निर्माण नहीं किया था। इस समय का आर्थिक जीवन सम्पन्न था।

उत्तरवैदिककालीन आर्थिक जीवन

उत्तरवैदिक काल में आर्थिक क्षेत्र में काफी प्रगति हुई जिसके कारण बड़े-बड़े नगरों का निर्माण संभव हो सका। इस काल में मुख्य व्यवसाय कृषि हो गया। इसमें पर्याप्त प्रगति भी हुई। 24 बैलों तक को हल में जोतने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। निस्संदेह, ऐसे हल लोहे के बनते थे क्योंकि आर्यो को लोहे का ज्ञान 800 ई०पू० में हो गया था। जौ, चावल, गेहूँ, उड़द, मूँग, तिल, मसूर आदि खाद्यान्न पैदा किये जाते थे और वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जाती थीं। हस्तिनापुर से जंगली किस्म के गन्ने के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। इस समय में खाद का प्रयोग और ऋतुओं का ज्ञान कृषि-प्रणाली में उन्नति हो जाने के प्रमाण थे।[10] इस काल में लोहे के अर्थ में 'श्याम-अयस्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। संभवत: उत्तरवैदिक काल में ही लोहे के फाल का प्रयोग प्रारम्भ हुआ जिससे कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और पहले की अपेक्षा अत्यधिक अन्न का उत्पादन हुआ। इसी कारण इस काल में आसंदीवंत, कारौती, मष्णार, काम्पिल्य, कौशांबी और परिचक्रा जैसे नगरों का विकास हुआ।[11] कृषि-भूमि किसान की व्यक्तिगत संपत्ति थी जबकि चारागाह की संपत्ति गाँव की सम्मिलित संपत्ति थी। लगान के रूप में किसान राज्य को पैदावार का 1/10 से 1/6 भाग दिया करते थे।[12] इसी काल में फसल काटने के लिए लोहे की दरांती का प्रयोग किया जाने लगा।[13]

दूसरा मुख्य पेशा पशुपालन था। गाय, बैल, भेड़, बकरी, घोड़ा, कुत्ता, गधा, आदि के अतिरिक्त हाथी भी पाला जाने लगा था। इसके अतिरिक्त शिकारी, मछुए, सारथी, कुम्हार, सुनार, लोहार, रस्सी बनाने वाले, टोकरी बुनने वाले, धोबी, नाई, जुलाहा, रंगरेज, नर्तक, ज्योतिषी, चिकित्सक, गायक, जौहरी आदि का उल्लेख मिलता है जो उस काल के विभिन्न व्यवसायों के प्रतीक हैं। उत्तरवैदिक काल की एक मुख्य विशेषता व्यवसायों की संख्या में वृद्धि होना भी था।[14] आर्थिक क्षेत्र में आशातीत उन्नति स्वाभाविक ही थी क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए कृषि एवं व्यवसाय में प्रगति लाना अनिवार्य हो गया था।[15]

व्यापार प्रगति पर था और उस काल में विदेशी व्यापार तथा समुद्री यात्राएँ होती थीं, इसमें संदेह नहीं किया जाता है। 'श्रेष्ठिन' शब्द के बारम्बार प्रयोग से यह भी अनुमान किया जाता है कि धनाढ्य व्यापारी और संभवत: उनके व्यापारिक संघ थे। कर्ज देना एक लाभदायक व्यवसाय था। यद्यपि आर्यो ने अभी तक सिक्के बनाना प्रारम्भ नहीं किया था, परन्तु विनिमय के लिए 'शतमान' और 'निष्क' नामक सोने के टुकड़ों का प्रयोग होता था जो एक निश्चित वजन के होते थे।[16] यातायात क लिए मुख्यत: बैलगाड़ी का प्रयोग होता था। कभी-कभी घोड़ों और हाथियों का प्रयोग भी इस कार्य के लिए किया जाता था। नावों और समुद्री जहाजों का प्रयोग नदियों व समुद्रों पर यातायात एवं यात्राओं के लिए होता था। आर्यो का धातु-ज्ञान भी पहले से अधिक हो गया था। ऋग्वैदिक आर्य मुख्यतया सोना, काँसा और ताँबे का प्रयोग करते थे। परन्तु अब आर्य चाँदी, लोहा, पीतल और सीसा का प्रयोग भी करने लगे थे।[17]

इस प्रकार, उत्तर वैदिककालीन आर्थिक जीवन में ऋग्वैदिक काल की तुलना में सुधार हुआ। किन्तु कुल मिलाकर इस काल में भी अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्वाह एवं ग्रामीण ही बना रहा।

संदर्भ-ग्रंथ

[1] प्राचीन भारत, एल०पी० शर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1999, पृ० 54
[2] प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राधाकृष्ण चौधरी, भारती भवन, 1989, पृ० 62
[3] शर्मा, पृ० 54
[4] चौधरी, पृ० 62
[5] वही, पृ० 62
[6] शर्मा, पृ० 55
[7] चौधरी, पृ० 62
[8] शर्मा, पृ० 55
[9] प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, ओम प्रकाश, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ० 82
[10] शर्मा, पृ० 62
[11] ओम प्रकाश, पृ० 83
[12] शर्मा, पृ० 62
[13] ओम प्रकाश, पृ० 18
[14] शर्मा, पृ० 63
[15] चौधरी, पृ० 63
[16] शर्मा, पृ० 63
[17] वही, पृ० 63

ललितक उपन्यासमे चित्रित समाज

डॉ० गोपाल कुमार

अतिथि शिक्षक, मैथिली विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी (बिहार)

विषयगत परिवर्तन आ शैली-शिल्पक दृष्टिकोणसँ 1960 ई.क पश्चात रचित मैथिली उपन्यासक विशेष महत्वपूर्ण अछि जाहिमे ललितेश मिश्र ललितक उपन्यास पहिल ओ विशिष्ट स्थान रखैत अछि।

ललितक एकमात्र उपन्यास "पृथ्वीपुत्र" अछि जे मिथिला मिहिरक नओ अंकमे 10-05-1964 सँ 05-07-1964 धरि धारावाहिक रूपमे प्रवाहित भेल छल तथा पोथीक आकार 1965 ई. मे ग्रहण कएल। ओ अर्द्धशतक कथाक रचना कएलनि। एगारह गोट हुनक कथाक एक संकलन "प्रतिनिधि" नामे 1960 ई. मे प्रकाशित भेल। एमहर आबि ललितक रचनावली सेहो प्रकाशित भेल अछि। हिनक कथामे मात्र मिथिलाक सामाजिक जीवनेक नहि, प्रत्युत अंतरराष्ट्रीय-राष्ट्रीय भावधाराक अभिव्यक्ति सेहो अछि। एकर अतिरिक्त समय-समयपर लिखित एकांकी, गोनू झाक चौपाड़ि, पोथीक परिचय, संस्मरण आ समीक्षा आदि उल्लेखनीय अछि।

"पृथ्वीपुत्र" एक आंचलिक उपन्यास अछि। एहिमे उपन्यासकार ललित सामाजिक एक गोट प्रमुख समस्या शोषण-उत्पीड़ण आशा– आकांक्षा, मनोदशा सभसँ पैघ बात ई जे बात जे सामाजिक मर्यादामे रहि अपन शील रक्षा, स्वतंत्र अस्तित्वक जीवट भाव, दृढ-इच्छा, चेतनाक संचार करब एकर वैशिष्ट्य थिक।

"पृथ्वीपुत्र" उपन्यास एक समस्यामूलक मौलिक सामाजिक उपन्यास अछि। एहिमे जमीन्दारी उन्मूलनक फलस्वरूप भूमि सुधार आंदोलनपर आधारित बटाईदारी, भू-स्वामित्व आदिक समस्या केंद्रमे राखि एहि ठाम सामाजिक– आर्थिक परिवर्तनक स्वस्थ दिशा-निर्देश देलनि अछि।

मैथिली साहित्यमे सर्वप्रथम धीरेंद्रक "भोरूकबा" शीर्षक आंचलिक उपन्यासक रचना कएलनि। पृथ्वीपुत्र एहि कड़ीक दोसर उपन्यास थिक। पृथ्वीपुत्रक कथावस्तु एक निम्नवर्गीय परिवारक कथापर आधारित अछि। ई एक जनवादी उपन्यास थिक, जाहिमे जमींदारक अत्याचार एवं भूमिहीनक संघर्ष अत्यंत बेजोड़ ढंग से व्यक्त भेल अछि। एहिमे नवजागरण उद्-घोष अछि। उपन्यासकार बेजोड़ यथार्थवादी ढंगसँ कथा प्रस्तुत कएलनि अछि।

प्रस्तुत उपन्यासक कथाक समस्त घटना फारबिसगंज (निर्वातमान पूर्णिया तथा वर्तमान अररिया जिला) जितपुर गामक बबूरबन्ना टोलसँ संबंध अछि। एहिमे किसान भूमिपतिक चित्रण भेल अछि। एहि टोलमे दुसाध जातिक लोकक संख्या अधिक अछि, जेकरा जमीन नहि अछि। दुसाध टोलक बिसेखी पासवानकँ सब क्यो जनैत अछि। ओ ओहि क्षेत्रक नामी– गरामी चोर अछि। बिशेखीकँ गेना, सरूप ओ बिजली तीन संतान अछि। सरकार दिससँ जमीनक सर्वे होइछ आ बिसेखी नामसँ सेहो किछु जमीन खतियान भए जाएत अछि।जीतपुर जंग बहादुर सिंहकँ जमीन्दारी अंतर्गत अबैत अछि। ओ सर्वेकँ दौरान देल गेल खतियानी जमीन सबपर मुकदमा दायर कए दैत अछि। एम्हर बिसेखीक परिवार खेत सभकँ जोति कए मकई, कुरथी आ पटुआ बुनल गेल। मुदा जमींदार अपन अधिकार खेतपर कायम रखलक। एहि कारणेँ बिसेखी आ जमींदार जंग बहादुरक संग संघर्ष भेलापर लए जंगबहादुर बिसेखीक पटवा लुटि लेलक आ एहि संघर्षमे बिसेखीक अधिकार अपन खेतपर भेल आ संघर्षमे बिसेखी विजय भेल।

एहि उपन्यासमे उपन्यासकार बिसेखीक बदलल मनोभावकँ सफल चित्रण कएलनि अछि, कारण बिसेखी पहिने इलाकाक नामी चोर छल। पुलिसक नजरिमे सी. क्लास बीसी अर्थात बेड कैरेक्टर रहय। मुदा सर्वे अयलाक बाद बिसेखी मोन बदलल आ मेहनतसँ जीवन यापन करबाक प्रवृत्तिसँ जुड़ल। एहि तरहँ उपन्यासकार भटकल लोककँ सुधरैत आ नीक रास्तापर जीवनयापनक सफल चित्रण सेहो देखौलनि अछि।

"पृथ्वीपुत्र" किसान अछि जे भूमिपतिक शोषण-उत्पीड़न-दमन केर चक्कीमे कुहाइत– पिसाइत भए बनि संघर्षक बाटपर ठार होइत अछि। एहि उपन्यासक कथा कोशीक छारनि श्परमानश धारक कातमे बसल लोक जीवन यापनक दशाक चित्रण भेल अछि। जीविका पटुआ,मकई, कुरथी आदि केर खेती, मजूरी आ चोरी। सिकमी बटाइदारीक हक पाबितो जमींदार आ ओकर सर– सिपाहीक अत्याचारसँ त्रस्त किसान सभ। बिसेखी, गेना, बिजली आ सरूप केर परिवारक केंद्रीय भूमिका अछि। सरूपक नेतृत्वमे गामक किसान लोकनि सफलतापूर्वक संघर्ष करैत अछि। सबके अपन अपन हक भेटि जाइत अछि। मुदा एहि संघर्षमे बिसेखीकेँ आजीवन भरि जहलक सजा भेंट जाइत अछि आ गेनमा मारल जाइत अछि। बिजली-कलपू मिसरक प्रेम कथा अवैध आ वासनात्मक होइतो सहज आ बेजोड़ चित्रण भेल अछि। एहिमे समानांतर कथा-प्रवाहकेँ बहुत दूर धरि अतिक्रांत करितो मुख्य जमीनपर नहि आबि सकल अछि। अपन पति हीरालालसँ बिजलीक विवाह-विच्छेद युगधर्म अछि। मुदा अपन समर्पित प्रेमीक सहमत रहितो बिजली कलपू मिश्रक संग अपन विवाह वा पुर्नलगन अगिला जन्मक लेल सुरक्षित रखलक अछि जे मात्र भावात्मक आदर्शक सूचक थिक। धैरवीक रूपमे ओकर मान्यता-प्रतिष्ठा स्पृहणीय नहि थिक। तखन ओकर चरित्र बड़ यथार्थ आ सजीव अछि। पत्नी आ प्रेमिकाक दोहरी भूमिकामे कथा कौतूहल-चमत्कारक केंद्र– बिंदु अछि। कथामे ओकर केंद्रीय भूमिका अछि। मुदा नायिका रूपमे सटीक बैसत अछि सरुपाक भाउज आ पत्नीक भूमिकामे जमल बेनी। शिल्प ओ संतुलनक दृष्टिसँ ई उचित नहि लगैत अछि। कथामे बेस उतार-चढ़ाव अछि, नवीनता ओ प्रगतिशीलताक भावना अछि, अधिकार ओ कर्तव्यक चित्रण भेल अछि। नव-पुराना मेल-जोलक चित्रण अछि। ननदि-भाउज मे नोक-झोंक, दियोर-भाउजक हँसी-ठठ्ठा आदिक सफल चित्रण बहुत आकर्षक लगैत अछि।

"पृथ्वीपुत्र" उपन्यासक कथाक अंग-प्रत्यंगमे एक संतुलन अछि। घटनाक्रमक यथोचित विकासक्रम, जीवनक सहज अनुकृति, कौतूहलक-औत्सक्यक क्रमिक बृद्धि आदिमे उपन्यासकार सफल चित्रण कएलनि अछि। एहि संदर्भमे महान समीक्षक आचार्य रमानाथ झाक मंतव्य दृष्टव्य अछि– "एहिमे कथानक अछि जाहिमे गति छैक, कथहिसँ चरित्रक चारुता चित्रित अछि, कथामे औत्सुक्य अछि जे क्रमशः बढ़ल अछि ओ कतहु क्षीण नहि होअए पओलक अछि। कथानकक मूल तत्वजे थिकैक संघर्ष से बाह्य-आभ्यन्तर दुनूप्रकारक कथहिसँ स्फुट भए जाइत अछि।"[1]

हुनक दृष्टिमे स्थान, समाज, गांव- घर, परिवेश– परिस्थिति आदिक चित्रण एहि उपन्यासमे अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्र अछि।

ललितक दृष्टि अत्यंत, स्वस्थ, भव्य, सुरुचिपूर्ण ओ सत्यपरक अछि।एहि उपन्यासमे मनोविश्लेषणात्मक अंतर्द्वंद बड़ मार्मिक चित्रण भेल अछि।अवैध प्रेमक चित्रणोमे यथासंभव संयम-विवेक ओ औचित्यक रक्षा कएल गेल अछि।

पृथ्वीपुत्र उपन्यासक कथाक शिल्पपर मार्क्स आ फ्राइडक केंद्रीय प्रभाव अछि।रोटी आ सेक्सक पीड़ा सहज रूपमे देखल जाइत अछि। तँ ओकर सहज निदानो सहजतापूर्वक कएल गेल अछि। सरुप– गेनाक संघर्ष प्रथम कोटिक आ बिजली-कलपूक दोसर प्रकारक रूपमे अछि। रोटीक भूख आ यौन-बुभुक्षा दुनू सहज रूपसँ दैहिक पीड़ा अछि। उपन्यासोमे एकर स्वाभाविक अभिव्यक्ति अस्वस्थ आ स्वस्थ निदानक चेष्टा अछि। अर्थक झंडा गेना-सरुपक हाथमे अछि आ सेक्सक बिजलीक हाथमे। सरुपमे क्रांतिक स्वरूप निर्देश अछि आ बिजलीमे काम-भावनाक त्वरित सहज संयोग। मूल समस्या भू-स्वामित्वक अछि। प्रश्न अछि–जमीन ककर? उत्तर सहज रूपमे देल जा सकैछ : जे जोतय तकर। धन आ धरती बाँटिकेँ रहत। कमाई वला भरपेट खाएत। कथानायक सरुपक शब्दमे देखल जा सकैछ–

"धरती माता छथिन। हुनकर जे सेवा करत ओ तकरे छथिन। हुनकर मालिक के बनि सकैए। जे हुनकर सेवा नै कश हुनकर मालिक बनत तकरा लग ओ नै रहथिन।तेकरा त्याग देथिन। असलमे धरती जोतिनिहारक थिक।हरबाह थिक जे धरतीक असल बेटा थिक। जँ अपन पसीना सँ धरती-माताकेँ पूजै अछि।"[2]

उपर्युक्त गद्यांशसँ उपन्यासक कथा ओ कथ्य दुनूक चित्रण स्पष्ट भए जाएछ।

एहि उपन्यासमे चित्रण कलाक दृष्टिएँ कथाक पात्र सभमे जीवित-जागृत क्रियाशील अछि। प्रत्येक पात्र शब्दमे नव-नव तेवर अछि। कथाक अंगरुपसँ उपन्यासक पात्र लोकनिक भूमिका सेहो सशक्त अछि। कथानायक सरुप आ नायकक बहिन बिजलीक चरित्र बड़ सजीव आ सशक्त अछि। बेनी नायिकाक भूमिकामे आकर्षक अवश्य अछि, मुदा बिजली जकाँ प्रभावी आ शक्तिमे नहि अछि। फेरि पुरुष मोर्चा पर जे झंडा सरूपक हाथमे छनि। तहिना नारीक मोर्चापर बिजलीए थमने अछि। लेखक प्रत्येक पात्रक सटीक रेखाचित्र खिचलनि अछि बिजलीक संदर्भमे ओ कहैत छथि–

"अपन नामक प्रतिकूल बिजली श्यामलांगी रहय। छुरिया नाक, धनुखा भँउह आ अँउठिया केस। नाक पातरि। बिजली नाम मगर आँखिसँ सार्थक होइक। आमक फाँकसन चीरल आँखि, पुतरी सदति चंचल। चक-चक करैत एकटा लाल नुआ आ पीअर छींटक कसल आंगी पहिरने। .... बबूरक कोमल फूल; दूर्वादलक श्यामलता मेघक गहन गंभीरता-सभ जखन मिलि जाइक तँ ओकर बैटी बिजली भए जाइक।"[3]

बिजलीक अवैध संबंध विवाहसँ पूर्वहि कल्पनाथ मिश्र उर्फ कलपू मिसरसँ अछि। बिजलीकँ समाजिक वैवाहिक नियमक खूब ख्याल अछि।ओ दूसाधक बेटी थिकीह आ कलपू मिश्र ब्राह्मण छथि। ई बात ओकरा सदिखन स्मरण रहैत अछि। जखन कलपू ओकरा कहैत छैक जे हमरा संग गाम छोड़ि कए जतए तोरा मन होइक, भागि-चल। तखन एक क्षण अत्यंत गंभीर मुंहसँ विहूल नजरसँ कलपूकँ ताकि बजैत अछि–

"हमरा संग भगबह? एतय कथीक डर होइत छहु? ककर डर होइत छहु?"[4]

कलपू ओकरासँ विवाह करबा लेल सदिखन तैयार छथि। ओ कहैत छथि तोरा छोड़ि आर केओ हमरा नहि अछि तखन बिजली सामाजिक मर्यादा धयान दैत कहैत छथि –

"हम तोरा संगै ने रहब, ने बिआहे करब। हम नियम केने छी, बिअहुआ के त्याग आब ही तोहर सूति-पाती हमरा छजत? हम अहिना तोरा लग अबैत रहबह। चोरा कश नुका कश। साँझखन,रातिमे, बेरिया मे।"[5] इएह चारित्रिक ईमानदारी ओकरा साहस दैत अछि तथा ओ डंकाक चोटपर कलपू मिसरसँ प्रेम करैत अछि। बिजली चाहत तँ कलपू ओकरासँ विवाह कश लितथि। कलपू बहुत जिद करैत छथि। मुदा नहि। प्रेम बन्धन नहि मानैत अछि।उदात प्रेम मुक्त करैत अछि। विवाह अधिकार अछि। बिजलीके अधिकार नहि खाली कलपू मिसरक प्रेम चाही। औ शब्दक सही अर्थमे दीवानी छल। एकनिष्ठ प्रेममे पागल दीवानी।

पृथ्वीपुत्र उपन्यासमे संघर्ष-कथाप्रेम-कथाक मणिकांचन योग उपन्यासके विशिष्टता प्रदान करैछ। वास्तविकता तश ई जे संघर्ष आ प्रेम एकहि मनोभावक विलक्षण अभिव्यक्ति होइछ। रोमांसक बीना संघर्ष संभव नहि। कहबाक आशय ई जे क्रांति आंदोलन आ संघर्षक रोमांटिक भाव-बोध अछि। रोमांटिक भैने संघर्षक आगिमे कूदब असंभव। दोसर दिस रूढ़ीवादी समाजमे प्रेम अपने एकटा एकता महान संघर्ष थिक। कदाचित एहि अर्थमे कहल गेल अछि–ष्प्रेम पुरुषार्थ महानष प्रेम महान पुरुषार्थ अछि। आवेगपूर्ण, भावुकता, आत्मकरुणा, सरलता, समर्पणशीलता,एकपक्षीय निष्ठा, दृष्टिहीन आस्था आदि सभ श्स्त्री सुलभश गुण-दोष प्रेम नहि होइछ। प्रेम हेतु संघर्ष करभ आ कष्ट उठेबाक साहस आ अनुशासन सदृश्य पुरुषोचित गुण आवश्यक। एहि कहबैछ पुरुषार्थ। इयह थिक प्रेम। एतय पुरुषार्थ मध्यकालीन 'शौर्यक' अथवा अर्थ, धर्म, काम, मोक्षक अर्थमे प्रयुक्त नहि भेल अछि। प्रेममे पुरुषसार्थक आवश्यकता जीवनक कठोर चुनौती बीच स्वयं प्रेम भावनाक रक्षाक लेल होइछ। श्पुरुषार्थश शब्दमे निहित लैंगिक पूर्वाग्रहपर पाठक ध्यान नहि देथु। कारण शब्द निर्माण कर्ता सेहो पुरुषवादी होइता। पुरुषार्थ हेतु स्त्रीवाची शब्द नहि गढलनि, कारण हुनक दृष्टिएँ स्त्रीमे ओ प्रतिभा आ साहस संभव नहि।

प्रेमक उपर्युक्त अवधारणाक आधारपर कहल जा सकैत अछि जे पृथ्वीपुत्र नायिका पुरुषार्थ सँ भरल अछि। बिजली प्रेम करबाक सपना देखलक, प्रेम करबाक साहस कएलक। बिजलीक में गहराई आ व्यापकता दुनू अछि।

पृथ्वीपुत्र उपन्यासमे मुख्यता तीन बिंदु चित्रण सोझामे अबैछ। पहिल तत्कालीन सामाजिक-राजनीति पृष्ठभूमिसँ उपजल किसान आंदोलन आ मधुबनीक बटाईदारि आंदोलन, दोसर दलितक चित्रण आ तेसर बिजली-कलपू प्रेमक चित्रण।

पृथ्वीपुत्र उपन्यासक मूल कथ्य बटाइदारी आंदोलन अछि। भूमि सुधार आंदोलन, जे किसान आन्दोलन आ बटाइदारीक नामसँ सेहो जानल जाइत अछि। एहि उपन्यासक विषय वस्तु बटाईदारीक संघर्षक व्यापक्ते नहि एकर गहराई सेहो रेखांकित करैत अछि। उपन्यासमे लेखक श्री ललित अंगठिमोड़ ल लैत ग्रामीण समाजक चित्र खिचबाक प्रयास कएलनि अछि। एहि चित्रमे एक दिस सवर्ण अछि त दोसर दिस भूमिहीन मजदूर, एक दिस शोषक अछि त दोसर दिस शोषित दलित।

मैथिलीक श्री धीरेंद्र बाबूक उपन्यास भोरुकबा निश्चित रूपसँ मैथिली साहित्यक अनुपम निधि थिक। एकरो प्रकाशन 1964 मे धारावाहिक रूपमे मिथिला मिहिरमें भेल। पृथ्वीपुत्र जकाँ इहो उपन्यास 1965 मे प्रकाशित भेल। संपूर्ण गुणवत्ता रहितो पृथ्वीपुत्र, भोरूकबा सँ बहुत आगू निकल जाएत अछि।

सामंती समाज आ सामंती व्यवस्थामे दलित जीवन दुर्गति भए जाइछ। ललित अपन उपन्यासमे आजाद देश (मिथिला)मे घटित परिवर्तन आ बदलावके दलित जीवनक यथार्थसँ जोरि उजागर कएलनि अछि। ललितक उपन्यासक विशेषता छनि जे ओ सामंती

व्यवस्थाक नोकदार नख-दंतसँ खूब परिचित छथि, ताहि लेल दलित वर्गके पूरा सहासक संग ठार होएबाक हेतु ओकरा मे आन्तरिक आओर बाह्य शक्तिक संधान करैत छथि।

पृथ्वीपुत्रमे ललित वर्णवादी-सामंतवादीक विघटनक अनेकानेक दृश्यक चित्रण करैत पूंजीवादीक अंतर्विरोधके सेहो प्रकाशित करैत छथि। प्रेमचंद्रक ऐतिहासिक वक्तव्य सौंदर्य के प्रतिमान बदलने होंगे तँ अनुरूप ललित बिजली, सरूपा, गेनालाल तथा बिसेखीक माध्यमसँ पृथ्वीपुत्रमे मिथिलाक दलित जीवन आ संघर्षक बृहद आख्यानक चित्रण रचलन्हि अछि। यद्यपि उपन्यासकारक उद्देश्य दलित जीवनक चित्रण बारिक विश्लेषण नहि अपितु दलित संघर्षक विस्तृत विश्लेषण छनि तथापि बाय प्रोडक्टक रूपमे दलित जीवनक चित्रण सेहो अत्यंत जीवंत रूपेँ उपन्यासमे व्यक्त भेल अछि।

दलित जीवनक चित्रण वा निम्न जातिक चित्रण मजदूरी प्रधान होइत अछि। दलित जीवनक कर्म-सौंदर्यक कलात्मक चित्रणक अभिव्यक्तिक नाम थिक-ष्पृथ्वीपुत्रष यत्र-तत्र कर्म-सौंदर्यक दीप्तसँ दीपित सरूपा आ बिजलीक चरित्रमे एहि कर्म-सौंदर्यक चरित्रमे आकर्षक छवि-छठा संपूर्ण उपन्यासमे विन्यस्त अछि। उपन्यासकार रूप-वर्णन चित्रण धरिमे कर्म-सौंदर्यक सफल चित्रणक आभा देखैत छथि–

"सरुपक चाकर श्याम पीठ घामे तीतल रहैक। रोदमे चक-चक करैत घामक टघार कपारसँ नाकक नोक दश चुबै। भरल-चढ़ल छातीपर घाम टघरि-टघरि चापत पेट पर बहि डाँड़क धोतीमे सुखैल चलि जाइक। मोन एकदम महुरा गेल रहैक। मुँह लाल स्याह मुदा आँखि ओहीना निश्चल आ स्थिर रहैक।जतेक रौद तबतैक,जतेक घाममे नहा जायत,जतेक मोन माहुर होतइ,ततेक आर मस्त भय हर जोतत। अपन घाम ओ रौदक माहुरमे मगन भय टिटकारलक छोट-छोट बड़दक जोड़ीकेँ।"[6]

ई थिक गतिशील कर्म-सौंदर्य, वातावरण चित्रण पर पकड़ आओर चरित्र चित्रणक वैशिष्ट्य। तथापि जँ पृथ्वीपुत्र पात्र किनको मूरत जकाँ ठाढ बुझना जाइछ, तँ एहिमे कि कहल जा सकैत अछि।

पटुआ खेतीक विन्यासक अतिरिक्त दलित जीवनक पंचौती– व्यवस्था होकर कार्यप्रणाली, ओकर महता दलित जीवनक भोलापन आ संगही आपसी मतभेद सब किछु अत्यंत वास्तविक बनि गेल अछि। समस्त पृथ्वीपुत्रमे एक बातपर विशेष ध्यान देल गेल अछि -

"जिबैत रहब पहिने जरूरी छैक संसार मे। तखन लोक-लाज। नीक बेजाए।"[7]

वातावरण सफल चित्रण कोनो उपन्यासके मांसलता प्रदान करैत अछि। ओकर स्वरूपके गतिशील आ विश्वसनीय बनबैत अछि। पृथ्वीपुत्र उपन्यासमे वातावरणक चित्रण बड़ संतुलित ओ सहज रूपमे कएल गेल अछि। सुनियोजित आ रोचक कथात्मक प्रभाव अनुकूल वातावरण एवं चरित्र आ घटनाक एतय सांगोपांग वर्णन भेल अछि। ई वर्णनात्मक शैलीमे लिखल गेल अछि। उपन्यासक मूल उद्देश्य नवयुग, नव समाज आ नव मनुक्खक कथाके नवीन ढंग, नवीन दृष्टिआ नवीन व्याख्याक संग कहबाक अछि, ताहिमे उपन्यासकारके पर्याप्त सफलता भेटल छनि।

आलोचक रमानाथ झा द्वारा पृथ्वीपुत्रक महत्वपूर्ण विशेषता सेहो रेखांकन योग्य अछि। पृथ्वीपुत्रक कथानकक गतिशीलता आलोचकके आकर्षित करैत छनि। वास्तवमे स्थिर चित्रक फोटोग्राफी आसान होइछ। मुदा जीवंता आ गतिशील चित्रक चित्रांकन अत्यंत कठिन। पृथ्वीपुत्र गतिशील जीवनक झांकी अछि।

पृथ्वीपुत्र उपन्यासमे नायक स्वरूप बिजलीक आग्रहके मानि अपनासँ अधिक आयुक भाउज बेनीके ओ पत्नीक रूपमे स्वीकार कए लैत अछि। एहिसँ ओकर आदर्शवादी विचार भावना प्रकट होएइछ। भाउजसँ संबंधके ओ सुखी दांपत्य जीवन बितबैत अछि। एहि रुपे सरुपक चरित्र अंकित करवामे उपन्यासकार अपन अप्रीतम प्रतिभाक परिचय देने छथि। घटना– क्रमक संगही ओकर चरित्रक एक-एकटा तह फुजैत चल जाइत छैक आ ओकर आंतरिक एवं बाह्य रूप स्पष्टतर आ भव्यसँ भव्यतर होइत देखल जाइछ। ओ स्वतंत्र प्रकृतिक युवक थिक।ओकर चरित्रक चित्र विकासात्मक अछि।

कोनो उपन्यासकार जनसमान्य हेतु बोधगम परिस्थितिक चित्रण करैत छथि, जतय हिनक हृदयक भाव सरल, सहज, स्वाभाविक तथा ठेठ मैथिली संग मिलिकय रचनाकेँ हृदयस्पर्शी बना दैत अछि।

उपरोक्त वर्ण्य-विषयक विवेचनसँ ई सिद्धि भ जाइछ जे श्री ललित साहित्यिक रचना-संसार समसामयिक जन-जीवनक चित्रकेँ ठोस रूपेँ अभिव्यक्त करैत अछि। एही उपन्यासमे लेखक प्रखर यथार्थ-बोध, धरती ओ जन-गणक प्रति अनन्य प्रेम, आस्था एवं विश्वाससँ आघंत मंडित अछि। युगक शोषण, स्वस्थ एवं स्वतंत्र जीवन हेतु संघर्षरत मनुक्खक सफल चित्रण तथा अपन माटि-पानिक गन्ध, ग्राम्य ओ नगरक जीवनक विषमता बीच स्वस्थ-सबल सामाजिक यथार्थक प्रशस्त सम्वेदनाक परिचायक अछि।

एहि तरहँ श्री ललितक पृथ्वीपुत्र उपन्यास औपन्यासिक तत्व सभक आधारपर समाजक सफल चित्रण कएलनि अछि।

संदर्भ

1. पृथ्वीपुत्रक भूमिकासँ-ललित; प्रकाशक– मैथिली अकादमी, पटना; प्रकाशन वर्ष-चारिम संस्करण-2012 ई.
2. पृथ्वीपुत्र-ललित; पृष्ठ सं. 62-63, प्रकाशक-मैथिली अकादमी, पटना; प्रकाशन वर्ष-चारिम संस्करण-2012 ई.
3. ओएह-पृष्ठ सं. 06
4. ओएह-पृष्ठ सं. 25
5. ओएह-पृष्ठ सं. 85
6. ओएह-पृष्ठ सं. 02
7. ओएह-भूमिकासँ

मिथिला का धार्मिक जीवन

डॉ० गुड़िया कुमारी

विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय, इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हमारी सृष्टि परिवर्त्तनशील है। समय के प्रवाह के साथ-साथ मानव की विचारधारा का प्रवाह भी दिशा परिवर्त्तन करता गया और वस्तुत: संस्कार क्रम में मानव जाति का भाव जगत ही नहीं उसके चिन्तन की दिशाएँ भी प्रकृति के विविध रूपतामक परिचय एवं उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित है। मानव जीवन के विकास, संस्कार और संस्कृति में प्रकृति का बहुत ही बड़ा सहयोग रहा है। जीवन के प्रथम प्रहर में जब मानव ने नयनोन्मीलन किया होगा, तो उसे सभी दिशाओं में प्रकृति ही अपने विविध रूपतामक परिचय एवं उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित है। मानव जीवन के विकास, संस्कार और संस्कृति में प्रकृति का बहुत ही बड़ा सहयोग रहा है। जीवन के प्रथम प्रहर में जन मानव के नयनोन्मीलन किया होगा, तो उसे सभी दिशाओं में प्रकृति ही अपने विविध रूपों में दृष्टिगत हुई होगी।

प्रकृति की विविधता, विराटता एवं चिचित्रता ने मानव को अवश्य ही विस्मय की स्थिति में डाल दिया होगा, तभी तो मनुष्य वन्य में रहते-रहते उस जीवन से ऊब गया। और एकाकी जीवन जीने की अपेक्षा एकत्र होकर सामूहिक रूप से सामाजिक जीवन की कल्पना करने लगा। क्रमश: धीरे-धीरे वो विकसित होते गये। किसी विकास के क्रम में अपने दैनिक क्रिया के आलावे उसमें उन्होंने पूजा-पाठ को शामिल किया। पत्थर को भगवान मानकर उनकी पूजा आदि की कल्पना कर उनको मूर्त रूप प्रदान किया। वहीं से प्रारंभ हो गया मनुष्य का धार्मिक जीवन। जो आदिकाल से चलता हुआ आज कलान्तर में भी इतनी अधिक विकसित हो चुकी है। जिसकी संक्षेप में समेटना असंभव प्रतीत होता है। वैसे तो प्रत्येक देश, समुदाय का अपना-अपना धर्म एवं रीति-रिवाज है। लेकिन सबसे अलग एवं सबसे विकसित यहाँ की जनसामान्य से उद्भूत हमारी मिथिला की जो धार्मिक जीवन है, वो किसी-ना-किसी रूप में मनुष्य को अमूल्य योगदान देकर अपनी विशिष्ता को प्रतिस्थापित करती है।

मिथिला का धार्मिक जीवन

मिथिला के इतिहास एवं संस्कृति के अति विशाल भाग का अभिन्न हिस्सा है, मिथिला का धार्मिक जीवन। जो एक साथ मिथिला लोकसंस्कृति के अन्तर्गत धार्मिक जीवन एवं इतिहास की जीवनता का संवाहक है। मूलत: हमारी जो संस्कृति है, मानवमूलक संस्कृति है। अगर यह कहा जाय कि आकाश की व्यापकता, समीर की शीतलता, अग्नि की उष्णता, जल की सरसता, सहिष्णुता भारतीय संस्कृति के निर्णायक तत्व हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। शांति, सद्भाव, संवेदनशीलता, सरसता, धार्मिकता, संयम, नैतिकता, विवेकशीलता आदि भारतीय संस्कृति की पहचान है। तभी तो इतिहास साक्षी है कि प्रारंभिक काल से ही भारत की श्रीवृद्धि एवं समृद्धि में मिथिला के धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जो इस प्रकार से है।

मिथिला की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि परंपराओं में एक विशिष्ट पहचान रही है। पहले बतलाया जा चुका है कि मिथिला के प्रमुख निवासी हिन्दू तथा मुसलमान हैं। यद्यपि मुसलमानों में भी विभिन्न फिरके हैं, फिर भी इस्लाम मजहब के अनुयायी हैं। हिन्दुओं में इस तरह की बात नहीं। उनके अनेक सम्प्रदाय, पंथ तथा मतवाद है। उनके बीच विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-उपासना का प्रचलन है। विभिन्न सम्प्रदायों में दीक्षित होने के बावजूद हिन्दू एक अत्यंत व्यापक धर्म में आस्था तथा निष्ठा रखते हैं। उसे सनातन धर्म कहते हैं। यह धर्म एक ऐसा माध्यम हैं, जिसके द्वारा सभी एक सूत्र में आबद्ध है। परिणामस्वरूप बाह्य विभिन्नताओं और अनेकताओं के बीच उनमें एक आंतरिक एकता रहती है। मिथिलावासी अतिवादी नहीं अपितु समन्वयवादी और

मध्यममार्गी होते हैं। वे पंथ और सम्प्रदाय की संकीर्ण सीमाओं में बंध कर नहीं रहते। यही कारण है कि वे एक समय में शिव, आदि शक्ति भगवती, भगवान राम, लीला पुरुषोत्तम कृष्ण, संकटहरण हनुमान, सिद्धिदाता गणेश एवं सत्यनारायण भगवान के अनन्य भक्त होते हैं और शीष झुकाकर उनके सामने निजी कामना पूर्त्ति की याचना करते हैं। इस अर्थ में उसे बहुदेवोपासक कह सकते हैं। एक ही समय में एक मैथिल अपने ललाट पर भस्म, रक्त, चन्दन, सिन्दूर तथा श्रीखंड का लेप कर मानों शिव, शक्ति तथा भगवान विष्णु के प्रति संचित अपनी आंतरिक श्रद्धा भावना को व्यक्त करता है। सामान्य हिन्दुओं के लिए हर और हरि में कोई अन्तर नहीं है।

भलहरि मलहर भल तुअ कला,
खन पित वसन खनहिं बघच्छला।

विद्यापति की इन पंक्तियों में मानो उन्हीं की भावना मुखरित हुई है। उनकी दृष्टियों में शिव और शक्ति में कोई पार्थक्य नहीं। राम और कृष्ण की वंदना उनके हृदय को समान रूप से आह्लदित करती है, शालिग्राम तथा शिवलिंग की पूजा उन्हें समान रूप से आह्लदित करती है, शालिग्राम तथा शिवलिंग की पूजा उन्हें समान रूप से पावन बनती है तथा पंचदेवता[2]– गणेश, शंकर, विष्णु सूर्य और भगवती एवं नवग्रह का पूजन उनके लिए समान रूप से लाभकारी सिद्ध होता है। शिव को आराध्यदेव मानने वालों को "शैव" तथा उनके संप्रदायकों "शैव संप्रदाय" कहते हैं। मिथिला में शिव की पूजा दो रूपों में की जाती है : शिवलिंग की पूजा और शिवमूर्त्ति की पूजा। किन्तु अधिकांश मिथिलावासी लिंग की ही पूजा करते हैं। घर-घर में शिवलिंग की पूजा तथा गाँव-गाँव में शिव मंदिर की स्थिति बतलाती है कि शिव मिथिला के बड़े ही लोकप्रिय देवता हैं।

शक्ति के उपासक को शाक्त और उनके सम्प्रदाय को शाक्त सम्प्रदाय कहते हैं। शक्ति को भगवती, दुर्गा, काली, गोसाउनि आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। प्रत्येक मैथिल के घर में गोसाउनि होती हैं, जिन्हें घर की कुलदेवली कहते हैं। किसी भी शुभ कार्य करने से पहले गोसाउनि की आराधना की जाती है। रक्त परिधान, ललाट पर रक्त चन्दन तथा सिन्दूर बिन्दू शाक्तों के लक्षण हैं। वाममार्गी प्रयोगों के द्वारा जो भगवाती को सिद्ध करते हैं उन्हें 'तांत्रिक' कहते हैं। कुछ तांत्रिकों ने तो इसे अब द्रव्योपार्जन का एक साधन बना दिया है। [3] चूँकि मिथिला में शक्ति पूजा का प्रचलन है, अतः यहाँ शाक्त तंत्र की ही प्रधानता[4] है। मिथिला में अनेकों प्रसिद्धि दुर्गा मंदिर है। भगवान विष्णु के उपासक को वैष्णव तथा उनके सम्प्रदाय को वैष्णव सम्प्रदाय कहते हैं। मिथिला में वैष्णव उन्हें भी कहा जाता है, जो मत्स्य-माँस का परित्याग कर देते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्तियों के इष्टदेव मित्र होते हैं। कुछ लोग भगवान राम को इष्टदेव मानते हैं तो कुछ सीता को। उसी प्रकार कुछ लोग के बालकृष्ण तो कुछ राधा-कृष्ण को अपना इष्टदेव मानते हैं। किन्तु मिथिलावासियों को प्रायः रामावतार ही सर्वाधिक ग्राह्य है। भगवान राम को इष्ट मानने वाले वैष्णवों के ललाट, बाँह तथा वस्त्र पर राम नाम की छाप लगी रहती है। गीता और गौस्वामी तुलसीदास विरचित 'मानस' इनके आधार ग्रन्थ हैं। वे प्रायः इन ग्रन्थों की पंक्तियों उद्धधृत किया करते हैं।[5]

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि शिव, शक्ति और विष्णु तीनों के ही उपासक मिथिला में वर्त्तमान हैं, किन्तु लोकजीवन और लोक साहित्य पर शिव और भगवती का जितना व्यापक प्रभाव है, उतना विष्णु का नहीं। शिव की नचारी और भगवती से संबद्ध लोगगीतों की संख्या अनन्त है, परन्तु विष्णु सम्बन्धी लोकगीत अल्पमात्र में उपलब्ध होते हैं।[6]

मिथिला के वैदिक धर्म में तंत्र सम्प्रदाय का प्रचार है। तंत्र-मंत्र एक साधन मात्र है। इसका प्रभाव मिथिला में आज भी देखा जाता है। उदाहरण स्वरूप विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धति, मंत्र लेना, योग क्रिया एवं गुरू की महत्ता एवं विशेषता आदि में इसकी झलक देखी जा सकती है। तंत्र हिन्दू धार्मिक रीति-रिवाज तथा परंपरा का मूल स्त्रोत है। मिथिला के प्रत्येक क्षेत्र में तंत्र किसी न किसी रूप में विद्यमान है।[7]

मिथिला में विभिन्न धमोलम्बी होने के बाद ही उनमें अद्‌भूत एकता है, समरसता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। क्या उच्च जाति, क्या नीच जाति क्या मुसलमान सभी एक दूसरे को सहयोग करते हैं। मिथिला की संस्कृति की आधारशिला है आध्यात्मिक दृष्टिकोण। औपनिषदिक युग से ही मिथिला अपनी दार्शनिक विचारधारा के लिए प्रसिद्ध है। मिथिला की संस्कृति धर्म, दर्शन आदि सभी मानवोचित गुण पर आधारित है। उपनिषद्‌काल से लेकर अभी तक मिथिला का अवदान महत्वपूर्ण और देश के विकास का अविभाज्य अंग रहा है।

अतः यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि मिथिला का लोक जीवन एक शाश्वत-सनातन धर्म में आस्था रखता है, जो अपनी विशालता तथा ग्रहणशीलता के कारण एक ऐसे महासागर के सदृश हैं, जिसमें अनेक सम्प्रदायों के स्त्रोत आ कर विलीन हो जाते हैं। फिर भी मिथिला से वर्त्तमान जो अनेक धार्मिक सम्प्रदाय हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

वस्तुतः इस तरह यह कह सकते हैं कि हमारी मिथिला के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय, देवी-देवता, पूजा-आराधना, ज्ञान-भक्ति तथा जप-तप यहाँ के लोग जीवन और संस्कृति को निरंतर सप्राण तथा समुन्नत बनाये रहता है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कह सकते हैं कि शताब्दियों से मिथिला धर्म एवं दर्शन का केन्द्र बना रहा है। और हमेशा बना रहेगा, इसे संक्षेप में समेटना मुमकिन ही नहीं नामुमकिन प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. ताराकान्त मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2008.
2. राम प्रताप त्रिपाठी : हिन्दुओं का व्रत, पर्व और त्योहार : लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1996, पृ.-165.
3. W. CGOOKE : Natives of Northern India, London, 1907, pp.248–49.
4. डॉ. तेज नारायण लाल : मैथिली लोक गीतों का अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1962, पृष्ट-67.
5. गीता, अध्याय 4, श्लोक 7-8, गीता प्रेस गोरखपुर 2010 से पृ.-84.0
6. Dr. J.K. Mishra : History of Maithili.
7. आर्थर एवलिन, प्रिंसपुल्स ऑफ तन्त्र, कलकत्ता, 1962, 'प्रीफेस'।

कौटिल्य का कण्टक शोधन न्यायालयः एक अध्ययन

राम अवधेश कुमार यादव

शोधार्थी, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय, इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

धर्मस्थानीय के अतिरिक्त कण्टकशोधन न्यायालय मौर्यकालीन न्यायपालीका का प्रमुख न्यायालय था। इसमें शिल्पी व्यापारी, प्राकृतिक विपत्ति और चोरों से प्रजा की रक्षा, आशुमृतक परीक्षा, कान्याप्रकर्म दण्ड का परिगणन किया गया है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय हित की अवहेलना कर अपने स्वार्थ की पूत्ति करनेवाले को कण्टक कहा गया है, उनसे समाज एवं राष्ट्र की रक्षा करना न्यायालय का कार्य था। इसीलिए इसे कण्टकशोधन कहा गया। भारतीय न्यायपालिका में कौटिल्य का यह प्रथम सफल प्रयोग था, जिससे उन्होंने अपने युग की समस्या का व्यावहारिक समाधान किया।[1]

कण्टकशोधन के न्यायधीश राज कर्मचारी के रूप में थे। इस न्यायालय का मुख्य कार्य था–

1. हत्या एवं डाका जैसे गंभीर अपराधों की सत्यता के लिए आयोग नियुक्त करना।
2. विवेक एवं वैयक्तिक अधिकार से निर्णय को अन्यथा रूप देने से रोकना।
3. राजकर्मचारियों एवं न्यायाधीशों से किसी प्रकार की न्यायिक दुर्व्यवस्था का निरीक्षण करना। न्यायाधीशों पर इतना नियंत्रण था कि वे न्यायालय में आये हुए वादी एवं प्रतिवादी को धमकाने, भर्त्सना करने, गाली देने जैसे अपमानजनक व्यवहार नहीं कर सकते थे। वे अनावश्यक प्रश्न भी नहीं पूछ सकते थे। न्यायालयों के निरीक्षण के लिए समाहर्त्ता और प्रदेष्टा के स्वतंत्र विभाग थे।[2]

कण्टकशोधन न्यायालय को प्रायः दण्डापराध विधि (क्रिमिनल लॉ) का प्रथम न्यायालय माना जाता हैं परन्तु धर्मस्थानीय और कण्टकशोधन के विषय विभाग देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि दण्डापराध विधि में जिनका परिगणन किया जाना चाहिए वे सब धर्मस्थीय के परिगणन में आ जाते हैं। धर्मस्थीय के कुछ विषय कण्टकशोधन में भी आये हैं। प्रमाण स्वरूप धर्मस्थीय में स्त्रीसंग्रहण के रहते हुए कण्टकशोधन में कन्या-प्रकर्म का परिगणन किया गया। लेकिन दोनों अपराध के दण्ड एवं प्रक्रिया के अन्तर देखने से स्पष्ट होता है कि दोनों में मात्रात्मक एवं गुणात्मक भेद उपलब्ध है। वस्तुतः कण्टकशोधन को दण्डापराधविधि के न्यायालय के स्थान पर पुलिस न्यायालय कहना अधिक उपर्युक्त होगा। इस न्यायालय के द्वारा राजनीति एवं सामाजिक कण्टकों का शोधन होता था, जिसमें पूर्ववर्ती परंपरा में असामान्य व्यवस्था थी।[3]

कण्टक शोधन न्यायालय के न्यायाधीशों को प्रदेष्टा कहते थे। जिन विषयों के साथ सम्बन्ध रखने वाले विवाद इन न्यायालयों में प्रस्तुत किये जाते थे, उनमें मुख्य निम्नलिखित थे-

1. कारूकरक्षणम-शिल्पियों और कारीगरों की रक्षा तथा उनसे दूसरों की रक्षा।
2. वैदेहक रक्षणम-व्यापारियों की रक्षा तथा उनसे दूसरों की रक्षा।
3. उपनिपात प्रतीकार-प्राकृतिक विपत्तियों का निवारण।
4. गूढ़ाजीविनां रक्षा-गैरकानूनी उपायों से आजीविका चलाने वालों से रक्षा।
5. सिद्धव्यञ्जनैमणिवप्रकाशनम्-दूषित प्रवृत्तियों वाले युवकों को गुप्तचरों द्वारा पकड़वाना।

6. शंकारूपकर्माभिग्रह : आशंका होने पर या वस्तुत: अपराध करने पर अपराधियों की गिरफ्तारी।
7. आशुमृतक परीक्षा-मृतदेह की परीक्षा द्वारा मृत्यु के कारण का पता लगाना।
8. वाक्यकर्मानुयोग : अपराध का पता लगाने के लिए विविध तरह के प्रश्नों को पूछना और शरीरिक कष्ट देना।
9. सर्वाधिकरणरक्षणम्-सभी विभागों की रक्षा तथा उनसे जनता की रक्षा।
10. एकाङ्वधनिष्क्रय-अंग काटने का दण्ड मिलने पर उसके बदले में जुर्माना देने के आवेदन पत्र।
11. शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प : शारीरिक कष्ट के साथ या उसके बिना मृत्युदण्ड।
12. कान्याप्रकर्म-कान्या पर बलात्कार।
13. अतिचारदण्ड : मर्यादा का अतिक्रमण करने पर दण्ड की व्यवस्था।

इसी प्रकार दर्जियों सोनारों, वैद्यों, संगीतज्ञों अभिनेताओं आदि के विषय में कानून बने थे।[4]

एन0 सी0 बनर्जी के अनुसार, राजशासन की शक्ति के विकास के बाद कण्टकशोधन का संगठन आवश्यक हो गया। मोनशन के अनुसार इसमें सैनिक प्रशासन, जन सुरक्षा, निर्गमअपराधों की प्रक्रिया एवं दण्डापराधों का समिश्रण कर दिया गया। के0 बी0 रंगास्वामी आयंगार ने कण्टकशोधन का अनुवाद पुलिस के रूप में किया है। वस्तुत: इस न्यायालय का संगठन कौटिल्य ने देश की अशान्ति उत्पन्न करनेवाली शक्तियों को समाप्त करने के लिए विशेष रूप से किया है। इसका संचालन आदि विशेष न्यायालय के रूप में होता था। इसमें दण्डापराध विधि के विषय अवश्य आते हैं, किन्तु उनका भी निर्णय पुलिस न्यायालय के ढ़ंग से होता था।[5]

मौर्य शासन पद्धति काल में इन सरकारी न्यायालयों में तीन सरकारी न्यायाधिकारी व तीन सभ्य जूरी रहते थे। संभव है कि अन्य शासन पद्धतियों में सरकारी न्यायाधिकारियों की संख्या कम हो। किन्तु इस प्रकार के सरकारी न्यायालय प्रादेशिक मुख्य नगरों में प्राय: हमेशा रहते हैं। प्रादेशिक मुख्याधिकारी व न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिकारी, इनका परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार का था, यह कहना कठिन है। फौजदारी अपराधों की छानबीन करने के लिए कंटक शोधन नाम के न्यायालय रहते थे। केवल राजद्रोहादि अपराधों का उनमें इंसाफ किया जाता था, जो व्यापारी जाली नाम का उपयोग करते थे या गलत माल बेचते थे या बहुत कीमत लेते थे, जो कारखानादार मजदूरों को कम मजदूरी देते थे, या जो मजदूर कम काम करके मालिक का नुकसान करते, उन सबके खिलाफ कार्रवाई कण्टकशोधन न्यायालयों में की जाती थी। दुराचारी राजकर्मचारी, चोर, डाकू इत्यादि के मामले भी इस न्यायालय में आते थे।[6]

न्याय विभाग का कार्य न्यायदान करना था। दीवाने अदालते (न्यायालय) धर्मस्थानीय (कोर्ट) कहलाती थी। वे कर्जा, इकरार, खरीद, बिक्री, विवाह, दायभाग, सीमाविवाद इत्यादि के मुकदमों का निर्णय करती थी। फौजदारी अदालतों को कण्टक शोधन (कोर्ट) कहते थे। वे चोरी, हत्या, स्त्रीसंग्रहण इत्यादि के मुकदमों पर विचार करती थी। मुख्य न्यायालय राजधानी में था, जिसका स्वयं राजा प्रधान न्यायाधीश होते थे और उनकी अनुपस्थिति में प्राविवाक प्रधान न्यायाधीश का कार्य करते थे। प्रांतों में, कमिश्नरियों में, जिलों में अपने-अपने न्यायालय होते थे, जिन पर मुख्य न्यायालय का नियंत्रण था। धर्मस्थानीय न्यायालयों में गैरसरकारी पंच भी न्यायदान में सहायता देते थे। ग्रामों में ग्रामपंचायते छोटे मामलों में न्यायदान करती थी।[7]

न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय करते हुए किस कार्य प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता था, इस विषय पर भी कौटिल्य का अर्थशास्त्र विशद प्रकाश डालता है। जब निर्णय के लिए कोई मुकदमा प्रस्तुत किया जाता था, तो निम्नलिखित बातें दर्ज की जाती थी–

1. तिथि-जिससे कि वर्ष, ऋतु, मास पक्ष और दिन में सही-सही पता लग सके।
2. कारण-मुकदमें के विषय का स्वरूप।
3. अधिकरण घटना-स्थल या वह स्थान जिसके साथ विवाद के विषय का सम्बन्ध हो।
4. ऋण-यदि ऋण का मुकदमा हो, तो ऋण की मात्रा।
5. वादी और प्रतिवादी का देश, ग्राम, जाति, गोत्र नाम और पेशा।
6. दोनों पक्षों की युक्तियों और प्रत्युक्तियों का पूरा-पूरा विवरण।

विवाद करते हुए उपरोक्त दोष से बचने का यत्न किया जाता था। उपरोक्त दोष से ग्रस्त हो जाने से अपना पक्ष कमजोर पड़ जाता था। उपरोक्त दोष इन दशाओं में उपस्थित हो जाता था–[8]

1. जिरह करते हुए प्रसंग की बात को छोड़कर अन्य बात कहने लग जाना।
2. पहले कही बातों को पीछे स्वयं खण्डन करने लगना।
3. बार-बार अन्य व्यक्ति से सम्मती लेने का आग्रह करना।
4. प्रश्न का उत्तर देते हुए न्यायालय के निर्दिश कहने पर निर्दिष्ट न कर सकता।
5. जो प्रश्न पूछा जा रहा हो, उसका उत्तर न देकर अन्य बातें कहने लगना।
6. पहले कोई बात कह देना और फिर स्वयं उसके विपरीत ऐसा नहीं है यह कहने लगना।
7. अनेक साथियों द्वारा कही गई बातों को स्वीकार न करना।
8. साथियों के साथ ऐसे समय बातें करना जबकि उनसे बातचीत नहीं करनी चाहिए।

ये आठ बातें 'परोक्त दोष' समझी जाती थीं। इन दोषों के कारण न केवल व प्रतिवादी का पक्ष निर्बल हो जाता था, अपितु इसके लिए दण्ड का भी विधान था। 'परोक्त दोष' के लिये पाँच गुना जुर्माने का विधान था। मुकदमा जितनी राशि का हो, उससे पांच गुना राशि तक इन दोषों के करने पर जुर्माना किया जा सकता था। साक्षी के अभाव में स्वयंमेव किसी बात की सत्यता का आग्रह करने पर जुर्माने की मात्रा दस-गुने तक हो सकती थी। मुकदमों का निर्णय साक्षियों द्वारा दिये गए। साक्ष्य के आधार पर ही किया जाता था। जो पुरुष साक्षी के लिये बुलाए जाते थे। उन्हें शुल्क भी दिया जाता था। इसकी मात्रा मुकदमे की राशि का आठवां भाग होता था। शुल्क के अतिरिक्त यात्रा व्यय भी साक्षियों को प्रदान किया जाता था, जो मुकदमें की राशि व व्यय के अनुसार निर्धारित किया जाता था। जो पक्ष मुकदमा हार जाते थे, ये खर्च उसी पर पड़ते थे। जिसके विरूद्ध अभियोग चलाये जाते थे, उसे प्रत्यभियोग (जवाब दावा) प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती थी। पर जिन अभियोगों का सम्बन्ध कलह, साहस (डकैती), सार्थ (व्यापारियों के काफिले) और समवायों (शिल्पियों व्यापारियों आदि में संगठन) के साथ हो, उनमें प्रत्यभियोग प्रस्तुत किया जाता था।[9]

यह समझा जाता था कि जिस वादी ने मुकदमा दायर किया है, उसका केस पूरी तरह से तैयार हैं। अत: जिस दिन प्रतिवादी द्वारा लगाए गये आरोप (अभियोग) का उत्तर देता था, उसी दिन वादी को प्रतिवादी के उत्तर प्रत्युत्तर भी देना होता था। उसी दिन प्रत्युत्तर न दे सकने पर वह 'परोक्त दोष' से दूषित हो जाता था। अभिनियेक्ता (वादी) का अपने द्वारा प्रस्तुत मुकदमे की सब बातों का पूरा-पूरा निश्चय होना ही चाहिए, पर अभियुक्त (प्रतिवादी) से यह आशा नहीं की जा सकती थी। अत: उसे अपना केस तैयार करने के लिए सात दिन तक का समय दिया जाता था। यदि अभियुक्त इससे अधिक समय लेना चाहे, जो उसे 3 से 12 रूपये तक प्रतिदिन के हिसाब से दण्ड देना पड़ता था। पर इस प्रकार 45 दिन तक प्रतिदिन के हिसाब से दण्ड देना पड़ता था। और 45 दिन से अधिक समय नहीं दिया जाता था। यदि तीन पखवाड़े बीत जाने पर भी अभियुक्त अभियोग का प्रत्युत्तर को न दे सके तो उसे परोक्त दोष का दोषी मान लिया जाता था। और अभिनियोक्ता (वादी) को अभियुक्त (प्रतिवादी) की सम्पत्ति में वे वह राशि प्राप्त करने की अनुमति प्रदान कर दी जाती थी, जिसके लिए उसने मुकदमा दायर किया हो। यदि अभियुक्त मुकदमा हार जाए, तो भी अभिनियोक्ता को यही अधिकार मिल जाता था और अभियुक्त उससे अपना खर्च वसूल कर सकता था।[10]

मौर्य युग के न्यायालयों में पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों की ओर से अपने मत की सुपुष्टि के लिए किन बातों को उपयोगी माना जाता था, इस सम्बन्ध में कौटिल्य के कुछ निर्देश महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने लिखा– पक्ष और परपक्ष (प्रतिपक्ष) की ओर से यदि स्वयंवाद (अपनी बात पर स्वयंमेव जोर देना) का आश्रय लिया जाए, तो यह दृष्ट दोष (मुकदमे की कमजोरी) ही होगा। मुकदमे की सफलता के लिये अनुयोग (विपरीत पक्ष के कथनों का विवेचन), आर्जव (अपनी बात का मजबूती के साथ प्रतिपादन), हेतु (साथियों के द्वारा कही गई बातें असत्य पायी जाए, या गुप्तचरों द्वारा पक्षपात करने पर न्यायाधीश मुकदमों का निर्णय करते हुए केवल साक्षियों पर ही निर्भर नहीं रहते थे, वे अपने चरों (गुप्तचरों) द्वारा भी मुकदमें की सत्यता का पता करने का प्रयत्न किया करते थे। पर इसमें संदेह नहीं कि न्यायालयों की दृष्टि में साक्षियों का बहुत महत्व था। मुकदमे का निर्णय प्राय: साक्षियों के आधार पर ही किया जाता था। कैसे साक्षियों को विश्वसनीय समझना चाहिए, कौटिल्य अर्थशास्त्र इसका भी विशद रूप से विवेचन करता है। साक्षियों को प्रातयिक (विश्वास के योग्य) शुचि (सच्चा या ईमानदार) और अनुमत (प्रतिष्ठित) होना चाहिए। प्राय: तीन साक्षियों का होना

आवश्यक माना जाता था। उनमें से कम से कम दो ऐसे होनी चाहिए, जो दोनों पक्ष को स्वीकार हों। ऋणसम्बन्धी मुकदमों में एक साक्षी से किसी दशा में काम नहीं चल सकता था। जिन साक्षियों पर पक्षपात का जरा भी संदेह किया जा सके, उनकी साक्षी को प्रमाण नहीं माना जाता था। कौटिल्य के अनुसार निम्न प्रकार के व्यक्तियों की साक्षी नहीं ली जा सकती थी-[11]

1. स्याल-पत्नी का भाई
2. सहाय-जिसके पक्ष में गवाही देनी हो उसके व्यक्तियों की जो नौकरी में हो।
3. आबद्ध-कैदी या जो किसी ढ़ंग से किसी के वशवर्ती हो
4. धनिक-जिसने साक्षी दिलाने वाले या साक्षी देने वाले को रूपया उधार दिया हो।
5. धारणिक-जिसने ऋण लिया हुआ हो
6. वैरी-शत्रु
7. न्यंग-जो किसी का आश्रित हो
8. घूतदण्ड हो।

निम्नलिखित प्रकार के व्यक्तियों की साक्षी केवल उसी अवस्था में ग्रह्य मानी जाएगी, जबकि मुकदमें का सम्बन्ध उसने अपने वर्ग के व्यक्तियों के साथ किया हो-[12]

1. राजा
2. श्रोत्रिय
3. ग्राम-भतृक-ग्राम की सेवा में नियुक्त व्यक्ति
4. कुष्ठी-कोढ़ी
5. वर्णो-जिसका शरीर वर्षो से आवृत्त हो।
6. पतित
7. चाण्डाल
8. कुत्सित कर्मा-जो कुत्सित कर्मो में लगे हो।
9. अंधे
10. बहरे
11. अहंकारी व्यक्ति
12. स्त्रियाँ तथा
13. राजपुरुष।

यदि कोई हमला करने, चोरी करने या भगा ले जाने का मुकदमा हो तो उसके लिए शत्रु और सहाय पक्ष के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के व्यक्तियों की साक्षियाँ ग्राह्य होगी। जिन्होंने गुप्त व्यवहार को चोरी से देखा या सुना हो मुकदमों में भी राजा और तापस की साक्षी मान्य नहीं होगी। न्यायाधीशों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे न्याय कार्य करते हुए किसी का पक्ष न ले अपने ऊपर संयम रखे और किसी के प्रति अनुचित व्यवहार न करें। न्यायाधीशों की स्थानान्तरण मौर्य काल में भी विद्यमान थी। मौर्यकालीन न्यायाधीश प्रार्थी के साथ उचित न्याय नहीं करता था, तो उसे भी दण्ड दिया जाता था। इसके साथ ही यदि वह अपने कार्य में आलस्य करें या कतर्व्यच्यूत हो जाए तो दण्ड के भागी होते थे। इस प्रकार न्यायालयों और नियमों द्वारा पहले अपने कर्मचारियों को दण्ड देकर फिर उसके बाद नगर-गांव के निवासियों को दंडित कर स्वधर्म पालनार्थ प्रेरित करते थे।

निष्कर्षत

मौर्य युग में न्याय विभाग बहुत व्यवस्थित व सुसंगठित दशा में था। धर्मस्थ ओर प्रदेष्टा जहाँ पाटलिपुत्र के धर्मस्थानीय और कण्टक शोधन न्यायालयों में न्यायकार्य के लिए नियुक्त थे, वहाँ साम्राज्य के अन्तर्गत विविध जनपदों में भी इन्हीं दो प्रकार के

न्यायधीशों की सत्ता थी। उस युग के न्यायालयों में वकील भी होते थे या नहीं, इस सम्बन्ध में कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौन है। पर न्याय विभाग जब इतना सुव्यवस्थित था तो वादी और प्रतिवादी की सहायता के लिए यदि कतिपय विशेषज्ञ भी विद्यमान हो तो यह अस्वाभाविक नहीं है। इस तरह कौटिल्य का कण्टक शोधन न्यायालय सक्षम न्यायालय था, जहाँ अपराधी को अपराधानुसार दण्ड दिया जाता था।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. मंगला राय-प्राचीन भारत में जिला शासन, जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण 1983 पटना, पृ.-63.
2. उपर्युक्त, पृ.-वही।
3. उपर्युक्त, पृ.-64.
4. उपर्युक्त, पृ.-709.
5. मंगला राय-प्राचीन भारत में जिला शासन, जानकी प्रकाशन प्रथम संस्करण, 1966 पटना पृ.-64.
6. प्रो0 अनन्त सदाशिव अलतेकर-प्राचीन भारतीय शासन पद्धति विश्वविद्यालय प्रकाशन, तृतीय संस्करण 2009 वाराणसी, पृ.-112.
7. उपर्युक्त, पृ.-वही।
8. सत्यकेतु विद्यालंकार-मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन प्रथम संस्करण 2014 नई दिल्ली, पृ.-263.
9. डॉ. टी0 आर0 पार्वती-कौटिल्य अर्थशास्त्र का भातरीय संविधान में प्रतिबम्ब, शिवालिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017 नई दिल्ली, पृ.-388.
10. सत्यकेतु विधालंकार-मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, पृ.-264.
11. डॉ. टी0 आर0 पार्वती-कौटिल्य अर्थशास्त्र का भारतीय संविधान में प्रतिबिम्ब, शिवालिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017 नई दिल्ली, पृ.-390.
12. उपर्युक्त, पृ.-वही।

बिरसा मुंडा-एक करिश्माई विद्रोही और आदिवासी जननायक

बासुदेव शाह

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

परिचय

दुनिया भर में जन,जंगल और जमीन की लड़ाई तो सदियों पुरानी है। इस लड़ाई में सैकड़ों नायक आए और चले गए लेकिन यह लड़ाई आज भी बदस्तूर जारी है। यह शोध पत्र ऐसे ही एक करिश्माई और विद्रोही नेता पर है जिसके एक बुलावे पर सैकड़ों लोग इकट्ठे हो गए और जिन्होनें अंग्रेजों को घुटने टेकने को मजबूर कर दिया और अंग्रेजों की नाक पर दम कर दिया। इनका नाम था बिरसा मुंडा।

बिरसा मुंडा एक एक आदिवासी नेता और लोकनायक थे। अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई में बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं ने अपनी अहम भूमिका निभाई थी। यह जननायक मुंडा जाति से संबंधित थे।

वर्तमान भारत में रांची और सिंहभूमि के आदिवासी बिरसा मुंडा को अब 'बिरसा भगवान' कहकर याद करते हैं। बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं ने यह सम्मान आदिवासियों को अंग्रेजों के दमन के खिलाफ अर्जित किया था।

बिरसा मुंडा का जन्म और प्रारंभिक जीवन

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर 1875 को रांची जिले के उलिहातु गांव में हुआ था। उनकी मुंडा जाति बिरहतकुल परिवार का एक एक हिस्सा थी। मुंडा रीती रिवाज के अनुसार उनका नाम बिरसा रखा गया था।

बिरसा के पिता का नाम सुगना मुंडा और माता का नाम करमी हटू था। बिरासा मुंडा के जन्म के बाद उनका परिवार रोजगार की तलाश में उलिहतु से कुरुमब्दा आकर बस गया था। जहां वो खेतो में काम करके अपना जीवन चलाते थे।

उसके बाद फिर काम की तलाश में उनका परिवार बम्बा चला गया। इसलिए उनका बचपन यहां से वहां पलायन करते हुए बीता। वैसे तो बिरसा मुंडा का परिवार अक्सर घूमता ही रहता था, इनके रहने का कोई एक निश्चत ठिकाना नहीं था, लेकिन बिरसा मुंडा का ज्यादातर बचपन चल्कड़ में बीता था।

बांस की झोपड़ी में पले बड़े बिरसा बचपन से अपने दोस्तों के साथ रेत के ढ़ेर में खेलते रहते थे और थोडा बड़ा होने पर उन्हें जंगल में भेड़ चराने जाना पड़ता था।

अपने शुरुआती दौर में बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं की ख्याति पहले एक ओझा के रूप में फैली और फिर अंग्रेजों, भारतीय दलालों को ईसीई धर्मगुरुओं से अपने लोगों की रक्षा करने वाले एक नायक के रूप में उभरी।

शिक्षा

बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं के परिवार की आर्थिक स्थिति सही नहीं होने की वजह से उन्हें उनके मामा के गांव अयुभातु भेज दिया गया। अयुभातु गांव में बिरसा दो साल तक रहे और उन्होनें अपनी प्रारंभिक शिक्षा सकला से ग्रहण की।

बिरसा पढ़ाई में बचपन से ही बहुत होशियार थे। इसलिए उन्होंने स्कूल चलाने वाले गुरु जयपाल नाग से ज्ञान प्राप्त किया। जिसके बाद उन्हें जर्मन मिशन स्कूल में दाखिला लेने के लिए कहा गयाद्य

लेकिन उस समय क्रिस्चियन स्कूल में एडमिशन लेने के लिए इसाई धर्म अपनाना जरुरी हुआ करता था, इसलिए बिरसा ने अपना धर्म परिवर्तन कर अपना नाम बिरसा डेविड रख दिया जो बाद में बिरसा दाउद हो गया था।

हालांकि कुछ सालों बाद बिरसा ने क्रिस्चियन स्कूल छोड़ दिया था, क्योंकि उस स्कूल में आदिवासी संस्कृति का मजाक बनाया जाता था जो कि बिरसा मुंडा को बिल्कुल भी पसंद नहीं था।

फिलहाल इसके बाद वे अपने गांव वापस लौट आए और यहां अपने एक हिन्दू बनकर दोस्त के साथ रहने लगे। और यहीं उन्हें एक वैष्णों संत की संगत मिली और वे ओझा के रूप में मशहूर होने लगे और यही से उनके जीवन में बदलाव लाया।

इसके बाद महानायक बिरसा मुंडा का संपर्क स्वामी आनन्द पाण्डे से हो गया। आपको बता दें कि आनंद पांडे ने ही बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं को हिन्दू धर्म और महाभारत के पात्रों का परिचय कराया।

19वीं शताब्दी की शुरुआत में एक अंग्रेजी कंपनी भारत के दो-तिहाई हिस्से में कब्जा कर चुकी थी और यह सिलसिला अभी भी बदस्तूर जारी था। 19वीं सदी के बाद उन्होनें भारत के रियाहसी हुकूमत वाले हिस्से को भी जीत लिया था, वहीं बिरसा मुंडा के इलाके छोटे नागपुर में नियंत्रण के लिए वन्य कानून समेत कई अन्य कानून भी लागू कर दिए गए और देखते ही देखते आदिवासियों से उनके अधिकार छीने जाने लगे।

वे न तो अपनी भेड़-बकरियों को चारा खिला सकते थे और न ही वे जंगलों से लकड़ियां इकट्ठा कर सकते थे। जिससे उन लोगों अपने जीवन-यापन करने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता था।

वहीं इसी दौरान अंग्रेजों ने जंगलों की बाहरी सीमाओं पर बाहरी लोगों की बस्तियां बसाना शुरू कर दिया था वहीं मुंडा जिस जमीन को अपनी साझा सम्पति समझते थे, अंग्रेजों ने उनका मालिकाना हक भी उन बाहरी बस्ती के लोगों को दे दिया।

अपनी जवानी के दिनों में बिरसा मुंडा, इन अंग्रेजों, मिशनरियों और बाहरी लोगों के खिलाफ होने वाले आंदोलन का हिस्सा बन चुके थे।

अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह

1895 में बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं ने घोषणा की "हम ब्रिटिश शासन तन्त्र के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा करते है और कभी अंग्रेज नियमो का पालन नही करेंगे, ओ गोरी चमड़ी वाले अंग्रेजो, तुम्हारा हमारे देश में क्या काम? छोटा नागपुर सदियों से हमारा है और तुम इसे हमसे छीन नही सकते है इसलिए बेहतर है कि वापस अपने देश लौट जाओ वरना लाशो के ढेर लगा दिए जायेंगे"।

इसके बाद उस पहाड़ी पर देखते ही देखते हजारों लोग इकट्ठा हो गए। जहां अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, लेकिन हजारीबाग केन्द्रीय जेल में दो साल की सजा ने बिरसा मुंडा की ख्याति को और अधिक बढ़ा दिया।

बिरसा मुंडा की मृत्यु

1898 में अपनी रिहाई के बाद बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं ने ब्रिटेन की महारानी का पुतला फूंकने का आदेश दिया और इसके अगले साल 1899 में उन्होंने और उनके चाहने वाले लोगों ने वही किया।

बिरसा ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंक दिया। तीर धनुष, कुल्हाड़ी और गुलैल से लैस मुंडाओं ने अंग्रेजों और उनके दलालों के खिलाफ धवा बोल दिया, उनकी संपत्ति को जला दिया और तो और कई पुलिस वालों को मार गिराया।

इस लड़ाई में पहले तो अंग्रेजी सेना हार गयी, लेकिन बाद में इसके बदले उस इलाके के बहुत से आदिवासी नेताओं की गिरफ्तारियां हुई। वहीं उलगुलान के नाम से मशहूर ये बगावत ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाई।

लेकिन अंग्रेजों ने इस आंदोलन को बुरी तरह कुचल डाला और 3 फरवरी 1900 को बिरसा मुंडा-ठपतें डनदकं को भी चक्रधरपुर में गिरफ्तार कर लिया गया और इसके एक साल बाद जेल की काली कोठरी में हैजे से उनकी मौत हो गई।

उनकी मौत के बाद आजाद भारत की सरकार ने रांची एयरपोर्ट और जेल का नाम उनके नाम पर रख दिया। उनकी एक तस्वीर भारतीय संसद में भी लगाई गई है।

आज भी बिहार, उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल के आदिवासी इलाकों में बिरसा मुण्डा को भगवान की तरह पूजा जाता है और उनके बलिदान को याद किया जाता है।

विरासत

15 नवंबर को बिरसा मुंडा की जयंती मनाई जाती है। कोकार रांची में जो झारखंड की राजधानी है, यहाँ पर उनकी समाधी स्थल पर बहुत से कार्यक्रम मनाए जाते है।

उनकी स्मृति में रांची में बिरसा मुण्डा केन्द्रीय कारागार तथा बिरसा मुंडा हवाई-अड्डा-ठपतें डनदकं। पतचवतज भी है। उनके नाम से कई संस्था, कई यूनिवर्सिटी और कई इंस्टीट्यूशन भी बने है।

2008 में बिसरा के जीवन पर आधरित एक हिंदी फिल्म "गाँधी से पहले गंध्विास" बनी जो इकबाल दुररन के निर्देशन में बनी और नोवेल पुरस्कार भी जीता है। फिर एक और हिंदी फिल्म 2004 में "उलगुलान एक क्रांति" बनी जिसमें 500 बिर्सैट्स भी शामिल है।

'महाश्वेता देवी' को 1979 में 'अरण्येर अधिकार' नामक पुस्तक के लिए साहित्य अकेडमी अवार्ड मिला। इस पुस्तक में उन्होंने मुंडाजी के जीवन के साथ 19वी सदी में ब्रिटिश राज के बारे में बताया था।

निष्कर्ष

19वीं सदी में बिरसा मुंडा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक अहम जननायक के रूप में उभरे थे। जब राष्ट्रवादियों ने आजादी की बाद भारत की विविधताओं को जोड़ने का मुश्किल काम शुरु किया तो इसमें कुछ बाहर ही छूट गए।

उन बाहर छूट गए लोगों में ज्यादातर लोग मूल निवासी थे जिन्हें अब आदिवासी कहा जाता है।

आदिवासियों द्वारा अपनी जमीन की लड़ाई की विरासत सदियों पुरानी है लेकिन अब व्यक्तिगत संघर्ष के किस्से इतिहास के किताबों से गायब हो चुके हैं लेकिन 19वीं सदी के विद्रोही नायक बिरसा मुंडा का जीवन एक अपवाद है जिनके नेतृत्व में मुंडा आदिवासियों ने मुंडाओं के महान आंदोलन उलगुलान को अंजाम दिया।

सन्दर्भ

- Khan, A. H. Birsa Munda- Ministry of Information and Broadcasting-A rchived from the original on 14 February 2009.
- Rycroft, Daniel J. (December 2004). Capturing Birsa Munda The Virtuality of a Colonial&era Photograph, (PDF) Indian Folklore Research Journal 1 (4)- Retrieved 4 February 2015.
- Singh] Suresh (1966)- The Dust&storm and the Hanging Mist%A Study of Birsa Munda and His Movement in Chhotanagpur] 1874&1901- Calcutta Firma K- L- Mukhopadhyay- OCLC 192213- Retrieved 4 February 2015-
- Singh] Kumar Suresh (1983)- Birsa Munda and His Movement 1874&1901%A Study of a Millenarian Movement in Chotanagpur- Oñford University Press- ISBN 978&0195614244- (A reissuance of The Dust&storm---)

मध्यकालीन इतिहास में महिलाओ का स्थान

डॉ० मंजुली कुमारी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सी.एन. कॉलेज, साहेब गंज, मुजफ्फरपुर (बिहार)

परिचय

मुस्लिम समाज में विभिन्न वर्गों की स्त्रियों की दशा अन्य वर्गा की स्त्रियों से अच्छी थी। मुस्लिम शासकों ने राजमहल में हरम की व्यवस्था की थी। जहाँ उनकी पत्नियाँ राजपरिवार की महिलायें तथा उपपत्नियाँ निवास करती थी। उनकी सेवा में अनेक दासियाँ एवं महिला सेविकायें होती थी। हरम में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की भी उचित व्यवस्था थी। मुगल हरम की महिलाओं ने समकालीन राजनीति एवं संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में अपना विशेष योगदान दिया। हुमायूँ की पत्नी हमीदा बानू बेगम एक बुद्धिमति महिला थी जिसने हुमायूँ एवं अपने पुत्र अकबर को अपने बहुमूल्य परामर्शों द्वारा लाभान्वित किया। अकबर की पत्नी सलीमा बेगम एक दूरदर्शी एवं संतुलित महिला थी। जहाँगीर के शासनकाल की राजनीति में नूरजहाँ की विशेष भूमिका रही। शाहजहाँ की प्रमुख सलाहकार उसकी पत्नी मुमताजमहल थी तथा उसकी मृत्योपरान्त उसका स्थान उसकी पुत्री जहाँआरा ने ले लिया। जहाँआरा एक उच्चकोटि की कवियित्री थी। हमिदाबानू बेगम ने हुमायूँ के मकबरे तथा नूरजहाँ ने एतमाद-उद-दौला के मकबरे का निर्माण करवाया था जो उनकी वास्तुकला के प्रति ज्ञान को प्रदर्शित करता है।

हरम

उच्च उमरावर्ग की गणना शासक वर्ग में की जाती थी, जो सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में शासकों का अनुकरण करते थे। शाही हरम की भाँति उनके यहाँ भी हरम होते थे, जहाँ उनकी पत्नियाँ, पुत्रियाँ, उपपत्नियाँ तथा अन्य महिलाएँ निवास करती थी। उमरावर्ग की स्त्रियों को सभी सुख एवं सुविधयें उपलब्ध थी। हिन्दू शासक वर्ग में स्वायत्त शासक, जमींदार, जागीरदार और राजपूत सरदार शामिल थे। इस वर्ग की स्त्रियों का जीवन मुस्लिम वर्ग की स्त्रियों की ही भाँति सुखमय एवं वैभवपूर्ण था। मध्यम वर्ग के अंतर्गत, शिक्षक, हकीम, ज्योतिषी, साधरण अमीर, मध्यम जमींदार, वेतनभोगी राजकीय कर्मचारी एवं व्यापारी आदि सम्मिलित थे। उच्चवर्ग की तुलना में मध्यवर्ग कम सम्पन्न था, परन्तु इस वर्ग की मुस्लिम एवं हिन्दू स्त्रियों की दशा लगभग समान थी तथा वे सुख एवं सुविधाओं का उपभोग करती।

मध्य और निम्न वर्ग की स्त्रियाँ

शिल्पकार कृषक एवं छोटे व्यवसायी वर्ग की स्त्रियों की दशा मध्यमवर्ग की स्त्रियों से निम्नतर थी। इस वर्ग की मुस्लिम एवं हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति के व्यवसायों में भी सहयोग देती थी। उन्हें एक ही साथ दो मोर्चो पर घर और बाहर काम करना पड़ता था, परन्तु उनकी दशा संतोषजनक थी। जहाँ तक निम्नवर्ग की निर्धन एवं नि:सहाय स्त्रियों का प्रश्न है उनकी दशा दयनीय थी। वे उच्च एवं मध्यम वर्ग के परिवारों की सेवा करके अपना जीविकोपार्जन करती थी।

संपत्ति पर अधिकार

मध्यकाल में हिन्दू स्त्रियों की अपेक्षा मुस्लिम महिलाओं को कुछ अधिक अधिकार प्राप्त थे। कुरान में उल्लिखित है कि पुरुषों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है और महिलाओं ने जो कुछ कमाया है, वह उनकी सम्पति है। इस आयत में यह भी ध्यान रखा गया है कि शादी के बाद लड़की पति की सम्पत्ति में भी हकदार हेगी। सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय

में हिन्दू स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं था। यद्यपि पुत्री के रूप में स्त्रियों का अपने पिता की सम्पत्ति में कोई भाग नहीं होता था फिर भी प्रत्येक अविवाहित पुत्री को अपने भाईयों को मिलने वाले पितृधन का एक-चौथाई भाग प्राप्त करने का अधिकार था। मृत्यु के पश्चात् माँ की सम्पत्ति पुत्रों एवं अविवाहित पुत्रियों में समान रुप से बाँटी जाती थी। विवाहित पुत्रियों को केवल सम्मान स्वरुप थोड़ा ही भाग मिलता था। 12वीं सदी तक आते-आते सम्पूर्ण देश में विध्वा के मृत पति का उत्तराधिकारी होने का सिद्वान्त व्यावहारिक रुप में स्वीकार कर लिया गया। स्त्री को स्वयं की सम्पत्ति जिसके ऊपर उसका पूरा अधिकार होता था वह स्त्रीधन था। इस समय तक स्त्रीधन का क्षेत्र व्यापक करके उसमें उत्तराधिकार एवं विभाजन की सम्पत्ति को भी सम्मिलित कर लिया गया।

शिक्षा

मध्यकाल में स्त्रियों की शिक्षा की प्रगति शासकों एवं समृद्ध लोगों के संरक्षण में धीमी गति से हुई। शासकों एवं अन्य शिक्षाप्रेमी व्यक्तियों ने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास किया। हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों ने धार्मिक और उच्च प्रकार की साहित्यिक कृतियों में रूचि ली। इन सबके बावजूद विदूषी हिन्दू स्त्रियों का अभाव ही रहा। जिसका प्रमुख कारण पर्दाप्रथा और बाल विवाह था।

सामान्यत: शासक और उच्चवर्गा के लोग अपनी पुत्रियों और बहनों को शासनकार्य में प्रशिक्षित करते थे। जब कभी आवश्यक होता था तो वे शिक्षा की स्वयं देख-रेख करते थे और प्रशिक्षण के लिए विशिष्ट एवं सामान्य जन के लिए दुर्लभ शिक्षा के निपुण और विद्वान शिक्षकों को नियुक्त करते थे। बालविवाह हिन्दू एवं मुस्लिम सम्प्रदायों में महिला शिक्षा के लिए एक बड़ी बाध थी क्योंकि विवाह के बाद लड़कियों को शिक्षा का अवसर ही नहीं मिल पाता था। गाँववालों और निचले वर्गो की महिलाओं को तो शिक्षा प्राप्त करने में और भी असुविधयें थी। वे घरेलू काम-काज के बोझ से इतनी दु:खी होती थी कि उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिल पाता था।

मध्यकाल में व्यापक स्तर पर स्त्रीशिक्षा व्यवहारत: एक अनजानी चीज थी। शिक्षा केवल शाही और अभिजात वर्गो की महिलाओं तक ही सीमित थी। कुछ हद तक समाज के मध्यवर्ग की स्त्रियाँ भी शिक्षा पा जाती थी पर जहाँ तक निर्धन एवं निचले वर्गो की महिलाओं का सम्बन्धा था, वे अपना पेट पालने में ही बुरी तरह व्यस्त रहती थी और बौद्धिक प्रशिक्षण के लिए समय न निकाल पाती थी। हिन्दू, महिलाओं को सुसंस्कृत बनाने के प्रति ध्यान न देते थे। फलत: लड़कियाँ निरक्षरता में पलने-बढ़ने को बाध्य थी जो भी थोड़ी बहुत बौद्धिक शिक्षा उन्हें मिल पाती थी वह भी अपनी माॅ से।

पर्दा

पर्दा एक इस्लामी शब्द है जो अरबी भाषा से आया है। इसका अर्थ है ढ़कना या अलग करना। पर्दा का एक पहलू है बुर्का का चलन। बुर्का एक तरह का घुँघट है जो मुस्लिम समुदाय की महिलायें और लड़कियाँ कुछ खास जगहों पर खुद को पुरुषों की निगाह से दूर रखने के लिए इस्तेमाल में लाती थी।

मुसलमानों के आगमन से पूर्व भारत में पर्दा प्रथा का अभाव था। हिन्दू स्त्रियाँ केवल घूँघट के द्वारा ही अपने मुँह ढँका करती थी। किन्तु मुसलमानों के आगमन के पश्चात् उनकी संस्कृति के प्रभावस्वरुप पर्दाप्रथा को विशेष बल मिला और मुसलमानों की भाँति हिन्दुओं में भी पर्दाप्रथा पहले की अपेक्षा कठोर हो गई। कुछ मुस्लिम शासकों ने कट्टरपंथी नीति के कारण पर्दाप्रथा को बढ़ावा दिया। तो कुछ ऐसी महिलाएँ हुई जिन्होनें इसे चुनौती पेश की। रजिया सुल्तान शायद पहली मुस्लिम महिला थी जिसने लालवस्त्र पहनकर चाँदनी चौक में जनता के सम्मुख बिना पर्दे के खड़ी हुई और सुल्तान के विरूद्ध बगावत करते हुए न्याय की माँग की थी। बाद में दिल्ली का सुल्तान बनने के बाद वह पुरुषवेश में आवरणहीन चेहरे के साथ शाही सिहासन पर आसीन होती थी और सरदारों के बीच बेखौफ होकर आती-जाती थी। दूसरी ओर सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने पर्दाप्रथा के प्रचार के लिए राज्य की ओर से प्रोत्साहन प्रदान किया था। उदारवादी प्रवृति का सम्राट होने के बावजूद अकबर ने पर्दाप्रथा का समर्थन किया था। नूरजहाँ ने पर्दा प्रथा को नकारते हुए अपने पति के साथ खुले दरबार में हाजिर होती थी तथा पति की उपस्थित में अमीरों को आदेश दिया करती थी।

उच्चवर्ग के हिन्दुओं ने भी अपनी रक्त शुद्धता को बनाये रखने के लिए पर्दा का कठोरता से पालन किया। राजा और अमीर उमरा अपनी स्त्रियों के लिए पूर्णत: ढँकी और ताला लगी डोलियों का उपयोग करते थे। पर्दाप्रथा का कठोरता से पालन इस कदर

बढ़ गया था कि उच्चवर्ग की बीमार स्त्रियों को हकीम या वैद्य भी नहीं देख सकते थे। उनकी बीमारी का पता उनके शरीर के कपड़ों से लगाया जाता था। यदि किसी स्त्री द्वारा पर्दा का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता तो उसका पति तत्काल उसे तलाक दे देता था। हिन्दू अमीर भी मुस्लिम शासकों के तौर-तरीके अपनाने में संकेच नहीं करते थे क्योंकि उससे सामाजिक रुतबे में वृद्धि होती थी। मुख्यतया आर्थिक कारणों से समाज की निम्न जातियों की स्त्रियों को पर्दे में नहीं रहना पड़ता था। भारतीय किसान अधिक पत्नियाँ रखने का व्यय भी नहीं कर सकते थे।

बहुविवाह

हिन्दुओं और मुसलमनों में धनी वर्गों में अधिक पत्नियाँ रखने की प्रथा थी। अलबरुनी के अनुसार "एक हिन्दू पुरुष एक से चार पत्नियाँ रख सकता है। उसे इससे अधिक पत्नियाँ रखने की अनुमति नहीं है, लेकिन यदि इन चार पत्नियों में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है तो वह अपनी पत्नियों की वैध संख्या पूरी करने के लिए एक और विवाह कर सकता है। निकोलो कोन्टी कहता है कि 'मध्यभारत के निवासियों को केवल एक ही पत्नी रखने की अनुमति थी, पर भारत में फैले ईसाईयों को छोड़कर बहुविवाह की प्रथा सामान्य रुप से प्रचलित थी। विजयनगर साम्राज्य में राजपरिवार के लोग एवं नायक न केवल बहुविवाह करते थे अपितु रखैलों एवं नौकरानियों की बड़ी संख्या भी रखते थे। राजप्रासाद में रहने वाली इन महिलाओं में अनेक ज्योतिषी, भविष्यवक्ता संगीत एवं नृत्य-प्रवीण और राजा की अंगरक्षिकाएँ होती थी'। मार्कोपोलो के अनुसार माबर राजा के पास पाँच सौ पत्नियाँ थीं। गुजरात राज्य की चर्चा करते हुए बारबोसा ने उद्धृत किया है कि 'ब्राह्मण एवं बनिया केवल एक ही लड़की से एक ही बार विवाह करते थे, फिर दूसरी बार विवाह नहीं करते थे'।

राजपूतों मे बहुविवाह प्रथा आम थी। राजा जसवंत सिंह की अनेक पत्नियाँ और सात सौ रखैलें थीं। करेरी लिखता है कि 'राजपूत स्वच्छंद राजा थे, उन्हें अपनी इच्छा के मुताबिक कितनी भी पत्नियाँ रखने की स्वतंत्रता थी'। कालीकट के हिन्दू महिलाओं के संदर्भ में कहते हैं कि गैर मुस्लिम स्त्रियों में से किसी-किसी स्त्री को पाँच, छह और सात तक पति होते थे। अलबरुनी के अनुसार सुदूर पार्वत्य प्रदेशों के हिन्दू परिवारों में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। पांचीर क्षेत्र से कश्मीर के समीपस्थ क्षेत्र तक बसे हुए लोगों में इस नियम के अधीन कई भाईयों की एक ही पत्नी होती थी।

मध्यकाल में हिन्दू राजा, मुगल बादशाह, सामंत और अमीर अपनी अय्याशियों को मूर्त रुप देने के लिए हरमों की स्थापना की थी। उनमें से कई तो अपनी दुर्दम्य यौनेच्छा की असफलता के कारण सुदर्शनाओं की नियमित आपूर्त्ति के लिए एक अलग ही विभाग रखे हुए थे। उस समय 'हरम' शब्द मुख्यत: उनकी कुल महिलाओं की संख्या का द्योतक था। अमीर खुसरो 'देवलरानी-खिज्र खाँ' में अलाउद्दीन खिलजी के हरम का मनोरंजक विवरण प्रस्तुत किया है। निकोलो कोन्टी और पेइज ने विजयनगर के राजा के हरम का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि राजा के हरम में कुल मिलाकर 12 हजार महिलाएँ थी। सांभर के राजा बीसलदेव ने भी अनेक स्त्रियों से विवाह किए थे। उनके हरम में सबके बाद उनकी सबसे दुलारी पत्नी के रुप में धर के परमार राजा भोज की पुत्री राजमती ने प्रवेश पाया था। मुगल हरम के बारे में मनुची लिखता है कि चूँकि स्त्री ही मुसलमानों के मन बहलाव और मनोरंजन का प्रमुख साधन रही थी, इसलिए उन्होंने बड़े पैमाने पर खर्च कर जाति और धर्म का ख्याल किए बिना अपने हरम को दिलकश बनाने की कोशिश की। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में अनुभवी महिलाओं को जासूसों के रूप में नियुक्त किया, जो उन्हें उनके साम्राज्य की सबसे आकर्षक युवतियों के बारे में सूचनाएँ पहुँचाती थी।

बालविवाह और दहेज

मध्यकाल में पुरानी परम्परा के अनुसार लड़के और लड़की के विवाह का समझौता पूरी तरह माता-पिता और उसके न रहने पर परिवार के वरिष्ठ सदस्य करते थे। माता-पिता अपने दामाद या वधुओं को चुनने में अधिक से अधिक संभव सावधनी बरतते थे। डुबोइस लिखता है कि 'जिसका विवाह हो रहा हो उससे कभी भी सलाह न ली जाती थी। वास्तव में ब्राह्मणों के बीच ऐसा हो सकना हास्यास्पद ही था क्योंकि वे अपनी लड़कियों का विवाह बहुत कम उम्र में ही कर देते थे। पर अपने लड़के-लड़कियों का विवाह उनकी उम्र हो जाने पर करने के प्रश्न पर शूद्र भी अपने लड़के-लड़कियों की रुचि या भावना के बारे में उनसे परामर्श लेने की बात स्वप्न में भी नहीं सोचते थे। सम्राट अकबर इस पक्ष में थे कि विवाह के मामले में लड़के एवं लड़कियों को कुछ रियायतें आवश्य मिलनी चाहिए। लड़का अपनी होनेवाली पत्नी को पहले से देख सके तो बादशाह का ख्याल है कि इस बारे में

कन्या-वर की सहमति और उनके माता-पिता की अनुमति विवाह के करार में पक्के तौर पर जरुरी है। इतना ही नहीं अकबर ने विवाहों की जाँच-पड़ताल करने वाले दो आला अधिकारियों जिन्हें 'ता-ई-देगी' कहा जाता था, की नियुक्ति की ताकि वर-वधुओं के माता-पिता से उनकी हैसियत के मुताबिक कर लिया जा सके'।

मध्यकाल में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों में बूढ़े व्यक्तियों का छोटी कन्याओं से तथा युवतियों का छोटे बच्चों से बेमेल विवाह की परम्परा व्यापक रूप से प्रचलित थी। हिन्दूओं में ऐसे विवाह धड़ल्ले से सम्पन्न किए जाते थे। आदर्श विवाह उसे माना जाता था जब कन्या वर के उम्र के एक तिहाई भाग के बराबर उम्र की होती थी। 60 साल का विधुर 6-7 साल की बच्ची से भी विवाह कर लेता था। मनु के अनुसार "30 वर्ष का पुरुष 12 वर्ष की लड़की के साथ विवाह कर सकता है अथवा 24 वर्ष का युवक 8 वर्ष की लड़की से विवाह बना सकता है।" मनु द्वारा विहित इस कानून ने हिन्दुओं में इस प्रथा को प्रोत्साहित किया होगा कि बूढ़ा व्यक्ति जवान औरतों से विवाह सम्बन्धा करे। लेकिन लड़कियों की प्रतिक्रिया थी कि बूढ़े से विवाह के बाद मृत्यु अपरिहार्य है। इनसे बूढ़े हतोत्साहित नहीं हुए अपितु उन्होंने लड़कियों के अभिभावकों के साथ मोलभाव करना शुरु कर दिया और काफी धन देकर शादियाँ बनाई। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि कोई बच्चा युवती से विवाह सम्बन्धा कायम करता था।

सजातीय एवं सगोत्रिय विवाह पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण मध्यकालीन समाज में दहेज प्रथा जोरों पर थी। पर इसे अमीर एवं समृद्धशाली व्यक्ति ही पसंद करते थे, सामान्य लोगों का इस प्रथा के प्रति कम ही रुझान था। तत्कालीन समय में दहेज शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता था, एक विवाह के अवसर पर या उसके पूर्व लिया गया धन और दूसरा, विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद भेटों, उपहारों एवं चढ़ाई गई सामग्रियों के रूप में लिया गया धन। बंगाल और पाण्डय राज्य में दहेज की एक विचित्र प्रथा प्रचलित थी जिसमें वर पक्ष द्वारा वधूपक्ष को दहेज दिया जाता था। मार्कोपोलो ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है ''यदि कोई व्यक्ति अपने से कम उम्र की लड़की से विवाह करता है तो उसे लड़की के माता-पिता को दहेज देना पड़ता है।''

बिहार, बंगाल एवं उत्तरप्रदेश के निम्नत्तर वर्णों और उम्रदराज लोगों द्वारा विवाह के लिए वधुओं के क्रय की घटना आम थी। मुगल काल में दुल्हन के व्यक्तिगत गहने और उसके विवाह में भावी ससुर द्वारा दिए गए सभी सामग्रियों को एक दस्तावेज पर अंकित किया जाता था, वही कन्या की व्यक्तिगत संपत्ति मानी जाती थी। विध्वा होने की स्थिति में वह उस पर अपने स्वामित्व का दावा कर सकती थी।

हिन्दुओं के विपरीत मुसलमानों में दहेज के बदले मेहर प्रथा का प्रचलन था। मेहर वह धन या सम्पत्ति है जो विवाह के प्रतिफल के रुप में पत्नी अपने पति से लेने की अधिकारी है। शरीअत के अनुसार मेहर पति का एक कर्त्तव्य जो पत्नी के प्रति पति के आदर का सूचक होता है। इसका मुख्य उद्देश्य पति पर पत्नी का तलाक देने सम्बन्धी नियंत्रण करना तथा पति की मृत्यु अथवा तलाक की स्थिति में महिला को अपने भरण-पोषण के योग्य बनाना था। मेहर की धनराशि विवाह के पहले या बाद में या फिर विवाह के समय निश्चित की जाती थी।

तलाक

अलबरुनी के अनुसार मध्यकाल में उच्चत्तर जातियों में न तलाक की सुविध थी और न विवाहविच्छेद की। उनमें से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर ही वे एक-दूसरे से अलग हो सकते थे। फिर भी हिन्दुओं के बीच डोमों, चंडालो और शूद्रों में तलाक के नियम कायम थे। इस बात की पुष्टि मनूची ओर अबुल फजल दोनों करते है। मनूची के अनुसार "तलाक की प्रथा ब्राह्मण और राजपूत जातियों में भारत में कहीं नहीं पाई जाती है। उच्च जातियों में यदि कोई पत्नी परित्यक्ता हो जाती है तो वह पुनर्विवाह नहीं करती है जबकि छोटी जातियों में दोनों ही पक्ष पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र होते हैं।''

मुस्लिम जगत में तलाक की प्रथा 'खुला' और 'मुबारत' नाम से प्रचलित थी। खुला तलाक में पहल पत्नी की ओर से होती थी, जबकि मुबारत में दोनों पक्षों में से कोई भी इसकी पहल कर सकता था। तलाक के पीछे कोई भी कारण हो सकता था।

बेटियों की उपेक्षा

हिन्दूओं और मुसलमानों दोनां सम्प्रदायों में पुत्री के जन्म को दुभार्ग्यपूर्ण घटना माना जाता था। पुत्री के जन्म का ठंडा स्वागत किया जाता था। ऐसा रुख न केवल परिवार के पुरुष सदस्यों का ही नहीं होता था बल्कि बेटी की माँ और दादी का भी होता था।

यदि हिन्दू महिलाएँ लगातार पुत्रियों को जन्म देती थी तो उसे प्रायश्चित करना पड़ता था। पुत्री के जन्म पर बहुत कम खुशी होती थी क्योंकि पुत्रियाँ अपने पूर्वजों की शांति के लिए आवश्यक कार्यविधियाँ नहीं कर सकती थी और साथ ही उन्हें अनावश्यक खर्च का कारण माना जाता था। पुत्र की माँ का आदर किया जाता था जबकि उसे पुत्री होने पर भला-बुरा कहा जाता था। भारत में अवांछित पुत्री दया का पात्र होती थी। कुछ परिवारों में माता-पिता द्वारा उसे इसलिए डाँटा-फटकारा जाता था कि वह लड़की है। यदि बच्चा शिशु हुआ तो माँ को इक्कीस दिन अस्वच्छ माना जाता था और अगर बच्ची हुई तो यह अवधि एक महीना और बढ़ा दी जाती थी। जाटों में एक विचित्र प्रथा का चलन था, उनके यहाँ पुत्र का जन्म होता था तो कहा जाता कि पुत्री का जन्म हुआ है। यदि कन्या का जन्म होता था, तो कहा जाता था कि एक पत्थर पैदा हुआ है।

कन्या हत्या

हिन्दुओं विशेषत: राजपूतों में पुत्रियों की हत्या बहुत सामान्य बात थी क्योंकि राजपूतों एवं अन्य लडाकू जातियों में लड़की के जन्म को बड़ी अरुचि के साथ देखा जाता था। वे पुत्री के जन्म के समय ही किसी न किसी प्रकार से उसकी हत्या कर देते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनकी विशेष प्रथा के अनुसार उन्हें अपनी पुत्रियों के विवाह के अवसर पर बहुत खर्च करना पड़ता था। पत्नी के चुनाव में जाति के कड़े प्रावधानों के कारण भी पुत्री हत्या की प्रथा चल पड़ी थी। कन्या की विवाह की उम्र हो जाने के बाद भी उनके लिए योग्य पर ढूँढ पाना मुश्किल हो जाता था। जाति प्रथा के निरर्थक क्रूरतापूर्ण नियमों के चलते वह स्वयं अपनी जाति या वंश में ब्याही नहीं जा सकती थी जबकि वर के चुनाव का क्षेत्र कृत्रिमतापूर्वक सीमित कर दिया गया था। फिर उन्हें अविवाहित भी नहीं रखा जा सकता था, क्योंकि इससे परिवार की काफी बदनामी होती थी। पारिवारिक आत्मसम्मान, धार्मिक अनुशासन और बदनामी से बचने की आवश्यकता के कारण यह असंभव सा हो गया था कि पुत्रियों की उम्र बढ़ने दी जाय और उन्हें अविवाहित रहने दिया जाय।

सती प्रथा

सम-सामयिक साहित्यिक कृतियों एवं विदेशियों के यात्रावृतांतों में ढेरों सतीप्रथा के उद्धरणों से स्पष्ट है कि मध्यकाल में सतीप्रथा का व्यापक प्रचलन था। अलबरुनी लिखता है कि यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी तो वह किसी दूसरे पुरुष से विवाह नहीं करती थी या तो वह विध्वा के रुप में जीवित रहती थी या मृत पति के साथ जल मरती थी। बाद वाले विकल्प यानी मृत पति के साथ जल मरने के विकल्प को आमतौर पर पसंद किया जाता था, क्योंकि विध्वा जब तक जीवित रहती थी तब तक उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। जहाँ तक राजाओं की पत्नियों का सवाल था, वे आदतन चाहे या न चाहे, अपने को मृत पति के साथ जला डालती थी। इसमें उनकी इच्छा होती थी कि वे ऐसा कोई अनैतिक काम न कर बैठे जिससे कि उसके विख्यात पति के नाम पर ध्ब्बा लगे। इस नियम में अपवाद तभी किया जाता था जब विध्वा की उम्र ज्यादा होती थी और उन विध्वाओं के मामले में जिनके बच्चे होते थेय क्योंकि माँ बच्चे की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होती है। मनुची के अनुसार ''पति की मृत्यु के बाद एक हिन्दू स्त्री के पास चार रास्ते होते थे या तो वह अपने पति के साथ जल मरे अथवा वेश्यावृत्ति को अपनाये या अपने माता-पिता के साथ रहे या पुनर्विवाह कर ले।" इसमें दूसरा और चौथा रास्ता सामान्यत: नहीं अपनाया जाता था। परिवार के लिए यह बड़ी असम्मानजनक बात मानी जाती थी कि उसकी महिला सदस्यों में से कोई अपने पति की मृत्यु के बाद उसके साथ जल मरने के बजाय विध्वा के रुप में ही रहना पसंद करती थी। यदि महिलायें अपने मृत पति की मृत्यु के बाद उसके साथ परलोक जाने से इंकार कर देती थी, तो उनसे उनकी सखियाँ नफरत करने लगती थी और उसे छोड़ देती थी, मानों वह समाज का कुड़ा-करकट और अशुद्धता की मुर्ति हे और उसके परिवार को सदैव के लिए निन्दा का पात्र बनना पड़ता था।

मनुची लिखता है कि उसने राजपूत विध्वाओं को अनेक बार अपने मृत पति के साथ जलते हुए देखा है। इसका बडा दल होता था जिसमें कभी-कभी एक साथ 15, 20 और यहाँ तक कि 30 विध्वाएँ होती थी। यदि पति की एक से भिन्न जाति की एक से अधिक पत्नियाँ होती थी तो केवल पटरानी को ही मृत पति की चिता पर जलने की अनुमति दी जाती थी जबकि अन्य रानियाँ अलग-अलग चिताओं पर जलती थी।

सतीप्रथा का एक अन्य प्रारुप जो राजस्थान में प्रचलित था जिसे ''जौहर प्रथा'' कहा जाता थाय के अंतर्गत महिलाएँ अपने पति की मृत्यु का इंतजार किए बिना ही अपने जीवन का अंत कर देती थी। जौहर एवं सती में फर्क यह था कि जौहर मृत्यु की संभावना

मात्र से ही चिता जलाकर मरने की प्रथा थी जबकि सती पति की मृत्यु के बाद सहमरण या अनुमरण विधि से आत्मदाह की प्रथा थी। जेम्स टॉड लिखता है कि राजपुतिनों का भाग्य भयानक कठिनाईयों का होता था। जीवन के हर चरण में मृत्यु उनको अपने आलिंगन में लेने के लिए तैयार थी। जब राजपूत सरदार या उनके योद्धा किसी युद्ध अभियान में हारकर निराश हो जाते थे, वे अपने यहाँ की महिलाओं और बच्चों को मार डालते थे या उनको किसी भुमिगत घर के भीतर ताले में बंद कर उसमें आग लगा देते थे और फिर हाथ में तलवार लिए हुए वे अपनी निश्चित परन्तु शौयपूर्ण मृत्यु की ओर अग्रसर होते थे।

देवदासी प्रथा

मध्य काल मे प्रचलित देवदासी प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही परम्पर का ही विस्तार था। इटालियन पर्यटक मार्कोपोलो ने लिखा है कि 'माता-पिता कभी-कभी अपनी अविवाहित पुत्रियों को उन देवताओं के मंदिरों में जिनमें उनकी अपार श्रद्धा थी, पर्व एवं समारोहों में नाचने-गाने के लिए तथा सेवा करने के लिए भेज देते थे, जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती थी'। मालावार की स्त्रियाँ शिव की प्रतिमा पूजती थी और अपने पुत्री को उन्हें अर्पित करती थी। फरिश्ता के अनुसार अलाउद्दीन बहमनशाह ने जब कर्नाटक पर कब्जा किया तो उसने चार सौ देवदासियों को पकड़ा था। राजतरंगिणी में भी कश्मीर के मंदिरों मे देवदासियों की उपस्थिति का वर्णन मिलता है।

कालांतर में मुस्लिम अनुयायियों ने भी अपने अराधना स्थलों को कन्या अर्पित करने की प्रथा शुरु की। लखनऊ में ऐसी प्रथा को 'अछूती' कहा जाता था। इन्होंने अपने लिए एक मुहल्ले का निर्माण कर लिया, इसका साक्ष्य अभी भी लखनऊँ में अछूती गली के नाम से मिलता है।

अपनी मन्नत पूरी करने के लिए देव प्रतिमाओं के सामने नग्न-पूजा की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। धार्मिक विधन यह भी रहा है कि एक बार यदि कोई व्यक्ति नग्न पूजा शुरु करता है तो उसे यह परम्परा अपने परिवार मे पीढ़ी-दर-पीढ़ी कायम रखनी होगी।

उड़ीसा में देवदासी परम्परा का प्रचलन जगन्नाथ मंदिर, कोणार्क मंदिर एवं लिंगराज मंदिर में मिलता हैं। 17वीं शताब्दी के फ्रांसीसी पर्यटक वनिर्यर के विवरण से पता चलता है कि भगवान जगन्नाथ के नाम पर पुजारियों द्वारा इन औरतों का यौन-शोषण किया जाता था।

वेश्या वृती

मध्यकाल में वेश्याओं या गणिकाओं की संख्या में काफी वृद्धि हो गई थी। इस समूह में नत्तर्की, वेश्या, गणिका या पातुर सभी को शामिल कर लिया गया था। अपनी जीविका अर्जित करने के लिए वेश्याएँ किसी पुरुष को चाहे उसकी उम्र और जाति कुछ भी हो अपना शरीर अर्पित करती थी।

दिल्ली सल्तनत में वेश्यावृत्ति बड़े पैमाने पर प्रचलित थी। अलाउद्दीन खिलजी को दिल्ली में बढ़ती हुई वेश्याओं की संख्या से काफी असहजता महसूस हुई फलतः कुछ वेश्याओं का विवाह कर दिया गया जिससे उनकी संख्या में कुछ कमी आई. 16वीं सदी की रचना हिततरंगिणी मे वेश्याओं की तीन कोटियाँ बताई गई है। गणिका, विलासिनी और रुपाजीवा। लाहौर नगर में वेश्यावृत्ति पर रोक लगाने के लिए अकबर ने इनके लिए शहर में एक विशेष क्षेत्र निश्चित कर उसका नाम 'शैतानपुरी' रख दिया तथा शहर के सभी बदनाम स्त्रियों को वहाँ रहने के लिए बाध्य कर दिया।

विजयनगर साम्राज्य में गणिकाओं का सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। समकालीन साहित्य में चारों वर्णो के साथ इन गणिकाओं के सम्बन्धा का उल्लेख है। ये गणिकाएँ दो वर्गों में विभक्त थी एक तो वे जो मंदिरों से सम्बद्ध थी यानी देवदासी और दूसरी वे जो स्वतंत्र जीवन-यापन करती थीं। सार्वजनिक उत्सवों पर समस्त गणिकाएँ अनिवार्यतः भाग लेती थी। राजा और सामंत दोनों निःसंकोच रुप से गणिकाओं से सम्पर्क रखते थे। वेश्यावृत्ति राज्य के राजस्व का एक महत्वपूर्ण श्रोत था।

सन्दर्भ

- आप्टे, वामन शिवराम (1969). संस्कृत हिन्दी कोश. दिल्ली, पटना, वाराणसी भारतः मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 174.
- प्रसाद, कालिका (2000). बृहत हिन्दी कोश. वाराणसी भारतः ज्ञानमंडल लिमिटेड. पृ. 147.

- नाहर, डॉ रतिभानु सिंह (1974). प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास. इलाहाबाद, भारत: किताबमहल. पृ. 1.
- Whitney, W. D. (1889). The Century dictionary_ an encyclopedic leñicon of the English language, A rchived 27 अक्टूबर 2011 at the वेबैक मशीन.. New York, The Century Co- Page 2842A rchived 27 अक्टूबर 2011 at the वेबैक मशीन. |language=अंग्रेजी
- Pavkovic, माइकल; मोरिलो, स्टेफन (2006). What is Military History, ऑक्सफोर्ड: राजनीति प्रेस (प्रकाशित 31 जुलाई 2006). पृ. 3-4. आई.एस.बी.एन. 978-0-7456-3390-9.
- कोक्रेन, एरिक (1975). What Is Catholic Historiography, Catholic Historical Review. 61 (2): 169-190. JSTOR 25019673.
- उदाहरण के लिये देखें गजानो, Sofia Boesch; केलिओ, टोमेसो (1998). "Italian Religious Historiography in the 1990s" Journal of Modern Italian Studies. 3 (3): 293-306.
- मुरीएल ई. चेम्बरलेन, Pañ Britannica? ब्रिटिश विदेश नीति 1789-1914 (1988)
  भारतीय इतिहास के कुछ विषय (Archaeology & Ancient India) (गूगल पुस्तक; लेखक-रघुनाथ राय)

संस्कृत साहित्य में परमात्मा की अवधारणा

डॉ० इंदु कुमारी

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (विश्वविद्यालय परिसर)

संस्कृत साहित्य में आत्मा परमात्मक विषयक तत्वज्ञान भरा पड़ा हुआ है। भारतीय समाज में आत्मा परमात्मा विषयक धारणा पर भ्रम फैलाया गया है। साहित्य के प्रमाणों के विकृत करके प्रस्तुत करने अन्वेषकों की आदत के कारण ये होता है हम सर्वप्रथम भारतीय तत्वज्ञान की विकसित समझे जाने वाली परमेश्वर विषयक कल्पना का अवलोकन करेगे तत्पश्चात वेदों की ऋचा के आध ार पर उसका मूल्यांकन करेंगे।

श्रीमद् भगवत गीता में कहा गया है कि यह संपूर्ण विश्व अव्यक्त है। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि का मूलतत्व अव्यक्त है तथा उसी अव्यक्त मूल तत्व में सृष्टि अन्त में विलिन हो जाती है। केवल मध्य का जो काल है उसमें सृष्टि व्यक्त दशा में रहती है। इस सृष्टि में भी जड़ चेतन उपभोग्य व उपभोक्ता, ज्ञाता एवं ज्ञेय का द्वन्द्व दृष्टिगोचर होता है। इस द्वंद्व को ही भारतीय तत्वज्ञो ने सृष्टि का मूल तत्व माना है और उसका कथन है कि जड़ चेतन्य का यह द्वंद्वात्मक प्रवाह अनादि सिद्धि है। इस द्वंद्व के स्वरूप एवं उसके कार्य का वर्णन करते हुए गीताकार कहते है-

पुरूषं प्रकृति चैवं विद्रयनादी उभावपि

विकाराश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृति संभवात् ।।

(1) संदर्भ-1

प्रकृति और पुरूष दोनों को ही तु अनादि मान, विकार और गुण प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरूच्यते

पुरूषः सुखदुः खानां भोक्तृत्यै हेतुरूच्यते।। (2) संदर्भ-र

कार्य अर्थात् देह कारण अर्थात् इन्द्रियो का कारण प्रकृति है और कर्ता न होकर भी सुख दुःख के उपभोग का कारण है।

इस विषय में लोकमान्य तिलक कहते है ''यदि नानात्व के मुल को प्रकृति द्रव्य के एकत्व में खोजने की सांख्यांदि द्वदवावियोगी पद्धति युक्ति युक्त एवं शास्त्रीय मानी जाये तो इस द्वंद्व तक आकर रूक जाना अर्थात् प्रकृति पुरूष सप्त द्वंद्व का भी अन्तर्भाव किसी एकत्व में करना आवश्यक हो जाता है और इसीलिए प्रकृति पुरूष के परे एक तीसरी सर्वव्यापक अव्यक्त तत्व तक हम पहुंचते हैं। और यह तत्व सृष्टि के मूल में विद्यमान है उसकी इच्छा शक्ति से जड़शक्ति कार्य प्रवण होती है और व्यवहार करती है प्रकृति सगुण है सगुण पदार्थ नाशवान है। यह जगत् का अनुभव है इस कारण यह एकमात्र अद्वितीय तत्व निर्गुण है अतः वही सृष्टि का वास्तविक एवं नित्य तत्व है गीताकार भी आगे कहते है।

अविनाश तुं तद्विद्धि तेन सर्वमिदं ततम्।

विनाशम व्ययस्यास्य नं कश्यित्कर्तु मर्हती।। गीता- 2-छ7।। संदर्भ-3

इस जगत में जिसका विस्तार अथवा व्याप है मुल आत्मा स्वरूप ब्रह्मअविनाशी है। इसे तू ध्यान में रख इस अव्यक्त तत्व का नाश करने में भी कोई समर्थ नहीं है।

आगे भगवान् विश्वरूप दर्शन में ईश्वर की सर्वव्यापकता अव्यक्तता प्रगट करते हैं।

इस प्रकार गीता के अनुसार परमेश्वर तत्व सर्वत्र एकरस स्वप्रतिष्ठित तथा स्वयंप्रज्ञ है। वह अद्वितीय होने के कारण उससे भिन्न इस जगत में कुछ भी नहीं है

उपनिषदो में व्यक्त परब्रह्म

उपनिषद् काल में भी जगत जगदीश्वर के संबंध में भारतीय तत्वज्ञान ने पूर्णता प्राप्त की थी। उपनिषद् के कुछ भागों को यहां उद्धृत किया है।

ऊँ पूर्णमद: पूर्णमदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्य ते।। इशावास्योपनीषद।। संदर्भ-4

वह परबह्म पूर्ण है। उपाधि सहित ब्रह्म भी पूर्ण ही है। वह कार्यात्मक ब्रह्म उस पूर्ण अर्थात् कारणात्मक ब्रह्म से उत्पन्न होता है परंतु उत्पन्न होकर विलग होने पर भी उसका पूर्णत्व बना रहता है तथा अवशिष्ट रहनेवाला ब्रह्म भी पूर्ण ही रहता है।

अणोरपीयान्महतो महीयानात्मडस्य जन्तोर्निडितो गृहायाम्।

तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन।। कठोपनिषद 2 ।। संदर्भ-र

आत्मतत्व सूक्ष्मतम अणु से भी अधिक सूक्ष्म एवम् महत् परिमाणवान पदार्थ से भी अधिक वह समस्त प्राणियों के हृदय में वास करता है। संकल्पहीन श्रेष्ठ पुरुष ही उसको देख सकते है तथा उसे देखकर शोक रहित हो जाते हैं।

यदोर्णनाभि: सृजते गृहणते च यथा पृथिवामोषय: संभवन्ति।

यथा सत: पुरूषोत्केशलोमनि तथा डक्षराम्संभवतीह विश्वम्। मुडकोपनिषद।। संदर्भ-6

जिस प्रकार मकडी तंतुओं को उत्पन्न करती है पुन: उन्हें अपने शरीर में वापस खींच लेती है जिस प्रकार पृथ्वी में औषधि यां उत्पन्न होती है अथवा जिस प्रकार केश-लोम उत्पन्न होते है उस प्रकार अक्षर से इस संसार मंडल में विश्व की उत्पत्ति होती है।

भुडको उपनिषद में परब्रह्म को विश्व पुरूष की संज्ञा दी गई है और अमृतमय कर्हा हो गया है सारांश यह कि उपनिषदों के मतानुसार काल: देश कार्य कारण संबंध से मर्यादित जो यथार्थ है वह मिथ्या है।

दिक्कालातीत एवम एकमेवा द्वितीय परब्रह्म ही वास्तव में सत्य है, यह परमात्मा अपने देह में विद्यमान आत्मा एक ही है। 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत्वमसि', 'सर्वखटिवदम् ब्रह्म' एवम् अहं ब्रह्मास्मि इन चार महावाक्यों के आधार पर ही भारतीय तत्वज्ञान का विशाल मंदिर खडा है।

वेद में परब्रह्म विषयक तत्वज्ञान

वैदिक ऋषियों ने परमात्मा का साक्षातकार करके उसके संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किये है। ऋग्वेद में अनेक देवताओं के विलक्षण महत्व का वर्णन किया गया है। ये देवता कौन थे। इस संबंध में स्पष्टीकरण करेंगे। ऋग्वेद में देवता अनेक भले हो उनका मूल स्वरूप कुछ भी क्यों न रहा हो और इस कारण यह मानने की प्रवृत्ति सी बन गई है की ऋग्वेदीय लोग अनेक देवतावादी थे आगे चलकर वे क्रमश: एक देवत्व की ओर अग्रसर हुए। किन्तु ऋग्वेद को देखने पर वह बात गलत मालूम पड़ती है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि वास्तव में एक ही तत्व सर्वत्र व्याप्त है। वही भिन्न-भिन्न नामों से व्यक्त है।

अचिकि त्वात्र चिकितुष चित् अत्र कवीन् पृच्छामि विदमने न विद्वान।

दिय: तस्तंभषल् इमां रजासि अजस्थ रूपे किं अपि स्वित् एकम्।। संदर्भ-8

इस संबंध में मेरी समझ में कुछ नहीं आता। मैं अज्ञानी जो ठहरा समझने के लिए जिन्हें ये सारी बाते समझने आती है उन्हीं से मैं पूछता हूँ कि क्या यह सत्य है कि इन छहों लोकों को धारण करनेवाले उस जन्मरहित ईश्वर के स्वरूप में एकात्मकता है।

अहम् इन्द्र: वरूण ते इति: महिडत्वा उर्वी (इति) गभीरे (इति) रजसी (इति) सुमेके (इति)। सुडमेके/विष्टाडरव विश्वा भुवनानि विद्वान सम् एश्यन् रोदसी (इति) धारयम् च। (संदर्भ-8)

मैं इन्द्र हुँ। मैं ही वरूण हूँ। अपनी महिमा के कारण अति विस्तीर्ण गहरे रम्याकृति बने हुए थे (दो रजोलोक) भी मैं ही हूँ। मैं ही सर्वज्ञ देव हूँ तथा मैंने ही त्वष्टा के समान यच्चायावत् भुवनो को चालना देकर सम्भाला हुआ है।

और आगे सहस्त्राविध मस्तक नेत्र चरणवाले परमात्मा का वर्णन प्राप्त होता है। वेद में भी परमात्मा को ही दृश्य जगत् का कारण बताया है वही सर्वशक्तिमान है निर्गुण है। निराकार है और इस जगत का कर्ता है इस तरह वैदिक युग में भी जगत जगदीश्वर विषयक सिद्धांत परिपूर्ण था। उसके आगे के काल में भी उन तत्व सिद्धांतों में महत्वपूर्ण नहीं पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य में परमात्मा संबंधी तत्वज्ञान जो पाया जाता है यह बुद्धिविकास के लिये नहीं है उससे जीवन का गठन करने का उद्देश्य है मनुष्य जीवन महत्वपूर्ण है जो मनुष्य इस ज्ञान का प्रयोग अपने जीवन में करे तो वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और अपने जीवन को धन्य कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ:

RC-1 श्रीमद भगवतगीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-2 श्रीमद भगवतगीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-3 श्रीमद भगवतगीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-4 इशावास्यम उपनिषद – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-5 कठोपनिषद – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-6 मुंडकोपनिषद – गीताप्रेस, गोरखपुर

RC-7 ऋग्वेद संहिता-भाग-र – श्री रामशर्मा आचार्य जी

RC-8 ऋग्वेद संहित भाग-र – श्री रामशर्मा आचार्य जी

बुढ़ापा और स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी आवश्यकताएं

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग, पी.वाई.के.जे. महाविद्यालय, बंगाहीं,
बीआरए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

वृद्धावस्था या बुढापा जीवन की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें उम्र मानव जीवन के औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। वृद्ध लोगों के बीमार पड़ने की संभावनाएं अधिक होती है। उनकी समस्याएं भी अलग होती हैं। वृद्धावस्था एक धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है जो कि स्वभाविक व प्राकृतिक घटना है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ है बढ़ा हुआ, पका हुआ, परिपक्व। वृद्धावस्था में प्रत्येक मनुष्य की ऊँचाई 2 से 5 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

परिचय

पश्चिमी यूरोप और जापान के कई समाजों में बूढ़े लोगों की संख्या अधिक है। एक ओर जहां समाज पर इसके जटिल प्रभाव पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य सेवा संबंधित आवश्यकताओं पर पड़ने वाला प्रभाव भी एक चिंता का विषय है।

बहरहाल, राष्ट्रीय स्वास्थ्य खर्च में वार्षिक वृद्धि मुख्य रूप से वृद्धों की बढ़ती हुई आबादी के कारण नहीं है, बल्कि इसके बढ़ने का कारण बढ़ती आमदनी, नई महंगी चिकित्सा तकनीक, स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्ताओं की संख्या में कमी तथा सेवा प्रदाताओं और रोगियों के बीच सूचना में विषमताएं हैं।

फिर भी, यह अनुमान लगाया गया है कि 1970 के बाद से 4.3 प्रतिशत के चिकित्सा खर्च में वृद्धों की जनसंख्या बढ़ने से वार्षिक वृद्धि दर में केवल 0.2 प्रतिशत अंकों की बढ़ोत्तरी हुई है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा में कुछ सुधारों की कमी के चलते 1996 और 2000 के बीच बुजुर्गों द्वारा घरेलू स्वास्थ्य देखभाल पर किये जाने वाले खर्चों में 12.5 प्रतिशत की कमी आई है। इससे यह पता चलता है कि स्वास्थ्य देखभाल लागत पर बूढ़े लोगों की आबादी द्वारा पड़ने वाला प्रभाव अनिवार्य नहीं है।

जेलों पर प्रभाव

जुलाई 2007 तक, संयुक्त राज्य अमेरिका में एक विशिष्ट कैदी के लिए एक एजेंसी की चिकित्सा लागत लगभग 33 डॉलर प्रति दिन तक थी, जबकि बूढ़े कैदी के लिए यह लागत 100 डॉलर तक हो सकती है। अधिकांश राज्य दस्तावेजों द्वारा यह पता चलता है कि वार्षिक बजट का 10 प्रतिशत से अधिक हिस्सा बूढ़े लोगों की देखभाल पर खर्च किया जाता है। अगले 10-20 वर्षों में इसमें वृद्धि होने की संभावना है। कुछ राज्यों ने बूढ़े कैदियों को जल्दी रिहा करने की बात कही थी।

संज्ञानात्मक प्रभाव

तीस साल की आयु से शुरुआत कर के एक व्यक्ति की कई संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में उम्र भर लगातार गिरावट देखी गई है। अनुसंधान में स्मृति और बुढ़ापे पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है और पाया गया है कि बुढ़ापे के साथ स्मृति में कई प्रकार

की गिरावट आती है, किन्तु अर्थ स्मृति या सामान्य ज्ञान जैसी शब्दावली परिभाषाओं में कोई गिरावट नहीं आती नहीं, यह आम तौर पर बढ़ती है या स्थिर बनी रहती है। उम्र के साथ अनुभूति में परिवर्तनों पर हुए शुरुआती अध्ययनों में आम तौर पर उम्र बढ़ने के साथ बुद्धिमत्ता में कमी पाई गई है, किन्तु ये अध्ययन महत्त्वाकांक्षी होने की बजाए भावना प्रधान थे और इसलिए प्राप्त परिणाम गिरावट का एक सच्चा उदाहरण होने की बजाए किसी समूह विशेष द्वारा गढ़े गए हो सकते हैं। उम्र बढ़ने के साथ बुद्धिमत्ता में गिरावट आ सकती है, हालांकि इसकी दर इसके प्रकार के आधार पर अलग-अलग हो सकती है और वास्तव में जीवन की अधिकांश अवधि में स्थिर रह सकती है और लोगों के जीवन का अंत निकट आने पर इसमें अनायास गिरावट आ सकती है। इसलिए संज्ञानात्मक गिरावट की दर में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को लोगों की अलग-अलग जीवन अवधि के सन्दर्भ के रूप में विस्तार से बताया जा सकता है। इसमें दिमाग में परिवर्तन होते हैं: हालांकि 20 वर्ष की उम्र में न्यूरॉन की कम हानि होती है, लेकिन इसके बाद प्रत्येक दशक के बाद मस्तिष्क के मेलिनेटेड एग्सॉन की कुल लंबाई में 10% कमी आती है।

बढ़ती उम्र का सामना करना और स्वस्थ रहना

मनोवैज्ञानिकों ने बुजुर्गों में बढ़ती उम्र का सामना करने के कौशल का निरीक्षण किया है। ऐसा माना गया है कि जीवन के अंत में जीवन की तनावपूर्ण घटनाओं का सामना करने में विभिन्न कारक जैसे सामाजिक सहायता, धर्म और अध्यात्म, जीवन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ना और आत्म केन्द्रण लाभकारी हैं। सामाजिक समर्थन और निजी नियंत्रण संभवत: दो सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं जो वयस्कों के स्वास्थ्य, रुग्णता और मृत्यु दर के बारे में बताते हैं। अन्य कारक जिनका बुजुर्गों के स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता से संबंध हो सकता है, उसमें सामाजिक रिश्ते (संभवत: मनुष्यों के साथ-साथ जानवरों से रिश्ता) और सेहत शामिल हैं।

एक ही सेवानिवृत्ति घर के विभिन्न पक्षों के व्यक्तियों ने कम मृत्यु दर जोखिम और उच्च सतर्कता का प्रदर्शन किया है और जहां निवासियों का अपने आस पास के वातावरण पर अधिक नियंत्रण था, वहां स्वास्थ्य का आत्म-मूल्यांकन किया है, हालांकि निजी नियंत्रण का स्वास्थ्य के विशिष्ट उपायों पर कम असर हो सकता है। सामाजिक नियंत्रण, ये धारणाएं कि किसी व्यक्ति के सामाजिक संबंधों पर किसी अन्य व्यक्ति का कितना प्रभाव है, बुजुर्गों में सामाजिक सहायता और कथित स्वास्थ्य के बीच एक मध्यस्थता कारक का काम करता है और बुढ़ापे से लड़ने के लिए सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

धर्म

जीवन के अंतिम दौर की इच्छाओं का सामना करने के लिए बुजुर्गों में धर्म एक महत्वपूर्ण कारक होता है और जीवन के अंत में किसी और कारक की तुलना में कहीं अधिक प्रकट होता है। धार्मिक प्रतिबद्धता को कम मृत्यु दर के साथ जोड़ा जा सकता है। हालांकि धार्मिकता एक बहुआयामी कारक है; जबकि औपचारिक और संगठित अनुष्ठानों में भागीदारी के अर्थ में धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी कम हो सकती है, यह और अधिक अनौपचारिक हो सकती है, किन्तु फिर भी निजी या व्यक्तिगत प्रार्थना के रूप में यह जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू बनी रह सकती है।

स्व-मूल्यांकित स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के स्व-मूल्यांकन, यह विश्वास कि मेरी अपनी सेहत शानदार, ठीक या खराब है, को बुजुर्गों के स्वास्थ्य और मृत्यु दर से जोड़ा गया है; सकारात्मक रेटिंग अच्छे स्वास्थ्य और कम मृत्यु दर से जुड़ी है। इस सहयोग के लिए कई कारण बताए गए हैं; वे लोग जो स्वाभाविक रूप से स्वस्थ हैं, वे अपने बीमार समकक्षों की तुलना में अपने स्वास्थ्य को बेहतर दर्जा देंगे, हालांकि इस संबंध का विश्लेषण अध्ययनों में भी किया गया है जिन्होनें सामाजिक आर्थिक स्थिति, मनोवैज्ञानिक कार्यविधि और स्वास्थ्य स्थिति को नियंत्रित किया है। यह निष्कर्ष महिलाओं की तुलना में पुरुषों के लिए आम तौर पर अधिक ठोस है, यद्यपि सभी अध्ययनों में लिंग पैटर्न सार्वभौमिक नहीं है और कुछ परिणामों के अनुसार लिंग आधारित अंतर केवल कुछ आयु वर्गों में मृत्यु दर के कुछ कारणों और स्वास्थ्य के स्व-मूल्यांकन के कुछ विशिष्ट उप-समूहों के लिए प्रकट होते हैं।

सेवानिवृत्ति

सेवानिवृत्ति, एक आम परिवर्तनकाल है जिसका सामना बुजुर्गों द्वारा किया जाता है और इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणाम हो सकते हैं।

सामाजिक प्रभाव

दुनिया भर में प्रतिदिन मरने वाले लगभग 1,50,000 लोगों में से, लगभग दो तिहाई-प्रतिदिन 1,00,000-बुढ़ापे से जुड़े कारणों की वजह से मरते हैं। औद्योगिक देशों में, यह अनुपात बहुत अधिक है जो 90% तक पहुंच गया है।

सामाजिक बुढ़ापा आबादी और समाजों की वृद्ध जनसांख्यिकीय को सन्दर्भित करता है। उम्र बढ़ने के नजरिए से सांस्कृतिक अंतरों का अध्ययन किया गया है।

भावनात्मक सुधार

बुढ़ापे की शारीरिक और संज्ञानात्मक गिरावट को देखते हुए, एक आश्चर्यजनक बात पता चली है कि भावनात्मक अनुभव उम्र के साथ सुधरता है। बूढ़े अपनी भावनाओं को बेहतर ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं और युवा वयस्कों की तुलना में कहीं कम नकारात्मक प्रभाव का अनुभव करते हैं और अपने ध्यान और स्मृति के प्रति सकारात्मक प्रभाव दर्शाते हैं। भावनात्मक सुधार लॉन्गीट्यूडनल अध्ययनों के साथ-साथ क्रॉस-सेक्शनल अध्ययनों में दिखाई देते हैं और इसलिए केवल प्रसन्न जीवित व्यक्तियों की वजह से ऐसा नहीं हो सकता.

सफल वृद्धावस्था

सफल वृद्धावस्था की अवधारणा को 1950 के दशक में खोजा गया और यह 1980 के दशक में लोकप्रिय हुई। बुढ़ापे से जुड़ा पिछला अनुसंधान उस सीमा तक पहुंचा जहां सेहत की अक्षमताओं जैसे मधुमेह या ऑस्टियोपोरोसिस को उम्र के लिए विशेष रूप से जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और जराविद्या में हुए अनुसंधान ने बुजुर्ग लोगों के नमूनों की एकरूपता को बढ़ावा दिया।

सफल बुढ़ापे के तीन घटक हैं:

1. बीमारी या विकलांगता की कम संभावना;
2. उच्च संज्ञानात्मक और शारीरिक कार्यात्मक क्षमता;
3. जीवन के साथ सक्रिय जुड़ाव.

बड़ी संख्या में लोग इन मानदंडों को पूरा करने वालों की तुलना में स्वयं को सफल बुढ़ापे का प्रतिनिधि मानते हैं।

निष्कर्ष

सफल बुढ़ापे को अंत:विषय अवधारणा के रूप में देखा जा सकता है, जो मनोविज्ञान और समाजशास्त्र, तक फैला हुआ है, जहां इसे समाज और व्यक्तियों के बीच एक समझौते के रूप में देखा जाता है, जिसमे जीवन के अंतिम वर्षों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाता है। "स्वस्थ बुढ़ापे" "इष्टतम बुढ़ापे" जैसे शब्दों को सफल बुढ़ापे के विकल्प के रूप में प्रस्तावित किया गया है।

सफल बुढ़ापे के छह आयामों में शामिल हैं:

1. चिकित्सक द्वारा 75 वर्ष की उम्र के बाद किसी शारीरिक अक्षमता का मूल्यांकन नहीं किया गया हो।
2. अच्छा व्यक्तिपरक स्वास्थ्य मूल्यांकन (यानी अपने स्वास्थ्य का अच्छा स्व-मूल्यांकन);
3. सक्षम जीवन की लंबाई;
4. अच्छा मानसिक स्वास्थ्य;

5. उद्देश्यपरक सामाजिक समर्थन;
6. आठ क्षेत्रों में स्व-मूल्यांकित जीवन संतुष्टि अर्थात् विवाह, आय से संबंधित काम, बच्चे, दोस्ती और सामाजिक संपर्क, शौक, सामुदायिक सेवा गतिविधियां, धर्म और मनोरंजन/खेल।

सन्दर्भ

- Kijong Kim; Rania Antonopoulos (2011). Unpaid and Paid Care: The Effects of Child Care and Elder Care on the Standard of Living (PDF). Levy Economics Institute.
- Bean, Jonathan. "Three Big Risks For Older Adults: Walking, Climbing Stairs and Rising from a Chair - Evidence-based Rehabilitative Care for Older Adults." CIMIT Forum. November 6, 2007.
- बास, एस.ए. (2006)। जेरोंटो लॉकजिकल थ्योरी: होली ग्रेल. जेरोंटोलॉजिस्ट, 46, 139-144.
- बाथ, पी.ए. (2003)। सेल्फ-रेटेड हेल्थ/ मोर्टैलिटी संबंध में बूढ़े पुरुषों और औरत के बीच मतभेद. जेरोंटोलॉजिस्ट, 43 387-94
- *Charles, S.T.; Reynolds, C.A.; Gatz, M. (2001). "Age-related differences and change in positive and negative affect over 23 years". Journal of Personality and Social Psychology.* ***80*** *(1): 136–151. PMID 11195886. डीओआइ: 10.1037/0022-3514.80.1.136.*
- Mather, M.; Carstensen, L. L. (2005). "Ageing and motivated cognition: The positivity effect in attention and memory" (PDF). Trends in Cognitive Sciences. **9** (10): 496–502. PMID 16154382.*डीओआइ:* 10.1016/j.tics.2005.08.005. मूल (PDF) से 7 मार्च 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 23 जनवरी 2011.
- मसोरो ई.जे. एंड ऑस्टैड एस.एन.. (एड्स.): हैन्डबुक ऑफ द बायोलॉजी ऑफ एजिंग, छठा संस्करण. अकादमी प्रेस. सैन डिगो, सीए (CA), संयुक्त राज्य अमेरिका, 2006. ISBN 0-12-088387-2
- मूडी, हैरीआर. आयुर्वृद्धि: अवधारणाएं और विवाद. 5 एड. कैलिफोर्निया: पाइन फोर्ज प्रेस, 2006.
- जैक्स, आर.टी., हशर, एल., एंड ली, के.जेड.एच. (2000)। स्मृति मानव. एफ.आई। एम. क्रेक एंड टी.ए. सौल्टहॉउस (एड्स.), द हैन्डबुक ऑफ एजिंग एंड कॉग्निशन (पीपी. 293-357)। माहवाह, एनजे: एर्लबौम.

नई शिक्षा नीति 2020:
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० जया

अतिथि सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, ए.एन.डी. महाविद्यालय, समस्तीपुर,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

1976 में 42 वें संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया। तब से शिक्षा की व्यवस्था करना केन्द्र और प्रांतीय सरकार दोनो का उत्तरदायित्व है। शिक्षा पर यह तीसरी राष्ट्रीय नीति है। पहली 1968 में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की सरकार द्वारा, दूसरी 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा प्रख्यापित किया गया जिसे बाद में 1992 में पी वी नरसिम्हा राव की सरकार द्वारा संशोधित किया गया था। 2002 में संविधान के 86वें अधिनियम शिक्षा के अधिकार के माध्यम से एक मौलिक अधिकार के रूप में पहचाना जाने लगा। संविधान के अनुच्छेद 21 (क) प्रावधान करता है कि 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। जिसे व्यवहारिक रूप देने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिकार अधिनियम 2009 को पारित किया गया। नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य पाठ्यक्रम की साम्रगी को उसकी मूल अनिवार्यता को कम करना है, प्रमुख अवधारणाओ और विचारों पर ध्यान केद्रित करना ताकि बच्चे अधिक महत्वपूर्ण सोच और अन्य चीजों के बीच, अधिक विश्लेषण आधारित सीखने का अभ्यास कर सके। 34 वर्षो के बाद आई हमारी नई शिक्षा नीति 2020 दूरदर्शी और महत्वकांक्षी है दोनों है जिसका उद्देश्य हमारी शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाना है।यह लेख भारत की नई शिक्षा नीति 2020 का विश्लेषण करना चाहता है।

शब्द संकेत : संवैधानिक प्रावधान, स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, शैक्षनिक पाठ्यक्रम, भारतीय शिक्षा प्रणाली।

संवैधानिक प्रावधान व स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति

1976 में 42 वें संविधान संशोधन के द्वारा भारत का संविधान भारत को एक प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य के रूप में स्वीकार करते हुए नाागरिको को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय प्रदान विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म व उपासना की स्वतंत्रता देने के लिए एवं प्रतिष्ठा व अवसर की समानता के साथ-साथ व्यक्ति की गरिमा व राष्ट्र की एकता व अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाने का संकल्प किया गया। संविधान के इस संकल्प में देश के सभी नागरिकों के शैक्षनिक विकास की भावना को प्रकारान्तर में समाहित किया गया। निश्चित ही सामाजिक व आर्थिक विचारों व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा व गरिमा की अनुभूति जैसी व्यवस्थाओं का सुनिश्चयन किसी अच्छी शैक्षिक व्यवस्था के अभाव में नहीं हो सकता है। इसलिए भारत के संविधान की प्रस्तावना में ही देश के भावी नागरिकां के शिक्षा संबंधी अघिकारो का बीजारोपण कर दिया था। स्वतंत्रता के बाद से, भारत की साक्षरता दर में निर्विवाद रूप से सुधार हुआ है और शिक्षा में समानता और समावेशिता किसी हद तक हासिल हुई है। शैक्षिक संस्थानों की संक्ष्या तीन गुणा हो गई और बुनियादी ढ़ाँचे और शिक्षण गुणवत्ता दोनों में एक उल्लेखनीय सुधार देखा गया है। यूनेस्को द्वारा 2015 में प्रकाशित एक रिर्पोट के अनुसार, देश में वयस्क साक्षरता दर 72.1 प्रतिशत है, जबकि युवाओं के लिए यह 86.1 प्रतिशत (14-24 वर्ष की आयु) है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-1966): कोठारी आयोग के रूप में जाना जाने वाला इस आयोग ने शिक्षा का एक सामान्य पैटर्न बनाने पर ध्यान केंद्रित किया और शिक्षा के विकास के लिए दिशानिर्देश और नीतियों की सलाह दी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जीसी) के तत्कालीन अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में 24 जुलाई, 1964 को "शुरू हुए इस आयोग ने प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक के लिए विकास के सामान्य सिद्धांत को तैयार करने में मदद की। साथ ही कृषि और संबद्ध विज्ञान के क्षेत्र में शिक्षण और अनुसंधान पर विशेष जोर दिया। इसी कोठारी आयोग की रिर्पोट के आधार पर, तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने 1968 में शिक्षा पर पहली राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गई। नीति का उद्देश्य शिक्षा के कम में पुनर्गठन और बराबरी करना था। 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा को पूरा करने का आह्वान किया तथा क्षेत्रीय भाषाओं के सीखने पर जोर दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986): पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने मई 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की शुरूआत की जिसमें विशेष रूप से महिलाओं और आरक्षित समुदायों के लिए समान शैक्षिक अवसरों पर विशेष जोर दिया गया। आरक्षित वर्गो से अधिक शिक्षकों की भर्ती करने के लिए छात्रवृत्ति का विस्तार करने और गरीब परिवारों को नियमित रूप से अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहन से 1986 के एनपीई ने प्राथमिक शिक्षा को बेहतर बनाने में मदद की। 1985 में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के उद्घघाटन के साथ मुक्त विश्वविद्यालय पको भी बढ़ाया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992): पी वी नरसिम्हा राव ने 1992 में एनपीई को संशोधित किया, जिसमें उच्च शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया। एम. फिल और पीएचडी के लिए पाठ्यक्रम और शोध भत्ता के आधुनिकीकरण के लिए 20 विश्वविद्यालय का प्रस्ताव रखा गया।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005): भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) द्वारा 2005 में प्रकाशित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ने भारत में स्कूल शिक्षा कार्यक्रमों के भीतर पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रथाओं में बड़े बदलाओं की सिफारिश की। इसने बच्चों के लिए सीखने को आन्नदमय और कम तनावपूर्ण बनाने पर ध्यान केंद्रित किया।

बच्चों को मुफ्त और अनिकार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009): ऐतिहासिक अधिनियम 6-14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाना चाहता है। आरक्षित श्रेणी के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने के लिए सभी निजी स्कूलों की आवश्यकता है।

नई शिक्षा नीति (2016): मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी, इस नीति ने भारत के शिक्षा परिदृश्य को काफी हद तक बदलने की माँग की। लिंग-भेद को संबोधित करने, विज्ञान, गणित और अंग्रेजी के लिए पाठ्यक्रम बनाने, कक्षा 5-8 के लिए नों डिटेंशन पॉलिसी के संशोधन और सीआईएससीई से संबद्ध स्कूलों में अनिवार्य योग कक्षाओं के लिए 43 पन्नों का दस्तावेज तैयार किया गया,जो छात्रों को दो नियमित डिग्री का पीछा करने की अनुमति देता है और संस्कृत और भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देता है।

आरटीआई विधेयक (दूसरा संशोधन, 2018): लोकसभा में आरटीआई विधेयक (दूसरा संशोधन) पारित किया, जिसमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 द्वारा सपमने रखी गई स्कूलों में नों डिटेंशन पॉलिसी को समाप्त करने की माँग की गई।

नई शिक्षा नीति (2020): नई शिक्षा नीति का मसौदा इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन) के पूर्व अध्यक्ष कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली नौ सदस्यीय समिति द्वारा 15 दिसम्बर 2019 को प्रस्तुत किया गया था।और 30 मई 2020 को सार्वजनिक बहस के लिए जारी किया गया था। इसने उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए अधिक स्वायत्तता की सिफारिश की और शिक्षा के लिए जीडीपी का 6 प्रतिशत तक राष्ट्रीय वार्षिक परिव्यय में वृद्धि की बात कही गई। 27 जून 2019 को मानव संसाधन विकास मंत्री रमेश पोखरिवाल द्वारा लोकसभा में पेश किया गया। यह एससी/एसटी/ओबीसी और ईबीसी से संबंधित व्यक्तियों के लिए केंद्रीय शिक्षण संस्थानों में शिक्षण पदों के आरक्षण का प्रावधान करता है।

संघीय सरकार ने 29 जुलाई को भारत के लोगो के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा नीति की घोषणा की। यह नीति प्राथमिक शिक्षा को ग्रामीण और शहरी दोनों तरह को अपने में शामिल करती है। शिक्षा पर यह तीसरी राष्ट्रीय नीति है। पहली 1968 में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की सरकार द्वारा, दूसरी 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा प्रख्यापित किया गया जिसे बाद में

1992 में पी वी नरसिम्हा राव की सरकार द्वारा संशोधित किया गया था। नई शिक्षा नीति 2020 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है जिसने 34 साल पुरानी शिक्षा नीति को बदल दिया है। नई शिक्षा नीति मुख्य रूप से 4 स्तंभों पहुँच, समता, गुणवत्ता और जवाबदेही पर आधारित है। नई शिक्षा नीति 2020 एक भारत शिक्षा प्रणाली को लागू करता है, जो सीधे हमारे देश के विकास में योगदान देता है, जो उन्हें एक उच्च श्रेणी की शिक्षा देकर एक न्यायसंगत और जीवंत ज्ञान समाज में विकसित करता है। इसरो के पूर्व प्रमुख के कस्तुरीरंगन की अध्यक्षता में एक पैनल ने 2018 में अपना पहला मसौदा सरकार को सौंप दिया था। मोदी सरकार ने दूसरी बार सत्ता में आने के तुरंत बाद सार्वजनिक प्रतिक्रिया के लिए मसीदा खोला। उस समय इसे गैर-हिंदी भाषी राज्यों का कड़ा विरोध प्राप्त हुआ, जिसने इसे उन पर हिंदी थोपने के प्रयास के रूप में देखा। अंत में, इसे केंद्रीय कैबिनेट द्वारा अनुमोदित किया गया और संसद में बहस के बिना पारित किया गया। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देना है, जो छात्रों को अपनी क्षमता को वास्तविक रूप से पूरा करने में सक्षम बनाता है जो सभी को गले लगााने के लिए पर्याप्त रूप से खुली और लचीली नीति है। इसकी सबसे बड़ी ताकत इसकी अनुशासनात्मक और स्कूल के स्तर पर उपलब्धता है। इससे सिस्टम के भीतर छात्रों के लिए कई प्रवेश बिंदु और निकास बिंदु खुल गए हैं।

विश्लेषणात्मक अध्ययन

उर्जावान युवा एक देश के विकास कें इंजन के समान हैं लेकिन उनका विकास उनके बचपन से शुरू होना चाहिए। बच्चों की शिक्षा उन्हें मिलने वाला सही माहौल पर काफी हद तक निर्भर करता है, जो यह निर्धारित करता है कि **'व्यक्ति अपने भविष्य में क्या बनेगा और उसका व्यक्तित्व कैसा होगा',** नई शिक्षा नीति 2020 इस पर बहुत जोर देता है। प्री-स्कूली शिक्षा में जहाँ बच्चे अपने इंद्रियों अपने कौशल को बेहतर ढ़ग से समझने लगतें हैं। इसके लिए बच्चों को फन लर्निंग प्लेफुल लर्निंग एक्टिवटी बेस्ड लर्निंग डिस्कवरी बेस्ड लर्निंग का माहौल मुहैया कराने के लिए स्कूलों और शिक्षकों की जरूरत हैं जैसे-जैसे बच्चा आगे बढता है, उसमें अधिक से अधिक सीखने की भावना, वैज्ञानिक और तार्किक सोच, गणितिय सोच और वैज्ञानिक स्वभाव विकसित करना बहुत आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में 5+3+3+4 की प्रणाली के साथ पुराने 10+2 को बदलने के महत्व पर जोर दिया गया है। इसका उद्देश्य पूर्व-विधालय की चंचल शिक्षा जो शहरों व निजी स्कूलों तक सीमित है, इस नीति के लागू होने के बाद गांव में भी पहुँचें। बुनियादी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करना इस नीति का सबसे महत्वपूर्ण पहलु है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संस्थापक साक्षरता और संख्यात्मकता के विकास को एक राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया है। जब शिक्षा आसपास के वातावरण से जुड़ी होती है, तो इसका प्रभाव छात्र के पूरे जीवन और पूरे समाज पर भी पड़ता है अर्थात् संलग्न, अन्वेषण, अनुभव, एक्सप्रेस और एक्सेल ये प्रयोग हमारे नए युग को सीखने का मूल होना चाहिए। नई शिक्षा नीति ऐसे ही आसान और नवीन तरीको को बढ़ाने की आवश्यकता पर बल देता है। हमारी पहले की शिक्षा नीति प्रतिबंधात्मक थी, जबकि वास्तविक दुनिया में, सभी विषय एक दूसरे से संबंधित हैं। परंतु वर्तमान प्रणाली क्षेत्र को बदलने, नई संभवनाओं से जुड़ने का अवसर प्रदान नहीं करती है। यह भी कई बच्चों के स्कूल छोड़ने का एक प्रमुख कारण रहा है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्रों को किसी भी विषय चुनने की स्वतंत्रता देता है।

इसने उच्च शिक्षा में विशेषज्ञता के विषयों में प्रचलित विद्रूपता को दूर करने का प्रयास किया है और विज्ञान, कला और मानविकी के निर्बाध दायरे खोले हैं। ऐसा होने देने के लिए, इसने मौलिक रूप से हमारी शिक्षा के पूरे ढाँचे को बदल दिया है। वर्तमान 10+2 प्रणाली को स्कूल शिक्षा में 5+3+3+4 से बदल दिया गया है। पिछली प्रणाली ने शिक्षा को व्यापक रूप से परिभाषित किया था छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं को समायोजित नहीं किया था। वर्तमान पसंद आधारित प्रणाली छात्रों के लिए खेल का मैदान खोलती है और न केवल रैखिक है, बल्कि क्षैतिज भी है। सह-पाठ्यक्रम और पाठयेतर गतिविधियों के साथ-साथ व्यवसायिक और गैर-व्यवसायिक विषयों की खोज की अनुमति देने वाली ये "लेक्सी संभावनाएँ स्कूल छोड़ने वालों को कम कर सकती हैं और प्रवेश के कई बिंदुओं को सिस्टम में प्रवेश करने के लिए कुछ ड्रापआउट के लिए आसान बना देगा। बड़े पैमाने पर नई शिक्षा नीति तंत्रिका विज्ञान के निष्कर्षो द्वारा निर्देशित प्रतीत होता है। प्री-स्कूल शिक्षा को सुव्यवस्थित करना एक स्वागत योग्य कदम है। और हमारे बच्चों के लिए गतिविधि आधारित खेल आधारित और खोज आधरित शिक्षाओं का सही प्रस्ताव है। इसके अलावा, इसने छात्र की पसंद को बहादुरी से शिक्षा का माध्यम बना रखा है, क्योंकि 21वीं सदी में भारत में हमारे शहरी क्षेत्रों में बहुभाषी छात्र समुदाय हैं और हमारे ग्रमीण क्षेत्रों में तेजी से समान हो रहे हैं। यद्यपि इसने साम्राज्यवादियों को भड़का दिया है, जो गरीबों पर स्थानीय भाषा

थोपना पसंद करतें हैं, जबकि अमीरों को अँग्रजी में दक्षता हासिल करने के लिए निजी स्कूलों में खुद को शिक्षित करने की अनुमति देते हैं।एक स्पष्ट छात्र केंद्रित दृष्टिकोण पूरे सिस्टम में अंकित है और महत्वपूर्ण सोच, समग्र दृष्टिकोण, पूछपाछ आधरित, खोज आधारित, चर्चा आधारित और विश्लेषण आधारित सीखने की क्षमता को बढाता है। इसके अलावा यह रट्टा सीखने पर काबू पाने के लिए मूल्यांकन के नए तरीकों की परिकल्पना करता है, जहाँ अवधारणाओं और उनके अनुप्रयोगों पर जोर दिया जाता है। इसके अलावा, परीक्षाएँ 3, 5, 10 और 12वीं कक्षा में शुरू की जा रही हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे अपनी ताकत का परीक्षण करने के लिए छात्रों की अगुवाई करते हैं और उन विषयों की समझदारी से चुनाव करते हैं जिन्हें वो करना चाहते हैं। नई शिक्षा नीति में कई ताकतें हैं लेकिन एक दूरदर्शी दस्तावेज होने के नाते यह अस्पष्ट है और इसमें कई अस्पष्टताएं और ढीले छोर हैं जो परेशान नहीं होने पर भ्रमित कर रहे हैं। यह स्कूलों को शिक्षा के किसी भी माध्यम का चयन करने की पेशकश करता है, लेकिन यह भी प्रस्ताव करता है कि यह मातृभाषा या किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ इसके तीन भाषा के फार्मूले के साथ हो, ये अस्पष्टताएँ गोवा जैसे स्थानों पर चिंता का कारण बनती हैं जहाँ हमने लिपियों की जटिल राजनीति देखी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक और बड़े मुद्दे को भी संबोधित करती है-मार्कशीट संचालित शिक्षा हमारे देश में शिक्षा संचालित शिक्षा के स्थान पर हावी है। उन्होंने कहा कि मार्कशीट अब मानसिकदबाव शीट की तरह हो गई है। शिक्षा से इस तनाव को दूर करना राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। परीक्षा ऐसी होनी चाहिए जो छात्रों पर अनावश्यक दबाव न डाले। और प्रयास यह है कि छात्रों का मूल्यांकन केवल एक परीक्षा द्वारा नहीं किया जाना चाहिए बल्कि आत्म मूल्यांकन सहकर्मीसे सहकर्मी मूल्यांकन जैसे छात्र विकास के विभिन्न पहलुओं पर आधारित होना चाहिए। प्रधानमंत्री राष्ट्रीय शिक्षा नीति को एक मार्कशीट के बजाय, एक समग्र रिर्पोट कार्ड के लिए प्रस्तावित किया गया है जो छात्रों की अद्वितीय क्षमता, योग्यता, दृष्टिकोण, प्रतिभा, कौशल, दक्षता, संभावनाओं की एक विस्तृत शीट होगी। छात्रों का आकलन करने के लिए राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र 'पारख' बनाया गया।

यह शिक्षा के प्रति अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की दिशा में एक प्रगतिशील बदलाव है। इसके द्वारा निर्धारित संरचना बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के चरणों के साथ-साथ सामाजिक और शारीरिक जागरूकता की क्षमता को पूरा करने में मदद करेगी।

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषा एक नकारात्मक कारक जिसे सबसे बड़ी कमी के रूप में देखा जा रहा है। भारत में शिक्षक और छात्र अनुपात की समस्या है, इसलिए प्रत्येक विषय के लिए अकादमिक संस्थानों में मातृभाषाओं को प्रस्तुत करना एक समस्या है। यह केवल इसलिए है क्योंकि एक सक्षम शिक्षक और अध्ययन सामाग्री लाना दोनों ही एक चुनौती है।

2. नई शिक्षा नीति समाज के वर्गों के बीच मतभेदो को और बढाएगी जबकि सरकारी स्कूलों में छात्रों को उनकी संबंधित क्षेत्रीय भाषा में पढाया जाएगा, निजी संस्थानों में छात्रों को प्रारंभिक कक्षाओं में अँगेजी से परिचित कराया जाएगा।

निष्कर्ष

उक्त विश्लेषण के बावजूद एक समाजशास्त्री होने के नाते मैं यह कहना चाहती हूँ कि इस नई शिक्षा नीति का दूसरा पहलू भी विचार करने योग्य है। हमारे विशेषज्ञों ने जिस उद्देश्य से नई शिक्षा नीति का ड्राफ्ट तैयार किया है और जिस सोच के साथ हमारे आदरणीय प्रधानमंत्री ने बच्चों को व्यावहारिक, अनुभवजन्य और प्रायोगिक शिक्षा के द्वारा सीखने पर बल देने की बात कही, क्या इतने क्वालिटेटिव व कुशल शिक्षक हमारे यहाँ स्कूलों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में उपलब्ध है? जहाँ भाई-भतीजावाद की राजनीति अपने चरम सीमा पर काम करती है। भारत में शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है। केन्द्र व राज्य की सरकारे अपने सहूलियत के अनुसार कानून बनाती और कानून तोड़ती है। इस नई शिक्षा नीति के द्वारा सरकार ने अमीरी व गरीबी कीखई को मिटाने का प्रयास किया है और जिस सूझ-बूझ के साथ उन्होंने 5+3+3+4 का पैटर्न को तैयार किया है, जिसे निजी स्कूलों में लागू करवाना कितना संभव है क्योंकि पूँजीपति वर्ग व उच्च वर्ग अपने बच्चों को आंगनबाड़ी स्कूल व सरकारी स्कूलों में कभी नहीं भेजेगें। जहाँ पढ़ाई का माध्यम हिंदी व क्षेत्रीय भाषा होगी, क्योंकि उन्हें अपने बच्चों को विदेश भेजना होता है। भारत में आंगनबाड़ी भी इतनी विकसित व सुसज्जित अवस्था में नहीं है, जहाँ पर कि बच्चों को प्री- स्कूली शिक्षा व व्यवहारिक ज्ञान के नाम पर संक्रमित मध्यान भोजन दिया जाता है। इस प्रकार ये समाज को दो भागो में बाँटने का काम करेगा और इस तरह उच्च शिक्षा तक केवल अमीरो

के बच्चे ही पहुँच पाएँगे। उक्त बिंदूओं पर विचार करने के फलस्वरूप हमारा समाजशास्त्रिय दृष्टिकोण यह कीता है कि शायद भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में यह नीति अपने उद्देश्यों से विफर रही है और अमीरी व गरीबी के बीच एक बड़ी खाई को जन्म देगी ये कुछ ऐसे सवाल है जिसका जवाब वक्त पर छोड़ना ही उचित दिखाई पड़ता है।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि हर बड़े बदलाव को एक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हमारी नई शिक्षा नीति भी उन्हीं में से एक है। नई शिक्षा नीति 2020 सरकार द्वारा शिक्षा प्रणाली में व्यापक बदलाव का संकेत देती है लेकिन यह कई चुनौतियों का सामना भी करता है। 34 वर्षो के बाद आई, इस नई नीति का उद्देश्य हमारी शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाना है। नई शिक्षा नीति दूरदर्शी और महत्वकांक्षी दोनों है। इसकी सफलता इसके निष्पादन पर निर्भर करेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. बसु, डीडी (2013)(भारत के संविधान का परिचय, भारत: लेक्सिसनेक्सिस।
2. पुरी शिवकृत राय, जिंदल ग्लोबल लॉ "भारत की शिक्षा नीति का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण: उद्देश्य, परिणाम और आघात का निर्धारण"; लेख।
3. भट्टाचार्य, दीपिता; व पांडे, डॉ आशा; "भारतीय संवैधानिक प्रावधान, शैक्षिक नीतियां और विविधता और बहुसंस्कृतिवाद को संबोधित करने वाली रिर्पोट: एक समीक्षा", लेख।
4. चौधरी, महुआ; ''ए स्टडी ऑन द पॉलिसीस ऑफ टीचर एडुकेशन इन पोस्ट इंडिपेंडेट पीरियड'' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमनिटिज एण्ड सोशल साइन्स; वॉल्यूम नंबर-03, मार्च 2017, पेज नं: 317-323
5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), एनसीईआरटी।
6. स्कूल करिकूलम (2005), में संस्कृति शिक्षा के एकीकरण पर रिर्पोट। सीएबीई, एमएचआडी, जीओआई।
7. शिक्षक शिक्षा पर न्यायमूर्ति वर्मा की रिर्पोट (2012), स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1992 में संशोधित) पर रिर्पोट; शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
9. द राइट टू चिल्ड्रेन टू फी एंड कंपल्सरी एक्ट (2009), द गजट ऑफ इंडियन एक्सट्राऑर्डिनरी, लॉ एंड जस्टिस, भारत सरकार।
10. नायडू, एम वेंकैया; ''नई शिक्षा नीति, 2020 भारत के शिक्षा के इतिहास में एक ऐतिहासिक कदम है''; टाइम्स ऑफ इंडिया अगस्त 8, 2020।
11. प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी स्पीच: ''नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं सदी में स्कूली शिक्षा'' सितम्बर 11, 2020
12. डॉ. रमेश पोखरिवाल निशंक, कैबिनेट ब्रिफिग; नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पीडीएफ, जुलाई 30, 2020
13. फ्र विक्टर फेरो; 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति : एक महत्वपूर्ण विश्लेषण' अगस्त 01, 2020.

व्यापार पूर्वानुमान : अर्थ, परिभाषा, प्रकार, आवश्यकता

डॉ० राकेश कुमार

सहायक शिक्षक, चनवे उच्च विद्यालय, मनियापुर, बांका

सारांश

व्यापार पूर्वानुमान–व्यवसाय, जैसे बिक्री, व्यय और मुनाफे में भविष्य के विकास के अनुमान या भविष्यवाणी है। आर्थिक गतिविधि में व्यापक झुकाव और कठोर प्रभावों को देखते हुए इन उतार चढ़ाव लाभ मार्जिन पर हो सकते हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि व्यापार की भविश्यवाणी कॉर्पोरेट नियोजन के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक के रूप में उभरी है।

परिचय

व्यापार पूर्वानुमान पिछले और वर्तमान जानकारी के आधार पर भविष्य की आर्थिक स्थितियों की भविष्यवाणी करने का एक अधिनियम है। यह निकट भविष्य में चीजों की बारी को आकार देने की संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य दृश्य को लेने की तकनीक को संदर्भित करता है। जैसे–जैसे भविष्य हमेशा अनिश्चित होता है, व्यापार में भविष्यवाणी की संगठित प्रणाली की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार, वैज्ञानिक व्यापार पूर्वानुमान में शामिल हैं:

- पिछले आर्थिक स्थितियों का विश्लेषण और,
- वर्तमान आर्थिक स्थितियों का विश्लेषण; ताकि घटनाओं के भविष्य के पाठ्यक्रम को सटीक रूप से भविष्यवाणी की जा सके।

इस संबंध में, व्यापार पूर्वानुमान भविष्य की व्यावसायिक परिस्थितियों के बारे में अनुमानों को चित्रित करने की वस्तु के साथ अतीत और वर्तमान आर्थिक स्थितियों के विश्लेषण को संदर्भित करता है।

व्यापार पूर्वानुमान के प्रकार:

व्यवसाय के विभिन्न प्रकार के पूर्वानुमान हैं–

- सामान्य पूर्वानुमान
- बिक्री पूर्वानुमान, और।
- पूंजीगत पूर्वानुमान।

सामान्य व्यापार पूर्वानुमान

कोई व्यवसाय पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं है और इसलिए सामान्य व्यापार पूर्वानुमान शुरू किया जाता है। यह व्यापार के लिए भविष्य की स्थितियों को पढ़ने में मदद करता है और निकट भविष्य में होने वाली व्यावसायिक स्थितियों में संभावित परिवर्तनों की भविष्यवाणी करने में मदद करता है। प्रत्येक व्यवसाय सी समुदाय की स्थितियों से प्रभावित होता है जिसमें यह स्थित है।

हमें इस धारणा के तहत नहीं होना चाहिए कि केवल व्यावसायिक स्थितियां सामान्य व्यवसाय को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक स्थितियों, राजकोषीय नीति, नियंत्रण, आबादी, और राष्ट्रीय आय आदि का व्यापार पर प्रत्यक्ष असर होता है। इसलिए, प्रबंधक के लिए अपने उद्यम की संभावनाओं की भविष्यवाणी करते समय इन सभी कारकों पर विचार करना आवश्यक है।

बिक्री पूर्वानुमान

इस प्रकार की भविष्यवाणी संगठन के भाग्य का फैसला करती है क्योंकि बिक्री कंपनी की सफलता का निर्धारण करती है। इसलिए, बिक्री की भविष्यवाणी उचित देखभाल और सावधानी के साथ की जानी चाहिए ताकि यह देखने के लिए कि जो भी योजना विभाग ने निर्णय लिया है, बिक्री को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। यह इस दृष्टिकोण से ही है कि बिक्री पूर्वानुमान को संगठनात्मक सेटअप के एक महत्वपूर्ण पहलू की योजना बनाने में एक मार्गदर्शक कारक माना गया है।

पूंजीगत पूर्वानुमान

प्रत्येक व्यवसाय उद्यम को अपनी वित्तीय योजनाओं के बारे में सोचना होगा। यह निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि कंपनी की जरूरतों को पूरा किया जा सके। इस वस्तु को ध्यान में रखते हुए, पूंजी आवश्यकताओं की भविष्यवाणी एक आवश्यकता बन गई है और संगठन में प्राथमिक कदम के रूप में लिया जाता है। प्रत्येक व्यावसायिक चिंता में, पूंजी को न केवल निश्चित और कार्यशील पूंजी को पूरा करने के लिए बल्कि मूल्यह्रास, प्रतिस्थापन, विकास, पुनर्गठन आदि के लिए भी आवश्यक है। इस प्रकार सटीक पूर्वानुमान संगठन को अपनी पूंजी को पूरी तरह से नियोजित करने में सहायता करता है और इष्टतम रिटर्न प्राप्त कर सकता है इसका निवेश।

व्यापार पूर्वानुमान की आवश्यकता

व्यवसाय पूर्वानुमान की कुछ महत्वपूर्ण आवश्यकता नीचे सूचीबद्ध हैं:

उत्पादन योजना

उत्पादों के उत्पादन की दर मांग के साथ मेल खाना चाहिए जो भविष्य में समय अवधि में उतार-चढ़ाव हो सकता है। चूंकि उत्पादन प्रक्रियाओं के उत्पादन की दर में परिवर्तन करने के लिए समय लगता है, इसलिए उत्पादन प्रबंधक को मध्यम श्रेणी की मांग के पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है ताकि उन्हें मासिक मांगों को पूरा करने के लिए उत्पादन क्षमताओं की व्यवस्था करने में सक्षम बनाया जा सके।

वित्तीय योजना

बिक्री पूर्वानुमान बजट में मजबूर कर रहे हैं। बिक्री के पूर्वानुमान नकद प्रवाह का समय प्रदान करते हैं और खरीद सामग्री, कर्मचारियों को भुगतान और बिजली के अन्य खर्चों को पूरा करने और उपयोग आदि के लिए नकद बहिर्वाह की आवश्यकताओं को झुकाव के आधार भी प्रदान करते हैं। इसलिए भविष्यवाणी वित्त प्रबंधक को विचार करने के लिए बजट तैयार करने में मदद करती है नकद प्रवाह और नकद बहिर्वाह।

आर्थिक योजना

पूर्वानुमान जनसंख्या, कुल आय, रोजगार, बचत, निवेश, सामान्य मूल्य-स्तर, सार्वजनिक राजस्व, सार्वजनिक व्यय, व्यापार संतुलन, भुगतान संतुलन और राष्ट्रीय स्तर पर अन्य मैक्रो पहलुओं जैसे व्यापक आर्थिक चर के अध्ययन में मदद करता है। क्षेत्रीय स्तर इन चरों का पूर्वानुमान आम तौर पर एक वर्ष से दस या बीस साल के बीच के लंबे समय तक होता है। अधिक नियोजन के परिप्रेक्ष्य पर निर्भर करेगा, परिप्रेक्ष्य लंबे समय तक भविष्यवाणी की अवधि होगी। इस तरह के पूर्वानुमान अक्सर अनुमान के रूप में बुलाया जाता है। ये न केवल योजना और सार्वजनिक नीति बनाने के लिए सहायक हैं, बल्कि उनमें आर्थिक आर्थिक माहौल और व्यावसायिक नीतियों की सहायता भी शामिल है।

कार्यसूची अनुसूची

मासिक मांग का पूर्वानुमान साप्ताहिक मांगों को और तोड़ दिया जा सकता है और कर्मचारियों को इन साप्ताहिक मांगों को पूरा करने के लिए समायोजित किया जाना पड़ सकता है। इसलिए, साप्ताहिक उत्पादन मांगों को पूरा करने के लिए प्रबंधकों के कार्यों में बदलाव लाने के लिए प्रबंधकों को सक्षम करने के लिए पूर्वानुमान की आवश्यकता है।

निर्णय लेना

फौजदारी का लक्ष्य निर्णय लेने के लिए जानकारी प्रदान करना है। इसका उद्देश्य भविष्य के बारे में अनिश्चितता की सीमा को कम करना है। व्यवसायी लाभ बनाने के उद्देष्ठय के लिए पूर्वानुमान बनाते हैं। व्यवसाय में, पूर्वानुमान हर चरण में किया जाना है। एक व्यापारी भविष्यवाणी के आंकड़े या सांख्यिकीय सिद्धांतों को नापसंद कर सकता है, लेकिन वह भविष्यवाणियों के बिना नहीं कर सकता है।

उत्पादन, बिक्री और निवेश की व्यावसायिक योजनाओं के लिए उत्पाद की मांग के संबंध में भविष्यवाणियों की आवश्यकता होती है, जिस कीमत पर उत्पाद हल किया जा सकता है और इनपुट की उपलब्धता हो सकती है। मांग का पूर्वानुमान सबसे महत्वपूर्ण है। किसी कंपनी के विभिन्न विभागों के संचालन बजट अपेक्षित बिक्री पर आधारित होना चाहिए। कुशल उत्पादन कार्यक्रम, परिचालन लागत को कम करने और निश्चित परिसंपत्तियों में निवेश तब होता है जब सटीक पूर्वानुमान रिकॉर्डिंग बिक्री और इनपुट की उपलब्धता उपलब्ध होती है।

व्यापार चक्रों को नियंत्रित करना

आमतौर पर यह माना जाता है कि व्यापार चक्र हमेशा उनके प्रभाव में बहुत हानिकारक होते हैं। मूल्य स्तर में बढ़ोतरी और गिरावट न केवल व्यापारियों के लिए बल्कि सभी प्रकार के व्यक्तियों, उद्योगों, व्यापार, कृषि के लिए हानिकारक है। सभी अवसाद के दर्दनाक प्रभाव से पीड़ित हैं। व्यापार चक्र व्यापार के जोखिम में वृद्धि; बेरोजगारी बनाओ; अटकलें प्रेरित करें और पूंजी निर्माण को हतोत्साहित करें।

उनके प्रभाव केवल एक देश तक ही सीमित नहीं हैं। व्यापार पूर्वानुमान व्यापार चक्र से जुड़े जोखिम को कम कर देता है। एक व्यापार चक्र के एक चरण के पहले ज्ञान के साथ इसकी तीव्रता और होने वाली अपेक्षित अवधि व्यापारियों, उद्योगपतियों और अर्थशास्त्रियों को व्यापार चक्र के आंकड़ों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से व्यापार चक्र के आंकड़ों के हानिकारक प्रभाव को कम करने के लिए योजना बनाने में मदद कर सकती है।

निष्कर्ष

पूर्वानुमान व्यवसायिक लोगों के लिए आर्थिक रुझानों की उम्मीद करने और खुद को या तो उनसे निपटने के लिए खुद को तैयार करने के लिए एक अमूल्य साधन बन गया है। उदाहरण के लिए, व्यवसायिक लोग आर्थिक मंदी की कल्पना करते हैं, वे अपनी सूची, उत्पादन कोटा, और भर्ती पर वापस कटौती कर सकते हैं। यदि, इसके विपरीत, एक आर्थिक उछाल संभव लगता है, वही व्यवसायिक लोग इससे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक उपाय कर सकते हैं। अच्छे व्यापार के पूर्वानुमान व्यापार मालिकों और प्रबंधकों को एक बदलती अर्थव्यवस्था के अनुकूल बनाने में मदद कर सकते हैं।

सन्दर्भ

- *Malakooti, Behnam (February 2014). Operations and Production Systems with Multiple Objectives. John Wiley & Sons. ISBN 978-0-470-03732-4.*
- *Kress, George J.; Snyder, John (May 1994). Forecasting and Market Analysis Techniques: A Practical Approach. Quorum Books. ISBN 978-0-89930-835-7.*
- *Handbook of Economic Forecasting*, North-Holland: Elsevier, 2006
- A recent, comprehensive and accessible guide to forecasting is *Economic Forecasting and Policy*, 2d edn, Palgrave, 2011
- *Ramanathan, Ramu (1995). Introductory Econometrics with Applications-Third Edition. The Dryden Press. ISBN 978-0-03-094922-7.*

भारत छोड़ों आंदोलन का बिहार के समाचार पत्रों में अंकन

डॉ० अंगुरी बेगम

पी-एच0 डी0, इतिहास विभाग, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने विचारों में स्वतंत्र है और उन्हें उसे प्रकट करने का जन्म अधिकार है। अपने विचारों को जनता के कानों तक पहुंचाने के दो प्रमुख माध्यम रहे है-भाषण और समाचान पत्र। भाषण का प्रभाव क्षेत्र कुछ सीमित है लेकिन समाचार पत्रों का प्रभावक्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत। भारत वर्ष के स्वतंत्रता संग्राम में समाचार पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण एवं अद्वितीय रही है।

प्रस्तुत शोध में भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि, प्रगति, विस्तार एवं प्रभाव आदि से संबंधित सूचनाओं, विचारों, गतिविधियों आदि का बिहार के समाचार पत्रों में अंकन का क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- प्रांतीय कांग्रेस कमिटी, सुरक्षात्मक कार्रवाई, दमनात्मक कार्रवाई, जापानी आक्रमण, धुरीशक्तियां, सेंसरशिप।

परिचर्चा

भारत छोड़ो आंदोलन और बिहार

ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध यूं तो छिट-फुट संघर्ष 18 वीं सदी के मध्य से ही चलते रहे, किंतु 1942 के आंदोलन ने भारत की आजादी के लिए एक निर्णायक रुख अख्तियार कर लिया। जिस तरह 1857 के स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में भी बिहार ने अग्रणी भूमिका निभायी। 1908 में श्रीमति एनी बेसेंट के नेतृत्व में होम रुल मुवमेंट के तहत सोनपुर में हुई विशेष बैठक में बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के गठन तथा 1917 में महात्मा गाँधी का चंपारण सत्याग्रह आंदोलन ने बिहारवासियों को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में ला दिया। भारत की स्वतंत्रता के लिए वे जागृत ही नहीं हुए, बल्कि कमर कस कर मैदान में कूद पड़े।

5 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की कार्य-समिति ने अपनी बैठक में एक इतिहास प्रसिद्ध प्रस्ताव लाया जिसे 'भारत छोड़ो' का नाम दिया गया। प्रस्ताव में भारत की जनता से अपील की गयी हक वे बहादूरी और साहस के साथ महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक अनुशासित सैनिक के रूप में स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए आगे आये तथा परेशानियों एवं खतरों को झेलने के लिए तैयार रहें।

बंबई में ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी की दिनांक 7 एवं 8 अगस्त 1942 को ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमे यह भारत छोड़ो प्रस्ताव अत्यधिक बहुमत से स्वीकृत किया गया। कांग्रेस को संबोधित करते हुए महात्मा गांधी ने भारत की जनता को 'करो या मरो' का मंत्र दिया। उन्होंने कहा कि हम लोग या तो भारत को आजाद करेंगे या इस अभियान में अपनी जान दे देंगे। 9 अगस्त के प्रातः ही महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये और 9 अगस्त को ही भारत छोड़ो आंदोलन का उद्घोष कर दिया गया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अखबार पढ़ रहे थे कि पटना के जिलाधिकारी श्री डब्ल्यु0 जी0 आर्चर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए पहुंच गये। राजेन्द्र बाबू बीमार हालत में थे। डाक्टर ने दूर के जेल में ले जाने के लिये मना कर दिया। अंत में उसी दिन मध्याह्न में राजेन्द्र बाबू को गिरफ्तार कर पटना के बांकीपुर जेल में भेज दिया गया।

उसके बाद राजेन्द्र बाबू के सहयोगी श्री फुलन प्रसाद वर्मा, श्री मथुरा प्रसाद उसी दिन गिरफ्तार किये गये। फिर 10 अगस्त को श्री कृष्ण सिन्हा एग्जीविशन रोड स्थित श्री सरंगधर सिंह के निवास पर गिरफ्तार किये गए और 11 अगस्त को श्री अनुग्रह नारायण सिंह गिरफ्तार हुए। इसकी प्रतिक्रिया में तत्कालीन महाधिवक्ता श्री बलदेव सहाय ने त्यागपत्र दे दिया।

प्रतिक्रिया में सुरक्षात्मक कार्रवाई के लिए 9 अगस्त को ब्रिटिश हुकूमत ने अध्यादेश शासन की घोषण की। जिसकी अधिसूचनाओं को बिहार गजट के असाधारण संस्करण में छापा गया। इसके अनुसार ऑल इंडिया कांग्रेस वर्किंग कमिटी एवं इसकी शाखाएं गैरकानूरी घोषित क गयी एवं पत्रों के छपने पर पाबंदी लगा दी गयी। इसकी अवहेलना करने वाले संपादकों और प्रकाशकों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का आदेश दिया गया।

सरकार की दमनात्मक कार्रवाई तथा राष्ट्रीय एवं प्रांतीय नेताओं की गिरफ्तारी ने पूरे बिहार में क्रांतिकारी जन आंदोलन की चिंगारी फैला दी, जो संपूर्ण बिहार में आग लगा दी।

आंदोलन के पूर्व की स्थिति का अंकन

भारत की निस्सहाय स्थिति पर बिहार के अखबारों में चिन्ता प्रकट की जा रही थी। 14 जनवरी 1942 के 'सर्चलाइट' में इस आशय की टिप्पणी प्रकाशित हुई–

'सुदूर–पूर्व का घोटाला भारत की निस्सहायता तथा उसकी सुरक्षा के मध्य के करूण संबंध का संकेतक है। सुरक्षा जेनरल का दायित्व है। हमें दिनरात यह सुनाया जाता रहा है कि यह दायित्व इतना गम्भीर एवं पवित्र है कि भारतीयों को उसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता। वह पवित्र दायित्व किस प्रकार निभाया गया है यह सुदूर पूर्व की घटनाओं ने नग्न रूप में प्रसतुत कर दिया है। आलोचनाओं और सरकारी क्षमा–याचनाओं के मध्य साम्राजी दायित्व की सूची में भारत के स्थान की स्वत: स्पष्ट कहानी पढ़ी जा सकती है। श्री सत्यमूर्ति ने इस समस्या को उपयुक्त भाषा में उठाया है कि यदि भारत की सुरक्षा वस्तुत: मलाया राज्य में निहित थी तो मलाया की रक्षा जैसे की जानी चाहिए थी, क्यों नहीं की गई। सारावाह के राजा ने जो युरोपीय तथा अंग्रेज है, कहा है कि मलाया की वर्तमान स्थिति घोर अयोग्यता एवं दंडनीय असावधानी का परिणाम थी। ऑस्ट्रेलियाई प्रधान मंत्री, श्री कर्टेन ने इस पर बल दिया है कि राज द्वारा ब्रितानी सैनिक तथा राजनैतिक नेतृत्व की आलोचना लंदन परिषद् में कर दी जानी चाहिए। जिसमे ब्रितानी राजनीतिज्ञों की आंख खुले। इस आलोचना का संसद में कुछ क्षमा याचना के अतिरिक्त अन्य कोई जवाब नहीं दिया गया है। मेजर ऐटली के अनुसार––'सभी स्थानों पर शक्तिशाली बने रहना हमारे साधनों के परे है।' इसलिए कि जापान के संदिग्ध आक्रमण का सामना करना पड़ेगा, मध्यपूर्व में हवाई सेना में कमी करना अक्षम्य होता। सर आर्किबल्ड सिक्लेयर ने यह स्वीकार किया है कि सुदूर पूर्व में खतरा का सामना करने की आवश्यक तैयारी नहीं की गई थी किन्तु 'जानबूझ कर ये खतरे उठाये गये और इस विश्वास के साथ कि यदि जापान आक्रमण करता है तो संयुक्त राज्य की शक्तिशाली सेनाओं से हमें पूर्ण समर्थन मिलेगा। श्री ऐंथनी इडेन ने समस्या का मूल प्रस्तुत करते हुए कहा कि यदि कहीं गलती हुई थी तो वह असावधानी के कारण नहीं बल्कि जानबूझा कर लिये गए निर्णय के कारण जिसके लिए सरकार पूर्ण दायित्व ग्रहण करती है। दूसरे शब्दों में भारत पर खतरे आसन्न हुए है इसलिए कि अन्यत्र साम्राजी दायित्वों के समक्ष उसकी सुरक्षा को संबद्ध कर दिया गया था।

इन सब क्षमायाचनाओं से कुछ नहीं होता। भारत यदि स्वतंत्र होता तो सुदूर पूर्व में जो दुखद गैर–तैयारी की स्थिति प्रकट हुई है उसका सहन कभी नहीं किया जाता तथा अपनी बलत आशावादिता से जिन लोगों ने आत्मविश्वास का भ्रम दिलाये रखा उन्हें तत्क्षण बर्खास्त कर दिया जाता। जापानी आक्रमण होगा या नहीं प्रश्न यह नहीं था। अमरीका पर भरोसा उसकी क्षमता के व्यावहारिक मूल्यांकन पर आधारित होना चाहिए था। किसी भी तरह, दो अंग्रेजी युद्धपोत जिस प्रकार पर्याप्त वायु सेना समर्थन के अभाव में खतरे में रखे गये थे उससे सामान्य बुद्धि सम्पन्न व्यक्तिश को भी विस्मय होगा। ब्रिटेन और अमरीका जहां 15 विमानवाहक एकत्र कर सकते थे उनमें से एक को भी क्यों नहीं इस क्षेत्र में रखा गया । पेनांग को जिस प्रकार खाली किया गया उसकी आलोचना हुई है। अतिशय जल्दी में वहां से भागना तथा जापानियों के हाथों में बहुमूल्य सामग्रियां पड़ जाने देने का आरोप किया गया है। यहां उनद आरोपों को दूहराने की आवश्यकता नहीं है। ब्रितानी प्रचार पर कई बार हंसी उड़ाई गई है क्योंकि आशावादी विज्ञप्तियों और कठोर वास्तविकता के मध्य की चौड़ी खाई बार–बार प्रकट होने से वह विश्वसनीय नही रहा गया है। यह अच्छा हुआ कि डॉ0 डफ कूपर अपना घर चला गया। सुदूर पूर्व को उससे मुक्ति नहीं मिल सकती। यह उसका दुर्भाग्य है कि ऐसे लोगों से जो

विशेषज्ञ कहे जाते है किन्तु सर्वथा अयोग्य साबित होते है, उसको सामना करना पड़ता है। भारत उसकी कोई आवाज नहीं होती और वैसे काम होते रहते है जिनके निर्णय में उसका कोई हाथ नहीं होता।'

26 जनवरी 1942 को 'इंडियन नेशन' ने भी यह लिखा-- 'सुरक्षा के मामले में भारत संभवत: ऑस्ट्रेलिया से भी निश्चित रूप से कम तैयार है। बंगाल की खाड़ी के किनारे उसका लम्बा समुद्र तट जापानी पनडुब्बियों तथा सैनिक जलयानों की दया पर है। कलकत्ता जमशेदपुर और उत्तर भारत के अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र जापानी विमानों की मार की परिधि में है। हमारे सैनिक अधिकतर मलाया और मध्यपूर्व के मोर्चो पर भेज दिये गये है। भारत में जो कुछ भी प्रतिरोध हम कर सकते हैं वह संभवत: उल्लेखनीय भी नहीं होगा। भारत की रक्षा का युद्ध मलाया में ही निर्णीत होना है। यह सिद्धांत बहुत काल पूर्व सुदूर पूर्व की सैनिक समर नीति के एक आधारभूत कारक के रूप में स्वीकृत रहता आया है। किन्तु भारत की रक्षा मलाया में कैसे होगी जब स्वयं मलाया पर गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है। यह सवाल भारत पूछ सकता है। वह अपनी ताकत से ही अपनी रक्षा कर सकता है। इसके लिए उसकी पर्याप्त वृद्धि करनी होगी। यह शर्त यदि पूरी हो भी जाती है तब भी भारत को अनिवार्यत: समुद्री एवं वायुसेना के आक्रमण से सुरक्षा के लिए ऑस्ट्रेलिया की तरह ब्रिटेन पर पूर्णत: निर्भर करना पड़ेगा।

ब्रितानी सैनिक नीति में ऐसी गलतियां एवं विलम्ब बराबर से होते रहे है कि जब ब्रितानी साम्राज्य के सुदूर-पूर्वीय प्रदेशों पर संकट के बादल घिरते चले आ रहे हो तो हमें अपनी रक्षा खुद करने की दुखद स्थिति में छोड़ दिया गया है। ब्रिटेन हमें आवश्यक सहायता देने सर्वथा समर्थ है। यदि ब्रितानी सरकार ने भारत के बाहरी एवं भीतरी शत्रुओं से सुरक्षा का दायित्व भारतीयों के हाथों में देने की मौलिक आवश्यकता परखी होती तो स्थिति निश्चय ही आज से सर्वथा भिन्न होती। अब अतीत की गलतियों को सुधारने का समय बीत चुका है। फिर भी अभी बहुत देर नहीं हुई है। अभी भी यदि वह भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं को पूरी करने को तैयार हो और इस देश के औद्योगीकरण की आवश्यकता स्वीकार कर ले तो यहां युद्ध प्रयत्नों के समर्थन में भारी उत्साह फूट पड़ेगा और जापानियों को पराजित करने में वह महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होगा।

आसन्न युद्ध के खतरा से भारत की रक्षा कैसे होगी यह उसके राष्ट्रीय नेतृत्व की सर्वाधिक चिन्ता का विषय बन गया है। जनवरी 1942 के तीसरे सप्ताह तक बिहार के कांग्रेसी नेता वार्धा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक से वापस आए। इस बैठक में कार्यकारिणी के वारदौली प्रस्ताव की स्वीकृति एवं संपुष्टि की गई थी। विभिन्न स्थानों पर सभाएं करके ये नेता ब्रिटेन की युद्धनीति की कमजोरी दर्शाते हुए रचनात्मक कार्यो एवं नागरिक सुरक्षा के कार्यों पर विचार-विमर्श करते तथा बल देते। अनुग्रह बाबू ने एक सेवा दल संगठित करने की योजना रूपायित की। इसमें लोगों की आवश्यक प्रेरणा पर सहायता करने और आतंक दूर करने के लिए स्वयं सेवकों को घूम-घूम कर काम करना था। गोपालगंज की एक सभा में भाषण करते हुए बाबू श्री कृष्ण सिंह ने कहा कि यद्यपि धुरीशक्तियां विजयी हो रही थी एवं ब्रिटेन को कई पराजय का सामना करना पड़ा था, फिर भी वह भारत को उसकी उचित राष्ट्रीय मांग स्वीकार करके उसका हार्दिक समर्थन प्राप्त करने का कोई इरादा रखता हो-ऐसा नहीं दिख पड़ता था। मौलाना अबुल कलाम आजाद 30 जनवरी से 15 फरवरी 1942 तक पटना में ही थे। इस अवधि में उन्होंने एक सार्वजनिक तथा एक छात्रों की सभा में भाषण किया। पहली सभा में उन्होंने अंग्रेज सरकार की युद्ध नीति की जबर्दस्त आलोचना की तथा रचनात्मक कार्यक्रम चलाने के लिए लोगों से स्वयंसेवक बनने का आग्रह किया। छात्रों की सभा में श्री आजाद ने एक सशक्त भाषए में युद्ध प्रयत्नों को बिना शर्त समर्थन प्रदान करने के पक्ष में प्रचार करने के लिए फारुकी गुट की नीति से असहमति प्रकट की। श्री आजाद ने बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी की एक बैठक में भी भाग लिया। कांग्रेस कार्यकर्ताओं में एकता बनाये रखने पर बल देते हुए प्रांतीय कमिटी ने यह निर्णय किया कि सेवा दल के संगठन को विकसित किया जाय तथा कांग्रेसी नेता प्रांत की यात्रा करते रहें एवं रचनात्मक कार्य के संबंध में जनता का निदेशन करें। सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने 5 फरवरी 1942 को पटना की छात्रों की एक सभा में युद्ध-प्रयत्नों का समर्थन करने की फारुकी गुट की नीति की आलोचना की। डॉ0 सैयद महमूद ने छपरा में 25 फरवरी 1942 को एक सभा में अध्यक्ष पद से बोलते हुये आपसी मतभेद भुला देने एवं खाद्यान्नों का संचय करने की आवश्यकता तथा रात्रि गश्ती के लिए सुरक्षा दलों का संगठन करने पर बल दिया। वास्तव में सरकारी विरोध के बावजूद कांग्रेसी लोग खाद्यान्न समितियां एवं नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आपात स्थितियों में काम करने के हेतु सुरक्षा इकाइयों का संगठन करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस तरह का काम बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के 15 और 16 अप्रैल की पटना बैठक में पुनर्गठन के बाद अधिक स्फूर्ति के साथ किया जा रहा था। पूर्णिया में कांग्रेसी कार्यकर्त्ता आसाम से वापस लौटते हुए लोगों को मुफ्त भोजन पहुंचाने का उपयोगी काम कर रहे थे। स्थानीय मुस्लिम लीग भी इसमें हाथ बंटा रही थी।

सरकारी प्रतिक्रिया

महात्मा गांधी ने क्रांति के आरंभ की पूर्वसंध्या में अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटी के समक्ष भाषण करते हुए प्रेस के संबंध में निम्नलिखित सलाह दी थी-- 'पत्र-पत्रिकाओं को अपना काम स्वतंत्रतापूर्वक और निर्भिकता के साथ करना चाहिए। उन्हें किसी तरह का प्रलोभन या भय से अपने मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए। वे अपना दायित्व ईमानदारी के साथ निभाएं और निष्पक्ष रहें। सबों के लिए बिना किसी अपवाद के वे स्वतंत्र मंच हों। मैं पत्र-पत्रिकाओं की स्वतंत्रता चाहता हूं। पत्र पत्रिका अधिकारियों द्वारा अपना दुरुपयोग होने के बदले पत्र-पत्रकारिता बंद किये जाने को तैयार रहें। पत्रकारिता एक व्यवसाय भी है। उनके भवन है, मशीनें हैं और बड़ी व्यवस्था है। उन्हें इनकी बलि देने को तैयार रहना पड़ेगा। वे स्वतंत्र भारत में प्रकाशन शुरू कर सकते हैं। मैंने अपने 'वनजीवन' प्रेस की आहुति दी है। इससे कई लोगों की आजीविका छिन गई किन्तु उससे मुझे रंचमात्र भी दुख नहीं हुआ क्योंकि मैंने उसे एक सिद्धांत की रक्षा के लिए बंद किया था। स्थायी समिति द्वारा सरकार को जो आश्वस्ति दी गई है पत्र-पत्रिकाएं उसे अस्वीकार कर दें। आपका भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण विभाग के सचिव श्री फेडरिक पक्ल को यही जवाब हो। वे अपने स्वाभिमान की बलि नहीं दें और अपमान के सम्मुख झुकें नहीं। वे एक नये वातावरण के निर्माण के लिए प्रयत्न हों।'

1942 के राष्ट्रीय आंदोलन के दरम्यान सरकार ने पत्र-पत्रिकाओं पर अत्यधिक कठोर प्रतिबंध लगाये गये थे। 8 अगसत 1942 को ही भारत सरकार ने नये प्रतिबंध अधिनियम तथा अधिसूचना में जारी कर दिये थे। इनके अंतर्गत अखिल भारतीय कांग्रेस कमीटि द्वारा विहित सामूहिक आंदोलन से संबंधित किसी तरह की सूचना छापना या प्रकाशित करना वर्जित कर दिया गया था। सरकारी सूत्रों या जिलाधिकारी द्वारा पंजीकृत किसी संवाददाता या अधिकारिक सूचना ऐजेन्सियों के अतिरिक्त अन्य सूत्रों से प्राप्त खबरें छापने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था। 'सर्चलाइट' ने सरकारी कार्रवाइयों के विरोध में प्रकाशन बंद कर दिया था। 'इंडियन नेशन' ने भी 6 सितंबर 1942 से अपना प्रकाशन बंद कर दिया था। इस संबंध में 5 सितंबर के संपादकीय में उसने लिखा--' अस्थायी रूप से 'इंडियन नेशन' का प्रकाशन स्थगित करने का निर्णय किया गया है। हम उस निर्णय की सूचना खेद के साथ दे रहे है किन्तु वर्तमान परिस्थिति में हमारे समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं । सरकार द्वारा सही खबरें प्रकाशित श्करने और स्वतंत्र विचार व्यक्त करने पर असामान्य प्रतिबंध लगाये गये है।' किन्तु इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कठिनाइयां है। जिनका सामना 'इंडियन नेशन' जैसे पटना से प्रकाशित अखबारों को करना पड़ता है।'' इस तरह बिहार में कुछ दिनों के लिए एक भी अखबार नहीं रह गया है। केवल सरकार द्वारा प्रचारित 'पटना डेली न्यूज' नामक दैनिक समाचार बुजेटिन को छोड़कर। इसका अंग्रेजी संस्करण 8 पृष्ठों का तथा मूल्य दो पैसे होता था। इसका हिन्दी और उर्दू संस्करण भी एक-एक पैसे प्रति अंक की दर से वितरित किया जाता था। कुछ दिन पहले 'सदा-ए-आम' नामक एक उर्दू पत्र प्रकाशित होने लगा। इसकी अनेक प्रतियां सरकार खरीद लेती थी और मुफस्सिल में वितरित करती थी। 'इत्तहाद' नामक एक अन्य उर्दू पत्र भी प्रकाशित होता था। मुंगेर से 'मुंगेर समाचार' नामक एक नया साप्ताहिक प्रकाशित किया जा रहा था। आरा, मुजफ्फरपुर, दरंभगा और भागलपुर में कभी-कभी सरकारी बुलेटिनें पहुंच जाती थी। किसान सभा के मुख पत्र 'हुंकार' आने संपादकीय और संवाददाताओं की रिपोर्ट सरकार से दिखा लिया करता था। बिहार हेरल्ड में कभी-कभी सरकारी कार्रवाइयों की आलोचना छपती थी। 29 अक्टुबर 1942 के इसके अंक में सामूहिक जुर्माना के विरोध में एक टिप्पणी छपी थी। गुप्तचर विभाग ने 1 दिसंबर के इस अंक का जब्त कर लिया था। उसमें डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी का एक निबंध 'ए फेज ऑफ द इंडियन स्ट्रगल नम्बर टू' शीर्षक से छपा था। भारत रक्षा अधिनियमों के अंतर्गत पटना का सरस्वती प्रेस सरकारी आदेश से बंद कर दिया गया था। यह संदेह किया जाता था कि इस प्रेस में आपत्तिजनक इश्तहार मुद्रित होता था। 'योगी' के संपादक श्री ब्रजशंकर वर्मा 22 सितंबर 1942 को एक आपत्तिजनक इश्तहार अपने पत्र में मुद्रित करने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिए गये थे। उन्हें 10 अक्टुबर को 6 महीने सादी कैद की सजा सुनाई गई।

ऑल इंडिया न्यूज पेपर कंफरेंस का दूसरा अधिवेशन बंबई में 5 और 6 अक्टुबर को श्री के0 निवासन की अध्यक्षता में हुआ। बिहार के मुख्य प्रेस सलाहकार भी उसमें सम्मिलित हुए। पत्र-पत्रिकाओं पर प्रतिबंध हटाने का मुख्य प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ।

इस प्रस्ताव से सरकारी नीति में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ। बिहार सरकार ने 23 अक्टुबर को एक अधिसूचना जारी की जिसमें निम्नलिखित विषयों से संबंधित सभी तरह के समाचारों के प्रकाशन के पूर्व पटना में पांतीय प्रेस ऐडवाइजर या

विशेष प्रेस ऐडवाइजर तथा अन्य जिला में प्रेस ऐडवाइजरों के समीक्षण के लिए प्रस्तुत करने के आदेश दिये गये थे--'ऐसे सभी समाचार (इसके अंतर्गत फोटोग्राफ, तस्वीरें, भाषणों की रिपोर्ट या लोगों केश वक्तव्य सम्मिलित हों) जिसका संबंध (क) 8 अगस्त 1942 को भारतीय कांग्रेस कमीटी द्वार स्वीकृत सामूहिक आंदोलन स्वीकार किये जाने के बाद से भारत में विभिन्न भागों में समय-समय पर होने वाले किसी तरह की गड़बड़ी या प्रदर्शनों चाहे वे उपर्युक्त आंदोलन के क्रम में हुए हों या नहीं, से हो अथवा (ख) उपर्युक्त आंदोलन, गड़बड़ी या प्रदर्शनों के विरुद्ध सरकार द्वारा समय-समय पर ली जाने वाली कोई कार्रवाई से हो, अथवा (ग) उपर्युक्त आंदोलन, गड़बड़ी या प्रदर्शनों के फलस्वरूप समय-समय पर किसी नैयायिक कार्यवाही से हो।'' पटना के संपादकों की बैठक बुलाकर सरकार ने मंत्रणात्मक समीक्षक की व्यवस्था स्पष्ट की। संपादकों ने 'इंडियन नेशन' के संपादक श्री सी0 एच0 राव को समीक्षण अभिषद, (बोर्ड ऑफ स्क्रूटनी) में अपना प्रतिनिधि मनोनीत किया। उनकी अनुपस्थिति में 'इसतहाद' के संपादक एस0 श्री सुलतान अहमद उनका प्रतिनिधित्व करते। किन्तु 'सामूहिक समीक्षण' की यह व्यवस्था शीघ्र ही टूट गई। बिहार प्रांतीय प्रेस ऐडवाइजर ने नवम्बर 1942 के पहले पखवारे की अपनी रिपोर्ट में लिखा कि-'संदेशों का समीक्षण बिना किसी से परामर्श किये हुए ही मेरे द्वारा किया जाता था।'' यद्यपि 12 दिसंबर को प्रांतीय प्रेस ऐडवाइजर के कक्ष में संपादकों एवं प्रेस प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन में सरकार की ओर से अधिकतर प्रतिबंधों को हटाने का आश्वासन दिया गया किन्तु उसी दिन 23 अक्टुबर की अधिसूचना रद्द करने के उपरांत सरकार ने एक अन्य अधिसुचना जारी करके निम्नलिखित प्रकृति के किसी विषय के मुद्रण के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया यदि वह बिहार सरकार द्वारा अधिकारिक रूप से उद्घोषित नहीं किया गया हो--

1. सड़क, रेलवे या तार संचार व्यवस्था में किसी तरह की बाधा की रिपोर्ट।
2. सैनिक संस्थान, तार, टेलीफोन, रेलवे संपत्ति या अन्य कोई जन-उपयोगी संस्थान आदि की तोड़फोड़ या उसके प्रयत्न की रिपोर्ट।
3. सैनिक उपयोगिता की सामग्रियों के उत्पादन करने में लगे हुए कारखानों में हड़ताल या काम में बाधा की रिपोर्ट।
4. ऐसे कोई भी समाचार जिसमें पुलिस सैनिकों या अन्य सरकारी कर्मियों द्वारा उनके अधिकारों के दुरुपयोग या अतिशत उपयोग संबंधी एवं नजरबंद या सजायाफ्ता बंदियों की अवस्था संबंधी निराधार तथा अतिरंजित रिपोर्ट।
5. ऐसे कोई समाचार जिससे जन सुरक्षा की भावना के पुनर्स्थापना में बाधा पहुंचती हो, और
6. डाकघर सहित सरकारी कार्यालायों एवं सरकारी कर्मियों पर आक्रमण किये जाने की रिपोर्ट।'

16 दिसंबर 1942 को मुजफ्फरपुर के श्रीकृष्ण प्रेस पर पुलिस ने छापा मारा और उसे जब्त कर लिया। उसके मालिक पहले से ही जेल में थे। 25 दिसंबर 1942 को बिहार सरकार द्वारा सभी मुद्रकों, प्रकाशकों और संपादकों पर भारत रक्षा अधिनियम 41 के अंतर्गत एक आदेश जारी किया गया जिसमें वार्धा में प्रोफेसर भंसाली के उपवास संबंधी कोई सूचना या उस पर टिप्पणी प्रकाशित करने पर रोक लगा दी गई। इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं पर कठोर प्रतिबंध लगा रहा।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उसी क्रम में अक्टुबर महीने से सरकार ने कई इश्तहार और पुस्तिकाओं की पुरानी प्रतिया जब्त कर लीं और उनके प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया। उदाहरण के लिए ''विरोध सावधान'' शीर्षक एक हिन्दी इश्तहार (हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐशोसिऐशन मुजफ्फरपुर शाखा के सचिव द्वारा 7 अगस्त 1942 को प्रकाशित), ''आजाद'' शीर्षक एक हिन्दी इश्तहार (22 अगस्त 1942 को), ''रिहाई की कीमत'' (पटना जिला किसान सभा के मुख्य सचिव कन्हाई सिंह के नाम से प्रकाशित और सरस्वती प्रेस में मुद्रित, 22 अगस्त 1942 को), '' वक्त की पुकार'' शीर्षक एक उर्दू इश्तहार (आजाद प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित 26 सितंबर 1942), उल्लेखनीय है। जनता का ध्यान अन्य प्रांतीय सरकारों (बंगाल, उड़ीसा, संयुक्त प्रांत और पंजाब द्वारा जब्त कई प्रकाशनों की ओर विभिन्न अधिसूचनाओं के अंतर्गत आकृष्ट किया गया था। भारत सरकार ने 31 अक्टुबर 1942 को एक अध्यादेश जारी करके ''ऐसे करेंसी या अन्य नोटों का भुगतान किया जाना रोक दिया था जिन पर किसी तरह का राजनैतिक संदेश लिखा हुआ हो।''

उर्दू समाचार पत्रो का योगदान

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में जिन उर्दू समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, उनमें 'अखबार-उल-अख्यार', 'उर्दू इण्डियन क्रानिकल', 'उर्दू हिराल्ड', 'अलपंच', 'बिहार', 'अलमुव शिर', 'पैगाम', 'इत्तहाद', 'अखबार पटना', 'देहात', 'रौशनी' तथा

'सदा-ए-आम' आदि का विशेष स्थान है। इन समाचार-पत्रों के पृष्ठ इस बात के सबूत है कि इनके लेखों, संपादकीय तथा देशभक्ति पैगामों ने अंग्रेज शासकों की नींद हराम कर दी।

इस संबंध में 'इत्तदाह' के गौरवशाली और महत्वपूर्ण योगदान को विशेष रूप से याद रखना आवश्यक है। 'इत्तदाह' के सम्पादक स्वयं भारत की आजादी के आंदोलन में 'इत्तदाह' के योगदान का जिक्र इस प्रकार करते है।

''1942 के इब्तदाई अ"याम थे, गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' का नारा बुलंद किया और सारे मुल्क में हंगामों का सिलसिला शुरू हुआ, कांग्रेसी कारकुनों ने हिन्द का चप्पा-चप्पा छान डाल, कौमी अखबारात ने पूरा तआवुन किया, पुरजोश मजामीन व मकालों की भरमान हुई। खबरों की वह उधम मची के दास्तानों का मजा जाता रहा, उस वक्त उर्दू सहाफत का नुमाइन्दा बिहार का कसीरूल-इशात अखबार 'इत्तहाद' था। अखबार अवाम की रहनुमाई करते हैं और तरजुमानी भी। इत्तहद इस तहरीक से वाबिस्ता हो गया फिर कया था हर जगह सफल-व-हिजर में इसी का जिक्र था, नई-नई खबरों, पुरजोर मकालों और मुसलसल मजामीन ने कौम में जिन्दगी व हरकत की लहरें दौड़ा दी। चुनान्चे तहरीक परवान चढ़ी, मुल्क को आजादी मिली।

उर्दू दैनिक 'सदा-ए-आम' का भी देशभक्ति तथा स्वतंत्रता-संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस दैनिक अखबार का प्रकाशन भारत छोड़ो आंदोलन के बाद तथा पत्रकारिता पर कठोर नियम लागू होने के बाद 9 सितंबर 1942 से पत्रकार नजीर हैदर ने आरंभ किया था। अपने आरंभिक दौर से ही यह समाचार-पत्र स्वतंत्रता आंदोलन में आगे-आगे रहा और अपने समाचारों, लेखों और अग्रलेखों से भारत की आजादी के सपने को पूरा किया। 15 अगस्त 1947 का इस अखबार का संपादकीय आज भी स्मरणीय है, वह लिखता है-

''महकूम व मोहताज और गुलाम व ताराज हिंदुस्तान की आजादी क दीवाने जोशो-अमल से सरशार, ईसार व कुर्बानी से मरतामूर जजबाए सरफरोशी से मुखमुर, जोरो सितम के कबा व तफंग के सामने सीना सिपर करीब सौ सालों तक जोरो इसतबदाद के देवताओं से शहनशाहीयत के मुहिबों, अंग्रेजी आतीशी नेजाम और आहनी कवानीन से आजादी की खातीर, अवाम की जबूं-हाली की इसलाह के लिए और दुनिया की खुदमुखतर और बावकार कौमो में शुमार किये जाने की गर्ज से मुसलमान मतसादम रहे। इन शमाए हुर्रीयत के परवानों और मुल्क के जाँनिसारों के लिए बरतानवी दारो-रसन से खेलना कोई बड़ी बात न थी। महीनों कैदोबन्द की सख्तियों झेलना, सालहा साल आहनी संगलाखों में जकड़ बन्द रहना, डन्डे खाना, बे घरबार कर दिए जाना, मालो-मता का सोख्त हो जाना, इनको अपनी सलाए आजादी से दूर रख न सके। इनके अजम रासिख ने बरतानवी शहनशाहीयत के आहन को मोंम कर दिया और उनके खुलुस कलबी ने आमरियत के तार को गुलनार बना दिया। हिन्दुस्तान की मायानाज हस्तियों के खाकवखुन ने हिन्दुस्तान की भयानक रात की सियासी फेजा के तारोपोद को बिखेरना शुरू कर दिया।''

'इत्तहाद' और 'सदा-ए-आम' से पहले भी कई ऐसे उर्दू समाचार पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई, जिनमें अंग्रेजों के जुल्म-व-सितम के खिलाफ वगावत और गुलामी से आजादी तक की यात्रा की यातनाओं की दास्तान मिलती है।

निष्कर्ष

बिहार से प्रकाशित होने वाली उर्दू, हिन्दी एवं अंग्रेजी समाचार पत्रों में देश की विकट राजनीतिक समस्याओं एवं उनके कारणों का विश्लेषण प्राय: ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध हो रहा था। इस स्थिति ने ब्रिटिश सत्ता को परेशानी में डाल दिया। फलत: सरकार ने अनेक तरीकों से समाचार पत्रों को नियंत्रित करने का प्रयास किया। इसके बावजूद समाचार पत्रों में इस आंदोलन का अंकन होता राह, जिसने प्रत्यक्ष तौर पर इसकी गति एवं दिशा को निर्धारित किया।

संदर्भ

1. दत्ता, डॉ के0 के0; बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास(भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 233-235
2. वही, पृ0 सं0 235-237

3. वही, पृ0 सं0 237-240
4. बिहार (हिन्दी मासिक); भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98), सूचना एवं जन संपर्क विभाग, विभाग, पटना, पृ0 सं0 9-10, 68
5. वही, पृ0 सं0 12-15
6. वही, पृ0 सं0 61
7. वही, पृ0 सं0 68
8. काश्यप, डॉ0 सुभाष; स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 73-99
9. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 408-419
10. दत्त, डॉ0 के0 के0; बिहार में स्वातंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 28-125
11. बिहार (हिन्दी मासिक), भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98)
12. शर्मा, डॉ0 राधाकृष्ण एवं मिश्रा, गुलाब; बिहार का इतिहास, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना, पृ0 249
13. वही, पृ0 सं0 252
14. वही, पृ0 सं0 252

भारतीय राजनीति में क्षेत्रियतावाद एवं भाषा का प्रश्न : एक अध्ययन

डॉ० सुधीर कुमार

पी-एच0 डी0, राजनीति विज्ञान, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारत एक बहुभाषी देश है। सन् 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 179 भाषाएं एवं 544 स्थानीय भाषाएं थी। 1961 और 1971 की जनगणनाओं ने मातृभाषाओं के रूप में 1652 भाषाओं की गणना की थी। यदि हम स्थानीय और क्षेत्र-विशेष की भाषाओं को छोड़ भी दें तो भारत में प्रमुख रूप से संविधान द्वारा स्वीकृत प्रादेशिक भाषाओं की संख्या 22 है, जिनके अंतर्गत देश की लगभग 90 प्रतिशत जनता आ जाती है। प्रारंभ है हमारे संविधान में 14 भाषाओं को स्वीकार किया जिनके नाम हैं- असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलुगू, संस्कृत एवं उर्दू। बाद में सिंधी भाषा को भी संविधान में सम्मिलित कर लिया गया। अत: संख्या 15 हो गई। अगस्त 1992 में हुए 71 वें संविधान संशोधन के अनुसार कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली को सम्मिलित कर लिया गया, जिससे यह संख्या 18 हो गई। सन 2003 में 92 वें संविधान संशोधन द्वारा बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली को आठवीं अनुसूची में स्थान देने से प्रादेशिक भाषाओं की संख्या 22 हो गई है। भौगोलिक दृष्टि से भारत के पूर्वी तट की चार भाषाएं क्रमश: तमिल, तेलगू, उड़िया और बंगला पश्चिमी तट की चार भाषाएं क्रमश: मलयालम, कन्नड़, मराठी एवं गुजराती, ठेठ उत्तर में कश्मीरी एवं उत्तर-पश्चिम में पंजाबी और मध्य क्षेत्र की भाषा हिंदी है। हिन्दी से संबंधित राज्य है- हरियाणा, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश एवं केन्द्रशासित दिल्ली, चंडिगढ़ आदि। उर्दू, संस्कृत तथा सिंधी भाषा से संबंधित कोई विशेष भाग नहीं है, परंतु थोड़ी बहुत मात्रा में इनका सर्वत्र प्रयोग होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की प्रवृति एवं उसके भाषायी संदर्भ की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

शब्द कुंजी- क्षेत्रवाद, भाषावाद, भाषा भिन्नता, अलगाववाद, क्षेत्रीय अस्मिता, भाषाई विविधता।

परिचय

भाषा की विविधता भारतीय समाज की विलक्षणता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की जनता भिन्न-भिन्न भाषा बोलती है। इन भाषाओं में तथा इनकी लिपियों में बहुत अधिक अंतर है। उत्तर भारत का निवासी दक्षिण की भाषा नहीं समझा पाता है और न ही दक्षिण का निवासी उत्तर की भाषा। एक राजस्थानी के लिए बंगाली भाषा-भाषी भाषा के संदर्भ में एक विदेशी है। भाषागत विविधता कोई खराब बात नहीं है विविधता से एकता बढ़ाने में थोड़ी कठिनाई होती है किंतु यदि एक ऐसी संपर्क भाषा हो जो विविध भाषा-भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधे रख सके तो इस कठिनाई का आसानी से निवारण हो सकता है।

संविधान सभा में जब इस प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ कि देश की राजभाषा क्या हो तो वहां बहुत सी भाषाा संबंधी हठधर्मिता देखी गई और उत्तेजनापूर्ण दृश्य सामने आए। राजभाषा के रूप में किसी एक भाषा को मान्यता देने की संविधान निर्माताओं की अकांक्षा 'राजभाषा आयोग' के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है- ''हम देश के सांस्कृति जीवन की अनन्यता को दृढ़ करने वाले तत्वों

की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम की खोज करते है। सदियों के बाद पुन: प्राप्त इस राजनीतिक एकता के साथ-साथ भाषाई एकता भी हम पाना चाहते है। इस एकता की प्राप्ति हम अंग्रेजी भाषा का स्थानापन्न किसी देशी भाषा को बनाना चाहते है तथा सभी प्रादेशिक भाषाओं में हिन्दी को राष्ट्रभाषा इसलिए चुना गया है कि इसके बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है।''

आजादी आने के साथ ही भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न बन गया। भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों एवं राजनीतिज्ञों ने जनता को उत्तेजित करने का प्रयास किया। कभी-कभी तो ऐसा लगने लगा कि कहीं भाषा का सवाल हमारी राष्ट्रीय एकता को खंडित न कर दे। भारत की राजनीति में भाषा से जुड़ी हुई राजनीतिक समस्याएं इस प्रकार है-

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त आयोग के बंगला तथा तमिल भाषा सदस्यों-डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ0 पी0 सुब्बानारायण ने अपने विनत टिप्पणी में समन्वय अथवा मेल-जोल के दृष्टिकोण से अत्यंन दूर के विचार प्रकट किए। इनका यह दृष्टिकोण था कि अंग्रेजी के स्था पर हिंदी को प्रतिस्थापित करने में जल्दी करने का परिणाम 'अहिन्दी भाषा जनता पर हिंदी थोपना' होगा और उससे सार्वजनिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। इन दोनों का यह दृढ़ मत था कि जब तक सरकारी भाषा अर्थात् हिंदी पूर्णत: विकसित नहीं हो जाती, अंग्रेजी भाषा प्रयुक्त होती रहे।

भाषावार राज्यों के पुनर्गठन की समस्या भारत में जितनी गंभीर रही है उतनी नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों में संभवत: अन्यत्र कहीं नहीं रही है। स्वाधीनता के कुछ ही समय बाद इस बात के लिए जोरदार राजनीतिक दबाव दिए जाने लगे कि भारतके राज्योंके बीच की सीमाएं भाषाओं के आधार पर बनाई जाएं। सन 1952 में विशेषत: तेलगू भाषी लोगों में आंदोलन बहुतम ही तीव्र हो उठा। एक प्रतिष्ठित तेलगू नेता पोट्टी श्री रामुलु ने उन क्षेत्रों को लेकर जहां तेलगू भाषियों का बहुमत था, एक अलग राज्य बनाने की मांग मनवाने के लिए आमरण अनशन का तरीका अपनाया। अनशन के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई और इससे इतने जोर का हंगामा उठ खड़ा हुआ कि नेहरू जी को भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण करने के लिए झुकना पड़ा। एक बार तेलगू भाषा भाषियों की मांग पर सरकार के झुक जाने के बाद देश के विभिन्न भागों में उसी तरह भाषा के आधार पर राज्य बनाने की मांगे बढ़ने लगी। इन मांगो की जांच-पड़ताल करने और नए राज्यों की सीमाएं निर्धारित करने के लिए राज्य पुनर्गठन आयोग नियुक्त किया। राज्य पुनर्गठन करनेके बाद भी मुंबई के नए राज्य में भाषा के प्रश्न को लेकर निरंतर असंतोष बना रहा, अत: 1960 में इसे दो राज्यो-गुजरात और महाराष्ट्र में बांटना पड़ा। आगे चलकर 1966 में पंजाब को भाषा के आधार पर ही-हरियाणा और पंजाब में विभाजित करना पड़ा। इस तरह के अलगाव के लिए सिक्खों द्वारा बहुत जोरदान आंदोलन चलाया गया। मास्टन तारा सिंह ने कहा कि-'यह प्रांत केवल भाषा पर आधारित होगा और पंजाब सूबा नाम दिया जा सकेगा।

भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करने से राज्यों में राजनीतिक विवाद अत्यंत उग्र हो गए। ऐसी समस्या चंडीगढ़ में उत्पन्न हो गई। इस प्रकार की समस्या महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर बेलगांव और अन्य क्षेत्रों के विवाद के रूप में चली। महाराष्ट्र सरकार बेलगांव नगर पर अपना अधिकार जमाना चाहती थी क्योंकि 1961 की जनगणना के अनुसार यहां मराठी भाषी लोगों की संख्या 51.2 प्रतिशत थी। इसके विपरीत, कर्नाटक सरकार का दावा था कि इस नगर में सभी भाषाओं और जातियों के लोग रहते है और जो कुछ बहुमत मराठी भाषाओं का था वह भी अब समाप्त हो गया है। बेलगांव चूंकि संपूर्ण बेलगांव तालुके का मुख्य केन्द्र है, इसलिए प्रशासनिक दृष्टि से उसे कर्नाटक में ही रहने दिया जाना चाहिए। असम में बंगाली और असमी भाषा के प्रश्न को लेकर सन 1972 में उग्र विवाद उत्पन्न हो गया। कुछ अन्य प्रांतों में भी लोग भाषा के आधार पर अलग राज्यों के निर्माण का नारा लगाते रहे है। इस प्रकार भाषायी आधार पर राज्यों के टुकड़े करने का एक सुनियोजित अभियान देश में चलाया जा रहा है जो निश्चित ही देश की सुरक्षा और आर्थिक प्रगति के लिए घातक है।

भाषा के आधार पर भारत में उत्तर और दक्षिण भारत की संकुचित मनोवृत्तियां पनपने लगी। दक्षिण भारत ने हिन्दी का जोरदार विरोध किया। दक्षिण भारत में 'हिन्दी साम्राज्य' के विरूद्ध जोरदार आवाजे उठी। हिन्दी के उत्साही समर्थकों के लिए यह मुश्किल था कि वे चुपचाप बैठे रहे। इस प्रकार भाषा के आधार पर भारत दो टुकड़ों में विभाजित सा प्रतीत होने लगा उत्तर और दक्षिण।

भारतीय राजनीति में भाषागत दबाव गुटों का उदय हुआ। उदाहरणार्थ, भाषा के आधार पर महाराष्ट्रियों और गुजरातियों ने अपने संगठन संयुक्त महाराष्ट्र समिति और महागुजरात जनता परिषद बनाए थे, उन्होंने लगभग पूरी तरह से राजनीतिक पार्टियों की जगह ले ली। इन संगठनों में शुरू में वामपंथी लोग थे, लेकिन जल्दी ही इन्हें गैर-राजनीतिक लोगों का समर्थन प्राप्त हो गया।

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में देश की 14 प्रमुख भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई। बाद में सिंधी, कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली भाषा को भी मान्यता दे दी गई, परंतु समय-समय पर देश में कुछ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की मान्यता की आवाज भी लगाई जाती रही है। उदाहरण के लिए, राजस्थान में राजस्थानी भाषा को मान्यता दिलाने की मांग लंबे समय से की जा रही है। सन 1961 की गणना के अनुसार राजस्थानी बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 49 लाख थी। इसी तरह ब्रज, मैथिली, संथाली, छत्तीसगढ़ी आदि भाषाओं की मान्यता का प्रश्न भी जब-तब उठाया जाता रहा है और इन क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर राज्यों के निर्माण की बात भी की जाती रही है। यद्यपि भारत सरकार ने इन मांगों को अब तक दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया है।

भाषा के प्रश्न को लेकर राजनीतिक हलचेल बढ़ने लगी। सी0 डी0 देशमुख ने जो 1950 में वित्तमंत्री थे इसी सवाल को लेकर केन्द्रीय मंत्रिमंडल से त्याग दे दिया। इसी प्रकार एम0 सी0 छागला ने भी सरकार की भाषा-नीति के विरोध में मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया।

राजनीतिक दल उर्दू भाषा के सवाल को चुनावी मसला बनाने में नहीं हिचकिचाते। अल्पसंख्यक मुस्लिम मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए कांग्रेस के 1980 के घोषण पत्र में आश्वासन दिया गया था जो इस प्रकार है-''उर्दू भाषा को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक महत्व के अनुरूप उचित स्थान दिलाया जाएगा।'' उर्दू को कुछ राज्यों में खास-खास क्षेत्रों में सरकारी कामकाज में व्यवहार के लिए दूसरी भाषा के रूप में मान्यता दी जाएगी। जनवरी 1980 के चुनावों से पूर्व उत्तर प्रदेश की लोकदल सरकार ने तीसरी भाषा के रूप में स्कूलों में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाए जाने के फैसले को लकर बदायूं में दंगे हुए और दो दर्जन लोगों की जाने गई। हास्यास्पद स्थिति यह है कि एक वोट बैंक को खुश करने के लिए यहां तक कहा जाने लगा कि उर्दू हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रा संग्राम की भाषा रही है।

नए भाषाई राज्यों के निमार्ण के उपरांत भी भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या बनी हुई है जो शासन से अनेकानेक प्रकार के संरक्षणों की मांग कर रहे है। उत्तर प्रदेश में उर्दू का सवाल, कर्नाटक में मराठी भाषा-भाषियों का सवाल, पंजाब में हिंदी भाषा-भाषियों की स्थिति भाषाई अल्पसंख्यको की समस्याएं उत्पन्न करती है। कर्नाटक में बसे मलयालियों और तमिलों में अब असुरक्षा की भावना पैर जमाने लगी है।

निष्कर्ष

भाषा संबंधी समस्याओं का ही परिणाम है कि हम स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक के उपरांत भी किसी ऐसी शिक्षा नीति का निर्माण नहीं कर सके जिसे हम अपना कह सके, शिक्षा के क्षेत्र में आज भी प्रयोग हो रहे है और इससे जीवन के हर क्षेत्र पर दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है माध्यमिक और उच्च शिक्षा के बारे में शिक्षा शास्त्रियों और राजनीतिज्ञों के बीच निरंतर नोक-झोक चलती रही। कई फार्मूले आते और खंडित होते रहे है और जब कभी ऐसा लगता था कि एक पक्ष की जीत हो गई तो उसे लागू करने की विधि के संबंध में मतभेद पैदा हो जाता था। सरकार फूंक-फूंककर कदम रखती हुई 'तीन भाषा फार्मूला' तक पहुंची। इसका मतलब यह था कि अहिंदी भाषी क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा कि किसी स्तर पर क्षेत्रीय भाषा के अलावा कोई अन्य भारतीय भाषा भी पढ़ाई जाएगी। इस प्रकार दो भाषाएं हो जाएंगी। तीसरी भाषा अंग्रेजी या अन्य काई विदेशी भाषा होगी। इस प्रकार माध्यमिक स्तर पूरा होते-होते तीन भाषाएं आ जाएंगी। शुरू में उत्तर भारत के कुछ भागों में इसका पालन नहीं किया गया-यहां तमिल या ऐसी कोई भाषा पढ़ाने के बजाय संस्कृत भाषा को लिया गया, लेकिन जब 1967 से चेन्नई में हिन्दी की कट्टर विरोधी द्रविड़ मुनेत्र कड़गम की सरकार बन गई तो सबसे पहला काम यह किया कि द्वितीय भाषा के हिन्दी की पढ़ाई रोक दी। तमिलनाडु विधानसभी के चुनाव में प्रावधान था कि मद्रास राज्य के विद्यार्थियों में केवल अंग्रेजी व तमिल भाषाएं पढ़ाई जाए तथा हिन्दी को पाठ्यक्रम से बिल्कुल निकाल दिया जाए।

सरकार की भाषा नीति से हिन्दी के समर्थकों एवं विरोधियों दोनों में ही बड़ा रोष फैला। पहले उत्तरी राज्यों-उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र में अंग्रेजी विरोधी प्रदर्शनव उपद्रव हुए और भीड़ ने, जिसमें अधिकतर छात्र होते थे, अराजकता एवं हिंसापूर्ण कृत्य किए। दिसंबर 1967 में तमिलनाड़ राज्य में छात्रों ने हिन्दी विरोधी आंदोलन आरंभ किए जो शीघ्र ही आंध्र और मैसूर तक जा पहुंचे।

भाषागत राजनीतिके परिणामस्वरूप 'धरती के पुत्रों को ही' अर्थात् केवल उन्हीं लोगों को जो प्रादेशिक भाषा बोलते है, सरकारी और गैर सरकारी पदों पर नियुक्त कर देना चाहिए, धारणा का प्रचलन हुआ। महाराष्ट्र में शिवसेना ने केरल एवं कर्नाटकवासियों को इसलिए तंग किया और उनके साथ मारपीट की थी कि केरलवासियों की भाषा मलयालम तथा कर्नाटक वालों की भाषा द्रविड़ थी।

इस तरह भारत में भाषा समस्या इतनी व्यापक और उलझी हुई है कि उसका समाधान आसान बात नहीं है राजनीतिज्ञों ने इसे अपने राजनीतिक खेल का हिस्सा बना लिया है। इसलिए यह और भी जटिल बन गई है।

संदर्भ

1. इंडिया टुडे, 30 सितंबर, 1987, पृ0 सं0 46-47
2. तिवारी, ले0 कनक; संविधान का सच, राष्ट्रभाषा का सवाल।
3. जोंस, प्रो0 मॉरिस; भारतीय शासन और राजनीति (संपादित), पृ0 सं0 98
4. वहीं, पृ0 सं0 96
5. लोहिया, डॉ0 राममनोहर; धरती माता-भारत माता, पृ0 सं0 98
6. डांगे, ले0 श्रीपाद अमृत; हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा, शब्दपीठ पुस्तिका इलाहाबाद,
7. कुमार, कृष्ण; भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता : परिकल्पना एवं विचार, सृजन संवाद, लखनऊ, पृ0 सं0 10-11

मातृ-शिशु-मृत्यु के कारण, निदान एवं इससे सम्बद्ध कल्याणकारी योजनाएं

डॉ० अस्मिता सिंह

पी-एच0 डी0, (गृहविज्ञान विभाग), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सार-संक्षेप

नगरों की जनता हो या गांवों की, सामान्य रूप से उसकी स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए अथवा रोगों से उनका बचाव करने के लिए सरकारी योजनाओं व सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना करना नितांत आवश्यक होता है। माताओं को पूर्व-प्रसव, प्रसव व प्रसवोत्तर काल में उचित परामर्श देने के लिए तथा आवश्यक होने पर उसकी परिचर्या व चिकित्सा करने के लिए इन सुविधाओं की विशेष रूप से आवश्यकता है, जबकि इंग्लैण्ड जैसे सम्पन्न व शिक्षित देश के वासियों के लिए भी ऐसी सुविधाओं की इसने विस्तृत रूप से व्यवस्था की जाती है तो निर्धन व अज्ञान भारतीय जनता के लिए ऐसी सुविधाओं की, जहां तक सम्भव हो, नि:शुल्क की कही अधिक आवश्कयता है। गर्भवती स्त्रियों तथा माताओं की स्वास्थ्य रक्षा के निमित आवश्यक परामर्श देना पत्र नि:शुल्क पोषक पदार्थो की प्राप्ति की व्यवस्था करना तथा प्रसव काल की सुविधा के लिए प्रसूति-गृहों की स्थापना करना सुधार-योजनाओं का मुख्य कार्य होना चाहिए। प्रत्येक नगर व गांव में मातृ-शिशु-कल्याणकारी संस्थाओं की सुविधा व स्वास्थ्य-निरीक्षिकाओं की सेंवाएं जनसाधारण को सरलता से प्राप्त होनी आवश्यक है। जिन स्थानों में इनकी स्थापना व कार्य प्रारंभ हो चुका है, वहां उनका कार्य-क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए जिससे सभी स्त्रियां उनसे लाभ उठा सके। ऐसी कल्याणकारी संस्थाएं माताओं को मातृत्व के विषय में शिक्षा देने का भी सर्वोत्तम साधन है। इनके द्वारा फिल्म प्रदर्शन करके व पोस्टर दिखाकर शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है, जिससे माताएं अपने कर्तव्य-पालन के कार्यो में कुशल होने के अतिरिक्त रूचि भी लें। कभी-कभी स्वास्थ्य निरीक्षिकाएं घरों पर जाकर भी शिशु पालन आदि के विषयों पर उचित परामर्श देकर माताओं का मार्गदर्शन करती है।

अत: देश के भावी नागरिकों के समस्त सुधार का केन्द्र मानकर भारत-सरकार व राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित करके मातृ-शिशु कल्याणकारी संस्थाओं की स्थापना में सहायता व योगदान देने का पूरा प्रयत्न कर रही है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी इन कल्याणकारी कार्यो में सहायतार्थ प्रयत्नशील है। आशा है कि निकट भविष्य में इन प्रयासों के आशातीत सफलता प्राप्त हो सकेगी तथा माताओं व बालको का अकाल मृत्यु से बचाव ही नहीं, अपितु उनके स्वास्थ्य में भी विशेष वृद्धि हो सकेगी।

प्रस्तुत अध्ययन में मातृ-शिशु-मृत्यु के कारण, निदान एवं इससे सम्बंद्ध कल्याणकारी योजनाओं व संस्थाओं के स्थापना एवं विस्तार का वर्णन किया गया है।

परिचर्चा

मातृ-शिशु-मृत्यु के कई कारण हो सकते है। कुछ महत्वपूर्ण कारणो को निम्न तरीके से समझा जा सकता है-

1. निर्धनता- बच्चों की अकाल मृत्यु का प्रमुख कारण उनके माता-पिता की निर्धनता है। निर्धनता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए समान रूप में एक अभिशाप है। जिन परिवारों में शरीर ढकने के कपड़े, खाने को एक समय भरपेट तथा रहने को टूटे झोपड़े भी नसीब नहीं, वहां गर्भवती स्त्री व शिशु के लिए पौष्टिक भोजन, गीत और ताप से रक्षा करने की उपयुक्त

वस्त्र तथा अन्य स्वास्थ्य सम्बंधी सुविधाएं प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। दुर्भाग्यवश डाक्टरी सहायता भी इतनी सस्ती व सुलभ नहीं, जिससे निर्धन माता को प्रसव पूर्व व प्रसव काल तथा प्रसवोत्तर काल में उचित उपचार व सुविधाएं मिल सके। अतः प्रसव काल में ही जाना पड़ता है जिससे बहुधा माता व शिशु दोनो ही भयंकर रोगों से आक्रांत होकर चल बसते है।

2. असन्तुलित व अपौष्टिक भोजन- निर्धनता व अज्ञानता के कारणों से गर्भवती स्त्रियों व प्रसूताओं या दूध पिलाने वाली माताओं के लिए उचित आहार की व्यवस्था नहीं हो पाती है। फलस्वरूप माता व शिशु दोनों कई रोगों से ग्रस्त होकर स्वास्थ्य खो बैठते है और बहुधा अकाल मृत्यु को प्राप्त होते है। अधिक निर्धन परिवारों मे तो बच्चों को केवल मां के दूध पर ही निर्भर करना पड़ता है, जिस मां को भरपेट भोजन ही नहीं मिलता, उसके स्तनों में उत्तम प्र्याप्त दूध कहां से उत्पन्न होगा? गर्भावस्था में भी स्त्री को विशेष रूप से पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। बालक के शरीर के निर्माण और वृद्धि के लिए सभी आवश्यक तत्व माता के शरीर से व्यय हो जाते है। पौष्टिक भोजन की कमी के कारण इनकी पूर्ति उसके शरीर में हो नहीं पाती है। इस प्रकार निर्धनता भोजन की कमी के रूप में माता और बालक दोनों के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती है।

3. अपर्याप्त वस्त्र- छोटे बालक ठण्ड सहन नहीं कर सकते। निर्धन माता-पिता उनके लिए प्र्याप्त वस्त्रों का प्रबंध नहीं कर सकते। अतएव वे ठण्ड के कारण रोग के शिकार हो जाते है। वस्त्रों की कमी के कारण बच्चों के कपड़े साफ़-सुथरे भी नहीं रहते।

4. अनुपयुक्त घर- हमारी अधिकांश जनता आज भी एक अंधेरी सीनलयुक्त छोटी से टूटी झोपडी़ या कोठरी में सपरिवार रहती है। ऐसे स्थानों में रहने वाली अस्वस्थ माता का बालक कमजोर तो होता है साथ ही नवजात शिशु को जन्मते ही इस गंदगीपूर्ण वातावरण में रहना पड़ता है और शीघ्र ही वह अनेक रोगों का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त होता है।

5. अज्ञानता- अनभिज्ञ माताएं उचित रीति से शिशु का पालन-पोषण नहीं करती। उन्हें यह पता नहीं रहता है कि किन-किन बातों से बच्चों को हानियां होती है और किनसे लाभ होता है।

6. गर्भावस्था की सावधानी-प्रसव के पूर्व गर्भावस्था काल में गर्भिणी की देखभाल कितनी आवश्यक है और कैसे होनी चाहिए ? जब हम उन सब बातों की ओर ध्यान नहीं देते तो गर्भावस्था में माता का स्वास्थ्य खराब हो जाता है और उसका प्रभााव बालक के स्वास्थ्य पर पड़ता है।

7. माता-पिता की अवस्था व रूग्णावस्था- नेपोलियन ने कहा था कि'' यदि फ्रांस की माताएं स्वस्थ हो तो उसे सपूत मिल जाएगें।'' यह तो सर्वसाधारण का अनुभव है कि स्वस्थ माता-पिता के बच्चे स्वस्थ ही होते है। स्वस्थ माता-पिता का शिशु गर्भ से ही उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करता है और जन्म के प्श्चात भी स्वस्थ माता का दूध उसमें जीवन व शक्ति का संचार करता है। कुछ ऐसे भी रोग है जिनसे ग्रसित माता-पिता के संतान होना, देश के लिए वरदान नहीं अपितु अभिशाप है।

8. बच्चों का पालन-पोषण नौकरो पर छोड़ना- धनी परिवारों में एक और कुरीति फैलती जा रही है। माता बच्चे का पालन-पोषण भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बाहर की बात समझती है ओर अपने बच्चे का पालन-पोषण नाकरों, आया या नर्स पर छोड़ देती है। बच्चे का पालन क्या कोई वेतनभोगी कर्मचारी मां के समान कर सकता है ? इसका यह अर्थ नहीं कि आप आया या नौकर रखे ही नहीं। पर उनका काम आपकी सहायता करना होना चाहिए न कि बच्चों के पालने की पूरी जिम्मेदारी उनकी होनी चाहिए।

9. प्रसव और प्रसूति-गृह के सम्बंध में रूढिवादिता- अनभिज्ञता के साथ बहुत से अनुचित रीति-रिवाज एवं रूढिवादी विचार हमारे देश के सम्पन्न घरानों में भी जड़ जमाये हुए है। प्रसूता को घर की सबसे अंधेरी कोठरी में रखना छूआछूत के कारण टाट, चिथड़े व गूदड़ी पर उसे सुलाना, स्वच्छ वायु व प्रकाश के प्रवेश को भली-भांति रोकने के लिए दरवाजे, खिड़कियों को बंद रखना, फूहड़ दाई के गंदे हाथों व उपकरणो द्वारा प्रसव कराना तथा असंतुलित भोजन देना कुछ ऐसे ही परंपरागत रिवाज है। इन सब गंदगी के कारण भी प्रायः माता और बच्चों को अनेक रोग हो जाया करते है।

10. मातृ-शिशु कल्याणकारी संस्थाओं व अन्य सुविधाओं की कमी- माताओं व शिशुओं के हित के लिए सरकारी परियोजनाओं के कार्य विस्तार के प्रयत्न निरंतर किये जा रहे है फिर भी देश के विस्तार व आबादी के तुलना मे ये कार्य नगण्य से ही है। अब भी अधिकांश निम्न श्रेणी की जनता सभी प्रकार की डाक्टरी सहायता से वंचित ही रहती है। ग्रामों में कार्य करने को डॉक्टर भी बहुत कम तत्पर होते है। निर्धनों के लिए नि:शुल्क दवा, दूध व डॉक्टरी सहायता आदि का नितांत अभाव है।
11. बाल विवाह- बाल विवाह, बाल-मृत्यु का बहुत बड़ा कारण है। छोटी सी आयु में विवाह होने से लड़के और लड़की दोनों को हानियां होती है। दोनों के प्रजनन अंग अपरिपक्व होते है। इस अवस्था में गर्भ धारण करने पर यक्ष्मा होने का भय रहता है तथा शिशु कमजोर होता है। ऐसा देखा गया है कि छोटी आयु में कन्याएं गर्भ धारण करने के योग्य नहीं होती है। उनका गर्भाशय गर्भधारण करने के लिए असमर्थ होता है। अतएव वह गर्भ को बाहर निकाल देने का प्रयत्न करता रहता है। यह रोग एक बार लग जाने पर बार-बार गर्भस्राव होता है।

समस्या-समाधान के कुछ व्यापक उपाय

उपयुक्त कारणों को यदि दूर किया जा सके तो समस्या का फल स्वत: ही हो जाता है परंतु इन कारणों में एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बंध है कि प्रत्येक का पृथक रूप में समाधान करना सरल नहीं। अत: यहां कुछ ऐसे व्यापक उपायों की विवेचना की जाएगी जिनको व्यावहारिक रू्प देने से अकाल शिशु व मातृ-मृत्यु के आधारभूत कारण सुगमता से दूर हो सकते है।

1. निर्धनता और बेकारी को दूर करना- सरकार इस ओर प्रयत्नशील है। हम सबकों भी इस ओर प्रयत्न करना चाहिए। देश की औद्योगिक और आर्थिक उन्नति के जो प्रयास हो रहे है उनमें अपनी शक्ति भर सहयोग देना चाहिए। निर्धनता दूर होने पर गर्भावस्था में तथा उसके बाद बालक को दूध पिलाने की अवस्था में माता के भोजन आदि की उचित व्यवस्था प्रत्येक परिवार में होने लगेगी। इसी प्रकार बालक के लिए भी उचित और स्वास्थ्यप्रद भोजन की व्यवस्था सम्भव हो जाएगी। परिणामस्वरूप हमारी भावी संतान नीरोग और स्वस्थ होगी।
2. शिक्षा का प्रसार- देश के प्रत्येक शिक्षित नागरिक का कर्तव्य है कि वह शिक्षा का प्रसार की बड़ी-बड़ी योजनाओं में ही सहयोग न दे, वरण् अपने सम्पर्क में आने वाले अशिक्षित देशवासियों को भी कुछ शिक्षा दे। प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक विकास होना स्वाभाविक है और इसके विचारों को संकीर्णता और अंधविश्वास हटेंगे। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार के साथ यह स्थिति अधिक सुधरेगी। स्त्री शिक्षा में मातृकला सम्बंधी शिक्षा पर विशेषे महत्व दिया जाना चाहिए। क्योंकि स्त्रियों में जीवविज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, मातृकला आदि के ज्ञान का प्रसार होने सें ही बाल-मृत्यु संख्या घटेगी।
3. यौन शिक्षा- इस सम्बंध की शिक्षा का हमारे देश में नितांत ही अभाव रहा है। शिक्षित व्यक्तियों को भी यह ज्ञान नहीं के बराबर होता है और अपनी संतान से इस संबंध में बातचीत करने का तो कोई साहस ही नहीं करता। उचित अवस्था पर पहुंचकर बालक-बालिकाओं मे यौन सम्बंधी चेतना जागृत होती है और इस सम्बंध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने की उनमें उत्सुकता होती है। न शिक्षा संस्थाओं में इस सम्बंध की शिक्षा दी जाती है और न माता-पिता इस सम्बंध में कोई बात करते है। परिणामस्वरूप वह अपने समवयस्कों से ही बातचीत में ज्ञान प्राप्त करते है। प्रत्येक माता-पिता को समझना चाहिए कि अन्य ज्ञानों की भांति यह ज्ञान भी जीवन के लिए आवश्यक है। प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे देखे कि बालक को उचित अवस्था पर इस ज्ञान की शिक्षा मिल जाए या मिलना आरंभ हो जाए। 10-12 वर्ष की आयु पर बालक को इन बातों को जानने की इच्छा होने लगती है। उसी समय यह शिक्षा मिलनी चाहिए। ज्यो-ज्यों यह अवस्था बढ़ती जाए त्यों-त्यों उनकों गुढ़ बातें बताई जाएं जिससे 16 वर्ष तक उनकी यह शिक्षा समाप्त हो जाए। माता-पिता के अतिरिक्त शिक्षा-संस्थाओं में भी इस सम्बंध का आवश्यक ज्ञान देने की व्यवस्था होनी चाहिए। माता-पिता की अज्ञानता या अन्य कारणों से इस ज्ञान से पूरी हो जाएगी। इस शिक्षा को देने के लिए योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों पर निर्भर किया जाना चाहिए।

4. मातृत्व सुरक्षा तथा शिशु- पालन के यथोचित ज्ञान-प्राप्ति के सुलभ साधन उंची कक्षाओं में कन्याओं को स्वास्थ्य रक्षा के सामान्य नियमों के अतिरिक्त माता व शिशु सुरक्षा नियमों का ज्ञान कराने से वे भविष्य में मातृत्व के कर्तव्यों का सुचारू रूप से पालन कर सकेंगी। अवस्था-विशेष के अनुरूप उपयुक्त भोजन, सादा तथा नियमपूर्वक रहन-सहन व स्वच्छता की उपयोगिता को समझने वाली गर्भवती स्त्री तथा माता व शिशु की उचित देखरेख की आवश्यकताओं का भली प्रकार से समझने वाली माता अपने तथा अपनी संतान के जीवन को अधिक स्वस्थ व सुखी कर सकती है।

5. परिवार नियोजन- मातृ-बाल-मृत्यु की समस्या के समाधान का कोई भी प्रयास पूर्णतया तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि परिवार के सदस्यों की संख्या सीमित न की जाए। निर्धनता के कारण जहां माता-पिता एक-दो बच्चों को यथोचित पालन नहीं कर सकते, वहां प्रति वर्ष एक संतान को जन्म देना माता तथा शिशु दोनों के प्रति अन्याय नहीं तो क्या है? न तो माता में स्वास्थ्य की दृष्टि से बार-बार गर्भ धारण करने की व प्रसव करने की क्षमता होती है और न ही वह अधिक बच्चों की उतनी अच्छी देखभाल कर सकती है जितनी संख्या में कम संतान की। इसलिए संख्या मे अधिक परंतु निर्बल व रोगी बच्चों की अपेक्षा एक-दो हष्ठ-पुष्ठ बालक कहीं अधिक श्रेष्टकर समझे जाते है।

6. पूर्व प्रसव केन्द्र- की ओर से यह आयोजन होना चाहिए कि जो क्षेत्र उस केन्द्र के सुपुर्द हो वहा जितनी गर्भवती स्त्रियों हो उनको एवं प्रसव जीवन के संबंध की प्रत्येक बात की जानकारी कराई जाए। केन्द्र में समय-समय पर इस विषय से लेक्चर तथा प्रदर्शन कराये जाए, जिनमें उन सब स्त्रियों को आमंत्रित किया जाए। इस प्रकारन के लेक्चरों को क्रमबद्ध करके एक विष्यानुक्रमणिका बना ली जाए जिनमें प्रथम से लेकर अंतिम तक में सारे विषय को समझा दिया जाए। प्रत्येक केन्द्र में एक विशेषज्ञ डाक्टर, स्वास्थ्यचर तथा अन्य आवश्यक कर्मचारीगण नियुक्त होने चाहिए।

7. स्वास्थ्यचर- इनके द्वारा स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा जन-साधारण के घरों पर दी जाती है। ये परिचारिकाएं अपने कार्य में चतुर एंव दक्ष होती है जो सफलतापूर्वक ग्रामीण स्त्रियों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करती है तथा गर्भावस्था के लिए उपयुक्त आहार की उपयोगीता बताती है। स्वास्थ्यचर का काम केवल गर्भवती को एक बार देख लेने व उसको सलाह दे देने पर समाप्त नहीं हो जाता। उसको बार-बार देखते रहना पड़ेगा कि गर्भवती के स्वास्थ्य में कोई त्रुटि न आने पाये। प्रसव का आयोजन भी उसे ही करवाना होगा। सामान्यत: एक स्वास्थ्यचर को 200 गर्भवती स्त्रियों, 200 शिशुओं तथा 600 के लगभग 5-6 वर्ष के बच्चों के स्वास्थ्य का निरीक्षण करना होगा।

8. शिक्षित दाइयां- अधिकांश स्त्रियां केन्द्र पर न जाकर घर पर ही प्रसव करवाती है। इसके लिए दाइयों को शिक्षित करना बहुत आवश्यक है। उनको स्वच्छता, निस्संक्रमण, अपने हाथों की, वस्त्रों तथा उपकरणो की प्रसवी के शरीर के भागों की चारों ओर की वस्तुओं की शुद्धि की आवश्यकता और महत्व भली-भांति समझा देना चाहिए तथा वे प्रसव के काम में दक्ष हो।

9. प्रसव केन्द्र-प्रसव के लिए विशेष प्रबंध करने की आवश्यकता है जहां स्त्रियां प्रसव के लिए जा सके। प्रत्येक नगर में ऐसे कई केन्द्र या गृहों को बनाने की आवश्यकता है। प्रत्येक केन्द्र में एक कुशल डॉक्टर नियुक्त हो। उसकी सहायता के लिए शिक्षित धात्रियां तथा नर्से हो। प्रसव के प्श्चात 8-10 दिन तक जच्चा को रखने का तथा उसकी सेवा का प्रबंध हो। यह केन्द्र उन उपकरणों से सुसज्जित हो जिनकी कभी-कभी आवश्यकता पड़ जाती है जो डॉक्टर यहां नियुक्त किया जाए, वह बालरोगों मे विशेषज्ञ होना चाहिए।

10. बाल-कल्याण केन्द्र-इस आयोजन को कार्यान्वित करने के स्थान-स्थान पर बाल कल्याण केन्द्र स्थापित करना चाहिए, जहां इस विषय के विशेष अनुभव प्राप्त व्यक्ति हो। कई महिला स्वास्थ्य अभयागताएं होनी चाहिए। जिससे वह बच्चों की चिकित्सा भी कर सके एवं उनको उचित सलाह दे सके।

11. प्रसविका सेवा- प्रत्येक गर्भवती को प्रसव के समय एक दूसरी स्त्री की सहायता की आवश्यकता होती है। यह कार्य सभी स्त्रियां नहीं कर सकती। इसके लिए उसकी सहायिका का प्रसव कराने का ज्ञान, हस्तकौशल, चतुरता स्वच्छता, मिलनसार, शौर्य, धैर्य सहानुभूति सम्पन्न गुणों का होना आवश्यक है।

12. दिवा शिशु पालन गृह- हर प्रकार ओर हर क्षेत्र की स्त्रियां जो नौकरी करती है अपने बच्चे को घर पर दिन में छोड़कर चली जाती है इनके बच्चे माता के प्यार, स्नेह, देखरेख और स्तनपान से वंचित रह जाते है। यहां तक कि समय पर उन्हें कृत्रिम दूध भी नहीं मिलता जिससे उनका स्वास्थ्य और स्वभाव खराब हो जाता है। इन सबका समाधान करने के लिए शिशु पालन गृह होना चाहिए जहां पर नौकरी पेशा स्त्रियां अपने बच्चों को छोड़कर जाएं और बीच-बीच में देखकर अपना दूध पिलाएं, अगर माता न आ सके तो विधिपूर्वक स्वच्छता के साथ दूध पिलाने का प्रबंध हो, जहां पर यह गृह हो वहां का वातावरण स्वच्छ हो तथा शिक्षित महिलाएं हो जो इन सभी बातों में प्रवीण हों। इसलिए सरकार तथा जनता को इस ओर ध्यान देकर दिवा शिशु-पालन गृह का निर्माण अधिकाधिक संख्या में करना चाहिए।

इस दिशा में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कई प्रकार के पहल किए गये है, जिन्हें निम्न रूपों में समझा जा सकता है-

केन्द्रीय योजनाएं-जब से देश स्वतंत्र हुआ है, तब से केन्द्रीय सरकार गर्भवती स्त्री की उचित देखभाल व व्यवस्था के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हुई है। इस कार्य के उचित संचालन के लिए केन्द्र में 'प्रसूता' व शिशु-स्वास्थ्य-संचालक की नियुक्ति की गई। इसका मुख्य कार्य भावी माता एवं उसके शिशु के स्वास्थ्य के लिए उचित परामर्श देना, डाक्टरी परीक्षण की व्यवस्था करना, प्रशिक्षित नर्सो व दाइयों की कुशल सेवाओं की व्यवस्था करना तथा यदि आवश्यकता हो तो निःशुल्क औषधियों व टॉनिकों आदि की व्यवस्था करना है।

स्वास्थ्य मंत्रालय के मातृत्व व शिशु-स्वास्थ्य सम्बंधी प्रयासों के अतिरिक्त पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत जनता के हितार्थ विभिन्न कल्याण-विस्तार-प्रशिक्षण योजनाओं को कार्यानिवत करने के लिए सन् 1953 में एक केन्द्रिय समाज कल्याण प्रमण्डल की स्थापना की गई थी। इस विधान द्वारा सन 1955 में शिशु कल्याण के लिए 1257557 रूपये तथा महिला कल्याण के लिए 1343737 रूपए अनुदान के रूप में प्रदान किए। इसके तत्वाधान में नगरों व देहातों की माताओं व शिशुओं की देखरेख योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने का सराहनीय प्रयत्न हो रहा है।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन सेवाएं एकीकृत कर दी गई है। यह एकीकरण इसलिए किया गया है ताकि जात के अपने लिए किसी एक केन्द्र पर, शिशु के लिए दूसरे केन्द्र पर तथा परिवार नियोजन संबंधी सेवाओं के लिए तीसरे केन्द्र पर जाने की असुविधा से बचाया जा सके। इन सेवाओं को एक ही केन्द्र पर संयोजित करने से देखभाल में निरंतरता बनी रहती है तथा परिवार को आवश्यक रूप से बार-बार इन केन्द्रों पर आने-जाने की असुविधा से बचाया जा सकता है। पांचवी पंचवर्षीय योजना में नवीन एवं आधुनिक विधि का प्रयोग मातृ-शिशु स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, पोषण एवं टीके लगाने सम्बंधी सेवाएं संयोजित रूप से एक ही केन्द्र पर प्राप्त हो जाती है। इन सेवाओं का वर्तमान संगठन है।

शिशु एवं माताओं के लिए विभिन्न कार्यक्रम- शिशु व माताओं के कल्याण हेतु भारत सरकार विभिन्न कार्यक्रम संचालित कर रही है, जिनमें राज्यों का भी सहयोग सम्मिलित हैं। प्रमुख कार्यक्रम निम्न है-

विशेष पोषण कार्यक्रम- बच्चों, विशेषकर निम्न आर्थिक स्तर के बच्चों की व्यापक पोषणहीनता सम्बंधी समस्या को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने 1970-71 में एक विशेष पोषण कार्यक्रम इस उद्देश्य से प्रारंभ किया कि जन-जाति क्षेत्रों तथा एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरी गंदी बस्तियों के तीन वर्षो तक के बच्चों की पोषण सम्बंधीहीनता को पूरा किया जा सके। वर्ष 1972-73 में इस योजना का विस्तार कर 6 वर्ष तक के बच्चे तथा गर्भवती तथा धात्री माताओं को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तथा प्रसूति केन्द्रो पर कराए जाते है। इसलिए नगरों में अधिकाधिक मातृ-शिशु स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों में नगरपालिकाओं व महानगरपालिकाओं की ओर से प्रसूति केन्द्र खोले गए है। इन केन्द्रों को खोलने के लिए ऐच्छिक संस्थाओं का भी सहयोग प्राप्त किया जाता हैं सरकार की योजनानुसार प्रत्येक 10000 जनसंख्या के लिए 50 शैय्या वाला प्रसूति गृह, जिसमें 10 शैय्या बच्चों के लिए हो तथा इससे 3.4 मातृ-शिशु कल्याण उपकेन्द्र संलग्न हो। प्रत्येक उपकेन्द्र लगभग 25000 जनसंख्या की सेवाएं उपलब्ध करा सके, की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रसूति गृह के चिकित्सक तथा अन्य कार्यकर्ता माताओ्रं को पूर्व प्रसव, प्रसवोत्तर, परिवार नियोजन तथा शिशुओं को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी होते है। यहां प्रसव काल में निर्धन माताओं को दूध, औषधि आदि निःशुल्क देने का प्राविधान होता है। इन केन्द्रों पर प्रशिक्षित निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की गई है।

कुछ धनी व्यक्ति तथा डॉक्टर निजी प्रसूचि गृह तथा महिला व बाल चिकित्सालय स्थाापित करके ये सुविधाएं प्राइवेट रूप से उपलब्ध कराते है। इन सेवाओं का केवल धनी व्यक्ति ही लाभ उठा पाते है।

ग्रामीण क्षेत्र-ग्रामीण क्षेत्रों में ये सेवाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा उपनकेन्द्रों पर उपलब्ध होती है।

प्राथमिक स्वास्थ्य केनद्र 80000 से 100000 तक जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा प्रत्येक उपकेन्द्र लगभग 10000 जन-समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। पुरूष एवं स्त्री स्वास्थ्य कार्यकर्ता एवं स्वास्थ्य सहायक प्रमुख रूप से इन सेवाओं को ग्रामीणों तक पहुंचाने का कार्य करते हे। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र का प्रभारी चिकित्सक इन सभी सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी होता है।

स्वास्थ्य उपकेन्द्र इन सेवाओं को उपलब्ध कराने कही प्रमुख इकाई है। देश में उच्च जन्मदर, ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरी जनसंख्या तथा योग्य चिकित्सकों के अभाव में गांवों में अधिकांश प्रसव दाइयों एवं नर्सो की सहायता से लोगों के घर पर ही सम्भव है। यदि प्रसव सम्बंधी जटिलताएं उत्पन्न हो जाएं। तभी चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराई जा सकती है। महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता ही उपकेन्द्र का वह व्यक्ति है जो पूर्व प्रसव, प्रसवकालीन एवं प्रसव के प्श्चात तथा परिवार नियोजन सम्बंधी सेवाओं को अपने क्षेत्र में उपलब्ध करा सकती है।

संदर्भ

1. सिंह, डॉ0 केचरिन एस0, पोषण एवं आहार के सिद्धांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृ0 29
2. श्रीवास्तव, डॉ0 आरती एवं चौधरी शांतिवाला, गृहविज्ञान, भारती भवन पटना, 1989, पृ0 52
3. वर्मा एवं पाण्डेय, बाल विकास, पृ0 50
4. राजकुमार, नारी के बदलतते आयाम, पृ0 33
5. कुमार, हेल्थ एण्ड न्युट्रिशन स्टेटस ऑफ इंडियन वुमन, पृ0 46
6. जी0 के0 अग्रवाल, ग्रामीण महिलायें एवं समाजशास्त्र, पृ0 28
7. जी0 के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र, पृ0 22
8. जी0 के0 अग्रवाल, भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ0 20
9. नीता अग्रवाल, मातृकला एवं शिशु पालन, पृ0 29
10. राजराजेश्वरी प्रसाद सिन्हा, विकासात्मक मनोविज्ञान, पृ0 26

भारत छोड़ों आंदोलनः पृष्ठभूमि, प्रकृति एवं प्रभाव

डॉ० संजीव कुमार

एम0 ए0, पी.एच-डी., बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

1942 ई0 का भारत छोड़ों आंदोलन आधुनिक भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इस आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्य पर निर्णायक प्रहार किया। यह आंदोलन भारतीय जन-मानस की निर्णायक मन:स्थिति का प्रस्फुटन था। इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह एक स्वत: स्फूर्त जनान्दोलन था। इस आंदोलन में समाज के सभी वर्गो की भूमिका थी। इसके पूर्व की सभी आंदोलनों में वर्गीय-हित एवं चेतना की अभिव्यक्ति हुई थी लेकिन भारत छोड़ों आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह वर्गीय-हित एवं चेतना से मुक्त तथा राष्ट्रीय चेतना से युक्त, सही मायनों में एक राष्ट्रीय जनांदोलन था जिसमें किसान, मजदूर, छात्र, अगरा-पिछड़ा एवं स्त्री पुरूषों सभी में अपनी भूमिका का निर्वाहन किया।

भारत छोड़ो आंदोलन, जिसे अगस्त क्रांति भी कहा जाता है। भारतीय जनता की वीरता और लड़ाकुपन की अद्वितीय मिसाल है। इस क्रांति ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला दी और यह सिद्ध कर दिया कि स्वाधीनता के चमकीले प्रकाश के लिए भारतवासी मर मिटने को तैयार हैं।

क्रिप्स मिशन की असफलता, जापानी सेना का भारत की सीमाओं तक आ पहुंचना, बढ़ती हुई कीमतें और खाद्य आपूर्ति की कमी, अंग्रेजों के प्रति जनसाधारण की आस्था में कमी एवं कांग्रेस के अंदर अलग-अलग मत निर्माण जैसे कारकों ने भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की।

क्रिप्स योजना की अस्फलता से यह स्पष्ट हो गया थाकि ब्रिटिश सरकार युद्ध में भारत की अनिच्छुक साझेदारी को तो बरकारार रखना चाहती है, लेकिन किसी सम्मान जनक समझौते के लिए तैयार नहीं है। इस योजना की अस्फलता के बाद भारतीय स्वतंत्रता का अध्याय बंद कर दिया गया था और सरकार ने कठोर दमनकारी नीति अपनायी थी। इससे देश में नैराश्य एवं उत्साहहीनता छा गयी थी। इस स्थिति में कांग्रेस के समक्ष आंदोलन चलाने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था।

आंदोलन का आह्वान भले कांग्रेस ने किया हो लेकिन अंतत: इसका संचालन जनता के हाथों में रहा। इस आंदोलन का स्वरूप एक प्रकार से 'जन युद्ध' का हो गया। सरकारी दमनचक्र के विरूद्ध भूमिगत क्रांतिकारी कार्रवाई प्रारंभ हो गयी।

शब्द कुंजी- नागरिक अवज्ञा, जनयुद्ध, समानांतर सरकार, प्रत्यक्ष कार्यवाही, नजरबन्दी, अहिंसात्मक आंदोलन।

परिचर्चा

भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश सरकार युद्ध में जापान का मुकाबला स्फलतापूर्वक नहीं कर सकी। मलाया, बर्मा, सिंगापुर आदि देशों से ब्रिटिश फौजों को पीछे हटना पड़ा। वहां जिस तरह से गोरी बस्तियां खाली कर दी गयी थी और स्थानीय लोगों को उनके भाग्य पर छोड़ दिया गया था, उससे भी काफी क्षोभ फैला। भारत के लोग सोचने लग गए थे कि अगर जापानी हमला हुआ तो अंग्रेज यहां भी उसी तरह

विश्वासघात करेंगे। राष्ट्रीय नेताओं को संघर्ष छेड़ने की जरूरत इसलिए भी महसूस हुई कि लोगों में निराशा फैल रही थी और यह आशंका पैदा हो गयी थी कि कही जापानी हमले का जनता द्वारा कोई प्रतिरोध ही न हो।

संघर्ष अपरिहार्य इसलिए भी होता जा रहा था कि युद्ध के कारण बढ़ती कीमतों और जरूरी वस्तुओं के अभाव से जन साधारण में बेहद असंतोष था। बंगाल और उड़ीसा की नावों को जापानियों द्वारा उनके संभावित इस्तेमाल को रोकने के लिए सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था, जिससे लोगों को दिक्कत हो रही थी। सिंचाई की नहरों का पानी भी इसी ख्याल से बहा दिया गया था, जिससे खेती सुखने लगे थे। मकानों और मोटरगाड़ियों पर भी सेना ने कब्जा कर लिया था। सामान्य जनता पर यह सब कुछ जबरन लादा जा रहा था, साथ ही उसे लग रहा था कि ब्रिटेन की हार होने वाली है।

मई 1942 में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें भारत पर हमला करने वाली किसी भी विदेशी ताकत के साथ पूर्ण अहिंसक असहयोग करने का आह्वान किया गया। राजगोपालचारी और मद्रास के कुछ अन्य कांग्रेसियों ने एक प्रस्ताव पारित करवाने का प्रयास किया, जिसमें कहा गया कि अगर मद्रास सरकार उन्हें आमंत्रित करती है तो कांग्रेस को वहां मंत्रिमंडल का गठन करना चाहिए। इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया, परंतु इस प्रस्ताव ने यह जाहिर कर दिया कि कुछ ऐसे कांग्रेसी थे जो सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे।

मई 1942 में गांधी जी ने बंबई में कांग्रेसियों की एक सभा को संबोधित करते हुए कहा कि उन्हों ने तय कर लिया है कि वे आदेशात्मक स्वर में अंग्रेजों से भारत छोड़ने के लिए कहेंगे। अगर अंग्रेज नही मानेंगे तो वे नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू कर देंगे। इस आंदोलन को शुरू करने के बारे में बहुत से कांग्रेसी नेताओं के मन में संकोच था। नेहरू विशेष रूप से दुविधा में थे कि साम्राज्यावादी ब्रिटेन से संघर्ष करे या फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष में सोवियत संघ और चीन का साथ न दें। आखिरकार नेहरू ने आंदोलन शुरू करने के पक्ष में फैसला किया। कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया की भारत छोड़ो मांग का मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश और मित्र राष्ट्रों की फौजें तुरंत ही भारत से चली जाएं। बल्कि इसका तात्पर्य था कि अंग्रेजों द्वारा भारत की स्वतंत्रता को तत्काल स्वीकृति प्रदान की जाए। नतीज़तन कांग्रेस कार्य समिति ने 14 जुलाई 1942 को अपनी वर्धा की बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया और संघर्ष के निर्णय को अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रस्ताव की पुष्टि अगस्त में बंबई में ए0 आई0 सी0 सी0 की बैठक में की जानी थी।

इसी बीच 27 अस्गत 1942 को ब्रिटिश सरकार द्वारा लंदन से एक घोषणा की गयी, जिसमें बताया गया कि भारत को युद्ध का आधार बनाया जाएगा और उसके लिए जो भी कार्यवाही आवश्यक समझी जाएगी की जाएगी। इस घोषणा से यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजी सरकार पाशविक दमन द्वारा भारत को अधिकार में रखकर उसका प्रयोग युद्ध में आधार के रूप में करने पर उतारू थी।

वर्धा में कार्य समिति द्वारा पारित प्रस्ताव के आलोक में 7 एवं 8 अगस्त सन् 1942 को मुम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी का का सम्मेलन हुआ जिससे 8 अगस्त को भारी बहुमत से 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हो गया। प्रस्ताव में भारत की स्वतंत्रता की तत्काल स्वीकृति और ब्रिटिश शासन के अंत की मांग की गयी और कहा गया कि यदि ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता की मांग को स्वीकार न करे तो अहिंसात्मक आंदोलन आरंभ किया जाएगा। जिसका लक्ष्य स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी। गांधी जी को आंदोलन प्रारंभ करने और उसका नेतृत्व करने का अधिकार दिया गया था। गांधी जी ने अंग्रेजीो को यहां से चले जाने और भारत को भगवान भरोसे छोड़ने के लिए कहा। उन्होंने सभी वर्गो को प्रोव्साहित किया किय वे आंदोलन में भाग लें। उन्होंने जोर देकर कहा–''प्रत्येक भारतीय को जो आजादी चाहता है और इसके लिए प्रयत्न करना चाहता है, अपना अगुआ स्वयं बनना चाहिए।'' उनका संदेश था–'करो या मरों'। इस तरह '' भारत छोड़ो आंदोलन'' आरंभ हो गया।

कांग्रेस ने अंग्रेजों को निकाल बाहर करने का आह्वान तो किया, लेकिन इसने पालन के लिए लोगों को कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं दिया। सरकार, इस आंदोलन को कुचलने की तैयारियां कर रही थी। 9 अगस्त की सुबह गांधी जी सहित कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। नेताओं की गिरफ्तारी ने लोगों को धक्का पहुंचाया और वे विरोध के लिए सड़कों पर निकल आये। दिल्ली, कानपुर, वाराणासी, इलाहावाद, पटना आदि शहरों में हड़ताल एवं जुलूस निकाले गए। नेताओं की गिरफ्तारी हो जाने के कारण देश के विभिन्न भागों में अभूतपूर्व जन प्रतिक्रिया हुई। शहरों और कस्बों में हड़तालों, जुलूस और प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया। हालांकि आह्वान कांग्रेसी नेतृत्व का था परंतु वास्तव में आंदोलन जनता ने शुरू किया। चूंकि राष्ट्रीय प्रांतीय और स्थानीय

स्तर के सभी मान्य नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे इसलिए इनकी जगह भरने के लिए उनके क्षेत्रों में स्थानीय स्तरों पर युवा और उग्र, विशेषरूप से समाजवादी रूझान वाले नेता उभरकर आए।

प्रारंभिक चरणों में आंदोलन अहिंसा की सीमाओं में रहां पर सरकार की दमनकारी नीति ने लोगों की हिंसा के लिए उकसाया। गांधी जी द्वारा दिया गया। अहिंसक संघर्ष का संदेश पृष्ठभूमि में चला गया और लोगों ने संघर्ष के अपने-अपने तरीके ईजाद कर लिए जिनमें सरकारी इमारतों, पुलिस थानों, डाकघरों और रेलवे स्टेशनों पर हमला, रेल की पटरियों को उखाड़ना, टेलिग्राफ, टेलिफोन औनर बिजली के तारों को काटना, पुलों को नष्ट करके सड़क यातायात भंग करना और मजदूरों की हड़ताल आदि शामिल थे।

इनमें से अधिकांश कार्रवाईयां सेना और पुलिस की गतिविधि को रोकने के लिए थी, जिनका इस्तेमाल सरकार आंदोलन को कुचलने के लिए कर रही थी। कई क्षेत्रों में सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रह गया और यहां स्थानीय जनता ने स्वराज कायम कर दिया। महाराष्ट्र में सतारा में एक समानांतर सरकार स्थापित कर दी गयी, बंगाल में तामलुक जातीय सरकार मिदनापुर जिले में काफी समय तक काम करती रही। उड़ीसा में तलचर में स्वराज्य स्थापित किया गया, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कई भागों प्रथा आजमगढ़, बलिया, गाजीपुर, मुंगेर, भागलपुर, मुजफरपुर आदि क्षेत्रों में लोगों ने पुलिस थानें पर कब्जा कर लिया और सरकारी सत्ता को उखाड़ फेका।

प्रारंभ में यह आंदोलन शहरी इलाकों में ही प्रभावी था परंतु शीघ्र ही इसका प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी हो गया, जहां विद्रोह का झण्डा लम्बे समय तक ऊंचा उठा रहा। बंबई, आंध्र, यु0 पी0, बिहार, गुजरात, उड़िसा, असम, बंगाल, कर्नाटक आदि में आंदोलन को जनता का व्यापक समर्थन मिला। लेकिन पंजाब, सिंध, उत्तर पश्चिम सीमाप्रांत में आंदोलन का प्रभाव कम था।

आंदोलन का आरंभ और दमन

9 अगस्त 1942 ई0 की तड़के सुबह ही महात्मा गांधी, वर्किंग कमिटी के सदस्य तथा अन्य अनेक नेता बंबई में तथा देश के अन्य भागों में गिरफ्तार कर लिए गए। गांधी जी को पूना में आगा खां पैलेस में सरोजिनी नायडु के साथ रखा गया, अनेक नेता अहमदनगर किले में बंद कर दिए गए। राजेन्द्र प्रसाद पटना में नजरबंद कर लिए गए। जयप्रकाश नारायण को भी गिरफ्तार कर हजारीबाग केन्द्रीय कारा में रखा गया।

इन घटनाओं ने जनता को अचंभित और क्रोधित कर दिया। अपने नेताओं की गिरफ्तारी से उनमें गुस्से की लहर दौड़ गई। उनकी भावनाएं अनियंत्रित हो गई। सारे नेता जेल में थे, अत: उनको रोकनेवाला भी कोई नहीं था। फलत: गुस्से में जनता ने हिंसा और विरोध का सहारा लिया। जगह-जगह हड़ताल और प्रदर्शन किए गए। अंगरेजों के विरोध में जुलूस निकाले गए। गिरफ्तार नेताओं की रिहाई की मांग सर्वत्र गूंजने लगी। इस आंदोलन में छात्रों, मजदूरों, किसानों, जनसाधारण सभी ने हिस्सा लिया। सरकार की दमनात्मक कार्रवाइयों ने गुस्से की लहर और भी तीव्र कर दी। फलस्वरूप क्रुद्ध जनता ने कहीं-कहींपर अंगरेजों की हत्या भी कर दी। डाकखानों में आग लगाना, रेल की पटरियों को उखाड़ना, टेलीफोन के तारों को काट देना इत्यादि आंदोलनकारियों के नियमित कार्य बन गए। अनेक जगहों पर आंदोलनकारियों ने अपना अधिकार कर वहां समांतर सरकारें स्थापित कर लीं। ब्रिटिश शासन का नामो-निशान उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़िसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र के अनेक भागों से कुछ समय के लिए मिट गया। जयप्रकाश नारायण हजारीबाग जेल से फरार होकर अपने सहयोगियों के साथ 'आजाद दस्ता' बनाकर सशस्त्र संग्राम की तैयारी एवं जनक्रांति का कार्य करने लगे।

सरकार इन घटनाओं को शांत बैठकर नहीं देख रही थी, बल्कि अपनी दमनात्मक कार्यवाही तेजी से चला रही थी। निहत्थी लेकिन उग्र भीड़ को शांत करने के लिए अनेक स्थानों पर पुलिस और सेना को लाठी और गोली का सहारा लेना पड़ा। अनेक जगहों पर जनता की निहत्थी भीड़ पर हवाई जहाज से मशीनगन द्वारा गोलियां चलाई गई एवं बम बरसाए गए। अनुमानत: पुलिस की गोलियों से करीब 10,000 व्यक्ति मौत के घाट उतार दिए गए। हजारों व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए। जनता पर अमानुषिक और अमानवीय अत्याचार किए गए। प्रेस पर पाबंदी लगा दी गई। गांवों पर सामूहिक जुर्माने लगाए गए तथा ग्रामीणों की कोड़ों से पिटाई की गई। 'भारत छोड़ों आंदोलन' पर टिप्पणी करते हुए इतिहासकार बिपनचंद्र, अमलेश त्रिपाठी और वरूण डे लिखते है, ''अलग-अलग व्यक्तियों ने आक्रोश-भरी चुनौती के रूप में जो कार्रवाई शुरू की, वह बढ़कर एक आंदोलन में बदल गई और फिर आंदोलन ने विद्रोह का रूप ले लिया।......सरकार ने अपना गुस्सा दिखाया और आंतक तथा जोर-जुल्म की बागडोर ढ़ीली कर दी

गई।ख्रख्रख्र देश एक पुलिस राज्य में बदल गया।....पुलिस और सेना की गोलियों से 10 हजार से अधिक लोगों को मार डालने के बाद देश में 1857 ई0 के बाद इतना भयंकर और देशव्यापी दमन नहीं हुआ था।''

जिस समय कांग्रेस के आह्वान पर जनता अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए बाध्य कर रही थी, उस समय देश के कुछ प्रमुख व्यक्ति और राजनीतिक दल इस आंदोलन के विरोधी बन गए। मुस्लिम लीग इस आंदोलन से अलग रही। इतना ही नहीं, कुछ समय पश्चात उसने कांग्रेस के 'भारत छोड़ों आंदोलन' के जवाब में बांटो और भागो का नारा दिया। रूसी प्रभाव में आकर कम्युनिस्ट पार्टी भी आंदोलनविरोधी बन गई। उसने अपने-आपको आंदोलन से अलग रखा और सरकार की हिमायती बन गई। देशी रियासतें भी इससे अलग रहीं। फलत: पूर्ण समर्थन के अभाव में और सरकारी दमन के कारण 1942 ई0 की क्रांति असफल हो गई। आंदोलन को सरकार ने बर्बरतापूर्ण ढ़ंग से कुचल दिया।

अंगरेजों ने आंदोलन का कठोरतापूर्वक दमन किया। प्रारंभ में पुलिस की सहायता से और बाद में सेना की सहायता से । उन्होंने उन क्षेत्रों पर पुन: अधिकार जमाया जहां जनता ने अपना शासन कायम कर लिया लिया था। जनता के साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। बलिया में अंग्रेजी सत्ता की पुन:स्थापना के लिए बलूची सेना भेजी गयी जिसने स्त्री-पुरूषों पर घोर अत्याचार किया। नि:शस्त्र जनता पर गोलियों की बौछार की गयी, लूट तथा हिंसक कार्य किये गये। स्त्रीयों को अपमानित किया गया तथा निर्धन किसानों पर सामूहिक आर्थिक दण्ड लगाया गया। कुछ स्थानों पर वायुयान से भी गोलियां बरसायी गयी। इस प्रकार इस आंदोलन की आग ठंडी की गयी।

1943 में केन्द्रीय विधानसभाओं में युद्ध-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सबिल ने 1942 के संबंध में आंकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा कि आंदोलन में पुलिस तथा सेना द्वारा 338 बार गोली चलायी गयी जिसके ण्लस्वरूप 950 व्यक्ति मरे तथा 1360 घायल हुए। 60,229 व्यक्ति जेल गये, 200 के लगभग रेलवे स्टेशन नष्ट किये गये, 550 डाकखानों पर हमला किया गया जिनमें 50 बिल्कुल जला दिये गये तथा 200 को भारी नुकसान पहुंचा। 3,500 स्थानों पर तार और टेलिफोन की लाइनें काट दी गयी, 70 थाने तथा 95 सरकारी भवन जला डाले गये। सरकार के दमन नने खुले विद्रोह को तो कुछ काल के लिए दबा दिया, परंतु यह आंदोलन कई मास तक चला तथा श्रीमति आस्फ़ अली, डॉ0 राममनोहर लोहिया तथा श्री जयप्रकाश नारायण आदि समाजवादी नेताओं ने छिपतर आंदोलन का निर्देशन किया।

भारत सरकार का कहना था कि कांग्रेस गैरकानुनी और हिंसात्मक कार्यो के लिए उत्तरदायी है। सरकार ने एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस के कार्यो की निन्दा की और उस पर साम्राज्य के विरूद्ध खतरनाक तैयारियों का दोषारोपण किया। एमरी ने अपने बॉडकास्ट में क्रिप्स मिशन की अस्फ़लता और देश में आंतरिक विद्रोह के लिए कांग्रेस को उत्तरदायी ठहराया। 10 सितम्बर 1942 ई0 को चर्चिल ने लोकसभा में कहा कि कांग्रेस ने महात्मा गांधी का अहिंसात्मक आंदोलन का मार्ग तयाग दिया है और हिंसात्मक आंदोलन का मार्ग अपनाया है। उसने यहां तक कहा कि कांग्रेस जापानियों के साथ है। इसके उत्तर में राष्ट्रवादियों का कहना था कि जनता ने ब्रिटिश शासन से अकबर और उसकी दमननीति के विरूद्ध स्वत: विद्रोह किया है। वस्तुत: हिंसात्मक क्रांति ने महात्मा गांधी को अत्यंत मानसिक पीड़ा पहुंचायी। उन्होंने एक पत्र लिखकर हिंसात्मक कार्यो के लिए सरकार को दोषी ठहराया और एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा इसकी जांच की मांग की। कांग्रेस कार्यसमिति ने अपने अगस्त-प्रस्ताव में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जनता अहिंसात्मक मार्ग का अनुसरण करेगी लेकिन सरकार ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित होते ही एकाएक नेताओं को बंदी बना लिया और अपना दमनचक्र जारी कर दिया। सरकार द्वारा उठाये गये कदमों ने जनता को किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया जिसके ण्लस्वरूप वह अहिंसा से हटकर हिंसक कार्य में रत हो गयी। इसमें शक नहीं कि कांग्रेस की विभिन्न स्थानीय समितियों ने सेना में विद्रोह करने, रेल की पटरियों को तोड़ने आदि की ओर इशारा किया था; परंतु सरकार को गलत प्रचार करने का अच्छा मौका मिल गया था और इसलिए गांधी जी को कांग्रेस की नीति स्पष्ट करने का मौका नहीं दिया गया। 1943 ई0 में भारत-सरकार ने 'कांग्रेस रेसपॉन्सिविलिटज फॉर डिस्टरबेंस 1942-43' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की और इसका खूब प्रचार किया। इस पुस्तिका में सरकार ने महात्मा गांधी पर खूब इल्जाम लगाया। अमेरिका में इसका प्रचार किया गया और कांग्रेस को फासिस्टवादियों का मददगार साबित किया गया। गांधी जी द्वारा दी गयी सफाई पर ध्यान नहीं दिया गया।

आंदोलन का मूल्यांकन

'भारत छोड़ों' आंदोलन में जनता ने बड़े सहास और उत्साह से कार्य किया। प्रारंभ में उसे कुछ सफलता प्राप्त हुई, किन्तु अन्त में सरकार के कठोर दमनचक्र के कारण तथा नेताओं के अभाव में आंदोलन फ़ल नहीं हो सका। आंदोलन की अफ़लता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे--

1. सरकार ने आंदोलन का दमन अत्यंत कठोरतापूर्वक किया। आंदोलनकारियों के साथ अधिक-से-अधिक क्रूर और पाशविक व्यवहार किया गया। इसके फलस्वरूप सारे देश में आतंक का राज्य छा गया।
2. किसी भी फ़ल जन आंदोलन के लिए पर्याप्त तैयारी की आवश्यकता होती है लेकिन अगस्त का आंदोलन बिना किसी तैयारी के शुरू हो गया। इस कारण भी इसे अफ़ल होना था।
3. आंदोलनकारियों को उचित नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका। 'भारत छोड़ों' प्रस्ताव के तुरंत बाद और आंदोलन शुरू होने के पहले कांग्रेस के सभी नेता कैद कर जेल में बन्द कर दिये गये।
4. उचित नेतृत्व के अभाव में आंदोलन ने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया जिसके लिए देश तैयार नहीं था। उसके पास अस्त्र-शस्त्रों का नितान्त अभाव था।

1942 ई0 का आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता सग्राम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 1857 के बाद यह बहुत बड़े पैमाने पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ दूसरी देशव्यापी बगावत थी, यद्यपि आंदोलन का संगठन अच्छी तरह नहीं हो पाया था और जनता के पास साधन भी नहीं थे, फ़िर भी जनता ने जिस वीरता का परिचय दिया उस तरह का उदाहरण भारत के इतिहास में कम मिलता है। आंदोलन को दबाने के लिए सरकार को अपनी सारी शक्ति लगानी पड़ी। इस आंदोलन के दो तीन महत्वपूर्ण परिणाम हुए। यह ठीक है कि आंदोलन अपने तत्कालीन ध्येय की प्राप्ति नहीं कर सका, लेकिन इसने स्वतंत्रता के लिए भूमि तैयार कर दी। ब्रिटिश सरकार अब समझने लगी कि भारतीय जनमत अंग्रेजी शासन के विरूद्ध है। एक अंग्रेज ने बाद में यह बतलाया कि अगर अंग्रेज भारत को अधिकार देने का कोई हल नहीं निकालते है तो उसे निकालने के लिए फ़िर क्रांति होगी। साथ ही, विश्व के बहुत से देश भारतीय समस्या का उचित हल चाहते थे। चीन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारतीय समस्या के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला था। आंदोलन में जनता ने जिस तरह अंग्रेजो का सामना किया, उसे देख कर उक्त देशों की सहानुभूति भारत की ओर हो गयी और उन देशों ने ब्रिटिश सरकार को सुझाव दिया कि वह भारत को स्वतंत्र कर दे। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि इस आंदोलन के कारण लोगों में सरकार का मुकाबला करने की हिम्मत तथा शक्ति बहुत बढ़ गयी। जो कुछ हो, 1942 के आंदोलन ने आम जनता में जो साहस और धैर्य का संचार किया वह किसी भी देश के इतिहास के लिए गर्व की बात है। इसलिए पंडित नेहरू ने कहा था कि 1942 में जो कुछ हुआ उसके लिए मुझे गर्व है।

इस आंदोलन का दूरवर्ती परिणाम हुआ। आंदोलन के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के विभिन्न दल भारतीय समस्या पर गम्भीरता से विचार करने लगे। आंदोलन की व्यापकता ने ब्रिटिश सरकार को यह बता दिया कि भारतीय जनता का असंतोष कितना गहरा है। ब्रिटिश सरकार को पता चल गया कि भारत को अधिक दिनों तक कुचलकर नहीं रखा जा सकता है। ब्रिटेन के मजदूर दल ने नेताओं की गिरफ्तारी को सामयिक और अनिवार्य बतलाते हुए भी भारत के साथ समझौते की आवश्यकता पर जोर दिया। विश्व के अन्य देशों को भी भारत की वस्तुस्थिति का पता चल गया। अहिंसा के शांत धरातल के नीचे लोगों के ह्रदय में धधकती हुई ज्वाला के कारण कालान्तर में अंग्रेजों के लिए वह करना अनिवार्य हो गया जिसके लिए गांधीजी ने अगस्त 1942 के आंदोलन की कल्पना की थी और जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार कर लिया था।

निष्कर्ष

स्वाधीनता के लिए किया गया कोई भी प्रयास, आंदोलन या त्याग कभी किल नहीं जात। अंतिम सिद्धि में उन सबका अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का मूल्यांकन करते समय यह कहना की आंदोलन किल रहा, भारी भूल होगी। जो लोग मानते है कि आंदोलन किल रहा उसके अनुसार इस किलता के कारण संगठन और पूर्व आयोजन की कमी। सरकार की दमनात्मक कार्रवाई, सेना, पूलिस, व्यापारी एवं सरकारी कर्मचारियों का अंग्रेजों के प्रति कादार बने रहना, कुशल नेतृत्व का अभाव एवं आंदोलन के कार्यक्रम के बारे में व्यापक अनिश्चितता थी।

यह ठीक है कि आंदोलन अपने तात्कालिक ध्येय की प्राप्ति नहीं कर सका, लेकिन इसने स्वतंत्रता के लिए भूमि तैयार कर दी। अगस्त 1942 में दी गई भारत छोड़ो की ललकार के ठीक पांच वर्ष बाद ही अंग्रेजों को भारत छोड़ देना पड़ा। 1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन' सचमुच 1857 की असफल क्रांति के बाद, भारत में अंग्रेजी राज की समाप्ति के लिए किया गया सबसे बड़ा प्रयास था। जिस प्रकार 1857 की क्रांति मूलतः अंग्रेजी शासन के विरूद्ध सिपाहियों का विद्रोह थी(उसी प्रकार, 1942 का आंदोलन मूलतः युवा वर्ग मजदूरों और विद्यार्थियों का विद्रोह था।

भारत छोड़ो आंदोलन में जनता ने बड़े साहस और उत्साह से काम किया। प्रारंभ में इसे स्फलता प्राप्त हुयी, किन्तु अंत में सरकार के कठोर दमनचक्र के कारण तथा नेताओं के अभाव में आंदोलन स्फल नहीं हो सका और अपने दमनकारी तरीको से ही अंग्रेज खुद को फ़िर से जमाने में सफल हो गए। युद्ध की स्थिति ने दो तरह से उनकी मदद की। एकतरु, उनके हाथ में विशाल सैन्य शक्ति थी जो भारत में जापानी हमले कमे मुकाबले के लिए रखी गयी थी, परंतु इस शक्ति का उपयोग आंदोलन को कुचलने के लिए किया गया। दूसरी तरफ, युद्धकालीन सेन्सर का लाभ उठाकर उन्होंने आंदोलन को निर्मम ढ़ंग से दबा दिया। उन्हें न तो इस दमनकारी आंदोलन के लिए किसी आंतरिक आलोचनाओं की चिंता करनी थी और न विश्व जनमत की। मित्र राष्ट्र, धुरी राष्ट्रों के साथ युद्ध में उलझे थें, उन्हें इस बात की चिंता करने का समय नहीं था कि अंग्रेज भारत में क्या कर रहे थे। आंदोलन कमे असफल होने का एक अन्य प्रमुख कारण था- विद्रोहियों के बीच समन्वय संगठन और किसी निश्चित कार्य प्रणाली का अभाव। और यही कारण था कि आंदोलन की गति शिथिल पड़ गयी और अंततः अस्फल हो गयी।

संदर्भ

1. काश्यप, डॉ0 सुभाष; स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 73-99
2. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 408-419
3. दत्त, डॉ0 के0 के0; बिहार में स्वातंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 28-125
4. बिहार (हिन्दी मासिक), भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98)
5. आधुनिक भारत का इतिहास रामलखन शुक्ल
6. आधुनिक भारत का इतिहास, धनपति पाण्डे
7. बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, के0के0 दत्ता

उपन्यासकार राजेन्द्र यादव

सुशील कुमार मंडल

ग्राम-हनुमाननगर, पो.-सिकटियाही, वाया-खुटौना, जिला-मधुबनी, बिहार-847227

राजेन्द्र यादव हिन्दी के उन उपन्यासकारों में हैं, जिन्होंने दाम्पत्य में पति-पत्नी की व्यक्तिवादी आत्मकेन्द्रित चेतना को उभारा है। राजेन्द्र यादव एक शक्तिशाली लेखक हैं। उनके चर्चित उपन्यासों में "सारा आकाश" और "उखड़े हुए लोग" का स्थान उल्लेख्य है। उनकी "कुलटा" माडर्न नारी का प्रतीक है। इनके चरित्र-विकास का उद्देश्य मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन का विश्लेषण एवं चित्रण है।[1]

उनकी प्रथम ख्रति "सारा आकाश" (प्रेत बोलते हैं) एक विचार प्रधान उपन्यास है, किन्तु, इसके पात्र सजीव न होकर प्रतीकात्मक हैं। इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग की समस्याओं को लेखक ने यथार्थ रूप में चित्रित किया है, ऐसा भिन्न-भिन्न लेखकों ने किया है- "निम्न मध्यवर्गीय समाज की जिन समस्याओं को इस उपन्यास में राजेन्द्र यादव ने रखा है, वे पूर्ण यथार्थ हैं।"[2] दाम्पत्य चित्रण की दृष्टि से देखने-परखने पर उपन्यास में तीन दम्पत्ति हैं-धीरज और उसकी पत्नी, समर और प्रभा, मुन्नी और उसका पति। मुख्य रूप में समर और प्रभा के दाम्पत्य जीवन की कल्पना यादव की असाधारण कल्पना है। समर उपन्यास का नायक है। प्रभा उपन्यास की नायिका है। दोनों पति-पत्नी उपन्यास पर पूर्ण रूप से छाये रहते हैं। उपन्यास के दो भाग है। इन दोनों भागों में समर और प्रभा के दाम्पत्य जीवन की मन:स्थितियों को सूक्ष्म रूप में लेखक ने संजोया है। दाम्पत्य चित्रण के एक अंश को देखा जा सकता है- "खैर, जैसा भी हुआ, अब तो यह विवाह हो ही गया है, लेकिन आज भी मन से मैं पंखी हूँ। मैं उसकी रंगीनियों और झंझट में नहीं फसूंगा। भायद बहुत बड़ी बात सोच रहा हूँ।"[3] उपन्यास के अंत में प्रेत लोक ने मध्यवर्गीय समाज के प्रेत बोलते हैं और नये जीवन की माँग करते हैं, क्योंकि सृजन शिव हैं और मध्य वर्ग शिव का साथी प्रेत है। इसलिए इसमें चारित्रिक स्पष्टता का अभाव है। इसके पात्र व्यक्ति न होकर प्रतिनिधि, प्रतीक टाइप हैं।

उनकी दूसरी कृति "उखड़े हुए लोग" में युद्धोत्तरकालीन स्त्री-पुरुषों के बनते, बदलते-बिगड़ते संबंधों का चित्रण है। उपन्यास के नायक-नायिका का चरित्र एवं दृष्टिकोण प्रगतिशील है। इसमें सूरज, देशबंधु तथा शरद प्रमुख पुरूष पात्र तथा जया, माया देवी और पदमा नारी-पत्राएँ हैं। इसमें भी सूरज तथा देशबंधु का व्यक्तित्व सबसे प्रबल है। देशबंधु-जीवन में एक सफल व्यक्ति है और सूरज उतना ही असफल। पर जब गोली कांड के बाद सूरज का अपराजित व्यक्तित्व जगता है तो उपन्यास ही समाप्त हो जाता है और पाठक को भविष्य का सिर्फ एक संकेत भर पाकर संतोष करना पड़ता है। इस कृति को चरित्र प्रधान ही कहा जाना चाहिए, क्योंकि इसमें कथानक का प्रयोग सिर्फ चरित्र-विकास के लिए किया गया है। "उखड़े हुए लोग" में राजेन्द्र यादव एक ओर यदि हिन्दू-विवाह के सामान्यत: स्वीकृत और प्रचालित रूप को चुनौती देते हैं। तो वहीं दूसरी ओर कथित प्रेम विवाह को ही उसका एक मात्र विकल्प मानने से भी इनकार करते दिखाई देते हैं। जिस काल खंड में उपन्यास घटित है, छठे दशक के प्रारंभिक दो वर्षों से भी कम का समय, तब भारतीय समाज में प्रेम-विवाह न तो इतना बड़ा अजूबा ही था और न हौआ ही, लेकिन, प्रेम-विवाह को स्वीकृति दे देने के बाद विवाह के समूचे स्वरूप और पद्धति को लेकर राजेन्द्र यादव की चिंता निश्चय ही पृष्ठभूमि में चली जाती। "उखड़े हुए लोग" शरद और जया के बीच संबंधों की यह परिणति किसी कदर नाटकीय होते हुए भी उस आवेश या भावुकता से मुक्त है, जो किसी-न-किसी रूप में, प्रेम से अनिवार्य रूप से जुड़ी होती है। उखड़े हुए लोग में प्रेम के सहज और स्वाभाविक रूप पर ही लेखक का सबसे अधिक आग्रह है। शरद एक स्थल पर कहता है- "समवयस्क स्त्री-पुरूष को एक-दूसरे के पूरक और प्रेरक के रूप में जितना भी महत्त्व उसे दिया जाता चाहिए, उससे जरा भी अतिरिक्त महत्त्व मैंने नहीं दिया।"[4] इस असाधारण बौद्धिक सजगता, जिसे समझ की वयस्कता भी कहा जा सकता है, के बावजूद प्रेम-संबधों की रागात्मकता और स्त्री-शरीर की श्री और संपदा के प्रति आकर्षण भाव कहीं भी प्रभावित और बाधित नहीं होता है।

उपन्यास के केन्द्र में बेशक शरद और जया हैं- "उखड़े हुए लोग"- जो सात दिन पहले उखड़ कर जम सकते कि जिस आकांक्षा से जुड़कर यहां आये थे, उसका आज कोई अर्थ नहीं रह गया है। वे आज भी उसी तरह उखड़े हुए हैं, क्योंकि जिस पुल पर चढ़कर वे आये थे, उसे वे जला चुके हैं। वापसी का कोई रास्ता शेष नहीं है। बात सिर्फ नये रास्ते की खोज की रह जाती है। जैसी बेचौनी और कसमसाहट है, उसे देखते हुए स्थिति बहुत निराशाजनक नहीं मानी जा सकती। किसी सुनिश्चित लक्ष्य के अभाव में यह पूरा मध्यवर्ग ही उखड़ा हुआ है, लेकिन अलग-अलग स्तर और मानसिकता के लोगों में किसी राह को पाने की बेचौनी, सारे तर्क-वितर्क और गर्मा-गर्मी के बावजूद उन्हें एक सूत्र में जोड़ती है और वह सूत्र है सामाजिक-राजनीतिक जड़ता और यथास्थिति के विरोध में परिवर्तन की महती आकांक्षा का सूत्र। कहना नहीं होगा कि इस बिंदु पर उपन्यास का शीर्षक अपना अर्थ-विस्तार करता है और उससे जो मूल्य-दृष्टि उभरती है, वह सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन की हिमायत और आकांक्षा वाली दृष्टि है।

राजेन्द्र यादव की तीसरी कृति "एक इंच मुस्कान" है। दाम्पत्य की दृष्टि से देखने पर उपन्यास में मुख्य रूप में दो दम्पति हैं। नन्दा-टंडन एवं अमर-रंजना। लेखक ने नवीन सामाजिक परिवेश में नये विचारों को, दाम्पत्य की नयी मान्यताओं को दोनों दम्पतियों के चरित्रों द्वारा उभार कर उपन्यास साहित्य को नवीन उद्भावनाएं दी हैं। उपन्यास के सशक्त दम्पति नन्द और टण्डन हैं। नन्दा और टण्डन। के सुखी परम्परागत दाम्पत्य जीवन द्वारा लेखक ने वर्तमान समाज को परम्परागत दाम्पतय की आत्मा। प्रदान की है। नन्दा और टण्डन में घनिष्ट प्रेम हैं। प्रत्येक को एक दूसरे पर घनिष्ठ प्रेम आस्था है। इन दोनों दाम्पत्य जीवन द्वारा उपन्यासकार ने दम्पत्य के बदलते रूपों को देखा-परखा है। प्रणय-विवाह की असफलता रंजन अमर के दाम्पत्य जीवन द्वारा स्थापित करके नन्दा और टण्डन के परम्परागत विवाह की सफलता के द्वारा परम्परागत दाम्पत्य जीवन की प्रेरणा दी है। उपन्यास में प्राचीन, नवीन अन्वेषण पति-पत्नी के मानसिक विश्लेषण की सूक्ष्म प्रक्रिया परिलक्षित होती है। राजेन्द्र यादव ने बड़ी तीव्र अनुभूति और सजग-कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है। दोनों के सम्मिलित प्रयास का यह पुरूष शुभ दाम्पत्य की शुभकामनाओं से ओत-प्रोत है।

राजेन्द्र यादव के तमाम उपन्यास और हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा के संबंध में डा. राम विलास शर्मा ने "राजेन्द्र यादव को प्रेमचन्द, नागर और नागार्जुन की परंपरा का उपन्यासकार माना है।"[5] हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा और राजेन्द्र यादव के संदर्भ में श्रीवास्तव ने कहा है- "उनकी कथाकृतियों में मार्क्सवादी चिंतन के आधार पर सामाजिक-संबंधों का विश्लेषण किया गया है। टाइप होते हुए भी इनके अधिकांश पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ भी रखते हैं। लेखक ने हीन से हीन चरित्रों को भी अपनी संवेदना दी है। उनकी परिस्थितयों और चरित्र विकास की प्रक्रिया को जान लेने के बाद हमें उनके प्रति भी सहानुभूति हो आती है।"[6] डॉ. राम विलास शर्मा ने हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा और यादवजी के उपन्यासों को लेकर कहा है कि- "उन्होंने अपनी रचनाओं में आधुनिक बुद्धिजीवियों के सबसे अलग एवं स्वतंत्र रास्ता अपनाने की त्रिशंकुवृति पर गहरा प्रहार किया है।"[7]

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा कम में राजेन्द्र यादव के उपन्यास लेखन का मूल्यांकन किया जाय तो पता चलता है कि यादव जी अपनी पीढ़ी के उन कम लेखकों में हैं, शायद अकेले-जिन्होंने साहित्य सृजन के बाहर स्वयं "रचनात्मक सृजन" को अपनी चिन्तन और मनन का विषय बनाया है जो अपने समय की विडम्बनाओं से उलझते रहे हैं। यादव अधिकांश समय (दुर्भाग्यवश होते नहीं) याद रखते हैं कि वह लेखक हैं-दार्शनिक नहीं। समस्याएँ चाहे एक-सी हों, उपन्यासकार के चिन्तन के औजार, सोचने का ढंग, विचारों को छूने की प्रकिया कुछ अलग होती है, यह नहीं कि एक लेखक दार्शनिक नहीं होता, किन्तु उसका दर्शन हमें उसकी दार्शनिक स्थापनाओं में नहीं खोजना चाहिए। लेखक का दर्शन, सोच के विषय में नहीं, बल्कि स्वयं सोच की प्रकिया और उसके व्यवहार में निहित होता है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यादव जी का लेखन खासकर, हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा के कम में, महत्त्वपूर्ण है। नारों और अति सरलीकत फार्मूलों के घटाटोप वातावरण में वह बहत कछ देते हैं। जो एक बार फिर हमारा विश्वास मनुष्य के विवेक और शब्द की गरिमा में, प्रतिष्ठित करता है। यदि आज हम उनकी अवहेलना करते हैं, उनके लेखन को अप्रासांगिक मानकर आगे बढ़ने की बात करते हैं, तो महत्त्व न केवल राजेन्द्र यादव की सीमाओं पर क्रूर टिप्पणी है, बल्कि उस अभागी मन:स्थिति पर भी, जिसमें आज हम जीते हैं।

संदर्भ-सूची

1. पं. जवाहरलाल नेहरू : द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, द्वि सं., पृष्ठ 167-169
2. डा. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृष्ठ 532
3. राजेन्द्र यादव : सारा आकाश, पृष्ठ (प्रथम संस्करण-1960)
4. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ 260
5. डॉ. राम विकास शर्मा : उपन्यास और लोकजीवन (भूमिका)
6. श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ 4211
7. डॉ. राम विलास शर्मा : उपन्यास और लोकजीवन (भूमिका)

विद्यापति-पदावली में लोक-चेतना और भक्ति

डॉ० शोभा कुमारी

पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

जिस लोक में मनुष्य जीता और श्वास लेता है, अपने आपको उससे विमुख या विरक्त नहीं रख पाता। कवि या कलाकार अपनी कृति में अपने परिवेश, अपनी सामाजिक चेतना को किसी-न-किसी माध्यम से अवश्य प्रस्तुत करता है। कोई भी साहित्यकार अपने समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की क्षमता अपने-आप में रखता है। विद्यापति के काव्यों में भी लोक-पक्ष अत्यन्त सजीवता के साथ हमारे सामाने उभरा है।

विद्यापति राजाश्रित होते हुए भी जनकवि हैं। कुछ आलोचकों ने उन्हें लता-कुंज में बिहार करने वाला, दरबार के वातावरण में घिरे हुए संकुचित घेरे का कवि समझ लिया है, मगर वे दरबारी कवि होते हुए भी समाज से दूर नहीं हैं। अपने चारों तरफ के वातारण के प्रति उनकी जागरूकता किसी भी प्रकार कम नहीं थी। राज-सभासद होकर भी विद्यापति समाज-सुधार और धार्मिक सुधार को अपना कर्त्तव्य मानते थे। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास के विषय कहा जाता है कि उन्होंने प्राचीन भक्ति-मार्ग के भीतर बढ़ती हुई बहुत-सी बुराइयों को रोका। शिव और विष्णु को एक बताकर विष्णु को शिव की एवं शिव को विष्णु की उपासना करते हुए बताकर शैवों और वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेष को बहुत हद तक रोका। भक्ति की चरम सीमा तक पहुँचकर भी गोस्वामी जी ने लोक पक्ष को नहीं छोड़ा। लोक-संग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था। कृष्णोपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के सम्बन्ध की गूढ़ातिगूढ़ व्यंजना हुई, दूसरे प्रकार के लोक-व्यापक नाना सम्बन्धों के कल्याणकारी सौन्दर्य की प्रतिष्ठा नहीं यही कारण है कि गोस्वामी जी की भक्ति-रस-भरी वाणी जैसे मंगलकारिणी मानी गई वैसी और किसी की नहीं। आज राजा से रंक तक के घर में गोस्वामीजी का रामचरितमानस विराज रहा है, और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयाँ कही जाती हैं।[1] अगर सूक्ष्मता से देखा जाय तो विद्यापति भी तुलसीदास जी की तरह धर्म-सुधारक और समाज-सुधारक थे। मिथिला के विद्वानों की तो बात ही क्या! उनकी छत्र-छाया में सुख-शांति की नींद सोती हुई मिथिला की जनता पर भी किसी विरोधी धर्म का जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा।

सामाजिक और धार्मिक सुधार-भावना से प्रेरित होकर विद्यापति ने अन्य धार्मिक ग्रन्थों की भी रचना की। मैथिली में शिव-स्तुति, गंगा-स्तुति, दुर्गा-स्तुति आदि की रचना कर अशिक्षित जनता में भी धार्मिक भाव जागृत किया। आज भी मिथिला की जनता पर विद्यापति के सामाजिक और धार्मिक गीतों का प्रभाव पूर्ववत है। कोई भी शुभ कार्य हो, मिथिला में उस शुभ कार्य का मंगलाचरण विद्यापति की देवी वंदना से ही होता है।[2] विद्यापति की पदावली हिन्दी भाषी जनता के लिए जहाँ गौरव-ग्रन्थ हैं, वहीं यह भी मानना पड़ेगा कि ये ग्रन्थ भारतीय जीवन के वास्तविक दर्पण हैं, जिसमें जन-जीवन की सम्पूर्ण छाया बिना किसी त्रुटि के साथ प्रतिबिम्बित हुई है। विद्यापति के जिन पदों को अधिकांश विद्वान् उनकी भक्ति-भावना के प्रतीक रूप में स्वीकृत करते हैं। उनमें अधिकांश पद जन-जीवन के मार्मिक चित्र को अंकित करती हैं। टूटी मडैया (झोपड़ी) में रहने वाली, जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों से युक्त दुर्बल, पीत आभा से युक्त 'पार्वती' और मांग-मांग कर पेट भरने वाला उसका पति 'शिव' ये सब 'पार्वती-परमेश्वर' की कल्पना से अधिक भारतीय कृषक-जीवन की पीड़ा के प्रतीक 'गौरी' और 'महादेव' हैं, जिनके माध्यम से विद्यापति ने अपनी जन भावना को क्षेत्र प्रदान किया है। विद्यापति के भक्तिपरक पदों में सुप्रसिद्ध मार्मिक पद "कखन हरब दुःख मोर हे भोलेनाथ।" यह पद सिर्फ विद्यापति की शिव-भक्ति के प्रति आसक्ति मात्र को व्यक्त नहीं करता है, वरन् उनका कुछ और भाव भी इसके पीछे है, मानो दुख में जन्म लेकर,

दुखपूर्ण यातनाओं के बीच जीवन को समाप्त करने वाला भारतीय कृषक कातर स्वर में पूछता है- "मेरे दुखों का अन्त कब होगा?" विद्यापति राजाश्रित होकर भी जनाश्रित रहे। जनता की अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर वे उसकी अवहेलना नहीं कर सके उनका यह महत्त्वपूर्ण योगदान था।

विद्यापति ने अपनी कृतियों में समकालीन सामाजिक, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं तथा कुरीतियों पर व्यंग्य भी किया है। उनकी आँखों के सामने रहनेवाली अजीबोगरीब घटनाएँ उनके मानस में हलचल पैदा करती थीं और उन्हें प्रतिकार के लिए प्रेरित भी करती थीं। बाल-विवाह तथा बेमेल विवाह पर बहुत अच्छा व्यंग्य विद्यापति के इन पदों में देखने को मिलता है-

पिया मोर बालक हम तरूनी।
कोन तप चुकलौंह भेलौह जननी।[3]

कैसा सटीक व्यंग्य है! युवती अपने पिता से गाय भेजने का आग्रह करती है, ताकि वह गाय का दूध पिलाकर उसको जल्दी युवा बना सके। विद्यापति ने युवती के पिता की मूर्खता का उपहास नहीं किया, न ही उसे मूर्ख साबित करने की ही कोशिश की और न ही युवती के द्वारा आक्रोश ही प्रकट करवाया, लेकिन फिर भी कितनी सफाई के साथ, कैसा मार्मिक व्यंग्य किया जो तत्कालीन समाज की कुरीति पर गहरा प्रहार था। ऐसी सामाजिक, कुरीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण विद्यापति के अनेक पदों में मिलता है। परकीया प्रेम का अधिकांश उत्तरदायित्व अनमेल विवाह पर ही होता है। "अलप वयस" की "तरूणकान्ह"[4] की केलि का तो सानन्द वर्णन विद्यापति ने किया है और पाठक भी उससे सहमत होते हैं मगर प्रियतम को गोद में लेकर बाजार जाने वाली नायिका से जब लोग पूछते हैं कि यह तुम्हारा देवर है या छोटा भाई[5] और प्रत्युत्तर में- "पुरुब लिखल छल बालमु हमार" कहती हुई ठंडी साँसें लेने लगती है तो पाठकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा कवि के साथ ही पाठक भी उसे "धीरज धरत त मिलत मुरारि" कहकर पर पुरुष से मिलने के संकेत का आश्वासन देना अनुचित नहीं समझता है।

'पदावली' में ऐसे पद तो बड़ी संख्या में हैं, जिन पर लोक गीत अथवा लोक-साहित्य को पारखियों ने भी अपनी मुहर लगा दी है। इनके रचे हुए ऐसे पदों के गाने का कोई खास मौसम, कोई खास मुहूर्त नहीं। अंत:पुर में सूनी-सेज पर, बेटी के विवाह के अवसर पर, पावस ऋतु में खेतों की मेड़ पर संध्या और प्रात: काल चौपाल में बैठकर प्राय: हर समय इनके नचारी को गाया जाता है। भूखे और भिखमंगे साधु, समर्थ गृहस्थों के द्वार पर इन्हें गा-गा कर भीख माँगते हैं और शिव की प्रार्थना की ओट में अपनी आर्थिक दुरवस्था का नग्न चित्र खींचकर श्रोताओं में करूणा का भाव जागृत करते हैं। इसलिए इन गीतों में श्रमजीवी किसान और मजदूरों का दर्द भरा हुँकार भी सुनने को मिलता है।[6]

विद्यापति के गीतों में शिव की उपासना का भाव बड़ी उत्कृष्ट रीति से निरूपित हुआ है। किसी-किसी पद में हमें शिव की बारात का उल्लेख, उनके स्वभाव, चरित और रहन-सहन का परिचय, किसी-किसी में उनके तांडव नृत्य का चित्रण एवं धार्मिक आदर्शवाद का स्तर निर्धारित किया है। वैसे इनमें अधिकांश आत्म-निवेदन, स्तुति और आत्मबोध का भाव प्रधान रहता है। अक्सर कन्या-पक्ष की तरफ से दूल्हे शिव को दुलहिन पार्वती से हीन और लघु प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाता है और यह सब गहरे व्यंग्य के रूप में इतनी कुशलता से कहा गया है कि पढ़ते ही बनता है। नचारियों के माध्यम से तत्कालीन समाज पर काफी प्रकाश डाला है-

हम नहिं आज रहब यहि आँगन
जौं बुढ़ होयता जमाई गे माई।[7]

प्रस्तुत नचारी में अपनी कन्या के योग्य वर न पाकर उसकी माँ का आक्रोश प्रकट हुआ है। शिव-पार्वती के विवाह प्रसंग को लेकर भी विद्यापति ने तत्कालीन समाज पर व्यंग्य किया है।

विद्यापति पदावली में भक्ति

विद्यापति की धार्मिक भावना, उनकी भक्ति को लेकर लम्बे अर्से से विद्वानों में तर्क-विर्तक, वाद-विवाद होता रहा है। मगर आज तक कोई निश्चित और सर्वमान्य मत स्थिर करने में वे असफल रहे। विद्वानों में मतैक्य न होने का सबसे बड़ा कारण विद्यापति के द्वारा अनेक देवी-देवताओं, ईश्वर के अनेक स्वरूपों की वंदना है। कुछ इन्हें वैष्णव मानते हैं, कुछ शाक्त तथा कुछ शैव। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जिन्होंने इन्हें एकेश्वरवादी तथा पंचदेवोपासक सिद्ध करने का प्रयास किया है।

विद्यापति के भक्तिपरक पदों को देखने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विद्यापति ने भक्त-हृदय से ईश-वन्दना की है। वे "ईश्वर एक रूप अनेक" में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि वे ईश्वर के जिस रूप पर रीझे, तब उन्होंने उसके उस रूप की वंदना-अर्चना की। कभी उनकी वि]वल आँखें शिव को देखती हैं, कभी राम को, कभी विष्णु को तो कभी कृष्ण को। देवी को वे ईश्वर की शक्ति मानते हैं और शक्ति मानकर ही उनकी भी वंदना करते हैं। चाहे वह शक्ति दुर्गा हो, गंगा हो, पार्वती हो अथवा राधा हो। विद्यापति ने अनेकत्त्व में एकत्त्व का दर्शन तथा अनुभव किया था। इसलिये उन्होंने सबको इसका ज्ञान कराने की कोशिश की।

यहाँ अपने स्तुतिपरक पद में कवि एक पद में विष्णु, कृष्ण और शिव की समवेत स्तुति करते नजर आते हैं-

भल हर भल हरि भल तुअ कला,
खन पीत बसन खनहिं बघछला
खन पंचानन खन भुजचारि,
खन संकर खनदेव मुरारि।
खन गोकुल भए चराइअ गाय,
खन भिखि माँगिये डमरू बजाय।
खन गोविन्द भए लिआ महादान
खनहि भसम करू काँख बोकान।
एक सरीर लेल दुई वास,
खन बैकुण्ठ खनहि कैलास।
भनइ विद्यापति विपरित बानि,
ओ नारायन ओ सुलपानि।[8]

इसी प्रकार विद्यापति ने शक्ति की भी समवेत वन्दना की है। 'शक्ति' एक है, रूप अनेक हैं।

विदिता देवी विदिता हो, अखिरल केस सोहन्ती।
एकानेक सहस को धारिनि, जानि रंगा पुरनन्ती।
कज्जल रूप तुअ काली कहिये, उज्जवल रूप तुअै बानी।
रवि मण्डल परचण्डा कहिए, गंगा कहिए पानी।
ब्रह्मा घर ब्रह्मानी कहिए, घर-घर कहिए गौरी।
नारायन घर कमला कहिए, के जान उत्पति तोरी।
विद्यापति कविवर एहो गाओल, जाचक जनके गती।
हाँसिनि देइ पति गरूड़नरायण, देवसिंह नरपति।[9]
विद्यापति ने राधा और सीता की भी वंदना की है।
रे नरनाह सतत भजु ताही,
ताहि नहि जननि जनक नहि जाही।[10]

अपने समय में प्रचलित ईश्वर के सभी स्वरूपों की स्तुति करने के पीछे उनका ख्रष्टिकोण समन्वयात्मक ही रहा है। वे खुद साम्प्रदायिकता की संकीर्णता के घेरे से बाहर रहकर दूसरों के समक्ष भी यही आदर्श प्रस्तुत करते हैं। कवि की यह कामना है कि उन्हें पशु-पक्षी, कीट-पतंग ही होकर क्यों न जन्म लेना पड़े, फिर भी बुद्धि ईश्वरीय चर्चा में ही लगा रहे। ये खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि जीवन के बहुमूल्य समय तो मैंने यों ही बरबाद कर दिया।

अपथा पथा चरण चलाओल

भगति मति न देला।[11]

विद्यापति ने भक्ति को मानव-कल्याण एवं मानव-उद्धार का एक मार्ग बताया है। भक्ति ही एक ऐसा सम्बल है, जिससे मनुष्य सारे पापों से छुटकारा पा सकता है। भक्ति संसार में सर्वश्रेष्ठ एवं मूल्यवान है। विद्यापति भगवान के कल्याणकारी स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि भगवान शंकर गुणों के खान हैं। उनका स्वरूप ऐसा है कि उनके दर्शन मात्र से मानव-मात्र के सारे मनोरथ हर प्रकार से पूरे हो जाते हैं-

जखन देखल हर हो गुन निधी।

पुरल सकल मनोरथ सब बिधी।[12]

विद्यापति के शिव हमेशा सबको सारे जग को सुख देते हैं, कभी किसी को दु:ख नहीं देते। पार्वती उनके विषय में कहती है कि उन्होंने हमेशा औरों के सुख की चिन्ता की है, कभी अपने लिए कुछ नहीं किया। सारा धन दूसरों को लुटाते रहे पर अपने पास कुछ नहीं रखा।

आगे माई, जोगिया मोर जगत सुखदायक दुख ककरो नहिं देल।

आगे माई, सोन रूप अनका सुत अभरन, आपन रूद्रक माल।

आगे माई, छल में हेरथि कोटि धन बकसिथि, ताहि देवा नहिं थोर।[13]

विद्यापति ने ईश्वर को सबसे बड़ा कृपालु और उद्धारकर्ता बताया है।[14] वे भक्तों के गुण-अवगुण के बारे में नहीं सोचते हैं, निर्विकार और निष्पक्ष भाव से उनके क्लेश को मिटाते हैं। कवि ने उन्हें जगत को तारने वाला तथा दीन-दुखियों के नाथ एवं अत्यन्त कृपालु बताया है।

सन्दर्भ सूची

1. जय-जय भैरवि असुर भयावनी-विद्यापति पदावली, पृष्ठ 47
2. वही, पृष्ठ 53
3. विद्यापति-पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 285, पद सं.-263
4. बालमु बेसीन विलासिनि। मेल न मिलय देलहु हेम कोटि।
   बसन झपाय बदन धर गेए। बादर तर ससि बेकत न होए। पृष्ठ 285, पद सं.-263
5. पिया लेलि गोद कए पुरुष लिखल छल, पृष्ठ 285, पद सं.- 263
6. विद्यापति विभा; डा. धीरेन्द्र कुमार बड़ सूवाला, पृष्ठ सं.-138
7. विद्यापति पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृष्ठ 264, पद-234
8. विद्यापति रचनावली, तृतीय खण्ड, महेन्द्रनाथ दुबे, पृष्ठ 795, पद सं.- 827
9. वही, पृष्ठ 810, पद-842,
10. जानकी वंदना, विद्यापति पदावली, जयवंशी झा, पृष्ठ 340, पद-21
11. विद्यापति रचनावली, तृतीय खण्ड, महेन्द्रनाथ दुबे, पृष्ठ 798, पद सं.-830
12. वही, पृष्ठ 780, पद सं.-773
13. वही, पृष्ठ 754, पद सं.-555
14. वही, पृष्ठ 780, पद सं.-807

मित्रो-मरजानी : स्त्री-संवेदना का उत्कर्ष

रूपाली यादव

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, छपरा विश्वविद्यालय, छपरा

'मित्रो मरजानी' कृष्णा सोबती का एक चर्चित उपन्यास है। 'मित्रो' इसका केन्द्रीय चरित्र है, जिसकी विलक्षणता चकित करती है। उपन्यास में 'मित्रो' जैसे स्त्री चरित्र के आगाज ने कथा आलोचकों के सामने भारी चुनौती प्रस्तुत की थी। दरअसल 'स्त्री' के वजूद और आकांक्षा को प्रेम की भाववादी विदेह परिणतियों में नि:शेष कर चुके 'सत्ताविमर्श' के गहरे निहितार्थो से अनुकूलित आलोचकों को यह स्त्री कुछ अजब गजब लगी थी। मित्रो के केन्द्र से देखें तो इस उपन्यास में प्रेम में देह की मांसलता का भराव दिखाई देता है। इसे कृष्णा सोबती का साहसिक लेखन माना गया है। स्त्री की अतृप्ति कामना और यौन उद्दामता को इस तरह उभारना या तो पुरुष क्षेत्र का विषय था या एकदम निषिद्ध था। इस किताब पर चर्चा भी हुई है और अनेक रंग की आलोचना भी सामने है। देखा जाए तो स्त्री-वजूद की यथार्थ व्याख्या के मौजूदा दौर में इस किताब का पुनर्पाठ इसकी पूर्व आलोचना की फाँको को भी प्रत्यक्ष करता है साथ ही लेखिका की अपनी धारणा, पूर्वग्रह, अनुभव और रचनात्मक संकल्पना की सीमाओं की ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है। आश्चर्य नहीं कि काफी दूर तक मित्रो का चरित्र-निरूपण उन्हीं तयशुदा औजारों से परखा गया, किन्तु आज स्त्री-अस्मिता को घटाकर देखने वाले समूचे पुरुष वर्चस्ववादी मन्तव्यों के उद्घाटन के बाद यह समझना स्वाभाविक हो चला है कि हिन्दी के कथादेश में 'मित्रो' वस्तुत: एक निष्क्रिय स्त्री वजूद को भेदकर निकली सक्रिय स्त्री का आगाज है और अपनी आजादी के सर्वथा स्वाभाविक क्षेत्र की मुनादी करती हुई आई है। सामंती मूल्यबोध द्वारा स्त्री परवशता के पारिवारिक सामाजिक जाल को रचने वाली व्यवस्था को मित्रों तार-तार कर देती है और विदेह होने की पीड़ा का हंस-हंस कर मुकाबला करती है। कथा गुरुदास से प्रारम्भ होकर मित्रो और सरदारी लाल के संवाद पर समाप्त होती है। कथा तीन परिवारों के बीच चलती है। पहला परिवार गुरुदास का है, जिसके तीन बेटे और तीन बहुएँ क्रमश: बनवारी लाल, सरदारी लाल, गुलजारी लाल और सुहाग स्त्री मित्रो, फूँला है। दूसरा परिवार सबसे छोटी बहू फूँला का माइका है और तीसरा तीसरा मित्रों की माँ का परिवार है। तीनों परिवारों का परिवेश और परिस्थितियाँ अलग-अलग है। कथा का मुख्य आधार गुरुदास और धनवन्ती के तीनों बेटों और बहुओं के इर्द-गिर्द है। इनमें भी मझली बहू 'मित्रो' उपन्यास की केन्द्रीय चरित्र है। लेखिका ने मित्रो के स्त्री रूप को परिवार की अन्य स्त्री रूपों से अलग चित्रित किया है। परिवार की अन्य स्त्रियाँ तय मूल्यों एवं मर्यादाओं में अनुकूलित स्त्रियाँ हैं। उनके दबे ढके पन, मौन, सहनशीलता इत्यादि के महिमा मण्डित रूपों से 'मित्रो' छिटकी हुई है। 'मित्रो' का संघर्ष छिटके हुए होने के बावजूद अस्तित्व में होना है। 60 के दशक में पहली बार महिला कथाकारों ने अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की। इसके पहले जरुर महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान ने एक मजबूत आधार का निर्माण कर दिया था, लेकिन उनका लेखन तथाकथित नारी सुलभ-मर्यादाओं का उस रूप में अतिक्रमण नहीं कर सका था। जबकि इधर की लेखिकाओं ने पुरानी रूढ़ियों के बीच दबी हुई स्त्री को केवल कराहने तक ही सीमित नहीं किया है, बल्कि स्त्री को उसकी सम्पूर्णता में उसकी इच्छा, आकांक्षा के साथ प्रस्तुत करने का साहस दिखाया है। यह प्रशंसनीय है। मैत्रेयी पुष्पा तो अपने लेखन में एक स्थान पर कहती हैं कि- "आकांक्षा-विहीन स्त्री की कल्पना करना सर्जनात्मक रूप से अपराध है।"[1] 'मित्रो मरजानी' की नायिका 'मित्रो' ऐसी ही आकांक्षायुक्त स्त्री का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देती है। मित्रो समाज की तय मानसिकता से टकराती है, मगर आहत नहीं होती। मित्रो का स्वभाव, प्रवृत्तियाँ, व्यवहार उसकी गतिविधियाँ कुछ-कुछ कबीलाई आदिम जीवन व्यवहार की झलक में दिखाई देती हैं। कबीलाई जीवन में स्त्रियाँ अपेक्षाकृत ज्यादा स्वाधीन होती हैं। उनमें यौन सम्बन्धों की वर्जनाएँ कम होती हैं। मित्रो की चेतना पर भी ये वर्जनाएँ कम दिखाई देती हैं जो अपने मन और देह की चाहत को साहस के साथ सुनती है और व्यक्त करती है। अपनी जिठान सुहाग से एक स्थान पर संवाद करते हुए वह कहती है- "अब

तुम्ही बताओ, जिठानी, तुम जैसा सत-बल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। ...... बहुत हुआ हफ्ते पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास की मछली-सी तड़पती हूँ।"[2] मित्रो के तरफ से देखें तो मित्रो स्त्री-चरित्र का नया टाइप जरूर है। जीवन में ऐसे चरित्र मौजूद है, लेकिन कथा चरित्र में यह पहली आमद हुआ है। यह उपन्यास 1966 में प्रकाशित हुआ था। ध्यान देने वाली बात यह है कि इस समय साहित्य में अभी स्त्री-विमर्श का उभार शुरु नहीं हुआ था।

उपन्यास शुरु होता है "मटमैले आकाश का छोटा-सा टुकड़ा रोशनदान से उतर चौकोर शीशों पर आ झुका तो नींद में बेखबर सोए गुरुदास सहसा अचकचाकर उठ बैठे।"[3]

देखें तो मित्रो अपने व्यवहार में आकाश का टुकड़ा ही है, स्वच्छन्द और विस्तारित। आदतन समाज में आने के लिए उसे रोशनदान का रास्ता चुनना पड़ा था। उसके आगाज से समाज में उस जैसे चरित्र की स्वीकार्यता को लेकर तमाम उधेड़ बुन मच गई थी, क्योंकि हमारे समय में आजादी और नैतिकता दो ध्रुव के रूप में स्थापित लगते हैं तथा समाज के भीतर का अन्तर्विरोध इन दोनों ध्रुवों के बीच झूल रहा है। वैयक्तिक आजादी को पहचानते हुए जीवन को अपनी शर्तों पर जीती मित्रो किसी की विषम परिस्थिति से आहत नहीं होती है। वह कहती है "मित्रो रानी! चिन्ता फिकर तेरे बैरियों को। जिस घरों वाले ने मुझे घड़ दुनिया का सुख लूटने को भेजा है। वही जहान का वाली तेरी फिकर भी करेगा। मित्रो का स्वभाव एक ईमानदार जीवन के पक्ष में खड़ा दिखाई देता है। घर की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए उसके घर वालों का दबाव है कि वह अपने ऊपर लगे आरोपों को झूठा कह दे चाहे आरोप सही हों या गलत इस पर मित्रो कहती है- "सज्जनों, यह सच भी हे और झूठ भी। ....लाख गुनाह मित्रों के पर झूठ की उसे सौह......। निर्भीकता मित्रो के संघर्ष का आधार है, इसी एक गुण के कारण वह अपने जीवन में बेबाकी पन को जी सकी है। किसी भी विषम परिस्थिति में चाहे घर का माहौल कितने ही गुस्से वाला क्यों न हो? वह निडर है। मित्रो अपनी देवरानी की बीमारी की बहानेबाजी को अच्छी तरह पहचानती है तथा समय समय पर उसका पानी उतारती रहती है। "फूँला रानी अपनी गऊ-सी सास के आगे जहर-भरे फुंकार न मार। रात तो तू मारे मौज और दिन में छेड़े महाभारत।"[4] फूँला की स्थिति में सुधार न देखकर वह उसे कड़े शब्दों में ललकारती भी है। फूँला से वह कहती है- "पर इतना जान ले देवरानी मैं तो तेरे मर्द की माँ होती तो, रानी, तेरे इस पिदके से सिर पर एक बाल न रहने देती।"[5]

मित्रो अपने जीवन व्यवहार में काफी विचारवान भी है। सरदारी को परेशान देखकर उससे बार-बार अपना दुःख साझा करने को कहती है- "महाराज जी न थाली बाँटते हो... न नींद बाँटते हो, दिल के दुखड़े ही बाँट लो"। इस पर सरदारी कहता है कि यह मेरे बस का नहीं तो मित्रो कहती है- "मेरे बस में मेरा बाँका ढोल नहीं, और सबकुछ है।"[6]

मित्रो के व्यक्तित्व में अर्थ के लिए कोई लिप्सा भी नहीं दिखती। परिवार में किसी प्रकार का संकट दिखते ही वह अपने माइके से लाई-कमाई को झट से सरदारीलाल के सामने दे देती है, और कहती है कि "सरदारीलाल यह दमड़ी दात परवान करो, लाल जी! कौन इस नौवें के बिना मित्रो की बेटी कँवारी रह जाएगी।"[7] अर्थ के प्रति, आभूषण के लिए कोई मोह न दिखाकर मित्रों पहले की नायिकाओं से अलग हो जाती है। जिनके लिए जीवन का आधार गहने और आभूषण ही हुआ करते थे। मित्रो अपनी सोच में पूरी तरह से तार्किक दिखाई देती है। परम्परागत नियम, बन्धन, बातें उसे उसी रूप में स्वीकार्य नहीं हैं, वह अपने तर्कों से उनकी जाँच करती है। जिठानी के गर्भ की बात से खुश सास बार-बार भगवान को नतमस्तक होती है। इस पर मित्रों की प्रतिक्रिया है- 'अम्मा जिस दाँते का नाम लेती हो उसे आँख से किसने देखा है? असल पैगम्बर तो तुम्हारे बेटे ठहरे, जब चाहे पौधे रोप दें।'[8] अपने ठोस साहस और तर्क के आधार पर ही तो भगवान की सत्ता को बार-बार चुनौती देती दिखाई देती है। इन तमाम बातों से मुक्त मित्रो का जीवन संघर्ष आगे बढ़ता है और आधार प्राप्त करता है। मित्रो की जिठान सुहाग तथाकथित आदर्श और सामन्ती पारिवारिक संरचना में अनुकूलित स्त्री का रूप है, जिसके लिए पति परमेश्वर तथा घर की मर्यादा को बनाए रखना ही उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। घर में वह सास, ससुर, पति सबकी लाडली है। सुहाग की परिवार के प्रति जिम्मेदाराना तबियत को देखते हुए उसकी सास कहती है- 'शाबाश है बेटी, तेरी शाबाश! बनवारी की ओर से तो बड़ी सुरखरु हूँ। धन्य है तेरी माँ जन्मनेवाली जिसने तुम्हें जन्म दे इस घर के लिए ऐसा धर्म कमाया।' सबसे छोटी बहू फूँला जो मित्रो की देवरानी है, उसका जीवन व्यवहार आजकल की टी. वी. धारावाहिकों की बहुओं की तरह है। दुनिया भर के छल-छद्म उसे पता हैं। आभूषण के प्रति अपार स्नेह तथा बनावटीपन उसके चरित्र की खासियत है। उपन्यास में वह एक ऐसा प्रपंच रचती है, जिससे उसका पति गुलजारी लाल उसे परिवार से अलग ले अपने ससुराल में बस जाता है। हालांकि बाद में उसे फूँला और उसके भौ के छद्म का ज्ञान हो जाता है नैतिकता का सामाजिक आग्रह

बनाम वैयक्तिक स्वतन्त्रता जीवन और कला का मूल विषय रही है। व्यावहारिक जीवन की सत्ता अपने नफे-नुकसान के लिए नैतिकता के नित नये आडम्बर खड़ा करती है। दूसरी तरफ कला अपने स्वरूप में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की पक्षधर होती है। मानव-चेतना हमेशा बंधे बँधाए नियम के बरअक्स एक आजादी की ओर उन्मुख होती दिखाई देती है। नैतिकता का आग्रह और वैयक्तिक स्वतन्त्रता का द्वन्द्व स्त्रियों के मामले में बहुगुणित होकर सामने आता है। हम देखते हैं कि नैतिकता के आग्रह को बरकरार रखने की सबसे कारगर संस्था परिवार है। भारतीय अर्थों में हम संयुक्त परिवार के विकास पर नजर डालें तो पाते हैं कि इसका निर्माण ही राजसत्ता के शिल्प में हुआ है। जिसके अन्तर्गत एक राजा है दूसस उसका मंत्री जो राजा के आधीन तो है, लेकिन बाकियों का अधिकारी है। इसी प्रकार मंत्री से नीचे पद का अधिकारी मंत्री के आधीन होते हुए बाकियों का राजा है। अन्त में बचती प्रजा है, जिसके ऊपर चार-पाँच या इससे भी अधिक की हुकूमत होती है। पूरा का पूरा स्ट्रक्चर ऐसे बना है कि सबसे ज्यादा शोषण स्त्रियों का ही होता है। स्त्रियाँ ही प्रजा के हिस्से आती हैं। यह शोषण इस हद तक है कि जाने-अनजाने स्त्रियाँ इसको आदर्श की तरह निभाने भी लगती हैं। उन्हें अपने अधिकारों और व्यक्तिगत आजादी का अर्थ तक मालूम नहीं चल पाता और वे बने बनाये नियम में अनुकूलित होते रहने के लिए अभिशप्त हो जाती हैं। प्रस्तुत कृति 'मित्रो-मरजानी' की नायिका इस परिवार नामक संस्था के बरक्स खड़ी होती है तथा अपने दैनन्दिन जीवन में इसका डट कर मुकाबला करती है। मित्रो का पति अपरिपक्व है तथा वह उससे असन्तुष्ट भी है, उपन्यास में जहाँ तहाँ यह बात मित्रो बताती है, लेकिन अन्त में वह अपने स्वभाव, व्यवहार एवं प्रवृत्तियों के विपरीत लगभग सभी तैयारी के बाद पर पुरुष से सम्बन्ध बनाने से इंकार कर देती है तथा अपने पति के पास वापस लौट आती है। अन्ततः मित्रो अपने निष्कर्ष में व्यक्तिगत आजादी को छोड़कर सामाजिक नैतिकता के आग्रहों को छोड़कर सामाजिक नैतिकता के आग्रहों का वरण करती है। यह अपने समूचेपन में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की लड़ाई पर चोट है इसलिए भी यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हमें इसके निष्कर्ष पर टिकने के बजाए इस प्रकार देखना उचित होगा कि कैसे मित्रो जैसी स्वतन्त्र-चेता नायिका किस तरह झूठे और नकली आदर्श के लिए अपनी आजादी कुर्बान करते दिखाई देती है और वह आदर्श भी क्या है? एक ऐसे पति को परमेश्वर मानना जो उसकी कामनाओं की पूर्ति में असमर्थ है और न ही उसको इसकी परवाह है। उपन्यास में सरदारी लाल के व्यवहार पर मित्रो कहती है- किसानी 'जिठानी, तम्हारे देवर सा बकलोल कोई दूजा न होगा। न दुःख-सुख, न प्रीति-प्यार न जलन-प्यास ...... बस आए दिन धौल-धप्पा ...... लानत-मलामत।' इस तरह अपने निष्कर्ष में यह उपन्यास भी 'सती-सावित्री' जैसी कहानियों का विस्तार ही मालूम पड़ता हैं, जहाँ अन्त में नायिका अपनी माँ की बातें सुनकर 'न-न री अब इस ठहरी ठण्डी भठी का कोई वाली वारस नहीं। कोई अनुभव का नाम भी नहीं बातों को सुनकर मित्रो घबरा जाती है, लेखिका लिखती है-'जाने क्या हुआ कि भय के मारे मित्रो का कलेजा दहल गया।' कभी न डरने वाली निर्भीक मित्रो को अन्त में आकर अपने भविष्य को सोचकर दरना पडता है, रुकना पड़ता है। यहाँ लेखिका वर्तमान को छोड़कर, उसकी इच्छाओं को त्यागकर भविष्य को बीमा योजनाओं की तरह दूरदर्शी लाभ दिखाकर तैयार नैतिकता या सामाजिकता के आग्रह जैसे बुढ़ापे का अकेलापन, सामाजिक मर्यादा आदि की सोच के साथ खड़ा करती है। ऐसा करना वर्तमान को उसकी स्वाभाविकता से बाधित ही नहीं करना, वरन व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की लड़ाई को कुन्द भी करना है।

दूसरी बात ये कि किसी भी कथाकृति में चरित्र, घटना, प्रसंगों की सरल निर्मितियाँ नहीं होनी चाहिए, उनके विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत लेखक का ध्यान इसके आन्तरिक जटिल द्वन्द्वों की ओर भी होना चाहिए, मित्रो की तरफ से देखें तो उपन्यास की प्रक्रिया में जो वह अपने स्वभाव में बेबाकी पन, निर्भीकता, स्वतन्त्र चेतना विचारशीलता को अर्जित करती है अन्त में आकर अपने एक बात सुनकर सहम जाती है, घबरा जाती है। उपन्यास की प्रक्रिया में जो मित्रो कहती है- 'गम खाने को तो मित्रो दूसरी बार जन्मेगी' आदि बेलौस बाते उनका उसके अन्तिम निर्णय से संगत नहीं दिखता। भविष्य की चिन्ता करते हुए बढ़ा हुआ पैर उसे पीछे खींच लेना पड़ता है या फिर मित्रों के इस निर्णय पर उसके मन के द्वन्द्व को विकसित करने के लिए लेखिका को दो चार पन्ने और खर्च करने चाहिए थे।

ध्यान दें तो मित्रो के निष्कर्ष के निर्णय के पीछे उसकी चेतना पर झूठी सामाजिक नैतिकता का दबाव भी हो सकता है, जिस नैतिकता को समाज से समय-समय पर भरपूर पोषण मिलता रहा है। मित्रो अपने जीवन-संघर्ष में जिस शारीरिकता, स्वच्छन्दता और व्यक्तिगत आजादी की पक्षधर रही अन्त में उसके पास वो सब अर्जित करने का आसान मौका था, न कोई रोक-टोक न कोई बन्धन, ऐसे में उसका पीछे हटना समाज की नैतिक का दबाव ही तो है?

स्त्रियों में नैतिकता के आग्रहों से निकलकर वैयक्तिक स्वतन्त्रता का चरम प्राप्त करने के बीच का जो संक्रमण काल है, अक्सर पाया गया है कि कला (साहित्य, सिनेमा आदि) अक्सर इस द्वन्द्व से जूझती है कि जाए तो किधर जाए? बँधी बंधाई नैतिकता का पक्ष ले या स्वतन्त्रता के पक्ष में खड़े हों?

कोई कृति अपने उत्स में किसके पक्ष में जाकर खड़ी होती है यह तो निर्णायक होता ही है इसके बरक्स उतनी ही महत्वपूर्ण वह प्रक्रिया भी है जिससे गुजरते हुए वो कृति अपने उत्स को छूती है। 'मित्रो-मरजानी' उपन्यास की नायिका अपने तमाम जवाब तलब करने के बाद अन्त में आकर पराजित-सी दिखती है, जिससे सबक लेने की जरूरत है, लेकिन इससे मित्रो का संघर्ष कम नहीं हो जाता। देखने को मिलता है कि मित्रो के संघर्ष से जीवन-स्रोत तलाशना छोड़कर कतिपय आलोचकों ने नायिका के सामाजिक समर्पण को जायज ठहराया है तथा उसकी पराजय के पक्ष में जमकर अपने तर्कों द्वारा उसे पुष्ट भी किया है। चालू मुहावरों में नैतिकता के आगे नतमस्तक होने के उस समर्पण को पति प्रेम, वफादारी, बुढ़ापे का सहारा इत्यादी मुहावरे में बाँधा जा सकता है। एक स्थान पर वरिष्ठ आलोचक अनामिका लिखती हैं- 'पति का एक पक्ष दुर्बल है, इससे वह एकदम त्याज्य तो नहीं हो जाता इतना समझने का विवेक उसे है, और यह भांपने की दुनियादारी भी कि बुढ़ापे में इस ठठरी ठण्डी भठी का वाली-बारस नहीं होता, इसलिए घर छोड़ना बेकार है। इस तरह के तर्क मित्रो के संघर्ष को कुन्द करते दिखते हैं। बतौर आलोचक मेरे लिए मित्रो वह नहीं जहाँ वह सामाजिक नैतिकता के आगे पराजित होती है और अपना समर्पण करती है वह मित्रो जो उपन्यास की प्रक्रिया में बेलौस, बेताक, स्वतन्त्रचेता और विचारवान है।'

एक और बात लक्षित है कि-मित्रो के सास-ससुर सीधे सादे दिखते हैं। धनवन्ती। हमेशा मित्रो से प्यार से मिलती है। पति के साथ बहस में वे लोग मित्रो का ही पक्ष लेते हैं। उनकी भरपूर कोशिश इस बात में है कि किसी भी प्रकार से घर की सामाजिक प्रतिष्ठा धूमिल न हो। घर की बात घर में ही रहनी चाहिए इत्यादि। मित्रो की चाल-चलन तथा उसके बोल-कबोल उन्हें पसन्द नहीं हैं, फिर भी वे चुप रहते हैं। कभी कभार मित्रो का पति सरदारी ही उसे रोकता है और बहस करता है। मित्रो के माँ के व्यवहार से उसके ससुराल वाले अच्छे से वाकिफ हैं, उसके व्यवहार तथा चलन से उन्हें खासी दिक्कत है। फिर भी अचानक ही मित्रो को माइका भेजने का निर्णय होता है। क्या यह निर्णय उतना ही अनायास है जितना दिखता है? ध्यान देने वाली बात यह कि जब मित्रो की बातचीत से घर के लोगों को मालूम होता है कि सरदारीलाल अपरिपक्व पुरुष है, उससे सन्तान पाना मुश्किल है समाज में उनके बेटे सरदारी को नपुंसक न समझा जाए, इसलिए मित्रो को उसके माइका भेजने का निर्णय लिया जाता है। ताकि मित्रो भी गर्भ-धारण कर सके। मित्रो माइके जाने को तैयार होती है तो सुहाग उससे कहती है- 'देवरानी, अम्मा तो भेजने लिए राजी हुई कि लौटती बार तुम खुशियों की पोटली संग बाँध लाओ।'[9] अपने नफे-नुकसान तथा स्वार्थ के लिए उठाये इस प्रकार के निर्णय परिवार के छद्म को उजागर तो करते ही हैं साथ ही तथाकथित आदर्श, नैतिकता, मर्यादा को भी तार-तार कर देते हैं, जिसका आवरण वे जीवन भर ओढ़े रहते हैं।

'मित्रो-मरजानी' उपन्यास उन कृतियों में शामिल है जिस पर भविष्य में लगातार

चर्चा होनी है तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए मित्रो का संघर्ष और जीवन्तता प्रेरणादायी रहेगी।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. मित्रो मरजानी-कृष्णा सोवती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2002 पृष्ठ 87
2. वही, पृष्ठ 89
3. वही, पृष्ठ 46
4. वही, पृष्ठ 102
5. वही, पृष्ठ 105
6. वही, पृष्ठ 202
7. वही, पृष्ठ 166
8. वही, पृष्ठ 198
9. वही, पृष्ठ 47

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-चेतना

डॉ० कुमारी निश्चय

हिन्दी विभाग, ल. ना. मि. वि. विद्यालय, दरभंगा,

जीवन क्या है? आग का दरिया या शीतल जल की धारा? हर आदमी की अपनी सोच होती है क्या यह सच है, कि बड़े नसीब से मानव-जीवन मिलता है? क्या यह सच है कि ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानव है और मानव में स्त्री? यदि स्त्री ईश्वर का प्रतिरूप है तो क्या ईश्वर भी उतना कष्ट पाता है? जितना की स्त्री पाती है? तमाम सवाल अधर में है जो हाथ डालकर उन्हें निकाल लें? वह भी साथ बह जाएगा।[1]

कहा जाता है कि नर और नारी एक-दूसरे के पूरक होते हैं। फिर क्यों ऐसा होता है कि नर-नारी पर भारी पड़ता है और नर जीता नारी हारी? नर खुशहाल नारी दुखियारी। अक्सर देखा जाता है कि स्त्री बनकर जन्मना आसान है, पर जीना आसान नहीं। तमाम स्त्रियाँ एक अलग, मगर साँझे दु:ख को जी रही हैं। मगर वे मजबूर हैं, क्योंकि यह समाज अभी भी उनकी उपयोगिता की इज्जत नहीं करता। हर स्त्री-संघर्ष के मोर्चे पर तैनात रहती है।

स्त्री को भगवान ने भरपूर खजाना दिया है, हर तरह के गुणों से उसे नवाजा है। यह समाज स्त्री की सेवाओं को लेना जानता है, और जीवन भर लेता है, पर देने में कृपण हो जाता है। स्त्री अपना सर्वस्व सौंप कर सेवा करती है, पर पाती कुछ भी नहीं है।[2]

मैत्रेयी पुष्पा की आत्म-कथा 'कस्तूरी कुंडल बसै' अपने लिए जगह बनाती कस्तूरी के जीवन-संघर्ष की दास्तान है। 2002 में प्रकाशित यह आत्म-कथा स्त्री-स्वतंत्रता की जागरण की कथा है। पुरुष वर्चस्वीय सामाजिक बंधन में, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होने के प्रयास में स्त्री को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, स्त्री की इस जद्दोजहद का आख्यान इस आत्म-कथा में प्राप्त होता है।

कस्तूरी अभावग्रस्त ब्राह्मण-परिवार की छोटी लड़की है। संग सोने और बैठने की शर्त पर जो खाने-ओढ़ने का प्रबन्ध करता है।ऐसी रूढ़िगत मर्यादाओं के तहत कस्तूरी की मर्जी के खिलाफ उसकी शादी हीरालाल से हो जाती है। पति की मौत पर रेशम कुँअर की तरह सती होने की बजाय वह ढाई मील दूर इगलास की पाठशाला में पढ़ने जाती है। डेढ़ साल की बच्ची को बूढ़े और आपाहिज ससुर को सौंपकर वह निडर स्त्री अपने लिए राह बनाती है।[3]

बहुत सारी मुसीबतों को झेलकर वह अपनी मंजिल पार करती है। समाज कल्याणकारी बोर्ड में अफसर के पद पर कार्यरत कस्तूरी सरकार की ओर से इस विभाग को बंद करने के खिलाफ मुहिम जारी कर पुलिस की हिरासत में अपना संघर्ष आगे ले जाती है। इस निडर बहादुर, दृढ़-संकल्पी माँ की बेटी के रूप में मैत्रेयी, इस आत्म-कथा में अपनी अलग भूमिका निभाती है।

लेखिका यह दावा करती है कि "इसे उपन्यास कहूँ या आपबीती" यह हमारी कहानी है। मेरी और मेरी माँ की कहानी।" आपसी प्रेम, घृणा लगाव और दुराव की अनुभूतियाँ 'कस्तूरी कुंडल बसै' की बुनियाद को मजबूत करती हैं और माँ बेटी के संबंध को संवेदनात्मक आधार प्रदान करती है। स्त्री-स्वतंत्रता तथा शोषण के विरोध में मुखर तीक्ष्ण स्वर इस आत्म-कथा की शक्ति है।[4]

आत्म-कथा का आरंभिक वाक्य है- "मैं ब्याह नहीं करूँगी।" सोलह वर्षीय लड़की कस्तूरी का यह वचन माँ के कानों पर धमाका मारता है। साधारणत: शादी-ब्याह की बात पर लड़कियाँ धत् कहकर शरम से अभी नहीं कहती है। मगर कस्तूरी अपने निर्णय पर दृढ़ है। रात को माँ की पूछताछ पर वह कहती है- "डर! डर ही तो लगता है चाचा! सच्ची, ब्याह से बड़ा डर लगता है।"

विवाह-रूपी संस्था की संरचना में जो खोखलापन है, इसकी ओर ये इशारा करते हैं। माँ की राय में बेब्याह, जिदंगी भर अकेली रहना डर का कारण है तो बेटी के लिए ब्याह डर का कारण है। माँ झूठी मान-मर्यादाओं के पालन में, कुल, परिवार और समाज

के हिफाजत में गर्व समझती है, किंतु बेटी रेशम कुँअर की तरह सती होना नहीं चाहती। झूठी इज्जत और मूल्यों के लिए अपना जीवन कुर्बान करना नहीं चाहती। वह दिन भर बछड़े-बछियों और तोते-चिड़ियों के साथ रहना चाहती है, उनके जैसे स्वतंत्र रहना चाहती है।[5]

मगर आगे दूसरों के दबाव में खासकर भाभी की गाली-गलौज में वह ब्याह करने को विवश हो जाती है और हीरालाल की बहू बन जाती है। ससुराल में मुँह दिखाई रस्म में औरतों से वह चिढ़ जाती है। तब किसी बूढ़ी का यह कथन उसे आतंकित करता है- "ओ आठ सौ की छोड़ी" तू मुँह नहीं दीखाती, तेरी यह मजाल!" कस्तूरी सब कुछ समझ लेती है कि ब्याह के नाम जो खरीदारी चलती है, उसमें वह कैसे बिकाऊ चीज बन गई। जमीन जायदाद को बचाने के लिए कलसियाँ बेचने बद्री की दुकान में गई तो वहाँ पर गोद की कमीज पहने हीरा से मिली थी, लेकिन भाभी के झाँझन-कड़ों का राज अब उसके सामने खुल गया। वह खरीदी गई छोड़ी से ज्यादा कुछ नहीं, यह सोचते ही कि "छोड़ी घूँघट नहीं मारा करती।" वह झटके से घूँघट उतार फेंक देती है। औरतें सन्न रह जाती है।[6]

औसत भारतीय नारी की भूमिका अदा कर अपने को गुलाम करना वह पसंद नहीं करती। असल में रीति-रस्मों और आभार-व्यवहार के व्यवस्था के समर्थन में बेटियों को 'कण्डीशनिंग' करने में माताजी रूपी 'सिस्टम' का बड़ा हाथ है। माँ चाहे तो बेटी को स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की सीख दे सकती है। ज्ञान के क्षेत्र में शिक्षा की दहलीज पर उसे खड़ा कर सकती है।

किंतु परंपरा एवं मूल्यों की हिफाजत में अपनी बेटी के भविष्य पर कालिख पोतने की वह आदी हो गई है। कस्तूरी अपने मैके से नाता-रिश्ता तोड़ लेती है। और खुद जगह बनाने के प्रयास में आगे बढ़ती है, तो दूसरों के लिए वह कुलच्छन और पागल हो जाती है।

पति के मौत के पश्चात् घर का सारा बोझ उस पर आ जाता है। घर-गृहस्थी, खेत-जमीन, बूढ़े आपाहिज ससुर और बच्ची, इनके अतिरिक्त स्त्री-जीवन की जंजीरों से मुक्ति की कामना। वह खुद रास्ता निकालती है- सिकरा गाँव से ढाई कोस दूर इगलास कस्बे के सरकारी स्कूल में नियमित पढ़ाई का प्रण लेती है। बिना घूँघट की बहू हाथ में किताब कॉपी भरा झोला। लोग चाहे जो सोचें, कस्तूरी बेफिक्र है। अपने पैरों पर खड़े होने की अदम्य आकांक्षा उसे सब मुसीबतों को झेलने के लिए सुसज्जित करती है।[7]

स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर होने की आस्था के तहत जो निर्णय वह लेती है, वह उसके व्यक्तित्व का ही नहीं अपने परिवार की भलाई पर लक्षित है। आत्म-विश्वास से भरा-पूरा निर्णय और दृढ़ संकल्प उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगाते हैं। स्त्री-मुक्ति के दौर में अपमान और शोषण के खिलाफ लड़ने के लिए लड़ैत और कठकरेज होना आवश्यक है। साधारण नारी-सुलभ मनोभावों पर वह अंकुश लगाती है, क्योंकि उनके जीवन का एक मकसद है। पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री के प्रति जो अनीतियाँ हो रही हैं, उसकी शिकार रही कस्तूरी उनके विरोध में शक्ति अर्जित करती है। उसके लिए शिक्षा ही एकमात्र उपाय रहा है। स्त्री-मुक्ति आंदोलन में आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया जाता है। "कस्तूरी कुंडल बसै" की आरंभिक टिप्पणी में लेखिका कहती है, यह हमारी कहानी है। मेरी और मेरी माँ की। आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियाँ से स्त्री-कथा में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो मेरे जन्म से पहले ही घटित हो चुकी थीं, बेटी को स्त्री-जीवन के बारे में नये सिरे से समझाना पड़ा।[8]

असल में दो पीड़ितों के विचार-विकार, मूल्य संकल्पनाएँ, धर्म-जाति, कुल, संप्रदाय आदि धारणाएँ इस आत्म-कथा में, बिखरी पड़ी है। कस्तूरी और मैत्रेयी के बीच के संबंधों में जो घटित होता है। उसके द्वारा जो कथा-विस्तार संभव होता है असल में स्त्री अस्मिता के तहत होने वाली अकांक्षाओं ओर संवेदनाओं का आख्यान है। यही स्त्री-चेतना के जाग्रत रूप में, सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। कस्तूरी का व्यक्तित्व इस वैचारिक संघर्ष को मूर्त्तरूप प्रदान करता है।

कस्तूरी स्त्री-संघर्ष का जो बीड़ा उठाती है, उसे कहीं अंजाम तक पहुँचा देने में वह सफल होती है। उसे बड़ी आशा-अभिलाषा थी। उसे अपनी बेटी से आशा थी कि वह स्त्री के सशक्तीकरण की मशाल अपने हाथ में ले लगी, लेकिन यह गलत साबित हुआ। बी. ए. में पढ़ने वाली मैत्रेयी माँ से कहती है- "माताजी मेरी शादी करा दो।" कस्तूरी के सारे सपने, संकल्प टूट जाते हैं। एक मामूली स्त्री के जैसे विचार और व्यवहार उसके सारे सपने को चकानाचूर कर देते हैं। कस्तूरी चाहती है कि बेटी पढ़-लिखकर स्वावलंबी बने। यह आशा वह अपने ससुर के सामने प्रकट करती है, किंतु समाज एवं परंपरागत मूल्यों के विशेष में अपने को, यानी पुरुष-सत्तात्मक समाज के दकियानूसी आचार-विचार के खिलाफ लड़ती कस्तूरी बेटी की परवरिश में असफल हो जाती है। बढ़ती उम्र में बेटी के लिए, माँ की ओर से जो कुछ उसके शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आवश्यक है, वह सबक ढोने में

कस्तूरी अपराजित हो जाती है। शायद अपने जीवन-संघर्ष में वह यह भूल जाती है। स्त्री के रूप में एक 'करेक्टर कोड' जो माताएँ बेटियों को बचपन से देती आ रही हैं। वह चाहे गलत हो या सही उसे देने में कस्तूरी पिछड़ती रही।[9]

एक कठकरेज लुगाई के रूप में उसका विकास चाहे दूसरों के लिए उपहास का कारण हो, परंतु स्त्री-पक्षधर पाठकों के लिए वह शक्ति एवं प्रेरणा का स्रोत है। बेरंग कपड़े, उजड़ा सुना चेहरा, नंगे बूचे हाथ, बेरौनक खुरदरे पाँव कस्तूरी का यह वेश स्त्री साज श्रृंगार के खिलाफ एक मुहिम है। इससे बढ़कर स्त्री-जाति के आत्मसम्मान का यानि शरीर से अधिक आत्मबल की चिंता से प्रेरित है। मैत्रेयी के व्यक्तित्व निर्माण में माँ के रूप में कस्तूरी का रोल कहाँ तक सही रहा, यह सोचने का विषय है। बचपन से ही माँ की ममता और प्यार से वह वंचित रही है। पढ़ाई-लिखाई में उसकी रूचि नहीं रही। बचपन से ही उसकी संगति गाँव की पुरोहितानी खेरा पतिन और बूढ़ी काकी कलावती के साथ रही।

वह स्कूल से मुकम्मल तौर पर गैरहाजिर रही। यहाँ पर कस्तूरी उसके नामकरण का संदर्भ याद करती है- ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी ने अपने पति से केवल ज्ञान ही माँगा। ओर पंडित ने कहा 'यह ज्ञानवान बनेगी। ग्रामीण-परिवेश में अनियंत्रित और बेसहारा मैत्रेयी के लिए जीवन संघषपूर्ण रहा। माँ अपनी तरह, बेटी अपनी तरह। ऐसी हालत में हालत में किशोरी मैत्रेयी के लिए कोई वर्ज्य नहीं था। मैत्रेयी की सबसे बड़ी समस्या थी कि वह लड़की है। कस्तूरी ने अपनी बेटी के लिए जिस घर में रहकर पढ़ने का इन्तजाम किया वह सचमुच इसके लिए कारावास था।[10]

वहाँ पर उसका कोई अपना नहीं था। मैत्रेयी इस समस्या से बचपन से ही जूझती रही। इस स्थिति में उसका बिगड़ जाना स्वाभाविक था। मैत्रेयी के लिए अपने अनुभव से लगता है कि प्रेम और विवाह देह ओर देह की भूख मिटाने का यज्ञ है, क्योंकि बचपन से जिन पुरुषों के संपर्क में वह आयी, इन सबने उसका यौन-शोषण किया। साइकिल वाला जगदीश से लेकर डी. बी. कॉलेज के प्रिन्सिपल तक यह कार्यक्रम चलता रहा।

उसकी दृष्टि में कोई पुरुष इसका अपवाद नहीं था। इसी परिवेश में मैत्रेयी माँ से अपनी शादी कराने की अपील करती है। बेटी के लिए वर की तलाश में निकली कस्तूरी के सम्मुख बहुत सारी मुसीबतें खड़ी होती हैं। ये हमारी विवाह-रूपी संस्था के खोट और खोखली बुराइयों की ओर इशारा करती है। पहले ही हमारा समाज ब्याह जैसी सामाजिक रस्म के प्रति सामंती मूल्य मर्यादाओं का पक्षपाती रहा है। यह कुल, जाति, वंश, परंपरा जैसी मान्यता पर बल देता आ रहा है। व्यक्ति के गुण के बारे में कम सोचता है। पढ़े-लिखे और नौकरीपेशा होने पर भी दहेज के तराजू पर वधू के वजन पर शादी की बात पक्की करता है। मैत्रेयी के प्रसंग में माँ कस्तूरी प्रगतिशील विचारधारा की स्त्री है। वह ग्रह कुंडली की जगह डिग्री और पेशे के बल पर शादी करा देना चाहती है, लेकिन उसका अपमान हो जाता है। इंजीनियर अयोध्या प्रसाद के साथ शादी तय हुई थी, किंतु दहेज के प्रति मैत्रेयी के स्वस्थ विचार पर वह रिश्ता टूट जाता है और अन्त में डॉक्टर के साथ शादी तय हो जाती है।

लेकिन विडंबना देखिए लड़की को बिना देखे डॉक्टर शादी के लिए हाँ कर देता है। दहेज के बारे में वह बेफिक्र है क्योंकि मैत्रेयी इकलौती बेटी है। यह उसको पता है। यहाँ शोषण का तरीका बिल्कुल साफ है, किंतु सलीके से किया जाता है।

आत्म-कथा के आरंभ में कहा गया है कि माँ बेटी की कहानी है, परंतु उसमें माँ और बेटी का चरित्र बिल्कुल अलग है। माँ स्त्री की स्वतंत्रता और अस्मिता की मुहिम चलाती रही है, तो बेटी इसके अतिरिक्त विवाह-संस्था की सुरक्षा में आकर्षित होकर पूर्णता और आत्म-विस्तार की कामना करती है। उनके लिए जीवन की सारी चेतना और विद्रोह प्रेम एवं देह-संबंधों के आगे-पीछे घूमती है।11

माँ की ममता और प्यार के अभाव में बचपन से ही भौतिक परिवेश के अभाव में पलती आई है। इसीलिए पुरुषों से उसका कोई परहेज नहीं रहा। उसकी राय में दैहिक भूख छिपाने की नहीं स्वीकारने और मनाने की है। शायद इसी कारण से वह सुहाग रात का वर्णन करती है। इस आत्म-कथा में कई ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ यौन-संबंधों का खुलकर वर्णन है। गौरा और कस्तूरी के बीच समलैंगिक संबंध और नर्मदा के प्रेमी के साथ संयोग संबंध आदि इसने अन्य प्रमाण से लगता है, आधुनिकता के वास्ते अंधाधुंध यौन वर्जनाओं और संबंधों का चित्रण कर, लेखिका! मौजूदा मान-मर्यादाओं अर्थात् नैतिकता की सीमाओं को तोड़ना चाहती है। इस प्रकार "कस्तूरी कुंडल बसै" स्त्री पक्षधरता के आत्म-कथा में ऊँचा स्थान अलंकृत करता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम्' का प्रथम संस्करण 1994 में निकला। संवेदना की गहराई में लिखी यह कृति अंतः-संघर्ष की कथा है। उन्होंने लिखा है-

"विश्व की स्त्रियों/बारबार मैं तुम्हारी कथा कहूँगी। देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे/उनसे ही जान लूंगी, तुम्हारा हाल अब भी दु:ख में वही स्थिर ललाट हैं मोमबत्ती-सी जलती है, अब भी वैसे ही आँखें, जिन्होंने देखे न जाने कितने शड्यंत्र/झूठ और अनाचार विकसित होती दुनियाँ की तमाम सभ्यताओं में।"

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी', चाल, झुलानट, कहीं इसुरी फाग' आदि अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री की उन तमाम संवेदनाओं के व्यंजना के द्वारा स्त्री-पुरुष, संबंध-योजना की मूलवत्ता को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

आज स्वतंत्रता, समता और स्वावलम्बन की चर्चा स्त्री-मुक्ति-आन्दोलन के प्रसंग में जोरों पर हो रही है। उस वैचारिक मुद्दे को अपनी नायिका के जीवन-संघर्षों के माध्यम से आरेखित करने में मैत्रेयी पुष्पा पूर्णत: सफल बन पाई हैं। स्त्री की शक्ति अपने ही भीतर छिपी हुई है। आज कृष्णा सोबती, तस्लीमा नसरीन, मन्नू भंडारी, सीमोन द बोअबार आदि लेखिकाओं ने स्त्री-मुक्ति-आंदोलन को जिस ढंग से आगे बढ़ाया है, उसे तमाम संघर्षों का सामना करना पड़ा है। अत: अपने जीवन में जो कुछ होता है, उसे नियति मानकर गुलाम की जिन्दगी औसत नारी के लिए अभिशाप है। जागो, शक्ति संभालो और जीवन जीयों स्त्री के लिए मैत्रेयी का यही संदेश है।[12]

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

1. मोर्चे पर स्त्री- अंजू दुआ सैंमिनी, प्रकाशन- कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 12
2. मोर्चे पर स्त्री- अंजु दुआ सैंमिनी, प्रकाशन- कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ-13
3. मोर्चे पर स्त्री- अंजु दुआ सैंमिनी, प्रकाशन- कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ-21
4. मोर्चे पर स्त्री- अंजु दुआ सैंमिनी, प्रकाशन- कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ-55
5. मोर्चे पर स्त्री- अंजु दुआ सैंमिनी, प्रकाशन- कल्याणी शिक्षा परिषद, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ-59
6. सुनो मालिक सुनो- मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाश, प्रथम संस्करण-2006
7. सुनो मालिक सुनो- मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाश, प्रथम संस्करण-2006, पृष्ठ-17
8. सुनो मालिक सुनो- मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाश, प्रथम संस्करण-2006, पृष्ठ-15
9. स्त्री के लिए जगह- राजकिशोर वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण,1994
10. आम औरत जिन्दा सवाल-सुधा अरोड़ा साममिल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008
11. समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना सा. वी. के. अब्दुल जलील आत्म सत्य का औपन्यासिक दस्तावेज पृष्ठ- 58
12. कस्तूरी कुंडल बसै- मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रा. लि., नई दिल्ली- प्रथम संस्करण-2002, पृष्ठ 67

निराला और भारतीय संस्कृति

डॉ० शर्मिला कुमारी

मुहल्ला-अल्लपट्टी, पो0-डी.एम.सी. कैम्पस, थाना-लहेरियासराय, जिला-दरभंगा, पिन-846003

संस्कृति का अर्थ है। अच्छे संस्कारों का संग्रह। संस्कृति आन्तरिक उपादान होती है। संस्कृति के अन्तर्गत मानव के समस्त आविष्कार, निर्माण कला, सामाजिक संगठन, कला, साहित्य, धर्म, विचार जैसे विषय आते हैं। संस्कृति के निर्माण का गौरव मनुष्य को ही प्राप्त है। यह संस्कृति मनुष्य के सामूहिक प्रयास का फल है।

पश्चिम की अपेक्षाकृत धर्म का वर्चस्व यहाँ कुछ सुदृढ़ रहा है। भारत को कृषि' प्रधान देश कहा जाता है। भारत की संस्कृति धर्मपरायण मानी जाती है। प्रत्येक राष्ट्र, समाज या जाति की एक निजी पहचान होती है। वह अपनी उसी विशिष्टता के केन्द्र में घूमती रहती है। भारत की इसी विचारधारा के संबंध में निराला का कथन है, "भारत के प्राकृतिक नियमों की जाँच करने से उसके धर्मजीवन का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त होता है। हिमालय जैसे गंभीर व सात्विक प्रकृति के लीला. पर दृष्टि पड़ते ही दर्शकों का मन स्वभावतः अन्तर्मुखी होकर कवित्वमय भावराज्य की सैर करता है। गंगा जैसी स्वच्छ नदियों की धारा उसके मनोबल को धो डालने के लिए सर्वथा समर्थ है। प्रकृति की कुल चेष्टाएँ मानो भारत के धर्म-धाम की रक्षा करने के लिए ही कर्म तत्पर हो रही है। अधर भारत अपने शब्दार्थ से ही अपनी धर्म परायणता सूचित कर देता है।"[1]

निराला का माना है कि आदान-प्रदान का अर्थ एक-दूसरे का अंधानुकरण करना नहीं है। यूरोप और भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का स्वस्थ रूप कैसा होना चाहिए? निराला का कहना है, 'यदि हमें प्रत्येक बात में यूरोप का अनुकरण करना पड़े तो इससे बढ़कर हमारी दुर्बलता, हमारी अमौलिकता का दूसरा प्रमाण न होगा। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ हमारे सीखने-योग्य बहुत-सी बातें हैं और हमें भारतीय होने के कारण, वहाँ के गुण श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने में संकोच नहीं होना चाहिए, पर हम यदि उन गुणों को, उन वस्तु-विषयों को, अपने अनुरूप न बना सके, उन्हें अपने साँचे में न ढाल सके तो हमारे लिए अपनी विशेषता से अलग होना होगा। इससे बढ़कर हमारी दूसरी हार न होगी। युद्ध की हार उतनी बड़ी नहीं है, जितनी बड़ी बुद्धि और संस्कृति की हार है।"[2] निराला जी यहाँ अंधानुकरण की प्रवृत्ति को घातक सिद्ध करते हैं। किसी भी अनुकरण में अपनी विचार-शक्ति और युक्ति ही काम में लानी होगी।

निराला में एक हिन्दूवादी संस्कार का भी भाव था। हिन्दुत्व की श्रेष्ठता के प्रति उनमें सजगता का भाव था। मध्यकालीन भारत की चर्चा करते हुए निराला कहते हैं, "धर्म के नाम पर इस काल में इतना त्याग शायद ही भारत ने दिखाया हो-आइदर शोर्ड और कुरान वाले धर्म के सामने हर्ष-विषाद-रहित हो जाति के वीरों ने अपने धर्म-गर्वोन्नत मस्तकों की भेंट चढ़ायी-एक दो नहीं अगणित सीताएँ और सावित्रियाँ पैदा होकर अपने उज्ज्वल सतीत्व का जौहर दिखलाती गयी।"[3] आगे अपनी कवि और कविता नामक एक निबंध में निराला लिखते हैं। "मुसलमानी जमाने की बात लीजिए। तत्कालीन हिन्दू-समाज पर मुसलमान वेश, मुसलमान भाषा, मुसलमान रीति-रिवाज बहुधा, मुसलमानों के प्रत्येक विषय का प्रभाव पड़ा है।"[4] इस प्रभाव को निराला सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दृष्टि से नहीं देखते हैं। यहाँ निराला हिन्दुत्व की भावना से भरे दिखायी पड़ते हैं।

निराला की साहित्य-साधना का एक मात्र लक्ष्य अपनी मातृभाषा हिन्दी को गौरवान्वित कर राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर आसीन करना है, किन्तु यह काम संस्कृति से जुड़ा हुआ है, इसे राष्ट्र के व्यापक हित को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है। राष्ट्रभाषा की आवश्यकता के संबंध में निराला कहते हैं। "और प्रान्तवासी भाई-बहनों पर दृष्टि रखते हुए सब हिन्दी-प्रेमियों को एक सरल, सुन्दर और जोरदार देशभाषा बनाने के लिए कमर कसे रहना चाहिए, जिससे हिमालय से कन्याकुमारी तक और सिंध से आसाम तक सारे भारतवर्ष में, एक साधारण भाषा के सहारे एक प्रान्तवासी दूसरे प्रान्त में रहनेवाले अपने भाईयों से अपना मनोभाव प्रकट

कर सके और भाषा की दृढ़ पर मुलायम डोरी से बँधे हुए अखण्ड भारत की सृष्टि करें।"[5] सभी राष्ट्रवासी अपने को एक राष्ट्र का समझें, यही राष्ट्रीयता की भावना है। इसी राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए राष्ट्रभाषा की जरूरत है।

भारत विविधता और जटिलता वाला देश है। दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल हैं। इस संबंध में निराला ने लिखा हैं, "अंगरेज कहते थे कि चूँकि भारतवर्ष कोई एक देश नहीं है, अनेक देशों का एक समुदाय है, जहाँ न एक भाषा है न एक प्रकार का समाज, अनेक छोटी -बड़ी भाषाओं के रहते भारतवर्ष उन्नति नहीं कर सकता है।"[6] निराला इसका खण्डन करते हुए कहते हैं- भारतवर्ष एक देश नहीं है, अनेक देशों का समुदाय है, यह वे ही कह सकते हैं, जिन्हें यहाँ के इतिहास का कुछ पता नहीं और जिन्हें यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की नींव का ज्ञान नहीं"[7] राष्ट्रीय एकता का आधार उसकी मूलभूत सांस्कृतिक एकता होती है।

भारत की राष्ट्रभाषा कैसी हो? निराला के अनुसार, "राष्ट्र-भाषा की दृष्टि से हिन्दी को सरल और तेजस्वी होना चाहिए।"[8] सरल इसलिए कि वह सुबोध हो और तेजस्वी इसलिए कि उसमें 'उच्च भावें को प्रकट की शक्ति होनी चाहिए।'[9] इसके बाद हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का सवाल खड़ा होता है।

निराला को भाषा में हिन्दी-उर्दू की मिलावट पसंद नहीं थी। हिंदी में फारसी-अंग्रेजी शब्दों के समावेश के कारणों का उल्लेख करते हुए निराला कहते हैं, "हमारी पराधीन हिन्दी पर पराधीनता के ही कारण फारसी का प्रभाव पड़ा, अंग्रेजी का पड़ रहा है, और आश्चर्य है, उसकी प्रान्तीय सहेलियाँ बंगला-मराठी आदि भी उस पर रोब गाँठ रही है।"[10] निराला हिन्दी लेखक थे, इसलिए भी वह उर्दू के बढ़ते प्रभाव को हिन्दी के लिए घातक मानते थे। हिन्दी के प्रति उनकी आस्था थी। वे भारत में हिन्दी भाषा को उन्नत करना चाहते हैं, क्योंकि यह जनता-जनार्दन की भाषा है। इसे बोलने में सरलता का अनुभव होता है। निराला हिन्दुस्तानी का विरोध एक दूरगामी लक्ष्य को ध्यान में रखकर कर रहे थे। हिन्दुस्तानी के पक्ष को समर्थन देने का मतलब प्रकारान्तर से उर्दू का पक्ष समर्थन करना है, निराला इसी दृष्टिकोण से हिन्दुस्तानी के महान् पक्षधरों का भी प्रबल विरोध करते हैं।

हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी के संघर्ष का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में विस्तार से दिया गया है। इस संदर्भ में निराला और आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण बिल्कुल समान हैं। इस संदर्भ में दोनों के विचार एक ही भाव-भूमि पर खड़े उतरते हैं। दोनों संस्कृति मिश्रित विशुद्ध हिन्दी के ही हिमायती थे। हिन्दी के समर्थन में निराला का निष्कर्ष यह है कि दिल्ली की आसपास की भाषा हिन्दी का यथार्थ रूप नहीं है, क्योंकि वह भी मिश्रित भाषा है। विशेषत: फारसी-उर्दू प्रभावापन्न।"[11] निराला वैसी हिन्दी के पक्षपाती थे जो संस्कृत की पीठिका पर निर्मित हो। वे हिन्दी के इस रूप के भी पक्षधर थे उच्च भाव की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी के शब्द भण्डार को समृद्ध किया जाए।

निराला के सांस्कृतिक चिंतन यह है कि संस्कारों के भीतर से ही संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति ही किसी राष्ट्र की आत्मा होती है। वह राष्ट्र या समाज अपनी संस्कृति की धूरी पर घूमती रहती है। जब तक वह अपनी संस्कृति को पकड़े रहता है तब तक उसका किसी भी प्रकार नाश नहीं किया जा सकता है। भीतर के संस्कारों से ही हम बाहर जाने जाते हैं। संस्कार से संस्कृति का संबंध है और निराला की दृष्टि में बुद्धि और संस्कृति की हार युद्ध की हार से ज्यादा बड़ी है। अपने संस्कार से ओत-प्रोत जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि में रहने वाले मनुष्य बस मानव-मात्र हो जाता है। चाहे वह किसी भी देश, समाज या जाति का हो वह मनुष्य मात्र होता है। मनुष्य का संस्कार उसे सर्वोत्तम मनुष्य बनाता है। संस्कार-विहीन मानव पशुवत होता है। संस्कारवत मानव देवता तुल्य होता है। अपनी संस्कृति में रहकर राष्ट्र उन्नत करता है, यदि वह अपनी संस्कृति भूलकर दूसरे का अनुकरण करता है तो वह पतन की ओर चल पड़ता है। अनुकरण अच्छी है, पर अंधा अनुकरण नहीं, हम अपनी संस्कृति के अनुरूप है। अनुकरण करे, तभी वह हमारे लिए हितकर साबित हो सकती है। संस्कारवान मानव ही देश को धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, संस्कृति को उन्नत कर सुदृढ़ कर सकता है। मानवतावाद ही निराला के सांस्कृतिक चिंतन के केन्द्र में है। इस नये मानवतवाद को बस बलपूर्वक जोड़ने की जरूरत है। इस तरह निराला की सांस्कृतिक चिंतन आज भी प्रासंगिक है। हम अपनी संस्कृति को छोड़कर मूल्यविहीन हो जायेंगे। संस्कृति के बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा। इसे अपना कर ही हम राष्ट्र, समाज और जाति को विकास के मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं। भारत के केन्द्र में धर्म है। यहाँ अलग-अलग धर्म के लोग रहते हैं, फिर भी सब की संस्कृति और संस्कार एक है। यहाँ के लोग दूसरे देशों का अनुकरण जरूर करते हैं, पर वे अपने संस्कार को कभी भी भूलते नहीं हैं। यही कारण है कि भारत विविधता और जटिलता वाला देश होते हुए भी एकता और महानता की शिखर पर परचम लहरा रहा है।

संदर्भ सूची

1. निराला की साहित्य साधना, भाग-3, रामविलास शर्मा, पृष्ट 31
2. वही, पृष्ट 225
3. नि0र0 5, पृष्ट 191
4. निराला की साहित्य साधना, राम विलास शर्मा, प्रथम खंड, पृत्र- 47
5. निराला की साहित्य साधना, भाग- 2, राम विलास शर्मा, पृष्ट 50
6. नि0र0-6, पृष्ट 296
7. वही, पृष्ठ 297
8. वही, पृष्ट 49
9. वही, पृष्ठ 52
10. वही, पृष्ठ 53
11. वही, पृष्ट 52

भारतीय सामन्तवाद की पृष्ठभूमि की तैयारी में प्रारंभिक भक्ति आंदोलन की भूमिका।

सुरजीत कुमार सिंह

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरात्त्व एवं संस्कृति विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय

प्रारंभिक भक्ति आंदोलन में ही भक्त और भगवान के बीच दास और स्वामी के रिश्ते की विचारधारा समाज में स्थापित किया था। भक्ति शब्द 'भज' शब्द से निकला है, जिसका प्रथम पक्ष भाग लेने वाला भक्त और दूसरा पक्ष लेने वाला भगवान कहलाया है। भक्त को भगवान से सेवा का भाव होना आवश्यक जाना जाता था। साथ ही यह आस्था-विश्वास भी रखना आवश्यक होता है कि 'सेवा से ही मेवाद्धफल) मिलता है।' यह भी विश्वास रखना होता है ''इतना अधिक सेवा किया जाय कि देने वाला प्रसन्न हो आर्शीवाद देने को बाध्य हो जाये, किन्तु देने वाले की प्रसन्नता उसकी इच्छा पर निर्भर करता है, इसके लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता है और ना ही देने वाले के प्रति असंतोष ही रखा जा सकता है। इस विश्वास को पाले जाना है कि एक न एक दिन देने वाला अवश्य प्रसन्न होगा, चूकि वह निर्मोही नहीं है, बल्कि दयावान, सदा भक्त की पुकार सुनने वाला और विकट से विकट परेशानियों से शरण दिलाने वाला और भक्त का रक्षक होता है। यह धारणा ब्राह्मण, बौद्ध, जैन सभी धर्मो में कहा गया था।[1] अतः दूसरी शताब्दी से जो भारतीयों में भक्ति की धारा प्रवाहित होने लगी थी, इस विचारधारा को लोगों के बीच स्थापित किया था, कि भक्त ''दास'' जोड़ने लगा और भगवान के नाम के आगे ''स्वामी'' होता है। इसलिए भक्त अपने नाम के आगे ''दास'' जोड़ने लगा और भगवान् के नाम के आगे 'स्वामी' (जैसे महावीर स्वामी) जोड़ने लगा था। इस तरह दूसरी शताब्दी ई0पू0 से शुरू होने वाली ''प्रारंभिक भक्ति आंदोलन (200 ई0पू0 से 650 ई0) ने ''समाज में दास और स्वामी की विचारधारा'' को पैदा किया था और वह भारतीय सामन्ती समाज में ''भुदास (किसान-शिल्पी और खेत मजदूर) तथा स्वामी (योद्धा महाप्रभु और उसके अधीनस्थ सेवक सामन्त) के बीच दास-स्वामी के रिश्ते को कायम करने में बहुत बड़ी और निर्णायक भूमिका निभाया था।

भारतीय सामन्तवाद का समर्थक ब्राह्मण पुनरूत्थानवादी धार्मिक साहित्य दो प्राचीन महाकाव्य (रामायण और महाभारत) धर्मशास्त्र और प्रारंभिक पुराणों में योद्धा महाप्रभु को धरती पर का देवता घोषित करने लगा था। यों बैक्ट्रियन ग्रीक ने अपने को प्रजा का संरक्षक और धर्म का संरक्षक की उपाधि ग्रहण किया, तो कुषाण राजा अपने को 'देव पुत्र' की उपाधि ग्रहण किया था।[2] कनिष्क प्रथम के पुत्र और उत्तराधिकारी हुविष्क के सिक्कों पर राजा को आसमान में घटा (बादल) के बीच से सूर्य की तरह निकलता हुआ दिखलाया गया है। अन्तिम कुषाण शासक ने अपना नाम ही ''वासुदेव'' रख लिया था, यह परम्परा महान् गुप्तों के समय और भी अधिक हो गया था कि शक्ति सूचक नाम के साथ धार्मिक उपाधि ''परमभागवत'' और ''परमेश्वर'' तथा ''पृथ्वीमपति'' धारण करने लगे थे।[3] अतः जिस शक्ति और धार्मिक उपाधि को सामन्ती योद्धा और उनका महाप्रभु धारण करने लगा था, उसका समर्थन ब्राह्मणवादी धार्मिक साहित्य भी करने लगे थे और योद्धा महाप्रभुओं को धरती पर का सबसे शक्तिशाली अपराजेय योद्धा, परमवीर, गेंरा की तरह मोटा और बलवान, सिंह और शेर की तरह झपटा मारने वाला योद्धा की तरह आख्यान का बखान करने लगे थे, ताकि सामान्य जन लाख पीड़ित होने पर भी प्रतिकार करने की हिम्मत नहीं करे।

इसी तरह धार्मिक उपाधियां पीड़ित जनों को प्रतिकार तथा बगावत की शक्ति नहीं दे पाता था, चूंकि ब्राह्मणों में सामन्ती योद्धा और उसके महाप्रभु को धर्मात्मा ही नहीं, देवता के तुल्य देवता घोषित कर दिया था। अतः सामन्ती योद्धा और अपने चारों ओर जैसा

ग्लेमर चाहते थे, प्रारंभिक भक्ति आंदोलन के सूत्रधारों में खासकर पुनरूत्थानवादी ब्राह्मणों ने अपने धार्मिक साहित्यों में रचकर उसको प्रख्यापित किया था। प्रारंभिक भक्ति आंदोलन ने भक्त और भगवान के बीच जो रिश्ता स्थापित करवाये थे, उसी को सामन्ती व्यवस्था की पदानुक्रम श्रृंखला में ही लागू करवाया था कि सामन्ती श्रृंखला का प्रत्येक निचला ओहदे पर स्थापित लोग अपने से ऊपर ओहदा पर स्थापित लोगों को स्वामी मानने लगा था और प्रत्येक ऊपर के ओहदे पर स्थापित लोग निचले ओहदे के लोगों को अपना दास (गुलाम नहीं) मानने लगा था। भगवान भक्त को कष्ट की अग्नि में तपे-तपाया भक्त देखना चाहता है, उसी तरह सामन्ती योद्धा और उनका महाप्रभु अपने अधीनस्थों को तपे-तपाया आज्ञाकारी सेवक के रूप में देखना चाहता था। प्रारंभिक भारतीय भक्ति आंदोलन की धार्मिक विचारधारा का लाभ उस समय (300-650 ई0) का उदित हो रहा सामन्ती व्यवस्था ने उठाया था। अत: प्रारंभिक भक्ति आंदोलन की विचारधारा भारतीय सामन्ती व्यवस्था के उर्ध्वाधर व्यवस्थाओं को हर तरह से लागू करने की तैयारी की पृष्ठभूमि की तैयारी करना रहा था।[4]

प्रारंभिक भक्ति आंदोलन ने एक सामाजिक व्यवस्था को भी तैयार करने का काम किया था। इस सामाजिक व्यवस्था के तहत श्रेष्ठ और हीन की भावना को जन्म देना शुरू किया था। पूजा करने और कराने वाला पवित्र तथा शेष को अपवित्र माना जाने लगा था। इसलिए दूसरी शताब्दी ई0पू0 के बाद लिखे गये धर्मशास्त्र में पूजा-पाठ और धार्मिक उत्सवों में स्त्री और शूद्रों की भागीदारी पर प्रतिबन्ध लगने लगा था। नारी और शूद्रों को एक समान अयोग्य, अपवित्र तथा अधर्मा घोषित किया जाने लगा था। सामन्ती समाज के शीर्षस्थों को भी सामान्य लोगों से अपने को मित्र, विशिष्ट तथा श्रेष्ठ स्थापित करने के लिए इस धार्मिक विभाजन को सामाजिक विभाजन में लागू करना हितकर समझा था। इस काम के लिए पुनरूत्थानवादी ब्राह्मणों का सहयोग और सहारा लिया गया था। बल्कि इस काम में पुनरूत्थानवादी ब्राह्मणों का भी अपना स्वार्थ रहा था। वे जिस वैदिक पितामहों के नाम और विचार पर काम कर रहे थे और इसके लिए नये योद्धा वर्ग से सांठ-गांठ किया गया था कि वे इसको प्रश्रय देने और यह उसके लिए काम करेगा। अत: सामन्ती सामाजिक ढ़ांचा को ऊँच-नीच, छूत-अछूत और पवित्र-अपिवत्र में बिखरने लगा था, जिसके निर्माण में प्रारंभिक भक्ति आंदोलन की पवित्रता (पूजा करने और कराने वाला) और अपवित्रता (पूजा नहीं करने और करवाने वाला) में विभाजन से सामन्ती सामाजिक विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार करने में मददगार सिद्ध हुआ था।[5] इस तरह भक्ति आंदोलन और सामन्तवाद का सामजिक आंदोलन एक ही बनकर उभरा था, यहीं मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का मूल कारण बना था।

प्रारंभिक भारतीय भक्ति आंदोलन ने सामन्ती अद्‌व (शिष्टाचार) की पृष्ठभूमि तैयार किया था। प्रारंभिक भक्ति आंदोलन ने भक्तों के द्वारा भगवान को दण्डवत ही प्रणाम करना, भगवान के सामने पीठ नहीं दिखाना, अद्‌व के साथ पीछे पैर से खिसकना, मंदिर के परिसर में जूता पहन कर प्रवेश नहीं करना, खाली सिर मस्तक नवा कर प्रवेश करना तथा मंदिर के सामने से छाता तानकर, जूता पहनकर तथा किसी ऊँचे वाहन पर चढ़ कर नहीं चलना भगवान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना माना जाने लगा था। इसी अद्‌व को समान्ती महाप्रभु के समक्ष उसके अधीनस्थ योद्धा, कर्मचारी और सेवक प्रदर्शित करने लगे थे। चूंकि प्रचारित किया गया था कि नैसर्गिक ऐश्वर्य भगवान की अराधना और प्रसन्नता से प्राप्त होता है, तो सांसारिक ऐश्वर्य और खुशहाली सामन्ती महाप्रभु और उसके अधीनस्थ सरदार की दया और कृपा से किसान-शिल्पी और खेतीहर मजदूर कर और उत्पीड़न का बोझ कम हो सकता है। इसलिए जैसे भगवान के प्रति इच्छित फल की प्राप्ति न होने पर सामंतों से नारूष्ढ़ नहीं हुआ जाता है, उसी तरह उत्पीड़न कम नहीं होने पर भी नारूष्ढ़ न होने का अद्‌व भक्ति आंदोलन ने जन सामान्य को सिखलाया था। यही कारण है कि भारतीय सामन्तवाद के लाख उत्पीड़न झेलने के बाद भी भारतीय किसान-शिल्पी और खेत-मजदूरों का इक्के-दुक्के बगावत का प्रमाण, वह भी प्रारंभिक मध्यकाल (700-1200 ई0) में मिलता है।[6] इस तरह भक्ति आंदोलन ने भारतीय किसान-शिल्पी और मजदूरों को ऐसा धार्मिक दब्बू बना दिया था कि लाख उत्पीड़न को अपना नियती मान कर उस भरोसे मृत्यु को गले लगाता है।और भाग्यवाद या नियतिवाद जो भारतीय धर्म का दर्शन बनता चला गया, उसके तहत किसान, शिल्पी और खेत-मजदूरों में कमी आया ही नहीं।

इस तरह प्रारंभिक भक्ति आंदोलन धार्मिक अद्‌व या शिष्टाचार को पैदा और प्रचलित कर भारतीय सामन्तों के लिए अद्‌व तथा शिष्टाचार की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक रहा था कि महाकाव्यों, धर्मशास्त्रों और प्रारंभिक पुराणों में उसे सामन्ती अद्‌व तथा शिष्टाचार में तब्दील कर दिया, जिससे सामन्ती उत्पीड़न से प्रतारित जन धार्मिक और संस्कार बस दब्बु बन गया।

संदर्भ ग्रंथें और टिप्पणियां

01. तिलक- गीता रहस्य- पुना- 1916, पृ0- 67-67
02. पी0वी0 काणे- धर्मशास्त्र का इतिहास- प्रथम खण्ड- पृ0- 102-05
03. ई0जे0 रेप्सन - इपीग्राफिया, इंडिया खण्ड का अनुवाद श्री राम गोपाल- राजस्थान- 1967, पृ0- 118-20
04. डी0एन0झा - "यूडल ऑडर- स्टेट, ऑडर, सोसायटी एण्ड आइडियोलॉजी-नई दिल्ली 2002 , पृ0- 140-41
05. वासुदेव उपाध्याय- प्राचीन भारतीय सिक्के, पटना- 1972, पृ0- 136-37
06. रामशरण शर्मा- भारतीय सामंतवाद, पृ0- 176-79

भारत विभाजन पर आधारित हिंदी उपन्यासः एक अवलोकन

शरिफुज जामान

शोधार्थी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

डॉ० रीतामणि वैश्य

विभागाध्यक्ष एवं सहयोगी अध्यापक, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

15 अगस्त सन् 1947 में द्विराष्ट्रीय सिद्धांत को आधार बनाकर भारतवर्ष का विभाजन किया गया था। भारत विभाजन की प्रक्रिया को इतनी जल्दबाजी में पूरी की गई थी कि लोग हतप्रभ-से देखते रह गये। इससे पहले कि लोग अपने भविष्य के बारे में कोई सुव्यवस्थित निर्णय ले पाते, उन्हें अपने वतन से विस्थापित होना पड़ा था। भले ही भारत का विभाजन सन् 1947 को हुआ लेकिन इसके लिए जिस भूमि निर्माण हुआ, उसकी नींव मुस्लिम लीग की प्रतिष्ठा के समय में ही डाली जा चुकी थी। लीग की दलील थी कि हिंदू और मुस्लिम दोनों की संस्कृति अलग है, जीवनदृष्टि अलग है , रहन-सहन, खान-पीन अलग है। पर वास्तविकता यह थी कि भारत के दोनों समुदाय अंग्रेज साम्राज्यवाद के शिकार थे। बीसवीं सदी की शुरूवात में देश से अंग्रेज शासन को उखाड़ फेंकने का आंदोलन बुलंद पर था। अंग्रेजों को पता था कि देश के हिंदू-मुस्लिम एकत्रित होकर उनके खिलाफ लड़े तो उनके लिए भारत में बने रहना नामुमकिन है। इसलिए अंग्रेजों के द्वारा आजादी के आंदोलन को कमजोर बनाने के लिए सांप्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया गया था। आखिर अंग्रेजों की कूटनीति ने हिंदुस्तान को विभाजन की ओर मोड़ दिया था। इससे सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्र और कौम संबंधी जो भारतीय अवधारणाएँ थी, उनमें भारी बदलाव आया।

भारत विभाजन विषय पर हिंदी उपन्यासकारों ने अनेक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में विभाजन के दौरान आम जनता के जीवन में आए मानसिक परिवर्तनों को उभारा गया है। ये उपन्यास हमें बताते हैं कि विभाजन के दबाव के तले पिसकर आम जनता की क्या स्थिति हो गयी थी, किस प्रकार हर वक्त वे खतरे की शंका में काँपते रहते थे, गैर-कौम बहुल इलाके में किस तरह डरा हुआ रहता था और वहीं व्यक्ति किस तरह अपने इलाके में आकर शक्ति प्रदर्शन करता था। इस मानसिकता का अत्यंत यथार्थपरक चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है। यहाँ एक बात उल्लेख करना आवश्यक होगा कि भारत विभाजन पर आधारित उपन्यासों के ज्यादातर उपन्यासकार तत्कालीन पंजाब से जुड़े हुए थे तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभाजन की पीड़ा के भोगी थे।

भारत विभाजन विषय पर उपन्यास लिखने की परंपरा देश विभाजन और आजादी के एक साल बाद रामानन्द सागर के उपन्यास 'और इन्सान मर गया' (1948) से शुरू होता है। चार खण्डों में विभाजित इस उपन्यास के संबंध में डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे ने लिखा है –

> *विभाजन के तुरंत बाद विभाजन के विषय पर लिखी गई यह पहली कृति है। इसके कारण इसका ऐतिहासिक महत्व भी है। (रणसुभे 1987:129)*

उपन्यासकार ने पूरे उपन्यास में कही भी भारत विभाजन के कारणों की खोज नहीं की। विभाजन का अंतिम निर्णय तय होने के बाद पंजाब में सांप्रदायिक उन्माद के परिणामस्वरूप हुई क्रूरता और अत्याचार के साथ-साथ सहज मानवीयता का हूबहू चित्रण हुआ है।

सन् 1953 में इस परंपरा के दो उपन्यास क्रमशः अमृत राय का 'बीज' और गुरुदत्त का 'देश की हत्या' प्रकाशित हुए। तत्कालीन राजनैतिक पृष्ठभूमि और मध्यमवर्गीय समाज जीवन पर आधारित 'बीज' उपन्यास का मुख्य केंद्र इलाहाबाद है। इसमें सन् 1940 से लेकर 1950 तक की कथावस्तु को बयालीस अध्यायों में समेटा गया है। भारतीय इतिहास के ज्वलंत कालखण्ड से संबंधित होने के बावजूद भी इस उपन्यास में तत्कालीन प्रमुख राजनैतिक घटनाओं का अभाव है। विभाजन के पूर्व और विभाजन के बाद जो सांप्रदायिक माहौल बन गया था इसका भी चित्रण उपन्यास में कम हुआ है।

'देश की हत्या' उपन्यास में 15 दिसम्बर 1946 से 10 फरवरी 1948 तक की घटनाओं को प्रस्तुत किया गया। कथानक का केंद्र लाहौर है। उपन्यासकार गुरुदत्त ने विभाजन के कारक समस्याओं को इसमें चर्चा की है। उपन्यास का पात्र पागल जगदेव सिंह सोचता है कि देश विभाजन के लिए जिम्मेदार कौन है? काफी सोच-विचार करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि गाँधीजी ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। इसलिए वह गाँधीजी को हत्या करना चाहता है। आर्य समाजी विचारधारा से प्रभावित गुरुदत्त देश विभाजन के लिए गाँधीजी की नीति, मुसलमान, और अंग्रजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति को जिम्मेदार मानते हैं।

हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक घटनाओं पर आधारित भारत विभाजन के सात साल बाद सन् 1954 में प्रकाशित 'धर्मपुत्र' चतुरसेन शास्त्री का एक लोकप्रिय उपन्यास है। उपन्यास का केंद्र दिल्ली है। इसमें देश विभाजन के पूर्व, देश विभाजन के समय और देश विभाजन के बाद के हिंदू-मुसलमानों के संघर्ष का चित्रण हुआ है। विभाजन के बाद भी दोनों देशों में काफी मात्रा में भयानक हत्याकाण्ड हुए। माहौल ऐसा बन चुका था कि हिंदू बहुल इलाके से मुसलमानों को और मुसलमान बहुल इलाके से हिंदू और सिक्खों को भागना पड़ा था। लाखों की तदाद में लोग बेघर हुए। उन बेघर लोगों की मानसिक पीड़ा को उपन्यास में उजागर किया गया। उपन्यास के अंत में डॉ. अमृत राय और उनकी पत्नी के माध्यम से धर्म से परे जो सहज मानवीय संबंध होते हैं उसे दिखाया गया है। शास्त्री का यह लोकप्रिय उपन्यास सन् 1961 में फिल्म बना, जिसका निर्देशन यश चोपड़ा ने किया था।

विभाजन की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित सन् 1958 में प्रकाशित 'निशिकांत' विष्णु प्रभाकर का पहला उपन्यास है। कथावस्तु भारत की राजनीति में गाँधीजी के आगमन (1820) से लेकर द्वितीय महायुद्ध छिड़ने (1939) तक फैला हुआ है। यह उपन्यास न तो देश विभाजन की राजनीति से संबंध रखता है और न ही विभाजनोंपरांत परिणामों से। इसमें विभाजन पूर्व स्थिति का चित्रण हुआ है। जिन दिनों देश में सर्वाधिक दंगे हुए थे जिसके कारण हिंदू और मुसलमानों में अलगाव की भावना बढ़ी थी। प्रारंभ में इस अलगाव की भावना को उपन्यासकार ने सामाजिक जीवन में और परवर्ती समय में राजनीतिक जीवन में भी उभारा है, जिसका संयुक्त परिणाम देश विभाजन था।

सन् 1958 में प्रकाशित 'झूठा-सच (वतन और देश)' मार्क्सवादी साहित्यकार यशपाल का बहुचर्चित उपन्यास है। उपन्यास में देश विभाजन के पूर्व हिंदू-मुस्लिम संघर्ष को राजनीतिक परिप्रेक्ष में चित्रित किया गया। कथानक के अंतर्गत मार्च 1947 से अगस्त 1947 तक के लाहौर को इसमें समेटा गया है। सांप्रदायिकता की जहर में छटपटाता निम्न-मध्यवर्ग, व्यापारी, स्त्री और नौकरी पेशा वर्ग की तत्कालीन समय में जो स्थिति हुई उसका चित्रण उपन्यास में किया गया है। दंगा और धर्म की दुहाई देकर हिंदू-मुस्लिम द्वारा की गई अमानुषिकता, बर्बरता, विभाजन की आग में लोगों का झुलसना आदि का विशद चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक सांप्रदायिकता के आधार पर देश के विनाश और वतन की परिकल्पना को व्यंजित करते हैं। देश विभाजन से निर्वासितों को देश तो मिला परंतु उनका वतन छीन लिया गया। उपन्यास के अंत में ड्राइवर द्वारा कहा गया यह संवाद उपन्यास की सारी संवेदना उजागर करता है-

"वह काफिला भी वतन छोड़कर अपने देश जा रहा है। मनुखों के देश धर्म के देश बन गये।".... "रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उन्हें दो कर दिया।"(यशपाल 2016:415)

सन् 1960 में यशपाल का 'झूठा-सच' (देश का भविष्य) यानी 'झूठा-सच' का दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। यहाँ के पात्र अधिकतर प्रथम भाग के ही हैं। उपन्यास में घटित घटनाओं का केंद्र जलंधर और दिल्ली है। यह उपन्यास स्वतंत्र भारत की बदलती तस्वीर को प्रस्तुत करता है। विभाजनोंपरांत भारत की सीमा में पहुँचे शरणार्थियों की स्थिति, हिंदुओं में प्रतिरोध की वृत्ति, शिविरों तथा कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, हिंदू स्त्री की दारुण स्थिति, उजड़े हुए लोगों के पुनर्स्थापन आदि का चित्रण इस खंड में मिलता है। 'झूठा-सच' प्रथम खण्ड में शरणार्थी और उनके शिविरों का संकेत मात्र होता है परंतु दूसरे खण्ड का प्रारंभ ही शरणार्थियों की स्थितियों से होता है।

इस परंपरा के अन्य एक उपन्यास 'सती मैया का चौरा' है। प्रगतिशील साहित्यकार भैरवीप्रसाद गुप्त द्वारा लिखित सन् 1959 में प्रकाशित उपन्यास है। उत्तर प्रदेश के पिपरी गाँव को केंद्र में रखकर शब्दबद्ध किए गए इस उपन्यास में उस गाँव के जन्म से लेकर सन् 1957 तक की कथावस्तु को सम्मिलित किया गया। गाँव के हिंदू-मुसलमान बहुत ही मिलनसार थे। विभाजन के पूर्व हिंदू और मुसलमानों के कुछ सांप्रदायिक शक्तियाँ गाँव को निगल लेती हैं। लोगों में अलगाव की भावना पनपती है। वर्षो से बड़े प्यार से रह रहे ग्रामीण हिंदू-मुस्लिम बन जाते हैं। पिपरी गाँव के बहाने देश विभाजन के कारणों को खोजी गई है।

आजादी के आठ साल बाद लिखे गये सन् 1955 में प्रकाशित 'तट के बंधन' विभाजन के समय स्त्रियों की दूर्गति पर आध ारित विष्णु प्रभाकर की विशिष्ट उपलब्धि है। कथा का केंद्र स्वतंत्रता के बाद का भारत है। इस उपन्यास में नीलम और जमना नामक दो अभागिन स्त्रियों की मार्मिक कथा का चित्रण हुआ है। आजादी के दिनों पंजाब में हुए मारकाट और अफरा-तफरी के माहौल में हरिया नामक एक डाकू गुलेखाँ को उठाकर ले आता है। गुलेखाँ मूलत: एक मुस्लिम लड़की थी जिसका घर पंजाब के उस प्रांत में है जो विभाजन के बाद पाकिस्तान का हिस्सा बन जाता है। देश विभाजन के समय जबरदस्ती उसका धर्म परिवर्तन करवाया जाता है और गुलेखाँ से वह 'जमना' बन जाती है। डाकू हरिया उससे विवाह कर लेता है और इस तरह जमना डाकुओं की भाभी बन जाती है। एक दिन पुलिस जमना, हरिया समेट अन्य कुछ डाकुओं को पुलिस पकड़कर ले जाती है। पूछताछ के दौरान पुलिस को जमना के जन्मस्थान के बारे में पता चला। पुलिस उसे पाकिस्तान भेजने की व्यवस्था करती है क्योंकि वह मुसलमान है और उसकी शादी पाकिस्तान बनने के बाद हुई। पति-पत्नी के पवित्र रिस्ते को भी विभाजन के दिनों नकारा जा रहा था। ऐसे मार्मिक प्रसंगों को इसमें स्थान दिया गया है।

'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा की अन्यतम उपन्यास कृति है। सन् 1961 में प्रकाशित इस उपन्यास में सन् 1885 से 1930 तक के पैतालीस वर्ष का इतिहास को रखा गया है। उपन्यासकार वर्माजी ने विभाजन पूर्व सांप्रदायिकता को इसमें बड़े रोचक ढंग से उपस्थापन किया है। अंग्रेज कभी हिंदुओं का पक्ष लेकर कभी मुसलमानों का पक्ष लेकर आपस में लड़वा रहे थे ताकि वे अंग्रेजों के खिलाफ एकत्रित न हो पाए। अंग्रेजों की इस 'फूट डालो राज करो' नीति का यथार्थपरक विवेचन किया है। यही नीति आगे जाकर देश विभाजन का कारण बनी।

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सन् 1966 में प्रकाशित 'जुलूस' बंगाल विभाजन पर आधारित है। इसके रचयिता फणीश्वर नाथ रेणु है। उपन्यास का केंद्रस्थल बंगाल और बिहार है। पाकिस्तान निर्माण के समय बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप पूर्व बंगाल के शरणार्थी बिहार में आकर बस गये थे। लेकिन वहा उन्हें देश की मिट्टी की खुशबू नहीं मिलती। बिहार के मूल निवासियों द्वारा उन्हें विदेशियों का सा व्यवहार किया जाता है। इन शरणार्थियों की मनोस्थितियों से उपन्यास का ताना बाना बुना गया।

विभाजनकालीन मुस्लिम जीवन की त्रासदी पर आधारित सन् 1966 में प्रकाशित 'आधा गाँव' राही मासूम रजा का बहुचर्चित उपन्यास है। इसका कथानक उत्तर प्रदेश के गाजीपुर का एक देहात गंगौली की भौगलिक सीमा के ईर्द-गिर्द बुना गया। इस उपन्यास में विभाजनकालीन भारत की सामाजिक, राजनैतिक चेतना उभरकर आयी है। शिया मुसलमानों पर केंद्रित यह उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन तथा भारत विभाजन का ऐतिहासिक साक्ष्य है। देश के बँटवारे के समय मुसलमान लोग दुविधा में पड़ जाते हैं कि वे भारत को अपनाए या पाकिस्तान के हो जाए। इस दुविधा की मनोस्थिति को उपन्यासकार रजा ने आधा गाँव के लोगों के माध्यम से उजागर किया है।

सन् 1971 में प्रकाशित कमलेश्वर का लघु उपन्यास 'लौटे हुए मुसाफिर' में एक छोटी-सी बस्ती के निम्न-मध्यवर्ग और मजदूरों में विभाजन पूर्व, विभाजन के दिनों तथा विभाजन के पश्चात जो सूक्ष्म परिवर्तन हुए उसकी गाथा प्रस्तुत की है। पूर्व दीप्त शैली में लिखे गये इस उपन्यास में सन् 1857 से सन् 1961-62 तक के काल को स्वीकारा गया है। कथावस्तु में क्रमबद्धता का अभाव है। एक बस्ती के छोर पर स्थित मुसलमान चिकवों की बस्ती का चित्रण है। विभाजन पर आधारित उपन्यासों में प्राय: देखा जाता है कि कथानक लाहौर अथवा पंजाब की पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। परंतु विषय की समानता होते हुए भी इस उपन्यास की पृष्ठभूमि एक छोटी-सी बस्ती है, जो लाहौर अथवा पंजाब के अधीन नहीं है। प्रस्तुत उपन्यास 116 पृष्ठों का हैं। पृष्ठ संख्या 1 से 94 तक सन् 1945 तक और बाद के पृष्ठों में सन् 1950 के बाद का चित्रण है। उपन्यास में सन् 1946 से 1948 तक की घटनाओं का संकेत मात्र मिलता है। उपन्यास का प्रारंभ वर्तमान से होता है और प्रथम संवाद से ही विभाजन कालीन सांप्रदायिक नफरत का आभास मिलता है -

सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था। यह वही बस्ती है जिसने अट्ठारह सौ सत्तावनमें अंग्रेजों से लोहा लिया था। हर कौम और हर मजहब के लोगों ने कंधे से कंधे मिलाकर गोलियों की बौछार सीनों पर झेली थी। (कमलेश्वर 2015:7)

भारत विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित 'तमस' भीष्म साहनी का एक सफल उपन्यास है। भारत विभाजन के पचीस साल बाद सन् 1972 प्रकाशित हुआ। इसका कथाक्षेत्र अविभाजित भारत का पंजाब है। इसमें केवल पाँच दिनों की घटनाओं को समेटी गई है। इक्कीस प्रकरणों में व्याप्त इस उपन्यास को दो खण्डों में बाँटा गया है। प्रथम खण्ड के कूल तेरह प्रकरण में पहले दिन की सुबह चार बजे से लेकर दूसरे दिन की दोपहर तक लगभग 30-35 घंटों का चित्रण है। किस तरह एक मामुली घटना को लेकर सांप्रदायिकता की आग फैली इसका भयावहता का चित्रण इस खण्ड के अंतर्गत हुआ है। दूसरे खण्ड में क्रूर शक्तियों और मानवीय शक्तियों का चित्रण हुआ है। शहर की इस घटना की प्रतिक्रिया गाँवों में भी होती है। सरकार द्वारा शरणार्थियों के लिए रिलिफ कैंप खुली जाती है। कैंप में पनाह लिए हुए अल्पसंख्यकों की मानसिक दशाओं का चित्रण इस खण्ड में किया गया। सन् 1986 में इस उपन्यास पर फिल्म बनी जिसका निर्देशक गोविंद निहलानी का था। उपन्यासकार भीष्म साहनी ने हरनाम सिंह का किरदार निभाया था।

साहित्य-अकादमी द्वारा पुरस्कृत सन् 1974 में प्रकाशित 'मेरी तेरी उसकी बात' यशपाल का विशालकाय उपन्यास है। 'झूठा-सच' उपन्यास के दोनों खण्डों में यशपाल ने देश विभाजन से उत्पन्न त्रासदियों का चित्रण किया है। परंतु इस उपन्यास में उन्होंने देश विभाजन की त्रासदियों का चित्रण न करके देश विभाजन के कारणों पर चर्चा की है। उपन्यास की घटनाएँ प्रथम विश्व युद्ध के अंत से लेकर द्वितीय महायुद्ध के अंत (1945) के कालखण्ड से संबंध रखता है।

पंजाब की धरती पर लिखित बलवंत सिंह का 'काले कोस' सन् 1999 में प्रकाशित हुआ। उपन्यासकार बलवंत सिंह ने इसमें स्पष्ट किया है कि देश विभाजन की त्रासदी उन लोगों को ज्यादा झेलनी पड़ी जो गाँवो के निवासी और राजनीति शब्द से अनजान हैं। शहरों में सांप्रदायिक दंगे की भयावहता उतनी नहीं थी जितनी गाँवों में थी। पंजाब के देहातों में सदियों से हिंदू-मुसलमान सौहार्द पूर्ण भाव से जीते आ रहे थे। कही पर भी हिंदू-मुसलमानों में तनाव की स्थिति पैदा नहीं हुई थी। जैसे ही 'पाकिस्तान' शब्द का प्रवेश भारतीय राजनीति में होता है, तो धीरे-धीरे देश के जिन हिस्सों में सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए थे, वहाँ भी तनाव उत्पन्न हो गया था। पंजाब के देहातों को भी इससे छूटकारा नहीं मिला। परवर्ती समय में इस सांप्रदायिकता ने लाखों लोगों को अपने घर और देश से विस्थापित कर दिया था।

सन् 1986 में प्रकाशित 'शहर में कर्फ्यू' विभूति नारायण राय का एक लघु उपन्यास है। उपन्यास का केंद्र इलाहाबाद है। उपन्यास उन मुसलमानों की गाथा है, जो देश विभाजन के बाद पाकिस्तान जाने के लिए इंकार करते हैं। यहाँ उन्हें शक की निगाह से अथवा दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में देखा जाता रहा। उन्हें पाकिस्तानी कहकर पुकारा जाता रहा है। भले ही इसकी कथावस्तु विभाजन के समय से ताल्लुक नहीं रखती हो, फिर भी देश विभाजन के दिनों जो सांप्रदायिक विचार का विकास हुआ था, उसका चित्रण उपन्यास में दिखाया गया है।

सन् 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त 'कितने पाकिस्तान' (2000) कमलेश्वर का लिखा हुआ एक प्रयोगवादी उपन्यास है। देश की आजादी और देश का विभाजन बीसवीं सदी की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इन दो बड़ी घटनाओं ने हिंदुस्तान की जनता और इतिहास की दिशा को बदल दी। देश विभाजन से उत्पन्न त्रासदी को कमलेश्वर ने अपने नजरिये से वर्णन किया है। उन्होंने जाति, देश और धर्म की मान्य परिभाषाओं को कठघरे में खड़ा कर दिया। वे उन शक्तियों को तलाशते हैं, जो धर्म और जाति के नाम पर नफरत फैलाती है, एक-दूसरे का खून बहाती हैं , लोगों में जहर घोलती हैं, इंसान को बर्बर बना देती हैं। धर्म बड़ा है या इंसानियत? प्रेम महान है या घृणा? धर्म का मकसद क्या है? इन तमाम सवालों का जवाब 'कितने पाकिस्तान' में खोजने का प्रयास किया गया है।

भारत विभाजन के सत्तर साल बाद लिखा गया 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' कृष्णा सोबती का अंतिम उपन्यास है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् 2017 है। आत्माकथात्मक शैली में लिखित देश विभाजन की पीड़ा बयान करता इस उपन्यास के केंद्र में बाईस- तेईस वर्ष की लड़की है। दरअसल वह बाईस-तेईस वर्ष की लड़की कोई अन्य पात्र नहीं उपन्यासकर कृष्णा सोबती ही हैं। कृष्णा सोबती पाकिस्तान के गुजरात में पैदा हुई थी और देश विभाजन के दिनों लाहौर और दिल्ली होती हुई भारत के गुजरात के

एक शिशुशाला में पढ़ाने के लिए पहुँच जाती हैं। उपन्यासकार ने विभाजन की त्रासदी को न केवल करीब से देखा बल्कि भोगा भी है। देश विभाजन ने करोड़ों लोगों को हर तरफ से तोड़ दिया था, उन्हें अपनी जमीन से उजाड़ा था। इस त्रासदी का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में देश विभाजन पर आधारित उपन्यासों की लंबी परंपरा रही है। इस परंपरा के ज्यादातर उपन्यासकार तत्कालीन पंजाब से न केवल परिचित थे अपितु उन दिनों वहाँ के निवासी थे। दो-चार उपन्यासकारों को छोड़कर शेष उपन्यासकारों ने देश विभाजन का दर्द न केवल करीब से देखा है, बल्कि भोगा भी है। भारत विभाजन से संबंधित उपन्यास आज हमारे सामने एक इतिहास के रूप में प्रस्तुत हैं। इस प्रकार के साहित्य ने सामाजिक विकास के क्रम में प्रगतिशील भूमिका निभाई है।

ग्रंथसूची:

कमलेश्वर. लौटे हुए मुसाफिर. नया संस्करण. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2015।

तिवारी, रामचन्द्र. हिंदी का गद्य साहित्य. द्वादश संस्करण. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2018।

नगेंद्र, संपा. हिंदी साहित्य का इतिहास. चवालीसवां संस्करण. नयी दिल्ली: नेशनल पाब्लिशिंग हाउस, 2013।

यशपाल. झूठा-सच. दूसरा संस्करण. भाग. 2. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2016।

---. झूठा-सच. दूसरा संस्करण. भाग. 1. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2016।

रजा, राही मासूम. आधा गाँव. चौदहवीं संस्करण. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015।

राय, विभूति नारायण. शहर में कर्फ्यू. द्वितीय संस्करण. दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2014।

साहनी, भीष्म. तमस. बत्तीसवाँ संस्करण. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2015।

सूर्य नारायण रणसुभे. देश विभाजन और हिंदी कथा साहित्य. प्रथम संस्करण. कानपुर: संचयन, 1987।

सोबती, कृष्ण. गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान. प्रथम संस्करण. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2017।

हरियश. भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास. दिल्ली: अनन्या प्रकाशन, 1986।

प्रेमन्द के साहित्य में जातीय एवं धार्मिक शोषण का स्वरूप

अंकिता कुमारी

शोधार्थी, कला संकाय हिन्दी विभाग, कुमाऊ विश्व विद्यालय (नैनीताल)

जगजीवन राम छुआछूत या जातीय समस्या का उद्‌भव भारतीय समाज की उस व्यवस्था में देखते है, जिसमे समाज वर्णो मे विभाजित हुआ। उनकी अवधारणा मे वर्ण व्यवस्था और उनके परिणाम स्वरूप छुआछूत की प्रथा भारत की एक अनूठी सामाजिक वास्तविकता है। जिसकी जटिलता आसानी से समझ मे नही आती वर्ण व्यवस्था की जड़े अतीत के अंधकार मे कही छुपी है। वर्ण व्यवस्था की रूप रेखा स्पष्ट है। और उसके बारे में कोई मतभेद नही है। सामाजिक विकास के प्रारंभिक चरण मे समाज का वर्गो या व्यवसाय के आधार पर अलग-अलग समूहो मे बट जाना अनिवार्य ही था और यह वर्ग अथवा समूह पीढी दर पीढी चलते रहे।

कबीलों की एक विशेषता यह है कि रोटी और बेटी के रिश्ते उनमें अपने तक ही सीमित रहते है। जब राष्ट्रों ने जन्म लिया तो बहुत से कबीले या जातियाँ थी। जिनमे एक दूसरे के प्रति अत्यधिक घृणा और द्वेष की भावना विद्यमान थी। यद्यपि ये कबीले एक जैसी भाषा बोलते थे और एक दूसरे से मिलते हुए क्षेत्रो मे रहते थे। पर उनमें परस्पर शादी विवाह नही होते थे।

अपनो के साथ रोटी का रिश्ता अथार्थ अपने ही लोगो को ही खान-पान मे शामिल करना इसलिए नही था कि दूसरो के साथ बैठ कर खाने पीने से भ्रष्ट होने का डर था बल्कि इसीलिए कि वे कठोर परिश्रम से जुटाये अन्न का सदुपयोग करना चाहते थे इस ऐतिहासिक परिपेक्ष्य मे जातियों के उद्‌भव की प्रमाणिकता के संबंध मे जग जीवन राम कई ऐतिहासिक तथ्यों को दधृत करते हुए दर्शाते है कि जातिया कभी भी विशुद्ध रूप से वर्तमान में नही रही है। उनमें दूसरी जातियों के समागम की परम्परा भी बहुत पुरानी है। संभवत: जाति प्रथा के उदय के बराबर पुरानी।

जब आर्य लोग भारत आये तो वे जाति मे ही विवाह करने की स्थिति मे आगे बढ़ चुके थे उनमे तीन ही वर्ग थें। जो व्यवस्थापरक थे - पुरोहित के योद्धा और कारीगर। इस त्रिवर्ण समाज मे वर्ण का अर्थ एक विशेष समाजिक कृत्या और सांस्कृतिक तथा जीवन शैली का अपना-अपना अलग स्तर था। मनुस्मृति के अनुसार वर्ण व्यवस्था समाज में आदेश और नियमितता स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया। यह अवधारणा 3000 साल पुरानी है। ऐसा कहा जाता है यह लोगों को उनके धर्म एवं कर्म के आधार पर अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित करता है। इस तरह हम देखते है कि जाति व्यवस्था अति प्राचीन काल से हमारे देश मे प्रचलित रही है जैसे ही वर्ण व्यवस्था जाति प्रथा मे बदल गई जातिगत आधार पर भेदभाव की शुरूआत हो गई उच्च जाति के लोग महान समझे जाते थे। और अनेक साथ समान से पेस आया जाता था वही निम्न जाति के लोगों को कदम कदम पर अपमानित किया जाता था कई मायनो में जाति व्यवस्था गंभीर समाजिक भेदभाव और शोषण का सबसे अच्छा उदाहरण है कलांतर मे समाज मे जो वर्ण व्यवस्था थी वही प्रेमचंद के युग मे जाति व्यवस्था मे बदल चुका था वर्ण के निश्चय क्रम के अनुसार ना होकर जन्म के अनुसार होने लगा था विभिन्न वर्णो मे ऊच निच की भावना विद्यमान थी। एक जाति के लोग अपने को उच्च और दूसरी जाति को नीच समझते थे। खान पान में विभिन्न वर्ण हुआ छुत मानते थे यह छुआ-छूत और उच्च नीच की भावना समाज की एकता और संगठन में अनेक प्रकार से बाधक थे प्रेमचंद के समय मे जाति व्यवस्था अत्यंत ही सोचनीय दशा मे थी। समाज के निम्न जाति के लोगों का जीवन अत्यंत ही कष्ट दायक था। समाज मे नीच एवं घृणित सेवाए करने वाले वर्ग को स्पृष्य कहा गया इन स्पृष्यों की दशा अत्यंत ही सोचनीय थी अछूतो को समाज के सब प्रकार के अधिकारों से वंचित किया जाता है। उनके जीवन पर अनेक प्रकार के समाजिक धार्मिक तथा आर्थीक प्रतिबंध लगे हुए थे। जाति के नाम पर समाज मे भ्रष्टाचार और शोषण का बोल बाला

था ये लोग हिन्दू धर्म के होते हुए भी हिन्दू देवी देवताओं के मंदिरों नही जा सकते थें। प्रेमचंद्र इसी समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहते है वर्ण वाले हिन्दु स्त्री पुरूष बड़ी श्रद्धा से देवी के चबुतरे पर जाते है। वहां बतासे धुप दीप फुल माला चढाते है जब वर्ण वाले हिन्दुओं को हरिजनों इन देवताओं की उपासना करने और हरिजनों को अपना पुरोहित बनाने मे शर्म नही आती। घृणा का भाव तो वहा आयी नही सकता तो हम नही समझते कि हरिजनों के हिन्दु मंदिरों मे आ जाने से कौन सा अधर्म हो जायेगा। प्रेमचंद के विचार पृष्ट -433 अछूतो के मंदिर मे प्रवेश की समस्या को प्रेमचंद ने कर्म भूमि उपन्यास मे सफलता पूर्वक चित्रित किया है। कर्म भुमि में हरिजनो के मंदिर में प्रवेश को लेकर हुए आंदोलन का नेतृत्व डाक्टर शान्ति कुमार और सुखदा करते है और हरिजनों को मंदिर में प्रवेश की अनुमति मिल जाती है। प्रेमचंद अपने आदेशों को अमरकांत के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते है कि मै जात पात नही मानता माता जी जो सच्चा है वह चमार भी है। तो आदर के योग्य है। जो ठगाबाज झुठा लंपट हो वों ब्राहम्ण भी हो तो आदर के योग्य नही प्रेमचंद्र ने कर्म भुमि मे जिस बड़ी बात की और संकेत किया है वह है - एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को बराबर समझें- मानवें सामाजिक मंदिर में प्रवेश को लेकर अछूतो के साथ किस तरह निर्दयता पूर्वक व्यवहार किया जाता था उसको अत्यंत यथार्थ रूप मे प्रेमचंद की कहानी मंदिर में देखा जा सकता है। सुखिया का बच्चा बिमार है वह ठाकुर राजी चरणों मे डालना चाहती है। पूरे गॉव छान आयी कही भी पैसे उधार ना मिले आखिर वह चॉदी के कड़े उतार कर बनिये के यहॉ धर आयी दो रू0 मिले एक मे पुजा की समाग्री जुटायी और दूसरा रू0 पण्डित जी को देने के लिए रखा बच्चे को गोद मे उठाये मंदिर पहुची पण्डित जी से बोली ठाकुर राजी के चरणों मे गिरने ना दोगे महाराजजी? बड़ी दुखिया हूॅ। उधार काढ कर पुजा की समाग्री जुटायी है किन्तु पण्डितजी का मनना पिघल जाय बेचारी अपने मन को समझाती वे घर लौट आयी इस कहानी मे हम अछुतो के प्रति धर्म के ठेकेदार पाणे पुजारियों की निर्दयता का पता चलता है। तथा आर्थीक हर दृष्टि से प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में पण्डित मातादीन और शिलिया चमारिन प्रसंग द्वारा इस शोषक (श्रण) वर्ग का शोषित अछूत वर्ग के प्रति दृष्टिकोन की कलायी खोल कर रख दी है। सिलिया (चमारिन) के साथ पण्डित दातादीन के बेटे मातादीन के अबैध संबंध है। सिलिया दीन रात उसके खेतों में काम करती है। परंन्तु मातादीन उसे काम करने वाली मशीन के अलावा और कुछ नही समझता मातादीन के जिस खेत मे सिलिया दिन-रात मेहनत से काम करती है, उसी खेत से उपजे हुए अन्न में से दो मुठ्ठी भी लेने का अधिकार नही है। उसे सिलिया के पुछने पर मातादीन कहता है नही तुझे कोई आख्तीयार नही है। काम करती है। खाती है जो तुम चाहे कि खा भी लुटा भी तो यह ना होगा।

मातादीन और सिलिया के अबैध संबंध से एक अबैध पुत्र भी है लेकिन इस स्थिति मे भी वह उससे शादी करने को तैयार नही है। विडम्बना की बात तो यह है कि खाने-पीने मे छूत मानने वाले लोगों को जिस्म के साथ खिलवाड़ करने मे कोई छूत नही लगती। शारिरिक संबंध रखने पर उसे ब्राहमणत्व पर कोई ऑच नही आती किन्तु शादी करने पर ब्राह्मणत्व नष्ट होने का खतरा है। समाज के ऊंच जाति के लोग निम्न जाति के नाम पर उनकी स्त्रियों के साथ भी दुर्व्यवहार करते जिसको वे अपना अधिकार समझते थें ऊॅची जाति के लिए किसी दलित की लड़की या स्त्री जबरदस्ती ले जाना, उसके साथ बलात्कार करने या अपनी वासना तृप्त करना कोई जुर्म नही समझा जाता था। इस समस्या मे लिखी गई उनकी कहानी घासवाली अपने उद्देश्य मे पूर्णतः सफल है।

भारतीय जाति व्यवस्था का आध धार्मिक रहा। जिसके अनुसार ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ होता है ये लोग अन्य जातियो के साथ चाहे जैसा भी व्यवहार करे परंतु उसको कष्ट देने से पाप लगता हैं। सैकड़ो वर्षो से भारतीय समाज में ऐसी परंपरा रही है जिसके कारण ब्राह्मण का शोषण बैद्य माना जाता है। प्रेमचंद पहले ऐसे लेखक है। जिन्होने धर्म के नाम पर किए गए इस शोषण को भी शोषण के रूप मे दिखाया शोषण का यह रूप अन्य सभी प्रकार के शोषण से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योकि स्वयं शोषित इसे शोषण ना मान कर अपना भाग्य समझता है। तभी तो गोदान मे होरी के जीवन मे जो भी दुख है, उसको वह भाग्य और नियति मानकर पूर्व जन्मो का कर्म समझता है वह अपने पुत्र गोवर से कहता है यह बात नही है बेटा छोटे बड़े भगवान के घर से बन कर आते है संपति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होने पुर्व जन्म मे जैसे कर्म किये थे उसका आनन्द भोग रहे है। हमने कुछ नही सोचा तो भोगे क्या गोदान तभी तो प्रेमचंद्र ने ब्राहम्णों की गणना राष्ट्रीय शोषको में की है। इस तरह समाज में यह ऊंची कही जाने वाली ये जातिया, जाति और धर्म के नाम पर अन्य वर्गो का शोषण करते थे। यद्यपि वर्ण-व्यवस्था समाजिक संस्था है किन्तु भारतवर्ष मे धार्मिक भावनाओं के प्राचुर्थ ने इसी धार्मिक रंग मे रंग दिया। प्रेमचंद युग मे बाह्य आडम्बर को ही धर्म समझा जाता था।। मंदिरो मे आडम्बर की प्रधानता थी। मंदिर के पुजारी ठाकुर जी के नाम पर मुग्ध जनता को लुटते थे। पुजारियों एवं मठाधीशो का चारित्रिक पतन हुआ था। मठ एवं मंदिर पूजा स्थान ना होकर अनाचार्य, अत्याचार तथा भ्रष्टाचार के स्थल बन गये थें। समाज के इस यथार्थ रूप का वर्णन प्रेमचंद के 'मंत्र' कहानी मे देखा जा सकता है। मन्त्र शीर्षक एक कहानी में पण्डित लीलाधर चौबे नाम का एक विद्वान है

जो हिन्दू जाति के उद्धारक, हिन्दू सभा के नेता, शुद्धि के प्राण कहलाते है और हिन्दू जाति के सेवा के लिए एकत्र किये चंदे के रूपये से मौंज करते है। एक दिन पता चलता है कि मद्रास प्रान्त में तष्दील वालो ने तूफान मचा रखा है और हिन्दूओं के गॉव के गॉव मुस्लमान होते जा रहे है। चौबेजी इस अनर्थ को रोकने के लिए स्वयं सेवको की एक सेना के साथ वहां भेजे जाते है। इस कार्य के लिए खूब चन्दा इकट्टा किया जाता है। हर बड़े स्टेशन पर उनका सम्मानपूर्णस्वागत होता है। कई जगह थैलिया मिलती है। वहॉ पहुचकर लीलाधर अछूतो की एक वस्ती के पास अपना राजा सा कैम्प लेकिन शुद्रो के तीखे प्रश्नों से उनके धार्मिक प्रखण्ड की कलई खुल जाती है। तभी एक रात मुस्लमानों के दो आदमी आतें है और लीलाधर को एकान्त में पाकर घायल करके लूट ले जाते है। सेवादल के लोग इससे डर जाते है और सुबह तक अपने नेता को घायल और मुर्छित अवस्था मे छोड़ कर जो कुछ हाथ लगता है, लेकर चम्पत हो जाते है। अछूत लोगो को सुबह में उन माहात्माओं मे से एक भी नजर नही आता जो प्रात: काल मोहन भोग उड़ाते और संध्या समय तक भंग घोटते हुए दिखायी देते थे। अछूत लोग चौबे जी को उठाकर अपने घर ले जाते है। और उपचार करके उनके प्राण बचा लेते है। इस तरह हम देखते है कि समाज मे पुरोहितो और पण्डो का ऐसा वर्ग था जो अन्य वर्गो के शोषण पर ही जीते थे। प्रेमचंद के सद्गति कहानी में ब्राहम्णवादी विचार धारा का क्रूर रूप देखा जा सकता है। धर्म के इस ठेकेदारों के शोषण का स्वरूप सिर्फ छुआ-छूत तक ही सीमित नही रहा बल्कि धर्म के नाम पर डरा-धमकाकर भोले-भाले किसानों से मनमाना सूद भी वसूल करते, जो किसान इनके कानूनी कारवाई नही डरता, उसे वे धर्म के नाम पर डराते।

गोदान उपन्यास मे दातादीन हीरो को तीस रूपये कर्ज दिये थे, वे ब्याज मिलाकर दो सौ हो गये। गोबर कानूनी ब्याज देना चाहता है। दातादीन कहता है, सुनते हो हीरो गोबर का फैसला? मैं अपने दो सौ छोड़कर सत्तर रूपये ले लूँ, नही अदालत करूँ। इस तरह का व्यवहार हुआ तो कै दिन संसार चलेगा? और तुम सुन रहे हो, मगर यह समझ लो मैं ब्राह्मण हूँ। मेरे रूपये हजम करके तुम चैन नही पाओगे। मैने ये सत्तर रूपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊँगा, जाओ। अगर मै ब्राह्मण हूँ तो अपने पूरे दो सौ रूपये लेकर दिखा दूँगा और तुम मेरे द्वार पर आओगे और हाथ बाधकर दोगे। धमकी के डर से हीरो दो सौ रूपये देने के लिए राजी हो जाता है। ब्राह्मण जब महाजन के रूप मे शोषण करता है, तब भी किसान अपनी धार्मिक चेतना से मजबूर हो जाता है और शोषण का विरोध नही कर पाता। परलोक के भय से वह डरता है, गोदान का होरी भी इसी कारण दातादीन से दबता है। प्रेमचंद ने गोबर के माध्यम से जजमानी शोषण की प्रक्रिया पर व्यंग्य करते हुए कहा है-

तुम्हारे घर मे किस चीज की कमी है। महाराज जिस जजमान के दरवाजे पर जाकर खड़े हो जाओं कुछ ना कुछ मार ही लाओगें। जन्म मे लो, मरन मे लो, शादी मे लो, गर्मी मे लो, खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो किसी से भूल चूक हो जाय, तो डॉड लगाकर उसका घर लुटते हो, इतनी कमाई से पेट नही भरता।

प्रेमचंद्र हर तरह के शोषण को अबैध मानते है। सभी मनुष्य आपस मे बराबर है एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण गलत है-चाहे उसका आाधार धार्मिक ही क्यो ना हो।

संदर्भ ग्रथ

1. प्रेमचन्द के विचार- प्रेमचन्द
2. कर्मभूमि (उपन्यास)- प्रेमचन्द
3. गोदान- प्रेमचन्द
4. मन्त्र- प्रेमचन्द

भारतेन्दु और उनका युग

भोला प्रसाद यादव

नेट, शोध-छात्र, हिन्दी, बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर

भारतेन्दु जी का जन्म काशी एक सम्पन्न वैश्य परिवार में भाद्र शुक्ल पंचमी, सम्वत् 1907, सन् 1850 ई0 तथा मृत्यु माघ कृष्ण पक्ष शष्ठी सम्वत् 1941, 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई0 में हुई थी। इस अल्पकाल में ही इस महान साधक ने माँ भारती के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उनके पिता गोपालचन्द्र भी अच्छे कवि थे और 'गिरधर दास' नाम से कविता करते थे। भारतेन्दु जी के काव्य गुरु पंडित लोकनाथ थे। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में -"भारतेन्दु को राजभक्ति विरासत में मिली थी। उनके पिता गोपालचन्द्र के परबाबा अमीचन्द उस व्यापारी वर्ग से थे जिनकी आमदनी अंग्रेजों की लूट-खसोट से जुड़ी हुई थी। उनके तीन बेटों को राजा और एक बेटा को रायबहादुर की उपाधी मिली थी।"[1] अंग्रेजी शासन के सानिध्य में रहने वाले इनके पूर्वजों को अंग्रेजी दरबार में काफी सम्मान मिलता था। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में - भारतेन्दु का बचपन शान-शौकत के साथ व्यतीत हुआ। अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुसार आरम्भ में वे भी राजभक्ति में लीन रहे किन्तु बाद में उनका मोह भंग हुआ। रामविलास शर्मा इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है- "भारतेन्दु दरबारी संस्कृति में पाले-पासे जाने के साथ राजभक्ति में भी दीक्षित हुए थे। उनके दरबार में समस्या पूर्त्ति होती थी।

"पूरी अम्मी की कटोरिया-सी
चिरजिवै सदा विक्टोरिया रानी"

रीतिकाल दरबारी संस्कृति एवं राजभक्ति उस समय की सभी प्रतिक्रियात्मक धाराओं का संकेत इस पंक्ति में मिलता है।"[2] इस अल्प काल में ही उनके बीच लेखकों का अच्छा-खासा मंडल तैयार हो गया था जिसमें पंडित प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह और बालकृष्ण भट्ट के नाम लिये जा सकते हैं। प्रताप नारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे। अत: उनकी भाषा में स्वच्छन्दता, एक बोल-चाल की चपलता एवं भाव-भंगिमा दिखाई पड़ती है। बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के लेखों में गद्य काल के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है। पंडित बालकृष्ण भट्ट की भाषा वैसी ही है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है। ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा शैली शब्दशोधन और अनुप्रासिकता से युक्त है। भारतेन्दु जी के समकालीन सभी लेखकों में एक सामान गुण है और वह है, सजीवता और जिन्दादिली। सभी लेखकों में हास्य-विनोद का पुट है। भारतीय संस्कृति का उद्‌घोष इन सब लेखकों की कृतियों में है।

भारतेन्दु कृतित्व

मौलिक नाटक -

1. वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, 2. चन्द्रावली नाटिका, 3. विषस्य विषमौषधम्, 4. भारत दुर्दशा, 5. नीलदेवी, 6. अन्धेर नगरी, 7. प्रेम योगिनी, 8. सती प्रताप (अधूरा)

अनुदित नाटक -

1. विद्या सुन्दर, 2. पाखण्ड विडम्बन, 3. धनंजय विजय, 4. कर्पूर मंजरी, 5. मुद्रा राक्षस, 6. सत्य हरिश्चन्द्र, 7. भारत जननी, 8. दुर्लभ बन्धु, 9. रत्नावली,

काव्य कृतियाँ -

1. प्रेमाश्रु वर्णन, 2. प्रेममाधुरी, 3. प्रेम तरंग, 4. उतरार्द्ध भक्त माल, 5. प्रेम प्रलाप, 6. गीत गोविन्दानन्द, 7. सतसई श्रृंगार, 8. होली, 9. मधुमुकुल, 10. राग संग्रह, 11. वर्षा विनोद, 12. विनय प्रेम पचासा, 13. फूलों का गुच्छा, 14. प्रेम फुलवारी, 15. कृष्ण चरित, 16. तन्मय लीला, 17. दान लीला, 18. प्रबोधिनी, 19. प्रातसमीरन, 20. बकरी विलाप, 21. रामलीला

उपन्यास -

1. हमीर हठ, 2. रामलीला, 3. सुलोचना, 4. शीलवती, 5. सावित्री चरित्र

निबंध -

1. सबै जाति गोपाल की, 2. मित्रता, 3. सूर्योदय, 4. कुछ आपबीती कुछ जगबीती, 5. जयदेव, 6. बंग भाषा की कविता

इतिहास ग्रंथ -

1. कश्मीर कुसुम, 2. बादशाह दर्पण

डॉ. नगेन्द्र ने गद्य में हुए विकास को जिसे पूर्ण जागरण काल कहा जाता है, उसे भारतेन्दु युग कहना उचित समझा। आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहना इसलिये उपयुक्त है, क्योंकि यह नामकरण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु जी का काल सन् 1850 ई0 से 1885 ई0 तक रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में - "सम्वत् 1930 में उन्होंने अपना पहला नाटक 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' नामक प्रहसन, जिसमें धर्म और उपासना नाम से समाज में प्रचलित उनके अनाचारों का जघन्य रूप दिखाते हुए उन्होंने राजा शिव प्रसाद को लक्ष्य करके खुशामदियों और केवल अपनी मान वृद्धि की फिक्र में रहने वालों पर भी छींटे छोड़े। भारत के प्रेम मतवाले, देशहित की चिन्ता में व्यग्र, हरिश्चन्द्र जी पर भारत सरकार की जो कुदृष्टि हो गई थी उसके कारण बहुत कुछ राजा साहब ही समझे जाते थे।"[3]

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से पूर्व हिन्दी गद्य की दो शैलियाँ विद्यमान थी, एक तो उर्दू-फारसी के शब्दों से युक्त खिंचड़ी हिन्दी भाषा जिसका प्रतिनिधित्व शिव प्रसाद सितारेहिन्द कर रहे थे, तो दूसरी शैली संस्कृत शब्दों से युक्त विशुद्ध हिन्दी थी जिसका प्रतिनिधित्व राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा कर रही थी। भारतेन्दु जी ने मध्यम मार्ग अपनाया। भारतेन्दु जी की शैली के दो रूप हैं, 1 भावावेश शैली तथा 2 तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गये वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल एवं बोल-चाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अन्तर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

भारतेन्दु जी का सबसे बड़ा योगदान है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेन्दु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले भारतेन्दु ही हुए।"

भारतेन्दु जी की मजी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाये जो हिन्दी भाषी जनता की बोली थी, अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था, वह बहुत कुछ सुलझ गया। भरतेन्दु जी सही अर्थों में हिन्दी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदा सुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन, न लल्लू लाल का ब्रज भाषापन और न सदल मिश्र का पूर्वीपन। भारतेन्दु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथा सम्भव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया अपितु ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेन्दु युग का आरम्भ नाटकों से हुआ। भारतेन्दु जी ने बंगला का नाटक 'विद्यासुन्दर' का हिन्दी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उद्योग भी पहले-पहल भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने किया। यही नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। पंडित शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत 'जानकी मंगल नाटक' में भारतेन्दु जी ने स्वयं अभिनय किया और इसे देखने स्वयं काशी नरेश महाराज, ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। प्रताप नारायण मिश्र एक नाटक में अभिनय करने के लिये मूँछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी। आचार्य शुक्ल के शब्दों में - "नाटकों की रचना शैली में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन किया न तो बंगला के नाटक की तरह प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोड़, ये अंग्रेजी नाटकों की नकल पर चले और न प्राचीन

नाट्यशास्त्र की जटिलता ने अपने को फंसाया। उनके बड़े नाटकों में प्रस्तावना बराबर रही थी। पताका, स्थानक्य आदि का प्रयोग भी कहीं-कहीं कर देते थे।"[4]

पुनः आचार्य शुक्ल कहते हैं - "गद्य रचना के अन्तर्गत भारतेन्दु का ध्यान पहले नाटकों की ओर ही गया। अपनी 'नाटक' नाम की पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि हिन्दी में मौलिक नाटक उनके पहले दो ही लिखे गये थे। महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक और बाबू गोपालचन्द का 'नहुष' नाटक कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों ब्रजभाषा में थे।"[5]

इस काल में अनेक अच्छे निबंधकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित और अन्य विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गये। बंग भाषा के अनुकरण पर हिन्दी में भी उपन्यासों की तरफ झुकाव बढ़ रहा था। हिन्दी का पहला उपन्यास 'परीक्षागुरु' लाला श्रीनिवास दास द्वारा लिखा गया। इसके उपरान्त राधाकृष्ण दास ने 'निःसहाय हिन्दू' और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अन्जान एक सुजान' नामक उपन्यासों की रचना की थी।

भारतेन्दु काल के अधिकांश लेखक यशस्वी प्रत्रकार भी थे। उनके द्वारा सम्पादित पत्रिकाएँ जैसे-'सदादर्श'- लाला श्रीनिवास दास द्वारा सम्पादित, दिल्ली से। 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' - कार्त्तिक प्रसाद खत्री द्वारा कोलकाता से 'काशी पत्रिका'- बालेश्वर प्रसाद द्वारा काशी से, 'भारत बन्धु' - तोताराम द्वारा अलीगढ़ से, 'भारतमित्र' - रूद्रदत्त द्वारा कोलकाता से, 'हिन्दी प्रदीप' - पंडित बालकृष्ण भट्ट द्वारा प्रयाग से, 'आर्यदर्पण' - बख्तावर सिंह द्वारा, 'सारसुधा निधि' - गणेश प्रसाद द्वारा फर्रूखाबाद से, 'आनन्द कादम्बिनी' बदरी नारायण चौधरी द्वारा मिर्जापुर से, 'ब्राह्मण' - पंडित प्रताप नारायण मिश्र द्वारा कानपुर से, 'सदाचार मार्तण्ड' - लालचन्द शास्त्री द्वारा जयपुर से, 'भारत जीवन' - रामकृष्ण वर्मा द्वारा काशी से, 'भारतेन्दु' - राधाचरण गोस्वामी द्वारा वृन्दावन से इत्यादि। इनमें से कुछ पत्रिकाएँ थोड़े ही दिनों के बाद बन्द हो गयीं किन्तु कुछ पत्रिकाओं ने हिन्दी की बड़ी सेवा की। ऐसी पत्रिकाओं में प्रमुख हैं - 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'आर्यदर्पण', 'भारतमित्र' और 'आनन्द कादम्बिनी'।

'कवि वचनसुधा' नामक पत्रिका भारतेन्दु जी ने 1868 ई0 में निकालनी प्रारम्भ की थी। इसके पाँच वर्ष उपरान्त 1873 ई0 में उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम आठ अंकों के उपरान्त 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया गया। आचार्य शुक्ल का मत है कि 'हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में ही प्रकट हुआ।' इस पत्रिका में भारतेन्दु जी स्वयं भी लिखते थे और अन्य बहुत सारे लेखकों की रचनाएँ इसमें छपती थी। इस समय के हिन्दी लेखकों ने मिशनरी भावना से काम किया तथा बंगला, मराठी, अंग्रेजी से अनुवाद की जो परम्परा बड़े जोर-शोर से पच्चीस वर्षो से चली आ रही थी, वह इस काल में थम गयी। सन् 1874 ई0 में भारतेन्दु जी ने नारी शिक्षा के लिये 'बालबोधिनी' पत्रिका निकाली। इस प्रकार उन्होंने कुल मिलाकर तीन पत्रिकाएँ निकाली।

भारतेन्दु जी की नाटकों एवं निबंधों में विषय वैविध्य था। 'चन्द्रावली नाटिका' में प्रेम का आदर्श का निरूपण है तो 'नीलदेवी' ऐतिहासिक नाटक है। 'भारत दुर्दशा' में देश की दशा का चित्रण है तो 'विषस्य विषमौषधम्' में देशी राजवाड़ों के शड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया था। 'प्रेम योगिनी' में धार्मिक पाखण्ड का चित्रण है।

इनकी कविता में भक्ति-भावना, श्रृंगारिकता के साथ नारी शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम है। भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्र-पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अन्ध विश्वासों पर कुठाराघात किया है। भारतेन्दु जी के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर वर्त्तमान अधोगति का चित्रण है। प्रताप नारायण मिश्र की 'हर गंगा', 'हिन्दी की हिमायत', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुई। बदरी नारायण चौधरी की कविताओं में समकालीन विषयों का उद्घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। इस काल की कुछ भक्ति परक रचनाएँ 'अलौकिक लीला' -बदरी नारायण चौधरी, 'कंस बध' - अम्बिका दत्त व्यास, 'सूर्य स्त्रोत' - बदरी नारायण चौधरी, 'नवभक्त माल' - राधाचरण गोस्वामी, 'भक्ति सर्वस्व' - भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, 'बैशाख महातम्य' - भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, 'कार्त्तिक स्नान' - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना प्रमुख है।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति निर्वाह करने हेतु जनता के समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं का उद्घाटन अपनी कविता में किया। भाव, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से परिष्कार की प्रवृति इसकाल के साहित्यकारों में विद्यमान थी। देशभक्ति और राजभक्ति का अद्भुत समन्वय भरतेन्दु जी की काव्य में मिलता है। अंग्रेज कुशल शासक व्यवस्था कर रहे थे परन्तु भीतर ही भीतर भारत का आर्थिक शोषण भी कर रहे थे, इसका उल्लेखः

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रूचि दिखाई है।

"रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाई।
हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"

राधाचरण गोस्वामी ने भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है -

"मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं रोई।
भारत की डुबी नाव उबारौ कोई।।"

बाल-विधवाओं की दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा -

"कौन करेजो नहीं कसकत सुनि विपत्ति बाल विधवन की।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने वाले साहबों पर व्यंग करते हुए लिखा -

"चुसहुँ चुरूट लाख पर लागत पान बिना मुँह सुन।
अच्छर चारि पढ़े अंगरेजी बन गए अफलातून।।"

भारतेन्दु युग के कवियों ने श्रृंगार की मर्यादित अभिव्यक्ति की है। भारतेन्दु जी की रचनाओं- 'प्रेम सरोवर', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी' में श्रृंगार भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वय सन्धि में नायिका का सुन्दर चित्र द्रष्टव्य है-

"सुनि कै चरचा हरिश्चन्द्र की कानन,
कूक दै भौं मरोरै लागीं।।
बचि सासु जेठानिन सौं पियतैं,
दूरी घूँघट में दृग जोरे लगी।।
दुलही उलही सब अंगन तै,
दीन द्वै ते पीयूष निचारैं लगी।।

वियोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण ठाकुर जगमोहन सिंह ने अपनी रचना 'प्रेम सम्पत्ति लतिका' में नायिका के विरह का चित्रण किया है -

"अब यौं उर आवत है सजनी,
मिली जाउं गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औं,
नीली कीजिये री रस की बतियाँ।।
हम हारि अरि करि कोटि उपाय,
लिखी बहु नेह भरी पतियाँ।
जग मोहन मोहनी मूरति के बिना,
कैसे कटे दुःख की रतियाँ।।

भारतेन्दु जी की भक्ति-भावना पैतृक विरासत में मिली थी। उनकी भक्ति परक रचनाओं में प्रमुख है - 'भक्ति सर्वस्व', 'बैशाख माहात्मय' एवं 'कार्त्तिक स्नान'। भरतेन्दु पुष्टि मार्गीय भक्त थे और बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इसलिये वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में समर्थ हो सके -

"मेरे को साधन एक ही हैं जग नन्दन लला वृशभानु दुलारी,

....

राधाकृष्ण की मधुर क्षवि का अंकन वाला पद भारतेन्दु की -

"नैन भरि देखि लेहू यह जोरि।
मन मोहन सुन्दर नर नागर, श्रीवृशभानु किशोरी।
कहा कहुँ छवि कहि नहिं आवै यह साँवर यह गोरी।"

भारतेन्दु युगीन कवियों ने प्रकृति का स्वछन्द चित्रण किया है। एक ओर तो बसन्त, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्रण किया तो दूसरी ओर गंगा-जमुना, चाँदनी आदि का सुन्दर चित्रण भी किया है। भारतेन्दु द्वारा किया गया यमुना चित्रण अत्यन्त आकर्षक है -

"तरनि तनूजा तट तमाल तरूवर बहु छाए।
झूके कूल सौं जल परसन हित मनहुँ सुहाए।।

इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग परक रचनाओं के माध्यम से अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट किया है -

'अँधेर नगरी' नाटक में चूरनवाला कहता है-

"चूरन साहब लोग जब खाता।
सारा 'हिन्द' हजम कर जाता।।

....

मुँह जब लागे तब नहिं छूटै, जाति मानधन सब कुछ लुटै।
पागल करि मोहि करै खराब, क्यों सखि साजन, नहीं खराब।।

भारतेन्दु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना किया है। अधिकांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गये। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुण्डलियाँ, रोला, सवैया, हरिगीतिका, कवित्त जैसे पारम्परिक छन्दों में काव्य रचना की विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, चाहे दबी जबान ही सही।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रूप में एक सबल साहित्यकार हिन्दी को प्राप्त हुआ। वे सच्चे अर्थो में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते हैं। राष्ट्र और समाज को उद्बोधन देते हुए उन्होंने कवि कर्त्तव्य का बखूबी पालन किया, जिनके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं।

सन्दर्भ सूची

1. 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (1986), डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 01
2. 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा' (1975), डॉ. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 17
3. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 312
4. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 313
5. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 313

आधुनिक भारत, वैश्विक सम्बन्ध और सांस्कृतिक बदलाव

डॉ० सुनील कुमार

(पीएचडी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

भारत, भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश भाग में फैला हुआ, दक्षिणी एशिया में स्थित है। यह एक बड़ा और बहुत ही विविध देश है, जिसका इतिहास हजारों साल है। फिर 17वीं शताब्दी में, पुर्तगाली और ब्रिटिश ने भारत में औपनिवेशिक बस्तियों की स्थापना शुरू की। धीरे-धीरे, ब्रिटेन ने लगभग सभी भूमि पर नियंत्रण कर लिया, जिससे यह उनकी सबसे बड़ी कॉलोनियों में से एक बन गई। 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली, और तब से यह एक स्वतंत्र, लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं।

आधुनिक भारतीय संस्कृति पारंपरिक भारतीय रीति-रिवाजों, ब्रिटिश विरासत और दुनिया भर के अन्य आधुनिक प्रभावों का एक संयोजन है। आज भूमंडलीकरण के प्रभाव से कोई अछूता नहीं है।

संकेत शब्द : भूमंडलीकरण, सांस्कृतिक वैश्वीकरण, मीडिया

परिचय

सांस्कृतिक वैश्वीकरण का तात्पर्य है विविध सांस्कृतिक पहचानों का एकीकरण, एक समरूपता की उपलब्धि के प्रति रुझान और इसकी मुख्य अंतर्निहित सामग्री स्वयं की सांस्कृतिक पहचान होना।

इस आंतरिककरण में क्षेत्र, राष्ट्र और महाद्वीपों के बीच का संबंध शामिल है और अतीत और वर्तमान के तत्वों को मिलाता है। इससे वैश्विक में स्थानीय की प्रविष्टि के माध्यम से सार्वभौमिक संस्कृति के मूल्यों का सामाजिकरण किया जाता है।

सांस्कृतिक वैश्वीकरण को समझने के लिए वैश्वीकरण और संस्कृति के बीच संबंधों को समझना आवश्यक है।

वैश्वीकरण एक गतिशील प्रक्रिया है जहां अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी, राजनीति, संस्कृति, सामाजिक विशेषताएं और प्रत्येक क्षेत्र के लिए वैचारिक विचार एक सार्वभौमिक स्तर पर परस्पर संबंधित हैं।

ऐतिहासिक रूप से, पूंजीवाद के विस्तार से, वैश्वीकरण दुनिया भर में महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा करता हैं।

आधुनिकता और प्रगति की धारणा के रूप में, वैश्वीकरण की व्याख्या वास्तविकता की कुल दृष्टि के रूप में की जाती है, जहां समाज के वैश्विक विकास की प्रवृत्ति होती है।

भूमंडलीकरण के इस पूंजीवादी परिप्रेक्ष्य से, उत्पादन के सामाजिक संबंध पूरे विश्व ढांचे में परस्पर जुड़े हुए हैं।

इस तरह, वैश्वीकरण को देशों के बीच वाणिज्यिक निर्भरता के रूप में समझा जा सकता है। जो अपनी अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की सुविधा के लिए घनिष्ठ संबंध में हैं।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि वैश्वीकरण न केवल आर्थिक क्षेत्र को कवर करता है। लेकिन यह एक राष्ट्र के जीवन के सभी दैनिक पहलुओं में एक मजबूत संशोधन भी पैदा करता है। साथ ही इसके पर्यावरणीय, राजनीतिक, सामाजिक तत्व आदि। इसीलिए वैश्वीकरण की अपनी वैश्विक संस्कृति और राजनीति है।

संस्कृति

संस्कृति किसी विशेष समाज की विशेषताओं और अभिव्यक्तियों के संयोजन का परिणाम है।

यह एक समाज से संबंधित लोगों में विश्वासों, संहिताओं, नियमों, अनुष्ठानों और सामान्य प्रथाओं में डूबा हुआ है।

इस तरह संस्कृति अभिव्यक्ति का रूप है जो व्यक्तियों की अपनी संस्कृति विशिष्ट, आध्यात्मिक, भौतिक और बौद्धिक विशेषताओं को समाहित करती है। संस्कृति एक समाज की पहचान और विशेषता होती है। और इसमें एक निश्चित अवधि में जीवन के मूल्य, मूल्य प्रणाली, विश्वास, अधिकार और विशिष्ट जनसंख्या की परंपराएं भी शामिल हैं।

संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव

दुनिया के विभिन्न हिस्सों से नए रीति-रिवाजों और नए विचारों के आगमन के साथ, एक क्षेत्र की विशिष्ट संस्कृति प्रभावित होती है।

क्षेत्रीय संस्कृतियां, सांस्कृतिक और उपभोक्ता प्रथाओं को अपनाना शुरू करती हैं जो अन्य राष्ट्रों और आमतौर पर पूंजीवादी प्रकृति के अनुरूप होती हैं।

यह तब दिखाई देता है जब रीति-रिवाजों में ब्रांडों, मीडिया, प्रतीकों की खपत होती है जिन्हें समाज के प्रतिनिधि प्रतीक के रूप में लिया जाता है। इस तरह से उभरना, एक वैश्विक प्रकृति की संस्कृति है।

परिणामस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के विभिन्न तत्वों के संयोजन के रूप में, पूंजीवादी समाजों के अनुरूप सांस्कृतिक मॉडल का विस्तार होता है।

वैश्वीकरण पर मीडिया का प्रभाव

सांस्कृतिक वैश्वीकरण दुनिया के विभिन्न हिस्सों के बीच संचार की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। इस तरह, सांस्कृतिक सांस्कृतिककरण के विकास में मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगता है।

उदाहरण के लिए, ऑडियो-विजुअल मीडिया, सृजन और परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनना शुरू हो जाता है, जो सामान्य रूप से लोगों के दैनिक जीवन में तेजी से समाविष्ट हो जाता है।

वर्तमान में, दुनिया के सभी देश इन सभी वैश्विक प्रक्रियाओं में डूबे हुए हैं। लेकिन एक आशावादी दृष्टिकोण से, दुनिया को सभी प्रकार, पूंजी, वस्तुओं और सेवाओं, प्रौद्योगिकियों, सूचना और सांस्कृतिक पैटर्न के आदान-प्रदान में बढ़ाया जा सकता है।

हालांकि, यह सवाल धन की एकाग्रता, विकसित और अविकसित देशों के बीच अंतर और सांस्कृतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया का पर्यावरण पर प्रभाव, के बारे में उठाया जा सकता है।

निष्कर्ष

सांस्कृतिक वैश्वीकरण, विभिन्न समुदायों से संबंधित विविध रीति-रिवाजों का एकीकरण है। यह शब्द लोगों के विभिन्न जीवन रूपों द्वारा अनुभव किए गए परिवर्तनों को दर्शाता है।

दुनिया के विभिन्न हिस्सों से रीति-रिवाजों, परंपराओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों ने सांस्कृतिक वैश्वीकरण के कारण होने वाले परिवर्तनों के लिए अनुकूलन किया है। इस घटना का आधार मीडिया से जुड़ा है, जिसके माध्यम से कई देशों की संस्कृतियों और रीति-रिवाजों का विलय होता है।

वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यमों के लिए, विभिन्न समाज आपस में जुड़ते हैं, संबंध पैदा करते हैं और उनके बीच एकता को जन्म देते हैं, अथवा उनकी विविधता को रेखांकित करते हैं।

सन्दर्भ

- सैलेन देबनाथ 'धर्मनिरपेक्षताः पश्चिमी और भारतीय,' आईएसबीएन 9788126913664, अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- हॉपर, पी. (2007), सांस्कृतिक वैश्वीकरण को समझना।
- कुमारवादिवेलु, बी. (2008), सांस्कृतिक वैश्वीकरण और भाषा शिक्षा, येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
- रॉबर्टसन, आर. (1992), वैश्वीकरणः सामाजिक सिद्धांत और वैश्विक संस्कृति।
- टॉमलिंसन, जे. (2013), वैश्वीकरण और संस्कृति, जॉन विले एंड संस।
- वाटसन, जे. एल. (2016, 8 जनवरी), सांस्कृतिक वैश्वीकरण, ब्रिटानिका से लिया गया

शैलेंद्र शंकर के गीतों में जनक्रांति का उद्‍घघोष

डॉ० मनीषा मिश्रा

17/61 शिब्ली मंजिल रोड़ आराजी बाग, आजमगढ़

जनसंवेदनाओ, उसके सुख दुख, शोषण उत्पीड़न और संघर्ष को गीतात्मक संप्रेषण देने की दृष्टि से प्रगतिवादी युग काफी महत्वपूर्ण है। इस दौर के गीतकारों और सांस्कृतिक संस्था इप्टा के रंगकर्मियों द्वारा गाए जाने वाले जनगीत काफी लोकप्रिय हुए। इप्टा जैसे आंदोलन ने जनता के भीतर मौजूद रचनात्मक क्षमता को जगाया और विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों और भाषाओं में नए-नए गीत और अन्य रचना प्रकारों के सृजन हुए। इस परंपरा में हिंदी में निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदार, शमशेर, सर्वेश्वर आदि ने अनेक जनवादी गीतों की रचना की और साहित्यिक स्तर पर उनकी चर्चा भी खूब हुई। इन सबके बीच शैलेंद्र शंकर एक ऐसे रचनाकार थे जिन्हें संभवत गीत संग्रह प्रकाश्य न से होने के कारण साहित्यिक चर्चाओं का केंद्र तो नहीं बनाया गया किंतु आम जनता के बीच उनके गीत काफी लोकप्रिय हुए। इनके 'तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर'......... जैसे गीतों ने जनता के बीच क्रांति एवं संघर्ष का उद्‍घोष किया व्यवस्था से लड़ने एवं परिवर्तन कामी चेतना से लैस गीतों ने शैलेंद्र शंकर को सही मायने में जनता का प्रतिनिधि गीतकार घोषित किया। शैलेश जी के जनवादी गीत 'जवाब-दर-सवाल' एवं 'समर तो शेष है' नामक संग्रह में प्रकाशित हुए है।

मेहनतकश गरीब किसानो एवं मजदूरो के प्रति जनवादी गीतकारों की प्रतिबद्धता को कायम रखते हुए शैलेंद्र शंकर ने न सिर्फ क्रांति और संघर्ष के नारे को बुलंद किया था बल्कि प्रासंगिक रूप से गरीबी बेकारी भुखमरी अन्याय शोषण आज जैसी समस्याओं को भी मुखरित किया। शैलेंद्र शंकर के गीत उस किसान और मेहनतकश तबके की जिंदगी के प्रमाणिक दस्तावेज है जो हर प्रकार के सृजन और उत्पादन के बावजूद लगातार अभाव दुख दर्द और घुटन की जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त है और सारी कोशिशों के बावजूद जीवन की लड़ाई हमेशा हारता रहा है। वह बेचारा है, नगण्य है। गीतकार ने भूख और गरीबी का चित्रण करते वक्त हमेशा शब्दों के आडंबर से परे यथार्थ स्वरूप को ही सामने रखा–

छीन रही है आदमी की रोटियां
बिक रही है आदमी की गोटियां
किंतु सेठ भर रहे हैं कोठियां।

रचनाकार का मानना है कि आम आदमी का रक्त चूस कर उसकी मेहनत का सारा हिस्सा छीन छीन कर बड़े लोगों व सेठ-साहूकारों ने जो महल खड़े किए हैं वे इंकलाब से ही समाप्त होंगे।

शंकर शैलेंद्र आशावादी गीतकारों में से थे जो जीवन के प्रति आस्थावान हैं। उनकी दृष्टि में जिस इंसान के मन में जीत के प्रति आस्था या विश्वास कायम है वही वास्तव में जीवित इंसान है। निराशा तथा आशंका से ग्रसित व्यक्ति जीवन में कुछ भी हासिल नहीं कर सकता बल्कि वह मृत प्राय हैं। जीवन की अदम्य जिजीविषा से उद्वेलित हो कवि उन सभी शोषित दलित समाज मानव को संघर्ष के लिए ललकारते हैं जिनके दिलों में जीत की आशा अब भी कायम है। जो संघर्ष से थक हार के निराश नहीं हुए हैं।

गरीब मजदूरों और किसानों को परिस्थितियों से लड़ते रहने और जिलों में जीत का हौसला बुलंद रखने का संदेश शंकर शैलेंद्र कुछ इस प्रकार देते हैं-

'तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला जमीन पर।'

जीवन की तमाम विद्रूपता और विसंगतियों के बीच जीता आम आदमी परेशानियों से हार नहीं मानता, निराश नहीं होता बल्कि जीवन में सब कुछ अच्छा हो जाने की आकांक्षा लिए जीवन को बेहतर बनाने के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है। जीवन के प्रति ऐसी इच्छा शक्ति और संकल्प जनवादी रचनाकारों की एक खासियत रही है। इसी परंपरा को निभाते हुए शंकर शैलेंद्र मनुष्य की प्रबल जिजीविषा की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि भूख, गरीबी, बेकारी, प्रताड़ना, अपमान जैसे अनेक रूपों में कई बार जब मौत साक्षात सामने खड़ी दिखाई देती है तब भी संघर्षशील मानव जीने की इच्छा का त्याग नहीं कर पाता और समस्त निराशाजनक विचारों को परे धकेल जीवन की ओर बढ़ लेता है। निराशा के तमाम अंधकार झेलने के बावजूद हर सुबह उसे जीवन में आगे सब कुछ अच्छा होने की आशा से भर देती है और सभी कष्टों एवं तकलीफों को झेलते हुए भी वह सुनहरे भविष्य की ललक में अपना संघर्ष जारी रखता है-

हजार वेश धर के आई मौत तेरे द्वार पर
मगर तुझे न जेल तक चल सके चली गई हार कर
नई सुबह के संग सदा तुझे मिली नई उमर।

आम आदमी की बुनियादी जरूरतों के खातिर शैलेंद्र पूरी संवेदनशीलता के साथ आवाज उठाते हैं और कहते हैं कि पेट में जब आग लगी हो अर्थात जब इंसान भूखा हो तो उसके समक्ष कुछ भी अच्छा-बुरा, नैतिक-अनैतिक नहीं रह जाता। उसे तो बस रोटी चाहिए होती है और इस रोटी के कारण उसे कई बार अपमानजनक स्थितियों से भी गुजरना पड़ता है और वह अपमान दिलों में नासूर बन जाता है। गीतकार के अनुसार यदि इंसान को इस अपमान, भूख और अत्याचार से उबरना है तो उसे समझौतावादी दृष्टिकोण को त्याग कर इंकलाब का रास्ता अपनाना ही पड़ेगा।

क्रांति के लिए उठे कदम
क्रांति के लिए जली मशाल
भूख के विरुद्ध भात के लिए
रात के विरुद्ध प्रातः के लिए
मेहनत गरीब जात के लिए
हम लड़ेंगे हम ने ली कसम।

शैलेंद्र जी की स्पष्टवादिता आम जनता पर अपना गहरा असर छोड़ती है। वे मिल मालिकों से लेकर सेठ-साहूकारों और समझौता परस्त मजदूर नेताओं के काले कारनामों का चिट्ठा खोलते हुए उन से दो-दो हाथ करने की खुली चुनौती देते हैं। गीतकार के अनुसार अन्याय अत्याचार से निपटने का एकमात्र उपाय संघर्ष ही है। इसमें बीच-बीच की स्थिति अथवा समझौते का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि जब जब मजदूरों ने अपने हक और न्याय की मांग की है तब तक उन्हें ठुकराया गया है अथवा वादा करके भी उन्हें पूरा नहीं किया गया है।

हर दृष्टि से इन मिल मालिकों और पूजी पतियों ने गरीब, बेबस मजदूरों को ठगा है, उन्हें छला है। इन्होंने फैक्ट्री को घाटे में बताकर एक ओर तो मजदूरों की छटनी करके उन्हें बेरोजगार किया, वहीं दूसरी और छोटे किसानों से सस्ते में अनाज खरीद कर उन्हें ठगा गया है। एक तरह से कहें तो मिल को घाटे में दिख लाना एक बहाना बन गया है जिसकी आड़ में भी खुद तो ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाते हैं और गरीबों का मनमाना शोषण करते हैं। वर्ग विभाजित समाज की इस सच्चाई को बड़े ही सपाट लफ्जों में व्यक्त करते हुए शैलेंद्र लिखते हैं-

'तुमने मांगे ठुकराई हैं, तुमने तोड़ा है हर वादा
छीना हमसे सस्ता अनाज, तुम छटनी पर हो आमादा
मत करो बहाने संकट है, मुद्रा प्रसार इनफ्लेक्शन है
इन बनियों, चोर-लुटेरों को क्या सरकारी कंसेशन है।'

शैलेंद्र जी मिल मालिकों-मजदूरों-जमीदारों किसानों के संघर्ष को तो पुरजोर ढंग से उठाते ही है साथ ही महंगाई जैसी भयानक समस्या से लड़ने के लिए एकजुट संघर्ष का आह्वान भी करते हैं। वे कहते हैं कि महंगाई ने आम जनता की ऐसी कमर तोड़ दी है कि अब सवाल थोड़े से पैसों का नहीं बल्कि मौत और जिंदगी का है और इस लड़ाई में मजदूरों की सबसे बड़ी ताकत उनकी एकता है और इसी जनशक्ति के बलबूते से वे हर प्रकार के जुल्म जोर जबरदस्ती का मुंहतोड़ जवाब दे सकते हैं–

हम मौत के जबड़े तोड़ेंगे एका हथियार हमारा है
अब सभले समझौतापरस्त, जनता को जो करते यतीम
हम सब समझौतेबाजों को अब अलग करेंगे बीन-बीन
जो रोकेगा बह जाएगा, यह वो तूफानी धारा है
हर जोर जुल्म की टक्कर से संघर्ष हमारा नारा है।

इस प्रकार रचनाकार की दृष्टि में संघर्ष के बीच किसी समझौता परस्त व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। जो भी इस संघर्ष की धारा को रोकने की कोशिश करेगा वह या तो स्वयं इस संघर्ष धारा में बह जाएगा या उसे निकाल बाहर कर दिया जाएगा क्योंकि अब हमें हर कीमत पर अपना हक प्राप्त करना है, अपनी मंजिल पानी है।

आजादी लोकतंत्र और कानून के खोखलेपल का उद्घाटन भी इसकी रचनाओं में बखूबी हुआ है। गीतकार का मानना है कि संविधान लोकतंत्र, कानून केवल सफल संपन्न और समर्थ लोगों की जागीर बन गया है, जिसे वे आम जनता के हितों को दरकिनार कर सिर्फ अपने हित साधने हेतु मनमाने ढंग से इस्तेमाल करते हैं।

रोज नए-नए कानून द्वारा आम जनता के मौलिक अधिकारों को छीनने और मनमाने ढंग से कानूनों की व्याख्या कर जनता के अधिकारों पर डाका डालने की कोशिश को गीतकार निम्न पंक्तियों में व्यंगात्मक लहजे में व्यक्त किया है-

यदि जनता की बात करोगे तुम गद्दार कहाओगे
बम्ब-सम्ब को छोड़ो भाषण दिया तो पकड़े जाओगे निकला है कानून नया चुटकी बजते बध जाओगे
न्याय अदालत की मत पूछो सीधे मुक्ति पाओगे।

शैलेंद्र शंकर के गीतों का केंद्र मात्र शोषित दमित आदमी है। अतः वे अलग-अलग क्षेत्रों जैसे– खेतों में बेकार खटने वाले मजदूरों, जमीदार के कर्ज का भार ढोते गरीब कृषकों ईंट भठ में न्यूनतम से भी कम मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिकों महानगरों में कल-कारखानों में काम करने वाले, ऊंची ऊंची इमारतों का निर्माण करने वाले मजदूरों आदि सभी के संघर्ष की बात करते है। गीतकार का मानना है कि अन्याय की इस व्यवस्था के विरुद्ध वर्षों से चला आ रहा है और यह संघर्ष का यह दौर आखरी चरण में है और अब मंजिल बिल्कुल करीब है। उसका बेग आंधी अथवा बिजली के बिल के समान हो गया है जिसके समर्थक कोई जुल्म अत्याचार नहीं टिक पाएगा। गीतकार के अनुसार एकता में अपार शक्ति होती है इसलिए एकजुट हो संघर्ष के द्वारा ही मंजिल प्राप्त हो सकती है–

'हमारे कारवां कारवां को मंजिलों का इंतजार है
ये आंधियों, ये बिजलियो की पीठ पर सवार है
तू आ कदम मिला के चल, चलेंगे एक साथ हम।'

संघर्षकामी शैलेंद्र मानते हैं कि जीवन सतत चलने वाली प्रक्रिया है और कोई सुख-दुख स्थाई नहीं होता। अत: आज जो दुख अथवा कष्ट का दौर चल रहा है वह भी स्थाई नहीं होगा। युगो युगो से चली आ रही शोषण दमन की व्यवस्था समाप्त होने को है अत: हमें संघर्ष करते रहना चाहिए क्योंकि अंतत: जीत हमारी ही होगी और हर गरीब, बेबस,लाचार, दमित, शोषित व्यक्ति खुशहाल होगा, उसकी आवश्यकताएं इच्छाएं पूर्ण होंगी-

यह गम के और चार दिन सितम के और चार दिन

ये दिन भी जायेंगे गुजर गुजर गए हजार दिन

कभी तो होगी इस चमन पर भी बाहर की नजर।

इस प्रकार देखते हैं कि शैलेंद्र शंकर के गीतों में एक और शोषित उत्पीड़ित अन्याय अत्याचार की शिकार जनता की यथार्थ तस्वीर उभरती है तो दूसरी ओर एक सुंदर भविष्य का सपना में मन में अटल आत्मविश्वास तथा अपना अधिकार बलपूर्वक छीन लेने की संघर्षशील चेतना भी है निश्चय ही यह एक सच्चे जन गीतकार है।

श्रम के सौन्दर्य की अवधारणा और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य

डॉ० कंचन गुप्ता

प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), बिहारीलाल डिग्री कॉलेज, एण्ड प्रोफेशनल स्टडीज, बाराबंकी (उ0प्र0)

सौन्दर्य का सम्बन्ध प्रकृति, जीवन और साहित्य से बड़ा गहरा है। भारत में सौन्दर्य-चिन्तन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैसे सौन्दर्य को एक विशेष मनोदशा के रूप में देखा जा सकता है। इसकी अनुभूति यथार्थ जीवन में ही प्रत्यक्ष होती है। बच्चा जब जन्म लेता है। तो उसे दो मूल भावों की अनुभूति होती है जब उसे भूख लगती हैं, तब वह दुख के भाव से रोता है और जब उसका पेट भरा होता है तब वह सुख के भाव से शान्त रहता है। इसी हर्ष-विषाद की तरह सुन्दर-कुरूप की अनुभूति भी स्वत: होती है। यह द्रष्टा या विषयी के द्वारा सहज सम्बन्ध है। यह दृष्टा, दृश्य और दृष्टि के अनुकूल सामंजस्य से स्फुरित विशेष चित्त दशा है। इससे चित्तवृत्ति का उन्मेष, विकास और प्रसादन होता है। इसके विपरीत कुरूप में उसका आकुंचन और विषादन होता है। अनुभव के विभिन्न तत्व सौन्दर्य में समन्वित होकर एक लय में ध्वनित होते हैं।

सौन्दर्यबोध परिवर्तनशील

वस्तुत: सौन्दर्यबोध के निर्णय के लिए कोई शाश्वत नियम नहीं बनाए गए हैं। सौन्दर्यबोध भी मनुष्य के ऐतिहासिक विकास का ही प्रतिफलन है। अत: सौन्दर्यबोध पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदलता रहता है। एक पीढ़ी का सौन्दर्य बोध जैसा होता है। आवश्यक नहीं है कि दूसरी पीढ़ी में भी वही सौन्दर्य बोध अथवा सौन्दर्य का मानदण्ड रहे। एक ही देश के निवासियों तक में पीढ़ी बदल जाने से सौन्दर्य बोध भी बदल जाता है।

सौन्दर्य: वस्तुगत और आत्मगत

सौन्दर्य के विषय में आदर्शवादियों का भाववादी चिंतन उसे व्यक्ति से जोड़ देता है, तो यांत्रिक भौतिकवादी चिंतन केवल वस्तु से। परन्तु हमारे विचार से सौन्दर्य बोध से सम्बन्धित रेखा इकहरा चिंतन उचित नहीं होता। वास्तव में सौन्दर्य वस्तुगत भी होता है और आत्मगत भी। सौन्दर्य की सराहना व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर की जाती हैं चूंकि व्यक्ति सामाजिक प्राणी होता है, अत: सौन्दर्य बोध भी इस अर्थ में सामाजिक होता है।

सौन्दर्य सतत विकसनशील है

सौन्दर्य में जड़ता नहीं है बल्कि वह नित नवीन रूप धारण करता रहता है। अत: उसके विषय में अन्तिम शब्द कह देना सरल नहीं है। सौन्दर्य का सम्बन्ध वस्तु और दृष्टि दोनों से प्रत्यक्षत: जुड़ा होता हैं। अत: विषयी के संस्कार स्वभाव आदि को सौन्दर्यानुभूति से पूरी तरह काटकर नहीं देखा जा सकता है।

श्रम और सौन्दर्य

मनुष्य की सौन्दर्यनुभूति का विकास श्रम की संगति में ही हुआ।

मनुष्य और पशु में एक बड़ा अन्तर इस बात का है कि जहां पशु केवल अपने लिए जीता है तथा उत्पादन करता है, वहां मनुष्य अन्य प्राणियों के लिए भी जीता और उत्पादन करता है। अर्थात् मनुष्य के जीवन में उदात्त का सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से रहता है। इसका सम्बन्ध कला से जोड़कर देखा जा सकता है। ऐसा इसलिए है कि मनुष्य सामूहिक और सामाजिक जीवन जीता आया है। यद्यपि मूलतः उसका श्रम आर्थिक क्रियाओं का अंग होता है, किन्तु उसमें मनोरंजन तथा आनन्द के गुण मिलकर उसे क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठा देते हैं। मनुष्य उपयोगिता को सौन्दर्य में परिवर्तित करना जानता है। मनुष्य सामाजिक रूप से क्रिया-कलाप करता हुआ भी आत्मोपलब्धि की ओर इसी सौन्दर्य तत्व के कारण बढ़ता जाता है।

श्रमः महत्वपूर्ण रचनात्मक शक्ति

श्रम किसी भी रचनात्मक कार्य के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण शक्ति माना जाता है। श्रम की प्रक्रिया ही सृजनशील होती है। 'श्रम' शब्द का प्रयोग किसी एक ही अर्थ अथवा सन्दर्भ में नहीं होता है। इसका प्रयोग अनेक दृष्टियों से किया जाता है।

वस्तुतः कला और श्रम दोनों का उद्देश्य एक ही होता है-रचना करना। दोनों के परिणामस्वरूप किसी न किसी सुन्दर वस्तु का उत्पादन होता है। किन्तु दोनों में इतना अन्तर अवश्य होता है कि एक का सौन्दर्य आनन्द और मनोरंजन से प्रत्यक्ष जुड़ा है तो दूसरे का सौन्दर्य प्रत्यक्षतः उपयोगिता से। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कला की उपयोगिता नहीं होती है एवं श्रम में कोई आनन्द ही नहीं होता है। हाँ इतना अवश्य है कि यह दोनों एक समाज उपयोगी वस्तु का सृजन नहीं करते हैं, बल्कि दोनों अलग-अलग सन्दर्भों में अलग-अलग महत्व रखते हैं।

श्रम सम्बन्धी कुशलता और दक्षता जब ऊँचे धरातल पर पहुंच जाती है तो उच्च कोटि के सौन्दर्यात्मक आनन्द की सृष्टि करती है। यह आनन्द अत्यन्त ही जटि प्रक्रिया से उद्भुत होता है और रचना तथा रचयिता दोनों को ही प्रभावित करता है। यह श्रम ही है जो अपनी प्रक्रिया के द्वारा श्रमिक को नियंत्रित करता है। यही कारण है कि सौन्दर्य के अन्य रूपों की अपेक्षा श्रम का सौन्दर्यबोध अधिक सहज और अधिक तीव्र होता है। यह दूसरी बात है कि श्रमिक को प्रत्यक्ष रूप से इसका पता नहीं होता। श्रम के द्वारा श्रमिक आत्म को अनात्म से जोड़ता है।

भारतीय साहित्य में शोषित श्रमिक वर्ग के जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में देखने का स्तुत्य प्रयास हुआ है। श्रमजीवी के माध्यम से केदारनाथ जी नगर-जीवन का कितना यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं-

''भोंपू के बजते ही भिंसारे फाटक में घुसते हैं....
कुत्ते से बदतर हम....काँपते-हँफते।
रोज की बदबू से सड़ते हैं दुनिया की।''

भाववादी आदर्श से इतर निराला की पत्थर-तोड़ती मजदूरिन का यथार्थ-

निराला जी की प्रसिद्ध कविता 'वह तोड़ती पत्थर' को हिन्दी कविता के इतिहास में श्रम के सौन्दर्य के अंकन की दृष्टि से मानक स्थापित करने वाली रचना कहा जा सकता है।

निराला की मजदूरिन का कर्मवत सौन्दर्य वास्तव में श्रम की आत्मा का सौन्दर्य हैं। पत्थर तोड़ती हुई वह मजदूरिन यद्यपि 'श्याम तन' वाली है किन्तु उसका भरा-पूरा यौवन श्रम की आभा से दमक उठा है। माथे से ढुलकती हुई पसीने की बूँदे मानो उसका सही श्रृंगार करती है। यद्यपि उसे श्रम के लिए न तो समुचित वातावरण मिला है और न सुविधाएं हीं। दोपहर की कड़ी धूप में भी इलाहाबाद की सड़क पर जहाँ वह काम कर रही हैं, आस-पास कोई छायादार पेड़ तक नहीं है। जलती हुई रूई के सामने झुलसते हुए वातावरण में वह पत्थर पर भारी हथौड़े की चोट पर चोट किए जा रही है मानों वह पूँजी के पत्थर हृदय की ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं के आतंक-भवन को तोड़ना चाह रही हो। वह मजदूरिन दोहरे संघर्ष के बीच जी रही है और निराला की कविता का सौन्दर्य उस मजदूरिन के जीवन-संघर्ष का वास्तविक सौन्दर्य बन जाता है।

श्रम के सौन्दर्य-बोध का केदारनाथ की रचनाओं में स्वाभाविक विकास-

केदारनाथ जी की कविताओं में भी श्रमिक के जीवन का संघर्ष खूब व्यक्त हुआ हैं उनका मानना है कि-

''हमारी जिन्दगी के दिन/बड़े संघर्ष के दिन हैं/
हमेशा काम करते हैं/मगर कम दाम मिलते हैं।''

केदारनाथ जी मानते हैं कि श्रमिक ही आज की सभ्यता की नींव के पत्थर हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से सभ्यता का विशाल भवन निर्मित करने वाले हैं-

श्रमिकों ने/दिन की गरमी में/
मिल-जुलकर धरती खोदी है/
लम्बी चौड़ी बुनियाद गहराई दी है/
ईंट, चूना/कंकड़, रोड़ा/
सर के ऊपर सब ढोया है/

....

चौहद्दी की दीवारों को/ऊँची चिमनी की काया को/
भीतर, बाहर, गृह भवनों को/दरवाजे के दृढ़ फाटक को/
अपनी लासानी मेहनत से गढ़ डाला है।

केदारनाथ अग्रवाल की रचनाएँ अपने समय की दस्तावेज हैं। उनकी कविता में 1946 से लेकर 1977 तक का युग बोलता हुआ नजर आता है। इनका कविता-संग्रह 'युग की गंगा' भारत और आधुनिक हिन्दी साहित्य के काव्य इतिहास को समझने के लिए एक बहुमूल्य दस्तावेज है।

डॉ0 राम विलास शर्मा के अनुसार- ''केदार ने श्रम करते हुए मनुष्यों पर जितना लिखा है उतना हिन्दी के बहुत कम कवियों ने लिखा होगा।''

चूँकि प्रगतिशील कविता में व्यक्तिवादी अहं और संकीर्णता का सम्पूर्ण तिरस्कार है। अत: वह सहज स्वाभाविक ढंग से श्रम की ओर उन्मुख होती है। केदारनाथ अग्रवाल के कविता-संग्रह 'लोक ओर आलोक' में श्रम पर लिखी एक कविता श्रम की इसी सामाजिक यथार्थता को प्रकट करती है-

छोटे हाथ/सबेरा होते/लाल कमल से खिल उठते हैं/
करनी करने को उत्सुक हो/धूप हवा में हिल उठते हैं।

इन पंक्तियों में उन चेहरों और हाथों की उपमा कमल से दी गई है, जो खेत जोतने वाले किसान के मुँह-हाथ है। केदारनाथ अग्रवाल को वह हाथ कमल के समान प्रतीत होता है-वह भी सिर्फ कमल के समान नहीं, बल्कि लाल कमल के समान। जो सुबह होते ही काम में लग जाते हैं। काम करने के लिए खुलने वाली हथेलियाँ मानों खिलते हुए लाल कमल हैं सौन्दर्य को केदारनाथ ने इस कमल-बिम्ब के द्वारा बखूबी प्रकट कर दिया है। इस छोटी सी कविता में निहित भाव गाम्भीर्य को अनुभूत करते हुए हमें सहज ही इन पंक्तियों से विदित हो जाता है। कि मजदूरों का भविष्य उनके श्रम से जुड़ा होता है। कवि का कर्म भी भविष्य का संधान करना है। अत: कवि के श्रम और किसान के श्रम दोनों का उद्देश्य एक सा ही हो जाता है-

''छोटे हाथ/गुनी ग्यानी हैं/मौलिक ग्रन्थों को रचते हैं।
मानव की सुन्दरतम कृतियाँ/मानव को अर्पित करते हैं।

केदारनाथ जी ने अपनी कविताओं में श्रमिक के, मजदूरों के कठिन जीवन-संघर्ष की समस्त कड़वाहट को उघाड़कर रख दिया है-

''कल से आज अधिक कटु दिन है,
कल रोटी थी/आज नही हैं/

कल रोजी थी/आज नहीं है

रोटी-रोजी/जन-जीवन के लिए कठिन है।''

श्रमिक सदैव इस चिन्ता में डूबा रहता है कि आज तो रोटी मिल गई है परन्तु कल मिल पायेगी या नहीं, दिहाड़ी पर काम करने के कारण आज काम मिल गया है तो पता नहीं कल मिल भी पायेगा या नहीं। इसके बाद भी कवि को यह अटूट विश्वास है कि मजदूरों की मेहनत और उसकी भुखमरी एक दिन अवश्य रंग लाएगी। डॉ0 रामविलास शर्मा के विचार से-''श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता है और श्रम करने वाले लोग एक दिन इस व्यवस्था को जरूर बदलेंगे।''

''खो सकता है/मेरा तेरा/रत्ती-रत्ती जोड़ा सोना/

हो सकता है/ पूर्ण असम्भव/ का भी पूरा होना/

किन्तु नहीं श्रम/मेरा तेरा/इन हाथों का खो सकता है/

इनके द्वारा/कर्म सम्भव/ पूरा सम्भव हो सकता है।

वास्तव में केदारनाथ अग्रवाल लोक जीवन से जुड़े कवि हैं। जहाँ कहीं भी शोषित-प्रताड़ित मनुष्य है, वहीं केदारनाथ की कविता मौजूद मिलती है। उनकी कविताएं विरूद्ध परिस्थितियों में सही आदमियत की खोज करती है।

केदार जी की कविता में वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण अनेक रंगों में उभरकर सामने आया है। जीवन में बुनियादी समस्याओं को इन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया है। सामाजिक कुरीतियों, अर्थ-सामंती शोषण के खिलाफ़ सार्थक आवाज उठायी है। उनके काव्य में लयात्मकता और माधुर्य भी कम नहीं है, परन्तु निष्क्रिय सौन्दर्य को वे अर्थहीन मानते हें एवं सौन्दर्य में जीवन की पूर्णता के पक्षपाती हैं।

कृषक तथा श्रमिक के जीवन को इन्होंने अपनी कविता में इसी खूबी से व्यक्त किया है कि जिससे लगता है मानों इन्होंने उनके जीवन को करीब से देखा ही न हो, बल्कि खुद उसे जिया हो। अतः उनकी कविता में कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। उसे पढ़कर सच्ची अनुभूति का बोध होता है।

स्वयं केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविता के विषय में परिचय देते हुए 'गुल मेंहदी' में लिखा है-''मेरी कविता न तो किसी अलौकिक मानस की कविता है और न तो अजूबे व्यक्तित्व की कविता है। वह वस्तु-जगत से प्राप्त हुए इन्द्रियबोध की कविता है। वह वस्तु-जगत से विकसित हुई वाणी और भाषा की कविता है। वह न अलौकिक थी, न अलौकिक है और न अलौकिक होगी। वास्तव में मेरी कविता-स्वभाव से, स्वरूप से, भाव और विचार से, छंद और लय से, शब्द और अर्थ से, भौतिकी रही है और भविष्य में भी भौतिकी रहेगी.............................मेरी कविता में जीवन के इसी लोक के और इसी युग के भाव एवं विचार मिलते हैं। तभी तो मेरी कविता वस्तु-जगत से प्रभावित होती है और उसे भी प्रभावित करती है।ह

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में प्रेम भी सामाजिक-दायित्व निर्वाह करते हुए ही, सामाजिक और मानवीय बनकर आता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'निरपेक्ष मनुष्य' की कविता नहीं है, बल्कि मनुष्य को उसके भरे-पूरे परिवेश और प्रकृति के साथ अभिव्यक्त करती है। इनकी कविता अपने रूप और कथ्य के कारण कभी बासी नहीं पड़ सकती हैं। वस्तुतः आप एक ऐसे कवि हैं जो परिपक्व होने के बाद भी एक प्रकार की आयुहीन कविता लिख रहे हैं, जो अभी तक पुरानी नहीं पड़ी है। उन्होंने सदैव सार्थक रचनाओं का सृजन किया है। यह सार्थकता उनकी प्रकाशित कृति से उद्धृत इस उदाहरण में भी अंकित होती दिखाई देती है-

''हँसते, खेलते-कूदते बढ़ने लगा मैं,

गाँव-घर में व्याप गया मैं,

खेत-खलिहान के चक्कर काटने लगा मैं,

प्यार से पशुओं को-चिड़ियों को सराहने लगा मैं,

कूदते किलोल करते हिरनों की/बड़ी-बड़ी आँखों में/

डूबता उतराता रहा मैं/पेड़ों के आस-पास/
झाड़ियों के इर्द-गिर्द/जाता और झूम-झूम सुख पाता मैं।
गुनगुनाता रहा मैं/

केदारनाथ जी की कविता जीवन की खुशियों और दु:खों को उनकी पूरी गहराई में महसूस कराती है। इसीलिए कदाचित् वे अपनी जनजीवन से जुड़ी हुई कविताओं में काव्य-सृजन के उच्चतम शिखर पर पहुँच गए हैं-

''घन गरजे, जन गरजे/बंदी सागर को लख कातर
एक रोष से/घन गरजे-जन गरजे।

कवि की यह घोषणा वर्ग-संघर्ष की उसकी सच्ची पहचान से निकली है, उसे जीवानानुभवों ने बताया है कि जीवन-संघर्ष बहुत जटिल होता है फिर भी वह सहज निर्द्वन्द्व होकर ललकारता है-

''काटो काटो करवी/मारो मारो हँसिया/
हिंसा और अहिंसा क्या है/जीवन से बढ़ हिंसा क्या है/
मारो मारो मारो हँसिया/पाटो पाटो पाटो धरती।

केदारनाथ जी का मानना है कि-''मैं आदमी को आदमी के धरातल पर जीता, समझता और परखता हूँ और उसकी एवं अपनी स्थिति से प्रभावित होकर कविता लिखता हूँ। यही वजह कि मैं जो कुछ लिखता हूँ वह ठोस यथार्थ से उद्‌भूत होता है और मेरी वाणी में युगीन स्वरों के द्वारा अभिव्यक्त होता है.......मैंने कविता को जीवन से अलग नहीं रखा है।.............मैने कविता को संसार की वस्तु सत्ता से पाया है और उससे आत्मपरकता स्थापित की है।''

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में व्यक्त सौन्दर्य को समझने के लिए उनका उक्त लिखित आत्म स्वीकार महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। केदारनाथ जी की श्रम-सौन्दर्य खोजी दृष्टि श्रमिकों, मजूदरों के दर्द को पहचानती है और मात्र पहचानती ही नहीं है अपितु उसे कविता में जीवन्त रूप में उकेरती भी है। श्रमिकों को श्रम-फल नहीं मिल पा रहा है। उसका फल जमींदार को मिलता हैं, किसान सदैव कर्ज में डूबा रहता है। निरीह कृषक-जीवन का एक हृदय विदारक चित्र दर्शनीय है-

जब बाप मरा तब यह पाया/भूखे किसान के बेटे ने,
घर का मलबा, टूटी खटिया/कुछ हाथ भूमि वह भी परती/''

निष्कर्ष

इस प्रकार श्रमिक के अनेक रूपों में केदारनाथ ने किसान और मजदूर को अपनी कविता का विषय बनाया है। उनके प्रति सच्ची सहानुभूति दिखाई।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ0 25
2. केदारनाथ अग्रवाल : विचार बोध, पृ0 13
3. केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, युग की गंगा, पृ0 44, पृ0 133, 135,150
4. केदारनाथ अग्रवाल : कहें केदार खरी खरी, पृष्ठ-131,27,28
5. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल पृष्ठ, 40,32

उत्तर बिहार में बाढ़ से होने वाले क्षति का भौगोलिक अध्ययन

अमिता चन्दन

नेट, शोध छात्रा, भूगोल विभाग, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर, (बिहार)

सार-संक्षेप

उत्तर बिहार के नदियों की घाटियों में बाढ़ सहजीवन (बाढ़ के साथ जीने) का पुराना इतिहास है। इन घाटियों की गोद में पनपने वाली सभ्यताएं बाढ़ का बेसब्री से इंतजार करती थीं। मानसून के महीने त्योहार उत्सवों का समय होते थे। तारों से झिलमिलाती रात में स्त्री पुरुष नाव में बैठकर बाढ़ का गुणगान करने नहीं थकते थे। नदियों के साथ उनका एक तरह का साहचर्य था। आपस में मानवीय संबंध थे। मिथिला क्षेत्र की बलान नदी के बारे में लोग कहते थे, 'आएल बलान त बनाऊँह दलान; गेल बलान त टूटले दलान'। बात सच थी क्योंकि बाढ़ के बाद खेत और भी उपजाऊ हो जाते थे। भरपूर फसल होती थी। है।बिहार में बाढ़ लगभग हर साल आती है। इस प्राकृतिक आपदा को नियंत्रित करने की तमाम कोशिशों के बावजूद नदियां में जब बहाव अधिक हो जाता है या उनका रास्ता बदलता है तो इंजीनियरों एवं वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाल देती है। स्पष्ट है कि बाढ़ की विभीषिका के प्रति स्पष्ट व सूक्ष्म रुख अख्तियार करना ही इस जटिल समस्या का एकमात्र समाधान है।

परिचय

जल ही जीवन है। इंसान ही क्या सभी जीव जंतु, पेड़-पौधे भी जल के बिना जी नहीं सकते। यही कारण है कि बिहार की सभी सभ्यताओं का जन्म बड़ी नदियों जैसे- गंगा, गंढक, बागमती, कोसी, कमला आदि के किनारे हुआ। लोगों ने खानाबदोशी का जीवन छोड़कर बड़ी नदियों के किनारे अपना ठिकाना बनाया। अपनी कड़ी मेहनत से जमीन को खेती के योग्य बनाया और अपनी जरूरत की सभी चीजें प्राप्त की। परन्तु जीवन देने वाले इस जल का एक दूसरा रूप भी है। जब अतिवृष्टि के कारण नदियाँ ऊनती हैं, वे अपने किनारे लांघ कर बस्तियाँ तबाह कर देती हैं। देखते ही देखते हजारों लोग, मवेशी मर जाते हैं। हरी-भरी फसलें बरबाद हो जाती हैं। बाढ़ की इस विनाश लीला से लोग दाने दाने को मुहताज हो जाते हैं।

बाढ़ का यह प्रकोप केवल कुदरती नहीं है। आज मनुष्य के स्वार्थ ने इस विपदा को और भी भयानक बना दिया है। सिंचाई और बिजली की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए जगह-जगह नदियों पर बाँध बनाए जा रहे हैं। इन बाँधों के कारण मीलों तक का इलाका जंगल, घाटी, बस्ती सभी पानी में डूब जाते हैं। लोगों को अपना बसा बसाया आशियाना छोड़कर विस्थापित होना पड़ता है। परन्तु दुर्भाग्य से जब कभी अधिक जल के दबाव से इन बाँधों में दरार आ जाती है या बाँध टूट जाते हैं तब हजारों लोग लहरों की भेंट चढ़ जाते हैं। बिहार में ही कोसी का बाँध के टूटने से सहरसा, मधेपुरा, खगड़िया, पूर्णिया जिला में काफी जान-माल का नुकसान हो गया था।[1]

बड़े-बड़े बाँधों के अलावा नदियों की बाढ़ से किनारे बसी बस्तियों को बचाने के लिए जो तटबंध बनाए जा रहे हैं, वे एक अलग तरह की बाढ़ को जन्म देते हैं। नदियों का जल तो बरसात के बाद बहकर सागर तक पहुँच जाता है और इस तरह नदी तल के लोगों का जीवन दो-तीन माह बाद ही सामान्य हो जाता है। परन्तु तटबंधों के पार बसी बस्तियों में जल भराव लगभग सात-आठ माह तक बना रहता है क्योंकि वहाँ जमे पानी की निकासी का कोई साधन ही नहीं होता। इस तरह वहाँ बसे लोगों का जीवन नरक का जीवन बन जाता है

मूल रूप से तो बाढ़ एक प्राकृतिक आपदा है जो अतिवृष्टि के कारण आती है। परन्तु मनुष्य भी इस संकट के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई मानव जनित बाढ़ के कारणों में सर्व प्रमुख है। इससे धरती बंजर हो जाती है और बंजर धरती वर्षा के जल को बिना रोकटोक के बहने देती है। इससे भूमिक्षरण (धरती का कटाव) होता है और यह मलबा नदी तल को ऊँचा बना देता है। नदी तल में मलबा या गाद के भराव के कारण जल का फैलाव किनारों को पार करके दूर दूर तक हो जाता है जो बाढ़ को जन्म देता है। हिमालय क्षेत्र में वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण ही उत्तरी बिहार के अधिकांश भागों में बाढ़ का प्रकोप हर साल बना रहता है। पेड़ों की कटाई के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा अन्य कारण भी उत्पन्न कर दिए जाते हैं, जिनसे प्राकृतिक रूप से वर्षा जल के प्रवाह का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। जैसे-मकान रेल, सड़क, पुल इत्यादि बनाने से। बिहार में पिछले दो दशकों से आने वाली बाढ़ के लिए इसी तरह के कारण जिम्मेवार हैं। बाढ़ से सुरक्षा के लिए नदियों के किनारे बनाए गए तटबंध भी बाढ़ के मानव जनित कारणों में प्रमुख हैं। इससे एक क्षेत्र के लोगों को तो सुरक्षा मिल जाती है, परन्तु अन्य क्षेत्रों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है क्योंकि तटबंधों के पार जमा पानी कई महीनों तक वहीं खड़ा रहता है।[2]

वर्षा की अनिश्चितता भी कई बार बाढ़ का कारण बनती है। अनेक शुष्क इलाक़ों में जहाँ वर्षा समय पर नहीं होती है, वहाँ जब कभी अधिक मात्र में पानी बरस जाता है तब उसकी निकासी कठिन हो जाती है। यह जल फैलकर बाढ़ का रूप धारण कर लेता है। वर्षा की अनिश्चितता के अतिरिक्त कुछ अन्य प्राकृतिक कारणों से भी बाढ़ आती है। जैसे वर्षा जल के साथ बहकर आने वाली रेत व मिटी नदी तल में जमा होकर बहाव के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त अधिक वर्षा के कारण होने वाला भूमिस्खलन (लैंड स्लाइड) भी नदियों के मार्ग को रोक देता है। इसके कारण कई बार नदियाँ अपना मार्ग बदल देती हैं। इस तरह नए मार्ग में उनकी बहाव क्षमता घट जाती है जो बाढ़ का कारण बनती है।

बिहार में प्रतिवर्ष बाढ़ से लगभग 3 लाख हेक्टेयर भूमि एवम् 6 करोड़ लोग प्रभावित होते हैं तथा इससे अरबों की सम्पत्ति बरबाद हो जाती है। बाढ़ से न केवल जन जीवन अपितु खेती-बारी, आवास, मवेशी, यातायात के साधन (सड़कें/रेल) आदि प्रभावित होते हैं। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए दिए जाने वाले धन से सरकारी खजाने पर हरसाल भार पढ़ता जा रहा है। इस तबाही को रोकने के लिए अभी तक कोई ठोस उपाय नहीं किए जा सके हैं। बाढ़ की तबाही को कम करने के लिए वृक्षारोपण सबसे कारगर प्राकृतिक उपाय है जिस पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। अभी भी जंगलों की कटाई थम नहीं रही है। साथ ही नदियों को गहरा करने के लिए तल की सफाई, नालों का उद्धार, बाढ़ से प्रभावित बस्तियों के तल को ऊँचा करने का काम आदि पर भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

बिहार में कुल 3 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित है। इसमें से लगभग डेढ़ लाख हेक्टेयर भूमि नदियों के तटबंधों द्वारा सुरक्षित की गई है। परन्तु इन तटबंधों ने मानव जनित नई बाढ़ आपदा को जन्म दिया है। तटबंधों के अलावा कई बड़े-छोटे बाँध भी इस आपदा से निपटने के लिए बनाए गए हैं। परन्तु समस्या ज्यों की त्यों है।[1] बिहार देश का सबसे ज्यादा बाढ़ प्रभावित प्रदेश है। संपूर्ण राज्य का 73 प्रतिशत तथा उत्तर बिहार का 76 प्रतिशत इलाका बाढ़ प्रभावित है। बाढ़ की विभीषिका से देश में होने वाले नुकसान का 30 प्रतिशत प्रतिवर्ष केवल बिहार की जनता झेलती है। बिहार की कुल आबादी 10.48 करोड़ एवं आबादी का घनत्व 1102 व्यक्ति प्रतिवर्ग हेक्टेयर है। कुल आबादी की 6 करोड़ जनता बाढ़ से प्रभावित है। बिहार की समस्या है जिसका हल नेपाल के सहयोग के बिना संभव नहीं दिखता। उत्तर बिहार से होकर बहने वाली अधिकांश नदियाँ, जैसे कोसी, गंडक, कमला बलान, बागमती, महानन्दा एवं अधवारा समूह की नदियों के उद्गम स्थल नेपाल एवं तिब्बत में हैं। इन नदियों का जलग्रहण क्षेत्र नेपाल एवं तिब्बत में 61 प्रतिशत तथा बिहार में 39 प्रतिशत है। ये नदियाँ पहाड़ों से जब बिहार के समतल मैदानों में आती हैं तो अपने साथ बाढ़ की विभीषिका भी लाती हैं। बाढ़ की समस्या बिहार की नियति बन चुकी है।[3]

बाढ़ के अतिरिक्त देश के अन्य भागों की तरह बिहार को कई अन्य आपदाओं से भी निपटना पड़ता है, जैसे भूकंप, गर्मी के मौसम में आगजनी, शीतलहर का प्रकोप एवं विभिन्न बीमारियों का प्रकोप। बिहार भूकंप के दृष्टिकोण से काफी खतरनाक क्षेत्र में अवस्थित है। राज्य का एक बड़ा इलाका भूकंप के लिए बनाए गए सिसमोग्राफिक क्षेत्र में कोटि 4 एवं 5 में आता है। यह कोटि अत्यंत ही संवेदनशील माना जाता है। बिहार में वर्ष 1934 एवं 1988 के भूकंप का काफी व्यापक प्रभाव पड़ा था। 1934 के भूकंप में 11,000 एवं 1988 में 1100 लोगों की मृत्यु हुई थी। प्रत्येक वर्ष गर्मी के मौसम में आगजनी तथा ठण्ड के मौसम में शीतलहर के कारण भी काफी लोगों की मृत्यु होती है।[4]

2017 के बाढ़ में उत्तर बिहार के 23 जिला के 189 प्रखण्डों के 2313 पंचायत के 7672 गाँव बुरी तरह प्रभावित हुए, जिसमें 690 लोगों एवं 2367 मवेशियों की मृत्यु हो गई। 2017 के बाढ़ में कुल 703165 मकान क्षतिग्रस्त हो गये, जिससे राज्य को कुल 30748 करोड़ की आर्थिक क्षति हुई। उत्तर बिहार में 2017 के बाढ़ में 19 जिलो के 171 प्रखण्ड के 1988 पंचायत एवं 6570 गाँव प्रभावित हुआ। जिससे 17 बाँध एवं 14 तटबंध टूट गया। 2017 के बाढ़ में उत्तर बिहार में 670 लोगों एवं 3130 मवेशियों की मृत्यु हो गई। बाढ़ से कुल 699471 मकान क्षतिग्रस्त हो गया। जिससे कुल 3700 करोड़ की आर्थिक क्षति हुई।

आपदा एवं उसके प्रभाव को हम किस प्रकार कम कर सकते हैं इसे उदाहरण से समझें। अगर किसी इलाके में बाढ़ से खतरे का आकलन करना है तो उस इलाके के लिए संभावित संकट (नदी, डैम इत्यादि) हो सकते हैं। अगर उक्त इलाके की जनसंख्या घनी है तो उस क्षेत्र में रहने वाले सभी नागरिकों पर इसका व्यापक प्रभाव होगा। वे एक प्रकार से असुरक्षित हैं। अगर वहाँ के लोगों द्वारा इस संभावना के मद्देनजर पूर्व तैयारी कर ली जाए, जैसे ऊँचे स्थान का चुनाव, नाव की व्यवस्था, बाढ़ की दशा में भोजन की व्यवस्था, दवा इत्यादि की व्यवस्था, वृद्ध, महिला एवं बच्चों के रहने के लिए समुचित व्यवस्था, बाढ़ की सूचना जल्द से जल्द प्रसारित करने की व्यवस्था, तो निश्चित रूप से बाढ़ का खतरा काफी हद तक कम किया जा सकता है एवं उससे होने वाले नुकसान भी काफी कम होंगे।

बिहार अपने भौगोलिक एवं जलवायुगत कारणों से बाढ़ की संभावनाओं से घिरा रहा है। बाढ़, सूखा, भूकंप, चक्रवात, तूफानी लहरें एवं भूस्खलन का प्रकोप हमेशा होता रहा है। बिहार की भूमि का 60 प्रतिशत हिस्सा भूकंप झेलता है। 8 प्रतिशत इलाका तूफानी लहरों से होने वाली तबाही के लिए खतरनाक है। मानव धरती के सबसे शक्तिशाली जीवों में से एक है। परंतु वह अभी भी बाढ़ एवं उसके प्रभाव को खत्म करने में सक्षम नहीं हो पाया है। मानव प्रकृति का एक हिस्सा है। प्राकृतिक घटनाक्रम को पूर्णरूपेण रोक पाने में हम वर्तमान तकनीकी जानकारी के आधार पर सक्षम नहीं हो पाए हैं। लेकिन इतनी क्षमता अब यहाँ विकसित कर ली गई है कि इन आपदाओं के दुष्परिणाम का प्रभाव मानव एवं अन्य जीवों पर कम से कम पड़े। बाढ़ जैसी अचानक आती है तथा यह मानव सभ्यता, संपत्ति, सामान्य कार्यशैली पर व्यापक प्रभाव डालती है। आपदा-पश्चात रहने के स्थान, भोजन, कपड़ा, सामाजिक एवं चिकित्सा जैसी सहायता बाहरी सहयोग की आवश्यकता पड़ती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बाढ़ विकास के लिए और विशेष रूप से विश्व के सबसे अधिक गरीब और गरीबी के कगार पर खड़े लोगों के विकास के लिए एक बड़ा खतरा होती है। बाढ़ गरीबी के कगार पर खड़े लोगों के विकास के लिए एक बड़ा खतरा होती है। बाढ़ से सबसे ज्यादा गरीब मुल्क ही प्रभावति होते हैं। धनी राष्ट्र इनका मुकाबला करने के लिए पहले से ही तैयार रहते हैं तथा बाढ़ पश्चात इनका निवारण भी कर लेते हैं। वर्ष 2004,2007, 2008 एवं 2017 की प्रलयंकारी बाढ़ के दौरान बड़े पैमाने पर बाढ़ राहत खाद्यान्न, नगद राशि का वितरण पूर्णतया शांतिपूर्ण माहौल में निष्पक्षता, पारदर्शिता एवं बिना बिचौलियों के सम्पन्न कराया गया जबकि इसी बाढ़ के दौरान वर्ष 2004 में राहत वितरण आदि को लेकर भारी अव्यवस्था एवं लूट-पाट की घटना हो चुकी थी।[5]

आकस्मिक रूप से बाढ़ आने के कारण हजारों लोग मौत के मुँह में समा गया। पानी के तेज धार में माँ के गोद में बच्चा सहित, पुस्तक का झोला लिए हुये विद्यार्थी एवं अनेक महिलाओं का लाश पानी में बहते देखा गया। पशु की गणना तो सम्भव नहीं हो सकती। बाढ़ आने के कारण घर का तथा बाजार समिति का अनाज भी सड़ जाता है। सड़क के किनारे मृत पशु के सड़ने से दुर्गन्ध से बीमारी फैलने की पूरी सम्भावना रहती है। पानी का नल बाढ़ में डूब जाने से पेय जल की कठिनाई व्यापक रहती है। पानी घटने कें बाद यह बात भी देखा जा रहा है कि पानी का नल चक (बन्द) कर गया है। गंदा पानी पीने हेतु मजबूर हो जाते हैं। मृतकों में हायाघाट, कुशेश्वरस्थान में सर्वाधिक है। लगातार लोग घरों के छत पर रहने को मजबूर हो जाता हैं। वर्षा की स्थिति में पूरा परिवार भींगता रहता है।

बरसात, कुदरत की नियामत है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से उठे बादल, हर साल, भारत की भूमि को पानी की बूँदों की सौगात देते हैं। कहीं कम तो कहीं अधिक पर बूँदों के अवदान का सिलसिला तीन से चार माह चलता है। शीत ऋतु में, भूमध्य सागर से पूरब की ओर चली हवाएँ जब लम्बी दूरी तय कर उत्तर बिहार में प्रवेश करती हैं तो हिमालय की पर्वतमाला उन्हें रोककर बरसने के लिये अनुकूल परिस्थितयाँ निर्मित करती हैं।

गंगा, सोन, गंडक, कोसी, राप्ती, कमला, बलान तथा बागमती इत्यादि नदियों में अक्सर बाढ़ आती है। बाढ़ के कारण कछारी इलाकों और डेल्टा क्षेत्रों में भारी तबाही मचती हैं। बिहार का मोकामा इलाका और कोसी इलाका के बुढ़ाती नदियों का लगभग सपाट

कछार अक्सर बाढ़ की चपेट में रहता है। बिहार के हर भाग में हर साल छोटी-मोटी बाढ़ तो आती ही रहती है। बादल फटने से भी बाढ़ आती है। बाँधों को फूटने से बचाने के लिये जब भारी मात्र में पानी छोड़ा जाता है तो कृत्रिम बाढ़ आती है। यह पानी निचले इलाकों में तबाही मचाता है और जानमाल तथा संपत्ति की हानि को बढ़ा देता है। नदियों के मार्ग बदलने से नए-नए इलाकों में बाढ़ आती है। उत्तर बिहार खासकर मिथिला क्षेत्र में बाढ़ के कई रूप देखने को मिलते हैं। उसी के अनुसार उनके नाम और परिभाषाएं भी अलग हैं। गर्मी के मौसम की शुरुआत में जब पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है तब यहाँ नदियों के पानी का रंग बदलने लगता है जो अमूमन लाल से काले रंग के बीच का होता है। इसे नदी का मजरना कहा जाता है। कुछ गुणी लोग पानी के रंग को देख कर आने वाली बरसात की भविष्यवाणी तक कर दिया करते थे। बारिश की शुरुआती तेज़ फुहारें गर्मी में उड़ती धूल को शान्त करती थीं। जैसे-जैसे समय बीतता था धन की बुआई शुरू होती थी और किसान यह आशा करता था कि रोपनी शुरू होने तक नदी उनके खेतों का एक-आध बार चक्कर काट लेगी। नदी के पानी का खेतों तक आना और वहीं बने रहना बाढ़ की परिभाषा में आता था। सिंचाई के लिए छः या उससे अधिक बार खेतों में पानी की जरूरत पड़ती थी। यह काम नदी बिना किसी लागत के पूरा कर दिया करती थी। कभी-कभी नदी का पानी गाँव के रिहाइशी इलाके में दरवाज़ों तक हिलोरें मारता था। बाढ़ की इस स्थिति को 'बोह' कहा जाता है।[6]

ढेंग में नदी के तल का ढाल जो 53 सेन्टीमीटर प्रति किलोमीटर रहता है वह हायाघाट पहुँचते-पहुँचते मात्र 14 सेन्टीमीटर प्रति किलोमीटर रह जाता है और फुहिया में तो यह ढलान सिर्फ 4 सेन्टीमीटर प्रति किलोमीटर हो जाता है। इतने ढलान पर पानी केवल सरक सकता है, बह नहीं सकता। इस तरह के पानी के रास्ते में छोटा सा भी अवरोध उसके प्रवाह को रोक देने या काफी पीछे तक ठेल देने के लिए पर्याप्त होता है। निचले इलाकों में लम्बे समय तक बाढ़ों के टिके रहने का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। नदियों की प्रवाह-क्षमता का कम होना—पहाड़ों से मैदानी इलाकों में प्रवेश करने पर पानी के साथ-साथ गाद पूरे इलाके पर फैलती है। गाद का कुछ हिस्सा नदी की तलहटी में भी जमा होता है और उसे छिछला बनाता है। इससे नदी की प्रवाह-क्षमता घटती है। उपलब्ध सूचना के अनुसार बागमती नदी की बिना किनारे लांघे हुए प्रवाह-क्षमता मात्र 560 क्यूमेक (लगभग 19,700 क्यूसेक) है जबकि 1975 जैसी बाढ़ में नदी में ढेंग से होकर 3,033 क्यूमेक (लगभग 1,06,800 क्यूसेक तथा उत्तर बिहार के पास 2,618 क्यूमेक (लगभग 92,150 क्यूसेक) पानी बहा था।[7] अब अगर किसी नदी में उसकी प्रवाह-क्षमता से पाँच गुना या उससे अधिक पानी आ जाए तो आस-पास के इलाकों का बाढ़ के पानी में डूबना तय है। दुर्भाग्यवश बागमती नदी में उसकी प्रवाह-क्षमता का अतिक्रमण प्राय: हर वर्ष होता है। यहाँ एक चीज़ और ध्यान देने की है। आमतौर पर नदी जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वैसे-वैसे उसमें दूसरी नदियाँ मिलती जाती हैं। स्थानीय जल-ग्रहण क्षेत्र का पानी सीधे भी नदी में आता है। इसलिए नदी जैसे-जैसे आगे चलती है, उसी अनुपात में उसमें आने वाले पानी की मात्र भी बढ़ती जाती है।[8] बागमती में 1975 में ढेंग में 1,06,800 क्यूसेक पानी बहा मगर उससे 196 किलोमीटर नीचे उत्तर बिहार में नदी का प्रवाह अधिक होने के बजाय घट कर केवल 92,150 क्यूसेक ही पहुँचा। इसका सीधा मतलब होता है कि ढेंग से चला पानी उत्तर बिहार पहुँचने से पहले ही एक बड़े इलाके पर फैल गया और उत्तर बिहार से नीचे एक सीमित मात्र में ही वह नदी तक पहुँचा।[9] ऐसा बीच वाले इलाके की स्थल आकृति के कारण ही संभव हो सकता है जो एक तश्तरी की तरह है और जिसके आगे पानी तभी बढ़ेगा जब तश्तरी भर जाए। इसके अलावा इस बीच वाले इलाके में भी बहुत सी नदियाँ हैं और बागमती का पानी उनमें या उनके जल-ग्रहण क्षेत्र में घुस कर वहाँ भी बाढ़ की स्थिति को दुरूह बनाता है। ऐसा अक्सर होता है कि उत्तर बिहार में नदी का प्रवाह ढेंग के मुकाबले सिर्फ आधा ही रह जाए मगर बीच वाले क्षेत्र में बाढ़ सामान्य से दुगनी हो जाए। इस तरह से बागमती के उपरी क्षेत्रों से आने वाला पानी बीच वाले क्षेत्र को डुबा कर ही आगे पहुँचता है।[10]

निष्कर्ष

बाढ़ से संबंधित सभी आँकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि मानव जाति को बाढ़ जैसी आपदाओं के साथ ही जीवन गुजारना है। परंतु अगर इन आपदाओं से निपटने की पूर्व तैयारी हो तो, इनका प्रभाव तथा जानमाल का नुकसान काफी हद तक कम किया जा सकता है। विकसित राष्ट्र पर इन आपदाओं का प्रभाव काफी कम होता है। जापान जैसे राष्ट्र में भूकंप लगभग रोज आते हैं परंतु उनके मकान, कल-कारखाने सभी भूकंपरोधी तंत्र से युक्त हैं। इस कारण वहाँ के नागरिकों के जीवन तथा संपत्ति पर इसका प्रभाव न के बराबर पड़ता है। बिहार में बाढ़ लगभग हर साल आती है। इस प्राकृतिक आपदा को नियंत्रित करने की तमाम कोशिशों के

बावजूद नदियां में जब बहाव अधिक हो जाता है या उनका रास्ता बदलता है तो इंजीनियरों एवं वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाल देती है। स्पष्ट है कि बाढ़ की विभीषिका के प्रति स्पष्ट व सूक्ष्म रुख अख्तियार करना ही इस जटिल समस्या का एकमात्र समाधान है।

संदर्भ स्रोत

1. सी0 पंडित (2009) ''उत्तरी बिहार में बाढ़ प्रबंधन'' बुद्ध प्रकाशन पृ.125.
2. वी0 जैन (1998) ''उत्तर बिहार के नदियों से बाढ़ का खतरा'' राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ.84.
3. पी0 एस0 दत्ता (2009) ''बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में जल संरक्षण की योजना'' भारती प्रकाशन पटना पृ.102.
4. वी0 के0 पंडा (2011) ''बाढ़ की समस्या एवं उसका निदान'' अनमोल प्रकाशन आगरा पृ.118.
5. आर0 सिंहा (2009) ''कोसी नदी का विदारण'' हिन्द प्रकाशन मेरठ पृ.76.
6. एस0 के0 गुप्ता (1982) ''कोसी नदी का भू-गर्भीय अध्ययन'' सरिता प्रकाशन नई दिल्ली पृ.57.
7. जे0 ए0 डोर (1987) ''जल प्रबंधन की नीति'' टी. एम. एच. प्रकाशन पृ.81.
8. जेम्स रेनेल (1779) सर्वे ऑफ बागमती रिवर पृ.39.
9. दिनेश कुमार मिश्र (2000) 'बागमती की सद्गति' पृ.54.
10. रवि चोपड़ा, (2003) इरीगेशन सिस्टम ऑफ इंडिया, पृ.62.

अर्थशास्त्र मे वर्णित अंतरराज्यीय संबंध एवं गुप्तचर व्यवस्था

शिव कुमार सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

सार

कौटिल्य का राजनय सिद्धांत अपने आप में साध्य नहीं है, वरन् राजा की रक्षा और वृद्धि का एक महत्वपूर्ण साधन है। कौटिल्य का राजनय सिद्धांत कई दृष्टियों से आज भी प्रासंगिक है। कौटिल्य की तरह आज भी सभी राज्यों के शासक राजनयिक सम्बन्धों में अपने राज्य के हितों की रक्षा और संवर्द्धन को प्राथमिकता देते हैं। कौटिल्य द्वारा चित्रित अन्तर्राज्य एवं गुप्तचर व्यवस्था अनेक प्रकार से सुगठित तथा सुसज्जित थी। कौटिल्य ने सशक्त राजतंत्र को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक तंत्र के स्वरूप और संगठन का निर्धारण किया है।

संकेताक्षर- कौटिल्य, गुप्तचर, राजनय, अन्तर्राज्य, प्रशासनिक, अर्थशास्त्र।

अन्तर्राज्य सम्बन्ध और गुप्तचर व्यवस्था दोनों ही कौटिल्य की व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे जिसपर राजा स्वयं नियंत्रण रखता था तथा उनमें रूचि लेता था। मौर्य प्रशासन में गुप्तचरों की उपस्थिति का उल्लेख कौटिल्य ने किया है। वस्तुत: राजतंत्र में सम्पूर्ण राजकीय शक्ति राजा में निहित रहती है और अकेला राजा सम्पूर्ण शासनतंत्र पर नियंत्रण नही रख सकता और न ही उनका निरीक्षण कर सकता है। इसीलिए कौटिल्य ने गुप्तचर व्यसस्था को राजा की शक्ति माना है। बल्कि गुप्तचरों को राजा की आँख और कान कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इनके माध्यम से राजा को राज्य में घटने वाली छोटी-से-छोटी घटनाओं की जानकारी मिलती हैं वह इसके अनुसार कार्य करता था अथवा सतर्कता बरतता था। इतना ही नही इनके द्वारा वह मनोनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर वांछित फल भी प्राप्त करता था। गुप्तचरों से मिलता अथवा उन्हें गुप्त कार्य सौपना राज के दिनचर्या में सम्मिलित था। यह कार्य वह रात के तीसरे पहर में करता था ताकि गोपनीयता बनी रहे, चूँकि गुप्तचरों की व्यक्तिगत पहचान गुप्त रखी जाती थी।

कौटिल्य ने गुप्तचरोंकी दो श्रेणियों का उल्लेख किया है-संस्था तथा संचार। संस्था वर्ग के गुप्तचर एक ही स्थान में रहकर समस्त राज्य की गतिविधियों पर ध्यान रखता था तथा संचार गुप्तचर भ्रमणशील होते थे। एक स्थान पर रहने वाले (संस्था) गुप्तचरों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया है-

1. कापटिक, 2. उदास्थित, 3. गृहपतिक, 4. वैदेहक, 5. तापस।

कापटिक ऐसे गुप्तचर को कहा जाता था जो कपट वेश में रहत थे और दूसरे के रहस्यों जानने में सक्षम होते थे। ये किसी व्यक्ति में दोशों की जानकारी मिलते ही राजा अथवा मंत्री को सूचना देते थे। उन्हें धन तथा सम्मान देकर प्रोत्साहित किया जाता था।[1] उदास्थित गुप्तचर बुद्धिमानों अथवा सन्यासियों के वेश में रहत थे तथा धन एवं सहायकों की सहासता से लोगों के गुप्त रहस्यों का पता लगाकर राजा को सूचित करते थे। वे लाभ अर्जित किए जाने वाले स्थानों जैसे कृशि, पशु, पशुपालन, व्यापार आदि पर रहते थे। गृहपतिक किसान होते थे। ये उदास्थितों की तरह ही कार्य करते थे।[2] वैदेहक गुप्तचर व्यापारिक के रूप में होते थे। जो राजा को व्यापारियों द्वारा किए गए भूमि पर उत्पादन सम्बन्धी जानकारी गुप्तरूप से देते थे।[3] तापस गुप्तचर जटाधारी अथवा मुण्डित सिर वाले होते थे, जो नगर के आस-पास अपने शिष्यों के साथ रहते थे जो राजा से असंतुष्ट लोगों को धन तथा सम्मान देकर राजा के पक्ष में करते थे तथा विरोधियों को गुप्तरूप से दंडित भी करते थे।[4]

संचार गुप्तचर की कई श्रेणियाँ थी-1. सत्री, 2. तीक्ष्ण, 3. रसद, 4. भिक्षुकी अथवा परिव्राजिका। सत्री गुप्तचर वशीकरण, इन्द्रजाल, ज्योतिश, सामुद्रिक विद्या, शकुनशास्त्र, धर्मशास्त्र, पक्षियों की बोली के जानकार, कामशास्त्र, संगीत तथा नृत्यकला में निपुण होते थे।[5] ये इनका उपयोग गुप्तचरी के कार्य में करते थे। तीक्ष्ण बहादुर गुप्तचर होते थे, जो धन के लिए बाघ एवं हाथी से भी युद्ध करने में नही डरते थे।[6] रसद क्रूर तथा अपने सम्बन्धियों के प्रति भी स्नेह नहीं रखते थे।[7] भिक्षुकी अथवा परिव्राजिकाएँ सन्यासियों के वेश में अमात्यों तथा अन्य अधिकारियों के सम्पर्क में आकर उनकी गतिविधियों पर नजर रखती थी।[8]

इन गुप्तचरों के अतिरिक्त कौटिल्य ने उभय वेतनभोगी गुप्तचर तथा विशकन्या का भी उल्लेख किया है। उभय वेतनभोगी गुप्तचरों दूसरे राज्यों उनसे भी वेतन प्राप्त कर कार्य करते थे और उनका परिवार अपने राज्य के राजा के संरक्षण में रहता था। विशकन्यायें शत्रु राजाओं के पास भेजी जाती थी।

कौटिल्य ने गुप्तचरों की योग्यता का उल्लेख किया है। उन्हें स्वामीभक्त, कुशाग्र, बुद्धि, कुलीन आदि गुणोंसे सम्पन्न होना चाहिए। उनकी नियुक्ति महत्वपूर्ण राज्याधिकारियों के समीप होना चाहिए ताकि वे उनके गतिविधियों पर नजर रख सके। कौटिल्य ने गुप्तचरों की विशाल सेना की अनुशंसा की है तो राज्य के कोने-कोने मे विद्यमान हों और राजा को राज्य की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं से अवगत कराते रहे। कौटिल्य ने इस पर भी प्रकाश डाला है किस प्रकार के गुप्तचर किस प्राकर से अपने कार्य को अंजाम दें।

गुप्तचरों का कार्य था[9]-राजा को राज्य में होने वाली सभी घटनाओं की सूचना देना, राजकीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों की राजभक्ति तथा उनके बीच व्याप्त भ्रष्टाचार की जाँच करना, राजा के प्रति प्रजाजनों के विचार की जानकारी देना, राज्य की आंतरिक सुरक्षा एवं सुदृढ़ता के लिए गुप्तचरों के कार्य महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि मनुष्य की क्षमता असीमित नही होती। इसलिए तीन विभिन्न स्त्रेतों से मिली सूचना असंदिग्ध मानी जानी चाहिए और अगर सूचना के स्त्रेत सदा एक-दूसरे से भिन्न सूचना दे तो दोशी गुप्तचर को दंडित करना चाहिए।[10] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज की सरकारें भी गुप्तचरो के माध्यम से अपने अधिकारियों पर नजर रखती है परन्तु कौटिल्य ने गुप्तचरों के व्यापक उपयोग की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है वह अतुलनीय है।

अनतर्राज्य सम्बन्ध भी राजा तथा केंद्रीय शासन की जिम्मेदारी थी। युद्ध एवं संधि के सार्थक उपयोग पर ही किसी राज्य की स्वतंत्रता निर्भर करती है। एक स्वतंत्र राज्य में ही प्रजा के सुख एवं समृद्धि का विकास संभव है। राज्य के बीच मतभेद के निराकरण के लिए युद्ध को अतिम उपाय के रूप में प्राचीन कालीन चिन्तकों ने उल्लेख किया है। आपसी सद्भाव तथा युद्ध के परित्याग को राज्यशास्त्रियों ने अधिक महत्व दिया है। वैसे महत्वकांक्षी राजा पड़ोसी राज्यों पर विज्य प्राप्त करके अधिक शक्तिशाली बनने की लालसा रखता था। ऐसी परिस्थिति में शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिए ताकि प्रत्येक राज्य की प्रजा शांतिपूर्वक अपने कार्य कर सके कौटिल्य ने मंडल सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। कौटिल्य के राज्यों के मंडल की कल्पना वृत्त के रूपमें की है और उन्हें विभिन्न श्रेणियों में बाँटा है[11] -1. विजिगीशु, 2. अरि, 3.मित्र, 4. अरि मित्र, 5. मित्र-मित्र, 6. अरिमित्र मित्र, 7. पार्ष्णिग्रह अथवा विजिगीशु के राज्य के पीछे की ओर स्थित शत्रु, 8. आक्रन्द अथवा पीछे की ओर स्थित मित्र, 9. पार्ष्णिग्राह सार अर्थात् पीछे की ओर शत्रु का मित्र, 10. आक्रन्द सार अथवा पीछे की ओर स्थित मित्र का मित्र, 11. मध्यस्थ की स्थिति विजिगीशु और उसके शत्रु के बीच होती थी, जो दोनों के बीच संतुलन बनाये रखता था, 12. उदासीन राज्य अथवा तटस्थ राज्य वैसे राज्य थे जो राज्यों के आपसी झगड़े के प्रति तटस्थ भाव रखता हो और इतना शक्तिशाली हो कि दोनो में से कोई उसे छूने की चेष्टा नहींकरे। मंडल सिद्धांत में राज्य और राजा को एक ही मानकर उनके गुणों एवं लक्षणों का विवेचन किया गया है।[12] कौटिल्य ने विजिगीशु राजा अथवा राज्य को केंन्द्र में रखकर अन्य राज्यों को वर्गीकृत किया हैं राज्य को इन राज्यों के चरित्र को ध्यान में रखकर ही अपनी नीति-रिर्धारित करना चाहिए। ये राज्य शत्रुवत् होगें अथवा मित्रवत्। कौटिल्य युद्ध एवं विग्रह दोनो का उल्लेख करता है। तथा वह विजिगीशु राजा को परामर्श देता है कि वह किन परिस्थितियों में युद्ध करे तथा किन परिस्थितियों में संधि करे।

कौटिल्य ने विदेश नीति के लिए शाडगुण्य नीति का उल्लेख किया है। ये छः गुण हैं- संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधीभाव। वातव्याधि संधि एवं विग्रह को ही मुख्य गुण मानते है और बाकी को इन्हीं में निहित मानते हैं परन्तु कौटिल्य इन चारों को संधि विग्रह से अलग मानते हैं।[13] कौटिल्य के अनुसार अगर राजा अपने को शत्रु की तुलना में दुर्बल समझता हो तो संधि की नीति और अगर बलवान समझता हो तो विग्रह अर्थातृ युद्ध की नीति अपनाना चाहिए। कौटिल्य ने शत्रु पर युद्ध की घोशणा करके चुप बैठने की स्थिति को आसन कहा है अर्थात् अपनी युद्ध के लिए चुपचाप बैठे रहना आसन है।[14] यान विग्रह का ही अंग हैं। इसे आक्रमण की संज्ञा दी जा सकती है। संश्रय की स्थिति दुर्बल राजाओं के लिए जब वह किसी बलवान राजा के भय से किसी बलवान राजा के शरण में आता है। कोई राजा किन परिस्थितियों द्वारा इस नीति का अवलम्बन करे, इस पर कौटिल्य ने विचार किया

है। द्वैधीभाव अर्थात् दोहरी नीति उसे कहा गया है जब विजिगीशु एक राजा से संधि करे और दूसरे के साथ विग्रह। कौटिलय ने इस विभिन्न नीतियों को कब और किन परिस्थितियों में राजा को अपनाना चाहिए इस बात का भी विस्तार से उल्लेख किया है। कौटिल्य ने शाडगुण्य सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। अतः युद्ध एवं संधि राजा अथवा केन्द्रीय शासन की जिम्मेदारी थी।

अन्तर्राज्य सम्बन्ध का दूसरा अंग था दूतों की नियुक्ति तथा उन्हें प्रतिनिधि के रूप में दूसरे राज्यों में भेजना तथा दूसरे राज्यों के दूतों का दरबार में स्वागत करना अथवा उनसे मिलना राजा की ही जिम्मेदारी थी। दूतों की नियुक्ति में राजा मंत्रीयों से परामर्श करता था तथा मंत्रियों के साथ विदेशी दूतों का स्वागत में राजा मंत्रियों से परामर्श करता था तथा मंत्रियों के साथ विदेशी दूतों का स्वागत दरबार में करता था। कौटिल्य ने भी दूतों के विषय में विशद्‌रूप से चर्चा की है। उसे राजा का मुख कहा गया है।[15] दूतो के आचरण के सम्बन्ध में कौटिल्य ने चर्चा की हैं उसने दूतों के तीन श्रेणियों का उल्लेख किया हैं निसृष्टार्थ श्रेणी के दूत अमात्यों की योग्यता वाले होते हैं जिनहें विशेष कार्य के लिए दूसरे राजा के पास भेजा जाता था। इन्हें आधुनिक कालीन राजदूत के समकक्ष माना जा सकता हैं इस श्रेणी के दूत से कम योग्यता तथा कम अधिकार वाले परिमितार्थ दूत की श्रेणी में आते थे। इनसे कम योग्यता वाले शासनहार श्रेणी के दूत होते थे। इनका कार्य था दूसरे राजा के सम्मुख अपने स्वामी राजा के संदेश उसी रूप में रखना और पर-राजा का उत्तर उसी रूप में अपने स्वामी के समक्ष रखना। कौटिल्य ने दूतों के कार्यो का भी विस्तार से उल्लेख किया हैं कौटिल्य का दूत केवल स्वामी का संदेश पहुँचाने अथवा वार्ता करने का कार्य नही करता था बल्कि पर-राजा शक्ति एवं कमजोरियों की जानकारी प्राप्त करना भी था। यह कार्य उसे गुप्तचरों की सहायता से करना चाहिए। इन कमजोरियों से लाभ उठाना उसके कार्य में सम्मिलित था। उसका कार्य शत्रु के मित्रों में भेद उत्पन्न करना भी था।

कौटिल्य ने दूतों को अबध्य माना है। इनके अबध्यता को धर्मगत और नीतिगत कहा है।[16] रामायण एवं महाभारत में भी दूतों की अबध्यता पर बल दिया गया है।[17] कौटिल्य के अनुसार अगर दूत चांडाल हो तब भी अबध्य है अर्थात् ब्राह्मण दूत तो निस्संदेह अबध्य होंगे।[18] कौटिल्य ने अन्तर्राज्य सम्बन्ध पर विस्तारपूर्वक विचार किया है तथा उसने इस दिशा में शक्ति संतुलन पर जोर दिया है। इससे सभी राज्य शांतिपूर्वक अपने राज्य में बसने वाली प्रजा के सुख एवं समृद्धि के लिए कार्य कर सकता है। कौटिल्य ने राजनय को महत्व दिया है। कौटिल्य के अनुसार अंतर्राज्यीय सम्बन्ध में राजा के साथ-साथ उसके अमात्यों की भी महत्वपूर्ण भमिका होती है। उसके अनुसार विजिगीशु राजनय का केंद्रबिन्दु है। पुरोहित उसके राजनय को अनुशासित करता है और अमात्य उसे संचारित करता है।

संदर्भ

1. अर्थशास्त्र, 1/11-14
2. अर्थशास्त्र, 1/11,2-3
3. अर्थशास्त्र, 1/11 , 9-10
4. अर्थशास्त्र, 1/11, 12
5. अर्थशास्त्र, 1/12 , 1
6. अर्थशास्त्र, 1/12, 2
7. अर्थशास्त्र, 1/12, 3
8. अर्थशास्त्र, 1/12, 4
9. डी0 के0 गांगुली एस्पेक्ट्स ऑफ एन्सिएन्ट इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 286-288
10. अर्थशास्त्र, 1/12, 15
11. अर्थशास्त्र, 6/2
12. आर. पी. कांगले, खंड-3 , पृ0 128
13. अर्थशास्त्र, 7/1
14. अर्थशास्त्र, 7/4
15. अर्थशास्त्र, 1/16
16. अर्थशास्त्र, 1/15
17. वाल्मीकी रामायण, सुंदरकांड, सर्ग-52 श्लोक-19, महाभारत, शांन्तिपर्व, अध्याय-85, श्लोक-26
18. एम.वी. कृष्णराव, स्टडीज इन कौटिल्य, पृ0 41

बिहार में उद्योग और परिस्थितियां

डॉ० नवीन कुमार

एम.कॉम, पीएचडी. (कॉमर्स फैकल्टी), बी.आर. आंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

अभी बिहारी मजदूरों का पलायन और बिहार में रोजगार और उद्योग-धंधों का अभाव सुर्खियों में है लेकिन बिहार कभी बड़े उद्योगों का केंद्र हुआ करता था। यहां इतने बड़े-बड़े कल-कारखाने थे जिनके कारण कई जिलों में उद्योग नगरियां बसीं हुई थीं।

वर्ष 2005 में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के सत्ता में आते ही बिहार में एक बार फिर से उद्योग-धंधे स्थापित करने की सुगबुगाहट शुरू हुई थी। देश विदेश कई प्रस्ताव भी आए। खासकर पॉवर प्रोजेक्ट पर और खाद्य प्रोसेसिंग पर। कुछ उद्योग जैसे हाजीपुर में साइकिल फैक्ट्री, पटना के बिहटा में सूत का कारखाना, सासाराम में सीमेंट कारखाना आदि स्थापित होने की प्रक्रिया भी हुई लेकिन यहां भी पुराने कारक फिर से उभर गए और ये उद्योग असमय ही काल-कलवित हो गए।

परिचय

एक उद्योग को विकसित होने के लिए क्या चाहिए? सर्वोत्तम फैक्ट्री, सर्वोत्तम तकनीक, सर्वोत्तम श्रम, सर्वोत्तम प्रबंधकीय जन शक्ति, सर्वोत्तम जानकारी एवं सहायक संसाधन। आप अगर दृष्टि डालें तो कृषि आधारित उद्योग के लिए विश्व का सर्वोत्तम भाग है यहां, कृषि उद्योग के लिए सर्वोत्तम फैक्ट्री यहां की कृषि भूमि है। बिहार की श्रम शक्ति विश्व में सर्वोत्तम मानी जाती है। यह बस गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में ही नहीं अपने श्रम का डंका बजाते हैं, इनके श्रम के कारण ही उन्हें मॉरीशस, फिजी, गुयाना त्रिनिदाद ले जाया गया जहां जो पहले ये मजदूर बनकर गए थे, अब हुजूर बन गए हैं। वहां पर विश्व की सर्वोत्तम प्रबंधकीय जनशक्ति है। देश के सबसे ज्यादा सिविल सेवा के अभ्यर्थी बिहार से निकलते हैं। आईटी एवं अन्य तकनीक के मामले में देश में और विदेश सबसे अधिक युवा यहीं से पलायित हुए हैं। कृषि उद्योग के लिए आपको सर्वोत्तम सहायक संसाधन यहां मिल जाएंगे। जैसे की नदियां, मौसम, नहरें एवं मिट्टी की विविधता के अनुसार फसलों की विविधता। लेकिन ट्रांसपोर्ट लॉक होने की वजह से यहां ये उद्योग उत्पादन के बाद भी अपना उत्पाद बेच नहीं पाते हैं जिस कारण उत्पादन को लेकर हतोत्साहित होते हैं और किसी कारण अगर उत्पादन कर भी लिया तो नजदीकी या दूरस्थ बाजार उपलब्ध न होने के कारण खेत में ही फसल नष्ट हो जाती है।

7 बड़े कारण: बिहार में क्यों नहीं है फैक्ट्रियां-इंडस्ट्रीज?

पीएचडी चौम्बर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज के अध्यक्ष सत्यजीत सिंह इसके 7 कारण गिनाते हैं।

1. बिहार का बजट 2.11 लाख करोड़ रुपए, लेकिन उद्योगों के लिए सिर्फ 400 करोड़ रुपए का प्रावधान।
2. बिहार में उद्योग लगाने वाली करीब 200 कंपनियों को आज तक सरकार ने इनसेंटिव नहीं दिया।
3. सुप्रीम कोर्ट से फैसला आने के बाद भी कंपनियों को बकाया इनसेंटिव का सरकार ने भुगतान नहीं किया।
4. 2015 में आई नीतीश सरकार की नई उद्योग नीति की वजह से इन्वेस्टर्स ने बिहार से मुंह मोड़ लिया।
5. नई नीति में पोस्ट प्रोडक्शन इनसेंटिव पॉलिसी थी, मतलब पहले पूरा उद्योग, फिर सरकारी सहयोग।

6. नए उद्योगों को लगाने में सरकार ने कोई मदद नहीं दी, लिहाजा बैंक भी लोन देने से पीछे हट गए।
7. उद्योग के लिए जमीन की जरूरत, लेकिन सरकार जमीन दिलाने में ही नाकाम रही।

जमीन ही नहीं मिलती, जमीन मिली तो कब्जा नहीं मिलता

बिहार में कई ऐसे उद्यमी हैं, जो बताते हैं कि यहां का सिस्टम ही ऐसा है, जो उद्योग नहीं लगने दे रहा। उद्यमियों को या तो जमीन ही नहीं मिलती, अगर जमीन के कागज मिल भी गए, तो कब्जा नहीं मिलता। अगर कब्जा भी मिल गया तो लोन के लिए बैंक के चक्कर काटने पड़ते हैं। फिर प्रदूषण नियंत्रण समेत तमाम सरकारी विभागों के चक्कर काटते-काटते उद्यमी हार जाते हैं।

निष्कर्ष

हर साल सरकार एनुअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज (एएसआई) जारी करती है, जिसमें देशभर में फैक्ट्रियां, उनमें काम करने वाले कामगारों की संख्या का डेटा रहता है।

फैक्ट्रियों की संख्या के सबसे ताजा आंकड़े 2017-18 के हैं। इसके मुताबिक, बिहार में 2017-18 में 2 हजार 881 फैक्ट्रियां हैं। जबकि, 2016-17 में 2 हजार 908 फैक्ट्रियां थीं। इस डेटा की मानें तो पिछले चार साल से बिहार में चालू फैक्ट्रियों की संख्या लगातार कम हो रही है।

इन उद्योगों के बन्द होने के लिए कोई एक कारक जिम्मेदार भी नहीं। राजनैतिक, स्थानिक परिस्थितियां तो जिम्मेदार हैं ही, वैध-अवैध मजदूर संगठनों की यूनियनबाजी, कारखानों का अपग्रेडेशन न होना भी जिम्मेदार हैं। साथ ही बिजली, परिवहन, विधि-व्यवस्था की कमी ने भी भूमिका निभाई है।

सन्दर्भ

- Lekshmi R Nair and D. Dhanuraj Centre for Public Policy Research Evaluation of Government Interventions in Khadi Sector January 2016 Centre for Public Policy Research 5.Annual Reports from the Ministry of Micro, Small and Medium Industries.
- Gopinath, P. (2010). Wages, working conditions and socio-economic mobility of spinners and weavers in the unorganized khadi industry: Findings from a survey in India. Indian Journal of Labour Economics,53(2).
- "PER CAPITA INCOME OF ALL STATES/UT'S AND ALL INDIA AT CURRENT PRICES" (PDF). Archived from the original (PDF) on 30 September 2011. Retrieved 24 April 2017.
- *"Information on Bihar development, resource mobilisation, capacity building through". Bihardevelopment.org. Archived from the original on 23 June 2012. Retrieved 4 April 2012.*

श्रीमदभगवतपुराण में ब्रह्मतत्त्व का अध्ययन

डॉ० वेद प्रकाश मिश्र

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डॉ सी वी रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

मधुमिता धाड.गडामाझी

शोध छात्रा, डॉ सी वी रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

प्रत्येक युग में मानव कल्याण के लिए भगवान विष्णु किसी ना किसी का अवतार धारण किये है। उन्ही अवतारों में से एक अवतार ऐसा है जो वेदव्यास के नाम से प्रख्यात है। विष्णु अवतारे वेदव्यास मानव कल्याण के लिए पंचम् वेद पुराण का रचना किया। उसी अष्टादष पुराण के अंतर्गत पंचम स्थान प्राप्त अट्ठारह हजार श्लोकों से संकलित श्रीमदभगवत महापुराण का स्थान अन्यतम हैं। श्रीमदभगवत का लक्षण भागवत में इस तरह निर्वचन किया गया है –

श्रीकृष्णासक्तभक्तानां तन्माधुर्यप्रकाषकम्।

समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हि तत्।।[1]

अर्थात् भगवान श्री कृष्ण में जिनकी लगन लगी है। भक्त के हृदय में जो भगवान के माधुर्य भाव को अभिव्यक्त करने वाला उनके दिव्य माधुर्य रस का आस्वादन करने वाला सर्वाकृष्ट वचन श्रीमद्भागवत है।

श्रीमदभगवत परम् रहस्य युक्त है। अत्यंत गोपनीय ब्रह्मत्त्व का वर्णन हुआ है। उस ब्रह्म में ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रतीत होता है। इस पुराण में उसी परमतत्त्व का अनुभावात्मक और उसी के प्राप्ति के साधानों का स्पष्ट निर्देष किया गया है।

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम्।

ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम्।।[2]

श्रीमदभगवत में ब्रह्मतत्त्व

तत्त्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित अखण्ड अद्धितीय सच्चिदानंदस्वरूप ज्ञान को ही तत्त्व कहते हैं –

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।[3]

और उसी तत्त्व को कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा तो कोई भगवान के नाम से पुकारते हैं–

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते।।[4]

भागवत में ब्रह्म का संज्ञा देते हुए वर्णन किया गया है कि जब सृष्टि नहीं थी तब केवल एक वही था सृष्टि का निरूपण करने के लिए त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज, तममयी प्रकृति कहकर वर्णन किया गया। फिर उसी को ज्ञान प्रधान होने से महत्तत्त्व, क्रिया प्रधान होने से सूत्रात्मा और जीव की उपाधी होने से अहंकार के रूप में वर्णन किया गया । वास्तव में जितनी भी शक्तियां है, चाहे वे

इंद्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में हो, इन्द्रियों के उनके विषयों के अथवा विषयों के प्रकार के रूप में हो सबका सब वह ब्रह्म है। जो कुछ दृश्य अदृश्य, कार्यकारण, सत्य और असत्य हो सबकुछ ब्रह्म है। इनसे परे जो कुछ है, वह ही ब्रह्म ही है–

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ
सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम्।
ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरूशक्ति
ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत्।।[5]

वह ब्रह्म स्वरूप आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है। वह न तो बढ़ता है और न घटता हैं। जितने भी परिर्वतनशील पदार्थ है चाहे वे क्रिया, संकल्प और उनके आभाव के रूप में ही क्यों न हो सकी भूत, भविष्यत और वर्तमान सत्ता का वही साक्षी है। सबमें हैं, देश काल और वस्तु से अपरिछिन्न, अविनाशी है। वह उपलब्धि करने वाला अथवा उपलब्धि का विषय नहीं है। केवल उपलब्धि स्वरूप ज्ञान स्वरूप है। जैसे प्राण तो एक ही रहता है परंतु स्थान भेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं। वैसे ही ज्ञान एक होने पर भी इंद्रियों के सहयोग से उसमें अनेकता की कल्पना हो जाती है–

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ
न क्षीयते सवनविद् व्यभिचारिणां हि।
सर्वत्र शष्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं
प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत्।।[6]

ब्रह्म के दो स्वरूप का वर्णन किया गया है। निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार। हस्तपदादि विग्रह से रहित ब्रह्म को निर्गुण निराकार कहते है और हस्तपदादि से युक्त ब्रह्म को सगुण साकार कहते है–

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो
रेकस्थयोर्भिन्नविरूद्धधर्मयोः।
अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः
समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत्।।[7]

ब्रह्म एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखाई देता है इस वाक्य की पुष्टि करने से पता चलता है कि भागवत में ब्रह्म की तीन संज्ञा अर्थात् तीन नाम प्रदत्त किया गया है– ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर ये उसी एक परमात्मा की तीन संज्ञा अर्थात् नाम है।

जो मनुश्य ब्रह्मतत्त्व का नित्य, निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधना करता है। उसी के हृदय में स्थित होकर उसका अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते हैं। परब्रह्म रूपी भगवान की प्रेममयी भक्ति से जब संसार की समस्त आशक्तियाँ मिट जाती है, हृदय आनंद से भर जाता है। तब ब्रह्मत्व का अनुभव अपने आप हो जाता है–

एवं प्रसन्नमनसो भगवदभक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसग्ङ.स्य जायते।।[8]

हृदय में आत्मस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होते हुए हृदय की ग्रंथी टूट जाती है और सारे संदेह मिट जाते हैं। तत्सहित कर्म बंधन क्षीण हो जाता है। इसी से बुद्धिमान लोग नित्य निरंतर बड़े आनंद से व्यक्त अव्यक्त ब्रह्म के प्रति भक्ति करते हुए आत्मप्रसाद की प्राप्ति करेत है। इसलिए कहा गया है–

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमाया मुदा।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम्।।[9]

इस प्रकार हम कह सकते है कि मनुश्यको मृत्युपर्यन्त तक ब्रह्मतत्त्व का नित्य श्रवणए संकीर्तनए ध्यानए आराधना करते रहना चाहिए। क्योकि यह ब्रह्म रूपी भगवान की भक्ति से संसार की समस्त आषक्तियॉ खत्म हो जाती है और ब्रह्मतत्त्व का अनुभव होने लगता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमदभगवत 4/4
2. श्रीमदभगवत 12/12/4
3. श्रीमदभगवत 1/2/11
4. श्रीमदभगवत 1/2/11
5. श्रीमदभगवत 11/3/37
6. श्रीमदभगवत 11/3/38
7. श्रीमदभगवत 6/4/32
8. श्रीमदभगवत 1/2/20
9. श्रीमदभगवत 1/2/22

नवतुरियाक पृष्ठभूमिमे पारो

दीपक कुमार पटेल

सहायक शिक्षक, रामहंस उच्च विद्यालय, चतरा, मधेपुरा, बिहार

साहित्य होइछ समाजक दर्पण जाहिमे तत्कालीन समाजक साहित्य, कला, धर्म, परिवार समाजमे घटित-घटना, उत्थान-पतन, हास्य-रूदन, मानव-मनक आशा-आकांक्षा, राग-द्वेष, घृणा-स्नेह आदि साहित्यकारेक मनकँ उद्वेलित प्रभावित करैछ। फलस्वरूप साहित्यकार लोकनि ओकरा एक गोट साहित्यिक विधाक रूप दऽ तकर विश्लेषणक संगहि निदानक बाट सुझबैत, चेतना जगबैत छथि। साहित्यमे परम्परागत ओ तत्कालीन संस्कृतिक संग माटि-पानिक सोन्हगर गंध सेहो भेटैछ। मनुष्य जाहि माटि-पानिमे पालित-पोषत रहैत अछि तकर प्रभाव ओकर व्यक्तित्वमे सन्हिआयल रहैछ।

यात्रीक जीवन ओ हुनक साहित्यिक सुषमा सौरभ सँ समकालीन मिथिलाक जनजीवनक दशा स्पष्टत: प्रतिबिम्बित होइछ। ओ अपन ओजपूर्ण व्यक्तित्वक प्रभावेँ सामाजिक जीवनमे नव बाट सुझयबाक युक्ति देलनि से छल परिवर्तनक हेतु, करोट फेरबाक लेल।

यात्रीक जीवन ओ हुनक साहित्यिक सुषमा सौरभ सँ समकालीन मिथिलाक जनजीवनक दशा स्पष्टत: प्रतिबिम्बित होइछ। ओ अपन ओजपूर्ण व्यक्तित्वक प्रभावेँ सामाजिक जीवनमे नव बाट सुझयबाक युक्ति देलनि से छल परिवर्तनक हेतु, करोट फेरबाक लेल।

साहित्यक विविध विधामे उपन्यास आधुनिक युगक सर्वाधिक सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधाक रूपमे मान्य अछि। यात्रीक उपन्यासमे तत्कालीन समाजक उथल-पुथलकँ देखाओल गेल अछि, जकर मूल कारण मिथिलामे कर्णाटवंशीय राजा हरसिंहदेवक समय सँ चलि आबि रहल पंजी-प्रथा मैथिल ब्राह्मण आओर कर्ण-कायस्थक वर्गीकरण प्रक्रियाक आरम्भ हैब छल। जे बादमे अनमेल विवाह ओ बहु-विवाह सन प्रथाकँ जन्म देलक।[1]

आधुनिक चेतनशील मैथिल समाजमे कन्यादान जे स्वरूप अछि तकर वीभत्सता दहेज परम्पराक कारणेँ अछि। निम्न-मध्यवर्गीय ब्राह्मणक लेल ई एक गोट असहज मुदा अवश्यम्भावी पीड़ा थिकैक। लोकलाज सँ बचबाक हेतु परम्पराक मारल खून-पसेना बहाय अर्जित कयल जमीन बेचि कऽ आजुक निम्न-मध्यवर्गीय मैथिल समाज कन्यादान सन पवित्र यज्ञ करैत अछि आ नैहर सँ बेसी सुख सासुरमे भेटबाक आशीषक संग बेटीकेँ विदा करैछ। मुदा 'पारो', 'नवतुरिया' जाहि काल, वर्ग ओ परम्पराक कथा कहैछ तकर विषयमे मैथिल कथा साहित्यक स्थापित लेखिका डा. नीता झाक उक्ति द्रष्टव्य थिक -

'समाजक तात्पर्य छल ब्राह्मण समाज ओहि समाजक सभसँ पैघ समस्या छल कन्यादान। कन्यादानमे विवाहक कारण छल पंजी-प्रथा एव दहेज प्रथा। ख्र तकर कारणे होइत छल दुष्परिणाम। इएह छल लेखक लोकनिक विषय, भूमि एवं चरित्रक चयन।'[2]

यात्री उपन्यासक फलक व्यापक नहिओ रहैत हुनक दृष्टि जतेक दूर धरि जा सकल ताहिमे मिथिलाक ग्रामीण समाजक यथार्थ, दू-पीढ़ीक वैचारिक संघर्ष ओ धरातल पर पसरल वर्ग-विषमतापर व्यंग्य करैछ। जन सामान्यक पीड़ा, अभिशप्त नारीवर्ग, नवतुरियाक आन्दोलन एकटा नव आ सशक्त यथार्थक अंग बनि हुनक उपन्यासकँ गतिशीलता प्रदान करैछ। गामक सामन्ती व्यवस्थामे दम घुटैत भूमिजीवी कृषकेटाकँ ओ नहि देखलनि, अपितु ओहि व्यवस्था सँ युद्धक आग्रही जनशक्तिक नेतृत्वकर्ताकँ सेहो देखलनि संगहि देखलनि ओहन प्रगतिशील शक्तिकँ जे गाममे हकन्न कनैत जीवनक अन्त कऽ नव जीवन आरम्भ करबा लेल सतत प्रयत्नशील छल।

मनुष्यक अपन व्यक्तिगत जीवन - संसार होइत छैक जे सामाजिक जीवन सँ कम रूचिपूर्ण ओ महत्वक नहि। पारोमे व्याप्त

अनमेल विवाह-जन्य असंतोष मनुष्य मात्राक असंतोष भेलहु जनसामान्यक असंतोष कहाओत। कारण जे व्यक्ति समुदायक मानसिकताकेँ उघबा लेल मजबूर होइत अछि। गत सदीक चारिम दशकमे मिथिलाक ललनाक अन्तर्मनमे अभिलाषाक हिलकोर उठि गेल छल, मुदा ओकरा धरातलपर अनबाक लेल गति आ बाटक अभाव खटिक रहल छलैक।

अनमेल-वृद्ध-विवाहक भँवरमे पड़ल मिथिलाक ललना जकरामे चेतनाक बीजारोपण मात्र भेल छल ओ चुप्पे रहि पुरूष प्रधान समाजक सभ शोषणकेँ आँखि मूनि बर्दाश्त करैत रहिल। 'पारो'क कथावस्तु निर्माणमे औचित्यक त्याग भेल अछि, मुदा आजुक परिप्रेक्ष्यमे देखल जाय तऽ समाजमे एहन-एहन अमर्यादित घटना चोरा-नुका कऽ होइते रहैत अछि। आजुक युवावर्गकेँ पार्कमे, सिनेमाघरमे एतेक धरि जे कतेको सार्वजनिक स्थलपर प्रेमालाप करैत साक्षात् देखल जाइछ। लोकतंत्रात्मक पद्वति सँ बनल न्यायालयमे मताधिकार प्राप्त नागरिकक प्रेम स्वीकारोक्तिकेँ मर्यादित कऽ देल गेल अछि।

जीवनमे संस्कार अनुशासनकेँ परतन्त्रताक बन्धन मानि एहि सँ मुक्त रहब अति महत्वपूर्ण मानल जाय लागल अछि। मिथिलाक समाज परम्परावादी रूढ़ि सँ ग्रस्त डपोरशंखी प्रवति सँ भरल छल, से हमर साहित्य कहैत अछि। एहिठाम संस्कार एवं शासन दुहूक प्रमुखता रहलैक अछि, मुदा जँ वर्तमानके छोड़ि पाछा देखल जाय तऽ स्वतन्त्रता तथाकथित, जमीन्दार बबुआन ओ रूढ़ि परम्परावादीक पोषक मुट्ठीमे बन्द छल। स्वतन्त्रताक अभावमे मानव-मनक लेल की नीक की अधलाह होइत छैक तकर विचार करब महत्वपूर्ण नहि छलैक।

स्वतन्त्रता सँ तात्पर्य ओकर शिक्षा, अभिव्यक्ति ओ जीवनक समस्त स्थिति छैक जे मनुष्यक विकासमे सहायक होइत छैक।

पारो परतन्त्रताक सिक्कड़िमे जकड़ल छलि। स्वतन्त्रता ओकरा सँ कोसहु दूर छलैक। ओ सामाजिक परम्परा सँ नीक जकाँ अवगत छलि तथापि कुहेश सँ बहरयबाक चेष्टा करैत रहलि। मिथिलाक ललना पुरूष प्रधान समाजक निमूह धन छलि, से नुकाइये कऽ अपन इच्छाकेँ अव्यक्त सँ व्यक्त रूपमे अनलक, तकर उत्तरदायी सामाजिक व्यवस्था छल।

'यात्री' मिथिलांचलक सामाजिक जीवनक अनुभूति कऽ ओकर पटाक्षेप कयलनि 'पारो'मे। एहिमे अनमेल वृद्ध विवाहक दुष्परिणाम स्वरूप लोकमर्यादाक उल्लंघन कोना होइत छल तकर स्वरूप 'यात्री' द्वारा ठाढ़ कयल गेल अछि।

'पारो' उपन्यास मिथिलाक ग्रामीण समाजमे विद्यमान संक्रमणक दुःस्थिति ओ तकर निदानक बाट सुझबैत अछि। संगहि भविष्यमे होमयबला दुःपरिणामक संभावना दिश संकेत सेहो।[3]

समाजमे विवाह यौन सम्बन्धक परम्परा, नियमन ओ वंशवृद्धिक संग परिवारक गठन लेल एक महत्वपूर्ण संस्थाक नाम थिक। मिथिलांचलक ग्रामीण समाजमे पुरान पीढ़ीक दृष्टिमे विवाह भाग्य पर निर्भर करैत अछि, जकर निर्माता वा पोषक ओ स्वयं अर्थात् पुरूष समाज भऽ जाइछ। जऽ ई गप सत्य तऽ असंगत इहो नहि जे पति-पत्नीक बीच अनिच्छित कटुताक मूल कारण यौन-असामंजस्य, अनिच्छित विवाह ओ अशिक्षा छल।

'यात्री' देखलनि जे परम्परावद्ध ब्राह्मण समाज अपन दरिद्रताक कारणहि विवाहमे क्रय-विक्रय, अनमेल विवाह सन प्रथाकेँ उघने जा रहल छल, मुदा समाजकेँ बुझबामे ई नहि आबि रहल छलैक जे मैथिल-संस्कृति एवं लोकमर्यादाक लोप कोन रूपेँ ओ कोन गति सँ भऽ रहल छैक। तेँ ई कहल जा सकैत अछि जे 'यात्री' साहित्यक माध्यम सँ सामाजिक यथार्थ-बोध कराओल।

'पारो'मे मैथिल ललनाक आशा-आकांक्षाकेँ व्यक्त कयल गेल अछि। पारोक अभिलाषा रहैक जे जोड़ी तुरियाक होअय सेहो जानल-चीन्हल। तेँ बिरजू जकरा सँ भाय-बहिनिक सम्बन्ध रहितहु प्रेम-भाव रहैक तकरहि पैर छुवि आशीर्वाद रूपमे अगिला जन्ममे सम्बन्धक कोनो प्रतिबन्ध नहि रहय, केवल प्रेमभाव रहय, मंगैत अछि। स्पष्ट होइछ जे समाजमे कन्या स्वेच्छया अपन पति तकबाक आधार प्रेम मात्रकेँ बनबय चाहलक। ओकरा अगिला जनम ई शासित नहि उठबय पड़ैक तकर आकांक्षी अछि।[4]

पारोक एहि उक्तिमे कटु सत्यक भाव बुझना जाइछ। एहिठाम जीवनक समस्त असंतोष, वेदना आ संतापक स्वरमे मानवीय भावनाक सूक्ष्म विश्लेषण भेल अछि। जीवनक विडम्बना, बेमेल विवाह एवं असफल सिनेहक आधारपर पीड़ित ओ शोषित पारो-पूर्ण स्वतत्रन्ताक माँग करैत अछि, संस्कारगत परम्पराक विरोध-विद्रोह करैत खुलि कऽ नहि।

'पारो'मे मैथिल ललनाक आशा-आकांक्षा ओकर स्वतन्त्रता मनमे उपजल संघर्षक चिनगी भुस्साक आगि जकाँ नहूँ-नहूँ सुनगि कऽ रहि जाइत छैक। ओ संस्कारगत परम्पराक संरक्षणक अढ़मे सभ सेहन्ताकेँ तिलांजलि दऽ देलि। मुदा तकर विरोधक श्री गणेश भेल 'नवतुरिया'उपन्यासमे। अपनहि मात्रसँ नहि समुदायक रूपमे गामक नवयुवकक सहयोग सँ।

'नवतुरिया' शब्दक अर्थ थिक युवावर्ग, नवीन पीढ़ी, नवयुवक समाजक संग नव विचारधाराक आग्रही वा पुरानपन्थी रूढ़ि, अंधविश्वास सन विचारपर आघात कयनिहार। 'नवतुरिया' उपन्यास गाममे पसरैत रूढ़ि-ग्रस्त परम्पराकेँ तोड़बाक कथा कहैत अछि। एहिमे गामक युवक-वृन्द जे अपर-मिडिल धरि पढ़ल, चेतनशील व्यक्तिक समूह अछि सैह थिक नवतुरिया।

'नवतुरिया'मे एक गोट गप जे ध्यान देबा योग्य अछि से थिक जकरा हेतु लड़ाइ लड़ल गेलैक अछि तकर सक्रिय सहभागिता एहिमे छैक। तेँ नवतुरियाक संघर्षक गाथामे हेहुआ, दिगम्बर, बुलो, माहे आदि नवयुवकक संग विशेश्वरी-रामेश्वरीक सक्रिय सहभागिताकेँ सेहो देखाओल गेल अछि। कथामे रामश्वरीक आक्रोशकेँ स्वत: देखल जा सकैछ।[5]

उपन्यासमे नौगछिया गामक गरमदलक सदस्य- दिगम्बर, माहे, बुलो, गनउरा, टुनाई थिक जे सारहीन ओ अनावश्यक रूढ़िकेँ तोड़बाक लेल सभ किछु करैत अछि। एते धरि जे बूढ़-पुरान सँ गारि-फज्झति सुनियोकऽ ओकर साहस क्षीण नहि होइत छैक, अपितु आओर अधिक शक्तिक संग बढ़िते जाइछ।

जँ कि उपन्यासक कथा भूमि मिथिलांचल अछि तेँ एहिठामक रूपरेखा देखबामे अबैत अछि। तत्कालीन समाजक अनमेल विवह, रूढ़ि, ढ़ोंगक जे कथा 'पारो' कहलक तकर समाधान 'नवतुरिया'मे नवतूरकेँ आगाँ कऽ यात्री देखओलनि अछि। नारी-शोषणक अप्रत्यक्ष विरोध 'पारो'मे, मुदा प्रत्यक्षत: 'नवतुरिया'मे गामक चेतना सम्पन्न युवकलोकनि सँ भेल अछि। अंधविश्वास, रूढ़ि ओ जड़त्व प्रकृति सँ जकड़ल आ दर्प सँ भरल चतुरानन मिश्र पचपन वर्षक आयुमे हुनक पाँचम विवाहक विरोधी, निरपराधी नवतुरिया दलकेँ न्याय मन्दिरमे बलि चढ़ाय अपन कार्य सिद्ध करबाक आयासमे सतत लागल रहैत छथि।[6] मुदा, नवतुरिया दल हुनका सन-सन कतेको लोककेँ निराश कऽ दैत अछि। ओ विनम्रताक प्रतिमूर्ति सेहो थिक।[7] 'नवतुरिया' जहिना चतुरानन मिश्र आ खोखाइ झा मात्रक कथा नहि भऽ कऽ सम्पूर्ण मैथिल समाजक कथा थिक तहिना नवतुरिया दल सँ उपन्यासक चारि-पाँच नवयुवक मात्र सँ नहि, अपितु समस्त मिथिलाक नवचेतना सम्पन्न नवतूरक कथा 'यात्री' कहलनि अछि। एहि उपन्यासमे पूँजीपति, पुरानपन्थी, जमीन्दार-शोषक चतुरानन मिश्र सन कतेको व्यक्तिकेँ नवता चेतनाक प्रति विरोधभाव सहजहिँ दृष्टिपर अबैछ।[8] 'नवतुरिया'क नारी समाज बन्हन स्वरूप परम्पराक विरोधी अछि जे प्रत्यक्षरूपेँ ठाम-ठाम दृष्टिगोचर होइछ। एहन नारी समाज जे घरक पछुऐत देखने छलि से अपन धी-बेटीकेँ अपर-प्राइमरी धरि शिक्षित कयलि। माय-बापक एक मात्र संतान विशेश्वरीक इच्छा छैक बीस-बाइस वर्षक दुलहा पयबाक, मुदा इच्छा पूर्ति भऽ जयबाक उपरान्त सुख शान्ति सँ प्रेमक मधुर वंशी बजयबाक लेल अशान्वित बीसोकेँ जखन ई बुझबामे अबैत छैक जे आइ राति ओकर माताह अपन दौहित्रीकेँ अपनहि हाथेँ परम उत्साह सँ बलि देथिन, ओकर कोंढ़ उनटल जाइत रहैक।[9] ओ अथ-उथमे पड़ि जाइछ आ एक बेरि पुन: परम्परा सँ बान्हलि, छहरदेवाली सँ घेड़लि एकटा मैथिल कुलीन कन्या-अवला जे बहुत किछु सोचितो अनुतरित भऽ जाइछ।[10] मुदा ओहि छहरदेवालीकेँ ढ़ढ़हबाक हेतु संकल्पित अछि नौगछिया गामक युवा-चेतन। ओसभ समाजक कायाकल्प कयलक से विवाहकेँ रोकिये कऽ नहि, अपितु वाचस्पति झा सन समाजवाद, क्रान्तिकारी नवतुरिया सदस्यक संग मिथिलाक विधि-व्यवहार अनुसार ओकर विवाह सम्पन्न कराय।

प्रगतिशील चेतनाक वाहक वाचस्पति झा विशेश्वरीक पाणिग्रहण करब स्वीकार करैत छथि। वाचस्पति विचार स्वस्थ ओ चेतनशील मनोवृतिक परिचायक थिक। हुनक विचार उपन्यासक एक पात्र दुर्गानन्दक संग भेल गपक अंश सँ स्पष्ट होइछ-

'व्यक्तियेक संकटसमाजक संकट थिक ओ समाजक संकट समस्त देशक संकट भऽ जाइछ।'

नवतुरिया दल गामक एहन कतोक देबालकेँ तोड़बाक हेतु संकल्पित भेल जेना अशिक्षा देवाल ताड़ि, पोथिक संग्रह, पुस्तकालयक स्थापनाक संग दू-तीनटा समाचार पत्र सेहो ओतऽ नवतुरियाक सहयोगसँ आबऽ लागल।

जेना पूर्वमे कहल गेल अछि जे नवतुरिया अर्थ नव चेतनासँ सम्पन्न, नव विचार भाँगिमा सँ पूर्ण नवयुकनोकनिमे ओहो व्यक्ति सभ अओताह जे सभ नव विचारक संग समाजक पुनर्निमाणमे अग्रणी छथि, खाहे ओ पचास-पचपन वर्षक बूढ़े कियेक ने होथि।

जँ ई बात सत्य तऽ नवतुरियाक पहिल सदस्य नायक होइताह स्वयं उपन्यासकार श्रीयात्री। वयमे वृद्ध रहितहुँ विचार-संस्कारमे समाज-विकासक बीड़ा उठायबमे, नारी समस्याकँ दूर करबामे, नवयुवककँ जागृत करबामे वस्तुतः ओ नव भेलथि।

उपन्यासक प्रासंगिकता ओ युवा चेतनाक प्रसंग मैथिल कथा-साहित्यक स्थापित डा. विभूति आनन्दक निम्न वाक्यांशकँ उद्धृत करब समीचीन होयत-

'नवतुरिया सोच यात्रीक व्यक्तित्वक सोचक संग जुड़ल अछि। एहि सोचक उपयोग यात्रीजी अपन माटि-पानिमे करै छथि जे जड़-स्पन्दनहीन आ पण्डिताउ मानसिकता सँ जकड़ल छल। मिथिला भू-खंडक मध्य सँ पनपल कुरीतिक विरूद्ध संघर्ष छै, जे ओहि माटि-पानिक अंकूर द्वारा कएल जाइ छै। तँ सूत्र रूपमे कही तऽ नवतुरियाक सोच जमकल-ठमकल पानिमे ढ़ेप मारब थिक आ ओकर हिलकोर कँ यात्री मोनक वैचारिक दृढ़ताक नाम देल जाइ तऽ से असंगत नहि होएत।'[11]

संदर्भ सूची

1. मैथिल ब्राह्मणों की पंजी व्यवस्था - प्रो. रमानाथ झा।
2. समकालीन उपन्यासमे लोकजीवन आ अन्तदृष्टि - डा. नीता झा (सं. मैथिलीक समकालीन उपन्यास - सं. रमानन्द रेणु) पृष्ठ 103
3. मैथिल समाज - पंचानन मिश्र, शेखर प्रकाशन, पटना, पृष्ठ 59
4. पारो (उपन्यास) - श्री वैद्यनाथ मिश्र 'शत्री' पृष्ठ 95
5. नवतुरिया (उपन्यास) - श्री वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' पृष्ठ 5.6
6. वैह, पृष्ठ 90
7. वैह, पृष्ठ 68
8. वैह, पृष्ठ 69
9. वैह, पृष्ठ 29.30
10. वैह, पृष्ठ 44
11. यात्रीक नवतुरिया - विभूति आनन्द (भाषा - टीका), पृष्ठ 61

आधुनिक युग में सामाजिक पुनर्जागरण की प्रक्रिया

डॉ० प्रदीप कुमार सिंह

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, साठये महाविद्यालय (मुंबई विद्यापीठ), मुंबई-महाराष्ट्र

भारत में सामाजिक पुनर्जागरण का आरम्भ उन्नीसवी शताब्दी से माना गया हैं। इसी युग में अंग्रेजों के आक्रमण के पश्चात् पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता तथा संस्ख्रति के संपर्क में आकर भारतीय समाज की परम्पराओं में आमूलचूल परिवर्तन हुये। रूढ़िगत अहितकर मान्यताओं और आदर्शो-पर जिन्होंने जन जीवन के बौध्दिक व मानसिक विकास को भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों की खाइयों में बन्दी बना रखा था, जागृति और नवचेतना का प्रकाश इसी काल में प्रतिबिम्बित हुआ। अंग्रेजों की शासन व्यवस्था से भारतीय राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों पर विशेष प्रभाव पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप उनकी जड़ता (प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं में दबी जड़ता ने गति पाकर आत्म विश्वास, आत्म-सम्मान तथा आत्मनिर्भरता जैसी भावना का अत्याधिक प्रचार-प्रसार में अमूल्य सहयोग प्रदान किया। नारी जागृति की ख्रष्टि से यह काल बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

अंग्रेजों के शासन के प्रभाव से होने वाले अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ विचारों की क्रांति भी हुई। पश्चिम में व्यापक उदारवादी विचारधारा ने भारतीयों के मन एवं दिमाग पर छायी अंधविश्वास, स्वामित्व की भावना, असामानता इत्यादि को दूर करने का प्रयास किया। नये अंग्रेजी प्रशासन तथा आर्थिक प्रवृतियों को सुख्रढ़ करने तथा प्रोत्साहन देने के निमिव्त कंपनी सरकार को नए शिक्षित वर्ग की आवश्यकता महसूस हुई। और धीरे-धीरे कार्यक्षेत्र विस्तृत होने पर मध्यवर्ग को शिक्षित करना अनिवार्य हो गया। सन् 1833 से नयी शिक्षा पद्धति की शुरूआत हुई। स्कुल, हाईस्कूल तथा बाद में विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। नयी शिक्षा पद्धति ने भारत के एक वर्ग में अंग्रेजी माध्यम से नयी शिक्षा, नए मूल्यों, नई विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया। इसी वर्ग में से नये समाज सुधारक राजानीतिक नेता, साहित्यकार और प्रशासनिक अधिकारी पैदा हुये।

नया शिक्षित वर्ग एक ओर नई आर्थिक परिस्थितियों का अनुभव करने लगा, तो दूसरी ओर समानता एवं स्वतंत्रोन्मुख विचारों के सम्पर्क में आया। अपने समाज, समूह, रीति-रिवाज परम्पराओं को नई ख्रष्टि से परखने का प्रयास करने लगा। बाह्य वातावरण में नये परिवर्तनों की संभावनाएं उसे दिखायी देने लगी। इस तरह भारतीय समाज के सर्वांग परिवर्तन की पृष्ठभूमि का सर्जन हुआ। अनेक सीमाओं के बावजूद नए. मूल्यांकनों ने स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया। नई विचारधारा से प्रभावित होकर, जागृत वर्ग ने नई भावनाओं से प्रेरीत होकर नारी की मुक्ति, समानता, व्यक्तित्व के विकास की मांग प्रस्तुत की। नए बाह्य वातावरण ने मागों को पूर्ण करने का मार्ग सरल बना दिया।

उन्नीसवी शताब्दी की परिवर्तित परिस्थितियों में नये शिक्षित वर्ग ने भारत की समाज रचना तथा मुख्यत: स्त्रियों की स्थिति सुधारने का प्रयास किया। स्त्री-जागृति के लिए संघर्षशील जागृत वर्ग को दो भागों में विभक्त किया जा सकता हैं। ये दोनों भाग दो विभिन्न विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों वर्ग के सुधारकों की मान्यता थी कि प्रचलित रिवाजों और प्रथाओं में परिवर्तन आवश्यक हैं, किन्तु सामाजिक सुधार के रूप एवं प्रकार तथा कुप्रथाओं के कारणों के बारे में मतभेद था। एक वर्ग या समूह, जिसे 'सामाजिक सुधारक' कह सकते हैं, यह वर्ग तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के दोषों का प्रतिकार करने को महत्व देता था। तो दूसरा वर्ग या समूह, जिसे 'सामाजिक पुन:उद्धारवादी' कह सकते है, इनकी मान्यता थी कि वर्तमान सामाजिक ढांचे में दुष्टप्रवृत्तियों एवं स्त्रियों की पशु के समान स्थिति की उत्पत्ति वेदकालीन समाज व्यवस्था और आदर्शो को छोड़ देने के कारण हुई। यदि इन दोशों को दूर करना हैं तो भारत में बीते हुये सवर्णकाल को पुनर्स्थापित करने के लिए वेदकालीन समाज व्यवस्था की पुनर्सथापना आवश्यक हैं। तथा स्त्रियों की स्थिति में संभावना भी तभी स्थापित की जा सकेंगी। दोनों समूह जो नई विचारधारा से प्रेरित थें स्त्रियों

की स्थिति तथा सामाजिक रीति-रिवाजों में परिवर्तनों के समर्थक थें। समाज सुधारक प्रत्येक व्यक्ति में जागृत एवं चेतना जगाने के लिए प्रयत्नशील थें। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान की भावना को उजागर करने के लिए महान से महान संघर्श करने को तैयार थें और उन्होंने किये भी।

क. सुधारवादी विचारधारा

सन् 1857 की क्रान्ति से जो प्रेरणा जागी थी उसने संपूर्ण भारतीय समाज में नवसंस्कार की लहर फैलायी। यह पूरा दौर अंधविश्वासों, रूढ़िवादी एवं कुसंस्कारों के दाग-धब्बे मिटाने का दौर था। यह भारतीय नवजागरण का दौर था। इस वक्त समाज में ऐसे लोगों का समूह सामने आया, जो अपने समाज की आन्तरित विशमताओं रूढ़िगत ख्रष्टिकोण पर तार्किक ख्रष्टि से विचार करने लगे और उसमें सुधार की संभावनाएं ढूंढने लगे। इसमें धार्मिक मान्यताओं सामाजिक रीति-रिवाज, संस्थाओं एवं प्रवचनों का नवसंस्कार करने की कोशिश भी थी और नैतिक मान्यताओं के दायरे को बढ़ाने का साहस भी समाज-सुधारकों द्वारा नवजागरण का केन्द्र रहा था। परिणामस्वरूप अनेक समाज सुधारवादी आन्दोंलनों की शुरुआत हुई। इन सुधारवादी आन्दोंलनों का प्रमुख उद्देश्य स्त्रियों की सामाजिक शैक्षणिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार करना। इन सुधारवादी आन्दोंलनों के प्रमुख आधार थे सतीप्रथा निशेध अधिनियम, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, बाल-विवाह निशेध अधिनियम, एवं विशेष विवाह अधिनियम इत्यादि। इनके द्वारा नारी जीवन बहुत अधिक प्रभावित हुआ। नारी की अवस्था इस युग में सम्मानीय नहीं थी। वह अनेक कुरीतियों में जकड़ी हुयी विवशता भरा जीवन व्यतीत करती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन समाज सुधार योजानाओं एवं कानूनी प्रतिबन्धों में नारी जाति को दूरावस्था की सीमा से निकल कर उन्मुक्ति का द्वार दिखाने की चेष्टा की। नारी ने धीरे-धीरे अपनी अवस्था या अपने अस्तित्व को पहचानना शुरू किया। सुधारवादी आन्दोंलनों ने नारी सुधार क्षेत्र में सराहनीय कार्य किये।

समाज सुधारकों की मान्यता थी कि राष्ट्र की प्रगति एवं विकास के लिये यह आवश्यक हैं कि जीवन के सभी क्षेत्रों में सुधार पर समान रूप से ध्यान दिया जाये। सुधार का काम किसी एक पक्ष तक सीमित नहीं रखना चाहिए। एक तरफा विकास को सही मार्ग नहीं कहां जा सकता। जिस तरह

संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रत्येक वर्ग पारिवारिक विकास तथा उन्नति के लिए स्त्रियों की स्थिति में सुधार एवं उन्हें शिक्षित करना आवश्यक हैं। नारी एक मां भी हैं, मां की शिक्षा के बिना संतान कभी सुयोग्य और सुशिक्षित नहीं बन पायेंगी। और बिना शिक्षण एवं अच्छे स्वास्थ्य के अभाव में किसी भी देश का समुचित विकास असंभव हैं। अपने इन्हीं विचारों को सभी सुधारकों ने व्यवहारिक रूप देने की चेष्टा की। उनका ध्यान नारी जीवन की दयनीय स्थिति पर केन्द्रित रहा और युगों से शोशित पीड़ित नारी जीवन के विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया। कुछ समाज सुधारकों के वैचारिक पक्ष और उनके द्वारा किये गये स्त्री सुधार संबंधी कार्यक्रमों का विश्लेषण हम यहां प्रस्तुत करेंगे।

1. राजाराम मोहनराय (ब्रम्ह-समाज) 1972-1833

उन्नीसवी शताब्दी की नवचेतना के प्रतिभाषाली प्रतीक के रूप में महान उदारवादी सुधारक राजाराम मोहनराय का नाम अग्रण्य था। ब्रम्ह-समाज के उन्नायक राजाराम मोहन राय साधक कम, राजनीतिक एवं सामाजिक नेता अधिक थें। ईसाई मत का प्रत्याख्यान करने के साथ ही उन्होंने हिंदुत्व में नये संस्कारों का समावेश करते हुए उसे जीने योग्य बनाया। अपनी आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के संस्कारों के परिणामस्वरूप उन्हें नवीन स्वस्थ दृष्टि प्राप्त हुयी, उसके सहारे वैज्ञानिकता का उन्होंने वेदान्त से समन्वय कर दिया। वे धर्म के उस पक्ष का समर्थन करने लगें जिसमें मूर्तिपूजा नहीं थी, अवतारवाद नहीं था और न जिनमें मंदिरों या तीर्थों का ही कोई बंधन था। वें हिन्दुत्व का ऐसा कोई भी रूप स्वीकार नहीं करना चाहते थें जो विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा नहीं उतरता था। मिस कालेट उनकी महत्ता के बारे में लिखती हैं:- 'प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मान्यता के बीच जो खायी हैं, अन्धविश्वास और विज्ञान के बीच की जो दूरी हैं, स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अन्तराल हैं तथा बहुदेववाद और शुध्द ईश्वरवाद के बीच जो भेद हैं उन सारी खाइयों का पूल बांधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजनेवाले महापुरुष राजाराम मोहनराय हैं।'[1]

राजा राममोहन राय जी की नारी संबंधी मान्यताओं ने भी समाज का ध्यान आकर्षित किया। वे सतीप्रथा के घोर विरोधी थें। सन् 1811 में अपनी आंखों के सामने भाभी के अग्नि प्रवेश से द्रवित हो वे तिलमिला उठें थे और उन्होंने इस क्षेत्र में ठोंस कदम उठाने

का संकल्प किया। उन्होंने सन् 1818 सतीप्रथा के विरुद्ध जोर-शोर से प्रचार शुरू किया। अपनी मासिक पत्रिका 'संबंध-कौमुदी' में इस प्रथा के विरुद्ध उनकी कलम चलती रही।

यह कहां जाने लगा कि जो कार्य रूढ़िग्रस्त हिन्दुधर्म न कर सका, उन्हें ब्रम्हसमाज ने कर दिखाया। बिना मूर्ति के माध्यम से ईश्वर को भजने का मध्यमार्ग ढूंढ निकाला। राजाराम मोहनराय ने दो प्रधान कार्यक्षेत्र थे एक स्त्री संबंधी कार्य और दूसरा ब्रम्हसमाज संबंधी कार्य। इन दोनों कार्यक्षेत्रों का प्रमुख उद्देश्य था नारी की दयनीय एवं निम्नस्तर को सुधारना।

नारी संबंधी विचार: राजाराम मोहन राय का नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण था। भारत की प्रत्येक अबला नारी को वे सबला व शिक्षित करना चाहते थें। वे नारी को इस योग्य बनाना चाहते थें कि वह खुद का तथा उसके अंक में पलने वाले पुरुष का उद्धार कर सकें। इसलिए उसके विकास में आनेवाली प्रत्येक रूढ़ियां और प्रथाओं का विरोध करते रहें। उन्होंने ब्रम्हसमाज की स्थापना कर हिन्दू धर्म को कर्मकाण्ड एवं अन्धविश्वासों से मुक्त कराने का प्रथम आधुनिक प्रयास किया। वह सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य समझते थे। स्त्री-जीवन को नासूर की तरह बनाने बाली कुरीतियों को जैसे - सतीप्रथा, दहेजप्रथा, नारीशिक्षा का अभाव, नारी का सम्पत्ति में नगण्य अधिकार आदि पर अपने विरोधक दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। सतीप्रथा को रोकने के लिये सर्वप्रथम उन्होंने आन्दोलन किया तथा लार्ड बैंटिग द्वारा 1829 में सतीप्रथा गैर कानूनी घोषित करके एवं इसके विरुद्ध बड़ा कानून बनवाने को कहां।

1. सतीप्रथा का विरोध: राजा राममोहन राय जी द्वारा सतीप्रथा का विरोध मात्र भावना प्रधान ही नहीं बल्कि बुध्दि प्रधान भी था। 'शास्त्रार्य' में उनके लेख अधिकत्तर सतीप्रथा पर ही आधारित मिलते हैं। 'चंद्रिका' नामक समाचार पत्र द्वारा वे सनातनी हिन्दुओं एवं सतीप्रथा की कड़ी आलोचना करते रहें। उनके मतानुसार सतीप्रथा का मूल कारण आर्थिक समस्या या स्थिति कहां है, क्योंकि भारतीय समाज में पिता के घर से ब्याह करके पति के घर आयी हुई स्त्री का संरक्षण पति करता हैं। जब तक पति जीवित हैं तब तक उसे भी महत्व या कीमत दी जाती। पति के मृत्यु के पश्चात स्त्री की स्थिति बहुत दयनीय और शोचनीय हो जाती थी उसे आर्थिक स्वतन्त्रता मिली भी तो सास-ससुर, भाई-भौजी, देवर-देवरानी, जेठ-जेठानी की कड़ी आलोचना सुननी पड़ती थी। कलमूही जैसे अपशब्द बोलकर प्रात: काल में उसका मूंह देखना अपवित्र माना जाता था। उसे सामाजिक उत्सवों, तीज-त्यौहारों एवं मंगल कार्य में भाग लेना निषिद्ध माना गया था तथा उसकी उपस्थिति ऐसे अवसरों पर अशुभ एवं अमंगलमय मानी जाती थी। उसके सारे श्रृंगार को उससे अलग कर दिया जाता था। उसके केश काट, नंगे हाथ रखकर सभी श्रृंगार, सौभाग्य चिन्ह उतार लिये जाते थे। अत: उसके लिए नीरस एवं बेरंग जीवन काटना ही उसकी नियति समझी जाती थी। उसके लिए ऐसा नीरस, बेरंग तथा यातनापूर्ण जीवन काटना एक महान संकट के समान होता था। जो जीवन मरने से भी बदत्तर हो उसे अपने पति के शव के साथ नष्ट कर देना उचित समझती थी। और जबकि ऐसी मृत्यु उसे सम्मानीय पद पर पहुंचा देती थी। लेकिन कभी-कभी स्त्रियां आवेश में आकर पति मृत्यु के दु:ख की तीव्रता से उद्रेलित होकर सती होने का निर्णय लेती थी और कभी समाज एवं परिवार के भय से। जब अग्नि प्रवेश के समय भयभीत होती या अनिच्छा दशने पर उसे बलात चिता पर ढकेल दी जाती थी, वह भागकर चिता से बाहर न आ जायें इसीलिए उसे रस्सी से बांध दिया जाता था। राजा राममोहन राय जी ने समाज में प्रचलित इस कुप्रथा या रूढ़ि की कड़ी आलोचना की और इस प्रथा के विरोध में सरकार से इनके प्रतिबन्धक कानून बनाने की अपील की। उनके नारी सुधार संबंधी ये प्रयत्न या प्रयास सफल हुये। सन् 1829 में सती प्रथा बन्द करने के लिए कानून पारित हुआ। कानून के माध्यम से समाज सुधार की दिशा में यह प्रथम कदम था जो उल्लेखनीय है। इस अधिनियम के अनुसार विधवाओं के सती होने या आत्मदाह को अवैध घोषित किया।

2. स्त्री और सम्पत्ति अधिकार: स्त्री की दयनीय एव शोचनीय स्थिति की जिम्मेदार उनकी आर्थिक परिस्थितियां भी रही। आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर होने की वजह पुरुष उसका मनमाना शोषण करता था। राजा राममोहन राय जी का मत था कि सतीप्रथा को प्रोत्साहित एवं बढावा देने के कारणों में आर्थिक कारण सबसे महत्वपूर्ण था। इसीलिए उन्होंने स्त्री के साम्पत्तिक अधिकारों के लिए महान संघर्ष किया।

मध्यकाल में स्त्री का अपने पिता की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहा। और कई बार तो विवाह का खर्च बचाने के लिए भाई अपनी बहन का विक्रय कर देते थें। ऐसी परिस्थितियों में मोहनराय जी ने यह प्रस्ताव रखा था कि वर्तमान कानून का अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए। उनकी मान्यता पुत्री के अधिकार के बारे में कुछ इस तरह की थी, कि पुत्र के अधिकार में से चौथाई भाग पुत्री को मिलना चाहिए। तथा स्त्रियों को अपने इस सीमित अधिकार के प्रति सजग रहना चाहिए तथा बहन की संपत्ति भाई हड़प न कर ले, इस हेतु सरकार को कदम उठाना चाहिए। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि स्त्रियों की प्रगति शिक्षा के प्रचार तथा आर्थिक स्वतन्त्रता से ही संभव हैं।

3. दहेज प्रथा का विरोधः कुलीनप्रथा ने दहेज की मात्रा में वृद्धि कर दी। राजा राममोहन राय जी के समय में पैसे का मूल्य अधिक न होने से दहेज की रकम भी बहुत कम होंगी। लेकिन शिक्षा के प्रचार ने जहां कुछ सुधार किये वहीं कुछ त्रुटियां भी सामने आई। जैसे-जैसे शिक्षितों की संख्या बढ़ने लगी, वैसे-वैसे शिक्षित युवकों की कीमत यानि की दहेज की रकम में वृद्धि होने लगी। धीरे-धीरे विवाह करने का उद्देश्य केवल दहेज की रकम हड़प करने तक सीमित होता गया।

दहेजप्रथा के साथ-साथ अनेक कुप्रथाओं को प्रोत्साहन मिला। जैसे अनमेल विवाह-दहेज के अभाव में अयोग्य वर से पुत्री का विवाह बड़ी आयु के वर कम दहेज पर उपलब्ध थे। निर्धन माता-पिता दहेज न जुटा पाने की वजह अपनी कोमल, कमसिन पुत्री का विवाह बूढ़े, लगड़े, लूलें व्यक्ति से कर अपनी जिम्मेदारी वहन को पूर्ण समझते थे। जिससे उनका गृहस्थ जीवन दुखमय हो जाता था तथा शीघ्र ही उसे असामायिक वैधव्य भोगना पड़ता था। चूंकि इस युग में 'विवाह संस्कार' अनिवार्य होने से प्रत्येक लड़की का विवाह होना जरूरी था।

राजाराम मोहन राय जी ने ऐसी अमानवीय प्रथा की कड़ी आलोचना की। और इन्होंने घोषणा की थी कि जो पिता अपनी पुत्री का विक्रय करता हैं अथवा जो व्यक्ति धन लेकर किसी स्त्री से विवाह करता हैं तो वे दोनों धर्म की दृष्टि में अक्षम्य पाप करते हैं। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया था कि देश में ऐसा कानून बनना चाहिए जिसके अर्न्तगत विशेष परिस्थितियों में दूसरा विवाह न्यायालय की पूर्व आज्ञा से ही किया जा सकें।

राजाराम मोहनराय ने स्त्री विषयक कार्यो की समीक्षा करते हुये यह कहां जा सकता हैं कि उनकी दृष्टि तथा झुकाव में उदारवाद व मानवतावाद की झलक दिखाई देती हैं। ये प्रथम व्यक्ति थें जिन्होंने सर्वप्रथम स्त्री-सुधार की मांग रखी। उस समय के जटिल एवं उग्र प्रश्नों को जनता के सामने प्रस्तुत करके विशेष स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करने का श्रेय भी उन्हें ही दिया जाता हैं।

4. ब्रम्ह समाज की स्थापनाः उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वप्रथम धार्मिक सुधार आन्दोलन ब्रम्हसममाज (1828) के नाम से विख्यात हैं। इसके प्रवर्तक राजाराम मोहनराय थे, जिनमें अद्वितीय प्रतिभा थी और जो स्वयं संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। उन्होंने बहु-विवाह, छुआछूत तथा मूर्तिपूजा आदि का प्रबल विरोध किया। क्योंकि प्राचीन हिन्दू धर्म तथा उपनिषेदादि ग्रन्थ इसका अनुमोदन नहीं करते। उन्होंने वैदिक हिन्दू धर्म को अत्यन्त सरल, सम्पूर्ण और युक्ति संगत बताया। उस समय भारतीय जनता पर ईसाई धर्म का प्रभाव गहरा पडता जा रहा था। राजाराम मोहनराय इसका विरोध कर हिन्दु जनता को उसके धर्म और उत्तरदायित्व केप्रति सचेत किया। उन्होंने सबसे बड़ी क्रान्तिकारी बात विधवा-विवाह पर जोर देकर की। उस समय भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। समाज उन्हें उपेक्षा की ख्रष्टि से देखता था। उसका कोई आर्थिक आधार न था, और पति की मृत्यु के पश्चात् या तो उन्हें सती होने के लिए बाध्य किया जाता था अथवा उन्हें दासी सख्रश जीवन व्यतीत करना पड़ता था। कभी-कभी उनके प्रति दुर्व्यवहार इतना बढ़ जाता था कि उनमें से अधिकांश आत्महत्याएं कर लेती थी अथवा वेश्यावृत्ति अपना लेती थी। राजाराम मोहनराय ने इसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और विधवा विवाह की आवश्यकता पर बल देते हुए उनका जीवन सुधारने का प्रयास किया। दुर्भाग्यवश ब्रह्म समाज की स्थापना के कुछ वर्ष पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई और उनके देहान्त के साथ ही ब्रह्म समाज में दरार उत्पन्न हो गई। वह दो वर्गो में विभाजित हो गया। एक वर्ग के संचालक देवेंद्रनाथ टेगौर थे, जो कट्टर हिन्दू थे और जाति प्रथा को तोड़ने में अधिक विश्वास रखते थे। दूसरे वर्ग का नेतृत्व केशव चन्द्रसेन कर रहें थे, जो ईसाई धर्म के अत्यन्त प्रशंसक थे।

2. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (1820-1891)

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कट्टर समाज सुधारक थें। समाज में स्त्रियों की स्थिति सुधारने की ख्रष्टि से राजाराम मोहन राय ने विधवाओं का अग्निस्तान बन्द करवाया और विद्यासागर ने विधवाओं को वैधव्य जीवन की यातनाओं से बचाने के लिये उनके पुनर्विवाह पर जोर दिया और कानून द्वारा विधवाओं का पुनर्विवाह को अनुमति दिलाने का प्रयास किया। राजाराम मोहन राय की ही तर्क विधि अपनाने के कारण विद्यासागर की उदारवादी सुधारकों की श्रृंखला की एक कड़ी बन गये। इन्होंने बहु-विवाह प्रथा को रोकने के लिए जो आन्दोलन चलाया था, उसे विद्यासागर ने आगे बढ़ाया और बहुविवाह के दोष या दुर्गुण समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर नारी की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया।

1. विद्यासागर की प्रतिज्ञाएं: समाजसुधार के प्रारंभिक काल में जब रूढ़िग्रस्त समाज व्यवस्था का ढांचा अत्यन्त कठोर था, उस समय समाज-सुधारकों के व्यक्तिगत जीवन तथा सार्वजनिक जीवन की दोहरी नीति का समाज सुधारक पर बहुत अनिष्ट प्रभाव

पड़ा। विद्यासागर जी के विचारों में सुधार कार्यों में गति लाने के लिए उन सब सिद्धांतों का, जिनकी हिमायत की जाती हों उनका व्यवहारिक जीवन में समावेश करना अत्यन्त आवश्यक है। विद्यासागर जी ने अपने जीवन में सात प्रतिज्ञाए ली थी-

1. अपनी कन्या को पूर्ण शिक्षा दें।
2. अपनी कन्या का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु के पूर्व न करेंगे।
3. कन्याओं के लिये योग्य वर ढुढ़ने के लिए धन को मापदण्ड न बनायेंगे।
4. यदि कन्या विधवा हो जायें तो, उसे पुनर्विवाह की इच्छानुसार अनुमति देंगे।
5. अपनी पुत्री का विवाह 18 वर्ष की आयु के पूर्व नहीं होने देंगे।
6. उनकी पत्नी जब तक जीवित होंगी तब तक दूसरा विवाह नहीं करेंगे।
7. अपनी कन्या का विवाह ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं होने देगे, जिसकी पहली पत्नी जीवित हो।

इन प्रतिज्ञाओं से स्पष्ट होता हैं कि विद्यासागर में समाज सुधार और स्त्री प्रगति के प्रति गहरी निष्ठा थी। वैसे तो उन्होंने नारी संबंधी सभी सुधारों पर अत्यधिक जोर दिया था, लेकिन उनमें प्रमुख रूप से विधवा-पुनर्विवाह और स्त्री-शिक्षा उल्लेखनीय हैं।

2. विधवा-विवाह (पुनर्विवाह): राजाराम मोहनराय द्वारा शुरू किये गये विधवाओं के उत्थान कार्य को आगे जारी रखने का पवित्र कार्य विद्यासागर ने उठाया था। केवल 'सतीप्रथा' बन्द होने से स्त्रियों की यातनाओं और दु:खों का अन्त नहीं हुआ, उनका उल्लास रहित जीवन-क्रम चलता रहा। यह जीवन उनके लिए मरने से भी बदत्तर था। जिसे ढोना उनकी नियति बन गयी थी। विद्यासागर ने विधवा-विवाह का अभियान चलाया। अत: जिन्होंने बुध्दिमानी और समझदारी से यह तर्क समाज के युवकों के सामने रखा। उन्होंने अपने प्रयत्न या सुधारक प्रयास जारी रखें। सन् 1856 में प्रकाशित विधवा विवाह नामक पुस्तक में उनके सब तर्को का उल्लेख हैं। सतीप्रथा को बन्द हुये अभी पच्चीस वर्ष भी हुयें थें कि पुनर्विवाह के प्रस्ताव पारित होने लगें। इसे रूढ़िग्रस्त समाज कैसे स्वीकार करता। विद्यासागरजी पर अनेक आक्रमण भी किये, लेकिन वे असफल रहें। फिर भी विधवा-विवाह के समर्थन में दिए गए आवेदन पत्र पर कई हजार हस्ताक्षर करवाए गए। इन्होंने जब प्रथम विधवा-विवाह करवाया था तब अनेक मित्रों ने विवाह प्रसंग पर उपस्थित होकर उसका समर्थन किया था। 'विधवा-पुनर्विवाह' के बारे में उनकी पुस्तकों का गुजराती और मराठी में अनुवाद हुआ था।

जो विधवा पुनर्विवाह करना न चाहें, उनके लिए विधवाश्रम की स्थापना की थी। इन आश्रमों में नारी-शिक्षा का प्रबन्ध करके, उन्होंने उनके मन में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न की। उनको विश्वास था कि धर्मशास्त्र, वैधकशास्त्र, संगीत, कला-शिल्प और गृहकार्य आदि का ज्ञान स्त्री को प्रख़्रति से ही प्राप्त हैं। अत: उसका ठीक मार्गदर्शन करने से ही स्त्री की स्थिति गौरवान्तित हो सकती हैं।

3. नारी-शिक्षा: शिक्षा का क्षेत्र विद्यासागर जी का प्रिय क्षेत्र था। इस क्षेत्र में उनका सराहनीय सहयोग रहा है। अंग्रेजी शिक्षा का अभ्यास उन्होंने कभी नहीं किया था, लेकिन अंग्रेजों के संपर्क में आने से अंग्रेजी से काफी परिचित हो चुके थें। वे भी अंग्रेजी भाषा को महत्व देने लगे थें।

विद्यासागर जी अपने महान कार्यक्षेत्र स्त्री-शिक्षा से जुड़े हुये थें। उस काल में स्त्री शिक्षा के प्रति समाज में उदासीनता छायी हुयी थी। विद्यासागरजी ने इस उदासीनता को झंझोर कर जागृति में परिवर्तित करने का प्रयास किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा का महत्व ऐसे विषय पर लोगों को निबन्ध लिखने के लिए आमंत्रित किया। सन् 1849 में विद्यासागरजी ने एक कन्या विद्यालय की स्थापना की जो आगे चलकर कलकत्ता के विख्यात 'नेश्युन कॉलेज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहां-जहां कन्या विद्यालय स्थापित किये गये थें वहां कन्याओं की फीस माफ कर दी गई और अध्ययन के साधन देकर माता-पिता एवं संरक्षकों को अपनी कन्या को शिक्षा देने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास किया।

शिक्षा-निरीक्षण की ख़्ष्टि से विद्यासगार जी ने गांवों के दौर किये और अवसर मिलते ही कन्या विद्यालयों की स्थापना करने से नहीं चूकते। इस प्रकार नारी-शिक्षा क्षेत्र में उनका अमूल्य एवं अमिट योगदान रहा हैं।

विद्यासागरजी राजाराम मोहनराय द्वारा प्रारम्भ किये गये सुधार कार्यो के अनुगामी थें। विधवा संबंधी समस्यायें से संबंधित कार्यो को आगे बढ़ाया और राजाराम मोहन राय की कार्यपद्धति अपना कर इस क्षेत्र में विशिष्ट कार्य किये।

विधवा-समस्या और-स्त्री शिक्षा संबंधित कार्यो के अतिरिक्त विद्यासागर जी ने बहु-विवाह और बाल-विवाह का भी विरोध किया था। उन्होंने स्त्री के विवाह-योग्य आयु 16 वर्ष तथा पुरुष की 25 वर्ष बतायी थी।

शिक्षा क्षेत्र में विद्यासागर जी का योगदान अमूल्य रहा। स्त्री-शिक्षा का बढ़ता हुआ प्रचार इसका स्पष्ट प्रमाण था। वे इस क्षेत्र में विशेष सक्रिय रहें। कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम महिला स्नातिका चंद्रमुखी बसु नैश्युन महाविद्यालय की छात्रा थी।

3. महादेव गोविंद रानाडेः (प्रार्थना समाज) 1842-1915

उनन्नीसवी शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति सुधारक अभियान अनेक प्रान्त में हुये। बंगाल में राजाराम मोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा ब्रह्म समाज के नेता अग्रणी थें। पंजाब में दयानन्द सरस्वती तथा आर्य समाज और महाराष्ट्र में इस जागृति को फैलाने वालों में विष्णु ख्रष्ण चिपलुणकर, गोपाल गणेश आगरकर अग्रणी थें। सन् 1888 में आगरकर ने 'सुधारक' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। जिसमें अधिकांश स्त्री-सुधार संबंधी चर्चा ही हुआ करती थी।

इस प्रकार सुधारक मौखिक एवं लिखित माध्यम से जनता के सम्मुख नारी चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। नारी की वास्तविक स्थिति को समाज के शिक्षित जनता के सम्मुख रखा उनकी समस्याओं एवं दुःखों से अवगत कराया। और उन समस्याओ तथा दुःखों को दूर करने का अथक प्रयास भी किया। जब केशव सेन चन्द्र ने ई. 1864 में बम्बई में आकर 'ब्रह्म समाज' की शाखा खोली तब उन्हीं के प्रभाव से महादेव गोविंद रानाडे ने इस शाखा का नेतृत्व अपने हाथों में लिया था और आगे चलकर उन्होंने ब्रह्म समाज की शाखा "प्रार्था-समाज" से खोली। सामाजिक सुधार और विशेष नारी समस्यां संबंधी क्षेत्र में जुटे हुये विशिष्ट व्यक्तियों में रानाड़े अग्रपक्ति में आते हैं।

रानाड़े का सामाजिक ख्रष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उन्होंने 'प्रार्थाना समाज' के चार उद्देश्य रखें थें।

1. जाति प्रथा का विरोध
2. विधवा-विवाह का समर्थन
3. स्त्री शिक्षा का प्रचार
4. बाल-विवाह को रोकना।

प्रार्थाना समाज की स्थापना 1867 में बम्बई में हुई थी। इसके प्रमुख नेताओं में रानाडे तथा एम. जी. चन्द्रवर्कर आदि थे, जो अपनी अद्वितीय प्रतिभा और समाज सेवा के कारण ख्याति अर्जित कर चुके थें।

नारी विषयक दृष्टिकोण

इस (काल में) समय महाराष्ट्र में आगरकर, तिलक, गोखले आदि सामाजिक कार्य कर रहें थें। गोखले-रानाडे के कार्यो से बहुत प्रभावित हुयें और उनके शिष्य बने थें। सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए बहुमुखी प्रगति लाने के लिए वे स्त्रियों की स्थिति सुधारना चाहते थें।

इनके कार्यों को चार भागों में विभाजित किया गया है–

1. बाल-विधवा निषेध (विरोध),
2. विधवा-पुनिर्विवाह
3. नारी शिक्षा,
4. नेशनल सोशल कान्फेस संबंधित।

1. बाल-बिवाह का विरोधः रानाडे भी इस बात को स्वीकार करते थें कि वैदिक युग में अनमेल विवाह नहीं होते थें। लेकिन स्मृतिकारों ने विवाह की आयु कम करने का प्रयास किया और स्त्रियों की दुहाई देकर बाल-विवाह प्रथा को जन्म दिया था। रानाडे जी बाल-विवाह के कट्टर विरोधी थे। उनके मतानुसार विवाह योग्य आयु स्त्री की 12 वर्ष और पुरुष की 18 वर्ष बतायी और सन्तानोत्पति की आयु 16 वर्ष और 25 वर्ष उपयुक्त माने थें। इसके अतिरिक्त कानून के क्षेत्र में मलबारीजी कार्यकलापों में सहयोग दिया था।

2. विधवा-पुनर्विवाहः रानाडे जी विधवा-विवाह की चर्चा करते हुये स्पष्ट कहते थें कि वेदकालीन समाज में विधवाओं के पुनर्विवाह जैसी कोई समस्या ही नहीं थी। समाज-सुधारकों द्वारा पुनर्विवाह की हिमायत मात्र उन स्त्रियों के संदर्भ में की जाती, जो लग्न विहीन जीवन व्यतीत करने में यातनाएं एवं कठिनाई अनुभव करती हैं। उन्होंने एक बार कहां था कि 'पुनर्विवाह के समर्थकों ने कभी ऐसा नहीं कहां कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी को स्वर्गीय पति की स्मृति में जीवन व्यतीत करने की क्षमता न रखती

हों अथवा जो बालिका इतनी नन्हीं आयु में विधवा हुई हों जब उसे दाम्पत्य जीवन की जानकारी भी न हो ऐसी विधवाओंसे प्रति भक्त की आशा रखना अनुचित हैं। ऐसी स्त्रियों के लिए सुधार एक अनिवार्यता हैं अर्थात् ऐसी विधवाओं को भक्तिमय जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना धर्म और न्याय दोनों दृष्टि से अनुचित है।

रानाड़े ने सन् 1861 में स्थापित विधवा पुनर्विवाह संस्था में सक्रिय कार्यकर्ता थे। सन् 1869 में पश्चिमी भारत में होने वाले प्रथम पुनर्विवाह में रानाड़े शामिल हुये थें।

विधवा-विवाह के समर्थन में रानाड़े न लिखित प्रचार भी शुरू किया। सार्वजनिक सभा के मुख्य पत्र में इस विषय पर उनके लेख प्राय: प्रकाशित होते रहते थें।

3. स्त्री शिक्षा: स्त्री-शिक्षा क्षेत्र रानाडे जी का विशेष प्रिय क्षेत्र रहा था। रमाबाई रानाडे ने उन्हें इस कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग दिया था। जब-जब रानाडे जी किसी स्कूल का निरीक्षण करने जाते तो अपने साथ रमाबाई को अवश्य ले जाते थें ताकि रमाबाई को स्त्री शिक्षा संबंधी अपने विचार प्रकट करने का मौका मिल सकें। इस प्रकार वे स्त्री शिक्षा का प्रचार करते रहें। सन् 1884 में उन्होंने एक कन्या विद्यालय की स्थापना की।

4. इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस: 'इंडियन नेशनल सोशल कानफ्रेंस' की स्थापना करके रानाडे जी ने अपना सर्वोच्च कर्तव्य पूरा किया। आज तक भारतीय समाज में सतीप्रथा अनिवार्य वैधव्य जीवन, बाल-विवाह, वे मेल-विवाह, विदेश यात्रा पर प्रतिबन्ध इत्यादि समस्याओं पर चर्चा होती और उसका विरोध भी होता था, किन्तु केवल व्यक्तिगत स्तर पर। समाज-सुधार के लिये कोई देशव्यापी संगठन या व्यवस्था नहीं थी। 'ब्रम्ह-समाज' इस क्षेत्र में मात्र एक साधारण प्रयास ही कहां जाएगा, क्योंकि उसका कार्यक्षेत्र धार्मिक सुधार था और वह भी बंगाल तक ही सीमित था।

इस कानफ्रेंस ने पहली बार समाज सुधार की चर्चा राष्ट्रीय स्तर पर तथा संगठित रूप से शुरू की। इस संस्था की गतिविधियों का सामाजिक जीवन एवं समस्याओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस संस्था के प्रणेता एवं उसमें सक्रिय रूप से अग्रणी रानाड़े ही थें। भारतीय महासभा के प्रथम वार्षिक अधिवेशन में राजानीतिक सुधारों के साथ-साथ सामाजिक सुधार का भी उल्लेख मिलता हैं।

समाज-सुधार और स्त्रियों की प्रगति के क्षेत्र में उनका योगदान अमूल्य था। समाज-सुधार आन्दोलन के बारे में उनकी दृढ़ मान्यता थी कि यदि समाजसुधार व्यवस्थित रूप से करना हो तो उनमें गातिशीलता लाने के लिए राष्ट्रवादी संगठन की आवश्यकता होंगी। सामाजिक समस्याओं को हल करने का जो प्रयत्न अब तक स्थानीय स्तर पर होता था, उसे उन्होंने राष्ट्रव्यापी बनाने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सुधार आन्दोंलन को असप्रदायिक रूप दिया।

4. महर्षि धोडों केशव कर्वे -

समाज सुधार और स्त्री प्रगति आन्दोलन के अग्रणियों में महर्षि कर्वे का विशिष्ट स्थान हैं। महर्षि कर्वे का कार्यकाल उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से बीसवी सदी के मध्य तक फैला हैं। अन्य समाज सुधारकों के समक्ष उनका स्थान अद्वितीय हैं।

श्री कर्वे का जन्म सन् 1858 में हुआ। कर्वे का बचपन से ही समाज सेवा को ओर झुकाव था। उनका प्रथम विवाह 14 वर्ष की आयु में 8 वर्ष की बालिका से हुआ था, जो क्षयरोग से शीघ्र ही मर गई थी तो कर्वे ने अत्येष्टि क्रिया करने से इंकार कर दिया और उसके बदले अपने गांव के कोष में पांच सौ रूपये दिये और यह भी शर्त रखी थी कि यह रकम अंग्रेजी (माध्यम) शिक्षा तथा स्त्री-शिक्षा के निमित्त खर्च किया जायें।

श्री कर्वे जी का दूसरा सराहनीय कार्य था विधवा-विवाह का प्रचार। उन्होंने स्वयं विधवा से विवाह किया था। उन्होंने अपने ध्येय के प्रति अपनी निष्ठा को बनाये रखते हुए समाज सेवा कार्य को गति और नैतिक बल दिया। उनके इस प्रगतिशील कार्य के लिए उन्हें जातिच्युत किया गया। इसके दुष्परिणाम उनकी पत्नी को भी भोगने पड़े।

1. विधवा-पुनर्विवाह: कर्वे ने पहली बार ग्यारह वर्ष की आयु में विधवा-विवाह के बारे में सुना, जिसमें रानाड़े भी उपस्थित थें। कुछ काल बाद उन्होंने 'विधवा विवाह-संस्था' को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया और स्वयं विधुर होने पर विधवा से विवाह करने का भी प्रण लिया तथा आनंदीबाई जो एक बाल विधवा थी, उससे कर्वे का विवाह सम्पन्न हुआ। सन् 1893 में एक सभा का आयोजन किया और इस संस्था के सदस्यों की संख्या मर्यादित रखी गई। संस्था के सदस्य बनने की एक अनिवार्य शर्त रखी गई जिसने विधवा से विवाह किया हो या पुनर्विवाह किये गये युगलों के साथ खाने-पीने बैठने की नैतिक निर्भयता हो।

विधवा-विवाह की समस्यां में जैसे-जैसे गहरे उतरते गए वैसे-वैसे उन्हें मालूम हुआ कि सभी विधवाएं विवाह की इच्छुक नहीं होती। अत: ऐसी विधवाओं के लिये आश्रम की समस्या तथा समाज द्वारा तिरस्कृत विधवा के वैध या अवैध संतानों की समस्या

का प्रश्न जटिल होता गया। विधवा को आत्मनिर्भर बनाने के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक हैं। उन्होंने 'अनाथ बालिकाश्रय' विधवाओं के लिए स्थापित किया। जैसे-जैसे इसकी संख्या बढ़ती गई इसका विकास भी होता गया। इसका प्रमुख उद्देश्य स्त्री को शिक्षित कर, उत्तम माता, उत्तम पत्नी एवं उत्तम स्त्री बनाने के लिए उच्च शिक्षा मातृभाषा में देने का निश्चय हुआ। पुनर्विवाहित बच्चों की शिक्षा के लिए एवं रहने के लिये एक बोर्डिंग की स्थापना की गई। कर्वे जी यह समझते थे कि विधवाओं के कष्टमय जीवन से मुक्ति के लिये उन्हें शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक हैं। इसी समय पंडिता रमाबाई ने सर्वप्रथम विधवा-शिक्षा की नीव शारदाश्रम में डाली थी। कर्वे उनके प्रति काफी प्रभावित थें।

2. नारी-शिक्षा: कर्वे जी का मत था कि स्त्री को ग्रेजुएट की शिक्षा के साथ-साथ गृह विज्ञान की शिक्षा देकर भारतीय नारी सुसंस्कृत तथा आदर्श बन सकेंगी। उन्नींसवी शताब्दी में विधवाओं की शिक्षा ही एकमात्र समस्या न थी, बल्कि अनेक समस्याएं ऐसी थी कि जिनका समाधान ही नजर नहीं आता था। महर्षि कर्वे स्त्री-शिक्षा के उपासक थें। अत: सन् 1903 में कन्याओं के लिए महिला विद्यालय की स्थापना हुई।

समाज सुधारकों के इन सब प्रयत्नों के बावजूद स्त्री-शिक्षा की प्रगति बहुत धीमी रही। इसका प्रमुख कारण-स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में अन्धविश्वासों से भरा एक लम्बा इतिहास। यह कोहरा धीरे-धीरे छंटने लगा। सन् 1877 तक भारतीय विश्वविद्यालयों में स्त्रियों को प्रवेश नहीं दिया गया था। प्रथम बार सन् 1882 में एक महिला ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से और एक ने बम्बई विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा पास की। फिर 1891 में मद्रास विश्व विद्यालय की प्रथम महिला स्नातक सामने आई। इसके पूर्व 1877 में ही लाहौर में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की और इसे स्त्री-शिक्षा का माध्यम बनाया। स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन ने भी स्त्री-शिक्षा के लिए कार्य किया। धीरे-धीरे अन्य संस्थाएं भी कार्यक्षेत्र में उतरी और उन्होंने स्त्री-शिक्षा को हाथ में लिया तो 1885 तक प्राथमिक व माध्यमिक स्तर तक शिक्षा लड़कियों के लिए सामान्तया स्वीकार कर ली गई।

(कुछ) दशक पूर्व देखा जाय तो इतनी कन्याएं शिक्षा ग्रहण कर रहीं थी जिन्हें अंगुली पर गिना जा सकता था। लेकिन धीरे-धीरे बदलती परिस्थितियों ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा दिया। शिक्षा की गति सन् 1930 के बाद बढ़ती गई और नारी में जागृती की भावना घर करती गई। इसके पूर्व भी शिक्षा क्षेत्र में ऐसे महत्वपूर्ण कदम उठायें गए जो सराहनीय हैं। सन् 1896 में स्त्रियों को बौद्धिक एवं गृहविज्ञान की शिक्षा देने के लिए महर्षि कर्वे ने पूना के निकट महिला शिक्षा संस्थान की स्थापना की। सन् 1916 में बम्बई में कर्वे विश्वविद्यालय की स्थापना हुई जो आज एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय के नाम से विख्यात हैं और आज भी भारत का एकमात्र विश्वविद्यालय हैं। इसमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही शिक्षा दी जाती थी और पाठ्यचर्चा विशिष्ट रखी गयी थी। सन् 1938 में सरकारी मान्यता लेकर इस विश्व विद्यालय के पूर्व पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन स्वीकार किये गये।

सन् 1933 में "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन द्वारा दिल्ली में लेडी इरविन गृहविज्ञान कॉलेज की स्थापना तथा बाद में लेडी हांडिग मेडिकल की स्थापना से एक कड़ी और आगे जुड़ती हैं। सन् 1929 में बाल-विवाह-निषेध के 'शारदा बिल' का महिला शिक्षा पर अनुकूल प्रभाव पड़ा।

बीसवी शताब्दी में स्त्री-शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ। स्त्री-शिक्षा के संबंध में भारतीय लोगों के विचार पक्ष में नहीं थे। लेकिन बीसवी शताब्दी को राष्ट्रीय जागृति स्त्रियों को घर के संकुचित क्षेत्र से निकालकर बाहरी-कार्य क्षेत्र में ले आई। फलत: शिक्षा ग्रहण करके स्त्रियों में एक नवीन चेतना का उदय हुआ। जागृति के साथ-साथ धन्धा व्यवसाय के प्रशिक्षण की आवश्यकता बढ़ती गई और उसी के अनुपात में स्त्री शिक्षा में वृध्दि होने लगी। स्त्री-शिक्षा के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि बदलती जा रही हैं जो कन्या लिखना-पढ़ना सीखेंगी बह विवाहोपरान्त तुरन्त विधवा हो जायेगी या स्त्री को शिक्षित करना उसे घूरे से लैस करने के समान हैं, ऐसी कल्पनाएं एवं अन्धविश्वास की भावना बदलती जा रही हैं। रुढ़िवादी विचारों वाले भी अब यह स्वीकार करते हैं कि स्त्रियों को न्यूनतम शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। स्त्री को अंधकार के आवरण में रखकर राष्ट्रीय विकास कैसे संभव हैं? अज्ञानता किसी भी हालत में दूर होनी चाहिए। जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए थोड़ी शिक्षा दी जानी चाहिए, ऐसी मान्यताओं से स्त्रियों की शिक्षा की ओर रूचि बढ़ी। और नवीन उद्देश्यों को लेकर नये-नये ख्रष्टिकोणों एवं विचारों को जीवन में समाहित करना प्रारम्भ किया। बिवाह ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य नहीं रहा। बल्कि वे आत्मनिर्भर बनने की ओर बढ़ती गई। विविध व्यवसायों, डॉक्टरी, अध्यापिकांए, वकालात इत्यादि को अपनाने लगी।

भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्री-शिक्षा प्रगति में तेजी आई। सन् 1958 में श्रीमति दुर्गाबाई देशमुख के सभा पतित्व में एक 'स्त्री संबंधी राष्ट्रीय समिति' (नेशनल कमेटी आन वीमेन्स एजुकेशन) का गठन किया गया। इस समिति में यह स्पष्ट रूप से कहां

गया कि जो नारी अपने बालक को सदा अपने आंचल की छांव में रखती हैं, वह आदर्श माता नहीं हैं अथवा जो अपने बालकों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही मगन रहती हैं, वह भी आदर्शमाता नहीं कहीं जा सकती वास्तव में माता वहीं हैं जो अपने बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित कर सकें, जीवन के मूल्यों के प्रति योग्य दृष्टि प्रदान कर जीवन-व्यवहार की सच्ची व उपयोगी तालीम दे सकें। अर्थात् बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास करने के लिए सर्वप्रथम माता के व्यक्तित्व का विकास करना होगा और वह केवल शिक्षा द्वारा ही संभव हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना होना चाहिए न कि डिग्री या जानकारी जुटाना। इसी सम्बन्ध में स्वामीविवेकानन्दजी के विचार हैं– 'शिक्षा जानकारी या डिग्री के लिए नहीं', जीवन निर्माण के लिए जरूरी हैं। इससे व्यक्ति के भीतर के सर्वोत्तम का विकास होता हैं।'

शिक्षा का उद्देश्य शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी की खाई को बरकरार रखा जैसे-जैसे साक्षरता के आंकड़े बढ़ाना या शिक्षा को केवल व्यसायोन्मुख बनाकर शिक्षित महिला बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि करना नहीं, शिक्षा को संस्कारित से जोड़ उसे व्यवसायोन्मुख और समाजोन्मुख बनाना हैं। परिवार को विघटन से बचाना हैं, नयी पीढ़ी को भटकने से बचाना हैं और नारी को दुहरी मानसिकता जन्य कुंठाओं से बचाकर उसे अपने बारे में एक सही विजन देना हैं तथा नारी-व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करना है तो नारी शिक्षा को एक सही राष्ट्रीय नीति पर आधारित करना होंगा। आशारानी व्होरा नारी-शिक्षा के संबंध में अपने विचार इस तरह स्पष्ट करती हैं- 'नारी शिक्षा, जो नारी को नारी रखकर भी उसे मानवी बनाएं, मानवीय भूमिका देकर देश समाज व नव-निर्माण को भागीदार बनाएं और उसे अपनी ही सन्तान पुरुषों की निगाह में ऊँचा उठाएं।' ऐसे ही सुधारक ख्रष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार - ये तीन प्रमुख कार्यक्षेत्र चुनकर 'महिला दशक' की विकास योजना बनाई गई।

3. नारी अपने अधिकारों के प्रति सजगः महिला शिक्षा के लिए किये गये अब विशेष प्रयत्नों के फलस्बरूप आज लगभग सभी क्षेत्रों में स्त्रियां अपनी प्रतिभा का प्रभावपूर्ण प्रदर्शन कर रही है और इस धारणा का खंडन करने में सफल हुई हैं कि स्त्रियां बुद्धि या प्रतिभा में कुछ कम नहीं है। वे अध्यापिका और चिकित्सक के परम्परागत व्यवसायों के अतिरिक्त अब वह वैज्ञानिक, वकील, जज, इंजीनियर, पॉयलट, आई. ए. एस., आई. एफ. एस, आई. पी. एस ही नहीं बन रही बल्कि इन उच्चस्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओं में पुरुषों से आगे भी निकल रही हैं। व्यापार में, व्यवसाय में, राजनीति में, प्रशासन में, स्वेच्छिक व वैतनिक समाज सेवा में सभी जगह उनका प्रतिष्ठित स्थान बन रहा हैं। ये विकसित स्वरूप नयी शिक्षा प्रणाली की वजह से संभव हुआ तथा उसमें आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हुई हैं। इससे अधिक वह अपने खोये हुये आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त कर रहीं है।

नयी शिक्षा प्रणाली ने नारी-जीवन को एक ऐसी रोशनी या ज्योति दी हैं जिसकी वजह वह अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के प्रति जागरूक एवं सचेत हो गयी। उसके वैचारिक दृष्टिकोण एवं मानसिकता में भी परिवर्तन आया। उसके सोचने का ढंग एवं तरीके भी काफी बदल चुके हैं। शिक्षित नारी अपनी पतितावस्था एवं परतन्त्रता के प्रति विरोधक विचार प्रस्तुत करने लगी। शिक्षा ने ही उसे अपनी हीन अवस्था एवं दबे हुये अस्तित्व से पहचान करायी। और उसमें स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व के विकास की इच्छा या भावना जागृत हुयी। परम्परागत सदर्भ में स्त्री किसी की मां, किसी की पत्नी, प्रेयसी या बेटी रही हैं। उसे पहचानने के लिए किसी-न-किसी रूप की आवश्यकता होती थी, मानवी या व्यक्ति रूप में उसका अस्तित्व या व्यक्तित्व नगण्य था। उसका अस्तित्व अपने परिवार में सीमित एवं जकड़ा हुआ था। किन्तु सामाजिक जागरण की लहर, नारी आन्दोलन, शिक्षा का अत्यधिक प्रसार, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता की भावना तथा पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप इन परम्परागत मूल्यों एवं ख्रष्टिकोणों में बहुत परिवर्तन आया। स्त्री खुद को पुरुष की अनुर्कता मात्र न समझ कर अपने स्वतंत्र अस्तित्व से प्रति सचेत होती गई।

स्वतंत्र भारत में पुरुष और नारी के सम्बन्धों में भी नयी मोड़ लिया। नारी के सामाजिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित करने वाली संस्थाओं में परिवार संस्था तथा विवाह संस्था हैं। विवाह संस्था घार्मिक अनुष्ठान न रहकर नारी और पुरुष के बीच समानता के आधार पर होने वाला समझौता हैं। देश के विभाजन के समय नारी को जो यातनाएं झेलनी पड़ी थी, उसने उनकी आंखें खोल दी थी। उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ में आ गई कि समाज और व्यक्ति की विकृतियों के दुष्परिणामों उसे ही भोगने पड़ते हैं अतः वह अपने अधिकारों के प्रति सजग ही नहीं हुई बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगी और अपने अधिकारों को समझ उन्हें पाने या प्राप्त करने के लिए विद्रोह करने लगी। तथा पुरुष के साथ कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से विचरण करने लगी। सभ्यता ने उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया, कानून ने उसे बराबरी का हक प्रदान किया। आधुनिक शिक्षा ने उसमें स्वाभिमान एवं आत्मनिर्भरता-आत्मसम्मान का भाव भरा और नारी ने अपनी बौद्धिकता के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि वह पुरुष को दासी नही, बल्कि उनकी सहयोगी सहचर हैं।

नारी को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। संविधान में कानून पास हो जाने पर भी व्यवहारिक जीवन में लागू होने में काफी वक्त लगा। प्राप्त हुये अधिकारों को व्यवहारिक रूप देने के लिए काफी संघर्ष करना आवश्यक था और संघर्ष किया भी, तथा वे काफी हद तक कामयाब भी हुये।

4. मताधिकार: सन् 1917 में ही मद्रास में श्रीमति मार्गरेट कंजिस ने अखिल भारतीय स्तर के एक महिला संगठन 'इंडियन वूमेंस एसोसिएशन' की स्थापना की। और इसी वक्त सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं के एक शिष्ट मंडल ने महिलाओं ने मताधिकार की मांग की मगर कुछ प्रान्तों में अधिनियम पास कर स्त्रियों को मतदान के सीमित अधिकार व चुनाव लड़ने के अधिकार दिये गये। सन् 1926 में महिलाओं ने प्रथम बार चुनाव में भाग लिया।

व्यवहार तथा वास्तविकता की दृष्टि से दोषपूर्ण होने के बावजूद मताधिकार का एक विशेष महत्व हैं कि भारत के इतिहास में पहली बार स्त्रियों को राजनीति में सक्रिय हिस्सा लेने का अधिकार प्राप्त हुआ। कुछ थोड़ी प्रतिभाषाली नारियां राजनीतिक क्षेत्र में अपनी अभुतपूर्व शक्ति के प्रवेश किया और वे सफल भी रहीं। इतना ही नहीं राज्य- प्रशासन में स्त्रियों को भी अपनी राय जाहिर करने का अधिकार दिया गया। ऐसे सिध्दान्तों को मान्यता देना प्रगति के सोपान का प्रथम चरण ही कहां जाएगा।

सन् 1927 में 'आल इंडिया वूमेंस कांफ्रेन्स' की स्थापना हुयी। यह अखिल भारतीय महिला संगठन यद्यपि प्रकृति में गैर राजनीतिक था, पर स्त्रियों में सामाजिक सुधारों के साथ राजनीतिक जागृति लाने से प्रारम्भ से ही गतिशील रहा। महिलाओं के सभी क्षेत्रों में समान अधिकारों के लिए इसने जमकर संघर्ष किया और अनेक सफलताएं प्राप्त की। आज भी यह संगठन महिलाओं की उन्नति के लिए सक्रिय एवं सबसे बड़ा व सशक्त संगठन हैं। इस संगठन का नारा रहा 'समान अधिकार' (विशेष अधिकार नहीं) और स्त्रियों की प्रवेश संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सन् 1920 के बाद तो व्यवसायिक क्षेत्र में स्त्रियां के प्रवेश की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। दूसरे विश्वयुद्ध के कारण जीवन-निर्वाह का खर्च बढ़ने लगा तथा बढ़ती हुयी महंगाई में केवल एक व्यक्ति की आमदनी से सारे परिवार का भरण-पोषण असंभव सा होने लगा। अत: मध्यवर्गीय नारी भी अर्थ प्रधान क्षेत्र में प्रवेश (शामिल) होने लगी।

परिवर्तित आर्थिक परिवेश में उच्च एवं मध्यमवरगीय महिलाओं के समक्ष नये-नये आयामों को खोला हैं। आर्थिक स्वातंत्रता की भावना ने स्त्री पुरुषों में समता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया पुरुष के समान नारी को अधिकार दिलाने में शिक्षा का विशिष्ट स्थान रहा हैं।

5. नारी मुक्ति आन्दोंलन: नवीन शिक्षा प्रणाली और वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप भारत में जिस चौमुखी जागृति और नवीन चेतना का विकास हो रहा था, धार्मिक एवं परम्परागत रूढ़ियों का अतिक्रमण उनके स्वतंत्र विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा था। परम्पराओं से लोगों को इतना मोह था कि धार्मिक आडम्बरों में विश्वास न होने पर भी उनका पालन करते आ रहे थें। मध्ययुग के अन्त से जब सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ तब लोगों की धार्मिक रुढ़ियों एवं झूठे आडम्बरों, दिखावें के प्रति आस्था डगमगाने लगी। पुरुषों की दशा तो समाज में ठीक ही थी लेकिन स्त्रियों की स्थिति दयनीय होने की वजह वह अपनी शोषित स्थिति से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करने लगी।

भारतीय नारी का मुक्तिसंघर्ष या मुक्ति आन्दोलन का आरम्भ उन्नीसवी शताब्दी से हुआ। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज की स्थापना एवं इन संस्थाओं के समाज सुधारों के नारी-उत्थान संबंधी कार्यक्रमों के कारण इस आन्दोलन में अधिक गति आई। इन संस्थाओं ने नारी से जुड़ी उन सभी परम्परगत रूढ़ियों एवं रीति-रिवाजों का विरोध किया जो उसने समुचित विकास में बाधक थी। जब कोई समाज अपने गौरवशाली अतीत से कटकर अज्ञान, अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता में डूब जाता हैं तो उस समाज की नारियों को सर्वाधिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे जैसे समाज सुधारकों ने नारी की इस दयनीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपने सुधार आन्दोंलनों में नारी-शिक्षा एवं नारी-प्रगति (उत्थान) के कार्य को प्रमुख स्थान दिया और अनेक कुप्रथाओं को, जैसे-सतीप्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह इत्यादि को कानूनी तौर पर खत्म करने का प्रयास किया और वे कामयाब भी रहें। विधवा जीवन की कठिनाईयों एवं उनके साथ होने वाले दुव्यर्वहारों के कारण विधवा पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की। इस प्रकार के कानून, स्त्रियों की सामाजिक अन्याय से मुक्ति दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थें।

लेकिन इन कानूनों या सुधारों की सफलता के लिए स्त्री-शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। प्रमुख शिक्षाशास्त्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी इसी कमी को दूर करने के अथक प्रयास किया। और वे अपने उद्देश्यों में सफल रहें। इस बीच महिला-शिक्षा की अनेक संस्थाएं देश में खुल गई। शिक्षा क्षेत्र में अग्रणी और सुधारक महिलाओं में श्रीमति रमाबाई रानाडे, सरला देवी चौधरी, लेडी अबला बोस, श्रीमति पी. के रे आदि नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं। डॉ. कर्वे द्वारा स्त्री-शिक्षा के लिए किये गये प्रयत्न सराहनीय एवं उल्लेखनीय हैं।

नारी जागरण युग आरम्भ बीसवीं सदी से माना गया हैं। इस युग में अनेक पुरुष समाज सुधारकों के साथ-साथ कई महिलाओं ने भी इस पुनीत कार्य में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया। इसके साथ ही अनेक विदेशी महिलाओं का आगमन हुआ, उन्होंने भी भारतीय स्त्रियों में शिक्षा के माध्यम से जागृति लाने का बीड़ा उठाया। यह शिक्षा विदेशी शासन को दासता के विरुद्ध जागरण को शिक्षा भी थी।

महिलाओं ने केवल धार्मिक आन्दोलन या सामाजिक आन्दोलनों में ही भाग नहीं लिया, बल्कि राजनीति तथा महिला मताधिकार आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया और देश की स्वतंत्रता के खातिर अनेक बार जेल भी गई।

संदर्भ

1. व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्रोत्तर हिंदी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, पृष्ठ संख्या 100
2. हिन्दी उपन्यास में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण - डा. विमल सहस्जबुद्धे, पृष्ठ संख्या 44
3. भारतीय समाज में नारी : श्रीमति नीता देसाई, पृष्ठ संख्या 61
4. गाए : दशा और दिशा - आशारानी व्होरा, पृष्ठ संख्या 119
5. भारतीय नारी: दशा और दिशा - आशारानी व्होरा, पृष्ठ सख्या 28

वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना

डॉ० विजय शंकर मिश्र

हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमर शहीद स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी ने हिन्दी के महानतम् ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा की रचना 'गढ़ कुंडार' का अध्ययन करने के अनन्तर उन्हें "हिन्दी के स्कॉट" का विशेषण दिया था। वर्मा जी के उपन्यासों में संबंधित समय का इतिहास मुखर हो उठता है। उन्होंने किंवदन्तियों में भी अंतर्निहित सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को वाणी प्रदान की है। इसीलिए उनकी कृतियों में तथ्यपरक इतिहास एवं प्रामाणिक ललित कल्पना का अतीव रोमांचक समन्वय संभव हो पाया। प्रस्तुत लेख में इस संगुंफन का अनुसंधान करने का विनम्र प्रयत्न किया गया है।

Keyword: वृन्दावनलाल वर्मा, मृगनयनी, मानसिंह तोमर, इतिहास, कल्पना, रानी लक्ष्मीबाई

हिन्दी के स्कॉट स्वर्गीय वृंदावनलाल वर्मा अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक प्रात्ययिकता या विश्वसनीयता का सर्वत्र सम्मान करते दीखते हैं। उनके उपन्यासों के कथानकों, चरित्रों एवं घटनाओं में कल्पना और उससे उद्भूत रोमांस इतिहास के यथार्थ से प्राय: सर्वत्र एकाकार हो गया है। झांसी की रानी, मृगनयनी, बिराटा की पद्मिनी, गढ़ कुण्डार आदि उपन्यास इस तथ्य के निदर्शन है।

'मृगनयनी' के कथानक का आधार ऐतिहासिक है। यहाँ यह तथ्य ध्यान मे रखना आवश्यक है कि लोकप्रचलित किंवदन्तियों में भी इतिहास का यथार्थ किसी-न-किसी रूप में बोलता अवश्य है। वर्मा जी ने उनसे भी पर्याप्त सहायता ली है।

मृगनयनी, मानसिंह तोमर, सिकंदर लोदी, महमूद बघर्रा, गयासुद्दीन खिल्जी, नसीरूद्दीन, राजसिंह कछवाहा, बैजू बावरा या बैजनाथ इत्यादि पूरी तरह से ऐतिहासिक चरित्र है। अटल, लाखी, विजयजंगम भी किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक व्यक्ति है। बोधन पण्डित की हत्या भी इतिहास का सत्य है। सिकंदर लोदी के असफल ग्वालियर-आक्रमण, उसके द्वारा नरवर में मन्दिरों और मूर्त्तियों का विध्वंस, महमूद बर्घरा का पेटू रूप एवं राक्षसी वृत्ति, नसीरूद्दीन की नृशंसता तथा विलासप्रियता, राजसिंह द्वारा सिकंदर का साथ देना, मानसिंह और मृगनयनी का कला-मर्मज्ञ रूप इतिहास-सम्मत है। मानसिंह तोमर की वीरता, उदारता, संवेदनशीलता, प्रजा से प्रेम और लोकल्याणवादी मनोवृत्ति इतिहाससम्मत हैं। उसका काल 'तोमर शासन का स्वर्णयुग' कहा जाता है। मृगनयनी का "सबल सौन्दर्य" भी काल्पनिक नहीं है। अटल-लाखी प्रेम-प्रसंग भी ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित है।

वर्मा जी ने कई स्थानों पर किंवदंन्तियों को आधार रूप में ग्रहण किया है। मानसिंह की आठ रानियाँ (एक अन्य लोक प्रचलित कथा के अनुसार उनकी दो सौ रानियाँ थी), मृगनयनी द्वारा अपने पुत्रों को राज्य न दिलवाकर सुमन मोहिनी के पुत्र विक्रमादित्य को राज्य दिलवाना (एक दूसरी मान्यता के अनुसार मृगनयनी के पुत्र राजे और बाले ने विवश होकर आत्मवध किया था) किंवदंन्तियों पर आधारित है। लाखी द्वारा नरवर के किले की रक्षा की घटना को वर्मा जी ने कुछ परिवर्तित रूप में ग्रहण किया है क्योंकि स्वयं उनके अनुसार किंवदंन्ती में लाखी के स्थान पर किसी नटिनी (बेड़िनी) का उल्लेख मिलता है। वर्मा जी ने 'परिचय' में फरिस्ता के इतिहास लेखक, इलियट और डासन द्वारा अनूदित फारसी की तारीख 'मीराते सिकंदरी', ग्वालियर गजीटियर आदि का उल्लेख भी किया है। इसमें इतिहास का यथार्थ प्राप्त होता है।

इतिहास के यथार्थ की खोज "नम्रता के साथ" होनी चाहिए। नम्र व्यवहार "साधार कल्पना" के सम्मान से प्रकट हो सकता है। कोई नहीं जानता कि महात्मा बुद्ध और आम्रपाली या ईसा मसीह (जीसस क्राइस्ट) और मेरी मेग्डेलेन ने एक-दूसरे को किस रूप और किस सीमा तक प्रभावित किया होगा। बुद्ध और ईसा अपने युग की महानतम् विभूतियाँ थे तथा आम्रपाली और मेरी मेग्डलेन अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी थी। इनकी भेंट इतिहास सम्मत है, लेकिन महानता और सौन्दर्य के एक-दूसरे पर पड़े प्रभावों के संबंध में इतिहास मौन है। यहीं कल्पना और उससे जनित रोमांस मुखर होते हैं। मृगनयनी-मानसिंह, लाखी-अटल, कला-निहालसिंह, कला-राजसिंह, मानवती-अग्निमित्र, तारा-दिवाकर, हेमवती-नागदेव, जूही-तात्या टोपे, मुंदर-रघुनाथ सिंह, मोतीबाई, खुदाबख्श आदि के प्रेम-प्रसंगों के 'वर्णन' काल्पनिक रोमांस के मार्मिक उदाहरण हैं क्योंकि इतिहास इनके विस्तृत वर्णन नहीं कर पाया है। इस दृष्टि से 'बिराटा की पद्मिनी' के कुमुद और कुंजरसिंह वर्मा जी की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

वर्मा जी के यहाँ प्रेम बलिदानी शोभा धारण करते हुए कर्त्तव्यपालन मार्ग की अद्वितीय साधक-शक्ति बनकर उपस्थित हुआ है। यहाँ रोमांस मार्मिकतम् रूप प्राप्त करता दृष्टिगोचर होता है क्योंकि सूक्ष्म-अलक्षित निराशा आशा से मिलती है और वीरता तथा शौर्य प्रेम एवं सौन्दर्य से बल ग्रहण करते हैं। उनके प्रेमी-प्रेमिका प्रेम के महाभाव को "निष्काम कामना" की अवस्था तक पहुँचा कर 'दर्शन' के स्तर तक लाते हैं। परिणामस्वरूप मानवीय हृदय की यह बुनियादी प्यास चिर अमर आत्मा का चिरन्तन धर्म बन कर शाश्वत रूप में उपस्थित होती है। ऐतिहासिक चरित्रों के ऐसे वर्णन कल्पनाधृत रोमांस का परिणाम है।

'झांसी की रानी' में जूही, मुंदर, मोतीबाई, खुदाबख्श, रघुनाथ सिंह की अटूट प्रेम-भावना का वर्णन मर्मस्पर्शी हैं।

ध्यान देने की बात है कि ये समस्त चरित्र राष्ट्र की स्वतंत्रता के ऐतिहासिक लक्ष्य लिए अपने जीवन का बलिदान देते हैं अर्थात् कल्पनाधृत अटूट-विश्वसनीय प्रेम इनके व्यक्तित्व को संकुचित करने के स्थान पर विस्तार देता है।

मृगनयनी और मानसिंह के प्रेम के वर्णन कल्पना पर आधारित है। वर्मा जी के यहाँ सौन्दर्य प्रेमाभिभूत होकर भी शारीरिकता का सम्मान एक निश्चित एवं उचित सीमा तक ही करता है। इसीलिए मृगनयनी "तप और संयम" से प्रेम को चिरजीवंत बनाने का आग्रह करती है, जिसे भावुक प्रेमी मानसिंह सच्चे मन से स्वीकार करता है। वर्मा जी ने इसके विस्तृत वर्णन किए हैं।

जहाँ तक कल्पनाधारित रोमांस का प्रश्न है, लाखी और अटल का संबंध अद्वितीय है। इनका प्रेम विपरीत परिस्थितियों में जन्म लेकर विकट संघर्षों से गुजरता है और अंततोगत्त्वा रणभूमि में वीरगति पा कर 'अमर' हो जाता है। लाखी और अटल के प्रेम का विषय सहज रूप से मार्मिक है।

'झांसी की रानी' का विषय ऐतिहासिक है। कथा की पृष्ठभूमि में अंग्रेजों का व्यापार के उद्देश्य से भारत आना, फिर ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा साम्राज्य स्थापित करने की आकांक्षा और डलहौजी की नीति, देशी राज्यों द्वारा प्रतिरोध का इतिहास जगप्रसिद्ध है। चरित्रों की ऐतिहासिकता के साथ भी यही बात है। उनकी आदतों और स्वभावों के चित्रण में इतिहास का यथार्थ झलकता है।

वर्मा जी ने रानी लक्ष्मीबाई को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में बहुत ठीक चित्रित किया है। यद्यपि रमेश चंद्र मजुमदार, ताराचंद जैसे इतिहासकारों ने इस महान् स्वतंत्रता-सेनानी के अदम्य शौर्य को राज्य छिनने की विवशता का प्रस्फुटन अर्थात् व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होना माना है, तथापि सावरकर, एस.बी.चौधरी, जैसे विद्वानों ने 1857 ई. के संघर्ष को बहुत ठीक ही क्रान्ति मानते हुए रानी लक्ष्मीबाई को इसका प्रतिनिधि प्रतीक घोषित किया है। जनता की राय (जो सर्वोपरि है) भी रानी को बहुत ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। जिनके परदादा आनंदराय इस संग्राम में शहीद हुए और जिनके दादा गिरफ्तार हुए, वे वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास के 'परिचय' में अपनी स्पष्ट, साधार, प्रामाणिक राय देते हैं - "रानी 'स्वराज्य' के लिए लड़ी थी।" ये राय रानी लक्ष्मीबाई के समकालीनों के वक्तव्यों, क्रान्ति के समय के अंग्रेज अधिकारियों के पत्रों तथा टिप्पणियों, प्रामाणिक रोजनामंचों, अंग्रेजों का साथ देने वाले तुराब अली जैसे पुलिस दारोगाओं, अजीमुल्ला जैसे रानी-भक्तों, बानपुर के राजा मर्दनसिंह को लिखी रानी की चिट्ठी (जिसमें 'स्वराज्य' शब्द स्पष्टत: आया है), जनरल रोज़ के साथ हुए युद्ध के दिन किले में उपस्थित विष्णुराव एवं गोडसे के ग्रंथ इत्यादि पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक, विश्वसनीय एवं समीचीन है। रानी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए होने वाले संघर्ष को एक लंबी प्रक्रिया मानती थी। वर्मा जी ने इसके प्रामाणिक वर्णन किए हैं।

'झांसी की रानी' के परिचय में वर्मा जी ने लिखा है कि "इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।" यहाँ वर्मा जी "ऐतिहासिक यथार्थ" को मांस और रक्त के तथ्यों पर आधारित 'सत्य' मान रहे हैं। सत्य का शोधन साहित्यकार का दायित्व है क्योंकि इतिहास उस तक नहीं पहुँच पाता। वर्मा जी ने भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन से अपने अगाध परिचय की सहायता से उस कल्पना का वरदान प्राप्त किया जो युगीन इतिहास के यथार्थ की बिखरी कड़ियों को केवल मिलाती ही नहीं है, बल्कि 'सत्य' तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न भी करती है। झांसी की रानी, बिराटा की पद्मिनी, गढ़ कुण्डार, मृगनयनी आदि कृतियाँ इसके प्रमाण हैं।

गढ़ कुण्डार में जुझौती (बुंदेलखण्ड) के प्राकृतिक वर्णनों के सुंदर वर्णन हुए हैं। इसके बाद किले की संरचना, रहन-सहन (मदिरा-प्रेम जैसी आदतों), वेशभूषा, तीज-त्यौहार आकृति-प्रकृति अर्थात् लोगों के स्वभावो का विस्तृत वर्णन किया है। राजनीतिक व्यवस्था की भी पर्याप्त चर्चा है। आर्थिक अवस्था का भी पर्याप्त मूल्यांकन किया गया है।

गढ़ कुण्डार में अग्नि-मित्र मानवती, दिवाकर-तारा तथा नागदेव-हेमवती के प्रेम-प्रसंगों के विस्तार के साथ वर्णन हुए हैं।

भारतीय समाजों एवं जनता की आत्मिक अपराजेयता, जातिवाद और धार्मिक सांप्रदायिकता इस राष्ट्र के इतिहास की वे संभवत: सतत् गतिमान् प्रवृत्तियाँ हैं, जो वर्मा जी के प्राय: सभी उपन्यासों में अतीव प्रभावी रूप में अभिव्यक्त हुई है। निश्चित रूप से उनके साहित्य में इनका रूप कल्पनाप्रसूत है, लेकिन वह कल्पना स्वयं में इतिहास के यथार्थ पर आधारित है।

यथार्थ अपने स्वभाव में तथ्यात्मक या तथ्यपरक होता है, जबकि रोमांस 'महाभाव' प्रेम पर आधारित 'विश्वसनीय' या 'प्रात्ययिक' कल्पना के आश्रय में पलतप-पुसता है। "हिन्दी के स्कॉट" (यह विशेषण गढ़ कुण्डार पढ़ने के बाद स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी ने दिया था) स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में यथार्थ और रोमांस का अभूतपूर्वक संगुंफन हुआ है। एक ओर वे भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की अदम्य जीवनी-शक्ति, जातिवादी प्रवृत्ति, धार्मिकता तथा धार्मिक सांप्रदायिकता के यथार्थ को, दूसरी ओर कथा, चरित्रों एवं घटनाओं की तथ्यपरकता को अतीव कुशलता के साथ चित्रित-वर्णित करते हैं और तीसरी ओर प्रेम को उच्चतम् बल्कि उदात्त रूप में चित्रित करके उसे उपर्युक्त यथार्थ से बड़ी विदग्धतापूर्वक मिलाते हैं।

संदर्भ

1. अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी का स्वर्गीय वृंदावनलाल वर्मा से संबंधित कथन।
2. झांसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा।
3. मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा।
4. बिराटा की पद्मिनी, वृंदावनलाल वर्मा।
5. गढ़ कुंडार, वृंदावनलाल वर्मा।
6. इतिहास-चक्र, डॉ. राममनोहर लोहिया।
7. सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ,
   उन्नज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र से प्रेम संज्ञक:।
   (संस्कृत की प्रेम-परिभाषा करने का उज्ज्वल प्रयत्न करती प्रसिद्ध उक्ति)।
8. 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार की मान्यता।
9. 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित डॉ. ताराचंद की मान्यता।
10. 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित अमर स्वतंत्रता सेनानी सावरकर की मान्यता।
11. 1857 ई. की क्रान्ति से संबंधित डॉ. एस.बी. चौधरी की मान्यता।
12. माझा प्रवास, विष्णुराव और गोडसे।

समाजवादी परंपरा के अनुसार राज्य के स्वरूप के सिद्धांत

डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव

बेली रोड, शेखपुरा, पटना (बिहार)

काल्पनिक समाजवाद के आधार पर राज्य का स्वरूप

औद्योगिक क्रान्ति और पूंजीवाद ने जिस अन्याय को जन्म दिया, उसके विरूद्ध हाँ एक ओर सकारात्मक उदारता के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य की धारणा का जन्म हुआ वहाँ दूसरी ओर इसकी एक तीव्र प्रतिक्रिया समाजवाद साम्यवाद के रूप में प्रकट हुई। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण मजदूर वर्ग की जो दुर्दशा हुई उसके विरोध में मानवीय और सामाजिक नैतिकता के आधार पर बहुत से विचारकों और समाज सुधारकों ने समाजवादी विचार सामने रखे। परिणामस्वरूप राज्य की समाजवादी धारणा का विकास हुआ। समाजवादियों ने औद्योगिक क्रांति का तो स्वागत किया किंतु उससे जन्में औद्योगिक समाज की व्यवस्था को अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया और तत्कालीन समाज को बदलने की मुहिम छेड़ी।

सेंट साइमन, चार्ल्स फोरियर, राबर्ट ओवन आदि प्रारम्भिक समाजवादियों ने पूँजीवादी व्यवस्था और उस पर आधारित राज्य की धारणा से उत्पन्न अन्याय की ओर संकेत किया। राबर्ट ओवन ने नए व्यापारी तथा उद्योगपति वर्ग द्वारा प्रचारित अर्थव्यवस्था में अहस्तक्षेप के सिद्धांत को अस्वीकार कर उसके स्थान पर सहकारिता का समर्थन किया जिसमें समाज के सभी लोगों को समुचित हिस्सा मिलना चाहिए। सेन्ट साइमन ने आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप के सिद्धांत में निहित अकुशलता और अमानुषिकता की तीव्र आलोचना की और उसके स्थान पर सहकारिता और योजनाबद्ध विकास पर आधारित समाज की स्थापना का समर्थन किया। उसके अनुसार इन समस्याओं का हल राज्य के नियंत्रण और केन्द्रीय योजनाओं द्वारा ही हो सकता था।

फोरियर ने छोटे-छोटे आत्मनिर्भर समुदायों की स्थापना पर बल दिया। ये सब समाजवादी थे अर्थात् इन्होंने अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध किया और राज्य के नियंत्रण में एक ऐसी व्यवस्था के निर्माण का समर्थन किया। जिसमें औद्योगीकरण का लाभ सभी लोगों को प्राप्त हो। परंतु इन्होंने समाजवाद की स्थापना के लिए मजदूर वर्ग को संबंधित नहीं किया वरन् पूँजीपतियों तथा राज्य से अपील की कि वे समाजवाद की स्थापना के लिए आगे आएँ।

वर्ग सिद्धांत के आधार पर राज्य का स्वरूप

औद्योगिक क्रान्ति के बुरे प्रभाव के बेबाक विश्लेषण का श्रेय समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स को है। कार्ल मार्क्स इस सिद्धांत का प्रतिपादक है। यह सिद्धांत राज्य को न तो प्राकृतिक संस्था और न ही नैतिक संस्था के रूप में स्वीकार करता है। जैसा कि आंगिक सिद्धांत ने राज्य को माना है। मार्क्स राज्य को एक कृत्रिम उपकरण मानता है जिसे बुर्जुआ वर्ग ने अपने लिए बनाया है। औद्योगिक क्रांति के दुष्प्रभावों का विश्लेषण करते हुए मार्क्स वर्तमान और भविष्य के लिए सिद्धांत निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए इतिहास का सहारा लेता है। ऐतिहासिक अवलोकन के बाद मार्क्स बताता है कि राज्य उस समय अस्तित्व में आता है जब निजी संपत्ति (Private Property) के आधार पर समाज दो परस्पर विरोधी वर्गों–'धनवान और निर्धन' में बँट जाता है। जो वर्ग उत्पादन के प्रमुख साधनों का स्वामी है वह अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए राजनीतिक शक्ति का ताना बाना बुन लेता है; वहीं राज्य के रूप में हमारे सामने आता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि राज्य दो आधार शिलाओं पर आधारित होता है। प्रथमत: राज्य प्रभुत्व सम्पन्न वर्ग का उपकरण है। यह सिद्धांत समाज को दो वर्गों में विभाजित मानता है और

स्पष्ट करता है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत राज्य एक ऐसा संगठन है जिसे बुर्जुआ वर्ग अपनी संपत्ति और हितों की सुरक्षा के लिए स्थापित करता है।

मार्क्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' में लिखा है, "आधुनिक राज्य की कार्यकारिणी पूँजीवादी' वर्ग के सामान्य हितों का प्रबंध करने वाली समिति के अलावा कुछ नहीं है।" पूँजीवादी वर्ग राजनीतिक शक्ति को अपने अधीन कठपुतली बना लेता है और राजनीतिक शक्ति का वास्तविक उपयोग अपने अनुसार करता है। इस तरह राज्य समाज की इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि समाज पर ऊपर से थोपा गया एक कठोर कवच बन जाता है जो समाज को अपने अधीन रखता है। राज्य पूरे समाज के हित साधन का स्रोत नहीं हो सकता क्योंकि वह धनवान वर्ग के हित साधन का उपकरण है, और उसी वर्ग के हितों का बढ़ावा देने के लिए वह निर्धन वर्ग का भरपूर शोषण करता है। ऐंगेल्स ने स्पष्ट कहा है कि, "राज्य एक वर्ग के हाथों की कठपुतली है ताकि वह दूसरे वर्ग पर अत्याचार कर सके; वर्गों के संघर्ष में राज्य तटस्य नहीं रह सकता; राज्य वर्ग अधिपत्य का उपकरण है।

राज्य की कानूनी व्यवस्था, सभ्यता, संस्कृति, दर्शन आदि एक विशेष प्रकार के उत्पादन संबंधों को स्थिर बनाने में सहायता करते हैं। राज्य का मूल उद्देश्य एक वर्ग द्वारा बल प्रयोग है, और जन-साधारण का हित कभी भी शासक वर्ग का उद्देश्य नहीं रहा।" यह सिद्धांत राज्य और समाज में स्पष्ट अंतर करते हुए यह मानता है कि समाज एक प्राकृतिक संस्था है, परंतु राज्य एक कृत्रिम संस्था है जिसका निर्माण बाद में हुआ हैं अत: किसी भी युग में किसी भी देश में राज्य जो अधिकार प्रदान करता है, वे प्रभुत्त्वशाली वर्ग के अधिकार होते हैं चाहे उनमें जनसाधारण की स्वतंत्रता और समानता का कितना ही बड़ा दावा क्यों न किया गया हो।

इस प्रकार यह शोषित वर्ग के शोषण का शक्तिशाली हथियार है। पुराने समाज में राज्य गुलामों पर शासन करने के लिए गुलामों के मालिकों का राज्य था; सामंतवादी राज्य किसानों और भूमिहीनों पर शासन करने के लिए कुलीन वर्ग का राज्य था; और आज का प्रतिनिधित्व मूलक राज्य पूँजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण का यंत्र है। राज्य के इन सभी रूपों में शासितों की सहमति प्राप्ति के लिए तथा अपने आस्तित्व को बनाए रखने के लिए शासक वर्ग समाज में भ्रांति पैदा करता है यथा अपने अस्तित्व को नैतिक दृष्टि से उचित ठहराने के लिए विचारधारा का प्रयोग करता है।

मार्क्स विचारधारा का विरोध करता है और इसे शक्तिशाली वर्ग का अस्तित्व रक्षक कहता है। मार्क्स/ऐंजिल्स की तरह लेनिन ने भी अपनी पुस्तक 'दि स्टेट एण्ड रिवोल्यूशन' में राज्य को एक वर्ग का उपकरण माना है जिसका उद्देश्य दूसरे वर्ग पर अत्याचार करता है। लेनिन के अनुसार, "राज्य एक ऐसा यंत्र है जो एक वर्ग को पराधीन और आज्ञाकारी बनाने के लिए निर्मित किया गया है। इस यंत्र के कई रूप हो सकते है। राजतंत्र, कुलीनतंत्र या लोकतांत्रिक गणतंत्र आदि, परंतु प्रकृति से ये सभी एक समान है। लेनिन के विचार से राज्य आरम्भ से ही एक ऐसे अभिकरण के रूप में रहा है जो समाज से ऊपर है और ऐसे व्यक्तियों का समूह रहा है जिसका मुख्य कार्य शासन करना है। राज्य रूपी संगठन अपने पास अत्याचार और उत्पीड़न के साधन रखता है। राज्य की भौतिक शक्ति का प्रतीक दास प्रथा के हथियार के रूप में एक दण्ड हो सकता है, या मध्य युग के अग्नि हथियार या आधुनिक युग के विज्ञान और तकनीकी द्वारा विकसित हथियार भी हो सकते हैं। यह ठीक है कि समय-परिवर्तन के साथ-साथ शक्ति और हिंसा के रूप में परिवर्तन होता रहता है। परंतु जहाँ भी राज्य का अस्तित्व है, वहाँ समाज के अंदर कुछ ऐसे व्यक्तियों का समूह अवश्य रहा है। जो आदेश देता है, प्रभुत्व जमाता है और अपनी शक्तियों को बनाए रखने के लिए हिंसात्मक और उत्पीड़नात्मक संयंत्रों की स्थापना करता है। राज्य का अधिपत्य कब, कहाँ और किस सीमा तक लागू होता है—यह इस बात पर निर्भर करता है कि समाज का वर्ग संघर्ष कब, कहाँ और किस सीमा तक समाप्त नहीं हो सकता। अंतत: मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य को शोषणकारी संस्था मानते हुए क्रांति के माध्यम से वर्गों के अस्तित्व तथा राज्य को ही समाप्त करने का सिद्धांत प्रस्तुत करता है।

लोकतांत्रिक समाजवादी सिद्धांत के आधार पर राज्य का स्वरूप

राज्य की इस लोकतांत्रिक समाजवादी धारणा का जन्म विशेष परिस्थितियों में जब विश्व 19वीं शताब्दी को अलविदा और 20वीं शताब्दी के स्वागत घर तैयार कर रहा था, तब हुआ। 20वीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति से प्राप्त समृद्धि के लाभ मजदूर-वर्ग को मिलने आरम्भ हो गए थे। औद्योगिक क्षमता में वृद्धि के कारण यह संभव हो रहा था कि मजदूरों के जीवन को 19वीं शताब्दी की गरीबी और भुखमरी के मुकाबले संभव बनाया जा सके। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक और बौधिक परिस्थितियाँ भी मजदूर वर्ग को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध हो रही थी।

यूरोपीय देश औद्योगिक क्रांति के अग्रणी देश होने के कारण सम्पन्नता प्राप्त कर चुके थे। उन देशों के शासक वर्ग को अब यह अहसास होने लगा था कि मजदूर वर्ग की कष्टकारी दुर्दशा सुखी और स्वस्थ्य समाज के निर्माण में बाधक सिद्ध हो रही है। दूसरी तरफ मजदूर वर्ग भी पूरे जोर-शोर से अपने हिस्से की माँग करने लगा था। ऐसी परिस्थितियों में लोकतांत्रिक समाजवादी धारणा या विकासवादी समाजवाद का जन्म हुआ। इस सिद्धांत के प्रवर्तक वर्नस्टीन ने मार्क्स और ऐगेल्स के राज्य संबंधी विचारों में महत्त्वपूर्ण संशोधन किया और इस बात पर बल दिया कि पूँजीवादी समाज को नष्ट किए बिना भी इसे नियंत्रित किया जा सकता है, पूँजीवादी समाजों में सुधार और परिवर्तन संभव है। इस सिद्धांत के अनुसार चुनाव, संसद तथा सांविधानिक माध्यमों द्वारा भी समाजवाद लाया जा सकता है। अत: राज्य एक वर्ग के हाथ की कठपुतली या खिलौना नहीं; राज्य का प्रयोग मजदूर वर्ग के लिए कल्याणकारी कानून बनाने और पूँजीवाद को नियंत्रित करके समाजवाद की स्थापना के लिए किया जा सकता है।

राज्य के विलोम के स्थान पर यह सिद्धांत समाजवाद की स्थापना में राज्य की भूमिका को अधिक महत्त्व देता हैं विकासवादी समाजवाद के विभिन्न रूप-फेबियनवाद, संशोधनवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, संसदीय समाजवाद, समाजवादी लोकतंत्र आदि सभी मार्क्सवादी समाजवाद के विपरीत राज्य को समाजवाद लाने का महत्त्वपूर्ण साधन मानते है न कि एक वर्ग का यंत्र।

यूरोपीय साम्यवाद के आधार पर राज्य का स्वरूप

समाजवाद के ही अन्तर्गत राज्य-संबंधी एक अन्य धारणा हाल ही में यूरोपीय साम्यवाद के रूप में देखने को मिली है। साम्यवाद का यह यही रूप है जिसे 1970 से शुरू होने वाले दशक में पश्चिमी यूरोप के साम्यवादी दलों ने अपनाया और बढ़ावा दिया। यूरोप के उन्नत उदारवादी राज्यों फ्रांस, स्पेन, इटली के साम्यवादी दलों ने जून 1976 में अपने देशों में साम्यवाद लाने के संदर्भ में नीति संबंधी कुछ विचार स्पष्ट किए। इनके अनुसार यूरोपीय राज्यों में क्रांतिकारी तरीकों से प्राप्त मजदूर वर्ग द्वारा सत्ता करना अब असंभव हो चुका है। सर्वप्रथम इटली के साम्यवादी दल ने अपने दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में कुछ ढ़ील देते हुए इस तरह के प्रस्ताव रखे, "हम क्रांति नहीं चाहते; हम केवल महान परिवर्तन चाहते हैं। हम सत्तावादी (Authoritarian) नहीं हैं; हम पूरी आस्था के साथ लोकतंत्रीय खेल के नियमों का पालन करेंगे। हम सम्पूर्ण उद्योग का राष्ट्रीयकरण नहीं चाहते; हम केवल यह चाहते है कि उद्योग धंधे जन साधारण की जरूरतों को ध्यान में रखकर अपना काम करें। हम नाटो (Nato) के विरुद्ध नहीं है, बल्कि सोवियत सैन्य शक्ति को प्रतिसंतुलित करने के लिए इसे कायम रखने की आवश्यकता अनुभव करते हैं; हम धर्म के विरुद्ध नहीं है, बल्कि कैथोलिक के साथ सहयोग करने को तैयार हैं।" इस सिद्धांत के अनुसार साम्यवाद स्थापित करने का रास्ता लोकतांत्रिक और शांतिपूर्ण होना चाहिए। संक्षेप में, यूरोपीय साम्यवाद के समर्थक प्रति-निधित्वमूलक लोकतंत्र, राजनीतिक एवं वैचारिक बहुलवाद, मानवीय एवं सामाजिक स्वतंत्रता तथा उसकी सुरक्षा, धर्म निरपेक्षता तथा धार्मिक स्वतंत्रता, राजनीति दलों की अनेकता, ट्रेड यूनियनों की स्वायत्तता, विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति, संस्कृति कला तथा विज्ञान की स्वतंत्रता आदि उदारवादी मूल्यों को किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहते।

ये मजदूर वर्ग को अन्य सामाजिक शक्तियों के साथ गठबंधन की सलाह देते है; इन्हें शांतिपूर्ण तरीके से साम्यवाद की स्थापना में केवल विश्वास ही नहीं है बल्कि निकट भविष्य में इसके सफल होने की आशा भी है। वे सोचते हैं कि समाजवादी परिवर्तन में समय लग सकता है और समाजवाद के संक्रातिकाल में वे शांतिपूर्ण तरीकों से पूँजीवादी एकाधिकार पर काबू पाने में सफल हो जाएँगे। ये वर्ग-संघर्ष और वर्ग विभाजन में आस्था रखते हुए भी 'मजदूर वर्ग की तानाशाही' और राज्य के विलोम में विश्वास नहीं रखते।

संदर्भ

1. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
2. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
3. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
4. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
5. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
6. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह

7. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
8. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
9. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
10. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
11. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
12. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
13. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
14. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
15. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
16. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
17. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती

राज्य का औचित्य और उद्देश्य

डॉ० कुमार रंजीत

घोघरडीहा, मधुबनी (बिहार)

मनुष्य को राज्य की आवश्यकता क्यों पड़ी ? क्या राज्य का कोई युक्ति संगत आधार है ? इस सवाल का कोई एक जवाब देना, राजनीति के भिन्न-भिन्न विचारों का अनादर करना होगा। अत: राजविद् इसका उत्तर सिद्धांतों या विचारधाराओं के आधार पर देते हैं।

राज्य के औचित्य सिद्धि का अराजकतावादी दृष्टिकोण

इस विषय में अराजकतावादियों का विश्वास है राज्य का कोई युक्तिसंगत उद्देश्य नहीं हैं और इसका अस्तित्व जितनी जल्दी समाप्त हो सके मनुष्य के विकास के लिए उतना ही अच्छा होगा। इस तरह अराजकतावादी राज्य के अस्तित्व का औचित्य बिल्कुल नहीं मानते।

क्रांतिकारी अराजकतावादी राज्य के अस्तित्व को हिंसात्मक तरीकों से समाप्त कर देना चाहते हैं। क्रांतिकारी अराजकतावादयिों में बाकुनिन का नाम सर्वोपरि है। ये एक ऐसा समाज चाहते हैं जो अराजकतावादी, समष्टिवादी और अनीश्वरवादी हो। दार्शनिक अराजकतावादी राज्य की अपेक्षा राज्य द्वारा उपयोग की जाने वाली शक्ति का विरोध करते हैं। दार्शनिक अराजकतावादियों में प्रमुख हैं–टालस्टाय, क्रपॉटकिना। इन अराजकतावादियों का दावा है कि मनुष्य अपनी ही कोशिशों से वास्तविक नैतिक जीवन पा सकता है और नैतिकता के विकास में राजसत्ता एक बाधा है। "सरकार व्यर्थ ही नहीं हानिकारक भी है।" दार्शनिक अराजकतावादियों का विचार है कि स्वेच्छा से बनाया गया संगठन समाज का काम अच्छी तरह कर सकता है, अतएव यदि राज्य को कायम रखते ही हैं। तो उसे एक एच्छिक संगठन के रूप में रखना चाहिए। कानूनों को सुझाव के रूप में और करों को दान के रूप में जीवित रखा जा सकता है। समाज पर मुक्ति विहीन शक्ति की बजाय प्रेम का शासन होना चाहिए। आदर्श समाज प्रेम से बंधा हुआ परिवार है जिस पर अधिकार तथा शक्ति की छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। अत: दार्शनिक अराजकतावादी सरकार को 'केवल एक ही प्रकार' स्वीकार करने को तैयार हैं 'जिसमें व्यक्ति का पूरा-पूरा स्वतंत्र स्वशासन हो।' अराजकतावादी राज्य की सत्ता को समाप्त करके उसके स्थान पर व्यक्ति के विवेक की सत्ता कायम करना चाहते है।

दृष्टिकोण की आलोचना

इस दृष्टिकोण के विषय में हर्नशा के अनुसार, "मनुष्यों के स्वभाव की अपराधी प्रवृत्ति को काबू में रखने के लिए राज्य की शक्ति का सुरक्षित रहना जरूरी है। इसलिए हम कम से कम वर्तमान समय में सरकार की अधीनता और कानून की बुद्धिमत्ता को छोड़ नहीं सकते।"

राज्य की औचित्य सिद्धि का शक्तिवादी दृष्टिकोण

राज्य को मैंकियावली केवल एक शक्ति व्यवस्था मानता है। किंतु बाद में वह स्वीकार कर लेता है कि राज्य की शक्ति उसके स्व-स्वार्थ के लिए नहीं है अपितु जनता की प्रतिष्ठा, सम्मान और कल्याण के लिए है। आधुनिक युग में स्पिनोजा, मार्क्स, एंजिल्स, नीत्शे, स्पेन्सर ने राज्य को शक्ति का मूर्तिमान स्वरूप माना है। स्पिनोजा का कहना है, "राज्य अधिक शक्तिशाली सैनिक सत्ता का द्योतक है और उसका अधिकार केवल उसकी शक्ति द्वारा ही सीमित है।" मार्क्स/ऐजिल्स, के अनुसार "राज्य शासक वर्ग का केवल एक यंत्र है।" इसी प्रकार नीत्शे ने शारीरिक शक्ति के आधार पर ही अपने महामानव सिद्धांत का प्रतिपादन किया। शक्ति सिद्धांत

के एक महान समर्थक स्पेन्सर के अनुसार, "राज्य बर्बर शक्ति का ही द्योतक है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हित में उसका नियंत्रण होना चाहिए।

दृष्टिकोण की अलोचना:

1. लास्की के अनुसार "शक्ति अपने आप में नैतिक तत्व से हीन है।
2. टी.एच. ग्रीन कहते हैं "केवल सबसे बड़ी शक्ति-मात्र से ही राज्य नहीं बनता, राज्य तो बनता है किसी निश्चित उद्देश्य के लिए एक निश्चित तरीके से उपयोग की गई शक्ति से।"

राज्य की औचित्य सिद्धि का समझौतावादी सिद्धांत

राज्य के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने के लिए 18वीं सदी में संविदा सिद्धांत का उपयोग किया जा रहा था। इस सिद्धांत का मानना है कि राज्य को सत्ता की प्राप्ति व्यक्तियों के समझौते का परिणाम है अत: यह उचित है। और जब सत्ता उसे व्यक्तियों ने सौंपी है तो उस पर प्रश्न चिह्न लगाना स्वयं अपने आप में एक प्रश्न है।

आलोचना

स्पेन्सर समझौतावादी सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहता है कि राज्य को जो प्राप्त है वह सत्ता नहीं कर्त्तव्य है। और राज्य केवल वे ही कार्य कर सकता है जो जनता ने राज्य को इसलिए सौंपे है क्योंकि ऐसे कार्य जनता कर नहीं सकती। ये कार्य है: (i) बाहरी शत्रुओं से रक्षा (ii) शत्रुओं से रक्षा (iii) भूमि का राष्ट्रीयकरण (स्पेन्सर ने अपनी बाद में लिखी पुस्तकों में आखिरी कार्य को हटाकर उसकी जगह करारों को लागू करना रखा है।)

इस विषय पर स्पेन्सर का मानना है कि व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह स्वयं को कानून से परे बना सकता है और फिर भी राज्य मे रह सकता है। डेविडह्यूम संविदा सिद्धांत का सबसे बड़ा आलोचक है। उसके अनुसार यह सिद्धांत क्रांतिमूलक है क्योंकि इसमें किसी ऐसी शक्ति को स्थान ही नहीं है जो व्यक्ति को संविदा से बाँधकर रखे। टी.एच. ग्रीन का तो यहाँ तक कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में रहने वाले मनुष्य जिन संविदा को करते हुए माने जाते हैं वह वास्तव में संविदा है ही नहीं क्योंकि उनमें संबिदा को लागू करने की कोई शक्ति नहीं है। सम्प्रभुता इस संविदा के बाद कायम हुई।

राज्य की औचित्य सिद्धि का उपयोगितावादी दृष्टिकोण

उपयोगितावादियों का कहना है कि राज्य का मौलिक औचित्य इस बात में है कि "वह व्यवस्था कायम करता है, कानून बनाता है, बाहरी शत्रुओं से व्यक्ति की रक्षा करता है, आंतरिक शत्रुओं से व्यक्ति की रक्षा करता है, संविदाओं का पालन करता है, व्यक्ति और विभिन्न संघों का संबंध व्यवस्थित करता है, साहित्य, कला और विज्ञान का विकास करता है।"

संक्षेप में राज्य ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें समाज का जीवन कम-से-कम संघर्षमय और अधिक से अधिक सुखपूर्वक बीते। लास्की ने अपनी पुस्तक 'इट्रोडक्शन टूपॉलिटिक्स' में कहा है कि राज्य की शक्ति का औचित्य उन उद्देश्यों द्वारा ही साबित किया जा सकता है जिन्हें राज्य पूरा करना चाहता है। अत: राज्य के कानून ऐसे होने चाहिए कि वे राज्य के उद्देश्यों को पूरा कर सकें, तभी औचित्यपूर्ण होंगे।

दृष्टिकोण की आलोचना

राज्य को व्यक्ति के कल्याण का उपयोगितावादी साध-मात्र समझने की भूल कर सकते हैं जबकि राज्य साध्य और साधन दोनों ही है। राज्य वर्तमान पीढ़ी के साथ ही साथ भावी पीढ़ियों के कल्याण की भी चिन्ता करता है। इस तरह से वह स्वयं साध्य माना जा सकता है।

राज्य की औचित्य सिद्धि का आदर्शवादी दृष्टिकोण

राज्य की आज्ञा मानना इस दृष्टिकोण के अनुसार इसलिए उचित है क्योंकि राज्य हमारे सबसे अच्छे आंतरिक गुणों का प्रतीक है। राज्य न तो व्यक्ति का शत्रु है और न वह एक तटस्थ पर्यवेक्षक ही। वह तो व्यक्ति का सच्चामित्र है। राज्य ऐसी इच्छाओं की अभिव्यक्ति है जो स्वार्थ रहित होकर शुद्ध हो चुकी हैं। इस प्रकार राज्य और व्यक्ति एकरूप हैं। हीगेल के अनुसार, "राज्य स्वतंत्रता का यथार्थ रूप" या 'स्वतंत्रता का मूर्तरूप' है। इस दृष्टि कोण के अनुसार राज्य एक नैतिक संस्था है। जिसके के बिना मनुष्य का

पूरा विकास नहीं हो सकता। ग्रीन का मानना है, नैतिकता और राजनीतिक अधीनता दोनों एक ही स्रोत से पैदा हुए हैं। वह स्रोत कुछ व्यक्तियों द्वारा सामान्य कल्याण की धारणा का विवेकपूर्ण विचार किया जाना है।

दृष्टिकोण की आलोचना

ग्रीन का कहना है, कि व्यक्ति राज्य का वफादार उसी हद तक बन सकता है जिस हद तक वह यह अनुभव करता है कि राज्य से सामान्य कल्याण पूरा होता है और उसका अपना कल्याण उस सामान्य कल्याण का ही एक अटूट अंग है। राज्य शक्ति से बनता है, और अभ्यास से वह स्थाई बन जाता है; अथवा राजनीतिक अधीनता का आधार सामाजिक सुविधा है।

राज्य का उद्देश्य

राज्य के उद्देश्य के बारे में यूनानियों के अनुसार, 'आत्म निर्भरता' का कहना है कि राज्य को उन सभी बातों का प्रबंध करना चाहिए जो नागरिकों के अच्छे से अच्छे जीवन विकास और सुख के लिए आवश्यक हों। अरस्तू का विश्वास था कि राज्य का उद्देश्य नागरिकों में सद्गुणों का विकास करना है। राज्य का अस्तित्व केवल इच्छा, समाज तथा सुरक्षा के लिए न होकर अच्छे जीवन के लिए है। जबकि हॉब्स के अनुसार, राज्य का उद्देश्य व्यवस्था और सम्पत्ति का अधिकार कायम रखना है। और लॉक का मत है राज्य का उद्देश्य एक निश्चित कानून और सामान्य न्यायाधीश की सहायता से जीवन सम्पत्ति और सुरक्षा की रक्षा करना है। इसी प्रकार रूसो के अनुसार, राज्य का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को सुन्दर बनाने के लिए हैं। जेरमी बेंथम के अनुसार, राज्य का उद्देश्य 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' की वृद्धि करना है। वहीं कांट के अनुसार, राज्य का उद्देश्य कानून को बनाए रखना और हर सदस्य की वैयक्तिक स्वतंत्रता की सुरक्षा है।

हेरिंगटन एवं म्योरहेड ने अपनी पुस्तक 'Social Purpose' में यह मत प्रकट किया है कि राज्य का प्रधान कर्त्तव्य सदैव चाय की व्यवस्था करना ही रहा है अत: राज्य का उद्देश्य न्याय व्यवस्था बनाना है। इनका कहना है, "न्याय जीवन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व और आदर्शों की पूरी-पूरी प्राप्ति हो सके।" गिलक्राइस्ट ने कहा, "न्याय एक ऐसी स्थिति है जो वास्तविक सच्चे उद्देश्य की पूर्ति पर निर्भर करती है। पूर्ण न्याय के लिए पूर्ण ज्ञान जरूरी है और यह केवल ईश्वर को ही प्राप्त है।" हीगल ने तो यहाँ तक कहा कि, "राज्य का उद्देश्य स्वयं राज्य है।" विलोवी ने अपनी पुस्तक 'The Nature of State' में लिखा है कि यदि हम राज्य के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से ही विचार करें तो 'राज्य एक साधन मात्र-एक यंत्र ही प्रतीत होगा जिसके द्वारा मानवता का अधिक से अधिक विकास होता है। परंतु यदि राज्य को एक ऐसी संस्था माना जाए जिसकी सत्ता उसमें रहने वाले नागरिकों से अलग हो, तो राज्य स्वयं साध्य बन जाता है। ब्लंश्ली के अनुसार राज्य का उद्देश्य, 'राष्ट्रीय शक्ति का विकास एवं राष्ट्रीय जीवन की पूर्णता है, लेकिन राजनीतिक तथा आत्मिक विकास का तरीका मानवता के लक्ष्य के विरुद्ध नहीं होना चाहिए।' गिलक्राइस्ट ने बताया कि राज्य का उद्देश्य परिवर्तित होता रहता है। अंतर्राष्ट्रीयतावाद क्रमश: राष्ट्रीयतावाद का स्थान ले रहा है। अमेरिकी लेखक वर्गेस ने राज्य के तीन उद्देश्य बताए–प्रारम्भिक, माध्यमिक और अंतिम। इन सबको क्रमश:एक-दूसरे का साधन माना जाता है। वर्गेस के कथनानुसार राज्य का तात्कालिक उद्देश्य शासन एवं स्वतंत्रता है।

प्रारम्भिक उद्देश्य: तात्कालिक उद्देश्य पूरा हो जाने के बाद, जब लोग कानून के अधीन रहकर जीवन बिताने के आदी हो जाएँ तब राज्य द्वारा वैयक्तिक स्वतंत्रता के क्षेत्र को सुनिश्चित कर लेना चाहिए और हर तरह के हस्तक्षेपों से उसको बचाते हुए समय-समय पर इस क्षेत्र को बढ़ाते रहना चाहिए।

माध्यमिक उद्देश्य: जब प्रारम्भिक उद्देश्य पूरा हो जाए तब राष्ट्रीयता की पूर्ति तथा राष्ट्रीय प्रतिभा का विकास करना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन नैसर्गिक और भौतिक और जातीय आधारों पर बना राज्य है।

अंतिम उद्देश्य: राज्य का अंतिम उद्देश्य मानवता की पूर्णता या संसार में सभ्यता का विकास है।

वर्गेस के सिद्धांत की आलोचना करते हुए राज्य के तीन उद्देश्य बताता है–1. व्यक्ति के व्यक्तिगत कल्याण की वृद्धि करना। 2. व्यक्ति के सामूहिक कल्याण की वृद्धि करना। 3. संसार को अधिकाधिक सभ्य और प्रगतिशील बनाना।

संदर्भ

1. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
2. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
3. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
4. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
5. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
6. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
7. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
8. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
9. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
10. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
11. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
12. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
13. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
14. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
15. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
16. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
17. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि

राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा भागीदारी के स्वरूप

डॉ० सरिता कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, ए.एम.एम. कॉलेज, बहेड़ा, बेनीपुर, दरभंगा

प्रतिनिधित्व वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सारे नागरिकों अथवा उनके किसी भाग की अभिवृतियों, पसंदों, दृष्टिकोणों तथा इच्छाओं के अनुमोदन की अभिव्यक्ति होती है, उनकी ओर से उनके बीच में से एक अपेक्षाकृत छोटी संख्या द्वारा ऐसी कार्यवाही की जाती है जिसका उन सभी पर बाध्यकारी प्रभाव पड़ता है जिनका प्रतिनिधित्व किया जाता है। यूनान के नगर-राज्यों और भारत में वैशाली जैसे छोटे-छोटे राज्यों में प्रजातांत्रिक व्यवस्थाएँ थीं किंतु अधिकांश राज्यों में राजतंत्रीय व्यवस्थाएँ ही उपलब्ध थीं। ज्यों-ज्यों राज्यों का भौगोलिक विस्तार होता गया, जनसंख्या का भी विस्तार होता गया। इस प्रकार बड़े भू-भाग और जनसंख्या वाले राज्यों में प्रत्यक्ष रूप से जनता शासन कार्यों में भागीदारी करे संभव नहीं रह गया परिणामस्वरूप एक विकल्प के रूप में प्रतिनिधात्मक प्रजातंत्र का उदय हुआ। ऐसे प्रजातंत्र में राजनीतिक सत्ता जनता में निवास करती है जो अपने प्रतिनिधियों को चुनकर अपनी ओर से उन्हें शासन का अधिकार प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्रतिनिधि शासन व्यवस्था के नियामक बन जाते हैं हालाँकि ये प्रतिनिधि स्वयं को 'जनता की इच्छा' की उपज मानते हैं किंतु यह सिर्फ औपचारिकता है व्यावहारिक दृष्टि से विशाल आकार और व्यापक मताधिकार होने के कारण प्रतिनिधियों का जनता की इच्छा पालन करना मुश्किल हो जाता है। लार्ड एक्टन ने बताया है कि प्रतिनिधित्व "आधुनिक युग के महत्वपूर्ण अधिकार के रूप में आया है।" आधुनिक युग में प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में इतना व्यापक परिवर्तन आया है कि जे.एस. मिल और डायसी का शास्त्रीय सिद्धांत अतार्किक हो गया है जिसमें कहा गया था कि, "उचित प्राधिकार का अर्थ है लोगों से संसद की और संसद से सरकार की ओर। वर्तमान परिस्थितियों में जब संसद अनिवार्य रूप से सरकार और लोगों के बीच में मध्यस्थ का कार्य नहीं करती और कार्यपालिका शक्ति यह दावा करती है कि वह औचित्य का मूर्तरूप है. ..."

प्रतिनिधित्व का अर्थ

'प्रतिनिधित्व' शब्द के सामान्य तथा विशिष्ट दोनों अभिप्राय हैं। सामान्य शब्दों में इसका अर्थ हे कि कोई सुगठित समूह जैसे चर्च, व्यापारिक प्रतिष्ठान, श्रमिक संघ, राज्य के भ्रात्तत्व की व्यवस्था आदि, जिसकी सदस्यता इतनी विशाल अथवा इतनी विकसित है कि वह अपने सारे सदस्यों की सभा की ओर से कार्य नहीं कर सकता, तो उसे प्रतिनिधित्व की समस्या से निपटना पड़ेगा यदि वह किसी भी मात्रा में अपने सदस्यों की राय के अनुसार कार्य करने की इच्छा रखे। इसी तरह समाज विज्ञान की इनसाइक्लोपीडिया में प्रतिनिधित्व का आशय निम्न शब्दों में स्पष्ट किया गया है, "कोई भी सामूहिक, संस्था चाहे वह धार्मिक हो या व्यापारिक, श्रमसंघ हो या कोई जाति या राज्य, जो बड़ा है और जिसके सदस्य देश भर में फैले हुए हैं जिसके कारण इसके सभी सदस्य सलाह मशविरा के लिए एक ही स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते, उसे प्रतिनिधित्व की समस्या का सामना करना पड़ रहा है यदि उसे अपने सदस्यों की इच्छा के अनुसार कार्य करना है।" प्रतिनिधित्व का यह आशय इतना व्यापक है कि इसे किसी भी प्रकार के प्रतिनिधित्व पर लागू किया जा सकता है। किंतु हमारा संबंध केवल प्रतिनिधित्व का राजनीतिक आशय स्पष्ट करना है। जो इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है। "प्रतिनिधित्व वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समस्त नागरिकों या उनके किसी भाग की अभिवृत्तियों, अधिमान्यताओं, दृष्टिकोणों और इच्छाओं को उनके सुव्यक्त अनुमोदन के साथ, उनमें से ही एक वर्ग उनकी ओर से उसे सरकारी कार्य का रूप प्रदान करता है और जिनके प्रतिनिधि होते हैं उन्हीं पर उनका बाध्यकारी प्रभाव होता है।" इस परिभाषा के अलावा भिन्न-भिन्न विद्वानों ने प्रतिनिधित्व को भिन्न-भिन्न तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है :

ए.वी विर्च के अनुसार, "राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक ऐसा व्यक्ति है जो परंपरागत या कानून द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधि का स्तर रखता है और प्रतिनिधि की भूमिका निभाता है।" राबर्टवॉन मोल के अनुसार, "प्रतिनिधित्व वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समस्त नागरिक या उनका कोई अंश शासन के कार्य पर जो प्रभाव डालता है, वह उनकी सुव्यक्त इच्छा के अनुसार होता है, उन्हीं में से कुछ लोगों द्वारा उनकी ओर से किया जाता है और यह उनके लिए मानना आवश्यक होता है जिसका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।" कर्टिस के अनुसार, 'प्रतिनिधित्व' शब्द स्वाभाविक रूप से बहु अर्थी है और इस कारण प्रतिनिधि सरकार के अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं।" "कई लोगों के लिए यह उस वकील के कार्य के समान है जो अपने क्लाइंट की ओर से कार्य कर रहा है, तो कइयों के लिए इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिनिधित्व करने वाला प्रधिनिधित्व किए जाने वाले लोगों की विशेषताओं को आत्मसात कर लेता है। कुछ लोग प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति को इस रूप में देखते हैं कि उसने प्रतिनिधित्व किए जाने वाले लोगों के उद्घोषित हितों को अपने में समाहित कर लिया है; अन्य लोग उसके कार्यों को ऐसे रूप में देखते हैं जैसे वह अपने घटकों की ओर से ऐसे ढंग से कार्य कर रहा हो जिसे वह सर्वाधिक वांछनीय समझता हो।" ए.एच. विर्च के अनुसार, प्रतिनिधित्व के कई अर्थ होते है किंतु मुख्यत: इसका तीन अर्थों में प्रयोग अधिक प्रचलित है :

(i) प्रदत्त प्रतिनिधित्व **:** प्रदत प्रतिनिधित्व एक प्रवक्ता या एजेंट के द्वारा होता है। इसमें प्रतिनिधि अपने मुखिया की ओर से स्पष्ट निर्देश व विस्तृत आदेश प्राप्त किए रहता है। उसे निश्चित हित साधन और स्पष्ट कर्तव्यों का निर्वहन करने का अधिकार प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए वकील प्रदत्त प्रतिनिधित्व की श्रेणी में आता है।

(ii) सूक्ष्मतर प्रतिनिधित्व **:** इस तरह के प्रतिनिधित्व में प्रतिनिधि संपूर्ण भू-भाग, जनभाग या संपूर्ण वर्ग की सामान्य विशेषताएँ अपने में परिलक्षित करता है। उदाहरण के लिए एक कबीला और उसके आसपास अनेक कबीलों के सभी सामान्य लक्षण परिलक्षित करने पर उस कबीलाई समूह का सूक्ष्मतर प्रतिनिधित्व करता हुआ माना जाता है। सर्वेक्षण में नमूना संपूर्ण क्षेत्र का सूक्ष्मतर प्रतिनिधित्व ही करता है।

(iii) प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व **:** एक समूह या श्रेणी विशेष से इसका आशय लिया जाता है। कई प्रतीकों से संपूर्ण व्यवस्था और विस्तृत वास्तविकता का आभास मिलता है। उदाहरण के लिए हँसिया ओर हथौड़ा साम्यवाद के प्रतीक हैं।

प्रतिनिधित्व का वर्गीकरण

प्रतिनिधित्व की व्यवस्था काफी पुरानी है। प्राचीन तथा मध्य कालीन समाज के प्रभावशाली वर्ग अपनी राजनीतिक संस्थाओं में अपने प्रतिनिधि रखते थे। यह सामाजिक वर्गों या रियासतों के उस नमूने पर आधारित थी जिनमें लोग विभाजित होते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में तथा उसके उपरांत प्रजातंत्र के विकास के साथ एक मौलिक परिवर्तन हुआ। अब जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया। विद्वानों ने प्रतिनिधित्व के प्रारूपों पर अपने मत दिये हैं।

सैमुअल बीयर का वर्गीकरण : सैमुअल बीयर ने प्रतिनिधित्व के पाँच प्रारूपों का उल्लेख किया है **:**

1. राजतंत्र पर आधारित प्रतिनिधित्व

एक राजा या सरकार द्वारा सामान्य कल्याण का प्रतिनिधित्व किया जाता है। जिसे सभी राजनीतिक कार्यक्रम तैयार करने का कार्यभार सौंपा जाता है। ऐसा प्रतिनिधित्व व्यवस्था, मात्रा, प्राधिकार और सोपानिक क्रम की वांछनीयता के आधार पर परंपरागत अनुदार स्थिति में स्वीकार किया जाता है।

2. कुलीन तंत्रीय प्रतिनिधित्व

ऐसे प्रतिनिधित्व में तर्कशील और निर्णय करने वाले व्यक्ति निर्वाचक गणों से मार्गदर्शन अथवा बाध्यकारी आदेश प्राप्त किए बिना सरकारी कार्यों से संबंधित विचार करते हैं। यह प्रतिनिधित्व परंपरागत उदारवादी या कुलीन तंत्रीय दृष्टिकोण रखने वाले समाज में दर्जों के विभेद दिखाने वाले संतुलित संविधान के विचार पर आधारित होता है।

3. मध्यमवर्गीय प्रभुत्व पर आधारित प्रतिनिधित्व

मध्यवर्गीय प्रभुत्व के अधीन ऐसा प्रतिनिधित्व होता है, इसमें मताधिकार के लिए संपत्ति संबंधी योग्यता पर बल दिया जाता है और यह निर्वाचन क्षेत्रों की सन्निकट योग्यता पर आधारित होता है। ऐसा प्रतिनिधित्व उदारवादी दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुए नियमित संस्थाओं की अपेक्षा मनुष्यों से बनी संसदीय संस्था द्वारा सामान्य कल्याण और जन हित के प्रतिनिधित्व की कामना करता है।

4. एकीकृत इच्छा पर आधारित प्रतिनिधित्व

सभी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधना ऐसा प्रतिनिधित्व चाहता है तथा उग्रविचारधारा वाले व्यक्तियों के लिए, प्रतिनिधित्व लोगों की एकीकृत इच्छा पर आधारित होता है। इस एकीकृत इच्छा को समाज में अंतिम सर्वोच्च सत्ता समझा जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से यह बहुमत की इच्छा होती है।

5. अनुशासनात्मक राजनीतिक दलों पर आधारित प्रतिनिधित्व

आधुनिक अनुदार लोकतंत्र के समर्थक और आधुनिक समाजवादी लोकतंत्र के समर्थक लोकतंत्रवादी प्रतिनिधित्व को ऐसी सरकार के रूप में समझते हैं जो सामाजिक वर्गों की बुनियादी इकाइयाँ मानकर अनुशासन बद्ध राजनीतिक दलों पर आधारित होती है। और जिसका प्रकार्यात्मक गुटों से भी संबंध होता है। ऐसी परिस्थितियों में मतदाताओं को सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व कर रहे दो दलों में से किसी एक का चुनाव करना पड़ता है ताकि उन्हें प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके।

संदर्भ

1. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
2. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
3. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
4. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
5. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
6. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
7. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
8. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
9. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
10. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
11. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
12. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
13. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
14. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
15. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
16. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
17. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा

प्रजातान्त्रिक भागीदारी–एक विवेचना

डॉ० सीता कुमारी

पति-लखेन्द्र दास, ग्राम+पोस्ट-पानापुर लंगा, जिला-वैशाली

भागीदारी प्रत्येक व्यवस्था का, चाहे वह परम्परागत हो या अधिनायकवादी, बड़ी हो या छोटी, निर्धारक अंग होती है। जनता की भागीदारी को किसी भी प्रकार की व्यवस्था में सुनिश्चित करना प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को स्वीकार करना है, चाहे वह व्यवस्था प्रशासनिक या राजनीतिक हो अथवा सामाजिक। प्रशासनिक व्यवस्था में जनता की भागीदारी का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि काफी लम्बी है, लेकिन वह भागीदारी इच्छा पर पूर्णत: आधारित न होकर शक्ति या दबाव पर ज्यादा आधारित थी। बाद के दिनों में बदले परिवेश में राजनीतिक व्यवस्था मे जनता की व्यापक भगीदारी को स्वीकार किया जाने लगा और इसके पीछे लोकतांत्रिक मर्यादा का हाथ सर्वप्रमुख रहा है। प्रशासन में जनता की भागीदारी ने न केवल इसे प्रजातांत्रिक बनाया है, बल्कि प्रशासन को गतिशील मानवीय, सक्रिय एवं लोकोपकारी भी बनाया है। प्रशासन तो जनता के लिए ही है, तो फिर उसे जनता के द्वारा ही संचालित किया जाना चाहिए? जब प्रशासनिक कार्यों में जनता को भागीदार बनाया जाएगा, तो प्रशासनिक गतिशीलता व सक्रियता देखने को मिलेगी तथा साथ ही प्रशासनिक क्षेत्र के उत्पादन में बढ़ोत्तरी भी होगी। इससे जनता को एहसास होगा कि उसे प्रशासनिक क्षेत्र में अहमियत दी जा रही है यानि व्यापक स्वतंत्रता प्रदान की जा रही है।

राज्य का स्वरूप वर्तमान समय में लोकतांत्रिक एवं जनकल्याणकारी है, जो पूर्व के व्यक्तिवादी राज्य यानि सीमित राज्य से बिलकुल भिन्न है। पहले राज्य का कार्य केवल बाह्य आक्रमण से लोगों की रक्षा करना तथा विधि व व्यवस्था को बनाए रखना था, लेकिन अब तो स्थिति बिलकुल ही अलग है। आज का राज्य जिसे हम लोक-कल्याणकारी राज्य कहते हैं, को व्यापक कार्य करना पड़ता है, जनता के पास पहुँचना पड़ता है तथा उसके व्यक्तित्व विकास के लिए उसके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करना पड़ता है। जनता की भागीदारी या सहयोग इस लोककल्याणकारी राज्य का सफल व लोकतांत्रिक बनाए रखने के लिए बहुत ही आवश्यक है। जब तक जनता का सहयोगी नहीं मिल पाएगा, तब तक न तो लोकतांत्रिक व्यवस्था को सफल बनाया जा सकता है और न ही लोककल्याणकारी राज्य को। अत: लोकतांत्रिक व लोककल्याणकारी राज्य की सफलता हेतु जनता की प्रशासनिक व्यवस्था में भागीदारी बहुत ही आवश्यक है। इसी तरह यह भी कहा जा सकता है, लोककल्याणकारी राज्य का आधार स्तम्भ जनसहभागिता ही है। अब प्रश्न उठता है कि प्रशासन में जनता की सहभागिता का अर्थ क्या है। शासन सम्बन्धी कार्यों में आम जनता बगैर किसी भेदभाव के अपने कर्तव्यों का निर्वाह करे तथा भागीदारी निभाए, यही जनसहभागिता है। जनसहभागिता को अन्य कई विद्वानों द्वारा भी परिभाषित करने का प्रयास किया गया है, जिनमें सोसियल स्टेसीन और मुहम्मद मुमताज प्रमुख हैं। जनसहभागिता को स्पष्ट करते हुए सोसियल ने लिखा है कि "आम नागरिकों को रचनात्मक सार्वजनिक कार्यों में भागीदारी के अवसर उपलब्ध कराना ही जनसहभागिता है। स्टेलीन जैसे विद्वान् का कहना है कि 'प्रशासनिक कार्यों में आम जन का आवश्यक हस्तक्षेप ही जनसहभागिता है।' वही मुहम्मद मुमताज का कहना है कि "वे तमाम कार्य एवं गतिविधियाँ जिसके मार्फत नागरिक प्रशासनिक कार्यो के संचालन में भाग लेते हैं जनसहभागिता हैं। भागीदारी का स्तर स्थानीय व्यवस्था से लेकर राष्ट्रीय व्यवस्था तक हो सकता है तथा इसके कई प्रकार हो सकते है, जैसे परामर्शदात्री कार्य, नीति-निर्माण से सम्बन्धित कार्य, नीति के क्रियान्वयन से सम्बन्धित कार्य वगैरह। जनता प्रशासनिक व्यवस्था में भागीदारी प्रशासनिक एवं स्वैच्छिक संगठनों के मार्फत निभा सकती है।" संक्षेप में, जनता की सहभागिता का मतलब है, रचनात्मक प्रशासनिक प्रक्रिया में जनता का सहयोग, नकारात्मक प्रशासनिक प्रक्रिया में जनता का हस्तक्षेप तथा व्यापक प्रशासनिक हित में जनता की सहभागिता।

जनता की भागीदारी की अनिवार्यता

यह सवाल पूछा जा सकता है कि किसी भी राजनीति व्यवस्था में जनता की भागीदारी की अनिवार्यता क्यों है ? इससे राजनीतिक व्यवस्था को क्या फायदे हैं ? इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित आधार पर दिया जा सकता है–

1. जनता की भागीदारी से राजनीतिक व्यवस्था में सर्वाधिक महत्वपूर्ण फायदा यह है कि इससे स्थानीय जनता की भावनाओं, विचारों और उसकी आवश्यकताओं की वास्तविक जानकारी मिल जाती है। इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति जनता की सहभागिता से ही सम्भव हो पाती है।

2. जो कार्यक्रम राजनीतिक व्यवस्था के होते है, उसे जनता की भागीदारी से ही बल मिलता है।

3. जनता की भागीदारी से प्रशासन में नौकरशाही के अवगुणों से बचा जा सकता है तथा मैक्स वेबर के शब्दों में नौकरशाही के आदर्श स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

4. नागरिकों के सहयोग की अनिवार्यता को किसी भी कार्य के सफल संचालन के लिए सर्वव्यापक रूप से स्वीकार किया जाता रहा है। राजनीतिक कार्यों के सफल संचालन के लिए नागरिकों के सहयोग की आवश्यकता है। वास्तव में जो राजनीतिक व्यवस्था नागरिक के लिए है अर्थात सार्वजनिक प्रशासन या लोक प्रशासन है वैसा प्रशासन नागरिकों के सहयोग के बिना नहीं चलाया जा सकता है।

5. राजनीतिक व्यवस्था को नागरिकों की सहभागिता से ही गति मिलती है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहना सही होगा कि प्रशासनिक सक्रियता, गतिशीलता एवं उत्पादकता की प्रत्याशित बढ़ोत्तरी करने में जनता की सहभागिता ही महत्वपूर्ण है।

6. न केवल प्रशासनिक एवं नागरिक व्यवस्था के लिए जनता की भागीदारी आवश्यक है, बल्कि यह लोकतांत्रिक मर्यादा के लिए भी अनिवार्य है। चाहे कोई व्यवस्था या संगठन जनता के हित में व्यापक कार्यों का सम्पादन करता हो, लेकिन उसे तब तक लोकतांत्रिक नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उसमें विभेदरहित जनता की व्यापक सहभागिता न हो।

7. जनता की भागीदारी राजनीतिक व्यवस्था को लोकोपकारी बनाने में आवश्यक होती है। जनता जब प्रशासन में भागीदार होती है, तो वह राजनीतिक व्यवस्था को कल्याण के मार्ग में मोड़ती है तथा गलत दिशा में प्रशासन को जाने से रोकती है।

8. भ्रष्टाचार को प्रशासन में बढ़ावा नहीं मिल पाए तथा इसकी जड़ नहीं जमें, इसके लिए भी जनता की भागीदारी आवश्यक है। जब प्रशासनिक कार्य में प्रतिनिधियों को भागीदार बना दिया जाता है, तो देखा जाता है कि प्रशासन के योजना एवं व्यय में विषमताओं का जन्म नहीं हो पाता। भारत के सन्दर्भ में प्रशासनिक व्यवस्था के द्वारा संचालित विकास कार्यों में पंचायतीराज की भागीदारी को देखा जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रजातांत्रिक भागीदारी का आशय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न स्तरो पर व्यक्तियों की संलिप्तता से है।

जनता की भागीदारी के प्रकार

विद्वानों के बीच जनता की भागीदारी को लेकर मतैक्यता का अभाव है फिर भी सहभागिता के तीन प्रकार के सम्बन्ध में एक आम सहमति देखने को मिलती है।

जन सहभागिता के जिन तीन प्रकार के सम्बन्ध में सहमति है, वह निम्नलिखित है।

1. **राजनीति में भागीदारी**–जनता द्वारा जब राजनीतक प्रक्रिया को सहयोग दिया जाता है या उनमें भूमिका निभाई जाती है, तो उसे ही राजनीति में भागीदारी कहा जाता है। अपने शासकों के चयन में नागरिकों द्वारा भाग लेना, चुनाव में नागरिक का प्रत्याशी बनना तथा मतदान करना, राजनीतिक पदों को धारण करना, सार्वजनिक सभाओं में शामिल होना, जैसे नागरिक कार्यो ने राजनीति में भागीदारी दी है। लोकतांत्रिक व्यवस्था की राजनीति में भागीदारी मूल मान्यता है और इसकी व्यापकता को लोकतंत्र का पैमाना माना जाता है।

2. **प्रशासन में भागीदारी**–जनता की भागीदारी प्रजातांत्रिक मर्यादा के अनुसार न केवल राजनीतिक व्यवस्था में प्रदान की जाती है, बल्कि प्रशासनिक व्यवस्था में भी प्रदान की जाती है। प्रशासन में भागीदारी के लिए ही सत्ता व संगठन में विकेन्द्रीकरण जैसे सिद्धांतों को अपनाया जाता है। प्रशासनिक व्यवस्था में पदसोपान जैसे सर्वव्यापक सिद्धांतों को प्रशासन में भागीदारी के लिए अपनाया

जाता है। प्रशासन में भागीदारी के लिए कई तरीके अपनाए जाते हैं, जैसे नीति-निर्माण एवं नियोजन तथा कार्यान्वयन में जनता के द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों को राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी बनाना। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनता को ही संप्रभु माना गया है, जिसके इशारे पर शासन व्यवस्था में निर्णय निर्माण, गतिशीलता एवं कार्यान्वयन देखने को मिलता है। इसी मान्यता के कारण नागरिकों को प्रजातंत्र में अपने भाग्य का स्वयं विधाता बताया गया है।

3. **समाज में भागीदारी**–भागीदारी या सामाजिक सहभागिता का मतलब सामाजिक व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज का सामाजिक आन्दोलन के मार्फत नीति निर्माण को प्रभावित करना है। वास्तव में समाज में जो गतिरोध या संघर्ष उत्पन्न होता है, उसका उद्देश्य सरकारी नीति-निर्माण एवं प्रशासनिक क्रियान्वयन को प्रभावित करना होता है।

जनता की भागीदारी में शिथिलता का कारण

व्यवस्थाएँ जनता की भागीदारी के बगैर प्रजातांत्रिक मूल्य से दूर होती जा रही हैं। आखिर जनता की भागीदारी में आ रही कमी या शिथिलता के कारण क्या हैं ? इन कारणों के विश्लेषण के बाद ही हम प्रजातांत्रिक मूल्य को प्राप्त कर पाएंगे तथा इसके आधारशिला को और मजबूत किया जा सकेगा। शिक्षा के अभाव का होना जनता की भागीदारी में शिथिलता के पीछे सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है। यह सर्वविदित है कि शिक्षित जनता के द्वारा अपने लाभ के लिए लड़ा जा सकता है, लेकिन अशिक्षित व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता है। इसका मतलब यह है कि शिक्षा की कमी जनता की भागीदारी को कुप्रभावित करता है। गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्या को भी जनता की भागीदारी में शिथिलता के कारण के रूप में रखा जा सकता है। चाहे किसी भी प्रकार का समाज हो अगर वहाँ गरीबी और बेरोजगारी होगी, तो जनता की भागीदारी नहीं हो सकती। जब एक व्यक्ति का पेट नहीं भरा हो तब तक वह समाज, प्रशासन या राजनीति में क्या भूमिका निभाएगा ? विकासशील देशों में जनता की भागीदारी में कमी या शिथिलता का कारण गरीबी जैसी समस्या का होना है। भारत जैसे विकासशील देश में मतदान के गिरते स्तर के लिए गरीबी और बेरोजगारी जैसे कारक ही सर्वाधिक उत्तरदायी है। आज अगर अविकसित देशों यानि चौथी दुनिया के देशों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की बेहतर बहाली नहीं हो पाई है, तो इसके पीछे भी यही कारण काम कर रहा है।

सरकार की उदासीनता अर्थात् सरकारी पहल का सार्थक न होना भी सहभागिता में शिथिलता का एक कारण कहा जा सकता है। आज दुनिया के सभी प्रकार की शासन व्यवस्था अपने आप को जनता के कल्याण में स्थापित बताती है। सभी शासन प्रणालियों द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों के अवलम्बन की बात की जाती है, लेकिन किसी के भी द्वारा व्यापक जनसहभागिता के प्रयास नहीं किये जा रहे हैं। प्राचीन समय से लेकर आज तक राजनीतिक सत्ता पर अभिजन वर्ग का एकाधिकार हैं, जो अल्पसंख्यक है तथा इनके पास ज्ञान, धन और शक्ति है। अभिजन वर्ग के हाथों में सरकार की लगाम होती है, जिसे वे व्यापक जनसहभागिता के रास्ते पर नहीं मोड़ते हैं, बल्कि अभिजनवर्गीय भूमिका को बहाल रखना चाहते हैं। यह कहा जा सकता है कि अभिजन वर्ग के द्वारा सरकारी उदासीनता अल्प जनसहभागिता को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी हे। मात्र सरकारी उदासीनता या अभिजनवर्गीय शासन को ही जनता की भागीदारी में कमी का कारण नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि इसके साथ-साथ जन-उदासीनता को भी कारण बताया जा सकता है। चाहे जो भी कारण रहा हो, जनता की भागीदारी खासकर के राजनीति क्षेत्र में कम रही है या होती जा रही है। व्यक्ति आज अपने आपको समाज से अलग रखना चाहता है। राजनीति से घृणा करता है, सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेना समय की बर्बादी समझता है। इसका परिणाम यह होता है कि जनता की भागीदारी में अप्रत्याशित कमी दृष्टिगोचर हो रही है। समाज के अनपढ़ लोग को कौन कहे, बहुत शिक्षित व्यक्ति भी जनसहभागिता को महत्व नहीं देता है। तीसरी दुनिया के देशों यानि विकासशील देशों में यह जन-उदासीनता कुछ ज्यादा ही देखी जा सकती है। भारत में तो राजनीति में जनसहभागिता का प्रतिशत आधा से कम होता जा रहा है। मजे की बात यह है कि जन-उदासीनता जैसे राजनीतिक आधुनिकीकरण के बाधक तत्वों पर ध्यान ही नहीं दिया जा रहा है और न ही इसे अनुसंधान का महत्वपूर्ण विषय ही बनाया जा रहा है। वास्तव में यह जन-उदासीनता राजनीतिक विकास के अवरोधक तत्व एवं राजनीतिक पिछड़ेपन का सूचक है।

सजग एवं निष्पक्ष मीडिया का अभाव का होना भी जनता की भागीदारी में कमी का एक बड़ा कारण है। चाहे मीडिया का इलैक्ट्रॉनिक क्षेत्र हो या प्रिन्ट, दोनों दोनों ही क्षेत्र में सजगता का अभाव हैं। मीडिया के द्वारा बहुत ईमानदारी से जनसहभागिता को व्यापक बनाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। धार्मिक क्षेत्र में परम्परा का अत्यधिक प्रभाव होना तथा रूढ़ियों का परम्परा से मिला होना भी जनसहभागिता में शिथिलता का कारण है। जनता की भागीदारी प्रजातांत्रिक मूल्य है, लेकिन समाज में धार्मिक परम्परा के

नाम पर वर्ग विशेष जैसे स्त्री जाति को इससे अलग रखा जाता है। इससे जनसहभागिता का दायरा संकीर्ण होता जा रहा है। यह प्रवृत्ति अविकसित देशों में जबरदस्त देखने को मिलती है तथा विकासशील देशों की विशेषता के रूप में भी स्वीकार की जाती है।

यह भी स्पष्ट है कि प्रत्येक समाज में जन भागीदारी के शिथिलता के कुछ विशेष एवं अलग कारण बताए जा सकते हैं। फिर भी उपर्युक्त कारणों को सर्वमान्य एवं सामान्य कारण तो माना ही जा सकता हैं। अन्त में, यह भी विश्वास व्यक्त किया जा सकता है कि जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होगा, गरीबी दूर होगी, बेरोजगारी समाप्त होगी, जन समुदाय एवं सरकार में सक्रियता एवं सजगता आएगी तो जनता की भागीदारी बढ़ती जाएगी। जनता की भागीदारी के व्यापक होने के बाद ही कोई व्यवस्था आधुनिकीकृत एवं विकसित कहलाने की हकदार होगी और इस आधार पर दुनिया में किसी व्यवस्था को आधुनिकीकृत एवं विकसित कहना कठिन है।

प्रशासनिक व्यवस्था में जनता की भागीदारी की पद्धति

प्रशासनिक व्यवस्था में जहाँ तक जनता की भागीदारी की पद्धति या तरीके का प्रश्न है, तो इसके कई तरीके हैं, लेकिन निम्नलिखित पांच प्रमुख पद्धति ही महत्वपूर्ण हैं–

1. निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में जनता की भागीदारी
2. निर्णय-निर्माण का क्रियान्वयन करने में जनता की भागीदारी
3. नियोजन-मूल्यांकन में जनता की भागीदारी
4. लाभ प्राप्त करने में जनता की भागीदारी
5. शिक्षा प्रसार एवं प्रोत्साहन में जनता की भागीदारी

भारत में जनता की भागीदारी

प्रजातंत्र का मूल आधार यह है कि छोटे नागरिकों को प्रशासन को प्रभावित करने का अधिकार प्राप्त हो, ताकि छोटे वर्गों के उपेक्षित समूह स्वशासन के निर्माता के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें। स्थानीय शासन को भारत में प्राय: स्थानीय स्वशासन के नाम से पुकारा जाता है। विलियम एवं रॉब्सन के अनुसार सामान्यतया स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है, जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्थानीय का आविर्भाव राष्ट्रीय शासन से पहले हुआ है। स्थानीय शासक व्यापक रूप से जनता की सेवा करता है तथा राज्य शासन को ऐसे बहुत से कार्यों से मुक्त कर देता है, जिसको सम्पादित करना उसका उत्तरदायित्व माना जाता है। जनता के सर्वाधिक निकट स्थानीय शासन होता है, इसलिए लोग उसके पास सरलता से पहुँच सकते हैं और उन्हें आशा रहती है कि वे दूरस्थ केन्द्रीयकृत सत्ता की अपेक्षा उस पर अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। प्रशासन के विकेन्द्रीकृत क्षेत्र नागरिकों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के बीच सद्भावना का मार्ग ही प्रशस्त नहीं करते, बल्कि लोकतंत्र की सर्वोत्तम पाठशाला और उसकी सफलता की सबसे अच्छी गारण्टी भी देते हैं। स्थानीय जनता तथा राज्य शासन के बीच स्थानीय शासन विचारों और भावनाओं के सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम है। वह स्थानीय समुदाय की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को मुखरित करता हुआ उन्हें राज्य शासन तक पहुँचाता है तथा इनके माध्यम से ही राज्य शासन की केन्द्रीय योजनाएँ तथा कार्यक्रम स्थानीय जनता तक पहुँचते हैं। स्थानीय शासन की संस्थाएँ भारत में पुरातन काल से चली आ रही हैं। पुरातन काल में पंचायतें लघु गणराज्य थी। ग्रामीण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर उनका अधिकार और नियंत्रण हुआ करता था। पंचायत सामाजिक, सामुदायिक तथा आर्थिक गतिविधियों का संचालन करती थीं। ये पंचायते ही वैदिक काल से लेकर ब्रिटिश शासन के आरम्भ तक हमारे गांवों और उनकी आवश्यकताओं की देखभाल करती थीं। मुगल युग पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि उस काल में भी स्थानीय शासन विद्यमान था। ब्रिटिश सरकार ने स्थानीय शासन की स्थापना साम्राज्यवादी वित्त व्यवस्था पर दबाव कम करने के लिए की थी और बाद में उसका प्रयोग भारतीयों को स्वशासन का पाठ पढ़ाने के लिए किया गया। स्थानीय स्वशासन का विधिवत् सूत्रपात भारत में 1687 से माना जा सकता है, जबकि मद्रास नगर के लिए स्थानीय विकास के रूप में एक नगर निगम की स्थापना की गई। बाद में 1773 के अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) के द्वारा मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता जैसे तीन महाप्रांतीय नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना की गई। 1842 में बंगाल पीपुल्स अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार बंगाल के जनपदीय नगरों में भी नगर प्रशासन का विस्तार किया गया। सम्पूर्ण देश के लिए

1850 में एक अधिनियम पारित किया गया। 1863 में एक अधिनियम बनाकर कलकत्ता में नगर निगम की स्थापना की गई। 1870 में लॉर्ड मेयो ने शक्ति के विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया तथा स्थानीय शासन को उत्तरोत्तर विकसित किया। लॉर्ड मेयो के बाद लॉर्ड रिपन भारत के गवर्नर जनरल बनकर आए जिन्हें भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक कहा जाता है। स्थानीय स्वशासन को लॉर्ड रिपन ने नए आयाम देकर उसकी जड़ों को भारत में मजबूत करने का प्रयास किया। लॉर्ड रिपन ने उन सिद्धांतों का निरूपण किया, जो कालान्तर में भारत में स्थानीय शासन को व्यवस्थित करने में सहायक सिद्ध हुए। 1882 के जिस प्रस्ताव में इन सिद्धांतो ंका समावेश किया था उसका एक महान् अधिकार पत्र के रूप में जय-जयकार किया गया। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप विभिन्न राज्य में नए अधिनियम पारित किए गए।

रॉयल विकेन्द्रीकरण आयोग ने 1909 में अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति की कि गांव को स्थानीय स्वशासन की बुनियाद इकाई माना जाए और प्रत्येक गाँव में पंचायत हो। नगरपालिकाओं का नगरीय क्षेत्र में निर्माण किया जाए। इस पर सरकार ने कोई निर्णय नहीं लिया। सन् 1919 के भारतीय शासन अधिनियम से स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में नवीन युग का आरम्भ हुआ। इसके द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन का विभाग प्रान्तीय सरकारों के निर्वाचित मंत्रियों के अधीन करके उत्तरदायी बना दिया गया। 1947 में देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ भारत में स्थानीय शासन के इतिहास में एक नए युग का आरम्भ हुआ। 1950 में संविधान के लागू होने के साथ-साथ स्थानीय शासन एक नए युग में प्रवेश किया। राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों सम्बन्धी अध्याय के अनुच्छेद 40 में पंचायतीराज संस्थाओं को सशक्त एवं सुदृढ़ बनाने के लिए प्रावधान किया गया है जिसमें कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के उपाय करेगा और उन्हें स्वशासी संस्थाओं के रूप में काम करने में सक्षम बनाएगा। भारत में आज ग्रामीण स्थानीय शासन की जो व्यवस्था विद्यमान है उसका श्रेय देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को है। 1957 में सरकार ने सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा अध्ययन समिति का गठन किया। उसके अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता के नाम से समिति प्रसिद्ध है। भारत में समिति ने स्थानीय स्वशासन का विशेषरूप से अध्ययन करके वर्ष के अन्त में अपने प्रतिवेदन में सुझाव दिया कि शक्ति को एक ऐसे निकाय को सौंप दिया जाए, जो निमित हो जाने पर अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत विकास कार्य का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लें। सरकार पथ प्रदर्शन, परिवीक्षण तथा उच्च स्तरीय आयोजनो ंका काम अपने हाथों में सुरक्षित रखे और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान करे। समिति ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ग्रामीण स्थानीय प्रशासन के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया अर्थात् ग्राम पंचायत, प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर परिषद इन तीनों में से सबसे अधिक प्रभावकारी प्रखण्ड स्तरीय निकाय को परिकल्पित किया। बलवन्त राय मेहता समिति ने इस प्रखण्ड स्तरीय निकाय को पंचायत समिति का नाम दिया। जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने जिला तथा प्रखण्ड स्तर पर पंचायतीराज की स्थापना का अनुमोदन कर दिया। स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद ने भी बलवन्त राय मेहता समिति का समर्थन किया कि ग्रामीण शासन गाँव से लेकर जिले तक स्थानीय स्वशासी निकायों की त्रिस्तरीय व्यवस्था होनी चाहिए। ये निकाय परस्पर अवयवी रूप में श्रृंखलाबद्ध हों। इन संस्थाओं में शक्ति और उत्तरदायित्व का अन्तरण वास्तविक होना चाहिए। इन संस्थानों को जो वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाएं वे समुचित हों जिससे कि वे अपने उत्तरदायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह कर सकें। इन स्तरों पर सभी विकासात्मक कार्य इन्हीं संस्थओं के माध्यम से कराए जाएं ग्रामीण स्थानीय शासन की जो व्यवस्था विकसित की जाए। वह ऐसी हो कि भविष्य में इससे भी अधिक शक्ति और उत्तरदायित्वों का अन्तरण सरलता से किया जा सके।

अगस्त 1958 में आन्ध्र प्रदेश में प्रयोग के विचार से कुछ क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को लागू किया गया। 2 अक्टूबर, 1959 को गांधी जयंती के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रपिता के स्वप्नों को पूरा करने के उद्देश्य से राजस्थान के नागौर में द्वीप प्रज्जवलित करके पंचायतीराज की नींव रखी। नेहरू ने देश में पंचायतीराज का शुभारम्भ करते हुए कहा कि जिस कार्य को आज हम शुरू करने जा रहे हैं वह हमारी मातृभूमि की सेवा के लिए है उस भूमि की सेवा जिसके हम अंग हैं। गाँवों का रक्त शहरों की धमनियों को फुला रहा है और यह पुनः गाँवों की धमनियों में बहने लगे। स्थानीय स्वशासन लोकतंत्र की किसी भी व्याख्या का सच्चा आधार है। हमारा कुछ ऐसा स्वभाव पड़ गया है कि हम उच्च स्तर पर ही लोकतंत्र की बात सोचते हैं निम्न स्तर पर नहीं। उन्होंने ग्रामीण जनता का आह्वान किया कि वे प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनते हुए विकास की प्रक्रिया को स्वयं आगे बढ़ाएँ। 1 नवम्बर, 1959 को आन्ध्र प्रदेश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को विधिवत् लागू किया गया। महाराष्ट्र में 1 मई, 1962 को पंचायतीराज प्रणाली अपनाई गई। मद्रास पंचायत अधिनियम, 1958 में पारित किया गया। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, असम और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों ने छोटे आकार की ग्राम पंचायतों का गठन किया, जो

1,200 से लेकर 15,000 तक की जनसंख्या की देख-रेख करती थी, महाराष्ट्र तथा गुजरात सरकार ने पंचायती राजव्यवस्था को बेहतर बनाने के सुझाव देने के लिए क्रमश: बी.पी. पाईक तथा राशिकलाल यू. पारिख की अध्यक्षता में 'समिति' की स्थापना की। नाईक समिति ने लिखा था कि हमारी धारणा है कि जिला विकास स्थानीय प्रशासन की सबसे उपयुक्त कार्यात्मक इकाई होगी, क्योंकि वह जिले के समुचित रूप से समन्वित विकास के लिए आवश्यक साधनों तथा जरूरी प्रशासनिक एवं तकनीकी कर्मचारियों तथा उपकरण को जुटा सकने में समर्थ होगा। पारिख समिति का यह निष्कर्ष था कि जिला स्तर पर एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक संस्था की स्थापना की जाए और उसको जिला स्तर के वर्तमान सभी निकायों के कर्तव्य, उत्तरदायित्व तथा साधन सौंप दिए जाएं और उसे समुचित शक्तियाँ तथा वित्तीय साधन प्रदत्त कर दिए जाएं उसके बाद उसे अन्य प्रशासकीय उत्तरदायित्व सुपुर्द कर दिए जाएं, जो व्यावहारिक दृष्टि से वे उचित प्रतीत हों। तमिलनाडु सरकार ने दो समितियाँ नियुक्त की। इनमें से एक समिति 1970 में गठित पंचायत शिक्षा वित्त जाँच समिति थी और दूसरी समिति 1973 में गठित नगर पंचायतो के वित्तीय साधनों से सम्बन्धित थीं। आरम्भ में गाँवों व नगरों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में इन संस्थानों की सक्रिय भूमिका रही। लेकिन जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के बाद पंचायत राजव्यवस्था दुर्भाग्य के दौर से गुजरने लगी। पंचायती राजव्यवस्था के उस कार्यक्रम को जबरदस्त आघात पहुँचा जिस पर ग्रामीण जनता ने अपनी स्थिति के सुधार की सारी आशाएँ लगा रखी थीं। प्रशासनिक रूप से पंगु, आर्थिक दृष्टि से कमजोर और जटिल प्रक्रियाओं के जाल में फँसकर पंचायतीराज की संस्थाएँ इतनी कमजोर हो गई कि उनकी भूमिका निष्प्रभावी हो गई।

अशोक मेहता की अध्यक्षता में पंचायतराज संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने पंचायतीराज संस्थाओं पर एक समिति दिसम्बर 1977 में गठित की। अगस्त 1978 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति की सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि पंचायतीराज की द्विस्तरीय पद्धति का निर्माण किया जाए। यह राज्य स्तर के नीचे विकेन्द्रीकरण का पहला बिन्दु जिले को समझता है जहाँ ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक उच्चकोटि का तकनीकी ज्ञान उपलब्ध है। इस समिति ने गाँवों में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा के लिए विशेष मंचों के गठन की भी महत्वपूर्ण सिफारिश की मेहता ने जिला परिषद को नवीन प्रस्तावित पद्धति की धुरी की कील बताया है। ब्लॉक या प्रखण्ड एक मानक इकाई है। अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट की एक महत्वपूर्ण सिफारिश है कि पंचायतीराज के मामलों में राजनीतिक दलों को खुले रूप से भाग लेना चाहिए। पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव राजनीतिक दलों के आधार पर होने चाहिए। चुनाव क्षेत्र अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सुरक्षित हो और उनमें कम-से-कम दो स्थान महिलाओं के भी होने चाहिए। इस तरह देश में पंचायतीराज का दूसरा चरण अशोक मेहता समिति से हुआ है। इससे पंचायतीराज की संकल्पना और व्यावहारिक प्रयोग में नया मोड़ आया और पश्चिम बंगाल ने 1978 में अशोक मेहता समिति की सिफारिश के अनुसार पंचायतीराज में नए प्राण फूँकने के लिए कई कदम उठाए। पश्चिम बंगाल का कर्नाटक ने अनुसरण किया, किन्तु देश की अन्य राज्य सरकारों ने पंचायतीराज संस्थाओं के साथ न्याय नहीं किया। अधिकाश जगह पंचायतों का कम एक ऐसे बाजार के रूप में चला जहाँ विकास के लाभों की सौदेबाजी स्थानीय प्रभाव बनाने और सत्ता हासिल करने के लिए की गई। राजीव गाँधी ने पंचायतीराज की दयनीय स्थिति की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया तथा पंचायतीराज को पुन: मजबूत करने के लिए अपना संकल्प जाहिर किया। 1989 में इसके लिए 62वें संविधान संशोधन के रूप में पंचायतीराज विधेयक लाया गया, परन्तु वह पारित न हो सका। नरसिंह राव की केन्द्र सरकार ने स्वायत्तप्रशासी संस्थाओं को सशक्त बनाने तथा सत्ता में ग्रामवासियों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए 24 अप्रैल, 1992 में पारित संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधनों द्वारा इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। इन दोनों संशोधनों के माध्यम से पंचायत एवं नगरपालिकाओं के नाम से संविधान में दो नए अध्याय जोड़े गए तथा इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र निर्धारित करने वाली दो नई अनुसूचियाँ 11वीं तथा 12वीं अन्त:स्थापित की गई। 25 अप्रैल, 1993 से 73वाँ संशोधन अधिनियम सम्पूर्ण भारत में प्रवृत हुआ है। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं को एक-तिहाई आरक्षण देकर उनकी भागीदारी सुनिश्चित की गई है। जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए भी स्थानों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है। किसी पंचायतीराज संस्थाओं के अनुसूचित जाति एवं जनजाति के जितने सदस्य होंगे उनका एक-तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। 73वें संविधान संशोधन के जरिए संविधान में भाग नौ तथा ग्यारहवीं अनुसूची को शामिल किया गया है। भाग नौ में तीन स्तरीय पंचायत प्रणाली का प्रावधान है। जिसमें गाँव, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायतों के गठन की व्यवस्था है। पंचायत चुनावों की देखरेख और उनके लिए धन की व्यवस्था के लिए क्रमश: राज्य निर्वाचन आयोग और वित्त आयोग के गठन का प्रावधान भी इस संशोधन में किया गया है।

ग्यारहवें अनुसूची में 29 विषय दिए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं, कृषि, भूमि सुधार, लघु सिंचाई, पशुपालन, शिक्षा और महिलाओं से संबंधित विषय। राज्य सरकार इन विषयों को ग्राम पंचायतों के माध्यम से विकसित कर सकती है। पंचायतीराज संस्थाओं को 73वें संविधान संशोधन के द्वारा संवैधानिक स्थिति प्रदान की गई हैं। इन संस्थाओं की अवधि पाँच वर्ष होगी तथा राज्य सरकार इन्हें पूर्व की तरह मनमाने ढंग से भंग नहीं कर सकेगी। यदि कदाचरण के कारण किसी संस्था को भंग किया भी किया गया, तो 6 माह के भीतर पुन: चुनाव कराना अनिवार्य है। अवधि समाप्त होने के बाद भी 6 माह के अन्तर्गत चुनाव कराना आवश्यक होगा। यह अपेक्षा राज्य सरकारों से की गई है कि इन संस्थाओं की सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में अधिक स्वायत्तता प्रदान कर गांधीजी के ग्राम स्वराज्य के सपने को साकार करने की दिशा में ठोस कदम उठाए। सही मायनों में जो पंचायतीराज व्यवस्था लगभग निरर्थक हो चुकी थी उसे सार्थक बनाने के लिए संशोधनों 73 व 74 के द्वारा मूलभूत परिवर्तन किए गए हैं।

संदर्भ

1. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
2. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
3. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
4. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
5. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
6. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
7. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
8. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
9. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
10. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
11. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
12. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
13. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
14. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
15. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति–अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
16. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
17. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
18. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
19. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार

उन्माद

सोनल कुमारी

शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

उन्माद एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसको मनस्ताप के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है। इसमे व्यक्ति की भावनाओं तथा संवेग में कुछ समय के लिए असामान्य परिवर्तन आ जाते है, जिनका प्रभाव उसके व्यवहार, सोच, निद्रा, तथा सामाजिक मेल जोल पर पड़ने लगता है।

एक उन्मत्त रोगी बहुत आशावादी, उच्च आत्म विश्वास और उत्साह से भरा होता है। तीव्र उन्माद वाले व्यक्ति दूसरों के अधिकारों की परवाह नहीं करते हैं और उन लोगों के प्रति हिंसक प्रतिक्रिया कर सकते हैं जो उनके जीवन या कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं।

यदि इस बीमारी का उपचार नहीं कराया जाए तो इसके बार-बार होने की संभावना बहुत हो जाती है।

परिचय

यह रोग ऐसे व्यक्तियों को होता है जिनमें मानसिक दुर्बलता होती है और जिसके कारण वे बाह्य तथा संवेगात्मक परिस्थितियों से सहज ही उद्वेलित हो जाते हैं। वर्तमान अनुसंधानों द्वारा प्रमाणित हो गया है कि यह मानसिक रोग स्त्री और पुरुष दोनों में होता है। प्राचीन तथा मध्यकालीन युग में इस रोग का कारण भूत-प्रेत माना जाता था। इसके उपचार के लिए झाड़ फूँक, गंडे ताबीज आदि का उपयोग होता था। आधुनिक काल में शारकों, जैने, मॉर्टन प्रिंस और फ्रॉयड इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने इसका कारण मानसिक बतलाया है। उन्माद में प्राय: मानसिक विकार का परिवर्तन शारीरिक विकार में हो जाता है। रिबट का कथन है कि उन्माद में मानसिक क्षोभ की अवस्था शारीरिक क्रियाओं में प्रकट होती है'। फेरेंक्जी का कथन है कि 'परिवर्तित शारीरिक क्रियाएँ मानसिक विकार की प्रतीक होती हैं। फ्रायड ने रूपांतर उन्माद, जिसमें मानसिक विप्लव शारीरिक लक्षणों में परिवर्तित हो जाता है और चिंता उन्माद, जिसमें केवल मानसिक लक्षण होते है, का उल्लेख किया है।

उन्माद के बारे में फ्रॉयड का अन्वेषण प्रामाणिक है। फ्रॉयड के दृष्टिकोण से उन्माद के रोग में दो बातें प्रमुखत: मिलती हैं :

1. इसमें काम प्रवृत्ति का प्राधान्य रहता है,
2. इसमें बचपन की अनुभूतियों का विशेष महत्व होता है।

उन्माद प्राय: कामवृत्ति संबंधी अनुभूतियों का पुन:स्फुरण होता है। अक्सर वे ही व्यक्ति उन्माद रोग के शिकार होते हैं जिनकी कामशक्ति का उचित विकास नहीं हो पाता। वस्तुत: उन्माद के रोगी की क्रियाओं और सम्मोहनावस्था तथा कामविपरीतीकरण की क्रियाओं में पर्याप्त समानता मिलती है। विकृत कामभाव होने के कारण जब उन्माद के रोगी से कुछ पूछा जाता है तो वह यही कहता है : "मैं नहीं जानता, मुझे ऐसी कुछ बातें स्मरण नहीं हैं" - इसका अर्थ यह है कि वह कुछ कहना नहीं चाहता क्योंकि इससे उसके अज्ञात अचेतन मन में पड़ी भावनग्रंथि को ठेस पहुँचती है।

कारण

इस बीमारी के कई कारण हो सकते हैं जैसे कि-

- दिमाग में रसायनों का असंतुलित होना,
- ऐसी किसी घटना का होना जिसका रोगी के जीवन पर गहरा असर पड़ा हो,
- किसी तरह का मानसिक दबाव होना,

परन्तु किसी एक कारण को इस बीमारी के होने के लिए दोष नहीं दिया जा सकता है। यह रोग किसी भी वर्ग, जाति, धर्म, लिंग या उम्र के व्यक्ति को हो सकती है। जिनके परिवार में किसी सदस्य को यह रोग हो या हो चुका हो उनमें मेनिया होने की संभावना कुछ अधिक होती है। अत्याधिक तनाव, सामाजिक दबाव, तथा परेशानियाँ भी बीमारी को बनाये रखने या ठीक न होने का कारण बन सकती हैं।

लक्षण

- बिना कारण हँसना, बोलना, नाचना, गाना,
- सामान्य से अधिक खुश रहना,
- सोने की इच्छा में कमी,
- बड़े-बड़े दावे (बातें) करना, खुद को बड़ा बताना,
- अपने अन्दर अत्यधिक शक्ति का अनुभव करना, बहुत सारे काम एक साथ करने की कोशिश करना, परन्तु किसी भी काम को सही से न कर पाना,
- यौन इच्छा में वृद्वि,
- अपनी क्षमता से परे खर्चे करने की इच्छा करना,
- छोटी-छोटी बातों पर या बेवजह गुस्सा हो जाना, विवादो या झगडों में पड़ जाना.

उपचार विधि

इस रोग के उपचार की सबसे उपयुक्त विधि मुक्त साहचर्य है। प्रारंभ में सम्मोहन का प्रयोग होता था। किंतु यह सफल नहीं रहा। मुक्त साहचर्य से रोगी का रुख जीवन के प्रति परिवर्तित हो जाता है और वह स्थायी रूप से, अल्प अथवा दीर्घकाल में रोग से मुक्त हो जाता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानसिक स्वास्थ्य के नियमों से अवगत कराने से लाभ होता है। इसमें औषधि , प्रघात चिकित्सा तथा शल्य उपचार का प्रयोग नहीं किया जाता।

मेनिया रोगी की मदद: इन्हे मनोचिकित्सक की जरूरत है।

- तुरंत मनोचिकित्सक से मिलें,
- दवा नियमित रूप से लें, बीमारी के लक्षण नहीं रहने पर दवा का सेवन बिना डाक्टरी सलाह के बंद न करें,
- यदि रोगी नशा लेता हो तो नशे के सेवन पर पाबंदी लगाई जाए,
- रोगी के आस-पास वातावरण को तनावमुक्त बनाए रखें,
- रोगी के सम्मान व जरूरतों का ध्यान रखें।

इलाज के लिए दवाइयाँ, इंजेक्शन और टेबलेट दोनों रूप में मिलते हैं। मनोचिकित्सक की सलाह से तुरंत इलाज शुरू कर दें। नियमित जाँच के लिए डॉक्टर द्वारा बुलाने पर मरीज को समय पर अवश्य लेकर आयें। लगातार दवाई के सेवन से सिर्फ वर्तमान बीमारी ही ठीक नहीं होती पर भविष्य में भी बीमारी के फिर से उभरने की सम्भावना कम हो जाती है। बिना डाक्टरी सलाह के इलाज बंद करने पर बीमारी के दोबार होने की संभावना बढ़ जाती है। इसका इलाज लंबे समय तक चल सकता है इसलिए चिकित्सक की सलाह के बिना दवा को घटाया-बढाया नहीं जाना चाहिए।

दवा खाते हुए कुछ अनावश्यक प्रभावों (साइड एफ्फेक्ट्स) का ध्यान रखना चाहिए जैसे कि-

- (१) हाथ-पाँव में कम्पन होना,
- (२) मुँह सुखना, कब्ज होना,
- (३) उबकाई या उल्टी आना,
- (४) अत्याधिक शिथिलता रहना,
- (५) वजन का बढ़ना, आदि,

इन अनावश्यक प्रभावों के हाने पर दवा का सेवन रोके नही, क्योंकि यह समय के साथ अपने आप ही कम हो जाते हैं, तथा इनको रोकने के लिए सामान्य सी सावधानियाँ भी रखी जा सकती हैं-

- उचित मात्रा में पानी पियें जिससे कब्जियत न हो
- समय पर निद्रा (6-7 घंटे) लें,
- संतुलित आहार करें,
- नियमित व्यायाम करें।

देखरेख एवं बर्ताव: जिसके घर या आसपास कोई उन्माद का रोगी हो तो

- यदि आपको लगे की किसी व्यक्ति में यह लक्षण हैं तो रोगी के व्यवहार में आए बदलाव देख कर घबरायें नही,
- अपना समय किसी झाड़-फूंक में व्यर्थ ना करें, यह एक मानसिक बीमारी है जिसका डॉक्टरी इलाज सम्भव है,
- उसे सही गलत का ज्ञान देने की कोशिश न करे क्योंकि मरीज आपकी बातें समझ पाने की अवस्था में नहीं है,
- यह बदलाव कुछ समय के लिए व्यक्ति के व्यवहार को असामान्य बना सकतें हैं व बीमारी के ठीक होने के साथ ही व्यक्ति का व्यवहार फिर से सामान्य हो जाता है,
- रोगी से बहस न करें,
- रोगी को व्यायाम करके अपने शक्ति को सही दिशा में इस्तेमान करने में मदद करें,
- रोगी को मारें या बाँधें नहीं बल्कि डॉक्टर की मदद से उसे शांत करने की कोशिश करें,
- व्यवहारिक बदलाव इस बीमारी के लक्षण हैं रोगी के चरित्र की खराबी नही,
- मरीज कि यह हालत बीमारी के कारण है इसलिए उसे समझकर उसे सहयोग दें, तथा उसके सम्मान की रक्षा करें,
- उस पर विश्वास रखें क्योंकि बीमारी के नियंत्रण में आने के बाद वह अपने सारे उत्तरदायित्व ठीक से निभा सकता है,
- ठीक होने के बाद उसे सामान्य जीवन जीने में मदद करें,
- मानसिक बीमारी शारीरिक बीमारी की तरह ही है, जिसका इलाज कुछ लंबे समय तक चल सकता है,
- जल्दी उपचार से भविष्य में आने वाली कई समस्याओं पर काबू पाया जा सकता है,
- अपनी परेशानियों के बारे में रिश्तेदारो व दोस्तो से सहयोग लें।

निष्कर्ष

उन्माद एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसको मनस्ताप के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है। इसमे व्यक्ति की भावनाओं तथा संवेग में कुछ समय के लिए असामान्य परिवर्तन आ जाते है, जिनका प्रभाव उसके व्यवहार, सोच, निद्रा, तथा सामाजिक मेल जोल पर पड़ने लगता है। रोगी कई बार आक्रामक हो जाता है।

यदि इस बीमारी का उपचार नहीं कराया जाए तो इसके बार-बार होने की संभावना बहुत हो जाती है।

उन्माद में सर्वप्रथम मूलभूत कारणों का निर्धारण अवश्य कर लेना चाहिए। यथोचित मात्रा में आवश्यक पोषक तत्वों का सेवन करना और रक्त का अनुकूल प्रवाह बनाए रखना चाहिए। रागी का निरीक्षण ध्यान से करते रहना चाहिए, जिससे उसे उत्तेजना और आवेश के संकट से बचाया जा सके। विशिष्ट शमक (sedative) और संमोहक ओषधियों का प्रयोग आवश्यकता होने पर किया

जा सकता है, लेकिन ऐसा किसी योग्य चिकित्सक की देखरेख में ही सावधानीपूर्वक करना चाहिए। परिवर्तनशील और अपरिचित वातावरण उन्माद के लक्षणों को बढ़ा देता है, अतः रोगी के आसपास अधिक से अधि सुपरिचित, घरेलू, सरल और शांत वातावरण बनाए रखने क पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

सन्दर्भ

- Behrman, Andy (2002). Electroboy: A Memoir of Mania. Random House Trade Paperbacks. pp. Preface: Flying High. ISBN 978-0-8129-6708-1.
- Soares, Jair; Walss-Bass, Consuelo; Brambilla, Paolo (2018). Bipolar Disorder Vulnerability: Perspectives from Pediatric and High-Risk Populations. London: Academic Press. p. 218. ISBN 9780128123478.
- Doran, Christopher M. (2007). The Hypomania Handbook: The Challenge of Elevated Mood. Philadelphia. PA: Lippincott Williams & Wilkins. p. 75. ISBN 9780781775205.
- Goodman, Brunton L, Chabner B, Knollman B (2011). Goodman Gilman's pharmacological basis of therapeutics (Twelfth ed.). New York: McGraw-Hill Professional. ISBN 978-0-07-162442-8.

केन्द्र और राज्यों में बहुदलीय सरकारें

चंद्र विजय प्रकाश यादव

पीएच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश नारायण विश्वविधालय

भारत में मिली-जुली सरकारों के निर्माण का इतिहास भी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ही जुड़ा है। भारत में मिली-जुली सरकारों की राजनीति के अध्ययन से पूर्व हमें मिली-जुली सरकार के अर्थ से परिचित होना जरूरी है। मिली-जुली सरकार का साधारण अर्थ है कई दलों द्वारा मिलकर सरकार का निर्माण करना। चुनावों से पूर्व या चुनावों के बाद कई दल मिलकर अपना साझा कार्यक्रम तैयार करते हैं। उसके आधार पर वे मिलकर चुनाव लडते हैं अथवा अपनी सरकार बनाते हैं। मिली-जुली सरकार का निमार्ण प्राय: उस स्थिति में किया जाता है, जब प्राय: किसी एक दल को चुनावों के बाद स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हुआ हो। तब दो या दो से अधिाक दल मिलकर संयुक्त सरकार का निर्माण करते हैं। ऐसी सरकार में प्राय: सभी राजनीतिक दल अपने दलों के संकीर्ण व विशेष हितों को त्याग कर एक निश्चित कार्यक्रम पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं। इन मिली-जुली सरकारों की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है:

1. समझौतावादी कार्यक्रम: मिले-जुले मन्त्रिमण्डलों की पहली विशेषता यह है कि उनका राजनीतिक कार्यक्रम समझौतावादी होता है। सरकार निर्माण के कुछ दिन बाद ही मन्त्रिमण्डल के घटक दलों के शीर्षस्थ नेता मिलकर मिली-जुली सरकार के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम तैयार करते हैं। इसके सम्बन्ध में वह समझौता करते हैं जिसमें कि प्रत्येक दलों की बातों को व कार्यक्रम को धयान में रखा जाता है। अत: मिले-जुले मन्त्रिमण्डलों की पहली प्रवृत्ति अथवा विशेषता समझौतावादी है।
2. सर्वसम्मत नेता: मिली-जुली सरकार के निमार्ण से पूर्व सभी दल मिलकर अपने नेता का चुनाव करते हैं। नेता का चुनाव प्राय: सर्वसम्मत ढंग से किया जाता है। यद्यपि मिली-जुली सरकार का एक सर्वसम्मत नेता होता है, फिर भी घटक दलों के नेता व उनके अस्तित्व को दृष्टि विगत नहीं किया जाता। इसके कारण सरकार में एकता बनी रहती है।
3. सर्वसम्मत निर्णय: मिली-जुली सरकार में शामिल दल किसी भी राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय समस्या का हल सर्वसम्मति से करते हैं। कोई भी राजनीतिक समस्या पैदा होने पर घटक दलों की संयुक्त बैठक बुलाई जाती है, जिससे उक्त समस्या पर घटक दलों की राय जानी जाती है। प्रत्येक दल द्वारा दिए गए सुझावों को विशेष महत्व दिया जाता है ताकि कोग्र दल यह महसूस न करे कि उसके अस्तित्व को अनदेखा कर दिया गया है।
4. मिल-जुलकर कार्य करना: मिली-जुली सरकार में शामिल सभी घटक दल मिल-जुलकर कार्य करते हैं। प्रत्येक दल को कोई न कोई महत्वपूर्ण विभाग अवश्य सौंपा जाता है। इस विभाग की कुशलता आदि उस दल के ऊपर निर्भर करती है। एक दल द्वारा किया गया गलत कार्य सभी दलों द्वारा किया गया गलत कार्य समझा जाएगा। इसलिए सभी दल मिल-जुल कर कार्य करते हैं।

भारत में मिली-जुली सरकारों की राजनीति

भारतीय संविधाान के द्वारा भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। बिना राजनीतिक दलों के लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता पर सन्देह प्रकट किया जाता है। भारत में फ्रांस, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, जापान, रूस आदि की भांति बहु-दलीय प्रणाली को अपनाया गया है। प्रथम संसदीय चुनाव के समय सन् 1952 में चुनाव आयोग ने 14 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय

राजनीतिक दलों के रूप में मान्यता दी। इनमें से प्रमुख दल थे-कांग्रेस, द्मजा समाजवादी दल, साम्यवादी दल व जनसंख्या। 25 नवम्बर, 1997 को 12वीं लोकसभा के चुनावों के अवसर पर चुनाव आयोग ने 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के रूप में मान्यता दी जबकि 1999 में राष्ट्रीय दलों की संख्या डटकर 6 रह गई तथा क्षेत्रीय दलों की संख्या बढ़कर 48 हो गई। 29 दिसम्बर, 2000 को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के रूप में एवं 44 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दलों के रूप में मान्यता प्रदान की। भारतीय राजनीति का बिना मिली-जुली सरकारों की राजनीति के अधायन अपूर्ण है। भारत में मिली-जुली सरकारों की राजनीति का अध्ययन निम्नलिखित प्रिर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:

1. स्वतन्त्रा से पूर्व मिली-जुली सरकार: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मिली-जुली सरकार के निर्माण का इतिहास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व से आरम्भ होता है। भारत के लिए नया संविधान बनाने के लिए कैबिनेट मिशन के द्वारा एक अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। इस सरकार में भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों कांग्रेस, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि को शामिल किया गया। इस अन्तरिम सरकार में सभी दलों के कुल 14 प्रतिनिधि शामिल किए गए, जिनमें कांग्रेस के 6, मुस्लिम लीग के 5, अकाली दल का 1, एंग्लो-इण्डियन समुदाय का 1 व 1 पारसी समुदाय का। अन्तरिम सरकार का अध्यक्ष गवर्नर जनरल को बनाया गया। भारतीय प्रशासन के सभी विभाग अन्तरिम सरकार को सौंपे गए। इस अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू थे। इस सरकार ने स्वतन्त्रा प्राप्ति के बाद भी कार्य किया जब तक कि संविधान लागू नहीं हुआ।
2. मिली-जुली सरकार 1952 से 1967: भारत में पहले संसदीय चुनाव सन् 1952 में हुए। इन चुनावों के समय चुनाव आयोग ने 14 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल के रूप में मान्यता दी। इन चुनावों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ, क्योंकि उस समय कोई राजनीतिक दल कांग्रेस के समान स्तर का नहीं था, फिर भी पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपने मन्त्रिमण्डल में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गोपाल स्वामी आयंगर जैसे ग़ैर-कांग्रेसी सदस्य भी सम्मिलित किए। श्री लाल बहादुर शास्त्री व श्रीमती इन्दिरा गांधी के शासन काल में सभी मन्त्री कांग्रेस से ही लिए गए थे।
3. मिली-जुली सरकार की राजनीति 1967 से 1977 तक: चौथे आम चुनावों के पश्चात् यद्यपि कांग्रेस को केन्द्र में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ, परन्तु कई राज्यों में मिली-जुली सरकारें बनीं। सन् 1969 में कांग्रेस में विभाजन के पश्चात् इन्दिरा गांधी की सरकार को साम्यवादी दल के सहयोग पर निर्भर रहा पड़ा। सन् 1967 के चुनाव के पश्चात् बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा आदि प्रान्तों में मिली-जुली सरकारों के बनने और गिरने का सिलसिला आरम्भ हो गया, परन्तु केन्द्र में कांग्रेस की ही सरकार रही।
4. केन्द्र में पहली मिली-जुली सरकार: जनवरी 1977 में चार राजनीतिक दलों जनसंघ, कांग्रेस संगठन, समाजवादी दल, भारतीय लोक दल व विद्रोही कांग्रेसियों ने मिलकर जनता पार्टी की सरकार बनाई। श्री मोरारजी देसाई को जनता पार्टी का अध्यक्ष और चौधरी चरण सिंह को उपाध्यक्ष चुना गया। मार्च, 1977 में लोकसभा चुनाव हुए और इन चुनावों में कांग्रेस की ऐतिहासिक हार हुई। जनता पार्टी व उसके सहयोगी दलों को 300 से भी अधिक स्थान प्राप्त हुए। केन्द्र में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग़ैर-कांग्रेसी सरकार की स्थापना हुई। केन्द्र में यह मिली-जुली सरकार का पहला प्रयोग था। जनता पार्टी की सरकार में कांग्रेस संगठन, भारतीय लोकदल, जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी, विद्रोही कांग्रेस, अकाली दल, द्रमुक आदि दल शामिल हुए। उसके पश्चात् कांग्रेस शासित राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया और बाद में चुनाव हुए। जून, 1977 में इन राज्यों में चुनाव हुए और कई राज्यों में मिली-जुली सरकारों का गठन हुआ।

   जून, 1978 में प्रधाानमंत्री श्री मोरारजी देसाई और गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह व राजनारायण के मध्य मतभेद पैदा होने से जनता पार्टी की मिली-जुली सरकार के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया। प्रधानमंत्री ने 24 जून, 1978 को राजनारायण और गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह को मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देने के लिए कहा और इन दोनों मंत्रियों ने 30 जून, 1978 को अपने त्याग-पत्र दे दिए। 15 जुलाई, 1978 को प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने त्याग-पत्र दे दिया, क्योंकि जनता पार्टी के कई सहयोगी सदस्यों ने पार्टी को छोड़ दिया। राष्ट्रपति ने विपक्ष के नेता यशवन्तराव चह्वान को सरकार बनाने का

निमंत्रण दिया, परन्तु यशवन्तराव ने सरकार बनाने में अपनी असमर्थता प्रकट की और चौधरी चरण सिंह को बाहर से समर्थन देने की घोषणा की। राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने चौधरी चरण सिंह को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया, परन्तु आपसी मतभेद के कारण शीघ्र ही उन्होंने अपने पद से त्याग-पत्र देकर लोकसभा भंग करवा दी और नये चुनाव करवाए। सन् 1980 से सन् 1989 तक केन्द्र में कांग्रेस की सरकार रही।

5. राष्ट्रीय मोर्चा सरकार 1989: सन् 1989 में कई कांग्रेस के नेताओं ने पार्टी से त्याग-पत्र देकर जनमोर्चा का गठन किया जिसका उद्देश्य कांग्रेस के विरुद्ध विपक्षी दलों का एक सशक्त विकल्प तैयार करना था। चौधरी देवी लाल ने विपक्षी दलों के विलय से एक नए दल के निर्माण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्त में 11 अक्तूबर, 1988 को बंगलौर में 'जनता दल' की विधिवत् घोषणा कर दी गई। इस दल की स्थापना जनमोर्चा, जनता पार्टी तथा लोकदल के विलय से हुई। इसके निर्माण से पूर्व राष्ट्रीय मोर्चा और जनमोर्चा, का आपस में गठबन्धन हो गया था। राष्ट्रीय मोर्चे में भी कई दल सम्मिलित थे, जैसा कि जनता पार्टी, कांग्रेस, डी.एम.के., तेलुगू देशम और असम गण परिषद्। श्री एन. टी. रामाराव को राष्ट्रीय मोर्चे का संयोजक व विश्वनाथ प्रताप सिंह को राष्ट्रीय मोर्चे का अध्यक्ष चुना गया। राष्ट्रीय मोर्चा और जनता दल ने मिलकर चुनाव लड़ा। इस चुनाव में राष्ट्रीय मोर्चे के सबसे महत्वपूर्ण घटक जनता दल को 141 स्थान प्राप्त हुए, परन्तु कांग्रेस तेलुगू देशम तथा डी.एम.के. को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। विश्वनाथ प्रताप सिंह को राष्ट्रीय मोर्चा संसदीय दल का नेता चुना गया और उन्होंने केन्द्र में दूसरी मिली-जुली सरकार का निर्माण किया।

   भारतीय जनता पार्टी और वामपंथी दलों ने राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को बाहर से समर्थन दिया, परन्तु 23 अक्तूबर,1990 को भारतीय जनता पार्टी द्वारा अपना समर्थन वापस लेने व जनता दल में विभाजन के कारण राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त नहीं हो सका और 7 नवम्बर, 1990 को प्रधाानमंत्री वी.पी. सिंह ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। मई-जून, 1991 को लोकसभा के मध्यावधि चुनावों में यद्यपि किसी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु कांग्रेस को लोकसभा में सबसे अधिक स्थान प्राप्त हुए और कांग्रेस ने अपनी अल्पमत सरकार बनाई और 1996 तक कांग्रेस के कब्जे में रही।

6. संयुक्त मोर्चा सरकार 1996: मार्च, 1996 में चुनाव आयोग ने 11वीं लोकसभा के चुनाव के अवसर पर 8 राष्ट्रीय राजनीतिक दलों-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय साम्यवादी दल, जनता दल, समता पार्टी, अखिल भारतीय इन्दिरा कांग्रेस और जनता पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। इसके साथ ही चुनाव आयोग ने राज्य स्तरीय क्षेत्रीय दलों को भी मान्यता प्रदान की। अप्रैल-मई, 1996 के चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ जिसके कारण मिली-जुली सरकार बनाने की सम्भावनाएं बहुत बढ़ गई। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और उसे 161 स्थान प्राप्त हुए। दूसरे नम्बर पर कांग्रेस रही, जिसको 140 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस को इतना कम स्थान पहले कभी भी किसी भी लोकसभा चुनाव में प्राप्त नहीं हुए। जनता दल को 45, मार्क्सवादी पार्टी को 32, भारतीय साम्यवादी दल को 12, समता पार्टी को 8, कांग्रेस को 4 और जनता पार्टी को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन चुनावों में क्षेत्रीय दलों को भारी सफलता प्राप्त हुई जिनमें डी.एम.के. को 17, तमिल मनीला कांग्रेस को 20, तेलुगू देशम पार्टी को 16, समाजवादी पार्टी को 16, अकाली दल को 8, शिवसेना को 15, असम गण परिषद् को 5, हरियाणा विकास पार्टी को 3, मध्य प्रदेश विकास कांग्रेस को 2 और बहुजन समाज पार्टी को 11 स्थान प्राप्त हुए, जिसके कारण सरकार के निर्माण में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बढ़ गई।

राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 16 मई, 1996 को लोकसभा में सबसे बड़े दल भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। 16 मई, 1996 को भारतीय जनता पार्टी ने अपने सहयोगी दलों समता पार्टी, अकाली दल, शिव सेना और हरियाणा विकास पार्टी के सहयोग से मिली-जुली सरकार का गठन किया, परन्तु इससे पहले 11मई, 1996 को राजनीतिक दलों जनता दल, भारतीय साम्यवादी दल, भारतीय साम्यवादी दल, अखिल भारतीय इन्दिरा कांग्रेस, डी.एम.के., तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, मध्य प्रदेश कांग्रेस, मुस्लिम लीग, जनता पार्टी ने मिलकर संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया। 19 मई, 1996 को इस मोर्चे में असम गण परिषद् और तेलुगू देशम पार्टी भी शामिल हो गई। इस तरह 13 दलों के सहयोग से मिलकर संयुक्त मोर्चे का

निर्माण किया गया और श्री हरदन हल्ली देवेगौड़ा को संयुक्त मोर्चे का नेता चुना गया। इस मोर्चे को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बाहर से बिना शर्त समर्थन देने की घोषणा कर दी। परन्तु इससे पूर्व केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी का निर्माण किया जा चुका था, राष्ट्रपति ने 31 मई, 1996 तक भाजपा को लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध) करने का निर्देश दिया, परन्तु प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 28 मई, 1996 को ही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि उन्हें आभास हो गया था कि बहुमत उनके साथ नहीं है।

29 मई को राष्ट्रपति ने संयुक्त मोर्चा के नेता एच.डी. देवेगौड़ा को 1 जून, 1996 को अपनी सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। जून, 1996 में एच.डी. देवेगौड़ा ने 13 दलों द्वारा गठित संयुक्त मोर्चे से मिली-जुली सरकार का निर्माण किया। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के इतिहास में पहली बार भारतीय साम्यवादी दल केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में शामिल हुआ। 12 जून, 1996 को संयुक्त मोर्चा सरकार ने भारतीय साम्यवादी दल व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बाहरी सहयोग से लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त कर लिया। इस सरकार के निर्माण में कई क्षेत्रीय दलों तेलुगू देशम, डी.एम.के., तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, असम गण परिषद्, मध्य प्रदेश विकास कांग्रेस आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन संयुक्त मोर्चा की सरकार स्थायी न रह पाई और इसके अस्तित्व पर सदैव खतरा मंडराता रहा। संयुक्त मोर्चा सरकार को पहले कांग्रेस पार्टी के दबाव के आगे झुकना पड़ा और नेतृत्व में परिवर्तन करना पड़ा। बाद में 28 नवम्बर, 1997 को कांग्रेस के समर्थन वापस लेने से संयुक्त मोर्चा सरकार गिर गई। निरन्तर स्थायित्व से जूझने वाली मोर्चा सरकार मात्र 18 माह तक ही चली। फरवरी-मार्च, 1998 में 12वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। इन चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाया। भारतीय जनता पार्टी को 182 स्थान प्राप्त हुए और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 142 स्थानों पर ही सिमट गई। एक बार फिर क्षेत्रीय दलों का महत्व बढ़ गया और सरकार के निर्माण में उनके सहयोग की आवश्यकता अनुभव हुई। भारतीय जनता पार्टी ने 17 अन्य दलों के सहयोग से अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार का निर्माण किया, परन्तु सहयोगी दलों के असहयोगात्मक रवैये के कारण यह सरकार अधिक समय तक न चल सकी। 14 अप्रैल, 1999 को ए.आई.ए.डी.एम.के. की महासचिव जयललिता द्वारा इस सरकार से अपना समर्थन वापस लेने के बाद यह सरकार अल्पमत में आ गई। 15 अप्रैल, 1999 को प्रधानमंत्री ने विश्वाास-प्रस्ताव लोकसभा में रखा, लेकिन दो दिन तक लगातार बहस के बाद इस प्रस्ताव के पक्ष में 269 और विरोध में 270 मत पड़े। परिणामस्वरूप वाजपेयी सरकार को मात्र एक वोट से पराजित होना पड़ा। उल्लेखनीय है कि 12वीं लोकसभा मात्र 13 महीने तक रही।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सरकार 1999: सितम्बर-अक्तूबर, 1999 में 13वीं लोकसभा के चुनाव में किसी भी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को बहुमत प्राप्त हो गया। 24 राजनीतिक दलों के सहयोग से मिलकर बने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन के 70 सदस्यीय मंत्रिमण्डल ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 13 अक्तूबर, 1999 को शपथ ग्रहण की। इस सरकार में अधिकतर क्षेत्रीय दल सम्मिलित थे। इन चुनावों ने भारतीय राजनीति में मिली-जुली सरकारों के युग का मार्ग और प्रशस्त किया।

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन 2004: 2004 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में बनी सरकार की हार हो गई और मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस और सहयोगी दलों की सरकार बनी जो अब तक सफलतापूर्वक चल रही है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि नवम्बर, 1989, मई-जून, 1991 और अप्रैल-मई, 1996, फरवरी-मार्च, 1998 सितम्बर-अक्तूबर, 1999 और 2004 के लोकसभा के चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, जिसके कारण अल्पमत सरकारें बनीं, जिन्हें अपने अस्तित्व के लिए विभिन्न दलों के सहयोग पर निर्भर रहना पड़ा। इसके कारण ही संसद् का जन्म हुआ। भारत की केन्द्रीय राजनीति का यदि हम विस्तार से अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि मिली-जुली सरकार राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से अस्थाई होती है। (2) यह कोई भी निर्णय कर पाने में स्वतन्त्र नहीं होती है। भारतीय मतदाताओं ने सन् 1977, सन् 1989 में कांग्रेस के विकल्प के रूप में मिली-जुली सरकारों के निर्माण में आस्था प्रकट की थी, परन्तु ये सरकारें अपनी आंतरिक झगड़ों, विरोधाभासों, विसंगतियों के कारण बहुत बदनाम हो गई। इनमें गुटबाज़ी हो गई, जिस किसी नेता के सम्मान को ठेस पहुंचती वही संयुक्त सरकारों से पृथक् होकर अपना अलग गुट बना लेता। इसीलिए मतदाताओं ने सन् 1980 में इन्दिरा गांधी को व सन् 1991 के चुनावों में नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी को समर्थन दिया। मार्च, 1998 में केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार बनी जिसमें भारतीय जनता पार्टी के अतिरिक्त 17 अन्य राजनीतिक दल सम्मिलित थे, परन्तु यह सरकार अपने घटक दलों के असहयोगात्मक रवैये के कारण अधिक समय तक नहीं चल सकी। अन्नाद्रमुक द्वारा समर्थन वापस लेने के बाद इस सरकार को

मात्र 13 माह की अल्पावधि में ही अपना पद छोड़ना पड़ा। अक्तूबर, 1999 में 24 राजनीतिक दलों के सहयोग से मिलकर बने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की सरकार बनी, लेकिन यह सरकार भी सहयोगी दलों के दबाव में काम करती रही। आज की सरकार भी इन्हीं दबावों से गुजर रही है।

संदर्भ

1. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
2. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
3. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
4. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
5. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासनः सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
6. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
7. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
8. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
9. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
10. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
11. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
12. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
13. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
14. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार
15. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
16. भारतीय प्रशासनः विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
17. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
18. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
19. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का लिंगभेद के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

अजय कुमार यादव

(शोधार्थी), शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० आशाराम

(एसो0 प्रोफेसर), सेवानिवृत्त, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का लिंगभेद के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शोधार्थी द्वारा शून्य परिकल्पना "वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" एवं "स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" का निर्माण किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों (50 महिला व 50 पुरुष) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। इसी प्रकार 10 स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों (50 महिला व 50 पुरुष) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा मुद्गील, मुबार व भाटिया, 2012 द्वारा निर्मित शिक्षक कार्य संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों का विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है लिंगभेद के संदर्भ में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। जबकि वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया। जिसके अन्तर्गत वित्तपोषित महाविद्यालयों कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि से उच्च पायी गयी।

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा हमारे राष्ट्र के विकास के लिए मुख्य आधार मानी जाती है, क्योंकि राष्ट्र की प्रगति राष्ट्र के शिक्षित लोगों पर निर्भर करती है। यदि लोग शिक्षित होंगे तो राष्ट्र का निश्चित रूप से विकास होगा। शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक

है। शिक्षा ही मानव की अभिव्यक्ति, समायोजन की क्षमता एवं व्यक्त्वि निर्माण में सहायक होती है। शिक्षा ही सशक्त साधन के रूप में जीवन में आने वाली चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि प्राथमिक शिक्षा मनुष्य का मौलिक एवं संवैधानिक अधिकार है, लेकिन उच्च शिक्षा राष्ट्र के विकास व प्रगति का आधार मानी गयी है। राज्य सरकारें वित्तीय संसाधनों की कमी व संकट के कारण उच्च शिक्षा को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करने में पूर्णत: असमर्थ है।

शिक्षक के कृत्य सन्तोष में उक्त सभी कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अर्थात् शिक्षण कार्य में आन्तरिक एवम् बाह्य कारक (कार्य से प्राप्त होने वाले स्वास्थ्य व मनोरंजन के लिए भ्रमण, नियुक्ति का स्थान, कार्य की दशायें, लोगों के बीच आपसी सहयोग, प्रजातांत्रिक गुण, बुद्धि, सामाजिक दायरा, आय, वेतन भत्ता, जीवन के गुण एवम् राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था) शिक्षकों को स्वयं के शिक्षण कार्य से प्राप्त होने वाली संतुष्टि को प्रभावित करते हैं। अत: स्पष्ट होता है कि शिक्षकों का कृत्य सन्तोष अप्रत्यक्ष रूप से उनके शिक्षण कार्य को प्रभावित करता है तथा संतुष्ट शिक्षक ही छात्रों के प्रति अपने शिक्षण दायित्वों को महत्व देंगे तथा छात्रों के हित में कार्य करेंगे। वर्तमान समय में शिक्षक के कार्य और दायित्व पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गये हैं। आज शिक्षक को अपने विषय को प्रभावी ढंग से पढ़ाने के साथ-साथ विद्यालय वातावरण की अन्य गतिविधियों में भी सहभागी होना पड़ता है। खेलकूद, पाठ्य सहगामी क्रियाओं विषयों के चुनाव हेतु निर्देशन, विद्यालयी अभिलेख और शिक्षण सम्बन्धी प्रयोग करना आदि अनेक कार्यो में कौशल रखना आवश्यक है। शिक्षक के कौशल की सफलता उसके व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर होती है। किसी भी कार्य को करने का कोई न कोई उद्देश्य आवश्यक होता है। शिक्षण कार्य का भी उद्देश्य है बालक का सर्वांगीण विकास करना। इस विकास के मापन का एक अंग उपलब्धि भी है यदि बालक की शैक्षिक उपलब्धि निम्न स्तर की है तो इसका अर्थ है कि शिक्षण कार्य द्वारा उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पा रही है इसलिये शिक्षण कार्य को प्रभावी बनाने हेतु शिक्षक को अपने दायित्वों का भली-भाँति निर्वहन करना चाहिये। अध्यापक का दायित्व छात्र की आन्तरिक शक्तियाँ विकसित कर उसकी सृजनात्मक क्षमता को निखारना है। जिससे वह समाज का योग्य नागरिक बन सके। अध्यापक विद्यार्थी के व्यक्तित्व को गढ़कर उसे एक आदर्श व्यक्ति बनाने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार आदर्श शिक्षक, छात्र को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक विकास की दिशा प्रदान करता है। एक शिक्षक अपने दायित्वों का भली प्रकार निर्वहन तभी कर सकता है जब शिक्षक का पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण उसके मनोनुकूल है।

चहल (2019) ने व्यावसायिक संतुष्टि व आत्म-सम्प्रत्यय के संदर्भ में विद्यालयी शिक्षकों में अलगाव की भावना का अध्ययन किया। निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है कि निम्न व्यावसायिक संतुष्टि वाले अध्यापकों में अधिक अलगाव व्यवहार जबकि उच्च व्यावसायिक संतुष्टि वाले अध्यापकों में निम्न अलगाव व्यवहार पाया गया इसी प्रकार उच्च आत्म-सम्प्रत्यय का अलगावों की अभावनाओं के साथ नकारात्मक सम्बन्ध पाया गया।

रोहल, रितु (2005) ने राजकीय एवं निजी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन किया। निष्कर्ष में पाया गया कि राजकीय एवं निजी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

यादव, अवधेश कुमार (2007) ने सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य सतुंष्टि के सदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के परिणामों में पाया कि सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालय के पुरूष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अंतर नही है। बल्कि दोनों समूहों की कार्य संतुष्टि एक समान है।

शोधार्थी द्वारा शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर आधारित पूर्व में हुए शोध अध्ययनों का गहन विश्लेषण किया गया जिसमें विश्लेषण से यह विधित होता है कि पूर्व में हुए शोध अध्ययन अधिकांश: प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर आधारित पाये गये जबकि महाविद्यालय स्तर के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर बहुत कम शोध अध्ययन पाये गये है जबकि उच्च शिक्षा में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि शैक्षिक तंत्र के लिए एक प्रकाश भाँति है अत: शोध की महत्ता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का लिंगभेद के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

1.2 अध्ययन के उद्देश्यः

1. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।
2. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।
3. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।

1.3 अध्ययन की परिकल्पनाः

1. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
2. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
3. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।

1.4 न्यादर्श प्रारूपः

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों (50 महिला व 50 पुरुष) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। इसी प्रकार 10 स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों (50 महिला व 50 पुरुष) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। अत: न्यादर्श के रूप में कुल 200 शिक्षकों (100 महिला व 100 पुरुष) का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए शिक्षक कार्य संतुष्टि मापनी (यदुवीरेन्द्र मुद्गील, आई.एस. मुबार व प्रभा भाटिया, 2012 द्वारा निर्मित) का प्रयोग किया गया।

1.6 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात का अनुसरण किया गया है।

1.7 अध्ययन की उपलब्धियाँः

1. **वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।**

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया एवं क्रान्तिक अनुपात की सहायता से वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्यरत संतुष्टि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना की गयी। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) किया गया जिसमें निम्न तालिका सं. 01 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 01 वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	*शिक्षक*	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*क्रान्तिक अनुपात*	*सार्थक स्तर*
कार्य संतुष्टि	महिला	50	282.14	20.19	0.59	0.05 स्तर पर
	पुरुष	50	279.79	19.63		असार्थक

उपरोक्त तालिका के अवलोकन यह स्पष्ट होता है कि वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमशः 282.14 व 279.79 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमशः 20.19 व 19.63 पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला शिक्षकों का मध्यमान पुरुष शिक्षकों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं क्रान्तिक अनुपात का मान 0.59 पाया गया जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर व 98 स्वतंत्रता अंश पर असार्थक पाया गया। अतः कहा जा सकता है कि वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका सं. 01 में प्रदर्शित मध्यमानों को निम्नांकित दण्डारेख द्वारा प्रदर्शित किया गया।

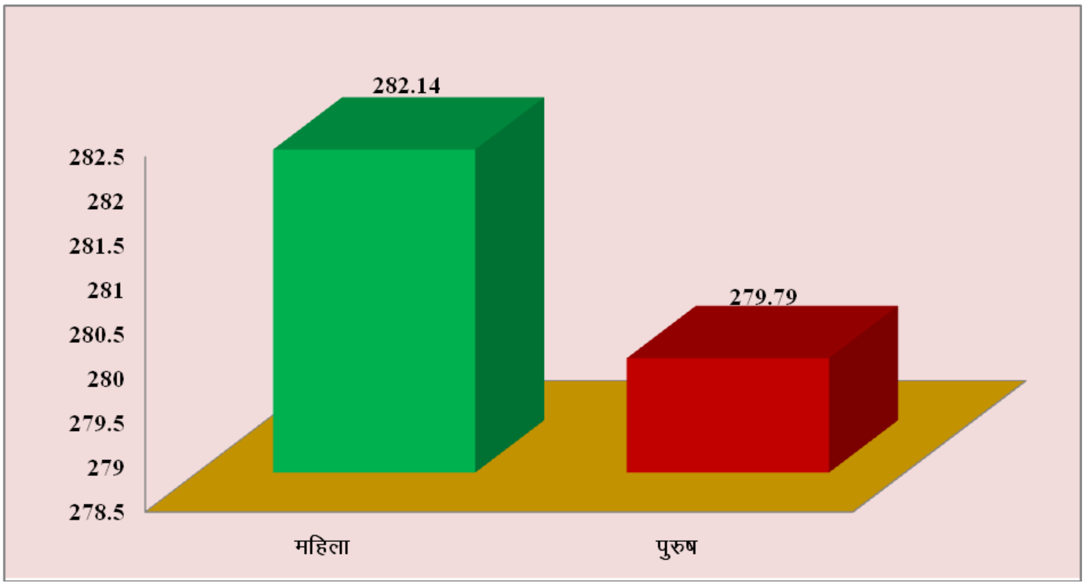

दण्डारेख 01: वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का मध्यमान

2. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया एवं क्रान्तिक अनुपात की सहायता से स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्यरत संतुष्टि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना की गयी। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) किया गया जिसमें निम्न तालिका सं. 02 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 02 स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	*शिक्षक*	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*क्रान्तिक अनुपात*	*सार्थक स्तर*
कार्य संतुष्टि	महिला	50	274.96	19.74	0.75	0.05 स्तर पर
	पुरुष	50	271.83	22.19		असार्थक

उपरोक्त तालिका के अवलोकन यह स्पष्ट होता है कि वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमश: 274.96 व 271.83 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमश: 19.74 व 22.19 पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला शिक्षकों का मध्यमान पुरुष शिक्षकों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं क्रान्तिक अनुपात का मान 0.75 पाया गया जो कि 0.05 विश्वसनीय स्तर व 98 स्वतंत्रता अंश पर असार्थक पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। तालिका सं. 02 में प्रदर्शित मध्यमानों को निम्नांकित दण्डारेख द्वारा प्रदर्शित किया गया।

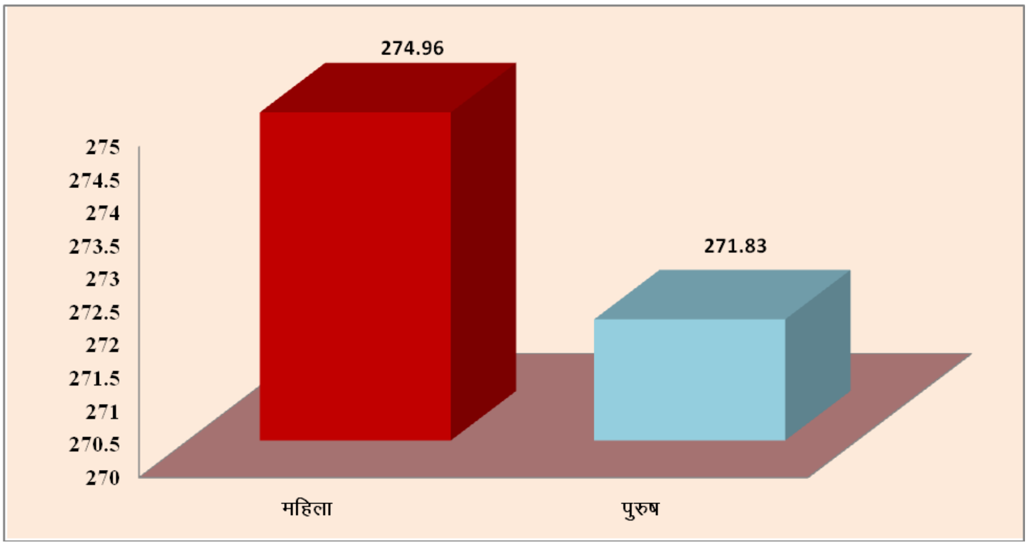

दण्डारेख 02: स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का मध्यमान

3. वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन करना।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि से सम्बन्धित आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया एवं क्रान्तिक अनुपात की सहायता से वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्यरत संतुष्टि के मध्य सार्थक अन्तर की गणना की गयी। प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात) किया गया जिसमें निम्न तालिका सं. 03 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 03 वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात)

अध्ययन चर	*शिक्षक*	*संख्या*	*मध्यमान*	*मानक विचलन*	*क्रान्तिक अनुपात*	*सार्थक स्तर*
कार्य संतुष्टि	वित्तपोषित	100	280.97	20.83	2.56	0.01 पर
	स्ववित्तपोषित	100	273.39	21.28		सार्थक

उपरोक्त तालिका के अवलोकन यह स्पष्ट होता है कि वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में प्राप्त आँकड़ों का मध्यमान क्रमश: 280.97 व 273.39 पाया गया एवं मानक विचलन का मान क्रमश: 20.83 व 21.28 पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों का मध्यमान स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मध्यमान की तुलना में अधिक पाया गया। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं क्रान्तिक अनुपात का मान 2.56 पाया गया जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर व 198 स्वतंत्रता अंश पर सार्थक पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया। तालिका सं. 03 में प्रदर्शित मध्यमानों को निम्नांकित दण्डारेख द्वारा प्रदर्शित किया गया।

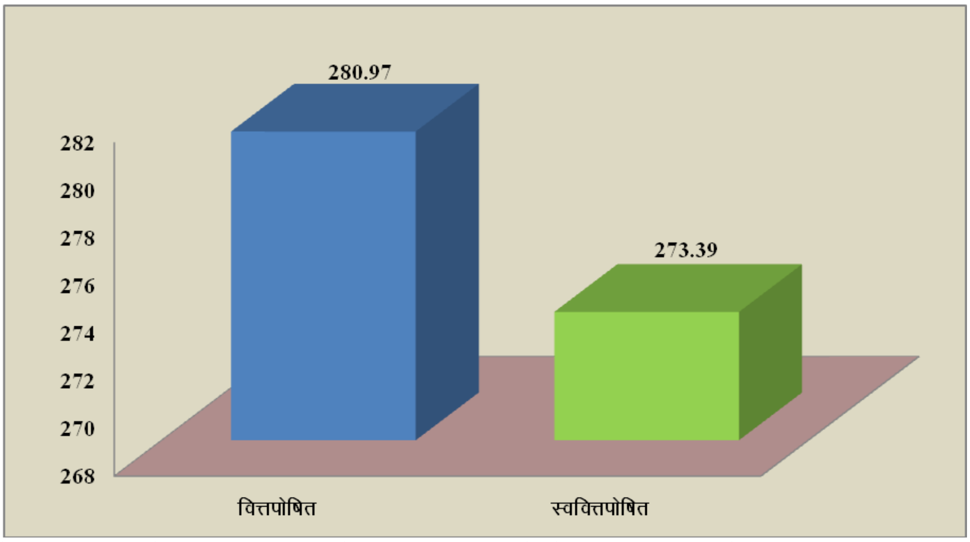

दण्डारेख 03: वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का मध्यमान

1.8 परिकल्पना का परीक्षण

1. शून्य परिकल्पना "वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" के संदर्भ में क्रान्तिक अनुपात का मान 0.59 पाया गया जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक मान है। अत: उपरोक्त शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।
2. शून्य परिकल्पना "वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" के संदर्भ में क्रान्तिक अनुपात का मान 0.75 पाया गया जो कि 0.05 स्तर पर असार्थक मान है। अत: उपरोक्त शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।
3. शून्य परिकल्पना "वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।" के संदर्भ में क्रान्तिक अनुपात का मान 2.56 पाया गया जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक मान है। अत: उपरोक्त शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है।

1.9 निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उपलब्धियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों की कार्य संतुष्टि, पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि से अधिक पायी गयी है। जिसका कारण यह हो सकता है महिलाओं की अपेक्षाऐं व आकांक्षाऐं पुरुषों की तुलना में कम पायी जाती है (महिमा 2012) परन्तु वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि लिंगभेद के संदर्भ में वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत महिला व पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। वित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि, स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि की तुलना में उच्च स्तरीय पायी गयी एवं वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।

संदर्भ सूची

यादव अवधेश कुमार (2007). सरकारी तथा गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन. परिप्रेक्ष्य शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक आर्थिक संदर्भ. 14 (2). 103-107

रोहल, रितु (2005). ए स्टडी ऑफ जॉब सेटिस्फेक्शन अमोंग सैकण्डरी स्कूल टीचर्स ऑफ पानीपत. एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध. शिक्षा विभाग. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय. कुरुक्षेत्र.

चहल (2019) व्यावसायिक संतुष्टि व आत्म-सम्प्रत्यय के संदर्भ में विद्यालयी शिक्षकों में अलगाव की भावना का अध्ययन। इंटरनेशनल जनरल ऑफ एपलाइड रिसर्च वोल्यूम-7(9) पृष्ठ सं. 93-104

websites

https://books.google.co.in/books.
www.edutractksneklamalpub.com
psychologicalsecurity.com
en.wikipedia.org/wiki/governmentschool
http://www.citeulike.org
http://www.wiete.com.au.
http://www.docstoc.com
http://www.sciencepub.net/researcher

शिक्षक एवं भाषा सृजनशीलता का अध्ययन

प्रज्ञा सिंह

एम0एड्0, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

सारांश

शोधार्थी द्वारा जौनपुर जनपद के बी0एड्0 छात्राध्यापकों पर कार्य किया गया था। जिसमें 100 छात्राध्यापकों को लिंग के आधार पर आधे-आधे यादृच्छिक चयन द्वारा चयन किया गया था ऑकड़ों के संकलन हेतु मानकीकृत उपकरण का प्रयोग किया गया। विश्लेषण का सांख्यिकी टी0 परीक्षण लगायी गयी। परीणाम में लिंग के आधार पर कोई अन्तर नही पाया गया।

प्रस्तावना

सृजनशीलता को इस प्रवृत्ति का मूल्यांकन तथा स्कूली वातावरण के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। भाषा सृजनशीलता परीक्षण विधि जिसमें हिन्दी और अंग्रेजी की मौखिक स्थिति भी समाहित है, और उन्हीं मौखिक स्थितियों का चयन भी किया जाता है जो पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त होती है, जिसमें निर्धारित पाठ्यक्रम से परे अध्ययन किया जाता है। जिनमें 12 से 20 वर्ष आयुवर्ग के बच्चों के लिए निर्धारित विषयों के चयन में ऐसे अवसरों का विशेष ध्यान रखा जाता है, जिसमें बच्चे स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर लें। इस सम्बन्ध में मुख्य विचारधारा यह है कि जब विषयों अथवा अध्यायों को स्वतन्त्र रूप से छोड़ा गया है।, जो कहानियों, कथाओं, शब्द भण्डार के बारम्बारता को प्रेरित करता हो, तथा बच्चे इस अनेक विधियों से ग्रहण करेंगे। इस प्रकार से प्राप्त असीमित विद्यार्थियों के विचार तथा उनकी प्रशंसात्मक प्रवृत्ति पर विपरीत प्रभाव डालता है। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर सृजनशीलता परीक्षण का स्तर निर्धारित हो जाता है। मापदण्ड के विभिन्न स्वरूपों का अनुसरण गिलफोर्ड 1927 के अनुसार क्रियाओं के सम्बन्ध में इस धारणा के बाद हुआ। जिनके प्रभाव, लचीलापन, वास्तविक तथा विस्तर का सामंजस्य हो।

स्कूल एवं कॉलेज के विद्यार्थियों की सृजनशीलता के मुख्य उद्देश्य के साथ इन परीक्षणों को विकसित किया गया है। इन परीक्षण में पाँच उपपरीक्षण हैं- इस विभाजन का मुख्य उद्देश्य यह है कि शब्द लेखन का चयन तथा विचारों का प्रदर्शन उनकी नजर में अनुपम हो। विद्यार्थी को पद्य, गायन, कहानी, ड्रामा, लेख य पत्र लेखन जैसे विषयों का चाहे किसी भाषा में प्रदर्शन करना हो तो लेखन कार्य स्वीकार करें। यह दोनों प्रवृत्ति की भाषा सृजनशीलता परीक्षण एक प्रवृत्ति है, जो विशिष्ट समय में गुणात्मक तथा उपयुक्त विचार और उच्च शिक्षण को सुनिश्चित करती है। इन विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के समावेश के वास्तविक स्थिति के पूर्व ही अनेक निर्देश उपलब्ध कराये जाते हैं। इन पाँचों उपपरीक्षणों का संक्षिप्त व विशिष्ट विवरण इस प्रकार हैं-

कथावस्तु का निर्माण

गिलफोर्ड 1952 की गुणात्मक कहानी के कथानक पर आधारित है। विचारधारा की स्वतन्त्र क्रीड़ा पद्धति को हतोत्साहित करने की परिकल्पित स्थिति प्रस्तुत की गई है, तथा निम्नांकित प्रकार इसमें समायोजित हैं- दिये गये लोकवासी पर कहानी की बनावट होनी चाहिए, जिसमें प्रतिवादी से अपेक्षा की जाती है कि एक छोटी सी कथानक की कल्पना करें और एकत्व भावना का चित्रण कहानी के रूप में करें। यह परीक्षण प्रक्रम के लिए विचारात्मक प्रवाह पूर्ण वास्तविकता का तथा स्वच्छन्दता के उपाय का वर्णन करता है। कहानी दी गई एक निश्चित बिन्दु पर होनी चाहिए, जिसमें विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है, कि वह कहानी को एक नई दिशा में आदर्श विचार धारा प्रस्तुत करें। उनको अपने विचारों को शुद्ध रूप में कहानी के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। इसके लिए

उनके अधिकतम 10 मिनट का समय ही देय है। यह मुख्य विचारात्मक प्रभाव, वास्तविकता स्वच्छन्द रूप में होते हैं। विद्यार्थी को कहानी इस प्रकार के विषयों के अन्तर्गत दो अर्थों वाली कहानी लिखने को कहा जाता है। जैसे- दुखांत नाटक की कहानी। इस प्रकार के पृष्ठभूमि में विचार यह है कि विद्यार्थियों की कल्पना का परीक्षण इन्हीं दो विधियों से की जाये तथा इसका अन्त भी अन्य विधियों से ही की जाये। कल्पना पर आधारित कहानी विद्यार्थियों का उनके अन्दर काल्पनिक योग्यता बढ़ाने का अवसर प्रदान करती है, और इसके परिणाम को बाहर निकाला जाता है। इस प्रकार की विचारात्मक प्रवाह, वास्तविकता तथा स्वच्छन्दता का मूल्यांकन करता है। इसके लिए 5 मिनट के समय का प्रावधान है। कहानी के शीर्षक का सुझाव भी एक प्रकार है, जहाँ लघु कहानी दी जाती है और छात्र एवं छात्राओं ये यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी इच्छानुसार शीर्षक का सुझाव दे सकते है।

संवाद लेखन

इस उपपरीक्षण में कथानक-लेखन सम्बन्धी प्रकार होते है। इस उपपरीक्षण का सूत्रपात गिलफोर्ड 1952 के गुणात्मक भावों का प्रदर्शन और गुणात्मक सामाजिक समस्या के बाद हुआ। जिनके प्रकरण में लिखी अनेक चीजें है। क्योंकि एक व्यक्ति को यह कहने का अधिकार होता है कि कब प्रदत्त विचारों पर सोचने का कार्य करता है। इसमें 5 प्रकार हैं। शीर्षक के प्रस्तुत कथानक पर एक सुझाव मजेदार समयानुकूल कथानक, स्थानीय सगे सम्बन्धी समूह के दो सदस्यों के बीच प्रस्तुत करता है। इस प्रकार की रचना 5 मिनट की होती है, और विचारात्मक प्रवाह तथा वास्तविक परीक्षित सूत्र के अन्तर्गत आते हैं। निर्धारित विषय पर लेखन एक प्रकार है, जिसके शीर्षक पर विद्यार्थियों द्वारा कथानक लेख की अपेक्षा की आती है। इसके अन्तर्गत परीक्षित सूत्र विचारात्मक प्रवाह, वास्तविकता तथा स्वच्छन्दतापूर्ण होते हैं। इसके लिए 5 मिनट का समय दिया जाता है। कथानक लेखन की अवस्था में यहाँ विद्यार्थियों से कथानक लिखने को कहा जाता है। प्रतिबन्ध यह होता है कि विषय दी गई अवस्था के अनुरूप हो। इसमें परीक्षित सूत्र विचारात्मक प्रवाह वास्तविकता तथा स्वच्छंद होते है। इसके लिए 5 मिनट का समय दिया जाता है।

कविता का निर्माण: यह उप-परीक्षण कविता संकलन से तीन प्रकार से सम्बन्धित है। इस उप-परीक्षण की परिपाटी गिलफोर्ड के प्रवाहित विचारों औाैर शब्द जोड़ अभ्यास पर आधारित है। इसके भी तीन प्रकार पाये जाते हैं। पहला प्रकार निर्धारित विषय पर कविता लेखन है। इसमें छात्रों को एक विषय दिया जाता है और उनसे एक कविता उनकी इच्छानुसार किसी भी रूप व आकार में लिखने को कहा जाता है। 10 मिनट का समय इसके लिए दिया जाता है। दूसरा प्रकार 'व्यंग्यात्मक कविता लेखन' का है। इसमें सुप्रसिद्ध कविता की दो लाइन दी जाती है। व नये संयोजन के अन्तर्गत एक नई व्यंग्यात्मक कविता लिखने को कहा जाता है। 10 मिनट का समय इसमें दिया जाता है। तीसरा प्रकार विनोद विचारों वाली कविता का है। विद्यार्थियों को चार कविता तुरन्त लिखने को कहा जाता है, और कविता जिस भी रूप में वे चाहे लिखते हैं। 10 मिनट का इसमें भी समय दिया जाता है।

वर्णनात्मक शैली: इस उप-परीक्षण में वे पद हैं जो गिलफोर्ड 1952 के नियंत्रित संयोजन की पद्धति पर आधारित है। इस उप-परीक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों की वर्णनात्मक क्षमता का मूल्यांकन करना है। इसमें चार प्रकार होते हैं।

(अ) निरीक्षण पर आधारित

(ब) भावात्मक पर आधारित

(स) कल्पना शक्ति पर आधारित

(द) तुलना पर आधारित

शब्दावली शैली: गिलफोर्ड (1952) के प्रस्तुतीकरण प्रवाह नियोजित, संयोजन, गुणात्मक, सामूहिककरण, दोहरे कार्य का पुनरावलोकन तथा कार्य के प्रवाह परीक्षण पर आधारित है। और उनका स्वभाव मिलता-जुलता है। जो एक दूसरे में स्वतंत्र रूप में है। इनके अन्तर्गत निम्न प्रकार के परीक्षण आते हैं।

(अ) गणनात्मक संयोजन परीक्षण

(ब) तुलनात्मक परीक्षण

(स) उपसर्ग या प्रत्यय सहित लेखन

(द) कथानात्मक पूर्णता

(य) शब्द कोश परीक्षण, आदि।

भाषा की सृजनशीलताः भाषा सृजनशीलता का मापदण्ड मिश्रित समस्या उत्पन्न करता है। गिलफोर्ड ने स्पष्ट किया कि सामान्य सृजनशीलता की दशा में मापदण्ड की समस्या मुख-रूप से व्यावहारिक लक्षण, उत्पादन क्षमता, वस्तुनिष्ठ की धारिता तथा उसके मिश्रण और उद्देश्य की वृद्धि आदि का सृजन करते हैं। शिक्षण व्यवहार से तात्पर्य एक शिक्षक के द्वारा कक्षा में किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कौशलों से है। जिनके माध्यम से एक शिक्षक प्रभावशाली शिक्षण करने में सक्षम होता है। प्रस्तुत अध्ययन में भाषा विषयों के अध्यापकों के द्वारा कक्षा में किये जाने वाले समस्त व्यवहार का अध्ययन किया गया है।

अनुसंधान अभिकल्पः

अध्ययन विधि- प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है।

जनसंख्या- प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्राध्यापकों को शोध की जनसंख्या माना गया हैं।

न्यादर्श- प्रस्तुत अध्ययन में अनुसंधानकर्त्ता ने जौनपुर जिले के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से यादृच्छिक विधि से 50 छात्र एवं 50 छात्राओं का चयन किया है।

उपकरण- डॉ0 एस0पी0 मल्होत्रा एवं सुमिता कुमारी द्वारा निर्मित तथा प्रमापीकृत भाषा सृजनात्मक योग्यता मापनी के द्वारा प्रदत्त संकलित किए गये है।

उपकरण की विश्वसनीयता- यह परीक्षण मुख्य रूप से शाब्दिक योग्यता को ज्ञात करता है। इस परीक्षण की विश्वसनीयता दो विधियों से निकाली गई। पूर्ण परीक्षण विधि से निकाली गयी पाँचों उपपरीक्षण हिन्दी में क्रमशः 0.91, 0.90, 0.89, 0.87 एवं 0. 92 है, जबकि समान्तर विधि से क्रमशः हिन्दी में 0.68, 0.65, 0.64, 0.63 तथा 0.68 है।

वैधता- इस परीक्षण की वैधता अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण से ज्ञात की गयी, जो पाँचों उपपरीक्षण में क्रमशः 0.18, 0.21, 0.30, 0.31, 0.26 पायी गयी। इसके अतिरिक्त इस परीक्षण की वैधता शाब्दिक बुद्धि परीक्षण से भी ज्ञात की गयी है जो क्रमशः 0.24, 0.26, 0.23, 032 एवं 0.30 निकाली गयी।

सांख्यिकी प्रविधि- प्रस्तुत अध्ययन में दोनों समूहों में तुलना करने के लिए टी0 परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य- किसी भी कार्य को करने का एक निश्चित उद्देश्य होता है। प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्य निध र्रित किये गये हैं-

1. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत कथावस्तु का निर्माण का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत संवाद लेखन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत कविता का निर्माण का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन में उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है।-

1. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत कथावस्तु का निर्माण में कोई अन्तर नहीं है।
2. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत संवाद लेखन में कोई अन्तर नहीं है।
3. शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की भाषा सृजनशीलता के अन्तर्गत कविता का निर्माण में कोई अन्तर नहीं है।

विश्लेषण एवं व्याख्या

कथावस्तु का निर्माण

प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान (Mean) C.R.	प्रामाणिक विचलन	मानक त्रुटि	टी-अनुपात वत (S.D.)	सार्थकता स्तर	परिकल्पना
छात्र	50	121.29	11.81	2.21	1.49	असार्थक	स्वीकृत
छात्राएँ	50	117.98	10.92				

उपर्युक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा जौनपुर जनपद के शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 50 छात्र एवं 50 छात्राओं के कथावस्तु शैली के जाँच के लिए भाषा सृजनात्मकता मापनी से आँकड़े प्राप्त किये गये हैं। प्राप्त परिणामों को तालिका-1 में प्रदर्शित किया गया है।

छात्रों का मध्यमान 121.29 तथा प्रमाणिक विचलन 11.81 है। छात्राओं का मध्यमान 117.9 तथा प्रमाणिक विचलन 10.92 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि 2.21 तथा ब्ण्त्ण् अनुपात 1.49 है, अतः यह का (सार्थकता स्तर) 0.05 पर प्रमाणिक मान 1.98 से कम है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, और शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। अर्थात् शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत कथावस्तु का निर्माण में कोई अन्तर नहीं है।

संवाद लेखन

प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान (Mean) C.R.	प्रामाणिक विचलन	मानक त्रुटि	टी-अनुपात वत (S.D.)	सार्थकता स्तर	परिकल्पना
छात्र	50	36.32	10.87	2.09	2.85	सार्थक	अस्वीकृत
छात्राएँ	50	30.26	10.10				

उपर्युक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा जौनपुर जनपद के शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 50 छात्र एवं 50 छात्राओं के संवाद लेखन शैली के जाँच के लिए भाषा सृजनात्मकता मापनी से आँकड़े प्राप्त किये गये हैं। प्राप्त परिणामों को तालिका-2 में प्रदर्शित किया गया है।

छात्रों का मध्यमान 36.32 तथा प्रमाणिक विचलन 10.87 है। छात्राओं का मध्यमान 30.26 तथा प्रमाणिक विचलन 10.10 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि 2.09 तथा ब्ण्त्ण् अनुपात 2.85 है, अतः यह का (सार्थकता स्तर) 0.05 पर प्रमाणिक मान 1.98 से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है, और शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है। अर्थात् शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत संवाद लेखन में अन्तर है।

कविता का निर्माण

प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान (Mean) C.R.	प्रामाणिक विचलन	मानक त्रुटि	टी-अनुपात वत (S.D.)	सार्थकता स्तर	परिकल्पना
छात्र	50	32.86	9.86	1.89	1.38	असार्थक	स्वीकृत
छात्राएँ	50	30.24	8.14				

उपर्युक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा जौनपुर जनपद के शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 50 छात्र एवं 50 छात्राओं के कविता का निर्माण शैली के जाँच के लिए भाषा सृजनात्मकता मापनी से आँकड़े प्राप्त किये गये हैं। प्राप्त परिणामों को तालिका-3 में प्रदर्शित किया गया है।

छात्रों का मध्यमान 32.86 तथा प्रमाणिक विचलन 9.86 है। छात्राओं का मध्यमान 30.24 तथा प्रमाणिक विचलन 8.14 है। दोनों समूहों के मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि 1.89 तथा ब्न्त्ण् अनुपात 1.38 है, अतः यह कि (सार्थकता स्तर) 0.05 पर प्रमाणिक मान 1.98 से कम है। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है, और शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है। अर्थात् शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत कविता का निर्माण शैली में अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष

विभिन्न सांख्यिकीय गणना के आधार पर परिणाम निम्नलिखित थे–

- शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत कथावस्तु का निर्माण में कोई अन्तर नहीं है।
- शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत संवाद लेखन में अन्तर है।
- शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं की भाषा सृजनात्मकता के अन्तर्गत कविता का निर्माण शैली में अन्तर नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ई0पी0 परेन्स (1962), सृजनात्मक परीक्षण का विकास एवं प्रयोग, रिव्यु ऑु एजुकेशनल रिसर्च, 32-(I)-91-92
- ई0 पॉल टोरेन्स (1963) दी नेचर ऑफ ह्युमन इन्टेलीजेन्स, न्यूयार्क, एम0सी0 ग्रा0हिल बुक क0
- कोपले ए0जे0 (1996), सृजनात्मकता एवं बुद्धिमत्ता, अमेरिका एजुकेशन रिसर्च जर्नल, 4(4), 387-96
- के0 यमामोटी (1963), 'क्रियेटिव टैलेन्ट', न्यूयार्कः हारपर, 18-37
- गोरालसकी (1964), ए फैक्टर एनालिटिक स्टडी ऑफ क्रियेटिव- थिंकिंग, साइकोमेटिका, 19
- गैट्जेल्स जे0 डब्ल्यू एण्ड जैक्शन पी0 (1962), सृजनात्मक एवं बुद्धिमत्ता, न्यूयार्क, जान विले एण्ड सन्स।
- गिलफोर्ड जे0पी0 एवं होफनर आर0 (1971), 'बुद्धि का विश्लेषण', न्यूयार्क, मैकग्रा हिल
- जे0पी0 शुक्ल तथा वी0वी0 शर्मा (1961), शैक्षिक सृजनात्मकता, भार्गव प्रकाशन।
- टेलर और हॉलैण्ड (1962), डेवलपमेन्ट एण्ड एप्लीकेशन ऑफ टेस्ट ऑफ क्रियाटिविटी, रिव्यू ऑफ एजूकेशन रिसर्च, 32-(८)-91-102
- टायलर एवं बैरोन (1963), वैज्ञानिक सृजनात्मकता इसकी स्वीकृति एवं विकास, न्यूयार्क।
- वी0के0 पासी (2003), सृजनात्मक परीक्षण, मौखिक एवं गैर मौखिक, नेशनल साइकोलॉजिकल कार्पोरेशन, आगरा

गाँधी दर्शन में ग्रामराज्य

दीक्षा

दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वोदय विचार को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए गांधी ने समाज की पहली इकाई 'गांव' को लिया। सर्वोदय की भावना से सुमतिपूर्वक सभी ग्रामवासी धार्मिक, जातीय, दलित भेदों से मुक्त, प्रेम, करूणा, सहयोग और सर्वानुमति से गांव-संगठन बनायें। महिला संगठन व युवा संगठन इसके हाथ-पाँव और सहनशीलता एवं सामूहिक संकल्प कार्यपद्धति होगी। कार्यक्रम (अपनी भिन्न परिस्थिति अनुसार) इस प्रकार हो सकते हैं-

- ग्राम-संगठन की नियमित बैठक में सर्वप्रथम बरबादी से बचने और प्रेम सद्भावना बढ़ाने की दिशा में स्वाभाविक ही बरबादी ढहाने वाले दुर्व्यसन रोकने, फिजूलखर्ची से बचने और गांव के सामूहिक उत्सव आदि को सादगी से मनाने का निर्णय होगा।
- पेयजल, सिंचाई, बिजली के लिए सौर व पवन ऊर्जा, कम्पोस्ट-खाद की व्यवस्था, दूध सब्जी, फल की वृद्धि और खेती में सुधार व वृद्धि के उपाय।
- गांव में रहने वाले भूमिहीन, आवासहीन की यथोचित सहायता।
- स्वास्थ्य सुविधायें, जानकारी व जागरूकता, स्वास्थ्य शिविर की व्यवस्था हो।
- वृद्ध, विधवा, विकलांग पेंशन, सहायता हेतु पात्रजनों को सहायता दिलाना।
- क्रय-विक्रय केन्द्र, वाचनालय व यथा संभव मिलन-केन्द्र की व्यवस्था।
- गांव में कहीं भी विवाद या झगड़ा शांत करना तथा विवाद को गांव में ही निपटाने का संकल्प, गांव के योग्य युवाओं को गांव की आवश्यकता सिलाई, बढ़ती-काम, मशीनें गैस, बिजली पंखे आदि के मरम्मत की ट्रेनिंग की व्यवस्था हो।
- ऐसे समाज को अनाज, वस्त्र, शिक्षा स्वास्थ्य में स्वावलम्बी बनाने, इतने बड़े देश के खादी उद्योग के माध्यम से सभी को श्रम और ग्रामोद्योग को बढ़ावा इत्यादि।

सर्वोदय कार्यक्रम की उपर्युक्त अवधारण को साकार करने के लिए ग्राम पंचायत की आवश्यकता होगी जो इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कर सके। पंचायतों का निर्माण भी एक दुरूह कार्य है क्योंकि अगर ये संस्था अपने पथ से भटक गयी तो विकेन्द्रीकरण की भावना कब केन्द्रीयकरण में परिवर्तित हो गयी पता ही नही चलेगा। गांधी ने कहा कि फिर ऐसी अनियमित और नियम-विरूद्ध काम करने वाली ग्राम पंचायतें अपने ही बोझ तले दबकर खत्म हो जायेगी। इसलिए उन्होंने ग्राम-सेवकों के मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम सुझाये हैं:-[1]

1. प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की लिखित इजाजत के बिना कोई पंचायत कायम न की जाय।
2. कोई भी पंचायत पहले-पहल ढिंढोरा पिटवाकर बुलाई गयी सार्वजनिक सभा में चुनी जायेगी।
3. तहसील कमेटी द्वारा उसकी सिफारिश की जानी चाहिए।
4. ऐसी पंचायत को फौजदारी मुकदमे चलाने का अधिकार होना चाहिए।
5. किसी को पंचायत के सामने अपनी बात रखने के लिए मजबूर न किया जाय।
6. किसी पंचायत को जुर्माना करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। उसके दीवानी फैसलों के पीछे एकमात्र बल उसकी नैतिक सत्ता, कड़ी, निष्पक्षता और संबंधित पक्षों का स्वेच्छापूर्वक आज्ञा पालन ही है।

7. दीवानी मुदकमे चला सकती हैं, अगर दोनों पक्ष झगड़े पंचायत के सामने रखें।
8. अपराध करने वाले का कुछ समय के लिए सामाजिक या दूसरी तरह से बहिष्कार नहीं होना चाहिए।
9. हर एक पंचायतसे यह आशा रखी जायेगी कि वह-
   (क) अपने गांव के लड़कों-लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान दें।
   (ख) गांव की सफाई का ध्यान रखें।
   (ग) गांव की दवा-दारू की जरूरत पूरी करें।
   (घ) गांवों के कुओं या तालाबों की रक्षा और सफाई का काम देखें।
   (ङ) तथाकथित अस्पृश्यों की उन्नति और दैनिक आवश्यकताएं पूरी करने का प्रयत्न करें।[2]
10. जो पंचायत बिना किसी सही कारण के अपने चुनाव के छः महीने के भीतर, नियम-9 में बताई गयी शर्तें पूरी न करें, या इसी तरह से गांव वालों की सद्भावना खो दें, या प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को उचित मालूम होने वाले किसी कारण से निंदा की पात्र ठहरे तो उसे तोड़ दिया जाए और उसकी जगह दूसरी पंचायत चुन ली जाय।[3]

उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए ग्राम पंचायतें समाज के अन्तिम से अन्तिम व्यक्तियों के कल्याण की भावना को व्यक्तियों के अन्दर पैदा करने में सफल हो जायेंगी और गाँधी के अन्तिम-जन के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की भावना को साकार करती हुयी दिखलायी पड़ेंगी। ऐसे समाज की रचना स्वभावत: सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। ऐसा समाज अनगिनत गांवों से बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। गांधी कहते हैं कि ''जिंदगी मीनार की शक्ल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है। वहाँ तो समुद्र की लहरों की तरह जिंदगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होंगी और व्यक्ति उसका केन्द्र बिन्दु होगा।''[4] व्यक्ति हमेशा अपने गाँव के प्रति मिटने को तैयार रहेगा। इस तहर आखिर समाज लोगों का बन जायेगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते हैं और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं, जिसके वे एक अभिन्न अंग हैं। इस तस्वीर में हर एक धर्म का अपनी पूरी और बराबरी का स्थान होगा। न कोई पहला और कोई आखिरी। इस तस्वीर में उन मशीनों के लिए कोई गुंजाइश न होगी, जो मनुष्य की मेहनत की जगह लेकर कुछ लोगों के हाथों में सारी ताकत इकट्ठी कर देती है। सभ्य लोगों की दुनिया में मेहनत की अपनी अनोखी जगह होगी। उसमें ऐसी मशीनों की गुंजाइश होगी जो हर आदमी को उसके कार्य में मदद पहुँचाए। गाँधी यह स्वीकार करते हैं कि वे इस बात पर विचार नहीं किये कि इस तरह की मशीन कैसी हो सकती है? सिलाई मशीन का खयाल मुझे आया था पर मैंने इसका जिक्र ऐसे ही कर दिया था सोच-विचार कर नहीं।[5] इस तरह गाँधी ने सर्वोदय की संकल्पना को व्यवहारिक रूप देने का प्रयास किया।

गाँधी का मानना था कि जब ग्राम स्वराज्य आदर्श अपनी सोलहों कलाओं में खिल उठेगा तब वह संसार के लिए अनुकरणीय होगा वह एक ऐसा उदाहरण बन जायेगा जिसे अपनाने में पूरे विश्व की रुचि रहेगी। तब सर्वोदय संसार के लिए भारत का एक मंगल वरदान सिद्ध होगा और उसके बाद संसार के स्वयं-शासित ग्राम-घटक अत्यंत सुसंस्कृत, बुद्धिशाली तथा शक्तिसम्पन्न स्त्री-पुरुषों के जीवंत भ्रातृभाव के सुन्दर प्रतीक बन जायेंगे। ऐसे सर्वोदयी समाज में रहकर व्यक्ति जीवन में उदात्त शिक्षा प्राप्त करेगा और जीवन की कृतार्थता का अनुभव करेगा। ऐसे समाज के जीवन में मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों और प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति का अवसर मिलेगा तथा परस्पर आदरभाव के आदान-प्रदान का और एक-दूसरे की सेवा द्वारा प्रकट होने वाले प्रेम का पुण्य दर्शन होगा। ऐसे समाज में संस्कृति, कला, काव्य और विज्ञान का विकास चरम सीमा पर पहुँचेगा तथा इस धरती पर रामराज्य की अनुभूति होगी। अन्तिम व्यक्तियों में भी सर्वोदय का प्रकाश पुञ्ज चमक उठेगा।

निष्कर्षत: गाँधी जी के लिए सर्वोदय स्व-त्याग और स्वार्थरहित सेवा में एक का सब में समा जाने का अर्थ है। उनका सर्वोदय का आदर्श, सबके जनकल्याण के अतिरिक्त विश्व-कल्याण एवं सबों के एकीकृत जन-कल्याण के अर्थ में शामिल करता है। एक विश्व आदर्श के रूप में, यह केवल न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ही लक्ष्य नहीं रखता है अपितु सभी लोगों के नैतिक-आध्यात्मिक पक्षों को भी विकसित करता है।

गांधीवाद के विषय में यह उल्लेखनीय है कि उसके प्रवर्तक केवल चिन्तक ही नहीं थे, अपितु एक सक्रिय राजनेता, समाजसेवी, आध्यात्मिक पुष्प, सब कुछ थे। उन्होंने कभी किसी ऐसे ग्रन्थ की रचना नहीं किया जिसमें उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों

का क्रमबद्ध दर्शन पनप सके, किन्तु जहाँ तक गांधी जी के विचारों का प्रश्न है, उनमें मूलभूत सिद्धान्त प्रारम्भ से अन्त तक बने रहे। वे सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, प्रेम पर आधारित राजनीति, सत्याग्रह की धारणा से कभी भी विमुख नहीं हुए। उन्होंने जो कुछ लिखा व कहा, वह सब मिलकर एक समग्र दर्शन का निर्माण करता है। गांधीवाद साध्य की दृष्टि से सभी समाजवादी व्यवस्थाओं में उत्तम कोटि की है, क्योंकि यह समाज के सभी वर्गों के कल्याण की बात करती है।

वर्तमान समाज में विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान गांधी के विचारों में सर्वोत्तम दिखता है।

संदर्भ सूची

1 गाँधी एम0के0, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, पृ0 70

2 वही, पृ0 70-71

3 वही, पृ0 70-71

4 गाँधी एम0के0, मेरे सपनों का भारत, सर्वसेवा संघ प्रकाशक राजघाट वाराणसी, पृ0 67

5 गाँधी एम0के0, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, पृ0 23

हिन्दी साहित्य में सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ० आर०पी० वर्मा

एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गोसाईखेड़ा, उन्नाव (उ.प्र.)

स्वतंत्रता संग्राम की सक्रिय सेनानी, राष्ट्रीय चेतना की अमर गायिका तथा वीर रस की एकमात्र हिन्दी कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म सन 1904 ई0 में इलाहाबाद के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। वे प्रयाग के क्रॉस्थवेट गर्ल्स कॉलेज की छात्रा थीं। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह खण्डवा (म0प्र0) के ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ। विवाह के बाद सुभद्राजी के जीवन में नवीन मोड़ आया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से प्रभावित होकर वे पढ़ाई-लिखाई छोड़कर देशसेवा के लिए तत्पर हो गई तथा राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय भाग लेती रहीं। देश की स्वतंत्रता के लिए इन्होंने कई बार जेल यात्रा की। सुभद्राजी की झांसी की रानी और वीरों का कैसा हो बसन्त? शीर्षक कविताएं आज तक लाखों युवकों के हृदयों में वीरता की ज्वाला धधकती रही हैं।

साहित्यिक तथा राजनैतिक कार्यों में सुभद्राजी को माखनलाल चतुर्वेदी से विशेष प्रोत्साहन मिला। इस प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप इनकी देशभक्ति का रंग और भी गहरा व व्यापक हो गया। सन् 1948 ई0 में एक मोटर-दुर्घटना में स्वतंत्रता की इस पुजारिन की असामयिक मृत्यु हो गई।

सुभद्राजी देशप्रेम की भावना को काव्यात्मक स्वर प्रदान करने वाली कवयित्री के रूप में विख्यात है। उनकी ओजपूर्ण वाणी ने भारतीयों में नवचेतना का संचार किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान देने के लिए प्रेरित किया। मात्र झांसी की रानी शीर्षक पर आधारित उनकी कविता ही उन्हें अमर कर देने के लिए पर्याप्त है। वीरों का कैसा हो बसन्त? नामक उनकी कविता भी राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत कर देने वाली इसी प्रकार की एक अन्य ओजपूर्ण कविता है। राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित काव्य के सृजन के साथ ही सुभद्राजी ने वात्सल्य भाव पर आधारित कविताओं की रचना भी की। इन कविताओं में उनका नारी सुलभ मात्र भाव दर्शनीय है। दाम्पत्य प्रेम पर आधारित इनकी प्रणय भावना में वासनात्मक भावों का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत है, जो भारत के बदलते हुए ऐतिहासिक घटनाक्रमों से प्रभावित है। राष्ट्रवाद और देशप्रेम सुभद्राकुमारी चौहान जी के रग रग में भरा हुआ था। इसलिए उनकी कविताओं में राष्ट्रप्रेम और वीर रस भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। राष्ट्रीय कविताओं की दृष्टि से उनकी 'जलियावालां बाग में बसंत' 'राखी' 'विजयदशमी' 'लक्ष्मीबाई की समाधि पर' और 'वीरों का कैसा हो बसंत' आदि कविताओं में सुभद्र जी का राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रवाद झलक उठता है। राष्ट्रीय कविता की कतार में उनकी 'झांसी की रानी' अत्यंत लोकप्रिय है। और उसी एक कविता से ही सुभद्रा जी संपूर्ण देश भर में छा गई थीं। सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म इलाहाबाद में हुआ था। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह खण्डवा के वकील लक्ष्मण सिंह चौहान से हो गया। पति पत्नी दोनों ही राष्ट्रीय विचारधारा के होने के कारण महात्मा गांधीजी से प्रभावित होकर, अपना घरबार त्यागकर स्वतंत्रता के आंदोलन में कूद पड़े। इसीलिए इन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। दोनों पति पत्नी मन प्राण से कांग्रेस का काम करने लगे। सुभद्रा महिलाओं के बीच जाकर स्वाधीनता संग्राम का संदेश पहुचाने लगीं। वे उन्हें स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, पर्दा छोड़ने, छुआछूत और ऊंच-नीच की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठने की सलाह देती थी। स्त्रियां सुभद्र की बातें बड़े ध्यान से सुनती थीं। 1920-21 में मध्यवर्ग की बहुओं में प्रगतिशील मूल्यों का संचार करने में सुभद्र ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई।

सुभद्राजी की कविताअें में देश प्रेम की भावना और मातृत्व ही मूल आधार है। उनकी कविता 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' के 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी।' सुनकर आज भी हम देश भक्ति की भावना से हर्षित हो उठते हैं। सुभद्राकुमारी की कविता झांसी की रानी महानीवन की महागाथा है। कुछ पंक्तियों की इस कविता में उन्होंने एक विराट जीवन का महाकाव्य ही लिख दिया है। इस कविता में लोक जीवन से प्रेरणा लेकर लोक आस्थाओं से उधार लेकर जो एक मिथकीय संसार उन्होंने खड़ा किया है उससे झांसी की रानी के साथ सुभद्रा जी भी एक किंवदंती बनगई हैं। भारतीय इतिहास में यह शौर्यगीत सदा के लिए स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया है।

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

इनकी भाषा सरल तथा शुद्व खड़ी बोली है। देश के लिए कर्तव्य और समाज की जिम्मेदारी संभालते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि चढ़ा दी 'न होने दूंगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊं बलिदान'

'जलियावाला बाग' के नृशंस हत्याकांड से उनके मन पर गहरा आघात लगा। उन्होंने तीन आग्नेय कविताएं लिखीं। जलियांवाला बाग में बसंत में उन्होंने लिखा-

परिमलहीन पराग दाग सा बना पड़ा है
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है।
आओ प्रिय ऋतुराज! किंतु धीरे से आना
यह है शौक स्थान यहां मत शोर मचाना।
कोमल बालक मरे यहां गोली खा-खाकर।
कलियां उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर।

1922 का जबलपुर का झंडा सत्याग्रह देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी की पहली महिला सत्याग्रही थीं। राज रोज सभाएं होती थीं और जिनमें सुभद्र भी बोलती थीं। टाइम्स ऑफ इण्डिया के संवाददाता ने अपनी एक रिपोर्ट में उनका उल्लेख लोकल सरोजिनी कहकर किया है।

प्रसिद्ध हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने सुभद्रा जी के राष्ट्रीय काव्य को हिंदी में बेजोड़ माना है कुछ विशेष अर्थो में सुभद्रा जी का राष्ट्रीय काव्य हिंदी में बेजोड़ है। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी और अनवरत जेल यात्रा के बावजूद उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए बिखरे मोतती, उन्मादिनी, सीधे सादे चित्र। वह स्वतंत्रता नहीं स्वराज्य चाहती है। परतंत्रता नहीं, स्वानुशासन चाहती हैं। रूढिघ्यों बंधनों से मुक्त होकर वह स्वनियंत्रण में रहना चाहती हैं। सुभद्रा जी की सभी कहानियों को हम एक तरह से सत्याग्रही कहानियां कह सकते हैं। उनकी स्त्रियां सत्याग्रही स्त्रियां हैं। दलित चेतना और स्त्रीवादी विमर्श को उठाने वाली सुभद्राकुमारी हिंदी की पहली रचनाकार हैं-

'दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।'

पंद्रह अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ तो सबने खुशियां मनाई। सुभद्रा जी ने भेड़ाघाट जाकर वहां के खान मजदूरों को कपड़े और मिठाई बांटी। उस दिन वे अपना सिरदर्द भूल गई थीं। थकावट भूल गई थीं, आराम करना भूल गई थीं।

गांधी जी की हत्या से सुभद्रा जी को ऐसा लगा कि जैसे वे सचमुच अनाथ हो गई हों। बर्गर कुछ खाए-पिए चार मील पैदल ग्वारीघाट तक गई। जैसे कोई उनके घर का चला गया हो। सुभद्रा जी ने कहा, मैनें तो सोचा था कि मैं कुछ दिन गांधी जी के आश्रम में बिताउंगी लेकिन परमात्मा को वह भी मंजूर नहीं था।

सुभद्रा जी की खिलौनेवाला कविता में उनकी देशभक्ति उमड़ पड़ी है-

मैं तो तलवार खरीदूंगा मां
या मैं लूंगा तीन कमान
जंगल में जा, किसी ताड़का
को मारूंगा राम समान।

सुभद्रा जी की काव्य साधना के पीछे उत्कट देश प्रेम, अपूर्व साहस तथा आत्मोत्सर्ग की प्रबल कामना है। इनकी कविता में सच्ची वीरांगना का ओज और शौर्य प्रकट हुआ है। हिंदी काव्य जगत में ये अकेली ऐसी कवियत्री है जिन्होंने अपने कंठ की पुकार से लाखों भारतीय युवक-युवतियों को युग युग की अकर्मण्य उपासी को त्याग, स्वतंत्रता संग्राम में अपने को समर्पित कर देने के लिए प्रेरित किया। वर्षो तक सुभद्रा जी की 'झांसी वाली रानी थी' और 'वीरों का कैसा हो बसंत' शीर्षक कविताएं लाखों तरूण तरूणियों के हृदय में आग फूंकती रहेंगी। झांसी की रानी की समाधि पर में सुभद्रा जी का वीर रस उमड़ पड़ता है।

इस समाधि में छिपी हुई है, एक राख की ढेरी।
जब कर जिसने स्वतंत्रता की, दिव्य आरती फेरी।
यह समाधि यह लघु समाधि है, झांसी की रानी की।
अंतिम लीलीस्थली यही है, लक्ष्मी मरदानी की।

कार दुर्घटना में सुभद्रा कुमारी चौहान का देहांत 15 फरवरी 1948 को 44 वर्ष की आयु में ही हो गया। परंतु हिन्दी साहित्य ही अपितु सारा देश सुभद्रा जी कभी नहीं भूल सकता। उनका देशप्रेम और राष्ट्रवाद हम सब के लिए ऊर्जा बन गयी है। ऐसे महान व्यक्तित्व को हमारा शत शत प्रणाम।

संदर्भ

1. झांसी की रानी-सुभद्राकुमारी चौहान, पृष्ठ सं0 33
2. उन्मादिनी- सुभद्राकुमारी चौहान, पृष्ठ सं0 56
3. त्रिधारा- सुभद्राकुमारी चौहान, पृष्ठ सं0 78
4. हमारे प्रतिनिधि कवि और लेखक-डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ सं0 89
5. अंतर्जाल, पृष्ठ सं0 77
6. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास-डॉ. राम प्रसाद मिश्र, पृष्ठ सं0 56
7. सुभद्राकुमारी चौहान का व्यक्तित्व एवं कृतित्व-डॉ. आर.पी.वर्मा, पृष्ठ सं0 90

शैक्षिक पर्यवेक्षण, निरीक्षण, परिवीक्षण एवं मूल्यांकन के रूप में प्राचार्य की भूमिका

रत्नेश कुमार जैन

शोधार्थी

प्राचार्य की विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका एवं कार्य

प्राचार्य महाविद्यालय का नेता होता है और उसका प्रमुख स्थान होता है। महाविद्यालय प्रशासन तथा प्रबन्ध का मुख्य घटक होता है। इसके मुख्य दो उत्तरदायित्व होते है- प्रशासन करना तथा पर्यवेक्षण करना उसका शिक्षण-अधिगम की क्रियाओं से लगाव होता है। महाविद्यालय को प्रशासन एवं प्रबन्धन की सभी क्रियाओं-पाठ्यक्रम, शिक्षकों, विधियों प्रविधियों, सहायक क्रियाओं, सहायक सामग्री आदि की व्यवस्था करनी होती है। किसी महाविद्यालय की कार्य कुशलता, गुणवत्ता, महाविद्यालय का स्तर तथा वातावरण प्राचार्य के व्यक्तित्व, वृत्तिक दक्षता तथा कार्य कौशल पर निर्भर करती है। महाविद्यालय का शैक्षिक प्रारूप, अनुशासन व्यवस्था तथा प्रबन्धन का नियन्त्रण प्राचार्य की प्रबन्धन कुशलता का परिणाम होता है। महाविद्यालय का व्यवस्थात्मक पर्यावरण प्राचार्य के व्यक्तियों का प्रतीक होता है। केवल प्राचार्य के बदलने से महाविद्यालय का पर्यावरण बदल जाता है। महाविद्यालय का सामाजिक तथा भावात्मक पर्यावरण प्राचार्य उत्पन्न करता है और कक्षा का सामाजिक भावात्मक वातावरण शिक्षक उत्पन्न करता है। महाविद्यालय के पर्यावरण में शिक्षक तारों के समान और प्राचार्य चन्द्रमा के समान कार्य करता है। सम्पूर्ण महाविद्यालय के वातावरण को प्रकाशित करता है।

पी०सी०रेन ने प्राचार्य को पानी के जहाज के इंजन की उपमा दी है, "जो सम्पूर्ण महाविद्यालय का संचालन गतिशील रखता है। महाविद्यालय का स्वास्थ्य तथा चरित्र प्राचार्य की वृतिक प्रतिबद्धता का परिणाम होता है। महाविद्यालय को लाख और प्राचार्य को सील मोहर की उपमा दी जाती है। लाख पर जैसी मोहर लगाई जाती है वही उस पर अंकित हो जाता है। प्राचार्य महाविद्यालय का प्रशासक होता है, वह नेता, नियन्त्रक, उद्योग निदेशक, प्रबन्धक, समन्वयक, अधीक्षक, परामर्शदाता निर्देशक, शिक्षक, अभिभावक तथा वित्त नियन्त्रक आदि होता है। इसी प्रकार आज के सन्दर्भ में शिक्षक-निर्देशक, दार्शनिक, भित्र तथा प्रबन्धक माना जाता है। प्राचार्य को महाविद्यालय में प्रशासन एवं पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अनेक विशिष्ट कर्त्तव्यों को करना होता है इसलिए प्राचार्य अधिक तैयारी, अनुभवों तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। दिन प्रतिदिन महाविद्यालयों की समस्याओं की जटिलता बढ़ती जा रही है। इनके समाधान में विशिष्ट दक्षता एवं कुशलता की आवश्यकता हो रही है।"[1]

प्रशासनिक समस्याओं के कारण (Causes of Administrative Problem)

सामाजिक परिवर्तन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी के विस्तार एवं विकास के परिणाम स्वरूप माता-पिता व समाज की माँग भी बढ़ी है और शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपादेयता पर अधिक बल दिया जाने लगा है जिससे प्राचार्य के उत्तरदायित्व भी बढ़ गये हैं। महाविद्यालयों के आकार अर्थात् छात्रों की संख्या में वृद्धि हो रही है सभी शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं और बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहते हैं। भारतीय संविधान में सभी को शिक्षा के समान अवसर का प्रावधान किया है। इन तथ्यों के परिणाम स्वरूप छात्रों की प्रवृत्ति-आर्थिक, मानसिक, सांस्कृतिक तथा भावात्मक स्तर में भी परिवर्तन आया है। इसके अतिरिक्त छात्रों के परिवार के प्रशिक्षण, अभिरूचियों अभिवृत्तियों व मूल्यों ने महाविद्यालय स्तर पर प्रशासनिक समस्यायें उत्पन्न की हैं जिनका समाधान सरल नहीं है।

महाविद्यालय की विविध समस्याओं ने शिक्षा के लिए चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं पाठ्यक्रमों तथा पाठ्यवस्तु की समस्यायें, शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों की समस्यायें, पाठ्य पुस्तकों की समस्या प्रबन्धन एवं प्रशासन की समस्या, प्रशिक्षण की समस्यायें आदि।

भूमिका, उत्तरदायित्व एवं कार्य में भेद (Difference among Role] Responsibilities and Functions)

प्राचार्य की भूमिका तथा कार्यों का विवेचन करने से पूर्व इनके अर्थ एवं अन्तर को समझ लेना आवश्यक है तभी इन प्रत्ययों का भली भाँति बोध होगा।

(1) भूमिका (Role)- भूमिका प्रत्यय समाजशास्त्र से लिया गया है प्रबन्धन के क्षेत्र में भूमिका प्रत्यय तब हुआ जब मानवीय सम्बन्धों को व्यवस्था में महत्त्व दिया जाने लगा। प्रबन्ध तंत्र के कार्यकर्त्ताओं में कार्य करने की क्षमता आज्ञा पालन के साथ मानवी सम्बन्धों और उनकी भावनाओं का निर्वहन करना होता है। भूमिका में विशिष्ट सम्बन्धों का बोध होता है। समाज की तथा परिवार की भूमिकाओं हेतु व्यवहार मानक निर्धारित किए गये है। पिता की भूमिका विशिष्ट व्यवहारों से सम्पादित होती हैं माता-पिता के सम्बन्धों में भूमिका निर्वहन होता है और बच्चों के प्रति उत्तरदायित्व होते है। भूमिका से सम्बन्धों का बोध होता है।

(2) उत्तरदायित्व (Responsibility) - उत्तरदायित्व प्रत्यय प्रबन्धन से लिया गया है। प्रबन्धन के सम्पादन नियोजन, व्यवस्था, पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण में सम्मलित व्यक्तियों को उत्तरदायित्व को सौंपा जाता है और उनसे अपेक्षा की जाती है कि उत्तरदायित्वों को पूरा करने का भरसक प्रयास करेंगे तथा प्रयासरत रहेंगे। उनके वरिष्ठ को इसको समीक्षा करनी होती है जिसे जवाबदेही (Accountability) कहते हैं। माँ का उत्तरदायित्व बालक को शिक्षा देना भी होता है।

(3) कार्य (Function) - कार्य शब्द उद्योग का है। उत्तरदायित्व का निर्यटन कार्यों के रूप में होता है। जैसे माँ का उत्तरदायित्य बालक को शिक्षा देना है इसके लिये भी का चालक को शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाती है अच्छे आचरण तथा व्यवहार को प्रोत्साहन तथा निर्देशन प्रदान करेगी। यह माँ के कार्य कहे जाते हैं। भूमिका, उत्तरदायित्व तथा कार्य आपस में सम्बन्धि त प्रत्यय है परन्तु उनमें एक चढ़ाव क्रम है जिससे उनके अर्थ में अन्तर है परन्तु विरोधी नहीं हैं।

प्राचार्य की भूमिका का प्रत्यय (Concept of Principal' Role)

महाविद्यालय प्रशासन में प्राचार्य का स्थान एक पथ-प्रदर्शक, निर्देशक, पर्यवेक्षक निरीक्षक तथा एक अच्छे परामर्शदाता के रूप में होता है। उसकी सोच एवं परख में दार्शनिकता झलकती है, जबकि कर्म एवं वाणी की सत्यता उसके व्यवहारों तथा निर्णय से स्पष्ट होती है।

जी०वी०सीयर्स के अनुसार-ष्प्राचार्य महाविद्यालय की गतिविधियों से सम्बन्धित कर्मचारियों, साधनों, वस्तुओं तथा उद्देश्यों पर नियन्त्रण रखे बिना उसके विकास हेतु निर्देशन नहीं प्रदान कर सकता।"[2]

प्राचार्य की भूमिका सम्बन्धी यह उक्ति सही है- "जैसा प्राचार्य होगा वैसा महाविद्यालय होगा। महाविद्यालय के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्राचार्य को शिक्षकों, छात्रों तथा अन्य सभी कार्यकर्ताओ को समायोजित करना होता है। साथ ही महाविद्यालय अभिलेख, प्रबन्धन, वित्त कार्यालय, भवन पुस्तकालय आदि सभी कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जाती है। प्राचार्य का कार्य विभिन्न कार्यों सम्बन्धी निर्देशन देना उचित निर्णय देना तथा सही मूल्यांकन की व्यवस्था करना है ताकि महाविद्यालय का बहुमुखी विकास किया जा सके।

डब्लू०एम० रायबर्न के अनुसार षजिस प्रकार जहाज में कैप्टन का मुख्य स्थान होता है, उसी प्रकार महाविद्यालय में मुख्याध्यापक या प्राचार्य का में स्थान मुख्य होता है। मुख्याध्यापक समन्वय स्थापित करने का साधन है और समूची संस्था के सन्तुलित विकास को निश्चित बनाता है। वह महाविद्यालय का स्वरूप स्थापित करता है। वह उन परम्पराओं को स्थापित करने का सशक्त साधन है जो समय के साथ पनपती और विकसित होती रहती है।"[3]

अत: महाविद्यालय के कार्य-कलापों में प्राचार्य का चरित्र प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित होता है।

पी०सी० रैन महोदय ने बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है कि "घड़ी में जो स्थान बड़े स्प्रिंग का होता है, मशीन में जो स्थान फ्लाई व्हील का होता है अथवा जहाज में जो स्थान इंजन का होता है वही स्थान महाविद्यालय में प्राचार्य को होता है। महाविद्यालय का चरित्र प्राचार्य के चरित्र को ही प्रतिबिम्बित करता है। वह मुहर के समान है और महाविद्यालय लाख के समान है। वह संगठनकर्त्ता है, नेता है, कार्य-निर्देशक है, संयोजक है, अध्यक्ष है, अध्यापक है, दार्शनिक और मित्र है।"

इस प्रकार प्राचार्य महाविद्यालय में विभिन्न क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु होता है। महाविद्यालय तब ही प्रगति कर सकता है जब वह सभी का सहयोग प्राप्त कर सके।

जसवन्त सिंह के मतानुसार, ष्महाविद्यालय का प्राचार्य शैक्षणिक प्रक्रिया का केन्द्रीय बिन्दु है। एक प्रभावशाली नेता के रूप में उसी की योग्यता पर ही महाविद्यालय पद्धति की सफलता निर्भर करती है।"[4]

माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) के अनुसार, "समाज में महाविद्यालय की ख्याति तथा स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि प्राचार्य का महाविद्यालय के अध्यापकों, विद्यार्थियों और उनके माता-पिता तथा सामान्य पर कितना प्रभाव है।"[5]

प्राचार्य वह बिन्दु है जिसके चारों और सम्पूर्ण महाविद्यालय व्यवस्था घूमती है। अध्यापक, अन्य कर्मचारी, विद्यार्थी माता-पिता सभी उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं। अतः उसमें कुछ मानसिक एवं बौद्धिक गुण होने चाहिए।

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के अनुसार- "शिक्षा संस्था की किसी भी योजना का तब तक वांछित परिणाम नहीं निकल सकता जब तक उसका प्रशासन कुशल और योग्य न हो।" महाविद्यालय की शिक्षा में प्राचार्य का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। महाविद्यालय के कार्यों में विविधता अधिक होने के कारण प्राचार्य को अनेक भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है। यहाँ पर प्राचार्य की प्रमुख भूमिकाओं को उल्लेख किया गया है

(1) प्रशासक की भूमिका,
(2) पर्यवेक्षक की भूमिका,
(3) प्रबन्धक की भूमिका,
(4) निर्देशन सेवाओं में निर्देशक की भूमिका,
(5) शिक्षक की भूमिका,
(6) प्रबन्ध समिति के सचिव की भूमिका,
(7) परीक्षा अधीक्षक की भूमिका,
(8) वित्त नियंत्रक की भूमिका,
(9) समन्वयक की भूमिका, तथा
(10) शैक्षिक नेतृत्व की भूमिका ।

प्राचार्य को उपरोक्त भूमिकाओं के अन्तर्गत विविध व्यवहारों के प्रारूपों का उपयोग करना होता है। प्रत्येक भूमिका में विशिष्ट प्रकार के सम्बन्ध रखने पड़ते है। ख जिससे उत्तरदायित्वों का प्रारूप निर्धारित होता हैं तथा कर्तव्यों का बोध होता है इस प्रकार प्राचार्य अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन हेतु कार्यों का सम्पादन करता है। प्राचार्य अपने उत्तरदायित्वों की अधिकता के कारण वरिष्ठ शिक्षकों को उत्तरदायित्वों को सीप देता है। शिक्षकों को उत्तरदायित्वों के निर्वहन हेतु प्राचार्य द्वारा सौपे गये कार्यो को करना होता है। इस प्रकार प्राचार्य अपने कार्यो को शिक्षकों के सहयोग से पूरा करता है।

प्राचार्य की महाविद्यालय में छात्रों के क्रियाकलापों में भूमिका (Roles of Principal in Organize Students Activities)

आज के युग में महाविद्यालयों के द्वारा प्रत्येक छात्र को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना होगा ताकि छात्र अनुशासित, उत्साही एवं सशक्त कार्यकर्ता के रूप में सामाजिक कार्य कर सकें। साथ ही सार्वजनिक रूप में उत्तरदायित्व को निभा सकें। इसका मुख्य उत्तरदायित्व प्राचार्य के महाविद्यालय सम्बन्धी छात्रों के विभिन्न क्रियाकलापों पर निर्भर करता है कि वह किस रूप में छात्रों को सामाजिक रूप से उपयोगी धारा के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं। इसके लिए स्कूलों की एक नवीन संरचना करनी होगी। इसका समस्त उत्तरदायित्व प्राचार्य पर माना जाता रहा है।

जे०सी० पार्कर महोदय ने प्राचार्य द्वारा स्कूलों के छात्रों सम्बन्धी उपयोगी कार्यकलापों को अग्रलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है

(1) प्राचार्य द्वारा महाविद्यालय के छात्रों की संख्या निश्चित करना।

(2) छात्रों के वर्गीकरण सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करना।

(3) छात्रों में अनुशासन सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण करना।

(4) छात्रों को उचित निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था करना।

(5) छात्रों के अनुशासन सम्बन्धी नीतियाँ बनाना।

(6) छात्रों के कक्षा उन्नति, रिकार्ड आदि सभी को समयबद्ध करना।

(7) छात्रों के स्वास्थ्य, खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रमों की सूची तैयार करना तथा उनका आयोजन समयबद्ध रूप से कराना।

(8) छात्रों को विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्रियाकलापों हेतु तैयार कना।

अतः यह कथन सत्य है कि "महान् प्राचार्य छात्रों के बड़े अच्छे मित्र होते हैं।"

"ळतमंज च्तपदबपचंसे ंिअम इमदद हतमंज तिपमदके व ि जीमपत चनचपसे"

वास्तव में प्राचार्य का यह एक प्रमुख उत्तरदायित्व होता है कि वह महाविद्यालय के छात्रों हेतु इस प्रकार प्रभावी उपयोगी एवं योजनाबद्ध कार्यक्रम प्रस्तुत करे ताकि छात्रों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप में समुचित उपयोगी हो सके।"[6]

वी०एस० झा के शब्दों में, "एक अच्छा प्राचार्य केवल विद्वान ही नहीं होता बल्कि वह एक चरित्रवान व्यक्ति भी होता है। उसे विद्यार्थियों से गहरी सहानुभूति होती है। वह विद्यार्थियों को उच्छी तरह समझता है और उनके साथ व्यवहार करने की उसमें पर्याप्त युक्ति होती है। वह विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं के प्रति सचेत होता है और जानता है कि उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।"

अतएव प्राचार्य का यह एक प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वह ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करे जो कि छात्रों को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी रूपों में पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध हो सकें। इस प्रकार प्राचार्य को निम्नलिखित कार्य को करना आवश्यक है-

(1) छात्रों को गतिशील नेतृत्व प्रदान करना - प्राचार्य में अपने छात्रों को गतिशील नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए। यह तभी हो सकता है जब उसमें एक सुयोग्य नेता के सभी गुण विद्यमान हों। उसमें दूसरों से काम लेने की योग्यता होनी चाहिए।

इस सन्दर्भ में रायबर्न के मतानुसार, "अपने सहयोगी समूह के नेता के रूप में मुख्याध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह अपने आप को वांछित स्तर पर रखे। यदि उसे अन्धों का अन्धा नेता नहीं बनना तो उसे शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों, भारत तथा अन्य देशों में हो रहे शिक्षा प्रयोगों, मनोविज्ञान तथा पैरा-मनोविज्ञान के नवीन विचारों से भली-भाँति परिचित होना चाहिए। जो अपने सदस्यों तथा शिक्षण व्यवसाय का आधुनिक शिक्षा विचारों तथा अभ्यासों का प्रदान करती है।

(2) छात्रों के सामाजिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करना- प्राचार्य द्वारा छात्रों को विभिन्न सामजिक कार्यों में भाग लेने के अवसर प्रदान करने चाहिए। इसके लिये स्कूलों में राष्ट्रीय सामाजिक सेवा (N.S.S.) प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा आदि को समुचित व्यवस्था करानी चाहिए।

(3) छात्रों को समुचित मार्गदर्शन एवं परामर्श देना- प्राचार्य द्वारा छात्रों को विषयों के चयन, रोजगार आदि सम्बन्धी परामर्श, उनकी योग्यता, अभिरूचि एवं रूचि के आधार पर प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिये ताकि छात्रों को मार्गदर्शन एवं परामर्श समुचित रूप में दिया जा सके।

(4) विभिन्न स्कूली योजनाओं की व्यवस्था करना- प्राचार्य के द्वारा महाविद्यालय में सामूहिक जीवन विकसित करने हेतु विभिन्न स्कूली योजनाओं की व्यवस्था छात्रो द्वारा करने पर बल देना चाहिये। इसमें महाविद्यालय की सफाई, श्रमदान, साक्षरता प्रसार आदि कार्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिये।

(5) छात्रों में परस्पर सहयोग एवं प्रेम की भावना का विकास करना- प्राचार्य द्वारा छात्रों में परस्पर प्रेम, सहयोग, मित्रता, सहानुभूति आदि भावनाओं का विकास करना चाहिये ताकि प्रत्येक कार्य मिल-जुलकर पारस्परिक सहयोग से पूरा कर सके।

(6) खेल, टूर्नामेंट, उत्सव एवं अन्य प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना - प्राचार्य द्वारा महाविद्यालय में छात्रों के सामाजिक विकास हेतु खेल, प्रतियोगितायें टूनमिंट, उत्सव, नाटक, गोष्ठियों, मेले, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि की व्यवस्था की जानी चाहिये तथा सभी छात्रों को सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये प्रेरणा प्रदान की जानी चाहिये ।

(7) छात्रों में आत्म-विश्वास एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना- प्राचार्य के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों का समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिये। इसके लिये प्रशासनिक कार्यो, संगठन, निरीक्षण आदि कार्यों में छात्रों को भाग लेने के अवसर प्रदान करना चाहिए।

(8) छात्रों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवायें प्रदान करना- प्राचार्य के द्वारा छात्रों के स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये, जैसे- श्शारीरिक जाँच, दवाई की व्यवस्था, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों का आयोजन, खेल-कूद, व्यायाम, नृत्य, तैरना, छुट्टी शिविर, मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था, भ्रमण एवं यात्रायें, कैम्प आदि

(9) छात्रों में स्वस्थ परम्पराओं का विकास करना - छात्रों में सामूहिक जीवन के विकास हेतु प्राचार्य को स्वस्थ परम्परायें डालनी चाहियें। जैसी परम्परायें महाविद्यालय में होंगी उसी प्रकार का छात्रों में सामूहिक जीवन विकसित होगा।

(10) महाविद्यालय को सामुदायिक केन्द्र बनाना- प्राचार्य के द्वारा महाविद्यालय को एक सामुदायिक केन्द्र के रूप में परिवर्तित करना चाहिये इसके लिये सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था, शिक्षाप्रद भाषण आदि पर बल दिया जाना चाहिये।

(11) छात्र संघ की भावना का विकास करना - प्राचार्य द्वारा छात्रों में संघ की भावना का विकास करना भी परम आवश्यक है। इस दृष्टि से छात्र संघ की स्थापना करानी चाहिये। छात्र संघ द्वारा छात्रों में एकता, नेतृत्व, परस्पर सेवा सहयोग, प्रेम आदि गुणों का विकास होता है।

पर्यवेक्षकीय कार्यों में प्राचार्य की भूमिका (Role of Principal in Supervisory Functions)

महाविद्यालय के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कुशल व योग्य प्राचार्य की आवश्यकता होती है। इसलिए प्राचार्य अनेक गुणों से युक्त, योग्य व कर्मठ व्यक्ति होना चाहिए।

पी०सी० रेन ने महाविद्यालय में प्राचार्य के महत्व के सम्बन्ध में लिखा है कि- "एक घड़ी में जो उसकी मुख्य स्प्रिंग का काम है तथा मशीन में जो पहिये का स्थान है अथवा पानी के जहाज में जो स्थान इंजन का है महाविद्यालय में वही स्थान प्राचार्य का है।"[7]

रायबर्न के अनुसार- "महाविद्यालय में प्राचार्य का स्थान उतना ही महत्वपूर्ण है जितना जहाज में कप्तान का"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि महाविद्यालय में प्राचार्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। इसलिए प्राचार्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि प्राचार्य महाविद्यालय रूपी पहिये की वह धुरी है जिसके चारों ओर पाठशाला के समस्त कार्यक्रम चक्कर लगाते हैं।

एक सफल व योग्य प्राचार्य वह होता है जो शिक्षालय के पर्यवेक्षकीय कार्यों को सफलतापूर्वक कर सके। महाविद्यालय के पर्यवेक्षकीय कार्यो में सफलता प्राप्त करने हेतु प्राचार्य में कुछ विशिष्ट योग्यताओं का होना आवश्यक है। कुछ प्रमुख योग्यताएँ निम्न प्रकार हैं

(1) महाविद्यालय में होने वाले समस्त कार्यों का निरीक्षण करने हेतु प्राचार्य में पूर्ण क्षमता होनी चाहिए।

(2) प्राचार्य को पर्यवेक्षण से सम्बन्धित समस्त कार्यो में धैर्य, सहिष्णुता व उदारता का पालन करना चाहिए।

(3) प्राचार्य को महाविद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य के प्रति सजग रहना चाहिए।

(4) महाविद्यालय की उन्नति तथा विकास हेतु महाविद्यालय में कार्यरत अन्य अध्यापकों को प्रेरित करना चाहिए।

(5) महाविद्यालय में कर्मठ व कुशल अध्यापकों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(6) महाविद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं हेतु उचित व्यवस्था करनी चाहिएं।

(7) प्राचार्य को महाविद्यालय के विभिन्न कर्मचारियों में कार्य का उचित विभाजन करना चाहिए।

(8) प्राचार्य के निर्देश, भाषण व कक्षा पर्यवेक्षण प्रभावशाली होने चाहिएं।

(9) प्राचार्य को महाविद्यालय बजट तथा कार्यालय के रजिस्टरों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए यथा समय उनका निरीक्षण किया जाना चाहिए।

(10) महाविद्यालय में योग्य व उत्तम कार्य करने वाले शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित कर, उन्हें कार्य करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

(11) प्राचार्य को महाविद्यालय की प्रगति हेतु, अध्यापकों व अभिभावकों हेतु नवीन विचारों का आदर और उन्हें क्रियान्वित करना चाहिए।

(12) महाविद्यालय में समय-समय पर विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना चाहिए जो महाविद्यालय की प्रगति में सहायक हो सकें।

(13) प्राचार्य को महाविद्यालय की प्रगति तथा अन्य कार्यो के संचालन हेतु अध्यापकों की योग्यता व रूचि के अनुसार विभिन्न योजनाओं का निर्माण करना चाहिए।

(14) महाविद्यालय के छात्रावास का प्रबन्ध प्राचार्य द्वारा होना चाहिए।

(15) शिक्षण व अधिगम के मूल्यांकन हेतु प्राचार्य को उचित तथा पर्याप्त समय निश्चित करना चाहिए।

(16) प्राचार्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए। इसके साथ ही वह कुशल संगठनकर्त्ता भी होना चाहिए।

निर्देशन में प्राचार्य की भूमिका (Role of Principal in Guidance Services)

महाविद्यालय में प्राचार्य का मुख्य स्थान होना है। महाविद्यालय में प्राचार्य के स्थान के बारे में पी०सी०रेन ने लिखा है "घड़ी में प्रधान कमानी, मशीन में प्रचक्र अथवा जलयान में यान्त्रीकरण का जो स्थान है, वही स्थान किस महाविद्यालय में प्राचार्य का है।"[8]

"What the main spring is to the watch] the fley wheel to the machine or the engine is to the steam ship] the Principal in the College" &P-C- Wren

किसी भी महाविद्यालय की प्रगति, उस महाविद्यालय के प्राचार्य की सूझ-बूझ प्रशासकीय क्षमता एवं योग्यता पर निर्भर करती है। निर्देशन प्रक्रिया को, शिक्षा का एक अभिन्न अंग माना गया है। अतः निर्देशन के क्षेत्र में प्राचार्य का नेतृत्व प्राप्त होना आवश्यक है। प्राचार्य महाविद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रशासकीय प्रधान होता है। अत्याधिक कार्यभार किसी भी योग्य शिक्षक को सौंप सकता है लेकिन अपने समर्थन तथा नेतृत्व को किसी अन्य व्यक्ति को नहीं सौंप सकता। अतः प्राचार्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने समस्त सहयोगी शिक्षकों को निर्देशन कार्य हेतु प्रोत्साहित कर उन्हें समस्त प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराये।

प्राचार्य के निर्देशन कार्यक्रम व सम्बध उत्तरदायित्व- महाविद्यालय का मुख्य अधिकारी प्राचार्य होता है, अतः वही महाविद्यालय की समस्त क्रियाओं को सफलता के साथ करने के लिए उत्तरदायी होता है। निर्देशन कार्यक्रम, महाविद्यालय के कार्यक्रम का ही अंग होता है। अतः प्राचार्य के निर्देशन कार्यक्रम निर्वाह में प्रमुख उत्तरदायित्व अग्रलिखित हैं

1. परामर्श सेवा हेतु उत्तम भवन की व्यवस्था करना।
2. निर्देशन कार्यक्रम के लिये धन की व्यवस्था करना।
3. छात्रों के अभिभावकों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना
4. निर्देशन कार्यक्रम प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने हेतु शिक्षकों को सहयोग प्राप्त करना ।
5. निर्देशन समिति का गठन करना।
6. महाविद्यालय में निर्देशन सम्बन्धी क्रियाओं का निरीक्षण करना।
7. निर्देशन कार्य हेतु समुचित समय देना।
8. निर्देशन सेवाओं के गठन में अपना नेतृत्व प्रदान करना।
9. महाविद्यालय के शिक्षकों को निर्देशन का महत्व, समस्याएँ तथा उद्देश्य को समझने में सहयोग प्रदान करना।
10. महाविद्यालय में योग्य एवं कुशल कार्यकर्ताओं की नियुक्ति करना।
11. नियुक्ति निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के मध्य कार्य का वितरण करना।
12. निर्देशन कार्यकर्त्ताओं तथा शिक्षकों को नौकरी के मध्य प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना।

"शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन पत्रिका" में प्राचार्य के महत्व के सम्बन्ध में लिखा गया है

"प्राचार्य अथवा मुख्याध्यापक अपने महाविद्यालय के निर्देशन कार्यक्रम का प्रधान व्यक्ति होता है। उसको उनके छात्रों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये और अपनी हार्दिक सहायता प्रदान करनी चाहिये।" समस्याओं निर्देशन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

आज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्येक महाविद्यालय में प्राचार्य को, निर्देशन की आवश्यकता को अनुभूति करना चाहिये। निर्देशन हेतु उपलब्ध सामग्री एवं साधनों के आधार पर ही प्राचार्य को निर्देशन कार्यक्रम की योजना का निर्माण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे महाविद्यालय में एक निर्देशन समिति का भी गठन करना चाहिये। इसका प्रमुख अधिकारी वह स्वयं ही होगा। निर्देशन कमेटी, यथा समय, निर्देशन में योग्य क्रिया की उपयोगिता का निर्धारण, मूल्यांकन के माध्यम से करेगी। निर्देशन में योग्य एवं रूचि रखने वाले शिक्षकों को ही निर्देशन समिति का सदस्य बनाना चाहिये।

सेवारत् शिक्षकों को निर्देशन कार्य का प्रशिक्षण देने हेतु, "नौकरी वालों की शिक्षा का आयोजन भी प्राचार्य द्वारा किया जाना चाहिये। इस कार्य हेतु प्राचार्य को विभागीय बैठक आयोजित करनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त, प्राचार्य का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह निर्देशन कार्यक्रम हेतु समस्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास करें। निर्देशन हेतु, महाविद्यालय में, निर्देशन कार्यालय की व्यवस्था कर, उसमें पर्याप्त फर्नीचर भी रखे तथा निर्देशन हेतु समस्त प्रकार की सामग्री खरीदने के लिये पर्याप्त धनराशि की भी व्यवस्था करे। हमारे देश में धन के अभाव के कारण, महाविद्यालयों में समस्त प्रकार की भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

महाविद्यालय कार्य के समान ही, प्राचार्य को निर्देशन क्रियाओं का भी परिवीक्षण करना चाहिये तथा परामर्शदाता द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों इत्यादि में परिवर्तन करने के लिये उसे तैयार रहना चाहिये।

प्राचार्य को प्रतिभाशाली और विशिष्ट बालको की पहिचान मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा करनी चाहिए और उन छात्रों को उनकी आवश्यकतानुसार शिक्षण की अलग व्यवस्था करनी चाहिए। प्रतिभाशाली बालक राष्ट्र की भावी शक्ति होती है।

प्राचार्य का अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध

उपरोक्त पंक्तियों में प्राचार्य की विभिन्न भूमिकाओं का विवरण दिया गया है। भूमिका शब्द समाजशास्त्र का है। भूमिका से सम्बन्धों का बोध होता है और व्यवहारों का प्रारूप सुनिश्चित होता है। जैसे समाज में पिता की एक महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें उसके सम्बन्ध पुत्र पुत्री से सुनिश्चित होते हैं और व्यवहारों का प्रारूप भी समाज के मानकों के अनुसार होता है। जिससे पिता का उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य भी निर्धारित होते हैं। इसी प्रकार प्राचार्य की महाविद्यालय के सन्दर्भ में एक अहम् भूमिका है जिसका उल्लेख इस अध्याय में किया गया है। यहाँ प्राचार्य की भूमिका के सन्दर्भ में सम्बन्धों को विवेचन किया गया है। एक प्राचार्य को विविध प्रकार के सम्बन्धों का स्थापित करना होता है। सम्बन्धों के प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार है

(1) अध्यापकों से सम्बन्ध
(2) छात्रों से सम्बन्ध
(3) समुदाय तथा अभिभावकों से सम्बन्ध
(4) राज्य शिक्षा विभाग से सम्बन्ध
(5) शिक्षा परिषद् या महाविद्यालय से सम्बन्ध
(6)प्रबन्ध समिति से सम्बन्ध

प्राचार्य के कार्य मुख्य

प्राचार्य को अपनी भूमिका तथा उत्तरदायित्वों के निर्वहन में कार्यों को स्वयं करना होता है तथा शिक्षकों का सहयोग लेना होता है। प्राचार्य के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं

(1) शिक्षण कार्य की व्यवस्था एवं संचालन करना,
(2) महाविद्यालय का शैक्षिक वातावरण समुचित रखना,
(3) महाविद्यालय के लक्षणों का निर्धारण करना,
(4) शैक्षिक नेतृत्व प्रदान करना,
(5) वृत्तिक प्रशिक्षण तथा ज्ञान प्रदान करना,
(6) महाविद्यालय के कार्यों में सभी का सहयोग प्राप्त करना,
(7) महाविद्यालय के कार्यों में सभी का सहयोग प्रदान करना,
(8) सभी का विश्वास प्राप्त करना,

(9) सभी छात्रों तथा अभिभावकों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना,
(10) अपने उत्तरदायित्वों तथा अधिकारों को सौंपना तथा
(11) स्वस्थ्य शरीर का होना तथा छात्रों के स्वस्थ्य का ध्यान रखना।

प्राचार्य के महाविद्यालय प्रशासन एवं पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य

महाविद्यालय के विकास हेतु प्राचार्य द्वारा निम्नलिखित प्रशासकीय एवं पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य किए जाते हैं, और प्राचार्य द्वारा परिवीक्षण भी किया जाय।

(1) शैक्षिक क्रियाओं सम्बन्धी कार्य,
(2) शिक्षकों सम्बन्धी कार्य,
(3) छात्र वर्ग सम्बन्धी कार्य,
(4) महाविद्यालय प्रबन्धन सम्बन्धी कार्य,
(5) वित्त सम्बन्धी कार्य,
(6) महाविद्यालय कार्यालय सम्बन्धी कार्य,
(7) महाविद्यालय भवन तथा अन्य साधनों सम्बन्धी कार्य, तथा
(8) महाविद्यालय स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य।

प्राचार्य के प्रबन्धन में कार्य (Functions of Principal in Management)

संसार में गिने चुने ही व्यक्ति हैं जिनके उत्तरदयित्व तथा कार्य प्राचार्य अधिक हो। यह कथन सत्य है कि राष्ट्र का निर्माण न तो विधान सभा तथा संसद न ही किसी कारखाने तथा उद्योग में होता है जबकि राष्ट्र के भाग्य तथा राष्ट्र का निर्माण महाविद्यालय की कक्षा में होता है। भावी समाज का निर्माण महाविद्यालय में होता है। जबकि समाज तथा राष्ट्र प्राचार्य के उत्तरदायित्व कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। यह स्वाभाविक है। प्राचार्य उद्देश्यों का प्राप्त करना है। समाज तथा राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित उद्देश्यों को प्राप्त करना, आदर्शों का अनुसरण करना तथा मानकों का अनुपालन करना जिससे अपेक्षित समाज को तैयार कर सके। प्राचार्य महाविद्यालय की शिक्षा को नेतृत्व प्रदान करता है। इसके लिये प्राचार्य को प्रबन्धन में निम्नलिखित कार्यों को करने से उत्तरदायित्व का निर्वहन होता है। मुख्य कार्य पाँच प्रकार के हैं

(1) नियोजन कार्य (2) व्यवस्था कार्य
(3) प्रशासनिक कार्य (4) पर्यवेक्षण या निर्देशन कार्य
(5) मूल्यांकन या नियन्त्रण कार्य

(1) नियोजन कार्य के रूप में

शिक्षा संस्था के प्राचार्य का कर्त्तव्य होता है कि वह महाविद्यालय की शिक्षा का नियोजन करे। महाविद्यालय के विभिन्न कार्यो के सम्पादन से पूर्व उनका नियोजन करे। नियोजन में कार्यक्रमों के उद्देश्यों, कार्यो तथा क्रियाओं व उत्तरदायित्वों का विवरण तैयार किया जाए। महाविद्यालय की शिक्षा का वर्ष या सत्र का पूर्ण नियोजन करना चाहिए।

प्रवेश के नियमों तथा प्रक्रिया को तैयार किया जाता है। इसके लिये एक प्रवेश समिति का का गठन किया जाता है, जिसका उत्तरदायित्व प्रवेश प्रक्रिया का सम्पादन करना तथा पूरा करना होता है। प्राचार्य के महाविद्यालय के फर्नीचर तथा साज-सज्जा की भी व्यवस्था करनी होती है। अन्य संसाधन, उपकरण तथा पुस्तकों का भी पुस्तकालय में आयोजन करना होता है। टूटे हुए फर्नीचर को ठीक कराना होता है। प्राचार्य इन कार्यों का उत्तरदायित्व वरिष्ठ अध्यापकों को सौंप देता है और अधिकार भी दे देता है। महाविद्यालय में आवश्यक सामग्री उपस्थित रजिस्टर, डायरी, चाक, डस्टर, श्यामपट आदि की व्यवस्था करता है। प्राचार्य महाविद्यालय शिक्षा सत्र का कलैण्डर भी तैयार करता है जिसमें पूरे सत्र क्रिया, अन्य कार्यक्रमों तथा अवकाश की तिथियों का विवरण दिया जाता है। आवश्यकतानुसार शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्तियाँ भी करता है। कार्यालय सम्बन्धी रजिस्टरों

की भी व्यवस्था की जाती है। महाविद्यालय भवन पुताई तथा टूट-फूट को ठीक कराता है। फर्नीचर की पालिश भी कराता है। जिससे नये सत्र में महाविद्यालय भवन नया सा दिखाई दे। महाविद्यालय का भौतिक पर्यावरण छात्रों के लिये आकर्षक लगना चाहिए। शिक्षकों की विषयगत, छात्रों की कक्षागत तथा शिक्षण कक्षों की अनुसूची तैयार की जाती है। शिक्षकों को अपने कार्यों का नियोजन भी करना चाहिए। शिक्षकों को शिक्षण सहायक सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो शिक्षकों द्वारा प्राचार्य की भी सहायता ली जा सकती है। यदि शिक्षण सामग्री नहीं है उसकी व्यवस्था प्राचार्य को करनी है। वह शिक्षक का अधिकृति भी कर सकते हैं। खेल-कूद वार्षिक प्रतियोगिता, अभिभावक दिवस, सांस्कृतिक कार्यक्रम, पारितोषक वितरण आदि का नियोजन करता है। छात्रों का वार्षिक परीक्षाफल तैयार करना तथा परीक्षाफल की व्यवस्था करना छात्रों की फीस, उपस्थिति आदि के लेखा-जोखा की जाँच करना।

(2) प्रशासन कार्य के रूप में

महाविद्यालय की शिक्षा हेतु प्रबन्ध समिति जो उद्देश्य, नियम, योजनायें कार्यक्रम आदि निर्धारित करती है उन सभी का क्रियान्वयन करने का उत्तरदायित्व प्राचार्य को होता है। नियोजन के अन्तर्गत भी आयोजन तथा निर्णय लये जाते हैं उनका सम्पादन करा श्प्रशासनिक कार्यश के अन्तर्गत आते है। जिला स्तर तथा राज्य स्तर से जो आदेश महाविद्यालय में आते हैं उन सभी का अनुपालन करना तथा कारान प्राचार्य का ही कार्य तथा उत्तरदायित्व होता है। प्रशासनिक कार्यों का क्षेत्र निम्नलिखित है

उच्च अधिकारियों के आदेशों का अनुपालन करना तथा कराना। महाविद्यालय की व्यवस्था करना तथा संचालन करना महाविद्यालय के कार्यो का पर्यवेक्षण तथा अवलोकन करना। महाविद्यालय में नियुक्तियाँ करना। महाविद्यालय में अनुशासन बनाये रखना। शिक्षण तथा परीक्षण कार्यों की व्यवस्था करना शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों में समन्वय करना तथा नेतृत्व प्रदान करना। निर्णय लेना तथा समस्याओं का समाधान करना महाविद्यालय की वित्तीय व्यवस्था का नियन्त्रण करना। छात्रों की परीक्षा कराना, परीक्षाफल तैयार कराना महाविद्यालय के स्रोतों का समुचित उपयोग करना। शिक्षकों के विकास कार्यक्रमों का आयोजन करना

(3) व्यवस्था एक कार्य रूप में

प्राचार्य का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य महाविद्यालय शिक्षा की व्यवस्था करना है। इस व्यवस्था कार्य के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख चार क्रियाओं को करना होता है

इसके अन्तर्गत फर्नीचर, उपकरण, तथा अन्य शिक्षक सहायक सामग्री जो कक्षा शिक्षण के लिए आवश्यक होती है उसकी व्यवस्था को करना प्राचार्य का ही कर्त्तव्य होता है। इसके अतिरिक प्रयोगशालाओं, कार्याशालाओं तथा पुस्तकालय सम्बन्धी सामग्री की व्यवस्था करना होता है। विश्वमहाविद्यालय के शिक्षा सम्बन्धी अन्य सामग्री जैसे- खेल-कूद, स्काउंटिंग, N.C.C. आदि सम्बन्ध ी संसाधनों को भी जुटाना होता है। विषयों से सम्बन्धित शिक्षको समय तालिका कार्य वितरण, तथा महाविद्यालय का कलेण्डर आदि को भी प्राचार्य द्वारा तैयार करना होता है। महाविद्यालय के अन्तर्गत शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इनसे सम्बन्धित आवश्यकता साधन व सुवधिओं को उपलब्ध कराना प्राचार्य का ही कार्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त छात्र संघ, शिक्षक संघ, समुदाय की क्रियाओं का सम्पादन प्राचार्य द्वारा किया जाता है।

(4) पर्यवेक्षण एक कार्य रूप में (Supervision as Function)

प्राचार्य का चौथा मुख्य कार्य महाविद्यालय की कार्य प्रणाली का पर्यवेक्षण करना होता है। पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य महाविद्यालय व्यवस्था का सुचारू रूप से संचालन करना है। महाविद्यालय के अन्तर्गत जिन क्रियाओं की व्यवस्था की जाती है उनका संचालन समुचित रूप से किया जा रहा है इसके लिए प्राचार्य को पर्यवेक्षण करना आवश्यक होता है। प्राचार्य को प्रमुख रूप से चार प्रकार की क्रियाओं का पर्यवेक्षण करना होता है।

प्राचार्य का सबसे महत्वपूर्ण कार्य तथा उत्तरदायित्व शिक्षण कार्य का पर्यवेक्षण करना होता है। जो महाविद्यालय का समय तालिका बनायी गयी है उसके अनुरूप कक्षाओं के शिक्षण की व्यवस्था की जा रही है अथवा नहीं इसके लिए प्राचार्य को पर्यवेक्षण करना होता है। पर्यवेक्षण में प्राचार्य को मुख्य तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए प्राचार्य को पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शिक्षकों की तथा अन्य कर्मचारियों की गलितियाँ निकालने या गलतियाँ ढूँढ़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए अपितु उनकी कठिनाईयों का जानने का प्रयास

करना चाहिए कि वह अपने कार्य को सफलता पूर्वक क्यों नहीं कर पा रहे हैं? इस सन्दर्भ में प्राचार्य को उनकी सहायता या सहयोग करना चाहिए। शिक्षण कार्यो का अवलोकन करते समय प्राचार्य को यह भी जानने का प्रयास करना चाहिए कि शिक्षक को शिक्षण सहायक सामग्री उपलब्ध क्यों नहीं हो पा रही? यदि महाविद्यालय में आवश्यक सहायक सामग्री नहीं है तो उसकी व्यवस्था करनी चाहिए। प्राचार्य को शिक्षण कार्यों में सुधार के लिये उन्हें सुझाव देना चाहिए और आवश्यकता समझे तो प्रदर्शन करके समझाया जाए। शिक्षकों और छात्रों से शिक्षण सम्बन्धी कठिनाईयों को समझने व जानने का प्रयास करना चाहिए।

शिक्षण कार्य, छात्रावास की व्यवस्था तथा कार्यालय के आलेख के पर्यवेक्षण के अतिरिक्त प्राचार्य को अनेक क्रियाओं को करने का उत्तरदायित्व होता है जैसे-पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, निर्देशन परामर्श सेवाएँ, खेल-कूद, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, महाविद्यालय की कैंटीन, महाविद्यालय भवन, फर्नीचर आदि।

(5) मूल्यांकन (नियन्त्रण) एक कार्य रूप में (Evaluation and Controlling As Function)

आधुनिक समय में पर्यवेक्षण का अर्थ महाविद्यालय की क्रियाओं में सुधार तथा विकास करना होता है। परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि महाविद्यालय की कार्य प्रणाली का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। जिससे महाविद्यालय की उपलब्धियों और सफलता का बोध हो सके। महाविद्यालय के मूल्यांकन से शिक्षक के निष्पादन का भी बोध होता है और छात्रों तथा शिक्षकों को एक पृष्ठ-पोषण मिलता है। मूल्यांकन में सामान्यत: शिक्षकों की प्रभावशीलता छात्रों की उपलब्धियों को ही प्राथमिकता दी जाती है। परन्तु महाविद्यालय प्रणाली का आकलन नहीं होता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रणाली विश्लेषण का उपयोग किया जाए जिससे महाविद्यालय की प्रणाली का आकलन और निदान दोनों ही किये जा सकें। निदान से महाविद्यालय प्रणाली की कमजोरियों का बोध होता है और उनमें सुधार का प्रयास किया जा सकता है।

एक प्राचार्य को चाहिए कि महाविद्यालय के आकलन में उसकी प्रगति प्रोन्नति, क्षमताओं तथा कठिनाईयों को महत्व दिया जाए। इस सम्बन्ध में निम्नांकित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाए।

1. छात्रों के प्रश्न-पत्रों का अवलोकन किया जाए कि वह अधिक कठिन अथवा अधिक सरल तो नहीं है।
2. प्रश्नपत्र के अन्तर्गत समस्त पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे गये हैं अथवा नहीं इसका अवलोकन किया जाए।
3. महाविद्यालय शिक्षा के अन्तर्गत मासिक परीक्षाएँ या साप्ताहिक परीक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे छात्रों के अध्ययन में निरन्तरता रहती है।
4. छात्रों की प्रगति का संचयी आलेख भी तैयार किया जाना चाहिए जिससे छात्रों को भी प्रगति का बोध होता रहे।

प्राचार्य को मूल्यांकन में नीतियों, प्रक्रियाओं तथा क्रियाओं को ही महत्व न दिया जाना चाहिए अपितु महाविद्यालय की अन्य कार्यप्रणाली तथा क्रियाओं को भी ध्यान में रखा जाए। जैसे- अपने साथियों की अच्छाई, बुराई तथा सम्बन्धों को भी ध्यान में रखा जाए। प्राचार्य को स्वयं भी अपनी कार्य प्रणाली का आकलन करना चाहिए। क्योंकि प्राचार्य की कार्यप्रणाली का प्रभाव सभी पर पड़ता है। प्राचार्य को आकलन के समय सकारात्मक तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और मानवीय सम्बन्धों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सरयू प्रसाद चौबे 1958 जनतंत्र आत्मक महाविद्यालय संगठन, भारत पब्लिकेशन आगरा, पृष्ठ संख्या 143
2. मलैया विद्यावती केसी 1971 शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या 130
3. डब्लू०एम० रायबर्न
4. मुखर्जी एसएन 1970 एडमिनिस्ट्रेशन प्लैनिंग एंड फाइनेंस आचार्य बुक डिपो बड़ौदा पृष्ठ संख्या 187
5. माध्यमिक शिक्षा आयोग
6. गर्ग शोभा 1968 शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण किताब महल इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 169
7. Adams and Dekhi 1953 basic principle of supervision American book co New York
8. पी०सी०रेन, स्पीयर हैरोल्ड 1955 इंप्रूविंग द सुपर विजन ऑफ इंटरनेशनल प्रैक्टिस ऑल इंक्लूसिव

गाँधीवादी अहिंसक विचारधारा और विश्वशान्ति

डॉ० अनुजा रानी गर्ग

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, शहीद मंगल पाण्डे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

महात्मा गाँधी आधुनिक युग के राजनीतिक विचारकों में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में राजनीति विषय पर किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। चाणक्य के समान 'अर्थशास्त्र' अरस्तू के समान 'राजनीति' मैकियावेली के समान 'प्रिंस' जैसे किसी भी ग्रन्थ में अपने राजनीतिक विचारों को एकत्रित नहीं किया। परन्तु फिर भी उनके विचारों ने भारतीय राजनीतिक जीवन को नया मोड़ और गति प्रदान ही नहीं की वरन सम्पूर्ण एशिया के जागरण के अग्रदूत बनकर प्रस्फुटित हुए।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो आज के युग की सभी समस्याएँ नैतिक है। यदि व्यक्ति अपनी नैतिक आस्थाओं के प्रति जागरूक बन जाये, तो केवल व्यक्ति को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व की अधिकांश समस्याएँ सुलझ सकती हैं। राजनीति और नीति का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि एक पक्ष खराब है, तो दूसरा पक्ष कभी अच्छा नहीं हो सकता है। वास्तव में राजनीतिक व्यवस्थाओं में स्वयं में दोष नहीं होते हैं, बल्कि इसका उद्‌गम स्थल तो व्यक्ति का मन होता है। यदि मनुष्य की प्रवृत्तियाँ विकृत हैं, तो समूची राजनीति भी आवश्यक रूप से गन्दी ही होगी। गाँधीवादी विचारधारा राजनीति के इसी पक्ष का विवेचन करती है।

साबरमती के सत्याग्रह आश्रम में रहने वालों के निर्देशन के लिए गाँधी जी ने जो नियम बनाये थे, उनमें सर्वोच्च स्थान सत्य और अहिंसा को दिया गया। सत्य और अहिंसा को गांधी जी मनुष्य के अन्तर्निहित धर्म भाव के विकास के लिए अपरिहार्य समझते थे। हिंसा असत्य है, क्योंकि वह जीवन की एकता और पवित्रता के विरुद्ध है। अहिंसा को सर्वोत्कृष्ट धर्म कहना गांधी जी की कोई मौलिक बात न थीं। महाभारत के ये शब्द ''अहिंसा परमो धर्मः'' भारत भर में विख्यात है। यह सिद्धान्त जैन मत का सार है। बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म भी अहिंसा को बहुत अधिक महत्व देते हैं।

गांधी जी का कहना था कि, इतिहास अहिंसा की श्रेष्ठता की उत्तरोत्तर पुष्टि कर रहा है। उन्होंने लिखा है, '' मेरा दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य स्वभावतः ऊँचा उठ रहा है।'' अहिंसा पाप के सामने समर्पण करने का नाम नहीं है, और न अपनी दुर्बलता को छिपाने का ढोंग अहिंसा है। वह उस वीर आत्मा की दृढ शक्ति का परिचायक है, जो किसी जीवित प्राणी को इसलिए कष्ट नहीं पहुँचाता कि हर प्राणी तत्वतः आत्मा और स्वयं उसके साथ एक रूप है। वह सर्वोच्च नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है। ''अहिंसा के लिए अनिवार्य है कि इसमें जो सबसे दुर्बल और अकिंचन है, उसके भी अधिकारों की बड़ी सावधानी के साथ रक्षा की जाये। सत्य का साक्षात्कार करने की आकांक्षा रखने वाला उसके हेतु हर प्रकार के कष्ट सह लेता है।'' अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम और अनन्त प्रेम का अर्थ है कष्ट सहन की अनन्त क्षमता। गाँधी जी कहा करते थे कि सत्य और अहिंसा को निरपेक्ष रूप में अंगीकार करना आवश्यक है। ''अहिंसा मेरे धर्म का सिद्धान्त है और वही मेरे कर्म का अन्तिम सिद्धान्त भी है।''

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मनसा, वाचा, कर्मणा, पूर्ण अहिंसा का आदर्श व्यावहारिक है? क्या कोई व्यक्ति गीता में वर्णित उस अवस्था तक पहुँच सकता है ? जहाँ पहुँच कर वह किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखता, सबके प्रति मैत्री व दया के भाव रखता है, अहंकार से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो जाता है। सदैव संतुष्ट और आत्म-संयत तथा अपने संकल्प पर अटल रहता है। गाँधी जी स्वीकार करते हैं कि, पूर्ण अहिंसा की सिद्धि मनुष्य नहीं कर सकता, यह तो केवल ईश्वर का गुण है। अपूर्ण मनुष्य अहिंसा से मुक्त कभी नहीं हो सकता। गाँधी जी कहते हैं, '' समस्त भौतिक जीवन कुछ न कुछ हिंसा द्वारा ही जीवित रहता है। इसलिये सर्वोच्च

धर्म की परिभाषा नकारात्मक शब्द, अहिंसा में की गई है। संसार विनाश की जंजीरों में बंधा हुआ है। दूसरे शब्दों में, ''शरीरमय जीवन के लिए हिंसा एक अपरिहार्य आवश्यकता है।''

वर्तमान विश्व समुदाय के सम्मुख युद्धों को रोकना और शान्ति बनाये रखना एक प्रमुख चुनौती है। शीत युद्ध की समाप्ति के बावजूद संघर्षो का अन्त नहीं हुआ है। अन्तर्राज्यीय और आतंकवाद की समस्याएं वर्तमान समय में मानवता के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियां है। यद्यपि विश्व 21वीं सदी में विशेष वैज्ञानिक व तकनीकी उपलब्धियों के साथ प्रवेश कर चुका है फिर भी संघर्ष की समस्या आज भी अविजित चोटी के समान राजनेताओं एवं राजनीतिक संस्थाओं के सम्मुख बिना किसी समाधान के खड़ी है। नागरिक ठिकानों पर बढ़ते हुए आतंकवादी हमलों, पड़ोसी मुल्कों में बढ़ता हुआ कट्टरवाद, नेपाल में माओवादी शासन, अफगानिस्तान में अस्थिरता और श्रीलंका में तमिल चीतों का आतंक तथा चेचेन्या का संघर्ष आदि कुछ ऐसी समस्यायें है जो कि तत्कालीन विश्व शान्ति को चुनौती दे रखी है। यद्यपि समय- समय पर संघर्षो को रोकने के लिए और शान्ति व्यवस्था अथवा आध ारभूत ढांचा बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र या फिर अन्य संस्थाओं की स्थापना विश्व शान्ति को लम्बे समय तक बरकरार रखने के लिए की गई, परन्तु यह आज भी प्रभावी रूप से कार्य करने में सक्षम सिद्ध नहीं हुए हैं। शान्ति के लिए विभिन्न विचारधाराओं की असफलता हमें बाध्य करती है कि, हम एक ऐसे माडल या ढांचा की ओर ध्यान केन्द्रित करें, जिसका सम्बन्ध शान्ति से हो। इन तथ्यों के अन्तर्गत संघर्ष समाधान और विश्व शान्ति के लिए विकल्पीय सोच के परिप्रेक्ष्य में गांधीवादी विचारधारा का परीक्षण किया जाना अनिवार्य हो गया है। यद्यपि गाँधी जी ने क्रमानुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के किसी सिद्धान्त का निर्माण नहीं किया और ना ही कोई सैद्धान्तिक माडल का प्रतिपादन किया, और ना ही विश्व शान्ति हेतु किसी ''माडल'' की संरचना प्रस्तुत की। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि तत्कालीन विश्व में विद्यमान संघर्ष एवं शान्ति की समस्या रूपी विषयों पर उनका कोई दर्शन नहीं था. अन्तर्राष्ट्रीय मामलों एवं विश्व युद्धों के मामले में उन्होंने अपने विचारों को अधिक मात्रा में विश्व ढ़ांचा और भूमण्डल शान्ति के संदर्भ में प्रस्तुत किया।

गाँधीवादी शान्ति सिद्धान्त, शान्ति के परम्परागत सिद्धान्त जिसका अर्थ युद्ध की अनुपस्थिति है, से पूर्णतया भिन्न है। विभिन्न शान्ति माडलों जो कि 14वीं सदी से कार्यरत है, वे शान्ति को पूर्णतया नैतिकतावादी दृष्टिकोण से देखते हैं। यहाँ तक कि विश्व शान्ति की दो पूर्णतया विरोधी विचारधारायें - विल्सनवादी, आदर्शवादी एवं नेरोविचन आदर्शवाद भी शान्ति की गणना युद्ध की अनुपस्थिति से करते हैं। जिसमें कि पहली विचारधारा संस्थानों के माध्यम से शान्ति पर जोर देती है, और दूसरी शक्ति संतुलन द्वारा शान्ति व्यवस्था बनाये रखने पर ध्यान देती है। इसके अलावा अन्य मौजूदा दृष्टिकोण भी शान्ति को इसके परम्परागत और नकारात्मक दृष्टिकोण से ही देखते हैं। यहाँ तक कि शान्ति शोध के अग्रेताओं जैसे एल0एफ0 रिचट्सन, क्वींसी राइट, थ्यूडोलेंच और अन्तिम पड़ाव पर डेविड सिंगर भी शान्ति के नकारात्मक विचार जैसे कि युद्ध की अनुपस्थिति की व्याख्या नहीं कर सके। इन विचारकों के अतिरिक्त शस्त्र नियंत्रण और निशस्त्रीकरण के प्रयास जो कि संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से किये गये, वे सभी युद्ध को टालने के लिए किये गये थे। यहाँ तक कि उन्नतिशील सूक्ष्मवादी विचारकों जैसे कैथ, बाउल्डिंग और अनातौल के अनुसार, ''स्थाई शान्ति वह स्थिति है जिसमें युद्ध की सम्भावना न्यून होती है। जो उन्होंने सुझाया वह यह है कि, ''शान्ति का अर्थ युद्ध की अनुपस्थिति के साथ-साथ युद्ध के साधनों और संस्थाओं की अनुपस्थिति से भी है।''

शान्ति के सूक्ष्मवादी दृष्टिकोण के विपरीत प्रसिद्ध समाज शास्त्रीय गैटलंग ने शान्ति के विप्लववादी विचार का प्रतिपादन किया। यह शान्ति की विस्तृत व्याख्या मानी जाती है। शान्ति के इस बिन्दु के अनुसार ''व्यक्तिगत हिंसा की अनुपस्थिति कभी भी पूर्णतया आगे नहीं बढ़ती है।'' शान्ति की परिभाषित शर्त है लेकिन फिर भी विप्लववादी हिंसा के प्रयोग को नकारते नहीं हैं। सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए हिंसा की छोटी सी मात्रा शान्ति स्थापना की प्रक्रिया पर उपचारात्मक प्रभाव डालती है। गाँधीवादी विचारों के अनुसार शान्ति एक सकारात्मक एवं विस्तृत अनुमान है। वास्तव में गांधी जी ने सुझाव दिया है कि अहिंसा शान्ति के लिए अनिवार्य शर्त है लेकिन मात्र अहिंसा ही शान्ति नहीं है यह एक लम्बी अवधि की प्रक्रिया है इसमें विचारधारा और सम्पूर्ण व्यवस्था का ढांचा शामिल है। उनके शान्ति के विचार धार्मिक और आध्यात्मिक होने के साथ-साथ सामाजिक और ढाँचागत भी है उनके धार्मिक और आध्यात्मिक विचार आत्मविषयक, नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित हैं। वास्तव में गाँधी जी का शान्ति का विचार शान्ति के नीति मनोविज्ञान और अहिंसा जो कि तुरन्त ही समस्त झगड़ों और संघर्षो को रोकती है, पर आधारित है। लेकिन अहिंसा की मुख्य आध्यात्मिक और नीतिशास्त्रीय आधार के अतिरिक्त युद्ध की समस्या और शान्ति मूल रूप से हमारी सभ्यता के ढांचे, समाज विकास के तकनीकी माडल और राज्य के ढांचे पर निर्भर करती है। शान्ति स्वयं में वस्तु नहीं है वरन् अनेक तत्वों

का सम्मिश्रण है, जो कि ऐसी अवस्था को उत्पन्न करती है, जहाँ व्यक्ति प्रसन्नता एवं संतुष्टि का जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार उन्होंने शान्ति के सम्पूर्ण पक्ष को धारण किया है। उनका मानना था कि ''मानव समाज पानी से भरे हुए दो डिब्बों की तरह बंटा हुआ नहीं है जिन्हें हम सामाजिक राजनीतिक व धार्मिक नाम से जानते हैं। यद्यपि यह एक पूर्ण एकीकृत इकाई है।

गाँधीवादी विचार मानता है कि, शान्ति और संघर्ष की समस्या को सम्पूर्ण जीवन के दर्शन के रूप में समझना चाहिए। उनके लिए संघर्ष और युद्ध एकांगी समस्याएँ नहीं हैं जिनका अलग- अलग तरीकों से समाधान हो सके। वह संघर्ष की समस्या को एक विस्तृत दृष्टिकोण से देखते हैं, जहाँ पर हिंसा को मानवीय जीवन के समस्त स्तरों जैसे व्यक्तिगत परिवार, गांव, समाज, राज्य, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन किया जा सके। संघर्षों का उदय इसलिए होता है क्योंकि जीवन के हरेक अंग में हिंसा का प्रभाव दिखाई देता है। इसलिए विश्व शान्ति मात्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में हिंसा को नियंत्रित करके प्राप्त नहीं की जा सकती है। व्यक्तिगत के साथ- साथ उसका स्थानीय, राष्ट्रीय, व अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण भी हिंसा को प्रभावित करता है। व्यक्ति कड़े आत्मानुशासन द्वारा स्वयं को नियंत्रित करता है जबकि विश्व के राष्ट्रों को अहिंसा की सीमाओं के साथ- साथ पुनर्निमाण करना चाहिए। इसी लम्बी सोच के तहत एक शान्तिमय भूमण्डलीकरण की संरचना की जा सकती है। भूमण्डलीय शान्ति की तरफ प्रारम्भिक कदम वास्तव में मनुष्य का पूर्ण रूपेण परिवर्तन है। विश्वशांन्ति की मात्रा आत्मानुशासन, और व्यक्तिगत निष्ठा से प्राप्त होती है। विश्व शान्ति के लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अअधिग्रहण, पवित्रता, मौन, भयहीनता, और अस्पृश्यता का अन्त, सहनशीलता, विनम्रता और स्वदेशी की व्यक्तिगत शपथों पर आधारित है। ऐसा करने के लिए हिंसा और वासना पर नियंत्रण अनिवार्य है। यह स्वयं को दूसरों के लिए अर्पित करने और दूसरों के लिए कष्ट सहने की भावना को पैदा करने की मांग करती है। इस प्रकार गाँधी की शान्ति की योजना व्यक्ति के रूप में परिवर्तन से शुरू होती है।

शान्ति के सम्बन्ध में गाँधीवादी विचारधारा का अगला कदम सामाजिक ढांचे का पूर्ण रूप से पुनः उत्पादन करने से है। उनका सामाजिक ढांचा मात्र व्यक्तिवादी अणुवाद, और एक केन्द्रित नहीं है अपितु उन्होंने बहुत मजबूती से सामुदायिक जीवन की उपयोगिता के सम्बन्ध में सलाह दी है। जहाँ पर भावना और अन्तर्भावना का मजबूत बन्धन विद्यमान होता है। उनके लिए समाज राज्य से प्रध ान है। समाज के द्वारा राज्य को नियंत्रित और प्रतिबन्धित करना चाहिए एवं व्यक्तियों व समाजों को मजबूत एवं उत्तरदायी बनाना चाहिए।

व्यक्तिगत और सामाजिक पुनर्जन्म के पश्चात गाँधी जी ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तथ्यों को स्वीकारा है। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रवाद को अहिंसकीय पुनर्निमाण और सुधार के माध्यम से अध्ययन करने की वकालत की है। अन्य शब्दों में उन्होंने सहनशील शान्ति को स्थापित करने के लिए मूल से शिखर की ओर कदम बढ़ाते हुए अनुशासन और व्यक्तिगत प्रशिक्षण पर बल दिया, जिससे कि बाद में शान्ति के लिए प्रयास स्वतः ही क्रियान्वित हो सके, और दूसरी ओर राष्ट्रों के राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक ढांचे को अहिंसा की सीमाओं के आधार पर परिवर्तन तथा पुनर्निमाण पर जोर दिया। अन्त में यह विश्व के राष्ट्र होंगे जो स्वयं को विश्व संस्था या अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के द्वारा व्यवस्थित करेंगे। लेकिन उन्होंने चेताया कि विश्व संस्था का ढ़ांचा मात्र अहिंसा की नींव पर ही खड़ा किया जा सकता है और विश्व मामलों में हिंसा का त्याग करना पड़ेगा। गाँधी जी के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय समाज एक राज्यों का समान हितों के लिए स्वयंसेवी संगठन होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक राष्ट्र को स्वयं को बलिदान करने के लिए तत्पर करना होगा।

शान्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गाँधी जी सुझाव देते हैं कि, समाज की पुनर्रचना के लिए व व्यक्ति के परिवर्तन के लिए सत्याग्रह, हिंसा और सत्य जैसी योजनाओं को अपनाया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में गाँधीवादी संघर्ष समाधान का तरीका, सत्याग्रह और अहिंसा पर आधारित है।

गाँधीवादी विचारधारा में संघर्ष समाधान का अर्थ है सत्य का अनुकरण। सत्याग्रह की कार्यविधि शत्रु पर अनेक अवस्थाओं में विजय प्राप्त करने की अनुमति देती है- तर्क के द्वारा मनाना, आत्मपीड़ा के द्वारा, और सत्याग्रह के द्वारा, अहिंसा के द्वारा तथा अन्य बल पूर्वक लागू किये जाने वाले सिद्धान्त जैसे-असहयोग, अवज्ञा, बहिष्कार, धरना, हड़ताल, उपवास आदि । यदि तर्क के द्वारा मनाना या आत्मपीड़ा आदि सफल नहीं होते हैं, तो भी गांधी जी हिंसा का त्याग करते हैं क्योंकि यह शान्ति व्यवस्था को बनाये रखने में सहायक होने की बजाय संघर्ष और कभी न खत्म होने वाली हिंसा के चक्र को बढ़ावा देती है।

गाँधी जी का सत्याग्रह एक सकारात्मक सिद्धान्त है जो कि मात्र हिंसा की अनुपस्थिति से सम्बन्धित न होकर, अपितु सत्य के पूर्ण रूपेण पालन पर आधारित है। उन्होंने लगातार 'सिरों और अर्थों (म्दके दक उमंदे) के मध्य अन्तर क्रिया पर जोर दिया है। उनकी

बहस का मुख्य जोर इस बात पर है कि अच्छे अन्त या अच्छे समाधान अच्छे अर्थों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह के चार मूल विचारों पर जोर दिया गया है, यह अनिवार्यत: आत्मबल का प्रयोग है। यह शारीरिक बल के प्रयोग से पूर्णतया अलग है। सत्याग्रह के कष्टों के द्वारा यह हृदय से प्रार्थना करता है और इसी के माध्यम से गलत कार्य करने वालों को बदलने के लिए प्रेरित करता है। अन्त और माध्यम परिवर्तनीय शर्ते हैं जैसे कि, जैसा माध्यम वैसा ही अन्त । अच्छे निष्कर्ष मात्र अच्छे माध्यम द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि सत्याग्रह आत्मा की शल्य चिकित्सा है जो कि विरोधियों के लिए आवश्यक है जब कि यह बातें करने के लिए अथवा विनम्रता और सद्भावना तथा अच्छी इच्छा के अनुसार कार्य न करना चाहे। अन्तिम निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि गांधीवादी तकनीकों का लक्ष्य राष्ट्रों व समाज के व्यक्तियों के दिमागों व हृदयों को परिवर्तित करना है। आत्मबल के विकास के द्वारा तत्कालीन विश्व व्यवस्था को शान्तिपूर्ण विश्व व्यवस्था में परिवर्तित किया जा सकता है। वास्तव में गांधीवादी शान्ति की धारणा अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति की सीमाओं को परिवर्तित कर देती है। क्योंकि यह शक्ति व्यवस्था जो कि मान्यता पर आधारित है, जबकि गाँधीवादी सोच का अर्थ है अहिंसा और शोषण के विरुद्ध सामाजिक व्यवस्था जो कि अकेले ही न्याय और सहनशील शान्ति को निर्धारित करते हैं।

वर्तमान विश्व में हथियारों, विशेष रूप से परमाणु हथियारों में अद्वितीय वृद्धि चिन्ता का विषय है। शक्तिशाली राष्ट्रों ने सुरक्षा के नाम पर मानवता के हित को नकार दिया है। शक्तिशाली आर्थिक, सैन्य और औद्योगिक संस्थान ही महान शक्तिशाली नीतियों का निर्धारण करते हैं। गांधी जी की सोच शक्ति की प्राप्ति के लिए इस प्रकार की विश्व व्यवस्था के आधिपत्य से दूर रहने से है।

शक्ति राजनीति के इस युग में शान्ति के प्रति गांधीवादी सोच पूर्णतया महत्वहीन प्रतीत होती है। लेकिन यदि तनाव, संघर्ष और हथियारों की दौड़ जारी रहती है तो यह गांधी के शान्ति सिद्धान्त की असफलता नहीं है बल्कि राज्य व्यवस्था जो कि शक्ति प्रधान है के स्वाभाविक विरोधाभास के कारण से है।

नाभिकीय अस्त्रों के वर्तमान युग में मानवता का चयन जीवन या मृत्यु, अहिंसा और अस्तित्वविहीनता पर निर्भर करती है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का मानवीकरण करने की आवश्यकता हैं और इसलिए गाँधीवादी संघर्ष समाधान और विश्व की तकनीकें इस नाभिकीय क्षमता के युग में सबसे अधिक उपयोगी प्रतीत होती है। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि अहिंसा के गाँधीवादी सिद्धान्त का अभी भी परीक्षण किया जाता है। यदि ऐसा न होता तो कहा जा सकता था कि गाँधी जी ने सैद्धान्तिक और व्यवहारिक आधार पर अहिंसा की रक्षा के लिए अच्छी व्यवस्था करते हुए युद्ध की समाप्ति के लिए व्यवहारिक दृष्टिकोण के साथ प्रेरणा प्रदान की। गाँधीवादी सोच ने निश्चित रूप से विश्व शान्ति के लिए एक माडल विकल्प तैयार किया है, जो सवाल गाँधी जी ने उठाये थे आज के सम्पूर्ण विश्व समुदाय के लिए वैध प्रश्न है। जैसे कि वे पूंछते हैं कि, ''क्या हमारा संसार हमेशा ही हिंसा से ग्रस्त रहेगा? क्या हमेशा गरीबी, भुखमरी, निर्धनता रहेगी? क्या संसार कभी देवता विहीन होगा? यदि कभी समाज में महान परिवर्तन होता है तो वह परिवर्तन किस प्रकार आयेगा? युद्ध के द्वारा, क्रान्ति के द्वारा, या यह शान्तिपूर्वक आयेगा? यदि हम वास्तव में विश्व व्यवस्था का शान्तिपूर्ण परिवर्तन चाहते हैं तो निश्चित रूप से शान्ति के प्रति गाँधीवादी सोच इस दिशा में एक उपयोगी विकल्प सिद्ध होगा।

इतना सब कहने सुनने के बाद भी यह स्वीकार किया जायेगा कि राजनीति की और साधारण मानव जीवन को गाँधी की सबसे बड़ी देन उनकी अहिंसा की शिक्षा और अहिंसा व्यवहार था। उन्होंने 1920 में ही लिखा था, ''जिस प्रकार हिंसा पशुओं का नियम है उसी प्रकार अहिंसा मानव-जाति का नियम है। आत्मा पशुओं में सोई हुई रहती है और वह केवल शारीरिक शक्ति को ही जानता है। मानव महत्व का तकाजा है कि हम एक उच्चतर नियम को, आत्मा के संघर्ष को मानें....... अहिंसा एक पूर्णता की अवस्था है। यह वह लक्ष्य है जिसकी ओर मानव समाज स्वाभाविक और अनजाने तौर पर बढ़ता जाता है।'' (यंग इण्डिया, 14 अगस्त, 1920) उन्होंने फिर लिखा, ''मेरे लिए अहिंसा केवल एक दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है। यह मेरे जीवन का ताना बाना है। यह दिमाग की चीज न होकर हृदय की चीज है।'' गाँधी जी किसी भी अर्थ में अहिंसा के सिद्धान्त के या इसी प्रकार के अन्य सिद्धान्तों के प्रवर्तक नहीं थे। पर वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सामूहिक तौर पर और राजनीतिक क्षेत्र में इन सिद्धान्तों को लागू किया। अगर गाँधीवादी अहिंसा की विचार धारा को लागू किया जाता है तो पातंजलि का यह सूत्र अक्षरश: सार्थक होगा जिसमें कहा गया है कि-

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: ।

संदर्भ

1. हरिजन
2. एम०के० गाँधी-नान वाइलेन्स इन पीस एण्ड वार
3. यंग इण्डिया
4. एम0के0 गाँधी-टूवर्डस नान वाइलेन्स सोशलिज्म
5. तेन्दुलकर- महात्मा
6. एम0के0गाँधी की ऑटोबायोग्राफी, भाग-4
7. के०जी० मशरूवाला- गाँधी विचार दोहन
8. धवन- द पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी
9. कृपलानी- द गाँधीयन वे
10. गाँधी जी- माई एक्सपेरिमेन्ट्स विद ट्रूथ
11. रोमा रोला- महात्मा गाँधी
12. सीतारमैया- गाँधी एण्ड गाँधीज्म
13. डॉ० वी० पी० वर्मा- द पोलिटिकल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधी
14. बी० स्वरूप- गाँधी जी ऐज ए पोलिटिकल थिंकर

सूफी मतः परम्परा एवं सिद्धान्त

डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.

ऐतिहासिक अध्ययन से किसी मत का सच्चा स्वरूप अपने शुद्ध रूप में प्रकट होता है और उसके उद्‌भव एवं विकास का भी यथोचित पता चलता है। सूफी मत इस्लाम धर्म का एक प्रमुख अंग माना जाता है। यद्यपि अनेक सूफियों ने अपने को मुहम्मदी मत से पृथक रखने की पूरी चेष्टा की है तथापि उनके आख्यानों में मुहम्मद साहब का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। सूफी संतों में इतना फर्क अवश्य दिखाई देता है कि उनके स्वभाव में कट्टरता का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। इसी कारण कट्टरपंथी मुसलमान उन्हें इस्लाम से कुछ भिन्न समझते थे।

सूफी मत के उद्‌भव एवं विकास पर विचार से पूर्व हमारे लिए आवश्यक है कि 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति पर भी विचार कर लिया जाय। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भी अनेक मत हैं। कुछ लोगों का मत है कि मक्का मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उसी पर जो फकीर बैठे वे सूफी कहलाये। दूसरा मत यह भी है कि निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों से अलग एक सफ (पंक्ति) में खड़े किए गए उन्हीं को सूफी कहा गया। तीसरा मत मानता है कि उनकी स्वच्छता एवं पवित्रता के कारण उन्हें सफा अर्थात् सूफी कहा गया। चौथे मतानुसार 'सूफी' शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपान्तर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पंचम मत के अनुसार सूफी शब्द सफेद ऊन से बना है। सूफी संत सफेद ऊन के कपड़े पहनते थे, इसलिए सूफी कहलाए। सूफी का प्रयोग मुस्लिम संत या फकीर के लिए ही अब नियत रूप से होने लगा है। इस पर लगभग सभी विद्वान एकमत हैं।

सूफी मत के उद्‌भव के लिए इस्लाम धर्म से पूर्व प्रचलित शामी जाति के धर्म का अध्ययन भी आवश्यक है। मुहम्मद साहब का प्रादुर्भाव तो बाद में हुआ। मुहम्मद साहब के इस्लाम से शामी जातियों में रक्त का संचार हुआ। इस्लाम के उदय से सूफी मत के सभी अंग पुष्ट हो चुके थे। इससे होता है कि सूफी मत का आविर्भाव मोहम्मद साहब पूर्व हो चुका था। मोहम्मद साहब के ग्रन्थ में सही सिद्धान्त भी पाये जाते है। इसी आधार पर अपने मत को इस्लाम के अन्तर्गत मानते हैं।'

मुसलमानों के पतन के बाद मसीहियों का विकास हुआ। सूफियों और मसीहियों में बहुत साम्य परन्तु जैसे कुरान की सहायता से सूफी मत इस्लाम का प्रभाव नहीं सिद्ध हो सकता वैसे ही इंजील के आधार पर उनको मसीह मत का प्रसाद नहीं कहा जा सकता। कुछ सूफियों का कहना है कि सूफी मत का आदम में बीज-वपन, नूर में अंकर इब्राहीम में कली, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक एवं मुहम्मद में मधु का फलागम हआ।

सूफी मत के मूल स्रोत का पता लगाने के लिए हमें उसके सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करना चाहिए। वास्तव में सूफी मत प्रेम भावना पर आधारित है। भारत में परमात्मा के साकार स्वरूप को खड़ा कर जिस माधुर्य भाव का प्रचार किया गया उसी का प्रसाद शामी जातियों में निराकार के आलम्बन से मादन-भाव के रूप में प्रकट हुआ। सूफियों के इस प्रेमवाद के दर्शन मीरा व आंदाल के प्रेम में होते हैं। वस्तुतः सूफियों के प्रेम का उदय संसार में प्रचलित देवदास एवं देवदासियों की प्रथा से हुआ और कर्मकाण्डा नबियों के घोर-विरोध के कारण उनको परम प्रेम की पदवी प्राप्त हुई।

बारहवीं शताब्दी के आखिर में जब सूफी लोग भारत में आये, तब सूफी मत पर अनेक भारतीय प्रभाव पड़े। सूफी मत पर सबसे अधिक प्रभाव भारतीय वेटांत का पड़ा। दूसरा भारतीय प्रभाव हठयोगियों का पदा। सफियों ने योगियों से प्राणायाम की शिक्षा ली। अतः उनके सिद्धान्तों पर यत्र-तत्र हठयोगियों का प्रभाव दिखता है।

भारतवर्ष में सूफी मत का प्रवेश कुछ विद्वान ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से मानते हैं। श्री परशुराम चिश्ती इसका श्रेय अल्हुज्वरी को देते हैं। अल्हज्वरी ने सूफी मत के सिद्धान्तों का विश्लेषण करने के लिए एक ग्रन्थ 'कुश्फुल महजूब' 12 वीं शताब्दी में लिखा। इसमें सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख है। प्रमुख 12 सूफी सम्प्रदायों का वर्गीकरण भी प्राप्त होता है। भारत में सूफी मत चार सम्प्रदायों में प्रचलित हुआ। ये सम्प्रदाय हैं- चिश्तिया, सुहवंदिया, काहिरिया तथा नक्शवंदिया। इनमें से पहले दो सम्प्रदाय 12 वीं शताब्दी में एवं अंतिम दो सम्प्रदाय 15 वीं शताब्दी में उद्‌भूत हुए। आचार-विचार में सूक्ष्म अन्तर के साथ चारों सम्प्रदायों में लगभग समानता है। इनकी प्रमुख विशेषताएं प्रेम की प्रधानता सामाजिक समता मानव तत्व का महत्व एवं पूर्ण मानव का ईश्वर से अभेद आदि हैं। ये मत अपने धार्मिक दृष्टिकोण में बहुत स्वच्छन्द हैं। इन सम्प्रदाय के रचनाकारों ने लोकप्रिय प्रेम गाथाओं के माध्यम से सूफी मत के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति की है। प्रेम काव्य का प्रारम्भ आदिकाल से हो जाता है जब मुल्ला दाऊद ने चन्दावली (चांदायन) की रचना की। इसका पूर्ण परिपाक मलिक मुहम्मद जायसी में दिखाई पड़ा। वे सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और उनका प्रेम काव्य सूफी मत एवं हिन्दी साहित्य दोनों ही दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है। इस परम्परा के अधिकांश काव्य शुद्ध लोक रंजन की भावना से रचित हैं। इन रचनाओं के नामकरण प्रायः नायिकाओं के नाम पर अथवा नायक-नायिका दोनों के नाम पर हैं। इनकी कथावस्तु में इतिहास, कल्पना और रूढिघ का योग है। इसी परम्परा में हंस जवाहिर (कासिम शाह) कुतुबन, मंझन, शेख-निसार आदि का उल्लेखनीय स्थान है।

सूफी मत का भारत में प्रवेश मुसलमान साधुओं के साथ हुआ। इस परम्परा के कवियों ने लौकिक प्रेम और लौकिक सौन्दर्य को अलौकिक रूप में देखा और व्याख्यायित किया। सूफी सम्प्रदाय हिन्दू धर्म से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। सूफी लोग हिन्दुओं के सर्वेश्वरवाद के निकट पहुँच जाते हैं। ये लोग अत्यन्त विनम्र एवं सरल स्वभाव के होते हैं। इस्लाम धर्म से निकलकर और हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर सूफी धर्म इस्लाम और हिन्दू धर्म का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार निर्गुणियां संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया। उसी प्रकार सूफी सन्तों ने सांस्कृतिक एकता का प्रयास किया। सूफी ईश्वर को अपने प्रेम पात्र के रूप में देखना चाहते हैं। इनके अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन में शैतान बाट क है। सूफी संतों ने हिन्दू घरानों की प्रेमगाथाओं को लेकर अपने अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की । जायसी इस शाखा के प्रधान कवि थे। कुतुबन, मंझन, उसमान, शेखनबी, कासिम शाह, नूर मोहम्मद फाजिलशाह आदि कवि भी इसी परम्परा के थे। कुछ हिन्दू कवियों जैसे मोहनदास, हरिराज, दामों आदि ने भी प्रेममार्गी परम्परा को अपनाया।

सूफी मतानुसार ईश्वर एक है जिसका नाम 'हक' है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए आत्मा को शरीयत, तरीकत, हकीकत तथा मारिफत पार करनी पड़ती है। मारिफत में रूह 'फना' हो जाती है। इस फना होने में उसका प्रेम ही सहायक है। आत्मा-परमात्मा के ऐक्य को ही अन्-अल-हक्क (मैं ईश्वर हूँ) कहा गया है। सूफी सन्तों का ईश्वर सृष्टि का कर्ता, अलख अनादि, अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और अनन्त है। इनके मतानुसार जीव ब्रह्ममय और संसार नश्वर है। सूफियों के अनुसार ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रेम है। यह प्रेम निश्छल, निष्कपट और निःस्वार्थ है। सूफी फकीर इस प्रेम के नशे में मस्त होकर परमात्मा मे मन लगा लेता है। उनका मन बाह्य जगत से विरक्त हो जाता है। सूफियों ने इसी प्रेम तत्व के कारण ब्रह्म के स्त्री रूप में माना है। वह उससे प्रेम की भीख माँगत है। ईश्वर उसके सम्मुख एक दैवीय स्त्री के रूप में प्रकट होता है।

शंकर मतानुसार आत्मा-परमात्मा के मिलन में माया बाधक है जबकि सूफी माया के स्थान पर शैतान को बाधक मानते हैं जायसी के पद्मावत का शैतान राघवचेतन है। जैसे संतों का गुरु माया जगत से बचाता है वैसे सूफियों का गुरु (पीर) शैतान से बचाता है। वह हमें सन्मार्ग पर ले जाता है। कुरान में ब्रह्म-जीव का सम्बन्ध स्वामी और सेवक का है। सूफियों ने वेदांतियों की तरह जीव को ब्रह्ममय माना है। आदमी अल्लाह का प्रतिरूप है। अल्लाह और बंदे में कोई भेद नहीं है। सूफियों पर अद्वैतवादियों का काफी प्रभाव पड़ा है परन्तु साधना-पक्ष मे वह वेदान्त के केवलाद्वैत के बहुत निकट है। यद्यवि वेदान्त ज्ञानाश्रित और सूफीमत भावाश्रित है।

सूफियों की दृष्टि में सृष्टि का उपादान कारण 'रूह' है। रूह का अर्थ अलौकिक शक्ति है जो मनुष्य के अंश रूप में स्थित है। सूफियों के विचार में सृष्टि के सारे उपादान अंग-प्रत्यंग की झलक है। सूफियों के मतानुसार सृष्टि वह दर्पण है जिसमें अल्लाह के आत्मदर्शन की कामना पूर्ण होती है। इस दर्पण में अल्लाह का जो बिम्बांकन है, वही इन्सान है। आत्मा-परमात्मा में अभेद सम्बन्ध है। कुछ सूफी परम सत्ता में जीव का लोप मानते हैं कुछ में अंशतः मानते हैं। सूफी साधक स्वयं में अन्-अल-हक्क का अनुभव

करता है। उसे साधना की जरूरत पड़ती है, जो विरह की साधना है। सूफी दिन-रात उसे महामिलन की आकुलता का अनुभव करता है। हंसावली, चन्दायन, स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, खण्डरावती, मधुमालती, प्रेमावती, पद्मावत, युसुफ जलेखा आदि इसी वर्ण्य विषय की रचनाएं हैं।

सूफी मत पर वस्तुतः भारतीयता का एवं वेदानत दर्शन का गहरा प्रभाव है। कुछ लोग सूफी मत को वेदांत का मधुर रूपान्तर मानते हैं। सूफियों पर बौद्ध के महायान एवं सहजयान का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। कुल मिलाकर सूफी परम्परा हिन्दी काव्य साहित्य का अनमोल अध्याय है। यह अध्याय वह रसाला है जो सुधापम निधि है। सूफियों का प्रेम गोपियों का कृष्ण प्रेम है, हनुमान का राम प्रेम है और सहजमानव का साधारण लोक प्रेम है। सूफियों के प्रेम-चषक पान से भारत की धरा धन्य हो गयी।

संदर्भ सूची-

(1) सूफी संत रूमी - विश्वनाथ, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण।

(2) सूफी, शशिकान्त सदैव, डायमंड पॉकेट बुक्स।

(3) सूफी संत और उनकी कथाएं, शिव शर्मा, अतिन प्रकाशन।

(4) सूफी मत और हिन्दी सूफी काव्य, डॉ0 नरेश, वाणी प्रकाशन।

(5) चिश्तिया सूफी सम्प्रदाय, डॉ0 मोहन लाल गुप्ता, सुभद्रा प्रकाशन।

ममता कालिया का उपन्यास 'नरक दर नरक': समसामयिक सामाजिक सन्दर्भों का दस्तावेज

डॉ० सुधा

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी, रमाबाई राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ०प्र०

समसामयिकता से साहित्य, समाज व जीवन अछूते रहे हों, ऐसा कभी भी सम्भव ही नहीं हुआ है। प्राचीन समय से लेकर तत्कालीन समय भी इसका साक्षात् प्रमाण है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समसामयिकता व्यापक धरातल पर साहित्य की सभी विधाओं एवं समाज को प्रभावित कर नई दिशा देती है। किसी भी देश की किसी भी प्रकार की क्रान्ति को देखिए विशेषतया सामाजिक क्रान्ति को, तो इसमें आप देखेंगे कि सान्दर्भिक तत्त्वों के विवेचन पर समसामयिकता का प्रश्न उसके मूल से अत्यधिक गहरे रूप में जुड़ा है। इसका मुख्य कारण यह भी रहा है कि अपने सम्पूर्ण परिवेश की उपेक्षा करके कदाचित कोई साहित्य आज तक रचा ही नहीं गया है और यदि कोई ऐसा है तो वह निश्चित रूप से साहित्यिक कोटि में नहीं स्वीकार किया गया है।[1]

ममता कालिया आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक अत्यधिक मूर्धन्य, समर्थ एवं वरिष्ठ साहित्यकार हैं। यह साठोत्तरी पीढ़ी की प्रमुख हस्ताक्षर रही हैं। यह हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा करते हुए वर्तमान समय में भी अपने पूरे तेवर के साथ मौलिक रचना में संलग्न हैं। इन्होंने आठ उपन्यासों की रचना की है, जिसमें इन्होंने सामयिक विषयों को अत्यन्त प्रवाहमयी व स्वाभाविकता के साथ प्रकट किया है, जिससे यह एक सामयिक विषयों की युग चौतन्य साहित्यकार के रूप में सामने आई हैं। नारी मनोविज्ञान के साथ ही सामाजिक विसंगतियों का बोध एवं उनसे उबरने की बेचौनी ही इनके लेखन की मुख्य पहचान है।

'नरक दर नरक' उपन्यास में सामाजिक सन्दर्भ सुरसा के मुँह की भाँति ज्वलन्त रूप में उपस्थित हुए हैं, जो सभी युगों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं। 'नरक दर नरक' उपन्यास अपनी उन्मुक्तता द्वारा जहाँ एक ओर मन को अभिभूत करता हैं, वहीं दूसरी ओर जल-प्रपातों से जूझने की चेतना को भी सबल बनाता है, जहाँ यह अपने रागात्मक स्वरों में शान्ति प्रदायक हैं, वहीं यह वर्तमान के साथ भूत-भविष्य के सन्दर्भों को छूते हुए करारे व्यंग्यों द्वारा तिलमिलाहट भी उत्पन्न करता है। इसका हल्का-फुल्का स्वरूप जहाँ एक ओर पाठक को अपनी गुंजलिका में लपेट भरपूर प्रभावित करता है; वहीं दूसरी ओर जीवन की टूटन, घुटन, विसंगतियों, विडम्बनाओं को भी अपनी भावमयी सम्वेदना द्वारा स्वर देना भी उसे अभिप्रेत है। इनका यह उपन्यास जीवन की समग्रता को छूने, परखने का ऐसा संवेद्य चित्र है जो अमानवीय यान्त्रिकता, कुटिलता, क्रूरता के प्रति झकझोर देता है। सामाजिक सन्दर्भों को स्पष्ट करने हेतु इसमें प्रयुक्त शब्द जितने सरल हैं उतने ही पैने भी हैं, स्वर जितने सम्मोहक हैं ध्वनियाँ उतनी ही भेदक हैं। कसी हुई प्रत्यंचा में सामाजिक जीवन की विविध स्तरीय पीड़ाओं का सन्धान करना ही इसका पोषक तत्त्व है।

इनके इस उपन्यास में मुख्यतः शिक्षा समस्या, भ्रष्टाचार, नारी समस्या, असफल प्रेम विवाह, अवैध सम्बन्ध, महानगरीय समस्या (मकान न मिलने की समस्या) को व्यापक स्तर पर चित्रित किया गया है। इन्हीं समसामयिक सामाजिक सन्दर्भों व समस्याओं को संक्षिप्त रूप में इनके उपन्यास के उद्धरणों द्वारा यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

महानगर में मकान न मिलने की समस्या सबसे जटिल समस्या है। मकान की तंगी की समस्या को इस उपन्यास में जगन-उषा, आतिश जैसे पात्रों के द्वारा व्यक्त किया गया है। उपन्यास का नायक जगन व नायिका उषा प्रेम विवाह कर मुम्बई जैसे महानगर में मकान ढूँढ़ने में लग जाते हैं। इन्हें यहाँ एक बहुत ही छोटा, बदबूदार, सीलनभरा कमरा मिलता है। जहाँ कमरे की रसोई में नायिका का दम घुटता रहता है। इस मकान में रोशनदान के अलावा हवा आने-जाने का कोई भी अन्य रास्ता नहीं होता है और कमरे की फर्श पर धूल व गुसलखाने में तिलचट्टों का निवास ही अधिक है।[2]

मकान मालिक गैर जाति के लोगों को मकान देने में किस तरह बहानेबाजी करते हैं, इसका चित्रण आतिश पात्र के माध्यम से इसमें चित्रित हुआ है। आतिश जगन व उषा को खोली ढूँढ़ने के अपने तजुर्बे बताते हुए कहता है कि उसे जगह तो बहुत सारी खाली मिली लेकिन मकान मालिकों के अपने-अपने बहाने थे। कोई मकान देने में ऐतराज करते हुए कहता है कि वह विवाहित नहीं तो कोई उसे हिन्दू न होने का बहाना बनाकर मना कर देते हैं। कभी-कभी तो मकान मालिक एडवान्स लेने की बात मन्जूर करके उसे दूसरे दिन फिर मना कर देते हैं। इस सन्दर्भ में लेखिका ने आतिश के माध्यम से उसके उद्‌गारों को निम्न रूप में रेखांकित किया है-

''बोला, ''न बाबा, तुम गाय का मांस खाओगे-पकाओगे, हम कैसे रहेंगे?'' आतिश ने लाख भरोसा दिलाने की कोशिश की कि वह तो सारा दिन दुकान पर रहता है, वहीं उसल-पाव या जो मिल जाए खा लेता है, घर में पकाने की नौबत ही कब आएगी, पर मकान मालिक नहीं माना।''[3]

जगन व उषा को मुम्बई के अलावा इलाहाबाद में जो मकान मिलता है, उसकी स्थिति भी अत्यधिक बदतर ही रहती है। इसका चित्रण इस उद्धरण में देखिए-

''गुसलखाने वाले हिस्से में नल नदारद था और पाखाने वाले हिस्से में फ्लश। बालकनी से होते हुए आँगन पार एक बड़ा-सा कमरा था, जिसमें एक तरफ दो पक्की अँगीठियाँ बनी थीं, यह रसोईघर था। नल आँगन में लगा था और अलमारी बरामदे में।''[4]

समाज में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या को भी जगन, आतिश जैसे पात्रों के माध्यम से इसमें रेखांकित किया गया है। ये शिक्षित हैं लेकिन इन्हें कोई उचित नौकरी नहीं मिलती है, जिससे इनका जीवन दयनीय बन जाता है। इसके लिए हर जगह व्याप्त भाई-भतीजावाद, सिफारिश व भ्रष्टाचार का बोलबाला भी रहा है। आतिश ने अपने दोस्तों से सुना था कि बम्बई एक कॉस्मोपॉलिटन शहर है और यहाँ उसे आसानी से काई भी काम व नौकरी मिल जाएगी। उसे यहाँ काम करने में उसका धर्म भी आड़े नहीं आएगा लेकिन वह यहाँ आकर पिछले चार साल से लोकलों, ऑफिसों, दुकानों आदि के धक्के खा चुका था। उसने यहाँ दर्जनों किस्म के अलग-अलग काम भी किए, जिनमें रद्दी खरीदने से लेकर रूमाल बेचने तक, सभी में वह यहाँ की अव्यवस्था, भ्रष्टाचार से ही त्रस्त रहा है। उसने ब्लैक में टिकटें बेचने का काम भी किया, जिस पर जगन ने उसे इस धन्धे को जालसाजी कह कर छोड़ने को कहा। उसकी बात सुन कर आतिश आश्वस्त न होकर मात्र चुप ही रहा-

''उसने डेढ़ महीने पहले यह धन्धा शुरू किया था। डेढ़ महीने पहले वह सारे शहर का चक्कर काट चुका था, चपरासीगीरी तक के लिए तैयार, लेकिन बिना वाकफियत के कोई उसे रखने को तैयार न हुआ। आखिर जब बूटलैगिंग में असफल हो गया तो चाल के दो छोकरों के साथ मैली पैंट और बढ़ी हजामत के साथ वह लिबर्टी पहुँच गया।''[5] इस सन्दर्भ में अन्यत्र भी उद्धृत है-
''उपन्यास में समाज व्यवस्था के मौजूदा वातावरण को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मध्यवर्गीय शिक्षित युवकों को अपनी सारी प्रतिभा, ईमानदारी, मेहनत और प्रथम श्रेणी की डिग्रियों के बावजूद रोजगार के लिए दर-दर ठोकरें खानी पड़ती हैं। भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद सब जगह हावी है।''[6]

आजकल विवाह पूर्व सम्बन्ध बनाना साधारण बात हो गई है, इसका चित्रण उपन्यास के पात्र जगन उषा के माध्यम से लेखिका ने इसमें चित्रित किया है। इसमें जगन उषा को लेकर उसके लाँज पर जाता है, जहाँ उन दोनों का मिलन हो जाता है। आरम्भ में ही यह स्थिति हो जाने के कारण वे एक-दूसरे को अधिक समझ नहीं पाते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण ही महानगरों में यह समस्या साधारण होकर व्यापक रूप में व्याप्त है लेकिन यह समस्या छिटपुट रूप में वर्तमान समय में गाँवों, कस्बों में भी दिखाई दे रही है।

असफल प्रेम विवाह का चित्रण इस उपन्यास में व्यापक स्तर पर हुआ है। विवाह पूर्व सम्बन्ध के बनने व बाद में जगह की तंगी, निर्धनता, एक-दूसरे को समय न दे पाने आदि समस्याओं के कारण इन्हें (जगन उषा को) अपना जीवन नरक के समान प्रतीत होने लगता है। नारी समस्या समसामयिक सामाजिक सन्दर्भ में स्त्री विमर्श के रूप में उभर कर सामने आया है। आज भी स्त्री कितना भी पढ़-लिख जाए व होशियार बन जाए लेकिन तब भी उसकी प्रतिभा को मात देने, उसको घर की चारदीवारी में कैद करने की प्रवृत्ति पुरुषों की रही है। इसका चित्रण इस उपन्यास में विनय सीता के माध्यम से रेखांकित हुआ है। इस उपन्यास में विनय अपनी पत्नी सीता पर गन्दे-गन्दे आरोप लगाता है। उसके ऐसे आरोपों को सुन कर सीता को गुस्सा आ जाता है और वह प्रतिक्रियास्वरूप अपने बच्चों को उसके पास छोड़ कर चली जाना चाहती है तो उसके इस व्यवहार पर विनय अपनी गलती मानकर उससे क्षमा याचना कर लेता है।

भ्रष्टाचार का चित्रण इसमें विशेष रूप से उस जगह पर भी हुआ है, जब जगन (जोगेन्दर) एक कॉलेज में नौकरी के लिए जाता है तो वहाँ पर उसे नौकरी इस आधार पर मिलती है क्योंकि वह दो सजातीय प्रत्याशियों के मध्य फँस जाता है। नम्बर एक पर था लक्ष्मण देशमुख, जिसे प्रिंसिपल सजातीय होने के कारण लेना चाहता था तथा नम्बर तीन पर थी रंजना पारिख, जिसे मैनेजर सजातीय होने की वजह से लेना चाहता था और बीच में नम्बर दो पर जोगेन्दर फँसता है। अत: मजबूरन चयन समिति ने इन तीनों प्रत्याशियों को नियुक्त कर लिया था।

वर्तमान समय में हमारी शिक्षा व्यवस्था में जो समस्याएँ सामने आ रही हैं, उनका भी व्यापक स्तर पर चित्रण इस उपन्यास में हुआ है जैसे- लड़के के द्वारा लड़कियों, अध्यापकों की छेड़खानी, शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार, अध्यापकों के प्रति उच्च अधिकारियों की साजिघ्श इत्यादि। आजकल शिक्षा लेने वाले छात्र-छात्राएँ कैसे होते हैं, इसका चित्रण ममता कालिया ने अपने इस उपन्यास में बखूबी किया है। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि ये छात्र-छात्राएँ स्कूल, कॉलेजों व विश्वविद्यालय को शिक्षा का केन्द्र न मान कर अब मात्र मनोरंजन का साधन मानने लगे हैं। वे यहाँ ऐसे आते हैं मानो पिकनिक पर आए हैं और एक-दूसरे के साथ ऐसे बैठते हैं जैसे बार आदि में लोग एक-दूसरे के साथ बैठते हैं। इस सन्दर्भ में यह उद्धरण दृष्टव्य है-

''उसके विभाग की वीना टण्डन, आशा विरमानी और उर्मिला निगम सारा दिन यूनिवर्सिटी कैम्पस के वैंगजर्ड में बैठी रहतीं और तीन बजे तक घोषणा कर कि 'बहुत बोर हो गए', मेटिनी शो देखने चली जातीं अथवा शॉपिंग करने। या फिर थी बारबरा डिमैलो जो क्लास में बर्टी टॉमस के साथ कुछ इस अन्दाज में बैठती कि उषा को लगता वह काव्यशास्त्र की नहीं, कामशास्त्र की क्लास में बैठी है।''[7]

आधुनिक समय में विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मात्र नौकरी प्राप्त करना रह गया है। इसका चित्रण उपन्यास के नायक जोगेन्दर के माध्यम से किया गया है। जब उषा जोगेन्दर से प्रश्न करती है कि उसने आखिघ्र अँग्रेजी में एम0ए0 क्यों किया तो इस पर जोगेन्दर उसे उत्तर देते हुए कहता है कि क्योंकि मुझे अँग्रेजी विषय में अड़तालिस प्रतिशत नम्बर लाकर भी नौकरी मिल जाए और उसे इस प्रतिशत के साथ ही नौकरी भी मिली है। इस उद्धरण से रचनाकार ममता कालिया ने आधुनिक काल की शिक्षा पद्धति पर करारा व्यंग्य किया है क्योंकि इस उपन्यास में जोगेन्दर की अँग्रेजी विषय में कोई रुचि नहीं है, उसने मात्र नौकरी के लिए ही इस विषय का चुनाव किया है।

रचनाकार ने अपने इस उपन्यास में मात्र विद्यार्थियों को ही दोष नहीं दिया है अपितु कुछ ऐसे अध्यापक भी होते हैं, जिन्हें इन्होंने दोषी ठहराया है जो अपने पेशे के प्रति बेईमान होते हैं। इसका चित्रण उन्होंने के0सी0 शाह जैसे प्राध्यापकों के रूप में किया है। शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे भ्रष्टाचार को भी इन्होंने अपने इस उपन्यास में अंकित किया है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि जो ईमानदार शिक्षक छात्रों को अच्छे नम्बर देने में उनके माता-पिता द्वारा दिए जाने वाली भेंट को अस्वीकार करते हैं तो किस प्रकार उन शिक्षकों को चोट पहुँचाई जाती है। इसका चित्रण उषा के पिता के साथ हुई घटना के रूप में दिखाई गई है। एक अच्छे अध्यापक को कॉलेज, विश्वविद्यालय से निकालने के लिए क्या-क्या षड्यन्त्र किए जाते हैं, इस बात का पता इस उपन्यास में आई इन घटनाओं से चलता है तथा साथ ही जो शिक्षक अपने उच्च अधिकारियों की चाटुकारिता करते रहते हैं वही कॉलेज व विश्वविद्यालय में बने रहते हैं, इसका चित्रण भी इस उपन्यास में हुआ है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि समसामयिक सामाजिक सन्दर्भों की सबसे बड़ी उपलब्धि सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों, क्रूरताओं, विडम्बनाओं एवं अनैतिक संस्कृति के बेलौस चित्र हैं। ये सामाजिक समस्याएँ जहाँ आम आदमी की पीड़ा तथा विवशता की सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, वहीं चिन्तन मनन को झकझोरते हुए एक नया व सजग दृष्टिकोण भी देते हैं। यह रचना सामाजिक जीवन में भ्रष्टता, महंगाई, बेरोजगारी द्वारा प्रदत्त यातनाओं को अंकित करते हुए अव्यवस्थाओं व राजनैतिक बुराइयों पर करारा व्यंग्य करती है- आम आदमी की आवाज में, आम आदमी के दर्द को सहते हुए आम आदमी की भाषा में। इस उपन्यास में मौजूदा समाज व्यवस्था का अत्यधिक सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, घुटन, विसंगति आदि को अन्य क्षेत्रों के साथ ही शैक्षणिक व्यवस्था के अन्तर्गत भी ज्वलन्त रूप में रेखांकित किया है। इस सन्दर्भ में आलोचक गोपाल राय ने 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में लिखा है कि ''लेखिका ने बम्बई के शैक्षणिक वातावरण में व्याप्त शिक्षकों और अधिकारियों की गुटबन्दी, भ्रष्टाचार, अध्यापकों के प्रति अधिकारियों की साजिघ्श, व्यवस्था के प्रति छात्रों के असन्तोष, अध्यापकों की घुटन-भरी जिघ्न्दगी आदि का भी प्रामाणिक चित्रण किया है।''[8]

सन्दर्भ सूची:

1. आठवें दशक के सन्दर्भ में समसामयिक कविता में विसंगति, जगदीश नन्दिनी, पृष्ठ 9, दिनमान प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम 1984 ।
2. ममता कालिया व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व, डॉ0 फैमिदा बीजापुरे, पृष्ठ 179, विनय प्रकाशन कानपुर, संस्करण प्रथम 2004 ।
3. नरक दर नरक, ममता कालिया, पृष्ठ 59, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2007 ।
4. वही, पृष्ठ 107-108 ।
5. वही, पृष्ठ 42 ।
6. समकालीन साहित्य समाचार, अगस्त 2010, पृष्ठ 48, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली ।
7. नरक दर नरक, ममता कालिया, पृष्ठ 9, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2007 ।
8. वही, पृष्ठ 4-5 ।

ममता कालिया के उपन्यासों में स्त्रीवादी आन्दोलन की अनुगूँज

डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), कालीचरण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

ममता कालिया आधुनिक युग के साठोत्तरी पीढ़ी की एक सशक्त रचनाकार हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रामाणिक यथार्थ एवं वर्तमान स्थितियों का विश्लेषण अत्यन्त सहजता के साथ उपस्थित किया है। इनके उपन्यासों में यह स्त्रीवादी आन्दोलन अपनी विलक्षण पठनीयता, जिजीविषा, विश्वसनीयता तथा मार्मिकता के साथ रेखांकित हुआ है। स्त्रीवादी आन्दोलन की अनुगूँज में आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा के साथ-साथ आत्मसजगता एवं परिवेश चेतना इनके रचनात्मक सरोकार का केन्द्रीय-बिन्दु रहा है। इन्होंने इस आन्दोलन को दृष्टिकोण के साहस, विषयगत नवीनता तथा विसंगतियों की पड़ताल के माध्यम से सजीव रूप में अभिव्यक्त किया है।

स्त्रीवाद अँग्रेजी के 'फेमिनिज्म' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। 'फेमिनिस्ट' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'फेमिना' से मानी गई है। फेमिना का अर्थ स्त्री होता है। इस दृष्टि से स्त्रीवाद से तात्पर्य 'जिसमें स्त्री के गुण विद्यमान हों' माना गया है। इसे लैंगिक समता एवं स्त्रियों के अधिकार के अर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। नाम से ही स्पष्ट है कि यह स्त्री मुक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित है। यह विचारधारा प्राचीनकाल से चली आ रही है किन्तु मुख्यत: यह विचारधारा बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में उभर कर सामने आई है।[1]

इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री सदा से उपेक्षित होती रही है। स्वतन्त्रता के अभाव में इनका व्यक्तित्त्व भी निरन्तर विकृत होता गया है। स्वतन्त्रता की सीमा रेखा का नाम सुबुद्धि है। जब इस सीमा रेखा को कोई अन्य व्यक्ति तय करता है तो इससे स्वाधीनता की अवधारणा ही नष्ट हो जाती है। इस स्वतन्त्रता (विशेषतया स्त्रियों की) के विषय में साहित्यकार ममता कालिया का वक्तव्य है- ''स्त्री अपने मन से जिये, सोचे, लिखे, बोले। परिवेश के प्राणी उसे सेंसर की निगाहों से न देखें और उस पर सन्देह कर उसका आचरण कुण्ठित न करें, यही स्त्री की स्वाधीनता है।''[2] स्त्रीवाद स्त्रियों के दमन के विविध रूपों (यथा- नारी श्रम की महत्ता, आर्थिक स्वावलम्बन, रूढ़ियों का उन्मूलन, नारी शिक्षा पर बल, दलित महिलाओं के उत्थान की भावना, महिलाओं का शील रक्षण इत्यादि) का अध्ययन करते हुए उन्हें दमन से मुक्त कराने की दिशा में पहल करता है। यह वाद स्त्रियों की वैयक्तिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है।

साहित्यकार ममता कालिया स्वयं को स्त्रीवादी लेखिका के रूप में स्वीकार नहीं करती हैं लेकिन इनके साहित्य में स्त्रियों की स्थिति पर इतना कुछ विवरण प्राप्त होता है, जिस आधार पर इन्हें स्त्रीवादी आन्दोलन का पक्षधर कहा जा सकता है। इन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की स्थिति को अत्यन्त सहजता व मार्मिकता के साथ रेखांकित किया है। प्रेमचन्द की भाँति ही इन्होंने भी स्त्रियों की स्थिति पर लिखते हुए प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है। वरिष्ठ साहित्यकार कामतानाथ का कथन है- ''प्रेमचन्द की तरह ममता ने मध्यवर्गीय परिवार व समाज का चित्रण किया।''[3] ममता कालिया ने अब तक लगभग 9 उपन्यासों का सृजन किया है। इसमें से एक बाल उपन्यास 'ऐसा था बजरंगी' की रचना की। इनके 'नरक दर नरक', 'प्रेम कहानी' और 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यासों में मुख्य रूप से प्रेम एवं द्वन्द्व की समस्या को उजागर किया गया है किन्तु यह समस्या स्त्रीवादी आन्दोलन के अन्तर्गत ही समाहित हो गया है और इसके परिणाम किसी न किसी रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित हुए हैं। इसके साथ ही स्त्रीवादी अन्य

समस्याएँ इनके समस्त उपन्यासों में अपने विविध आयामों के साथ उपस्थित हुए हैं, जिनके प्रति इनमें उपस्थित पात्रों के द्वारा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में प्रतिरोध प्रदर्शन भी हुआ है।

'बेघर' उपन्यास 'कौमार्य के मिथक' की पुरुष समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं पर प्रश्न-चिह्न लगाकर गहरी चोट करने वाला हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना गया है।'[4] इसमें पुरुष की संस्कारबद्ध जड़ता तथा सन्देहवृत्ति का चित्रण हुआ है। परमजीत जब संजीवनी को छुट्टी के दिन उसकी मर्जी से अपने दफ्तर के कमरे में ले जाता है तो वहाँ वे प्रेमी प्रेमिका के दायरे को लांघ कर अनैतिक कार्य (विवाह पूर्व सम्बन्ध बनाना) में लिप्त होते हैं। ऐसे कार्य के पश्चात् परमजीत (पुरुष की) की रूढ़ मानसिकता सामने आती है। परमजीत उस समय संजीवनी के कुँआँरेपन को पुरानी कसौटी पर रखता है तथा तब उसे यह प्रतीत होता है कि वह 'खरी' नहीं अर्थात् उसके जीवन में आने वाला वह 'पहला' पुरुष नहीं है। परमजीत ने लड़कियों के कुँआँरेपन की पहचान उनके चीख-पुकार एवं खून से सम्बद्ध मानी थी और इस समय संजीवनी उसे आरम्भिक विरोध के पश्चात् प्रस्तुत तथा बाधाहीन मिली। परमजीत अपने बदन में इस समय यह अहसास लिए उसे (संजीवनी को) घूरता रहा। परमजीत को इस समय उस पर गुस्सा व खीज नहीं आया अपितु वह अपने आपको हारा हुआ महसूस कर रहा था।[5] ''पहला न होने की निराशा के सन्नाटे के साथ-साथ उसे अपनी जिष्दगी का सारा नक्शा मुचड़ा हुआ दिखाई दे रहा था।''[6] संजीवनी के प्रति परमजीत की ऐसी सन्देहवृत्ति उनके सम्बन्ध (प्रेमी-प्रेमिका) को तोड़ देता है।

यौन शुचिता की समस्या स्त्री को समाज में सिर उठाकर जीने नहीं देती है। यह समस्या स्त्री को स्वयं की नजरों में ही अपमानित करते हुए उसे अकेलेपन रूपी दीवार में कैद कर देती है। 'बेघर' उपन्यास में संजीवनी को अपने पहले प्रेमी विपिन पर अत्यधिक क्रोध आता है। उसके द्वारा उसके साथ किए गए दुर्व्यवहार ने आज उसकी दुनिया ही बदलकर खत्म कर दी। इस दुर्व्यवहार को सोचकर संजीवनी का बदन अत्यधिक अन्याय की आग से जलने लगा क्योंकि उसने जिस अनुभव को एन्जॉय भी नहीं किया था, आज उसके लिए वह दोषी व जिम्मेदार ठहराई गई तथा इस कारण वह आज से स्वयं ही अपनी आँखों में भी अपराधी बन गई।7 ''औरतों का यौन उत्पीड़न केवल एक कानूनी मामला नहीं है, बल्कि यह सामाजिक मामला भी है।''[8]

'नरक दर नरक' उपन्यास में स्त्री किस प्रकार से घर गृहस्थी के चक्कर में पिसती जाती है, इसका चित्रण हुआ है। विवाह पूर्व माता-पिता के सहयोग से इनकी स्थिति कुछ ठीक रहती है लेकिन विवाह पश्चात् इनकी दुनिया ही बदल जाती है। स्त्री दिन भर घर के कामों में व्यस्त रहती है और रात में पति के सम्पर्क-संकेत उन्हें अत्यधिक थकान से त्रस्त कर देते हैं। 'नरक दर नरक' उपन्यास में उषा की स्थिति कुछ ऐसी ही दिखाई गई है। इस सन्दर्भ में यह उद्धरण दृष्टव्य है-

''उसे बेहद ऊब हुई। यह सुबह-शाम, सुबह-शाम, एक-से दिन, एक-से काम, एक-सी बातें, एक-सी थकान!

खाना बनाना, इन्तजार करना, फिर खाना बनाना, फिर इन्तजार.....शादी होते ही यह दैनिकता किस रास्ते से घुस आई थी घर में। जिधर देखो, बेडौल कामों का एक भोंड़ा ढेर उसके इन्तजार में! उसका मन हुआ कि अपनी चप्पलें पहन वह भाग जाए इस घर से दूर।''[9] ''विवाह से पैदा हुई जानलेवा दिनचर्या के बीच अब जगन की ओर से आते सम्पर्क-संकेत उसे असह्य थकान से भर देते।''[10]

स्त्रीवादी आन्दोलन के अन्तर्गत आज स्त्रियों को स्वयं भी विवाह करने की छूट दी जाने लगी है लेकिन उस विवाह के दुष्परिणामों को झेलने व सहने के लिए वह स्वयं ही बाध्य है। उसके लिए उसके माता-पिता उसकी सहायता नहीं करने आते हैं। इसका कारण यह है कि उसने अपने वर का चुनाव स्वयं जो किया है। ऐसे में वह अपने पारिवारिक जीवन से उत्पन्न समस्याओं व अकेलेपन को छोड़कर यदि जाती है तो पुनः दूसरा विकल्प उसके पास वहीं वापस आने का रह जाता है। ऐसा ही 'नरक दर नरक' उपन्यास में उषा के साथ होता है। जब वह अपनी गृहस्थी से ऊब जाती है और वहाँ से भाग जाना चाहती है लेकिन भाग कर कहाँ जाए? इस सवाल पर आकर वह स्वयं ही अटक जाती है- ''इस सवाल के साथ ही अपनी दुनिया का भयावह अकेलापन उसे वापस इस खूँटे पर लाकर बाँध देता।''[11] घर में बच्चे के आगमन व पति की व्यस्तता भी स्त्रियों की सोचने-समझने, निर्णय लेने, सफल होने, अपने मन मुताबिक व्यस्त होने की सारी स्वतन्त्रता छीन लेती है जो उसे आजीवन कुढ़ने पर मजबूर करती हैं। ऐसा इस उपन्यास में उषा के साथ होता है और इसके लिए उसे जगन से यही शिकायत बनी रहती है।[12]

स्त्री घर एवं नौकरी दोनों कार्यो को करते हुए अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है लेकिन पुरुष समाज से यह सहन नहीं होता है। इसके लिए वह स्त्रियों को नए-नए तरीकों से तंग करते रहते हैं। यह स्थिति स्त्रियों के लिए अत्यधिक असहनीय होती

है और इसके लिए वे पुरुषों का प्रतिरोध भी करती हैं। इसका चित्रण रचनाकार ने 'नरक दर नरक' उपन्यास में सीता व विनय जैसे पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'प्रेम कहानी' उपन्यास में लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवार, पति के डॉक्टर होने के कारण उसकी व्यस्तता और पति-पत्नी के बढ़ते तनावग्रस्त जीवन के चित्रण को उपस्थित किया है। इस उपन्यास में रूढ़ परम्पराओं का विरोध प्रेम विवाह के सन्दर्भ में चित्रित किया गया है। रूढ़िवादी परम्पराओं के चलते यशा के माता-पिता उसके प्रेम विवाह करने के निर्णय का प्रतिरोध करते हुए उसका विवाह अपनी मर्ज़ी से कर देते हैं यद्यपि यशा यहाँ से भागने का प्रयास करती है किन्तु असफल रहती है, परिणामस्वरूप जिस घर में यशा का विवाह होता है वहाँ उसकी स्थिति कैदियों वाली हो जाती है। वहीं दूसरी ओर जया अपने इसी प्रयास में सफल हो जाती है, इसके लिए वह अपने माता-पिता का विरोध कर घर से भाग जाती है और गिनेस के साथ प्रेम विवाह कर लेती है।

'लड़कियाँ' उपन्यास में रचनाकार ने विज्ञापन जगत् तथा वहाँ काम करने वाली स्त्रियों की स्थिति और अविवाहित स्त्री के जीवन के चित्रण को रेखांकित किया है। स्त्रीवादी आन्दोलनों ने स्त्रियों को वैवाहिक जीवन की समस्याओं से दूर रखने में सहायता पहुँचाई है। आधुनिक समय में अधिकतर महिलाएँ वैवाहिक जीवन के परिणामों को देखकर व अपनी स्वतन्त्रता को महत्ता देने की चाह में अविवाहित जीवन व्यतीत कर रही हैं। स्त्रियों के लिए यह (विवाहित या अविवाहित रहना) एक मुख्य समस्या बनी रहती है। स्त्री विवाह करती है, तब भी दुःखी रहती है तथा अविवाहित रहती है तो भी वह सुखी नहीं रहती है, ऐसे ही द्वन्द्व का चित्रण इस उपन्यास की नायिका के माध्यम से इस उपन्यास में उपस्थित किया गया है। जब उपन्यास की नायिका के घर उसके बॉस की कजिघ्न अफशाँ उसके साथ रहते हुए उससे अत्यधिक प्रेम-दुलार करती है और इस कारण उनके मध्य अत्यधिक नजदीकियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन नजदीकियों के परिणामस्वरूप अफसोस के जो भाव नायिका के हृदय में उत्पन्न होते हैं, उसका चित्रण इस उद्धरण में स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है-

''धीरे-धीरे एक अफसोस के अहसास ने मेरे पूरे वजूद को ढक लिया। घर बसाया होता तो ऐसी एक-दो बच्चियाँ मेरी भी होतीं। सीधी-सादी जिघ्न्दगी होती। कहीं बाहर से लौटकर आती तो बेटी झट चाय बनाकर पिलाती, साड़ी की तह लगाकर रखती, सिरदर्द होने पर सिर दबाती। यों अब की तरह गोलियों के सहारे तड़पना न पड़ता। कहीं जाने की इच्छा होती तो बेटी संग संग चलती। सच ही तो है, बेटी के बड़े होने पर माँ-बेटी सखियाँ हो जाती हैं। उस किस्म की जिघ्न्दगी में झंझट तो ज्यादा होता, पर यह मनहूस मायूसी तो न होती, यह अकेलापन।''[13]

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में रचनाकार ममता कालिया ने दाम्पत्य चित्रण के साथ ही एक नौकरीपेशा स्त्री पर उसके पति द्वारा रौब जमाने जैसे विषयों को उठाते हुए पुरुषों की मानसिकता का उद्घाटन किया है। 'इस उपन्यास में यद्यपि संदीप को अपनी प्रेमिका पत्नी कविता की उच्च शिक्षा, उसकी नौकरी (कॉलेज की) एवं दिमागी जागरूकता आदि गर्व के योग्य लगती है। वह कविता को पूरा पाने के पश्चात् भी उसे जेब में पड़े पेन व रैंक में लगी किताबों की तरह पजैस करना चाहता है लेकिन उसके (कविता) बौद्धिक विकास से आशंकित होते हुए संदीप को हर पल यही लगता है कि एक दिन उसका यह विकास ही उनके सम्बन्धों का विनाश कर देगा।'14 संदीप को कविता द्वारा कुशलतापूर्वक अपनी दिनचर्या को निभाते हुए सफलता के शिखर पर बढ़ते देख पाना असहनीय लगता है, जो आज के पुरुषों की मानसिकता का प्रतीत है। एक तरफ वे सर्वगुण सम्पन्न स्त्री भी चाहते हैं और दूसरी ओर अपनी स्त्री को अपने से ऊँचा उठते भी नहीं देख पाते हैं। इस उद्धरण में ऐसे ही पुरुषों की मानसिकता दृष्टव्य है-

''कविता जिस नियम से अपनी दिनचर्या निभा लेती थी, संदीप को उस नियमितता और कुशलता पर एतराज था। उसका ख्याल था, ये कुंद दिमाग लोगों के गुण होते हैं। हर हाल में कविता को अपने से एक सीढ़ी नीचे खड़ा देखना उसे पसन्द था जबकि कविता कदम-से-कदम मिलाकर चलने में यकीन रखती थी।''[15]

स्त्रियों द्वारा सन्तान लेना, न लेना आधुनिक समय में भी पति एवं परिवारवालों की इच्छा पर निर्भर है, इसके लिए महिलाओं को अभी भी स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुई है। ऐसी विडम्बना 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में कविता के साथ होती है। वह सन्तान चाहती है लेकिन उसके पति की ऐसी इच्छा नहीं है तथा इसके लिए वह अपने पति से अनुरोध भी नहीं कर सकती है।[16]

'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में जीवन के जटिल यथार्थ में गुँथे हुए एक बहुअर्थी पद के रूप को चित्रित किया गया है। यह उपन्यास परम्पराओं-रूढ़ियों में जकड़े मध्यवर्गीय परिवार की स्त्रियों की व्यथा को अभिव्यक्त करता है। इसमें शृंखला की बाहरी-भीतरी कडिघ्यों में जकड़ी स्त्रियों के नवजागरण के गतिशील चित्र व उनकी मुक्ति के मानचित्र को भी दर्शाया गया है। किस प्रकार पुरुष समाज स्त्रियों को घर से बाहर निकलने पर पाबन्दी लगाता है तथा उन्हें बाहर निकलने की कितनी छूट देता है, इसका चित्रण लाला नत्थीमल द्वारा अपनी बेटी भग्गो व पत्नी विद्यावती के माध्यम से इसमें प्रकट हुआ है। इसमें लाला नत्थीमल द्वारा कन्या शिक्षा व महिलाओं द्वारा नौकरी करने के विरोध को चित्रित किया है। सर्वप्रथम वे अपनी छोटी बेटी भग्गो को पढ़ाने के लिए तैयार नहीं होते हैं। उनका मानना है कि स्त्री का धर्म चूल्हा-चौका व परिवार की सेवा करना है। उसे यह सब अच्छे से आ जाए, यही उसके लिए सबसे अच्छा है लेकिन जब भग्गो दसवीं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर कीर्तिमान स्थापित करती है तो लाला नत्थीमल आश्चर्यचकित रह जाते हैं। भग्गो द्वारा स्थापित इस कीर्तिमान से उसे कस्तूरबा विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी मिल जाती है। इस खघ्बर से लाला नत्थीमल हक्के-बक्के रह जाते हैं और उसे नौकरी करने पर मना करते हैं लेकिन उनकी पत्नी इसका विरोध करती हैं तथा उसे नौकरी करने देने हेतु उन्हें समझाती है।[17]

इस उपन्यास में कविमोहन (पिता) द्वारा अपनी बड़ी बेटी प्रतिभा पर उसके मॉडलिंग सम्बन्धी व्यवसाय को चुनने का विरोध करते हुए उसे प्रोफेसर या आई0ए0एस0 बनने सम्बन्धी फैसले को लादने का प्रयास किया जाता है, जिसका वह विरोध कर एक मॉडल बनना ही स्वीकार करती है। पिता के साथ-साथ माँ इन्दु भी उसका विरोध करती है।18 कन्याभ्रुण की समस्या को भी इसमें चित्रित किया गया है। जब विद्यावती के लगातार दो लड़कियाँ पैदा होती हैं तो उसके पति लाला नत्थीमल तीसरी लड़की होने के भय से विद्यावती को गर्भपात कराने को कहते हैं, इसके लिए वे उसे एक पुडिघ्या देते हैं-

''जे का है?'' विद्यावती ने पूछा।

''कुनैन है। दिन में तीन बार फंकी लगाकर पानी पी ले। पेट की सफाई हो जाएगी।''19 परन्तु विद्यावती पति का अप्रत्यक्ष रूप में विरोध कर पुडिघ्या चुपके से नाली में बहा देती है। मात्र पुरुष ही कन्याभ्रूण का अपराध नहीं कर रहे हैं, स्त्रियाँ भी इस अपराध में बराबरी कर रही हैं। विद्यावती यह अपराध अपनी बहू इन्दु के दूसरे गर्भ धारण के समय करना चाहती है परन्तु इन्दु की समझदारी व झूठ के कारण यह अपराध नहीं सम्भव होता है।

'दौड़' उपन्यास भूमण्डलीकृत भारत के नए प्रभावों की तस्वीर को उपस्थित करने वाला दस्तावेज है। इसमें पीढिघ्यों के अन्तराल के साथ ही माता-पिता के अकेलेपन की व्यथा का चित्रण हुआ है। इसमें पति अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने हेतु अपनी पत्नी के आर्थिक रूप से स्वावलम्बन बनने की इच्छाओं का दमन करने में भी नहीं हिचकता है। इसके लिए वह कारण कुछ भी उत्पन्न कर ले किन्तु घर गृहस्थी को सँभालने के लिए झुकना सदैव स्त्री को ही पड़ता है, जैसा कि इसमें राजुल के साथ होता है-

''राजुल का मूड खराब हो गया। वह घर के आखिघ्री काम निपटाते हुए भुनभुनाती रही, ''हिन्दुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं चाहिए। मेरा कितना हर्ज हुआ। अच्छी भली सर्विस छोड़नी पड़ी। मेरी सब कलीग्स कहती थीं राजुल शादी करके अपनी आजादी चौपट करोगी और कुछ नहीं। आजकल तो डिंक्स का जमाना है। डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आदमनी, बच्चे नहीं) सेन्टिमेण्ट के चक्कर में फँस गई।''[20]

आजकल अभी भी कुछ लोगों की यह धारणा है कि महिलाएँ एक साथ दो मोर्चे अर्थात् घर व दफ्तर को नहीं सँभाल सकती हैं और यही समस्या उनके आर्थिक रूप से स्वावलम्बन बनने के आड़े आती है लेकिन फिर भी महिलाएँ इन बातों को असत्य प्रमाणित करते हुए आगे बढ़ रही हैं तथा नए-नए कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। इस उपन्यास के सन्दर्भ में अन्यत्र लिखा है- ''ममता कालिया का 'दौड़' इस पूरे विमर्श की सशक्त प्रस्तुति है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने की दौड़ में स्त्री भी शामिल हो गई है।''[21]

'अँधेरे का ताला' उपन्यास में महिला अध्यापिकाओं, छात्राओं, वहाँ के अन्य कर्मचारियों के जीवन तथा शिक्षा क्षेत्र के विविध हलचलों के दस्तावेज को उपस्थित किया गया है। आजकल आए दिन स्कूल, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, रास्ते एवं घर में महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है, जिनके लिए अब कुछ लोग उनकी सहायता करने को आगे बढ़े हैं। इसके लिए स्वयं महिलाएँ ही आगे आकर उनकी रक्षा कर रही हैं। 'इस उपन्यास में नन्दिता के कॉलेज की एक छात्रा शुचि के साथ वहीं के कर्मचारी सुरेन्द्र

सिंह के क्वार्टर में रहने वाले लड़के राजेश सिंह द्वारा रास्ते में उसके घर जाने के मार्ग को अवरोधित करके उससे मधुर मिलन रूपी प्रस्ताव रखकर उसे परेशान किया जाता है, जिससे वह अत्यधिक डर जाती है और उसे अपनी बदनामी का भय सताने लगता है। इसकी सूचना वह अपनी प्राचार्या नन्दिता को देती है और वह उसकी सहायता कर उसके चरित्र पर दाग लगने से उसे बचा लेती है।'[22] इसी कॉलेज की एक अन्य छात्रा उमा के शील का हनन उसी के घर में रहने वाले व्यक्ति लालजी साह द्वारा होता रहता है। वह उसके घर में रक्षक एवं भक्षक दोनों ही भूमिकाओं में मौजूद रहता है। इससे सम्बन्धित समस्या को जब उमा अपनी प्राचार्या को बताती है तो वह उसकी सहायता अपने तरीकेे से करती है। इसके लिए उमा स्वयं भी प्रयास करना चाहती है। इस सम्बन्ध में वह उस व्यक्ति एवं अपने पिता दोनों का विरोध करते हुए अपनी प्राचार्या नन्दिता से कहती है-

''नहीं मैडम, मैं शादी नहीं करूँगी। मैं बी0ए0 के बाद पुलिस में भर्ती हो जाऊँगी। एक गोली से पापा का काम तमाम करूँगी और दूसरी से लालजी साह का। नहीं तो वह बारी-बारी से मेरी सब बहनों को निगल जाएगा। राक्षस आदमी है वह!''[23]

निष्कर्ष स्वरूप हिन्दी साहित्य में नारीवादी आन्दोलन का विशेष महत्त्व रहा है, जिसे साहित्यकार ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। इन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी अमूल्य कृतियाँ प्रदान करते हुए स्त्रीवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सक्रिय सहयोग दिया है। यह वर्तमान समय में भी साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से इस आन्दोलन को आगे बढ़ा रही हैं।

वस्तुतः यह आन्दोलन वर्तमान समय में स्त्री विमर्श रूपी नयी उभरती हुई दृष्टि के रूप में जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में अग्रसर है। अन्यत्र उद्धृत भी है कि स्त्री आन्दोलन वर्तमान समय में मानवाधिकार आन्दोलन हो, यह अति आवश्यक है क्योंकि महिला बाल अधिकार की लड़ाई मानवाधिकार की ही लड़ाई है जो विश्व शान्ति के लिए आवश्यक भी है। जीवन की तीन अनमोल चीजें क्या हैं? इस ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए लिखा गया है कि ''रोटी, किताब और स्त्री- जीवन के ये तीन अनमोल रत्न हैं। रोटी हमें जीवन दान देती है। किताबें पीढ़ियों को जोड़ती हैं। महिलाएँ हमारे जीवन-सूत्र को बाँधकर रखने में अहम् भूमिका निभाती हैं। इनमें से किसी एक के बिना भी जिन्दगी बेमानी हो जाती है।''[24] निःसन्देह वर्तमान समय में स्त्रीवादी आन्दोलन एक अत्यन्त विचारोत्तेजक विषय है, जिसकी गूँज साहित्यकार ममता कालिया के लगभग समस्त उपन्यासों में अपने विकराल रूप में दिखाई दी है।

सन्दर्भ सूचीः

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, बच्चन सिंह, पृष्ठ 149, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2015 ।
2. भविष्य का स्त्री विमर्श, ममता कालिया, पृष्ठ 9-10, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2015 ।
3. 'हिन्दुस्तान' (दैनिक समाचार पत्र), 01 अगस्त 2011, पृष्ठ 6, अंक 179, प्रधान सम्पादक- शशि शेखर, प्रकाशन- हिन्दुस्तान मीडिया वेन्चर्स लिमिटेड (एच एम वी एल) गोमती नगर लखनऊ।
4. बेघर, ममता कालिया, पृष्ठ 7-8, साक्षरा प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम 2002 ।
5. वही, पृष्ठ 93 ।
6. वही।
7. वही, पृष्ठ 98-99 ।
8. औरत होने की सजा, अरविन्द जैन, पृष्ठ 54, राजकमल पेपरबैक्स प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2006।
9. नरक दर नरक, ममता कालिया, पृष्ठ 58, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2007 ।
10. वही।
11. वही, पृष्ठ 70 ।
12. वही, पृष्ठ 116 ।
13. ममता कालिया तीन लघु उपन्यास, ममता कालिया, पृष्ठ 91, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2007 ।
14. एक पत्नी के नोट्स, ममता कालिया, पृष्ठ 38, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण द्वितीय 2003।
15. वही, पृष्ठ 30-31 ।

16. वही, पृष्ठ 58 ।
17. दुक्खम सुक्खम, ममता कालिया, पृष्ठ 162-163, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण पहला 2009 ।
18. वही, पृष्ठ 236-237, 252-253 ।
19. वही, पृष्ठ 100 ।
20. दौड़, ममता कालिया, पृष्ठ 30, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2000 ।
21. मधुमती (पत्रिका), जनवरी 2007, सम्पादिका- डॉ0 (श्रीमती) अजित गुप्ता, पृष्ठ 119, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर (राजस्थान)।
22. अँधेरे का ताला, ममता कालिया, पृष्ठ 100-102, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2009 ।
23. वही, पृष्ठ 103 ।
24. आधुनिक समाज में स्त्री, आशारानी व्होरा, पृष्ठ 197, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम 2005।

विरह वेदना की कवयित्री- महादेवी वर्मा

डॉ० रश्मि कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला पी0जी0 कालेज, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर, उ0प्र0।

शोध-सारांश

महादेवी का काव्य उनकी ऐसी व्यक्तिगत साधना है जो इहलोक को स्पर्श करते हुए अलौकिकता की ओर उन्मुख हुई है। विरह रूपी वेदना उनके काव्य की अमूल्य निधि है। अपनी वेदना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने विविध प्रकार के प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया है। उनकी वेदना पर एक ओर जहाँ बुद्ध का प्रभाव परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर वेदना का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक काव्य यात्रा करके उनकी अनुभूति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो गई है। वेदना ने इनके अन्तःकरण को साधना भूमि के उपयुक्त परिष्कृत किया है। उनके काव्य में वेदना के प्रति आनन्द, सौन्दर्य और आत्म समर्पण है। जो प्राणियों में उसकी श्रेष्ठता का प्रतीक है। इनकी वेदना में गहन प्रेम वेदना का तत्व विद्यमान है। उनके काव्य में विरह वेदना रूपी सागर हिलोरे ले रहा है। वास्तव में इस छायावादी कवियित्री के काव्य में अन्य कवियों की अपेक्षा विरह वेदना सहज रूप में मुखरित हुआ है।

वेदना का अर्थ होता है- 'तीव्र मानसिक या शारीरिक कष्ट'। इस शब्द के कई पर्याय भी हैं- दुःख, दर्द, पीड़ा, कसक, पीर, विषाद, कष्ट। वेदना मनुष्य के हृदय की अन्तःवृत्ति होता है जिसके सुखात्मक और दुखात्मक दो रूप है, जिसमें सुख की अपेक्षा वेदना का अधिक महत्व रहा है। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के अन्तर्गत कृष्णभक्त कवयित्री मीराबाई विरह वेदना एवं करूणा की सहज प्रतिमूर्ति थी। मीरा के साहित्य में जिस प्रकार हम विरह वेदना की मार्मिक अनुभूति देखते हैं वही अनुभूति छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी के काव्य में भी देखते हैं। विरह वेदना एवं करूणा की प्रधानता के कारण ही महादेवी जी को 'आधुनिक मीरा' कहा जाता है।

महादेवी का काव्य वेदना से अज्ञात प्रिय की ओर संकेत करते हुए अनेक उक्तियों में कवयित्री की सघन वेदना साकार हो उठी है। विरह प्रेम का उदात्त स्वरूप है तथा प्रेम की कसौटी है। विरह में होने वाली वेदना को व्यक्त करने के लिए कवियों ने विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक उपादानों को आलम्बन रूप में चुना और उसके माध्यमों से अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त किया। इसी विरह वेदना ने महादेवी जी को व्यग्र बनाकर उन्हें अपनी तुलना 'नीर भरी बदली' से करने को विवश कर दिया है:

"मैं नीर भरी दुख की बदली

× × × ×

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली।"

महादेवी वर्मा के गद्य-पद्य में जो दुःखवाद और करूणा के भाव दिखाई देते हैं, वे बौद्ध दर्शन के प्रभाव स्वरूप माने जाते हैं। महादेवी की वेदनानुभूति उनके हृदय और आत्मा का सौन्दर्य है। उनका दुःख सुख की अतिशयता का परिणाम है। सुख तो क्षणजीवी होता है जबकि वेदना तो चिरव्यापी एवं चिरस्थायी होता है। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव केन्द्र है। इनके काव्य में अतृप्त प्रेम की पीड़ा का मार्मिक चित्रांकन हुआ है। वे दुःख और पीड़ा को ही अपना जीवन मानती हैं-

''पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणो की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा
तुममें ढूँढूँगी पीड़ा
दुख की भावना से
जीवन में शक्ति आ जाती है।''[2]

महादेवी का दु:ख व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक रहा है। उनका मानना है कि व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है, और व्यक्तिगत दु:ख विश्व सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व प्रदान करता है। उनके गीतों की प्रेम वेदना में न द्वेष है, न घृणा है, न कटुता है, न प्रतिकार। यदि है तो केवल वेदना। उनकी करूण पुकार में नारी हृदय की वेदना का स्पष्ट अंकन दिखाई पड़ता है-

''जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करूणा कितने सन्देश पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग,
आंसू लेते वे पद पखार।''[3]

प्रिय की विछोह में इतनी वेदना है कि उनका जीवन विरह का पर्याय बन गया है। उन्होंने कहा है- ''सुख और दु:ख के धूप-छाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे दु:ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है।'' पुष्प के माध्यम से उन्होंने संसार की असार्थकता को सिद्ध किया है-

''देकर सौरभ दान पवन से,
कहते जब मुर्झाये फूल।
जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल''[4]

महादेवी की विरह वेदना का संसार निराला है। इनमें वेदना का संयमित रूप देखते ही बनता है। उन्होंने अपने प्रियतम के लिए कभी भी भौरे और कौए को काला नहीं किया। विरहाग्नि उन्हें निरन्तर जल तो है, परन्तु वे विरह वेदना से क्षीण नहीं हुई है। विरह प्रेम का उदाळा स्वरूप है। उनके काव्य में भी करूणा का मूल स्रोत और वेदना है। मानव मात्र में सहन करने की शक्ति ही उसे इतना ऊँचा बनाती है।[5] वे प्रश्न करती हैं-

''मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीडा,
उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा?''

उनकी वेदनानुभूति में अत्यधिक आवेग होने के कारण इसमें आध्यात्मिकता के साथ-साथ रोमानी अवसाद और रहस्यवादी पीड़ा के दर्शन भी हो जाते हैं। 'जिस प्रकार घटा स्वयं को गलाकर सृष्टि को सुख और शीतलता प्रदान करती है या दीपक स्वयं जल कर राख हो जाता है, किन्तु परिवेश को आलोकित करता है, उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद और मंगलमय बनाना चाहती है।[6]

''दुखव्रती निर्माण उन्मद
ये अमरता नापते पद
बाँध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला।''

महादेवी की वेदना इतनी तीव्र है कि सम्पूर्ण संसार को अपने में बाँध लेना चाहती है। वे अपने अज्ञात प्रियतम से भी मान करती हैं। उनके आँसुओं की कीमत उनका प्रियतम नहीं चुका सकता और न ही उनकी सी पीड़ा का भार ही वहन कर सकता है। उनकी विरह वेदना ज्यों-ज्यों विपुल होती है त्यों-त्यों वह मधुर बनती जाती है। आराध्य की उपासना में उनका मन दीर्घ निःश्वास छोड़ कर जीवित है-

"वही पीड़ा की पहली साँस,
छोड़ क्यों देते बारम्बार
मुझे तम से करने अभिसार।"[7]

महादेवी के काव्य में विरह वेदना की गहनता सर्वत्र परिलक्षित हो रही है। उनका प्रेम हृदय की निश्छल भावनाओं का सहज उच्छलन है। इनके काव्य में युग के अनुरूप विरह-वेदना की विवृत्ति हुई है। उनकी विरह वेदना वैयक्तिक से होते हुए मानवीय धरातल पर मुखर हुई, बाद में अलौकिक सत्ता की ओर उन्मुख हुए है। 'चाह' नामक कविता में उन्होंने पागल प्यार के द्वारा एक नवीन संसार को बसाने की इच्छा जाहिर की है-

"चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार
× × × ×
वेदना मधु मदिरा की धार,
अनोखा एक नया संसार"[8]

विरह की तपन से कविता में निखार आ जाता है। न केवल महोदवी वर्मा अपितु यह विश्व के श्रेष्ठ साहित्य का वर्ण्य विषय रही है। कवयित्री की वेदना मानव मात्र की वेदना बनकर दिखाई पड़ती है। कवयित्री की वेदना मानव मात्र की वेदना बनकर दिखाई पड़ती है। उन्होंने अपनी प्रथम कविता में दीपक और उसकी वर्तिका के माध्यम से मानव जीवन के वेदना रूपी दुःख को अध्यात्म प्रेम से दूर करने की भावना व्यक्त की हैं। वह अपने जीवन दीप के साथ स्वयं प्रज्ज्वलित होती रहती है। इस जीवन दीप से वह प्रियतम के पथ को आलोकित करती रहती है-

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।"[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने महादेवी के बारे में लिखा है- "कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियां हैं और कहाँ तक अनुभूति की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता है।[10] उनके अनुसार करूणा का भाव अत्यन्त पवित्र है, उसकी स्पर्श छाया से दुःख भी निखर उठता है-

''शून्य मंदिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी।
अर्चना हो शूल भोले, क्षार दृग जल अर्ध्य हो लें
आज करूणा स्नात उजला दुःख ही मेरा पुजारी।"

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि महादेवी की विरह वेदना में गहन प्रेम की वेदना का तत्व व्याप्त है। डॉ0 कुमार विकल के शब्दों में, "वेदना महादेवी के काव्य का अर्थ है और करूणा उसकी इति। अतः करूणा ही इनके दुःखवाद का मेरूदण्ड है तथा इनकी वेदना का चरम रूप भी।" वे करूणा से ओतप्रोत विरह की ऐसी कवयित्री है जो अज्ञात प्रियतम की खोज में लीन है। उनके विरह में आध्यात्मिकता, सात्विकता एवं उदात्तता है। उनके काव्य में वेदना रूपी सागर हिलोरे ले रहा है जो अनेक रत्नों को अपने में समाहित किये है। वास्तव में यह छायावादी कवयित्री विरह वेदना की सम्राज्ञी है।

सन्दर्भ-सूची:

1. महादेवी साहित्य (सांध्यगीत)- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 निर्मला जैन, पृ0-269।
2. महोदवी वर्मा, नीहार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0-38।
3. वही, पृ0-26।
4. वही, पृ0-24।
5. राम स्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन नई दिल्ली, बाइसवाँ संस्करण, पुर्नमुद्रण-2015, पृ0-134।
6. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, संस्करण-2014, पृ0 538-39।
7. महादेवी वर्मा, रश्मि, राजपाल एण्ड संस प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0-45।
8. महोदवी वर्मा, नीहार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0-30।
9. महोदवी वर्मा, नीरजा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0-32।
10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0-720।

ममता कालिया के कथा - साहित्य में नारी-चित्रण

डॉ० नम्रता जैन

सहायक प्राध्यापिका, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

प्रस्ताबना

मानव समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वह संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रही है। अपने मानवीय गुणों के चलते वह नर की अपेक्षा अधिक सम्मानीय और श्रद्धेय रही है। नारी विमर्श एक ऐसी महत्त्वपूर्ण विचारधारा है जो नारी में आत्मविश्वास का संचार करके उसे स्वावलम्बी बनाता है। यह पुरुष प्रधान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचार, शोषण एवं दमन का विरोध करता है। नारी विमर्श नारी के समाज में अपने ढंग से जीवन व्यतीत करने तथा अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास करने एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्णय लेने की क्षमता के प्रति सजग करता है।

हिन्दी कथा जगत् में ममता कालिया की तरह लिखने वाले रचनाकार विरल है जो गहरी आत्मीयता, आवेग और उन्मेष के साथ जीवन के धड़कते क्षण पाठक तक पहुँचा सके। गमता जी ने अपने समय और समाज को परिभाषित करने का सृजनात्मक जोखिम भरपूर उठाया है, यह उनकी हर कहानी से स्पष्ट होता है। कभी वे समूचे परिवेश में नए सरोकार ढूँढ़ती है तो कभी वे इसी परिवेश में नयी, स्वातंत्र्योत्तर स्त्री की अस्मिता और संघर्ष का वाचा देती है।

ष्ममता कालिया के लेखन में ये सरोकार आरम्भ से उपस्थित रहे हैं जब स्त्री विमर्श की लाठी पटक धमक का दूर-दूर तक पता न था। इन सभी कहानियों में समकालीन संवेदनशीलता की सहधर्मी है। आपकी छोटी लड़कीश, श्वसंत सिर्फ एक तारीख जाँच अभी जारी है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की संघर्षधर्मिता रेखांकित करती है। इनकी कहानियों में जिस संवेदनशील, सन्तुलित, समझदार प्लेकिन चुलबुले, मानवीय सहानुभूति से आलोकित व्यक्तित्व की झलक मिलती है, वह उनके दृष्टिकोण की मौलिकता से दुगुनी दमक पाती है। इनकी रचनाओं में कलावादी कसीदाकारी न होकर जीवनवादी यथार्थ का सौन्दर्य बोध है । ৳

समकालीन कथा जगत् में इस प्रकार सहज, मेधावी, प्रफुल्ल नारी व्यक्तित्व दुर्लभ है जो ख सामान्य और व्यापक मानव जीवन के प्रति इतना बेबाक हो। सम्बन्धों का खुला और आत्मीय स्वीकार इनकी कहानियों की अपनी विशेषता है। ममता कालिया के रचना लोक में दो तरह की छवियां प्रमुख हैं- एक में हमारे भारतीय समाज के मध्यवर्ग की स्त्रियों और उनका दु:ख है तो दूसरे में सामान्य जीवनानुभव है।

ममता कालिया के कथा-साहित्य

ममता कालिया जी एक संवेदनशील साहित्यकार रही हैं, उन्होंने आज की नारी का संघर्ष, उसकी कुण्ठा, इन्द्र टूटन, सहनशीलता, समायोजन की क्षमता तथा उसके समर्पण को अपने कथा वितान में कसा है। आज भी नारी समस्याएं यथावत विद्यमान है फिर चाहे वे समस्याएँ आर्थिक रूप में हो, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक अथवा पारिवारिक रूप में हो। ममता जी ने नारी-जीवन को विषमतापूर्ण और दु:खमय बनाने वाली काम व विवाह सम्बन्धी पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को उभारकर उनकी सूक्ष्म अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है। पुरुष की अहमन्यताजन्य और वर्चस्ववादी प्रवृत्ति को आज भी नारी अस्वीकार करने की सामर्थ्य नहीं रखती है। वस्तुत: नारी विमर्श का यह प्रश्न आज न किसी एक वर्ग का है, न वर्ग संघर्ष का, धीरे-धीरे पकती स्थितियों का

यह विस्फोट पूरे सामाजिक परिवेश की उपज है, इसी को ममता जी ने युगों से पीड़ित व त्रस्त नारी जीवन के विविध पहलुओं में चित्रित किया है।

ममता कालिया जी ने अपनी कथा कृतियों का कथ्य आम जिन्दगी से चुना है, आज आम नारी किस तरह अभावों से जूझ रही है, संघयों तले पिस रही है और चूकती हुई जिजीविषा को बड़े यत्न से संभाल रखने की चेष्टा कर रही है, उसका वास्तविक वर्णन उन्होंने किया है। दूर तक फैले अथाह अधकार में एक छोटी सी किरण को पाने के लिए नारी किस कदर छटपटा रही हैं और अपने स्वाभिमान को कब कहाँ गिरवी रखकर उसने चाटुकारिता का संवत्ल ग्रहण कर लिया, आन नारी की इस पीड़ा को उनके जीवन की भयावह सच्चाई के साथ ममता जी ने व्यक्त किया है। उनकी कहानियों में स्त्री एवं पुरुष के बीच कोई भेदक खाई नहीं है दल्कि वे दोनों के बीच समझदारी कायम करने का आस्थापूर्ण प्रयत्न करती है। यहाँ भावुकता का न तो अंतिशय बहिष्कार है न ही उपेक्षा। उनमें अद्भुत सम्प्रेषणधर्मिता है। उनकी कहानियाँ मन को बाँधली है, चिन्तन को झकोरती है तथा वौद्धिकता का प्रवाह भी उनमें कम नहीं है। बहुत कुछ जोवन में घटित होने वाला सच है, जिन्हें हम जीते हुए नकारते हैं और नकारते हुए जीते हैं।

ममता कालिया के कथा-साहित्य को पढ़ने हुए निरन्तर यह एहसास होता है कि उनमें एक खुलापन, एक सहज विस्तार सम्बन्धों के प्रति विविध भाव और घटनाओं का विवरण, घटना बनकर नहीं, जीवन का सच बनकर सामने आया है। उनकी स्त्री पात्र में एक बात अवश्य खटकती है कि वे कहानी या उपन्यास के अन्त तक आते-आते परिस्थितियों से समझौता कर घर परिवार के बारे में सोचने लगती है तथा गर्यादा में बंध जाती है। वे अपना विद्रोह अन्त तक नहीं बनाए रख पाती है। इसके सम्बन्ध में चित्रा मुद्गल का यह कहना उचित प्रतीत होता है कि श्दरअसल ममता की स्त्री की स्वचेतना उपन्यास के आरम्भ में गति पकड़ती हुई अन्त तक पहुँचते हुए इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि दोहरे दायित्व के दोहन से क्षुब्ध, उसकी मुक्तकामी नायिकाएँ वैचारिकता रखते हुए भी एक चढ़ान तक अस्मिता प्राप्ति के लिए आत्म-संघर्ष करती हुई अन्तिम परिच्छेद तक पहुँचते-पहुँचते घर की सत्ता को सुरक्षित बनाए रखने की जिम्मेदारी स्वयं की ही मानती है। नायिकाओं का ऐसा कोई भी विकल्प परिस्थितियों के सामने घुटने टेकना कदापि नहीं है, बल्कि स्वचेतना का ही विस्तारण है जो उनकी सच्चाईऔर सहिष्णुता को दर्शाती है। बल्कि कहना चाहूँगी कि ममता की अति ईमानदार निजी अध्यापकीय सहिष्णुता का यह स्वचेतन स्फुरित विवेक ही है जो अपनी कक्षा के किसी भी विद्यार्थी के जीरो लाने पर भी सुधार की उम्मीद नहीं खोता।ष ममता कालिया की कथा कृतियों में जीवन के विविध पक्षों के साथ-साथ स्त्री जीवन से जुड़े तमाम संघर्षो को देखा जा सकता है। पारिवारिक दायित्वों की बलिवेदी पर वह अपने सपनो की बलि चढ़ाती हुई कर्त्तव्यबोध के नाम पर सारे दायित्व संभालते हुए भी एकात क्षणों में द्य उसका मन घरवालों के प्रति विश्वास न मिल सकने की स्थिति निरन्तर व्यंग्य बाणों से आहत द्य किए जाने की पीड़ा स्त्री को बेसी ही चोट पहुंचाती है जैसे हल्की-हल्की चोट देकर सुनार सोने के पत्तर पीट रहा हो। स्त्री जीवन की इस त्रासदी को ममता कालिया के कथा साहित्य में देखा गया है। उन्होंने अपनी कथाकृतियों में अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है जिस से यह स्पष्ट होता है कि वे सीमित दायरे का लेखन पसन्द नहीं करती। उनका कथा साहित्य सिर्फ घर-परिवार के दायरे में नहीं बंधकर जीवन के विविध आयामों का सम्पर्श करता है। नारी के साथ अकेलेपन, अजनबीपन, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और अर्थाभाव आदि की चुनीतियों को स्वीकार करते हुए उन्होंने परिवेशगत सच्चाई को ईमानदारीपूर्वक उभारने का प्रयास किया है और इन्हीं चुनौतियों को अपनी कथा कृतियों में स्थान दिया है।

ममता कालिया रचनाकार के रूप में

हिन्दी साहित्य का स्त्री विमर्श जिन महिला लेखकों की सशक्त उपस्थिति से मजबूती पाता रहा है. ममता कालिया उनमें से एक है। साठोत्तरी काल के यथार्थवादी साहित्यकारों में ममता कालिया अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। मृदुला गर्ग, मेहरून्निता परवेज, शिवानी, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, मृणाल पाण्डेय, निरूपमा सेवती, उषा प्रियवदा, राजी सेठ, मंजुल भगत इत्यादि महिला रचनाकारों में ममता कालिया एक ऐसी रचनाकार रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं, जिन्होंने अपने रचना समार में नारी की समस्याओं और उसके संघर्ष को यथार्थ रूप में स्पष्ट किया है। अपने कथा-साहित्य में एक चुस्त स्फूर्त भाषा के साथ वे सामाजिक यथार्थ के जटिलतर रूपों को जितने विडम्बनामूलक ढंग से पकड़ती है, वह समकालीन हिन्दी लेखन में अपनी तरह से उल्लेखनीय है।

अकविता आन्दोलन का प्रारम्भ परम्परागत रुमानियत के प्रति विद्रोह, रूढ़िगत काव्य बिम्बों से असहमति और अक्खड़ अस्वीकार जैसी ईमानदार कोशिशों से हुई किन्तु शीघ्र ही उसमें इतनी हिंसा, जुगुप्सा, नकली विद्रोह, शब्द बहुलता और सरलीकरण समा गए

कि कविता का सम्पूर्ण परिदृश्य ही अराजक हो उठा। विशेषकर स्त्री के प्रति उन काव्य प्रयोगों में बड़ा वस्तुवादी और भोगवादी दृष्टिकोण था, यही ममता जी की विरक्ति और गद्य की ओर पलायन का कारण बना। रातोरात कवयित्रियां पैदा हो रही थीं और काव्येतर कारणों से सरनाम हो रही थीं। इस प्रकार एक अमानवीय वातावरण की सृष्टि होने लगी, जिससे ममता जी को लगा कि कविता लेखन एक पतनोन्मुखी भीड का हिस्सा भर बनना है कविता में अतियथार्थवाद के चलते अभिव्यक्ति का परिदृश्य इतनी नंगई और बड़बोलेपन से भर गया था कि तब ममता जी ने स्वयं को ऐसे कवियों और कविता से थोड़ा अलग कर लिया। रवीन्द्र जी और पाठकों के प्रेरक आग्रह से प्रेरित हो 1960 से लगातार 1965 तक ममता जी ने कविताएँ लिखने के बाद अपना रुख कथा-साहित्य की ओर किया। फिर दूसरी बात यह हुई कि दिल्ली में कहानी भी प्रयोगधर्मी होती जा रही थी। ममता जी को लगा कि अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखने को लिए कहानी की ओर मुड़ना किसी भी रचनाकार के लिए अनिवार्य रचनात्मक जरूरत है। कहानी मासिक द्वारा कहानी प्रतियोगिता में उनकी उपलब्धिश शीर्षक कहानी को प्रथम पुरस्कार मिला।

ममता जी की प्रथम उल्लेखनीय कहानी यों ही मर जाएगे जानोदय पत्रिका के जनवरी, 1964 के अंक में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् उनकी रचनाएँ सुप्रभातश, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', "सारिका इत्यादि पत्रिकाओं में भी छपकर आती रहीं। ममता जी काफ्का, एल्वी, आनुई, बैंके व जैने आदि से प्रेरित रहीं, लेकिन प्रभाव स्थायी न बन सका। दिल्ली में राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी से सम्पर्क हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारों की परम लोकप्रिय छवि और कहानी के क्षेत्र में होते पल-पल परिवर्तन और रूपान्तरण ने भी मगता जी को प्रभावित किया और उनका रुख अपनी ओर किया। मगता जी जब 1970 में मुम्बई होस्टल में रह रही थी और पति (रवीन्द्र जी) इलाहाबाद में अपने पैर जमाने के लिए संघर्षरत थे, तब रवीन्द्र जी ने गगता जी को सलाह दी कि वह छोटी-छोटी कहानियों की बजाय उपन्यास लिखने का प्रयास करें। तब ममता जी के दिमाग में कई स्मृति-चित्र अंकित थे, रवीन्द्र जी से प्रेरित हो उन स्मृति चित्रों का स्पष्टीकरण 'थेघर' जैसे बोल्ड एव 'प्रेमकहानी' जैसे तरल और अन्य उपन्यासों के रूप में हुआ।

ममता कालिया के कथा-साहित्य में चित्रित नारी-विमर्श

साहित्य की विभिन्न विधाओं में सशक्त पहचान रखने वाली ममता कालिया की कथात्मक रचनाओं में नारी-जगत का सच समाहित होता है। उन्होंने एक तटस्थ दृष्टिकोण से नारी विमर्श को नए स्वर दिए हैं। उनकी रचनाओं में साहित्यारम्भ से ही नारी-विमर्श पूरी तन्मयता और आत्मीयता के साथ सामने आया है। ममता जी का नारी विमर्श पर बयान है, "रचना कर्म में आत्म और पर कभी भिन्न तो कभी अभिन्न स्थिति में होते हैं पर स्थितियाँ एकागी कहाँ होती है। जन्म से मृत्यु तक समाज हम से नाभिनाल सा चिपका रहता है। स्त्री के साथ तो सामान्य से कुछ अधिक समाज, कभी रीढ़ बनकर तो कभी रूढ़ि बनकर स्त्री की चाल-दाल, सोच विचार पालित करना चाहता है। सोमवार से रविवार तक के लिए लड़की के हाथ में एक टाइम टेबल पकड़ा दिया जाता है यह है तुम्हारी दिनचर्या और यह है चौखटा। इसमें चौन से चलो फिरो पर इनमें से उलाको मत।"

ममता जो मानती हैं, "लिखने की प्रारम्भिक कोशिशें लगातार चौखटों से टकराने की प्रक्रिया है, प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया है और इन्हीं पारम्परिक मान्यताओं के चौखटों को तोड़ने का प्रयास मगता जी अपने साहित्य के माध्यम से करती हुई प्रतीत होती है। परन्तु कभी भी गगता जी ने इस बात की चिन्ता नहीं की कि उन्हें नारीवादी माना जाता है या नहीं। अस्तु वे कहती है कि, "कान्ति-धर्मो संघर्ष धर्मो युवा स्त्री सातवें दशक में जन्म ले चुकी है, लेकिन नवे दशक में कहानी के सिद्ध सम्प्रदाय में नारी चेतना और स्त्री विमर्श का ऐसा लाठी पटक हल्ला बोल दिया कि यह एक सीमित इतिहास - भूगोल वाला पश्चिम-पलट इश्यू बन गया। सिद्ध सम्प्रदाय के नेतृत्व से स्त्री विमर्श में धार तो आई पर विचारधारा की हानि हुई। बहुत जल्द इसका एक कैप्सूल निर्मित हो गया, जिस के अन्तर्गत बहुत सा महिला लेखन हुआ।

ममता जी की अभिव्यक्ति का अपना अलग तेवर हैं, उन्होंने अपने कथा साहित्य में नारी भावनाएँ, संघर्ष, जिजीविषा, कुण्ठा-तनावों और जीवन की वास्तविकता जैसे विषय प्रसंग उठाए हैं। वे नारी शक्ति का कृत्रिम प्रदर्शन करने की हिमायती भी नहीं हैं, वे लिखती हैं, "लेखन का रास्ता बड़ा लम्बा और श्रम- साध्य है। इसमें नारी शक्ति का कृत्रिम प्रदर्शन साहित्य की विश्वसनीयता कम कर बैठेगा, खास कर वर्तमान समय में जब स्त्री के प्रति हिंसा पहले से बहुत अधिक बढ़ी है। केवल नारी विजय की बातें करना अपने को हास्यास्पद बनाना होगा।

विख्यात लेखिका ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी सन्दर्भों एवं प्रसगो को अति सूक्ष्मता, सघनता एवं जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा दमित वासनाओं, कुण्ठाओं और वर्जनाओं का आलेखन करने के साथ-साथ मानव मन की ग्रन्थियों को

खोलने का भी प्रयास मिलता है। वे मानती है कि स्त्री-विमर्श का मतलब देखा जाए तो यह है कि स्त्री की स्थिति पर गहराई से विचार किया जाए। ममता जी के कथा-साहित्य में चित्रित नारी विमर्श को विभिन्न आयामों के आधार पर विश्लेषित किया गया है, जो इस प्रकार है

शोषण

दैहिक शोषण

- प्रेमी द्वारा दैहिक शोषण
- पति द्वारा दैहिक शोषण पड़ौसी द्वारा देहिक शोषण
- महानगरों में दैहिक शोषण
- विद्यालय में दैहिक शोषण
- पारिवारिक जीवन में दैहिक शोषण
- कार्यक्षेत्र में दैहिक शोषण
- धार्मिक क्षेत्र में दैहिक शोषण
- सामाजिक क्षेत्र में दैहिक शोषण

मानसिक शोषण

- पारिवारिक जीवन में मानसिक शोषण
- पति द्वारा मानसिक शोषण
- कार्यक्षेत्र में मानसिक शोषण
- मानसिक शोषण के कारण अकेलापन

आर्थिक शोषण

- पारिवारिक जीवन में आर्थिक शोषण
- पति द्वारा आर्थिक शोषण
- कार्यक्षेत्र में आर्थिक शोषण
- परनिर्भरता के कारण आर्थिक शोषण

मानसिक तनाव

- पति की व्यावसायिक व्यस्तता के कारण
- मोहभंग के कारण मानसिक तनाव
- प्रेम विवाह की अस्थिरता के कारण
- देह सम्बन्धी मानसिक तनाव
- अर्थाभाव के कारण मानसिक तनाव

सास तंत्र में शोषित नारी

- शिक्षित बहू का सास द्वारा शोषण
- बहू के चरित्र पर सास द्वारा लांछन
- बेटी को जन्म देने पर सास द्वारा प्रताड़ना
- सामाजिक कुरीतियों से शोषित नारी
- कोमार्य भंग की समस्या
- बेमेल विवाह की समस्या
- बाल विवाह की समस्या
- कन्या जन्म की समस्या
- विधवा जीवन की समस्या
- छूआछूत की समस्या
- आर्थिक विपन्नता की समस्या
- प्रवास की समस्या
- भ्रष्टाचार की समस्या
- दहेज प्रथा की समस्या

हिन्दी साहित्याकाश में ममता कालिया जी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ममता जी ने साहित्य की अलग-अलग विधाओं में सृजन किया है। सफल लेखन सृजन प्रक्रिया के सन्दर्भ में वे अपने विचारों को व्यक्त करते हुए एक कदम आगे की भूमिका में लिखती हैं, ष्एक सफल रचना मात्र भाव नहीं, वरन् सही सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनकी भावाभिव्यक्ति होती है। इसके लिए जरूरत होती है पुराने दिग्गजों को आत्मसात करने के साथ-साथ समकालीन समर्थ लेखन के पठन-पाठन की। लेखन एक प्रकार का प्रशिक्षण होता है जो जितना माँजा जाए, उतना प्रखर बनता है। साथ ही तात्कालिकसमस्याओं के सन्दर्भ में समकालीन दृष्टि भी अपेक्षित है। बिना समकालीन बोध के कोई भी रचना अपनी प्रासंगिकता स्थापित नहीं कर सकती।

ममता जी के कथा साहित्य का केन्द्र समकालीन नारी और उसकी समस्याएँ रही हैं। उनके साहित्य में नारी के विविध पक्षों एवं स्वरूपों के दर्शन होते हैं, जिसमें नारी अस्तित्व, नारी संघर्ष, नारी विद्रोह, नारी तनाव एवं नारी अन्तर्द्वन्द्र मुख्य हैं ममता जी ने नारी के अन्तर्मन को खोलकर उसकी अस्मिता के पक्ष को पाठकों के सामने रखा है, नारी मनोविज्ञान से परिचय करवाया है। ममता

जी मानती हैं, स्त्री विमर्श का सारा प्रश्न कहीं न कहीं एक व्यापक मानवीय सृजना विमर्श की मांग करता है। हालांकि ममता जी ने जीवन के विविध पक्षों पर भी साहित्य की है किन्तु केन्द्र में नारी को ही अधिक प्रश्रय मिलता है।

ममता कालिया जी ने बहुत पहले देख लिया था कि स्त्री के जीवन में अधिकार का संघर्ष सतत् चलने वाला क्रम है। उन्होंने न केवल नारी की मन स्थितियों को बड़ी बारीकी और साफगोई के साथ उभारा है बल्कि सेक्स चित्रण में भी उनकी दृष्टि काफी सुलझी हुई लगती है। वे नारी का विचलित होना भी बड़ी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करती है। ममता जी के कथा साहित्य में नारी विमर्श के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। नारी विमर्श के इसी गम्भीर विषय को ममता कालिया ने अपने कथा साहित्य में अभिव्यंजना और वाणी प्रदान की है, नारी की कारुणिक गुहार को आधुनिकता के भाव बोध के साथ पृष्ठों पर उभारा है। अत: ममता जी के कथा साहित्य में स्पष्ट है कि नारी शोषण के कारण अन्तर्द्वन्द्र व मानसिक विकार से आक्रान्त होती है परिणामस्वरूप वह अपने शरीर तथा मन को अमानुषिक यंत्रणाओं को सहने का अभ्यस्त बना लेती है। ममता जो नारी की देह मुक्ति से अधिक नारी की वैचारिक मुक्ति को प्राथमिकता देती है, अत: उनके नारी विमर्श के कई पहलुओं में हमें नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का भी चरित्रांकन मिलता है जिसमें वे सफल भी हुई है।

ममता कालिया के कथा-साहित्य में नारी-संघर्ष तथा सशक्तीकरण

ममता कालिया के कथा साहित्य में जहाँ बदलते हुए जीवन मूल्यों से पुरुष अपने व्यक्तिगत विकास के लिए प्रयत्नशील है, वहां उनकी नारी भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं पहचान को सुरक्षित रखने के लिए संघर्षरत है। यह रूढ़ियों व परम्पराओं के विरुद्ध, वैवाहिक सम्बन्धों की सहभागिता के विरुद्ध विवाहेतर सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए अस्तित्व एवं अस्मिता की पहचान के लिए अधिकारों को प्राप्त करने तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए। संघर्ष करती है। पितृसत्तात्मक समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने के लिए वह पितृसनात्मक समाज की विचारधारा का विरोध करती है। ममता जी की नारी निरन्तर पितृसत्तात्मक समाज से संघर्ष करती हुई सशक्तीकरण के मार्ग पर पल-पल आगे बढ़ रही है।

पितृसत्तात्मक समाज में नारी संघर्ष

- घरेलू स्तर पर नारी संघर्ष
- कामकाजी स्तर पर नारी संघर्ष
- रोजमर्रा का नारी संघष
- अस्तित्व के लिए नारी संघर्ष
- अधिकार प्राप्ति के लिए नारी-संघर्ष
- पारिवारिक घुटन एवं तनाव से मुक्ति के लिए

नारी सशक्तीकरण

- पितृव्यवस्था के बन्धनों से मुक्ति का प्रयास
- प्रेम विवाह एवं वरण को स्वतन्त्रता
- खोखली एवं रूढ़िवादी परम्पराओं के बन्धनों से मुक्ति का प्रयास
- निर्णय लेने की स्वतन्त्रता
- स्वेच्छा से अविवाहित जीवन जीने की स्वतन्त्रता
- कार्यक्षेत्र चुनने की स्वतन्त्रता
- भावी वर से विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध स्थापित करने की आकांक्षा
- शोषण एवं दमन का विरोध
- भावात्मक समरसता के कारण विवाहेतर सम्बन्ध स्थापित करने की आकाक्षा
- लिव इन रिलेशनशिप (सहजीवन) स्थापित करने की आकाक्षा
- अवाछित नैतिक बन्धनों से मुक्ति की अकलास्ट
- पुरुष के अह और खोखले पौरुष का विरोध
- महान् उद्देश्यों से प्रेरित हो शिक्षा के प्रति बढ़ता रुझान एवं लगाव

प्राचीन काल से ही नारी को अपने जीवन में प्रेम के नाम पर लांछन, सुख के नाम पर प्रताड़ना और आदर्श के नाम पर अत्याचार का शिकार होना पड़ा है। पुरुष ने स्त्री की अभिरूचि, इच्छा व दृष्टिकोण का सम्मान करना नहीं सीखा। वह नहीं चाहता कि पत्नी में समानता, स्वतन्त्रता और स्वनिर्णय की भावना पैदा हो। ममता कालिया शोषित नारी की समस्याओं का उचित समाधान करके उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए परम्पराओं व बन्धनों से मुक्ति की दिशा को अभिप्रेरित तथा निर्देशित करती हैं। लेखिका उन परम्परागत मूल्यों को बनाए रखना नहीं चाहती जो नारी के जीवन को दयनीय बना देते हैं। वह नारी को विशुद्ध भारतीय नारी के आदर्श रूप में दोहराना नहीं चाहती हैं क्योंकि अनावश्यक परम्पराओं में बंध कर नारी के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

ममता कालिया की नारी ने अपनी अस्मिता की खोज तथा उसकी मुक्ति की रक्षा करने का प्रयत्न किया है। नारी की अपनी वैयक्तिकता है और यही वैयक्तिक चेतना उसे पुरुषों के समक्ष संघर्षरत बनाती है। वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करना चाहती है और इसके लिए प्रयासरत भी होती है। यह उसके जीवन का सबल पक्ष है, लेकिन यही उसके जीवन की त्रासदी भी बन जाता है क्योंकि उसे तनाव तथा उत्पीडन से बस्त होना पड़ता है परन्तु फिर भी नारी घर के साथ-साथ बाहर की दुनिया में भी विकास की धुरी बनी है। ममता कालिया ने नारी मन को, उसकी आकाक्षाओं, अस्मिता से जुड़े सवालों, जीवन सन्दर्भों व संघर्षों, घुटन एवं तड़प को प्रस्तुत किया है। उन्होंने नारी को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर संघर्षशील मानवी बना दिया है। नारी स्वावलम्बन के लिए उच्च नौकरी भी करती है। उसका व्यक्तित्व कटकित जीवन का मार्ग तय करते-करते सुदृढ़ हो रहा है। परिणामस्वरूप उसका समस्त जीवन सशक्त एवं संघर्षशील बन जाता है। लेखिका भारतीय समाज में नारी को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक विचारधारा से मुक्त करवाकर नारी को उसकी अपनी शर्तो पर जीवन यापन करवाती हैं। इसलिए नारी पितृसत्ता द्वारा किए गए शोषण का प्रतिकार करके तथा पावन्दियों के विरुद्ध बगावत करते हुए पितृसत्ता के इरादों का पर्दाफाश करती है। ममता कालिया जी मानती है कि स्त्री विमर्श से अधिक स्त्री सशक्तीकरण की बात करनी होगी। इसके लिए जरूरी है कि स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो, किसी भी रूप में, तभी उसकी आवाज सुनी जाएगी।

ममता जी के कथा साहित्य के नारी पात्र अपनी पारिवारिक समस्याओं के मध्य अपने अहं को सुरक्षित बनाए रखने में क्रियाशील दिखाई देते हैं। अपने 'स्व' के विस्तार का बोध उनमें प्रबल है। सम्बन्धित व्यवस्था के प्रति विद्रोह की चेतना से ये संघर्षशील दिखाई देती हैं। परिणामत: वह परिवार की नैतिक व भावनिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन चाहती हैं। एक प्रकार से उनके संघर्ष ने पुरुष प्रधान पारिवारिक व्यवस्था को चुनौती ही दे दी है। स्याभाविक है कि बदलते परिवेश ने नारी को भी प्रेरित किया और वह स्वयं भी बदलने को कृत संकल्पित हो बैठी। आज वह एक 'नयापन' प्राप्त करना चाहती है। ममता जी के कथा-साहित्य की अधिकांश नायिकाएं इस नयेपन को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देती है। मनता कालिया जो गानती हैं कि घालू बाड़ से हटकर देखें तो समस्त स्त्री विमर्श मे स्त्रिया आखिर क्या चाहती है- अस्तित्व अधिकार अस्मिता, स्वाधीनता, स्वावलम्बन, सजगता और आर्थिक स्वतंत्रता।" ममता जी ने नारी की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं उसके मानवाधिकारों की रक्षा का जयघोष करते हुए नारी सशक्तीकरण का बिगुल बजाया है। परिणामस्वरूप उनकी नारी के आत्मविश्वास की बढ़ती लहर, शैक्षणिक ऊँचाइयों, आर्थिक आत्मनिर्भरता, नवीन नैतिकता व उसके अस्तित्व की नवव्याख्या ने उसे एक नई दुनिया की खोज करने की महाशक्ति दी है, जहाँ वह नए समीकरण रच रही है।

निष्कर्ष

निस्संदेह नारी आज संक्रमण काल से गुजर रही है। उसका एक पाँव घर से बाहर निकला हुआ है, लेकिन दूसरा पाँव अभी भी रसोई की चौखट के अन्दर है। शिक्षा ने उसके क्षितिज को विस्तार अवश्य दिया, पर घर परिवार की लक्ष्मण रेखा उसे अब भी घेरे हुए है, अब भी पिता की दृष्टि में दान और पति की दृष्टि में यह भोग की वस्तु है। इनमें कोई दो मत नहीं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आए हैं। उसकी स्वतन्त्रता और अधिकारों के लिए जहाँ संविधान में व्यवस्था की गई वहाँ समय-समय पर नियम और कानून भी बनाए गए हैं। लेकिन यह भी सच्चाई है कि ये नियम और कानून मुख्यत: महानगरों की तथा उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित है। ज्यादातर महिलाओं की संख्या आज भी द्वितीय श्रेणी की है। जो पढ़ी लिखी और नौकरीपेशा महिलाएं है उनका दोहरा शोषण होता है। उन पर घर की जिम्मेदारियों के साथ-साथ कार्यालय की भी जिम्मेदारी है। सम्पूर्ण भारतीय समाज में लगभग आधी आबादी स्त्रियों की है किन्तु उनके पास वास्तविक सम्मान नहीं है। आदिकाल से लेकर

आज तक पुरुष ने स्त्री पर दासत्व ही लादा है। अतः वर्तमान भारतीय समाज में नारी के प्रति दोहरे मानदण्डों की स्थिति आज भी परिलक्षित होती है।

समकालीन महिला कथाकारों की परम्परा के अन्तर्गत नवीन विचारों की पोषिका ममता कालिया का कथा साहित्य लम्बे समय से चली आ रही नारी पराधीनता या नारी की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य में मुक्ति की चाह से सम्बन्धित है। समता जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न लेखिका है। उनका व्यक्तित्व कहानीकार, उपन्यासकार, कवि, बाल साहित्यकार जैसे विविध आयामों से विभूषित है। वे उत्कृष्ट कथाकार गम्भीर उपन्यासकार, सूक्ष्मदृष्टि सम्पन्न समीक्षक एवं पारखी संपादक रही हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य उनकी विचारधारा एवं जीवन के प्रति प्रवृत्ति का साक्षी है। ममता जी ने एक सशक्त साहित्यकार के नाते मानव चरित्र को समाज और मनुष्य जाति की विविध समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में रचने का अवसर प्राप्त किया। बीसवी सदी के छठे दशक से लेकर आज तक उनकी लेखनी कार्यरत रही तथा हिन्दी साहित्य को अनमोल कृतियों से गौरवान्वित करती रहीं। व्यक्तित्व विश्लेषण की मनोवैज्ञानिक पद्धति के सर्जक के रूप में उनका नाम प्रथम पंक्ति के महिला कथाकारों में शामिल है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- ओझा, चितरंजन नारी शिक्षा एवं सशक्तीकरण, नई दिल्ली, रिगल पब्लिकेशन्स, 2010
- कलासवा, बी.के. हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री विमर्श एवं अन्य आलेख, दिल्ली, भारत भारती, 2011
- कस्तवार, रेखा स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2006
- कुमार, राकेश नारीवादी विमर्श, पंचकूला, आधार प्रकाशन, 2001
- कुमार, राधा स्त्री संघर्ष का इतिहास, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2002
- कुमार, सरिता महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप विकास, नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन, 1983
- कोर, चरणजीत नारी चेतना, चण्डीगढ़, लोकगीत प्रकाशन, 1999
- कौशिक, आशा नारी सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, जयपुर, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2004
- गुप्ता, अरुणा छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 1990
- गुप्ता, उर्मिला हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योगदान, दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966
- गुप्ता, उर्मिला स्वातंत्र्योतर कथा लेखिकाएँ, नई दिल्ली, अनुराग प्रकाशन, 1978
- गुप्ता, रमणिका स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, दिल्ली, शिल्पायन प्रकाशन, 2006
- गुप्ता, रमणिका स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, नई दिल्ली सामयिक प्रकाशन 2012
- गोयल, अनिल हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक भूमिका, दिल्ली, आर्याना पब्लिशिंग हाउस, 1985

तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सुरेन्द्र कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

प्रो० (डॉ०) आरती श्योकन्द

शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

तत् वाद्य तार वाले वाद्य कहलाते हैं। अ‌ैर इन्हे तन्त्री वाद्य का नाम दिया गया है। तत वाद्य को भी दो भागों में विभक्त किया गया है।

1. तत् वाद्य
2. वितत् वाद्य

तत् वाद्य अर्थात् वे वाद्य जो मिजराब, कोण, नख या नारियल के टुकड़े से बजाए जाए उन्हें तत् वाद्य माना गया है, जबकि वितत् वाद्य वे वाद्य होते हैं, जिनका वादन गज या बो के द्वारा हो।

तत् वाद्य में सितार, सुरबहार, सरोद, वीणा इत्यादि आते हैं जबकि वितत् वाद्य में सारंगी, इसराज, दिलरूबा और वार्यालिन जैसे वाद्य आतें है।

तन्त्री वाद्य की उत्पत्ति

प्राचीन ग्रंथों में वेदों को सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है, जिनमें भारतीय सांगितिक विधाओं का वर्णन है - जैसे वेदों में दुदुभीं, वीणा और वाण आदि वाद्यों का वर्णन किया गया है। इसके अलावा भारतीय प्राचीन शिल्प कलाओं में कई वाद्यों के चित्र मिलते हैं, जिनमें सप्त तन्त्री वीणा, मृदंग, शंख, पंचतन्त्री वीणा अ‌ैर बंशी वाद्य है।

ऐसा भी माना जा सकता है कि धनुष की टंकार से भी तत् वाद्य का निर्माण हुआ या इसका निर्माण करने का विचार उस समय के जन के दिमाग में आया। कुछ विद्वानों ने वीणा से भी तत् वाद्यों की उत्पत्ति मानी है।

मानव द्वारा निर्मित धनुष को हम अवश्य तन्त्री वाद्यों का जनक मान सकते हैं। प्राचीन समय में तन्त्री वाद्यों की बनावट धनुषाकार से भी मिलती है। शायद उस समय दैनिक दिनचर्या के बाद हारे-थके मानव ने धनुष पर डोरी बांधकर अ‌ैर उसे बजाकर उसमें अपना मनोरंजन किया होगा। इसी ने मानव को वाद्य यंत्र बनाने की प्रेरणा दी होगी। जब इसके वादन ने उस समय के मानव को आनंद प्रदान किया होगा तो मानव ने इसे अपने संगीत में इस वाद्य को सम्मिलित किया होगा। जब धनुष की डोरी टूटती होगी तो दूसरी डोरी बांधने की क्रिया अ‌ैर डोरी की लंबाई कम होने पर उसकी ध्वनि को पहली डोरी की अपेक्षा तारता का अन्तर पाकर शायद अन्य वाद्य यंत्रों को विकसित किया गया होगा।

संगीतसार में लिखा है - लकड़ी के बने हुए ढांचे पर तांबे, लोहे आदि की तारें चढ़ाकर उन्हें मिजराब, गज एवम् अंगुलियों द्वारा प्रहार किए जाने पर ध्वनि की उत्पळ्ति करने वाले वाद्य 'तत' वाद्य कहलाते हैं।

तन्त्री वाद्यों का इतिहास

प्राचीन भारत में प्रचलित 'पिनारू' नामक एकतन्त्री वाद्य का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। इसमें केवल एक तार होता था, जिसे उंगली से छेड़कर बजाया जाता था। यही कहा जाता है कि इसकी उत्पत्ति भगवान शिव द्वारा हुई थी। वैसे 'पिनाक' शिव के धनुष का नाम बताया जाता है तथा पार्वती को 'पिनाकी' भी कहते हैं।

हार्प जैसे वाद्यों का प्रचलन रोम, ग्रीस, इजिप्ट आदि में बहुत रहा। इसका चित्र समुद्रगुप्त की वीणाधारी मुद्राओं पर तथा अन्य स्थलों पर होता था। धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या बढ़ती गई, जिसके फलस्वरूप स्वरमण्डल अंर संतूर जैसे वाद्यों का जन्म हुआ।

तन्त्री वाद्यों में बदलते समय अंर आवश्यकतानुसार तारों की संख्या को बढ़ाया गया जिससे संतूर, स्वरमंडल, सितार, सुरबहार और इसराज जैसे प्रचलित तन्त्री वाद्यों की प्राप्ति हुई। वाद्यों के स्वरूप में कुछ परिवर्तन हुए जिससे नए-नए वाद्य प्राप्त हुए एवम् कुछ वाद्य अमुक वाद्यों को बजाते समय उनमें कुछ अच्छा या किसी दोष के दृष्टिगत होने से भी नए वाद्य प्रचार में आए ग्रंथों में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जैसे - बाण नामक प्राचीन वीणा जिसको आधुनिक समय में संतूर कहा जा सकता है क्योंकि बाण वीणा में सौ तारें होती थी, जिसे पलाश शलाकाओं द्वारा बजाया जाता था, यही आधुनिक समय में संतूर या डलसीमर नामक वाद्य कहलाती हैं। इसी प्रकार स्वरमंडल जैसे तंतु वाद्यों की उत्पत्ति मानी जाती है। स्वरमंडल वाद्य का विकास 'मत्तकोकिला वीणा' से माना जाता है, जिसमें इक्कीस तारें होती हैं।

मोहन जोदाड़ो एवम् हड़प्पा की खुदाई से बहुत मूर्तियाँ प्राप्त हुई जिनसे उस समय के सांगितिक विकास के बहुत से सबूत मिलते हैं। उस काल में वीणा वादन मुख्यत: नारियाँ ही करती थी। इससे हम कह सकते हैं कि उस काल में तन्त्री वाद्य वीणा का विकास हो चुका था।

ऋग्वेद तन्त्री वाद्य की ऐतिहासिक यात्रा

वेदों में ऋग्वेद काल में तन्त्री वाद्यों कर्करी और गर्गर नामों का भी उल्लेख ऋग्वेद से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त दशम मण्डल में गीत अंर वाद्यों के संयोग का वर्णन ऋग्वेद में वर्णित है। अघाती के लिए घाटिलका, काण्ड वीणा एवम् भूमि दुन्दुभि के वादन का उल्लेख भी मिलता है।

यजुर्वेद में तन्त्री वाद्य

यजुर्वेद में सांगितिक विकास की दृष्टि से बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं रहा है। यजुर्वेद में साम गान के साथ वीणा वादन एवम् स्वर गायन दोनों में तत्कालीन महिलाओं की सांगितिक कुशलता को जाना जाता था। उस समय धार्मिक एवम् सामाजिक उत्सवों में रात्रि के समय वीणा अंर तूणव वाद्यों की ध्वनि में जन जागरण किया जाता था। वीणागणग आचार्यों अंर यजमान पत्नियों द्वारा क्रमश: गान एवंम् वादन किया जाता था।

अथर्ववेद में तन्त्री वाद्य

आघाटि, कर्करी अंर दुन्दुभी वाद्य का अथर्ववेद में जगह-जगह पर उल्लेख किया गया है।

गंधर्व की पत्नियाँ आघाट अंर कर्करी जैसे तन्त्री पर नृत्य करके आमोद-प्रमोद किया करती थी, ऐसा अथर्ववेद में वर्णन मिलता है।

सामवेद तन्त्री वाद्यों की पृष्ठभूमि

वैदिक काल में तन्त्री वाद्यों विशेषकर वीणा का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वीणा वाद्य के गात्रवीणा, कात्यायनी, रावणी घोषवती, कच्छपी, महती, कर्करी और वाण आदि प्रकारों का वर्णन वैदिक काल से प्राप्त होता है। गज से बजाई जाने वाली वीणा एवम् पिनाकी तेत्तर के दण्ड से भी वीणाओं का वादन वैदिक काल से प्राप्त होता है। साम गान में तन्त्री वाद्यों में वीणा नामक वाद्य के वादन का वर्णन मिलता है।

रामायण काल में तन्त्री वाद्य

महर्षि वाल्मीकि ने गायन के साथ-साथ वीणा वादन की शिक्षा के महत्त्व को भी लव अंर कुश को समझाया। रामायण काल में संगीत को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैसे भगवान श्री राम अपने अनुज लक्ष्मण को किष्किंधा काण्ड में कहते हैं कि

भंवरों की गुंजार में वीणा जैसा स्वर है। रामायण में ऐसा वर्णित है कि तन्त्री वाद्यों के बिना रामायण में गायन सुमधुर अंर आकर्षक प्रतीत नहीं होता।

रामायण में गंधर्व गान अंर वीणा वादन करते थे, जिसके साथ नृत्य भी किया जाता था।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने गायन के साथ वीणा वादन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

महाभारत काल में तन्त्री वाद्य

महाभारत काल में विभिन्न समारोहों पर गायन के साथ वीणा वादन करने का प्रचलन था। वीणा एवम् तन्त्री वाद्यों बल्लकी दोनों का प्रचार-प्रसार महाभारत काल में प्राप्त होता है।

पाणिनी काल में तन्त्री वाद्य

अष्टाध्यायी में वृंद वादन के लिए 'तूर्य' शब्द का प्रयोग किया गया है एवम् 'तूर्य' (वृंदवादन) में वीणा को प्रमुख स्थान प्राप्त था।

पाणिनी काल में भी वीणा का अपना विशेष महत्त्व एवम् भूमिका थी। बिना वीणा के गानों को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जाता था

बंद्ध कालीन साहित्य में तन्त्रीगत वाद्यों के अंतर्गत विपंची, पारिवादिनी, बल्लकी, महती, नकुली, कच्छपि आदि वीणाओं का वर्णन है।

जैनयुग में तन्त्री वाद्यों की स्थिति एवम् स्थान

जैन युग में वीणा का प्रचार-प्रसार प्रचूर मात्रा में था। इस काल में कई अच्छे-अच्छे वीणा वादक हुए। इस युग में मृदंग, वीणा एवम् दुन्दुभी वाद्यों का प्रयोग वादन के लिए किया जाता था। प्राचीन ग्रंथों में वीणा वादन को बारीकी से जानने वाला, श्रुति-जाति का ज्ञान रखने वाला एवम् ताल का ज्ञान रखने वाला संगीतज्ञ तक बिना किसी अन्य प्रयास के मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, ऐसा उल्लेखनीय है।

प्राचीन तमिल साहित्य में भी सांगितिक अवयवों का वर्णन विस्तार से मिलता है, इसमें वीणा को 'याज' नाम दिया गया है।

प्राचीन ग्रंथों की सर्वाधिक सांगितिक व्याख्या 'भरतकृत' नाट्यशास्त्र से प्राप्त होती है। महर्षि भरत ने नाट्यशास्त्र में विपंची वीणा एवम् मतकोकिला वीणा का वर्णन किया है।

इस काल वाद्यों में तन्त्री वाद्य वीणा का विशेष स्थान था। राजा हर्षवर्धन के काल में वीणा के कई प्रकारों जैसे परिवादिनी, घोषवती, बल्लकी एवम् विपंची वीणाओं का खूब वादन किया जाता था। हर्षवर्धन के काल में मतंग जी हुए जिन्होंने 'बृहदेशी' नामक ग्रंथ की रचना की। महर्षि मतंग को ही किन्नरी वीणा का आविष्कारक भी माना जाता है। इसके अतिरिक्त वीणा पर सर्वप्रथम पर्दे बांधने की प्रथा महर्षि मतंग ने ही शुरू की थी।

अन्य कई मतानुसार माना जाता है कि महर्षि मतंग द्वारा ही चित्रा वीणा भी अविष्कृत हुई है एवम् जो वादक इस वीणा का वादन करते थे उन्हें 'चौत्रिक' का नाम दिया जाता था।

मध्यकाल में तन्त्री वाद्य का विकास

मध्यकाल का आविर्भाव 11वीं शताब्दी से माना जाता है। इस काल में तन्त्री वाद्यों से नए-नए वाद्य प्रचार में आने लगे थे। शत्तन्त्री वीणा से संतूर, त्रितन्त्री वीणा से सुरबहार एवम् सितार प्रचार में आने लगे। रबाब एवम् सरोद का प्रचार होने लगा था।

पंडित शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में मध्यकाल में ही प्राचीन एवम् मध्यकाल के अनेकों वाद्यों का वर्णन 'वाद्याध्याय' में एक तन्त्री वीणा, त्रितन्त्री वीणा, नकुली वीणा, चित्रा वीणा, विपंची वीणा, किन्नरी वीणा, मतकोकिला वीणा, पिनाकी वीणा एवम् आलापनी जैसी वीणाओं का वर्णन किया है।

मध्यकाल की वीणाओं के नाम तारों की संख्या के आधार पर भी दिए गए हैं, जैसे तीन तार वाली वीणा को त्रितन्त्री, एकतार वाली वीणा को एकतन्त्री, दो तार वाली वीणा को नकुली, सात तारों वाली वीणा को सप्ततन्त्री एवम् सौ तारों वाली वीणा काा शत्तन्त्री वीणा नाम से वर्णन मिलता है।

1550 ईस्वी में पंडित रामामात्य ने दक्षिण भारतीय संगीत के एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ वीणा प्रकरण में वीणा पर शुद्ध एवम् विकृत स्वरों के बारे में लिखा। वीणा के चारों तारों को मिलाने की विधि एवम् उसके नीचे पर्दे किस प्रकार बांधे जाते थे इसका भी वर्णन वीणा प्रकरण में उन्होंने किया है।

शाहजहाँ का बेटा औरंगजेब 1658 ईस्वी में गद्दी पर बैठा। इस काल में सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत पारिजात' की रचना पंडित आहोबल द्वारा की गई। पंडित आहोबल ने ही सर्वप्रथम वीणा के तारों का नाप निश्चित करके शुद्ध एवम् विकृत स्वरों की स्थापना की।

महर्षि भरत, पंडित आहोबल, पंडित हृदय नारायण, पंडित श्री निवास एवम् पंडित भातखंडे आदि ग्रंथकारों ने स्वर स्थापना में तन्त्री वाद्य वीणा को आधार मानकर इस वाद्य पर स्वर स्थापना करने का प्रयास किया है। अतः हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में तन्त्री वाद्यों का विकास एवम् योगदान महत्त्वपूर्ण था।

पुराणों में तन्त्री वाद्यों का स्थान

भगवान शंकर प्रदोषकालिक पूजा करने के समय माता भगवती को वीणा वादिका के रूप में देखते थे, ऐसा स्कन्द पुराण में वर्णन आता है।

पुराण साहित्य के अनुसार वीणा का अंतर्भाव मंगल वाद्यों में है।

मुकुंद नामक रजोगुण में निधि के वीणा अंतर्गत, मृदंग एवम् वेणु वाद्यों को शामिल किया गया है।

पुराण साहित्य में तन्त्री वाद्यों बल्लकी, वीणा, महती वीणा एवम् तुम्ब वीणा का उल्लेख मिलता है। वीणा से संबंधित उल्लेख हरिवंश पुराण में भी सामूहिक संगीत के आयोजन में गान, नारद के द्वारा वीणा वादन। मान्यता यह भी है कि बल्लकी वीणा पर सभी सात स्वरों की मूर्च्छनाओं के साथ ग्राम रागों का गायन करते थे ।

प्रायः महिलाओं के साथ पुरुष समाज भी वीणा वादन करते थे। माता सरस्वती के प्रदोषकालिक पूजा के अवसर पर वीणा वादन किया जाता था। वर्तमान तस्वीरों में भी माता सरस्वती को वीणा वादन करते हुए देखा जाता है। इसके अतिरिक्त वाद्यों में तन्त्री वाद्य को ज्ञान का सूचक माना जाता है।

आधुनिक काल में तन्त्री वाद्य

तन्त्री वाद्य, सितार, सारंगी, सरोद, संतूर, वायॅलिन, सुरबहार, इसराज इत्यादि वाद्य आजकल प्रचार में हैं। वर्तमान समय में ये तन्त्री वाद्य अधिक प्रचार में हैं। भारतीय संगीत वाद्यों की वादन कला एवम् तन्त्री वाद्यों के बदलते रूपों में हमेशा संगीत प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित किया है।

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक जो तन्त्री वाद्यों का परिवर्तित रूप आज हमारे सामने है वह एक-दो वर्ष या कुछ वर्षों की कहानी नहीं अपितु बहुत वर्षों की मेहनत और रचनात्मकता का प्रतीक है। इन तन्त्री वाद्यों के आधुनिक समय तक हजारों वर्षों का अनुसंधान मेहनत एवम् तपस्या है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 'बृहत हिन्दी कोश', कालिका प्रसाद
- 'हिन्दुस्तानी संगीत में तन्त्र वादकों का योगदान', श्रीमती वीणा शर्मा
- 'भारतीय संगीत का इतिहास', ठाकुर जयदेव सिंह
- 'भारतीय संगीत के तन्त्री वाद्य', डॉ० प्रकाश महाडिष्क
- 'भारतीय संगीत वाद्य', डॉ० लालमणि मिश्र
- 'संगीत बोध', डॉ० शरतचन्द्र श्रीधर पराजपे
- 'संगीत बोध, शरत चन्द्र पराजपे'
- 'संगीतसार भाग-2, वीणामानकर'
- 'उत्तर भारतीय संगीत में तंत्रवाद्यों का स्थान एवम् उपयोगिता', डॉ० संगीता सिंह
- 'आधुनिक तन्त्र वाद्यों की जननी वीणा', अनुपमा शर्मा
- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तन्त्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृतियाँ, डॉ० योगिता शर्मा
- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वादन शैलियाँ, डॉ० रचना भृगुवंशी
- भारतीय तन्त्र वाद्यो की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ० रेखा सेठ

गणेश शंकर विद्यार्थी - पत्रकारिता और स्वाधीनता संघर्ष

डॉ० अनीता प्रकाश

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम.एम.एच कॉलेज, गाजियाबाद

पत्रकारिता, राजनीतिक जागृति और स्वाधीनता संघर्ष का बहुत पारस्परिक और अन्योन्याश्रित संबंध है। किसी भी देश की पत्रकारिता में अपनेयुग की चेतना का प्रतिबिम्ब और अनुगूँज तो होती ही है, साथ ही वह उस काल-विशेष की युगचेतना को प्रभावित व अनुप्राणित कर उसका दिशा-निर्देश भी करती है। स्वतंत्रता-पूर्व संयुक्त प्रान्त कहे जाने वाले वर्तमान उत्तर प्रदेश प्रान्त में राजनीतिक चेतना के उद्‌भव और विकास में पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के एक दशक पहले से ही राष्ट्रीय विचारो, मतों और राजनीतिक महत्व के मुद्दों का संप्रेषण प्रेस के माध्यम से प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में होना प्रारम्भ हो चुका था। वस्तुतः राष्ट्रवाद की प्रारम्भिक नींव प्रान्तीय समाचार पत्रों द्वारा ही सर्वप्रथम रखी गई। राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ हिंदी पत्रों का स्वर और तीखा व तीव्र होता गया। विशेषकर गाँधी युग यानि 1920 के दशक से तो पत्रकार और राजनीतिज्ञ लगभग समानार्थी बन गए।

गाँधी युगीन पत्रकारों में सर्वप्रमुख थे, 'प्रताप' और 'प्रभा' के संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931)। वह न केवल एक पत्रकार और साहित्यकार थे, बल्कि कानपुर की एक जानी-मानी सार्वजनिक हस्ती और कांग्रेस के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नेता थे। उनके विषय में महात्मा गाँधी ने टिप्पणी कि 'विद्यार्थी जी स्वयं में एक संस्था थे[1]" बिल्कुल खरी उतरती है। वास्तव में उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। राजनीति में उन्होंने सदैव सदाचार, कर्मनिष्ठा और मूल्यपरक राजनीति पर बल दिया। जवाहर लाल नेहरू ने उनके विषय में ठीक ही लिखा था, "मेरे लिए वह समूचे कानपुर थे। मुझे तो उनके मुकाबले का कोई आदमी ही नहीं मिला।[2]" वास्तव में वह अपने आप में अनूठे, अद्वितीय और बेजोड़ थे। यह दुर्भाग्य का विषय है कि उनके योगदान का सही आकलन अभी तक किसी ऐतिहासिक शोध में नहीं किया गया है।

गणेश शंकर विद्यार्थी के व्यक्तित्व-निर्माण का निर्णायक दौर इलाहाबाद से प्रारम्भ हुआ, जहाँ रहकर उन्होंने एफ.ए. की परीक्षा पास की और 'स्वराज' नामक पत्र के द्वारा पत्रकारिता और गम्भीर लेखन से सम्बद्ध हुए। बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निकाले जाने वाले 'सरस्वती' में सहकारी संपादक के रूप में उन्होंने एक वर्ष कार्य किया। तत्पश्चात दिसम्बर 1912 से उन्होंने इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के सर्वप्रमुख पत्र 'अभ्युदय' की बढ़ती हुई ग्राहक संख्या में उनके लेखन की बहुतअधिक महत्वपूर्ण भूकिा थी। 9 नवम्बर, 1913 से उन्होंने कानपुर से प्रताप समाचार पत्र को प्रारम्भ किया। पहले ही अंक के मुखपृष्ठ पर महावीर प्रसाद द्विवेदी की पंक्तियां अंकित थीं-

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश काअभिमान है
वह नर नहीं, नर पशु निराहै, और मृतक समान है"।[3]

प्रथम संपादकीय में उन्होंने 'प्रताप' की नीति को उद्‌घोषित किया।

''आज अपने दृश्य में नयी-नयी आशोओं को धारण करके, और अपने उद्देश्य पर पूर्ण विश्वास रखकर प्रताप कार्यक्षेत्र में आता है। समस्त मानव जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं।... हम अपने देश और समाज की सेवा के पवित्र काम का भार अपने ऊपर लेते हैं...हम जानते हैं कि

हमें इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा, और उसके लिए बड़े भारी साहस और आत्मबल की आवश्यकता है। हमें यह भी अच्छी तरह मालूम है कि हमारा जन्म निर्बलता, पराधीनता और अल्पज्ञता के वायुमंडल में हुआ है। तो भी हमारे हृदय में सत्य की सेवा करने के लिए आगे बड़ने की इच्छा है, और हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई और अच्छाई का अटल विश्वास है।... जिस दिन हमारी आत्मा इतनी निर्बल हो जाए कि अपने प्यारे आदर्श से डिग जाए, जानबूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशरमी के और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरूता दिखावे, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा"।[4]

मूल्यपरक और राष्ट्र को पूर्णरूपेण समिर्पित पत्रकारिता का इससे बड़ा उदाहरण क्या होगा? 'प्रताप' मात्र एक अखबर नहीं, बल्कि गाँधी युगीन आन्दोलन का सबसे सजग और निर्भीक प्रहरी बना रहा। बालकृष्ण नवीन ने लिखा है, ''बहुत वर्षों तक 'प्रताप' ही एक प्रकार से गाँधी जी का मुखपत्र बना रहा।[5]" विद्यार्थी जी ने यह साबित कर दिखाया कि संपादक का पद आजीविका के लिए नहीं, बल्कि लोकसेवा के लिए है। तमाम सरकारी दमन के बावजूद 'प्रताप' के तेवर में कोई अंतर नहीं आया और उसमें नीतियों और देश में सामाजिक-आर्थिक विषमताओं के विरूद्ध तीखी टीका-टिप्पणी छपती रही। उल्लेखनीय है कि विद्यार्थी जी को अपने जीवन की पाँच जेल यात्राओं में से तीन 'प्रताप' की पत्रकारिता ओर दो अपने राजनीतिक भाषणों और वक्तव्यों के कारण करनी पड़ी। 1920 से 'प्रभा' का प्रकाश भी उनके द्वारा आरम्भ किया गया। शीघ्र ही 'प्रताप' की लोकप्रियता उत्तर प्रदेश के दूरदराज क्षेत्रों में बढ़ती गई। 1919 में उसकी ग्राहक संख्या 9000 थी, जो संयुक्त प्रान्त के सभी समाचार पत्रों में सर्वाधिक थी। कृष्ण दत्त पालीवाल, (जो बाद में 'सैनिक' (आगरा) के प्रकाशक बने) ने लिखा है, "सुदेर पहाड़ों तक में जब साप्ताहिक 'प्रताप' पहुँचता था, तो उसे पढ़ने और सुनने के लिए लोग डाकखाने पर उसी श्रद्धा-भक्ति के साथ एकत्रित होते थे, जिस तरह धार्मिक कथाएँ सनुने के लिए।[6]"

गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' के माध्यम से राष्ट्रीय जनजागरण को सफल बनाने के अथक प्रयास किए। भाषा, साहित्य, संस्कृति, समाज-सुधार, आर्थिक परिवर्तन, राजनीति इत्यादि सब विषयों का उन्होंने समावेश किया और राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़ा। उनके लिये यह सब राष्ट्रीय आन्दोलन के एक महत्वपूर्ण घटक थे। उनके द्वारा स्थापित 'प्रताप' प्रेस सामाजिक क्रान्ति, जातीय गौरव, सांस्कृतिक, साहित्यिक विरासत का रक्षण-सबका एक सशक्त मंच सिद्ध हुआ। उनके राजनीतिक चिंतन पर तिलक और गाँधी जी का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। गाँधी जी का हृदय से आदर-सम्मान करने और प्रान्तीय कांग्रेस के एक समर्पित नेता होने के बावजूद गणेश शंकर विद्यार्थी कुछ मुद्दों पर अपने विरोध को जाहिर करने से कभी नहीं हिचकिचाए। अहिंसा के प्रश्न पर उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं अहिंसा को शुरू से अपनी पॉलिसी मानता रहा हूं, धर्म नहीं मानता रहा। मनसा और कर्मणा अहिंसा साधारण मनुष्यों को सहज स्वभाव नहीं है, और इसलिए राजनीतिक संग्राम में उसे अपना साधारण हथियार नहीं बनाया जा सकता।[7]"

खिलाफत के संबंध मेंउनके मतभेद 'धर्म की आड़' नामक 27 अक्टूबर, 1926 को प्रकाशित लेख से स्पष्ट होते हैं-

"वह दिन निसंदेह अत्यंत बुरा था, जिस दिन स्वाधीनताके क्षेत्र में खिलाफत, मुल्ला मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान दिया जाना आवश्यक समझाा गया...देश की स्वाधीनता संग्राम ने ही मौलाना अब्दुल बारी आरै शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश किया, उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और....इस समय हमारे हाथों से ही बढ़ाई उनकी और इनके-से लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़े उखाड़ने और देश में मजहबी पागलपन, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही है।[8]"

एक ओर राष्ट्रीय मुद्दों पर अपने विचार निर्भिकता और दृढ़ता से सामने रखने में वह कभी नहीं हिचकिचाए, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय हित में अपने निजी दृष्टिकोण से ऊपर उठकर वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में काम करने के लिए वह सदैव तत्पर दिखाई दिए। 1926 में संयुक्त प्रान्त की विधान सभा के चुनाव के लिए खड़े होने के पीछे प्रादेशिक राजनीति को ध्यान में रखते हुए उनके आत्मत्याग की भावना बनारसी लाल चतुर्वेदी को उनके द्वारा लिखे पत्र में परिलक्षित होती है–

"मेरे लिए विचारने की बात यह है कि यदि मैं बलिदान होने के लिए राजी नहीं होता तो यहाँ के पुराने कार्यकर्ता कांग्रेस से इस्तीफा दे देंगे क्योकि वे कांग्रेस में रहते हुए कांग्रेस की प्रतिष्ठा का जाते हुए नहीं देखना चाहते। बार-बार कांग्रेस की प्रतिष्ठा की दुहाई दी जा रही है। मैं यह बात पेश कर रहा हूं कि मैं अपरिवर्तनवादी न होते हुए भी काँसिल की उपयोगिता पर विश्वास नहीं करता और यह समझता हूँ कि जो बहुत साधारण-सा अंतर इस समय स्वराजियों, प्रतियोगियों आरै नेशनल पार्टी में दिखाई दे रहा

है, वह इलेक्शन के बाद न रह जाएगा। मैं हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े का मूल कारण इलेक्शन आदि को समझता हूँ और कौंसिल में जाने के बाद आदमी देश और जनता के काम का नहीं रहता।[9]"

अपने आदर्शों के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। इसके लिए प्रभावशाली वर्गों या व्यक्तियों की सत्ता का विरोध करने में वह कभी नहीं चूके। 1923 में फतेहपुर जिला राजनीतिक सम्मेलन के सभापति के रूप में उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं लड़ाई का पक्षपाती हूँ। मैं समस्त सत्ताओं का विरोधी हूँ। फिर चाहे वह सत्ता मौजूद नौकरशाही की हो, या जमींदारी की, धनवानों की हो या ऊँची जातियों की।[10]"

ज्ञातत्व है कि उनका राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं था। गाँधी और तिलक के प्रति पूरी निष्ठा रखते हुए भी उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन को पूरा समर्थन और सहयोग दिया। राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्लाह, रौशन सिंह, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, बटुकेश्वर दत्त, सभी क्रान्तिकारियों को वह अपने परिवार के सदस्य की तरह स्नेह देते थे। भगत सिंह को उन्होंने कुछ दिन 'प्रताप' प्रेस में रखा। राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा को उन्होंने 'प्रताप' द्वारा छपवाया। वे पहले राष्ट्रीय नेता थे, जिन्होंने काकोरी षडयन्त्र केस के अभियुक्तों के मुकदमें की पैरवी करवाई, और उनके लिए राजनीतिक परामर्श व आर्थिक सहायता की व्यवस्था की। मनसा, वाचा, कर्मणा उन्होंने क्रान्तिकारियों की जी खोलकर मदद की।

नौजवानों पर उनको अप्रतिम विश्वास था। जैसा कि श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिखा है, 'नवयुकों को रखना,उन्हें आश्रय देना, उन्हें अनुप्राणित करना और उनके जीवन को बनाना गणेश शंकर विद्यार्थी की बात थी। वह अद्‌भुत थे, किसी भी प्रकार के प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं सकते थे। सन् 1913 से 30 तक इस देश में कोई भी ऐसा आन्दोलन नहीं हुआ, जिसका प्रसार, प्रचार और आंशिक नेतृत्व गणेश शंकर विद्यार्थी ने न किया हो।[11]" वस्तुतः राष्ट्रसेवा ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था।

उनके समावेशी राष्ट्रीय दृष्टिाकेण में किसानों और मजदूरों का विशेष स्थान था। वह किसानों और मजदूरों को राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक मानते थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा, "किसानों और मजदूरों का अब युग आ गया है। थोथी राजनीति से अब काम नहीं चलेगा। देश की सर्वमान्य राजनीतिक संस्था राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के सामने इस समय सिर्फ यही एक काम है। यदि कांग्रेस इस किसान मजदूर आन्दोलन की गतिविधि को समझकर काम नहीं करती, तो उसका भविष्य उज्जवल नहीं कहा जा सकता।[12]" कानपुर के मजदूरों का शोषण हो, या रायबरेली और फैजाबाद जिले के किसानों का उत्पीड़न, यहाँ तक कि देशी राज्य बिजौलिया के किसानों के प्रति अन्याय और शोषण के विरूद्ध उन्होंने 'प्रताप' में अनेकों लेख लिखे। रायबरेली गोलीकाँड के समूचे तथ्य एकत्रित करके उन्होंने एक विस्तृत रिपोर्ट 'प्रताप' में प्रकाशित करवाई, जिसके परिणाम स्वरूप उन पर मानहानि का मुकदमा ठोका गया और उन्हें जेल तक जाना पड़ा। इसी प्रकार कानपुर के मिल-मजदूरों की आर्थिक माँगों को लेकर आन्दोलन करने और 'मजदूर सभा' कागठन करने में वह अगे रहे।

उनका मानना था कि 'हम लोगों को कागजी-स्वराज्य मसविदा बनाने के झंझट में न पड़कर सीधे गाँवों की ओर मुड़ना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करने का भी एकमात्र यही तरीका है कि ग्राम संगठन के काम को हाथ में लेकर बिना भेदभाव के भारत के दीन-हीन किसानों की सेवा की जाए...[13]

इसी उद्देश्य से उन्होंने कानपुर से कुछ मील दूर नरवल में 1929 में एक झोपड़ी में 'सेवा आश्रम' नाम की संस्था स्थापित की, जहाँ उन्होंने ग्राम संगठन का कार्य बहुत निष्ठा और लगन के साथ किया। पाठशाला और पुस्तकालय की स्थापना करके और चरखा तथा खादी को बढ़ावा देकर उन्होंने ग्राम स्वराज्य के रचनात्मक पहलू में भी अपनी भागीदारी की। गणेश शंकर विद्यार्थी हर शनिवार को नरवल जाते थे और सप्ताहाँत वहीं बिताते थे। उन्हीं की प्रेरणा का फल था कि नरवल क्षेत्र से सन् 1931 के आन्दोलन में 400 लोग जेल गए।

अपनी पत्रकरिता ओर व्यक्तिगत जीवन में गणेश शंकर विद्यार्थी ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और सामप्रदायिक सद्‌भाव पर भी बहुत अधिक बल दिया। 'अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी बिरादीरी' नाम की संस्था के गठन का उद्देश्य ही था बिना जाति-पाँति के भेदभाव के सभी लोग सच्चे मानव बने। ख्वाजा अब्दुल सलामत, 'सदाकत' के सम्पादक, मूर्तिजा हुसैन आबदी, नवल किशोर भरतिया, गंगासहाय चौबे जैसे कुछ अन्य स्थानीय उत्साही जन उनके साथ इसमें शरीक हुए। यह छोटी सी गैर-राजनीतिक संस्था हिंदू-मुस्लिम दंगों के दौरान शान्ति स्थापित करने के अपने कार्य में जुटी रही। स्वयं गणेश शंकर विद्यार्थी ने बहुत निर्भीकता के साथ कानपुर के साम्प्रदायिक दंगो का शान्त करने का प्रयास किया और दुर्भाग्यवश इसी प्रक्रिया में उनके जीवन का अन्त हो गया। ऐसे बलिदान

का कोई अन्य उदाहरण खोजना कठिन है जब एक पत्रकार ने इस प्रकार अपने प्राण देश के लिए कुर्बान कर दिए हों। देवव्रत शास्त्री ने उनके विषय में ठीक ही लिखा है,

"ख्याति प्रसिद्ध" नेता न मालूम कितने हो गए और कितने और होंगे, परन्तु आत्मोत्सर्ग की जो महानता उनमें थी, जिस विशालता से उनका जीवन अनुप्राणित था, उसके दर्शन मानव इतिहास में बहुत कम होते हैं। वह...हमेशा अमानुषिकता के खिलाफ जेहाद करते रहे, किन्तु उनकी अंतिम लड़ाई, अमानुषिकता के खिलाफ उनना आखिरी जेहाद, बड़ा अनोखा, बिल्कुल बेजोड़ था।[14]"

गाँधी जी ने उनकी मृत्यु पर भेजे तार-संदेश में लिखा, "यद्यपि हृदय खून के आँसू रोता है, फिर भी गणेश शंकर के जैसी शानदार मृत्यु पर संवेदना प्रकट करने का जी नहीं चाहता। यह निश्चय है कि आज नहीं तो आगे किसी दिन उनका निष्पाप खून हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को सुदृढ़ बनाएगा।... ईश्वर करे उनका यह दृष्टांत संक्रामक सिद्ध हो।[15]"

कुल मिलाकर यह कहा जासकताहै कि गणेश शंकर विद्यार्थी 1920 के दशक के संयुक्त प्रान्त के सर्वप्रमुख पत्रकार और सार्वजनिक हस्ती थे। उनका राजनीतिक और सामाजिक जीवन अतुलनीय था। उनके द्वारा राष्ट्रवाद का एक समावेशी मॉडल दिया गया जो अनुकरणीय और ग्राह्य था। 'प्रताप' के द्वारा उन्होंने हिन्दी जगत की और सार्वजनिक जीवन की अतुलनीय सेवा की। 'प्रताप' को किसानों और मजदूरों का पत्र बनाकर उसे टूटे-फूटे कमरों तथा गिरती-पड़ती झोपड़ियों तक पहुँचाया जो उनके पत्रकारिता को ही नहीं, बल्कि कांग्रेस और स्वाधीनता आन्दोलन के लिए सबसे बड़ा योगदान था।

संदर्भ

1. नर्मदा, अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति अंक,गवालियर, अक्टूबर 1961, पृष्ठ-21
2. वही, पृष्ठ-3
3. प्रताप (कानुपर) प्रथम अंक, 16 नवम्बर,1913
4. वही
5. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'आजकल' पुण्य श्लोक गणेश जी, वर्ष 10, अंक 11 मार्च, 1955, पृष्ठ 15
6. श्री कृष्ण दत्त पालीवाल, ''गणेश जी की याद में", श्री तिलक (सं.) युग पुरूष गणेश शंकर विद्यार्थी, भाग-1, दिल्ली 2013, पृष्ठ-264
7. "20 मार्च, 1923 को फतेहपुर की अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत लिखित बयान", सुरेश सलिल (सं.) गणेश शंकर विद्यार्थी सचयन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 80
8. "धर्म क आड़", प्रताप (कानपुर), 27 अक्टूबर, 1924
9. "गणेश शंकर विद्यार्थी का बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा पत्र, 01.06.1926", बनारसी दास चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, दिल्ली, पृष्ठ 45
10. वही, पृष्ठ 2
11. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' 'आजकल' मार्च 1955, पृष्ठ 14-15
12. ''किसान-मजदूर और कांग्रेस'', प्रताप (कानपुर), 5 अगस्त, 1928
13. बनारसीदास चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, दिल्ली, पृष्ठ 50
14. डॉ० लल्लन मिश्र, गणेश शंकर विद्यार्थी (हिन्दी निबन्ध तथा पत्रकारिता में देन, वराणसी, 1988, पृष्ठ 194
15. नर्मदा, अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति अंक, ग्वालियर, अक्टूबर 1961 पृष्ठ 6

व्यावसायिक शिक्षा और महात्मा गांधी

डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत विनोबा पी0जी0 कालेज, देवरिया, उ0प्र0

महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन जिन प्रमुख आधार स्तम्भों पर आधारित है उनमें शिक्षा में स्वालम्बन (आत्मनिर्भरता) तथा उसका किसी मूल उद्योग (कताई-बुनाई, बढ़ईगिरी और खेती-बारी) के आधा पर अवस्ति होना है। महात्मा गांधी भारतीय समाज की अत्यन्त शोचनीय आर्थिक अवस्था का सुधार चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस शिक्षा पद्धति में हस्तकला का स्थान महत्त्वपूर्ण है। महात्मा गांधी एक भविष्य द्रष्टा थे, उनका प्रमुख उद्देश्य था भारत के भावी गरीबी को दूर करना। भारतवासियों को भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा मिल जाए, ऐसा वे अवश्य चाहते थे और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पूरी चेष्टा की। उन्होंने बुनियादी शिक्षा-पद्धति की जो कल्पना की और उसे साकार रूप दिया, वह बहुत ही व्यावहारिक तथा मनोवैज्ञानिक है, साथ ही भारतीय समाज के सर्वथा अनुकूल भी है। बुनियादी शिक्षा-पद्धति एवं व्यावसायिक शिक्षा में निःसंदेह गहरा सम्बन्ध है। व्यावसायिक शिक्षा अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा है।

जिस विद्या को प्राप्त करके विद्यार्थी जन जीवन निर्वाह तक न कर सके तथा निर्बल और शक्ति-शून्य होकर रोगग्रस्त और अभाव पीड़ित रहे, वह शिक्षा व्यर्थ है। विद्या के लिए अर्थकारी होना परमावश्यक है। साहित्य शिक्षा के साथ यदि कला-कौशल का भी सम्मिश्रण रखा जाय और स्नातकों को किसी शिल्प का ज्ञान करा दिया जाय तो आर्थिक समस्याओं का सहज ही समाधान हो सकता है। शास्त्रों के मतानुसार मनुष्य को चार पुरुषार्थ प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। ये हैं-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। इनकी उपलब्धि के निमित्त ही हमारे समस्त कार्य-कलाप होते हैं। मानव जाति का इतिहास इस सत्य को लक्षित करता है कि उसकी समस्त शक्तियाँ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के निमित्त सतत् प्रयत्नशील रही हैं तथा भविष्य में भी इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ही वे सदैव उद्योगशील बनी रहेंगी। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक तत्व की प्रधानता मानी जाती है, किन्तु अपने सर्वोत्तम काल (गुप्त युग) में भी आध्यात्मिक और बौद्धिक दोनों तत्वों पर समान बल दिया गया था। धर्म और मोक्ष के नियमों के पालन के समान ही अर्थ और काम की महत्ता थी। यह कहा जाता था कि चारों की प्राप्ति का प्रयास समान रूप से किया जाना चाहिए, जो एक का ही सेवन करता है वह निन्दा का पात्र है।

वर्तमान युग भौतिकवादी युग तथा वर्तमान सभ्यता भौतिक सभ्यता के नाम से पुकारी जाती है। भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हम विशेष चेष्टावान् हैं। धन, सुख एवं ऐश्वर्य की ओर हम अधिक उन्मुख हैं। आज प्रायः मनुष्यों में धर्म और मोक्ष से भी अधिक बलवती अर्थोपलब्धि की इच्छा है। भॉतिकवादी सभ्यता ने धर्म और मोक्ष की भावना पर भी गहरा आघात पहुँचाया है। धर्म एवं परलोक की चर्चा के प्रति मनुष्यों की उतनी गहरी आस्था नहीं, जितनी प्राचीन एवं मध्य युगों में बनी रही। यूरोप में धर्म के नाम पर वर्षो युद्ध चलते रहे। इसलिए यूनान में सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा था।

सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में यथार्थवाद की लहर आई। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, धर्म प्रवक्ताओं तथा समाज सुधारकों का जन्म हुआ। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की विवेचना करने वाले न्यूटन, कोपरनिकस, जान केपलर, गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक तथा मार्टिन लूथर, काबिन तथा नाक्स जैसे धार्मिक सुधारक तथा मान्टेन, बेकन, कामेनिमस और जान लॉक जैसे शिक्षाशास्त्रियों का प्रादुर्भाव इसी युग में हुआ। इनके प्रतिपादित विचारों से मानव जाति की परम्परागत धारणाओं में एक क्रांति उत्पन्न हुई। यह क्रांति

केवल एक ही विषय तक सीमित नहीं था, अपितु जनजीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, समस्त क्षेत्र इससे प्रभावित हुए। नई चेतना एवं नये विचार का जन्म हुआ। यथार्थवाद परलोक की पूर्णत: उपेक्षा करता है। यथार्थवाद के अनुसार केवल वही वस्तु सत्य है, जिसका अस्तित्व प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। यथार्थवादी प्रत्यक्ष जगत को ही सत्य मानते हैं, अप्रत्यक्ष को नहीं। अत: यथार्थवाद भौतिक जगत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

मानव जीवन की इस भौतिकवादी सभ्यता के प्रतिक्रिया स्वरूप ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हमें बतलाया 'वेदों की ओर लौटें' तथा महात्मा गांधी ने कहा कि 'गाँवों की ओर मुड़े'। ऐसे सामजवेत्ताओं एवं चिंतनशील महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के मूल में यही भावना व्याप्त था कि हमारा जीवन विशेष भौतिकवादी हो गया है। अत: हमें सरल जीवन को अपनाना और धारण करना चाहिए। वर्तमान भौतिकवादी सभ्यता सर्वत्र व्याप्त हो चुकी है, इसकी जड़ जम चुकी है। हमारे नवयुवक भौतिकवादी परिस्थिति से लड़ने को तैयार हों-इसके लिए उसमें क्षमता उत्पन्न करनी है और यह लक्ष्य तभी पूरा हो सकेगा, जब हमारी शिक्षा तद्नुकूल होगी। अर्थात् शिक्षा की महिमामयी शक्ति के माध्यम से हम अपने उद्देश्य की पूर्ति करेंगे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें शिक्षा के व्यावसायिक आदर्श को स्वीकार करना होगा। व्यावसायिक शिक्षा में ही ऐसी क्षमता है, जो हमारे किशोरों और नवजवानों में वह शक्ति उत्पन्न कर सकेगी, जिसके आधार पर वे भौतिकवादी सभ्यता के अनुकूल अपने को सबल और सक्षम बना सकेंगे तथा प्रतिद्वन्द्विता के लिए तैयार हो सकेंगे।

व्यावसायिक शिक्षा को विश्व में व्याप्त वर्तमान भौतिकवादी सभ्यता एवं विषम सामाजिक आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए प्रमुखता देने का यह अर्थ नहीं होता कि हम अपने धार्मिक, पारलौकिक आदि उद्देश्यों को सर्वथा भूल जाए। शिक्षा का उद्देश्य तो वस्तुत: व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है। उसकी आत्मा मनमस्तिष्क, शरीर, चरित्र, नैतिकता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना आदि व्यक्तित्व के समस्त अवयवों का विकास शिक्षा द्वारा हो, इसकी भरपूर चेष्टा करनी चाहिए। हमारा प्रयास अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मानव जीवन की चारों प्रमुख विशेषताओं की पूर्णतया उपलब्धि के निमित्त हो। हमारे छात्र भौतिकवादी सभ्यता के अनुकूल पूर्णत: तैयार हो। इसके लिए अवश्य ही हमें व्यावसायिक शिक्षा की भी पूरी-पूरी व्यवस्था तैयार करनी है। भारतीय संस्कृति की सर्वप्रमुख विलक्षणता यह थी कि इसमें मनुष्य के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया गया था।

व्यावसायिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है कि वह बालकों को शांति एवं सरलतापूर्वक जीवनयापन करने की क्षमता प्रदान करे। उन्हें इस योग्य बनावे कि वे जीविकोपार्जन की समस्या को अपने व्यावहारिक ज्ञान के माध्यम से सुगमतापूर्वक सुलझा सके तथा अपने विद्यालयी जीवन की समाप्ति के पश्चात् उन्हें मात्र नौकरी का ही आश्रय नहीं ढूढना पड़े, अपितु प्राप्त शिक्षा के आधार पर वे अपनी रोजी-रोटी की समस्या का समाधान, बिना किसी परिश्रम के स्वयं निकला सकें। व्यावसायिक शिक्षा किशोरावस्था के मनोविज्ञान के अनुकूल है। विशोरावस्था में ध्यान समाज और संसार की यथार्थता पर होता है। इस समय किशोरों की इच्छा होती है कि अपने भावी जीवन को सुखी बनाने के लिए वे कौन सा ऐसा काम सींख लें, जिससे उसको अपने जीविकोपार्जन में सुविधा हो। व्यावसायिक शिक्षा में जीविका की समस्या के समाधान के निमित्त वही शक्ति है, उसमें एक बड़ा प्रयोजन अन्तर्निहित है।

वैदिक, ब्राह्मण तथा बौद्धकालीन तीनों शिक्षा-प्रणालियों में व्यावहारिक शिक्षा को महत्त्व दिया गया था। यद्यपि शिक्षा का आन्तरिक स्वरूप आध्यात्मिक था, तथापि बालकों को जीवनयापन के लिए भी शिक्षा मिले, इसके लिए प्राचीन गुरु सदैव सचेष्ट रहते थे। शिक्षा सम्पूर्ण जीवन की तैयारी में सहायक हो, इस उद्देश्य से विद्यार्थियों को शिक्षित बनाया जाता था। वैदिककालीन शिक्षा में केवल अध्यात्म को ही नहीं, अपितु जीवन की व्यावहारिकता को भी पूर्णरूपेण महत्त्व प्रदान किया जाता था। अध्यात्म के साथ-साथ अन्य जीवनोपयोगी शिक्षाओं का भी समावेश था। ऋषियों के आश्रम जीवन की प्रयोगशाला स्वरूप थे। छात्र इन प्रयोगशालाओं में भावी जीवन में आने वाली गूढ़तम समस्याओं का अध्ययन सरलता से कर लेते थे। ब्राह्मणकालीन में शिक्षक बालकों को व्यावसायिक ज्ञान प्रदान करते थे। फलस्वरूप वे अपने भावी जीवन के संघर्षो से नहीं घबड़ाते थे। बौद्धकालीन शिक्षा प्राप्ति के अन्तर्गत व्यावसायिक विषयों की शिक्षा व्यावहारिक रूप से प्रदान की जाती थी। इस समय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक कला-कौशल एवं जीवनोपयोगी विषयों की शिक्षा को पर्याप्त स्थान दिया गया था। विद्यार्थीगण कुशल कारीगरों के साथ रख दिये जाते थे। उनके साथ रहकर वे विभिन्न विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते थे। बौद्धकालीन शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक कला-कौशल एवं जीवनोपयोगी विषयों की शिक्षा को पर्याप्त स्थान दिया गया था।

मध्यकालीन भारत में व्यावसायिक शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया गया था। इस समय ज्योतिष, आयुर्वेद चिकित्सा के पठन-पाठन की उपयोगिता समझी गयी। इस समय के विभिन्न उपयोगी शिल्पों, वास्तुकला, मूर्ति, कृषि, धातु विज्ञान आदि पर बहुत पुस्तकें हैं। इस्लामी शिक्षा में सांसारिक एवं धार्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाओं का सम्मिश्रण था। इसमें धार्मिक तथा भौतिक शिक्षा का समन्वित स्वरूप दिग्दर्शित होता है।

हण्टर कमीशन ने हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक विषयों का समावेश किया था। आयोग ने अपने पाठ्यक्रम के विषय में कहा था कि प्रत्येक प्रान्त अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपने पाठ्यक्रम का निश्चय करें। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने सन् 1935 ई0 में व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में कहा था कि देश की वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए केवल बौद्धिक शिक्षा पर ही बल न दिया जाए, अपितु व्यावहारिक तथा व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया जाय। सन् 1937 ई0 में भारतीय शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् वुड एबट रिपोर्ट ने व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया। सन् 1944 ई0 में सार्जेण्ट योजना ने अपनी रिपोर्ट में व्यावसायिक शिक्षा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए हाईस्कूल की शिक्षा का विभाजन दो रूपों में कर दिया। प्रथम टेक्निकल तथा दूसरा ऐकेडिमक (साहित्यिक)।

यदि व्यावसायिक शिक्षा को इसके वास्तविक रूप में संगठित किया जाए, बालक को उसके रुचि के अनुरूप व्यवसाय चुनने का अवसर दिया जाय तथा व्यवस्थित उचित शिक्षा प्रणाली अपनायी जाए तो जिन बुराईयों और त्रुटियों की कल्पना की जाती है, वे कदापि उत्पन्न नहीं होंगी।

व्यावसायिक शिक्षा बालकों को स्वावलम्बी बनाने के साथ-साथ उचित अर्थ में शिक्षित भी बना सकेगी। व्यावसायिक शिक्षा में व्यक्ति एवं उसके व्यक्तित्व के विकास की पूर्ण क्षमता है। यदि बालकों को पढ़ने-लिखने एवं गिनती सीखने अर्थात् पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के बदले हाथ से कार्य करना सिखाया जाए तथा अन्य विषयों की शिक्षा, खेल और पाठ्य सहगामी विषयों को भी सम्बद्ध कर दिया जाय तो वह व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में सफल सहायक होगी। हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार शिक्षा में जीविकोपार्जन का प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मनुष्य को जीविकोपार्जन में सहायता प्रदान करे। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को जीविकोपार्जन के लिए क्षमता देने में समर्थ होती है। रूसों, पेस्टालॉजी भी शिक्षा को पूर्णतः व्यावहारिक बनाने के पक्ष में थे। अतः उनकी इच्छा थी कि व्यवसाय और शिक्षा को एक साथ रखा जाए। शिक्षा और व्यवसाय को एक साथ रखकर वे शिक्षा-संस्थाओं में व्यावहारिकता का समावेश करना चाहते थे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिए तैयार करे। किसी भी व्यक्ति को बिना व्यवसाय के शिक्षा तथा बिना शिक्षा के व्यवसाय चुनने नहीं देना चाहिए। यदि स्कूल बच्चों को कुछ व्यावसायिक ज्ञान प्रदान करेगा, तो वे अपनी जीविका के लिए धनार्जन करने में सफल होंगे। इस प्रकार वे अपनी दैनिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में रूकावट नहीं अनुभव करेंगे।

व्यावसायिक शिक्षा की महत्ता का अनुभव यूरोप और अमेरिका जैसे प्रगतिशील देशों में की गई है। वहाँ के शिक्षाशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं अध्यापकों ने इसकी प्रमुखता को स्वीकार कर पाठ्यक्रम में समुचित स्थान दिया है। व्यावसायिक शिक्षा की योजना एवं क्षमता प्रदान करने के लिए बालकों को उनकी प्राथमिक अवस्था की शिक्षा से ही कार्य प्रारम्भ करना होगा। बालकों को उनकी प्रारम्भिक शिक्षा से ही व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक केवल अपनी जीविकोपार्जन की समस्या का ही सरलता और सुगमतापूर्व समाधान नहीं करेंगे, अपितु वे अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति में भी पूरा-पूरा योगदान दे सकेंगे। सभ्यता और संस्कृति का विकास अवकाश में समय से ही होता है। जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा में व्यावसायिक प्रशिक्षण का समायोजना अत्यन्त आवश्यक है।

वर्तमान काल में जीविकोपार्जन की शिक्षा का महत्त्व अधिक बढ़ गया है, जो शिक्षा उपयोगी है, उस पर अधिक महत्त्व दिया जाता है। शिक्षा के प्रति यह दृष्टिकोण कि शिक्षा का ध्येय केवल शिक्षा ही है, उसमें कोई उपयोगिता का कोई स्थान नहीं, पूर्णरूपेण परिवर्तित हो चुका है। यह माना जाने लगा है कि वास्तविक शिक्षा वही है, जो व्यक्ति को सम्यक् रूप से अपना जीवन व्यतीत

करने के निमित्त तैयार करे, वह सुखी बन सके। सुखी वही बन सकता हे, जिसके समक्ष अर्थोपार्जन की समस्या का विकट रूप नहीं उपस्थित रहे और इसके समाधान की क्षमता व्यावसायिक शिक्षा में ही है।

महात्मा गांधी ने अपनी प्रदत्त बुनियादी शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों को पूर्णरूपेण समावेश करने का प्रयत्न किया है। महात्मा गांधी के विचार से व्यवसाय लड़के-लड़कियों के विकास का मुख्य साधन है, अतः पाठ्यक्रम में जहाँ तक सम्भव हो, व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित परम्परागत शिक्षा प्रणाली के विरोध में बुनियादी शिक्षा व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की थी। परम्परागत शिक्षा प्रणाली पुस्तकी थी, विषय केन्द्रित थी। इसका मुख्य उद्देश्य था कि भारतीय नवयुवक कार्यालयों के लिए सहायक के रूप में तैयार हों। अतः महात्मा गांधी ने इस अव्यवहारिक सैद्धान्तिक शिक्षा के विरोध में बुनियादी शिक्षा-प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत की, जो बालक को स्वावलम्बी बनान हेतु किसी हस्तकला पर आधारित कार्य-प्रणाली द्वारा स्थायी ज्ञान ग्रहण करने पर बल देती है। उन्होंने बुनियादी शिक्षा प्रणाली में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया है। उनका विचार था कि बच्चों की बनायी हुई वस्तुएं केवल किसी अजायबघर के लिए अथवा दिखाने के लिए ही नहीं हो, अपितु वे इस प्रकार की हों कि बाजार में अन्य कारीगरों का मुकाबला कर सकें।

बुनियादी शिक्षा वही है, जो बिालकों को स्वावलम्बी बनावे। किशोर, नौजवान आर्थिक, सामाजि,क नैतिक और बौद्धिक सभी प्रकार स्वावलम्बी हों और उनका भावी गृहस्थ जीवन सुखी एवं शान्तिमय वातावरण में व्यतीत हो। शिक्षा के समाप्ति के पश्चात् वे अपने पैरों पर खड़ा हो सके। महात्मा गांधी की ऐसी धारणा थी कि भारत जैसे निर्धन देश में शिक्षा तभी अनिवार्य हो सकती है, जब यह उपाय निकाला जाय कि बालक स्वयं अपनी शिक्षा के खर्च हेतु धनोपार्जन कर सके। इसी अवस्था में उन्होंने बालक के हस्तकौशल द्वारा धनोपार्जन करके शिक्षा व्यय निकालने का सुझाव प्रस्तुत किया। महात्मा गांधी हरिजन में लिखते हैं कि-''स्थानीय उद्योग अथवा इस्तकारी की शिक्षा की धुरी है। इसके द्वारा ही बच्चों को अन्य विषयों की शिक्षा प्रदान की जाए। यह उद्योग यंत्रवत नहीं, बल्कि वैज्ञानिक ढंग से क्यों और कैसे का ज्ञान कराते हुए सिखाया जाय तथा इसी प्रसंग में अन्य विषयों की ज्ञान प्राप्ति करायी जाय। हमारी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में तभी सुधार होगा, जब हम बुनियादी शिक्षा पद्धति को अपनावेंगे।

सन्दर्भः

1. वर्मा, वी0एन0 प्रसादः विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पटना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. चौधरी, एस0सी0 रायः आधुनिक भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एव आर्थिक इतिहास, सरजीत पब्लिकेशन्स
3. विद्या वाचस्पति, इन्द्रः भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास।
4. वर्मा, वी0पी0: आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
5. अवस्थी, अवस्थीः आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. चौबे, एस0पी0: भारतीय शिक्षा दर्शन, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
7. सिंह, अयोध्याः भारत का मुक्ति संग्राम, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
8. दाधीच, कमालमिया, एम0के0: महात्मा गांधी विश्वकोश, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउऊ, नई दिल्ली।
9. गांधी के शैक्षिक विचार, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्।
10. मिश्रा एम0के0 और अन्य, गांधी और शिक्षा, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
11. पाण्डेय, आर0एस0, उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन।

इंटरनेट पर गोपनीयता का अधिकारः साइबर खतरों के संदर्भ में एक अध्ययन

दीपेन्द्र नाथ पाठक

***Ph-D.,* स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय) लखनऊ**

हाल ही में, संसद में, संयुक्त संसदीय समिति ने व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक, 2019 (पीडीपी विधेयक) पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है और समिति ने अधिक चर्चा के लिए चौथा विस्तार दिया है। क्या गोपनीयता कानून की शुरूआत में एक और विस्तार और अनिश्चितकालीन देरी की आवश्यकता है?

व्यापार के विधायी क्रम में गोपनीयता को कम प्राथमिकता दी जाती है, महामारी में तकनीक अपने चरम पर है और डेटा-संचालित प्रशासन हर दिन तेजी से सर्वव्यापी होता जा रहा है। जबकि भारत सरकार द्वारा अपने प्रयासों में तकनीकी क्षमताओं को अपनाने की दिशा में हाल ही में उठाए गए कदमों का तहे दिल से स्वागत किया जाता है और इन प्रयासों के साथ भारतीय नागरिकों के व्यक्तिगत डेटा के एक दुर्गम कार्य का निरंकुश संग्रह होता है और इस संबंध में कानून और नीति बड़े पैमाने पर हैं अनियमित।

एक मौलिक अधिकार के रूप में निजता का अधिकार विशेष रूप से उन पात्रताओं को रेखांकित नहीं करता है जो आवश्यक रूप से तब तक अर्जित होती हैं जब तक कि उस पर निर्णय नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए, डेटा संरक्षण कानून के अभाव में, अदालतों ने निजता के अंतर्निहित पहलुओं जैसे कि भुलाए जाने के अधिकार के दायरे के संबंध में विपरीत स्थिति अपनाई है। डेटा संरक्षण कानून के अभाव में यह जानना असंभव हो जाता है कि हमारे लिए कौन से अधिकार विशेष रूप से उपलब्ध हैं, जिससे मौलिक अधिकार काफी हद तक अर्थहीन हो जाता है। अधिकारों के लिए एक समान आधार का अभाव भी विभिन्न न्यायालयों में और इस तरह के अधिकार के बारे में हमारी सामान्य समझ में असंगति को बढ़ाता है। वर्तमान में, भारतीय संविधान विशुद्ध रूप से निजी निकायों के खिलाफ रिट उपचार की अनुमति नहीं देता है, क्योंकि वे अनुच्छेद 12 के अर्थ के भीतर श्राज्यश का गठन नहीं करते हैं। इसका मतलब यह है कि हर मामले में जहां एक विशुद्ध रूप से निजी निकाय एक नागरिक के निजता के अधिकार का उल्लंघन करता है, वहां वर्तमान में भारतीय कानून के तहत बहुत सीमित सहारा उपलब्ध है, उदाहरण के लिए, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (आईटी अधिनियम) की धारा 43 ए के तहत सूचना प्रौद्योगिकी (उचित सुरक्षा प्रथाओं और प्रक्रियाओं और संवेदनशील व्यक्तिगत डेटा या सूचना) नियमों के साथ पढ़ा जाता है, 2011 (गोपनीयता नियम)।

डिजिटल युग में, हम सभी डेटा की छत्रछाया में हैं जो हमें घेरता है और वस्तुतः हम जो कुछ भी करते हैं उसमें उत्पन्न होता है। डेटा जो उपयोगकर्ता स्वेच्छा से साझा कर सकते हैं, और डेटा जो सचमुच हर बार उत्पन्न होता है जब हम कुछ करते हैं चाहे वह यात्रा हो, खाना ऑर्डर करना हो, परिवहन का उपयोग करना हो या ऑनलाइन शॉपिंग करना हो। यह निस्संदेह है कि डेटा अत्यधिक मूल्यवान है और कई कंपनियां इस डेटा तक पहुंच के लिए भुगतान करने को तैयार हैं। दरअसल, इंटरनेट के सार्वभौमिक और वस्तुतः मुफ्त पहुंच के इस युग में, डेटा नई डिजिटल मुद्रा है। इससे भी अधिक दिलचस्प बात यह है कि हम डेटा की क्षमता का केवल दस प्रतिशत ही जानते हैं। जैसे-जैसे तकनीक आगे बढ़ती है, नए अनुप्रयोग डेटा के मूल्य को बढ़ाते हुए सामने आते हैं। कई शंकाओं पर विचार करने की आवश्यकता हैः यह डेटा किसका है? कौन सा प्राधिकरण इसे एक्सेस कर सकता है और इसकी कोई सीमाएँ हैं? जैसा कि सभी चीजों में होता है प्रौद्योगिकी, बदलती प्रौद्योगिकी के साथ कानून अपर्याप्त है। अंतरराष्ट्रीय न्याय प्रणाली इंटरनेट कानून की अवधारणाओं के साथ संघर्ष कर रही है यह स्थिति कई सरकारों द्वारा अपने नागरिकों और

कॉरपोरेट्स से डेटा तक पहुंच की मांग और मांग से और जटिल है। दूसरी ओर, गोपनीयता की सीमाएँ क्या हैं? क्या बुनियादी सेवाओं, यात्रा या यहां तक कि सरकारी लाभों का लाभ उठाने के लिए डेटा की मांग की जा सकती है? क्या राष्ट्रीय सुरक्षा निजता की सभी चिंताओं को दूर करती है?

ई-कॉमर्स के विकास ने देश की अर्थव्यवस्था पर तेजी से महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है और इसलिए, विकासशील देशों में व्यवसायों और उपभोक्ताओं के लिए उच्च मूल्य पैदा करने की क्षमता है ई-कॉमर्स के कई फायदे हैं जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण हैं सुविधा और वस्तुओं और सेवाओं की वैश्विक पसंद। हालाँकि, ई-कॉमर्स का उद्भव कई कानूनी, सामाजिक-आर्थिक और विश्वास के मुद्दों को भी ला सकता है, विशेष रूप से विकासशील देशों में जहां मुद्दे इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स के संगठन के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं[1] अधिकांश ऑनलाइन व्यवसाय ग्राहकों के व्यक्तिगत डेटा का उपयोग ग्राहकों के साथ अनुकूलित विज्ञापन, व्यक्तिगत सेवाएं और रणनीतिक संबंध प्रदान करने के लिए करते हैं यूके डेटा प्रोटेक्शन एक्ट[2] के अनुसार, 'व्यक्तिगत डेटा' को 'डेटा के रूप में परिभाषित किया गया है जो एक जीवित व्यक्ति से संबंधित है जो ऐसे डेटा से पहचाना जा सकता है, या / और अन्य जानकारी जो डेटा नियंत्रक के कब्जे में है, या उसके कब्जे में आने की संभावना है और इसमें व्यक्ति के बारे में राय की कोई अभिव्यक्ति और डेटा के इरादों का कोई संकेत शामिल है व्यक्ति के संबंध में नियंत्रक या कोई अन्य व्यक्ति'। कई ग्राहक अपने व्यक्तिगत डेटा के अनुपयुक्त उपयोग के बारे में चिंतित हैं, जिससे वेबसाइट की सेवाओं में ग्राहकों का विश्वास कम हो सकता है। निजता को लेकर डर और भरोसे की कमी ऑनलाइन कॉमर्स के विकास में सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है। इंटरनेट उद्योग व्यवसायों के बीच विश्वास पर बनाया गया है। इन घटनाओं ने दुनिया के कई देशों को अपने नागरिकों और निगमों की सूचना गोपनीयता की रक्षा के लिए कानून और प्रक्रियाएं बनाने के लिए मजबूर किया है।

ई-कॉमर्स में डेटा गोपनीयता आज दुनिया के सामने सबसे जटिल कानूनी मुद्दों में से एक है। उपभोक्ता ने सक्रिय रूप से कई साइटों पर अपनी निजी जानकारी की आपूर्ति की, उदाहरण के लिए, ई-कॉमर्स साइट फॉर्म के माध्यम से नाम, भौतिक और ईमेल पते और क्रेडिट कार्ड की जानकारी एकत्र करती हैं। उपयोगकर्ता स्वेच्छा से अपने थ्रेडेड चर्चा संदेशों में व्यक्तिगत जानकारी की आपूर्ति भी कर सकते हैं, जो साइट पर संग्रहीत हैं। दूसरी ओर, इनमें से कुछ डेटा निष्क्रिय रूप से एकत्र किया जाता है। होस्ट सर्वर प्रत्येक विजिट के बारे में नियमित जानकारी रिकॉर्ड करता है। साइट के कुछ बैनर विज्ञापन तृतीय-पक्ष विज्ञापनदाताओं को उपयोगकर्ताओं की ब्राउजिंग आदतों को ट्रैक करने की अनुमति देते हैं।[3]

ई-कॉमर्स में डेटा गोपनीयता और सुरक्षा का महत्व

आज स्मार्टफोन हर किसी के जीवन का हिस्सा हैं, स्मार्टफोन और अन्य नए उपकरणों ने उपयोगकर्ताओं को ब्रांडों के साथ खरीदारी और संचार करने की अनुमति दी है, यह गोपनीयता विवादों और व्यक्तिगत डेटा से जुड़ी चिंताओं से भी घिरा हुआ है। उपभोक्ताओं को अपने डेटा तक पहुंच के बारे में चिंता हो रही है और तथ्य यह है कि उनके द्वारा उत्पन्न लगभग पूरे डेटा का स्वामित्व दुनिया में सिर्फ 4-5 बड़ी कंपनियों के पास है। गूगल, अमेजन, फेसबुक उनमें से एक हैं।

पिछले 5 वर्षों में, भारतीय ई-कॉमर्स उद्योग ने भविष्य के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण विकास के साथ तेजी देखी है। एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय ई-कॉमर्स बाजार के 2025 तक 300 से 350 मिलियन खरीदारों तक पहुंचने का अनुमान है। आज के सुविधा-उन्मुख समाज में, उपभोक्ता अब वस्तुओं के लिए शहर के चारों ओर उद्यम नहीं करना चाहते हैं, बल्कि अपने घरों में खरीदारी करना चाहते हैं, जिससे ई-कॉमर्स व्यवसायों और दुकानदारों दोनों के लिए एक लचीला समाधान बन गया है। ई-कॉमर्स कंपनियां उपयोगकर्ता क्लिक से लेकर व्यक्तिगत क्रेडिट कार्ड या वित्तीय जानकारी तक हर दिन बड़ी मात्रा में डेटा संसाधित करती हैं। यद्यपि यह उन्हें अपने आगंतुकों को एक उन्नत खरीदारी अनुभव और वैयक्तिकरण प्रदान करने में सक्षम बनाता है, इस संवेदनशील डेटा का विज्ञापन उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है या वित्तीय लाभ के लिए अन्य तीसरे पक्ष को सौंप दिया जा सकता है। डेटा उल्लंघनों और गोपनीयता के दुरुपयोग के कुछ व्यापक रूप से ज्ञात उदाहरणों में कैम्ब्रिज एनालिटिका, ब्रिटिश एयरवेज, और सबसे हालिया, घर के करीब, अक्टूबर 2020 में बिग बास्केट शामिल है, जिसने लगभग 20 मिलियन भारतीय उपयोगकर्ताओं को प्रभावित किया। इस तेजी से ऑनलाइन निर्भर जीवन शैली में शामिल ट्रेड-ऑफ के बारे में विशेषज्ञ अपनी चिंता व्यक्त कर रहे हैं।[4]

ऑनलाइन डेटा चोरी कैसे संभव है

कई ई-कॉमर्स साइट सीधे उपयोगकर्ताओं से फॉर्म के माध्यम से व्यक्तिगत जानकारी मांगती हैं। ऐसी जानकारी के अलावा, कई वेबसाइटें अपने उपयोगकर्ताओं की ब्राउजिंग आदतों के बारे में डेटा भी रिकॉर्ड करती हैं और जानकारी संग्रहीत करती हैं। उपयोगकर्ता की प्राथमिकताओं की एक प्रोफाइल बनाने के लिए इस डेटा का व्यक्तिगत और जनसांख्यिकीय जानकारी के साथ मिलान किया जा सकता है। साइटें विज्ञापन को लक्षित करने या अनुकूलित सेवाएं प्रदान करने के लिए इन प्रोफाइल का उपयोग कर सकती हैं। या, साइटें वेबलाइनिंग में संलग्न हो सकती हैं, जहां विभिन्न उपयोगकर्ताओं को उनकी प्रोफाइल के आधार पर अलग-अलग कीमतों की पेशकश की जाती है। जिन उपयोगकर्ताओं के पास अधिक पैसा है या वे अधिक उत्पाद चाहते हैं, उनसे अधिक शुल्क लिया जाता है; वैकल्पिक रूप से, कम कीमतों को उन उपयोगकर्ताओं के लिए अस्वीकार कर दिया जाता है जो मोलभाव के लिए इतनी अच्छी खरीदारी करते हैं कि विक्रेता उन्हें बेचकर कोई लाभ नहीं कमाएंगे।

हमें इस बात से अवगत होना चाहिए कि कुछ ई-कॉमर्स साइटों को हमेशा इस बात की जानकारी नहीं हो सकती है कि उनकी साइट अपने ग्राहकों के बारे में किस हद तक डेटा एकत्र करती है। पहली नजर में, वे अधिक जानकारी एकत्र नहीं कर सकते हैं। लेकिन, अगर हम गहराई से देखें, तो हम देख सकते हैं कि उपयोगकर्ता दो महत्वपूर्ण तरीकों से जानकारी का खुलासा कर रहे हैं: पहला, साइट के सर्वर सॉफ्टवेयर द्वारा स्वचालित रूप से एकत्र किया गया डेटा, और दूसरा, हमारी साइट के माध्यम से तृतीय-पक्ष विज्ञापनदाताओं द्वारा एकत्र किया गया डेटा। सर्वर सॉफ्टवेयर निश्चित रूप से स्वचालित रूप से बड़ी मात्रा में जानकारी एकत्र करता है। अधिकांश सर्वर सॉफ्टवेयर स्वचालित रूप से ब्राउजिंग आदतों का एक वेब लॉग रिकॉर्ड करता है: उपयोगकर्ता किन पृष्ठों पर जाते हैं, उन विजिट का समय और अवधि, उन विजिट के दौरान देखे गए और क्लिक किए गए विज्ञापन, खरीदारी, खोज इंजन में दर्ज किए गए क्वेरी शब्द, और संदर्भित वेबसाइट जो निर्देशित करती है उपयोगकर्ता कंपनी के पृष्ठ पर। इसके अलावा, अधिकांश सॉफ्टवेयर स्वचालित रूप से प्रत्येक उपयोगकर्ता के आईपी पते, कंप्यूटर का नाम, ब्राउजर प्रकार, ईमेल पता (यदि उपयोगकर्ता के ब्राउजर या 'वेब बग' द्वारा प्रदान किया गया है), नेटवर्क स्वामी और डोमेन पंजीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए, उपयोगकर्ता जूता खरीदना चाहता है और वह 10.06.21 को ई-कॉमर्स साइटों पर जाता है। दो दिनों के बाद उपयोगकर्ता अपना ईमेल या Google खोलता है, आपके पृष्ठ पर स्वचालित रूप से कई जूते विज्ञापन चल रहे हैं, उपयोगकर्ता उन्हें रोक नहीं सकता है।

इस जानकारी के अतिरिक्त, हमारी साइट तृतीय-पक्ष विज्ञापनदाताओं को उपयोगकर्ताओं की हार्ड ड्राइव पर कुकीज रखने की अनुमति देती है। हमारी साइट पर विज्ञापन डबल डीलर के माध्यम से रखे जाते हैं, जो कि डबलक्लिक के समान एक (काल्पनिक) विज्ञापन नेटवर्क है। डबल डीलर एकाधिक विजिट और विभिन्न साइटों पर उपयोगकर्ताओं की ब्राउजिंग आदतों के दीर्घकालिक प्रोफाइल विकसित करने के लिए कुकीज का उपयोग करता है। इसमें प्रत्येक उपयोगकर्ता के लिए एक प्रोफाइल है जिसने कभी अपने विज्ञापनों में से एक को देखा है। जब भी कोई उपयोगकर्ता डबल डीलर विज्ञापन देखता है-चाहे हमारी केस स्टडी वेबसाइट पर या किसी अन्य साइट पर जो उनके विज्ञापन प्रदर्शित करती हो-उसका कंप्यूटर डबल डीलर को एक नोट भेजेगा जिसमें यह दर्शाया जाएगा कि वह किस तरह की वेबसाइट देख रही है। और डबल डीलर उस जानकारी को अपनी फाइल में संग्रहीत करेगा, ताकि वह उसे स्कीइंग या नए युग के संगीत या जो कुछ भी उसे पसंद आए, उससे संबंधित अधिक विज्ञापन भेजना जानता हो। इस अर्थ में, डबल डीलर हमारी साइट और अपने विज्ञापन नेटवर्क पर अन्य सभी साइटों के माध्यम से उपयोगकर्ताओं को ट्रैक करता है। उपभोक्ता के रूप में, यह महत्वपूर्ण है कि हम डबल डीलर की प्रथाओं को पहचानें क्योंकि वे देयता जोखिम पैदा करते हैं और साइट की गोपनीयता नीति में इसका खुलासा किया जाना चाहिए।[5]

डेटा एकत्र करने के लिए उपकरण और तकनीक

फिशिंग

इन दिनों हमारे अधिकांश महत्वपूर्ण लेन-देन इंटरनेट पर होते हैं। जबकि इंटरनेट से जुड़ा युग हमारे जीवन को आसान बनाता है, लेकिन इंटरनेट भी बहुत जोखिम के साथ आता है क्योंकि हम सभी अपने व्यक्तिगत डेटा को साइबर अपराधियों या हैकर्स के

सामने उजागर करते हैं। हैकर्स ने महत्वपूर्ण डेटा चोरी करने के लिए कई तरीकों का आविष्कार किया है जिसका दुरुपयोग किया जाता है। चोरी करने के छह सबसे सामान्य तरीके हैं जो इस प्रकार हैं:

फिशिंग एक नकली ईमेल है जो वैध होने का मुखौटा लगाती है। हैकर्स फिशिंग ईमेल बनाते हैं जिसके माध्यम से वे आपकी गोपनीय जानकारी जैसे पासवर्ड और बैंक खाता विवरण चुराने का इरादा रखते हैं। ऐसा लगता है कि इस तरह का ईमेल आपके बैंक या कंपनी जैसे किसी जाने-माने व्यक्ति या संगठन से आया है, जिसके लिए आप काम करते हैं। ये ईमेल आम तौर पर उपयोगकर्ताओं को उनके व्यक्तिगत विवरण देने के लिए छल करने के लिए एक तात्कालिकता या घबराहट पैदा करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए, आपको अपने बैंक से यह कहते हुए एक ईमेल प्राप्त होता है कि आपका एटीएम कार्ड अक्षम कर दिया गया है और इसे फिर से सक्रिय करने के लिए आपको अपने कार्ड नंबर या अपने आधार नंबर की पुष्टि करनी होगी। एक पीड़ित जिसे यह ईमेल प्राप्त हुआ है, वह सोच सकता है कि यह एक वैध स्रोत से है जब वास्तव में यह ईमेल आपकी गोपनीय जानकारी को चुराने की कोशिश कर रहे किसी दुर्भावनापूर्ण हैकर से भेजा गया है।[6]

फिशिंग ईमेल में एक लिंक हो सकता है जो क्लिक करने पर आपको एक नकली वेब पेज पर ले जाएगा। उदाहरण के लिए, लिंक आपको एक नकली बैंक वेबसाइट पर ले जा सकता है जो बहुत ही वैध दिखती है लेकिन वास्तव में एक समान दिखती है। यदि पीड़ित घोटाले का शिकार होता है और वेबसाइट पर अपना खाता विवरण दर्ज करता है, तो विवरण वास्तव में बैंक जाने के बजाय हैकर के सर्वर पर जाएगा और हैकर के पास वह सारी जानकारी होगी जो पीड़ित ने वेबसाइट पर प्रदान की है।

डोमेन नाम या ईमेल पतों में वर्तनी या व्याकरण संबंधी त्रुटियों को देखें। साइबर अपराधी भी अक्सर ऐसे ईमेल पतों का उपयोग करते हैं जो जानी-मानी कंपनियों के नाम से मिलते-जुलते हैं लेकिन थोड़े बदले हुए हैं। उदाहरण के लिए, account@gmail.com के बजाय account@gmall.com ("i" के बजाय "l")।

किसी भी लिंक पर क्लिक करने से पहले कई बार सोचें। यदि आप देखते हैं कि किसी संदिग्ध ईमेल संदेश में कोई लिंक है, तो यह सुझाव दिया जाता है कि उस पर कभी भी क्लिक न करें। आपको यह देखने के लिए लिंक पर अपना माउस घुमाना होगा कि क्या URL उस लिंक से मेल खाता है जो संदेश में प्रदान किया गया था। हैकर्स अक्सर धमकियों का इस्तेमाल करते हैं कि आपकी सुरक्षा से समझौता किया गया है या आपका खाता अवरुद्ध कर दिया गया है। ऐसे मेसेज के झांसे में न आएं और तुरंत इनकार करें। स्थिति का आकलन करने के लिए अपना समय लें।

मैलवेयर

कई प्रकार के मैलवेयर हैं जिनका उपयोग आपकी व्यक्तिगत जानकारी को चुराने के लिए किया जा सकता है, जिसमें कीलॉगर, जानकारी चुराने वाले, बैंकिंग मैलवेयर और बहुत कुछ शामिल हैं। अधिकांश स्ट्रेन आमतौर पर लॉगिन क्रेडेंशियल, क्रेडिट कार्ड की जानकारी, ब्राउजर ऑटोफिल डेटा और क्रिप्टोक्यूरेंसी वॉलेट पर ध्यान केंद्रित करते हैं। कुछ नस्लें, जैसे कि कुख्यात वेगा स्टेलर, विशिष्ट फाइल प्रकारों जैसे पीडीएफ, वर्ड, एक्सेल और टेक्स्ट फाइलों को सूँघती हैं और उन्हें एक रिमोट कमांड और कंट्रोल सर्वर पर एक्सफिल्ट्रेट (बिना प्राधिकरण के डेटा ट्रांसफर) करती हैं।

मैलवेयर आमतौर पर दुर्भावनापूर्ण ईमेल अटैचमेंट, मालवेयर, ड्राइव-बाय डाउनलोड और पायरेटेड सॉफ्टवेयर के माध्यम से फैलता है। इसलिए उपयोगकर्ता के पास एक वास्तविक ऑपरेटिंग सिस्टम होना चाहिए, विंडोज 10 उपयोगकर्ताओं की गोपनीयता की रक्षा के लिए एक बेहतर सुरक्षा प्रणाली प्रदान करता है।

कई प्रकार के मैलवेयर हैं जिनका उपयोग आपकी व्यक्तिगत जानकारी को चुराने के लिए किया जा सकता है, जिसमें कीलॉगर, जानकारी चुराने वाले, बैंकिंग मैलवेयर और बहुत कुछ शामिल हैं। अधिकांश स्ट्रेन आमतौर पर लॉगिन क्रेडेंशियल, क्रेडिट कार्ड की जानकारी, ब्राउजर ऑटोफिल डेटा और क्रिप्टोक्यूरेंसी वॉलेट पर ध्यान केंद्रित करते हैं। कुछ वायरस, जैसे स्पाइवेयर, एक विशिष्ट फाइल प्रकारों जैसे पीडीएफ, वर्ड, एक्सेल और टेक्स्ट फाइलों में प्रवेश करते हैं और उन्हें रिमोट कमांड और कंट्रोल सर्वर पर एक्सफिल्ट्रेट (बिना प्राधिकरण के डेटा ट्रांसफर) करते हैं। ट्रोजन, स्पाईवेयर, कीलॉगर विभिन्न प्रकार के मैलवेयर हैं।

मैलवेयर आमतौर पर दुर्भावनापूर्ण ईमेल अटैचमेंट, मालवेयर, ड्राइव-बाय डाउनलोड और पायरेटेड सॉफ्टवेयर के माध्यम से फैलता है। इसलिए उपयोगकर्ता के पास एक वास्तविक ऑपरेटिंग सिस्टम होना चाहिए, विंडोज 10 उपयोगकर्ताओं की गोपनीयता की रक्षा के लिए एक बेहतर सुरक्षा प्रणाली प्रदान करता है।

उपयोगकर्ताओं को यह सुझाव दिया जाता है कि कृपया वास्तविक एंटी-वायरस सॉफ्टवेयर का उपयोग करें। किसी भी नकली सॉफ्टवेयर को डाउनलोड करने का प्रयास न करें क्योंकि इसमें मैलवेयर होने की संभावना है और वेबसाइटों से उत्पन्न नकली एंटीवायरस पॉप-अप पर भी क्लिक न करें। अपने सिस्टम को नवीनतम सॉफ्टवेयर से अपडेट करते रहें।

असुरक्षित मोबाइल ऐप डाउनलोड करने के लिए

उपयोगकर्ताओं को एक बड़ी गलतफहमी है कि Google Playstore ; Apple स्टोर पर उपलब्ध सभी ऐप्स सुरक्षित और सुरक्षित हैं। लेकिन हकीकत यह है कि इन स्टोर्स पर उपलब्ध हर ऐप यूजर्स के लिए सुरक्षित नहीं होता है। इनमें से कुछ ऐप्स में असुरक्षित कोड हो सकता है जो आपकी गोपनीयता को खतरे में डाल सकता है। उपयोगकर्ता ऐप के नियमों और शर्तों को जाने बिना डाउनलोड करते हैं जो बिना उद्देश्य के आपके कैमरे और स्टोरेज तक पहुंचते हैं।

यह सुझाव दिया जाता है कि किसी भी ऐप को डाउनलोड करने से पहले एसएमएस अनुमति, माइक्रोफोन एक्सेस, डिवाइस व्यवस्थापक अनुमतिः और संपर्क देखने के लिए, इन अनुमतियों का खातों तक पहुंच द्वारा दुरुपयोग किया जा सकता हैः यह संपर्क सूचियों और ई-मेल पते सहित महत्वपूर्ण डेटा एकत्र करने में मदद करता है। कृपया किसी भी एप्लिकेशन को डाउनलोड करने से पहले उपयोगकर्ताओं की रेटिंग और एप्लिकेशन के बारे में समीक्षाएं पढ़ें।

असुरक्षित कनेक्शन

सार्वजनिक वाई-फाई नेटवर्क जैसे असुरक्षित कनेक्शन का शिकार करके भी हमलावर आपका डेटा चुरा सकते हैं। सार्वजनिक वाई-फाई अक्सर असुरक्षित और अनएन्क्रिप्टेड होता है ᵖ हैकर्स पब्लिक वाई-फाई से आपके कनेक्शन के बीच में खुद को पोजिशन करके आपका डेटा इंटरसेप्ट करते हैं। हमलावर आपके पासवर्ड और वित्तीय डेटा सहित वाई-फाई नेटवर्क से कनेक्ट होने के दौरान आपके और आपके द्वारा देखी जाने वाली वेबसाइटों के बीच आने वाली किसी भी जानकारी तक पहुंच सकते हैं।[7]

हमलावरों ने एक वाई-फाई एक्सेस प्वाइंट स्थापित किया जो एक वैध हॉटस्पॉट जैसा दिखता है, जिससे उन्हें नेटवर्क ट्रैफिक पर नजर रखने में मदद मिलती है। हमलावरों ने एक वाई-फाई एक्सेस प्वाइंट स्थापित किया जो एक वैध हॉटस्पॉट जैसा दिखता है, जिससे उन्हें नेटवर्क ट्रैफिक पर नजर रखने में मदद मिलती है। हमले ऐसे असुरक्षित हॉटस्पॉट का उपयोग मैलवेयर वितरित करने या आपको दुर्भावनापूर्ण वेबसाइटों पर निर्देशित करने में भी कर सकते हैं।

यह सलाह दी जाती है कि कभी भी ऐसे खुले वाई-फाई नेटवर्क से कनेक्ट न करें जिन पर आप भरोसा नहीं कर सकते। सिर्फ इसलिए कि यह मुफ्त है, इसका मतलब यह नहीं है कि यह सुरक्षित भी है। जब वाई-फाई सुविधा वाले कैफे में हों, तो कर्मचारियों से वाई-फाई के लिए पूछें जिससे आप किसी भी खुले नेटवर्क से बेतरतीब ढंग से कनेक्ट होने के बजाय सुरक्षित संयोजन कर सकते हैं।

यदि आप सार्वजनिक वाई-फाई का उपयोग कर रहे हैं, तो कनेक्ट होने के दौरान किसी भी बैंक लेनदेन को करने या किसी भी महत्वपूर्ण जानकारी तक पहुंचने से बचें। ओपन या फ्री कनेक्शन के बजाय अपने घर और ऑफिस के वाईफाई राउटर पर मजबूत कनेक्शन का इस्तेमाल करें।

डेटा सुरक्षाः भारतीय परिदृश्य

हाल ही में, इलेक्ट्रॉनिक्स और आईटी मंत्रालय ने व्हाट्सएप को एक नोटिस भेजकर अपनी गोपनीयता नीति के एक विवादास्पद अपडेट को वापस लेने के लिए कहा है जो भारतीयों के डेटा संरक्षण के लिए खतरा हो सकता है।

व्हाट्सऐप की नई अपडेट प्राइवेसी पॉलिसी के मुताबिक, यूजर्स ऐप को अपने पैरेंट फेसबुक के साथ लोकेशन और नंबर आदि डेटा शेयर करने से तब तक नहीं रोक सकते जब तक कि वे अपने अकाउंट को पूरी तरह से डिलीट नहीं कर देते।

नए गोपनीयता अपडेट को फेसबुक पर विज्ञापनों को वैयक्तिकृत करने के साथ-साथ इसके प्लेटफॉर्म पर होने वाले इंटरैक्शन के व्यावसायिक उपयोग को आसान बनाने के लिए डिजाइन किया गया है। फेसबुक यूजर्स की जानकारी का इस्तेमाल पैसा कमाने के लिए करेगा। सरकार के अनुसार, व्हाट्सएप की नई अपडेट गोपनीयता नीति नई गोपनीयता नीति से ऑप्ट-आउट करने के विकल्प के मामले में यूरोप में भारतीय उपयोगकर्ताओं के साथ भेदभाव करती है।[8]

यूरोप में, व्हाट्सएप उपयोगकर्ता यूरोपीय संघ (ईयू) के कानूनों के कारण नई गोपनीयता नीति से ऑप्ट-आउट चुन सकते हैं, जिसे जनरल डेटा प्रोटेक्शन रेगुलेशन (जीडीपीआर) कहा जाता है, यह उपयोगकर्ताओं के लिए फेसबुक से डेटा साझा करने या उन्हें ना कहने की शक्ति देने के लिए एक ढाल है।

इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI) की डिजिटल इन इंडिया IAMAI-Kantar Cube रिपोर्ट 2021 के अनुसार, देश में सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 2025 तक लगभग 45 प्रतिशत बढ़कर 900 मिलियन हो जाने की संभावना है, 2020 में यह नंबर 622 मिलियन थी। रिपोर्ट के अनुसार, 2025 तक शहरी केंद्रों की तुलना में ग्रामीण भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अधिक हो सकती है जो देश में डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत करने की आवश्यकता को इंगित करता है।[9]

2025 तक, शहरी भारत की तुलना में ग्रामीण भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अधिक होगी। इसे देखते हुए, इस उभरती हुई जनसांख्यिकी की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र को विकसित करने की आवश्यकता होगी।

व्यक्तियों और उनकी ऑनलाइन आदतों के बारे में जानकारी का बड़ा संग्रह लाभ का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है। यह गोपनीयता के आक्रमण का अवसर देता है क्योंकि यह अत्यधिक उपयोगकर्ताओं के व्यक्तिगत पहलुओं को साझा कर सकता है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 में कंप्यूटर सिस्टम से डेटा के संबंध में कुछ उल्लंघनों के खिलाफ सुरक्षा के संबंध में कुछ प्रावधान हैं। यह कंप्यूटर, कंप्यूटर सिस्टम और वहां संग्रहीत डेटा के अनधिकृत उपयोग को रोकता है।

ये प्रावधान गोपनीयता व्यवस्था के डेटा संरक्षण की रक्षा करने में विफल हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, संस्थाएं व्यापक नियमों और शर्तों के तहत व्यक्तिगत डेटा को संसाधित करने के लिए उपयोगकर्ताओं की सहमति लेकर सुरक्षा को आसानी से ओवरराइड कर सकती हैं, जिन्हें उपयोगकर्ता समझ नहीं सकते हैं। इसके अलावा, ढांचा डेटा सुरक्षा पर अधिक जोर देता है लेकिन डेटा गोपनीयता पर पर्याप्त जोर नहीं देता है। इसलिए संस्थाएं व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा के लिए तकनीकी उपाय करती हैं लेकिन व्यक्तिगत डेटा को संसाधित करने में उपयोगकर्ताओं की प्राथमिकताओं का सम्मान करने में विफल रहती हैं। साथ ही आईटी अधिनियम के तहत डेटा सुरक्षा प्रावधान सरकारी एजेंसियों पर लागू नहीं होते हैं।[10]

सुप्रीम कोर्ट ने के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ 2017 कि एक मौलिक अधिकार के रूप में निजता का अधिकार। मामले का फैसला आने के बाद केंद्र सरकार ने एक कमेटी बनाकर जस्टिस बी.एन. श्रीकृष्णा को डेटा संरक्षण के क्षेत्र में कानून के प्रस्ताव के लिए समिति के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया है। 2018 में, समिति ने व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक के रूप में अपनी रिपोर्ट और मसौदा कानून प्रस्तुत किया। संसद में, समिति की रिपोर्ट को व्यक्तिगत डेटा संरक्षण विधेयक, 2019 के रूप में नामित किया गया था।

इस विधेयक का उद्देश्य व्यक्तिगत डेटा के संबंध में व्यक्तियों की गोपनीयता की सुरक्षा प्रदान करना और उक्त उद्देश्यों और किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत डेटा से संबंधित मामलों के लिए भारतीय डेटा संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना करना है।

आज, उपभोक्ता अपनी ऑनलाइन सुरक्षा और गोपनीयता के बारे में अधिक जागरूक हो रहे हैं, उन्हें अपने संवेदनशील डेटा के दुरुपयोग को रोकने के लिए सक्रिय कदम उठाने की आवश्यकता है। किसी वेबसाइट की गोपनीयता नीति की समीक्षा करना, कुछ ऐप्स तक स्थान की पहुंच को सीमित करना, सार्वजनिक वाई-फाई नेटवर्क से बचना कुछ बुनियादी सुरक्षा कदम हैं।

निष्कर्ष

साइबर अपराध की जड़ें दुनिया भर में हैं और यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वैश्विक व्यापार को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। सरकार, संगठन उपभोक्ता को रोकने और साइबर अपराधों से मुक्त इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स विकसित करने के उपाय कर रहे हैं। उपभोक्ता को साइबर अपराधों की रोकथाम के बारे में जागरूक होना चाहिए और सहयोग करना चाहिए।

भारत में उपभोक्ताओं की विविधता यहां रहती है, अधिकतम उपभोक्ता तकनीकी रूप से मजबूत नहीं हैं, कुछ उपभोक्ता अनपढ़ हैं और कुछ को कंप्यूटर का ज्ञान है लेकिन वे नई तकनीक से अपडेट नहीं होते हैं। इसलिए जरूरत है उपभोक्ता की स्थिति के अनुसार जागरूकता कार्यक्रम की।

भ्रामक विज्ञापनों को रोकने के लिए भारत में बहुत सारे कानून हैं लेकिन नकली विज्ञापनों को रोकने में सभी विफल हैं क्योंकि भारत में कानून लागू करना एक बड़ी समस्या है। ऐसा कोई सक्रिय कानूनी प्राधिकरण उपलब्ध नहीं है जो कंपनियों और दुकानों के खिलाफ तत्काल कार्रवाई करे।

बहुत धीमी कानूनी प्रक्रिया और भ्रष्टाचार के कारण, यह शायद ही कभी देखा गया है कि किसी आरोपी को भोजन में मिलावट या नकली विज्ञापन के लिए इम्प्रेशन मिलता है।

उपभोक्ता को ऑनलाइन खरीदारी करते समय, ऑनलाइन लेनदेन करते समय, दुकानों में एटीएम/क्रेडिट कार्ड की अदला-बदली करते समय अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए। लगभग 70% उपभोक्ताओं को हैकर्स, स्किमर्स द्वारा धोखा दिया जाता है क्योंकि वे ऑनलाइन शॉपिंग या उत्पाद के समय सावधानी नहीं बरतते हैं।

फुटनोट

1 जेड गवाडी, षविकसित और विकासशील देशों पर ई-कॉमर्स का प्रभाव केस स्टडीः मिस्र और संयुक्त राज्य,ष वैश्वीकरण, प्रौद्योगिकी और सतत विकास के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, गीजा-मिस्र, 2005

2 Legislation.gov.uk, 'डेटा सुरक्षा अधिनियम 1998,' 2012।[ऑनलाइन]। उपलब्धः http:èkèkwww.legislation.gov.ukèkukpgaèk1998èk29èksectionèk1d

3 https:èkèkcyber.harvard.eduèkoldsèkecommerceèkprivacytext.html. पर उपलब्ध है

4 http:èkèkbwdisrupt.businessworld.inèkarticleèkData-Privacy-and-Policy-Frameworks-in-E-Commerce-Landscapeèk10-12-2020-352019èkपर उपलब्ध है

5 https:èkèkcyber.harvard.eduèkoldsèkecommerceèkprivacytext.html.पर उपलब्ध है

6 https:èkèkEconomictimes.indiatimes.comèktechèkinternetèkinternet-security-101-six-was-hackers-can-attack-you-and-how-to—stay-safeèkarticleshowèk61342742.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst.पर उपलब्ध

7 https:èkèkblog.emsisoft.comèkenèk35541èkhow-do-hackers-make-money-from-your-stolen-data, पर उपलब्ध

8 https:èkèkwww.drishtiias.comèkdaily-updatesèkdaily-news-analysisèkdata-protection-in-india, पर उपलब्ध

9 https:èkèkwww.business-standard.comèkarticleèktechnologyèkactive-internet-users-in-india-likely-to-reach-900-mn-by-2025-iamai-121060300710_1.html पर उपलब्ध

10 https:èkèkwww.iasparliament.comèkcurrent-affairsèkpersonal-data-protection-bill, पर उपलब्ध

पंचायती राज व्यवस्था में उभरता ग्रामीण नेतृत्वः जिला गाजियाबाद के विशेष संदर्भ में

अमित कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

गाजियाबाद उत्तर प्रदेश का एक जनपद है, जो अपने आप में धीरे-धीरे पंचायती राज के नये आयाम से जुड़ रहा है। परंपरागत नेतृत्व उभरते हुए नवीन नेतृत्व में परिवर्तित हो रहा है। यही कारण है कि हमारे राष्ट्र नायक वर्तमान समय में सामाजिक उन्नयन, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक प्रगति और राजनीतिक चेतना की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को जमीनी स्तर पर बेहतर संवैधानिक स्वरूप देने का पर्याप्त प्रयत्न कर रहे हैं, ताकि इसका लाभ आम जनमानस को आसानी से मिल सके। गाजियाबाद जिले में काफी लंबे समय तक परंपरागत नेतृत्व का वर्चस्व रहा, जिसमें भूमि संबंधी अपराध, सूदखोरी एवं महाजनी तथा उच्च जातियों का निम्न जातियों पर हावी होना, ये सभी परंपरागत नेतृत्व की व्यवस्था को कार्यात्मक बनाने में अपनी अहम भूमिका निभाते थे। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देश के समान ही परंपरागत नेतृत्व में एक ही व्यक्ति के द्वारा पूरे गाँव के लोगों का नियंत्रण किया जाता था तथा वही व्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आवासीय एवं चिकित्सकीय समस्याओं का निराकरण करता था, जिससे गाँव के अन्य वर्ग के लोग उसे अपना आदर्श मानते थे। सभी प्रकार के प्रशासकीय नियंत्रण उसी के हाथ में होते थे।

परंपरागत नेतृत्व ने लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को पर्याप्त हानि पहुँचाई, जिसके कारण लोग लोकतांत्रिक अधिकृत जीवन नहीं जी सके। उसका कारण सामाजिक एवं आर्थिक शोषण, जागरूकता का अभाव, शिक्षित न होना, विपन्नता को जीवन का अंग मानना, उसे दूर करने का प्रयास न करना, भाग्यवादी अधिक होना एवं कर्मवाद पर विश्वास कम करना था। इन्हीं सब कारणों से परंपरागत नेतृत्व अधिक गहरी प्रभुसत्ता के रूप में रहा, जिसने पूरे समाज को अपने शिकंजे में कस रखा था। परंपरागत नेतृत्व को चलाने वाले जनप्रतिनिधियों में शोषण करने की प्रवृत्ति थी और अधिकांश मानवीय मूल्य गौण थे।

परंपरागत नेतृत्वः-

पंचायतों की परंपरागत व्यवस्था ने समाज के बहुत बड़े वर्ग का शोषण किया तथा वहाँ के लोगों की जीवन शैली को लोकतांत्रिक परंपराओं से दूर रखा। पंचायती राज संस्थाओं को विकासात्मक एवं विचारात्मक बनाने के लिए क्षेत्र का महत्वाकांक्षी व्यक्ति परंपरागत नेतृत्व को अपनी इच्छा के अनुसार उसका संचालन करता था। परंपरागत पंचायती राज व्यवस्था ने लोकतंत्रात्मक राजनीति के स्वरूप को काफी हानि पहुँचायी है। गाँव के काश्तकार, श्रमिक, लघु सीमांत, कृषक एवं कमजोर तथा असहाय वर्ग परंपरागत व्यवस्था पर अधिक निर्भर थे। उसका कारण था कि परंपरागत नेतृत्वकर्ता आर्थिक दृष्टि से अधिक संपन्न थे तथा सम्पूर्ण संसाधन उसी वर्ग के हाथ में रहते थे। इसके साथ-साथ गाँव का निर्धन वर्ग भी उसको अपना नेतृत्वकर्ता मानता था क्योंकि उसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से गाँव के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति की आवश्कताओं की पूर्ति होती थी।

पंचायती राज व्यवस्था में नेतृत्व का एक परंपरागत प्रतिमान पाया जाता रहा है और आज भी वह अत्यधिक शक्तिशाली है। प्रायः ग्रामीण नेतृत्व उच्च जातियों के उन व्यक्तियों के हाथों में सीमित रहा है, जो अत्यधिक समृद्ध एवं अधिक भूमि के स्वामी रहे हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय में धर्म और जाति, सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावपूर्ण साधन रहे हैं। गाजियाबाद जिले के अधिकांशतः गाँवों में भूस्वामियों तथा धर्मगुरुओं का बोलबाला है, जो परंपरागत नेतृत्व के रीढ़ की हड्डी माने जाते हैं, जिनके द्वारा

परंपरागत नेतृत्व का संचालन किया जाता है और उनकी अपनी आमदनी और पूँजी को भी बढ़ाने का यह एक तरीका हैं। निम्न वर्ग भी प्राय: उनके अनुसार जाति एवं धर्म का अनुसरण करता है, उसके पास पर्याप्त अनुभव और सोचने की शक्ति नहीं होती है, जिसका लाभ परंपरागत नेतृत्वकर्ता आसानी से उठा लेते हैं और निर्धन तथा असहाय वर्ग के लोगों का शोषण करते रहते हैं।

गाजियाबाद जिले में परंपरागत नेतृत्व परिस्थितिजन्य अनुकूलित है, जिसमें जाति, धर्म, वंश एवं शक्ति इन सब का आपस में समन्वय है, जिनके द्वारा परंपरागत नेतृत्व को चलाया जाता है, परन्तु नेतृत्वकर्ता में किस प्रकार की मानसिकता है और किस विचारधारा का है, उसी का धीरे-धीरे प्रतिगामी बनकर अनुशीलन करता है। सामान्यत: ऊँची जातियाँ निरंतर एक लाभदायक स्थिति रखती हैं क्योंकि आनुपातिक रूप में दूसरों की अपेक्षा वे अधिक भूमि एवं प्रभाव रखती हैं।''1

गाजियाबाद जिले के ग्रामीण क्षेत्र में वर्ग संघर्ष अधिक है। परिस्थितियाँ एवं नगरीकरण के कारण बदलाव दृष्टिगोचर हो रहे हैं, परन्तु परंपरागत रूढ़ियों के आधार पर आज भी सामाजिक व्यवस्थाएँ निर्धारित होती हैं। जातीय संरचना इन सब की कड़ी और वाहक है जिससे वर्तमान समय में लोग अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों से पलायन कर रहे हैं, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में आज भी परंपरागत नेता दृष्टिगोचर हैं। आरंभिक गाँवों में परंपरागत नेतृत्व के क्रियान्वयन में सामंतवादी विचारधारा अधिक प्रभावशाली थी। उसका कारण था कि वहाँ के लोग सामंती प्रवृत्ति वाले प्रभावी व्यक्ति को आदर की दृष्टि से देखते थे। सामंत के सभी निर्णय मान्य हुआ करते थे। समाज का मध्यम एवं निम्न वर्ग पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता था उसका कारण निम्न एवं मध्यम वर्ग के पास शिक्षा और जागरूकता का अभाव, आर्थिक तंगी, नारकीय जीवन व्यतीत करना तथा सामंतों की गुलामी करना एवं अधिकतर इस वर्ग के लोगों में दासवृत्ति का विकास हो जाना था। इन्हीं सब कारकों से वे लोग सामंतवाद के प्रिय थे। उत्तर प्रदेश में सामंतवादी विचारधारा के लोगों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक पूँजीवादी के प्रभाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ये लोग सामान्यत: परंपरागत नेतृत्वकर्ता थे जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था बहुत विघटित हुई। किसानों, गरीबों एवं असहाय वर्ग के लोगों के रोजगार धीरे-धीरे समाप्त होने लगे तथा उनके समक्ष भुखमरी की समस्या भी बढ़ती चली गई जिससे उनमें सामंतवादी सोच वालों के प्रति असंतोष की भावना पनपने लगी। किसानों ने आंदोलन के माध्यम से पारंपरिक अर्थव्यवस्था के पुनरुत्थान का प्रयास किया। यह आंदोलन प्रारंभ में उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में फैला, जिसमें प्रमुख रूप से अवध,रुहेलखंड तथा पश्चिमी दोआब के क्षेत्र प्रमुख थे। धीरे-धीरे यह आंदोलन पूरे उत्तर प्रदेश में फैल गया। इस आंदोलन के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक उत्पीड़न को रोकने, कृषि व्यवस्था में सुधार करने, तथा ग्रामीण आत्मनिर्भरता की मजबूत परंपरा की नींव को अधिक से अधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया गया, जिससे किसानों की स्थिति में सुधार हो, भेदभाव का अंत हो एवं दुर्बल तथा खंडित वर्ग अपने आपको सशक्त बना सके। वस्तुत: प्रदेश के विभिन्न जिलों के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में किसान आंदोलन का मुद्दा देश की आजादी के पूर्व काफी सशक्त रहा, जिसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बटाईदार के अधिकारों के मुद्दों पर, सामाजिक उत्पीड़न पर एवं अन्य जिलों में अलग-अलग मुद्दों पर आंदोलन को कई प्रकार के बल मिले, जिससे किसानों की आर्थिक शक्ति को बढ़ावा मिला और उसके रचनात्मक कार्यो को संगठनात्मक रूप मिला।[2]

इस क्षेत्र में भूमि सुधार के संबंध में गांधीजी के विचारों का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने भूमि सुधार के प्रश्नों पर अपने विचार दिए, जिससे सामाजिक कट्टरपंथिता एवं रूढ़िवादिता समाप्त हुई तथा राज्य सरकार के 'राजनीति के सीधे सिद्धांतों' के अनुरूप सुधारों को लागू किया गया। परिणामस्वरुप उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्य में औद्योगिक, लोकतंत्रात्मक एवं राजनीतिक परिवर्तन हो सके। राज्य का प्रत्येक व्यक्ति अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित हुआ। जो जमींदारों के अधीनस्थ थे उन्हें मुक्त कराया गया, जिससे वे स्वतंत्र और स्वच्छ जीवन जी सके। स्वतंत्रता के समय सरकार की भू-कर निर्धारण नीति की आलनोचनात्मक व्याख्या करते हुए भूस्वामियों तथा मजदूर वर्गो के बीच के संबंधों का उल्लेख इस प्रकार से किया जा सकता है कि राज्य के पश्चिमी संभाग के जिलों में आजादी के पूर्व भूस्वामियों का अधिक वर्चस्व था। इनके पास भूमि थी पर ये वर्ग खेती करना नहीं जानते थे। मजदूर, गरीब तथा असहाय वर्ग के लोगों पर शोषण होता था। अधिकतर भू-स्वामी शारीरिक श्रम के अभ्यस्त नहीं थे और उनकी आदत में सुधार असंभव था, उनके पास साध्य और साधन दोनों थे, लेकिन उनका उपयोग करना नहीं जानते थे। फसल के विभाजन तथा उनकी कानूनी स्थिति के बारे में भू-स्वामियों तथा खेत में काम करने वाले मजदूरों के बीच एक मौन समझौता रहता था। भू-स्वामी आरामदेह जीवन व्यतीत करते थे, जबकि मजदूर वर्ग के लोग बहुत ही जटिल परिश्रम करते थे क्योंकि मजदूरों के पास न तो पर्याप्त जमीन थी और न ही जीविकोपार्जन की अन्य वैकल्पिक व्यवस्थाएँ। स्थानीय राजस्व अधिकारी तथा पंचायती राज व्यवस्था से संबंधित कर्मचारियों को भूसुधार कानून से संबंधित आवश्यक जानकारी होती थी लेकिन इसके संबंध में आवश्यक ज्ञान उचित

लाभार्थी को नहीं देते थे। भूस्वामियों के खिलाफ अदालत में गवाही देने के लिए कोई भी व्यक्ति तैयार नहीं होता था, जिसके परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग के लोग भूस्वामियों द्वारा भूसुधार कानून बनने के उपरांत भी शोषित होते रहते थे।''[3]

उत्तर प्रदेश में भूस्वामियों के वर्चस्व को कम करने के लिए प्रयास किये गये, जिससे आर्थिक वैमनस्यता को न्यूनतम किया जा सके। पंरपरागत नेतृत्वकर्ता और उभरते हुए नेतृत्वकर्ता के बीच साम्यवादी विभेद और समाजवादी लोगों का विचार एवं उनका दर्शन सदैव मानवीय मूल्यों को वरीयता देता है। उभरता नेतृत्व बहुलवादी समाजों में प्रायः मार्क्सवाद को प्राथमिकता देता है, जिससे दोनों नेतृत्वकर्ताओं के बीच के संबंध को समन्वयात्मक और वैधानिक व व्यवहारिक बनाया जा सके। उत्तर प्रदेश राज्य के कई जिलों में पुराने समय के कॉमरेडों ने अपनी क्षमता एवं योग्यता के आधार पर कई आंदोलन भूस्वामियों, जमींदारों, जागीरदारों एवं सामंतो के खिलाफ चलाए, जिससे परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं में एकता की भावना समाप्त हो सके। ''किसी देश में भूमि संबंध मुख्य रूप से उसकी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था सामाजिक संरचना और राजनीतिक प्रणाली की बुनियादी विशेषताओं से संबंधित होती है। भारत में आजादी के पश्चात् भूमि सुधार के लिए एवं कृषि को अधिक से अधिक बृहत्तर बनाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गये, जिससे अर्थव्यवस्था को उत्तर प्रदेश में प्रगतिशील बनाया जा सके तथा आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप रूपांतरित एवं संशोधित किया जा सके।''[4]

नेतृत्व के बदलते स्वरूप में कृषि को अधिक व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए कृषक को नई कृषि नीतियों से अवगत कराना था, जिससे परंपरागत कृषक एवं उभरते हुए कृषक के बीच में एक संयोजन रहे। ऐसी आशा की गई थी कि यह प्रक्रिया उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था को कृषि के माध्यम से अधिक लाभकारी बनाये, प्रत्येक कृषक उभरते हुए नवीन नेतृत्व का पालन करे, जिससे उसका हित अधिक से अधिक बढ़े।"भूमि सुधार की राजनीति में पार्टियों की अहम भूमिका है और कट्टरपंथी कृषि पुनर्गठन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता के माध्यम से उसे व्यक्त किया जा सकता है। भूमि सुधार के मुद्दों पर विभिन्न पक्षों की बहुत स्पष्ट स्थिति नहीं दिखाई देती है, जिस कारण से न्याय संगत भूमि वितरण कभी-कभी बदल जाता है।"[5]

प्रदेश की पंचायती राज व्यवस्था में शनैः शनैः क्रमिक परिवर्तन हुए, जिससे पंरपरागत नेतृत्व की कमियों को उभरते हुए नवीन नेतृत्व ने पूरा करने का प्रयास किया, जिसमें कृषि परिवर्तन के नियम, भूसुधार अधिनियम, किसान आंदोलन एवं कम्युनिष्ट पार्टी की विचारधारा के लोगों की मुख्य भूमिका है, जिसने वर्तमान नेतृत्व को अधिक व्यावहारिक एवं प्रदत्तात्मक स्वरूप प्रदान किया। यदि कांग्रेस पार्टी को एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में देखें तो पार्टी में अंतर्कलह के कारण भूमि सुधार संबंधी नीतियाँ एवं नियम बने, परन्तु वे सभी शक्ति से लागू नहीं हो पाये। कांग्रेस पार्टी के भीतर कुछ लोग जो प्रगतिशील सुधारों के लिए प्रतिबद्ध थे, ये लोग प्रमुख रूप से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से थे। इनके प्रमुख नेता जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया और मीनू मसानी जैसे लोग थे। जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण कांग्रेस समाजवादी पार्टी के समान ही था।

उत्तर प्रदेश राज्य में भूमि सुधार के लिए भूमि सीलिंग अधिनियम बना, जिसके द्वारा बंधुआ मजदूरों को काफी राहत मिली। भूसुधार आंदोलन को प्रभावी रूप से क्रियान्वयन करने में कुमारप्पा समिति, गोपाल अय्यर समिति, भूमि सीमांकन, उपायों का मूल्यांकन, मजदूरों को ऋण से मुक्त करना आदि का महत्वपूर्ण योगदान था, जिससे उत्तर प्रदेश को एक बीमारु राज्य के रूप से मुक्ति मिल सके। भूमि सुधार, भूमि सीलिंग एवं भूमि समेकन ये तीनों ही सिद्धांत किरायेदारों या बटाईदारों की व्यवस्था में सुधार करने तथा भूस्वामियों और किसानों के बीच एक तारतम्य को बनाये रखने के लिये थे, जिससे दोनों के बीच विवाद और समस्याएँ कम हों। भूसुधार कानून लागू होने के पश्चात् भू-स्वामियों ने बंजर भूमि किसानों को दे दी, जिससे उनकी विकास की गति रुक गई और बहुत से किसानों के समक्ष भोजन की समस्या भी उत्पन्न हो गई।

उत्तर प्रदेश में परंपरागत कृषि संबंध और सामाजिक-आर्थिक स्थिति को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि 1970 के दशक के बाद किसानों और मजदूरों के बीच हिंसा और अशांति की प्रक्रिया बढ़ी। आर्थिक संतुलन और पर्यावरण से जुड़ी सभी संस्थाओं ने उत्तर प्रदेश के परंपरागत नेतृत्व को तटस्थ बनाने का प्रयास किया, जिससे भू-स्वामियों और कृषक समुदाय के बीच एक तटस्थता बनी रहे। ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर ए. आर. देसाई कहते हैं कि-''भूमि सुधार, सहकारिता, पंचायतीराज और सामुदायिक विकास आंदोलन ग्रामीण स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने के चार ठोस स्तंभ माने जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप परंपरागत नेतृत्व उभरते हुए नेतृत्व में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है, जिस पर एक समृद्ध, गतिशील एवं वास्तव में लोकतांत्रिक ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का प्राचीन स्वरूप, नये स्वरूप में परिवर्तित हो रहा है, जिसके द्वारा भूस्वामियों

का वर्चस्व कम होना, भूमि सीलिंग होना, बड़ी जोतों को छोटी जोतों में परिवर्तित करना, कमजोर एवं गरीब वर्ग को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना, जिससे परंपरागत नेतृत्व का वर्चस्व कम हो तथा उसके स्थान पर उभरता हुआ नेतृत्व प्रारूपित हो।''[6]

1976 ई० में अस्तित्व में आने के बाद से गाजियाबाद जिले में गाँवों के विकास के लिए पंचायतें, जनप्रतिनिधि और विभिन्न प्रकार के संवैधानिक एवं विधिक प्रावधान निर्मित किये गये, जिसके द्वारा इस जिले के सभी विकास खण्डों में स्वशासन, शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, महिला एवं पर्यावरण का विकास हो सके, जिससे पंचायती राज का अधिक से अधिक विस्तार हो और सभी इस व्यवस्था से जुड़ी बुनियादी, ठोस और उसके ढाँचागत कार्यो को समझ सकें। स्वतंत्रता के पश्चात उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय दल एवं क्षेत्रीय दलों का समान प्रभुत्व रहा। क्षेत्रीय पार्टियों के नेतृत्वकर्ताओं ने अपनी योग्यता के द्वारा पंचायतों में चुनाव कराने के लिए प्रयास किए, जिससे सामुदायिक विकास हो सके और समाज की समस्त कमजोरियों को चुनाव के माध्यम से विकेन्द्रित किया जा सके। ''पंचायती राज की प्रेरणा पंच परमेश्वर की परंपरा से ली गई है। ये मात्र 'विलेज रिपब्लिक' है। इस प्रकार के बहुत से ऐतिहासिक एवं लोकतंत्रात्मक तथ्य हैं, परन्तु बहुत से राजनीतिक विद्वान इसे केवल मिथक मानते हैं, परन्तु समाज का मात्र 73 प्रतिशत ऐसा वर्ग है, जो पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़, शक्तिशाली एवं प्रभावशाली बनाने के लिए कानूनी एवं व्यावहारिक तौर पर अपने ग्रामीण समाज में स्थापित करने का पक्षधर है। इस कारण से परंपरागत एवं उभरते हुए नेतृत्व के बीच में तालमेल कहीं न कहीं असंतुलन पैदा करता है।''[7]

परंपरागत नेतृत्वकर्ता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तरीके से चुनाव कराकर उन्हें एक नई दिशा देने का प्रयास करते हैं, परन्तु उनके विचारों एवं सोच में प्रभुत्व वाली धारणा मौजूद रहती है, जिसके द्वारा निम्न वर्ग, दलित वर्ग एवं पिछड़े वर्ग पर शासन करके अपना प्रभुत्व जमाते हैं। यहाँ कुशलता एवं अकुशलता का कोई महत्त्व नहीं है, वहाँ चलती हैं सामंतवादी प्रवृतियाँ, जमींदार एवं जागीरदारों की सोच, सूदखोर एवं साहूकारों द्वारा अर्थ का वितरण और भूस्वामियों की चालें। यहाँ पर प्रजातंत्र की मौलिकता और उसका स्वरूप समाप्त हो जाता है केवल रह जाती है उनकी प्रभुसत्ता।

उत्तर प्रदेश राज्य के गाजियाबाद जिले में स्थानीय परामर्श निकायों में उच्च जातियों का सामान्यत: अधिक प्रभुत्व था। सामान्यत: लोगों की समस्याओं का समाधान पंचायत स्तर पर ही कर लिया जाता था, लेकिन पंच परमेश्वर के अंतर्गत उच्च जाति के लोगों का निम्न जाति के प्रति व्यवहार घृणायुक्त, क्षेत्रीयता और भाषा के प्रति पूर्वाग्रही तथा जातिवाद से परिपूर्ण था। यहाँ भी उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों का शोषण करते थे। अधिकतर यह प्रवृत्तियाँ परंपरागत नेतृत्वकर्ता में पायी जाती थीं, जबकि स्थानीय स्तर पर उनके द्वारा लिया गया निर्णय अदालत के समकक्ष माने जाने के उपरान्त भी उनमें निम्न जातियों एवं मजदूर वर्गो के प्रति हीनग्रंथि विद्यमान थी, जिसके परिणामस्वरूप पंचायती राज व्यवस्था का स्वरूप बदला। इससे परंपरागत नेतृत्वकर्ता की अहमवादी सोच को करारा झटका लगा और उनकी स्थिति धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हो गई।

गाजियाबाद जिले के गाँवों की जातीय संरचना का स्वरूप विविधतावादी है, जिसका संबंध परंपरागत नेतृत्व से है। परंपरागत नेतृत्वकर्ता अधिकांशत: उच्च जाति से हैं और आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं। इन नेतृत्वकर्ताओं को गाँवों की अधिकांश मूलभूत समस्याओं की जानकारी है तथा उनको संचालित करने का अच्छा ज्ञान है, जिस कारण से अन्य वर्ग के लोग परंपरागत नेतृत्वकर्ता से जुड़े रहना चाहते हैं। यह नेतृत्वकर्ता समूह पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आदि के जनप्रतिनिधियों के साथ उठना बैठना, उनकी बातें सुनना और परंपरागत जनप्रतिनिधियों के साथ सामंजस्य रखने का कार्य करता है। भले ही उनके लिये लोकतांत्रिक दृष्टि से यह गरिमामयी नहीं है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ठीक है। इसका कारण यह है कि हर पंचायत की व्यवहारिक समस्याएँ अलग-अलग हैं, जिससे परंपरागत नेतृत्वकर्ता और उभरते हुऐ नेतृत्वकर्ता के बीच में पंचायतें एक सेतु का कार्य करती हैं।

वर्तमान समय में उभरते हुए नेतृत्वकर्ताओं की संख्या लगातार बढ़ रही है, परन्तु उनके पास संवैधानिक, विधिक एवं प्रशासनिक जानकारी न होने के कारण कई समस्याओं का निराकरण करने के लिए उन्हें परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं से संबंध रखना पड़ता है, जिससे पंचायती राज व्यवस्था को सही रूप से संचालित किया जा सके और क्षेत्र की समस्याओं को निष्पादित करते समय उन्हें यह भी ख्याल रखना चाहिए कि विकास कार्य व्यावहारिक हो न कि अव्यावहारिक। गाजियाबाद जिले के विभिन्न विकास खण्डों तथा ग्राम पंचायतों के सर्वेक्षण में पता चलता है कि उभरते हुए नेतृत्वकर्ता आरक्षण के माध्यम से चुने जाते हैं जिनके ऊपर ग्राम पंचायतों में रहने वाले परंपरागत नेतृत्वकर्ता का संरक्षण होता है। पंचायती राज संस्थाओं की सभी बैठकों में भी उभरते हुए नेतृत्वकर्ताओं के

साथ-साथ परंपरागत नेतृत्वकताओं के पूर्व जनप्रतिनिधि अपना स्वार्थ एंव लक्ष्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से उभरते हुए नेतृत्व का स्वरूप भी संकुचित रहेगा और प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा स्थापित नेतृत्व का पारिवारिक विस्तार होगा, जिससे पंचायतें परंपरागत व्यक्तियों की कठपुतली मात्र रह जाएँगी। यदि न्यायसंगत दृष्टि से देखा जाय तो परंपरागत नेतृत्व एवं उभरता हुआ नेतृत्व के बीच में पारदर्शिता नहीं होगी, जिससे पंचायती राज व्यवस्थाओं का स्वरूप बिगड़ेगा और उसकी मौलिकता में गिरावट आएगी। ''ऐसी स्थिति में सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं बल्कि उसके केन्द्रीयकरण का एक और माध्यम निकल आयेगा। ऐसी पंचायतें स्थानीय स्तर पर व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकेंगी और पंचायती राज संस्थाओं की सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लग सकता है।''[8]

गाजियाबाद जिले के विभिन्न ग्राम पंचायतों में जातिवाद की समस्या है, जिससे परंपरागत नेतृत्वकर्ता और उभरते हुऐ नेतृत्वकर्ता के बीच में एक ईर्ष्यामयी विचारधारा का जन्म होता है। अधिकांशतः परंपरागत नेतृत्वकर्ता ब्राह्मण, भूमिहार त्यागी, क्षत्रिय, जाट, गुर्जर यादव आदि जाति से संबंधित है। किसी न किसी रूप में इनका अहम् भी टकराता है, जिससे दोनों नेतृत्वकर्ताओं का बीच में राजनीतिक एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं का मूल स्वरूप प्रभावित होता है, जो पंचायती राज व्यवस्था के लिए ठीक एवं उचित नहीं हैं। उभरते हुए नेतृत्व के अधिकांश जनप्रतिनिधि परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं के समतुल्य एवं समकक्ष नहीं होते है। उसका कारण यह है कि ये आरक्षण पद्धति के द्वारा चुने हुए होते हैं, जिससे दोनों के बीच में एक रेखांकन भी देखा जाता है। गाजियाबाद जिले के अधिकतर गाँवों में पंचायतों की व्यवस्था को क्रियान्वित करने के लिए एक बड़ा वर्ग पिछड़ा एवं अनुसूचित जाति से संबंधित है, जिनको कहीं न कही इन परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं पर निर्भर रहना पड़ता है।[9] पद को प्राप्त करना अलग है, लेकिन स्वतंत्र रुप से अधिकारों का उचित प्रयोग तथा उसके कर्त्तव्यों का कार्यान्वयन करना भी एक चुनौती है, जो उभरते हुए नेतृत्व के समक्ष एक प्रकार से मील का पत्थर है।

बदलते हुऐ परिवेश में अब परंपरागत नेतृत्वकर्ता उच्च जाति के अतिरिक्त अन्य जातियों से भी संबंधित होते गये। यदि किसी भी जाति का व्यक्ति ज्ञान एवं विवेक रखता है तो उभरते हुए नेतृत्वकर्ताओं को इनके पास जाकर पंचायती राज व्यवस्था से संबंधित जो समस्याएँ हैं, उनकी पर्याप्त जानकारी लेनी चाहिए ताकि समस्याओं का निराकरण सही तरीके से किया जा सके। ऐसा करने से ग्रामीण समाज में अस्पृश्यता एवं छुआछूत जैसी मानसिक व्याधि को भी दूर किया जा सकता है। जब दोनों प्रकार के नेतृत्वकर्ता एक दूसरे के नजदीक आएँगें तो पंचायती राज व्यवस्था के लिए एक नया प्रारूप तैयार हो सकेगा तथा सामाजिक एवं जातीय भेदभाव भी दूर होंगे।

पंचायतें प्रत्येक राज्य की सभ्यता, संस्कृति एवं विकास की पहचान है। इनका विकास राजनैतिक मंथन, चिंतन, सूझ-बूझ और राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक निश्चित रूप देकर उसकी पहचान बनाना है, जिससे गाँव के लोग स्वावलंबी, आत्मनिर्भर, निष्ठावान एवं कर्तव्यपरायण बनें और पूरे क्षेत्र का विकास हो सके। गाजियाबाद जिले में जिस पंचायतीराज व्यवस्था का गठन हुआ, उसमें समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा सुविधानुसार कई प्रकार के परिवर्तन किए गए। उत्तर प्रदेश में स्थानीय स्वशासन को सशक्त बनाने, गाँव के लोगों की भागीदारी बढ़ाने, राज्य सरकार की विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में गति लाने तथा छोटे-छोटे निकायों को विकसित करने एवं विवादों को आपस में सुलझाने का प्रयास करने के लिए राज्य सरकार द्वारा विधि अधिनियम जारी किये गये।[10] गाजियाबाद जिले में उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों के साथ ही वर्ष 2015 ई० और उससे पूर्व में पंचायत के निर्वाचन हुए। इन पंचायत चुनावों के निर्वाचित जनप्रतिनिधियों का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि परंपरागत नेतृत्वकर्ता की संख्या में कमी हो रही है तथा उभरते हुए नेतृत्वकर्ता की वृद्धि हो रही है। साथ ही दोनों की कार्यशैली में भी अंतर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। उभरते हुए नेतृत्वकर्ता की कार्यशैली तुलनात्मक रूप से संवैधानिक तथा लोकतांत्रिक प्रणाली पर आधारित है।

गाजियाबाद जिले में पंचायती राज व्यवस्था के गठन के पश्चात् चुनाव हुए, जिस कारण से परंपरागत जनप्रतिनिधि भी इनसे जुड़े, जिससे इन्होंने लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से अपने अस्तित्व को इन चुनावों के माध्यम से बचाने का प्रयास किया। देश की आजादी के पश्चात् परंपरागत नेतृत्व ही अधिक हावी रहा। उसका कारण उभरते हुए नेतृत्वकर्ताओं के पास में शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव, आर्थिक संसाधन न होना तथा परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं के पास संसाधनों के अतिरिक्त बहुत बड़े वर्ग का समर्थन भी था, जो इनका समर्थन करता था।

शोधकर्त्ता (शोध छात्र) ने गाजियाबाद जिले के भोजपुर सहित अन्य विकास खण्डों का सर्वेक्षण किया तो ज्ञात हुआ कि उत्तर प्रदेश पंचायतराज अधिनियम, 1994 के लागू होने से पूर्व सामान्यत: परंपरागत नेतृत्व का अधिक प्रभुत्व था, परन्तु उसके पश्चात् इसका प्रभुत्व धीरे-धीरे कम हुआ।11 विभिन्न अधिनियमों के बन जाने से दृढ़ एवं हठधर्मी परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं ने अपने विचार एवं भावनाओं को बदला और ये लोग क्रमश: उदारवादी बने तथा उभरते हुए नेतृत्वकर्ता जो किसी भी जाति एवं वर्ग के हो उनके साथ समझौता किया, जिससे परंपरागत नेतृत्वकर्ता एवं उभरते हुए नेतृत्वकर्ता के बीच में एक तालमेल बना रहे। परंपरागत नेतृत्वकर्ता नेतृत्व करने की कार्यकुशलता रखते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न समस्याओं के निराकरण में भी अपनी पर्याप्त योग्यता एवं प्रत्यक्षीकृत जानकारी रखते हैं, परन्तु परिस्थितियाँ बदलने के कारण इन लोगों ने भी अपने विचार एवं सोच को बदला और उभरते हुए नेतृत्वकर्ताओं को राजनीति, कूटनीति एवं ग्रामीण समाज को किस प्रकार से नियंत्रित किया जाए। ये सभी ज्ञान उन्हें हस्तांतरित कर अपने पक्ष में कर रहे है, जिससे परंपरागत नेतृत्वकर्ता अपने स्वाभिमान को जीवन्तता एवं जीवटता भी दे रहे है और उभरते हुए नेतृत्वकर्ता का सहयोग भी कर रहे है। गाजियाबाद जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में देखा गया है कि नेतृत्वकर्ताओं की स्थिति में दिन-प्रतिदिन बहुत शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। यद्यपि कुछ क्षेत्रों में परंपरागत नेतृत्वकर्ता अद्यतन अधिक हावी है और उभरते हुए नेतृत्वकर्ता का प्रभुत्व कम है। कहीं उसका उल्टा भी देखा गया है कि उभरता हुआ नेतृत्वकर्ताओं का अधिक प्रभुत्व है तथा परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं का कम।

संदर्भ

1. सिंह, बैजनाथ, लीडरशिप एण्ड पोलिटिकल इन्स्टीट्यूसन इन इंडिया, पार्क एण्ड थिंकर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृष्ठ 393
2. दास, अरविंद नारायण, 1983, अग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोसियो इकॉनॉमिक चेंज इन इंडिया, मनोहर पब्लिकेशन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 255
3. सांघवी, पी.एस., ''सरकार की टीनेंसी पॉलिसी का आलोचनात्मक मूल्यांकन'', ए.आर. देसाई (संपादित), रूरल सोशियोलॉजी इन इण्डिया, पोपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2009, पृष्ठ 431
4. जोशी,पी.सी., ''भारत में भूमि सुधार'', ए. आर. देसाई (संपादित), रूरल सोशियोलॉजी इन इंडिया पोपुलर प्रकाशन, मुम्बई, 2009, पृष्ठ 444
5. जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम-22, अंक-6, भरसन-7(जून, 2017), पृष्ठ-91
6. देसाई, ए.आर., रूरल सोशियोलॉजी इन इंडिया, पोपुलर प्रकाशन, मुम्बई, 2009, पृष्ठ 533
7. ग्रे, ह्यूग, पंचायती राज की समस्या, ए. आर. देसाई (संपादित), रूरल सोशियोलॉजी इन इंडिया पोपुलर प्रकाशन, मुम्बई, 2009, पृष्ठ 535
8. सी.ए. मोजर, 1961, सर्वे मैथडस इन सोशल इन्वेस्टीगेशन, हैनीमेन, लंदन, 1961, पृष्ठ 114
9. सिंह, बैजनाथ, वही, पृष्ठ 241
10. देवपुरा,प्रतापमल, पंचायती राज के नए आयाम, अंकुर प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 21
11. देसाई, ए.आर., वही, पृष्ठ 482

पंचायती राज व्यवस्था में उभरता ग्रामीण नेतृत्व: जिला गाजियाबाद का सांख्यिकीय अध्ययन

अमित कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

पंचायती राज व्यवस्था में नेतृत्व का एक परंपरागत प्रतिमान पाया जाता रहा है और आज भी वह अत्यधिक शक्तिशाली है। प्राय: ग्रामीण नेतृत्व उच्च जातियों के उन व्यक्तियों के हाथों में सीमित रहा है, जो अत्यधिक समृद्ध एवं अधिक भूमि के स्वामी रहे हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय में धर्म और जाति, सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावपूर्ण साधन रहे हैं। गाजियाबाद जिले के अधिकांशत: गाँवों में भूस्वामियों तथा धर्मगुरुओं का बोलबाला है, जो परंपरागत नेतृत्व के रीढ़ की हड्डी माने जाते हैं, जिनके द्वारा परंपरागत नेतृत्व का संचालन किया जाता है और उनकी अपनी आमदनी और पूँजी को भी बढ़ाने का यह एक तरीका हैं। निम्न वर्ग भी प्राय: उनके अनुसार जाति एवं धर्म का अनुसरण करता है, उसके पास पर्याप्त अनुभव और सोचने की शक्ति नहीं होती है, जिसका लाभ परंपरागत नेतृत्वकर्ता आसानी से उठा लेते हैं और निर्धन तथा असहाय वर्ग के लोगों का शोषण करते रहते हैं।

गाजियाबाद उत्तर प्रदेश का एक जनपद है, जो अपने आप में धीरे-धीरे पंचायती राज के नये आयाम से जुड़ रहा है। परंपरागत नेतृत्व उभरते हुए नवीन नेतृत्व में परिवर्तित हो रहा है। यही कारण है कि हमारे राष्ट्र नायक वर्तमान समय में सामाजिक उन्नयन, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक प्रगति और राजनीतिक चेतना की दृष्टि से पंचायती राज व्यवस्था को जमीनी स्तर पर बेहतर संवैधानिक स्वरूप देने का पर्याप्त प्रयत्न कर रहे हैं, ताकि इसका लाभ आम जनमानस को आसानी से मिल सके। गाजियाबाद जिले में काफी लंबे समय तक परंपरागत नेतृत्व का वर्चस्व रहा, जिसमें भूमि संबंधी अपराध, सूदखोरी एवं महाजनी तथा उच्च जातियों का निम्न जातियों पर हावी होना, ये सभी परंपरागत नेतृत्व की व्यवस्था को कार्यात्मक बनाने में अपनी अहम भूमिका निभाते थे। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देश के समान ही परंपरागत नेतृत्व में एक ही व्यक्ति के द्वारा पूरे गाँव के लोगों का नियंत्रण किया जाता था तथा वही व्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आवासीय एवं चिकित्सकीय समस्याओं का निराकरण करता था, जिससे गाँव के अन्य वर्ग के लोग उसे अपना आदर्श मानते थे। सभी प्रकार के प्रशासकीय नियंत्रण उसी के हाथ में होते थे।

किसी भी वैज्ञानिक शोध का महत्व तभी कारगर सिद्ध हो सकता है जब शोध विषय से संबंधित प्राप्त आँकड़ों का उपयुक्त विश्लेषण कर उनकी व्याख्या की जाय।[1] इस शोधपत्र में शोधकर्त्ता (शोध छात्र) के द्वारा चुना गया शोध विषय पंचायती राज व्यवस्था में उभरता ग्रामीण नेतृत्व: जिला गाजियाबाद का सांख्यिकीय अध्ययन है। शोधाकर्त्ता ने अपने शोध को मौलिक तथा व्यवहारपरक बनाने के लिए शोध अध्ययन क्षेत्र जिला गाजियाबाद की तीन तहसीलों में से 60 निर्वाचित जनप्रतिनिधियों (प्रत्येक तहसील से 20 प्रतिनिधि) का चयन उत्तरदाता के रूप में किया है जो पंचायती राज व्यवस्था में तीनों स्तर (जिला, क्षेत्र तथा ग्राम पंचायत) के वर्ष 2015 में निर्वाचित होने वाले नेतृत्वकर्ता थे। उन्होंने अपने शोध कार्य को प्रभावी बनाने के लिए शोध अध्ययन क्षेत्र में स्वयं जाकर चयनित जनप्रतिनिधियों से परंपरागत नेतृत्व एवं उभरते हुए नेतृत्व के विभिन्न आयामों पर वार्तालाप किया। इसके अतिरिक्त शोधकर्त्ता ने स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से चयनित उत्तरदाताओं से शोध विषय से संबंधित उपयुक्त आँकड़ों का भी संकलन किया। जिला गाजियाबाद की तीन तहसीलों[2] (गाजियाबाद, मोदीनगर एवं लोनी) के उत्तरदाताओं से प्राप्त उत्तरों को सारणी और उसकी व्याख्या

के आधार पर विश्लेषित किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के द्वारा प्रयत्न किया गया है कि ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के लोग परंपरागत नेतृत्व से उभरकर आधुनिक नेतृत्व की शैली से परिचित हो सकें और पंचायती राज व्यवस्था को अधिक से अधिक व्यवहारात्मक, प्रयोगात्मक एवं प्रगतिशील बनाया जा सके।

सारणी 1.0 : उत्तरदाताओं की सामान्य स्थिति के सम्बंध में सर्वेक्षण

			जिला गाज़ियाबाद					
			तहसील गाज़ियाबाद		तहसील मोदीनगर		तहसील लोनी	
1	आयु	21- 35 वर्ष	पुरुष	03	पुरुष	02	पुरुष	01
			महिला	02	महिला	02	महिला	03
		36- 50 वर्ष	पुरुष	06	पुरुष	04	पुरुष	04
			महिला	03	महिला	05	महिला	03
		50 से अधिक	पुरुष	04	पुरुष	04	पुरुष	05
			महिला	02	महिला	03	महिला	04
2	लिंग	पुरुष	13		10		10	
		महिला	07		10		10	
3	निवास	नगरीय	09		06		04	
		ग्रामीण	11		14		16	
4	शिक्षा	निरक्षर	पुरुष	01	पुरुष	02	पुरुष	01
			महिला	01	महिला	01	महिला	01
		8वीं तक	पुरुष	03	पुरुष	01	पुरुष	02
			महिला	02	महिला	02	महिला	02
		हाईस्कूल तक	पुरुष	02	पुरुष	03	पुरुष	03
			महिला	02	महिला	02	महिला	01
		इण्टरमीडिएट तक	पुरुष	03	पुरुष	03	पुरुष	03
			महिला	02	महिला	01	महिला	02
		स्नातक या अधिाक	पुरुष	03	पुरुष	02	पुरुष	03
			महिला	01	महिला	03	महिला	02
5	व्यवसाय	निजी सेवा	पुरुष	03	पुरुष	02	पुरुष	03
			महिला	01	महिला	02	महिला	01
		व्यापार	पुरुष	04	पुरुष	06	पुरुष	05
			महिला	02	महिला	02	महिला	02
		स्वरोजगार	पुरुष	03	पुरुष	02	पुरुष	02
			महिला	02	महिला	01	महिला	02
		कृशक	पुरुष	03	पुरुष	04	पुरुष	03
			महिला	02	महिला	01	महिला	02

6	कृषक होने की दशा में भूमि की माप और स्वामित्व का प्रकार	02 एकड़ तक	पुरुष	02	पुरुष	04	पुरुष	04
			महिला	01	महिला	01	महिला	02
			संयुक्त	01	संयुक्त	01	संयुक्त	01
		02 से 05 एकड़ तक	पुरुष	03	पुरुष	04	पुरुष	03
			महिला	01	महिला	01	महिला	01
			संयुक्त	02	संयुक्त	02	संयुक्त	01
		05 एकड़ से अधिक	पुरुष	06	पुरुष	05	पुरुष	05
			महिला	02	महिला	01	महिला	01
			संयुक्त	02	संयुक्त	01	संयुक्त	02
7	आय(मासिक)	रु0 8000 तक	पुरुष	05	पुरुष	05	पुरुष	04
			महिला	02	महिला	01	महिला	02
		रु0 15000 तक	पुरुष	04	पुरुष	04	पुरुष	06
			महिला	02	महिला	03	महिला	02
		रु0 15000 से ज्यादा	पुरुष	04	पुरुष	05	पुरुष	05
			महिला	03	महिला	02	महिला	01

शोधकर्ता ने शोधपत्र में परंपरागत नेतृत्व और उसके सापेक्ष उभरते हुए ग्रामीण नेतृत्व के संबंध में विभिन्न प्रश्नों को उठाया है। इस स्तर पर शोधकर्ता ने परंपरागत नेतृत्व और उभरते हुए ग्रामीण नेतृत्व से सम्बद्ध पाँच-पाँच प्रश्नों के माध्यम से उभरते हुए ग्रामीण नेतृत्व और परंपरागत नेतृत्व के संबंधों को समझने का प्रयत्न किया है।

(1) परंपरागत नेतृत्व से संबंधित प्रश्नः-

1. **पंचायती राज व्यवस्था में परंपरागत नेतृत्व के प्रति लोगों की आस्था में हुई कमी के लिये किन कारणों को प्रभावी माना जा सकता है?**

सारणी 1.1

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	जनप्रतिनिधियों का रूढ़िवादी दृष्टिकोण	21	35
2	जनप्रतिनिधियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार	15	25
3	जनप्रतिनिधियों की अज्ञानता	13	21.67
4	प्रभुत्वसंपन्न नेतृत्व	11	18.33
5	कुल योग	60	100

शोध के लिये चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न कि पंचायती राज व्यवस्था में परंपरागत नेतृत्व के प्रति लोगों की आस्था में हुई कमी के लिये किन कारणों को प्रभावी माना जा सकता है के उत्तर में सर्वाधिक जनप्रतिनिधियों का उत्तर रूढ़िवादी दृष्टिकोण (35 प्रतिशत)के लिये प्राप्त हुआ। जनप्रतिनिधियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार (25 प्रतिशत), जनप्रतिनिधियों की अज्ञानता (21.67 प्रतिशत) तथा प्रभुत्वसंपन्न नेतृत्व (18.33 प्रतिशत) आदि उत्तरदाताओं से प्राप्त अन्य उत्तर रहे।आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि परंपरागत नेतृत्व के प्रति लोगों की आस्था में हुई कमी का मुख्य कारण परंपरागत नेतृत्वकर्ताओं का रूढ़िवादी दृष्टिकोण है। स्पष्ट है कि रूढ़िवादी दृष्टिकोण का यह कारक समाज के सभी वर्गों को प्रभावित करता है।

2. क्या आप जानते/जानती हैं कि ग्रामीण लोग परंपरागत नेतृत्व के किन गुणों को पसंद करते हैं?

सारणी 1.2

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	कार्य के प्रति समर्पण एवं कर्मठता	15	25
2	निष्पक्षता	12	20
3	ईमानदारी	11	18.33
4	सामाजिक सहभागिता और परोपकारिता	22	36.67
5	कुल योग	60	100

शोध क्षेत्र में चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न क्या आप जानते/जानती हैं कि ग्रामीण लोग परंपरागत नेतृत्व के किन गुणों को पसंद करते हैं, के संबंध में सर्वाधिक जनप्रतिनिधियों ने सामाजिक सहभागिता और परोपकारिता (36.67 प्रतिशत) को मुख्य कारक बताया। कार्य के प्रति समर्पण एवं कर्मठता(25 प्रतिशत), निष्पक्षता (20 प्रतिशत) तथा ईमानदारी (18.33 प्रतिशत)के गुणों के प्रति भी उत्तरदाताओं ने अपनी सहमति प्रदर्शित की। प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि जनप्रतिनिधियों के सामाजिक सहभागिता और परोपकारिता के गुणों को सर्वोपरि माना जाता है। यह सर्वग्राह्यता और जनप्रतिनिधियों की सार्वजनिक उपलब्धता को प्रदर्शित करने वाला कारक है।

3. क्या पंचायती राज संस्थाओं में कार्यरत परंपरागत नेताओं को समय के साथ बदलने की आवश्यकता है?

सारणी 1.3

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	हाँ	37	61.67
2	नहीं	15	25
3	पता नहीं	08	13.33
4	कुल योग	60	100

प्राप्त आँकड़ों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न क्या पंचायती राज संस्थाओं में कार्यरत परंपरागत नेताओं को समय के साथ बदलने की आवश्यकता है, के उत्तर में हाँ (61.67 प्रतिशत), नहीं (25 प्रतिशत) तथा पता नहीं (13.33 प्रतिशत) कहने वाले उत्तरदाता रहे। अतः संख्या से स्पष्ट होता है कि पंचायती राज संस्थाओं में कार्यरत परंपरागत नेतृत्वकर्ता को समय के साथ बदलने की आवश्यकता है। यह परिवर्तन उनके व्यवहार, कार्यप्रणाली और सामाजिक सहभागिता के स्तर पर होना चाहिये। उस क्षेत्र कें सामाजिक सरोकारों से वो जितना स्वयं को संबद्ध करेंगे, उतना ही क्षेत्र की जनता के साथ वो जुड़ सकेंगे।

4. आपके विचारों में आजकल पंचायती राज व्यवस्था में परंपरागत नेता के नेतृत्व करने की कौन-सी विधि सबसे अधिक प्रभावशाली है?

सारणी 1.4

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	समझाने बुझाने की	20	33.33
2	सामाजिक निंदा की	15	25
3	दण्ड का भय दिखाने की	18	30
4	स्वयं के आत्मबल पर	07	11.67
5	कुल योग	60	100

चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न कि आपके विचारों में आजकल पंचायती राज व्यवस्था में परंपरागत नेता के नेतृत्व करने की कौन-सी विधि सबसे अधिक प्रभावशाली है, के उत्तर में परंपरागत नेतृत्व के द्वारा समझाने बुझाने की प्रवृत्ति (33.33 प्रतिशत) को सबसे अधिक समर्थन मिला। दण्ड का भय दिखाने को (30 प्रतिशत),सामाजिक निंदा की प्रवृत्ति को (25 प्रतिशत), तथा स्वयं के आत्मबल पर विश्वास के आधार पर कार्य संपादित करने की प्रवृत्ति(11.67 प्रतिशत)आदि उत्तरदाताओं के अन्य उत्तर रहे।

स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं का बहुमत नेतृत्व के सौहार्दपूर्ण व्यवहार को सबसे अधिक सही मानता है। परंतु सामाजिक वास्तविकताओं के अनुरूप यह भी देखने में आया कि दण्ड का भय दिखाने के कार्य को भी उत्तरदाताओं के एक बड़े मत ने स्वीकार किया है।

5. क्या आप परंपरागत जनप्रतिनिधियों के कार्य से संतुष्ट है?

सारणी 1.5

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	हाँ	21	35
2	नहीं	28	46.67
3	तटस्थ	11	18.33
4	कुल योग	60	100

जनप्रतिनिधियों के सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पूछे गये प्रश्न क्या आप परंपरागत जनप्रतिनिधियों के कार्य से संतुष्ट हैं, के उत्तर में सर्वाधिक उत्तर नहीं (46.67 प्रतिशत)तत्पश्चात् हाँ (35 प्रतिशत) और सबसे कम तटस्थ (18.33 प्रतिशत) रहने वाले उत्तरदाताओं ने अपने मत प्रकट किये। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पंचायतीराज व्यवस्था में अधिकांश लोग परंपरागत जनप्रतिनिधि के कार्य से संतुष्ट नहीं है। संभवत: यही कारण है कि अधिकांश जनप्रतिनिधियों ने सर्वेक्षण में एक अन्य प्रश्न के उत्तर में परंपरागत नेतृत्वकर्त्ताओं के व्यवहार और कार्यप्रणाली के प्रति असंतोष व्यक्त किया था।

(2) उभरते हुए नेतृत्व से संबंधित प्रश्नः-

1. **क्या आप जानते/जानती हैं कि पंचायती राज व्यवस्था में ग्रामीण समाज के उभरते हुए नेतृत्व ने क्या कार्य किए हैं?**

सारणी 2.1

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	**दलीय संघर्ष को रोकना**	15	25
2	**सामूहिक प्रतिद्वंदिता की भावना को सशक्त बनाना**	14	23.33
3	**योग्य लोगों को राजनीति में लाना**	12	20
4	**कमजोर वर्ग के लोगों को लाभ दिलाना**	19	31.67
5	**कुल योग**	60	100

सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न कि क्या आप जानते/जानती हैं कि पंचायती राज व्यवस्था में ग्रामीण समाज के उभरते हुए नेतृत्व ने क्या कार्य किए हैं, के उत्तर में सर्वाधित मत कमजोर वर्ग के लोगों को लाभ दिलाना (31.67 प्रतिशत) के पक्ष में प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त दलीय संघर्ष को रोकना (25 प्रतिशत), सामूहिक प्रतिद्वंदिता की भावना को सशक्त बनाना (23.33 प्रतिशत) और योग्य लोगों को राजनीति में लाना (20 प्रतिशत) आदि कारकों के पक्ष में चयनित उत्तरदाताओं ने अपने उत्तर दिये। स्पष्ट है कि उभरते ग्रामीण नेतृत्व के द्वारा सबसे पहले उस वर्ग के पक्ष में ध्यान दिया जाना अपेक्षित दिखता है जिस वर्ग से वो नेतृत्व उभर रहा है। जनप्रतिनिधित्व के लिये योग्य उम्मीदवारों को सामने लाने के प्रति भी यह वर्ग संवेदनशील दिखता है।

2. क्या आपको मालूम है कि पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए नेतृत्वकर्ता के साथ एक अच्छा सामाजिक परिवेश बनाना एक महत्वपूर्ण चुनौती है?

सारणी 2.2

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	हाँ, कठिन एवं दुष्कर कार्य है	34	56.67
2	नहीं, यह संभव नहीं है	18	30
3	कह नहीं सकते	08	13.33
4	कुल योग	60	100

सर्वेक्षण में चयनित उत्तरदाताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चयनित जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न क्या आपको मालूम है कि पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए नेतृत्वकर्ता के साथ एक अच्छा सामाजिक परिवेश बनाना एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं, के उत्तर में हाँ, कठिन एवं दुष्कर कार्य है (56.67 प्रतिशत) के पक्ष में सर्वाधिक मत दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त नहीं, यह संभव नहीं है, कहने वाले उत्तरदाताओं (30 प्रतिशत) ने अपने मत प्रकट किये। इस सम्बंध में कोई भी मत न प्रकट कर पाने वाले (13.33 प्रतिशत) उत्तरदाता भी रहे। स्पष्ट है कि अधिकांश जनप्रतिनिधियों का मानना है कि पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए नेतृत्वकर्ता के साथ एक अच्छा सामाजिक परिवेश बनाया तो जा सकता है परंतु यह एक कठिन एवं दुष्कर कार्य है और निस्संदेह अत्यंत महत्वपूर्ण चुनौती है।

3. क्या आप जानते/जानती हैं कि उभरते हुए नेतृत्व की पृष्ठभूमि ग्रामीण एवं स्थानीय स्वशासन में उपयोगी है?

सारणी 2.3

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	हाँ	50	83.33
2	नहीं	07	11.67
3	कह नहीं सकते	03	05
4	कुल योग	60	100

सर्वेक्षण में चयनित उत्तरदाताओं के दिये गये अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न क्या आप जानते/जानती हैं कि उभरते हुए नेतृत्व की पृष्ठभूमि ग्रामीण एवं स्थानीय स्वशासन में उपयोगी है, के उत्तर में हाँ कहने वाले (83.33 प्रतिशत) सर्वाधिक रहे। इस प्रश्न के संदर्भ में नहीं कहने वाले (11.67 प्रतिशत) तथा कोई भी मत प्रकट न करने वाले (05 प्रतिशत) उत्तरदाता रहे। स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रामीण एवं स्थानीय स्वशासन में उभरते हुए नेतृत्व की पृष्ठभूमि अत्यधिक महत्व रखती है। इसका सबसे महत्वपूर्ण असर जनप्रतिनिधियों, विशेषकर उभरते हुए ग्रामीण नेतृत्व के विस्तार और प्रसार पर पड़ता है और यह प्राय: उनके निर्वाचन में बहुत योगदान देता है।

4. आप के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए नेतृत्व की कार्यप्रणाली कैसी होनी चाहिए?

सारणी 2.4

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	यथास्थिति में रहने को प्रतिबद्ध	12	20
2	विकासात्मक	16	26.67
3	प्रबंधात्मक	10	16.66
4	बदलाव की प्रक्रिया के लिये प्रतिबद्ध	22	36.67
5	कुल योग	60	100

सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न आपके अनुसार पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए नेतृत्व की कार्यप्रणाली कैसी होनी चाहिए, के उत्तर में सर्वाधिक मत बदलाव की प्रक्रिया के लिये प्रतिबद्ध (36.67 प्रतिशत) कारक को मिले। इसके अतिरिक्त विकासात्मक (26.67 प्रतिशत),यथास्थिति में रहने को प्रतिबद्ध (20 प्रतिशत), प्रबंधात्मक (16.66 प्रतिशत)आदि कार्यप्रणालियों के प्रति भी उत्तरदाताओं ने उत्तर दिये।

अत: उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पंचायती राज व्यवस्था में उभरते हुए अधिकांश नेतृत्वकर्ता बदलाव की प्रक्रिया के लिये प्रतिबद्ध कार्यप्रणाली के प्रति अधिक सहज महसूस करते हैं। उनके अनुसार बदलाव की प्रक्रियाप्राय: जनहित से संबंधित होती है।

5. क्या आप जानते/जानती हैं कि जिला गाजियाबाद में पंचायती राज संस्थाओं में उभरते हुए नेतृत्व के द्वारा जमीनी स्तर पर सभी वर्गों के लिए क्या परिवर्तन हुए?

सारणी 2.5

क्रम	उत्तर का प्रकार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत मूल्य
1	**निरक्षर को साक्षर बनाना**	33	55
2	**असंगठित को संगठित बनाना**	13	21.67
3	**निर्धान एवं गरीब को सम्पन्न बनाना**	14	23.33
4	**कुल योग**	60	100

अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनप्रतिनिधियों से पूछे गये प्रश्न क्या आप जानते/जानती हैं कि जिला गाजियाबाद में पंचायती राज संस्थाओं में उभरते हुए नेतृत्व के द्वारा जमीनी स्तर पर सभी वर्गों के लिए क्या परिवर्तन हुए, के उत्तर में सर्वाधिक मत निरक्षर को साक्षर बनाने (55 प्रतिशत) के कार्य के पक्ष में गये। इसके बाद निर्धन एवं गरीब को सम्पन्न बनाना (23.33 प्रतिशत)तथा असंगठित को संगठित बनाने (21.67 प्रतिशत) पक्ष में उत्तरदाताओं ने अपनी सहमति प्रकट की। स्पष्ट है कि ग्रामीण स्तर पर शिक्षा संबंधी विकास कार्यों का अधिक संख्या में होना बेहतर है और इसी कारण शिक्षा संबंधी कार्य जैसे निरक्षरों को साक्षर करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

निष्कर्ष

अपने इस शोधपत्र में शोधकर्त्ता ने शोध प्रश्नों की समग्र व्याख्या कर उसे सांख्यिकी विधि के आधार पर व्यक्त किया है। सभी सारणियों को क्रमबद्ध तरीके से वास्तविक उत्तरदाताओं की संख्या और प्रतिशत के रूप में मूल्यांकित किया है जिसके द्वारा शोध कार्य में मौलिकता एवं समग्रता आ सके। शोधकर्त्ता ने प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण में प्रत्येक सारणी को दो वर्गों में बाँटा है- सारणी एवं व्याख्या। जिससे निकलने वाला निष्कर्ष परंपरागत नेतृत्व एवं उभरते हुए नेतृत्व को पूर्ण रुप से एवं निष्पक्ष तरीके से मूल्यांकित कर इन प्रश्नों को वह मूल्य प्रदान कर सके जिससे यह शोधपत्र समाज एवं राष्ट्र के लिए कल्याणमूलक बन सके।

संदर्भ

1. वर्मा, लाल बहादुर, इतिहास के बारे में, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृष्ठ 11
2. राधे शरण, इतिहास और इतिहास-लेखन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2002, पृष्ठ 27

जन आंदोलन के कवि: नागार्जुन

डॉ० ललिता कौशल

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, सांध्यकालीन अध्यन विभाग, शिमला

निराला के बाद प्रगतिशील कविता को भारतीय जनमानस से जोड़ने का अभूतपूर्व कार्य जिन पाँच कवियों-नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध और त्रिलोचन ने किया, उनमें नागार्जुन प्रतिनिधि कवि हैं। पाठकों, श्रोताओं से जन आंदोलन के माध्यम से मुखर होकर जो पैठ जनता में बाबा ने बनाई और हिंदी कविता का विशाल परिवार तैयार किया, वह उन्हें सच्चे अर्थों में जनकवि बनाता है। नागार्जुन ने वैचारिक प्रतिबद्धता के बावजूद लोकमानस की जरा.जरा आस, सुख.दु:ख और संघर्ष को उसके निपट मौलिक और अनगढ़ रूप में अभिव्यक्ति दी। सत्य के प्रति आग्रह उनकी रचनाओं में ऐसी प्रखर व निर्भीक निष्पक्षता ले आया है कि वह कबीर से धूमिल तक की काव्य, यात्रा के दस्तावेज हो गए हैं। सम्पूर्ण भारतीय काव्य परम्परा का जीवंत रूप उनके काव्य में समायोजित हुआ है।

नागार्जुन की कविता पढ़ते हुए निरंतर यह अनुभूति होती रहती है कि जैसे हम किसी युद्ध के मैदान में एक योद्धा को लड़ते हुए देख रहे हैं। एक सैनिक कवि है, जो युद्ध के मोर्चे पर सबसे आगे जाकर स्वयं लड़ता है। वे कविता गढ़ने वाले कवि नहीं रचने वाले कवि हैं। उनके सामने जो निष्कलुष अकुलीन मनुष्य है, उसी का सौंदर्य, उनकी कविता का सौंदर्य रचता है। वे सौंदर्य के प्रतिमान किताबों से पढ़कर नहीं, जिन्दगी के भीड़ भरे चौराहों पर दिखने वाले चेहरों से निर्धारित करने वाले रचनाकार हैं। नागार्जुन भारत के प्रतिनिधि जनकवि हैं, जिसे वे न केवल स्वीकार करते हैं, बल्कि उस जनकवि होने की जिम्मेदारी को भी महसूस करते हैं। वे कहते हैं-

''जनता मुझसे पूछ रही है क्या बताऊँ?
जनकवि हूं मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?''[1]

कवि नागार्जुन का जन्म 30 जून, 1911 को बिहार के जिला दरभंगा के गाँव तरौनी में हुआ। इनका पहला नाम वैद्यनाथ मिश्र था। पिता गोकुल मिश्र किसानी के साथ पुरोहिताई के चलते आस.पास के गाँव की यात्रा करते रहते थे। उन्हीं के साथ यात्रा करते हुए नागार्जुन 'यात्री' हुए। मातृभाषा मैथिली में बाबा ने 'यात्री' उपनाम से ही रचना की। नागार्जुन हिंदी के ऐसे पहले साहित्यकार हुए, जिन्होंने अपना लेखन चार भाषाओं- हिंदी, संस्कृत, मैथिली व बांग्ला में किया। सन् 1969 में उन्हें मैथिली की ऐतिहासिक रचना 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। नागार्जुन की कविता का समय बीसवीं सदी का पूरा उत्तरार्द्ध रहा है। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। इसके बाद सन् 1953 में उनका पहला कविता संग्रह 'युगधारा' प्रकाशित हुआ। आजादी मिलने से पहले वे 'यात्री' उपनाम से काव्य रचना करते थे। 'युगधारा' संग्रह में दो उल्लेखनीय कविताएँ- 'रवि ठाकुर' और 'बादल को घिरते देखा है' के साथ उनका 'यात्री' नाम ही छपा है। 'रवि ठाकुर' कविता में एक महाकवि से भविष्य के महाकवि का संवाद है। उस समय के युवा 'यात्री' को यह मालूम था कि महाकवि रवि ठाकुर को अनुपम प्रतिभा का अवदान मिला था, जिसके बल पर उनके दिव्यगान विश्व में गूंजे थे। व्यक्ति का विवेक, समाज शास्त्रीय सिद्धांतों को गलत सिद्ध करता रहा है, इतिहास इसका गवाह है। गुरुदेव के पास यह उनका व्यक्ति विवेक ही था कि वे मनुष्यता की उदात्ततम अनुभूतियों की सर्जना कर सके और समय को सही.सही समझ सके। यही समझदारी और व्यक्ति विवेक है, जो नागार्जुन को एक बड़ा रचनाकार बनाता है। वे रवि बाबू से संवाद करते हुए झिझकते नहीं हैं-

''कवि के रूप में हो गए विकसित कैसे तुम अचानक

बाह्य आडम्बर उतना भयानक।
गला क्यों न घोंट सका
तुम्हारे महामानव का?
कहाँ से मिली तुम्हें इतनी अनुभूतियाँ
पीडिघ्त मनुष्य के निम्नतम स्तर की?''[2]

नागार्जुन जनकवि के साथ.साथ जनआंदोलनों के भी कवि हैं। उनकी कविता में विभिन्न सामाजिक वर्गों, समुदायों और जातियों के लिए स्थान है। बाबा समाज के ऐसे कवि हैं जो जीवन जगत की विसंगतियों को खुली आँखों से देखते हैं, उन्हें जीते हैं, प्रभावित होते हैं और बिना किसी कसौटी के ईमानदारी से चित्रित भी करते हैं। वे अपनी कविताओं में शोषित.पीडिघ्तों की पुकार तथा जीवन संघर्षों को चित्रित करने वाले रचनाकार हैं। इनकी रचना की सबसे बड़ी विशेषता इनका गहरा सामाजिक.राजनीतिक बोध है। नामवर सिंह के शब्दों में, ''नागार्जुन पहले कवि हैं, जिन्होंने सामाजिक राजनीतिक संदर्भ में वीभत्स को एक नई शक्ति प्रदान की है।''[3] बाबा का व्यक्ति महाकवि के अभिजनवादी परिवेश से कहीं भी दबता और आत्मदैन्य से पीडिघ्त नहीं होता। यह जानते हुए भी कि रचना संसार में संलग्न रहने की उसकी अपनी जीवन यात्रा बहुत आसान नहीं है। वह स्वयं अपने जीवन के सच को जानता है। रविंद्र नाथ ठाकुर पर लिखी एक कविता में कवि ने कहा है-

''पैदा हुआ था मैं-
दीन-हीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि। मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने का दौड़ते।
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।।''[4]

नागार्जुन का सम्पूर्ण रचना.संसार, तीन स्तम्भों पर टिका है। पहला है- जनसंघर्ष में अडिग आस्था। साधारण से साधारण व तथाकथित लघु से लघुत्तर मनुष्य के जीवन संघर्ष को उन्होंने गहरी निष्ठा से देखा। दूसरा स्तम्भ है- लोक जन के प्रति गहरा लगाव। कवि की कविता ही नहीं, उनके उपन्यास व निबंध के केंद्र में भी यही लोक है। कवि को बाबा नागार्जुन बनाने वाला जन के प्रति उनका यही अनुराग व सरोकार है। उनकी रचनाधर्मिता का तीसरा लक्ष्य न्यायपूर्ण समाज का सपना है। वे अपने समकालीन परम्परागत रूढिघ्यों में जकड़े हुए समाज के वर्तमान एवं भविष्य को संवारने वाले नए मूल्यों को स्थापित करने के लिए समझौता नहीं, बल्कि परिवर्तन करना चाहते थे। उन्होंने नए मूल्यों के प्रति लोगों को जागृत किया। उनकी रचनाओं में व्यक्तिगत स्तर पर जीवन जीने के लिए और सामाजिक स्तर पर शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष दिखाई पड़ता है। अपने समय की हर दुर्भावना और अनीति के विरुद्ध उन्होंने निर्भीक व निर्द्वन्द्व होकर लिखा-

''सत्य को लकवा मार गया है
वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन.सारी रात।
उसे इमरजेंसी का शॉक लगा है
नहीं सत्य आपको बिल्कुल नहीं पहचानेगा
पहचान की उसकी क्षमता हमेशा के लिए लुप्त हो चुकी है।'' [5]

सामंती व्यवस्था के वैभव प्रदर्शन, उत्पीड़न और पतन को अभिव्यक्त करने में नागार्जुन ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। जनता के जीवन को कष्टमय बनाने वाली दरिद्रता किस तरह उन्हें किसान से मजदूर बनने को विवश करती है। इसे नागार्जुन भली.भांति जानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में- ''अगर खेत, मजदूरों पर और गरीब किसानों पर साहित्य देखना है, तो वे नागार्जुन के यहाँ मिलेगा और उसके अतिरिक्त शहर में जब ये लोग आते हैं, मजदूरी करते हैं, तो उनके जीवन का चित्रण भी नागार्जुन ने किया है।''[6]

नागार्जुन का कविता कर्म लोक सरोकारों से जुड़ा हुआ था। तभी तो उन्हें 'जन आंदोलनों और सामाजिक सरोकारों का कवि' या 'क्रांतिकारी कवि' कहा गया। उनके समय में छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, जनवादी कविता आदि जैसे काव्य आंदोलन' चले पर उनकी कविता इन सब वादों से परे अपना स्वतंत्र वजूद बनाती है और अपने काव्य.सरोकार 'जन' से ग्रहण करती है। कवि ने महज आठ पंक्तियों की कविता 'अकाल और उसके बाद' में सामाजिक सच्चाई का जो मार्मिक व संवेदनशील चित्रण किया है, वह मन को झकझोर कर रख देने वाला है-

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।'' [7]

व्यवस्था का कटु से कटु सत्य और दु:ख.दर्द की लम्बी फेहरिस्त वह लोक संस्कृति की अनछुई स्वाभाविक सहजता से कह गए हैं। जीवन का कोई पक्ष व कोई भाव उनकी लेखनी से अछूता नहीं रहा। नामवर सिंह ने लिखा है- 'जो औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती हे, वही नागार्जुन की रचनाभूमि है।' इस दृष्टि से काव्यात्मक साहस में नागार्जुन अप्रतिम हैं। उन्हीं की बीहड़ प्रतिभा एक मादा सुअर पर 'पैने दांतवाली' कविता रच सकती है। सूक्ष्म संवेदनाओं व भावों को भी उन्होंने इतने ही कौशल से चित्रित किया है। 'गुलाबी चूडिय्याँ' में एक सामान्य कामकाजी पिता की ममता का उत्कर्ष है। साधारणीकरण की ऐसी क्षमता इस कविता में है कि किसी भी पिता का मन अपने आत्मज के लिए तरस जाए। 'बादल को घिरते देखा है', 'बहुत दिनों के बाद', 'हरिजन गाथा', 'भोजपुर', 'शासन की बंदूक', 'मंत्र', 'फिसल रही चाँदनी' जैसी विषम कविताओं को साधने का हुनर और साहस बाबा को एक बड़ा कवि बनाते हैं। संवेदनात्मक कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने नारेनुमा कविताएँ भी लिखी हैं, जो जनसंघर्षों की सघनता और तीव्रता के परिणाम हैं। कविता नारे में तब बदलती है जब वह रूपांतरण के संघर्ष में कवि और जन.संग्रामी चेतना के साथ होती है और जन स्वर बन जाती है। सामान्य स्थिति में नारे लिखे ही नहीं जा सकते। नागार्जुन के नारे जन.संग्रामी आँच से तपकर निकले हुए नारे हैं। वे समाज के प्रवंचित, प्रताडिघ्त और उपेक्षित जनवर्ग के प्रति सहानुभूतिशील होकर कविता लिखते हैं, जिसमें उनकी प्रखर प्रगतिशील दृष्टि प्रतिबिम्बित होती है। वस्तुत: वे सर्वहारा वर्ग के सहचर साथी और करुणार्द्र कवि हैं। उनकी दृष्टि उतपादन वर्ग पर टिकती है जो देहातों में हल चलाता है और नगरों में रिक्शा.ठेला। कुलियों के जीवन संदर्भ का यह चित्र श्रम को गौरान्वित करता है-

''कुली मजदूर है, बोझा ढोते हैं, खींचते हैं ठेला।
धूप धूआँ, भाप से पड़ता है पाला।
थके.मांदे जहाँ.तहाँ हो जाते हैं ढेर,
सपने में भी सुनते हैं धरती का धड़कना।'' [8]

नागार्जुन की जातीय भावना और राष्ट्रीय चेतना उनके श्रमिक वर्गीय दृष्टिकोण पर आधारित है। इसलिए उनके काव्य में मजदूर किसान के सांस्कृतिक जीवन के तत्व प्रचूर मात्रा में मौजूद हैं। वे समाज के अंतर्विरोध को समझते हैं, इस अंतर्विरोध से जुड़े हुए अत्याचार और उत्पीड़न का अनुभव करते हैं। इसके लिए जिम्मेदार लोगों से तीव्र घृणा करते हैं और स्थिति को बदलकर न्याय और समता पर आधारित समाज की रचना करने वाली श्रमिक जनता से नाता जोड़ते हैं। वे हमेशा लोक चेतना व संघर्ष के साथ चले और शोषित मानस का पक्ष लिया। जनसंघर्ष में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना, ये तीनों गुण बाबा के व्यक्तित्व में ही नहीं, उनके साहित्य में भी घुले.मिले हैं। समकालीन विसंगतियों, विद्रूपताओं और जटिलताओं को चुनौती देते उनके तेवर बार.बार परिलक्षित हुए और इसे उन्होंने अपनी एक कविता 'प्रतिबद्ध हूँ' में दो टूक लहजे में स्पष्ट भी किया है-

''प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ -
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भेड़ की 'भेडिच्या.धसान' के खिलाफ
अंध.बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आपको भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।'' [9]

नागार्जुन का काव्य संसार बहुत विस्तृत है, उसे किसी एक लेख या पुस्तक में समेटना कतई संभव नहीं है। उनकी जीवन दृष्टि की सबसे बड़ी खूबी है कि वे अपने समय, जीवन और व्यक्ति को कहीं भी इकहरी और एकांगी दृष्टि से नहीं देखते। द्वंद्वात्मक दृष्टि का जो विन्यास उनके यहाँ मिलता है, वह अचरजकारी है। आज भी हम इस त्रासदी का अनुभव कर सकते हैं कि हर मोर्चे पर जनवादी के सामने अभिजनवादी को विशेषांक मिलते हैं। किंतु नागार्जुन का सारा काव्य 'जन' और 'जनवादी' के लिए समझदारी बढ़ाने और सामान्य जन के प्रति अनुभूति को तीव्र और सजग करने का काव्य है। सच है कि जब.जब गण ने संगठित होकर सचेतन रूप से सही दिशा की ओर प्रमाण करने का संकल्प किया है तो उसने दुनिया का नक्शा बदल दिया है। तभी नागार्जुन उस जन की वंदना करते हुए उसे कोटिशीर्ष, कोटिबाहु और कोटिचरण कहते हैं। युगधारा के 53वें संस्करण पर डॉ. रामविलास शर्मा की उल्लेखनीय टिप्पणी के अनुसार-''नागार्जुन उन थोड़े से कवियों में हैं जो आड़े दिनों में जनता के काम आ रहे हैं। अपनी कायरता और विश्वासघात छिपाने के लिए जिन महाविद्वानों ने अनूठे सिद्धांत गढ़ डाले हैं, नागार्जुन की कविता उनके लिए ऐसी चुनौती है, जिसका सामना करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। नागार्जुन की कविताएँ दिल पर चोट करने वाली हैं, कर्त्तव्य की राह दिखाने वाली हैं। नागार्जुन हमारे राष्ट्रीय सम्मान का रक्षक, हमारी जनवादी.साहित्यिक विरासत का सजग प्रहरी हैं।''[10]

नागार्जुन प्रगतिशील चेतना के जन.प्रतिनिधि कवि हैं। वे कई अर्थों में विद्रोही कवि हैं। परम्परा से विद्रोह, सामाजिक.राजनीतिक व्यवस्था से विद्रोह, भद्रसौंदर्य रुचि के विरुद्ध विद्रोह और अंततः स्वयं अपने प्रति विद्रोह बाबा को बहुमुखी विद्रोह का कवि बनाते हैं। उनकी काव्य.प्रतिभा के व्यापक आयाम में अभिव्यक्त होने के लिए विपुल और विविध वर्ण्य.विषय होड़ करते प्रतीत होते हैं। नागार्जुन की कविता में पसीने से तर.बतर श्रमजीवि की फटी बिवाइयों वाले पैर, पाँखें खुजलाता कौआ, सिके हुए भुट्टे, बोझे ढोते पीठ के घट्टे, मादरे हिंदी की बेटी मादा सूअर, धान कूटती किशोरियों की लोकिल कंठी तान, आकाश में उमड़ते बादल, बापू के तीनों बंदर, हिम अमल.धवल पर्वत, धन.कुरंग, ऋतुसंधि, पत्तों पर फिसल रही चाँदनी और कल्पना के पुत्र भगवान साथ.साथ हैं। कविता के लिए जो विषय वर्जित समझे जाते रहे हैं, वही नागार्जुन की रचना भूमि हैं। भाव.भदेस और वीभत्स रुचि उनका काव्यात्मक साहस हो जाती है। शिष्ट और सुरुचिपूर्ण काव्याभिरुचि के विरुद्ध यथार्थ की प्रस्तुति न केवल उनके विद्रोही रूप को प्रतिष्ठित करती है, बल्कि उनकी कविता को बहुआयामी भी बनाती है।

नागार्जुन अपने समकालीन परम्परागत रूढिय्यों में जकड़े हुए समाज के समक्ष जनसाधारण के वर्तमान और भविष्य को संवारने वाले नए मूल्यों को स्थापित करने के लिए समझौता नहीं, बल्कि परिवर्तन करना चाहते हैं। उन्होंने नए मूल्यों के प्रति लोगों को जागरूक कर उनमें विश्वास जगाने का काम बखूबी किया। अंधविश्वासों एवं गलत परम्पराओं को कवि स्वीकार नहीं करना चाहते थे। उनका मानना था कि इन परंपराओं को पीढ़ी.दर.पीढ़ी ढोने से समाज को कोई लाभ होने वाला नहीं है, उन्हें स्वयं पर विश्वास कर कर्मरत होना चाहिए। इस संदेश को वे जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते थे, ताकि नागरिक सचेत होकर इन तमाम रूढिय्यों से लड़ सके और अपने विकास में अहम भूमिका निभा सके। परन्तु समाज आज भी इन रूढिय्यों के कारण पिछड़ा हुआ है। शिक्षा के अभाव में आज भी तमाम रूढिय्याँ समाज में मौजूद हैं, जो किसी न किसी तरह से जनता को शोषित और पीडिघ्त बनाने का कार्य करती है। नागार्जुन अपने समाज की जर.जर हालत को शुरू से देखते आए हैं। उन्होंने स्वयं गरीबी को भोगा है तथा अपनी कविता में उस संघर्ष को अभिव्यक्त भी किया है-

''मैं दरिद्र हूँ पुश्त.पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी

जीभ से मरे लहू चाटती आई
मैं न अकेला मुझ जैसे तो
लाख.लाख हैं, कोटि.कोटि हैं
ये तो सबका हाल यही है
सभी सरों पर यह बवाल है
सभी दुःखी हैं, दो प्रतिशत भी नहीं सुखी हैं।''[11]

भूख से बड़ा कोई धर्म नहीं होता, जब पेट में अन्न नहीं होगा तब ईश्वर या अल्लाह के नाम का भेद भी मिट जाएगा। समाज में जाति, धर्म के नाम पर भेदभाव फैलाने वालों पर नागार्जुन आक्रोश भरे स्वर में विरोध करते नजर आते हैं। स्वतंत्र भारत का कोई भी ऐसा जन आंदोलन नहीं है, जिसके साथ बाबा की कविता खड़ी न हो, चाहे कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चलने वाला किसान आंदोलन हो, तेलंगाना, नक्सलवाड़ी जैसे आंदोलन हो। सभी के साथ कवि की कविता खड़ी दिखाई देती है। 'लालभवानी' कविता तेलंगाना के जनांदोलन से प्रेरित होकर लिखी गई कविता है। नागार्जुन ने भारतीय समाज के उन जन समुदायों पर भी कविता लिखी जिन पर दूसरे कवियों ने ध्यान भी नहीं दिया, लेकिन नागार्जुन पहले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने आदिवासी, दलित और स्त्री तीनों को कविता का विषय बनाया। आदिवासियों पर उन्होंने लगभग एक दर्जन अत्यंत महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखी। इसी तरह स्त्री पर भी उन्होंने कई कविताएँ लिखीं। जैसे- 'तालाब की मछलियाँ', 'अहिल्या', 'शकुंतला' आदि। 'हरिजन गाथा' नामक कविता में उन्होंने दलित जीवन की यातना के साथ-साथ मुक्ति की चेतना की भी अभिव्यक्ति की है-

''दिल ने कहा-दलित मांओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्नि पुत्र होंगे वे, अंतिम
विप्लव में सहभागी होंगे।'' [12]

नागार्जुन के लिए कवि.कर्म कोई अभिजात्य शौक नहीं, बल्कि खुरदरेपन का अहसास है, जिससे आमजन रोज जूझता है। वह कविता को रोटी की तरह जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। जीवन को उन्होंने जिस रूप में पाया, उसी रूप में स्वीकार किया। जहाँ धर्म और दर्शन ईश्वर की अपनी व्याख्याएँ करते हैं, वहीं नागार्जुन इन सबको एक सिरे से नकारते हैं। नागार्जुन के महत्त्व और प्रासंगिकता को इंगित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने बाबा के काव्य संग्रह 'ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!' के विज्ञापन में लिखा है- ''नागार्जुन अपनी उम्र की 73वीं मंजिल पर पहुँचकर भी नए लेखकों तथा आम जनता से गहन रिश्ता रखने वाले सबसे अधिक ताजगी भरे जन कवि हैं।' एक ऐसा वक्त आएगा जब मध्यवर्ग, किसानों और मजदूरों में भी जन्म लेने वाले कवि दृढ़ता से अपना संबंध जन.आंदोलन से कायम करेंगे। उनके सामने लोकप्रिय साहित्य और कलात्मक सौंदर्य के संतुलन की समस्या फिर पेश होगी। तब साहित्य और राजनीति में उनका सही मार्ग प्रदर्शन करने वाले, अपनी रचनाओं के प्रत्येक उदाहरण से उन्हें शिक्षित करने वाले उनके प्रेरक और गुरु होंगे कवि नागार्जुन।''[13]

नागार्जुन सहज.सरल और संश्लिष्ट भाषा के एक बड़े कवि ही नहीं, जनआंदोलन के कवि भी हैं। कवि को अपने वर्तमान एवं समकालीनता का जितना बुनियादी बोध है, उतना ही मनुष्यता के भविष्य का भी। महाकाव्य जैसी विविधता एवं जीवन व्यापिनी समग्रता का बोध उनकी कविताओं से गुजरते हुए लगातार होता रहता है। वे विरुद्धों के सामंजस्य के भी उतने ही बड़े कवि हैं। वे अपने समय के कवि नहीं, महाकवि हैं। अंत में नामवर सिंह के शब्दों में-'कविता में विषय वस्तु से लेकर रचना विधान तक जितने प्रयोग नागार्जुन ने किए, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं जिन विषयों को दूसरे कवियों ने अछूत समझा, उन पर भी नागार्जुन ने खूब कलम चलाई। उन्होंने अपनी कविता में समाज के आखिरी आदमी को हीरो बनाया।'

संदर्भः

1. मंजू मौर्य (सं.), सम्यक भारत अंक.6, अप्रैल, 2015, नई दिल्ली, पृ. 72
2. जनसत्ता, वार्षिक अंक 2010, पृ. 5

3. नामवर सिंह (सं.), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल दिल्ली, भूमिका
4. नागार्जुन रचनावली भाग.1, राजकमल, दिल्ली, पृ. 30
5. तुलसी रमण (सं.) विपाशा, अंक 154.55 सितंबर.दिसंबर, 2011, शिमला, पृ. 137
6. अजय तिवारी (सं.) आज के सवाल और मार्क्सवाद, स्वराज, दिल्ली, पृ. 136
7. नागार्जुन रचनावली भाग.1, राजकमल, दिल्ली, पृ. 226
8. शिवनारायण (सं.), नई धारा, अंक 11.12, फरवरी.मार्च, 2011, पटना पृ. 11
9. रणजीत सिंह राणा (सं.) हिमप्रस्थ, अंक 8, नवम्बर, 2011, हि.प्र. प्रिंटिंग प्रेस शिमला, पृ. 10
10. तुलसी रमण (सं.) विपाशा, अंक 154.55 सितंबर–दिसंबर, 2011, शिमला, पृ. 133
11. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, संभावना, हापुड़, पृ. 49
12. वेद प्रकाश, नागार्जुनः प्रतिनिधि कविताएँ, पीपुल्स नई दिल्ली, पृ. 85
13. तुलसी रमण (सं.) विपाशा, अंक 154.55 सितंबर.दिसंबर, 2011, शिमला, पृ. 134

राम की शक्ति पूजा: एक सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक प्रासंगिक रचना

डॉ० रामलिंग भोसले

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सरकारी महिला प्रथम श्रेणी महाविद्यालय, जेवरगी कॉलोनी, कलबुरगि

परिपेक्ष्य

निराला एक कालजयी रचनाकार हैं और इसी कालजयी रचनाकार की एक अप्रतिम कृति है 'राम की शक्ति पूजा'। जब से इस कविता की रचना हुई, तब से न जाने कितने आलोचकों की कसौटियों पर इस कविता को परखा गया। आलोचकों के कितने प्रहारों और वाणों का सामना करना पड़ा, कितने घात-प्रतिघात सहने पड़े। इतने थपेड़ों और झंझावातों को झेलने के बाद भी यह कविता निर्जन में, शून्य में खोकर विलीन न हो गयी। अपितु कुन्दन की तरह निखरकर, अपने और अधिक दिव्यमान रूप में प्रकट हुई। यही इसकी सार्वभौमिकता, सार्वकालिकता और सार्वदेशिकता का प्रमाण है। यही वजह है कि इसे 'आधुनिक राम चरित्र मानस' की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इस कविता में निहित शक्ति की मौलिक कल्पना का सूत्र, परंपरा का महत्व, अनुभव की व्यापकता, हृदय और बुद्धि का सामंजस्य, विपरीत परिस्थितियों में भी आशा का संचार, विजय के लिए पर्याप्त तैयारी, दूर दृष्टि, देश मुक्ति तथा नारी मुक्ति, आंदोलन की सफलता के लिए सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व की अनिवार्यता, विनम्रता की उपयोगिता, अहंकार का त्याग, आदि के साथ अंत में सत्य की विजय ही इसे हर युग और स्थान के लिए इसे प्रासंगिक बनाती है।

विश्लेषण

इस कविता में महाशक्ति को रावण के साथ देखकर राम विचलित हो गये हैं उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अब विजय संभव नहीं है। इसी परिस्थिति में राम को जाम्बवान सलाह देते हैं:

शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दना।

अर्थात् शक्ति की कल्पना मौलिकता में ही संभव है, अनुकरण में नहीं। दूसरी बात कि बिना पर्याप्त तैयारी के कोई भी समर नहीं लड़ना चाहिए। जाम्बवान उनको भी उसी शक्ति को धारण करने को कहते हैं, जिस शक्ति को रावण धारण किये हुए है। यह पूजा उस जनशक्ति को अपने पक्ष में करने का उद्यम है जिसको साथ लिए बगैर कोई भी मुक्तिकाली नेतृत्व लड़ाई नहीं जीत सकता। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों का साक्षी है। उदाहरणस्वरूप, फ्रांस की पूंजीवादी क्रांति हो, या रूस की अक्टूबर क्रांति या चीन और वियतनाम का मुक्ति संगाम या भारत का स्वतंत्रता संघर्ष हो, इनमें विजय उसी बिंदु पर संभव हुई जब वर्गो का संतुलन मुक्ति की ताकतों के पक्ष में हो गया। आज जब शोषक वर्गो के नेता और उनके दल झूठे वायदे करके या अविद्या फैलाकर इस जन-शक्ति को भरमाये हुए हैं, जनता को अपने रचे हुए मायाजाल में फँसाकर, उनका शोषण कर रहे है, तब शक्ति की यह मौलिक कल्पना ही किसी योग्य और कुशल व्यक्तित्व के नेतृत्व में इस शोषण से मुक्ति दिला सकती है। अध्यात्मिक दृष्टि से भी देखा जाये तो शक्ति का संधान किसी अन्य के पदचिह्नों पर चलकर संभव नहीं है। इसके लिए स्वयं मार्ग का निर्माण करना पड़ता है। यह 'अप्प दीवो भव' और 'आत्म संभला' है। आज के अधिकांश लोग जब नकल करके और पूरी तैयारी के बिना, शार्ट-कट रास्ते से जब सब कुछ हासिल करने की तमन्ना में असफल होकर तनाव और कुंठा के शिकार हो रहे हैं, उनके लिए निराला की यही दृष्टि आदर्श हो सकती है।

सुग्रीव, विभीषण सभी सलाह देते है पर वृद्ध जाम्बवान ही सबसे उत्तम सलाह देते है। जाम्बवान के सलाह को अधिमान दिलाकर निराला ने अनुभव की व्यापकता के महत्व को दर्शाया है। अनुभव कभी भी अप्रासंगिक नहीं होता। वर्तमान समय में अधिकांश बुजुर्ग उपेक्षा के शिकार हो रहे है। आज का युवा वर्ग बड़े-बूढ़ों को पर्याप्त महत्व नहीं दे रहा है, उन्हें बोझ समझकर उपेक्षित कर रहा है। इन युवाओं के लिए यह प्रसंग पथ प्रदर्शक का कार्य कर सकता है।

परंपरा में जीवन के धनात्मक मूल्य होते है। पूजा अंतिम चरण में है, सिद्धि प्राप्त होने वाली है। दुर्गा छिपकर आती है और पूजा का अंतिम इंदीवर उठा कर ले जाती है। हाथ बढ़ाने पर कमल न मिलने पर राम आँख खोलते है तो उस स्थान को रिक्त पाते है। आसन छोड़ना असिद्धि होगी। उनको लगता है–

'जानकी! हाय उद्दार प्रिया का हो न सका।'

अर्थात् अब सीता का उद्दार नहीं हो सकेगा। तभी उनके मन में आशा का संचार होता है–

'बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन।'

उनको इस स्थिति में उपाय सूझता है:

कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन!
दो नीलकमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात: एक नयन।

इसके बाद वे बाण लेकर अपनी एक आँख चढ़ाने के लिए तैयार हो जाते है। इन पंक्तियों के माध्यम से निराला ने परंपरा के महत्व तथा हृदय ओर बुद्धि के मध्य सामंजस्य एवं संतुलन की बात की है।

परंपरा में ही राम को उपाय मिलता है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक टी.एस.इलियर ने भी व्यक्ति के महान बनने में व्यक्तिगत प्रतिभा के साथ परंपरा के दाय को अनिवार्य बताया है। बिना हृदय और बुद्धि के बीच संतुलन स्थापित किये कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। जय शंकर प्रसाद ने भी 'कामायनी' में 'ज्ञान' और 'क्रिया' के समाहार की बात की है। अगर तत्कालीन स्वाधीनता संघर्ष के संदर्भ में देखा जाए तो गाँधी जी द्वारा चलाये गये क्योंकि गाँधी ने सिर्फ हृदय से काम लिया, हृदय परिवर्तन की बात की। सफलता तब मिली जब उन्होंने 'करो या मरो' का नारा दिया अर्थात् हृदय और बुद्धि का समाहार कराया।

अध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो शक्ति प्राप्त होने के पहले प्रकृति भी परीक्षा लेती है कि इस व्यक्ति में शक्ति धारण करने की योग्यता है भी की नहीं। आज की युवा पीढ़ी आधुनिकता की अंधी दौड़ में परंपरा को भूलती जा रही है। आज मनुष्य हर चीज को एकांगी दृष्टि से देख रहा है। अधिकांश लोगों के विचार एवं व्यवहार में उनके अन्तर्मन एवं बाह्य मन के बीच का असंतुलन स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। इस वजह से वे अशान्त जीवन जी रहे है। निराला का यह दृष्टिकोण इस परिस्थिति से मुक्ति में सहायक हो सकता है।

इस युद्ध में राम के सामने अनेक बाद विपरीत परिस्थितियाँ आती है पर राम ने कभी आशा का दामन नहीं छोड़ा। निराला कहते हैं ''है अमानिशा, उगलता गगन, घन अन्धकार; खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार; अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।''

कहने का अभिप्राय यह है कि चार तत्व भू, जल, वायु, आकाश राम के विपरीत हो गये है, फिर भी उनके हृदय में आशा भरी है क्योंकि 'अग्नि' तत्व उनके साथ है। यह उर्ध्वगामी होती है। पूजा के अंतिम चरण में भी जब दुर्गा अंतिम कमल उठा ले जाती है तो उनका मन निराशा से भर जाता है तो उनका मन निराशा से भर जाता है पर तत्क्षण आशा का संचार होता है–

वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय।

आज के दौर का अधिकांश मनुष्य वर्तमान जीवन शैली, प्रतियोगिता, काम का बढ़ता बोझ, अति यांत्रिकता, बढ़ती अमानवीयता की प्रवृत्ति, की वजह से कुंठा और अवसाद का शिकार होते जा रहा है। इस स्थिति से निराला की यह आशापूर्ण दृष्टि निजात दिला सकती है। प्रसिद्ध चिंतक गैब्रियल मार्सल ने कहा है कि आधुनिक मानव के अशान्त मन के लिए आस्था सम्बल है और आशा जीवन संदेश।

राम शक्ति की उपासना आश्रित भाव से करते हैं वे कहते हैं:

मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।

सिंह माता के चरणों के पास बैठा रहता है। यह भाव विनम्रता की पराकाष्ठा है और पूर्ण समर्पण का भी भाव है। इसमें अपने अहम को त्यागना पड़ता है। इस कविता में एक जगह और जब देवी महावीर पर प्रहार करने के लिए तैयार होती है तो शिव उनको रोकते है कि अगर दिव्यमान धाारण कर अर्थात् अहंकार के वशीभूत होकर तुम इस पर प्रहार करोगी तो तुम्हारी हार निश्चित है। कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति संधान के लिए विनम्रता और समर्पण के साथ-साथ अहम् का त्याग, आवश्यक है। अज्ञेय ने भी 'असाध्य वीणा' में 'अस्पर्श छुअन से छुऐ तार' और 'श्रेय नहीं कुछ मेरा' के माध्यम से इसी विनम्रता की चरम स्थिति और अहंकार के त्याग की बात की है। आज जब लोग छोटी-छोटी बात पर भी उद्दत हो जा रहे हैं, कुछ नहीं, रहते हुए भी बड़ा अहंकार पाले हुए हैं और इसी चक्कर में अपना जीवन व्यर्थ गंवा देते है और अंत में पश्चाताप के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता है। ऐसे में यह भाव मार्गदर्शक की भूमिका अदा कर सकता है।

'जानकी! हाय उद्दार प्रिया का हो न सका' – के माध्यम से निराला ने देश मुक्ति के साथ-साथ नारी मुक्ति की भी बात की है। आज भी महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता है। उन्हें तरह-तरह के शोषण, अत्याचार और प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। इस माहौल में मुक्ति की बात करती यह कविता प्रासंगिक नजर आती है।

जब हनुमान शक्ति को ग्रसने के लिए जाते है तो शिव के कहने पर शक्ति अंजनी रूप धारण कर लेती हैं और हनुमान को डाँटते हुए कहती है कि–

क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनंदन ने?

कहने का तात्पर्य यह है कि नेतृत्व से अलग हटकर मनमाने तरीके से किया जाने वाला दुस्साहस किसी भी रण के लिए नुकसान देह होता है। संघर्ष सामूहिक समझ से लड़कर ही जीता जा सकता है, एक-एक व्यक्ति के अपने-अपने निर्णय से नहीं।

इस कविता में 'ज्योति' और 'नयन' शब्द बार-बार आते हैं जिनका विशेष महत्व है। यहाँ ज्योति और नयन क्रमशः ज्ञान और दृष्टि के प्रतीक है। प्रकाश हो भी और यदि नयन न हो तो प्रकाश का अस्तित्व सार्थक नहीं हो सकता। यह सत्य है कि मुक्ति के संघर्ष में ज्ञान होते हुए भी यदि दृष्टि नहीं हो तो सारा संघर्ष निष्फल हो जाता है। इतिहास में इसके उदाहरण मौजूद है। इसलिए मुक्ति के समर में जीत हासिल करने के लिए वैज्ञानिक और तर्कसंगत तथा देश और काल सापेक्ष दृष्टि की अहम भूमिका होती है। निराला का यह संदेश हर काल और स्थान के लिए प्रासंगिक है।

युद्ध के अंत में राम की विजय होती है क्योंकि इनकी सेना में सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व है (वानर, भालू, मनुष्य, आदि विभिन्न वर्गों के प्रतीक हैं), जबकि रावण की सेना में ऐसी बात नहीं है। कोई भी जन कल्याणकारी युद्ध सभी वर्गों के सहयोग के बिना नहीं जीता जा सकता है। साधारण जन के अंतर्गत सभी का समायोजन होता है। शेक्सपीयर ने अपने नाटक 'जूलियस सीजर' में इसी सत्य की खोज की थी। 1789 की फ्रांस की क्रांति और हमारी आजादी की लड़ाई इसी सत्य की साक्षी है। मुक्तिबोध ने अपनी कविता 'अँधेरे में' में इसी सत्य को गाँधीजी के माध्यम से वाचक को बताया है:

दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गा
यदि बांग दे उठे जोरदर बन जाये मसीहा।

वे कह रहे हैं:

मिट्टी के लोंदे में फिर गीले कण-कण गुण हैं,
जनता के गुणों से ही संभव
भावी का उद्भव।

भविष्य में भी शोषक वर्गों से मुक्ति के लिए लड़े जाने वाले संघर्ष में यही सत्य काम आयेगा।

''धरा', 'वायु', 'जल', 'तेज', 'आकाश', पंचतत्व है। इन्हें ही समन्वित कर बलशाली बनकर कवि समस्त आकाश को निगलने के लिए आगे बढ़ा। महाशक्ति भी उस पर प्रहार करने के लिए तैयार हो जाती है। दो महाशक्तियों के टकराहट के परिणामस्वरूप होने वाले अवश्यंभावी विनाश को देखते हुए शिव देवी को विद्या का आश्रम लेकर मन को प्रबोध देने को कहते हैं। आज विज्ञान ने भी पंचतत्वों पर विजय प्राप्त कर ली है और यही विज्ञान समर के काम आ रहा है। आज विज्ञान ने इतने संहारक अस्त्रों का निर्माण कर लिया है कि इस धरती का हजार बार विनाश किया जा सकता है। संभावित विनाशकारी और ध्वंसात्मक स्थिति से निराला की यही विवेकशील बुद्धि बचा सकती है।

साधन के लिए प्राणों को संयत करने की बात निराला ने की है। इसका अर्थ श्वास की प्रक्रिया को अंर्तदृष्टि के माध्यम से संयमित करना होता है। यह हमारे प्राणों को नया आवाम प्रदान करती है। इस कार्य में 'दृढ़ अराधन' अर्थात् दृढ़ निश्चय ही सहयोगी हो सकता है। यह दृष्टि अध्यात्मिक विकास के साथ-साथ भौतिक विकास में भी सहयोगी हो सकती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'निराला' ने 'राम की शक्ति-पूजा' में जो सूत्र प्रदान किया है वह मनुष्य के आध्यात्मिक, राजनीतिक, व्यावहारिक तथा सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं की उन्नति में सहायक है। आत्मदान और दृढ़ संकल्प के माध्यम से की गयी शक्ति की मौलिक कल्पना, परंपरा की उपयोगिता, अनुभव की सार्थकता, हृदय और बुद्धि के मध्य संतुलन, कठिन एवं विपरीत परिस्थितियों में भी आशा का संचार, अतिशय विनम्रता तथा अहम् का त्याग, ज्ञान के साथ सम्यक् दृष्टि, नारी मुक्ति, महाशक्तियों की पारस्परिक टकराहट से बचाव के लिए विवेक का उपयोग, संघर्ष विजय का सूत्र, आदि की बात करके इस रचना को हर युग और स्थान के लिए प्रासंगिक बना दिया है। सचमुच, देश, काल और परिस्थितियाँ इसकी सीमा नहीं हो सकती।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकास-राम स्वरूप चतुर्वेदी (1986)।
2. निराला और मुक्तिबोध, चार लंबी कविताएँ नंद किशोर नवल (1993)
3. समकालीन पाश्चात्य दर्शन-प्रो. बसंत कुमार लाल, (1994)।
4. दर्शनशास्त्र की अन्य पुस्तकें।
5. इतिहास की पुस्तकें।
6. चाँद का मुँह टेढ़ा है – मुक्तिबोध।
7. आंगन के पार द्वार – अज्ञेय।

‘जंगल के फूल’: संपोषित विकास की सहज दिशा

डॉ० सुजाता चतुर्वेदी

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग, क्राइस्ट चर्च महाविद्यालय, कानपुर

सारांश

प्रकृति और पृथ्वी स्नेह और पोषण का प्रतीक हैं। जब मनुष्य उनसे यह स्नेह प्राप्त करता है तो उन्हें संरक्षित रखना मानव का सर्वोपरि धर्म बन जाता है। कल की संभावनाओं और आज की आवश्यकताओं के बीच समायोजन का प्रयास करते हुए संसाधनों के संतुलित प्रयोग द्वारा ही संपोषित विकास संभव है। पर्यावरण के प्रति उदात्त चेतना के जागरण की दिशा में हिन्दी साहित्य का अप्रतिम योगदान है। हिन्दी साहित्य के इस विशाल सागर में चमकते आबदार मोती ‘जंगल के फूल’ उपन्यास को इस शोध-आलेख का केन्द्र बनाया गया है। डॉ0 राजेन्द्र अवस्थी द्वारा रचित उपन्यास ‘जंगल के फूल’ स्वाभाविक आंचलिकता से सराबोर निश्छल प्रकृतिमय उपन्यास है। इस शोध पत्र द्वारा यह तथ्य स्थापित करने की चेष्टा की जा रही है कि व्यक्ति के आस-पास का संपूर्ण वातावरण उसे निरंतर प्रभावित करता है और उसके आंतरिक पर्यावरण का भी सृजन करता है।

इसी बाह्य और आंतरिक पर्यावरण के प्रति मनुष्य की जागृत संवेदनशीलता पर्यावरण चेतना और संपोषित विकास की भावना को जन्म देती है। इनके उदय से मनुष्य अपने दैनिक क्रियाकलापों द्वारा अपने पर्यावरण को निरंतर संरक्षित और पोषित कर सकता है। अपने विकास और प्रगति के साथ-साथ संपूर्ण पर्यावरण को सुरक्षित और विकसित करते चलने की भावना मानव जीवन की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। इस दिशा में ‘जंगल के फूल’ के आदिम पात्रों की सहज जीवनशैली वास्तव में अनुकरणीय बन जाती है। पर्यावरण चेतना और संपोषित विकास की भावना ‘जंगल के फूल’ में जल की उमगती धारा-सी और महुए की मदभरी बयार-सी चहुँ ओर व्याप्त है। जीवन जीने में सरलता और सहजता की भावना निश्चय ही मनुष्य को उसके स्वाभाविक वातावरण में पुन: स्थापित कर सकती है। पर्यावरण संकट का समाधान मानव के अंतर में ही स्थित है। आवश्यकता है उसके प्रति चेतना जागृत करने की। इसी दिशा में ‘जंगल के फूल’ के द्वारा इस शोध पत्र के माध्यम से संपोषित विकास की भावना को रेखांकित और जागृत करने का प्रयास किया जा रहा है।

‘‘ऊपर महुआ की लाल-लाल नई कोंपलें। कोंपलों के बीच रस भरे फूल। नीचे वैसी ही धरती। जब सामने किसी पहाड़ की चढ़ाई होती है और रंगीन हवा बहती है तो जैसे धरती का सारा खून आसमान में समाने के लिए उड़ने लगता है।’’[1]

प्रकृति मानव जीवन का आधार है। मानव इसी प्रकृति की क्रोड में जन्मा और इसी प्रकृति के उतार-चढ़ावों ने उसके जीवन की रूपरेखा गढ़ी। कदाचित् इसीलिए मनुष्य प्रकृति के जितना निकट रहता है, उसके स्वभाव की निश्छलता और स्वाभाविकता उतनी ही मुखर रहती है। आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी यंत्रणा उसकी दिखावे और आडम्बर की जीवन-शैली है। अपने आपको प्राकृतिक वातावरण से विलग करके मनुष्य स्वार्थ और ढोंग के मुखौटे लगा जटिल जाल में स्वयं को बाँधकर खुशी और संतुष्टि अनुभव करने का नाटक कर रहा है।

ऐसी कुण्ठाग्रस्त और अवसादपूर्ण पृष्ठभूमि में स्वाभाविक आँचलिकता से सराबोर उपन्यास है-डॉ0 राजेन्द्र अवस्थी कृत ‘‘जंगल के फूल’’। यह महुए की मदभरी महक से लदी बयार की तरह अपने आसपास के समस्त पर्यावरण को सुगंधित और सुहृद करता चलता है। मनुष्य का आदिम रूप कितना निश्छल, कितना प्रकृतिमय और कितना सहज था- यह इस उपन्यास में जीवन्तता से उभरा

है। हमारे आसपास का समस्त वातावरण हमें कितना अधिक प्रभावित करता है, यह तथ्य भी इस उपन्यास के माध्यम से ध्यानाकर्षण का बिन्दु है। इसी कारण 'जंगल के फूल' के भीतर पर्यावरण चेतना और संपोषित विकास की धारणा अपनी पूरी विस्तीर्णता और गहनता से जीवन्त हो उठी है। इस शोध पत्र द्वारा 'जंगल के फूल' में रची-बसी-गुंथी हुई पर्यावरण चेतना और संपोषण को उभारने की चेष्टा की जा रही है।

'पर्यावरण' एक बहुतव्यापक अर्थ देने वाला शब्द है। पर्यावरण का तात्पर्य उस *समूची भौतिक एवं जैविक व्यवस्था से है, जिसमें जीवधारी रहते हैं, पलते-बढ़ते हैं और अपनी स्वाभाविक प्रकृतियों का विकास करते हैं*[2] जीव अपने पर्यावरण से और पर्यावरण अपने जीवों से बहुत प्रभावित होता है। मानव और पर्यावरण का इस प्रकार का अन्योन्याश्रय संबंध ही प्रकृति और मनुष्य के जीवन का आधार है। पर्यावरण हमारे चारों ओर का आवरण या भौतिक और सामाजिक परिवेश है जिसके अंतर्गत पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के महातत्व सम्मिलित हैं। पृथ्वी पर उगने वाली सभी वनस्पतियाँ, रहने वाले जीव-जन्तु-पक्षी आदि तथा नदियाँ-पर्वत-खनिज पदार्थ सभी पर्यावरण के अंग हैं। सामाजिक पर्यावरण में सामाजिक संस्थाएँ, आर्थिक व्यवहार और राजनीतिक क्रिया-कलाप भी सम्मिलित हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक पर्यावरण इसलिए भी महत्व रखते हैं क्योंकि इनके अभाव में मनुष्य की चेतना का विकास संभव नहीं है। इस प्रकार पर्यावरण हमें चारों ओर से आवृत्त किए हुए है- परि + आवरण = पर्यावरण।

आधुनिक मनुष्य अपनी सुख-सुविधा, भोग-विलास और स्वार्थ सिद्धि की अंधी दौड़ में इतना लिप्त हो गया है कि उसके इन कृत्यों के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण आज असंतुलित हो उठा है। इसके दुष्प्रभावों से मानव-जीवन भी बच नहीं सकता है। आज इसीलिए पर्यावरण चेतना,पर्यावरण संरक्षणऔर संपोषित विकासकी चर्चा बहुत प्रासंगिक है। पर्यावरण चेतना का अर्थ है पर्यावरण के प्रति जागरूकता, पर्यावरण-संरक्षण तथा प्रकृति के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण। साथ ही अपने वातावरण या परिवेश के प्रति तादात्म्य की भावना भी पर्यावरण चेतना में समाहित होती है। ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या'' की भावना जागृत करना पर्यावरण चेतना का उद्देश्य है। प्रकृति तथा पृथ्वी स्नेह और पोषण का प्रतीक है जब मनुष्य उससे यह स्नेह और पोषण प्राप्त करता है तो उसे संरक्षित रखना मानव का सर्वोपरि धर्म बन जाता है। कल की संभावनाओं और आज की आवश्यकताओं के बीच समायोजन का प्रयास करते हुए संसाधनों के संतुलित प्रयोग द्वारा ही संपोषित विकास संभव है। मनुष्य के भीतर जब यह चेतना जागृत हो जाएगी कि वह इस सम्पूर्ण समष्टि का एक छोटा अंश मात्र है और इस समस्त जैविक श्रृंखला का अनिवार्य अंग है, तब वह अपने विवेक पर हावी अहं के कुहासे से बाहर निकल पाएगा तभी वह अपने आसपास के पर्यावरण को पोषित और संरक्षित करने के विषय में सोच पाएगा, क्योंकि पर्यावरण संरक्षण स्वयं उसके जीवन और विकास के लिए अत्यावश्यक है। अतः पर्यावरण के प्रति उदात्त चेतना के जागरण द्वारा ही पर्यावरण संरक्षण का प्रसार संभव है। इस दिशा में हिन्दी साहित्य का अप्रतिम योगदान है। वेदों से आरंभ होने वाला प्रकृति का सान्निध्य हिन्दी साहित्य के विविध युगीन परिवेशों में अपना स्वरूप बदलता रहा, किन्तु अपने पर्यावरण के प्रति यह साहित्य सदैव सजग रहा और समाज को सतर्क व सचेष्ट करता रहा। साहित्य के इस विशाल सागर के एक नन्हें, किन्तु आबदार मोती 'जंगल के फूल' उपन्यास के माध्यम से संपोषित विकास की भावना को दैनंदिन के कार्यकलापों में उतारने की दिशा इस शोध पत्र द्वारा उजागर की जा रही है।

'जंगल के फूल' में चित्रित आदिवासी गोंड जीवन में पर्यावरण चेतना का विकास खोजना कठिन नहीं है। ''*सघन वनों, घाटियों और नदी-नालों से भरी यहाँ की हरी-भरी धरती के पचहत्तर प्रतिशत से भी अधिक निवासी आदिवासी हैं और आज भी आदिम सभ्यता में हैं। उनके अपने रीति-रिवाज हैं।*''[3] स्वयं लेखक के ये शब्द गोंड जीवन और उनके संरक्षित पर्यावरण का जीवन्त चित्र खींचते हैं। मध्य प्रदेश के दक्षिण में स्थित बस्तर आज भी अनेक आदिवासी वन्य जातियों का संरक्षित घर है। ये जातियाँ प्रकृति के सान्निध्य में प्राकृत और आत्मनिर्भर जीवन प्रसन्नता व संतुष्टि से बिता रही हैं। आज के आधुनिक आपा-धापी भरे जीवन में कुण्ठा, असंतुष्टि और अवसाद से पूर्ण नगरीय मानव को उस प्राकृतिक जीवन में लौटने के लिए विवश होना पड़ेगा और उसे उसकी असंतुलित पर्यावरण-स्थितियाँ ही विवश करेंगीं। आज भी वह जीवन की जटिलता से ऊबकर पर्वत-नदियों-समुद्र की ओर भागता है, जहाँ वह कुछ पल शुद्ध प्राकृतिक वातावरण में जी सके। ऐसी शुद्धता, ऐसी निश्छलता और ऐसी मोहकता 'जंगल के फूल' के समस्त पर्यावरण में प्राप्त होती है।

पर्यावरण और संपोषित विकास के लगभग सभी आयाम हमें राजेन्द्र अवस्थी द्वारा लिखित 'जंगल के फूल' में प्राप्त होते हैं। बस्तर में बसा यह उपन्यास वहाँ की 'जैव विविधता' पर तो प्रकाश डालता ही है, साथ ही उस जैव विविधता के स्वाभाविक संरक्षण को भी महत्वपूर्ण बताता है। पृथ्वी जैव विविधता से परिपूर्ण है। अनुमानतः पृथ्वी पर दस करोड़ जातियों के जीव पाए जाते हैं और प्रत्येक जाति में भी हजारों की संख्या में विविध प्रारूप मिल जाते हैं। यह समस्त जैव-वैविध्य प्रकृति में एक अन्योन्याश्रित संबंध में जीता है। एक श्रृंखला बनाकर सभी जीवधारी एक दूसरे के साथ मिलकर इस सजीव सृष्टि को बनाए रखने में योगदान देते हैं। 'जंगल के फूल' में जंगल के सभी पेड़-पौधों, जड़ी-बूटियों, नदी-नालों, पर्वत-पत्थरों और जीव-जन्तुओं से मनुष्य की निकटता उसके हर कार्य और विचार में झलकती है। ''*बैलगाड़ी उसमें फंदे समझदार बैल और निश्चिन्त सोते आदमी*''[4] जितनी निश्चिंतता से मनुष्य ने बैलों पर रास्ता खोजकर चलने का काम छोड़ दिया है, उतनी ही जिम्मेदारी से जानवर भी मनुष्य के विश्वास पर खरा उतरता है। इसी आपसी विश्वस्तता के आधार पर स्वस्थ पर्यावरण का विकास होता है। चाहे गाँव के देव 'नारायनदेव' का पूजन हो अथवा 'दीपा' करके धरती की उर्वरता सहेजते हुए उस पर खेती करने का तरीका हो। वन देवी का पूजन हो या फिर जंगल के शेर से दो-दो हाथ करके उसे अपना 'छोटा भाई' मानने की भावना हो- यह सब प्रकृति की गोद में बसते-पलते और एक साथ बढ़ते रहने की उदार भावना की ओर संकेत करता है। इस उपन्यास के पात्रों का यह मानना कि ''ये जंगल हमारे हैं''- इस बात की ओर इशारा करता है कि उनका दृढ़ विश्वास है कि जिस ईश्वर ने उन्हें बनाया, उसी ने ये जंगल भी बनाए और मानव की आवश्यकताएँ इन जंगलों में पूरी कीं। अतः इन जंगलों और उनमें रहने वाले सभी जीवधारियों की रक्षा का काम इन गोंड लोगों का है। उनकी यह भावना उनके लोकगीतों में, त्यौहारों में, पूजन-अर्चन में ओर अन्य समारोहों में खुलकर उभरती है, इसीलिए वे स्वभाव से निर्भीक और खुलकर बोलने व जीने वाले लोग हैं। यही कारण है कि 1910 में अंग्रेजों के अत्याचारों का विरोध करने के लिए गोंड जाति के एक-एक गांव में व्यवस्थित क्रमबद्ध आंदोलन उठ खड़ा हुआ था। राजेन्द्र अवस्थी ने अपने लेखन के पैनेपन और जीवन्तता द्वारा सघन जंगल के भीतर सुलगती विद्रोह की गहनता को चित्रित किया और उस आन्दोलन में भी इन गोंडों का सरल, विश्वासपूर्ण और निश्छल स्वभाव कभी इनकी जीत का कारण बनता, तो कभी हार की मार खिलाता। जीवन के जो भी मोड़ आए मनुष्य और उसके पर्यावरण की सुरक्षा का ध्यान रखने की चेष्टा इस आदिम जाति ने भरपूर की है।

प्राकृतिक एवं मानवीय पर्यावरण को जीवित और पोषित रखने के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्व है-जल। जल पर ही समपूर्ण जैवमण्डल आश्रित है। जल जीवन का आधार है। पृथ्वी अपने भीतर प्रचुर जल संसाधन समाहित किए है, किन्तु यदि इनका समुचित संरक्षण न किया गया तो भीषण जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। प्रवहमान और स्थिर दोनों प्रकार का जल मानवीय गतिविधियों से प्रभावित होता है। जंगल काटने या नगर बसाने में पेड़ों की कटाई करने से भूमिक्षरण होता है और नदियों में मिट्टी बढ़ने के कारण बाढ़ का खतरा भी उत्पन्न होता है। दूसरी ओर लगातार प्रदूषण से उत्पन्न गर्मी के कारण 'ग्लोबल वार्मिंग' का संकट हिम को जल में परिवर्तित कर समुद्र के जल स्तर को बढ़ने पर विवश कर रहा है। मीठे पानी की शुद्धता भी प्रदूषण के कारण प्रभावित है। अपनी उपभोगवादी दृष्टि के कारण आज मनुष्य स्वयं अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार रहा है।

इस प्रसंग में पुनः लौट चलें 'जंगल के आदिम 'फूलों' की ओर। उनकी जल की आवश्यकता को नदी का पानी पूरा करता है किन्तु भयंकर गर्मी के दिनों में शंखिनी और डंकिनी नदियाँ सूख जाती थीं। कहीं कोई झरना जीवित नहीं रह सका था। पेड़-पौधे सब सूख गए थे। पगडण्डियों के दोनों ओर की जमीन मुँह फाड़ चुकी थी। सभी सताए थे, सभी व्याकुल थे। ऐसे में गाँव वाले मेघों की प्रतीक्षा में आँखें बिछाए थे और फिर प्राकृतिक जीवन के प्राकृतिक संकेत ''ढेर-सी लाल चींटियाँ मुँह में अंडे दबाए भागती जा रही हैं और चिडिय्याँ धूल में लोट-लोटकर नहा रही हैं।''[5] ये संकेत गाँववासियों को आगामी वर्षा की सुखद आशा से सराबोर करने के लिए काफी थे। इसके बाद हुई वर्षा ने ''महीनों की सताई धरती की प्यास पूरी की। जमीन में सौंधी-सौंधी सुगन्ध उठी और तुरन्त समा भी गई।''[6] जीवन में जल की महत्ता इन कुछ पंक्तियों से जीवन्त हो रही है। ''पानी जैसे अपने साथ धरती के सारे बेकार तत्वों को बहा कर ले जाना चाहता था ओर वहाँ आशा तथा उमंग के बीज बोने को उत्सुक था।''[7] भारत में वर्षा का जल ही जलापूर्ति का प्रमुख साधन है। राजेन्द्र जी ने अपने उपन्यास में वर्षा के दृश्यों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हुए कहीं धरती के मर्म के विषय में बताया तो कहीं इस बरसते पानी में प्रेम की हिलोरें लेते 'चेलिक' (प्रेमी) और 'मोटियारी' (प्रेमिका) का सजीव वर्णन किया। जैसे-धरती पर पानी पड़ते ही नए अंकुर और नई कोंपलें निकल आती हैं, वैसे ही प्रेम के नवांकुर हृदय में फूटते हैं।

राजेन्द्र जी के लेखन में छिपी पर्यावरण चेतना स्वत: ही जल की उमगती धारा-सी प्रस्फुटित हो उठती है। धरती से और उसके जीवधारियों से मनुष्य का स्वाभाविक जुड़ाव जल की धार को ओर प्रगाढ़ कर देता है। वह सारस, बगुलों, मेंढकों आदि को देख प्रसन्न होता है क्योंकि ये सभी जीव जल का संकेत हैं। जल की कमी होने पर जब वह आदिम गोंड सूखी नदी के पास गड्ढा खोदता है और जल ढूँढ़ता है तो जल मिलने की आहट देने वाले मेंढक और केंकड़े को देख खुश होता है। उस गड्ढे में अण्डा फोड़कर वह धरती की उर्वरता और जल की प्रवहमानता के लिए पूजन करता है। निश्चय ही आज हम जिस तरह अपने पर्यावरण का निरादर कर रहे हैं, ऐसे में राजेन्द्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' एक सार्थक उदाहरण के रूप में उपस्थित होता है जो पर्यावरण चेतना के जागरण और उसके संरक्षण हेतु अत्यन्त प्रासंगिक है।

हमारे पर्यावरण में प्राकृतिक तत्वों में पृथ्वी, वायु, आकाश और सूर्य भी जीवन हेतु अत्यावश्यक हैं। वायु प्राणी में जीवन का संचार करती है तो पृथ्वी प्राणी की उत्पत्ति, पोषण और विकास में सहायक होती है। सूर्य ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। 'सूर्य देवोभव' और 'सविता' कहने में उसके विराट कल्याणकारक स्वरूप का आभास हो जाता है। आकाश अपने-आप में अखिल ब्रह्माण्ड को समेटे है- उसी में धरती व सूर्य भी समाहित हैं। पर्यावरण का यह तत्व अनेक महत्वपूर्ण नक्षत्रों आदि को उनके परस्पर गुरुत्वाकर्षण के बल पर समेटे शान्त रूप से अवस्थित है। इन पाँच तत्वों के मेल से ही यह मानव शरीर रचा गया है और इसीलिए उसके सम्पूर्ण जीवन को ये पाँचों तत्व-क्षिति, जल, पावक, गगन व समीर-परिभाषित, पोषित और प्रतिष्ठित करते हैं।

'जंगल के फूल' उपन्यास में लेखक ने आदिवासी जीवन में धरती की उर्वरता, वायु की प्रवहमानता, आकाश की स्थिरता और सूर्य की ऊर्जस्विता की महत्ता बताते हुए इनके कल्याणकारी स्वरूप की पूजा का विधान बताया है। यह भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है कि जन कल्याण हेतु विभिन्न रक्षक साधनों की पूजा-अर्चना की प्रथा बना दी गई ताकि वे सभी साधन या तत्व सदैव संरक्षित रहे आएँ और मानव जीवन के साथ-साथ प्राकृतिक तत्त्वों का संपोषण भली प्रकार होता रहे। गोंड जाति के आदिम देवता भी धरती का अंग हैं- पत्थर के हैं- चाहे नारायन देव हों या लिंगों या मातल।

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही ''अरण्य संस्कृति'' रही है। वन संरक्षण पर्यावरण चेतना का अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु है। वनों में वृक्ष हमें शुद्ध वायु तो देते ही हैं, फल-औषधि-ईंधन देते हैं और उपजाऊ मिट्टी की परत को स्थायित्व देकर उसे क्षरण से बचाते हैं। साथ ही मानव सहित अनेकानेक जीवधारियों को आश्रय देते हैं।

राजेन्द्र जी ने 'जंगल के फूल' उपन्यास में इन जंगलों का इतना सजीव चित्रण किया है कि मानो वे पुस्तक के पन्नों से निकलकर आपको चारों ओर से घेर लेते हैं। ''*राउघाट की पहाड़ी पर बसन्त मेघपरी की तरह उतर आया था। सागौन के झाड़ उसके स्वागत में सिर ऊँचा किए खड़े थे। ..... पलाश ने तो सारे जंगल में आग लगा दी थीं वह दूर से हर आदमी की आँख पकड़ लेता था......... आम बौरा गया था। पागल होकर खुद प्रेम और तरुणाई के गीत गाता था।*''[8] ऐसे अद्‌भुत प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में खेलकर जो जीवन बड़ा हुआ हो, वह निश्चय ही पर्यावरण संरक्षण और पोषण के भाव से स्वयमेव युक्त होगा। इन जंगलों में रहने वाले ये आदिवासी जंगलों में पैदा होने वाली लगभग सभी वस्तुओं का बहुत अच्छा उपयोग जानते थे-वृक्षों की जड़ों, पत्तियों, फूल, तने की छाल और बेल- सभी का वे अपने दैनंदिन के कार्य-कलाप में समुचित प्रयोग करते थे। जब उनका उगाया अनाज समाप्त हो जाता था, तो वे जंगलों से फलों और कुछ जड़ों को ढूंढ़कर खाते थे। जड़ी-बूटियों का उपयोग दवाई के रूप में होता था-''*सिरहा ने चिरायता का कडुवा रस पिलाया था, तब कहीं उसका ताप मिटा था।*''[9] इसी प्रकार लकड़ी का प्रयोग खेती के औजार-हल आदि बनाने में और बाँस का उपयोग चहारदीवारी खड़ी करने, टोकरियाँ और छाते बनाने में होता था। मोटी बेलों का प्रयोग रस्सी बनाने के लिए और सेमुर के पेड़ की कंटीली छाल का प्रयोग सब्जियों को घिसने के लिए किया जाता था। राजेन्द्र अवस्थी ने जंगल के जीवन को बहुत निकटता से देखा और अनुभव किया। उनके इस उपन्यास की नायिका का नाम ही 'महुआ' है। महुआ के फूल जंगल के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके फूल खाए जाते हैं और उनसे शराब भी बनती है। साथ ही इसके बीजों से निकला तेल खाने के और दिये जलाने के काम आता है। आम, तेंदू आदि के पत्तों को सिलकर दोने-पत्तल बहुत अच्छे बनते हैं। इस प्रकार जिस वन के संरक्षण और आश्रय में ये आदिम जातियाँ रहती थीं, उन वनों के लिए उनके हृदय में अपनत्व, आदर और अथाह प्रेम बसा था- वे कहते हैं -''*यह जमीन हमारी है। ये जंगल हमारे हैं। यह सारी धरती हमारी है। जिस लिंगों ने यह धरती बनाई है उसी ने हमें बनाया है।*''10जहाँ यह भावना आ गई, वहाँ पर्यावरण संपोषण व संरक्षण पूर्णत: स्वाभाविक मानवीय चेष्टा बन जाता है।

अपने जीवन को आत्मनिर्भर बनाने के लिए गोंड ऐसे परिश्रम करते थे जिससे उनके पर्यावरण को कोई क्षति न पहुँचे। इस पर्यावरण में सामाजिक, आर्थिक पर्यावरण भी आ जाता है। आर्थिक रूप से उनकी आत्मनिर्भरता खेती और महुए के फूल व तेंदू के पत्तों की बिक्री पर आधारित थी। *खेती* के लिए वे 'दीपा' पद्धति11 अपनाते थे, जो एक प्रकार का शिफ्ट कल्टीवेशन का तरीका होता है। इसमें पेड़/झाड़ों की डालियाँ काटकर खुले मैदान में उन्हें जलाकर उनकी राख पर पूजा करने के उपरान्त बीज डाल दिए जाते थे। इन बीजों की सिंचाई वर्षा के पानी से हो जाती थी। कुछ वर्ष एक स्थान पर खेती करने के बाद वह स्थान छोड़कर दूसरा स्थान खोजा जाता था ताकि पहले स्थान पर जंगल पुनः उग सके। संपोषित विकास का यह अनुकरणीय उदाहरण है। इस खेती के काम में पूरा गाँव एक साथ रहता था। इसी से जुड़ा है वहाँ का सामाजिक पर्यावरण जो गाँव-भर को एकता-प्रेम-भाईचारे के सूत्र में जोड़े रखता था। एक का दुख सबका दुख था ओर एक के घर की खुशी में पूरा गाँव जगमगा उठता था। राजेन्द्र अवस्थी के इस उपन्यास की आज सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में प्रासंगिकता मुखर हो उठती है। आज जहाँ हम शहरवासी अपने पड़ोसी तक से अनजान हैं, वहीं वे भोले आदिवासी दिन-रात एक दूसरे के प्रेम व अपनत्व के सूत्र में बद्ध हैं। इसी एकता की नींव पर सन् 1910 में बस्तर का आंदोलन अंग्रेजों की स्वार्थपरक नीतियों के विरुद्ध छिड़ा था। आम की डालियाँ, लाल मिर्च, मिट्टी के डेले और तीर-ये इस आन्दोलन के प्रतीकात्मक संदेश थे जिन्होंने बस्तर के अनेक गाँवों को रातों-रात एक कर दिया था। इसी पृष्ठभूमि पर राजेन्द्र जी का यह उपन्यास 'जंगल के फूल' आधारित है। एक और ध्यानाकर्षण का बिन्दु यह है कि इस पूरे आंदोलन का कोई एक नेता नहीं था, बल्कि कुछ गाँवों के चुने लोग जैसे- गुण्डा धूर, सुलकसाए, पाण्डू, झालर सिंह आदि एक साथ मिलकर आंदोलन की कमान संभाल रहे थे- बिना राग-द्वेष या किसी भी अहं की भावना को बीच में लाए। ये गुण वास्तव में आज के जीवन में विशेषकर अनुकरणीय हैं।

वस्तुतः संपोषित विकास के संदर्भ में 'जंगल के फूल' उपन्यास सभी कसौटियों पर सार्थक रूप से अपनी पहचान बनाता है। जैविक, भौतिक, सामाजिक आदि पर्यावरण के सभी आयामों को छूता यह उपन्यास निश्चय ही आज के आधुनिक जीवन को पर्यावरण-संरक्षण का उचित मार्ग दिखा सकता है। बस्तर के आदिवासी जीवन का इतना जीवन्त और सहज वर्णन राजेन्द्र अवस्थी की सिद्धहस्त लेखनी से हुआ है कि वे सभी घटनाएँ और परिस्थितियाँ एकदम सजीव होकर आँखों के सामने घूमने लगती हैं। लेखक ने अत्यन्त सहज, सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए समस्त वातावरण को स्वाभाविकता प्रदान की है। बस्तर क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का लेखक ने खुलकर प्रयोग किया है। जैसे- लोन (घर); पेडगी (लड़की); पोरद (सूरज); गीकी (चटाई); कट्टुल (खटिया); माहुर (जहर); नार (गाँव); कुयेर (नदी); ईपुर (पसीना) आदि। पूरे उपन्यास में इन शब्दों के निरन्तर प्रयोग ने सभी पात्रों को वास्तविक और सजीव बना दिया है। सम्पूर्ण भाषा पात्रानुकूल और परिवेशानुकूल बन पड़ी है। पर्यावरण के प्रति सचेतता का यह भी महत्वपूर्ण उदाहरण है। जैसा स्थान है, वैसी ही भाषा है; जैसा जीवन है वैसे ही रीति-रिवाज आदि हैं। लेखक ने अत्यन्त कुशलता से उपन्यास में अनेक स्थानों पर बहुत सटीक उपमाओं का भी प्रयोग किया है। ये सभी उपमाएँ बस्तर के प्राकृतिक जीवन से संबद्ध हैं। इसलिए भाषा में और अधिक पकड़ एवं स्वाभाविकता आ गई है। जैसे ''कहीं पगडंडी कांस के फूल-सी चमक उठती है''[12] और ''*तबके जवान महुआ के फूल थे, अब के जवान सेमल की घेंटी है*''[13] आदि। लेखक ने बीच-बीच में अनेक गहन अर्थभरी सूक्तियाँ भी पिरोकर भाषा की अर्थगर्भिता बढ़ा दी है, जैसे ''*इज्जतमंद आदमी के लिए चुल्लू भर पानी बहुत है*''[14] और ''मरद का विवेक बड़ा होता है और औरत की भावना।''[15]

राजेन्द्र अवस्थी ने शादी-विवाह की रस्मों को विस्तार से बताते हुए आदिवासी जीवन का सजीव चित्रण किया है। साथ ही स्थान-स्थान पर लोकगीतों को पिरोकर लेखक ने इस प्राकृतिक जीवन की मोहकता और सुरीलेपन को स्पष्ट किया है। हर घटना से जुड़ा एक लोकगीत गाँव के लोगों के होठों पर सदा तैयार रहता है और उनके पैर नृत्य करने को, थिरकने के लिए तत्पर रहते हैं। पारम्परिक वेशभूषा में उत्सवों पर सजकर जब ये आदिवासी ढोल, टेंडुर, निसान, किंकर, बाँसुरी आदि बाजों की ताल पर और लोकगीतों की धुनों पर झूमकर नाच उठते हैं, जब लगता है कि मानो पूरा जंगल उनके साथ झूम उठता है, पूरी प्रकृति सहज ही गा उठती है। सहज जीवन की प्राकृतिक लय और स्वाभाविक ताल- यही इस उपन्यास के पात्रों और समूचे पर्यावरण का आधार है। इस सहज जीवन से जुड़ी अनेक लोक कथाएँ भी इस उपन्यास में लेखक ने गुम्फित की हैं। इन लोक कथाओं से उपन्यास के कथा-प्रवाह को गति और शैली को रोचकता प्राप्त होती है, साथ ही गाँव का सामाजिक पर्यावरण भी दृढ़ता प्राप्त करता है।

कुछेक सच्ची घटनाएँ भी पिरोकर लेखक ने उपन्यास को वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया है। बस्तर का 1910 का आंदोलन भी ऐसी ही एक वास्तविक ऐतिहासिक घटना है। तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल जंगलों में भी राजनीतिक पर्यावरण उबाल ले रहा था। अंग्रेजों के विरुद्ध पूरे देश में हुँकार उठ रही थी, तब घने जंगलों में रहने वाले आदिवासी अपनी जागरूक पर्यावरण चेतना के बल पर सामाजिक एकता के आधार पर अंग्रेजों से लोहा लेने को तैयार थे-''*चौकी में पहुँचकर सुलक ने सबसे पहला तीर दरोगा को मारा।.... झालर ने मुंखी की मरम्मत की सिपाही चौकी छोड़कर भाग गए।.... सारे बस्तर में आग लग गयी थी। गुण्डा धूर अपने दल-बल के साथ जगदलपुर पहुँच चुका था। जहाँ-जहाँ लाल मिर्च और आम की डाल जाती, वहाँ जौहर मच जाता।*''[16]

अंततः 'जंगल के फूल' उपन्यास में व्याप्त पर्यावरण चेतना की व्यापकताने उसमें वर्णित जीवन के हर पहलू का स्पर्श किया है। लेखक ने ऐसे आदिवासी जीवन का विस्तृत चित्रण इस उपन्यास में किया है, जो अपने हर छोटे-बड़े कार्य को प्रकृति के साथ जोड़कर करता है, जो ''जात के सच्चे और ईमान के पक्के हैं'' जो अपने आस-पास के पूरे वातावरण, अपने पर्यावरण को सहज रूप से संरक्षित किए रहते हैं क्योंकि उन्होंने यही आरम्भ से सीखा, जीने का यही सहज सरल तरीका उन्हें आता है। इसमें न अहं की भावना के लिए कोई स्थान है, न पारस्परिक भेदभाव या द्वेष-प्रतिकार की भावना। उनकी अपनी समस्याएँ भी हैं ओर नित्य प्रति के सामाजिक उतार-चढ़ाव भी- किन्तु समाधान वे वहीं गाँव की मिट्टी को हाथ में लेकर अपने गाँव के 'गायता' (मुखिया) का निर्णय अमिट मानकर कर लेते हैं। आज मनुष्य अपनी उपभोक्तावादी, स्वार्थपूर्ण संस्कृति में बंधकर जिस पतन के कगार पर आ खड़ा हुआ है, वहाँ से लौटने का उपाय यह आदिम संस्कृति ही दिखा रही है। अपने पर्यावरण के प्रति आदर, सुरक्षा, सम्मान, प्रेम और अपनत्व का भाव जब तक हम सभी अपने भीतर उत्पन्न नहीं करेंगे, तब तक अपने बनाए जटिल जालों में यों ही फँसते-तड़पते-कुण्ठित होते रहेंगे। यह पर्यावरण मात्र प्राकृतिक नहीं है।- यह तो हमें चारों ओर से आवृत्त किए है- हमारे जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक-सभी आयामों को अपने में समेटकर बनता है हमारा पर्यावरण और इस पर्यावरण को ऐसे संरक्षित रखने की भावना कि भावी पीढिय्यों को हानि न हो, हमारे भीतर पर्यावरण चेतना को जन्म देती है। जब तक हमारी पर्यावरण चेतना जागृत होकर हमें अपने आत्मिक और प्राकृतिक स्वरूप की पहचान नहीं कराएगी, तब तक हम अपने पर्यावरण के संरक्षण और संपोषित विकास के लिए ठोस कदम नहीं उठा पाएँगे। 'जंगल के फूल' उपन्यास इसी दृष्टि से आज के समय में इसीलिए अत्यन्त सार्थक और प्रासंगिक हैं क्योंकि उसकी पर्यावरण चेतना जागृत है और संपोषित विकास की सार्थक दिशा दिखाने में सक्षम है।

सन्दर्भ

1. राजेन्द्र अवस्थी, 'जंगल के फूल', पृ0 5
2. शुकदेव प्रसाद, पर्यावरण संरक्षण, पृ0 24
3. राजेन्द्र अवस्थी, 'जंगल के फूल', पृ0 3
4. वही, पृ0 76
5. वही, पृ0 203
6. वही, पृ0 204
7. वही, पृ0 204
8. वही, पृ0 120-121
9. वही, पृ0 206
10. वही, पृ0 120-21
11. वही, पृ0 63
12. वही, पृ0 69
13. वही, पृ0 76
14. वही, पृ0 89

15. वही, पृ0 89
16. वही, पृ0 240

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजेन्द्र अवस्थी, 'जंगल के फूल', राजकमल प्रा0लि0, नई दिल्ली
2. शुकदेव प्रसाद, पर्यावरण संरक्षण, चाहचंद, इलाहाबाद, 1988
3. डॉ0 बैजनाथ सिंह, 'पर्यावरण रक्षा;, एस0 चंद एंड कं0लि0, नई दिल्ली, 1995
4. धीरेन्द्र वर्मा, 'प्रदूषण' ज्ञान गंगा, दिल्ली, 1997
5. प्रेमानंद चंदोला, 'पर्यावरण और जीव', हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली, 1990
6. हरिश्चन्द्र व्यास, 'पर्यावरण और जीव', विद्याविहार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
7. वंदना अस्थाना, 'पॉलिटिक्स ऑफ इनवायरेंमेंट', आशीष पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1992
8. आरविल, 'मैन एंड इनवायरेंमेंट', पेन्गुइन पब्लिकेशंस, लंदन, 1977
9. इन्दु पाण्डे खंडूरी (सं0), 'ह्यूमन फ्रीडम एंड इनवायरेंमेंट, कल्पाज पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2010
10. जॉन बेनसन, 'इनवायरेंमेंट इथिक्स', रूटलेज, लंदन व न्यूयॉर्क, 2000

लिंगभेद के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण: एक वर्णनात्मक अध्ययन

प्रो० पी० एस० त्यागी

शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, (डीम्ड विश्वविद्यालय), दयालबाग, आगरा

सतीश बाबू

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, (डीम्ड विश्वविद्यालय), दयालबाग, आगरा

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक व बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के उद्देष्य को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है। इस अध्ययन में शोधार्थी द्वारा 100 बालक वर्ग के व 100 बालिका वर्ग के विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत न्यादर्ष विधि द्वारा किया गया है। शोधार्थी द्वारा विद्यालयी सामाजिक समावेषण के मापन हेतु स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात जैसी सांख्यिकीय प्रविधियों का अनुसरण किया गया है। निष्कर्ष रूप में यह पाया गया है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में औसत स्तरीय सामाजिक समावेषण की भावना पायी गयी जबकि बालिका वर्ग के विद्यार्थियों में बालक वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में विद्यालयी सामाजिक समावेषण की भावना उच्च पायी गयी।

मुख्य शब्द:- विद्यालयी सामाजिक समावेषण, लिंगभेद एवं माध्यमिक विद्यालय

1.0.0 प्रस्तावना

भारतीय संविधान की उत्पत्ति में समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक एवं व्यक्ति की गरिमा पर विशेष बल दिया गया है एवं उक्त लोकतांत्रिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक समावेषण को अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। विद्यालय समाज का एक लघु रूप है। जिनमें विभिन्न जनांकिकी चरों जैसे- भाषा, संस्कृति, जाति, धर्म व आर्थिक स्तर के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं एवं शिक्षा ही वह माध्यम है जिसकी सहायता से विद्यार्थियों की विविधता को एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के क्षेत्र में पूर्व में हुए शोधों की संक्षिप्त समीक्षा निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की गयी है।

हैलेन (2013) ने विभिन्न जाति वर्ग के विद्यार्थियों के सामाजिक समावेषण का तुलनात्मक अध्ययन किया था जिसके अन्तर्गत माध्यमिक स्तर के 200 छात्र व 200 छात्राओं का चयन कर सामाजिक समावेषण का विश्लेषण किया एवं पाया कि जातिगत विविधता का सामाजिक समावेषण पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया। अतः कहा जा सकता है कि जातिगत विविधता समाजिक समावेषण के लिए एक अवरोधक अंग है।

बोडमैन (2010) ने सामाजिक समावेषण व मानसिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में एक अध्ययन किया था। जिसके अन्तर्गत यह पाया कि विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सकारात्मक सहसम्बन्ध होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा पाया गया है उन विद्यार्थियों में सामाजिक समावेषण की भावना उच्च पायी गयी।

गॉर्डन (2000) ने निर्धनता एवं सामाजिक बहिष्कार के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन किया। इन्होंने अपने शोध में यह पाया कि उच्च आर्थिक स्तर के व्यक्तियों की तुलना में निम्न आर्थिक स्तर के व्यक्तियों का सामाजिक बहिष्कार होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि गरीबी सामाजिक समावेषण में एक अवरोधन का कार्य करती है।

राइट (2013) ने विकलांग विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक समावेषण का अध्ययन किया था। जिसके अन्तर्गत यह पाया गया कि विकलांग विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य व सामाजिक समावेषण निम्न स्तरीय था। अत: यह कहा जा सकता है कि शारीरिक अवरूद्धता सामाजिक समावेषण के लिए नकारात्मक कारक है।

व्रन्दा, एम0एन0 (2016) ने अध्ययन में पाया गया कि मनोसामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों की मनोवृत्ति निम्न स्तरीय पायी गयी एवं इन विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों की अन्त: क्रिया सहयोगात्मक दृष्टिकोण, व्यावहारिक प्रतिक्रिया एवं अभिप्रेरणात्मक कारक निम्न स्तरीय पाये गये।

नारद, ए0 (2016) ने अध्ययन में पाया गया कि विद्यालय वातावरण व अभिभावक अभिप्रेरण के सन्दर्भ में छात्र-छात्राओं के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। जबकि विद्यालयी वातावरण एवं अभिभावक अभिप्रेरण का उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

मलिक (2017) ने अध्ययन में पाया गया कि विभिन्न सामाजिक चर जैसे- दण्ड, सामाजिक अलगाव, विभिन्न सुविधाओं से वंचित रखना, विद्यालय वातावरण में अस्वीकृति, सामाजिक तुष्टिकरण आदि शैक्षिक उपलब्धि के साथ नकारात्मक सहसम्बन्ध रखते हैं। वहीं मनोवैज्ञानिक कारक जैसे- पुरस्कार, स्वास्थ्य, गृह वातावरण, सुरक्षा, विद्यालयी अभिप्रेरणा का अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया।

विद्यालयों में विद्यार्थियों के मध्य भाषा, जाति, धर्म, लिंग व आर्थिक स्तर आदि के सन्दर्भ में अनेक विविधता पायी जाती हैं एवं उक्त विविधता के सन्दर्भ में सामाजिक बन्धुता की भावना का अध्ययन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पूर्व में हुए शोधों से यह भी विदित होता है कि सामाजिक बहिष्कार का मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अत: अध्ययन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा लिंगभेद के सन्दर्भ में विद्यार्थियों के विद्यालयी सामाजिक समावेषण के अध्ययन को एक शोध शीर्षक के रूप में चयनित किया गया है।

2.0. अध्ययन के उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का तुलनात्मक अध्ययन करना।

3.0 शोध परिकल्पना

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक व बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण के सन्दर्भ में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

4.0 अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया है।

5.0 न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा माध्यमिक स्तर पर 100 बालक व 100 बालिकाओं का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि की सहायता से किया गया है।

6.0 शोध उपकरण

शोधार्थी द्वारा विद्यालयी सामाजिक समावेषण के मापन हेतु कुल 48 पदों को प्रश्नावली में चयनित किया गया है। सभी पदों का मूल्यांकन पाँच बिन्दु मापनी (पूर्णतः सहमत, सहमत, सामान्य, असहमत, पूर्णतः असहमत) की सहायता से किया गया है। उपकरण की विष्वसनीयता व वैधता उच्च पायी गयी है।

7.0 सांख्यिकीय प्रविधियां

आँकड़ों के विश्लेषण के लिए शोधार्थी द्वारा प्रतिशत, मध्यमान, मानक विचलन, प्रतिशतांक एवं क्रान्तिक अनुपात का अनुसरण किया गया है।

8.0 शोध अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. **माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करना**

शोधार्थी द्वारा माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करने के लिए सम्बन्धित आँकड़ों को प्रतिशतांक के माध्यम से तीन स्तरों (उच्च, मध्यम एव निम्न स्तर) में विभक्त किया गया है। सांख्यिकीय मानों को तालिका 01 में दर्शाया गया है

तालिका 01: विद्यालयी समावेषण के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों का प्रतिशत

विद्यालयी सामाजिक समावेषण के स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च स्तर (P_{75} से ऊपर)	22	22%
मध्यम स्तर (P_{25}- P_{75})	54	54%
निम्न स्तर (P_{25} से नीचे)	24	24%

उपरोक्त तालिका 01 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत 22 प्रतिशत बालक वर्ग के विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक समावेषण की भावना पायी गयी। जबकि 54 प्रतिशत बालकों में मध्यम स्तरीय एवं 24 प्रतिशत बालक वर्ग के विद्यार्थियों द्वारा निम्न स्तरीय सामाजिक समावेषण को दर्शाया गया। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक समावेषण का औसत स्तर पाया गया है। तालिका 01 के सांख्यिकीय मानों को निम्नांकित आरेख द्वारा दर्शाया गया है।

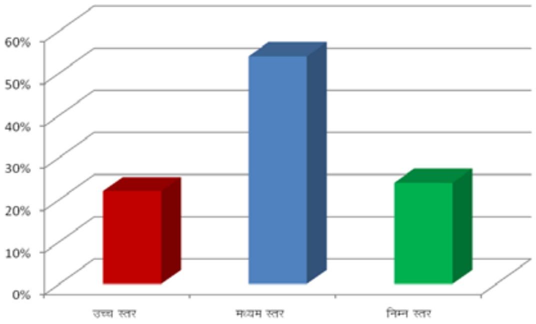

आरेख 01: विद्यालयी समावेषण के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक वर्ग के विद्यार्थियों का प्रतिशत

2. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करना

शोधार्थी द्वारा माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का अध्ययन करने के लिए सम्बन्धित आँकड़ों को प्रतिशतांक के माध्यम से तीन स्तरों (उच्च, मध्यम एव निम्न स्तर) में विभक्त किया गया है। सांख्यिकीय मानों को तालिका 02 में दर्शाया गया है

तालिका 02: विद्यालयी समावेषण के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों का प्रतिशत

विद्यालयी सामाजिक समावेषण के स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च स्तर (P_{75} से ऊपर)	28	28%
मध्यम स्तर (P_{25}- P_{75})	51	51%
निम्न स्तर (P_{25} से नीचे)	21	21%

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत 28 प्रतिशत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक समावेषण की भावना पायी गयी। जबकि 51 प्रतिषत बालिकाओं में मध्यम स्तरीय एवं 21 प्रतिशत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों द्वारा निम्नस्तरीय सामाजिक समावेषण को दर्शाया गया। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक समावेषण का औसत स्तर पाया गया है। तालिका 02 के सांख्यिकीय मानों को निम्नांकित आरेख द्वारा दर्शाया गया है।

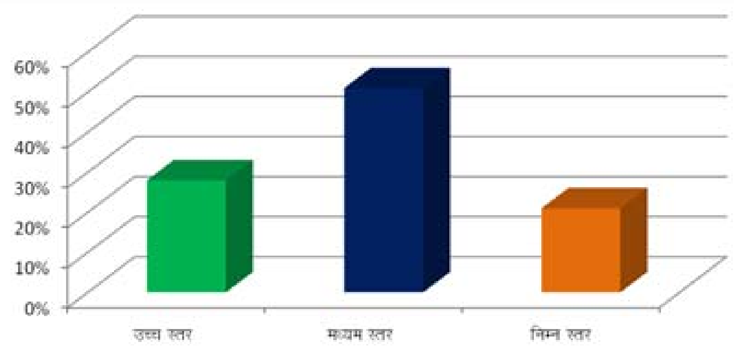

आरेख 02: विद्यालयी समावेषण के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों का प्रतिशत

3. माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य विद्यालयी सामाजिक समावेषण का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत उद्देश्य के सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समावेषण का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्रस्तुत उद्देश्य के सन्दर्भ में प्राप्त सांख्यिकीय मानों को तालिका 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 03: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समावेषण के तुलनात्मक विश्लेषण हेतु प्राप्त मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात के सांख्यिकीय मान

अध्ययन चर	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थक स्तर
विद्यालयी सामाजिक समावेषण	बालक वर्ग	100	163.88	14.53	2.29	0.05 पर सार्थक
	बालिका वर्ग	100	168.67	15.11		

उपरोक्त तालिका 03 के अवलोकन से यह विदित होता है कि विद्यालयी सामाजिक समावेषण के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान क्रमशः 163.88 एवं 168.67 पायी गयी एवं उपरोक्त के सन्दर्भ में मानक विचलन का मान क्रमषः 14.53 एवं 15.11 पाया गया। मध्यमानों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालिका वर्ग के विद्यार्थियों में बालक वर्ग की तुलना में सामाजिक समावेषण की भावना उच्च पायी गयी। बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच हेतु क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। क्रान्तिक अनुपात का मान 2.29 पाया गया। जो कि 0.05 स्तर एवं 198 स्वतंत्रता अंश पर सार्थक पाया गया। जिससे यह विदित होता है कि विद्यालयी सामाजिक समावेषण के सन्दर्भ में बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर पाया जाता है। तालिका 03 में अंकित बालक एवं बालिका वर्ग के मध्यमानों को निम्नांकित आरेख 03 द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

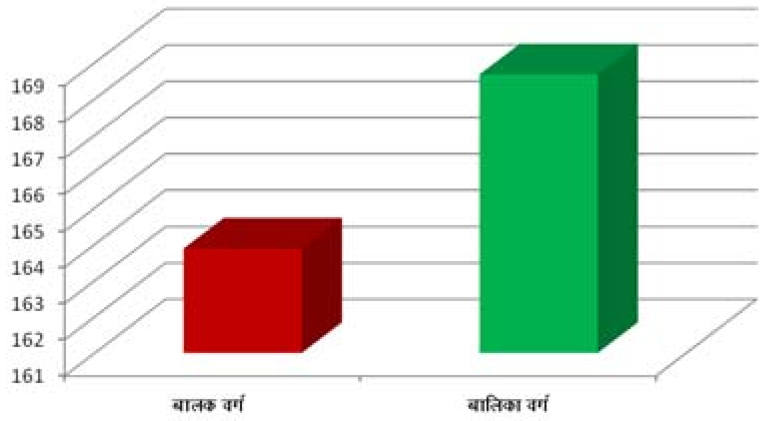

आरेख 03: माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के मध्य सामाजिक समावेषण से सम्बन्धित मध्यमान

9.0 निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह विदित होता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समावेषण का औसत स्तर पाया गया। जबकि बालिका वर्ग के विद्यार्थियों द्वारा बालक वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में विद्यालयी सामाजिक समावेषण

का उच्च स्तर प्रदर्शित किया गया। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बालक एवं बालिका वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक समावेषण के सन्दर्भ में सार्थक अन्तर पाया गया। इसका यह कारण हो सकता है कि बालिकाओं में उच्च सहनशीलता, सांवेगिकता एवं विनम्रता पायी जाती है। जोकि सामाजिक समावेषण के लिए सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मलिक, पी0एस0 (2017). एन इनवेस्टीगेशन इन टू साइको-सोशल वेरियेबिलस एण्ड देयर इम्पेक्ट ऑन एकेडमिक एचीवमेंट ऑफ सिड्यूल्ड कास्ट एडोलसेन्ट स्टूडेन्टस। पी-एच0डी0 थीसिस, शिक्षा संकाय, रविन्द्र भारती यूनिवर्सिटी

हेलन केलेस्पी (2013) द इम्पैक्ट आफ साइकोसिस ऑन सोसल इनक्लूसन

एण्ड एसोसियेटेड फेक्टर। साइकेट्रिक मेन्टल हेल्थ जर्नल फरवरी, वोल्यूम-20(1), पृष्ठ सं0 71-81

राइट एन0 (2013) कांसेप्ट ऑफ सोसल इन्क्लूसन, एक्सक्लूसन एण्ड मेंटल हेल्थ: ए रिव्यू ऑफ इन्टरनेशनल लिटरेचर साइकेट्रिक मेन्टल हेल्थ जर्नल जनवरी, वोल्यूम-7(1), पृष्ठ सं0 15-24

वृन्दा, एम0एन0 (2016). एटीटयूड आफ प्राइमरी स्कूल टीचर टूवर्डस एजूकेषनल एण्ड सोसल डिसएविल्ड चिल्ड्रिन। जर्नल आफ इडियन एसोसिएशन फार चाइल्ड एण्ड एडोलोसेन्ट मेंटल हेल्थ, वोल्यूम-12(4), पृष्ठ सं0 323-335.

नारद, ए0 (2016). एकेडमिक परफोरमेंस आफ सीनियर सेकन्डरी स्कूल स्टूडेन्टस: इन्फ्यूलेंस ऑफ पेरेन्टल इनकरेजमेंट एण्ड स्कूल इनवायर्नमेंट। रूपकथा जर्नल ऑन इन्टर डिसीप्लनरी स्टडीज इन हयूमनटीज, वोल्यूम-8(2016)

ग्रामीण विकास कार्यक्रम और इंदिरा आवास योजना का योगदानः भरतपुर जिले के सन्दर्भ में

नवीन कुमार पहाड़िया

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सारांश

ग्रामीण विकास से तात्पर्य बुनियादी सुविधाएं जैसे- भोजन, आवास, वस्त्र, पेयजल, चिकित्सा, शिक्षा, सिंचाई के साधन, पक्की सड़क इत्यादि मुहैया कराकर उनके जीवन स्तर को सुधारना है। साथ ही इस संबंध मे यह जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्रों के अब तक असंगठित श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दिलवाने की भी व्यवस्था की जाए।

इंदिरा आवास योजना का मुख्य उद्देश निर्माण कार्यों द्वारा अधिकतम आवास की सुविधा का सृजन करना है।

डांग क्षेत्र के पिछड़े 8 जिलों में शामिल भरतपुर जिले में वर्ष 2004-05 से, डांग विकास परियोजनाओं का प्रारंभ हुआ। योजना के अंतर्गत चिन्हित क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के सृजन एवं सामुदायिक सम्पत्तियों के निर्माण हेतु चरणबद्ध विकास कार्यक्रम शुरू किया गया। यह योजना शत-प्रतिशत राज्य पोषित है, जिसे जिला स्तर पर जिला परिषद् (ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ) द्वारा पंचायत राज संस्था/ ग्राम पंचायत के माध्यम से क्रियान्वित किया जाता है।

परिसंपत्तियों के निर्माण से ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं का विकास हुआ है जिससे स्थानीय निवासियों के जीवनस्तर में सकारात्मक प्रभाव आया है। आंगनवाडी भवनों के निर्माण में शाला पूर्व शिक्षा, टीकाकरण, पोषाहार वितरण की सुविधा, स्कूल बाउंड्री वाल में से बच्चों की सुरक्षा एवं ए.एन.एम स्वास्थ्य केंद्र बनने से गाँव में चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है।

मूल शब्दः ग्रामीण, विकास, कार्यक्रम, इंदिरा आवास योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, भरतपुर

परिचय

आवास एक ऐसी आवश्यकता है जहां मनुष्य अपना और अपने परिवार का जीवन बसर करना चाहता है। आवास मानव की एक बुनियादी आवश्यकता है। प्रत्येक इंसान को आवास उपलब्ध कराना मानव अधिकार जैसा है। जिसे प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी प्रत्येक मनुष्य, सरकार, नेता, राजनेता पर है।

भारत मे ग्रामीण विकास का महत्व इस कारण से नही है कि गाँवों मे बहुत अधिक जनसंख्या निवास करती है। बल्कि देश के आर्थिक विकास मे रहने वालों का योगदान भी बहुत अधिक है। देश के विकास की प्रक्रिया मे ग्रामीण विकास का महत्व आज समय की अपेक्षा अधिक माना जा रहा है।

भारत एक घनी आबादी वाला विविधताओं से भरा देश है, विश्व में सर्वाधिक दूसरी जनसंख्या भारत के हिस्से में आती है, इसलिए यहां रहने वालों के लिए आवास की समस्या होना स्वाभाविक है। भारत की दो तिहाई जनसंख्या आज भी गांवों में निवास करती है, इसीलिए यहां 6 लाख से ज्यादा गांव हैं। यहां के लोगों की आर्थिक, मानसिक और सामाजिक स्थितियां सभी एक दूसरे से भिन्न हैं, लेकिन फिर भी सब एक दूसरे के साथ मिलकर रहते हैं। इसलिए यह अनेकता में एकता वाला देश, ''वसुधैव

कुटुंबकम'' का संदेश प्रसारित करने वाला देश है। आवास की समस्या शहरों में तो है ही, ग्रामीण क्षेत्र भी इससे लगातार जूझ रहे हैं। पिछली जनगणना के अनुसार भारत में लगभग चार करोड़ मकानों की कमी थी जिन में से तीन करोड़ दस लाख मकानों की कमी केवल ग्रामीण क्षेत्र में है।

इंदिरा आवास योजना क्या है?

भारत सरकार का ग्रामीण विकास मंत्रालय, ग्रामीण विकास की देखभाल और ग्रामीण जरूरतों का ख्याल रखता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा ग्रामीणों के विकास के लिए चलाई जा रही कई योजनाओ में से एक इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) है। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) आवास के मुद्दों से संबंधित योजना है और यह योजना जिन लोगों के पास रहने के लिए घर नहीं है, उन्हें आवास (घर) प्रदान करने का कार्य करती है। यह योजना गरीबी रेखा (बीपीएल) के नीचे जीवन यापन करने वाले गरीब ग्रामीणों को आवास प्रदान करती है।

इंदिरा आवास योजना का शुभारंभ वर्ष 1985-86 में हुआ था और यह योजना ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना (आरएलईजीपी) का ही एक स्वरूप है। इस योजना का शुभारंभ ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को एक समान आवास प्रदान करने के लिए किया गया था। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) से पहले भी कई अन्य योजनाएं थीं, जिसमे कुछ योजनाओ के अंतर्गत आवास प्रदान किए जाते थे और कई योजनाओ के अंतर्गत आवास निर्माण की लागत भी वसूली जाती थी। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) को जवाहर रोजगार योजना (जेआरवाई) की उप योजना माना जाता है। शुरूआत में इंदिरा आवास योजना को, जेआरवाई के द्वारा केवल 6 प्रतिशत धन आवंटित किया गया था, जिसे बाद में जेआरवाई ने दोगुना कर दिया था।

केंद्र सरकार और राज्य सरकार दोनों ने 75:25 के अनुपात में इस योजना को धन वितरित करके अपना-अपना योगदान दिया है। सिक्किम और उत्तर-पूर्वी राज्यों ने 90:10 के अनुपात में इस योजना को धन आवंटित करके अपना योगदान दिया है।

इस योजना का शुभारंभ गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापने करने वाले परिवारों को आवास प्रदान करने लिए किया गया था, जिसमें मैदानी क्षेत्रों में घर बनाने वाले परिवारों के लिए 45,000 रुपये और पहाड़ी और ऊंचे क्षेत्रों में घर बनाने वाले परिवारों के लिए 48,500 रुपये का निर्धारण किया गया था। 1 अप्रैल 2013 से वित्तीय सहायता की राशि बढ़ाकर 70,000 रुपये और 75,000 रुपये कर दी गई है। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) के लाभार्थी घर बनाने के लिए मात्र 4 प्रतिशत के वार्षिक ब्याज पर 20,000 रूपए तक का ऋण लाभ भी ले सकते हैं। इस प्रकार, इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) द्वारा दिए जाने वाले ऋण लाभ को कच्चे घरों में रहने वाले लोग भी प्राप्त कर सकते हैं।

इंदिरा आवास योजना की मुख्य विशेषताएं

इस योजना के तहत धनराशि आवंटित करते समय, आवास की कमी वाले क्षेत्रों को 75 प्रतिशत महत्व और गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को 25 प्रतिशत महत्व दिया जाता है। इंदिरा आवास योजना द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लोग 60 प्रतिशत धन लाभ प्राप्त करने के हकदार होते हैं, शारीरिक रूप से विकलांग लोगों को इस धन में 3 प्रतिशत हिस्सा अलग से प्रदान किया जाता है और सम्पूर्ण धन का 15 प्रतिशत अतिरिक्त हिस्सा अल्पसंख्यकों के लिए निर्धारित किया गया है।

इस योजना के अंतर्गत साधारणतय: महिलाओं या पति और पत्नी दोनों के नाम आवास आवंटित किए जाते हैं।

प्राकृतिक आपदाओं या दंगों आदि जैसी आपातकालीन स्थितियों के लिए कुल राशि का 5 प्रतिशत अलग रखा जाता है। यह राशि एक राज्य से दूसरे राज्य में आसानी से संचालित की जा सकती है।

इंदिरा आवास योजना के तहत लाभार्थियों का चयन या तो ग्राम सभा द्वारा या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की सूची द्वारा या स्थायी इंदिरा आवास योजना की सूची द्वारा किया जाता है।

इस योजना में, घरों के निर्माण में ठेकेदारों की भागीदारी नहीं होती है अर्थात् लाभार्थी ठेकेदारों की निगरानी के बिना खुद अपने घरों का निर्माण करवाते हैं। हालाँकि इसके लिए कोई मापदंड का निर्धारण नहीं किया गया है, लेकिन फिर भी घर में एक साफ-स्वच्छ शौचालय और धुआँ-रहित चूल्हा होना चाहिए। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) के तहत, शौचालय के निर्माण के लिए 9,000 रुपये तक की अतिरिक्त सहायता प्रदान की जाती है।

सफलता

वर्ष 1985 से, अब तक इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत 25.2 मिलियन घरों का निर्माण हो चुका है। ग्रामीण आवास योजना, भारत निर्माण कार्यक्रमों के अंतर्गत चलायी जा रही छः योजनाओं में से एक है। इस योजना के पहले चरण के तहत पूरे देश में वर्ष 2005-06 से वर्ष 2008-09 तक, 60 लाख घरों का निर्माण होने की उम्मीद थी। इस योजना ने दी हुई अवधि में 21720. 39 करोड़ रुपये खर्च करके, लक्ष्य से कहीं अधिक 71.76 लाख घरों का निर्माण करवाया था। इस योजना ने वर्ष 2009-10 से अगले पाँच वर्षों के लिए, दुगुना यानि लगभग 120 लाख घरों के निर्माण का लक्ष्य रखा है। इसके दूसरे चरण के दौरान, पिछले तीन सालों में लगभग 85 लाख घरों का निर्माण हुआ है।

योजना की जाँच, समीक्षा और वार्षिक रिपोर्ट

इंदिरा आवास योजना की जाँच, मासिक समीक्षा और वार्षिक रिपोर्ट जैसे दो पहलुओं के साथ की जाती है।

राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के क्षेत्रीय अधिकारियों ने अपने-अपने नियत राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का यह पता लगाने के लिए दौरा किया कि योजना से संबंधित दिशा-निर्देशों के अनुसार सब कार्य हो रहे हैं या नहीं। वे अलग-अलग जगहों पर जाकर यह जाँच करते हैं कि क्या इस योजना से उचित लोग भलीभाँति लाभान्वित हो रहे हैं या नहीं। क्षेत्रीय अधिकारी, नीति निर्माताओं और कार्यान्वयन शाखाओं के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

वर्ष 2007 में, ऑनलाइन जाँच प्रक्रिया को सर्वोपरि रखा गया है। इस योजना की सहायता से डीआरडीए मंत्रालय की वेबसाइट पर आसानी से मासिक प्रगति रिपोर्ट अपलोड की जा सकती है। एमआईएस प्रोग्राम 'आवास सॉफ्ट' ने जाँच प्रणाली को अत्यधिक सरल बना दिया है।

वित्तीय वर्ष 2012-13 में ग्रामीण आवास के लिए, आवंटित बजट 11075 करोड़ रुपये था। इंदिरा आवास योजना (आईएवाई) के तहत 27.27 लाख घरों के निर्माण के लिए 10513.20 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की गई है। वास्तव में यह सभी गरीब ग्रामीणों को आवास उपलब्ध कराने वाली एक बड़ी योजना के रूप में उभर कर सामने आई है।

2016 में 'इंदिरा आवास योजना' को 'प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना' के नाम से एक नया रूप में शुरू किया गया है।

प्रधानमंत्री आवास योजना और सब्सिडी

माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने भारत में लोगों की आवास संबंधित मुश्किलों को समझते हुए एक नयी योजना का शुभारंभ किया। इस योजना का नाम प्रधानमंत्री आवास योजना रखा गया है। इस योजना को 25 जून 2015 को हरी झंडी दी गई थी। वर्ष 2015 से लेकर 2022 तक इस योजना के तहत मकानों का निर्माण किया जाएगा जो की बहुत ही सस्ती कीमतों पर दिए जाएँगें।

इस परियोजना के अंतर्गत 2 करोड़ से ज्यादा मकानों का निर्माण किया जा रहा है। पूरा निर्माण 2015 से 2022 यानी इन 7 सालों के भीतर होगा।

प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण में गरीब लोगों को आवास बनाने के लिए सरकार 1 लाख 20 हजार रुपये का अनुदान देती है। यह अनुदान चार किस्तों में प्रदान किया जाता है, पहली किस्त नींव डालते वक्त, दूसरी किस्त निर्माण 50 फीसदी होने पर और तीसरी किस्त निर्माण 90 प्रतिशत पूर्ण होने पर और चौथी किस्त निर्माण पूरा करने के बाद दी जाती है। इसके अलावा इस योजना का लाभार्थी 90 दिन के रोजगार के बराबर राशि महात्मा गांधी मनरेगा योजना से ले सकता है। अगर लाभार्थी स्वच्छ

भारत अभियान के तहत घर में शौचालय का निर्माण भी करता है तो उसे इसके लिए अलग से 12 हजार रुपये देय है।

भरतपुर जिले में ग्रामीण विकास और आवास समस्या

भरतपुर, जिसे श्राजस्थान का पूर्वी द्वारश भी कहा जाता है, दिल्ली से 180 किमी दूर ब्रज क्षेत्र में स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से, जिला 26^0 22' और 27^0 83' उत्तर और 76^0 53' और 78^0 17' पूर्व के बीच स्थित है और समुद्र तल से इसकी औसत ऊंचाई लगभग 183 मीटर है। भरतपुर शहर जिला मुख्यालय है और इसे लोहागढ़ के नाम से भी जाना जाता है। यह राजस्थान और अन्य राज्यों के मुख्य शहरों के बहुत करीब स्थित है। जयपुर और भरतपुर के बीच की दूरी लगभग 178 किमी है जबकि आगरा जिले

से 55 किमी की दूरी पर स्थित है। मथुरा 34 किमी की दूरी पर स्थित है। भरतपुर उत्तर में हरियाणा के गुड़गांव, पूर्व में मथुरा, उत्तर प्रदेश के आगरा और दक्षिण में राजस्थान के धौलपुर और पश्चिम में दौसा और अलवर को छूता है।

इस जिले में केवल तीन मुख्य मौसमी नदियाँ हैं, अर्थात् बान गंगा, रूपरेल और गंभीर। बाण गंगा जयपुर जिले के रामगढ़ बांध से शुरू होती है, भरतपुर से गुजरती है और भरतपुर जिले की बयाना तहसील के पास गंभीर नदी में मिलती है। गंभीर नदी करौली जिले के पंचना बांध से शुरू होती है और भरतपुर से गुजरने के बाद उत्तर प्रदेश में यमुना नदी में मिलती है। रूपरेल नदी अलवर जिले की पहाड़ियों से शुरू होकर कमान तहसील से भरतपुर में प्रवेश करती है। इसके स्थान पर बांध बरेठा नामक बांध काकुंड नदी पर बरेठा गांव के पास स्थित है जो जिला करौली की पहाड़ियों से शुरू होता है। इस बांध के पानी का उपयोग इस जिले के पीने और सिंचाई के लिए किया जाता है। इस बांध की क्षमता 684.00 मिलियन क्यूसिक फीट (29 गेज फीट) है।

इतिहास

इस स्थान पर सिनसिनवार कबीले के एक आदिवासी समुदाय का शासन था, जो 100 ईस्वी में भारत आया था। गोहद शहर 1505 ईस्वी में बनाया गया था और एक प्रसिद्ध जाट राज्य के रूप में विकसित हुआ था जिस पर बाद में मराठों का शासन था। 1733 ई. में, महाराजा सूरज मल ने भरतपुर शहर का निर्माण किया। ऐसा माना जाता है कि यह उसके शासन में एक अच्छी तरह से गढ़वाले शहर था। भरतपुर को मेवात से अलग किया गया था और इसका नाम भगवान भरत (भगवान राम के भाई) से मिला था।

भरतपुर के प्रभाग

क्रम संख्या	*प्रभाग का नाम*	*गाँव की संख्या*
1	बयाना	199
2	भरतपुर	193
3	भुसावर	70
4	डीग	133
5	कामा	128
6	कुम्हेर	130
7	नदबई	123
8	नगर	101
9	पहाड़ी	138
10	रूपवास	113
11	सीकरी	70
12	उच्चौन	51
13	वैर	86
कुल		1535

जनसांख्यिकी

धर्म	*प्रतिशत*
हिन्दू	84.09%
मुस्लिम	14.57%
सिख	0.92%
अन्य	0.42%

2011 की जनगणना में, भरतपुर जिले की जनसंख्या 2,548,462 थी, जो लगभग कुवैत देश या अमेरिकी राज्य नेवादा के बराबर थी। इसने इसे भारत के जिलों (कुल 640 में से) के बीच 166 वें स्थान पर रखा। जिले का जनसंख्या घनत्व 503 निवासी प्रति वर्ग किलोमीटर (1,300 / वर्ग मील) था। 2001-2011 के दशक में इसकी जनसंख्या वृद्धि दर 21.32% थी। भरतपुर में प्रत्येक 1000 पुरुषों पर 877 महिलाओं का लिंगानुपात था, और साक्षरता दर 71.16% थी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का क्रमश: 21.9% और 2.1% हैं।

वर्तमान वर्ष में भरतपुर सहित पूरे राजस्थान में आवास निर्माण का लक्ष्य

गांवों में गरीबों को आवास देने के लिए चल रही प्रधानमंत्री आवास योजनाख़ ग्रामीण के तहत इस वर्ष प्रदेश में सर्वाधिक 33 हजार से अधिक आवास उदयपुर में बनेंगे। जबकि सबसे कम भरतपुर में 337 मकान बनाए जाएंगे। राज्य सरकार ने केन्द्र से मिले लक्ष्यों के आधार पर सभी 33 जिलों को लक्ष्य आवंटित कर दिए हैं। इस वर्ष केन्द्र से कुल 3.97 लाख आवासों का लक्ष्य राज्य को मिला है। ग्रामीण विकास विभाग ने सभ जिलों को लक्ष्य आवंटित कर 15 दिन में आवास मंजूरियां जारी करने के निर्देश दिए हैं।

60 प्रतिशत आवास अजा-अजजा को

प्रदेश को मिले कुल 3.97 लाख आवासों में से 60 प्रतिशत यानि 2.38 लाख आवास अनुसूचित जाति और जनजाति के लाभार्थियों को स्वीकृत किए जाएंगे। इसके अलावा 423 आवास अल्पसंख्यक वर्ग के लिए आरक्षित रखे गए हैं।

किस जिले को कितने आवास का लक्ष्य

अजमेर 6473, अलवर 3486, बांसवाड़ा 29405, बारां 14766, बाड़मेर 32376, भरतपुर 337, भीलवाड़ा 18285, बीकानेर 17418, बूंदी 10759, चित्तौड़गढ़ 9879, चूरू 7881, दौसा 1892, धौलपुर 2374, डूंगरपुर 20715, हनुमानगढ़ 9404, जयपुर 4576, जैसलमेर 12977, जालोर 7344, झालावाड़ 25471, झुंझुनूं 751, जोधपुर 18670, करौली 8224, कोटा 8704, नागौर 11224, पाली 7878, प्रतापगढ़ 13530, राजसमंद 7074, सवाई माधोपुर 13290, सीकर 1724, सिरोही 7142, श्रीगंगानगर 15531, टोंक 13936, उदयपुर 33510।

निष्कर्ष

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों का बढ़ी हुई भागीदारी, योजनाओं का विकेन्द्रीकरण, भूमि सुधारों को बेहतर तरीके से लागू करना और ऋण की आसान उपलब्धि करवाकर लोगों के जीवन को बेहतर बनाने का लक्ष्य होता है। प्रारंभ में, विकास के लिए मुख्य जोर कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और संबंधित क्षेत्रों पर दिया गया था।

आवास, जीवन और विकास की बुनियादी जरुरत है। ग्रामीण भारत में आवास सुविधा अधिकांश परिवारों की पहुँच से बाहर है। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 3 से 4 करोड़ परिवार बेघर हैं। सरकार के तमाम विकास कार्यक्रमों के बावजूद पिछले दशकों में बेघरों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। ग्रामीण इलाकों में आजीविका के साधनों के अभाव से बड़े पैमाने पर लोगों के शहर पलायन की भी समस्या बढ़ी है। इसके उलट शहर, भीड़-भाड़ वाले प्रदूषित और आर्थिक दृष्टि से भरण-पोषण में अक्षम होते जा रहे हैं।

इस योजना के अंतर्गत गरीब बेघर ग्रामीण जनता को आवास, पुनर्वास योजना के तहत कुछ राशि ऋण के रूप में मुहैया कराया जाता है।

ग्रामीण विकास विभाग से प्राप्त आंकड़ों में कहा गया है कि केवल टोंक (109 रैंक) और सिरोही (156 रैंक) PMAY-G के तहत प्रदर्शन के मामले में देश के शीर्ष 100 जिलों में शामिल नहीं हो सके। प्रदेश के जो 6 जिले टॉप 10 में शामिल हैं उनमें डूंगरपुर (दूसरे), नागौर (तीसरे), भरतपुर (पांचवें), झुंझुनू (छठे), बीकानेर (आठवें) और उदयपुर (नौवें) शामिल हैं। ऐसा पहली बार हुआ है कि राज्य के 33 जिलों में से 31 देश के टॉप 100 जिलों में शामिल हुए हैं।

सुझाव

इंदिरा आवास योजना का मुख्य उद्देश निर्माण कार्यों द्वारा अधिकतम आवास की सुविधा का सृजन करना है।

योजना के दिशा-निर्देशों के अनुसार, यह सुनिश्चित किया जाता है कि स्वीकृत किए गए मकान पहली किस्त मंजूर किए जाने की तारीख से दो वर्षों के भीतर पूरे कर लिए जाएं। चूंकि लाभार्थी बीपीएल परिवारों के होते हैं और उन्हें मकानों के निर्माण के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने में अक्सर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसलिए विलंब के मामलों पर नजर रखी जाती है, ताकि अधिकतम तीन वर्षों के अवधि में मकानों का निर्माण कार्य पूरा करने में सहायता की जा सके।

तिमाही आधार पर की जाने वाली पीआरसी की बैठकों, मासिक आधार पर की जाने वाली राज्य समन्वय अधिकारियों की बैठकों, क्षेत्रीय अधिकारियों के दौरों तथा राष्ट्र स्तरीय निगरानीकर्ताओं के दौरों में आईएवाई के कार्यान्वयन की समीक्षा की जाती है। इसके अलावा प्रगति रिपोर्ट एमआईएस पर और मासिक प्रगति रिपोर्ट मंत्रालय में प्राप्त होती है।

लेकिन शोध के द्वारा हमें पता चला है कि अधिकतम मानव दिवस सृजित करने में सामान्यत: पक्के कार्यों को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार पक्के कार्यों को दर्शाकर मानव कार्य दिवस तो निर्माण किये जा सकते हैं लेकिन स्थायी ग्रामीण विकास के लिए गुणात्मक परिसंपत्तियों का निर्माण नहीं हो सकता। सरकार आवासों के लक्ष्यों को पूरा करने में विश्वास रखती है, जिसके लिए इंदिरा आवास योजना में श्रम-सामग्री अनुपात 40: 40 निश्चित किया है। जो अवव्यहारिक तथा गलत कार्य शैली को जन्म देता है। इस सन्दर्भ में यह सुझाव दिया जा सकता है कि साधनों की सीमित उपलब्धता की समस्या को देखते हुए सरकार को ग्रामीण विकास की उपयुक्त स्थायी प्रवृत्ति को महत्व देकर गुणात्मक परिसंपत्तियों के सृजन को महत्व देना चाहिए।

सन्दर्भ

- "Indira Awaas Yojana – Fulfilling the Need for Rural Housing". pib.nic.in. Retrieved 9 December 2017.
- 10 lakh homes built under Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin): Government, Economic Times, 1 Dec 2017.
- "Indira Awaas Yojana". Rural.nic.in. Archived from the original on 6 February 2011. Retrieved 8 March 2011.
- "Pradhan Mantri Gramin Awaas Yojana | Indira Awaas Yojana". www.wiki.meramaal.com. Retrieved 24 October 2018.
- "GUIDELINES for INDIRA AWAAS YOJANA-Introduction". rural.nic.in. Archived from the original on 25 December 2010. Retrieved 8 March 2011.
- "Modi government to rename new-look Indira Awaas Yojana to Pradhan Mantri Gramin Awaas Yojana", The Economic Times, 29 December 2015
- Kumar, Devesh (19 June 2010). "Indira Awaas Yojana scope to be widened, states to come in as partners". Economic Times. Retrieved 8 March 2011.
- "Allotment of Indira Awas". Press Information Bureau, Government of India. 3 March 2011. Retrieved 8 March 2011.
- IANS (28 February 2011). "Union Budget 2011: Rural development to get 12% more". Economic Times. Archived from the original on 16 October 2012. Retrieved 8 March 2011.
- Balchand, K. (28 February 2011). "Pranab shifts focus to Bharat Nirman". The Hindu. Chennai, India. Retrieved 8 March 2011.
- "Persons Eligible for Indira Awas Yojana(IAY)". Press Information Bureau, Government of India. Retrieved 8 March 2011.
- "Housing for All scheme gets govt nod: All you need to know", Business Today, 15 September 2015
- "305 Cities Identified Under 'Housing for All' Scheme", NDTV, 30 August 2015
- "Over 300 cities identified for 'Housing for All' scheme", Business Today, 31 August 2015
- All you wanted to know about Pradhan Mantri Awas Yojana, Business Standard, Feb 2017.
- 10 lakh homes built under Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin): Government, Economic Times, 1 Dec 2017.

ग्रामिण क्षेत्र के विविध वर्ग की महिलाओं का शिक्षा में सहभागिता - धुले (महाराष्ट्र) जनपद एक भौगोलिक अध्ययन

संजय बी० घोडसे

सहायक प्राध्यापक, भूगोल विभाग, श्री. शि. वि. प्र. संस्था का
भाऊसाहेब ना. स. पाटील साहित्य एवं मु. फि. मु. अ. वाणिज्य महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र)

Abstract

राष्ट्र के विकास में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे महिलाओं की कुल आबादी के लगभग 50 प्रतिशत है। इतनी बडी आबादी होने के बावजूद महिला समुदाय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रुप से काफी पिछडा है। महिलाओ के मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्र की विविध वर्ग महिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो। ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला का शिक्षा सहभागिता औसत 64.80% है जो की समाधान कारक है। सडक किनारो पर बसी बस्तियों में महिला का शिक्षा सहभागिता औसत 65.92% है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम है। पहाडो के सटीक बसी बस्तियों में महिला का शिक्षा सहभागिता औसत 60.00% है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम है। मैदानी प्रदेश मे बसी बस्तियों में महिला का शिक्षा सहभागिता 59.89% यह औसत से कम है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम केवल 34.38% है।

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत भूमी की लगभग आधी आबादी महिला वर्गकी है। भारत का पुर्ण विकास करने के लिए महिला शिक्षा सहभागिता महत्वपुर्ण है। महिला शिक्षा सहभागिता भारत के लिए सामाजिक और आर्थिक रुप से विकसित होने का एक बडा अवसर है। एक शिक्षित महिला अपने घर और पेशेवर जीवन को संभालने की क्षमता रखती है। भौगोलिक प्रदेश का सांस्कृतिक भूदृश्य वहॉं के मानवीय क्रियाओ का प्रतिफल होता है। केवल मनुष्य है जो संसाधनो का नियामक व मानव कल्याण हेतु उनका उपयोग करता है। इस प्रकार विविध क्षेत्रों में क्रियान्वयन के परिणामस्वरुप मनुष्य स्वयं किसी प्रदेश का एक महत्वपूर्ण संसाधन है। भारत जैसे विकासोन्मुख देश में जहां प्रादेशिक स्तर पर मानव संख्या में तिव्रगति से वृध्दि हो रही है, संख्या सम्बन्धी भौगोलिक अनुसन्धान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

वर्तमान समय में जनसंख्या दबाव, अमीर-गरीब की खाई, बेरोजगारी, दहशतवाद, विश्वतापमान, शिक्षा सुविधाए आदी समस्याएंहै जो मानवीय सभ्यता के सम्मुख चुनौती के रुप में स्थित है। भारत में प्राचीन काल से परंपरागत तरह से विविध जाती-धर्म जनसंख्या का एक समान सामाजिक एवं आर्थिक विकास यह भी एक समस्या है। प्रस्तुत शोधपत्र में धुले जनपद के ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिलाओं की शिक्षा मे सहभागिता का अध्ययन किया गया है। वर्ग यह शब्द भारत सरकार द्वारा विविध जातीयों को वर्गीकृत करने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक सामुहिक शब्द है, जो समुदाय शैक्षिक या सामाजिक रुप से वंचित है। वर्तमान समय में ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला की सामाजिक स्थिति मे सुधार के आशाओं के अनुरुप परिलक्षित नही हुए है। इन समस्याओं से निजात पाने के लिए यह आवश्यक है, कि इस क्षेत्र की समस्याओं का सिलसिलेवार विश्लेषण के साथ-साथ तार्किक समाधान प्रस्तुत किया जाय। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के प्रयत्न में विश्व स्तर पर किसी न किसी रुप में निति निर्माता एवं शिक्षाविदों व्दारा इस तरह कीशैक्षिक बहस जारी है। उसी बहस में शैक्षिक साहित्य का निर्माण करने का इस शोध पत्र का एक प्रयत्न है।

2. अभ्यास क्षेत्र (Study Area) –

धुले उत्तरी महाराष्ट्र का मध्यप्रदेश एवं गुजरात राज्य के सीमा से सटीक एक महत्वपुर्ण जनपद है। ब्रिटीश कालीन पश्चिम खानदेश का धुले जनपद मुख्यालय के रुप मेंरहा है। धुले जनपद महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं गुजरात तीनो राज्यों का एक महत्वपुर्ण जंक्शन है, जहां से मुंबई-आग्राराष्ट्रीय महामार्ग-3, सुरत-नागपूर-6एवं धुले-सोलापूर-211 आदी महामार्ग होकर जाते है। धुले जनपद का त्रिकोणी आकार अपनेआपको अन्य भौगोलिक क्षेत्र से अलग प्रस्तुत करता है। जनपद का विस्तार 2028' उत्तरी अक्षांश से 2161' उत्तरी अक्षांश एवं 7350' पूर्व से 7511' पूर्व देशांतर तक है। धुले जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 8063 वर्ग कि. मी. है जों कि महाराष्ट्र राज्य का 2.6 प्रतिशत है। जनपद के उत्तर मे सतपुडा पहाडीया, आग्नेय दिशा में सह्याद्री पर्वत के उप शाखाओं (Spurs) से ढका हुआ है। जनपद का सेन्टर पार्ट तापी नदी के संचयन से बनी सुपिक जमीन से ढका हुआ है, जिसके चलते यहा कृषी व्यवसाय किया जाता है। जनपद भौगोलिक क्षेत्र शुष्क पर्णपाती जलवायु रिजन में समाविष्ट होता है। इसी कारण यहां 674 मिलिमीटर तक मान्सून की वर्षा होती है। जनवरी महिना सबसे जादा शीत होता है, इस समय यहां का तापमान 16.2 सेल्शिएस तक निचे आ जाता है। फरवरी के मध्य से तापमान में धीरे-धीरे बढोत्तरी शुरु होकर मई में सरासरी कमाल तापमान 40.7 सेल्शिएस तक बढ जाता है।

3. उद्देश (Objective) -

इस शोध परीयोजना का प्रमुख उद्देश धुले जनपद की ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला जनसंख्या का शिक्षा पध्दती में सहभागिता का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत करना है। राष्ट्र एवं प्रदेश स्तर पर तीव्र गति से बढती जनसंख्या एवं उनके लिए उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं की उचित पूर्ति के लिए क्षेत्रीय स्तर पर ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला का शिक्षा में सहभागिता के भौगोलिक विश्लेषण की महती आवश्यकता है। मुख्यत: शोध परीयोजना से सम्बन्धित उद्देश निम्न लिखित है-

1) ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला शिक्षा सहभागिता का अध्ययन करना।
2) ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला की भौतिक, सामाजिक व आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करना।
3) ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला के सन्तुलित विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना।

4. परिकल्पानाएं (Hypothesis) –

धुले जनपद अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला शिक्षा सहभागीता एवं सुविधा के विविध आयामों के अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है-

1) ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला शिक्षा सहभागिता का विशिष्ट रुप एवं औसत उपस्थित है।
2) ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला की शिक्षा औसत भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारको व्दारा प्रभावित होता है।

5. संशोधन पध्दती (Research Methodology) -

धुले जनपद में जनसंख्या अनुपात विविध जाति के अनुसार विविध रुप में पाया जाता है। धुले जनपद के भौगोलिक विशेषताओं के अनुरुप ग्रामिण क्षेत्र की विविध वर्ग की महिला जनसंख्या का वितरण, विकास एवं सामाजिक स्तर बना हुआ है। उपर लिखित उद्देश के अनुसार अध्ययन करने हेतु धुले जनपद के प्राथमिक एवं व्दितीय जनसंख्या सामग्री जैसे कि क्षेत्र सर्व्हे, डिस्ट्रीक्ट सामाजिक एवं आर्थिक समालोचन का आधार लिया गया है। इस के साथ-साथ संदर्भ ग्रंथ एवं शोध पत्रिकाओं का आधार लिया गया है।

6. निष्कर्ष (Conclusion) -

प्रगती में पुरुषों के साथ साथ महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत मे ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्गकी महिला की कुल आबादी 33.52% है। इतनी बडी आबादी होने के बावजूद ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग कीमहिला समुदाय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रुप से काफी पिछडे है। ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग कीमहिलाओ के मुल्यांकन हेतु उनका सामाजिक रुपरेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। सामाजिक संरचनाए, सांस्कृतिक प्रतिमान एवं मुल्य प्रणालीयों का प्रभाव पुरुषो एवं महिलाओं के व्यवहार संबंधी प्रत्याशाओ पर पडता है। मानवी विकास हेतु महत्वपुर्ण शर्त यह है की प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की समान सहभागिता हो, इस से केवल महिला का विकास होगा वरन् समाज भी प्रगती की ओर अग्रसर होगा। महिलाएं सामाजिक पिछडेपण के कारण ही समाज के मुख्य धारा से पीछे रह गयी है। इसी दृष्टी से यह आवश्यक है की महिला के शिक्षा मे सहभागिता इस विषय पर भौगोलिक विश्लेषण एवं अध्ययन हो।

धुले जनपद आबादी का 27.91% संख्या शहरी एवं 72.09% संख्या ग्रामिण बस्तीयों में निवास करती है। इस शोध निबंध के सर्वेक्षण हेतु ग्रामिण क्षेत्र कीमहिला कापुर्ण नमूना संख्या ग्रामिण बस्तियों से ली गयी है। नमूना में ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग कीमहिला के अनुसार सडक के किनारी बस्तियॉं, पहाडों से सटीक बस्तियॉं एवं मैदानी बस्तियों को समावेश किया गया है।

तालिका क्रमांक – 1 ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला नमूना संख्या

भौगोलिक क्षेत्र> शिक्षा स्तर	वर्ग	ग्रामिण बस्तियों			कुल नमूना संख्या
		सडक किनारी बस्तियों	पहाडों से सटीक बस्तियों	मैदानी बस्तियों	
शिक्षित महिला	अनुसूचित जाति वर्ग	20	13	21	64
अशिक्षित महिला		20	06	11	37
शिक्षित महिला	अनुसूचित जनजाति वर्ग	20	66	20	106
अशिक्षित महिला		20	61	38	119
शिक्षित महिला	अन्य पिछडा वर्ग	42	24	24	90
अशिक्षित महिला		15	04	10	29
शिक्षित महिला	खुली श्रेणी वर्ग	36	05	23	64
अशिक्षित महिला		06	01	00	07
कुल नमूना संख्या		179	180	147	500

उगमस्त्रोत- क्षेत्र कार्य – (जनवरी-फरवरी-2015)

सर्वेक्षण हेतु लिए गए ग्रामिण क्षेत्र की महिला की कुलसंख्या (500)के 64.80% (324) महिला शिक्षित है एवं 33.20%(176) निरक्षर है। इस संख्या से यह स्पष्ट होता है की ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिलाओं की शिक्षा मे सहभागिता थोडी समाधान कारक है।

सडक के किनारो के सटीक बस्तीयो में कुल 179 ग्रामिण क्षेत्र की महिलाओं का सर्वेक्षण नमूना के तौर पर किया गया। इनमे से 65.92% महिलाओं (118) ने शिक्षा प्राप्त की है एवं बाकी की 34.08%(61) शिक्षा से वंचित रही है। नमूना संख्या के अनुसार अनुसूचित जाति की केवल 50%, अनुसूचित जनजाति 50% अन्य पिछडा वर्ग73.68% एवं खुली वर्ग की महिला का शिक्षा में 85. 71% सहभागिता का औसत है। इन आंकडो के अनुसारसडक के किनारो के सटीक बस्तीयोमें सबसे अधिक सहभागिता खुली वर्ग की महिला का है, उसके बाद अन्य पिछडा वर्ग, अनुसूचित जाति, जनजाति की महिला का सहभाग दिखाई देता है।

पहाडो से सटीक बस्तीयो की ग्रामिण क्षेत्र की महिला की कुल संख्या 180ली गयी थी। नमूना की कुल संख्या के 60% महिलाओंने (108) शिक्षा प्राप्त की है। बाकी 40% महिलाएं (72) शिक्षा प्राप्त नही कर पाई।नमूना संख्या के अनुसारअनुसूचित जाति की केवल 68.42%, अनुसूचित जनजाति 51.96%अन्य पिछडा वर्ग 85.71% एवं खुली वर्ग की महिला का शिक्षा में 83.33% सहभागिता का औसत है। इन आंकडो के अनुसार पहाडो से सटीक बस्तीयो में सबसे अधिक सहभागिता औसत अन्य पिछडा वर्ग की महिला का है, उसके बाद खुली वर्ग की महिला, अनुसूचित जाति, जनजाति की महिला का सहभाग दिखाई देता है।

मैदानी प्रदेश के बस्तीयो में से कुल 147 नमूना संख्या का चयन किया गया था। नमूना संख्या के 59.86%महिलाओं (88) ने शिक्षा का लाभ लिया है। बाकी 40.14% मैदानी प्रदेश के बस्तीयोंकीकी महिला (59) शिक्षा का लाभ नही उठा पाई। धुले पूर्ण जनपद के लिए अनुसूचित जाति की 65.62%, अनुसूचित जनजाति 34.48%, अन्य पिछडा वर्ग 70.58% एवं खुली वर्ग की महिला का 100% शिक्षामे सहभागिता दिखाई देती है।इन आंकडो के अनुसार मैदानी प्रदेश के बस्तीयो में सबसे अधिक सहभागिता औसत खुली वर्ग की महिला का है, उसके बाद अन्य पिछडा वर्ग की महिला, अनुसूचित जाति, जनजाति की महिला का सहभाग दिखाई देता है।महिला शिक्षा सहभागिता अध्ययन से यह स्पष्ट होता है की

1. ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग कीमहिला का शिक्षा सहभागिता औसत 64.80% है जो की समाधान कारक है।
2. सडक किनारो की बस्तियों में महिला का शिक्षा सहभागिता औसत 65.92% है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम है।
3. पहाडो के सटीक बस्तियों में महिला का शिक्षा सहभागिता औसत 60.00% है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम है।
4. मैदानी प्रदेश मे बसी बस्तियों मेंमहिला का शिक्षा सहभागिता 59.89% औसत से कम है, इनमे खुली वर्ग की महिला का औसत सबसे ज्यादा और अनुसुचित जनजाति महिला का सहभागिता सबसे कम केवल 34.38% है।

सुझाव - ग्रामिण क्षेत्रों में महिला शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढानी होगी। पुरुषों की भांति महिलाओं की शिक्षा का महत्व समजना होगा।राष्ट्रीय साक्षरता, शिक्षा का अधिकार अधिनियम शिक्षा कार्यक्रम को ग्रामिण क्षेत्रों मे अधिक बलपूर्वक फैलाना होगा। अनुसचित जाति/जनजाति का शिक्षा सहभागिता में बढोत्तरी के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

महिला शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र एवं समाज का विकास परिलक्षित होता है। समाज के विकास मे महिला शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। इसलिए महिलाओं को समाज की रचनात्मक शक्ति कहा जाता है।

अध्ययन के समय जिन मुख्य परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया गया है वे निम्नलिखित है-

1) ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला की कुल नमूनासंख्या (500)के 64.80% (324) महिला शिक्षित है यह एक खास रुप एवं औसत उपस्थित है। यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।

2) ग्रामिण क्षेत्र की विविधवर्ग की महिला शिक्षा में सहभागिता औसत भौतिक, सामाजिक, व आर्थिक कारको व्दारा प्रभावित है, यह परीकल्पना सत्य है उपरोक्त विश्लेषण के बाद यह परिकल्पना स्विकृत है।

7) References –

1. R. S. Tripathi, J. P. Vishwakarma (1986). Urban Impact of the Literacy and Occupational structure of Scheduled Caste Population in Bundelkhand region in UP. *The Geographical Observer*, Vol No. XXII, 46-55.
2. Ray. J. (1992, December). The Problem of Girls Education in Dhankenal District- Orissa. *Centre for Education Studies-Indian Institute of Education,* Kothrud-Pune. Pune Maharashtra, India.
3. SatarduSikdar, MukharjiAnit N. (2012). Enrolment and Dropout Rate in School Education. *Economic and Political weekly, pp.27-31*
4. AIU. (1999). *Education and Women Empowerment*. New Delhi: Association of Indian Universities, CombredIndrajeet Marg New Delhi.
5. Anita. (2009) Education Attainment and Occupation of Women in Hariyana- A Geographical Analysis. Unpublished Ph. D. thesis. Jawarharlal Nehru University, Delhi.
6. AzitaRajabi, KarimanBostani. (2009). Social Justice and Education Opportunities in Zahedn-Iran. The Deccan Geographer, Vol.48 No.2
7. https://censusindia.gov.in/2011census/population_enumeration.html
8. https://mahades.maharashtra.gov.in/home.do?lang=en
9. https://dhule.gov.in/mr/
10. https://dhule.nic.in/
11. http://yojana.gov.in/Recent_archive_English_2015.asp

पर्यटन उद्योग में रोजगार के अवसर - एक अध्ययन

डॉ० विजय ग्रेवाल

एम.कॉम., एम.फिल., पी-एच.डी., एमपी सेट एवं यूजीसी नेट क्वालिफाईड, सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
शासकीय महाविद्यालय रानापुर, जिला झाबुआ (म. प्र.)

दीपिका यादव

एम.कॉम., बी.एड. यूजीसी नेट, एमपी सेट क्वालिफाईड, सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य)
श्री नीलकंठेश्वर शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय जिला खंडवा (म. प्र.)

प्रस्तावना

भारत एक विकासशील देश है जिसकी अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रकार के उद्योगों पर आधारित है। भारत में संचालित विभिन्न प्रकार के उद्योगों में से एक उद्योग 'पर्यटन उद्योग' भी है। पर्यटन उद्योग भारत का सबसे बड़ा सेवा उद्योग है, जिस पर अन्य कई उद्योग जैसे - यात्रा एवं परिवहन उद्योग, होटल व्यवसाय एवं स्थानीय व्यवसाय आदि निर्भर करते है। भारत के राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में इस उद्योग का योगदान 6.23: है। जबकि रोजगार की दृष्टि से यह उद्योग भारत के कुल रोजगार का 8ण्78: भाग समाहित करता है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख विदेशी पर्यटकों एवं 56.2 करोड़ घरेलू पर्यटकों द्वारा विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया जाता है, जिसके फलस्वरूप उन क्षेत्रों के निवासियों के लिए रोजगार के नवीन अवसर सृजित होते हैं। भारत में अनेक पर्यटन स्थल है जो भारत सरकार के लिए बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जन एवं रोजगार सृजन दोनों का ही मुख्य आधार है। यह उद्योग संगठित एवं असंगठित दोनों तरह के श्रमिकों को रोजगार प्रदान करता है तथा इस व्यवसाय की लागत भी अन्य व्यवसायों की तुलना में कम होती है। यदि आँकड़ों की बात की जाए तो भारत में पर्यटन उद्योग ने लगभग 42 मिलियन से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान किया है। भारत में पर्यटन क्षेत्र के संबंध में बहुत विविधताएँ विद्यमान है, यहाँ कुल 98 यूनेस्को विष्व धरोहर स्थल है, जो कि भारत को पर्यटन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण बनाते हैं। यह क्षेत्र लोगों को गुणवळ्ळापूर्ण रोजगार देने में सक्षम है, जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। अत: देश के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग की अहम् भूमिका है।

अध्ययन के उद्देष्य

प्रस्तुत शोध पत्र निम्न उद्देष्यों पर आधारित है -

- भारत के पर्यटन उद्योग का अध्ययन करना।
- रोजगार सृजन में पर्यटन उद्योग की भूमिका का अध्ययन करना।
- भारतीय पर्यटन उद्योग की समस्याओं का अध्ययन करना एवं सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध की विधि

प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णत: द्वितीयक समंकों पर आधारित है तथा शोध की प्रकृति विवरणात्मक है। समंकों के संग्रहण हेतु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, वेबसाईटों एवं पर्यटन मंत्रालय के वार्षिक प्रतिवेदनों से प्राप्त जानकारियों का प्रयोग किया गया है।

पर्यटन एवं रोजगार

पर्यटन उद्योग का विस्तार होने से रोजगार के नए अवसर सृजित होते है। इस उद्योग के कई सहायक उद्योग हैं, जिनमें यात्रा, परिवहन, होटल, रेस्टोरेन्ट, आतिथ्य, मोन्यूमेंटल संरक्षण गाइड, स्थानीय व्यवसाय, हस्तशिल्प, वस्त्र उद्योग आदि अनेक क्षेत्र शामिल है। वर्तमान में चिकित्सा, शिक्षा एवं सेमीनार के क्षेत्र भी इसके पूरक बनकर उभरे हैं। इन उद्योगों से रोजगार के अवसर किस प्रकार सृजित होते हैं, इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है -

- **यात्रा एवं परिवहन उद्योग** - भारत में बड़ी संख्या में विदेषी एवं घरेलू पर्यटक पर्यटन हेतु विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हैं। उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने हेतु परिवहन की आवष्यकता होती है, जिसके लिए वे विभिन्न टूर एण्ड ट्रेवल्स एजेंसियों से संपर्क करते हैं। परिणामस्वरूप यात्रा एवं परिवहन उद्योग फलीभूत होता है और उन्हें अधिक श्रम शक्ति की आवष्यकता होती है, जिससे रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।
- **होटल एवं रेस्टोरेन्ट उद्योग** - भारत भ्रमण पर आए विदेषी एवं घरेलू नागरिकों को पर्यटन स्थलों पर ठहरने एवं खाने-पीने हेतु होटल एवं रेस्टोरेन्ट की आवष्यकता होती है, जिससे ऐसे स्थानों पर नए-नए होटल एवं रेस्टोरेन्ट की स्थापना होती है और स्थानीय लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।
- **गाइड** - पर्यटन स्थलों पर पर्यटकों को विभिन्न स्थानों पर घूमने एवं उनकी जानकारी प्राप्त करने हेतु गाइड की आवष्यकता होती है, जिससे स्थानीय गाइडों को रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।
- **हस्तशिल्प एवं वस्त्र उद्योग** - विदेशी नागरिक सदैव ही भारतीय वेशभूषा और पारंपरिक वस्तुओं की ओर आकर्शित होते रहे हैं। साथ ही घरेलू पर्यटक भी विभिन्न पर्यटन स्थलों पर मिलने वाली हस्त निर्मित वस्तुओं एवं वस्त्रों को क्रय करते हैं, जिससे इन उद्योगों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है और रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं।
- **चिकित्सा** - वर्तमान में बड़ी संख्या में विदेशी नागरिक भारत में चिकित्सा हेतु आते हैं। यहाँ होने वाली आयुर्वेदिक चिकित्सा एवं अन्य पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों से चिकित्सा उद्योग को बढ़ावा मिलता है और रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं।
- **शिक्षा** - पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उनमें कार्य करने वाले व्यक्तियों को पर्याप्त प्रशिक्षण की आवष्यकता होती है। वर्तमान में विभिन्न संस्थानों द्वारा ट्रेवल, टुरिज्म और हॉस्पिटेलिटी के कोर्सेज करवाए जाते हैं। जिसके फलस्वरूप नव युवक-युवतियों के लिए इस उद्योग में रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार पर्यटन उद्योग अपने सहायक उद्योगों के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न करता है। तीसरे पर्यटन उपग्रह लेखा (टीएसए) के अनुसरण में अनुमान के आधार पर देश की जीडीपी और रोजगार में पर्यटन का योगदान नीचे दिया गया है -

सारणी - जीडीपी एवं रोजगार में पर्यटन का योगदान

	2013-14	*2014-15*	*2015-16*	*2016-17*	*2017-18*	*2018-19*
जीडीपी में शेअर (% में)	5.68	5.81	5.09	5.04	5.00	5.00
प्रत्यक्ष (% में)	3.06	3.14	2.65	2.62	2.60	2.60
अप्रत्यक्ष (% में)	2.62	2.67	2.44	2.42	2.40	2.40
रोजगार में शेयर (% में)	11.91	12.14	12.38	12.20	12.29	12.95
प्रत्यक्ष (% में)	5.19	5.30	5.40	5.32	5.36	5.65
अप्रत्यक्ष (% में)	6.72	6.84	6.98	6.88	6.93	7.30
पर्यटन के कारण प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष नौकरियाँ (मिलियन में)	67.19	69.56	72.26	75.71	80.54	88.72

स्त्रोत- पर्यटन मंत्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन से प्राप्त जानकारी के अनुसार

भारतीय पर्यटन उद्योग से संबंधित समस्याएं

भारत के पर्यटन उद्योग के विकास में निम्न समस्याएँ बाधा उत्पन्न करती हैं -

- **जटिल वीजा प्रक्रिया** - भारत में आने वाले अधिकांश विदेशी पर्यटक वीजा आवेदन की प्रक्रिया को काफी जटिल मानते हैं, हालाँकि सरकार द्वारा ई-वीजा की सुविधा प्रारंभ की गई है, किंतु फिर भी वीजा की लंबी प्रक्रिया एवं कोविड महामारी के कारण और अधिक वैधानिक औपचारिकताओं के जुड़ जाने के कारण विदेशी पर्यटकों का भारत में आवागमन प्रभावित हुआ है।
- **अवसंरचना एवं कनेक्टिविटी का मुद्दा** - पर्याप्त बुनियादी ढाँचे का अभाव तथा दूर-दराज के इलाकों में स्थित पर्यटन स्थलों तक पहुँचने हेतु पर्यटकों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि इन स्थानों तक पहुँचने हेतु पर्याप्त यातायात के साधनों का अभाव होता है इस कारण भी भारत का पर्यटन उद्योग प्रभावित होता है।
- **प्रचार-प्रसार में कमी** - भारत में अनेक ऐसे स्थान है जिनके बारे में पर्यटकों को ज्ञान ही नहीं होता है इसलिए वे केवल प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों पर ही भ्रमण करने जाते हैं, अतः पर्यटन क्षेत्रों के संबंध में पर्याप्त प्रचार-प्रसार की कमी भी पर्यटन उद्योग की मुख्य समस्या है।
- **सुरक्षा** - भारत में आने वाले विदेशी नागरिकों की सुरक्षा भी भारतीय पर्यटन उद्योग की मुख्य समस्या है। प्रायः विदेशी नागरिकों के साथ असामाजिक तत्वों के द्वारा चोरी और लूट की घटनाएँ देखने सुनने में आती रहती है, जिससे विदेशी नागरिकों में भारत और यहाँ की कानून व्यवस्था के प्रति नकारात्मक छवि उत्पन्न हो जाती है।
- **पर्याप्त कौशल का अभाव** - पर्यटन उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों को पर्याप्त प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, परंतु भारतीय पर्यटन उद्योग में प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारियों की संख्या बहुत ही कम है। अतः पर्याप्त कौशल का अभाव भी पर्यटन उद्योग की एक बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप भारत में आने वाले विदेशी नागरिकों को उच्चस्तरीय सुविधाएँ प्रदान करना कठिन हो जाता है।
- **पर्याप्त सुविधाओं का अभाव** - भारत में ऐतिहासिक स्थलों की संख्या तो बहुत अधिक है, परंतु दूर दराज में स्थित पर्यटन स्थलों पर पर्यटकों हेतु पर्याप्त आधारभूत सुविधाओं जैसे परिवहन, सफाई, बिजली एवं पानी तथा ठहरने की उत्तम व्यवस्था आदि का अभाव पर्यटकों को हतोत्साहित करता है जिसके फलस्वरूप पर्यटक ऐसे स्थानों पर जाना पसंद नहीं करते हैं।

सुझाव

भारतीय पर्यटन उद्योग की समस्याओं को दूर करने हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं -

- भारत सरकार द्वारा भारतीय वीजा प्रक्रिया को और सरल एवं सुगम बनाया जाना चाहिए, ताकि अधिक से अधिक विदेशी पर्यटक एवं आंगतुक भारत में सरलतापूर्वक आवागमन कर सके।
- पर्यटन उद्योग में कार्यरत व्यक्तियों के पर्याप्त प्रशिक्षण पर बल दिया जाना चाहिए, ताकि वे भारत व भारत के बाहर के नागरिकों को उच्च स्तरीय सुविधाएँ मुहैया करा सके।
- भारतीय पर्यटन स्थलों का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए, ताकि आम व्यक्ति अधिक से अधिक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक स्थलों की जानकारी प्राप्त कर वहाँ पर्यटन हेतु जा सके।
- पर्यटन स्थलों में निजी उद्यमियों के निवेश को और अधिक प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे पर्यटकों हेतु आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध करवाया जाना संभव हो सके।
- विदेशी नागरिकों की सुरक्षा हेतु विशेष सुरक्षा कानून बनाए जाने चाहिए, जिससे की विदेशी नागरिकों के साथ होने वाली अमानवीय घटनाओं पर रोक लगायी जा सके।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन के पश्चात् निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

- भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान करने में भारतीय पर्यटन उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- भारतीय पर्यटन उद्योग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से देश में रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न करता है।
- भारतीय पर्यटन उद्योग अपने साथ अन्य क्षेत्रों से संबंधित उद्योग जैसे - शिक्षा एवं चिकित्सा, यात्रा एवं परिवहन, होटल व्यवसाय, वस्त्र उद्योग एवं अन्य कई घरेलु उद्योगों के विकास में भी सहायक होता है।
- भारतीय पर्यटन उद्योग जटिल वीजा प्रक्रिया, आधारभूत सुविधाओं का अभाव, आतंकवाद, विदेशी नागरिकों की असुरक्षा, कर्मचारियों में पर्याप्त कौशल की कमी, पर्यटन स्थलों के पर्याप्त प्रचार-प्रसार की कमी जैसी अनेक समस्याओं से ग्रसित है जिससे इस उद्योग का विकास अवरूद्ध हो रहा है।
- यह उद्योग रोजगार सृजन के साथ ही राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

उपसंहार

भारतीय पर्यटन उद्योग वृहद सेवा उन्मुखी क्षेत्र है, जो सकल राजस्व और विदेशी मुद्रा अर्जन का मुख्य स्त्रोत है। यह उद्योग देश में रोजगार सृजन के नवीन मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देश के आर्थिक विकास में भी पर्यटन उद्योग महत्वपूर्ण है। इस उद्योग के माध्यम से दूर-दराज के इलाकों में रहने वाले लोगों को भी रोजगार के नवीन अवसर प्राप्त होते हैं, परंतु यह उद्योग भी अनेक वैधानिक, सामाजिक, तकनीकी एवं वित्तीय समस्याओं से ग्रसित है जो इसके विकास में बाधक है। भारत सरकार द्वारा पर्यटन उद्योग को विकसित करने हेतु निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं, परंतु ये प्रयास पर्याप्त नहीं है। भारतीय पर्यटन उद्योग को विकसित करने हेतु इसमें निजी क्षेत्र की सहभागिता वर्तमान समय की माँग है जिससे कि इस उद्योग की समस्याओं को दूर किया जा सके। पर्यटन उद्योग में निजी क्षेत्र की भागीदारी से देश की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत को मजबूती प्रदान होगी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आय एवं रोजगार के नवीन अवसरों के साथ ही सकारात्मक आर्थिक परिणामों का भी जन्म होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Naveen kumar, T.G. and Dr. Binoy, T.A., 2017, “An Analytical study on contributions of Tourism Industry in India.”, International Journal of current research, July, Vol. 9, Issue 7 page No. 53706-53710.
- Dr. Subhash, T., 2015, “Tourism in India : Potentials, challenges and opportunities”, IJRAR – International Journal of Research and Analytical Reviews, Oct.-Dec., Vol. 2 Issue 4, Page No. 8-18.
- Dr. Vethirajan, C. and Nagavalli, S., 2014,” Trends and growth of tourism sector in India- A research perspective”, PARIPEX-Indian Journal of Research, November, Vol. 3, Issue-11, Page No. 9-11.
- https://www.uttamhindu.com
- https://www.pakheru.com
- https://www.drishtiias.com
- https://tourism.gov.in
- https://www.jagrankosh.com
- https://dhyeyaias.com
- पर्यटन मंत्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन

कविता के प्रतिमान और रामविलास शर्मा

आलोक कुमार सिंह

1/220-ए, साकेत कॉलोनी, सुरेन्द्र नगर, अलीगढ़-202001

कवि चिंतक विजेंद्रजी ने रामविलास शर्मा से काव्य प्रतिमानों पर एक बातचीत की थी। जिसमें उन्होंने पूछा था कि “जैसे रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी, जायसी और सूर की कविता पर विस्तार से लिखा कविता के सामान्य प्रतिमान बनाने की चेष्टा की है, उसी प्रकार क्या आपने भी ‘निराला की साहित्य साधना’ लिख कविता के सामान्य प्रतिमान रचे हैं? अगर ऐसा है तो शुक्ल जी और आपके काव्य प्रतिमानों में बुनियादी अंतर क्या है?'' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए रामविलास जी ने कहा कि शुक्ल जी ने तुलसी, जायसी और सूर की कविता पर विस्तार से लिखते हुए जो सामान्य प्रतिमान उपस्थित किए हैं, वे बहुत मूल्यवान नहीं हैं। जैसे लोकमंगल की भावना, यह एक ऐसी गोल-मोल चीज है जो जायसी में भी है, सूर में भी है और तुलसी में भी है। बल्कि और बहुत से कवियों में भी है। अब देखना यह चाहिए कि शुक्ल जी जायसी, सूर और तुलसी की विशिष्ट आलोचना करते हैं, वहां उनका ध्यान काव्य पर होता है। प्रतिमान पीछे छूट जाते हैं। इसलिए महत्वपूर्ण चीज यह है कि कोई भी आलोचक काव्य को ग्रहण कैसे करता है। “काव्य-रचना में चेतन मन का जो योगदान होता है, उससे कहीं ज्यादा योगदान उपचेतन का होता है। चेतन मन को तो पहचानते हैं, हालांकि पूरी तरह उसको भी नहीं पहचानते। कवि अपने बारे में जो सोचते हैं, वह सही सोचते हों, आवश्यक नहीं। वे अपने बारे में क्या कहते हैं, सबसे ज्यादा भ्रामक वही होता है। उपचेतन किधर ले जा रहा है, यह बात कवि हमेशा समझता नहीं। जिसको वह इंसपिरेशन (भावावेश) कहता है, वह उपचेतन की क्रिया है। जिस दिन कवि उपचेतन की क्रिया को नियंत्रित (कंट्रोल) कर लेगा, उस दिन वह काव्य-रचना के नियम बना लेगा। लेकिन अभी तक कोई ऐसा महाकवि पैदा नहीं हुआ जो कहे, उपचेतन अब मेरे नियंत्रण में है। जब मैं चाबी घुमाऊंगा, बोलना शुरू कर दूंगा, महाकाव्य रचने लगूंगा। ऐसा होता नहीं। उपचेतन जब तक अपने नियंत्रण में नहीं है, तब तक काव्य के जितने भी नियम रचते रहो, वे आंशिक रूप से सत्य हो सकते हैं। पूर्ण सत्य नहीं। यह बात कवियों पर जितनी लागू होती है, उतनी ही आलोचकों पर भी लागू होती है। केवल कविता में ही उपचेतन सक्रिय नहीं होता; आलोचक का भी उपचेतन सक्रिय होता है। और किसी कवि के साथ, यानी उसके काव्य के साथ आप दशकों तक रहे हैं, आपकी दृष्टि बदलती रही है, आप उसको और गहराई से जांचते रहे हैं, आपका अनुभव जितना ही समृद्ध हुआ है, उतना ही उसकी कविता में आपको वे चीजें दिखाई देंगी जो पहले आपकी पकड़ में न आती थीं। उपचेतन की भूमिका पर अगर ध्यान दें तो सामान्य प्रतिमानों की बात हमें अधूरी और अप्रासंगिक लगेगी।''[1] रामविलास जी अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं कि 'मेरे लिए प्रत्येक पुस्तक एक नई तरह का अनुसंधान है। निराला पर मैंने पहली पुस्तक (निराला) लिखी वह एक तरह का अनुसंधान था। और जब 'निराला की साहित्य साधना' लिखी तो वह बिल्कुल दूसरी तरह का अनुसंधान था। कई जगह मुझे आश्चर्य होता था कि यह बात मुझसे छूट कैसे गई। यह बात मुझे पहले कैसे नहीं दिखाई दी। अब हम उसे प्रतिमान से कैसे सिद्ध करें? प्रतिमान होता तो वहां पर भी ठीक होता, यहां पर भी ठीक होता। निराला की अलोचना में अगर कोई विकास दिखाई दे तो समझ लीजिए कि प्रतिमान पीछे छूटते जा रहे हैं, कुछ नया दिखाई दे रहा है साहित्य में जो पहले नहीं था।'[2] कविता के सामान्य प्रतिमान रचने का प्रयत्न रामविलास जी ने कभी नहीं किया। यह अवश्य है कि वाद-विवाद में जहां भाववादियों ने आक्रमण किए, वहां उन्होंने भौतिकवाद का समर्थन किया, भौतिकवादी जीवन-दृष्टि का समर्थन किया। लेकिन यह वे बराबर मानते रहे कि इन सिद्धांतों के आधार पर कवियों की व्याख्या पूरी तरह से नहीं की जा सकती। वहां काव्य को देखना पड़ेगा, काव्य पर दृष्टि जमानी पड़ेगी। समझना पडेघ्गा कि इसके अपने नियम क्या हैं। उस काव्य के नियम, उसका जो मर्म है, उसको पहचानना, यह आसान काम नहीं होता।'[3]

लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'नई कविता के प्रतिमान' (1957) और नामवर सिंह ने 'कविता के नए प्रतिमान' (1968) पुस्तक लिखकर कविता के प्रतिमान निश्चित करने का प्रयास किया। इन दोनों पुस्तकों का नामोल्लेख करते हुए रामविलास जी ने कहा कि ये सब उनके लिए महत्वपूर्ण है जो प्रतिमानों को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। हमारे लिए प्रतिमान जो हैं, वे मुख्य भूमि नहीं। आलोचना की अग्रभूमि में उनकी प्रतिष्ठा नहीं है। हम आलोचक के सहज बोध पर, उसके भावबोध पर बहुत जोर देते हैं। जहां तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संबंध है, वह सामाजिक परिस्थितियों को साहित्य से जोड़कर देखने तक सीमित है। और समाज के साथ साहित्य कैसे बदलता है, यह बात समझने की है। इसको अगर और गहराई से लागू करें तो मनुष्य का सौंदर्यबोध कैसे बदलता है, इस बात को देखना चाहिए। एक ही समाज, एक ही युग के अंदर, विभिन्न वर्गों का भावबोध कैसे एक-दूसरे से अलग होता है, इस बात को पहचानना चाहिए। ये तमाम चीजें विवेचन में मदद करती हैं। ये मोटे-मोटे सूत्र हैं, उनको प्रतिमान कहना ठीक न होगा। जो लोग यह समझते हैं कि नई कविता आई तो वह अपने साथ प्रतिमान लेकर भी आई है, वे बहुत बड़ी भूल करते है। माना कि 'काव्य सिद्धांत मनुष्य की मदद करते हैं। आलोचक की मदद करते हैं-यह मदद बहुत सीमित है। हर अच्छी आलोचना मूलत: नए ढंग से रचनात्मक होती है, कुछ नया अनुभव, नई दृष्टि लेकर आती है। और अगर आलोचना ऐसा नहीं करती-वह केवल पुराने प्रतिमानों को या नए प्रतिमानों को कविता पर लागू करती जाती है-मेरी दृष्टि से वह आलोचना यांत्रिक है। वह रचनात्मक आलोचना नहीं है।'[4]

ऐसा नहीं है कि कविता के प्रतिमान कहीं पर एकत्रित हैं। जिनके आधार पर हम साहित्य की परख कर सकें। इस तरह की गलती रीतिवादी करते हैं और कुछ मार्क्सवादी भी करते हैं। ''वे समझते हैं मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र में सब नियम लिखे हुए हैं। उनको गोर्की पर फिट कर दो। उनको तोल्सतोय पर फिट कर दो। फिर निष्कर्ष निकाल लो और मार्क्सवादी आलोचना विकसित हो जाएगी। चाहे जितने ही प्रतिमान निर्धारित करो तुम सही ढंग से किसी कविता की व्याख्या नहीं कर सकते। निश्चित प्रतिमानों के आधार पर काव्य की व्याख्या कोई कर नहीं सकता।''[5]

मिसाल के तौर पर लेनिन ने जो तोल्सतोय पर लेख लिखे हैं, उन्हें लें। इन लेखों को पढ़ने के बाद एक चीज पकड़ में आती है कि लेनिन बार-बार तोल्सतोय की 'शक्तिमत्ता' की प्रशंसा करते हैं। रूसी किसानों पर तोल्सतोय से पहले भी लिखा गया और बाद में भी लिखा गया। ''लेकिन जितनी शक्ति के साथ, जितनी गहराई से, वे (तोल्सतोय) सारी चीज को अनुभव करते हैं, और जितने जोरदार ढंग से उसको चित्रित करते हैं, इस सबसे वे महान कलाकार बनते हैं। इस 'शक्तिमत्ता' को किस प्रतिमान से नापेंगे? सौंदर्य में जो उदात्त है-

प्रिय यामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण-मुख तरुण अनुरागी।

इसके लिए लाओ प्रतिमान और कहो यह छ: इंच ऊंचा है सामान्य सौंदर्यबोध से। और रवींद्रनाथ का- 'अहा जागि पोहालो विभावरी' अब कहो यह बारह इंच ऊंचा है। यह तुम कैसे सिद्ध करोगे? साहित्य में जो 'शक्तिमत्ता', जो सौंदर्यबोध है, जो भावबोध है, जहां अनुभव की गहराई है, जहां विचार, इंद्रियबोध और भावबोध सब मिल जाते हैं और भाषा के साथ पूरे शिल्प को संवारते हैं, दरअसल उसको पकड़ पाना ही बहुत मुश्किल है, उसकी व्याख्या करना तो और भी दुश्कर है।''[6]

रामविलास जी का स्पष्ट मानना है कि न तो रामचंद शुक्ल ने, न ही हजारीप्रसाद द्विवेदी ने, और न ही किसी अन्य ने ही कोई प्रतिमान स्थापित किया। ''हम साहित्य की दुनिया में चीज को समझने की कोशिश करते हैं। देखते हैं यह चीज हमारे हृदय को कहां तक प्रभावित करती है। यानी आलोचना एक तरह का आत्मबोध है। आपका सहजबोध उसको कहां तक ग्रहण करता है, यह देखना है। आप प्रतिमानों के आधार पर जो विश्लेषण करते हैं, वह आम तौर पर कुछ मोटी-मोटी बातों को लेकर होता है। जैसे कथावस्तु, विषय वस्तु, सामाजिक परिस्थितियां बगैरह, या फिर आदि, मध्य, अंत, अरस्तू की तरह से, या फिर सात कांड हैं, सात कांडों में कितनी पंक्तियां हैं, और शुरू का हिस्सा बहुत बड़ा है, बीच का हिस्सा बहुत छोटा है, आखिरी हिस्सा बड़ा है आदि बातें, इस तरह का विश्लेषण करके आप चलते हैं। या यह अमुक अलंकार है या भाषा का विश्लेषण किया तो इसमें इतने तद्भव हैं, इतने तत्सम हैं। इससे आप क्या समझते हैं? इससे कला की शक्ति का परिचय कैसे मिलता है? कला की प्रभावशीलता क्या है? कला क्यों और कैसे प्रभावशाली होती है, कहां प्रभावशाली होती है? और बहुत-सी बातें हैं। अगर आप इनकी व्याख्या नहीं कर सकते तो आपके प्रतिमान व्यर्थ हैं।''[7]

रामविलास जी अंग्रेजी आलोचना का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अंग्रेजी की व्यावहारिक आलोचना बहुत विकसित है। बहुत शक्तिशाली है। लेकिन अंग्रेजी में सिद्धांतकार कम हैं। और यह कोई भी नहीं कहता कि अंग्रेजी में अच्छी आलोचना नहीं है। एक बात भारत और इंग्लैंड पर समान रूप से लागू होती है, वह है ''काव्य के बारे में, साहित्यशास्त्र के बारे में, जो सबसे बढिघ्या बातें कही हैं, वह आलोचकों ने नहीं कहीं। कवियों ने कही हैं। जैसे-

हृदय सिन्धु मति सीप समाना,
स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जो बरखै बर बारि विचारू
हों हि कबित मुक्तामनि चारू।

'हृदय सिंधु' यह आपका भावबोध है। 'मति सीप समाना' यह आपका बुद्धि तत्व है। तुलसीदास बुद्धि तत्व को भाव तत्व से जोड़ते हैं। 'हृदय सिंधु मति सीप समाना', 'स्वाती सारदा कहहिं सुजाना'। स्वाति नक्षत्र में पानी बरसता है, यह भावावेश है। यह इंसपिरेशन है। आपके कहने से सरस्वती कृपा न करेगी। भाव आएंगे तो आएंगे। उस समय आप कविता रच लीजिए मूड हो तो, अन्यथा आपकी कविता मारी जाएगी। 'स्वाती सारदा कहहिं सुजाना' सारदा जो हैं वही स्थिति नक्षत्र है। साहित्य विचार विहीन नहीं होता लेकिन विचार भाव से जुड़ा होता है। 'जो बरखै बर बारि बिचारू' श्रेष्ठ विचारों की जब वर्षा होती है, 'होहिं कबित मुक्तामनि चारू।'

रामविलास जी पूछते हैं कि क्या किसी रीतिवादी ने ऐसा साहित्यशास्त्र रचा है? ''यहां तुलसीदास ने दो चौपाइयों में सब कुछ कह दिया है। काव्य प्रतिमानों की बात छोड़ दीजिए। कवियों ने जो काव्य के बारे में कहा है, मिल्टन ने कहा और शेली ने कहा है, गद्य-पद्य में कहा है, और कीट्स ने अपने पत्रों में और कविता में बहुत अच्छा कहा है, वर्ड्स्वर्थ ने अपनी भूमिकाओं में कहा है, उन सबको आप समेट लीजिए। अपने यहां सबसे पहले आदि कवि वाल्मीकि ने कहा है- 'शोक: श्लोकत्वभागत:' अर्थात् शोक ही श्लोक बन गया। आप इनको देखिए और समझिए, गुनिए। ये लोक कवि हैं, ये काव्य को भीतर से देखते हैं, उसकी गहराई को पहचानते हैं, वह कितना संश्लिष्ट है, कितना पेचीदा है, इस बात को पहचानते हैं।''[9]

लेकिन ''प्रतिमान स्थापित करना आसान है, उसे काव्य पर लागू करना बहुत कठिन है। ये प्रतिमान आम तौर पर काव्य से असम्बद्ध होते हैं। ये बहुत ही सतही ढंग से स्थापित किए जाते हैं। आप (रामचंद्र शुक्ल की) 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका पढ़ लीजिए। उसका बहुत महत्व है। 'तुलसीदास' से अच्छी पुस्तक उनकी 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका है। 'तुलसीदास' पुस्तक में वे बहुत सजग हैं। यह उनकी पहले की पुस्तक है। वे बता रहे हैं दूसरों को। और तुसली के राम को लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे हैं। जायसी के साथ ऐसा कुछ नहीं है। हां, जायसी की भाषा उन्हें बहुत मीठी लगती है। वे यहां तक कह गए हैं कि जायसी की भाषा खालिस है, तुलसीदास की भाषा में ठेठ अवधी की मधुरता प्रसंग के अनुसार जगह-जगह है।''[10]

रामविलास जी आगे कहते हैं कि ''जायसी की भाषा की मिठास को पहचानने का प्रतिमान शुक्ल जी तो नहीं रच गए। मां-बेटे का प्यार, आप इसे किस प्रतिमान से नापेंगे? वैसे ही भाषा की मिठास है। भाषा के प्रति आपकी जो निष्ठा है, जो आसक्ति है, उसके लिए लोग जो जान देते हैं, वह मिठास वहां उद्‌घाटित होती है। यह प्रेम की बात है, स्नेह की बात है, निष्ठा की बात है। जिसमें निष्ठा नहीं, स्नेह नहीं, वह कवि तो हो ही नहीं सकता। वह अच्छा आलोचक भी नहीं हो सकता।''[11]

रामविलास शर्मा और रामचंद्र शुक्ल के विवेचन में बहुत अंतर है। और ''यह जो अंतर है, वह विवेचन का अंतर है, प्रतिमानों का अंतर नहीं है। यहां हम जो चीज पकड़ते हैं, वह शुक्ल जी छोड़ देते हैं। हो सकता है, शुक्ल जी ने जो चीज पकड़ी हो, उसे हम छोड़ दें। काव्य में जो चीजे हम ढूंढ रहे हैं, वह शायद शुक्ल जी न ढूंढ रहे हों। बुनियादी समानता यह है कि शुक्ल जी मनुष्य के इंद्रियबोध को, विचारबोध को और उसके भावबोध को-तीनों को समिष्ट के रूप में देखते हैं। तीनों को मिलाकर देखते हैं। यह बुनियादी समानता है। इसीलिए मैं (रामविलास शर्मा) उनको (शुक्ल जी को) मूलत: भौतिकवादी आलोचक मानता हूं। सिद्धांत रूप में यह सूत्र उनके पास है। लेकिन जब वह लोगों की आलोचना करते हैं-जायसी की अन्य की-तब उनमें जो विवेकवादी है, वह अक्सर ऊपर आता है। तब वह तर्क से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जैसे इंद्रियबोध की बात है। तो आप इस बात का पता लगाएं कि शुक्ल जी ने जायसी या तुलसी या सूर के इंद्रियबोध के बारे में क्या और कितना कहा है। उन्होंने निराला के इंद्रियबोध के बार में बहुत नहीं लिखा है। तो यह अंतर आप देख सकते हैं कि बुनियाद एक ही है इंद्रियबोध, भावबोध और विचारबोध-इनके साथ

शिल्प वगैरह ये सारी चीजें हैं। साथ ही शिल्प सज्जा है। संरचना है। संरचना पर 'निराला की साहित्य साधना', खंड-2 में अधिक ध्यान दिया है। निराला की 'तुलसीदास' का शिल्प-विधान कैसा है? 'राम की शक्ति पूजा' का शिल्प विधान कैसा है? इस बात पर मेरा ध्यान गया था शेक्सपियर के नाटक पढ़ते-पढ़ाते हुए। मैं देखता था शेक्सपियर के नाटकों में पहले अंक में एक तरह का घनत्व होता है। दूसरे अंक में, दूसरे ढंग का। तीसरे अंक में चरम सीमा। चौथे अंक में घनत्व उतार पर होता है। पांचवें अंक में थोड़ा-सा और उत्थान होता है और फिर यहां नाटक की परिणति होती है। इससे मैंने सूत्र पकड़ा कि कथावस्तु में यहां पर आदि है, मध्य है, और अंत है-यह तो यांत्रिक रूप से बात होती है। काव्य में मुख्य बात है भाव का घनत्व अथवा प्रभाव का घनत्व। उसका विवरण कवि कविता में किस तरह करता है। 'राम की शक्ति-पूजा' इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। इसमें आप बीस, चालीस, पचास पंक्तियों के बंध उसके देखें। फिर आप अपने ऊपर उसके प्रभाव को देखें कि आपके ऊपर जो प्रभाव पड़ता है, वह कैसे घटता-बढ़ता है। संरचना में यह बहुत महत्वपूर्ण चीज है। निराला की विशेषता यह है कि वह छोटे-छोटे गीतों में भी संरचना का आनंद पैदा करते हैं। उत्थान पैदा करते हैं। भाव को उठाना-गिराना-ये तमाम चीजें। इसको वह कहते थे कि, 'मैं कविता का नक्शा बनाता हूं'। यह कविता की संरचना को पकड़ना है। यह बहुत जरूरी है।''[12]

और अंत में अमृतलाल नागर और रामविलास जी के दो पत्रों का उल्लेख कर इस लेख का समापन करता हूं। अमृतलाल नागर ने 16 फरवरी, 1957 को रामविलास शर्मा को पत्र लिखा था। इस पत्र में नागर जी रामविलास जी को उपन्यास आलोचना के मानदंड स्थापित करने की सलाह देते हुए लिखते हैं, ''मेरी यह राय है कि तुम एक एक कर उपन्यासों का सत्परीक्षण कर डालो। प्रोज साहित्य की समालोचना का कोई मानदंड ही नहीं स्थापित हुआ, कविता का तो फिर भी है। यह तुम्हारे बस का ही है।.... उपन्यासों की आलोचना के लिए इस वास्ते कह रहा हूं कि मानदंड स्थापित हो जाय तो आपाधापी बंद हो साथ ही आलोचना के नाम सम्मतियों के दिन लद जाएं।'' इस पत्र के उत्तर में रामविलास जी 28 फरवरी, 1957 को नागर जी को लिखते हैं, "मित्र, आलोचनाएं बदलती रहती हैं, कलाकृति अडिग रहती है। शेक्सपियर-संबंधी तीन सौ साल की आलोचना पर नजर डालकर इसी नतीजे पर पहुंचा हूं। शोहरत और बात है। सच्ची परख तो कुछ शताब्दियों में ही होती है। साहित्य में ही नहीं विज्ञान में भी।'' इसलिए कहा जा सकता है कि प्रतिमानों के हिसाब से न तो साहित्य रचा जा सकता है और न ही उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। यह तो प्रतिभा और विवेक की चीज है।

संदर्भ

1. मेरे साक्षात्कार, रामविलास शर्मा, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1994, पृ-298-99
2. वही, पृ-299
3. वही
4. वही, पृ-301
5. वही, पृ-193
6. वही, पृ-193-94
7. वही, पृ-194
8. वही, पृ-194-95
9. वही, पृ-195
10. वही, पृ-195-96
11. वही, पृ-196
12. वही, पृ-299-300
13. अत्रकुशलं तत्रास्तु, संपा-विजयमोहन शर्मा और शरद नागर, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004, पृ-100
14. वही

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन

बृजेश कुमार यादव

(शोध छात्र) शिक्षक शिक्षा संकाय, तिलकधारी सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय जौनपुर

डॉ० बीना सिंह

(एसोसिएट प्रोफेसर) शिक्षक शिक्षा संकाय, तिलकधारी सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय जौनपुर

सारांश -

यह सर्वविदित व सर्वव्यापी सत्य है कि शिक्षा के बिना विकास सम्भव नहीं है। इसमें समायोजन के साथ-साथ व्यक्तित्व विकास भी अति आवश्यक है।

शिक्षा व व्यक्तित्व का साथ हमेशा चोली दामन का रहा है। जहाँ शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का विकास सम्भव है वहीं विकसित व्यक्तित्व शिक्षा को व्यापक बनाता है। जिससे निष्कर्ष यह निकलता है कि शिक्षा व व्यक्तित्व से समाज का सम्पूर्ण विकास होता है।

प्रस्तावना-

शिक्षा किसी भी समाज के विकास का सबसे महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। विश्व के सभी देशों के मानव संसाधन के विकास व व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका माना गया है। शिक्षा एक ऐसा प्रेरणा स्त्रोत है जिसमें न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। बल्कि उसमें आत्मविश्वास व चुनौती का सामना करने की समझ भी विकसित होती है।

जन्म के समय बालक पशुवत आचरण करता है। उस समय वह अपनी मूल प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कार्य करता है।शिक्षा उसकी इन प्रवृत्तियों का उचित मार्गदर्शन करके उसे परिपक्वता प्रदान करती है और उसके क्रिया-कलापों को उचित और समाजोपयोगी बनाती है।

अतः शिक्षा का मानव जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा में व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षा व व्यक्तित्व मानव व्यवहार के एक सिक्के के दो पहलू हैं। व्यक्तित्व को सामान्यतः व्यक्ति के शारीरिक व्यवहार कुशलता, एवं पद गौरव के रूप देखा व समझा जाता है।

परन्तु वास्तव में व्यक्तित्व इससे कुछ अधिक होता है। व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या मुख्य रूप से दार्शनिकों, मानव-शास्त्रियों, समाज शास्त्रियों, एवं मनोवैज्ञानिकों ने की है।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थ वेद और वेद पर आधारित उपनिषद में मनुष्य के व्यक्तित्व को उनके शरीर मन और आत्मा के विकास के रूप में स्वीकार किया गया है।

उपनिषदों में व्यक्तित्व को भौतिक आत्म (अन्यमय और प्राणमय कोश) मानसिक आत्म (मनोमय और विज्ञानमय कोश) और आध्यात्मिक आत्म-(आनन्दमय कोश) का योग माना जाता है।

मार्टिन प्रिंस ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के समस्त जैविक जन्मजात संस्थानों, आवेगों, प्रवृत्तियों, अभिक्षमताओं मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों के द्वारा वर्णित संस्कारों व प्रवृत्तियों का योग माना है।

आलपोर्ट–''व्यक्तित्व व्यक्ति के उन मनोदैहिक तन्त्रों का आन्तरिक गत्यात्मक संगठन है, जो उसके विशिष्ट व्यवहार एवं चिन्तन को निर्धारित करते हैं''

वुडवर्थ–ने ''व्यक्तित्व को व्यक्ति के व्यवहार के समग्र–गुण के रूप में व्यापक रूप से परिभाषित कर सकते हैं।''

भाटिया साहब– ने लिखा है कि हम कान्तों को व्यक्तित्व से विभूषित नहीं करते और यहां तक की एक छोटे से बच्चे से भी व्यक्तित्व परिचय का भाव उदय न होने पर व्यक्तित्व जैसी वस्तु नहीं होती।

शेट्टी (1991)– ने अपना अध्ययन कृषि विश्वविद्यालयों के व्यक्तित्व कारकों में सर्जनात्मकता के संबंध पर किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि 20–21 वर्ष के छात्र मध्यम वर्ग, मध्यम शैक्षणिक उपलब्धि वाले हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं। मध्यम स्तर के समूह का सृजनात्मक स्तर कम है।

सुधीर (1997) – ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के बीच रचनात्मक तथा व्यक्तित्व की विशेषताओं के बीच सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए अनुसंधान किया। उन्होंने पाया कि उच्च रचनात्मकता वाले लड़के तथा उच्च रचनात्मकता वाली लड़कियों के बीच कैटल के व्यक्तित्व घटकों में सार्थक अन्तर पाया गया।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व –

मनोवैज्ञानिकों ने यह तथ्य उजागर किया है कि जिस व्यक्ति में समायोजन की क्षमता जितनी अच्छी होती है उनका व्यक्तित्व भी उतना ही अच्छा होता है।

अब सभी देश के शिक्षा आयोजक शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय इस तथ्य को सामने रखते हैं कि बालक के व्यक्तित्व के विकास को कैसे विकसित किया जाए।

इसलिए स्कूल के शिक्षण पाठ्यक्रम में व्यक्तित्व विकास के आयाम पर विशेष ध्यान दिया जाता है। जिसमें स्नातक स्तर के विद्यार्थियों पर बल दिया जाता है क्योंकि इस स्तर के विद्यार्थियों में परिपक्वता के साथ स्थिरता भी बनी रहती है।

यह बात सही है कि स्थिरता व्यक्तित्व का विशेष गुण नहीं है फिर भी अत्यधिक विचलनशीलता व्यक्तित्व का गुण भी नहीं है।

हम जानते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का बड़ा ही महत्व होता है पर इन क्रियाओं में शिक्षार्थी तभी भाग लेते हैं जब शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है।

स्नातक स्तर पर छात्र व छात्रा युवावस्था के स्तर पर होते हैं जिसमें इनकी मित्र मंडली परिवार, समाज से जुड़ाव सीधा होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इनके व्यक्तित्व के उचित विकास से मित्र मण्डली, परिवार, समाज आदि के व्यक्तित्व के विकास में उत्तरोत्तर बृद्धि होगी।

उद्देश्य –

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना–

स्नातक स्तर के अध्ययनरत छात्र व छात्रा के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर पाया जायेगा।

परिसीमांकन–

शोध कार्य हेतु वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों में से छह महाविद्यालय को न्यादर्श हेतु चयन किया गया।

इन महाविद्यालयों में से 60 छात्रों (30 छात्र व 30 छात्राओं) को न्यायदर्श के रूप में चुना गया है।

अध्ययन विधि -

शोध हेतु अनुसूचि विधि एवं अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण -

प्रस्तुत शोध में स्नातक स्तर पर छात्रों के व्यक्तित्व मापन हेतु यशवीर सिंह व हरमोहन सिंह द्वारा निर्मित व्यक्तित्व मापनी अनुसूची का उपयोग किया गया है।

क्र0 सं0	महाविद्यालय का नाम	छात्रों की संख्या	प्रदत्त संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक मूल्य	t परीक्षण	परिणाम
1.	तिलकधारी सिंह स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, जौनपुर	5 + 5 = 10	छात्र = 30	16.66	11.00	16.45	सार्थक अन्तर पाया गया।
2.	राजा श्रीकृष्णदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय	5 + 5 = 10					
3.	राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर	5 + 5 = 10					
4.	श्री गणेशराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर	5 + 5 = 10	छात्रा = 30	1	13.66		
5.	कुटीर स्नातकोत्तर महावि0, चक्के, जौनपुर	5 + 5 = 10					
6.	सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर	5 + 5 = 10					

परिणाम व विश्लेषण:-

प्रस्तुत लघु शोध में पूर्वांचल विश्वविद्यालय के चयनित महाविद्यालय में अध्ययनरत स्नातक स्तर में कला वर्ग के विद्यार्थियों के व्यक्त्वि सम्बन्धी आकड़ों को व्यवस्थित करने के पश्चात् उसका मध्यमान, प्रमाणित विचलन ज्ञात कर इनके व्यक्तित्व का सार्थकता

की जाँच टी-परीक्षण द्वारा किया गया, जिसे निम्न तालिका (जो पीछे पेज में है) प्रदर्शित किया गया है।

उपर्युक्त तालिका के आंकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि कत्रि58के लिये टी-परीक्षण तालिका मान 0.01 विश्वास स्तर पर सार्थक है। फलस्वरूप प्रतिपादित परिकल्पना स्वीकृत होती है। अतः स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र-छात्रों के व्यक्तित्व में सार्थक अन्तर पाया गया।

सुझाव -

1. छात्रों को पढ़ाये जाने वाले विषय और सिखाये जाने वाली क्रियाओं से व्यक्ति्व का विकास जुड़ा होना चाहिए।
2. जीवन के लिए उपयोगी तथ्यों एवम् क्रियाओं को सीखने में उनकी रूची स्वाभाविक रूप से विकसित होगी।
3. स्नातक स्तर पर विकसित व्यक्तित्व से कुशल नेतृत्व का विकास होता है।
4. शिक्षण व्यवसाय में विकसित व्यक्तित्व प्रभावशाली अध्यापन की भूमिका निभाएगा।
5. स्नातक स्तर पर विकसित व्यक्तित्व से छात्रों में कुशल व नवभारत निर्माण में सहायक होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तोमर लज्जाराम (2016)- भारत में व्यक्तित्व विकास, प्रकाशन नई दिल्ली।
2. पाठक पी0 डी0 (2014) - शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
3. इण्टरडिस्लेप्लेनरी जर्नल ऑफ कस्टम प्रेयरी रिसर्च, जुलाई (2016)।
4. इण्टरनेट साइट्स।
5. शर्मा, आर0 ए0 (2006): शिक्षा शोध, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ0 99.
6. शर्मा, आर0 ए0 (2006): शिक्षा शोध, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ0 100.
7. R.B. Cattel (1950) : Personality, Mc Graw Hill Book Co., New York.
8. H.J. Eysenck (1953) : The Structure of Human Personality. Methuen and Co. Ltd. Lonon, p. 2.

वर्तमान युग में योग का महत्त्व

डॉ० रीटा खन्ना

मकान नं. 2413, वार्ड 30, श्रीनगर कॉलोनी, रोहतक (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

आज मानव ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। इस आधुनिक युग को विज्ञान का युग कहा है। आज विज्ञान के आधार पर देश में इतनी अधिक उन्नति की जा रही है कि पूर्व की समस्त बातों को भूलाया जा रहा है तथा एक ऐसे नवीन समाज का निर्माण करने की ओर बल दिया जा रहा है। जिसमें पूर्ण रूप से नवीनता का समावेश विकसित हो। जहां आधुनिक युग को विज्ञान कहा है, वहां प्रदूषण को भी विज्ञान की देन कहा है। विज्ञान निर्मित वाहनों तथा मशीनों के द्वारा आज देश में बहुत अधिक प्रदूषण फैलता जा रहा है, जिससे समस्त मानव जीवन प्रभावित हो रहा है। आज हर मानव में धन-सम्पत्ति पाने की इतनी अधिक लालसा उत्पन्न हो रही है कि वे अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दे पा रहे। जिसके कारण आज का समस्त मानव तनाव ग्रस्त हो रहा है। जिससे आज वह भली-भांति उन्नति नहीं कर पा रहा है।

मुख्य-शब्द: रोग-प्रतिरोधक क्षमता, योग-साधना, ध्यान, धारणा, समाधि।

आज मानव ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। इस आधुनिक युग को विज्ञान का युग कहा है। आज विज्ञान के आधार पर देश में इतनी अधिक उन्नति की जा रही है कि पूर्व की समस्त बातों को भूलाया जा रहा है तथा एक ऐसे नवीन समाज का निर्माण करने की ओर बल दिया जा रहा है। जिसमें पूर्ण रूप से नवीनता का समावेश विकसित हो।

जहां आधुनिक युग को विज्ञान कहा है, वहां प्रदूषण को भी विज्ञान की देन कहा है। विज्ञान निर्मित वाहनों तथा मशीनों के द्वारा आज देश में बहुत अधिक प्रदूषण फैलता जा रहा है, जिससे समस्त मानव जीवन प्रभावित हो रहा है। आज हर मानव में धन-सम्पत्ति पाने की इतनी अधिक लालसा उत्पन्न हो रही है कि वे अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दे पा रहे। जिसके कारण आज का समस्त मानव तनाव ग्रस्त हो रहा है। जिससे आज वह भली-भांति उन्नति नहीं कर पा रहा है।[1]

आज जीवन किसी भी प्रकार से सरल नहीं है। विकास के साथ-साथ मनुष्य के जीवन में आने वाली कठिनाईयाँ भी बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गई है। इस प्रकार के तनावपूर्ण वातावरण में एक व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इस तरह का वातावरण ही शायद आज बढ़ती हुई आत्महत्याओं की घटनाओं का मुख्य कारण है। आज शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसका मन सभी प्रकार की परेशानियों तथा कठिनाईयों से रहित होगा। मनुष्य अपने मन को विभिन्न प्रकार की कठिनाईयों तथा परेशानियों से मुक्त रखने के लिए योग का उपयुक्त साधन मानता है। यह एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से मनुष्य विभिन्न प्रकार के क्लेशों से युक्त हो जाता है और वास्तविक आनन्द को प्राप्त करता है।[2]

विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्र मिलकर विश्व शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, लेकिन यह शान्ति कैसे प्राप्त हो, इस बात को लेकर सभी चिंता की स्थिति में है। सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि के आधार पर इसके लिए चिन्तन करते हैं, परन्तु इसके लिए सर्वसम्मत मार्ग नहीं निकाल पाते। कोई कहता है कि जिस दिन इस धरती पर इस्लाम धर्म होगा, उस दिन सभी सुखी हो जायेंगे, तो कोई कहता है कि यदि सभी महावीर (बुद्ध) की शरण में आ जाएं, तो सभी जगह सुख और शान्ति हो जायेगी। भारत में ऐसे मन्तपन्थों, सम्प्रदायों एवं गुरुओं की भरमार है और सभी यही दावा करते है कि उनके पथ पर चलकर ही विश्व में सुख-शान्ति सम्भव हैं लेकिन इन सबकी अपनी-अपनी सीमाएं है। इन्हीं मत-पन्थों एवं तथाकथित धर्मों की एकछत्र स्थापना हेतु ही खूनी संघर्ष भी हुए, परन्तु परिणाम

कुछ भी नहीं निकला बल्कि अशान्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जहां एक ओर व्यक्ति को थोड़ी शान्ति मिलती है, वही इन सम्प्रदायों के चक्कर में पड़कर व्यक्ति कुछ ऐसी कुरीतियों, झूठे अन्धविश्वासों एवं मिथ्या आग्रहों में फंस जाता है, जिनसे निकलना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है।

क्या एक ऐसा मार्ग नहीं हो सकता, जिस पर दुनिया का हर इन्सान चल सके? क्या ऐसे कुछ नियम व मर्यादाएं नहीं हो सकती, जिसे सभी स्वीकार कर सकें? जिससे किसी भी व्यक्ति व राष्ट्र की एकता व अखंडता खंडित न हो और न ही किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध होता हो, जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपना सके और जीवन में पूर्ण सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त कर सके? जी हां एक ऐसा मार्ग है जिस पर निर्भर होकर दुनिया का हर इन्सान पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ चल सकता है और वह जीवन में पूर्ण सुख, शान्ति व आनन्द को प्राप्त कर सकता है।[3] वह मार्ग है- योग। योग कोई मत-पन्थ या सम्प्रदाय नहीं, अपितु जीवन जीने की सम्पूर्ण पद्धति है। विश्व शान्ति के लिए यदि विश्व के सभी व्यक्ति या राष्ट्र वास्तव में गंभीर है तो इसका एकमात्र समाधान है-योग।[4] मानव शरीर की आन्तरिक क्रियाओं को नियंत्रित करने तथा उन्हे सुदृढ़तापूर्वक संचालित करने का कार्य विभिन्न प्रकार की यौगिक क्रियाओं द्वारा किया जाता है। योग वह विज्ञान है जो मनुष्य की चेतना को विकसित करने में सहायता करता है।[5]

योग का नियमित अभ्यास कर मनुष्य अपने स्वास्थ्य को ठीक रख सकता है। प्रायः मनुष्य का निवास एक ऐसे माहौल या पर्यावरण में है, जहां जीवन दबाव, तनाव, संघर्षों तथा विवादों से भरा होता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शारीरिक और मानसिक तनाव एक ही शरीर से सम्बन्धित है। अगर इसका एक पक्ष किसी कारणवश प्रभावित होगा, तो इसका दूसरा पक्ष भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित हो जाता है। जिस प्रकार भावात्मक तनाव के कारण शरीर रोग से ग्रस्त हो जाते हैं।[6] उसी प्रकार एक अच्छे और स्वस्थ शरीर में तनाव और भावात्मक समस्याएं विचार शक्ति में बदल जाती है और शांतिपूर्ण स्वरूप धारण कर लेती हैं। योग ही एक ऐसा मार्ग है जो जीवन को शांतिमय बना सकता है। मनुष्य केवल बाह्य जीवन की ही कामना नहीं करता। वह बिना किसी भय और दर्द के, लम्बे, अच्छे तथा लाभदायक जीवन की इच्छा रखता है। योग से मनुष्य आन्तरिक सन्तुलित जीवन को प्राप्त करता है, जिससे कि वह किसी भी समय की कठिनाईयों का सामना कर सकता है।[7]

योग किसी जटिल और कत्रिम अभ्यास का नाम नहीं है। योग तो जीवन की उस पद्धति व शैली का नाम हैं, जो स्वाभाविक प्रत्येक मनुष्य की होनी चाहिए। मानव जीवन की दो पद्धतियां हैं- योग पद्धति और भोगपद्धति। योगपद्धति से मनुष्य निरोग, स्वस्थ, सुन्दर, पवित्र और सक्षम रहता हुआ अपने जीवन के सुख और आनन्द के साथ जीता है। देहावसान पर सद्‌गति को प्राप्त होता है। भोगपद्धति से मनुष्य रोगी, अस्वस्थ, श्रीहीन, अपवित्र और अक्षम रहता हुआ अपने जीवन को दुःखी और क्लेशयुक्त जीता है और देहावसान पर दुर्गति को प्राप्त होता है।

स्वभाव से मानव योनी, योग-योनी है न कि भोग-योनि। भोग-योनी तो पशु-योनी है। दुरभ्यास से आज मानव-योनी, योग-योनी न रहकर भोग-योनी बन गई है। आज का मानव भौतिकवादी होने के कारण भोग लिप्त हो रहा है। भोगों से रोगों की वृद्धि होती है और रोगों की वृद्धि से आधियाँ और व्याधियाँ उत्पन्न होती है जिसके कारण अधःपतन और सर्वनाश होता है। इस पृथ्वी पर आज सर्वत्र यही हो रहा है। आज मानव को विषय, विकार और वासनाओं ने घेर रखा है, जिससे उसका जीवन आलस्ययुक्त, क्लेशयुक्त एवं तनावयुक्त बन गया है। योगपद्धति से मनुष्य इन सभी पर विजय प्राप्त करता है और वह अपने मन व इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है।[8]

योग ही मानव जीवन को सार्थक बनाने वाले साधनों में उत्तम साधन है। संक्षेप में हम योग के महत्त्व व उसकी उपयोगिता को निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं।

शारीरिक महत्त्वः

शरीर एक माध्यम है जिसके द्वारा साधक मोक्ष प्राप्त करने का कार्य करता है। शरीर के विभिन्न अंगों को स्वस्थ बनाना, उसकी कार्य-क्षमता में वृद्धि करना तथा उसे ओजस्वी एवं क्रान्तिमान बनाने में योग-साधना के समान कोई अन्य विकल्प नहीं है क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार के शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ प्राप्त करने की पूरी-पूरी सम्भावनाएं रहती है।[9]

योग के द्वार व्यक्ति के शरीर की सफाई हो जाती है। व्यक्ति के शरीर की आन्तरिक सफाई का कार्य योग के द्वारा ही होता है। मूल रूप से हमारे शरीर में तीन गुण होते है- (1) वात (Vat) (2) पित्त (Pitt) (3) कफ (Kaph)। निम्न यौगिक क्रियाएं

जैसे- नेती, धोती, नौली, वस्ती, कपालभाती और त्राटक आदि का निमित रूप से अभ्यास करें, तो शरीर की आन्तरिक सफाई एवं स्वच्छता होती रहेगी।[10] योग सम्बन्धी प्राणायाम करने से हमारे फेफड़ों के फैलने तथा सिकुड़ने की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। खून का दौरा या रक्त दाब तथा हृदय गति को स्वाभाविक बनाने में भी यौगिक क्रियाएं सहायता करती है। पाचन संस्थान में पाचन क्रिया को सुचारू बनाने, पाचन के कार्य का तेज करने, गैस तथा अम्ल-पित्त जैसी समस्याओं को दूर करने में भी यौगिक क्रियाएं सहायता करती है।[11] योगासन करने से हड्डियां मजबूत व लचीली बनती हैं। मांसपेशियां भी स्वाभाविक रूप से लचीली, शक्तिशाली एवं सुन्दर बनी रहती है। जिसके परिणामस्वरूप साधक फुर्तीला, लम्बा एवं स्वास्थ्यपूर्ण जीवन जीता है।[12]

योग से रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। स्वस्थ जीवन जीने के लिए मोटापा एक बड़ी समस्या है, इसी कारण मोटे व्यक्ति मोटापे से छुटकारा पाना चाहते है। इसके लिए वे थ्यजदमे ब्मदजतम में भी जाते है और वजन कम करते है। इस समस्या का समाधान आसनों एवं प्राणायाम से किया जाता है। जैसे- शलभ आसन, पश्चिमोतान आसन, हलआसन, धनुष आसन आदि मोटापे के द्वारा हुई फालतू चर्बी को कम करतेहैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि योग से मानव शरीर व इन्द्रियां सही रूप से विकसित होती है।

मानसिक महत्त्वः

वर्तमान भौतिक युग में एक ओर सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर मानसिक तनाव में भी वृद्धि हुई है। मानसिक तनाव के कारण लोग अनिद्रा के शिकार होते जा रहे हैं। लोग अंग्रेजी दवाईयों पर निर्भर होते जा रहे है। इस भागम-भाग, तनावपूर्ण तथा अशान्त जीवन से मुक्त होने का बहुत सरल और सीधा उपाय है- 'योग'।[13] योग द्वारा न केवल शरीर ही स्वस्थ होता है, बल्कि एक उत्तम मानसिक स्वस्थ्य भी प्राप्त होता है। योगासनों के विषय में तो कहा जाता है कि - "आसन चाहे शरीर द्वारा किए जाते हैं, फिर भी ये मन पर अपना पूरा-पूरा प्रभाव डालते हैं।[14] जैसे कहा जाता है कि एक स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है। योग के द्वारा प्राप्त सुन्दर और स्वस्थ शरीर में इस दृष्टि से सबल और सशक्त मस्तिष्क का प्रादुर्भाव स्वतः ही हो जाता है।[15]

आज भी अनेक चिकित्सा केन्द्रों में विभिन्न प्राणायामादि योगभ्यासों द्वारा विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा की जाती है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कहा गया है कि योगागन्मय शरीर को प्राप्त करने वाले योगी के शरीर में न तो रोग होता है, न ही बुढ़ापा आता है और न ही उसकी मृत्यु होती है। अतः योगी (साधक) को इच्छा मृत्यु की शक्ति प्राप्त होती है।[16] योग के प्रभाव से मनुष्य का शरीर तपत कंचन की भांति दमकता रहता है और प्राणवायु पर अधिकार कर लेने से उसका मन भी सदा के लिए परिशुद्ध हो जाता है।[17]

यह सर्वविदित है कि "मन एवं मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयोः"[18] अर्थात् मन ही बंधन और मोक्ष का मूल कारण है। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि मन को अनुरूपता प्रदान करना चाहिए, जिससे भटकाव की स्थिति उत्पन्न ही न हो। तात्पर्य यह है कि योग-साधना द्वारा मन को निरन्तर ईश्वरोन्मुख करने का ही प्रयत्न आवश्यक है। शुक्लयजुर्वेदसंहिता में इसी विषय का उल्लेख प्राप्त होता है।

नैतिक महत्त्वः

योग साधना मनुष्य में नैतिक मूल्यों का विकास करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज के इस दूषित समाज में दिन-प्रतिदिन नैतिक मूल्यों का हनन हो रहा है तथा ईर्ष्या, शत्रुता और घृणा का वातावरण चारों तरफ नैतिकता को दूषित कर रहा है। योग-साधना के द्वारा सामाजिक-मानसिक मूल्यों के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का भी विकास होता है सत्य, प्रेम, समय की पाबंदी, ईमानदारी, सहिष्णुता, शांति, दया, सहानुभूति, सहयोग भावना आदि सभी नैतिक मूल्यों की स्थापना के द्वारा योग-साधना ही सम्भव है।[19]

सामाजिक महत्त्वः

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए समाज के बिना रहना असम्भव है। व्यक्ति जो कुछ भी लेता है, समाज से लेता है। व्यक्ति के गुणों तथा अवगुणों की पहली पाठशाला परिवार है तथा अन्तिम समाज है। व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है। इसलिए जैसे व्यक्ति होंगे, वैसा ही समाज होगा। यदि व्यक्ति अच्छे हैं, तो समाज भी अच्छा ही होगा। योग-साधना से केवल व्यक्ति का हित ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार यम पांच प्रकार के होते हैं- अहिंसा,

सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचार्य तथा अपरिग्रह। जब साधक अष्टांग-योग के प्रथम चरण में ही इन सामाजिक गुणों से स्वयं को परिपूर्ण कर लेता है, तो उसके द्वारा सामाजिक बुराईयों के होने की सम्भावना लगभग समाप्त हो जाती है।[20] अब हम इन सामाजिक गुणों का एक-एक करके वर्णन करेंगे।

1. **अहिंसा** - जो योगी अहिंसा-व्रत में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाते है, वे मन, वचन और कर्म से हिंसा का परित्याग कर देते है। उस पुरुष (योगी) के मन से वैरभाव छूट जाता है।[21]
2. **सत्य** - मन, वचन और कर्म की एकरूपता सत्य है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम के द्वारा प्राप्त ज्ञान को दूसरे को उसका उसी रूप में ज्ञान (बोध) करना सत्य है।[22]
3. **अस्तेय** - भोजदेव के अनुसार दूसरे के धन को हरण करना चोरी है, स्तेय है और इसका अभाव भी अस्तेय कहलाता है।[23]
4. **ब्रह्मचर्य** - ब्रह्मचर्य पालन में बाल्यावास्था में विवाह न करे, समस्त इन्द्रियों पर संयम रखे। वेदादि शास्त्रों को पढ़ता-पढ़ाता रहे। पराई स्त्री का परित्याग करके वीर्य रक्षा करता हुआ अपने शरीर और बुद्धि का विकास करे। यही आनन्द की प्राप्ति है।[24]
5. **अपरिग्रह** - मन, वचन ओर कर्म से विषय भोगार्थ पदार्थों का संग्रह न करना या लोभवश अनावश्यक वस्तु के ग्रहण का त्याग अपरिग्रह कहलाता है।[25]

आज के समाज में हिंसा, चोरी, झूठ तथा अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह जैसी सामाजिक बुराईयां अपनी चरम-सीमा पर है। भौतिकवाद और पश्चिमी देशों की सामाजिक संस्कृति ने हमारे देश को खोखला बना दिया है। ऐसे में यदि समाज में योग का प्रचार और प्रसार होता है, तो हम इन सामाजिक बुराईयों से समाज को बचा सकते है। जिससे स्वर्णमय समाज का निर्माण होगा।

भावनात्मक महत्त्वः

योग-साधना के द्वारा साधक भावनात्मक रूप से इतने मजबूत हो जाते है कि किसी दबाव से अपने विचारों को नहीं बदलते हैं वे अपनी भावनाओं को अपने अनुसार ही लेकर चलते हैं जो साधक योग-साधना को वास्तविक रूप में अपनाते हैं तथा उसके सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारते है, वे भावनात्मक रूप से संतुलित साधकों की श्रेणी में आते है और वे सांसारिक कामनाओं अथवा वासनाओं से छुटकारा प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं और उनका मन उनके नियन्त्रण में हो जाता है।

यौगिक आसनों, प्राणायामों तथा प्रत्याहार का अभ्यास उसी प्रकार के भावनात्मक सन्तुलन के विकास पर दबाव डालता है। प्रत्याहार में साधक अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करके तथा उन्हें विषय-वासनाओं से विमुख करके अन्तर्मुखी करता हुआ धारणा, ध्यान तथा समाधि की ओर प्रेरित करता है जिससे चित्त की एकाग्रता आरम्भ हो जाती है तथा वह चित्त की एकाग्रता साधक के ध्यान, धारणा तथा समाधि मार्ग में हेतु का कार्य करती है।[26]

आध्यात्मिक महत्त्वः

यौगिक क्रियाओं का सामाजिक, शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इनका बहुत महत्त्व है। योग-साधना व्यक्ति को शरीर एवं मन से कहीं अधिक ऊपर ले जाकर आध्यात्मिक प्रगति का रास्ता दिखाती है जिससे हम अपने जीवन को उस परमात्मा को सौंप कर उसका आदेश मानकर ही निःस्वार्थ कर्म करते है जिससे 'कैवल्य', 'मोक्ष', 'निर्वाण' आदि शब्दों को जाना जाता है इस स्थिति में जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होता है। यही परम लक्ष्य है।[27] यह कहना अतिश्योक्ति न होगी।

निष्कर्षः

यौगिक-क्रियाओं के महत्त्व का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि योग-साधना व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक भावनात्मक और आध्यात्मिक ऊंचाईयों को छूने में भरपूर सहयोग प्रदान करती है। आज की पिसती-कहराती और दैहिक मानसिक व्याधाओं से घिरी इस भौतिकवादी दुनियां को योग-साधना की संजीवनी बूटी हो नया जीवन प्रदान कर सकती है। अपने देश को घोर नैतिक तथा मानवीय मूल्यों की गिरावट के संकट से उबारने का भी काम योग द्वारा ही सम्भव है।

आज के युग में स्वामी रामदेव जी ने पातञ्जल योग को परिष्कृत कर योग को एक नई दिशा प्रदान की है और सभी रोगों-शारीरिक, मानसिक रोगों को योग द्वारा दूर करने की कोशिश की है तथा काफी हद तक वे इस कोशिश में कामयाब हुई है। अत: वर्तमान युग में योग का बहुत अधिक महत्त्व है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. योग शिक्षा तथा मनोरंजन, अरुण कुमार त्यागी, पृ० 26-27, खेल साहित्य केन्द्र 7/26, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2009
2. योग के विविध आयाम, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ० 13, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-2201001, 1997
3. योग साधना व योग चिकित्सा रहस्य, स्वामी रामदेव, पृ० 10, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, कृपालु बाग आश्रम, कनखल, हरिद्वार-246408, 2002
4. उपरिवत्, पृ० 11
5. योग शिक्षा तथा मनोरंजन, अरुण कुमार त्यागी, पृ० 25, खेल साहित्य केन्द्र 7/26, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2009
6. उपरिवत्, पृ० 37
7. उपरिवत्, पृ० 38
8. योगालोक, विद्यानन्द 'विदेह', वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, अजमेर, मुद्रक: राजहंस प्रिंटर्स, अजमेर, 1969
9. योग शिक्षा, डॉ० कृष्ण कुमार गुप्ता, पृ० 7, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा), 2008-2009
10. योग परिचय एवं परम्परा, डॉ० प्रवीन कुमार, डॉ० अमृता प्रीतम, श्रीमती रजनी बाली, पृ० 6, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, एल०जी०एफ०, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2007
11. योग शिक्षा, डॉ० एस० के० मंगल, डॉ० (श्रीमती) उमा मंगल, डॉ० सतीश कुमार 'माना', पृ० 7, आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली-110005, 2005
12. योग परिचय एवं परम्परा, डॉ० प्रवीन कुमार, डॉ० अमृता प्रीतम, श्रीमती रजनीबाला, पृ० 6, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, एल०जी०एफ०, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2007
13. योग शिक्षा, डॉ० कृष्ण कुमार गुप्ता, पृ० 8, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा), 2008-2009
14. योग परिचय एवं परम्परा, डॉ० प्रवीन कुमार, डॉ० अमृता प्रीतम, श्रीमती रजनीबाला, पृ० 6, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, एल०जी०एफ०, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2007
15. योग शिक्षा, डॉ० एस० के० मंगल, डॉ० (श्रीमती) उमा मंगल, डॉ० सतीश कुमार 'माना', पृ० 8, आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करोल बाग, नई दिलली-110005, 2005
16. न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु
    प्राप्तस्य योगाग्रिगयं शरीरम् । श्वेताश्वतरोपनिषद्, 34.2.12
17. मनोचिरात् स्याद्विरज जिश्वास्य योगिन:
    वाचवञ्निभ्यां यथा तोहं ध्यातं त्यजति वै मलम् र्तश्रीमद्भा०, 3.28.10
18. युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितु: सर्वे । स्वगंर्यायशक्त्यां ।
    (शुक्लयजुर्वेदसंहिता, 11.2)
19. योग शिक्षा, डॉ० एस० के० मंगल, डॉ० (श्रीमती) उमा मंगल, डॉ० सतीश कुमार 'माना', पृ० 9, आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करोल बाग, नई दिलली-110005, 2005
20. योग शिक्षा, डॉ० कृष्ण कुमार गुप्ता, पृ० 9, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा), 2008-2009
21. पातञ्जल योगदर्शन-भाष्यम्-आचार्य राजवीर शास्त्री, पृ० 300, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली-110006, 2005
22. पातञ्जलयोगसूत्र: एक समालोचनात्मक अध्ययन, पवन कुमारी गुप्ता, पृ० 151, ईस्टर्न बुक डिंकर्स, 5/18 ए, विजयनगर (डबल स्टोरी), दिल्ली-110009, 1979

23. स्तेय परस्तावपहरणम् तद्भावोऽस्तेयम् । भोजदेववृति (पातञ्जलयोगदर्शनम्) भोजदेव, पृ० 224, श्री मदनलाल लक्ष्मीनिवास चंडक, अजमेर, द्वितीय संस्करण-1961
24. पातञ्जल योगदर्शन-भाष्यम्-आचार्य राजवीर शास्त्री, पृ० 300, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 455 खारी बावली, दिल्ली-110006, 2005
25. भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा, पृ० 161, मोतीलाल, बनारसीदास, बंगलो रोड़, दिल्ली-110007, 1998
26. योग परिचय एवं परम्परा, डॉ० प्रवीन कुमार, डॉ० अमृता प्रीतम, श्रीमती रजनी बाली, पृ० 6, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, एल०जी०एफ०, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2007
27. योग परिचय एवं परम्परा, डॉ० प्रवीन कुमार, डॉ० अमृता प्रीतम, श्रीमती रजनी बाली, पृ० 10-11, खेल साहित्य केन्द्र, 7/26, एल०जी०एफ०, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, 2007

स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य में सुधार : एक सांकेतिक अध्ययन

शिवानी

एमएससी गृह विज्ञान, विभाग होम साइंस, केयूके, हरियाणा

सारांशः

राष्ट्रीय स्तर पर कई मानसिक स्वास्थ्य नीतियां रही हैं, फिर भी शिक्षक/विद्यालय प्रशासन मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों पर शिक्षकों-माता-पिता-विद्यालय समुदाय की जागरूकता की कमी के कारण बड़े पैमाने पर मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों को संभालने के लिए बहुत कम सुसज्जित हैं। मानसिक स्वास्थ्य पेशेवरों की गंभीर कमी के साथ। वर्तमान अध्ययन यह पता लगाने के लिए आयोजित किया गया था कि क्या शिक्षक और शैक्षिक प्रणाली के विभिन्न हितधारकों को छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दों के साथ-साथ छात्र के अनुकूल बुनियादी ढांचे और शिक्षण रणनीति की उपलब्धता के प्रति संवेदनशील बनाया गया है जो स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देगा। नमूने में फतेहाबाद और हिसार जिलों के विभिन्न स्कूलों (WBBSE) के 15 महिला और 15 पुरुष शिक्षक शामिल थे । व्यक्तिगत जानकारी रिक्त और साक्षात्कार अनुसूची प्रशासित की गई।

अनुक्रम की शर्तिया

मानसिक स्वास्थ्य, संवेदीकरण, शिक्षक, छात्र, भारत सरकार के स्कूल।

स्कूल में मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन

परिचय

सभी आयु वर्ग के बच्चों विशेष रूप से किशोर उम्र के बच्चों के भावनात्मक, सामाजिक, संज्ञानात्मक विकास के लिए मनोवैज्ञानिक कल्याण की आवश्यकता को इन दिनों अच्छी तरह से समझा जाता है। बच्चे एक राष्ट्र की संपत्ति हैं और उनका उचित नैतिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक विकास सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक बच्चे या किशोर के लचीलेपन में सुधार करने, उनके मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने , उनकी मानसिक बीमारी या विकार का इलाज करने के लिए प्रभावी हस्तक्षेप काफी हद तक इस तरह से कार्य कर सकता है कि बच्चा बड़ा होकर भविष्य में एक जिम्मेदार और लचीला इंसान बन जाएगा। वर्तमान समय में, मानसिक बीमारी विश्व स्तर पर स्वस्थ जीवन के लिए इतना बोझ बन गई है कि युवा पीढ़ी के मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों को संबोधित करना इस बीमारी के लंबे समय तक इलाज के लिए आवश्यक है।

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा

अच्छा मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक विकार की अनुपस्थिति से भी अधिक है, जैसे कि सिजोफ्रेनिया, द्विध्रुवी विकार, अवसाद या चिंता। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, स्वास्थ्य (और मानसिक स्वास्थ्य) को इस तरह परिभाषित किया जा सकता हैः "स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है, न कि केवल बीमारी या दुर्बलता की अनुपस्थिति। मानसिक स्वास्थ्य इस परिभाषा का एक अभिन्न अंग है।"

स्वास्थ्य (और मानसिक स्वास्थ्य) की व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा मनोविश्लेषक सिगमंड फ्रायड की परिभाषा है: "काम करने और प्यार करने की क्षमता"

कनाडा की सार्वजनिक स्वास्थ्य एजेंसी मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करती है, "हम में से प्रत्येक की क्षमता महसूस करने, सोचने, कार्य करने की क्षमता है जो जीवन का आनंद लेने और हमारे सामने आने वाली चुनौतियों से निपटने की हमारी क्षमता को बढ़ाती है। यह भावनात्मक और आध्यात्मिक कल्याण की सकारात्मक भावना है जो संस्कृति, समानता, सामाजिक न्याय, अंतर्संबंधों और व्यक्तिगत गरिमा के महत्व का सम्मान करती है।"

इसलिए अच्छा मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति और समुदाय के प्रभावी कामकाज और भलाई की नींव है। एक व्यक्ति जो मानसिक रूप से स्वस्थ है, उसकी भलाई की स्थिति है जिसमें वह अपनी क्षमताओं का एहसास करता है, जीवन के सामान्य तनावों का सामना करने में सक्षम है, नियमित और उत्पादक रूप से काम कर सकता है, और समुदाय में योगदान करने में भी सक्षम है।

मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन

मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन का अर्थ है ऐसे वातावरण का निर्माण करना जो सभी के लिए सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा दें और बनाए रखें। स्कूल बच्चों और युवाओं के लिए मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए एक आदर्श मंच है क्योंकि यह बच्चों के बड़े समूहों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और व्यवहारिक विकास के दौरान उनके बड़े समूहों तक पहुंचने का अवसर प्रदान करता है। इस संबंध में एक प्रभावी स्कूल आधार मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम बहुत उपयोगी हो सकता है। इसे स्कूली पाठ्यक्रम में एकीकृत किया जाना चाहिए, कई स्वास्थ्य परिणामों के लिए लक्षित, सभी छात्रों के लिए सभी के व्यक्तिगत कौशल विकास को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से । इसमें माता-पिता और समुदाय को शामिल किया जाना चाहिए, और निरंतर मार्गदर्शन सुनिश्चित करने के लिए इसे समय-समय पर फैलाया जाना चाहिए।

महत्त्व

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार हर 5 में से एक बच्चा मानसिक रूप से बीमार है। सभी आजीवन निदान योग्य मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों का आधा हिस्सा 14 वर्ष की आयु से शुरू होता है (केसलर, बर्गलुंड, डेमलर, जिन, मेरिकांगस , और वाल्टर्स, 2005)। यदि समस्याओं की जल्द पहचान की जाती है और सही समय पर हस्तक्षेप किया जाता है, तो यह अधिक लागत प्रभावी होगा, क्योंकि आगे टूटने को रोका जा सकता है और वयस्क उपचार और पुनर्वास कार्यक्रम जो बहुत अधिक महंगे हैं, से बचा जा सकता है। पूर्वस्कूली और स्कूल के वातावरण में ही अधिकांश व्यवहार विकारों को रोकना संभव है।
2. यह सर्वविदित है कि मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे जैसे कि चिंता, अवसाद और पारिवारिक समस्याएं अक्सर खराब शैक्षणिक प्रदर्शन, अनुशासनात्मक मुद्दों और काम की कमी के मूल कारण होते हैं। किशोर उम्र के छात्रों के लिए, मानसिक बीमारी या भावनात्मक संकट के पहले लक्षण स्कूल के माहौल में उभर सकते हैं। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाली गतिविधियाँ और स्कूल के वातावरण में अपनाए जाने वाले सहायक उपाय अकादमिक प्रदर्शन और परिवार और दोस्तों के साथ व्यक्तिगत संबंधों में सुधार कर सकते हैं, जुड़ाव, उपलब्धि बढ़ा सकते हैं, बदमाशी, आक्रामकता, स्कूल छोड़ने, कक्षा के काम से ध्यान भंग कर सकते हैं।

इस तरह के कार्यक्रम बच्चों के व्यक्तिगत कौशल में सुधार सुनिश्चित करेंगे। भावनाओं को नियंत्रित करने, जीवन में समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करने, समस्या समाधान कौशल को बढ़ाने की उनकी क्षमता को बढ़ाया जाएगा। यह सहानुभूति को बढ़ाएगा और उनमें विविधता के लिए सम्मान पैदा करेगा।

संपूर्ण विद्यालय दृष्टिकोण

एनसीबी (नेशनल चिल्ड्रन ब्यूरो) के अनुसार स्कूल का माहौल शिक्षक और छात्र दोनों के लिए बेहद तनावपूर्ण हो सकता है, जो बदले में खराब भावनात्मक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य का कारण बन सकता है। इसके जवाब में तीन साल पहले एनसीबी ने स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य और भलाई के लिए भागीदारी की स्थापना की, जो इच्छुक संगठनों को एक दूसरे का समर्थन करने, साझा करने और एक दूसरे को सूचित करने के लिए एक साथ लाते हैं कि बच्चों और युवाओं के समर्थन में स्कूलों के लिए क्या मायने रखता है और क्या काम करता है। साझेदारी ने भावनात्मक भलाई और मानसिक स्वास्थ्य पर "क्या काम करता है" मार्गदर्शन

तैयार किया और इसे सभी स्कूलों के लिए व्यापक रूप से उपलब्ध कराया।

मार्गदर्शन का मुख्य संदेश संपूर्ण विद्यालय दृष्टिकोण का महत्व है। इसमें छात्रों और कर्मचारियों के लिए समर्थन, पाठ्यक्रम में काम करना और विद्यार्थियों, राज्यपालों और अभिभावकों को शामिल करना शामिल है।

एक संपूर्ण स्कूल दृष्टिकोण एक स्कूल समुदाय में और उसके द्वारा एकजुट, सामूहिक और सहयोगात्मक कार्रवाई है जिसे रणनीतिक रूप से छात्र सीखने, व्यवहार और भलाई में सुधार करने के लिए बनाया गया है, और ऐसी स्थिति जो इनका समर्थन करती है।

तालिका 1.1: मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए पूरे स्कूल के दृष्टिकोण की रूपरेखा

सामाजिक तथा शारीरिक पर्यावरण - मेंट	1. छात्रों को निर्णय लेने में भाग लेने की अनुमति दें और प्रोत्साहित करें।
	2. विश्वास, सहिष्णुता, सहयोग और सहानुभूति का वातावरण तैयार करें।
	3. एक स्वागत योग्य, छात्र- केंद्रित वातावरण (जैसे सोफा, सजावटी पौधे, छात्र कलाकृति, उद्धरण और तस्वीरें)।
	4. छात्र उपलब्धि और एकता का प्रदर्शन करें।
	5. भौतिक रिक्त स्थान डिजाइन करें ताकि छात्र सुविधाओं का उपयोग कर सकें, भीतर पैंतरेबाजी कर सकें उन्हें, और नियोजित सीखने की गतिविधियों में पूरी तरह से भाग लेते हैं।
शिक्षण	1. छात्रों को विविधता की बढ़ी हुई समझ और प्रशंसा प्रदान करें।
सीखना	2. सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक विषयों को निर्देशात्मक प्रथाओं और गतिविधियों में शामिल करें।
	3. छात्रों को सामाजिक कौशल सीखने और अभ्यास करने का अवसर प्रदान करें।
	4. व्यक्तिगत सीखने की जरूरतों और प्राथमिकताओं को समायोजित करें।
	5. छात्र के दृष्टिकोण को नियंत्रित करने, सुनने और मान्य करने के द्वारा स्वायत्तता का समर्थन करें।
स्वस्थ	1. शून्य-सहनशीलता नीतियों के विकल्प प्रदान करें जो निरंतर स्कूल जुड़ाव और
स्कूल	बहाली की अनुमति दें।
नीति	2. सुनिश्चित करें कि सभी छात्रों और स्टाफ सदस्यों को बनाए रखने के लिए जवाबदेह ठहराया जाता है और सम्मानजनक व्यवहार से संबंधित मॉडलिंग नियम।
साझेदारी सेवाएं	1. छात्र सीखने के मुद्दों के बारे में घर के साथ बातचीत करें।
	2. स्कूल सुधार और सीखने की पहल के डिजाइन में परिवारों के साथ सहयोग करें
	3. समुदाय और सरकारी संगठनों के साथ सहयोग सुनिश्चित करने के लिए नीति अपनाएं।
	4. स्कूल-समुदाय कार्रवाई समूहों या समितियों में भाग लेने के अवसर प्रदान करें।

साहित्य की समीक्षा

स्टीवर्ट, सन, पैटरसन, लेमर्ले और हार्डी (2004) के अनुसार, बच्चों और युवाओं के मनोवैज्ञानिक कल्याण और लचीलेपन को बढ़ावा देने के लिए स्कूल की भूमिका को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक महत्वपूर्ण वातावरण के रूप में माना गया है। स्कूल "बच्चों के आत्म-सम्मान, आत्म-प्रभावकारिता और उनके जीवन पर नियंत्रण की भावना को आकार देने के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ"

प्रदान करते हैं (पृष्ठ 27)। जैसे-जैसे बच्चे अपने शुरुआती और बाद के किशोर वर्षों में आगे बढ़ते हैं, स्कूल युवाओं को प्रभावित करने में घरेलू संदर्भ से भी बड़ी भूमिका निभा सकते हैं, यह देखते हुए कि शिक्षक समर्थन और सहकर्मी नेटवर्क का शैक्षिक सेटिंग्स के भीतर शक्तिशाली प्रभाव है (स्टीवर्ट, 2008; स्टीवर्ट एट अल, 2004)।

बच्चों के लिए सकारात्मक स्कूल-आधारित अनुभवों में उन्हें अकादमिक सफलता और सहायक, देखभाल करने वाले वयस्कों के साथ बातचीत करने के अवसर प्रदान करना शामिल है जो शिक्षकों, देखभाल करने वालों, परिवार के सदस्यों और व्यापक समुदाय (मॉरिसन, लेब्लांक और डौसेट, 2005) से मिलकर काम करते हैं। वयस्कों और साथियों के साथ बच्चों और युवाओं के संबंध, जो मनोवैज्ञानिक कल्याण में योगदान करते हैं, उन अंत:क्रियाओं की विशेषता है जो वास्तविकता, सहानुभूति, बिना शर्त देखभाल और पुष्टि (ब्रेंड्रो, 2003) को व्यक्त करते हैं।

शिक्षकों के साथ सहायक देखभाल बातचीत छात्र केंद्रित शिक्षण पद्धति से शुरू होती है। रीव (2006) का दावा है: स्वायत्तता-समर्थक शिक्षक छात्रों की जरूरतों, रुचियों और प्राथमिकताओं की पहचान और पोषण करके और छात्रों के लिए कक्षा के अवसर बनाकर इन आंतरिक राज्यों को उनके व्यवहार का मार्गदर्शन करने में मदद करते हैं। इसके विपरीत, अपेक्षाकृत नियंत्रित करने वाले शिक्षक छात्रों के आत्मनिर्णय में हस्तक्षेप करते हैं क्योंकि वे छात्रों को एक शिक्षक-निर्मित निर्देशात्मक एजेंडा का पालन करने के लिए कहते हैं जो छात्रों को उनके आंतरिक प्रेरक संसाधनों से अलग करता है और इसके बजाय यह परिभाषित करता है कि छात्रों को क्या करना चाहिए या क्या करना चाहिए (पृष्ठ 228)। अनुसंधान ने स्वायत्तता-सहायक शिक्षण के कुछ प्रमुख पहलुओं का खुलासा किया है जैसे छात्रों की रुचियों, वरीयताओं और ताकत को सीखने की सामग्री और निर्देशात्मक गतिविधियों के साथ जोड़ना, अवसर बनाना, गतिविधि ताकि छात्र अपने साथियों के साथ सीख सकें, सामग्री के साथ काम कर सकें, बातचीत कर सकें और दृष्टिकोण तैयार कर सकें। कार्य, प्रगति और उपलब्धि के उदाहरणों की प्रशंसा करना (रीव्स, 2006)।

डेविस और यांग (2009) ने स्कूल वर्ष के दौरान माता-पिता, देखभाल करने वालों और परिवारों के साथ चल रहे संचार और संपर्क को बनाए रखने के महत्व पर प्रकाश डाला। मुख्य कारणों में माता-पिता को पाठ्यक्रम के संबंध में स्कूल में क्या हो रहा है, इसके बारे में जागरूक करना, विश्वास बनाना, सकारात्मक स्कूल-घर संबंध, सहयोगात्मक समस्या समाधान शामिल हैं।

एक छात्र के चरित्र निर्माण में पाठ्य सहगामी और पाठ्येतर गतिविधियों का प्रभाव बहुत अधिक होता है। अकादमिक और सह-पाठ्यचर्या संबंधी गतिविधियों में भागीदारी से जुड़ाव बढ़ता है क्योंकि छात्र अपने स्वयं के सफलता के अनुभवों से प्रबलित होते हैं और अपने साथियों और शिक्षकों के साथ जुड़ने के अवसर का आनंद लेते हैं जो उनकी रुचियों को साझा करते हैं (हॉकिन्स एंड वीज, 1985)। इसके अलावा, संरचित समुदाय-आधारित और मनोरंजक गतिविधियों में युवाओं की भागीदारी सामाजिक कौशल को बढ़ाने, सकारात्मक सहकर्मी बातचीत को प्रोत्साहित करने, परिवार के संदर्भ से परे अपनेपन की भावना पैदा करने और सामाजिक अलगाव को कम करने का काम करती है (मॉरिसन एट अल।, 2005)।

पहनने के लिए एकोडिंग (2000) मानसिक स्वास्थ्य एक व्यापक और बहुआयामी अवधारणा है और इसे किसी एक कथन द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। वह कहती हैं कि हमें अवधारणा को सामाजिक रूप से निर्मित और सामाजिक रूप से परिभाषित के रूप में देखने की जरूरत है। यह धारणा कि मानसिक स्वास्थ्य को अनिवार्य रूप से समग्र स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए, गति प्राप्त कर रहा है। यह धारणा कि किसी व्यक्ति की शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक जरूरतों को पहचाना जाना चाहिए और उसकी क्षमता तक पहुंचने के लिए अधिकतम किया जाना चाहिए, व्यापक स्वीकृति प्राप्त कर रहा है। डब्ल्यूएचओ की एक रिपोर्ट के अनुसार ष्मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन में ऐसे कार्य शामिल हैं जो लोगों को स्वस्थ जीवन शैली अपनाने और बनाए रखने में सहायता करते हैं और जो स्वास्थ्य के लिए सहायक स्वस्थ परिस्थितियों या वातावरण का निर्माण करते हैंष्।

फ्रिसेन और मिल्टन (2009) के अनुसार, स्कूल-व्यापी और कक्षा के माहौल को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने के लिए योजनाओं को विकसित करने के लिए ऐसे कार्यो को डिजाइन करने की आवश्यकता होती है जो सामाजिक, शैक्षणिक और बौद्धिक रूप से छात्रों की व्यस्तता को बढ़ाने में योगदान करते हैं। वे छात्र जुड़ाव को परिभाषित करते हैं "जिस हद तक छात्र स्कूली शिक्षा के परिणामों की पहचान करते हैं और उन्हें महत्व देते हैं, स्कूल में अपनेपन की भावना रखते हैं (सामाजिक जुड़ाव), शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक गतिविधियों (अकादमिक जुड़ाव) में भाग लेते हैं, औपचारिक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं।

स्कूली शिक्षा, और सीखने में एक गंभीर व्यक्तिगत निवेश (बौद्धिक जुड़ाव)" (पृष्ठ 7) सकारात्मक विकास या परिवर्तन को सुविधाजनक बनाने के लिए बच्चे और युवा जुड़ाव और सशक्तिकरण महत्वपूर्ण विचार हैं (डेसी एंड रयान, 2007)

वर्तमान अध्ययन के निष्पादन पर छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए स्कूल और सरकारी स्कूलों के शिक्षकों द्वारा लागू किए गए विभिन्न उपायों या गतिविधियों के बारे में व्यापक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षक द्वारा साझा किया गया ज्ञान और अनुभव स्कूलों के संदर्भ में विभिन्न पहलुओं पर वास्तविक जीवन के उदाहरण हैं। शिक्षकों द्वारा सामना की जाने वाली समस्याएं और उन्होंने उन्हें कैसे संभाला, या छात्रों में अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर उनकी राय-ये सभी भविष्य में अपने छात्रों का मार्गदर्शन करने के लिए शशिक्षक बननेश के लिए उपयोगी ज्ञान हैं।

अध्ययन का उद्देश्यः

- बच्चों के अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्कूल या शिक्षकों द्वारा किए गए विशिष्ट उपायों या गतिविधियों के रूप में सामने आने वाली प्रतिक्रियाओं के प्रमुख पहलुओं को उजागर करना।
- विशेषकर भारतीय विद्यालयों में विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार के उपाय सुझाना।

अनुसंधान प्रश्न

- स्कूलों में अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में स्कूली शिक्षकों के सामने कौन-सी बोधगम्य चुनौतियाँ हैं?
- बच्चों के अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्कूल या शिक्षकों द्वारा उठाए गए विशिष्ट उपायों या गतिविधियों के रूप में कौन से प्रमुख पहलू सामने आते हैं?
- भारतीय व्यवस्था में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार के संभावित तरीके और साधन क्या हैं?

अध्ययन का नमूना

वर्तमान अध्ययन के लिए हरियाणा के फतेहाबाद और हिसार जिलों के 3 अलग-अलग सरकारी स्कूलों के 30 सहायक शिक्षक थे। स्कूल थे सनराइज हाई स्कूल डोभी , विद्या निकेतन हाई स्कूल खारिया , गवर्नमेंट हाई स्कूल, पटेल नगर, हिसार । 30 सहायक शिक्षकों में से 15 पुरुष और 15 शिक्षक महिलाएं थीं।

अध्ययन की पद्धतिः

वर्तमान अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने स्कूलों में अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में स्कूली शिक्षकों के सामने आने वाली चुनौतियों को समझने के लिए सर्वेक्षण तकनीक का चयन किया है। इस उद्देश्य के लिए प्रश्नावली तैयार की गई और साक्षात्कार आयोजित किया गया। प्रश्नावली के प्रश्न थे-

1. कक्षा का वातावरण विद्यार्थियों के लिए कहाँ तक अनुकूल है? आप इसे किस प्रकार छात्र हितैषी बनाते हैं?
2. कक्षा को शारीरिक रूप से आरामदायक बनाने के लिए आप क्या कदम उठाते हैं?
3. आप छात्रों के बीच विश्वास, सहिष्णुता, सहयोग और सहानुभूति को कैसे बढ़ावा देते हैं?
4. आप छात्रों को मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक रूप से कैसे सुरक्षित बनाते हैं?
5. आप निर्णय लेने की प्रक्रिया में छात्रों को कैसे भाग लेते हैं?
6. क्या आप शारीरिक दंड का समर्थन करते हैं? औचित्य।
7. आप विभिन्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले छात्रों को कैसे प्रबंधित करते हैं?
8. क्या आपके विद्यालय में ऐसी नीतियां हैं जो सभी छात्रों की शारीरिक और भावनात्मक सुरक्षा में योगदान करती हैं? उल्लिखित करना।

9. आप असाधारणता वाले छात्रों की विशेष आवश्यकताओं को किस हद तक समायोजित करते हैं?
10. शारीरिक रूप से विकलांग छात्रों की जरूरतों को पूरा करने के लिए आपके पास स्कूल में क्या सुविधा है? उल्लिखित करना।
11. क्या विद्यालय सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए कोई कार्यक्रम आयोजित करता है? आप क्या भूमिका निभाते हैं?
12. क्या विद्यालय स्वस्थ मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए योग, प्राणायाम या अन्य व्यायाम जैसे कार्यक्रम आयोजित करता है?
13. आप छात्रों को धूम्रपान, नशीली दवाओं की लत या किसी अन्य कदाचार के प्रति कैसे संवेदनशील बनाते हैं?
14. छात्रों के बीच मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में आप माता-पिता के साथ कितना सहयोग करते हैं?
15. क्या कोई अंशकालिक या पूर्णकालिक मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता है?
16. सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए किस प्रकार की सांस्कृतिक और पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं?
17. क्या छात्रों के लिए कोई मूल्य शिक्षा कक्षाएं या कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं?
18. क्या छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में शिक्षकों को लैस करने के लिए कोई अभिविन्यास कार्यक्रम या अल्पकालिक पाठ्यक्रम है?
19. आप छात्रों को इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स, सोशल नेटवर्किंग साइट्स के आदी न होने से कैसे नियंत्रित करते हैं?
20. छात्रों के आत्म-सम्मान और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को विकसित करने के लिए आप क्या कदम उठाते हैं?

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

प्रतिक्रियाओं को पूरे स्कूल दृष्टिकोण के निम्नलिखित ब्रेकअप में वर्गीकृत किया गया था-

विद्यालय का सामाजिक और भौतिक वातावरण

क) कक्षा का माहौल: सरकारी स्कूलों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए छात्रों के लिए कक्षा का माहौल इतना अनुकूल नहीं है। तथापि, शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए रंगीन चित्रों, चार्ट, मॉडल आदि का अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयास किया जाता है और वे अपनी सीखने की प्रथाओं का आनंद ले सकते हैं। शिक्षकों को लगता है कि उनकी कक्षा का माहौल छात्रों के अनुकूल नहीं है। इसके लिए उचित बुनियादी ढांचे की कमी को जिम्मेदार ठहराया गया है। यहां भी उन्होंने छात्रों को खेलकूद, सांस्कृतिक गतिविधियों में शामिल करने पर जोर दिया है ताकि माहौल को छात्र हितैषी बनाया जा सके। साथ ही उन्होंने शिक्षकों और छात्रों के बीच और स्वयं छात्रों के बीच बातचीत पर प्रकाश डाला है। मित्रता को बढ़ावा देने के लिए यह एक बुनियादी आवश्यकता है। एक शिक्षक विशेष रूप से छात्रों को उनके नाम से बुलाने का उल्लेख करता है जो निश्चित रूप से एक छात्र और उसके शिक्षक के बीच के अंतर को कम करता है।

ख) शारीरिक आराम: शिक्षक छात्रों की समस्याओं को हल करने और उन्हें सहज बनाने में मदद करते हैं। यह एक महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि उचित बुनियादी ढांचे की कमी जैसे पर्याप्त प्रकाश की कमी, वायु प्रवाह; बैठने की व्यवस्था अध्ययन में असावधानी ला सकती है। किसी भी कमी को स्कूल प्राधिकार और प्रधानाध्यापक के संज्ञान में लाकर दूर किया जाता है। साथ ही छात्रों को कक्षा में साफ-सफाई बनाए रखने, कूड़ेदान में कूड़ेदान का उपयोग करने के निर्देश दिए गए हैं। कक्षा को शारीरिक रूप से आरामदायक बनाने के लिए शिक्षक पर्याप्त बेंच, पंखे और रोशनी की व्यवस्था करके उचित पहल करें। वे अपने छात्रों को खिड़कियां और दरवाजे खोलने की सलाह देते हैं ताकि कक्षा हवादार हो और वे खुद को घुटन से बचा सकें।

ग) विश्वास और सहिष्णुता: शिक्षक अपने छात्रों को स्कूल की हर गतिविधि में सक्रिय रूप से शामिल करते हैं। उनका मानना है कि छात्रों की सक्रिय भागीदारी आपस में विश्वास, सहिष्णुता, सहानुभूति और सहयोग को अधिकतम करती है। इन गुणों

को बढ़ावा देने के लिए सभी शिक्षकों ने समूह कार्य पर जोर दिया है, अर्थात छात्रों को विभिन्न गतिविधियों जैसे समाज-कल्याण कार्य, प्रश्नोत्तरी, खेल और विषय से संबंधित परियोजनाओं में समूहों में विभाजित करके संलग्न करना। इस तरह की गतिविधियों में छात्र के लिए एक लक्ष्य निर्धारित किया जाता है जैसे एक मैच जीतना, एक परियोजना को पूरा करना, और जब वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तो उन्हें चुनौतियों, समस्याओं का सामना करना पड़ता है। चूंकि समस्या सभी के लिए सामान्य है, इससे कठिन परिस्थितियों में आपसी सहयोग, विश्वास और सहनशीलता बढ़ेगी, साथी सदस्य के प्रति सहानुभूति होगी। एक शिक्षक ने कहानियों और व्यक्तिगत अनुभव वाले लोगों को प्रेरित करने के लिए व्यक्तिगत स्तर के प्रयास का प्रस्ताव दिया है जो काफी हद तक एक प्रवर्तक के रूप में कार्य कर सकता है। छात्रों को सहकारी शिक्षा में लगाया जा सकता है जहां एक छात्र अपने साथी छात्र की मदद करेगा। उचित मार्गदर्शन सुनिश्चित करने के लिए इस प्रक्रिया में शिक्षक की महत्वपूर्ण भागीदारी की आवश्यकता है।

घ) निर्णय लेना: मौजूदा प्रक्रियात्मक प्रोटोकॉल के कारण कई बार निर्णय लेने में देरी हो जाती है। हालाँकि, शिक्षक छात्रों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता देते हैं ताकि वे किसी भी स्थिति में सही समाधान चुनने में सक्षम हों।

शिक्षण और सीखने का तरीका

a) छात्रों की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि: शिक्षक किसी को चोट पहुँचाकर छात्रों के साथ चतुराई से व्यवहार करते हैं और उन्हें लगता है कि वे सभी एक जैसे हैं, हालांकि वे विभिन्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं।

b) कार्यक्रम : स्कूल ने अपने छात्रों को उनकी क्षमताओं और कौशल को बढ़ावा देने के लिए शामिल करने के लिए योग, प्राणायाम, पाठ, गायन, ड्राइंग जैसे विभिन्न कार्यक्रमों और सह-पाठयक्रम गतिविधियों की व्यवस्था की।

c) मूल्य शिक्षा: छात्रों को ईमानदार और नैतिक बनाने के लिए स्कूल हर हफ्ते एक या दो मूल्य शिक्षा कक्षाएं आयोजित करता है।

स्वस्थ स्कूल नीति

a) शारीरिक दंड: शिक्षक शारीरिक दंड का समर्थन नहीं करते क्योंकि उन्हें लगता है कि शारीरिक दंड एक अच्छा इंसान बनने के बजाय एक जानवर बनाता है। उन्हें लगता है कि एक वर्ग को नियंत्रित करने की सजा से प्यार और सहानुभूति अधिक शक्तिशाली है।

b) विशेष आवश्यकता वाले छात्र: असाधारण छात्रों को वे अतिरिक्त कक्षाओं की व्यवस्था करके और विभिन्न सह-पाठयक्रम गतिविधियों में छात्रों को शामिल करके विशेष ध्यान रखते हैं।

c) साइकोलॉजिकल काउंसलर: स्कूल में कोई स्थायी या अस्थायी काउंसलर नहीं होता है। लेकिन जब भी छात्रों को जरूरत होती है, स्कूल अथॉरिटी शिक्षकों के साथ मिलकर काउंसलिंग करती है।

d) अभिभावक शिक्षक बैठक: छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए स्कूल महीने में एक बार अभिभावक बैठक आयोजित करता है। उन्हें लगता है कि न केवल स्कूल बल्कि माता-पिता भी छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

e) व्यसन के प्रति जागरूकता : शिक्षक छात्रों को नशीली दवाओं और धूम्रपान के प्रति जागरूक करते हैं क्योंकि यह स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। उन्हें लगता है कि किशोरावस्था में छात्र इस लत के बुरे प्रभाव को नहीं जानते हैं।

स्कूल में ढांचागत सुविधा

अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए स्कूल में पर्याप्त सुविधाएं हैं। स्कूल का अपना खेल का मैदान, पर्याप्त संख्या में कक्षाएँ आदि हैं। स्कूल में विकलांग छात्रों के लिए व्हील चेयर और अन्य उपकरण भी हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षकों की प्रतिक्रिया के आधार पर सकारात्मक और नकारात्मक टिप्पणियों के बारे में समग्र आंकड़े निम्नानुसार हैं -

तालिका 1.2: शिक्षकों की प्रतिक्रिया के आधार पर सकारात्मक और नकारात्मक टिप्पणियों के बारे में समग्र आंकड़े

डोमेन	*सकारात्मक %*	*नकारात्मक %*
स्कूल का सामाजिक और भौतिक वातावरण	85	15
शिक्षण और सीखने का तरीका	80	20
स्वस्थ स्कूल नीति	76	24
स्कूल में ढांचागत सुविधा	80	20
संपूर्ण	80.25	19.75

व्याख्या:

विश्लेषण से छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले शिक्षक द्वारा की गई कुछ प्रमुख पहलों की पहचान की जा सकती है-

1. छात्रों को समूह आधारित गतिविधियों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सह-पाठयक्रम गतिविधियों, योग कक्षाओं में शामिल किया जाना चाहिए।
2. छात्रों को उदाहरणों से सावधान किया जाना चाहिए ताकि वे बुरी आदतों के आदी न हों।
3. कहानियों, प्रख्यात व्यक्तित्व की जीवनी, वास्तविक जीवन के उदाहरणों आदि के माध्यम से छात्रों को मूल्य शिक्षा प्रदान की जा सकती है।
4. शारीरिक दंड, या कठोर डांट के बजाय छात्रों को अच्छे तरीके से सही या गलत के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। शिक्षक को हमेशा सतर्क रहना चाहिए ताकि स्कूल के माहौल में छात्रों के बीच धमकाने, आपसी नफरत न हो।
5. एक अधिक छात्र - केंद्रित शिक्षण पद्धति का पालन करने की आवश्यकता है।
6. छात्रों को विभिन्न स्कूल गतिविधियों में संलग्न करके कक्षा की सफाई सुनिश्चित करने जैसे कर्तव्यों, जिम्मेदारियों को सौंपा जाना चाहिए।
7. माता-पिता को भी इस मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन प्रक्रिया में भाग लेना चाहिए ताकि स्कूल के बाहर भी बच्चे को एक अनुकूल, अनुकूल वातावरण मिले। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य को लेकर सतर्क रहें और उनका सही मार्गदर्शन करें।
8. शिक्षकों को छात्रों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने की आवश्यकता है। इस तरह छात्र अपने शिक्षकों के साथ संवाद करने के लिए स्वतंत्र महसूस करेंगे। यह सीखने की प्रक्रिया को पढ़ाने में मदद करेगा और साथ ही किसी भी छात्र द्वारा सामना की जाने वाली किसी भी मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक, समस्याओं या कमियों को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है। इस तरह एक शिक्षक छात्रों का सच्चा मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक बन सकता है।

सिफारिशें:

1. अंशकालिक या पूर्णकालिक परामर्शदाता की नियुक्ति पर अत्यधिक महत्व के साथ विचार किया जाना चाहिए क्योंकि एक अनुभवी या योग्य कर्मियों की मदद से बच्चे के परेशानी या आक्रामक व्यवहार जैसे विभिन्न मुद्दों का समाधान बेहद उपयोगी और उपयोगी हो सकता है।
2. अलग मूल्य शिक्षा कक्षाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। विशेष रूप से किशोर आयु वर्ग के छात्रों के लिए उपयुक्त आयु वर्ग के लिए उपयुक्त जीवन शैली शिक्षा कक्षाओं की व्यवस्था की जा सकती है।
3. पूर्णकालिक या कम से कम अंशकालिक ष्विशेष शिक्षकष् या योग्य कर्मियों को ष्विशेषष् बच्चों के लिए नियोजित किया जाना चाहिए।

4. स्कूल के बुनियादी ढांचे में सुधार किया जाना चाहिए ताकि छात्र कक्षा के अंदर सहज महसूस करें।
5. एक अच्छा छात्र-शिक्षक अनुपात बनाए रखने के लिए अंशकालिक शिक्षकों को नियोजित किया जा सकता है जब तक कि सरकार रिक्त पदों पर स्थायी शिक्षकों को नियुक्त नहीं करती है।
6. लेन-देन संबंधी विश्लेषण को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए ताकि उन्हें अहंकार , स्ट्रोक, लेन-देन के प्रकार आदि से अवगत कराया जा सके।
7. Google कक्षा, एडमोडो, हॉट पोटैटो, एडुटेक आदि जैसे शिक्षा में विभिन्न ऐप का उपयोग करके छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने के लिए शैक्षिक तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिए ।

अध्ययन की सीमाएं:

कई प्रतिक्रियाएं स्पष्ट रूप से उस बात से संबंधित नहीं हैं जो पूछने का इरादा था। वे खराब डेटा बन जाते हैं और उन्हें गुणात्मक विश्लेषण से विधिवत बाहर कर दिया जाता है और तदनुसार मात्रात्मक विश्लेषण में इलाज किया जाता है।

निष्कर्ष:

एक बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य के पोषण में एक स्कूल की भूमिका इन दिनों अच्छी तरह से समझी जाती है और इस संबंध में एक अनुकूल वातावरण प्रदान करना बेहद महत्वपूर्ण माना जाता है। स्वाभाविक रूप से, शिक्षक इस मामले में स्कूल प्राधिकरण या बच्चे के माता-पिता के अलावा सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं। इस अध्ययन के क्रियान्वयन से विद्यालय के शिक्षकों द्वारा विद्यालय के छात्रों के अच्छे मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए अपनाई गई विभिन्न गतिविधियों या उपायों का पता चला है। कुछ अन्य पहलुओं पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है जिन्हें महसूस किया जा सकता है। कुल मिलाकर, इस फील्डवर्क से छात्रों के बीच सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने का एक व्यापक विचार प्राप्त होता है।

ग्रंथ सूची:

- स्टीवर्ट, डीई, सन, जे., पैटरसन, सी., लेमर्ले, के., और हार्डी, मेगावाट (2004)। "प्राथमिक विद्यालय समुदायों में लचीलापन को बढ़ावा देना और निर्माण करना: एक व्यापक श्स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले स्कूलश दृष्टिकोण से साक्ष्य।" मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 6(3), 26-31।
- स्टीवर्ट, डीई (2008)। ष्स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन को लागू करना:ष एक प्रक्रिया मूल्यांकन। मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 10(1), 32-41.
- मॉरिसन, डब्ल्यू., लेब्लांक, एम., और डौसेट, सी. (एड्स)। (2005)। "अपराध रोकथाम पर न्यू ब्रंसविक परिप्रेक्ष्य: बच्चों, युवाओं और परिवारों के लिए आशाजनक अभ्यास।" फरेडरिक्टन, न्यू ब्रंसविक : न्यू ब्रंसविक विश्वविद्यालय / गैस्पेरो प्रेस।
- ब्रेंड्रो , एल।, ब्रोकनलेग, एम।, और वैन बॉकर्न, एस। (2005)। साहस और सकारात्मक मनोविज्ञान का चक्र। बच्चों और युवाओं को पुनः प्राप्त करना, 14(3), 130-136।
- रीव, जे. (2006). स्वायत्तता, स्वैच्छिक प्रेरणा, और कल्याण। प्रेरणा और भावना, 30, 257- 258।
- बेलंका, जे।, और फोगार्टी, आर। (2003)। सहकारी कक्षा में उपलब्धि के लिए ब्लूप्रिंट, (तीसरा संस्करण)। इलिनोइस: पियर्सन एजुकेशन।
- कार्टनी, पी., और राउज, ए. (2006)। छोटे समूहों में सीखने का भावनात्मक प्रभाव: छात्र की प्रगति और प्रतिधारण पर प्रभाव को उजागर करना। उच्च शिक्षा में शिक्षण, 11(1), 79-91.
- मॉरिसन, डब्ल्यू, किर्बी, पी। "सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए एक सेटिंग के रूप में स्कूल: बेहतर अभ्यास और परिप्रेक्ष्य"। स्कूल स्वास्थ्य के लिए संयुक्त संघ जनवरी 2010
- एडेलमैन, एचएस, टेलर, एल। "स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य और सार्वजनिक स्वास्थ्य सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रतिनिधि। 2006 मई-जून; 121(3): 294-298।

- शास्त्री, पीसी "बाल मानसिक स्वास्थ्य में प्रचार और रोकथाम"। भारतीय मनश्चिकित्सा। 2009 अप्रैल-जून; 51(2): 88-95
- रिचर्डसन, टी, मॉरिससेट, एम, जकर, एल. "स्कूल-आधारित किशोर मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम" सोशल वर्क टुडे वॉल्यूम। 12 नंबर 6 पी 24
- रीव, जे., डेसी , ईएल, और रयान, आरएम (2004)। आत्मनिर्णय सिद्धांत: प्रेरणा और सीखने पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों को समझने के लिए एक द्वंद्वात्मक ढांचा। बड़े सिद्धांतों पर दोबारा गौर किया गया, 4, 31-59. ग्रीनविच, सीटी: सूचना आयु प्रेस।
- फ्राइसन, एस., और मिल्टन, पी. (2009)। आज आपने स्कूल में क्या किया? सामाजिक, शैक्षणिक और बौद्धिक जुड़ाव के माध्यम से कक्षाओं को बदलना । कनाडा शिक्षा संघ
- पेटन, जे., वार्डलॉ , डी., ग्रेजिक, पी., ब्लडवर्थ, एम., टॉम्पसेट, सी., और वीसबर्ग, आर. (2000)। सामाजिक और भावनात्मक शिक्षा: मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और बच्चों और युवाओं में जोखिम व्यवहार को कम करने के लिए एक रूपरेखा। जर्नल ऑफ स्कूल हेल्थ, 70(5), 179-185
- Diamanduros , T., Downs, E., & Jenkins, S. (2008)। साइबरबुलिंग के आकलन, रोकथाम और हस्तक्षेप में स्कूल मनोवैज्ञानिकों की भूमिका। स्कूलों में मनोविज्ञान, 45(8), 693-704।
- मार्टिनेज, एस। (2009)। एक प्रणाली निडर हो गई: शून्य-सहिष्णुता नीतियां वास्तव में स्कूलों को कैसे प्रभावित कर रही हैं? स्कूल की विफलता को रोकना, 53(3), 153-157।
- गैबिन, एस, सिक्सस्मिथ, जे।, डेलाने, ई।, मूर, एम।, इंचले, जे।, और ओशहिगिन्स, एस। (2007)। स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले स्कूल संकेतक: छात्रों से योजनाबद्ध मॉडल। स्वास्थ्य शिक्षा, 107(6), 494-510।
- वीनमैन, एस।, और केंटर, बी। (2000)। डच प्राथमिक कक्षाओं में सहकारी शिक्षा शैक्षिक अध्ययन, 26 (3), 281-302
- Capros , J., Cetera, Co., Ogden, L., & Rossett , K. (2002)। सहकारी शिक्षा के माध्यम से छात्र के सामाजिक कौशल और उपलब्धि में सुधार। (ईआरआईसी दस्तावेज प्रजनन सेवा संख्या ईडी468873)।
- स्कॉट, टीएम, नेल्सन, सीएम, और लियाप्सिन, सीजे (2001)। प्रभावी निर्देश: स्कूली हिंसा को रोकने में भूले हुए घटक। बच्चों की शिक्षा और उपचार, 24, 309-322।
- डेविस, सी।, और यांग, ए। (2009)। साल भर परिवारों के संपर्क में रहना। एजुकेशन डाइजेस्ट, सितंबर, 2009।
- डेसी, ईएल, और रयान, आरएम (2007)। जीवन के सभी क्षेत्रों में इष्टतम प्रेरणा और मनोवैज्ञानिक कल्याण की सुविधा प्रदान करना । कनाडाई मनोविज्ञान, 49(1), 14-23
- हॉकिन्स, जेडी, वीस जेजी (1985)। सामाजिक विकास मॉडल: अपराध की रोकथाम के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण। जे प्राइम। पिछला, 1985 डी; 6(2):73-97.
- केसलर, आरसी, बर्गलुंड, पी।, डेमलर , ओ।, जिन, आर।, मेरिकांगस , केआर, और वाल्टर्स, ईई (2005)। राष्ट्रीय सहरुग्णता सर्वेक्षण प्रतिकृति में कैड-प्ट विकारों का आजीवन प्रसार और आयु-शुरुआत वितरण। सामान्य मनश्चिकित्सा के अभिलेखागार, 62(6), 593-602
- एनसीबी, (8 नवंबर, 2016), भावनात्मक भलाई और मानसिक स्वास्थ्य के लिए संपूर्ण स्कूल दृष्टिकोण का रोल आउट, https://www.ncb.org.uk/news-opinion/news-highlights/roll-out-whole- से प्राप्त किया गया। स्कूल-दृष्टिकोण-भावनात्मक-कल्याण-और-मानसिक-स्वास्थ्य-0 11.12.2017 को।
- परिचय और साहित्य की समीक्षा, http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/18568/8/08_chapter%201.pdf से प्राप्त

हरियाणा का साहित्य और 'महाराणा प्रताप'

डॉ० अनु शर्मा

836, सैक्टर-19, पार्ट-2, हुड्डा, कैथल

राजस्थान, राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत वीर भूमि है। जब हम इसके रंगमंच पर खड़े होकर विहंगम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि राष्ट्रवादी चेतना के उत्थान में संतों-महात्माओं, पीरों-फकीरों, कलाकारों, साहित्यकारों, संगीतकारों, लोक गायकों, विद्वानों और वीर सेनानियों की एक समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। इस देश के प्रति राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के प्रति निष्ठावान अनेक राष्ट्र-पुत्र हुए हैं, जिनमें राजस्थान के रण-बांकुरे महाराणा प्रताप का नाम सर्वोपरि है। इस संदर्भ में भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' की निम्न पंक्तियाँ महाराणा प्रताप के चरित्र पर ठीक बैठती हूँ-

''पानी में भी आग जो लगाते रणबीर यहाँ,
उनकी ही कही जाती जग में कहानी है।
वीर है महान वही, जिसमें स्वदेश हेतु
ध्यान आन-मान का औ नित्य स्वाभिमान है।
सिंह के समान जो न जानता झुकाना शीश,
पौरुष-पराक्रम की वही पहचान है।''

बप्पारावण के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, चित्तौड़ के अधिपति महाराणा, उदय सिंह के पुत्र एवं भारतीयों द्वारा 'हिन्दुओं के सूर्य' उपाधि से विभूषित महाराणा प्रताप के उदात्त चरित्र का यशोधन अनेक साहित्यकारों ने किया है। उन्होंने देश और धर्मरक्षा के लिए जो कष्ट सहे थे, इससे उनका नाम इतिहास प्रसिद्ध हो गया है। अकबर के कृपापात्र मानसिंह के विरोध के कारण उन्हें अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। हल्दीघाटी का अकबर और प्रताप के बीच हुआ युद्ध आज भी भारतीयों के हृदय में वीरता, जोश और उत्साह का संचार करता है। उनके उदात्त चरित्र को लेकर पं. श्यामनारायण पांडेय ने 'हल्दी घाटी' नामक महाकाव्य की रचना की। जयशंकर 'प्रसाद' ने भी 'महाराणा का महत्त्व' नामक काव्य लिखकर उनकी वीरता व धैर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महाराणा प्रताप के गौरव-गान में हरियाणा भी पीछे नहीं रहा है। इस धरा के अनेक कवियों व साहित्यकारों ने महाराणा प्रताप का यशोगान किया है, वह अनुपम है। यथा-

भारतभूषण 'सांघीवाल' कृत 'महाराणा प्रताप'

इस लोककाव्य में कविवर 'सांघीवाल' ने महाराणा प्रताप के यश और वीरता का भावपूर्ण शैली में वर्णन किया है। उनके अनुसार महाराणा प्रताप राष्ट्र-धर्म के रक्षक, इतिहास-प्रसिद्ध वीर सेनानी थे। उनका जन्म 9 मई, 1540 में माता जैवन्ती की कोख से हुआ। चित्तौड़ के अधिपति महाराजा उदयसिंह के वे पुत्र थे। कविवर सांघीवाल ने कथा के प्रारंभ में महाराणा प्रताप के जीवन-वृत्त की संक्षिप्त झलक निम्न काव्य-पंक्तियों में प्रस्तुत की है-

जिन वीरां ने दी कुर्बानी, चाहिए उनके गुण गाणा।
शिशोदिया वंश में हुए, वीर प्रताप महाराणा।।
सन पन्द्रां सौ चालीस था, घटा खुशी की छाई थी।

नौ मई का शुभ दिन आया, घर-घर बँटी मिठाई थी।।

माताश्री जैवन्त नै एक, अद्‌भुत शक्ति जाई थी।

उदयसिंह के महला में भई, गावैं गीत लुगाई थी।

नाम घर्या प्रताप, था प्रतापी सब जग नै जाण्या।।[2]

महाराणा उदयसिंह छोटी रानी भटियाणी से अधिक प्रेम करते थे। मरते-मरते उन्होंने अपने बेटे जगमाल को राजगद्दी सौंप दी थी। वह कायर और विलासी था। कालांतर में सभी सामन्तों ने उसे गद्दी से उतार दिया और महाराणा प्रताप को गद्दी पर बैठाया। इधर जगमाल अकबर से मिल बैठता है। उसी समय महाराणा शक्तिसिंह भी प्रताप से नाराज होकर अकबर से मिल बैठता है। अकबर और महाराणा प्रताप के मध्य युद्ध छिड़ गया। उस समय प्रताप अपने सैनिकों के समक्ष भीष्म प्रतिज्ञा करते हुए कहता है-

"मातृभूमि के वीर सपूतो! बात मान लो मेरी।

माँ की रक्षा करणी सै, कर दो दुश्मन की ढेरी।

कूद पड़ो रणभूमि में इब, मत ना ल्याओ देरी।।

गीता का उपदेश हमने, करणा चाहिए याद आज।

मरेंगे तो सुरग मिलै, जीतेंगे तो मिलै राज।

हो ज्याओ तैयार वीरों, देश की बचाओ लाज।।[3]

मानसिंह उदयपुर महाराणा प्रताप से मिलने के लिए आते हैं। उनकी आवभगत की जाती है, लेकिन महाराणा प्रताप उनके साथ खाना नहीं खाते हैं, तो इस पर मानसिंह कुछ हो जाता है और कहता है-

होर्या सै घमंड तेरे, महाराणा प्रताप भाई।

थोड़े से दिन डटज्या, मालम पाट ज्यागी भाई।।[4]

21 जून, 1576 में महाराणा प्रताप और अकबर की फौज के बीच हल्दीघाटी में युद्ध होता है। एक तरफ अकबर के लगभग एक लाख सैनिक थे तो दूसरी तरफ महारायणा प्रताप के 22 हजार सैनिक थे। कविवर सांघीवाल ने हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है-

उस ओड़ महाराणा के सैनिक थे बाईस हजार।

तोप ना, बंदूक ठारे भाले, बरछी तलवार।

फिर भी टूट पड़े दुश्मन पै, हौंसले का ले हथियार।

चाल्लै थीं, बंदूक तोप, रणभूमि में दमादम।

चमकती तलवार दीखै, बिजली की ज्युं चमाचम।

सुणै थे हुंकारे भाले चालते थे गमागम।।"[5]

महाराणा प्रताप की वीरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

चेतक पै सवार राणा, लाह्दे थे लाशां के ढेर।

काट काट शाही सेना, गाजर मूली ज्यूं दी गेर।

खून की बहै थी नदी, आगे बढ़ता जा था शेर।

घबरा के अकबर की सेना, भाजण का देखै थी राह।

कह्या किसे नै, बादशाह खुद, बड़ी फौज ले पहुँचा आय।

होग्या फेर मैदान गर्म, मुगलों का बहया उत्साह।।[6]

महाराणा प्रताप के युद्ध कौशल और झालावीर की वीरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस महायुद्ध में महाराणा प्रताप बुरी तरह से मुगल सेना के बीच घिर जाते हैं तो महाराणा को बचाने के लिए झाला वीर राणा का मुकुट पहन लेता है और युद्ध

में जूझ पड़ता है। इधर चेतक घोड़ा अपने स्वामी महाराणा प्रताप को लेकर पहाड़ी की तरफ कूच कर जाता है। कविवर सांघीवाल इसी दृश्य का वर्णन करते हुए कहते हैं-

राणा का मुकुट पहन, झाला वीर आग्गे आए।
धूल झौंकी आंख्या के माह, दुश्मन उसकी ओड़ छाए।
सैंकड़ों को मार काट्या, झालावीर हाए हाए।
चेतक घोड़ा ले स्वामी को, पहाड़ी पर तै कूद भाग्या।
दो मुगल दौड़े पाच्छै, शक्तिसिंह भी गेल लाग्या।
दोनूं मुगल मार दिए, भाइयां का प्रेम जाग्या।।

हल्दी घाटी के इस युद्ध में अकबर की सेना के 50 हजार सैनिक मारे गए। महाराणा का परिवार घास-फूस की रोटी खाकर अपना निर्वाह करता है। एक दिन की बात है कि एक बिल्ला महाराणा की लड़की की रोटी छीनकर ले भागा। कवि इस घटना का वर्णन करते हुए कहता है-

तीन दिन की थी भूखी, रोटी थी सूकी साकी।
लेग्या खोस कै उसने भी हे यू बिल्ला डाकी।।
कोन्या रही बाकी देख कै, या खींचा ताणी।
जिनके बालक भूखे रोवै, के सै जिन्दगानी।।[7]

जंगल में रहते-रहते महाराणा प्रताप और उनका परिवार दाने-दाने का मोहताज हो गया था। बच्चे भूख से बिलखते थे। राणा जी लाचार हो चुके थे। मजबूर होकर महाराणा ने अकबर को संधि का पत्र लिखा, जिसे पढ़कर अकबर बड़ा खुश होता है। वह उस पत्र को पृथ्वीराज चौहान के सामने सुनाता है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पत्र महाराणा ने ही लिखा है। खैर! समय करवट लेता है। भामाशाह नामक महादानी व्यक्ति 20 हजार अशर्फी और 25 लाख रुपए महाराणा को सौंपता है, जिससे महाराणा के मन में एक नई चेतना और नए उत्साह का संचार हुआ। महाराणा ने दुबारा जंग का बिगुल बजा दिया और उन्होंने 32 किले जीतकर अपने वश में किये। वे मांडलगढ़ और चित्तौड़गढ़, इन दो किलें को नहीं जीत सके। कवि का कथन है-

जीत लिया मेवाड़ सब, युद्ध कर्या बेजोड़।
किले शेष दो रह गए, मांडलगढ़-चित्तौढ़।।
मांडलगढ़-चित्तोड़, जीत की कोशिश जारी।
मृत्यु पहुंची आण, हुई एकदम लाचारी।।
कहता 'सांघीवाल' छोड़ दो गफलत भई।
मृत्यु शीश सवार, जन-जन की करो भलाई।।[8]

महाराणा प्रताप का अंतिम समय निकट आ गया था। मृत्यु शैय्या पर लेटे हुए उन्होंने अंतिम इच्छा व्यक्त की थी कि चित्तौड़गढ़ पर भी उनका झंडा लहराना चाहिए। अंतिम सांस लेते हुए महाराणा जी जन-जन को संदेश देते हुए कहते हैं-

जीणा सै दो दिन भाई, संभल कै चलणा।
धर्म कर्म तै नाता जोड़ो, पाप कर्म सब छोड़ो।
हो ज्यागी सफल कमाई, संभल के चलना।
जन्मभूमि जननी लै प्यारी, रहगे किले दो हुई लावारी।
मौत निभाणी आई, संभल के चलना।।[9]

19 जनवरी, 1597 को महाराणा जी स्वर्ग सिधार गए। कवि का कथन है-

पन्द्रह सौ सत्तानवे, उन्नीस जनवरी मास।
महाराणा प्रताप ने किया स्वर्ग में वास।।[10]

प्रस्तुत लोकनाट्य भाषा, भाव और प्रस्तुति की दृष्टि से अनुपम बन पड़ा है। हरियाणवी भाषा का सहज सरल व भावोत्पादक रूप इस लोकनाट्य में देखा जा सकता है। कविवर सांघीवाल ने इस कृति में लोकोक्ति और मुहावरों का सटीक प्रयोग किया है। पद लालित्य पद-पद पर निहारा जा सकता है।

सारस्वत मोहन 'मनीषी' कृत 'एक हकीकत और'

उक्त रचना खंडकाव्य है जिसका प्रकाशन किताबघर, नई दिल्ली से सन् 1996 में हुआ। इस काव्य की भूमिका में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं- "अभिव्यंजना कौशल के स्तर पर यह काव्य प्रसाद और माधुर्य गुण से ओतप्रोत है। यह काव्य जागृति, बल और बलिदान की प्रेरक भावना से भरा हुआ है, जिसे पढ़कर हमारी धमनियों में आज भी ओज और तेज का रक्त प्रवाहित हो उठता है।"[11]

प्रस्तुत खंडकाव्य में दूला भील के बलिदान की कहानी है। दूला इस खंडकाव्य का नायक है। दूला के पावन कर्त्तव्यनिष्ठा और उत्सर्ग भावना का वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है। हल्दी घाटी की हार के पश्चात् सिसोदिया वंश के सूरज महाराणा प्रताप छिपते-छिपते अरावली के वनांचलों में भटक रहे थे। साथ थे मुट्ठीभर सैनिक, बेटा अमर सिंह, बिटिया चम्पा और महाराणा की प्राणेश्वरी महारानी। भूख शांत करने हेतु नन्हें बच्चों को घास की रोटी दी जाती थी। एक दिन बिलाव रोटी लेकर भाग गया। भाई-बहन टुकर-टुकर देखते रहे। उनके मुख से रोटी-रोटी शब्द निकलता रहा। यह 'रोटी' शब्द ही इस खंडकाव्य का प्रेरणास्त्रोत है।

प्रस्तुत खंडकाव्य में महाराणा प्रताप के व्यक्तिगत भावों की प्रस्तुति की गई है। महाराणा भारत माँ के लाडले सपूत थे, जिन्होंने तन-मन-धन सब कुछ मातृभूमि के लिए अर्पित कर दिया था। महाराणा प्रताप के दृढ़ संकल्प का परिचय देते हुए कवि कहता है-

मैंने माँ का दूध पिया है, धरती माँ का पानी।
मातृभूमि पर हँसते-हँसते दूँगा भेंट जवानी।
सोना चाँदी के बर्तन क्या पत्तल पर खाऊँगा।
पिंजरे का तोता बनकर मैं गीत नहीं गाऊँगा।।[12]

महाराणा प्रताप में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई है। वे धरती माँ को ही अपना बिछौना मानते हैं। वे बनजारा बनकर क्रांतिगान करने का आहवान करते हुए कहते हैं कि-

बिस्तर नहीं, नहीं कुछ चिंता धरती पर सोऊँगा।
मैं बंजारा गाते-गाते क्रांति राग बोऊँगा।।[13]

महाराणा प्रताप दृढ़ संकल्प करते हुए कहते हैं कि यदि उन्हें मातृभूमि के गौरव के लिए घास की रोटियाँ भी खानी पड़ें तो वह उसे मंजूर है। कवि महाराणा के वैयक्तिक संकल्प को प्रस्तुत करते हुए कहता है-

रोटी अगर नहीं मिलती तो भूखे ही रह लेंगे।
मातृभूमि की खातिर यह संकट सह लेगे।।
घास-फूस खा लेंगे, पी लेंगे झरनों का पानी।
लेकिन कभी न मरने देंगे हम नयनों का पानी।।[14]

जब भूख से उसके बच्चे बिलबिलाने लगते हैं तो वे विवश होकर अकबर को पत्र लिख देते हैं। महाराणा की व्यक्तिगत संवेदना को प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है-

दो बच्चों की भूख देखकर मैंने खत लिख डाला।
अपने ही हाथों अपने पर मारा ज्यों भाला।
मैं कितना कायर हूँ अकबर को चिट्ठी लिख डाली।
इस माटी के फूल वीर कायर निकला माली।।[15]

महाराणा ने अकबर को जो पत्र लिखा उस पर पश्चाताप करते हुए कवि कहता है-

आँसू से आँखें धो राणा नंदन बन बैठे थे।
प्रायश्चित के पावक में जल कुंदन बन बैठे थे।।
संधि पत्र अकबर जो लिखा समझ लेना झूठा था।
आँसू देख बाल-बच्चों के मैं खुद से रूठा था।
समर क्षेत्र में वीर मिला करते है यह लिखना है।
राणा नहीं बिका न बिकेगा कभी नहीं बिकना है।[16]

कविवर 'मनीषी' ने मुगल सेना के अत्याचारों का भी वर्णन किया है। जब दूला महाराणा के बच्चों के लिए रोटी ले जा रहा था, तो रास्ते में युगल सैनिकों ने महाराणा प्रताप का अता-पता पूछा तो दूला साफ मनाकर देता है। इस बात से मुगल सैनिक नाराज हो जाते हैं और तलवार से दूले के हाथ-पैर काट देते हैं। कवि के उद्‌गार देखिए-

तभी वार फिर हुआ देहे से पैर अलग कर डाला।
फुदक फुदक कर एक टांग पर दौड़ा हिम्मत वाला।
तभी दूसरी टाँग कटी पर कब संघर्ष रुका था।
नीचों की नीचता देखकर दूला नहीं झुका था।।[17]

समर्पण और त्याग कर भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है। दोनों पैर कट जाने पर भी घिसट-घिसट कर दूला महाराणा प्रताप के दोनों बच्चों के लिए रोटी पहुँचाने का उपक्रम करता है। रोटी के थैले को मुँह से थामे हुए अपने वायदे को पूरा करने के लिए कृतसंकल्प है। दूला के माध्यम से भारतीय संसकृति के त्याग और समर्पणशीलता को व्यक्त करते हुए कवि कहता है-

दोनों पैर काटकर दूला पहले से लम्बा था।
घिसट-घिसट घुटनों पर बढ़ता धीरज का खंभा था।
मुख में रोटी वाला थैला कसकर पकड़ रखा था।
दूला ने संकल्प-वचन को मन से जकड़ रखा था।[18]

कविवर सारस्वत मोहन ने अपनी रचना 'एक हकीकत और' को सजाने और संवेदना को संवारने का सुंदर प्रयास किया है। महाराणा प्रताप एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। उनके जीवन से जुड़ी हुई दूला की त्यागमयी कहानी से प्रस्तुत करने में कवि ने सारस्वत कार्य किया है। महाराणा प्रताप के व्यक्तिगत विचारों, मुगलकालीन शासन, सांस्कृतिक उत्थान-पतन, प्रकृति प्रेम, आधुनिकता बोध से संवलित यह खंडकाव्य अनेक पहलुओं को उजागर करता है। भाषा, छंद, अलंकार, बिम्ब, कहावत-मुहावरे, सूक्ति, काव्यगुण आदि शैल्पिक उपादानों का इस काव्य में सुन्दर प्रयोग हुआ है। भाषा, भाव एवं प्रस्तुति की दृष्टि से यह काव्य अनुपम बन पड़ा है। कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से यह खंड काव्य हिंदी साहित्य की चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण रचना है।

रामभगत लांगायन कृत 'महाराणा प्रताप'

प्रस्तुत विस्तृत निबंध में रामभगत लांगायन ने भारत के वीर सेनानी महाराणा प्रताप की यश, कीर्ति का विस्तृत रेखांकन किया गया है। लेखक ने राष्ट्रीय चेतना के महापुरुषों का भावपूर्ण वर्णन किया है। वे लिखते हैं- ' 'हमारे महावीर नायकों ने अपनी वीरता को गिरवी नहीं रखा, बल्कि अपने देश के सम्मान तथा गौरव के लिए लगाया। उन्हीं में से महानायक महाराणा प्रताप का भव्य स्वरूप हमारे सामने हैं, जिन्होंने मेवाड़ को स्वतंत्र कराने के लिए अनेक कष्ट सहे, लेकिन मुगलों के सामने घुटने नहीं टेके। उनका आदर्श चरित्र आज भी प्रेरणादायक है।[19]

महाराणा प्रताप मेवाड़ के राजा थे। उनका जन्म 9 मई, सन् 1540 में हुआ। उनके पिता का नाम महाराणा उदयसिंह था। राजस्थान के सामंतों ने महाराणा प्रताप को मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठाया।... महाराणा प्रताप अपनी प्रजा की देखभाल संतान तुल्य करने थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। उनके यश को देखकर मुगल शासक अकबर उनसे घृणा, द्वेष व शत्रुता करने लगे थे। कालांतर में

उन्होंने राजा मानसिंह को बड़ा लालच देकर अपनी ओर खींच लिया जो महाराणा प्रताप का दुश्मन बन चुका था। कुल कलंकी मानसिंह ने अपनी सेना लेकर अकबर के सहयोग से मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। परन्तु शेर चुपचाप कैसे रह सकता था? अत: राणा ने भी अपनी सेना को आज्ञा दी कि मानसिंह की सेवा का डटकर मुकाबला किया जाए। अकबर की यह चाल थी कि भाई को भाई से लड़ा दो और अपना मकसद पूरा कर लो।

मानसिंह हाथी पर सवार होकर सेना का संचालन कर रहा था तो दूसरी ओर महाराणा भी चेतक घोड़े पर बैठकर युद्ध के मैदान में लड़ रहे थे। राणा के घोड़े चेतक ने अपने दोनों पैर हाथी पर रख दिये और राणा के प्रहार से मानसिंह की तलवार टूट गई। यदि राणा चाहते तो उसका अंत हो जाता। परन्तु महाराणा प्रताप धर्मवीर, आदर्शवादी व महावीर पुरुष थे। राणा ने निहत्थे पर वार करना धर्म विरुद्ध समझा। वह पापात्मा मानसिंह बच निकला। वीर सेनानी महाराणा प्रताप टस से मस नहीं हुए और वे मैदान में डटे रहे। इस महासमर में उनका चेतन घायल हो गया और राणा भी घायल हो चुके थे।[20]

हल्दीघाटी के मैदान में घायल चेतक और महाराणा भाग रहे थे और उनके पीछे दो मुसलमान सैनिक दौड़ रहे थे। उनके भाई शक्तिसिंह ने उन दोनों को मौत के घाट उतार दिया और महाराणा के चरणों में गिर कर क्षमा मानी क्योंकि वह अकबर के साथ मिल बैठा था। कुछ ही समय में चेतक के प्राण पखेरू उड़ गये थे। शक्ति सिंह ने अपना घोड़ा दिया और महाराणा को वहाँ से चले जाने के लिए कहा।

राज्य चला गया था। सिर छुपाना मुश्किल था। महाराणा अपने परिवार सहित जंगलों में रहने लगे। वहाँ घास की रोटियाँ खाकर अपना गुजारा करने लगे। मखमली नरम बिछौने ने पथरीली भूमि पर घास-फूस का स्थान लिया। जीवन बड़े कष्ट में व्यतीत हुआ। एक दिन महाराणा गुफा में बैठे मेवाड़ की आजादी के बारे में सोच रहे थे। महाराणा की पत्नी राजनन्दनी अपने बच्चों को घास की रोटियाँ खिला रही थी। इतने में एक बिलाव आया और राजकुमारी चम्पा के हाथ से रोटी छीनकर भाग निकला। वह छोटी बच्ची चम्पा महाराणा के पास रोती हुई आई और बोली कि "मैं तीन दिनों से भूखी हूँ, एक रोटी मिली, उसे भी छीनकर बिलाव ले गया। पिताजी! मुझे बहुत जोर की भूख लगी है। मुझे बताओ वह कौन शत्रु है, जिसने हमारा ऐसा हाल किया है। मुझे तलवार दो उसे खत्म करूँगी और अपने राजमहल में रहूँगी।"[21]

महाराणा प्रताप का हृदय वज्र से भी कठोर था। परन्तु बच्ची की भूख से बनी दुर्दशा को देखकर आँसू रोक नहीं पाए। पत्थर भी मोम बनकर पिघल गया। ... महाराणा ने सोचा कि ऐसी जिंदगी से भला है दुश्मन के साथ लड़कर वीरगति प्राप्त करना। महाराणा यह सोचकर चल पड़े। रास्ते में उन्हें महादानी भामाशाह मिले। वे हाथ जोड़कर कहने लगे- "महाराज! आपका दु:ख देखा नहीं जाता। हमने भी आपका नमक खाया है। यदि मेरा धन मातृभूमि और आपके काम नहीं आ सके तो फिर ऐसे धन का क्या फायदा? महाराणा ने भामाशाह का धन स्वीकार करते हुए कोटि-कोटि धन्यवाद किया। इसके बाद राणा ने अपनी सेना तैयार की और अनेक किलों पर कब्जा किया।[22]

महाराण ने अंतिम दिन अत्यंत कष्ट में व्यतीत हुए। वे बीमार रहने लगे। उन्हें इस बात का अत्यंत दु:ख था कि वे मेवाड़ को पुन: जीत न सके। 19 जनवरी सन् 1597 में उनका देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु पर अकबर बादशाह ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।[23]

महाराणा प्रताप, वास्तव में महान वीर व भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे। उन्होंने जंगल में रहना स्वीकार किया परन्तु राजमहल में रहने के लिए दासता स्वीकार नहीं की। कठिन से कठिन समय में भी विचलित न होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की बात सोचते थे। वे अपनी शूरता के लिए सदैव अमर रहेंगे।[24]

प्रस्तुत निबंध भाषा, शैली व प्रस्तुति की दृष्टि से उत्तम बन पड़ा है। लेखक ने महाराणा प्रताप की वीरता व यश-गौरव का वर्णन सहज सरल शब्दों में किया है। साहित्य-इतिहास के पन्ने उलट कर यदि देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि भारत भूमि के अनेक साहित्यकारों ने अपने-अपने ढंग से महाराणा प्रताप की वीरता व शौर्य का वर्णन किया है। इसी शृंखला में हरियाणा के उक्त साहित्यकारों ने भी अपने ढंग से महाराणा प्रताप का यशोगान किया है। अनेक शताब्दियाँ व्यतीत होने के बावजूद भी महाराणा प्रताप का नाम अमर है। महाराणा प्रताप का जीवन-चरित आकाशदीप के समान है, जो आज की पीढ़ी को राष्ट्रीय चेतना की से ओतप्रोत करके नई दिशा व नया आलोक प्रदान करता है।

संदर्भ

1. भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', 'सहकार' (राष्ट चेतना अंक), पृ. 13
2. भारतभूषण सांघीवाल, हरियाणवी काव्य ग्रंथावली, पृ. 207
3. वही, पृ. 211-212
4. वही, पृ. 221
5. वही, पृ. 222-223
6. वही, पृ. 223
7. वही, पृ. 225
8. वही, पृ. 231
9. वही, पृ 231-232
10. वही, पृ. 232
11. विजयेन्द्र स्नातक, 'एक हकीकत और' भूमिका, पृ. 9
12. सारस्वत मोहन मनीषी, 'एक हकीकत और', पृ. 72
13. वही, पृ. 73
14. वही, पृ. 73
15. वही, पृ. 88
16. वही, पृ. 51
17. वही, पृ. 87
18. वही, पृ. 87
19. रामभगत लांगायन, विश्व की महान विभूतियाँ, पृ. 572
20. वही, पृ. 573
21. वही, पृ. 274
22. वही, पृ. 275
23. वही, पृ. 275

वर्तमान विश्व परिदृश्य में गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ० विवेक कुमार राय

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उ०प्र०)

गाँधी भारतीय राष्ट्र के पिता हैं। गाँधी जी को विश्व में अहिंसा व शान्ति के युग को प्रारम्भ करने के रूप में व्यापक मान्यता मिली हुई है। उनका आमतौर पर यह विश्वास था कि अहिंसात्मक और शांतिपूर्ण तरीकों से विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। आज विश्व परिदृश्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि आज गाँधीजी प्रासंगिक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। कोरोना महामारी का यह समय संसार के लिए एक महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण समय है। इस चुनौतीपूर्ण समय में विश्व को अपनी दिशा बदलने की जरूरत है। साम्यवाद के पतन के बाद, यह सोचा गया था कि जीवन का पाश्चात्य तरीका ही एकमात्र तरीका है, परन्तु अब कोविड काल के बाद की चुनौतियों को देखने के बाद अब हमें यह लगने लगा है कि विकास का पश्चिमी मॉडल आर्थिक, पर्यावरणीय और मानवीय दृष्टि से सम्पोषित नहीं है। हम सब को यह समझ में आ गया है कि यह मॉडल त्रुटिपूर्ण है। सही दिशा की ओर ले जाने वाला मॉडल गाँधीवादी मॉडल है, यानि विश्व परिदृश्य में फैली चुनौतियों और समस्याओं का समाधान गाँधी के विचारों में भी सम्भव दिखता है। इस शोध पत्र में इसी पर ध्यान आकृष्ट किया गया है।

आज 21वी सदी में पर्यावरण की समस्या एक वैश्विक समस्या है, जिससे पूरी दुनिया चिंतित है।वैश्विक गर्माहट और पर्यावरण ह्रास के प्रति चिंता बढ़ती ही जा रही है, परंतु गांधीजी ने बहुत पहले ही कहा था कि इस धरती के संसाधन सीमित हैं और एक न्यायसंगत एवं संपोषित समाज व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता है। गांधीजी ने मानवीय आवश्यकताओं, मांगों और लालच के प्रति अपने विचार प्रकट किए हैं। इनको अपनाकर पर्यावरणीय कार्यक्रम का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है: धरती के पास प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, परंतु उसकी लालच के लिए नहीं। अगर कोई व्यक्ति वस्तु की आवश्यकता न होने पर भी उसे अपने पास रखता है तो वह चोरी है। ''हम जिस ढंग से चाहे प्रकृति के उपहारों का प्रयोग कर सकते हैं, परंतु प्रकृति के बहीखाते में लेन-देन सदैव समान रहता है।'' गांधीजी चाहते थे कि मानव जाति प्रत्येक वस्तु की संरक्षक (ट्रस्टी) के रूप में कार्य करे। गांधीजी स्वच्छता, साफसफाई और स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूक थे। उनके अनुसार, ''जो व्यक्ति लापरवाही से यहां-वहां थूककर, कूड़ा-करकट फेंककर या किसी अन्य रूप में जमीन को गंदा करके वायु को दूषित करता है, वह मनुष्य और प्रकृति के प्रति पाप करता है।'' उनके अनुसार एक आदर्श गांव वह है जो स्वयं संपूर्ण साफ सफाई का ध्यान रखता है। इसमें ऐसी झोपडिघ्यां होंगी जो अपने 5 मील की परिधि में मिलने वाली सामग्री से बनी होंगी और इनमें पर्याप्त रोशनी व खिड़कियां होंगी। यद्यपि गांधीजी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों में उलझे रहे मगर फिर भी उन्होंने एक. रद्दी के कागज की, एक बूंद पानी की, एक गेहूं के दाने की या एक मिनट की बर्बादी की भी आज्ञा नहीं दी। गांधीजी के आश्रम साधारण जीवन और साफ-सफाई का एक नमूना थे। 'अर्नी नीस' सुविचारित पारिस्थितिकी' विचार के प्रवर्तक हैं, उन्होंने लिखा कि, ''गांधीजी का आदर्श, उन कुछ आदर्श में से एक है जो पर्यावरण संतुलन को दर्शाता है, और उनके द्वारा पाश्चात्य संसार की भौतिक प्रचुरता और अपशिष्ट की आलोचना को पारिस्थितिकीय आंदोलन से जुड़े नेताओं ने स्वीकार किया है।'' संसार भर में ग्रीन पीस आंदोलन के कार्यकर्ता भी प्रेरणा के स्थायी स्रोत के रूप में गांधीवादी विचार की ओर देखते हैं।[1]

आज पूरी दुनिया में नस्लवाद की कई घटनाएं हमं जानने सुनने को मिलती है जिसकी वजह से कई तरह के तनाव और संघर्ष देखने को मिलते हैं। यह बहुत बड़ी वैश्विक समस्या के रूप में उभरा है। जिसका समाधान हमें गांधी चिन्तन में मिलता है। गांधीजी

लगभग 54 वर्ष तक सामाजिक भेदभावों विशेषकर नस्लवाद के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव और अस्पृश्यता के निवारण के लिए नस्लवाद का विरोध किया और लिंग आधारित भेदभाव की भी आलोचना की। गांधीजी ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के एक भाग के रूप में हिंदू-मुस्लिम सौहार्द के लिए संघर्ष किया और इसी कार्य के लिए उन्होंने अपनी शहादत दी। भारत एक सक्रिय धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक देश है और इसने 'गांधीजी के जीवन व दर्शन से काफी कुछ सीखा है। भारत में अस्पृश्यता के कारण हिंदू समाज के लगभग छठे भाग को समाज से बहिष्कृत कर दिया गया था और गांधीजी अस्पृश्यता के खिलाफ लगातार लड़ते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया और एक सकारात्मक कार्य के रूप में आरक्षण को लागू किया। गांधीजी ने शुरू से ही लिंग आधारित समानता का समर्थन किया। गांधीजी ने अपने राजनैतिक और रचनात्मक आंदोलनों में स्त्रियों, जिनमें निरक्षर और ग्रामीण स्त्रियां भी हैं, को बड़ी संख्या में जोड़ा। जब तक संसार में नस्ल, धर्म, लिंग आधारित और अन्य सामाजिक भेदभाव विद्यमान हैं, तब तक गांधीजी के सामाजिक समानता के संघर्ष का इतिहास मानव जाति के लिए प्रेरणा का एक बहुत बड़ा स्रोत बना रहेगा।[2]

आज कल राष्ट्रवाद का मुद्दा काफी चर्चा में है। टी0बी0 अखबार मीडिया, समाज और राजनीति हर जगह जोर शोर से चर्चा है। अगर हम इस पर गाँधी के विचारों को देखे तो गांधीजी ने राष्ट्रवाद और देशभक्ति को एक करके देखा है। उनके अनुसार, ''विश्व राज्यों का उद्देश्य पृथक स्वतंत्रता नहीं है। यह तो स्वैच्छिक परस्पर निर्भरता, अंत:निर्भरता, है।" उन्होंने आधिपत्य में नहीं बल्कि सांस्कृतिक परस्पर निर्भरता में विश्वास किया है। ''मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा हो और उसकी सभी खिड़कियां बंद हों। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियों की सुवासित वायु मेरे घर के चारों ओर बहे। लेकिन मैं ऐसी किसी वायु से अपने पांव नहीं उखड़ने दूंगा। मेरा धर्म संकुचित नहीं है...परंतु इसमें कठोरता, नस्ल, धर्म, या रंग के आधार पर भेदभाव की मनाही है।" ''गांधीजी ने इस बात पर अधिक जोर दिया कि विश्व संघ का ढांचा सिर्फ अहिंसा की बुनियाद पर ही खड़ा किया जा सकता है।" गांधीजी चाहते थे कि स्वतंत्र भारत एक विश्व संघ के लिए कार्य करे......और चाहते थे कि कम भाग्यशील देशों के दूर-दराज के घरों में रोशनी पहुंचनी चाहिए और इस उद्देश्य के लिए उन राष्ट्रों के ऊपर एक मुख्य भूमिका है जो आर्थिक और शैक्षिक रूप से आगे बढ़े हुए हैं।" 21वीं शताब्दी के लिए सहिष्णुता, भाईचारे, शांति और आपसी आदर की गांधीवादी अवधारणा एक घोषणापत्र बन सकता है। 14 जून, 2007 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने एकमत से यह फैसला किया कि अब आगे से महात्मा गांधी के जन्मदिन 2 अक्टूबर को अहिंसा का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाएगा। गांधी जी ने जो कुछ कहा और किया उसकी प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ गई है। हमें एक अहिंसक, समानतावादी, मानवीय, संपोषित, सौहार्दपूर्ण, समृद्ध और खुशहाल विश्व के गांधीजी के आदर्श व कार्य के लिए जी तोड़ प्रयास करना चाहिए। गांधीजी का नारा 'सब जीवन एक हैं' की अनुभूति के लिए हमें सारी मानवता से प्रेम करना चाहिए।[3]

आज कौमी एकता खतरे में है क्योंकि नौकरियों में और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण के प्रश्नों को लेकर बडे-बड़े जन-आंदोलन चल रहे हैं। इतिहास को तोड़ा--मरोड़ा जा रहा है। जाति-भेद बढ़ रहे हैं। इसको बढ़ावा देने का कार्य हमारे चुने हुए प्रतिनिधि अपनी राजनीतिक गद्दी प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। इन्हीं जातिवाद, संप्रदायवाद के कारण भारत कई बार परतंत्र हुआ और विदेशियों ने भारतीयों का शोषण किया तब राष्ट्रवाद की भावना का जन्म हुआ। लेकिन खेद इस बात का है कि आज हम फिर उसी परतंत्रता की ओर घिसट रहे हैं। अत: सबसे पहले हमें सर्वधर्म समभाव का निर्माण करना होगा। गाँधीजी एक ऐसे समाज की कल्पना कर रहे थे जहाँ सभी को उनकी आत्मा की आवाज में सोचने और समझ पैदा करने की व्यवस्था होगी। वहाँ राज्य रहेगा परंतु वह कम-से-कम कार्य करेगा। लेकिन वर्तमान में राज्य का स्वरूप केंद्रीयकरण का हो गया है और इसकी प्रकृति हिंसा पर आधारित है। स्वतंत्र भारत समता की ओर जाने के बदले विषमता की ओर बढ़ रहा है। पुराना जमींदारी प्रथा और राजा-महाराजा गए, लेकिन एक नया उच्च वर्ग तेजी से बढ़ा है। आधुनिक उद्योगीकरण के कारण गाँव और शहर के बीच गरीब व अमीर के बीच विषमता बढ़ी है। ऐसा नहीं है कि वर्तमान सरकार के पास इसका कोई समाधान नहीं हो, परंतु केंद्रीय और राज्य सरकार में बैठे हमारे प्रतिनिधियों में सत्ता का मोह त्यागने की इच्छा जागृत करनी होगी। यह तभी संभव होगा जब गाँधी की कल्पना का पंचायत राज स्थापित होगा।[4]

आज के समय की महत्त्वपूर्ण समस्याओं में से आर्थिक असमानता, क्षेत्रीय असमानता, गरीबी, महँगाई, शोषण-प्रदूषण आदि समस्याओं का असली हल मौजूदा व्यवस्था के अंतर्गत संभव नहीं है और मार्क्सवादी व्यवस्था का रूप आज पूँजीवाद की ओर लौट चुका है। इसलिए वर्तमान में हम गाँधी के पंचायत राज को स्थापित करके भारत का भावी विकास कर सकते हैं। लेकिन इसके

लिए नए सोच के साथ सेवा परस्पर सहयोग तथा एक-दूसरे के लिए लोगों को तैयार करना होगा। ऐसा करने के लिए उनमें प्रेरणा जागृत करनी होगी, लेकिन इसका प्रारंभ तो पहले केंद्र से करना होगा। सबसे पहले उच्च राजनीतिक सत्ताधारी, जमींदार वर्ग और उच्च नौकरशाही में मानसिक परिवर्तन लाना आवश्यक है। इन तीन वर्गों को सबसे पहले नैतिकता के पहलू पर विचार करना होगा तभी गाँधीजी के पंचायत राज को स्थापित किया जा सकता है।[5]

महात्मा गाँधी को संसार का एक महानतम व्यक्ति समझा जाता है। एक अमेरिकन पादरी डॉ. जॉन हेन्स हॉम्स का कथन है कि ईसामसीह के बाद गाँधीजी संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। गाँधीजी महान इसलिए थे कि उन्होंने अपने देश की स्वाधीनता के संग्राम का सफलतापूर्वक संचालन किया, और हॉम्स ने सन् 1922 में गाँधीजी को संसार का महानतम मनुष्य घोषित किया, जब भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था और उनका नाम पश्चिमी जगत में विख्यात नहीं था। विचारशील व्यक्तियों की दृष्टि में जिस कारण वे इतने महान बने, वह उनका विलक्षण साधन था जो उन्होंने दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में अपने संघर्षों में अपनाया। वह उनका पदार्थ पर आत्मा की श्रेष्ठता का बल देना है। मनुष्य के आत्मबल में विश्वास को जागृत करके गाँधीजी ने मानव हृदय में उससे बड़ी क्रांति की, जो रूस और फ्रांस में हुई थी, क्योंकि उन क्रांतिकारियों ने जीवन के ऐसे मूल्यों को नहीं समझा जिन पर उस समय समाज आधारित था। अपने अनुयाइयों को प्रत्येक रूप में हिंसा से बचने और सामाजिक तथा राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध अपने संघर्ष में केवल सत्य और अहिंसा के बल पर निर्भर रहने का उपदेश देकर, उन्होंने प्रत्येक मानव हृदय में इन गुणों को आरोपित करने का भरसक प्रयास किया। उनका अहिंसा पर बल देना यह स्मरण कराता था, कि कुछ ऐसी बातें हैं जो मनुष्य को अपने देश के लिए नहीं करनी चाहियें।[6]

मानव जाति पर गाँधीजी का एक अन्य ऋण है। उन्होंने व्यक्ति के महत्त्व तथा शक्तियों में हमारे विश्वास को पुनः जाग्रत किया। पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता ने मानव जाति को जो बड़े आघात पहुँचाये हैं उनमें से एक है कि व्यक्ति अणु बनकर रह गया है। वह अपने को उस महाकाय सामाजिक और राजनीतिक यंत्र के सामने असहाय अनुभव करता है क्योंकि वह अपने को उससे बाहर नहीं निकाल सकता और वह उसका एक पुर्जा बन गया है। केवल जर्मनी, रूस और इटली जैसे सर्वपक्षी राज्यों (जिनमें व्यक्ति को पूर्ण रूप से कुचल कर उसे राज्य के पूरी तरह अधीन बना दिया गया) में ही नहीं, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे लोकतन्त्री राज्यों में भी व्यक्ति का अधिक महत्व नहीं है। मंगलकारी राज्य की क्रियाओं ने व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और शक्ति को बड़ी सीमा तक नष्ट कर दिया है। गाँधीजी का यह एक बड़ा गुण है कि उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वास्तविक लोकतन्त्र तब तक नहीं हो सकता जब तक सर्वसाधारण व्यक्ति, दुरुपयोग होने पर राज्य की सत्ता का विरोध करना न सीख जायें।[7]

गांधी के सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन में अहिंसा, स्वतंत्रता और समता पारस्परिक अन्तर्निर्भरता के आधार पर न्याय की स्थापना में सहायक होते हैं। आदर्श समाज की स्थापना का यही समग्र नैतिक आधार है। गांधी का सम्पूर्ण जीवन मानवाधिकारों के आग्रह से प्रेरित है, जिसकी झलक उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन में देखी जा सकती है।[8]

आज जब हम वर्तमान समय की राजनीतिक व्यवस्था को देखते हैं, तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गांधीजी ने जिन नैतिक, मूल्यों की स्थापना की बात राजनीति में की थी, वे शायद गांधीजी के साथ ही राजनीति से चले गए क्योंकि आज राजनीति मात्र निजी स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बनकर रह गई है। आज विरले ही व्यक्ति ऐसे होंगे जो राष्ट्र सेवा की भावना से राजनीति में आते है अन्यथा अधिकांश व्यक्ति मात्र अपनी स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति में लगे रहते हैं। यही कारण है कि आज राजनीति इतनी अधिक दूषित हो गई है कि एक सामान्य व्यक्ति राजनीति में आने की सोच ही नहीं सकता। गांधीजी इस सत्य को जानते थे कि राजनीतिक व्यवस्था ही समाज के बारे समस्त निर्णय लेने वाली एकमात्र सत्ता होती है। उनके मत में यदि राजनीतिक व्यवस्था ही पतित हो जाएगी और नैतिकता से मुक्त हो जाएगी तो समाज के बारे में गलत निर्णयन होने से समाज का भी पतन होने लगेगा और उसकी अधोगति होनी प्रारम्भ हो जाएगी। आज यह सर्वविदित ही है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपवादस्वरूप कुछेक नेताओं को छोड़ दें तो शेष नेता गांधीजी की आशाओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप कदापि नहीं रहे जिसका परिणाम आज सभी के सामने है। न तो राजनीतिक व्यवस्था गरीबी, भूख और बेरोजगारी को मिटा पाई है और न ही प्रत्येक नागरिक को जीवित रहने के लिए न्यूनतम बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध करा पाई है। आज भले ही भारत अन्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया हो और विदेशों को अन्न की आपूर्ति करता हो लेकिन स्वयं भारत में प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में लोग भूखे रहते हैं क्योंकि उनके पास इतने पैसे नहीं हैं कि

बाजार से महंगा अन्न खरीदकर अपनी क्षुधा शान्त कर सके। आज भी शुद्ध और स्वच्छ पेयजल की नियमित प्राप्ति जनता के लिए एक मृगमरीचिका के समान है क्योंकि शासन और प्रशासन भ्रष्टाचार में इतना आकंठ डूब चुका है कि योजनाएँ भव्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निर्मित की जाती हैं लेकिन योजनाओं का क्रियान्वयन मात्र कागजी तौर पर होता हैं।[9]

गांधीजी को इन सब बुराइयों का पूर्वाभास हो गया था। ये बुराइयाँ विश्व के अन्य राष्ट्रों की तरह भारत में न आने पाएँ, इसके लिए ही उन्होंने यह चाहा था कि राजनीति में धर्म का प्रवेश हो अर्थात सत्य, अहिंसा, नैतिकता, ईमानदारी, प्रेम, सहिष्णुता आदि गुणों से युक्त व्यक्ति ही राजनीति में प्रवेश करें, तभी वह राजनीति जनसेवा का माध्यम बन सकती है। वर्तमान समय में भारत को सबसे अधिक आवश्यकता ऐसे ही व्यक्तियों की है जो राजनीतिक परिवेश को स्वच्छ एवं निर्मल बनाएँ और निःस्वार्थ भाव से राष्ट्रसेवा करें।[10]

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था' नई वैश्विक आर्थिक व्यवस्था के इशारे पर कार्य कर रही है। इसलिए बदलते वैश्विक परिदृश्य में ही महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे क्षेत्रीय शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए उभरती व्यवस्था, नई आर्थिक व्यवस्था, नई सूचना व्यवस्था और उभरती सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को देखा जाना चाहिए। नई वैश्विक आर्थिक व्यवस्था पर पूंजीवादी शक्तियों का दबदबा है। यह व्यवस्था भविष्य में राजनैतिक व्यवस्था को नियंत्रित करेगी और उस पर प्रभाव डालेगी। साथ ही नई वैश्विक आर्थिक व्यवस्था राजनैतिक व्यवस्था को अपनी नीतियों व निर्णयों को मानने के लिए बाध्य भी करेगी। इस बदली हुई परिस्थिति में ''एक नई वैश्विक आर्थिक व्यवस्था'' के प्रतिमान पर नियंत्रण व संतुलन के लिए क्रियाशील व प्रभावशाली संयुक्त राष्ट्र का होना आवश्यक है। फिलहाल संयुक्त राष्ट्र भी बड़े राष्ट्रों की अनदेखी नहीं कर पाया।[11] ऐसी परिस्थितियों में समस्याओं के समाधान में गांधी के विचारों की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

निष्कर्ष रुप में इस प्रकार से कहा जा सकता है कि केन्द्रीय गांधीवादी मूल्य जैसे अहिंसा, सत्य, न्याय, शोषण का न होना, मानवीय करुणा और शान्ति समय व स्थान की सीमाओं के परे के हैं। इस प्रकार से वैश्विक व्यवस्थाओं में परिवर्तन होने के बावजूद ये मूल्य प्रासंगिक बने रहेंगे। समकालीन विश्व बहुत सारी समस्याओं का सामना कर रहा है जिनकी प्रकृति राजनीतिक, आर्थिक और मानवतावादी है। इन समस्याओं का समाधान गांधीवादी व्यवहार को अपनाने में ही निहित है। यद्यपि गांधीवाद को व्यवहार में लाना एक चुनौती भरा कार्य है। द्विपक्षीय और वैश्विक शान्ति की प्राप्ति में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न, शक्ति प्रतिमान, हथियारों की दौड़ और नरसंहार के हथियार इत्यादि मुद्दे संकट पैदा करते हैं। फिर भी, इस सन्दर्भ में पूरी तरह से निराश होने की आवयकता नहीं है। इस प्रकार की नकारात्मक घटनाओं को सुलझाने के लिए नई रणनीतियों का विकास करने की आवश्यकता है। राज्य एक तरफ तो नागरिक समाज की स्थापना के लिए प्रयास करे तो दूसरी तरफ, वह पड़ोसी राज्यों से विश्वास बनाए रखने के लिए विश्वास निर्माण उपाय की प्रक्रिया को प्रारम्भ करे। इस प्रकार, मानवता के व्यापक क्षेत्र में गांधीवादी केन्द्रीय मूल्यों के प्रसार द्वारा शान्ति की संस्कृति के विकास की तत्काल आवश्यकता है। परिणाम चाहे शीघ्र दिखाई न दें, परन्तु दीर्घकाल में ये मूल्य वैश्विक शान्ति के निर्माण में मुख्य आधार के रूप में कार्य करेंगे। इसलिए गांधीवाद समकालीन विश्व को पीडा पहुंचा रही समस्याओं को समझने के लिए न केवल प्रासंगिक है बल्कि यह राज्यों के बीच गांधीवादी मूल्यों की उपयोगिता के लिए जागरूकता पैदा करने का एक दृढ यंत्र भी है।[12]

इस तरह हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान परिदृश्य में गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता और ज्यादा बढ़ गयी है, विशेषरूप से कोविड महामारी के दौर के बाद की परिस्थितियों को देखते हुए। आज दुनिया गाँधी की ओर देख रही है। इस तरह की चर्चा सुनने को मिलती है कि महामारी से उपजी तमाम चुनौतियों का समाधान गाँधीवादी मॉडल से किया जा सकता है और कई देश इसको गंभीरता से ले रहे हैं। आज के दौर में उनकी प्रासंगिकता को उनका ही एक कथन सही ठहराता है, और वह है कि जो हमने आज किया है वो हमारे कल पर निर्भर करता है और हमारा कल हमारा भविष्य है इसलिए अपने आज पर पूरा ध्यान दो, ताकि आपका भविष्य अच्छा बन सके।

सन्दर्भ

1. आनन्द डॉ0 वाई0पी0, गांधीवादी विरासत: 21वीं शताब्दी में इसकी प्रासंगिकता, वर्ल्ड फोकस, अक्टूबर, 2011, पृ0 25
2. उपरोक्त, पृ0 25-26

3. उपरोक्त पृ0 26
4. दत्त डॉ0 महेश्वर, गांधी का पंचायतीराज, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, पृष्ठ 94-95
5. उपरोक्त पृ0 95
6. सूद ज्योति प्रसाद, भारतीय राजनीतिक विचारक, के0 नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 2011-12, पृ0 68
7. उपरोक्त, पृ0 70
8. चन्देल डॉ0 धर्मवीर, गांधी चिन्तन के विभिन्न पक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2019, पृ0 98
9. शर्मा प्रो0 बी0एम0, डॉ0 राम कृष्ण दत्त शर्मा, डॉ0 सविता शर्मा, गांधी दर्शन के विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2015, पृ0 152
10. उपरोक्त, पृ0 153
11. भारद्वाज डॉ0 आर्यभूषण, गांधीवादी परिप्रेक्ष्य में आर्थिक वैश्वीकरण का युग, वर्ल्ड फोकस, अक्टूबर, 2011, पृ0 47-48
12. यादव प्रो0 आर0एस0, समकालीन विश्व में गांधीवाद, वर्ल्ड फोकस जून,2012, पृ0 35

महबुलियाः बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति

अमित कुमार सिंह

असि. प्रो. समाजशास्त्र, गोस्वामी तुलसीदास राजकीय महाविद्यालय, कर्वी, चित्रकूट

लोक-संस्कृति उस मानव समाज की संस्कृति है जो सभ्यता से दूर मानव के प्रारम्भिक जीवन और क्रियाओं का बोध कराती है। डॉ श्री राम शर्मा ने लोक संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि लोक विशेषण से युक्त होने पर इसका अर्थ ऐसी संस्कृति के लिये ध्वनित होता है, जो शिष्ट एवं सभ्य वर्ग की संस्कृति से भिन्न हो। असभ्य, अर्द्धसभ्य या अशिक्षित, ग्राम्य आदि प्रकार के जन समूहों की संस्कृति का बोध कराता है। दूसरी ओर लोक सस्कृति का अर्थ ऐसी सहज, सीधी एवं प्राकृतिक धारा के सदृश, बनावटों एवं साज-सज्जा से दूर रहने वाली संस्कृति का परिचायक है।

गॉवों की आर्थिक तथा सामाजिक संरचना बदलने के साथ ही लोगों की मनोवृत्तियों तथा सम्पर्क के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम लोक-संस्कृति में होने वाले परिवर्तन के रूप में हमारे सामने आया है। लोक-संस्कृति में होने वाले परिवर्तन इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि वर्तमान युग में इसके अन्तर्गत जन सामान्य का सहभाग निरन्तर कम होता जा रहा है। आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण के प्रभाव से लोक जीवन नगरीय संस्कृति को अपना आदर्श मानने लगा है। ग्रामों में बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा प्रबल होने लगी है कि उनकी लोक-संस्कृति इस सीमा तक परिवर्तित हो गयी है कि अब इसे जीवन के लिये अधिक उपयोगी नही कहा जा सकता। यह सम्भव है कि वर्तमान परिवर्तन बदलती हुई रूचियों और मनोवृत्तियों के अनुरूप हो। लेकिन यह भी सच है कि इन परिवर्तनों के फलस्वरूप लोक जीवन में सांस्कृतिक विघटन की एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। इसके पश्चात् भी यह ध्यान रखना होगा कि लोक-संस्कृति में उत्पन्न परिवर्तन अभी इतने सीमित है कि इनके आधार पर ग्रामीण लोक जीवन को पूर्णतया विघटित नही कहा जा सकता। यद्यपि इन परिवर्तनों में तीव्रता आने पर लोक जीवन में विघटन के तत्व अधिक प्रभाव पूर्ण बन सकते है। इसी आधार पर अक्सर यह निष्कर्ष दिया जाता है कि कुछ समय पूर्व लोक-संस्कृति अतीत की संस्कृति थी लेकिन परिवर्तन की वर्तमान प्रक्रिया को देखने से यह स्पष्ट होता है कि लोक-संस्कृति को विशुद्व रूप से अतीत की संस्कृति नही कहा जा सकता। यह वर्तमान में भी कुछ परिवर्तनों के साथ लोक समाज का अभिन्न अंग है।

महबुलिया बुन्देलखण्ड का एक क्षेत्रीय पर्व है और इसका पूर्ण स्वरूप मौखिक ही है। महबुलिया स्थानीय क्षेत्र की एक लघु परम्परा है। उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र 7 जनपदों में विभक्त है, महबुलिया बुन्देलखण्ड के इन्हीं जनपदों में से केवल, चित्रकूट, बॉदा, महोबा में ही देखने को मिलती है। महबुलिया लघु परम्परा का तत्व होने के कारण इसकी बहुत सी जानकारी स्थानीय लोगों को भी नही है।

महबुलिया या महबुल ढाई को हम लघु परम्परा के अन्तर्गत रख सकते है। महबुलिया छोटी बच्चियों का पर्व है जो पितृपक्ष या पितर पक्ष के सितम्बर-अक्टूबर माह में मनाया जाता है। महबुलिया का कोई लिखित प्रमाण या कोई लिखित इतिहास नही मिलता, लिखित इतिहास न होने से यह क्यों मनाई जाती है कोई स्पष्ट कारण ज्ञात नही हो पाता।

महबुलिया के आयोजन का क्षेत्र

महबुलिया पर्व विशेषकर ग्रामीण अंचलों की बालिकाओं में त्योहार के रूप उत्साहपूर्वक मनाया जाता है। यह एक क्षेत्रीय परम्परा है तथा अपने अपने क्षेत्रों एवं ग्रामों में अलग-अलग जगह मनाते है। चूकिं गॉव विभिन्न थोको या मुहल्लें में विभाजित होते है। इसलिये अलग-अलग थोकों या मुहल्लें में महबुलिया का आयोजन बालिकाओं में परम्परागत रूप में देखने को मिलता है।

महबुलिया में बच्चियों की संख्या

बुन्देलखण्ड में इस परम्परागत त्योहार को विशेष रूप से बच्चियाँ ही मनाती है। महबुलिया खेलने में लगभग 10 से 15 लड़कियाँ एकत्रित होती जिनकी उम्र लगभग 10 से 15 वर्ष होती है, पर कभी कभी इससे भी अधिक उम्र की लड़कियाँ भाग लेते हुए दिखाई पड़ती है। बच्चियों को महबुलिया खेलते देखकर मुहल्ले या आस-पास के छोटे छोटे लड़के भी शामिल हो जाते है पर उनकी संख्या कम रहती है। यह अवश्य है कि एक महबुलिया में कई जातियों के बच्चे हो सकते हैं। यह उनके निवास के आधार पर निर्धारित होता है सामान्यत: एक पडोस में रहने वाली बच्चियों महबुलिया का सृजन करती है।

आयोजन स्थल

महबुलिया को मनाने या खेलने के लिये लड़कियाँ कोई ऐसा स्थान चुनती है, उसी स्थान पर लगातार पूरे पितृपक्ष अर्थात पन्द्रह दिनों तक महबुलिया का आयोजन होता रहे। आयोजन स्थल अधिकतर घर के बाहर चबूतरे पर होता है या फिर कोई सार्वजनिक स्थल। क्योंकि महबुलिया खेलते या उसका आयोजन करते समय बालिकाएं चारो तरफ गोलाकार बैठती है।

आयोजन की प्रक्रिया

महबुलिया के निर्माण के लिए सर्वप्रथम झाड़ीनुमा बबूल की लकड़ी लायी जाती है, जिसमें अधिक से अधिक काँटे हो। उसी झाड़ीनुमा कटीली लकड़ी में पकड़ने के लिये पर्याप्त डंठल भी हो। बबूल की उसी कटीली डाली के एक एक काँटे में फूल लगाये जाते हैं। कटीली एवं झाड़ीनुमा डाली को बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचलों में झाखर भी कहा जाता है।

फूलों की संकलन

महबुलिया खेलने के लिये गाँव में लड़कियों में इतना उत्साह देखने को मिलता है कि लड़कियाँ सुबह से ही विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे फूल एकत्रित कराने में जुट जाती है। ये फूल कनेर, गुलाब, गेदा, चमेली, आरती, गुडहल, मदार, बसरमा, चकौड़ा तथा विभिन्न प्रकार के शॉक -भाजी के फूल व स्थानीय क्षेत्र में उपलब्ध झाडिय्यों एवं वनस्पतियों के फूल एकत्रित करती है। चूँकि गाँव जातियों के हिसाब से विभिन्न टोंलों में बटां रहता है। अत: फूल एकत्र करने के लिये भी लड़कियों का समूह टोंलों के अनुसार निकलता है। पित्रपक्ष में अर्थात सितम्बर या अक्टूबर माह में स्थानीय शॉक भाजियों भी बहुलायत रहती है। इसलिये विभिन्न प्रकार के फूल आसानी से मिल जाते है।

मनाने व खेलने का समय

महबुलिया को मनाने व खेलने का समय प्रात: 9 से सायं 6 बजे के बीच का होता है, पर लड़कियां सुबह से ही महबुलिया की तैयारी करने लगती है। साधारणत: महबुलिया खेलने का समय या महबुलिया सृजन का समय सायं 5 बजे के बाद ही प्रारम्भ होता है और 1 या 2 घण्टे में इसका आयोजन पूरा हो जाता है, जो लड़कियों की संख्या पर निर्भर करता है। महबुलिया के स्थानीय लोक गीत, जो स्वयं लड़कियों द्वारा सृजित होते है और उन्ही के द्वारा गाये जाते है।

गीत

महबुलिया के नौ-दस फल, झलर रही मोर महबुलिया।
मोर बाबा बवा आये खेत, झलर रही मोर महबुलिया।
मोर दाई निरा आई खेत , झलर रही मोर महबुलिया।
मोर बप्पा बवा आयो खेत, झलर रही मोर महबुलिया।
मोर अम्मा निरा आई खेत , झलर रही मोर महबुलिया।

अर्थ:- इस गीत का आशय है कि महबुलिया में जो नौ दस फूल लगे है या इससे ज्यादा इन्ही फूलों की वजह से हमारी महबुलिया लहरा रही है और मेरे बाबा जी खेतो की बुआई भी करा आये और मेरी महबुलिया वैसे ही लहरा रही है और मेरी दाई/

दादी भी खेत को निराकर अर्थात खेत का काम कर के आ गयी और महबुलिया उसी प्रकार सुशोभित हो रही है और बप्पा अर्थात (पिता) एवं बप्पा के साथ अम्मा (माॅ) भी खेतों की बुआई वा निराई कर के आ गये और महबुलिया लहरा रही है।

विसर्जन स्थल/प्रक्रिया

महबुलिया को विसर्जन करने के लिये लड़कियां गीत गाते हुए नदी, तालाब, कुंआ, पोखरों, नहर आदि में विसर्जन करने जाती है। विसर्जन के दौरान वह नदी के किनारे एक स्थान को साफ करके आटे से चौक बनाकर महबुलिया की पूजा अर्चना करती हैं। फिर उसके बाद महबुलिया को पकड़कर 7 बार झप झपाती है, ऐसा करने पर काॅटे में लगे सारे फूल झर कर पानी में तैरने लगते है। यह प्रक्रिया कई लड़कियाॅ बारी बारी से करती है, जब तक की सारे फूल काटों से बाहर निकल न जाये।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में महबुलिया को जल में विसर्जित करने की प्रक्रिया को खोटना कहा जाता है, प्रतिदिन विसर्जन केवल फूलों का ही किया जाता है और काॅटेदार झाड़ी को घर ले जाया जाता है। पूरे पितृपक्ष तक यही प्रक्रिया चलती रहती है। पितृपक्ष के अन्तिम दिन या महबुलिया विर्सजन के आखिरी दिन काॅटे में बने फूल को काॅटा सहित विसर्जित किया जाता है। वर्तमान समय में तालाबों की घटती हुई संख्या अन्य जलाशयों के भी कारण विसर्जन की समस्या सामने आ रही है। कही कही तो तालाब इतने प्रदूषित रहते है कि विसर्जन की प्रक्रिया मात्र एक औपचारिकता रह गयी है।

प्रसाद एवं वितरण

महबुलिया को विसर्जित करने के बाद प्रसाद का वितरण होता है, प्रसाद में लड़कियाॅ चने की भीगी हुई दाल गुड़ में मिलाकर एवं भुना हुआ आटा चीनी मिलाकर (पंजीरी) प्रसाद के रूप में ले जाती है। जब महबुलिया का अन्तिम दिन होता है तब यही प्रसाद की मात्रा बढ़ जाती है जैसे- पुआ, पुड़ी गुलगुले, लडडू आदि ले जाती है। महबुलिया विसर्जन के बाद घर आते समय रास्ते में सबको प्रसाद वितरित करने की परम्परा है। प्रसाद लाने की जिम्मेदारी भी अलग दिन अलग अलग लड़कियों का निर्धारित रहता है। जो अपनी स्वेछानुसार और हैसियतनुसार प्रसाद लाती है।

महबुलिया के सन्दर्भ में विशेष बात कि यह परम्परा बुन्देलखण्ड के ही ग्रामीण अंचलों में ही विशेषकर देखने को मिलता है। महबुलिया मनाने व खेलने का प्रचलन गाॅवों एवं कस्बों तक ही सीमित है। ग्रामीण क्षेत्रों में महबुलिया के विलुप्त होते हुए स्वरूप भी अब देखने को मिलते है। अब गाॅव में भी इस पर्व को लेकर बहुत उत्साह देखने को नही मिलता। पहले जब महबुलिया का आयोजन होता था तो गाॅव भर में बच्चियाॅ अपने-अपने थोको में महबुलिया सजाती थी घर वाले भी बच्चों को प्रोत्साहन देते थे और कभी-कभी स्वयं भी प्रतिभाग करते थे। इस प्रकार पितृपक्ष में ग्रामीण अंचल महबुलिया मय हो जाता था, रंग-बिरंगे फूल देखते ही बनते थे साथ ही स्थानीय स्वरचित गीत की प्रस्तुति अद्भुत थी। आपसी सद्भाव था और बच्चों में आपस में प्रेम पूर्वक महबुलिया का आयोजन ग्रामीण लोक संस्कृति का बोध कराता था।

संन्दर्भ सूचीः-

1. मजूमदार0डी0एन0 - रेसेज एण्ड कल्चर्स आफ इण्डिया भारत 1958, एशिया पब्लिशिंग हाउस बाम्बें।
2. दूबे श्यामाचरण- भारतीय समाज 2003, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली।
3. दोषी एस0एल0 एवं जैन पी0सी0- भारतीय समाज संरचना एवं परिवर्तन 2005, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर।
4. श्रीनिवास एम0एन0- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

प्रगतिशीलता के संदर्भ में शमशेर बहादुर सिंह काव्य

डॉ० वाचस्पति यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कॉलेज, एटा (उ०प्र०)

कवि शमशेर की कविता जिस युग में विकसित हुई थी, वह नई कविता का युग था – सौन्दर्य और प्रेम से अनासक्त, बल्कि प्रतिरोध दूसरी तरफ प्रगतिशीलता के परचम उड़ रहे थे। वो भी पूरे जोशो-खरोश से। शमशेर की अकेली, गमगीन और अभावग्रस्त जिन्दगी थी। आमतौर पर समय और कवि के जीवनानुभव जिस एक बिन्दु पर मिल जाते हैं, वहीं कविता का केन्द्र होता है। हमने देखा है कि बहुत से किताबी कवियों के मुकाबले शमशेर का जीवन सच्चे सर्वहारा का जीवन था, कम्यून और कम्यूनिस्ट पार्टी ने भी उन्हें प्रभावित किया था, नई कविता में उनकी मजबूत साझेदारी थी, फिर भी शमशेर सबसे अलग थे। क्योंकि समय और जीवनानुभव जिस बिन्दु पर मिले थे उनसे कहीं हटकर था उनके भीतरी भूकम्प का केन्द्र। वे वहीं से परिचालित थे। जहां से अमृत ही नहीं विष भी निकलता है-

सरलता से भी गूढ़ गूढ़तर
तत्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय

-(1941, चुका भी हूं मैं नहीं पृ0 30 प्रतिनिधि कविताएं)

प्रेम सागर के मंथन से जो जहर निकलता है, वह शमशेर ने जिया भी और पिया भी। यही वह पीड़ा है जो उनके काव्य में अपार करूणा में बदलती है। सारी मानवता के दु:ख पहचानने और उसे निजी स्तर पर भोगने के रूप में (तमाम विषमय को भोगते हुए उसके विरुद्ध आंतरिक गहन विद्रोह के रूप में। शमशेर की आलोचना के साथ जो गड़बड़ी हुई वह यह है कि उनके रोमान में छिपी हुई उस पीड़ा को और पीड़ा में छिपी व्यापक मानवीय चिंता को, जो व्यंजन में स्वर की तरह छिपी थी, अक्सर नहीं देखा गया। नतीजे में उनमें फाँक दिखाई दी, जो बृहत्तर अर्थ में प्रेम को देखने पर शायद न दिखाई और सुझाई देता। कला का वह संघर्ष जिसमें-

प्रेम का कँवल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केवल उसी के दूसरे अर्थ-सौन्दर्य हो जाते हैं.
मनुष्य की आत्मा में।

(कला/इतने पास अपने)

शमशेर के कवि-मूल में जो प्रेम है, वही विराट होकर मनुष्य की आत्मा का बहुविद्य सौन्दर्य बना है, जिसकी जद में दुनिया की सारी हलचलें अनुभूतियां, संघर्ष आ जाते हैं क्योंकि सौन्दर्य सुन्दर ही नहीं है, सुन्दर की अनवरत तलाश है जिसमें असुन्दर भी

मिलता है और हद तक। इसलिए शमशेर के संवेदन-केन्द्र पर ही नहीं, उसके विकास-क्रम, प्रयोजन और परिणति पर भी गौर करना जरूरी है। बिना इसके उनके विचार और काव्य, समय और काव्य, जीवनानुभव और काव्य में दरारें ही दरारें देखी जाती रहेंगी। उदाहरण के लिए अक्सर कहा जाता है कि शमशेर बात तो प्रगतिशीलता की करते हैं और कविताएं रोमानी लिखते हैं - यानी वे कविताएं जो उनकी श्रेष्ठ और गहरी कविताएं हैं। विसंगति तो देखिए कि पहले इन्हें अलग अलग किया गया और फिर उन पर अलग-अलग होने का आरोप लगाते हुए उनमें फाँक देखी गयी, जबकि कवि को हमेशा ही इस पर हैरत होती रही है -

'शतरंज का एक खाना है
जिसमें तुम मुझे उठा कर रखते हो।''

(मेरे समय को ...पृ0 155, प्रतिनिधि कविताएं)

लेकिन शमशेर हैं कि शतरंज का मोहरा बनने को तैयार नहीं न खुद न कवि। अपने एक लेख 'आशु कविता' में वे लिखते हैं- (सच्चा कवि) 'स्थितियों को अपनी आँखों से देखता, अपनी अनुभूति की रोशनी में उसे समझता, अपने निजी तर्क से उसे उन्हें परखता और उसे अपनी निजी शैली में प्रस्तुत करता है। दूसरों की मुँहदेखी बात करना उसकी शान के खिलाफ है।

(कुछ और गद्य रचनाएं, पृ0 238)

'डायरी' (कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूं) कविता में वे लिखते हैं - लेखक (और लेखक ही क्यों) - एक सांचा है, उस सांचे में आप फिट हो जाइये - हर एक के पास एक सांचा है - राजनीतिज्ञ, प्रकाशक ...शिक्षा संस्थानों के गुरु लोगों के पास।. ..यह लॉबी वह लॉबी रूस के पीछे, नहीं अमेरिका के, नहीं चीन के। अजी नहीं, अपने घर के बाबाजी के। इस झण्डे के उस झण्डे के। ...लाल नहीं भगवा, नहीं काला, नहीं सफेद लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि उसे साँचों में कैद करना चाहते हैं, क्योंकि हम कविता में भी रोमानियत को रोमानियत, करुणा को करुणा, प्रगतिवाद को प्रगतिवाद के सपाट अर्थ में देखते हैं। नतीजा यह होता है कि शमशेर की संवेदना का मूल चरित्र हमें उनकी मुखर प्रतिबद्धता से मेल खाता प्रतीत नहीं होता। जबकि इस संवेदनात्मक धुरी पर ही उनकी पूरी सर्जनात्मकता (यहां तक कि प्रगतिशीलता भी) टिकी हुई है। हालांकि यही बात मुक्तिबोध के साथ भी हुई है, क्योंकि उनकी मूल या केन्द्रीय संवेदना भयाकान्तता या संत्रास (हॉरर) की है, जिसे हम शिल्प की अजब, जटिल बुनावट, भाषा के विद्रूप, बिंब के विखण्डन, संरचना की विकृति आदि में देख सकते हैं। इसी को उन्होंने सामाजिक अर्थ दिया है, जिसे असंदिग्ध प्रगतिशीलता में देखना संभव लगता है। कारण यह है कि संत्रास का प्रगतिशीलता से तालमेल स्वाभाविक हैं शोषण की प्रकिया शोषित के भीतर संत्रस्त अनुभव के रूप में जन्म लेती है। तभी तो वह अकेले नहीं, संगठित होकर संघर्ष करता है। संगठन अकेले व्यक्ति के लिए संत्रास या भयत्रस्तता का परिहार है, इसीलिए मुक्तिबोध की मूल संवेदना और विचार में विसंगति नहीं दिखाई देती (जबकि शमशेर की मूल संवेदना अर्थात रोमानियत - प्रगतिशील विचारों की मूलगामी प्रतीत नहीं होती हैं, उल्टे वह प्रतिगामी प्रतीत होती है क्योंकि उसे सामान्य अवधारणा समझा गया जिसका अर्थ प्रेम, सौंदर्य, कल्पनाशीलता, वायवीयता आदि है। परन्तु जैसा हमने देखा है कि शमशेर की रोमानियत का अंतस्तत्व है - 'वेदना' जो उनकी प्रेम-सौंदर्य की कविताओं में भी रह-रहकर झलकती है। निरन्तर मनुष्य के पक्ष में व्यापक लगती है। वास्तव में करुणा प्रगतिशीलता का भी मूल भाव है। इसी से उत्पन्न होता है विद्रोह और प्रतिकार । करुणा शमशेर की प्रगतिशीलता या सामाजिक भावना को ऐसा कोमल, वेदनामय अंत:स्पर्श और कहीं-कहीं व्यंग्यात्मकता देती है, जो सर्वथा करुणा ग्रस्त रूमानी या रोदनशील कवियों से उन्हें अलग करती है। उदाहरण के लिए 'बैल' या 'लेकर सीधा नारा' कविता देख सकते हैं जिनमें निहित पीड़ा कितनी तीखी और मर्मवेदी है'-

मुझे वह इस तरह निचोड़ता है
जैसे घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर
पेरा जाता है
मेरे लहू की एक-एक बूंद किसके लिए
समर्पित होती है
यह तर्पण किसके लिए होता है?

(1972-73) ('बैल', पृ0 171, प्रतिनिधि कविताएं)

अनुभूति स्पर्शी कविता, बहिर्मुखी भाषणधर्मी कविता की तुलना में शोषण की यातना और उससे जन्मने वाले प्रतिकार को अधिक सशक्त अर्थात् हृदय को हिला देने वाले अन्दाज में व्यक्त करती है, यह उक्त कविता में महसूस किया जा सकता है और हमारे दिल सुलगते हैं 'जैसी कविताओं में भी जहां सर्वहारा कहता है - 'सरकारें पलटती है जहां- हम दर्द से करवट बदलते हैं, (कुछ और कविताएं) इसी तरह जब कवि कहता है:-

मैं समाज तो नहीं, न मैं कुल
जीवन
कण-समूह में हूं मैं केवल एक कण
कौन सहारा मेरा
कौन सहारा!

('लेकर सीधा नारा' पृ0 31, प्रतिनिधि कविताएं)

ऊपर से यह असहायता की कविता लगती हैं, परन्तु यह व्यक्ति-जीवन में सामाजिक जीवन की करुणार्द पुकार है। प्रेम की पाती 'इसका एक और उदाहरण है, जहां प्रेम की अत्यंत कोमल अपील में साम्प्रदायिकता पर तीखा प्रहार हुआ। नदी की धार की तरह काटती है वह भीतर जमे हुए कटुता और क्रूरता के पत्थर को-

'होली का भय दिवाली का आतंक
ईद मुहर्रम एक ही भांति।'

('बात बोलेगी')

विकट उत्सव बोध पर कैसा व्यंग्य और सकारात्मक सुझाव यहाँ है। जनता को एक करने के लिए कोई नारा न लगाते हुए कल्पनामयी, आकर्षक और आंतरिक बल पहुंचाने वाली उत्साह की कविता सामूहिक राग-बोध से ही उत्पन्न हो सकती है-

'सूरज
उगाया जाता
फूलों में
यदि हम
एक साथ
हंस पड़ते
चांद
आंगन बनता
आंखों में रास-भूमि यदि
सौर मण्डल की मिलती।'

(सूरज उगाया जाता कुछ और कविताएं)

आगे कवि कहता है कि हम काव्य के सार होते, भूत और भविष्य के प्रतिमान होते- यदि हम वर्तमान में एक साथ हँसते, रोते, गाते । एकता का यह गीत भले ही रोमानी उपादानों से रचा गया है परंतु इससे व्यक्त क्या हो रहा है?

जो लोग शमशेर में प्रेम और सौन्दर्य की स्वप्निल दुनिया ही देख पाते हैं, उनके लिए यह शेर नज है:-

'मेरी बातें भी तुझे खाबे-जवानी-सी है,
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद।

(कुछ शेर/कुछ और कविताएं)

असल में संवेदना पर विचार करते हुए संवेदना के प्रकार के साथ संवेदना के गुण, काल और प्रभाव पर भी विचार करना जरूरी होता है। शमशेर की संवेदना का गुण इतना गहरा और अंतरंग है कि वह मनुष्य को किसी उथले भाव की ओर नहीं ले जाता

(किसी गहन का उत्खनन करने, गहरे डूबने की ओर बुलाता है और उससे कुल मिलाकर जो संप्रेषित होता है, वह मनुष्य को प्रेम-सौन्दर्य के किसी एकायामी राग में गर्क नहीं करता बल्कि उसमें एक मानवीय विश्व-दृष्टि का अविर्भाव करता है। इसे कवि की समग्रता में देखा जाना चाहिए। 'कुछ और गद्य रचनाएं' में स्वयं शमशेर मानते हैं -

'हर कवि का मोटे तौर पर एक निजी काव्य-संसार होता है, जिसमें वह प्राय: रमा-सा रहता है। अगर ऐसा नहीं है तो वह वास्तव में कवि ही नहीं है। जरूरत इस बात की है कि कवि अपने इस निजी काव्य संसार को निरंतर अधिक-से-अधिक समृद्धि करता चले। समृद्ध करने का अर्थ है अपनी विषय-वस्तु को लेकर अन्दर-ही-अन्दर गहरा चिन्तन । जो भी विषय-वस्तु या उस विषय-वस्तु की दुनिया उसे आकृष्ट करती है, उसे अपनी भावनाओं में जितना भी अधिक मूर्त कर सकता है, उसे करना चाहिए। उसके हर पक्ष का विश्लेषण भी उसकी चेतना में जारी रहना चाहिए।

(कवि, कर्म: प्रतिभा और अभिव्यक्ति/कुछ और गद्य रचनाएं, पृ0 232)

शमशेर का एक व्यक्ति-मन' है, जिसे वे कवि का 'निजी काव्य-संसार' कहते हैं पर देखना यह है कि क्या यह व्यक्ति के लिए' ही है, या इसका कहीं उत्थान या प्रसाद हुआ है? शमशेर की यह काव्य-पंक्ति - 'व्यक्ति मन होता है जन-मन- के लिए' - पंक्ति भर नहीं है उनके कुल काव्य-संसार का अक्स है। कवि, जीवन के हृदय की 'संकुचितता' पर क्षुब्ध होता है। परिणामस्वरूप उसके कथन और कथ्य की सीमाएं फैल जाती है। वह युद्धरत दुनिया के विरुद्ध खड़ा हो जाता है, विभेदों और ईर्ष्याओं जाल काट कर पूरी दुनिया को शान्ति की विराट गोद में देखना चाहता है, यानी जिस प्रेम-गोद में वह स्वयं लिपटा है, उसी में सारी दुनिया को लिपटा देखना चाहता है।

'अमन का राग' इस मायने में शमशेर की अद्वितीय कविता है जहां उन्होंने दुनिया भर के सारे भेद-भाव तिरोहित कर, उसकी तमाम श्रेष्ठताओं को 'शांति' के व्यापक अर्थ में रूपांतरित किया है। तभी अपने वैचारिक आग्रह को दरकिनार करते हुए कवि कहता है-

मुझे अमेरिका का लिबर्टी स्टैचू
उतना ही प्यारा है जितना
मास्को का लाल तारा।

('अमन का राग''/प्रतिनिधि कविताएं, पृ0 94)

वह हवा में उड़ती हुई अनेक पताकाओं की परवाह न करते हुए जनता के उस दुख तक पहुंच जाता है, जो किसी पताका से परिभाषित नहीं होता-

एक जनता का
दु:ख एक
हवा में उड़ती पताकाएं
अनेक -(1945)

- ('बात बोलेगी''/प्रतिनिधि कविताएं, पृ0 44)

रोमानियत की एक अन्तर्वृत्ति है स्वच्छन्दता- वह कवि को किसी बात या विचारधारा से प्रभावित होने पर भी उसको कैद में नहीं बँधने देती, अन्यथा जो कवि किसी समय जिस चीन के प्रति अनुरक्त होकर 'चीनी' जनता का लोक सत्तात्मक गणराज्य के एक-एक अक्षर की प्रतिकृति है, उदात्त काव्यार्थ देता है, जो अंतत: इन पंक्तियों के साथ समाप्त होता है-

हमारा अन्तर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक चिन्ह है।

- ('चीन''/प्रतिनिधि कविताएं, पृ0 99)

(यहां 'हमारा' शब्द सिर्फ चीन के लिए नहीं, भारत और सम्पूर्ण विश्व के सर्वहारा के लिए है) परन्तु उसी चीन के द्वारा 1962 में भारत पर आक्रमण को वैश्विक और मानवीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत करते हुए चीन को चुनौती देता है

वह.
सत्य है
वह शक्ति के दुरभिभानियों का
रसातल नहीं।

- ('सत्यमेव जयते''/चुका भी हूं नहीं मैं)

वह कवि के 'व्यक्ति मन' में समाये विश्व-राग का ही परिणाम है कि वह साम्प्रदायिक दंगों और आपसी झगड़ों के खिलाफ, 'ईश्वर मैंने अगर अरबी से प्रार्थना की' या 'प्रेम पाती' (घर के बसंता के नाम) जैसी कविता लिखता है। जो गांधी की जन्मशती पर लिखी गई थी। यह आज की बात नहीं है, कि जब गाँधी प्रगतिशील विचारकों के लिए मान्य हो रहे हैं, यह तब की बात है, जबकि वह प्रतिक्रियावादी माने जाते थे और उनकी अहिंसा, धर्म, आदि अछूत।

गांधी का वास्ता देते हुए कवि गुजरात वासियों को धर्म की झूठी मान्यताओं के लिए लताड़ते हुए कैसा उपालंभ देता है-

धन गुजरात में गांधी तर्पन
धन्न रे धर्म की मूरत कांची।

- ('चुका भी हूं नहीं मैं')

साम्प्रदायिक दंगों में मनुष्य की सारी घृणा, द्वेष, संकीर्णता और कुरुपता उभरती हैं मनुष्य के परस्पर सौहार्द और शान्ति की कामना करने वाले कवि को इससे बार-बार आघात पहुंचा है। इसकी अभिव्यक्ति उसने कई कविताओं में की है। स्वतंत्रतता के पूर्व से ही यह सिलसिला चल रहा था, जिसे गोरो की राजनीति शतरंज के रूप में खोज रही थीं, तब की सियासी चाल पर व्यंग्य करते हुए कवि परोक्ष रूप से हिन्दुस्तानियों को आगाह करता है और ऐसा करता है जिसमें शोर कम और मार ज्यादा है-

जो धर्मों के अखाड़े हैं
उन्हें लड़वा दिया जाय!
जरूरत क्या कि हिन्दुस्तान पर
हमला किया जाय!!

और अपने देश वासियों को ऐसी नसीहत भी देता है जिसमें अपनापन है, अपील है -

तबीअत जैसी बन जाती है
फिर बनती ही जाती है
जो बन जाती है आपस में
तो तनती ही जाती है।

- (धार्मिक दंगों की राजनीतिध्काल तुझसे होड़ है मेरी)

रोमानियत एक आवेगात्मक अनुभूति है। प्रचलित प्रेम सौंदर्य में सीमित न करें तो यह मूलतः आवेग ही है। यदि इसका समुचित विकास हो तो- इसमें दृष्टि-सम्पन्न जोश और उत्साह भी शामिल होते हैं। शमशेर में आवेग का यह प्रेरक और उत्साहपूर्ण रूप देखें, जहां कवि घनीभूत पीड़ा 'के आवरण चीर कर ज्योति के निःशंक आकाश में उतर कर मोह, प्रेम और भय के कुशंकों को मिटा देने का आह्वान करता है-

खोल उठा ज्योति के मयंक

अंक मिटा भाल के निशंक!
मोह सत्य भौंह बंक
लौह सत्य प्रेम बेक
...अन्यथा व्यथा, व्यथा, वृथा...
है अनादि: आदि संक-शून्य अंक
तोल उठा वक्ष के अशंक भाव
की अथाहता!

– ('घनीभूत पीड़ा'/प्रतिनिधि कविताएं, पृ0 65)

और यह वही धारदार चुनौती है जो उनकी प्रारभिक कविताओं में ज्यादा ठोस ज्यादा कंक्रीट थी:-

ढीली इस जीवन की कमान
कसनी है,
छूटेंगे जिस पर कड़े प्राण
के तीर, जो कि भेदेंगे सातो आसमान'
'टूटेंगे अरिदल के पहाड़
के पहाड़
जब जन-बल का सागर दहाड़
कर उठेगा
करता विचूर्ण फासिस्ट हाड़! (1941) –

('जीवन की कमान'/प्रतिनिधि कविताएं, पृ. 32)

इसी दौर में उन्होंने 'बंगाल का अकाल' पर कई कविताएं लिखीं। 'बम्बई के 70 वर्ली किसानों को देखकर' 'नाविकों पर बमबारी', 'जहाजियों की क्रांति' या 'शाम' जैसी अनेक यथार्थ वस्तुपरक प्रगतिवादी कविताएं इसी क्रम की है। 'काश्मीर', 'फिर वह एक हिलोर', 'निजामशाही' : 1948 'जैसे राष्ट्रीय कविताएं तत्कालीन राष्ट्रीय संघर्ष को लेकर लिखी शमशेर की ठोस कविताएं हैं। रोमानियत प्रारंभ में जड़ों की तरह अधोमुखी रहा है, इसे उन्होंने स्वयं घोर व्यक्तिक अतार्किक भावुकता' कहा है। (मार्क्सवाद से संपर्क के बाद) उन्होंने उपर्युक्त ठोस और स्थूल कविताएं लिखी है, जो वृक्ष की तने की तरह हैं। इसके बाद वे शाखाओं, पत्तों, पुष्पों की तरह आकाश में फूले-फले हैं। वृक्ष एक ही है परन्तु आकार, प्रकार अभिव्यक्ति बदली हुई है। इसीलिए यद्यपि बाद में उन्होंने समकालीन समस्याओं को इस तरह प्राय: रेखांकित नहीं किया, हालांकि उनके अक्स उनकी कविताओं में कलात्मक माध्यम से उभरे और अनेक दिशाओं में खुलते गये।

एक तरह से देखा जाय तो उनकी प्रगतिशील कविताओं में जो स्वप्न, आशाएं और संभावनाएं भरी हुई हैं, वे उन कविताओं को भी रोमांटिक बना देती है, लेकिन वह रोमांस आत्मपरक नहीं, मानवीय या विश्वपरक है। शमशेर की रोमानियत का उत्स पीड़ा है इसलिए उनकी प्रगतिशील कविताओं में संवेदना की कमी नहीं है उनमें कलात्मक सम्पूर्णता भले उतनी ना हो, अनुभूति की अन्त:सार और व्यक्तित्व का प्रसार है। ऊपर से टटोलकर उनकी कविताओं से यह निष्कर्ष निकालना कि वे 'वास्तविकता से काफी भिन्न हैं' – अविचारित निष्कर्ष है और सबसे अहम बात यह कि शमशेर की कविताओं से कोई निष्कर्ष निकालना वैसे भी मुश्किल है, और सतही दृष्टि से बिल्कुल नामुमकिन है। खुद शमशेर के वक्तव्य से यह बात जाहिर होती है कि प्रगतिशील रचना उनके लिए परिश्रम-साध्य होती हैं, वे सहसा उसके लिए भाषा नहीं जुटा पाते। यानी अपनी आत्मपरक रोमानियत के विरुद्ध लड़ते हुए, बड़े परिश्रमपूर्वक उन्होंने समाजपरक कविताएं लिखी हैं। ऐसा क्यों है? क्या शमशेर का यह कथन प्रगतिशील रचनाओं के उस उत्तरदायित्व में दखल पैदा नहीं करता, जो जीवन और कविता दोनों से एक जैसे आचरण की अपेक्षा करती है? या ऐसा तो नहीं है कि यह प्रगतिशील कविता की सपाट बयानी के खिलाफ एक गहरे कवि के संघर्ष को सूचित करता हो? असल में 'प्रेम' और

'सौन्दर्य' जितना स्वयंप्रभ होता है, उतनी 'प्रगतिशीलता' नहीं होती। मुक्तिबोध केवल प्रगतिशील कविता लिखते रहे, तो शमशेर की सौंदर्यपरक कविताओं की तरह फ्लैश में नहीं - उन्हें कविता पाने के लिए और उसे व्यक्त करने के लिए कितना कड़ा संघर्ष करना पड़ता था? इसलिए शमशेर की यह पीड़ा किसी विरोधाभास को सूचित नहीं करती। वास्तव में यह अपने आप से गहरी प्रगतिशील रचना की मांग है। और इसका अर्थ यह नहीं कि वे अपनी प्रगतिशील रचनाओं से जितना निराश दीख पड़ते हैं, वास्तव में वे ऐसी हैं, बल्कि वे उसमें कुछ और ताकत, कुछ और गर्मी, कुछ और गहराई पैदा करना चाहते हैं। शमशेर की कविता में समग्रता ही नहीं बहुलता भी है, और वे इसे कलम की नियति भी मानते हैं:-

इक कलम है और सौ मजमून हैं।
एक कतरा खूने दिल तूफान है!!

- ('कुछ शेर''/कुछ और कविताएं)

मनुष्य मन को जिस कोष से, जिस तरह कोमल बनाया जा सके, सहलाया जा सके, उसे अंधेरे -सँकरे संसार से मुक्त किया जा सके, सत्य और सुन्दरता की अनुभूति से रूबरू हुआ जा सके, कठोरता को बेधा जा सके, घृणा और युद्ध के विरोध में खड़ा किया जा सके और संघर्ष का बल दिया जा सके - इसी प्रयास में लगी शमशेर की कविता विश्वनागरिकता का एक मार्मिक आख्यान है।

सन्दर्भ

1. 'प्रतिनिधि कविताएं'- शमशेर बहादुर सिह- संपादक नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. 'कवि कह गया है' - (आलोचना) - अशोक वाजपेयी - 'भारतीय ज्ञानपीठ', नई दिल्ली
3. 'नई कविता और अस्तित्ववाद' - राम विलास शर्मा - 'राजकमल प्रकाशन' नई दिल्ली
4. 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां' - नामवर सिंह - 'लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. 'शमशेर बहादुर सिंह' - प्रभाकर श्रोत्रिय - 'साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
6. 'प्रगतिशीलता और आधुनिकता' - नामवर सिंह - 'समानांतर प्रकाशन', गोरखपुर
7. 'कुछ कविताएं': चयनकर्ता और प्रकाशक, जगत शंखघर, कमच्छा, वाराणसी, मई 1959
8. 'कुछ और कविताएं' - 'राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961
9. 'चुका भी हूं मैं नहीं' - 'राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1975
10. 'काल तुझसे होड़ है मेरी' - 'राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1990
11. 'कुछ और गद्य रचनाएं - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
12. इतने पास अपने' - 'राजकमल प्रकाशन' नई दिल्ली, 1900

संसदीय लोक लेखा समिति की कार्यप्रणाली: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रजनी

शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

प्रो० (डॉ०) अंजना गर्ग

शोध निर्देशिका, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र संसदीय लोक लेखा समिति की कार्यप्रणाली: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित है। यह शोध पत्र प्राथमिक एवम् द्वित्तीयक आकड़ों के साथ साथ अवलोकन विधि का भी प्रयोग किया गया है। आकड़ों को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है, जिसके लिए शोधार्थी द्वारा 38 बहुउद्देश्यपूर्ण प्रश्नों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि अधिकतर उत्तरदाताओं का मानना है कि समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्यप्रणाली प्रभावित होती है। समिति प्रणाली न केवल संसद के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिर्शिचित करती है, बल्कि यह संसद के साथ साथ आम जनता को भी समिति की सिफारिशों से अवगत कराती है। समितियों के माध्यम से विधायिका के प्रति प्रशासनिक उत्तरदायित्व हमारी राजनीतिक व्यवस्था की कसौटी रहा है। शासन के कामकाज व विधायी निगरानी को अधिक प्रभावी, अर्थपूर्ण बनाने एवं सरकार की जवाबदेही सुनिर्शिचत करने के लिए महत्त्वपूर्ण सुझावों का भी अध्ययन में वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द:- लोक लेखा समिति, प्रतिवेदन, संसद, सिफारिश, कार्यपालिका, विधायी, जवाबदेही।

प्रस्तावना

लोकतंत्र शब्द एक ऐसी हुकूमत है, जहां सर्वोच्च शक्तियां संसद और विधानसभा के चुने हुए प्रतिनिधियों में निहित होती हैं। संसदीय प्रणाली के अनुसार चलने वाली सरकार में शासन सीधे जनप्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेही होता है। अपनी प्रकृति से ही विधायिका का काम कानून बनाना, सरकारी नीतियों पर बहस एवं विचार करना, प्रशासन के क्षेत्र में सरकार की कार्यवाहियों की देखरेख करना व वित्त (धन) की गहन छानबीन करना शामिल है। परंतु आधुनिक राज्य में वैधानिक तथा प्रशासनिक कृत्यों के व्यापक क्षेत्र और उसकी जटिलता के कारण प्रशासन के कार्यों पर निगरानी रखना लगभग असंभव हो जाता है। संसदीय निगरानी अधिक प्रभावी एवं सार्थक हो, इस दृष्टि से संसद को ऐसी एजेंसी की आवश्यकता होती है जिसमें संपूर्ण सदन का विश्वास हो। अन्य बातों के साथ-साथ इस उद्देश्य की प्राप्ति संसद अपनी समितियों के माध्यम से करती है।[1]

लोकतंत्र निर्वाचित संस्थाओं के संचालन से ही विधि मान्य बनता है। संसद अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य को संपन्न करते हुए भारत के लोकतंत्र में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। प्रधानमंत्री को हर समय प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित लोकसभा के बहुमत

का समर्थन अपेक्षित होता है। लोकसभा व परोक्ष रूप में निर्वाचित राज्यसभा अपने प्रश्नकाल में पूछे गए प्रश्नों और राष्ट्रीय महत्तव के विषय पर की जाने वाली बहस और प्रस्तावों जैसी अनेक प्रक्रियाओं के द्वारा संपन्न सरकारी कार्यों की समीक्षा करती है। दोनों सदनों के पास कानून बनाने और संविधान में संशोधन करने का अधिकार होता है, लेकिन सरकारी खर्च या कर संबंधी प्रस्ताव के अनुमोदन का अधिकार केवल लोकसभा के पास ही होता है।[2]

लोक वित्त पर संसदीय नियंत्रण लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का मुख्य लक्षण है। सरकारी व्यय पर प्रभावी संसदीय नियंत्रण अनिवार्य है। इसके मद्देनजर संसदीय शासन व्यवस्थाओं में व्यवस्थापिका द्वारा देश के वित्तीय प्रशासन तंत्र पर दोतरफा वित्तीय नियंत्रण रखने की व्यवस्था प्रचलन में है। संसदीय कार्य करने के लिए दोनों सदनों की साल में लगभग 70 बैठकें होती हैं। दोनों सदनों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत से कार्य करने होते हैं। ये कार्य संसदीय समितियों द्वारा किए जाते हैं। संसद एक ऐसी संस्था है जो कानून बनाती है, सरकार की जवाबदेही तय करती है और सार्वजनिक खर्च के लिए मंजूरी प्रदान करती है। इसके कार्य परिणामों से समग्र रूप में संसद की कार्यप्रणाली प्रभावित होती है।

ये समितियां अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं, जिसमें सबसे पहला उद्देश्य तो यह है कि संसद इनकी मदद से अपना कार्य बेहतर ढंग से चला पाती है। 700 सदस्यों के बजाय 30/22 सदस्यों की समिति किसी भी मामले की गहराई से जांच कर सकती है। दूसरा उद्देश्य यह है कि यह समितियां किसी विशेष मामलें की जांच के दौरान विशेषज्ञों की राय भी ले सकती हैं। समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों का सीधा असर नीति विधान पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए विभागीय स्थायी समितियां अक्सर जनता से भी राय लेती रहती हैं और अनेक लोगों को साक्ष्य के रूप के लिए बुलाती रहती हैं। तीसरा उद्देश्य यह है कि सार्वजनिक चका चौंद के बिना इन समितियों के सदस्य अपने चुनाव क्षेत्र के दबाव बिना ही अनेक मुद्दों पर चर्चा करते हैं और आम सहमति बना लेते हैं। भारतीय संदर्भ में चौथा उद्देश्य यह है कि दल बदल विरोधी कानून समितियों पर लागू नहीं होता। यही कारण है कि समितियों के निर्णय आमतौर पर दलीय आधार पर नहीं लिए जाते।[3] अंततः ये समितियां अपने सदस्यों को कुछ एक विशिष्ट क्षेत्रों पर ही ध्यान केंद्रित करने और अपनी विशेषज्ञता बनाने के लिए प्रेरित करती है, ताकि वे समग्र रूप में गहराई से संबंधित मुद्दों की जांच कर सकें।

समितियां संसद का ही एक छोटा भाग है। जिनका काम संबंधित मुद्दों की जांच करके सिफारिशें देना है। उसके बाद पूरे सदन को यह अधिकार है और जिम्मेवारी भी है ताकि वह इस संबंध में अंतिम निर्णय लें। समितियां अन्य विषयों के साथ-साथ अनुदान मांगों की जांच भी करती है, फिर सरकार सिफारिशों के कार्यन्वयन की सूचना सभी समितियों को देती है। समितियां उन सिफारिशों पर की गई कार्रवाई से संबंधित रिपोर्ट प्रकाशित करती है।[4] संसदीय लोकतंत्र में संसद और इसके चुने गए प्रतिनिधियों को प्रशासन के सुचारू और समुचित कार्य को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी दी जाती है। इस प्रकार संसद के सुचारू, प्रभावी और उचित विधायी कामकाजों को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से विभिन्न समितियों का गठन किया जाता है, जिसमें संसद के ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को इसके सदस्यों के रूप में शामिल किया जाता है।[5]

आधुनिक समय में संसद अपने कार्य को प्रभावी ढंग से नहीं कर सकती। जैसा कि जेम्स ब्रायस ने स्पष्ट रूप से कहा है, कि "ग्रीस के बाद के सभी इतिहासों से पता चलता है कि स्वतंत्र सरकारों की सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि बड़ी संसद/विधानसभाओं को सुचारू रूप से विधायी या कार्यकारी उद्देश्यों के लिए काम करना कठिन होता है।" अतः संसद के समक्ष लंबित कार्यों एवं इसकी व्यावहारिकता की जांच की जिम्मेदारी किसी अन्य संस्था को सौंपना आवश्यक हो जाता है, जिसमें पूरे सदन को भरोसा और विश्वास हो।[6]

शोध के उद्देश्य

1. लोक लेखा समिति में कार्य विभाजन का पता लगाना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध में 15वीं लोकसभा (2009-2014) तथा 16वीं लोकसभा (2014 से 2019) के दौरान चयनित संसदीय लोक लेखा समिति के सभी सदस्यों को अध्ययन में शामिल किया गया है। इस समयावधि के दौरान कुल 227 सदस्य रहे। जिनमें से 93 सदस्यों का चयन प्रस्तुत शोध के लिए किया गया है, जिनका निर्वाचन इस समयावधि के दौरान केवल एक बार किया गया है। प्राथमिक

आंकड़ों के संकलन के लिए उत्तरदाताओं से साक्षात्कार व अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है। वहीं द्वितीयक आकड़ों का संग्रहण विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोधपत्रों, इंटरनेट तथा समाचार पत्रों के माध्यम से किया गया है। प्राप्त आंकड़ों को एकत्रित करके विश्लेषण किया गया है।

विवरण एवं विचार-विमर्श

उत्तरदाताओं से यह जानना कि क्या समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्य पद्धति पर प्रभाव पड़ता है?

सरकार कुछ निश्चित व्यक्तियों का समूह होती है, जो राष्ट्र तथा राज्यों में निश्चित काल के लिए तथा निश्चित पद्धति द्वारा शासन करता है। सरकार के माध्यम से राज्य में राजशासन नीति लागू होती है। सरकार का कार्य कानून बनाना, लागू करना तथा झगड़ों में मध्यस्थता करना होता है। इसकी पूरी प्रक्रिया में कई प्रकार की समस्याओं का आना स्वाभाविक है। अपने प्रतिवेदनों के द्वारा समिति ने प्रशासन द्वारा अधिकार के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिकों की रक्षा करने के मुख्य उद्देश्य से प्रशासन को प्राप्त विशाल विवेकाधिकारों को नियंत्रित और विनियमित करने का प्रयास किया है। समिति यह सुनिश्चित करने के लिए बराबर नजर रखती है कि सरकार उनकी सिफारिशों को कार्यान्वित करें। समिति की सिफारिशों में न तो सरकार को निर्देश देने की शक्ति होती है और न ही वे बाध्यकारी होती है। यही कारण है कि समितियों के निष्कर्ष केवल सिफारिशों के रूप में होते हैं। परन्तु समितियों के गठन एवम् प्राधिकार के कारण भी मंत्री या प्राधिकारी इन प्रतिवेदनों की उपेक्षा नहीं कर सकता।[7] प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए चयनित उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि कथा समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्यपद्धति पर प्रभाव पड़ता है।

तालिका: 4.1: उत्तरदाताओं से यह जानना कि क्या समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्य पद्धति पर प्रभाव पड़ता है

क्र०सं०	विकल्प	उत्तरदाताओं की कुल संख्या	उत्तरदाताओं का कुल प्रतिशत
1	हाँ	71	88.8
2	नहीं	9	11.2
	कुल	80	100.00

स्त्रोत: शोधार्थी द्वारा न्यादर्श सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

उपरोक्त सारणी व बार ग्राफ से प्राप्त आंकड़ों से विदित होता है कि लोक लेखा समिति के 88.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी के अनुसार समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्य पद्धति पर प्रभाव पड़ता है, जबकि मात्र 11.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्य पद्धति प्रभावित नहीं होती। इनके अनुसार समिति के प्रतिवेदन सरकार के लिए केवल सिफारिश के रूप में होते हैं उनके लिए बाध्यकारी नहीं।

अत: तालिका से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि समिति के अधिकतर 88.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार समिति के प्रतिवेदनों से सरकार की कार्य पद्धति प्रभावित होती है। उनका ऐसा मानने का कारण समिति अनुमोदित नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अपव्यय और असावधानी को प्रकाश में लाती है। समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों का उद्देश्य इन नीतियों एवम् कार्यक्रमों को कुशलता और शीघ्रता से कार्य रूप देने के लिए प्रशासन को सदा सतर्क बनाए रखना है। प्रत्येक सिफारिश का सावधानी से विश्लेषण किया जाता है और प्रशासन का सदा यह प्रयास रहता है कि समितियों द्वारा प्रकाश में लाई गई त्रुटियों और कमियों को दूर किया जाए और समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार कार्य किया जाए।

उत्तरदाताओं से यह जानना कि विभागों / मंत्रालयों द्वारा कमेटी की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की समय सीमा क्या है ?

लोक वित्त पर संसदीय नियंत्रण लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का मुख्य लक्षण है। सरकारी व्यय पर प्रभावी संसदीय नियंत्रण अनिवार्य है। यह एक जिम्मेदार सरकार वाले देशों की वित्तीय प्रणाली में एक मान्यता प्राप्त प्रावधान है कि बजट निष्पादित किए जाने के बाद उसके लेन-देन की समीक्षा होनी चाहिए। संसद को सरकार के वार्षिक बजट अनुमानों का एक विस्तृत परीक्षण करना चाहिए। इसी कड़ी में समितियाँ संसद के प्रहरी के रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जहाँ भी समिति को लगे समिति अपनी-अपनी सिफारिशों संबंधित विभागों या मंत्रालयों के संबंध में देती है। वित्तीय समितियों के द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों पर संबंधित विभाग या मंत्रालय द्वारा क्या कार्यवाही की गई, कितने समय सीमा के अन्तर्गत की गई आदि बातों से समिति को अवगत कराया जाए। सिफारिशों को कार्य रूप देने में हुई प्रगति को और समितियों तथा सरकार में जिन मतभेदों का समाधान नहीं होता उनको 'की गई कार्यवाही प्रतिवेदन' के माध्यम से सदन के ध्यान में लाया जाता है।[8] प्रस्तुत तालिका में उत्तरदाताओं से यही जानने का प्रयास किया गया है कि विभागों / मंत्रालयों द्वारा कमेटी की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की समय-सीमा कितनी है।

तालिकाः 4.2: उत्तरदाताओं से विभागों / मंत्रालयों द्वारा कमेटी की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की समय-सीमा क्या है

क्र०सं०	विकल्प	उत्तरदाताओं की कुल संख्या	उत्तरदाताओं का कुल प्रतिशत
1	एक माह	4	5.0
2	तीन माह	15	18.8
3	छह माह	28	35.0
4	कोई सीमा नहीं	33	41.2
	कुल	80	100.00

स्त्रोतः शोधार्थी द्वारा न्यादर्श सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

उपरोक्त तालिका व बार ग्राफ से प्राप्त आंकड़े दर्शाते है कि संसदीय लोक लेखा समिति के 41.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि संबंधित विभागों या मंत्रालयों द्वारा समिति की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की कोई सीमा नहीं है। वही 35.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार यह समय-सीमा छह माह, 18.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि समिति की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की समय-सीमा तीन माह व सबसे कम केवल 5.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि यह समय-सीमा एक माह है। इनका कहना है कि समिति द्वारा प्रस्तुत सिफारिशों के लिए निश्चित रूप से कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है। जिसके कारण संबंधित विभाग / मंत्रालय उपयुक्त सिफारिशों पर कोई कार्यवाही न करना उचित समझती है। अब यह समय-सीमा राज्य विधानमण्डलों द्वारा 6 माह सुनिश्चित की गई है। जिसका प्रमुख कारण लम्बे समय से पड़ी विभिन्न विभागों व मंत्रालयों के द्वारा पीएसी को ऐक्शन टेकन रिपोर्ट न भेजना है।

प्रस्तुत रिपोर्ट में विधानसभा की लोक लेखा समिति की ओर से की गई सिफारिशों पर विभिन्न विभागों द्वारा किसी भी प्रकार की कार्यवाही न होने का विवाद सामने आया था। कैग की रिपोर्ट में गड़बड़ी सामने आने के बाद भी उस पर काम करने वाली विधानसभा की पीएसी की और से की गई सिफारिशों पर आज तक 1826 महकमों ने ऐक्शन टेकन रिपोर्ट ही नहीं भेजी है। जिसके अन्तर्गत वर्ष 1977 तक की रिपोर्ट भी शामिल है। यही कारण है कि 41.2 प्रतिशत उत्तरदाता यह कहने पर विवश हुए कि विभागों द्वारा कमेटी की सिफारिशों पर ऐक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की कोई सीमा नहीं।

इस प्रकार उपरोक्त तालिका व बार ग्राफ से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि 41.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार विभिन्न विभागों / मंत्रालयों द्वारा समिति की सिफारिशों पर ऐक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की कोई सीमा नहीं है व मात्र 5.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार यह समय-सीमा एक माह है।

निष्कर्ष

संसदीय लोकतंत्र में संसद तथा उसके प्रति निर्वाचित प्रतिनिधियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रशासन के सुचारू तथा उचित संचालन सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी उठाएं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसदीय समितियां भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की सहायक अंग सिद्ध हुई है। निरंतर सतर्क रहकर और सरकारी विभागों के कार्यक्रम के न्यायोचित एवं रचनात्मक मूल्यांकन से समितियों ने संसद के प्रभावी कार्यक्रम में विशिष्ट योगदान दिया है। देश में संसदीय संस्थानों को सामान्य रूप से सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आशा की जाती है कि इन समितियों के कारण प्रशासन की जवाबदेही और संसद की निगरानी प्रक्रिया और जांच व्यवस्था को नया बल और नई दिशा मिलेगी।

सुझावः-

- समिति की सिफारिशों पर एक्शन टेकन रिपोर्ट भेजने की समय सीमा का सभी मंत्रालयों/विभागों द्वारा कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। अगर किसी भी विभाग/ मंत्रालय/अधिकारी द्वारा इसकी अनदेखी की जाती है, तो उस पर उचित कार्यवाही की जानी चाहिए।
- लोक लेखा समिति के सभी सिफारिशों को सरकार द्वारा लागू किया जाना चाहिए। जिन सिफारिशों को सरकार द्वारा लागू नहीं किया जाता है, उन कारणों से समिति को अवगत कराना चाहिए।
- समिति की रिपोर्ट पर संसद द्वारा की चर्चा की जानी चाहिए। हालांकि संसद समिति की सिफारिशों को अतिरिक्त समर्थन देती है, फिर भी संसद में खुली चर्चा करके सदस्य और जनता को सरकार द्वारा व्यय में अनियमितता को जानने का अवसर मिलेगा। नियमित रूप से चर्चा का अवसर समिति की सिफारिशों को एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

संदर्भ सूची

- सुभाष, कश्यप, (2017). हमारी संसद. संसदीय समितियां. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. वसंत कुंज. नई दिल्ली. 152
- लोक लेखा समितिः कृत्य और उपलब्धियां, http://edurav.in,11-02-2019, 08:19PM
- सिंघवी, एल.एम., (1973). भारत में संसदीय समितियां. संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान. नई दिल्ली, 39
- जैना, बी.बी., (1962). भारत में संसदीय समितिया, कोलकाता साइंटिफिक बुक एजेंसी. कोलकाता. 19
- सैयद, एम.एच., (2006). भारतीय राजनीति का विश्वकोष. भाग 3. अनमोल प्रकाशन. नई दिल्ली. 165-166
- सिंघवी, एल.एम., (1973). भारत में संसदीय समितियां. संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान. नई दिल्ली. 41-42

स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न

डॉ० मनीषा साव

भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त तक के समय को नवजागरण काल माना जाता है। इस काल में कई स्त्रियां समाज सुधारक भी थीं। ये नवजागरण की घटनाओं को देश की आजादी के साथ स्त्रियों की आजादी के रूप में भी पहचान रही थीं। हिंदी ही नहीं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के लेखकों ने स्त्री को साहित्य का विषय बनाया है।

महाराष्ट्र में पंडिता रमाबाई स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष की बुनियाद रखने वाली एक प्रमुख स्त्री समाज-सुधारक थीं। उनके पिता को समाज से इसलिए बहिष्कृत कर दिया गया था, क्योंकि उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षा दी थी। मां के मरने पर उसकी अर्थी को कंधा देनेवाला चौथा आदमी नहीं मिला तो रमाबाई ने खुद अपना कंधा बढ़ाया, जिसकी समाज में आलोचना हुई। उन्होंने लिखा है, ''यदि हमें दीन स्त्री जाति के उत्थान के उपाय करने हैं तो उसकी बुनियाद है आत्मनिर्भरता। प्रत्येक स्त्री के हृदय में यह भावना पनपनी चाहिए। यदि सभी स्त्रियां अपनी उन्नति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर ध्यान दें, उन कठिनाइयों को हटाने का निरंतर प्रयास करें तब वे भी समाज में वही ऊंचा दर्जा पा लेंगी जो पुरुष का है। इस बात में कोई संदेह नहीं।'' यह स्त्री-पुरुष बराबरी के लिए संघर्ष है, जो 19वीं सदी में शुरू हो चुका था।

ताराबाई शिंदे भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने एक पुस्तक लिखी-'स्त्री पुरुष तुलना'। उनके मन में पुरुषों के प्रति आक्रोश है। उन्होंने पुरुष समाज से पूछा, 'स्त्री शक्ति है। वह अर्धांगिनी है। यदि आधा शरीर पीड़ित हो तो क्या बाकी आधा शरीर काम कर सकता है?'

हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सबसे पहले यह आकांक्षा व्यक्त की थी, 'नारि नर सम होंहि'। उन्होंने स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया था। बालकृष्ण भट्ट ने 'महिला स्वातंत्र्य' शीर्षक लेख में कहा है ''यकीन मानिए, जिस दिन हमारी सीधी-सादी ललना समाज में शिक्षा का असर पैदा हो गया, जैसे बंगाल में हो चला है, फिर ये मंदिर और देवस्थान हिंदुस्तान में एक पुरानी बात हो जाएगी।'' इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं, एक, हिंदी प्रदेश में अभी बंगाल की तरह स्त्री शिक्षा का अभाव था। दो, स्त्री शिक्षा को समाज में एक ऐसे परिवर्तन के रूप में देखा जा रहा था जिससे धर्म और समाज के बारे में धारणा बिलकुल बदल जाने वाली थी।

हम जानते हैं कि 19वीं सदी के समाज सुधार के केंद्र में स्त्री थी। इसलिए राष्ट्रवादी गतिविधियों का एक संबंध स्त्री समुदाय के उत्थान से था। बीसवीं सदी में मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' (1912) की रचना की थी। इसमें उन्होंने आधुनिक भारत की महिलाओं की उन्नति पर विशेष बल दिया। वे कहते थे कि हमारी शिक्षा तब तक कोई काम नहीं आएगी, जब तक महिलाएं शिक्षित नहीं होंगी। यदि पुरुष शिक्षित हो जाते हैं और महिलाएं अनपढ़ रह जाती हैं तो हमारा समाज ऐसे शरीर की तरह होगा जिसका आधा हिस्सा लकवे से बेकार है। 'भारत भारती' की पंक्तियां हैं-

विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आएगी
अर्द्धांगियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जाएगी
सर्वांग के बदले हुए यदि व्याधि पक्षाघात की
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा गात ही?

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में उर्मिला समाज सेवा के कार्य में लगती है। यद्यपि भारतीय स्त्री आंदोलन के इतिहास से यह पता चलता है कि 19वीं सदी में ही भारतीय स्त्रियों में उन्नति की प्रबल आकांक्षा पैदा हो गई थी। नवजाग्रत स्त्रियां परिवार और समाज में अपने स्थान के लिए मचलने लगी थीं। उनमें विशेष तरह का आत्मगौरव बोध भी पैदा हो रहा था।

हालांकि हिंदी में स्त्री लेखन की परंपरा भक्तिकाल से ही शुरू हो चुकी थी। हमलोग मुख्य रूप से मीरा बाई को ही जानते हैं, पर भक्त कवयित्रियों की एक अच्छी-खासी संख्या है। यह भी सही है कि अंग्रेजी राज में लंबे समय तक स्त्रियां रचनाकार नहीं हो सकीं। आधुनिक हिंदी लेखिकाओं में पहला महत्वपूर्ण नाम बंग महिला है, जिसका वास्तविक नाम राजेंद्र बाला घोष है। इस लेखिका से "आधुनिक महिला कथा लेखन की परंपरा शुरू हुई, वह निरंतर विकसित होती हुई अपने वर्तमान गौरवशिखर पर पहुंची है। इस विकास यात्रा में न जाने कितने मोड़, कितने पड़ाव और कितने पाथेय उसे मिले हैं- न जाने कितने सहयात्री उसकी सुदीर्घ यात्रा के कष्टों-अवरोधों के साक्षी रहे हैं, न जाने कितने नीर-क्षीर विवेकी समीक्षक उसकी छोटी बड़ी उपलब्धियों और सीमाओं के परिचर्चक रहे हैं।" कहा जा सकता है कि स्त्री लेखन में मनुष्य जीवन का एक अनोखा संसार मिलता है, जो पुरुष संसार से भिन्न है। बंग महिला से लेकर मैत्रेयी पुष्पा तक स्त्री रचनाकार परंपरा के प्रति निरंतर अधिक जागरूक होती गई हैं। वे आधुनिकता के प्रति सचेत रहते हुए स्त्री स्वाधीनता के प्रति भी निरंतर जागरूक होती गई हैं।

स्त्रियों के साहित्य पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि स्त्री चेतना को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में वे स्त्रियां आती हैं, जिन्हें अपनी अस्मिता की पहचान नहीं हुई है और वे स्वतंत्रता की जगह सुरक्षा ज्यादा पसंद करती हैं। दूसरे प्रकार की वे स्त्रियां हैं, जो पितृसत्ता का जमकर विरोध करती हैं। वे जीवन की प्रतियोगिता में पुरुष से आगे बढ़ जाना चाहती हैं। वे अपनी सत्ता स्थापित करना चाहती हैं। वे सुरक्षा के लिए परिवार के दायरे तक सीमित नहीं रहकर स्त्री स्वाधीनता की पक्षधर हैं। स्त्रियों का समकालीन साहित्य में जो भी स्वरूप उभरा है, हम देख सकते हैं कि कहीं पारिवारिक सुरक्षा की ओर अधिक झुकाव है और कहीं स्वाधीनता की ओर और कहीं पारिवारिक सुरक्षा और स्वाधीनता का मिश्रण है।

भारत में तेजी से बढ़ रही ई-कॉमर्स प्रवृत्तियों का अवलोकन

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, के.एन.आई.पी.एस.एस. सुल्तानपुर, उ०प्र०

डॉ० संदीप श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, के.एस.एस. साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या, उ०प्र०

शोध सार

आज व्यापार जगत में कोई सीमा नहीं है। प्रौद्योगिकी ने भौगोलिक सीमाओं से उत्पन्न समस्याओं को ठीक कर दिया है। व्यापार बड़े पैमाने पर ऑनलाइन किया जा रहा है, जहां इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से खरीद-बिक्री हो रही है। ई-कॉमर्स को कई कारणों से पसंद किया जाता है जिसमें वहनीयता, उत्पादों और सेवाओं की व्यापक रेंज और लेनदेन में शामिल सुविधा शामिल है। हालांकि, साथ ही, डेटा की गोपनीयता, ऑनलाइन पहचान की चोरी जैसी चिंताएं हैं और कभी-कभी, ऑर्डर किए गए उत्पाद उनके वास्तविक विवरण के अनुरूप नहीं होते हैं। इन स्थितियों में, साइबरस्पेस में अधिकार क्षेत्र के मुद्दों के कारण उपभोक्ता को अक्सर बिना किसी उपाय के छोड़ दिया जाता है। यह उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में बदलाव की मांग करता है जहां खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सूचना साझा करने, आसान विवाद समाधान तंत्र और संवेदनशील जानकारी की सुरक्षा के लिए तंत्र हैं।

Keywords: ई-कॉमर्स, चुनौतियां, ऑनलाइन खरीदारी, विकास, समृद्धि।

परिचयः दुनिया पारंपरिक अर्थव्यवस्था से आगे बढ़ रही है जो वस्तुओं के भौतिक निर्माण पर केंद्रित है और नई अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रही है जो किसी भी चीज से अधिक ज्ञान और सूचना पर ध्यान केंद्रित करती है। इस संबंध में इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स या ई-कॉमर्स एक महत्वपूर्ण पहलू है।

ई-कॉमर्स एक कठिन व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा लाता है, नए बाजारों का निर्माण करता है, तेजी से लेनदेन करता है, और प्रौद्योगिकियों में तेजी से विकास करता है। ई-कॉमर्स को आम तौर पर पारंपरिक भौतिक माध्यमों के बजाय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से व्यापार करने की एक प्रणाली या विधि के रूप में समझा जा सकता है।

ई-कॉमर्स को 'स्थान से स्थान तक भौतिक या डिजिटल रूप से परिवहन की आवश्यकता वाले उत्पादों और सेवाओं की खरीद और बिक्री सहित विनिमय में संलग्न होने के लिए इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसमिशन माध्यम का उपयोग' के रूप में परिभाषित किया गया है।

इसे पारंपरिक तरीकों से अधिक पसंद किया जाता है क्योंकि यह उन उत्पादों तक सुविधाजनक पहुंच प्रदान करता है जो अन्यथा पहुंच योग्य नहीं हो सकते हैं और उपभोक्ताओं और ई-खुदरा विक्रेताओं दोनों के लिए कुशल लेनदेन की ओर ले जाते हैं। इसके अलावा, ई-कॉमर्स ने कम मूल्य वाले सीमा-पार लेनदेन को उस पैमाने पर संभव बना दिया है जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की

जा सकती थी। ई-कॉमर्स को इसके द्वारा उपयोग की जाने वाली ऑटोमेशन तकनीक के कारण भारी लोकप्रियता मिली है। लेन-देन में आसानी के कारण, ई-उपभोक्ताओं की संख्या उच्च दर से बढ़ रही है और बहुत ही कम अवधि के भीतर यह भौतिक उपभोक्ता को हरा देगी।

आज ई-कॉमर्स कारोबार को प्रभावित कर रहा है। इलेक्ट्रॉनिक व्यवसाय न केवल सामान के खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है, बल्कि उपभोक्ताओं को सहायता और सेवाएं भी प्रदान करता है। आज किसी भी अन्य माध्यम की तुलना में इंटरनेट पर अधिक उपभोक्ता मांगें दिखाई देती हैं। यह दर्शाता है कि कम समय में कई ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए इंटरनेट में एक बड़ी क्षमता है, जो बदले में बढ़ती फर्मों के लिए एक लक्षित बाजार बन सकता है। इंटरनेट ने अर्थव्यवस्था को इतना बदल दिया है कि आज अधिकांश व्यावसायिक गतिविधियाँ ऑनलाइन की जाती हैं।

भारत के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के विशाल और अभी भी बढ़ते आधार में ग्रामीण बाजार में बढ़ती पैठ शामिल है। यह ई-कॉमर्स के उज्ज्वल भविष्य का वादा करता है। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए मजबूत सुरक्षात्मक तंत्र स्थापित करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, ई-उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए सरकार की जिम्मेदारी के अलावा, हम उपभोक्ता/ग्राहक और इंटरनेट उपयोगकर्ता होने के नाते हमारे ई-कॉमर्स को स्वस्थ और सुरक्षित रखने के लिए भी जिम्मेदार हैं ताकि भविष्य में ई-व्यवसाय अधिक विश्वसनीय हो सके।

अध्ययन का उद्देश्य

1. ई-कॉमर्स की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. भारत में ई-कॉमर्स की वर्तमान प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना।
3. भारत में ई-बिजनेस खिलाडिय्यों के सामने आने वाली विभिन्न चुनौतियों का अध्ययन करना।
4. भारत में ई-कॉमर्स की संभावनाओं का अध्ययन करना।

अनुसंधान क्रियाविधि:

यह शोध पत्र प्रकृति में वैचारिक और खोजपूर्ण है। ऐसे उद्देश्य की पूर्ति के लिए द्वितीयक विधि अपनाई जाती है। माध्यमिक डेटा को अध्ययन के लिए पुस्तकों, पत्रिकाओं और जर्नल और प्रकाशित सामग्री से संबंधित डिजिटल लर्निंग के माध्यम से एकत्र किया गया है।

भारत में ई-कॉमर्स कंपनियां: ई-कॉमर्स उद्योग तेजी से फलफूल रहा है। कई ई-कॉमर्स कंपनियों ने बहुत कम समय में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई है। सेवा के साथ बिक्री भारत में सर्वश्रेष्ठ ई-कॉमर्स कंपनियों के मानदंडों में फिट होने के लिए आवश्यक है। ऐसे कई कारण हैं जो ई-कॉमर्स क्षेत्र के विकास में योगदान दे रहे हैं। आज के समय में हर कोई समय की कमी और उचित मूल्य निर्धारण के कारण ऑनलाइन शॉपिंग करना पसंद करता है। ई-कॉमर्स इंडस्ट्री में तेजी के पीछे यह मुख्य कारण है।

भारत में सर्वश्रेष्ठ ई-कॉमर्स कंपनियों की निम्नलिखित सूची जो इस क्षेत्र में अग्रणी हैं।

- **अमेजन डेवलपमेंट सेंटर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड:** Amazon-com, Inc. को अक्सर केवल Amazon के रूप में संदर्भित किया जाता है, यह अमेरिकी इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स और क्लाउड कंप्यूटिंग कंपनी है जिसका मुख्यालय सिएटल वाशिंगटन में है। यह कुल बिक्री और बाजार पूंजीकरण के हिसाब से दुनिया का सबसे बड़ा इंटरनेट-आधारित रिटेलर है। यह भारत की शीर्ष 10 ई-कॉमर्स कंपनियों में से एक है। Amazon.com ने एक ऑनलाइन किताबों की दुकान के रूप में शुरुआत की, बाद में डीवीडी, ब्लू-रे सीडी, वीडियो डाउनलोड/स्ट्रीमिंग, एमपी3 डाउनलोड/स्ट्रीमिंग, आदि बेचने के लिए विविधीकरण किया।
- **ग्रोफर्स इंडिया प्रा. लिमिटेड:** ग्रोफर्स की स्थापना साल 2013 में सौरभ कुमार और अलबिंदर ढींडसा ने की थी। अग्रणी ऑनलाइन ग्रॉसरी डिलीवरी प्लेटफॉर्म का मुख्यालय गुड़गांव, हरियाणा में है। कंपनी ग्राहकों को किराने का सामान, ताजे फल और सब्जियां, मोबाइल और सहायक उपकरण, बरतन, किताबें पहुंचाने पर ध्यान केंद्रित करती है। Fundoodata पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।

- **फ्लिपकार्ट इंटरनेट प्राइवेट लिमिटेड (वॉलमार्ट):** यह भारत की शीर्ष 10 ई-कॉमर्स कंपनियों में से एक है। फ्लिपकार्ट इंटरनेट प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना वर्ष 2007 में सचिन बंसल और बिन्नी बंसल ने की थी। कंपनी सिंगापुर में पंजीकृत है लेकिन इसका मुख्यालय बैंगलोर में है। फ्लिपकार्ट ने टैबलेट, यूएसबी और लैपटॉप बैग सहित उत्पादों के साथ 'डिजीफ्लिप' नाम से अपनी उत्पाद श्रृंखला लॉन्च की है। कंपनी कई उत्पाद श्रेणियों के साथ ई-कॉमर्स उद्योग का नेतृत्व कर रही है। इसने कई इन-हाउस उत्पाद भी लॉन्च किए हैं।
- **नायका ई-रिटेल प्राइवेट लिमिटेड:** Nyka की स्थापना वर्ष 2012 में फाल्गुनी नायर ने की थी। वह पहले कोटक महिंद्रा कैपिटल कंपनी में प्रबंध निदेशक के रूप में कार्यरत थीं। कंपनी का मुख्यालय मुंबई, महाराष्ट्र में है। यह मुंबई की एक मल्टी-ब्रांड ब्यूटी रिटेलर है जो महिलाओं के लिए कॉस्मेटिक्स और वेलनेस प्रोडक्ट्स बेच रही है। Fundoodata पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।
- **थिंक एंड लर्न प्रा. लिमिटेड (ठलरने):** ठलरने की स्थापना बायजू रवींद्रन और दिव्या गोकुलनाथ ने 2011 में की थी। ठलरने बैंगलोर में स्थित एक प्रमुख बहुराष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी कंपनी है। कंपनी कक्षा 1 से 12 तक के छात्रों के लिए शैक्षिक सामग्री प्रदान करती है। यह छात्रों को भारत में IIT, JEE, NEET, CAT, IAS और अंतर्राष्ट्रीय परीक्षाओं जैसे GRE और GMAT जैसी परीक्षाओं के लिए भी प्रशिक्षित करती है। Fundoodata पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।
- **जोमैटो लिमिटेर्ड:** Zomato एक मल्टीनेशनल रेस्टोरेंट एग्रीगेटर और फूड डिलीवरी कंपनी है। इसकी स्थापना 2008 में दीपिंदर गोयल और पंकज चड्डा ने गुड़गांव में की थी। इसका प्रारंभिक नाम 'फूडीबे' था। 2010 में कंपनी का नाम बदलकर जोमैटो कर दिया गया। जोमैटो रेस्तरां की जानकारी, मेनू और उपयोगकर्ता समीक्षा के साथ-साथ चुनिंदा शहरों में पार्टनर रेस्तरां से भोजन वितरण विकल्प प्रदान करता है। 2019 तक, यह सेवा 24 देशों और 10,000 से अधिक शहरों में उपलब्ध है। थ्नदकववकंजं पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।
- **जस्ट डायल लिमिटेड:** Justdial Ltd की स्थापना वर्ष 1996 में वी. एस. एस. मणि ने की थी। इसका मुख्यालय मुंबई, महाराष्ट्र में है। यह भारत की शीर्ष 10 ई-कॉमर्स कंपनियों में से एक है। इसके कार्यालय सभी शीर्ष भारतीय शहरों में स्थित हैं। कंपनी वॉयस, वेब, मोबाइल इंटरनेट और मोबाइल एप्लिकेशन जैसे विभिन्न प्लेटफार्मों पर अपनी सेवाएं प्रदान करती है। यह सर्च प्लस सेवाओं की एक श्रृंखला प्रदान करता है, जिसमें ऑर्डर फूड ऑनलाइन, डॉक्टर की नियुक्ति ऑनलाइन बुक करना, मूवी टिकट ऑनलाइन बुक करना, कैब / फ्लाइट / बस ऑनलाइन बुक करना, किराने का सामान ऑनलाइन ऑर्डर करना, ऑनलाइन लॉन्ड्री पिक-अप शेड्यूल करना और कूरियर पिक शेड्यूल करना शामिल है। -अप ऑनलाइन, दूसरों के बीच में।
- **मेकमाईट्रिप लिमिटेड:** भारतीय ट्रैवल कंपनी मेकमाईट्रिप अपनी मजबूत ऑनलाइन उपस्थिति के लिए जानी जाती है। कंपनी उड़ान, हॉलिडे पैकेज, टिकट, होटल बुकिंग आदि सहित यात्रा सेवाओं की पूरी श्रृंखला प्रदान करती है। यह सभी पर्यटन स्थलों को यात्रा पैकेज प्रदान करती है। इसने अपने ट्रैवल ऐप लॉन्च किए हैं। भारत की शीर्ष ई-कॉमर्स कंपनी की स्थापना 2000 में दीप कालरा ने की थी। कंपनी ने सिडनी और न्यूयॉर्क शहर में कार्यालयों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रस्तुत किया है। Fundoodata पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।
- **Myntra Designs Pvt Ltd :** Myntra भारत की शीर्ष 10 ई-कॉमर्स कंपनियों में से एक है। यह एक अग्रणी ऑनलाइन फैशन स्टोर है जो सभी श्रेणियों में पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए उत्पादों की पेशकश करता है। कंपनी का मुख्यालय बेंगलुरु, कर्नाटक में है। इसे वर्ष 2009 में लॉन्च किया गया था। इसने बहुत कम समय में सफलता प्राप्त की है। कंपनी की स्थापना 2007 में व्यक्तिगत उपहार वस्तुओं को बेचने के लिए की गई थी। Fundoodata पेड प्लान के साथ आप कंपनी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या, टर्नओवर, निर्णय लेने वालों का विवरण, और बहुत कुछ।

- **वन 97 कम्युनिकेशंस लिमिटेड (पेटीएम):** पेटीएम एक भारतीय ई-कॉमर्स वेबसाइट है जिसका मुख्यालय नोएडा, भारत में है। इसे 2010 में लॉन्च किया गया था और इसका स्वामित्व One97 Communications के पास है। फर्म ने फ्लिपकार्ट, Amazon.com. स्नैपडील जैसे व्यवसायों के समान उत्पादों के साथ मोबाइल रिचार्ज, बिल भुगतान और ई-कॉमर्स की पेशकश के साथ शुरुआत की। 2015 में, इसने बुकिंग बस यात्रा को और जोड़ा। पेटीएम ने वर्ष 2016 में सिनेपोलिस के साथ साझेदारी करके मूवी टिकट बुकिंग भी शुरू की।

  भारत में ई-कॉमर्स बूम के लिए रणनीतियां: भारत में ई-कॉमर्स ने मिलेनियल्स (जेनरेशन वाई) की क्रय शक्ति, विभिन्न मोबाइल एप्लिकेशन और वेबसाइटों के विकास के लिए इंटरनेट के प्रभाव, और बहुत आवश्यक बुनियादी ढांचे द्वारा संचालित तेजी से विकास का अनुभव किया है। मोबाइल की पहुंच भारत में एक विशाल बाजार के लिए है, जिससे उपभोक्ताओं के लिए विभिन्न प्रकार के खुदरा उत्पादों की खरीदारी करना अधिक सुविधाजनक हो गया है। उद्योग के विकास को सक्षम करने वाले अन्य कारकों में शामिल हैं:
- **पहुंच में आसानी:** किफायती दरों पर इंटरनेट के बढ़ते उपयोग और स्मार्टफोन के बढ़ने से पहुंच आसान हो गई है। यह कनेक्टिविटी ट्रेन/होटल/कैब/मूवी टिकट बुकिंग जैसी अन्य सेवाओं को सक्षम बनाती है; मोबाइल और बिजली बिल भुगतान, आदि।
- **वित्तीय प्रणाली को जोड़ना:** लोग अब ई-बैंकिंग और अन्य योजनाओं का उपयोग करते हैं। जल्द ही, वित्तीय प्रणाली का डिजिटलीकरण आदर्श बन जाएगा।
- **घरेलू कंपनियों की वैश्विक पहुंच:** ई-कॉमर्स उद्योग में भारतीय स्टार्टअप वैश्विक चौनलों का उपयोग कर रहे हैं, जिससे उनका ग्राहक आधार बढ़ रहा है और विकास के दायरे का विस्तार हो रहा है।
- **पुनरावर्तकों को आकर्षित करना:** ग्राहक सेवा पर एक मजबूत ध्यान मुख्य कारण है जो खरीदारों को आकर्षित करता है और बनाए रखता है। कैश ऑन डिलीवरी (सीओडी), उचित मूल्य निर्धारण, सौदे और छूट, शून्य कीमतों के साथ तेजी से वितरण बदलाव, और रिवर्स लॉजिस्टिक्स कुछ ऐसे ड्राइवर हैं जो उद्योग को तेजी से बढ़ते क्षेत्र में बदल रहे हैं।
- **नवाचार के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना:** आपूर्ति श्रृंखला में सभी हितधारकों के बीच सूचना साझा करना बहुत महत्वपूर्ण है। विभिन्न आपूर्ति श्रृंखला पहलुओं के बीच एकीकरण से ई-कॉमर्स कंपनी को प्रतिस्पर्धा में बढ़त हासिल करने में मदद मिलेगी। कुछ पहलों में रसद प्रणालियों में बार-कोडिंग का उपयोग शामिल हो सकता है: भागीदारों के बीच संचार के लिए ईडीआई; संचालन में दृश्यता; किसी भी बिंदु पर माल की ट्रैकिंग और अनुरेखण।
- **विश्लेषिकी:** रीयल-टाइम डेटा कैप्चर करना और खरीदारी की गतिशीलता को समझना इस उद्योग की जड़ है। ग्राहक डेटा एकत्र करके ग्राहक की खरीदारी वरीयताओं, स्वाद और जनसांख्यिकी को संबोधित किया जा सकता है। डेटा की मात्रा और जटिलता को ग्राहक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने, चौनलों को अनुकूलित करने और आरओआई की गणना करने के लिए विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

भारत में ई-कॉमर्स चुनौतियां: हालांकि यह क्षेत्र अपार संभावनाएं दिखाता है, लेकिन कुछ चुनौतियों का समाधान करने की जरूरत है। विकास को बाधित करने वाले कुछ दबावों में शामिल हैंरू

लॉजिस्टिक्स: लॉजिस्टिक्स, ग्राहक सेवा प्रदान करने में एक प्रमुख तत्व, ई-कॉमर्स खिलाडिय्यों के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों में से एक है। भारत में स्थानीय रसद फर्म आमतौर पर ई-टेलर्स की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार नहीं हैं; इसलिए ई-कॉमर्स फर्मों को अपना लॉजिस्टिक्स बनाने के लिए भारी निवेश करना पड़ता है।

बुनियादी ढांचा: ई-कॉमर्स कंपनियों को भुगतान की समस्याओं को दूर करने, ऑफलाइन उपस्थिति बनाने, अधिक पुश-मार्केटिंग लागू करने, मूल्य-संवेदनशील ग्राहकों का प्रबंधन करने और वैश्विक मैदान पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचे को संबोधित करने की भी आवश्यकता है। पेमेंट गेटवे इंफ्रास्ट्रक्चर अभी शुरुआती चरण में है। व्यापारियों ने अभी तक मोबाइल के मोर्चे पर संशोधन नहीं किया है। एक उदाहरण के रूप में, भारत में अग्रणी ई-कॉमर्स खिलाडिय्यों में से एक असंगठित वितरण ढांचे के कारण बिग बिलियन डेज के बिक्री कार्यक्रम पर अपने ग्राहकों के अनुरोधों को संभाल नहीं सका।

प्रतिस्पर्धात्मक विश्लेषण: ई-कॉमर्स कंपनियों को ग्राहक खंडों और उत्पाद पोर्टफोलियो के तेजी से परिवर्धन से संबंधित मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना होगा। नए भौगोलिक क्षेत्रों, ब्रांडों और उत्पादों में विस्तार करने के लिए विकास, आकार और शेयर, और

कई ग्राहक जुड़ाव प्लेटफार्मों के प्रबंधन पर बाजार की खुफिया जानकारी से संबंधित जानकारी एकत्र की जानी चाहिए; एक साथ बहुत प्रतिस्पर्धी मूल्य निर्धारण वातावरण को नियंत्रित करते हुए।

उपलब्ध नेटवर्क का डिजिटलीकरण: वर्तमान में, सोशल मीडिया एक इंटरनेट सर्फर/ग्राहक के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार कंपनियों को नए लॉन्च, एप्लिकेशन और वेबसाइटों के लिए समय-समय पर बाजार के प्रयासों को संभालने के अलावा, अनियमित मांगों और असंगत ब्रांड अनुभव का प्रबंधन करके एक समृद्ध अनुभव प्रदान करना है।

लेन-देन का तरीका: सुरक्षा, गोपनीयता और धोखाधड़ी की खरीदारी पर नजर रखने की चिंता कुछ बाहरी ताकतें हैं जो किसी व्यवसाय को प्रभावित करती हैं। सीमा पार कर, बैक-एंड सर्विस टैक्स और नियामक मुद्दों जैसे अन्य कारक ई-कॉमर्स कंपनियों के लिए गंभीर प्रभाव डाल सकते हैं।

अन्य मुद्दों से ई-कॉमर्स व्यवसायों को निपटना होगा, जिसमें तेजी से बदलाव के साथ तालमेल रखने के लिए संगठनात्मक संरचना की अक्षमता, धोखाधड़ी लेनदेन और अंदरूनी खतरों को रोकने के लिए साइबर सुरक्षा, कर पुनर्गठन और कानूनी अनुपालन शामिल हैं।

सिफारिशें: तकनीक कानून से भी तेजी से विकसित होती है और यह कानून से एक कदम आगे बनी रहेगी। इस प्रकार वर्तमान व्यवस्था में इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन उचित कानूनी तंत्र के अभाव के कारण असुरक्षा और अनिश्चितताओं से भरे हुए हैं। तकनीकी प्रगति से निपटने के लिए हमें प्रौद्योगिकी की मदद लेनी होगी; जैसा कि चार्ल्स क्लार्क ने एक बार टिप्पणी की थी श्मशीन का उत्तर मशीन में है। वास्तव में, तकनीकी दुरुपयोग का सही उत्तर तकनीकी नवाचार का अनुप्रयोग है।

चूंकि भारत के मौजूदा उपभोक्ता कानून ई-उपभोक्ताओं के अधिकारों की ठीक से रक्षा करने में असमर्थ हैं, इसलिए उपभोक्ताओं को ई-मार्केट के उपयोग के बारे में अधिक सतर्क रहना होगा। उन्हें इंटरनेट पर सुगम और सुरक्षित लेनदेन के लिए इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन के समय निम्नलिखित बातों को याद रखना चाहिए और उनका पालन करना चाहिए।

- ई-मेल पते कपटपूर्ण तरीके से सेट किए जा सकते हैं, और इसलिए ई-मेल द्वारा एन्क्रिप्ट किए गए उपयोगकर्ता विवरण भेजना अभी भी सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है। वेब साइट फॉर्म के माध्यम से विवरण भेजना कुछ अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करता है क्योंकि इंटरनेट साइटों के पंजीकरण के लिए अधिक सटीक आवश्यकताएं हैं।
- इनवॉइस को प्रिंट करके खरीद के सभी विवरण रखें। यदि उपयोगकर्ता को बाद में शिकायत करने की आवश्यकता है, तो ये पृष्ठ आवश्यक जानकारी प्रदान करेंगे।
- लेन-देन के बाद खातों को लंबे समय तक खुला नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि इससे हैकर्स को उपयोगकर्ता के पीसी से पासवर्ड या प्रासंगिक जानकारी को हैक करने या उपयोगकर्ता की महत्वपूर्ण जानकारी को नष्ट करने का अवसर मिलता है।
- संदेह की उचित संभावना होने पर कभी भी किसी नई वेबसाइट या पोर्टल से चीजें न खरीदें।
- जब भी संभव हो ग्राहकों को क्रेडिट कार्ड या डेबिट कार्ड का उपयोग करने के बजाय हमेशा कैश-ऑन-डिलीवरी विकल्प का विकल्प चुनना चाहिए। यह उन्हें धोखाधड़ी से बचाने में मदद करता है।

निष्कर्ष: ई-कॉमर्स के ढांचे में उपभोक्ता संरक्षण की समस्या ने शिक्षाविदों और नीति-निर्माताओं दोनों से भारी मात्रा में विचार किया है। ई-कॉमर्स और ई-उपभोक्ताओं से निपटने के लिए सरकारों के साथ-साथ अंतर-सरकारी संगठन विभिन्न ढांचे के साथ आए हैं।

ई-कॉमर्स सुविधाजनक खरीदारी, प्रतिस्पर्धी मूल्य निर्धारण, छूट आदि का अभिसरण है। बदलते बाजार की गतिशीलता एक नए मॉडल का मार्ग प्रशस्त करती है जिसमें अभिनव लेनदेन प्लेटफॉर्म, भुगतान समाधान और एक आभासी ईंट-और-मोर्टार के साथ हाइपर-लोकल स्पेस शामिल है। खुदरा अनुभव। कीमत और गुणवत्ता के आधार पर पुरानी नींव को सही उत्पाद, वैयक्तिकरण, आदि के चयन पर मार्गदर्शन के माध्यम से एक अधिक सुखद और समृद्ध उपयोगकर्ता अनुभव द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा। भारत में कोर ऑनलाइन क्षेत्रों में खुदरा विक्रेताओं की वृद्धि ईंट-और-मोर्टार स्टोरों को उनके संचालन को सुधारने के लिए चला रही है।

Reference :

1. Senn, James A. Information Technology in Business, Prentice Hall, Inc. 1995
2. Babe, Robert E. Ed. Information and Communication in Economics, Kluwer Academic Publishers, USA. 1994
3. Mesenbourg, Thomas L. Measuring Electronic Commerce, available at http://www.census.gov/epcd/www/ebusiness.htm, , visited on April 23,2005.
4. Groucutt, J. and Griseri, P. Mastering E-Business, Vale, Great Britain. 2004
5. Williams, Sawyer, Hutchinson, Using Information Technology, Mc GrawHill Copanes, INC. 1999
6. Copell, Jonathan E-commerce: Impacts and Policy Challenges, OECD, Economics Department working payers no. 252, available at http://www.olis.oecd.org/2000doc.nsf/, 2000, visited on August 6,2005
7. BBC News: Ethiopia Plans internet expansion http://news.bbc.co.uk/go/pr/fr/1/hi/technology/4416073.
8. Copell, Jonathan E-commerce: Impacts and Policy Challenges, OECD,Economics Department working payers no. 252, available at http://www.olis.oecd.org/2000doc.nsf/ 2000, visited on August 6,2005

दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण के उपाय

डॉ० आरती गहरवार

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़

शोध सार

भारत देश में अनेक धर्म, जाति, समुदाय और विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते है लेकिन लोगों की सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक स्थिति में काफी असमानता देखने को मिलती है। इनमें से एक है दलित वर्ग। उनकी स्थिति में सुधार के लिए सरकार ने अनेक संवैधानिक प्रावधान किए है ताकि देश में व्याप्त असमानता की खाई को समाप्त किया जा सके। हमारे संविधान मे राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करने की संवैधानिक व्यवस्था की गई है। इस अध्याय के अनु0 46 में इस बात का उल्लेख है कि राज्य जनता के कमजोर वर्गो के सामाजिक तथा आर्थिक हितों को बढावा देकर अपने समाज को समतामय बनाने का कर्तव्य पूरा करेगा। केंड तथा राज्य सरकारों के द्वारा दलित वर्ग के लिए बनाए गए संवैधानिक तथा कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर गरीबी उन्मूलन के कई प्रयास किए गए है फिर भी आज के समय में भी गरीबी एक प्रमुख समस्या है। भारतीय संविधान में भी समाज के कमजोर वर्गो के उत्थान के लिए प्रावधान है जिसमें अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछडें वर्ग के लोगो के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। उनकी समस्याओं को हल करने के लिए उनके आर्थिक विकास, शैक्षिक विकास, सामाजिक न्याय, राजनैतिक न्याय तथा आवास समस्या पर ध्यान देना होगा। इस प्रकार शासन, प्रशासन तथा राजनैतिक जीवन में दलितों को उचित प्रतिनिधित्व देकर तथा राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल कर समाजवादी समाज की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है।

Key Words:- गरीबी उन्मूलन, कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति, आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, दलित वर्ग।

भारत एक विशाल और विविधताओं से भरा देश है। यहाँ विभिन्न प्रकार के धर्म, भाषा, जाति तथा संस्कृति को मानने वाले लोग निवास करते हैं। भारत में अनेक जातियाँ निवास करती हैं। 2011 की जनगणना में भारत की कुल जनसंख्या में दलित लगभग 16 प्रतिशत हैं। 50 प्रतिशत दलित गरीबी रेखा के नीचे हैं, जिसमें से 62 प्रतिशत से अधिक निरक्षर हैं।[1] 2021 में भारत की कुल जनसंख्या में दलित लगभग 25 प्रतिशत हैं। भारत में गरीबी का स्तर समान नहीं है। 2009-10 में ग्रामीण भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत इस प्रकार था- अनुसूचित जनजाति-47.4 प्रतिशत, अनुसूचित जाति - 42.3 प्रतिशत तथा पिछड़ा वर्ग- 31.9 प्रतिशत। भारत की जनसंख्या में दलित सबसे अधिक गरीब हैं। गरीबी के नवीनतम आंकलन के अनुसार वर्ष 2011-12 में भारत की कुल जनसंख्या का 21.97 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे अधिवासित है।[2] 2020 तक भारत में 38 करोड़ गरीब थे। इनमें से 80 प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं। इनमें से 43 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के हैं तथा 29 प्रतिशत अनुसूचित जाति के और 21 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं। अप्रैल 2020 से अप्रैल 2021 के बीच कोरोना काल के एक साल में 23 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे चले गये हैं। कोरोना के एक साल ने गरीबी के मामले में देश को आठ से नौ साल पीछे कर दिया है।[3]

भारत के दो-तिहाई दलित गरीब हैं। भारत में गरीबी का स्तर सबसे ज्यादा अनुसूचित जनजाति में है (81.4 प्रतिशत) उससे कम दलितों का है (65.8 प्रतिशत) और पिछड़े वर्ग का (58.3 प्रतिशत) है। शेष जनसंख्या में गरीबी का प्रतिशत 33.3 प्रतिशत है।

2011-12 के अनुसार ग्रामीण भारत में 44.8 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति, 33.8 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। शहरी क्षेत्रों में 27.3 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति, 21.87 प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग गरीब हैं जबकि आर्थिक रूप से पिछड़े मुसलमानों का प्रतिशत 26.5 प्रतिशत है। इस प्रकार दलित भारत में मुसलमानों से अधिक गरीब हैं या सबसे ज्यादा गरीब हैं।[4]

भारत सरकार द्वारा समय समय पर गरीबी उन्मूलन के कई प्रयास किए गए हैं फिर भी आज के समय में भी गरीबी एक प्रमुख समस्या है। भारतीय संविधान में भी समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए प्रावधान हैं जिसमें अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। उनकी समस्याओं को हल करने के लिए उनके आर्थिक विकास, शैक्षिक विकास, सामाजिक न्याय, राजनैतिक न्याय, स्वास्थ्य तथा आवास समस्या पर ध्यान देना होगा।

आर्थिक विकासः- दलित तथा पिछड़े वर्ग की अधिकांश जनता गरीब है। इसमें अधिकतर कृषक, पशुपालक, दस्तकार व शिल्पकार, सेवक, मछुआरे तथा मजदूर हैं। अशिक्षित होने के कारण वे शासन की प्रगतिशील नीतियों तथा कार्यक्रम से भरपूर फायदा नहीं उठा पाते हैं। दलित तथा पिछड़े वर्ग के आर्थिक विकास हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं:-

1. पिछड़ा वर्ग उत्थान निगम का गठन जिससे वह पिछड़े वर्ग के मृतप्राय ग्रामीण धन्धों को पनपा सकें तथा पिछड़े वर्ग के आर्थिक उत्थान का अभियान प्रारम्भ करें।
2. पिछड़े वर्ग के लोगों को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व दिया जाये।
3. पिछड़े वर्ग के लोगों को जातीय धन्धे करने हेतु सहकारी समितियाँ गठित कर प्रोत्साहित किया जाये तथा सहकारिता से उनकी सामाजिक उन्नति को जोड़ा जाये।

अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के कल्याण हेतु राज्यों के आर्थिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत भूमि तथा सिंचाई की व्यवस्था, कृषि उपकरण, खाद तथा बीज की आपूर्ति, कुटीर उद्योगों का विकास, संचार व्यवस्था का विकास आदि शामिल हैं।

शैक्षिक विकासः- पिछड़े तथा कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए शिक्षा के प्रसार तथा उसे निरंतर बढ़ाने के कार्य को अत्यधिक महत्व देना होगा। पिछड़े वर्ग में अशिक्षा का प्रमुख कारण गरीबी या आर्थिक तंगी है। यदि शासन हरिजन आदिवासियों के बच्चों के समान पिछड़े वर्ग के बच्चों को भी पढ़ाने में सुविधायें एवं सुलभ साधन प्रदान करे तथा उनके लिए भी नौकरियों में पर्याप्त आरक्षण की व्यवस्था करे तो निश्चित ही पिछड़े वर्ग के लोगों में पढ़ाई के प्रति उत्साह बढ़ेगा।

पिछड़े वर्ग में हायर सेकेण्डरी स्तर पर शिक्षा का प्रतिशत राज्य के औसत प्रतिशत से बहुत कम है। उच्च शिक्षा में यह स्थिति और भी दयनीय है। मेडीकल, इंजीनियरिंग तथा अन्य तकनीकी शिक्षा में इन वर्गों का प्रतिशत और भी कम है। अतः यह जरूरी है कि शासन संविधान के अनुच्छेद 46 को ध्यान में रखकर पिछड़े वर्ग के शिक्षा विषयक हित को विशेष ध्यान देकर बढ़ावा दे।[5] यह भी जरूरी है कि पिछड़े वर्ग में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षा का प्रसार किया जाये ताकि इस वर्ग के अभिभावकों में अपने बच्चों को शिक्षित करने की अभिरूचि पैदा हो क्योंकि पिछड़े वर्ग के प्रौढ़ लोगों में शिक्षा का प्रसार बहुत कम हैं। अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्ग के कल्याण हेतु राज्यों के शिक्षण संबंधी कार्यों के अंतर्गत निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्तियाँ, बजीफे, परीक्षा शुल्क में छूट, स्कूलों की स्थापना, स्कूल भवनों तथा छात्रावासों के निर्माण के लिए अनुदान देने की व्यवस्था है। शासन की कक्षा 8 तक की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था होने के बावजूद शिक्षा संस्थायें, पाठशाला विकास, खेलकूद, पंखा, बिजली, परीक्षा शुल्क, स्कूल पत्रिका आदि के नाम पर बहुत सा शुल्क वसूल कर लेती हैं। शिक्षा सत्र के प्रारम्भ में ही इन सब मदों को मिलाकर इतनी रकम हो जाती है कि पिछड़े वर्ग का गरीब छात्र अपनी असमर्थता के कारण पढ़ाई छोड़ने पर विवश हो जाता है। अतः शासन निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था के बावजूद इस प्रकार के शुल्क वसूल करने वाली संस्थाओं पर कार्यवाही करें ताकि पिछड़े वर्ग के लोगों का शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़े।

आवास समस्या तथा स्वास्थ्यः- पिछड़े वर्ग की अधिकांशतः जनता गांवों में कच्चे घरों या झोपड़ों में निवास करती है, जिनमें उपयुक्त रोशनी व धूप का प्रबंध नहीं होता है। उनके निवास के मुहल्लों में गंदगी रहती है तथा नाली व सड़कों की उचित व्यवस्था नहीं होती है।

राज्यों की आवास, स्वास्थ्य और अन्य कार्यक्रम योजना के अंतर्गत अनुसूचित जातियों को बने बनाये घर देने तथा घर बनाने के लिए जमीन देने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा सुविधायें, पेयजल योजनायें, कानूनी सहायता की व्यवस्था तथा राज्य स्तर पर अनुसूचित जातियों के कल्याण हेतु काम करने वाली गैर सरकारी संस्थाओं को अनुदान देने की व्यवस्था आदि शामिल है।

सामाजिक न्याय:- हमारे देश के लोगों को सामाजिक न्याय देने की बात संविधान के संकल्प में ही निहित है। गरीबी तथा पुरातन काल से चली आ रही भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण पिछड़े वर्ग के कमजोर तबकों को सामाजिक अन्याय का शिकार होना पड़ता है। पिछड़े वर्ग के लोगों के साथ बराबरी का बर्ताव नहीं किया जाता। नगरों में जातिप्रथा की कठोरता कम हुई है तथा वहाँ अब बराबरी से उठने बैठने में व खान-पान में भी अधिक कठोरता नहीं है लेकिन ग्रामीण अंचल में अब भी वही कठोरता विद्यमान है। अत: ग्रामीण अंचल में भेदभाव व सामाजिक अन्याय समाप्त हो इसके लिए प्रचार अभियान, मीटिंग व सभाओं द्वारा रेडियो तथा सिनेमा द्वारा तथा समाचार पत्रों के माध्यम से किया जाना चाहिए।

वर्तमान शासन ने सामाजिक अन्याय को समाप्त करने के लिए हरिजन, आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के हितार्थ एक आयोग का गठन किया है, जो इन वर्गों के सामाजिक अन्याय की शिकायतों पर आवश्यक कार्यवाही करेगा। भारतीय संविधान में भी सामाजिक अन्याय को दूर करने के लिए मौलिक अधिकारों में समानता के अधिकार की व्यवस्था की गई है। संविधान का अनु0 14 कानून के समक्ष समानता अनु0 15 सामाजिक समानता, अनु0 16 में सरकारी नौकरियों में अवसर की समानता के अंतर्गत अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। अनु0 17 में अस्पृश्यता का अंत कर इसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है।[6]

राजनैतिक न्याय:- प्रजातांत्रिक व्यवस्था में लोकसभा, विधानसभा तथा जिला व ब्लाक स्तर पर हर प्रकार के प्रशासन में सब वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। पिछड़े वर्गों के शासन तथा प्रशासन में भागीदारी के बगैर इनका सामाजिक अन्याय समाप्त नहीं होगा और न ही इनकी शैक्षिक स्थिति बेहतर होगी और न तब तक इनका आर्थिक शोषण समाप्त होगा। अत: पिछड़े वर्गों को सामाजिक-आर्थिक न्याय मिले उनकी दशा बेहतर बने तथा वे मानवीय गरिमा को प्राप्त कर सकें इसके लिए उनकी सत्ता तथा प्रशासन में भागीदारी आवश्यक है।

संविधान में भी अनु0 330 द्वारा लोकसभा में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था है। अनु0 332 में राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था है। अनु0 335 में व्यवस्था है कि संघ व राज्य के कार्यो से संबंधित सेवाओं एवं पदों के लिए नियुक्तियाँ करने में अनुसूचित जातियों तथा आदिम जनजातियों का ध्यान रखा जायेगा। अनु0 338 और 339 राष्ट्रपति को अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के बारे में शक्ति प्रदान करते हैं।[7]

इस प्रकार दलित तथा पिछड़े वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देकर तथा राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल कर ही उनका विकास किया जा सकता है और गरीबी दूर की जा सकती है तथा समाजवादी समाज की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ:-

1. द हिंदू - 25 मार्च 2011
2. इण्डिया-2015, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. ग्लोवल डच्प् रिपोर्ट न्ण्छण्क्ण्च् और वर्ल्ड बैंक, 2020
4. वार्षिक रिपोर्ट - 7 नव0 2014, भारत सरकार, नई दिल्ली।
5. बसु, दुर्गादास, भारत का संविधान, 1998
6. भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
7. सुभाष काश्यप हमारा संविधान, भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली

माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

अमित कुमार

शोध छात्र (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

डॉ० श्रीमती अनुभा शुक्ला

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने अमेठी जनपद में अवस्थिति ग्रामीण तथा शहरी विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों अध्ययनरत् छात्रों तथा सम्बन्धित छात्रों के अभिभावकों से स्व:निर्मित प्रश्नावली के माध्यम से शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किये गये तथा प्राप्त आंकड़ों का उपयुक्त सांख्यिकीय की सहायता से विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के मुकाबले अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पायी गई तथा छात्रों की अभिवृत्ति छात्राओं से बेहतर प्राप्त हुई।

मुख्य शब्द- शैक्षिक निर्देशन, अभिवृत्ति।

प्रस्तावना

1. निर्देशन
2. शैक्षिक निर्देशन
3. शैक्षिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति

1. निर्देशन- निर्देशन का तात्पर्य है मार्ग प्रशस्त करना, मार्ग-दर्शन, पथ-प्रदर्शन अर्थात् किसी भी व्यक्ति को उसकी क्षमताओं, रुचियों, अभिरुचियों, कुशलताओं आदि से अवगत कराते हुए जो सुझाव दिये जाते हैं, उनको निर्देशन कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, ''निर्देशन किसी व्यक्ति को सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है।'' निर्देशन का लक्ष्य व्यक्ति और समाज में सामंजस्य स्थापित करना है। चाहे वह सेवा के रूप में हो या शिक्षा की उप प्रक्रिया के रूप में। व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास ही निर्देशन का तात्पर्य है।

निर्देशन की परिभाषा-

वरनार्ड, फूलमर के अनुसार- ''निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में हैं न कि केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में सहायता देना है।''

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार- ''निर्देशन बालक और बालिकाओं की सहायता करने की वह कठिन कला में सम्मिलित है, जिसके द्वारा वे अपने भविष्य को बुद्धिमत्ता पूर्वक, सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए अपनी योजना बनाते हैं, जिनके मध्य रहकर उन्हें संसार में काम करना होगा।''

आर्थर जे0 पोन्स के अनुसार- ''व्यक्तियों को बुद्धिमत्ता पूर्वक चुनाव का समायोजन करने में दी जाने वाली सहायता निर्देशन है।''

''निर्देशन किसी विद्यार्थी की शैक्षिक संस्थाओं, घरों में समायोजन के योग्य बनाना तथा उनके व्यक्तित्व के सभी पक्षों में सहायता करना।''

2. शैक्षिक निर्देशन- व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से शिक्षा अति आवश्यक है। बदलते परिवेश व शैक्षिक परिस्थितियों में असमंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा शैक्षिक परिस्थितियों से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ व आवश्यकताएँ सामने उभरकर आती हैं जो शैक्षिक निर्देशन द्वारा इन समस्याओं का समाधान किया जाता है। विद्यार्थियों को अपने पाठ्यक्रम के सही चयन करने, शिक्षकों को नवीन शिक्षण तकनीकी का चयन करने, अपव्यय व अवरोधन की समस्याएँ एवं अग्रिम शिक्षण हेतु शैक्षिक निर्देशन अत्यन्त सहायक है। अत: हम कह सकते हैं कि ''विद्यालय में छात्र-छात्राओं को शिक्षा से सम्बन्धित समस्या के समाधान के लिए दी जाने वाली उचित सलाह को शैक्षिक निर्देशन कहते हैं।

शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा-

बेबर के अनुसार- ''शैक्षिक निर्देशन चेतना अनुभूति प्रयत्न है जिसके द्वारा व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान की जाती है, कोई भी वस्तु जो शिक्षण या सीखने के साथ की जाती है, शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत आती है।''

स्ट्रंग के अनुसार- ''छात्रों की योग्यताओं एवं रुचियों का ज्ञान, शैक्षिक अवसरों के विस्तृत क्षेत्र का ज्ञान, कार्यक्रम के चयन व उसके लिए परामर्श आदि पर शैक्षिक निर्देशन सहायता करता है।''

जोन्स के अनुसार- ''शिक्षा निर्देशन व व्यक्तिगत सहायता है जो छात्रों को इसलिए प्रदान की जाती है कि वे अपने लिए उपयुक्त विद्यालय, पाठ्यक्रम, पाठ्य-विषय तथा पाठ्यतिरिक्त क्रियाओं का चयन कर सके तथा उनमें समायोजित कर सके।''

3. शैक्षिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति- शैक्षिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति का आशय है-व्यक्ति की शैक्षिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया देना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक निर्देशन के लिए व्यक्ति की अभिरूचि, प्रवृत्तियों, भावनाओं, पक्षपातों, अपने विचार, संवेगात्मक प्रवृत्ति इत्यादि अभिवृत्ति हो सकती है। शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान शैक्षिक निर्देशन की सहायता से किया जाता है जो छात्र, शिक्षक तथा अभिभावक में इसके प्रति अभिवृत्ति धनात्मक व ऋणात्मक हो सकती है।

शोध का औचित्य- शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता भारतीय परिवेश में एक अलग स्थान रखती है। क्योंकि यहाँ के विद्यार्थियों की समस्याओं का रूप अलग-अलग होता है। छात्र, शिक्षक तथा अभिभावक इन तीनों को उचित शैक्षिक निर्देशन प्रदान किया जाय ताकि ये तीनों शिक्षा के उद्देश्यों को हर स्तर तथा हर क्षेत्र में प्राप्त करने में अपनी भूमिका निभा सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शैक्षिक निर्देशन न केवल अध्यापक व छात्रों के लिए बल्कि अभिभावकों के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है। शैक्षिक निर्देशन के महत्व को समझते हुए शोधकर्ता ने विभिन्न शोध प्रपत्रों, शोध कार्यो, लघु शोध इत्यादि का शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में अध्ययन किया तथा यह पाया कि शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में कई अध्ययन हुए हैं परन्तु शैक्षिक निर्देशन की भूमिका को सार्थक बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व शैक्षिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक 'अभिवृत्ति' के सम्बन्ध में कोई अध्ययन नहीं किया गया अस्तु शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के संदर्भ में शिक्षकों, छात्रों व अभिभावकों की शैक्षिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने का निश्चय किया है।

समस्या कथन- ''माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन''

तकनीकी शब्दों की परिभाषा-

1. माध्यमिक स्तर
2. शैक्षिक निर्देशन
3. छात्र, शिक्षक व अभिभावक
4. अभिवृत्ति

1. **माध्यमिक स्तर-** प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 से है।
2. **शैक्षिक निर्देशन-** प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक निर्देशन से अभिप्राय शिक्षा सम्बन्धी किसी भी समस्या के समाधान हेतु सहायता करना या शिक्षा क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में सहायता देना।
3. **छात्र, शिक्षक व अभिभावक-** प्रस्तुत अध्ययन में छात्र से अभिप्राय कक्षा-9 तथा 10 में अध्ययनरत् छात्रों से है तथा शिक्षकों से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में कार्यरत् शिक्षकों से है। इसके अतिरिक्त अभिभावकों से अभिप्राय कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में अध्ययनरत् छात्रों के अभिभावक से है।
4. **अभिवृत्ति-** प्रस्तुत अध्ययन में अभिवृत्ति से शिक्षक, छात्र व अभिभावक के शैक्षिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक व नकारात्मक दृष्टिकोण से है।

शोध के उद्देश्य-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र व छात्राओं में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का अध्ययन।
6. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।
7. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनायें-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में कार्यरत् विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र व छात्राओं में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् महिला व पुरुष शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों का कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
6. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।
7. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग, स्थान तथा उनकी अन्त:क्रिया का कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

शोध का परिसीमन-

1. प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत जनपद अमेठी के बहादुरपुर ब्लाक में अवस्थित समस्त माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा-9 तथा कक्षा-10 में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों तथा 100 अभिभावकों को सम्मिलित किया गया।
3. प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा-9 तथ कक्षा-10 को पढ़ाने वाले 100 शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।

शोध अभिकल्प- किसी भी शोध अनुसंधान को निश्चित समय में पूर्ण करने व सफल रूप से प्रतिपादित करने के लिए स्पष्ट शोध अभिकल्प का होना अत्यन्त आवश्यक है। शोध अभिकल्प के अन्तर्गत भविष्य में किये जाने वाले कार्य को क्रमबद्ध व प्रभावपूर्ण तरीके से किये जाने के लिए बनायी जाने वाली योजना को सम्मिलित किया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य शोध कार्य को एक ढाँचा प्रदान करना तथा ऊपरी दृष्टि निर्धारित करना होता है।

शोध अभिकल्प के अन्तर्गत निम्नलिखित रूपरेखा बनायी जाती हैं-

1. शोध विधि
2. आंकड़ों का स्रोत
3. शोध क्षेत्र
4. समष्टि (जनसंख्या)
5. प्रतिदर्श
6. शोध उपकरण
7. शोध उपकरणों का प्रशासन, आंकड़ों का एकीकरण व अंकन
8. शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियां।

1. शोध विधि- प्रस्तुत अध्ययन में शोध द्वारा वर्णनात्मक विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

2. आंकड़ों का स्रोत- प्रस्तुत अध्ययन के लिए शोधकर्ता के द्वारा तीन स्रोतों की सहायता से आंकड़े एकत्रित किये गये हैं जो कि इस प्रकार है-

(1) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों से प्राप्त आंकड़े।
(2) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों से प्राप्त आंकड़े।
(3) अमेठी जनपद के ब्लाक बहादुरपुर के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों से प्राप्त आंकड़े।

सभी आंकड़े प्राथमिक स्रोत के द्वारा ही एकत्रित किये गये हैं।

3. शोध का क्षेत्र- प्रस्तुत अध्ययन का शोध का क्षेत्र अमेठी जनपद के जिसके अन्तर्गत सभी माध्यमिक विद्यालयों को प्रस्तुत अध्ययन में समष्टि रूप से सम्मिलित किया गया है।

4. समष्टि (जनसंख्या)– प्रस्तुत अध्ययन में समष्टि से अभिप्राय अमेठी जनपद के अन्तर्गत आने वाले सभी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों, कार्यरत् शिक्षकों व अभिभावकों को सम्मिलित किया गया है।

5. प्रतिदर्श– प्रतिदर्श से अभिप्राय समष्टि के उस भाग से होता है जिसमें समष्टि की अधिकतम विशेषताओं का समावेश हो तथा वह सम्पूर्ण समष्ठि का प्रतिनिधित्व करता है। सरलता का वस्तुनिष्ठता की विशेषता होने के कारण शोधकर्ता ने प्रतिदर्श विधि का चयन किया है, जिसके अन्तर्गत द्विस्तरीय प्रथम स्तर पर ब्लाक का चयन तथा द्वितीय स्तर पर 10 ग्रामीण तथा 10 शहरी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का चयन किया गया है। इन विद्यालयों से कक्षा–9 तथा कक्षा–10 के 460 विद्यार्थियों, 140 शिक्षकों तथा 180 अभिभावकों से आंकड़े एकत्रित किये गये हैं। जिनमें से 380 विद्यार्थियों, 120 शिक्षकों तथा 140 अभिभावकों के द्वारा भरे गये शोध उपकरणों को उपयुक्त पाया गया, जिनका विवरण निम्न सारणी के द्वारा दिया गया है–

सारणी–1

क्र0 सं0	विद्यालय का नाम	शहरी/ ग्रामीण	विद्यार्थियों की संख्या	शिक्षकों की सं0	अभिभावकों की संख्या
1.	राजकीय इण्टर कालेज, जायस, अमेठी	शहरी	25	8	10
2.	राजकीय बालिका इण्टर कालेज जायस, अमेठी	शहरी	20	7	8
3.	राजकीय इण्टर कालेज फुरसतगंज, अमेठी	शहरी	18	5	7
4.	राजकीय बालिका इण्टर कालेज फुरसतगंज अमेठी	शहरी	16	5	6
5.	सिटी पब्लिक स्कूल जायस अमेठी	शहरी	21	7	9
6.	ब्लाशन् इण्टर कालेज जायस अमेठी	शहरी	19	6	7
7.	सरस्वती शिशु मंदिर हाईस्कूल जायस अमेठी।	शहरी	20	6	8
8.	एस0एन0ए0 इण्टर कालेज जायस अमेठी	शहरी	15	5	5
9.	मलिक मोहम्मद भारतीय इण्टर कालेज जायस, अमेठी	शहरी	27	9	11
10	ताज मेमोरियल पब्लिक हाईस्कूल जायस अमेठी	शहरी	14	4	5
11	आदर्श पब्लिक हाईस्कूल बहादुरपुर अमेठी	ग्रामीण	25	8	9
12	वीरांगना अवन्तिबाई लोधी हाईस्कूल ओदारी अमेठी	ग्रामीण	18	6	7
13	राजकीय हाईस्कूल तेन्दुआ, अमेठी	ग्रामीण	23	7	8
14	अलीमियां हाईस्कूल ओदारी अमेठी	ग्रामीण	16	5	5
15	नेशनल पब्लिक स्कूल बहादुरपुर अमेठी	ग्रामीण	17	6	6
16	सन्नो देवी इण्टर कालेज शाहमऊ, अमेठी	ग्रामीण	22	7	8
17	अष्टभुजा हाईस्कूल शाहमऊ अमेठी	ग्रामीण	20	6	7
18	बी0पी0 कुशवाहा इण्टर कालेज बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	15	5	5
19	ए0एस0 शिशु मंदिर पुरे फत्ते बहादुरपुर, अमेठी	ग्रामीण	14	4	4
20	सुभाष चन्द्र बोस इण्टर कालेज फुरसतगंज, अमेठी	ग्रामीण	15	4	5
कुल योग			380	120	140

6. शोध उपकरण- किसी शोध अध्ययन के गुणवत्ता उसके अन्तर्गत प्रयुक्त किये गये शोध उपकरणों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक निर्देशन के प्रति अभिवृत्ति को मापने के लिए निम्नलिखित अभिवृत्ति मापनियों का प्रयोग किया है-

(क) शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति।

(ख) शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति।

(ग) शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति।

7. शोध उपकरणों का प्रशासन, आंकड़ों का एकीकरण व अंकन- शोधकर्ता द्वारा प्रतिदर्श के रूप में चयनित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों के अभिभावकों से आंकड़ों का संकलन करने हेतु विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से आज्ञा व सहमति प्राप्त की गई, जिसके पश्चात् शोधकर्ता ने शिक्षकों व विद्यार्थियों को उपयुक्त निर्देश देते हुए मापनी का वितरण किया तथा उनसे यह अनुरोध किया कि वे सभी कथनों का उत्तर ईमानदारी से दे तथा उनके द्वारा दी जाने वाली जानकारी गोपनीय रखी जायेगी। इसी के साथ विद्यार्थियों तथा शिक्षकों से मापनी भरण के पश्चात् संग्रहित कर ली गयी तथा विद्यार्थियों को एक मापनी अतिरिक्त देते हुए उनसे यह अनुरोध किया गया कि वे अपने अभिभावकों से भी अभिभावक मापनी को पूर्ण कराकर अगले दो दिवसों में अपने शिक्षकों के पास जमा करा दे। दो दिन पश्चात् विद्यार्थियों द्वारा जमा की गई प्रतियों को शिक्षकों से ले लिया गया। अंत में सभी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों, शिक्षकों व विद्यार्थियों के सहयोग के लिए शोधकर्ता द्वारा आभार व्यक्त किया गया। यह प्रक्रिया प्रत्येक विद्यालय में अपनायी गई।

8. शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि- उपरोक्त वर्णित मापनियों की सहातया से संकलित आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया-

(क) टी-परीक्षण/क्रांतिक अनुपात

(ख) प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

आंकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या- उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं को आधार मानते हुए आंकड़ों का विश्लेषण उद्देश्यवार निम्न सारणियों से स्पष्ट है-

सारणी-2

विवरण	संख्या	df	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190	378	45.65	$s\in=$ 0.487	$\alpha=$ 0.05	$\pm$ 1.96	7.852	H_0^*
ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190		41.84					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि t का परिकलित मान (7.852), 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर, t का सारणीमान (1.96) से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना (माध्यमिक स्तर के शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है) स्वीकृत नहीं की गई।

चूंकि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों से अधिक है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के मुकाबले अधिक है। जिसका सम्भावित कारण शहरों में शिक्षा के प्रति पाई जाने वाली जागरूकता और साक्षर अभिभावक, उपलब्ध शैक्षिक सुविधायें इत्यादि हो सकते हैं।

सारणी-3

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60	118	45.98	$s \in =$ 0.411	$\alpha =$ 0.05	± 1.96	4.726	H_0^*
ग्रामीण शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60		44.04					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- शहरी क्षेत्र के शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों के मुकाबले अधिक बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण शहरों के विद्यालयों में प्रदान की जा रही शैक्षिक सुविधा तथा शैक्षिक निर्देशन के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति हो सकती है।

सारणी-4

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
शहरी क्षेत्र के अभिभावकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	70	138	37.66	$s \in =$ 0.517	$\alpha =$ 0.05	1.96	6.505	H_0^*
ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	70		34.3					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों के मुकाबले अधिक सकारात्मक पायी जा रही है जिसका सम्भावित कारण शहरी क्षेत्र में पाई जाने वाली तकनीकी सुविधाएँ, भविष्य के प्रति जागरूकता, नियमित अभिभावक शिक्षक बैठकों का होना हो सकता है।

सारणी-5

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
छात्रों में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190	378	40.74	$s \in =$ 0.588	$\alpha =$ 0.05	1.96	3.368	H_0^*
छात्राओं में व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	190		42.78					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- छात्र की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति छात्राओं के मुकाबले कम बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण बालिकाओं का बालकों के मुकाबले अधिक शैक्षिक रूप जागरूक होना तथा उच्च शिक्षा के प्रति उन्मुख होना हो सकता है।

सारणी-6

विवरण	संख्या	d of	मध्यमान	मानक त्रुटि	सार्थकता स्तर	t का मान (सारणी)	t का मान परिकलित	निष्कर्ष
पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60	118	45.96	$s_{\in}=$ 0.412	$\alpha=$ 0.05	1.96	4.607	H_0^*
महिला शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति	60		44.06					

* शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं हुई।

व्याख्या- पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति महिला शिक्षकों के मुकाबले बेहतर है, जिसका सम्भावित कारण अधिकतर पुरुष शिक्षकों का शैक्षिक निर्देशन के कार्यक्रमों में प्रतिभाग करना, उच्च शिक्षा की ओर उन्मुकता तथा निर्देशन सेवाओं के प्रति अधिक जागरूक होना हो सकता है।

2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी- विद्यार्थियों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति।

सारणी-7

प्रसरण का स्रोत	स्वतंत्रता का स्तर (*dof*)	*SS*	*MSS*	सार्थकता स्तर	*F* का नाम	*P* का नाम
लिंग (A)	1	38.507	38.507	$\alpha=$ 0.05	6.846	P=0.001
स्थान (B)	1	305.307	305.307		54.283	P<0.001
(A) x (B)	1	1.5	1.5		0.267	P=0.607
त्रुटि	377					
योग	**380**					

व्याख्या- उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि लिंग तथा स्थान जैसे चरों का पृथक रूप से विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर सार्थक प्रभाव पड़ रहा है, परन्तु इन दोनों चरों का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं है, जिसका सम्भावित कारण लिंग अैर स्थान में कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध का न हो सकता है।

2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी- शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति।

सारणी-8

प्रसरण का स्रोत	स्वतंत्रता का स्तर (*dof*)	*SS*	*MSS*	सार्थकता स्तर	*F* का नाम	*P* का नाम
लिंग (A)	1	59.535	59.535	$\alpha=$ 0.05	16.279	P<0.001
स्थान (B)	1	63.375	63.375		17.329	P<0.001
(A) x (B)	1	2.282	2.282		0.624	P=0.432
त्रुटि	117	351.083	3.657			
योग	**120**					

व्याख्या- शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान के सार्थक प्रभाव को दर्शाता है और लिंग तथा स्थान के अन्त:क्रियात्मक प्रभाव को गैर सार्थक दर्शाता है, जिसका सम्भावित कारण लिंग तथा स्थान का आपस में कोई सम्बन्ध में नहीं हो सकता है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत शोध अध्ययन में आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षो को निम्न प्रकार दर्शाया गया है- शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर निष्कर्ष-

1. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मुकाबले अधिक पायी गगयी तथा दोनों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के औसत प्राप्तांक में काई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
2. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के मुकाबले सकारात्मक है तथा दोनों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
3. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के अभिभावकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों के मुकाबले अधिक बेहतर पाया गया है तथा दोनों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
4. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति छात्राओं के मुकाबले सकारात्मक नहीं पायी गयी है तथा दोनों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का औसत प्राप्तांक में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
5. माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत् पुरुष शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति का मध्यमान महिला शिक्षिकों से कम पाया गया है तथा दोनों के औसत प्राप्तांक में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। पुरुष व महिला शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति महिला शिक्षकों की अपेक्षा पुरुष शिक्षकों की अधिक बेहतर पायी गयी है।
6. **(ए) लिंग का प्रभाव-** विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यक के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का प्रभाव सार्थक पाया गया है।

   (बी) स्थान का प्रभाव- स्थान के प्रभाव के संदर्भ में विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर स्थान का प्रभाव सार्थक तथा सकारात्मक पाया गया है।

   (सी) अन्त:क्रियात्मक प्रभाव- विद्यार्थियों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान का कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं होने के कारण लिंग तथा स्थान का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया है।
7. **(ए) लिंग का प्रभाव-** शिक्षको की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग का प्रभाव अधिक सार्थक रूप से पाया गया है।

   (बी) स्थान का प्रभाव- शिक्षकों में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति स्थान का प्रभाव सकारात्मक तथा सार्थक पाया गया है।

   (सी) अन्त:क्रियात्मक प्रभाव- शिक्षकों की शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्ति पर लिंग तथा स्थान का कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध न होने के कारण दोनों चरों (लिंग व स्थान) का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव सार्थक व सकारात्मक नहीं पाया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. डॉ0 दिनेश कुमार, शैक्षिक अनुसंधान प्रणाली एवं सांख्यिकी, लक्ष्मी पब्लिकेशन-113, गोल्डेन हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0पी0 सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।

3. गुप्ता, एस0पी0 आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
4. जायसवाल, सीताराम, शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, उत्तर प्रदेश।
5. कौल, लोकेश, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, ई0-28, सेक्टर-8, नोएड (यू0पी0)।
6. पाल, डॉ0 कुलविन्दर; निर्देशन तथा परामर्श, यू0एस0आई0 पब्लिकशन, 2/31, नई दिल्ली।
7. सिंह, अरुण कुमार, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, 41 यू0ए0 बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
8. शर्मा, डॉ0 आर0ए0, शिक्षा अनुसंधान के मूलतत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
9. शर्मा, डॉ0 आर0ए0, चतुर्वेदी डॉ0 शिखा, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।

वेबसाइट-

• www.google.com
• wwwwikipedia.com

वैश्वीकरण और भूमिहीन ग्रामीण मजदूर: एक सामाजिक अध्ययन

डॉ० प्रेमलता

एसोसिएट प्रोफेसर, सामाज शास्त्र विभाग, दाऊ दयाल महिला पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

सारांश

कृषि मजदूर वह श्रमिक है, जो खेती से सम्बंधित कार्यों जैसे खेत जोतना, फसल काटना, बागवानी करना, पशुओं को पालना, मधुमक्खियों और मुर्गी पालन के प्रबंधन और वन्य जीवन से जुडे कार्यों में लगा होता है। कृषि मजदूर असंगठित में क्षेत्र में आते हैं। भारत की लगभग 53% आबादी आज भी कृषि संबंधी गतिविधियों में शामिल है।

1956-1957 में गठित दूसरी कृषि श्रम जांच समिति ने कृषि श्रमिकों का दायरा बढ़ाते हुए उसमे खेतों में काम करने वालों के अलावा उन लोगों को शामिल किया जो पशुपालन, डेयरी, मुर्गी पालन, सुअर पालन, आदि दूसरे तरह के कार्यों में लगे हैं।

1950-1951 में गठित की गई पहली कृषि श्रम समिति ने कहा कि ये वह श्रमिक होते हैं जो मजदूरी के भुगतान के बदले फसल उगाते हैं। भारत में चूंकि, श्रमिकों की एक बड़ी संख्या इस इस परिभाषा के अंतर्गत नहीं आती, अत: इस परिभाषा को अधूरा माना गया। तदनुसार, समिति ने इसे पुन परिभाषित करते हुए कहा कि उन लोगों को कृषि श्रमिक के रुप में माना जाना चाहिए जो 50 प्रतिशत या उससे अधिक दिन के लिए मजदूरी के भुगतान पर काम करते हो।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 17% है। अभी भी लगभग 55% लोग कृषि पर निर्भर हैं। वैश्वीकरण, मशीनी करण उन्नत तकनीकि और बीजों के एच.आई. वी के साथ उर्वरकों की आसान पहुंच के साथ उत्पादकता और फसल की उपज की गुणवत्ता पर भारी सकारात्मक प्रभाव डाला है। सबसे उल्लेखनीय खाद्य सुरक्षा एवं आत्मनिर्भरता और बासमती चावल जिसकी विश्व बाजार में उच्च मांग है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का प्रसार विदेशी प्रौद्योगिकी की मदद से मेगा फूड पार्क और गोदामों के विकास के साथ निवेश में बढी हुई वैश्विक गतिविधि की एक और विशेषता है जिससे कृषि के लाभ में सुधार दिख रहा है।

भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों के लिए विकास के लक्ष्य अधिकांश दिन काम और बेहतर मजदूरी वाले स्थानीय रोजगार हैं। ये लोग अपने बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। लेकिन इस आधार पर उनमें कोई सामाजिक भेदभाव नहीं होना चाहिए और वे भी गाँव में नेता बन सकते हैं।

मूलशब्द

वैश्वीकरण, कृषि, भूमिहीन, ग्रामीण, मजदूर

परिचय

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 17% है। अभी भी लगभग 55% लोग कृषि पर निर्भर हैं। वैश्वीकरण, मशीनी करण उन्नत तकनीकि और बीजों के एच.आई. वी के साथ उर्वरकों की आसान पहुंच के साथ उत्पादकता और फसल की उपज की प्रकृनत पर भारी सकारात्मक प्रभाव डाला है. सबसे उल्लेखनीय खाद्य सुरक्षा एवं आत्मनिर्भरता और बासमती चावल जो सभी की उच्च मांग में हैं जैसे उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के लिए मान्यता है।

खार्द्प्रसंस्करण उद्योगों का प्रसार विदेशी प्रौद्योगिकी की मदद से मेगा फूड पार्क और गोदामों के विकास के साथ निवेशमें बढी हुई वैश्विक गतिविधि की एक और विशेषता है जिससे कृषि के लाभ में सुधार दिख रहा है।

भूमिहीन ग्रामीण मजदूरों के लिए विकास के लक्ष्य अधिकांश दिन काम और बेहतर मजदूरी वाले स्थानीय स्कूल हैं, जो अपने बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में सक्षम हैं और उनमें कोई सामाजिक भेदभाव नहीं होना चाहिए और वे भी गाँव में नेता बन सकते हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार 263 लाख लोग खेती संबंधी कामों में लगे हुए थे। वहीं ठीक इसके आधे कृषि श्रमिक के रुप में इस क्षेत्र में जुड़े थे। बीते चालीस सालों में पहली बार ऐसा देखा गया।

कृषि श्रमिकों को हम विस्तृत रुप से पारिवारिक श्रमिक, किराये के मजदूर व बंधुआ मजदूर की श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण अंग्रेजी शब्द 'Globalization' (ग्लोबलाइजेशन) का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसे भूमंडलीकरण (Bhumandalikaran) भी कहा जाता है। ग्लोबलाइजेशन शब्द की सर्वप्रथम चर्चा 'जान नेसविर' की पुस्तक से मिलती है। 'ग्लोबलाईजेशन' (1998) समाजशास्त्री मेलकॉम वाटर्स द्वारा लिखित पुस्तक है।

वैश्वीकरण दो शब्दों से मिलकर बना है विश्व + एकीकरण इन दो शब्दों में विश्व का मतलब है पृथ्वी पर मौजूद विभिन्न देश तथा एकीकरण का मतलब है आपसी सहयोग और एक छत के नीचे आकर एक दूसरे की मदद करना।

किसी वस्तु, सेवा, विचार पद्धति, पूँजी, बौद्धिक सम्पदा अथवा सिद्धान्त को विश्वव्यापी करना अर्थात् विश्व के प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ अप्रतिबन्धित आदान-प्रदान करना।

यह समग्र विश्व को एक बनाने या सीमा मुक्त विश्व की रचना करने का प्रयास है। कानूनी सलाह, कंप्यूटर सेवा, विज्ञापन, सुरक्षा आदि सेवाएं पहले जहां केवल देश के भीतर ही प्रदान किया जा सकता था वहीं सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार के कारण इन सेवाओं को विदेशों से प्राप्त करने की प्रवृत्ति बहुत सशक्त हो गई है।

भारत की निम्न मजदूरी दरें तथा कुशल श्रम शक्ति की उपलब्धता ने सुधारोंपरांत इसे विश्व स्तरीय 'बाह्य प्रापण' (आउटसोर्सिंग) का एक गंतव्य बना दिया है।

वैश्वीकरण के कारण भारतीय कंपनियाँ भी विदेशों में अपने पैर फैलाने लगी है। टाटा टी ने 2001 में इंग्लैंड की टेटली को 1870 करोड़ में खरीदकर विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। टेटली ने हीं श्टी बैगश का प्रारंभ किया था।

2004 में टाटा इस्पात ने सिंगापुर की नेट स्टील को 1245 करोड़ में और टाटा मोटर्स ने डेबू का कोरिया स्थित भारी वाहन संयंत्र 448 करोड रुपए में खरीदा।

विदेश संचार निगम लिमिटेड श्टाइकोश के भूसागर मग्न संचार तार तंत्र को भी 572 करोड़ में खरीद रही है।

भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण के पश्चात स्थानीय और विदेशी उत्पादकों के बीच कड़ी प्रतिस्पर्धा से शहरी धनी वर्ग को विशेष फायदा हुआ। इन उपभोक्ताओं के समक्ष पहले से अधिक विकल्प और कम कीमत पर उत्कृष्ट गुणवत्ता के उत्पाद मौजूद हैं परिणामतःये लोग पहले की तुलना में आज अपेक्षाकृत जीवन स्तर का आनंद ले रहे हैं।

विगत 20 वर्षों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में अपने निवेश में वृद्धि की है। इन कंपनियों ने शहरी इलाकों के उद्योगों जैसे सेलफोन, मोटर गाड़ियों, इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों ठंडे पेय पदार्थ और जंक खाद्य पदार्थ एवं बैंकिंग जैसी सेवाओं के निवेश में रुचि दिखाई है। इन उत्पादों के खरीददार संपन्न वर्ग के लोग हैं इन उद्योगों और सेवाओं से नए रोजगार उत्पन्न हुए हैं साथ ही उद्योगों को कच्चे माल इत्यादि की आपूर्ति करने वाले स्थानीय कंपनियां समृद्धि हुई।

भूमिहीन श्रमिक

भूमिहीन श्रमिक-ये ऐसे श्रमिक हैं जिनके पास खेती करने के लिए अपनी कोई भूमि नहीं होती। बहुत छोटा किसान-ये ऐसे श्रमिक हैं जिनके पास बहुत थोड़ी मात्रा में अपनी भूमि होती है। अतः ये अपना अधिकांश समय श्रमिकों के रूप में व्यतीत करते हैं।

भारत के कुल ग्रामीण परिवारों में से 60 प्रतिशत परिवार गरीब हैं जिन में दलितों का प्रतिशत इससे काफी अधिक है। इसी प्रकार ग्रामीण भारत में 56 प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं, जिन में दलित परिवारों का प्रतिशत इससे अधिक होना स्वाभाविक है। इसी जनगणना में यह बात भी उभर कर आई है कि ग्रामीण भारत में 30 प्रतिशत परिवार केवल हाथ का श्रम ही कर सकते हैं जिस में दलितों का प्रतिशत इस से काफी अधिक है। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र में अधिकतर दलित गरीब, भूमिहीन और अनियमित हाथ का श्रम करने वाले मजदूर हैं। जनगणना ने भूमिहीनता और केवल हाथ के श्रम को ग्रामीण परिवारों की सबसे बड़ी कमजोरी बताया है। इस कारण गांव में अधिकतर दलित परिवार जमींदारों पर आश्रित हैं और कृषि मजदूरों के रूप में मेहनत करने के लिए बाध्य हैं। इसी कमजोरी के कारण वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का प्रभावी ढंग से प्रतिरोध भी नहीं कर पाते हैं।

सदियों से भुखमरी और गरीबी का एक बड़ा कारण है कि मेहनतकश मजदूर-किसान भूमिहीन रहे हैं और भू-स्वामी उनका शोषण करते आये हैं (एवं यही भू-स्वामी अमीर वर्ग, अपने हित में आय एवं संसाधनों का ध्रुवीकरण भी करता आया है)। जिन मेहनतकश किसान-मजदूर के पास जमीन यदि हैं भी, तो कृषि क्षेत्र में निजीकरण और उद्योगीकरण के कारणवश उनकी भूमि पर उनके स्वामित्व पर खतरा मंडरा रहा है। खदान, शहरीकरण और 'विकास' के नाम पर भूमि पर कब्जा होता जा रहा है। जो भूमिहीन किसान-मजदूर अपने भू-अधिकार की मांग करते हैं उन्हें अक्सर तमाम प्रकार के शोषण और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है।

भू-मंडलीकरण, उदारीकरण तथा ग्रामीण समाज

वैश्वीकरण ने कृषि उत्पादन को अतीत की तुलना में बहुत तेजी से बढ़ने की अनुमति दी है। कुछ दशकों पहले तेजी से विकास प्रति वर्ष 3 प्रतिशत से अधिक था। अब यह 4 से 6 प्रतिशत है। हालांकि, विकास की इन उच्च दरों में इसकी संरचना में काफी बदलाव शामिल है। विकास के थोक मूल खाद्य स्टेपल से शुरू हुआ जब निर्यात बाजारों के लिए गुंजाइश सीमित है, जबकि अब बहुत अधिक मूल्य वाली वस्तुओं के लिए एक स्विंग है। उच्च आय वाले देशों की आय में विस्फोटक वृद्धि का मतलब है कि उत्पादन के बड़े समुच्चय अब पहले के छोटे आला बाजारों में हो सकते हैं। उच्च गुणवत्ता वाली कॉफी और चाय इसके उदाहरण हैं। बागवानी निर्यात का बाजार भी काफी बढ़ा है और आगे भी बढ़ सकता है।

जैसे-जैसे उच्च मूल्य वाले कृषि वस्तुओं का निर्यात बढ़ता है और प्रति व्यक्ति आय में गुणकों का विकास होता है, उच्च मूल्य वाले पशुधन और बागवानी की घरेलू मांग तेजी से बढ़ेगी। इस प्रकार, यहां तक कि काफी कम आय वाले देशों में, कृषि उत्पादन में लगभग आधा वृद्धि निर्यात और घरेलू उपयोग दोनों के लिए उच्च मूल्य बागवानी और पशुधन में होगी। नतीजतन, अनाज उत्पादन की भूमिका अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो जाएगी।

यह कृषि विकास है जो गरीबी को कम करता है, और कृषि का प्रभाव विकास दर पर निर्भर करता है जो जनसंख्या वृद्धि दर से काफी अधिक है। उत्तरार्द्ध अप्रत्यक्ष हैं, ग्रामीण गैर-परंपराओं की मांग पर उनके प्रभाव के माध्यम से काम कर रहे हैं जो कुल श्रम शक्ति और गरीबों के थोक के एक बड़े हिस्से पर कब्जा करते हैं, खाद्य असुरक्षित हैं।

ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे के अधिकांश व्यक्ति काम करते हैं। उनमें बहुत सी भूमि शामिल है जो न्यूनतम निर्वाह प्रदान करने के लिए अपर्याप्त है। ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र बहुत कम पूंजी का उपयोग करता है और इसलिए अत्यधिक रोजगार-गहन है। यह ऐसी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है जो प्रमुख रूप से गैर-परम्परागत होते हैं, यही वे मांग के स्थानीय स्रोतों पर निर्भर होते हैं। कृषि विकास उस मांग में वृद्धि का अंतर्निहित स्रोत है।

ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र में भी कृषि की मांग मजबूत वृद्धि गुणकों को दर्शाती है, क्योंकि यह खुद पर काफी खर्च करता है। यह क्षेत्र आपूर्ति में अत्यधिक लोचदार है, क्योंकि कम मजदूरी वाली अर्थव्यवस्था में श्रम-गहन क्षेत्र की अपेक्षा की जाएगी। ग्रामीण गैर-परंपराओं की आपूर्ति अत्यधिक लोचदार है, मुख्यतः क्योंकि श्रम प्राथमिक इनपुट है और श्रम आपूर्ति में लोचदार है जब तक कि आय कम है या बेरोजगारी स्थानिक है। यह मांग है कि इस क्षेत्र के विकास में बाधा आती है और यह मांग उच्च कृषि विकास दर से आती है।

गरीबी पर कृषि का प्रभाव अप्रत्यक्ष है जो गरीबी पर पूर्ण प्रभाव से पहले तीन या चार साल के अंतराल के अनुरूप है। यह ग्रामीण गैर-कृषि उपभोक्ता-माल क्षेत्र के माध्यम से काम करता है, इस खोज के अनुरूप है कि जब कृषि वितरण अत्यधिक असमान होता है तो कृषि पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है- आमतौर पर अनुपस्थित जमींदारों से जुड़ा होता है, जिनके पास किसान किसानों से काफी भिन्न उपभोग के मानक होते हैं।

रोजगार पर एक बड़े प्रभाव के लिए, कृषि को जनसंख्या वृद्धि की तुलना में काफी तेजी से बढ़ना चाहिए। यदि इसे खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक रोजगार के स्तर को प्राप्त करने के लिए आवश्यक 4 से 6 प्रतिशत की दर से बढ़ना है, तो कृषि के प्रमुख घटकों का निर्यात किया जाना चाहिए।

कृषि रियायतों में कमी के कारण उत्पादन लागत में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, बाजार स्थिर नहीं है, तथा बहुत से किसान अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए महँगे मदों में निवेश करने हेतु अत्यधिक उधार लेते हैं। खेती का न होना, किसी बीमारी अथवा हानिकारक जीव-जंतु, अत्यधिक वर्षा या सूखे के कारण तथा कुछ मामलों में उचित आधार अथवा बाजार मूल्य के अभाव के कारण किसान कर्ज का बोझ उठाने अथवा अपने परिवारों को चलाने में असमर्थ होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की परिवर्तित होने वाली संस्कृति जिसमें विवाह, दहेज तथा अन्य नयी गतिविधियाँ तथा शिक्षा व स्वास्थ्य की देखभाल के खर्चों के कारण अधिक आय की आवश्यकता होती है, जिससे ऐसी परेशानियों की तीव्रता बढ़ जाती है। किसानों की आत्महत्याओं का प्रतिमान ग्रामीण क्षेत्रों में अनुभव किए जाने वाले महत्वपूर्ण संकट की ओर संकेत करते हैं। कृषि बहुत से लोगों के लिए अरक्षणीय होती जा रही है, तथा कृषि के लिए राज्य का सहयोग भी बहुत कम मिलता है। इसके अतिरिक्त कृषि के मुद्दे अब मुख्य सार्वजनिक मुद्दे नहीं रहे हैं, तथा गतिशीलता के अभाव के कारण कृषक शक्तिशाली दबाव समूह बनाने में असमर्थ हैं, जो नीति निर्धारण अपने पक्ष में करवा सकें अथवा नीति को प्रभावित कर सकें) ऋण ग्रस्तता एवं कृषि उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाले प्राकृतिक एवं सामाजिक संकट किसानों की आत्महत्या के मुख्य कारक हैं। अनेक आकस्मिक संकट प्रकृति में आए उतार चढ़ाव से उत्पन्न होते हैं। 'प्रधनमंत्री फसल बीमा योजना' एवं ग्राम उदय से भारत उदय ''अभियान और साथ ही नेशनल अरबन मिशन" राष्ट्रीय ग्रामीण-नगरीय मिशन वे कार्यक्रम हैं, जिन्हें भारत सरकार संचालित करती है। इन कार्यक्रमों ने पूरे देश में किसानों के लिए एकीकृत सहायता के मार्ग खोले हैं। इसके अतिरिक्त इन कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण लोगों के जीवन यापन में गुणात्मक सुधार हुआ है।

विदेशी गरीब श्रमिकों का शोषण

मजबूत औद्योगिक शक्तियों द्वारा गरीब देशों की सुरक्षा में गिरावट के परिणाम स्वरुप इन देशों में सस्ते श्रम के रूप में लोगों का शोषण होता है। सुरक्षा में कमी के कारण, प्रबल औद्योगिक राष्ट्रों की कम्पनियां श्रमिकों को असुरक्षित स्थितियों में लंबे समय तक काम करने के लिए लुभाने हेतु पर्याप्त वेतन की पेशकश करती हैं। हालाँकि अर्थशास्त्री इस बात पर सवाल उठाते हैं कि प्रतियोगी नियोक्ता बाजार में श्रमिकों को अनुमति देना 'शोषण' माना जा सकता है।

सस्ते श्रम की प्रचुरता देशों को शक्ति तो दे रही है लेकिन राष्ट्रों के बीच असमानता को दूर नहीं कर पा रही है। यदि ये राष्ट्र औद्योगिक राष्ट्रों में विकसित हो जायें तो सस्ते श्रम की सेना विकास के साथ धीरे धीरे गायब हो जायेगी।

यह सच है कि श्रमिक अपना काम छोड़ने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन कई गरीब देशों में, इसका मतलब उसके या उसके पूरे परिवार के लिए भुखमरी होगा अगर पिछला रोजगार भी उनके लिए अब उपलब्ध न हो।

निष्कर्ष

ग्रामीण समाज में कृषियोग्य भूमि ही जीविका का एकमात्रा महत्वपूर्ण साधन और संपत्ति का एक प्रकार है। लेकिन किसी विशिष्ट गाँव या किसी क्षेत्र में रहने वालों के बीच इसका उचित विभाजन नहीं है। न ही सभी के पास भूमि होती है। वास्तव में भूमि का विभाजन घरों के बीच बहुत असमान रूप से होता है। भारत के कुछ भागों में अधिकांश लोगों के पास कुछ न कुछ भूमि-अक्सर जमीन का बहुत छोटा टुकड़ा होता है। कुछ दूसरे भागों में 40 से 50 प्रतिशत परिवारों के पास कोई भूमि नहीं होती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी जीविका या तो कृषि मजदूरी से या अन्य प्रकार के कार्यों से चलती है। इसका सहज अर्थ यह हुआ कि कुछ थोड़े परिवार बहुत अच्छी अवस्था में है। बड़ी संख्या में लोग गरीबी की रेखा के ऊपर या नीचे होते हैं।

उतराधिकार के नियमों और पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था के कारण, भारत के अधिकांश भागों में महिलाएँ जमीन की मालिक नहीं होती हैं। कानून महिलाओं को पारिवारिक संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी दिलाने में सहायक होता है। वास्तव में उनके पास बहुत सीमित अधिकार होते हैं, और परिवार का हिस्सा होने के नाते भूमि पर अधिकार होता है जिसका कि मुखिया एक पुरुष होता है।

अधिकांश कृषि मजदूर रोजाना दिहाड़ी कमाने वाले होते हैं। और वर्ष में बहुत से दिन उनके पास कोई काम नहीं होता है। इसे बेरोजगारी कहते हैं। समान रूप से काश्तकार या पट्टेदारी (कृषक जो भूस्वामी से जमीन पट्टे पर लेता है) की आमदनी मालिक-कृषकों से कम होती है। क्योंकि वह जमीन के मालिक को यथेष्ट किराया चुकाता है- साधारणतः फसल से होने वाली आमदनी का 50 से 75 प्रतिशत।

सन्दर्भ

- Acharya, S (1989): 'Agricultural Wages in India: A Disaggregated Analysis', Indian Journal of Agricultural Economics, Vol. 44 and No. 2.
- Jha, Praveen (1997): 'Agricultural Labour in India', Vikas **publisher**, Pvt Ltd, New Delhi.
- Jose, A.V (1974): 'Trends in Real Wages of Agricultural Labourers', Economic and Political Weekly, Vol. 9, No.12.
- Kurien, C.T (1983) Dynamics of Rural Transformation: A Study of **Tamil Nadu** 1950-1975', Orient Longman, New Delhi.
- Parathasarathy, G (1996): 'Recent Trends in Wages and Employment of Agricultural Labour', The Indian Journal of Agricultural Economics, Vol. 51 and No. 1 and 2.
- Sivasankar, V (2010): 'The Dynamics of Agricultural Labour Markets: A Case Study of Two Villages in Tamil Nadu', Unpublished Ph.D. Thesis, Centre for Economic Studies and Planning, **solon** University, New Delhi.
- भारतीय अर्थव्यवस्था, रमेश सिंह पृ-6.7

लोकसाहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण

पूनम रानी

शोधार्थी, पीएच.डी. हिंदी

डॉ० सुरेश कड़वासरा

शोध निर्देशक, श्री जगदीश प्रसाद झबरामल टिबरेवाला विश्वविद्यालय, झुंझुंनू, राजस्थान।

शोध सारांश

किसी जाति के शील का परिचय उसका साहित्य देता है, क्योंकि साहित्य सांस्कृतिक मूल्यों का पोषक है। सामयिक संघर्षों को मुखरित करने वाला साहित्य कई बार एक भिन्न भूमिका के निर्वाह में सन्नद्ध होने के कारण सांस्कृतिक धारा से कट-सा जाता है, परन्तु लोक कवियों का साहित्य भारतीय सांस्कृति धारा से सीधा रूप में जुड़ा हुआ है। उनकी नाट्यात्मक कृतियों के पात्र चाहे ऐतिहासिक हों या काल्पनिक, उन्होंने सामान्य मानव के उस संघर्ष को व्यक्त किया है, जो यातनाओं की कठिनतम विभीषिकाओं से गुजर कर अन्ततः फल प्राप्ति में सफल होता है। उस काव्य-न्याय (पोयटिक् जस्टिस) की स्थापना के दौरान कवि ने उदात-सांस्कृतिक संदर्भों के चित्रण के द्वारा लोकाचार एवं शास्त्र-सम्मत मर्यादाओं का संश्लेषण प्रस्तुत किया है।

मूल शब्दः नाट्यात्मक कृति, सामयिक संघर्षों, मूल्यों का संरक्षण, सांसारिक प्रपंचों, अनुप्राणित अनुभूतियां।

प्रस्तावना

पर्व, उत्सव एवं अन्य संदर्भों के सटीक चित्रण के द्वारा भी कवि ने सांस्कृतिक औदात्य की सृष्टि की है। भारतीय संस्कृति के जन-स्वीकृत स्वरूप की व्याख्या के कारण लोक कवियों का साहित्य महत्वपूर्ण है।

सूती धोत्ती चाद्दर कुर्ता धौला गाढ़ा झीना।
सोच सुदेशी,गुण अन्वेषी जित पाया उत बीना।
गाय गात्री गंगाजी सा, पावन जीवन जीना।
देशी बोली देशी मानस देशी खाणा पीणा।
शक्ति पा गया मां चण्डी की, भगति के गीत सुनाके।।
ग्याण का अमरित शिष्य पीगिये, पूरण सतगुरू पाकै।।[1]

कालक्रम की दृष्टि से लोक कवियों लोक युग के कवि हैं किन्तु प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इनका रागिनी-साहित्य लोक हिन्दी साहित्य से पर्याप्त भिन्न है। इस युग के काव्यकारों की श्रेणी में न होते हुए भी भाव व कला की दृष्टि से ये नई कविता के अधिकांश कवियों से बाजी मारते हुए दिखाई देते हैं। इनके रागिनी साहित्य का विश्लेषण करने से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने जहां एक ओर अपने पूर्ववर्ती व समकालीन कवि संगीतकारों की परम्परा का निर्वाह करते हुए उनसे सम्बन्ध स्थापित किया है। वहीं इन्होंने अपने रागिनी साहित्य में अनजाने में ही हिन्दी के आदि-मध्य और लोक कालीन साहित्य की कुछ-एक काव्य प्रवृतियों को समाविष्ट किया है।

फेर बहोड़ कै मनैं दिखाद्यो, म्हारा पहलड़ा हरियाणा रै।।

1 भाईचारे की सबनै पहल्यां, घणी मरोड़ होया करती

मन मैं पाप जरा ना था, चुल्है तक दौड़ होया करती

कठ्ठी खेती करया करैं थे, कसूती हौड़ होया करती

घी शक्कर कति छिक्कम छिक्का, मुंह की छोड़ होया करती

ना रिश्वत कोड़ होया करती, ना देख्या करते थाणा रै।। [2]

इनके काव्य में आदिकालीन साहित्य जैसी जन-जीवन से अनुप्राणित अनुभूतियां तथा लोक-काव्य-प्रवृतियां, नाथपंथियों का इन्द्रिय निग्रह, साधना तथा शून्य समाधि आदि, निर्गुणिए सन्तों और सूफियों की गुरू महिमा तथा अलौकिक सत्ता की प्राप्ति में बाधा बनने वाले सांसारिक प्रपंचों और काम-क्रोध आदि विषयों का वर्णन एवं उनका त्याग, भक्त कवियों से मिलती-जुलती भक्ति भावना, विभिन्न मनीषियों के वादों का समन्वित रूप, सूफी एवं सगुण सन्तों का भारतीय समाज व संस्कृति का चित्रण तथा रीतिकालीन कवियों की परिगणन शैली का प्रयोग भी यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से लोक युग का काव्य विविधतामुखी है। इस युग की राष्ट्र भक्ति, वैयक्तिकता, स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, प्रकृति चित्रण, अति-बोधिकता, निराशावाद तथा युगबोध जैसे भावों का चित्रण लोक कवियों के काव्य में स्पष्ट रूप में उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि लोक कवियों वास्तव में जन-सामान्य के कवि थे और जन-साधारण की भावनाओं को वाणी देने के लिए इन्होंने रागिनियों में अनुस्यूत कथा-प्रबंधों की परम्परा से चली आ रही काव्य परिपाटी को ही अपनाया। श्याम उपासना का उदाहरण देखिए-

चंदन,शहद,अगरबत्ती सुन्दर सुन्दर फूल सारे

कच्चा दूध, शक्कर, शुद्ध घी,मेवा मिश्री गिरी छुवारे

दही,मिठाई, गंगाजल और कुंकू अक्षत न्यारे न्यारे

बिछुआ, टोंटीदार करवा पानी गिरता बना फ्वावारे

टुंडे आला ढक्कन हो रही मिटी की कलाकारी

मेहंदी, महावर,कंघा, बिंदी,चुनरी चूड़ी और सिंदुर

दीपक, रुई, और कपूर संग गेहुं धान्य अन्न महसुर

शक्कर बुरा पानी का लोटा, की पिली मिट्टी गिली चूर

लकडी का आसन धर रही थी सारी बस्तु बादस्तूर

आठ पुरीया धरी बनाकर कहलाती जो अठवारी

हल्दी और चलनी ले रही,हलवे की उठी महकार। [3]

कहना न होगा कि रागिनी रूप में यह काव्यधारा अपने आप में मौलिक और स्वतंत्र है जो यहां (हरियाणा) की सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों की अनुरूपता में प्रस्फुटित एवं विकसित हुई। इसका अपना जीवन-दर्शन और जीवन और जगत् के प्रति एक मूलभूत दृष्टिकोण है। अभिप्राय: यह है कि परम्परा में प्राप्त इस का व्याधारा के माध्यम से लोक कवियों प्रसंगानुसार जनसाधारण की इच्छाओं-आकांक्षाओं, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख, आशा-निराशा और जीवन के अन्य पहलुओं के चित्रण में ही व्यस्त रहे और इनका ध्यान लोक युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों की ओर अधिक नहीं गया। यों भी जिस जनजीवन से वे जुड़े थे, वहां कृत्रिम लोकता अप्रासंगिक थी।

दादा ताऊ चाचा मामा थे खडे़ ससुर और भाई

खडे गोती नाती मित गुरु सब रण में दिये दिखाई -----------टेक

श्री कृष्ण जी स्वजन सारे किये युद्ध की अभिलाषा

शिथिल हुये अंग सुख रहा मुख होगा जी का रासा

गाण्डिव गिरता तव्चा जलती बनगा किसा तमाशा

इन्हे मार कल्याण सोचलु नहीं मेरे दिल की आशा

उल्टे लक्ष्ण दिखै रण में हे श्रीकृष्ण कन्हाई --------[4]

यहां यह उल्लेखनीय है कि इनके काव्य में प्रकृति और युग चित्रण का नितान्त अभाव नहीं है। अनास्था के प्रभाव के कारण मानवीय मूल्यों में जो विकार आ गया है उसका वर्णन ही उनके काव्य का प्रतिपाद्य है। युगीन मानसिकता उन्होंने स्पष्ट रेखांकन किया है। सामयिक जीवन में व्याप्त छल, कपट, कृत्रिमता, दिखावा, विद्वेष एवं आचारहीनता का उन्होंने घोर विरोध किया। निम्न पंक्तियों में यही प्रवृत्ति स्पष्ट है --

'समझ ना सकते जगत के मन मैं अज्ञान रूप का मल होग्या,

बेइमाने मंह् मगन रहै सैं गांठ्य-गांठ्य मंह् छल होग्या।[5]

शैलीगत विशेषताओं की दृष्टि से लोक कवियों का काव्य कुछ-कुछ भारतेन्दु व द्विवेदी युगीन काव्यधारा के अधिक निकट है। यह सामीप्य दो रूपों में दिखाई देता है। एक तो अभिव्यक्तिगत सहजता लोक कवियों को इन कवियों से जोड़ती है। दूसरे प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से भी लोक कवियों का काव्य गुप्त जी के बहुत समीप है तथापि भाव चित्रण की दृष्टि से लोक कवियों के काव्य में मार्मिकता अधिक है। जहां तक परिष्कार का प्रश्न है, वह गुप्त जी में अधिक है। लोक कवियों औपचारिक शिक्षा से दूर होने के कारण यद्यपि खड़ी बोली की सामयिक काव्याधाराओं से परिचित नहीं थे तथापि युगीन परिवेश के प्रभाव के कारण उनके काव्य में समसामयिक काव्य-प्रवृतियां स्पष्टतय: उपलब्ध हैं। यही कारण है कि इस शताब्दी के तीसरी दशक में लिखी लोक कवियों की पंक्तियों का भाव-साम्य 'दिनकर' रचित उर्वशी की पंक्तियों से --'यदि आज कंत का अंक नहीं पाऊंगी तो

शरीर को छोड़ पवन में निश्चय ही मिल जाऊंगी

मत बेर लगाओ जैसे भी हो

मुझे आज प्रिय के समीप पहुंचाओ।

लोक कवियों की पदमावत में भी सखियों से कहती है --

तीन दिन हो लिए तड़पती नै कुछ ना खाई खेली

भाइयां की सूंह, जी ज्यांगी दियो दरसन करा सहेली [6]

यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो नि:संदेह लोक कवियों के काव्य को प्रसाद, पंत अथवा निराला से समकक्ष नहीं रख सकते। परिष्कार एवं लोकता की दृष्टि से भी खड़ी बोली के अनेक कवियों लोक कवियों से आगे हैं परन्तु लोक कवियों का वैशिष्ट्य एक दूसरे रूप में -- लोक-जीवन के चित्रण के रूप में-अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि लोक कवियों का लोक-जीवन-चित्रण हिन्दी के किसी भी परिनिष्ठत कवि से अधिक विशद एवं अनूठा है। वास्तव में अन्य कवियों की अपेक्षा लोक कवियों ग्राम्य जीवन के अधिक निकट रहे हैं और लोक-जीवन के चित्रण के रूप में-अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि लोक कवियों का लोक-जीवन-चित्रण हिन्दी के किसी भी परिनिष्ठित कवि से अधिक विशद एवं अनूठा है।

(क) जैसाकि कहा जा चुका है कि लोक कवियों ने प्रचलित लोक गाथाओं को आधार बना कर ही काव्य-रचना आरम्भ की। इन आरम्भिक रचनाओं में कथानक की कोई नवीनता नहीं है परन्तु परम्परित कथाओं की प्रस्तुति अवश्य उन्होंने नए रूप में की है। इन रचनाओं में लोक जीवन का चित्रण प्रमुख है और उनमें कल्पना का प्रचुर प्रयोग है।

1. सरणदे नाई की - लोक कवियों की पहली रचना 'सरणदे नाई की' का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें चौकलिया रागिनियों की रचना हुई है, जिसकी परम्परा पहले प्राय: बहुत कम थी। रूप गर्विता एवं स्वजाति गर्विता सरणदे के अहम् को चूर करने के लिए राजा भोज का उससे विवाह करना और उपेक्षिता के रूप में महल में रखना इसका कथात्मक आधार है। यद्यपि इस सांग की सभी रागिनियां उपलब्ध नहीं हैं और जो प्रकाशित रूप हैं उसमें भी प्रक्षेपांश भरे हैं तथापि इसके उपलब्ध मौलिक रूप मार्मिक बन पड़े हैं -- विशेषकर सरणदे की दुहाग-यन्त्रणा का चित्रण।

2. ज्यानी चोर - आज ज्यानी चोर का भी सम्पूर्ण मूल पाठ उपलब्ध नहीं है परन्तु उपलब्ध रागिनियां प्रमाणित करती हैं कि आरम्भ से लोक कवियों में अद्भुत वर्णन-कौशल था। प्रबन्ध-सापेक्ष वस्तु-परिगणन से लेकर मार्मिक स्थलों के चयन की पहचान उनके इस प्रारम्भिक काव्य में मिलती है। नदी में बहती पट्टी से अज्ञात-नामा दुखिता महकदे की त्राण-याचना से प्रेरित होकर कथानायक अदली खां पठान से महकदे की रक्षा के लिए चल पड़ता है। अद्भुत कौशल एवं चातुर्य से वह उसे मुक्त करवा कर उसे बहन बना लेता है। लोक साहित्य के काव्य में औदात्य आरम्भ से ही रहा है। यह इस सांग से प्रमाणित होता है।
3. रघुबीर धर्मकौर - श्री नत्थूराम ने बताया है कि इस सांग का कथानक सत्य घटनाओं पर आधारित है। यह लोक कवियों की काव्य-रूपों की दृष्टि से साधारण रचना है। इसका वैशिष्ट्य है समाज में स्वार्थी व्यक्तियों के षड्यन्त्र से उत्पन्न पारिवारिक कलह का चित्रण।
4. बीजा-सौरठ - हरियाणा और राजस्थान में बीजा-सौरठ का कथानक बहुत लोकप्रिय रहा है। सामान्यत: सौरठ को एक बंजारिन दिखाया गया है किन्तु लोक साहित्य ने उसे काल्पनिक पौराणिकता प्रदान कर स्वर्ग-भ्रष्ट परी की संतान रूप में चित्रित किया है जो राजा के घर पैदा होकर भी कुम्हार के घर पलती है। तस्बी बंजारे से विवाह होने के बाद भी उसका अनिंध सौंदर्य उसके जीवन में तूफान उठा देता है। उसे अनेक संघर्षो से गुजरना पड़ता हैं और अन्तत: वह अपने रक्षक बीजा पर आसक्त हो जाती है। प्रेम और सौंदर्य की इस कल्पनाश्रित गाथा का सम्पूर्ण प्राप्त रूप प्रामाणिक नहीं हैक्योंकि मुद्रित प्रतियों में कई रागिनियों के मांगेराम द्वारा रचित होने का उल्लेख हैं।
5. जैमल-फत्ता- प्रस्तुत शोधकर्ता को तुलेराम ने बताया है कि लोक साहित्य ने जैमल-फत्ता की रचना नहीं की। मुद्रित प्रतियों के शिल्प का अध्ययन भी इसको लोक साहित्य द्वारा रचित होने का प्रमाण कम ही देता है। सम्भवत: राजस्थान की इस लोक गाथा को लेकर उन्होंने थोड़ी बहुत रागिनियां लिखी हों और आज उनके प्रक्षेपांश ही शेष रह गए हों।
6. प्रामाणिक उपलब्धि की दृष्टि से सरवर-नीर एवं चन्द्रहास की स्थिति जैमल- फत्ता से भिन्न नहीं है। सरवर-नीर की कथा लोक में बहूप्रचलित रही है। इसमें भी मध्यकालीन रोमांस कथाओं के वातावरण की ही सृष्टि है। सरवर एवं नीर नामक दो राजपुत्रों के पिता के साधु द्वारा राज लिए जाने, मां का सौदागर द्वारा अपहरण, पिता के नदी में डूब जाने तथा अनेक चमत्कारित घटनाओं के पश्चात् सबके मिलन की कथा इस सांग में है। इसमें घटनाओं का रोमांस ही प्रधान है।
7. चन्द्रहास भी राजपुत्र के जीवन में आए उत्तार-चढ़ाव की गाथा है। राजा दुर्दुद्धि से शत्रुता होने पर भी चन्द्रहास का मन उसकी पुत्री विषिका में आसक्त हो जाता है। उससे उसका मिलन भी आकस्मिक ही होता है। कल्पना-तत्व इस कथा में भी प्रमुख है।

(ख) हिन्दी साहित्य में सूफी काव्यधारा का विकास तो मध्यकाल में हुआ है परन्तु परिनिष्ठित अथवा लोकनिष्ठ काव्य में उसकी उपस्थिति, चाहे वह कितनी विरल क्यों न हो निरन्तर बनी रही है। इस शताब्दी के आरम्भ में प्रतिनिधि सांगकर्त्ता दीपचंद ने सूफी विचारधारा को हरियाणवी में पुनजीर्वित कर दिया था। दीपचन्द की शिष्य-परम्परा -- बाजे व हरदेवा -- में सूफी-सिद्धान्तों पर आधारित कथानकों को ही ग्रहीत किया गया है। लोक साहित्य के काव्य के प्रथम प्रेरणा स्त्रोत पं. दीप चन्द हैं। स्वभावत: उनकी मान्यताओं एवं विचारधारा पर दीप चन्द का गहरा प्रभाव पड़ा और इसी का यह परिणाम है कि उन्होंने प्रायोगिक-काल से गूजरते ही पांच ऐसे महत्वपूर्ण सांगों की रचना की जिनके प्रतिपाद्य एवं शिल्प पर सूफी प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। [7]

सूफी विचारधारा पर आधारित लोक कवियों द्वारा जिन पांच सांगों की रचना की गई, वे हैं -- हीर-रांझा, हीरामल-जमाल, चन्द्र किरण, नौटंकी और पदमावत। उनको इन रचनाओं से बहुत ख्याति मिली थी। आज उनमें से हीर-रांझा, हीरामल-जमाल और चन्द्रकिरण पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है लेकिन इनकी जितनी भी रागिनियां उपलब्ध हैं, वे लोक कवियों की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिमा का परिचय देती हैं। हीर-रांझा में उनकी अटपटी शैली और उक्ति-वैचित्र्य विशेषरूप से दर्शनीय है। लोक-जीवन से ग्रहीत भाषा एवं उसका बिम्बात्मक स्वभाव अपनी पहचान अलग बनाता है। हीरामल-जमाल उत्कृष्ट प्रेम और अनिंघ सौन्दर्य की गाथा है।[8]

चन्द्रकिरण प्रेम-पथ की बीहड़ कंटका कीर्णता का आख्यान है। नौटंकी और पदमावत की मंचीय प्रस्तुति निरन्तर होती रही। इसलिए ये सांग प्राय: पूर्णरूप से उपलब्ध है। यों तो लोक कवियों के सम्पूर्ण साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान हैं परन्तु रोमांसवादी काव्य की तो इन्हें श्रेष्ठतम रचनाएं कहा जा सकता है। निश्चित रूप से इनकी श्रेष्ठता का आधार मौलिक कथाओं की उद्भावना अथवा महान् घटनाओं का चित्रण नहीं है। इन रचनाओं का शिल्प सौन्दर्य ही इनकी विशिष्टता है। ये दोनों रचनाएं लालित्य-प्रधान

हैं। भाषा में नाद-सौष्ठव, अनुप्रासात्मकता, संगीत-लालित्य एवं उक्ति-वैचित्र्य का जो रूप इन रचनाओं में मिलता है, वह इन्हें अपने सभी समकालीनों से अलग खड़ा कर देता है। [9] यों ये रचनाएं रूढ़-रूप में सूफी काव्य-सिद्धान्तों का पालन नहीं करतीं परन्तु इनमें,विशेषकर पदमावत की कुछ रागिनियों में, अध्यात्मिकता का स्पष्ट संकेत है।

कोई भी महान् रचनाकार केवल शिक्षित समुदाय एवं पाठ्य-पुस्तकों की कारा में बंदी नहीं हुआ करता, वरन् वह तो जन-जन के ह्दय में बसा करता है। लोक कवियों इस दृष्टि से एक महान् रचनाकार थे। अपने जीवन-काल में उन्हें जो ख्याति प्राप्त हुई, लोक से जो श्रद्धा प्राप्त हुई जो असीम कीर्ति उन्होंने अर्जित की उसके अनेक प्रमाण विद्यमान हैं। 'लोक कवियों' हरियाणा के ग्रामीण समुदाय में सबके लिए परिचित संज्ञा है। ऐसा कोई दिन नहीं होता, जब उनकी रागिनियां आकाशवाणी अथवा अन्य जन-प्रस्तुतियों में स्थान न पाती हों। लौक में उनके कथनों को आर्श-प्रयोग के रूप में नित्य दोहराया जाता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि साहित्य में जन-जीवन का सह्दय चित्रण तो है ही, उनकी भाषा भी लोक के लिए अत्यंत परिचित है। अनूठी अभिव्यक्ति को उन्होंने अकल्पनीयः सहजता से प्रस्तुत किया है। लोक उनके काव्य से किस प्रकार प्रभावित हुआ इसका परिचय हमें उनके शिष्य पंडित मांगेराम की रागनियों से मिलता है --

(क) लोक कवियों का बेरा कोन्या कित तै लाया लक्कड़हारा[7]

+++

(ख) लोक कवियों नै मार गेरे जब लकड़हारा गावण लाग्या

बहुत-सी दुनियां पाछे रहगी नए-नए सांग बणावण लाग्या[8]

(ग) उन तै पाछै लखमी चंद ने 'डोली' बरसाई

बातां ऊपर कलत तोड़गा जो आजकाल की [10]

लोक कवियों ने भाव-सम्पन्न काव्य की रचना तो की ही है, साथ ही जन-जीवन का व्यापक चित्रण भी अपने काव्य में लिया है। ग्रामीण परिवेश, पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य-सम्बन्ध, कौटुम्बिक मेल-मिलाप, माता-पिता-पुत्र-पुत्री-भाई के प्रगाढ़ सम्बंध, विवाह, उत्सव, ऋतु, लोकाचार आदि का वर्णन, जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा, सदाचार-संदेश आदि का जो मार्मिक चित्रण किया है, उसका लोक-मानस पर असीमित प्रभाव था। लोक कवियों का लोक-जीवन से परिचय भी बहुत गहरा था। जब हिन्दी-कथा-सम्राट् मनुष्य प्रेमचंद 'गोदान' के होरी को रच रहे थे, उसी समय लोक कवियों भारतीय किसान का यह करूण चित्र प्रस्तुत कर रहे थे--

तनै अनदाता जीवन दाता कहै सब क्यहें का पालन हार
जमीदार सुण कर्मबीर तू सब तै बत्ती हिम्मतदार
तरै धोरै सब कुछ, कुछ धौरे ना सारे करम फिजूल तेरे
नरक कूंड मैं पड़ूया रहै गए फूट भाग हर फूल तेरे
लांडी धोती रेजे की ना तन पै लते मूल तेरे
पाह्यां मैं टूटे फिडके लितर चोटी तक जा धूल तेरे
गए भूल तेरे रक्षक बण भक्षक करैं तेरे पै अत्याचार
कमा कमा दूज्यां का भरै तनै मिलै ना टिकड़ा पेट भराई
जिन खात्यर दिन राम कमावै के जाणैं वे पीड़ पराई
कुड़की लैकै आण खड़े हों लेज्यां सारी करी कराई। [11]

गहन लोक-सम्पृक्ति के कारण ही लोक कवियों की रागिनियों में एक चुम्बकीय प्रभाव था। लोक मन उनकी रागिनियां सुनने के लिए उसी चुम्बकीय आकर्षण में बंधे चले आते थे। शोधकर्ता को एक साक्षात्कार में उनके शिष्य मार्हचंद ने कहा था कि यह उनके मधुर कंठ का ही जादू था कि रात्रि के समय दूरी व अंधेरे की प्रवाह न करते हुए श्रोता दस-दस कोस पैदल चल कर आया करते। अपार भीड़ उमड़ आती थी और दंगल में उनके शरबती छंदों को पीकर लोक अपनी थकान भुलाते थे।[11] हरियाणा के ग्रामांचलों के अनेक बड़े-बूढ़े आज भी यही कहते मिलते हैं -- 'हम दिन भर खेतों पर काम करने के बाद भी रात्रि सांग देखकर न जाने का संजीवनी उनसे पाते थे कि अगले दिन फिर शक्ति से खेत में काम पर जुट जाते थे।'

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि लोक-मानस पर लोक कवियों का कितना व्यापक प्रभाव था, इसका पता उनकी मृत्यु की घटना से चलता है। उनकी मृत्यु पर हरियाणा के एक ग्राम बली आली के युवक टीकू ने अपने भाई मधूरा से लोक कवियों की मृत्यु का समाचार सुणा। इस आधातक समाचार को सुनकर टीकू के मुंह से निकला-'हे भगवान् चाला होग्या। लखमींचद बालण की जगह हम तीनों भाईयों में से एक मर जाता तो अच्छा रहता पर लखमी नैं नहीं मरणा था।'[12] स्वयं लोक कवियों अपनी लोक प्रतिष्ठा से अपरिचित नहीं थे। अपने सहयोगी सारंगीवादक धूलिया खां को किन्हीं भावुक क्षणों में लोक कवियों ने कहा था-'उस्ताद मनैं याद करकै रोओगे।'[13] उपर्युक्त तथ्य प्रमाणित करते हैं कि लोक कवियों के रागिनी साहित्य का लोक-मानस पर गंभीर प्रभाव है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पं. लख्मीचन्द: ''नल-दमयन्ती'', पृ.372
2. डॉ. देव कथूरिया हिन्दी कहानी में प्रेम तथा सौंदर्य, पृ.99
3. पं. लख्मीचन्द: सांग सेठ तारा चंद
4. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृ.32
5. पं. लख्मीचन्द: चाप सिंह, पृ.271
6. पूर्णचंद शर्मा: हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परंपरा, पृ. 69
7. हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष - डॉ. जगदीश नारायण, भोलानाथ शर्मा, पृ. 166
8. हरियाणा शोध पत्रिका, अंक-1, अगस्त, 1972
9. हरियाणा चित्र जंयती विशेषांक, नवम्बर, 1967
10. हरिगंथा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़1982
11. हरियाणा संवाद, संस्कृति विशेषांक, अगस्त, 1972

जनमानस के जीवन में बदलाव लाते सामुदायिक रेडियो

हर्षवर्धन पाण्डे

शोधार्थी, कुमांऊ विश्वविद्यालय

शोध सार सामुदायिक रेडियो ने आम जनमानस के जीवन में बदलाव लाने का काम किया है। सामुदायिक रेडियो केन्द्र ग्रामीणों की आवाज को उठाने का काम करता है। स्थानीय स्तर पर बढ़ रहे सामुदायिक रेडियो केन्द्र आज सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को एक नया आधार गढ़ रहे हैं। समुदाय की अलग पहचान स्थापित करने में ये मददगार साबित हुए हैं। इन सामुदायिक रेडियो केन्द्रों में समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्यक्रम तैयार किये जा रहे हैं। सामुदायिक रेडियो ग्रामीणों की दैनिक जीवन की समस्याओं का न केवल समाधान करता है वरन ग्रामीण लोगों की राय, विचार और सुझाव लेने का भी बेहतर प्लेटफार्म है। समाज की मुख्यधारा से वंचित लोगों के जीवन में बदलाव लाने में इसकी बड़ी भूमिका है। सामुदायिक रेडियो हर किसी को अपनी बात कहने का मौका देता है। सामुदायिक रेडियो केन्द्रों द्वारा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामुदायिक विकास, संस्कृति, लोकगीत कार्यक्रमों को प्रसारित किया जाता है। यहाँ काम करने वाली टीम स्थानीय होती है जिसे समय-समय पर कुछ संस्थाएं ट्रेनिंग देती रहती हैं, ये टीम ज्यादातर सामुदायिक स्तर पर काम करती है। प्रस्तुत शोध पत्र में हमारे देश के कुछ सामुदायिक रेडियो केन्द्रों की केस स्टडी की गई है।

शब्द कुंजीः सामुदायिक रेडियो, जनमानस, बदलाव, विकास

रेडियो एक ऐसा माध्यम है, जिसके साथ किसी न किसी की कोई न कोई याद जरूर जुड़ी हुई है। सामाजिक सम्पर्क का महत्वपूर्ण स्रोत रेडियो आज भी हजारों दिलों की धड़कन है। सैकड़ों मनोरंजन के साधनों के बीच रेडियो आज भी अपनी विश्वसनीयता के साथ कई दिलों पर राज कर रहा है।

रेडियो ने मनोरंजन के साथ-साथ आपदा, राहत और आपातकाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैश्विक कोरोनाकाल में भी रेडियो की भूमिका सराहनीय रही है। रेडियो की लोकप्रियता, विश्वसनीयता और पहुंच को देखते हुए ही प्रधानमंत्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी ने भी मन की बात कहने के लिए रेडियो को ही चुना। रेडियो प्रसारण में सामुदायिक रेडियो एक ऐसी श्रेणी है, जो लोकसेवा और वाणिज्यिक रेडियो प्रसारण से जुदा है। सामुदायिक रेडियो कम क्षमता वाला रेडियो स्टेशन है, जिसे स्थानीय समुदायों द्वारा संचालित किया जाता है। सरकार ने भी सामुदायिक रेडियो को भी अपने आप में एक समुदाय ही माना है। सरकार यह मानती है सामुदायिक रेडियो में अनगिनत संभावनाएं हैं। वह उसे परिवर्तनों का वाहक भी मानती है। यह परिवर्तन उसके राजनीतिक हितों और आर्थिक सामाजिक सरोकारों के साथ हो, इसके लिए उसने समुदाय और स्थानीयता जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया है। ये शब्द कल्याणकारी राज्य के घोषित उद्देश्यों के मद्देनजर स्थापित हुए हैं, जिसके तहत स्थानीय और समुदायों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं को समानता की स्थिति तक लाना है। सरकार ने समुदायों के बीच तेजी से विकास की अवधारणा को भी मजबूत किया है। सामुदायिक रेडियो के माध्यम से कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामुदायिक विकास, संस्कृति, लोकगीत कार्यक्रमों को प्रसारित किए जाते हैं। सामुदायिक रेडियो हर ग्रामीण को अपनी बात कहने की पूरी आजादी देता है। यह स्वयंसेवी संस्थाओं के द्वारा संचालित किये जाते हैं। इसमें 50 फीसदी भागीदारी स्थानीय लोगों की होनी चाहिए। इसे स्थापित करने में औसतन 15 लाख रु का खर्चा आता है। 2002 में सरकार ने शैक्षणिक संस्थानों में इसे शुरू करने की नीति बनाई वहीँ 2006 से इसे एनजीओ पर भी लागू कर दिया गया। इसके तहत अधिकतम 30 मीटर ऊँचा एंटीना, 100 वाट की क्षमता का प्रभावी रेडिएटेड क्षमता का ट्रांसमीटर

लगा सकते हैं। इससे 5 से 15 किलोमीटर की रेंज कवर होती है। देश का पहला सामुदायिक रेडियो केंद्र 2004 में चेन्नई की अन्ना यूनिवर्सिटी में स्थापित हुआ वहीँ 2008 में एनजीओ बेस्ड पहला सामुदायिक केंद्र रेडियो संघम था जो तेलंगाना के मेडक जिले में डेक्कन डेवेलपमेंट सोसाईटी ने स्थापित किया। 2004-2007 के बीच देश में जहाँ 28 सामुदायिक केंद्र थे वहीँ आज इनकी संख्या 250 तक पहुँच चुकी है।

बेशक सामुदायिक रेडियो का दायरा बेहद छोटा है लेकिन सामुदायिक रेडियो समुदाय की समस्याओं को बखूबी उठाता है। निजी एफएम चौनल जहाँ बाजार को दृष्टिगत रखते हुये फिल्म संगीत, प्रायोजित कार्यकर्मों तथा विज्ञापनों के प्रसार द्वारा राजस्व कमाने की प्रतिस्पर्धा में जुटे हुए हैं तो आकाशवाणी अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को स्वीकार करता है लेकिन सामुदायिक रेडियो इनसे इतर समुदाय से जुड़ी समस्याओं को उठाता है।

स्मार्ट फोन को टैप एंड स्क्राल करने के जमाने में भी रेडियो ट्यून हो रहा है। शहरी क्षेत्र से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों तक आज भी रेडियो को जन-जन के माध्यम के तौर पर लिया जाता है। स्मार्टफोन के जमाने में भी रेडियो बुजुर्गों की दिनचर्या में शामिल है तो युवाओं के दिलों की धड़कन बना है। सरकारी रेडियो की बात करें तो एक समय में हाशिये पर जा पहुंचे आकाशवाणी में पीएम मोदी ने मन की बात कार्यक्रम के जरिये नई जान फूंकी है।

डिजिटल दौर में भी रेडियो का दायरा बढ़ा है। आज रेडियो महज श्रोताओं से जुड़ने का जरिया नहीं बल्कि आवाज की दुनिया में पहचान बनाने की तमन्ना रखने वाले लोगों के लिए एक प्लेटफार्म है। सरकारी योजनाओं को समाज तक पहुंचाने में रेडियो की भूमिका को कम करके नहीं आँका जा सकता। समय ख़समय पर रेडियो ने अपनी उपयोगिता प्रमाणित की है तथा समय के अनुसार खुद को परिवर्तित किया है। अपनी प्रसिद्ध किताब 'टैक्नालोजी कम्युनिकेशन एंड चेंज' में डेनियल लर्नर ने विस्तार से बताया है कि आधुनिक संचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन के बड़े औजार हैं। विल्बर श्राम ने अपनी पुस्तक 'मास मीडिया एंड नेशनल डेवलपमेंट' में रेडियो और टीवी की क्रांतिकारी भूमिका की व्याख्या की है। तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो विकास के गुणक यंत्र के रूप में अपनी कई पारंपरिक विशेषताओं के चलते प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह कर सकता है। रेडियो निरक्षर समाज में भी विकास के लिए आमजनों के व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ जागृत जनमत का निर्माण कर सकता है।

रेडियो जनसंचार माध्यम राष्ट्रीय विकास में 3 प्रकार से सहायक होता है। उसका प्रथम कार्य जनसामान्य को राष्ट्रीय विकास की सूचना देना है। रेडियो जनसामान्य का ध्यान परिवर्तन की आवश्यकता पर केन्द्रित करता है। परिवर्तन के अवसरों और माध्यमों के विषय में बताना और एक सीमा तक जनआकांक्षाओं में वृद्धि करना रेडियो का काम है। रेडियो जनसामान्य को इस बात के लिए तैयार करता है कि वे विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनें। आवश्यकतानुसार निर्णयों को प्रभावित करना तभी संभव है जब परिवर्तन के मुद्दे और लक्ष्य स्पष्ट तथा विकल्पों के विषय में पूरी जानकारी हो साथ ही शासक और शासित के बीच विचारों का आदान प्रदान हो जिसमें सूचना प्रवाह दोनों ओर हो। भारत में विशेषकर रेडियो पर रेडियो फार्म कार्यक्रम से यह स्पष्ट हो जाता है कि रेडियो के साथ परस्पर सम्प्रेषण का उपयोग अधिक प्रभावकारी होता है।

सामुदायिक रेडियो प्रसारण के उद्देश्य

- लोकतांत्रिक देश की एकता एवं अखंडता में योगदान देना
- राष्ट्र, राष्ट्रीय प्रतीकों, राष्ट्रीय लोककलाओं इत्यादि को प्रसारण के माध्यम से प्रोत्साहन देना
- देश के विकास में जागरूक नागरिक के रूप में योगदान देने योग्य बनाना
- जानकारियों, दृष्टिकोण एवं कुशलता का विकास कर सक्षम नागरिक बनने में सहयोग करना
- समुदाय अथवा सामान्य जन एवं प्रशासन एवं शासन के मध्य की दूरियों को समाप्त करना
- कुशल उद्यमी बनने हेतु प्रोत्साहित करना
- समुदाय के पिछड़े वर्ग अथवा हाशिये पर खड़े लोगों की आवाज को प्रमुखता देना
- सामाजिक गतिविधियों के प्रति भागीदारी हेतु उत्साहित करना
- सामुदायिक कुरीतियों के प्रति जागरूक करना एवं अंधविश्वास को समाप्त करने की पहल करना

- स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीक की जानकारी प्रदान करना
- विकास एवं आधुनिकीकरण में योगदान देना

सामुदायिक रेडियो को किसी एक परिभाषा में बाँधना सम्भव नहीं है। प्रत्येक देश के संस्कृति सम्बन्धी कानूनों में अन्तर होने के कारण देश और काल के साथ सामुदायिक रेडियो की परिभाषा बदल जाती है। फ्रांस, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और आयरलैंड जैसे कई देशों में एक विशिष्ट प्रसारण क्षेत्र के रूप में सामुदायिक रेडियो की परिभाषा के भाग के रूप में ज्यादातर कानूनों में सामाजिक लाभ, सामाजिक उद्देश्य, सामाजिक प्राप्ति जैसे वाक्यांश शामिल किये गये हैं लेकिन मोटे तौर पर किसी छोटे समुदाय द्वारा संचालित, कम लागत वाला रेडियो स्टेशन जो किसी समुदाय के हितों, उसकी पसंद और उनके विकास के दृष्टिकोण को रखते हुए गैरव्यावसायिक प्रसारण करता है, सामुदायिक रेडियो केन्द्र कहलाता है। 21वीं सदी में मीडिया की बाढ़ सी आ गयी है। ऐसे में सामुदायिक रेडियो के लिए सबसे बड़ी चुनौती उसके अव्यवसायिकता को लेकर होती नजर आती है।

सामुदायिक रेडियो के खुलने से देश के ग्रामीण क्षेत्रों में जन जागरूकता भी बढ़ रही है। भारत सरकार ने वर्ष 2006 में सामुदायिक रेडियो दिशा-निर्देश की अधिसूचना जारी की। इस अधिसूचना में ये कहा गया कि गैर सरकारी संगठन, नागरिक सामाजिक संगठन, शिक्षा संस्थान को सामुदायिक रेडियो स्टेशन संचालित करने की अनुमति देता है। सामुदायिक रेडियो की एक संस्था रेडियो फोनी का मानना है कि कम क्षमता का रेडियो स्टेशन कोई भी कायम कर सकता है, वह भी बहुत कम लागत पर। सामुदायिक रेडियो स्टेशन के माध्यम से एक छोटे गाँव तक बात पहुंचाई जा सकती है। ग्रामीण लोगों के लिए इसे विशेष महत्व का माना जा रहा है क्योंकि वे अपनी खेती ख्रकिसानी की दिनचर्या में हैं इतने व्यस्त रहते हैं कि संचार माध्यमों के लिए समय नहीं निकाल पाते लेकिन सामुदायिक रेडियो उनके लिए लाभप्रद हो सकता है क्योंकि खेतों में काम करते हुए भी वे इसका आनंद उठा सकते हैं। सामुदायिक रेडियो स्टेशनों में जिन प्रमुख बातों का होना आवश्यक है, वे हैं लाभ ख्रहानि की होड़ से परे जाकर काम करने की क्षमता और इच्छा शक्ति, सामुदायिक स्वामित्व प्रबंधन और सामुदायिक रेडियो स्टेशन के सञ्चालन में समुदाय के अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी। ऐसे स्टेशनों के जरिये जहाँ एक और स्थानीय सरकार से ग्रामीण अपनी बातें सीधे तौर पर कह सकते हैं वहीँ खत्म हो रही स्थानीय कला या चिकित्सीय देशी नुस्खों को भी बचाया जा सकता है। वर्ल्ड एसोसिएशन आफ रेडियो ब्राडकास्टर्स का कहना है सामुदायिक रेडियो की खासियत यह है कि यह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से पिछड़े वर्गों की आवाज और विकास का एक अहम माध्यम है। वर्तमान समय में पूरे देश में 250 से ज्यादा सामुदायिक रेडियो चल रहे हैं। देश भर में चल रहे कुछ सामुदायिक रेडियो केन्द्रों की केस स्टडी निम्नलिखित है-

1 कुमाऊं वाणी

एक पहाड़ी से निकल दूसरी पहाड़ी पर टकराकर लौटने वाली रेडियो की मधुर आवाज का अहसास शहरों में रहने वालों को नहीं हो सकता। इसके बावजूद एक गांव सतबुंगा (रामगढ़ ब्लाक) है जो सैकड़ों गांवों को रेडियो से बांधता है। यह सामुदायिक रेडियो वह माध्यम है जहां आज भी पूरी तरह कुमाऊं के हितों की बात होती है। यहां केवल किसानों के प्रतिनिधि नहीं बोलते किसान को भी बोलने का मौका मिलता है क्योंकि यह है 'रेडियो कुमाऊं वाणी', इसका स्लोगन है 'आपुण रेडियो, आपुण बात'।

आपुण रेडियो, आपुण बात को भले ही स्वयंसेवी संस्था टेरी संचालित कर रही हो, लेकिन इसे चलाया गांवों के लोगों ने ही है। कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने से लेकर उसे प्रसारित करने तक की जिम्मेदारी स्थानीय लोगों की टीम पर है। कार्यक्रम ऐसे तय किए गए हैं, जो हर वर्ग के लिए हैं और सीधे स्थानीय लोगों को लाभ देते हैं। दस किमी की हवाई रेंज में चलने वाला यह रेडियो कुमाऊं के हर जिले को अपने प्रसारण से जोड़ता है।

कुमाऊं का पहला सामुदायिक रेडियो मुक्तेश्वर में 11 मार्च 2010 में शुरू किया गया था। टेरी संस्था द्वारा स्थापित सामुदायिक रेडियो कुमाऊं वाणी का उदघाटन तत्कालीन राज्यपाल मारग्रेट अल्वा ने किया था। इस रेडियो स्टेशन ने कुमाऊंनी भाषा को एक नई दिशा दी है। कुमाऊं रेडियोवाणी के प्रबंधक मोहन कार्की ने बताया कि कार्यक्रम कुमाऊंनी भाषा में तैयार किए जाते हैं, साथ ही रेडियो जॉकी भी क्षेत्रीय बोली का ही प्रयोग करते हैं। वर्ष 2014 मे छोटे एवं हाशिये किसानों के लिए चलने वाले कार्यक्रम "बाजार लाये बौछार" को सामुदायिक सहभागिता के लिए नेशनल अवार्ड से नवाजा गया था। साल 2013 में जनसहभागिता को

आधार बनाकर कुमाऊं की बेहतरी के विकास कार्यक्रमों में मजबूती देने के लिए डेवलपमेंट एम्पावरमेंट फाउंडेशन की ओर से भी इसे मंथन अवार्ड भी दिया गया। कुमाऊं आज युवाओं, बुजुर्गों और महिलाओं का सुख-दुख का साथी बन गया है। बच्चों की दुनिया, गली-गली सिम-सिम (बच्चों के लिए), बाजार लाए बौछार (किसानों के लिए), दीदी बैणी क्वीण (महिलाओं के लिए) कुछ खास कार्यक्रम हैं जो समाज के हर वर्ग में बहुत लोकप्रिय हैं।

2 हैलो हल्द्वानी

2012 में उत्तराखंड विश्वविद्यालय हल्द्वानी हैलो हल्द्वानी बदलते शहर की धड़कन सामुदायिक रेडियो शुरू किया गया। कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान हैलो हल्द्वानी ने कुमाऊंनी बोली में सरूली मधुली लॉकडाउन फसक, कुमाऊंनी कविताओं का कार्यक्रम घुर-घुघुती घुर, हमारे गीत हमारे थाती जैसे लोकप्रिय कार्यक्रम प्रसारित किए। केंद्र यूओयू के सामुदायिक रेडियो प्रभारी राकेश चंद्र रयाल ने बताया कि डिजिटल युग में भले ही टेलीविजन और मोबाइल जैसी चीजें आने के बाद रेडियो का पहले जैसा इस्तेमाल नहीं हो रहा है लेकिन फिर भी इसका महत्व कम नहीं हुआ। वहीं रेडियो जॉकी सुनीता भास्कर और अनिल नैनवाल ने बताते हैं कि चुनौतियों तो बहुत हैं, सरकार से यह उम्मीद है कि रेडियो केवल सरकार की कठपुतली बनकर नहीं रहना चाहिए, इसे समाचार वाचन के साथ ही अन्य अधिकार भी दिए जाने चाहिए।

3 संघम सामुदायिक रेडियो

यह सामुदायिक रेडियो आन्ध्र प्रदेश का पहला ऐसा स्टेशन है जो महिलाओं को समर्पित है और महिलाओं से जुड़े मुद्दों को उठाता है। 15 अक्तूबर 2008 को कुछ महिला ग्रुप ने मिलकर इस स्टेशन की शुरुवात की। इस कार्य में यूनेस्को ने भी भरपूर सहयोग किया। संगम सामुदायिक रेडियो को डेक्कन डेवेलपमेंट सोसाईटी का भी सहयोग मिला। बीते कुछ दशकों से यह संस्था जहीराबाद में गरीब और दलित महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार लाने का काम कर रही है। संगम रेडियो को सुनने वाली महिलाएं रेडियो को अपना एक मित्र मानती हैं क्योंकि वो उनकी समस्याओं को उठाता है और सशक्तीकरण में भी कारगर है। महिलाएं जब अपने काम से वापस आती हैं तो इस रेडियो को सुनकर अपनी थकान मिटाने का काम करती हैं।

4 रेडियो बुंदेलखंड

रेडियो बुंदेलखंड मध्य प्रदेश के ओरछा में स्थित प्रमुख सामुदायिक रेडियो स्टेशन है। इसकी शुरुवात 23 अक्टूबर 2008 को हुई। बुंदेलखंड के ताराग्राम में सोसाईटी आफ अल्टरनेटिव द्वारा से शुरू किया।

यह रेडियो 2008 से स्थानीय संदर्भों के अनुरूप सूचना और मनोरंजन का जबरदस्त मिलाजुला कार्यक्रम बुंदेली भाषा में प्रसारित कर रहा है। विकास अल्टरनेटिव्स द्वारा समर्थित सामुदायिक रेडियो स्टेशन 20 किलोमीटर के अर्धव्यास के दायरे में श्रोताओं तक पहुंचता है। इस प्रसारण में महिलाओं, युवाओं और सीमांत वर्ग के लोगों को विशेष रूप से संबोधित किया जाता है। एक नवोन्मेषकारी अभियान के दौरान इस स्टेशन ने बुंदेली में स्थानीय शौकिया कलाकारों की मदद से स्थानीय आइडल नाम के एक शो के माध्यम से हजार से अधिक गीत रिकॉर्ड किए। यह शो अमेरिकन और इंडियन आइडल शो नाम के लोकप्रिय रियलिटी टी.वी. शो का बुंदेली संस्करण था।

मध्य प्रदेश की धरती पर किसी एनजीओ द्वारा शुरू किया गया यह पहला स्टेशन है। रेडियो बुंदेलखंड शुरू करने का मुख्य मकसद जनजागरूकता फैलाना, सूचना देना और संचार के इस माध्यम का बेहतर उपयोग करना रहा। स्थानीय स्तर पर यह कई जानकारियां जहाँ उपलब्ध करवा रहा है वहीँ ग्रामीणों की डिमांड के अनुरूप कार्यक्रमों का भी प्रसारण कर रहा है। महिलाएं, युवा और समाज की मुख्य धारा से वंचित लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में यह सहायक साबित हुआ है। रेडियो बुंदेलखंड मध्य प्रदेश के ओरछा में स्थित है, लेकिन यूपी के झांसी से सटे होने की वजह से यहां के लोग भी इसका फायदा ले रहे हैं। बुंदेलखंड इलाके में खेती किसानी जैसे कई कार्यक्रम ग्रामीणों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए हैं। मुख्यधारा की मीडिया इन इलाकों पर ध्यान नहीं देती जिस कारण यह लोक संस्कृति को जीवंत बनाने और लोगों को उनकी स्थानीय भाषा में सामग्री देता है।

5 सारंग सामुदायिक रेडियो

सारंग सामुदायिक रेडियो सैंट एलोयसिस कालेज मंगलौर के द्वारा चलाया जाता है। सारंग का मतलब है मंगलौर के सभी कलर्स, जिसका आशय है विभिन्न संस्कृति, समुदाय, धर्मों में सदभाव। स्थानीय किसान, कानूनी लोग, मछुआरे, स्वास्थ्यकर्मी और छात्र छात्राएं नियमित रूप से इस रेडियो केंद्र के माध्यम से अपनी बात रखते हैं। शांति और सदभावना का सन्देश देने का काम ये सामुदायिक रेडियो केंद्र बखूबी कर रहा है। स्वास्थ्य, कृषि, पेयजल संरक्षण, सड़क सुरक्षा, रैन वाटर हार्वेस्टिंग, मनोरंजन जैसे कई विषयों को यह रेडियो केंद्र उठाता है जिस स्थानीय लोग प्रस्तुत करते हैं। कोंकणी, तुलू, बेरी, मलयालम, अंग्रेजी भाषा में इस केंद्र से कार्यक्रमों का प्रसारण होता है।

6 मन्दाकिनी की आवाज

यह सामुदायिक रेडियो केंद्र मन्दाकिनी नदी की घाटी में स्थानीय ग्रामीणों के द्वारा पौड़ी गढ़वाल में स्थापित किया गया है। यह सरकार और गाँवों में रहने वाले लोगों के बीच एक ब्रिज का काम करता है। ग्रामीण विकास में इस केंद्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यहां गढ़वाली में प्रसारित होने वाले ऐसे कई कार्यक्रम है जो श्रोताओं में बेहद ही लोकप्रिय है। यह स्टेशन कृषि, बागवानी से लेकर उत्तराखंड के सांस्कृतिक सरोकारों के लिए समर्पित है।

7 हैवलवाणी

2001 में स्थापित यह उत्तराखंड के चंबा का पहला कम्युनिटी रेडियो स्टेशन है जो कम्युनिटी के लिए कम्युनिटी द्वारा चलाया जाता है। हैवलवाणी का प्रसारण 3 मार्च 2012 से एफएम पर प्रारम्भ हुआ। शुरूआती समय से ही बहुत लोग जुड़े और इस रेडियो स्टेशन में बेहद रूचि दिखाने लगे क्योंकि हैवलवाणी गढ़वाली भाषा का पहला व एकमात्र चौनल उत्तराखण्ड में था। जब कुछ युवाओं ने सामुदायिक रेडियो हैवलवाणी नाम से एक आंदोलन की शुरूआत की थी। तब भारत में सामुदायिक रेडियो संचालन की कोई नीति नहीं थी। इस आंदोलन का शुरूआती सहयोगी बना द हिमालया ट्रस्ट, देश में पालिसी न होने से सामुदायिक रेडियो का संचालन करना संभव नहीं था। इन्होंने समुदाय के बीच जाकर बैठकें की। लोगों को बताया कि यदि इस तरह के रेडियो स्टेशन को चलाने के लिए भारत सरकार मान्यता देती है तो इस तरह के लाभ हो सकते है। विभिन्न गांवों में इसके लिए हस्ताक्षर अभियान चलाया और इसे बार बार सूचना प्रसारण मंत्रालय को भेजा। 2004 में हैवलवाणी को वर्डस्पेस सेटेलाईट रेडियो ने नेटवर्क से संपर्क किया। सामाजिक उत्थान के लिए चलाये जा रहे एक चौनल एशिया डवेलपमेंट पर हैवलवाणी द्वारा निर्मित कार्यक्रमों को निशुल्क प्रसारित करने के लिए निमंत्रण दिया। यह रेडियो सेटेलाइट से चलने वाला रेडियो सिस्टम है जिसमें हैवलवाणी के कार्यक्रम पूरी दुनिया में इस विशेष रेडियो के माध्यम से सुने जा सकते हैं।

हैवलवाणी के कार्यक्रम 2004 से लेकर 2009 तक वर्ड स्पेस सेटेलाईट पर प्रसारण करता रहा। जिसके बाद हैवलवाणी ने 2007 में सामुदायिक रेडियो स्टेशन संचालन के लिए सूचना प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार को आवेदन किया। 2012 में हेंवलवाणी को एफ0 एम0 बैण्ड पर प्रसारण का लाइसेंस प्राप्त हुआ। हैवलवाणी का मुख्य उद्देश्य गढ़वाली, कुमाऊंनी व जौनसारी भाषा को प्राथमिकता से बढावा देना है।

8 रेडियो तिलोनिया

राजस्थान में अजमेर शहर से 50 किलोमीटर की दूरी पर तिलोनिया गाँव में स्थापित यह सामुदायिक रेडियो 30 गाँवों की पचास हजार की आबादी को बखूबी जोड़ने का काम कर रहा है। ग्रामीणों को तमाम सरकारी कार्यक्रमों की जानकारी इस केंद्र से मिलती है। पेंशन, बीमा, मनरेगा, आयुष्मान सरीखी कई योजनाओं की जानकारी ग्रामीणों को इस केंद्र के माध्यम से प्राप्त हुई। सोशल वर्क्स एंड रिसर्च सेंटर इसका मुख्य संचालक है।

9 रेडियो किसान

उड़ीसा जैसे आपदा की दृष्टि से संवेदनशील राज्य में भी अब सामुदायिक रेडियो केन्द्रों का महत्व काफी बढ़ चुका है। एसोसियेशन फार इंटिग्रेटेड डेवेलपमेंट इसका संचालक है। किसानों के साथ ही समाज के वंचित तबके के जीवन स्तर को ऊपर

उठाने में इस केंद्र की कारगर भूमिका रही है। केंद्रीय कृषि मंत्रालय की पहल पर यह शुरू हुआ और इसे बेहतरीन प्रसारणों के लिये उनके द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है। रेडियो केंद्र आपदाओं की जानकारी उपलब्ध कराने में सहायक साबित हुए हैं। 2014 में हुदहुद तूफान की भयावहता के बारे में इस केंद्र ने लोगों को पहले ही बता दिया था जिससे आपदा में बहुत कम नुकसान हुआ और लोगों को बचाया जा सका। आपदा के दौर में बिजली गुम हो जाती है और संचार साधन ध्वस्त जिसके चलते अपनों से संपर्क नहीं हो पाता। ऐसे में रेडियो किसान जैसे सामुदायिक रेडियो केन्द्रों ने रेडियो की जरूरत को सबको बतलाया है।

10 रेडियो नगर

यह महाराष्ट्र के अहमदनगर में स्नेहालय फाउंडेशन द्वारा संचालित किया जाता है। ढाई लाख की आबादी के बीच इस केंद्र ने अपने कार्यक्रमों के माध्यम से उस क्षेत्र में खास पहचान बनाने में सफलता हासिल की है। 25 किलोमीटर तक की रेंज में इसका प्रसारण और कार्यक्रम स्पष्ट सुन सकते हैं।

11 रेडियो संघर्ष

यह मध्य प्रदेश की ग्रीन पीस एनजीओ द्वारा चलाया जाता है जो मोबाइल वेब रेडियो की तरह काम करता है। स्थानीय आदिवासियों के संघर्ष और समस्याओं को उठाने में इसकी भूमिका देखते ही बनती है। स्थानीय लोग अपनी समस्याएं मोबाइल में रिकार्ड कर प्रसारित करते हैं और मोबाइल पर ही दूसरों को खबरें सुनाते हैं। इसमें सामुदायिक रेडियो की तरह रेंज की कोई सीमा नहीं होती। इसे कहीं भी आसानी से सुन सकते हैं।

12 रेडियो खांची

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर रांची में 8 मार्च, 2020 को रांची विश्वविद्यालय के सामुदायिक रेडियो चौनल रेडियो खांची की शुरूआत हुई। तत्कालीन राज्यपाल द्रौपदी मुर्मू ने कोरोना काल में रेडियो खांची का उद्घाटन आनलाइन किया। रेडियो खांची राज्य का पहला ऐसा सामुदायिक रेडियो प्रसारण केंद्र है, जो किसी विश्वविद्यालय द्वारा शुरू किया गया है। राज्य सरकार के सूचना जनसंपर्क विभाग द्वारा दिए गए आर्थिक सहयोग से शुरू किए गए इस रेडियो चौनल का उद्देश्य विद्यार्थियों को ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रम प्रस्तुत करने के साथ शिक्षा, योग, कैरियर काउंसलिंग, जनहित एवं स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों के अलावा नई प्रतिभाओं को सामने लाने, विभिन्न विश्वविद्यालयों की महत्वपूर्ण सूचनाओं का प्रसारण, दिवस विशेष, जनजातीय भाषाओं पर आधारित कार्यक्रम, पैनल डिस्कशन आदि कार्यक्रमों पर फोकस करते हुए श्रोताओं को तथ्यपरक जानकारी प्रदान करना है।

रेडियो खांची के फाउंडर डायरेक्टर डा. आनंद कुमार ठाकुर बताते हैं कि पिछले साल यूनेस्को ने रेडियो फेलोशिप अवार्ड की शुरूआत की है। उस वक्त भारत से पांच रेडियो स्टेशनों का चयन किया गया था जिसमें से रेडियो खांची भी एक था। यूनेस्को के लैंगिंग समानता कार्यक्रम के लिए भी रेडियो खांची ने आठ एपिसोड्स का निर्माण किया। मौजूदा समय में इस क्षेत्र में भी प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। रोज नई-नई चुनौतियां सामने आती हैं लेकिन श्रोताओं तक पहुंच बनाने के लिए नए एवं अच्छे आइडियाज भी अपनाना जरूरी है और हमारा प्रयास इस दिशा में लगातार जारी है।

13 नालछा सामुदायिक रेडियो

नालछा सामुदायिक रेडियो धार से 40 किलोमीटर दूरी पर चार हजार वर्ग मीटर में स्थित है जो 10 घंटे अपना प्रसारण करता है। भील जनजातियों के लोगों के बीच इस केंद्र के कार्यक्रम खूब सराहे जाते हैं। भील शिक्षित युवा इस केंद्र को चलाते हैं। इस सामुदायिक रेडियो को सुनते हुए ग्रामीण अपने कई कार्यों को अंजाम तक पहुंचाते हैं। 10 किमी रेंज में इसका प्रसारण आस पास के गाँवों में सुनाई देता है। इस केंद्र के देखरेख का जिम्मा वन्या के पास है। स्थानीय बोली का प्रसारण में प्रयोग किया जाता है और पूरे सात दिन प्रसारण चलता है। इस रेडियो केंद्र को सुनने के बाद भील जनजातियों के जीवन स्तर में बदलाव आया है।

सबसे ज्यादा सामुदायिक रेडियो स्टेशन इस समय तमिलनाडु, उत्तर-प्रदेश और महाराष्ट्र में है। कहीं ये सामुदायिक रेडियो आदिवासियों की आवाज बन रहे है तो कहीं पहाड़ी समुदाय की आवाज बना है। आपदा के समय भी सामुदायिक रेडियो महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्थानीय स्तर पर ग्रामीणों को सरकारी योजनाओं की जानकारी हो और वो आपस में चर्चा कर सकें, इसके लिए

सामुदायिक रेडियो एक अच्छा माध्यम है लेकिन अगर स्थानीय संस्कृति के साथ-साथ समाचार भी प्रसारित करने की अनुमति मिल जाए तो सामुदायिक रेडियो का मकसद पूरा होगा। हम लोकतंत्र में स्वतंत्रता की बात करते हैं लेकिन आज भी सामुदायिक रेडियो को स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने का अधिकार नहीं है। सरकार की तरफ से सामुदायिक रेडियो को समाचार चलाने की अनुमति नहीं है, जिससे स्थानीय स्तर पर ग्रामीणों को जानकारी नहीं हो पाती है। गाँव में हर कोई अखवार नहीं पढ़ सकता, इसलिए सरकारी योजनाओं की जानकारी सिर्फ सामुदायिक रेडियो से ही मिल सकती है।

सूचना और तकनीकी के इस युग में महिलाओं की सोच और उनको आत्मनिर्भर बनाने में सूचना और नई-नई जानकारियों से लैस संचार का सबसे पुराना, सुलभ साधन सामुदायिक रेडियो अहम भूमिका निभा रहा है। बात सूचना की हो या विकास की, शिक्षा की हो या चिकित्सा की, शिकवा हो या शिकायत, सूचना के अधिकार की हो या कानून की बात, किस्से कहानियों हों या इतिहास की बात, साफ-सफाई की बात हो या सरकारी योजनाओं की पात्रता की बात, रोजगार की हो या पेंशन की हर सूचना को जन-जन तक सामुदायिक रेडियो ही पहुंचा रहा है। साथ ही कृषि सबंधी विषय पर भी कृषि मंच, महिला जगत, बाल मंच, स्वास्थ्य चर्चा और लोकरंग का भी प्रसारण किया जा रहा है। समय विशेष की जरुरत के अनुसार सामुदायिक रेडियो से किसानों सहित समाज के दूसरे वर्गों के लिए भी जागरूकता कार्यक्रम, सरकारी योजनाओं की जानकारी सहित महत्वपूर्ण सूचना भी दी जाती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि कोरोना संकट के समय में भी सामुदायिक रेडियो का बेहतर उपयोग जागरूकता अभियान के तौर पर हुआ है और इसका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। आपदाओं के समय भी यह किस प्रकार कारगर साबित हुआ है 2014 में इसका पता हुदहुद तूफान के आने से पहले से चल जाता है किस प्रकार से उड़ीसा के 3 रेडियो स्टेशन कोणार्क के रेडियो नमस्कार, बालिपटना के रेडियो किसान, जगतसिंहपुर के रेडियो संस्कार ने लोगों को इस आपदा की भयावहता के बारे में आगाह करने का काम किया जिससे पूरे इलाके में नुकसान कम हुआ। सुनामी में भी सामुदायिक रेडियो केन्द्रों ने अंडमान निकोबार द्वीप में बेहतरीन काम किया और अपनी पल ख्रपल बदलने वाली सूचनाओं से लोगों को आगाह किया। उत्तराखंड में केदारनाथ की भीषण जल प्रलय वाली आपदा के समय में भी यह देखा गया सामुदायिक रेडियो हैवलवाणी, मन्दाकिनी की आवाज, कुमांऊवाणी सामुदायिक रेडियो, सुनकर सेना के जवानों ने संकट में लोगों का पता लगाया।

सामुदायिक रेडियो हर किसी को अपनी बात कहने का मौका देता है। सामुदायिक रेडियो केन्द्रों द्वारा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामुदायिक विकास, संस्कृति, लोकगीत कार्यक्रमों को प्रसारित किया जाता है। भारत की विशाल आबादी को देखते हुए अभी यहाँ सामुदायिक केन्द्रों की संख्या नहीं बढ़ सकी है। श्रीलंका, नेपाल सरीखे देशों में सामुदायिक रेडियो केन्द्रों की संख्या हजारों में है जबकि भारत में इस दिशा में लाइसेंस मिलने की प्रक्रिया से लेकर विज्ञापन नीति बहुत जटिल है। सामुदायिक रेडियो केंद्र शुरू तो हो गए हैं लेकिन उनके पास अपने संसाधन और राजस्व कमाने के सीमित स्रोत हैं जिसमें गुजारा कर पाना, खर्च उठा पाना मुश्किल है। अत: सरकार को इस दिशा में भी सोचने की आज जरूरत है। नौकरशाह ग्रामीण इलाकों में जाना पसंद नहीं करते और वो वहां की वस्तुस्थिति से वाकिफ नहीं हैं जिसके चलते राह में कई परेशानियाँ आ रहीं हैं। आज भी भारत गाँवों में बसता है और ग्रामीणों की प्रसारण आवश्यकताओं की पूर्ति बड़े प्रसारक नहीं कर सकते। जिस देश में बहुत कम दूरियों पर लोगों की जरूरतें, भाषा, संस्कृति बदल जाती हो वहां यह संभव भी नहीं है। सामुदायिक रेडियो सामुदायिक कल्याण, पर्यावरण जागरूकता, विविधता में एकता और समग्र, ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। यही नहीं कुछ और स्वतंत्रता मिलने पर यह छोटे केन्द्र प्रजातंत्र को उसका सही अर्थ प्रदान कर सकते हैं।

सन्दर्भ

सिंह, धर्मेन्द्र, लाल डॉ मनोहर, सूचा समाज और संचार, सामुदायिक विकास एवं सामुदायिक रेडियो, नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पेज 54-68

https://www.aajtak.in/india-today-hindi/special-report/story/changing-the-local-world-through-community-radios-306957-2015-07-27

https://www.gaonconnection.com/stories/villagers-powerful-medium-information-community-radio?infinitescroll=1

https://www.jagran.com/jharkhand/ranchi-world-radio-day-lovers-of-radio-history-of-radio-ranchi-radio-station-radio-changed-its-form-22463081.html

मीना, एम एस, सिंह, एस के, सामुदायिक रेडियो : वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता, कृषि ज्ञान गंगा, जनवरी -जून 2017 और जून - दिसंबर 2017

खान, फिरदौस, एफ. एम के जरिए रेडियो की वापसी, मीडिया विमर्श, जुलाई-सितम्बर 2013

पाठक, आकांक्षा, रेडियो का वैश्विक परिदृश्य, विज्ञान प्रगति, नई दिल्ली,फरवरी 2019

https://www.gaonconnection.com/desh/climate-change-low-market-rates-covid-lockdown-impact-force-farmers-in-maharashtra-to-destroy-grapes-crop-50523?infinitescroll=1

ढोंडियाल,राकेश, https://www.thefeaturetimes.com/news-feature/how-did-the-community-radio-start

सिंह, धर्मेन्द्र, लाल डॉ मनोहर, सूचना समाज और संचार, सामुदायिक विकास एवं सामुदायिक रेडियो, नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पेज 54-68

http://saranshsaar.blogspot.in/2010/09/blog-post.html

http://www.allrights.co.in/samudayik-radio-aur-sarkar

http://aajtak.intoday.in/story/changing-the-local-world-through-community-radios-1-824884.html

http://hindi.televisionpost.com/printradio/will-a-thousand-community-radio-stations-bloom-in-india

http://mukulmedia.blogspot.in/2013_02_01_archive.html#.VqZoLPl97IX

http://www.javnost-thepublic.org/media/datoteke/1998-2-dunaway.pdf।

महाकवि कल्हण कृत राजतरङ्िगणी में शान्त रस की स्थिति

डॉ० शालिनी अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उ0प्र0

भारतीय काव्यशास्त्र में रसतत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाधिक व्याख्येय रहा है। यह तो विवाद का विषय हो सकता है कि रस काव्य की आत्मा है अथवा नहीं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि रस से रहित काव्य न तो जनमानस में स्थान प्राप्त कर पाता है और न ही गहन समीक्षा का विषय बन पाता है। अतः ग्रन्थ के समुचित आदर एवं पारायण के लिए उसमें रसतत्त्व की पर्याप्त प्रतिष्ठा होनी आवश्यक है। महाकवि कल्हण ने सम्भवतः इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ को अपने काव्य-कौशल के द्वारा लालित्यपूर्ण महाकाव्य बना दिया है। 'राजतरङ्िगणी' में शास्त्रोक्त नवों रसों की व्य०जना हुई है और अंगी रस के रूप में शान्त रस की आद्योपान्त प्रतिष्ठा लक्षित होती है।

'राजतरङ्िगणी' में शान्त रस अंगी रस के रूप में नियोजित हुआ है। राजवंशों के दीर्घकालीन इतिहास में उनके उत्थान और पतन के रूप में जो इतिहास प्रस्तुत किया गया है उसमें कवि ने यह ध्यान रखा है कि प्रत्येक राजा अथवा राजवंश के उत्थान के बाद उनके पतन को प्रमुखता से विवेचित किया जाय। प्रतापी से प्रतापी राजा अन्त में इस भू-लोक को एक सामान्य व्यक्ति की भाँति ही छोड़कर जाता हुआ दिखाया गया है। ऐसे सभी प्रसंगों में 'शम' अथवा 'निर्वेद' भाव अपने समस्त अंगों सहित पुष्ट हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने बीच-बीच में शृंगार, वीर, अद्‌भुत आदि रसों का जो नियोजन किया है, उनकी चरम स्थिति दर्शाते हुए अन्त में सभी की नश्वरता की चर्चा करके शान्त रस की पूर्व घोषित योजना को ही पुष्ट करने का उपक्रम किया है। ग्रन्थ में आद्योपान्त शान्त रस की व्याप्ति दिखाई पड़ती है। ग्रन्थारम्भ में कश्मीर मण्डल का शान्त रसोपयुक्त वर्णन करने से लेकर ग्रन्थ के अन्त में राजा जयसिंह के धार्मिक कृत्यों से प्रजा में सुख-शान्ति फैलने तक के वर्णन में शान्त रस सम्यक् रूप से व्याप्त दिखाई पड़ता है। ग्रन्थ में शान्त रस की स्थिति कतिपय प्रसंगों के माध्यम से द्रष्टव्य है-

'राजतरङ्िगणी' में ग्रन्थकार ने कश्मीर मण्डल के प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से शान्त रस को व्यक्त किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में शृंगार रस की उपस्थिति भी हो सकती है परन्तु कवि ने इस प्राकृतिक सौन्दर्य में धार्मिक कृत्यों, तीर्थ स्थानों, मन को शान्ति प्रदान करने वाले दृश्यों आदि को ही प्रधानता दी है जो अपने समग्र प्रभाव में शान्त रस के उद्‌भावक हैं। अवलोकनार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं ''कल्प के आरम्भ से छः मन्वंतर तक हिमालय के मध्य में अगाध जल से परिपूर्ण सतीसर नाम का एक महान सरोवर था। सप्तम मन्वंतर में महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं द्वारा उस सरोवर में रहने वाले जलोद्‌भव नाम के असुर को मरवाकर सरोवर की भूमि को काश्मीर मण्डल की स्थापना की। स्वामि कार्तिकेय की आश्रयदात्री, गणेश की दुग्धपान कराने वाली, कन्दराओं से युक्त होने के कारण गुहाश्रिता और सर्पो को जलपान कराने के कारण नागपीटपया, वितस्ता रूप धारिणी पार्वती ने अपना औचित्य नहीं त्यागा। जैसे पार्वती ने गुहाश्रितक्क तथा नागपीटपर्यस्त्र रूपी दोनों धर्म रहते हैं वैसे ही वितस्ता नदी में भी दोनों धर्म विद्यमान दिखाई पड़ते हैं। शंख, पद्म आदि विविध रत्न आभूषणों से आभूषित नागों युक्त कुबेर के नगर के सदृश वह कश्मीर मण्डल विभिन्न निधियों से भरा पर्वत के समान प्राकार रूपी भुजाओं को उठाकर यह नगर गरुड़ के भय से शरणागत सर्पो की प्राणरक्षा के लिए उद्यत-सा रहता है। यहाँ के पाप-सूदन तीर्थ में विराजमान काष्ठरूप धारी उमेश का दर्शन तथा स्पर्श करने से भोग तथा मोक्ष-दोनों फल प्राप्त होते हैं। संध्या देवी यहाँ के निर्जन पर्वतों पर पाप और पुण्य का निर्णय जल रूप से करती हैं अर्थात् यहाँ पुण्यात्माओं को जल मिलता है और पापियों को नहीं मिल पाता है। गंगा के प्रादुर्भाव से निर्मित यहाँ के भेड़ पर्वत के

सरोवर में हंस रूप धारिणी सरस्वती प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। यहाँ पर नन्दिक्षेत्र के शिवालय में देवताओं द्वारा अर्पित पूजा के चन्दन बिन्दु आज भी दिखाई पड़ते हैं। यहाँ सरस्वती के दर्शन-मात्र से कवि सेवित मधुरवाणी तथा मधुमती मधु दोनों प्राप्त हो जाते हैं। चक्रधर, विजयेश, केशव, ईशान आदि पुनीत देवालयों से युक्त कश्मीर प्रदेश का कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जिसको तीर्थ न कहा जा सके। पुण्य-बल से ही इस प्रदेश पर विजय प्राप्त की जा सकती है, शस्त्र-बल से नहीं। शीतकाल में स्नान करने के लिए भी यहाँ अनेक स्थान हैं और उष्ण काल में स्नान करने के लिए तथा जल-जन्तुओं के भय इसे रहित केवल शीतल जल वाले कई नदी-तट विद्यमान हैं।[1]

कश्मीर मण्डल पर राज्य करने वाले आरम्भिक शासकों में शनीचर नाम का राजा अत्यन्त प्रतापी था जिसकी आज्ञा का उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता था। वह राजा जो इन्द्र के आधे सिंहासन का अधिकारी था, इस संसार को त्यागकर स्वर्गवासी हो गया।[2] इस प्रकार एक प्रतापी नरेश के अन्ततः इस असार संसार को त्यागकर स्वर्गवासी होने के ब्याज से शान्त रस की प्रतिष्ठा की गई है। काश्मीर का शासक सन्धिमत परम विद्वान और भगवद्भक्त दिखाया गया है। ''तरह-तरह के शृंगार करके विविध हाव-भाव प्रदर्शन करने वाली सुन्दर ललनाएँ उसका मन नहीं मोह सकीं। उसका मन वनस्थलियों की देखकर आनन्दित होता था, स्त्रियों को नहीं। वन्य-पुष्प, कपूर एवं धूप का स्पर्श करने के कारण सुगन्धित मुनियों के हाथ से संस्पृष्ट होने पर उसे अपार आनन्द प्राप्त होता था वह प्रतिदिन, भूतेश, वर्द्धमानेश, विजयेश, शिव तथा गुरु, ईशान का दर्शन कर लेने के बाद ही राज्य-काज किया करता था। शिव मन्दिर की सीढ़ियाँ धोते समय पवन के झोंके से उड़े जल-कणों का स्पर्श होने पर उसे बहुत सुख मिलता था। वीणा, मृदंग आदि वाद्यों से द्वेष करने वाले उस राजा को कलश से शिवलिंग पर गिरती हुई जलधारा की ध्वनि सोते समय भी सुनाई देने पर बड़ी मधुर लगती थी।''[3]

इतना ही नहीं, जब राजा सन्धिमति को यह ज्ञात हुआ कि उसके मंत्रिगण उसके शान्तरस विषयक् कार्यो से राजकार्य में उदासीनता के कारण उसके पुत्र मेघवाहन को राजा बनाने का विचार कर रहे हैं तो उसके मन को बड़ी शान्ति पहुँची। इस अवसर पर उसकी मनःस्थिति एवं उसके क्रियाकलापों की कवि ने बड़े विस्तार से और शान्त रस के सर्वथा अनुकूल रूप में वर्णित किया है। कतिपय पंक्तियाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं- ''उसने यह सोचा कि सचमुच शंकर जी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तभी तो वे सिद्धि में बाधक इन राज्य आदि बड़े-बड़े विघ्नों को दूर करने के लिए सन्नद्ध हो गए हैं। मुझे बहुत बड़े-बड़े काम करने हैं और मुक्ति प्राप्त करके मानव-जन्म को सार्थक करना है। राज्य के सुख-भोग में पड़कर मैं आलसी हो गया था फिर भी कुशल यही है कि वर्षा ऋतु में यात्रा करने वाले यात्री के समान मैं नींद की चपेट में नहीं पड़ा रहा। विरक्त कुलटा स्त्री के समान ठीक समय पर राज्य लक्ष्मी को स्वेच्छया छोड़ देने से मुझे बर्बश राज्यच्युत होने की लज्जा का अनुभव नहीं करना पड़ेगा। ... जैसे सर्प त्यागी हुई केंचुल को फिर नहीं धारण करता वैसे ही प्रजा के अनेकशः आग्रह करने पर भी उसने त्यागे हुए राज्य को नहीं अपनाया। समस्त राज्य चिह्न त्यागकर, धुले वस्त्र पहन तथा नित्यपूजन का शिवलिंग हाथ में लेकर खुले सिर वह राजा पैदल ही उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा।[4]

उपर्युक्त प्रसंग में राजा संधिमति की सांसारिक विषयों में अनासक्ति तथा राजकार्य को बंधन स्वरूप दिखाकर निर्वेद स्थायी भाव की पुष्टि की गई है जो राजत्याग भजन-पूजन आदि कार्यों में लगने आदि जैसे अनुभावों से पुष्ट होकर शान्त रस में परिणत हुआ है। इसी प्रसंग में आगे राजा संधिमति का जंगल में निवास करना, पृथ्वी पर शयन करना, भिक्षाटन से उदरपूर्ति करना, नित्यप्रति नियम से शिवोपासना करना आदि कार्यों का विस्तृत वर्णन करके कवि ने इस पूरे प्रसंग को शान्त रस से आप्लावित कर दिया है।[5]

'राजतरङ्गिणी' के तीसरे तरंग में कश्मीर के महान राजा मेघवाहन का पूरा वृत्तान्त शान्त रस से परिपूर्ण है। उस राजा के शान्त रस विषयक् क्रियाकलापों तथा उनके परिणामों का उल्लेख करते हुए निष्कर्ष रूप में कवि ने कहा है कि प्राणिमात्र पर दया करने वाले बोधिसत्तों की महिमा को भी उस उत्तम विचार सम्पन्न राजा ने अपने गम्भीर तथा उदात्त चरित्र को दबोच दिया। राज्याभिषेक के समय ही उसकी आज्ञा का पालन करते हुए मंत्रियों ने राज्य भर में जीव-हिंसा बन्द करने की घोषणा करा दी।[6]

इसी प्रकार राजा रणादित्य, रानी रणारम्भा, राजा दुर्लभवर्द्धन आदि के जीवन चरित्र के वर्णन में भी शान्त रस की सरिता बहायी गयी है।

'राजतरङ्गिणी' में आदि से अन्त तक विभिन्न प्रकार के नैतिक उपदेश दिए गए हैं। इनमें लोभ-त्याग, भाग्य की प्रबलता, राजाओं की प्रवृत्ति, महापुरुषों के गुण, सामान्य व्यवहार आदि विषयों से सम्बन्धित शताधिक श्लोक आए हैं। इन सभी श्लोकों में शान्त रस का पल्लवन हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक यहाँ द्रष्टव्य हैं।

विस्तार्येति कदर्यतामहिरवत्यन्यस्य हेतोर्निधीन्नान्यः।
कोपि परं परोपकृतिषु प्रौढोस्ति लुब्धं विना।।
अन्यैश्च बहुभिर्मार्गैर्नद्यः सिन्धुमिवाविशन्।
नानार्थसंपदस्तास्ता भाग्यभाजं महीभुजम्।।
अर्था भाग्योदये जन्तुं विशन्ति शतशः स्वयम्।
दिग्भ्योभ्युपेत्य सर्वाभ्यः सायं तरुमिवाण्डजाः।।
स्रोतांसि प्रबलत्वमेत्य वसुधां मूलेषु पुष्णन्त्यधो व्योम्नोम्भः
पतति त्यजन्ति हरितो वारि प्रणालीमुखैः।
इत्थं शुष्कसरः पयोदसमये संपूर्यते सर्वतो भाग्यानामुदये
विशन्ति शतशो द्वारैर्न कैः संपदः।।
जनरक्षणदाक्षिण्ये ततः पितुरिवान्वहम्।
कुशला कलशस्यासीत्प्रजापुण्योदयैर्मतिः।।
स्वयं वणिगिवार्थानां गणनाकुशलोऽपि सः।
विवेक्ता सत्पथत्यागे मुक्तहस्तः सदाऽभवत्।।
उपस्थितौ भाविनौ च पश्यन्नायव्ययौ स्वयम्।
अन्तिकान्नात्यजद्भूर्जखटिकादि नियोगिवत्।।
तस्य स्वरूपमूल्येन रत्नादि क्रीणतः स्वयम्।
नाशकन्वञ्चनां कर्तुं केऽपि विक्रयकारिणः।।
त्रिवर्ग सेवमानः स विभज्य समयं सुखी।
मध्याह्नादूर्ध्वमभवद्दृश्यः सर्वकार्यिणाम्।।
–राजतरङ्गिणी– 7/502–510

लोभी मनुष्य वायु पीकर जीता है, अन्धकाराच्छन्न बिल में सोता है और नग्न होने पर लाज बचाने के लिए वह औरों से कपड़े माँगकर पहनना चाहता है। इस प्रकार अपनी कृपणता का विस्तार करके वह दूसरों के लिए धन बचाता है। अतएव लोभी मनुष्य से बढ़कर परोपकार परायण व्यक्ति और कोई नहीं हो सकता। जिस प्रकार अनेक मार्गों से आकर नदियाँ समुद्र में प्रविष्ट होती हैं, उसी प्रकार उस भाग्यशाली राजा कलश के पास अनेक मार्गों से विविध सम्पदायें आने लगीं। जैसे सन्ध्या समय पक्षिगण विभिन्न दिशाओं से आकर वृक्षपर पहुँच जाते है, उसी प्रकार भाग्योदय के समय सैकड़ों प्रकार की सम्पत्तियाँ भाग्यशाली मनुष्य के पास पहुँच जाती है। बरसात के समय सूखे सरोवर में उसके तले से अनेक प्रबल सोते फूटकर उसे जल से भर देते हैं, आकाश से मेघ जल बरसाते हैं और चारों ओर के नाले अलग जल लाकर उसमें उड़ेल देते हैं। इस प्रकार वर्षा ऋतु में वह सरोवर पूर्ण रूप से भर जाता है। इसी प्रकार भाग्योदय के समय मनुष्य के पास सैकड़ों द्वार से सम्पत्तियाँ दौड़ आती है। तदनन्तर प्रजाजनों के पुण्योदय से राजा कलश की सद्बुद्धि प्रजापालन के कार्य में अपने पिता के सदृश उदार तथा निपुण हो चली। यद्यपि वह राजा वैश्यों की तरह धन की करने में प्रवीण था। तथापि विचारशील होने के कारण भले मार्ग पर धन खर्च करते समय वह मुक्तहस्त हो जाता था। वह वर्तमान तथा भविष्य में होने वाले आय-व्यय का बड़ी सावधानी से देख-रेख करता था। एक साधारण कर्मचारी की भाँति वह भोजपत्र तथा खड़िया सदा अपने पास रखे रहता था। रत्नों की खरीदारी के समय वह स्वयं उनका स्वरूप देख तथा भली-भाँति जाँच करने के बाद ही खरीदता था। अतएव कोई भी जौहरी उसे ठग नहीं सकता था। अपने समय का उचित रीति से विभाजन करके त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता हुआ वह राजा दोपहर से पहले किसी भी कर्मचारी से नहीं मिलता था।

ग्रीष्मस्योष्मा ब्रजति घनतां नूनमासन्नवृष्टेर्नैशं-
गाढीभवति तिमिरं संनिकृष्टप्रभातम्।

जन्तोरेवं प्रसभविभवस्फारसंपत्प्रचारान्निष्क्रामन्ती-विपदुपचितोद्रवोद्रेकमेति।।

-राजतरङ्गिणी- 7/795

जब बरसात आने वाली होती है, तब गर्मी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और प्रभात होने को होता है तो रात का अँधेरा और घना हो जाता है। उसी प्रकार विपुल सम्पदा आने वाली होती है, तब शीघ्र नष्ट हो जाने वाली विपत्तियाँ विशेष दु:खदायिनी हो जाती हैं।

आसन्नाभ्रलस्य दावविगमे विद्युद्भयं शाखिनो-
नक्रास्याद्गलतश्च मज्जनमयी शङ्का भवेद्वारिधौ।
भौक्तव्यस्य विधि: शुभस्य रभसात्स्वादुत्वनिष्पत्तये-
जन्तो: संतनुते निराकृतभियो भीत्यन्तरोत्पादनम्।।

-राजतरङ्गिणी- 7/795

कुष्ठार्तार्ङ्ग्रियुग: शिखी बहुपदं गृह्लाति-
घावन्नहिं भानु: पादसहस्रभाक्प्रतिपदं संचार्यतेऽनूरुणा।
वञ्च्यन्ते बलिनोऽपि यल्लघुबलै: सामर्थ्यहीनैश्च-
यद्भाम्यन्ते परिपूर्णवृत्तय इदं दैवस्य लीलायितम्।।

-राजतरङ्गिणी- 7/959

इस प्रकार 'राजतरङ्गिणी' में कवि ने शान्त रस का अङ्गी रस के रूप में सम्यक् समावेश किया है। यद्यपि राजाओं के शौर्यवर्णन में वीर, शृंगार, अद्भुत आदि रसों का प्रयोग हुआ है, परन्तु ये सभी रस अन्तत: शान्त रस के ही पोषक बन गए हैं। इस प्रकार शान्त रस 'राजतरङ्गिणी' के प्रधान रस के रूप में आद्योपान्त विद्यमान हैं।

संदर्भ सूची-

1. पुरा सतीसर: कल्पारम्भात्प्रभृति भूरभूत्।
   कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभि: पूर्णा मन्वन्तराणि षट्।।
   अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन्प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।
   द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा।।
   कश्यपेन तदन्त:स्थं घातयित्वा जलोद्भवम्।
   निर्ममे तत्सरो भूमौकश्मीरा इति मण्डलम्।। युग्मम्।।
   उद्यद्वैतस्तनि:स्यन्ददण्डकुण्डातपत्रिणा ।
   यत्सर्वनागाधीशेन नीलेन परिपाल्यते।।
   गुहोन्मुखी नागमुखापीतभूरिपया रूचिम्।
   गौरी यत्र बितस्तात्वं यातापयुज्झति नोचिताम्।।
   शङ्खपद्ममुखैर्नागैर्नानारत्नावभासिभि:।
   नगरं धनदस्येव निधिभिर्यन्निषेव्यते।।
   यत्तार्क्ष्यभीत्या प्राप्तानां नागानां गुप्तये ध्रुवम्।
   प्रसारितभुजं पृष्ठे शैलप्राकारलीलया।।
   भुक्तिमुक्तिफलप्राप्ति: काष्ठरूपमुमापतिम्।
   पापसूदनतीर्थान्तर्यत्र संस्पृशतां भवेत्।।
   संध्यादेवी जलं यस्मिन्धत्ते नि:सलिले गिरौ।
   दर्शनं पुण्यपापानामन्वयव्यतिरेकयो:।।

स्वयंभूर्यत्र हुतभुग्भवो गर्भात्समुन्मिषन्।
जुह्वतां प्रतिगृह्लाति ज्वालाभुजवनैर्हविः।
देवी भेडगिरेः शृङ्गे गङ्गोद्भेदशुचौ स्वयम्।
सरोऽन्तर्दृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती।।
नन्दिक्षेत्रे हरावासप्रासादे द्युचरार्पिताः।
अद्यापि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दनबिन्दवः।।
आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात्।
तरङ्गिणी मधुमती वाणी च कविसेविता।।
चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशावभूषिते ।
तिलांशोपि न यत्रास्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्बहिष्कृतः।।
विजीयते पुण्यबलैर्बलैर्यत्तु न शस्त्रिणाम्।
परलोकात्ततो भीतिर्यस्मिन्निवसतां परम्।।
सोष्मस्नानगृहाः शीते स्वस्थतीरास्पदा रये।
यादोविरहिता यत्र निम्नगा निरुपद्रवाः।।
असन्तापार्हतां जानन्यत्र पित्रा विनिर्मिते।
गौरवादिव तिग्मांशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम्।।
विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्.कुमं सहिमं पयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।
–राजतरङ्गिणी, 1/25–42

2. शचीनरस्तस्य सूनुः क्षितिं क्षितिशचीपतिः।
ततः श्रीमान्क्षमाशीलो ररक्षाक्षतशासनः।।
राजाग्रहारयोः कर्ता शमाङ्गासाशनारयोः।
सोऽभूदपुत्रः सुत्रामविष्टरार्घसमाश्रयी।। –राजतरङ्गिणी, 1/99–100

3. अहरन्हृदयं तस्य शृङ्गारहितविभ्रमाः।
नितम्बि वनभुवः शमिनो न तु योषितः।।
वनप्रसूनसंपर्कपुण्यगन्धैस्तपस्विनाम्।
कर्पूरधूपसुरभिः करैः स्पष्टः स पिप्रिये।।
भूतेशवधमानेशविजयेशानपश्यतः ।
नियमो राजकार्येषु तस्याभूत्प्रतिवासरम्।।
हरायतनसोपानक्षालनाम्भःकणाञ्चितैः।
संस्पृष्टः पवनैः सोऽभूदानन्दास्पन्दविग्रहः।।
पूर्वपूजापनयने निराडम्बरसुनदरः ।
तेनैव द्रष्टुमज्ञायि स्नपितो विजयेश्चरः।।
लिङ्गपीठलुठत्स्नानकुम्भाम्भःक्षोभभृर्ध्वनिः।
शयानम्याप्यभृत्तस्य वल्लभो वल्लकीद्विपः।।
तापसैर्भस्मरुद्राक्षजटाजूटाङ्कितैर्वभौ।
तस्य माहेश्वरी पर्पदिव भृमिपतेः सभा।।
–राजतरङ्गिणी– 2/121–127

4. अचिन्तयच्च सत्यं मे संप्रीतो भूतभावनः।
सिद्धिविघ्नानमून्दीर्घानपाकर्तुं समुद्यतः।।

कृत्ये बहुनि निष्पाद्ये श्रमात्कौसीद्यमाश्रयन्।
प्रावृषीवाध्वगो दिष्ट्या मोहितोऽस्मि न निद्रया।।
स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं विरक्तां बन्धकीमिव।
हठनिर्वासनव्रीडा दिष्ट्या नासादिता मया।।
शैलूषस्येव मे राज्यरङ्गेऽस्मिन्वल्गतश्चिरम्।
निर्व्यूढमपि वैरस्यं दिष्ट्या न प्रेक्षका गता:।।
दिष्ट्या सदैव वैमुख्यमुच्चौरुद्घोषयञ्श्रिय:।
त्यागक्षणे न भीतोऽस्मि विकत्थन इवाहवे।।
इति संचिन्तयन्नंत: सर्वत्यागोन्मुखो नृप: ।
मनोराज्यानि कुर्वाणो दरिद्र इव पिप्रिये।।
अन्येद्यु: प्रकृती: सर्वा: संनिपत्य सभान्तरे।
ताभ्य: प्रत्यर्पयन्नासमिव राज्यं सुरक्षितम्।।
उज्झितं स्वेच्छया तच्च प्रयत्नेनापि नाशकत्।
तं स्वीकारयितुं कश्चित्फणीन्द्रमिव कञ्चुकम्।।
अर्चालिङ्गमुपादाय सोऽथ प्रायादुदङ्.मुख:।
धौतवासा निरुष्णीष: पद्भ्डामेव प्रजेश्चर:।।
-राजतरङ्गिणी- 2/153-161

5. द्रष्टव्य राजतरङ्गिणी- 2/163-171
6. रक्तप्रजस्य भृभर्तु: पश्चाल्लोकानुरञ्जनम्।
तस्याज्ञायि जनैर्धौतक्षौमक्षालनसंनिभम्।।
स पुनर्बोधिसत्त्वानामपि सत्त्वानुकम्पिनाम्।
चर्यामृदात्तचरितैरत्यशेत महाशय:।।
तम्याभिषेक एवाज्ञां धारयन्तोऽधिकारिण:।
सर्वतोऽमारमर्यादापटहानुदघोषयन्।।
- राजतरङ्गिणी- पृ0 39, श्लोक सं0 3, 4, 5

भारतीय विदेश नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की रणनीति

अभिषेक कुमार

शोध प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध आलेख का सार तत्व:

विदेश नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय हित की पूर्ति के साथ-साथ बहुआयामी होता है। राष्ट्रीय हित के अन्तर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को सार्वभौमिक रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है तथा राष्ट्र-राज्य की अवधारणा के विकास से तो इससे अधिक महत्व प्राप्त हो गया है। भारत की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को हमेशा ही महत्व दिया जाता रहा है। स्वतंत्र भारत में कठोर संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता के मूल में भी राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा ही केन्द्र में रही है। वस्तुत: भारत की सामरिक नीति एवं आणुविक नीति के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के मूल में भी राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को केन्द्रीय बताया जा सकता है। भारत ने भले ही गुटनिरपेक्षता और पंचशील को वैदेशिक नीति का आधार बनाया तथा उसी परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु वर्ष 1971 में सोवियत संघ (वर्तमान रूस) के साथ सैनिक संधि, 1974 में प्रथम पोखरण तथा 1998 में द्वितीय पोखरण के पीछे भी भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा ही है। भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को केन्द्र में रखकर ही वैदेशिक नीति एवं कूटनीति को निर्धारित करता रहा है। भारत की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा वर्ष, 2014 में नरेन्द्र मोदी की सरकार आने के बाद पहले की तुलना में कुछ अधिक ही महत्वपूर्ण मोदी की सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा को अधिक महत्ता प्रदान किया है तथा भारत की आर्थिक-सामरिक शक्ति के उत्तरोतर विकास और उन्नयन पर ध्यान दिया है। मोदी सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सीमा पार आतंकवाद के विरुद्ध कठोर कदम उठाया है, वही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवादी गतिविधियों के प्रति विश्व जनमत को कायम किया जाता है। इतना ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को सशक्त बनाने का लगातार प्रयास किया जा रहा है, जिनसे राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावी बनाया जा सके। आज मोदी सरकार ने बहुत ही सूक्ष्म ओर व्यापक रूप में भारत को प्रत्येक स्तर पर सशक्त करने में लगी हुई है। स्पष्टत: भारतीय वैदेशिक नीति एवं कूटनीति के प्रमुख आयाम के रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा का विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। स्पष्टत: प्रस्तुत विषय पर शोध आलेख का प्रस्तुतीकरण मौलिक, सार्थक एवं वांछनीय है।

प्रमुख शब्दावली: वैदेशिक नीति, कूटनीति, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, विश्व जनमत, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, राष्ट्र-राज्य की अवधारणा, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामूहिक सुरक्षा, विश्व शांति एवं सौहार्द, विचारधारा, पड़ोसी नीति आदि।

प्रस्तावना:

भारतीय वैदेशिक नीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा केन्द्रीय विषय रहा है तथा वैश्विक सन्दर्भ में अन्य राष्ट्रों की भाँति भारत में भी यह राजनीतिक व कूटनीतिक रणनीति का केन्द्रीय विषय बन गया है द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने वाले कारकों में राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय हित की अवधारणा पूरक रूप में सर्वोपरि हो गई है विभिन्न

राष्ट्रों तथा राष्ट्र समूहों के बीच राजनीतिक, आर्थिक, वैचारिक, सामरिक, शक्ति-संतुलन तथा शस्त्रीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत राष्ट्रीय सुरक्षा एक महत्वपूर्ण उपागम की तरह है कोरिया संकट, शीत युद्ध, नवीन शीत युद्ध, खाड़ी संकट, विश्व में राष्ट्र-राज्यों के बीच शस्त्रीकरण व आणविक शस्त्रीकरण की होड़, चीनी आक्रमण, भारत-पाक युद्ध, पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादी गतिविधियाँ तथा पूर्व सोवियत संघ के विघटनोपरान्त अमरीकी प्रभुत्व में एक ध्रुवीय राजनीति के परिवर्तित रूप ने राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करती रही है। पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद ने न केवल भारतीय राष्ट्र-निर्माण और समाज-निर्माण को प्रभावित किया है अथवा भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को र्प्रभावित किया है। अब राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को प्रभावित किया है, बल्कि सामूहिक सुरक्षा के प्रश्न को सम्बन्धित राष्ट्र का ही प्रश्न न मानकर, अन्तर्राष्ट्रीय समाज और विश्व मानवता के सामने की आवश्यकता एवं चुनौती का विषय माना जा रहा है। उत्तर कोरिया के सनकी तानाशाह ने लगातार परमाणु हथियारों का परीक्षण करके विश्व समाज के सामने तृतीय विश्व युद्ध की संभावना खड़ी कर दिया। नवम्बर, 2017 के अंतिम सप्ताह में उत्तर कोरिया के विस्फोट ने सामूहिक सुरक्षा को चुनौती दिया था, हालांकि जून, 2018 में ट्रम्प से वार्तालाप के बाद स्थिति में परिवर्तन हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि सामूहिक सुरक्षा से राष्ट्रीय सुरक्षा भी सम्बद्ध हो गया है वर्त्तमान में सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा को राष्ट्रीय सुरक्षा से जोड़कर देखा जा रहा है।

भारत की वैदेशिक नीति का मूल उद्देश्य आज राष्ट्रीय सुरक्षा बन गया है यह अलग बात है कि भारत के वैदेशिक नीति के सैद्धान्तिक पक्ष में गुटनिरपेक्षता, पंचशील, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सक्रिय सहयोग आदि हैं परन्तु इन तमाम सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक गतिविधियों के मूल में राष्ट्रीय सुरक्षा स्थापित हो गया है भारत के वैदेशिक नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सम्पोषित विकास के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रवाद का विकास हो गया है। भारत ने क्षेत्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की गतिविधियों में, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ-साथ अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर विश्व शांति हेतु आतंकवाद की समाप्ति के मिशन को लेकर कार्य कर रहा है।

स्वतंत्र भारत की सभी सरकारें पाकिस्तान प्रायोजित अलगाववाद एवं आतंकवाद से परेशान रही है तथा उनका सकारात्मक समाधान खोजती रही है। पाकिस्तान और चीन ने हमेशा ही भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में समस्याएँ खड़ी की है, वहीं भारत इन देशों के साथ हमेशा ही शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का प्रयास किया है। भारत सम्पूर्ण विश्व में शांति एवं खुशहाली चाहता है, दक्षिण एशियाई राजनीति में शांति एवं खुशहाली के लिए लगातार प्रयास करता है; विश्व राजनीति में दक्षिण एशिया को उसका हक दिलाना चाहता है तथा अपने पड़ोसियों के साथ लगातार बेहतर सम्बन्ध कायम करना चाहता है। इसका सबसे प्रबल प्रमाण पंचशील संधि (1954), कोलम्बो प्रस्ताव (1963), ताशकन्द समझौता (1966), शिमला समझौता (1972), गुजराल डॉक्टरिन (1997), आण्विक नीति (1998), आगरा वार्त्ता (2002), पड़ोसी नीति (2005) सामूहिक सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा और विश्व शांति हेतु भारत की वैदेशिक नीति पर विशेष बल देने की रणनीति (2014-2019) आदि हैं।

भारत में वर्ष 2014 में नरेन्द्र मोदी सरकार का आगमन हुआ, तब से भारत की वैदेशिक नीति के सैद्धान्तिक आधार तो पूर्ववत ही रहा है, परन्तु रणनीतिक रूप में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। नरेन्द्र मोदी ने वर्ष 2005 में प्रयुक्त पड़ोसी नीति को प्रभावी बनाने की दिशा में क्रांतिकारी प्रयास प्रारम्भ कर दिय है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पाकिस्तान को अपना प्राथमिक मित्र बनाने का प्रयास किया, तभी तो 'मोस्ट फेवरेट नेशन' का दर्जा दिया तथा प्रधानमंत्री नवाजशरीफ से बेहतर सम्बन्ध स्थापित किया। इसके बाद भी पाकिस्तान ने पूर्व की भाँति भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में लगातार बाधाएँ खड़ी करता रहा है। पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादी गतिविधियाँ हाल के वर्षो में लगातार बढ़ती गई है। भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा के स्तम्भ सैनिक और अर्द्ध सैनिक बल पर आतंकी हमले बढ़ गए हैं, इस सम्बन्ध में 17 सितम्बर, 2016 को उड़ी आतंकी हमला हुआ, जिसका पहली बार मुँहतोड़ जवाब देने के लिए 28-29 सितम्बर, 2016 को भारतीय सेना ने पीओके में 'सर्जिकल स्ट्राइक' किया है तथा 30 नवम्बर, 2018 तक लगभग 300 आतंकवादियों को मार गिराया है। भारत के पुलवामा में पाक समर्थित बर्बर आतंकी हमले के जवाब में 26 फरवरी, 2019 को भारतीय वायुसेना ने पाक के बालाकोट में स्ट्राइक करके जैश-ए-मोहम्मद के कैम्पों को नेस्तनाबूद कर दिया। भारत के उस हमले में बड़ी संख्या में आतंकी, प्रशिक्षक और शीर्ष कमांडर मारे गए। भारत की राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूती प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की वैदेशिक रणनीति को प्रभावी बनाया है। भारतीय वैदेशिक में पहली बार यह देखा जा रहा है कि भारत, अमरीका तथा रूस दोनों ही महाशक्तियों के एक साथ बेहतर सम्बन्ध बनाये रखने में सफल दिख रहा है। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर विश्व के अधिक-से-अधिक देशों को पाकिस्तान के विरोध में खड़ा किया है तथा आतंकवाद के विरोधी और

मानवता के नेतृत्वकर्त्ता एवं समर्थक देश के रूप में स्वयं को खड़ा किया है तथा आतंकवाद के विरोधी और मानवतावाद के नेतृत्वकर्त्ता एवं समर्थक देश के रूप में स्वयं को स्थापित किया है। इस सम्बन्ध में इस सम्बन्ध में 15 अक्टूबर, 2016 को गोवा (भारत) में आयोजित ब्रिक्स सम्मेलन को प्रमुख रूप में देखा जा सकता है। 9 जून, 2018 को शंघाई सहयोग संगठन का 18वाँ सम्मेलन चीन में आयोजित किया गया, जिसमें नरेन्द्र मोदी ने एस.सी.ओ. के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा कि पड़ोसियों के साथ कनेक्टिविटी पर भारत का बल है। 13-14 जून, 2019 को एस.सी.ओ. के 19वाँ सम्मेलन (किर्गिस्तान के विश्केक में आयोजित) में मोदी ने कहा कि सुरक्षा हमारी प्राथमिकता है। इससे भी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति नरेन्द्र मोदी की प्रतिबद्धता को समझा जा सकता है। 25-27 जुलाई, 2018 को दक्षिण अफ्रीका में 10वाँ ब्रिक्स सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में मोदी ने राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में ही आतंकवाद और संरक्षणवाद पर विचार व्यक्त किया। इतना ही नहीं, प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर नरेन्द्र मोदी ने नेतृत्व में भारत की वैदेशिक नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विश्व शांति एवं सौहार्द की जोरदार माँग की जाती रही है।

निष्कर्ष:

आज भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में वैदेशिक रणनीति के साथ-साथ घरेलू नीति में भी बदलाव लाया जा रहा है। निश्चित रूप में भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा में अलगाववाद, नक्सलवाद, कालाधन, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि कई समस्याएँ और बाधाएँ है, जिनके सम्बन्ध में मोदी सरकार की रणनीतिक कार्य-प्रयास संचालित हो रहा है। प्रस्तुत विषय पर शोध आलेख शैक्षणिक दृष्टिकोण के साथ-साथ राजनीतिक, कूटनीतिक, सामरिक, आर्थिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हो गई है। नरेन्द्र मोदी सरकार की घरेलू नीति और वैदेशिक नीति, दोनों ही आधार पर राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से निर्णायक एवं क्रांतिकारी प्रयास किये जा रहे हैं, जिनका गहन अन्वेषण शोध आलेख में किया गया है। आज भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक साथ आर्थिक सशक्तिकरण और सामरिक सशक्तिकरण का संयुक्त प्रयास कर रहा है, जो अपने आप में विशिष्ट एवं शोध आलेख के औचित्य को प्रमाणित करता है। प्रस्तुत विषय पर शोध आलेख नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आयाम को बेहतर रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इतना ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मोदी सरकार ने राष्ट्रीय हित और राष्ट्रीय सुरक्षा में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है, इनका भी यथार्थ अवलोकन किया गया है। मोदी सरकार की वैदेशिक नीति की विशिष्टताओं, सफलताओं, असफलताओं, घरेलू नीति और वैदेशिक नीति के तालमेल, दक्षिण एशियाई राजनीति तथा अफ्रीकी नीति में समन्वय, अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर राष्ट्र की साख इत्यादि विषयों पर भी यथार्थ जानकारी इस शोध आलेख के माध्यम से प्राप्त किया गया है तथा उसे प्रस्तुत की गई है। इस शोध से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्य आयामों की जानकारी कई अध्यायों से प्राप्त हुई है। प्रस्तुत शोध आलेख से राष्ट्रीय सुरक्षा, सामूहिक सुरक्षा, शक्ति-संतुलन, गुटनिरपेक्षता और उसमें भारत की भागीदारी व भूमिका तथा एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत की वैदेशिक नीति की स्थिति आदि का पक्ष भी स्पष्ट हो गया है शोध आलेख से यह निष्कर्ष प्राप्त हो रहा है कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत की रणनीति व कूटनीति सार्थक दिशा में अग्रसर है आज भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में खड़ी चुनौतियाँ लगातार समाप्त हो रही है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक साख बढ़ती जा रही है शोध आलेख के अवलोकन के आधार पर नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति सफल बताई जा सकती है, क्योंकि भारत आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्ध, समर्थित एवं समर्पित है। नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति की सफलता भविष्य की सरकार को दिशा दे सकती है। वर्तमान विश्व में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की गतिविधियों के सन्दर्भ में मोदी सरकार की वैदेशिक नीति, कूटनीति, सामरिक नीति एवं रणनीति सार्थक है तथा हमारी राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था को दिशा प्रदान कर सकती है। वस्तुतः मोदी सरकार की राजनीतिक-कूटनीतिक रणनीति भारत की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था के लिए एक सफल रणनीतिक प्रबन्धन है, वैदेशिक नीति की आधारभूत व सार्थक सिद्धान्त है तथा एक प्रकार की राजनीतिक शिक्षा भी है। स्पष्टतः प्रस्तुत शोध आलेख की वांछनीयता एवं उपादेयता बिल्कुल स्पष्ट है।

सन्दर्भ सूची

1. जे०एन० रोजेनाऊ: द स्टडी ऑफ न्यूयार्क, फॉरेन पॉलिसी, 1971

2. जे० एच० वोल्पफ एण्ड टी० ए० कोलम्बिज: इन्ट्रोडक्शन टू इन्टरनेशनल रिलेशनरू पावर एण्ड जस्टिस, न्यू देल्ही, प्रेन्टीस हॉल ऑफ इण्डिया, 1986
3. के० जे० होल्सी: इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स: ए फ्रेमवर्क फॉर एनालिसिस, 1983
4. गिबसन: द रोड टू फॉरेन पॉलिसी, 1944
5. महेन्द्र कुमार: थियारेटिक एक्सपेक्ट्स ऑफ इन्टरनेशनल पोलिटिक्स आगरा, शिवालाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1981
6. जे० सी० जौहरी: अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध् तथा राजनीति (सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य)
7. मथुरालाल शर्मा: भारतीय विदेश नीति
8. विगर्त एवं अन्य: प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिक्स ज्योग्राफी, 1957
9. ओ० माडल: दास वेजेन्डर जियोपोलिटिक 1936
10. आर० पॉल विओही: इन्टरनेशनल लिशन एण्ड वर्ल्ड पोलिटिक्स
11. यू० आर० घई : भारतीय विदेश नीति न्यू एकेडिमिक, पब्लिशिंग कं जालंधर
12. बरनॉन वॉन डाइक: इन्टरनेशनल पोलटिक्स
13. एच०जे० मारगेन्थाऊ: पॉलिटिक्स एमोग नेशन्स
14. डॉ० डी० आर० सेठ: मिलेट्री डाइजेस्ट, जनवरी 1951
15. कोहेन एस०बी०: ज्योग्राफी एण्ड पॉलिटिक्स इन ए वर्ल्ड डिवाइडेड, 1973
16. वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट, 1997, न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
17. जे० एल० एण्ड स्क्रीन के० सेठ: अरबन डेवलपमेंट एण्ड मुनिसिपल ब्यूरेक्रेसी
18. डॉ० अशोक कुमार: प्रशासनिक चिन्तक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2004
19. आर०बी० जैन: गुड गवर्नेन्स फॉर सस्टनेबल डेवलपमेन्ट: चौलेंजेज एण्ड स्ट्रेटजी इन इंडिया, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू देल्ही, वाल्यूम-1, जनवरी-मार्च, 2004

भारत में सामाजिक न्याय: एक अवलोकन

अजीत कुमार शर्मा

शोध प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध आलेख का सार तत्व:

समानता का तात्पर्य उन परिस्थितियों के अस्तित्व से हैं, जिनमें सभी लोगों को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हो सके और उस असमानता का अन्त हो जाये, जिसके मूल रूप में सामाजिक विभेद व विषमता की उपस्थिति है। सामाजिक समानता से सामाजिक न्याय को आधार प्राप्त होता है तथा सामाजिक समानता को समानता का एक प्रमुख आयाम या प्रकार कहा जा सकता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समाज में रहकर अपने सर्वांगीण विकास का अवसर मिलना ही सामाजिक न्याय के अर्थ का परिचायक है। समानता के दो पक्ष है- नकारात्मक तथा सकारात्मक। समानता के नकारात्मक पक्ष में समानता का अर्थ उन विशेषाधिकारों को समाप्त करना है जो जन्म जाति, रंग, धन तथा धर्म भेद के आधार पर समाज के कुछ ही लोगों को प्राप्त हैं। दूसरी ओर समानता के सकारात्मक पक्ष में समानता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु उपयुक्त तथा पर्याप्त अवसर समान रूप से मिलने चाहिए। राज्य का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने समुचित विकास का अवसर प्राप्त हो सके। वस्तुत: समानता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यदि समाज में असमानता तथा भेदभाव है तो अशांति और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जायेंगी। समानता के अभाव में स्वतन्त्रता की अवधारणा निरर्थक प्रतीत होती है। समानता की उपस्थिति नितान्त आवश्यक है तथा सभ्य समाज का अनिवार्य शर्त्त है। सामान्यत: समानता का आशय सभी लोगों के समान होने से लगाया जाता है, लेकिन समानता का यह आशय पूर्ण रूप से भ्रामक तथा अनुपयुक्त है, क्योंकि प्रकृति ने सभी को समान नहीं बनाया है। समाज के कुछ लोग शक्तिशाली होते हैं तथा कुछ लोग बहुत कमजोर होते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग तीव्र बुद्धि वाले होते हैं तथा कुछ लोग मंद बुद्धि के होते हैं। स्पष्टत: समानता का यह आशय नहीं है कि सभी लोग सभी मामलों में बिल्कुल एक जैसे हो? डॉ. अप्पादोराय ने भी कहा है कि "यह कथन कि समस्त मानव समान है, उतना ही भ्रामक है, जितना यह कहना कि पृथ्वी की सतह समतल है।" समानता का वास्तविक अर्थ यह है कि समस्त व्यक्तियों को उनकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप विकास करने के समान अवसर मिलने चाहिए। समाज में किसी भी व्यक्ति अथवा वर्ग को किसी भी प्रकार की विशेष सुविधाएँ प्रदत्त नहीं की जानी चाहिए। हालांकि यह सत्य है कि प्रकृति समस्त मानवों को एक-सा नहीं बनाती है। कुछ व्यक्ति जन्म से ही शक्तिशाली बुद्धिमान एवं प्रतिभाशाली होते हैं तथा कुछ मन्द बुद्धि तथा निर्बल होते हैं। इस प्रकार की असमानता को दूर करना असम्भव है लेकिन जो असमानता समाज में कृत्रिम रूप से उत्पन्न की जाती है, वह घातक है। जब समाज में जान-बूझकर ऊँच-नीच का भेद उत्पन्न किया जाता है और कुछ लोगों को अपने विकास के अवसर दिए जाते हैं, तब उसके विरोध में ही समानता की आवाज उठाई जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि समाज में समानता से तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है जिनके कारण समस्त लोगों को अपने अस्तित्व के विकास हेतु समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक विषमता के कारण उत्पन्न होने वाली असमानताओं का अन्त हो जाए। प्रो. लास्की के मतानुसार, "समानता प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों का उपयोग करने का यथाशक्ति समान अवसर प्रदान करने का प्रयत्न है।" दूसरी ओर इस बात का भी स्पष्टीकरण आवश्यक है कि आज का युग लोक कल्याणकारी राज्य का है, जिसमें सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारतीय संविधान में भी सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्वीकार किया गया है तथा यहाँ की शासकीय नीति और कल्याणकारी कार्यक्रमों में भी सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावी बनाने के लिए लगातार कार्य किया जाता रहा है।

दृष्टिकोण

प्रमुख शब्दावली: समानता, स्वतन्त्रता, न्याय, सामाजिक समानता, लोक कल्याणकारी राज्य, भारतीय संविधान का आदर्श, सभ्य समाज आदि।

प्रस्तावना:

सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं से स्पष्अ होता है कि संविधान निर्माताओं ने सहभागी लोकतंत्र के आदर्शों, नागरिकों के अधिकारों की गारण्टी, धर्मनिरपेक्षता, समतावादी, सहकारी संघवाद तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका को संविधान में शामिल किया। संविधान सभा में एक शक्तिशाली गुट ने सामाजिक न्याय की व्याख्या पश्चिमी उदारवाद के अनुसार अवसरों की समानता एवं व्यक्तियों के चुनाव की स्वतंत्रता के संदर्भ में की थी। लेकिन कुछ ऐसे भी सदस्य थे जिनकी दृढ़ मान्यता थी कि जब तक दलितों तथा भारतीय समाज के अन्य शोषित-पीड़ित वर्गों की आकांक्षाओं का सन्तुष्टीकरण नहीं हो जाता तब तक नवीन राष्ट्र के निर्धारित सामाजिक राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन होगा एवं राज्य प्रक्रिया खतरों से भरपूर मार्गों से होकर गुजरती रहेगी। वैकल्पिक रूप में गांधीवादी परिकल्पना भी थी जिसके अन्तर्गत राज्य की भूमिका कम तथा प्रबंधन की भूमिका अधिकतम थी। पश्चिम के उदारवाद से प्रभावित लोगों के लिए गांधीवादी आदर्श एक उपयोगिता मात्र था। गांधीवादी आदर्श ने दलितों तथा भारतीय समाज के अन्य कमजोर वर्गों में कोई विशेष विश्वास उत्पन्न नहीं किया।

भारत की गरीबी मिटाना एवं सामाजिक न्याय अति महत्वपूर्ण समस्याएं थी। रूढ़िवादी एवं आदर्शवाद दोनों ही इन समस्याओं से भली-भांति परिचित थे और उनका निश्चित विचार था कि हिंसा एवं सर्वाधिकारवादी तरीकों से किया गया परिवर्तन काफी दु:खदायी होगा। एक शोषण के अन्त से दूसरे शोषण के आरम्भ होने की प्रबल सम्भावना थी। इसलिए वे जनतांत्रिक साधनों, मेल-मिलाप एवं समझौते द्वारा परिवर्तन के पक्षधर थे। रूढ़िवादियों एवं आदर्शवादियों के बीच यह समझौता मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में स्पष्ट तौर पर प्रकट हुआ।

समझौते तथा समायोजन की इस प्रक्रिया ने अन्तत: सामाजिक न्याय की विचारधारा के एक ऐसे दस्तावेज को उत्पन्न किया जिसका विरोधाभासों से परिपूर्ण होना स्वभाविक था। संविधान के मुख्यत: निर्माता डॉक्ट बीक्ट आरक्ट अम्बेडकर ने भी इस विरोधाभासों को स्वीकार करते हुए कहा, "26 जनवरी, 1950 को हम एक विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समान होंगे किन्तु सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों में हम असमान होंगे। राजनीति में हम समान एक-आदमी-एक-मत के सिद्धांत को मान्यता प्रदान कर रहे होंगे। सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में हम एक-आदमी-एक-मूल्य को नकारना जारी रखेंगे। ठीक इसी प्रकार के एम. मुंखी ने अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहा, "संविधान के कुछ प्रावधान स्वतंत्रता तथा विकास के वातावरण का दिखावा करते हैं।" के. टी. शाह ने, "अनावश्यक धोखाधड़ी" तथा "प्रदर्शन-कला" की शिकायत की। ग्रानविल ऑस्टिन ने इस संदर्भ में सुझाया कि "संविधान सभा के अधिकतर सदस्यों के लिए संविधान में समाजवाद शब्द का अनतर्निहित होना आवश्यक न था अपितु भविष्य में राष्ट्र को एक ऐसे समाजवाद में परिवर्तित होना था जिसकी नागरिकों द्वारा इच्छा की जाएगी।" सामाजिक विचारधारा के प्रसंग में भारत के संविधान को साम्वाद तथा स्वेच्छाचारी व्यक्तिवाद की अतियों के मध्य एक समझौते के रूप में एक लोकहित राज्य का समर्थक कहा जा सकता है। इसने एक ऐसे मानवीय तथा प्रगतिशील समाज की परिकल्पना की जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत उद्यम के फल को नकारे बिना भरण-पोषण की व्यवस्था हो सके। संविधान में उल्लेखित सामाजिक-आर्थिक न्याय के प्रावधानों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान मूल रूप से उदारवादी प्रवृत्ति का होने के बावजूद शासन चलाने हेतु शक्ति तथा संस्थाओं की व्यवस्था मात्र नहीं है। अन्य देशो के संविधान से हटकर, भारतीय संविधान निर्माताओंं ने एक नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए एक दृष्टिकोण एवं दिशा उपलब्ध कराने हेतु कुछ लक्ष्य निर्धारित करने का प्रयास किया। सम्भवत: यह समाजवादी दृष्टिकोण न भी हो लेकिन फिर भी यह मानवीय, लोकतांत्रिक एवं समतावादी दृष्टिकोण है। इससे भी अधिक यह भारतीय राज्य को सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण, राजनीतिक स्वतंत्रता को सुरक्षित करने तथा आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन में योगदान देने में सकारात्मक भूमिका प्रदान करता है। इसमें एक ऐसे लोकतांत्रिक समाज के निर्माण करने की आशा की गयी थी जिसके अनतर्गत राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र शामिल है। यह अलग बात है कि व्यवसायिक राजनीति के कारण पिछले 70 वर्षों के इतिहास में राष्ट्र इस सामाजिक न्याय की परिकल्पना से बहुत दूर होता चला गया है।

लोकतंत्र लोगों की भागीदारी, कल्याण, सशक्तिकरण और विकास से सम्बन्धित है तथा न्याय, लोकतंत्र की बुनियाद है। न्याय लोगों के कल्याण का सार है। न्याय का आशय समाज के कल्याण के साथ व्यक्ति के आचरण का समरसत्तापूर्ण समन्वय है। राज्य और सरकार का प्राथमिक दायित्व न्याय है, जो समय, परिस्थिति और विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित एवं निर्धारित होता रहा है। न्याय न केवल कानून और न्यायिक प्रक्रियाओं का ही नाम है, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक पर्यावरण से सम्बन्धित है। इसलिए न्याय के कई पक्ष हैं, जिनमें सामाजिक न्याय समसामयिक उदार लोकतंत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधारणा है। सामाजिक न्याय की अवधारणा उदार लोकतंत्र की विशेषता जरूर है, परन्तु प्राचीन काल से परिवर्तित रूप में इसकी उपस्थिति दृष्टिगोचर होती रही है। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है- मानव के बीच जाति, धर्म, नस्ल, लिंग आदि पर आधारित असमानता दूर करते हुए सबको आत्म विकास के समान अवसर को उपलब्ध कराना। सामाजिक न्याय के अन्तर्गत समाज में समानता की माँग की जाती है तथा जाति, धर्म, रंग, नस्ल, वंश आदि के आधार पर विभेद को निषेध की जाती है। सामाजिक न्याय में सामाजिक भूमिका का निर्धारण क्षमता के आधार पर होती है।

भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को कल्याणकारी शासन, समतामूलक समाजिक-आर्थिक आचरण, विभेद व शोषण की समाप्ति, कार्य की यथोचित व मानवोचित दशाओं की उपस्थिति, लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारंटी तथा आपदा प्रबन्धन आदि से जोड़ कर देखा जाता है। स्पष्टत: भारत में सामाजिक न्याय का परिप्रेक्ष्य व्यापक है, जो लोक कल्याणकारी, नैतिक, प्रतिबद्ध, उत्तरदायी, संवैधानिक, संविधानवादी एवं समाजवादी शासन को सैद्धान्तिक ही नहीं, व्यावहारिक रूप में स्थापित करने के लक्ष्य से सम्बन्धित है। भारतीय संविधान ने भी सामाजिक न्याय के इसी आदर्श की पुष्टि की है। संविधान के द्वारा मानव-व्यापार, शोषण, बेगार एवं विभेद पर प्रतिबन्ध लगाया गया है तथा कमजोर एवं पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रावधान भी किये गये हैं। भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किये गये हैं, जो सामाजिक-आर्थिक संरचना में व्याप्त असमानताओं के उन्मूलन तथा कुछ वर्गों के सुरक्षा, कल्याण व न्याय से सम्बन्धित है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समानता और न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और आंग्ल-भारतीयों के लिए भाग-16, अनुच्छेद-330 से 342 तक के अन्तर्गत विशेष प्रावधान किये गए हैं। संविधान के प्रस्तावना में न्याय को स्वतन्त्रता, समानता एवं बंधुत्व की अपेक्षा अधिक उच्च स्थान प्रदान किया गया है तथा न्याय को सामाजिक न्याय के रूप में भी परिभाषित किया गया है। प्रस्तावना में तो सामाजिक न्याय को राजनीतिक न्याय से उच्चतर स्थान प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान के अनेक अनुच्छेदों में सामाजिक न्याय विषयक प्रावधानों को देखा जा सकता है जैसे-अनुच्छेद-15 (धर्म, मूल वंश, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध), अनुच्छेद-15(4) (राज्यों को सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के विकास से सम्बन्धित प्रावधान करने हेतु अधिकार प्रदान), अनुच्छेद-15(5) (पिछड़े वर्गों के शैक्षणिक उत्थान हेतु विशेष उपबन्ध), अनुच्छेद-16 (लोक नियोजन में अवसर की समानता), अनुच्छेद-16(3), (4) और (5) में सामाजिक न्याय हेतु विशेष प्रावधान, अनुच्छेद-17 (अस्पृश्यता निवारण), अनुच्छेद-338 (राष्ट्रीयत अनुसूचित जाति आयोग), अनुच्छेद-338(क) (राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग), अनुच्छेद-340 (पिछड़े वर्गों के स्थिति की जाँच हेतु आयोग की नियुक्ति), अनुच्छेद-350(B) (अल्पसंख्यक आयोग का गठन विषयक), अनुच्छेद-29 एवं 30 (अल्पसंख्यक हेतु प्रावधान), अनुच्छेद-334 (SC & ST के लिए विधायिका में आरक्षण) आदि। भारतीय संविधान के भाग-4 के अनेक अनुच्छेदों में विशेष रूप में सामाजिक न्याय विषयक प्रावधान किये गए हैं जैसे-अनुच्छेद-38 (लोक कल्याण की अभिवृद्धि हेतु सामाजिक व्यवस्था), अनुच्छेद-39(क) (समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता), अनुच्छेद-41 (लोक सहायता प्राप्ति का अधिकार), अनुच्छेद-42 (कार्य की न्याय संगत एवं मानवोचित दशाएँ), अनुच्छेद-46 (SC & ST की अभिवृद्धि), अनुच्छेद-45 (नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा)। इन संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त शासन के द्वारा अनेक संवैधानिक व वैधानिक प्रावधान किये जाते रहे हैं, ताकि देश में सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाया जा सके।

भारत एक लोक कल्याणकारी और समाजवादी राज्य है। इसलिए संविधान में सामाजिक न्याय और कल्याण के लिए अनेक प्रावधान किये गए हैं तथा उतरोत्तर रूप में संवैधानिक-वैधानिक प्रयास भी किये जाते रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लेकर वर्तमान तक सामाजिक न्याय के लिए शासकीय नीतियों को निर्धारित एवं क्रियान्वित की गई हैं तथा लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों को भी निर्धारित व क्रियान्वित किया गया है। भारतीय संविधान में प्रथम संशोधन, 1951 ई. करके आर्थिक-सामाजिक न्याय की दिशा में कार्य किया गया। 65वें संविधान संशोधन, 1990 तथा 86वें संविधान संशोधन, 2002; 94वाँ संविधान संशोधन, 2006; 89वें संविधान संशोधन, 2006 आदि से भारत में समाजिक न्याय को मजबूती मिली है, इसलिए इन शासकीय नीतियों को महत्वपूर्ण बताया

जा सकता है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से वर्ष 2014 तक अनेक लोककल्याणकारी कार्यक्रम मानव जीवन के विविध क्षेत्रों के लिए बनाये जाते रहे हैं, जिनसे गरीब लोगों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अल्पसंख्यक समाज के लोगों का कल्याण और विकास हुआ है अर्थात् उनके लिए सामाजिक न्याय की अवधारणा सार्थक हुई है। वर्ष 1947 में ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली में ही शुरूआत कर कम कीमत पर अनाज वितरण की व्यवस्था की गई। भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं, वृद्धजनों, दुर्बल लोगों तथा बीमार-लाचार लोगों के लिए अनेक कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया जाता रहा है। वर्ष 1947 से वर्ष 2014 के पूर्व के इन योजनाओं में अग्रलिखित प्रमुख हैं- ट्राइसेम योजना (1975 ई.), ड्वाकरा योजना (1982 ई.), न्यू मॉडल चर्खा योजना (1987 ई.), आवार्ड प्रशिक्षण योजना (1989 ई.) किशोर बालिका योजना (1992 ई.), महिला समृद्धि योजना (1993 ई.), इन्दिरा महिला योजना (1995 ई.), ग्रामीण महिला विकास योजना (1996 ई.), राज राजेश्वरी बीमा योजना (1997 ई.), स्वयंसिद्ध परियोजना (2001 ई.), जीवन भरती महिला सुरक्षा योजना (2002-2003 ई.), कस्तूरबा गाँ धी विशेष बालिका विद्यालय योजना (2003-2004 ई.), वन्दे मातरम योजना (2004 ई.), उज्जवला (2007 ई.), सबला (2010 ई.), राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005 ई.), राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम (2004 ई.), अंत्योदय अन्न योजन (2000 ई.), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986 ई.), वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (2001 ई.), सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001 ई.), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999 ई.), जवाहर रोजगार योजना (1989 ई.), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1980-81 ई.), राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (2005 ई.), इंदिरा आवास योजना (1985 ई.), मनरेगा (2005 ई.), राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (2013 ई.) आधारित योजनाएँ इत्यादि।

भारत में वर्ष 2014 में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ, जिसने वर्ष 2019 में अपने प्रथम कार्यकाल को पूरा करके द्वितीय कार्यकाल के लिए पुन: जन स्वीकृति को प्राप्त कर लिया है। वर्ष 2019 से पुन: नरेन्द्र मोदी के सफल नेतृत्व में केन्द्र सरकार कार्य कर रही है। मोदी सरकार के द्वारा भारतीय संविधान में संशोधन करके OBC आयोग को संवैधानिक दर्जा (102वाँ संविधान संशोधन, 2019 ई.) प्रदान किया गया। मोदी सरकार ने सामाजिक न्याय की दिशा में बहुत ही क्रांतिकारी कदम 103वाँ संविधान संशोधन, 2019 के रूप में उठाया है। 103वाँ संविधान संशोधन अधिनियम में उच्च वर्ग के गरीब लोगों को सरकारी नौकरियों और शिक्षा के क्षेत्र में 10 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। 104वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 2020 ई. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण को 25 जनवरी, 2030 तक अर्थात् 10 वर्षों के लिए और बढ़ाने का प्रयास करता है। स्पष्टत: मोदी सरकार ने सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने के लिए अबतक तीन महत्वपूर्ण संविधान संशोधनों (102वाँ, 103वाँ तथा 104वाँ) को पूरा किया है। नरेन्द्र मोदी सरकार ने भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों को निर्धारित एवं क्रियान्वित किया है, जिनका मानव जीवन व समाज के सभी क्षेत्रों से सम्बन्ध हैं। मोदी सरकार की सामाजिक न्याय व कल्याण विषयक अनेक कार्यक्रमों में कुछ प्रमुख का नाम लिया जा सकता है-दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (2014 ई.), स्वच्छ भारत मिशन (2014 ई.), सांसद आदर्श ग्राम योजना (2014 ई.), विरासत विकास और सम्बर्द्धन योजना (2015 ई.), बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ (2015 ई.), महिला शक्ति केन्द्र योजना (2017 ई.), उज्जवला योजना (2016 ई.), जन धन योजना (2014 ई.), स्किल इंडिया मिशन (2014 ई.), प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (2015 ई.), अटल पेंशन योजना (2015 ई.), प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (2015 ई.), अमृत योजना (2015 ई.), स्टैंड अपर इंडिया (2016 ई.), प्रधानमंत्री आवास योजना, ग्रामीण (2016 ई.), राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (2017 ई.), आयुष्मान भारत (2018 ई.), जननी सुरक्षा योजना (2019 ई.), दीनदयाल अंत्योदय योजना (2020 ई.) आदि।

निष्कर्ष:

स्पष्टत: मोदी सरकार ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को महत्व प्रदान करते हुए शासकीय नीतियों व लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों के निर्धारण और क्रियान्वयन की दिशा में सक्रियता के साथ कार्य प्रारम्भ किया है। प्रस्तावित शोध आलेख में मोदी सरकार के लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों का व्यापक अवलोकन एवं विश्लेषण अपेक्षित अपेक्षित है। इसके साथ मोदी सरकार के पूर्व की सरकारों की सामाजिक न्याय विषयक शासकीय नीतियों एवं कार्यक्रमों को नरेन्द्र मोदी सरकार के शासकीय नीतियों एवं कार्यक्रमों के साथ तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षित है।

संदर्भ सूची

1. जी. एच. सबीनः ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटीकल थ्योरी, चौथा एडीसन, ऑक्सफोर्ड एण्ड एल.बी.एच. पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1973
2. जॉन रॉल्स, ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पब्लिशर, 1971
3. बी.आर. पुरोहित, सोशल जस्टिस इन इंडिया, रावत पब्लिकेशनस, जयपुर, नई दिल्ली, 2003
4. लॉरेट्टा कॉपहर्ट एण्ड ड्रैगन मैलोवानोविक, सोशल जस्टिस थ्योरी, इसूज एण्ड मूवमेंटस, रावत पब्लिकेशनस, जयपुर, नई दिल्ली, 2018
5. सुरेश मनी त्रिपाठी, सोशल जस्टिस एंड इंडियन कंस्टीट्यूशन, क्रियेटस्पेस इंडेपेंडेंट पब्लिकेशन, 2015
6. संतोष कुमार, सोसाल जस्टिस एंड दि पोलिटिक्स ऑफ रिजर्वेशन इन इंडिया, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
7. एम. लकमीकन, भारत सव राजव्यवस्था, मैकग्रा हिल, 6वां एडीशन, चेन्नई, 2020
8. 'भारत, 2019'प्रकाशन प्रभोग, मिनस्ट्री ऑफ इन्फोरमेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, नई दिल्ली, 2019
9. टीम प्रभात प्रकाशन, गवर्नमेंट स्कीमस, मिशनस, कॉम्पैनस एंड प्रोग्राम्स इन इंडिया, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
10. नरेन्द्र मोदी, कन्वीनेंट एक्शनः कंटीन्यूटी फॉर चेंज लेक्सिस नेक्सिस पब्लिशर, नई दिल्ली, 2015
11. ई. बुक ऑफ मिन्स्ट्री ऑफ रूरल डेवलपमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2020
12. इंडिया.गोव.इन, नेशनल पोर्टल ऑफ इंडिया, माई गवर्नमेंट स्कीमस
13. जर्नल, मैगजीनस एवं समाचार पत्र - (i) दि हिन्दु, (ii) हिन्दुस्तान हिन्दी न्यूज पेपर, (iii) प्रतियोगिता दर्पण, (iv) दि दृष्टिकोण, (v) योजना, (vi) कुरूक्षेत्र, (vii) इकॉनोमी सर्वे ऑफ इंडिया

हिंदी एवं कन्नड़ नाटकों का अवलोकन

डॉ० श्रीधर हेगडे

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, मंगलूर विश्वविद्यालय की इकाई, फील्ड मार्बल के. एम. कार्यप्पा कालेज, मडिकेरी-571201 कोडगु, कर्नाटक

श्रीमती सविता पी०पी०

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कावेरी कॉलेज, गोनिकोप्पा कोडगु, कर्नाटक

कन्नड़ साहित्य हिंदी की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। कन्नड़ के प्राचीन कवि पंप, रन्ना आदि के ग्रंथों में नाटकीयता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक कन्नड़ साहित्य के पितामह श्री बी. एम. श्रीकंठय्या ने रन्न कवी कृत शगधायुद्धश काव्य के आधार पर नाटक की रचना की है। कवी रत्नाकर वर्णी(1560ई.) के 'भरतेश वैभव', गोविंद वैद्य कृत (1860) 'कंठीरव विजय' में वर्णित नाट्यशाला का परिचय कन्नड नाटकों का अस्तित्व का परिचायक है। सत्रहवीं सदी के ब्रजभाषा के कई नाटक प्राप्त होते हैं। किंतु खड़ी बोली हिंदी में नाटकों का प्रणम 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही दृष्टिगोचर होता है। कन्नड़ में उपलब्ध प्रथम नाटक श्री सिंगरार्य कृत शमित्रविंदा गोविंदा (1680) यह प्राचीन कन्नड़ में है।

खड़ीबोलो हिंदी और कन्नड नाट्य साहित्य को वास्तव में प्रेरणा संस्कृत नाट्य परंपरा से मिली हुई है। इन उभय भाषाओं के आद्य आधुनिक नाटक अनुवाद के रूप में ही मिलते हैं। खड़ीबोली हिंदी का सर्वप्रथम नाटक राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित 'शकुंतला' (1863 ई.) है, तो कन्नड के नवोदय काल में श्री तुरमरी शेषगिरिराव द्वारा अनूदित 'शकुंतला' (1869ई.) आधुनिक कन्नड का प्रथम नाटक है।

कन्नड का रंगमंच हिंदी रंगमंच की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित है, जब कि रंगमंच के अभाव में हिंदी को पारसी व गुजराती रंगमंच का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। उभय भाषाओं में सिनेमा, दूरदर्शन के कारण नाटक-मंडलियों का हास परि-परि होता जा रहा है, फिर भी कन्नड के लोकनाटक, यक्षगान, दोड्डाट, सण्णाट, दासराट आदि आज भी लोकप्रिय है। जन्मजात नट ए.व्ही. वरदाचार्य ने अपने साथियों के सहयोग से 'गुलेबकावली', 'सदारमे' पारसी ढंग के नाटकों को मंचीकृत कर जनप्रिय बनाया। उत्तर कर्नाटक में गरुड सदाशिवराय ने 'पादुका पट्टभिषेक', 'चौति चंद्रमा', 'विषम-विवाह', 'एन्चम् नायक' नाटकों के जरिये जनता में नाटकों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की। हिंदी में पृथ्वीराज कपूर ने इसी कार्य को करने का प्रयत्न किया।

जब अंग्रेज अपने शासन के साथ-साथ स्वसंस्कृति को फैलाने का प्रयास करने लगे, तब भारत भर में सांस्कृतिक पुनर्जागरण-युग प्रारंभ हुआ। जनता को जागृत करने के उद्देश्य से कई पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक अन्य विषय से संबंधित नाटक लिखे गये।

हिंदी नाट्य साहित्य के स्वरूप का विकास भारतेंदु युग (1859 ई- 1900ई.) से होता है। उनके कई नाटकों में समाजिक बुराइयों एवं धर्म के पाखंडियों पर तीखा व्यग्य मिलता है। भारत दुर्दशा में राष्ट्र भक्ति का स्वर मुखरित है। इस युग के उल्लेखनीय नाटक है - श्रीनिवासकृत रणधीर और प्रेम मोहिनी, राधाकृष्णदास कृत 'दु:खी बाला', बदरीनारायण चौधरी लिखित 'भारत सौभाग्य' आदि प्रमुख हैं।

जैसे भारतेंदु हरिश्चन्द्र के हिंदी-नाटकों ने नाट्य-साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया, वैसे कन्नड में बी.एम. श्रीकंठय्या ने ग्रीक दु:खान्त नाटकों की लीक पर अश्वत्थामन' 'पारसीकर, गदायुद्ध' आदि नाटक लिखकर आधुनिक नाटक साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया।

पौराणिक नाटक :

आधुनिक युग में उभय भाषाओं में पौराणिक नाटकों की परंपरा का भी विकास हुआ। रामायण, महाभारत, पुराण आदि कथाओं पर आधारित नाटकों के दर्शन इसकाल में होते रहे हैं। रामचरित सम्बन्धी नाटक हैं - शीतला प्रसाद कृत 'जानकी मंगल' (1868) गंगा प्रसाद का 'रामाभिषेक' (1910) सेठ गोविंददास कृत 'कर्तव्य' (1935) चतुरसेन शास्त्री' का 'मेघनाद' (1936) आदि उल्लेखनीय है। कन्नड़ में इस कोटि के नाटकों में एम.एस. श्रीकंटगौड कृत 'सीता स्वयंवरम्' (1902) सोसले अय्यशास्त्री रचित 'रामायण नाटक' (1904) बल्लावे नरहरिशास्त्री रचित नाटक (1949) आदि है।

कृष्ण-कथा सम्बन्धी नाटकों में 'रुक्मिणी परिणव' (हरिऔध), माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध (1918), सेठ गोविंददास रचित 'कर्तव्य' (1935) आदि हिंदी नाट्य-क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। कन्नड में बल्लावे हरि कृत 'रुक्मिणी स्वयंवर' (1921) वी. सीताराम रचित 'आग्रह' (1931), बी. पुट्टस्वामय्य कृत संत हुलमी' आदि प्रमुख हैं।

उभय भाषाओं के पौराणिक नाटकों के अध्ययन से यह विदित होता है कि हिंदी में कन्नड की अपेक्षा पौराणिक नाटकों की संख्या अधिक है। उभय भाषाओं के पौराणिक नाटकों का उद्देश्य पुराण के आदर्श गरित्रों को उपस्थित कर लोगों को उनका अनुकरण करने की ओर प्रवृत करना रहा है। प्रारंभ में कतिपय नाटकों में धार्मिक भावना और भक्ति भावना का आधिक्य रहा। पर कालन्तर में पौराणिक नाटकों में देवी चरित्रों में मानवीय सहज गुणों का आरोप किये जाने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। धर्म का स्थान देश प्रेम ग्रहण करता गया।

पौराणिक नाटकों के अध्ययन से यह विदित होता है कि शेक्सपीयर व अन्य नाटककारों की नाट्य-शैली को रूप से अनेक नाटककारों ने अपनाने का प्रयत्न किया है। फलस्वरूप दु:खान्त नाटक भी रचे जाने लगे।

गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित पौराणिक नाटकों के दर्शन हिंदी में होते हैं। उभय भाषाओं के कुछ पौराणिक नाटकों में गद्य-पद्य का प्रयोग भी मिलता है। पद्य का प्रयोग शायद लोक-नाटकों की परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है पर आजकल के पौराणिक नाटकों में गीत के आयोजन की न्यूनता पायी जाती है।

ऐतिहासिक नाटक :

हिंदी में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा भारतेन्दु कृत नीलदेवी (1881 ई.) नाटक से प्रारम्भ हुई। यह एक दु:खान्त नाटक है। भारतेन्दु युग में राधाकृष्णदास ने 'महारानी पद्मावती' (1882ई.) तथा 'महाराणा प्रताप' [1889 ई.), राधाचरण गोस्वामी ने सती चन्द्रावली' (1890ई.) तथा 'अमरसिंह राठौर' (1895 ई.) लाला ऑनिवासदास ने 'रेणधीर प्रेम मोहिनी' (1878 ई.) लिखकर ऐतिहासिक नाटक परम्परा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। पर उच्चकोटि के ऐतिहासिक नाटकों का प्रणयन जयशंकर प्रसाद और उनके समकालीन व उत्तरकालीन नाटकारों ने किया। 'राज्यश्री' (1915), 'विशाखा' (1921), 'अजातशत्रु' (1922), 'स्कंदगुप्त' (1929), चन्द्रगुप्त' (1931), 'ध्रुवस्वामिनी' (1932) प्रसाद के प्रमुख नाटक है।

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा के विकास में कई नाटककारों का सहयोग मिला। हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षाबन्धन' (1934), 'शिव-साधना' (1937), 'प्रतिशोध' (1937) 'कीर्तिस्तम्भ' (1955),

वृन्दावनलाल वर्मा के नाटकों में झांसी की रानी' (1948), 'पूर्व की ओर (1950), गोविन्द वल्लभ पन्त के 'राजमुकुट' (1955) 'अन्त पुर का छिद्र' (1940), चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'अशोक' (1935), रेवा' (1938), सेठ गोविदास के हर्ष 'शशिगुप्त' अशक कृत 'जय पराजय (1937), लक्ष्मी नारायण मिश्र रचित अशोक (1927) वृदावनलाल वर्मा कृत 'फूलों की बोली' (1947), 'पूर्व की ओर, जगदीशचन्द्र माथुर रचित कोणार्क(1951), सुदर्शन रचित 'सिकंदर' (1947), रामकृष्ण बेनीपुरी कृत 'अम्बपाली', आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत धर्मराज (1957) आदि उल्लेखनीय हैं।

कन्नड के ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का सूत्रपात श्री ए. एन. स्वामी वैकटाद्रि श्संतश ने (सन 1898- 1938) किया। कहा जाता है कि संत ने तेईस से अधिक नाटक रचे हैं, पर अब तक केवल छः ऐतिहासिक नाटक उपलब्ध हुए है। 'सुगुण गंभीर' (1921 - 22), 'विविक्रमराय' (1926), बेट्टद अरसुर पहाडी राजा' (1926), 'नरसिंह' (1927), 'मंत्रशक्ति' (1929) प्रमुख हैं। वृंदावनलाल वर्मा की तरह 'संत' भी इतिहासात्मक विशेषज्ञ थे। ग्रीक एवं शेकस्पीयर के दु:खान्त नाटकों का प्रभाव इनके नाटकों पर परिलक्षित होता है। फिर भी संस्कृत नाट्य-प्रणाली से परहेज नहीं। प्रसाद के नाटकों की भाँति इनके नाटकों में लम्बे सम्वाद कठिन-दृश्य-बिघाएँ, क्लिट भाषा का प्रयोग आदि के कारण नाटकों की अभिनेयता में बाधा पड़ी है।

कन्नड ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा के विकास में एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति, देवुडु नरसिंहशास्त्री आदि ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

एम. आर. श्री. के ऐतिहासिक नाटकों में 'कंठीरव विजय' (1946), 'धर्मदुरन्त' (1947) प्रमुख हैं। नाटककार ने आधुनिक समय की राजनीतिक, साम्प्रदायिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है। हिंदी में हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने नाटकों द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह काम एम. आर. श्री. ने अपने नाटकों द्वारा व्यक्त किया है।

कवि, कहानीकार तथा आलोचक होते हुए भी ऐतिहासिक नाटक-क्षेत्र में कई लेखकों ने सराहनीय योगदान दिया। यहाँ पर उल्लेखनीय नाटक हैं- राघवेंद्र मनसबदार कृत श्प्रतिज्ञा पालनश (1929), देवुडु नरहरि शास्त्री कृत 'मयूर' (1939), कडेगोडलु शंकर भट्ट रचित 'यज्ञकुण्ड' (1939), कुवेंपु कृत 'रक्ताक्षी' (1932), एम. नरसिंहमूर्ति का 'रत्नसिंहासन' (1933), डॉ. रं.श्री. मुगली रचित 'सेवा प्रदीप' (1936), श्रीरंग रचित 'परमेश्वर पुलवेशी' (1936), बी.एम.वेंकटराम रचित 'ओलसंच' अथवा ज्योति (1936), भुजंगराव कृत 'उद्धार' (1939), गरड सदाशिव राय रचित श्एल्वम् नायकश तथा 'कित्तूर चेन्नम्म', अ.न. कृष्णराव रचित 'राजपूत लक्ष्मी' (1945), मान, चौडव्य कृत 'चन्द्रगुप्त (1946), तिरुमल विद्वान वेंकटाचार्य रचित 'भोज प्रबंध' (1947), एम. गोविंद रेड्डी विरचित 'पृथ्वी संयुक्त दी. पुट्टस्वामय्य का 'गौतम बुद्ध' (1948). बी. गोपाल कृत 'नवशासन' (1949)

उभय भाषाओं के ऐतिहासिक नाटकों के अध्ययन से यह विदित होता है कि हिंदी का ऐतिहासिक नाटक साहित्य कन्नड के ऐतिहासिक नाटक साहित्य की अपेक्षा विषय चयन की दृष्टि से विशाल है। हिंदी में ऐतिहासिक

नाटकों की परंपरा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दृष्टिगोचर होती है तो कन्नड़ में बीसवीं सदी के तृतीय दशक के आरंभ में। हिंदी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'नीला देवी' है तो कन्नड़ में 'सुगुण गंभीर' को यह श्रेय मिलता है। अतीतकालीन वीर पुरुषों एवं विभिन्न प्रसंगों का निरूपण कर वर्तमान की समस्याओं और जनता का ध्यान आकृष्ट करना तथा उन समस्याओं का समाधान ढूंढना इन ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य रहा है।

हिंदी नाटककारों ने भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों, व्यक्तियों एवं प्रसंगों को अपनी नाट्य-कृतियों चित्रित किया है। कन्नड में अधिकतर नाटकों का विषय चयन कर्नाटक के इतिहास से सम्बन्धित है। बीसवीं शती के नाटक ग्रीक तथा शेक्सपीयर के दु:खान्त नाटकों से प्रभावित हैं।

राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक चित्रण के साथ-साथ नाटकीय कलात्मकता की ओर ध्यान देते हुए पाश्चात्य नाट्य-शिल्प से प्रभावित नाटककारों में चारित्रिक संघर्षों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति अधिक दिखायी देती है। हिंदी में प्रसाद के पश्चात् श्प्रेमीश, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि तथा कन्नड में एम. आर.श्री., श्रीनिवास, कुवेंपु आदि नाटककारों ने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के सार-सार को अपनाकर कलात्मक नाटक लिखे उभय भाषाओं की प्रारंभिक नाट्य-कृतियों में दीर्घ सम्बाद और स्वगत कथनों की जो प्रवृत्ति थी, वह धीरि-धीरे कम होती गयी। अधिकतर ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण और साहित्य की प्राण-गुंजार की अभिव्यक्ति सन्तुलित रूप में दिखायी देती है। हिंदी के अधिकांश वीर प्रधान नाटक अधिकतर सु:खान्त ही हैं। पर कन्नड़ में वीर प्रधान नाटक अधिकतर दु:खांत ही है। इसका कारण यह है कि कन्नड के नाटककारों पर हिंदी नाटककारों की अपेक्षा ग्रीक दु:खान्त नाटकों का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर होता है। कन्नड के दुखान्त नाटकों को श्दुरन्तश या श्रूद्र-नाटकश कहते हैं। उभय भाषाओं के अधिकतर ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय भावना अन्त सलिल की भाँति प्रवाहित हुई है।

सामाजिक नाटक :

हिंदी और कन्नड के सामाजिक नाटकों का सूत्रपात उन्नसवीं शती में ही हुआ परन्तु बीसवीं शती में इस कोटि के नाटकों में शनैः शनैः विषय, प्रवृत्ति और शिल्प की दृष्टि से कई परिवर्तन और प्रयोग हुए।

हिंदी में भारतेंदु के नाटकों में सामाजिक विषयों का निरूपण हुआ है। 'विद्या-सुन्दर' (1868), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873) और 'प्रेमयोगिनी' (1875) इनके सामाजिक प्रहसन हैं। भारतेन्दु युग में ही काशीनाथ खत्री, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनंदन त्रिपाठी के नाटकों में विधवा-समस्या, बाल-विवाह, गोहत्या एवं अन्य सामाजिक बुराइयों का चित्रण मिलता है।

कन्नड का प्रथम सामाजिक नाटक सूरी वेंकटरमण कृत 'इगप्प हेगडे प्रहसन' (1887) है। शेषाचार्य कृत 'सुवदना भास्कर' (1919) तथा गरुड सदाशिवराव कृत 'रायर सोसे', संसार नौका (1922) 'विषम विवाह' आदि सामाजिक नाटक बीसवीं शती के पूर्वार्ध में लिखे गये।

बीसवीं शती में इब्सन, बर्नाड शा, शेरिडन, मेटरलिक तथा गालसवदर्दी आदि विख्यात नाटककारों से प्रभावित होकर उभय भाषाओं के नाटककारों ने सामाजिक समस्याओं से सम्बंधित नाटक भी रचे। सामाजिक समस्या-प्रधान नाटकों में यौन समस्याओं को अधिक महत्व दिया गया। साथ ही आंतरिक या मानसिक इंद्र के चित्रण को भी स्थान मिला।

हिंदी में लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटकों में यौन समस्याओं का चित्रण विशेष रूप से किया है। सेठ गोविंद दास, उपेंद्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, हरि कृष्ण प्रेमी, गोविंद बल्लभ पंत आदि ने समाज की विभिन्न समस्याओं का प्रभावशाली चित्रण किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या प्रधान नाटक है- सन्यासी, राक्षस का मंदिर(1931) मुक्ति का रहस्य(1932), राजयोग(1939) सिंदूर की होली (1934 आधी रात(1937) आदी के नाटकों में फ्रॉयड की तरह यौन समस्याओं को महत्व मिला है।

सेठ गोविदास ने राजनीतिक, राष्ट्रीय, नैतिक तथा अन्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने कुछ नाटको में किया है। उनके प्रमुख सामाजिक विषय-संबंधी नाटक है- 'कुलीनता' (1940), 'सेवापथ' (1940), दु:ख' (1946), 'संतोष कहाँ' (1945), 'महत्व किसे' (1947) आदि।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' एक सफल सामाजिक नाटककार हैं। उनके प्रमुख सामाजिक नाटक हैं - 'स्वर्ग की झलक' (1939), 'छटा बेटा' (1940), कैप (1945), 'अलग-अलग रास्ते' (1955), 'अंजोदीदी' (1955), 'अंधी गली (1952) आदि। अर्थ लोलुपता, कामुकत्ता, विवाह समस्या, नारी समस्या, अविभक्त कुटुंब आदि पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाले ये नाटक रंगमंच की दृष्टि से भी सर्वोत्तम हैं।

वृंदावनलाल वर्मा कृत 'राखी की लाज' (1943), 'बाँस की फाँस' (1947), 'खिलौने की खोज' (1950), 'केवट' (1951), 'नीलकंठ' (1951), 'सगुन' (1951), 'देखादेखी' (1952), गोविंद वल्लभ पंत कृत 'अंगूर की बेटी' (1937), 'सिंदूर की बिंदी' (1937), पृथ्वीनाथ शर्मा रचित 'दुविधा' (1937), 'अपराध' (1939), 'माथ' (1944), उदयशंकर भट्ट कृत 'कमला' (1939), 'मुक्तिपथ' (1944), 'क्रांतिकारी' (1953), जगन्नाथ मिलिद कृत 'समर्पण' (1950), रामनरेश त्रिपाठी रचित 'पैसा परमेश्वर' (1953), भगवती चरण वर्मा काश्तुम्हे खा गया' (1955), 'रातरानी', 'मादा कैक्टस' (1957), हरिकृष्ण 'प्रेमी' रचित 'छाया', प्रेमचंद कृत प्रेम की बेटी' (1913), चतुरसेन शास्त्री रचित सगध्वनि' (1952), जगन्नाथ नलिन कृत 'अवसान' आदि सामाजिक नाटक है।

हिंदी नाटकों की तरह कन्नड़ में भी सामाजिक नाटकों द्वारा वैचारिक क्रांति हुई। कन्नड़ के प्रसिद्ध नाटककार टी.पी कैलासम, प्रो आर. वी. जागीरदार। अध्य रंगाचार्य, श्री रंग जैसे नाटककारों पर इब्सन, बर्नार्ड शा, मटेर लिंक जैसे महान व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा।

कन्नड़ में सामाजिक समस्यात्मक नाटकों का सूत्रपात करने का श्रेय टी.पी कैलासम को मिलता है। आलोचकों ने कैलासम् को कन्नड़ नाट्य साहित्य का कैलाश पर्वत कहा है। 'सूले' (वेश्या 1929) 'ताली कटुक्कू कूलीने' (1941) उनके श्रेष्ठ सामाजिक नाटक है। इनमें वेश्या समस्याएं एवं काम संबंधी समस्याओं का प्रस्तुतीकरण हुआ है। इब्सन और शा की भांति इनकी शैली में हास्य, व्यंग्य और विडंबना के दर्शन होते हैं।

नाटककार श्रीरंग ने सामान्य जनजीवन की समस्याओं का समाधान बौद्धिक दृष्टिकोण से खोजने का प्रयत्न किया है। 'मुक्कण्ण विराट पुरुष' (1929), 'उदर वैराग्य' (1930), 'वैद्यराज' (1931), 'दरिद्र नारायण' (1934), 'संध्याकाल' (1939) 'संसारिक कंस' (1945) 'जरासंधि' (1948), 'केळु जनमेजय', 'शोकचक्र', 'जीवन जो खाली इनके प्रमुख नाटक है कि नाटकों के संवादों में ऑस्कर वाइल् का बाकू चातुर्य और विडंबना में बर्नार्ड शा का अनुकरण पाया जाता है।

डॉ शिवराम कारण चर्चित 'गर्भगुडी'(1932), हेगादरेनू नावु मुखंडराईतू'(1937), नाटक (1937) 'बित्तिद मेले'(1940) (चि. सदाशिचय कृत 'मांगल्य' 'विधि' (1938), 'ग्रहचार' गोकाक 'विनायक'' रचित 'जननायक' (1939), 'युगांतर' (1947), अ.न. कृष्णराव मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास' रचित 'मंजुला' (1930), सी.के. वेंकटरामध्य रचित नम्म समाज'(1931), सुंदरी' (1934), तारानाथ कृत 'मोहनास्र' (1931), गोविंदराव कृत 'देवर बागिलु'(1932) श्री रमानंद कृत 'कलकी' (1974), हरिदास विरचित 'द्रोही' (1935), के. शेटी रचित व्यभिचारिणी (1936), संशय पिशाची' (1936), एम.व्ही. सीतारामस्य कृत 'हूवीन आसे'(1930), डॉ. र श्री. मुगली कृत नामधारी'. '' (1939), लक्ष्मणराय रचित 'बाय बंडाय' (1950), 'तिरूक का उद्धार (1949), बेल्तंगडी लक्ष्मणराव कृत ''भाग्यलक्ष्मी'' (1949), के.एन.राम रचित 'मगू' (1949), लिगसूर विट्ठलदास रचित ' देवर हरके' (1950) उल्लेखनीय नाटक है।

कुल कहा जा सकता राष्ट्रीयता की भावनाओं सुधारवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते इस में कन्नड सामाजिक प्रहसन भाषाओं के अधिकांश नाटकों में समाज अनाचार, आर्थिक विद्यालय, नेताओं स्वार्थपरता, समस्या, आदि विचार का प्रतिपादन, जाति-पाँति, अछूत समस्या, आर्थिक वैषम्य, मालक मजदूर संघर्ष ,घूसखोरी आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। उभय भाषाओं के सामाजिक नाटकों में समाज के बहुरूपी चित्र विद्यमान है।

अन्य विषय-संबंधी नाटक :

स्वातंत्र्य आंदोलन के फलस्वरूप देशभर में एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई। स्वातंत्र्य और राष्ट्रप्रेम की भावना से युक्त अनेक नाटक रचे गये हैं। हिंदी में भारतेंदु, बदरीनारायण प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास तथा कन्नड में बैंकटराम, दोरेस्वामी अय्यंगार, कांतप्प शेट्टी, रेणुकाचार्य, रामकृष्णराव जैसे नाटककारों ने इस क्षेत्र में पर्याप्त सहयोग दिया है।

जीवन परक नाटक :

उभय भाषाओं के नाटककारों ने समाज सुधारक, संत और महात्माओं की जीवनी पर आधारित नाटक भी रचे है। जीवनीपरक नाटक के सृजन के लिए जिस उच्चटि की कलात्मकता चाहिए, उसका अभाव अधिकतर हिंदी के जीवनीपरक नाटकों में दिखायी देता है। इस साहित्य के नाटकों में पात्र अविश्वसनीय तथा अति मानवीय प्रतीत होते है। किन्तु रामदास भारद्वाज का श्सोरो का सन्तश (1950), सुदर्शन रचित 'दयानंद' (1927), लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत श्कवि भारतेंदुश (1955), कलात्मक दृष्टि से उत्तम कृतियाँ हैं। कन्नड के अधिकतर जीवनीपरक नाटकों में आध्यात्मिक रुझान होने पर भी घटनाओं तथा चरित्र की योजना पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस दृष्टि से डॉ व्ही.जी कृत 'विद्यारण्य विजया' (1928) माधवाचार्य कृत मीराबाई (1940) कंठी सिद्धलिंगय्या रचित वीरांगिणी महादेवी(1941) अ.न. कृष्णराय कृत 'बसवेश्वर' आदि नाटक उल्लेखनीय है।

प्रतीक नाटक

अमूर्त भाव या अचेतन को कथा का आधार बनाकर मानवीकरण या सचेतन रूप मे अभिव्यक्त कुछ नाटक दोनों भाषाओं मिलते हैं। इस कोटि नाटकों कथानक प्रतीकों के माध्यम से गढ़ा जाता है। हिंदी में प्रसाद कृत 'कामना', भानुचंद्र 'चंद्रिका' (1933), सुमित्रानंदन कृत 'ज्योत्सना' (1934) गोविंददास 'नवरस' (1941), लक्ष्मीनारायणलाल 'सुंदर रस' (1959) उत्तम नाट्य-कृतियाँ हैं। कन्नड प्रतीकात्मक नाटकों का सृजन हिंदी की अपेक्षा कम ही है। लघु नाटकों के क्षेत्र में 'कुर्वेपु' कृत 'बलिदान' (1928), शिवराम कृत 'रक्तकाणिके', 'हिरियदेवरु' (1936) गिरीश कर्नाड रचित 'हयवदन' उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हिंदी और कन्नड पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक, गीतिनाट्य अनेक विषयों पर प्रकार के नाटक रचे गये। परंतु समस्या इस युग की विकसित प्रौढ़ धारा रही है। स्वतंत्र्य-प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न भाषाओं उत्कृष्ट नाटक कुर्तियों के अनुवाद भी हुए और आज भी उन्हें भाषाओं का नाट्य साहित्य अनेक रूपों में विकसित हो रहा है पाश्चात्य प्रभाव को वह भाषाओं के नाटकों ने केवल शिल्प की दृष्टि से अपनाया विषयतत्व और विचारधारा सर्वथा भारतीय ही रही है।

सन्दर्भ

1) हिंदी नाटक उद्भव और विकास डॉ: दशरथ ओझा- राजपाल एंड संस 1984 स्वतंत्रोत्तर

2) हिंदी नाटक : विचार तत्व, अवधेश गुप्ता 1984
3) प्रसाद युगीन हिंदी नाटक- डॉ भगवती प्रसाद शुक्ल, 1971
4) कन्नड नाटक परंपरे मत्तू प्रयोग: जी एस् शिवरूद्रप्पा . प्रसारांग, बैंगलुरू. वि.वी.बेंगलुरू
5) नाट्यशास्त्रद अध्याय संग्रह- श्रीरंग 1982,
6) रंग अन्वेषणे - नीनासम् - रंग शिक्षण केंद्र 1982

कर्नाटक नाटक अकादमी बैंगलुरू

i) 1 जागतिकरण- डा प्रभावती 2 कानूरु हेग्गडती 3) पाशुपतास्त्र- बेलगेरी कृष्णशास्त्री 4) नाटक साहित्य- डॉ श्रीधर हेगडे 5) ययाति- गिरिश कार्नाड) कुवेंपू द्वारा रचित कृतियां 6)बिरूगाली- कुवेंपू -1930 7) महारात्रि-कुवेंपु-1932 8) स्मशान कुरूक्षेत्र मत्तू महारात्रि-1930 9) जलगार-कुवेंपु10) शूद्र तपस्वी 11) बलिदान11) चित्रगदे 12) द्रौपदीय श्री मुडी13) अमलन कते 14) मंत्र मांगल्य

ii) रूक्मिणी हरण-केरूर वासूदेवाचार्य 2) हेब्बेरलू 3) काकनकोटे, तालीकोटे- मास्ती 4) गंडू केडली- जी.पी. राजरत्नम 5) मंडोदरी - सी के वेंकटरामय्या 6) आह्वान- निरंजन 7) कल्लोल- अनुपमा निरंजन 8) अहिल्या गोकुल- पू.ती.न 9) अश्वथामन् , गदायुद्ध नाटकं - बी.एम् श्री 10) अश्वथामन् , गदायुद्ध नाटकं-डी.वी. जी 11) अक्कव्व- रं श्री मुगली12) अग्रह- वी सीतारामय्या 13) युगांतर- वी कृ गोकाक14) संक्रांति, तेरेगलू-पी.लंकेश 15) बेट्टदरसू- संस 16) सत्तवर नेरलू-जी.बी. जोशी 17) टोल्लूगट्टी, कीचक- टी.पी.कैलासं

पंत के काव्य में विविध दर्शन का प्रभाव

गीता पोस्ते

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, कर्नाटक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, बीदर

भारतीय साहित्य में दार्शनिक चिंतन की पृष्ठभूमि पर्याप्त समृद्ध रहा है। आदि-ग्रंथ वेद से ही इसका विकास सूत्र स्पष्ट होने लगता है। तदुपरान्त साहित्य में इस चिंतन की एक परंपरा-सी दिखाई देती है जो दर्शन अनुभूत एवं साक्षात्कार सत्य की युक्ति-युक्त व्यवस्था के रूप में स्थापित है। तभी तो हिन्दी के छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की अन्तर्मुखी दृष्टि स्वत: दर्शन का रूप धारण कर लेती है। दर्शन की ओर सहज प्रवृत्ति के कारण ही वह चाहता है कि 'अन्तर जग ही बहिर्जगत् बन जावें। बहिर्मुखी चेतना के सामने अन्तर्मुखी दृष्टिकोण को कुण्ठित होते देखकर वह चिंतित स्वर में कहता है-

> बहिर्चेतना जाग्रत जग में, अन्तर्मानव निद्रित,
> बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अन्तर्जीवन मूर्च्छित मृत।[1]

इसलिए कवि अन्तर्बाह्य जीवन पर विचार कर अन्तर्जीवन को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने पर बल देता है। पंत में दर्शन के अनुरूप चिंतन की प्रवृत्ति है। द्रष्टा की दृष्टि-सूक्ष्मता के कारण ही वे अचिर में चिर के अन्वेषण को विश्व का महत्वपूर्ण दर्शन घोषित करते हैं। समग्र जीवन का दर्शन-मिश्रित काव्यात्मक मूल्यांकन करते हुए पंत लिखते हैं-

> स्वर्ग शैशव स्वप्नों का जाल,
> मंजरित यौवन सरस रसाल।
> प्रौढ़ता, छाया वट सुविशाल,
> स्थविरता, नीरव सायंकाल।।[2]

स्पष्टत: परम भावुक कवि तथा चिंतनशील पंत की काव्यधारा, उनके विकासशील कवि-मानस की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई परिणति के चित्रों को उपस्थित करती है। शैशव से प्रौढ़ोत्तर तक की आयु में उनके कोमल ग्राहयित्री प्रतिभा से संपन्न मानस-चित्रपट पर अनेक वैविध्यपूर्ण चित्र अंकित होते रहे हैं। कवि की कारयित्री प्रतिभा ने इन सब चित्रों, बिम्बों और भावनाओं को अपनी कृत्तियों के पर्दे पर चलचित्रों की भाँति उपस्थित किया है। अत: उनके काव्यग्रंथ सहृदय पाठकों के लिए केलेडेस्कोप के समान नये तथा परिवर्तित होने वाली मान्यताओं और प्रभावों की छटा दिखलाते हैं। अपने काव्य में उपस्थित विविध दार्शनिक भावों के संदर्भ में कवि ने भारतीय व पाश्चात्य चिंतनधारा के महत्व को स्वीकार करते हु 'ज्योत्स्ना' के एक पात्र देवव्रत के स्वर में कहता है- ''जिस प्रकार पूर्व की सभ्यता अपने एकाकी आत्मवाद और आध्यात्म की सभ्यता अपने एकाकी प्रगतिवाद, विकासवाद और भूतवाद के दुष्परिणाम से विनाश के दलदल में डूब गयी। पश्चिम के जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के आध्यात्म प्रकाश की आत्मा भरकर एवं आध्यात्मवाद के अस्थिपंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रंग रूपों को भरकर हमने आनेवाले युग की मूत्ति का निर्माण किया है।'' कवि मानवता का कल्याण चाहता है। तदर्थ वह अपने लिए यहाँ तक कहता है कि- ''भारतीय ही नहीं बल्कि मैं हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर''[3], फिर भी यह सत्य है कि पंत में भारतीयता का अंश अन्य तीनों छायावादी कवियों की अपेक्षा कम है। संभवत: इसी कारण डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है कि- ''जहाँ दावा किया है वहाँ भी अभिव्यक्ति में अंत:करण का सहज वेग नहीं।''[4] पंत द्वारा अपने आपको शुद्ध भारतीय मान लेने पर भी उसमें जो संदेह उत्पन्न होता है वह इसी कारण कि वे बाह्य प्रभावों को शीघ्र ग्रहण करते

रहे हैं। पंत-काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कवि अनेक विचारकों से प्रभावित रहा है। स्वयं कवि के शब्दों में- ''मैं अपने युग, विशेषत: देश की, प्राय: सभी महान विभूतियों से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है। वीणा-पल्लव काल में मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है, युगान्त और बाद की रचनाओं में महात्माजी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स के दर्शन का, महात्माजी के देह-निधन के बाद की रचनाएँ जो युगपथ में संगृहित है, उनके प्रति मेरे हृदय की श्रद्धा का परिचायक है। कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति भी मेरी दो रचनाएँ युग पथ में प्रकाशित हो रही है। किन्तु इन सब में जो एक पूर्ण एवं संतुलित अंतर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्त्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन में मिली, और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व-संक्रांति-काल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ। (मैंने अपने समकालीन लेखकों तथा विशिष्ट व्यक्तियों पर समय-समय पर स्तुति गान लिखने में सुख का अनुभव किया है। श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ रचनाएँ, भेंट-रूप में, स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि तथा युगपथ में पाठकों को मिलेंगी।''[5]

इस प्रकार पंत की काव्य-चेतना के विकास में अनेक परिवर्त्तन दिखाई देते हैं। व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से अनेक मनीषियों में उन्हें प्रभावित किया है। उन समस्त प्रभावों को अपने में आत्मसात करते हुए कवि का साहित्यिक जीवन विकसित हुआ है। पंत-काव्य के विकास क्रम हैं जिसके आरंभ में सौन्दर्यभावना की प्रधानता है और अंत में चिंतन और बुद्धि की। किन्तु कोई भी रचना दार्शनिक विश्लेषण की सीमाओं से पूर्णत: बाहर नहीं है।

दार्शनिक प्रभाव के आधिक्य के कारण पंत के काव्य में बौद्धिकता का प्राचुर्य दिखाई देता है। उनकी वैचारिक दुरूहता साहित्यिक सरसता को पुष्ट नहीं करती। वस्तुत: काव्य में व्यक्त विचारधारा तभी सफल स्वीकार की जा सकती है जबकि पाठक उससे सहज भाव से तादात्म्य कर सके, वह उसे आरोपित प्रतीत न हो। पंत के काव्य में विद्यमान बौद्धिकता से पाठक सहज रूप से तादात्म्य नहीं कर पाता। कारण स्पष्ट है, एक विचार की प्रशंसा मात्र सहृदय पाठक को प्रभावित ं कर भी नहीं सकती। विचारक कवि पंत ने बौद्धिकता तथा हार्दिकता को यथार्थ मान लिया है। उनके अनुसार ''बौद्धिकता हार्दिकता का दूसरा रूप है, वह हृदय की कृपणता से नहीं आती।''[6] कवि की 'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय व्यापार' उक्ति इसी विचार को पुष्ट करती है। कवि बच्चन ने इस बौद्धिकता को उपयुक्त स्वीकार किया है। उनके अनुसार ''जिसके लिए कवि अन्यथा लेखक ने साधना की है उसका आनंद लेने के लिए पाठक को भी साधना करनी पड़ती है। कविता से सहज ही आनंद प्राप्त करने की माँग बढ़ती जा रही है- बस, कविता तो ऐसी हो कि तीर की तरह दिल पर चोट करे। यह अस्वस्थ प्रवृत्ति है। पंत जी की कविता साधना माँगती है।''[7]

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पंत की रचनाओं में बौद्धिकता है और इस कारण वह पर्याप्त बोझिल हो गयी है। इस बौद्धिकता का एक मुख्य कारण है- कवि द्वारा विविध दर्शन-ग्रंथों का विस्तृत अध्ययन। इस काव्य में अध्ययन जन्य चिंतन को देखकर ही डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है कि-''पंत ने जीवन का भोग कम किया है और अवलोकन अधिक।'' इसलिए उनके जीवन-दर्शन में अनुभूत गहराई का अभाव है। पंत काव्य में लोक-कल्याणमय दार्शनिक चिंतन, उज्ज्वल, रंगीन कल्पना, मधुर सौन्दर्य भावना की विशेषताएँ विद्यमान है। इसके आधार पर डॉ॰ नागेन्द्र का विचार यह है कि -ये तीनों मिलकर एक मधुर बौद्धिक शांति को जन्म देते हैं। मैंने यहाँ बौद्धिक-शांति शब्द का प्रयोग जानबूझकर इस आशय से किया है कि यह शांति आध्यात्मिक शांति से भिन्न है। आध्यात्मिक शांति का अर्थ है शुद्ध आत्मानुभूति की स्थिति। और इन कविताओं के आस्वादन में बौद्धिक चेतना का सर्वथा लोप नहीं होता। बौद्धिक शांति से मेरा अभिप्राय उस शांति से है जो बौद्धिक विश्वास के ग्रहण से प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में यह कहिए कि आध्यात्मिक विश्वासों को बुद्धि द्वारा ग्रहण कर लेने से प्राप्त होती है।''[8]

मानवतावादी विचारधारा से आद्यान्तपुष्ट कवि पंत की दार्शनिक-चेतना पर पड़ने वाली विविध प्रभावों को हम निम्न रूपों में अवलोकित कर सकते हैं-

वेद तथा उपनिषद्

दर्शन के संदर्भ में कवि पंत ने भारतीय चिंतनधारा का महत्व स्वीकार करता है। उस महत्व को न समझ सकने वाले आज के युवक पर व्यंग्य करते हुए पंत कहते हैं- ''साधारणतया हमारा बुद्धिजीवी युवक जो विदेशी सभ्यता या संस्कृति से बाहर ही बाहर प्रभावित है और अपने देश के विराट् ज्ञान-भंडार से प्राय: अपरिचित - यह समझता है कि भारतवर्ष की समस्त आध्यात्मिक और दर्शन पिछली सामंती परिस्थितियों का प्रकाश मात्र है, जिसकी इस युग में कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है।''[9] आगे वे स्पष्ट करते

हैं ''किन्तु बाहर की इस काई को हटा देने के बाद भारत के अन्तश्चेतन मानस में जो कुछ शेष रहता है, उसके जोड़ का आज के संसार में कुछ भी देखने को नहीं मिलता, और यह मेरा अतीत का गौरव गान नहीं, भारत के अपराजित व्यक्तित्व के प्रति विनीत श्रद्धांजलि मात्र है।''[10]

पंत ने वेद-उपनिषदों का पर्याप्त अध्ययन किया है। फलतः उनके साहित्य में इनका प्रभाव भी पर्याप्त सीमा तक दिखाई देता है। कहीं-कहीं तो कवि पर आर्ष-प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है। उसका दृष्टिकोण आर्षवाणी से अनुप्राणित है। पंत अन्तर्नभ में जिस दिव्य स्फुरण की चर्चा करते हैं वह भी आर्ष-मंत्रों से प्रभावित है। वे स्वयं स्वीकार करते हैं-

आर्ष मंत्रों के ज्योति तरंगित में उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अन्नर्नभ में दिव्य स्फुरण भर।।[11]

इसी दृष्टिकोण के कारण कहीं-कहीं कवि कतिपय वैदिक मंत्रों का अनुवाद तक प्रस्तुत कर देता है यथा- 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृत गमय' का ही पद्यमय अनुवाद करते हुए लिखा है-

असत् तमस के मृत्यु सलिल में हमें पार कर
सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो, जीवन ईश्वर।[12]

उपनिषदों में निरूपित विद्या-अविद्या संबंधी मन्तव्य[13] का ही अनुवाद-सा प्रायः उन्हीं शब्दों द्वारा करते हुए पंत लिखते हैं-

अंध तमस में गिरते वे जो मात्र अवद्या में रत
भूरि तमस में पड़ते वे जो विद्या में रत सतत
विद्याऽविद्या अभय एक में, भेद जिन्हें यह अवगत
विद्यामृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तिरते अविरत।।[14]

'स्वर्ण किरण' की 'द्वा सुपर्णा' कविता के पूर्वार्द्ध में तो उपनिषद् के एक मंत्र[15] का ही अनुवाद किया गया है। उपनिषदों में त्याग-भाव, से संसार का भोग करने की बात कही गयी है तथा गीता में नश्वर शरीर में आत्मा का दिव्य-संदेश दिया गया है। दोनों को एक साथ ग्रहण करते हुए पंत लिखते हैं -

क्षणभंगुर यह तन, आत्मा रे मुक्त चिरंतन।
ईश्वर में जग प्राप्त, त्याग से भागो भव जन।।[16]

इस प्रकार कवि पंत ने अपने काव्य में वेद तथा उपनिषद् की संपूर्ण उदात्तता को वाणी प्रदान किया है।

पौराणिक प्रभाव

पंत पर भारत की कतिपय पौराणिक मान्यताओं का भी प्रभाव दिखाई देता है। 'सृजन शक्तियाँ' कविता में समस्त दिव्य-शक्तियों का परिचय देते हुए कवि ने उसका अभिवादन किया है। माहेश्वरी, लक्ष्मी, सरस्वती, काली, आदिति, दिति, इला, वाणी, दक्षिणा, शर्मा आदि विविध शक्तियाँ की स्तुति की है।[17] श्री अरविन्द ने उनमें से प्रथम चार को भगवती माता से सम्बद्ध स्वीकार किया है। उनके अनुसार (महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती) ये चार शक्तियाँ माताजी के विश्व देता हैं जो जगत लीला में स्थायी रूप से रहते हैं, ये उन महत्तर देवगणों के बीच अवस्थान करती है जिनकी ओर लक्ष्य करके ही यह कहा गया है कि इस त्रिविध-जगत की शक्ति के रूप में माताजी वहाँ (अधिमानस लोक में) देवताओं से ऊपर अवस्थान करती है।

देवगण जैसा कि पहले कहा जा चुका है मूलतः और तत्त्वतः भगवान की स्थायी अंश विभूतियाँ हैं, जिन्हें पर्रापरा मा आद्या शक्ति ने परमात्मास के अंदर से बाहर प्रकट किया है, अपने विश्वगत कर्म में देवगण भगवान की शक्तियाँ और व्यक्ति रूप है और विश्व ब्रह्माण्ड के अंदर उनमें से प्रत्येक का अपना विश्वगत स्थान, अधिकार और कार्य है।''[18] कुछ स्थलों पर पंत पर शाक्त प्रभाव दिखाई देता है, यथा-

देवि, तुम्हारे सित गति-प्रिय पद छूकर,

बनता निष्क्रिय जीवन-शव शिव चेतन।[19]
जड़ शव हो फिर से शिव, चित्त शक्ति समन्वित।[20]

योग-दर्शन का प्रभाव

कवि औपनिषदिक योग-दर्शन से भी प्रभावित है। इसी आधार पर वह मुक्ति की अवस्था को सत्-चित्-आनंद से युक्त स्वीकार करता है-

वहाँ सत् का भास रहता,
वहाँ चित्त का लास रहता।
वहाँ चिर उल्लास रहता,
यह बताता योग-दर्शन।।

इन्दु द्वारा ज्योत्स्ना को मनोगति से आकर मिलने का यही आधार भी है, ''जब भी तुम मेरा स्मरण करोगी, मैं मनोगति से आकर तुमसे मिलूँगा, प्रिय।''[21]

कहीं-कहीं पंत में बुद्ध के अनुरूप विचारधारा दिखाई देती है, यथा- इच्छा को मानव दु:ख का कारण बताते हुए उसके निवारण के उद्देश्य से वे कहतें हैं-

इच्छा मानव दु:ख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण,
तो जग जीवन हो फिर पावन।[22]

महात्मा बुद्ध की भाँति पंत ने[23] अतिवादी दृष्टियों का निषेध किया है। कवि की निम्नोक्ति पर भी धम्मपद का प्रभाव दिखाई देता है-

गाँवों के पशु तजते ज्यों बन पशुओं का पथ
पाप कर्म तुम छोड़, रहो सत्कर्मों में रत।

लेकिन पंत में सामान्यत: बौद्ध प्रभाव की झलक गहराई नहीं पकड़ सका।

आधुनिक भारतीय विचारकों में से कवि स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा महात्मा गाँधी से प्रभावित रहा। विदेशी मनीषियों में से उन्हें मार्क्स ने प्रभावित किया। लेकिन उन पर अंतिम प्रभाव श्री अरविन्द का ही पड़ा।

विवेकानन्द का प्रभाव

कवि स्वीकार करता है कि वीणा पल्लव काल की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव है। अपनी संतुलन प्रधान व्यक्तियों के लिए कवि उनका आभारी है। कुछ वैसी उक्तियों का उद्धरण देते हुए वे कहते हैं- ''.......ऐसा कहकर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन - ''मैं यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन-दर्शन चाहता हूँ'' की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ।''[24]

रवीन्द्रनाथ का प्रभाव

पंत पर रवीन्द्र का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। प्रारंभिक अवस्था में रवीन्द्रनाथ की कुछ पुस्तकों का भी कवि ने विशेष अध्ययन किया है।''[25] रवीन्द्र की प्रभाव सूचक एक कविता 'मम जीवन की प्रमुदित गात' वीणा में संकलित है। स्वयं कवि स्वीकार करता है कि गीतांजलि के 'अन्तर मम विकसित कर' से प्रभावित होकर तदनुरूप भाव की रक्षा के उद्देश्य से कवि ने सप्रयास इस कविता की रचना की है।[26] इसी प्रकार कवीन्द्र के 'आभार बंधन माँझे त्नभिव मुक्तिर स्वाद' की भाँति पंत भी अनुभव करते हैं-

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन
है सजह मुनि का मधु क्षण।
पर कठिन मुक्ति का बंधन।[27]

गाँधीवाद

महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा भावना को कवि ने अनेक प्रशस्ति गीतों में व्यक्त किया है। 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता में गाँधी ने 'शुद्ध बुद्ध आत्मा' 'चिर पुरण' तथा 'चिर नवीन' का रूप देखते हुए उनके सत्य अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास प्रकट करता है-

बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने बानों से मानवपन।[28]

महात्मा गाँधी के देहावसान पर कवि अनेक कविताओं में उन्हें अपने श्रद्धा-प्रसून अर्पित करता है।[29] 'रजत शिखर' में 'शुभ्र पुरुष' काव्यरूपक में गाँधीजी की स्तुति की है। स्वयं कवि के अनुसार ''शुभ्र पुरुष' महात्मा जी के तप:पूत व्यक्तित्व का शुभ्र प्रतीक है। महात्माजी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत संस्करण है।'' इन जन-मन-गण अधिनायक गाँधीजी से कवि बहुत प्रभावित रहा है। संपूर्ण लोकायतन में गाँधीजी को लोकनायक मानकर उनके सिद्धांतों के अनुकरण को ही आदर्श जीवन प्रणाली स्वीकार किया है। साधना, कर्म, शांति, मानवता आदि के लिए समष्टिपरक दृष्टिकोण कवि बापू की वाणी में प्रस्तुत करता है-

शांति हिमालय की चोटी पर नहीं मिलेगी
उसे प्राप्त करना होगा मानव समाज में
प्रतिदिन के कर्मों में, जीवन संघर्षण में।[30]

मार्क्सवाद

गाँधीजी से प्रभावित होने के कारण सामान्यत: कवि ने अहिंसा के सिद्धान्त की ही प्रशंसा की है, पर कहीं-कहीं उनका अन्तर्मन मार्क्सवाद के प्रभावस्वरूप हिंसा की महत्ता को भी स्वीकार करता है, यथा-

लो झरता रक्त प्रकाश आज नीले बादल के अंचल से।[31]
राष्ट्र हेतु बलि जाओ।[32]
तेरे श्वाँसों में ज्वाला हो।[33]

लेकिन इस संबंध में पंत स्पष्ट कर देते हैं कि ''मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धान्त की तरह स्वीकार कर चुका हूँ किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उनके रक्त-क्रांति और वर्ग युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ स्वीकार करता हूँ।''[34] किन्तु मार्क्सवाद में पंत का व्यक्तित्व समुचित अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसका कारण स्पष्ट करते हुए डॉ॰ नगेन्द्र ने उचित ही कहा है- ''पंत के व्यक्तित्व में वह काठिन्य और दृढ़ता नहीं है जो मार्क्सवादी विश्वासों के लिए अपेक्षित है। मार्क्सवाद का भौतिक संघर्ष, निरीश्वरवाद अथवा अनात्मवाद पंत जैसे कोमल प्राण व्यक्ति का परितोष नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति के लिए आस्तिकता अनिवार्य हो जाती है और आत्मा और ईश्वर में ही अंत में जीवन और जगत का समाधान मिलता है।''[35] अत: अपनी दोहरी विचारधारा के प्रभाव स्वरूप पंत ने गाँधीवाद एवं साम्यवाद की एक साथ प्रशंसा की है-

मनुष्यत्व का तत्व सिखाना निश्चय हमको गाँधीवाद।
सामूहिक जीवन विवाद की साम्य योजना है अविवाद।।[36]

अरविन्द दर्शन

पंत श्री अरविन्द के व्यक्तित्व से भी प्रभावित है। पंत ने अनेक कविताओं में उनका स्तवन किया है। कवि श्री अरविन्द को योगेश्वर संबोधन प्रदान करता है क्योंकि चेतना के स्तर पर स्तर पार कर उन्होंने इस स्थिति को प्राप्त किया है। वह उनमें मानवत्व तथा ईश्वरत्व का संतुलन देखता है। इसलिए कवि पंत उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

एक स्तंभ उपनिषत् ब्रह्म विद्या के निश्चय,
ज्योति तंभ दूसरा देव का शब्द असंशय,

दिव्य चेतनासेतु, उर्ध्व जिन पर ज्योतिर्मय
आर पार भव जीवनाब्धि के, अति मानव, जय।।[37]

श्री अरविन्द का महत्व स्वीकार करते हुए पंत लिखते हैं, ''श्री अरविन्द को मैं इस युग की महान तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दर्शन में आध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा नहीं देखने को मिला। विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को सबसे बड़ी देन मानता हूँ।''[38]

समग्रत: पंत काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि एक ओर जहाँ के इस देश की प्राचीनतम वैदिक एवं औपनिषदिक विचार-परंपरा से प्रभावित हैं वहाँ वर्त्तमान मनीषियों में से गाँधीजी और अरविन्द का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। इस संबंध में वे स्वयं स्वीकार करते हैं- ''गाँधीजी के संसर्ग में मुझे सदैव आत्मबल तथा आत्म-विश्वास मिला है और श्री अरविन्द के संपर्क में मेरा मानसिक क्षितिज व्यापक, गहन तथा सूक्ष्म बन सका, ऐसा मेरा अनुभव है।''[39]

सन्दर्भ-सूची

1. स्वर्णकिरण, पृ॰ 19
2. पल्लव, पृ॰ 161
3. स्वर्णधुलि, पृ॰ 105
4. सुमित्रानंदन पंत, डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰ 173
5. उत्तरा (प्रस्तावना), पृ॰ 22
6. आधुनिक कवि, भाग-2, पृ॰ 7
7. पल्लविनी, बच्चन, पृ॰ 37
8. सुमित्रानंदन पंत- सं- शचिरानी गुर्टू, पृ॰ 267
9. उत्तरा (प्रस्तावना), पृ॰ 12
10. वही, पृ॰ 16
11. स्वर्णकिरण, पृ॰ 16
12. वही, पृ॰ 16
13. अंधन्तम: प्रविशान्ति येऽविद्यामुपासते।
    ततो भूय इव ते तमो ये उ विद्यायांरता।।
    विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
    अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्यामृतमश्नुते।।
14. स्वर्ण किरण, पृ॰ 22
15. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 4/6/
16. स्वर्णकिरण, पृ॰ 126
17. स्वर्ण धुलि, पृ॰ 16
18. श्री अरविन्द के पत्र, भाग-2, पृ॰ 127
19. लोकायतन, पृ॰ 34
20. वही, पृ॰ 232
21. ज्योत्स्ना, पृ॰ 27
22. स्वर्णधुलि, पृ॰ 147
23. ज्योत्स्ना, पृ॰ 77
24. उत्तरा (प्रस्तावना), पृ॰ 25

25. साठ वर्ष एक रेखांकन- सुमित्रानंदन पंत, पृ॰ 26
26. वीणा- विज्ञापन, पृ॰ 2
27. गुंजन, पृ॰ 28
28. युगांत, पृ॰ 61
29. युग पथ, गीत संख्या- 11, 13, 14, 15, 16 ।
30. शिल्पी, पृ॰ 19
31. युगपथ, पृ॰ 84
32. वही, पृ॰ 94
33. वही, पृ॰ 95
34. उत्तरा, पृ॰ 6
35. सुमित्रानंदन पंत- सां- शचिरानी गुर्टू, पृ॰ 255
36. युगवाणी, पृ॰ 47
37. स्वर्णकिरण, पृ॰ 90-91
38. उत्तरा (प्रस्तावना), पृ॰ 22
39. साठ वर्ष एक रेखांकन - सुमित्रानंदन पंत, पृ॰ 67

मीडिया का वर्तमान स्वरूप : दशा एवं दिशा

डॉ० निकेता

शोध निर्देशिका (हिंदी विभाग), सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

प्रीति देवी

शोधार्थी (हिंदी विभाग), सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

शोध सारांश

मीडिया की समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह शासन और साधारण जन के मध्य एक सेतु का कार्य करती है और समाज की प्रगति में अपना योगदान देती है। प्रारंभ में मीडिया एक मिशन के रूप में सामने आई थी किंतु वर्तमान समय में कॉरपोरेट से मिलकर वह केवल अपने लाभ को महत्व देती है। इससे मीडिया का साधारण जन से संवाद कम हुआ है।आमजन के मुद्दों को सत्ता तक पहुँचाने में मीडिया की अत्यंत प्रभावशाली भूमिका है।वहीं आधुनिक संचार के युग में समाज को भ्रमित करने में मीडिया की भूमिका से भी इंकार नहीं किया जा सकता। एतएव मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव समाज पर पड़ते हैं। मीडिया को अपनी निष्पक्ष छवि को फिर से प्राप्त करना होगा, वरना लोकतंत्र का ये चौथा स्तंभ इसी प्रकार कमजोर होता रहा तो भविष्य में लोकतंत्र की आत्मा बचाए रखना मुश्किल होगा। इसलिए मीडिया को अपने कर्तव्य बोध और इच्छाशक्ति को दृष्टिगत रखते हुए मीडिया के अस्तित्व, उपादेयता और समाज में उसकी भूमिका को ईमानदारी के साथ आत्मसात करना होगा।

बीज शब्द: मीडिया, समाज, लोकतंत्र, जनपक्षधरता, भूमंडलीकरण, कॉरपोरेट आदि।

मीडिया की समाज में अहम भूमिका होती है। मीडिया ही संवाद को समाज तक पहुँचाती है। मीडिया एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा शासन सत्ता, संस्थाओं और समाज के विभिन्न वर्गो के साथ-साथ सामान्य जन के बीच अंतर्संबंध स्थापित किया जाता है अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें तो मीडिया इन सभी के मध्य एक संवाद सेतु का कार्य करती है। मीडिया आमजन के बीच घटित होने वाले आंतरिक एवं बाह्य क्रियाकलापों एवं उनकी समस्याओं को कर्तव्यनिष्ठ होकर शासन सत्ता तक पहुँचाने का कार्य करती है। लोकतंत्र में जनता की आवाज को उनके प्रतिनिधि के सम्मुख पूर्ण मनोयोग एवं ईमानदारी के साथ रखने का दायित्व मीडिया के ही कंधों पर होता है, जिससे कि जनता के द्वारा चुनी हुई सरकार जनता के हितों के साथ अन्याय ना कर सके। लोकतंत्र में मीडिया का दायित्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप लोकतंत्र में मीडिया की उपादेयता एवं उसकी भूमिका का दायरा भी बढ़ा है। पहले मीडिया टीवी, रेडियो और समाचार पत्रों तक ही सीमित था, परंतु आज कंप्यूटर और इंटरनेट क्रांति से इसका कार्य और पहुँच दोनों ही व्यापक हो गया है। अब यह टीवी समाचार पत्रों के साथ-साथ फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग, वेबसाइट आदि के रूप में विश्वभर में विशालकाय जाल के रूप में फैल चुका है, जिससे व्यक्ति को नवीन ज्ञानवर्धक जानकारी एवं सूचना भी आसानी से सुलभ हो जा रही है। मीडिया सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं और जनता के हित में संचालित कार्यक्रमों को तटस्थ होकर उनकी कमियों एवं विशेषताओं के साथ लोगों तक पहुँचाती है। इस प्रकार से मीडिया को लोकतंत्र में अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है -"इसे राज्य का चौथा स्तंभ कहा जाता है।दूसरे शब्दों में, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के पश्चात् इसका स्थान है। सार यह है कि इसे लोकतंत्र का पहरूआ माना जाता है।"[1]

अपने देश में प्रारंभिक दौर में दृष्टिपात करें तो उस समय माखनलाल चतुर्वेदी, महात्मा गाँधी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि लोगों ने पत्रकारिता को एक मिशन के रूप में आत्मसात किया। परिणामस्वरूप इन सभी ने पूरी इमानदारी और कर्तव्य भावना के साथ अपने ध्येय को प्राप्त किया। इन सभी लेखकों ने पत्रकारिता के माध्यम से ही देश की स्वतंत्रता के लिए जन-जन के अंदर आजादी की भावना को जगाया, परंतु इससे इतर वर्तमान समय में मीडिया और पत्रकारिता की स्थिति भिन्न है। मीडिया का स्वरूप, चरित्र एवं उद्देश्य में भिन्नता दिखाई देती है। वर्तमान मीडिया में स्वार्थलोलुपता हावी हो गई है। पूँजीवाद और बाजारीकरण के दौर में मीडिया व्यवसायीकरण की गिरफ्त में फँस गई है, जिससे मीडिया द्वारा प्रसारित किए गए संचार या संदेश समाजोपयोगी ना होकर समाज को गुमराह करने वाले अधिक प्रतीत होते हैं। जिससे मीडिया के चरित्र पर भी गंभीर आरोप और प्रश्न चिन्ह लग रहे हैं - "मीडिया का चरित्र एक धूर्त राजनेता की तरह होता जा रहा है, जो हर पाँचवें साल अपनी वैधता की मुहर जनता से ले आता है। यही वजह कभी-कभी मीडिया को ऐसी खबरों पर काम करने के लिए बाध्य करती है, जिससे वह वैचारिक प्रतिनिधि का दर्जा बनाए रख सकें।"[2]

भूमंडलीकरण के इस दौर में लगभग संपूर्ण विश्व पूँजीवाद के हाथ की कठपुतली बना हुआ है। तब इस महाशक्ति के प्रभाव से मीडिया भला कैसे अछूता रह सकता है। मीडिया की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता पर कॉरपोरेट जगत का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कॉर्पोरेट जगत मीडिया को एक व्यवसाय के रूप में देखता है। जिसका उद्देश्य इससे सिर्फ आर्थिक लाभ कमाना है। कॉरपोरेट घराने के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए मीडिया का ध्यान खबर के तथ्यों की अपेक्षा टीआरपी पर अधिक होता है। मीडिया के इस कुकृत्य से जनमानस पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के संदेशों से जनता भ्रमित होती है और वैसे भ्रामक समाचार को सच मान लेती है, क्योंकि आमजन मीडिया को देखते-सुनते हुए ही अपनी भावनाओं एवं विचारों को बनाता है। अभी हाल ही में ऐसी खबर चुनाव के प्रचार-प्रसार के दौरान मुजफ्फरनगर में घटी। खबर पुरानी और भ्रामक होने के बावजूद सोशल मीडिया पर काफी हद तक लोगों को भ्रमित करने में सफल रही -"पहले चरण में मुजफ्फरनगर में कथित रूप से बुर्का पहने एकपुरुष के वोट डालने के दावे के साथ यह तस्वीर वायरल हो रही है। कहा जा रहा है कि भाजपा प्रत्याशी संजीव बालियान का शक सही है कि बुर्के में पुरुष वोट डाल रहे हैं। हकीकत यह है कि तस्वीर पुरानी है।"[3] इस तरह की खबरों का प्रचार मीडिया द्वारा राजनीतिक पार्टियों को लाभ पहुँचाने के लिए किया जाता है। कभी-कभी मीडिया द्वारा गैर जिम्मेदारीपन और खबर को शीघ्रजनता तक पहुँचाने के लिए गलत खबरों का प्रसारण कर दिया जाता है। यह गलती मीडिया के सही से होमवर्क ना किए जाने के कारण होती है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कुप्रभाव मीडिया पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इन कंपनियों ने मीडिया पर अपना नियंत्रण कर लिया है। कंपनियों के अपने निजी हित होते हैं। परिणामस्वरूप ये कंपनियाँ मीडिया का उपयोग अपने हितों को दृष्टिगत रखते हुए करती हैं। क्या छपेगा? या क्या दिखेगा? यह न्यूज वैल्यू से नहीं तय होता बल्कि इसके लिए कंपनियों का वार्षिक आर्थिक लाभ सर्वोपरि होता है। ऐसे में यह संभावना लाजमी हो जाती है कि मीडिया अपने कर्तव्यों एवं नैतिक चेतना से विमुख हो जाए। मीडिया के बदलते स्वरूप के निष्कर्षस्वरूप जनता तक सही खबर न पहुँचा पाने के कारण जनता और मीडिया के बीच वास्तविक अंतर्संबंधों में भिन्नता देखने को मिलती है। इससे मीडिया की व्यापकता भी प्रभावित होकर संकुचित दायरे में सिमट जाती है। बेन बोग्यिकियान ने अपनी पुस्तक 'द मीडिया मोनोपली' में कहा है- "मीडिया का कारोबार काफी फायदे में चल रहा है।चंद ताकतवर कॉरपोरेशन के हाथों में सिमट गया है। लेकिन सालाना मुनाफे के चमकदार आँकड़ों और कॉरपोरेट वाहवाही के बीच मीडिया के बड़े हिस्से का देश की जनता की वास्तविकता से संपर्क टूट गया है, जो खतरनाक है।"[4] विभिन्न संस्थाओं, सत्ता केंद्रों तथा कंपनियों द्वारा मीडिया को नियंत्रित करने का अपना अलग-अलग हथकंडा है। मीडिया पर नियंत्रण करने के लिए ये संस्थाएँ प्रलोभन, आकर्षक विज्ञापन, दबाव, ब्लैक मेलिंग के साथ-साथ जानलेवा हमला करने में भी गुरेज नहीं कर रही है। गौरी लंकेश की हत्या इसका जीता जागता और ज्वलंत उदाहरण है। सरकार द्वारा मीडिया पर नियंत्रण रखने का तरीका और भी दिलचस्प है। देश में एक तरफ जहाँ जनता पर विभिन्न प्रकार के टैक्स कीभरमार है, वहीं दूसरी तरफ मीडिया को अपने पक्ष में करने के लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के टैक्सों में छूट के साथ ही विज्ञापन की आय में टैक्स छूट देकर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

मीडिया का कार्य एक तरफ सरकार द्वारा किए जा रहे कार्यों का विश्लेषण करके जनता तक सही खबर पहुँचाना है, तो दूसरी तरफ गरीब किसान, मजदूर, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक की समस्याओं को भी सरकार तक पहुँचाना है, किंतु तत्कालीन मीडिया का चरित्र इससे इतर है। देश में भुखमरी की गंभीर समस्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। कर्ज तले दबे किसान आत्महत्या कर रहे

हैं। मीडिया का विशेष बल इस ओर है कि ऐन केन प्रकारेण चौनल की टीआरपी बढ़ा कर अपने आकाओं को आर्थिक लाभ पहुँचाकर खुश करना है। मीडिया का बाजारीकरण हो जाने के कारण वह ऐसी खबरों को दिखाता है जो अपने और बाजार के लिए मुनाफे का हो। आज मीडिया व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सुविधाओं को अपने सिद्धांतों में डालकर कार्य करने लगा है। मीडिया सत्ता से अपने मधुर संबंध बनाए रखने के लिए खबरों को उनके अनुकूल जनता तक परोसती है, जिससे मीडिया खबर की वास्तविकता के साथ छेड़छाड़ करती है या फिर सत्ता विरोधी खबर को कवर करने से बचती है। ऐसी ही एक घटना उड़ीसा राज्य की है, जिसे मीडिया ने सिर्फ इसलिए अनदेखा कर दिया कि अमुक खबर सत्ता के प्रतिकूल थी –"क्या हम इससे इंकार कर सकते हैं कि उड़ीसा में होने वाली भूख से मौतों की खबरों को मीडिया ने कवर क्यों नहीं किया? पिछले दिनों राजधानी में ही भूख त्रस्त कई परिवारों ने आत्महत्या की है। मीडिया ने उन्हें भी कवर किया है। यह सच है कि आज की मीडिया ने अपने प्रस्तुतीकरण को उपभोक्तोन्मुख बना दिया।"[5]

सरकार बनाने के लिए प्रचारतंत्र का बहुत बड़ा योगदान होता है। राजनीतिक पार्टियों के प्रचार-प्रसार का खर्च कॉरपोरेट जगत वहन करता है। ताकि भविष्य में सरकार बनने के पश्चात् वह अपने व्यवसाय तंत्र को बाधारहित संचालित कर सके। कॉरपोरेट अपने इस कृत्य को सफल बनाने के लिए मीडिया को अपने नियंत्रण में करके पूर्वनियोजित खबर को जनता तक पहुँचवाते हैं, ताकि उनके नियंत्रण वाली राजनीतिक पार्टियों को चुनाव में लाभ मिल सके। वर्तमान में कॉरपोरेट द्वारा अपने कार्य को अंजाम देने के लिए ज्यादातर बड़े न्यूज चौनल को खरीद लिए हैं और जिस चौनल पर उनका मालिकाना हक नहीं हो पाता तो वहाँ यह लोग पेड न्यूज की सहायता लेते हैं। नेताओं के पास मीडिया मैनेजमेंट का अपना एक तंत्र होता है। यह तंत्र विभिन्न प्रकार से मीडिया पर अपना प्रभाव स्थापित करता है और खबरों की वास्तविकता की सत्यता से छेड़छाड़ करके उसे अपनी अनुकूल बनाने पर जोर देता है। मीडिया तंत्र में बैठे बड़े-बड़े पत्रकार अपनी कर्तव्यनिष्ठा को भूलकर सत्ता की लोलुपता में खो जाते हैं। ऐसे पत्रकारों को सरकार द्वारा प्रलोभन के रूप में प्रतिष्ठित पद प्रदान किए जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अन्य पत्रकार भी इस लोलुपता की ओर आकर्षित होते हैं और वे भी अपने निजी स्वार्थों के वशीभूत होकर सत्ता भक्ति में लग जाते हैं।

वर्तमान मीडिया को विज्ञापनों ने अत्यंत प्रभावित किया है। इन विज्ञापनों द्वारा मीडिया को अत्यधिक आर्थिक लाभ होता है। मीडिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए अत्यधिक फंड की आवश्यकता होती है। मीडिया अपने इस आर्थिक अभाव को पूर्ण करने के लिए विज्ञापनों या कॉरपोरेट फंडिंग की सहायता लेती है। विज्ञापनप्रदाता कंपनी विज्ञापन को अपने ढंग से प्रसारित करवाती है, जिससे कि उसके उत्पाद की बिक्री बढ़ सके। इन विज्ञापनों का खबरों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। आतंकवाद की घटनाओं या युद्धजनित स्थिति, ऐसी घटनाओं को देखकर लोगों के मन में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं होती बल्कि लोग उसे आम घटना के दृष्टिकोण से देखते हैं। इसका कारण यह है कि इन खबरों के बीच-बीच में विज्ञापनों की अत्यधिक भरमार होती है। इन विज्ञापनों के बहुतायत प्रसारण के द्वारा विज्ञापन प्रदाता कंपनी को आर्थिक लाभ हो जाता है, परंतु अमुक खबर अपनी उपस्थिति को जनता के बीच पुरजोर तरीके से नहीं दर्ज करा पाती है। मीडिया ऐसी महत्वपूर्ण एवं जागरूक खबरों को एक उत्पाद के रूप में परोसती है, क्योंकि मीडिया का लक्ष्य खबर से ज्यादा मनोरंजन और विज्ञापन प्रदाता कंपनियों को खुश करना होता है। इससे मीडिया की संवेदनहीनता और अर्थलोलुपता वाली छवि हमारे सामने प्रस्तुत होती है – "क्या हम सभी के लिए चिंता का विषय नहीं होना चाहिए कि आतंकवाद और युद्ध नीतियों के प्रसारण के दौर में चौनलों पर विज्ञापनों की भरमार नहीं। प्रसारण का प्रत्येक खंड बिका और खूब बिका। क्या मीडिया द्वारा मानव पीड़ाओं का 'उत्पाद रूपांतरण' उचित है।"[6]

भारतीय मीडिया पर गहनता से बात करें तो यह हमारे सम्मुख प्रकट हो जाता है कि भारतीय मीडिया का सारा कार्य व्यवहार सत्ता और कॉरपोरेट जगत को लाभ पहुँचाने तक सीमित है परंतु यदा-कदा मीडिया अपनी विश्वसनीयता को प्रदर्शित करने के लिए जनता के मुद्दों की ओर भी ध्यान देती है। यह स्ट्रेटजी मीडिया द्वारा इसलिए अपनाई जाती है कि उसके कृत्यों पर जनता का ध्यान आकृष्ट ना हो। वर्तमान भारतीय मीडिया की संरचना और उसके कार्य पद्धति पर अगर नजर दौड़ाई जाए तो वह भी उन्हीं विचारों और कामों को ज्यादा उछलता है, जिससे शासक वर्ग को फायदा पहुँचे। अपनी विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए वह कभी-कभी अपवादस्वरूप जनपक्षीय मुद्दों को भी अहमियत देता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह जनपक्षधर है। मौका मिलते ही वह मूल बदलाव के आंदोलनों का मजाक उड़ाने से नहीं चूकता। भारतीय संदर्भ में 'द हिंदू' और 'जनसत्ता' जैसे प्रगतिशील और वामपंथी रुझान के माने जाने वाले कॉर्पोरेट अखबार भी इसका अपवाद नहीं हैं।"[7] मीडिया पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एकाधिकार बढ़ता ही जा रहा है, जिससे दिनोंदिन भारतीय मीडिया अपनी विश्वसनीयता और साख को खोता जा रहा है।

दृष्टिकोण

मीडिया का महत्व लोकतंत्र में एक सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में है। मीडिया एक ऐसा हथियार है जिसे सही तरीके से इस्तेमाल कर योग्य बनाया जा सकता है। मीडिया की भूमिका सदैव नकारात्मक नहीं होती। उसका अपना सकारात्मक पक्ष भी है। मीडिया हमारे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास में भी सहयोग करती है। मीडिया को एक उत्पाद के रूप में अपने को प्रस्तुत करने के रवैये से बचना होगा। मीडिया को अपनी जिम्मेदारियों की ओर लौटने के लिए अपने कर्तव्य बोध को समझने की आवश्यकता है। खबर को लाभ पहुँचाने के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि न्यूज वैल्यू के दृष्टिकोण से परखने की आवश्यकता है। पत्रकारों को प्रलोभन और सत्ता भक्ति कामोह जनता की आवाज के सम्मुख त्यागने की आवश्यकता पर बल देना चाहिए। अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनसहभागिता को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, जिससे कॉरपोरेट जगत और शासन सत्ता के ऊपर मीडिया की आर्थिक निर्भरता कम हो सके। विज्ञापन प्रदाता कंपनियों के साथ समझौते में उनके मनमानी रवैया को दरकिनार कर मीडिया के कर्तव्य के अनुसार कार्य करना होगा। मीडिया पर बढ़ रहे दबाव, हिंसा, ब्लैक मेलिंग, भय आदि शक्तिशाली बुराइयों का सभी मीडिया घरानों को एक होकर सामना करना चाहिए। मीडिया में बढ़ रहे पेड न्यूज और फेक न्यूज की प्रचुरता को खत्म करने के लिए कठोर नियम बनाए जाने की भी आवश्यकता है। जैसा की सर्वविदित है कि यदि लोकतंत्र का चौथा स्तंभ इसी प्रकार कमजोर होता रहा तो भविष्य में लोकतंत्र की आत्मा को बचाए रखना मुश्किल होगा इसलिए मीडिया को अपने कर्तव्य बोध और इच्छाशक्ति को दृष्टिगत रखते हुए मीडिया के अस्तित्व, उपादेयता और समाज में उसकी भूमिका को ईमानदारी के साथ आत्मसात करना होगा।

संदर्भ सूचीः

1. सं० दुर्गा प्रसाद गुप्त, आस्थाओं का कोलाज, खुराना प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 356
2. अजय कुमार सिंह, मीडिया, इतिहास और लोग, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या 77
3. अमर उजाला, गाजियाबाद, 16 अप्रैल 2019, पृष्ठ संख्या 15
4. दिलीप मंडल, मीडिया का अंडरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या 17
5. रामशरण जोशी, कतरनों की कोख से उठते सवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 64
6. सं० दुर्गा प्रसाद गुप्त, आस्थाओं का कोलाज, खुराना प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 399
7. सं० कृष्णसिंह, पूँजीवाद का संकट और मार्क्सवाद की चुनौतियाँ, समयांतर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ संख्या 208

देवदासी प्रथाः उत्तराखण्ड में महिलाओं के शोषण की दासता का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० शिवानी रावत

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डी०एस०बी०परिसर, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सार-मानव एक सामाजिक प्राणी है। इसी समाज में रहते हुये समाज द्वारा बनाई गई विभिन्न परम्पराओं एवं प्रथाओं का प्रवर्तन सामाजिक हित को रखकर ही किया जाता है, किन्तु कभी कभी ये प्रथाऐं समाज के लिये हितकर न होकर अहितकर हो जाती है। अज्ञानता की आधारशिला पर इन प्रथाओं का निर्माण होता है। परन्तु जब कुछ समय बाद समाज अज्ञानता से ज्ञान की तरफ बढ़ता है तब यह प्रथायें कुप्रथाओं में बदल जाती हैं। परन्तु तब तक ये प्रथायें इतिहास का अभिन्न अंग बन जाती हैं। हालांकि उत्तराखण्ड में कई कुप्रथाओं ने जन्म लिया, जो कि मानवता की दृष्टिकोण से अवांछनीय होते हुये भी विभिन्न कारणों से यहाँ प्रचलित हो गई थी। इनमें से कुछ ऐसी भी थी जो बीसवीं शताब्दी के मध्य तक प्रचलित थी। इनमें से एक प्रथा है उत्तराखण्ड में प्रचलित देवदासी प्रथा। देवदासी शब्द संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर बना है देव जिसका अर्थ है भगवान और दासी का मतलब है महिला दासी। प्रारम्भ में भगवान के मन्दिर में उनके सामने नाचने वाली नर्तकी कहलाती थी। इसके अतिरिक्त इनका कार्य मन्दिर में पुजारियों की सेवा करना था। लेकिन वक्त गुजरने के साथ ही दस प्रथा में कई विकृतियों का समावेश हो गया था। यह प्रथा धर्म की आड, में सिर्फ एक दिखावा मात्र रह गई थी। देवदासियाँ शक्तिशाली लोगों की रक्षिता बनने को विवश थी जिस कारण देवताओं की सेवा के पवित्र कार्य की जगह धार्मिक वेश्यावृति का प्रारम्भ हो गया था जो उत्तराखण्ड के लिये एक कलंक था। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड के लोगों के द्वारा अपनी बेटियों से देवसासी प्रथा की आड, में उनसे वेश्यावृत्ति करवा कर अपना जीवन यापन करने तथा औपनिवेशिक शासन के आने के पश्चात इस कुप्रथा को रोक कर सुधार किये जाने का वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- परम्परा, कुप्रथाऐं, देवदासी प्रथा, मन्दिर, नृतकी, धार्मिक वेश्यावृत्ति।

देवदासी प्रथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात की जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही विद्यमान थी। ऋग्वैदिक काल में देवदासियों का वर्णन मिलता है। भगवान के सामने नाचने गाने वाली नृतकी देवदासी कहलाती थी।राज दरबार में नाचने वाली नृतकी राजदासी और सामाजिक समारोहों में नृत्य करने वाली दासियाँ अलंकार दासी के रूप में जानी जाती थी। ऋग्वैदिक काल की नृतकियों को बाद में जैमिनिया ब्राह्मण और हैट्रिया नाम दिया गया।समय के साथ साथ देवदासी स्त्रियों की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति कला में परिवर्तित हो गई। नृत्य उनका व्यवसाय बन गया। ये दोनों तरह की नृतकियाँ बन गई जो धार्मिक एवं व्यवसायिक नृत्य किया करती थी। जिस कन्या का विवाह भगवान से कराया जाता था वो देवदासी कहलाई जाती थी। इस मन्दिर के ब्राह्मण द्वारा जो नृत्य इस कन्या से करवाया जाता था वो व्यवसायिक रूप से ईश्वर की अराधना करने का माध्यम था। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार भगवान से विवाह करके वो मानवीय भावनाओं को भगवान के सामने अपने नृत्य के माध्यम से व्यक्त करती थी।

वैदिक समय में नर्तकी का अस्तित्व सामने आया। इन नृतकियों का मुख्य कार्य नाचना, गाना तथा राजदरबार में मनोरंजन करना था। महलों तथा कोठों में खुले रूप से नृत्य किया जाता था। नाचने गाने वाले लोगों को सामूहिक रूप से प्रेरनरवम कहा जाता था। पुराणों में भी इस बात का उल्लेख है। प्राचीन मन्दिरों में जो देवी देवताओं की तस्वीरें है वो इस बात का प्रमाण देती हैं कि इन नृतकियों ने मन्दिर के निर्माण में बहुत रूचि दिखाई है तथा धार्मिक उत्सवों का आयोजन भी किया है। उत्सव प्रारम्भ होने से पूर्व

मंदिर में देवी देवताओं के समक्ष इन देवदासियों को नचाया जाता था। अर्थशास्त्र में 400 से 300 बी0सी0 के मध्य देवदासियों के सन्दर्भ में प्रमाण मिलता है कि देवदासियों को कोई आदर्श या सम्मान की स्थिति प्राप्त नहीं थी। यह भी सत्य है कि भारतीय संस्कृति में प्रारम्भिक समय से मन्दिरों में वेश्यावृत्ति का कोई प्रमाण नहीं मिला है। लेकिन प्राचीन संस्कृति में यह अचानक ही आ गया। मोहन जोदडो की खुदाई में जोब स्थान के निकट एक कांस्य की मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें एक नाचती हुई लडकी को दिखाया गया है जिसने हार, चूडी और पूरे हाथों में आभूषण पहनी हुई केश सज्जित नग्न आकृति में परिलक्षित है।

धीरे धीरे स्त्रियों की स्थिति गिरती चली गई, जिसका प्रमाण उत्तर वैदिक काल में देखने को मिलता है, जहॉ महिलाओं के लिये बुरे तथा अपशब्द का प्रयोग किया जाने लगा था। अर्थववेद में कन्या जन्म को अशुभ माना गया है। कन्या के जन्म होने से पूर्व जादू टोने का काम किया जाता था। सूत्र काल के पश्चात मौर्य शुंग काल में महिलाओं की स्थिति का ह्मस होता चला गया। शक कुषाण काल में देवदासियों की संख्या अधिक न थी। गुप्तकाल में महिलायें प्रतिष्ठित होने लगी थी। लेकिन गुप्तों के बाद अहीर, हूण और गुर्जर प्रतिहारों के अस्तित्व में आने के बाद भारत के लोगों ने अपनी कन्याओं की रक्षा करने में खुद को असमर्थ पाया जिस कारण कन्या के जन्म पर उसे मार देने की परम्परा को अपना लिया। मध्यकाल के आते आते देवदासी प्रथा के अस्तित्व में आने के प्रमाण प्राचीन काल के समान ही मिलने लगे। ''कलहण'' और ''राजतरंगिणी'' में भी देवदासियों के बारे में लिखा गया है। ''कथासरितसागर'' के समय में देवदासी प्रथा की जड़ें काफी मजबूत हो चुकी थीं। देवमन्दिर में देवता के साथ विवाह के उपरान्त ये देवदासी सबके लिये ग्रहणीय बन गई, जिसका स्पष्ट उदाहरण राजा देवसेन द्वारा देवदासी उन्मादिनी से विवाह करना था जबकि उन्मादिनी से विवाह उसका सेनापति कर चुका था।

समय गुजरने के साथ ही इस प्रथा में कई विकृतियॉ जुड गई। यह प्रथा धर्म की आड में सिर्फ वेश्यावृत्ति तथा देह व्यापार बन चुकी थी जिससे इन कन्याओं का शारीरिक शोषण भी हो रहा था। ये देवदासी शक्तिशाली लोगों की रक्षिता बनने को विवश थी जिस कारण वह देवताओं की सेवा के पवित्र कार्य की जगह धार्मिक वेश्यावृत्ति शुरू हो गयी। सन 1628 में पीटर मुण्डी भारत आया। उसने लिखा कि देवदासियॉ ''नृत्य करने वाली वेश्या होती है, जिनकी विभिन्न कोठियॉ हैं जैसे लुल्लेनियॉ, लालनी, हांकिन, कंचनिया, कन्चौन, डुमकियॉ, डोम आदि जातियों से सम्बन्धित होती हैं तथा संगीत की विभिन्न शैलियों को अपनाती हैं। सामान्यत; वे औपचारिक भोजों पर किराये पर बुलाई जाती है। अभिनय करना, नाचना गाना उनका पेशा होता था। इन सब के बिना शायद ही कोई मित्रों की गोष्ठी होती थी। बर्नियर उनके बारे में लिखते समय ''नचनियॉ'' शब्द का उल्लेख करता है। अगर हम मुगल काल की बात करें तो सभी मुगल बादशाह औरत एवं मदिरा के प्रेमी होते थे। प्राय; कई मुस्लिम शासकों ने अपने हरम में सुन्दर रखेले रखी हुई थी। इस के अतिरिक्त राजपूतों में जब विवाह होता था तो रानी के साथ दहेज में स्त्रियॉ भी आती थी। जब कभी युद्ध होता था तब भी राजपूत बडी संख्या में विजित प्रदेश से अपने साथ दासियों को भी प्राप्त करते थे। फिर औपनिवेशिक काल में स्त्रियों की दशा और भी दयनीय हो गयी।

देवदासी प्रथा भारत के कई अन्य भागों में भी प्रचलित थी। प्राय: अलग अलग स्थान में उन्हें अलग अलग नाम दिये गये हों। जैसे आन्ध्र प्रदेश में बोगामवल्लू, गनीकुल्लु, सनी तथा कलावनतुल्लु कहलाती थी। महाराष्ट्र में मुरली, जोगती तथा अराधिनी , तमिलनाडू में देवर अदिगालार या दासी, कर्नाटक में बासवी तथा जोगती, मारवाड़ में भगतन या भगार्तन, गोवा में भाविन या भाविनी कहलाई जाती थी। समय के साथ इन देवदासियों की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि मात्र नृत्य संगीत से यह अपनी आजीविका नहीं चला पा रहे थे। इसके अतिरिक्त कुछ प्रभावशाली पाशविक प्रवृत्ति के लोग भी इनका शोषण कर रहे थें।

ऐसा कहा जाता है कि सम्भवत: दक्षिण भारत से आने वाले वैष्णव पुजारियों के प्रभाव के कारण मध्यकाल में गढ़वाल में इस प्रथा का प्रचलन हो गया था। वहॉ की कुछ जातियॉ अपनी ज्येष्ठ पुत्री को देवताओं के मन्दिर में चढ़ाती थी। इसके पीछे मुख्य वजह एक प्रथा का प्रचलित होना था। देवमन्दिरों में चढ़ाई गई कन्याये ''द्योचेलियॉ'' और ''देवचेलियॉ'' कहलाती थीं। प्राचीन काल से लेकर पचास वर्ष पूर्व तक कुमाऊँ गढ़वाल के अधिकांश मन्दिरों में देवदासियॉ हुआ करती थी। कुछ राजपूत जातियों में अपनी प्रथम पुत्री संतान को अथवा किसी भी पुत्री को मन्दिर में चढ़ाने की प्रथा थी। ये छोटी बच्चियॉ मन्दिर के पुजारियों की देखरेख में देवदासियों द्वारा इनका पालन पोषण किया जाता था। इसी माहौल में पलने बढ़ने के कारण ये अपना जीवन मन्दिरों में गाना बजाना तथा धार्मिक वैश्यावृत्ति में व्यतीत करने लगी। उत्तराखण्ड के गढ़वाल में स्थित कालीमठ के मन्दिर की अन्तिम देवचोली लगभग 50 वर्ष पूर्व तक जीवित थी। 1940 में त्रिजुगीनारायण मन्दिर की देवचेली हीरा को नरभक्षी बाघ ने मार डाला था। गढ़वाल में यह प्रथा कई स्थानों पर कुछ समय तक प्रचलित रही, विशेषकर लक्ष्मी नारायण के मन्दिरों में। इस प्रकार के कई मन्दिर हैं जो इस

प्रथा के साक्षी हैं जैसे कि मालीदेवल, राणीहार, नागगॉव, शिला, फेंगू, गोपेश्वर, कालीमठ और हाटगॉव आदि। गढ़वाल के रूद्रप्रयाग जिले में स्थित कालीमठ के दुर्गा मन्दिर तथा मल्ला कालीफट के प्रसिद्ध सिद्धपीठ में अपनी पहली पुत्री को मन्दिर में भेंट कर देते थे और वे ''देवी की राणी'' कहलाती थीं। ये दान में दी जाने वाली कन्याऐं हमेशा मन्दिर की सेवा में लगी रहती थी। इसके अतिरिक्त बद्रीनाथ एवं तुंगनाथ के प्रसिद्ध मन्दिरों में भी कन्याऐं देवताओं को चढ़ाई जाती थीं। ऐसा कहा जाता है कि देवचेलियॉ बनाने के लिये राणीहाट (श्रीनगर गढ़वाल) में कुंआरी कन्याओं का एक मेला लगता था। इस मेले में इन कन्याओं को देवदासी बनने और धार्मिक वेश्यावृत्ति की विधिवत दीक्षा भी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त इसी मेले में देवचेलियों का क्रय-विक्रय भी होता था। ऐसा माना जाता है कि कुछ लोग अपने पुत्रों को भी मन्दिरों में चढ़ा देते थे। गढ़वाल की नीति घाटी के बल्लगॉव के मन्दिर में यह प्रथा विद्यमान थी। उपत्यका में ऐसे सैकड़ों बल्लगॉव थे जो अब झल्लगॉव कहलाते थे। ऐसा कहा जाता है कि कुमाऊॅ की नायक जाति के कुछ परिवार गढ़वाल में आकर बस गये थे जो गढ़वाल के मन्दिरों में सेवा करते थे और देवचेलियॉ कहलाई जाती थी। इस जाति की बेटियॉ गोपेश्वर, कालीमठ और राणीहाट आदि के मन्दिरों में देवचेलियॉ बनती थी। अगर हम उत्तराखण्ड में देवदासी प्रथा के उद्गम के विषय में बात करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कही न कहीं दक्षिण भारत की देवदासी प्रथा से प्रेरित रही होगी।

कुमाऊॅ में देवदासी प्रथा के प्रचलन के सम्बन्ध में अलग अलग मत प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार अल्मोड़ा से 7 मील की दूरी पर बड़ादित्य के मन्दिर का निर्माण 1080-1090 में कत्यूरी राजा कटारमल्ल देव ने की थी। वर्तमान समय में यह मन्दिर कटारमल मन्दिर के नाम से जाना जाता है। मंदिर की दीवार पर तीन पंक्तियों वाला शिलालेख, जिसे लिपि के आधार पर राहुल सांस्कृत्यायन ने दसवीं ग्यारवीं शती का माना है, अस्पष्ट हो गया है। इसमें राहुल ने ''मल्ल देव'' तो पढ़ा था। कत्यूरी राजाओं ने इस मन्दिर में बलि चरू, नैवेत्य, नृत्य संगीत आदि की व्यवस्था के लिये कई गॉव अर्पित किये थे। मन्दिर में नाचने गाने के लिये देवचेलियॉ थी। इन देवचेलियों से उत्पन्न पुत्रियॉ शताब्दी के पूर्वाद्ध तक वेश्यावृत्ति अपना लेती थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार कुमाऊॅ में देवदासी प्रथा का प्रारम्भ चन्द शासन के शासन काल में राजा बाजबहादुर चन्द के समय में प्रारम्भ हुई। जब राजा बाजबहादुर चन्द ने सन् 1655 में गढ़वाल के वधापगढ़ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसके उपरान्त जब वह लौट रहे थे तो वे अपने साथ वधानगढ़ में प्रतिष्ठापित नन्दा देवी की सुवर्ण प्रतिमा को अपने साथ ले आये। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर से सम्बद्ध सेवक सेविकाओं को भी अपने साथ ही ले आये। अल्मोड़ा आने पर राजा ने इस मूर्ति को अपने राजप्रसाद के परिसर में प्रतिष्ठापित करवाया तथा वहॉ से लाई गई सेवक सेवकाओं को भी इससे सम्बद्ध कर दिया। ये देवचेलियॉ अविवाहित रहती थी और इन्हें सुहागिनों की भांति अपने रूप यौवन का उपभोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। पुरूषों के साथ होने वाले शारीरिक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली इनकी संतानों को ''हरन्वाल'' या ''नायक'' कहा जाता था। इनकी पुत्रियॉ युवा होने पर माताओं का कार्य सम्भाल लेती थी। कुमाऊॅ में नायक जाति को इसी प्रथा की देन माना जाता था।

उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध वंश जैसे कत्यूरी, चन्द तथा पवार कालीन समाज में मंदिर में नृत्य तथा गायन हेतु उचित व्यवस्था होती थी और इन मन्दिरों में देवदासी का प्रमुख स्थान रहा है। उत्तराखण्ड के कुमाऊॅ में स्थित नैनीताल जिले की रामगढ़ पट्टी में तथा अल्मोड़ा की गिवार नया खास पंवार, पिथौरागढ़ जिले की सोन, महर, गूमदेश, खिलफती फाट, गंगोल, वल्दिया और मल्ला पलविलोन पट्टियों के कतिपय गॉवों में, मल्ला लिखून पट्टी के कटारमल्ल गॉव में तथा गढ़वाल मंडल के पट्टी मल्ला कालीघाट, लंगूर तथा उदयपुर पट्टियों के कुछ गॉवों में नायक जाति के लोगों में अपनी बेटियों से वंश्यावृत्ति कराने की प्रथा प्रचलित थी। ये नायक जाति के लोग अपनी बेटियों को शीतकाल के दौरान मैदानी क्षेत्रों में लेकर आते थे। इन मैदानी क्षेत्रों में पहले से ही उनके आस-पास या निकट पड़ोस की कोई वेश्या पहले से ही होती थी। ग्रीष्म काल में ये नायक लोग अपने घर लौट जाते थे।इस प्रकार वेश्यावृत्ति की जड़ें मजबूत होती चली गई।कुमाऊ में नैनीताल जिले के रामनगर नामक नगर में नायक कन्याओं का हाट लगता था। इस हाट से लोग इन लड़कियों को खरीदकर मुम्बई, कलकत्ता आदि के बड़े कोठों में ले जाते थे। वहॉ अपनी इच्छानुसार पैसों में इन्हें बेच देते थे। सन् 1929 में जब गॉधी का कुमाऊॅ आगमन हुआ तो उन्होंने वेश्यावृत्ति के बारे में अपने व्याख्यान दिये । गॉधी के इन व्याखानों का महिलाओं पद गहरा असर हुआ और वे इस कार्य को घृणित समझकर छोड़ने लगीं।और इस प्रकार देश की आजादी की लड़ाई में यहॉ की वेश्यावृत्ति से जुड़ी महिलाओं की अहम भूमिका रही थी।

इस कुप्रथा के कारण नायक जाति की युवतियों को देखकर कुमाऊॅ गढ़वाल के अन्य क्षेत्रों की कुछ अन्य जातियों जैसे ओजी, बादी, भार, हुड़किया, लोहार आदि ने भी अपनी पुत्रियों को वेश्यावृत्ति में धकेल दिया और यहॉ के कुछ परिवारों में भी यह प्रथा

शुरू हो गई थी। यहाँ तक कि नैनीताल जिले के रामगढ़ के नायक जाति के लोग अपनी उत्पत्ति चन्द देवदासियों से मानते हैं। अल्मोड़ा जिले के कटारमल्ल के नायक जाति के लोग अपनी उत्पत्ति एक उपाध्याय ब्राह्मण से मानते हैं, जिसे राजा ने वहाँ की खस कन्या पर मोहित होने के कारण ब्राह्मण से क्षत्रिय बना दिया।खिलपति के नायक जाति के लोग भी अपनी उत्पत्ति देवदासियों से ही मानते हैं।चौपखिये के नायक जाति के लोगों का कहना है कि उनके पूर्वज असम व मणिपुर की गाने बजाने वाली जातियों के वंशज हैं।सिनचौड़ के नायक जाति के लोगों के अनुसार वे ''देवचेली'', ''देवदासी'' और ''बह्मचेली'' की सन्तानें हैं।एटकिन्सन ने इन्हें कुमाऊँ की रूपाजीतियों औौ नृतकियों से उत्पन्न सन्तान बताया है। कालान्तर में यही जाति एक नये वर्ग ''नायक'' के नाम से उभर कर सामने आया जो अपनी कन्याओं से वेश्यावृत्ति करवाते थे।पाली पछॉऊ के नायक स्वंय को देवचेलियों की सन्तान मानते थे।

अगर हम उत्तराखण्ड के कुमाऊँ की बात करते हैं तो नायक जाति का प्रमुख केन्द्र पहाड़ में नैनीताल जिले के रामगढ़ नामक स्थान तथा मैदानी क्षेत्र में नैनीताल जिले के हल्द्वानी शहर के निकटस्थ गॉव हुआ करते थे। पहाड़ में नैकाना तथा भाबर में हल्द्वानी के पास हरिपुरा नायक (कुसुमखेड़ा) नामक स्थान पर अभी भी इनके आवास हैं।उत्तराखण्ड के अलमोड़ा जनपद की गिवाड़ तथा चौकोट पट्टियों में लगभग 40 गॉवों में तथा अल्मोड़ा के पास स्थित कटारमल नामक गॉव में इनकी बस्तियॉं थीं।इसी प्रकार पिथौरागड़ जनपद के सारे परगने की सौन-सेरी और नहर पट्टियों के अर्न्तगत आने वाले गॉवों जैसे लीलू, चौपखिया, नैनी तथा नैकाना गॉवों में तथा काली कुमाऊँ (अब चम्पावत जनपद) में रौल, गंगोल, बल्दिया और मल्ला पाल विलौन में इस जाति के लोग निवास करते थे। वहीं दूसरी ओर गढ़वाल क्षेत्र में इस जाति के लोग मुख्यत: तल्ला-मल्ला कालीफाट, लंगूर और उदयपुर पट्टियों में रहती थीं।बद्रीदत्त पाण्डे ने अपनी पुस्तक कुमाऊँ के इतिहास में लिखा है कि इनकी कन्याऐं वेश्यावृत्ति करती थीं तथा मल्ला पालबिलौन, बल्दिया व गंगोलहियों के नायक इनसे विवाह करते आयें हैं।गढ़वाल की कालीफाट पट्टी के नायक खूबसूरत कन्याओं को बाजार में रखतें हैं और बदसूरत कन्याओं का विवाह कर देते हैं। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि नायक जाति के लोग अपनी पत्नियों से वेश्यावृत्ति का काम नहीं करातें हैं। नायक वेश्याऐं पहले सिर्फ कुमाऊँ अथवा गढ़वाल में अपना वेश्यावृत्ति का पेशा करती थीं परन्तु धीरे धीरे वे समस्त उत्तर भारत के मुख्य नगरों जैसे मेरठ, दिल्ली, मुरादाबाद, हापुण, आगरा, लखनऊ, बरेली, अलीगढ़, हाथरस, मथुरा आदि नगरों में भी पाई जाने लगीं। इन शहरों के अलावा वे बम्बई, लाहौर और कराची भी पहुँच गयी। यह प्रथा जो कि तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिस्थिति के कारण उत्पन्न हुई थी, उस विशेष समाज की महिलाओं ने अपने जटिल हालातो से समझौता कर लिया। इस प्रथा ने एक विशेष वर्ग की महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन को भी बहुत प्रभावित किया।

19 वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन के आने तक इस प्रथा पर कोई नियंत्रण न था। हालांकि समाज सुधारकों जैसे राजा राम मोहन राय, ईश्वर दत्त विद्यासागर, गोविन्द रानाडे और महर्षि कर्वे जैसे महापुरूषों के नेतृत्व में चलाये गये समाज सुधार आन्दोलनों के माध्यम से देवदासी प्रथा के विरोद्ध में जन-जागरण शुरू किया गया। किन्तु इनका देवदासी प्रथा के प्रचलन को रोकने में कोई खास फर्क नहीं पड़ा। देवदासी प्रथा को समाप्त करने के लिये कुछ कानून पारित किये गये जिनका विवरण नीचे दिया गया है -

1. बम्बई देवदासी प्रोटेक्शन एक्ट 1934
2. मद्रास देवदासी सर्मपण की रोकथाम कानून 1947
3. कर्नाटक देवदासी सर्मपण की रोकथाम कानून 1982
4. आन्ध्र-प्रदेश देवदासी सर्मपण की रोकथाम कानून 1988
5. महाराष्ट्र देवदासी सर्मपण की रोकथाम कानून 2006
6. किशोर न्याय अधिनियम 2015
7. मानव तस्करी विधेयक 2018

कुछ सु-व्यवस्थाएँ समय के साथ और लोगों के पापों के कारण सु-व्यवस्था से कु-व्यवस्था कुरूति में बदल जाती है और उन्हीं व्यवस्थाओं में से एक व्यवस्था थी देवदासी प्रथा।आज वर्तमान में देवदासी प्रथा पूर्ण रूप से भारत में बन्द हो चुकी है। इस शोध पत्र के माध्यम से मैंने उत्तराखण्ड में पूर्व में व्याप्त इस गम्भीर समस्या के इतिहास व इसके शोषण के स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में यह भी बताया है कि किस प्रकार लोग अपनी कन्याओं को देवदासी प्रथा की आड़ में उनसे

वेश्यावृत्ति करवाकर अपना जीवन यापन कर रहे थे। यद्यपि औपनिवेशिक शासन के आगमन के बाद इस कुप्रथा में सुधार लाने का पूरा प्रयास किया गया। यहाँ के नागरिकों व समाज सुधारकों ने कालान्तर में इस घृणित प्रथा को रोकने का पूरा प्रयास किया और यह प्रथा आज पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 संजीव कुमार बी0 निर्मलेकर: देवदासी सिस्टम इन इण्डिया ए चेन्जिंग सिनारियो, नेहा पब्लिशर्स, 2013
2. वीनस जैन: देवदासीज ऑफ इण्डिया, ब्लूम्सबरी इण्डिया, 2019
3. लक्ष्मी विश्वनाथन, वुमन ऑफ प्राइड दि देवदासी हेरिटेज, लोटस पब्लिकेशन, 2008
4. के0 जमुनादास: देवदासीज एन्शियन्ट टू मॉर्डन, कल्पाज पब्लिकेशन दिल्ली, 2007
5. सीमा अग्रवाल: भारतीय समाज में स्त्रियों की बदलती स्थिति, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 1988, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।
6. उषा आर्य: देवदासी प्रथा का उद्भव, विकास तथा उन्मूलन (उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में), अंकित प्रकाशन दिल्ली, 2007
7. डबराल, शिव प्रसाद: उत्तराखण्ड का राजनैतिक एवं सामाजिक इतिहास, भाग-7
8. शर्मा, डी0डी0 एवं शर्मा मनीषा: उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांप्रदायिक इतिहास, अंकित प्रकाशन, दिल्ली
9. क्षेत्रीय अभिलेखागार, नैनीताल से प्राप्त सूचना
10. पंत, गोविन्द: ब्रिटिश कुमाऊँ में सामाजिक आन्दोलन (1815 से 1947) अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 1988, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।
11. कूर्मांचल केसरी बदरी दत्त पांडे: जन्म शताब्दी स्मारिका
12. चन्द्र, भुवन: गढ़वाल में जन आन्दोलन, एक अध्ययन (1857 से 1947): अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 1988, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल।
13. शक्ति अखबार: दिनांक 1 दिसम्बर 1928
14. तिवारी, भूपेन्द्र: स्वाधीनता संग्राम में पिथौरागढ़ का योगदान (1857 से 1947): अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, 1990, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सिन्धु सभ्यता का पतन

सुनील कुमार

एम.ए. (इतिहास), कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

सिन्धु घाटी सभ्यता (3300 ईसा. पूर्व से 1700 ईसा. पूर्व. तक विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में सबसे प्रमुख सभ्यता थी। नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक शोध के अनुसार यह सभ्यता कम से कम 8000 साल पुरानी बताई जाती है। प्रारम्भ में सिन्धु सभ्यता के पुरास्थल सिन्धु नदी घाटी क्षेत्र में मिले थे। अत: ''मार्शल ने इसे सिन्धु सभ्यता कहा था।''[1] सन् 1856 में पहली बार चार्ल्स मैसेन ने इसकी खोज की थी। सन् 1934 में एन.जी. मजूमदार ने सिन्धु सभ्यता के अन्तिम चरण को झुक्कर संस्कृति बताया है। हड़प्पा में बड़ी गिरावट का पता रंगपूर से चलता है। उत्खनन से बड़ी संख्या में स्थलों कि खोज की गई जिन्हें उत्तर शहरी कहा गया है। सिन्धु घाटी सभ्यता मिस्त्र, मेसोपोटामिया और चीन की सभ्यताओं में सबसे बड़ी प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में सबसे अधिक विकसित थी। यहां के अनेक नगरों कि भवन योजना निर्माण विधि, नालियों का निर्माण, ईटों, मृदभाण्डो, आयुधों, आभूषणों, मुद्राओं नापतौल आदि में पर्याप्त एकरूपता देखी जा सकती है।

सिन्धु घाटी सभ्यता अपने समय कि सभ्यताओं में सबसे समृद्ध तथा विकसित सभ्यता थी। ''रेडियो कार्बन तिथि (''C-14'') के अनुसार सिन्धु सभ्यता का काल 2350-1750 ईसा. पूर्व निर्धारित हुआ है, जो सर्वमान्य है।[2]'' यह सभ्यता पूर्णत नगरीकृत सभ्यता थी। यहां व्यापार, पशुपालन तथा कृषि उन्नत अवस्था में थे। इस सभ्यता का विस्तार सिन्धु और घग्घर/हाकड़ा (प्राचीन सरस्वती) नदी के किनारे हुआ।

सिन्धु सभ्यता पश्चिम से पूर्व दिशा तक लगभग 1500 कि.मी. तथा उत्तर से दक्षिण दिशा तक लगभग 1200 कि.मी. है। अब तक हुए पुरातात्विक खोजों में भारतीय उपमहाद्वीप में ''इस सभ्यता के 2800 पुरास्थलों का पता चला है।''[3]

सिन्धु सभ्यता के कुछ स्थल पश्चिम दिशा में बलूचिस्तान के मकरान समुद्र तट के पास से प्राप्त होते है। उत्तर में सिन्धु सभ्यता की सीमा जम्मू-कश्मीर के माण्डा तक विस्तृत है। सिन्धु के पूर्व में कच्छ के समीप समुद्र तट के आस-पास भी कुछ स्थल मिले है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण केम्बे की खाड़ी के पास विद्यमान लोथल नामक स्थल है। दक्षिण दिशा में उत्खनन के बाद सिन्धु सभ्यता की सीमा महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में स्थित दैयमाबाद तक विस्तृत है। अफगानिस्तान के मिलने वाले प्रमुख नगरों में सोर्तुघई और मुण्डिगाक स्थल हिन्दुकुश पर्वत के उत्तर में स्थित है। सोर्तुघई से प्राप्त होने वाला महत्वपूर्ण साक्ष्य मिला है। लाजवर्ध की प्रमुख व्यापारित बस्ती सोर्तुघई थी। यहा से जालवर्ध का निर्यात सम्पूर्ण सभ्यता के नगरों को किया जाता था। लाजवर्ध का प्रयोग मनके तथा पहनने के लिए आभूषणों के रूप में किया जाता था। सोत्काकोह, सुत्कागेनडोर दशक नदी के किनारे स्थित है। इसको हड़प्पा के व्यापार का चौराहा भी कहते है। यहां से व्यापार का मार्ग अन्य सभ्यताओं जैसे मेसोपोटामिया तथा मिस्त्र आदि के साथ व्यापार किया जाता था। मेसोपोटामिया से मिलने वाली मुहरों से पता लगाया जा सकता है कि हड़प्पा के लोगों का मेसोपोटामिया के साथ व्यापारिक संबंध था। सुत्कागेन्डोर एकमात्र स्थल है, जो प्राकृतिक चट्टान पर स्थित है।

मोहनजोदड़ो दुनिया का सबसे पुराना नियोजित और उत्कृष्ट शहर माना जाता है। यह लरकाना जिले में सिन्धु नदी के दाएं तट पर स्थित है। मोहनजोदड़ों का विस्तार 500 हैक्टेयर में फैला है। यह नगर देखने में आध्यात्मिक नगर जैसा लगता है। वाल्टर फेयर सर्विस ने इसे अनुष्ठानिक केन्द्र कहा है। मार्शल के अनुसार मोहनजोदड़ो सात बार उजड़ा एवं बसा था।'' आर.एस. शर्मा के अनुसार, ''मोहनजोदड़ों का सबसे महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्थान महान स्नानागार है। जिसमें तालाब शामिल है जो गढों के टीलों में स्थित हैं।

यह ईटों की खुबसूरत निर्मिति का बेहतरीन उदाहरण है। इसकी माप 11.88 × 7.01 मीटर और गहराई 2.43 मीटर तै। तालाब की दोनों ओर से सतह पर चढ़ने कि व्यवस्था थी और कपड़े बदलने के लिए किनारे पर कमरे थे।''[4] मोहनजोदड़ो में इस तालाब का होना यह दर्शाता है कि यह किसी धार्मिक अनुष्ठान पर यहां सर्वजनिक स्नान किया जाता होगा। यह भी हो सकता है कि यह रोग निवारक या किसी भूत-प्रेत के साथ से दूर रखने के लिए किया जाता हो। जोहनजोदड़ो से 20 खम्बो (27×29) मीटर वाला एक सभा भवन मिला है। मार्शल ने इस भवन कि तुलना बौध गुफा मन्दिरों से की है। यहां से सिन्धु सभ्यता का सबसे भारी बटखरा (10.9 ग्राम) का पाया गया है। यहां कि एक मुहर पर सुमेरियन नाव का चित्र आंकन है। इससे सिद्ध होता है कि यहां के लोगों ने नाव का अविष्कार किया होगा। इसका प्रयोग दूसरे नगरों के साथ हुए व्यापार में किया गया होगा। नावों के साक्ष्य सिर्फ मुहरों तथा चित्रों से मिले है जो यह सिद्ध करता है उस समय नावों का निर्माण लड़की से किया गया होगा जो समय के साथ नष्ट हो गई होगी। वस्त्र निर्माण का प्राचीनतम प्रमाण मोहनजोदड़ो से मिला है। बुने हुए कपड़े का यह प्राचीनतम साक्ष्य है। विश्व में वाटर प्रूफिंग का पहला उदाहरण मोहनजोदड़ो से मिलता है। यहां से एक चकौर ताम्बे कि गोटी मिली है। जिस पर पशु चिह्न के साथ लिपि उत्कीर्ण है। मोहनजोदड़ो से कॉसें कि नर्तकी तथा पशुपति की मुहर मिली है।

हड़प्पा रावी नदी के बाएं तट पर पाकिस्तान के मान्टगोमरी जिले में स्थित है। देखने में हड़प्पा प्रशासनिक नगर जैसा प्रतीत होता है। यहां पर सुरक्षा व्यवस्था के लिए व्यापक किले बन्दी की गई थी। यहां के घरो से शौचालय के अवशेष प्राप्त हुए है। हड़प्पा को तोरण का द्वार का नगर तथा अर्द्धऔद्योगिक नगर कहा जाता है। पिग्गट महोद्य ने हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो को सिन्धु सभ्यता की जुड़वा राजधानी कहा है। पिग्गट महोद्य का यह कथन इस बात का संकेत करता है कि ये नगर बड़े व्यापारिक होंगे। ये सिन्धु सभ्यता के व्यापार की रीढ़ रहे होंगे। यह बहुत ही समृद्ध तथा विकसित थे। ये दोनो नगर यह सिद्ध करते है कि ये दोनों व्यापार के प्रमुख केन्द्र रहे होंगे।

हड़प्पा नगर के बाहर एक कब्रिस्तान मिला है जिसको R-37 कहा गया है। इसी प्रकार कि एक दूसरी समाधि को H.R. समाधि कहा गया है। यहाँ से देवधर लकड़ी से बनी शव की काठ की पेटिका मिली है। जब 1947 में व्हीलट ने उत्खनन किया तथा उसने बताया कि R-37 समाधि में मिले कंगालो में सबसे ज्यादा रोगी गठिया सी पीड़ित थे। हड़प्पा नगर कि एक कब्र से एक महिला को उसके बच्चे के साथ दफनाने का साक्ष्य मिला है। यह हो सकता है कि इस महिला की मृत्यु प्रसव के दौरान हुई हो। यहां से 16 ताम्र भट्टियां, ताम्बे कि ईक्कागाड़ी, दो पहिए वाला ताम्बे का रथ तथा ताम्बे का पैमाना प्राप्त हुआ है। ताम्बे के रथ का मिलना इस बात का संकेत करता है सिन्धु सभ्यता के लोगों को घोडेघ् का ज्ञान था। रथ का मिलना राजा होने का संकेत भी देता है। हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर पर गरुड़ पक्षी एक सांप को पकड़े हुए तथा दूसरी मुहर पर खरगोश पकड़े हुए कुत्ते का अंकन है। मृदभाण्डो पर दूध पीलाती हिरणी, जल के साथ मछुवारे का चित्र अंकन हुआ है। ''हड़प्पा से गेहूं, जौ, तिल, तरबूज के बीज, मटर, खजूर, चावल और बाजरे के साक्ष्य प्राप्त हुए है। नौशारों पाकिस्तान के बलूचिस्तान क्षेत्र में स्थित यह पुरास्थल सिन्धु सभ्यता के अन्य नगरों की तरह ही बसाया गया था। नगरों में सड़के तथा गलियां एक-दूसरे को समकोण पर काटती थी।''[5]

कालिबंगा को दशरथ शर्मा ने तीसरी राजधानी बताया है यहां प्राक् हड़प्पा काल के जुते हुए खेत के साथ-2 दो फसलो (चना एवं सरसों) की एक साथ बुआई के साक्ष्य भी मिले है। यह नगर सिन्धु सभ्यता में चूडिघ्यां जो टेराकोट, शंख तथा शेलखंडी से बनाई जाती थी, इनके लिए प्रसिद्ध था। कलिबंगा से बेलनाकार मुहर मिली है जो उस समय मेसोपोटामिया में प्रचलित थी। इस प्रकार की मुहरों को मिलना यह दर्शाता है कि सिन्धु सभ्यता के निवेशी विदेशी व्यापार भी करते थे। कालिबंगा के घर कच्ची ईटों से निर्मित थे तथा नालियां लकड़ी की प्राप्त हुई है।[6] शवों की अन्तेष्टि के लिए तीन विधिया पूर्ण समाधिकरण, आंशिक समाधिकरण एवं दाह संस्कार के प्रमाण मिले है। एक बालक की खोपड़ी में छेद मिलना शल्य चिकित्सा का उदाहरण है। इस प्रकार का उदाहरण मिलना यह सिद्ध करता है कि यहां पर चिकित्सा के संसाधनों का विशेष प्रबंध था। लोगों का ईलाज उचित चिकित्सा पद्धति के द्वारा किया जाता था।

''साबरमती एवं भोगवा नदी के संगम पर लोथल स्थित है। यहां के नगर निर्माण योजना और उपकरणों को देखकर इसको लघु हड़प्पा या लघु मोहनजोदड़ो कहा है।''[7] यहां कि सम्पूर्ण बस्ती एक ही प्राचीर से गिरी हुई थी। ऐसा मालूम होता है सिक यहां पर वर्ण व्यवस्था नही थी। सब लोग समान थे। एस.आर. राव ने यहां के सिटाडेल को एक्रोपॉलिश की संज्ञा दी है। यह विषम चर्तुभुज

आकार का था। मृदभाण्डो पर कथानकों का अंकन जैसे विष्णु शर्मा के पंचतन्त्र कि चालाक लोमड़ी और कौआ कि आकृति, आटा पीसने वाली पत्थर कि वृत्ताकार चककी के दो पाट तथा सोने के मानकों का साक्ष्य मिला है। लोथल में बत्तख का चिंत्राकन सर्वाधिक हुआ है। नालियों का ढलावदार तथा सीढ़ीदार होना यहां कि विकसित अवस्था को दर्शाता है।

पुरातत्वविदों ने धौलावीरा को एक भव्य लोक सीटी कहा है। हड़प्पा सभ्यता कि प्रथम खगोलीय प्रयोगशाला धौलावीरा से प्राप्त हुई है। यहां से आयताकार कुएं या 31 सीढ़ीयो वाला जालास्य कि प्राप्ति हुई है। इसे विश्व का सबसे बड़ा जलास्य अवशेष माना गया है। धौलावीरा से खेल के स्टेडियम तथा सूचना पट्ट के साक्ष्य मिले है। राखीगढ़ी हड़प्पा सभ्यता का सबसे बड़ा भारत में पुरास्थल है। राखीगढ़ी प्राक-हड़प्पा स्थल है। यहां से बच्चों के पिट्ठू खेल का साक्ष्य मिला है। इस हड़प्पाकालीन स्थल से पत्थर कि मुहर, चिन्हों के साथ मृद्भाव तथा टेराकोटा के बने पक्षी प्राप्त हुए है।

आलमगीरपुर उत्तर प्रदेश के मेरठ जिसे में हिण्डन नदी के किनारे स्थित है। यहां के उत्खनन में मृद्भाण्ड, रोटी बनाने की चौकी, मनके आदि पुरास्थल मिले है। डॉ. के.सी. श्रीवास्तव का मानना है कि ''आलमगीर पुर से सिन्धु सभ्यता के अवशेषों की प्राप्ति यह सिद्ध करती है कि यह सभ्यता गंगा-यमुना दोआब में भी फैली थी।''[8] ''बनावली पुरास्थल को सन् 1974 में आर.एस. बिष्ट ने खोजा था। यहां से स्नानाघर शौचालय आदि का साक्ष्य मिला है।''[9] यह एक विकसित नगर प्रतीत होता है। यहां के संभवत: अधिकांश नगरों में शोचालय का होना इस बात का संकेत करता है कि यह योजनाबद्ध तरिके से बसाया गया था।

सिन्धु सभ्यता के पतन की धारणा बहुत से विद्वानों ने अलग-अलग खोज के आधार पर दी थी। इनमें रामप्रसाद चन्द्र, गार्डन चाईल्ड, मैके, व्हीलर एवं पिग्गट ने आर्य आक्रमण की अवधारणा दी। आर्य आक्रमण के सबसे प्रबल समर्थक व्हीलर थे। आर्य आक्रमण कि अवधारणा में टाईनबी और व्हीलर प्रमुख है। टाईनबी का मत है कि ''जब सभ्यता में सपन्नता आती है और जब आसानी से लोगों कि आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तो वे आलसी तथा आरामतलब हो जाते है। उनके पुरूषत्व में कमी आ जाती है। उसमें सृजनात्मक कार्य करने कि क्षमता खत्म हो जाती है तथा जनता अनुशासनहीनता करने लगती है। अत: लुटरे और अन्य शत्रु इस सभ्यता के लोगों की शक्ति को क्षीण देखकर आक्रमण कर देते है तथा सभ्यता का विनास कर देते है।''[10] व्हीलर का मत है कि आर्यो के युद्ध के देवता 'इन्द्र' थे और उसे 'पुरूदर' अर्थात् दुर्ग का विनाशक कहा गया है। व्हीलर के अनुसार, ''ये दुर्ग कहां है या थे। पहले यह माना गया था कि ये मिथक मात्र थे। हड़प्पा में हाल में हुए उत्खननों ने मानों परिदृष्य बदल दिया है। हम मुख्यत: अनार्य प्रकार की एक बहुत विकसित सभ्यता पाते है जिसमें अब प्राप्त जानकारी के अनुसार विशाल किलेबंदिया की गई थी। यह सुदृढ़ रूप से स्थिर सभ्यता कैसे नष्ट हुई। हो सकता है जलवायु सम्बधी, आर्थिक अथवा राजनीतिक ह्यास ने इसे कमजोर किया है। पर अधिक सम्भावना इस बात की है कि जानबूझकर तथा बड़े पैमाने पर किए गए विनास ने इसे अन्तिम रूप से स्वीकार कर दिया। यह मात्र संयोग ही नहीं हो सकता कि मोहनजोदड़ो के अन्तिम चरण में आभाष होता है कि पुरूषों, महिलाओं तथा बच्चों का जनसंहार किया गया था। परिस्थितिक साक्ष्यों के आधार पर इन्द्र अभियुक्त माना जाता है।''[11]

व्हीलर का कथन उचित नहीं है। क्योंकि सिन्धु सभ्यता से मिले कंकालों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये कंकाल उन व्यक्तियों के है जो प्राकृतिक या बीमारी से मरे थे। अगर ये आक्रमण से होते तो यहां पर विभिन्न प्रकार के हथियारों का मिलना तय था। लेकिन सिन्धु सभ्यता के किसी भी स्थान से इस प्रकार के हथियार, कवच या रक्षा उपकरण नहीं मिले है। किसी भी एक स्थान पर जहां पर आक्रमण संभव हुआ होगा वहां पर अधिक मात्रा में शवों की भी प्राप्ति नहीं हुई है। जहां पर आक्रमण होता है वहां पर क्षत-विक्षत अवस्था में सैनिकों का मिलना तय था। इस प्रकार पी.वी. काणे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने 1955 में ही आर्य आक्रमण की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया था। सिन्धु सभ्यता का लगभग 1800 ईसा. पूर्व पतन हो गया था। इस सभ्यता के बाद की संस्कृतियों में कई तत्त्व ऐसे पाए गए है जिनसे यह सिद्ध होता है कि आक्रमण के कारण यह सभ्यता एकदम से विलुप्त नही हुई थी। दूसरी तरफ बहुत से पुरात्वविद् सिन्धु सभ्यता के पतन का कारण प्राकृतिक जन्य मानते है। प्राकृतिक कारण भूमिय और जलवायु सम्बधी हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के क्षेत्र में अत्याधिक विवर्तन विक्षोभो कि उत्त्पति हुई जिसके कारण अधिक मात्रा में भूकम्पो की उत्पत्ति हुई। एक कारण वर्षण प्रतिमान का बदलाव भी हो सकता है। अन्य कारणों में नदियों द्वारा अपना मार्ग बदलने के कारण का विनास हुआ होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. सिन्धु सभ्यता, के.के. थपल्याल एवं एस.पी. शुक्ल, पेज नं.41
2. प्राचीन भारत, डॉ. राजबली पाण्डेय, पेज नं.47
3. प्रारम्भिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, पेज नं. 76
4. सिन्धु सभ्यता के.के. थपल्याल एवं एस.सी. शुक्ल, पेज नं. 64
5. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव
6. प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव
7. सिन्धु सभ्यता के.के. थपतयाल एवं एस.पी. शुक्ल, पेज नं. 75
8. सिन्धु सभ्यता के.के. थपतयाल एवं एस.पी. शुक्ल, पेज नं.65
9. थपतयाल, किरण कुमार एवं शुक्ल, संकट प्रसाद, सिन्धु सभ्यता, पेज नं. 164
10. मार्टिमर व्हीलर, द इण्डस सिविलाईजेशन, 1968, पेज नं. 72-76
11. एन.सी.ई.आर.टी. दिसम्बर, 2017, पेज नं. 18

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित आश्रम व्यवस्था और उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता

विश्वजीत भारद्वाज

एम. ए. (संस्कृत विभाग) मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

वैदिक साहित्य हमारे जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। वैदिक शिक्षा भारत की संस्कृति और समृद्ध विरासत का मूल आधार है। शैक्षिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि, यह शिक्षा की एक व्यापक प्रणाली के निर्माण में मदद करती है।

शिक्षा में नई प्राथमिकतायें मठवासी विद्वानों, यथार्थवादी, आदर्शवादी और व्यावहारिक प्रवृत्तियों के प्रभाव के साथ उभरी हैं। जब से शिक्षण संस्थान विकसित हुए हैं, शैक्षिक संस्थानों द्वारा प्रस्तावित दार्शनिक आदर्शों और उनके रोजमर्रा के कामकाज के बीच कई अन्तराल पैदा हो गए हैं। शिक्षा के एक व्यापक दर्शन को प्राप्त करने के लिए, सिद्धांत रूप में और कार्यान्वयन में अंतराल को पाटने तत्काल आवश्यकता है।

प्रस्तुत शोध लेख, संस्कृत धर्म ग्रंथों में वर्णित आश्रम व्यवस्था के शिक्षा दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता के महत्त्व के बारे में है। पुरुष एक सामाजिक प्राणी है, धर्म शास्त्रीय शिक्षा ने न केवल सामाजिक कर्तव्यों पर जोर दिया बल्कि अध्यात्मिक सुख को भी बढ़ावा दिया है।

मूलशब्द

प्राचीन, संस्कृत, ग्रंथ, आश्रम व्यवस्था, शिक्षा दर्शन, प्रासंगिकता

परिचय

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान रही है। मनुष्य अपने जीवन में कर्म व श्रम के द्वारा ही उन्नति करता आया है। भारतीय समाज में कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। रामायण, महाभारत, पौराणिक कथा आदि में कर्म से सम्बन्धित विषय प्राप्त होते हैं। जिनसे यह पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में धर्म, कर्म तथा श्रम सर्वोपरि हैं।

भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण द्वारा कहा गया है–

कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म पर है, कर्म के फल पर नहीं। इस कारण मनुष्य को केवल कर्म करते रहना चाहिए, कर्म के फल की चिंता नहीं करनी चाहिए। सभी मनुष्यों को निष्काम कर्म करना चाहिए। निष्काम कर्म का अर्थ है कि केवल कर्म अर्थात् अपना कर्त्तव्य करना चाहिए ना कि कर्म के फल की चिंता करनी चाहिए, यदि जीव उचित तथा सभी के हित का कार्य करे तो अवश्य ही उचित कर्म का फल लाभकारी ही होगा परन्तु यदि मनुष्य कर्म करने से पहले ही कर्म के फल की चिंता करने लगे तो वह सम्यक रूप से कर्म नहीं कर पाएगा। इस कारण मनुष्य को कर्म के फल की चिंता का त्याग करके निष्काम कर्म ही करना चाहिए।

अत: भारतीय शास्त्रों में सभी परिस्थितियों में मनुष्य के लिए कर्म का विधान किया गया है। इसी कर्म सिद्धांत को स्वीकार करते हुए धर्मशास्त्रों में आश्रम व्यवस्था का विधान विद्वानों द्वारा किया गया।

आश्रम- आश्रम शब्द 'आ' उपसर्ग पूर्वक् 'श्रम्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है- विशिष्ट परिश्रम करना।

इसकी व्युत्पति है- ''आश्रमयन्ति अस्मिन् इति आश्रमः।'' अर्थात् जीवन का एक ऐसा स्तर, जिसमें व्यक्ति भरपूर श्रम करता है।

आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य-

भारतीय समाज के संगठन, लोक व्यवस्था के कल्याणार्थ व सञ्चालन के लिए भारतीय विद्वानों ने आश्रम व्यवस्था को स्वीकार किया। भारतीय विद्वानों ने मानव जीवन के चार प्रयोजन (पुरुषार्थ) धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का निर्धारण किया। मनुष्य को इन चारों प्रयोजन की सिद्धि के लिए विशिष्ट श्रम की आवश्यकता थी। मनुष्य श्रम पूर्वक जीवन व्यतीत करे और समस्त कर्त्तव्यों का पालन करे, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आश्रम व्यवस्था का निर्माण किया गया।

महाभारत में आश्रम व्यवस्था को चार डण्डों वाली ऐसी सीढ़ी के रूप में बताया गया है, जो व्यक्ति को क्रमशः ब्रह्म(परमात्मा) के ओर ले जाती है। आश्रम व्यवस्था में मनुष्य चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की सिद्धि के लिए विशिष्ट श्रम, साधना एवं तपस्या करता है और एक अवस्था(पुरुषार्थ) को प्राप्त कर लेने या पूर्ण करने के बाद दूसरी अवस्था की पूर्ति के लिए आगे की ओर बढ़ जाता है।

ये चारों आश्रम हैं- (1) ब्रह्मचर्याश्रम, (2) गृहस्थाश्रम, (3) वानप्रस्थाश्रम तथा (4) संन्यासाश्रम।

प्राचीन काल में मनुष्य के जीवन आयु की कल्पना सतवर्ष (सौ साल) की गई थी। इस कारण प्रत्येक आश्रम का काल पच्चीस (25) वर्ष माना गया। इस प्रकार मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन प्रथम पच्चीस वर्ष की आयु तक, गृहस्थ आश्रम में पचास वर्ष की आयु तक, वानप्रस्थ आश्रम में पचहत्तर वर्ष की आयु तक तथा अंतिम संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के बाद लगभग सौ वर्ष की आयु तक मोक्ष की प्राप्ति करता था।

(1) ब्रह्मचर्याश्रम- यह जीवन का प्रथम आश्रम है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है इन्द्रिय संयम (इन्द्रियों पर नियंत्रण) तथा वेदाध्ययन के लिए व्रत का पालन करना अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद इन चारों वेदों के अध्ययन के लिए समस्त कर्त्तव्यों का पालन करना।

ब्रह्मचर्याश्रम का मुख्य लक्ष्य शिक्षा प्राप्त करना है। ''ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।'' अर्थात् ब्रह्मविद्या ही ब्रह्मचारियों के लिए मुख्य विद्या थी।

यह आश्रम उपनयन संस्कार के बाद आरम्भ होता है। ब्रह्मचर्याश्रम में बालक को नैतिक गुणों की शिक्षा, कर्त्तव्यपालन, अनुशासन, स्वाध्याय, दया-भाव, धैर्य, आत्म संयम, इन्द्रिय नियंत्रण, परित्याग, सहनशीलता आदि का विकास किया जाता था। प्राचीन काल में ब्रह्मचर्याश्रम का पालन गुरुकुल या ऋषि आश्रम में किया जाता था। परन्तु वर्तमान काल में गुरुकुल व्यवस्था बहुत कम रह गई है तथा विद्यालय, महाविद्यालय आदि द्वारा शिक्षा प्राप्त की जाती है।

(2) गृहस्थाश्रम- यह मनुष्य जीवन का दूसरा स्तर है। इस आश्रम में विवाह संस्कार के बाद प्रवेश किया जाता है।

गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि-

साविधिपूर्वकम् स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान्गृहस्थधर्मान्प्रयुञ्जान् इमानि व्रतान्यनुरक्षेत्।

अर्थात इस आश्रम में पति-पत्नी एक साथ रहकर धर्मानुसार व्यवहार करते थे।

गृहस्थाश्रम का मुख्य लक्ष्य- ऋणत्रय (ऋषिऋण, देवऋण व पितृऋण) से मुक्त होना तथा पञ्चमहायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ तथा अतिथियज्ञ) की पूर्ति करना है।

ऋणत्रय है-

(क) ऋषिऋण- नित्य स्वाध्याय के द्वारा चिंतन, मनन करते हुए ज्ञानावर्धन करना है। इससे मनुष्य गृहस्थ आश्रम में गुरु या ऋषि ऋण से मुक्त हो जाता है।

(ख) देवऋण- मानव प्रतिदिन पूजा, अर्चना के द्वारा देव ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

(ग) पितृऋण- गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए मनुष्य विवाहित कन्या से संतानोत्पत्ति कर संतान के प्रति शिक्षा, पालन-पोषण, विवाह आदि कर्त्तव्यों को पूर्ण करके गृहस्थ व्यक्ति पितृऋण से भी मुक्त हो जाता है।

गृहस्थ आश्रम का लक्ष्य- दान देना, अतिथि सत्कार, दु:खी एवं रोगी व्यक्ति की सहायता करना, स्वाध्याय करना, पूजा-आराधना करना, संतान उत्पत्ति करना तथा संतान के प्रति कर्तव्य का पालन करना गृहस्थ आश्रम का परम लक्ष्य है।

(3) वानप्रस्थ आश्रम- वानप्रस्थ का अर्थ है वन में प्रवेश करना। 'वनमेव प्रस्थो, वनस्य वा प्रस्थ प्रदेश:।' अर्थात पूर्व परिस्थितियों का त्याग करके वन की ओर जाना वानप्रस्थ कहलाता था।

वन के लिये प्रस्थान करने का विधान होने के कारण इसका नाम वानप्रस्थ रखा गया है। यह आश्रम मनुष्य जीवन का तीसरा स्तर है।

वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य अपनी सभी जिम्मेदारियाँ पुत्रों को सौंपकर यज्ञ तथा संध्या, उपासना आदि नित्य कर्म करता हुआ, शाकाहारी, कन्दमूल फलों का आहार करते हुए, वन में वास करता है। वानप्रस्थी को भूमि शयन,कंद-मूल फल आदि का भोजन, अग्निहोत्र, तीन बार स्नान, पवित्रता, संयम, क्षमाशील, हितैषी तथा वल्कल वस्त्र का धारण करना चाहिए। वानप्रस्थी सभी सांसारिक बन्धनों को त्याग करके आत्मकल्याण की कामना से वन की ओर चल देता है।

(4) सन्यासाश्रम- यह अंतिम तथा चौथा आश्रम है। सन्यास का अर्थ है- पूर्ण त्याग। वेद के अतिरिक्त अन्य सभी कर्मों का त्याग करना ही संन्यास आश्रम का प्रमुख लक्ष्य है।

तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ) के पालन करने के बाद मनुष्य संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि-

प्राजापत्यं निरूप्योष्टिं सर्ववेद सदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मण: प्रव्रजेद् गृहात्।।

अर्थात समस्त धन जो वानप्रस्थाश्रम में दक्षिणा में दे दिया था, ऐसे प्राजापत्य यज्ञ को सम्पन्न करके तथा यज्ञाग्नियों को मन में स्थापित करके वह ब्राह्मण चौथे आश्रम संन्यास के लिए निकल पड़े।

इस आश्रम में साधक सभी प्रकार के मानसिक, शारीरिक आदि भावों का त्याग करके परमात्मा की प्राप्ति के लिए श्रम अथवा तप एवं आध्यात्मिक कर्म करता है।

सन्यासी के चार ही कर्तव्य है- ध्यान, पवित्रता, भिक्षा तथा एकांकी रहना। सन्यासी को मुनि के साधनों का प्रयोग करते हुए जगत के सुधार का भी यत्न करना चाहिए। समस्त भौतिक पदार्थों का त्याग करके केवल परमात्मा का चिंतन एवं मनन करना चाहिए।

इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में अध्ययनात्मक श्रम, गृहस्थाश्रम में क्रियात्मक व रचनात्मक श्रम की आवश्यकता होती है, वानप्रस्थाश्रम में तपस्यात्मक श्रम किया जाता है और संन्यासाश्रम में साधन रुपी श्रम किया जाता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन में चारों आश्रमों का समान महत्त्व है। संचालित जीवन के लिए आश्रम व्यवस्था का पालन करना जरूरी है। पहले आश्रम की प्राप्ति के बाद ही मनुष्य दूसरे आश्रम में प्रवेश करता है। अंतिम सन्यास आश्रम में मनुष्य परमात्मा(मोक्ष) की प्राप्ति करता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष पुरुषार्थ की पूर्ति के लिए आश्रम व्यवस्था का पालन करना अति आवश्यक है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में मानव बाह्य उन्नति के लिए प्रयासरत है। अपनी स्वार्थमूलक भावना के कारण वह परम संचित उपलब्ध ज्ञान, शक्ति एवं संतोष के स्थान पर संघर्ष, प्रतियोगिता एवं विनाश का कारण बन रहा है। आधुनिकता के नाम पर स्वयं को भुलाकर तामसिक एवं पाशविक प्रवृत्तियों से पूर्ण असभ्यता एवं अवनति के गर्त में स्वयं को गिराता चला आ रहा है। अत: वर्तमान में ऐसे दार्शनिक चिंतन की आवश्यकता परिलक्षित होती है, जिसके माध्यम से मानव पाशविक प्रवृत्तियों के आकर्षण से बचकर आत्मानुभूति करके नि:स्वार्थ कार्य करने प्रवृत्ति को अपनाकर जीवन के पारमार्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

आज का शिक्षित मानव, मानव न रहकर मात्र प्राणी बनकर रह गया है, मानवीय गुणों की रिक्तता एक प्रश्न बनकर पूरी मानव जाति को उद्वेलित कर रही है। अत: आवश्यक है कि शिक्षा दर्शन भी कल्याणकारी उदात्त भावना से अभिभूत होकर संकीर्ण विचारों की परिधि को तोड़कर अपने विस्तृत स्वरुप को समाहित कर ब्रम्हांड के समान हो जाए। आधुनिक शिक्षाविद् यह अनुभव कर रहे हैं कि जिस तीव्र गति से हमारी सभ्यता का भौतिक पक्ष समृद्ध होता जा रहा है उस अनुपात में आतंरिक पक्ष नहीं। आधुनिक भारत में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें भारतीय जीवन तत्वों की अधिकता हो ताकि भारत के प्राचीन गौरव व् मूल्यों को भी पुन: प्रतिष्ठापित किया जा सके। अत: दार्शनिक विचारधाराओं में ही आधुनिक शिक्षा के सन्दर्भ खोजने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. शर्मा राणा प्रसाद (2018) पौराणिक कोश प्रकाशक: ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी संकलन: भारत डिस्कवरी पुस्तकालय ।
2. सलूजा, चांद किरण (2006), "शिक्षा, समाज और विकास", परिप्रेक्ष्य-शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ, वर्ष 13, अंक-3, नीपा, नई दिल्ली।
3. सुधाकर शिरीष (2011) : शिक्षा के दार्शनिक आधार : कल्पना पब्लिशिंग हाउस
4. शर्मा, आर.ए.(1986) : शिक्षा अनुसन्धान मेरठ इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ
5. काणे, पी० वी०, (1965) : धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड-1, उत्तर प्रदेश हिदी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1965
6. कुमार नरेन्द्र, (1999): धर्मसूत्रीय आचार संहिता, विद्यानिधि प्रकाशन, कर्नाटक, पृ0 23
7. पाठक, आर.पी. (2008): ''प्राचीन भारतीय शिक्षा, कनिष्क पब्लिशेर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

भारत में दलबदल की राजनीति और दलबदल कानूनः एक अध्ययन

डॉ० यतेन्द्र सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री चित्रगुप्त पी. जी. कॉलेज, मैनपुरी, उ०प्र०

सारांश

दुनिया के किसी भी देश का उदाहरण लें, जहां गठबंधन सरकारें बनती हैं। वहां दलबदल की राजनीतिक समस्या मौजूद है। लोकतंत्र में जनता का राज होने के बाद भी लोग उसमें कुछ नहीं कर पाते। दरअसल, एक राजनीतिक दल या पार्टी उन लोगों का समूह है जो एक ही विचारधारा और सिद्धांतों को मानते हैं। जो लोग अपनी पार्टी के टिकट पर चुनाव जीतते हैं, वे निजी स्वार्थ या विपक्षी दल के प्रलोभन के कारण वर्तमान पार्टी को छोड़ देते हैं जिसके चुनाव चिन्ह पर उन्होंने चुनाव जीता है और दूसरी पार्टी में चले जाते हैं, इसे दलबदल कहा जाता है।

भारतीय राजनीति में दलबदल की समस्या का असर कई दशकों से है। दलबदल को रोकने के लिए संसद द्वारा कई कड़े कानून बनाए गए हैं, लेकिन राजनेता किसी तरह अपना काम खुद कर लेते हैं।

इस लेख में दलबदल विरोधी कानून, इसकी आवश्यकता, कानून के अपवाद, दलबदल विरोधी कानून की समस्याएं और इसकी प्रासंगिकता और पक्ष-विपक्ष की जांच की जाएगी।

मूलशब्द

भारत, दलबदल, राजनीति, दलबदल, कानून

परिचय

चुनाव से पहले टिकटों के लिए दलबदल का खेल आम हो गया था, लेकिन अगर चुनाव जीतने के बाद भी विधायकों या सांसदों का पार्टी का विश्वास डगमगा जाए तो क्या होगा?

अगर भारत की राजनीति में दलबदल की बात करें तो इस लोकतंत्र का मजाक तब से उड़ाया जा रहा है जब से भारत में गणतंत्र सरकार का गठन शुरू हुआ था। शुरुआती दशकों में कांग्रेस एकमात्र बड़ी पार्टी थी, इसलिए दलबदल का प्रभाव न्यूनतम था।

1977 में पहली बार विपक्ष मजबूत हुआ, जिससे पार्टी में बदलाव हुआ। इस दौरान जनता दल के नेतृत्व में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। इस सरकार के गिरने का कारण पार्टी परिवर्तन भी था।

तब से लेकर आज तक छोटे-बड़े चुनावों में राजनीति का यह गंदा मजाक चल रहा है, धीरे-धीरे बड़ी संख्या में विधायक और संसद इस कुटिल प्रवृत्ति के शिकार होने लगे। दलबदल को रोकने के लिए भारतीय संसद ने कई सख्त नियम और कानून बनाए हैं। जिससे इस पर कुछ हद तक काबू पा लिया गया है।

1973 में 32वें संविधान संशोधन के लिए संसद ने पहला प्रयास किया, जिसे सरकार पारित नहीं कर पाई। दलबदल विरोधी कानून, जो वर्तमान में प्रभावी है, 1985 में 52वें संविधान संशोधन के रूप में लागू किया गया था।

इस कानून के अनुसार, यदि कोई नेता अपनी पार्टी से इस्तीफा देता है, तो उसे संसद या विधानसभा के सदस्य के रूप में अयोग्य घोषित किया जा सकता है, साथ ही यदि वह एक पार्टी के चुनाव चिन्ह पर जीत हासिल करके दूसरी पार्टी में शामिल हो जाता है। उस नेता को सदन की सदस्यता से हाथ धोना पड़ सकता है।

2003 के 91वें संविधान संशोधन द्वारा इस नियम को और अधिक प्रभावी बनाते हुए यह प्रावधान किया गया कि यदि किसी राजनीतिक दल के एक तिहाई सदस्य छोड़ कर नई पार्टी बनाते हैं।

या विधान सभा, लोक सभा या राज्य सभा का कोई सदस्य, विधान सभा, लोक सभा, राज्य सभा का अध्यक्ष चुने जाने की स्थिति में अपने पद से त्यागपत्र देने के बाद भी उसकी संसद की सदस्यता समाप्त नहीं होगी।

भले ही दल-बदल विरोधी कानून में कुछ संशोधन कर इसे और प्रभावी बनाने का प्रयास किया जा रहा हो, लेकिन आज भी यह राजनीति का खेल बना हुआ है. पार्टी से एक तिहाई सदस्यों को छोड़ने का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है।

एक बार जब कोई नेता किसी पार्टी का चुनाव चिन्ह जीत लेता है, चाहे वह पार्टी अपने घोषणापत्र के अनुसार काम कर रही हो या नहीं, वह चाहे तो पार्टी की सदस्यता नहीं छोड़ सकता, उसे अगले चुनाव तक उसी पार्टी में रहना होगा। गिरता है।

अयोग्यता प्रावधान

- एक निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से एक राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है।
- एक स्वतंत्र निर्वाचित सदस्य एक राजनीतिक दल में शामिल होता है।
- एक सदस्य द्वारा सदन में पार्टी के खिलाफ वोट डाला जाता है।
- एक सदस्य मतदान से दूर रहता है।

दलबदल विरोधी कानून की जरूरत

राजनीतिक दल लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और सैद्धांतिक रूप से राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि वे सामूहिक रूप से लोकतांत्रिक निर्णय लेते हैं।

हालाँकि, स्वतंत्रता के कुछ वर्षों के भीतर, यह महसूस किया गया कि राजनीतिक दलों द्वारा उनके सामूहिक जनादेश की उपेक्षा की जा रही है। विधायकों और सांसदों की हेराफेरी से सरकारें बनने और गिरने लगीं।

1960-70 के दशक में आया राम गया राम की राजनीति देश में काफी लोकप्रिय हो गई थी। दरअसल अक्टूबर 1967 में हरियाणा के विधायक गया लाल ने 15 दिन के भीतर तीन बार अपनी पार्टी बदलकर इस मुद्दे को राजनीतिक मुख्यधारा में ला दिया था.

इसके साथ ही जल्द ही पार्टियों को दिए गए जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को चुनाव में भाग लेने से रोकने और अयोग्य घोषित करने की आवश्यकता महसूस की गई।

अंततः वर्ष 1985 में संविधान संशोधन के माध्यम से दलबदल विरोधी कानून लाया गया।

दलबदल विरोधी कानून के अपवाद

कानून में कुछ विशेष परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, जिसमें दलबदल पर भी अयोग्यता नहीं की जा सकती है। दल-बदल विरोधी कानून एक राजनीतिक दल को किसी अन्य राजनीतिक दल के साथ या उसके साथ विलय करने की अनुमति देता है, बशर्ते उसके कम से कम दो-तिहाई विधायक विलय के पक्ष में हों।

ऐसे में न तो दल-बदल सदस्यों पर कानून लागू होगा और न ही राजनीतिक दल पर। इसके अलावा सदन का अध्यक्ष बनने वाले सदस्य को इस कानून से छूट दी गई है।

अपवाद का प्रभाव

दल-बदल विरोधी कानून एक उचित सुधार था लेकिन इसके अपवादों ने कानून की मारक क्षमता को कम कर दिया। दलबदल जो पहले सिंगल हुआ करता था अब साथ-साथ होने लगा है।

इसलिए वर्ष 2003 में संसद को 91वां संविधान संशोधन करना पड़ा, जिसमें न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामूहिक दल-बदल को भी असंवैधानिक घोषित कर दिया गया।

91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003

इस संशोधन के तहत कैबिनेट का आकार भी 15 प्रतिशत तक सीमित कर दिया गया था। हालांकि, कैबिनेट सदस्यों की संख्या 12 से कम नहीं होगी।

इस संशोधन द्वारा 10वीं अनुसूची की धारा 3 को समाप्त कर दिया गया, जिसमें प्रावधान था कि एक-तिहाई सदस्य एक साथ दलबदल कर सकते हैं।

- **अयोग्य घोषित करने की शक्ति**
  - o कानून के अनुसार, सदन के अध्यक्ष के पास सदस्यों की अयोग्यता के संबंध में निर्णय लेने की शक्ति होती है।
  - o किहोतो होलोहन बनाम जाचिलु
  - o 1993 के किहोतो होलोहन बनाम जचिल्हू मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया था कि अध्यक्ष का निर्णय अंतिम नहीं होगा। विधानसभा अध्यक्ष के निर्णय के लिए न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।
  - o कोर्ट ने माना कि दसवीं अनुसूची के प्रावधान संसद और राज्य विधानमंडलों के निर्वाचित सदस्यों के लोकतांत्रिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करते हैं। साथ ही, वे संविधान के अनुच्छेद 105 और 194 के तहत किसी भी तरह से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं करते हैं।
  - o यदि विधानसभा अध्यक्ष का निर्णय दुर्भावनापूर्ण, दुर्भावनापूर्ण, संवैधानिक जनादेश और प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध पाया जाता है, तो न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।
- बड़ी चुनौतियां
  - o प्रतिनिधि लोकतंत्र की भावना के खिलाफ: दलबदल विरोधी कानून यह सुनिश्चित करता है कि विधायिका के सदस्यों द्वारा दलबदल को रोककर एक स्थिर सरकार प्रदान की जाती है।
  - o हालांकि, यह कानून विधानमंडल के सदस्यों को उनके मतदाताओं के हित में अपने विवेक से मतदान करने से रोकता है।
  - o सरकार पर विधायी नियंत्रण कमजोर: दलबदल विरोधी कानून सरकार पर विधायिका के नियंत्रण को कमजोर करता है क्योंकि यह विधायिका सदस्यों को राजनीतिक दल के शीर्ष नेतृत्व द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर मतदान करने के लिए मजबूर करता है।
  - o दल-बदल विरोधी कानून, वास्तव में, कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण को कम करता है और कार्यपालिका के हाथों में शक्ति को केंद्रीकृत करता है।
  - o सदन के पीठासीन अधिकारी की भूमिका: दलबदल विरोधी कानून के अनुसार, सदन के अध्यक्ष को सदस्यों की अयोग्यता के संबंध में निर्णय लेने की शक्ति होती है।

हालांकि, ऐसे उदाहरण हैं जब पीठासीन अधिकारी सत्ताधारी राजनीतिक दल के निहित स्वार्थों की सेवा करने वाले एक एजेंट की भूमिका निभाना शुरू कर देता है।

- दलबदल विरोधी कानून के पक्ष में तर्क
  - o दलबदल विरोधी कानून ने एक राजनीतिक दल के सदस्यों को पक्ष बदलने से रोककर सरकार को स्थिरता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1985 से पहले कई बार ऐसा देखा गया था कि राजनेता सत्ताधारी दल को छोड़कर अपने फायदे के लिए किसी अन्य दल में शामिल हो जाते थे और सरकार बनाते थे, जिससे जल्द ही सरकार गिरने की संभावना बनी रहती थी। ऐसे में सबसे ज्यादा असर आम लोगों के लिए बनाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं पर पड़ा. दल-बदल विरोधी कानून ने सत्तारूढ़ राजनीतिक दल को अपनी शक्ति की स्थिरता के बजाय अन्य विकास संबंधी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया है।

- o कानून के प्रावधानों ने धन या पद की लोलुपता से अवसरवादी राजनीति को रोकने और अनियमित चुनावों के कारण होने वाले खर्च को नियंत्रित करने में भी मदद की है।

साथ ही, इस कानून ने राजनीतिक दलों की प्रभावशीलता को बढ़ाया है और प्रतिनिधि केंद्रित प्रणाली को कमजोर किया है।

विरोध में तर्क

लोकतंत्र में संवाद की संस्कृति का अत्यधिक महत्व है, लेकिन दल-बदल विरोधी कानून के कारण, पार्टी लाइन के अलग-अलग लेकिन महत्वपूर्ण विचार नहीं सुने जाते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इससे अंतर-दलीय लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ता है और पार्टी के सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है।

लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन है। लोकतंत्र में जनता ही शासक होती है, उनकी अनुमति से शासित होती है, उनकी प्रगति को ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। लेकिन यह कानून लोगों के नहीं बल्कि पार्टियों के शासन यानी श्पार्टी राजश को बढ़ावा देता है।

कई विशेषज्ञों का यह भी तर्क है कि दुनिया के कई परिपक्व लोकतंत्रों में दलबदल विरोधी कानून जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में, यदि जन प्रतिनिधि अपनी पार्टियों के खिलाफ वोट करते हैं या पार्टी लाइन के बाहर वोट करते हैं, तो वे एक ही पार्टी में रहते हैं।

पश्चिमी गोलार्ध

दल-बदल विरोधी कानून को भारत की नैतिक राजनीति में एक ऐतिहासिक कदम के रूप में देखा जा रहा है। इस कानून ने देश में श्आया राम, गया रामश की राजनीति को खत्म करने में अहम भूमिका निभाई है. हालांकि, पिछले कुछ वर्षों से इस कानून के अस्तित्व को देश की राजनीति में कई बार चुनौती दी गई है।

दल-बदल विरोधी कानून में संशोधन कर इसके उल्लंघन के लिए अयोग्यता की अवधि को बढ़ाकर 6 साल या उससे अधिक किया जाना चाहिए, ताकि नेताओं के मन में कानून का डर बना रहे.

दल-बदल विरोधी कानून संसदीय प्रणाली में अनुशासन और सुशासन सुनिश्चित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, लेकिन इसे परिष्कृत करने की जरूरत है ताकि दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र भी सबसे अच्छा लोकतंत्र साबित हो सके।

170वें विधि आयोग की रिपोर्ट ने यह तर्क देकर अंतर-पार्टी लोकतंत्र के महत्व को रेखांकित किया कि एक राजनीतिक दल अपने कामकाज में आंतरिक रूप से निरंकुश और लोकतांत्रिक नहीं हो सकता है।

निष्कर्ष

दलबदल का सीधा सा मतलब है एक पार्टी से दूसरी पार्टी में शामिल होना। सभी स्थितियों पर गौर करें तो दलबदल की स्थिति तब बनती है जब किसी दल के सांसद या विधायक अपनी मर्जी से पार्टी छोड़ देते हैं या पार्टी व्हिप की अवज्ञा करते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है और दलबदल विरोधी कानून उन पर लागू होगा।

लेकिन अगर किसी पार्टी के दो-तिहाई सांसद या विधायक (पहले यह संख्या एक-तिहाई थी) पार्टी छोड़ देते हैं, तो यह कानून उन पर लागू नहीं होगा, लेकिन उन्हें अपनी स्वतंत्र पार्टी बनाने की अनुमति नहीं है, वे इसमें शामिल हो सकते हैं। कोई अन्य पार्टी।
.

एक प्रसिद्ध जुमला दलबदल के लिए प्रयोग किया जाता है जो इस प्रकार है - श्आया राम गया रामश

भारतीय इतिहास में इस जुमले को देखने की दृष्टि से देखा जाता है। इस नारे का प्रतिपादन चौथे आम चुनाव के बाद हुआ। वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में कई दलों का गठन हो चुका है, जो चिंता का विषय है। यदि सभी लोग राजनीति में अपनी भागीदारी दिखाना शुरू कर दें तो लोगों का विकास संभव नहीं होगा क्योंकि राजनीति में शिक्षित लोगों का होना जरूरी है। या आवश्यक तत्व यह है कि सदन के अध्यक्ष को उस सदस्य के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार है जिसने पार्टी छोड़ दी है, जिसके लिए 2/3 का अनुमोदन आवश्यक है।

लेकिन, दल-बदल विरोधी कानून लोकसभा या विधानसभा के अध्यक्ष पर लागू नहीं होता है, यानी यदि लोकसभा या विधानसभा का कोई सदस्य अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने के बाद, की प्राथमिक सदस्यता से इस्तीफा दे देता है उसकी पार्टी या पार्टी के व्हिप

के खिलाफ वोट। इसलिए यह कानून उन पर लागू नहीं होता। दलबदल विरोधी कानून सदस्यों पर लागू नहीं होता, भले ही राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति चुनाव में मतदान के दौरान पार्टी के व्हिप का उल्लंघन किया गया हो।

दल-बदल विरोधी कानून के तहत, सदन की सदस्यता से अयोग्य व्यक्ति तब तक मंत्री बनने के लिए अपात्र रहता है जब तक कि वह फिर से निर्वाचित नहीं हो जाता और सदन का सदस्य नहीं बन जाता।

सन्दर्भ

1. "The Parliamentary System" by Arun Shourie, Publisher: Rupa & Co
2. "Indian Politics and Society Since Independence" (PDF).
3. *Gehlot, N. S. (September 1991), "The Anti-Defection Act, 1985 and The Role of The Speaker", The Indian Journal of Political Science,* ***50*** *(3): 327–340, JSTOR 41855565*
4. Malhotra, G. C. (2005), The Anti-defection Law in India and Commonwealth, Lok Sabha Secretariat, ISBN 9788120004061
5. "Anti-defection Law and Parliamentary privileges" by Subhash Kashyap
6. Roy, Chakshu (July 2019). "Explained: The limits of anti-defection". PRS Legislative Research.

भारत में उच्च शिक्षा का प्रसार और सूचना प्रौद्योगिकी

डॉ० अल्पना राय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, कानपुर
सम्बद्ध- छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

वर्तमान समय में अत्याधुनिक तकनीकी उच्च शिक्षा के लिए वरदान साबित हो रही है, उच्च शिक्षा इससे पूरी तरह प्रभावित है। वर्तमान समय में भारत में सर्वाधिक शैक्षिक उपकरण अत्याधुनिक तकनीकी पर आधारित है। तकनीकी के विकास से सूचनाओं का आदान-प्रदान काफी तीव्र गति से हो रहा है। सूचना को हम शिक्षा की संज्ञा नही दे सकते है। यह बात सत्य है कि सूचना ज्ञान पर आधारित है परन्तु जरूरी नहीं है कि प्रत्येक सूचना का सम्बन्ध ज्ञान से हो, वर्तमान समय में अत्याधुनिक तकनीकी के विकास के फलस्वरूप सूचना क्रांति का विकास हुआ। सूचना का आदान-प्रदान सुगम होने से आम आदमी तक महत्वपूर्ण सूचनाओं की पहुँच सम्भव हो सकी है। जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई है। किसी भी प्रणाली की उपयोगिता उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करती है, उच्च शिक्षा भी एक प्रणाली है, सभी उपभोक्ता और लाभार्थी दोनों ही उच्च शिक्षा की गुणवत्ता से संतुष्ट नहीं हैं, इससे यह बात उजागर हो जाती है कि उच्च शिक्षा में विभिन्न इनपुट है छात्र, अध्यापक, पाठ्यक्रम आधारभूत सुविधायें आदि। लेकिन इन सब उपायों के बावजूद उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर वह नहीं है जिसकी अपेक्षा की जाती है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि उच्च शिक्षा प्रणाली में लगातार मूल्यांकन और निगरानी की कमी है। सूचना तकनीकी प्रणाली की समग्र गुणवत्ता बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है। उदाहरण के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय कम्प्यूटर एवं इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं को अद्यतन बनाया जा सकता है, कम्प्यूटर एवं इंटरनेट के माध्यम से दुनिया भर के विशेषज्ञों की राय ली जा सकती है।

सूचना प्रौद्योगिकी की प्रकृति गतिशील हैं इसमें उच्च शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के प्रबन्धन और इनमें सुधार की व्यापक सम्भावनाएं रहती है। आज हम ऐसी दुनियाँ में जीवन यापन कर रहे है। जो अत्याधुनिक तकनीकी पर आधारित है। जिसके फलस्वरूप केवल शिक्षा ही नहीं अपितु गुणवत्ता एवं विशेषज्ञता वाली शिक्षा से हम विश्व प्रतिस्पर्धा की किसी भी चुनौती से निपट सकते हैं। सूचना तकनीकी व्यक्ति में कौशल विकास करके उसमें उच्च पदस्थ होने के अवसर बढ़ा देती है। आधुनिक समाज ज्ञान पर आधारित समाज बनता जा रहा है। आज भारत दुनियाँ के अन्य देशों के सम्मुख विकासक्रम में वरीयता पाने के लिए प्रयासरत है। सबको साथ लेकर चलने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास के बिना ऐसा सम्भव नहीं हो सकता है। इसी कारण शिक्षा को केवल समाज के सभी वर्गो के सशक्तिकरण का ही नही अपितु उपेक्षित वर्गों के उत्थान का महत्वपूर्ण माध्यम माना जा रहा है और उपेक्षित वर्ग को शेष समाज की बराबरी पर लाने के सुनियोजित प्रयास किये जा रहे है। इसके अन्तर्गत गरीब उपेक्षित एवं दूरदराज के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के उपाय भी शामिल है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन आमतौर पर सूचनाएं देने तक सीमित नहीं है। बल्कि वह उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों में स्वावलम्बन की भावना का विकास करता है। सूचनाएं देने के साथ-साथ उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षण में उचित पहलुओं को सम्मिलित करना एक मुख्य चुनौती है। उदाहरण के तौर पर बालक में तार्किक क्षमता का विकास, निर्णय लेने की क्षमता का विकास,

आत्म निरीक्षण एवं मूल्य बोध का विकास, अध्ययन आदतों का विकास एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास पर शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा के लिए उपलब्ध बुनियादी ढाँचे, कक्षा के आकार, अध्यापकों की उपलब्धता, उनके परीक्षण की व्यवस्था आदि को देखते हुए उच्च शिक्षा के तमाम लक्ष्यों को प्राप्त करना मुश्किल है। ये लक्ष्य बहु-आयामी हैं इसलिए इन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियों को समन्वित रूप से इस्तेमाल में लाना जरूरी है। सूचना प्रौद्योगिकी आज इसमें मददगार साबित हो सकती है। यह बात तो सर्वविदित है कि अद्यतन सूचनायें देकर हमारी सूचना प्रौद्योगिकी गुणात्मक परिवर्तन ला सकती है क्योंकि इसके माध्यम से सूचना के विभिन्न स्त्रोतों तक हमारी पहुँच आसान हो जाती है। यह विभिन्न रूपों में सही-सही सूचनायें विस्तृत रूप में उपलब्ध करा सकती है। सूचना तकनीकी विषय वस्तु को प्रस्तुत करने में विविधता के अवसर प्रदान करती है। जिससे अधिगमकर्ता को सीखने एवं ध्यान केन्द्रित करने में सहायता मिलती है और इसके साथ-साथ वह विषयवस्तु को बेहतर तरीके से समझ सकता है। लचीलापन सूचना प्रौद्योगिकी की विशेषता है। परम्परागत विधियों और प्रक्रिया में सीखने वाले को लचीलेपन की यह सुविधा नहीं मिलती है। सीखने में श्रेष्ठता और कुशलता प्राप्त करने के लिए लचीलापन बेहद जरूरी है।

आज उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षा व्यवस्था की स्थिति काफी दयनीय होती जा रही है। इसमें सुधार के लिए तकनीकी संसाधन एक अच्छा विकल्प हो सकते है। उच्च शिक्षा में वित्तीय उलझनों के कारण योजनायें बनाने वाले प्रशासकों, प्रबन्धकों और योजनायें कार्यान्वित करने वाले अधिकारियों को संसाधनों के विकास और प्रबन्ध के किसी वैकल्पिक तरीके पर विचार करना होगा जिसमें सूचना तकनीकी को एक विकल्प के रूप में शामिल किया जा सकता है। सूचना तकनीकी का बेहतर एवं समुचित उपयोग करके विद्यार्थी, अध्यापक एवं शोधार्थी उच्च शिक्षा की स्थिति में गुणात्मक सुधार ला सकते है।

सीखने या अधिगम की गुणवत्ता के कई नियामक है। इसमें एक है- अध्यापक की गुणवत्ता। प्राचीन समय में यह मान्यता थी कि अध्यापक जन्मजात होते है परन्तु आज यह धारणा बदल चुकी है। अन्य प्रशिक्षण संस्थानों की तरह अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान भी खोले जा रहे है और इनको अत्याधुनिक बनाया जा रहा है। पहले स्कूल स्तर पर अध्यापन के इच्छुक लोगों को ही अध्यापन के विभिन्न पहलुओं का प्रशिक्षण दिया जाता था लेकिन अब कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर के अध्यापकों को भी प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्यापकों के कौशल विकास की अति आवश्यकता है लेकिन विभिन्न स्तर के अध्यापकों की संख्या इतनी अधिक है कि सभी स्तरों को प्रशिक्षण संस्थान इतनी बड़ी तादाद में अध्यापन के कौशल विकास की जिम्मेदारी पूरी नहीं कर सकते है। इसके कई कारण है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

- गुणात्मक प्रशिक्षण संस्थानों में कोई गुणात्मक या संस्थात्मक विस्तार नही हुआ है।
- कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षणार्थियों की ही कमी महसूस की गई है।
- आधारभूत ढाँचे से सम्बन्धित सुविधाओं का अभाव।
- प्रशिक्षण व्यवस्था कार्यस्थल से दूर होना।
- प्रशिक्षण संस्थानों की सीमित संख्या।
- सीमित आर्थिक संसाधन।

उपर्युक्त कमियों को सूचना तकनीकी के माध्यम से दूर किया जा सकता है। समुचित शिक्षा के लिए पूरे देश को विभिन्न क्षेत्रों में बाँटकर प्रत्येक क्षेत्र में संसाधन केन्द्र स्थापित करके इन केन्द्रों पर इण्टरनेट सुविधा से युक्त कम्प्यूटर और दृश्य-श्रव्य साधन रिकार्डिंग प्रणाली जैसी आधुनिकतम सुविधाओं द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत सुधार लाया जा सकता है।

आज सूचना तकनीकी ने पूरी दुनियाँ को 'ग्लोबल विलेज' में बदल दिया है क्योंकि आज मानव का सम्पर्क पूरी दुनिया में हो चुका है। वह किसी भी समय विश्व के किसी भी कोने में स्थित व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। किसी भी शैक्षिक समस्या पर चर्चा कर सकता है, विचार विमर्श कर सकता है, सूचना प्राप्त कर सकता है और ऐसी सूचनाओं का साझा उपयोग कर सकता है जो आसानी से उपलब्ध नहीं है। इससे स्पष्ट है कि आज हम दुनियाँ के किसी भी कोने तक आसानी से पहुँच सकते है। यह सब कम्प्यूटर एवं इण्टरनेट, वॉइस, मेल, ई-मेल, वीडियो मेल आदि के आविष्कार से सम्भव हुआ है।

किसी राष्ट्र की प्रगति, विकास और उन्नति मानवीय और अन्य संसाधनों पर निर्भर रहती है, सामग्री सम्बन्धी संसाधनों का मनुष्य की भलाई के लिए उपयोग काफी हद तक मानवीय संसाधनों के विकास पर निर्भर रहता है। किसी भी देश के मानवीय संसाधन असीमित हो सकते हैं मगर सामग्री संबंधी संसाधन सीमित होते है। ठीक से प्रशिक्षित श्रमशक्ति उपलब्ध सामग्री संसाधनों के उचित उपयोग में मददगार साबित हो सकती है, इसके लिए जरूरी है कि श्रमशक्ति को तकनीकी रूप से दक्ष बनाया जाये। क्योंकि इसके बिना किसी देश का विकास प्रगति और उन्नति सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में दूरस्थ शिक्षा की परिकल्पना तकनीकी सहयोग के बिना असम्भव प्रतीत होती है। जनसंख्या विस्फोट, सूचना क्रान्ति और शिक्षा की बढ़ती आवश्यकता की वजह से परम्परागत कॉलेज और विश्वविद्यालय दाखिले के इच्छुक सभी लोगों को प्रवेश देने की स्थिति में नही है, इससे योजनाकर्ताओं एवं प्रशासकों के लिए यह जरूरी है कि वे उच्च शिक्षा पूरी करने के इच्छुक सभी लोगों को श्रेष्ठ स्तर की शिक्षा सुविधायें उपलब्ध कराने के विकल्पों के बारे में विचार करें। परम्परागत विश्वविद्यालय ने दूरस्थ शिक्षा और मुक्त प्रणाली को अपनाकर अपने पत्राचार विभागों को दूरस्थ शिक्षा विभागों में बदल दिया है। दूरस्थ शिक्षा विभाग और मुक्त विश्वविद्यालय दोनों ही मुद्रित सामग्री के साथ-साथ वीडियों शैक्षिक सामग्री, ऑडियो सामग्री, कम्प्यूटर आधारित निर्देश, इण्टरनेट की सुविधा आदि का प्रयोग करने लगे है जिससे शिक्षण प्रक्रिया अधिक समृद्ध हुई है और थोड़ी सी अधिक लागत से शिक्षा के स्तर में भी सुधार हुआ है। सूचना तकनीकी का उपयोग योजना, संसाधनों के प्रबन्धन, परीक्षा, अध्यापन-शिक्षण प्रक्रिया, पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया, पाठ्यचर्या में विकास, प्रवेश आदि में कुशलतापूर्वक किया जा सकता है और वर्तमान स्थिति को और बेहतर बनाया जा सकता है।

किसी भी समाज में विभिन्न स्तरों पर विषमता देखने को मिलती है। नीति निर्माता ऐसी नीतियाँ बनाने का प्रयास करते हैं जिससे सम्पन्न और पिछड़ों के बीच का अन्तर कम हो सके। इस दूरी को पूरी तरह से मिटाना तो सम्भव नहीं है लेकिन विषमता की यह खाई विभिन्न क्षेत्रों जैसे महत्वपूर्ण सूचनाओं की उपलब्धता, संस्कृति और संसाधनों के प्रयोग आदि के क्षेत्र में आज भी विद्यमान है यह सर्वविदित है कि आज दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर व्यक्ति इंटरनेट का उपयोग करके कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है। इस तरह सूचना तकनीकी में इतनी क्षमता है कि यह सूचनाओं के सन्दर्भ में व्याप्त विषमता की खाई को कम कर सकती है।

जहाँ तक सूचना तकनीकी का सवाल है तो सूचना तकनीकी समाज में व्याप्त विषमता को दूर करने में पीछे नहीं रही है। आज के भौतिकवादी समाज में दुनिया भर के लोग उपलब्ध सुख सुविधाओं जैसे कार, दूरसंचार, कम्प्यूटर, घरेलू उपकरण, प्रयोगशाला उपकरण आदि का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाना चाहते हैं इन सब चीजों के बारे में सूचनायें विभिन्न वेबसाइट्स से प्राप्त की जा सकती है, उपभोक्ता इंटरनेट पर उपलब्ध सुविधा का प्रयोग करके इन चीजों की खरीद का आर्डर भी भेज सकते है। ई-कामर्स के क्षेत्र में हुई प्रगति ने पैसे के लेन-देन को बड़ा आसान बनाया है और इंटरनेट के जरिये भुगतान भी किया जा सकता है इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दुनिया में रहने वाले तमाम लोगों के लिए चाहे वह धनी हो या निर्धन, सभी का कार्य सूचना तकनीकी ने आसान बना दिया है। यूनेस्को के अनुसार सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय और इंजीनियरिंग विषयों के अलावा सूचनाओं के आदान-प्रदान व प्रसंस्करण में काम आने वाली प्रबन्ध तकनीक उनका अनुप्रयोग, कम्प्यूटर तथा मनुष्यों और मशीनों से उनका तालमेल तथा इससे सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मुद्दे आते है। तकनीकी उत्पादों का ऐसा ताना-बाना तैयार हो गया है, जिसमें सूचना प्रबन्ध को एक नया तकनीकी आयाम दिया गया है।

वर्तमान समय में सूचना तकनीकी की महत्ता बढ़ी है जिसके प्रभाव को उच्च शिक्षा के प्रसार में आसानी से देखा जा सकता है। सूचना तकनीकी के माध्यम से उच्च शिक्षा को और अधिक सरल तथा गुणवत्तापरक बनाया जा सकता है और समाज के उत्थान के लिए उसकी उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता है।

आज हम ज्ञान की शक्ति से संचालित ऐसी नयी दुनिया में रहते हैं जो अत्याधुनिक तकनीकी पर आधारित है। इस कारण न केवल शिक्षा, बल्कि गुणवत्ता और विशेषज्ञता वाली शिक्षा आधुनिक और अत्यधिक प्रतिस्पर्धा विश्व की चुनौतियों से निपटने की आवश्यक शर्त हो गयी है। उच्च शिक्षा के लिए बेहतर अवसर उपलब्ध होने से वरिष्ठ और विशिष्ट पदों तक पहुँचने के अवसर बढ़ जाते हैं। आधुनिक समाज ज्ञान पर आधारित समाज बनता जा रहा है। भारत दुनिया के अग्रणी देश की पंक्ति में शामिल होने का भरपूर प्रयास कर रहा है। लेकिन सब को साथ लेकर चलने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास के बिना ऐसा सम्भव नहीं हो पायेगा। इसी कारण शिक्षा को न केवल समाज के सभी वर्गों के सशक्तिकरण का, बल्कि उपेक्षित वर्गों के उत्थान का महत्वपूर्ण माध्यम माना जा रहा है और उपेक्षित वर्ग को शेष समाज की बराबरी पर लाने के सुनियोजित प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अन्तर्गत

उपेक्षित वर्गों के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के उपाय भी शामिल हैं। इन उपायों को सरल बनाने के लिए नवीन शिक्षण विधियों एवं शिक्षकों को नवाचार से जोड़कर अधिगम प्रक्रिया को सरल एवं सुगम बनाने पर जोर दिया जा रहा है क्योंकि शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण होता है।

संदर्भ सूचीः

1. डूरेन, रोसजीनेल्सन (2006), विद्यार्थियों की सीखनें की प्रक्रिया पर इण्टरनेट पर आधारित अनुदेशन के प्रभावों का अध्ययन, डिजरटेशन अब्सट्रैक्ट इण्टरनेशनल, वैल्यूम, 48नं0 10 जनवरी 2006
2. भदौरिया, अरुणा तथा अनामिका शुक्ला (2012), माध्यमिक शिक्षा और अध्यापक कार्य, आगराः राखी प्रकाशन, पृ0 14-17
3. भटनागर, सुरेश तथा अनामिका सक्सेना (2006), मॉडर्न इण्डियन एजूकेशन एण्ड इट्स प्राब्लम, , मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।
4. कौल, लोकेश (2006), शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, नई दिल्लीः विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0।
5. पाण्डेय, के0पी0 (2009), नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ0 312-316
6. पाठक, पी0डी0 (2004), शिक्षा मनोविज्ञान, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
7. भटनागर, ए0बी0 मीनाक्षी तथा अनुराग (2010), अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, मेरठः आर0 लाल बुक डिपो, पृ0 238-250

महादेवी वर्मा की कविता और स्त्री विमर्श

डॉ० नगीना बानों

असि0 प्रोफसेर, हिन्दी विभाग, शिया पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

साहित्य में चिंतन और विमानों की परंपरा अत्यंत सुदृढ़ रही है। हिंदी साहित्य की कवित्रीयों में भी इसकी झलक साफ देखी जा सकती है। मीरा से लेकर में महादेवी वर्मा और वर्तमान समय की कवित्रीयों में स्त्री चिंतन की परंपरा को देखा जा सकता है। महादेवी वर्मा का नारी चिंतन व लेखन नारी की वेदना और आत्म पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ नारी स्वातंत्र्य पर भी जोर देता है। महादेवी जब स्त्री स्वतंत्रता की बात करती हैं तब सवाल यह उठता है कि वे कैसी स्वतंत्रता चाहती हैं स्त्री की? स्त्री की स्वतंत्रता की चाह परिवार को तोड़ने की चाह नहीं हो सकती, उसे जोड़ने की होनी चाहिये। जोड़ने के इस कार्य में पुरूष की भागीदारी उतनी ही है जितनी स्त्री की है। संवैधानिक रूप में स्त्री बिल्कुल पुरूष के बराबर है। लेकिन वास्तविक जीवन में प्रश्न चिन्ह् लगा हुआ है। स्त्री-मुक्ति पर बात करने का, स्त्री की मुक्ति-कामना करने का मतलब परिवार से अलग होना या पति से अलग होना नहीं है। विवाह-संस्था को बनाये रखने में स्त्री-पुरूष दोनों का समान दायित्व है। माता-पिता के रूप में, पति-पत्नी के रूप में। जीवन की सार्थकता तभी सम्भव है, जहाँ स्त्री और पुरूष एक दूसरे के साथ मिलकर सहयोग दें, परस्पर आत्म सम्मान के साथ जिएं। वर्तमान परिवेश में ऐसा सहयोग कहीं-कहीं धूमिल सा हो गया है। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा महादेवी वर्मा लिखती हैं कि बचपन से ही भिक्षुणी बनने की कामना की थी, परन्तु जब सिलोन से आए प्रख्यात महास्थविर ने काष्ठ पट आँखों के सामने रखकर उनसे बात की तो उनकी प्रतिक्रिया थी, ''यह सब मुझे विचित्र तो लगा ही, क्रोध भी आया। जो गुरू अपने शिष्य को सीधे देख सकने की भी शक्ति नहीं रखता, उसका शिष्यत्व स्वीकार करना हास्यास्पद ही नहीं, अपमानजनक भी है। मेरा मन विद्रोह कर उठा और मैं तुरन्त उठकर चली आयी।''

महादेवी वर्मा के स्त्री चिंतन में वे सब आशंकायें बताई गई हैं जो भूमण्डलीकरण के इस दौर में घट रही है। स्त्री-श्रम को विश्व-स्तर पर लगातार मामूली सिद्ध किया जा रहा है। हायर एण्ड फायर वाला सिद्धान्त स्त्री-श्रमिकों पर सबसे पहले लागू किया जा रहा है। इस तरह के अस्थायी अर्थोपार्जन से उसकी जीवन-स्थितियाँ भी बद से बदतर हुई हैं। महादेवी वर्मा जी स्त्री मुक्ति को अर्थ से जोड़ते हुये कहती हैं कि ''यदि उन्हें अर्थ-सम्बन्धी वे सुविधाएं प्राप्त हो सकें जो पुरूषों को मिलती आ रही हैं तो न उनका जीवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियों के लिये भार बन सकेगा और न वे गलित अंग के समान समाज से निकालकर फेंकी जा सकेंगी, प्रत्युत वे अपने शून्य क्षणों को देश के सामाजिक तथा राजनीतिक उत्कर्ष के प्रयत्नों से भरकर सुखी रह सकेंगी।'' स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का प्रश्न नामक निबन्ध में महादेवी का कहना है कि ''आधुनिक परिस्थितियों में स्त्री की जीवन धारा ने जिस दिशा को अपना लक्ष्य बनाया है उनमें पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता ही सबसे गहरे रंगों में चित्रित है। स्त्री ने इतने युगों के अनुभवों से जान लिया है कि उसे सामाजिक प्रामाणिक प्राणी बने रहने के लिये केवल दान की ही आवश्यकता नहीं है, आदान की भी है, जिसके बिना उसका जीवन जीवन नहीं कहा जा सकता। वह आत्म-निवेदित वीतराग तपस्विनी ही नहीं, अनुरागमयी पत्नी और त्यागमयी माता के रूप में मानवी भी है और रहेगी। ऐसी स्थिति में उसे वे सभी सुविधाएं, वे सभी मधुर-कटु भावनाएं चाहिए जो जीवन को पूर्णता प्रदान कर सकती हैं।''[1]

पुरूष प्रधान समाज की जड़ मानसिकता पर प्रहार करते हुए महादेवी का मानना है कि ''प्रायः पुरूष यह कहते सुने जाते हैं कि बहुत पढ़ी-लिखी या कानून जानने वाली स्त्री से विवाह करते उन्हें भय लगता है। जब एक निरक्षर स्त्री बड़े से बड़े विद्वान से, कानून का एक शब्द न जानने वाली वकील या बैरिस्टर से और किसी रोग का नाम भी न बता सकने वाली बड़े से बड़े डाक्टर से विवाह करते भयभीत नहीं होती तो पुरूष ही अपने समान बुद्धिमान तथा विद्वान स्त्री से विवाह करने में क्यों भयभीत होता है।

इस प्रश्न का उत्तर पुरूष के उस स्वार्थ में मिलेगा जो स्त्री से अन्ध भक्ति तथा मूक अनुशरण चाहता है। विद्या-बुद्धि में जो उसके समान होगी, वह अपने अधिकार के विषय में किसी दिन भी प्रश्न कर ही सकती है, सन्तोषजनक उत्तर न पाने पर विद्रोह भी कर सकती है। अत: पुरूष क्यों ऐसी स्त्री को संगिनी बनाकर अपने साम्राज्य की शांति भंग करे। जब कभी किसी कारण से वह ऐसी जीवन-संगिनी चुन भी लेता है तो सब प्रकार के कोमल कठोर साधनों से उसे अपनी छाया मात्र बनाकर रखना चाहता है, जो प्राय: सम्भव नहीं होता।'' स्त्री स्वतंत्रता की वकालत करते हुए महादेवी वर्मा का स्पष्ट मानना है कि ''स्त्री को किसी भी क्षेत्र में कुछ करने की स्वतंत्रता देने के लिये पुरूष के विशेष त्याग की आवश्यकता होगी। पुरूष अब तक जिस वातावरण में साँस लेता रहा है वह स्त्री को ही दो रूपों में बढ़ने दे सकता है, माता और पत्नी। पत्नी जब घर से बाहर भी अपना कार्य-क्षेत्र रखेगी तो पुरूष को उसे और प्रकार की स्वतंत्रता देनी होगी, जिसकी घर में आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे आने-जाने की, अन्य व्यक्तियों से मिलने-जुलने की तथा उसी क्षेत्र में कार्य करने वालों से सहयोग लेने-देने की आवश्यकताएं प्राय: पड़ती रहेंगी। ऐसी दशा में पुरूष यदि उदार न हुआ और प्रत्येक कार्य को उसने संकीर्ण और संदिग्ध दृष्टि से देखा तो जीवन असहाय हो उठेगा। वास्तव में स्त्री की स्थिति के विषय में कुछ भी निश्चित होने के पहले पुरूष को अपनी स्थिति निश्चित कर लेनी होगी। महादेवी की कविता और गद्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह सभी चीजों को स्त्री के साथ जोड़कर पेश करती है।

महादेवी की कविताओं को कभी लौकिक और निजी जीवन से जोड़कर देखा गया तो कभी अलौकिक और रहस्यमय कह दिया गया। यह सच है कि महादेवी की कविता में वेदना, अश्रु, पीड़ा की शब्दावली का आधिक्य है, लेकिन उनकी कविता सिर्फ पीड़ा और वेदना की कविता नहीं है बल्कि इससे भी आगे जीवन के उल्लास की, जीवन के उत्सव की कविता है। उनके यहाँ अंधेरा जितना गहन है अंधेरे से निकलने की चाह भी उतनी ही तीव्र है। यह कवयित्री की निजी पीड़ा ही नहींय रूप से गीति काव्यात्मक प्रवृत्ति की है। बहुत जल्दी ही उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लिया। 'नीहार' के बाद की रचनाओं में उनका वास्तविक स्वरूप 'रहस्यवादी रूप' ही प्रकट हुआ।''[2] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में महादेवी के सृजन को मात्रा आधे पृष्ठ में निपटा दिया। उसमें भी शुक्ल जी महादेवी की निम्न पंक्ति उद्धृत करते हुए लिखते है कि ''इनको पीड़ा का इतना चस्का है-

'तुमको पीड़ा में ढूँढा
तुममें ढूँढूंगी पीड़ा'।''[3]

जबकि सुधा सिंह ने अपनी पुस्तक 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ' में शुक्ल जी की इस बात का खंडन करते हुए लिखा है कि ''यहाँ स्त्री की पुरुष से, उसकी तकलीफ में बराबरी की माँग है।''[4] गौरतलब है कि जो लेखिका स्त्री-विचारों और उसकी समस्याओं को लेकर इतना सचेत लेखन कर रही थी, वो भला पलायनवादी और पीड़ावादी कैसे हो सकती है?

प्रभाकर श्रोत्रिय ने महादेवी के काव्य को आगे कहा है। और इसी 'ताप' को वह महादेवी के स्त्री-विमर्श का मूल मानते हुए लिखते है कि ''ताप ही तो जीवन है, प्राण है, वही तो मृत्यु का प्रतिपक्ष है। यह अंधेरा, यह खामोशी, यह ठंडापन, मृत्यु-श्रृंखलाएँ है। अगर ये गलेंगी तो ताप से हीय 'श्रृंखलाएँ' ताप के डर से गलेंगी भित्तियाँ यह लोहे की रज में मिलेंगी।' लेकिन आग की जरूरत तोड़ने में ही नहीं, जोड़ने में भी होती है। विद्रोह इसीलिए सकारात्मक और मान्य है। 'बिना अग्नि के जुड़ा न लोहा, माटी, सोना'।''[5] महादेवी अपने काव्य में संपूर्ण सृष्टि के तेज को भांप रही थी। यही ताप और उसकी चमक वह नारी मात्रा में चाहती है-

''जो ज्वाला नभ में बिजली है
जिसमें रवि-शशि ज्योति जली है
तारों में बन जाती है जो
शीतलदायक उजियाला।'' (यामा)

अपने काव्य लेखन के आरम्भिक प्रयासों को महादेवी 'दूधमुंहा प्रयास' कहती है। इनमें सपनों की भरमार है। स्वयं कवयित्री का अनुरोध है कि

''इन सपनों के पखं न काटो
इन सपनों की गति मत बांधें।'' (रश्मि)

लेकिन इन कोमल सपनों को तो टूटना ही था। स्त्री को निजी सत्ता के साथ आकांक्षित जीवन कहाँ मिल पाता है। नामवर सिंह ने इसे रेखांकित किया है कि ''निजी आँसुओं के 'नीहार' में बंदिनी रहने वाली महादेवी ने 'रश्मि' के आलोक में जीवन की व्याप्ति का दर्शन किया और प्रखर ताप को झेलते हुए सांध्य क्षणों तक जाते-जाते समाजव्यापी दु:ख की अनुभूति करने लगी।''[6] महादेवी ने निजी दु:ख को स्त्री की चिरंतन की वेदना से और अंतत: विश्व-वेदना से जोड़ा है-

''मेरे हँसते अधर नहीं जग,
की आँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलियाँ देखो।'' (नीरजा)

महादेवी 'स्त्री-मुक्ति' में बाधक बनी समकालीन सामाजिक व्यवस्थात्मक विद्रूपताओं से पूर्णत: अवगत थी। इसकी चिंता उनके काव्य में देखी जा सकती है-

''घोर तम छाया चारों ओर
घटाएँ घिर आई घनघोर
वेग मारूत का है प्रतिकूल
हिले जाते है पर्वत मूल
कौन पहुँचा देगा उस पार?'' (यामा)

यह एक स्त्री के द्वारा महसूस की गई स्त्री जीवन की असुरक्षा, भय और पारंपरिक उत्पीड़न की प्रतिक्रिया है। यहाँ एक संकेत स्त्री-मुक्ति संघर्ष की राह के चयन का भी लगाया जा सकता है।

मैनेजर पाण्डेय ने महादेवी की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि ''उन्होंने दीप-शिखा के 'दो शब्द' में लिखा है- 'आलोक मुझे प्रिय है पर दिन से अधिक रात का। दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परतुं रात में झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।' क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है कि महादेवी को अंधकार से अधिक प्रकाश प्रिय है और पलायन से अधिक संघर्ष। उनकी कविता में अंधकार से आलोक का जो संघर्ष है, वह भारतीय स्त्री के जीवन की पराधीनता के अंधकार से स्वाधीनता की आकांक्षा का संघर्ष है। महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि के रूप में उसकी पराधीनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है-

''रात-सी नीरव व्यथा
तम-सी अगम मेरी कहानी'।''[7]

महादेवी के काव्य में नारी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक है, वह अपने अस्तित्व को कहीं भी कम करके नहीं आंकती और बराबरी का दावा करती है-

''उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन।'' (यामा)

महादेवी की कविता का मूल स्वर 'प्रेम' है। महादेवी प्रेम की उस मध्यकालीन व्याख्या का निषेध करती हैं कि 'प्रेम में अस्मिताँए मिट जाती हैं। ''महादेवी जानती थी कि प्रेम में बराबरी वाली अवधारणा को सामाजिक तौर पर घटित होने में अभी बहुत देर है. .. इसलिए महादेवी वेदना को चिरंतन भाव से अपना लेती है, बजाय मिलन के सुख के।''[8] महादेवी लिखती हैं-

''सजनि मधुर निजत्व ले
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।'' (यामा)

महादेवी का सबसे अधिक जोर इस बात पर है कि स्त्रियों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, जिसके साथ उन्हें कभी समझौता नहीं करना चाहिए। महादेवी मिलन की शर्त पर भी अपने अस्तित्व को विलीन नहीं होने देना चाहती-

''मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।''

महादेवी से पूर्व किसी भी साहित्यकार के यहाँ हमें विरह की आराधना देखने को नहीं मिलती है। विरह-वर्णन तो आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के अनेक साहित्यकारों ने किया है परंतु मिलन से अधिक विरह की चाहत किसी और के यहाँ मौजूद नहीं है। फिर क्यों अकेली महादेवी ही विरह में चिर है।

यहाँ यह ख्याल रखना चाहिए कि 'इच्छा' को इसलिए नहीं मारा क्योंकि परंपरा से स्त्री ऐसा करती आई है बल्कि इसलिए मारा क्योंकि इसके बिना, किसी तरह से अपनी सत्ता बचाने का दूसरा उपाय नहीं था। यही से प्रखर होता है उनका स्त्री-विमर्श और स्त्री-अस्तित्व की पहचान। भारतीय स्त्री की मुक्ति के संघर्ष को बिंबो में बांधते हुए महादेवी लिखती है-

''बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुन-गुन?
क्या डूबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना
जाग तुझ को दूर जाना।'' (सांध्यगीत)

जैसे-जैसे महादेवी के काव्य की विकास यात्रा आगे बढ़ती है, स्त्री संबंधी उनके विचारों में और प्रखरता आती जाती है। उनकी प्रारंम्भिक व्यक्तिगत पीड़ा का संघर्ष आगे चलकर समष्टि में विलीन हो जाता है और नारी मात्रा की मुक्ति के आह्वान का काव्य बन जाता है। 'सांध्यगीत' में वह लिखती है-

''विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होगा,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल मिट आज चली।'' (सांध्यगीत)

महादेवी भारतीय स्त्री के जीवन की उस विडम्बना को उजागर कर रही है जिसमें समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग होते हुए भी समाज की एक छोटी-सी इकाई 'घर' को भी स्त्री अपना नहीं कह सकती। कहीं वह पिता का घर है तो कहीं पति का और कहीं भाई या बेटों का। स्त्री के संबंध में उनके यही विचार 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में भी देखने को मिलते है। महादेवी अपने साहित्य में यह आह्वान करती है कि स्त्री अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़े। मार्ग में आने वाली बाधाओं की परवाह किए बिना उनका ड़ँटकर सामना करे। महादेवी स्त्री में आत्मविश्वास और स्वतंत्र चेतना पैदा करती हैं। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं ''द्विवेदी युगीन नारी का 'अबला' बिंब महादेवी तोड़कर चूर कर देती है और ऐसी नारी-जागरण की शक्ति का विस्फोट करती है कि जिसमें ध्वनित है-

'पंथ रहने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला'।''[5]

महादेवी भारतीय स्त्री के अतीत को तो अंधकारपूर्ण मानती ही है और उसके वर्तमान को उन्होंने करूण-व्यथा कहा है। साथ ही वह भारतीय समाज में स्त्री के भविष्य की अस्पष्टता को लेकर भी चिंतित है-

''कुहरे का धुंधला भविष्य है
है अतीत तम घोर
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर?'' (यामा)

महादेवी के प्रणय संबंधित काव्य में केवल विरहिणी की ही नहीं, सम्पूर्ण स्त्री-जाति के गहरे विषाद की भी छाया हैं। महादेवी के यहाँ विरहिणी की पीड़ा उसके प्रेमी से बिछड़ने की नहीं है। बल्कि भारतीय स्त्री का, इस अन्यायपूर्ण जीवन में शक्तिहीन तथा अधिकारहीन होने के कारण दु:खी होना है। महादेवी भारतीय स्त्री को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है-

''क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करूणा का उपहार
रहने दो हे देव! अरे वह मेरा मिटने का अधिकार।'' (नीहार)

देखने वाली बात यह है कि इतने पूजा-पाठ और बलिदान के बावजूद कितनी भारतीय स्त्रियों को अमरलोक प्राप्त हुआ? पर स्त्री-जीवन की दयनीयता यह है कि अगर उसके पास कोई अधिकार भी है तो स्वयं मिटने का।

महादेवी की कविता में 'दीपक' संघर्ष का प्रतीक है वह लिखती हैं-

''किरण-पथ पर क्यों अकेला दीप मेरा है?
यह व्यथा की रात का कैसा सवेरा है? (अग्निरेखा)

स्त्री की दुनिया में अब भी असली सबेरा नहीं आया, इसलिए महादेवी का दीप अकेला अभी तक जलता हैं। पीड़ा का यह संसार विकल्पों के बीच से चुना हुआ महादेवी का इच्छित संसार नहीं है, जैसा कि आलोचकों ने प्राय: जताने की कोशिश की है, बल्कि उनके काव्य में भारतीय स्त्री के त्रासद जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है।

महादेवी वर्मा की कविता इस प्रकार कई संदर्भों में स्त्री मन की भावना के साथ साथ इसलिए चेतना की अभिव्यक्ति देती है। उनकी कविता में मानवीय करुणा और संवेदना के साथ साथ स्त्री विमर्श का स्वर सुनाई पड़ता है। उक्त विश्लेषण से हम स्पष्ट तौर से कह सकते हैं की मीरा के काव्य परंपरा में स्त्री मन की पीड़ा और वेदना झलकती है। हम स्पष्टत: यह बात कह सकते हैं मीरा का समूचा काव्य स्त्री चिंतन का काव्य है।

संदर्भ सूची-

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ. 172
2. शुक्ल, रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 211
3. सिंह, सुधा, ज्ञान का स्त्रीवाद पाठ, पृ. 335
4. सिंह, सुधा, वही, पृ. 330
5. श्रोत्रिय, प्रभाकर, महादेवी आँसू नहीं आग है, यमहादेवी: काव्य-कला और जीवन-दर्शन, संपा. शचीरानी गुर्टू, पृ. 134
6. मिश्रा, सत्यप्रकाश, महादेवी का सर्जन: प्रतिरोध और करूणा, पृ. 84
7. पांडेय, मैनेजर, अनभै साँचा, पृ. 232
8. सिंह, सुधा, वही, पृ. 329
9. पालीवाल, कृष्णदत्त, नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचना कर्मणा स्त्री विमर्श के स्वर, प0ृ. 54

गुड़गाँव में बढ़ते अपराधः एक अध्ययन

लक्ष्मी शर्मा

शोध छात्रा, भूगोल विभाग, कु0 मायावती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गौतमबुद्धनगर (उ0 प्र0)

ले०. डा०. मीनाक्षी लोहानी

विभागाध्यक्ष भूगोल विभाग, कु0 मायावती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गौतमबुद्धनगर (उ0 प्र0)

सारांशः

अपराध समाज में फैली एक विसंगति है। किसी समाज में रहने के लिए वहाँ के नियमों को भी अपनाना होता है परन्तु जब उन्हीं नियमों को तोड़कर कुछ गलत किया जाता है तो वह अपराध की श्रेणी में आता है। अपराध हत्या, चोरी, लूट, छेडछाड़, दंगा आदि सभी प्रकार के हैं। यह क्षेत्रीय स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक व्यक्ति, समाज व देश को प्रभावित करता हैं। गुड़गाँव भारत के हरियाणा राज्य का जनपद है जो राष्ट्रीय राजधानी प्रदेश का एक महत्वपूर्ण अंग है। जहाँ साक्षरता दर 73.26 प्रतिशत है, कुल जनसंख्या लगभग 27 लाख हैं। वर्ष 2008 में गुड़गाँव नगर निगम बना। जनपद में औद्योगिक विकास तीव्र है। बढ़ते विकास के कारण यह अपनी एक अलग पहचान रखता है। क्षेत्र में विकास के साथ-साथ अपराध भी वृद्धि कर रहे हैं। जहाँ वर्ष 2009 में कुल अपराध 6345 थे, जो वर्ष 2019 में बढ़कर 14977 हो गये हैं। अपराध दर में 136.04 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि दर्ज की गयी हैं। आकड़ों का संग्रहण द्वितीयक स्तर पर किया गया है। विभिन्न अपराधों में अलग-2 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है। अपराध के कारणों में सांस्कृतिक, मनोरंजन एवं आर्थिक कारण प्रमुख हैं। अपराध की रोकथाम के लिए कानूनों का पालन व अलग स्तर की कोशिशें की जा सकती है।

प्रमुख शब्दः अपराध, अपराध के कारण।

अपराध (शब्द परिचय): अपराध हमारे समाज में फैली एक विसंगति है। जिसमें अलग-अलग प्रकार के अपराध सम्मिलित हैं। अपराध समाज में किसी भी रूप में हो, वह प्रभावित सभी को करता है। इसमें छोटी चोरी से लेकर बडी डकैती, हत्या, झगड़ा, अशांति फैलाना, लूट, आदि सम्मिलित है। वर्तमान में भौतिक अपराधों के साथ-साथ साइबर अपराध भी बहुत अधिक बढ़ रहा है। अपराध समाज के सभी वर्गो तथा सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है। सामान्य रूप से अपराध दैनिक होते है, जिनमें छोटी चोरी, छेड़छाड़ आदि सम्मलित है। अपराध हमारे समाज में एक विकट समस्या के रूप में उभर रहा है। जिसे सुधारने के लिए सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाना आवश्यक है। अपराध से विश्व के सभी देश प्रभावित हैं। किसी देश में अपराध अधिक तथा किसी देश में अपराध न्यूनतम स्तर पर हैं। आतंकवाद, मानव तस्करी, ड्रग्स तस्करी आदि अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अपराध है, जिन पर रोकथाम के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद कार्यरत् है।

अध्ययन क्षेत्रः गुडगाँव हरियाणा राज्य (भारत) का एक जनपद है जो कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में दिल्ली आता है। क्षेत्र में विकास के साथ यहाँ की जनसंख्या में भी प्रवास के कारण अतिशय वृद्धि हुई है। गुडगाँव जनपद हरियाणा के विकसित क्षेत्रों में अपनी पहचान रखता है। 1947 में गुडगाँव भारतीय पंजाब के नगर के रूप में स्वतन्त्र भारत का हिस्सा बना। 1950 में द्वितीय श्रेणी की नगरपालिका के रूप में गुडगाँव नगरपालिका की स्थापना हुई और 2 वर्ष बाद इसमें सिविल लाइन्स, न्यू लाइन्स, पुलिस कालोनी,

मड हटस, माडल टाउन और मरला कालोनी को नगर क्षेत्र में शामिल किया गया। 1966 में यह नगर नवर्निमित राज्य हरियाणा के अन्तर्गत आया। 1969 में इसे प्रथम श्रेणी की नगरपालिका का दर्जा दिया गया तथा 2008 में गुडगाँव को नगर निगम घोषित किया गया। जनपद का अक्षांशीय विस्तार $27^0 39'30''$ उत्तरी अक्षांश से $28^0 32'25''$ उत्तरी अक्षांश तथा $76^0 39'30''$पूर्व से $77^0 20'45''$ पूर्वी देशान्तर है। इसका क्षेत्रफल 1258 वर्ग किलोमीटर है। जिसमें 976.65 वर्ग किमी. ग्रामीण तथा 281.35 वर्ग किमी. नगरीय है। जनपद की जनसंख्या 2011 में 15,14,432 थी जो 2021 में 27 लाख होने का अनुमान है। जनपद में लिंगानुपात 854 है। जनपद में साक्षरता दर 73.26 प्रतिशत है। क्षेत्र में 5 तहसील गुडगाँव, सोहना, पटौदी, फर्रूखनगर, मानेसर है तथा 4 ब्लॉक गुडगाँव, सोहना फर्रूखनगर, पटौदी है।

उद्देश्य: अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जनपद में बढ़ रहे अपराधों की ओर ध्यान आकर्षित करना है। जनपद में अपराधों की बढती संख्या चिंता का विषय है। जिसका प्रभाव समाज के सभी वर्गो पर पड़ रहा है।

- अपराधों की बढ़ती संख्या।
- अपराध के कारक।
- अपराध की बढती संख्या पर रोकथाम के उपायों पर विचार।

शोध विधि: आँकड़ों का संग्रहण द्वितीयक स्तर पर किया है। जिनका महत्वपूर्ण स्त्रोत हरियाणा राज्य की सांख्यिकीय पत्रिका तथा जनगणना पुस्तिका है। आँकड़ों को वर्गीकृत कर सारणी/तालिका द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

अपराधिक घटनायें: गुडगाँव में अपराधिक घटनायें विभिन्न प्रकारों में सामने आती है। क्षेत्र में अपराधों की अलग-अलग श्रेणी में वृद्धि हो रही है। इन अपराधों के कारण भिन्न-2 है।

अपराध की घटनायें शहर क्षेत्र में अधिकाशत: चोरी, लूट, डकैती अपहरण से सम्बन्धित होते है, जबकि ग्रामीण क्षेत्र में जमीन विवाद, पारिवारिक कलह आदि से सम्बन्धित होते है। दैनिक अपराध अधिकांशत: शहर या कस्बे में देखने को मिलते है। अपराध अलग-2 होते है जिनमें प्रमुख अपराध निम्न है:

हत्या तथा सदोष मानव हत्या: वर्ष 2009 में गुडगाँव में हत्या के 84 मामले दर्ज किये गये तथा 2019 में यही आंकडा 104 हो गया। सदोष मानव हत्या का वर्ष 2009 में 1 मुकदमा दर्ज किया गया जिनकी संख्या वर्ष 2019 में बढकर 11 हो गई। हत्या एक सश्रम दण्डनीय अपराध है जिसमें दोष सिद्ध होने पर दोषी को आजीवन कारावास या मृत्यु दण्ड दिया जाता है।

डकैती, सेंधमारी, चोरी, लूट: ये अपराध सभी छोटे व बडे स्तर के है। सभी चोरी से सम्बन्धित है। इन सभी अपराधों में दस वर्षो में अतिशय वृद्धि दर्ज की गयी है। वर्ष 2019 में 20 डकैती, 573 सेंधमारी, 5534 चोरी, 184 लूट के मामलें दर्ज किये गये।

अपहरण: किसी व्यक्ति या बच्चे को रूपये या अन्य किसी कारण से बन्धक बना कर रखना या फिर अपहरण के बाद फिरौती न मिलने पर उसकी हत्या कर देना अपहरण व हत्या की श्रेणी में आता है। वर्ष 2009 में अपहरण के 56 मामले दर्ज किये गये जो वर्ष 2019 में बढ़कर 298 हो गये।

दंगा या अवैध सभा: क्षेत्र में किसी छोटे लड़ाई झगड़े को साम्प्रदायिक रूप देकर दंगा या आगजनी करवाना अपराध की श्रेणी में आता है। दंगा एक छोटे क्षेत्र से लेकर बड़े क्षेत्र को प्रभावित करता है। क्षेत्र में बिना प्रशासन की अनुमति लिये सैकड़ो लोगों को इकट्ठा कर भाषण देना या भडकाऊ भाषण देकर लोगो को उकसाना सम्मिलित है। 2009 में अवैध सभा व दंगो के 89 मामले दर्ज किये गये जो वर्ष 2019 में बढ़कर 225 हो गये।

गुडगाँव में अपराधिक घटनायें

अपराध का नाम	2009 (संख्या)	2019 (संख्या)
हत्या	84	104
डकैती	17	20
संेधमारी	549	573
चोरी	2429	5534
लूट	129	184
अपहरण	56	298

दंगा या अवैध सभा	89	225
सदोष मानव हत्या	1	11
सिक्का बनाना	4	5
विविध	2987	8026
कुल अपराध	6345	14977

स्त्रोत: सांख्यिकीय सारांश हरियाणा (2009-10) (2019-20)

अपराध में दशकीय वृद्धि दर: गुडगाँव में अपराध लगातार बढ़ रहे हैं। क्षेत्र में बढ़ते अपराधों पर रोकथाम के लिए कठोर कदम उठाये गये है फिर भी अपराधिक घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। क्षेत्र में अपराधिक घटनाओं में सर्वाधिक दशकीय वृद्धि सदोष मानव हत्या व अपहरण के मामलों में दर्ज की गयी है। जो कि व्यक्ति से फिरौती या आपसी रंजिश के लिए किये जाते है। सबसे कम दशकीय वृद्धि सेंधमारी की घटनाओं में दर्ज की गयी है।

गुडगाँव में अपराधों में दशकीय वृद्धि दर 2009 से 2019

अपराध का नाम	**दशकीय वृद्धि दर (प्रतिशत में)**
हत्या	23.8
डकैती	17.64
सेंधमारी	4.3
चोरी	139.3
लूट	42.6
अपहरण	432.14
दंगा या अवैध सभा	152.8
सदोष मानव हत्या	1000
सिक्का बनाना	25
विविध	168.69
कुल अपराध वृद्धि दर (दशकीय वृद्धि)	136.04

अपराध के कारक: अपराध मानव सभ्यता के विकास के साथ ही विकसित हुए हैं। जिसके समायानुसार कारण भिन्न-2 है। सामान्य रूप से देखा जाये तो अपराध का कोई एक कारण स्पष्ट रूप से दृष्टिगत नहीं होता है। इसके लिए भी विद्वानों के अलग-2 मत हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार अपराध बेरोजगारी, आर्थिक विपिन्नता, द्वेष भावना आदि के कारण होते हैं। परन्तु नवीनतम मान्यताओं के अनुसार अपराध करने वाला अपराधी एक मानसिक रोगी है जो कुछ उपचार के पश्चात समाज में रहने योग्य हो सकता है। अपराध के कुछ प्रमुख कारक निम्न है-

1. **सांस्कृतिक कारक-** एक धर्म का दूसरे धर्म या एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से पृथक होना कभी-2 अपराध का कारण बन सकता है। एक जाति, समाज या धर्म के लोग दूसरे भिन्न समुदाय से वैचारिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण अपने-2 धर्म, समुदाय को महत्वूपर्ण मानते है जो कि भविष्य में अलग विचारों के कारण अपराध का कारण बनता हैं।
2. **शारीरिक कारण-** कुछ विशेष सम्प्रदाय के लोगों का मानना है कि अपराधी जन्म से ही अपराधिक प्रवृत्ति लेकर पैदा होते है तथा शारीरिक या मानसिक विकार वाले लोग जैसे बौद्धिक क्षमता के कम होने से सही गलत की पहचान न कर पाना, चरित्रहीनता, गुस्से में अस्थिरता आदि अपराध का कारण बनते हैं।
3. **आर्थिक कारण-** निरन्तर आर्थिक कमजोरी से लड़ता व्यक्ति कभी-2 मानसिक दुर्बलता के कारण अपराध की ओर उन्मुख होता है। डा0 हैकरवाल के अनुसार 'क्षुधा और भुखमरी उन्हें अपराध के सरल और कुटिल मार्ग पर ले जाती है।'
4. **पारिवारिक कारण-** घर परिवार के माहौल का प्रभाव व्यक्ति के चरित्र पर पड़ता है जोकि बड़े होने पर व्यक्ति के गुणों व अवगुणों को निर्धारित करता है।

5. **सामाजिक कारण-** वर्तमान में समाज में धन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, जिसके कारण कुछ व्यक्ति धन कमाने के लिए गलत दिशा में मुड़ जाते है जो अपराध को जन्म देते हैं।
6. **राजनैतिक कारण-** सत्ताधारी राजनेताओं द्वारा अपना कार्य पूर्ण न करना, गलत करने वालों से मित्रता या अन्य सम्बन्ध ों के चलते साथ देना, गुटबन्दी, गलत टिप्पणी करना, अपने भाषणों से सामाजिक दंगा/धार्मिक भावना को आहत करना आदि अपराधों को बढ़ाता है।
7. **भौगोलिक कारण-** कुछ अपराध-शास्त्री जो भौगोलिक विचारधारा से प्रभावित है उनके अनुसार जलवायु, मौसम व भौगोलिक स्थिति का अपराध पर प्रभाव पड़ता है। जैसे कि गर्म देशों में शरीर के विरूद्ध तथा ठण्डे देशो में सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध होते है। लेकिसन नामक अपराधशास्त्री ने क्रिमिनल कैलेण्डर के अनुसार बताया कि जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रैल में शिशु हत्या, जुलाई में मानव हत्या, मई, जुलाई, अगस्त में बच्चो के प्रति अपराध तथा दिसम्बर व फरवरी में सम्पत्ति के लिए सर्वाधिक अपराध होते है, तथा ये अपराध भौतिक वातावरण से प्रभावित होते हैं।
8. **मनोरंजन के साधनों का प्रभाव-** वर्तमान में मनोरंजन के अनेक साधन है, जिनका किशोरों पर अच्छा व बुरा दोनों तरह का प्रभाव पड़ता है जोकि अपराध को जन्म देता है।

अपराध की रोकथाम पर विचार- अपराध मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, विकारों द्वारा जन्म लेते हैं जिन पर कार्यवाही भी की जाती है, परन्तु फिर भी अपराध दर वृद्धि की ओर अग्रसर हैं। अपराध को पूर्णत रोका तो नहीं जा सकता परन्तु उसे कम जरूर किया जा सकता है

- बच्चों की शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करना जिससे वे सही गलत के अन्तर को पहचान सके।
- मनोरंजन के साधनों का उचित ढंग से प्रयोग जो किशोरों को सही सीख प्रदान करें।
- पारिवारिक वातावरण को अनुकूल रखना।
- मानसिक दोष चाहे व किसी भी प्रकार का हो उसकी काउंसलिंग करना।
- योग द्वारा आत्म संयम को बढ़ाना।
- क्रोध, वैचारिक दोष आदि को ध्यान द्वारा नियंत्रित करना।
- कानून का सख्ताई से पालन करना।
- दोषियों को उपयुक्त व कठोर सजा देना।
- अपराध के विरूद्ध जन जागरूकता फैलाना।

संदर्भ सूची-

1. www.wikipedia.com
2. www.informise.com
3. सांख्यिकीय सारांश हरियाणा 2019-2020।
4. सांख्यिकीय सारांश हरियाणा 2009-2010।
5. समाचार पत्र अमर उजाला, 2015, (गुरूग्राम संस्करण)
6. महाजन संजीव, अपराधशास्त्र एवं दण्ड शास्त्र हिंदी बुक सेंटर।
7. बंसल एस.सी. भौतिक भूगोल।
8. हुसैन माजिध्द एवं सिंह रमेशः भारत का भूगोल।
9. निवासन एम. एनः आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन।
10. देवरे राजाराम सुधीरः आधुनिक समाज शास्त्र राजकमल प्रकाशन।
11. समाचार पत्र हिन्दुस्तान, 2018, (गुरूग्राम संस्करण)

मथुरा में जैन प्रतिमा का निर्माण

रवींद्र सिंह

शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ0प्र0)

मथुरा में जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र था। बौद्ध एवं ब्राह्मणों के सदृश यहाँ जैन सम्प्रदाय वालों ने भी अपने धर्म तथा कला के केन्द्र स्थापित किये। जैन कला के अन्तर्गत आयागपट्ट, तीर्थंकर की प्रतिमाएँ, वेदिका-स्तम्भों की उत्कीर्ण पुत्तलिकाएँ, कुषाण नरेशों की मूर्तियाँ एवं 'लौकिक जीवन' के विभिन्न दृश्यांकनों का अध्ययन किया जा सकता है।

आयापट्ट

जैन 'आयागपट्ट' कला की दृष्टि से मथुरा-कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण माने जाते हैं। ये जैन धर्म में प्रतीक पूजन को स्वत: सिद्ध करते हैं। इन आयागपट्टों को व्यूहलर महोदय ने ''टेबलेट्स आफ होमेज'' कहा है जिसका तात्पर्य है पूजा पट्ट। वास्तव में आयागपट्ट प्रस्तर के चौकोर फलक है जिन पर विभिन्न मांगलिक प्रतीकों के मध्य प्रथम बार 'जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं' का अर्द्ध-चित्रण पाया गया है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल[1] का मत है कि प्रतीक या धार्मिक चिन्हों के प्रभाव की जैसी स्फुट, साक्षी आयागपट्टों में है वैसी अन्यत्र नहीं। परन्तु ऐसी भी आयागपट्ट प्राप्त हुये हैं जिन पर केवल 'अष्टमांगलिक प्रतीकों' का ही अंकन है, जैन तीर्थंकरों का नहीं। ऐसे उत्कीर्ण प्रतीकों में मुख्य रूप से श्रीवत्स, स्वास्तिक चक्र, मीन-मिथुन, मंगल-कलश, शंख, माला, वर्द्धमान, भद्रासन उल्लेखनीय हैं। ऐसे प्रतीक आयागपट्टों में 'स्वस्तिक पट्ट या सोवित्थम पट्ट, चक्रपट्ट अधिक लोकप्रिय हैं। अत: इन आयागपट्टों को अध्ययन की दृष्टि से निम्नवत वर्गीकृत किया जा सकता है: (1) मांगलिक प्रतीक युक्त तथा (2) प्रतीकों के मध्य तीर्थंकर की प्रतिमायुक्त। ऊपर कहा गया है कि जैन मूर्तन मुख्यत: प्रतीकात्मक एवं प्रतिमा रूप में था परन्तु कालान्तर में मूर्ति तथा प्रतीकों का समन्वय हो गया। मांगलिक प्रतीक युक्त आयागपट्ट- यह एक ऐसा 'चक्रपट्ट' है जिसके मध्य में सोलह अरे बने हैं तथा जो तीन मण्डलों (वृत्तकार) से घिरा हुआ है- पहले मण्डल में 16 त्रिरत्न चिन्ह हैं, दूसरे में 'अष्टदिक्कुमारिकाएँ' आकाशगति से विचरण करती हुई पुष्प एवं माल्यार्पण कर रही हैं। तीसरे (अन्तिम) वृत्त या मण्डल में एक भारी माला (जिसे डॉ. अग्रवाल[2] ने महापुण्डरीक स्त्रज कहा है) संजोई गई है। एक अन्य आयागपट्ट जिसे 'स्वस्तिक पट्ट' (अथवा सोत्थिय पट्ट) की संज्ञा दी जा सकती है मथुरा से प्राप्त हुआ है जिस पर 'महास्वस्तिक का चिन्ह' विद्यमान है। इसके मध्य में छत्र के नीचे पद्मासन की स्थिति में बैठे हुए तीर्थंकर की मूर्ति है। इस मूर्ति के चारों ओर स्वस्तिक की चार भुजायें तथा तीर्थंकर के मण्डल की चार दिशाओं में चार 'त्रिरत्न' दर्शाये गये हैं। बाहर के चार कोनों में 'गुह्यक-मुद्रा' में चार महोरग हैं। चौकोर चौखटे को बढ़ाकर अष्टमांगलिक चिन्हों की पंक्ति का अंकन है जिनमें स्वास्तिक, मीन, मिथुन तथा श्रीवत्स सुरक्षित है। अत: यह कहा जा सकता है कि मथुरा की जैन कला से संबंधित दो प्रकार के 'आयागपट्ट' पाये गये है-पहले वे आयागपट्ट जिन पर केवल 'अष्टमांगलिक' प्रतीकों का अंकन जैसे-स्वस्तिक, श्रीवत्स, चक्र, मीन-मिथुन, पूर्णघट अथवा मंगल-कलश, शंख, माला, भद्रासन आदि तथा दूसरे प्रकार के आयागपट्ट पर-जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का अर्द्धचित्रण अंकित किया गया है। ऐसे आयागपट्ट जिन्हें चौत्यपट्ट की संज्ञा दी जाती है कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें आयागपट्ट सं. जे. 244 जो सम्प्रति लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित हैं, कलात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम माना जा सकता है। चौत्यपट्ट से सम्बोधित आयागपट्ट मथुरा में भी विद्यमान है तथा एक चौत्यपट्ट अमरावती में

भी प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा के ये 'जैन आयागपट्ट' सम्भवत: पूजा फलक थे, जो जैन सम्प्रदाय की पूजन पद्धति की प्रारम्भिक अवस्था के परिचायक हैं।

जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ जैन अर्हतों की पूजा निमित्त अलंकृत आयागपट्टों के मध्य 'पघ्यासनमुद्रा' (या ध्यानमुद्रा) में बैठी तीर्थंकरों के अंकन की परम्परा कालान्तर में 'स्वतंत्र प्रतिमा' के विकसित स्वरूप को धारण कर लिया। मथुरा के कंकाली टीले के स्तूप से बहुसंख्यक जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनको चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) कायोत्सर्ग (काउसग्ग) मुद्रा में खड़ी प्रतिमाएँ

(2) पद्मासन में बैठी मूर्तियाँ

(3) खड़ी मुद्रा में चौमुखी मूर्तियां

(4) बैठी मुद्रा में 'सर्वतोभद्रिका' प्रतिमाएँ

मथुरा संग्रहालय की बी. 32 संख्यक प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में जैन तीर्थंकर के प्रारम्भिक स्वरूप को प्रदर्शित करती है। पद्मासन या ध्यानामुद्रालीन तीर्थंकर-प्रतिमा का स्वतंत्र अंकन बहुतायत से पाये जाते हैं। वास्तव में जैन-तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में केवल कुछ की ही स्पष्ट पहचान हो सकी है। उदाहरणार्थ 'कंधे तक लटकती जटाओं से आदिनाथ' (या ऋषभनाथ) शीष के ऊपर तने 'सर्पफण के छत्र' से पार्श्वनाथ तथा पार्श्व में कृष्ण एवं बलराम की उपस्थित से नेमिनाथ को पहचाना जा सकता है। लखनऊ राज्य संग्रहालय में जे. 31 संख्यक मूर्ति कुषाण संवत् 80 या 82 के लेख से युक्त है जिसके वक्षस्थल पर 'श्रीवत्स' का चिन्ह प्रदर्शित है। इस लेख में उन्हें 'वर्धमान' कहा गया है। बैठी (पद्मासनमुद्रा) तीर्थंकर प्रतिमाओं के आसन (चौकी) के अग्रभाग के मध्य 'धर्मचक्र' तथा पार्श्व में दोनों तरफ सिंहों की आकृतियाँ हैं। संभवत: इन सिंहों की विद्यमानता तथा सिंहासन के आधार पर ही 'बैठी प्रतिमा' को वर्धमान महावीर से समीकृत किया गया है।

स्तम्भ-पुत्तलिकाएँ

मथुरा से जो जैन-स्तूपों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुये है उनमें 'वेदिका-स्तम्भ विशेष उल्लेखनीय हैं। भूतेश्वर-मन्दिर से प्राप्त तथा जैन-स्तूपों की वेदिका-स्तम्भों पर मथुरा 'जैनकला' की दृष्टि से 'शालभंजिका' (पाणिनि ने इसे प्राचाक्रीड़ा कहा है) का अंकन विशेष महत्वपूर्ण हैं अवदानशतक में भी शालभंजिका क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में इन्हें 'देश्य क्रीड़ा' कहा है। वास्तव में उद्यानों के पुष्पित शाल वृक्षों की शाखाओं को तोड़कर युवती स्त्रियां एक दूसरे पर प्रहार करती हैं अथवा झुकी हुई पुष्पित शाखा से स्त्रियां पुष्पों का प्रचय करती हैं। जैन वेदिका-स्तम्भों पर विभिन्न क्रीड़ाओं के अंकन में कलाकारों ने अपनी मौलिकता एवं उदार दृष्टि का परिचय दिया है। इन क्रीड़ाओं में नवयौवना स्त्रियों को विभिन्न क्रीड़ा मुद्राओं में प्रदर्शित किया गया है जिसमें-सद्य: स्नाता, शुक-क्रीड़ा, कन्दुक क्रीड़ा, शालभंजिका एवं रूपदर्शिता विशेष उल्लेखनीय हैं।

कनिंघम को श्रावस्ती के निकट टण्डन नामक स्थान से एक शालभंजिका प्राप्त हुई थी (3 फीट 4'' इंच की)। यह लाल-प्रस्तर की पुत्तलिका मथुरा की कुषाणकालीन कृति है।[3] ऐसी पुत्तलिकाओं में सद्य: स्नाता युवती की वेदिका-स्तम्भ पर अंकन कला की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जो स्नानोपरान्त सूर्य की ओर पीठ करके अपने बालों में से जल की बूदें निचोड़ रही है और उसके पैरों के पास बना हंस उन बूदों को पी रहा है। इस मुद्रा को 'मत्स्य पुराण' में-केशनिस्तोपकारिणी[4] कहा गया है। इस दृश्यांकन की प्रशंसा कलाविद डॉ. कुमारस्वामी ने भी की है।[5] उनके अनुसार नवयौवना के भीगे बालों की बूदों को हंस काले बादलों से गिरती बूँदें समझकर पी रहा है। इसी प्रकार मंगलघट पर आसीन 'श्री लक्ष्मी' एवं शुक क्रीड़ारत नवयौवना और मदिरापात्र-धारिणी युवती तथा मुखदर्शना (दर्पण में अपना मुख देखती) आदि का भूतेश्वर-मन्दिर मथुरा के स्तम्भ पर उत्कीर्ण पुनलिकायें जैन-कला की महत्वपूर्ण कृतियां मानी जाती हैं।

मथुरा कला केन्द्र के रूप में: कुषाण काल में गान्धार के समान ही उत्तरी भारत में मथुरा भी जैन मूर्तिकला का एक बहुत बड़ा केन्द्र था, जहाँ सहस्त्रों मूर्तिकारों ने बड़ी संख्या में मूर्तियाँ बनाई। इसी कारण कुषाण युग में शिल्प कर्म और प्रतिभा निर्माण के लिए मथुरा की ख्याति दूर-दूर तक हो गई थी। परखम जैसी अति महाकाव्य प्रतिमाओं के निर्माण में शिल्पी मौर्य-शुंग युग में

ही अभ्यस्त हो चुके थे। उसी परम्परा को कुषाण युग में बोधिसत्व, बुद्ध नाग और यक्ष देवताओं की विशालकाय मूर्तियों के निर्माण द्वारा आगे बढ़ाया गया।

इस समय लोक-शैली, भरहुत और साँची की उन्नत दोनों शैलियाँ बराबर चल रही थीं। यह दोनों शैलियाँ कुषाणकाल में मिलकर एक हो जाती हैं, जो मूर्तिकला के इतिहास में 'मथुरा शैली' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

शिलालेखों तथा शिल्प के भग्नावशेषों से ''कुषाणकालीन मथुरा कला का समय दूसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक माना जाता है।''

क्योंकि इस युग में कला का कार्य क्षेत्र विस्तृत था, अतः मथुरा इस युग की कला का मुख्य केन्द्र बना। इसके दो कारण थे-पहला यह कि ''यह कुषाण नरेशों की राजधानी थी'' और उन नरेशों का संरक्षण प्राप्त था। दूसरा यह कि मथुरा उत्तरी भारत में उस काल का एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। पश्चिमोत्तर भारत में तक्षशिला, पूर्वी भारत में कौशाम्बी, वाराणसी और पाटलिपुत्र तथा दक्षिण में विदिशा और प्रतिष्ठान तक के व्यापारी मथुरा होकर आया-जाया करते थे। बौद्ध तथा जैन धर्म ने, राजाओं और धनिक वर्ग के लोगों को सबसे अधिक प्रभावित किया। अतः आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न मथुरा भारत के उन प्रमुख थोड़े नगरों में से एक था, जहाँ प्राचीन भारत के चार धर्मों यथा ब्राह्मण, बौद्ध, जैन और लोकधर्मों का समन्वय हुआ।

मथुरा कला में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय भी हुआ, जिसमें भारतीय कला की धार्मिकता, ईरानी कला का बाह्य सौन्दर्य तथा यूनानी मानवीय शरीर का समानुपातिक आकर्षण इन तीनों के योग से मथुरा कला की चारूता अभूतपूर्व रही।[6]

मथुरा शैली की जैन धर्म की मूर्तियाँ: जैन मूर्तियों में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, आयागपट्ट जिन प्रतिमा, जिनों के जीवन से संबंधित दृश्य व कुछ अन्य मूर्तियाँ हैं मथुरा से ज्ञात आयागपट्ट शुंग-कुषाण काल की देन है। इसमें दो तलों में बने स्तूप के पार्श्व में दिगम्बरमुनि सुपर्ण और शालभंजिकाएँ बनी हैं। तोरणों के नीचे, दोनों ओर स्त्री-पुरूष या दानदाता दंपत्ति की आकृतियाँ हैं। दोनों ओर स्तम्भों पर क्रमशः चक्र और सिंह स्थापित हैं।

महास्वास्तिक आयागप्ट के मध्य में, चार दिशाओं में स्थित चार त्रिरत्न के मध्य छत्रधारी तीर्थंकर पद्मासन में बैठे हैं। उनके चारों ओर स्वस्तिक की चार भुजाएँ मीन-मिथुन, वैजयन्ती, स्वस्तिक एवं श्रीवत्स सहित अंकित हैं। एक अन्य अर्हतपट्ट पर पद्मासन में बैठी तीर्थंकर मूर्ति के साथ त्रिरत्न, अष्टमंगल चिन्ह के अन्तर्गत मीन-मिथुन, देवगृह-विमान, श्रीवत्स, रत्नपात्र, त्रिरत्न, पुष्प चक्र, वैजयन्ती और पूर्णघट का पंक्तिबद्ध निरूपण हुआ है। अन्य आयागपट्ट इन्हीं के समतुल्य हैं। स्वतंत्र तीर्थंकर मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं- 'एकाकी रूप' और 'सर्वतोभद्रिका या चतुर्बिम्ब रूप।' इन्हें या तो कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थानक रूप में दिखाया गया है या ध्यानमुद्रा में आसीन रूप मे। इस काल की मूर्तिकला में ऋषभनाथ, संभवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियाँ पहचानी जा सकी हैं।[7]

मथुरा शैली की लौकिक कला: साँची और भरहुत आदि प्राचीन तथा गान्धार आदि समकालीन कला सम्प्रदाय में जहाँ केवल धार्मिक दृष्टिकोण रखते हैं और लौकिक सौन्दर्य की ओर निरपेक्ष रहते हैं, वहीं मथुरा सम्प्रदाय इन दोनों का सुन्दर और औचित्यपूर्ण सामंजस्य प्रस्तुत करता है। एक स्तूप के चारों ओर लगी वेदिका के खड़े स्तम्भों में गहरे उभार में बनाई गई कुछ यक्षियों तथा स्त्रियों की आकृतियाँ इस संबंध में उल्लेखनीय हैं। इन स्त्री आकृतियों की उत्तेजना पूर्ण ऐन्द्रियता और उन्माद से पूर्ण आकृति किसी भी प्राचीन कला सम्प्रदाय की आकृतियों से मेल नहीं खाती। उनकी मादक आकृति और रमणी-शरीर के सौन्दर्य तथा आनन्दों का स्पष्ट चित्रण, प्राचीनकाल से चली आ रही उस प्रवृत्ति की चरम सीमा है। ये आकृतियाँ आभरणों से लदी हुई हैं। उनकी शरीर-रचना पूर्णतः भारतीय सौन्दर्यशास्त्रीय विचारों के अनुरूप है।

इन यक्षी आकृतियों का चित्रण केवल शान्त रूप से त्रिभंग में खड़े हुये ही नहीं किया गया, बहुधा उन्हें किसी पक्षी, वृक्ष, पुण्य आदि की संगति में क्रियाशील दिखाया गया है। कहीं वे पक्षियों का पिंजड़ा लिये तोते या मैना से बातें कर रही हैं, कहीं पीठ पर गिरते हुये किसी पहाड़ी झरने के नीचे स्नान कर रही हैं, कहीं किसी शाल वृक्ष का आलिंगन करके उसे पुष्पित कर रही हैं और कहीं अपने श्रृंगार के लिए कदम्ब के पुष्पों का अवचयन कर रही हैं। इनके रूप में इतनी मादकता और शरारत भरी चितवन में इतना आकर्षण है कि वे मनुष्यों का ही नहीं, देवताओं तक का जी चुराने में समर्थ हैं।

भारतीय कला में सदा से ही युग प्रतिबिम्बित रहा है। तत्कालीन समाज की धार्मिक और लौकिक दोनों ही प्रवृत्तियों को इसने व्यक्त किया है। इस दृष्टि से प्राचीन मथुरा सम्प्रदाय भारतीय कला का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि कहा जा सकता है।[8]

संदर्भ

1 ए. भा. कला. पृ. 238

2 भा. कला, पृ. 239

2 कनिंघम आर्के. सर्वे इण्डि., रिपोर्ट सं. 11 (1875-78) वाराणसी, 1968 (पुनर्मुद्रण), पृ. 74 (फलक 23)

4 अग्र. वा. श., भा. क., पृ. 233

5 'In a Mathura relief a crane is drinking the drops of Water that fall from the hair as though they were rained drops falling from the dark cloud.'k~ (nsf•;s Hist.k~ of Ind & Indonesian Art.k~ P.k~ 65)

6 ए. एल, श्रीवास्तव: मथुरा-द क्रैबिल ऑफ इंडियन कल्ट इमेजेज, इण्डोलॉजिकल स्टडीज, दिल्ली, 1987, देवेन्द्र हाण्डा सं., पृ. 47-63

7 कृष्णदत्त वाजपेयी: मथुरा, नई दिल्ली, 1980, पृ. 46-49

8 रमानाथ मिश्र: भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, दिल्ली, 2002, पृ. 112-113

प्रवास और अवैध प्रवास भारत के लिए समस्या

डॉ० सच्चिदा नन्द राम

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, विभाग, कुँवर सिंह पी0जी0 कालेज, बलिया।

जातीय संघर्ष न केवल देश के भीतर अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करता है, बल्कि अन्य देशों के साथ इसके संबंध को भी खतरे में डालता है। भारत में भी सूक्ष्म तरीके से अवैध प्रवास की जांच कानूनी और विनियमक तंत्र द्वारा नहीं की जा सकी। इसकी व्यापक जांच के लिए कोई संतुलित नीति नहीं बनाई गई। इस तरह की नीति के गठन में जातीय समूहों के बीच सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और भाषाई संबंधों और देश के भीतर और बाहर कई मुद्दों पर इसके प्रभाव को ध्यान में रखना पड़ता है।[1]

अवैध प्रवासी

अवैध प्रवासी वे लोग हैं जो किसी देश के आव्रजन कानून के उल्लंघन के कारण किसी देश में प्रवास करते है या उस देश के कानूनी अधिकार के बिना उस देश में निरंतर निवास करते है। अवैध आव्रजन आर्थिक रूप से ऊपर की तरफ होता है अर्थात् गरीब से अमीर देश तक। भारतीय दृष्टिकोण से अवैध प्रवसन एक बड़ा खतरा है। भारत की तरफ से भारतीय क्षेत्र में अवैध प्रवासियों को रोकना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रवास के इस कार्य से नागरिकों पर दबाव पड़ता है साथ ही साथ सुरक्षा का खतरा पैदा होता है। यह जम्मू कश्मीर जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में बहुत अधिक है जो एक विशेष स्थिति वाले राज्य थे, अब केन्द्र शासित राज्य है। संयोग से यह उल्लेख किया जा सकता है कि रोहिंग्या के प्रवास का मुद्दा देश भर में एक ज्वलंत मुद्दा बन गया। भारतीय सुरक्षा प्रतिष्ठानों के हवाले से कहा गया है कि कुछ उग्रवादी समूह की विचारधारा के साथ सहानुभूति रखने वाले कुछ रोहिंग्या जम्मू, दिल्ली, हैदराबाद और मेवात में सक्रिय हो सकते है और आंतरिक सुरक्षा के लिए एक संभावित खतरा हो सकते है।[2] यदि हम भारतीय कानून के अनुसार इस मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखतें तो पता चलता है कि अवैध प्रवासी शरणार्थी नहीं है। चूंकि भारत 1951 के शरणार्थी सम्मेलन का हस्ताक्षर कर्ता नहीं है इसलिए संयुक्त राष्ट्र का गैर शोधन और निष्कासन का सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है। जहां तक अंतर्राष्ट्रीय कानून के मापदंडों का सवाल है अवैध प्रवासियों को निष्कासित कर दिया जाता है अगर वो एक वैध शरणार्थी देश के परिभाषा में नहीं आते है तो।

बांग्लादेश से भारत में

अवैध प्रवास का कोई आधिकारिक प्रमाणिक डेटा उपलब्ध नहीं है जो भारत साझा करें। बांग्लादेश के साथ 4093 किलोमीटर की सीमा साझा है। 2800 किलोमीटर सीमा को ठीक तरीके से घेरा जा चुका है। कुछ ऐसी खुली सीमा होती है जिससे लोग आसानी से भारत के पूर्वोत्तर राज्य में पलायन कर सके। मार्च 1992 में गृहमंत्रालय (MHA) ने खुलासा किया कि 1991 तक 7 लाख से अधिक अवैध बांग्लादेशियों को भारत के अन्य राज्यों में रहते हुए पहचान लिया गया। पश्चिम बंगाल में 2,40,446, असम 1,35,656, मेघालय 14268, त्रिपुरा 29382 (1983-91) और मिजोरम 3,18,731। 14 जुलाई 2004 को केन्द्रीय गृहराज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने संसद में बयान दिया कि भारत में 20 मिलियन अवैध बांग्लादेशी प्रवासी रह रहे है। 6 मई 1997 को भारत के गृहमंत्री मन्दिरजीत गुप्ता ने कहा कि बांग्लादेश से 10 मिलियन अवैध प्रवासी भारत आकर बसे। गृहमंत्रालय के खुफिया सूत्रों

ने इंडिया टुडे पत्रिका के 10 अगस्त 1998 के अंक में यह जानकारी दी। विवरण इस प्रकार है पश्चिम बंगाल 5.4 मिलियन, असम 4 मिलियन, त्रिपुरा .8 मिलियन, बिहार .5 मिलियन, महाराष्ट्र .5 मिलियन, राजस्थान 0.5 मिलियन, दिल्ली 0.3 मिलियन कुल 10.83 मिलियन।[3] सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1972 से 1997 के बीच 9,91,031 बांग्लादेशियों ने वैध दस्तावेज के साथ भारत में प्रवेश किया, लेकिन वापस नहीं लौटे। 31 दिसंबर 2012 को ऐसे वीजा उल्लंघनकर्ता के नवीनतम आंकड़ों से पता चलता है कि 16,350 बांग्लादेशी वैध दस्तावेज पर भारत आये और वीजा खत्म होने के बाद भी रूके रहे।[4] 16 दिसंबर 2016 को किरण रिजिजू ने कहा कि उपलब्ध इनपुट के अनुसार भारत में लगभग 20 मिलियन अवैध बांग्लादेशी प्रवासी है।

बांग्लादेश और भारत में प्रवास

बांग्लादेश भारत का पड़ोसी देश है। भारत में बांग्लादेशी बांग्लादेश प्रवास के सदस्य है लेकिन वर्तमान में भारत में रहते है। बांग्लादेश के स्वतंत्रता के बाद से भारत में बड़े पैमाने पर प्रवास ने विदेशी विरोधी आंदोलन को जन्म दिया, दोनों देशों के बड़े पैमाने पर हिंसा और राजनीतिक तनाव पैदा हुए। सांख्यकीय दृष्टिकोण से भारत में बांग्लादेशियों के संख्या का अनुमान अलग-अलग है। भारत सरकार की 2001 की जनगणना के अनुसार यह अनुमान लगाया गया कि भारत में 3.1 मिलियन बांग्लादेशी रहते है। 2009 के एक अन्य अनुमान से पता चलता है कि 15 मिलियन बांग्लादेशी देश में निवास किये। 2012 में तत्कालीन गृहराज्य मंत्री मुल्लापल्ली रामचंद्रन ने दावा किया कि लगभग 1.4 मिलियन बांग्लादेशी प्रवासियों ने पिछले एक दशक अकेले भारत में प्रवेश किया।

बांग्लादेश से अवैध प्रवास के कारण

बांग्लादेश से भारत में प्रवास के दो कारकों को एक प्रेरक कारक कहा जा सकता है।

1. बांग्लादेश से भारत की यात्रा लागत विश्व में सबसे सस्ती है।
2. बांग्लादेशी सांस्कृतिक रूप से बंगालियों के समान है, वे बहुत कम कीमत पर भविष्य स्थापना के लिये भारतीय नागरिक के रूप में भारत के किसी भी हिस्से में बसने में सक्षम हैं।
3. भारतीय भूस्थानिक स्थान इसके पड़ोसी से अच्छी आर्थिक स्थिति में है और इसकी उदारवादी लोकतांत्रिक साख ने लंबे समय तक इस क्षेत्र के अन्य हिस्सों के लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहा जो अपने मूल देश से उत्पीड़न से भाग रहे या बेहतर जीवन की तलाश कर रहे है।
4. जहां तक भौगोलिक स्थिति का सवाल है भारत के तीन हिस्से में 4096 किलोमीटर (लगभग 2500 मील) सीमा बंगाल, असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के साथ साझा करता है। वास्तव में 1947 में ब्रिटिश भारत के विभाजन के समय बांग्लादेश में शत्रुतापूर्ण परिस्थितियॉ, उत्पीड़न, सहिष्णुता और प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले लोगों की भारी बाढ़ और लगातार लहरे चल रही थी। परिणाम स्वरूप वे भारत में निवास पाए। हालांकि उनमें से कुछ वापस बांग्लादेश लौट गए लेकिन भारत के भीतर शरण लेने वाले अधिकांश लोगों भारत में ही निवास को आत्मसात किया। इस तत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बांग्लादेश से भारत में अवैध आव्रजन में शरणार्थी और अवैध प्रवासी दोनों शामिल है। यह एक शतत प्रवाह है। कोई ऐसा विश्वसनीय आंकड़ा नहीं जो बांग्लादेशी का भारत में सटीक आंकड़ा दे। हालांकि अगर हम 2011, 2001, 1991 और 1981 के अंतिम चार जनगणना के भारत और बांग्लादेश के जनसंख्या वृद्धि और जनसंख्यकीय आंकड़ों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते है तो यह उचित तरीके से बताएगा कि उनकी संख्या 15 मिलियन से अधिक है। यह देखा गया कि उनमें से अधिकांश बांग्लादेश से लगे सीमा वाले राज्यों में बस गए लेकिन बाद में उनमें से कुछ भारत के अन्य हिस्सों में चले गए जिसमें भारत का दूरस्थ कोना भी शामिल है। विशेष रूप से सीमावर्ती राज्यों में बड़ी संख्या में अवैध बांग्लादेशी अप्रवासियों के भारी प्रवाह के परिणाम स्वरूप निश्चित रूप से भारत के लिए अपने वित्तीय और अन्य संसाधनों के लिए बहुत गंभीर निहितार्थ के साथ एक बड़ी चुनौती उत्पन्न हुई और उनमें से सबसे महत्वपूर्ण निश्चित रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा है। अवैध प्रवासियों के प्रवाह ने पूर्वोत्तर राज्यों के जनसंख्यकीय संरचना में परिवर्तन किया है। इन क्षेत्रों में स्थानीय लोग बाहरी लोगों से भय महसूस करते है। इस अवैध प्रवास ने उनके जीवनशैलियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और दोनों देशों के बीच चतनाव को कम करने के लिए बहुत प्रेरित किया।

इस अवैध आव्रजन का सबसे नकारात्मक पक्ष यह है कि इसने कुछ राज्यों में उग्रवाद व्यापक स्तर पर बढ़ा दिया। इसमें हम असम का उल्लेख कर सकते है। असम राज्य में बांग्लादेश और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में अवैध प्रवासियों की उपस्थिति और मतदाताओं के रूप में उनका नामांकन की वजह से वहां (1979-85) के बीच व्यापक आंदोलन शुरू हुआ जिसमें उनके निर्वासन की मांग उठी। एक उपाय के रूप में समस्या को कम करने के लिए भारतीय संसद ने 1983 में अवैध प्रवासियों (न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारण) अधिनियम पारित किया। दुर्भाग्य से यह उपाय आंदोलन को शांत करने में असफल रहा और परिणामस्वरूप इसे सर्वोच्च न्यायालय ने 2005 में निरस्त कर दिया। असम में बड़े पैमाने पर आंदोलन उभरा जिसका अंत असम समझौते से हुआ जिसपर 15 अगस्त 1985 को केन्द्र सरकार राज्य सरकार, आल असम स्टूडेंट यूनियन और असम गणपरिषद् के नेताओं ने हस्ताक्षर किया। इस समझौते में परिकल्पना की गई कि 25 मार्च 1971 को या उसके बाद असम में प्रवेश किये लोगों को अवैध माना जायेगा। पाकिस्तानी सेना द्वारा आजादी की मांग करने वाले बांग्लादेशी नागरिकों के खिलाफ पूरा अभियान शुरू करने के बाद वे बड़ी संख्या में भारत आये उनका पता लगाया गया। उनका नाम मतदाता सूची से निकाला गया और बाद में विदेशी अधिनियम 1946 के तहत निर्वासित किया गया। दुर्भाग्य से उस दिशा में थोड़ा सा प्रगति हुआ। भारत के हिस्से में भारत ने कई मौको पर समय-समय पर बांग्लादेश के साथ राजनीतिक और राजनयिक स्तर पर इस मुद्दे को उठाया। लेकिन वास्तव में इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[5]

अवैध प्रवास का परिणाम

सीमावर्ती क्षेत्रों में बसने वाले बांग्लादेशियों की संख्या इतनी बड़ी है कि बांग्लादेश का सांस्कृतिक क्षेत्र भारत के भौतिक सीमा क्षेत्र को जांघ गया है। इन अवैध प्रवासियों ने इस क्षेत्र की सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान और स्थिरता के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न किया है। पहले से ही इस क्षेत्र में राजनीतिक शक्ति बन जाने के कारण अवैध प्रवासी अक्सर इस क्षेत्र में सामाजिक तनाव का कारण बनते है। ये अवैध प्रवासी भारत के लिए गंभीर समस्याओं का कारण है। सीमा क्षेत्र के जनसांख्यकीय संरचना में परिवर्तन और सांस्कृतिक और जातीय प्रथाओं में टकराव कभी-कभी साम्प्रदायिक तनाव का कारण बनते है। कई विद्वानों ने इसे पूर्वोत्तर के जनसांख्यकीय आक्रमण की संज्ञा दी। अवैध प्रवास आतंकवाद उग्रवाद को जन्म देने के अतिरिक्त स्थानीय और प्रवासियों के बीच हिंसक संघर्षों को जन्म दिया, और भारतीय आंतरिक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बन गया। इस प्रकार अवैध प्रवास का राष्ट्रीय सुरक्षा और सीमित संसाधनों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।[6]

अवैध प्रवास के कारण पूर्वोत्तर के कई राज्यों विशेष रूप से असम और त्रिपुरा में भूमि, भाषा और संस्कृति के मुद्दों पर गंभीर संघर्ष हुआ। त्रिपुरा में मूल आदिवासी समुदायों को अल्पसंख्यक बना देने के कारण उन्हें बंगाली प्रवासियों के प्रति बेहद नाराजगी थी, क्योंकि वे उन्हें अपनी भूमि और संस्कृति के लिए बोझ मानते थे। त्रिपुरा में आदिवासियों के बीच अलगाव के कारण व्यापक पैमाने पर हिंसा हुआ। आल त्रिपुरा ट्राइबल फ्रंट (ATTF), त्रिपुरा नेशनल वालिंटियर्स (TNV) और नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा (NLFT) जैसे कई आदिवासी आतंकवादी संगठन सामने आए, और नागरिकों, सुरक्षा बलों और सरकारी प्राधिकरण के प्रतीकों के खिलाफ हिंसात्मक कार्यवाहियां किये। इस संगठनों के साथ अलग-अलग हस्ताक्षर किए जाने से अब स्थिति सामान्य हो गई है। ये समझौते आदिवासी लोगों को अत्यधिक स्वायत्तता देती है, साथ ही साथ बहुसंख्यक आबादी को प्रशाशित करने के लिए कुछ हद तक वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की जाती है।

ऊपर चर्चा की गई है कि अवैध बांग्लादेशी असम के कई सीमावर्ती जिलों में बहुसंख्यक हो गए है, और विधानसभा क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कारक है। अवैध प्रवासियों के आगमन के कारण असम में 1970 के दशक के अंत और 1980 के दशक के शुरूआत में आंदोलन के रूप में अस्थिर स्थिति उत्पन्न किया। 1979 में बड़े पैमाने पर छात्र नेताओं द्वारा असम आंदोलन में शामिल अवैध प्रवासियों को हिरासत में लेने विघटन और निर्वासन की मांग की गई। अवैध प्रवासियों के पहचान के लिए असम समझौते के प्रावधानों को लागू करने का एकमात्र उपाय 1951 के पहले तैयार नागरिक रजिस्टर को व्यवहार में लाने के माध्यम से था। हालांकि NRC की पायलट प्रक्रिया में कामरूप और बारपेटा जिलों के दो तहसीलों ने 2010 में भाग नहीं लिया। भीड़ की हिंसा और पुलिस गोलीबारी में 4 लोगों की हत्या के कारण यह समाप्त हो गया। अंततः प्रक्रिया 2013 में शुरू हुई जब सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अद्यतन करने का आदेश दिया। तब से मुख्य न्यायाधीश रंजन गंगोई और न्यायमूर्ति फलीरामन की बेंच ने लगातार इसकी निगरानी की। NRC

को नागरिकता अधिनियम 1955 और नागरिकता (नागरिक पहचान का पंजीकरण और राष्ट्रीय पहचान पत्र जारी करना) नियम संसोधित (2003) और गृहमंत्रालय (रजिस्टर जनरल भारत के कार्यालय) क्रम संख्या के प्रावधानों के अनुसार अद्यतन किया गया।

संदर्भ

[1] Approach See Shibutani,T et al, Ethnic Stratification: A Comparative,McMillan,New York,1965

[2] Hindus from Sri Lanka and Rohingyas from Myanmar are also excluded for security reasons.

[3] "Political Pawns", n. 26.

[4] IDSA Monograph series no 56, dec 2016, pg no 27

[5] The Times of India, 16January,2020.

[6] Chief Minister of Assam has appealed for patience till the CAA rules are framed which is applicable to the whole nation .The Economic Times,15 January, 2010,p2.

ईरान और सऊदी अरब प्रतिद्वंदिता

डॉ० अरूण कुमार दीक्षित

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, वी0 एस0 एस0 डी0 महाविद्यालय कानपुर (उ0प्र0)

सऊदी अरब और ईरान मध्य पूर्व में सबसे शक्तिशाली देश है, लेकिन मूल रूप से धार्मिक मतभेद और मध्य पूर्व क्षेत्र में प्रभाव का विस्तार करने के लिए प्रतिस्पर्धा के कारण अच्छे शर्तों पर नहीं। सऊदी अरब में अधिकांश आबादी सुन्नी मुस्लिम है, जबकि ईरान में शिया बहुसंयक है। सुन्नी या शिया आबादी वाले मध्य पूर्वी देश सऊदी अरब या ईरान के लिए ''समर्थन और मार्गदर्शन'' के लिए तत्पर हैं। धार्मिक विद्वता के साथ कई कारणों से दोनों देशों के बीच इस क्षेत्र पर हावी होने की प्रतिस्पर्धा तेज हो गई है। दोनों ने मध्य पूर्व, दक्षिण एशिया और उत्तरी अफ्रीका में विरोधी समूहों को समर्थन प्रदान किया है।[1] इसके अलावा, वे सीरिया, यमन और इराक में नागरिक युद्धों के साथ-साथ उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण में प्रभाव के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। और मध्य एशिया और काकेशस। आर्थिक मुद्दे सबसे आगे हैं लेकिन वर्चस्व के लिए उनके संघर्ष में सरकार और लोगों का समर्थन हासिल करने के लिए सांप्रदायिक मतभेदों को बढ़ावा दिया गया है। दोनों के बीच प्रतिद्वंदिता ने सुपर शक्तियों को इस्लामी देशों में अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सऊदी अरब और उसके सहयोगियों का समर्थन किया है जबकि रूस और चीन ने ईरान और उसके सहयोगियों का समर्थन किया है जो युद्ध के बाद की कूटनीति को परिभाषित करने वाले शीत युद्ध के परिदृश्य से मिलते जुलते हैं।

ईरान और सऊदी अरब के बीच प्रतिद्वंदिता के कारण-

ईरान और सऊदी अरब दोनों ही शासन के अस्तित्व के साथ क्षेत्रीय वर्चस्व को महत्वपूर्ण रूप से जोड़ते हैं और खाड़ी क्षेत्र को अपनी शक्ति प्रक्षेपण के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र मानते हैं और मानते हैं कि बाहरी संबंध उनके संबंधित घरेलू राजनीतिक प्रणालियों के लिए महत्वपूर्ण खतरे पैदा कर सकती है। दोनों देशों के बीच शक्ति और वैचारिक अनुमानों, जवाबी प्रतिक्रियाओं और वैचारिक असंतुलन से प्रतिद्वंदिता उभरती है। 1950 से 1979 तक, दोनों देश यूएसए के 1979 ट्विन पिलर डिप्लोमेसी में भागीदार थे। उस समय, दोनों ने साम्यवाद से लड़ाई की और पश्चिम को तेल की आपूर्ति को सुरक्षित करने की मांग की। बदले में, वाशिंगटन ने उन्हें सैन्य, आर्थिक और राजनयिक समर्थन प्रदान किया। 1979 की इस्लामी क्रांति के बाद नाटकीय रूप से स्थिति बदल गई, जिसने राजशाही को उखाड़ फेंका और ईरान में एक क्रांतिकारी लोकतांत्रिक शासन स्थापित किया। तेहरान और रियाद खाड़ी से जुड़े कई मुद्दों पर प्रतिस्पर्धा करते हैं, भू-राजनीति, तेल की कीमतों, गैर-राज्य अभिनेताओं के साथ संबंध और यहां तक कि क्षेत्र के नामकरण पर असहमति को शामिल करते हैं। ईरान खुद को एक संशोधनवादी नेता के रूप में चित्रित करता है जो क्षेत्रीय आदेश को मुस्लिम समाजों के लिए अनुकूल नहीं मानता है।[2] यह एक नए मध्य पूर्व के केन्द्र के रूप में उभरा है। एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में, यह क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के संबंध में जिम्मेदारी से कार्य करता है और इन क्षेत्रों में सहयोग करने के लिए तैयार है। दूसरा, ईरान इतिहास का पहला शिया गणराज्य है, जिसका उद्देश्य खुद को एक ऐसे देश के रूप में पेश करना है जो इस क्षेत्र में अन्य मुस्लिम ताकतों का मार्गदर्शन और सुरक्षा कर सकता है, भले ही उनके विशिष्ट इस्लामिक संप्रदायों की परवाह किए बिना और दुनिया के मुसलमानों के बीच एक तरह की एकमतता का निर्माण हो। इस्लामी देशों को एकजुट करने के लिए, दुनिया के विभिन्न मुसलमानों के बीच बिरादरी स्थापित करने के लिए, दुनिया की सभी इस्लामी सरकारों के साथ प्रतिज्ञा करने के लिए। तीसरा ईरान दुनिया भर में हर जगह होने वाले क्रांतियों के रूप में खुद को दूसरों के लिए 'डवकमस इस्लामी जागरण' के एक सफल मॉडल के रूप में चित्रित करता है। इसलिए, यह भूमिका इस विचार के इर्द-गिर्द घूमती है कि ईरान एक क्रांतिकारी भावना के लिए

जहाज है, जो कोई सीमा नहीं जानता है, और जिसकी दलील किसी भी प्रकार के मतभेदों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, चाहे वे सांस्कृतिक, राष्ट्रीय या जातीय मूल के हों। अंत में, इस्लामी गणतंत्र ईरान की विदेश नीति साम्राज्यवाद के पूर्ण उन्मूलन और विदेशी प्रभाव की रोकथाम के साथ सभी प्रकार के वर्चस्व की अस्वीकृति पर आधारित है। उदाहरण के लिए, मध्य पूर्व में संयुक्त राज्य अमेरिका की उपस्थिति मुस्लिम देशों और उनकी स्वतंत्रता के लिए एक बुनियादी खतरे के रूप में है क्योंकि वाशिंगटन लोगों की भलाई के साथ इस क्षेत्र में अपने साम्राज्यवादी लक्ष्यों के साथ अधिक व्यक्त है। ईरान पश्चिमी सैन्य और राजनीतिक हस्तक्षेप की निंदा करता है और कहता है कि केवल क्षेत्रीय अभिनेताओं को ही क्षेत्रीय मुद्दों को संभालना चाहिए।

इसी तरह, सऊदी अरब खुद को विश्वास के रक्षक, एक क्षेत्रीय नेता, स्थिरता गारंटर और संयुक्त राज्य अमेरिका के एक वफादार सहयोगी के रूप में दावा करता है। रियाद इस्लाम, मक्का और मदीना के तीन पवित्र शहरों में से दो को रखता है और एक विशाल मुस्लिम तीर्थयात्रा का हज आयोजित करता है, जो दुनिया भर के लोगों को प्राप्त करता है। फिर से, राजा का आधिकारिक शीर्षक दो पवित्र मस्जिदों के 'कस्टोडियन' है, जो उसे सभी मुसलमानों की और पूरा करने के लिए एक इस्लामी कर्तव्य देता है। दूसरे, एक क्षेत्रीय नेता के रूप में, सऊदी अरब मध्य पूर्व के सबसे धनी देशों में से एक है, जिसे एक शीर्ष तेल उत्पादक के रूप में सर्वोपरि दर्जा प्राप्त है, जो खुद को खाड़ी के प्राकृतिक नेता, एक मजबूत, स्थिर अभिनेता की छवि के रूप में देखता है। एक सफल राजतंत्रीय प्रणाली, जिसे दूसरों द्वारा अनुकरण किया जाना चाहिए। तीसरा, स्थिरता की गारंटी देने वाला होने के नाते, यह यथास्थिति की गारंटी देता है जो न केवल सऊदी के क्षेत्रीय नेतृत्व को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक है, बल्कि इसकी राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली भी है। इसका स्पष्ट उदाहरण 1981 में सऊदी छतरी के नीचे खाड़ी सहयोग परिषद का निर्माण है, जो इस क्षेत्र की अस्थिरता, ईरानी क्रांति और ईरान-इराक युद्ध की प्रतिक्रिया के रूप में है। अंत में, सऊदी अरब ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ लंबे समय तक साझेदारी बनाए रखी है जो ईरान को असहज करता है। एक ओर, सऊदी तेल बाजार स्थिर और आकर्षक पश्चिम में रखते हैं; दूसरी ओर, अमेरिकी उचित सुरक्षा और सैन्य सहायता प्रदान करते हैं।[3] अपने हिस्से के लिए, सऊदी अरब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ सहयोग करके इस भूमिका को निभाता है।

सऊदी अरब के साथ पाकिस्तान का रिश्ता-

दोनों देशों ने औपचारिक राजनयिक संबंध स्थापित किए हैं और रक्षा और पारस्परिक रणनीतिक हित के मामलों पर सहयोग करना शुरू कर दिया है। मिसाल के तौर पर 1969 में पाकिस्तानी पायलटों ने दक्षिणी सऊदी सीमा के दक्षिण यमनी आक्रमण को पीछे हटाने के लिए रॉयल सऊदी वायु सेना के लड़ाकू विमानों को उड़ाया।[4] पाकिस्तान के जनरल मुहम्मद जिया-उल-हक के शासन में ये सैन्य-सैन्य-सैन्य संबंध फले-फूले। सऊदी अरब ने जिया के घरेलू इस्लामीकरण अभियान का सक्रिय रूप से समर्थन किया। वर्ष 1982 में दोनों देशों ने रक्षा सहयोग पर एक महत्वपूर्ण समझौता किया। शीत युद्ध के दौरान, सऊदी अरब में 15,000 से अधिक पाकिस्तानी सैनिक तैनात थे। 1979 के अंत में पाकिस्तान की इंटर-सर्विस इंटेलिजेंस (आईएसआई) ने अफगानिस्तान में सोवियत खतरे का मुकाबला करने और प्रबंधन करने के लिए अपने सऊदी समकक्ष के साथ बड़े पैमाने पर भागीदारी की। सऊदी फंडिंग ने भी सोवियत संघ को सोवियत संघ के खिलाफ अफगान मुजाहिदीन (यूएस सेंट्रल इंटेलिजेंस एजेंसी की साझेदारी में) को प्रशिक्षित करने के प्रयासों का समर्थन किया। जहां तक आर्थिक संबंधों की बात है, सऊदी अरब पाकिस्तान का तेल का शीर्ष स्रोत हैं और 2016 में संयुक्त राष्ट्र के सांख्यिकीय प्रभाग को रिपोर्ट किए गए आंकड़ों के अनुसार, सऊदी अरब ने पाकिस्तान से माल और वस्तुओं में 390 मिलियन डालर का आयात किया, ज्यादातर खाद्य और वस्त्र और पाकिस्तान बदले में सऊदी अरब से केवल 613 मिलियन डॉलर का आयात किया। 2016 में, पाकिस्तान से सऊदी आयात में 58 मिलियन डालर चावल, गोमांस में 26.7 मिलियन डालर और भेड़ के बच्चे में 21.4 मिलियन डालर शामिल थे। इसके अलावा, हार्वर्ड के एटलस ऑफ इकोनॉमिक कॉम्प्लेक्सिटी के एटलस के अनुसार, 2016 में सऊदी अरब में सभी पाकिस्तानी निर्यातों से अधिक सब्जियों, खाद्य पदार्थों और लकड़ी का गठन किया गया था और कपड़ा और फर्नीचर अन्य 26 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार थे। इसी तरह, रियाद ने लगातार इस्लामाबाद के कच्चे तेल के आयात के एक बड़े हिस्से के लिए जिम्मेदार है। ऐसा अनुमान है कि पाकिस्तान का तीन-चौथाई से अधिक कच्चा तेल सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात से आया है। परमाणु कार्यक्रम के क्षेत्र में, पाकिस्तान और सऊदी अरब दोनों को समझ में आ गया हैं कि पाकिस्तान भविष्य में सऊदी अरब को परमाणु हथियार प्रदान करेगा।

ईरान के साथ पाकिस्तान का रिश्ता-

दोनों देशों के बीच अच्छे संबंधों के कई क्षेत्र हैं। संयुक्त राष्ट्र में इस्लामाबाद को मान्यता देने वाला ईरान पहला राज्य था। दूसरे, ईरान का शाह नए स्वतंत्र पाकिस्तान का दौरा करने वाला राज्य का पहला विदेशी प्रमुख था। तीसरा, तेहरान ने भारत के साथ 1965 के युद्ध के दौरान पाकिस्तान को रसद और बल सहायता प्रदान की, यहां तक कि पाकिस्तानी लड़ाकों को जेहादन और मेहराबाद में ईरानी हवाई पट्टी पर ईंधन भरने की अनुमति दी। चौथे, 1980 के दशक में ईरान-इराक युद्ध के दौरान पाकिस्तान ने ईरान को हथियार बेचे। आखिरकार, पाकिस्तान 1986-88 में ईरान के लिए तेल टैंकर युद्ध में इस्तेमाल की जानी वाली मैन-पोर्टेबल, कंधे से प्रक्षेपित स्टिंगर मिसाइल का एक प्रमुख स्रोत था। आर्थिक के क्षेत्र में, ईरान और पाकिस्तान दोनों ने आर्थिक, लेकिन अविकसित आर्थिक संबंधों को बनाए रखा है। 2016 के पाकिस्तानी आंकड़ों में कहा गया है कि ईरान से पाकिस्तान के शीर्ष आयातों में खनिज ईंधन, जहाज, लोहा और इस्पात, सब्जियां और कच्ची खाल शामिल है। ईरानी अधिकारियों के अनुसार 2017 की अंतिम तीन तिमाहियों में ईरान पाकिस्तान को कुल 634 मिलियन डालर और पाकिस्तान को ईरान को कुल 34 मिलियन का निर्यात करता है। एक और विकास तब हुआ जब पाकिस्तानी प्रांत बलूचिस्तान और ईरानी प्रांत सिस्तान-वा-बलूचिस्तान के गर्वनर ग्वादर को ईरान के अरब सागर बंदरगाह चाबहार के एक बहन बंदरगाह शहर के रूप में नामित करने के लिए सहमत हुए, जिसे सड़कों, रेलवे, ऊर्जा का एक नेटवर्क बनाया गया था। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे द्वारा ग्वादर में चीन के उत्तर-पश्चिमी शिनजियांग क्षेत्र को पाकिस्तान के अरब सागर तट से जोड़ने के लिए पूरे पाकिस्तान में उत्पादन नोड्स और अन्य बुनियादी ढांचे। दोनों देशों के बीच एक संयुक्त सीमा-पार पाइपलाइन परियोजना भी है जिसे ईरान-पाकिस्तान गैस पाइपलाइन के रूप में जाना जाता है, जो बलूचिस्तान से होकर ईरान के दक्षिण पारस क्षेत्र से पाकिस्तान के सिंध तक प्राकृतिक गैस पहुंचाएगा।

सऊदी अरब और ईरान चरमपंथ पर अपने रूख पर विभाजित थे। शीत युद्ध के दौरान सऊदी अरब ने अमेरिका के समर्थन के साथ पूर्व सोवियत संघ के खिलाफ चरमपंथी समूहों को वित्तपोषित किया। हालांकि बाद में, इसने चरमपंथियों को शिया आंदोलनों को प्रायोजित करने और ईरान द्वारा समर्थित होने का समर्थन किया। दोनों देश अतिवाद की निंदा करते हैं लेकिन सऊदी अरब ईरान के साथ-साथ कुछ चरमपंथी समूहों को भी अपनी राजशाही के लिए खतरा मानता है। दूसरी ओर ईरान ने संयुक्त राष्ट्र से आतंकवादी संगठनों को वित्तीय सहायता रोकने का आग्रह किया है और मध्य पूर्व में चरमपंथ के लिए वहाबवाद को जिम्मेदार ठहराया है जो ''ईरान-सऊदी अरब प्रतिद्वंदिता का असली कारण'' है। ईरान ने 2016 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के बाद सऊदी अरब को लाभ पहुंचाने वाली अमेरिकी नीति में बदलाव किया। इसलिए, इसने चीन और रूस के साथ अपने संबंधों को मजबूत करने के लिए पश्चिमी कंपनियों के साथ तेल सौदों पर हस्ताक्षर किए और नीति अपनाई।

निष्कर्ष-

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि राज्यों को अभी भी बने रहने या बातचीत करने और सहयोग करने का निर्णय लेना चाहिए। कभी-कभी वे गलत गणना कर सकते हैं और कुछ गंभीर त्रुटि कर सकते हैं। अतिशेषता द्वारा आधिपत्य प्राप्त करना मूर्खता है। इसके बजाय ईरान और सऊदी अरब दोनों ''उचित मात्रा में शक्ति'' के लिए प्रयास कर सकते हैं। इसके अलावा, दो राज्यों के बीच प्रतिद्वंदिता को कम करने के लिए, इन देशों से संबंधित लोगों, समूहों और संगठनों के बीच संबंधों को राष्ट्रीय सरकारों के बीच संबंधों की तुलना में अधिक सहयोगात्मक और शांति का अधिक सहायक बनने के लिए बनाए रखा जाना चाहिए, जिसे हम ''अंतर्राष्ट्रीय संबंध'' कहते हैं, क्योंकि ईरान और सऊदी अरब के बीच समाजों के बीच उच्च स्तर के संबंध तनावूपर्ण होते हैं। यह एक सुरक्षा समुदाय की ओर जाता है, जिसमें लोग सहमत होते हैं कि उनके संघर्ष, प्रतिद्वंदिता और समस्याओं को बड़े पैमाने पर शारीरिक बल का सहारा लिए बिना हल किया जा सकता है। वर्ल्ड सोसाइटी जॉन बर्टन नामक एक पुस्तक में एक अंतर्राष्ट्रीय संबंध का 'कोबवेब मॉडल' प्रस्तावित किया गया है। इसका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि किसी भी राष्ट्र-राज्य में कई अलग-अलग समूहों के लोग होते हैं जिनके पास विभिन्न प्रकार के हित होते हैं: धार्मिक समूह, व्यापारिक समूह। श्रम समूह जहां समूहों के बीच संचार और लेनदेन के पैटर्न को मानव व्यवहार के वास्तविक पैटर्न का प्रतिनिधित्व करते हुए और परस्पर विरोधी संघर्ष की तुलना में पारस्परिक रूप से लाभप्रद सहयोग द्वारा किया जा सकता है।

संदर्भ

[1] Bahrain, Lebanon, Qatar,Pakistan,Afghanistan,Nigeria,Morocco.

[2] Caltung, J. (1996), Peace By Peaceful Means: Peace and Conflict, Development and Civilization, New Delhi: Sage Publications; Grewal, B.S. (2003), "Johan Galtung: Positive and Negative Peace", http://www.activforpeace.org/no/fred/Positive-Negative_peace.pdf

[3] Conciliation esources (2009), "Ending war: The need for Peace Process Support Strategics", https://www.c-r.org/downloads/Endingwar_policybrief_2009.pdf

[4] Pakistan's Interests In Central Asia And Its Afghan Strategy - Analysis - Eurasia Review

भारत में आर्थिक विकास, योजना और सामाजिक परिवर्तन

प्रा. डॉ० एल. जी. पाटील

सहयोगी प्राध्यापक समाजशास्त्र विभाग प्रमुख, सी.गो पाटील काळ,
विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय साक्री, महाराष्ट्र

Abstract:

आर्थिक विकास आणि सामाजिक बदल इंग्लिश अर्थशास्त्रज्ञ विकस्टीड यांनी एकदा म्हटले होते की, जोपर्यंत त्याच्याकडे खायला काही नसेल तोपर्यंत तो संत, कवी किंवा प्रेमी होऊ शकत नाही. राष्ट्रांमध्ये असेही म्हणता येईल की, राजकीय विकास, सांस्कृतिक उपलब्धी आणि परिवर्तन आणि सामाजिक प्रगती केवळ किमान जीवनमान गाठणे शक्य आहे. किंवा, आपण असे म्हणू शकतो की, सामाजिक प्रगती आर्थिक विकासावर अवलंबून असते. प्रश्न असा आहे: आर्थिक विकास म्हणजे काय? आर्थिक विकासाची पूर्वआवश्यकता काय आहे किंवा कोणते घटक वाढीस हातभार लावतात? भारतासह जगातील अविकसित भागात आर्थिक विकासाला कशामुळे अडथळे येतात? आर्थिक विकासाच्या समाजशास्त्रीय पैलू आणि सामाजिक समस्यांशी संबंधित होण्यापूर्वी हे काही महत्त्वाचे प्रश्न समजून घेतले पाहिजेत.

प्रस्तावना:

आर्थिक विकासाची संकल्पना व्यापक अर्थाने, आर्थिक विकासाकडे ''कोणत्याही स्रोतातून दरडोई वास्तविक उत्पन्नातील वाढ'' (रॉबर्ट फॅरिस, 1964: 889) म्हणून पाहिले जाऊ शकते. बाख (1960: 167) यांनी ''अर्थव्यवस्थेतील वस्तू आणि सेवांच्या एकूण उत्पादनातील वाढ'' असे वर्णन केले आहे. डेव्हिड नोवाक (1964: 151) यांनी आर्थिक वाढीची खूप जुनी व्याख्या सांगितली आहे, त्यानुसार ती ''वस्तू आणि सेवांच्या दरडोई वापरामध्ये सतत, लक्षणीय वाढ'' आहे. आर्थिक वस्तूंचा भरीव वापर तेव्हाच शक्य आहे जेव्हा आर्थिक वस्तूंचे भरीव उत्पादन आणि आजकाल भरीव उत्पादन तंत्रज्ञानाच्या अधिक वापरावर अवलंबून आहे. संकुचित अर्थाने, म्हणून असे म्हटले जाऊ शकते की आर्थिक विकास म्हणजे ''आर्थिक वस्तूंचे उत्पादन आणि वितरणासाठी निर्जीव शक्ती आणि इतर तंत्रज्ञानाचा व्यापक वापर'' (रॉबर्ट फारिस, इबिड: 889). या अर्थाने, आर्थिक विकास व्यावहारिकदृष्ट्या औद्योगिकीकरणाच्या समतुल्य आहे. परंतु आर्थिक विकास म्हणजे केवळ औद्योगिकीकरण होय असे म्हणणे योग्य ठरणार नाही कारण उत्पादनात शक्ती आणि तंत्रज्ञानाचा वापर करण्याबरोबरच त्यात श्रमिक गतिशीलता, व्यापक शैक्षणिक व्यवस्था इत्यादींचाही समावेश होतो

स्वतंत्रता के बाद भारत में आर्थिक विकास को वास्तव में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के रूप में वर्णित किया जा सकता है, अगर हम ब्रिटिश काल में आर्थिक विकास की तुलना लगभग दो दशकों के नेहरू काल (स्वतंत्रता के बाद) में करते हैं। इंदिरा गांधी और राजीव गांधी की अवधि लगभग दो दशक, और पिछले तीन वर्षों की अवधि (वीपी सिंह, चंद्रशेखर और नरसिम्हा राव की सरकारों की)। 1757 और 1947 के बीच ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की दो शताब्दियों में आर्थिक विकास 1 प्रतिशत या उससे कम था, विकास की दर इतनी दयनीय रूप से कम थी कि इसने भारत को केवल कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता बना दिया और एकआर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन पश्चिमी निर्यात के लिए 443 अंतराल बाजार। औद्योगिक क्षेत्र पर ब्रिटिश पूंजी का अत्यधिक दबदबा था। भारतीयों के स्वामित्व वाले औद्योगिक क्षेत्र के एक हिस्से का प्रबंधन ब्रिटिश एजेंसियों द्वारा किया जाता था।

कृषि अर्थव्यवस्था में, किसान जमींदारों, जागीरदारों और स्थानीय साहूकारों (साहूकारों) के चंगुल में थे। बचत और निवेश बहुत कम थे। तकनीक निम्न स्तर की थी। लागू पिछड़े क्षेत्र के विकास के माध्यम से क्षेत्रीय संतुलन की कोई अवधारणा नहीं थी। भारत के निर्माण के लिए विदेशी पूंजी उपलब्ध नहीं थी। कम आय से कम बचत होती है, जिससे कम निवेश होता है, जिससे कम वृद्धि होती है, जिससे कम आय होती है। गरीबी के दुष्चक्र और निराशा के कभी न खत्म होने वाले चक्र का सिद्धांत औपनिवेशिक काल की अर्थव्यवस्था के लिए काफी उपयुक्त था। आजादी के बाद, नई सरकार के लिए कार्य दो गुना था: औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को खत्म करना और उसके स्थान पर एक आधुनिक, स्वतंत्र और आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था के लिए आधार तैयार करना। देश की आधुनिक अर्थव्यवस्था और राष्ट्रवाद का खाका-समाज का समाजवादी पैटर्न- 1955 में कांग्रेस के आवादी अधिवेशन (नेहरू युग के दौरान) और 1969 में बैंगलोर अधिवेशन (इंदिरा गांधी युग के दौरान) द्वारा प्रदान किया गया था। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि समाजवाद के नेहरू मॉडल ने 1950, 1960, 1970 और 1980 के चार दशकों में हमारी अर्थव्यवस्था में सुधार किया, हालांकि एक ऐसा स्कूल है जो अर्थव्यवस्था के विकास की तुलना में इसके (नेहरू मॉडल के) प्रदर्शन की निंदा करता है। दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, हांगकांग, थाईलैंड और ताइवान में। अब हमारे पास लाखों आधुनिक औद्योगिक उद्यम हैं जहां एक बार लेकिन कुछ मुट्ठी भर हमारे पास तकनीकी और उद्यमशीलता कौशल का एक बड़ा भंडार है; हमारे पास भिलाई और राउरकेला जैसी बड़ी सार्वजनिक परियोजनाएं हैं और हीराकुंड जैसे बड़े बांध हैं; विकासशील देशों में हमारे पास बचत की उच्चतम दर है; हमारी विकास दर 5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी (1990-91 में); डॉलर के लिहाज से निर्यात में सालाना 17 फीसदी की धीमी वृद्धि; अनिवासी भारतीयों (एनआरआईएस) की जमाराशियों में बीस गुना वृद्धि; अंतरराष्ट्रीय मुद्रा बाजार में अद्वितीय विश्वसनीयता; और सरकार द्वारा दावा किए गए अनुसार 1990 में 1980 से 26 प्रतिशत तक गिर गया)। इस विकास के बावजूद, यह भी एक सच्चाई है कि हम मुद्रास्फीति और उच्च ऋण की समस्या का सामना कर रहे हैं। व्यापार घाटे का संतुलन 3,000 मिलियन डॉलर से ऊपर है और बजट घाटा खरबों में है। के बाद वी.पी. सिंह और चंद्रशेखर सरकार की नीतियों ने 1988 और 1991 के बीच देश की अर्थव्यवस्था पर गरीबी रेखा से नीचे (51 प्रतिशत से) पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।444 आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन नरसिम्हा राव की सरकार ने 1992 की शुरुआत में समाजवादी मॉडल को त्याग दिया और उदारीकरण, बाजारीकरण और निजीकरण (जिसे अब नेहरू पूंजीवाद कहा जाता है) के दर्शन पर आधारित एक नया संशोधित मॉडल लॉन्च किया, जिसका दावा कांग्रेस सरकार करेगी। हमारे आर्थिक विकास को एक बड़ा बढ़ावा दें।

सरकार का कहना है कि इस नए मॉडल का सार यह है कि यह राज्य के साथ-साथ निजी उद्यमियों में विश्वास को जोड़ती है, और बहुल लोकतंत्र और मिश्रित अर्थव्यवस्था में अटूट विश्वास रखती है। अप्रैल 1992 में कांग्रेस के तिरुपति अधिवेशन ने एक नया वैचारिक प्रतिमान अपनाया जो कि केंद्र के बाएं से दाएं-केंद्र में बदलाव था। यह नेहरू के नाम पर नेहरू को हटाने की एक तकनीक थी। इसने ध्यान केंद्रित किया: विभिन्न क्षेत्रों (कृषि और सार्वजनिक वितरण प्रणाली सहित) को सब्सिडी में कटौती, लाइसेंस-प्रति-मित्रराज को त्यागना, मौजूदा नीति को पेश करना, बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए देश को खोलना, आयात नियंत्रण को हटाना और जनता के साथ व्यवहार नहीं करना क्षेत्र केवल एक गैर-कार्य नैतिकता की विशेषता वाली नौकरी वितरण एजेंसी के रूप में। इस प्रकार, बयानबाजी समाजवादी बनी रही जबकि नीतियों की सामग्री प्रतिशोध के साथ पूंजीवादी हो गई। ऐसे विद्वान हैं जो यह नहीं मानते कि वर्तमान सरकार की आर्थिक नीति वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करेगी। उनका मानना है कि आयात पर प्रतिबंध लगाकर, निर्यात को बढ़ावा देकर, कर-जाल को चौड़ा करके, सार्वजनिक क्षेत्र को नौकरशाही से मुक्त करके, काले धन का पता लगाकर, रक्षा खर्चों में कटौती करके, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में अधिक रुचि लेकर, माल के लिए बहुत बड़ा बाजार, कट्टरपंथी भूमि सुधार लाना, और इसी तरह। ये विद्वान यह भी मानते हैं कि देश को बाहरी उपायों के बजाय आंतरिक पर निर्भर होना चाहिए। सामाजिक रूप से, यह माना जा सकता है कि आर्थिक विकास - नेहरू और उदार मॉडल दोनों के माध्यम से - ने हमारी सामाजिक संरचनाओं को उस दिशा में प्रभावित किया है जैसा हम चाहते थे। हमारे समाज-विकासवादी (चरणों की श्रृंखला में समाज के विकास का आकलन), संघर्ष (प्रतिस्पर्धा और सत्ता के लिए निरंतर संघर्ष पर जोर देना), कार्यात्मक (सामाजिक में अन्य सभी तत्वों के लिए प्रत्येक संस्थागत अभ्यास के परिणामों का विश्लेषण) के मूल्यांकन के लिए हम जो भी समाजशास्त्रीय मॉडल का उपयोग कर सकते हैं। संरचना), आदि - यह स्पष्ट होगा कि सामाजिक संबंधों, सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक प्रणालियों और सामाजिक संरचनाओं, और सामाजिक मानदंडों आदि के नेटवर्क में परिवर्तन हुआ है।

निष्कर्ष :

भारत में लोग अब रूढ़िवादी नहीं हैं। सदी पहले। वे नैतिक मानदंडों से दृढ़ता से नहीं चिपके रहते हैं औरआर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन 445 सामाजिक मूल्य जो उन्हें अतीत से प्राप्त हुए। पुरुष व्यक्तिगत रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक सुरक्षा के लिए प्रयास करते हैं। उनके दृष्टिकोण, औजारों और विचारों में भी बदलाव आया है। वे नए अनुभवों की कामना करते हैं। उनमें न केवल प्रौद्योगिकियों को उधार लेने की जिज्ञासा है बल्कि सांस्कृतिक तत्व भी अन्य समाजों का निर्माण करते हैं। उनमें नवोन्मेष के लिए एक रचनात्मक आग्रह है। वे नवाचारों और सामाजिक परिवर्तनों की स्वीकृति के परिणामों के बारे में ज्यादा चिंतित नहीं हैं। वे गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महंगाई, भाई-भतीजावाद, आतंकवाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद आदि की समस्याओं को कम करने में विफल होने के लिए सत्ता अभिजात वर्ग के खिलाफ विरोध और आंदोलन कर सकते हैं, फिर भी वे जानते हैं कि भारत में सामाजिक व्यवस्था कभी भी एक राज्य में नहीं होगी। असमानता का। हितों के विचलन के साथ भारतीय संस्कृति न केवल जीवित रहेगी बल्कि विकसित भी होगी। सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक विकास के माध्यम से, सामाजिक संरचनाओं और सामाजिक व्यवहार-पारंपरिक और संक्रमणकालीन को सुराग और दिशा प्रदान करेगा।

References:

- Rural Sociology in India, Vora and Co., Bombay, 1959.
- Hoselitz, Bert, Sociological Aspects of Economic Growth, Current Thought Series, Vakils, Feffer & Simons, Bombay, 1960.
- Hunt, Chester, Social Aspects of Economic Development, Randour House, New York, 1962.
- Meynaud, Jean, Social Change and Economic Development, UNESCO Publi- cation, 1963.
- Moore, Wilbert, "Social Aspects of Economic Development" in Robert Faris (Ed.), Handbook of Modern Sociology, Prentice Hall, Englewood Cliffs, New Jersey, 1964.
- Narmadeshwar Prasad, Change Strategy in a Developing Society, Meenakshi Prakashan, Meerut, 1970

रोहिणी अग्रवाल के कहानी संग्रह - “आओ माँ हम परी हो जाएँ” में पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री प्रश्न

रश्मि

एम०फिल०, नेट (हिन्दी)

पितृसत्तात्मक व्यवस्था आज भी स्त्रियों को बेड़ियों में रखने की पक्षधर है। प्रत्येक स्त्री को अपने कदमों पर भरोसा करना होगा, उनमें दम भरना होगा। पितृसत्ता के रक्षकों का साथ ना लेकर स्वयं कोशिशें करके ऊँची उड़ाने भरनी होंगी, क्योंकि पितृसत्ता की ये बैसाखियाँ उन्हें ना तो दौड़ना सीखने देंगी, ना ही उड़ना। वो सिर्फ उन्हें दूर तक घसीटती ही रहेंगी। पितृसत्ता को खत्म करने के लिए हमें इसकी जड़ तक जाना होगा। सतह पर रहकर कुरेदने भर से बात नहीं बनेगी। सभी मनुष्य ईश्वर की संतानें हैं, सबको बराबर के हक मिलने चाहिए। पितृसत्ता स्त्री को पशु की भाँति रखने की पक्षधर है। नाक में नकेल डालना एक मनुष्य को शोभा नहीं देता। यह उसे जकड़ने पर्याय है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की खासियत है कि इसमें पुरुष स्त्री के अंदर से बोलते हैं। अर्थात जहाँ वे चुप हो जाते हैं, उसक वाक्य को वे अपनी माँ, पत्नी, दादी जैसी महिलाओं से अर्थवन स्वरूप प्रदान कर पूरा करते हैं। वे घर की बुजुर्ग महिलाओं को पितृसत्ता के जाल में इस कद्र जकड़ लेते हैं कि अगर अगली पीढ़ी कभी कुछ बोलती या करती है तो वे महिला को महिला के खिलाफ ही खड़ा कर देते हैं और स्वयं मैदान के बाहर खड़े होकर मैच का आनंद लेते नजर आते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण हमें “बेटी पराई नहीं होती, पापा” कहानी में देखने को मिलता है। जब एक बेटी कामयाब होकर अपने पिता के लिए टी०वी० खरीद कर लाती है तो उसके पिता की खामोशी का जवाब लड़की की माँ द्वारा दिया जाता है। “माँ ने उस चुप्पी को शब्दों में ट्रांसलेट कर दिया, ‘बेटा लाता तो अच्छा भी लगता।”[1] इस कहानी की मुख्य पात्र लड़की की माँ आँसूओं की परिभाषा देते हुए कहती है कि, “आँसू न हों औरत की आँख में तो जालिम बन जाएगी मर्दों की तरह। इन्हीं से तो नमी बचाए रखती है वह। बीज बोने, अंकुराने और ललहाने के वास्ते जरूरी नमी। वरना बंजर न हो जाए दुनिया।”[2] पितृसत्तात्मक व्यवस्था का जहरीला सच इससे ज्यादा और क्या होगा जो कि डॉ० त्रिपाठी ‘क्या हम तीनों फैमिली नहीं हो सकती।’ कहानी में कह रहे हैं “औरत होती है मर्द की छाती की एक पसली। न कम न ज्यादा। समझीं।”[3] शायद वो यह बात भूल रहें हैं कि वो खुद एक औरत से जन्में हैं, ना कि औरत उनसे। अपनी दोनों बेटियों और पत्नी को वो अक्सर यह कहकर संबोधित करते हैं “तीनों एक सी औरतें।”[4] यह उनका पसंदीदा व्यंग्य हुआ करता था। दो छोटी बच्चियों में भी उन्हें औरत ही नजर आती है। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था का घिनौना चेहरा नहीं है तो क्या है?

परिवार यूं तो एक लघु संस्था होती है, लेकिन यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार फसल प्राप्त करने के लिए बीजों का इस्तेमाल किया जाता है, वैसे ही प्रत्येक कार्य की बुनियाद परिवार पर टिकी होती है, जैसे संस्कार बच्चों को दिए जाते हैं उन्हीं का परिणाम जीवन भर मिलता है। हिन्दी शब्द सागर में परिवार का अर्थ, “कोई ढ़कने वाली चीज, परिच्छेद, आवरण।”[5] परिवार साधारणतया पति-पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं, किन्तु दुनिया के कई भागों में वह सम्मिलित वास करने वाले रक्त संबंधीयोन का समूह है, जिसमें विवाह और दत्तक प्रथा द्वारा स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित है।”[6]

कंजकें कहानी में लड़की को वर्ष में दो बार देवी की उपाधि मिलती है। बाकी समय परिवार में उसकी जो हालत होती है, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साँप रूपी पिंजरे में जकड़ी हुई प्रतीत होती है। इस कहानी में पम्मी और निक्कू दो छोटे-छोटे बच्चे

हैं, जो कि बहन-भाई हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में छोटी सी उम्र में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बीज बोना सिखाया जाता है। निक्कू अपनी बहन से कहता है "लड़कियों का काम है रोटी बनाना और लड़कों का काम है रोटी खाना।"(7) यहाँ लड़के को सिखाया जाता है कि तुम लड़के हो पुरुष की भाँति रहो। तुम लड़की हो स्त्री की तरह रहो, घर के काम-काज सीखो, प्रत्येक काम में निपुणता हासिल करो। "फैले हाथों पर कुकर-गैस रखते हुए उसका चेहरा खुशी और बड़प्पन से दमक रहा था।"(8) निक्कू के डैडी उसे अपने वारिस के तौर पर सबसे मिलवाते हैं। जब निक्कू को पैसे नहीं मिले तो उसके पिता पितृसत्ता के गुर अपने बेटे को सिखाते हुए कहते हैं, "कैसे लड़के हो तुम? इतना भी नहीं जानते, लड़कियाँ 'लाग' लेती हैं। लड़के 'लाग' देते हैं। समझे?"(9) इसके बाद निक्कू अपनी बहन पम्मी को 'लागी' कहकर चिढ़ाने लगता है। वह उसे लागी का मतलब बताता है- "लागी" मतलब कमीन लोग।(10) इतने छोटे-छोटे मासूम बच्चों के मन में इतनी बड़ी बातें डालने का कार्य उसके डैडी जी पूरा करते हैं। बचपन में ही लड़कों को सीखा दिया जाता है कि किस-किस प्रकार से वे एक लड़की, महिला, स्त्री का मानसिक और शारीरिक शोषण कर सकते हैं।

पम्मी जी की यह कहानी हमें लगभग हर घर में देखने को मिल जाएगी। परिवार में बचपन से प्रत्येक लड़की को शारीरिक व मानसिक यातनाओं का शिकार होना पड़ता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार के बिना जीवन अधूरा माना जाता है। "बिना परिवार के समाज बेगाना नहीं, शत्रु हो जाता है और समाज के लिए व्यक्ति पथभ्रष्ट और लक्ष्यहीन विद्रोही।"(11) "अत: इस प्रकार नारी के रूपों का एक त्रिकोण उभर कर आता है, जिसमें एक और भारतीय परम्परा है, दूसरी और नवीन व्यवस्था और तीसरी और वह स्वयं- जिसमें वैयक्तिक चेतना ने जन्म ले लिया है।"(12)

स्त्री तथा समाज का अटूट संबंध होता है। कहा जाता है कि माँ ही एक बच्चे की प्रथम अध्यापक होती है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार का प्रमुख माध्यम शिक्षा रही है। इससे वो जागृत हुई है और खुद को समझा है। शिक्षा ने उन्हें दृष्टिकोण और चेतना दी है। धीरे-धीरे स्त्री साक्षरता में बढ़ोतरी हुई और कई परिवर्तन देखने को मिलते हैं।

अब स्त्री ने समझ लिया है कि वैवाहिक जीवन ही उसका प्रथम और अंतिम लक्ष्य नहीं है। नारीवादी सिमोन द बोउवार कहती हैं कि "मेरा दृढ़ विश्वास है कि परिवार संस्था का समूल विनाश जरूरी है। मैं परिवार संस्था के खात्मे के लिए प्रयासरत स्त्रियों और पुरुषों के पक्ष में हूँ। जरूरी है कि परिवार नष्ट हो और उसकी जगह कम्यून व्यवस्था लागू हो, या इसी तरह का कोई दूसरा ढाँचा आविष्कृत किया जाए।"(13) सिमोन ऐसे परिवार के पक्ष में है जिसमें परिवार के सभी सदस्यों को समान दर्जा प्राप्त हो, किसी के अधिकारों का हनन न हो। ये परिवार संस्था के विरोधी न होकर उस व्यवस्था के विरोधी हैं जो सत्ता एक व्यक्ति के हाथों सौंप देते हैं। जैसे-जैसे स्त्री में स्वयं को लेकर आत्मविश्वास पैदा होता जाएगा, परिवार का स्वरूप अपने आप परिवर्तित हो जाएगा। परिवार में बाहरी दिखावटी परिवर्तन नहीं होना चाहिए, जरूरत है आंतरिक परिवर्तन की।

'बेटी पराई नहीं होती, पापा' कहानी की पात्र लड़की को अपने पिता किसे अगाध स्नेह है, क्योंकि उसके पिता ने बचपन से भरपूर सम्मान दिया है, रोने नहीं दिया, उसके भाइयों से ज्यादा लाड़-प्यार से पाला। विवाह से पूर्व उसके पिता के लड़की के लिए विचार- "मेरी बेटी औरत नहीं, इंसान बनेगी।"(14) लेकिन जैसे ही उसका विवाह हुआ और उसकी नौकरी लगी तो उसे लगा कि उसके माँ-पापा को एक टी०वी० की जरूरत है। शायद आर्थिक तंगी के चलते उन्होंने नया टी०वी० ना लिया हो। लेकिन जैसे ही वो नया टी०वी० लायी तो उसके पिता की पितृसत्तात्मक आवाज जग उठती है। उसकी माँ से कहलवा दिया - "टी०वी० दिलवाकर तुमने उनके नाकाबिलियत के एहसास को और भी तीखा कर दिया है।"(15) "बहुत अपमानित महसूस कर रहे हैं। कहते हैं, हमेशा के लिए सिर नीचा कर दिया मेरा।"(16)

ये सब मान्यताएँ, वर्जनाएँ, परम्पराओं से चली आ रही हैं। शादीशुदा लड़की से माँ-बाप कुछ नहीं लेंगे, ना ही उसके घर का कुछ खाएँगे। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ये सामाजिक, सांस्कृतिक बंधन एक भरे-पूरे परिवार को हिला कर रख देते हैं। माता-पिता कितने भी आधुनिक विचारों के क्यों ना हों, जो बीज उनके मन में बोए गए हैं वो आज तक भी निकलें नहीं हैं।

पितृसत्ता कि ये जो व्यवस्था है यह सीमित नहीं है। यह महिलाओं के सामने आकर उनके रास्ते का रोड़ा नहीं बनती। यह एक भयानक रूप है जो उसे चारों तरफ से घेर का रखता है। इस कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के षडयंत्रों को बेनकाब करती है। "खिलाड़ी मर्द-बुजुर्ग-सयाने। औरत बिसात पर फेंका गया एक पाँसा भर।"(17)

संदर्भ

(1) डॉ० रोहिणी अग्रवाल, आओ माँ हम परी हो जाएँ, पृ० 64
(2) वही पृ० 65
(3) वही पृ० 127
(4) वही पृ० 127
(5) आचार्य श्यामसुंदर दास, हिन्दी शब्द सागर, तीसरा खंड, पृ० 127
(6) कमलापति त्रिपाठी, हिन्दी विश्वकोश, सातवाँ खंड, पृ० 117
(7) डॉ० रोहिणी अग्रवाल, आओ माँ हम परी हो जाएँ, पृ० 75
(8) वही पृ० 77
(9) वही पृ० 78
(10) वही पृ० 80
(11) राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानान्तर, पृ० 31
(12) गणेश दास: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, अक्षय प्रकाशन, कानपुर, 1992, पृ० 90
(13) सिमोन द बोउवार, स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं, पृ० 48
(14) डॉ० रोहिणी अग्रवाल, आओ माँ हम परी हो जाएँ, पृ० 65
(15) वही पृ० 66
(16) वही पृ० 67
(17) वही पृ० 130

हिंदी उपन्यासः साम्प्रदायकिता और समभाव

कुसुम वर्मा

हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत अनेक धर्मो, संप्रदायों वाला देश है, यहाँ की संस्कृति में अनेकता के गुण पाए जाते हैं। सभी तीज-त्यौहार, रीति- रिवाज सभी कुछ एक साथ मनाया जाता है। भारत विभाजन के साथ ही आपसी रिश्तों में कुछ सही नहीं रहा पूरे देश में सांप्रदायिक दंगो के भयावह दृश्य राष्ट्र में व्याप्त घृणित मानसिकता को उजागर करते हैं। सांप्रदायिकता की भयावह और दुखद स्वरूप का चित्रण हिंदी उपन्यासों में पूरी संवेदना के साथ व्यक्त किया गया है। उपन्यासों में सांप्रदायिकता का चित्रण देश-विभाजन के पहले और बाद से ही शुरू हो गया था। इसमें हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों की संकीर्ण विचारधाराओं का चित्रण मिलता है, लेकिन उसकी जड़ें उपन्यासों के शुरूआती कालों में ही हिन्दी साहित्य में देखने को मिलती है जिसके भिन्न-भिन्न तथा वृहत्तर रूपों को देखा जा सकता है। कुछ उपन्यासकारों की सृजनशीलता को देखने से पता चलता है कि वह भी इसके प्रति पूर्वाग्रह से प्रभावित है। ''अनायास यह कहना विवादास्पद होगा किन्तु समाज पर उसका प्रभाव होता है, इसे मानकर चलें तो इन उपन्यासों ने समाज में साम्प्रदायकिता को बढ़ावा दिया है, ऐसा कहना केवल संदेह नहीं है।"[1]

इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों को सन्दर्भित करते हुए उपन्यास लिखे गये, जिनमें आदिवासी विमर्श, स्त्री-विमर्श, भूमण्डलीकरण, किसानों की समस्यायें, पौराणिक कथानकों को लेकर भी लिखे गये है। हिन्दी साहित्य में लिखित इन उपन्यासों में कुछ कल्पना पर भी आधारित है। कुछ में हिन्दू-गौरव और संस्कृति पर समाज-सुधार आदि पर उपन्यास लिखे गए है। ''पूर्व प्रेमचन्द्र युग के उपन्यासकारों एवं उपन्यासों के साम्प्रदायिक मनोभावना के परिप्रेक्ष्य में उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि साम्प्रदायिक विद्वेष अथवा साम्प्रदायिक भावना जैसी कोई भी चीज उनकी जेहनियत में नहीं थी। उनके उपन्यासों के विषय या तो नीतिपरक हैं, या सामाजिक-सुधारवादी। कुछ उपन्यासकारों ने मनोरंजन को केन्द्र में रखकर तिलस्मी ऐयारी या जासूसी उपन्यास लिखे, तो कुछ ने भावात्मक उपन्यासों का प्रणयन किया, जिनका विषय मूलत: हिन्दू समाज की जटिल मर्यादाओं के बरक्स सात्विक प्रेम का पक्ष लेता रहा है, जिसकी परिणीति प्राय: दुखान्त हुई है।''[2] इसमें कुछ उपन्यासकारों ने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा घटनात्मक तीन रूप अपने उपन्यासों के रखे है। उनके द्वारा लिए गये समाज पर आधारित उपन्यासों के विषय के अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों पर आधारित उपन्यासों में कुछ शुद्ध ऐतिहासिक है तो कुछ इतिहास को विकृति करते है अर्थात् काल्पनिकता का सहारा लेते हुए मुसलमान पात्रों की छवि को तोड़ मरोड़ कर मनमाने रूप में चित्रण हुआ है। "यह पूर्वाग्रह नवजागरण काल कि उस मनोवृत्ति का ही एक हिस्सा हैं, जिसके तहत हिन्दू-जातीयता की भावना के साथ, मुस्लिम शासकों तथा मुसलमानों की आलोचना, उपेक्षा तथा अंग्रेज शासन के प्रति समर्थन का भाव प्रमुख होकर नवजागरण कालीन लेखकों में ही अभिव्यक्त नहीं हुआ है, नवजागरण कालीन सामाजिक विचारक तथा चिन्तक भी जिससे अछूते नहीं रहे हैं।''[3]

इन सब विचारों के मूल में मुगल शासकों के धार्मिक रूप से पक्षपात पूर्ण व्यवहार की फलश्रुति है। उनका भारत में मनमाने तौर-तरीके अत्याचार, मुस्लिम कानूनों के पालन के कठोर नियम और भारत पर आधिपत्य का एक लम्बा दौर जिसने हिन्दुओं में सामाजिक असुरक्षा की भावना को प्रश्रय दिया। अत: 19वीं शताब्दी के अन्तिम दौर में भारत आधुनिकता की ओर बढ़ रहा था। जिसका कुछ कारण अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गयी परिस्थितियाँ हो सकती हैं। उस समय समाज को अंग्रेजी सत्ता की मुगल शासकों की अपेक्षा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिदृश्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन ज्यादा सही लगे। अंग्रेजी सत्ता कितनी ही निंदनीय क्यों न हो लेकिन मुगलकालीन सामन्ती व्यवस्था से अधिक लोकतांत्रिक और खुली हुई थी। इसने हमें अनेक आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं, धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रवाद, जनतांत्रिक प्रणाली से अवगत कराया। यही धारणा जागरण काल के साहित्यिक लेखन के साथ-साथ उस समय

के चिंतकों, विचारकों की अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं मिलता और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता में सामंजस्य का अभाव दिखाई दिया, साथ ही अंग्रेजी सत्ता के प्रति तरफदारी पूर्ण रवैया अपनाया। उस समय की जनता की मनोवृत्ति से, साहित्यकारों, विचारकों को डर था कि अगर यह स्वतंत्रता आन्दोलन 1857 सफल हुआ तो फिर से मुगलों का शासन भारत पर हो जायेगा और हम और हमारा देश मध्यकाल की जड़ता, असुरक्षा, विद्वेष से कभी बाहर नहीं निकल सकेगा। "यही से दो धर्मो के बीच अलगाववादी भावना का निर्माण हो रहा। उसके बढ़ने के अन्य कारण भी हैं जैसे- आधुनिक पूंजीवाद, उद्योग, शिक्षा, मध्यवर्ग का होना मध्य वर्ग का सशक्त होना, आर्थिक विषमता, सामाजिक, सांस्कृतिक पिछड़ापन, मानसिक रूग्णता की भावना आदि।"[4]

अत: यह कहा जा सकता है प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों या उपन्यासकारों में कुछ पूर्वाग्रह पूर्ण भावनायें है, तो उसे जागरणकालीन प्रवृत्ति का ही रूप मानना चाहिए। साहित्यकारों ने उपन्यासों में साम्प्रदायिक विचारधाराओं को उस परिदृश्य में नहीं चित्रित किया, जिस रूप में आज साम्प्रदायिकता का अर्थ निकाला जाता है। अत: इन वैचारिक दृष्टिकोणों से पता चलता है कि किस प्रकार उस समय उपन्यास साहित्य में अपनी वैचारिकता और ऐतिहासिक घटनाओं का गलत निरूपण किया है किन्तु इसके विपरीत भी साहित्य सर्जना हुई, जिससे इसका विरोध हुआ। इन उपन्यास कृतियों में समकालीन विचारधारा को स्थान दिया है।

1947 में भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्ति मिल गई। लेकिन द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त के कारण देश के बँटवारे के साथ-साथ सम्पूर्ण भारत में साम्प्रदायिकता की ऐसी ज्वाला भड़की जिसमें सम्पूर्ण देश जलने को मजबूर हुआ जिसे कभी भी इतिहास के पन्नों से इस काले स्याह पक्ष को मिटा नहीं सकते। साम्प्रदायिकता की दग्ध ज्वालाओं में हजारों, लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया, कितनों के घर-परिवार छूट गये, विस्थापित हो गये। स्त्रियों और बच्चों पर किये गये अमानुषिक, राक्षसी अत्याचार की कल्पना करने पर रूह काँप उठती है। देश की जनता को भारत-पाकिस्तान के रूप में बाँटा गया और उन्हें विस्थापित होना पड़ा। साम्प्रदायिकता के इन विकृति चेहरों को जिनमें आधुनिक भारत आज भी साम्प्रदायिक दंगों के कारण जल रहा है। इन कारणों को हिन्दी उपन्यास साहित्य में गैर हिन्दी उपन्यास साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम साहित्यकारों ने करने का प्रयास किया है। विकृति मानसिकता वाले इन चेहरों को इन कृतियों में उजागर किया गया है। साम्प्रदायिकता दंगों की अमानवीय तस्वीर को पहली बार देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने उपन्यास 'कठपुतली' (1954) में प्रामाणिक विवेचन किया है। इसके साथ ही यथपाल ने 'झूठा सच' (1958), कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' (1961) में, भीष्म साहनी ने 'तमस' और 'नीलू नीलिमा निलोफर' में अमृतलाल मदान ने 'सिन्धुपुत्र' (1991), दीपचन्द्र निर्मोही कृति 'और कितने अंधेरे', हरदर्शन सहगल का 'टूटी हुई जमीन, दोणवीर कोहली ने 'वाहकैम्प (1998), प्रताप सहगल ने 'अनहदनाद (1999), मन्नू भण्डारी का 'महाभोज', शानी ने 'काला-जल' राही मासूम रजा ने 'आधा गांव' 'टोपी शुक्ला', 'हिम्मत जौनपुरी, 'ओस की बूंद, 'दिल एक सादा कागज' आदि में, भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़', तेजिन्दर का 'काला पादरी' गीतांजलि श्री का 'हमारा शहर उस बरस', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान, दूधनाथ सिहं का 'आखिरी कलाम, हरिवंशराय का 'नागफनी के जंगल में, शिवमूर्ति का 'त्रिशूल', प्रियंवद का 'वे वहाँ कैद है'। मोहम्मद आरिफ का 'उपयात्रा', संजना कौल ने 'पाषाण युग', नासिरा शर्मा का 'जिन्दा मुहावरे', वदीउज्जमाँ ने भी 'छाकों की वापसी', मंजूर एहतेशम ने 'सूखा बरगद' आदि सभी में साम्प्रदायिकता की समस्या को दिखाया गया है और उससे जुड़े हुए सवालों को सुलझाने का प्रयास किया है।

यशपाल का झूठा सच उपन्यास दो खण्डों में हैं। दोनों ही खण्डों में यशपाल ने साम्प्रदायिक घटनाओं का यथार्थवादी चित्रण किया है। विभाजन के पूर्व पंजाब के लोगों के शंकाकुल हृदयों में व्याप्त भय, राजनीतिक भड़काऊ बयान, भीषण कत्लेआम, देश का विभाजन हो जाने से और बढ़ गया। सभ्य मनुष्यों की आड़ छिपी पशुता का चित्रण, विस्थापितों की दुर्दशा, उनकी और अधिक जीने की जिजीविषा, लाहौर के गली-मुहल्लों में बहुसंख्यक मुस्लिम समाज की भयानक कुलबुलाहट, दहशत में जीते अल्पसंख्यकों के जीवन का यथार्थ और जीवन्त निरूपण किया है यशपाल ने अपने उपन्यास झूठा सच में। कहीं न कहीं ये सारी स्थितियों के मूल में साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारधारा की ही फलश्रुति है। यशपाल ने इस त्रासदी के सभी पहलुओं का भी यथार्थ अंकन किया है। साम्प्रदायिक भावना दंगों के रूप में देश-विभाजन के पहले और बाद में भी भारत में काली परछायी की तरह मँडरा रही है जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त किया हैं। कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर, में साम्प्रदायिक दंगों के विविध पहलुओं के अमानवीय पक्षों का और पाकिस्तान के नाम पर छले मुस्लिम जन समुदाय के मोहभंग का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'कितने पाकिस्तान' कमलेश्वर का ही एक और उपन्यास है, साम्प्रदायिक घृणा और नफरत ने इंसान को दो देशों के रूप में बाँट दिया और न जाने कितने पाकिस्तान देश के भीतर बनते जा रहे हैं। यह सिलसिला आज भी समाप्त नहीं हुआ है। एक ओर

इसमें संकीर्ण भावनाओं के कारण देश को बाँटना, एक-दूसरे का कत्लेआम, भौतिक सुखों को प्राप्त करने की होड़ राजनीति, विद्वेष, क्षेत्रीयता आदि है तो दूसरी तरफ करूणा, सहानुभूति मानवीय सभ्यता और तहजीब को बचाये रखने का जज्बा भी है। "उपन्यास में इसे बदलने के लिए संकीर्ण धार्मिक मानसिकता, भय, असुरक्षा, यन्त्रणा, प्रताड़ना, स्वार्थ, दुख और सत्ता की आकांक्षा की जगह मित्रता, प्रेम और मानवता का विकास भी उपन्यास में हुआ है। जिसके प्रतिनिधि पात्र है सम्राट गिलगमेश, अदीब, अर्दली, सलमा, रेतपरी, सफाई कर्मचारी, झोपड़ीवासी कौशल्या, बूटासिंह, पत्रकार नजम सेठी एक अंधा भिखारी कबीर अपने हाथों में बोधवृक्ष लिए फैलते विषैलेपन के खिलाफ मोर्चा बांधे चलते हैं। धर्माधता, आंतकवाद, जातिवाद, ब्राह्मणवाद, सांप्रदायिकता, राजनीतिक गुटबाजी फासीवाद, के कारण उभरने वाली हिंसा के खिलाफ से सभी खड़े हैं जो मानवता के प्रतिबद्ध चरित्र हैं।"[5]

भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' और 'नीलू नीलिमा निलोफर' दोनों में साम्प्रदायिकता को दिखाया गया है। 'तमस' 1947 में पंजाब में पाँच दिनों हुए साम्प्रदायिक दंगों की यथार्थ विभीषिका से परिचय कराता है। इसमें बताया गया है कि साम्प्रदायिकता किसी न किसी रूप में प्रत्येक सम्प्रदाय में विद्यमान होती है। हमारे भारत के लोगों और देश का ऐतिहासिक और भौगोलिक रूप को सत्ता में बेठै लोगों की स्वार्थपूर्ण नीतियाँ कैसे लोगों के जीवन से खेल जाती है। भीष्म साहनी स्वीकार करते है कि संकटपूर्ण स्थिति की पृष्ठभूमि में विभिन्न, धर्मो, वर्गों, विचारधाराओं की प्रतिक्रिया और उनके द्वारा किये गये वीभत्स कार्य ही दिखाए गए हैए इससे अधिक और कुछ नही है। इन पशुगत वृळियों से ऊपर उठकर उच्च समन्वयशील मूल्यों की नींव ही इसे मजबूत कर सकती है। 'नीलू नीलिमा नीलोफर' में भी लेखक ने चित्रण किया है कि हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक विचारधारा की संकीर्ण भावना दूर करने के लिए व्यक्ति को खुद बदलना होगा। प्रेम ही दोनों समुदायों की कटुता को दूर कर सकता है। मनुष्यता को बढ़ा सकता है। ऊपरी दिखावा केवल वैमनस्य ही बढ़ायेगा, समाधान नहीं देगा। आजादी से पूर्व पंजाब में दोनों समुदाय एक साथ, एक गली मुहल्ले में रहते थे और एक-दूसरे के दु:ख सुख के सहभागी थे, लेकिन अंग्रेजों की फूट डालों और राज करो की नीति ने ऐसा रूख अपनाया कि लोग दोस्त से कब कट्टर दुश्मन बन गये, उन्हें पता ही नही चला। साम्प्रदायिकता की भेंट कोई बड़ा आदमी नेता नहीं चढ़ते है बल्कि वहाँ रहने वाला आम इंसान होता है।

राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' में गाजीपुर जिले के गंगौली गाँव के आधे भाग में रहने वाले सैय्यद मुसलमानों की कहानी कही गयी है। यह उपन्यास एक ऐसे गाँव कहानी करता हैं, जो आजादी से पूर्व एक खुशहाल गाँव था जहाँ हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा था, दोनों एक-दूसरे धार्मिक और सामाजिक समारोहों में प्रेम-सौहार्द से शामिल होते थे। आजादी पाने के लिए भी दोनों समुदाय मिलकर लड़े थे, पर आजादी की पूर्व संध्या ही कुछ धार्मिक कट्टरवादी मुसलमानों, राजनीतिज्ञों के निजी स्वार्थए धूर्त चालाकियों ने अपने फायदे के लिए सदियों से रह रहे हिन्दू-मुस्लिमों को दो कौमों में बाँट कर देश को भी बाँट देते है। इसी के साथ ही मुसलमानों को पाकिस्तान और हिन्दुओं को भारत आना पड़ता हैं, बहुत से लोग दंगों में मारे जाते है। उनके अपने अस्तित्व का कोई नामोनिशान नहीं रह जाता हैं। उनके परिवार बिखर गये हैं, जमींदारी चली गई, उनकी आर्थिक स्थिति बदत्तर हो गई है। उन्होंने बगैर जाने-बूझे पाकिस्तान के पक्ष में मतदान कर दिया था, अत: इस कारण भी उनका राष्ट्रभक्ति का रूप कमजोर पड़ गया। हिन्दू राजनीतिज्ञ जिसका फायदा उठाकर उन्हें अपने विकृति चालों का शिकार बनाने लगे। आधा गाँव में इसका बहुत ही मार्मिक अंकन है। ''आधा गाँव प्रतीक है उस गंगौली का, जो एक पूरा गाँव न रह कर आधा गाँव रह गया हैं, क्योंकि उसके आधे मुसलमान बाशिन्दे पाकिस्तान चले गये हैं।''[6]

शानी का 'काला जल' उपन्यास में छळीसगढ़ के बस्तर के जगदलपुर के दो मुस्लिम परिवार की तीन पीढ़ियों की कथा है। ''शानी 'काला जल' उपन्यास में छत्तीसगढ़ के मुस्लिम परिवारों के भीतर प्रवेश करके एक अन्तेवासी के रूप में उस बदबूदार काले जल की सड़ाँध को चित्रित करते हैं, जो महज मोनी तालाब के जल की संड़ाँध ही नहीं है,निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज की अपनी सड़ाँध भी है।''[7] बदीउज्जमाँ ने भी 'छाकों की वापसी' में आजादी के बाद पूर्वी पाकिस्तान गये बिहार के मुसलमानों के मोहभंग का चित्रण है। अपना देश ही बँट कर बना दूसरा देश जहाँ पर उन्हें पराये मुल्क का एहसास होता हैं, वहाँ पर बंगाली और बिहारी मुसलमान का अन्तर उन्हें गैर बना देता है। इस मन:स्थिति का मार्मिक अंकन है। मंजूर एहतेशाम का 'सूखाबरगद' में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर सरल दृष्टिकोण और तार्किक विचारशीलता गहरी संवेदनाओं को एक प्रस्तुत किया गया है। देश में मजहब की दीवारें किस तरह निजी और समाज-सम्बन्धों में दरार डाल देती है।

''अब्बू धार्मिक कट्टरता से दूर एक उदार इंसान हैं। वे देश का बँटवारा होने पर पाकिस्तान नहीं जाते। वे पाकिस्तानियों को अजनबी मानते हैं। आजीवन उन्हें संकीर्ण साम्प्रदायिक मनोवृळि वाले लोगों से जूझना पड़ता है। इस लड़ाई में वे जीत नहीं पाते।''[8]

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'जिन्दा मुहावरें' में भारत विभाजन के बाद भारत में रह गये मुसलमानों के पीड़ादायी जीवन का चित्रण है क्योंकि वे अब मुख्यधारा में नही हैं। उनके प्रति समाज में अविश्वास का घेरा आ गया है, उनकी देशभक्ति पर संदेह है। बँटवारे के बाद एक ही मजहब के एक चने की दो दाल न रहकर अलग-अलग पेड़ बन गए हैं। साम्प्रदायिकता का अभिशाप दिलों में दरार, जमीन का बँटवारा, उजड़ते हुए घर, आदि सभी लोग अन्दर से टूट गए हैं। 'ठीकरे की मँगनी' रूढ़िवादी मध्यवर्ग के मुस्लिम परिवार की शिक्षित और सभी के दु:ख-दर्द को समझने वाली युवती महरूख की संघर्ष-गाथा है।

साम्प्रदायिकता पर गहरी अनुभूति भगवान दास मोरवाल ने 'काला पहाड़' में किया है। देश के सीधे-सरल लोगों के अन्दर साम्प्रदायिकता की भावना को किस प्रकार भरते हैं, अफवाहों द्वारा आतंक और शंका पैदा की जाती हैं, उनके दिलों साम्प्रदायिक उन्माद का जुनून इस कदर भर दिया है कि वह अपने भाइयों को नहीं पहचानते है। इसका प्रभावपूर्ण अंकन इस उपन्यास है।

गीतांजलि श्री का उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस' में हिन्दू सम्प्रदायवादी भावनाओं का चित्रण है। उपन्यास में मठ और विश्वविद्यालय दोनों ही संस्थायें इस संकीर्णता को और अधिक आग में झोंक देती है। उपन्यास के केन्द्र में विद्वेष की भावनाओं से उपजी असामान्य परिस्थितियों में पड़े एक मुस्लिम पात्र के अलग-थलग हो जाने की मानसिक भावों का चित्रण है। "आश्चर्य नहीं है कि युवा पीढ़ी का दिशा-निर्देश करने वालों की ये भावानात्मक सहमतियाँ विद्यार्थियों के राजनीतिक एजेंडे को अस्पष्ट कर देती हैं जिसके तहत कल तक के सर्वाधिक लोक प्रिय और काबिल प्रोफेसर हनीफ के 'दीवाने' छात्र आज उसके सेक्शन में पढ़ने को तैयार नहीं। यही राजनीति फल-फूल कर मदरसे जैसी धर्म-शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहन देकर अपरिपक्व बाल-मस्तिष्क पर शिंकजा कसना चाहती है। तब हनीफ का यह सवाल बेहद मानीखेज हो जाता है कि यह जब जूझने का दौर होगा तो क्या शरद मठ में होगा और मैं अंजुमन-ए-इस्लाम में ?"[9] धार्मिक जुनून फलश्रुति का नतीजा बाबरी-विध्वंस और उसके बाद साम्प्रदायिक दंगों का रूप ले किस प्रकार प्रतिफलित होता है, यह दिखाया है। दूधनाथ सिंह के उपन्यास 'आखिरी कलाम' में', जिससे यह साफ होता है कि साम्प्रदायिकता को फैलाने वाले धार्मिक किताबों का सहारा लेकर, कवियों, लेखकों को अपने साथ लेकर ये सभी जाने-अनजाने उनका साथ देते है। "भारतीय धर्म और दर्शन की प्रणालियों पर भी लंबी बहस लेखक ने की है गीता, कृष्ण, गांधी, मार्क्स, जयप्रकाश आदि के दर्शन की खामियाँ लेखक ने गिनायी हैं।"[10] बाबरी मस्जिद और तुलसीदास की रामचरितमानस को भी नए आयामों से देखने की कोशिश लेखक ने की है।

"आखिरी कलाम की एक और विशेषता यह कि वह वामपंथ को भी हर जगह यथासंभव हटा सकता है उसके पाखंडी चरित्र को भी उजागर करता है"[11] आखिरी कलाम में एक तरफ पारिवारिक त्रासदी का अंकन है, तो दूसरी ओर राजनति और समाज की कुनीतियों-कुप्रवृत्तियों से फैली सांप्रदायिकता का ही चित्रण है।

हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के अन्तर्गत साम्प्रदायिकता में विशेष रूप से हिन्दू-मुस्लिम परिप्रेक्ष्य में उसके बाद हिन्दू-दलित, आदिवासी, हिन्दू-ईसाई में इसके स्वरूप को दिखाने का प्रयास किया है। साथ ही प्रेम-कथाओं को माध्यम बना कर दोनों समुदायों में संघर्ष और समझौता का निरूपण किया गया है। प्राय: सभी उपन्यासों में अभिव्यक्त हिन्दू-मुस्लिम, सम्बन्धों की विच्छिन्नता, अमानुषिक कृत्यों, से फैलने वाले तनाव, डर, नफरत, असुरक्षा, घृणा आदि को व्यक्त किया गया है। कुछ मानवीय संवेदनाएँ सजर्नात्मक सम्बन्धों की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित करते हुए साम्प्रदायिकता का विरोध करती हैं। उपन्यासों के पात्र लगातार इससे संघर्षरत रहे हैं। भाईचारा विश्वबधुत्व, धर्मनिरपेक्ष, साम्प्रदायिक, आर्थिक, राजनीतिक एकता और धार्मिक समभाव इन सभी उपन्यासों परिलक्षित किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

1. दत्तात्रय मुरूमकर, हिन्दी साहित्य में वर्णित साम्प्रदायिकता का स्वरूप, पृष्ठ संख्या -119, प्रकाशन संस्थान, 4268-बी/3, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण- 2012।
2. शिव कुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 56, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण, प्रथम, 2015।
3. शिव कुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 57, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण, प्रथम, 2015।

4.. दत्तात्रय मुरूपकर, हिंदी साहित्य में वर्णित सांप्रदायिकता का स्वरूप, पृष्ठ संख्या-125, प्रकाशन संस्थान 4268- B/3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संस्करण- 2012

5. दत्तात्रय मुरूपकर, हिंदी साहित्य में वर्णित सांप्रदायिकता का स्वरूप, पृष्ठ संख्या -132-133, प्रकाशन संस्थान 4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संस्करण-2012

6. शिव कुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 88, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण . प्रथम. 2015।

7. शिव कुमार मिश्र, साम्प्रदायिकता और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ संख्या - 94, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण. प्रथम. 2015।

8. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी गद्य का साहित्य, पृष्ठ संख्या 298, वि0वि0 प्रकाशन, पोस्ट बाक्स नं0-1149, विशालाक्षी भवन (भूगर्भ तल), चौक, वाराणसी-221001।

9. गीतांजलि श्री, हमारा शहर उस बरस, पृष्ठ संख्या 252, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, सं, 2000

10. दत्तात्रय मुरूपकर, हिंदी साहित्य में वर्णित सांप्रदायिकता का स्वरूप, पृष्ठ संख्या-143, प्रकाशन 4268-ठध्3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संस्करण-2012

11. दत्तात्रय मुरूपकर, हिंदी साहित्य में वर्णित सांप्रदायिकता का स्वरूप, पृष्ठ संख्या-143, प्रकाशन 4268-ठध्3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संस्करण-2012

यशपाल की साहित्यिक मान्यताएँ

डॉ० अंजू बाला

यशपाल एक ऐसे व्यक्ति थे जिनका जन्म ही मानो क्रान्ति के लिए हुआ हो। साहित्य, राजनीतिक, पत्रकारिता, किस क्षेत्र में उन्होंने क्रान्ति नहीं की? "उन्होंने हाथ में पिस्तौल लेकर ब्रिटिश सत्ताधीशों के तख्त के नीचे विस्फोट की ज्वालाएँ फैलायी और 'क्रान्तिकारी' संज्ञा के काबिल रहे। साहित्य के क्षेत्र में अपने प्रगतिशील विचारों ने उन्हें 'युगप्रवर्तक' सिद्ध किया। आर्थिक विपन्नता से झुलसकर स्वर्ण-तेज धारण करने वाले उनके व्यक्तित्व का प्रतिकार एक अंग-सा बन गया था। हर सतर के शोषण एवं अत्याचार के विरोधी उनके व्यक्तित्व ने लेखनी की पैनी धार से पत्रकार का दायित्व निभाया।"[1] यशपाल के क्रान्तिकारी जीवन की उग्रता और निर्भिकता उनके साहित्यिक कतित्व में धरोहर बनकर आई जान पड़ती है। इनके साहित्यिक व्यक्तित्व और इनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से जुदा करके नहीं देखा जा सकता। स्वयं यशपाल जी भी साहित्य और क्रान्ति को दो पृथक् वस्तुएँ नहीं मानते। उनका मानना है- "मैं साहित्य को साधन के रूप में मानता हूँ। मेरा ध्येय साहित्य द्वारा क्रान्ति की प्रवृत्ति और भूमिका तैयार करना ही रहता है।"[2] इससे स्पष्ट है कि यशपाल के दो पक्ष हैं। पहला क्रान्तिकारी और दूसरा साहित्यिक।

यशपाल के साहित्य की यह विशेषता रही है कि वह सहेतुक प्रयास का फल सप्रयोजन लिखा साहित्य है। वे कहते हैं- "अपनी अधिक से अधिक मनोरंजक चीज में भी मैंने कुछ न कुछ संदेश दिया है। बिना संदेश दिए तो मैं कुछ लिख ही नहीं सकता।" लेखन यशपाल के लिए जीवन का पर्याय था शौक या मजबूरी नहीं। लेखन ही मानो उनकी जिन्दगी थी। वे लेखन छोड़ने को आत्महत्या करने के समान समझते थे। यशपाल ने नारी की सुप्त चेतना को जगाने का जोरदार प्रयत्न किया है। उनकी नारियाँ भी पुरुषों की भाँति ही क्रान्तिकारी कार्यों में ही अपना जीवन न्यौछावार करने के लिए हमेशा तत्पर रहती हैं।

पुरुष के समान नारी का विकास होने के कारण नारी भी पुरुष के समान ही मनुष्य होने के कारण, मनुष्य की सम्पत्ति में ठीक पुरुष के बाद उसका दर्जा बना। यशपाल कहते हैं- "वैयक्तिक सम्पत्ति या परिवार के राज में पुरुष राजा है तो स्त्री मन्त्री। जीव के विकास के नाते स्त्री-पुरुष में कुछ भी अन्तर नहीं। समाज की रक्षा के लिए वे दोनों एक समान अवश्य हैं। पुरुष यदि सामाजिक परिस्थितियों के कारण शारीरिक बल में या मस्तिष्क के कामों में अधिक सफलता प्राप्त कर सका है तो स्त्री का महत्त्व पुरुष को उत्पन्न करने परिवार और समाज को संगठित और व्यवस्थित करने में कम नहीं है।''[4]

अत: कहा जा सकता है कि पुरुष समाज का अस्तित्व स्त्री के बिना संभव नहीं। अपने व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए पुरुष के लिए स्त्री को अपने समान अवस्था में रखना आवश्यक रहा है, इसलिए पुरुष के अधीन होकर भी स्त्री उसके बराबर ही आसन पर बैठती रही है।

यशपाल के विचार में समाजवादी संस्कृति में ही नारी का अपना अस्तित्व है। वह किसी की ही कुछ न होकर स्वयं की भी कुछ होती है। समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्त्वपूर्ण अंग भी बन सकती है। यहाँ स्त्री को चौके और बिस्तरे के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नहीं रखा जा जाता। यशपाल की सभी नायिकाएँ इसी आदर्श पर चलती हैं। वे पुरुष का दमन अथवा उसकी गुलामी स्वीकार नहीं कर सकती, इसीलिए तो 'दिव्या' सामन्तवाद के प्रतीक 'रूद्रधीर' से कहती है- "कुल-वधु का सम्मान, कुल माता का आदर और कुल महादेवी का अधिकार आर्य पुरुष का प्रश्रयमात्र है। वह नारी का सम्मान नहीं उसे भोग करने वाले पराक्रमी पुरुष का सम्मान है।"[5] और वह इस राज-पुरुष का आश्रय छोड़कर साधारण व्यक्ति मारिश को अपनी साथी चुनती है। इसमें नारी मुक्ति और उसकी स्वतन्त्रता को दर्शाया गया है। पुराने अन्ध -विश्वास और रूढ़ियों पर यशपाल ने निर्मम प्रहार किए हैं। जर्जर मान्यताओं जादू-टोने, मान्यताएँ और सामाजिक रूढ़ियाँ उनके निशाने पर रहे हैं।

'पिंजरे की उड़ान' कहानी संग्रह की कहानी 'परलोक में भारतवासियों के भविष्य की आशा पर जीते रहने की प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए लेखक कहता है कि- "परलोक में सुखभोग करेंगे, अगला जन्म सुखमय होगा, इसी आशा में हम उस जीवन की दुरूह व्यवस्था को सह जाते हैं। साँसारिक पदार्थों में आसक्ति होने से परलोक प्राप्ति में बाधा होगी, इसलिए हम उस ओर ध्यान देना चाहते हैं। मन में स्वभावतः समृद्धि की इच्छा होती है परन्तु हम उसे समझते हैं, लिप्त होना अच्छा नहीं है। मार पड़ती है तो कहते हैं- भगवान देखते हैं समझेंगे।"[6] यह सब एक पुराना विश्वास है कि मार पड़ेगी तो भगवान समझेंगे इसलिए मार खाते चलो। यह सब एक पुराना विश्वास है जिसका यशपाल ने विरोध किया है।

यशपाल यह सोचते हैं कि शासन की समस्त गतिविधियाँ शक्तिशाली वों के हितों की रक्षा ही करती हैं। इसलिए वे मार्क्सवादी दृष्टि से विचार करते हुए समाजवादी व्यवस्था की हिमायत करते हैं और मजदूर वर्ग की तानाशाही स्थापित करना अनिवार्य समझते हैं। मजदूर वर्ग के शासन से ही शोषणपूर्ण व्यवस्था का अन्त होगा ऐसा यशपाल का विश्वास है। कुछ लोगों की यह आशंका है कि यदि मजदूरों का दमन और शोषण अन्याय है तो दूसरे वर्गों पर उनकी तानाशाही दमनकारी हो सकती है। इसका निराकरण करते हुए यशपाल कहते हैं- "मजदूरों का शोषण तो इसलिए हो सकता है कि वे अपने श्रम से पैदावार करते हैं। उनके श्रम का पूरा फल न मिलना उनका शोषण है। मजदूर पूँजीपति के बंधन से छूट न जाएँ या अपने श्रम का अधिक भाग देने के लिए मजबूर रहे इसलिए उनका दमन किया जाता है।"[7]

'दुःखी-दुःखी' कहानी में एक युवती जो कि पेट पालने के लिए वेश्यावृत्ति करती है तथा आर्थिक विपन्नता के शिकार एक युवक की कहानी है। शोषक की विलासिता की भावना एवं समाज में नारी का शोषण इस कहानी की ध्येय है। नारी को इसमें शोषित चित्रित किया गया है। इससे भी तीक्ष्ण व्यंग्य 'कर्मफल' कहानी में है। इसमें सामंती बोध का परिचायक है साधन सम्पन्न सेठानी जो अपनी बेटी की नींद खराब होने पर कहती है- "मेरी बेटी का कष्ट जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी, उसका सत्यानाश हो।"[8] "कोई रांड नीचे बाजार में अपने कर्मो को रो रही है।"[9] वास्तव में असहाय बिन्दी अपनी बीमार बेटी को लेकर पेड़ के नीचे बैठी है। वहीं उसकी बेटी की मृत्यु हो जाती है तथा उसके चिल्लाने से सेठ की बेटी की नींद में बाधा पड़ती है। 'करुणा' कहानी में भी लेखक ने शोषण व्यवस्था को चित्रित किया है। बीमार कुत्ते के लिए तो राजा साहब रोते बिलखते हैं लेकिन लगान की वसूली करते समय लोगों को मुर्गा बनाते हैं तो उन्हें टीस नहीं होती न तो उनका दिल पसीजता है। वे कहते हैं- "इन बातों में दया की गुंजाइश कहाँ है? इसी व्यवस्था पर तो हमारा अस्तित्व है। शहद खाना है, तो मक्खियों से छीनना ही दूर करो भगवान पड़ेगा।"[10]

पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति अपना तीखा आक्रोश व्यक्त करते हुए यशपाल उसके समूल नाश के आकाँक्षी हैं तथा वर्गहीन समाज व्यवस्था के हिमायती हैं। वे इस श्रेणी संघर्ष को अनिवार्य स्वीकार करते हैं। मार्क्सवाद भी इसी प्रकार की क्रांति का समर्थक है। सर्वहारा वर्ग का संगठित रूप तथा उसका एकजुट प्रयास ही सफल क्रांति का आधार है, जिसके द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता है। हरीश के माध्यम से क्राँति के इसी स्वरूप की व्याख्या करते हुए यशपाल कहते हैं- "क्राँति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में सशस्त्र संघर्ष ही नहीं है, हमारी क्रांति का लक्ष्य एक नवीन, न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रांति का उद्देश्य पूँजीवादी को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना, विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्त कर आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषकों के हाथ से शासन-शक्ति लेकर मजदूर श्रेणी के शासन की स्थापना करना है।"[11]

आत्मनिर्भर न होने के कारण नारी विवश और मजबूर होकर उसके शासन और अधिकार की अवहेलना नहीं कर पाती है। नारी पराधीनता के इस पक्ष को यशपाल ने अपनी कहानियों में भी पूरी मार्मिकता के साथ उभारा है। 'करवा का व्रत', 'जबरदस्ती', 'पराया सुख' आदि उनकी इस प्रकार की कहानियाँ हैं।

वेश्या जीवन के मूल में भी आर्थिक कारण निहित हैं। आर्थिक अभाव ही नारी को वेश्या बनने के लिए बाध्य कर देता है। वह शौक के लिए नहीं, अपना पेट भरने के लिए शरीर बेचती है। 'गण्डेरी' कहानी की बाईजी की विवशता है उसकी आँखों में मद है, न मस्ती, बल्कि है कातरता और निराशा'। मानो वह दोनों हाथ फैलाकर कह रही है- "मैं तुझे रिझा रही हूँ तुम रीझते क्यों नहीं? तुम्हारा मनोरंजन हो तुम्हारा दिल बहले तो एक टुकड़ा हमें भी मिले।"[12] 'आदमी का पैसा' की झरना तो स्पष्ट शब्दों में कहती है- "पेट तो भरना है। टका तो चाहिए। टके के लिए करती हूँ। नहीं तो तुम टका क्यों दोगे? पेट बहुत कुछ कराता है बाबू। जैसे और सौ काम वैसे एक यह काम। पालने वाला कोई एक न हुआ, दस-बीस के सहारे ही जिन्दगी काट रही हूँ। बाबू जी अन्न देता

है, अपना काम लेता है। बाबू यह आदमी नहीं सोता साथ, उसका पैसा सोता है।"[13] इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी समस्याओं की संदर्भ में भी यशपाल ने आर्थिक भूमिका को ही अहमियत दी है। परिवार के अन्दर पुरुष शोषक या पूँजीपति की भूमिका में होता है और स्त्री शोषित या सर्वहारा होती है, यशपाल भी इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं।

यशपाल ने अपने समूचे कृतित्व में अपनी साम्यवादी विचारधारा को अभिव्यक्ति दी है। कम्युनिस्ट पार्टी को सामान्यजन के हित में व्यवस्था को बदलने वाली एक मात्र क्रांतिकारी पार्टी के रूप में मान्यता देकर और उसकी गतिविधियों की अपने कथा-साहित्य में प्रमुखता से चित्रित कर यशपाल ने अपनी दृढ़ आस्था को पूरी तरह प्रमाणित किया है। वास्तव में देखा जाए तो यशपाल पार्टी से अधिक देश की जनता की क्रांतिकारी चेतना के प्रति आस्थावान है। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति उनकी संपृक्ति इसलिए है कि उनके अनुसार जनता की क्रांतिकारी चेतना को बनाए रखने तथा उसे एक सार्थक दिशा प्रदान कर आगे बढ़ाने में कम्युनिस्ट पार्टी ही समर्थ है। 'झूठा सच' में यशपाल ने जनता के प्रति अपने उपर्युक्त विश्वास की स्पष्टत: प्रकट कर दिया है। 'अब तो विश्वास करोगे जनता निर्जीव नहीं है, जनता सदा मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेताओं और मन्त्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के हाथ में है।"[14]

स्वदेशी भाषा के प्रथम-प्रसार के बारे में यशपाल का दृष्टिकोण साफ-सुथरा रहा है। अपनी भाषा के बिना राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। "भारतीय नव जागरण के प्रारम्भिक उन्मेष के समय देश के चिन्तकों, विचारकों, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं तथा साहित्यकारों का यह निश्चित मत था कि अपनी भाषा के बिना कोई भी समाज या राष्ट्र अपने सम्पूर्ण सम्भाव्य विकास तथा अभ्युदय से अनिवार्यत: वंचित रह जाता है।"[15] यशपाल ने 'मैं और मेरा परिवेश' में लिखा है- "हमारे प्रजातान्त्रिक आदर्शों की पूर्ति अपनी भाषाओं की प्रतिष्ठा के बिना संभव नहीं है।"[16] "हमारा उद्देश्य सारे ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषाओं में लाना है।''[17] इस दृष्टि से विदेशी-भाषाएँ विशेषत: अंग्रेजी हमारे लिए आवश्यक हो सकती है। अत: उसके अध्ययन का समुचित और व्यवस्थित प्रबन्ध होना अपेक्षित है पर सामान्य व्यावहारिक स्तर पर देश के जीवन में उसका अनिवार्य होना, हमारी दृष्टि में अनुचित और असंगत है। ज्ञान-विज्ञान, चिन्तन-मनन की हमारी मौलिक प्रक्रिया हमारी भाषा में ही संभव हो सकती है। अतएव कहा जा सकता है कि हमारे प्रदेशों की भाषाएँ जन जीवन को भावी युग के नवीन मूल्यों के प्रति, नयी योजनाओं की ओर प्रेरित तथा आन्दोलित करेंगी, यह उनका सहज और पवित्र कर्तव्य है।

अत: कह सकते हैं कि यशपाल जीवन के बड़े सूक्ष्म अध्येता और चिन्तक हैं। जीवन-अध्ययन और विश्लेषण सम्बन्धी उनकी क्षमता प्राय: सर्वस्वीकृत है। जीवन की गहराई में डूबकर जिन निष्कर्षों पर वे पहुँचते हैं, उन्हें समाज के सम्मुख इसलिए रख देते हैं कि समाज अपने असली रूप को पहचाने और उसके सुधार के लिए जो परिवर्तन आवश्यक हो, उन्हें अंगीकार करे। यह कार्य वे कला के माध्यम से करते हैं। मार्क्सवादी कलाकर होने के कारण के यशपाल भाषा के सन्दर्भ में भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। मार्क्स चूँकि जनवादी था, इसलिए साहित्य-सर्जना में उसने जन-भाषा को ही सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। यशपाल भी मार्क्स की ही तरह, जन-भाषा के समर्थक हैं और उसका उन्होंने अपनी औपन्यासिक कला-कतियों में बहुत हद तक निर्वाह भी किया है।

'देशद्रोही' उपन्यास में लाला ध्यानचन्द पुत्री शैलवाला के आचार-व्यवहार से समझौता नहीं करते, बल्कि अन्त में उसे कंलकिनी बताकर अपने पितृ-कर्त्तव्य से भी पीछे हट जाते हैं। उनका कथन है- 'शायद पिछले जन्म के कर्मों का फल अन्त में उसी रूप में मेरे सामने आना था परन्तु इसे प्राण रहते सह न सकूँगा .. तुम्हारे मोह में यह भी सोचा कि आत्म-हत्या करके तुम्हें स्वतन्त्र कर दूँ। बुढ़ापे में जो कुछ इज्जत बची है ढकी रहे. यहाँ इस शहर और इस मकान में यह कलंक प्रकट न हो . . . यही मुझे कहना है।"[18] यही वाक्यांश उनके स्थिर रूढ़िवादी व्यक्तित्व के द्योतक हैं।

यशपाल एक ऐसे साहित्यकार रहे हैं जिन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक प्रतिबद्धता एवं दायित्वबोध को भली प्रकार से निभाया है। उन्होंने जिस भी समस्या या विषय को अपने साहित्य में उजागर किया है उसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी निभाई है। चाहे वह मार्क्सवाद के प्रति दलितों के प्रति, वर्ग-भेद, शोषण के प्रति, नारी समस्या के प्रति या फिर शोषण के विरोध में आवाज हो। सभी विषयों के प्रति अपने दायित्व निर्वहन हेतु रचनाओं का भरपूर प्रयोग किया है।

यशपाल का मानना है कि- "साहित्य-रचना में प्रतिबद्धता एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। साहित्य-रचना को मात्र मनोरंजन से जोड़ना या उसे मनोरंजन का साधन मात्र मानना उचित नहीं है।''[19] यशपाल का मानना है कि प्रतिबद्धता से मुक्ति की ललकार केवल

विचारहीन साहित्य सर्जन करने वाले लेखक ही कर सकते हैं। यशपाल मार्क्सवादी जीवन दर्शन में विश्वास रखने वाले कलाकार हैं। "मैं सर्वसाधारण जनता को शोषित और अन्याय-पीड़ित समझता हूँ। इस अन्याय से जनता की मुक्ति का उपाय 'कम्युनिज्म' की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा को मानता हूँ।"[20] इस प्रकार यशपाल का लक्ष्य पीड़ित और दलित मानवता के उद्धार के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है। कम्युनिज्म (उनके) उपन्यास 'डायलेक्टिक्स' वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा वर्ग की क्रांति की आधारभूमि पर खड़े हैं। यशपाल के उपन्यासों में पूँजीवादी-सामन्तवादी समाज-व्यवस्था की परम्परागत नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह का भाव है। उन्होंने युग-जीवन और उसके संघर्षो को इस प्रकार चित्रित किया है कि उनके प्रत्येक उपन्यास में प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील पात्रों के बीच संघर्ष दिखाई देता है।

मार्क्सवादी दर्शन की प्रतिबद्धता के कारण यशपाल समाज में चलने वाले हर शोषण के विरोधी हैं। यह शोषण चाहे पूँजीपतियों द्वारा सर्वहारा वर्ग का हो या पुरुष नारी का हो, शोषण मूलक समाज-व्यवस्था का निर्मूलन आवश्यक है। शोषक वर्ग के प्रभावशाली अस्त्र परम्परागत नैतिकता और न्याय, कर्मकाण्ड तथा धर्म और ईश्वर आदि है। समाज को इससे तभी मुक्ति मिल सकती है जबकि शोषितों का इनसे परित्राण करने के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण हो सके।

'करुणा' कहानी में लेखक ने तीखे व्यंग्य से शोषण व्यवस्था को चित्रित किया है। बीमार कुत्ते के लिए राजा साहब रोते बिलखते हैं लेकिन लगान की वसूली करते समय लोगों को मुर्गा बनाते हैं तो उन्हें टीस नहीं होती न तो उनका दिल पसीजता है। वे कहते हैं- "इन बातों में दया की गुंजाइश कहाँ है? इसी व्यवस्था पर तो हमारा अस्तित्व है। शहद खाना है, तो मक्खियों से छीनना ही पड़ेगा।''[21] शोषक और शोषित सम्बन्धों के सन्दर्भ में आलोच्य लेखक केवल मजदूर, किसान या सर्वहारा वर्ग को ही सम्मिलित नहीं करते प्रत्युत समाज में हर प्रकार के शोषण को इसकी परिधि में समेटते हैं।

यशपाल के साहित्य में विश्वशांति की पुकार भी निहित है। युद्ध की, विभीषिका के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर विश्वशांति की स्थापना के लिए निर्मित उस परिवेश में सन् 1956 में अमिता' का प्रकाशन हुआ। उपन्यास के प्राक्कथन में लेखक ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया है- "हमारा राष्ट्र अपने जीवन की अवस्था सुधारने का प्रयत्न कर रहा है और हमारे समाज की प्रमुख भावना निर्माण की ओर है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए युद्ध के विध्वंस से बचे रहने की ओर विश्वशांति की आवश्यकता अनिवार्य है।''[22]

विश्वशांति की स्थापना के लिए उस समय साम्यवादी देशों में भी गहरी रुचि ली थी। यशपाल ने स्वयं विश्वशांति की स्थापना के लिए आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हिस्सा लिया था। प्रस्तुत औपन्यासिक कृति के माध्यम से यशपाल ने विश्वशांति की दिशा में लेखकीय सहयोग प्रदान किया है। युद्ध समस्त मानवीय मूल्यों को ध्वस्त करके भय और आतंक, अमानवीयता, नृशंसता, हिंसा आदि का कारक होता है। युद्ध किसी भी समस्या का हल नहीं अपितु समस्याओं का अनन्त सिलसिला है। वस्तुतः मानव प्रेम और शांति के प्रयत्नों से ही किसी भी समस्या का निवारण किया जा सकता है। युद्ध के कारणों और शांति के महत्त्व के सम्बन्ध में यशपाल का कहना है- "भय और दमन के द्वारा अपने विचारों और नैतिकता को स्वीकार कराने लिए विवश करना, अपनी शक्ति अनुभव करने का उन्माद मात्र है और मूलतः अनैतिक है।"[23] युद्ध की विभीषिका के प्रति वितृष्णा अनिवार्य है ताकि मानव प्रेम और अहिंसा के मार्ग से मानवता और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा कर मानव जाति का समुचित विकास हो सके।

अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि यशपाल के साहित्य में स्वतंत्रता एवं विश्वशांति की पुकार है। यशपाल स्वयं स्वतंत्रता सैनानी थे। अतएव आन्दोलन की संगठनात्मक चुनौतियों को बखूबी समझते थे। उन्होंने जीवन के विविध पक्षों को अपने कथा-साहित्य में साम्यवाद की प्रतिबद्धता के दायरे में प्रस्तुत किया। उनकी राष्ट्रभक्ति निर्मल स्फटिक मणि की भांति है। स्वतंत्रता और विश्वशांति को जिस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने पाठकों के सामने रखा है इसके कारण उनके सम्पूर्ण साहित्य को प्रासंगिक तथा महत्त्वपूर्ण बना दिया है क्योंकि केवल यशपाल जैसा निर्भय साहित्यकार ही इन अछूते पक्षों को उद्घाटित करने का अदम्य साहस रखता था। इसके अभाव में भारतीय जनता निष्पक्ष तथ्य निरूपण करने से वंचित रह जाती तथा अनेक सन्दर्भ अतीत के गर्भ में अज्ञात काल कवलित हो जाते। यशपाल के अनेक उपन्यास और कहानियाँ स्वाधीनता और विश्वशांति के प्रामाणिक दस्तावेज हैं।

साहित्य के अनगिनत तत्त्व हैं। इनकी कोई निर्धारित सीमा नहीं है। साहित्यकार की अपनी रुचि होती है। साहित्यकार अपनी रुचि के अनुसार कुछ विशेष तत्त्वों की सहायता से साहित्यकार की रचना प्रक्रिया के स्वरूप सम्बन्धी सोच निर्धारित की जा सकती है। यशपाल बहुद्रष्टा अतएव बहुस्रष्टा रचनाकार है। उनकी रचना-प्रक्रिया मूलतः जीवन के कटु अनुभव तथा विकट परिस्थितियाँ हैं जो यशपाल ने अपनी जीवन यात्रा में अनुभूत की।

रचना-प्रक्रिया के बारे में यशपाल का मानना है कि- "मैं मानव हूँ, मेरा सम्बन्ध मानवी सुख-दु:ख और मानवी अनुभूतियों से है। मैं मानवी सम्बन्धों और सम्पर्कों से सुख-दु:ख, व्याकुलता, स्फूर्ति या प्रेरणा का अनुभव करता हूँ।"[24] इनकी रचना की व्यापकता स्वतन्त्रता के क्रान्तिकारी संघर्ष से अनुभूत कठोर तथ्य है। क्रान्तिकारी गतिविधियों में सभी साथियों के सर्वोच्च बलिदानों ने इनकी लेखनी को अत्यन्त प्रखरता प्रदान की जो उनकी साम्यवादी रचना में झलकती है। उनका श्बारह घंटेश उपन्यास एक क्रान्तिकारी साथी के जीवन से प्राप्त प्रेरणा पर लिखा गया है। इस सन्दर्भ में यशपाल कहते हैं- "मेरे पास तथ्य होता है, उसके अनुकूल प्लॉट सोच लेता हूँ और उसके अनुकूल चित्र निर्माण करता हूँ।"[25] रचनाओं के लेखन में उनके ऊपर विशेष रूप से अपने चारों ओर फैले संसार के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ तो निर्णयात्मक भूमिका निभाती थी। इसके अतिरिक्त धर्म और इतिहास की विकृत्तियाँ, अन्धविश्वास तथा शोषण की विभिषिका ने भी इनके अन्तर्मन को झकझोरा। जिसका प्रवाह इनकी लेखनी में व्यापकता और विविधिता का सूचक है।

'दादा कामरेड' यशपाल का एक मात्र ऐसा उपन्यास है, जिसमें वे अपने निजी जीवन के घटना-प्रसंगों और मुख्य पात्रों के रूप में कुछ वास्तविक व्यक्तियों को अंकित करते हैं। यहाँ एक ओर यदि वे "समाज में मौजूदा परिस्थिति में क्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य की ओर संकेत करना चाहते हैं वहीं वे उस ऐतिहासिक दौर को भी कथा-बद्ध करना चाहते हैं, क्रान्तिकारी संगठन संक्रान्ति और राजनैतिक दृष्टि से यह वह समय था, जब महात्मा गाँधी के अहिंसक आन्दोलन से लोगों को निराशा होने लगी थी और उत्तर भारत में सक्रिय क्रान्तिकारी संगठन विघटन की प्रक्रिया में थे।[26]

भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की यातना का सन्दर्भ यशपाल का मुख्य रचनात्मक सरोकार माना जा सकता है। 'दिव्या' में वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्त्री की यातना के सामाजिक कारकों की खोज करते हैं। इतिहास को वे विश्लेषण की वस्तु मानते हैं, विश्वास की नहीं। इस सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी है, अतीत में अपने रचनात्मक सामर्थ्य और परिस्थितियों को सुलझाव के अपने निर्देश पाती है . . .।''[27]

यशपाल के रचना-कर्म की सार्थकता विचारों को उत्तेजित कर सकते की उनकी क्षमता में निहित है। यही वैचारिक तेजस्विता रक्त की ललाई की तरहउनकी रचनाओं में चमक पैदा करती है। अनुभूति जितनी गहरी होगी अभिव्यक्ति भी उतनी ही प्रखर एवं प्रभावशाली होगी। भाव की उत्पत्ति के विषय में यशपाल ने अपनी रचना 'मैं क्यों लिखता हूँ' में लिखा है, कहानी में विचार पाने और उसे रचना की प्रक्रिया में डालने लिए बाजार में फुटपाथ पर एक बुढ़िया का चित्रण बताया है। "बुढ़िया चेहरे को दोनों हाथों से ढके रो रही है। उसके सामने एक छोटी डलिया में कुछ तरकारी है। बुढ़िया का बाजार में आकर सौदा बेचने के बजाय रोना मेरे मन को छू लेता है। आस-पास की दुकानों के लोगों को बुढ़िया से कोई सहानुभूति नहीं जान पड़ती।"[28] इस सब को देखने के बादयशपाल के मन में भाव पैदा हुए कि बुढ़िया आखिर सौदा भी बेच रही है और रो भी रही है। वह ऐसा क्यों कर रही है। साहित्यकार मूल रूप से जीवन और जगत् के प्रति अपनी भावनात्मक प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। भाव साहित्य का विशिष्ट तत्त्व है। कल्पना और विचार उसके साथ चलते हैं। जो भाव और विचार लोगों के मन को स्पन्दित करते हैं। वही साहित्य को प्रभावित करते हैं।

यशपाल कहते हैं कि- "वास्तव में घटित उदाहरण मनचाही बात को समझाने के लिए कहाँ मिल सकते हैं इसलिए घटना के रूप में उनकी कल्पना कर लेनी पड़ती है।"[29] यशपाल का मानना है कि उदाहरण तभी सफल और सबल हो सकता है जब वह पाठक को सत्य जान पड़े। इसलिए "कल्पना से घटना गढ़ते समय मैं उसे पूर्णत: विश्वास योग्य बनाने के लिए कल्पना से ही ऐसे पात्रों की सृष्टि कर लेता हूँ जो पाठकों को वास्तविक जान पड़े।"[30]

अनुभूति जितनी गहरी होगी अभिव्यक्ति भी उतनी ही प्रखर एवं प्रभावशाली होगी। यशपाल का मानना है कि- "लेखक अपने विचार और सुझाव जनता की भावना को अछूता छोड़कर, आदेशों के रूप में नहीं दे सकता। अपनी बात जनता के लिए आकर्षक या मनोरंजन बना सकना लेखक के लिए अनिवार्य है। श्रेष्ठ साहित्य की मुख्य कसौटी सदा रस या मनोरंजकता रही है। यदि लेखक अपने विचार या कथ्य के लिए पाठक और श्रोता में भावना और रागात्मक संवेदन नहीं जमा सकेगा तो अपने उद्देश्य और दायित्व में कभी सफल नहीं हो सकेगा। यह कठिन है कि साहित्यकार अपनी एक ही रचना या प्रयत्न से पाठकों या श्रोताओं की पुरानी मान्यताओं और संस्कारों को बदल सके। आवश्यक यह है कि साहित्यकार की रचना में पाठक के मन-मस्तिष्क को जकड़ सकने का इतनासामर्थ्य हो कि पाठक या श्रोता उससे सहमत न होने पर भी उसकी रचना बिना पढ़े या बिना सुने न छोड़ सके। लेखक अपनी विधा या माध्यम की कला को इतना सबल बना सकेगा तभी वह सफलता की आशा भर सकेगा।''[31]

यशपाल के शब्दों में- "शिल्प का अर्थ विचारों के अनुसार रचना और निर्माण कर सकना है। शिल्प का प्रयोजन उपयोगिता और सौन्दर्य दोनों की सृष्टि करना होता है। साधारण सुविधा के लिए शिल्प को उपयोगी शिल्प और ललित शिल्प दो भागों में बाँट लिया जा सकता है। ललित शिल्प का प्रयोजन प्रधानतः सौन्दर्य की सृष्टि करना अथवा प्रकृति में उपलब्ध सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित करना रहता है।"[32] ललित शिल्प अथवा ललित कलाओं में चित्रकला और मूर्ति निर्माण के साथ साहित्य की भी गणना होती है।

सौन्दर्य का प्रयोजन सन्तोष दे सकना और मनुष्य के जीवन को सन्तुष्ट और विकासशील बनाना है और शिल्प का प्रयोजन सौन्दर्य की रचना अथवा अभिव्यक्ति है। सौन्दर्य का क्षेत्र स्थूल-जगत् में ही नहीं भाव-जगत् में भी है और उससे आगे विचार और आदर्शों के जगत् में भी है। यशपाल का मानना है कि- ष्समाज के आदर्शों और मान्यताओं की घोषणा कर देना एक काम है। यह काम स्मृतिकार या समाज के लिए नैतिकता की मान्यताओं को निश्चित करने वाले करते हैं परन्तु इन मान्यताओं को विश्वास योग्य और रुचिकर ढंग से समाज के जीवन के लिए व्यावहारिक प्रमाणित कर देना कथा-शिल्पी का ही काम है।"[33]

यशपाल का मानना है कि- "किसी भी वस्तु के शिल्प को समझने के लिए सीधा उपाय यह हो सकता है कि उसकी निर्माण-प्रक्रिया का परिचय पाया जाए। संभव हो सके तो उस वस्तु का अंग-विच्छेद करके अथवा उसे उधेड़कर उसके निर्माण के तत्त्वों और प्रक्रिया को समझ लिया जाए।"[34] यशपाल 'मैं क्यों लिखता हूँ' में शिल्प को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, कि- "लेखक प्रेरणा को महत्त्व देते हैं। यदि प्रेरणा का विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया जाए तो उसे हम कथाकार या कथा-शिल्पी की अपनी अनुभूति कहेंगे जो उसमें अभिव्यक्ति के लिए इच्छा और स्फूर्ति उत्पन्न करती है।"[35]

यशपाल ने भाषा के बारे में कहा है- "हिन्दी-उर्दू दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं। यदि हिन्दी और उर्दू दो भाषाएँ न होती तो हिन्दी के उत्तर प्रदेश की राजभाषा स्वीकार कर लिए जाने पर उर्दू के क्षेत्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किए जाने की माँग क्यों उठती?"[36] यशपाल की भाषा का स्वरूप, तत्सम, तद्भव, देशज विदेशी या आगत इन चार प्रकार के शब्दों से निर्मित हुआ है। यशपाल का कहना है- "हिन्दी और उर्दू एक दूसरे से पृथक, भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं तो आप हिन्दी का कोई ऐसा एक वाक्य बोलिए जिसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य न हो और उर्दू का जुमला न कहा जा सके या आप उर्दू का कोई ऐसा जुमला कहिए जिसमें फारसी शब्दों का बाहुल्य न हो और उसे हिन्दी न कहा जा सके। संस्कृत और फारसी दो भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किसी भाषा में किए जाने पर वह भाषा ही बदल जाएगी, यह नहीं मान लिया जा सकता।''[37] यशपाल का मानना है कि विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किसी एक भाषा में किए जाने पर वह भाषा बदल जाएगी, यह नहीं माना जा सकता। उनका कहना है- "भाषा शब्दों से नहीं क्रिया, पदों, सर्वनामों और कारकों से पहचानी जाती है।"[38]

यशपाल का मानना है कि- "कहानी की भाषा का प्रयोग प्रसंग के अनुकूल और पात्र के भी अनुकूल होना चाहिए। उदाहरणार्थ मन्दिर के पुजारी की भाषा और अभिव्यक्ति, बोलचाल में उसके मुहावरे एक प्रकार के होंगे। वह विशेष प्रकार की उपमाओं का प्रयोग करेगा और एक लोहार की अभिव्यक्ति की शैली दूसरी ही प्रकार की होगी। वह दूसरी ही प्रकार की उपमाओं का प्रयोग करेगा।"[39]

शिल्प की महत्ता को स्वीकार करते हुए स्वयं यशपाल कहते हैं- "बात कहने के ढंग पर बहुत निर्भर करता है। कहने के ढंग या अभिव्यक्ति की शैली में शिल्प आ जाने से ही तो साहित्य बन जाता है।''[40] शिल्प के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यशपाल कहते हैं कि रचना के स्थूल तत्त्वों के ऊपर यशपाल ने इतना नहीं लिखा जितना उन्होंने अपनी रचनाओं में इसे व्यावहारिक रूप में चरितार्थ किया। इसके प्रमाण इनके अनेक उपन्यास तथा कई कहानियाँ हैं। शिल्प और रचना-प्रक्रिया के बारे में उन्होंने इन रचनाओं को रचकर सिद्ध कर दिया कि शिल्प-विधान व्याख्या की नहीं अपितु स्थापित करने की चीज है। अतएव निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यशपाल की शिल्पविधि के आधार पर समग्र मूल्यांकन करने पर यह स्वीकार करना होगा कि कला की कसौटी पर यशपाल के अधिकाँश उपन्यास सफल सिद्ध होते हैं। यशपाल ने अपनी कथावस्तु का पटल विशाल रखकर संयोजन कौशल का परिचय दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि यशपाल के साहित्य में भाषा-शैली के विविध रूप उपलब्ध हैं। काव्यात्मक शैली की सरस अभिव्यक्ति से लेकर विचार-प्रधान गंभीर शैली तक के समस्त रूप उनके साहित्य में वर्तमान हैं। गतिवादी लेखक होने के नाते विचार-प्रधान बौद्धिक-शैली को लेखक ने अनेक स्थलों पर ग्रहण किया है। व्यंग्य-प्रधान शैली का उन्होंने विशेष रूप से खुलकर प्रयोग किया है। व्यंग्य के तीखे, कड़वे, पैने, मीठे सभी आयुधों को लेखक ने यथास्थान अपनी साहित्यिक शैली में ग्रहण कर उनका

सदुपयोग किया है। इस सबके साथ यशपाल की संवाद-शैली का वैविध्य कर सकने में समर्थ हैं। इन सब में उन वैविध्यपूर्ण शैली और चित्रों को नवीन रंग देने की क्षमता के प्रमाण व्याप्त हैं। हड़ताल, दंगे, उत्पात, आतंक और अमानुषिकता के कटु चित्र खींचने वाले यशपाल को दृश्य-चित्रों और नारी के सूक्ष्म सौन्दर्य अंकन में भी पर्याप्त सफलता मिली है। उनकी चित्रात्मकता में चित्र को साकार करने के सभी गुण. विद्यमान हैं, उसके लिए तदनुरूप शब्दावली का चुनाव यशपाल के विस्तृत और गहन अध्ययन का द्योतक है।

सन्दर्भ

1. यशपाल एक समग्र मूल्याँकन : सुनील कुमार लवटे, पृ० 14
2. यशपाल : अभिनन्दन ग्रथ, पृ० 50
3. सारिका : 16 दिसम्बर 1978, पृ० 11
4. यशपाल के निबन्ध, भाग-एक : यशपाल, पृ० 272
5. दिव्या : यशपाल, पृ० 218
6. पिंजरे की उड़ान : यशपाल, पृ० 139
7. बात बात में बात : यशपाल, पृ० 123, 124
8. पिंजरे की उड़ान : यशपाल, पृ० 131
9. वही, पृ० 131
10 उत्तमी की माँ : यशपाल, पृ० 62
11. दादा कामरेड : यशपाल, पृ० 135
12. ज्ञानदान : यशपाल, पृ० 36
13. चित्र का शीर्षक : यशपाल, पृ० 28, 29
14. झूठा सच, भाग-2 : यशपाल, पृ० 662
15. मैं और मेरा परिवेश : यशपाल, पृ० 339
16. वही, पृ० 340
17. वही, पृ० 340
18. देशद्रोही : यशपाल, पृ० 159
19. मैं और मेरा परिवेश : यशपाल, पृ० 247
20. देखा, सोचा और समझा : यशपाल, पृ० 108
21. उत्तमी की माँ : यशपाल, पृ० 62
22. अमिता : यशपाल,
23. वही
24. स्वर्गोद्यान बिना साँप : यशपाल, पृ० 56
25. सारिका, जनवरी, 1977, पृ० 51
26. यशपाल रचना संचयन : सम्पा० मधुरेश, पृ० 10
27. दिव्या : यशपाल, भूमिका, पृ० 6
28. मैं क्यों लिखता हूँ : यशपाल, पृ० 13, 14
29. वही पृ० 72
30. वही, पृ० 72
31. वही, पृ० 19, 20
32. मैं और मेरा परिवेश : यशपाल, पृ०. 44

33. वही, पृ० 45
34. मैं क्यों लिखता हूँ : यशपाल, पृ० 29
35. वही, पृ० 31
36. वही पृ० 98
37. वही, पृ० 98
38. वही पृ० 98
39. वही, पृ० 30
40. बीबी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबिला है : यशपाल, पृ० 85

21 वीं सदी में महिलाओं का समाज में दृष्टिकोण

डॉ० रीना डोगरा

सहायक आचार्या (हिंदी), राजीव गांधी राजकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय चौड़ा मैदान शिमला हिमाचल प्रदेश

महिलाएं समाज के विकास एवं तरक्की में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है! उनके बिना विकसित तथा समृद्ध समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है! अगर आप एक पुरुष यानि एक आदमी को शिक्षित कर रहे हैं तो आप सिर्फ एक आदमी को ही शिक्षित कर रहे हैं, पर अगर आप एक महिला को शिक्षित कर रहे हैं तो आप आने वाली पूरी पीढ़ी को शिक्षित कर रहे हैं! समाज के विकास के लिए यह बेहद जरूरी है कि लड़कियों को शिक्षा में किसी तरह की कमी न आने दे, क्यों कि उन्हें ही आने वाले समय में लड़कों के साथ समाज को एक नई दिशा देनी है! सच्च माना जाए तो उस हिसाब से अगर कोई आदमी शिक्षित होगा तो वह सिर्फ अपना विकास ही कर पाएगा, परंतु वहीं अगर कोई महिला सही शिक्षा हासिल करती है तो वह अपने साथ-साथ पूरे समाज को बदलने की ताकत रखती है! महिलाओं के बिना मनुष्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती! उनकी प्रतिभा को अगर नजर अंदाज कर दिया जाए कि वो मर्द से कम ताकतवर तथा कम गुणवान है तो यह कहना गलत है कि भारत की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है! अगर उनकी क्षमता पर ध्यान नहीं दिया गया तो इसका सीधा सा मतलब है कि आधा भारत अभी भी अशिक्षित है! 'हां यदि महिलाएं ही पढ़ी लिखी नहीं होगी तो वह देश कभी भी प्रगति नहीं कर पाएगा'! हमें ये समझना चाहिए कि अगर एक महिला अनपढ़ होते हुए भी घर को इतनी अच्छी तरह से संभाल रही है तो एक शिक्षित महिला समाज व देश को कितनी अच्छी तरह से संभाल लेगी व अच्छी तरह से संभाल भी रही है!

पहले महिलाओं की दशा दासियों से भी बद्तर थी! अगर कोई महिला लड़की को जन्म देती तो उसे या तो मार दिया जाता था या उसे घर के सदस्यों द्वारा प्रताड़ित किया जाता था! लड़की को जन्म देना पाप माना जाता था, उनसे सिर्फ यही उपेक्षा की जाती थी कि वे लड़के को ही जन्म दें, परंतु समय परिवर्तन के साथ हालात बदलते गए!अब लोग पहले से ज्यादा जागरूक हैं! अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है! आज यदि महिलाओं की स्थिति की तुलना सैंकड़ों साल पहले से की जाए तो यही दिखाई देता है कि महिलाएं पहले से कहीं ज्यादा अपने सपनों को साकार कर रही है! परंतु वास्तविक रूप में देखा जाए तो महिलाओं का विकास सभी दिशाओं में नहीं दिखाई देता खासकर ग्रामीण इलाकों में! अपने पैरों पर खड़ा होने के बाद भी महिलाओं को समाज की बेड़ियां तोड़ने में अभी भी काफी लंबा सफर तय करना है! आज भी समाज की भेदभाव नजरों से बचना महिलाओं के लिए नामुमकिन सा दिखाई देता है!ऐसा लगता है कि पुरुष और महिला के बीच की इस खाई को भरने के लिए अभी काफी समय और लग सकता है!

कई अवसरों पर देखा गया है कि महिलाओं के साथ निम्न दर्जे का व्यवहार किया जाता है! उन्हें अपने दफ्तरों में भी बड़ी जिम्मेदारी देने से मना कर दिया जाता है! समाज में महिलाओं के कई ऐसे उदाहरण भी है जो छोटी उम्र की लड़कियों के लिए प्रेरणा है! इनमें ऐसी भी लड़कियां हैं जिनका खुद का परिवार ही उनका साथ देने को तैयार नहीं था पर उन्होंने अपने दम पर समाज की विचारधारा को बदल कर रख दिया है!

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला पिछड़ेपन का एकमात्र कारण सही शिक्षा प्रबंधन का न होना है! गांव में पुरुष भी अपनी जिंदगी का एकमात्र लक्ष्य यही मानता है कि उसे सिर्फ दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना है! ऐसे माहौल में पुरुषों से महिला सशक्तिकरण

की उम्मीद करना बेकार है! महिलाओं को जरूरत है कि वे अपनी क्षमता को पहचानें और प्रयास करें कि अपने परिवार के साथ-साथ देश और समाज के विकास के प्रति भी अपनी भूमिका को निभा सकें! सरकार को भी ज्यादा से ज्यादा योजनाएं महिलाओं के विकास के लिए चलानी चाहिए! ये बदलाव तभी संभव है जब सारा समाज एक साथ खड़ा होकर सकारात्मक ढंग से काम करे!

अगर हम महिलाओं की आज की अवस्था को पौराणिक समाज की स्थिति से तुलना करते तो यह साफ दिखाई देता है कि हालात में कुछ तो सुधार हुआ है! महिलाएं नौकरी करने लगी है! कई क्षेत्रों में तो महिला पुरुषों से भी आगे निकल चुकी है! दिन प्रतिदिन लड़कियां ऐसे कीर्तिमान बना रही है कि जिस पर न सिर्फ परिवार या समाज बल्कि पूरा देश गर्व महसूस कर रहा है! महिलाओं के उत्थान में भारत सरकार द्वारा अनगिनत योजनाएं चलाई गई है जो महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही है! सरकार ने पुराने प्रचलनों को बंद करने के साथ- साथ उन पर रोक लगा दी है जिनमें मुख्य थे बाल विवाह, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, बाल मजदूरी व घरेलू हिंसा आदि! आज तक समाज महिला को बहन, मां, पत्नी और बेटी आदि विभिन्न रूपों में देखता है जो हर समय परिवार के मान सम्मान को बढ़ाने के लिए तैयार रहती है!शहरी क्षेत्रों में तो फिर भी हालात इतने खराब नहीं है पर ग्रामीण इलाकों में महिला कि स्थिति चिंताजनक है! सही शिक्षा व्यवस्था न होने के कारण महिलाओं की दशा दयनीय हो गई है!एक औरत बच्चे को जन्म देती है और पूरी निष्ठा के साथ जिम्मेदारियों को निभाती है, बदले में वह कुछ भी नहीं मांगती है और पूरी सहनशीलता के साथ बिना तर्क दिए अपनी भूमिका को निभाती रहती है!

महिलाओं के काम करने का तरीका, सोचने का तरीका, व्यवहार आदि सब पुरुषों से अलग है! इन्हीं तथ्यों को माना जाए तो हम यह कह सकते हैं कि महिलाएं शारीरिक रूप से तथा मनोवैज्ञानिक तरीके से पुरुषों के बराबर नहीं है लेकिन महिलाएं पुरुषों से पीछे भी नहीं है! उदाहरण के तौर पर बच्चों की देखभाल को ही ले लें तो भारत में पुराने समय से ही महिलाओं के लिए समाज में एक लक्ष्मण रेखा सी बना दी गई है, जिसे लांघना उनके लिए लगभग नामुमकिन है!क ई सालों से इन परंपराओं में कोई बदलाव नहीं आया है!

हमारे भारतीय समाज में नारी को बचपन से ही कुछ संस्कार दिए जाते हैं और वो संस्कार उसे सहेज कर रखने होते हैं जैसे धीरे बोलो, किसी के सामने ज्यादा मत हंसो, गंभीर बनो यानि समझदार बन कर रहना! हमारा पुरुष प्रधान समाज क्यों नहीं समझता है कि नारी प्रकृति का अनमोल उपहार है उसकी भी अपनी इच्छाएं और संवेदनाएं है जो उसे खूबसूरत बनाती है, वो ममता का एक रूप है और इस ममता रूपी नारी को हर रूप में हमेशा छल कपट ही मिला है, परंतु आज की नारी इन बातों को छोड़कर काफी आगे निकल चुकी है!आज नारी में आधुनिक बनने की होड़ लगी है! नारी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं, हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है! आज नारी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है! झांसी की रानी (लक्ष्मीबाई) जैसी नारियों ने इतिहास में नारी शक्ति और त्याग को सिद्ध किया है! वास्तव में दमन का विरोध और प्रगतिशील नवीन विचारों को अपनाना ही नारी का आधुनिक होना है और ऐसा प्रत्येक युग में होता आया है!

नारी ने अगर कुछ कहा या किया तो उस पर उंगली उठा दी जाती, या यहां तक कि रामायण में श्रीराम भी सीता माता की परीक्षा लेने से पीछे नहीं हटे, ये कहकर कि रावण के अपहरण करने की वजह से वो अपवित्र हो गई! यानि नारी पर जब श्रीराम चंद्र भगवान जी जो कि सभी के भगवान है उन्होंने भी माता सीता की परीक्षा लेकर साबित कर दिया कि नारी का महत्व उसके रहने से नहीं बल्कि पुरूष द्वारा बनाई परंपराओं में बंधकर रहना ही उसका कर्तव्य है और जब हमारे देश में माता सीता तक नहीं बच पाई तो हम तो एक सामान्य नारी है! परंतु समय बदल रहा है! अब नारी इन सभी बातों की परवाह किए बिना घर से बाहर निकल कर आधुनिक होने का परिचय दे रही है, चाहे समाज आज उसे किसी भी प्रकार का दर्जा क्यूं न दे!

आज भारतीय नारी चार दीवारी से निकलकर अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गई है! शिक्षित होकर वह विभिन्न क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन कर रही है! आज उसकी प्रतिभा प्रत्येक क्षेत्र यानि साहित्य, चिकित्सा, विज्ञान, अंतरिक्ष, सुरक्षा, प्रशासन, राजनीति इत्यादि में आगे बढ़ रही है! आज नारी पुरुषों का व्यवसाय मानने वाले पुलिस विभाग में मुस्तैदी से अपना कार्य कर रही है! भारत की प्रथम महिला पुलिस अधिकारी किरण बेदी को कौन नहीं जानता! यहां तक कि हमारे हिमाचल प्रदेश के परिवहन निगम में एक महिला श्सीमा ठाकुरश बस चालक का कार्य निपुणता से कर रही है दूसरी देवभूमि की ही नीलकमल ठाकुर पहली महिला ट्रक चालक है वैसे ही दिल्ली परिवहन निगम में भी कई महिलाएं (देश का राजधानी क्षेत्र) जहां पर कि भारत में सबसे ज्यादा वाहन चलते हैं और ये महिलाएं बिल्कुल निपुणता से व समर्पित होकर बस संचालन करती है, इनमें सरिता, रिंपी इत्यादि है इनके अलावा

दूसरे क ई राज्यों जैसे तमिलनाडु वहां कि वसंतकुमारी तो एशिया की पहली महिला बस चालक के रूप में प्रसिद्ध हुई है और भी ऐसे अनेकों उदाहरण है! केवल जमीन पर ही नहीं बल्कि हवा में फाईटर जेट विमान उड़ाने वाली क ई महिलाएं हैं! आज नारी अंतरिक्ष में जाने के साथ ही हिमालय की दुर्गम चोटियों पर चढ़ रही है और ऐसा कोई क्षेत्र नहीं छोड़ रही है जहां वो अपनी विजय का झंडा न फहरा रही हो! हमारे हिमाचल प्रान्त से ही बहुत कम उम्र की महिलाओं डिक्की डोल्मा और सोलन जनपद की बलजीत कौर इसका जीवंत उदाहरण है जिन्होंने कि संसार की सबसे ऊंची चोटी माउंट एवरेस्ट पर सफल चढ़ाई करके ये साबित कर दिखाया है कि महिलाएं पुरुषों से कम नहीं है!

नारी में विद्यमान उसकी प्रतिभा और प्रगति समाज के लिए आवश्यक है परंतु आधुनिकता के नाम पर समाज द्वारा नारी को दूषित करने का कोई अधिकार नहीं है, क्यों कि नारी का दर्जा मां, बेटी, किसी की अर्धांगिनी व साथ ही दुर्गा, वीणावादिनी मां सरस्वती के रूप में पूजी जाती है, इसलिए उसको भी इनका सम्मान रखते हुए आगे बढ़ना है न कि रिश्तों को तोड़कर परिवार को अलग करके आधुनिकता को अपनाना है, वैसे भी नारी का दर्जा समाज को सम्मान दिलाने के लिए है, समाज को परिवार की तरह जोड़कर रखने के लिए है न कि तोड़ने के लिए!

आज की नारी काफी आगे बढ़ रही है उसकी वेशभूषा काफी हद तक बदल गई है, वो अब मनचाही वेशभूषा के लिए स्वतंत्र है! परंतु ज्यादातर लोग और नारी स्वंय अपनी आधुनिक वेशभूषा को और स्वच्छंद विचरण को ही नारी का आधुनिक होना माना रहे हैं, सिर्फ स्वतंत्रता को अपनाना ही आधुनिकता नहीं है! २१वीं सदी के समाज की बात की जाए तो आज भी महिलाओं को वे अधिकार प्राप्त नहीं है जिनकी वे हकदार है! आज भी उनसे कई जगह घटिया व पाशविक व्यवहार किया जाता है, उन पर हावी होने की कोशिश की जाती है! यह सब हमें सोचने पर विवश करता है कि इतने सामाजिक जागरूकता फैलाने वाले कार्यक्रम चलने के बावजूद क्यों हर जगह सिर्फ महिलाओं को परेशान होना पड़ता है!

दुनिया और समाज में जिस तेजी से बदलाव हो रहा है उस हिसाब से महिलाओं के प्रति लोगों के नजरिए, मानसिकता और सोच में बदलाव नहीं हो रहा है!हम आज भी उसी पुरानी सोच और परंपरा की बात करते हैं!जिस सोच और परंपरा को कट्टरपंथी और समाज के तथाकथित ठेकेदार अपनी बातों को महिलाओं पर लादने की कोशिश करते रहे हैं और करते हैं!

महिला सशक्तिकरण के बारे में समाज के विभिन्न वर्गों, व्यवसायों एवं आर्थिक स्तरों से जुड़े व्यक्तियों की नजर में अलग-अलग मायने और दृष्टिकोण हैं! समाज में एक सोच के अनुसार पूरी तरह पाश्चात्य या अत्याधुनिकता को अपनाना ही सशक्तिकरण है! हमारे स्वतंत्र देश के संविधान में महिला और पुरुष के आधार पर नागरिकों में भेद नहीं किया गया बल्कि समान अवसर दिए हैं! केंद्र व राज्य स्तर पर महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए कल्याणकारी योजनाएं तथा नि:शुल्क शिक्षा व्यवस्था, अतिरिक्त पोषाहार, स्वंय सहायता समूहों को बढ़ावा देना, छात्रवृत्ति तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण देने आदि के माध्यम से महिलाओं को सहायता दी जा रही है!

इसके बावजूद अभी भी महिलाओं के संपूर्ण सशक्तिकरण की दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी है और बहुत अधिक प्रयासों की आवश्यकता है! सरकार के साथ सहभागी बनकर हम सभी महिलाओं को आगे बढ़ना होगा, ये कार्य लोकतंत्र की जड़ पंचायत से लेकर संसद तक संयुक्त रूप से किया जा सकता है, तभी हम अपने लक्ष्य में सफल सिद्ध होंगे!

सहायक संदर्भ सूची

(1) ''महिला सशक्तिकरण : बाधाएं एवं संकल्प''--- डा० प्रवीण शुक्ल

(2) ''इक्कीसवीं सदी की ओर''----संपादक श्री सुमन कृष्ण कांत

(3) "महिला सशक्तिकरण की रुपरेखा" डा० सत्येंदु नाथ द्विवेदी

आधुनिक युग में विश्व के पर्यावरण अवबोध एवं गुणवत्ता

डॉ० शीशराम यादव

सह आचार्य रसायन शास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर) राजस्थान

डॉ० ललिता यादव

सह आचार्य अर्थशास्त्र, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर) राजस्थान

मानव जीव मण्डल में एक विशिष्ट स्थिति रखता है, वह पर्यावरण में जीता है, उसका उपयोग करता है और उसके अवक्रमण में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। वह जो श्वास लेता है, जल ग्रहण करता है, भोजन करता है, आवास बनाता है या अन्य आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाएँ करता है, वे सभी पर्यावरण द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित होती हें। साथ ही मानव अपनी प्रगति के लिये पर्यावरण का शोषण करता है, उसमें परिवर्तन करता है। विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधनों द्वारा उपयोग एवं उपभोग के क्रम में कब वह पर्यावरण को हानि पहुँचा देता हे, यह उसे तब ज्ञात होता है जब उसका विपरीत प्रभाव स्वयं उस पर अर्थात् मानव पर होने लगता है। यही कारण हे कि सभ्यता के विकास से ही मानव पर्यावरण का उपयोग एक रूटीन के रूप में कर रहा है और उसमें यह बोध जाग्रत नहीं हुआ कि इसका संरक्षण भी करना चाहिये। यद्यपि भारत में अति प्राचीन काल से पर्यावरण के विभिन्न तत्वों जैसे सूर्य, वर्षा, हवा, समुद्र, भूमि, वृक्ष (वन), पशु आदि को देवता रूप मंक स्वीकार किया जाना, अप्रतयक्ष रूप से इनकी महत्ता को स्वीकार करना है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के एक विचार के अनुसार- ''हे धरती माँ! जो कुछ मैं तुझसे लूँगा, वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्म स्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करूँगा।''

कितना तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जिसका निरूपण उस काल में किया गया जब पर्यावरण की समस्या नहीं थी। किन्तु यह सनातन सत्य सभ्यता की दौड़, विकास की ओट में तथा मानवीय स्वार्थ लिप्सा में विस्मृत हो गया अर्थात् मानव का पर्यावरण अवबोध दिशाहीन हो गया।

पर्यावरण अवबोध

पर्यावरण अवबोध कोई नवीन विचार नहीं अपितु इसका प्रतिपादन नवीन है। साधारणतया पर्यावरण अवबोध से तात्पर्य है पर्यावरण के प्रति हमारी धारणा या दृष्टिकोण अर्थात् हम में से प्रत्येक पर्यावरण को किस रूप में देखता है। क्या उसे पर्यावरण के वास्तविक उपयोग एवं दुरूपयोग से होने वाली हानियों का ज्ञान है। क्या वह पर्यावरण के प्रति सचेष्ट है या उदासीन है। क्योंकि जब तक यह ज्ञान एकांगी होगा उसका दुरूपयोग होता चला जायेगा। जैसा कि पी.नाग ने लिखा है- ''पर्यावरण अवबोध एवं व्यवहार इसलिये आवश्यक है कि इससे निर्णय प्रक्रिया में सहायता मिलती है और अन्त में पर्यावरण परिवर्तन को समझने में सहायक होता है।''

पर्यावरण अवबोध का प्रारम्भिक स्वरूप मात्र उसके उपयोग एवं समायोजन तक सीमित था, किन्तु इसके प्रति चेतना एवं संरक्षण का बोध वर्तमान शताब्दी के उतरार्द्ध में ही प्रारम्भ हुआ। पर्यावरण अवबोध से सम्बन्धित अवधारणा एवं चेतना के विविध स्वरूपों का अध्ययन पर्यावरण प्रबन्धन एवं नियोजन हेतु आवश्यक है।

पर्यावरण का मूल्यांकन इसी तथ्य पर निर्भर करता है कि हम उसे किस प्रकार अवबोधित करते हैं। एक किसान का पर्यावरण बोध वर्षा, बाढ़, सूखा, भूमि की उर्वरता से सम्बन्धित होता है, तो कतिपय ग्रामीण वनों को पर्यावरण मानते हैं तथा उसको ईधन का स्रोत स्वीकार करते हैं, खनिजों के मालिक खनिज खनन करते समय यह नहीं जानते कि वे पर्यावरण को दूषित कर रहे हैं या जान-बूझकर अनजान रहते हैं। इसी प्रकार उद्योगपति यह अच्छी तरह से जानते हैं कि उद्योगों से निकलता धुआँ वायु मण्डल दूषित कर रहा है और उनसे निकला जल जल प्रदूषण का कारण है। दूसरी ओर विशाल मजदूर वर्ग के लिये पर्यावरण मात्र पहेली है, उन्हें जैसे भी जहाँ रहना है, रहते हैं। फिर भी वे स्वस्थ रहना चाहते हैं। नगर निवासियों का पर्यावरण बोध विस्तृत होता है, किन्तु उसके प्रति चेतना भाव का अभाव देखा गया है। विद्वान, विशेषज्ञ, तकनीशियन, शिक्षक आदि में पर्यावरण बोध है, किन्तु वह विचार गोष्ठियों एवं लेखनकला तक सीमित है। पर्यावरण बोध एक ऐसा तथ्य है तो मानव व्यवहार को नियन्त्रित रखने की क्षमता रखता है तथा इसी के द्वारा उसके निर्णय प्रभावित होते हैं।

दृष्टव्य, अदृष्टव्य, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तत्वों द्वारा प्रभावित होता है, जबकि पर्यावरण अवबोध का सम्बन्ध मूलत: मानसिक होता है।''

सोनेनफील्ड ने पर्यावरण के व्यवहारात्मक आधार पर चार प्रकार व्यक्त किये हैं- प्रथम भौगोलिक पर्यावरण जो वृहत् पर्यावरण का स्वरूप तथा मानवीय स्वरूप को निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, द्वितीय क्रियात्मक पर्यावरण जो मानव को कार्यात्मक प्रेरणा देता है, तृतीय अवबोधित पर्यावरण जिसे मानव अपनी मानसिक क्षमता से ज्ञात करता है और चतुर्थ जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित एवं निर्धारित करता है। इसी प्रकार पर्यावरण को अनुभवात्मक तथा प्रतीकात्मक रूपों में भी विभक्त किया जाता है। बाढ़, सूखा, पाला भू-स्खलन, भूकम्प, चक्रवात आदि अनुभवात्मक पर्यावरण के उदाहरण हैं जबकि भू-दृश्य सामाजिक एवं राजनीतिक पर्यावरण प्रतीकात्मक हैं। इसी क्रम में स्थानात्मक पर्यावरण अवबोध का भी भौगोलिक अध्ययनों में प्रचलन हुआ, जो एक महत्वपूर्ण पक्ष है। वास्तव में पर्यावरण अवबोध विज्ञान, ज्ञान, तकनीकी प्रगति आदि से प्रभावित होता है। प्राकृतिक आपदाओं के अवबोध एवं निराकरण में निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैं।

आपदा का विस्तार एवं गति, आपदा की निरन्तरता अथवा सामयिकता, आपदा का खर्च एवं स्थान से सम्बन्ध, व्यक्तिगत गुण, उनसे व्यक्ति का समानुकूलन निर्भर करता है। आपदा का अवबोध, अवबोध, के विकल्प, तकनीकी क्षमता, आर्थिक क्षमता अन्य व्यक्तियों के अवबोध की स्थिति आदि।

प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. अरूण रघुवंशी और चन्द्रलेखा रघुवंशी पर्यावरण तथा प्रदूषण, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1987
2. हरिशचन्द्र व्यास (सं.) जनसंख्या प्रदूषण एवं पर्यावरण विद्याविहार, नई दिल्ली 1989
3. शुकदेव प्रसाद (सं.) पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशत, दिल्ली 1989
4. वी.के. श्रीवास्तव एवं राव पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर 1991
5. पी.एस.नेगी पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोल, रस्तोगी, मेरठ 1990
6. अहमद, जेड़ चेंजिंग पैटर्न्स आफ दि ज्वाइंट फैमिली सिस्टम', लखनऊ यूनिवर्सिटी जर्नल आफ सोशल वर्क, वालूम 4, दिसंबर 1968
7. अव्वासी, एम.एफ. ऐंड उपाध्याय, डी.पी. सुपरवाइजर्स गाइड-सुपरवाइजर्स जाब, नेशनल प्रोडक्टिविटी काउंसिल, न्यू डेलही 1970
8. इवांस, एम.जी. सुपरवाइजर्स एटीट्यूड्स ऐंड डिपार्टमेंट परफारमैस, जर्नल ऑफ मैजमेंट स्टडीज मई 1965
9. ऐंडरसन, डी.एस. वी लेट सुपरवाइजर्स सेट अवर क्लैरिकल नार्मस, एडवांस्ड मैनेजमेंट बालूम 10, अक्टूबर, 1970
10. कारनिक बी.बी. समरी आफ लेक्चर्स आन ट्रेड यूनियेस ऐंड पालिटिक्स, बाम्बे लेवर जर्नल, बालूम 6,1964
11. किस्ट्र पू.जे.एच. हर्ड गवर्नमेंट ईप्लाइज ज्वाइन यूनियन सरसोनेल ऐडमिनिस्ट्रेशन, वालूम 29, संख्या 5, 1966
12. कुलकर्नी, आर.एस. प्रोडक्टिविटी ऐंड रेपिड नेशनल इकनामिक डेवलपमेंट, बाम्बे लेवर जर्नल, वालूम 7, दिसंबर, 1967
13. जान्सन, जी.आर. सुपरविजन टूवे स्ट्रीट नम हयर, पर सोनैल जर्नल, वालूम 50, नवंबर, 9, दिसंबर, 1971
14. जैन.एच.सी. सुपरवाइजरी कम्युनिकेशन इफेक्टिवनेस ऐड पर फार्मेस इन टू अरबन हास्पिटल्स, परसोनेल जनैल, वालू 50, मई, 1971
15. डेसामी, के.जी. ए स्टडी आफ वर्क्स इक्स्पेक्टेशंस, फ्राम सुपर-वाइजर्स ऐंड मैनेजमेंट इंडियन जनर्ल आफ सोशल वर्क, वालूम नवम्बर 2 जुलाई, 1969

अवध के अन्तिम शासक बादशाह वाजिद अली शाह एवं उनका शासनः एक दृष्टि

डॉ० अनूप पांडे

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अंबारी आजमगढ़

बादशाह वाजिद अली शाह सन् 1847 में सिंहासनरूढ़ हुए। वाजिद अली शाह कला के महान आश्रयदाता थे विशेषकर नृत्य एवं संगीत के। उन्होंने प्रशंसनीय कविताऐं लिखी तथा लगभग एक दर्जन लेख धर्म, साहित्य, इतिहास तथा संगीत पर लिखे। अंग्रेज लेखकों ने उनके विषय में मिथ्या प्रचार किया। समकालीन इतिहासकारों का सर्वथा भिन्न मत है। उनके चरित्र के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि वह मदिरापान नहीं करते थे। किसी भी इतिहास में, उनके मदिरापान के विषय में प्रमाण नहीं मिलता। वाजिद अली शाह ने युवराज काल में नृत्य-संगीत की साधना के लिए एक परीखाना की स्थापना की थी। उसमें विलासिता की प्रत्येक सामग्री विद्यमान थी। शतशः परियों के मध्य वह अपना सम्पूर्ण समय नृत्य, संगीत, रास, नाटक आदि में व्यतीत करते थे। उनके शासनकाल में संगीत-शास्त्र की पर्याप्त उन्नति हुई। दरबार में अनेक संगीतज्ञ प्रश्रय पाते थे। गणयै राजीउद्दौला, मृदंगाचार्य कोदर्श सिंह, नर्तकी मुन्नी बाई, मुहम्मद खाँ कव्वाल आदि का महत्वपूर्ण स्थान था।

पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के भव्य खण्डहरों पर ही अवध सल्तनत की सुदृढ़ नींव स्थापित हुई, जिसका प्रथम शक्तिशाली आधार नवाब वजीर सआदत अली खाँ था। सैय्यद मुहम्मद अली उर्फ सहादत खाँ निशापुर का एक सौदागर था, जिसको दिल्ली के मुगल बादशाह ने सन् 1720 में आगरा का सूबेदार नियुक्त किया था। कुछ समय उपरान्त सन् 1722 ई0 में उसे अवध पहुँचकर शासन सूत्र सम्भालने की आज्ञा प्राप्त हुई। अवध पहुँचते ही सआदत खाँ ने कूटनीतिक षड़यन्त्रों तथा युद्ध कौशल से एक ऐसी शासन परम्परा की स्थापना की जो कि 'नवाबी शासन' के नाम से प्रसिद्ध है।

अवध प्रान्त वस्तुतः मुगल साम्राज्य का अंग था और यहाँ के नवाब शासकों को दिल्ली सम्राट द्वारा 'नवाब वजीर' का खिताब अता किया गया था। पर्याप्त समय तक नवाब वजीर व्यवहारतः मुगल दरबार के किसी उच्च अधिकारी से आज्ञाये नहीं प्राप्त करते थे, न ही किसी उच्च अधिकारी को आय व्यय का ब्यौरा देते थे, अपितु स्वतंत्र शासकों की भाँति आचरण करते तथा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों की नियुक्ति करते थे। परन्तु परम्परानुसार वे स्वयं को केवल राजपाल ही कहते तथा शाही आज्ञाओं का पालन करने का अभिनय करते, जो उनकी स्वतंत्र सत्ता में बाधक न होती।[1]

नबाब-वजीरों की यह स्थिति अधिक दिनों तक न रही। सन् 1819 ई0 में गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स की सहायता से अवध के सातवें नवाब गाजीउद्दीन हैदर ने मुगल बादशाहों द्वारा प्रदत्त 'वजारत' का मिथ्या आवरण उतार फेंका तथा 'बादशाह' की उपाधि धारण की। तदुपरान्त अवध के शेष पाँच नवाब 'बादशाह' के नाम से ही प्रसिद्ध हुये।

अवध के नवाबों की सूची

1.	सैय्यद मुहम्म अली उर्फ सआदत खाँ	सन् 1722 से 1739
2.	नवाब अबुल मंसूर खाँ सफदर जंग	सन् 1739 से 1754
3.	नवाब शुजाउद्दौला	सन् 1754 से 1776
4.	नवाब आसफुद्दौला	सन् 1776 से 1797

5.	मिर्जा अली उर्फ नवाब वजीर अली	सन् 1797 से 1798
6.	नवाब सआदत अली खाँ	सन् 1798 से 1814
7.	बादशाह गाजीउद्दीन हैदर	सन् 1814 से 1827
8.	बादशाह नसीरुद्दीन हैदर	सन् 1827 से 1837
9.	बादशाह मुहम्मद अली शाह	सन् 1937 से 1842
10.	बादशाह अमजद अली शाह	सन् 1842 से 1847
11.	बादशाह वाजिद अली शाह	सन् 1847 से 1856

बादशाह वाजिद अली शाह 26 वर्ष की अवस्था में सन् 1847 में सिंहासनरूढ़ हुए। वाजिद अली शाह कला के महान आश्रयदाता थे विशेषकर नृत्य एवं संगीत के। उन्होंने प्रशंसनीय कविताऐं लिखी तथा लगभग एक दर्जन लेख धर्म, साहित्य, इतिहास तथा संगीत पर लिखे। वाजिद अली शाह के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणायें ही अधिक है। अंग्रेज लेखकों ने उनके विषय में मिथ्या प्रचार किया। समकालीन इतिहासकारों का सर्वथा भिन्न मत है। उनको विलासिता के सम्बन्ध में काफी कुख्यात किया गया परन्तु तत्कालीन इतिहास ग्रंथ 'सलातीते अवध' में लिखा है कि बिना शिया ढंग से मुता (विवाह) किये, उन्होंने किसी भी स्त्री से संसर्ग नहीं किया। उनके चरित्र के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि वह मदिरापान नहीं करते थे। किसी भी इतिहास में, उनके मदिरापान के विषय में प्रमाण नहीं मिलता।[2]

इलाही जान ने उनके जीवन का यथार्थ चित्र अंकित किया है। वह अपने गवैयों एवं स्त्रियों के बीच मूर्खतापूर्ण दिन व्यतीत किया करते थे, जबकि राज्य लगान वसूल करने वाले के पारस्परिक युद्धों का शिकार हो रहा था।[3] परन्तु अवध की सत्ता सम्भालते ही उनकी दिनचर्या में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। वह प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही नियमित रूप से परेड भूमि में पहुँचकर पल्टनों को कवायद कराते तथा देखते थे।

यदि किसी पल्टन के आने में विलम्ब हुआ तो उसे दो हजार रूपया जुर्माना देना पड़ता था। इतिहास वेत्ता मेंटकॉफ के शब्दानुसार- ''वाजिद अली शाह अपने नियम के इतने पाबन्द थे कि यदि किसी कारणवश उन्हें देर होती थी तो वे स्वयं भी जुर्माने की रकम अदा करते थे।[4]

उन्होंने अनावश्यक सैन्य टुकड़ियाँ भंग कर दी तथा नई पैदल सेना तथा अश्वारोही सैन्य टुकड़ियों का गठन किया। परेड स्थल पर कुशलता प्रदर्शित करने वाले सैनिकों को पुरस्कार तथा उपाधियाँ प्रदान करते थे।[5] जनता के निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए 'मशगलये नौशेरवानी' का अभिनव ढंग अपनाया जिसमें नित्यप्रति शाही सवारी के साथ एक तालाबंद चाँदी का बाक्स तुर्क सिपाही लेकर चलते थे। जिसमें प्रत्येक को अपना प्रार्थना पत्र डालने का अधिकार था। अत: प्रात: दरबार के समय वह बाक्स खोला जाता था तथा उस प्रार्थना पत्रों पर विचार होता था।[6]

स्लीमैन ने भी स्वीकार किया कि प्रारम्भ में वाजिद अली शाह ने दिलचस्पी से राजकाज संभाला, परन्तु बाद में उदासीन हो गये उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है- 'उनके (वाजिद अली शाह) के पिता और पितामह- कम से कम एक बार या नहीं तो सप्ताह में तीन बार दरबार में शाही घराने के लोगों के शहर के अधिकारियों से भेंट कर लेते थे, हरएक दरख्वास्त को अपने सामने पढ़वाकर सुनते थे, उस पर हुक्म लिखाकर अपनी मोहर लगा देते थे। मौजूदा बादशाह (वाजिद अली शाह) ने भी कुछ दिनों तक इस कायदे को जारी रखा, परन्तु शीघ्र ही ऊब गये और सब कार्य प्रधानमंत्री के जिम्मे कर दिया।[7]

बादशाह वाजिद अली शाह ने जिस कुशलता, कर्मठता से राजकाज सम्भाला वह अंग्रेजों से देखा न गया। अत: बादशाह को शासन कार्य से विरत करने के लिए अनेक षडयंत्र रचे गये। अंग्रेजों ने शाही लोगों को साथ कर उनकी माँ मलिका किश्वर के मन में यह भय उत्पन्न करा दिया गया कि कठिन परिश्रम से उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, अत: मलिका किश्वर ने उन्हें परेड भूमि में जाने से रोक दिया। उन्हें विभिन्न तरीकों से भोग विलास में लिप्त रहने के लिए प्रोत्साहित किया गया।[8]

योग्य वजीर अमीनुदौला को पदच्युत कराने में रेजीडेन्ट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके स्थान पर मीर मेंहदी वजीर नियुक्त हुए।[9] मीर मेंहदी के वजीर बनते ही साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये। बादशाह साम्प्रदायिक एकता के कट्टर समर्थक थे, अत: उन्होंने मीर मेंहदी को पदच्युत कर सैयद अली तकी खाँ को वजीर बनाया।[10] सैय्यद अली तकी खाँ के वजीर बनते ही अवध के दुर्भाग्य

का प्रारम्भ हो गया। स्लीमन ने एक पत्र में जो लन्दन के दैनिक टाइम्स में 1859 में प्रकाशित हुआ था, लिखा था- मेरी यहाँ की स्थिति अरूचिकर तथा असंतोषजनक है। यहाँ पर एक बेवकूफ बादशाह है। एक वजीर है दोनों ही हिन्दुस्तान के सबसे मक्कार, षडयंत्रकारी तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति है।[11]

बादशाह की सज्जनता तथा उदासीनता का लाभ वजीर, मुसाहिब एवं अंग्रेज रेजीडेंट सभी उठा रहे थे। दिनोंदिन रेजीडेन्ट का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। बादशाह के लिए स्वतंत्रतापूर्वक शासन करना कठिन हो रहा था। यहाँ तक कि स्लीमन ने जनता की अपीले सुनने के लिए अपना अलग दरबार लगाना प्रारम्भ कर दिया।[12] इन सर्वश विषम परिस्थितियों, शासन कार्य की जटिलताओं तथा अंग्रेज रेजीडेन्ट के अनावश्यक हस्तक्षेपों से उत्पन्न उलझनों के कारण बादशाह का सरल निष्कपट मन क्रोध, विवशता, निराशा एवं अवसाद से भर गया। इन मानसिक जटिलताओं से त्राण पाने हेतु शासन कार्य से विरत होकर वे कैसरबाग चले गये और भोग विलास में लिप्त हो गये।

परिणामतः राज्य की अर्थ व्यवस्था भी पंगु हो गई। लगान वसूल करना भी कठिन हो रहा था। सम्पूर्ण अवध तालुकेदारों के आधीन था। लगान की सर्वथा उचित माँग उनके द्वारा ठुकरा दी जाती थी। वास्तव में प्रत्येक ताल्लुकेदार अपने क्षेत्र का मालिक बन बैठा।[13]

लार्ड हेस्टिंगज ने बादशाह से कानपुर में भेंट वार्ता की तथा स्पष्ट रूप से शासन-सुधार की चेतावनी दी। यदि दो वर्ष में शासन सुधार न हुआ तो ब्रिटिश सरकार अवध का शासन हस्तगत करने को बाध्य होगी।[14]

दो वर्ष पश्चात् कर्नल स्लीमन ने 1 दिसम्बर सन् 1849 को सम्पूर्ण अवध की यात्रा प्रारम्भ की तथा दौरे के मध्य तीन सौ अभियोगों की एक रिपोर्ट तैयार कर गवर्नर जनरल को प्रेषित की।[15] जिसके आधार पर पर्याप्त-विचार विमर्श के पश्चात् संचालक मण्डल ने एक कुशासन का अन्त करने के लिए अवध राज्य को ब्रिटिश राज्य में मिला लेने की घोषणा कर दी।[16] चार फरवरी सन् 1858 को रेजीडेन्ट आउट्रम ने जर्दमहल पहुँचकर बादशाह वाजिद अली शाह को इस निर्णय की सूचना दी तथा सात धाराओं का एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रस्तुत किया। धारा 1 के अनुसार 'समूचा दीवानी तथा सैनिक शासन सदैव के लिए आनरेविल ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दिया जाएगा तथा सम्राट को 12 लाख रूपया सालाना पेंशन के प्राप्त होंगे।[17]

बादशाह ने इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया परन्तु बाद में परिस्थितियों से विवश हो सहमति दे दी। परन्तु इस अन्याय की अपील करने के लिए कलकत्ता जाने का निर्णय किया।

संसार के इतिहास में इस प्रकार शांति, निष्ठा एवं प्रजा के हित-चिंतन की भावना से किसी भी नरेश ने अपना राज्य नहीं सौपा। 13 मार्च सन् 1858 को बादशाह वाजिद अली शाह ने सदैव के लिए लखनऊ छोड़ दिया। इस करूण बेला में अश्रुसिक्त नेत्रों से हजारों दर्शकों के बीच उनके मुख से यह अमर पद प्रस्फुटित हुआ-

''दरों दीवारों पर हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।''[18]

कलकत्ता में भी उनके मुकदमें की कोई सुनवायी नहीं हुई। उनकी माँ मलिका किश्वर, भाई सिकन्दर हस्तमत, वली अहमद तथा मुख्तार मसीउद्दीन ने लन्दन की यात्रा की तथा मलिका विक्टोरिया के समक्ष न्याय की माँग की। इस बीच देश व्यापी क्रांति का समाचार लन्दन पहुँचा, अतः सल्तनत वापसी का मामला उलझ गया। मलिका किश्वर ने वापस आने का निर्णय किया। वही मार्ग में पेरिस पहुँचकर उनका देहान्त हो गया। उसके एक माह पश्चात् सिकन्दर हस्मत भी इस दुनिया से कूच कर गया।[19]

वाजिद अली शाह ने शेष जीवन कलकत्ता में ही व्यतीत किया। लगभग 65 वर्ष की अवस्था में सन् 1887 में उनका निधन हुआ, वही सिवतेनाबाद के इमामबाड़े में उनकी मजार है।

संदर्भ सूचीः

1. अवध के दो प्रथम नवाब- आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव, पृ0 271
2. Administration of Oudh under Wajid Ali Shah-79 But even though the private had a weakness for women he was not devoid of intelligence and common sense and it is indead a remarkable thing that he never touched wine and vide Tarikh-i-Aftab, i. Awadh (ms) p. 143

3. भारत में अंग्रेजी राज्य, छत्तीसवा अध्याय, पृ0 1345
4. Administration of Oudh under Wajid Ali Shah. p. 57
5. He (wajid Ali Shah) Wanted to come in direct contact with every complanent and so he orderred two shall locked Boxex made of every one was allowed to put in his complaint. The Keys of these boxes were kept by the king himself and he opened them every morning at the time of Darbar delivered justice to the oppressed. Adiministration of oudh under wazid Ali shah, by Gaurishwar Dayal Bhatnagar. p. 53
6. His father and grand father while on the throne used to see the members of the royal family and aristocracy of the city in Darbar once a day or three in a week and have all the petitions and seal was affixed to them. bearing the inscription molahiza Shad- on such occasions all heads of Departments were present. The present king contineud this system for a very short time but soon got tired of it. A journey through the kingdom of Oudh. p. 179
7. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 70
8. Administration of oudh under Wazid Ali Shah.p. 31
9. एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ अवध अण्डर द वाजिद अली शाह, पृ0 36
10. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 76-79
11. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 81
12. He (Wajid Ali Shah) found Oudh practically under the control of Barons of the country and he had not sufficient authority to hold his own not even in the mother of procuring a reasonable amount of revenue for them.

    - Short memories to faluendar in Oudh. p. 17
13. स्लीमन की डायरी, भाग 2, पृ0 203
14. Administration of oudh under Wazid Ali Shah.p. 101
15. ब्रिटिश कालीन भारत: पी0ई0राबर्टसए अनुवादक- रामकृष्ण शर्मा, पृ0 260
16. Hole and Exclusive administration of the civil and military Government of the territery of oudh should henceforth be invested for ever in Fast India Company.
17. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 237
18. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 243, 246, 247
19. वाजिद अली शाह और अवध राज्य का पतन, पृ0 267

भारतीय न्यायपालिका और पर्यावरण का संरक्षण

सुनीता महतो

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)

सार

न्यायालय की रचनात्मकता ने स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त वातावरण में रहने के लिए अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का एक आवश्यक और आवश्यक पहलू माना है। न्यायालय ने स्वस्थ पर्यावरण की नींव पर पर्यावरण न्यायशास्त्र की नींव रखी है। पर्यावरणीय न्यायशास्त्र बनाने में, न्यायालय ने इसके लिए सुनवाई के अधिकार के नियम को बदलकर 'जहाँ एक अधिकार है, वहाँ एक उपाय है' के सिद्धांत से दूर हो गया है और साथ ही व्यक्तियों, व्यक्तियों के समूहों और सार्वजनिक हित के लिए समर्पित संस्थानों को भी बदल दिया है। व्यक्तिगत नुकसान या संबंधित अधिकार नहीं हैं। इसके बावजूद इसे अदालत में पर्यावरणीय समस्याओं को उठाने का अधिकार दिया गया है। अदालत ने देश के नागरिकों पर पर्यावरण की रक्षा के संदर्भ में संविधान में निहित मौलिक कर्तव्यों का पालन करने पर भी जोर दिया है। आम तौर पर निजी व्यक्तियों को परमादेश की रिट जारी नहीं की जाती है, लेकिन पर्यावरण की रक्षा के लिए, अदालत ने उप-कानून कानून के तहत सार्वजनिक कर्तव्य करने के लिए इस संदर्भ में निजी व्यक्तियों के खिलाफ परमादेश की रिट भी जारी की है। इस संदर्भ में न्यायालय की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि इसने भारतीय पर्यावरण न्यायशास्त्र की नींव को मजबूत करने के लिए अपने निर्णयों की निर्माण सामग्री प्रस्तुत की है, इसके लिए न्यायालय ने व्याख्या में व्याख्या की विधि के माध्यम से पुराने कानूनों को विधियों की नई जमीन दी है। हरित क्षेत्र को कानूनों का अनिवार्य अंग बनाया गया है और पर्यावरण न्यायशास्त्र का संदर्भ देकर कई संवैधानिक प्रावधानों को नई व्याख्या दी गई है। इस पत्र में भारतीय न्यायपालिका एवं पर्यावरण का संरक्षण पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: पर्यावरण संरक्षण; न्यायायिक प्रक्रिया; लोक विश्वास; पारिस्थितिकी विकास।

परिचय

जनहित न्यास, एहतियात के सिद्धांत, प्रदूषक भुगतान के सिद्धांत और माता-पिता के पैटर्न ने सिद्धांतों के निर्माण में न्यायिक दृष्टिकोण को एक नया आयाम दिया है। इस संदर्भ में न्यायालय की भूमिका को रेखांकित करते हुए प्रो. पी लीला कृष्णन ने लिखा है कि 'पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में सिद्धांतों का प्रयोग और अनुक्रम का प्रयोग भारत में पर्यावरण कानून के निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश है; कोर्ट ने ये सिद्धांत जनहित के लिए बनाए हैं। मामलों में अदालती फैसलों ने राजनेताओं के इशारे पर पर्यावरण को प्रदूषित करने पर रोक लगा दी है और उन सभी अवैध अनुबंधों को नियंत्रित किया है जिन्होंने पारिस्थितिक संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। कोर्ट ने एक ऐसा न्यायशास्त्र बनाया है जिसमें सामान्य कानून की परंपरा से हटकर जिम्मेदारी के सिद्धांत को एक नया रूप दिया गया है। न्यायालय ने राजस्थान के ऐसे गांवों में खतरनाक अवशेषों के कारण पर्यावरण संकट को दूर करने के लिए नदियों और झीलों के किनारे खतरनाक उद्योगों की स्थापना पर रोक लगाकर इस संबंध में सराहनीय कार्य किया है। राष्ट्रीय उद्यानों के आसपास रहने वाले आदिवासियों के अधिकारों पर पेट्रोल और डीजल के स्थान पर सीएनजी गैस के उपयोग की आवश्यकता पर जोर देकर, अन्य मामलों के बीच पारिस्थितिक संतुलन पर जोर देकर, और समुद्री तट और पर्यावरण से संबंधित अन्य मुद्दों को हल करना। कोर्ट ने पारिस्थितिक अखंडता और प्रदूषण मुक्त वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[1]

इस संदर्भ में डॉ. टी. राघवेंद्र राव का यह कथन अत्यंत समीचीन है कि पर्यावरण कानून के क्षेत्र में न्यायालय की सक्रियता की यात्रा 1970 के दशक से शुरू हुई और न्यायालय ने इस संदर्भ में भाग प्प्ए प्ट के आधार पर अपने निर्णयों को आधार बनाया। भारत के संविधान की। संतुलन को एक नई दिशा दी गई है।[2]

पर्यावरण की रक्षा और पर्यावरण को नियंत्रित करने में भारतीय न्यायपालिका विदेशी न्यायपालिकाओं से बहुत आगे निकल गई है। स्वतंत्रता से पहले, न्यायपालिका अक्सर कुछ विदेशी सिद्धांतों से बंधी हुई लगती है, लेकिन जब हम 1980 से पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में न्यायपालिका की भूमिका का विश्लेषण करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संदर्भ में हमारी न्यायपालिका ने इस संदर्भ में एक कदम आगे बढ़ाया है। अपना निर्णय विशुद्ध रूप से भारतीय विषय वस्तु के संदर्भ में दिया है और पर्यावरणविदों की राय और असहमति के विचारों के विश्लेषण के संबंध में पर्यावरण न्यायशास्त्र को एक नया आयाम दिया है। सबसे जटिल विषयों में न्यायपालिका ने विदेशी न्यायालयों के सिद्धांतों का पालन किया है, लेकिन वे सिद्धांत भारत की उपजाऊ भूमि पर उसी तरह नहीं पनपे और फले-फूले हैं, लेकिन भारतीय परिस्थितियों के अनुसार विदेशी सिद्धांतों के समायोजन ने काम किया है। उनमें संशोधन, जोड़ और पुनर्लेखन। है। पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में न्यायालय ने नए व्यवहार, नई रणनीति और नवउदारवाद के साथ पर्यावरण संरक्षण में अपनी मजबूत भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में, मौजूदा कानूनों की कमी, विधायी निष्क्रियता और कार्यपालिका की निष्क्रियता और गैर-कामकाजी की संस्कृति को कड़ी चोट लगी है। कार्यपालिका और विधायिका के लिए न्यायालय ने विस्तृत पर्यावरण हितैषी नियोजन, पर्यावरण नियंत्रण की व्यवस्थित योजना और इस सन्दर्भ में उसके प्रबंधकीय कौशल की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, साथ ही पूर्व-स्थापित न्यायिक सिद्धांतों को शुद्ध भारतीय भावना दी है।

न्यायिक प्रक्रिया में जो सिद्धांत बनाए गए हैं और जिनके क्रियान्वयन पर जोर देकर न्यायालय में पर्यावरण संरक्षण कार्य को सरल बनाया गया है, वे सिद्धांत भारतीय पर्यावरण कानून के पथ के एक महान संकेतक स्तंभ बन गए हैं। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इन सभी सिद्धांतों को जनहित याचिका के निपटारे के समय बनाया गया है और इस प्रकार न्यायपालिका ने ब्रिटिश न्यायशास्त्र से अलग पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में शुद्ध भारतीय पर्यावरण न्यायशास्त्र को जन्म दिया है। न्यायपालिका की नवीनतम उपलब्धि पर्यावरण प्रदूषण से पीडिघ्त लोगों को पर्यावरण प्रदूषण से मुआवजा देना है। नदियों और झीलों के किनारे खतरनाक विस्फोटक और प्रदूषक कारखानों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए और यदि हैं तो उन्हें तुरंत स्थानांतरित किया जाना चाहिए। न्यायपालिका का यह आदेश पर्यावरण प्रदूषण से जूझ रहे लोगों के लिए वरदान है। नीचे हम पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में न्यायालय द्वारा बनाए और संशोधित सिद्धांतों का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं।

न्यायालय द्वारा बनाए गए सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण के लिए रामबाण का काम करते हैं। इन सम्मेलनों के संदर्भ में, संसद ने कई कानून बनाए हैं। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य[3] में, अदालत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि भारत में किसी भी विषय पर कोई कानून नहीं है और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में उल्लेख हैं, तो उनका उपयोग अनुच्छेद 14, 15, 19(1) और के संदर्भ में किया जा सकता है। भारत के संविधान के 21 सकता है। और यदि कन्वेंशन के सिद्धांत मौलिक अधिकारों से असंगत नहीं हैं, तो उनके आधार पर संविधान की व्याख्या की जा सकती है। सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला भारतीय न्यायशास्त्र और भारत की संवैधानिक सुरक्षा के लिए एक नया आयाम साबित हुआ है। अनुच्छेद 51 (बी) का हवाला देते हुए कोर्ट ने कहा है कि अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों को लागू करने का अधिकार इस अनुच्छेद में निहित है, जिसमें कहा गया है कि अंतरराष्ट्रीय कानून के नियम और एक दूसरे के साथ संगठित लोगों के व्यवहार के संबंध में अंतरराष्ट्रीय संधियां राज्य हैं। कृतज्ञता का सम्मान करने और उसे लागू करने का प्रयास करेंगे। यह लेख और अनुच्छेद 253 और केंद्रीय सूची की 14वीं प्रविष्टियां संसद को अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों के कार्यान्वयन के लिए तैयार करने के लिए अधिकृत करती हैं।[4]

संक्षेप में, न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत तैयार किए हैं:

सार्वजनिक विश्वास का सिद्धांत

लोक न्यास के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए प्रो. जोसेफ एल. सैक्स4 ने कहा है कि पारंपरिक लोक न्यास कानूनों का क्षेत्र बहुत संकीर्ण था, ऐसे जनहित के मामले में ऐसे तरीके लागू होते थे जहाँ समुद्र तट, बड़ी झीलें, नदियाँ प्रत्येक को छूती थीं। दूसरों के क्षेत्र, दूरगामी परिणाम उत्पन्न करते हैं। इस पद्धति ने यह भी उपेक्षा की कि ऐसी भूमि का उपयोग केवल पार्कों या उद्यानों के लिए किया जाना चाहिए। लेकिन अब यह सिद्धांत यहीं तक सीमित नहीं है, अब जनता के विश्वास का सिद्धांत उन सभी मामलों

में लागू होता है जहां सरकारी नियमों के कामकाज के बारे में सवाल उठाए जाते हैं और यह उन सभी विषयों पर लागू होता है जहां हितों की सुरक्षा का मामला उठाया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार यदि भूमि किसी विशेष प्रयोजन जैसे मनोरंजन कक्ष, उद्यान या आरक्षित वन के लिए आवंटित की गई है, तो लोक अधिकारी उस भूमि का अन्य प्रयोजनों के लिए उपयोग नहीं कर सकते हैं। ऐसा अतिरिक्त विनियोग तभी संभव है जब इसके कारण किसी विशेष कार्य के लिए आवंटित भूमि का उद्देश्य नष्ट न हो।

भारत में इस सिद्धांत का पहली बार सुप्रीम कोर्ट ने पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में एमसी मेहता बनाम कमलनाथ[5] के मामले में इस्तेमाल किया था। कोर्ट ने इंडियन एक्सप्रेस में दिनांक 21 फरवरी 1996 को प्रकाशित समाचार का स्वत: संज्ञान लिया। इस मामले में, प्रतिवादी के परिवार का 'ईस्पानमोटेल' से सीधा संबंध पाया गया। उसी परिवार ने ईएसपीएन क्लब के नाम से एक नया प्रतिष्ठान स्थापित किया, जिसमें कुछ जंगल और अन्य भूमि का अधिग्रहण किया गया। समाचार पत्र में बताया गया कि यह अतिक्रमण तब नियमित किया गया था जब प्रतिवादी केंद्र सरकार में वन एवं पर्यावरण मंत्री थे। इस संस्थान के प्रबंधन ने ब्यास नदी के प्रवाह को रोकने के लिए आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल किया और व्यवस्था की कि ब्यास नदी का उच्च प्रवाह मोटल के पास न आए, जिससे लोगों में बाढ़ और भूस्खलन का डर बढ़ गया। मोटेल मालिकों की योजना थी कि एक बार नदी का बहाव रुक जाए तो इसे एक अच्छा मनोरंजन द्वीप भी बनाया जा सकता है। मंत्री ने अपने हलफनामे में योजना में शामिल होने से इनकार किया।

न्यायालय में लोक विश्वास के सिद्धांत को विस्तार से समझाया गया है और उसका ऐतिहासिक विवरण भी दिया गया है। अदालत के अनुसार, प्राचीन रोमन साम्राज्य में सार्वजनिक विश्वास के सिद्धांत को एक कानूनी सिद्धांत के रूप में विकसित किया गया था। इस सिद्धांत को इस आधार पर विकसित किया गया था कि नदी, समुद्र के किनारे, जंगल और हवा शासक द्वारा ट्रस्टी के रूप में आम जनता के मुफ्त और बिना किसी हस्तक्षेप के उपयोग के लिए ट्रस्ट के रूप में निहित हैं। पर्यावरण के संदर्भ में हमारी समकालीन सोच इस अवधारणा से अत्यधिक संबंधित है। रोमन कानून के तहत, प्रकृति के इन संसाधनों का या तो कोई मालिक नहीं था या सभी का। आम कानून के तहत, संप्रभु उनके मालिक हो सकते थे, लेकिन वह स्वामित्व सीमित था। जिसका अर्थ था कि यदि आम लोगों के नौका विहार या मछली पकड़ने के व्यवसाय को भड़काने की संभावना थी, तो संप्रभु इन संसाधनों का स्वामित्व निजी हाथों को नहीं दे सकते थे। विश्वास के रूप में सन्निहित माने जाते थे।[5]

आधुनिक सार्वजनिक विश्वास कानून अक्सर रोमन और आम कानून द्वारा विकसित समान सिद्धांतों पर आधारित होता है, और विधायिका ने कानून बनाते समय इस इतिहास को पूरी तरह से ध्यान में रखा है। दो बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए, पहला, नौका विहार और मछली पकड़ने के कार्य को जनता के लाभ के लिए संरक्षित किया गया है और इसलिए इन कार्यों के लिए उपयोग की जाने वाली संपत्ति को सार्वजनिक संपत्ति से अलग कर दिया गया है जिसे संप्रभु निजी क्षेत्र में स्थानांतरित कर सकता है। दूसरे, यह मान लिया गया कि सार्वजनिक उपयोग की संपत्ति जैसे समुद्र का किनारा, अंतर्राष्ट्रीय सड़कें, नदियाँ, आम जनता के उपयोग के लिए इसमें निहित थीं, हालाँकि यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता था कि यदि जनता के इन अधिकारों में हस्तक्षेप किया जाए – यदि हां, तो क्या जनता को भी अपने अधिकारों को लागू करने का अधिकार है? राज्य ने इस संदर्भ में आम जनता के हितों की रक्षा की है, लेकिन इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अगर कोई निरंकुश सरकार इस जनहित के अधिकार में हस्तक्षेप करती है, तो जनता उस सरकार के खिलाफ मुकदमा दायर कर सकती है।

यह रेखांकित करते हुए कि लोक न्यास का सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि वायु, समुद्र, नदियाँ और जंगल जैसे स्रोत पूरी मानवता के लाभ के लिए हैं और उन्हें निजी क्षेत्र के स्वामित्व का विषय नहीं बनाया जा सकता है। अदालत ने स्पष्ट किया कि ऐसे सभी संसाधन प्रकृति द्वारा मानवता को दिए गए उपहार हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को स्थिति की परवाह किए बिना उनका उपयोग करने की सुविधा दी जानी चाहिए। यह सिद्धांत सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य करता है कि ऐसे संसाधन निजी स्वामित्व या व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करने की अनुमति के बजाय आम जनता को उपलब्ध कराए जाएं।[6]

जहां तक भारतीय कानूनी व्यवस्था का संबंध है, यह सामान्य कानून पर आधारित है और भारतीय न्यायशास्त्र में एक पूर्ण सिद्धांत के रूप में स्थापित है, जिसके अनुसार राज्य सभी प्राकृतिक संसाधनों का ट्रस्टी है। आम जनता इसका उपयोग करने में रुचि रखती है। इसलिए, प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना और इन संसाधनों को आम जनता के लाभ के लिए संरक्षित निजी क्षेत्र की जागीर नहीं बनने देना राज्य का कानूनी कर्तव्य है। अदालत ने स्पष्ट किया कि यदि इस संदर्भ में कोई कानून नहीं है, तो कार्यपालिका

स्वयं को जनहित ट्रस्ट के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त नहीं कर सकती है और ऐसे प्राकृतिक संसाधनों को निजी स्वामित्व या वाणिज्यिक हितों में परिवर्तित नहीं कर सकती है। इसलिए, इस मामले में, सरकार ने मोटल के प्रबंधकों के लिए पर्यावरण और पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमि को पट्टे पर देकर जनता के विश्वास के सिद्धांत का उल्लंघन किया है। इस मामले में भी, अदालत ने 'प्रदूषक भुगतान करेगा' के सिद्धांत को दोहराया और मोटल प्रबंधकों को पारिस्थितिक और पर्यावरणीय नुकसान की भरपाई के लिए आवश्यक राशि का भुगतान करने और ब्यास नदी के तट पर निर्माण को ध्वस्त करने का निर्देश दिया। यह भी निर्देश दिया गया कि प्रबंधन न तो गंदा पानी नदी में छोड़ेगा और न ही नदी तट के आसपास के क्षेत्रों पर अतिक्रमण करेगा. इस बिंदु के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ऐसे मामलों में न्यायालय ने पर्यावरण नियमों का उल्लंघन करने वालों को उनके द्वारा उपयोग किए गए भूखंड को उसके मूल रूप में वापस लाने का भी निर्देश दिया है।

एम. आई. बिल्डर प्राइवेट लिमिटेड बनाम राधेश्याम साहू में सुप्रीम कोर्ट ने फिर से सार्वजनिक विश्वास सिद्धांत की अवधारणा को स्पष्ट किया और कहा कि पार्कों में भूमिगत वाणिज्यिक स्थान बनाकर ऐतिहासिक महत्व है और उनमें पार्क के अस्तित्व के कारण पार्क के साथ-साथ घास दिखाई देगी। लेकिन भविष्य में ऐसे पार्कों में पौधे लगाने का कार्य नहीं किया जाएगा। नए पौधे नहीं लगाए जा सकेंगे और भूमिगत संस्था के निर्माण की अवधि के दौरान कई पौधे हटा दिए गए हैं, इसलिए यह पार्क सुंदरता का विषय है और भूमिगत निर्माण के कारण पार्क की प्रकृति को बदल दिया गया है। कोर्ट ने कहा कि पार्क की समुचित व्यवस्था के लिए नगर निगम पार्क का ट्रस्टी है और जब पार्क के मूल स्वरूप से छेड़छाड़ की गई तो यह कमलनाथ में कोर्ट द्वारा प्रतिपादित जनहित न्यास के सिद्धांत का उल्लंघन है।[7]

इस संदर्भ में लोकहित न्यास ने अनेक विद्वान लेखकों की पुस्तकों का उल्लेख करते हुए आगे बताया और कहा कि यह सिद्धांत तीन बातों पर आधारित है।

(1) वायु, समुद्र और कुछ ऐसे हित आम आदमी के लिए इतने आवश्यक हैं कि उन्हें निजी क्षेत्र में सौंपना अतार्किकता का संकेत है।

(2) ऐसे संसाधन हर व्यक्ति के उपयोग के लिए उपलब्ध कराए जाने चाहिए, चाहे उनकी आर्थिक स्थिति कुछ भी हो।

(3) जनहित को बढ़ावा देना सरकार का मुख्य कर्तव्य है। जनहित के मामलों को निजी हित में बदलना उसका कर्तव्य नहीं है।

कोर्ट ने स्पष्ट किया कि भूमिगत दुकानों का निर्माण बिल्डर ने नगर निगम के एजेंट के तौर पर किया था। इसमें एजेंट का कोई निशान नहीं है। कोर्ट ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा कि सुप्रीम कोर्ट में कई ऐसे मामले आ रहे हैं जिनमें निर्माता निगमों या नगर निगमों की मिलीभगत से ऐसे संस्थानों का निर्माण कर रहे हैं. ऐसे मामलों में अदालत ने ऐसे निर्माणों को गिराने का निर्देश दिया है, इस मिलीभगत की जांच का आदेश नहीं दिया है, लेकिन इस मामले में यह निर्देश दिया गया है कि इस गठजोड़ की जांच की जाए कि योजना कैसे बनाई गई और बिल्डर और निगम जो योजना बना रहा था कि इसे कैसे बनाया गया और इसे कैसे लागू किया जाए। कोर्ट ने यह भी निर्देश दिया कि भूमिगत निर्माण को तत्काल ध्वस्त किया जाए और पार्क को अपने स्वरूप में वापस लाया जाए।

एमपी रामबाबू बनाम संभागीय वनाधिकारी[8] मामले में इस सिद्धांत के संदर्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आया कि गहरे पानी और उसके अंदर की मिट्टी का मालिक कौन है? क्या यह मालिक नहीं है? या यह वह क्षेत्र है जिस पर सभी का स्वामित्व है? इसमें मुख्य बात पानी के अंदर गहरे तत्व के विश्लेषण को लेकर थी। यह सवाल उठाया गया कि अगर गहरे पानी में अत्यधिक खुदाई करके कुएं का निर्माण किया जाता है और किसी भी क्षेत्र में उनका अत्यधिक उपयोग किया जाता है, तो लवणता की मात्रा बहुत बढ़ जाएगी। न्यायालय के अनुसार जनहित न्यास के सिद्धांत के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि गहरे जल क्षेत्र और उससे जुड़ी मिट्टी या भूमि का स्वामित्व राज्य के पास है और इसके उपयोग को विनियमित करने के लिए भले ही कोई कानून न बनाया गया हो, तो इसके उपयोग का विनियमन। अधिकार राज्य के पास है। अत: इस प्रकार के जल का उपयोग केवल उस भूमि के लिए किया जा सकता है जो उसके पास है, लेकिन यदि इसका उपयोग अन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता है या इससे जल प्रदूषण की संभावना बढ़ जाती है, जिससे पूरा भूमिगत जल प्रदूषित हो जाता है, तो राज्य को यह करना चाहिए। हस्तक्षेप करने और भूजल को प्रदूषित होने से बचाने का अधिकार।

कृषि योग्य भूमि के स्वामी की परिकल्पना का उपयोग करते हुए न्यायालय

इसमें कहा गया है कि किसी भी परिस्थिति में ऐसे मालिक को अपने पड़ोसी के खेत में पानी के प्रवाह को रोकने का अधिकार नहीं है और न ही उसे अपशिष्ट पदार्थों के उत्सर्जन के लिए ऐसा कोई उपाय करने का अधिकार है, जो किसी भी तरह से पानी के उपयोग के अधिकार में हस्तक्षेप न करे। इस परिकल्पना और तुलना के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि उसे अपने पड़ोसियों की खेती योग्य भूमि को पानी प्रदूषित करके नुकसान पहुँचाने का कोई अधिकार नहीं है। कोर्ट ने यह भी कहा कि न केवल मालिक या कब्जा करने वाला, कोई भी व्यक्ति जो संपार्श्विक संपत्ति के गलत उपयोग से दूसरों को नुकसान पहुंचाता है, उसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। यह कहना एक बात है कि दुबकाट कानून अतिचार के अपराध के लिए निजी कानूनों में कई उपायों को शामिल करता है। यह एक और मामला है कि राज्य और न्यायालय, सार्वजनिक कानून के उपाय के तहत, संबंधित अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए इनपुट दे सकते हैं कि वैधानिक कर्तव्यों के उल्लंघन से दूसरों के हितों को नुकसान न पहुंचे। किसी भी मामले में ऐसे अधिकारियों को ऐसे निर्देश दिए जा सकते हैं जिनके पास संबंधित कानूनों को लागू करने के लिए वैधानिक कर्तव्य है।

न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से स्पष्ट है कि न्यायालय ने जनहित न्यास के सिद्धांत को पर्यावरण शुद्धता से जोड़ा है और राज्य को जनहित न्यास के सिद्धांत का उल्लंघन न करने तथा नदियों, जलाशयों, वनों आदि के विनाश को रोकने के लिए भी बाध्य किया है। और ऐसे प्राकृतिक उपहार में 'प्राप्त' चीजों का दुरुपयोग न होने दें और जनहित के नाम पर उनकी प्राकृतिक सुंदरता को नष्ट न होने दें। प्रकृति ने अमीर-गरीब को उपहार दिया है, और यदि उनका क्षेत्र प्रदूषित हो गया है या आम लोगों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है, तो यह प्रकृति के साथ अतिचार होगा। इस संदर्भ में, यह न्यायालय की एक नई अवधारणा है।

'प्रदूषक भुगतान करता है' का सिद्धांत

न्यायालय ने इस सिद्धांत का उपयोग प्रदूषकों की आवाजाही को नियंत्रित करने के लिए किया है और यह स्पष्ट किया है कि यदि क्षेत्र को प्रदूषक द्वारा क्षतिग्रस्त किया जाता है, तो उसे न केवल इसकी भरपाई करनी चाहिए बल्कि प्रदूषित वातावरण को प्रदूषण मुक्त वातावरण में परिवर्तित करना चाहिए। इस सिद्धांत की उत्पत्ति यूरोप में ऐसे समय में हुई जब पूरा यूरोप बढ़ते प्रदूषण की गोद में सभा द्वारा किया गया था। औद्योगीकरण के कारण प्रदूषण की समस्या इतनी अधिक हो गई थी कि प्रदूषित क्षेत्रों और पर्यावरण बोर्डों को मुआवजा प्रदान करने की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई थी। भारत में भी, भोपाल गैस की घटना के बाद, इस संबंध में ठोस उपाय करने के लिए सरकारी स्तर पर और विशेष रूप से अदालत स्तर पर तत्काल आवश्यकता महसूस की गई, और अदालत ने भारतीय क्षेत्र में सख्त दायित्व के सिद्धांत से अलग एक सिद्धांत का पालन किया। रायलैंड बनाम फ्लेचर[9] में प्रतिपादित किया गया था।

एमसी मेहता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[10] में कोर्ट ने स्पष्ट किया कि पूर्ण दायित्व का सिद्धांत जो सालों पहले रायलैंड के मामले में प्रतिपादित किया गया था और जिसके कई अपवाद भी स्थापित किए गए थे, जिसके बाद बाद के मामलों में इसे स्पष्ट किया गया था। मामलों में उपयोग के लिए उपयुक्त नहीं है। उन दिनों की परिस्थितियों में ईश्वरीय कार्य, वादी की गलती, वादी की सहमति, तृतीय पक्ष अधिनियम या वैधानिक रूप से अधिकृत गलत कार्य का कार्य ऐसे समय में विकसित हुआ जब वैज्ञानिक और तकनीकी दायित्व के निर्धारण के मानकों को तैयार करने में कुछ दिशानिर्देश भी थे। आज देश में जो आर्थिक विकास हो रहा है, उसे उसी गति से विकास नहीं दे सका। इसलिए हमें नए सिद्धांत विकसित करने होंगे और नए मानक स्थापित करने होंगे जो अत्यधिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था से उभरी समस्याओं को हल कर सकें। हमें अपने कानून को विकसित करने के लिए विदेशी कानूनी व्यवस्था के हाथों में होने की आवश्यकता नहीं है।

अदालत ने इस संदर्भ में दायित्व का एक नया सिद्धांत बनाया, जो ब्रिटिश अदालतें नहीं कर सकीं। न्यायालय ने यह मानते हुए कि हमारी निश्चित राय है कि ऐसे कारखाने खतरनाक हैं। खतरनाक सामानों के निर्माण में लिप्त और जो प्रकृति में खतरनाक होने की संभावना है। जो लोगों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्रभावित करता है, विशेष रूप से जो ऐसे कारखानों के तहत काम करते हैं। या जो ऐसे कारखाने के बाद के निवासी हैं, कारखानों के संचालक उनके प्रति पूर्ण और गैर-प्रतिनिधि कर्तव्य निभाते हैं और यह समुदाय के लिए उनका कर्तव्य है। समग्र रूप से उनके कारखाने के खतरनाक तत्वों को कोई चोट या नुकसान नहीं पहुंचाएगा। सबसे

खतरनाक कारखानों को इस तरह से संचालित करने के लिए धन्यवाद कि वे सुरक्षा के उच्चतम मानकों का पालन करने के लिए तैयार हैं। यदि कोई नुकसान या क्षति उनके कारखानों की गतिविधियों के कारण होती है। इसलिए वे उस नुकसान की भरपाई के लिए पूरी तरह उत्तरदायी हैं। वे इस तथ्य का सहारा नहीं ले सकते कि उन्होंने अत्यधिक सावधानी बरती है और यह कि नुकसान उनकी लापरवाही या उपेक्षा का परिणाम नहीं है। ऐसे संदर्भों में मुआवजे की मात्रा कारखाने की क्षमता और पूंजी की लागत के आधार पर निर्धारित की जाती थी, योजना जितनी बड़ी और समृद्ध होगी, मुआवजे की राशि उतनी ही अधिक होगी।

न्यायमूर्ति भगवती के निर्णय ने भारतीय पर्यावरण न्यायशास्त्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और रायलैंड बनाम फ्लेचर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों से विचलित होकर और इसे एक सुस्थापित नियम बनाकर एक भारतीय पूर्ण जिम्मेदारी का निर्माण किया है, लेकिन यह भी एक तथ्य है कि 1986 के पर्यावरण प्रदूषण निवारण अधिनियम और 1986 के जल और वायु प्रदूषण अधिनियमों को कई धाराओं द्वारा संशोधित किया गया है।[11] जहां कारखानों के ऐसे कार्य जो इरादे से नहीं किए जाते हैं या बिना ज्ञान के किए जाते हैं या अत्यधिक सावधानी से किए जाते हैं, उन्हें बोझ से छूट दी जाती है।[12] भारतीय पर्यावरण कार्य परिषद बनाम भारत संघ[13] में, न्यायालय ने प्रदूषण भुगतान के सिद्धांत का पालन किया है। इसका मतलब यह है कि यदि कोई कारखाना मालिक या अन्य अपने कार्यों से प्रदूषित करते हैं, तो उसे न केवल प्रदूषण के काम से प्रभावित लोगों की भरपाई करनी होगी, बल्कि उसके द्वारा पर्यावरण को होने वाले नुकसान की भी उचित व्यवस्था करनी होगी। इस मामले में यह निर्णय दिया गया है कि जहां कोई उद्योग आवश्यक अनुमति प्राप्त किए बिना स्थापित किया जाता है और लगातार कानून के उल्लंघन में चलाया जाता है और जो नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है, यह कहना उचित नहीं होगा कि न्यायालय को ऐसा नहीं करना चाहिए।

निष्कर्ष

पारिस्थितिकी का विकास प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हुआ है, जहाँ मनुष्य को भी वृत्ति का अंग माना गया है और गैर-मनुष्यों को भी बहुत मूल्यवान तत्व माना गया है। पारिस्थितिकी इस बात को रेखांकित करती है कि मानव हित अपने आप में प्राथमिकता नहीं है और मानव का गैर-मनुष्यों के प्रति कानूनी दायित्व है। इसलिए, पारिस्थितिकी जीवन और प्रकृति के लिए केंद्रीय है, और मानव और गैर-मानव दोनों ही प्रकृति के आवश्यक अंग हैं। इसलिए न्यायालय ने वन्य जीवों के संरक्षण की कार्य योजना को ईको सेंटर घोषित कर वैध करार दिया है। न्यायालय की सक्रियता की पारिस्थितिकी पर बल देते हुए वन्यजीवों, वृक्षों और अन्य वन सामग्री के संरक्षण को पर्यावरण न्यायशास्त्र का एक विस्तारित रूप माना गया है।

सन्दर्भः

1. पर्यावरण कानून केस बुक, IInd 2006, बटर वर्थ्स, पृष्ठ 366-367।
2. पर्यावरण कानून में न्यायिक सक्रियता, भारतीय परिप्रेक्ष्य, भारत में न्यायपालिका, संवैधानिक परिप्रेक्ष्य, एशिया लॉ हाउस, हैदराबाद, 2009, पृ. 409-411.
3. (1997) 6 एस.सी.के.ए. 241
4. पब्लिक ट्रस्ट डॉक्ट्रिन इन नेचुरल रिसोर्स लॉ: मिशिगन लॉ रिव्यू, वॉल्यूम। 68, भाग 1, पृ. 473
5. (1997) 1 एस.सी.के.ए. 388.
6. एआईआर 1999 सु.को. 2468.
7. (1997) 1 एस.सी.के. 389.
8. आकाशवाणी, 2002ए आंध्र प्रदेश 256.
9. (1866) एल.आर. 1 1।
10. एआईआर 1987 सु.को. 1086.
11. इंडियन काउंसिल फॉर एनवायरो लीगल एक्शन बनाम संघ, एआईआर, सुप्रीम कोर्ट, 1996ए पृ. 1446.
12. पर्यावरण न्याय और अवलोकन की दिशा, सी.एम. जरीवाला, भारत के सर्वोच्च न्यायालय की प्राथमिकताएँ, 2007ए पृ. 1475.
13. एआईआर 1996ए एससी, 1446ए 1460।

गोलमेज सम्मेलन एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन

डॉ० बिन्दु

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सीतापुर

''मुझे क्षणभर के लिए भी इसमें संदेह नही है कि यदि ब्रिटेन चाहे तो वह तलवार के बल पर भारत को गुलाम बनाए रख सकता है। किंतु ब्रिटेन की सुख-समृद्धि के लिए अधिक श्रेयकर है-एक गुलाम किंतु विद्रोही भारत अथवा एक ऐसा भारत जो ब्रिटेन के बराबर खड़ा होकर एक सामान्य साथी के रूप मे, दु:ख और मुसीबत में उसका साझीदार बने ? हॉ यदि आवश्यक हो, तो भारत ब्रिटेन के साथ मिलकर लड़ने को तैयार होगा, किन्तु वह यह काम स्वेच्छा से ही करेगा और इसमें उसका लक्ष्य होगा विश्व कल्याण, किसी जाति अथवा व्यक्ति का शोषण करना नही। मैं अपने देश के लिए स्वाधीनता लेना चाहता हूँ, विश्वास कीजिए कि जहॉ तक मेरा बस है, मैं यहा स्वाधीनता इसलिए कदापि नही चाहता कि मेरा देश, जिसमें संसार भर की आबादी का पॉचवा हिस्सा बसता है, कभी भी किसी दूसरी जाति अथवा व्यक्ति का शोषण करे। मुझे अपने देश के लिए स्वाधीनता चाहने का कोई अधिकार नही है, यदि मैं संसार की सभी दूसरी जातियॉ-चाहे वे दुर्बल हो अथवा शक्तिशाली-के लिए भी वैसी ही स्वाधीनता के समान अधिकारों को आदर और मान्यता न दूॅं। मै तो यही कहूॅंगा कि इस ब्रिटिश द्वीप की भूमि से यह आशा और विश्वास लेकर लौटूॅं कि भारत और ब्रिटेन के बीच बराबर की साझेदारी का एक सम्मानपूर्ण संबंध स्थापित होने वाला है।''

-महात्मा गॉधी, गोलमेज सम्मेलन में

1928 में बल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में गुजरात के सूरत जिले में बरदोली के किसानों को लगानबंदी सत्याग्रह में आशातीत सफलता मिली थी। तभी से बल्लभभाई पटेल बारदोली और गुजरात के लिए ही नही, देशभर के लिए 'सरदार पटेल' हो गए तथा राष्ट्रीय आंदोलन के लिए एक नई संभावना और एक नई दिशा उजागर हुई। 1930 से प्रारम्भ होते-होते भारी मंदी और व्यापक बेरोजगारी के कारण देश की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। सभी वर्गो के लोग इस मंदी से चाहे वो मजदूर किसान या व्यापारी हो परेशान थे। उधर अंग्रेज सरकार को गॉधीजी की 'न्यूनतम मागें' भी स्वीकार नही थी। कुछ न कुछ सार्थक कदम उठाना अनिवार्य था। यदि कांग्रेस कुछ करती तो हो सकता था कि देश का नेतृत्व उसके हाथों से निकल जाता।

11 फरवरी 1930 की कांग्रेस कार्यकारिणी ने गॉधीजी को सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करने के अधिकार दे दिए। पहले तो गॉधीजी ने बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार से आंदोलन की आवश्यकता टल जाए और वायसराय कांग्रेस की न्यायोचित मांगो को मान लें, किंतु ऐसा न होने पर गॉधीजी ने 12 मार्च 1930 को गॉधीजी ने अपनी ऐतिहासिक दांडी यात्रा प्रारंभ कर दी। यात्रा के अंत में 6 अप्रैल 1930 को उन्होंने नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन का सूत्रपात किया। सरकार ने नमक पर कर दोगुना कर दिया था इसका सबसे अधिक प्रभाव गरीब जनता पर पड़ा। क्योंकि नमक सब के काम आने वाला सस्ता खाद्य पदार्थ था। निजी रुप से नमक बनाना कानूनी जुर्म था। गॉधी द्वारा इस कानून को भंग किये जाने के पश्चात् जगह-जगह यह कानून भंग कर नमक बनाना लोगों ने प्रारम्भ कर दिया। इस आंदोलन के तहत विदेशी समानों का बहिष्कार एवं शराबबंदी जैसे कार्यक्रमों को भी विशेष स्थान दिया गया था। इन कार्यक्रमों में महिलाओं ने भी बढ़ चढ़कर भाग लिया था। सविनय अवज्ञा आंदोलन से देशभर में उत्साह की नई लहर दौड़ गई। अंग्रेज सरकार ने शांतिमय सत्याग्रह का उत्तर लाठीचार्ज और गोलियों से दिया। कांग्रेस को गैरकानूनी संगठन करार दे दिया गया। सरकार ने बहुत से आपातकालीन अध्यादेश जारी किए। दमन चक्र पूरे वेग के साथ चला। सीमाप्रांत

में बादशाह खान के नेतृत्व में 'लालकुर्ती' वालों ने आंदोलन में प्रमुख भाग लिया। 23 अप्रैल 1930 को पेशावर में बहादुर पठानों ने सत्याग्रह की अहिंसक लडाई की एक ऐसी मिसाल पेश की जो इतिहास में कभी भूली न जा सकेगी। सैकड़ों के तदाद में पठान मौत की चिंता किए बैगर, तोपों और बंदूको की ओर बढते चले गए और उन्हें अमानवीय नृशंसता के साथ भून दिया गया। नेताओं को पकड़ लिया गया परन्तु आंदोलन बढ़ता चला गया। अन्नायपूर्ण कानूनों का अहिंसात्मक ढ़ंग से भंग किया जाना एक धर्म सा बन गया था । शीघ्र ही देशभर में सरकार की जेले भर गई। लोगों ने सरकारी कर देने से मना कर दिया।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन

जिस समय सविनय अवज्ञा आंदोलन और उसका दमन दोनों ही पूरे जोरों से चल रहे थे, ब्रिटिश सरकार ने भारत के भावी संविधान के सिद्धांतों पर विचार करने के लिए लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन 12 नवम्बर,1930 को शुरु हुआ। इसमें ब्रिटेन के तीनों राजनीतिक दलों के प्रतिनिध् संसद सदस्यों, देसी रियासतों के शासकों के प्रतिनिध् यों तथा कुछ राजनीतिक दलों और हितों के प्रतिनिध्यिों ने भाग लिया, किंतु सम्मेलन का गठन नितांत असंतोष जनक था क्योकि उसमें न तो देसी रियासतों की जनता के प्रतिनिध् थे और न कांग्रेस के। कांग्रेस देश का प्रमु राजनीतिक दल था और उसके अनुयायियों की संख्या भी सबसे अध्कि थी। उसके प्रतिनिध्यिों की अनुपस्थिति में भारत की राजनीतिक समस्या को सुलझाने के लिए बुलाया गया कोई भी सम्मेलन बिना दूल्हे की बरात था। ऐसी स्थिति में यह स्वाभविक ही था कि प्रायः किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोई एक राय अथवा निर्णय नहीं हो सका, किंतु इस सम्मेलन में पहली बार ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत में संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की एक योजना र ी गई। इसमें कहा गया था कि भारत की भावी शासन-व्यवस्था एक अ िल भारतीय संघ के रुप में होगी जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रांत तथा रियासतें दोनों शामिल होंगे। देसी राज्यों के शासकों के प्रतिनिध्यिों-महाराजा बीकानेर, महाराजा काश्मीर और नवाब भोपाल-ने न केवल संघ-व्यवस्था का समर्थन किया अपितु यह भी कहा कि अ िल भारतीय संघ में देसी राज्य इस शर्त पर शामिल होंगे कि केंद्रीय स्तर पर उत्तरदायित्व की स्थापना हो। प्रांतों को स्वायत्तता और उत्तरदायी शासन तथा केंद्र में आंशिक उत्तरदायी शासन देने की बातें भी की गईं। इन मूलबातों पर सम्मेलन में किसी को आपत्ति नहीं थी किंतु सांप्रदायिक प्रतिनध् त्व जैसी जटिल समस्याओं का कोई हल न निकल सका। वैसे भी, कांग्रेस की अनुपस्थिति में कोई भी निर्णय लिया जा सकना निरर्थक था क्योंकि वह भारतीय जनता को मान्य न होता। सम्मेलन मे अंतिम दिन 19 जनवरी, 1931 को प्रधनमंत्री मैकडॉनल्ड ने ब्रिटिश सरकार की भारत-नीति के संबंध् में एक वक्तफव्य में कहा कि ब्रिटिश सरकार भारत के शासन का उत्तरदायित्व केंद्रीय और प्रांतीय विधन-मंडलों को सौंपना चाहती है और संध्किाल के लिए आवश्यक आरक्षित शक्तिफयों का प्रावधन भी इस प्रकार करेगी कि नई सांविधनिक व्यवस्था के द्वारा पूर्ण उत्तरदायी व्यवस्था की ओर भारत की प्रगति में बाध न पडेघ्। अपनी ओर से एक व्यक्तिफगत आश्वासन देते हुए मैकडॉनल्ड ने यहाँ तक कहा कि उन्हें पूरी आशा और विश्वास है कि भारत शीघ्र ही दूसरे स्वशासित डोमिनियनों की तरह राष्ट्रमंडल का पूरा, बराबर का, सदस्य हो जाएगा।

गॉधी-इर्विन समझौता

ब्रिटिश प्रधनमंत्री के 19 जनवरी, 1931 के वक्तफव्य की भारत में अच्छी प्रतिक्रिया हुई। देश के वातावरण में एक अपूर्व आशा छा गई। वस्तुतः स्वाधीनता संघर्ष के इतिहास में अभी तक कभी भी देश सपफलता के इतना निकट नहीं दि ाई दिया था जितना कि प्रथम गोलमेज सम्मेलन के तुरंत बाद। लगता था कि सुरक्षा और वैदेशिक मामलों में कुछ अस्थायी आरक्षणों को छोड़कर और सब तरह से भारत में पूर्ण उत्तरदायी संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना हो जाएगी।

यह स्पष्ट था कि मैकडॉनल्ड के वक्तव्य के पीछे कांग्रेस का सहयोग पाने की इच्छा थी। सरकार ने जनवरी 1931 में ही महात्मा गॉधी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सब सदस्यों को जेल से बिना शर्त रिहा कर दिया। उदारवादी नेता सर तेजबहादुर सप्रू तथा एम0 आर0 जयकर के प्रयत्नों से महात्मा गॉधी और वायसराय लार्ड इर्विन के बीच बातचीत प्रारंभ हुई और 5 मार्च 1931 को उस समझौते पर हस्ताक्षर हुए जो गॉधी-इर्विन समझौते के नाम से विख्यात हुआ। समझौते के अंतर्गत ऐसे सभी राजनीतिक बंदियों को, जिनके विरुद्ध हिंसा के आरोप नहीं थे रिहा कर दिया गया, विदेशी कपड़े और शराब आदि की दुकानों पर शांति पूर्ण धरना देने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया, समुद्र के निकटवर्ती प्रदेशों में बिना नमक-कर दिए नमक बनाने की इजाजत दे दी गई। जो सबसे महत्वपूर्ण

बातें समझौते में शामिल की गई, वे थीं गाँधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित करने की तथा दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने की रजामंदी।

गाँधी-इर्विन समझौते का कराची काग्रेस ने अनुमोदन कर दिया किंतु देश-भर में, विशेषकर युवक वर्ग में, समझौते की कड़ी आलोचना की गई तथा गाँधीजी को काफी बुरा-भला कहा गया क्योंकि समझौते में, देश को 'समाजवाद' और 'इनकलाब-जिंदाबाद' के नारे देने वाले देशभक्त सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरु और सुखदेव की रिहाई के बारे में कुछ नहीं कहा गया था। गाँधीजी ने इन युवक देशभक्तों की जान बचाने और उनकी मौत की सजा कम करने की शर्त भी वायसराय के सामने नहीं रखी। जनता में क्षोभ स्वाभाविक था। इधर कांग्रेस का कराची अधिवेशन हो रहा था और उधर सरदार भगतसिंह तथा उनके साथियों को फाँसी के तख्ते पर चढाया जा रहा था। भगतसिंह की फाँसी की पृष्ठभूमि में गाँधी-इर्विन समझौता स्वाधीनता संग्राम की कहानी के उन कुछ प्रकरणों में से है जिनमें गाँधीजी की भूमिका को इतिहास सदैव आलोचना की दृष्टि से देखता रहेगा, कुछ उसी तरह जैसे रामायण में सीता के परित्याग के लिए इतिहास ने आजतक राम को क्षमा नहीं किया।

दूसरा गोलमेज सम्मेलन

दूसरा गोलमेज सम्मेलन लंदन में 7 सितंबर से 1 दिसंबर 1931 तक हुआ। इसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि के रुप में गाँधीजी सम्मिलित हुए। अन्य नेताओ में, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने मनोनीत किया था, पंडित मदन मोहन मालवीय और श्रीमती सरोजनी नायडू भी थे। दूसरे गोलमेज सम्मेलन से बड़ी आशाएँ थीं और लगता था कि स्वराज का सपना अब साकार बना। किंतु इसी बीच इंग्लैंड में सरकार बदल चुकी थी। मैकडॉनल्ड अभी भी प्रधानमंत्री थे किंतु उनके अधिकांश साथी और समर्थक अब अनुदारवादी थे, श्रमिक दल के लोग नहीं। भारत-सचिव और वायसराय भी बदल दिए गए। गोलमेज सम्मेलन में गाँधी-इर्विन समझौते की मूल भावनाओं की उपेक्षा की गई जिसमें गाँधीजी को घोर निराशा हुई। किंतु गोलमेज सम्मेलन में गाँधीजी ने बड़े प्रभावशाली और गौरवमय भाषण दिए। कांग्रेस के प्रवक्ता के रुप में गाँधीजी ने विरोध भरे स्वर में कहाकि सम्मेलन में सांप्रदायिक समस्या पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जा रहा है और अल्पसंख्यक वर्गो को प्रोत्साहन दिया जा रहा है कि वे अपनी जिद पर अड़े रहें। सम्मेलन में जिन आरक्षणों तथा रक्षोपायों का प्रस्ताव किया जा रहा है, उनसे भारतीयों के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण पूरी तरह से अवास्तविक हो जाएगा।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री के अनुसार 'सांप्रदायिक गतिरोध की अलंघ्य बाधा' के कारण ही व्यापक सांविधानिक प्रश्नों के संबंध में गोलमेज सम्मेलन विशेष प्रगति न कर सका। किंतु, वस्तुत: अनुदार दल की सरकार भारत में अपने निरंकुश अधिकार और आर्थिक शोषण के लाभ छोड़ने तथा भारतीयों को उत्तरदायी स्वशासन देने के लिए तैयार नहीं थी। फलत: सम्मेलन में कोई समझौता न हो सका और यह स्वाभाविक ही था। गाँधीजी की इच्छा थी कि वे यह आशा और विश्वास लिए भारत लौटें कि शीघ्र ही भारत और ब्रिटेन के बीच बराबर के साझेदारी का एक सम्मानपूर्ण संबंध स्थापित होने वाला है। उनकी यह इच्छा पूरी न हुई। वे खाली हाथ और निराश लौटे। स्वदेश पहुँचने पर उन्होंने कहा: ''यह सच है कि मैं खाली हाथ लौटा हूँ किंतु मुझे संतोष है कि जो ध्वज मुझे सौंपा गया था मैंने उसे नीचा नहीं होने दिया और उसके सम्मान के साथ समझौता नहीं किया।'' भारत लौटने पर गाँधीजी ने वायसराय से मिलना चाहा किंतु नए वायसराय लॉर्ड विलिंगटन ने गाँधीजी से मिलने से इनकार कर दिया। दमन की गति तेज कर दी गई तथा गाँधी-इर्विन समझौते को व्यवहार रुप में प्राय: दफना दिया गया। मजबूर होकर गाँधीजी ने अपना सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर आरंभ कर दिया। सरकार ने आंदोलन को अपनी पूरी शक्ति के द्वारा एकदम कठोरता के साथ कुचल डालने का निश्चय किया। कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य, गाँधीजी तथा अन्य चोटी के नेता तुरंत बंदी बना लिए गए। कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था करार दे दिया गया तथा सभी कांग्रेस कार्यकर्ताओं और शुभचिंतकों तक को भी जेल में डाल दिया गया। गोली, लाठी, मारकाट तथा तरह-तरह की यातनाओं से आंतक का वातावरण पैदा कर दिया गया। सरकार द्वारा पहले से भी कठोर और अन्यायपूर्ण कानून बनाए गए जिनके अंतर्गत केवल संदेह के आधार पर लोगों को जेल में डाला जा सकता था। कांग्रेस के दफ्तरों पर छापे मारे गए, ताले डाल दिए गए तथा कागज-फाइलें और रुपया-पैसा सब जब्त कर लिए गए। सामूहिक जुर्माने, जायदाद की जब्ती, लाठी-चार्ज, गोलीबारी, शारीरिक यातनाएँ देना, नृशंसतापूर्वक सत्याग्रहियों का पीटना आदि रोजाना की घटनाएँ हो गई। किंतु आंदोलन बढता ही गया। लोगों के दिल का डर, शारीरिक यातनाओं और मृत्यु तक का भय जैसे निकल चुका था। आंदोलन को अभूतपूर्व सफलता मिली। पहले से दोगुने-लगभग सवा लाख-लोग जेल गए।

सांप्रदायिक पंचाट और पूना समझौता

पहले और दूसरे गोलमेज सम्मेलनों में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न उठा था किंतु इस विषय में कोई भी फैसला नहीं हो पाया था। डॉ0 अम्बेडकर, मोहम्मद अली जिन्ना आदि नेता, इस बात की चिंता किए बगैर कि देश का क्या होगा और राष्ट्र का हित किस में है, अपने-अपने जातीय और सांप्रदायिक तथा संकुचित दृष्टिकोण से सोचते थे। कांग्रेस और दूसरी संस्थाओं ने समय-समय पर भरसक यह प्रयास किया कि किसी प्रकार देश की सांप्रदायिक समस्या सुलझे और विभिन्न संप्रदायों की सहमति से कोई समझौता हो जाए। किंतु इस क्षेत्र में सफलता के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा ब्रिटिश सरकार थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन की शक्ति बढ़े।

भारतीय स्वयं आपस में कोई समझौता नहीं कर पा रहे-इसी तर्क की आड़ में ब्रिटिश सरकार ने 16 अगस्त, 1932 को विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधित्व के विषय पर एक पंचाट प्रकाशित किया जो 'सांप्रदायिक पंचाट' (कम्युल एवार्ड) के नाम से जाना जाता है। इस पंचाट ने पृथक निर्वाचन पद्दति को न केवल मुसलमानों के लिए कायम रखा बल्कि उसे दलित वर्गों के ऊपर भी लागू कर दिया। मुसलमानों, ईसाईयों, सिक्खों, ऑग्ल-भारतीयों तथा महिलाओं तक के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था की गई। श्रम, वाणिज्य, उद्योग, जमींदारों तथा विश्वविद्यालयों के लिए भी पृथक् चुनाव क्षेत्र निर्धारित किए गए। कुल मिलाकर निर्वाचनों को 17 भागों में बॉट दिया गया। योजना केवल प्रांतीय विधांन-मंडलो में ही लागू की जानी थी। केंद्रीय विधान-मंडल के निर्णय का प्रश्न अनिर्णीत छोड़ दिया गया था क्योंकि उसमें देसी रियासतों के प्रतिनिधित्व का भी प्रश्न अंतर्निहीत था। पंचाट में पृथक् निर्वाचक-मंडलो को अल्पसंख्यक समुदायों के लिए कायम रखा गया था। बंगाल और पंजाब में मुसलमान बहुमत मे थे, पर इन प्रांतो में उनके लिए भी पृथक् निर्वाचक-मंडलो का प्रावधान किया गया था। जिन प्रांतो में मुसलमान अल्पसंख्या में थे, वहॉ उनके लिए "गुरूभार" (वेटेज) की व्यवस्था थी। पंजाब में हिंदुओं तथा सिक्खों का गुरूभार दिया गया था। बंबई में मराठों के लिए स्थान आरक्षित किए गए थे। कुछ हद तक तो यह योजना' 'स्थूल रूप से वर्तमान व्यवस्था की ही पुनरावृत्ति" थी। लेकिन उसमे 'दो नई बाते' थीं। (1) उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत के अलावा प्रत्येक प्रांतीय विधान-मंडल मे प्राय: तीन प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रखे गए थे: (2) दलित वर्गो को एक अल्पसंख्यक वर्ग मान लिया गया था और उन्हें पृथक् निर्वाचक-मंडलों का निर्णय करने का अधिकार दिया गया था।

दलित वर्ग के लोगों के लिए पृथक् चुनाव क्षेत्रों की योजना के पीछे अँग्रेजी कूटनीतिज्ञों की यह चाल थी कि उन्हें हिंदुओं से अलग कर दिया जाए। पंचाट की कड़ी आलोचना हुई जो स्वाभाविक थी, क्योंकि वह सचमुच मुसलमानों, यूरोपीयों और ईसाइयो के प्रति पक्षपातपूर्ण था तथा हिंदुओं के साथ न्याय नही करता था। दलित वर्गो के लिए पृथक् निर्वाचन-मंडलों के प्रवर्तन का प्रस्ताव महात्मा गॉधी को मान्य नहीं था क्योंकि इसमें हिंदुओ के बीच स्थायी फूट पैदा हो जाती। हिंदू समाज विघटित हो जाता और अस्पृश्यता की बीमारी सदा के लिए जड़ जमा लेती। उन्होंने चेतावनी दे दी थी कि वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इस प्रकार के प्रयत्न का विरोध करेंगे। किंतु सरकार ने गॉधीजी के निवेदन और चेतावनी पर कोई ध्यान नही दिया। अंत मे 20 सितम्बर, 1932 को दलितवर्गों के लिए पृथक् निर्वाचन-मंडलों की व्यवस्था करने के ब्रिटिश सरकार के निर्णय के विरोध में गॉधीजी ने जेल के अंदर ही आमरण अनशन आरंभ कर दिया। गॉधीजी के अनशन से देशभर में चिंता छा गई । जनता की प्रतिक्रिया की व्यापकता देखकर सरकार भी घबरा उठी। पृथक्-निर्वाचक-मंडलों के समर्थक डॉ0 अम्बेडकर जैसे दलितवर्गों के नेताओं और इस व्यवस्था का विरोध करने वाले नेताओं के बीच शीघ्र ही 26 सितम्बर, 1932 को एक सतझौता हो गया। यह करार सामान्यत: पूना समझौता (पूना पैक्ट) के नाम से विख्यात है। ब्रिटिश सरकार ने इसे सांप्रदायिक पंचाट के रूप मे स्वीकार कर लिया और लागू कर दिया। समझौते में व्यवस्था की गई थी कि प्रांतीय विधान-मंडलों के साधारण स्थानों में से दलित वर्गो के लिए प्रांतवार कुछ निश्चित स्थान आरक्षित कर लिए जाएँ और सारे प्रांतों में इस प्रकार कुल मिलाकर 148 स्थान आरक्षित किए जाएँ। केंद्रीय विधान-मंडल मे ब्रिटिश भारत के लिए निर्धारित सामान्य स्थानों में सें 18 प्रतिशत दलित वर्गो के लिए आरक्षित रखे जाएँ। इन आरक्षित स्थानों का निर्वाचन दो स्तरों में होना निश्चित हुआ। पहले स्तर में सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में दलित वर्ग के सारे मतदाता प्रत्येक आरक्षित स्थान के लिए दलितवर्ग के चार उम्मीदवारों को चुनते और इसके बाद सामान्य निर्वाचक-मंडल इन चार उम्मीदवारों में ही किसी एक उम्मीदवार को अंतिम रूप से चुनता। इस प्रकार पूना समझौते में स्वीकृत निर्वाचन पद्धति पृथक् और संयुक्त निर्वाचनों के बीच का मार्ग थी।

पूना समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद गाँधीजी अछूतों के प्रति हिंदुओ के दुर्व्यवहार पर पश्चाताप तथा हरिजन सेवा में लगे कार्यकर्ताओं के प्रति देश से अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने के आग्रह स्वरूप, 8 मई 1933को 21 दिन का उपवास प्रारंभ किया।

उपवास प्रारंभ होते ही गाँधीजी को बिना शर्त जेल से छोड़ दिया गया । जून, 1933 में गाँधीजी ने अवज्ञा आंदोलन के स्थगन का आदेश दिया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि व्यक्तिगत सत्याग्रह चलता रहेगा। गाँधीजी पुनः गिरफ्तार कर लिए गए और दोबारा फिर उपवास आरंभ करने पर ही उन्हे छोंड़ा गया। गाँधीजी ने देखा कि आंदोलन में हिंसा का पुनः प्रवेश हो रहा है, सरकार के अत्याचार और लोगों की पीड़ा बढ़ रही है, संप्रदायवादी लोग आंदोलन को गलत रास्तों पर ले जाने की कोशिश कर रहे हैं तथा कार्यकर्ताओं के हौसले ढीले पढ़ गए है। ऐसी दशा में अप्रैल, 1934 में सत्याग्रह आंदोलन भी स्थगित कर दिया गया।

संदर्भ ग्रंथ

(1) विपिनचन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, वरूण डे -फ्रीडम स्ट्रगल

(2) सिंह एस0 आर0 इण्डियाज फ्रीडम स्ट्रगल

(3) राधाकृष्णन एस0 -महात्मा गॉधी 100 इयर्स

(4) अरूण कमल-गोलमेज, आलोचनात्मक निबंध एवं टिप्पणियॉ

(5) डॉ0 संदेश माधवराव वाद्य -गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर की भूमिका

(6) डॉ0 सुभाष कश्यप- स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास

भारत में महिलाओं की विधिक प्रास्थिति

डॉ० राजश्री सक्सेना

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग-फखरूद्दीन अली अहमद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर उ0प्र0।

परमानन्द

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, पं0 परमेश्वर दीन लॉ कालेज, हरदोई, उ0प्र0।

आदिकाल में लैंगिक समता का उपभोग करने वाली वर्तमान की आधी आबादी कही जाने वाली नारी शक्ति ने कालान्तर में अनेक संघर्ष सहन किए, स्वतंत्रता, समता एवं अन्य अधिकार प्राप्ति हेतु अनेक आन्दोलन प्रारम्भ किए, कहीं सफलता तो कहीं असफलता का सामना करते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन के पश्चात् महिलाओं को भारत में विभिन्न विधियों के माध्यम से सशक्तता की सीढ़ी पर खड़े होने की प्रास्थिति प्राप्त हुई है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुन: महिला वर्ग को पुरूष वर्ग के समानान्तर समता का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त हुआ। यह अधिकार भारत में निर्मित अनेक विधि व्यवस्थाओं के उपबन्धों में देखने को मिलता है। समता के अधिकार का सर्वाधिक सशक्त उदाहरण भारत की पूर्व प्रथम महिला प्रध्यान मंत्री स्व0 इंदिरा गांधी के रूप में देखने को मिलता है।

महिला सशक्तिकरण की यह वर्तमान विकास यात्रा भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14-16 से प्रारम्भ होकर अनेक विशेष विधियों तक होती हुई निरन्तर आगे भी अग्रसर हो रही है। भारत की सर्वोच्च विधि व्यवस्था भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समता का प्रावधान किया गया है जोकि आज्ञापक है। इसके अनुसार भारत में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। यहाँ "व्यक्ति" शब्द में न केवल भारतीय नागरिक सम्मिलित हैं अपितु भारत से बाहर के ऐसे नागरिक भी सम्मिलित हैं जो कि भारतीय नागरिक नहीं हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस "व्यक्ति" शब्द में महिलाओं को भी माना गया है।

इसी प्रकार अनुच्छेद-15 में स्पष्ट रूप में लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को प्रतिवधित किया गया है। अर्थात किसी के साथ यदि वह महिला है तो उसके महिला होने के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को वर्जित किया गया है। अर्थात लिंग (महिला होने के कारण) के आधार पर भेदभाव को प्रतिषिद्ध किया गया है। इसी क्रम में अनुच्छेद-15(3) में यह विशेष प्रावधान किया गया है कि राज्य को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने में सशक्त किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के इसी अनुच्छेद-15(3) ने भारतीय विधायिका को महिलाओं के विधिक सशक्तीकरण हेतु अनेक सामाजिक विधियों को निर्मित करने हेतु सशक्त किया है।

इसी क्रम में भारतीय संविधान के अनुच्छेद-39, के खण्ड-(क) ने पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने के अधिकार की नीति निर्मित की है तथा खण्ड-(घ) द्वारा पुरूष और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन प्राप्त करने का प्रावधान किया तथा खण्ड-(ड़) के द्वारा स्त्री कर्मकारों को स्वास्थ्य और शक्ति की अवस्था के दुरूप्रयोग को रोकने का निर्देश दिया गया है।

भारत में महिला सशक्तीकरण हेतु निर्मित विधियों पर किसी भी प्रकार की चर्चा करने से पूर्व डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के महिला सशक्तीकरण हेतु निर्मित विधियों के निर्माण में योगदान पर प्रकाश डाले बिना यह चर्चा निरर्थक होती है। इसलिए उनके द्वारा वह हर सम्भव प्रयास किया गया जिससे महिला का सर्वांगीण सशक्तीकरण हो सके। उन्होंने नारी को "राष्ट्र निर्मात्री" की संज्ञा दी। इसके लिए शिक्षा एक अनिवार्य तत्व है। इसीलिए 04 अगस्त 1913 में न्यूयार्क में उन्होंने कहा था कि शिक्षित होकर ही महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सकती हैं। इसी आधार पर उन्होंने महिलाओं के लिए शिक्षा गृहण इतना आवश्यक बताया कि उसे "शिक्षा संस्कार" तक की संज्ञा दी।

इसके पश्चात् उन्होंने कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात, मनोरंजन, क्लब, भवन निर्माण, सड़क या अन्य निर्माण कार्यों, होटलों, शिक्षण संस्थाओं के कार्य आदि अर्थ व्यवस्था के इन विविध क्षेत्रों में लगी हुई महिलाओं की दीन-हीन दशा का अनुमान लगाया तथा स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक, संविधान और कानून के धरातल पर महिलाओं को उन्नत स्थिति प्रदान करने के प्रयास किए। आज जिस बदलते परिवेश में महिला स्वतंत्रता की चर्चा, विज्ञान, तकनीकी, पुलिस सेवा, सेना, शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान मिल रहा है वह सब डॉ0 अम्बेडकर की सुनियोजित विचारधारा से उत्पन्न जागरूकता का ही परिणाम है जो कि उन्होंने संविधान और हिन्दू कोड बिल तथा अन्य कानूनों के माध्यम से दिया। यहां यह उल्लेखनीय है कि 11 अप्रैल 1947 को प्रथम बार जो हिन्दू कोड बिल विधेयक संसदीय पटल पर रखा गया वह भारतीय समाज में महिलाओं की उपेक्षित एवं दयनीय स्थिति में सुधार कर उन्हें समाज में पुन: प्रतिष्ठित करने का एक प्रयास था। इस हिन्दू कोड बिल का सारांश निम्न प्रकार हैं:-

1. सजातीय विवाह की कट्टरता को लचीला बनाते हुए अन्तर्जातीय विवाह तथा उससे उत्पन्न संतान को मान्यता प्रदान करना।
2. बहुपत्नीवाद पर निषेध लगाते हुए, एक पत्नीत्व को व्यवहार मे लाना अन्यथा दोषी व्यक्ति को दण्ड का भोगी बनाना
3. पति के द्वारा रखैल रखने, पति के भयंकर रोग से पीडिघ्त होने, नपुंसक होने एवं मानसिक और शारीरिक पीड़ा जैसी स्थितियों में स्त्री को विवाह-विच्छेद प्राप्त करने की मान्यता देना।
4. यदि पति/पत्नी एक दूसरे से विवाह विच्छेद के इच्छुक है तो यह मात्र उनके प्रथम जीवन साथी की मृत्यु तथा तलाक के पश्चात ही सम्भव है।
5. विधवा विवाह को मान्यता प्रदान करना।
6. मृत पति की सम्पत्ति में पत्नी को उसके बच्चों के समान भागीदार बनाना।
7. पिता की मृत्यु के पश्चात पुत्री को पुत्र के समान सम्पत्ति का अधिकार दिलाना।
8. दत्तक पुत्र के समान दत्तक पुत्री को मान्यता प्रदान करते हुए समान रूप से सम्पत्ति का वारिस बनाना।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय एवं हास्यास्पद है कि डॉ0 अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत जिस हिन्दू कोड बिल का संसद में घोर विरोध किया गया जिसके बदले डॉ0 अम्बेडकर को महिला सशक्तीकरण के पक्ष अपने प्रथम कानूनी मंत्री पद से त्याग पत्र तक देना पड़ा, उसी हिन्दू कोड बिल के समस्त प्रावधान वर्तमान में विभिन्न कानूनों के माध्यम से अक्षरश: लागू एवं प्रचलित हैं जो कि महिला सशक्तीकरण के सशक्त माध्यम हैं। वर्तमान में उक्त समस्त प्रावधान जो डॉ0 अम्बेडकर द्वारा हिन्दू कोड बिल के माध्यम से (महिला हित में) लागू करने हेतु प्रस्तुत किए गए थे। उन सभी प्रावधानों पर पृथक से अधिनियम बनाकर लागू किया गया है जो इस प्रकार है:-

1. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
2. हिन्द दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम, 1956
3. हिन्दू अवयस्कता और सरंक्षकता अधिनियम, 1956
4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954
5. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

उक्त के अतिरिक्त उन्होनें बाल-विवाह के विरूद्ध कानून की रूप रेखा 1929 में प्रस्तुत करते हुए परिवार-नियोजन कार्यक्रम प्रस्तुत कर पुरूष द्वारा महिलाओं से बच्चे पैदा करने के वर्चस्ववादी अधिकार पर प्रहार कर "बच्चे दो ही अच्छे" का नारा दिया।

प्रसूति अवकाश नियमः-

महिला हित एवं सशक्तीकरण हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रसूति कानून भी डॉ0 अम्बेडकर की देन है। इसके अधीन कारखाना व अन्य सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं में कार्यरत महिला श्रमिकों के लिए वेतन सहित प्रसव पूर्व एवं प्रसव पश्चात अवकाश प्रदान करने हेतु 1928 में मुम्बई विधान परिषद में डॉ0 अम्बेडकर प्रसव लाभ विधेयक प्रस्तुत किया गया। जोकि वर्तमान में प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 के रूप में सम्पूर्ण भारत में लागू है। इस कानून के अधीन कोई भी नियोक्ता किसी महिला कर्मचारी को उसके प्रसव या गर्भपात के 06 सप्ताह तक आशय पूर्वक कार्यस्थल पर उपस्थित होने के लिए न तो बाध्य कर सकता है और न ही अनुपस्थिति काल के आधार पर उसे सेवाच्युत कर सकता है।

उक्त कानून का विस्तार करते हुए मातृत्व लाभ (संशोधन बिल) 2016 पारित कर छोटे बच्चों को गोद लेने और सरोगेसी द्वारा सन्तानोत्पत्ति करने वाली महिलाओं को भी उक्त लाभ की सीमा में सम्मिलित किया गया है

इसी प्रकार कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम की धारा-46(2) महिलाओं को विशेष परिस्थतियों मे विशेष आर्थिक लाभ प्रदान करने का आदेश देता है। कारखाना अधिनियम, 1948 एवं खान अधिनियम, 1952 में महिलाओं के रात्रि 07 बजे से प्रात 06 बजे के मध्य नियोजन पर प्रतिबन्ध है।

प्लान्टेशन लेबर एक्ट, 1951, गेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972, संविदा श्रमिक अधिनियम, 1970 आदि विधियों में महिला कल्याण हेतु विविध प्रावधान निर्मित किए गए हैं। इसी प्रकार परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 की आधार शिला महिलाओं के हित में निर्मित की गई है। यदि आपराधिक कानून में महिलाओं की प्रास्थिति की बात करें तो भारतीय दण्ड संहिता, 1860 में महिलाओं की सुरक्षा हेतु विशद प्रावधान किए गए है जो इस प्रकार है:-

1. बालात्कार के विरूद्ध दण्ड-धारा-375-376
2. शीलभंग के विरूद्ध दण्ड-धारा-354
3. अपहरण, व्यवहरण के विरूद्ध दण्ड-धारा-366
4. महिलाओं की लज्जा का अपमान करना-धारा-509
5. एसिड अटैक-धारा-326 (ए) (बी)
6. दहेज हत्या-धारा-304 बी

महिलाओं के विरूद्ध यौन हिंसा मामलों में आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 जोकि दिल्ली के निर्भया काण्ड के पश्चात लाया गया है, में इस प्रकार के अपराधों में और अधिक कठोरतम प्रावधान किए गए है।

इसी प्रकार कार्यस्थल पर महिलाओं के विरूद्ध यौन-उत्पीड़न के विरूद्ध, विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य 1997(6) SCC 211) में विशद दिशा-निर्देश न्यायालय द्वारा पारित किया गए हैं।

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 तथा घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 महिलाओं की विधिक प्रास्थिति सुदृढ़ करने हेतु मील का पत्थर साबित हो रहे हैं।

इसी प्रकार दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में महिलाओं की किसी अपराध में सलिप्तता पर गिरफ्तारी, तलाशी, जमानत, निःशुल्क कानूनी परामर्श एवं सहायत हेतु अनेक प्रावधान किए गए हैं।

यद्यपि भारत में महिलाओं की विधिक प्रास्थिति पर उक्त प्रकार से संक्षिप्त शोध पत्र को रेखांकित किया जा सकता है। तथापि महिलाओं की प्रास्थिति पर अनेक विधिक प्रावधानों का विस्तृत समावेश इस शोध पत्र में समहित नहीं किया जा सका है। यह विधिक प्रास्थिति की विकास यात्रा उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है।

संदर्भ-सूचीः

1. डॉ0 अम्बेडकर का आर्थिक चिन्तन - डॉ0 ज्ञान चंद्र
2. डॉ0 अम्बेडकर का जीवन संघर्ष - राम चन्द्र बनौधा

3. हिन्दू नारी का उत्थान और पतन - डॉ0 भीमराव अम्बेडकर
4. डॉ0 अम्बेडकर और हिन्दू कोड बिल - एल0आर0वाली
5. भारत का संविधान - पाण्डे एण्ड नरूला
6. भारतीय दण्ड संहिता - डॉ0 बाबेल
7. दण्ड प्रक्रिया संहिता - सूर्य नरायण मिश्रा
8. श्रमिक विधियाँ - गंगा सहाय शर्मा
9. हिन्दू विधि - कमलेश शुक्ला

शैलेश मटियानी की कहानियों में संघर्ष चेतना

डॉ० हिमांशु कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, के .के. पी.जी. कॉलेज, इटावा, उ०प्र०

लेखक होने का अर्थ मनुष्य है। मनुष्य हो पाने के प्रयत्न में लेखक स्वयं लगा रहता है, साथ ही परिवेशजन्य त्रासदी से जूझता हुआ रचनाओं में भी व्याप्त हो जाता है। शैलेश मटियानी ऐसे ही लेखकों की श्रेणी में आते हैं। जहाँ इनकी कहानियों में संघर्ष आत्मबल को बढ़ाता हुआ जीवन की जिजीविषा को कम नहीं होने देता है। शैलेश की कहानियों के मूल में ही संघर्ष है। इनके पात्र भी जीवन के अनेक स्तरों पर जूझते हैं, जहाँ सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि आयामों से संघर्ष उभरकर आता है। शैलेश मटियानी का मानना है कि भय, भूख और स्त्री किसी भी मनुष्य के अस्तित्व को संकट में डालने के लिए पर्याप्त है। भय, भूख और स्त्री तीनों पक्ष शैलेश मटियानी की कहानियों में व्यापकता पाते हैं। 'चील', 'बिद्दू अंकल', 'मिट्टी', 'इब्बू मलंग', 'तीसरा सुख', 'सुहागिन', 'मैमूद', 'माता', 'बंदिश', 'कपिला', 'दो दुःखों का एक सुख', 'हारा हुआ', 'शरण्य की ओर', आदि कहानियों में भय, भूख और स्त्री का संघर्ष देखने को मिलता है।

'चील' कहानी का खेलावन घोर दारिद्रय में जीता है। भूख में बदहवासी इस कदर है कि उसे चोरी करना सूझता है, लेकिन चोरी में दो चम्मच चुरा लेता है। यह नहीं सूझता कि इन चम्मचों का क्या होगा ? बालक खेलावन को स्वयं का व्यक्तित्व घिनौना लगने लगता है। अपनी माँ से कहता है ''चोरी ना करि, तो हम का करि ? भुक्खे मर जाई ?''[1] यहाँ एक बालक परिस्थितियों की भयावहता से जूझता दिखता है।

'बिद्दू अंकल' का विद्यासागर भी लावारिस ढोर डंगर की भाँति जीवन व्यतीत करता है। भूख, बेकारी की तलाश में संवेदना के स्तर पर छटपटाता है, लेकिन विद्यासागर अपना स्वाभिमान बचाए रखता है। उसे यह अहसास हो गया कि ''आँसू अम्मा के आँचल में गिरे तो मोती दीगर के सामने गिरे तो गीज।''[2] 'मिट्टी' कहानी के लालमन और गनेशी भूख व संवेदना से जुड़े हैं। लालमन भीख माँगता है तो उस भीख पर पलते हैं, गनेशी, लालमन तथा गनेशी के दो बच्चे। लालमन गनेशी से कहता है, 'तू मेरी माई है गनेशी'। लालमन की मृत्यु के पश्चात् गनेशी मृत लालमन को वहीं छोड़कर अपने दोनों बच्चों के साथ चल देती है।

'इब्बू मलंग' का इब्बू मस्तान चरस, शराब, गोश्त, रोटी की खातिर होटल की बड़ी-बड़ी देगची माँजता है, फिर अपना भोजन लेने के बाद कचरे के ढेर पर सो जाता है। आवारा कुतियां से आत्मीयता रखता है। कुतिया की हत्या के बाद उसकी कमी इब्बूमलंग को खलती है। उस कुतिया को भूल पाना कठिन था। कुतिया की करुण चीत्कार भरभराते मनों का आतंक उस पर सदा छाया रहा है। नबी पाड़े के दादा उसे फकीर बना दिया जाता है। वह चरसी इस ढोंग से मुक्त होना चाहता है, अपने भीतर की संवेदनात्मक उपस्थिति को विस्मृत नहीं कर पाया है। भीतर की करुणा उसे मनुष्य की तरह सोचने के लिए विवश करती है। भीतर से मानवीय मूल्यों के लिए जूझता इब्बू मलंग भय और आतंक से चीख पड़ता है- ''तू परे हट बे, दोजख के कुत्ते। स्साला आया बड़ी पीर फकीर की दुआ देने वाला। तू कौन है अपनी भैन का .... मुझे पीर-मलंग बताने वाला ? ...... यह बेचारी महतारी, ठीक कहती है कि मैं मलंग नहीं चोर-लबार और मक्कार हूँ। और तू भी पक्का बदमाश और जालसाज है मादर ....। ल्लै कसाई कुत्ते, उस दिन तैन हरामजादे, मेरी कुतिया की पीठ पर छुरा घुसेड़ दिया था, आज अपनी भैन के .... मेरे ही घुसेड़ के मुझे दफना दे। इब्बू मलंग एकदम फूट-फूट कर रो पड़ा।''[3] शैलेश मटियानी का ध्यान मानवीय मूल्यों पर टिकी रहती हैं। वे लिखते हैं- 'स्मरणीय दुःख नहीं होते बल्कि स्मरणीय होती है वह करुणा और संवेदनशीलता जिनका साक्षात्कार दुःखों से गुजरते हुए होता है।'

'तीसरा सुख' की लक्ष्मी का संघर्ष अकरुण समाज की दृष्टि में मायने नहीं रखता। यह संघर्ष देह से देह तक का है। देह असुन्दर है, स्तन भी सपाट है तो पति द्वारा तिरस्कार मिलता है। परित्यक्ता लक्ष्मी अपमान अवहेलना, घृणा की परिस्थितियों में रहते हुए भी उस रहस्य सुख से परिचित होना चाहती हैं जिस रहस्य से परिचित कराने के नाम पर पति द्वारा ठुकराई जाती है। अपने सपाट शरीर से दु:खी थी। इस मन:स्थिति को रेखांकित करते हुए शैलेश मटियानी लिखते हैं- ''एक दुर्दान्त आकर्षण से अपने आपको अपने ही लिए अजनबी और घृणा तथा दया के बीच अनिर्णीत लटका देने वाली मन:स्थिति।''[4] एक अंधे भिखारी को देखकर उसे अवलम्ब बनाकर रहस्यमुक्ति का सुख चाहती है। अन्तत: लक्ष्मी अपनी कल्पनाओं को घृणास्पद मानकर पश्चाताप के आंसुओं से धो देना चाहती है। यहाँ संघर्ष पुरुष की निष्ठुरता, रूढिग्रस्त कुलीनता एवं देह की उमड़ती इच्छाओं से है।

'सुहागिन' की पद्मावती की पीड़ा लक्ष्मी से मिलती-जुलती है। अपनी कुरूपता और दरिद्रता के कारण उसे अविवाहित रहना पड़ा। लक्ष्मी तथा पद्मावती भारत की हजारों-लाखों लड़कियों की त्रासद यातना और संघर्ष की प्रतीक बन जाती हैं। इनकी वेदना सबकी वेदना तक पहुँच जाती है। भीतर के उमड़ते आवेगों को दबाने के लिए पद्मावती को निरन्तर जूझना पड़ा। बाहर से सब कितना शान्त परन्तु भीतर कितना बवंडर, कितनी हलचल, कितना शोर, कितना द्वन्द। संवेदनशून्य समाज में पद्मावती का भाई उसके तारण के लिए उसका विवाह तांबे के कलश से करा देता है। ''किशोरियों का जैसा बावलापन, तरुणियों के जैसी सौन्दर्यानुभूति और गृहणियों का अपना व ताम्रकलश पद्मावती की आँखों में एकदम छा गया।''[5]

सुहागिन पद्मावती जितनी ही कलशपति के प्रति अनुरक्त होती जाती है, उतनी ही उसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक निर्भयता गहरी होती जाती है, उतनी ही उसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक निर्भयता गहरी होती जाती है और उसका संघर्ष अत्यंत कारुणिक।

'मैमूद' कहानी में जद्दन का संघर्ष ममत्व के धरातल पर है। जद्दन अपने भीतर के मनुष्य बोध से असम्पृक्त नहीं हो पाता है। मैमूद नाम का एक बकरा ही तो है। आखिर उसकी अंतिम परिणति तो गोश्त बनकर मेहमानों के खातिरदारी में ही लगना है, लेकिन जद्दन है कि मैमूद को बेटा मानकर यातना भुगत रही है। वह खुद के भीतर की अकेलापन से परेशान है। सामान्य होने का पूरा प्रयास करती है लेकिन उसके भीतर की संघर्ष-व्यथा, भावना, वात्सल्य, करुणा को समझने के लिए दूसरों के भीतर भी करुणा तथा वात्सल्य भाव का होना अपेक्षित है।

'माता' कहानी की भगवती सामाजिक, पारिवारिक, मानसिक तीनों ही स्तरों पर संघर्षरत है। देह के आवेग को भभूत की रूखी परतों के भीतर दबाने का प्रयत्न किया, भगवती ने और चंचल चित्त को स्थिर करने के लिए जप, तप, व्रत का अवलम्बन लिया। संन्यासिन होना भगवती की चाह नहीं थी, बल्कि पारिवारिक संताप ने ढकेल दिया उस राह पर। भगवती का चिंतामणि पंडा की तरफ आकर्षण होता है। इस द्वन्द में वह जूझती है। भगवती के मानसिक संघर्ष के मूल में समाज का भय है। इस कहानी के माध्यम से शैलेश मटियानी समाज की निमर्मता, क्रूरता और परपीड़न की प्रवृत्ति दिखाई देती है। भगवती व्यथा को सहती जाती है। चिंतामणि का अपने निर्णय से गर्व है। उनकी दृष्टि में जैसा संसार नारायण का होता है, वैसा ही नर का भी होना चाहिए। भगवती एक दिन गाँव वालियों की प्रहारधर्मी कटूक्तियों के वारों को झेलते हुए पूछती है- ''जब तक मैं कोरी एक छड़ संन्यासिनी थी, माता नहीं थी, तब तक तो सभी मुझे माताज्यू, माताज्यू पुकारते थे। 'माताज्यू नमो नारायण' कहते थे। मगर अब जब मैं सचमुच की माता बन गई हूँ, मेरा नारी जनम सफल हो गया है, तो तुम मुझे घृणा की दीठ से क्यों देखने लगी हो बैणा ?''[6]

'बंदिश' कहानी की मिस उपाध्याय का संघर्ष समाज द्वारा तय की गई सीमाओं से है। अपने प्रेमी के साथ राधा पातर सुधारगृह से भाग जाती है। पढ़ी-लिखी मिस उपाध्याय समाज की बंदिशों को नहीं तोड़ सकती हैं। उसमें साहस नहीं है। पिता का क्रूर आदेश मिस उपाध्याय की नियति बन जाती है। छुआ-छूत जाति-पाँति मिटाने की बात करने वाले नेता भी छोटी जातियों के दामाद या बहुएँ लाने की साहस नहीं जुटा पाते हैं। पिता के दोगलेपन की बात से मिस उपाध्याय किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाती है। वह राधा की तरह बन जाना अच्छा मानती है। पिता के क्रूरता से डर कर प्रेमी की जगह पिता द्वारा पसंद के युवक से शादी कर लेती है। प्रेमी चन्द्रशेखर संन्यास की राह चुनता है। राजेश्वरी पति और पुत्र के साथ रहते हुए भी चन्द्रशेखर के लिए ग्लानिग्रस्त रहती हैं और अन्तर्द्वन्द में फंसी रहती है। उसकी अन्तर्रात्मा में एक कचोट सी रहती है। अपने आपसे लड़कर भी वह ईमानदारी का परिचय देती है। अपने पति से कहना चाहती है- 'जीवन में बहुत कुछ ऐसा भी होता है, जिसे संवादों से नहीं ढाला जा सकता है। एक ऐसा मौन भी होता है, जो व्यक्ति के अन्तर्मन के सबसे घने कोलाहल में से उत्पन्न होता है। अपने सिर्फ औरत होने की अवधारणा और एक पत्नी तथा माँ होने की बंदिशों के बीच जो द्वन्द उमड़ता है, उसे आसानी से शब्दों में नहीं कहा जा सकता है।'

एक स्त्री माँ-बहन-पत्नी होने के मध्य निरन्तर जूझती रहती है। जिसका प्रतीक स्वयं राजेश्वरी बनती है। राजेश्वरी सोचती हैं- ''काश ! तुम लोग समझ पाते अपने लिए संन्यासी हो गए पुरुष को देखने पर कोई भी विवाहिता औरत कैसी दुस्सह आत्मग्लानि और कितना जबरदस्त आकर्षण महसूस कर सकती है ? और अपनी इस आसक्ति को पाप की अवधारणा से बदल कर देखना कितना क्लेशदायक होता है।''[7] 'सीखचों पर अटका अतीत' शैलेश मटियानी अपने पात्र चन्द्रशेखर के माध्यम से कहते हैं- ''नारी पुरुष से ज्यादा समर्थ होती है। जितने बड़े अंतर्द्वन्द्व को लेकर कोई पुरुष संन्यास लेने, आत्महत्या कर लेने तक की स्थितियों से गुजर जाए- और फिर क्रूर पशु और चरित्रहीन हो जाए, उतने को कई औरतें इस तरह अपने ही अन्दर निबटा लेती हैं कि शायद उन्हें अपने अतीत की ओर पलट कर देखने की भी जरूरत नहीं होती।''[8]

'इब्बू मलंग' कहानी संघर्षयुक्त है। विधवा शकुन्तला के जीवन की कौंध उसका सम्पूर्ण संघर्ष उद्भासित कर जाती है। तीन बच्चों को जन्म दे चुकी, शकुन्तला चौथे बच्चे को गर्भ में ली है। घरों में बर्तन मांजती हुई जीवन निर्वाह करती हैं। अपने पति को सट्टा खेलने से रोकने वाली पत्नी बच्चों की माँ बनकर स्वयं सट्टा खेल जाती है। अपनी जमा पूंजी शकुन्तला ने दांव पर लगा दी। सट्टा उसके लिए नशा नहीं था। जिन्दगी और मृत्यु के बीच के फासले को बनाए रखने का एक सशक्त माध्यम था। शकुन्तला इब्बू मस्तान के पास पहुँचकर कहती है- ''अरे ओ मस्तान कुल बाईस रूपये तो मैंने अपने कुत्ते के पिल्लों का पेट पालने के लिए बचा रहे थे, अब बना दे मेरे बच्चों के लिए भी यहीं एक मजार और जिन्दा ही दफना दे मुझ कुतिया को यहीं पर।''[9]

इब्बू मस्तान को शकुन्तला की यातना उस कुतिया की तरह दिखाई देती है जो अपनी पीठ पर मूठ तक धँसे हुए छुरे से तड़प-तड़प कर आसमान की तरह मुँह उठाकर चीखती है।

'कपिला' कहानी की नायिका आर्थिक व सामाजिक धरातल पर संघर्ष करती है। कपिला की परिस्थितियाँ शकुन्तला से भिन्न है। पारिवारिक जिम्मेदारी उसे कपिला से 'कप्पू घोडियानी' बना देती है। कप्पू घोडिघ्यानी के लिए रात-दिन का डर-भय नहीं है बल्कि गल्ले समय से पहुँचाने की चिन्ता है। स्त्री सुलभ कोमलता संघर्ष की पीड़ा से इस्पात की तरह ढलता गया है। शैलेश मटियानी कहते है कि ''दूर-दूर के इलाकों तक में कप्पू के पौरुष की चर्चा अगरबत्ती जैसी सुलगती रहती थी।''[10] संघर्ष में सामर्थ्य प्रभावी रहता है। चरित्र की दृढ़ता उसे दैन्य नहीं बनने देती। उसकी दृढ़ता कौतूहल का कारण बन जाती है। बीमार तरुण ध्यान सिंह को पठान की गिरफ्त से बचाती हैं। शैलेश मटियानी लिखते हैं- ''ज्यों-ज्यों ध्यान सिंह की काठी सुधरती गई, त्यों-त्यों कपिला की देह छूटती-दुबली होती गई।''[11] ध्यान सिंह के पौरुष के उभार के साथ कपिला का इस्पाती जिस्म कोमल नारी रूप में बदलता गया है।

'दो दुःखों का एक सुख' की मिरदुला प्रत्येक स्तर पर जूझती है। बेबसी की जिन्दगी जीने को मजबूर है। सूरदास को कोढ़ी करमिया द्वारा पीटने पर तमाशबीनों से बीच-बचाव की उम्मीद करती है। दर्शकों में घृणा का भाव है। अश्लील बातें भी कहते हैं। मिरदुला के भीख के पैसे जगत मिस्त्री ले लेता है। मिरदुला सूरदास के साथ रहती है। करमिया भी उसी कोठरी में सोना चाहता है। मिरदुला को यह पसन्द नहीं है फिर भी आश्रय देने के एहसान के दबाव में विरोध नहीं कर पाती है। करमिया को सह लेना उसकी मजबूरी बन जाती है और करमिया अपनी सभी इच्छा पूरा करता है, फिर भी मिरदुला सूरदास के प्रति गहरी आत्मीयता रखती है। उसके बिछुड़ने की कल्पना मात्र से आँखों में आँसू उमड़ पड़ते हैं। सूरदास के साथ गहरी मिठास है जिसके लिए देह स्तर पर समझौता कर लेती है। कठोर यातना के बावजूद प्रबल जिजीविषा के बूते माँ बन जाती है। शैलेश मटियानी के कहानियों में स्त्री पात्रों के संघर्षों की कमी नहीं है। स्त्री पात्र कहीं-कहीं घुटने टेक देती है लेकिन अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जूझती है तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सफल भी होती है।

'हारा हुआ' कहानी में नायक व खलनायक के बीच का संघर्ष है। एक के जीत में मानवीय मूल्यों की जीत है, वहीं दूसरे की हार में भी उसकी मानवीय संवेदनाओं की जीत होती है। शैलेश मटियानी लिखते हैं- ''अपने आप से लड़ता हुआ आदमी हर स्थिति में सिर्फ हारता है, चाहे फिर अकेले के हाथों हारे या भीड़ के हाथों।''[12] 'शरण्य की ओर' का बसंतलाल अपनी रूप गर्विता पत्नी को बहुत चाहने के बाद भी बांध नहीं पाता। पत्नी उसे छोड़कर चली जाती है लेकिन बसंतलाल उसके प्रति उदार बना रहता है। बसंत के आंखों में वेदना है। 'परिवर्तन' कहानी में उपेक्षित जातियों की सनातन लड़ाई है। देवराम इस संघर्ष को झेलता है, उसके भीतर एक आक्रोश है। पंचायत में देवराम भी एक पंच के रूप में है। अपने ही हलवाहे देवराम को डाँटने की इच्छा ठाकुर के गले में फाँस बनकर रह गई है। 'पुरोहित' कहानी में राधे पुरोहित अपनी मृत्यु के बाद भी अपने को बचाने के लिए संघर्ष करते हैं। आत्मा

की चेतना भाषा बन जाती है। राधे पुरोहित का कहना है कि 'क्या हर मरने वाला मेरी ही तरह अपने तमाम स्वार्थों और मोहों के पुनर्वाचन की स्थितियों से गुजरता होगा। राधे पुरोहित अपने अहंकार को अपनी पुत्री में स्थापित करना चाहते हैं। वह अपने जाने के बाद अपनी पुत्री के माध्यम से अपनी निरंतरता बनाए रखना चाहते हैं। राधे पुरोहित कहते हैं- ''अपने आगे के लिए कोई न कोई विकल्प कोई न कोई लोक रचे ही मनुष्य मर नहीं सकता। जितनी बड़ी भूख के साथ उसने जन्म लिया होता है, उससे कहीं बड़े मोहों और स्वार्थों के साथ वह मरण को लेता है।''[13] राधे पुरोहित को मृत्यु से भय है। मन व मस्तिष्क में एक संघर्ष चलता रहता है।

मटियानी जी की कहानियों के पात्र आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक धरातल पर संघर्षों से जूझते हुए भी मानवीय करुणा और संवेदना को न केवल बचाए रखते हैं, बल्कि उसी के बल पर उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित होते हैं, और कालजयी पात्र बनते हैं- 'चील' का खेलावन, 'प्यास' का शंकरिया 'मिट्टी' का गनेशी 'मैमूद' की जद्दन 'हारा हुआ' का गंडामल पहलवान, 'बिद्दू अंकल' के विद्यासागर 'पुरोहित' के राधे पुरोहित, अहिंसा का जगेसर, 'इब्बूमलंग' का इब्बूमस्तान, 'भविष्य' की शांता अहिरिन, 'कपिला' की कपिला 'भँवरे की जात' की कुंतली, 'परिवर्तन' का देवराम, 'घोड़े' के सोमगिरे बाबा, 'बंदिश' की मिस उपाध्याय 'वापसी' का धरमवीर 'छिलके' की कामिनी, 'माता' की भगवती माता, 'दो दुःखों का एक सुख' की मिरदुला, 'प्रेतमुक्ति' के पाण्डेय जी, 'हत्यारे' के हरिजन, 'शरण्य की ओर' का बसंत लाल इत्यादि ऐसे पात्र है जो परिस्थितियों से जूझते हैं दूसरी ओर अपने अस्तित्व के लिए जूझते हैं। प्रत्येक पात्र की आत्मा में शैलेश मटियानी की आवाज ही ध्वनित होती है।

संदर्भ सूची:

1. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-3, प्रकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 369
2. वही, भाग-4, पृ0 69
3. वही, भाग-2, पृ0 308
4. वही, भाग-2, पृ0 288
5. वही, भाग-1, पृ0 69
6. वही, भाग-2, पृ0 306
7. वही, भाग-2, पृ0 270
8. वही, भाग-2, पृ0 274
9. वही, भाग-2, पृ0 307
10. वही, भाग-2, पृ0 77
11. वही, भाग-2, पृ0 81
12. शैलेश मटियानी की इक्यावन कहानियाँ, विभोर प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 295
13. वही, भाग-2, पृ0 333

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनः एक अवलोकन

राहुल दूबे

शोधछात्र, समाजशास्त्रीय अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया (बिहार)

सारांशिका

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित है यही कारण है कि अधिकतर समाजशास्त्री एक ही परिवर्तन के लिए कभी सामाजिक परिवर्तन और कभी सांस्कृतिक परिवर्तन शब्द का प्रयोग करते हैं या दोनों प्रकार के परिवर्तनो को सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत रखते हैं। सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सांस्कृतिक भिन्नताओ और जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तन से है। समाज का तात्पर्य व्यक्तियों तथा समूहो के बीच होने वाली अंतः क्रिया की व्यवस्था से है जबकि संस्कृति से हमारा तात्पर्य अनेक मूल्यों, विचारो तथा अर्थपूर्ण प्रतीकों की व्यवस्था से प्रतीत होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज की उस संरचना में परिवर्तन का होना है जिसके द्वारा व्यक्ति एक दूसरे से अंत:क्रिया करते हैं। दूसरी ओर सांस्कृतिक परिवर्तन का तात्पर्य उन सीखे हुए व्यवहारों व प्रतीकात्मक व्यवहारो में परिवर्तन होना है जो अतीत की अंतः क्रिया का परिणाम होते हैं और बाद में हमारी भविष्य की अन्त:क्रियाओ को प्रभावित करते हैं समाजशास्त्रीय दृष्टि से हम सांस्कृतिक परिवर्तन में उस सीमा तक रुचि लेते हैं जहां तक वे सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन को इसके विभिन्न अवयवों जैसे- विवाह, परिवार, सामाजिक संरचना, संस्कृति, मूल्य, विश्वास, प्रविधि इत्यादि के आधार पर स्पष्ट करने का एक प्रयास है।

मुख्य शब्दः - संस्कृति, समाज, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन।

संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसमे परिवर्तन न होता हो जैसे व्यक्ति पहले परम्परागत कार्य करता था लेकिन वर्तमान समय में इस प्रकार का कोई बंधन नहीं है कि वह किसी भी प्रकार का व्यवसाय अपना सकता है। व्यक्ति की परिस्थिति उसके लिए परिवर्तन की दिशा तय करती है क्योंकि जिस क्षेत्र में परिवर्तन होता है उसका कोई ना कोई अर्थ एवं अस्तित्व होता है। समाज में प्रत्येक परिवर्तन का सम्बन्ध एक निश्चित नियम के द्वारा होता है। वर्तमान समय में संस्कृति और सभ्यता का परिवर्तन क्रमिक विकास का परिणाम है। प्राचीन काल में मनुष्य का जीवन अत्यंत सरल था परन्तु धीरे-धीरे समय बीतता गया और उनका जीवन जटिल होता गया। यद्यपि यह सत्य है कि सभ्यता के आदिकाल में भी मनुष्य समूहों में एक साथ रहते थे परन्तु उस समय परिवार जैसी संस्था का कोई स्वरुप नहीं था। जब मनुष्य शिकारी अवस्था से पशुपालन और श्रमिक की अवस्था में आया तो परिवार संस्था की उत्पत्ति हुई। परिवार की उत्पत्ति के साथ व्यक्ति को अनेक जिम्मेदारीयों की अनुभूति हुयी जैसे आवास, घर के कार्य, खाना-पीना, बच्चों का पालन-पोषण, सुरक्षा आदि है। इसके साथ ही व्यक्तियों में वैधानिक संतान की इच्छा जागृत हुई जो परिवार के संपत्ति का स्वामी बन सके। परिवार की उत्पत्ति के पश्चात समुदायों का संगठन संस्कृति की विशेषता के आधार पर हुआ और आगे चल कर यहीं से राज्य संस्था की नींव पड़ी। पहले व्यक्ति हाथ से कार्य करता था अब वह औजारों की मदद से कार्य करने लगा। इस प्रकार आर्थिक उत्पादन के तरीके में भी परिवर्तन हुआ। अत: हम देखते है कि सामाजिक विकास एवं प्रगति के फलस्वरूप मनुष्य उत्तरोत्तर परिवर्तन की स्थिति से गुजरता रहा है। सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक जीवन में परिवर्तन से समझा जाता है

क्योंकि व्यक्ति का संबंध सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं पर निर्भर करता है। इन दशाओं में निरंतर परिवर्तन होता रहता है जो सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन का कारक है।

समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय अनुसन्धान उपलब्धियों के आधार पर हम यह से कह सकते है कि परिवर्तन की प्रक्रिया सार्वभौमिक है। यह दुनिया के प्रत्येक आदिम या आधुनिक समाज में व्याप्त है। डेविस का यह कथन है कि- 'व्यक्ति स्थायित्व तथा सुरक्षा हेतु प्रयास कर सकता है, समाज स्थायित्व के भ्रम को प्रोत्साहित कर सकता है, निश्चितता हेतु खोज अक्षुण्य रूप से जारी रह सकती है तथा शाश्वत में विश्वास अटल रूप से दृढ़ रह सकता है तथापि यह तथ्य बना रहता है कि समाज अन्य सभी प्रघटनाओं के समान निरंतर तथा अपरिहार्य रूप से परिवर्तित होता रहता है।' वास्तव में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा बहुत वृहद्, जटिल एवं निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार परिवर्तन कुछ अस्पष्ट, अंतरिम एवं मूल्य तटस्थ है। समाज परस्पर अंर्तसंबंधित अंगों या इकाईयों का संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक संगठन होता है। यह संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक संबंधों का अंर्तजाल है। व्यक्ति अपने सामाजिक संरचना एवं प्रकार्य की परीक्षा करते है जो सामाजिक संबंधो में सहभागी होते है। अत: सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संरचना तथा प्रकार्य में हुए परिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों सामाजिक एवं परिवर्तन से मिलकर बना है। सामाजिक का अर्थ समाज के अनुरूप सामाजिक लक्षणों का होना तथा अंतर को प्रदर्शित करता है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन को कई समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने ढंग से समझते व समझाते हुए इसे अवस्थाओं, सामाजिक संरचना, सामाजिक कार्यो, व्यक्तियों के व्यवहारों, सामाजिक संगठन, सामाजिक ढांचे, सामाजिक प्रकार्यो से संबंधित लिया है। फिचर ने परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- 'परिवर्तन को संक्षिप्त रूप से पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अंतर को कहते है।' अर्थात् परिवर्तन एक तुलनात्मक शब्द है क्योंकि जब हम परिवर्तन का उपयोग करते है तो पूर्व की अवस्था का ज्ञान होना अत्यंत स्वाभाविक हो जाता है और उस अवस्था से भिन्नता का होना परिवर्तन को स्पष्ट करता है। जिंसबर्ग ने सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- 'सामाजिक परिवर्तन से मैं सामाजिक संरचना में परिवर्तन समझता हूँ। उदाहरण के लिए समाज के आकार में उसकी बनावट अथवा भागों के संतुलन में अथवा उसके संगठन के स्वरूपों में हुआ परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है।' सामाजिक परिवर्तन को बड़े ही अच्छे ढंग से अभिव्यक्त करते हुए मैरिल तथा एलड्रिज लिखते है कि 'वास्तविक अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अभिप्राय यह है कि व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या ऐसे कार्यों में लग जाए जो उस कार्यो से भिन्न हो जिन्हें कि वे पहले किया करते थे। समाज का निर्माण एक ढाँचे में ढ़ले हुए मानव संबंधो के व्यापक व जटिल तारतम्य व जाल से होता है। इन संबंधो में सभी व्यक्ति हाथ बढ़ाते है। जब व्यक्तियों के व्यवहारों में परिवर्तन की प्रक्रिया जारी हो तो यह दूसरी प्रकार से सूचित करता है कि समाज में परिवर्तन हो रहा है।' सामाजिक परिवर्तन को समझाते हुए डेविस लिखते है कि 'सामाजिक परिवर्तन से केवल वे ही परिवर्तन समझे जाते है जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढाँचे और कार्यो में घटित होते है।'

विभिन्न समाजशास्त्रियों के विचारो एवम् उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी परिभाषाओ के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उस बोधगम्य प्रक्रिया से है जिससे व्यक्ति किसी निश्चित सामाजिक व्यवस्था की संरचना एवम् प्रकार्य में महत्वपूर्ण रूपांतरण को समझ पाते है। समाज में अन्त:क्रियाएं प्रतिमानित स्वरूप को धारण कर लेती है तो उसे सामाजिक सम्बन्ध कहते है। प्रतिमानित स्वरूप से तात्पर्य, उस निश्चित स्वरूप से है जिसका कुछ निश्चित अर्थ हो। परन्तु किसी सामाजिक संबंध का निर्माण तभी होगा जब वह पद के अनुरूप हो तथा उनके व्यवहार अथवा क्रिया-प्रतिक्रिया की भी अहम भूमिका रहती है। इस प्रकार पद के अनुसार किये गये व्यवहार को भूमिका से सम्बंधित किया जाता है। यही पद एवं भूमिका सामाजिक संबंधो को सुदृढ़ बनाये हुए है। समाज में परिवर्तन की बात की जाये तो हमारा संबंध इस पद एवम् भूमिका में परिवर्तन से होता है। हर समाज में व्यक्तियों के प्रस्थिति एवम् भूमिका में बहुत ही तेजी से परिवर्तन हो रहा है जिसका कारण नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण है। भारतीय समाज भी इन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से अछूता नहीं है। भारतीय समाज को विभिन्न समाजशास्त्रियों ने स्थिर व पारम्परिक समाज से संबोधित किया है क्योंकि पहले लोगों की एक मुख्य प्रस्थिति होती थी और उसी के अनुरूप लोग कार्य किया करते थे लेकिन आधुनिक समाज में उनकी स्थितियों में बहुत ही तेजी से परिवर्तन देखा जा रहा है। दुनिया के विकसित समाजो की तरह वर्तमान में भारतीय समाज में भी अर्जित प्रस्थिति पर जीवन व्यतीत करने की बात अत्यंत सशक्त हो गयी है। इसकी मुख्य वजह यह है कि भारत में अधिकांश लोग यह मानने लगे है कि अर्जित प्रस्थिति धारण करने से उनकी दशा में सुधार होगा। आज की अर्जित प्रस्थिति के निर्णायक तत्व जैसे- शैक्षिक योग्यता, कला, संगीत, नृत्य का ज्ञान आदि

है। सरकार द्वारा चलाये जा रहे अनेक योजनाओं के द्वारा लोगों की अर्जित प्रस्थितियों में निरंतर विकास हो रहा है। अब वे लोग भी शिक्षा प्राप्त कर रहे है जो पीढ़ियों से अशिक्षित चले आ रहे थे। सरकार निम्न वर्गीय लोगो, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गो तथा महिलाओं के उत्थान के लिए लगातार प्रतिबद्ध है। ग्रामीण समाज में अनेक कल्याणकारी योजनाओं की शुरुआत करके गाँव के गरीबों, दलितों तथा वंचितों आदि के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन लाने का पूरा प्रयास किया जा रहा है। सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए अनिवार्य शिक्षा कानून बनाया गया है। अब धीरे-धीरे गाँव के भी सभी बच्चे विद्यालय जाना प्रारम्भ कर दिए है। इसका प्रभाव परिवार के परम्परागत मूल्यों तथा संरचना में आये परिवर्तन के रूप में देखा जा रहा है। कुपोषण मुक्त करने के लिए बच्चों को विद्यालय में ही बना भोजन दिया जा रहा है। गाँव स्तर पर स्वास्थ्य की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के एक महत्वाकांक्षी योजना की शुरुआत की गयी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है अर्थात समाज के निर्माणक इकाईयों तथा सदस्यों के विचार एवं अच्छी स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त होने से समाज बदल रहा है। ग्रामीण समाज के लोग वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली को अपना रहे है। सड़कों के निर्माण से लोगों के आवागमन की सुविधा मिल रही है तथा ग्रामीण-नगरीय सातत्य में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। परम्परागत ग्रामीण समाज में लोगों को जागरूक किया जा रहा है। उन्हें जनसूचना का अधिकार अधिनियम की जानकारी देकर उन लोगो को अपने अधिकारों के प्रति सजग किया जा रहा है। अब लोग धीरे-धीरे किसी भी पहलू पर अपनी बात तर्क के आधार पर प्रस्तुत करने लगे है। बालिका शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण बाल. विवाह की परम्परा अब समाप्ति की ओर अग्रसर है।

सामाजिक परिवर्तन के लिए यह अति आवश्यक है कि बदलते दौर में सामाजिक संस्थाएँ भी संशोधित एवं परिवर्तित हो। भारतीय सामाजिक संगठन में परिवार की यह विशेषता थी कि उस परिवार के मुखिया की आज्ञा का पालन परिवार के सभी सदस्य करते थे और सभी अपने सामर्थ्य के अनुसार पारिवारिक उद्देश्यों को पूरा करने में अपना योगदान देते थे। प्रत्येक सदस्य परिवार में अपने को सुरक्षित महसूस करता था। परिवार का मुखिया भी परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व का बखूबी निर्वहन करते हुए सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करता था तथा संपत्ति पर सामूहिक अधिकार रखता था। लेकिन नगरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण तथा पश्चिमीकरण के प्रभाव के कारण अब परिवार में सदस्यों का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी होता जा रहा और अब व्यक्ति पारिवारिक उद्देश्यों को ज्यादा महत्वपूर्ण न मानकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति में संलग्न है। यही कारण है कि पारिवारिक बंधन ढीले होते जा रहे है। समाज में अब संयुक्त परिवार की जगह एकाकी परिवार बढ़ता जा रहा है। विवाह संस्था भी परिवर्तित हो रही है। विवाह के बदलते हुए स्वरूप के कारण ही वर्तमान में वैवाहिक संबंधो में भी स्थायित्व का अभाव देखा जा रहा है। अब विवाह परम्परागत जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध नही रह गया है और न ही इसमें पहले की तरह धार्मिक कृत्यों की विशेष महत्ता देखने को मिल रही है। पहले बाल-विवाह धार्मिक कृत्य माना जाता था और ऐसा विश्वास था कि जो व्यक्ति ऐसा नही करता है, उसे धार्मिक रूप से कन्यादान का फल नही मिलता है। वर्तमान समय में आधुनिकता से संबंधित उपयोग की वस्तुयें जैसे टी.वी., सिनेमा, मोबाइल फोन इत्यादि के प्रभाव की वजह से बाल-विवाह की प्रथा में उत्तरोत्तर कमी देखी जा सकती है। बाल-विवाह के विरुद्ध सख्त कानूनी प्रावधान है। परम्परागत समाज में विधवा पुनर्विवाह को मान्यता नही प्राप्त थी लेकिन परिवर्तित सामाजिक दशाओ में विधवा पुनर्विवाह को सामाजिक मान्यता मिल रही है। इन संस्थाओ में परिवर्तन के कारण अब सामाजिक संगठन भी परिवर्तित हो रहे है। परम्परागत जाति पंचायतों के अस्तित्व का ह्रास होता जा रहा है जो सामाजिक परिवर्तन से संबोधित है। मैकाइवर तथा पेज ने ठीक ही लिखा है कि- 'आज से दस हजार वर्ष पहले सामाजिक व्यवस्था कैसी थीए उसमे कैसे-कैसे परिवर्तन और पुनर्गठन हुएए परिवार तथा राज्य जैसे मौलिक संस्थाओं में जिस प्रकार परिवर्तन हुए होंगे आदि बातो को व्यक्त करना आज के व्यक्ति के कल्पना शक्ति के बाहर है। सभी युगों में व्यक्तियों ने सामाजिक भविष्यवाणी के साथ चलना चाहा है लेकिन दूरस्थ भविष्य ने सदैव ही उसके सपनों को पराजित किया है।' स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हमारे समाज का जो स्वरूप था उसमें वर्तमान समय में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। आज 21वीं सदी में हम पाते है कि भारत के ग्रामीण तथा नगरीय समाज में व्यापक स्तर पर परिवर्तित घटनाएँ घटित हुई है जिससे हमारे जीवन शैली, भाषा, परम्परा, संस्कृति, रीती-रिवाज, शिक्षा तथा रहन-सहन, विभिन्न प्रकार की आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक स्तरों में व्यापक परिवर्तन हो रहा है। आज समाज में नियोजित तरीके से सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन का प्रयास किया जा रहा है।

सामाजिक परिवर्तन बनाम सांस्कृतिक परिवर्तन

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को दो रूपों में समझा जाता है। एक तो यह कि दोनों परिवर्तन एक है तथा दुसरे कि सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से बड़ा है। समाज के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते है जबकि संस्कृति में होने वाले परिवर्तन को सांस्कृतिक परिवर्तन कहते है। सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध संस्कृति के अभौतिक पक्ष से है तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्बन्ध संस्कृति के दोनों पक्षों भौतिक एवम् अभौतिक से है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक अंग है तथा सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से अधिक व्यापक है। कई समाजशास्त्रियों ने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणाओं में किसी भी प्रकार का कोई महत्वपूर्ण अंतर नही माना है। इन समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस प्रकार के विचार रखने वाले समाजशास्त्रियों में डॉसन और गेटिस, गिलिन और गिलिन तथा लिंटन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डासन और गेटिस ने अपनी पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी' में लिखा है कि- 'सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है क्योंकि समस्त संस्कृति अपनी उत्पत्ति और प्रयोग में सामाजिक है।' इसके विपरीत कतिपय समाजशास्त्रियों जैसे डेविस और मैकाइवर व पेज आदि के मतानुसार सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एक-दूसरे से भिन्न है। इन अध्येताओं की मान्यता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में मौलिक अंतर है। वस्तुत: सामाजिक परिवर्तनए सांस्कृतिक परिवर्तन का एक भाग है। सांस्कृतिक परिवर्तन व्यापक है और सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र सीमित है। डेविस ने इन दोनों में अंतर को बताते हुए लिखा है कि 'संस्कृति की शाखा जैसे- कला, साहित्य, दर्शन, प्राविधि, विज्ञान, साहित्य ज्ञान, फैशन तथा कानून इत्यादि में परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन तथा सामाजिक संगठनो के रूपों एवम् नियमों में भी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है।' इस अंतर की चर्चा मैकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक सोसाइटी में व्यापक आधार पर की है। उन्होंने सांस्कृतिक परिवर्तन में वैचारिक शासन प्रणाली तथा प्रौद्योगिकी आदि परिवर्तन को लिया है। उदाहरण के लिए वर्त्तमान समय में स्त्री शिक्षा के प्रसार ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने में विशेष भूमिका निभायी है। महिलाओं को अब पुरुषों के समान अधिकार मिलने लगे है तथा महिलाएं भी नौकरियाँ करने लगी है। इस प्रकार उनके परिवार के ढाँचे, उनके कार्यो तथा परिवार के लोगो के आपसी सामाजिक संबंधों में भी अंतर आया है। वर्तमान में नगरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप लोग गाँव से नगरों की तरफ आये और वहाँ के रीती-रिवाज, रहन-सहन तथा जीवन शैली में समाजीकृत हो गए फलत: परंपरागत जातिप्रथाए ऊँच-नीच तथा खान-पान के कुछ बंधन को भूलते गए। यह अपने आप में अत्यंत बड़ा सांस्कृतिक परिवर्तन है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सामाजिक परिवर्तन किसी सांस्कृतिक समुदाय में ही प्रतिफलित होता है परंतु वह सम्पूर्ण संस्कृति को न छूकर उसके सामाजिक पक्ष को ही परिवर्तित करता है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन समाज के संरचना और उसके प्रकार्यो तक सीमित है वही सांस्कृतिक परिवर्तन इसके साथ-साथ और विस्तृत है। यह आचार, कानून, ज्ञान, कला, विश्वास, फैशन, प्रथा, विज्ञान, परम्परा, दर्शन प्रविधि और आदतों को भी सम्मिलित करता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना का निर्माण कर सकता है, उसमे परिवर्तन ला सकता है या परिवर्तन लाने की कोशिश कर सकता है। परिवर्तन मानव समाज का एक शाश्वत सत्य है। इसकी उत्पत्ति या व्यक्ति के सामाजिक सांस्कृतिक विकास व् परिवर्तन उस समय के निर्धारित मानकों के अनुसार ही होता है। यदि हम समाज के किसी विशेषता को स्थाई समझते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि वह तथ्य वास्तव में स्थाई है बल्कि वास्तविकता तो यह है कि या तो उसमें होने वाले आंतरिक परिवर्तन को हम देख नहीं पा रहे हैं अथवा परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि उसका अध्ययन करने के लिए हम प्रतीक्षा नहीं करते। चुकि संस्कृति व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक संबंधों को निश्चित करने और सामाजिक संरचना को एक विशेष रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण है अत: जैसे ही संस्कृति की इन विशेषताओं में परिवर्तन आता है यह व्यक्ति की आदतों विचारों और व्यवहारों को प्रभावित करता है जिसका प्रभाव सामाजिक ढांचे पर पड़ता है। हर्सकोविट्स ने संस्कृति को पर्यावरण का मानव निर्मित भाग कहा है। मैलिनोवस्की ने इसे मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति का साधन कहा है। जब समाज का ढांचा बदलता है व्यक्ति की आवश्यकता भी बदलती है फलस्वरुप सामाजिक विशेषताओं में भी परिवर्तन आता है। संस्कृति के ही संरचनात्मक या प्रकार्यात्मक पक्ष में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक.सांस्कृतिक परिवर्तन के रूप में समझा जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- व्यास, दि. (2014). सामाजिक सांस्कृतिक निरंतरता एवम् परिवर्तनण् जयपुररू रावत पब्लिकेशन्स।
- Singh, Y. (2012). Modernization and Its Contradictions: Contemporary Social Changes in India. *Polish Sociological Review*, (178).
- शर्मा, के. एल. (2010). भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तनण् जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
- सिंह, जे. पी. (2010). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्लीः पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड
- Davis, K. (2007). Human Society. Delhi: Surjeet Publications.
- सिंह, वाई. (2006). भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण. जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
- रावत, ह. क. (2001). समाजशास्त्रीय चिंतन एवं सिद्धांतकार. जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।
- सिंहा, स. (2001) संस्कृति–विमर्श. बीकानेरः वाग्देवी प्रकाशन।
- Maciver, R. M. and Page, C. H. (1985). Society. Delhi: Macmillan India Ltd.
- श्रीनिवास, एम. एन. (1967). आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्लीः राधाकमल प्रकाशन।

अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित दलित काव्य

संगीता

शोध छात्रा, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0श0मि0रा0पु0वि0वि0 लखनऊ

डॉ० यशवन्त वीरोदय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0श0मि0रा0पु0वि0वि0 लखनऊ

डॉ0 अम्बेडकर दलित संघर्ष और जागरण के प्रतीक थे। डॉ0 अम्बेडकर ने 'शिक्षित बनो' संगठित हो' और 'संघर्ष करो का जो नारा दिया था, उसका दलित समाज पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। डॉ0 अम्बेडकर की प्रेरणा से दलित, भारतीय समाज में सम्मान पाने के लिए संघर्ष कर रहा है और स्वालम्बन की तरफ बढ़ रहा है।

डॉ0 अम्बेडकर ने सामाजिक बुराईयों से संघर्ष किया। वर्ण व्यवस्था की दीवारों को तोड़ने का प्रयास किया, किन्तु जब हिन्दू धर्म ने इस बुराई को दूर नहीं किया, तो उन्होंने अपने लाखों समर्थकों के साथ समतावादी बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया, और वे बोधि हो गये। डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों के लिए राजनीतिक संघर्ष किया। पूना पैक्ट करते हुए जहाँ उन्होंने देश बचाया, वही दलितों को राजनीतिक अधिकार भी दिलाया। संविधान की रचना कर उन्होंने देश का गौरव बढ़ाया, दलितों के स्वाभिमान को भी ऊँचा किया।

डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान का स्वरूप लोकतांत्रिक, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष बनाकर देश के समस्त लोगों को बराबरी का दर्जा दिलाया। डॉ0 अम्बेडकर पर हिन्दी में कई महाकाव्य और काव्य रचे गये है। दलित साहित्य के प्रेरणा स्रोत डॉ0 अम्बेडकर ही है। सबसे पहले उन्होंने ही 'जनता' तथा 'मूकनायक; साप्ताहिक पत्र निकालकर दलितों की अभिव्यक्ति के महत्व से परिचित करवाया था। तभी महाराष्ट्र में दलित साहित्य अस्तित्व में आया और आज दलित साहित्य ही मराठी साहित्य की मुख्य धारा है। प्रसिद्ध मराठी दलित साहित्यकार डॉ0 गंगाधर पानतावणे ने लिखा है कि- ''हमारे साहित्य की प्रेरणा केवल डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर और उनकी क्रान्तिकारी विचार धारा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। कई समालोचक दलित साहित्य का रिश्ता कभी मार्क्सवाद से, कभी हिन्दूवाद से या कभी नीग्रो साहित्य से जोड़ते है। मै स्पष्ट करना चाहता हूँ कि हमारे दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवादी है, न हिन्दूवाद है, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अम्बेडकरवाद है। नीग्रो साहित्य तथा दलित साहित्य में प्रतिबिम्बित व्यथा, वेदना तथा मानवीय आक्रोश है, लेकिन नीग्रो अछूत नहीं थे और न ही हैं। भारतीय दलित अछूत था और अछूत है। छुआछूत तो भारतीय जीवन की पहचान है। बाबा साहेब ने इस सन्दर्भ में एक नये शब्द की खोज की। उन्होंने कहा भारत में अपृश्यता गहरी और भीषण है। वह धर्म का आधार है। अछूत ने गुलामी से ज्यादा क्रूर है।''[1] डॉ0 अम्बेडकर ने इस क्रूरता को जीवनभर भारत में भोगा और इससे लड़े। विदेशों में अपने अध्ययन के दौरान उन्होंने मानवीय गरिमा का अनुभव किया कि किस तरह विश्व में व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व गुणों और अवगुणों के कारण सम्मान मिलता है, उनकी जाति के कारण नहीं, इसीलिए जब डॉ0 अम्बेडकर को भारत का संविधान बनाने का अवसर मिला, तो उन्होंने समानता को मौलिक अधिकार घोषित किया। डॉ0 अम्बेडकर ने वर्ण जाति को नकारकर, नारी को शिक्षा और समानता का अधिकार प्रदान किया है। उनके चिन्तन पर बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले

आदि क्रान्तिकारी महापुरूषों का बहुत अधिक प्रभाव था। डॉ0 अम्बेडकर का चिन्तन बुद्ध, कबीर और फुले की जीवतंता का समावेश है। डॉ0 जयप्रकाश कर्दम के अनुसार- ''डॉ0 अम्बेडकर का अपना एक सुदृढ़ समुन्नत और सुखी, सम्पन्न राष्ट्र का सपना था, जिसमें सब समान हों तथा सब परस्पर प्रेम, सहयोग और बन्धुता के साथ रहें। कोई छोटा, बड़ा, ऊँच, नींच या छूत-अछूत न हो। इसके लिए उन्होंने जाति विहीन और वर्गहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की। समाज राजनीति, धर्म का कोई क्षेत्र ऐसा नही, जिसमें डॉ0 अम्बेडकर ने विचार एवं कार्य न किया हो। वैचारिक रूप से वह राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र के, सामाजिक क्षेत्र में मानववाद के, आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद के, धार्मिक क्षेत्र में बुद्धवाद के तथा दार्शनिक क्षेत्र में अन्तिम और अनात्मवाद के पक्षधर रहे। किसी भी प्रकार की असमानता और अन्याय का उन्होंने सदैव विरोध किया।''[2] इस अन्याय और शोषण से मुक्ति के लिए उन्होंने 'शिक्षा, संगठन और संघर्ष'' का नारा दिया था। उन्होंने अपने चिन्तन के द्वारा बताया था कि अस्पृश्यता, जातिवाद पर आधारित है, इसलिए शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि- अम्बेडकरवाद जाति भेद के अन्त का आधुनिक विचार है। बाबा साहब ने हिन्दू धर्म में विषम व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष किया, लेकिन जाति व्यवस्था ने विषमता का पालन पोषण किया।''[3]

जाति व्यवस्था ने दलित समाज का शोषण किया और दलितों पर पीड़ादायक प्रतिबन्ध लाद दिये। दुर्बलता, दरिद्रता और अज्ञानता के कारण दलित समाज लूटा गया। इसलिए बाबा साहेब ने आत्म सम्मान निर्मित करने की बात कहीं। हिन्दी के दलित साहित्यकार इस जाति व्यवस्था के विरूद्ध लिख रहे है। दलित कवि माता प्रसाद ने लिखा है कि-

''मानुष न पैदा होत यहाँ, जातियों से आप,
कंटक बन वह मढ़ि रही, मिल कष्ट है पाय।''[4]

इसी के सन्दर्भ में डॉ0 सी0बी0 भारती को कविता ''जाति'' में वे दलित के उपेक्षित किये जाने पर लिखते है-

सभी गाये/ गाये है जैसे। सभी शेर/ शेर है जैसे।
सभी मनुष्य। मनुष्य हैं वैसे ही/ मनुष्य की जातियाँ/हो नहीं सकती कभी
भी हो सकती है/जातियों की आरोपित प्रभा जरूर,
पर प्रभा होती नही कभी भी/ डाली जाती है स्वार्थवश,
खुदगर्जी की नियम से/इसलिए यह लाजमी भी है कि थूके/उस प्रथा पर
करती हो जो मनुष्य का विरोध/जो तोड़ती हो/मनुष्यता को रिश्तो को''[5]

डॉ0 अम्बेडकर ने अपने आन्दोलनों में हिन्दू धर्मशास्त्रों का विरोध किया था। हिन्दू दलित साहित्यकारों के सृजन में हिन्दू धर्मशास्त्रों का दहन की बात देखने को मिलती है। दलित नायकों पर रची कविताओं के अतिरिक्त डॉ0 अम्बेडकर से प्रभावित और अनुप्राणित कवियों ने दलित जीवन की यंत्रणाओं उनके संघर्षो व उनकी जीवन स्थितियों पर भी अनेक लेखकों ने अपनी कविताएँ प्राकशित की है। इस संकलनों में ओम प्रकाश बाल्मीकि का सदियों का संताप, बस्स बहुत हो चुका, डॉ0 एन0सिंह का दर्द का दस्तावेज मलखान सिंह का 'सुनो ब्राह्मण, सुशीला टाकभौरे का यह तुम भी जानो, कुसुम वियोगी का 'व्यवस्था के विषधर' सी0बी0 भारती का 'आक्रोश' आदि शामिल है। इन कवियों के अतिरिक्त मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती, सोहनपाल सुमनाक्षर, प्रेमशंकर पुरूषोत्तम, सत्यप्रेमी, स्नेही, जयप्रकाश कर्दम, श्याम सिंह शाशि, गुरू प्रसाद, दयानन्द बटोही, डॉ0 सुखवीर सिंह, चन्द्र कुमार बरठे आदि अन्य अनेक कवियों के या तो काव्य संकलन प्रकाशित हुए है या उनकी कविताएं पत्र पत्रिकाओं में छपी है।

इक्कीसवीं सदी के दलित एजेण्डे में दलित वर्ग द्वारा बौद्ध धर्म को दलित अस्मिता का सांस्कृतिक प्रतीक बनाना व साथ ही ईसाई व मुसलमान धर्म अपना चुके दलितों को आरक्षण का लाभ दिलाना भी शामिल है।

महाराष्ट्र में ज्योतिबा व सावित्री बाई फुले द्वारा दलितों में प्रारम्भिक जागरण आन्दोलन के बाद बीसवीं सदी में डॉ0 अम्बेडकर ने ही इस देव-शक्ति को सही अर्थो में जगाया। जर्मनी के विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त डॉ0 अम्बेडकर ने इस नियम को तो तोड़ दिया। कि बुद्धि के मामले में दलित किसी भी तरह तथा कथित उच्च जातियों से कमतर है। अपनी अथक लगन से डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों में सशक्त जागृति आन्दोलन विकसित किया। 1927 में उन्होंने दलितों के लिए चावदार झील से पानी नहीं लेने के अधिकार के लिए सत्याग्रह किया। दलितों को इस झील से पानी नहीं लेने दिया जाता था। भारत में बौद्ध धर्म के बाद

पहलीबार अस्पृश्यता के खिलाफ वास्तविक आन्दोलन शुरू हुआ।

डॉ0 अम्बेडकर ने दावा किया कि भारतीय समाज में दलितों की स्वतन्त्रता है। वे न हिन्दू है, न मुसलमान और मुसलमानों की तरह दलितों के लिए भी असेंबली में आरक्षित सीटों की मांग की। डॉ0 अम्बेडकर और महात्मा गाँधी के बीच इस पर समझौता हुआ। 24 सितम्बर, 1932 को हुए इस समझौते को 'पूना पैक्ट' कहा गया, इस पैक्ट द्वारा अम्बेडकर ने दलितों के लिए सरकारी नौकरियों मं आरक्षण की व्यवस्था करवाई। डॉ0 अम्बेडकर को भारत का संविधान बनाने का अवसर मिला, जिनके द्वारा उन्होंने दलितों के लिए कुछ और रियायतें भी हासिल की। दलितों की बड़ी संख्या तो गरीबी व अमानवीय स्थितियों में जीने को मजबूर थी और करोड़घें दलित छुआछूत की समस्या से भी रूबरू थे।

साठ वर्ष की आजादी, वर्षो की आरक्षण नीति, मण्डल आयोग से उत्पन्न राजनीतिक उथल-पुथल के बाद यद्यपि भारत में शक्ति शन्तुलन कुछ हद तक दलितों के पक्ष में हुआ है, फिर यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है कि दलित वर्ग भारतीय समाज की मुख्य धारा में सामाजिक व सांस्कृतिक रूप में पूरी तरह समाहित हो गया है।

दलित शोषण आज भी जारी है। सवर्ण जातियाँ आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती है। कहीं उन्हें जिन्दा जलाया जाता है तो कहीं उनकी वस्तियों में आग लगा दी जाती है। सुशीला टाकभौरे का काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' के बाद उनके काव्य संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' 2005 में प्रकाशित हुआ।

सुशीला टाकभौरे की कविता 'यातना के स्वर' में उन्होंने दलित जातियों की यातनाओं, समस्याओं और वर्तमान स्थिति का स्वर दिया है। हिन्दू धर्म से जुड़ी इन दलित जातियों के समक्ष अनेक प्रश्न उठाये गये है, उनकी समस्याओं का हल सुलझाया गया है-

दलित-पीड़ित, अपाहिज पीढ़ियाँ,
न कुछ समझ पाई, न कुछ कह पाई
अपना दुःख दर्द।
अन्याय अत्याचार को
समझती रही जीवन का यथार्थ,
कर्मो का फल, ईश्वर का श्राप।
पाप-पुण्य से भ्रमित, वे नहीं जान पाई,
जीवन में प्रगति का मार्ग।'[6]

रजनी तिलक सावित्री बाई फुले को स्त्री-मुक्ति को पहली शिक्षिका मानती है और अपने रचना वर्ग में भी वे उनसे मूलतः प्रभावित है। दलित कविता इसलिए दलित कविता है, क्योंकि उसमें रचनाकार स्वयं एक भोक्ता के रूप में अपनी अनुभूतियों की चित्रित करता है, वह सहानुभूति से नहीं जन्म लेती वरन् स्वपीड़ा का अनुभूति से जन्मती है। इसलिए दलितों के जीवन पर लिखे गये उस सम्पूर्ण साहित्य पर सवाल उठाये जा सकते है, जिसे दलितों ने नहीं लिखा। ऐसा दलित साहित्य जीवन से दूर रहकर लिखा गया। रजनी तिलक ने 'हैरान हूँ' कविता में ऐसे लेखकों पर हैरानी व्यक्त की है जो उन्होंने दलित उत्पीड़न सहा ही नही और स्त्री-अपमान झेला नहीं, तब दलितों के दर्द को कैसे शब्द दे दिये?

कौन है वो,
नारी-सी जिल्लत झेली नहीं,
दलित-उत्पीड़न सहा नहीं,
महसूस करते हैं, हो भाव विभोर
मार्मिक कविताएँ लिखते हैं।
मै हैरान हूँ
उन्होंने हमारे दर्द,
गीतों में पिरोये कैसे?'[7]

इस प्रश्न को वे 'पुस्तकें कहाँ है' कविता में भी उठाती है-

पुस्तकें जो मै देख रही हूँ,
जिक्र नहीं,
कागज बीनते, भूखे-नंगे
बच्चों की मानवेत्तर दुर्दशा का।''[8]

रजनी तिलक की चिन्ता गन्दी वस्तियों और नालों के किनारे जीती-भरती जिन्दगियों की मुक्ति के लिए है, जिनके लिए इस देश का न शासक वर्ग चिन्तित है और न भद्र वर्ग। आजाद भारत की बागडोर जिन पूँजीपतियों, ब्राह्मणों और राजा-महाराजाओं के हाथो में आयी, उन्होंने राज-व्यवस्था का सारीताना बाना अपने हितों के लिए बुना। उन्होंने लाखों दलित-पिछड़ों और नंगे भूखे लोगों को इसी हालत में रहने देने के लिए छोड़ दिया, जिसमें वे पहले से रहते आ रहे है। जो योजनाएँ बनायी गयी, वें भी कागजी ही साबित हुई। यहाँ तक कि निःशुल्क शिक्षा और रोजगार की गारन्टी योजना का प्रावधान भी सरकार को जनान्दोलनों के दबाव में करने पड़े और वह भी आजादी के पचास साल गुजर जाने के बाद। लेकिन अब ये गरीब लोग जागरूक होने लगे है। रजनी तिलक 'कौन' कविता में इसी यथार्थ को रेखांकित करती है-

कौन पिछड़ रहा है,
कौन पढ़ रहा है इस देश में,
किसे परवाह है, उनके मिट जाने की
सिर पर मैला ढोते यह सड़को पर भीख मांगते,
कौन जानता है वे कहाँ रहते है?
घरो में जगलों में, सड़को पर या फुटपाथ पर
क्या खाते हैं उनके बच्चे, कैसे जीते हैं ये?''[9]

लेकिन कवयित्री कहती है? अब ये बच्चे बड़े हो गये हैं और अब उनमें लाल क्रान्ति पैदा होने लगी है।

योजनाएँ बनी, मगरमच्छी आँसू,
समुद्र मे तूफान की सुगबुगाहट है,
आसमान लाल है,
आसमान में पक्षियों का शोर है,
ठहरों, वे अब खड़े हो रहे हैं।''[10]

1962 में जन्में असंग घोष उनकी पहली कविता संग्रही 'खामोश नहीं हूँ मै' नाम से 2001 में प्रकाशित हुआ। असंग घोष की कविता में भरपूर दलित होना हैं और समाज व्यवस्था के खिलाफ परिवर्तन की लड़ाई है। हीरा डोम ने अपनी कविता पर भगवान की दीन-बन्धु की छवि पर सवाल उठाते हुए उसे दलित विरोधी घोषित किया था। असंग घोष भी आखिर क्यों कविता में दलितों पर होते अत्याचारों को रोकने में भगवान को पत्थर दिल बताते है यथा-

हाथों में नाना प्रकार के शास्त्र धारित भगवान,
मनुवाद को स्थापित करने,
युद्ध के लिए सदा तैयार दिखते, पर
किसी भी रोशनी में,
कभी भी दिखायी नहीं दिये,
शिखा धारियों के षड़यत्रों को रोकते,
दलितों पर होते दमन को थामते,
शस्त्रधारी पत्थर दिल भगवान।''[11]

असंगघोष की कविता-कर्म निरन्तर जारी है। उनके पास एक सशक्त भाषा और गहन सामाजिक अनुभूतियाँ है। उनकी कविता के बेहतर विकास की अपेक्षा की जाती है।

जीवन की सार्थकता उसको जीने में है। प्रतिकूल परिस्थितियों में हिम्मत न हारना तथा संघर्ष करके अपनी राह बनाना कौशल भी है और उन मूल्यों का सम्मान भी, जो जीवन को मूल्यवान बनाते है। इसमें न रागद्वेष है, न कटुता और न किसी तरह की हिंसा का भाव। मूल्य ही जीवन को मूल्यवान बनाते है। प्रेम मानव जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है। मनुष्यता के गायक और उद्घोषक कवि दामोदर मोरे की कविताओं में सर्वत्र प्रेम है। मनुष्य और मनुष्यता से लेकर प्रकृति और पर्यावरण तक के प्रति प्रेम। उनके इस कविता संग्रह 'अग्नि शिल्प में सर्वत्र प्रेम का यह स्वर सुनाई देता है। जाति और सम्प्रदाओं में बंटे रहकर मनुष्यता न ही रह सकती है। और न मनुष्यता के प्रति प्रेम पैदा हो सकता है। उनके काव्य संग्रह की पहली कविता 'कबीर' ही इसका परिचय दे देती है। जिसमें वह कहते हैं-

भगवे बोले, मस्जिद तोड़ो,
हरे बोले, मन्दिर तोड़ो,
तिरंगा कबीर बोला, किसी का दिल मत तोड़ों।''[12]

दामोदर मोरे की कविताओं का मुख्य स्वर प्रतिकार है। समाज संस्कृति से लेकर आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त विषमता और विसंगतियों पर प्रहार के माध्यम से मानव विरोधी व्यवस्था मूल्य और प्रवृत्तियों का प्रबल प्रतिकार उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। प्रतिकार को मानवीय संवेदना के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण काम दामोदार ने किया है। मानवीय संवेदना का जैसा अद्‌भुत चित्रण 'कोयल' कविता में हुआ है। कवि के अनुसार कोयल की कुहुक में शोषितों की वेदना है, यथा-

कोयल से मैने पूछा-
रात-दिन तुम क्यों कुहुंकती हो?
वह बोली-
शोषितों की वेदना से मै तड़प रही हूँ।''[13]

साहित्य मनुष्य के लिए होता है और मानवे कल्याण के लिए होता है। साहित्य का सारा संघर्ष मनुष्यता की रक्षा के लिए और उसकी स्थापना के लिए होता है। कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि साहित्य के अर्थ, उद्देश्य और उपादेयता सभी दृष्टियों से दामोदर मोरे की ये कविताएँ बेहतरीन कविताएँ है। सधी कलम के कौशल से अधिक ये कविताएँ एक एक्टिविस्ट की चेतना की उद्‌भूति है। पंचशील की सुगंध से महकती ये कविताएँ साहित्य को नया मुहावरा और सौन्दर्य प्रदान कर रही है।

भारतीय समाज की विषमता वर्ण जाति व्यवस्था के दुष्परिणाम स्वरूप वर्ण व्यवस्था का अतिशूद्र, अन्त्यज, अस्पृश्य वर्ग हजारों साल से सामाजिक-आर्थिक सभी तरह के मानवीय अधिकारों से वंचित, उपेक्षित, शोषित पीड़ित और दमित या दलित रहा है। मनु स्मृति के विधान व्यवस्था वादियों के निर्देश से संचालित सवर्ण-सामंत द्वारा धन सम्पत्ति छीनकर उन्हें दीनहीन और दास बनाया गया। आजीविका के संसाधन उनके पास नहीं है। दूसरों के घर खेत या कारखानों में मेहनत मजदूरी करके किसी तरह अपनी आजीविका चलाना उनकी त्रासदी है। उनके श्रम का उचित मूल्य उन्हें नहीं मिलता बहुत से मजदूर बंधुआपन के शिकार है। सामाजिक आर्थिक परतंत्रता की दोहरी मार ने उनके अस्तित्व को पूरी तरह कुचल कर रख दिया है। निरन्तर हिंसा और दमन की यातनाओं से आतंकित कर जीवित लाश बना दिये गये दलितों पर प्रतिदिन होने वाले अत्याचार की घटनाएँ इस सत्य से कब रूबरू कराती है। डॉ0 जी0वी0 रत्नाकर की कविता संग्रह 'मिट्टी की पाटी' की कविताएँ दलित जीवन के इन्हीं दग्ध अनुभवों की सार्थक अभिव्यक्ति है।

दलितों को कभी खाने के लिए पेट भर, अच्छा अन्न नहीं मिला। आज भी देश के बहुत से गाँवों में दलित को पेट भर अन्न नहीं मिलता है और जो मिलता है, उसमें गेहूँ, चावल आदि न होकर ज्वार, बाजरा आदि होता है, जिन्हें सम्पन्न समाज प्राय: जानवरों को खिलाता है। कवि रत्नाकर की संवेदनशीलता ने दलित जीवन के इस मार्मिक यथार्थ को भी अभिव्यक्त किया है यथा-

शर्दी से ठिठुर कर कब्रिस्तान को पहुँच गया है/
दाढ़ा सोमा नागय्या/आकाश में गूँज उठी/दादा

सोमी की बातें....../मुट्ठी मर खाना के लिए/
ही पूरा जीवन/तड़पते है।''[14]

अत: अन्त में निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आज हिन्दी साहित्य में दलित विद्या अपने चरम बिन्दु पर है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि समय और समाज के ज्वलंत सवालों में निरन्तर जूझते-टकराते हुए दलित कविता पिछले पचास वर्ष की अपनी यात्रा के दौरान विभिन्न पड़ावों को पार कर आज जिस मुकाम पर पहुँची है और जिस दुनिया के निर्माण हेतु प्रयासरत् रही है, वह मनुष्य और मनुष्यता की दुनिया है, जो मानवीय समानता, स्वतंत्रता, प्रेम, सद्भाव और सह-अस्तित्व का आधार है। मनुष्यता होगी तो दलितों के जीवन का अंधकार मिटेगा, उनके अंदर आत्मविश्वास पैदा होगा। उनके जीवन में सबेरा होगा। दलित कविता को इस अंधकार को मिटने और सुबह होने का पूरा भरोसा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दलित कविता विसंगति और विषमताओं के प्रतिकार तथा समता, न्याय और मानवीयता की पक्षधरता की कविताएँ है। दलित कविता व्यवस्था के प्रति विद्रोह और समाज-परिवर्तन की आग है, जो निरन्तर बेचौन करती है।

संदर्भ सूची:-

1. दलित दर्शन की प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-236
2. दलित दर्शन की प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-237
3. दलित दर्शन की प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-237
4. दलित दर्शन की प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-237
5. दलित दर्शन की प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-237
6. मेरे काव्य संग्रह सुशीला टाकभौरे, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-119
7. दलित काव्य का संघर्ष, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-257
8. दलित काव्य का संघर्ष, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-257
9. दलित काव्य का संघर्ष, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-258
10. दलित काव्य का संघर्ष, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-258
11. दलित काव्य का संघर्ष, कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-291
12. दलित कविता समकालीन परिदृश्य, लेखक जय प्रकाश कर्दम, अमन प्रकाशन, कानपुर पृष्ठ-104
13. दलित कविता समकालीन परिदृश्य, लेखक जय प्रकाश कर्दम, अमन प्रकाशन, कानपुर पृष्ठ-106
14. दलित कविता समकालीन परिदृश्य, लेखक जय प्रकाश कर्दम, अमन प्रकाशन, कानपुर पृष्ठ-109

मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में बढ़ता प्रदूषण का प्रकोप: उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में

हंसा वर्मा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल.सि.म.रा.स्ना.महा., पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड

डॉ० सरोज वर्मा

शोध निर्देशक, एसोसियेट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, ल.सि.म.रा.स्ना.महा., पिथौरागढ़, उत्तराखण्ड

1. सारांश -

आज सम्पूर्ण विश्व जलाभाव से संतृप्त है। पृथ्वी के सम्पूर्ण जल का बड़ा हिस्सा सागरों और महासागरों में विद्यमान है जबकि बहुत कम जल पीने योग्य है। ये पीने योग्य जल हिमनदों, नदियों, झीलों, झरनों, तालों तथा अन्य स्त्रोतों से प्राप्त होता है। पृथ्वी में जल की उत्पत्ति के लिए हाइड्रोलॉजिकल चक्र है, पृथ्वी की आर्द्रता और समुद्री जल का सूर्य के ताप से वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में चला जाता है और वहां धूलकणों से मिलकर बादल का निर्माण करता है। बादलों में आर्द्रता की अधिकता के कारण जल, वर्षा या हिम के रूप में पुन: पृथ्वी पर आता है, इसी को जल चक्र या हाइड्रोलॉजिकल चक्र कहा जाता है। वैश्विक सन्दर्भ में भारत के पास मात्र 4 प्रतिशत जल है। उत्तराखण्ड भारत का एक हिमालयी राज्य है। यहां अनेक प्रकार के परम्परागत जलस्त्रोत है जो प्राचीनकाल से ही इस क्षेत्र की जलापूर्ति करते आये हैं। परन्तु आज इन जलस्त्रोतों का अस्तित्व खतरे में है, वैसे तो जलस्त्रोतों के सम्मुख अनेक चुनौतियां हैं जिनमें प्रदूषण प्रमुख चुनौती हैं।

2. प्रस्तावना-

अस्तुत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयों नाम नगाधिराज:।

पूर्नापरौ तोयनिधि: वगाह्य स्थित: पृथिव्या इव मानदण्ड:।। - कुमारसंभव 1/1

नागाधिराज हिमालय की तलहटी में बसा उत्तराखण्ड राज्य देवभूमि के रूप में सदैव से ही विख्यात रहा है। हिमालय के मध्यवर्ती क्षेत्र का अंग होने के कारण इसे भौगोलिक रूप से 'मध्य हिमालय' कहा जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इस क्षेत्र को आर्यो का निवासस्थल माना गया है। उत्तराखण्ड मात्र हिमालयी नदियों, पहाड़ों, वन सम्पदा तथा आबादी का एक भू-खण्ड ही नहीं है वरन् यह असीम आस्था, आध्यात्मिक ज्ञान का धर्म तथा कर्मक्षेत्र भी रहा है। भारतीय ऋषियों तथा भूगोलवेत्ताओं के अनुसार हिमालय के पाँच खण्डों (नेपाल, कूर्मांचल, केदार, जलंधर, कश्मीर) में से कूर्मांचल और केदारखण्ड ही उत्तराखण्ड हैं यथा-

खण्डा: पंच हिमालयस्य कथिता, नेपाल-कूर्मांचलौ।

केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रूचिर: कश्मीर-संज्ञोऽन्तिम:।। (स्कन्दपुराण)

उत्तराखण्ड का कुल क्षेत्रफल 53483 वर्ग किलोमीटर है, इसका अक्षांशीय विस्तार 28°7' से 31°4' उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तरीय विस्तार 77°7' से 81°1' पूर्वी देशान्तर तक है। इसके दो मण्डल गढ़वाल मण्डल तथा कुमाऊँ मण्डल हैं। राज्य में कुल

13 जनपद हैं। 07 जनपद गढ़वाल मण्डल में और 06 जनपद कुमाऊँ मण्डल में स्थित हैं। राज्य की सीमाएँ चीन (तिब्बत) तथा नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को स्पर्श करतीं है। पांच जनपद उत्तर-प्रदेश और दो जनपद हिमांचल प्रदेश की सीमा को स्पर्श करते हैं, राज्य की भौगोलिक बनावट में पर्याप्त भिन्नता है यहां कहीं ऊँचे पर्वत, कहीं मैदान (बुग्याल) कहीं सदानीरा नदियां तो कहीं झीलें और झरने है। जलस्त्रोतों की यदि बात की जाये तो यह क्षेत्र अनेक प्राकृतिक और मानव निर्मित जलस्त्रोतों से परिपूर्ण है।

जलस्त्रोत वह स्त्रोत हैं जिनके माध्यम से हम जल प्राप्त करते है। मध्य हिमालयी क्षेत्र उत्तराखण्ड में जल उपलब्धता के स्तर में पर्याप्त विविधता पायी जाती है। सम्बन्धित क्षेत्र के निवासियों द्वारा क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के अनुरुप भिन्न-भिन्न प्रकार के स्त्रोतों का निर्माण किया गया। यहां प्राकृतिक व मानव निर्मित दोनों ही तरह के स्त्रोत है। यहां के प्रमुख जलस्त्रोतों में ग्लेशियर, नदियां, झीलें, झरने, तालें, नौले-धारे, चाल-खाल, गूल तथा सिमार आदि है। ये जलस्त्रोत ही है जिन्होंने विषम भौगोलिक परिस्थिति में भी यहां के जीवन को अपने अमृतरूपी जल से सींचा है। पहाड़ के जीवन को सींचने वाले ये जलस्त्रोत आज प्रदूषण का दंश झेल रहे हैं।

3. शोध शीर्षक - मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में बढ़ता प्रदूषण का प्रकोपः उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में

4. शोध के उद्देश्य -

- मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में बढ़ते प्रदूषण का अध्ययन करना।
- जलस्त्रोतों में बढ़ रहे प्रदूषण के प्रभावों को उजागर करना।
- समाज के समक्ष जलस्त्रोतों के अस्तित्व के प्रति चेतना जागृत करना।
- वर्तमान परिपेक्ष में जलस्त्रोतों की उपादेयता का निरुपण करना।

5. शोध विधि - ऐतिहासिक अनुसंधान विधि एवं वर्णनात्मक विधि।

6. मुख्य शब्द - मध्य हिमालय, जलस्त्रोत, प्रदूषण, रोकथाम।

7. कार्यान्वयन - मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में प्रदूषण।

7.1 मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में प्रदूषणः-

मध्य हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड में अनेक जलस्त्रोत हैं। यहां के हिमनद और इनसे निकलने वाली सदानीरा नदियां इस राज्य के साथ ही समीपस्थ राज्यों को भी जलराशी प्रदान कर वहां की भूमि को समृद्ध बनाती हैं। यहां के परम्परागत जलस्त्रोत पहाड़ के दुर्गम जीवन की जीवन रेखा हैं, परन्तु आज प्राणीमात्र को जीवन देने वाले इन स्त्रोतों के स्वयं के अस्तित्व पर प्रदूषण रुपी खतरा निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जलस्त्रोतों क े जल में हानिकारक पदार्थों जैसे - सूक्ष्म जीव, रसायन, उद्योगो -घरेलू तथा व्यावसायिक संस्थानों से निकलते दूषित जल के मिलने के कारण जल प्रदूषित होता है, इसे ही जल प्रदूषण कहा जाता है। जल प्रदूषण के अनेक कारण हैं जैसे - कीटनाशक या जैवनाशक, मल-जल अपवहन, औद्योगिक दूषित जल, घरेलू ठोस अपशिष्ट रसायनों द्वारा, तापीय प्रदूषण (विद्युत संयत्र), पौलोथीन बैग व प्लास्टिक आदि।

आज जल प्रदूषण एक वैश्विक समस्या है। विश्व के साथ ही हिमालय भी इससे अछूता नहीं है। यहां के जलस्त्रोतों में निरन्तर प्रदूषकों की वृद्धि होती जा रही है। विभिन्न मानवीय गतिविधियों द्वारा उत्पन्न हुआ दूषित जल भिन्न-भिन्न माध्यमों से स्त्रोत में मिलता है और पूरे जलस्त्रोत को दूषित करता है। उत्तराखण्ड के जलस्त्रोत पहले ही सूखे की मार झेल रहे हैं और अब बढ़ता जल प्रदूषण चिन्ता का कारण बना है। उत्तराखण्ड के लगभग सभी जिलों के जलस्त्रोतों में प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। जल के क्षेत्र में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं, वैज्ञानिकों तथा समाज सेवकों द्वारा अनेक विश्लेषण और परीक्षण किये गये हैं। जो हमें जलस्त्रोतों की वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हैं। केन्द्रीय भू-जल बोर्ड द्वारा 2009 में देहरादून के भूजल की गुणवत्ता का अध्ययन किया गया, भूजल में निर्धारित सीमा से अधिक नाइट्रेट एकाग्रता को दर्शाता है। हरिद्वार में ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 2009

में जलस्त्रोतों की गुणवत्ता का परीक्षण किया जिसमें 14 स्त्रोतों में से 09 स्त्रोत भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवाणु तथा रसायनों संबंधि पदार्थों के प्रभाव में थे। चमोली स्थित जल प्रपात और भू-जल बोर्ड 2004 द्वारा किये गये गुणवत्ता विश्लेषण में भू-जलस्त्रोतों में नाइट्रेट, मैग्नीशियम, सोडियम, फ्लोराइड और कठोरता पायी गई। रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी के जलस्त्रोतों में उच्च प्रदूषण के संकेत मिलते हैं। अल्मोड़ा के जलस्त्रोतों में रसायन और मल संदूषक की अधिकता पायी गई है। उत्तराखण्ड पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड ने 2007-08 में नैनीताल झील की जल गुणवत्ता का निर्धारण किया, परीक्षण के बाद नैनी झील में कैल्शियम, मैग्नीशियम और क्षारीयता अधिक पायी गयी। पिथौरागढ़ के जलस्त्रोतों का परीक्षण ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा 2009 में किया गया जिसमें पाया गया कि यहां के 74 जलस्त्रोतों में से 17 जलस्त्रोत दूषित हैं। इनमें उच्च मल और दूषित पदार्थों की उपस्थिति पायी गई। उघमसिंह नगर के भूजलस्त्रोतों में भी फ्लोराइड, मैग्नीशियम तथा टीडीएस की मात्रा में अधिकता पायी गई है। रुद्रप्रयाग, चम्पावत तथा बागेश्वर के जलस्त्रोत भी किसी न किसी कारण प्रदूषित है। जिसमें मल कोलीफॉर्म एक बड़ा कारण है।

प्रदूषण के प्रभाव से ग्लेशियर भी अछूते नहीं हैं। प्राकृतिक और मानवनिर्मित गतिविधियों ने पर्यावरण में विषाक्त प्रदूषकों की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि की है। वाडिया हिमालय भू-विज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों के शोध में से ज्ञात होता है कि पश्चिमी विक्षोम हवाओं के साथ दिल्ली सहित उत्तर भारत का वायु प्रदूषण हिमालय से टकरा रहा है, इस वायु में प्रदूषकों के कारण ब्लैक कार्बन की परत ग्लेशियरों में चिपक रही है, जिस कारण ग्लेशियरों की बर्फ पिघल रही है। वाडिया हिमालय भू-विज्ञान के वरिष्ठ भू-गर्भीय वैज्ञानिक डॉ॰ पीएस नेगी के अनुसार - ''ब्लैक कार्बन अपने नीचे गर्मी उत्पन्न करते हैं, जिससे ग्लेशियरों के ऊपर प्रत्येक मौसम में गिरि बर्फ पिघलती रहती है। इसके पश्चात इसका असर वर्षो से जमी बर्फ पर पड़ता है और ग्लेशियर सिकुड़ने लगते है।'' उत्तराखण्ड में स्थित ग्लेशियरों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा है। यहां के ग्लेशियरों के सिकुड़ने का विवरण इस प्रकार है -

ग्लेशियर	*अवधि*	*सिकुड़ने की दूरी (मीटर)*	*पीछे हठने की वार्षिक दर*
मिलम	1849-1957	1350	12.50
पिण्डारी	1845-1966	2840	23.50
पोंटिंग	1906-1957	262	5.10
अरवा	1932-1956	196	8.20
गंगोत्री	1935-1976	600	14.60

स्त्रोतः उत्तराखण्ड का भूगोल, पृ.सं. - 29

आर्यभट्ट प्रेक्षण विज्ञान शोध संस्थान (एरीज) नैनीताल के वायुमण्डलीय वैज्ञानिक डॉ. उमेश दुम्का के निर्देशन में वायु प्रदूषण की स्थिति में शोधकार्य किया गया। डॉ॰ दुम्का के अनुसार - ''वायु प्रदूषण के कारण हिमालय के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही हैं। जो ग्लेशियरों के पिघलने का कारण बन रही है। शोध से यह भी ज्ञात हुआ है कि वर्षाऋतु में मानसून समुद्र मिश्रित एयरोसोल को हिमालय तक पहुंचाता है इस एयरोसोल में धुंआ, धुन्ध तथा वाहनों से निकलने वाली प्रदूषित हवा शामिल रहती है। जो हिमालयी ग्लेशियरों को भी नुकसान पहुंचा रही है।'' ग्लेशियरों के साथ आज मध्य हिमालय की अधिकांश नदियां भी प्रदूषित होती जा रही है।

गंगा-यमुना का मायका कहा जाने वाला उत्तराखण्ड जहां से अनेक नदियां निकलती है। वर्षो पूर्व इन नदियों का जल पवित्र, निर्मल हुआ करता था। आज इन सदानीरा, अमृतस्वरुपा नदियों क`जल में प्रदूषण रुपी जहर घुल गया है। इसके अनेक कारण है। उत्तराखण्ड की पतित पावली गंगाा नदी जिसके जल में 'बैक्टीरियोफाज वायरस' की उपस्थिति के कारण इसका जल खराब नहीं होता, परन्तु समय के साथ मानवीय हस्तक्षेप ने इसके पावन जल में भी जहर घोलने का कार्य किया है। सीवर, गन्दे नालो का प्रदूषित जल, उद्योगों से निकला जल तथा अन्य कई प्रदूषकों के कारण गंगा और इसकी सहायक नदियां प्रदूषित हो गई है। प्रदूषक नियन्त्रण बोर्ड की रिपोर्ट में बताया गया है कि हरिद्वार में हरकी पौड़ी पर गंगा का जल पीने योग्य नहीं है। इसमें टोटल कॉलीफार्म की मात्रा निर्धारित मानकों से अधिक है। उत्तराखण्ड पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के सचिव एसपी सुबुधी के अनुसार - वर्ष 2019 में एनजीटी द्वारा भारत में 351 प्रदूषित नदियों को चिन्हित किया गया, जिनमें उत्तराखण्ड की नौ नदियां भी शामिल है।'' उत्तराखण्ड की नौ प्रदूषित नदियां इस प्रकार हैं - भेला, ढेला, किच्छा (गोला), नंधौर, पिलंखा, कोसी, रिस्पना-बिंदल, सुसवा और जगजीतपुर मुख्य नदी गंगा। इन नदियों का जल मानव उपयोग हेतु नही रहा। 'सोसाइटी फॉर पॉल्यूशन एण्ड कंजर्वेशन सांइटिस्ट'

के शोध अध्ययनों से ज्ञात होता है कि इन नदियों के जल में क्रोमियन, जिंक, शीशा, मैगनीज, आयरन तथा ग्रील की मात्रा अत्यधिक है। इस प्रकार इस क्षेत्र की अधिकांश नदियां आज प्रदूषण की चपेट में है। नदियों के अलावा यहां के अन्य जलस्त्रोत जैसे - नौले-धारे, झीलें-ताल, झरनों में भी प्रदूषण का प्रकोप पैर पसार रहा है।

8. जलस्त्रोतों में बढ़ते प्रदूषण का प्रभाव:-

जलस्त्रोतों में बढ़ते प्रदूषण का प्रभाव उस जल का उपयोग करने वाले सभी प्राणियों पर पढ़ता है। जलस्त्रोतों से जल केवल मानव ही उपयोग में नहीं लाता वरन् इनके जल का उपयोग जानवर, पक्षी, वनस्पति तथा जलीय जीव भी करते हैं। जलस्त्रोतों में प्रदूषण का दुष्प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर पड़ता है। दूषित जल का सेवन करने से मानव में त्वचा कैंसर, हैजा, टाइफाइड बुखार, तन्त्रिका तंत्र की क्षति, आनुवंशिक परिवर्तन (जन्म दोष), हाइपेटाइटिस, मलेरिया जैसे रोग हो सकते हैं। प्रदूषित जल में सीसा, जस्ता, आर्सेनिक, मरकरी, लेड, कैडमियन तथा क्रोमियम जैसी धातुएं होने के कारण मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं जैसे -

क्र.सं.	*भारी धातुएं*	*मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव*
1	मरकरी	मस्तिष्क एवं तन्त्रिका तन्त्र को क्षति
2	लेड	पाचनतन्त्र एवं मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव
3	आर्सेनिक	चर्मरोग, हड्डियों में विकृति, मानसिक रोग
4	कैडमियम	मिचली, दस्त व हृदय रोग
5	क्रोमियम	कैंसर कारक

स्त्रोत: जल ही अमृत है, पृ. सं. - 132

मानव स्वास्थ्य के साथ ही दूषित जल का दुष्प्रभाव पशु -पक्षियों तथा वनस्पति जगत पर भी पड़ता है। जलस्त्रोतों में प्रदूषण के कारण जलीय जीवों और पक्षियों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे फसल की पैदावार में भी नकरात्मक प्रभाव पड़ता है। मृदा की सामान्य स्थिति क्षारीय होती है। अत्यधिक अम्लीय दूषित जल के सम्पर्क में आने से मृदा की क्षारीयता कम हो जाती है जिससे भूमि अनुपजाऊ या बंजर हो जाती है। इस प्रकार जलस्त्रोतों का प्रदूषित होने पूरे पारिस्थितिय को प्रभावित करता है।

9. जलस्त्रोतों में बढ़ते प्रदूषण की रोकथाम:-

जलस्त्रोतों में बढ़ते प्रदूषण की रोकथाम के निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं -

- औद्योगिक अपशिष्ट को जल शोधन के पश्चात ही जलस्त्रोतों में छोड़ना चाहिये।
- औद्योोगिक प्रतिष्ठानों, कारखानों में जल शोधन यंत्र की अनिवार्यता होनी चाहिये।
- ताप तथा परमाणु बिजलीघरों से निकलने वाले जल को शुद्ध करके व ठण्डा होने के बाद ही स्त्रोत में छोड़ना चाहिये।
- कृषि में प्रयुक्त कीटनाशियों तथा कवकनाशियों के रूप में निम्नीकरण योग्य पदार्थों का प्रयोग होना चाहिये।
- अत्यधिक प्रदूषण जन्य कीटनाशियों के प्रयोग में प्रतिबन्ध लगाना चाहिये।
- सीवेज उपचार हेतु नगरों में वहित मल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों को कम करने के लिए फिल्टर बेड का प्रयोग करना चाहिये।
- जलस्त्रोतों से हानिकारक वनस्पतियों को समय से निकालना तथा पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों का उपयोग करना।

10. निष्कर्ष:-

जल ही जीवन हैं। जल का कोई विकल्प नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पृथ्वी में जल लाखों वर्ष पूर्व था आज भी उतना ही है और भविष्य में भी इसी मात्रा में विद्यमान रहेगा, परन्तु इसके अतिरिक्त जल पृथ्वी पर कहीं और से भी नहीं आयेगा। आज जलस्त्रोत घटते जा रहे हैं और इनमें प्रदूषण की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

प्रस्तुत शोध पत्र 'मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों में बढ़ता प्रदूषण का प्रकोप' का अध्ययन कर मैंने पाया कि पृथ्वी पर जनसंख्या का भार लगातार बढ़ता ही जा रहा है जिससे पानी की खपत भी बढ़ रही है। विश्व के साथ ही मध्य हिमालयी जलस्त्रोतों की स्थिति भी अत्यन्त चिन्तनीय है। यहां के अधिकांश जलस्त्रोत सूखे से प्रभावित हैं। अन्य जो बचे हैं उनमें भी प्रदूषण का प्रकोप लगातार बढ़ता जा रहा है। नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार उत्तराखण्ड की 360 जलधाराएं पिछले डेढ़ सौ सालों में सूखे के कहर से मात्र 60 जलधाराएं ही रह गई हैं। यहां के गांवों में पेयजल स्त्रोतों पर 10 प्रतिशत से लेकर लगभग 90 प्रतिशत तक जल में कमी आयी है। उत्तराखण्ड स्थित हिमनद प्रदूषण के कारण सिकुड़ने लगे हैं, नदियों में भिन्न-भिन्न कारणों से प्रदूषकों की मात्रा में वृद्धि हो रही है, नौले-धारे जैसे अन्य स्त्रोतों का जल मानवीय गतिविधियों के कारण पीने योग्य नहीं बचा है।

आज आवश्यकता है अमृत रूपी जल को धारण करने वाले इन स्त्रोतों को प्रदूषण से मुक्त करने की। इसके लिए हमें स्वयं से प्रयास करना होगा। सरकार द्वारा भी इस क्षेत्र में अनेक कदम उठाये गये हैं, इनमें जल अधिनियम 1974 और 1977 जल प्रदूषण नियन्त्रण महत्वपूर्ण है। गंगा नदी को प्रदूषण मुक्त करने के लिए केन्द्र सरकार ने अनेक प्रयास किये हैं। सभी नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि सरकार द्वारा बनाये गये जल प्रदूषण निवारक अधिनियमों का पालन करें। जलस्त्रोत जो मानव जीवन के विकास के साथी रहे हैं, हमें इन स्त्रोतों को स्वच्छ रखने के लिए मिलकर कार्य करना होगा। उत्तराखण्ड में आज लोग जागरुक होकर जल संरक्षण मुहीम को आगे बढ़ाने में योगदान कर रहे है। इसमें लोग व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयासों से संलग्न हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

- बलोदी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, बिनसर पब्लिशिंग कं. देहरादून, उत्तराखण्ड।
- चतुर्वेदी, डॉ. ए. के., जल प्रदूषण, जल चेतना, जनवरी 2016।
- सीजीडब्लूबी, 2009 वी: भूजल प्रबन्धन अध्ययन देहरादून - उत्तराखण्ड, केन्द्रीय भूजल बोर्ड, जल संस्थान मंत्रालय, भारत सरकार।
- जलशक्ति मंत्रालय, 16 जुलाई 2021, pib.gov.in
- जैन, इंजी अरुण कुमार जैन, जल ही अमृत है, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
- कुमार, के. रावत, डीएस और जोशी आर., 1997, अल्मोड़ा, मध्य हिमालय, भारत में स्प्रिंग वाटर का रसायन, पर्यावरण भू-विज्ञान।
- मैठाणी, प्रो.डी.डी., प्रसाद, डॉ. गायत्री और नौटियाल, डॉ. राजेश, उत्तराखण्ड का भूगोल, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
- वर्मा, संजय, जल बिन कल, विज्ञान प्रगति, जुलाई 2016।
- सिंह, मनमीत, उत्तर भारत के प्रदूषण से हिमालय के ग्लेशियर को खतरा, downtoearth.org.in

वनस्पति और वन्य जन्तुओं के विकास का अध्ययनः कुमाऊँ हिमालय के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ के सन्दर्भ में

बबीता भट्ट

शोध छात्रा, भूगोल विभाग, लक्ष्यमण सिंह महर रा.स्ना. महाविद्यालय पिथौरागढ़, (उत्तराखण्ड)

सारांशः- किसी भी वन क्षेत्र पर एक पौधा या एक जीव अकेला नहीं पाया जाता हैं। बल्कि ये दोनों साथ-साथ एक समूहों में पाये जाते हैं। और दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते है। एक ही जाति के बहुत से पौधे या जीव मिलकर एक आबादी का निर्माण करते है। अतः किसी क्षेत्र के भौतिक पर्यावरण तथा उसमें रहने वाले जीवों के बीच होने वाली पारस्परिक जटिल व्यवस्था को पारिस्थितिक तन्त्र कहते है।

वनों का महत्वजीवों के लिए भी उतना ही उपयोगी है जितना मनुष्य के लिए हैं। वनस्पति जीवन का आधार है जिसमें जीव निवास करते है, और इससे प्रवाहित होते प्रभावित होते है। जो एक भौतिक पर्यावरण से जुड़े होते है। उत्तराखण्ड एक पर्वतीय राज्य है, जिसमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ और जन्तु पाये जाते हैं। परन्तु जनसंख्या बढ़ने से और जीवन के मापदण्डों और सभ्यताओं के विकास तथा मनुष्यों की आवश्यकताओं में वृद्धि द्वारा वनस्पति और जन्तुओं का विनाश तीव्र गति से बढ़ा है। जिसका कारण विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और जन्तुओं की प्रजातियाँ का विलुप्तिकरण हो रहा है।

कुंजी शब्दः- पारिस्थितिक तन्त्र, भौतिक पर्यावरण, विलुप्तिकरण

प्रस्तावना-: सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ पर्वतीय जिला होने के कारण यहाँ वनस्पति और जन्तुओं के विकास का समन्वय मुख्यतह देखा जा सकता है वनों में विविध प्रकार के पेड़-पौधे एंव उनकी विविध प्रजातियाँव जीव-जन्तु और मृदा तथा जलवायु ये सभी परस्पर एक दूसरे में निर्भर रहते हैं। वर्तमान समय में जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ सड़कों और आवासों के निर्माण में भी तेजी आयी है जिसके फलस्वरूप वन क्षेत्र सीमित हो रहे है जिसका प्रभाव जन्तुओं के निवास स्थान पर पड़ रहा हैं। वनाअग्नि द्वारा कई वनस्पतियों की प्रजातियाँ भी नष्ट हो जाती है और वन्य प्राणि भी संकट में आ जाते हैं। और वनों पर मानव हस्तक्षेप बढ़ने के कारण जन्तुओं के आक्रमक होने की घटनाऐं भी जनपद में बढ़ रही हैं। जनपद में विभिन्न संस्थायें और सरकारी संगठनों द्वारा वनस्पति और जन्तुओं के संरक्षण के लिए कार्य किया जा रहा है परन्तु वनस्पति और वन्य जन्तुओं पर मानव का अत्यधिक प्रभाव आने वाले समय में एक चुनौतिपूर्ण सिद्व हो सकता है

अध्ययन क्षेत्र - प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन क्षेत्र पर्वतीय राज्य, भारत का उत्तराखण्ड, इसमें कुमाऊँ मण्डल के अन्तर्गत जनपद पिथौरागढ़ सीमान्त जनपद है। इसके सीमा पर चीन (तिब्बत) तथा नेपाल देश है। यह जनपद 7218 वर्ग किमी0 एवं भौगोलिक विस्तार $29^0 9'$ और $30^0 49'$ उ0 अक्षांश $80^0 45'$ तथा $81^0 3'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। प्रसासनिक दृष्टिकोण से वर्ष 2011-12 के अनुसार में जनपद को 6 (तहसीलों डीडीहाट, बेरीनाग, धारचूला, गंगोलीहाट, मुनस्यारी व पिथौरागढ़) में विभक्त किया हैं।

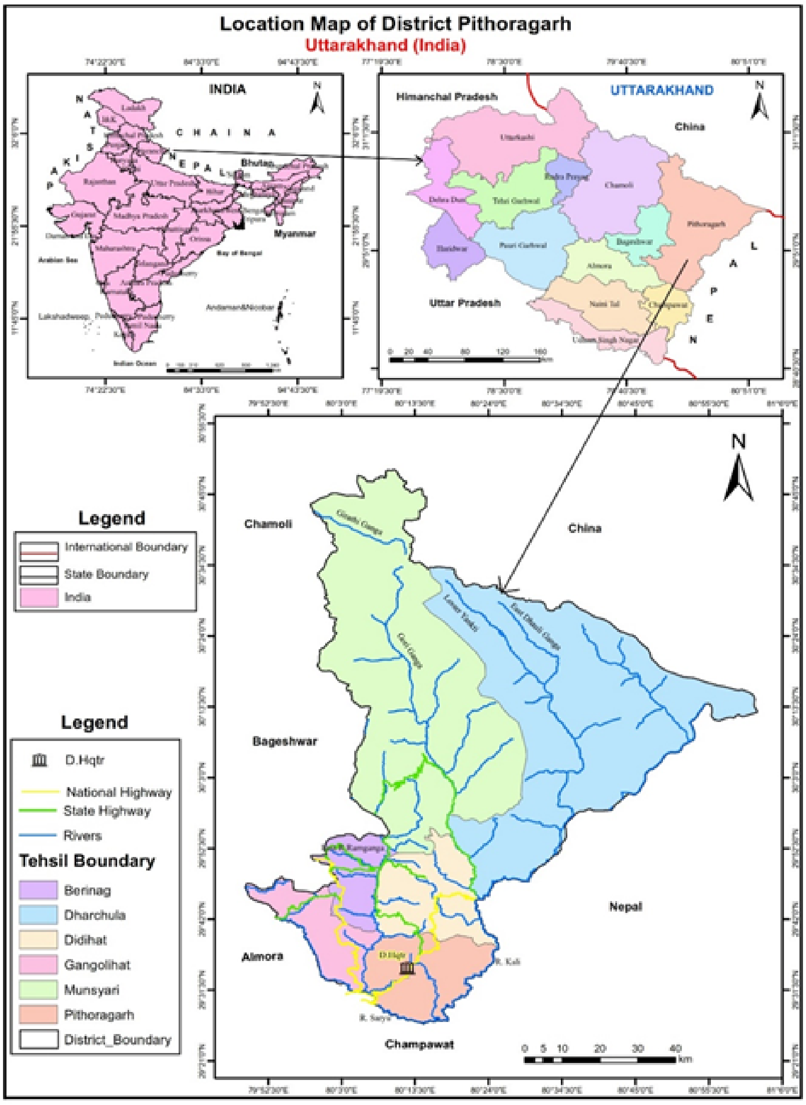

चित्रः जनपद पिथौरागढ़ का स्थिति मानचित्र (स्रोतः भौगोलिक सूचना प्रणाली कक्ष, जिला विकास विभाग, पिथौरागढ़

अध्ययन का उद्देश्यः-

- वनस्पति और जन्तुओं को प्रभावित करने वाले कारणों को जानना।
- वनस्पति और जन्तुओं के भौगोलिक विकास का अध्ययन करना।
- वनस्पति और जन्तुओं के संरक्षण के लिए प्रमुख नीतियों का अध्ययन करना और भावी समय में इनकी स्थिति सुधार हेतु कार्य योजना और जनसाहभागिता द्वारा बढ़ावा देना।

आँकड़ा स्त्रोत एवं विधितन्त्रः-

प्रस्तुत स्त्रोत जनपद पिथौरागढ़ के मुख्यतह प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाओं पर आधारित हैं। प्राथमिक तत्वों को स्वयं सर्वेक्षण कर तथा द्वितीयक आँकड़ों को सांख्यिकीय प्रत्रिका, शोध प्रत्रिकाओं, पुस्तको, तहसील एवं पिथौरागढ़ वन विभाग द्वारा प्राप्त किया गया है।

1.0 वनस्पतियों और जन्तुओं को प्रभावित करने वाले कारक -

जिले में वनस्पति और जन्तुओं के वृद्धि तथा वितरण के अंतरों के लिए उच्चावचढाल के आधार पर भिन्नता, जलवायु तथा भूमि उपयोग और जैविक कारक प्रमुख हैं। इसमें जलवायु एक महत्वपूर्ण कारक है। वनस्पतियाँ जलवायु के आधार पर ही विकसित होती है, जिस प्रकार की जलवायु विद्यमान होगी उसी के आधार पर वनस्पतियाँ और जन्तु पाये जाते है।जलवायु का महत्वपूर्ण तत्व वर्षा और तापमान हैं। जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव यहाँ की वनस्पतियों और जन्तुओं पर पड़ता हैं।जनपद के पूर्वी भाग में तीव्र ढाल और हिमनदीय क्षेत्र होने के कारण यहाँ की नदीयाँ दक्षिणी भाग में वर्षा की मात्रा अधिक तथा तापमान ऊँचा रहता है। तथा उत्तर की ओर

- जिले में उच्चावच का प्रभाव यहाँ की वनस्पति पर पड़ा है। दक्षिण की ओर निरंतर ऊँचाई बढ़ती जाती है। ऊँचाई के साथ-साथ वनस्पतियों और जन्तुओं के निवास्य में भिन्नता आयी हैं।
- जिले में घाट क्षेत्र पर तापमान अधिक है। वहाँ पर चौड़ी पत्ती वाली वनस्पति अधिक और जहाँ तापमान नीचाँ वहा पर कोणधारी वन है। ऊँचाई वाले भागों में (मुनस्यारी-धारचूला) वायु वेग तीव्र है। जिस कारण झाडिघ्याँ एवं घास विकसित हुई हैं।

2.0 वनस्पति और जन्तुओं का भौगोलिक विकास

पृथ्वी के जिस भाग में जीवन पाया जाता है, उसे जैवमण्डल कहते हैं। जैव मण्डल में रहने वाले सभी वनस्पति जगत तथा प्राणी जगत के जीव एक-दूसरे को प्रभावित करने के साथ-साथ अपने भौमिक पर्यावरण से भी प्रभावित होते हैं।जनपद पिथौरागढ़ में वनस्पति की बहुत-सी प्रजातियाँ विद्यमान है। वन प्रभाग पिथौरागढ़ के सर्वेक्षण अनुसार वनस्पति की बहुत सी प्रजातियाँ लुप्त प्रायः हो चुकी है जिनके पुनः विकास के लिए जनपद में समय- समय पर वन पंचायतों के स्तर पर डी0आर0डी0ओ0 (पण्डा) व जी0बी पंत विश्वविद्यालय अल्मोड़ा द्वारा वनस्पति संरक्षण हेतु जनजागरूकता कार्यक्रम व वनों में लुप्त प्रजातियों का अध्ययन कर पुनः विकसित करने का कार्य किया जा रहा हैं।

जनपद में प्रमुख रूप से शैवाल, कवक, झूला, मोस घास, फैटोटलॉकटन, झाडिघ्याँ, क्षुपा व फर्न जैसी वनस्पतियाँ विद्यमान है। जो जलवायु एंव ढ़ाल के आधार पर विकसित होती रहती हैं। जनपद पिथौरागढ़ वन प्रभाग के अनुसार में लगभग कुल 3378 वनस्पतियों की प्रजातियाँ प्रतिवेदन हैं।

तालिका 2.1:जनपद पिथौरागढ़ में प्रतिवेदित वनस्पति विविधता का विवरण

क्र.स.	*वनस्पति वर्ग*	*परिवार*	*जीनस*	*प्रजातियाँ*	*लुप्तप्राय/दुर्लभ*
1.	अवृत्तबीजी	166	1016	2454	191
2.	नग्नबीजी	6.0	13.0	28.0	5.0
3.	फर्न	38	84.0	296.0	114
4.	मोस व काई	58	132.0	226.0	NA
5.	झूला	44	96.0	321.0	200
6.	शैवाल	NA	4.0	4.0	NA
7.	कुम्भी कवक	NA	43.0	49.0	NA
कुल प्रतिवेदन		312	1388	3378	309

स्रोत- वन प्रभाग पिथौरागढ़

1. आवृतबीजी वनस्पति (एंगीयोसर्फम्स)- तालिका 2: 1 के अनुसार आवृतबीजी वनस्पति के आधार पर जनपद के वन प्रभाग से 166 परिवारों में 2453 प्रजातियाँ प्रतिपादित है। जिसके अर्न्तगत (331) झाड़ियों की प्रजाति, (210) प्रजाति के वृक्ष, (149) लताएँ व शेष अन्य प्रकार के छोटे पौधे जैसे- घास, बॉस, रिंगाल की प्रमुख प्रजातियाँ क्षेत्र में उपलब्ध हैं। जिनकी सर्वाधिक विविधता तृण वर्ग अथवा पोयसी परिवार में है। दूसरे स्थान पर एस्टरेसी परिवार है इनमें फूल वाले पौधे, राज्य पुष्प, ब्रह्मकमल आदि सम्मिलित है। तीसरे स्थान पर अर्किड की प्रजातियाँ सम्मिलित हैं। इनमें प्रमुख जो जमीन के अतिरिक्त पर तथा वृक्षों के ऊपर भी पाये जाते हैं। तथा लगभग 190 प्रजातियाँ अतिदुर्लभ व संकटापन्न स्थिति में हैं।
2. नग्नबीजी वनस्पति (जिमनोसर्फम्स)- जनपद वन प्रभाग के अर्न्तगत नग्न 6 प्रकार की झाड़ियाँ, 22 प्रकार के शंकुधारी वृक्षों की प्रजातियाँ है व इनमें से केवल 9 वृक्ष प्रजातियाँ ही स्थायी है। अन्य प्रजातियों को विभिन्न वृक्षारोपण कार्यक्रमों द्वारा रोपित किया गया है। सम्पूर्ण राज्य में तानसेन प्रजाति का शंकुधारी वृक्ष केवल पिथौरागढ़ वन प्रभाग के मुनस्यारी व धारचूला रेंजो में ही विद्यमान है नग्नबीजी वनस्पतियों में चीड़ की प्रजाति सबसे प्रमुख है जिसका क्षेत्रफल समस्त वनों में सर्वाधिक है इसके अलावा कैल, थुनेन, रागा, सुरई भी शंकुधारी प्रजातियाँ के अर्न्तगत ही आते है। और उच्च क्षेत्रों में देवदार के वनों की प्रजातियाँ पायी जाती है जिनको देववनों के रूप में भी जाना जाता है। गंगोलीहाट, हाट-कालिका, पाभें, पाताल भुवनेश्वर, नाग, चण्डाक, बमनदौन, सौडलेख आदि क्षेत्रों में देवदार वृक्ष की प्रजातियाँ पायी जाती है। नग्नबीजी वनों की प्रमुख विशेषता है कि इनमें फूल की जगह शंक का उत्पादन होता है
3. फर्न (टेरिडोफाईड्स) -इस प्रजाति की वनस्पतियाँ मुख्यतह अधिक नमी व आर्द्रता वाले क्षेत्रों पर ही पाये जाते हैं। और लम्बे पेड़ों के ऊपर भी मोस घास के रूप में भी पायी जाती हैं। फर्न की लगभग 239 प्रजातियाँ जनपद में विद्यमान है जिनमें से 114 प्रजातियाँ लुप्तप्राय या दर्लभ है। चीड़ वृक्षों के जड़ों के आस-पास भी इस प्रजाति को देखा जा सकता हैं। जिससे भूमि में नमी होने का पता लगता है फर्न की प्रजातियों में किसी भी प्रकार के फल नहीं लगते है इनका लैगिंग प्रजनन स्पोक के माध्यम से ही होता हैं।
4. मोस व काई (ब्रायोफाईट्स) -इसके अर्न्तगत सभी मोस व काई प्रजातियाँ सम्मिलित है मुख्यरूप से जनपद में 226 प्रकार की प्रजातियाँ विद्यमान है। यह नमी युक्त चट्टानों में सर्वाधिक होता है अत: बाज और खर्सू के वृक्ष में भी मोस घास लिपटी रहती है इन वनों के दोहन का प्रमुख कारण भी ब्रायोफाईट्स की उपस्थिति है तथा वृक्षों की जड़ों को तेज धुप से बचाव भी इनकी उपस्थिति के कारण होता है
5. झूला (लाईकेन) -जनपद पिथौरागढ़ के वन प्रभाग के अर्न्तगत लाईकेन के 44 कुटुंबों में 96 जीनुस में 391 प्रजातियाँ विद्यमान है मुख्यतह यह पत्थरों के या पेड़ों के ऊपर पायी जाती है जनपद के मुनस्यारी रेंज के खुलिया, जिमिया आरक्षित वन क्षेत्रों में लाईकेन की 150 प्रजातियाँ विद्यमान है व मिलम तथा अन्य हिमालयी क्षेत्रों में लाईकेन की 105 प्रजातिया विद्यमान हैं। पिथौरागढ़ रेंज में थलकेदार, चण्डाक, नैनीपातल, बडावे, आदि क्षेत्रों में लाईकेन की 188 प्रजातियाँ पायी जाती है, डीडीहाट के सानदेव क्षेत्र में लाईकेन की 144 प्रजातियाँ एक ही क्षेत्र में पायी जाती हैं
6. कवक (फंगी) -जनपद के प्रभाग में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म कवक व स्थूल कवक पाये जाते है जिनका सम्पूर्ण अध्ययन करना सम्भव नहीं है। प्रभाग के सबसे महत्वपूर्ण कवक में कोर्डसेप्स है इसमें सबसे प्रमुख कवक यारसागम्बू या कीड़ाघास के नाम से जाना जाता है जो 3500 की ऊँचाई पर पाया जाता हैं। इन क्षेत्रों में वृक्षों की प्रजातियाँ नहीं उग पाती है मशरूम भी एक प्रकार की कवक है जो प्रभाग में विद्यामान हैं।
7. शैवाल (एल्गी) - यह नमीयुक्त क्षेत्रों जलाशयों, जल धाराओं एंव तालाबों के किनारे सर्वाधिक पाये जाते है शैवाल अपना भोजन स्वंय बना लेते है शैवालों का सर्म्पूण अध्ययन नहीं हो पाया है जनपद में विभिन्न प्रकार के शैवाल पाये जाते हैं। रक्षा जैव ऊर्जा संसाधन संस्थान, पिथौरागढ़ द्वारा प्रभाग में पाये जाने वाले दो प्रजातियों के शैवाल से जैविक ईंधन बनाासे की प्रकिया पर शोध कार्य किया गया हैं।

अत: जनपद में अत्यधिक मानव हस्तक्षेप व जलवायु परिवर्तनों के कारण व अन्य कारणों द्वारा कई वनस्पतियों की प्रजातियों के लुप्त होने की सम्भावना है। उत्तराखण्ड राज्य की 16 एन्डेमिक प्रजातियों में से 11 प्रजातियाँ इस वन प्रभाग में पायी जाती हैं। जनपद के मुनस्यारी रेंज व धारचूला, पिथौरागढ़ रेंज के थलकेदार रेंज में अनेक प्रकार की वनस्पतियों की विविधता विद्यमान हैं।

तालिका 2.2 जनपद पिथौरागढ में प्रशासनिक वर्गीकरण के आधार पर वन वितरण

(वर्ष 2011-2018)

वनों के प्रकार	*वर्ष 2011 (क्षेत्रफल हे.)*	*वर्ष 2018 (क्षेत्रफल हे.)*
आरक्षित वन	75196.6	75583.2
सिविल वन	41748.0	41748.0
पंचायती वन	87053.7	277175.1
निजी वन	1192.5	1192.5

स्रोत: वन प्रभाग पिथौरागढ।

- आरक्षित वन -ये वन जलवायु की द्रष्टि से महत्वपूर्ण हैं। जनपद में इन वनों का क्षेत्रफल वर्ष 2011 में 36.65 प्रतिशत था। तालिका 2.2 से स्पष्ट है वर्ष 2018 में 19.10 प्रतिशत घटते क्रम में रह गया। इन वनों में काष्ठ काटने व पशुचारण पर पूर्णतया कानूनी प्रतिबन्ध होता हैं।
- रक्षित वन या सिविल वन -तालिका 2.2 से स्पष्ट है कि इन वनों में विशेष नियमों के अर्न्तगत मनुष्यों को अपने पशुओ को चराने तथा लकडी काटने की सुविध प्रदान की जाती है। इस प्रकार के वनों का क्षेत्रफल जनपद में वर्ष 2011 में 20.34 प्रतिशत था। परन्तु वर्ष 2018 में 10.55 प्रतिशत ही है
- पंचायती वन या अवर्गीकृत वन -वर्ष 2011 में 87053.7 हे0 क्षेत्रफल में 42.42 प्रतिशत पंचायती वन थे परन्तु वर्तमान में इनकी संख्या बढ़कर 70.04 प्रतिशत हो गई है।वर्तमान में जनपद पिथौरागढ़ के 70 ग्राम पंचायतों में जायका योजना कार्य कर रही जिसमें पिथौरागढ़, डीडीहाट और गंगोलीहाट रेंज की वन पंचायतें हैं।

3.0 जनपद में वनों के प्रमुख वृक्ष का प्रजातिवार वर्गीकरण-:

जनपद के वनों में अनेक बहुमूल्य वृक्ष पाये जाते हैं। जिनसे घरेलू तथा औद्योगिक कार्यों के लिए अने प्रकार के पदार्थ प्राप्त होते हैं। जिनमें काष्ठ जलाऊ लकड़ी (थ्यतम ूववक) औद्योगिक कच्चे माल, तेल व सुगन्धें औषधि, जड़ी-बूटियाँ, गोंद राल आदि सम्मिलित हैं। इन पदार्थों को प्रमुख तथा गौण दो वर्गों में रखा जाता हैं।

3.1 प्रमुख वनोपजें:-

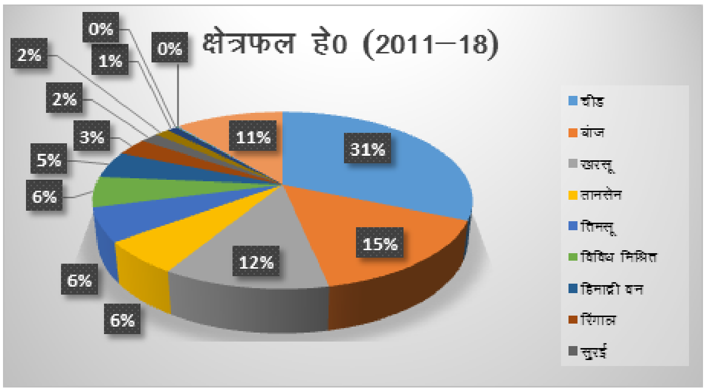

चित्र 3.1: जनपद पिथौरागढ़ में वनों के प्रमुख वृक्ष का प्रजातिवार वर्गीकरण 2011-2018

- साल (Sal)-जनपद पिथौरागढ़ में साल के वन लगभग 1084.25 हेक्टेयर क्षेत्र (वनों के अन्तर्गत कुल क्षेत्र के 1.43%) पर मिलते हैं। यह एक कठोर भारी, मजबूत तथा टिकाऊ लकड़ी है। जो लट्ठे, खम्भे, तख्ते, पुल निर्माण आदि कार्यों में प्रयुक्त होते हैं। यह 1600 मी0 की ऊँचाई तक पिथौरागढ़, धारचूला, अस्कोट, डीडीहाट रेंज में मिलते हैं।

- शीशम (Shisham)-यह जनपद के नीचले भागों में पाये जाते है जिनकी लम्बाई 10 से 30 मी0 तक होती हैं। इस एक मजबूल, लचीली तथा टिकाऊ होती हैं। मकान, फर्नीचर, कृषि उपकरण तथा रेलों के स्लीपर आदि बनाने में इनकी बहुत माँग हैं। 2010-11 में 236.1 हे0 क्षेत्र में कुल क्षुेत्र का (0.3%) शीशम प्रजाति पायी जाती थी परन्तु वर्तमान में यह वृक्ष मिश्रित प्रजातियों में पाया जाता हैं।
- देवदार (Devdar)-यह धारचूला, मुनस्यारी क्षेत्र में 2000 से 3000 मी0 की ऊँचाई वाले भागों में 72.40 हे0 क्षेत्र (0. 19%) तक पाये जाते हैं। यह मध्यम भार वाली मजबूत तथा टिकाऊ लकड़ी हैं। इसका प्रयोग निर्माण कार्य, हल्के फर्नीचर बनाने में होता हैं।
- चीड़(Chir)-चीड़ नुकीली पत्ती वाला शंक्वाकार वृक्ष हैं। यह जनपद में 700-1800 मी0 की ऊँचाई पर सर्वाधिक 23738.17 हेक्टेयर क्षेत्रफल (वनों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 31.41%) पर विस्तृत हैं। यह एक मध्यम कठोर लकड़ी हैं। जो चाय की पेटियों, फर्नीचर, माचिस, उद्योग में प्रयुक्त होती हैं।
- बांज(Oak) - बांझ के वृक्ष जनपद में 1500 से 2000 मी0 की ऊँचाई पर 11571.01 हे0 क्षेत्र (वनों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का 15.31) पर विस्तृत हैं। इस वृक्ष की लकड़ी कठोर, मजबूत एवं टिकाऊ होती हैं। काष्ट, बर्तन, कृषि यंत्र बनाने में इसका उपयोग होता हैं।

  जल संग्रह करने की इसमें अद्भुत क्षमता हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग यहाँ के निवासी चारे के रूप में करते हैं। वृद्धि दर तथा संरक्षण के अभाव में इस वृक्ष का निरंतर ह्रास हो रहा हैं।
- तुन (Toon)-तुन सदाबहार वन प्रजाति का वृक्ष हैं। यह जनपद में ढाल के निचले भागों पर 4606.80 हे0 क्षेत्र में (6.09%) पाये जाते हैं। यह टिकाऊ लकड़ी हैं। जिसका उपयोग चाय के डिब्बे खिलौने तथा फर्नीचर बनाने में प्रयुक्त होता हैं।

3.2 गौण वनउपज-:

जनपद में विभिन्न पौधों व झाडिघ्यों की पत्तियां जड़ों, फलों, तनों तथा बीजों से अनेक प्रकार की औषधियां तथा जड़ी बूटी प्राप्त होती है। जनपद पिथौरागढ़ के उच्च हिमालयी क्षेत्र 200 से 4000 मी0 की ऊँचाई वाले पर्वत श्रृखंलाये, घाटियां व बुग्याल जड़ी बूटियों के लिए प्रसिद्ध है। धारचूला, मुनस्यारी, अस्कोट, रेंज में सर्वाधिक जड़ी-बूटिया पायी जाती है।

लगभग 1000 मी0 की ऊँचाई तक अनंतमूल, गिलोय, पणिया, वन तुलसी, अदरक, तेजपात, अस्वगंधा, इलायची, मैथी, भाग तथा 1500 मी0 की ऊँचाई पर केसर, ब्रधि, चाय, 2700 मी0 की ऊँचाई पर तुलसी, हींग, सामंलता, रीठा, ग्रदायण, कुटकी, इसके अतिरिक्त ब्रहमी, घिंगारू, किल्मोड़ा, शिकाकाई, भीमल, बिच्छू या कण्डाली धुनेर प्रमुख वनस्पतियां है। जिनका उपयोग औषधि के रूप में होता है। इनमें से तुलसी पौधे, वट वृक्ष, धूप को पूजा जाता है और प्राचीन काल से अब तक यह वनस्पितयां मानव सभ्यता से जुड़ी हुई है।

4.0 वन्य जीवों का विवरण:-जनपद में अनेक प्रकार के जीव जन्तु पाये जाते है। (17966) जो वनस्पति पर निर्भर है। इनमें गुलदार, काला भालू, काकड़, घुरड़, जंगली सुअर, बारहसिंगा, वन बिल्ली, बन्दर, लंगूर, तथा चीतल और कस्तूरी मृग आदि वन जीव जन्तु, पक्षी पाये जाते है। इनके संरक्षण के लिए पिथौरागढ़ जिले के अस्कोट क्षेत्र में कस्तूरी मृग अभ्यारण्य की स्थापना 1986 ई0 में की गयी जो 600 वर्ग कि0मी0 क्षेत्रफल में फैला हुआ है।

तालिका4.0:1 जनपद पिथौरागढ़ में वन्य जीवों का विवरण

क्र.स०	*ऊँचाई (मीटर)*	*प्रमुख वन्य जीव*
1.	600 से नीचे	चीता,बाघ
2.	600-1300	तेंदुआ
3.	1300-1700	कस्तूरी मृग
4.	1700-1800	मृग
5.	1800-2100	हिमालयन भालू
6.	2100-3000	धुरड़
7.	3000-3300	थार
8.	3300-3600	भरड़

स्त्रोत- ए०पी० सिंह, हिमालयन इन्वायरोनमेन्ट एण्ड टूरिज्म, 1989, पृष्ठ 60

1. उष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन जीवोम - इनमें मूल्यवान प्रजाति के वन पाये जाते है। जिनमें प्रतिवर्ष पतझड़ होता रहता हैं। सरयू, रामगंगा व गोरी नदियों की घाटी में इस प्रकार की वनस्पति 300-100मी0 की ऊँचाई पर स्थित है। यहॉ तापमान 20^0c तथा वर्षा 100-200cm होती है। ये वन वर्षा काल में हरे भरे तथा शुष्क ऋतु में जलाभाव के कारण अपने पत्तक गिरा देते है, इन्हें मानसूनी वन भी कहते है। यहाँ पेड़ो की ऊँचाई 12 से 50मी0 तक ही होती है। इसमें साल, शीशम, खैर, सागोन, हल्दू, धौडी, बहेड़ा, जामुन, रोहणी, तुन, शहतूत, बास आदि। जिले के द0 पूर्व गंगोलीहाट, बेरीनाग क्षेत्र की श्रेणी में अच्छी किस्म के साल वृक्ष पाये जाते हैं।यहॉ पर अनेक प्रकार के जीव रहते है। बाघ, कीट-पतंग, हिरन, घुरल, काकड़, जंगली सुअर, बंदर, लंगूर पतझड़ होने पर इनके प्रजनन पर अंतर पाया जाता है। जलवायु कठोर होने के कारण यहां पर कम संख्या में जीव रहते है, इनमें मुख्यत: बारहसिंगा, भालू, लोमड़ी, कई प्रकार की चिडिघ्या और कीड़े-मकोड़े प्रमुख जन्तु है।

2. हिमालयी उपोष्ण चीड़ के वन जीवोम:-जनपद में चीड़ की प्रधानता वाले वनों का विस्तार ऊँचाई वाले पहाड़ी ढालों पिथौरागढ़ रेंज में थलकेदार, गुरना क्षेत्र चीड़ वनों से मूल्यवान लीसा प्राप्त होता है। आर्थिक दृष्टि से चीड़ वनों द्वारा जनपद में सर्वाधिक लाभांश प्राप्त होता हैं। यह मुख्यत: 750 मी0 से 2000 मी0 तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इन वनों में चीड़, बांज, बुरांश, काफल, अतीस, तिमला, कौला, किलमोड़ा, घिघारू, मकौया, हिसालू, काला हिसालू तथा झाड़ियों में पाती, चमलाई, कुरखा आदि आते हैं। इन वनों के मध्य कोमल लम्बी घासें पायी जाती हैं। जो स्थानीय पशुओं की आवश्यकता की पूर्ति करती हैं।

3. हिमालय के आर्द्र शीतोष्ण वन जीवोम:-इन वनों में मुख्य प्रजातियाँ बांज तथा बुरांश की हैं। कही-कही देवदार, कैल, राई आदि की प्रजातियाँ जनपद में पायी जाती हैं। (मुनस्यारी, चण्डाक, थलकेदार, कलपानीगाड़, ध्वज आदि) यह वन क्षेत्र आर्थिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्व हैं। चौड़ी पत्ती वाले ये वन सदा हरे-भरे रहते हैं। मुख्यतह 1400 से 2500 मी0 ऊँचाई तक यह वन पाये जाते हैं।यहां पक्षियों की संख्या अधिक पायी जाती है। पक्षियों में चील, बांज प्रमुख है। वन विनाश के कारण पहाड़ी शेर, भेडिघ्यों, और रीछ की संख्या कम हो गयी है। अन्य जन्तुओं में हिरण, सॉप, छिपकली, खरगोस प्रमुख है वही दूरस्थ आवासों में बन्दर, लंगूर भी निवास करते है।

4. अल्पाइन वन जीवोम-इस प्रकार के वनों में स्पूस, सिल्वर, फर, ब्लूपाइन, देवदार, बर्च तथा भोजपत्र वृक्ष मुख्य रूप से पाये जाते हैं । अल्पाइन वनों का विस्तार जनपद में 2500 से 3400 मी0 से ऊँचाई वाले क्षेत्रों धारचूला, मुनस्यारी रेंज के अन्तर्गत आते हैं। इन वनों के वृक्ष की लम्बाई अधिक होती हैं। देवदार वृक्ष सबसे मूल्यवान हैं। अल्पाइन वनों क वृक्ष तैलीय होते हैं। अल्पाइन वनों के वृक्षों की लम्बाई ऊँचाई वृद्धि के साथ का होती जाती हैं। ऊँचाई वाले भागों में झाडिघ्याँ अधिक हो जाती हैं। जिनके मध्य में कहीं-कहीं पर बौने वृक्ष रहते हैं। इस वनस्पति के साथ दो प्रकार के जीव रहते हैं प्रथम प्रकार के स्थायी जो अपने शरीर की वनावट के आधार पर अति सर्दी को सहन करने वाले जिनमें फर या पंखों का घना आवरण होता है। भालू, लोमड़ी, बारहसिंगा, खरगोस आदि दूसरे जो शीत ऋतु में जनपद के दक्षिण की ओर चले जाते है। इसमें भालू, भेडिघ्या, बारहसिंगा, कुत्ता तथा चिडिघ्या सम्मलित है।

5. घास जीवोम-जनपद में 3300 से 3700 मी0 की ऊँचाई वाले भागों में धारचूला (तेजम), मुनस्यारी झाडिघ्यों एवं घास के मैदानों का विस्तार हैं। झाडिघ्यों के साथ में सिल्वर, बर्च, देवदार आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में छोटी-छोटी घासें उगती हैं। जिन्हें बुग्याल या पयार कहते हैं। शीतकाल में यह क्षेत्र बर्फ से ढक जाते हैं। इन बुग्यालों में जड़ी बूटियों की कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं। ग्रीष्मऋतु में जब बर्फ पिघलती हैं तो यहाँ घास एवं जड़ी बूटियो से यह क्षेत्र भर जाते हैं।

पशुपालन तथा औषधि की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है। परन्तु वर्तमान समय में अनियमित पशुचारण से अनेक औषधि पौध-प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं। यहॉ की वनस्पतियों में घासों की प्रधानता होने के कारण शाकाहारी जीव अधिक पाये जाते हैं। भेडिघ्या, चील, बाज, और चिडिघ्याऐं वर्तमान में मनुष्यों द्वारा यहॉ जड़ी-बूटियों की खोज और आवागमन द्वारा वनस्पतियां और जन्तुओं की प्रजातियां लुप्त होते जा रहे है।

4.1 वनस्पति और वन्य जन्तुओं के विकास में प्रमुख समस्याऐं

प्राकृतिक वातावरण के मध्य सामजस्य विद्यमान होता है। मानव क्रियाओं का दबाव जैसे जैसे बढता जाता हैं।वन संसाधनों में असंतुलन बढता जाता हैं प्राकृतिक कारक व मानविय कारक उत्तरदायी है जिनमें जंगलों में आग लगना, ऊर्जा स्त्रोत के रूप में वनों का अत्यधिक दोहन, पशुओं की अनियन्त्रित चराई, सड़कों का वन क्षेत्रों में निर्माण कार्य व अतिक्रमण, बाँध परियोजनाओं का निर्माण, वनों को साफ करके कृषि एंव आवसीय क्षेत्रों का विस्तार तथा वन्य वस्तुओं का उद्योगों में प्रयोग प्रमुख समस्याऐं हैं।

सुझाव

वनस्पति और उसमें रहने वाले जन्तु मानव जीवन को प्रभावित करते है और भौतिक पर्यावरण की रचना करते हैं तथा ऊँचाई वाले पहाड़ी ढालो पर स्थित वृक्ष के कटान पर रोक लगाने की आवश्यकता है। वनस्पति और जन्तुओं के संरक्षण के लिए जनजागरूकता जैसे अभियानों को स्कूल, कालेजो, तथा स्थानीय गांवो में किये जाने चाहिए, ग्रामीण क्षेत्रों में बंजर भूमियों, पर जड़ीबूटी खेती को प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है। साथ ही प्राकृतिक चरागाहों (बुग्यालों) में वैज्ञानिक ढंग से पशुचारण द्वारा औषधीय एवं मूल्यवान पौध प्रजातियों की रक्षा की जाय।

निष्कर्ष

सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ में उच्चवच ढाल विमुखता भौगोलिक वनावट के अनुरूप वनस्पतियों का विकास और जलवायु का प्रभाव स्पष्ट समझा जा सकता है। जिससे जन्तु प्रभावित होते है। प्राचीन काल से ही मनुष्य का सम्बन्ध वनस्पतियों जड़ी-बूटियों और जन्तुओं से रहा है। जिससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होते रहते है। परन्तु वर्तमान समय में वनस्पतियां और जन्तुओं का अत्यधिक विनाश की समस्याऐं चुनौतियों के रूप में सामने आयी है। औषधीय पौधों, वनों का विनाश हो रहा है। और वन्य जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ रहा है। वर्तमान में सेमिनार, गोष्ठियों, शोध पत्रों, कार्यशालाओं में ही इनके संरक्षण पर चर्चा हो रही है जिससे कुछ हद तक लोगों को जोड़ा जा सकता है। परन्तु व्यवहारिक लाभ नहीं मिल पा रहा इसके अलावा गांवों, शहरों के लोगो को प्रेरित किया जाय, विभिन्न प्रकार के एन0जी0ओ0 के माध्यमों से जैसे स्वाति (जैव प्रबन्ध) हर साल बुग्यालों में ग्रामीणों के माध्यम से कूड़ा कचरा साफ करने का लक्ष्य तो कुछ हद तक (जड़ी बूटी) वनस्पति संरक्षण और जन्तुओं के विकास पर कार्य करेगा। विगत वर्षो का आंकलन किया जाए तो मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ती हेतु आवश्यकता से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन और वन्य प्राणीयों को नुकसान पहुँचाया हैं। इसको कम करने के लिए उत्तराखण्ड के सभी जिलों में तथा ग्राम पंचायतों में जन जागरूकता हेतू कार्यक्रम, संगोष्ठीयों का आयोजन होता रहा है और वन और वन्य-जीव संरक्षण के लिए सरकार द्वारा कठोर नियम, नितियाँ में पौधारोपण जैसी अनेक योजनाएँ चलाई गयी हैं।

परन्तु क्या यह नितियाँ पर्यावरण संरक्षण के लिए कारगर सिद्व होंगी क्योंकि जब तक मनुष्य स्वंय पर्यावरण बचाने के प्रति निष्ठावान नहीं होगा तब-तक वन एंव वन्य-जीव संरक्षण के प्रति कोई भी निति सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती है जिससे प्रकृति का वास्तविक स्वरूप ना बदल सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

चन्दन मनोज एवं सिन्हा ए0आर0 प्रबन्ध योजना पिथौरागढ़ वन प्रभाग (प्रस्तावों का आधार, उत्तराखध्ड वन प्रभाग) 2011-2021 (भाग-3) पृष्ठ 646-657.

सिंह मेहता जीवन (पहाड़ पिथौरागढ़ चम्पावत अंक, वन विविधता) 2016 पृष्ठ 44-56.

अटकिन्सन, ईटी0 (1981): द हिमालय गजेटियर, खण्ड 2, भाग एक, कास्मो पब्लिकेसन, नई दिल्ली

उत्तरी पिथौरागढ़ वन प्रभाग (2000): उत्तरी कुमाऊँ वृत्त की प्रबन्ध योजना, खण्ड एक नैनीताल उत्तरांचल

कौशिक एस0 डी0, खर्कवाल, एस0 सी0 (1976): मानव भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेसनस मेरठ

जलाल डी0 एस0 (1976): लैण्ड यूटिलाइजेशन इन पिथौरागढ़, प्रकाशित शोध प्रबन्ध कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, चौतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद

गड़कोटी जे0सी0 (1988): रिसोर्स अप्रेसल एण्ड एरिया डेवलपमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्टिक्ट, अप्राशित शोध प्रबन्ध गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल

चन्द रघुवीर (1981): रूरल सेटिलमेण्ट इन पिथौरागढ़ डिस्ट्रिक्ट अप्राशित शोध प्रबन्ध कुमाऊँ विश्वविद्यालय

खुल्लर डी. आर, भारत का भूगोल एंव प्रयोगात्मक भूगोल (प्रकाशन: सरस्वती हाउस प्रा.लि. 9, दरियागंज समीप टेलीफोन एक्सचेंज, नई दिल्ली -110002)

शिवमंगल सिंह सुमन के काव्य में वर्णित सपूतों एवं संस्कृति पुरूषों का गौरव गान

मुकेश कुमारी

स्नातकोत्तर, एम.फिल. एवं राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास (हिंदी)

शोधालेख सार:- वस्तुत: हिंदी कविता एक ऐसी विद्या है जो श्रोताओं के मानस पटल पर गहरा प्रभाव डालती है और वीर रस से भरपूर कविता राष्ट्रीयता के भाव पैदा करती है इसलिए राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से एक कवि के रूप में शिव मंगल सिंह सुमन ने अपनी काव्य प्रतिभा का लोहा मनवाया है। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर देश के वीर सपूतों और भारतीय संस्कृति के उन्नायकों का गौरवगान किया है। वास्तव में कविवर शिवमंगल सिंह सुमन ने अपने काव्य में जिन सपूतों और संस्कृति पुरूषों का अभिनन्दन किया है, उनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं - जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मुंशी प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, कालिदास, रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य शुक्ल, सुमित्रानंदन पंत आदि। अत: कविवर सुमन सिंह मंगल ने किस रूप में और किस तरह उनका स्मरण किया है, उसका निरूपण करना प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य है।

मुख्य शब्द:- संस्कृति, संस्कृति पुरूष, साधना, संघर्षशीलता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चेतना।

प्रस्तावना:- कविवर शिवमंगल सिंह सुमन ने अपने कवि धर्म व कर्म का निर्वहन करते हुए सपूतों एवं संस्कृति पुरूषों का गौरव गान अपनी कविताओं में बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। वास्तव में जो सपूत व संस्कृति पुरूष कविवर सुमन जी के मस्तिष्क पर छाए रहे, उनके बारे में आगे लिखा गया है:-

मैथिलीशरण गुप्त:- शिवमंगल सिंह सुमन ने अपने *'हिल्लोल'* नामक काव्य संग्रह में मैथिलीशरण गुप्त पर एक कविता लिखी है, जिसका नाम है - 'गुप्त जी की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर'। इस कविता में कवि ने गुप्त जी को एक महान कवि, गायक, साधक, स्वर सत्ताधारी, अविचल-अचल, पुजारी, अनुरागी, वैरागी, योगी-सन्यासी, चिरगांव-निवासी आदि नामों से सम्बोधित किया है।। उन्होंने गुप्त जी की व्यक्तिगत संघर्षशीलता को साहित्यिक महत्व और देन के रूप में भी प्रस्तुत किया है। कविवर ने इस कविता के अन्त में कामना की है कि हे कवि तुम युग-युग तक जिओ और तुम्हारी साधना भी अक्षर-अमर हो जाए। इस कविता में सुमन जी ने गुप्त जी अल्लहड़ मस्ती और गायन विद्या के प्रति उनकी काव्य प्रतिबद्वता को भी उजागर करते हुए उनके विशिष्ट व्यक्तित्व को सुन्दर ढंग से मुखरित किया है। कविता का अन्तिम छन्द निम्न प्रकार से द्रष्टव्य है:-

आज तुम्हारे जन्म-दिवस पर बाल-वृद्व नर-नारी
चढ़ा रहे हैं श्रद्वाजलियां-वरण पर वारी
सहस-सहस साँसों से मिलकर निकल रहे हैं स्वर ये
कवि ! तुम युग-युग जिओ, जिए यह चिर-साधना तुम्हारी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्त:- कुछ जाने-माने प्रबुद्ध साहित्यकारों ने कहा है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के महाप्रयाण पर सुमन जी ने वज्रपात नामक कविता लिखी थी। इस कविता में कविवर सुमन जी ने शुक्ल जी के देहावसान के समय का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने शुक्ल जी के साहित्यिक अवदान का स्मरण करते हुए लिखा है कि शुक्ल जी साहित्य के पुरूषोतम थे। उनकी भाषा में नव स्फूर्ति थी, उन्होंने अरूप को रूप तथा उच्छृंखला को संयम से युक्त किया। इस सम्बंध में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:-

यो साहित्यिक पुरूषोतम ने
कर दी अपनी लीला समाप्त।
साहित्य जगत् पर वज्रपात।।
भर भाषा में नवस्फूर्ति शक्ति
तुमने अरूप को दिया रूप
रचना कुल उच्छृंलता में
तुम थे संयम के राम-रूप।

कविता के अन्तिम चरण में पहुंच कर कवि शुक्ल जी के अमर कृतित्व का स्मरण करता है और उनकी अमर गीति का आंकलन निम्न प्रकार से करता है:-

इस नश्वर जग में देव ! तुम्हारी
चिंतामणि की ज्योति अमर ?
हे अमर अनामय संवेदन
चर-अचर समन्वित प्रीति अमर।

रामधारी सिंह दिनकर:- कविवर शिवमंगल सिंह सुमन जी ने रामधारी सिंह दिनकर जी पर उनके आकस्मिक अवसान पर एक कविता लिखी है। इस कविता में उन्होंने दिनकर जी को युग का पुरोधा कहा है। इसके साथ-साथ कविवर सुमन जी ने दिनकर जी की हिन्दी-सेवा, कृतित्व, व्यक्तित्व आदि पर भी बड़ी सटीक बातें लिखी हैं, जो इस प्रकार है:-

जीवन भर
जोधा का जामा उतारा नहीं
अंगद के पॉव-सा
अडा रहा संजुग में
पलके बिछाए
परशुराम की प्रतीक्षा में
दिनकर हिमालय का
अरत हिन्द महासागर में
कुंकुम के छन्दों में
मेधमंदु गर्जन बन।

जयशंकर प्रसाद:- हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध एवं श्रृंगार रस के कवि जयशंकर प्रसाद के असामयिक देहावसान पर शिवमंगल सिंह सुमन ने 'हा प्रसाद' नामक कविता लिखी है। असमय यह कैसा दुख भाए का पुट देकर कवि ने प्रसाद जी के जीवनक्रम और कृतित्व कर्म का स्मरण किया है। उन्होंने कवि के निधन पर विधाता को धिक्कारते हुए लिखा है कि प्रसाद जी के निधन पर जड़-चेतन, विश्व-साहित्य, हिन्दी साहित्य आदि सब कुछ रो पड़ा। इसका कारण यह था कि जयशंकर प्रसाद इस जगत के आदर्श रूप थे, अभिनव युग के सूत्रधार थे, मृतप्राणों के उन्नायक थे तथा मानवता की पुकार थे। इस संदर्भ में प्रस्तुत पंक्तियाँ इस प्रकार हैं जो सम्पूर्ण मानव जाति की कल्याणकारी भावना से जुड़े हुए थे, इस कथन को निम्नलिखित पंक्तियों में उजागर किया गया है:-

जगतीतल के आदर्श रूप
ओ अभिनव युग के सूत्रधार
ओ मृतप्राणों के उन्नायक,
ओ तुम मानवता की पुकार

तुमको नभ तारक खोज रहे अगणित दृग द्वारो से निहार
असमय यह कैसा दुख भार ?

मुंशी प्रेमचन्द:- अधिकांश साहित्यकारों ने मुंशी प्रेमचंद को कथा सम्राट के रूप में पहचाना है। इस सम्बंध में प्रेमचंद जी को लक्षित करके सुमन जी ने दो कविताएं लिखी हैं:-

1. स्वर्गीय प्रेमचन्द जी के प्रति।
2. मेरे कथाकार।

ये दोनों कविताएं 'विश्वास बढ़ता ही गया' नामक काव्य संग्रह में संकलित हैं। मुंशी प्रेमचन्द पर रचित पहली कविता में कवि ने प्रेमचन्द जी को पद्दलित देश का स्वाभिमान, जनयुग-जागृति के प्रथम चरण का जनक, जनपथ स्रष्टा, श्रमिक वर्ग के सजीव-श्रम, संघर्षो के प्रतीक, नयी चेतना, नया विश्वास, रूढिघ्वाद के विरोधी आदि के रूप में दर्शाया है और यह भी कहा है कि उनकी इस कृति में मातृभूमि की मिट्टी की सुगंधि मिलती है। इस कविता की कृछ पंक्तियां निम्न प्रकार से हैं:-

पददलित देश के स्वाभिमान
जनयुग-जागृति के प्रथम चरण
असमय वर डाला भरण वरण
तुम श्रमिक वर्ग के श्रम सजीव
चेतना नयी विश्वास नया
तुम रूढ़िवाद पर धन-प्रहार
हे व्रती! तुम्हारे व्रत में संचित
कोटि-कोटि कंठो को वाणी अनिर्वध
हे कृति, तुम्हारी कृति में मिलती
मातृभूमि की मिट्टी की सोंधी सुगंध।

आगे चलकर कविवर शिवमंगल सिंह सुमन ने 'मेरे कथावार' नामक कविता में प्रेमचन्द को संस्कृति ज्ञान का गौरव, देश का स्वाभिमान, चिर मूक के गान, जन-जन के हृदयहार कहकर अभिनंदित किया है। सुमन जी ने इस कविता में यह भी स्वीकार किया है कि प्रेमचन्द जी शोषित-दलित वर्ग के प्राण थे, स्नेह के साकार रूप थे तथा पाप के विनाशक थे। इस सम्बंध में कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है:-

शोषित-दलित प्राण
अज्ञात, अनजान
तुमने दिया ज्ञान, तुमने किया प्यार
और कथाकार, मेरे कथाकार
म्लाष किया क्षार
तुम स्नेह-साकार
हे ज्योति आधार, शत्-शत् नमस्कार
मेरे कथाकार, मेरे कथाकार।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला:- वस्तुत: शिवमंगल सिंह सुमन ने सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के सम्बंध में जो रचना की उसको देखकर ऐसा लगता है कि निराला जी शिवमंगल सिंह सुमन के सर्वाधिक प्रिय कवियों में से थे। इसलिए उन्होंने कविवर निराला पर विशिष्ट कविताएं लिखी हैं। कविवर सुमन जी द्वारा निराला पर रचित कविताएं निम्नलिखित हैं:-

1. युगान्तकारी कवि निराला के प्रति।
2. महाप्राण के महाप्रयाण पर।

ये कविताएं 'विश्वास बढ़ता ही गया' नामक काव्य संग्रह में संकलित हैं। इनमें से 'महाप्राण के महाप्रयाण पर' एक लम्बी कविता है। यह लगभग 11 पृष्ठों में है, जो सुमन जी ने निराला जी की 50 वीं वर्षगांठ पर लिखी थी। इस कविता में सुमन जी ने निराला के जीवन, उनके व्यक्तित्व, उनके जीवन संधर्ष, उनका कृतित्व तथा उनके साहित्यिक अवदान को चित्रित किया है। कविता के प्रारम्भ में कवि ने निराला को चिर-विदग्ध संबोधन से संबोधित किया है तथा उनके शैशव के संकलय तथा स्वरूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। सुमन जी ने निराला को नवस्रष्ट मानकर उनके मोहक व्यक्तित्व को निम्न प्रकार से उजागर किया है:-

वह कौन कली
जो तुम्हें देख मुस्कान उठी
वह कौन सुछवि
जो तुम्हें देखकर नहीं लूटी

कविवर सुमन जी ने सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के यौवन का बड़ा ही सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है। कवि कहता है कि निराला का यौवन उद्दाम था, इसलिए उसके सामने किसी की भी टिकने की हिम्मत नहीं थी। वे युग के दुर्जेय प्रवाह के समान थे जो विषमता के कगारों को अस्त-ध्वस्त कर रहा था। अंततः कवि यह भी मानता है कि निराला जी के सम्पूर्ण जीवन में एकाकीपन और अजनबी के रूप में उनकी पहचान बनी रही। वे दर-दर भटकते रहे, कपोल गीले तथा आंचल भीगा रहा, लेकिन उनका ऐसा रूप किसी ने भी नहीं देखा। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियाँ निम्न प्रकार से दृष्टव्य है:-

तुम एकाकी अजनबी बने
दर दर घूमें, भटके व्याकुल
सूने में सिसके अकुलाए
पर देख नहीं पाया कोई
गीले कपोल, भीगा ऑचल।

अपने काव्य संग्रह 'मिट्टी की बारात' में शिवमंगल सिंह सुमन ने निराला जी के अवसान पर एक कविता लिखी है-'महाप्राण के महाप्रमाण पर'। इस कविता के प्रारम्भ में कवि दार्शनिक चेतना से युक्त होकर निराला जी का स्मरण करता है और कहता है कि हे कविवर, जब तुम जीवित थे, तब सुनने को जी करता था, जब तुम चले गए तो गुनने का जी करता है। चूंकि यह एक ऐसी वास्तविकता है कि जो जलता है, वही बुझता है और जो फरता है, वही झरता है। इसके साथ-साथ इस कविता में सुमन जी ने निराला जी के जीवन भर के मार्मिक दुख-दर्द को गहरी संवेदना से व्यक्त किया है। इस सम्बंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ अधिक प्रासंगिक मानी जा सकती है:-

तुम जीवित थे तो सुनने को जी करता था
तुम चले गये तो गुनने को जी करता है
तुम सिमटे थे तो सहमी-सहमी ऑखे थी
तुम बिखर गये तो चुनने को जी करता है
यह दुनिया आनी-जानी होती है बाबा
जो जलता है, वह बुझता है
जो फरता है वह झरता है।

कालिदासः- अधिकांश साहित्यकारों का मानना है कि कविवर शिवमंगल सिंह सुमन के मन में कुलगुरू और महाकवि कालिदास के प्रति असीम आस्था की झलक दिखायी देती है। इसलिए उन्होंने दो कविताएँ लिखी हैं:-

1. कवि कुलगुरू कालिदास के प्रति
2. यह दिन बार-बार आये।

प्रथम कविता में कविवर सुमन जी ने कालिदास के सौन्दर्य-बोध, प्रतिभा सर्जन सामर्थ्य, वस्तु विविधता को इस प्रकार उजागर किया है:-

हम केवल धड़ थे
तुमने हमें आँखे दी
सौंदर्य सराहने की
गाहने की खलिहान
दाना और भूसे को
बिलगाने को कलित कला
अखिल ज्वलंत
जिजीविषा के धनी थे तुम
अन्यथा अनाविल मुग्ध
अप्रतिहत पौरूष को
कैसे पधरा पाते
सर्जना की वेदी पर।

यह दिन बार-बार आए' कविता कालिदास की जयंती पर समवेत ज्ञान के लिए सुमन जी द्वारा लिखी गई। इस कविता में कवि ने कामना की है कि कालिदास की कीर्ति - कौमुदी सारे संसार में छा जाए। इस संदर्भ में कवि ने लिखा है:-

यह अपूर्ण गाथा जन-जन की
सम्मोहन की, संवेदन की
स्वर्ण-धरा के मधुर मिलन की
कल कोमल, कमनीय कल्पना
कंठ-कंठ गाए
यह दिन बार-बार आए

सुमित्रानंदन पंतः- कविवर सुमन जी द्वारा रचित कविता 'कविवर पंत के जयंत्युत्सव पर' उनके द्वारा सुमित्रानन्दन पंत की पचासवीं वर्षगांठ (29 मई 1950 ई0) पर पढ़ी गयी थी। इस कविता में कवि ने पंत जी के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से कविता के कुछ छन्द देखते ही बनते हैं:-

सारा जीवन वनवास, मौन तप-साधन
उर्मिला सिसकती कहां सुमित्रानन्दन
अभिशाप अभावग्रस्त जीवन के हतक्षण
किस मेधनाद-वध हेतु कठिन प्रण पालन।
युग करवट का उच्छवास कि भूघर डोले
वीणा के पहले बोल तुम्ही में बोले
हो ! चिर-किशोर सौन्दर्य सृष्टि में निरूपण
पल्लव पल्लव पर किया तुम्हीं ने गुंजन।

रवीन्द्रनाथ टैगोरः- हम इस बात को जानते हैं कि 'स्वर्गीय कवि-गुरू के प्रति' एक कविता टैगोर के स्मरण में लिखी गई है। यह कविता 'प्रलय-सृजन' नामक काव्य संग्रह में संकलित है। इस कविता में सुमन जी ने टैगोर जी के सम्मोहनकारी व्यक्तित्व और कृतित्व का स्मरण किया है। इस कविता में उन्होंने टैगोर जी को आर्य संस्कृति का प्रतीक, युग का संचित ज्ञान धारक, भागीरथ की अमर तपस्या, गौतम का निर्वाण, वीणावादिनि की स्वर-लहरी, वाल्मीकि के छन्द, भारत के चन्द आदि रूपों में पहचाना है। कविवर सुमन जी ने टैगोर को भारत के अभिमान से भी संबोधित किया है। कवि ने उनके स्वतन्त्रता सेनानी रूप का भी स्मरण किया है। इसी क्रम में उन्होंने टैगोर जी की संकल्पना के प्रतीक शान्ति-निकेतन को भी ध्यान में लाने का प्रयास किया है। कविता के कुछ छन्द द्रष्टव्य है, जिनसे उनके अनूठे व्यक्तित्व का परिचय मिलता हैः-

आर्य-संस्कृति के प्रतीक तुम
युग के संचित ज्ञान
भागीरथ की अमर तपस्या
गौतम के निर्वाण
खीचातानी के इस युग में
खूब निभाई टेक
जितनी जीभ प्रश्न उतने ही
भ्रान्ति भरे जग के जीवन में
फैली आज अशान्ति
क्या न उसे फिर दे पाएगा
शान्ति निकेतन-शान्ति।

सारांशः- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कविवर शिवमंगल सिंह सुमन भारतीय संस्कृति के पुरोधा थे। उन्होंने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के सांस्कृतिक स्वरूप के अनेक रूपों का निरूपण किया है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे राष्ट्रीय चेतना के भी सच्चे कवि थे। वास्तव में देशवासियों को राष्ट्रवाद से परिचित कराना तथा राष्ट्रीय चेतना के दृष्टिगत भारतीयों को चरित्रवान बनाना उनका प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने राष्ट्रभक्त-साहित्यसेवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अपने कवि धर्म तथा कवि कर्म का निर्वहन किया है।

संदर्भ सूचीः-

1. सुमन समग्रः खण्ड-1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
2. सुमन समग्रः खण्ड-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
3- http://kavitakosh.org › शिवमंगल;सिंह;'सुमन'
4. https://hi.wikipedia.org › wiki › शिवमंगल;सिंह;'...
5. https://www.amarujala.com › Kavya › Kavita
6. https://www.hindwi.org › shivmangal-singh-suman › all

भारत में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विकास हेतू प्रमुख संवैधानिक व्यवस्थाएँ

आशा रानी

स्नातकोत्तर एवं राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास (राजनीति विज्ञान)

शोधालेख सार:- वस्तुत: भारत के स्वतंत्र होने से पहले भी दलितों के लिए समानता व स्वतंत्रता जैसे अधिकारों की प्राप्ति हेतू हमारे समाज सुधारकों, बुद्धिजीवी वर्ग तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले नेताओं द्वारा ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया, परन्तु दलितों व महिलाओं के उत्थान हेतू तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया। लम्बी लड़ाई के पश्चात् जब भारत को आजादी मिली तो स्वतंत्र भारत की सरकार ने देश के विभिन्न भागों में सामाजिक एवं आर्थिक पिछडेप्पन की समस्या का सामना किया। इस दिशा में अनुसूचित जातियां सबसे कमजोर कड़ी मानी गई। उस समय भारतीय समाज में अस्पृश्यता का दंश अनुसूचित जातियों को झेलना पड़ा, परन्तु 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान के लागू होते ही अनुसूचित जातियों के उत्थान पर बल दिया गया। इसमें राजनैतिक संगठनों के हर स्तर पर इस वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई और संविधान के अनुच्छेद 17 में छुआछूत की समाप्ति के लिए कठोर कदम उठाएं गए। वास्तव में अनुसूचित जातियों को स्वतंघ्त्र भारत में प्रजातन्त्र एवं धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्तों का पालन करना पड़ा तथा तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की सरकार ने समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा का भरोसा दिलाया। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय संविधान के अंतर्गत आने वाले उन सभी संवैधानिक उपबन्धों पर प्रकाश डाला गया है, जिनका सम्बंध अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण से है।

मुख्य शब्द:- संविधान, कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति, संवैधानिक प्रावधान, छुआछूत, धर्मनिरपेक्षता।

भूमिका:- भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुसार अनुसूचित जातियों के विरूद्ध सदियों से चले आ रहे जातीय भेदभाव को समाप्त करने हेतू आरक्षण की सुविधा प्रदान करके ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अब हमारे देश में अनुसूचित जातियों से संबंधित अधिकांश समस्याओं का समाधान हो गया है या जल्दी ही होने वाला है। चूंकि छुआछूत का कलंक आसानी से समाप्त होने वाला नहीं था, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 17 में इसको समाप्त करने हेतू संविधान द्वारा जो सुरक्षा कवच प्रदान किया गया था, उसको जमीनी हकीकत बनाने हेतू भारत सरकार की तरफ से अनेकों तरह की कल्याणकारी योजनाएँ चलाकर अनुसूचित जातियों के अधिकारों की प्राप्ति तथा सामाजिक भेदभाव व आर्थिक असमानता समाप्त करने के लिए ठोस कदम उठाए गए। वर्ष 1990 के दशक के प्रारम्भ में जब मंडल आयोग की अनुशंसा के अनुसार अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण दिये जाने बात की गई तो देश के अनेक भागों में आरक्षण के विरोध में आंदोलन हुए। फिर भी तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह के नेतृत्व वाली सरकार ने आरक्षण की इस व्यवस्था को अमली जामा पहनाया और धीरे-धीरे अधिकांश आंदोलन समाप्त हो गए। इसके साथ ही अनुसूचित जातियों के विकास व कल्याण हेतू कई गैर-सरकारी संगठनों द्वारा यह आवाज उठायी जाने लगी कि अनुसूचित जातियों को आरक्षण के नाम पर दी जाने वाली सुविधाएं अपर्याप्त हैं तथा इन जातियों के साथ सदियों से भेदभाव होता आया है और आज भी इस वर्ग के साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है तथा इनको अछूत समझा जाता है। मानवाधिकार संगठनों ने इनके साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार को मानवाधिकारों के हनन की श्रेणी में रखकर अनुसूचित जातियों के साथ न्याय करने का मुद्दा उठाया गया।

वास्तव में दलितों के कल्याण की यह मांग केवल स्थानीय स्तर पर पर ही नहीं बल्कि वर्ष 2001 में डरबन में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के समक्ष भी यह मांग रखी और कहा गया कि भारत में जाति के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव को

नस्लवादी भेदभाव की श्रेणी में रख कर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा इस समस्या का समाधान किया जाए। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग द्वारा भारत में दलितों के लिए आवाज उठाने वाले गैर-सरकारी संगठनों के अनुरोध को स्वीकार करते हुए दलितों की समस्याओं के समाधान हेतू प्रयास करने पर बल दिया गया।

हम इस तथ्य को भलि-भाँति जानते हैं कि दलित समुदाय को लेकर भारतीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था की विषमताओं के प्रति अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक आन्दोलन प्रस्फुटित होते रहे हैं। इन आन्दोलनों को सही दिशा देने हेतू ज्योतिबा फुले, बाबा साहब अम्बेडकर और पेरियार रामास्वामी के साथ-साथ देशभर के अन्य आन्दोलनकारियों, जिनमें केरल के नारायण स्वामी, उत्तरप्रदेश के अछूतानन्द व पंजाब के मंगूराम की प्रमुख भूमिका रही। इन्होंने दलितों की शोषण व्यवस्था पर प्रहार करते हुए उस हिन्दू राष्ट्रवाद को चुनौती दी जो 19वीं शताब्दी और बाद में सम्पन्न तबकों के उभार के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था। इन समाज सुधारकों ने जाति के विकृत विचार का ही विरोध नहीं किया बल्कि हिन्दुत्व को ब्राह्मणवाद, जातीय बन्धन और अतार्किकता का सार बताते हुए उस पर हमले किए तथा राजनीतिक रूप से इन्होंने भारतीय कांग्रेस का भी विरोध किया क्योंकि यह ऊपरी जातियों और पूंजीपतियों के कब्जे में थी। परिणामस्वरूप उपेक्षित समाज के इन आन्दोलनों की वजह से ही ब्रिटिश शासनकाल में दलितों एवं उपेक्षित मानवीय समूहों के लिए विशेष संवैधानिक प्रावधान कर दिए गए थे, परन्तु दलितों की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया तथा इस दिशा में अधिक ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता अनुभव की गई।

वस्तुत: भारत में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन योजना 1946 के अन्तर्गत एक संविधान सभा की स्थापना की गई और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को सर्वसम्मति से संविधान सभा का अध्यक्ष चुना गया। संविधान सभा के द्वारा कुछ समितियों की भी स्थापना की गई जिनमें प्रारूप समिति सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर इस समिति के अध्यक्ष थे इसलिए उन्होंने संविधान निर्माण के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा कि देश को ऐसी शासन व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें सभी व्यक्तियों, वर्गो व जातियों के हितों की रक्षा सुनिश्चित हो तथा उसमें आवश्यकता अनुसार बदलाव भी किया जा सके।

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से ऐसी व्यवस्था दी जिसमें सभी वर्गों को आगे बढ़ने के समान अवसर मिल पाएं तथा जो लोग सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक व राजनीतिक दृष्टि से पिछडे़ हुए हैं, उन्हें विशेष सुविधाएं देकर उनका जीवन स्तर उंचा उठाया जा सके ताकि वे सभी सम्मानपूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें। उन्होंने मौलिक अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था को भी संविधान में प्रमुख स्थान दिया। उनके अनुसार मौलिक अधिकारों को संरक्षण कुशल शासन द्वारा होना चाहिए, जिसमें सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के अपने व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास की स्वतंत्रता मिल सके। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि भारत में इन अधिकारों को विधानमण्डल या सरकार की इच्छा पर छोड़ देना उचित नहीं है, क्योंकि भारत में लोकतंत्र अब तक पूर्ण रूप से पनप नहीं पाया है। इसलिए इन अधिकारों को संविधान में रख दिया गया है ताकि पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतू ठोस कदम उठाए जा सकें।

अंतत: भारतीय संविधान के द्वारा अन्याय व असमानता पर आधारित नियमों को समाप्त कर दिया गया और इससे सामाजिक न्याय पर आधारित समतावादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान के माध्यम से ही भारत समाज के परम्परागत ढांचे में मौलिक रूप से परिवर्तन हुआ और स्वतंत्रता व समानता के आधार पर नए समाज की रचना के प्रयास किए गए। भारतीय संविधान का प्रणयन करते समय डॉ. अम्बेडकर कथित अछूतों के लिए उसमें अनेक संरक्षणों को समाहित कराने में सफल रहे। भारतीय संविधान के द्वारा इन्हें दोहरे अधिकार व सुरक्षा प्रदान की गई है, एक तो सामान्य नागरिक के तौर पर तथा दूसरे दलित होने के कारण। अत: हमारे संविधान में सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्रोत्साहित करने के उदेश्य से संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ कुछ विशेष कानूनी उपाय भी किए गए हैं, उससे ही ये प्रावधान और कानून प्रेरणा ग्रहण करते हैं। संविधान की प्रस्तावना में इस तथ्य को प्रतिपादित किया गया है कि सभी नागरिकों में न्याय, समानता, भ्रातृत्व की भावना को बढावा देना संविधान का उदेश्य है। अंतत: हमारे देश के संविधान में अनुसूचित जातियों व जनजातियों सम्बन्धी विभिन्न प्रावधानों की व्यवस्था इस प्रकार है:-

संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि कानून अर्थात विधि के समक्ष सभी नागरिक समान हैं और बिना किसी

भेदभाव के सभी व्यक्ति विधि के संरक्षण के अधिकारी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश श्री पी.एन. भगवती ने इ.पी. रोयाप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य के मामले में बहुमत का निर्णय सुनाते हुए कहा कि समता अर्थात समानता एक गतिशील धारणा है, जिसके अनेक रूप और आयाम हैं और इसको किसी सिद्धान्तवाद या परम्परागत की सीमाओं से नहीं बांधा जा सकता। यह अनुच्छेद राज्य की कार्यवाहियों में मनमानेपन को वर्जित करता है और समान व्यवहार की अपेक्षा करता है। युक्तियुक्तता का सिद्धान्त समता के सिद्धान्त का एक आवश्यक तत्व है जो अनुच्छेद 14 में विद्यमान है। वस्तुतः समता और मनमानापन एक दूसरे के शत्रु हैं, जहां कोई मनमाना कार्य किया जाएगा, वहां असमानता अवश्य होगी और अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होगा। यह अधिकार भारतीय तथा विदेशी सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होता है। इस प्रकार कानून के समक्ष सभी समान हैं तथा कानून सामाजिक रूप से छोटे-बडे, ऊंचे-नीचे आदि में किसी भी प्रकार का भेदभाव वर्जित करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद - 15 के तहत धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान, वर्ग के आधार पर भेदभाव वर्जित है। अनुच्छेद 15 (2) में कहा गया है कि अन्य बातों के साथ-साथ किसी भी नागरिक को केवल जाति के आधार पर अक्षमता या किसी दायित्व का पात्र नहीं ठहराया जा सकता। केवल इसी आधार पर दुकानों, रेस्त्राओं, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थलों पर प्रवेश या कुएं आदि के इस्तेमाल पर कोई रोक या शर्त नहीं लगाई जा सकती। साथ ही ऐसी सड़कों और सार्वजनिक आवाजाही के ऐसे स्थलों, जिनका रख रखाव पूरे या आंशिक रूप से राज्य कोष से किया जाता है या जिन्हें जन उपयोग के लिए समर्पित किया गया हो, के इस्तेमाल पर भी अन्य बातों के साथ-साथ केवल जाति के आधार पर रोक नहीं लगाई जा सकती।

इसी प्रकार अनुच्छेद - 15 (4) के अन्तर्गत राज्यों को इस प्रकार के उपबन्ध करने की छूट है जिसके तहत प्रायः सभी राज्यों में पंचायतों सहित विभिन्न स्थानीय निकायों में यथावश्यक अनुसूचित जातियों, अनूसूचित जनजातियों एवं महिलाओं का प्रतिनिधित्व चुनाव अथवा सहयोजन अथवा नामांकन के माध्यम से सुनिश्चित किया गया है। इस प्रकार सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे वर्गों के लिए विशेष उपबन्ध किए गए हैं। अनुसूचित जाति व जनजाति की सामाजिक व शैक्षणिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए संविधान द्वारा उनके विकास व अवसर की समानता उपलब्ध कराने के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।

उपर्युक्त व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले सभी वर्गों का चयन करने का अधिकार राज्य को है तथा इस मामले में उच्चतम न्यायालय अपने एक निर्णय में कह चुका है कि आरक्षण के प्रयोजन के लिए पिछडे़ वर्ग मे वर्गीकरण किया जा सकता है, क्योंकि पिछडे वर्ग में अधिक सम्पन्न वर्ग के निर्धारण के लिए यह आवश्यक है। न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया है कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता, लेकिन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक भी हो सकता है।

अनुच्छेद - 16 (1) सरकारी नौकरियों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान करता है। अनुच्छेद 16 (2) राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में जाति, धर्म, वंश, लिंग, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी भी आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न ही उससे कोई भेदभाव किया जाएगा।

अनुच्छेद - 16 (4) राज्य को सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टि से उन पिछडे वर्गों के लिए नियुक्तियों में आरक्षण का लाभ देने की स्वीकृति प्रदान करता है जिनका सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। पिछडे वर्गों के निर्धारण हेतु अनुच्छेद 340 राष्ट्रपति को एक आयोग की स्थापना की शक्ति प्रदान करता है। यह आयोग पिछडे वर्गों संबंधी जांच पडताल की रिर्पोट राष्ट्रपति को सौंपता है, यह व्यवस्था भी भारतीय संविधान में की गई है।

अनुच्छेद - 16 (4) में सामाजिक पिछडेपन को आधार बनाकर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। यह आवश्यक नहीं है कि वह सामाजिक और शैक्षणिक दोनों हो। अनुच्छेद 16 (4) के अन्तर्गत स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए प्रदेय आरक्षण पदोन्नति मे भी जारी रहेगा तथा आरक्षण के बैकलॉग पर 50 प्रतिशत सीलिंग लागू नहीं होगी, जबकि अन्य पिछडे़ वर्गो को पदोन्नति में आरक्षण नहीं मिल सकता।

संविधान के अनुच्छेद - 17 के अन्तर्गत छुआछूत का अन्त कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इस प्रकार भारतीय समाज के मस्तक पर लगे कलंक को समाप्त ही नहीं किया गया अपितु भविष्य में इसके किसी भी रूप को व्यवहार में लाने पर रोक लगा दी गई है।

अनुच्छेद - 19 के अन्तर्गत भारतीय नागरिकों को देश में कोई भी वृति, उपजीविका व व्यवहार का कारोबार करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अनुच्छेद के तहत व्यवसायों का जातिगत आधार समाप्त कर दिया गया है। अब निम्न जातियों के लोगों

के लिए अपने जीवन निर्वाह के लिए निम्न श्रेणी के कार्य करना जैसे कि मरे हुए पशुओं को उठाना, गन्दे कपड़े धुलवाना, प्रसूति का कार्य करवाना आदि की बाध्यता नहीं रह गई है। अनुसूचित जातियों को अतीत में सम्पत्ति अर्जित करने, जीविका धारण करने, किसी स्थान पर बसने से सम्बन्धित जो शास्त्रीय निर्योग्यताएं थी, वे अनुच्छेद - 19 (1) के द्वारा पूर्णतया समाप्त कर दी गई हैं।

अनुच्छेद - 21 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को उसके जीवन और दैहिक स्वतन्त्रता से कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद - 23 (1) में बेगार या बलपूर्वक किसी से श्रम कराना निषिद्ध घोषित कर दिया गया। इसका उल्लंघन अपराध घोषित करके कानून द्वारा दण्डनीय घोषित किया गया है।

अनुच्छेद - 25 (2), (9) के प्रावधानुसार सभी सार्वजनिक प्रकृति की हिन्दू संस्थाओं को सभी हिन्दूओं के लिए खोल दिया गया है।

अनुच्छेद - 28 के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि गैर-सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में, जिनको सरकार अनुदान देती है उनमें धार्मिक शिक्षा तो दी जा सकती है परंतु उसे अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता।

अनुच्छेद - 29 राज्य द्वारा पोषित किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश के अधिकार से वंचित करने की मनाही है। किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, भाषा, जाति या इनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद - 35 (ए), (2) संसद को मौलिक अधिकारों से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों के तहत अपराध करार दिए गए कृत्यों के लिए ऐसे कानून बनाने का पूरा अधिकार देता है जिनमें दण्ड निर्धारण की व्यवस्था है।

अनुच्छेद - 35 (अ), (77) के अन्तर्गत 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955' पारित किया गया। इसमें आगे चलकर आवश्यक संशोधन किए गए। यह अधिनियम 106 के माध्यम से संशोधित कानून 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955' के नाम से दिनांक 14 नवम्बर 1976 से लागू हुआ। इसमें कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है। यदि कोई लोकसेवक जानबूझकर उपबन्ध की उपेक्षा करता है या समुचित कार्रवाई नहीं करता तो समझा जाएगा कि वह अपराध को उत्प्रेरित कर रहा है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद - 275 के अधीन संसद उन राज्यों को विशेष केन्द्रीय अनुदान देगी जो अनुसूचित जातियों और जनजातियों के कल्याण या अनुसूचित क्षेत्रों में प्रशासन स्तर की उन्नित के प्रयोजन के लिए भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में ली गई योजनाओं को कार्यान्वित कर रहे हों। इस प्रयोजन के लिए असम राज्य को विशेष अनुदान दिया जाता है। अनुच्छेद - 164 में यह अभिकथित है कि बिहार, मध्यप्रदेश और उडीसा राज्य में जनजातियों के कल्याण का प्रभारी एक मंत्री होगा जो अनुसूचित जातियों और अन्य पिछडे वर्गों के कल्याण का प्रभारी नहीं हो सकता है। व्यवहार में ऐसे कल्याण विभाग न केवल उन तीन राज्यों में बनाए गए हैं जिनके लिए संविधान में अपेक्षा की गई थी बल्कि अन्य राज्यों में भी हैं। संविधान की पांचवी व छठी अनुसूची में अनुच्छेद - 244 के साथ पठित, अनुसूचित जनजातियां जिस क्षेत्र में निवास करती हैं उनके प्रशासन के लिए विशेष उपलब्ध किए गए हैं।

संविधान में अनुच्छेद - 330 और 332 के अधीन लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। अनुच्छेद 330 के अन्तर्गत व्यवस्था है कि लोकसभा में (क) अनुसूचित जातियों के लिए (ख) अनुसूचित जनजाति सिवाय असम के स्वशासित जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोडकर (ग) असम के स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। अनुच्छेद - 332 के तहत प्रत्येक राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए (असम की स्वशासी जिलों की अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर) स्थान आरक्षित रहेंगे तथा असम राज्य की विधानसभा में स्वशासी जिलों के लिए भी स्थान आरक्षित रहेंगे। लोकसभा व विधानसभाओं में आरक्षण संयुक्त मतदान प्रणाली के आधार पर होता है जिसमें प्रत्याशी तो आरक्षित वर्ग से संबंधित होता है परंतु मतदान में उस क्षेत्र के सभी मतदाता भाग लेते हैं। स्थानों का आरक्षण जनसंख्या के आधार पर किए जाने की व्यवस्था है।

अनुच्छेद - 334 के अन्तर्गत विधानमण्डलों में आरक्षण संविधान लागू होने के 70 वर्षों तक जारी रहेगा। आरक्षण कुछ उदेश्यों जैसे कि वंचित वर्ग की उन्नति, सरकारी सेवाओं में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व आदि की पूर्ति के लिए प्रदान किया गया है। यदि राज्य यह समझने लगे कि इन उदेश्यों की पूर्ति हो चुकी है तो इन प्रावधानों को वैधानिक प्रक्रिया द्वारा निरस्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद - 335 के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों, जनजातियों के सदस्यों को केन्द्र व राज्य सेवाओं और पदों पर भर्ती के लिए स्थान आरक्षित किए जाने का प्रावधान है। 1990 में 65वें संविधान अधिनियम द्वारा अनुच्छेद - 338 के अन्तर्गत व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति अनुसूचित जाति-जनजाति राष्ट्रीय आयोग की नियुक्ति करेगा। आयोग में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा 5 अन्य सदस्य होंगे। आयोग अनुसूचित जाति, जनताति से संबंधित शिकायतों की जांच करेगा तथा रक्षा उपायों को क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रपति को वार्षिक रिर्पोट प्रस्तुत करेगा तथा रक्षा उपायों को क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रपति को वार्षिक रिर्पोट प्रस्तुत करेगा। आयोग इन वर्गों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए योजना प्रक्रिया में भाग लेने और सलाह सुझाव देने के लिए कार्य करेगा।

अनुच्छेद - 399 (1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी समय या संविधान के प्रारम्भ से 10 वर्ष की समाप्ति पर अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है।

अनुच्छेद - 341 (1) में कहा गया है कि राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में और जहां वह राज्य है वहां उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा जिन्हे इस संविधान के प्रायोजनों के लिए यथाशक्ति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में दलित समझा जाएगा।

इस प्रकार अनुच्छेद - 341 (2) में स्पष्ट किया गया है कि संसद विधि द्वारा किसी जाति, मूलवंश या जनजाति को अथवा उसके किसी भाग को खण्ड (1) के अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में सम्मिलित कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी। इस प्रकार अनुच्छेद - 341, 342 राष्ट्रपति को इन जातियों को उल्लिखित करेगा जो इस प्रयोजन के लिए अनुसूचित जातियां या अनुसूचित जनजातियां समझी जाएंगी। अनुच्छेद - 366 में अनुसूचित जातियों के संबंध में कहा है कि दलितों से ऐसी जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भाग या उनमें अभिप्रेरित जिन्हें संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद - 341 के अधीन अनुसूचित जातियां समझा है।

संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन विधेयक 1992 जो क्रमश: पंचायतों और नगरपालिकाओं से सम्बन्धित हैं, के अनुसार इन स्थानीय स्वशासी निकायों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और इन वर्गों की महिलाओं के लिए स्थानों में आरक्षण अनुच्छेद - 243 घ (1) के अन्तर्गत प्रदान किया गया है और इसका निर्धारण उस क्षेत्र की जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। खण्ड (1) के अधीन आरक्षित स्थानों में से 1/3 स्थान अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे। खण्ड (2) पंचायतों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियों के लिए पंचायत के अध्यक्ष पद के लिए आरक्षण होगा जैसा कि राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर विहित करे। अध्यक्ष पदों का आरक्षण क्षेत्र की कुल जनसंख्या में इनकी जनसंख्या के अनुपात से किया जाएगा। इस खण्ड के अधीन आरक्षित पदों को विभिन्न पंचायतों के चक्रानुक्रम से आबंटित किया जाएगा तथा यह अनुच्छेद - 335 में निर्दिष्ट उपबन्धों के समान प्रभावी रहेंगे।

सारांश:- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दलितों अर्थात अनुसूचित जातियों व जनजातियों के साथ सदियों से भेदभाव होता रहा है। समय-समय पर दलितों पर होने वाले अत्याचार इस बात का प्रमाण हैं कि दलित इस भूमि के सर्वाधिक पीड़ित मूलनिवासी जन हैं, जिन्हें हिन्दू धर्म, संस्कृति व राजनीति द्वारा अलग सांस्कृतिक पहचान के कारण उपेक्षित किया जाता रहा है। वास्तव में भूतकाल के अछूत ही आज दलित कहे जाते हैं। भारत में छुआछूत के विरोध में अनेक लोग संघर्षशील रहे हैं, लेकिन जब तक भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विकास व कल्याण हेतु संवैधानिक व्यवस्थाएँ नहीं की गई, तब तक इन वर्गों का सभी प्रकार से शोषन होता रहा। अंतत: हिन्दू धर्म संस्कृति द्वारा दलितों पर आरोपित निर्योग्यताओं में उस समय तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ जब तक कि दलितों के लिए शिक्षा तथा आर्थिक विकास की योजनाएं लागू नहीं हुई। हम इस तथ्य को नकार नहीं सकते कि दलितों द्वारा भारत के सबसे बड़े कानून में संवैधानिक प्रावधान प्राप्त करने के लिए देश भर में अनेक आन्दोलन चलाए गए और दलित चेतना के इन आन्दोलनों में सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक भागीदारी के साथ-साथ विशेष प्रतिनिधित्व के लिए आवाज उठाई गई और अन्तत: दलितों को भारतीय संविधान में विशेष प्रावधान दिए गए, फिर भी इस समुदाय के लोगों का समुचित विकास नहीं हो पाया, क्योंकि देश में राजनैतिक नेतृत्व तथा प्रशासन ने इन प्रावधानों को ईमानदारी से लागू नहीं किया। यद्यपि आरक्षण को हर 10 वर्ष पश्चात् बढ़ाया जाता रहा तथा लक्ष्यों की पूर्ति न हो सकी। कुछ सीमा तक यह बात सत्य है कि दलितों के लिए संवैधानिक प्रावधानों का कार्यान्वयन नियमानुसार नहीं हो पाया है, परंतु इस तथ्य को झुठलाया नहीं

जा सकता कि पिछले दशकों में वे सशक्त हुए हैं। शासन द्वारा दलितों को शिक्षा, रोजगार, व्यवसाय संबंधी सहुलियतें, कम ब्याज पर ऋण व आर्थिक सहायता तथा कृषि व आवास हेतु भूमि के आबंटन की व्यवस्था के तहत इनकी स्थिति में काफी सुधार आया है।

संदर्भ सूचीः-

- पार्श्वथम्मा, सी., अनुसूचित जाति और जनजाति, एक सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण, आशीष पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1984.
- सिंह, आर.जी., भारतीय दलितों की समस्या व उनका समाधान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1986.
- सेल्वनाथन, एस., अनुसूचित जातियों की स्थिति, आशीष पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1989.
- शाह, घनश्याम, सोशल मूवमेंट इन इण्डियाः अ रिव्यू ऑफ दी लिटरेचर, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स, 1990.
- चंचरिक, कन्हैयालाल, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003.
- सिंह, संजय, मानवाधिकार और दलित, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010.
- माइकल, एस.एम., आधुनिक भारत में दलित, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010.
- उपाध्याय, सौरभ, डॉ. अम्बेडकर और दलित चेतना, इशिका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2011.
- वर्मा, अंजना, राजनीति में अनुसूचित जातियों की भूमिका, राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2013.
- कुमार, अरूण, आधुनिक शिक्षा एवं दलित, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2015.
- तिवारी, संदीप, दलितः सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विश्लेषण, सृष्टि बुक डिस्ट्रीब्यूटरर्स, नई दिल्ली, 2015.
- कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नेहरू भवन, वसंत कुंज, नई दिल्ली, 2017.
- थोरात, सुखदेव, भारत में दलित, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2017.
- काजल, अजमेर सिंह, दलित आत्मकथा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2018.

भारत में महिला विकास में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की भूमिका का विश्लेषण

मनीषा

स्नातकोत्तर एवं राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास (राजनीति विज्ञान), गांव व डाकखाना-बुसाना, जिला-सोनीपत, हरियाणा

शोधालेख सार-वस्तुत: भारत विश्व में सबसे बडा लोकतत्र है, जिसमें लगभग आधी संख्या महिलाओं की है। इसलिए एक कल्याणकारी सरकार का लक्ष्य सम्पूर्ण देश में महिलाओं के स्वास्थ्य व शिक्षा के विकास का है। इसी दृष्टि से भारत में वर्ष 2005 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की स्थापना के बाद से मान्यता प्राप्त सामाजिक कार्यकर्ता अर्थात आशा वर्कर इस मिशन की गतिविधियों के क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं और यह कार्यक्रम दुनिया के सबसे बड़े सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के रूप में विकसित हुआ, जिसके द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्ययोजना इस मिशन के रूप में समेकित तरीके से अमल में लाई गयी। यह मिशन शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहा है। जननी सुरक्षा योजना भी इस मिशन का हिस्सा है जो महिला विकास की दृष्टि से अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रही है। इसके अतिरिक्त इस मिशन में आपदा प्रबंधन, अस्पतालों एवं औषधालयों के पुनर्विकास आदि को सुदृढ़ करने के लिए भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की गई है। अंतत: स्वास्थ्य विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति होने से भारत की स्वास्थ्य सेवाओं मे विश्व के अधिकांश देशों का विश्वास बढ़ा है। प्रस्तुत शोध पत्र में महिला विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मूल शब्द- महिला स्वास्थ्य, महिला विकास, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रम, महिला एवं बाल विकास विभाग, जननी सुरक्षा योजना।

भूमिका- हम सभी इस बात से सहमत है कि हमने मातृ एवं शिशु मृत्यु-दर को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन आज भी महिला विकास की दृष्टि से ये एक चुनौती बनी हुई हैं। यही कारण है कि आज भी बदलते सामाजिक परिवेश में हमारे स्वास्थ्य कर्मियों के कौशल में सुधार लाने और देश भर में इनकी उपलब्धता सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है। चूंकि हमारे देश में भारत का स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय सभी को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध करने हेतु विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं राष्ट्रीय पहलों को कार्यान्वित कर रहा है। इसका उद्देश्य अवसंरचना की कमी वाले क्षेत्रों में नई आधारभूत संरचना विकसित करके और मौजूदा संस्थाओं में जो आधारभूत संरचना है उसे उन्नत बनाकर विकेंद्रीकृत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली तक पहुँच बढ़ाना है। एक एकीकृत और समग्र दृष्टिकोण प्रदान करने की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में कई अलग-अलग कार्यक्रमों को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की व्यापक छत्रछाया में एकीकृत कर दिया गया है। इनमें से कुछ कार्यक्रम ये है- नेमी प्रतिरक्षा (आरआई), राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण (एनवीबीडीसीपी), संशोधित राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम (आर एन टी सी पी), समेकित रोग निगरानी कार्यक्रम (आईडीएसपी), राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम (एनपीसीबी), राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनएमएचपी), बुजुर्गो की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीएचसीई) और राष्ट्रीय कैंसर, मधुमेह, हृदयवाहिका रोग एवं आघात रोकथाम और नियंत्रण कार्यक्रम (एनपीसीडीसीएस)।

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन:- यह कार्यक्रम राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत् एक ऐसा उप-मिशन है जो शहरी गरीबों व संवेदनशील जनसंख्या पर ध्यान केंद्रित करते हुए शहरी जनसंख्या की स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन मे पचास हजार से अधिक की आबादी वाले सभी शहर तथा कस्बे और जिला मुख्यालय व राज्य मुख्यालय

शामिल हैं जबकि छोटे नगरों या कस्बों को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत शामिल किया जाएगा। सिक्किम सहित उत्तर पूर्वी राज्यों तथा अन्य विशेष श्रेणी वाले राज्य जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड, जिनके लिए केंद्रीय राज्य वित्त पोषण पैटर्न 90:10 है को छोड़कर सभी राज्यों का केंद्रीय राज्य वित्त-पोषण पैटर्न 75:25 है। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के तहत् झुग्गी-वासियों तथा शहरी गरीब जनसंख्या के लिए चलाए जा रहे लक्षित क्रियाकलाप निम्नलिखित है:-

- इस मिशन के तहत 1000-2500 जनसंख्या, जिसमें 200-500 घर शामिल हों, पर एक आशा कर्मी होगी जो स्वास्थ्य सुविधाओं तथा शहरी ग्रामीण जनसंख्या के बीच प्रभावी, माँग-सृजन संपर्क के रूप में सेवाऐं देगी।
- महिला आरोग्य समिति (एमएएस) 250-500 जनसंख्या वाले 50-100 परिवारों के लिए होगी तथा झुग्गियों में समुदायिक आधारित सहयोगी शिक्षा समूह के रूप में कार्य करेगी। ये समिति निवारक व संवर्धक परिचर्या पर ध्यान केंद्रित करने के साथ समुदाय को जुटाने, निगरानी करने तथा रेफरल में शामिल होगी।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन:- इस कार्यक्रम के तहत् ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य को लेकर भारत सरकार के स्वास्थ्य संबन्धी सभी लक्षित प्रयासों की पूर्ति के दृष्टिकोण के साथ राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को अग्रेषण लिंकेज योजना उत्तर पूर्व में 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू की गई, यह अन्य स्वास्थ्य योजना से होने वाली संभावित बचत से वित्त-पोषित की जायेगी। इसका लक्ष्य गहन रूप में क्षेत्र की तृतीयक व द्वितीयक स्तर की स्वास्थ्य अवसंरचना में सुधार करना है। 12वीं योजना में इस योजना हेतु 748.00 करोड़ रु. का परिव्यय तैयार किया गया है। इस संबन्ध में परिवार नियोजन को एक ऐसे महत्वपूर्ण कार्यकलाप के रूप में पहचाना गया है, जिसका प्रयोग मातृ एवं बाल मृत्यु दर कम करने लिए किया गया है तथा न कि केवल जनसंख्या स्थिरीकरण उपलब्धि हेतु कार्यनीति के रूप में पुनर्गठित किया गया है। इसमें सभी प्रकार की परिवार कल्याण सेवाओं की प्रदानगी हेतु विभिन्न सुविधाओं के परिचालन पर और अधिक बल दिया गया है।

स्वास्थ्य नीति पर बल:- भारत सरकार ने अपनी सभी पंचवर्षीय योजनाऐं विकासशील अर्थव्यवस्था की गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए तथा स्वास्थ्य नीति को जमीनी स्तर पर लागू करने के लिए कार्यनीति पर अमल किया हैं। यही कारण है कि हमारे देश में स्वास्थ्य क्षेत्र की 12वीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों को शामिल करते हुए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन में परिवर्तित करने की परिकल्पना को साकार रूप देने का प्रयास किया गया है। नयी स्वास्थ्य योजना में चयनित कम आय वाले शहरी क्षेत्रों, सार्वजनिक क्षेत्रों में प्राथमिक परिचर्या सुविधाऐं प्रदान करना, विशेषत: सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों में स्वास्थ्य परिचर्या व्यवासायिकों हेतु शिक्षण और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार करना, जन स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देना, औषध और खाद्य विनियामक प्रणाली को सुदृढ़ करना, चिकित्सा व्यवसाय का विनियमन करना, स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना और व्यापक स्वास्थ्य परिचर्या के लिए उपयुक्त संरचना तैयार करना परिकल्पित है। 12वीं योजना की कार्यनीति में कमजोर और उपेक्षित वर्गो की जनसंख्या पर ध्यान देते हुए स्वास्थ्य परिचर्या की पहुँच का विस्तार करने के लिए 11वीं योजना में किए गए उपायों को मजबूत करना शामिल है और इसीलिए योजना में जन स्वास्थ्य प्रणालियों के महत्वपूर्ण विस्तार और सुदृढ़ीकरण तथा मजबूत प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या के प्रावधान की परिकल्पना की गई है। वर्तमान समय में सरकार द्वारा लागू सभी स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमो का असर समाज के विभिन्न वर्गों पर दिखाई देने लगा है।

जननी सुरक्षा योजना:- यह योजना शत् प्रतिशत रूप से एक केन्द्र प्रायोजित योजना है तथा महिला विकास की दिशा में जननी सुरक्षा योजना एक अभिनव पहल है जिसके द्वारा गर्भवती माताओं, प्रसूता स्त्रियों तथा धात्री माताओं को सीधा लाभ पहुँचाया जाता है। चूंकि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत भारत के अधिकांश राज्यों में जननी सुरक्षा योजना सितम्बर 2005 से चल रही है और इस योजना की पेशकश मौजूदा राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (एन.एम.बी.एस.) का संशोधित रूप है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' का एक प्रमुख उद्देश्य मातृ मृत्यु दर में कमी लाना है।राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, बीपीएल परिवारों की गर्भवती महिलाओं के लिए बेहतर आहार से जुड़ी थी, जबकि जननी सुरक्षा योजना गर्भावस्था के दौरान प्रसवपूर्व देखभाल सहित नकद सहायता तथा एकदम बाद क्षेत्र स्तरीय स्वास्थ्य कार्मिक द्वारा समन्वित देखभाल की एक प्रणाली स्थापित करके प्रसव के दौरान तथा प्रसवोत्तर अवधि में स्वास्थ्य केन्द्र में संस्थागत देखभाल आदि इन सभी तत्वों को शामिल करती है।

जननी सुरक्षा योजना के उद्देश्य:-

- समग्र प्रयासों द्वारा मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर में कमी लाना।
- महिला स्वास्थ्य को उचित स्तर पर ले जाने हेतु संस्थागत प्रसवों की संख्या में वृद्धि करना।

जननी सुरक्षा योजना में आशा सहयोगिनी की भूमिका:- इस योजना के अन्तर्गत आशा सहयोगिनियों का चयन किया गया है, जो संस्थान एवं प्रसूता के बीच मध्यस्थता का कार्य करेगी तथा इसकी महत्वपूर्ण भूमिका निम्न प्रकार से होगी:-

- आशा सहयोगिनियों द्वारा अपने क्षेत्र की शत् प्रतिशत गर्भवती महिलाओं की पहचान कर योजना का लाभ दिलवाने हेतु प्रसव पूर्व पंजीकरण एवं जननी सुरक्षा योजना (जच्चा-बच्चा) कार्ड बनवाने में सहयोग करेगी।
- अपने क्षेत्र की सभी गर्भवती महिलाओं को प्रसव पूर्व 3 बार जाँच, टेटनेस के टीके लगवाने एवं आयरन, फोलिक एसिड गोलियाँ उपलब्ध करवाने में सहयोग करेगी।
- तत्पश्चात् सभी गर्भवती महिलाओं को सरकारी संस्था अथवा मान्यता प्राप्त निजी चिकित्सालय में प्रसव करवाने हेतु प्रेरित करेगी।
- उचित तरीके से गर्भवती महिलाओं का संस्थागत प्रसव करवाने हेतु सरकारी संस्था अथवा मान्यता प्राप्त निजी चिकित्सालय को चिन्हित करने में सहयोग करेगी तथा आवश्यकता पड़ने पर रेफरल चिकित्सालय के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवायेगी।
- प्रसूता को प्रसव हेतु चिन्हित संस्था पर ले जाने में सहयोग करेगी तथा संस्था पर प्रसवोपरान्त प्रसूता को डिस्चार्ज किये जाने तक संस्था में रहकर आवश्यक सहयोग करेगी।
- प्रसव उपरान्त नवजात शिशु को प्रसव के तुरन्त बाद माता का दूध पिलाने हेतु प्रेरित करेगी व 0-6 माह तक शिशु को सिर्फ माँ का दूध पिलाने की सलाह देगी तथा परिवार कल्याण के साधनों के उपयोग हेतु प्रेरित करेगी।
- नवजात शिशु के स्वास्थ्य की दृष्टि से शिशु को समय पर टीकारण करवाने में सहयोग करेगी।
- उचित समय पर शिशु के जन्म एवं माता व बच्चे की मृत्यु की सूचना संबंधित प्रसाविका व चिकित्सा अधिकारी को उपलब्ध करवायेगी।
- अन्तत: गर्भवती महिलाओं के प्रसवोपरान्त 7 दिन के अन्दर माता के स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करेगी व आवश्यकतानुसार सभी प्रकार से उनका सहयोग करेगी।

सारांश:- अत: हमारे देश में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (2005) की स्थापना के बाद से मान्यता प्राप्त सामाजिक कार्यकर्ता अर्थात् आशा वर्कर या आशा सहयोगिनी राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की गतिविधियों के क्रियान्वयन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वास्तव में आशा कार्यक्रम दुनिया के सबसे बड़े सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में विकसित हुआ है जिसके द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए आशा वर्कर की एक महत्वपूर्ण भूमिका को पहचाना गया है। आशा वर्कर की भूमिका स्वास्थ्य के बिंदुओं पर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए समुदाय और स्वास्थ्य सेवाओं के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जो चिकित्सा एवं स्वास्थ्य तथा महिला एवं बाल विकास विभाग के बीच एक सहयोगिनी के रूप में कार्य करती है। आज हमारे देश में महिला विकास का मुद्दा वैसे भी एक ऐसी उलझन बन चुका है कि जिसके एक सिरे को सुलझाओ तो दूसरा उलझ जाता है। इसलिए महिला शिक्षा को बढावा देकर ही विकास की समस्या हल हो सकता है तथा लिंगानुपात सुधारने में शिक्षित महिलाएं ही बेहतर तरीके से अपनी भूमिका का अहसास करा सकती हैं।

संदर्भ सूची:-

- प्रगति प्रतिवेदन, वर्ष 2014-15, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2016.
- निदेशालय चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण की रिपोर्ट, 2012-2013, Chandigarh
- http://www.nhmharyana.gov.in.
- https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=3&lid=309&sublinkid.
- https://journalsofindia.com/asha-workers-role-and-functions.
- https://www.nhp.gov.in/health-policies_pg.
- https://wcdhry.gov.in.

आचार्य देवकीनंदन भट्ट विरचित गंगाशतकम् में रस-योजना

नीलम

सहायक प्राध्यापक:संस्कृत, गुरुब्रहमानन्द कन्या महाविदयालय, अजंनथली(नीलोखेडी) जिला करनाल, हरियाणा।

शोध-आलेख सारः-

संस्कृत साहित्य ज्ञान का अथाह भंडार है। प्राचीन काल से ही सभी वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि संस्कृत में ही लिखे गए हैं। संस्कृत साहित्य के साहित्यकारों में श्री देवकीनंदन भट्ट जी ने अपनी रचना गंगाशतकम् के द्वारा गंगा के प्रति असीम श्रद्धा एवं भक्ति भावना को प्रदर्शित किया है। गंगाशतकम् में कवि ने रस-योजना का विशेष रूप से ध्यान रखा है। पद्यो में शांत रस, भक्ति रस, रौद्र रस आदि रसों का प्रयोग किया गया है। इस रचना में अंगीरस रूप में भक्ति रस का वर्णन किया गया है। उन्होंने गंगा की आधुनिक समय में जो दुर्दशा हो गई है उसका वर्णन किया है। श्री देवकीनंदन भट्ट कहते हैं कि कलयुग में गंगा को ही श्रेष्ठ माना गया है। प्रयागराज के विस्तृत क्षेत्र में दिव्य मानस तीर्थ है। जिसमें स्नान व दान करने से मनुष्य धन्य होते हैं, पापों से मुक्त होते हैं, और मनचाहे सुख प्राप्त करते हैं। प्रयागराज, इलाहाबाद, हर की पौड़ी हरिद्वार तथा दक्षिण में गंगा सागर यह तीन स्थान निश्चित रूप से देखने योग्य है।

भट्ट जी की गंगा की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि:-

त्वं तापहन्त्री भवरोगहन्त्री

पुण्य प्रदा मुक्तिप्रदा भवन्ति,।

सदैव पूज्या सर पूजनेषु

नरा: स्मरिष्यन्ति त्वदीय नाम: ।।

भगवान हरि ने गंगा को आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा है कि प्राणियों के संताप को दूर करने वाली सांसारिक रोगों को दूर करने वाली, पुण्य और मोक्ष देने देने वाली देव पूजन में सदैव पूजनीय रहेगी तथा मनुष्य तुम्हारे नाम का सदा स्मरण करते रहेंगे।

"कलौ गंगा विशिष्यते"

अर्थात् कलयुग में गंगा ही विशेष है। कंठ में आए हुए प्राणों के समय भी जो गंगा-गंगा का उच्चारण करता है, वह परम पद प्राप्त करता है, उसका पूनर्जन्म नहीं होता।

यथा:-

गंगा गंगेति यो ब्रूयात प्राणै: कण्ठगतैरपि

मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि।।

प्रस्तावना:-

रसों का काव्यों में प्रयोग ऋग्वैदिक काल से ही हो रहा है। लेकिन भरतमुनि रस संप्रदाय के प्राचीन तथा सर्वश्रेष्ठ आचार्य माने जाते हैं। भरतमुनि नाट्यशास्त्र में लिखते हैं कि रस के बिना अर्थ प्रवृत नहीं होता। "तैतीरियोपनिषद्" में रस का महत्व प्रदर्शित करते

हुए लिखा है कि जिसको प्राप्त करके मानव आनंद को प्राप्त करता है वह रस है। वेदव्यास जी ने भी रस का महत्व स्वीकार करते हुए काव्य की आत्मा रस को माना है। काव्यप्रकाशकार ने रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि लोक में जो कारण-कार्य पारस्परिक चेष्टाएं- निद्रा का न आना, कराहना आदि होते हैं ये अभिनय के रूप में नाटक एवं काव्य में स्थायीभाव कहलाते हैं, इन्हीं भावों को रस कहा जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने रस के विषय में कहा है कि विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त हुए रति आदि स्थायी भाव सहृदय सामाजिको के हृदय में रसता को प्राप्त होते हैं। लोक में जो पदार्थ सामाजिको के हृदय मे वासना रूप में स्थित रति, उत्साह, शोक आदि के उद्‌बोधक कारण है, वे काव्य नाटक आदि में वर्णित होने पर शास्त्रीय शब्दों में विभावादि कहलाते हैं।

अनुभावः-

अपने अपने कारणों से उद्‌बुद्ध स्थायीभाव को बाहर प्रकाशित करने वाला लोक में जो कार्य कहा जाता है,वह काव्य और नाटय् के अंदर अनुभाव कहलाता है।

व्यभिचारी भावः-

निर्वेद, ग्लानी, शंका, असुया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, जड़ता, रुचि आदि तैंतीस व्यभिचारी भाव कहे जाते है।

रस संख्याः-

काव्य मे नौ रस पाये जाते है श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, विभत्स, अद्‌भुत और शान्त।

गगांशतकम् मे रस-योजनाः- आचार्य देवकीनन्दन भट्ट द्वारा रचित गगांशतकम् के पद्यों में कई रसो का प्रयोग किया गया है जैसेः- शान्त रस, भक्ति रस, रौद्र रस आदि।

भक्ति रसः- गगांशतकम् में अंगी रस रुप मे भक्ति रस का वर्णन किया गया है ।

यथाः-

नमामि गंगे सुरपूजिता पुरा
हिमाद्रि श्रृगांच्चलितामितामुद्रा।।
त्वमेव स्वर्गाद् धारिणीं समागता
भगीरथो तीव्रतप प्रहर्षिता ।।

अर्थात् प्राचीन काल से देवताओ के द्वारा पूजित हे गंगे-मै आपको प्रणाम करता हुँ। तुम हिमालय की ऊंची चोटियों से निकलकर अत्याधिक प्रसन्नता से प्रवाहित होती हो।भगीरथ के द्वारा किये गये कठिन तप से हर्षित होकर जो स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आई है। इस पद्य में गंगा मैया के प्रति भक्ति भावना को दर्शाया गया है। इसलिए इस पद्य मे भक्ति रस है।

एक अन्य उदाहरण-

नमामि गड्गे च भजामि गड्गे
स्मरामि नित्यं यमुने च गड्गे।
पश्यामि गड्गें भुवनेषु मध्य
मातस्तवाड्धयो शरणं प्रपद्ये।।

अर्थात् हे गंगे मै आपको नमन करता हुँ, नित्य गंगा एवं यमुना का स्मरण करता हुँ। तीन लोको में गंगा जी के दर्शन करता हुँ हे गंगा माता मै आपके चरण कमलों की शरण में जाता हुँ।

प्रस्तुत पद्य मे गंगा के साथ-साथ यमुना के प्रति भी भक्ति भावना प्रदर्शित होती है।

शान्त रसः-गगांशतकम् मे कवि ने शान्त रस का प्रयोग किया है।

यथा-

तटेषु ये सिद्ध जनाः तपोरताः
तेषां निसर्गेण हितं दधाना
पुष्णाति तान् शीतल वारिणा सदा
पुनाति नित्यं कलानाद् भड्गैः ।।

अर्थात् गंगा जी के तटों पर जो सिद्ध पुरुष ऋषिमुनि तपस्या मे लीन है उनका स्वभाविक रुप से हित साधन करती हुई,गंगा मैया उन्हे सदा शीतल जल से पुष्ट करती हुई तथा लहरों से नित्य पवित्र करती है।

अन्य उदाहरणः-

गत्वा जनाः यत्र सुखं लभन्ते
तीर्थे भ्रमित्वा सुकृतं चरन्ति।
कुर्वन् तपः धार्मिक मुक्तिकामः
सन्तोषमाप्नोति सदा मनुष्यः ।।

अर्थात् जहाँ जाकर लोग सुख शान्ति प्राप्त करते हैं। तीर्थ राज प्रयाग मे घूम कर पुण्य कर्म करते हैं।मोक्ष की कामना से धार्मिक व्यक्ति तप करता हुआ सदा सन्तोष प्राप्त करता है।

रौद्र रसः-गगांशतकम् मे कवि ने रौद्र रस का भी प्रयोग किया है।

यथा-

हृतमनेनैव तपोधनेन
इत्थं विनिश्चित्य गताः समींप
समाधि भड्गां व्यदधंश्चतस्य
तदातिक्रुद्धो कपिलःअभवत् सः।।

अर्थात् सगर नामक प्रतापी राजा ने अश्वमेघ यज्ञ के अश्व को साठ हजार पुत्र और विशाल सेना के साथ दिग्विजय के लिये भेजा। इन्द्र ने अश्व का अपहरण करके कपिलमुनि के आश्रम मे घोडे को बान्ध दिया जब सगर पुत्रो ने आश्रम मे घोडे को देखा तो कपिलमुनि की समाधी को भंग कर दिया।

अन्य उदाहरणः-

शांप प्रदत्तं कपिलेन तेन
अतीव कोपाकुलितोमहामुनिः।
भस्मीकृता येन सुताः सहस्राः
तानुद्धरत् सः सदयो नृपालः।।

अर्थात् कपिल मुनि क्रोधित हुये उन्होने साठ हजार पुत्रो को श्राप देकर भशम कर दिया तब भगीरथ ने उनका उद्धार किया। इसलिये इन दोनों पद्यों मे रौद्र रस है।

भारतीय जनमानस मे रची बसी गंगा केवल एक नदी ही नही अपितु भारतीय संस्कृति की संवाहिका है। आंग्लभाषा वर्चस्वमय वर्तमान युग मे देवकी नन्दन भट्ट जी ने देववाणी के माध्यम से अघनाशिनी पतित पावनी माँ गगां की महिमा को छन्दोबद्ध व सरस रचना के माध्यम से प्रस्तुत करके संस्कृतानुरागी जनों पर महनीय उपकार किया है। इन्होने माँ गंगा की उदगम स्थल से गंगासागर तक की यात्रा का मनोहारी वर्णन किया है साथ ही स्वार्थी मानव ने मलमुत्र तथा कचरा आदी डालकर आज गंगा की जो दुर्दशा बना दी है उसकी पीडा भी सहज ही उद्भुत हुई है। गंगा आज स्वार्थी लोगो के द्वारा प्रदुषित कर दी गई है अनेक उद्योगो ने गंगा को मलिन कर दिया है खेद की बात है कि हमारी गंगा के प्रति निर्मल भावना कहाँ चली गई है? शहरो मे प्रतिदिन गंगा मे भारी

मात्रा मे अस्थिया व शवो का विर्सजन होता है कानपुर मे कई कारखानो का दुषित कचरा गंगा गुप्त या प्रकट रुप मे मिलता है उत्तराखण्ड मे भी गंगा के किनारे कई नए नए शहर बस गए हैं जिनका कचरा गंगा मे बहाया जा रहा है रासायनिक खाद के कारखानो के अवशेष,चर्म उद्योग का गन्दा पानी,तेल शोधक कारखानों का दुषित जल गंगा मे मिलाया जा रहा है।अलकनन्दा पर भी श्रीनगर के पास बांध बनाया जा रहा है उसका निर्मल जल भी मटमैला हो गया है नवीनतम शोधों से यह सिद्ध होता है कि अब गंगाजल जलचर व थलचर सभी प्राणियो के अस्वास्थयकर है। गंगाशतकम् मे अगींरस भक्ति रस है। तथा रौद्र,करुण आदि अनेक रसो के प्रयोग से कवि ने अपने काव्य को उत्कृष्ठता प्रदान की है।

गंगा के तट पर विकसित धार्मिक स्थल और तीर्थ भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विशेष अगं है। इसके ऊपर बने पुल,बांध और नदी प्रयोजनाये भारत की बिजली,पानी और कृषि से सम्बन्धित जरुरतो को पुरा करती है। वैज्ञानिक मानते है कि इस नदी के जल में बैक्टीरियोफेज नामक विषाणु होते है। जो जीवाणुओ और अन्य हानिकारक सुक्ष्म जीवो को जीवित नही रहने देते। गंगा नदी विश्वभर मे अपनी शुद्धिकरण क्षमता के कारण जानी जाती है। नदी के जल मे आक्सीजन की मात्रा को बनाये रखने की असाधारण क्षमता है। गंगा नदी को उत्तर भारत की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड भी कहा गया है। इस नदी में मछलियों तथा सर्पो की अनेक प्रजातियाँ पाई जाती है तथा मीठे पानी वाले दुर्लभ डालफिन भी पाये जाते है।

गंगा की अनुपम शुद्धीकरण क्षमता तथा समाजिक श्रद्धा के बावजुद इसको प्रदूषित होने से रोका नही जा सका है फिर भी इसके प्रयत्न जारी है और सफाई की अनेक प्रयोजनाये बनाई जा रही है और गगां मे बढते प्रदुषण पर नियन्त्रण पाने के लिये घडियालो की मदद ली जा रही है शहर की गंदगी को साफ करने के लिये स्यन्त्रो को लगाया जा रहा है।

निष्कर्षः- निष्कर्ष रुप मे कहा जा सकता है कि आचार्य देवकीनन्दन भट्ट विरचित गंगाशतकम् नामक शतकाव्य में गंगामैया के प्रति भक्ति भावना को प्रदर्शित किया है। अन्त मे गंगाशतकम् में प्रयुक्त रस योजना को सभी पक्षो पर सम्यक दृष्टिपात करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि गंगाशतकम् रस अलंकार,छन्द,रीतियों से अलंकृत एक उतकृष्ट शतकाव्य है तथा गंगा नदी को कैसे प्रदुषण से मुक्त किया जा सकता है,इस प्रकार के उपाय भी कवि ने काव्य मे प्रस्तुत किए है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सुची

क्र.स.	*मुलग्रन्थ*	*ग्रंथकार*	*व्याख्याकार एवं प्रकाशन*
1.	अभिनवभारती	अभिनवगुप्त	नगेन्द्र, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
2.	काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट	स.डा. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, प्रथम संस्करण, 1960
3.	गंगाशतकम्	आचार्य देवकी नन्दन भट्ट	
4.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	श्री बाबुलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1972
5.	साहित्यदर्पण	कविराज विश्वनाथ	आचार्य शालिग्राम शास्त्री,मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, नवम संस्करण, 1977

समाज वैज्ञानिक शोध में सूचना या तथ्यों के प्रकार और स्त्रोत

डॉ० हरबीर सिंह डागुर

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

सारांश

वास्तविक सूचना या तथ्यों के बिना सामाजिक अनुसंधान या शोध वास्तव में एक अपंग प्राणी की भाँति है। अनुसंधान या शोध की सफलता इसी बात पर निर्भर रहती है कि अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कितने वास्तविक निर्भरयोग्य सूचनाओं और तथ्यों को एकत्रित करने में सफल होता है। यह सफलता सूचना प्राप्त करने के स्त्रोतों की विष्वसनीयता पर निर्भर करती है। अतः सूचना या तथ्यों के स्त्रोत के महत्व को सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में कम नहीं किया जा सकता। साथ ही, ये सूचनाएँ या तथ्य एक ही प्रकार के नहीं होते हैं। इनमें भी प्रकार भेद हैं और इन प्रकारों के विषय में भी स्पष्ट ज्ञान का होना एक सफल अनुसंधानकर्ता के लिए आवष्यक है।[1] किस प्रकार की सूचना उसे प्राप्त हो सकती है, इस बात की स्पष्ट जानकारी न होने पर अनुसंधानकर्ता केवल इधर-उधर भटकता ही रहेगा और उसका काफी समय तथा श्रम व्यर्थ चला जाएगा। अतः सूचना या तथ्यों के प्रकार तथा स्त्रोतों के बारे में ज्ञान आवष्यक है। यह अध्याय उन्हीं के बारे में है।

प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान या शोध में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं या तथ्यों की आवष्यकता होती है। इन्हें मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- प्राथमिक तथ्य या सूचनाएँ तथा द्वैतीयक तथ्य या सूचनाएँ। यहाँ हम इन दोनों के विषय में कुछ विस्तार में विवेचना करेंगे।

प्राथमिक तथ्य या सूचनाएँ

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक सूचनाएँ या आँकडे होते हैं जो कि एक अनुसंधानकर्ता वास्तविक अध्ययनस्थल में जाकर विषय या समस्या से सम्बन्धित जीवित व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अथवा अनुसूची या और प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है अथवा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा प्राप्त करता है। प्राथमिक तथ्य प्राथमिक इस अर्थ में होते हैं कि उन्हें अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन उपकरणों की सहायता से प्रथम बार एकत्रित करने की दो प्रमुख स्त्रोत हो सकते हैं- एक तो जीवित व्यक्तियों से और दूसरा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा। प्रथम स्त्रोत के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कि अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में ज्ञान रखते हैं अथवा दीर्घ समय से उसके घनिष्ट सम्पर्क में हैं। श्री पामर के अनुसार ऐसे व्यक्ति न केवल एक विषय की विद्यमान अवस्थाओं को बताने की योग्यता रखते हैं अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्वपूर्ण चरण व निरीक्षणयोग्य झुकावों के सम्बन्ध में भी संकते कर सकते है। यदि इन व्यक्तियों के चुनाव में सावधानी बरती जाए और विभिन्न देशो व व्यापारों में लगे व्यक्तियों, उस क्षेत्र के पुराने निवासियों, सामुदायिक नेताओं आदि से सूचनाएँ एकत्रित की जाएँ तो वे अध्ययन कार्य के महत्वपूर्ण अंग बन सकते है।[2]

प्राथमिक तथ्यों का दूसरा स्त्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण हे। इस प्रकार के निरीक्षणों के द्वारा एक समुदाय या समूह के जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्रित किया जा सकता है यदि निरीक्षण के दौरान में अनुसंधानकर्ता ने पक्षपात या मिथ्याझुकाव

का कोई चश्मा न पहन रखा हो। व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्रत्यक्ष निरीक्षण एक अति उत्तम स्त्रोत है। सहभागी निरीक्षण के द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अति आन्तरिक व गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है। इन स्त्रोंतो के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक विवेचना करेंगे।

द्वैतीयक तथ्य

द्वैतीयक तथ्य वे सूचनाएँ और अथवा आँकडे हैं जो कि अनुसंधानकर्ता को प्रकाषित व अप्रकाषित प्रलेखों, रिपोर्ट, सांख्यिकी, पाण्डुलिपि, पत्र डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वैतीयक तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये तथ्य, सूचनाएँ या आँकडे स्वयं अनुसंधानकर्ता के नहीं होते, वे तो दूसरे किसी व्यक्ति या संस्था के होते हैं जिन्हें कि अनुसंधानकर्ता अपने कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्रित कर लेता है। द्वैतीयक तथ्यों के भी दो प्रमुख स्त्रोत होते हैं- एक तो व्यक्तिगत प्रलेख जैसे आत्मकथा, डायरी पत्र आदि और दूसरा सार्वजनिक प्रलेख जैसे रिकार्ड, पुस्तकें जनगणना रिपोर्ट, विषिष्ट कमेटियों की रिपोर्ट, समाचारपत्र व पत्रिकाओं में प्रकाषित सूचनाएँ आदि। श्री लुण्डवर्ग के षिलालेख, स्तूप, विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थिपिंजर, भौतिक वस्तु आदि ऐतिहासिक स्त्रोत से प्राप्त तथ्य या सूचनाएँ भी द्वैतीयक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन समस्त स्त्रोतों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित विवेचना से स्वत: ही हो सकेगा।[3]

सूचना के स्त्रोत

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सूचनाएँ या तथ्य दो प्रकार के होते हैं, एक तो प्राथमिक और दूसरा द्वैतीयक। दोनों प्रकार के तथ्यों को अलग-अलग स्त्रोतों से प्राप्त किया जाता है क्योंकि दोनों की प्रकृति अलग अलग होती है। इन स्त्रोतों के विषय में अब हम कुछ विस्तार से विवेचना करेंगे।

श्रीमती यंग के अनुसार सूचनाओं के स्त्रोतों को दो मोटे भागों में विभाजित किया जाता है- प्रलेखीय स्त्रोत और क्षेत्रीय स्त्रोत। प्रलेखीय स्त्रोत के अन्तर्गत आपने पुस्तक, रिकार्ड, पाण्डुलिपि, डायरी, पत्र आदि को सम्मिलित किया है जबकि क्षेत्रीय स्त्रोत में एक विषय के सम्बन्ध में वास्तविक जानकारी रखने वाले अथवा अध्ययन विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्मिलित किया है।[4]

प्रोफेसर बंगले के अनुसार सूचनाओं के दो प्रमुख स्त्रोत हैं- प्राथमिक स्त्रोत और द्वैतीयक स्त्रोत। प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत अध्ययन विषय से सम्बन्धित वास्तविक व्यक्ति व प्रत्यक्ष निरीक्षण आता है, जबकि द्वैतीयक स्त्रोत के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाषित या अप्रकाषित अथवा लिखित प्रलेख सम्मिलित हैं।

श्री लुण्डवर्ग ने सूचनाओं के स्त्रोतों को निम्मलिखित ढंग से प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक स्त्रोत

प्रलेख, कागजात, शिलालेख आदि।

भूतत्वीय स्तरें, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ।

क्षेत्रीय स्त्रोत

जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विषिष्ट सूचनाएँ

क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण

श्री लुण्डवर्ग के अनुसार ऐतिहासिक स्त्रोत उन रिकार्डो का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि भूतकाल की घटनाएँ अपने पीछे छोड़ गई हैं जिनको कि उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो कि मानव से परे हैं। उदाहरणार्थ मोहनजोदडो, हडप्पा आदि की खुदाई से जो विविध अवशेष प्राप्त हुए हैं उनको प्रकृति ने ही सुरक्षित रखा था पर उससे सिन्धु घाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में कितने ही अदभुत रहस्य उद्घाटित हुए हैं। ऐतिहासिक स्त्रोतों का वास्तविक महत्व इसी में अन्तर्निहित है। इसी महत्व को दर्शाते हुए प्रोफेसर मैज ने लिखा है कि इतिहासवेत्ता को समाजशास्त्रियों की श्रेणी से बहिष्कृत कर देना कोई बुद्धिमता का काम नहीं है, तथा केवल मूर्ख समाजशास्त्री ही प्रलेखों के उपयोग का त्याग करते हैं चाहे वे समकालीन हों अथवा प्राचीन। श्री मैज ने वह भी लिखा है कि किसी संस्था का उसके पिछले इतिहास से असम्बन्धित एकान्तिक अध्ययन उतना ही अवास्तविक है जितना कि उसे सामाजिक

परिस्थिति, जिसमें कि वह घटना घटित हुई हैं, के बाहर अध्ययन करना है। एतिहासिक स्त्रोतों के अतिरिक्त उपरोक्त विद्वानों के विचारों के आधार पर सूचनाओं के दो प्रमुख स्त्रोतों का उल्लेख किया जा सकता है- प्राथमिक या क्षेत्रीय स्त्रोत तथा द्वैतीयक अथवा प्रलेखीय स्त्रोत। इन स्त्रोतों की अलग अलग कुछ विस्तारपूर्वक विवेचना यहाँ आवष्यक होगी।[5]

प्राथमिक या क्षेत्रीय स्त्रोत

प्राथमिक या क्षेत्रीय स्त्रोत उन स्त्रोतों को कहते हैं जिनसे कि सर्वेक्षण या शोध कर्ता प्रथम बार स्वयं मूल तथ्यों या सूचनाओं को प्राप्त करता है। इस प्रकार एक विषय से सम्बन्धित जीवित व्यक्ति व घटनाएँ ही प्राथमिक स्त्रोत होते हैं जिनसे कि अनुसंधानकर्ता अपनी आवष्यकतानुसार तथ्यों को एकत्रित कर लेता हैं।

श्रीमती यंग के अनुसार प्राथमिक या क्षेत्रीय सूचना स्त्रोत निम्नलिखित हैं- प्रत्यक्ष निरीक्षण, साक्षात्कार, प्रश्नावली तथा अन्य व्यक्ति। इनके विषय में हम संक्षेप में इस प्रकार विवेचना कर सकते हैं-

प्रत्यक्ष निरीक्षण

तथ्यों को एकत्रित करने का एक प्राथमिक स्त्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण है अर्थात् अनुसंधानकर्ता स्वयं अध्ययन स्थल पर जाकर अपने विषय से सम्बन्धित घटनाओं, वस्तुओं तथा व्यवहारों का स्वयं निरीक्षण करके सूचना एकत्रित करता है।[6] समुदाय के रहन सहन, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, भाषा व्यवहार तथा समस्याओं से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों या सूचनाओं को प्राप्त करने का निर्भरयोग्य स्त्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण ही है। यदि निरीक्षण के दौरान में अनुसंधानकर्ता अपने को पक्षपात की भावना तथा मिथ्या झुकाव से दूर रखने में समर्थ होता है। यह निरीक्षण सहभागी अर्थात् सामूहिक जीवन में स्वयं एक इकाई बनकर और प्रत्यक्षत: भाग लेकर हो सकता है और असहभागी भी।

प्रशनावली

जब अध्ययन क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि अनुसंधानकर्ता के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह विषय से सम्बन्धित अपने प्रष्नों का उत्तर सूचनादाताओं से स्वयं सम्बन्ध स्थापित करके प्राप्त नहीं कर सकता तो वह प्रश्नो की एक सूची डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास इस अनुरोध के साथ भेज देता है कि उन प्रश्नो का उत्तर भरकर उसे लौटा दिया जावे। इसी को प्रश्नावली कहते हैं और प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने का यह एक महत्वपूर्ण स्त्रोत होता है। प्रश्नावली एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से बडे से बडे क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना और महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करना सम्भव होता है। पर यह स्त्रोत तभी सफलतापूर्वक कार्य करता है जबकि सूचनादाता पढेघ-लिखे हों और उनमें अनुसंधान कार्यों के प्रति सहयोग की भावना हो। भारत में इसी का अभाव होने के कारण यह स्त्रोत अधिक प्रभावपूर्ण प्रमाणित नहीं होता है।

अनुसूची यह भी एक प्रकार की प्रश्नावली ही है, पर इसे डाक द्वारा न भेजकर सूचनादाताओं के पास स्वयं जाकर इसे भरवा लिया जाता है अथवा अनुसंधानकर्ता सूचनादाता से प्रष्न पूछ-पूछकर उत्तर भर लेता है। यह स्त्रोत तभी लाभप्रद सिद्ध होता है जब कि अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत न हो। पर इसके द्वारा अषिक्षित व्यक्तियों से भी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

साक्षात्कार

प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने का एक और उल्लेखनीय साधन सम्बन्धित स्थानीय व्यक्तियों से स्वयं मिलकर व उनसे बातचीत करके विषय से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना है। स्थानीय व्यक्ति उस विषय के साथ अधिक समय से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित होने के कारण उसके विषय में अधिक निर्भरयोग्य व वास्तविक जानकारी रखते हैं और इसीलिए उनसे साक्षात्कार करके न केवल अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं या तथ्यों को एकत्रित किया जा सकता है अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत स्वयं अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता ही आते हैं। अनुसंधानकर्ता जो कुछ देखता सुनता है और सूचनादाता जो कुछ कहता है या लिखित रूप में प्रष्नों का जो कुछ उत्तर देता है वह विषय के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य या सूचनाएँ होती हैं।

द्वैतीयक या प्रलेखीय स्त्रोत

द्वैतीयक या प्रलेखीय स्त्रोत वे स्त्रोत हैं जो कि प्रकाषित या अप्रकाषित समस्त लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसके माध्यम से अनुसंधानकर्ता को अपने विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ, आँकडे आदि प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जनगणना-रिपोर्ट से हमें देश की जनसंख्या आदि विषयों के सम्बन्ध में जो गणनात्मक तथा वैषयिक आँकडे व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती है, उन्हें एकत्रित करना किसी भी व्यक्तिगत या सामूहिक अनुसंधानकर्ता के लिए सम्भव नहीं है। उसी प्रकार एक विषय से सम्बन्धित एक व्यक्ति के पत्रों तथा डायरी से उस व्यक्ति के आन्तरिक जीवन, मनोभाव तथा अन्य अनेक बातों का जिस रूप में हमें पता लगता है वह अन्य किसी भी प्राथमिक स्त्रोत से हमें पता लगता है वह अन्य किसी भी प्राथमिक स्त्रोत से हमें कदापि नहीं मिल सकता। साथ ही द्वैतीयक स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अध्ययन विषय के सम्बन्ध में अनेक ऐसी प्राथमिक व गहन जानकारी की प्रस्तुत करती हैं तथा उस विषय की एक ऐसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं कि उसे जाने बिना नवीन शोधकार्य को सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य तक पहुँचाना अत्यधिक कठिन होता है। इसीलिए श्री लुण्डवर्ग का सुझाव है कि एक प्रस्ताविक अनुसंधान को आरम्भ करने से पूर्व उससे सम्बन्धित समस्त प्रलेखीय स्त्रोतों का सदैव सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण कर लेना चाहिए। एक ही कार्य को दुबारा करने की गलती करने, अध्ययन पद्धति के सम्बन्ध में सुझाव प्राप्त करने त्रुटियों से बचने, कठिनाईयों से अवगत होने आदि के लिए यह काम महत्वपूर्ण है। साथ ही, यदि हम अपने परिणामों की तुलना अन्य अनुसंधानकर्ताओं के परिणामों के साथ करना चाहते हैं तो भी हमें प्रलेखीय स्त्रोतों के माध्यम से उनके द्वारा अपनाई गई पद्धतियों से परिचित होना आवष्यक होगा।[7]

द्वैतीयक या प्रलेखीय स्त्रोतों के अन्तर्गत विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थ, सर्वेक्षण रिपोर्ट, संस्मरण यात्रा वर्णन पत्र, डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आँकडे तथा रिकार्ड, अन्य अप्रकाषित रिकार्ड आदि सम्मिलित हैं। इन सभी स्त्रोतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- प्रथम व्यक्तिगत प्रलेखीय स्त्रोत तथा दूसरा सार्वजनिक प्रलेखीय स्त्रोत। इन दोनों स्त्रोतों की कुछ विस्तार में विवेचना कर लेना उचित होगा।

व्यक्तिगत प्रलेख

व्यक्तिगत प्रलेखों में वह समस्त लिखित सामग्री सम्मिलित है जो कि एक व्यक्ति के द्वारा स्वयं अपने विषय में अथवा सामाजिक घटनाओं के विषय में उसके अपने दृष्टिकोण से लिखी गई हो। यह कोई जरूरी नहीं है कि उन्हें लिखते समय लिखने वाले का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो अथवा सामाजिक शोध या अनुसंधान सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उसे उसने लिखा हो।[8] अधिकांशतया ऐसा नहीं होता है और इन व्यक्तिगत प्रलेखों में लेखक के अपने दृष्टिकोण, मनोभाव, विचार व आदर्ष ही मूर्त होते हैं। फिर भी यदि उसके द्वारा लेखक के अपने मनोभाव या आन्तरिक जीवन अथवा किसी सामाजिक संस्था या घटना के वर्णन पर प्रकाष पड़ता है तो वह स्वत: ही सामाजिक अनुसंधान व शोध के लिए महत्वपूर्ण आधार बन जाता है क्योंकि इन प्रलेखों द्वारा न केवल लेखक की व्यक्तिगत स्थिति या जीवन पर ही प्रकाश पड़ता है अपितु उस समाज या सामाजिक जीवन व प्रक्रियाओं का भी स्पष्टीकरण होता है जिसका कि लेखक भी एक इकाई या अंग है। श्री आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के .. . सम्भावित कारण होते हैं जो कि इस प्रकार हैं-

अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए अपने दोषों की स्वीकृति के लिए, घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चरितार्थ करने के लिए, साहित्यिक का आनन्द लेने के लिए अर्थात् व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्यिक रूप देने के लिए व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसंधान के लिए, मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए धन प्राप्ति के लिए, किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति के लिए कभी कभी इस प्रकार के प्रलेख दूसरों की आज्ञानुसार लिखे जाते हैं, चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने के लिए जैसे मानसिक चिकित्सा के लिए पिछली घटनाओं तथा अनुभवों का वर्णन, अपनी योग्यताओं को प्रदर्षित करने के लिए, किसी सिद्वान्त या वाद को लोकप्रिय बनाने के लिए जनसेवा तथा कल्याण के लिए और अमरत्व प्राप्त करने के लिए।[9]

व्यक्तिगत प्रलेखों को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है:-

जीवन इतिहास- प्रोफेसर मैज के विचारानुसार वास्तविक अर्थ में जीवन इतिहास का अभिप्राय विस्तृत आत्मकथा से है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग पर्याप्त ढीले ढाले तौर पर होता है और किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए जीवन इतिहास वाक्यांश

का प्रयोग कर लिया जाता है। कुछ भी हो, जीवनी अथवा आत्मकथाएँ प्रायः प्रख्यात व्यक्तियों अथवा महापुरूषों के द्वारा लिखी जाती है या तैयार की जाती है। कुछ भी हो, इन आत्मकथाओं से केवल लेखक के व्यक्तिगत जीवन की ही नहीं बल्कि उसके समाज तथा समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं तथा परिस्थितियों की झाँकी देखने को मिलती है। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि इन जीवनियों में ऐसी अनेक आन्तरिक या गुप्त बातों का भी उल्लेख रहता है जिसे कि हम अन्य किसी भी रूप में जान नहीं सकते हैं। उदाहरणार्थ, श्री चर्चिल की जीवनी द्वितीय महायुद्ध की एक ज्वलन्त झाँकी है, महात्मा गाँधी तथा जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथाएँ वास्तव में भारत के स्वतंत्रता संग्राम की आत्मकथाएँ, भारतीय संस्कृति, समस्या व दर्षन की आत्मकथाएँ हैं। इनका अध्ययन करने पर तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों व घटनाओं के सम्बन्ध में असंख्य महत्वपूर्ण सूचनाएँ व तथ्य प्राप्त होते हैं।[10]

डायरी- बहुत से लोगों को डायरी लिखने का शौक होता है जिसमें कि वे प्रतिदिन या विभिन्न अवसरों पर अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओं को तथा उनके प्रति अपनी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं को लिखते हैं। इन डायरियों में न केवल वह अपने जीवन के सम्बन्ध में लिखता है, बल्कि उनके विषय में भी लिखता है जिनके कि सम्पर्क में वह रहता है या केवल कुछ समय के लिए ही सम्पर्क में आने का अवसर उसे प्राप्त होता है। डायरी उसकी अपनी चीज होती है इसीलिए वह अत्यन्त गोपनीय वातों को भी उसमें सच्चाई के साथ लिपिबद्ध कर देता है। एक घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में वह जो कुछ दिल से अनुभव करता है उसी की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति उसकी डायरी में मिलती है। इसीलिए, अत्यन्त गोपनीय तथा अति आन्तरिक तथ्यों, विचारों तथा भावनाओं को जानने का डायरी से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। क्रमबद्ध रूप में लिखी हुई डायरी जीवन इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय आधार है।

सामाजिक शोध या अनुसंधान के क्षेत्र में डायरियों का अपना महत्व है। इसका कारण यह है कि डायरियाँ आत्मकथाओं की अपेक्षा अधिक विष्वसनीय होती हैं क्योंकि बहुधा डायरियों को प्रकाषित करने के उद्देश्य से नहीं लिखा जाता हैं। इसीलिए अत्यन्त गोपनीय विषयों को भी सच्चाई से लिख लिया जाता है क्योंकि लेखक को जनता के जान लेने का भय नहीं होता है। दूसरों की निगाहों में गिरने का भय न रहने के कारण घटनाओं के वर्णन में किसी भी प्रकार का तोड़ मोड़ करने अथवा अपने विचारों को आकर्षक बनाने का मिथ्या प्रयत्न लेखक नहीं करता है। कभी कभी तो डायरियाँ इसलिए भी लिखी जाती हैं कि बहुत सी भावनाएँ व विचार, जिन्हें हम दूसरों के सामने कहने में संकोच करते हैं, डायरी में लिखकर अपने मन का भार हल्का कर लेते हैं। इसीलिए डायरियाँ व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक रहस्यों को उद्घाटित करती हैं और अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में विश्वसनीय तथ्यों को प्रस्तुत करके शोधकार्य में सहायक सिद्ध होती हैं।[11]

उपरोक्त महत्व के होते हुए भी डायरियों की अपनी कुछ सीमाएँ अथवा दोष भी होते हैं। इनका पहला दोष यह है कि वे जीवन के नाटकीय तथा संघर्षात्मक अंकों को बढ़ा चढ़ाकर प्रकट करती हैं। जबकि जीवन के शान्तिपूर्ण व स्वाभाविक पक्षों को उनमें स्थान नहीं मिलता हैं। दूसरी बात यह है कि डायरियों को रोज थोडा थोडा करके लिखा जाता है इसलिए उसमें कमबद्धता का अभाव होता है। एक घटना को दूसरी घटना से जोड़ना अथवा दो विभिन्न समयों में घटित होने वाली एक ही प्रकार की घटना की तुलनात्मक विषेषता को दर्षाना डायरी में उल्लेखित विवरणों के आधार पर अत्यन्त कठिन होता हैं। डायरियों का तीसरा दोष यह है कि इनमें घटनाओं का संकेत मात्र मिलता है क्योंकि डायरी स्वयं अपने लिए लिखी जाती है और इसीलिए घटनाओं को विस्तार में समझाने की आवष्यकता नहीं समझी जाती है। अतः उसको समझने के लिए अनुसंधानकर्ता को अपने अनुमानों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस सम्बन्ध में चौथी कमी का भी उल्लेख किया जा सकता है वह यह है कि डायरी के अनेक लेखक डायरी में कल्पना व साहित्यिक भाषा की सहायता लेते हैं जिससे कि घटनाओं की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती हैं। डायरियों की पाँचवी कमी यह होती है कि डायरियाँ प्रायः लगातार नहीं लिखी जाती हैं, कुछ समय तक लिखने के पष्चात बन्द कर दिया जाता है या बीच बीच में लिखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि घटनओं के वर्णन में क्रमबद्धता नष्ट हो जाती हैं। इन दोषों के होते हुए भी इतना मानना ही पडेगा कि डायरियों के माध्यम से हमें व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित अनेक आन्तरिक तथा गोपनीय तथ्य व सूचनाएँ प्राप्त हो सकती है। इस स्त्रोत द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अन्य प्रलेखों की अपेक्षा कहीं अधिक विष्वसनीय होती हैं।

पत्र-पत्र व्यक्तिगत होते हैं और इसीलिए इनके माध्यम से हमें एक व्यक्ति के आन्तरिक विचारों, भावनाओं तथा दृष्टिकोणों का पता चलता है। अपने पत्रों में लेखक प्रायः अकपट रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है इसीलिए उसमें व्यक्त उसके कथन

पर्याप्त विष्वसनीय होते हैं। तलाक, पारिवारिक तनाव, प्रेम, मित्रता, वैवाहिक सम्बन्ध यौन जीवन आदि महत्वपूर्ण कोमल सामाजिक सम्बन्धों की वास्तविकताओं पर पत्र पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

पर पत्रों की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी होते हैं और उनमें से सर्वप्रथम यह कि व्यक्तिगत पत्रों को प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। अपने आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित पत्रों को, विषेषकर उन पत्रों को जिनमें कि वैवाहिक जीवन व यौन जीवन का विवरण होता है, लोग नष्ट कर डालते हैं अथवा रहते हुए भी उन्हें देने से इन्कार कर देते हैं। पत्रों का दूसरा दोष यह है कि उनमें घटनाओं का दोष यह है कि घटना की क्रमबद्धता को एक पक्ष के पत्रों से मालूम नहीं किया जा सकता। इसके लिए पत्र और उनके उत्तर दोनों का ही होना आवष्यक है जो कि प्रायः मिल नहीं पाता है। पत्रों का चौथा व अन्तिम दोष यह है कि पत्रों में व्यक्त विचार या वर्णन केवल तभी विष्वसनीय होता है जब कि पत्र पाने और पत्र लिखने वाले का पारस्परिक सम्बन्ध आन्तरिक व घनिष्ट हो। यदि ऐसा नहीं है तो पत्रों में बनावटीपन व औपचारिकाता आ ही जाती है।

संस्मरण-मनुष्यों के द्वारा यात्राओं, जीवन-घटनाओं अथवा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के विषय में लिखे गए संस्मरण भी सामाजिक अनुसंधान में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते है। प्राचीन काल में इस प्रकार के यात्रा वर्णनों तथा संस्मरणों ने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करके तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायता की है। सर्वश्री मेगस्थनीज, हानर्साग, फाहियान, इब्नबतूता के वर्णन अब भी भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि हैं। इनके वर्णनों से उस समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में हमें जो जानकारी प्राप्त होती है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है।[12]

परन्तु संस्मरण की अपनी कुछ ऐसी सीमाएँ व दोष हैं जिनके कारण सामाजिक अनुसंधानकर्ता को इनसे अधिक लाभ नहीं होता है। उन दोषों में सबसे उल्लेखनीय दोष यह है कि इन संस्मरणों में लेखक के व्यक्तिगत विचारों तथा कल्पनाओं का इतना अधिक पुट होता है कि वह वास्तविक घटनाओं का उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है। इन संस्मरणों को लिखने वाले प्रायः अधिक रोचक, रोमांचकर व आकर्षक घटनाओं को ही अपने विवरण के लिए चुन लेते हैं और साथ ही उसमें अपना रंग चढ़ाकर उन्हें प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान व शोधकार्य में व्यक्तिगत प्रलेखों का अपना महत्व है। व्यक्तिगत जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं को भी समझने में इनकी सहायता अत्यावष्यक है। इन प्रलेखों द्वारा विचारों तथा मनोवृतियों का जितना स्पष्टीकरण सम्भव होता है उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं। व्यक्तिगत मनोभाव व दृष्टिकोण को ठीक से जान लेने से सामाजिक अनुसंधान में घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विष्लेषण करने में अत्यन्त सहायता मिलती है। व्यक्तिगत प्रलेखों का एक और उल्लेखनीय महत्व यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाएँ व तथ्य तुलनात्मक रूप में अधिक विष्वसनीय होते हैं, विषेषकर उन अवस्थाओं में जब कि लेखक का उद्देष्य अपने लेखों को प्रकाषित करना नहीं होता है। वास्तविक तथ्यों का ज्ञान उनके मूलरूप में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा हमें जितनी सरलता से प्राप्त हो जाता है, उतना और किसी स्त्रोत से नहीं।

सन्दर्भ

1. Gerald Hursh-Cesar and Prodipto Roy, ‘Problems in Sampling, in Third Workd Survey, Hursh-Cesar and Roy, eds., op. cit., pp. 189-245.
2. “A Sample, as the name implies, is smaller representation of a large whole.” – William J. Goode & Paul K. Hatt, Methods in Social Research, McGraw-Hill Book Company, Inc., New Yourk, 1952, p. 209.
3. “A statistical sample is a miniature picture or cross section of the entire group or aggregate from which the sample is taken.: - Pauline V. Young, Scientifie Social Surveys and Research, Asia Publishing House, Mumbai, 1960. p. 302.
4. In the case of smaple enquiry we try to generalise in terms of the whole group though the facts assembled relate only to a part of it- Y.D. Keskar.
5. Sampling is the selection of certain percentage of a gorup of items according to a predetermined plan. – Bogardus, Sociology. p. 548.

6. Sampling method is the process or method of drawing a definite number of individuals, cases, or observations form a particular universe, selecting part of a total group for investigation. – Fairchild, Dictionary of Sociology. p. 265.
7. If the data are highly homogeneous, that is, if the differences between the various items composing the whole body of data are negligible, then any item or group of items is representative of the whole. – George A Lundberg, Social Research, Longmans Green & Co.., New York, p. 135.
8. This clustering by race, religion, nationality, economic status, occupation, and by many attitudes and preferences, is such that no cluster is quite like the entire community, and consequently no one cluster can represent it accurately .... This lack of clear cut divisions complicates the selection of a sample which will be representative of all the areieties present in the community.- Ibid., p. 136.
9. George A Lundberg, Social Research, Longmans Green & Co.., New York, p. 135.
10. Thomas Carson McGromuck, Elementry Social Statisties 1941, p. 224.
11. Dr. J.C. Chaturvedi Mathematical Statisitice, p. 12.
12. Hsin Pao Yang, Fact-Finding with Rural People, pp. 36-37.

हरियाणा में लिंगानुपात और साक्षरता दर के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति

संदीप सेन

स्नातकोत्तर एवं एम0 फिल0 (भूगोल), मकान संख्या - 164, वार्ड-07, नजदीक रेलवे स्टेशन, लोहारू, जिला-भिवानी (हरियाणा)-127201

शोध आलेख सारः- वस्तुतः हरियाणा लिंगानुपात की दृष्टि से शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों एवं समाजशास्त्रियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। भ्रूण हत्या के कारण हरियाणा प्रदेश में महिलाओं की संख्या अन्य कई राज्यों की तुलना में काफी अन्तर दर्शाती है। वर्ष 2011 की जनगणना के बाद लिंगानुपात एवं महिला साक्षरता दर को लेकर बहुत ही चौकाने वाले आंकडों ने हमें यह सोचने पर विवश कर दिया कि लिंगानुपात में सुधार की दिशा में ठोस प्रयास किये जाए। 22 जनवरी 2015 में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने हरियाणा के पानीपत जिले से 'बेटी बचाओ, बेटी पढाओं' कार्यक्रम की शुरूआत की। तत्पश्चात् धीरे-धीरे लिंगानुपात में सुधार दिखाई दिया। परंतु आज भी हरियाणा प्रदेश में स्त्री-पुरूष अनुपात प्रति हजार पर दिसम्बर 2014 के अनुसार 922 है अर्थात् हरियाणा में 1000 पुरूषों पर 922 महिलाएं है। यदि महिला साक्षरता दर की बात की जाए तो यह वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 76०6 प्रतिशत है। प्रस्तुत शोध पत्र में लिंगानुपात एवं साक्षरता दर के संदर्भ में हरियाणा प्रदेश में महिलाओं की स्थिति का आंकलन किया गया है।

संकेतक शब्दः- लिंगानुपात, साक्षरता दर, स्त्री-पुरूष अनुपात, बेटी बचाओ, बेटी पढाओं।

भूमिकाः- अधिकांश शोध कार्यों से स्पष्ट हो चुका है कि हरियाणा की जनसंख्या में वृद्धि हर जनगणना के समय लिंगानुपात में गिरावट के साथ शुरू हुई है। चूंकि लिंगानुपात एक ऐसा सामाजिक संकेतक है जो महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डालता है। अन्य राज्यों जैसे केरल और गोवा आदि की तुलना में हरियाणा में लिंगानुपात एवं साक्षरता दर के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति बहुत कमजोर है। यह अध्ययन प्राथमिक तथा द्वितीयक आंकडो पर आधारित है और यह अध्ययन वर्ष 2001 और 2011 की समयावधि के लिए हरियाणा की साक्षरता दर और लिंग अनुपात का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि हरियाणा में साक्षरता दर 2011 की जनगणना के अनुसार 76.6 प्रतिशत हो गई है जिसमें से अधिकतम साक्षरता गुड़गांव जिले में दर 84 प्रतिशत और मेवात जिले में सबसे कम 56 प्रतिशत पाई गयी है। समग्र लिंगानुपात वर्ष 2001 में 861 से बढ़कर वर्ष 2011 में 879 हो गया था। लेकिन अब भी यह राष्ट्रीय स्तर पर लिंगानुपात की तुलना में बहुत कम है जो कि जनगणना 2011 के अनुसार 940 है।

अध्ययन का उद्देश्यः-

- हरियाणा प्रदेश में महिला साक्षरता दर का पता लगाना।
- हरियाणा में लिंगानुपात की स्थिति का अध्ययन करना।

शोध प्रविधिः- प्रस्तुत शोध कार्य प्राथमिक तथा द्वितीयक आंकडो पर आधारित है। यह अध्ययन हरियाणा की साक्षरता दर और लिंग अनुपात का उपयोग करता है। वर्तमान शोध पत्र हरियाणा राज्य में साक्षरता दर में अंतर - जिला असमानताओं का अध्ययन करता है। हरियाणा में जनगणना, पुरुष - महिला साक्षरता दर और हरियाणा में साक्षरता दर में अंतर - जिला असमानताओं के जनसांख्यिकीय आंकड़ों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। वर्ष 2001 और 2011 की समयावधि के लिए भारत की जनगणना से एकत्रित किए गए आंकड़ों से भी हरियाणा प्रदेश की साक्षरता दर तथा लिंगानुपात से सम्बन्धित आकडों का तुलनात्मक

अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में संदर्भ पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से भी शोध सामग्री ली गयी है, जो द्वितीयक आंकडों के रूप में पहचानी गयी है। वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना से सम्बन्धित शोध सामग्री को प्राथमिक आंकडों के रूप जाना जाता है।

इस अध्ययन में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए साक्षरता दर और हरियाणा का लिंग अनुपात शामिल है। तालिका 1 के अध्ययन एवं विश्लेषण से हरियाणा की कुल जनसंख्या और लिंगानुपात का पता चलता है। इस तालिका में दिये गये आंकडे वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, कुल जनसंख्या 2.11 करोड़ व्यक्ति थी, जिनमें से 1.13 करोड़ पुरुष और 0.97 करोड़ महिलाएं थीं। 2001 की जनगणना के अनुसार, हरियाणा का लिंगानुपात 861 दर्ज किया गया था।हरियाणा राज्य में सबसे अधिक जनसंख्या फरीदाबाद (1990719) जिले के लिए दर्ज की गई थी और सबसे कम जनसंख्या पंचकुला (468411) जिले द्वारा दिखाई गई थी। फरीदाबाद जिले में पुरुषों और महिलाओं की संख्या सबसे अधिक पाई गई। इसी तरह सबसे कम पुरूष और महिलाएं पंचकूला जिले में पाए गए। 2001 की जनगणना के अनुसार, महेंद्रगढ़ जिले के लिए उच्चतम लिंगानुपात (918) और पंचकुला (823) जिले में सबसे कम लिंगानुपात दर्ज किया गया था। 2001 की जनगणना के अनुसार, 21 जिलों में से 13 जिलों में लिंगानुपात 850 से अधिक था। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, हरियाणा की कुल जनसंख्या - 2.53 करोड़ हो गई और पुरुषों और महिलाओं की संख्या भी क्रमश: 1.35 करोड़ और 1.18 करोड़ हो गई। हरियाणा के 21 जिलों में से सबसे ज्यादा, फरीदाबाद जिले के लिए पुरुषों और महिलाओं की संख्या दर्ज की गई, जबकि सबसे कम पंचकूला जिले के लिए दर्ज की गई। जनगणना 2011, जिले मेवात के लिए उच्चतम लिंगानुपात (906) दर्ज किया गया और सबसे कम लिंगानुपात जिला सोनीपत (853) के लिए दर्ज किया गया। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार- सभी 21 जिलों में लिंगानुपात 850 से अधिक दर्ज किया गया।

तालिका:1- वर्ष 2001 एवं 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या एवं लिंगानुपात

Districts	Population 2001			Sex Ratio 2001	Population 2011			Sex Ratio 2011
	Total	Male	Female	2001	Total	Male	Female	2011
Ambala	1014411	542977	471434	86	1136784	604044	532740	88
Yamunanagar	1041630	559444	482186	86	1214162	646801	567361	87
Kurukshetra	825454	442328	383126	86	964231	510370	453861	88
Kaithal	946131	510513	435618	85	1072861	570595	502266	88
Karnal	1274183	683368	590815	86	1506323	798840	707483	88
Panipat	967449	528860	438589	82	1202811	646324	556487	86
Sonipat	1279175	695723	583452	83	1480080	798948	681132	85
Jind	1189827	642282	547545	85	1332042	712254	619788	87
Fatehabad	806158	427862	378296	88	941522	494834	446688	90
Sirsa	1116649	593245	523404	88	1295114	683242	611872	89
Hisar	1537117	830520	706597	85	1742815	931535	811280	87
Bhiwani	1425022	758253	666769	87	1629109	864616	764493	88
Rohtak	940128	509038	431090	84	1058683	566708	491975	86
Jhajjar	880072	476475	403597	84	956907	514303	442604	86
Mahendergarh	812521	423578	388943	91	921680	486553	435127	89
Rewari	765351	403034	362317	87	896129	472254	423875	89
Gurgaon	870539	470504	400035	85	1514085	817274	696811	85
Mewat	993637	524872	468765	89	1089406	571480	517926	90
Faridabad	1990719	1084138	906581	83	1798954	961532	837422	87
Palwal	NA	NA	NA	NA	1040493	553704	486789	87
Panchkula	468411	256939	211472	82	558890	298919	259971	87
Haryana	21144564	11363953	9780611	86	25353081	13505130	11847951	87

(स्त्रोत: वर्ष 2001 एवं 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकडों पर आधारित)

उपरोक्त तालिका से प्राप्त आंकडों को लेकर तुलनात्मक रूप से, यह पाया गया कि उच्चतम और निम्नतम लिंगानुपात का अंतर घटकर 53 (जनगणना 2011 के अनुसार) 95 (जनगणना 2001 के अनुसार) हो गया। उच्चतम लिंगानुपात महेंद्रगढ़ जिले (2001 की जनगणना के अनुसार) से मेवात जिले में स्थानांतरित हो गया (2011 की जनगणना के अनुसार)। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उच्चतम लिंगानुपात 918 से घटकर 906 (जनगणना 2011 के अनुसार) घटकर (2001 के अनुसार) हो गया।

तालिका: 2- 6 वर्ष तक के बच्चों का प्रतिशत तथा लिंगानुपात

State/district	Sex Ratio		Per cent Share of 0-6 Pop		Sex Ratio of 0-6 Pop	
	2001	**2011**	**2001**	**2011**	**2001**	**2011**
Haryana	861	877	15.8	13.8	819	830
Panchkula	823	870	14.1	11.7	829	850
Ambala	868	882	13.2	10.9	782	807
Yamunanagar	862	877	14.4	11.8	806	825
Kurukshetra	866	889	14.2	12.0	771	817
Kaithal	853	880	15.4	12.6	791	821
Gurgaon	850	853	15.5	13.1	807	826
Rewari	899	898	15.2	12.5	811	784
Mahendragarh	918	894	15.2	12.5	811	784
Jhajjar	847	861	15.0	12.1	801	774
Rohtak	874	868	14.5	11.9	799	807
Karnal	865	886	15.1	12.9	809	820
Panipat	829	861	16.4	13.7	809	833
Sonipat	839	853	15.4	12.7	788	790
Jind	852	870	15.8	12.4	818	853
Fatehabad	884	903	16.1	12.6	828	845
Hisar	851	871	15.5	12.1	832	849
Sirsa	882	896	15.0	11.9	817	852
Biwani	879	884	15.7	12.6	841	831
Mewat	899	906	25.1	22.3	893	903
Palwal	862	879	20.2	16.5	854	862
Faridabad	826	871	15.8	13.2	847	842

(स्त्रोत: वर्ष 2001 एवं 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकडों पर आधारित)

तालिका:3- साक्षरता दर एवं स्त्री-पुरूष अनुपात,

Districts	2001		2011		Percentage Change in Literates Rate	
	Male	Female	Male	Female	Male	Female
Ambala	82.31	67.39	88.47	76.64	6.16	9.25
Yamunanagar	78.82	63.39	85.06	71.99	6.24	8.60
Kurukshetra	78.06	60.61	83.46	69.18	5.40	8.57
Kaithal	69.15	47.31	79.33	60.69	10.18	13.38
Karnal	76.29	57.97	83.73	68.29	7.44	10.32
Panipat	78.50	57.91	85.45	68.23	6.95	10.32
Sonipat	83.06	60.68	89.40	70.88	6.36	10.20
Jind	73.82	48.51	82.49	61.58	8.67	13.07
Fatehabad	68.22	46.53	78.10	59.29	9.88	12.76
Sirsa	70.05	49.93	78.64	61.16	8.59	11.23
Hisar	76.57	51.08	82.79	62.31	6.12	11.23
Bhiwani	80.26	53.00	87.39	64.60	7.13	11.60
Rohtak	83.23	62.59	88.42	71.19	5.19	8.60
Jhajjar	83.27	59.65	89.44	70.96	6.17	11.31
Mahendergarh	84.72	54.08	91.26	67.25	6.54	13.17
Rewari	88.45	60.83	92.92	70.54	4.47	9.71
Gurgaon	87.97	67.49	90.27	77.64	2.30	10.15
Mewat	61.18	23.89	72.98	37.58	11.80	13.69
Faridabad	85.14	65.63	89.94	75.17	4.80	10.54
Palwal	75.10	40.76	82.60	56.40	7.50	15.64
Panchkula	80.87	65.65	88.65	77.48	7.78	11.83
Haryana	78.49	55.73	85.38	66.77	6.89	11.04

(स्त्रोत: वर्ष 2001 एवं 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकडों पर आधारित)

इस तालिका से पता चलता है कि हरियाणा का लिंगानुपात और बाल लिंगानुपात वर्ष 2001 में 15.8 प्रतिशत से घटकर 2011 में 13.8 प्रतिशत हो गया। 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार, लिंगानुपात क्रमश: 861 प्रति हजार और 877 प्रति 1000 है। हरियाणा में बाल लिंगानुपात में क्रमश: 2001 और 2011 के अनुसार 819 प्रति 1000 और 830 प्रति 1000 है। हरियाणा के 21 जिलों में, मेवात के लिए उच्चतम बाल लिंगानुपात (2011 की जनगणना में 903 प्रति 1000) दर्ज किया गया और सबसे कम बाल लिंगानुपात झज्जर (2011 की जनगणना में 774 प्रति 1000) दर्ज किया गया। झज्जर जिले का बाल लिंगानुपात 2001 में 801 प्रति 1000 से घटकर 2011 में 774 प्रति 1000 हो गया था। लेकिन मेवात जिले का लिंगानुपात 2001 में 893 प्रति 1000 से बढ़कर 2011 में 903 प्रति 1000 हो गया।

मूल्यांकन:- अन्तत: हम कह सकते है कि प्रस्तुत शोध कार्य वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना के आधार पर हरियाणा प्रदेश में लिंगानुपात की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस शोध कार्य से प्राप्त परिणामों के अनुसार जिला महेंद्रगढ़, मेवात और सिरसा लिंगानुपात में सुधारात्मक दृष्टिकोण का प्रदर्शन कर रहे हैं अर्थात वर्ष 2001 में उपरोक्त तीनों जिले क्रमश: 91%, 89%, 88%, जबकि उसी वर्ष पंचकुला और पानीपत जिले लिंगानुपात में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इनका लिंगानुपात

क्रमशः 82%, 82% है । वर्ष 2011 फतेहाबाद की तुलना के साथ, मेवात 90% के साथ उच्चतम लिंगानुपात दिखाता है और सबसे कम सोनीपत और गुड़गांव में 85% के साथ पाया गया। हरियाणा की कुल जनसंख्या 2001 में पुरुष 11363953 और महिला 9780611 के साथ 21144564 थी, जबकि वर्ष 2011 में पुरुष 13505130 और महिला 11847951 के साथ 25353081 पर पहुंच गयी। इस आधार पर वर्ष 2001 का कुल लिंगानुपात 86% और 2011 में 87% रहा। हरियाणा में बाल लिंगानुपात भी वर्ष 2011 की जनगणना में पहले से कम पाया गया, क्योंकि आज भी हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में पुत्र की बढ़ती लालसा, सामाजिक असुरक्षा, वैवाहिक स्थिति, स्वास्थ्य, कन्या भ्रूण हत्या, गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता के कारण लोगों के द्वारा लड़के व लड़की में भेदभाव किया जाता है। ये सभी संकेतक सोनीपत, पानीपत, रोहतक व झज्जर जिलों में सबसे खराब लिंगानुपात की स्थिति का उदाहरण पेश करते हैं। साक्षरता दर की स्थिति में भी हरियाणा प्रदेश में तुलनात्मक अंतर उजागर होता हैं। फिर भी भारत के कई राज्यों की तुलना में हरियाणा प्रदेश में महिलाओं की साक्षरता दर और लिंगानुपात की स्थिति संतोषजनक मानी जा सकती हैं।

संदर्भ सूचीः-

1. मीनू एवं दीपक, टी0, एन एनालेसिस आफ लिटरेसी रेट इन हरियाणा, जर्नल आफ बिजनीस मैनेजमेन्ट एंड सोशल साईस रिसर्च, वाल्यूम-3 (7),पृष्ठः 37-40।
2. दिवाकर, अशोक, मानव भूगोल, जे0बी0डी0, करनाल, 2010।
3. कुमार, अरविन्द, ज्योग्राफी आफ इंडिया, पेरियार प्रकाशन, दिल्ली, 2015।
4. प्रसाद, गायत्री, सांस्कृतिक भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013।
5. तिवारी, आर0 सी0, अधिवास भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2014।
6. अहमद्, अजरूदीन, सोशल ज्योग्राफी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2008।
7. शर्मा, जी0 एल0, सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2015।
8. हरियाणा का आर्थिक सर्वेक्षण-2013-2014, भारत सरकार, नई दिल्ली।
9. भारत की जनगणना 2001 एवं 2011, नई दिल्ली।
10. http://ncw.nic.in/pdfReports/ Gender_Profile_Haryana.pdf

भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया में महिला भागीदारी

डॉ० अनिल कुमार पारीक

सहायक आचार्य- लोक प्रशासन, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान, भारत।

सार (Abstract)

भारत में राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं के लिए आज भी सुखद परिदृश्य नहीं है। प्रशासन में आज महिलाएं पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है लेकिन राजनीति की राह में अभी भी उनके लिए कांटे ही ज्यादा है। 2020 के भारत में जहाँ कुल 28 मुख्यमंत्री है उनमें केवल एक पश्चिम बंगाल में महिला मुख्यमंत्री है। अर्थात इस दृष्टिकोण से भारत में महिलाओं से पुरूष बहुत आगे है। वैश्विक स्तर पर नारी वादी आन्दोलनों ने महिलाओं को सहायक स्तर से ऊपर उठाकर समान राजनीतिक भागीदारी के लिए प्रेरित किया। राजनीति में महिलाओं का प्रवेश 21 वीं शताब्दी में भी अत्यंत कठिन बना हुआ है। पुरुष प्रधान समाज में प्राचीनकाल से ही ऐसी व्यवस्थाऐं लागू की जाती रही हैं, जिनमें महिलाओं के लिए अपने उत्थान के बारे में सोचना तक दुष्कर प्रतीत होता है। आज राजनीति में महिलाओं ने अपनी उपस्थिति तो दर्ज कर वादी, परन्तु अभी उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलना शेष है। महिलाओं को राजनीतिक गतिविधियों में भागीदार तभी बनाया जा सकता है जब सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक वातावरण उनके अनुकूल हो। साथ ही महिलाऐं स्वयं भी अभिप्रेरित हो तथा उनके पास आवश्यक संसाधन भी हो। भारत में स्थानीय शासन व्यवस्था में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित करने के सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। आज महिलाओं के राजनीतिक विकास में बाधक तत्वों को पहचान कर उन्हें समाप्त करना होगा, तभी आज के भारत के लक्ष्य तेज, अधिक समावेशी एवं सतत् विकास (Faster, More Inclusive and Sustainable) का स्वप्न साकार हो पाएगा।

शब्द संक्षेप - समावेशी विकास, सुशासन, अपराधीकरण, संविधान, भ्रष्टाचार।

परिचय -

1992 के 73वें संवैधानिक संशोधन ने यह अनिवार्य कर दिया कि देश में ग्राम-पंचायत के मुखिया के एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित होने चाहिए। यह नीति स्थानीय स्तर पर महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए लागू की गई थी। तब से, इस नीति के प्रभाव पर विचार करने के लिए कई शोध किये गये हैं, जो यह दर्शाते हैं कि ग्राम सरपंच के रूप में चुनी गई महिलाओं की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है (डुफ्लो 2005)। इसके अलावा ओ'कॉनेल (2020) द्वारा किए गए एक अनुभव-जन्यै अध्ययन से पता चलता है कि यह अनिवार्यता 1990 के दशक के मध्य से राज्य और राष्ट्रीय विधायिका सीटों पर चुनाव लड़ने वाली महिला उम्मीदवारों में वृद्धि के एक बड़े हिस्से का कारण रही है।

हालांकि उच्च पदों पर महिला प्रतिनिधित्व कम बना हुआ है। विशेष रूप से, राज्य स्तर पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व काफी पिछड़ गया है और संस्थागत शक्ति और निर्णय लेने में समर्थ महत्वपूर्ण पदों से महिलाएं बाहर हो गई हैं। आईजीसी ने अपनी वेबसाइटों के माध्यरम से 30 मार्च 2021 तक राज्य सरकार के नेतृत्व की संरचना पर डेटा एकत्र किया है। नागालैंड, सिक्किम और मणिपुर सहित भारत के छह राज्यों में कोई महिला मंत्री नहीं है। ऐसा कोई राज्यक नहीं है जहां महिला मंत्रियों की संख्याव एक तिहाई के आस-पास भी हो जबकि महिला मंत्रियों का उच्चतम अनुपात तमिलनाडु में 13 प्रतिशत है, और 68 प्रतिशत राज्यों में

राज्य नेतृत्व की भूमिकाओं में 10 प्रतिशत से कम महिला प्रतिनिधित्व है। नीचे आकृति 1 भारतीय राज्यों में मंत्रालयिक पदों में महिला प्रतिनिधित्व की कम दरों को दर्शाती है।

वैश्विक स्तर पर आज इस विषय पर गम्भीरता से चिंतन हो रहा है कि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को किस तरह आज आगे बढाया जाए। संयुक्त राज्य अमेरिका के नवीनतम राष्ट्रपति चुनावमें हिलेरी क्लिंटन को राष्ट्रपति का प्रत्याशी घोषित करने के बाद लोकतांत्रिक देशों में राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को लेकर बहस तेज हो गई है। लेकिन दुख की अभी भी महिलाओं के लिए राजनीति में सहज प्रवेश में अनेक बाधाएँ है। आज हमारी सरकार यद्यपि इस हेतु प्रयास कर रही है तथापि महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढाने में अभी अनेक बाधाएँ हैं। प्रवृत्तियाँ ही किसी भी व्यक्ति एवं राष्ट्र का निर्धारण करती है। आधुनिक वस्त्र पहनने से उपरी आवरण तो बदलता है लेकिन संस्कार नही बदलते। ऐसा ही आज महिलाओं के साथ हो रहा है। महिलाओं के सशक्तीकरण एवं हितों की बात तो सभी तरफ है, लेकिन विडम्बना यह है कि महिला अभी अलग-अलग रुपों में अपने पिता, पति एवं पुत्र की कैद से ही मुक्त नहीं हो पाई है।

राजनीतिक अडचनों के निवारण हेतु महिलाओं का राजनीतिक विकास होना प्राथमिक आवश्यकता है। राजनीतिक विकास की जो अवधारणा प्रसिद्ध विचार कलूसियनपाई ने विकसित की है, उसके अनुसार राजनीतिक विकास जानने के लिए हमें महिलाओं के संदर्भ में तीन तथ्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा- (1) समानता के लिए संवेदनशीलता, (2) राज्य और समाज व्यवस्था को प्रभावित करने की क्षमता, (3) राज्य व्यवस्था की इकाइयों से संबंध[1]

अतः इन आधारों पर किया जाने वाला प्रत्येक विश्लेषण महिलाओं के राजनीतिक विकास के स्तर को असंतोषजनक प्रमाणित करता है। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास तभी संभव है जब संपूर्ण देश विकास की प्रक्रिया में भाग ले। महिलायें जो देश का अर्द्धभाग हैं वह देश की विकास की प्रर्क्रिया में भाग लेना तो दूर बल्कि सदियों से उपेक्षित हैं। विश्व का इतिहास और दुनिया के प्रगतिशील देशों की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रगति इस बात का प्रमाण है कि प्रगति के लिए महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। क्या कारण है कि संयुक्त राष्ट् संघ की महासभा द्वारा घोषित अंतर्राष्ट्रीय महिलावर्ष एवं महिला दशक की समाप्ति के कई वर्ष बाद भी भारत की संपूर्ण कार्यात्मक शक्ति में महिला कार्यकर्ताओं की संख्या कम है। विश्व की आधीताकतहोने के बावजूद राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका, उनकी कम भागीदारी एवं कमजोर स्थिति पर प्रश्न चिन्ह यथावतहै।[2] क्या कारण है कि भारतीय राजनीति में महिलाओं के लिए कोई प्रतिबंध न होने के बाद भी वे चुनाव में बहुत कम संख्या में भाग लेती हैं और जो भाग लेती हैं वह राजनीति की सर्वोच्च कुर्सी प्राप्त करने में प्रायः असमर्थ हैं। सारा परिवार राजनीति में है मगर उसकी खुद की जमीन नहीं, जहाँ से वह उड़ान भरकर राजनीतिक बुलंदियों को छू सके। अब तक घर में बैठकर उसने जिन पुरुषों को योग्य बनाया वह उसे देश का प्रतिनिधित्व आसानी से नहीं देता है। यदि ऐसा होता तो आरक्षण की मांग ही नही होती । समाज की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में सत्ता के समीकरणों में प्रायः अपराध, अव्यवस्था और घोर स्वार्थ की राजनीति है। भारत में महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता जानने के लिए यदि प्राचीन भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम यह पाते हैं कि पूर्व वैदिक युग में मातृसत्तात्मक परिवारथे, लेकिन धीरे-धीरे मध्यकाल और आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति बिगड़ती गयी। स्वाधीनता के पश्चात् संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए हैं पर उन्हें समाज में बराबरी का स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है और न ही इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी और महत्वपूर्ण पदों पर उनकी उपस्थिति नही के बराबर है।[3] अनेक घटक ऐसे हैं जो महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। जिन लोगों के पास राजनीतिक सत्ता हैं। वे उसका विकेन्द्रीकरण नहीं करना चाहते, तथा महिलाओं के समक्ष अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर देते हैं। जिससे महिलाओं का संघर्ष अन्तहीन हो जाता हैं। कुछ बाधाएँ पारम्परिक हैं वहीं मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित की जाती है। यथा-

1. महिला वर्ग को सामाजिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में आज भी द्वितीय स्तर का स्थान प्राप्त होना। राममनोहर लोहिया जैसे भारतीय राजनीतिज्ञ पूरे नारी समाज को पिछड़ेपन की दृष्टि से समस्तरीय मानते थे।[4]
2. शैक्षणिक क्षेत्र में महिला वर्ग का पिछडा होना। आज भी भारत की महिला जनसंख्या का बडा भाग निरक्षर है। इसी कारण अखिल भारतीय स्तर पर प्रशासनिक क्षेत्र में इनकी स्थिति नगण्य हैं। पुलिस सेवा में तो लगभग 1 प्रतिशत ही भागीदारी है। केवल 3 प्रतिशत महिलायें ही वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी विशेष अनुसंधान विकास के क्षेत्र में संलग्न हैं।[5]

3. आर्थिक क्षेत्र में आज भी भारतीय महिला वर्ग स्वावलम्बी नहीं है। मध्यम एवं निम्न वर्ग में विशेषकर शहरी क्षेत्र में महिलायें आर्थिक दृष्टि से कुछ आत्मनिर्भर अवश्य हुई हैं, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में द्वितीय स्तर प्राप्त होने के कारण उनकी अपनी आय को व्यय करने का उन्हें पूर्ण अधिकार नहीं हैं।[6] अर्थात अभी भी आर्थिक निर्णय की शक्ति उनके पास नहीं हैं।
4. भारतीय राजनीति के दूषित वातावरण के कारण भी राजनीति में भाग लेने वाली महिलाओं के प्रति समाज का स्वस्थ दृष्टिकोण न होना।[7]
5. भारतीय राजनीति में वर्तमान में धन एवं बाहुल्य की प्रधानता होने के कारण भी महिलाएँ इस क्षेत्र से स्वंय को दूर रखती हैं।[8]
6. महिलाओं के विरूद्व होने वाले अपराध महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी में भी कमी करते हैं। ये अपराध महिलाओं को सदैव पुरूष की पृष्ठ भूमि में रहने हेतु बाध्य करते हैं, जबकि राजनीतिक भागीदारी हेतु महिलाओं को प्रथम पंक्ति में आना आवश्यक हैं। आज सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा-पत्र को लगभग 68 वर्ष पूरे होने को है, फिर भी मानवाधिकारों का उल्लंघन समाज में प्रति दिन दिखाई देता है, विशेष तौर पर महिलाओं के प्रति। महिलाओं को सदा से ही सामाजिक, धार्मिक, विधिक, शैक्षणिक, आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में उपेक्षा सहन करनी पड़ी है। शारीरिक रूप से कमजोर तथा आर्थिक रूप से पुरूषों पर निर्भर होने के कारण सदियों से महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार, शोषण और यौन उत्पीड़न होता रहा है और यही कारण है कि उन्हें राजनीतिक विकास के लिये अधिक संघर्ष करना पड़ता है।

युनिसेफ के एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 50 लाख भ्रूण हत्याएें होती है जिनमें अधिकतर मादा भ्रुण हत्यायें है। महिलाओं की आर्थिक गतिविधी कुल आर्थिक गतिविधी का लगभग 50 प्रतिशत है जबकि आमदनी में उसका हिस्सा 34 प्रतिशत से अधिक नहीं है। असमानता के आंकड़े हर क्षेत्र में देखे जा सकते है। शिक्षा के अवसर निरन्तर बढ़े है। किन्तु बहुसंख्यक बालिकाओं को लाभ नहीं मिल पाया है। भारतीय परिवेश में विगत लम्बे समय से स्त्रियों के प्रति असन्तोषजनक वातावरण रहा है, परिवार के पितृ-सत्तात्मक स्वरूप के कारण सत्ता संरचना में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो पाए, अनुलोम एवं कुलीन विवाह की मान्यताएं, आर्थिक निर्भरता, महिलाएं शिक्षा, आज की उदारीकृत एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने महिलाओं को उपभोग की वस्तु के रूप में प्रचारित किया है, जिससे वस्तुत: अनेक लोगों की निम्न स्तरीय सामाजिक मानसिकता के कारण महिलाओं की स्थिति निम्नतर हो गई जिससे उनके प्रति शारीरिक अपराधों हेतु पृष्ठ-भूमि तैयार हुई है।[9] महिलाएं हत्या, लूटपाट, धोखाधड़ी इत्यादि जैसे कई आम अपराधों की भी पीड़ित होती हैं। केवल वेही अपराध, जो विशेष रूप से महिलाओं के प्रति किए जातेहैं ''महिलाओं के प्रतिअपराध'' के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं। महिलाओं के प्रति अपराधों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:-[10]

(क) भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) के तहत् अपराध

- बलात्कार (भा.दं.सं. की धारा 376)
- विशिष्ट प्रयोजनों के लिए अपहरण एवं व्यपहरण (भा.दं.सं. की धारा 363-369 और 371-373)
- दहेज के लिए गैर इरादतन हत्या, दहेज हत्या अथवा उस का प्रयास (भा.दं.सं. की धारा 302/304-ख)
- पति एवं रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता (भा.दं.सं. की धारा 498-क)
- शीलभंग के इरादे से महिलाओंपरहमला (भा.दं.सं. की धारा 354)
- महिलाओं का शीलभंग (भा.दं.सं. की धारा 509)
- विदेशों से लड़कियों का आयात (21 वर्ष की आयु तक) (भा.दं.सं. की धारा 366-ख)

(ख) विशेष एवंस्थानीय कानूनों (एस एल एल) के अंतर्गत अपराध

- लिंग सापेक्ष कानून, जिनके लिए अपराध के आंकड़े देशभर में दर्ज किए जाते हैं, निम्नानुसार हैं:
- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
- दहेज निषेध अधिनियम, 1961

- महिलाओं का अभद्र प्रदर्शन (निषेध) अधिनियम, 1986
- सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, 1987

ये समस्त तत्व संयुक्त रुप से भारतीय राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी में बाधक रहे हैं। यद्यपि यह सही है कि ये तत्वभारत के सभी क्षेत्रों में अलग-अलग तरह से प्रभावी हैं, किन्तु जहॉं तक किसी भी विषय पर स्वतंत्र निर्णय लेने का प्रश्न है महिलाओं की स्थिति समस्त भारतीय समाज में एक समान है। महिलाओं के विरूद्ध ये बाधाएँ सभी समाजों, सभी संस्कृतियों, सभी क्षेत्रों एवं सभी धार्मिक समुदायों में मौजूद है। यह शोषण कहीं अधिक तो कहीं कम है।

बाधाओं का दुष्प्रभावः-

महिलाओं की समुचित राजनीतिक भागीदारी नहीं होने से उत्पन्न होने वाले प्रभावों का आंकलन करना अत्यंत कठिन है। व्यवहार में यह लोकतंत्र के विरूद्ध हैं, क्योंकि लोकतंत्र जनता का जनता द्वारा जनता के लिए शासन है। लेकिन वर्तमान व्यवस्था में महिलाएँ अपना शासन स्वयं नहीं कर रही है। यह प्राकृतिक न्याय के भी विरूद्ध है क्योंकि प्रकृति ने पुरूष व महिला दोनों को शासन करने हेतु सक्षम बनाया है। इससे देश की लगभग 50 प्रतिशत प्रतिभाओं का राष्ट्र के विकास में योगदान नहीं मिल पा रहा है। यह असन्तुलित एवं एक पक्षीय विकास का सूचक है जो तानाशाही के लक्षणों का समर्थन करता है। महिलाओं के राजनीति में सीमित प्रतिनिधित्व के कारण महिलाओं के सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक विकास में भी बाधा उत्पन्न हो रही है। यह लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण सिद्धान्त जनभागीदारी के भी विरूद्ध है। चूंकि देश की लगभग आधी आबादी का विधानमण्डलों एवं राजनीतिक कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर है।

प्रयासः-

स्त्रियों का राजनीतिक भागीदारी का विस्तार परस्पर सहयोग, क्षैतिज-पदसोपान, लचीलापन, एवं अनुकरणीयता से संभव है। विगत् दशकों में महिलाओं के राजनीतिक विकास की अवधारणा ने विचार-विमर्श एवं बहस के केन्द्र में स्वयं को स्थापित कर लिया है। नवउदारवादी वातावरण में यह सतत् विकास तथा सुशासन (Good Governance) हेतु भी आवश्यक है। महिलाओं की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यदि निम्नलिखित प्रयास किये जाये तो महिलायें अन्य क्षेत्रों की भांति राजनीति के क्षेत्र में भी प्रवेश कर महिला वर्ग के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के साथ-साथ देश के विकास में योगदान देकर राजनीति में छाये हुए अंधकार को कम कर सकती है यथा-

1. आज आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं में राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम समानता पर आधारित सामाजिक संरचना का गठन करना होगा।[11]
2. महिलाओं को आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनाना होगा। उनमें साहस, त्याग और निर्भिकता की भावना का विकास करना होगा।[12]
3. परिवार और समाज में स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के सहयोग से अपने दायित्वों का निर्वाह करें यह भावना विकसित करनी होगी।[13]
4. प्रारंभ से ही बालक और बालिकाओं को समान रुप से शिक्षा प्रदान की जाये, यह व्यवस्था ग्रामीण स्तर से प्रारंभ की जाये।[14]
5. आजका युग प्रतियोगिता का युग है। महिलाओं को मात्र कानूनी अधिकार दिए जाने से वह समान अधिकार का उपयोग नहीं कर पाती है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में सामाजिक परिवर्तन हो, समाज का नजरिया बदलना होगा एवं महिलाओं को अपने मन में हीन भावनाका अंत करना होगा।[15]
6. सरकार महिलाओं की सुरक्षा की पूर्ण गारंटी ले एवं महिलाओं के प्रति बढ़ने वाले अपराधों के प्रति कठोर रुख अपनाये।[16]
7. महिलाओं में राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न की जाये। इस संबंध में बुद्धिजीवी वर्ग, दार्शनिक एवं देश के नेता इस समस्या की तह तक जाकर उसका निराकरण करें।[17]
8. विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को राजनीति के क्षेत्र मेंआने के लिय प्रोत्साहित किया जाये एवं प्रत्येक राजनीतिक दल द्वारा अपने निजी ेात से या राजकीय अनुदान की सहायता से महिला राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए राहत कोष की

स्थापना की जानी चाहिए एवं उन्हें दिशा निर्देश देने हेतु हर स्तर पर महिला आयोग एवं सलाहकार बोर्ड स्थापित किये जायें। समय-समय पर महिला सम्मेलन आयोजित किए जायें जिसमें ग्रामीण महिलाओं को अधिक से अधिक संख्या में आंमत्रित किया जाये ताकि वे अपने सीमित क्षेत्र से बाहर निकल कर अपना सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास कर सकें।[18]

9. महिलाओं के लिए संसद एवं विधायिकाओं में एक तिहाई स्थान आरक्षित किए जाने चाहिए।
10. केन्द्र सरकार की विभिन्न सेवाओं में महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित किए जाने चाहिए।

व्यवहार में नारी समानता उसके विकास एवं सम्मान के संदर्भ में समाज एवं सरकार दोनों को ही सहयोग करना होगा। गरीबी कम करने, साक्षरता का प्रतिशत बढाने, बेरोजगारी कम करने एवं असामनता को दूर करने के सभी प्रयासों को केन्द्र में जब तक भारत के असंख्य नारी समूह को नहीं रखा जायेगा और स्वयं महिला भी अपनी चेतना में परिवर्तन नहीं लायेगी, तब तक राजनीति और सत्ता दोनों ही नारी से दूर रहेंगें। कुछ सीमातक भारतीय महिलाओं में राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न हुई है और राजनीतिक वर्चस्व की खोज में नारी चौके से चौपाल की ओर मुखातिब हो चुकी हैं। राजनीति में अपनी जमीन तलाशती आज वह दहलीज के पार है कल तक उनके जो सपने पलकों से ही चिपके रहते थे, आज उन सपनों ने आकार ग्रहण करना शुरु कर दिया है।

निष्कर्ष-

वर्तमान में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जहां महिलाओं की उपलब्धियां दर्ज न हों। जो काम पुरुष कर सकते हैं, वह महिलाएं भी बखूबी कर रही हैं। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी अहम है। ऐसा देखा जाता है कि चुनाव में महिलाएं भाग तो लेती हैं, लेकिन जीत जाने के बाद उनके पति या बेटे ही सारे मामले निपटाते हैं। यह स्थिति बदलनी होगी। महिलाओं को अपना काम खुद ही करना होगा। तभी जाकर भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति मजबूत होगी। भारत की राजनीतिक व्यवस्था का आधार उसकी राजनीतिक संस्कृति है। राजनीतिक संस्कृति से राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र निर्धारण होता है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था में अनेक सकारात्मक तत्व भी मौजूद है जो निरंतर विधायिकाओं में महिला आरक्षण की मांग उठाते रहते है। संविधान के 73 तथा 74 वें संशोधन से स्थानीय निकायों में महिलाओं को देय एक तिहाई आरक्षण भी इन्ही सकारात्मक कदमों में शामिल है। राजस्थान सहित कुछ राज्यों में राजकीय सेवाओं में महिलाओं हेतु स्थान आरक्षित किए गये हैं जो निश्चित ही स्वागत योग्य है तथा इनके सकारात्मक परिणाम भी सामने आ रहे हैं। प्रत्येक अव्यवस्था के लिए एक मात्र सरकार ही दोषी नहीं है वरन हमारा परिवार, समाज, मूल्य, संस्कार एवं स्वयं का नजरिया भी दोषी होता है, तथापि यह सत्य है कि-

1. आज भी जनसंख्या के अनुपात में हमारी विधायी संस्थाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है, तथा भारत में प्रथम चुनाव से लेकर आज तक यह 10 प्रतिशत से उपर कभी भी नहीं रहा।
2. बढते अपराधीकरण, विशेष रुप से निर्वाचन के समय, ने महिलाओं को निर्वाचन की राजनीति में आने से रोका है, तथा
3. महिलाओं में अपने कम शक्तिशाली होने की धारणा के विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्याप्त है।

उपर्युक्त तथा अन्य अनेक परिस्थितियाँ महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण की आवश्यकता को न्यायोचित ठहराती है। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक देशों में महिलाऐं सफलतापूर्वक नेतृत्व कर रही है। स्वयं भारत के अनेक राज्यों में महिला मुख्यमंत्री कुशलतापूर्वक कमान संभाले हुए हैं। महिलाओं को उनका उचित स्थान दिलाना सभी की जिम्मेदारी है। भारत उन कुछ चन्द महान देशों में है जहाँ अहिंसक क्रांति के माध्यम से बडे-बडे सुधार किए गये हैं। महिलाओं के सशक्तीकरण तथा उनकी राजनीति में समुचित सहभागिता हेतु देश में एक और मानसिक क्रांति की आवश्यकता है। इस हेतु सभी को आत्मचिंतन, मूल्यांकन एवं आत्मविवेचन करना होगा। ज्ञातत्य है कि राजनीतिक संसाधनों पर पुरुषों के समान ही महिलाओं का अधिकार है ऐसे में उन्हें उनके जायजहक से वंचितकरना न केवल अन्यायपूर्ण है अपितु एक प्रकार का सामूहिक भ्रष्टाचार (Gang Corruption) भी है तथा भ्रष्टता किसी भी देश के लिए घातक है, अत: आज भारत में सुशासन एवं सन्तुलित शासन हेतु विकास की लैंगिक राजनीति को आगे लाना होगा जिससे महिलाओं को उनका समुचित स्थान एवं राष्ट्र को बहुमुखी प्रतिभाओं के ज्ञान व कौशल का लाभ प्राप्त हो सके। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए उन्हें स्वयं आगे आना होगा और अपनी योग्यता साबित करनी होगी। महिलाएं शुरुआत में स्थानीय जनहित के मुद्दे को लेकर आवाज उठाएं और समाज में अपनी पहचान बनाएं। स्थानीय निकायों के चुनाव में

टिकट लेकर अपनी दावेदारी प्रस्तुत करें। इस प्रकार वे अपनी योग्यता के बल पर जीत हासिल कर सकती हैं और संसद तक पहुंच सकती हैं। राजनीतिक दल योग्य महिलाओं को चुनाव लडने का अवसर प्रदान करें। महिलाओं को आरक्षण का जो विधेयक लोकसभा में लंबित है, उसे शीघ्र पारित किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूचीः-

1. लूसियनपाई प्रमुख राजनीतिक विचारक है।
2. जैन, राजेश, भारतीय राजनीति के नए आयाम, सी.बी.डी. प्रकाशन, 2000, पृष्ठ-94
3. वही
4. मोदी, मोदी, भारतीय राजनीति की प्रवृतियाँ, सी.बी.डी. प्रकाशन, 1999, पृष्ठ-94
5. वही
6. वही, पृष्ठ-95
7. वही
8. वही
9. पारीक, अनिल, भारत में अपराध-सुशासन के मार्ग में चुनौती, प्रशासनिका, एच.सी.एम. रीपा प्रकाशन, जनवरी-दिसम्बर 2015, ISSN-0971-6246, पृष्ठ-158
10. गृह मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक प्रतिवेदन (2014-15), नई दिल्ली
11. जैन, राजेश, भारतीय राजनीति के नए आयाम, सी.बी.डी. प्रकाशन, 2000, पृष्ठ-98
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही

संथाल विद्रोह में महिलाओं का योगदानः संक्षिप्त अवलोकन

डॉ० स्वर्ण मणि

सहायक प्राचार्य, इतिहास विभाग, टी०पी० कॉलेज मधेपुरा, बिहार

सरांशः- संथाल विद्रोह (जिसे संथाल विद्रोह या संथाल हूल के रूप में भी जाना जाता है), वर्तमान में झारखंड, पूर्वी भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और जमींदारी प्रणाली दोनों के खिलाफ एक विद्रोह था। यह 30 जून, 1855 को शुरू हुआ और 10 नवंबर, 1855 को ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा मार्शल लॉ की घोषणा की गई जो 3 जनवरी, 1856 तक चली जब मार्शल लॉ को निलंबित कर दिया गया और अंततः प्रेसीडेंसी सेनाओं द्वारा विद्रोह को दबा दिया गया। विद्रोह का नेतृत्व चार मुर्मू भाइयों- सिद्धू, कान्हू, चंद और भैरव ने किया था। संथालों का विद्रोह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, सूदखोरी प्रथाओं और भारत में जमींदारी व्यवस्था की राजस्व प्रणाली को समाप्त करने की प्रतिक्रिया के रूप में शुरू हुआ; उस समय के आदिवासी क्षेत्र में जिसे बंगाल प्रेसीडेंसी के नाम से जाना जाता था। यह एक विकृत राजस्व प्रणाली के माध्यम से प्रचारित औपनिवेशिक शासन के उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह था, जिसे स्थानीय जमींदारों, पुलिस और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा स्थापित कानूनी प्रणाली की अदालतों द्वारा लागू किया गया था। इस लेख में यह तर्क दिया जाएगा कि विद्रोह में महिलाओं की भागीदारी का संक्षिप्त अवलोकन किया गया है।

मुख्य-शब्दः आदिवासी महिलाएं, संथाल विद्रोह, जेल, महिला।

प्रस्तावनाः- 1832 में, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने वर्तमान झारखंड में दामिन-ए-कोह क्षेत्र का सीमांकन किया और संथालों को इस क्षेत्र में बसने के लिए आमंत्रित किया। जमीन और आर्थिक सुविधाओं के वादे के कारण बड़ी संख्या में संथाल कटक, धालभूम, मानभूम, हजारीबाग, मिदनापुर आदि से बसने के लिए आए। जल्द ही, महाजन और जमींदार, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नियोजित कर-संग्रह करने वाले बिचौलियों के रूप में अर्थव्यवस्था पर हावी हो गए। कई संथाल भ्रष्ट धन उधार प्रथाओं के शिकार हो गए। उन्हें अत्यधिक दरों पर पैसा उधार दिया गया था। जब वे ऋण चुकाने में असमर्थ थे, तो उनकी जमीनों को जबरन ले लिया गया और उन्हें बंधुआ मजदूरी के लिए मजबूर किया गया। इसने सिद्धू और कान्हू मुर्मू, दो भाइयों द्वारा संथाल विद्रोह को जन्म दिया, जिन्होंने विद्रोह के दौरान संथाल का नेतृत्व किया था। सन्थाल विद्रोह (1855-1866) 1857 के पूर्व किसान और आदिवासी विद्रोहों में सबसे प्रमुख विद्रोह सन्थाल आदिवासियों का था। सन्थाल शान्तिप्रिय आदिवासी समुदाय था जो बंगाल व बिहार के क्षेत्रों में निवास करता था। वे आदिमकालीन कृषि दशाओं के अन्तर्गत कृषि व्यवसाय में संलग्न थे।[1] वे झूम खेती करते थे एवं आवश्यकतानुसार जंगलों को साफ कर खेती योग्य जमीन का विस्तार भी करते थे। 1753 में स्थाई जमींदारी बन्दोबस्त के अन्तर्गत सन्थालों द्वारा सदियों से जोती जाने वाली जमीन का स्वामित्व उन क्षेत्रों के जमींदारों को हस्तांतरित कर दिया गया। इससे सन्थाल अंग्रेज विरोधी हो गये। जमींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत भू-राजस्व में भारी वृद्धि हुई। शान्तिप्रिय सन्थाल नई व्यवस्था के अन्तर्गत बुरी तरह पिस गये थे। इससे व्यथित होकर सन्थाल आदिवासी कटक, ढालभूमि, मनभूम, बड़ाभूम, बीरभूम, बांकुरा, मिदनापुर, हजारीबाग, पलामू एवं छोटा नागपुर जिलों से राजमहल की पहाड़ियों की ओर पलायन करने लगे। वे घर से बेघर हो गये एवं उन्होंने भारी श्रम करके राजमहल के पहाड़ी व जंगली क्षेत्रों में सफाई करके नई भूमि तैयार की। यहाँ भी वे लम्बे समय तक शान्ति से नहीं रह सके और यहाँ के जमींदारों ने भी उन्हें तंग करना आरम्भ कर दिया।[2]

जमींदारों की राजस्व की माँग को पूरा करने में असमर्थ सन्थाल महाजनों के कर्जदार हो गये थे। महाजन मनमाने दर पर ब्याज वसूल करते थे तथा उनके उत्पादों को निम्न दरों में वास्तविक मूल्य से भी कम में खरीदते थे। इस क्षेत्र में कार्यरत रेल निर्माण के

अंग्रेज ठेकेदारों ने भी इनका शोषण आरम्भ कर दिया। 1856 में प्रकाशित कलकत्ता रिव्यू में सन्थालों की स्थिति का विवरण इस प्रकार मिलता है- ''जमींदार, पुलिस और राजस्व न्यायालय सब एक साथ सीधे-साधे और विनम्र सन्थालों का शोषण कर रहे थे, उनकी जमीन और सम्पत्ति छीन रहे थे, उन्हें अपमानित कर रहे थे, पीट रहे थे और तरह - तरह से प्रताड़ित कर रहे थे। कर्ज के ऊपर सूदखोर 50 से 500 प्रतिशत तक सूद वसूल कर रहे थे, साप्ताहिक हाटों व बाजार में उनका सामान कम तोला जा रहा था, उन गरीब लोगों के खेत में धनाड्य लोग अपने जानवरों, टट्टुओं, खच्चरों एवं यहाँ तक की हाथी को चरने के लिए छोड़ देते थे। इस प्रकार की अवैध व्यवस्थाएँ चल रही थी । उनसे (सन्थालों से) सद्व्यवहार के लिए जमानत ली जा रही थी। ऋणों के बदले सम्पत्ति गिरवी रखना शोषण का अन्य तरीका था।''[3] आगे यह भी लिखा कि ऋण की राशि सन्थाल की फसल, पशुओं, स्वयं एवं परिवार की कीमत से भी दस गुनी हो जाती थी, वह इसे कभी नहीं चुका सकता था। एक ब्रिटिश सेना अधिकारी, मेजर जर्विस ने विद्रोह के दमन पर टिप्पणी की, ''यह युद्ध नहीं था; वे उपज समझ में नहीं आया। जब तक उनका राष्ट्रीय ढोल बजता रहेगा, पूरी पार्टी खड़ी रहेगी, और खुद को गोली मारने की अनुमति देगी। उनके बाणों ने अक्सर हमारे आदमियों को मार डाला, और इसलिए जब तक वे खड़े रहे, हमें उन पर गोलियां चलानी पड़ीं। जब उनका ढोल बंद हो जाता, तो वे एक चौथाई मील दूर चले जाते; तब उनके ढोल फिर बज उठे, और वे चौन से तब तक खड़े रहे, जब तक कि हम ऊपर न आ जाएं, और उन में थोडा सा आँचल उंडेल दिया। युद्ध में ऐसा कोई सिपाही नहीं था जिसे खुद पर शर्म न आए।[4]

जमींदार, राजस्व अधिकारी व कर्मचारी, महाजन, दुकानदार, पुलिस आदि के प्रति सन्थालों में भारी घृणा का भाव उत्पन्न हो गया था। इन्हें सन्थाल दिक्कू सम्बोधित करते थे और उन्हें राक्षसों के समान समझते थे। रमेश चन्द्र मजूमदार के मत में सन्थाल विद्रोह आर्थिक कारणों से आरम्भ हुआ था लेकिन शीघ्र ही उसका उद्देश्य विदेशी शासन का अन्त करना हो गया क्योंकि उन्होंने यह देखा कि अंग्रेज अधिकारी उनकी शिकायतों पर तनिक भी ध्यान नहीं देते हैं। वे तो शोषकों को आश्रय देते हैं। अतएव ब्रिटिश शासन का अन्त ही उनकी स्थिति सुधार सकता है।[5]

बहुआयामी शोषण व दमन से तंग आकर सन्थालों ने बगावत कर दी। इनके विद्रोह क्रमश - 1811, 1820, 1831 एवं 1854 में भी हुए किन्तु 1855 का सन्थाल विद्रोह सबसे भयानक था। 1855 के विद्रोह की भूमिका पहले से ही मौजूद थी। 1854 में सन्थालों ने महाजनों व जमींदारों द्वारा कमाई अवैध सम्पत्ति को लूट लिया। उन्होंने बीरसिंह के नेतृत्व में गोपनीय बैठकें की। महाजनों एवं स्थानीय कर्मचारियों ने अम्बाह परगने (पाकुर राज्य) की जमींदार रानी खेमसुन्दरी एवं उसके दीवान बाबू जगबन्धुराव की सहायता से सन्थाल नेता बीरसिंह को जमींदारी कचहरी में तलब किया। सन्थाल नेता बीरसिंह को आर्थिक जुर्माने से दण्डित किया गया।[6] इस घटना से सन्थाल और अधिक आन्दोलित हो गये एवं उन्होंने इसके विरुद्ध कार्यवाही करने का फैसला किया। 1855 के आरम्भ में वीरभूम, बांकुश, हजारीबाग एवं छोटा नागपुर से लगभग 7 हजार सन्थाल एकत्रित होकर अपने नेता बीरसिंह के विरुद्ध की गयी जमींदारी कचहरी की कार्यवाही का विरोध करने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने महेशलाल दत्त नामक दरोगा का सिर धड़ से अलग कर अपने अन्याय और अपमान का बदला लिया।

1854 में सन्थाल नेताओं के साथ इसी दरोगा ने कठोर व अपमानजनक व्यवहार किया था। दरोगा की मौत के बाद महाजन, जमींदार व अन्य शोषक वर्ग के लोगों में भगदड़ मच गई एवं वे अपने आवास और सम्पत्ति छोड़कर दूसरे क्षेत्रों में भागलपुर और राजमहल की तरफ भाग गये। इससे उत्साहित होकर सन्थालों ने अपने आन्दोलन का विस्तार किया एवं 30 जून, 1855 को 400 गाँवों के प्रतिनिधि 10,000 सन्थालों की एक सभा भगनाडीह नामक स्थान पर आयोजित हुई।[7] सन्थाल नेता किरता, भादू, सुन्नो, सीधू एवं कान्हू आदि ने इस सभा में इस विद्रोह द्वारा सभी शोषकों पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने का फैसला किया। कुछ ही समय में सन्थालों ने अपने क्षेत्रों से शोषक वर्गों का सफाया कर दिया। 19 जुलाई, 1855 को सम्पूर्ण सन्थाल क्षेत्रों में मार्शल लॉ लगाकर विद्रोही सन्थालों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही अंग्रेजी फौजों ने तेजी से आरम्भ की। इस दमनात्मक कदम के अन्तर्गत सेना ने सन्थाल गाँवों को नष्ट कर दिया एवं जगह - जगह गाँवों को आग की भेंट चढ़ा दिया गया। संकट की इस घड़ी में निम्न जाति के गैर सन्थाल लोगों ने भी सन्थालों की सहायता की इस प्रकार अंग्रेजी दमन के साथ - साथ सन्थालों के विद्रोह का सामाजिक हुआ। सीधू, कान्हू, चन्द एवं भैरव के नेतृत्व में सन्थालों ने पाकुर पर कब्जा कर विस्तार लिया। यहाँ के सबसे धनी सूदखोर दीनदयाल रॉय को मौत के घाट उतार दिया गया। उसका सिर काटकर जगह - जगह घुमाया गया। इस वीभत्स विद्रोह को दबाने के लिए कैप्टन फ्रान्सिस के नेतृत्व में 13 वीं रेजीमेन्ट, लेफ्टीनेन्ट लास्कर्ट के नेतृत्व में सातवीं रेजीमेन्ट एवं लेफ्टीनेन्ट कर्नल लिपट्राप के नेतृत्व 42 वीं रेजीमेन्ट को नियुक्त किया गया। लगभग 1000 गढ़वाली सुरक्षा प्रहरी सन्थाल क्षेत्रों में लगाये गये।[8] जमींदारों एवं

महाजनों, नील बगान के मालिकों आदि ने अपने संसाधन सरकार के पक्ष में सौंप दिये जिससे इस भयानक विद्रोह को दबाया जा सके। इन सेनाओं ने जुलाई, 1855 के अन्त तक लगभग 36 सन्थाल गाँवों को नष्ट कर दिया। राजमहल की पहाड़ियाँ सन्थालों के खून से रंग गई क्योंकि अंग्रेजी सेना ने उनका खुलकर नरसंहार किया। इसके उपरान्त भी अगस्त तक लगभग 30 हजार सशस्त्र सन्थाल विद्रोह में सम्मिलित थे। फरवरी, 1856 के तीसरे सप्ताह में सन्थालों के कान्हू व अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये। तत्पश्चात् सन्थाल विद्रोह कमजोर पड़ने लगा। भारी संख्या में सन्थालों को बन्दी बनाया गया। उनके खिलाफ मुकदमें चलाये गये। 1856 में यह विद्रोह समाप्त हो गया।[9]

सन्थाल विद्रोह में, संथाल महिलाएं की पूरे जोश और जोश के साथ व्यापक भागीदारी थी। इनमें महिलाओं की भूमिका आदिवासी विद्रोह पुरुषों से कम नहीं थे। इनके आंदोलनों को कुचलने के लिए अंग्रेजों द्वारा दमन किया गया। ये संघर्ष, हालांकि, तात्कालिक आर्थिक और अस्तित्व से संबंधित हैं। जनजातियों के प्रश्न अंततः साम्राज्यवादी ब्रिटिश नीति और शासन से संबंधित थे। असंख्य आदिवासी पुरुषों और महिलाओं ने अंग्रेजों के खिलाफ इस संघर्ष में अपना बलिदान दिया। संथाल महिलाएं ने दिखाया कि भारत में उपनिवेश विरोधी संघर्ष के इतिहास में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए अनुकरणीय साहस और दृढ़ संकल्प उनके पास भी है।[10]

आमतौर पर यह माना जाता है कि 1855 के संथाल विद्रोह में संथाल महिलाओं ने एक अनिवार्य भूमिका निभाई थी। विद्रोह के न्यायिक रिकॉर्ड के अनुसार, लगभग हर संथाल महिला विद्रोही थी और उनमें से कई को विद्रोह में सक्रिय भागीदारी के लिए गिरफ्तार किया गया था। संथाल विद्रोह के विद्वानों ने उपनिवेशवाद के खिलाफ सबाल्टर्न विरोध पर जोर देने के लिए ऐसे औपनिवेशिक प्रशासनिक खातों का इस्तेमाल किया है। हालाँकि, प्रशासनिक खातों के एक विस्तृत अध्ययन से यह भी पता चलता है कि, परीक्षण के बाद, अधिकांश महिला कैदियों को रिहा कर दिया गया क्योंकि वे निर्दोष थीं। अंदरूनी आवाजों तक पहुंच से पता चलता है कि कैसे संथाल नेताओं के आदेश से संथाल महिलाओं को डायन-शिकार के बहाने सताया जाता था।[11]

निष्कर्ष

सन्थाल विद्रोह को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। यह विद्रोह दमन की भेंट चढ़ने के बाद भी भारतीय इतिहास की अमर घटना बन गया। 1860 के नील विद्रोह, 1872 के पटना और बोगरा के किसान विद्रोह आदि सन्थाल विद्रोह से प्रभावित एवं प्रेरित थे। सन्थालों को शोषण से विशेष राहत तो नहीं मिली किन्तु सन्थाल क्षेत्र को पड़ोसी जिलों से अलग करके सन्थाल परगने का गठन किया गया। इस प्रकार सन्थाल अपनी पृथक् पहचान व विशेष दर्जा प्राप्त करने में सफल रहे। जमींदारी व सूदखोरी के विरुद्ध नारा सन्थालों ने ही दिया एवं उन्होंने संघर्ष का रास्ता प्रशस्त किया। कुल मिलाकर सन्थाल विद्रोह भविष्य के किसान व आदिवासी संघर्ष को दिशा प्रदान करने में सफल रहा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सुरेश, ट्राइबल आइडेंटिटी एंड द मॉडर्न वर्ल्ड, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 66.1994.
2. मेन, सर हेनरी समर, अर्ली लॉ एंड कस्टम, जॉन मरे, पृ. 131, 1990
3. कलकत्ता रिव्यू, 1856, पृ.7
4. गुहा, रंजीत, औपनिवेशिक भारत में किसानों के विद्रोह के प्राथमिक पहलू, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली पृ. 29, 1986
5. चक्रवर्ती, दिगंबर, 1855 के संताल हूल का इतिहास, अरुण चौधरी द्वारा संपादित, बीरभूम, नगरी, पृ. 43, 1988
6. दासगुप्ता, अतिस, संथाल विद्रोह के कुछ पहलू, सामाजिक वैज्ञानिक, आईएसएसएन 0970-0293, पृ.59-4, 2013
7. चंद्रा, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; महाजन, सुचिता, इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (पीडीएफ) (रीप्रिंट एड) पृ. 18-20, 2016
8. ओरन्स, मार्टिन, द सैंटल्स, डेट्रायट, वेन स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 21, 1965
9. ट्रोइसी, जे., द संथाल्स, मनोहर बुक सर्विस, नई दिल्ली, पृ. 55 1976
10. आर्चर, डब्ल्यू.जी., और डब्ल्यू.जी. कलशॉ, संथाल विद्रोह, मैन इन इंडिया, वॉल्यूम-25 भाग-4, पृ. 220, 1945
11. रॉय, एन.बी., संथाल विद्रोह के नए पहलू 1855-56, भारतीय ऐतिहासिक रिकॉर्ड आयोग, संख्या-35, पृ. 182, 1960

भारत और सिंगापुर के सांस्कृतिक संबंधों में सामाजिक - आर्थिक संगठनों का योगदान

आशा कुमारी सिन्हा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

डॉ० सुनीता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बी० डी० कॉलेज, पटना

सार

सामाजिक और आर्थिक हितों के अभिसरण पर आधारित भारत और सिंगापुर के बीच घनिष्ठ द्विपक्षीय संबंध हैं। 1990 के दशक की शुरुआत से भारत में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया ने सिंगापुर के साथ सहयोग के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया, जिससे एक-दूसरे की अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण उपस्थिति की संभावनाएं खुल गईं। भारत के लिए, सिंगापुर ने 1990 के दशक की शुरुआत में हमारी पूर्व की ओर देखो नीति की स्थापना के बाद से हमें दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहुलवादी समाजों के रूप में, दोनों देशों के सामाजिक - आर्थिक संगठनों ने भी एक-दूसरे के बीच सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत किया है। इस पत्र के माध्यम से भारत और सिंगापुर के सांस्कृतिक संबंधों में सामाजिक - आर्थिक संगठनों का योगदान पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: उच्च स्तरीय आदान-प्रदान; सामाजिक-आर्थिक संगठन; सांस्कृतिक संबंध।

परिचय

भारत और सिंगापुर के बीच घनिष्ठ संबंधों का इतिहास एक सहस्राब्दी में मजबूत वाणिज्यिक, सांस्कृतिक और लोगों से लोगों के बीच संबंधों में निहित है। अधिक आधुनिक संबंधों का श्रेय सर स्टैमफोर्ड रैफल्स को दिया जाता है, जिन्होंने 1819 में, मलक्का जलडमरूमध्य के मार्ग पर सिंगापुर में एक व्यापारिक स्टेशन की स्थापना की, जो बाद में एक क्राउन कॉलोनी बन गया और 1867 तक कोलकाता से शासित रहा। औपनिवेशिक संबंध संस्थानों और में परिलक्षित होता है। भारत 1965 में सिंगापुर को मान्यता देने वाले पहले देशों में से एक था।

2005 के व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते (सीईसीए) के समापन के बाद, इस मजबूत संबंध को 2015 में पीएम मोदी की यात्रा के दौरान और राजनयिक संबंधों की स्थापना की 50 वीं वर्षगांठ के अवसर पर एक रणनीतिक साझेदारी के लिए उन्नत किया गया था। भारत और सिंगापुर ने 2018 में अपनी रणनीतिक साझेदारी में नई गति और दिशा जोड़ी, जो 31 मई- 2 जून तक पीएम मोदी की सिंगापुर की आधिकारिक यात्रा और 14-15 नवंबर को आसियान-भारत और संबंधित शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए उनकी दूसरी यात्रा में शामिल थी। सिंगापुर के प्रधान मंत्री श्री ली सीन लूंग ने भी नई दिल्ली में गणतंत्र दिवस समारोह में भाग लेने और 2018 आसियान भारत स्मारक शिखर सम्मेलन (एआईसीएस) की सह-अध्यक्षता करने के लिए 25-26 जनवरी 2018 को भारत का दौरा किया।

पीएम ली और एमेरिटस के वरिष्ठ मंत्री (ईएसएम) गोह चोक टोंग ने 23 मई 2019 को अपनी चुनावी जीत पर पीएम मोदी को लिखे अपने पत्रों में बधाई दी। दोनों प्रधानमंत्रियों ने जून में ओसाका में जी -20 शिखर सम्मेलन और बैंकॉक में पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन के दौरान मुलाकात की। नवंबर 2019 में। पीएम ली उन छह विश्व नेताओं में से एक थे जिन्हें पीएम मोदी ने 24 सितंबर 2019 को महात्मा गांधी की 150 वीं जयंती मनाने के लिए न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र में एक विशेष कार्यक्रम में बोलने के लिए आमंत्रित किया था।[1]

उच्च स्तरीय एक्सचेंज:

तत्कालीन प्रधान मंत्री गोह चोक टोंग के नेतृत्व में सिंगापुर ने 1990 के दशक में भारत के आर्थिक सुधारों में एक प्रमुख रुचि ली। उन्होंने 1994 में गणतंत्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में भारत का दौरा किया। प्रधान मंत्री नरसिम्हा राव की एक पारस्परिक यात्रा सितंबर 1994 में हुई। 2002 में प्रधान मंत्री वाजपेयी की यात्रा सहित उच्च स्तरीय बातचीत, जून 2005 में व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते (सीईसीए) पर हस्ताक्षर करने के साथ प्रधान मंत्री ली सीन की यात्रा के दौरान समाप्त हुई। भारत के लिए लूंग। सिंगापुर के पूर्व प्रधान मंत्री गोह चोक टोंग को 2004 में अंतर्राष्ट्रीय समझ के लिए जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। राष्ट्रपति की यात्राओं में नवंबर 2000 में राष्ट्रपति के आर नारायणन और फरवरी 2006 में राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम द्वारा किए गए और सिंगापुर के किसी भी राष्ट्रपति की पहली यात्रा शामिल है। एस आर नाथन) जनवरी 2003 में। प्रधान मंत्री ने नवंबर 2011 में सिंगापुर की आधिकारिक यात्रा की और सिंगापुर के प्रधान मंत्री ली सीन लूंग ने जुलाई 2012 में भारत की राजकीय यात्रा की और उसी वर्ष दिसंबर में दिल्ली में आसियान-भारत स्मारक शिखर सम्मेलन में भाग लिया। 2014-15 में भारत और सिंगापुर के बीच राजनयिक संबंधों की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर, दोनों देशों के राष्ट्रपतियों को संबंधित यात्राओं के लिए निमंत्रण दिया गया है, जो वर्तमान में विचाराधीन हैं।[2]

यात्राओं का आदान-प्रदान

पीएम मोदी ने 2018 में दो बार सिंगापुर का दौरा किया। मई-जून 2018 में उनकी आधिकारिक यात्रा में समझौता ज्ञापनों, समझौतों और नई पहलों के रूप में 35 से अधिक ठोस परिणाम देखे गए। इनमें द्विपक्षीय नौसैनिक सहयोग को और बढ़ावा देने के लिए रसद और सेवाओं के समर्थन के पारस्परिक समन्वय के लिए कार्यान्वयन व्यवस्था शामिल है; आर्थिक पक्ष पर, 2010 से लंबित सीईसीए की दूसरी समीक्षा को पूरा करना और नर्सिंग पर संबंधित पारस्परिक मान्यता समझौते पर हस्ताक्षर करना। कौशल विकास जैसे क्षेत्रों में कई समझौता ज्ञापन थे, जिनमें से एक पहला भारतीय कौशल संस्थान स्थापित करने में सहयोग के लिए था; लोक प्रशासन और शासन; अपशिष्ट प्रबंधन और जल पुनर्चक्रण सहित शहरी नियोजन और विकास; व्यापार और निवेश संवर्धन; और, रसद और बुनियादी ढांचे।

इस यात्रा के दौरान विज्ञान और प्रौद्योगिकी और नवाचार, स्टार्टअप और फिनटेक द्विपक्षीय जुड़ाव के नए क्षेत्रों के रूप में उभरे। दोनों सरकारों ने फिनटेक पर एक संयुक्त कार्य समूह (JWG) स्थापित करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। प्रधानमंत्री ने भारत के वित्तीय उत्पादों - रुपे कार्ड, भीम-यूपीआई ऐप और यूपीआई-आधारित सीमा-पार प्रेषण ऐप के पहले अंतर्राष्ट्रीय लॉन्च को देखा। प्रधानमंत्री ने नई प्रौद्योगिकियों (एआई, मशीन लर्निंग, ब्लॉकचेन) और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में सहयोग के लिए नानयांग प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय और प्रमुख भारतीय संस्थानों के बीच कई समझौतों को देखा।

विदेशों में भारतीय हस्तशिल्प को बढ़ावा देने और ग्रामीण आजीविका का समर्थन करने के लिए एक अभिनव तंत्र के रूप में, पीएम ने भारतीय कारीगरों को नियमित रूप से सिंगापुर लाने के लिए भारतीय विरासत केंद्र (आईएचसी) में एक मंच का अनावरण किया। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती से पहले, प्रधान मंत्री ने 1948 में सिंगापुर में गांधीजी की राख के एक हिस्से के विसर्जन स्थल पर एक पट्टिका का अनावरण किया। चांगी नेवल बेस की ऐतिहासिक यात्रा में, पीएम एक सिंगापुर और एक भारतीय नौसैनिक जहाज पर सवार हुए और नौसेना कर्मियों से बातचीत की।

पीएम मोदी 01 जून 2018 को वार्षिक शांगरी ला डायलॉग में मुख्य भाषण देने वाले पहले भारतीय पीएम बने। उन्होंने भारत-प्रशांत क्षेत्र के भारत के दृष्टिकोण को रेखांकित किया और इस क्षेत्र में शांति और स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाया।

जब पीएम मोदी नवंबर 2018 में बहुपक्षीय शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए, तो वह दुनिया के सबसे बड़े फिनटेक कार्यक्रम, सिंगापुर फिनटेक फेस्टिवल में मुख्य भाषण देने वाले पहले सरकार के प्रमुख भी बने। उन्होंने आर्थिक प्रगति और

सशक्तिकरण के साधन के रूप में वित्तीय समावेशन और डिजिटलीकरण में भारत की सफलता का अनुमान लगाया। उन्होंने भारत और आसियान से शुरू होकर फिनटेक कंपनियों और बैंकों को जोड़ने के लिए एक वैश्विक डिजिटल प्लेटफॉर्म एपीआईएक्स लॉन्च किया।

पीएम मोदी इससे पहले 2015 में दो बार सिंगापुर गए थे। वह 29 मार्च को सिंगापुर के संस्थापक और मंत्री मेंटर ली कुआन यू के राजकीय अंतिम संस्कार में शामिल होने गए थे। भारत में शोक दिवस के रूप में अंतिम संस्कार के दिन की घोषणा के साथ अंतिम संस्कार में प्रधानमंत्री की भागीदारी की सिंगापुर ने बहुत सराहना की। प्रधान मंत्री मोदी ने 23-24 नवंबर 2015 को एक आधिकारिक यात्रा का भुगतान किया जहां नौ द्विपक्षीय दस्तावेजों का निष्कर्ष निकाला गया और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया। उन्होंने आईएनए मेमोरियल मार्कर में नेताजी सुभाष चंद्र बोस को श्रद्धांजलि अर्पित की, 'इंडियाज सिंगापुर स्टोरी' शीर्षक से 37वां सिंगापुर व्याख्यान दिया, पीएम ली के साथ तकनीकी शिक्षा संस्थान का दौरा किया, भारत-सिंगापुर आर्थिक सम्मेलन में व्यापारिक समुदाय को संबोधित किया।[3]

गणतंत्र दिवस समारोह में भाग लेने और भारत-आसियान संवाद साझेदारी की 25वीं वर्षगांठ समारोह की परिणति को चिह्नित करने के लिए आयोजित एआईसीएस की सह-अध्यक्षता करने के लिए पीएम ली ने 25-26 जनवरी 2018 को नई दिल्ली का दौरा किया। सिंगापुर 2018 के लिए आसियान अध्यक्ष होने के नाते, पीएम ली ने पीएम मोदी के साथ एआईसीएस की सह-अध्यक्षता की। शिखर सम्मेलन का विषय "साझा मूल्य, सामान्य नियति" था।

पीएम ली ने इससे पहले 3 से 7 अक्टूबर 2016 तक 3 वरिष्ठ मंत्रियों के साथ भारत की कार्यकारी यात्रा की थी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण और औद्योगिक संपत्ति में सहयोग के क्षेत्र में सहयोग पर तीन समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए। पर्यटन प्रबंधन के लिए उत्कृष्टता केंद्र का उद्घाटन करने के लिए पीएम ली ने उदयपुर का दौरा किया। उन्होंने जून 2005, जुलाई 2012 और दिसंबर 2012 में एआईसीएस की 20वीं वर्षगांठ मनाने के लिए भारत की राजकीय यात्रा की थी।

विदेश मंत्री डॉ. एस जयशंकर; रक्षा मंत्री श्री राजनाथ सिंह; और, आवास और शहरी मामलों के लिए डवै (स्वतंत्र प्रभार), नागरिक उड्डयन और डवै, वाणिज्य और उद्योग श्री हरदीप सिंह पुरी और तत्कालीन गृह राज्य मंत्री श्री किरेन रिजिजू ने 2019 में सिंगापुर का दौरा किया। विदेश मंत्री ने संयुक्त मंत्रिस्तरीय समिति की छठी बैठक की सह-अध्यक्षता की। (जेएमसी) 9 सितंबर 2019 को विदेश मंत्री डॉ विवियन बालकृष्णन के साथ। आरएम ने 20 नवंबर 2019 को रक्षा मंत्री डॉ एनजी इंग हेन के साथ वार्षिक रक्षा मंत्रियों की वार्ता की सह-अध्यक्षता की।

इसके अलावा, पुडुचेरी के मुख्यमंत्री और आंध्र प्रदेश, असम, ओडिशा, गोवा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, उत्तराखंड के राज्य प्रतिनिधिमंडल ने व्यवसायों और सरकार के साथ बैठकों के लिए और व्यापार संवर्धन गतिविधियों का संचालन करने के लिए दौरा किया। फिनटेक, पर्यटन में। सांसदों, सचिवों, वरिष्ठ अधिकारियों और भारत के विभिन्न राष्ट्रीय और क्षेत्रीय व्यापार और वाणिज्य मंडलों के प्रतिनिधियों सहित बड़ी संख्या में प्रतिनिधिमंडल ने भी सिंगापुर का दौरा किया।

सिंगापुर से, उप प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री श्री हेंग स्वी कीट ने अक्टूबर 2019 में डीपीएम की क्षमता में अपनी पहली यात्रा का भुगतान किया। यात्रा के दौरान, डीपीएम हेंग ने पीएम मोदी और वरिष्ठ मंत्रियों से मुलाकात की, भारत आर्थिक शिखर सम्मेलन की सह-अध्यक्षता की। विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) के (आईईएस) और 02 अक्टूबर को राजघाट पर महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित की। डीपीएम हेंग के प्रतिनिधिमंडल में सामाजिक और परिवार विकास मंत्री और राष्ट्रीय विकास के दूसरे मंत्री श्री डेसमंड ली, और राष्ट्रीय विकास मंत्रालय और जनशक्ति मंत्रालय, श्री जाकी मोहम्मद शामिल थे।

इसके अलावा, विदेश मामलों के राज्य मंत्री और जनशक्ति श्री सैम टैन और वरिष्ठ विदेश राज्य मंत्री, रक्षा विदेश मामलों के मंत्रालय, डॉ मलिकी ने जनवरी में; संचार और सूचना मंत्री और व्यापार संबंधों के प्रभारी मंत्री एस ईश्वरन ने जून और अक्टूबर में दौरा किया; गृह मामलों और कानून मंत्री श्री के षणमुगम, स्वास्थ्य और कानून मंत्रालय के वरिष्ठ राज्य मंत्री श्री एडविन टोंग ने अगस्त में दौरा किया और शिक्षा मंत्री श्री ओंग ये कुंग ने जून और सितंबर 2019 में नई दिल्ली और भारत के अन्य शहरों का दौरा किया।[4]

वरिष्ठ मंत्री और सामाजिक नीतियों के समन्वय मंत्री श्री थरमन शनमुगरत्नम ने जनवरी 2020 में नई दिल्ली और मुंबई का दौरा किया, जहां उन्होंने प्रधान मंत्री से मुलाकात की, महाराष्ट्र के वरिष्ठ मंत्रियों से मुलाकात की और आरबीआई के निमंत्रण पर मुंबई में एक व्याख्यान दिया।

रिश्ते की रूपरेखा:

भारत और सिंगापुर के बीच संपन्न हुए समझौते दोनों सरकारों, अर्थव्यवस्थाओं और नागरिक समाजों के बीच सहयोग की व्यापकता को दर्शाते हैं। प्रमुख समझौतों में व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता, सीईसीए (2005), दोहरा कराधान बचाव समझौता, डीटीएए (1994), द्विपक्षीय हवाई सेवा समझौता (1968), रक्षा सहयोग समझौता (2003), विदेश कार्यालय परामर्श पर समझौता ज्ञापन (1994), और पारस्परिक शामिल हैं। कानूनी सहायता संधि (2005)। संयुक्त मंत्रिस्तरीय समिति (जेएमसी) सरकारी स्तर पर विस्तारित द्विपक्षीय वार्ता संरचना के शीर्ष पर है और इसकी अध्यक्षता विदेश मंत्री/विदेश मंत्री के स्तर पर होती है। 1999 से नियमित विदेश कार्यालय परामर्श हो रहे हैं। 2007 में गठित भारत-सिंगापुर सामरिक वार्ता, ट्रैक-II स्तर पर आदान-प्रदान को बढ़ावा देने के लिए है और इसका नेतृत्व सीआईआई और दक्षिण एशियाई अध्ययन संस्थान, सिंगापुर द्वारा किया जाता है।

आर्थिक और वाणिज्यिक:

सिंगापुर आसियान में भारत का सबसे बड़ा व्यापार और निवेश भागीदार है, जो आसियान के साथ हमारे कुल व्यापार का एक तिहाई हिस्सा है। आर्थिक और वाणिज्यिक संबंधों में काफी विस्तार हुआ है, खासकर 2005 में सीईसीए के समापन के बाद। द्विपक्षीय व्यापार 2005-06 में 8.8 अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2012-13 में 21.3 अरब अमेरिकी डॉलर हो गया है (स्रोत: डीजीसीआईएस)। अप्रैल-अक्टूबर 2013 की अवधि में द्विपक्षीय व्यापार 12.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर था (स्रोत: डीजीसीआईएस)। एशिया प्रशांत क्षेत्र में सक्रिय भारतीय कंपनियों के लिए सिंगापुर परिचालन का एक पसंदीदा केंद्र बन गया है। एक अच्छे सक्षम वातावरण, मजबूत हवाई संपर्क और एक बड़े भारतीय समुदाय की उपस्थिति के साथ, सिंगापुर कई भारतीय कॉरपोरेट घरानों के लिए एक प्रमुख अपतटीय रसद और वित्तीय केंद्र के रूप में उभरा है। सिंगापुर में लगभग 4,500 पंजीकृत 'भारतीय' कंपनियों के मौजूद होने का अनुमान है। देश में नौ भारतीय बैंक काम करते हैं - बैंक ऑफ इंडिया, इंडियन ओवरसीज बैंक, यूको बैंक, इंडियन बैंक, एक्सिस बैंक और स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, आईसीआईसीआई, एक्जिम बैंक और बैंक ऑफ बड़ौदा।[5]

व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (सीईसीए):

जून 2005 में समाप्त, सिंगापुर के साथ सीईसीए किसी भी देश के साथ भारत द्वारा हस्ताक्षरित पहला ऐसा समझौता था। यह शिक्षा, बौद्धिक संपदा और विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार, निवेश संरक्षण और आर्थिक सहयोग पर समझौतों को एकीकृत करता है। यह पारस्परिक मान्यता समझौते (MRAS) भी प्रदान करता है जो अनिवार्य तकनीकी आवश्यकताओं वाले क्षेत्रों में उत्पादों के दोहराव परीक्षण और प्रमाणन को समाप्त करता है। सीईसीए के कार्यान्वयन की दोनों सरकारों द्वारा समय-समय पर समीक्षा की जानी है और पहली समीक्षा को बंद करने की घोषणा 1 अक्टूबर 2007 को की गई थी। दूसरी समीक्षा औपचारिक रूप से मई 2010 में शुरू की गई थी।[6]

द्विपक्षीय निवेश:

1990 के दशक की शुरुआत से, सिंगापुर की कंपनियां एफआईआई के रूप में भारत के इक्विटी बाजार में सक्रिय रही हैं, और हाल के वर्षों में इस प्रवृत्ति ने गति पकड़ी है। सिंगापुर से 81 एफआईआई हैं जो भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) के साथ पंजीकृत हैं। सिंगापुर अप्रैल 2000 से अक्टूबर 2013 की अवधि के दौरान भारत में 22.33 बिलियन अमेरिकी डॉलर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के सबसे बड़े स्रोतों में से एक के रूप में उभरा है, जो कुल एफडीआई प्रवाह का 11 प्रतिशत है और मॉरीशस के बाद भारत में दूसरा सबसे बड़ा निवेशक है। स्रोत: डीआईपीपी)। भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, जनवरी 2012 तक सिंगापुर में संचयी जावक एफडीआई 23.42 अमेरिकी डॉलर था।

व्यापार, आर्थिक और विकास सहयोग

2014 में पीएम मोदी के नेतृत्व वाली सरकार के पहले कार्यकाल की शुरुआत में सहयोग के पांच क्षेत्रों पर सहमति बनी थी - (i) व्यापार और निवेश को बढ़ाना; (ii) कनेक्टिविटी को गति दें; (iii) स्मार्ट सिटी और शहरी कायाकल्प; (iv) कौशल विकास; और (v) राज्य फोकस। 2018 में, फिनटेक एंड इनोवेशन को द्विपक्षीय संबंधों के नए चालक के रूप में मान्यता दी गई थी।

व्यापार और निवेश बढ़ाना: सिंगापुर आसियान में भारत का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार है। यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का प्रमुख स्रोत है, बाहरी वाणिज्यिक उधार और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश के सबसे बड़े स्रोतों में से एक है। सीईसीए के समापन के बाद

द्विपक्षीय व्यापार का विस्तार वित्त वर्ष 2004-05 में 6.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2018-19 में 27.85 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया। वित्त वर्ष 18-19 में सिंगापुर से हमारा आयात 16.28 बिलियन अमरीकी डॉलर और भारत से 11.57 बिलियन अमरीकी डॉलर का निर्यात था। वित्त वर्ष 2019-20 (दिसंबर 2019 तक) में द्विपक्षीय व्यापार 17.9 बिलियन अमेरिकी डॉलर था, जिसमें सिंगापुर को निर्यात 7.1 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।

2018-19 में, भारत में 44.37 बिलियन अमरीकी डॉलर की कुल FDI प्राप्तियों में से सिंगापुर से FDI अंतर्वाह 16.23 बिलियन अमरीकी डॉलर था। वित्तीय वर्ष 2019-20 में, सितंबर 2019 तक कुल प्रवाह 8.01 बिलियन अमरीकी डालर था, जबकि सिंगापुर से भारत में संचयी एफडीआई (अप्रैल 2000- सितंबर 2019) 91.02 बिलियन अमरीकी डालर है, जो भारत में कुल प्रवाह का 20 प्रतिशत है। सिंगापुर के लिए बाहरी भारतीय एफडीआई 67.64 बिलियन अमेरिकी डॉलर (जनवरी 2008 - दिसंबर 2019) था, जिसमें से दिसंबर 2019 तक वित्त वर्ष 2019-20 में लगभग 2.22 बिलियन अमेरिकी डॉलर, सिंगापुर को भारतीय निवेश के लिए शीर्ष स्थलों में से एक बना दिया।[7]

भारतीय जारीकर्ताओं द्वारा सूचीबद्ध अपतटीय बांडों में से 80 प्रतिशत से अधिक सिंगापुर स्टॉक एक्सचेंज (एसजीएक्स) में सूचीबद्ध हैं। सिंगापुर स्थित निवेशकों के पास भारत में 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधिक मूल्य की संपत्ति प्रबंधन (एयूएम) है। सिंगापुर सरकार के फंड टेमासेक होल्डिंग ने 2018 में पीएम की 2018 यात्रा के दौरान घोषणा के बाद, 2018 में भारत के राष्ट्रीय अवसंरचना निवेश कोष में 400 मिलियन अमरीकी डालर का निवेश किया है।

सिंगापुर में लगभग 9000 भारतीय कंपनियां पंजीकृत हैं। 6 पीएसयू, 9 बैंक, इंडिया टूरिज्म, सीआईआई, फिक्की, एयर इंडिया, जेट एयरवेज के कार्यालय सिंगापुर में हैं। सिंगापुर की 440 से अधिक कंपनियां भारत में पंजीकृत हैं। 2 बैंक, एंटरप्राइज सिंगापुर, इकोनॉमिक डेवलपमेंट बोर्ड और सिंगापुर टूरिज्म बोर्ड के भारत में कार्यालय हैं। भारत-सिंगापुर सीईओ फोरम नवंबर 2018 में लॉन्च किया गया था। डीबीएस बैंक ने मार्च 2019 में अपनी स्थानीय रूप से निगमित सहायक कंपनी, डीबीएस बैंक इंडिया को लॉन्च करने की घोषणा की।

पीएम मोदी के नेतृत्व वाली सरकार के दूसरे कार्यकाल में, मिशन ने 09-10 सितंबर 2019 को सरकार के दूसरे कार्यकाल में भारत पर क्षेत्र के पहले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और नवाचार शिखर सम्मेलन का आयोजन किया, "भारत-सिंगापुर: अगला चरण।" इस आयोजन में 4500 से अधिक पंजीकृत प्रतिभागियों ने भाग लिया। मंत्रिस्तरीय पूर्ण अधिवेशन में विदेश राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री पुरी, वरिष्ठ मंत्री टीओ ची हेन, सिंगापुर के विदेश मंत्री डॉ. विवियन बालकृष्णन, व्यापार और उद्योग और शिक्षा राज्य मंत्री श्री ची होंग टाट शामिल थे। भारत और सिंगापुर के सरकार, व्यापार और प्रौद्योगिकी क्षेत्रों के 90 वक्ताओं ने 25 सत्रों में व्यापार, निवेश, वित्त, प्रौद्योगिकी और नवाचार को कवर करने वाले विषयों पर बात की। इस कार्यक्रम में आंध्र प्रदेश, ओडिशा, पंजाब और उत्तराखंड की राज्य सरकारों ने भी भाग लिया।[8]

कनेक्टिविटी को गति दें:

हवाई सेवा समझौते को 2005 में संशोधित किया गया था और 2013 में द्विपक्षीय हवाई सेवाओं की व्यवस्था पर समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए थे। सिंगापुर अब 8 एयरलाइनों द्वारा 15 भारतीय शहरों से सीधे जुड़ा हुआ है, जिसमें 500 से अधिक साप्ताहिक उड़ानें हैं। सिंगापुर एयरलाइंस और टाटा समूह के बीच एक संयुक्त उद्यम विस्तारा ने अगस्त 2019 में सिंगापुर से दिल्ली और मुंबई के लिए अपनी पहली अंतरराष्ट्रीय उड़ानें शुरू कीं, जबकि गोएयर ने अक्टूबर 2019 में बेंगलुरु और कोलकाता से सिंगापुर के लिए अपनी सेवाएं शुरू कीं। 2018 में, लगभग 1.27 मिलियन भारतीय पर्यटक सिंगापुर का दौरा किया, जिससे भारत सिंगापुर के लिए पर्यटन का तीसरा सबसे बड़ा स्रोत बन गया।

स्मार्ट शहर:

सिंगापुर कंसोर्टियम द्वारा अमरावती कैपिटल सिटी प्रोजेक्ट के एक हिस्से को विकसित करने का अनुबंध रद्द कर दिया गया है, सिंगापुर की कंपनियां कई स्मार्ट सिटी, शहरी नियोजन, रसद और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं में भाग लेना जारी रखती हैं। सिंगापुर, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र के साथ मिलकर टाउनशिप के लिए मास्टर प्लान तैयार कर रहा है। मई-जून 2018 में पीएम मोदी की यात्रा के दौरान, NITI AAYOG सहित निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों द्वारा शहरी और ग्रामीण विकास के क्षेत्रों में 3 MOU पर हस्ताक्षर किए गए थे। नवंबर 2019 में, सिंगापुर की एक कंपनी ने गुजरात के 4 शहरों में 15000 घरों को विकसित

करने के लिए पुरस्कार जीता, जबकि अप्रैल 2019 में, सिंगापुर सॉवरेन फंड GIC और टाटा समूह ने संयुक्त रूप से GMR एयरपोर्ट्स लिमिटेड में कुल INR 8,000 करोड़ के निवेश के साथ भारत के हवाई अड्डे के क्षेत्र में प्रवेश किया।

कौशल विकासः

सिंगापुर विभिन्न क्षेत्रों में कौशल विकास केंद्र स्थापित करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के साथ-साथ सरकारी संगठनों के साथ काम कर रहा है। 2013 में दिल्ली में एक विश्व स्तरीय कौशल केंद्र (WCSC) स्थापित किया गया है। अक्टूबर 2016 में पीएम ली की यात्रा के दौरान, कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में सहयोग पर समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए थे। पीएम ली की यात्रा के दौरान उदयपुर में पर्यटन प्रबंधन के लिए उत्कृष्टता केंद्र का उद्घाटन किया गया। मार्च 2019 में गुवाहाटी में नॉर्थ ईस्ट स्किल सेंटर का उद्घाटन किया गया। इसी तरह की पहल हरियाणा, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में की जा रही है। मई-जून 2018 में पीएम मोदी की यात्रा के दौरान, कौशल विकास पर पांच समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए, जिसमें भविष्य के कौशल के लिए, और कौशल पर पहले भारतीय संस्थान की स्थापना के साथ-साथ भारत में राष्ट्रीय प्रशिक्षकों और मूल्यांकन अकादमियों की एक श्रृंखला शामिल है।[9]

राज्य का ध्यानः

राज्य सरकारें सिंगापुर के साथ स्मार्ट शहरों और शहरी कायाकल्प के साथ-साथ कौशल विकास पहल में काम कर रही हैं। सिंगापुर ने महाराष्ट्र के साथ एक संयुक्त समिति की स्थापना की है। सिंगापुर में विभिन्न स्तरों पर राज्य के प्रतिनिधिमंडलों का नियमित दौरा होता है। सिंगापुर के मंत्री भी राज्यों का दौरा करते हैं।

फिनटेक और इनोवेशनः प्रौद्योगिकी, नवाचार, फिनटेक और स्टार्टअप के क्षेत्रों में सहयोग बढ़ा है। 2019 में 2019 फिनटेक फेस्टिवल के दौरान 13 नवंबर को सिंगापुर में भीम यूपीआई क्यूआर आधारित भुगतान का एक पायलट डेमो लॉन्च किया गया था। जून 2018 में लॉन्च किए गए त्न्च्ल् इंटरनेशनल कार्ड के अलावा, सिंगापुर में त्न्च्ल् डोमेस्टिक कार्ड की स्वीकृति के लिए वाणिज्यिक और तकनीकी व्यवस्था पर भी काम किया गया है। फिनटेक पर श्र्ळ के तहत, दोनों पक्ष ग्लोबल स्टैक पर प्रगति कर रहे हैं। इंडिया स्टैक पर, और एक अंतरराष्ट्रीय एमएसएमई डिजिटल प्लेटफॉर्म, बिजनेस सैन्स बॉर्डर विकसित करना।

नवाचार में अग्रणी भारतीय और सिंगापुर के संस्थानों के बीच सहयोग जारी है। उच्चायोग के स्टार्टअप एंगेजमेंट प्लेटफॉर्म का तीसरा संस्करण, "इंडिया-सिंगापुर एंटरप्रेन्योरशिप ब्रिज (इनस्पेन्योर)" भारत-सिंगापुरः द नेक्स्ट फेज- बिजनेस एंड इनोवेशन समिट के साथ आयोजित किया गया था। इसमें नवाचार विषयों पर चर्चा और भारत और सिंगापुर के 85 स्टार्टअप्स की प्रदर्शनी शामिल थी। भारत और सिंगापुर के 120 विश्वविद्यालय के छात्रों को 20 टीमों में बांटा गया, जिन्होंने 36 घंटे में शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और हरित ऊर्जा में चुनौतियों का समाधान विकसित करने के लिए सितंबर 2019 में चेन्नई में आयोजित दूसरे संयुक्त हैकथॉन में भाग लिया। सिंगापुर के शिक्षा मंत्री श्री ओंग ये कुंग ने पीएम मोदी की अध्यक्षता में पुरस्कार समारोह में भाग लेने के लिए भारत का दौरा किया।

सांस्कृतिक सहयोगः

सिंगापुर में विशाल और विविध भारतीय समुदाय को देखते हुए, सांस्कृतिक गतिविधियों को सिंगापुर सरकार और सामुदायिक संगठनों से काफी समर्थन मिलता है। कई सांस्कृतिक समाज, अर्थात् ललित कला का मंदिर, सिंगापुर इंडियन फाइन आर्ट्स सोसाइटी, नृत्यालय, कलामंदिर, अन्य के अलावा, भारतीय शास्त्रीय नृत्य और कला को बढ़ावा देते हैं। स्थानीय लोकाचार अपने घटक समुदायों को उनकी सांस्कृतिक रचनात्मकता को व्यक्त करने का समर्थन करता है और दीपावली को चीनी नव वर्ष और मलय हरि राय के समान प्रमुख भारतीय सांस्कृतिक उत्सव माना जाता है। संस्कृति में अंतर सरकारी सहयोग को बढ़ावा देने के लिए, कला, अभिलेखागार और विरासत में सहयोग के लिए एक समझौता ज्ञापन 1993 में संपन्न हुआ, जिसके अनुसार कार्यकारी कार्यक्रमों पर हस्ताक्षर किए गए हैं, नवीनतम 2011-14 की अवधि के लिए है जिस पर नवंबर 2011 में हस्ताक्षर किए गए थे। स्मारक 2014-15 में भारत और सिंगापुर के बीच राजनयिक संबंधों की स्थापना की 50वीं वर्षगांठ को चिह्नित करने के लिए भारत और सिंगापुर में कार्यक्रमों की योजना बनाई जा रही है, जिसमें सिंगापुर में भारत महोत्सव भी शामिल है।[10]

वीजा और कांसुलर:

भारत ने सुरक्षा कारणों से 1984 में सिंगापुर के नागरिकों के लिए वीजा आवश्यकता की शुरुआत की। 1985 में सिंगापुर ने भी इसका अनुसरण किया। 2013 में, उच्चायोग ने 79,054 वीजा और 37,336 पासपोर्ट जारी किए। सिंगापुर के पर्यटकों को 2010 से भारत के चुनिंदा हवाई अड्डों पर एकतरफा आधार पर 'पर्यटक वीजा-ऑन-अराइवल' की अनुमति है।

भारतीय समुदाय:

5.4 मिलियन की कुल आबादी में जातीय भारतीय लगभग 9.1 प्रतिशत हैं, जिनमें स्थायी निवासी भी शामिल हैं (स्रोत: सिंगापुर सांख्यिकी विभाग, 2013)। तमिल सिंगापुर की चार आधिकारिक भाषाओं में से एक है। सिंगापुर में करीब 150,000 प्रवासी कामगार हैं। भारतीय समुदाय के विकास ने ग्लोबल इंडियन इंटरनेशनल स्कूल, दिल्ली पब्लिक स्कूल, नेशनल पब्लिक स्कूल, युवा भारती इंटरनेशनल स्कूल, डीएवी स्कूल और एसपी जैन सेंटर ऑफ मैनेजमेंट सहित शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की है।

भारत-सिंगापुर संबंधों को बढ़ावा देने की दिशा में उनके योगदान के सम्मान में, भारत सरकार ने सिंगापुर के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई अध्ययन संस्थान के अध्यक्ष, राजदूत गोपीनाथ पिल्लई और प्रमुख वकील और व्यवसायी श्री सतपाल खट्टर को पद्म श्री से सम्मानित किया है। सिंगापुर के पूर्व राष्ट्रपति एसआर नाथन को प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार 2012 से सम्मानित किया गया।

निष्कर्ष

हालाँकि, भारत में व्यापार करने के सिंगापुर के प्रयास प्रक्रियात्मक बाधाओं, अत्यधिक नौकरशाही हस्तक्षेप, पारदर्शिता की कमी और बढ़े हुए आर्थिक सहयोग की तात्कालिकता के प्रति समग्र राजनीतिक-प्रशासनिक उदासीनता के कारण अटके हुए हैं। भारत सरकार की संरक्षणवादी नीतियों ने, आंशिक रूप से इसकी गठबंधन राजनीति के कारण, न केवल भारत में सिंगापुर के निवेश और व्यापारिक गतिविधियों की गति को धीमा कर दिया है, बल्कि निवेशकों और व्यापारियों में निराशा की भावना भी पैदा की है। इसके अलावा, राजनीतिक सहयोग और रणनीतिक साझेदारी की बयानबाजी को संस्थागत बनाने और अंतरराष्ट्रीय राजनीति, क्षेत्रीय समीकरणों और द्विपक्षीय संबंधों से संबंधित मुद्दों पर अधिक से अधिक रणनीतिक साझेदारी बनाने में अधिक तात्कालिकता दिखाने की आवश्यकता है। भारत और सिंगापुर दोनों ही बिना किसी बाहरी प्रभुत्व के दक्षिण पूर्व एशिया में शांति और स्थिरता बनाने की जिम्मेदारी साझा करते हैं।

संदर्भ

1. चक मुन, इंडियाज स्ट्रेटेजिक इंटरेस्ट्स इन साउथईस्ट एशिया एंड सिंगापुर (नई दिल्ली: इंस्टीट्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज एंड मैकमिलन, 2009), पृ. 2-3।
2. अमितेंदु पालित, "इंडियाज इकोनॉमिक एंगेजमेंट विद साउथईस्ट एशिया: प्रोग्रेस एंड चौलेंजेज", आईएसएएस वर्किंग पेपर नंबर 60 (सिंगापुर: इंस्टीट्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 2009), पृ. 1.
3. कृपा श्रीधरन, "भारत-सिंगापुर संबंधों का विकास और विकास", सिंगापुर-भारत संबंधों में: एक प्राइमर, योंग मुन चेओंग द्वारा संपादित और वी.वी. भानोजी राव (सिंगापुर: सिंगापुर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995), पृ. 33.
4. वही, पृ. 34.
5. अलका चड्ढा, "सीईसीए इंप्लीमेंटेशन: ए फर्स्ट लुक", आईएसएएस वर्किंग पेपर नंबर 9 (सिंगापुर: इंस्टीट्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 2006), पृ. 1.
6. निकोलस डी. क्रिस्टोफ, "द वर्ल्ड: चाइना सिंगापुर को प्रगति के लिए एक मॉडल के रूप में देखता है", न्यूयॉर्क टाइम्स, 9 अगस्त 1992।
7. हेनरी वाई-चुंग येउंग, "चीन में सिंगापुर के निवेश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था", ईएआई वर्किंग पेपर नंबर 22 (सिंगापुर: पूर्वी एशिया संस्थान, 1999), पृ. 18.
8. यादोंग लुओ, "विदेशी व्यवसायों के साथ साझेदारी: चीनी फर्मों के दृष्टिकोण", जर्नल ऑफ बिजनेस रिसर्च 55 (2002): 483।
9. अनिल के. गुप्ता और हैयान वांग, गेटिंग चाइना एंड इंडिया राइट: स्ट्रैटेजीज फॉर लीवरेजिंग द वर्ल्ड्स फास्टेस्ट-ग्रोइंग इकोनॉमीज फॉर ग्लोबल एडवांटेज (सैन फ्रांसिस्को: जॉन विले एंड संस, 2009), पृ. 91
10. वही, पृ. 92

वर्तमान भारतीय विधि में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

अरविन्द कुमार गुप्ता[1]

सारांश

भारत वर्ष प्राचीन समय से ही आध्यात्म की भूमि रहा है लेकिन दुर्भाग्यवश यह सदियों तक दासता से पीड़ित रहा है। भारत में मुसलमानों ने लगभग 650 तथा अंग्रेजों ने 200 वर्षों तक शासन किया है। सन् 1947 में ब्रिटिश भारत का धर्म के आधार पर विभाजन करके दो स्वतंत्र राष्ट्र भारत तथा पाकिस्तान का निर्माण किया गया। पाकिस्तान को इस्लामिक राष्ट्र घोषित किया गया जबकि भारत को प्रभुत्व संपन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया। 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संविधान की उद्देशिका में पंथनिरपेक्ष शब्द को स्थापित किया गया है। पंथनिरपेक्ष शब्द के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है जो कि भ्रामक है। इस शोध पत्र का उद्देश्य वर्तमान भारतीय विधि में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर चर्चा करना है।

परिचय

भारत प्राचीन समय से ही आध्यात्म की भूमि रहा है लेकिन दुर्भाग्यवश यह सदियों तक दासता से पीड़ित रहा है। भारत में मुसलमानों ने लगभग 650 तथा अंग्रेजों ने 200 वर्षों तक शासन किया है। सन् 1947 में ब्रिटिश भारत का धर्म के आधार पर विभाजन करके दो स्वतंत्र राष्ट्र भारत तथा पाकिस्तान का निर्माण किया गया है। पाकिस्तान को इस्लामिक राष्ट्र घोषित किया गया है जबकि भारत को प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। मूलतः भारतीय संविधान में कहीं भी धर्मनिरपेक्ष शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है, 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संविधान की उद्देशिका में पंथनिरपेक्ष शब्द को स्थापित किया गया है।[2] भारतीय संविधान पंथनिरपेक्ष है जो धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करता है[3] लेकिन यह राज्य को धार्मिक आचरण से सम्बद्ध आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप को विनियमित करने के लिए सशक्त करता है।[4]

धर्मनिरपेक्ष का अर्थ

धर्मनिरपेक्ष से तात्पर्य धर्म के प्रति तटस्थता है। डॉ० अम्बेडकर ने कहा है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य से तात्पर्य है कि संसद किसी विशेष धर्म को शेष जनता पर थोपने के लिए समर्थ नहीं होगी।[5]

भारतीय विधि में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

प्राचीन भारतीय विधिशास्त्र के अन्तर्गत धर्म एवं विधि का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। विधि को धर्म का एक भाग माना गया है। धर्म से तात्पर्य "धारण करने योग्य से है" अर्थात जो गुण अथवा वस्तु अथवा कार्य धारण करने योग्य होता है, उसे धर्म की कोटि में रखा जाता है।[6] अरुणा राय तथा अन्य बनाम भारत संघ तथा अन्य[7] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि धर्म शब्द के विभिन्न रंग रूप है जिसका सबसे महत्वपूर्ण रंग रूप "कर्तव्य" है अर्थात समाज और आत्मा के प्रति कर्तव्य।

वर्तमान भारतीय विधि में धर्मनिरपेक्ष शब्द को पाश्चात्य विचारधारा के सन्दर्भ में ग्रहण किया जा रहा है जो कि राज्य तथा धर्म के पृथक्करण पर आधारित है। पाश्चात्य दर्शन में राज्य तथा धर्म के पृथक्करण का विचार राज्य तथा धर्म के मध्य उत्पन्न होने

वाले संघर्ष का परिणाम है। भारत में कभी भी धर्म और राज्य के मध्य कोई संघर्ष नहीं रहा है। धर्म अर्थात विधि को सर्वोपरि माना गया है। विधि को सम्प्रभू का आदेश नहीं माना गया है अपितु सम्प्रभू स्वयं धर्म अर्थात विधि से अनुशासित हुआ है।[8]

भारतीय संविधान की उद्देशिका भारत को एक पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित करती है लेकिन दुर्भाग्यवश भारत को पंथनिरपेक्ष के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष कहा जा रहा है जबकि वास्तव में पंथनिरपेक्ष तथा धर्मनिरपेक्ष में अंतर है। धर्म अन्त: करण का विषय है जिसका सीधा सम्बन्ध आत्मा या ईश्वर से है। "धर्मनिरपेक्ष" शब्द धर्म अर्थात ईश्वर / विधि / कर्तव्य से विमुख होने का दोषपूर्ण संकेत देता है जबकि "पंथनिरपेक्ष" शब्द किसी देश में रहने वाले विभिन्न पंथों (सम्प्रदायों) से राज्य की तटस्थता को दर्शाता है। अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसायटी तथा अन्य बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य[9] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि पंथनिरपेक्षता यह सुनिश्चित करती है कि धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।[10] हमारे संविधान के सन्दर्भ में पंथनिरपेक्षता का अर्थ मात्र जीवित रहो और जीवित रहने दो के दृष्टिकोण को जीवित रहने तथा जीवित रहने में सहायता करने के दृष्टिकोण में विकसित करना है।[11]

नि: सन्देह भारत एक हिन्दू राष्ट्र है। शास्त्री यज्ञपुरुषादजी तथा अन्य बनाम मूलदास ब्रुदरदास वैश्य तथा अन्य[12] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि हिन्दू शब्द की उत्पत्ति सिन्धु नदी से हुई है। महान आर्य वंश के लोग सिन्धु नदी के निकट बस गए और हिन्दू कहलाने लगे। हिन्दू शब्द किसी धर्म या पंथ (सम्प्रदाय) की ओर संकेत नहीं करता है वरन् एक भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत निवास करने वाले व्यक्तियों की ओर संकेत करता है। इसे जीवन के एक मार्ग के रूप में वर्णित किया जा सकता है और इससे अधिक कुछ नहीं। श्री अमोन राणा बनाम मेघालय राज्य तथा अन्य[13] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि हम सब को ज्ञात है कि भारत विश्व के सबसे विशाल देशों में से एक था और पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा अफगानिस्तान की कोई अवधारणा नहीं थी। वे एक देश में थे और हिन्दू साम्राज्य के अधीन थे लेकिन उसके पश्चात मुगल भारत आए और उन्होंने भारत के विभिन्न भागों पर कब्जा करके उस पर शासन करना प्रारम्भ कर दिया और उस समय बलपूर्वक अनेक धर्मान्तरण किए गए, तत्पश्चात अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम पर भारत में प्रवेश कर भारतीयों पर शासन किया तथा उन्हें प्रताड़ित किया। अन्तत: स्वतंत्रता आंदोलन का प्रारम्भ हुआ और भारत को वर्ष 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई और भारत दो देशों में विभाजित हो गया एक था भारत और दूसरा था पाकिस्तान।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि विभाजन के समय लाखों हिन्दुओं की हत्या की गई उनके साथ बलात्कार किया गया और उन्हें बलपूर्वक अपनी सम्पत्ति छोड़ने के लिए बाध्य किया गया। पाकिस्तान ने स्वयं को एक इस्लामिक देश घोषित कर दिया और धर्म के आधार पर विभाजित होने के पश्चात भारत को भी एक हिन्दू देश घोषित किया जाना चाहिए था लेकिन यह एक पंथनिरपेक्ष देश बना रहा।

संविधान सभा में डॉ०पी०एस० देशमुख ने कहा है कि संविधान इस दृष्टिकोण से मुझे असंतोषजनक प्रतीत होता है कि हमने अनेक बाध्यकारी शक्तियों की उपेक्षा की है जो सभी समाजों और राष्ट्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है और जो हमारे लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती थी उदाहरणार्थ धर्म की बाध्यकारी शक्ति। मेरे विचार से इस विश्व में भारत के समान अधार्मिक और कोई देश नहीं है। इस कारण कि हम अपने संविधान को एक धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाना चाहते थे, हमने अपने संविधान में धर्म की छाया तक नहीं पड़ने दी है।

मेरे विचार से प्रत्येक समाज के जीवन में तथा अनेक राज्यों के प्रशासन में, धर्म का एक निश्चित स्थान रहा है और अवश्य ही रह भी सकता है।[14] यदि हमने यह भी घोषित किया होता कि हमारा राज्य हिन्दू राज्य होगा तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि हमारा संविधान हमारी इच्छानुसार धर्मनिरपेक्ष ही रहता। इसका कारण यह है कि विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म से अधिक धर्मनिरपेक्ष है। यदि मुझे इसकी स्वतंत्रता होती तो मैं भावी भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिए तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए अपने पूर्वजों से प्राप्त धर्म का उपयोग करता।[15]

निष्कर्ष

भारतीय संविधान भारत को एक पंथनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित करता है लेकिन दुर्भाग्यवश पंथनिरपेक्ष को धर्मनिरपेक्ष की संज्ञा दी जा रही है। भारतीय समाज सदैव ही धार्मिक रहा है उससे वास्तविक रूप से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह अपने धर्म के प्रति निरपेक्ष रहेगा। एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण वास्तविक रूप से तब तक सम्भव ही नहीं है जब तक कि उसका समाज धर्मनिरपेक्ष न हो। भारत में धर्म को कर्तव्य / विधि / धारण करने योग्य गुण माना जाता है। क्या किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने कर्तव्यों या धारण करने योग्य गुणों का त्याग कर दे ? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारत एक हिन्दू राष्ट्र है। भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है न कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र।

सुझाव

भावी भारतीय पीढ़ियों के हित के लिए यह आवश्यक है कि भारत को एक हिन्दू लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही एक प्रभावी जनसंख्या नियंत्रण विधि अधिनियमित की जानी चाहिए तथा संविधान के अनुच्छेद 44 अर्थात समान नागरिक संहिता को प्रवृत्त किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. शोधार्थी (विधि) सोबन सिंह जीना परिसर (विधि संकाय) अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
2. देखें: डॉ० बसन्ती लाल बाबेल, विधि एवं सामाजिक परिवर्तन, प्रथम संस्करण 2011, पृ०सं० 24, प्रकाशक सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, प्रयागराज, उ०प्र०
3. See : Dr. M.P. Jain, Indian Constitutional Law, 7th Edition 2016, P. 15, Publication Lexis Nexis, Gurgaon, Haryana.
4. See : Article 25(2)(a), Constitution of India.
5. देखें: डॉ० एच०पी०गुप्ता, भारत का संविधान, तृतीय संस्करण 2016, पृ०सं० 35, प्रकाशक, लेक्सिस नेक्सिस, गुरुग्राम, हरियाणा
6. देखें: डॉ० यू०पी०डी० केसरी, हिन्दू विधि, 27वाँ संस्करण 2007, पृ०सं० 01, प्रकाशक सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, प्रयागराज, उ०प्र०
7. See: Case No. : Writ Petition (civil) 98/2002, Date of Judgement 12/09/2002, Available at : https://indiankanoon.org/doc/509065/ , P. 16, Visited on 14/01/2020, Time 13:00, Translation From English.
8. देखें: पूर्वोक्त सं०06,
9. See : 1974 AIR 1389, Date of Judgement 26/04/1974, Available at : https://indiankanoon.org/doc/703393/ , Visited on 13/01/2020, Time 13:00 .
10. देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 49, अंग्रेजी से अनुवाद,
11. देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 75, अंग्रेजी से अनुवाद,
12. See : 1966 AIR 1119, Date of Judgement 14/01/1966, Available at : https://indiankanoon.org/doc/145565/ , P.15, Visited on 26/01/2020, Time 13:00, Translation From English.
13. See : WP(c) No.448/2018, Date of Decision 10/12/2018, Available at : https://indiankanoon.org/doc/189180864/ , P.02, Visited on 13/02/2020, Time 12:00, Translation From English.
14. देखें: भारतीय संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट, हिन्दी संस्करण, अंक 11, संख्या 08, तिथि 22 नवम्बर सन् 1949, पृ०सं० 3934, pdf P.07, Available at : https://www.constitutionofindia.net/constitution_assembly_debates/volume/11/1949-11-22?paragraph_number=31#11.162.31, Visited on 19/01/2020, Time 13:00.
15. देखें: पूर्वोक्त पृ०सं० 3935, pdf P.08.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अधिनियम

1. भारत का संविधान

पुस्तकें

1. डॉ० एच० पी० गुप्ता : भारत का संविधान
2. डॉ० यू० पी० डी० केसरी : हिन्दू विधि
3. डॉ० बसन्ती लाल बाबेल: विधि एवं सामाजिक परिवर्तन
4. Dr. M.P. Jain : Indian Constitutional Law

प्रतिवेदन

1. भारतीय संविधान सभा के वाद विवाद की सरकारी रिपोर्ट

इन्टरनेट वेबसाइट

1. https://www.google.com/
2. https://www.constitutionofindia.net/
3. https://indiankanoon.org/
4. http://www.bareactslive.com/
5. https://m.jagran.com/

भारत में शरणार्थियों की समस्या का राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव

डॉ० केवल कृष्ण

(सहायक प्रोफेसर), रक्षा और सामरिक अध्ययन विभाग, पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला (पंजाब)

सार

यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत ऐतिहासिक रूप से अपने मानवतावादी-लोकतांत्रिक रुख और राजनीतिक दृष्टिकोण के कारण शरणार्थियों की एक बड़ी आबादी का हमेशा से घर रहा है। यह तथ्य है कि पृथ्वी पर औपचारिक रूप से वह आबादी शरणार्थी मानी जाती है जो लोगों का एक समूह अपने प्राकृतिक आवास से विस्थापित हो गया हो और राजनीतिक और सामाजिक शरण की तलाश में अंतरराष्ट्रीय सीमा पार कर चुका हो। यह यथार्थ तथ्य है कि ऐतिहासिक दृष्टि से भारत एक मानवतावादी राष्ट्र रहा है। जब शरणार्थियों के मुद्दे की बात आती है तब भारत सामाजिक रूप से अधिक जिम्मेदार राष्ट्र के रूप में कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। यह शोध -पत्र यह पता लगाने की कोशिश करता है कि भारत में शरणार्थियों की समस्या का राष्ट्रीय सुरक्षा पर क्या और कैसे प्रभाव पड़ता है।

भूमिका

यह स्वीकृत तथ्य है कि जब एक शरणार्थी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है तो यह प्रवास कहा जाता है प्रवास एक ऐसा कार्य है जिसमें सभी क्षेत्रों और पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा यह एक विशेष स्थिति में किया जाता है। वर्तमान में प्रवास हमेशा से एक मजबूरी की एक विशेष स्थिति में किया जाता है। प्रवास मुख्यत: सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिस्थितियों में होता है। यह स्वीकृत तथ्य है कि जबरन प्रवास मुख्य रूप से संघर्ष, उत्पीड़न, पर्यावरण क्षरण, राजनीतिक परिवर्तन, मानव सुरक्षा और अवसर की गहन कमी के कारण होता है। शरणार्थियो हेतु संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त का कार्यालय (यूएनएचसीआर) की एक रिपोर्ट के अनुसार, आज प्रवासन आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कारकों से प्रेरित होता है। यह स्वीकृत तथ्य है कि लोग अपने मूल देश को संघर्ष, मानवाधिकारों के व्यापक उल्लंघन या अन्य कारणों से जीवन या सुरक्षा के लिए खतरा होने के कारण छोड़ देते हैं। वर्तमान में जहां तक अंतरराष्ट्रीय नियमों और विनियमों के अनुसार शरणार्थी जनसंख्या का संबंध है, विस्थापित व्यक्ति निम्नलिखित उपशीर्षको के अंतर्गत वर्गीकृत: -

- आबादी का एक देश से दूसरे देश में चला जाना ।
- आंतरिक रूप से विस्थापित व्यक्ति - आबादी द्वारा एक देश के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना।
- राज्यविहीनव्यक्ति- ऐसे लोग जिन्हें किसी भी देश द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है।
- मिश्रित प्रवासी - ऐसे व्यक्ति जो आर्थिक अवसरों के कारण विस्थापित होते हैं।

भारत में प्रवास का कारण इसका का एक विशाल लोकतांत्रिक, बहुलवादी और बहुसांस्कृतिक देश होना है। भारत के पास शरणार्थियों को समायोजित करने की क्षमता है भारत हमेशा से सभी लोगो को जीवन सुरक्षा और आर्थिक विकास का अवसर मुहैया करप्ता रहा है। भारत हमेशा से कई देशों से आने वाले शरणार्थियों का मेजबान रहा है। भारत में 1947 के विभाजन के बाद से पाकिस्तान से भारी मात्रा में हिन्दू शरणार्थी भारत पहुँच गया था। ये शरणार्थी एक विशाल अनुपात में मानव-त्रासदी का प्रतिनिधित्व

करते थे। यह हकीकत है कि भारत की लोकतांत्रिक नीतियां, धर्मनिरपेक्षता, संघीय संरचना, खुली सीमाएं और बेहतर आर्थिक अवसर भारत में शरणार्थियों के आगमन के लिए जिम्मेदार रही हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत के बिहार, झारखंड में लाल गलियारे के माध्यम से नक्सलियों के आंदोलन जैसे विभिन्न हिंसक आंदोलनों से भारतीय लोग पीड़ित रहे है। ये लोग बाद के चरण में शरणार्थी बन जाते हैं। छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में सांप्रदायिक झड़पें और कश्मीर में अलगाववादी आंदोलनों के कारण ही शरणार्थी संकट का जन्म हुआ है।

भारतीय राष्ट्रीयता नागरिकता कानून अधिनियम (भारत के संविधान के अनुच्छेद 5 से 11) द्वारा शासित है, जिसे 1955 में पारित किया गया था जिसमें नागरिकों का राष्ट्रीय रजिस्टर (NRC) बनाना शामिल था। इसके अलावा नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 1986, 1992, 2003, 2005, 2015 और 2019 में पारित किए गए ताकि शरणार्थियों और बाहरी लोगों की पहचान की जा सके। आज के समय में भारत में नागरिकता संशोधन अधिनियम और राष्ट्रीय जनगणना पंजीकरण पर काम जारी है। इसलिए असम में से 'नागरिकों का राष्ट्रीय रजिस्टर' में शरणार्थियों की आबादी में से 38 लाख लोगों को नागरिक के रूप में मान्यता नहीं दी गई है। भारत के नागरिकता संशोधन अधिनियम के अनुसार अफगान हिंदुओं, सिखों, जैनियों, ईसाइयों और पाकिस्तानी हिंदुओं को नागरिकता प्रदान की जा सकती है। भारत के नागरिकता संशोधन अधिनियम के अनुसार बांग्लादेश, श्रीलंका और म्यांमार के हिंदू और ईसाई भारत की नागरिकता के हकदार हैं।

भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले कुछ कारक

ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता और अविभाजित भारत के विभाजन के बाद में तुरंत भारत में शरणार्थियों की आमद शुरू हो गई थी। इसलिए भारत के द्वारा शरणार्थियों के मुद्दे को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती शरणार्थियों के पुनर्वास की है जो इतनी बड़ी संख्या में हैं और अंतिम सात दशकों से अधिक समय से देश में रह रहे हैं। शरणार्थियों ने अब भारत में उन्हे उपलब्ध संसाधनों में से संसाधन उपलब्ध कराने के लिए आंतरिक अस्थिरता पैदा करना प्रारंभ कर दिया है। यह आंतरिक अस्थिरता संजातीय, नैतिक और सांस्कृतिक टकराव को बढ़ाती है जो समय-समय पर होते रहते हैं जिससे राष्ट्र के लिए सुरक्षा संबंधी चिंताएँ पैदा होती हैं। भारत में शरणार्थियों के मुद्दे की पृष्ठभूमि की भयावहता को समझने के लिए शरणार्थी अवैध अप्रवास के कुछ मामलों को नीचे सूचीबद्ध किया गया है।

1. 1947 के विभाजन के बाद शरणार्थियों की समस्या की शुरुआत -1947 के विभाजन के बाद पाकिस्तान से सभी क्षेत्रों के लाखों शरणार्थी भारत में आए और पूरे उत्तर भारत में शरणार्थी शिविरों में पुनर्वास किया गया था, इन शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए भारत में कई जगहो का निर्माण करना पड़ा था, ये पाकिस्तान के हिन्दू शरणार्थी विभाजन के बाद भारत को चुनकर स्वचालित रूप से भारतीय नागरिक बन गए थे।
2. तिब्बत समस्या के बाद भारत पहुंचे शरणार्थी- 1959 में तिब्बत पर चीनी नियंत्रण के कारण पूरे भारत में दलाई लामा के नेतृत्व में लगभग 59,000 तिब्बती भारत में आ गए थे। इन तिब्बतियों को धर्मशाला में शरण दी गई थी और यहां तक कि तिब्बती सरकार को निर्वासन में रहने की अनुमति दी गई थी। उन्हें भारत में शरण दी गई थी और वर्तमान में वे धर्मशाला, देहरादून, दिल्ली, उत्तराखंड और सिक्किम में रहते हैं।
3. 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के बाद शुरू हुई शरणार्थी समस्या- बांग्लादेश से 1971 में जातीय संघर्ष के कारण बंगाल में शरणार्थी पहुंचे थे। पाकिस्तानी सेना की निरंकुशता द्वारा बंगाली मुसलमानों को प्रताड़ित किया गया और इसी कारणवश लगभग 1,000,000 शरणार्थियों ने भारत में शरण ली थी। इसके कारण 1971 में भारत का पाकिस्तान के साथ युद्ध और बांग्लादेश की मुक्ति हुई थी ।
4. तमिल शरणार्थी समस्या- श्रीलंका से तमिल शरणार्थी भारत में आए और दक्षिण भारत में रह रहे हैं जोकि श्रीलंका में धार्मिक अल्पसंख्यक हैं।
5. अफगानिस्तान युद्ध के बाद शुरू हुई शरणार्थी समस्या-1979 में अफगानिस्तान पर सोवियत आक्रमण के बाद अफगान भारत आए, उनमें से कई दिल्ली में बस गए है। अफगान हिंदू, अफगानिस्तान पर सोवियत के आक्रमण के कारण भारत में शरणार्थी के रूप में बस गए थे।

6. चकमा बौद्ध शरणार्थी समस्या- चकमा बौद्ध शरणार्थियों की समस्या को उत्तर-पूर्वी भारत क्षेत्र में विशेष रूप से चटगांव पहाड़ी क्षेत्र में शरणार्थी समस्या के रूप में जाना जाता है।
7. म्यांमार से चिन शरणार्थियों का भारत आगमन-बर्मा में चिन राज्य से शरणार्थी 1988 से पड़ोसी भारत के मिजोरम राज्य में शरणार्थी के रूप में बस गए थे। म्यांमार से चिन शरणार्थियों का भारत आगमन तब हुआ है जब एक सैन्य शासन, राज्य शांति और विकास परिषद (एसपीडीसी) लोकतंत्र समर्थक आंदोलन को क्रूरता से कुचलने के बाद सत्ता में आया था। मुख्य रूप से बौद्ध (एसपीडीसी) ने देश में जातीय अल्पसंख्यकों को क्रूरता से कुचलने के लिए एक अभियान शुरू किया था और यह स्वीकृत तथ्य है कि बड़ी संख्या में चिन नागरिक अपने राज्य में धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्पीड़न से बचने के लिए भारत आए थे। यह तथ्य है कि म्यांमार से आए चिन नागरिक दिल्ली के विभिन्न हिस्सों में शरणार्थी के रूप में बसे आज वे वहाँ अवैध अप्रवासी प्रतीत होते हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि चिन बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक व्यक्ति हैं चिन नागरिक बांग्लादेश और म्यांमार में अत्याचारों के कारण भारत में आए हैं। चिन लोगो को भारत सरकार ने नागरिकता दी है।
8. रोहिंग्या शरणार्थी समस्या- रोहिंग्या शरणार्थी म्यांमार में रखाइन राज्य के सुन्नी मुस्लिम समूह से हैं, उनमें से कई भारत में अवैध आप्रवासन में रहते हैं। रोहिंग्या बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक शरणार्थी व्यक्ति हैं जोकि म्यांमार में अत्याचारों के कारण भारत में आए हैं। रोहिंग्याओं को नागरिकता नहीं दी गई है। यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत सरकार द्वारा रोहिंग्याओं को अवैध प्रवासी घोषित किया गया है और इसलिए उन्हें राज्य विहीन व्यक्तियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा चुनौतियां

यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत का आकार और धर्मनिरपेक्षता शरणार्थियों के आगमन को प्रोत्साहन करती है भारत की अर्थव्यवस्था और खुली सीमाएं भी वैश्विक शरणार्थियों के आगमन को प्रोत्साहन करती है। यह हकीकत है कि प्रवासी शरणार्थियों की भारत में अवैध आप्रवासन ने देश में सुरक्षा चुनौतियों को जन्म दिया है जोकि शरणार्थियों की आमद के कारण देश में, विशेष रूप से असम, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर में जनसांख्यिकीय परिवर्तन हुए हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रवासी शरणार्थियों की भारत में अवैध आप्रवासन के कारण मूल निवासियों के साथ हिंसा, जातीय संघर्ष और रोजगार के अवसरों की कमी हुई है ।यह हकीकत है कि प्रवासी शरणार्थियों के कारण तस्करी की समस्याएं पैदा हुई है। धार्मिक कट्टरतावाद के कई शरणार्थियों के साथ संबंध ने भी कई राज्यों में राजनीतिक विभाजन पैदा करने में भूमिका निभाई है। यानी प्रवासी शरणार्थी आबादी देश में कानून और व्यवस्था की स्थिति और हिंसा पैदा कर रही है। देश के संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा और शरणार्थियों को बुनियादी मानवीय सुविधाएँ प्रदान करने के लिए सरकार पर बोझ के कारण अधिकांश नागरिकों-गैर-नागरिकों के बीच विभाजन की समस्या पैदा हुई है। इसने नौकरी की असुरक्षा और आय असुरक्षा को जन्म दिया है प्रवासी शरणार्थी आबादी के कारण देश के कई हिस्सों में असुरक्षा की समस्या पैदा हुई है। इसके अलावा समय-समय पर शरणार्थी राष्ट्रीय ढांचे के भीतर अधिक अधिकारों, विशेषाधिकारों और आर्थिक अवसरों की मांग करते हैं।

भारत में लगभग सभी शरणार्थियों को अवैध अप्रवासियों के रूप में स्वीकार किया जाता है। वैश्विक स्तर पर शरणार्थी संकट का कारण शिथिलता, शोषण, राज्य दमन का डर, सांप्रदायिक तनाव आदि है। भारत के अन्य शहरों में पलायन के लिए मजबूर शरणार्थियों की बड़ी संख्या के पीछे का कारण बेरोजगारी और गरीबी है। भारत में वोट बैंक की राजनीति, माफिया द्वारा सीमापार तस्करी के कारण शरणार्थियों और राजनीतिक संरक्षण से संबंधित मुद्दों के कारण कुछ आंतरिक सुरक्षा चुनौतियां पैदा हुई है। भारत में धार्मिक कट्टरता और स्थानीय आबादी में सांप्रदायिक घृणा और आतंकवाद के कारण आंतरिक सुरक्षा की समस्या पैदा हुई है। यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत में आर्थिक बोझ, कम भुगतान वाले अकुशल श्रम ने आंतरिक सुरक्षा की चिंता बढ़ा दी हैं। यह तथ्य है कि आतंकवादी संगठनों से शरणार्थियों को आसानी से पैसा मिल जाता है। भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे के कारण शरणार्थियों की निगरानी आवश्यक है।

शरणार्थियों के प्रति भारत सरकार की नीति

भारत द्वारा शरणार्थियों के प्रबंधन के लिए एक संतुलित नीति लागू की गई है। भारत 1951 के शरणार्थी सम्मेलन और इसके 1967 के शरणार्थी प्रोटोकॉल का एक हस्ताक्षरकर्ता सदस्य नहीं है। ये सम्मेलन और प्रोटोकॉल शरणार्थी शब्द को परिभाषित करते हैं और शरणार्थियों के अधिकारों के साथ-साथ उनकी रक्षा के लिए राज्यों के कानूनी दायित्वों की रूपरेखा तैयार करते हैं। हालाँकि, देश के भीतर, शरणार्थियों के प्रबंधन के लिए UNHCR और भारत सरकार समझौतों के तहत उनकी रक्षा के लिए राज्यों के कानूनी दायित्वों की रूपरेखा तैयार करते हैं। भारत की खुली सीमा और जीवंत अर्थव्यवस्था, धार्मिक सहिष्णुता के बेहतर मानक के कारण शरणार्थी भारत में आते हैं। भारत में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विस्थापित व्यक्तियों और अवैध प्रवासियों से निपटने के लिए भारत सरकार की एक समान नीति है। भारत सरकार के द्वारा समझौतों के तहत शरणार्थियों का विदेशी क्षेत्रीय पंजीकरण कार्यालय नई दिल्ली द्वारा पंजीकरण की निगरानी और नियंत्रण किया जाता है। भारत सरकार और राज्य सरकारों के बीच समन्वय से शरणार्थी शिविर और जनसंख्या निगरानी परिषद बनाई गई है। भारत सरकार द्वारा तमिल, रोहिंग्या और चकमा की तीन समस्याओं के लिए बांग्लादेश, म्यांमार और श्रीलंका के साथ बातचीत की जा रही है।

भारत की शरणार्थी समस्या के समाधान के संबंध में उपलब्ध विभिन्न विकल्प इस प्रकार है:-

1. शरणार्थी समस्या के समाधान के लिये प्रभावी क्षेत्रीय सहयोग किया जाना चाहिए।
2. स्थानीय स्तर पर शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए अधिक अवसर तलाशने की जरूरत है।
3. शरणार्थी समस्या के स्थायी समाधान तलाशने की जरूरत है।

भारत में शरणार्थी समस्या से निपटने के लिए कुछ सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

- भारत में वैश्विक सीमा और सुरक्षा प्रबंधन कार्यक्रम का उद्देश्य आतंकवादियों की सीमापार आवाजाही को रोकना और बेहतर सीमा सुरक्षा प्रबंधन बढ़िया करके विदेशी आतंकवादी लड़ाकों के प्रवाह को भारत में रोकना है। भारत में वैश्विक सीमा से संबंधित एजेंसियों की क्षमताओं को मजबूत करके और उन संबंधित एजेंसियों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रभावी सीमा प्रबंधन जरूरी है
- भारत को अपनी सीमा पार सुरक्षा मजबूत करने की जरूरत है
- भारत को अपनी सीमा पार सुरक्षा मजबूत करने के लिये अत्याधुनिक निगरानी तकनीकों की आवश्यकता है। भारत को थर्मल इमेजर्स, इन्फ्रा-रेड और लेजर-आधारित घुसपैठिए अलार्म, फाइबर-ऑप्टिक सेंसर और एक कमांड और नियंत्रण प्रणाली जो वास्तविक समय में सभी निगरानी उपकरणों से डेटा प्राप्त करेगी इसलिए सीमा सुरक्षा मजबूत करने के की आवश्यकता है। भारत को उपग्रह से बेहतर सीमा प्रबंधन मजबूत करने की जरूरत है
- भारत को अग्रिम डेटा रिकॉर्डिंग, कुशल सेंसर सिस्टम और शरणार्थियों की पहचान की दस्तावेजीकरण प्रणाली को मजबूत करने की जरूरत है। यह आवश्यक है कि भारत में एक प्रशासनिक संरचना हो जो नागरिको को होने वाली हिंसा से बचा सके।

निष्कर्ष

यह स्वीकृत तथ्य है कि शरणार्थियों के लिए चुनौतियां व्यापक हैं क्योंकि एक जीवन में सब कुछ पीछे छोड़कर दूसरे देश में विभिन्न कानूनों, विभिन्न शिक्षा और स्वास्थ्य प्रणालियों, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न सांस्कृतिक अपेक्षाओं के साथ शुरुआत करने के लिए समायोजन की आवश्यकता होती है। यह हकीकत है कि शरण चाहने वाले लोगों के लिए यह प्रक्रिया उन परिस्थितियों के कारण और भी कठिन होती है जिनमें वे अपने देश को छोड़ देते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारत की सुरक्षा को शरणार्थी संकट से खतरा है यह तथ्य है कि शरणार्थी समस्या ने भारत की एकता और अखंडता के लिए खतरा पैदा कर दिया है॰ इसलिए भारत को सीमा पर से प्रायोजित इस शरणार्थी समस्या से निपटने के लिए एक रचनात्मक और समावेशी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची-

योमे, खीजो, "रोहिंग्या संकट पर भारत के रुख की जांच", ओआरएफ संक्षिप्त अंक,247,(2018):1-16.

शमीडल, सुजैन.मानव सुरक्षा दुविधाएं: अफगान शरणार्थी संकट के दीर्घकालिक प्रभाव.थर्ड वर्ल्ड त्रैमासिक,23.1,(2002):7-29.

लेवी, मार्क ए. ''क्या पर्यावरण एक राष्ट्रीय सुरक्षा मुद्दा है?'' अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा,20.2,(1995):35-62.

बेनहबीब, सेयला. ''नागरिकों, निवासियों और बदलती दुनिया में एलियंस: वैश्विक युग में राजनीतिक सदस्यता''. सामाजिक अनुसंधान.66. 3,(1999):709-744.

मैककोनेल, फियोना, "नागरिक और शरणार्थी: निर्वासन में तिब्बती पहचान का निर्माण और बातचीत", एनल्स ऑफ द एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन जियोग्राफर्स, 103.4,(2013): 967-983.

एल. एस. गजपाल और राम नरेश टण्डन. "भारत में बांग्लादेशी शरणार्थियों से जुड़े प्रमुख मुद्दो का एक अध्ययन (छत्तीसगढ़ राज्य के कांकेर जिले के विशेष सदर्भ में)." इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंसेज . 7.2. (2019): 560-564.

बाली, सीता, ष्प्रवास और शरणार्थीष,सुरक्षा अध्ययन,रूटलेज, 2018. 482-496.

http://www.unher.org

http://www.probono-india.in

http://www.un.org/en/global-issues/refugees

http://www.unher.org/4cd96e919.pdf

http://www.ishindi.com

http://idsa.in

http://pbi.gov.in

भारत में ग्रामीण विकासः एक विश्लेषण

रवि शंकर दयाल

शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सर

ग्रामीण विकास ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता और आर्थिक कल्याण में सुधार की प्रक्रिया है। 2011 की जनगणना के अनुसार 68.84 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। ग्रामीण क्षेत्र का पिछड़ापन अर्थव्यवस्था की समग्र प्रगति में एक बड़ी बाधा होगी। भारत मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश है और खेती उनका मुख्य व्यवसाय है। 2011 की भारत की कृषि जनगणना के अनुसार, अनुमानित 61.5 प्रतिशत कृषि पर निर्भर है। कृषि के क्षेत्र में तकनीकी विकास ने अमीर और गरीब के बीच की खाई को बढ़ा दिया है, क्योंकि छोटे किसानों की तुलना में बेहतर किसानों ने आधुनिक कृषि तकनीक को काफी हद तक अपनाया है। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति ने अपनी रिपोर्ट में चेतावनी दी है कि "यदि ग्रामीण समुदाय के बड़े वर्गो को विकास के फल से वंचित रखा जाता है, जबकि कुछ लोगों को समृद्धि प्राप्त होती है, तो सामाजिक और आर्थिक तनाव न केवल व्यवस्थित और शांतिपूर्ण प्रक्रिया को बाधित कर सकते हैं। इस पत्र के माध्यम से भारत में ग्रामीण विकास पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्दः ग्रामीण विकास; पहलू; रणनीतियां; अभिनव विचार।

परिचय

भारत में अधिकांश श्रम शक्ति कृषि पर निर्भर है, इसलिए नहीं कि यह पारिश्रमिक है, बल्कि इसलिए कि रोजगार के वैकल्पिक अवसर नहीं हैं। यह भारतीय कृषि के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण है। अब कृषि में लगे श्रम बल के एक हिस्से को गैर-कृषि व्यवसायों में स्थानांतरित करने की आवश्यकता है। 1970 के दशक तक, ग्रामीण विकास कृषि विकास का पर्याय था और इसलिए कृषि उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया। आज, समावेशी ग्रामीण विकास पहले के ग्रामीण विकास की अवधारणा की तुलना में अधिक विशिष्ट अवधारणा है, व्यापक शब्दों में, समावेशी ग्रामीण विकास सभी ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के बारे में है। अधिक विशेष रूप से, समावेशी ग्रामीण विकास में तीन अलग-अलग लेकिन परस्पर संबंधित आयाम शामिल हैं: आर्थिक आयाम, सामाजिक आयाम और राजनीतिक आयाम। आर्थिक आयाम में गरीब और निम्न-आय वाले परिवारों के लिए क्षमता और अवसर दोनों प्रदान करना शामिल है, विशेष रूप से आर्थिक विकास से लाभ। सामाजिक आयाम गरीब और कम आय वाले परिवारों के सामाजिक विकास का समर्थन करता है, लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देता है और कमजोर समूहों के लिए सामाजिक सुरक्षा जाल प्रदान करता है। राजनीतिक आयाम ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब और कम आय वाले लोगों के लिए ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रभावी रूप से और समान रूप से भाग लेने के अवसरों में सुधार करता है। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समिति, नई दिल्ली, 2003 की रिपोर्ट ने ठीक ही बताया है कि कृषि के मामले में भी विशुद्ध रूप से कृषि प्रधान देश पिछड़ा रहता है।[1]

ग्रामीण विकास के पहलू

- भोजन, आवास, वस्त्र, रोजगार और शिक्षा प्रदान करके ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना।

- ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाना और गरीबी कम करना।
- निर्णय लेने में उनकी भागीदारी के माध्यम से और प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से योजना और विकास में ग्रामीण लोगों को शामिल करना।
- ग्रामीण समाज में न्याय का वितरण और अवसरों की समानता सुनिश्चित करना।
- हर घर में सीसी सड़कें, निर्बाध बिजली आपूर्ति, अच्छी जल निकासी व्यवस्था और सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराना और हर गांव को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र उपलब्ध कराना आवश्यक है।

भारत में ग्रामीण विकास रणनीतियाँ:

- फसल बीमा प्रदान करने के अलावा, किसानों को विभिन्न फसलों के लिए एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य) प्रदान करें।
- सभी कृषि क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
- उन सभी किसानों को जीवन बीमा प्रदान करें जो वास्तव में कृषि कार्य कर रहे हैं।
- किसानों के हाथों में सीधे नकद देने के बजाय, सरकार को गुणवत्ता वाले बीज, उर्वरक और कीटनाशक आदि जैसे सभी आवश्यक इनपुट मुफ्त उपलब्ध कराने होंगे।
- सब्सिडी पर ट्रैक्टर, इलेक्ट्रिक मोटर वाटर पंप आदि खरीदने के लिए सरकार किसानों को ऋण सुविधा प्रदान करे।
- किसानों के लिए सब्सिडी दरों पर बिजली की आपूर्ति की जानी चाहिए।
- मानसून की विफलता और बाढ़ आदि के कारण फसल खराब होने की स्थिति में, सरकार को किसानों के बचाव में आना चाहिए।
- चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अलावा कोई अन्य गतिविधियां नहीं हैं, इसलिए सरकार को इच्छुक शिक्षित युवाओं को बेरोजगारी कम करने के लिए स्टार्टअप शुरू करने के लिए ऋण सुविधा प्रदान करनी चाहिए।
- नए कृषि बाजारों की स्थापना के अलावा मौजूदा कृषि बाजारों को मजबूत और विकसित करना।
- मौजूदा गोदामों के अलावा नए कृषि गोदामों की स्थापना।
- कृषि अनुसंधान, ग्रामीण शिक्षा का विस्तार और किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम संस्था निर्माण गतिविधियों का एक हिस्सा होना चाहिए।
- सिंचाई, परिवहन, संचार और स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास से संबंधित बुनियादी ढांचा निर्माण गतिविधि।
- कृषि उत्पादन और विपणन में सुधार के लिए कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- किसानों को भूमि के कार्यकाल, कृषि उत्पादन, कीमतों आदि से संबंधित नीतियों की अद्यतन जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।
- राजनीतिक लाभ के लिए कृषि ऋण की बार-बार बुनाई अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा नहीं है क्योंकि यह उन किसानों को गलत संकेत देता है जो अपना कृषि ऋण तुरंत चुकाते हैं।[2]

भारत में ग्रामीण विकास के लिए अभिनव विचार

1. स्थानीय संसाधनों का उपयोग: उदाहरण के लिए यदि गांवों के पास नदियों और तालाबों जैसे जल संसाधन हैं, तो गर्मियों में ही, टैंकों में भट्ठा हटाकर, नए जलाशयों, बांधों, नहरों का निर्माण करके इस संसाधन को दोहन करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। और साथ ही मौजूदा को मजबूत करना, ताकि पानी बर्बाद न हो सके। इसी प्रकार, यदि लोहा, कोयला और ग्रेनाइट जैसी कोई खदानें हैं, तो उनकी खुदाई की जानी चाहिए ताकि स्थानीय आबादी को रोजगार प्रदान किया जा सके।[3]
2. ग्रामीण उद्योगों की स्थापना: सभी ग्रामोद्योग निम्नलिखित व्यापक श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं:
   क) कृषि आधारित उद्योग: चीनी उद्योग, गुड़, तिलहन से तेल प्रसंस्करण, अचार, फलों का रस, मसाले, डेयरी उत्पाद आदि।

ख) वन आधारित उद्योग: लकड़ी के उत्पाद, बांस के उत्पाद, शहद, कयर उद्योग, पत्तों से खाने की थाली बनाना।

ग) खनिज आधारित उद्योग: स्टोन क्रशिंग, सीमेंट उद्योग, रेड ऑक्साइड बनाना, दीवार कोटिंग पाउडर आदि।

घ) कपड़ा उद्योग: कताई, बुनाई, रंग और विरंजन।

च) इंजीनियरिंग और सेवाएं: ट्रैक्टर और पंप सेट की मरम्मत आदि। कृषि मशीनरी का उत्पादन करने के लिए छोटे और मध्यम आकार के उद्योग, ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोग के लिए उपकरण आदि।

छ) हस्तशिल्प: इनमें लकड़ी या बांस के हस्तशिल्प का निर्माण शामिल है जो उस क्षेत्र के लिए स्थानीय हैं, पारंपरिक सजावटी उत्पाद, खिलौने और क्षेत्र के लिए विशिष्ट हस्तशिल्प के अन्य सभी रूप।

3. सेवाएं: मोबाइल मरम्मत, कृषि मशीनरी सर्विसिंग आदि सहित सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है जो इस श्रेणी के तहत की जा रही है।

4. स्टार्टअप: वे उद्यमशील उद्यम हैं, जो नए उभरे हुए व्यवसाय हैं जिनका उद्देश्य उत्पादों, सेवाओं, प्रक्रियाओं या प्लेटफार्मों के आसपास एक व्यवहार्य व्यवसाय मॉडल विकसित करके बाजार की जरूरत, चाहत या समस्या को पूरा करना है। उदाहरण के लिए: कृषि, आपूर्ति श्रृंखला, कृषि उत्पादों में व्यापार, कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण, मत्स्य पालन – संस्कृति और व्यापार दोनों, ग्रामीण सूक्ष्म वित्त, ग्रामीण स्वास्थ्य – ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और ग्रामीण शिक्षा आदि।[4]

5. कंप्यूटर और इंटरनेट सेवाएं: कंप्यूटर प्रशिक्षण और मरम्मत सेवाएं प्रदान करना, इंटरनेट आधारित व्यवसाय जैसे ई-कॉमर्स, रेल और बस टिकट बुकिंग, डिजिटल मार्केटिंग एजेंसी – उदाहरण: सोशल मीडिया मार्केटिंग, ईमेल मार्केटिंग आदि।[5]

6. ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करें: वे निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

अ) व्यक्तिगत उद्यमिता – यह मूल रूप से उद्यम का एकल स्वामित्व है।

ब) ग्रुप एंटरप्रेन्योरशिप – इसमें मुख्य रूप से पार्टनरशिप, प्राइवेट लिमिटेड कंपनी और पब्लिक लिमिटेड कंपनी शामिल हैं।

स) क्लस्टर निर्माण उद्यमिता – इसमें एनजीओ, वीओ, सीबीओ, एसएचजी और यहां तक कि इन समूहों की नेटवर्किंग भी शामिल है। इनमें जाति, व्यवसाय, आय आदि के आधार पर व्यक्तियों के समूह के औपचारिक और गैर-औपचारिक संघ भी शामिल हैं।[6]

द) सहकारी उद्यमिता – यह एक सामान्य उद्देश्य के लिए स्वेच्छा से एकजुट व्यक्तियों का एक स्वायत्त संघ है।

ग्रामीण विकास के लिए लागू उद्यमी के मूल सिद्धांत हैं

- ग्रामीण आबादी द्वारा एक उद्यमशील उद्यम में स्थानीय संसाधनों का इष्टतम उपयोग – कृषि उपज के बेहतर वितरण से ग्रामीण समृद्धि आती है।
- ग्रामीण आबादी के लिए उद्यमी व्यवसाय भेदभाव को कम करने और ग्रामीण प्रवास के खिलाफ वैकल्पिक व्यवसाय प्रदान करने के लिए।
- ग्रामीण आबादी को जनशक्ति, पैसा, सामग्री, मशीनरी, प्रबंधन और बाजार उपलब्ध कराने के लिए ऐसी प्रणाली को सक्रिय करना।

भारत में ग्रामीण उद्यमिता के लिए सरकारी योजनाएं

- उद्यमिता विकास संस्था योजना
- राजीव गांधी उद्यमी मित्र योजना
- प्रदर्शन और क्रेडिट रेटिंग योजना (एनएसआईसी के माध्यम से कार्यान्वित)
- उत्पाद विकास, डिजाइन हस्तक्षेप और पैकेजिंग
- खादी कारीगरों के लिए खादी कारीगर जनश्री बीमा योजना
- विपणन सहायता योजना
- ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं का प्रावधान (पुरा)

सुझाव

- श्रम गहन तकनीकें: चूंकि हमारे कृषि क्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोजगारी है, इसलिए ग्रामीण औद्योगिक इकाइयों में श्रम गहन तकनीकों को अपनाया जाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों को शिक्षित करें: सरकार और गैर सरकारी संगठनों ने ग्रामीण उद्यमियों को विभिन्न योजनाओं और अवसरों की पेशकश की। लेकिन, वे अपनी अशिक्षा के कारण इन योजनाओं और अवसरों से अनजान हैं। इसलिए उन्हें अपने व्यवसाय से संबंधित कार्यशालाओं और संगोष्ठियों का आयोजन करके शिक्षित किया जाना चाहिए।[7]
- कम ब्याज दर के साथ वित्त प्रदान करें: आईसीआईसीआई, सिडबी, आईडीबीआई, आईएफसीआई और एसएफसी जैसे वित्तीय संस्थानों को उदार नियमों और शर्तों के साथ कम ब्याज दर और सीमित संपार्श्विक सुरक्षा के साथ ग्रामीण उद्यमियों को वित्त प्रदान करना चाहिए।
- सरकारी भूमिका: सरकार को बुनियादी ढांचा, भंडारण सुविधाएं प्रदान करने, विपणन को सहायता प्रदान करने और ग्रामीण उद्यमियों के सामान को विदेशों में निर्यात करने के लिए कदम उठाने चाहिए।
- ग्रामीण संसाधनों का दोहन: उदाहरण के लिए, जहां कहीं पवन और सौर ऊर्जा की गुंजाइश है, ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए इसका पूरा दोहन किया जा सकता है।
- सहायक इकाइयाँ: ये वे हैं, जो बड़े उद्योगों द्वारा उपयोग किए जाने वाले पुर्जों और घटकों का निर्माण करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कई सहायक इकाइयां स्थापित की जानी चाहिए जिससे कई इंजीनियरिंग उद्योगों की उत्पादकता बेहतर हो सके।[8]
- सूक्ष्म ऋण योजनाएँ: ग्रामीण उद्यमियों के लिए एसएचजी जैसी सूक्ष्म ऋण प्रणाली के प्रावधान किए जाने चाहिए जो ग्रामीण गरीबों के आर्थिक विकास और रोजगार सृजन को बढ़ावा देंगे।
- ग्रामीण उद्यमिता को विकसित करने के लिए पिछले अनुभवों और अन्य टिप्पणियों पर विचार किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों के बीच इसकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न उत्पादों और नवीन प्रौद्योगिकी की बाजार की जानकारी सार्वजनिक रूप से घोषित की जानी चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों को भूमि, बिजली, कच्चा माल और वित्त जैसी बुनियादी सुविधाएं रियायती दरों पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों की ऋण सूचना विकसित की जानी चाहिए ताकि वे बैंकों से उचित ब्याज दर पर पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त कर सकें।
- एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण: छोटे व्यवसायियों की ताकत, कमजोरियों, अवसरों और खतरों की पहचान की जानी चाहिए और उन्हें उद्यमी बनने के लिए प्रेरित करने के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- व्यवसाय को करियर के रूप में लेने में रुचि रखने वाले युवाओं के बड़े समूह का समर्थन करने के लिए गांवों में इनोवेटर्स क्लब की स्थापना की जानी चाहिए।
- उद्यमिता की समस्याओं का सामना करने के लिए ग्रामीण उद्यमियों में विपणन प्रबंधन कौशल में सुधार किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों में नवीन भावना के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए प्रबंधन प्रशिक्षण दिया जाना है।
- पुरस्कार उन उद्यमियों को दिया जाना चाहिए जो असाधारण सफलता प्रदर्शित करते हैं। आधुनिक तकनीक के प्रयोग के संबंध में ग्रामीण उद्यमियों को प्रेरित करने हेतु मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करने हेतु सभी ग्राम स्तर पर उद्यमिता विकास प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए। सरकार द्वारा ग्रामीण उद्यमियों के लिए अलग से वित्तीय कोष उपलब्ध कराया जाना चाहिए। साथ ही उन्हें सभी वित्तीय संस्थानों और बैंकों से पर्याप्त और समय पर वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।[9]
- ग्रामीण उद्यमियों के लिए विशेष रूप से और सामान्य रूप से ग्रामीण आबादी के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था सरकार द्वारा उनके ज्ञान और व्यावसायिक कौशल में सुधार के लिए की जानी चाहिए।
- सभी आवश्यक सहायता प्रदान करने वाले प्रशिक्षण और सतत समर्थन प्रणालियों के साथ, ग्रामीण युवाओं को उद्यमिता को करियर के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है।

- आधुनिकीकरण के लिए वित्त: बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाने के लिए उनकी पुरानी तकनीक, उपकरणों और उपकरणों के आधुनिकीकरण के लिए पर्याप्त वित्त दिया जाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमी को स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी और कुशल होना चाहिए। सफल ग्रामीण उद्यमियों को अन्य ग्रामीण उद्यमियों को रास्ता दिखाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों के प्रोत्साहन के लिए सरकार की कई योजनाओं और योजनाओं को विभिन्न स्तरों पर दृढ़ता से क्रियान्वित किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण उद्यमियों द्वारा उत्पादित उत्पादों को खरीदने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए सरकार, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा ब्याज मुक्त उपभोग ऋण प्रदान किया जाना चाहिए।
- पूरी तरह से अनाज, फलों या सब्जियों की एक नई श्रेणी की खेती करके अवसरों की खोज करके कृषि विविधीकरण।
- कृषि खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों या संबंधित इकाइयों जैसे शराब उत्पादन, जूस उत्पादन और कई अन्य की स्थापना करना।
- ग्रामीण क्षेत्र को छोड़ चुके कुशल और पेशेवर लोगों को वापस आने के लिए प्रोत्साहित करना।
- एनआरआई और अपने-अपने गांवों के धनी लोगों को ग्रामीण उद्योगों की स्थापना/सहायता करनी चाहिए।
- ग्रामीण उत्पादों के विपणन के लिए कुशल विनियमित बाजार होना चाहिए।
- ग्रेडिंग, मानकीकरण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और ग्रामीण उद्योगों के लाभ के लिए प्रचार गतिविधियों को बढ़ाया जाना चाहिए।
- सहकारी समितियों, सूक्ष्म और अन्य विनिर्माण व्यवसायों के लचीले विनिर्माण नेटवर्क विकसित करने में मदद करना।
- किसी विशेष उत्पाद का विकास और उत्पादन करना जिसे कोई भी फर्म अकेले निर्माण नहीं कर सकती है यानी उस उत्पाद के निर्माण में उनके बीच संबंध होना चाहिए।
- उन तरीकों और साधनों को विकसित करना जिनके द्वारा उत्पाद लाइनों, बाजारों में विविधता लाई जाती है और वितरण चैनल का विस्तार किया जाता है।
- नेटवर्क में छोटी फर्मों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना, इस प्रकार उनकी प्रतिस्पर्धी दक्षता को बढ़ावा देना।
- वित्त, विपणन, अनुसंधान और विकास के क्षेत्रों में विभिन्न सेवाएं प्रदान करना।
- लेन-देन की लागत को कम करने के लिए उत्पादन और प्रशासन में दैनिक मामलों की सामान्य सेवाएं प्रदान करना।

निष्कर्ष:

कृषि क्षेत्र को मजबूत करने के अलावा, ग्रामीण उद्यमिता भारत के आर्थिक विकास में विशेष रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह कम पूंजी वाले ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने, लोगों की वास्तविक आय बढ़ाने, प्रच्छन्न बेरोजगारी को कम करके कृषि के विकास में योगदान, रोजगार के तहत, बेरोजगारी, गरीबी, प्रवास और आर्थिक विषमता में मदद करता है। ग्रामीण क्षेत्रों के उत्थान के लिए सरकार को विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं और कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना चाहिए। ग्रामीण उद्यमशीलता को पूंजी संचय की कमी, जोखिम लेने और नवाचार के कारण इसे शुरू करना मुश्किल लगता है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में बुनियादी ढांचे के विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, कृषि में निवेश और ग्रामीण गैर-कृषि गतिविधियों को बढ़ावा देना चाहिए जिसमें महिलाएं और ग्रामीण आबादी खुद को संलग्न कर सकती है। ग्रामीण विकास और ग्रामीण उद्यमिता विकासशील देश को विकसित राष्ट्र में बदलने का तरीका है। लाभकारी रोजगार पैदा करने और ग्रामीण और शहरी के बीच बढ़ती असमानताओं को कम करने के संदर्भ में ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सही समय पर सही सूचना उपलब्ध कराकर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की निगरानी, बैंकरों, पंचायत संघ के नेताओं और स्वैच्छिक सेवा संगठनों को समय पर और पर्याप्त ऋण और निरंतर प्रेरणा प्रदान करने से ग्रामीण उद्यमिता का विकास होगा और बदले में ग्रामीण विकास होगा।

सन्दर्भ:

1. अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समिति की रिपोर्ट, नई दिल्ली, 2003।
2. नारंग अशोक (2006), "इंडियन रूरल प्रॉब्लम्स", मुरारी लाल एंड संस, नई दिल्ली।
3. कीन, जे. (2000), "ग्रामीण उद्यमिता पहल", कॉफमैन सेंटर फॉर एंटरप्रेन्योरियल लीडरशिप, सितंबर।
4. कुमार ए. "भारत में ग्रामीण औद्योगीकरणः ग्रामीण विकास के लिए एक रणनीति" मित्तल प्रकाशन, दिल्ली, 1989।
5. मेहता, ए. (2011), "ग्रामीण उद्यमिता - ग्रामीण भारत में लघु व्यवसाय के लिए विशेष संदर्भ के साथ एक अवधारणात्मक समझ", अमृत विपणन, वॉल्यूम। 36
6. नंदनवर कल्पना पी. (2011), ग्रामीण विकास में ग्रामीण उद्यमिता की भूमिका, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भित अनुसंधान जर्नल, आईएसएसएन-0974-2832, वॉल्यूम प्प, अंक-26, मार्च।
7. पेट्रिन, टी. (1994), "ग्रामीण विकास में एक आर्थिक बल के रूप में उद्यमिता", 7 वें एफएओ / आरईयू इंटरनेशनल रूरल डेवलपमेंट समर स्कूल, हेर्सचिंग, जर्मनी में प्रस्तुत मुख्य नोट पेपर, 8 - 14 सितंबर
8. शर्मा, स्वाति और व्यास, दिव्या (2011), "ग्रामीण भारत में उद्यमिता - एक आवश्यकता विश्लेषण", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस इकोनॉमिक्स एंड मैनेजमेंट रिसर्च, वॉल्यूम 2, अंक 4, अप्रैल संदीप सक्सेना, "ग्रामीण उद्यमियों और उपचार के लिए समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है" इसे हल करें", आईएसओआर जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट, 3(1), पीपी. 23-29, 2012।
9. शांति एन. और राजेश कुमार एस. (2011), एंटरप्रेन्योरशिप चौलेंजेस एंड अपॉर्चुनिटीज इन इंडिया।

बाबा साहेब अम्बेडकर और भारत का विभाजन

डॉ० पूनम

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग रघुनाथ गर्ल्स पी०जी० कॉलेज, मेरठ

भारत और पाकिस्तान के विभाजन को लेकर बी0आर0 अम्बेडकर जी अपनी एक अलग राय रखते थे। उनका मानना था कि भारत और पाकिस्तान के विभाजन की रूपरेखा बहुत पहले से ही पड़ गयी थी। इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने तथ्य भी प्रस्तुत किये। उन्होंने बताया कि जिस समय श्री गाँधी जी का पर्दापण कांग्रेस में हुआ, इसे लोगों के बीच लोकप्रिय करने के लिए गांधी जी ने दो काम किये- पहला था सविनय अवज्ञान आंदोलन का श्रीगणेश।

भारतीय राजनीति में गाँधी जी के आने से पूर्व सत्ता प्राप्ति के लिए जो दल सक्रिय थे, वे थे- कांग्रेस, लिबरल्स और बंगाल के क्रान्तिकारी। उस समय कांग्रेस और लिबरल्स एक ही थे, उनके बीच कोई अंतर नहीं था। इन दोनों दलों में प्रवेश की शर्त बहुत ही कठोर थी। लिबरल पार्टी का सदस्य बनने के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ उच्च स्तरीय ज्ञान भी अत्यन्त जरूरी था। इस दल के अनुसार अशिक्षितों को राजनीति में प्रवेश का कोई अधिकार नहीं है। क्रान्तिकारियों ने कठोरतम परीक्षा लेने का मार्ग निर्धारित किया था। केवल वे ही लोग इस दल के सदस्य बन सकते थे जो केवल अपना जीवन ही नहीं अपितु उद्देश्य प्राप्ति के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर सके। लेकिन गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन में किसी भी प्रकार के ज्ञान व प्राण देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। गांधी जी ने दूसरी जो बात की वह भाषाई राज्यों के सिद्धान्त को लागू करना था। निसंदेह यह योजना लोगों की स्थानीय देशभक्ति को जगाकर उन्हें कांग्रेस के पक्ष में लाने के एकमात्र उद्देश्य से पेश की गयी थी। जब भाषा के आधार पर प्रांतों की स्थापना की जा सकती है तो फिर सांस्कृतिक भेद के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण क्यों संभव नहीं है। पाकिस्तानी समर्थक अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक विकास के लिए पाकिस्तान अलग बनाने की बात कर रहा है।

पृथकता की इन मांगों के पीछे कुछ ऐसे प्रशासनिक, भाषायी व सांस्कृतिक तथ्य हैं जोकि सभी को मान्य व स्वीकार्य हैं। मुस्लिम लीग अपनी माँग में पृथक राष्ट्र की मांग कर रही है, जिसका हिन्दू विरोध कर रहे हैं। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाये कि मुसलमानों का अपना एक अलग राष्ट्र है तो भारत के एक राष्ट्र होने पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। यह कल्पना हिन्दू राजनीतिज्ञों के पैरों तले की जमीन ही खिसका देती है। यह स्वाभाविक भी है कि वे इससे क्षोभ का अनुभव करें और पीठ में छुरा घोंपे जाने की संज्ञा दे। अम्बेडकर जी का मानना था कि इस परिस्थिति में हिन्दुओं को यह दर्शाना चाहिए कि कुछ मतभेदों के बावजूद हिन्दुओं व मुसलमान के बीच पर्याप्त समानताएँ हैं, जिससे कि वे एक राष्ट्र की स्थापना कर सकें।

कुछ बातें ऐसी है जो हिन्दुओं व मुसलामनों के बीच अंतर को खत्म करती हैं। पहली बात तो यह है कि हिन्दू व मुसलमानों के बीच जाति का कोई अंतर नहीं है। पंजाबी मुसलमान और पंजाबी हिन्दू, बंगाली मुसलमान और बंगाली हिन्दू, मद्रासी मुसलमान और मद्रासी हिन्दू जातीय तौर पर एक ही समूह के है। हिन्दू व मुसलमानों के बीच भाषा के स्तर पर भी समानता है। बंगाल का हिन्दू व मुसलमान दोनों ही बंगाली भाषा बोलते हैं। मुसलमानों की अपनी कोई ऐसी अलग भाषा नहीं है जो उन्हें हिन्दुओं से अलग कर सके। तीसरी बात यह कही जाती है कि भारत वह भूमि है जिसमें हिन्दू और मुसलमान सदियों से साथ-साथ रहते रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि अनेक मुस्लिम समूहों का सामाजिक जीवन हिन्दू रीति रिवाजों से परिपूरित है। सामाजिक क्षेत्र में हिन्दू समाज के समान ही मुस्लिम समाज में भी जाति प्रथा पायी जाती है।

यह बात निसंदेह सच है। इस बारे में कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता है कि मुसलमानों की एक विशाल जनसंख्या उसी वंश की है जिसके हिन्दू है। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि दोनों की कुछ सामाजिक व धार्मिक पद्धतियाँ एक समान है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उपरोक्त बातों ने दोनों के बीच इस भावना को बढ़ाया है कि वे एक राष्ट्र हैं, और वे एक दूसरे के पूरक हैं।

गोलमेज सम्मेलन में मुसलमानों ने अपने उस संरक्षणों की सूची पेश की थी जिन्हें चौदह सूत्री कार्यक्रम में समाहित किया गया था। गोलमेज सम्मेलन में हिन्दू प्रतिनिधियों ने उन्हें नहीं माना और दोनों के बीच गतिरोध पैदा हो गया। हालांकि कांग्रेस न तो इस मत के पक्ष में थी और न ही विरोध में। इधर ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप कर एक फैसला प्रस्तुत किया जिसे साम्प्रदायिक निर्णय कहा जाता है। कांग्रेस सरकार के इस निर्णय के प्रति मौन रही। 22 दिसम्बर 1939 को मुस्लिम लीग द्वारा मुक्ति दिवस मनाया गया जोकि लीग की कट्टरता का परिचायक था।

आखिर मुस्लिम लीग कांग्रेस की इतनी अधिक विरोधी किस प्रकार हो गयी। इस पर अम्बेडकर जी का मानना है कि मुस्लिम लीग का दावा है कि कांग्रेसी शासन के तहत मुसलमानों का वस्तुतः दमन व उत्पीड़न हुआ है। लीग ने इस मामले की जाँच करने के लिए दो समितियाँ नियुक्त की जिन्होंने अपनी रिपोर्ट में संघर्ष के दो कारण बताये- 1. कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि संगठन के रूप में मुस्लिम लीग को मान्यता देने से इंकार 2. कांग्रेस शासित प्रांतों में कांग्रेस का मिले-जुले मंत्रिमंडलों का गठन करने से इंकार।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही कठोर रूप अपना लिया। कांग्रेस मुस्लिम लीग को दि नेशनल मुस्लिम तथा जमीयत उल उलेमा जैसे अनेक मुस्लिम संगठनों में से एक मानने को तैयार थी, परन्तु एकमात्र प्रतिनिधि संगठन नहीं। वही दूसरी और मुस्लिम लीग तब तक विचार-विमर्श में शामिल होने को तैयार नहीं थी जब तक कांग्रेस उसे एकमात्र मुस्लिम प्रतिनिधि संगठन के रूप में स्वीकार न कर ले। अम्बेड़कर जी का मानना था कि लीग भले ही सम्पूर्ण मुसलमानों का प्रतिनिधित्व न भी करे फिर भी उनके बहुमत का प्रतिनिधित्व तो करती ही है। कांग्रेस को हिन्दू मुस्लिम सवाल पर समझौता करने के उद्देश्य से उसके साथ विचार-विमर्श में कोई संकोच नहीं करना चाहिए। क्योंकि जब तक देश में एक से अधिक संगठन सरकार बनाने का दावा करने वाले होंगे तब तक ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र नहीं करेगी। कांग्रेस को इसका रास्ता निकालना ही होगा। किसी से बात न करना मूर्खतापूर्ण है। कांग्रेस के इस रवैये से मुसलमानों में रोष ही बढ़ेगा।

कांग्रेस ने अपने मंत्रिमण्डल में मुसलमानों को इस शर्त पर शामिल करना स्वीकार किया कि वे पहले अपने दलों से त्यागपत्र देकर कांग्रेस में शामिल हो और कांग्रेस के संकल्प पर हस्ताक्षर करें। इस बात का मुसलमानों ने तीन आधारों पर विरोध किया। सबसे पहले तो मुसलमानों ने इसे विश्वासघात की संज्ञा दी। मुसलमानों का कहना था कि उनकी मांग संविधान के अनुरूप है। क्योंकि गोलमेज सम्मेलन में इस बात पर सहमति हुई थी कि मंत्रिमण्डल में अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधि शामिल किये जायेंगे। अल्पसंख्यकों ने इस बात पर जोर दिया कि इस आशय के प्रावधान को कानूनी स्वरूप दिया जाना चाहिए। दूसरी बात यह है कि मुसलमानों ने यह महसूस किया कि कांग्रेस का दृष्टिकोण लोकसम्पति के वास्तविक दायरे का विकृत रूप है। मुसलमानों को यह विश्वास होने लगा था कि कांग्रेस सभी दलों को खत्म कर देश में एक मात्र पार्टी बनना चाहती है। कांग्रेस के संकल्प पत्र पर हस्ताक्षर करने की मांग के पीछे इसके अलावा और कोई इरादा नहीं हो सकता है। हिन्दू ही ऐसे राज्य की स्थापना के प्रयास का स्वागत कर सकते है, मुसलमानों के लिए तो यह एक स्वतन्त्र समाज के रूप में मुसलमानों की राजनीतिक मृत्यु मात्र है। सरकार के स्वरूप को लेकर दोनों दलों में खींचातानी होती रही और ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र करने में समय खींचती रही।

अम्बेडकर जी के अनुसार हिन्दू तीन कारणों से पाकिस्तान की योजना का विरोध कर रहे थे-

1. पाकिस्तान निर्माण से भारत की एकता खंडित हो जायेगी।
2. इससे भारत की प्रतिरक्षा कमजोर होगी।
3. इससे साम्प्रदायिक समस्या का समाधान नहीं होगा।

अम्बेडकर जी का मानना था कि जो हिन्दू पाकिस्तान व भारत की एकता के पक्षधर हैं उनका मानना है कि जिन क्षेत्रों को मुसलमान भारत से पृथक करना चाहते हैं, वे सदैव भारत का अंग रहे हैं। यह बात ऐतिहासिक रूप से भी सत्य है। ये भाग तब

से भारत का हिस्सा है जबसे चन्द्रगुप्त भारत के शासक थे। चीनी यात्री हवेनसांग ने भी इस बात का जिक्र किया है कि भारत पांच विभागों में विभाजित था। और इन पांच विभागों में 80 रियासतें थी। परन्तु अब परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी है। मुहम्मद बिन साम ने सिंध पर आक्रमण करके जो सिलसिला प्रारम्भ किया था वह 1526 में मुगल साम्राज्य की स्थापना तक लगातार बना रहा। हिन्दू व मुस्लिम एकता प्रकृति पोषित है। इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि मुस्लिमों द्वारा पाकिस्तान की स्थापना अनुचित है। अराकान और तेनासरिम पर येंदाबू की संधि के तहत 1826 ई0 में अधिकार किया गया, पेगू और माताजिन को 1852 ने कब्जे में लिया गया, जबकि 1886 ई0 में ऊपरी बर्मा पर कब्जा कर लिया गया। 1926 में भारत और बर्मा के बीच प्रशासनिक एकता स्थापित हो गयी। परन्तु दोनों के बीच 1937 ई0 में संबंध खत्म हो गये और किसी ने एक आँसू तक नहीं बहाया।

पाकिस्तान बनने से हिन्दुस्तान की रक्षा के प्रश्न पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह प्रश्न बहुत तात्कालिक महत्व का नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पाकिस्तान के निर्माण से साम्प्रदायिक समस्या का समाधान संभव है। इस तथ्य पर अभी से कुछ नहीं कहा जा सकता है। गोलमेज सम्मेलन में मुस्लिम वर्ग ने निम्न मांगे प्रस्तुत की–

1. केन्द्रीय व प्रांतीय विधानमंडलों में अलग प्रतिनिधित्व
2. जिन राज्यों में मुसलमान अल्पमत में हैं, वहाँ उन्हें अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाये। और जिन राज्यों में बहुमत में है वहाँ उन्हें कानूनी गारंटी दी जाये कि सीटों में उनका बहुमत होगा। परन्तु हिन्दू प्रारम्भ से ही मुसलमानों की इन मांगों के विरोध में रहे है। यही कारण रहा कि हिन्दू व मुसलमानों में वैचारिक मतभेद और ज्यादा उभरकर सामने आने लगे है। अब यह विचार और अधिक सोचनीय हो गया कि यदि हिन्दुस्तान राजनीतिक दृष्टि से एक ही देश बना रहता है तो जहाँ तक हिन्दुओं को लगेगा कि एक तरफ कुआ है तो दूसरी तरफ खाई/हिन्दुस्तान में फौज तो होगी पर उसे लीग के कारण इच्छा से इस्तेमाल नहीं किया जा सकेगा और यदि इस्तेमाल भी किया तो उसकी वफादारी पर संशय ही बना रहेगा। और भारत कभी भी अपनी फौज का इस्तेमाल मुस्लिम देशों के विरूद्ध करने को स्वतन्त्र नहीं होगा, चाहे फौज में मुसलमानों का वर्चस्व भी न हो। अब हिन्दुओं को जो विकल्प अपनाना है– वह सुरक्षित सेना या सुरक्षित सीमा।[7]

इस परिस्थिति में हिन्दुओं के समक्ष बुद्धिमतापूर्ण निर्णय क्या हो सकता है? क्या वे इस बात पर ज्यादा जोर दें कि हिन्दुस्तान एक बना रहे । इस परिस्थिति में देश के अन्दर ही वे अपने विरोधियों को रखेंगे। यदि किसी विवेकशील व्यक्ति से इस प्रश्न का उत्तर पूछा जाये तो वह यही कहेगा कि ''यदि मुसलमानों को अपना विरोधी ही बनाकर रखना ही है तो यही अच्छा होगा कि मुसलमानों के बिना उनका विरोधी बनकर रहा जाये, न कि उन्हें साथ रखकर। हिन्दुओं की भी यह एक पुख्ता चाह है कि वे बगैर मुसलमानों के रहना चाहते हैं।[8] हिन्दुस्तानी फौज को मुसलमानों की बहुलता से छुटकारा पाने का यही तरीका है। और यह कब संभव है– यह तभी संभव है जब पाकिस्तान की योजना का समर्थन किया जाये। जब एक बार पाकिस्तान बन जायेगा तो हिन्दुस्तान के पास जनधन के रूप में पर्याप्त संसाधन रहेंगे और वे एक मजबूत फौज का इस्तेमाल अपनी स्वेच्छा से कर सकेंगे। इस प्रकार पाकिस्तान बनने से हिन्दुस्तान की रक्षा कमजोर होने की जगह निश्चित रूप से सुदृढ़ ही होगी।

हिन्दुओं को इस बात को भलीभांति समझना होगा कि फौज से अलग रखे जाने की वजह से रक्षा के दृष्टिकोण से वे बहुत हानिकारक स्थिति में है। इसका उन्हें भारी खामियाजा भुगतना पड़ेगा। चूँकि अधिकांश फौजी पाकिस्तान क्षेत्र से भर्ती किये जाते हैं, परन्तु यह क्षेत्र केन्द्रीय राजकोष में बहुत ही कम योगदान देता है। उपरोक्त आंकड़ों से यह बात स्पष्ट भी हो जाती है–

केन्द्रीय राजकोष में योगदान

प्रांत	*रूपयों में*
पंजाब	1,18,01,385
उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत	9,28,294
सिंध	5,86,46,915
बलूचिस्तान	कुछ नहीं
	= 7,13,76,594[9]

इसकी तुलना में हिन्दुस्तान के प्रांत निम्नलिखित रूप में योगदान देते हैं-

प्रांत	*रूपयों में*
मद्रास	9,53,26,745
बंबई	22,53,44,247
बंगाल	12,00,00,000
संयुक्त प्रांत	4,05,53,000
बिहार	1,54,37,742
मध्य प्रांत और बरार	31,42,682
आसाम	1,87,55,967
उड़ीसा	5,67,346
योग	**51,91,27,729**

उपरोक्त आंकड़े दर्शाते हैं कि पाकिस्तान प्रांतों का योगदान बहुत कम है। पाकिस्तान प्रांत केन्द्रीय सरकार को बहुत कम देते हैं, केन्द्रीय सरकार से ये प्रांत अधिक से अधिक पैसा ले लेते हैं। केन्द्रीय सरकार का कुल राजस्व 121 करोड़ रूपये है। इसमें से लगभग 52 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष फौज पर खर्च हो जाता है और अधिकांश पैसा पाकिस्तान प्रांत के फौजियों पर खर्च हो जाता है। इस सोचनीय स्थिति को कितने हिन्दू जानते हैं? अब प्रश्न यह है कि क्या इस खेदजनक स्थिति को चलते रहने देना चाहिए। यदि इसे रोकना है तो पाकिस्तान की योजना को प्रभावी होने दिया जाये, इसका विरोध करना, अपने विनाश को ही न्यौता देना है। सुरक्षित सीमा से सुरक्षित फौज बेहतर विकल्प है।[11]

संदर्भ सूची

1. लिमये, मधु- डॉ0 अम्बेडकर एक चिन्तन, सरदार वल्लभ भाई पटेल, एजूकेशन सोसायटी, पृ0सं0 231
2. बाबा साहेब, डॉ0 अम्बेडकर- पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन, प्रकाशक- डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, पृ0सं0 87
3. वही, पृ0सं0 87
4. बाबा साहेब, डॉ0 अम्बेड़कर- भारतीय समाज एवं विचारधारायें, पृ0सं0 295
5. बाबा साहेब, डॉ0 अम्बेडकर- पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन, प्रकाशक- डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, पृ0सं0 86
6. कीर, धनन्जय- डॉ0 अम्बेडकर, लाइफ मिशन, पृ0सं0 252-53
7. बाबा साहेब, डॉ0 अम्बेडकर- पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन, प्रकाशक- डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, पृ0सं0 871
8. वही
9. वही
10. वही, पृ0सं0 88
11. वही।

न्यायिक सक्रियता अवधारणा

डॉ० मुकेश कुमार मालवीय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

रणविजय सिंह

शोधार्थी, विधि-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

न्यायिक सक्रियता अर्थात् किसी वाद की अध्यक्षता करने वाले न्यायाधीशों के राजनैतिक व्यक्तिगत विचारों के आधार पर किये गये न्यायिक निर्णय। न्यायिक सक्रियता से आशय ऐसे न्यायकरण (judicial rulings) से है जिनका न्यायिक निर्णय वर्तमान विधि के आधार पर न होकर व्यक्तिगत या राजनीतिक आधार पर होने की आशंका हो, इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी न्यायिक कठोरता (judicial restraint) के विलोम में भी उपयोग किया जाता है।

न्यायिक सक्रियता का अर्थ न्यायपालिका द्वारा निभायी जाने वाली वह सक्रिय भूमिका है जिसमें राज्य के अन्य अंगों उनके संवैधानिक कृत्य को बाध्य करें और यदि वे अंग अपने कृत्य को सम्पादित करने में सफल होते हैं, तो जनतंत्र अथवा विधि के शासन के लिये न्यायपालिका अपनी शक्तियों की भूमिका का निर्वाह सीमित समय के लिये करेंगी। यह सक्रियता जनतंत्र की शक्ति तथा जनता के विश्वास को पुर्नस्थापित करती है। इस प्रकार न्यायिक सक्रिता न्यायपालिका द्वारा संवेदनशीलता व जिम्मेदारी से शासन के कृत्यों को न्यायोचित ढंग से करने का उचित प्रयास है। यह सक्रियता एक ऐसा न्यायिक प्रयास भी है, जो मजबूरी में किया जाता है, यह शक्ति उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के पास ही होती है। ये उन्हीं रिट या पुनरीक्षा में ही आती हैं। जनहित याचिका को को भी हम न्यायिक सक्रियता का मुख्य माध्यम मान सकते है।

न्यायिक सक्रियता, लोकतंत्र को और भी मजबूत बनाने में मदद करती है। इसकी अनुपस्थिति में लोकतंत्र को सही अर्थो में लोकतंत्र नहीं होता है। न्यायिक सक्रियता का समर्थन एक सीमित सीमा तक ही किया जा सकता है, इसके विरोध के स्वर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका से भी सुने जा सकते हैं।

न्यायिक सक्रियता का इतिहास-

न्यायिक सक्रियता का कोई स्पष्ट इतिहास नहीं है, परन्तु ये माना जाता है कि यह अवधारणा सदियों पुरानी है। हालांकि आर्थर स्लेंसिंग एक अमेरिकी विशेषज्ञ थे और बीसवीं सदी के अमेरिकी उदारवाद के अध्ययन के लिये जाने जाते हैं, इन्होनें 1947 में न्यायिक सक्रियता शब्द की जानकारी दी।[1] आर्थर स्लेसिंग जूनियर ने उसी वर्ष इस सम्बन्ध में एक फॉर्च्यून नामक पत्रिका के "द सुप्रीम कोर्ट 1947" शीर्षक से लेख प्रस्तुत किया, इस लेख में स्लेसिंग ने न्यायालय को तीन श्रेणियों न्यायिक कार्यकर्ता; आत्म संयम के हिमायती तथा एक मध्य समूह में बाँटा था। चूँकि यह शब्द पहली बार राजनीतिक न्यायिक मंच से टकराया था इसीलिये प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है। स्लेसिंग का न्यायिक सक्रियता शब्द का मूल परिचय न केवल धुन्धला था बल्कि न्यायिक सक्रियता किस रूप में मायने रखता है यह समझाने में भी असफल रहा साथ ही उन्होनें यह भी स्पष्ट नहीं किया कि यह न्यायिक सक्रियता अच्छी है या नहीं।[2]

इस शब्द की स्थापना के बाद से, न्यायिक सक्रियता सही अर्थ क्या है इस पर अलग-अलग राय बनती रही हैं। न्यायिक सक्रियता पर विधि के प्राध्यापक एवं प्रमुख संवैधानिक विद्वान डेविस ए. स्टॉर्क के अनुसार न्यायिक सक्रियता तीन प्रकार की हो सकती है; पहली, असंवैधानिक रूप में वर्तमान विधियो या अधिनियमों को पलटने का कार्य करते हुये, दूसरी, न्यायिक उदाहरण (मिसाल) कायम करते हुये तथा तीसरी, पूर्व में जारी संवैधानिक व्याख्या के विपरीत शासन करना।

न्यायिक सक्रियता का इतिहास का देखें तो सबसे उदाहरण वर्ष 1954 का बालकों से सम्बन्धित ब्राउन बनाम शिक्षा बोर्ड (Brown Vs Board of education) का है। इस वाद में, वर्ष 1951 में विद्यालय में पढ़ने वाले बालकों के अभिभावकों के एक समूह ने अपने बालकों की ओर से, कंसास (Kansa) के टोपेका (Topeka) शहर के शिक्षा बोर्ड के विरूद्ध वाद दायर किया। उस वर्ष 1951 में अफ्रीकी-अमेरिकन बालकों के अभिभावकों ने बपने बच्चों को उनके निकटवर्ती विद्यालय में दाखिला दिलाने का प्रयास किया था, लेकिन उन्होनें उन्हें नामांकन देने से इन्कार कर दिया, उन्होनें दावे द्वारा अनुरोध किया कि जिला विद्यालय ने नस्लीय अलगाव की अपनी नीति को उलट दिया, जिसमें काले एवं गोरे बालकों के लिये अलग-अलग विद्यालय संचालित किये। इस वाद में अभियोगी वादी ने दावा किया कि नस्लीय अलगाव के परिणामस्वरूप काले बच्चों में सुविधा आवास एवं व्यवहार के प्रति हीन भावना उत्पन्न होक रही है।

इस वाद में जिला न्यायालय ने प्लेसी बनाम फर्ग्यूसन (Plessy Vs Ferguson) के पूर्व निर्णय के आधार पर, जिसमें राज्य की विधियों के अनुसार गाड़ियों पर अलग परिवहन की आवश्यकता को बरकरार रखा, शिक्षा बोर्ड के पक्ष में निर्णय दिया। इसके पश्चात् अभिभावकों ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उच्चतम न्यायालय में अपील की, जहाँ उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि विद्यालयों में श्वेतों व अश्वेतों में भेदभाव वास्तव में असंवैधानिक तो था साथ में अश्वेत छात्रों के हानिकारक भी था।[3] इस नियम ने विधिक सिद्धान्त स्टेर डिकिसिस (Stare Decisis) के सामने ही उठ गये, जिसके अनुसार न्यायाधीशों को उच्च न्यायालयों के निर्णयों को बनायें रखने की आवश्यकता होती है। इसे वर्तमान में भी 'वाद पूर्व उदाहरण(मिसाल)' माना जाता है, उच्चतम न्यायालय ने प्लेसी बनाम फॉर्च्यून, जो इसी प्रकार का वाद था, में सत्तारूढ़ पर भरोसा करने की बजाय, खारिज कर दिया।

पब्लिक स्कूलों के इस प्रकार के पृथक्करण पर इस निर्णय का बहुत प्रतिरोध किया गया,क्योंकि सत्तारूढ़ विरोधियों का मानना था कि न्यायालय ने स्थापित विधियों के स्थान पर सांख्यिकी एवं सामाजिक सिद्धान्तों पर भरोसा किया था, इसका अर्थ है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ने नया कानून बनाकर, अपनी शक्तियों के बाहर कार्य किया है। वहीं अन्य दिशा में, इस निर्णय के समर्थकों का मानना था कि न्यायालय को वर्तमान समाज में समस्याओं को दूर करने के लिये मौजूदा विधियों को अनुकूलित करने के लिये अपनी शक्तियों का उपयोग करना चाहिये।

बीसवीं शताब्दी के अन्त तक, अमेरिका के उच्चतम न्यायालय को एक शक्तिशली निकाय के रूप में देखा गया था, जो पहले से कई परम्परावादी न्यायिकों ने आलोचना कर दावा किया कि उन्होनें कई राज्यों और संघीय विधियों को अपनी उदार राजनीतिक मान्यताओं के आधार पर समाप्त कर दिया। हांलाकि न्यायिक सक्रियता के इतिहास से हमें पता चलता है कि उदारवादी और रूढ़िवादी दोनों ही अन्य समूह पर ऐसा करने का आरोप लगाते हुये कार्य में भाग लेने एवं लाभ उठाने के लिये जाना जाता है।

न्यायिक समीक्षा के एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि 'न्यायिक सक्रियता' ने पिछले तीन दशकों में वयवहार में अलग-अलग समय पर सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों की विशेषता बताई है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी ने न्यायिक सक्रियता को निर्णय लेने के तत्वज्ञान के रूप में परिभाषित किया है जिससे न्यायाधीश अपने निर्णय को निर्देशित करने के लिये अन्य काराकों के साथ सार्वजनिक नीति के बारे में अपने व्यक्तिगत विचारों को अनुमति देते हैं।[4]

भारत में न्यायिक सक्रियता का इतिहास कुछ खास अधिक पुराना नहीं है, यह भारत में आपातकाल के बाद उत्पन्न हुआ जिसमें सरकार द्वारा न्यायपालिका को नियन्त्रित करने का प्रयास देखा गया था। जनहित याचिका इस प्रकार की न्यायालयों द्वारा सीधे जनता तक पहुँचने के लिये किया गया एक साधन था और इस पर संज्ञान भी लिया जाता था।

न्यायिक सक्रियता

संसद सर्वोच्च कानून बनाने वाली संस्था है। न्यायपालिका संविधान और विधायी संस्थाओं द्वारा पारित कानून की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार है। अत: न्यायपालिका एवं विधायिका संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता है।[5] सरकार किसी भी प्रणाली की

हो न्यायपालिका का देश की विधि का शासन बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के कार्य और संगठित करने के लिये न्यायालय महत्वपूर्ण है। लोकतन्त्र की एक स्वतन्त्र न्यायपालिका मर्यादित और जिम्मेदार सरकार के सिद्धान्त के संवैधनिकता के आधार के विचार के साथ साइन क्वा नान (sine qua non) बन जाती है, यदि न्यापालिका संविधान के विचार में कार्यकारी निर्णयों नीतियों को अवलोकन करने के लिये वास्तविक एवं पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है जो देश में सुशासन लाती है और समाज के गरीब एवं कमजोर वर्ग का शोषण होने से रोकता है।

राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक ब्रेडली कैनन ने छह ऐसे आयाम दिये हैं जिनके साथ न्यायाधीश न्यायालयों को कार्यकर्ता के रूप में माना जा सकता है; प्रमुखवाद, व्याख्यात्मक अस्थिरता, व्याख्यात्मक निष्ठा, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया, नीति की विशिष्टता और वैकल्पिक नीति- निर्माता की उपलब्धता।[6]

डेविड ए. स्ट्रास ने तर्क दिया कि न्यायिक सक्रियता को एक या अधिक तीन सम्भवित क्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है:-विधियों सम्भावित रूप में पलट देना, न्यायिक पूर्व उदाहरण(मिसाल) को बदलना एवं संविधान की एक विशेषाधिकार के विरूद्ध शासन।

कर्मिट रूजवेल्ट III (Kermit Roosevelt III) ने तर्क दिया कि 'व्यवहारिक रूप "सक्रियतावाद" उन निर्णयों के लिये थोड़े से अधिक आरोपित किये गये फैसले से असहमत हो जाता हैं, जिनसे स्पीकर (सभापति) असहमत है।7

इसी प्रकार फॉक्स न्यूज सन्डे के जार्ज डब्ल्यू. बुश के एक साक्षात्कार में महन्यायभिकर्ता थियाडोर ओल्सन (Theodore Olson) ने, एक समान लिंग में विवाह सम्बन्धित वाद में सफलतापूर्वक मुकदमेबाजी की थी, बताया कि "अधिकतर व्यक्ति निर्णय को समझाने हेतु 'न्यायिक सक्रियता' शब्द का उपयोग करते हैं, जो उन्हें पसन्द नहीं है।"[8] उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश एन्थोनी कैनेडी ने कहा कि "एक सक्रियतावाद न्यायालय वह न्यायालय है जो ऐसे निर्णय देती है जो आपको पसन्द नहीं है।"[9]

जहाँ एक ओर न्यायिक सक्रियता के आलोचकों का आरोप है कि यह विधि (कानून) या लोकतंत्र को हानि पहुँचाते हुये सरकार या नियुक्त एजेन्सियों की निर्वाचित शाखाओं की शक्तियों को खत्म कर देता है।[10] वहीं दूसरी ओर न्यायिक सक्रियता के रक्षक कई वादों में यह न्यायिक समीक्षा का वैध रूप है और कानून व्यवस्था भी समय के साथ बदलना चाहिये। वहीं तीसरा दृष्टि कोण यह भी है कि कानून के तथाकथित उद्देश्य की व्यख्या उपलब्ध नहीं है। विधि के प्राध्यापक प्रो. ब्रायन जेड. तमन्नाहा के अनुसार, तथाकथित औपचारिक समय के दौरान, यह पता चलता है कि कई न्यायाधीशों एवं न्यायाविदों ने स्वीकार किया कि विधियों के अन्तराल एवं अनिश्चिततायें थीं और न्यायाधीशों को कभी-कभी विकलप चुनना चाहिये।[11] यह विचार किसी भी न्यायाधीश के न्यायिक विवेक का उपयोग आवश्यक रूप से उस न्यायाधीश के व्यक्तिगत एवं व्यवसायिक अनुभव तथा विधिक और न्यायिक दर्शन (Philosophy) से नैतिक व नीतिशास्त्र तक तक उनके विचारों पर होगा। इसका अर्थ है लचीलेपन (Flexibility) को प्रदान करने (न्याय के वितरण को सक्षम करना) और उस लचीलेपन पर सीमायें लागू करना (न्यायाधीशों को न्याय के लिये विधिबाह्य आधार के स्थान पर विधिक आधार पर बने रहना चाहिये)।

इसके अतिरिक्त न्यायपालिका के समर्थकों का तर्क है कि न्यायपालिका निर्वाचित एवं अघोषिक दोनों पर अधिकारिक कार्यवाही प्रभावित करती है कुछ उदाहरणों में विधायी निकायों के कृत्यों में यह दर्शाया गया है कि अस्थायी बहुमत महत्व का मार्ग दिखा सकता है और आवश्यक नहीं है कि समय के साथ समान विधायी निकाय में विधि में कमी दिखी हो। इसके अलावा, जिन न्यायाधीशों नियुक्त किया जाता है वे आमतौर पर पूर्व कार्यकारी अधिकारी द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, जो उसके तत्वज्ञान को प्रतिबिम्बित करता है जिन्होनें उन्हें नामांकित किया है कि एक स्वतंत्र न्यायपालिका नागरिक समाज के लिये सबसे बड़ी सम्पत्ति है, क्योंकि संवैधनिक व्याख्या अपने संस्करण में राजनीतिक दबाव को रोकने की विशेष हित को निर्धारित करने में असमर्थ है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यायिक प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है, जो न्याय प्रदान करने के लिये सत्ता और अधिकार के साथ न्यायालयों को प्रदान करती है, हालांकि यह न्याय कानून की सीमा के भीतर होना चाहिये। जैसे अमेरिका में कानून में कुछ विधियाँ स्पष्ट नहीं हैं या किसी विशेष वाद में लागू होने के लिये विशिष्ट दिशा जिम्मेदार है और यह सुनिश्चित करती है कि वे राज्य ओर संघीय दोनों स्तर पर सही तरीके से लागू होते हैं, जबकि न्यायिक प्रणाली को अमेरिकी संविधान विधि या अधिनियम बनाने के लिये अधिकृत नहीं किया गया है, लेकिन प्रत्येक मामले के तथ्यों को वर्तमान विधियों पर लागू करता है जिससे एक ऐसा उचित निर्णय लिया जा सके, जो न्याय सुनिश्चित करता है। वहीं कुछ मामलों में न्यायालय, जैसे न्यायालयों को

यह निर्णय लेने की आवश्यकता होती है कि किसी निर्णय को उसके उचित निर्णय तक पहुँचाने में विशेष परिस्थितियों को किस प्रकार लागू किया जाना चाहिये। जब इस तरह के निर्णय उच्च न्यायालयों, जैसे अपीलीय न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालयों के द्वारा किये जाते हैं, तो वे वही बन जाते हैं जिन्हें 'बन्धनकारी मिसाल' के उदाहरण के रूप में सन्दर्भित किया जाता है अर्थात् अन्य न्यायालयों को भविष्य में समान वादों में उस पर उच्च न्यायालय के कानून की व्याख्या का उपयोग किया जा सकता है।

जब एक उच्च न्यायालय अन्य न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों की विधिक व्याख्या करने के लिये अपने निर्णयों को सीमित नहीं कर सकता है, तो इसे वर्तमान में उपस्थित विधियों को लागू करने के स्थान पर बेंच द्वारा बनाई जाने वाली विधि के रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार, न्यायिक सक्रियता को कभी-कभी ऐसे मुद्दों पर निर्णय लेने के रूप में देखा जा सकता है, जिसे विशेष रूप से वर्तमान वाद में न्यायालय में नहीं लाया जाता है।

उदाहरण--

लुआने एवं चक (Lauame nd Chuck) के वाद में बाल हिरासत एवं बाल सहायता के लिये आदेश पाँच वर्ष पूर्व पति-पत्नी का तलाक होने पर दिया था। लुआने, जिसे हमेशा के लिये बच्चों की कस्टडी दी गई थी व बच्चे अपने पिता से दो सप्ताहन्त में मिल पाते थे, ने बच्चों के पालन-पोषण की राशि को बढ़ाने के लिये आवेदन किया था।

जब वाद न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, जब इस मुद्दे पर विचार किया जाता है कि बालकों के पालन-पोषण हंतु दी गई सहायतार्थ राशि की गणना पर आवश्यक विचार-विमर्श कर निर्धारित करता है कि दी गई राशि उचित है या नहीं। यह धनराशि दोनों पालको का बालों याथ बीनाये जाने वाले समय व दोनों सकल आय एवं दिये जाने वाले कर के स्तर पर निर्भर करता है।

न्यायाधीश जॉन जो पालक स्वयं ही बालक के पालन-पोषण हेतु काफी धनराशि देता है, उस पालक को बालक के साथ बीताने के लिये अधिक समय दिया जाना चाहिये। न्यायाधीश चाहे तो बाल अभिरक्षा के आदेश को बदल सकता है एवं पिता को सपताहंत के साथ-साथ प्रत्येक सप्ताह में एक दिन और भी बालक के साथ रहने का आदेश दे सकता है तथा माता के द्वारा पालन-पोषण की राशि को बढ़ाने की प्रार्थना के वाद को अस्वीकार कर सकता है।

न्यायिक सक्रियता के इस उदाहरण में, न्यायाधीश ने अपनी व्यक्तिगत राय या भावनाओं के आधार पर निर्णय दिया है। उन्होनें बाल अभिरक्षा के निर्धारण के लिये सामान्य प्रक्रिया की अवहेलना की, जिसमें यह अन्वेषण भी शमिल है कि बालक के सर्वोत्तम हित में अभिरक्षा व्यवस्था क्या होनी चाहिये।

लुआने को इस आधार पर अपील करने का अधिकार है कि न्यायालय के द्वारा अभिरक्षा में इस तरह का बदलाव करने का निर्णय अनुचित था और बालक के भरण-पोषण की राशि में संशोधन के अनुराध को अस्वीकार कर दिया गया था। अपीलीय न्यायालय के लिये एक अच्छा अवसर होगा कि यह मामला कुटुम्ब न्यायालय में उचित कार्यवाही हेतु वापस कर देगा।

कुछ व्यक्ति न्यायिक सक्रियता, जो आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पूरा करने वाली सार्वजनिक नीति स्थापित करने एवं कुछ विधिक (कानून) अव्यवस्था को सही करने के लिये, न्यायाधीशों के लिये सक्रिय अवसर के रूप में देखते है। साथ ही अन्य लोग इस न्यायिक सक्रियता को एक तरह से न्यायाधीशों के द्वारा कुछ राजनैतिक समूहो के लिये कानून बनाने की विधि प्रक्रिया से बचने के लिये सहानुभूति मानते हैं, जो उन्हें जनता की राय को दरकिनार करने में सक्षम बनाता हैं। ऐसे वादों में, वर्तमान में प्रचलित विधानों को पलटना या उनको अनदेखा करना, जो कानून के लोकतान्त्रिक व्यवस्था को नुकसान पहुँचाता है, चिन्तनीय विषय बन गया है।[12]

अमेरिकी कानूनी प्रणाली में हर रोज हर स्तर पर न्यायाधीशों को कई तरह के वादों में निर्णय लेना होते हैं। यह वर्तमान में प्रचलित विधियों की व्याख्या करने, मौजूदा वाद के उदाहरण का हवाला हुये यह सुनिचित करना आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्तिगत वाद में न्याय लाया जाये। कई न्यायाधीश मानते हैं कि कुछ विधियों में, मिसाल के तौर पर वादों को शामिल किया जाना चाहिये जिससे आधुनिक सामाजिक ढांचे को बेहतर तरीके से प्रस्तुत किया जा सके। इस जिम्मेदारी को स्वीकार करना, विध्यों की अलग-अलग व्याख्या करना और लागू करना, जबकि कानून की मौजूद व्यवस्था को दरकिनार करके, न्यायिक सक्रियता का परिचायक है।

अगस्म 2010 से पूर्व में, एक प्रतिवादी को 5 ग्राम कोकीन को वितरित करने के इरादे से रखने का दोषी पाया गया, जिसे पाँच की की कारागार की सजा का सामना करना पड़ा। एक अन्य व्यक्ति भी 500 ग्राम कोकीन को वितरित करने के इरादे से दोषी पाया गया, उसे भी संघीय कानून के अनुसार समान अनिवार्य दण्ड का सामना करना पड़ा। हालांकि वर्ष 2010 में सरकार ने फेयर सेंटिंग एक्ट पारित किया गया, जिसने फेयर कोकीन एवं पाउडर कोकीन के कब्जे के लिये सजा के बीच असमानता कम किया जिससे अधिक निष्पक्ष दण्ड सुनिश्चित किया जा सके।

जैसा कि ज्ञात है कि कोकीन के स्वरूप को न देखें तो भी उनकी रासायनिक संरचना समान ही है, यह भी ज्ञातव्य है इसने दण्डित किये गये अधिकतर अपराधी अफ्रीकी अमेरिकन हैं। वर्ष 2012 में वहाँ के उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि फेयर एक्ट अगस्त, 2010 पारित होने के बाद लागये गये किसी भी दोषी व्यक्ति पर लागू होगा, भले ही वह लागू होने की दिनांक से पूर्व ही आरोप में पकड़ा गया हो।

इसके कुछ समय पश्चात् ही दो लोगों, जिन्हें अगस्त, 2010 को लागू होने की दिनांक से पूर्व में ही दोषी करार कर दण्डित किया गया था, ने अपीलीय न्यायालय में वाद दायर किया। संयुक्त राज्य अमेरिका बनाम ब्लेवेट के वाद में, प्रतिवादियों ने यह दावा किया कि दण्ड के नये दिशानिर्देशों को सभी प्रतिवादियों पर लागू होना चाहिये, जो दण्ड की दिनांक की परवाह बिना फेयर व पावडर कोकीन अपराधों के लिये अनिवार्य न्यूनतम आरोपों के तहत दण्ड सुनाया गया। अपीलीय न्यायालय के तीन न्यायाधीश पैनल ने अपने स्वयं के तथ्य-खोज मिशन में संलग्न होने के बाद, घोषित किया कि नई अनिवार्य सजा इन अपराधों के लिये पूर्व में दण्डित सभी अपराधियों पर लागू होने चाहिये। यह निर्णय इस विश्वास पर बनाया गया था कि कानून की पूर्व आवेदन ने संघीय समान सुरक्षा खण्ड के तहत नस्लीय भेदभाव का गठन किया था, जो अमेरिकी संविधान के चौंदहवें संशोधन में निहित था।

भारत में न्यायिक सक्रियता--

भारतीय संविधानों में शासन के तीन अंगों कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच काम तथा अधिकारों के विभाजन और परस्पर अनुशासन की व्यवस्था भी सूत्रबद्ध की गई है। भारतीय न्याय व्यवस्था, विश्व की एकमात्र ऐसी व्यवस्था है जिसमें न्यायाधीश ही अन्य न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ करते है। न्यायपालिका संविधान और विधायी संस्थानों द्वारा पारित विधि की व्याख्या करने का अंतिम अधिकार है। न्यायपालिका, विधायिका के बीच सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है।सरकार किसी भी प्रणाली की हो, न्यायपालिका देश के शासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के कार्य एवं समेकन के लिये न्यायालय महत्वपूर्ण हैं।[13]

भारत में सरकार दो रूपों के साथ एक संघीय व्यव्स्था में, जहाँ सरकार की शक्तियाँ सीमित नागरिकों के लिये सीमित हैं, संघ और राज्यों के बीच विवादों को स्वतंत्र एजेन्सियों द्वारा हल करने की आवश्यकता है। भारत के संविधान निर्माता लोकतंत्र के इस समेकन से बहुत चिंतित थे, इसीलिये एक स्वतंत्र एवं मजबूत न्यायपालिका के लिये प्रतिबद्ध थे जो मौलिक अधिकारों की जाँच करने के लिये स्वतंत्र थे। एक स्वतंत्र न्यायपालिका के होने से, न्यायिक सक्रियता, जनहित याचिका आदि की अवधारणा के माध्यम से न्यायिक हस्तक्षेप के क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ, भारत के पर्यावरणीय मुद्दों और प्राकृतिक संसाधनों से सम्बन्धित समस्यायें, जिन्हें कार्यपालिका द्वारा प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाना चाहिये। न्यायपालिका भी कार्यों को बढ़ाने के लिये बाध्य है क्योंकि कानून स्थिर नहीं हो सकता है, ऐसे ही न्यायपालिका के मामले भी हैं। न्याय का उद्देश्य आधुनिक काल में केवल विशेष रूप में भारत जैसे एक अलग समाज में विधियों की व्यावख्या कर हल नहीं किया जा सकता है। विधियों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिये कि हमारे समाज की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

सरकार के अन्य दो अंगों की तरह न्यायपालिका को भी उत्तरदायी बनाया जाना चाहिये, लेकिन इसकी स्वतंत्रता और अखण्डता को छुआ नहीं जाना चाहिये। कुछ लोग इसे चिंता का विषय मानने लगे हैं क्योंकि न्यायिक सक्रियता के माध्यम से न्यायालयों ने सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक न्याय के विभिन्न आन्दोलनों को वैध बनाने में भूमिका निभायी है। भारत में न्यायिक सक्रियता को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; प्रथम, वर्ष 1950 से वर्ष 1975 तक, पूर्व आपातकाल और द्वितीय अवधि 1975 से प्रारम्भ होती है अर्थात् आपातकाल के पश्चात। प्रथम अवधि में न्यायिक सक्रियता के शायद ही कुछ उदाहरण मिले, उस समय न्यायालय रूढ़िवादी थे, विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार के मुद्दों पर न्यायिक सक्रियता कुछ मामलों तक ही सीमित थी, वहीं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामलों में न्यायालय बेहद सकारात्मक थीं। वर्ष 1970 के दशक के अन्त से सम्पत्ति के अधिकारों

में न्यायिक सक्रियता देखने को ही नहीं मिलती क्योंकि इसे संविधान के भाग तीन में दिये गये मौलिक अधिकारों की सूची से हटा लिया गया था, वर्ष 1950 के दशक के उत्तरार्थ से न्यायालय भूमिका के बड़े आयामों को मानना शुरू कर दिया ।

उच्चतम न्यायालय भारत की सरकारी प्रणाली में असाधारण संस्थानो में से एक है। 1950 के दशक के अन्त में संविधन की व्याख्या की जिम्मेदारी के साथ भरतीय न्यायपालिका ने लोकतंत्र की रक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । भारत में न्यायिक सक्रियता का प्रमुख वाद केशवानन्द (AIR 1973 SC 1461) का है। केशवानन्द भारती के वाद में गोलकनाथ (AIR 1967 SC 1643) के वाद में दिये गये निर्णय को न खारीज करते हुये कहा कि संसद की संशोधित करने की शक्ति को मौलिक अधिकारों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है, बल्कि यह भी कहा गया है कि निहित सीमायें हैं जिनका उपयोग संविधान के मूल ढांचे को बदलने के लिये नहीं किया जा सकता है। केशवानन्द मामले में प्रस्तावित संविधान की बुनियादी विशेषताओं के सन्दर्भ में संशोधित शक्ति में निहित सीमाओं का सिद्धान्त भारत के सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा न्यायिक सक्रियता का पहला महत्वपूर्ण वाद था।

भारत में न्यायिक सक्रियता का एक और कार्य विधि का शासन स्थापित करने में है। विधि के शासन के बारे में संवैधानिक योजना, एक आवश्यक विशेषता के रूप में, न्यायिक रूप से एक प्रारम्भिक चरण से मान्यता प्राप्त थी। बशेश्वर नाथ (AIR 1959 SC 149) के वाद में विधि के शासन के आंग्ल सिद्धान्त के साथ समानता का सिद्धान्त जोड़ा गया था। इस वाद में यह माना गया कि विधि के शासन भारत के संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है और नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले वादों में पूर्ण विवेक घृणास्पद है। भारत में अतिसक्रिय न्यायपालिका के खास क्षेत्रों में एक मौलिक अधिकारों की व्याख्या है, विशेष रूप से अनुच्छेद 14 में समानता का अधिकार, अनुच्छेद 19 में स्वतंत्रता का अधिकार, अनुच्छेद 20 व 21 में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार आदि; शब्द 'जीवन', 'स्वतंत्रता' एवं अनुच्छेद 21 में 'विधि' को न्यायिक निर्णयों द्वारा बढ़ाया गया है। अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाले शब्द 'जीवन' को अर्थ गरिमा के साथ जीवन है न कि भौतिक आस्तित्व से। इसी प्रकार पुलिस द्वारा कानून के अधिकार के बिना अधियासिक यात्रा, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना जाता था, जिसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार माना जाता है।

न्यायिक सक्रियता का एक अन्य प्रमुख क्षेत्र जनहित याचिका (PIL) के माध्यम से आयोजित किया जाता है। च्प्स् न्यायिक सक्रियता का प्रमुख सूत्रधार है, जो च्प्स् की लोप्रियता का श्रेय देता है। वर्तमान के समाज में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बदलते स्वरूप से धीरे-धीरे लोकोस स्टैंडी के बारे में पाम्रम्परिक दृष्टिकोण उदार हो गया। अब एक पत्र या यहाँ तक की पोस्ट कार्ड को भी PIL के रूप स्वीकार कर मील का पत्थर निर्णय दिया और PIL के माध्यम से सामाजिक सुधार आया।[14] PIL का अर्थ है पब्लिक इन्टरेस्ट लिटिगेशन; विधि का एक न्यायालय में या सामान्य हितों के साथ सम्बन्धित सार्वजनिक हितों के प्रवर्तन में लिये न्यायालय में विधिक कार्यवाही प्रारम्भ की गई, जिसमें किसी समुदाय के सार्वजनिक या किसी विशेष वर्ग का हित या कुछ सामान्य ऐसा हित होता है जिससे उनके विधिक अधिकार या दायित्व प्रभावित होते है। वर्ष 1980 से पूर्व में इसके लिये केवल पीड़ित पक्ष ही व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में वाद दायर कर सकता था और अपनी शिकायत का हल प्राप्त कर सकता था। जब भी राज्य के अधिनियम या चूक के कारण कोई सार्वजनिक हानि या सार्वजनिक क्षति होती है या सार्वजनिक प्राधिकरण जो संविधान या कानून के विपरीत होता है, तो किसी सार्वजनिक कार्य के लिये किसी सदस्य पर, उसके के द्वारा की गयी इस सार्वजनिक हानि या क्षति के लिये, प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है तथा पर्याप्त हित रखने से निवारण के लिये कार्यवाही की जा सकती है।[15]

भारत में न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता-

भातीय समाज में न्यायिक सक्रियता एवं इसकी आवश्यकता के मुद्दे पर टकराव है। सभी न्यायविदों एवं राजनैतिक टिप्पणीकारों ने इसके पक्ष एवं विपक्ष में विभिन्न विशिष्ट तर्क दिये हैं, जबकि कुछ का मानना है कि बिना किसी संयम से कार्यपलिका और विधायी बिना संयम के अधिकार क्षेत्र बनाकर, न्यायिक सक्रियता ने जाँच एवं सन्तुलन की संवैधानिक प्रणाली को परेशान कर दिया था, जबकि अन्य न्यायपालिका के भ्रष्टाचार-रोधी प्रणाली में भूमिका का पुनःपरिभाषित किया।[16]

भारतीय समाज के कुछ समूह का विश्लेषण कि न्यायिक सक्रियता को भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिये अनावश्यक कार्य के रूप में बताते हैं। उनके पास पहली धारणा है कि न्यायिक सक्रियता का हमारे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।[17]

उनका यह भी मानना है कि लोग देश के राजनीतिक नेतृत्व, अधिकारी-वर्ग एवं सरकारी तन्त्र पर से अपना विश्वास खो रहें हैं। यह आशाजनक धारणा मूल लोकतांत्रिक मानदण्डों के लिये निर्णायक साबित हो सकती है। सरकार नीति की प्रत्येक क्षेत्र में यह न्यायिक हस्तक्षेप जाँच व सन्तुलन की प्रणाली में विघ्न भी ला रहीं हैं और भारत में शक्तियों के पृथक्करण की प्रणाली के लिये मुख्य उपचार साबित हुई है। दूसरी ओर, वे न्यायिक प्रणाली में कुछ अस्पष्टता का भी संकेत देते है, इनके अनुसार न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका के उत्साह का परिणाम है। इसके अतिरिक्त न्यायिक प्रशासन में भी अन्य प्रशासनिक प्रणालियों की तरह दोष एवं कमियाँ हैं।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री कुलदीप सिंह ने महसूस किया कि 'हालांकि, यहाँ न्यायपालिका स्वतंत्र है, फिर भी इसकी अलमारी में ढांचे पाये जाते हैं।' (Although, The judiciary is independent, there may still be found skeletons in its cupboard.)[18] न्यायाधीश को इस तरह के पक्षपात एवं जोखिम-निर्णयों का भी खतरा होता है। आलोचक इससे जनहित याचिका के दुरूपयोग का भी संकेत देते हैं। सर्वाच्च नयायालय के न्यायाधीश ने भी च्प्स् के दुरूपयोग के लिये कानूनी समुदाय को भी आगाह किया एवं उसके एचित विनियमयन की आवश्यकता पर जोर दिया था। जनता दल बनाम एस. एस. चौधरी, (AIR 1993 SC 892) कृष्णास्वामी बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया ((1992) 4 SCC 605) एवं सिमरनजीत सिंह मान बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया ((1992) 4 SCC 653) ये कुछ ऐसे दृष्टान्त है जिनमें राजनीति समाप्त करने के लिये PIL का दुरूपयोग करने की कोशिश की। भारत में PIL का दुरूपयोग, जो वर्ष 1990 के दशक से प्रारम्भ हुआ था, के अप्रत्यक्ष उद्देश्य हैं जिनके लिये PIL को प्रारम्भ में प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसीलिये, न्यायिक सक्रियता को भी ठीक प्रकार से स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

सबसे पहले यह स्पष्ट हो गया है कि न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका के साथ-साथ कार्यपालिका एवं विधायिका को भी प्रोत्साहित करती है। अतिसक्रिय न्यायपालिका के कारण कई नये एवं उपयोगी विधान आस्तित्व में आये हैं। न्यायिक सक्रियता ने कई घोटाालों व अवैध कार्यो के द्वारा किये गये घोटालों को उजागर किश्या है; जैसे- हवाला घेटाला, चारा घोटाला, सेंट किट्स वाद, सरकारी मकानों का अवैध आवंटन व पेट्रोल पम्प वाद तथा फर्टिलाइजर इम्पोर्ट घोटाला आदि से इसने पारदर्शिता का माहौल बनाया है। यह सरकार एवं नागरिकों के मध्य अधिक विश्वास लाता है।

PIL के नकारात्मक एवं सकारात्मक कार्यों को देखने के बाद, अति सक्रिय न्यायपालिका ने मानवीय कष्टों को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उच्च न्यायालय की बढ़ती हुई सक्रियता का विरोध करने वाले यह नहीं समझ पा रहे हैं कि यह सामान्य व्यक्ति के लिये वरदान भी साबित हुई है। इसने कई बार राज्यों के साथ-साथ व्यक्तियों के द्वारा किये गये गलत कार्यो को भी सही किया है; इसीलिये सामान्य व्यक्ति को न्यायिक सक्रियता से कोई डर नहीं होना चाहिये। कई बार न्यायालयों के कार्यों में देरी की वजह से कानून के संरक्षण से कई बार इन्कार किया जाता है, जो लम्बे समय से न्यायिक जड़ता या न्यायिक तनाव कहा जाता है।

न्यायिक सक्रियता ने न्यायिक प्रक्रिया को लाल टेप के माध्यम से छोटा करने और नागरिक को एक उचित सक्रिय न्यायपालिका की रक्षा में हस्तक्षेप करने में सक्षम बनाने के लिये प्रक्रिया शुरू कर दी है। न्यायिक सक्रियता रचनात्मकता से युक्त एक विषम प्रयोग है। इस नई पद्धति के लिये सर्वोकृष्ट कुशलता की आवश्यकता है। मासिकता को प्रभावित करने वाले लोकलुभावनवाद के होने वाले खतरे से सावधानी रखने की आवश्यकता है। न्यायिक सक्रियता में वृद्धि के मुख्य कारण, न्यायाधीशों के दृष्टिकोण और उनके द्वारा किये जाने कार्यों में परिवर्तन हैं। न्यायिक सक्रियता में पुनः वृद्धि के लिये सही स्थान प्राप्त करती है, बई बार, न्यायालय सरकार के कार्यो को सीमित कर देते हैं,जब वह स्वयं की शक्ति से अधिक हो जाती है और सरकारी अभिकरण द्वारा किसी भी दुरूपयोग या दुरूपयोग की शक्ति को रोकती है। कई बार सार्वजनिक शक्तियाँ लोगों को परेशान करती हैं, ऐसी स्थिति में न्यायालय के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह सार्वजनिक शक्ति के दुरूपयोग की जाँच करें। इसका सबसे अच्छा उदाहरण इन्दिरा गाँधी बनाम राज नारायण (AIR 1975 SC 1590) मामला है; जिसमें श्रीमती गाँधी ने संविधान में संशोधन करने के लिये व किसी अधिनियम को पारित करने के लिये संसद के दोनों सदनों में स्पष्ट बहुमत था और प्रधानमंत्री के चुनाव के नियमों एवं उनके कार्यालय के सुरक्षा के संविधान में बदलाव का निर्णय किया। इस वाद में अनुच्छेद 329-ए के खण्ड (4) को 39वें संशोधन द्वारा शामिल किया गया, जिसने किसी भी न्यायिक समीक्षा से परे प्रधानमंत्री पद का चुनाव कराया। न्यायालय द्वारा लोकसभा के लिये श्रीमति इन्दिरा गाँधी के चुनाव की जाँच को रोकने के लिये यह संशोधन स्पष्ट रूप पारित किया गया था। संविधान की मूल संरचना के उल्लंघन के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा संशोधनों को रद्द कर दिया गया।

देश में आपातकाल के बाद न्यायिक सक्रियता शायद न्यायालय के इस बोध से प्रेरित थी कि इसकी अभिजात्य सामाजिक छवि एक शक्तिशली राजनीतिक प्रतिष्ठान के भविष्य के विरूद्ध सामना करने के लिये पर्याप्त मजबूत नहीं होगी। 1975 के आपातकाल के पश्चात् भारत में न्यायिक सक्रियता के लिये निर्णायक क्षणों का गठन किया गया। ऐसा शायद इसीलिये किया गया कि आपातकाल में हुये बुरे व्यवहारों को देखते नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करने के दृष्टि से न्यायापालिका ने एक सक्रिय दृष्टिकोण अपनाया तथा राज्य एवं केन्द्र सरकारों एवं अन्य सरकारी संगठनों को दिशा निर्देश जारी किये और सकारात्मक कार्वाही की।[19]

प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त को अस्वीकार करना भी न्यायाधीशों के सक्रिय होने का एक कारण है न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने मेनका गाँधी बनाम भारत संघ के वाद मे "प्राकृतिक न्याय एक आसुत प्रक्रिया है" दिया। इसी प्रकार समय के साथ आम नागरिकों को पता चला कि प्रशासन उनके प्रति उदासीन तथा भ्रष्टाचार व अपराधिकता का शिकार हो गया है कि के PIL माध्यम से न्यायालयों को स्थानान्तरित कर न्यायिक हस्तक्षेप के लिये क्षेत्र बढ़ाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं था। इस कारण से न्यायिक सक्रियता एवं IPL ने सार्वजनिक जीवन के लगभग हर पहलू को छूआ है। यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय श्रमिकों (पीपुल्स यूनियन फॉर डेमाक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, 1982), बंधुआ मजदूर (बंधुआ मजदूर बनाम भारत संघ, 1984), कैदियों (सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, 1978), फुटपाथ पर रहने वाले (ओल्गा टेलिस बनाम बाम्बे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, 1985), अण्डर ट्रायल बन्दियों (हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य, 1979), संरक्षण गृहों में बंदी (उपेन्द्र सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983) और भोपाल गैस त्रासदि (यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन बनाम भारत संघ,1991) के शिकार हुये व्यक्तियों के बचाव में आया। इन सभी वादों में संकेत मिलता है कि न्यायिक सक्रियता का अपना महत्व है।

अभी वर्तमान में कुछ पूर्व के मामलों मे, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदूषण से प्रभावित स्मारकों, नदियों आदि पर अपनी चिन्ताओं को बताया। हालांकि विश्व के आधी आबादी महिलाओं की है, भारतीय न्यायपालिका ने महिलाओं के मानवाधिकारों की रक्षा करने एवं लैंगिक समानता को बनाये रखने में सक्रिय भूमिका निभायी है। सी. बी. मुथम्मा बनाम भारत संघ वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विवाह के बाद लिंग भेद के लिये विदेशी सेवा के अधिकारयों के रूप में महिलाओं से इस्तीफा अनिवार्य।[20] समाज में निचली जाति व शुद्रों के उत्पीड़न सामाजिक भेदभाव के विभिन्न रूपों से मुक्ति विधायिका द्वारा बहुत समय पूर्व में साचा गया था तथा समान कानून तैयार किये गये थे, फिर भी कार्यान्वित नहीं कर पाये थे। इस स्थिति में न्याय पालिका ने सक्रिय कदम उठाया एवं दलितों को दयनीय स्थिति को समाप्त करने के लिये दलित न्यायशास्त्र के साथ आगे आई। सर्वोच्च न्यायालय ने दलितों की भलाई के लिये और अन्य जातियों के साथ समाज में समान पायदान पर उनकी रैंकिंग के लिये कई निर्णय दिये गये हैं। अनसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989; अनुसूचित जाति पर कठोर अपराध मॉडल पर आधारित हैं। अनुसूचित जाति पर अत्याचार की रोकथाम के कानुनी उपाय मुख्य रूप से अध्ययन के अन्तर्गत अधिनियम में प्रावधान हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति को पीड़ित होने से बचाने के लिये राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों, में जहाँ इन पर अत्याचार किये जाते हैं, को विशेष निवारक और दण्डात्मक उपाय करने के लिये तथा उन्हें पुनर्वास के लिये पर्याप्त राहत और सहायता प्रदान करने के लिये प्रस्ताव भी संलग्न है। जयसिंह व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य वाद ऐसा प्रथम वाद है जिसमें इस अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौति दी गई थी; राजस्थान राज्य ने इस अधिनियम को वैध एवं संवैधानिक माना; जबकि मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय इससे सहमत नहीं था और इसके विपरीत डॉ. रामकृष्ण बालाथिया बनाम भारत संघ व अन्य ;।प्त् 1995 ैब् 1198द्ध के वाद में कहा कि अधिनियम की धारा 18 संविधान में दिये गये अनुच्छेद 14 एवं 21 का उल्लंघन है, वे न्यायिक एवं निष्पक्ष मानदण्डों के अनुरूप नहीं थे। एक अपील में, सर्वोच्च न्यायालय ने मध्यप्रदेश राज्य व अन्य बनाम रामकृष्ण बालोठिया के मामले में, उपरोक्त निर्णय को खारीज कर दिया और न्यायालय ने माना कि राजस्थान उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा विचार किया गया और माना गया कि 'अस्पृश्यता' की प्रथा और सामाजिक रवैये से सम्बन्धित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुये, जो अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विरूद्ध हो रहे इस प्रकार के अपराधों की ओर जाता है। इस आशंका का आक्चित्य है कि यदि अग्रिम जमानत का लाभ व्यक्तियों को उपलब्ध कराया जाता है तो जिन लोगों पर अपराध किये जाने का आरोप है, उनसे पीड़ित व्यक्ति को डराने धमकाने एवं एक उचित जाँच को ठीक प्रकार से न किये जाने के या रोकने के लिये अग्रिम जमानत पर स्वतंत्रता के दुरूपयोग की सम्भावना है। इस सन्दर्भ में अनुच्छेद 18 को अधिनियम में शामिल किया गया है और इससे संविधान के अनुच्छेद 14 व 21 का उल्लंघन किसी भी तरह नहीं माना जा सकता।

उपसंहार-

संविधान के प्रावधानों, पर्यावरण की समस्याओं, न्यायालयों ने प्रत्येक मामले में संज्ञान लिया है और समाज के प्रत्येक सदस्य के मूल मानधिकारों की रक्षा के लिये विभिन्न निर्णय भी लिये हैं। कार्यपालिका एवं विधायिक के कार्य में न्यायिक हस्तक्षेप केवल इस कारण है के न्यायापालिका कार्यकारी व विधायिका अपने कार्य को ठीक ढंग से करने में सफल नहीं हो पायी हैं। विधानमण्डल एवं कार्यपालिका समाज के लोगों के प्रवृत्ति व महत्वकांशा के प्रति संवेदनशील नहीं है। राजनीतिक कारण भी हैं मतों के लिये राजनीति के अधिक की जाती है, इन स्थितियों में न्यायपालिका की ही एकमात्र राह मिलती है। न्यायपालिका भी लोगों के इस विश्वास को बनाये रखने में सफल रही हैं। न्यायपालिका का सबसे महत्वपूर्ण योगदान समाज में विधि का शासन स्थापित करने में रहा है। न्यायिक रचनात्मकता द्वारा भारतीय परिस्थितियों के अनुसार न्यायिक सक्रियता को वर्तमान में उचित न्याय निर्णयों के कारण से आगे बढ़ा है। न्यायिक सक्रियता ने संवैधानिक उद्देश्य को संवैधानिक योजना के अनुसार प्राप्त करने का प्रयास किया हैं और इस प्रकार से विधि का कार्यान्वयन सनिश्चित किया है।

न्यायिक सक्रियता वयक्तियो की आशा और आकांक्षाओं को महसूस करने एवं विधि के शासन की नींव मजबूत करने का भी प्रयास किया है, जो लोकतंत्र का आधार है। न्यायिक सक्रियता कई मामलों में विधि, कार्यकारी तथा संविधान के द्वारा बनाये गये शून्य को भी भरने में सक्षम हैं। उदारण के लिये, विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के वाद में नयायालय ने किसी भी वैधानिक कानून की अनुपस्थिति में उचित दिशा निर्देश निर्धारित किये। समाज के गिरते सामाजिक मूल्यों के युग में, न्यायपालिका विशेष रूप में भारत के सर्वोच्च न्यायालय अपनी गरिमा बनाये रखने में सक्षम है। फिर भी यहाँ का लोकतंत्र का सबसे का अभी तक इसकी स्थिति मजबूत नही हो पायी है। इसमें कुछ दो मत नहीं है कि भारत में जाँच और सन्तुलन का सिद्धान्त है; न्यायालय की जाँच करने की शक्ति में सफल नहीं हो पायी है। इसका कारण यह है कि कार्यकारी एवं विधायिका दोनों ही अपने कार्य करने में पूर्ण रूप में सफल नहीं हो पायी है और न्यायापालिका की शक्ति उन्हें जाँचने की स्थिति में नही है। उदाहरण के लिये, पिछड़े वर्गो के आरक्षण के वाद में सर्वोच्च न्यायालय आरक्षण घोषित करने के नजदीक ही आ गई थी कि कहा गया कि विधायिका ऐसे बिल नहीं पास कर सकती है जब तक कि देश के उच्च निकायों द्वारा इसकी जाँच नही की जाती है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता की न्यायिक सक्रियता ने मानव अधिकारों की रक्षा में मुख्य भूमिका निभायी है।

जब न्यायालय भी कानून से बाहर जाकर कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है, तब विधायिका कमजोर पड़ जाती है और यह अधिकांश मजबूत राजनीतिक इच्छाश्क्ति के अभाव में होता है या विधायिका में जातिगत व्यवस्था एवं विचार विशेष का स्थान कानून वयवस्था से भी उपर होता है। तब विधायिका विधि का शासन सुचारू रूप में चनाने में असक्षम हो जाती है ऐसी स्थिति में न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता के रूप में अपनी भूमिका का वहन करती है। इसी प्रकार जब कार्यपालिका विधि के अनुसार कार्य नहीं कर पाती है या कहा जा सकता है कि जब देश में शासन लोक कलयाणकारी राज्य की अवधारणा को स्थापित करने में सफल नहीं हो पती है तब लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोक की नजर न्यायालयों की ओर जाती है और आम जनता न्याय की उम्मीद करता है तो ऐसी स्थितियों में न्यायिक सक्रियता दिखायी देती हैं।

न्यायालय न तो विधानमण्डल का स्थान ले सकते हैं और न ही कार्यपालिका का। साथ ही, आज की विशेष परिस्थितियों में न्यायिक अधिनायकवाद का भय दिखाना भी बेमायने है, क्योंकि अन्तत: न्यायपालिका भी तभी सक्रिय रह सकती है और प्रभावी हो सकती है जब तक कि तक कि दूसरे दो अंग उसका आदर करें। न्यायपालिका को भी सावधान रहना होगा और न्यायिक संयम और अनुशासन का कठोरता से पालन करना होगा; जिससे ऐसे आदेश न निकलें और न ही ऐसी स्थिति आये कि आदेशों की अवहेलना होने लगे या न ही उनका पालन ही न हा सके।

References

1. see, Kmiec, Keenan D. (2004) the original and cuurent meaning of judicial activism….
2. see, “An Intellectual History of Judicial Activism” Craig Green, august 2008, pg. no. 4
3. see, Brown Vs Board of Education - 1954 Supreme Court ruling ordering the Desegregation of Public school
4. see, As quoted in”Talking Clause Juriprudence % Muddled, Perhaps; Judicial Activism, No” DF O’Scannlain, Geo, JL & Pub. Pol’y, 2002.

5. See, Hamid Ansari, “Need of balance beeween judiciary and lagislature”, Deccan Herald, 16 March, 2011.
6. see, Bradley . Canon- “Defining the Dimensions of Judicial Activism,” Juddicature, 66.6, 1983
7. see, Kermit Roosevelt, IIIthr Myth ofJudicial Activism: Making Sence of Supreme Court Decision, Yale University Press, 2008ISBn 0-300-12691-3, ISBN 978-0-300-12691-4
8. see, Wallace, Chris; Olson, Theodore (8 August, 2010, “Ted Olson on Debate Over Judicial Activism and Same-Sex Marriage”. Fox News Sunday. Fox News Channzel.
9. see, Matt Sedensky, “Justice questions way court nominees are grilled.” Associated Press, 14 May, 2010, Accessed May, 2010.
10. see, Justice Antonin Scalia’s dissent in Romer Vs. Evan; Romer, governor of colorado, et al. (94-1039), 517 U.S.620(1996).
11. see, Brian Z Tamanaha, beyond the Formalist-Realist Divide: The role of Politics in Judging, Princeton, University Press, 2010.
12. see, Harris, Gardiner (December 11, 2013) “India’s Supreme Court Resdtores an 1861 Law Banning Gay Sex” The New Yark Times.
13. see, Hamid Ansari, “Need to Maintain balance between Judiciary, legislature”, Deccan Heral, 16 March, 2011
14. see, Basant Lal Wadehra, Public Interest Litigation; a Handbook, with Model PIL Formates, 2nd ed. Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd., Delhi, 2009, pg. 144.
15. see, Janta Dal Vs H. S.Choudary, (1992) 4 SCC 305.
16. AIR 1982 SC 143
17. see, Bal Krishna, “Judicial Activism at its Peak”, The Hindustan Times, 26 December 1996 pg. 10
18. see, S. Subhramaniam, 50 years of India’s Independence, Manas Publications, New Delhi 1997, pg. 39.
19. see, Abhinav Chandrachud, “Dialogic, Judicial Activism and India,” The Hindu, 18 July, 2009.
20. AIR 1979SC 1868

चरित्रोपाख्यानः साहित्यिक सौन्दर्य

डॉ० ज्योति कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरू गोविन्द सिंह कॉलेज ऑफ कामर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

गुरू गोबिन्द सिंह प्रणीत 'दशम-ग्रन्थ' में 'चरित्रोपाख्यान' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दशम-ग्रन्थ की सर्वाधिक दीर्घ रचना है। इसमें 404 त्रिया-चरित्र पद्यात्मक कथाओं के रूप में वर्णित हैं। विषय-वैविध्य तो इतना अधिक है कि मानव-जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो कवि के मस्तिष्क से ओझल हुआ हो। भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष दोनों का सुन्दर संयोजन प्रस्तुत कृति में है। ब्रजभाषा में रचित चरित्रोपाख्यान में अनेकशः संस्कृत, पंजाबी, अवधी, खड़ीबोली, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी बखूबी प्रयोग हुआ है। भाषा की प्रभावत्मकता की वृद्धि के लिए कवि ने बीच-बीच में अनेक मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। 'चरित्रोपाख्यान' पद्यात्मक आख्यान होने के कारण इसमें मुख्य रूप से अभिधा शब्द-शक्ति का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। 'गुण' की दृष्टि से 'ओज गुण', 'माधुर्य गुण' और 'प्रसाद गुण' तीनों गुणों की सुन्दर नियोजना है। कृति में अलंकार भी स्वाभाविक रूप से स्वयंमेव ही गुम्फित होते चले गए हैं। गुरू गोबिन्द सिंह जी को शब्दों की क्रीड़ा अधिक प्रिय रही है। अनुप्रास के अतिरिक्त पुनरूक्ति-प्रकाश, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, व्यतिरेक, अतिश्योक्ति आदि अनेक अलंकारों का प्रभावशाली व सशक्त प्रयोग कृति में हुआ है। वास्तव में दशमेश जी में वर्णन की अद्‌भुत क्षमता थी।

बीज शब्द- चरित्रोपाख्यान, गुरू गोबिन्द सिंह, रीतिकाल, भाषा, अलंकार, गुण

भूमिका

'चरित्रोपाख्यान' के प्रणेता गुरू गोबिन्द सिंह जी का रीतिकाल में अन्यतम स्थान है। वे कवि, योद्धा, दार्शनिक, समाज-सेवी, धर्मपरायण, प्रभु-भक्त एवं साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण काव्यों की सर्जना की किन्तु अत्यंत खेद का विषय है कि गुरू गोबिन्द सिंह और उनके दरबारी कवियों ने पंजाबी और ब्रजभाषा में जो अनगिनत रचनाएँ लिखी थीं, जो 'विद्यासागर' या 'विद्यासर' नामक जिस विशालकाव्य ग्रन्थ में संग्रहित थीं; वह ग्रन्थ आनन्दपुर खाली करते समय सिरसा नदी की वेगवती धारा में बह गया। वर्तमान समय में गुरू गोबिन्द सिंह जी की निम्नोक्त उपलब्ध रचनाएँ 'दशम-ग्रन्थ' में संकलित हैं- 1. जापु जी; 2. अकाल-स्तुति; 3. विचित्र-नाटक; 4. चण्डी-चरित्र (उक्ति-विलास); 5. चण्डी-चरित्र (द्वितीय); 6. वार भगउती जी की (चण्डी दी वार); 7. ज्ञान-प्रबोध; 8. चौबीस अवतार; 9. महंदी मीर; 10. ब्रह्मावतार; 11. रूद्रावतार; 12. स्फुट पद और सवैये; 13. शस्त्र नाम माला; 14. चरित्रोपाख्यान; 15. जफरनामा; तथा 16. हिकायतें। इनमें से 'विचित्र-नाटक' गुरू जी की आत्मकथा है। जापु, अकाल-स्तुति और स्फुट पद और सवैये विशुद्ध भक्तिपरक रचनाएँ हैं। शेष रचनाएँ प्रायः पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं। इनमें से एक रचना पंजाबी की है और एक फारसी की। शेष समस्त रचनाएँ ब्रजभाषा की हैं। ब्रजभाषा रचनाओं में युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का पूरा प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है।

आलेख

दशम-ग्रन्थ की समस्त रचनाओं में 'चरित्रोपाख्यान' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह दशम-ग्रन्थ की सर्वाधिक दीर्घ रचना है जिसमें 404 त्रिया-चरित्र पद्यात्मक कथाओं के रूप में अंकित हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख मिलता है

कि जब गुरू गोबिन्द सिंह जी आनंदपुर में अनेक सिद्धों, सन्यासियों, साधुओं, वैरागियों की परख कर रहे थे तो उस समय अपूर्व सुन्दर रानियाँ भी वहाँ गई। वे गुरू जी की ओर आकृष्ट हो गई, किन्तु गुरू जी ने उन्हें सद्उपदेशों द्वारा सुमति दी और 'सिक्खों' को 'त्रिया-चरित्र' से बचाने के लिए तथा उनके मार्ग-प्रदर्शनार्थ इस ग्रन्थ की रचना की।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कृति में कवि ने तत्कालीन लोगों के भ्रष्ट आचरण की भर्त्सना करते हुए उचित नैतिक मूल्यों की पुन:स्थापना भी की है। इसमें यथा तथ्य चरित्रों के दिग्दर्शन द्वारा उन्होंने सर्व साधारण को आदर्श स्वरूप की ओर प्रवृत्त करने का सफल प्रयत्न भी किया है। अन्तिम कथा में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि इसको सुनने से गूंगे को भी आनन्द और मूढ़ को भी चतुरता की प्राप्ति होती है-

सुनै गुंग जो याहि सु रसना पावई।।
सुनै मूढ़ चित लाइ चतुरता आवई।।

1-404/404

चरित्रोपाख्यान में विषय-वैविध्य इतना अधिक है कि मानव-जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो कवि के मस्तिष्क से ओझल हुआ हो। रचना का उद्देश्य, उसके प्रभाव की एकात्मकता, घटनाओं का संयोजन, विविध कोटि के पात्रों का चरित्र-चित्रण सभी का मणिकांचन संयोग है। भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष का सुन्दर समंजन है।

भाषा-शैली

अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करने का प्रधान साधन भाषा है। भाषा के माध्यम से ही कोई लेखक अथवा रचनाकार अपने भावों को दूसरे तक प्रेषित कर पाने में सफल हो पाता है। काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना सशक्त भाषा द्वारा ही संभव है। भाव यदि कविता की आत्मा है तो भाषा कविता का शरीर। श्रेष्ठ काव्य रचना के लिए दोनों का संतुलित सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है।

गुरू गोबिन्द सिंह जी के समय साहित्यिक क्षेत्र में प्राय: ब्रजभाषा में काव्य-रचना की जाती थी। गुरू जी ने भी अपने काव्य की रचना ब्रजभाषा में ही की। प्रत्येक भाषा का मूलाधार है उसमें प्रयुक्त शब्द। शब्द चार प्रकार के स्वीकार किए गए हैं- तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी। 'चरित्रोपाख्यान' में चारों प्रकार के शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। डॉ. महीप सिंह के अनुसार, ''गुरू गोबिन्द सिंह की भाषा में पूर्ववर्ती भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश), समकालीन देसी भाषाओं (पंजाबी, अवधी, खड़ीबोली) और समकालीन विदेशी भाषाओं (अरबी, फारसी और तुर्की) के शब्दों का बहुविधि प्रयोग प्राप्त होता है।''

देशी भाषा के शब्दों के प्रयोग के अन्तर्गत मुख्यत: कवि ने पंजाबी शब्दों का ही प्रयोग किया है। कुछ छन्द तो शुद्ध पंजाबी भाषा के भी हैं। यथा-

श्वेतता बिभूत अते मेखुली निमेख संदी,
अंजन दी सेली दा सुभाव सुभ भाखणा।
भगवा सु भेस साडे नैना दी ललाई सईयो,
यारां दा धियानु ऐहो कंद मूल चाखणा।।

1-12/6

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

भाषा को अधिक आकर्षक बनाने और सुसज्जित करने के लिए प्राय: मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से भावों की प्रभावात्मकता की भी वृद्धि होती है। 'चरित्रोपाख्यान' कवि द्वारा रचित पद्यात्मक कथाओं का संकलन है। इसमें मुहावरों का प्रयोग अधिक हुआ है। लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है, किन्तु अत्यल्प। कुछ मुहावरे उदाहरणवत् प्रस्तुत हैं-

1. सिर धरि पाऊं। 1-6/6
2. घास दांत गहि। 1-26/10
3. चादर की लज्जा तै राखी। 1-302/11

4. बार न बांकयो एक। 1-66/26
5. जो विधना मसतक लिखा, अंत तैसियो होय। 1-245/44

शब्द-शक्ति

शब्द का अर्थ-बोध कराने वाली शक्ति- शब्द-शक्ति। शब्द-शक्तियाँ तीन स्वीकार की गई हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। 'चरित्रोपाख्यान' पद्यात्मक आख्यान होने के कारण मुख्यत: अभिधा शब्द-शक्ति सम्पन्न ही है। लक्षणा शक्ति का चमत्कार एक-दो स्थलों पर अलंकार चित्रण में अथवा मुहावरों के रूप में ही दिखाई पड़ता है। व्यंजना शब्द-शक्ति का तो प्राय: अभाव ही है। अभिधा शब्द-शक्ति के कुछ स्थल उदाहरण स्वरूप उद्धृत हैं-

सुनहु नृपति इक कथा उचरिहौ।
तुमरे चित्त को भरमु निवरिहौ।
त्रिय चरित्र इक तुमै सुनैहो।
ताते तुम कह अधिक रिझैहौ।।

1-34/1

एक दिवस रानी लै ता कौ तह गई, निजु करि असि गहि वहि मूंड काटत भई।
सीस काटि शिव ऊपर दयो चडाइकै, हो रोवत नृप प्रति आपु उचार्यो आयकै।।

लक्षणा शब्द-शक्ति के उदाहरण स्वरूप निम्नोक्त स्थल प्रस्तुत है-

सुनत बचन बीरान के, चित मै भयौ अनंद।
मथि समुद्र दल पाय है, आजु कुअरि मुख-चंद।।

1-52/14

लक्षणा शब्द-शक्ति का ही एक और उदाहरण देखिए-

मेरू कियो तृण ते मुहि जाहि,
गरीब-निवाज न दूसर तोसौ।।

1-1/47

यहाँ गुरू जी अपने आराध्य देव से प्रार्थना कर रहे हैं कि मुझ तिनके जैसे जीव पर कृपा करके पर्वत सदृश बना दो। यहाँ तिनके से पर्वत बना देने का लाक्षणिक अर्थ दीनहीन एवं तुच्छ व्यक्ति को बलशाली एवं महान बना देना है।

गुण

गुण मुख्यत: तीन स्वीकार किए गए हैं- माधुर्य, ओज एवं प्रसाद। 'चरित्रोपाख्यान' सामाजिक कहानियों का पुंज होने के कारण मुख्य रूप से प्रसाद गुणात्मक रचना है; किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इसमें माधुर्य एवं ओज गुण का अभाव है। श्रृंगारिक, करूण एवं शान्त वर्णनों में माधुर्य रस की स्थिति है तथा युद्ध-वर्णन आदि के अन्तर्गत ओज गुण स्पष्ट परिलक्षित होता है।

ओज गुण

'चरित्रोपाख्यान' में जो चरित्त वीरत्व भावना से समन्वित हैं, उनमें वर्णित युद्ध वर्णनों के अन्तर्गत ओज गुण युक्त अनेक वर्णन उपलब्ध हो जाते हैं। यथा-

महा कोप कै-कै हठी दैत गाजै।
उठे बांधि बानान बांके बिराजै।

लए सूल सैथीन आछे सुहावै।
बियो कौन जोधा जु ताको दबावै।।

1-120/13

उपर्युक्त उद्धरण में कर्कश ध्वनियों का तो प्रयोग हुआ ही है साथ ही साथ इस पद्यात्मक अंश को पढ़ते ही मन में एक ओज अथवा तेज का संचार हो जाता है, चित्त दीप्त हो उठता है। इसी प्रकार ओज गुण का एक और सशक्त उदाहरण द्रष्टव्य है-

चटपट सुभट बिकट कटि गए।
केते करी करन बिनु भए।।
टूटे रथ कूट भट डारे।
नाचे भूत प्रेत मतवारे।।

1-52/31

माधुर्य गुण

माधुर्य गुण के उदाहरण प्रस्तुत कृति में अनेक स्थलों पर है। जिन कथाओं मे नायक-नायिका का मिलन होने के कारण श्रृंगार रस का भाव है एवं जहाँ धार्मिक कहानियाँ होने से भक्ति रस के कारण निर्वेद भाव अथवा जहाँ शांत रस का भाव है, वहाँ माधुर्य गुण युक्त सुन्दर वर्णन है। यथा-

मेरू करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसौ।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपुन भूलनहार कहूं कोऊ मो सौ।।
सेव करै तुमरी तिन कै छिन मै धन लागत धाम भरोसो।
या कलि मै सभ कालि कृपान को भारी भुजान को भारी भरोखो।।

1-1/47

उपर्युक्त उद्धरण माधुर्य गुण का सुन्दर उदाहरण है। इसमें कर्कश ध्वनियों का अभाव, समासों का अभाव एवं कोमल वर्णो का प्रयोग किया गया है।

प्रसाद गुण

प्रसाद गुण की स्थिति सरलता एवं स्पष्टता में स्वीकार की गई है। 'चरित्रोपाख्यान' अभिधात्मक कृति होने के कारण सरल कृति है, इसलिए इसमें प्रसाद गुण की स्थिति तो विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। और फिर जहाँ सुनते ही अर्थ समझ में आ जाए वहीं प्रसाद गुण है। इसकी स्थिति किसी विशेष रस में न होकर, सभी रसों में यह व्याप्त रहता है। यही कारण है कि 'चरित्रोपाख्यान' में प्रसाद गुण अनेकशः दिखाई पड़ता है। एक उदाहरण देखिए-

राज सिंह राजा इक रहई।
बीर कला रानी जग कहई।।
तासौ नेह नृपति को भारो।
जानत भेद देस इह सारो।।

1-159/1

उपर्युक्त उद्धरण को पढ़ते ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है, वर्णन चित्त में व्याप्त हो जाता है और हृदय में एक सरलता, स्वच्छन्दता का संचार होता है। प्रसाद गुण का ही एक और उदाहरण देखिए-

क्रिसन क्रिसन मुख ते कहै, छोरि धाम को काम।
निसदिन रटत बिहंत ज्यौं, जगनायक को नाम।।

1-80/4

स्पष्ट है कि 'चरित्रोपाख्यान' में तीनों गुणों की सुन्दर नियोजना है।

अलंकार

अलंकार काव्य के शोभा कारक धर्म हैं। प्राय: प्रत्येक कवि अपने काव्य को अलंकारों से गुम्फित कर सज्जित करने का प्रयत्न करता है। गुरू गोबिन्द सिंह जी कुशल योद्धा होने के साथ-साथ कुशल कवि भी थे। यद्यपि गुरू जी ने 'चरित्रोपाख्यान' का प्रणयन अपने शिष्यों को त्रिया-चरित्र से बचाने के लिए एवं परस्त्री गमन से हटाने के लिए किया है तथापि काव्य की सर्जना करते हुए बीच-बीच में अनायास ही अनेक अलंकारों का संयोजन होता चला गया है। गुरू गोबिन्द सिंह जी का काव्य सीधा, सपाट, सरल काव्य मात्र नहीं है अपितु अलंकार छटा से सुनियोजित काव्य है।

अलंकार दो प्रकार के स्वीकार किए गए हैं- शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। जहाँ शब्द के कारण चमत्कार हो वहाँ शब्दालंकार और जहाँ अर्थ के कारण चमत्कार हों वहाँ अर्थालंकार होता है। 'चरित्रोपाख्यान' के प्रणेता गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपने प्रस्तुत काव्य में शब्दगत एवं अर्थगत दोनों ही प्रकार के चमत्कार प्रस्तुत किए हैं; किन्तु शब्दों की क्रीड़ा उन्हें अधिक प्रिय रही है। शब्द क्रीड़ा के अन्तर्गत भी अनुप्रास अलंकार के प्रति कवि का विशेष मोह दिखाई पड़ता है। 'चरित्रोपाख्यान' की प्राय: प्रत्येक पंक्ति एक शब्दगत लय एवं संगीत की गूंज हृदय पर छोड़ जाती है। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

1. जंग जगे रन रंग सभै अरिधंग करे भट कोटि दुसीले। 1-1/24
2. साल तमाल बडे जह ब्याल निहाल तिनै बहुधा बिललै हैं।
   तूं सुकुमारि करी करतार सु हारि परे तुहि कौन उठै हैं।। 1-81/64
3. न्हान खान अरु दान हित, दिन दिखि जगि है राज।
   दुजन दलन दीनो धरन, दुष्टन दहिबे काज।। 1-17/10

गुरू गोबिन्द सिंह जी ने प्राय: सवैया छन्द में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग अधिक किया है। कहीं-कहीं तो पूरे छन्द में ही एक वर्ण की आवृत्ति करके उन्होंने अद्भुत चमत्कार का प्रदर्शन किया है। यथा निम्न सवैये में 'ह' वर्ण की अनेकश: आवृत्ति उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करती है-

सवैया-

हांकि हजार हिमालय सो हल काहनि कै हठवारन हूंके।
हिंमति बांधि हिरौ लहि लौ कर लै हथियार हहा कहि ढूकै।।
हालि उठयो गिर हेम हलाचल हेरत लोग हरी हर जूके।
हारि गिरे बिन हारे रहे अरू हाथ लगे अरि हासी हनूं के।।

1-2/15

गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपने काव्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अनेकश: अनेक शब्दों को दोहरा कर पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार की सुन्दर सृष्टि की है। कुछ स्थल उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं। यथा-

1. घर घर चाचरि खेल ही घर घर गैयहि गीत।
   घर घर होत मृदंग धुन घर घर नचत संगीत।। 1-30/7
2. इन अगंम कोऊ जान न पावै।। डह डह डह शिव डमरू बजावै।।
   कह कह कहूं कालिका कहकै।। जानुब धुजा काल की लहकै।। 1-52/33

गुरू जी ने कहीं-कहीं शब्दगत चमत्कार को उत्पन्न करने के लिए किसी-किसी छन्द में एक ही शब्द का एक से अधिक बार प्रयोग किया है किन्तु प्रत्येक बार उसका अर्थ अलग है। ऐसे स्थलों पर यमक अलंकार का सन्निवेश है।

यथा

एक दिवस श्री इन्द्र जू, हर घर कियो पयान।
महारूद्र कौ रूद्र लखि, चिंत बढी अप्रमान।।

1-120/1

उपर्युक्त दोहे में पहले रूद्र से तात्पर्य शिवजी से और दूसरे रूद्र से तात्पर्य क्रोधित होने से है। इसी प्रकार निम्न दोहे में-

सुनु अबला मै आपने, करत न हिय मै रोसु।।
जार जोरि भजि भजि गयो, तेरो कछु न दोसु।।

1-171/12

इसमें पहले भजि से तात्पर्य भोग करना तथा दूसरे भजि से तात्पर्य है भागना।

जहाँ एक ही बार प्रयुक्त शब्द के दो अर्थ निकले वहाँ श्लेष अलंकार होता है। 'चरित्रोपाख्यान' के प्रणेता गुरू गोबिन्द सिंह जी ने प्रस्तुत काव्य में अनेक श्लिष्ट प्रयोग किए हैं। यथा-

मांजार इह ठां इक आयो। तम कौ हेरि अधिक डर पायो।।

1-115/17

पति की अनुपस्थिति में पत्नी का यार उससे मिलने के लिए आता है। जब पति घर आता है तो उसे कुछ शक होता है। अत: वह अपनी पत्नी से पूछता है कि कौन आया था? तब पत्नी ने उत्तर दिया 'मांजार'। यहाँ मांजार के दो अर्थ हैं- बिलौटा और (मां-जार) मेरा यार। स्पष्ट है कि गुरू जी ने अपने काव्य में अनेकश: सुन्दर श्लिष्ट शब्दों का भी प्रयोग किया है।

अर्थालंकारों के अन्तर्गत भी कवि ने अनेक सुन्दर अर्थगत चमत्कारों की सृष्टि की है। गुरू जी ने अपने काव्य चरित्रोपाख्यान में अनेक सुन्दर उपमाओं को संजोया है। गुरू गोबिन्द सिंह जी द्वारा नियोजित उपमाओं ने काव्य में एक नया प्राण फूंक दिया है। कुछ उपमाएँ इस प्रकार हैं-

1. तिही नगर मै अति चतुर, हुतो पुत्र इक भूप।
   बल गुन बिक्रम इन्द्र सम, सुन्दर काम सरूप।। 1-5/9
2. चढ़ी चंडिका चंड ह्वै, तपत तांब्र से नैन।
   मत्त भई मदिरा भए, बकत अटपटे बैन।। 1-1/30

कहीं-कहीं पर तो गुरू गोबिन्द सिंह जी ने एक छन्द में ही अनेक उपमाओं की सर्जना कर मालोपमा के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। यथा-

चिंता जैसो चंदन चिराग लागै चिता सम,
चेटक से चित्र चारू चौपखां कुसैल सी।।
चिता जैसे चीर चपला सी चितवन लागै,
चीरबे सी चौपखां सुहातु न रूचौल सी।।
चंगुल सी चौप सर चाप जैसो चामीकर,
चोट सी चिनौत लागै सीरी लागै सैल सी।।
चटक चुपेट सी लगत बिना चिंतामनि,
चाबुक से चोर लागै चांदनी चुरैल सी।।

1-12/17

गुरू गोबिन्द सिंह जी ने चरित्रोपाख्यान में अनेक सुन्दर रूपकों की योजना भी की है। यथा-

1. प्रथम ध्याय श्री भगवती, बरनौ त्रिया प्रसंग।।
   मो घट मै तुम ह्वै नदी, उपजहु बाक्-तरंग।। 1-1/46

प्रथम अध्याय में ही गुरू गोबिन्द सिंह ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं कि मैं पहले भगवती देवी की अराधना करने के उपरान्त त्रिया-चरित्र का वर्णन करूंगा। अत: हे ईश्वर तुम मेरे हृदय में नदी के समान प्रवाहित होकर वाणी रूपी तरंगों को उत्पन्न करो।

2. सुनत बचन बीरान कै, चित्त मै भयौ अनंद।।
   मथि समुंद्र दल पाय हौ, आजु कुअरि मुख चंद।। 1-52/14

वीरों के वचन सुनते ही वह मन में बहुत प्रसन्न हुए यह सोचकर कि मैं आज शत्रुओं की सेना रूपी समुद्र का मंथन करके राजकुमारी के मुख रूपी चन्द्रमा को प्राप्त करूंगा।

उत्प्रेक्षा अलंकार भी कवि का विशेष प्रिय अलंकार रहा है। जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा में प्राय: 'जनु', 'जानो', 'मनु', 'मानो' आदि वाचक शब्दों के रूप में आते हैं। अनेक नवीन कल्पनाएँ करते हुए गुरू गोबिन्द सिंह ने अपने काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का बहुत अधिक प्रयोग किया है। ये कहीं युद्ध-वर्णन से संबंधित है, कहीं सौन्दर्य-वर्णन से तो कहीं काल अथवा ईश्वर की स्तुति में ही कवि ने कोई नवीन कल्पना कर डाली है। यथा-

1. दुहूं और ते सूर सैना उमगै।
   मिलै जाय जमुना मनौ धाय गंगै।। 1-91/48
2. मैंगल सिंघ राव इक रहई।। रघुबंसी जाको जग कहई।।
   ताके भवन एक बर नारी।। जनु बिधि अपन करन गढि डारी।। 1-64/1

गुरू जी ने चरित्रोपाख्यान में विभावना अलंकार का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया है। जहाँ कारण के बिना या कारण के विपरीत कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाए, वहाँ विभावना अलंकार होता है। यथा-

अधिक रूप बेगम निरखि, रीझि रहै मृग कोटि।।
गिरे मूरछना ह्वै धरनि, लगे बिना सर चोटि।।
1-48/12

बेगम के अतुलनीय रूप को देखकर मृग भी मोहित हो गए और पृथ्वी पर बिना तीर की चोट के ही मूर्च्छित होकर गिरने लगे।

कवि ने अतिश्योक्ति अलंकार का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। यथा-

1. भांति भांति मारू बजे, मंडे सुभट रन आय।
   अमित बान बरछा भए, रहत पवन उरझाय।। 1-2/12

भांति-भांति के वाद्ययंत्र बजने लगे और अनेक कुशल योद्धाओं ने रण में भाग लेना प्रारम्भ किया। बाणों की वर्षा सी होने लगी और वे सभी बाण पवन में उलझ कर रह गए। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिए-

2. टांक तोल तन ना रह्यो, मासा रह्यो न मास।
   बिरहिन कौ तीनो भले, हाड चाम अरू स्वास।। 1-91/25

विरहिणी का प्रिय के विरह में चार तोले भी तन का भार नहीं रह गया और मास भी कम होते-होते एक मासा तक भी नहीं रह गया।

व्यतिरेक अलंकार उपमेय की उपमान से अधिकता या न्यूवता सूचित करता है। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपने काव्य में अनेक बार व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग किया है। यथा-

कंक नाम दिजबर इक सुना। पढे पुरान शास्त्र बहु गुना।।
अति सुंदर तिह रूप अपारा। सूर लयो जाते उजियारा।।
1-27/1

बंक नाम का ब्राह्मण अत्यंत विद्वान एवं सुन्दर था यहाँ तक कि सूर्य भी उसी से ज्योति ग्रहण करता था। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने संदेह अलंकार का भी अनेकश: अपने प्रस्तुत काव्य में प्रयोग किया है। यथा-

मनौ आपु लै हाथ ब्रह्मै बनाई।।
किधौ देव जानी किधौ मैन जाई।।
1-20/5

स्पष्ट है कवि ने प्रस्तुत कृति में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों दोनों का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है। अलंकारों का प्रयोग सप्रयास नहीं है अनायास स्वाभाविक रूप से ही अलंकार कृति में गुम्फिल होते चले गए हैं। अलंकारों के प्रयोग से पद्य सप्राण हो उठा है।

प्रसिन्नी सहगल का इस विषय में मत है कि ''जिस युग में ये रचना कर रहे थे उसमें काव्य में अलंकारों का अत्यधिक आश्रय लिया जाता था जिससे उसकी स्वाभाविकता नष्ट होकर केवल शिल्पगत चमत्कार प्रधान हो गया था। परन्तु दशमेश जी ने अलंकारों का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि, व्यंजकता, ध्वन्यात्मकता तथा अभिव्यक्ति को सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिए ही किया है।''

वास्तव में दशमेश जी में वर्णन की अद्‌भुत क्षमता थी। वे सच्चे व सशक्त कवि कहलाने के अधिकारी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 1-404/404 -दशमग्रन्थ - चरित्रोपाख्यान - चरित्र संख्या - 404, छन्द संख्या-404। उपरिलिखित सभी सन्दर्भ इसी विधि से हैं।
2. गुरू गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृष्ठ-324 — डॉ. महीप सिंह, नेशनल पब्ब्शिंग हाउस, दिल्ली।
3. गुरू गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, पृष्ठ-285 — डॉ. प्रसिन्नी सहगल, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ।
4. गुरू गोबिन्द सिंह जीवन और दर्शन — (संपा.) नारायण भक्त, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
5. गुरूमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य — डॉ. हरिभजन सिंह, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली।
6. सिक्ख गुरूओं क पुण्य स्मरण — हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. सिख इतिहास (पंजाबी में) — करतार सिंह, शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर।
8. श्री गोबिन्द सिंह जी दी शबदि मूरति (पंजाबी में) — रणधीर सिंह, शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर।

आतंकवाद के कारक के रूप में भूमंडलीकरण: एक अवलोकन

डॉ० आलोक वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, जयप्रकाश विश्वविद्यालयए छपरा, बिहार

सारांशः-

वैश्वीकरण ने आज पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया है और यह सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यकमों का निर्धारण कर रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में देशों के बीच तकनीकी, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विकास के मुद्दों का व्यापक आदानप्रदान होता है, लेकिन कई देशों द्वारा इसे अपनी संप्रभुता के लिए खतरा भी माना जाता है। एक ओर, विभिन्न देशों के बीच वैश्वीकरण कई क्षेत्रों में बड़ी राहत और लाभ लाता है, दूसरी ओर, वैश्वीकरण अपने साथ ऐसे जोखिम भी लाता है जिनके दीर्घकालिक और गंभीर परिणाम होते हैं। वैश्वीकरण के विकास के साथ, दुनिया के लिए चुनौतियाँ बढ़ गई हैं जिससे उनका सामना करना और अधिक कठिन हो गया है। वैश्वीकरण के माध्यम से विकसित हुई बड़ी चुनौतियों में से एक आतंकवाद का उदय है। इस लेख में वैश्वीकरण के माध्यम से आतंकवाद के उदय और उन्नति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक तरीकों के माध्यम से, यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि कैसे वैश्वीकरण ने विश्व स्तर पर आतंकवाद के उदय और प्रसार को जन्म दिया है।

भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था को संसार की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना है। वस्तुओं, सेवाओं, व्यक्तियों और सूचनाओं का राष्ट्रीय सीमाओं के आरपार स्वतंत्र रूप से संचरण ही वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण कहलाता है। भूमंडलीकरण की शुरुआत भारत में सन 1991 में अपनाई गई नई आर्थिक नीति से भूमंडलीकरण की शुरुआत हुई।

भूमंडलीकरण का आशय विभिन्न देशों के बाजारों एवं उनमें बेची जाने वाली वस्तुओं में एकीकरण से है। जिसमें विदेशी व्यापार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, उन्नत प्रौद्योगिकी की निकटता आदि के कारण विश्व व्यापार को बढ़ावा मिलता है। भूमंडलीकरण से सम्पूर्ण विश्व में परस्पर सहयोग एवं समन्वय से एक बाजार के रूप में कार्य करने की शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं को एक देश से दूसरे देश में आने एवं जाने के अवरोधों को समाप्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार से सम्पूर्ण विश्व में बाजार शक्तियां स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगती हैं। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप विश्व के सभी देशों में वस्तुओं की कीमत लगभग समान होती है। सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था में सभी व्यापारिक क्रियाओं का अन्तर्राष्ट्रीकरण ही भूमंडलीकरण के स्वरूप का निर्धारण करता है द्य भूमंडलीकरण के माध्यम से विभिन्न देशों के बीच की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन, उपभोक्ता की अभिरूचि, जीवन शैली, और मांग में बदलाव लाना भूमंडलीकरण का प्रमुख उद्देश्य रहा है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से बाजार में आंतरिक एवं बाह्य प्रतिस्पर्धा को तेजी से बढ़ाने के लिए एक से अधिक देशों की अर्थव्यवस्था को एक स्वतंत्र व्यापार की संबंधता से जोड़ना रहा है। भूमंडलीकरण का सबसे प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि विश्व की अर्थव्यवस्था पद्धति में एक ऐसी प्रक्रिया को अपनाया जाय जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को सुनियोजित तरीके से स्वतंत्र व्यापार संतुलन बनाया जा सके। विश्व के सभी देश एक मुक्त व्यापार संगठन की प्रक्रिया में भाग ले सकें। भूमंडलीकरण के कारण विकसित एवं विकासशील देशों के साथ एक सामंजस्य की स्थिति को लेकर सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक प्रक्रिया में एक विवाद की समस्या बनी हुई है।

आतंकवाद एक प्रकार की हिंसात्मक गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो कि अपने आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की क्षतिपूर्ति के लिए गैर-सैनिक अर्थात् नागरिकों की सुरक्षा को भी निशाना बनाते हैं। गैर-राज्य कारकों द्वारा किए गए राजनीतिक वैचारिक या धार्मिक हिंसा को भी आतंकवाद की श्रेणी का ही समझा जाता है। अब इसके तहत गैर कानूनी हिंसा एवं युद्ध को भी शामिल कर लिया गया है।

पिछले एक दशक में पूरे विश्व में आतंकवादी घटनाओं में बढ़ोत्तरी हुई है। 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका के न्यूयॉर्क स्थित वर्ल्ड ट्रेड सेंटर एवं 26 नवम्बर 2008 को मुंबई में हुआ आतंकी हमला आतंकवाद के बढ़ते प्रभाव को दर्शाता है। वैसे तो आज लगभग पूरा विश्व ही आतंकवाद की चपेट में हैं किन्तु भारत दुनियाभर में आतंकवाद से सर्वाधिक त्रस्त पड़ोसी देश पाकिस्तान से है। आज आतंकवाद केवल भारत की समस्या नहीं वरन् यह विश्व पटल पर एक गम्भीर समस्या के रूप में देखा जा रहा है। विश्व का आज तक का सबसे बड़ा आतंकवादी हमला अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर का माना जाता है। 11 सितम्बर, 2001 में, विश्व के सबसे शक्तिशाली देश के सबसे ऊँची इमारत पर ओसामा बिन लादेन ने आतंकवादी हमला करवाया था, जिसके चलते लाखों का नुकसान हुआ एवं हजारों-लाखों लोग मलबे के नीचे दब कर मर गए थे। अमेरिका ने अपने सबसे बड़े दुश्मन को बड़े फिल्मी तरीके से मारा था। ओसामा बिन लादेन को मारने के लिए अमेरिका ने एक ऑपरेशन चलाया जिसके तहत वह पाकिस्तान में घुसकर उस मार गिराया गया था। अत: आतंकवाद अपने सबसे क्रूरतम रूप में विश्व को हानि पहुँचा रहा है, इसकी समस्या का निदान तभी हो सकता है, जब सभी राष्ट्र मिलकर इसे पूरी तरह कुचल देने का संकल्प लें, और इसके लिए सही दिशा में कार्य करें।

आतंकवाद के कारक के रूप में भूमंडलीकरण

कई विद्वानों का मत है कि हाल के वर्षों में आतंकवादी हमलों का कारण मुख्यत: भूमंडलीकरण है। बहुत की कम ऐसे आतंकवादी हमले होते हैं जिनमे मुख्य कारक आन्तरिक हो। ज्यादातर घटनाओं में विदेशी कारकों की भूमिका ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। भूमंडलीकरण एक प्रक्रिया है, जो देशों के बीच परस्पर संबंध स्थापित करती है। यदि किसी देश में नागरिकों को यह पसंद नहीं है कि उनके देश के आन्तरिक मामलों में विदेशी हस्तक्षेप हो, तो वे इसे अपनी संस्कृति पर आक्रमण मानते है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न हस्तक्षेप आतंकवाद को बढावा देते है। क्रोनिन का तर्क है कि ''भूमंडलीकरण में कई मर्मज्ञ तंत्र शामिल हैं, जिनका आतंकवादी नेटवर्क द्वारा शोषण किया गया है। विश्व स्तर पर तकनीकी प्रगति ने आतंकवादियों के लिए योजना बनाना और हमलों को अंजाम देना आसान बना दिया है। प्रौद्योगिकी की तीव्र और साथ ही बड़े पैमाने पर प्रगति आतंकवाद के फैलने और उसे अंजाम देने के कारणों में से एक है। आतंक सम्बन्धी विचारों को बढ़ावा देने के लिए इंटरनेट एक उपयोगी उपकरण साबित हुआ है। वेबसाइटों, चौटरूम और सॉफ्टवेयर प्रोग्राम इन विचारों को आसानी से एकीकृत करने की अनुमति देते हैं। ''अधिकांश विश्व के लिए इंटरनेट एक गुमनाम मंच है जो विभिन्न नेटवर्कों के बीच संचार स्थापित करने के लिए दैनिक उपयोगकर्ता प्रदान करता है। ''प्रौद्योगिकी और संचार के क्षेत्र में प्रगति से भूमंडलीकरण की गति में वृद्धि हुई है।'' सोशल मीडिया दुनिया भर के लोगों को जोड़ता है। इसका एक आदर्श उदाहरण इस्लामिक स्टेट ऑफ सीरिया एंड इराक है। उन्होंने अन्य देशों से सैनिकों की भर्ती के लिए इंटरनेट और प्रौद्योगिकी की परस्पर संबद्धता का व्यापक इस्तेमाल किया है। तकनीकी प्रगति के एकीकरण से पहले भी आतंकवाद अस्तित्व में था, लेकिन वर्तमान में तकनीकी प्रगति इसे और अधिक फैलने में मदद कर रहीं है। प्रौद्योगिकी और इंटरनेट के उपयोग का एक अन्य लाभ धन का हस्तांतरण है और सीमाओं के आर-पार संसाधनों ने इसे अधिक सुलभ बना दिया है।इसे आतंकवादियों के लिए सकारात्मकता के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि वे इससे लाभान्वित हो सकते हैं। यह प्रक्रिया देशों के लिए अगर लाभकारी है तो दूसरी तरफ इससे आतंकवादियों को भी फायदा होता है। आतंकवादी इसे अपने विचारों और हमलों का प्रयोग जारी रखने के लिए प्रयोग करते है। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करके आतंकवादी आसानी से और अधिक से अधिक अपने हमलों का समन्वय कर सकते हैं, और लोगों को अपने समूह में भर्ती करने के लिए प्रेरित कर सकते है। इसलिए, ''वे तकनीक का उपयोग करके उन कारणों को बढ़ावा देते है, जिनमें अनिवार्य रूप से हिंसा और आतंक शामिल है।" भूमंडलीकरण का विश्वव्यापी रूप आतंकवाद को उसके लक्ष्यों के विस्तार में सहायता प्रदान करता है। उत्पादन, और सूचना के आदान-प्रदान की तकनीकी प्रगति से आतंकवादी दल भी प्रभावित हुए हैं। चूंकि भूमंडलीकरण, लोगों और देशों के विभिन्न माध्यमों के बीच एक सेतु है, अपने संगठनों में सदस्यों को आकर्षित करने के लिए आतंकवादी समूहों ने इसका भरपूर इस्तेमाल किया है और अपनी संख्या में व्यापक वृद्धि की है। आतंकवादी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का सफलतापूर्वक फायदा उठाते हैं और इसका उपयोग विश्व स्तर पर उपस्थिति को

बढ़ाने के लिए कर रहे है। भूमंडलीकरण जहाँ अत्यधिक विकसित है, वह आर्थिक मंदी को जन्म देता है जिससे हिंसा को बढ़ावा मिलता है। भूमंडलीकरण के प्रभाव के बढ़ने से कुछ देशों में सामाजिक असमानता में वृद्धि होती है। कई शोधकर्ताओं ने कहा है कि आतंकवाद की जड़ें गरीबी और असमानता में पाई जाती है। यदि किसी देश में खराब आर्थिक और सामाजिक कारक हैं तो यह हताशा को जन्म देता है और इससे हिंसा होने की संभावना में वृद्धि होती है। आर्थिक कारक आतंकवादियों को उस देश के शोषित और वंचित जनता की अपनी और आकर्षित करने का मौका देते है। यह विशेष रूप से तब देखा जाता है जब भूमंडलीकरण से देश में तीव्र परिवर्तन होता है। हालांकि, अन्य विद्वानों ने परीक्षण किया है कि क्या आर्थिक भूमंडलीकरण का अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद पर कोई प्रभाव पड़ता है। क्वान ली और ड्र् शॉब ने एक सांख्यिकीय विश्लेषण किया जिसमें उन्होंने 1975-1997 तक 112 देशों के डाटा का उपयोग करके परीक्षण किया। वे देखना चाहते थे कि एक देश के भीतर आतंकवादी हमलों की संख्या के साथ भूमंडलीकरण का क्या संबंध है।अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि ''व्यापार प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पोर्टफोलियो निवेश का कोई प्रत्यक्ष नकरात्मक प्रभाव नहीं है। किसी देश और उसके शीर्ष व्यापारिक साझेदारों के विकास से आतंकवादी घटनाओं की संख्या में कमी आती है।'' दूसरे शब्दों में आर्थिक भूमंडलीकरण का देशों की आतंकवाद की दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इन दो कारकों के बीच एक नकारात्मक महत्वहीन संबंध था। जबकि कुछ विद्वानों का मानना है कि आतंकवाद का सामना करने वाले देश में अर्थशास्त्र एक कारक की भूमिका निभाता है, इस संदर्भ में अल्बर्टो अबाडी ने एक अनुभव जन्य अध्ययन किया। इस अध्ययन में घरेलू और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद दोनों शामिल है। अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला की ''गरीब देशो में भी आतंकवाद की संभावनाएं कम हो जाती है अगर वहां राजनीतिक स्वतंत्रता का स्तर उत्तम हो।" यह दर्शाता है कि देशों की गरीबी दर उनके भीतर आतंकवाद की दरों का आकलन करने का एक अच्छा संकेतक नहीं है। पीटर कुर्रिल्ड- क्लिटगार्ड ने 1996-2002 के बीच अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की घटनाओं के आर्थिक और राजनीतिक कारकों संबंधित एक अनुभवजन्य विश्लेषण किया । अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि ''अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद असमानता, आर्थिक विकास शिक्षा गरीबी धर्म से असंबंधित है ।''

भूमंडलीकरण ने दुनिया भर के देशों को प्रभावित किया है। कुछ देशों को लाभ हुआ और वे इस प्रक्रिया से समृद्ध हुए। अन्य देशों ने इसे नहीं अपनाया। यह देश आतंकवाद से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। आतंकवादी समूह ऐसे राज्य का उपयोग अपने लाभ के रूप में करते हैं और ये उनके लिए आसान लक्ष्य होते है। मध्य पूर्व के देशों ने अपनी राजनीतिक और सामाजिक संरचना के कारण भूमंडलीकरण को तेजी से नहीं अपनाया। भूमंडलीकरण ने या तो इन देशों को कम प्रभावित किया है या बिलकुल नहीं किया है, जबकि विश्व आतंकवाद की जननी ये ही देश रहें है।

भूमंडलीकरण के बारे में सुनते ही सबसे पहले जो बात मन में आती है वह है पश्चिमी संस्कृति का कार्यान्वयन, जबकि भूमंडलीकरण के प्रमुख तत्व उपभोक्तावाद और बाजार पूंजीवाद की वृद्धि है। मध्य पूर्व के कुछ देश इसे विशेष रूप से अपनी मातृभूमि पर हमले के रूप में देखते हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया द्वारा लाए गए परिवर्तनों से उनके जीवन का तरीका बाधित होता है। इनके साथ वे भूमंडलीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो अच्छे से ज्यादा नुकसान करती है। ''उन्हें लगता है कि भूमंडलीकरण सदियों से चली आ रही उनकी संस्कृति और परंपराएं को नष्ट कर देगा''। ज्यादातर समूह जो इससे परेशान हैं वे इसका विरोध करने के लिए आतंकवादी संगठनों से जुड़ जाते है। नेताओं और आतंकवादी संगठनों ने, विशेष रूप से मध्य पूर्व के भूमंडलीकरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका को ठहराया है। यह विचारधारा 9/11 और युद्ध के बीच ओसामा बिन लादेन और अल-कायदा के लिए ऊर्जा का स्रोत थी।

आतंकवाद और भूमंडलीकरण के बीच की कड़ी:

यह स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण और आतंकवाद का एक ऐसा संबंध है जो सह अस्तित्व में है और है वर्षो से विश्व स्तर पर देशों को प्रभावित कर रहा है। भूमंडलीकरण ने बड़े पैमाने पर बदलाव किए है। ''इसने राजनीतिक अशांति, आर्थिक अभाव पैदा किया है, और सामाजिक असमानता, और आबादी के बीच निराशा को जन्म दिया।" लोगों के बीच असंतोष आतंकवादियों के लिए उन्हें उपयोग करने का एक उत्तम उपकरण है। समस्याओं में आर्थिक और सामाजिक मुद्दे का एक बड़ा योगदान देता है जो आतंकवाद के विस्तार को सुगम बनाते है। भूमंडलीकरण ने राजनीतिक और आपराधिक नेटवर्क को भी प्रभावित किया है। इन कारकों में वृद्धि विभिन्न देशों के बीच आबादी को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। भूमंडलीकरण के प्रभाव में मूल्यों और परंपराओं में बदलाव भी किसी भी देश में गंभीर समस्याओं को उत्पन्न करता है। विशेष रूप से अल्प-विशेषाधिकार प्राप्त देशों में नई तकनीकी प्रगति

की शुरूआत मूल्यों और परंपराओं को बदलता है।'' यह कठोर परिवर्तन और उसके अनुकूलन में विफलता, नए मूल्यों और रीति-रिवाजों के अनुकूल होने की इच्छा पर एक बड़ा प्रभाव पड़ता है। जनता की यह अनिच्छा आतंकवाद के विकास का कारण बन सकती है। इतिहास ने दिखाया है कि जब आतंकवाद बढ़ता है तो हजारों लोग पलायन करते हैं या अपने घरों से विस्थापित हो जाते है। भूमंडलीकरण द्वारा लाई गई प्रवासन प्रक्रिया, विभिन्न अल्पसंख्यक समूह को उत्पन्न करती है। यह विस्थापन शिविर आतंकवादियों के लिए सदस्यों की भर्ती करने का एक शानदार तरीका है।

भूमंडलीकरण और आतंकवाद के बीच इस संबंध को बढ़ावा देने वाले कई चर और कारक हैं। इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से प्रभावित हैं और आतंकवादियों के लिए सकारात्मक संबंध साबित होते है। भूमंडलीकरण के इस युग में आतंकवादी गतिविधियों में वृद्धि स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भूमंडलीकरण आतंकवाद को फैलाने में मदद करता है क्योंकि इस विचारधारा के फलस्वरूप आतंकवादियों की भर्ती के लिए नए रास्ते खुलते हैं, वित्तीय संसाधनों तक उनकी पहुंच आसान हो जाती है वर्तमान आतंकवाद भूमंडलीकरण के रुझानों की प्रतिक्रिया हैं। भूमंडलीकरण के कारण विकासशील देश विकसित देशों की सम्पन्नता से परिचित रहते है। वहां के नागरिक नफरत और असंतोष से भरे हुए हैं लेकिन अपनी संस्कृति और परम्परा के नष्ट होने के डर से भूमंडलीकरण को अपनाने से हिचकते है। पिछली शताब्दी में दुनिया का विकास भूमंडलीकरण का परिणाम है। उदाहरण जैसे सीमाओं का खुलना, बाजार सहयोग, देशों के बीच व्यापार, तकनीकी प्रगति और सोशल मीडिया। वैश्विक आतंकवाद विशेष रूप से भूमंडलीकरण के प्रसार से लाभान्वित हुआ है। भूमंडलीकरण और आतंकवाद के बीच का यह अंतर्संबंध, आतंकवाद से लड़ना और भी कठिन बना देता है। यह जानना जरूरी है कि हमेशा ऐसे व्यक्ति और समूह और साथ ही ऐसे देश होंगे, जो कभी भी संतुष्ट नहीं होंगे। असमानता है और हमेशा रहेगी। आतंकवाद दुनिया के लिए हमेशा एक समस्या रहा है और रहेगा। हालांकि समस्या का मुकाबला करने और उन्हें कम करने के लिए आवश्यक उपकरण ढूंढना जरुरी है।

वैश्वीकरण की तीव्र गति से उदय और प्रसार के कारण दुनिया की सुरक्षा और भविष्य की भविष्यवाणी करना लगभग असंभव है। विश्व में जो भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं, वे वैश्वीकरण और इसकी प्रक्रियाओं से जुड़े हैं। नई प्रौद्योगिकियों के विकास और उनकी प्रगति ने हमें कई सुविधायें प्रदान की है। परन्तु अधिकांश सुविधाएं विभिन्न व्यक्तियों और समूहों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग और दुरुपयोग की जाती हैं।यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने उस दुनिया को बदल दिया है जिसमें हम रहते हैं, लेकिन साथ ही साथ उसने दुनिया के लिए नई चुनौतियां और टकराव भी पैदा किये हैं। वैश्वीकरण ने आतंकवाद के उदय को गति और सुविधा प्रदान की है। आतंकवाद ने और आगे बढ़ते हुए अपने दृष्टिकोण और रणनीति को भी बदल दिया और इसके लिए वैश्वीकरण के उपकरणों का भरपूर उपयोग किया है। पिछले 50 वर्षो में समग्र रूप से विश्वव्यापी आतंकवाद के उदय और प्रसार को देखा जा सकता है, जो कि वैश्वीकरण द्वारा लाए गए परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप हुआ है। प्रौद्योगिकी के विकास से आतंकवादी समूहों को लाभ होता है। यह पूरी दुनिया के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। आतंकवाद बाहरी और आंतरिक कई कारकों से प्रभावित और विकसित होता है, जिन्हें पहचानना और रोकना हमेशा मुश्किल होता है।

संपूर्ण विश्व आतंकवाद के खतरे का सामना कर रहा है। आतंकवाद एक वैश्विक युद्ध है जिसकी कोई सीमा नहीं है। आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई हमेशा से पूरे विश्व के लिए एक प्रमुख समस्या रही है और बनी हुई है। इस घटना का मुकाबला करने के लिए देशों के बीच सहयोग और समन्वय अक्सर बहुत सफल नहीं रहा है। वैश्वीकरण के विकास और प्रसार के साथ सुसंगत आतंकवाद अपने हितों को साकार करने के लिए निर्वात का उपयोग कर रहा है। पिछले अनुभवों और ठोस मामलों के आधार पर,यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने आतंकवाद के विस्तार को सुगम बना दिया है।

संदर्भ स्रोतः-

1.Laqueur Walter, The New Terrorism: Fanaticism and the Arms of Mass Destruction, New York: Oxford University Press, 1999
2.Hoffman Bruce, Inside Terrorism, New York: Columbia University Press, 1988
3.Heine J & Thakur, The Dark Side of Globalization, Toyko: United Nations University Press, 2011
4.Hoffman B, Inside Terrorism, New York: Columbia University Press, 2006
5.Gupta Rakesh, A Comparative Perspective on the Causes of Terrorism, International Studies, 35(1), January–March 1998
6.Nassar R Jamal, Globalization & Terrorism, Rowman & Littlefield Publishers, 2009

विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर जीवन शैली के प्रभाव का अध्ययन

प्रोफसर रमाकांती साहू

IASE, बिलासपुर

शोध सारांशः

प्रस्तुत शोध लेख में शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर जीवन शैली के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इसके लिए प्रतिदर्श के रूप में कक्षा ग्यारहवीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया है। अध्ययन संबंधी जीवन शैली के मापन हेतु बावा एवं कौर (2012) तथा सामाजिक परिपक्वता के लिए डॉ. नलिनी राव (2018) संशोधित मापनी का प्रयोग किया गया है। शोध लेख में सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं टी मूल्य की गणना की गई है। अध्ययन से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि कक्षा ग्यारहवीं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के निम्न एवं उच्च समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया। बालकों के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया। बालिकाओं के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया।

मुख्य शब्दः जीवन शैली, सामाजिक परिपक्वता, लिंग भेद

भूमिकाः

वर्तमान समय में भारत में लगातार किशोर विद्यार्थियों की जीवन शैली बदलती दुनिया के साथ-साथ नया मोड़ ले रही है। आज वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण तथा पश्चिमीकरण समाज की आवश्यकताओं को बदल रहे हैं, जिससे जागरूक होकर युवा पीढ़ी और अधिक महत्वाकांक्षी बन रही है, जिसका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव किशोर विद्यार्थियों की जीवन शैली पर पड़ रहा है। एक विद्यार्थी जिस तरह से जीवन जीता है, उसका सीधा प्रभाव उसकी योग्यताओं एवं क्षमताओं पर पड़ता है जिसके आधार पर ही वह जीवन में सफलता प्राप्त करता है। अक्सर देखा जाता है कि विद्यार्थी जिस प्रकार की शैली को अपनाता है वह उसकी संस्कृति, लिंग, पारिवारिक व पर्यावरण आदि से प्रभावित होती है।

पूर्व शोध अध्ययन में शोधार्थी को इससे संबंधित परिणाम प्राप्त हुए जिनमें से थे- हेदारी एवं अन्य (2017) ने अपने शोध में पाया कि अधिकांश विषयों के विद्यार्थी (61.01%) प्रतिशत ने जीवन शैली के मध्यम स्तर को प्रदर्शित किया। पियर्सन के सहसंबंध गुणांक के आधार पर जीवन शैली और शैक्षणिक उपलब्धि ($P=0.03$ and $r=0.628$) के बीच सार्थक सकारात्मक संबंध पाया गया। मित्तल और यतेन्द्र (2017) ने निष्कर्ष में पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला व विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की स्वास्थ्य केन्द्रित जीवन शैली के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। तिवारी (2019) ने कक्षा नवमीं के विद्यार्थियों पर सामाजिक परिपक्वता का अध्ययन विषय पर शोध कार्य किया और निष्कर्ष में पाया कि उच्च माध्यमिक विद्यालय के कक्षा नवमीं के छात्रों की सामाजिक परिपक्वता पर शालाओं के प्रकार का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। दास (2020) ने गोलपारा जिले, असम

के मटिया ब्लॉक के निम्न माध्यमिक विद्यालय के छात्र के बीच सामाजिक परिपक्वता के स्तर पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि लड़के एवं लड़कियों की निम्न सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

अत: प्रस्तुत शोध में शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर उनके जीवन शैली का प्रभाव पड़ता है या नहीं? इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखकर बालक एवं बालिकाओं की सामाजिक परिपक्वता पर उनकी जीवन शैली के प्रभाव को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

प्रकार्यात्मक परिभाषा:

विद्यार्थी: विद्यार्थियों से तात्पर्य शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा ग्यारहवीं के छात्र एवं छात्राओं से है।

सामाजिक परिपक्वता: सामाजिक परिपक्वता का तात्पर्य समाज की परिस्थितियों और संस्कृति के अनुसार कार्य करने और प्रतिक्रिया करने की क्षमता से है।

प्रस्तावित शोध अध्ययन में शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य राव (2018) द्वारा निर्मित सामाजिक परिपक्वता मापनी से है।

जीवन शैली: ''किसी भी बालक, के रहने, जीवन जीने का ढंग जिसमें वह अपने शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण के साथ दैनिक आधार पर समन्वय स्थापित करने की कोशिश करता है, उसकी जीवन शैली कहलाता है।''

अध्ययन के उद्देश्य:

1. शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर जीवन शैली के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. बालकों की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. बालिकाओं की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

चर:

स्वतंत्र चर - जीवन शैली

आश्रित चर - सामाजिक परिपक्वता

परिकल्पनाएँ:

H_{01} शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

H_{02} बालकों की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

H_{03} बालिकाओं की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

विधि:

शोध समस्या की प्रकृति को देखते हुए अनुसंधानकर्ता ने यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया है।

न्यादर्श:

प्रतिदर्श के रूप में कक्षा ग्यारहवीं में अध्ययनरत 140 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया है।

शोध उपकरणः

प्रस्तुत शोध अध्ययन में विद्यार्थियों की जीवन शैली के मापन हेतु बावा एवं कौर तथा सामाजिक परिपक्वता के मापन के लिए राव द्वारा निर्मित प्रमामीकृत मापनी का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय तकनीकः

प्रस्तुत शोध में दो चरों के मध्य प्राप्त अंतर को जानने के लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं 'टी' मूल्य की गणना की गयी है।

निष्कर्ष एवं विश्लेषणः

H_{01} शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

उपर्युक्त परिकल्पना को सत्यापित करने के लिए विद्यार्थियों की जीवन शैली के प्राप्तांको को उच्च एवं निम्न दो समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता की गणना की गई, गणना के पश्चात् मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर "टी" मान द्वारा सार्थकता स्तर ज्ञात किया गया जिसे सारणी क्रमांक 1 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक - 1: विद्यार्थियों के उच्च व निम्न जीवन शैली स्तर आधारित सामाजिक परिपक्वता में अंतर हेतु 'टी' की गणना

(विद्यार्थी) समूह	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	'टी' मूल्य	परिणाम
उच्च	67	255.63	32.90	3.43	सार्थक अंतर हैं
निम्न	72	234.93	38.37		
df = 137 P>0.01					

उपर्युक्त सारणी क्रमांक 1 से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों की जीवन शैली के प्राप्तांक को उच्च एवं निम्न समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता का मध्यमान क्रमशः 255.63 एवं 234.93 है। इसी प्रकार दोनों समूह का प्रमाणिक विचलन क्रमशः 32.90 एवं 38.37 पाया गया। दोनों समूह के मध्यमान में अंतर हैं पर यह अंतर सार्थक है या नहीं, यह देखने हेतु 'टी' मूल्य की गणना की गई। प्राप्त 'टी' मूल्य का मान 3.43 है जो df = 137 पर 0.01 स्तर पर अपेक्षित तालिका मान 2.61 से अधिक है। अतः 'टी' का मान सार्थक है।

परिणामः- अतः हम कह सकते है कि विद्यार्थियों की जीवन शैली का उनके सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव पाया गया। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{01} निरस्त होती है।

विवेचनाः- उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है, कि विद्यार्थियों के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया। क्योंकि बालक एवं बालिकाओं की जीवन शैली का प्रभाव उनके सामाजिक परिपक्वता पर पड़ता है। अतः उच्च जीवन शैली के विद्यार्थियों की तुलना में निम्न जीवन शैली के विद्यार्थियों में सार्थक रूप से अधिक समायोजन क्षमता प्राप्त हुई है।

H_{02} बालकों की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

उपर्युक्त परिकल्पना को सत्यापित करने के लिए बालकों की जीवन शैली के प्राप्तांको को उच्च एवं निम्न समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता की गणना की गई, गणना के पश्चात् मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर 'टी' मान द्वारा सार्थकता स्तर ज्ञात किया गया जिसे सारणी क्रमांक 2 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक - 2: बालकों की उच्च एवं निम्न जीवन शैली स्तर आधारित सामाजिक परिपक्वता के प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण

समूह (बालक)	प्रदतों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	'टी' मूल्य	परिणाम
उच्च	33	262.79	36.29	2.49	सार्थक अंतर हैं
निम्न	37	236.86	50.31		
df = 68 P>0.05					

उपर्युक्त सारणी क्रमांक 2 से ज्ञात होता है कि बालकों की जीवन शैली के प्राप्तांक को उच्च एवं निम्न समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता का मध्यमान क्रमशः 262.79 एवं 236.86 है। इसी प्रकार दोनों समूह का प्रमाणिक विचलन क्रमशः 36.29 एवं 50.31 है। दोनों समूह के मध्यमान में अंतर हैं पर यह अंतर सार्थक है या नहीं, यह देखने हेतु 'टी' मूल्य की गणना की गई। प्राप्त 'टी' मूल्य का मान 2.49 है जो df = 68 पर 0.05 स्तर पर अपेक्षित तालिका मान 2.00 से ज्यादा है। अतः 'टी' का मान सार्थक है।

परिणाम:- अतः हम कह सकते है कि बालकों की जीवन शैली का उनके सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव पाया गया। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{02} अस्वीकृत/निरस्त होती है।

विवेचना:- उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है, कि बालकों के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया। यहॉ पर बालकों की उच्च एवं निम्न जीवन शैली का प्रभाव उनके सामाजिक परिपक्वता पर पड़ता है। अतः उच्च जीवन शैली के बालकों की तुलना में निम्न जीवन शैली के बालकों में सार्थक रूप से अधिक सामाजिक परिपक्वता प्राप्त हुई है।

H_{03} बालिकाओं की जीवन शैली का उनकी सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

उपर्युक्त परिकल्पना को सत्यापित करने के लिए बालिकाओं की जीवन शैली के प्राप्तांको को उच्च एवं निम्न समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता की गणना की गई, गणना के पश्चात् मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर 'टी' मान द्वारा सार्थकता स्तर ज्ञात किया गया जिसे सारणी क्रमांक 3 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक - 3: बालिकाओं की उच्च एवं निम्न जीवन शैली स्तर आधारित सामाजिक परिपक्वता के प्राप्तांकों का सांख्यिकीय विश्लेषण

समूह (बालिका)	प्रदतों की संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	'टी' मूल्य	परिणाम
उच्च	34	248.68	28.06	2.69	सार्थक अंतर हैं
निम्न	35	232.89	19.65		
df = 67 P>0.01					

उपर्युक्त सारणी क्रमांक 3 से ज्ञात होता है कि बालिकाओं की जीवन शैली के प्राप्तांक को उच्च एवं निम्न समूह में विभाजित कर उनकी सामाजिक परिपक्वता का मध्यमान क्रमशः 248.68 एवं 232.89 है। इसी प्रकार दोनों समूह का प्रमाणिक विचलन क्रमशः

28.06 एवं 19.65 है। दोनों समूह के मध्यमान में अंतर हैं पर यह अंतर सार्थक है या नहीं, यह देखने हेतु 'टी' मूल्य की गणना की गई। जो 2.69 पाया गया। प्राप्त 'टी' मूल्य का मान 2.69 है जो df = 67 पर 0.01 स्तर पर अपेक्षित तालिका मान 2.65 से अधिक है। अत: 'टी' का मान सार्थक है।

परिणाम:- अत: हम कह सकते है कि बालिकाओं की जीवन शैली का उनके सामाजिक परिपक्वता पर सार्थक प्रभाव पाया गया। अत: हमारी शून्य परिकल्पना H_{03} अस्वीकृत होती है।

विवेचना:- उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है, कि बालिकाओं के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया। क्योंकि बालिकाओं की जीवन शैली का प्रभाव उनके सामाजिक परिपक्वता पर पड़ता है। अत: उच्च जीवन शैली के बालिकाओं की तुलना में निम्न जीवन शैली के बालिकाओं में सार्थक रूप से अधिक सामाजिक परिपक्वता प्राप्त हुई है।

निष्कर्ष:

कक्षा ग्यारहवीं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के जीवन शैली के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य उनके सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया इसका कारण यह हो सकता है कि आज के समय में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में ज्यादा सामाजिक परिपक्वता पाया जाता है तथा परिणाम यह बताते है कि उच्च समूह की अपेक्षा निम्न समूह में ज्यादा सामाजिक परिपक्वता पाई गई। उसी प्रकार दूसरी परिकल्पना की विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि बालकों के उच्च एवं निम्न समूहों के मध्य सामाजिक परिपक्वता में सार्थक अंतर पाया गया इसका कारण यह हो सकता है कि आज हम अपने अनुभव के आधार पर भी कह सकते है कि बालक चंचल मन वाले होते है, किसी भी काम को जिम्मेदारी के साथ नहीं करते है। देख लेंगे, कर लेंगे इत्यादि कहते है, इसलिए इनकी सामाजिक परिपक्वता में ज्यादा अंतर नहीं मिला है। तीसरी परिकल्पना का निष्कर्ष यह है कि उच्च जीवन शैली के बालिकाओं की तुलना में निम्न जीवन शैली के बालिकाओं में ज्यादा सामाजिक परिपक्वता पाई गई, क्योंकि निम्न जीवन शैली के बालिकाएँ हमेशा किसी भी काम को पूरी सावधानी के साथ करती है। अनुभव के आधार पर भी कह सकते है कि निम्न स्तर के लोग प्रत्येक कार्य को सावधानी के साथ पूरा करते है। प्रत्येंक कार्य में वे परिपक्व होते है। इसलिए निम्न समूहों में अधिक सामाजिक परिपक्वता पाई गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

Bajaj, S. & Saluja, A. (2018). Study of Gender difference in Interpersonal Attraction and

Life Style among Couples, *Journal of Exercise Science & Physiotherapy*, 14 (2), 31-35, https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1163278.pdf

Das, S.R. (2020). Study on the level of Social Maturity among the lower Secondary School

Students of Matia Block of Goalpara District, *Assam, MSSV Journal of Humanities and Social Sciences*; 3(2): 1-15,https://www.mssv.co.in/ Journal/ Vol 3no2 /Smriti%20Rekha%20Das.pdf

Heidari, M., et al (2017). Relationship of Lifestyle with Academic Achievement

in Nursing Students, *Journal of Clinical and Diagnostic Research*, 11, (3), 01-03

https://www.utsc.utoronto.ca/~phanira/WebResearchMethods/lifesat%26studentperf -aomle.pdf

मित्तल, कविता और कुमारी यतेन्द्र (2017) उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों की जीवन शैली पर अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल आफ एप्लाईड रिसर्च, 3(7), 137-141

राय,पारसनाथ (1999)-"न्यादर्श तथा अनुसंधान परिचय", आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पृष्ठ क्र.- 289-295

Suchithra, R. (2019) Understanding the Impact of Lifestyle on the Academic Performance of Middle- and High-School Students, *Journal of Sociological Research*,10,(2),1-19

तिवारी, ऋत्विज (2019) कक्षा नवमीं के विद्यार्थियों पर सामाजिक परिपक्वता का अध्ययन, रिविव आफ रिसर्च, 8 (9), 1-8

कपील, एच.के., अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव, आगरा-4

सिंह अरूण कुमार (2006)- "मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ" नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोती लाल बनारसीदास, बंगलो रोड नई दिल्ली, पृष्ठ क्र.- 525-526

भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेजः समस्याएँ और चुनौतियाँ

डॉ० अनिल कुमार यादव

सह आचार्य, अर्थशास्त्र, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

स्वास्थ्य मनुष्य का एक महत्वपूर्ण नैसर्गिक और बुनियादी अधिकार है। संविधान द्वारा प्रत्याभूत जीवन का मौलिक अधिकार बिना उत्तम स्वास्थ्य के कोई मायने नहीं रखता। अपने समस्त नागरिकों को स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धि और पहुँच सुनिश्चित करना एक लोक कल्याणकारी राज्य का प्राथमिक उद्देश्य होता है। शिक्षा और स्वास्थ्य के बिना किसी राज्य के लोगों को मानव संसाधन के रूप में परिवर्तित करना संभव नहीं है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत की स्थिति बहुत कमजोर है। हमारे यहाँ स्वास्थ्य सेवाओं पर जीडीपी का महज 1 प्रतिशत व्यय किया जाता है। स्वास्थ्य और शिक्षा पर किए जाने वाला व्यय ही किसी राष्ट्र के विकास की कसौटी माना जाता है। इस स्थिति में बिना किसी भेदभाव के देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज के माध्यम से देश के सभी नागरिकों को स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करना राज्य का प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य कवरेज के माध्यम से हम सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे कदम बढ़ सकते हैं।

मुख्य शब्द- सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज, आर्थिक विकास, वित्तीय सुरक्षा, मानव संसाधन, जनसंख्या, जन्म दर, मृत्यु दर।

शोध के उद्देश्य

1. भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति की जांच पड़ताल करना।
2. भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की आम जनता तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज की अवधारणा का मूल्यांकन करना।
3. इस दिशा में सरकार के प्रयासों और प्रमुख योजनाओं से अवगत कराना।
4. भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के मार्ग की समस्याओं और चुनौतियाँ का अध्ययन करते हुए उचित उपाय बताना।

परिचय

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थति चुनौतीपूर्ण है। हमें बचपन से ही सिखाया जाता है कि स्वस्थ जीवन ही सफलता की कुंजी है। किसी भी व्यक्ति को अगर जीवन में सफल होना है तो इसके लिए सबसे पहले उसके शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। व्यक्ति से इतर एक राष्ट्र पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। नागरिक जितने स्वस्थ होंगे हमारा देश उतना ही विकास करेगा एवं देश विकास सूचकांक की कसौटियों पर उतना ही अच्छा प्रदर्शन करेगा, उदारीकरण के बाद आर्थिक क्षेत्र में हमारी महत्वकाक्षाएं आसमान छू रही हैं। भारत सकल राष्ट्रीय आय की दृष्टि से विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश है। लेकिन जब बात देश में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति की आती है तो सारा उत्साह मानों घरा का धरा रह जाता है। आज भारत के पास अपने नागरिकों को स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए प्रौद्योगिकियों और ज्ञान का भंडार है लेकिन यह भी सत्य है कि इस क्षेत्र में उपलब्ध सुविधाओं और आवश्यकताओं के बीच अंतराल निरंतर बढ़ रहा है। रोग की रोकथाम और उपचार के लिए आज हमारे

पास जिस स्तर की सुविधाएं, संसाधन एवं तकनीक उपलब्ध हैं, उन्हें देखते हुए देश में व्याप्त असमय मृत्यु, अनावश्यक बीमारियां और अस्वस्थ परिस्थितियों को एक विडंबना कहना ही ठीक होगा। देश में मौजूद स्वास्थ्य सुविधाएं उन व्यक्तियों को व्यापक और पर्याप्त पैमाने पर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने में सक्षम नहीं हैं जिन्हें इनकी सबसे अधिक आवश्यकता है। आर्थिक विकास को स्वास्थ्य सुविधाओं के स्तर से सुधार लाने के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए तभी हम विषमता रहित समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र बनाने में सफल होंगे।

मुख्य आलेख

सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज (UHC) का मतलब देश के किसी भी भाग में बसे नागरिकों की आय के स्तर, सामाजिक स्थिति, लिंग, जाति या धर्म के बिना सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज का न्यायसंगत उपयोग सुनिश्चित करना है। इसका उद्देश्य वहन करने योग्य, उत्तरदायी, गुणवत्तापूर्ण यथोचित स्वास्थ्य सेवाओं के आश्वासन को सुनिश्चित करना है। इसमें रोकथाम, उपचारात्मक और पूनर्वास देखभाल शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व भर के कम से कम लगभग एक अरब लोग आवश्यकतानुसार स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को प्राप्त करने में असमर्थ हैं। इसके अलावा लगभग एक सौ पचास मिलियन लोग प्रतिवर्ष वित्तीय संकट के अधीन आ जाते हैं। सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज द्वारा जाति, धर्म, राजनीतिक विश्वास और सामाजिक आर्थिक स्थिति के भेदभाव के बिना शारीरिक व मानसिक स्वस्थ का आनंद लेना हर मनुष्य का अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को सभ्य जीवन मानकों जैसे कि स्वास्थ और परिवार की तंदुरूस्ती, भोजन, वस्त्र, आवास और चिकित्सा देखभाल प्राप्त करने का अधिकार है। इन आकस्मिकताओं जैसे कि बेरोजगारी, बीमारी, दुर्घटना, अपंगता, विधवा या बुढ़ापा की देखभाल आवश्यक है। अच्छा स्वास्थ्य दीर्घकालिक आर्थिक विकास का आधार है। सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज को दोहरा लाभ प्राप्त करने के परिणामस्वरूप स्वस्थ समुदाय और मजबूत अर्थव्यवस्था के विकास हेतु अनेक देश इसे अंगीकार कर रहे हैं, इसमें एक भारत भी है। सार्वभौमिक कवरेज डब्ल्यूएचओ के 1947 के मजबूत संविधान पर आधारित है, जो कि उद्घोषणा करता है कि स्वास्थ्य मनुष्य का आधारभूत अधिकार है तथा यह सभी को स्वास्थ्य के उच्चतम स्तर की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए भी प्रतिबद्ध है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की वैश्विक पहल पर प्रत्येक व्यक्ति को वित्तीय कठिनाई से पीड़ित हुए बिना स्वास्थ देखभाल की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज दिवस प्रति वर्ष 12 दिसंबर को मनाया जाता वैश्विक गठबंधन के तहत 12 दिसंबर, 2015 को सभी देशों के प्राथमिक सतत विकास हेतु सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान दिया जाएगा। भारत 12वी पंचवर्षीय योजना की अवधि (2012-2017) के दौरान सभी नागरिकों को सार्वभौमिक स्वाथ्य कवरेज प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। योजना आयोग द्वारा सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज पर एक उच्च स्तररीय विशेषज्ञ समूह (यूएचसी) का गठन किया गया था। जबकि वित्तीय सुरक्षा की पहल का प्रमुख उद्देश्य यूएचसी के वितरण की पर्याप्तता स्वास्थ्य आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता कुशल स्वास्थ्य कर्मचारियों की संस्था और वहन करने योग्य दवाओं तथा प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता की पहचान करना था। भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के सूत्रीकरण हेतु प्रमुख सिद्धांतों को निर्देशित किया गया है जो निम्न हैं-

- सार्वभौमिकता
- इक्विटी
- बहिष्कार और भेदभाव के बिना व्यापक देखभाल, जो कि तर्कसंगत और गुणवत्तापूर्ण हो
- वित्तीय सुरक्षा
- रोगियों के अधिकारों का संरक्षण
- मजबूत सार्वजनिक स्वास्थ्य हेतु प्रावधान
- उत्तरदायित्व और पारदर्शिता
- समुदाय की भागीदारी
- स्वास्थ्य सेवाओं तक लोगों की पहुंच।
- सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के लाभ
- जनसंख्या के स्वास्थ्य में सुधार

- कुशल, उत्तरदायी और पारदर्शी स्वास्थ्य प्रणाली
- गरीबी में कमी
- वृहद उत्पादकता
- नौकरियों में बढ़ोत्तरी
- वित्तीय सुरक्षा
- अधिक से अधिक इक्विटी

जनसंख्या के बोझ, गरीबी और स्वास्थ्य क्षेत्र में कमजोर बुनियादी ढांचे की वजह से भारत को दुनिया के पिछड़े देशों से भी ज्यादा बीमारी के बोझ का सामना करना पड़ता है। स्वास्थ्य सेवा से जुड़े हर मानव पर हम दुनिया के कमजोर देशों से भी होड़ करते दिखाई देते हैं। प्रसव के समय होने वाली शिशु मृत्यु दर प्रति हजार पर 52 है जबकि श्रीलंका में 15, नेपाल में 38, भूटान में 41 और मालदीव में यह आकड़ा 20 है। स्वास्थ्य सेवा पर खर्च का 70 प्रतिशत निजी क्षेत्र से आता है जबकि इस मामले में वैश्विक औसत 38 प्रतिशत है। विकसित देशों के साथ तुलना करने पर विषमता का यह आकड़ा और भी ज्यादा चौकाने वाला है। इसके अलावा चिकित्सा पर व्यय का 86 प्रतिशत तक लोगों को अपने जेब से चुकाना पड़ता है जो यह बताता है कि देश में स्वास्थ्य बीमा की पैठ कितनी कम है। भारत कुल स्वास्थ्य सेवा खर्च और बुनियादी ढांचे की आपूर्ति, दोनों के ही लिहाज से कई विकासशील देशों से काफी पीछे है। ब्राजील जैसे विकासशील देश में प्रति हजार लोगों पर अस्पतालों में बेड़ों की उपलब्धता 2.3 है। पर भारत में यह आंकड़ा केवल 0.7 को छू पाता है। पड़ोसी देशों श्रीलंका में यह आंकड़ा 3.6 प्रतिशत और चीन में 3.8 है। डाक्टरों की उपलब्धता का बेशिक औसत प्रति एक हजार व्यक्तियों पर 1.3 है जबकि भारत में यह केवल 0.7 है। आधिकारिक आकड़ों के मुताबिक वर्ष 2011 में भारत में स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति कुल व्यय 62 अमेरिकी डॉलर था जो लगभग पौने चार हजार रुपये के बराबर है, जबकि अमेरिका के 8467 डॉलर और नावें में 9908 अमेरिकी डॉलर है। हमारा पड़ोसी देश श्रीलंका तक हमसे प्रति व्यक्ति लगभग 50 प्रतिशत तक ज्यादा (93 अमेरिकी डॉलर) खर्च कर रहा था। आकड़ों के आधार पर हमारे पास 400000 डॉक्टरों, 700000 बेडों और 40 लाख नर्सों की कमी है। संसाधनों और स्वास्थ्य सुविधाओं के असमान वितरण के अलावा भारत में बीमारी की बढ़ती संख्या भी अपने आप में एक बड़ी चुनौती है। उदारहरण के लिए भारत में मधुमेह के मामलों की संख्या 2020 तक 3. 6 करोड़ आंकी गई थी अब यह 7.5 करोड़ से पहले ही आगे निकल चुकी है। जल्द ही दुनिया में हर पांच मधुमेह रागियों में एक भारतीय होगा। स्वास्थ्य सुविधाओं की गुणवत्ता और सरकारी कार्यक्रमों की स्थिति भी गंभीर चिंता का विषय है। इसकी वजह से स्वास्थ्य सुविधाओं की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरण के लिए 90 प्रतिशत से अधिक गर्भवती महिलाओं को एक बार प्रसवपूर्व जांच की सुविधा प्राप्त होती है और उनमें से 87 प्रतिशत को टेटनस रोधी पूर्ण टीकाकरण की सुविधा प्राप्त होती है, किंतु केवल 68.7 प्रतिशत महिलाएं ही अनिवार्य तीन प्रसव पूर्व जांच की सुविधा प्राप्त कर पाती हैं। परिवार नियोजन ऑपरेशन (नसबंदी) के कारण जो मृत्यु हो जाती है और जिस पर रोक लगाया जा सकता है, प्राय: निम्न गुणवत्ता की सुविधा उपलब्ध कराने का ही परिणाम है। केवल 61 प्रतिशत बच्चों का ही पूर्ण टीकाकरण हो पाता है। सुरक्षित गर्भपात सेवाओं तक पहुंच और बीमार नवजात शिशु की देखरेख सेवाओं की उपलब्ध में भी काफी अंतर बना हुआ है। वर्तमान में मातृ मृत्यु दर सभी कारणों से होने वाली मृत्यु का 0.55 प्रतिशत है और 15-49 वर्ष के आयु समूह के अंतर्गत आने वाली महिलाओं की मृत्यु का 4 प्रतिशत है। अभी भी प्रति वर्ष 46500 महिलाओं की गर्भावस्था के दौरान मृत्यु हो रही है, जो एक बहुत बड़ी संख्या है। हमें मातृ मृत्यु दर में और अधिक कमी लाने की दिशा में निरंतर काम करने की आवश्यकता है।

स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता में विषमता का मुद्दा भी काफी गंभीर है। शहरी क्षेत्रों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति ज्यादा बदतर है। इसके अलावा बड़े निजी अस्पतालों के मुकाबले सरकारी अस्पतालों में सुविधाओं का घनघोर अभाव है। उन राज्यों में भी जहां समग्र औसत में सुधार देखा गया है, उनके अनेक जनजातीय बहुल क्षेत्रों में सुधार देखा गया है और अनेक जनजातीय बहुल क्षेत्रों में स्थिति नाजुक बनी हुई है। निजी अस्पतालों की वजह से बड़े शहरों में स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता संतोषजनक है, लेकिन चिंताजनक पहलू यह है कि इस तक केवल संपन्न तबके की पहुंच है। तीव्र और अनियोजित शहरीकरण के कारण शहरी निर्धन आबादी और विशेषकर झुग्गी झोपड़ियों में रहने वालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। आबादी का यह हिस्सा सरकारी

और निजी अस्पतालों के समीप रहने के बावजूद स्वास्थ्य सुविधाओं को पर्याप्त रूप में नहीं प्राप्त कर पाता है। सरकारी घोषणाओं में तो राष्ट्रीय कार्यक्रमों के तहत सभी चिकित्सा सेवाएं सभी व्यक्ति को नि:शुल्क उपलब्ध है और इन सेवाओं का विस्तार भी काफी व्यापक है। हालांकि जमीनी सच्चाई यह है कि सरकारी स्वास्थ्य सुविधा आवश्यकताओं के विभिन्न आयामों की संबोधित करने में विफल रही है। इसकी वजह से आम आदमी के लिए चिकित्सा सुविधा की लागत नियंत्रित नहीं रह पाई। अध्ययन के आधार पर आकलन किया गया है कि केवल इलाज पर खर्च के कारण ही प्रतिवर्ष 6 करोड़ 30 लाख से अधिक लोग निर्धनता का शिकार हो रहे हैं। इसकी वजह है कि समाज के जिस तबके को इन सेवाओं की आवश्यकता है। उसके लिए सरकार की ओर से पर्याप्त वित्तीय संरक्षण उपलब्ध नहीं है। वर्ष 2011-12 में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं पर किए गए निजी व्यय की राशि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति घरेलू मासिक व्यय का 6.9 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 5.9 प्रतिशत थी। यह चिंता का विषय है कि पिछले कुछ वर्षों में ऐसे परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई है, जिन्हें आवश्यक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त करने के लिए अपनी क्षमता से कहीं अधिक खर्च करना पड़ा और वे गरीबी रेखा से नीचे आ गए। वर्ष 2004-05 में ऐसे परिवारों की संख्या 15 प्रतिशत थी जो वर्ष 2013 में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन में शहरी आशा कार्यकर्ताओं, महिला अरोग्य समितियों और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के नेटवर्क के मध्य से प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधा को सुदृढ़ करने पर ध्यान दिया, लेकिन लक्ष्य के अनुरूप परिणाम नहीं मिल रहे हैं। शहरी निर्धन जनसंख्या को स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया कराने के लिए एनयूएचएम को निरंतर और पर्याप्त विस्तृत वित्तपोषण की जरूरत है ही, इसकी भ्रष्टाचार और अनियमितताओं से मुक्त किया जाना भी आवश्यक है। इसी तरह राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएन) का उद्देश्य राज्य स्वास्थ्य प्रणाली को सुदृढ़ बनाना था या जिससे स्वास्थ्य से जुड़ी सभी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। हालांकि व्यवहार में यह केवल राष्ट्रीय कार्यक्रम से जुड़ी प्राथमिकताओं तक ही सीमित होकर रह गया। यदि स्वास्थ्य सेवाओं का संपूर्ण एवं समतामूलक विकास करना हो, तो इस तरह की कार्यनीति अधिक समय तक प्रभावी नहीं रह सकती है। इन योजनाओं की कामयाबी तभी है, जब देश में स्वास्थ्य सेवाओं का एक मजबूत ढांचा तैयार हो और देश के सभी हिस्सों तक किफायती और बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ हो सके। आर्थिक रूप से कमजोर तबकों को अस्पतालों में इलाज उपलब्ध कराने और परिवारों को अधिक चिकित्सा व्यय से बचाने के लिए सरकार द्वारा वित्तपोषित अनेक स्वास्थ्य बीमा योजनाएं शुरू की गई लेकिन इसमें कई तरह की समस्याएं हैं। भारत सरकार के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय ने वर्ष 2002 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) की शुरुआत की और उसके तहत बीमा योजना का लाभ उठाने वाले लोगों की संख्या 2014 में लगभग 37 करोड़ हो गई (आबादी का लगभग एक चौथाई भाग)। इस आबादी का लगभग दो तिहाई हिस्सा (18 करोड़ लोग) गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) आते हैं। इसमें समस्या यह है कि लाभार्थियों को अक्सर योजना के तहत मिलने वाली सेवाओं की जानकारी नहीं होती है। दूसरी समस्या निजी अस्पतालों द्वारा कुछ श्रेणियों के रोग के इलाज से इनकार करना और कुछ सेवाओं को अनावश्यक एवं अतिरिक्त मात्रा में उपलब्ध करना है, जैसे कि आए दिन खबरों में यह पढ़ने को मिलता है कि ग्रामीण इलाकों में छोटी-मोटी समस्याओं पर भी महिलाओं के गर्भपात कराए जा रहे हैं। इस तरह की समस्याओं से निपटने के लिए जागरूकता बेहद आवश्यक है।

भारत दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है और इसकी वजह से स्वास्थ्य सेवाओं पर अत्यधिक दबाव है। मृत्युदर घटी है, लेकिन जन्मदर दुनिया के ज्यादातर देशों से अधिक है। राष्ट्रीय कुल जन्मदर 2.9 से घटकर 2.4 हो गई है। 21 बड़े राज्यों में से 12 राज्यों (जिनके आकड़े हाल में प्राप्त हुए हैं) में जन्मदर 2.1 या इससे कम है। छह राज्यों- बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड और छत्तीसगढ़ में चुनौती बनी हुई है। उल्लेखनीय है कि इन 6 राज्यों में देश में की कुल जनसंख्या के 42 प्रतिशत लोग निवास करते हैं और ये राज्य देश की कुल जनसंख्या के प्रतिवर्ष 56 प्रतिशत बढ़ोतरी के लिए उत्तरदायी हैं। मेघालय को छोड़कर शेष छोटे राज्यों और संघशासित राज्य क्षेत्रों में जन्मदर (सीवीआर) प्रति 1000 पर 21 से भी कम है। भारत 2005 की विश्व स्वास्थ्य संघ के सदस्य देश के रूप में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज से संबंधित प्रस्ताव का हिस्सा था। हालांकि उस समय भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज पर चर्चा नहीं हो रही थी, भारत ने देश में स्वास्थ्य प्रणालियों में सुधार लाने और जनता के स्वास्थ्य की स्थिति को बेहतर बनाने के उद्देश्य से 12 अप्रैल, 2005 को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का प्रारंभ किया था।

भारतीय राज्यों द्वारा वर्ष 2007-08 से अस्पताल में भर्ती की माध्यमिक स्तर की लागत के लिए गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को वित्तीय कवरेज उपलब्ध कराने वाली राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना और कुल अन्य वित्तीय संरक्षण योजनाएं प्रारंभ की। वर्ष 2010 के विश्व स्वास्थ्य रिपोर्ट जारी होने के बाद योजना आयोग ने भारत में संपूर्ण स्वास्थ्य कवरेज पर उच्च स्तरीय

विशेषज्ञ समूह का गठन किया। एचएमईजी ने अक्टूबर 2011 को अपनी विस्तृत सिफारिशें और रिपोर्ट सौंपी जिसे भारत की 12वीं योजना में शामिल किया गया। 12वीं पंचवर्षीय योजना में भारत के प्रत्येक राज्य ने 2 जिलों में यूएचसी प्रयोग की पेशकश की थी और इन प्रस्तावित प्रयोगों को लागू करने के लिए कार्य भी शुरू हो गया, ताकि देश में पूरी तरह यूएचसी लागू करने के लिए सबक सीखा जा सके। मई 2013 में शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन प्रारंभ किया गया। दो उपमिशनों (एनआरएचएम और एनएचएम) को प्रारंभ किया गया। एनएचएम का विजन स्वास्थ्य के व्यापक सामाजिक निर्धारण को प्राप्त करने के लिए अंतर क्षेत्रीय सम्मिलित कार्यवाई सहित जनता की जरूरतों के प्रति जवाबदेह और उत्तरदायी, समान, किफायती और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं तक संपूर्ण पहुंच प्राप्त करना काफी हद तक यूएचसी की अवधारणा के अनुरूप है। वर्ष 2014 के मध्य में यूएचसी के अनुरूप संघटकों और उद्देश्यों सहित सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज मुहैया कराने पर काफी बुनियादी कार्य किया गया। भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य आश्वासन मिशन की शुरुआत के माध्यम से कथित तौर पर सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज को कार्यान्वित करने की रूपरेखा तैयार की गई। आरएसबीआई योजना अप्रैल 2015 में श्रम एवं रोजगार मंत्रालय से स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय में भेज दी गई, नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति तैयारी की अंतिम अवस्था तक पहुंच चुका है। और उसने नीति संबंधी दस्तावेज में यूएचसी के सभी प्रमुख पहलुओं को शामिल किया है। कुल मिलाकर कहें तो भारत में सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज को आगे बढ़ाने की दिशा में बुनियादी कार्य पूरा हो चुका है। हालांकि इसे मंजूरी मिलना और इसका त्वरित कार्यन्वयन बाकी है। आजादी के पूर्व ही भोर समिति ने सबके लिए स्वास्थ्य की सिफारिश की थी। 1958 में ए.एल. मुदलपार समिति ने स्वास्थ्य सेवाओं के पुनर्गठन एवं जिला अस्पतालों को मजबूत करने का सुझाव दिया था। 1988 में अलमाटी घोषाण में भी विश्व स्तर पर सबके लिए स्वास्थ्य की कल्पना की गई थी। संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दि विकास लक्ष्य 2000 में भी शिशु मृत्यु दर में कमी लाने, मातृत्व स्वास्थ्य एवं गंभीर बीमारियों के नियंत्रण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

11वीं एवं 12वीं पंचवर्षीय योजना में संसाधन प्रतिबद्धता की अत्यधिक वृद्धि की आवश्यकता का समर्थन किया गया है तथा सबके लिए स्वास्थ्य पर उच्च स्तरीय विशेष समूह ने स्वास्थ्य पर जीडीपी के 1.2 प्रतिशत का स्तर के बजट 2.5 प्रतिशत व्यय की संस्तुति की है। 12वीं योजना में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए 300018 करोड़ रुपये का परिव्यय किया गया है। सरकार ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सुलभ कराने और मौजूदा स्वास्थ्य अवसंरचना सुधारने, वहनीय और किफायती स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की है जो निम्न है–

(1) राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन–राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन को 2013 में शुरू किया गया था जिसका उद्देश्य समान वहनीय और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं को सभी व्यक्तियों तक पहुंचाना है। यह एक अम्ब्रेला कार्यक्रम है जिसके दो मुख्य घटक हैं- एक राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, दूसरा राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन। वित्तीय वर्ष 2015-16 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के लिए 18000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

(2) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन–लोगों के रहन-सहन और स्वास्थ की स्थिति में बेहतर सुधार स्वतंत्रता के बाद से ही प्राथमिकता का विषय रहा है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 के अनुपालन में सबको गुणवत्तपूर्ण स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के उद्देश्य में से 12 अप्रैल, 2005 को राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन शुरू किया गया। दूसरा उद्देश्य स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं की योजना और प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी को बढ़ाने, बेहतर कार्यक्रम प्रबंधन, लचीला वित्तपोषण और संयुक्त अनुदान का प्रावधान और मानव संसाधन के संवर्धन जैसे दृष्टिकोण को अपनाते हुए स्वास्थ्य प्रणाली में संरचनात्मक सुधार लाना है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत देशभर में आबादी के अनुपात में सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (आशा) को नियुक्त किया गया है जिसके माध्यम से स्वास्थ्य सुविधा सुलभ कराने वाली सेवा में व्यापक सुधार हुआ है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य अधोसंचना में भारी अंतर को पाटने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। जैसे संस्थागत प्रसवों की संख्या का प्रतिशत 2006 से 42 से बढ़ कर 2011 में 84 तक पहुंच गया है। इसी अवधि में शिशु मृत्यु दर 57 से गिरकर 42 पर आ गई है। निर्धनों के लिए स्वास्थ्य क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (2008) के तौर पर एक बड़ी पहल की गई है। इसके अंतर्गत इस समय इलाज के लिए भर्ती लगभग 10 करोड़ से अधिक मरीजों को बीमा की सुविधा मिलती है।

(3) राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन–राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत 2013 में किया गया। एनयूएनएम के अंतर्गत 50000 से अधिक आबादी वाले सभी शहरों / नगरों में स्वास्थ्य सेवा वहन करनेवाले एवं स्लम में रहने वाले और हाशिए पर रह रहे समूहों को कवर किया गया है।

(4) प्रजनन और बाल स्वास्थ्य-प्रजनन और बाल स्वास्थ्य कार्यक्रमों में जननी सुरक्षा योजना और जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम महत्वपूर्ण है। इसका महत्वपूर्ण उद्देश्य तीन महत्वपूर्ण स्वास्थ्य सूचकों मातृ मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और कुल प्रजनन दर में आमूल बदलाव माना है। प्रसव सुविधा सेवाओं हेतु बढ़ी हुई मांगों को पूरा करने के लिए 158 जिला अस्पतालों और मेडिकल कॉलेजों में मातृ और बाल स्वास्थ्य विंग स्थापित किया गया है जिससे संस्थागत प्रसव में गुणात्मक सुधार हुआ है।

(5) प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना-इस योजना का लक्ष्य वहनीय, किफायती और भरोसेमंद तृतीय स्वास्थ्य देखभाल सेवा उपलब्धता के क्षेत्रीय असंतुलन को ठीक करना है। इसके अंतर्गत पहले चरण में 6 अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की स्थापना की गई है जबकि दूसरे एवं तीसरे चरण में क्रमशरू 6 और 39 मेडिकल श्कॉलेजों की स्थापना करने की योजना है।

(6) मिशन इंद्रधनुष-इस योजना का शुभारंभ 25 दिसंबर, 2014 को किया गया जिसका उद्देश्य वर्ष 2020 तक उन सभी बच्चों को कवर करना है जिन्हें कोई टीका नहीं लगाया गया है अथवा सात टीका निरोध्य रोगों जिनमें डिप्थरिया, खांसी, टिटनेस, पोलियो, तपेदिक, खसरा और हेपेटाइटिस शामिल हैं से प्रतिरक्षण हेतु आंशिक रूप से टीके लगाए गए हैं। इस कार्यक्रम को पहले चरण में 201 अधिक महत्व वाले जिलों में लागू होगा और बाद में 297 जिलों में लागू किया जाएगा।

(7) राष्ट्रीय आयुष मिशन-संपूर्ण स्वास्थ्य उपलब्ध कराने के उद्देश्य से पूर्व आयुष विभाग को 2014 में स्वतंत्र मंत्रालय बना दिया गया है और राष्ट्रीय आयुष मिशन की शुरुआत की गई है। मिशन का मूलभूत उद्देश्य कम कीमत वाली आयुष सेवाओं और शैक्षिक प्रणालियों के सुदृढ़ीकरण के माध्यम से आयुष चिकित्सा (आयुर्वेद, मार्ग, प्राकृतिक चिकित्सा, युनानी, और होम्योपैथी) पद्धतियों को बढ़ावा देना है। इस क्रम में प्रधानमंत्री के आवाहन पर सितंबर 2014 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में 21 जून को योग दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की है।

(8) सतत विकास लक्ष्य एजेंडा 2030-संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2015 में सतत विकास लक्ष्य के एजेंडा 2030 को औपचारिक रूप में स्वीकार कर लिया है। एजेंडा 2030 में 17 सतत विकास लक्ष्य निर्धारित है जो वर्ष 2000 में स्वीकृत सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों का स्थान लेंगे। इस एजेंडा में सबके लिए स्वस्थ जीवन की सुनिश्चितता सतत और सभी आयु के लोगों के रहन-सहन की सुदृढ़ता पर विशेष बल दिया गया है-

- वर्ष 2030 तक वैश्विक मातृत्व दर का प्रति 1000 जीवित जन्म दर 70 से कम करना।
- वर्ष 2030 तक सार्वभौम स्वास्थ्य कवरेज।
- वर्ष 2030 तक नवजात बच्चों की मृत्यु दर प्रति 100 जीवित जन्म दर 12 करना तथा पांच वर्ष तक के बच्चों में यह 25 के स्तर पर करना। 2030 तक स्वास्थ्य सुविधाओं तक सार्वभौम पहुंच।
- वर्ष 2030 तक तपेदिक, मलेरिया, महामारी का उन्मूलन तथा हेपेटाइटिस व संक्रामक रोगों पर नियंत्रण।

सबके लिए स्वास्थ्य सेवा सुलभ कराने के संकल्प के लिए भारत के समूचे स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव लाना होगा-

(1) इस भ्रम से बाहर आना होगा कि खराब स्वास्थ्य से सबके लिए स्वास्थ्य और अच्छे स्वास्थ्य की तरफ बदलाव निजी स्वास्थ्य सेवा और बीमा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि सारे तथ्य इस सोच के विपरीत हैं। दुनिया में अधिकतर स्वास्थ्य सेवा तंत्रों में किसी न किसी रूप में प्राइवेट सेवाओं की गुंजाइश रखी जाती है और भारत को भी इस परंपरा को तोड़ने की कोई ठोस वजह नहीं है। स्वास्थ्य योजनाओं को बनाते समय जवाबदेही और अन्य चुनौतियों को ध्यान में रखना चाहिए। समाज के सभी सदस्यों के लिए स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ कराने और अच्छे स्वास्थ्य की अन्य जरूरतों को पूरा करना पूरी तरह से सरकार की जिम्मेवारी है।

(2) पहलू जिनमें तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है। रोकथाम और उपचार के अंतर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ग्राम स्तर के कार्यकर्ताओं निवारक स्वास्थ्य सेवा के अन्य साधनों जैसे बीमारियों के इलाज के बजाय रोकथाम के प्रयासों में जनभागीदारी, टीकाकरण, स्वच्छता खासकर ग्रामीण स्तर पर जन स्वच्छता, कचरा प्रबंधन एवं बीमारियों के बारे में जगरूक करना महत्वपूर्ण है।

(3) सुदृढ़ स्वास्थ्य सुविधा प्रदान करने के लिए जिला अस्पतालों के बुनियादी ढांचे को बेहतर करना होगा। इन अस्पतालों को मेडिकल कॉलेजों से जोड़ना बेहद आवश्यक है क्योंकि देश के 640 जिलों में से मात्र 193 जिले में मेडिकल कॉलेज हैं। बाकी 447 जिले में चिकित्सा अध्ययन एवं प्रशिक्षण का कोई बेहतर इंतजाम नहीं है।

(4) सरकार को स्वास्थ्य परिचर्चा की बजाए स्वास्थ्य बीमा मुहैया कराने वाला बनना चाहिए। 11वीं योजना में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की शुरुआत हुई थी। वर्तमान सरकार ने तीन सुरक्षा बीमा योजना क्रमशः प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, प्रधनमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और अटल पेंशन योजना की शुरुआत की है। जिसका उद्देश्य नागरिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है।

(5) स्वच्छता अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ मामला है। इस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि गंदगी से कई बीमारियां उत्पन्न होती हैं। स्वच्छता विकास का अकेला सबसे लाभकारी परिणाम है। विश्व बैंक के जल एवं स्वच्छता कार्यक्रमों का अनुमान है कि स्वच्छता पर एक डॉलर खर्च करने से स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास में 9 डॉलर की बचत होती है। बच्चों के विकास में बाधक समस्याओं पेचिश, कुपोषण, शारीरिक विकास संबंधी कमजोरियों की जड़ में साफ-सफाई की कमी है। इसी स्वच्छता को ध्यान में रखते हुए 2 अक्टूबर, 2014 को स्वच्छ भारत अभियान की शुरुआत की गई है, जिसका उद्देश्य 2019 तक सभी देशवासियों को सफाई व्यवस्था उपलब्ध कराना है।

18 मई, 2016 को जिनेवा में केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री जेपी नड्डा ने जिनेवा के 68वीं विश्व स्वास्थ्य सभा के अध्यक्ष का पदभार संभाल लिया। विश्व स्वास्थ्य सभा के अध्यक्ष के तौर पर स्वास्थ्य सभा के पूर्ण अधिवेशन को संबोधित करते हुए नड्डा ने कहा कि मानवता के समक्ष मौजूद स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों का जायका लेने और इसके साथ ही हमारे संयुक्त प्रयासों की प्राथमिकता तय करने व रणनीति बनाने के लिहाज से यह अधिवेशन सदस्य देशों के लिए महत्वपूर्ण अवसर है। उन्होंने कहा कि भारत सभी आयु समूहों के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि भारत में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पिछले साल सितंबर में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में योग को स्वास्थ्य एवं खुशहाली का उपयुक्त मार्ग मानने का आह्वान किया था। स्वास्थ्य पर समग्र रूप से विचार करना आवश्यक है जिसमें प्रकृति स्वास्थ संबंधी जीवन शैली अपनाना और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालने वाली आदतों से बचना शामिल है। उन्होंने कहा कि हमें यह सूचित करते हुए खुशी हो रही है कि संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है, जिसे 177 देशों का अनुमोदन शामिल है। 17 मई, 2015 को उन्होंने कहा कि सभी के स्वास्थ्य नीतियों को बढ़ावा देने के लिए निरंतर संस्थागत ढांचे के तहत बहु क्षेत्रीय रूख अपनाने की जरूरत है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर अंतर-निर्भरता की अहमियत को सम्मान और विभिन्न क्षेत्रों के बीच सहयोग आवश्यक है। स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि जब तक हम सिविल सोसायटी और गैर-सरकारी संगठनों की भी क्षमताओं का लाभ नहीं उठाएंगे, तब तक अंतर-क्षेत्रीय सहयोग का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। उन्होंने कहा कि दरअसल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अंतर-निर्भरता को अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य नियमों में भी समाहित किया गया है। इन्होंने कहा कि सार्वजनिक स्वास्थ्य की तेजी से बढ़ती चुनौतियों से निपटने के लिए हमारे प्रयासों को दोगुना करने की जरूरत है, जिनमें संक्रामक रोग, गैर संक्रामक रोग, स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन का असर, सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज, देशों के बीच स्वास्थ्य संबंधी पूछताछ कम हो जाना, हर देश में स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त मानव संसाधन मुहैया कराना, किफायती दवाओं एवं इलाज तक पहुंच सुनिश्चित करना और स्वास्थ्य संबंधी जीवन शैली को बढ़ावा देकर बीमारियों से बचना शामिल है।

निष्कर्ष और सुझाव

भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र में हाल के समय में उल्लेखनीय प्रगति हुई है लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। यदि भारत को विश्व में अग्रणी देशों के स्तर तक उठना है तो उच्च स्तर की सक्षम स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के साथ बीमारियों की रोकथाम वाली प्रतिरोधक और प्रोत्साहन दवाओं की सुलभता पर भी जोर दिया जाना चाहिए, ताकि लोगों को बीमारी से छूटकारा मिले। हमें यह ध्यान देना होगा कि शिक्षा के अधिकार के बाद सबके लिए स्वास्थ्य का अधिकार समय की मांग है क्योंकि सार्वभौमिक स्वास्थ्य के लक्ष्य की प्राप्ति विकास को सतत एवं समावेशी बनाने में सहायक भी है और पूरक भी है। अगर भारत के राज्यों की बात करें तो बीमारू राज्यों में परिवार नियोजन को नए सिरे से चलाने की आवश्यकता तभी सबको गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा स्वास्थ्य नीति 2002 के 13 वर्षों के बाद विकास और स्वास्थ्य के संदर्भ में चार प्रमुख बदलाव देखे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों के दौरान लक्ष्यों पर केंद्रित करके कार्यक्रम चलाए जाने से मातृ और शिशु मृत्यु दर में कमी आई है। देश में एक विशाल स्वास्थ्य सुविधा उद्योग पनपा है जो 15: की वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा यह सभी सेवाओं में विकास की दर की दोगुनी और राष्ट्रीय आर्थिक विकास दर से तिगुनी दर से है। हालांकि इस सुनहरी तस्वीर का एक स्याह सच यह भी है कि देश में मौजूद इन सुविधाओं का उपयोग आर्थिक कारणों

से आम आदमी नहीं कर पाते हैं। इसलिए इस क्षेत्र के विकास की रूपरेखा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीतियों और उद्देश्यों के अनुरूप होनी चाहिए विशेषकर आम आदमी की पहुंच और वित्तीय सुरक्षा की दृष्टि से। अतः स्वास्थ्य मंत्रालय का हस्तक्षेप इस उद्योग के विकास की दिशा एवं रूपरेखा निर्धारित करने के लिए आवश्यक है। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि निजी चिकित्सा उद्योग कुल चुने हुए शहरों तक ही सीमित न रहे और सार्वजनिक क्षेत्र से वित्तपोषण के लिए अधिक दबाव न डाले। तीसरा स्वास्थ्य सुविधा लागत के कारण आपातिक व्यय की घटना में बढ़ोतरी हो रही है और अब इसे गरीबी बढ़ने का एक प्रमुख कारण माना जाने लगा है। स्वास्थ्य सेवा लागत में बढ़ोतरी परिवार की बढ़ती हुई आय और गरीबी कम करने वाले सरकारी योजनाओं को निष्प्रभावी कर रही है। चौथा और अंतिम बदलाव यह है कि आर्थिक विकास के कारण उपलब्ध राजकोषीय क्षमता में वृद्धि हुई है। इसी के अनुरूप स्वास्थ्य पर सरकार के बजट में भी बढ़ोतरी की जरूरत है। अमेरिका जहां अपने सकल घरेलू उत्पाद (ळक्च) का 17 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करता है, वहीं भारत में यह आकड़ा महज 1 प्रतिशत के करीब है। अन्य विकसित देशों में कनाडा 10 प्रतिशत, ऑस्ट्रेलिया 9.2 प्रतिशत, बेल्जियम 10.1 प्रतिशत, डेनमार्क 8.9 प्रतिशत, फ्रांस 10.4 प्रतिशत, इटली 8.4 प्रतिशत, जापान 8 प्रतिशत, स्वीडन 9.3 प्रतिशत, इंग्लैंड 7.8 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करते हैं। यहां तक कि श्रीलंका 1.8 प्रतिशत, बांग्लादेश 1.6 प्रतिशत और नेपाल 1.5 प्रतिशत खर्च करते हैं। देश की सरकारें लगातार वादा करती रही है कि सकल घरेलू उत्पाद का 2 से 3 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करेंगी, जो आज भी कागजों की शोभा बढ़ा रही है। अतः देश को एक ऐसी नई स्वास्थ्य नीति की आवश्यकता है जो इस प्रासंगिक परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील एवं उत्तरदायी है। मितव्ययी स्वास्थ्य सुविधा सेवाओं तक सभी लोगों की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए आने वाले समय में सरकार को राष्ट्रीय इंश्योरेंश मिशन को लागू करने की दिशा में जल्द से जल्द आगे बढ़ना चाहिए।

संदर्भ

1. एक नए भारत के लिए स्वास्थ्य प्रणालीरू बिल्डिंग ब्लॉक्स (संभावित सुधार के लिए मार्ग), एनआईटीआईयोग रिपोर्ट, नवंबर 2019.
2. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर स्क्ैब, नब्बे सेकंड रिपोर्ट, 2016
3. रसायन और उर्वरक मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट, 2019
4. संजय जोडपे और हबीब हसन फारूकीरू भारत में यूनिवर्सल हेल्थ कवरेजरू प्रगति हासिल की और आगे बढ़ने का रास्ता, इंडियन जे मेड रेस।
5. शोभना कामिनेनीरू सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के लिए भारत का मार्ग दुनिया को क्या सिखा सकता है. 03 अक्टूबर 2019 (भारत आर्थिक शिखर सम्मेलन)
6. योजना–2017, 2018, 2019
7. प्रतियोगिता दर्पण–2017,2018, 2019
8. आलेख जनसत्ता।
9. आलेख द हिन्दू।
10. इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली।

भीष्म साहनी की कहानियों में सामाजिक चित्रण

सुमन्त कुमार

शोधार्थी, मानविकी संकाय (हिन्दी), सी.एम.जे. विश्वविद्यालय, मेघालय

सार

वस्तुतः समाजशास्त्र का, साहित्य से गहरा संबन्ध है। रचनाकार अपने सृजन कार्य के लिए आवश्यक मूल इस समाज से ही ग्रहण करता है। भीष्म साहनी ने तत्कालीन समाज की विभिन्न समस्याओं, जटिलताओं, सामाजिकों की विशेष रुचियों, दृष्टिकोणों और आदतों, धर्म-जाति-वर्णगत विशिष्ट प्रकार के आचरणों-विश्वासों इत्यादि को निकट से देखा-परखा है। भीष्मजी मानवीयता के कलाकार है। वे मानवीय सद्‌भावना, सहिष्णुता, भ्रातृ प्रेम, धर्मनिरपेक्षता, जनतन्त्रात्मक जीवन-पद्धति, सामाजिक न्याय इत्यादि जीवन मूल्यों के सुदृढ पक्षपाती रहे हैं। युग चेतना उनकी रचनाओं में सजग होकर बोल उठी है जिसमें जन मानस के करुणाई क्रन्दन भी उनकी कृतियों में मुखरित होती रहती है। भीष्म साहनी हिन्दी कथा साहित्य की प्रगतिशील धारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपनी सृजन क्षमता को युग जीवन के संबन्ध करके पूर्ण सशक्त बना दिया है।

भीष्म साहनी ऐसे समर्थ कथाकार है जिन्होंने तत्कालीन समाज की विभिन्न समस्याओं, जटिलताओं, सामाजिकों की विशेष रुचियों, दृष्टिकोणों और आदतों, धर्म-जाति-वर्णगत विशिष्ट प्रकार के आचरणों-विश्वासों इत्यादि को निकट से देखा-परखा है तथा उनकी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गतिविधियों को युग-सापेक्ष होकर अपनी रचनाओं में चित्रवत प्रस्तुत किया है। तद्युगीन राजनैतिक हथकण्डों, कट्टरताओं आपसी विरोधी धार्मिक संप्रदायों के संघर्षों धर्म के नाम पर एक दूसरे से किये जानेवाले अत्याचारों एवं पैशाचिकतापूर्ण करतूतों को उन्होंने यथातथ रूप में मूर्त किया है।

आर्य समाज के आचार-विचारों एवं विश्वासों का पूर्णतः पालन करते हुए जीवन-पथ पर आगे बढ़नेवाले बालक के पिता (झरोखे), हिन्दू-मुस्लिम दंगे के हत्याकांडों और आग-जनियों के शिकार बने आम लोगों की दयनीय चीखें- चिल्लाहटें (तमस) सिक्ख धर्मावलंबियों पर किये गये नृशंसतापूर्ण और बर्बर अत्याचार (मय्यादास की माड़ी) इत्यादि इस संदर्भ में विशेष द्रष्टव्य है। चूंकि युगीन संघर्षो. झटपटाहटों, यातनाओं, अमानवीयताओं तथा दु:ख-दर्दी के वे भुक्त भोगी थे इसलिए इन सारी युग विकृतियों को अपने कथा फलक पर खींच रखने में उनको किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। यही कारण है कि युग चेतना उनकी रचनाओं में सजग होकर बोल उठी है जिसमें जन मानस के करुणाई क्रन्दन भी उनकी कृतियों में मुखरित होती रहती है। इस तरह समाज के विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों के अनछुए पहलुओं पर भी भीष्मजी की दृष्टि पड़ी है, जिससे समाज अपने असली रूप मे अनायास उनकी रचनाओं में साकार हो उठा है।

रचनाकार अपनी सर्जकता के लिए आवश्यक मूल इस समाज से ही ग्रहण करता है अत: वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होते हुए भी जब तक साहित्य समाजोन्मुख नहीं होता तब तक वह पूर्ण सार्थक नहीं रहता। अत: साहित्य किसी संवेदनशील कलाकार की गहरी अनुभूतियों की सहज अभिव्यंजना मात्र नहीं है बल्कि समाज की पीड़ा और दर्द के साथ-साथ उसके उमड़ते उल्लास के क्षणों का भी मूर्तीकरण रहता है। जीवन के जिन-जिन पड़ावों और प्रक्रियाओं से होकर रचनाकार को गतिशील होना पड़ता है।

उन सबकी विविधताओं तथा अन्त:संघर्षों और विचार-धाराओं से जुड़कर ही साहित्यकार का जीवन दर्शन रूपायित होता है। अपने इस जीवन-दर्शन को समाज व्यापी रूप रंग देकर सर्जक अपनी रचना-धर्मिता निभाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यकार की रचना समाज के उन सभी पहलुओं को छूते हुए आगे बढ़ती है जिन पर पहले किसी की दृष्टि पर्याप्त मात्रा में नहीं पड़ी हो।

कृतिकार की कृतियों के सामाजिक स्रोतों तथा उन पर पड़ी राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रभावों का शास्त्रीय अन्वेषण विश्लेषण समाजशास्त्र का आधारभूत विषय है। इसे रचनाकार के रचना व्यापार की तात्विक मीमांसा भी संभव होती है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण साहित्य का वह अध्ययन है - जो साहित्य को एक सामाजिक तथ्य मानकर चलता है तथा जिसके अनुसार साहित्य का मुख्य सरोकार मनुष्य के सामाजिक जगत से होता है। साहित्य और समाजशास्त्र दो अलग-अलग विषय नहीं है बल्कि दोनों एक ही विषय के (समाज) परस्पर पूरक दो हिस्से हैं, एक समाज का व्यावहारिक चित्र है तो दूसरा उसका सैद्धान्तिक पक्ष। समाजशास्त्र साहित्यिक संकल्पनाओं को युगीन विशेषताओं में जोड़कर भी देखता है एवं उनमें स्थित मानव -मूल्यों की संश्लिष्टता का विश्लेषण भी करता है।

आज का समाज अत्यन्त जटिल है। वहाँ ऐसी बहुत सी धार्मिक राजनीतिक संस्थाएँ अपने-अपने विशेष आदर्शों और विचारों को प्रचारित करने में रत है जो आपसी व्यवहारों में हर क्षण असहिष्णु दिखायी देती है तथा अगणित प्रकार के वैयक्तिक और सामाजिक संबन्ध वर्षों की परंपरागत मूल्यों की पूँजी समेटे चालू है। समय-समय पर अकारण ही इन सब में मतभेद भी फूट पड़ते हैं, संघर्ष भी होते हैं, फलस्वरूप सामाजिक संबन्धों में क्षण भर में दरारें आ जाती है एवं संपूर्ण समाज अस्त-व्यस्त हो जाता है। इस हालत में समाज में गतिरोध आ जाता है। इस दु:स्थिति से समाज को उबारना है और उसे गतिशील करना है। समाज के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार के संघटनों की अनिवार्यता इसी संदर्भ में उभड़कर आती है। संघटनों से विभिन्न परिस्थितियों में समाजस्य लाया जा सकता है। इसे वैविध्य पूर्ण स्थितियों में संतुलन भी बनाया जा सकता है।

सामाजिक संघटन समाज की वह दशा है जिसमें समाज की विभिन्न संसथाएँ अपने अपने आदर्शों और विचारों के अनुसार मान्यता प्राप्त उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करती है। इस संगठन में व्यक्ति विशेष की अस्मिता और योग्यता की मान्यता रहेंगी, जिससे व्यक्ति की कुशलता और सामाजिक प्रतिबद्धता में गुणात्मक परिवर्तन होगा। धार्मिक रीति-नीतियाँ, रूढियाँ और विश्वास, विविध सांस्कृतिक और पारंपरिक संस्थाएँ, कानून इत्यादि इस सामाजिक संगठन और नियंत्रण और अनुशासन को बनाये रखने के साधन है।

साहित्यक समाजशास्त्र का लक्ष्य केवल कृतियों का विश्लेषण नहीं है बल्कि कृतियों में समाविष्ट और चर्चित सामाजिक स्थितियों और समस्याओं को व्याख्यायित करके ये दिखाना है कि समाज अब किन-किन दिशाओं में गतिशील है। ये गति कहाँ तक सरल और जटिल है।

आज समाजशास्त्र एक स्वतंत्र साहित्य-विधा के रूप में विकसित हो रहा है। पिछले सौ वर्षों में संस्कृति की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर कलाओं का जो समाजशास्त्र विकसित हुआ है, साहित्य का समाजशास्त्र उसका एक रूप है ।साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन आधुनिक समाज में साहित्य की सत्ता और सार्थकता की पहचान के बौद्धिक प्रयत्न की देन है। अब कई संपूर्ण कारणों से वर्तमान समाज में बड़े -बड़े परिवर्तन होते जा रहे हैं, साहित्य में भी उन सबकी झलक दिखायी दे रही है। समाजशास्त्र की भूमिका यह है कि वह समाज के अद्यतन परिवर्तनों का कितना यथार्थ लेखा-जोखा युगीन साहित्य में प्रतिफलित हुआ है। वास्तविकता यह है कि साहित्य तत्कालीन समाज की सब प्रकार की उलझनों और समस्याओं को मूर्त करता है तो समाजशास्त्र, साहित्य में चित्रित उन सारी समस्याओं को उभाड़कर युगानुरूप विश्लेषित करता है।

भारत में समाजशास्त्र का तो पर्याप्त विकास हुआ है, उसकी विभिन्न शाखाएँ भी रूपायित हुई है, वे हैं संरचानावाद, प्रकार्यवाद और मार्क्सवाद। लेकिन साहित्य से सबद्ध करके, समाजशास्त्र की एक नयी विधा का वांछित विकास नहीं हुआ है।

वस्तुत: समाजशास्त्र का, साहित्य से गहरा संबन्ध है। साहित्य स्वयं समाज की ही नीव पर प्रतिष्ठित है, अत: समाज की ही सारी दिशा दशाओं का सटीक मूर्तीकरण साहित्य का दायित्व हो जाता है, तब यह सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति और समाज की जो-जो समस्याएँ साहित्य में उभाड़कर दिखायी गयी है उन सबका इस दृष्टि से विश्लेषण करते जाना समाजशास्त्र की जिम्मेदारी हो जाती है जिससे वे सब सामाजिकों, समाज सुधारकों, सत्ताधारियों, धर्माचार्यो एवं सामाजिक विकास को रूपायित करनेवाले सैद्धान्तिकों के समक्ष हो जाएँ ताकि वे आगे समाज को सही दिशा में उन्मुख करने में सफल हों। अगर ऐसा न हुआ तो संभव है

कि समाज में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी बड़ी-बड़ी समस्याओं की बाढ़ में पड़कर सारा समाज ही बह जाए। भीष्म साहनी हिन्दी कथा साहित्य की प्रगतिशील धारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने अपनी सर्जकता को युग जीवन के संबन्ध करके पूर्ण सशक्त बना दिया है। किसी भी देश के साहित्य से उस प्रदेश की विभिन्न राजनीतिक और मान्यताएँ, धार्मिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ, गति-विगतियाँ, युगीन जन मानस को रूपायित करने वाली विचारधाराएँ, जनता पर पड़े अन्यांत्य प्रभावों की परिणतियाँ, जन मान्यताएँ, मानवीयता में आयी प्रगति-विकृतियाँ इत्यादि सहज ही जानी जा सकती है। साहित्य ही वह प्रबल साधन है जो जनता की आशाओं और हर्ष-विमर्षो को उसी अनुपात में साकार करता है जिस अनुपात में वह जन-मन में जागता-उठता-गिरता रहता है। युगीन विसंगतियों, कुरीतियों,सत्ताधारियों की अधार्मिकताओं और अत्याचारों के विरुद्ध जनता को चेताने एवं जरूरत पड़ने पर मानवीयता की रक्षा के लिए संघर्ष करने के लिए भी साहित्य द्वारा प्रेरणा दी जा सकती है।

उक्त भूमिका पर ही भीष्म साहनी की सर्जनाओं का विश्लेषण किया जाना है। भीष्मजी ने अपनी विशेष निरीक्षण-पटुता और जागरूकता से ही अपने पात्रों को मूर्त किया है। उन्होंने जिन पात्रों का सृजन किया है वे जीवन के जीते-जागते यथार्थ मानव ही हैं। एक ओर उनके बाह्य और आभ्यान्तरिक ढाँचे भी असली रूप में उभाड आये हैं तो दूसरी ओर उनके भाव या मनोविकारों एवं सांस्कृतिक उतार-चढावों का तल भी उमड़्ते दिखाये गये हैं।

वस्तु चयन में भीष्मजी ने अत्यन्त साहस भी दिखाया है और आत्मीयता भी। साहस इस लिए कि उन्होंने ऐसी घटनाओं और संदर्भ को अपने पात्रों में समाविष्ट किया है, जो विरले ही लेखक की बूते की बात है। आत्मीयता की बात इसी लिए उठायी गयी कि उन सारे संदर्भा से होकर भीष्मजी गुजरे हैं जिनके लिए उन्होंने खींच रखे हैं, उन्होंने ऐसा जीवन आँखों से देखा है और भोगा है।

भीष्मजी मानवीयता के कलाकार है। वे मानवीय सद्‌भावना, सहिष्णुता, भ्रातृ प्रेम, धर्मनिरपेक्षता, जनतन्त्रात्मक जीवन-पद्धति, सामाजिक न्याय इत्यादि जीवन मूल्यों के सुदृढ पक्षपाती रहे हैं। अत: अधुनातन उपभोक्तृ संस्कृति के वे कट्टर विरोधी रहे। यही कारण है कि उन्होंने तत्कालीन जीवन की ऐसी बातों को जिनसे केवल मनोरंजन, वैयक्तिक उत्तेजना, क्षण मात्र के लाभ, अर्थ लोलुपता इत्यादि की वृद्धि मात्र होती है, मानवीयता पर धब्बा लग जाता है, अपने यथातथ अंकित किया है एवं जन-जीवन को सचेत किया है। उनके विचार में आज के उपभोक्ता समाज में लेखक भी तरह-तरह के प्रलोभनों का शिकार हो सकता है। सर्जकों को चाहिए कि वे इस ओर सचेत रहें। आगे बढ़ने, पद पुरस्कार ग्रहण करने की होड़, सस्ता घटिया, मनोरंजन जुटा पाने वाले साहित्य की बढ़ती हुई माँग आदि ऐसे ही प्रलोभन है। उपभोक्तृ समाज, निम्न-मध्यवर्ग के लोगों के सामने प्रलोभनों का जाल बिछाकर उनको धोखा देता भी जाता है।

भीष्म साहनी का कथा-संसार तत्कालीन भारतीय जन- मन की स्वतंत्रता की स्थायी वांच्छा एवं उसके लिए प्राणाहुति तक देने का साहस पूर्ण रूप से मूर्त करने वाला है। उनके कथा संदर्भो में सामंतवाद, पूँजीवाद जातिवाद एवं आधुनिकतावाद - इन सबके अंतर्विरोध क्रमश: खुलते जाते हैं। आधुनिक भारत के नगरों और महानगरों के मध्यवर्ग इनके कथा साहित्य के केन्द्र में है।

जनता में नैतिक मूल्यों की अवधारणा को शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित करना भी भीष्मजी का लक्ष्य रहा है जिससे भारत का भविष्य सुख और शान्ति से अभिमंटित हो। आज सारा देश धर्म और जाति के नाम पर विभक्त है और इन विभक्त व्यक्तियों में संघर्ष, हिंसा, आगजनी आदि भटकाने का कुतंत्र भी बनाया जा रहा है। ऐसी हालत में भीष्मजी की सर्जनात्मक कृतियाँ इस दिशा के नियमन में अत्यन्त लाभ-प्रद सिद्ध होती जाएँगी।

झरोखे उपन्यास एक छोटे से परिवार की व्यथा-कथा का मूर्तीकरण है। पारिवारिक जीवन में जो सारी घटनाएँ घटती हैं वे सब आमतौर पर प्रत्यक्षत:, तुच्छ और साधारण सी दिखायी होती है, पर संस्कारों के रूप में उनकी प्रतिक्रियाएँ प्रचंड होती हैं। आर्य समाजीय विचारों से नियन्त्रित परिवार के बच्चों को अपनी ही रुचि और वासना के अनुसार, पारिवारिक विचारों के प्रतिकूल श्रृंखला तोड़कर क्रान्तिकारी विचारों में परिवर्तित होते दिखाकर उपन्यासकार ने इसी ओर इशारा किया है। समाजशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण भी इस उपन्यास में मिलता है। परिवार, विवाह, सांप्रदायिक विचार, निम्न एवं श्रमिक वर्गो की जिंदगी, आर्यसमाज के आचार-विचार, जातीयता, नौकरों का दु:ख-दर्दी से भरा जीवन इत्यादि सामाजिक समस्याओं की निर्मम आलोचना इस उपन्यास के शब्द-शब्द में विघमान है। वर्तमान जीवन के हर क्षेत्र में आज जो धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यच्युति को तहस-नहस कर डाला है। विवाह जैसी संस्था के लिए इस हालत में बड़ा ही खतरा पैदा कर दिया है। इसी से पारिवारिक जीवन की मजबूत

कड़ियाँ ढूँढती जा रही है एवं सामाजिक जीवन मँझदार में पड़ गया है। कडिय्याँ उपन्यास में मोनोजिनी विवाह से उत्पन्न पारिवारिक समस्याएँ चित्रित हैं। निम्न मध्यवर्ग के टूटते-जुड़ते रिश्तों को साकार करके वर्तमान समाज के एक विशेष पहलू पर उपन्यासकार ने सहृदयों का ध्यान आकर्षित किया है।

उनका उपन्यास तमस वाकई बेमिसाल है, इसके जरिए देश के बंटवारे की एक अलग तस्वीर नजर आती है। इस उपन्यास की प्रमुख समस्या सांप्रदायिकता की है। साथ-ही-साथ निर्धनता, पारिवारिक विघटन, धार्मिक कुरीतियाँ, जाति-वर्गगत- भेदभाव, पुलिस के अत्याचार जैसी सामाजिक समस्याओं का यथातथ चित्रण इसमें अंकित हुआ है।

बसंती उपन्यास में महानगरीय जीवन की खोखली चमक-दमक का सूक्ष्मांकन मिलता है। उसमें जीवन की खाइयों में भटकती बसंती जैसी लड़की के दर्द-भरे-जीवन का रेशा-रेशा उतारकर रख दिया गया है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में मोनोजिनी विवाह, एक विवाह, अन्तर्विवाह जैसे विवाहों के विभिन्न सामाजिक स्वरूपों के विश्लेषणों के अतिरिक्त, सांप्रदायिकता, निर्धनता, भ्रष्टाचार जैसी अन्यान्य सामाजिक समस्याओं की भी विवेचना की गयी है। "मैय्यादास की माड़ी" में भीष्मजी ने सामंती शक्तियों के विरुद्ध उठी जन-चेतना-ज्वार, धनलोलुपों-पदलोलुपों की उच्छृंखलता और संवेदनशून्यता, इत्यादि को उभारकर रख दिया है। इसमें भी निर्धनता, मद्यपान, मोनोजिनी विवाह अन्तर्विवाह जैसी समस्याएँ उठायी गयी हैं।

कुंतो पारिवारिक जीवन से संबंधित उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार मानवीय संवेदनाओं को भी रूपायित किया है एवं मानवीय रिश्तों की जटिलताओं और घात-प्रतिघातों को भी। अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भी मोनोजिनी विवाह, अन्तर्विवाह, परिवार, बेरोजगारी, वेश्यावृत्ति, पुलिस के भ्रष्ट व्यवहार जैसी समस्याओं को चित्रित किया गया है।

प्रेम विवाह से उत्पन्न आर्थिक विषमता, पारिवारिक भिन्नता, जाति-भेद, वर्ग-भेद, सांप्रदायिकता जैसी समस्याएँ नीलू-नीलिमा नीलोफर उपन्यास में मुखरित हैं।

भीष्मजी की कहानियों की विशिष्टता उनकी सहज स्वाभाविकता है। भीष्मजी के अब तक प्रकाशित कहानी संग्रह में भाग्य-रेखा पहला संग्रह है जिसके साथ भीष्मजी ने साहित्य-सृजन के क्षेत्र में कदम रखा था। भाग्य-रेखा में चौदह कहानियाँ है जो कल्पना की रंगीनियों से सजी है। जोत और खून की छींटे-ये दोनों कहानियाँ कृषक-वर्ग से संबन्धित हैं। मुर्गी की कीमत, गंगो का जाया, घर-बेघर, घर की इज्जत, नीली आँखें जैसी कहानियाँ समाजशास्त्रीय दृष्टि से पर्याप्त महत्व रखती है। परिवार, वर्ग, विवाह, निर्धनता, बेरोजगारी, धर्म जैसे सामाजिक पहलुओं का परोक्ष किन्तु यथार्थ विवेचन इनमें मिलता है।

पहला पाठ भीष्म साहनी का द्वितीय कहानी संग्रह है। पहला पाठ. समधि भाई रामसिंह, काँटे की चुभन, एषः धर्मः सनातनः, पाप पुण्य आदि कहानियों में सांप्रदायिक साक्षात्कार पाया जाता है। चीफ की दावत बहुत चर्चित कहानी है जो अपनी संवेदना और कथ्य की सामयिकता की वजह से युग-सापेक्ष बन पड़ी है।

भटकती राख भीष्मजी का गणनीय कहानी संग्रह है। इसकी कहानियों में उन्होंने वर्तमान की समस्याओं को अतीत के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है। भटकती राख की बुढिघ्या, मानवीय संघर्षो की जीति-जागती दास्तान है, जिसकी स्मृतियों में हमारा भविष्य रूपायित हो उठा है। माता-विमाता कहानी की दो औरतें, जोंद कहानी की बुढिया गोमा और लखमी, लेनिन का साथी कहानी का वृद्ध, खून का रिश्ता कहानी का चाचा मंगलसेन जैसे पात्रों के अभावों एवं शोषणों के अन्धकार में भटकते दिखाया गया है। भटकती राख कहानी को छोड़कर अन्य सारी कहानियाँ सामान्य मनुष्य की सामाजिक समस्या को चित्रित करती है।

पटरियाँ संग्रह की कहानियाँ समाज की उलझती-सुलगती अनेकानेक प्रत्यक्ष और परोक्ष समस्याएँ उठाने वाले लेखक को हम पाते हैं। भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, वेश्यावृत्ति, निर्धनता, विवाह जैसी जटिल समस्याएँ अमृतसर आ गया है, पटरियाँ, मौका परस्त, अभी तो मैं जवान हूँ, ढोलक इत्यादि कहानियों में उठायी गयी है। अमृतसर आ गया है में विभाजन के बाद की वैयक्तिक और सामाजिक मनोवृत्तियों और संबन्धों में पड़ी दूसरों की विषम गाथा सुनायी गयी है। यहाँ दया, करुणा जैसे मानवीय भावों के सहन चित्र भी अंकित मिलते हैं।

वाङचू भीष्म साहनी की ग्यारह कहानियों का संग्रह है जिन सबमें सामाजिक प्रतिबद्धता के सोद्देश्य संदर्भ चित्रित हैं। साग-मीट, पिकनिक, मालिक का बन्दा, राधा-अनुराधा, वाडचू जैसी कहानियाँ वर्तमान जीवन की विषमताओं को रेखांकित करती है।

यथार्थता, जनोन्मुखता और सादगी शोभायात्रा कहानी की विशेशषताएँ हैं। फैसला, शोभायात्रा, लीला नंदलाल, खिलौने जैसी कहानियों में मानवता पर पड़े विभिन्न प्रकार के धब्बे को साकार करने का प्रयास है। निशाचर संग्रह की कहानियों में मानवीय संबन्धों के बनते बदलते-बिगड़ते रूपों को सीधी-सादी शैली में चित्रित किया गया है। इस संग्रह की कहानियों में वे सारी समस्याएँ ही उठायी गयी है जिन सबके हल के प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं लेकिन हल के आसार दिखाया ही नहीं दे रहे हैं, ऐसा भी हो सकता है कि ये सब छद्म प्रयास हों, केवल दिखता ही हो।

पाली कहानी-संग्रह की कहानियाँ मुख्यत: भारत के विभाजन के समय के और उसके बाद के भारतीय परिवेश में छायी बेदर्दी की काली घटनाओं को उकेरता है। तत्कालीन हिन्दू-मुसलमान- सिक्ख धर्मावलंबियों को जिन -जिन दर्दनाक, कठोर कारुणिक एवं लाचार परिस्थितियों से जूझना पड़ता है उन सबका पटाक्षेप करके इनमें दिखाया गया है। वर्तमान समाज के असंतुष्ट, आक्रान्त एवं क्षत-विक्षत सामाजिकों में उफनकर उठे विद्रोहों को भी इनमें उभड़कर रख दिया गया है, चाहे वे विद्रोह, सांप्रदायिक हो, चाहे धार्मिक, राजनीतिक अथवा मानवीयता में पैशाचिकता का विष घोलनेवाले हो। डायन कहानी-संग्रह में ऐसी कहानियाँ संगृहीत की गयी है जिनमें प्रमुख रूप से भीष्मजी की पारिवारिक संकल्पनाओं को मूर्त करने का प्रयास किया गया है। डायन कहानी में मध्यवर्गीय परिवार की कई पीढ़ियों की मानसिकता का मार्मिक चित्रण है। गौरैया, राहत रफ्तार जैसी कहानियाँ वर्तमान जीवन की जटिलताओं से टकराती है। वापसी-ब-वापसी कहानी अन्तर्जातीय विवाह की समस्या पर केन्द्रित है।

अग्निपुराण में प्रतिपादित लोकोपयोगी सामग्री

डॉ० बृजेन्द्र सिंह गुर्जर

प्राचार्य, नीरज मेमोरियल कॉलेज, गंगापुर सिटी, सवाई माधोपुर (राज०)

सारांश - अष्टादश महापुराणों में परिगणित अग्निमहापुराण ज्ञान का विशाल भण्डार है; क्योंकि इसमें जीवजगत् से सम्बन्धित वह सम्पूर्ण सामग्री और ज्ञान-विज्ञान निहित है, जिसकी हर युग, देश और काल में सार्वभौमिक मानव को आवश्यकता है और व्यष्टि-समष्टि सभी के लिए अत्यन्त उपादेय व कल्याणकारी है। विभिन्न बातों व क्रियाकलापों के सही ज्ञान, उसके स्वरूप और सम्पादन के अभाव में मानव दिग्भ्रमित होता है और अनेक प्रकार की परेशानियों तथा असफलताओं का सामना उसे करना पड़ता है। परन्तु यदि जीवन और उसके विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित आवश्यक व उपयोगी बातों, पदार्थों और क्रियाकलापों की सही जानकारी मिल जाए, तो समस्त समस्याएँ और दुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं और उन्नति, प्रगति व सफलता व्यक्ति का वरण कर लेती हैं।

अग्निमहापुराण में निबद्ध सामग्री- ज्ञान-विज्ञान और विभिन्न विद्याएँ मानव के जीवन साफल्य में अतिमहत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं; अत: उनकी जानकारी परमावश्यक है, जिसे प्रस्तुत आलेख में संक्षेप में प्रकाशित किया जा रहा है।

शब्द-बोध -

शम- मन का संयम या निग्रह

दम - इन्द्रियों का संयम, नियन्त्रण या दमन

आगार - घर, भण्डार, खजाना

आरोग्यता - स्वस्थता, निरोगता

गोघृत - गाय का घी

शोधालेख-प्रस्तुति - अग्निमहापुराण समस्त विद्याओं और ज्ञान-विज्ञान का आगार है। जैसाकि इस पुराण में कहा भी गया है-

आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्या: प्रदर्शिता:।[1]

कुल 383 अध्यायों के कलेवर वाले इस महापुराण में भगवान के अवतारों, प्राचीनकालीन विभिन्न वंश-परम्पराओं तथा रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराणादि शास्त्रों की कथाओं का उल्लेख तो हुआ ही है, साथ ही जीवनोपयोगी समस्त ज्ञान-विज्ञान और विषयों का भी निबद्धन पुराण में हुआ है। जिसे स्वयं अग्निदेव ने स्वमुख से प्रकट किया है; क्योंकि इस पुराण के वक्ता अग्निदेव तथा श्रोता महर्षि वशिष्ठ रहे हैं। उन्हीं के नाम पर पुराण का नामकरण हुआ है। अग्निदेव तेज, ऊर्जा, प्रकाश और ज्ञान के प्रतीक हैं तथा यज्ञहोमादि में विभिन्न देवताओं को भोगस्वरूप अर्पित किए जाने वाले पदार्थों - 'चरु'[2] के वाहक भी अग्नि देव हैं; क्योंकि अग्नि के माध्यम से ही यह सामग्री देवतओं तक पहुँचती है और देव उसे स्वीकार कर ग्रहण भी करते हैं।

पुराण के प्रारम्भ में ही अग्निदेव ने वशिष्ठ के समक्ष इस पुराण में निबद्ध सामग्री एवं विभिन्न विषयों का प्रकटीकरण किया है; जिससे इस पुराण की महत्ता व लोकोपयोगिता का परिज्ञान हो जाता है। प्रथम अध्याय में अग्निदेव द्वारा कहा गया है-

विष्णु: कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते।
ब्रह्माग्नेयं पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम्।।[3]

अर्थात् "मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही कालाग्निरूद्र हूँ। मैं आपको सम्पूर्ण विद्याओं की सारभूतस्वरूपा विद्या का उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण नाम से जाना जाता है। वही सभी विद्याओं का सार है, वह ब्रह्मस्वरूप है। सर्वमय एवं सर्वकारणभूत ब्रह्म उससे भिन्न नहीं है।" इसी क्रम में यहाँ अग्निदेव ने इस पुराण में पुराण पंचलक्षण, भगवतावतार, भगवान श्रीहरि की स्वरूपभूता 'अपरा' विद्या- वेद-वेदांग, दर्शन, आयुर्वेदशास्त्र, गान्धर्व वेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र तथा 'परा' विद्या-नित्य, अविनाशी ब्रह्म- इन सभी से सम्बन्धित सामग्री के निबद्धन का कथन किया है; जिससे पुराण-सन्निहित ज्ञान-विज्ञान और विषय-विविधता की स्पष्टत: सूचना प्राप्त होती है[4] और तदनुसार सामग्री संकलन पुराण में मिलता भी है।

प्रकृत पुराण-निबद्ध प्रमुख लोकोपयोगी ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और सामग्री को देखें, तो मानव के लौकिक, पारलौकिक तथा पारमार्थिक हिताभ्युदय की समस्त सामग्री के एक स्थान पर मिलने के कारण इस पुराण की महत्ता और लोकप्रियता प्राचीनकाल से रही है। क्योंकि प्राचीन समय में मुद्रण, प्रकाशन तथा वर्तमान की तरह प्रचार-प्रसार की सुविधा न होने के कारण एक ही जगह समस्त ज्ञान के मिल जाने के कारण, तो वर्तमान में इन सब सुविधाओं के रहते भी ऐसा ज्ञान-विज्ञान सर्वत्र सुलभ न होने के कारण यह पुराण लोकोपयोगी व अतिमहत्वपूर्ण बना हुआ है। आज का आधुनिक मानव सारहीन-थोथे, भ्रमित करने वाले, क्षणिक सुखदायी, किन्तु परिणाम में दु:खदायी अथवा प्रतिकूल प्रभाव वाले ज्ञान-विज्ञान की तलाश में भटक रहा है और उसे ही अपना भी रहा है। परन्तु प्रकृत पुराण में निबद्ध ज्ञान-विज्ञान हर दृष्टि से मानव के लिए अनुकूल, सुखद परिणामदायी और सारपूर्ण है। यथा-

- 'पहला सुख निरोगी काया' माना गया है; अत: स्वास्थ्य संरक्षण अथवा आरोग्यता मानव के लिए प्राथमिकता है। स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी अतिउपयोगी ज्ञान इस पुराण में विस्तार से मिलता है।[5] जिनमें स्वास्थ्य- सिद्धान्त, विभिन्न प्रकार के रोग एवं उनका उपचार, विभिन्न रोगों के जानकार कुशल वैद्य, रोगनाशक विविध औषधियाँ,[6] विष-शमन, अनिष्ट-निवारण आदि-आदि सभी से सम्बन्धित ज्ञान ने इस पुराण को महत्वपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र बना दिया है। केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् पशुओं- गो,[7] गज,[8] अश्वादि[9] की चिकित्सा तथा उनके लिए हितकारी- सुखप्रदायक अनेक बातों का रहस्य भी पुराण में उजागर हुआ है।

'गवायुर्वेद विचार'[10] गौओं से प्राप्त विभिन्न पदार्थो- पंचगव्यों द्वारा मानव के विभिन्न रोगों की शान्ति व उनके विनाश का तथा मानव की सुख-समृद्धता का सफलतम उपाय प्रस्तुत करता है।[11] साथ ही गोवंश की पुष्टि, प्रसन्नता-सुख तथा गौओं के दुग्धवती होने आदि-आदि सभी के लिए उपयुक्त रसायन व उपायों का ज्ञान मिलता है।[12]

मानव के लिए विभिन्न रोगों में - अदरक, सोंठ, आँवला, मुलहठी, गिलोय, त्रिफला, मुनक्का, चिरायता, पीपल, काली मिर्च, दालचीनी, हल्दी, सैन्धव, शहद, गौमूत्र, हर्रे, गुड़, गोघृत, नारियल पानी तथा अन्यान्य बहुत-सी वनस्पतीय औषधियों व मसालों के चूर्ण, काढा, रस के सेवन तथा लेपन द्वारा चिकित्सा का विधान बतलाया गया है,[13] जो सदैव से कारगर सिद्ध होता देखा गया है।

विभिन्न रोगों से मुक्तकर शारीरिक स्वस्थता प्रदान करने तथा जगत् के त्रिविध तापों से मुक्ति दिलाने के साधन के रूप में अष्टाङ्गयोग[14] का वर्णन मिलता है; जिसकी वैश्विक महत्ता सिद्ध हो चुकी है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और नए-नए आविष्कार, अनुसंधानों के युग में नवीन विज्ञान व तकनीकें भी स्वास्थ्य संरक्षण में जहाँ कारगर नहीं हो पा रही हैं, वहाँ पुराणविहित ज्ञान सदैव से सफलतम रहा है।

- 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:।'[15] अर्थात् रक्षित किया हुआ धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है, अन्यथा धर्म का नाश होने से व्यक्ति का विनाश भी निश्चित है; इसीलिए धर्म का पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। धर्म ही अभ्युदय और नि:श्रेयस की प्राप्ति कराने वाला है- "यतोऽभ्युदयनि:श्रेयस सिद्धि: स धर्म:।"[16] और जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है- "यतो धर्मस्ततो जय:"।

धर्म के बहुविध लाभ, प्रभाव और माहात्म्य सदैव से देखे गए हैं, अत: प्रस्तुत पुराण ने धर्म विषयक सामग्री देकर जनोपकार किया है। पञ्चधा धर्म - वर्ण, आश्रम, वर्णाश्रम, गुण और नैमित्तिक रूप कहा गया है।[17] धर्म का सही-सही स्वरूप तथा मानव द्वारा उसके सम्पादन का विधि-विधान इसके विभिन्न अध्याय प्रस्तुत करते हैं।[18] विभिन्न देवों की पूजन विधि[19] एवं व्रतोपवास[20] मानव की धर्म प्रवृति एवं धर्म-कर्म सम्पादनार्थ बतलाए गए हैं। प्रकृत पुराणानुसार मात्र भूखे रहकर शरीर को कष्ट देना व्रत नहीं, वरन् शास्त्रोक्त नियम 'व्रत' कहे गए हैं और वही 'तप' भी है। दम और शम भी व्रत के ही अंग हैं; इन सभी का पालन करना धर्म कहा गया है-

शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः।।[21]

व्रत शरीरशुद्धि एवं आत्मशुद्धि का साधन है। आन्तरिक व बाह्यरूप से शुद्ध हुए मनुष्य के लिए किन्हीं कर्मकाण्डों की आवश्यकता नहीं, वरन् वह सत्य, अहिंसा, दया, शम, दम, तप, क्षमादि भावपुष्पों से पूजा-अर्चना और धर्मसाधना सम्पादित हो जाती है। प्रत्येक मनुष्य के लिए काम-क्रोधादि विकारों तथा सुरापानादि व्यसनों का त्याग परमावश्यक है। क्योंकि ये व्यष्टि-समष्टि के लिए अनर्थकारी होते हैं। पुराणवर्णित धर्म तथा विभिन्न देवों की पूजा समता की भावना को दर्शाने वाली है। यह किसी सम्प्रदाय विशेष अथवा किसी एक ही विचारधारा का समर्थन न करके शैव-वैष्णव[22] आदि सभी सम्प्रदायों के प्रति समन्वित व उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। व्यक्ति, समाज व देश के लिए यह साम्प्रदायिक सद्भाव कल्याणकारी है।

- जीवन के परम लक्ष्य एवं अंतिम सत्य की प्राप्ति ज्ञानमार्ग से ही सम्भव है; अतः ज्ञानमार्ग को सत्य स्वीकार करते हुए इस मार्ग का वरण बतलाया गया है।[23] विभिन्न प्रकार के शास्त्र और उनमें निबद्ध ज्ञान; यथा-ज्योतिष शास्त्र, खगोल शास्त्र, वास्तु शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, स्थापत्य कला, शकुन-अपशकुन, विभिन्न प्रकार की विद्याएँ तथा अन्यान्य बहुविध सामग्री ने मानव जीवन में सुख, समृद्धि, सफलता और कुशलता का आधान करने में महत्वूपर्ण भूमिका निभाई है। क्योंकि पुराणनिबद्ध ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और उपदेशों को लोगों ने सदैव से शास्त्रीय नियम व आदेश मानकर आत्मसात् किया है और अपनी संस्कृति व जीवनशैली का अभिन्न अंग मानकर जीवित रखा है।
- समाज में दुराचार करने वालों को दण्ड देने का आवश्यक विधान बतलाकर समाज-व्यवस्था बनाए रखने का कार्य जनहितार्थ ही है। यथा-सन्तान को बेचना, कन्या का अपहरण करना एवं अन्यान्य अपराधों व पापपूर्ण कृत्यों हेतु दण्ड विधान।[24] मानव समाज को संकीर्ण मानसिकता व प्रचलित दु:खदायी रूढिघ्यों से मुक्त करने का महान् कार्य इस पुराण द्वारा किया गया है। आपदास्पद स्थितियों में अर्थात् पति के नहीं रहने अथवा अयोग्य होने पर स्त्रियों के लिए दूसरे विवाह का विधान बतलाया गया है; यह उन्मुक्त मानसिकता का द्योतक है-

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते।।[25]

अतः पतिविहीन अथवा पतिसुख से वंचित स्त्रियों को नारकीय जीवन से निकालकर जीवन को सुखमय बनाने का अधिकार पुराण का सराहनीय कार्य है।

इसी प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक- आध्यात्मिक, दार्शनिक, शारीरिक, मानसिक तथा अन्यान्य सभी क्षेत्रों व पक्षों से सम्बन्धित कल्याणकारी व जनोपयोगी सामग्री का निबद्धन इस पुराण में हुआ है; जिसकी महत्ता सदैव से देखी जा सकती है।

उपसंहार - अग्निमहापुराण के अध्ययन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि इस एक ही पुराण में मानव जीवन से सम्बन्धित वह समस्त सामग्री प्राप्त हो जाती है, जो कि प्रत्येक मानव के इहलोक और परलोक के लिए उपयोगी व मंगलकारी है। पुराण निबद्ध विभिन्न स्थूल व सूक्ष्म विषयों ने मानव के जीवन को सुखी, समृद्ध, संतोषी व उन्नतिशील बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उत्तम स्वास्थ्य, धर्म, धन, भोग, मोक्ष, योग, परा-अपरा विद्या तथा विभिन्न विद्याओं और ज्ञान-विज्ञान विषयक बहुविध सामग्री ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपेण मनुष्य के दु:खों व तापों का शमन व नाश करके तथा उपयोगी ज्ञान प्रदान करके बहुशः उपकार करने का महान् कार्य किया है। यही कारण है कि यह अग्निपुराण किसी एक विषय या बात के लिए नहीं, वरन् मानव के दैनिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक बात और क्रियाकलाप के लिए जाना जाता है और सदैव से लोगों में अपनी महत्ता व जनप्रियता बनाए हुए है। आधुनिक युग में परम्पराओं व संस्कृति से भटके तथा शास्त्रों से विमुख हुए मानव को शास्त्रों व संस्कृति से जोड़े रखने, अपने देश के ज्ञान-विज्ञान से अवगत कराने, और उनसे लाभान्वित होने के लिए इस प्रकार की शास्त्रनिबद्ध लोकोपयोगी सामग्री का प्रकटीकरण अत्यावश्यक प्रतीत होता है। आशा है- वर्तमान व भावी पीढिघ्याँ पुराण-निबद्ध ज्ञान, शिक्षा और विहित विधि-विधानों से अवगत भी होंगी और इसे आत्मसात् कर चरितार्थ भी करेंगी। पुराण की विषय-विविधता, उसकी उपादेयता और प्रासंगिकता पुराण को प्राचीन होकर भी अर्वाचीन बनाती है।

सन्दर्भ सूची -

1 अग्निमहापुराण, 383/51; सम्पादक- डॉ. सुरकान्त झा, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

2 क्या है पुराणों में ?, पृष्ठ-147; लेखक- डॉ. महेन्द्र मित्तल, मनोज पब्लिकेशन्स।

3 अग्निमहापुराण, 1/13

4 वही, 1/14-18

5 वही, अध्याय 279-280, 283 सम्पूर्ण

6 वही, अध्याय, 280, 283

7 वही, 292/23-35

8 वही, अध्याय 287, 291

9 वही, अध्याय 289, 290

10 वही, अध्याय 292

11 वही, 292/2-21

12 वही, 292/23-35

13 वही, अध्याय 279-285

14 वही, अध्याय 372-380

15 मनुस्मृति, 8/15

16 वैशेषिक सूत्र, 1/1/2 एवं महाभारत, शान्तिपर्व/109/10

17 अग्निमहापुराण, अध्याय 151-153, 160-166 एवं भूमिका, पृष्ठ-27

18 वही, अध्याय 151-217

19 वही, अध्याय, 47, 71, 73-77, 91

20 वही, अध्याय 175-208

21 वही, 175/2

22 वही, अध्याय 21, 23, 62-63, 73-76, 91, 318-326

23 वही, 162/3-7

24 वही, 154/3-4

25 वही, 154/5

शारीरिक शिक्षा में योग शिक्षा का महत्व

डॉ० प्रेम सिंह मीणा

पी0 टी0 आई0, निदेशालय संस्कृत शिक्षा राजस्थान, जयपुर।

'योग' हमारे देश की पुण्य व गौरवमयी धरा पर अवतरित हुए प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा विश्व को दिया गया वह अमूल्य उपहार है, जो मानव को सुस्वास्थ्य, दीर्घायु, शारीरिक विकास, बौद्धिक उपलब्धि तथा आध्यात्मिक जागृति और उन्नति का प्रदायक सिद्ध होता है।[1] योग एक विज्ञान भी है और विद्या एवं कला भी। यह साधना भी है और रहस्य भी, चिकित्सा भी है और व्यायाम भी। बालक/व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, संवेगात्मक, धार्मिक-आध्यात्मिक उन्नति व विकास का मूलमन्त्र 'योग' को कहा जा सकता है; क्योंकि जिस किसी ने भी इस मन्त्र को स्वजीवन में चरितार्थ व अनुपालित कर लिया, वह विभिन्न पक्षों के सम्यक् सर्वांगीण विकास और सुदृढ़ीकरण को पा लेता है।

'योग' शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है; जिसका अर्थ है[2]- जोड़ना, या जुड़ना, संयुक्त करना, मिलाना, गठबन्धन करना, सटाना, ध्यान को एक स्थान, वस्तु व बिन्दु या दिशा पर केन्द्रित करना अथवा मोड़ना। वास्तव में योग में चंचल चित्त, मन तथा विषयों की और भटकने वाली विभिन्न इन्द्रियों को नियन्त्रित किया जाता है। बाहरी मिथ्यात्व से हटाकर मन व इन्द्रियों को सच्चाई से जोड़ा जाता है। यह मानवेच्छा तथा ईशेच्छा का सच्चा गठबन्धन है।[3]

वैसे योग के अर्थ व परिभाषाएँ विभिन्न योगवेत्ताओं और विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोणानुसार भिन्न-भिन्न की हैं। परन्तु इतना सभी ने निश्चित माना है कि योग तन, मन व आत्मा की सभी शक्तियों को ईश्वर से जोड़ना तथा संयम व अनुशासन बनाए रखना योग का कार्य है।[4] जब यह कार्य सम्पन्न हो जाता है, तो जीवन के श्रेष्ठतम ध्येय की प्राप्ति हो जाती है। वैयक्तिक विकास और परिमार्जन का जो कार्य योग द्वारा सम्पन्न होता है, वह अन्य किसी विज्ञान, प्रणाली अथवा उपाय से सम्भव नहीं। अत: योग की एक नहीं, वरन् अनेक दृष्टियों से महत्ता बालक/मानव के जीवन में सदैव से रही है और सदैव रहेगी भी।

शिक्षा एवं शारीरिक शिक्षा के ध्येय मानव के सम्पूर्ण विकास को साथ लेकर चलते हैं। किसी भी एक पक्ष की अपूर्णता समग्र व सम्यक् विकास पर प्रश्नचिह्न बनकर रह जाता है। यह शरीर, मन, आत्मा, समाज, धर्माध्यात्म आदि-आदि सभी के विकास और उन समस्त प्रतिमानों को साथ लेकर चलती है, जो किसी भी बालक/व्यक्ति को श्रेष्ठ विद्यार्थी, सद् सामाजिक और सुनागरिक बनाते हैं; साथ ही सुखी व स्वस्थ जीवन जीने और मानव जीवन के परम ध्येय को प्राप्त करने की कला सिखाते हैं और शत-प्रतिशत उनकी प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उसमें अपनी भूमिका अदा करते हैं। शारीरिक शिक्षा मानव की गतिशीलता, क्रियाशीलता तथा विभिन्न क्षेत्रों में कुशलता और प्रवीणता को बनाए रखने व उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकसित करने का सशक्त माध्यम है और इस सबमें येग की महती भूमिका रहती है। इस विषय में विभिन्न शिक्षाविदों, विद्वानों और समाज-शास्त्रियों के विचार इस तथ्य की पुष्टि स्वरूप देखें तो पाते हैं कि सभी के विचारों में इस शिक्षा में योग किसी न किसी रूप में अवश्य समाविष्ट है।

लम्पकिन (1986) के अनुसार - "शारीरिक शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो शारीरिक क्रियाकलाप के माध्यम से एक व्यक्ति को अनुकूल शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कौशल्य तथा स्वस्थता प्रदान करती है।"[5]

एडवर्ड हिच कॉक के अनुसार - "आम समझ में शारीरिक शिक्षा विद्यार्थी के उन सामर्थ्यो तथा शक्ति का संवर्द्धन है, जो उसे अपनी शारीरिक अवस्था को उत्तम संचालन क्रम में बनाए रखने की योग्यता दे तथा उसके बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए और अधिक प्रावीण्य प्रदान करे।[6] इसी प्रकार अन्यान्य व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत शारीरिक शिक्षा विषयक जो मन्तव्य हैं, वे भी बालक की क्रियाशीलता, प्रवीणता और स्वास्थ्य संवर्द्धन की बात कहकर इस शिक्षा में योग शिक्षा की सन्निहित के स्पष्ट संकेत देते हैं।

तात्पर्य यह है कि शारीरिक शिक्षा का जो कार्य एवं विषय क्षेत्र अतिविस्तृत है, वह विभिन्न लक्ष्यों को देखते हुए जब बालक को शिक्षा, ज्ञान एवं प्रशिक्षण देता है, तो उसमें योग शिक्षा स्वत: ही समाविष्ट भी देखी जा सकती है और पृथक्श: भी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इसे शिक्षा व पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जाता रहा है। कुल मिलाकर यह जाना-समझा जा सकता है कि योग की शिक्षा के बिना शारीरिक शिक्षा न तो पूर्णता के साथ दी जा सकती है और न ही इसके बिना शिक्षा का ध्येय पूर्ण व सफल होता है।

प्रत्येक बालक/व्यक्ति के लिए शरीर, मन और आत्मा की अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि परमावश्यक होती है और इसकी शिक्षा शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत प्रदान की जाती है। इस दृष्टि से अवश्यमेव 'योग शिक्षा' का समावेश एवं महत्व सूचित होता है। क्योंकि महर्षि पतञ्जलि विहित योग के जो अष्टाङ्ग[7] - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं, वे आत्म संयम, इन्द्रिय अनुशासन, नियन्त्रण, कर्मण्यता, गतिशीलता, व्यायाम, स्वच्छता, मन की एकाग्रता, साधना, आत्मानुभूति, ईशभक्ति, शारीरिक बलिष्ठता, मन-वचन-कर्म की शुद्धता आदि-आदि विभिन्न ध्येयों को पूरा करते हैं और व्यक्तित्व का समग्र व सम्यक् विकास इन सबके बिना पूर्ण नहीं होता।[8] अत: योग शिक्षा व्यक्ति को एक समग्र व स्वस्थ मानव बनाती है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि योग एवं इसकी शिक्षा का तात्पर्य मात्र विभिन्न व्यायाम व आसनों को करना अथवा इनकी शिक्षा प्रदान करना नहीं है, वरन् यह एक पूर्णाकार जीवन-दर्शन है; यह विभिन्न आसनों- शरीर अवस्थितियों, मुद्राओं- संधिकारक अवस्थाओं, विभिन्न क्रियाओं- स्वच्छ व निर्मल करने वाली क्रियाओं के माध्यम से तन, मन और आत्मा अर्थात् बाह्य और आन्तरिक अनुशासन, शुचिता और संयम[9] को बनाए रखने का सर्वोत्तम साधन है।[10] स्वास्थ्य, चिरायु, सत्य का ज्ञान, कर्म और अध्यात्म के उद्देश्य तो स्वत: ही इससे पूर्ण होते ही हैं, इसके अतिरिक्त आहार, विहार, विचार, शयन और व्यवहार- इन सबका संतुलन व संयम भी योग से पृथक् नहीं वरन् इनका पूर्ण पालन-आचरण और संतुलन शारीरिक शिक्षा व योग शिक्षान्तर्गत ही सिखाया जाना चाहिए। इनकी महत्ता के कारण ही गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने एक योगी के लिए इनकी अनिवार्य अर्हता एवं सजगता का निर्देश दिया है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।[11]

इस प्रकार यहाँ बालक के लिए उचित आहार अर्थात् खाना-पीना, विहार यानी घूमना-फिरना तथा आमोद-प्रमोद कर्म करना, आसन व व्यायामादि-आदि सभी कुछ करने का जो निश्चित नियम और प्रणाली है, उनकी यथायोग्यता, अल्पता अथवा अति का वरण और वर्जन आदि-आदि सभी कुछ बालक को शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत सिखाया जाता है, तो वह अतिकारगर व सफल, स्वस्थ और सुखी जीवन का आधायक बनता है। क्योंकि एक विद्यार्थी के लिए अत्यधिक आहार लेना अथवा अति अल्प या बिल्कुल न लेना, अधिक शयन करना अथवा अति जागना तथा इसी प्रकार नित्यप्रति के विभिन्न क्रियाकलापों को कोताही के साथ नहीं, वरन् संतुलन के साथ निष्पादित करना परमावश्यक है[12] और यह सब योग शिक्षा द्वारा सिखाया जाता है। किसी भी कार्य, बात या वस्तु के ग्रहण व त्याग की अल्पता व अधिकता योग में, सुसंयत जीवनशैली में बाधक बनती है। योग शिक्षा इस बाधा व असंतुलन को दूर करती है।

योग के अन्तर्गत शरीर की सन्धियों को स्वस्थता व मजबूती, स्नायुमण्डल को शक्ति, स्फूर्ति व आरोग्य प्रदान करने वाली तथा नाड़ी शोधन करने वाली सूक्ष्म व्यायाम की विभिन्न क्रियाओं व गतिविधियों का ज्ञान भी दिया जाता है[13] और उनका प्रयोगानुभव भी सिखाया जाता है। यह बालक के लिए अति लाभकारी सिद्ध होता है। योग की विभिन्न क्रियाओं के लिए उचित समय, स्थान, वेशभूषा, भूमि पर बिछाने वाला आसन, आयु के अनुसार विभिन्न क्रियाएँ, मुद्राएँ, सावधानियाँ, शुद्ध- सात्विक-सुपाच्य तथा उचित भोजन-पान, श्वास-प्रश्वास का नियम व गति, आसनों व क्रियाओं का क्रम, नेत्र एवं दृष्टि की स्थिति, विश्राम, ध्यान, शरीर का एवं बाह्य तापमान, पाचन सम्बन्धी ज्ञान, शरीर व वातावरण की स्वच्छता आदि-आदि सभी बातों की जानकारी बालक को दी जाती है, तो वह उनके अनुसार नियमोपनियमों का पालन व व्यवहार करके आजीवन सुखी, स्वस्थ और नीरोग रह सकता है तथा विभिन्न क्षेत्रों में - स्वरुचि, योग्यता और सामर्थ्यानुसार स्वयं को स्थापित कर सकता है।

योग केवल एक प्रकार से सम्पादित न होकर विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। मुख्यत: सात यह सात प्रकार का कहा गया है[14] ज्ञानयोग या सांख्ययोग, कर्मयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग।[15] इनमें-

ज्ञानयोग या सांख्ययोग[16] - ज्ञान एवं विवेक का योग है। ज्ञान का ग्रहण और साधना करने वाले इस योग को प्राप्त करते हैं। ज्ञान से जीवात्मा अपना साक्षात्कार योग द्वारा करता है।

कर्मयोग[17] - कर्मण्यता का योग है अर्थात् यह कर्म का निर्वाह करना सिखाता है; जिसमें निष्काम भाव जरूरी है।

भक्तियोग - भौतिक विषय-वासनाओं व कामनाओं का त्यागकर परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण व उसकी भक्ति व उपासना में स्वयं को लगाए रखते हुए कर्तव्य कर्मों को करना ही भक्तियोग है।

मन्त्रयोग - ऊँ अथवा गायत्री आदि किसी भी मंत्र का जाप करते हुए मन को स्थिर कर लेना 'मन्त्रयोग' कहा गया है।

लय योग - नाद की ध्वनि पर ध्यानावस्थित कर मन को पूर्णत: नाद में लीन करना ही 'लययोग' है। अर्थात् हर क्षण परमात्मा के ध्यान में मन लगा रहे। यह व्यक्तित्व को जानते हुए भी उसे विलय करने का योग है।

हठयोग - यह शारीरिक व मानसिक शुद्धि प्राप्त करने वाला योग है। इसे कुण्डलिनीयोग या प्राणयोग भी कहा जाता है। दायीं व बायीं नाक से चलने वाले श्वास-प्रश्वास को मिलाकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित करना- हठयोग में होता है।

राजयोग - यह मन के जागरण तथा ज्ञान केन्द्रों को जगाने का योग है और उपर्युक्त सभी योगों में प्रमुख होने के कारण 'राजयोग' कहा जाता है। इसे 'समाधि योग' भी कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि योग को किसी एक क्रिया या गतिविधि के रूप में नहीं लिया जा सकता, वरन् विभिन्न रूपों में की गई साधना, क्रियाएँ, गतिविधियाँ, कर्म और व्यवहार तथा उनका प्रशिक्षण-अभ्यास योगान्तर्गत आते हैं। योग शिक्षा के अन्तर्गत इन सभी की शिक्षा, प्रयोग, प्रशिक्षण और अनुभव बालक/व्यक्ति के सुखी, सशक्त, प्रसन्न और आरोग्यपूर्ण जीवन का कारण सिद्ध होते हैं। यदि इनकी शिक्षा और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए तो व्यक्ति का जीवन-दर्शन और जीवनशैली सुसंयत, स्वस्थ व अनुशासित बन जाते हैं।

निष्कर्ष

जैसा कि उपर्युक्त अध्ययन-विवेचन से अवगत होता है कि शारीरिक शिक्षा योग की व्यापकता को किसी-न-किसी रूप में समाविष्ट किए हुए चलती है; अत: विभिन्न यौगिक क्रियाएँ और शरीर, मन-मस्तिष्काधारित गतिविधियाँ शारीरिक शिक्षा में बालक के लिए स्वास्थ्य, मनोरंजन, कर्मण्यता और आरोग्यता आदि की आधायिका बनती हैं। इसमें यह आवश्यक नहीं कि केवल योग या व्यायाम के नाम पर विभिन्न योगासन व व्यायाम ही कराया जाए, अपितु वे समस्त क्रियाएँ और आचरण-व्यवहार, जो वास्तव में भाँति-भाँति के योगों द्वारा व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व को सशक्त, संयमित, अनुशासित, पवित्र, निर्मल और स्वस्थ बनाते हैं; व्यक्तित्व विकास और विभिन्न कौशलों में निपुणता आदि-आदि के ध्येय को पूर्ण करते हैं, योग कहलाते है। क्योंकि योग साधना और योग शिक्षा बालक या व्यक्ति के शरीर, मन, मस्तिष्क और आत्मा अर्थात् अन्तर्बाह्य इन्द्रियों को परिष्कृत करने का कार्य करती है। कब, किस उम्र व अवस्था में कैसी दिनचर्या, आहार-विहार और शयन तथा कर्म साधनादि-आदि करनी चाहिए, यह सब योग शिक्षा के अन्तर्गत जब बालक सीखता व पालन करता है, तो आदर्श छात्र, संस्कारित व्यक्तित्व, सभ्य सामाजिक और सुनागरिक होने का दायित्व पूरा करता है। बालक के द्वारा सीखा गया योग बाद में उसके ज्ञानानुभव व साधना से अनेक लोगों को योगी बनाने का कार्य सम्पन्न करता है। फिर इसी परम्परा से बालक/व्यक्ति विभिन्न योगों में सिद्धहस्त व अनुभव प्राप्त वह योगी बन जाते हैं, जिस योग के बल पर आजीवन सुख, प्रसन्नता और उत्तम स्वास्थ्य भी पा जाते हैं और विभिन्न कर्मों में कुशलता व सिद्धहस्तता भी; क्योंकि योग कर्मों में कुशलता है- "योग: कर्मसु कौशलम्।"[18]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शारीरिक शिक्षा के सिद्धांत तथा इतिहास, पृष्ठ-320; डॉ. एम.एल. कमलेश और स्वर्गीय डॉ एम. एस. संग्राल, फ्रैन्ड्ज पब्लिकेशन्ज, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2012
2. शारीरिक शिक्षा स्वास्थ्य एवं खेलों की आधुनिक पाठ्य-पुस्तक, पृष्ठ-194; अजमेर सिंह एवं साथी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण-2003
3. वही, पृष्ठ-194-195
4. शारीरिक शिक्षा के सिद्धांत तथा इतिहास, पृष्ठ-321
5. शारीरिक शिक्षा का इतिहास, सिद्धान्त तथा मूलाधार, अध्याय-1, पृष्ठ-9; जंग बहादुर, स्पोर्ट्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2016

6. शारीरिक शिक्षा का इतिहास, सिद्धान्त तथा मूलाधार, अध्याय-1, पृष्ठ-7
7. पातञ्जल योगदर्शन, योगसूत्र-2/29
8. I. शारीरिक शिक्षा का इतिहास, सिद्धान्त तथा मूलाधार,
II. शारीरिक शिक्षा स्वास्थ्य एवं खेलों की आधुनिक पाठ्य-पुस्तक,
III, स्वास्थ्य शिक्षा, आर.सी. कंवर, प्रकाशक- निर्मल कंवर अमित ब्रदर्स, नागपुर (महाराष्ट्र), प्रथम संस्करण-1994
9. शारीरिक शिक्षा के सिद्धांत तथा इतिहास, पृष्ठ-320
10. गीता, 6/12 - "तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा.......... आत्मविशुद्धये।"
11. वही, 6/17
12. वही, 6/16 - "नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति...................।"
13. योग साधना व योग चिकित्सा रहस्य : स्वामी रामदेव, पृष्ठ-30; साई सिक्युरिटी प्रिंटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली।
14. स्वरमङ्गला, भाग प्रथम, पृष्ठ-60; त्रैमासिक शोध पत्रिका, वर्ष-46, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर-2021, राजस्थान संस्कृत अकादमी।
15. शारीरिक शिक्षा स्वास्थ्य एवं खेलों की आधुनिक पाठ्य-पुस्तक, पृष्ठ-196-197
16. गीता, 4/38 - "न हि ज्ञानेन सदृशं......... आत्मनि विन्दति।"
17. वही, 2/47
18. वही, 2/50

मुरादाबाद शहर में माध्यमिक स्तर पर शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की आध्यात्मिकता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० कल्पना जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

शोध सार -

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो हमारी सम्पूर्ण शक्तियों का विकास करती है तथा हमारे ज्ञान में वृद्धि करती है। शिक्षण स्वयं में अति विस्तृत क्षेत्र है तथा अनुसंधान किसी भी समस्या के समाधान के लिए चरणबद्ध पद्धति से किया जाने वाला प्रयास है। शैक्षिक अनुसंधान से मूल प्रश्नों का समाधान किया जा सकता है तथा इसके परिणामस्वरूप नवीन ज्ञान वृद्धि की जा सकती है। अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि के द्वारा आँकड़ों को एकत्र कर परीक्षण करने में सफल होते हैं। इस शोध के माध्यम से माध्यमिक स्तर पर शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की आध्यात्मिकता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। शोध क्षेत्र में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों की आध्यात्मिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर पाया गया।

मूल शब्दः अन्वेषण तथा विश्लेषण, माध्यमिक स्तर, शासकीय व अशासकीय विद्यालय, आँकड़े, टी-परीक्षण, मध्यमान, प्रमाणित विचलन

प्रस्तावना -

अनुसंधान ऐसा व्यवस्थित, विश्वसनीय एवं नियंत्रित अध्ययन है जिसमें विभिन्न चरों एवं विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक संबंध का अन्वेषण तथा विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकी विधि द्वारा किया जाता है। जो संबंधों अथवा प्रभाव को एक दिशा प्रदान करता है, ये दिशा शिक्षा के क्षेत्र में समस्याओं के अध्ययन करने एवं उसमें आपेक्षित परिवर्तनीय सुधर करने में मदद करता है।

यदि अनुसंधान का आधार विश्वसनीयता व वैधता का अभाव रखा जाये तो ऐसी दशा में प्राप्त निष्कर्ष शिक्षा के क्षेत्र में ठोस निर्णय नहीं प्रदान कर पायेगा, इसलिए अनुसंधानों में वैज्ञानिक विधि का अधिक महत्व हो जाता है। वैज्ञानिक विधि से तात्पर्य यह है कि जिन परीक्षणों के आधार पर हमें आंकड़े प्राप्त करने होते हैं, यदि वे वैज्ञानिकता एवं विश्वसनीयता रखते हैं तो आंकड़े यही निष्कर्ष लेने में सहायक होगें और जिनके परीक्षणों में वैधता उपस्थित रहेगी।

शोध कार्य के लिए प्रविधि का विशेष महत्व होता है। प्रविधि का विशेष संबंध विश्लेषण के यंत्रों से है। जिस सामग्री का विश्लेषण लेना है। वह सांख्यिकी या असांख्यिकी भी हो सकता है। अनुसंधान कार्य में किसी भी विषय से संबंधित सभी प्रकार के समस्याओं के समाधान के लिए उपकरणों का प्रयोग प्रविधि के अंतर्गत रखा गया है। प्रतिधि का विशेष संबंध विश्लेषण के यंत्रों से है। उदाहरणतः जब दो चरों के संबंधित माध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जाँच ''टी'' परीक्षण द्वारा की जाती है। तब आंकड़ों की विधि न कहकर प्रविधि कहना उपयुक्त है।

शोध विधि -

परीक्षण के परिणाम की विश्वसनीयता, समस्या को सुलझाने के लिए सही विधि का चुनाव पर निर्भर करती है। वैसे तो प्रदत्तों को एकत्रित करने के कई तरीके हैं। शोध विधि का चुनाव शोध समस्या की प्रकृति पर निर्भर करता है। वर्तमान अध्ययन में शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की अध्यात्मिकता के प्रति अभिवृत्ति को जानने का प्रयास किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। यह विधि अनुसंधान में बहुत अधिक प्रचलित तथा उपयोग की जाने वाली विधि है, क्योंकि इस विधि के द्वारा हम प्रश्नावली देकर उनसे उत्तर प्राप्त कर सकते हैं।

सार्वभौम -

शोध में जनसंख्या का तात्पर्य संपूर्ण ईकाइयों के निरीक्षण से होता है। न्यायदर्श की ईकाइयों के निरीक्षण तथा मापन से जनसंख्या की विशेषताओं के संबंध में अनुमान लगाया जाता है। सार्वभौम से तात्पर्य उस जगह तथा वहाँ के समस्त लोगों से है। जिनका उपयोग शोध कार्य के लिए किया जा सकता है। सार्वभौम का वह भाग जहाँ तक अनुसंधानकर्ता की पहुँच होती है ''जनसंख्या'' कहलाती है तथा इसी जनसंख्या से प्रतिदर्श का चुनाव किया जाता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में शोधकर्ता ने ''मुरादाबाद शहर के माध्यमिक स्तर पर शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की आध्यात्मिकता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय का चयन किया है। इसे हेतु माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं का चयन किया गया है। ये छात्र-छात्राएँ मुरादाबाद जिले में स्थित विद्यालयों में अध्ययनरत हैं।

प्रतिदर्श विधि -

पी.वी. यंग ''एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु चित्र होता है।'' प्रतिदर्श समूचे इकाई समूह में से चुनी हुई कुछ इकाईयों का समूह है जो समूचे है जो समूह का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करता है।

अत: प्रतिदर्श एक समष्ठि का वह अंश होता है, जिसमें अपनी समष्ठि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिबिंब होता है, संपूर्ण जनसंख्या का अध्ययन कठिन कार्य है। अत: संपूर्ण समग्र में से कुछ ईकाईयों का चुनाव कर उन्हें प्रतिदर्श के रूप में लिया जाता है।

प्रस्तुत लघुशोध पत्र प्रबंध में प्रतिदर्श तथा प्रतिदर्श विधि का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि समय की बचत के साथ-साथ अपने विषय पर गहन अध्ययन भी किया जा सके। अत: उस प्रतिदर्श विधि की सहायता से शोधकर्ता अपना ध्यान समग्र में व्यर्थ लगाकर कुछ पर ही केन्द्रित करता है। प्रतिदर्श के द्वारा अध्ययन निम्नलिखित चरणों में होता है-

1. पूर्व परीक्षण करना।
2. अध्ययन के उद्देश्यों को स्पष्ट करना।
3. समष्टि को स्पष्ट करना।
4. आवश्यक व सार्थक आंकड़ों का ही संकलन करना।
5. परिणामों की आवश्यक परिशुद्धता की मात्रा को पूर्व निर्धारित करना।
6. मापन की विधि की व्याख्या।
7. निर्देश सूची की रचना।
8. प्रतिचयन विधि का चयन।
9. अध्ययन क्षेत्र का सफल रूप से संगठन न करना।
10. आंकड़ों का सारांश तथा विश्लेषण

समष्टि -

मुरादाबाद जिले में स्थित माध्यमिक विद्यालय से लिए गये शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के कुल छात्र-छात्राएँ 140, शासकीय विद्यालय के 70 व अशासकीय विद्यालयों के भी 70 विद्यार्थी हैं जिनमें प्रत्येक में 35 छात्र व 35 छात्राएँ हैं।

प्रतिदर्श -

प्रतिदर्श के निर्धारण हेतु मुरादाबाद स्थित विद्यालयों में से 4 विद्यालयों का चयन लाटरी विधि द्वारा किया गया एवं कुल 140 छात्र-छात्राओं का चयन किया गया जिनमें से 70 छात्र एवं 70 छात्राएँ हैं।

शासकीय विद्यालय के विद्यार्थी

विद्यालय	*छात्र*	*छात्रा*	*कुल*
राजकीय इंटर कॉलेज, मुरादाबाद/राजकीय गर्ल्स इंटर कॉलेज, मुरादाबाद	20	20	40
डी.एन. कॉलिज, मुरादाबाद/आर.जी. इंटर कॉलिज, मुरादाबाद	15	15	30
कुल	35	35	70

अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थी

विद्यालय	*छात्र*	*छात्रा*	*कुल*
सफलता इंटर कॉलिज, मुरादाबाद	20	20	40
कृष्णा पब्लिक स्कूल, मुरादाबाद	15	15	30
कुल	35	35	70

उपकरण-

समस्या को किसी निष्कर्ष पर पहुँचाने के क्रम में परिकल्पना, प्रतिदर्श, प्रदत्तों का संकलन सभी सीढ़ी के समतुल्य अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। उसी में से एक है उपकरण जिस तक इन सभी सीढ़ियों को पार कर ही पहुँचा जाता है। समस्या के अनुरूप ही परिकल्पना, प्रतिदर्श और संकलन का कार्य किया जाता है। किसी भी समस्या विशेष के लिए उपकरण भी विशेष ही होते हैं।

प्रत्येक उपकरण एक विशेष प्रकार के आंकड़े के लिए उपयुक्त होते हैं। उद्देश्य पूर्ति के लिए उपकरणों में से एक या एक से अधिक का भी प्रयोग किया जा सकता है। उपकरण की संख्या प्रतिदर्श पर आधारित होती है।

उपकरण के चयन का आधार -

अनुसंधान संबंधी आंकड़ो को प्राप्त करने के लिए उपकरण का चयन मुख्य दो आधारों पर किया जाना चाहिए।

1. मौलिक आवश्यकता की पूर्ति के आधार पर।
2. व्यवहारिक आधार पर मौलिक आवश्यकता की पूर्ति के आधार पर चयन निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
   - अ. उद्देश्य प्राप्ति के सहायक: उपकरण यदि उद्देश्य प्राप्ति में सहायक नहीं है तो वह व्यर्थ कठिनाई में वृद्धि करता है, इसलिए इस बात पर प्रथम विचार करना चाहिए।
   - ब. विश्वसनीयता: उपकरण की विश्वसनीयता का परीक्षण करके ही प्रयोग में लाना चाहिए। परिणाम की विश्वसनीयता ही वैज्ञानिक अनुसंधान की कसौटी है।
   - स. उपकरण की वैधता: उपकरण को इस तथ्य का मापन करना चाहिए, जो हम प्राप्त करना चाहते हैं।
   - य. वस्तुनिष्ठता: उपकरण वस्तुनिष्ठ परिणाम उपलब्ध कराने वाला होना चाहिए।
   - र. व्यापकता: उपकरण का संबंध उस क्षेत्र से संबंधित हो जिस पर कार्य करना चाहते हैं।
   - ल. प्रमाणीकृत: जहाँ तक संभव हो सके प्रमापीकृत उपकरण ही प्रयोग में लाना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक आधार पर उपकरण चयन में ध्यान देना चाहिए। जैसे समय और धन अधिक खर्च न हो, प्रशासन में सरलता हो, अंक देने में कठिनाई न हो, तथा उसका विश्लेषण भी सरलतापूर्वक हो जायें। इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर उपकरण का चयन किया गया है।

आध्यात्मिक अभिवृत्ति मापनी -

आध्यात्मिकता के प्रति अभिवृति ज्ञान करने के लिए इस मापनी का निर्माण श्रीमती रश्मि जैन एवं डा.एल.एन. दुबे ने 2009 में किया था। इस मापनी को 13 से 22 आयु वर्ष के 1900 विद्यार्थियों जिसमें से 1050 छात्र एवं 850 छात्राएँ थीं पर मानकीकृत

किया गया जिनका चयन यादृच्छिक विधि से किया गया हो जो कि 10 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों एवं 6 महाविद्यालयों में अध्ययनरत थे। इस उपकरण की विश्वसनीयता समतुल्य विधि द्वारा 0.79 तथा परीक्षण पुर्नपरीक्षण विधि द्वारा 0.89 ज्ञात हुई तथा इस उपकरण की कंस्ट्रक्ट वैद्यता 0.81 ज्ञात हुई। इस मापनी में कुल 40 कथन हैं। जिसमें से 20 धनात्मक एवं 20 ऋणात्मक कथन है। प्रत्येक कथन का उत्तर सहमत, अनिश्चित, असहमत में देना है। धनात्मक कथनों में से सहमत पर 2 अंक, अनिश्चित पर 1 अंक एवं असहमत पर 0 अंक प्रदान करता है एवं ऋणात्मक कथनों में सहमत पर 0 अंक, अनिश्चित पर 1 अंक एवं असहमत पर 2 अंक प्रदान करना है। इस मापनी की अधिकतम अंक परास 80 है। स्कोरिंक के लिए की का उपयोग करना है।

सांख्यिकीय विश्लेषण –

परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर सार्थकता का मान ज्ञात करने के लिए सांख्यिकीय मानों का प्रयोग किया गया है। जिसमें माध्यमान, मानक विचलन और ''टी'' मूल्य की गणना की गयी है। इनको प्रापत करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया गया है।

1. $$M = AM + \frac{\sum fd}{N} \times i$$

जहाँ – M = मध्यमान

AM = कल्पित मध्यमान

$\sum$fd = आवृति तथा विचलन के गुणनफल का योग

N = प्रदत्तों की संख्या

i = वर्ग अंतराल

2. प्रमाणित विचलन $$SD(\sigma) = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \frac{(\sum fd)^2}{N}} \times i$$

जहाँ – SD = प्रमाणित विचलन

$\sum fd^2$ = विचलनों के वर्ग एवं आवृतियों के गुणनफल का योग

3. टी मूल्य $$t = \frac{M_1 - M_2}{\sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}}$$

इन सूत्रों के माध्यम से टी मूल्य ज्ञात किया गया और शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की आध्यात्मिकता के प्रति अभिवृति में सार्थक अंतर ज्ञात किया गया।

संदर्भ सूची –

1. गैरेट, हेनरी ई. (1944): शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. त्रिपाठी, लालबचन (1983): मनोविज्ञान अनुसंधान पद्धति, भार्गव बुक हाउस, राजा मण्डी, आगरा।
3. कपिल, एच.के. (1984): अनुसंधान विधियाँ, हर प्रसाद भार्गव बुक हाउस, आगरा।
4. शर्मा, आर.ए. (1995): शिक्षा अनुसंधान, सूर्या पब्लिकेसन्स, मेरठ।

नागार्जुन की काव्यगत विशेषताएँ

प्रो० प्रदीप श्रीधर

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग तथा निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

नागार्जुन विशेष रूप से एक जनकवि के रूप में विख्यात हुए। इसका कारण है उनकी कविताओं का जनमुखी होना। अपने समय में उन्होंने जनसामान्य की निर्धनता, उसकी लाचारी, निम्नवर्ग की सामाजिक स्थिति देखी थी। जिसे देखकर उनका संवेदनशील हृदय व्यथित तो था ही, साथ ही समाज की विषमताओं के जाल को देखकर क्रांति भी कर रहा था। उनकी काव्ययात्रा सन् 1930 ईस्वी से प्रारंभ होती है। उनका जन्म सन् 1911 की ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को बहुत मामूली और अनपढ़ परिवार में हुआ था। जन्म का नाम वैद्यनाथ मिश्र था। हिंदी, संस्कृत, बांग्ला में मौलिक लेखन करने वाले वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' हो गए। यायावरी स्वभाव के नागार्जुन ने गाँव, प्रांत या देश के किसी कोने में अपना ठिकाना नहीं बनाया।उनका रचना संसार भी उनके इस फक्कड़ जीवन से अनुप्राणित है इसीलिए वे कभी-कभी ऐसा लिख देते हैं जिससे पाठक और श्रोता चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकते। "नागार्जुन की कविता अपने रचना लोक में धँसने की इच्छा से पहले अपने अचरज भरे और ओर- छोर फैले भूगोल में भटकने को आमंत्रित करती है। हमारी बहुलताओं के रागरंग हलचल से भरी वह अविरल और अनथक यात्राओं के संस्मरण की तरह है। वह हमारे भौगोलिक, प्राकृतिक, जैविक और प्रतिपल घटित मानवीय व्यवहार का इतिहास भी है और जीवन साक्ष्य भी।"[1] जहां तक नागार्जुन की भाषा का प्रश्न है तो वह उनके यायावरी जीवन को दर्शाती हुई बहुत विस्तृत है। उसमें बोलियों की शब्दावली का सतत् अर्थपूर्ण प्रवाह विद्यमान है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नागार्जुन की भाषा के संबंध में लिखा है, "हिंदी भाषा क्षेत्र के किसान मजदूर जिस तरह की भाषा आसानी से समझते और बोलते हैं, उसका निखरा हुआ काव्यमय रूप नागार्जुन के यहां है।"[2] उनकी इस भाषा से उनके काव्य की विशेषताएं जीवन प्रदान करती लगती हैं। राजेश जोशी का कथन है, "नागार्जुन मात्र राजनीतिक कवि नहीं हैं। इस महादेश की विपुल और विविधरंगी प्रकृति का ऐसा अनुगायन, जैसा नागार्जुन की कविताओं में संभव हुआ है, बहुत कम ही कवियों में संभव हो सका है।"[3] नागार्जुन के काव्य की प्रवृत्तियों को देखने पर निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं-

वैयक्तिकता- नागार्जुन के काव्य में वैयक्तिकता स्पष्ट दृष्टिगत होती है। कवि बहिर्मुखी होने पर भी अंतर्मुखी रहा है। यही कारण है कि नागार्जुन के काव्य में वैयक्तिक अभावों, वैयक्तिक संघर्षों और वैयक्तिक कष्टों की झाँकियां मिल जाती हैं। कवि जीवन संघर्षों में अकेला ही जूझता दिखाई देता है। जहां कवि समाज के लिए प्रतिबद्ध है जनमानस के दु:खों से दु:खी है, वही वह अपने लिए भी सतर्क है-

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ[4]

बहुजन समाज की इस प्रतिबद्धता में वह अपना ध्यान भी रखता है; संभवत: जनकल्याण की भावना से अपने को स्वस्थ रखने के लिए-

सुबह-सुबह
तलाब के दो फेरे लगाए

सुबह-सुबह
रात्रि शेष की भीगी दूबों पर
नंगे पाँव चहलकदमी की[5]

और भी-

बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जी भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से
ताजे टटके फूल[6]

प्रेम और प्रणयभावनाख्र नागार्जुन जहाँ एक जनकवि हैं, जहाँ सर्वहारा के प्रति प्रेमाकुल हो व्यवस्था परिवर्तन की बात करते हैं, वहीं व्यक्तिगत प्रणयभावना को भी तीव्रता और गहनता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रणय में प्रेयसी के प्रति भावों का अजस्र स्रोत बहाते दिखाई देते हैं। उनका प्रेम गहन, गंभीर और दिखावे से रहित है। उनका प्रेम मर्यादित है जिसमें गृहस्थ जीवन की कोमलकांत भावनाएं उछाल मार रही हैं। कवि की विरह भावना भी पवित्रता और उज्ज्वलता से ओतप्रोत है-

गोद के शिशु से मुखर जीवन तुम्हारा
भुला दे इस पथिक का परिताप सारा[7]

कवि अपने दु:ख को दूर करने के लिए प्रिय की याद करता है। प्रेम जीवन संबल बनाता है, प्रिय का मुस्कुराना, उसके प्रेमल हावभाव किस तरह उसे सुख देते हैं, इन पंक्तियों में व्यक्त है-

पिला दो जीवन सुधा दो-एक मात्रा
स्मितमुखी, फिर कर सकूँ आरंभ यात्रा
स्वप्न में ही सही तुम फिर मुस्करा दो
अमृत की दो बूँद इस मुँह में गिरा दो[8]

कवि ने अपनी प्रणय कविताओं में प्रेम की स्वाभाविक और सौंदर्यमयी अनुभूतियों को भी उकेरा है-

मुझे भूली बात सी चट आ गई कुछ याद
पास ही सोई पड़ी श्लथ शकुंतला प्रेयसी की थपथपाई पीठ
जग गयी तो दिखाकर तारे बचे दो-चार
कहा मैंने पकड़कर प्रब हाथ
दो घड़ी का हमारा इनका रहा है साथ[9]

इस प्रकार कवि ने पुनीत और उज्ज्वल प्रणय का चित्रण कर काव्य को माधुर्य गुण से मार्मिक और मनोरंजक बना दिया है।

सामाजिक यथार्थ- कवि ने अपने समय के समाज की परिस्थितियों को बहुत निकटता से देखा-परखा था। उस समय का दलित वर्ग जो गरीबी, भुखमरी और सामाजिक तिरस्कार में जी रहा था उसे देखकर उनका हृदय आंदोलित रहता था। भारत के किसानों की कठिनाइयां, उनकी निर्धनता उन्होंने बहुत निकटता से देखी थीं। मध्यमवर्ग विविध समस्याओं से ग्रसित होकर चिंतातुर बना हुआ था। निर्धन वर्ग-बहुजन वर्ग के उत्थान के लिए कवि प्रतिबद्ध हैख्र

प्रतिबद्ध हूँ
जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
सम्बद्ध हूँ, जी हाँ सम्बद्ध हूँ

सचर-अचर सृष्टि से

शांति से, ताप से, धूप से, ओस से, हिमपात से[10]

असहाय सर्वहारा की व्यथा, उसका समाज द्वारा शोषण, उसका पिटना, उसका थोड़े से में जीवन व्यतीत करना कवि ने देखा है। अत: वह उसी सर्वहारा की भाषा में बोल पड़ता है-

दिल ने कहा अरे हम तो बस पिटते आए रोते आए

बकरी के खुर जितना पानी

उसमें सौ-सौ गोते खाए[11]

स्वदेशानुराग- सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, क्या यह देश के व्यक्ति के लिए उन्नति की कामना देशभक्ति नहीं है?हाँ है। व्यक्ति से समष्टि की ओर, इकाई से समग्र देश की ओर बढ़ना, उसका कल्याण करना, तन-मन से समर्पण ही तो देशभक्ति है। देश और देश के हर दु:खी मानव के विषय में सोचना और उनके उद्धार और कल्याण के लिए तत्पर होना; यही तो देशभक्ति है। कवि में यह समग्र भाव परिलक्षित होता है। कवि अपने राष्ट्र का अनन्य भक्त है। वह मातृभूमि का पुजारी है। पंक्तियाँ देखिए-

पसीना-पसीना हो जाते हैं तरुण लगाते-लगाते संपूर्ण क्रांति के नारे फूल-फूल जाती हैं गर्दनों की नसें काश वे भी जेल के पिछवाड़े क्यारियों में

कुछ न कुछ उपजाकर चले जाएँ

भले दूसरे ही उनकी उपज के फल पाएँ[12]

कवि देश की धरती, उसके वैभव, उसके सांस्कृतिक उन्नयन और क्रियाकलाप; सभी में देशभक्ति पिरो रहा है। चंद्रगुप्त जैसे सम्राट ने मातृभूमि के विस्तार को अपनी बाहों से विस्तृत किया। कवि इस पर गर्व करता है-

उस नृप की विश्वविजयिनी

वह सेना होकर के जब हताश

खाली हाथों ही लौटी थी

तब का तेरा हिम धवल हास अंकित है इस देवभूमि के कण-कण में[13]

प्रकृति प्रेम- कवि नागार्जुन ने भारत, तिब्बत, श्रीलंका आदि अनेक देशों का पर्यटन कर वहां की मनोहारी प्राकृतिक छटा को समीप से देखा है। आपने भारत के ग्राम, जनपद और तराई क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए प्राकृतिक लालित्य को निकट से देखा है। यही कारण है कि कवि नागार्जुन प्रकृति के सुरम्य बिम्बों को, उसकी मनोहर छटा को, हवा के साथ संगीतरत अर्थात् मानो गीत गा रहे हैं। ऐसे लता-गुल्मों और तरुओं को भी निहार रहे हैं-

सुमुखि वर्षा हुई होगी एक क्या कै बार

गा रहे होंगे मुदित हो लोग खूब मलार

भर गई होगी अरे वाह वाग्मती की धार

उगे होंगे पोखरों में कुमुद पद्म मखान

आंख मूंदे कर रहा मैं ध्यान[14]

और भी-

रंग-बिरंगे फूलों वाली

हरियाली से ढँकी पहाड़ी

देवदारू की, सरो-चीड़ की

कोसों फैली हुई कतारें

उन ऊँचे हिममय शिखरों के अद्‌भुत और विचित्र नजारे[15]

विद्रोही मनोवृत्तिख्र कवि अत्याचार और अन्याय के घोर विरोधी हैं, अतः कविता में विद्रोही मनोवृत्ति दिखाई देती है। इसे वे व्यंग्य के माध्यम से और तीव्र बना देते हैं। उनके हृदय में अन्यायियों और अत्याचारियों के विरुद्ध तीव्र आक्रोश है-

मन करता है
नंगा होकर दूँ आग लगा
जो पहन रखा है उसमें भी
फिर बनूँ दिगम्बर बंभोला
नंगा होकर विषपान करूँ सागर तट पर
ओ कालकूट तू कहाँ गया[16]

निष्कर्ष रूप में नागार्जुन आधुनिकता में पगे हुए क्रांतिकारी कवि हैं। उनकी आधुनिकता परंपरागत न होकर आत्मसम्मान अर्जित है। उनकी रचनाओं में जहाँ जागरण है, वहीं प्रणय विह्वलता और तरलता भी है। कवि का मन लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। किसी उत्तम कोटि के काव्य का क्या लक्ष्य होना चाहिए,वह इसमें स्पष्ट रूप से मुखर हुआ है। लोकमंगल की भावना ही नागार्जुन के काव्य का अंतिम निष्कर्ष है।

संदर्भ सूची

1. राजेश जोशी नागार्जुन सचिन साहित्य अकादमी प्रथम संस्करण 2005 पृष्ठ 9 भूमिका से
2. वही पृष्ठ 14
3. वही पृष्ठ 14
4. वही पृष्ठ 19
5. वही पृष्ठ 30
6. वही पृष्ठ 31
7. वही टेस्ट 45
8. वही पृष्ठ 46
9. वही पृष्ठ 50
10. वही पृष्ठ 19
11. वही पृष्ठ 170
12. वही पृष्ठ 32
13. वही पृष्ठ 127-28
14. वही पृष्ठ 47
15. वही पृष्ठ 51
16. वही पृष्ठ 25

भूमंडलीकरण के दौर में नारी की स्थिति

डॉ० विनय कुमार

सहायक प्रोफेसर हिन्दी, गुरू नानक खालसा कॉलेज यमुनानगर, हरियाणा

शोधालेख सारः- अधिकांश विद्ववानों का माना है कि वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया जिस तरह की समृद्धि को जन्म देगी, उससे अन्य कमजोर हिस्सों के साथ-साथ औरत की दशा में भी फर्क आयेगा। लेकिन हम इस बात को भी नही नकार सकते कि भूमंडलीकरण के नारे के तहत तीसरी दुनिया के देशों में ढांचागत समायोजन से जो आर्थिक मंदी और बेकारी बढ़ी है, उससे तो यही लगता है कि उसने इन देशों के कमजोर उपेक्षित समाज को हाशिये पर धकेल दिया है तथा स्त्रियां भी इसी वर्ग में आती हैं। आज आय और मुनाफे को अधिकतम करने की विश्वव्यापी जिद में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने स्त्री और प्रकृति के पारस्परिक रिश्ते को बिगाड़ा है। विकास की भूलों को सुधारने के लिए क्या हमें एक ऐसा वैकल्पिक ढांचा नहीं बनाना चाहिए, जो स्त्रीपरक हो, उनके साथ न्याय करता हो। वर्तमान शोध पत्र में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के स्त्री जाति पर पडने वाले प्रभाव का आंकलन किया गया है।

मूल शब्दः- भूमण्डलीकरण, वैकल्पिक ढांचा, प्राकृतिक संसाधन, ढांचागत समायोजन।

भूमिकाः- वर्तमान भूमण्डलीकरण के दौर में ढांचागत समायोजन के तहत बहुराष्ट्रीय और निजी कंपनियों को मिली खुली छूट से मजदूरों की भारी छंटनी हुई है और कृषि, पशुपालन और मछली मारने जैसे प्राथमिक व्यवसायों पर आधुनिक तकनीक और उपकरण हावी हो गये हैं। स्त्रियों पर इसका दोहरा असर पड़ा है। एक तो घर-परिवार के पुरुषों के बीच बेकारी बढ़ी तथा दूसरे, अर्थव्यवस्था के जिस असंगठित क्षेत्र में स्त्रियों की अधिकतम भागीदारी थी, वहां अकुशल श्रम के लिए जगह लगातार कम होती गयी। इसलिए आज हमें एक ऐसा ढांचा चाहिए, जिसमें बजट की प्राथमिकताएं सेना और हथियार न होकर स्वास्थ्य, शिक्षा और मानव विकास हो। बड़े-बड़े उद्यमों और नकदी खेती को बढावा देने वाले पुंजी-प्रधान नियोजन की जगह श्रम प्रधान नियोजन हो। लघु और कुटीर उद्योगों तथा ऐसे सरकारी निकायों की स्थापना की जाये जिनके प्रबंधन में महिलाओं का बहुमत हो। सामाजिक-सुरक्षा कार्यक्रमों, गरीबी, बेकारी-उन्मूलन, आवास, साफ-सफाई और बीमा जैसे मदों में ज्यादा निवेश किये जायें। इस तरह से छोटे-छोटे स्तरों, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप योजना बनाकर उत्पादन के साधनों को संतुलित उपयोग द्वारा ही विकास का एक-एक सर्वस्वीकृत और टिकाऊ आधार खड़ा किया जा सकता है। इसमें शायद स्त्री अपने अधिकतम मानवाधिकारों के साथ उपस्थित दिखाई दे।

आज इस बात का समर्थन नृजातीय अध्ययन भी करते हैं कि जहां-जहां स्त्री के हाथ में संसाधन प्रबंधन हैं और विकास के साधनों पर उसका अधिकार हैं, वहां की विकास-संरचना पर्यावरण के साथ साहचर्य बनाये हुये है। अफ्रीका के जिन कबायली समाजों में कृषि और खाद्य संग्रहण महिलाओं की जिम्मेदारी है, वहां की जैव विविधता बनी हुई है तथा पर्यावरण को भी कोई विनाश नहीं पहुंचा है। हमारे देश का चिपको आंदोलन भी यहीं सबक देता है। गढवाल श्रेत्र की स्त्रियों ने पेड़ों को बचाने और साधनों के स्थानीय उपयोग के लिए लंडाई लड़ी। वहां न तो नारी मुक्ति और न ही अंतर्राष्ट्रीय बहनापे का नारा पहुंचा था, फिर भी अगर एक स्त्रीपरक आंदोलन सफल हो सका तो इस वजह से कि वह स्थानीय मसलों को लेकर चला। इस सन्दर्भ में यह तर्क दिया जा सकता है कि समग्रता और अंतर्राष्ट्रीय मनुष्य बिरादरा के संदर्भ में स्थानीयता की बात करना और स्त्रियों के अधिकारों के सवालों को एक पृथक मानवीय मुद्दा मानना मानवाधिकार संघर्ष को कमजोर करना होगा। लेकिन देशज संदर्भ की अवहेलना कैसे की जा सकती है? उदाहरण के लिए अमेरिका में पुरुषवादी वर्चस्व को तोड़ने के लिए साक्षरता कोई चनौती नहीं होगी, जबकि भारत के लिए

पितृसत्तावादी ढांचे को तोड़ने के लिए शिक्षा का प्रसार पहली शर्त है। इसी तरह जाति प्रथा ब्राह्मणवाद से जुडा हुआ मुद्दा है। नारी मुक्ति आंदोलन के सीमित रूप में प्रभावशाली रहने की बुनियादी वजह यहीं रही कि वह स्थानीय संदर्भों से नहीं जुड़ सका। भारत जैसे देश के गाँव-देहातों और आदिवासी समाज की औरतों के लिए दाम्पत्य संबंधों में समानता का कथित संघर्ष उतना जरूरी नहीं था, जितना की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, उत्पादक साधनों तक पहुंच और वित्तीय अधिकार से संबंधित रोजमर्रा के मसलें। इसके लिए जातिवाद और परिवारवाद के दुराग्रहों को दूर करना जरूरी था, परंतु नारी मुक्ति आंदोलन की पकड़ में ये बुनियादी मुद्दे नहीं आये।

अमेरिका में कुछ समय से जड़ों की और लौटने का आग्रह जारी है। 1960-70 के दशक का वक्त और पुरुष विरोधी नारीवाद घर-वापसी का पक्षधर है। उनका कहना है कि घर से बाहर निकलकर काम करने की जोखिम उठाने के बावजूद उन्हें मुक्ति नहीं मिली और दूसरी तरफ उन्हें मातृत्व जैसे सहज स्त्री सुखों से वंचित होना पड़ा। औरत की स्थिति की बेहतरी के लिए शुरु हुई यह लड़ाई उसे एक प्रति पुरुष बनाने की राह पर ले गयी। घर से बाहर भी पुरुषों का वर्चस्ववादी ढांचा इतना कठोर था कि उसने औरत को बराबर नहीं माना। इससे सबक लेते हुए यह जरूरी है कि स्त्री के विकास की लड़ाई को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा जाये। समाज में फैल रहा सभी प्रकार का आतंक, दहशत, भय, दंगे और जातीय संघर्ष स्त्रियों को अधिक बेबस और असहाय बना देता है। किसी भी किस्म का संघर्ष हो, आक्रमणकारी सदैव प्रतिरोधी समाज की स्त्री पर हमले करता है, जिससे कि उसके मूल को ही नष्ट किया जा सके। हर्जेगोबिना और रवांडा से आ रही खबरें स्त्रियों के यौन शोषण के चौंकाने वाले आंकड़े दे रही हैं। आज इन श्रेत्रों में न केवल आततायी बल्कि सुरक्षा सैनिक भी उन्हें अपनी हवस का शिकार बना रहे हैं। इन देशों की स्त्रियों ने अन्य जिन देशों में शरण ली है, वहां भी उनका उतना ही खुला यौन शोषण हो रहा है। यह बेबसी सिर्फ रवांडा और हर्जेगोबिना की स्त्रियों की है और इन शरणार्थियों में 80 फीसदी औरतें तथा बच्चे हैं। आधुनिक समाज में बलात्कार स्त्री के खिलाफ इस्तेमाल किया जाने वाला सबसे क्रूर हथियार है। अवांछित गर्भाधान शारीरिक पीड़ा के साथ इसका परिणाम मृत्यु तक हो सकता है। यह स्त्री को आजीवन हीनता और कुंठा का पात्र बनाकर उसके आत्मविश्वास को पूरी तरह तोड़ देता है।

अत: आज स्त्री अधिकारों को लेकर सुलझे हुए चिंतन और ठोस काम किये जाने की जरूरत है। असंगत भूमंडलीकरण की कोशिशों के मद्देनजर स्थानीय अस्मिता के सवाल को और अधिक मजबूती से उठाया जाना चाहिए। स्त्री अधिकार का सीधा संबंध जीने के अधिकार से है, इसलिए इसे खेत-जमीन, पर्यावरण संरक्षण तथा मजदूर आंदोलनों से जोड़े जाने की जरूरत है। साथ ही नाइंसाफी से सुरक्षा के लिए स्त्री को एक अलग वर्ग के रूप में माना जाये तथा नीति निर्माण व नियोजन में इसका ध्यान रखा जाये। अंतर्राष्ट्रीय और स्थानीय स्तरों पर एक गैर-सरकारी स्त्री आयोग बने जो निगरानी और दबाव-समूह का काम करे। प्रशासन और पुलिस जहाँ न्याय दिलाने में अक्षम साबित हो, वहाँ वह आयोग न्याय प्रक्रिया में सीधा हस्तक्षेप कर सके।

निष्कर्ष:- अत: भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के वर्तमान दौर में राजनीतिक और आर्थिक फैसलों की प्रक्रिया में औरत की भागीदारी को सुनिश्चित करना बहुत जरूरी है। वैसे तो पुरुष की सत्तावादी मनोवृत्ति के खिलाफ स्त्री को मनुष्य का दर्जा दिलाने की इस लड़ाई में अनेक जटिलताएं होगी, क्योंकि यह समाज और व्यवस्था से बाहर आकर नहीं बल्कि इसे व्यवस्था के भीतर रहकर ही लड़ा जा सकता है। आज विश्व समाज में स्त्री के मानवाधिकारों की लड़ाई का लक्ष्य स्त्रियों के प्रति पुरुष में तब्दील करना नहीं बल्कि स्त्री और पुरुष के बीच अधिकतम समानता पर टिके समाज की रचना करना है, जहाँ स्त्री-पुरुष से एक दर्जा नीचे रहने के दर्द से स्थायी तौर पर मुक्त हो सके, यही बदलते सामाजिक परिवेश की प्रमुख माँग है।

संदर्भ ग्रन्थ:-

1. महिलाओं के प्रति अपराध - श्रीमती सुधा रानी श्रीवास्तव
2. नारी शोषण आइने और आयाम - श्रीमती आशा व्होरा
3. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम - डॉ. बंसतीलाल बाघेल
4. मानव अधिकार का संघर्ष - राजकिशोर

भारत निर्माण योजना से हुए सामाजिक परिवर्तन - अध्ययन

विवेकानन्द

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, बी0एन0एम0यू0, मधेपुरा

भारत निर्माण योजना भारत की केंद्र सरकार द्वारा विशेष राज्य की राज्य सरकारों और उस राज्य के विशेष ग्रामीण क्षेत्र के पंचायत राज संस्थानों के सहयोग से शुरू की गई एक परियोजना है। परियोजना भारत निर्माण योजना समय सीमित है और परियोजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण बुनियादी ढांचे का विकास है। भारत निर्माण योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास जैसे प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत सड़कों और परिवहन प्रणालियों का विकास, सिंचाई सुविधाओं का विकास, दूरसंचार का विकास, ग्रामीण जलापूर्ति का विकास, इंदिरा आवास योजना के तहत ग्रामीण आवास, आदि।

ग्रामीण परिवहन बुनियादी ढांचे का विकास ग्रामीण व्यापार और अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। यह परियोजना प्रधानमंत्री ग्राम सडक योजना के अंतर्गत आती है और यह देश की प्रमुख परियोजनाओं में से एक है। ग्रामीण सड़क परियोजना की कुल लागत लगभग 1,74,000 करोड़ रुपये है और इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य उचित परिवहन सुविधाओं के प्रावधान की सुविधा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देना है। इस परियोजना में 1000 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों और 500 से अधिक आबादी वाले पहाड़ी क्षेत्रों को शामिल किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीफोन क्षेत्र का विकास ग्रामीण व्यापार और अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। यह परियोजना ग्रामीण बुनियादी ढांचे के उन्नयन के लिए भी प्रदान करेगी। इस परियोजना में भारत के लगभग 66,822 राजस्व उत्पन्न करने वाले गाँव शामिल हैं और इन सभी गाँवों को ग्राम सार्वजनिक टेलीफोन (VPT) योजना प्रदान की जाएगी। दूर-दराज के गांवों में दूरसंचार सेवाएं डिजिटल सैटेलाइट फोन टर्मिनलों के माध्यम से प्रदान की जाएंगी। यूनिवर्सल सर्विसेज ऑब्लिगेशन फंड (USOF) ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन की स्थापना के लिए कार्य लागत और पूंजी के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करेगा।

भारत निर्माण योजना में पेयजल की आपूर्ति सबसे महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे में से एक है। पीने के पानी की उपलब्धता जीवन के निर्वाह के प्रमुख कारकों में से एक है। पीने के पानी की उचित आपूर्ति से ग्रामीण क्षेत्रों में बीमारियों की दर में कमी आएगी क्योंकि भारत में अधिकांश रोग जल जनित हैं। उचित पेयजल की कमी ग्रामीण आबादी को तालाबों, झीलों, नदियों, नलकूपों, कुओं पर निर्भर रहने के लिए मजबूर करती है और ये जल स्रोत जल प्रदूषण के कुछ एजेंटों के कारण अत्यधिक दूषित होते हैं। सुरक्षित पेयजल आपूर्ति के प्रावधान को सुगम बनाने की मुख्य जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है। राज्य सरकारों ने भारत की केंद्र सरकार की वित्तीय सहायता से त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम (एआरडब्ल्यूएसपी) की केंद्र प्रायोजित योजना नामक परियोजना को लागू किया है।

आवास और आश्रय व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। ग्रामीण लोगों के लिए घर का बहुत महत्व है, क्योंकि यह सम्मानजनक और सुरक्षित जीवन का प्रतीक है। इस परियोजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए घर उपलब्ध कराना है। इंदिरा आवास योजना योजना के तहत भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 60 लाख घरों का निर्माण किया जाएगा।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए बिजली का प्रावधान एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है। राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के तहत बिजली मंत्रालय 1,25,000 से अधिक गांवों को बिजली मुहैया कराएगा। यह परियोजना बिजली के प्रावधान के लिए 230 लाख घरों को भी कवर करेगी।

सिंचाई भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख विकास योगदानकर्ताओं में से एक है। चूंकि भारत एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, सिंचाई कृषि के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत निर्माण योजना के तहत अधिकांश कम सिंचित ग्रामीण क्षेत्रों में नहरों के विस्तार, जीर्णोद्धार, भूजल विकास और विभिन्न जल प्रबंधन प्रक्रियाओं के माध्यम से सिंचाई की सुविधा होगी।

महात्मा गांधी का कहना है कि "भारत गांवों में बसता है।" इसलिए अगर हमें भारत को उन्नत करना है तो गांवों की दशा सुधारनी होगी। इस वास्तविकता को समझाते हुए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के नेतृत्व में केंद्र सरकार ने गांवों के बुनियादी ढांचे को बनाकर उन्हें हर तरीके से उन्नत बनाने के लिए "भारत निर्माण" के नाम से 2005 में एक विशाल, दीर्घकालीन और व्यावहारिक योजना चलायी। यह योजना इस दृष्टिकोण से पहले की योजनाओं से थोड़ा भिन्न है कि इसमें गांवों के किसी एक क्षेत्र के विकास की बात न कहकर उसके संपूर्ण क्षेत्र के विकास की बात की गई है और यदि कोई क्षेत्र "भारत निर्माण योजना" से छूट भी गया हो तो उसे राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन तथा सर्वशिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रमों में रख दिया गया है ताकि गांवों का संपूर्ण विकास हो सके।

भारत निर्माण कार्यक्रम की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि इसे गांवों को सहायता देकर आगे बढ़ाने की बजाए उनके लिए ऐसी बुनियादी सुविधाएं जुटाने की कोशिश की गई है कि वे उस नींव पर स्वयं का विकास कर सकें। यह योजना एक प्रकार से गांवों को बैसाखियां न देकर उन्हें अपनी ही पैरों पर मजबूती से खड़े होने लायक बनाती है। 'भारत निर्माण' को समग्रता में समझने के लिए इस योजना में शामिल महत्वपूर्ण क्षेत्रों, इनके उद्देश्यों इसके विभिन्न चरणों तथा इस दिशा में हुई प्रगति और इससे होने वाले लाभों का मूल्यांकन करना होगा। भारत निमार्ण योजना में गांवों के विकास हेतु छह महत्वपूर्ण क्षेत्रों यथा विद्युतीकरण, सड़कें, जल आपूर्ति, दूरसंचार, सिचाई, आवास को शामिल किया गया है। इसका मल उद्देश्य है गांवों में उद्योगों की स्थापना करना, गांवों के लोगों के रहन-सहन में सुधार लाना। अपेक्षा यह की गई है कि चूंकि भारत निर्माण योजना से गांव वालों को गांवों में ही जरूरत की सुविधाएं मिल रही हैं, इसलिए शहरों की ओर पलायन में कमी आएगी।

भूमंडलीकरण के इस दौर में सूचनाओं का आदान-प्रदान तेजी से हो रहा है और दुनिया सिमट कर वैश्विक गांव बन गई है। सूचना क्रांति के इस युग में यह आवश्यक हो गया है कि उन वंचित लोगों को इसके दायरे में लाया जाए जो संचार साधनों के अभाव के कारण पिछड़ रहे हैं। भारत निर्माण योजना के अंतर्गत गांवों में दूरसंचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे है जिसका सकारात्मक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ रहा है। उल्लेखनीय है कि गत वर्षों से कृषि क्षेत्र में दूरसंचार व सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग कृषि उपज बढ़ाने, फसल को रोगमुक्त रखने, मिट्टी परीक्षण, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार, उन्नत तकनीक व बीजों के उपयोग आदि के संबंध में किया जा रहा है। ई-मार्केट तथा ई-कामर्स की सुविधाएं किसानों के लिए वरदान साबित हो रही हैं। मौसम, वातावरण, कृषि तथा भूमि संबंधी स्थानीय आंकड़ों के एकीकरण, सूखा, बाढ़, भूकंप जैसी आपदाओं के पूर्वानुमान तथा इनके प्रभावों के आंकलन संबंधी कार्यों को संपादित करने के दृष्टिकोण से दूरसंचार व सूचना प्रौद्योगिकी ग्रामीण भारत के लिए काफी उपयोगी व लाभप्रद है। दूरसंचार प्रौद्योगिकी की वजह से ही किसान कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन से संबंधित किसान कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन से संबंधित विभिन्न जानकारियों पाने में सफल हुए हैं। मध्य प्रदेश में 'ईएग्रीकल्चर मार्केटिंग' का श्रीगणेश करके 'ई-कृषि' को बढ़ावा दिया जा रहा है।

भारत कृषि प्रधान देश है और कृषि के लिए सिंचाई सुविधा का होना अत्यधिक आवश्यक है। परंतु लंबे समय से देश की कृषि योग्य भूमि का 60 प्रतिशत भाग असिंचित या वर्षा पर निर्भर रहा है। सिंचाई के अभाव से ही कई वर्षों से 1960 के दशक से आई हारित क्रांति की गति लगभग थम-सी गई है। जबकि दूसरी हरित क्रांति का सपना देखा जा रहा है और 2015 तक खाद्यान्न उत्पादन को 31 करोड़ टन से 42 करोड़ टन अर्थात् दोगुना करने पर जोर दिया जा रहा है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भारत निर्माण के तहत लगातार दो से अधिक चरणों में कुल 107 लाख हेक्टेयर की अतिरिक्त सिंचाई क्षमता का विकास किया गया। वर्ष 2011-12 से 2014-15 तक 5000 करोड़ रुपए का अनुमान विशेष जल प्रबंधन हेतु स्वीकृत किया गया है।

सर्वविदित तथ्य है कि अत्यंत विकसित देश भी अपने गांवों का विकास तीव्र गति से करके ही विकसित देशों की कतार में पंक्तिबद्ध हो पाए हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि ग्रामीण विकास हेतु संचालित 'भारत निर्माण कार्यक्रम' को प्राथमिकता के आधार पर प्रभावी रूप से क्रियान्वित किया जाए। कहना न होगा कि भारत निर्माण योजना ग्रामीण विकास में बेहद मददगार सिद्ध हो रही है जिसके माध्यम से आज गांवों से पलायन रुका है और गांवों में रोजगार की संभावनाएं बढ़ी हैं। उनकी आय तथा रहन-सहन का स्तर बढ़ा है।

अब यह ध्यान रखना होगा कि 'भारत निर्माण कार्यक्रम' के क्रियान्वयन की व्यूह रचना ऐसी होनी चाहिए जो निर्धन ग्रामीणों के आर्थिक एवं सामुदायिक जीवन को उन्नत करने, उनके जीवन स्तर में सुधार लाने तथा उनके विकास को आत्मयोजित बनाने से संबंधित हो।

- वर्ष 2022 तक नए भारत के निर्माण के साथ ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी दूर हो जाएगी। इसे ग्रामीण आजीविका में विविध ीकरण और बुनियादी ढ़ाँचे में सुधार जैसे ठोस कदमों से बल मिलोगा।
- विभाग गरीबी के सभी आयामों को प्रभावी तौर पर दूर करने के लिए राज्य सरकारों के साथ मिलकर 50 हजार ग्राम पंचायतों में 5000 क्लस्टर स्थापित करने के लिए काम पहले ही शुरू कर चुका है।
- विभाग हर साल 7 लाख गरीब परिवारो के लिए ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान के जरिये स्वरोजगार और डीडीयूजीकेवाई (क्ममद क्लंस न्चंकीलंलं ळतंउममद ज्ञंनेंसलं ल्वरंद) के तहत दिहाड़ी रोजगार के लिये कौशल का विकास कर रहा है।
- कौशल भारत कार्यक्रम को प्रभावी तौर पर लागू करने के साथ-साथ डीडीयूजीकेवाई और आरएसईटीआई (Rural self employment training institute) कार्यक्रमों के बेहतर कार्यान्वयन के जरिये गरीब परिवारों के कौशल सुधार लाने और क्षमता बेहतर करने की कोशिश की जा रही है।
- पिछले बजट में मिशन अंत्योदय के तहत 50000 ग्राम पंचायतों के एक करोड़ परिवारों को गरीबी से बाहर लाने की घोषणा की गई थी।
- ग्रामीण विकास विभाग ने इन ग्राम पंचायतों की रैंकिंग की है। बुनियादी ढ़ाँचा मानव विकास एवं आर्थिक मानदंडों में खाई की पहचान की जा रही है और सरकार उन खाईयों को पाटने और सबसे गरीब परिवारों के जीवन में बदलाव लाने के लिए प्रतिबद्ध है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मंथली इकनॉमिक रिव्यू, वित्त मंत्रालय, दिसम्बर, 2020
2. लोक सभा अतारांकित प्रश्न संख्या 1260, दिनांक-19.09.2020
3. प्रेस सूचना कार्यालय विज्ञप्ति, दिनांक-13 दिसम्बर, 2020
4. योजना पत्रिका में जुलाई 2020 में डॉ. के. वी. सुब्रमनियन द्वारा लिखित एथिकल वेल्थ क्रियेशन फॉर ए सेल्फ रिलायंट इंडिया
5. आत्मनिर्भर भारत 3.0, वित्त मंत्रालय, 12 नवम्बर, 2020
6. कोविड-19 एक्स्पोसेस इंडियन इंडस्टीज सप्लाइ चेन वल्नरबिलिटीज

स्त्री मुक्ति का स्वप्न और ज्योतिबा फूले

सरिता

व्याख्याता हिन्दी साहित्य, राजस्थान पीजी कॉलेज चिड़ावा, झुंझुनूं

प्राचीन काल में भारत की सामाजिक व्यवस्था में नारियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पौराणिक साहित्य में ऐसे अनेक मंत्रों का उल्लेख है जिनकी रचना स्त्रियों ने की थी। घोषा, लोपामुद्रा, वैदिक काल में मंत्रों की रचयिता रही, इसी से उनकी महत्ता का पता चलता है। नारियों के सम्मान के कारण ही उस काल में कहा गया कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता'। वैदिक काल की इन सामाजिक परिस्थितियों में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। कालान्तर में स्त्रियाँ घर की चारदिवारी में कैद होकर भोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी। बाल विवाह, बाल हत्या, शिक्षा पर पाबंदी, बहु पत्नी प्रथा, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि कुरीतियों ने स्त्रियों की अस्मिता को खो दिया। समाज में उसका स्थान गिरता चला गया, उस पर अनेक प्रतिबंध लागू किये गये। जब हम हिन्दू धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि नारी परिवार का महत्त्वपूर्ण अंग होते हुए भी अपना सम्मान नहीं पा सकी। स्वतंत्रता-समानता जो मनुष्य के विकास के लिए अनिवार्य तत्व है वो महिला के जीवन से गायब थे। स्त्री मुक्ति के स्वप्न को साकार करने में फूले के कार्यो की महत्ता को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक उस काल में समाज में नारी की स्थिति को जान नहीं ले।

हिन्दुओं के प्रमुख धर्म ग्रन्थ मनुस्मृति में कहा गया है कि बाल्यावस्था में स्त्री को पिता के अधीन, यौनावस्था में पति के अधीन और पति की मृत्यु के पश्चात पुत्र के अधीन रहना चाहिए। नारी को कभी स्वतंत्र नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह स्वतंत्रता के योग्य ही नहीं है। मनु ने यह स्पष्ट कहा है कि विवाह ही एक मात्र संस्कार है जो स्त्रियों के लिए है। पति की सेवा करते हुए उसके घर में रहना, सुबह-शाम का खाना बनाना यही उसका होम यज्ञ है। केवल जननी होना ही नारी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व है। इस प्रकार हम पाते हैं कि मनु जो हमारे समाज के प्रमुख अंगीकार हुए उन्होंने नारी को कभी पुरूष के समान नहीं समझा। मनुस्मृति के समान ही रामायण और महाभारत में भी हमें इसी प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते हैं। तुलसीदास ने तो नारी की तुलना पशु से भी की है। उन्होंने कहा है- ढ़ोल, गवार, शूद्र, नारी यह सब तारण के अधिकारी अर्थात् यह जितने भी नाम हैं जो ऊपर बताये गये हैं सब पिटने के लायक हैं। रामायण में भी नारी को शूद्र, अनपढ़ और पशुओं के समान माना है।

प्राचीनकाल में स्त्रियों पर जो प्रतिबंध लागू किये गये वह मध्यकाल में आते-आते ओर अधिक कठोर हो गये क्योंकि मध्यकाल में मुस्लिम शासन का आगमन हुआ और इस शासन में हिन्दुओं ने अपने धर्म की रक्षा के लिए स्त्रियों को घर की चारदीवारी में पूर्णत: कैद कर लिया गया। यही स्थिति 19वीं शताब्दी तक चलती रही। महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन के लिए ज्योतिबा फूले आगे आये और उन्होंने महिलाओं की खोयी हुयी अस्मिता को वापस लाने में अथक प्रयास किया।

ज्योतिबा फूले का जन्म 1827 में पुणे में माली जाति में हुआ। महाराष्ट्र में माली जाति अछूतो की गिनती में आती थी। उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। ज्योतिबा फूले की प्रारम्भिक शिक्षा मिशनरी स्कूल में हुयी जहां उन्होंने अलग-अलग धर्मों व विचारों का गहन अध्ययन किया। स्कॉटिश मिशन से मनुष्य के अधिकारों व कर्त्तव्यों को उन्होंने जाना। वे शिवाजी व जॉर्ज वॉशिगंटन की जीवनी पढ़कर उनकी बहादुरी व देश प्रेम से प्रभावित हुए। उन्होंने हिन्दू वर्ण में फैली वर्ण व्यवस्था व जाति भेद पर विचार किया। ज्योतिबा फूले ने गौतम बुद्ध, नानक, रामानुज, रामानंद, कबीर आदि का अध्ययन कर हिन्दू समाज में व्याप्त बुराई के कारणों का अध्ययन किया। सभी धर्मो का अध्ययन कर ज्योतिबा फूले ने जान लिया कि कोई भी धर्म साहित्य अलौकिक नहीं है बल्कि प्रत्येक धर्म में अच्छी बातें हैं और कुछ अंधविश्वास भी हैं। ज्योतिबा फूले इस शोषण के खिलाफ उठ खड़े हुए। इसके लिये उन्होंने 24 सितम्बर, 1873 को पुणे में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। इस संगठन के तहत उन्होंने नारी मुक्ति के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयास किये।

ज्योतिबा फूले ने 'सार्वजनिक सत्य धर्म' पुस्तक में नारी पुरूषों के मानवीय अधिकारियों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसमें उन्होंने स्त्रियों के लिए निम्न प्रावधान किये पहला, उन्होंने यह कहा कि निर्माण कर्ता ने सभी प्राणियों को पैदा किया है। नारी पुरूष दोनों जन्म से ही स्वतंत्र तथा सभी अधिकारों का उपयोग करने के पात्र हैं।

दूसरा, सभी नारी पुरूष मानवीय अधिकारों के हकदार हैं कोई व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का समूह किसी पर भी बल प्रयोग नहीं कर सकता।

तीसरा, सभी नारी पुरूषों को सभी मानवीय अधिकारों के विषय में अपने विचार मतों को व्यक्त करने तथा प्रचारित करने की स्वतंत्रता है।

चौथा, सभी मानवों को धार्मिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता दी गयी है।

पाँचवा, सभी नर नारी को धर्म संबंधी स्थानीय क्षेत्रिय अधिकरों के पद उनको योग्य और सामर्थ्य के अनुसार मिलने चाहिए।

महात्मा फूले का यह मानना था कि नारी की गुलामी का मुख्य कारण अज्ञानता है। सब नारियों को अपने मानवीय अधिकार समझ में ना आये इसी उद्देश्य से स्वार्थी पुरूषों में बड़ी चालाकी से नारी को पढ़ने लिखने से वंचित कर दिया है, इसलिये जब तक स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं मिलता तब तक वह अपनी गुलामी को पहचान नहीं पायेंगी इसलिए उन्हें स्त्री शिक्षा के महत्व को समझा और उसका पूर्णतः समर्थन किया।

महात्मा फूले ने जिस काल में नारी शिक्षा की बात कही वह काल इसके लिए अनुकूल नहीं था, क्योंकि हिन्दू धर्म शास्त्रों ने नारी और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं दिया। लोगों के विचार थे कि अगर महिलाओं को शिक्षा दी गयी तो परिवार की सुख-शान्ति भंग हो जायेगी। महिलाओं के जूते या चप्पल पहनने को अपवित्र माना गया। यदि कोई महिला प्रयोग कर लेती थी तो उसे पुरूषों का अपमान समझा जाता था। बुजुर्गों के सामने पति से बात करना असभ्य व्यवहार माना जाता था। इस प्रकार धर्म तथा सामाजिक परम्परा ने नारी जीवन को जकड़ कर रखा हुआ था। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में फूले के द्वारा नारी शिक्षा का विचार करना और लड़कियों के लिये अलग से पाठशाला खोलना बहुत ही कठिन कार्य था। धर्म के ठेकेदारों ने ज्योतिबा फूले का भयंकर विरोध किया लेकिन फूले इससे नहीं रूके और उन कठिनाइयों का सामना करते रहे।

सर्वप्रथम 1848 में पुणे में बुधवार पेठ में लड़कियों के लिये एक अलग से स्कूल खोला गया। इस समय मात्र 8 छात्राओं ने प्रवेश लिया। जिनके नाम थे- अन्नपूर्णा जोशी, सुमति मोकाशी, दुर्गा देशमुख, माधुरी, सोर पवार, जानी कर्डिले आदि। आगे चलकर इनकी संख्या 48 तक पहुँच गई।

बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना: 1863 में ज्योतिबा फूले ने बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना की तथा इसका प्रचार करने के लिए पर्चे छपवाए। जिसमें कहा गया तरूण विधवाओं को पूर्ण सुरक्षा व गोपनियता के साथ प्रसव की सुविधा दी जायेगी और अनाथालय इसकी देखभाल करेगा। वह स्वयं भी यदि चाहे तो वहां रह सकती है। इस काम के पीछे ज्योतिबा का प्रमुख उद्देश्य समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाना था क्योंकि चरित्रहीन पुरूषों के अनैतिक आचरण के कारण विधवाओं के बच्चे हो जाते थे। तब या तो वे चुपचाप प्रसव कराकर बच्चों को कूड़े के ढेर में फेंक देती थी या लोकलाज के डर से आत्महत्या कर लेती थी। इनको बचाने के लिए यह महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया और इसके लिए ज्योतिबा ने स्वयं एक उदाहरण प्रस्तुत किया और काशीबाई नामक विधवा स्त्री के शिशु को गोद लिया, जिसका नाम उन्होंने यशवन्त रखा। महात्मा फूले की अपनी कोई संतान नहीं थी यही उनका दत्तक पुत्र था। इस कार्य की समकालीन सुधारको ने काफी प्रंशसा की परन्तु कट्टर पंथी ब्राह्मण ज्योतिबा के विरूद्ध हो गये।

सती प्रथा पर रोक- ज्योतिबा सती प्रथा को जानबूझ कर की गयी हत्या मानते थे वह इसे नारी जाति पर किया गया अत्याचार कहते थे। उनका मानना था कि स्त्री पुरूष समान है इसलिए पति की मृत्यु के साथ जीवित पत्नी को जलाना अमान्य है। उन्होंने इसकी घोर निन्दा की और सरकार से इस पर रोक लगाने के लिए विनती भी की।

विधवा पुनर्विवाह- ब्राह्मण वर्ग में विधवाओं के बाल कटवा दिये जाते थे। ज्योतिबा ने इसका विरोध किया और नाईयों को भी ऐसा कार्य करने से मना किया। इसके अलावा ब्राह्मणों ने विधवा का पुनर्विवाह निषेध किया था चाहे इसकी उम्र कम ही क्यों ना हो। उनका यह भी कहना था कि जब पुरूष विधुर होकर दूसरा विवाह कर सकता है तो महिला क्यों नहीं। उन्होंने स्वयं 18 वर्षिय ब्राह्मण विधवा युवती का विवाह 8 मार्च, 1860 को पुना के गोखले बाग में कराया।

विवाह संबंधी मंगल गीतो की रचना- इस प्रकार हम देखते है कि नारी की स्वतंत्रता के रास्ते में आने वाली प्रत्येक बाधा को फूले ने दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने प्राचीन काल से चली आ रही पुरूष प्रधान संस्कृति में स्त्री विवाह के मंत्र का रद्द कर दिया और उसके स्थान पर वर-वधू को समझने वाली, उनकी समानता करने वाली, वर-वधू से प्रेम पवित्रता की जानकारी देने वाले मराठी भाषा में मंगल गीत लिखे और उसका प्रचार किया।

महात्मा फूले ने नारी स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत अपने घर से की और उन्होंने अपनी पत्नी को पढ़ाया। अपनी पत्नी को स्वतंत्रता प्रदान करने से स्पष्ट होता है कि फूले नारी स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रणेता थे। फूले निर्भिक देशभक्त, समाज सुधारक और शिक्षाविद् थे। उन्होंने हर वर्ग की स्त्रियों की स्थिति को ऊँचा उठाने के प्रयास किये और उनमें संघर्ष करने की क्षमता उत्पन्न की।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महात्मा फूले ने स्त्री मुक्ति का एक स्वप्न ही नहीं देखा अपितु उसे साकार करने के लिए बहुत सारे कदम भी उठाये। इसके लिए उन्हें घोर परेशानियों का सामना करना पड़ा। विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, केशव पान, पर्दा पद्धति, भ्रुण हत्या, बहुपति प्रथा आदि अमानुषित प्रथाओं के कारण भारतीय स्त्री की दुर्दशा गुलामों से भी बदतर थी। इन सभी प्रथाओं को उन्होंने जमकर विरोध किया। विधवा विवाह, बाल हत्या प्रतिबंधक गृह आदि अनेक नारी सुधार के संदर्भ में उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये और अपना पूरा जीवन नारी पुरूष समानता स्थापित करने में समर्पित कर दिया।

महात्मा फूले ने उस समय में समानता की बात की जहां पूरे समाज में घोर असमानता व्याप्त थी। उन्होंने कहा की स्त्री पुरूष जन्म से ही समान हैं और ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों ने नारी को गुलाम बनाया है। नारी पर लादे गये बन्धन अमानवीय हैं और यदि नारी को धार्मिक सामाजिक गुलामी से मुक्ति पानी है तो उसे शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। उनके यह विचार उस काल में क्रान्तिकारी सिद्ध होते हैं। फूले ने विद्यालय खोलकर स्त्रियों के लिए जो ज्योति प्रज्जवलित की वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। उनका यह कहना था कि यदि लड़की शिक्षित होती तो वह दो घर शिक्षित होते हैं। एक मायक और दूसरा ससुराल। उन्होंने नारी की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा का समर्थन किया।

आज हर क्षेत्र में नारी अग्रणी स्थान पर है। वकील से लेकर जिलाधीश, अध्यापक, सरपंच, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तक के सभी पदों और विभिन्न क्षेत्रों में नारी कई दायित्वों को सफलता से निभा रही है। महिलाओं के जीवन में शिक्षा से इतना परिवर्तन आया है कि वह जमीन ही नहीं अपितु आकाश में भी उड़ान भरने लगी है।

भारत की तस्वीर धीरे-धीरे बदल रही है परन्तु यह परिवर्तन समाज के सभी वर्गों और क्षेत्रों में समानत लिए हुए नहीं है। स्त्री को अभी भी समानता का वह दर्जा नहीं मिल पाया जो स्वप्न ज्योतिबा फूले ने देखा था। हम उनके विचारों को अपनाकर ही शताब्दियों से हासिये पर रहे इस वर्ग को न्याय दिला सकते हैं पर निश्चय ही यह कह सकते हैं कि स्त्री मुक्ति का जो स्वप्न ज्योतिबा फूले ने देखा वह धीरे-धीरे साकार रूप ले रहा है।

संदर्भ सूची-

1. डॉ. अगलावे सरोज, ज्योतिराव फूले का सामाजिक दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली 2005
2. डॉ. योगमाया, महात्मा ज्योतिराव फूले दर्शन एवं चिंतन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2004
3. नरके हरि, महात्मा ज्योतिराव फूले, साहित्य और विचार महात्मा फूले चरित्र प्रकाश समिति, महाराष्ट्र 1993
4. वैद्य प्रभाकर, महात्मा फूले और उनकी परम्परा
5. डॉ. गंगवार ममता, डॉ. त्रिपाठी मीरा, महात्मा फूले एवं डॉ. अम्बेडकर, निखिल पब्लिशर्स, आगरा, 2015
6. कोसल्यायन डॉ. भरत आनंद, रामचरित्र मानस में स्त्री निंदा, सुगवा प्रकाशन पुणे, 1964

रवीन्द्रनाथ टैगोर का शैक्षिक चिंतन एवं इसकी वर्तमान संदर्भ में प्रांसगिकता

डॉ० अग्निदेव

सहायक आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

आधुनिक समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। शिक्षा की उद्देश्यहीनता, विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता एवं शिक्षकों में बढ़ती कर्तव्यहीनता चिन्ता का विषय है। आधुनिक समाज की शिक्षा व्यवस्था को एक सटीक मार्ग दिखाने की आवश्यकता है। टैगोर के शैक्षिक विचार वर्तमान विश्व के लिये प्रेरणा के स्त्रोत हैं। टैगोर ने छात्र जीवन को बहुत पवित्र माना है। उन्होंने विद्यार्थी जीवन में कुछ आवश्यक गुणों की अपेक्षा की है, जैसे- आत्मसम्मान, अनुशासन, आत्मानुभूति, विनम्रता, स्वच्छता एवं कर्तव्यपरायणता। इन गुणों का विकास केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है।

टैगोर महान शिक्षाशास्त्री थे। उनके अनुसार-सर्वोत्तम शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के साथ हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है। टैगोर ने शिक्षा को विकास की प्रक्रिया मानते हुए उसे मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, व्यावसायिक तथा आध्यात्मिक विकास का आधार माना है। टैगोर ने शिक्षा को प्राचीन भारतीय आदर्श का स्थान दिया है। उनके अनुसार वही शिक्षा श्रेष्ठ है, जो मनुष्य को आध्यात्मिक दर्शन देकर जीवन-मरण से मुक्ति दिलाती है। टैगोर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को पूर्ण जीवन की प्राप्ति कराना है, जिससे बालक का पूर्ण विकास हो सके।

टैगोर शिक्षा के द्वारा प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतियों में सहयोग चाहते थे। वे पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाने के पक्षधर थे, ताकि जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सकें। वे मानवीय एवं सांस्कृतिक विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे। वे शिक्षा के द्वारा मानव और प्रकृति के आदि सम्बन्ध को मजबूत करना चाहते थे। वे मानव को शिक्षा के द्वारा प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाना चाहते थे।

मुख्य शब्द: सर्वांगीण, विकास, संवेदनशील, संस्कृति, पाठ्यक्रम।

अध्ययन का उद्देश्य -

1. रविन्द्रनाथ टैगोर कृत मूल ग्रन्थों के आधार पर उनके दार्शनिक विचारों का अध्ययन करना।
2. रविन्द्रनाथ टैगोर के दार्शनिक विचारों की पृष्ठभूमि में उनके शिक्षा दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत करना।
3. रविन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का विश्लेषण एवं विवेचन करके शिक्षा के स्वरूप को प्रस्तुत करना।
4. भारतीय संदर्भ में प्रस्तावित मूल्यों की शिक्षा, संबंधित विचारों का विश्लेषण एवं विवेचन करके भारतवर्ष में एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की पुर्नस्थापना के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव देना।
5. रविन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का वर्तमान भारतीय शिक्षा दर्शन एवं मूल्यों की शिक्षा के संदर्भ में उपयोगिता का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि एवं उपकरण - अनुसंधान का विषय ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। अत: शोधार्थी अपने अध्ययन में ऐतिहासिक, विश्लेषण एवं विवेचन विधि, वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया है। जहाँ तक गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन परिचय

कृतित्व एवं शैक्षिक दर्शन को जानने का प्रयत्न है वहाँ पर ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया गया है। मूल्यों की शिक्षा सम्बन्धी विचार का वर्तमान संदर्भ में व्याख्या करते समय वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है ।

पूर्ववर्ती शोध अध्ययनों का विवरण – किसी भी शोध कार्य को सोद्देश्य तथा अधिक प्रभावी बनाने के दृष्टिकोण से यह आवश्यक हो जाता है कि शोधार्थी अपनी शोध समस्या के समरूप पूर्व में किए गये अन्य शोध कार्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर ले। इसी दृष्टिकोण से शोधार्थी ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक उद्देश्यों एवं शैक्षिक विचारों का वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में प्रभाव पर किये गये कुछ प्रमुख तथा सहज रूप से उपलब्ध पूर्व शोध अध्ययनों के विषय–वस्तु की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है।

संक्षेप में उनका विवरण निम्न है – अजीत, ज्ञान कुमारी (2002), अय्यर सी. पी. रामास्वामी (1992), ओड, लक्ष्मी लाल (1994), गुप्त, लक्ष्मी नारायण (1992), गुप्ता, एस.पी.(1998) जोशी, शान्ति (1975), अशोक कुमार (1973), वर्मा, वैद्यनाथ प्रसाद (1972)।

परिचय – रविंद्रनाथ टैगोर ने अपना पूरा जीवन शिक्षा को समर्पित कर दिया। उन्होंने जीवन और दर्शन को कभी अलग नहीं माना। शिक्षा के संबंध में उनका मानना हैं कि जीवन से ही शिक्षा ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने 22 सितंबर 1921 को विश्व भारती नामक शैक्षिक संस्थान की स्थापना की। इसका उद्देश्य पूर्व और पश्चिम देशों के बीच समन्वय स्थापित करना था। उन्होंने देश के सामने शिक्षा के सर्वोत्तम आदर्शो को स्थापित करने के लिए निरन्तर संघर्ष किया। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग कर उसे आदर्श का सजीव प्रतीक बना दिया।

टैगोर भारतीय संस्कृति के अतीत एवं गौरव के संरक्षक थे। उन्होंने देश के कोने–कोने में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शो का प्रचार किया। टैगोर जी एक महान कवि, दार्शनिक, शिक्षा शास्त्री तथा कला प्रेमी थे। उन्होनें सभी दार्शनिक विचारों का संश्लेषण करके एक नवीन विचार प्रस्तुत की। उनका शान्ति निकेतन विश्वविद्यालय वह प्रतिमान है जिसमें यदि वैदिक काल की गुरू शिष्य परम्परा तथा आश्रम व्यवस्था है तो वही मध्यकाल युग का ललित कला और संगीत का समावेश इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के कृषि एवं विज्ञान को कम महत्व नहीं दिया गया है।

डॉ. एच.पी. मुखर्जी के अनुसार टैगोर आधुनिक भारत में शैक्षिक पुनरूत्थान के सबसे बड़े पैगम्बर थे। टैगोर जी एक साहित्यकार, कलाकार, दार्शनिक, चित्रकार ही नहीं, बल्कि एक महान शिक्षा शास्त्री भी थे। उनके अनुसार बालक के समस्त अंगों और इन्द्रियों को प्रशिक्षित कर जीवन की वास्तविकता से परिचित कराना, पर्यावरण की जानकारी देकर उससे अनुकूलन स्थापित कराना, बालक को धैर्य, आत्मानुशासन, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों की शिक्षा देना प्रमुख उद्देश्य है।

उनका कहना था कि पेड़ों पर चढ़ने, तालाबों में डुबकियां लगाने, फूलों को तोड़ने, प्रकृति माता के साथ नाना प्रकार की अठखेलियां करने से ही बालक के शरीर के साथ–साथ मस्तिष्क के आनन्द तथा बचपन के स्वाभाविक आवेगों की सन्तुष्टि होती है। उनके पाठ्यक्रम में इतिहास, विज्ञान, प्रकृति, भूगोल, साहित्य, नाटक, भ्रमण, बागवानी, प्रयोगशाला, ड्राइंग, खेलकूद, समाज सेवा के विषय सहित क्रियाप्रधान पाठ्यक्रम शामिल था।

शैक्षिक चिंतन – रूसो की तरह टैगोर भी प्रकृति को बालक की शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते हैं। उनका कहना है कि सच्ची शिक्षा के द्वारा ही संसार की सभी वस्तुओं में प्रेम तथा मेल की भावना विकसित होनी चाहिए। उनका यह भी मानना हैं कि प्राकृतिक वातावरण में ही में प्राप्त शिक्षा ही वास्तविकता के करीब होती हैं जिससे बालक को खुशी तथा ज्ञान दोनों ही प्राप्त होता हैं। उनके अनुसार सच्चीं शिक्षा का उद्देश्य बालक को जीवन तथा विश्व स्तर के मिलन से पूर्णतया अवगत करायें तथा दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करें। गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर जी शिक्षा को पुस्तक केन्द्रित बनाने के विरोधी थे। वे अनुभव एवं क्रिया प्रधान शिक्षा पर बल देना चाहते थे वे छोटे बच्चों पर पाठ्य पुस्तकों के बोझ को नहीं डालना चाहतें थे।

शिक्षक के प्रति विचार – टैगोर ने शिक्षक को उच्च स्थान दिया हैं। उनका मानना हैं कि शिक्षा केवल शिक्षक के द्वारा ही दी जा सकती हैं, क्योंकि मानव मानव से ही सीख सकता हैं। शिक्षक को चाहिए कि वह बालक को जीवन की गति और मस्तिष्क के बंधन से मुक्ति प्रदान करें। शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों के साथ प्रेम तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें।

पाठ्यक्रम के प्रति विचार – टैगोर मानव जीवन का पूर्ण विकास चाहते थें। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने मानव के मानसिक, चारित्रिक, अध्यात्मिक, नैतिक और शारीरिक विकास पर बल दिया और पाठ्यक्रम साहित्य, प्रकृति अध्ययन, विज्ञान,

इतिहास, भूगोल आदि विषयों को शामिल करने का सुझाव दिया। शिक्षा संस्था में नाटक, मौलिक रचनाएं, शैक्षिक भ्रमण एवं अजायबघर के लिए विभिन्न वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए। इसके अलावा छात्र स्वशासन, खेलकूद व समाज सेवा को भी पाठ्यक्रम में शामिल होना चाहिए। रविंद्रनाथ टैगोर तत्कालीन पाठ्यक्रम से संतुष्ट नहीं थें। उन्होंने नयें पाठ्यक्रम की रचना का सुझाव दिया।

शिक्षा दर्शन के मूल सिद्धांत – रविन्द्र नाथ टैगोर ने शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धांतो का प्रतिपादन खुद किया हैं क्योंकि वें बड़े दूरदर्शी महान दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री थे। उन्होंने शिक्षा के सभी सिद्धान्तों की खोज खुद की, उन्हें शांतिनिकेतन में इसे व्यवहारिक रूप देना था। रविन्द्र नाथ टैगोर का मत हैं कि विद्यार्थी एक सहज वातावरण में जितना सीख सकता हैं,वह किसी कठोर अनुशासन में नहीं सीख सकता हैं।

शिक्षा में मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन रू गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने मनुष्य की सृष्टि में सर्वोच्च स्थान दिया और यहाँ तक कहा कि ईश्वर की प्रगति मानव सेवा से ही हो सकती है। उनके अनुसार 'दैवीय (ईश्वरीय) सत्य की पूर्णता के लिए मानवता आवश्यक तत्व हैं'। वे कहा करते थे कि मेरा धर्म मानव धर्म है जिसमें ईश्वर मानवता के रूप में परिभाषित है। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होनें शिक्षा में विश्ववादी विचारों का प्रतिपादन किया तथा उसे प्रसारित किया। गुरूदेव चाहते थे कि ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा संस्कृति को किसी सीमा रेखा में न बाँधा जाय, इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय का पूरा अवसर दिया जाय, इससे विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास हो सकेगा।

शिक्षा में प्राकृतिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास – टैगोर जी एक साहित्यकार तथा कवि थे इसलिए प्रकृति से उनकी अनुरक्ति स्वाभाविक थी। इसका प्रभाव उसके शैक्षिक विचारो पर पड़ा जिसके कारण उन्होने शिक्षा के प्रकृतिवादी दृष्टि को प्रतिपादित किया। उन्होने बालक की स्वतन्त्रता, शिक्षण विधियां, अनुशासन एवं विद्यालय की व्यवस्था के प्रति प्रकृतिवादी विचार प्रस्तुत किये है।

टैगोर जी ने सीधे प्रकृति के सम्पर्क से सीखने की बात कही है, उनके अनुसार बालकों को उनकी रूचि, क्षमता तथा योग्यतानुसार स्वत: विकसित होने का अवसर दिया जाना चाहिए। बालक की मानसिक शक्तियों का विकास किसी बन्धन में नही होना चाहिए। इस प्रकार टैगोर जी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन किया जो वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता का वर्णन किया।

प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतियों में समन्वय : टैगोर जी ने अपनी शिक्षा योजना में प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के समन्वय की बात कही है कि 'मेरी इच्छा है कि इस विश्वविद्यालय के क्षेत्र को धीरे-धीरे सरल ढ़ंगो से विस्तृत किया जाय जब तक कि इसमें आर्य सभ्यता, सेमेटिक सभ्यता, मंगोलियन सभ्यता और दूसरी सभ्यताएँ अपने पूर्व विस्तार के साथ नही समा जातीं'। इन्होने माना कि जो पाश्चात्य सभ्यता की अच्छाई उसे पूर्व वाले ग्रहण करे तो देश का विकास सम्भव है।

सौन्दर्यानुभूति की शिक्षा पर विशेष बल – रवीन्द्रनाथ टैगोर जी जहाँ विश्व विख्यात कवि थे वही अद्वितीय कलाकार भी थे, प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति इनका लगाव था वे सत्यम्- शिवम्-सुन्दरम् जैसे शाश्वत मूलों को प्राप्त करने के लिए सौन्दर्यानुभूति आवश्यक माना। इसे अपनी शिक्षा योजना में सम्मिलित किया।

नैतिक शिक्षा का महत्व – रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा द्वारा नैतिक आचरण के सुदृढ़ीकरण पर बल दिया। टैगोर का कथन है कि यदि मनुष्य भौतिक सुखों के पीछे भागना प्रारम्भ करेगा तो उसका आचरण पशुवत हो जायेगा। टैगोर जी की धर्म एवं नैतिकता को एक दूसरे से अलग नही मानते थे बल्कि धर्म को सैद्धान्तिक एवं नैतिकता को व्यवहारिक माना। यह विचार वर्तमान शिक्षा के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगा।

स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा देने पर बल – टैगोर जी के अनुसार जो जानने योग्य है वही तो ज्ञान है और इसे स्त्री और पुरूषों के द्वारा समान रूप से जानना चाहिए। उन्होने स्त्रियों को सैद्धान्तिक शिक्षा न देकर बल्कि व्यवहारिक जीवन के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया उन्होने स्त्री शिक्षा के लिए स्वतंत्र विभाग स्थापित किया, जिसके कारण स्त्री शिक्षा के प्रति भारतीयों की चेतना विकसित हुई।

ग्रामीण शिक्षा की व्यवस्था – टैगोर जी पहले शिक्षा दार्शनिक थे जिनका ध्यान उपेक्षित ग्रामीणों की शिक्षा की ओर गया। इन्होनें ग्रामीण जीवन को समुन्नत करने के लिए श्री निकेतन विभाग की स्थापना की, जिसमें शैक्षिक ज्ञान के साथ कृषि, कुटीर उद्योग, पशुपालन ग्रामीण आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनका यह योगदान भारतीय समाज और भारतीय परिस्थिति के लिए बहुत

ही उपयुक्त है, क्योंकि भारत गाँवो का देश है जहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और जब तक गाँव का अन्तिम व्यक्ति विकसित नहीं होगा तब तक देश का विकास सम्भव नही है। यही परिकल्पना आचार्य विनोबा भावे और महात्मा गाँधी जी की भी है।

निष्कर्षः- निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि टैगोर ने भारतीय संस्कृति के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की नींव डाली। जीवन की पूर्णता के लिये टैगोर ने जो विधान निर्मित किया है वह भारतीय और पाश्चात्य दोनों के जीवन को स्पर्श करती है, उसमें आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तत्वों का समन्वय है। दर्शन और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का समन्वय करके टैगोर ने भारतीय शिक्षा में महान् क्रांति की है।

टैगोर द्वारा दिये गये शिक्षा-दर्शन के सिद्धांत को ध्यान में रखा जायें जिससे बालक का चहुँमुखी विकास होगा एवं वर्तमान शिक्षा में प्रतिपादित किया जायें इससे विद्यार्थियों में बढ़ रही अनुशासनहीनता, उद्ण्डता, कर्त्तव्यहीनता कम होगी। अतः वर्तमान में रविन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा संबंधित सिद्धांतों की महत्ता आवश्यक है जो हमारे आने वाली पीढ़ी को नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की ओर आकृष्ट करके उनकी महत्वाकांक्षओं को पूर्ण करते हुये उनके चरित्र में उत्तम गुणों का विकास करें जिससे समाज, देश, राष्ट्रीय, अंर्तराष्ट्रीय एकता बनी रहे।

उनके विचार में शिक्षा को व्यवहारिक होना चाहिए और उसमें सामाजिक आवश्यकताओं, परम्पराओं, आदर्शों, मूल्यों को मान्यता मिलनी चाहिए। रवीन्द्रनाथ जी विश्व के सभी प्राणियों को एक ही परमपिता परमेश्वर की सन्तान मानते थे। इसलिये उन्होंने संकीर्ण राष्ट्रीयता के स्थान पर विश्व-बंधुत्व की भावना के विकास को शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य माना है। विश्वभारती के माध्यम से पूर्व एवं पश्चिम की संस्कृतियों में समन्वय लाने का सफल प्रयास किया है। अतः रवीन्द्रनाथ जी की आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा विद्यार्थी जीवन में मानवीय मूल्यों का विकास करती है, जिनकी उपयोगिता एवं सार्थकता प्रत्येक काल में प्रासंगिक बनी रहेगी ।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. अजीत, ज्ञान कुमारी - सेवा की त्रिवेणी उ.प्र. पूर्वी रीजन, टी. ओ.एस. इलाहाबाद, 2002.
2. अय्यर, सी.पी. रामास्वामी - एनी बेसेण्ट, पब्लिकेशंस डिवीजन, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1992.
3. ओड, लक्ष्मी लाल के शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1994.
4. गुप्त, लक्ष्मी नारायण महान, पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षाशास्त्री, कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992.
5. गुप्ता, एस.पी. भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1998.
6. जोशी, शान्ति - समसामयिक भारतीय दार्शनिक लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975.
7. लाड, अशोक कुमार - भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन एक तुलनात्मक अध्ययन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1973.
8. वर्मा, वैद्यनाथ प्रसाद - विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, 1972.
9. रमन बिहारी लाल - शिक्षा के दार्शनिक व समाज शास्त्रीय आधार पृष्ठ 822.

कृष्ण काव्य के अप्रतिम सर्जक सूरदास और उनका दार्शनिक सिद्धांत

निरंजन सहाय

जिन भक्त रचनाकारों ने हिंदी साहित्य की दशा और दिशा को बदलने में युगांतकारी भूमिका निभायी उनमें सूरदास का नाम सर्वोपरि है। यह अकारण नहीं है कि लोक में यह कथन मशहूर हुआ –'सूर-सूर तुलसी शशि, उडुगन केशवदास/ अब के कवि खद्योत सम, जंह-तंह करत प्रकाश।' यह लोकोक्ति इस बात की तस्दीक करती है कि सूरदास के काव्यलोक ने अनेक ऐसी अनुभूतियों का पुनर्सृजन किया जिनके बल पर उन्हें हिंदी साहित्याकाश का सूर्य घोषित किया गया। वे दो क्षेत्र जिनमें उनकी मिसाल हिंदी ही नहीं विश्व साहित्य में दुर्लभ है वे हैं- वात्सल्य और शृंगार। बाद के काव्य विश्लेषकों ने एक और लिहाज से उनकी कविताओं को बेमिसाल बताया, जिसृेगोचारण संस्कृति' का काव्य दस्तावेज के रूप में भी जाना गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने परम्परा की उल्लेखनीय कड़ी के रूप में जब सूरदास का आकलन किया तब वे कह उठे, 'जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पियूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर करील कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यो की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थींद्य' सूरदास की उपस्थिति का आकलन विभिन्न विद्वानों ने अपने तरीके से किया है, इसी तरह सूरदास की कविताओं के गवाक्ष भी विभिन्न कालाखंडों को अपनी तरह से काव्य आस्वाद के लिए आमंत्रित करते हैं। लिहाजा यह जरूरी है कि सूरदास के जीवनलोक और काव्यलोक की यात्रा की जाय।

कवि और कविता दोनों के सृजन और सरोकारों में अपने वक्त की गहरी छाप होती है। लिहाजा उस समय के आधारभूत नजरिए को समझना जरूरी है जो सूरदास के समय मौजूद थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सिलसिले में जो लिखा है, वह हमारे लिए काफी मूल्यवान है, उनके अनुसार, सूरदास ने अपने इर्द-गिर्द जिस समाज को देखा था, उसका कोई ऊँचा आदर्श नहीं था; लोग खाते-पीते थे, रोगी या निरोग होते थे, और चार दिन हँसकर या रोकर चल पड़ते थे। जो धार्मिक प्रवृत्ति के थे वे दस-बीस मंदिर बनवा देते थे, यज्ञ-याग करके हजार-पांच सौ ब्राह्मणों को भोजन करा देते थे।' ऐसे समाज को सूर ने बेहद मार्मिक तरीके से साक्षात्कार किया और धीरे-धीरे उनके मन में वैराग्य का भाव जन्म ले लिया। लेकिन उनके पास एक बेहद साफ मन था यूं कहें कि सरल बच्चे का मन। जब वे वल्लभाचार्य के करीब आए उनमें एक ऐसी प्रेरणा जगी कि वे तन्मय होकर लीला-गान में राम गए। उनकी काव्य-यात्रा में वे सभी पहलू आए जिनसे उनकी आसक्ति बनी थी। यानी बाल लीला, प्रेम और वैराग्य के स्वर। वे अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षणों के लिए इस कदर विख्यात हुए कि बाल लीला वर्णन और प्रेम वर्णन में उन्हें सर्वोत्तम कवि माना गया। कहना न होगा उनकी कविता के केंद्र में कृष्ण थे। आवश्यकता इस बात की है कि उनके जीवन पर एक नजर डाल ली जाय।

सूरदास का जन्म मथुरा के सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाद में वे आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मुताबिक सूरदास का जन्म संवत् 1540 विक्रमी के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 विक्रमी के आसपास मानी जाती है। सूरदास के पिता रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में भी अलग-अलग मत हैं। आगरा के समीप गऊघाट पर उनकी मुलाकात वल्लभाचार्य से हुई फिर वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर कृष्णलीला के पद गाने का निर्देश दिया। वे अष्टछाप कवियों में मशहूर हुए।

मध्यकालीन साम्प्रदायिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में सूरदास के जीवन से सम्बन्धित अनेक विवरण मिल जाते हैं। सूरदास के बारे में उस दौर के प्रसिद्ध संग्रहों श्भक्तमालश और श्चौरासी वैष्णवन की वार्ताश में भी जानकारी मिल जाती है, यह अलग बात है

कि वहाँ संक्षिप्त उल्लेख है। 'आइने अकबरी और 'मुन्शियात अबुल फजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारस के कोई और सूरदास लगते हैं। जनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का भी उल्लेख है। चौरासी वैष्णवन की वार्ताश में सूर का जीवनवृत्त गऊघाट पर हुई वल्लभाचार्य से उनकी भेंट के साथ प्रारम्भ होता है। गऊघाट पर भी उनके अनेक सेवक उनके साथ रहते थे तथा 'स्वामी' के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। इसी कारण एक बार अरैल से जाते समय वल्लभाचार्य ने उनसे भेंट की और उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया। 'वार्ता' में वल्लभाचार्य और सूरदास की पहली भेंट का जो रोचक वर्णन दिया गया है, उससे पता चलता है कि सूरदास उस समय तक कृष्ण की आनन्दमय ब्रजलीला से परिचित नहीं थे और वे वैराग्य भावना से प्रेरित होकर पतितपावन हरि की दैन्यपूर्ण दास्यभाव की भक्ति में अनुरक्त थे और इसी भाव के विनयपूर्ण पद रच कर गाते थे। वल्लभाचार्य का जब सूरदास से सामना हुआ, उस वक्त भी वे प्रभु से अपने पतित और कृष्ण के करुणानिधान होने का भजन दैन्यपूर्ण स्वरों में गा रहे थे। इस पर वल्लभाचार्य ने कहा- ऐसे घिघिआओ मत कुछ लीला के पद गाओ। कहते हैं उनकी दृष्टि में बदलाव हुआ और फिर वे वात्सल्य और शृंगार के शिखर तक पहुंचे।

सूर की रचनायात्रा सूक्ष्म पर्यवेक्षणों से भरी पड़ी है। उनके काव्य में प्रकृति और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वन्द्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। ये सभी विवरण संदेश देते हैं कि वे जन्मांध नहीं थे। बाद में अपनी आँखों की रौशनी खो बैठे थे। सूरदास अब अंधों को कहते हैं। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय शूर है। कहना न होगा शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से पता चलता है कि प्रसिद्ध मुगल सम्राट् अकबर ने सूरदास से भेंट की थी लेकिन यह अचरज की बात है कि उस समय के किसी फारसी इतिहासकार ने 'सूरसागर' के रचयिता महान भक्त कवि सूरदास का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी युग के अन्य महान भक्त कवि तुलसीदास का भी मुगलकालीन इतिहासकारों ने उल्लेख नहीं किया। अकबरकालीन प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थों 'आईने अकबरी', 'मुशिआते अबुलफजल' और 'मुन्तखबुत्तवारीख' में सूरदास नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है लेकिन ये दोनों प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास से भिन्न हैं। 'आईने अकबरी' में अकबरी दरबार के रामदास नामक गवैया के पुत्र सूरदास का उल्लेख है। ये सूरदास अपने पिता के साथ अकबर के दरबार में जाया करते थे। 'मुशिआते अबुलफजल' में जिन सूरदास का उल्लेख है, वे काशी में रहते थे, अबुलफजल ने अनेक नाम एक पत्र लिखकर उन्हें आश्वासन दिया था कि काशी के उस करोड़ी के स्थान पर जो उन्हें क्लेश देता है, नया करोड़ी उन्हीं की आज्ञा से नियुक्त किया जायगा। परन्तु ये सूरदास मदनमोहन नाम के एक अन्य भक्त थे।

सूरदास की रचना-यात्रा

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं- सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी, नल दमयंती और ब्याहलो। इनमें अन्तिम दो ग्रंथ अप्राप्य हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नलदमयंती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। साहित्य संसार में प्रारम्भ के तीन पुस्तकों की जबरदस्त ख्याति है।

सूरदास की कीर्ति का आधार 'सूरसागर' है। 'सूरसागर' उनकी सम्पूर्ण रचनाओं का संकलन कहा जा सकता है। 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर सारावली' को भी कुछ विद्वान् उनकी प्रामाणिक रचनाएँ मानते हैं परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। सूरदास के नाम से कुछ और रचनाएँ भी प्रसिद्ध हुई हैं लेकिन वे या तो 'सूरसागर' के ही अंश हैं अथवा अन्य कवियों को रचनाएँ हैं। 'सूरसागर' के अध्ययन से पता चलता है कि कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन जिस रूप में हुआ है, उसे सहज ही उसे सहज ही खंडकाव्य में रूपानातरित करने का चलन हो गया। उदाहरण के लिए 'नागलीला' जिसमें कालियदमन का वर्णन हुआ है, 'गोवर्धन लीला', जिसमें गोवर्धनधारण और इन्द्र के शरणागमन का वर्णन है, 'प्राण प्यारी' जिसमें प्रेम के उच्चादर्श का पच्चीस दोहों में वर्णन हुआ है, मुद्रित रूप में प्राप्त हैं। हस्तलिखित रूप में 'व्याहलों' के नाम से राधा-कृष्ण विवाहसम्बन्धीप्रसंग, 'सूरसागर सार' नाम से रामकथा और रामभक्ति सम्बन्धी प्रसंग तथा 'सूरदास जी के दृष्टकूट' नाम से हरन्त भी मिल जाते हैं। इसके

अतिरिक्त 'पद संग्रह', 'दशम स्कन्ध', 'भागवत', 'सूरसाठी', 'सूरदास जी के पद' आदि नामों से 'सूरसागर' के पदों के विविध संग्रह पृथक् रूप में प्राप्त हुए है। ये सभी 'सूरसागर के' अंश हैं। सूरदास की रचनाएँ परिमाण और गुण दोनों में महान कवियों के बीच अतुलनीय है, यही कारण है कि साहित्य लोक में उनसे जुड़ा एक दोहा खूब मशहूर हुआ-

सूर सूर तुलसी शशि, उडुगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जंह-तंह करत प्रकाश।।

अर्थात सूरदास सूर्य की तरह हैं, तुलसीदास चन्द्रमा की तरह और तारे की तरह केशवदास हैं। जबकि आजकल के कवि जुगनू की तरह हैं जो कभी चमकते हैं कभी नहीं चमकते। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे क्योंकि उनके नजरिए में अपने युग जीवन की आत्मा समाई हुई थी। यदि उनके काव्य को गहराई से परखें तो यह सहज ही संदेश मिलेगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप गढ़ने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग किया है उनके काव्य में युगजीवन का प्रतिबिम्ब प्रकट है साथ ही उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति भी है जो उन्हें निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक से अलग युगकवि की प्रतिष्ठा देता है।

सूरदास का देहावसान पारसौली में हुआ यही वह स्थान है, यह वह स्थान है जिस्क्रइ बारे में मशहूर है कि कृष्ण ने वहाँ रासलीला की थी। मशहूर है कि आरती के समय सूरदास को आचार्य वल्लभ, श्रीनाथ जी और गोसाई विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी की आरती करते समय उपस्थित नहीं देखा तो समझ लिया कि सूरदास का अन्त समय निकट आ गया है। उन्होंने अपने सेवकों से कहा कि, 'पुष्टिमार्ग का जहाज जा रहा है' जिसे जो लेना हो ले ले। आरती के बाद गोसाई जी रामदास, कुम्भनदास, गोविंदस्वामी और चतुर्भुजदास के साथ सूरदास के निकट पहुँचे और सूरदास को, जो अचेत पड़े हुए थे, चौतन्य होते हुए देखा। सूरदास ने गोसाई जी की वत्सलता की प्रशंसा की। चतुर्भुजदास ने इस समय शंका की कि सूरदास ने भगवद्यश तो बहुत गाया, परन्तु आचार्य वल्लभ का यशगान क्यों नहीं किया। सूरदास ने बताया कि उनके निकट आचार्य जी और भगवान में कोई अन्तर नहीं है। गोसाई विट्ठलनाथ ने पहले उनके 'चित्त की वृत्ति' और फिर 'नेत्र की वृत्ति' के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो उन्होंने क्रमश: 'ृबलि बलि बलि हों कुमरि राधिका नन्द सुवन जासों रति मानी' तथा 'खंजन नैन रूप रस माते' वाले दो पद गाकर बताया कि उनका मन और आत्मा पूर्णरूप से राधा भाव में समाहित है। कहते हैं इस संदेश के बाद उनका निधन हो गया।

सूरदास की भक्ति : दार्शनिक आधार

सूरदास ने व्यवस्थित ढंग से दार्शनिक सिद्धांतों और पद्धतियों के बारे में अपनी राय जाहिर नहीं की है। दरअसल वे भक्ति में आकंठ डूबी कविता के कायल थे न कि उनकी चिंता के केंद्र में दार्शनिक गुथियों से टकराने और सुलझाने की आकांक्षा प्रकट थी। लेकिन वे जिस समय से सम्बद्ध थे और जिस परम्परा का विकास थे उसकी अपनी दार्शनिक मान्यताएं थीं। यही कारण है कि उनकी कविताओं से गुजरते हुए अनेक स्थानों पर उनकी दार्शनिक मान्यताओं की झलक भी दिख जाती है। उनपर विचार करना उनकी कविता को ठीक ढंग से समझने के लिए जरूरी है। सूरदास के गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य थे। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त के विरोध में शुद्धाद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की थी। शुद्धाद्वैत का अर्थ है-शुद्ध अद्वैत- यानी वह जो ब्रह्म है, वह माया के सम्बन्ध से रहित है, इसलिए शुद्ध है। वल्लभाचार्य के विचारों का सूरदास पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सूरदास ने श्रीनाथ जी के मंदिर में लम्बे समय तक कीर्तन सेवा की थी। उनके भक्ति-भावों से भरे पदों में, उनकी दार्शनिक विचारधारा भी सहज ही अंतर्भुक्त है। सूरदास के ब्रह्म यानी कृष्ण भक्ति के आगे सहर्ष प्रस्तुत हैं।

दर्शन का अर्थ वह ज्ञान है जो सत्य को निर्बाध रूप में प्रस्तुत कर सके। सूर की कविता में ज्ञान की चरम परिणति परमात्मा से सम्बन्ध रखन वाले ज्ञान की है। सूर ने जीव के साथ ब्रह्म के सम्बन्ध को व्यक्त किया है। जीव की गति संसार या जगत में ही सम्पन्न होती है, लिहाजा जीव का जगत के साथ सम्बन्ध भी ध्यान देने योग्य है। इस तरह दार्शनिक मान्यता पर विचार करने के लिए हमें ब्रह्म, जीव, जगत आदि को ध्यान में रखना होगा। साथ ही जगत को भुलावे में फँसाने या उलझाने वाली माया पर भी विचार किया जाना चाहिए। सूरदास के काव्य के दर्शन-पक्ष का विवेचन इस आधार पर सम्भव है।

सूरदास के ब्रह्म-विषयक विचार आचार्य वल्लभाचार्य के समान हैं। वल्लभाचार्य की तरह सूरदास ने कृष्ण को परब्रह्म रूप में चित्रित किया है। कृष्ण इनके इष्टदेव हैं। उन्हें वे 'हरि' नाम से पुकारते हैं। सूरसागर के प्रथम पद-'चरन कमल बन्दौ हरि राई आदि में 'हरि शब्द श्रीकृष्ण के लिए यानी परब्रह्म के लिए आया है। ये ब्रह्म, विष्णु, महेश से ऊपर हैं। उनके विषय में ब्रह्मा, शिव आदि भी कुछ नहीं जानते। इसलिए सूरदास कहते हैं:

'जाको अंत न ब्रह्मा जानै, सिव सनकादि न पावै।

सो अब देखो नंद-जसोदा, हरषि-हरषि हलरावै।।'

सूरदास ने उन्हें अविनाशी, घट-घट वासी, पूर्ण ब्रह्म कहकर प्रस्तुति की है। वे विष्णु के अवतार हैं। उनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है:

आदि सनातन हरि अविनासी।

सदा निरन्तर घट घट वासी।।

पूरन ब्रह्म पुरान बखानै।

चतुरानन सिब अन्त न जानै।।

ब्रह्म के विराट स्वरूप का भी सूरदास ने वर्णन किया है। श्रीकृष्ण ज्योतिस्वरूप हैं। वे सर्वव्यापक हैं। सप्त पाताल उनके चरण हैं, आकाश सिर है और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रा तथा अग्नि में उसी का प्रकाश है:

चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकाश।

सूर-चन्द्र-नक्षत्रा-पाक, सर्व तासु प्रकाश।।

ब्रह्म-निरूपण में सूरदास की अभिव्यकित उतनी विस्तृत नहीं है, जितनी तुलसीदास की। लेकिन सूरदास ने कृष्ण के ब्रह्मत्व का स्मरण पग-पग पर किया है। कृष्ण के बाल-रूप वर्णन तक में सूर उनके ईश्वरत्व को नहीं भूले हैं। इसलिए जब बाल कृष्ण अपने पैर के अंगूठे को अपने मुँह में डाल लेते हैं तो सूरदास ने प्रलय काल के समय जैसी आशंका वर्णित की है। जनश्रुति है प्रलय के समय में परमात्मा वटवृक्ष पर अपने पैर के अंगूठे को मुख में डालकर वटपथ पर शयन किया था। सूरदास उस दृश्य से अपने दृश्य सामी को यूं प्रकट करते हैं-

उछरत सिंधु धराधर कांपत, कमठ पीठ अकुलाइ।

सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।।

बढयो वृच्छ बट, सुर अकुलाने गनन भयों उतपात।

महाप्रलय के मेघ उठे करि जहाँ-तहाँ आघात।।

कहना न होगा सूरदास के ब्रह्म, भक्तों को सुख देने के लिए लीला करने के लिए अवतरित हुए हैं। वे अव्यक्त हैं, निराकार हैं। सूरदास ने अव्यक्त को छोड़कर सगुण ब्रह्म के गुणों का गान इसलिए किया है क्योंकि 'अविगत की गति कहत न आवै अर्थात अव्यक्त की गति को व्यक्त करना शब्दों द्वारा कठिन है। सूरदास ने ब्रह्म के विषय में विचार करके अपना मत इस प्रकार स्पष्ट कर दिया-

सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन पद गावै।

निर्गुण ब्रह्म की भक्त-वत्सलता और कृपा का सूरदास ने बार-बार आख्यान किया है। मानव जैसी लीलाओं में ब्रह्म की अलौकिकता की अनुभूति सूर द्वारा की गई है। सामान्य लीलाएं करते हुए भी उनके इष्ट साक्षात परब्रह्म हैं। वे सांसारिकता से अलग एवं शुद्ध-बुद्ध हैं। इसी कारण सूर का सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है।

वे निर्गुण और सगुण हैं। जीवों को सुख देने के लिए वे विभिन्न प्रकार की लीलाएँ करने के लिए जगत में आते हैं। वल्लभाचार्य के मतानुसार ब्रह्म के तीन रूप हैं-(1) आधि दैविक यानी परब्रह्म (2) आध्यात्मिक यानी अक्षर ब्रह्म (3) आधि भौतिक यानी जगतब्रह्म। इनमें परब्रह्म सबसे विशिष्ट है। वह रस रूप है। श्रीकृष्ण वही हैं। वे सत-चित-आनन्द स्वरूप हैं। अक्षर ब्रह्म ज्ञान का

विषय है। जगत ब्रह्म भी ब्रह्म ही हैं क्योंकि वह ब्रह्म से ही आविर्भूत हुआ है। ब्रह्म-विषयक विचार सूरदास ने भी इसी प्रकार व्यक्त किये हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्म को व्यापक, अन्तर्यामी, गुणातीत आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया है।

सूरदास ने ब्रह्मा के विषय में जितनी चर्चा की है, उतनी जीव के सम्बन्ध में नहीं की। वल्लभाचार्य ने जीव को ब्रह्मा का अंश माना है। उन्हीं की भाँति सूरदास भी जीव को ब्रह्म के अंश के रूप में स्वीकार करते हैं। ब्रह्म और जीव के अद्वैत की भावना सूरदास में भी थी। जीव ब्रह्मा ही है, वह माया से आवृत है, ये शंकराचार्य के बहुचर्चित विचार हैं। सूरदास के विनय और भकित के पद, जो वल्लभाचार्य जी की भेंट से पूर्व निर्मित हुए थे, उन पर शंकराचार्य का प्रभाव हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सूरदास का लक्ष्य सिद्धान्त प्रतिपादन नहीं था। वे अपने मन के भावों को भक्ति के उदगारों को, व्यक्त करना चाहते थे।

वल्लभ-सिद्धान्त के अनुसार भी जीव माया से आवृत माना गया है। फिर वह अपने स्वरूप को भूल जाता है। उसे कुछ-का-कुछ सूझने लगता है। इसलिए परिणाम में उसे दु:ख उठाना पड़ता है। जब जीव भगवान की सेवा-भकित करता है तो वह अपने पुन: उस स्वरूप को जान लेता है। अंश अंशी को पहचान लेता है। दु:ख की निवृत्ति हो जाती है।

सूरदास ने जीव की इस प्रकार की सिथति को व्यक्त करते हुए अनेक पद गाए हैं। इस तरह का एक उदाहरण देखने लायक है-

रे मन, आपु कौं पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ अजहुं तौ कछु जानि।।
ज्यों मृग कस्तूरि भूलै सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत ही वह दौरि ढूंढै, जबहि पावै बास।।

सूरदास ने भगवान के भजन को और भगवान की कृपा को जीव के लिए सबसे अधिक कल्याणकारी माना है। जीव को जब ब्रह्मा की प्राप्ति होती है तो वह सुख अनिर्वचनीय होता है। वल्लभ सिद्धांत के मुताबिक जीव तीन प्रकार के होते हैं- प्रवाह जीव, मर्यादा जीव और पुष्टि जीव। पुष्टि जीव पर भगवान स्वयम अनुग्रह करते हैं। इसीलिए वह सर्वश्रेष्ठ है।

जगत ईश्वर की रचना है। गोपाल के अंश से जगत पैदा हुआ है। यह ब्रह्मा का रूपान्तर है। ब्रह्मा अविगत भाव से जगत में आविर्भूत होता है। सबसे पहले आदि निरंजन निराकार ब्रह्म था। फिर जहात की रचना ब्रह्म ने की। यह रचना उसी प्रकार हुई जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है यानी जगत में ब्रह्म की शक्ति सर्वत्र वर्तमान है। जगत की न तो उत्पत्ति होती है न विनाश। केवल आविर्भाव-तिरोभाव होता है। सूरदास की उक्ति है-

जो हरि करै सो होइ, करता राम हरी।
ज्यौं दरपन प्रतिबिम्ब, त्यों सब सृष्टि करी।।

सूरदास ने अपनी मान्यता के अनुसार माया से सम्बन्ध रखने वाले अनेक पद रचे हैं। इनके माया सम्बन्धी विचार शंकर के मायावाद से भिन्न हैं। शंकर के मत में अविद्या माया है। उसका नाश होने से जीव सांसारिकता के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वल्लभाचार्य ने माया को ईश्वर की शकित माना है। उसके स्वरूप विद्या और अविद्या हैं। माया के प्रभाव को सूरदास ने वल्लभाचार्य जी के अनुसार मानकर वर्णित किया है। माया की शकित बहुत अधिक है। उसके वश में हुआ जीव अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। माया एक नटी की तरह है। वह अपने संकेत से जीव को करोड़ों नाच-नचाती है। यह माया ऐसी है जिसने किसको वश में नहीं कर लिया। सूरदास ने ब्रह्मा, नारद, शंकर, दुर्योधन आदि के उदाहरण देकर माया के प्रभाव का वर्णन किया है। ऐसा कौन व्यकित है जिसके साथ माया नहीं है। सूरदास ने माना है भगवान की भकित ही एक ऐसा उपाय है जिससे माया दूर हो सकती है। जब तक मन उसके वश में है तब तक मनुष्य माया में लिप्त रहता है और अपना भला-बुरा नहीं सोचता। सूरदास ने माया का प्रभाव और माया के नाश का उपाय-भगवान की सेवा का बहुत स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है-

माधो जू मन माया बस कीन्हों।

लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंगा तन दीहौ।
गृह-दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।

मैं मति हीन मरम नहि जान्यौ, परयौ अधिक करि दौर।
सूर स्यामसुन्दर जो सेवै, क्यौं होवै गति दीन।।

सूरदास की भक्ति पद्धति को समझने के लिए वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत (पुष्टिमार्ग) और सूर काव्य को साक्ष्य रूप में स्वीकार करना होगा। वे मूलतः भक्त थे, दार्शनिक नहीं। भाव से पगे उनके पद अनायास ही दार्शनिक सिद्धांतों की निर्मिति को भी प्रकट कर देते हैं।

सन्दर्भ-

हिंदी साहित्य का इतिहास ख्र आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्राचारिणी सभा सभा वाराणसी
हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली- हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य-मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन दिल्ली
सूरदासः डा. ब्रजेश्वर वर्मा हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय
सूर साहित्यः डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
सूर व उनका साहित्यः डा. हरिवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर, आगरा

बंगाल-विभाजन विरोधी आंदोलन : आधुनिक भारतीय इतिहास मे नवीन चेतना का उदय

डॉ० जाकिर हुसैन

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)

शोध सारः

बंगाल में बढ़ते राष्ट्रीय आन्दोलन की धार को कमजोर करने तथा साम्प्रदायिकता की भावना को और अधिक प्रबल करने के मूल उद्देश्य से प्रेरित लेकिन प्रशासनिक कुशलता व आमजन के कल्याण का छद्मपूर्ण तर्क देकर लॉर्ड कर्जन द्वारा 1905 में बंगाल विभाजन की कार्ययोजना लागू करने की घोषणा की गई। कर्जन की बंगाल के विभाजन की नीति आधुनिक भारतीय इतिहास की एक युगपरिवर्तनकारी घटना थी। अंग्रेजों के इस घृणित व दुखद कृत्य द्वारा पूर्वी बंगाल और असम को मिलाकर एक नया मुस्लिम बहुल प्रांत बना जिसकी राजधानी ढाका बनायी गई और साथ ही हिंदू बहुल दूसरे प्रांत में पश्चिमी बंगाल, उड़ीस व बिहार शामिल किये गये। अंग्रेज शासन की इस विभाजनकारी नीति के विरोध में समस्त बंगाल में और बंगाल से बाहर भारत के विभिन्न भागों में गहरा असंतोष व तीव्र आक्रोश देखने को मिला। देश में बंगाल विभाजन के विरोध में ब्रिटिश शासन विरोधी आंदोलनों का एक सिलसिला शुरू हो गया जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को चरमपंथ की ओर ले जाने के कारक बन गये। मेरे शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य इस बात पर प्रकाश डालना है कि किस तरह स्वदेशी आंदोलन की घटनाओं के कारण देश में ब्रिटिश शासन के विरोध में राष्ट्रवादी आंदोलन के रूप में एक नई राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ।

सूचक शब्दः ब्रिटिश शासन, बंगाल विभाजन, बंगाली अस्मिता, नव राष्ट्रवाद, स्वदेशी आंदोलन, बहिष्कार आंदोलन, जन चेतना

प्रस्तावनाः

स्वदेशी आंदोलन बंगाल और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में एक बड़े बदलाव का आगाज करने वाली घटना है जिसका तात्कालिक कारण बंगाल का विभाजन माना जाना चाहिए। 1905 में लॉर्ड कर्जन की योजना और बंगाल विभाजन की नीति के विरुद्ध पूरे बंगाल में जो ब्रिटिश विरोधी आंदोलन हुआ, उसे विभाजन विरोधी आंदोलन या स्वदेशी आंदोलन के रूप में जाना जाता है। विभाजन की योजना के मुख्य किरदार लॉर्ड कर्जन, उनके सहयोगी गृह सचिव हर्बर्ट रिजले और बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंड्रयू फ्रेजर थे। 19 जुलाई 1905 को बंगाल के विभाजन की आधिकारिक रूप से घोषणा हुई थी और 16 अक्टूबर को लॉर्ड कर्जन के आदेश से पूरे बंगाल प्रेसीडेंसी को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। एक भाग की राजधानी ढाका को बनाया गया तथा दूसरे भाग में पश्चिम बंगालए बिहार और उड़ीसा को लेकर बंगाल प्रांतका गठन कर दिया गया था जिसकी राजधानी कलकत्ता बनाई गई। बंगाल के इस विभाजन के लागू होने के विरोध में बंगाल के साथ-साथ शेष भारत में एक मजबूत जन आंदोलन शुरू हो गया था। यह आंदोलन बंगाली भाषा प्रदेश का पहला राष्ट्रवादी आंदोलन था जिसका उद्देश्य आत्म-जागरूकता एवंस्वतंत्रता के लिए दृढ़ संकल्पित होना था।

1905 में लार्ड कर्जन की बंगाल के विभाजन की योजना के विरोध में पूरे बंगाल में शुरू हुए विभाजन विरोधी आंदोलन ने देश की राजनीति को प्रभावित किया। इससे पहले के भारतीय आंदोलनों की बागडोर मुख्य रूप से उदारवादी नेताओं के हाथों में

रही थी। 1885 से 1905 तक, आंदोलनों का उद्देश्य आग्रह पूर्वक ब्रिटिश शासन से स्वायत्तता प्राप्त करना था, किंतु भारत में ब्रिटिश सत्ता विरोधी आंदोलन स्वदेशी आंदोलन के साथ एक अलग दिशा में चल पड़ा। यह पहली घटना थी कि बंगाली अस्मिता के उबाल ने स्वदेशी और बहिष्कारकी नीति का प्रयोग ब्रिटिश शासन के विरोध के उपकरण के रूप में काम किया। इसके साथ ही क्रांतिकारी उग्र गतिविधियों द्वारा अंग्रेजी हुकूमत के प्रति सक्रिय तीव्र आक्रोश देखने को मिलता है। इस आंदोलन की प्रतिक्रिया बंगाल के अलावा भारत के दूसरे भागों में भी देखी गई। आंदोलन ने थोड़े से समय में अखिल भारतीय रूप ले लिया। स्वदेशी आंदोलन के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर चरमपंथी विचारधारा का उदय देखने को मिलता है जिसके कारण देश में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति पूर्ण रूप से बदल गई।

शोध के उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश हुकूमत द्वारा बंगाल को विभाजित करके देश में उभर रही राष्ट्रीय अस्मिता की भावना को कुचलने के कुत्सित प्रयासों के वास्तविक उद्देश्य को उजागर करना है। मुख्य उद्देश्य के अतिरिक्त सहायक उद्देश्यों के रूप में शामिल हैं।

(1) बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया के रूप में संपूर्ण बंगाली जन की आंदोलन में भागीदारी के कारणों को समझना।

(2) इस आंदोलन का स्वदेशी आंदोलन के रूप में राष्ट्रव्यापी आधार का अध्ययन करना।

(3) बंगाल विभाजन के विरोध में समाज के प्रबुद्ध वर्ग से जुड़े लोगों के साथ-साथ किसान, मजदूर और महिलाओं की सशक्त सहभागिता को उजागर करना।

शोध पद्धतिः

इस शोध की पद्धति विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है जो द्वितीयक स्रोतों के अध्ययन के विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं पर आधारित है। इसके लिए विभिन्न सुप्रसिद्ध इतिहासकारों की पुस्तकों, विद्वानों के आलेखों एवं चिंतकों की रचनाओं का सहारा लिया है।

तथ्यात्मक विवेचनाः

सरकारी दस्तावेजों के अनुसार बंगाल के विभाजन का कारण प्रशासनिक असुविधा बताया गया था। इस संदर्भ में तर्क दिया गया कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा को मिलाकर बनने वाले इस विशाल बांग्ला प्रेसीडेंसी पर शासन ठीक से करना संभव नहीं हो पा रहा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक सुविधा के लिए राज्य के आकार को कम करने की जरूरत है। परंतु सुमित सरकार और अमलेश त्रिपाठी जैसे विद्वान इतिहासकारों ने बंगाल के विभाजन के पीछे स्पष्ट रूप से साम्राज्यवादी उद्देश्य को पूरा करने की सोच को उजागर किया है। 6 दिसंबर 1904 को, भारत सरकार के गृह सचिव रिजले ने कहा था। 'संयुक्त बंगाल एक ताकत है, लेकिन अगर इसे तोड़ा गया तो वह बल अलग-अलग क्षेत्रों में बहेगा और कमजोर हो जाएगा।' इस प्रकार लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की योजना प्रशासनिक सुविधा के लिए नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रमुख केंद्र बंगाल को विभाजित करके राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए और नवगठित राज्य मंल धार्मिक आधार पर हिंदू-मुस्लिम मतभेद पैदा करके धार्मिक विभाजन के लिए बनाई गई षडयंत्रकारी नीति थी। अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई 'फूट डालो और राज करो की नीतिष्का एक उदाहरण 1902 में देखा गया जब बरार के मराठी मुख्य क्षेत्र को मध्य प्रदेश में मिला दिया गया था। यदि प्रशासनिक सुविधा को आधार बनाकर विभाजन की कोई योजना बनानी ही थी तो बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग किया जा सकता था। कांग्रेस के अध्यक्ष सर हेनरी कॉटन ने भी इसी तरह का प्रस्ताव रखा भी था। लेकिन न तो सर एंड्रयू फ्रेजर, रिजले और न ही लॉर्ड कर्जन ने अधिक ध्यान दिया। बंगाल के विभाजन की योजना को आधिकारिक तौर पर 16 अक्टूबर, 1905 को अपनाया गया था।

क्रांतिकारी आंदोलन की शुरुआत:

बंगाल के विभाजन की घोषणा से, बंगाल के नेताओं ने अनुभव किया कि उनकी आग्रह पूर्वक मांगों को ब्रिटिश सरकार द्वारा पूरा नहीं किया जा रहा है, तो फिर सशस्त्र तख्तापलट के प्रयासों की आवश्यकता सामने आती है। इसी वजह से उस दौर के बंगाल में निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन के साथ-साथ क्रांतिकारी गतिविधियां भी चलती रहीं थी। स्वदेशी आंदोलन के इस चरण को क्रांतिकारी आतंकवाद कहा गया है। आर.सी. मजूमदार इसे Militant Nationalism अथवा सैन्यवादी राष्ट्रवाद कहने के पक्षधर रहे हैं। बंगाल के विभाजन की प्रतिक्रिया मेंए बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों में गुप्त क्रांतिकारी संगठनों की गतिविधियों में बढ़ोतरी देखी गई। सतीश चंद्र बोस, चितरंजन दास, अरविंद घोष, ज्योतिंद्रनाथ मुखर्जी जैसे प्रमुख नामों ने 1906.07 तक बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी दौरान क्रांतिकारी हेमचंद्र कानूनगो ने कोलकाता के मानिकतला में बम बनाने का कारखाना बनाया। सितंबर 1908 में पुलिन बिहारी दास के नेतृत्व में ढाका अनुशीलन समितिकी स्थापना पूर्वी बंगाल में की गई थी। 1906 में बरिंद्रनाथ घोष और भूपेंद्रनाथ दत्त के नेतृत्व में जुगांतर समितिकी स्थापना हुई थी। जुगांतरदल के दो युवा क्रांतिकारियों खुदीराम बसु और प्रफुल्ल चाकी ने 30 अप्रैल 1906 को कलकत्ता प्रेसीडेंसी के एक मजिस्ट्रेट-किंग्सफोर्ड की हत्या की योजना रची। इस प्रकार, 1911 में बंगाल के विभाजन की वापसी तक आतंकवाद की छुटपुट घटनाएं होती रही थी। इसी समय बंगाल का एक बड़ा वर्ग जो इतने लंबे समय से राजनीति से बाहर था, वो भी आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गया। परिणामस्वरूप, स्वदेशी आंदोलन में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं एक साथ आ गई और यह साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण घटना बनकर सामने आई जिसके अंदर ब्रिटिश विरोधी आंदोलन की तीव्रता कई गुना बढ़ गई।

चरमपंथ का उदय:

बंगाल के विभाजन की घोषणा के साथ ही इसके विरोध में पूरे बंगाल में एक मजबूत आंदोलन शुरू हो गया। यह आंदोलन 1905 के अंत से 12 दिसंबर 1911 को दिल्ली की अदालत में जॉर्ज पंचम द्वारा बंगाल के विभाजन की समाप्ती की आधिकारिक घोषणा तक चलता रहा था। शुरुआती दौर में इस आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य बंगाल के विभाजन का विरोध करना और विभाजन को समाप्त करना था। उस समय इस आंदोलन को भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रयास के रूप में स्वीकार करने का कोई तर्कसंगत कारण नहीं था। परंतु थोड़े ही समय में आंदोलन में एक खासियत आ गई जिसे पूरे भारत ने स्वीकार कर लिया। ऐसा इसलिए हुआ था, क्योंकि 1885 से 1905 तक भारतीय उदारवादी नेताओं द्वारा चलाए गए ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य आग्रहपूर्वक ब्रिटिश शासन से स्वायत्तता का अधिकार प्राप्त करना था। स्वदेशी आंदोलन के दौरान ही राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर एक उग्र विचारधारा का उदय हुआ। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल, ब्रह्मबंधव उपाध्याय, अरविंद घोष जैसे लोग इस उग्र विचारधारा से जुड़े थे। चरमपंथियों ने स्पष्ट रूप से महशूस कर लिया था कि ब्रिटिश शासन से जुड़कर भारत के लिए सार्थक कल्याण प्राप्त करना संभव नहीं। इसलिए उन्होंने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। धीरे-धीरे नरमपंथी दलों के नेताओं को दरकिनार कर दिया गया और भारतीय राजनीति में चरमपंथियों का प्रभाव बढ़ गया। इस प्रकार भारतीय राजनीति में एक नए युग की शुरुआत हो गई।

बहिष्कार और स्वदेशीआंदोलन के उभार का उपयोग:

स्वदेशी आंदोलन के दौरान, भारतीय नेताओं ने अनुभव किया कि निहत्थे भारत के लिए स्वतंत्रता संग्राम अधिक दिन तक चलाये रखना युक्तियुक्त नहीं हो सकता। हथियार आत्मनिर्भरता के साथ-साथ निष्क्रिय प्रतिरोध आंदोलन के सशक्त अनुप्रयोग के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति का प्रयास आंदोलन को एक नई दिशा में गति देगा। हालांकि, बिपिन चंद्र पाल का मानना था कि स्वदेशी युग में निष्क्रिय प्रतिरोध के बजाय निहत्थे प्रतिरोध शब्द का प्रयोग अधिक स्वीकार्य है। उनके अनुसार, कई लेखक आज Passive Resistance शब्द का प्रयोग निष्क्रिय प्रतिरोधके बंगाली पर्याय के रूप में करते हैं। लेकिन यह प्रयोग भ्रमित करने वाला है। Passive Resistance का अर्थ है Not non active but non-aggressive;kfu गैर-सक्रिय नहीं बल्कि गैर-आक्रामकय जिसका अर्थ यह है कि इसकी मूल प्रकृति गैर-आक्रामक है, लेकिन निष्क्रिय नहीं है। इसलिए निहत्ये प्रतिरोध शब्द का प्रयोग करना उचित प्रतीत होता

है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रतिरोध का यह निष्क्रिय रूप बंगाल में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में एक नए उपकरण के रूप में उभरा। यह निष्क्रिय प्रतिरोध 1905 और 1906 ई. के बीच बहिष्कार और स्वदेशी आंदोलनके माध्यम से विकसित हुआ था। आर. सी. मजूमदार के अनुसार, बहिष्कार का विचार पहले आया है, स्वदेशी भी इसके पूरक के रूप में लोकप्रिय हुआ और समय के साथ वे एक दूसरे के पूरक के रूप में सामने आए हैं। बंगाल के विभाजन की कर्जन की योजना के विरोध में बहिष्कार और स्वदेशी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक आर्थिक और राजनीतिक जद्दोजहद थी। बहिष्कार से अभिप्राय अंग्रेजों या उनके द्वारा बनाए गए कानून या संस्था के साथ असहयोग और विदेशी सामानए विदेशी शिक्षा, कार्यालय अदालत, उपाधि आदि का बहिष्कार था। जुलाई 13, 1905 को कृष्ण कुमार मित्रा ने अपनी संजीवनी पत्रिकामें ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का आह्वान किया। सभी वर्गों के लोग बहिष्कार आंदोलन में जोर-शोर से शामिल हुए। सरकारी कार्यालयों-अदालतों, शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार किया गया। इस समय भी निष्क्रिय प्रतिरोध की विचारधारा से प्रेरित कई कारखानों में हड़तालें देखी गई। छात्रों को आंदोलन से दूर रखने के लिए सरकार द्वारा कार्लाइल सर्कुलर जारी किया। आंदोलनकारी छात्रों के निष्कासन और दंड की घोषणा के बाद, छात्र समाज ने सचिंद्र प्रसाद बसु के नेतृत्व में एक एंटी सर्कुलर सोसाइटीका गठन किया।

दूसरी ओर, स्वदेशी शब्द का अर्थ है स्वयं के स्वदेशी उत्पादों का उत्पादन और उपयोग। इसके साथ ही स्वदेशी सभ्यता, स्वदेशी संस्कृति, स्वदेशी साहित्य और स्वदेशी संगीत, स्वदेशी वस्तुएं आदि सभी स्वदेशी लोगों के अंग थे। सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक The Swadeshi Movement in Bengal में इस अवधि को रचनात्मक स्वदेशीया आत्म-सशक्तीकरण के रूप में संदर्भित किया है। उन्होंने कहा कि-व्यर्थ और अपमानजनक भीख मांगने की राजनीति को नकारते हुए और स्वदेशी उद्योगों की स्थापना करके आत्मनिर्भरता प्राप्त की गई। राष्ट्रीय शिक्षा, ग्राम विकास भी इसके उद्देश्य में सम्मिलित थे। इसी को रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने निबंध 'स्वदेशी समाज' में 'आत्मशक्ति' कहा है। प्रफुल्ल चंद्र राय, नीलरतन सरकार और अन्य व्यावसायिक उपक्रम, रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित स्वदेशी भंडार, सरला देवी का लक्ष्मी भंडार, डॉन सोसाइटी का स्वदेशी बिपनी आदि की स्थापना की गई। वैज्ञानिक प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने स्वदेशी पहल पर उद्योग स्थापित करने के उद्देश्य से बंगाल केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वर्क्सकी स्थापना की थी। सतीश चंद्र मुखर्जी ने गुरुदास बंद्योपाध्याय, सत्येंद्रनाथ टैगोर, हीरेंद्रनाथ दत्त के सक्रिय सहयोग से अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना के लिए डॉन सोसाइटीकी स्थापना की। दत्ता और अन्य विचारकों ने, 92 सदस्यों के साथ 11 मार्च 1906 को कलकत्ता में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद (National Council of Education) का गठन किया गया था। इसी प्रकार बंगाल तकनीकी संस्थान (Bengal Technical institute) का गठन किया गया था जो बाद में जादवपुर इंजीनियरिंग कॉलेजबन गयाय और अनेक भारतीय विद्यालयों का भी गठन किया गया। इस प्रकारए स्वदेशी आंदोलन के प्रारंभ से, पहले बंगाली प्रदेश ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वदेशी और बहिष्कारकी दोधारी तलवार का इस्तेमाल एक उपकरण के रूप में किया, जो कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में आश्चर्यजनक रूप से दुर्लभ है। यह बहिष्कार आंदोलन और इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग शुरू में बंगाल तक सीमित था, लेकिन जल्द ही शिक्षा, दीक्षा और संस्कृति के इन विभिन्न क्षेत्रों में विदेशियों के आकर्षण को त्यागकर भारत की अपनी सभ्यता को पुनर्जीवित करने का प्रयास स्वदेशी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य बन गया। यह धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य लक्ष्य बन गया। इस प्रकार जिस राजनीतिक व्यवस्था और उद्देश्य के साथ बंगाल में स्वदेशी आंदोलन शुरू किया गया था, वह पूरी तरह से बदल गया और एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में विस्तार पाया। इस संदर्भ में आर.सी. मजूमदार लिखते हैं, 'हम 1905 में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय जागरण की पहली महत्वपूर्ण प्रवृत्ति देखते हैं जो 1947 में पूरी गति से प्रवाहित हो रही थी। इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह भारत के इतिहास में हमेशा के लिए स्वतंत्रता संग्राम और नए युग के अग्रदूत के रूप में पहचाना जाएगा।'

अखिल भारतीय राजनीति के दौर का प्रारंभ:

1905 में बंगाल की धरती पर भारतीय क्रांति की शुरुआत बंगाल के विभाजन के कारण हुई जिसके फलस्वरूप उथल-पुथल भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गई। मद्रास प्रेसीडेंसी में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन की प्रतिक्रिया संयुक्त राज्य के 23 जिलो, मध्य प्रदेश के 15 जिलों, बॉम्बे प्रेसीडेंसी के 24 जिलों, पंजाब के 20 जिलों और मद्रास प्रेसीडेंसी के 13 जिलों में देखी

जा सकती है। सतीश चंद्र बोस, चितरंजन दास, अरविंद घोष, ज्योतिंद्रनाथ मुखर्जी जैसे बड़े नामों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, बिपिन चंद्र पाल बंगाली विद्वानों में सबसे उल्लेखनीय थे। बंगाल के बाहर, लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में पंजाब और बॉम्बे प्रेसीडेंसी में आंदोलन सबसे व्यापक था। इसके अलावा, यह आंदोलन किसी विशेष वर्ग या समुदाय तक ही सीमित नहीं था। राष्ट्रवाद की इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं देखी गई। इल्बर्ट बिल आंदोलन या सुरेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय की कैद के विरोध में 1883 ईस्वी में पूरे देश में जो एकजुट आंदोलन देखा गया था, उससे भी यह कहीं अधिक तीव्र और व्यापक था।

बंगाल में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता का उभार:

बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में पहला स्वतंत्र ब्रिटिश विरोधी आंदोलन था। ब्रिटिश विरोधी भावना का स्वर इतना व्यापक पहले कभी नहीं था। स्वदेशी आंदोलन में ही बंगाल की महिलाएं कठिन सामाजिक बाधाओं को पार करके स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुई। बेशक बाद के 1921.22 के असहयोग आंदोलन, 1930.34 के सविनय अवज्ञा आंदोलन या 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में बड़ी संख्या में महिलाएं शामिल रही। लेकिन जातीय आंदोलन में गांधीजी के अवतरण के बाद के आंदोलनों के साथ इसकी तुलना करना ठीक नहीं है। वास्तव में 19 जुलाई, 1905 को विभाजन योजना की आधिकारिक घोषणा और 16 अक्टूबर को बंगाल के विभाजन के फैसले के विरोध में बंगाल की महिलाएं भी पुरुषों के सहयोगी के रूप में आंदोलन में शामिल हुई। स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी के बारे में भारती रॉय ने अपने निबंध 'स्वदेशी आंदोलन और बंगनारी जागरण' में दिखाया है कि-स्वदेशी युग में, भारतीय लड़कियों में पहली राजनीतिक चेतना जागृत हुई थी। बाद के दौर में राजनीतिक आंदोलन में उन्होंने जो सक्रिय भूमिका निभाई उसके पीछे स्वदेशी आंदोलन का बड़ा योगदान रहा था।'

16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल विभाजन की पूर्व संध्या पर, लड़कियों ने हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के बंधन के रूप में रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा आयोजित श्राखी बंधन उत्सव में उत्साहपूर्वक भाग लिया। रामेंद्रसुंदरा त्रिवेदी के आह्वान पर, बंगाली महिला समाज के एक बड़े वर्ग ने 'अरंधन उपवास दिवस' मनाया। बंगाल की माताओं और बहनों ने उस शाम रामेंद्रसुंदर त्रिवेदी द्वारा लिखित बंगलक्ष्मी का व्रत लिया। इसके अलावा, लड़कियों ने दो बंगालों की एकता के प्रतीक के रूप में बंगाल विभाजन की दोपहर को कोलकाता में अपर सर्कुलर रोड पर मिलन मंदिर की आधारशिला रखने में भी भाग लिया।

बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं में प्रमुख नाम थे। सरला देवी चौधरानी, कुमुदिनी बसु, सुबाला आचार्य, हेमांगिनी दास, निर्मला सरकार, लीलावती मित्रा। इनके अलावा मुर्शिदाबाद की गिरिजा सुंदरी, बीरभूम की दूकरीबाला देवी, बरिसाल की सरोजिनी देवी और मनोरमा बसु, खुलना की लावण्या प्रभा दत्ता, ढाका की ब्रह्ममयी सेन, फरीदपुर की सौदामिनी देवी और अन्य ने विभाजन विरोधी आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। कांतिकारियों को आश्रय देने और उनकी देखभाल करने, समाचार और हथियारों की आपूर्ति आदि के माध्यम से, बंगाल की महिलाओं ने स्वदेशी आंदोलन में बड़ी गतिविधियों से स्वयं को जोड़ा। महिलाएं स्वत:स्फूर्त ही बहिष्कार आंदोलन में शामिल हो गई, जो स्वदेशी आंदोलन का एक हिस्सा था। महिलाओं ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार और उनको जलाना, चूड़ियों सहित रसोई में ब्रिटिश नमक, मसाले और विदेशी दवाओं के उपयोग पर प्रतिबंध लगाने, विदेशी स्कूलों को छोड़ने और शराब की दुकानों पर धरना देने जैसे कार्यक्रमों में भी भाग लिया। कोलकाता में एक महिला सभा में नटोर की रानी ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया गया। जलपाईगुड़ी में अंबुजा सुंदरी दासगुप्ता, मयमन सिंह में पुष्पलता गुप्ता, काशी में सुशीला बसु और कोलकाता में हेमांगिनी दास ने विदेशी उत्पादों का बहिष्कार करने का आह्वान किया।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के साथ ही महिलाओं से घरेलू उत्पाद बनाने और उपयोग करने का आग्रह किया गया। स्वदेशी उत्पादों के उपयोग को बढ़ाने के लिए स्वर्ण कुमारी देवी ने 'सखी समिति' की स्थापना की और रवींद्रनाथ की भतीजी सरलादेवी चौधरानी ने 'लक्ष्मी भंडार' की स्थापना की। विभाजन विरोधी स्वदेशी आंदोलन के दौरान चरण कवि मुकुंद दास ने बंगाल की महिला समाज के लिए गाया, रेशम की चूड़ियाँ छोड़ो, बंगनारी, कभी और मत पहनो।' महिलाएं स्वदेशी उत्पादों का व्यापक उपयोग करने के साथ-साथ स्वदेशी के लिए धन और यहां तक कि सोने के गहने भी दान करती हैं। अबला बसु की उद्योग से बनी मैरी कारपेंटर हॉल में लगभग एक हजार महिलाओं ने बंगाल विभाजन के विरूद्ध निष्ठा की शपथ ली।

बंगाल की महिला समाज ने भी विभिन्न पत्रों और पत्रिकाओं के प्रकाशन के माध्यम से बंगाल के विभाजन के विरुद्ध प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए सरला देवी चौधरानी द्वारा संपादित भारती पत्रिका, स्वदेशी आंदोलन के पुजारियों में से एक कृष्ण कुमार मित्रा की बेटी कुमुदिनी मित्रा द्वारा संपादित सुप्रभात पत्रिका, मीरा दासगुप्ता द्वारा संपादित रेणुपत्रिका और सरजूबाला द्वारा संपादित भारत महिला पत्रिका ने बंगालियों के बीच देशभक्ति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वदेशी आंदोलन के दौरान मुस्लिम महिला खैरुन्निसा ने 1905 में अखबार 'नवनूर' में 'स्वदेशानुराग' नामक एक कविता लिखी, जिससे बंगाली महिलाओं में राष्ट्रवाद की भावना पैदा हुई।

सांस्कृतिक गत्यात्मकता का नया दौर:

बंगाल का विभाजन और स्वदेशी आंदोलन राजनीति की संकीर्ण सीमाओं से परे था। बंगाल ने संस्कृति की विभिन्न शैलियों के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में, स्वदेशी आंदोलन ने बंगाली संगीत, साहित्य, विज्ञान और चित्रकला के सभी पहलुओं को प्रभावित किया। सुमित सरकार ने सही लक्षित किया है कि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के किसी भी दौर में सांस्कृतिक क्षेत्र में इतनी उपलब्धियां नहीं रही जितनी स्वदेशी आंदोलन के दौर की रहीं। इस दौरान असंख्य कविताओं और गीतों के माध्यम से देश प्रेम का संदेश फैलाया गया। रवींद्रनाथ के अलावा, अतुल प्रसाद सेन, रजनीकांत सेन, द्विजेंद्रलाल राय और कवि मुकुंद दास के लेखन भी उल्लेखनीय हैं। कवि इस्माइल हुसैन के काव्य प्रवाह में हिंदू और मुस्लिम दोनों को भारतमाता की संतान माना जाता है। स्वदेशी या इसकी विचारधारा ग्रामीण बंगाल के लोक गीतों और बाउल गीतों में भी परिलक्षित होती थी। रवींद्रनाथ के 'घरेबाईरे' और इस घटना के संदर्भ में 'गोरा' लिखा गया था। इस दौरान कई लेख प्रकाशित हुए उनमें आत्मशक्ति, भारतवर्ष, स्वदेशी समाज, शिक्षा आदिविशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। प्रमथ चौधरी ने भारत पत्रिका में बहिष्कार और राष्ट्रवाद पर कई लेख लिखे। इसके अलावा, द्विजेंद्रनाथ टैगोर, सखाराम गणेश देउस्कर, देवी प्रसन्ना रॉय चौधरी और अन्य के लेखन में बंगाल विभाजन आंदोलन की स्पष्ट छाप थी। बंगाली साहित्य और संस्कृति के अध्ययन के लिए एक केंद्र के रूप में 1894 में गठित बंगीय साहित्य परिषद, बंगाल के विभाजन के दौरान तत्कालीन संपादक रामेंद्र सुंदर त्रिवेदी के नेतृत्व में साहित्य के अध्ययन का मुख्य केंद्र बन गया। 1907 में रवींद्रनाथ की अध्यक्षता में बंगाल साहित्य सम्मेलन के पहले वार्षिक कार्यक्रम ने बंगालियों को प्रेरित किया।

देशभक्ति की विचारधारा ने बंगालियों को विज्ञान की खोज पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर कियाथा। उस समय दो प्रमुख वैज्ञानिकों आचार्य जगदीश चंद्र बोस और प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने बंगालियों को गौरवान्वित किया। जगदीश चंद्र अपने प्लांट रिस्पांस थ्योरी के लिए ऊंचे स्थान पर बैठे थे। यह 1906 ई. की देशभक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। विज्ञान के अभ्यास की उनकी विचारधारा राष्ट्रवाद के अनुरूप हो गई। प्रफुल्ल चंद्र का लेखन उनकी देशभक्ति और शोध का सबसे अच्छा उदाहरण रहा है। इन दो वैज्ञानिकों के बाद प्रेसीडेंसी कॉलेज के केंद्र में कई और युवा वैज्ञानिक आए उनमें से उल्लेखनीय है लाल दत्त, नीलरतन धर, ज्ञानेंद्र चंद्र घोष, मेघनाद साहा और सत्येंद्रनाथ बोस।

बंगाल विभाजन के अवसर पर बंगाल में प्रकाशित सभी समाचार पत्रों और समकालीन पत्रों ने बंगाली पत्रकारिता के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू किया। इस समय, जैसा कि बंगाली अखबारों की भाषा में देखा जाता है, एक तरफ मातृभूमि के विचार में राजनीतिक विश्लेषण और दूसरी तरफ आजादी की धुन, मांगों को पूरा करने के लिए एक मजबूत कदम। इसी प्रकार स्वदेश व्रत के महान संकल्प में पत्रिकाओं ने भी संयुक्त रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लेख लिखे कृष्ण कुमार मित्रा ने अभी संजीव पत्रिका में पहला बहिष्कार आंदोलन प्रस्तावित था। उन्होने बंगाल के विभाजन के विरोध में लिखा कि जब तक बंगाल एकजुट नहीं होगा, बंगाली ब्रिटिश सामान नहीं खरीदेंगे और सभी ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार करेंगे। कृष्ण कुमार अंग्रेजों को चोट पहुंचाना चाहते थे ताकि यदि उनका व्यापार तनाव हो तो अपने अस्तित्व के आग्रह पर बंगाल की समस्याओं को देखें। इसके अलावाए रामानंद चट्टोपाध्याय की प्रवासी ब्रह्मबंधब उपाध्याय की संध्या, भूपेन्द्रनाथ दत्त की जुगंतर, अरविंद घोष की बंदेमातरम कृष्ण कमल भट्टाचार्य की हिताब्दी, बंद्योपाध्याय की बंगाली पत्रिका आदि ने स्वदेशी आंदोलन के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष:

इस प्रकार स्वदेशी आंदोलन के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन के चरित्र में भारी बदलाव आया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर चरमपंथी विचारधारा का उदय हुआ और ब्रिटिश विरोधी आंदोलन पूरी तरह से अलग दिशा में बहने लगा। यह पहली बार है कि बंगाली राष्ट्र ने अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वदेशी और बहिष्कारकी दोधारी तलवार का इस्तेमाल एक उपकरण के रूप में किया है। इस आंदोलन के प्रारंभ से ही बंगाल और भारत के विभिन्न हिस्सों में गुप्त संगठन अधिक सक्रिय हो गए। इसलिए इस आंदोलन का असर सिर्फ बंगाल में ही नहीं बल्कि समूचे भारत में अनुभव किया गया। 12 दिसंबर 1911 को, इस आंदोलन की प्रतिक्रिया में हीजॉर्ज पंचम को दिल्ली के दरबार में औपचारिक रूप से बंगाल के विभाजन की घोषणा को वापिस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसने भारत में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन को एक नई गति दी और स्वदेशी आंदोलन पहले बंगाल की भूमि में पैदा हुआ और धीरे-धीरे एक अखिल भारतीय रूप ले लिया। विल डुरंट ने भी स्वीकार किया कि 'It was in 1905, then, that the Indian Revolution began इस स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से नव उदित भारतीय राष्ट्रवाद का एक क्रांतिकारी रूप प्रकट हुआ और भारतीय राजनीति में एक नए युग का प्रारंभ हुआ।

सन्दर्भ सूची:

1. Banerjee Surendranath, ‘A Nation in Making', London, Oxford University Press, 1925, p. 184.
2. Durant Will,‘The Case for India’ Simon and Schuster, New York, 1930, p. 123.
3. Sitaramayya PattabhiB.‘The History of the Indian National Congress’,Volume-1 (1885-1935), Working Committee of the Congress, 1935. p. 70.
4. Mukherjee Haridas and Uma Mukherjee, ‘Origins ofthe National Education Movement (1905-1910)’.Jadavpur University, Calcutta, 1957. p. 37-44.
5. मुखर्जी हरिदासए उमा मुखर्जीए ष्स्वदेशी आंदोलन और बंगलार नवयुगष्ए सरस्वती पुस्तकालयए कलकत्ताए 1961ए पृण् 1ण्
6. Majumdar R.C.,‘History of the Freedown Movement in India’, Vol. 1. Firma K.L. Mukhopadhyay, Kolkata, 1971, P. 390.
7. Sarkar Sumit, ‘The Swadeshi Movement in Bengal(1903 1908)’, People’s Publishing House, New Delhi.1973, p. 12.
8. देसाई ए. आर. ‘भारतीय जातीयतावाद एवं सामाजिक पृष्ठभूमि’, के.पी. बागची एंड कंपनी, कलकता, 1987, पृ. 263.265.
9. Chandra Bipan, Mridula Mukherjee,Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajanand K. N. Panikkar, ‘India’s Struggle For Independence 1857-1947’, Penguin Books, New Delhi,1989, p. 125.
10. सरकार सुमित, ‘आधुनिक भारत; 1885.1947) के.पी. बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 2004, पृ. 94
11. चंद्र बिपन, ‘आधुनिक भारतेर इतिहास’, अनुवादित, ओरिएंट ब्लैकसोवन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 353.
12. बंद्योपाध्याय शेखर, ‘पलाशी थेके पार्टिशन: आधुनिक भारतेर इतिहास’, अनुवादक कृष्णनेंदु रॉय, ऑरिएंट लोंगमैन, दिल्ली, 2004, पृ. 297.

राही मासूम रजा के उपन्यासों में नारी समस्याएँ

डॉ० चतुर सिंह

सहायक आचार्य हिन्दी, महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

भारतीय समाज में आधी आबादी जो नारी वर्ग की है-वह आज भी विभिन्न समस्याओं से पीड़ित है। विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह और बलात्कार जैसे घिनोने कृत्य उसके साथ एक समस्या के रूप में स्थाई रूप से विद्यमान हैं। डॉ. राही मासूम रजा ने आम दमी को केन्द्र मे लेकर नारी समस्याओं को अपने उपन्यास साहित्य में बड़ी सिद्दत के साथ उठाया है। सातवें से नवे दशक तक उठाई गई नारी समस्याएँ 21वीं के दूसरे दशक में भी ज्यों की त्यों विद्यमान हैं, इससे राजी जी की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य के सोलह-संस्कारों में 'विवाह' एक महत्वपूर्ण संस्कार है, जिसके द्वारा स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पति-पत्नी के रूप में स्वीकार्य होता है। यद्यपि आज शिक्षा, औद्योगीकरण, आर्थिक कारणों से सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ कुछ वैवाहिक मान्यताएँ भी बदल रही हैं परन्तु अभी भी समाज में परम्परा की जटिलता, विवाद पद्धति की रूढ़ियाँ अधिक प्रचलित हैं। आज भी विवाह में व्यक्ति का महत्त्व न होकर खानदान, जाति तथा सामाजिक परम्परा का महत्त्व होता है।

आज भी विवाह के लिए लड़के-लड़की की योग्यता नहीं, बल्कि घर वालों की हैसियल देखी जाती है। उदाहरण के लिए 'टोपी शुक्ला' में मुन्नी बाबू कोई काम नहीं करते। उनके पिता भृगुनारायण नीले तेल वाले समाज में इज्जतदार, धनी व्यक्ति हैं और दूसरी ओर लक्ष्मी के पिता अच्छे आसामी थे, इसीलिए लड़की की बदसूरती भी पैसे की ओट में छिप जाती है, और दोनों का विवाह कर दिया जाता है-''डाक्टर साहब बहुत परेशान हुए क्योंकि लड़की वाले तगड़े आसामी थे। एक लाख नकद। एक मोटर पांच सेर सोना। तीस सेर चांदी... डॉ. साहब ने ऊँच-नीच पर विचार नहीं कर मुन्नीबाबू को समझाने का फैसला किया।''[1] और मुन्नी बाबू का रिश्ता पंडित सुधाकर लाल की इकलौती बेटी लाजबन्ती से हो गया। ''लाजवन्ती बड़ी अच्छी लड़की थी। बस एक आंख जरा खराब थी। बाँय पैर को घसीट कर चलती थी। रंग जरा ढँका हुआ था। और मुँह पर माता के निशान थे। परन्तु इन बातों से क्या होता है? शरीफ लोगों में कहीं बहुओं की सूरत देखी जाती है।.. बराबर वालों में कोई वर नहीं मिला, नीचे के लोगों ने भी लक्ष्मी की भद्दी मूर्ति पर बेटों की बलि देना स्वीकार नहीं किया, बस एक पंडित भृगुनारायण नीले तेल वाले ऐसे मिले जिन्होंने कहा कि लक्ष्मी-लक्ष्मी होती है।''[2]

इस तरह अधिक पैसा चाहने वाले धनी लोग लालच में बिक जाते हैं पर सामान्य आय वाले आम आदमी के वर्ग के लोग इस लालच में नहीं आते। वो आज की शिक्षा, मूल्यों में नवीनता के कारण लड़के-लड़की की योग्यता को अधिक महत्व देते हैं। फिर भी आज के समाज में पैसे का बहुत महत्व है, पैसे से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। पैसे के आधार पर बनते-बिगड़ते सामाजिक सम्बन्धों के रूप में भी आम आदमी का संदर्भ देखा जा सकता है। आज भी धनी बाप की बेटी के विवाह के लिए अच्छे से अच्छा लड़का मिल सकता है, चाहे लड़की की योग्यता कुछ भी न हो। और इसके विपरीत एक अच्छी योग्य किन्तु गरीब पिता की लड़की के लिए सामान्या-सा वर ढूँढ़ना और शादी करना आज की प्रमुख समस्या बन गयी है।

इस तरह विवाह में धन की सौदेबाजी को प्रमुखता रहती है। ''सीन: 75' का एक उदाहरण देखिये जिसमें मिढ़ा साहब ऐसी ही लड़की से शादी करते हैं जिससे काफी पैसा मिलता है, फिर चाहे पत्नी से वे कभी भी संतुष्ट नहीं हो पाये-''सरला को मिसेज मिढा बनाने ही से उन्हें इतना पैसा मिला था कि उन्होंने अपना कारोबार शुरू किया था।...तो जब उन्हें बीबी नहीं मिली तो वह दूसरों

की बीवियों में दिलचस्पी लेने लगे।''[3] अत: धन के लालच में की गई इस तरह शादियों से पति-पत्नी दोनों असंतुष्ट रहते हैं, क्योंकि उनके सम्बन्धों में वो मधुरता आ ही नहीं पाती जो एक औसत-सामान्य पति-पत्नि के बीच होनी चाहिए। इस तरह के विवाह किन्हीं अंशों में असफलता के कगार पर खड़े होते हैं।

हमारे समाज में आज भी विवाह के समय कुलीनता को देखा जाता है। 'आधा गांव' में शीयाओं की इस कुलीनता के प्रति कट्टरता दिखाई पड़ती है। शीयाओं में प्रतिलोम विवाह निषिद्ध है या तो अनुलोम विवाह होंगे अथवा बराबरी में अदला-बदली होगी। अत: लड़कियों के विवाह के समय उनकी मुख्य समस्या है 'अच्छी हड्डी' का (कुलीन एवं शुद्ध शीया) लड़का पाना, जिसके साथ विवाह किया जा सके। सईदा और तन्नू का प्रेम, विवाह की परिणिति तक नहीं पहुँच पाता क्योंकि सईदा उच्च कुल की है और तन्नू नीचे कुल का। अत: अब्बू मियां कहते हैं-''बाकी हम तो जुलाहिन बच्चे को अपनी बेटी न देंगे।''[4] इस तरह राकी और जुलाहों के लड़के तो सोच भी नहीं सकते कि बड़े फाटक में रहने वाली (उच्च कुल की) कोई लड़की उनके हत्थे चढ सकती है।

लेकिन ये उच्चकुलीनता और अनुलोम विवाह का नियम पुरुष के प्रथम विवाह तक ही रहता है, ''दूसरा ब्याह कर लेना या किसी ऐरी-गेरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था।''[5] घर-घर में जनाने खानों के साथ रखेलों और राकी-जुलाहों के घरों से आई हुई बीबियों के लिए अलहदा खलवतें हैं। 'आधा गांव' में ''सुलेमान-चाचा ने झगटिया चमार की विधवा पत्नी को अपने घर में डाल लिया जिससे उन्हें हरामी औलादें भी मिलीं। सुलेमान चा मजहबी आदमी थे।''[6] इस तरह प्रेम हो जाने पर या पसंद आ जाने पर उच्च कुल के हमारे समाज में अन्तर्जातीय विवाहों को ही अस्वीकृत किया जाता है, फिर भी अन्तर्जातीय विवाह भी देखने को मिल जाते हैं। लेकिन उन्हें परिवार वाले और समाज वाले स्वीकार नहीं करते हैं। यहाँ तक कि इस तरह के विवाह कर लेने पर उन्हें घर से निकाल दिया जाता है। 'हिम्मत जौनपुरी' में नादिर जौनपुरी ईमाम बांदी नामक वैश्या से शादी कर लेते हैं तो उन्हें घर से निकाल दिया जाता है।''[7]

चाहे प्रेम अन्तर्जातीय ही रहा हो, लेकिन उस प्रेम की परिणिति विवाह के रूप में नहीं हो पाती है। 'टोपी शुक्ला' में बलभद्रनारायण शुक्ला का इश्क सलीमा से लेखक ने दिखाया है, पर विवाह सलीमा मुस्लिम आदमी डॉ. वाहिद अंजुम से ही करती है। इसी प्रकार लेखक ने एक उदाहरण दिया है-''प्रेमचन्द अमरकान्त और सकीना की शादी नहीं करवा सके, क्योंकि वह कहानी भारतीय जीवन का एक स्लाइस है। प्रेमचन्द के जमाने में अमरकांत और सकीना तथा विजयलक्ष्मी और सय्यद का विवाह नहीं हो सकता था।[8] इस तरह आज भी समाज में ऐसे विवाह को मान्यता नहीं दी गयी है। वैसे अपवाद स्वरूप कुछ उदाहरण मिल जायेंगे-यह भी आम-आदमी के संघर्ष की एक भूमिका तो है ही।

राही के उपन्यासों में अधिकतर परम्परागत विवाह, अन्त:जातीय विवाह ही देखने को मिलते हैं। 'टोपी शुक्ला' में देश और बिल्लो का, मास्टर बद्रुलहसन और शहनाज का, 'ओस की बूंद' में सहला और वाजिद अंजुम का विवाह अपनी पसंद से किये गये अन्त:जातीय विवाह ही हैं लेकिन अन्तर्जातीय विवाह देखने में नहीं आते, राही के उपन्यासों में।

रुपये पैसे, खानदान और सामाजिक प्रतिष्ठा के आगे लड़के-लड़की की उम्र का अन्तर भी नहीं देखा जाता। चाहे लड़का दूजवर ही क्यों न हो, चाहे उसके पैर कब्र में लटकते हों, पर लड़की कुआंरी नहीं रहनी चाहिए। इसलिए उसके साथ ही विवाह कर दिया जाता है। 'आधा गांव' में इसका एक उदाहरण देखिये-''बेदार मियां' की उम्र ज्यादा है तो क्या हुआ। इतनी बड़ी जायदाद है और फिर यह है कि बच्छन के लिए कोई शरीफ लड़का तो मिल नहीं सकता।''[9] (आर्थिक विपन्नता के कारण)। इस तरह आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के बीच पिसता हुआ आम आदमी का संघर्ष अनमेल विवाह के रूप में भी देखने को मिलता है। 'दिल एक सादा कागज' में रज्जबनबी अपनी बेटी की शादी तय करती है, लड़के की कमाई और खानदान के आधार पर। वो कहती है-''लड़का माशा अल्लाह से पी.डब्ल्यू.डी. में इंजीनियर था। घर में हुन बरस रहा था। उम्र जरा ज्यादा थी, तो उम्र से क्या होता है। लड़के की उम्र नहीं देखी जाती। कमाई देखी जाती है।''[10]

'कटरा बी आर्जू' में भी आर्थिक अभाव के कारण शम्मू मिया महनाज की शादी अपनी उम्र से थोड़ा ही कम जोखन से करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

''लड़का करता क्या है''? देश ने पूछा

''नौकरी खोजे का काम कर रहा है, आजकल। हेडकानिसटिबली से रिटायर भया है दू बरस पहले।

''आप तो समधी की बात करे लगे। हम लड़के को पूछते रहें।''

''हम लड़कवे की बात कर रहें बेटा।''[11]

उसके माँ-बाप जोखन से महनाज की शादी इसलिए नहीं कर रहे थे कि वह इसे मुनासिब समझते थे बल्कि यह शादी इसलिए करना चाहते थे कि महनाज और उसकी दोनों बच्चियों, पुत्तों और उम्मन को दो वक्त का खाना खिलाना उनके लिए सम्भव नहीं था-यह बड़ा बेदर्द एहसास था।

इस तरह अनमेल विवाह अर्थ से व कुलीनता से सम्बन्धित सामाजिक व्यवस्था ये संबंधित हैं जिसमें आम आदमी संघर्षरत है।

अनमेल विवाह के रूप में विवाह की परम्परागत पद्धति में आज परिवर्तन आने लगा है। 'ओस की बूंद' में शहरनाज परम्परागत विवाह का विरोध करती हुई कहती है कि ''मैं मंझली बाजी नहीं हूँ कि जिस खूंटे से बाँध दीजियेगा, वहीं पागुर करने लगूंगी।''[12] इस तरह नारी-चेतना-विकास के कारण आज सामाजिक परम्पराओं, मान्यताओं का विरोध होने लगा है। लड़के-लड़कियाँ अपना जीवन साथी स्वयं देखभाल कर चुनते हैं। जीवन साथी को पूर्णता के साथ अपनाने का नवीन मूल्य न केवल पुरुष वर्ग में ही पनप रहा है बल्कि नारी में भी यह चेतना जागृत हो रही है।

'ओस की बूँद' की शहला ठाकुर साहब के शादी के प्रस्ताव की सूचना देती है क्योंकि ''मैं आधी-तिहाई चीजें नहीं लेती। और आप पूरे के पूरे मुझे मिल नहीं सकते।''[13] ठाकुर साहब अपने घर की 'सिर्फ एक ईंट हैं क्योंकि घर तो और अनेक ईंटों से बना हुआ है। शहला ऐसे घर को स्वीकार नहीं करना चाहती जिस घर को वह सम्पूर्ण परिवेश से अपनाने को तैयार न हो।

शहला का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है वह 'कुरान नहीं है जिसे हर मुसलमान आंखों से लगा सकता है और चूम सकता है। वह एक लड़की है और उसे सिर्फ वही छू सकता है जिसे वह छूने की इजाजत दे।''[14] इस तरह के उभरते हुए स्वतन्त्र व्यक्तित्व आज समाज में देखने को मिल जायेंगे।

समाज में पुनर्विवाह एवं विधवा-विवाह का विरोध आज भी देखने को मिलता है। अत: विधवा होना नारी की बहुत बड़ी समस्या बन गया है। विधवा हो जाने पर नारी को न तो सम्मान ही मिल पाता है और न परिवार में उचित अधिकार। भारतीय संस्कृति के अनुसार पति के रहते हुए ही पत्नी को सुख-समृद्धि सम्मान सभी कुछ प्राप्त हो सकता है, लेकिन पति की मृत्योपरान्त उसी पत्नी का जीना भी मुश्किल हो जाता है। मानो उसके सभी अधिकार छिन जाते हैं। इस तरह विधवा होना एक अभिशाप बन गया है।

हमारे समाज में विधवा का पुनर्विवाह करना अच्छा नहीं समझा जाता है। अत: जो लड़कियाँ बाल-विधवा हो जाती हैं, उन्हें अनेक संघर्षो का सामना करना पड़ता है। पेट की भूख के साथ-साथ स्वाभाविक शारीरिक भूख भी उन्हें अनैतिक सम्बन्धों को जोड़ने के लिए मजबूर कर देती है। जिन्हें समाज स्वीकार नहीं करता और एक संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। 'ओस की बूंद' में शहरनाज की छोटी मसानी बाल विधवा होती है। वह अपने गोद लिए हुए बेटे के साथ ही अनैतिक शारीरिक सम्बन्ध जोड़ लेती है ''यह छोटी मसानी बड़े गजब की थी। अल्लाह रसूल से नीचे बात ही नहीं करती थी। उन्होंने गल्लू को गोद ले रखा था।.. गल्लू बोला-बड़े मजे का खेल है। छोटी मसानी के साथ हम खेलते रहे... सब और मरद इहे खेलते हैं और ए ही से पेट में बच्चह पड़ जाता हैं।...कई बरस बाद खबर मिली कि उनके बच्चा ठहर गया था और उसे गिरवाने के फेर में मर गयीं।[15]

इस प्रकार सम्बन्धों में इतनी वीभत्सता आ गयी है कि माँ-बेटे के बीच यौन-सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं लेकिन जब समाज इन्हें (विधवा-विवाह को) स्वाभाविक और नैतिक रूप से स्वीकार नहीं करेगा तो इसी तरह समाज में यौन-विकृतियां पनपेगीं ही। इसी कारण सामाजिक नैतिकता के उल्लंघन की कीमत पर काम-तुष्टि का निर्वाह हमेशा होता रहा है, और होता रहेगा।

मुस्लिम समाज में बहु-विवाह और ऐरी-गैरी औरत को घर में डाल देना, और उनके साथ शारीरिक सम्बन्ध रखना और निकाह कर लेना आदि आम बात है। मुसलमानों में एक से अधिक बीबियाँ रखना पोरुष की बात कहा गया है-''लेकिन पांच भाईयों में एक बीबी से हमारा काम अब भी नहीं चल सकता। यह भी कोई कसर हुई? उनसे अच्छे तो हमीं हैं। चार भाईयों में कुल मिलाकर

सात बीबियां हैं।''[16] इतना ही नहीं, घर-घर जनाने खानों के साथ रखेलों और राकी-जुलाहों के घरों से आयी हुई बीबियों के लिए अलहदा खलवतें हैं। शायद ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो, जिसमें कलमी लड़के और लड़कियां न हों जिनके घर में खाने को भी नहीं होता वे भी किसी न किसी तरह कलमी आमों और कलमी परिवार का शोक पूरा कर ही लेते हैं। इस तरह बहु-विवाह व अनेक स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्ध रखने पर, समाज में यौन स्वच्छन्दता, कुलीनता व बच्चों की समस्याएँ बढ़ जाती हैं।

नैतिक मान्यताओं के विघटन के कारण मनुष्य प्रकृति-विरूद्ध विकृत-यौनाचार अथवा अनैतिक यौन-सम्बन्धों की ओर प्रेरित होता है। भोगववादी होने के कारण व्यक्ति में कामेच्छा की प्रबलता और भौतिक विलासिता के प्रति उन्मादी लालसा बहुत अधिक बढ़ जाती है जिसकी, परिणिति बलात्कार के रूप में देखी जाती है। इस समय व्यक्ति अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, औचित्य-अनौचित्य को भुलाकर केवल अपनी काम-तुष्टि करना चाहता है, चाहे वे साधन अनैतिक ही हों। 'ओस की बूंद' उपन्यास में शाह साहब शहला के साथ बलात्कार करते हैं। शहला पर उनकी निगाहें बहुत समय से थीं, लेकिन मौका मिलते ही वो चूकते नहीं हैं-''बलवाई जब घर में घुसे तो नंगी शहला बेहोश पड़ी थी और शाह साहब तहमद बांध रहे थे...। जब पुलिस आई तो वहाँ कोई नहीं था। केवल दो लाशें थीं। शहला की लाशनंगी थी। शाह साहब की लाश नंगी नहीं थी। शहला की लाश पर दांतों के निशान थे। शाह साहब की लाश पर दांतों के निशान नहीं थे।''[17] इससे साफ जाहिर है कि शहला ने शाह साहब के चंगुल से बच निकलने के लिए काफी प्रयास किये, लेकिन वो असफल रही और मौत की नींद सो गई।

इसी तरह 'कटरा बी आर्जू'' में भी इस बलात्कार की समस्या का चित्रण देखने को मिलता है। प्रेमानारायण जो कि रेडियो-अनाउन्सर थी, आपातकाल के समय एक बूढ़े नेता जोखन और उसके ड्राइवर सरजूप्रसाद द्वारा रेप की जाती है। किन्हीं बहानों से प्रेमा को घर पर बुलाकर जबरदस्ती दोनों उसके साथ शारीरिक संबंध जोड़ लेने में सफल हो जाते हैं। इतना ही नहीं जब प्रेमा पर झूठे आरोप लगाकर मीसा में बंद कर लिया जाता है तब अफसर और सिपाही सभी उसके साथ बलात्कार करते हैं-''टॉर्चर का मतलब उसने यह नहीं समझा था कि बाबू जगदम्बा प्रसाद जैसे लोग उसके बदन की किताब पर अंगूठा निशान मारेंगे। वह बहुत खूबसूरत थी इसीलिए अफसरों और सिपाहियों सभी को पसन्द आयी और सभी ने अपनी-अपनी पसन्द उस पर आजमाई।... और जब वह बिल्कुल खाली हो गयी तो जेल में फेंक दी गयी।''[18] यहाँ बड़े अफसरों, नेताओं, पुलिस वालों की चारित्रिक दुर्बलता, उनका नैतिक पतन द्रष्टव्य है। इनकी स्वच्छन्द, यौन-तुष्टि की कामना समाज में कितनी ही संघर्षमय भूमिका पैदा कर देती है। यही 'स्थिति 'दिल एक सादा कागज' में है। चीफ एडमिनिस्ट्रेटर शारदा के साथ बलात्कार करते हैं। लिफ्ट देने के बहाने उसे कार में बिठा लेते हैं और दूर जंगल में एकान्त में ले जाकर उससे जबरदस्ती करते हैं-''गाड़ी रूक गई। चीफ साहब ने उसके गले में बांहें डाल दी। वह चीख पड़ी। पर वहां था कौन? सुनसान रात। सांय-सायं करता अंधेरा... शारदा पागलों की तरह भागी चली जा रही थी। अपने बदन को घसीटती हुई जो चलने से इंकार कर रहा था।[19]

चूँकि बलात्कार करने वाले बड़े अफसर, नेता, पुलिसवाले होते हैं तो इनको कभी अपराधी नहीं माना जाता, क्योंकि जिन लड़कियों के साथ बलात्कार होता है वो इन लोगों की अपेक्षा हैसियत में काफी छोटी होती हैं, उनकी बात को कोई सच नहीं मानता। बल्कि ये लोग किन्हीं और पर इसका दोषारोपण कर देते हैं। रफ्फन शारदा की तरफ से केस कर देता है तो वकील उन्हें फँसाने के लिए झूंठे गबाह तैयार कर लेता है। 'दिल एक सादा कागज' में जब वकील रफ्फन पर ही यह आरोप लगा देता है कि ''मेरा सबमिशन यह है कि मास्टर साहब और शारदा का चक्कर पहले से चल रहा था। और यह रेप एक आफ्टर थॉट है। रेप तो हुआ ही नहीं...।''

हमारे समाज के कानून की अगर यही स्थिति रही तो समाज की सभी नारियों का चरित्र खतरे में है। क्योंकि इन अफसरशाही लोगों का कुछ पता नहीं कहाँ, कब और कौन-सी स्त्री, लड़की इनकी आँखों में समा जाये और ये उसे अपनी हवस का शिकार बना डालें। अत: आज बलात्कार की समस्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।

देश-विभाजन और दंगों के समय में भी बलात्कार की समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है। सेना वाले लोग भी एक-दूसरे देश से आने-जाने वाली शरणार्थी औरतों के साथ बलात्कार करते हैं। औरतें, छोटी उम्र की लड़कियाँ बेचारी बेबस होती हैं-''वह शरणार्थी

बनकर यहाँ वापस आ गये थे। भाई जानू के साथ शहर बानो भी आयी थी।.. जनरल न्याजी की इस्लामी फौज के सिपाहियों ने उसके साथ कई रातें गुजारीं थीं। और वह माँ बनने वाली थी और उसके कंवारपे की जिल्लत की कहानी उसके चेहरे पर जैसे उर्दू लिपि में लिखी हुई थी।''[20] इसी तरह का उल्लेख 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में भी हुआ है-''सिक्खों ने तो गजब कर दिया बच्चियों को किरपानों पर उछाल दिया। एक तेरह बरस की लड़की के साथ बीस सिखों ने जिना किया। वह बेचारी कहीं बीच में ही मर गई।....।''[21]

यौन-विकृति के रूप में बलात्कार की समस्या हमारे समाज में आज बढ़ती जा रही है। यह जब तक समाप्त नहीं हो सकती, जब तक कि पुरुष अपने को नैतिक पतन से बचायेंगे नहीं। चाहे कितने ही कानून इसके लिए बन जायें, नारे दिये जायें पर यह सामाजिक समस्या और इसके लिए आम आदमी का संघर्ष चलता रहेगा। इसके अलावा महानगरीय समस्याएँ भी आम आदमी को घेरे हुए हैं, जिससे सामाजिक संघर्षों को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार नारी समस्यों को राही मासूम रजा ने अपने उपन्यासों में यथार्थ रूप में मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। 21वीं सदी में भी नारी पर अत्याचार थमने का नाम नहीं ले रहे हैं। इस पर आज विचार की आवश्यकता है।

संदर्भ-

1. राही मासूम रजा-टोपी शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, 1969 ई., पृ. 23
2. उपरिवत्, पृ. 24
3. राही मासूम रजा-सीन: 75, राजकमल प्रकाशन, 2004 ई., पृ. 36
4. राही मासूम रजा-आधागांव, राजकमल प्रकाशन, 1966 ई, पृ. 321
5. उपरिवत्, पृ. 18
6. उपरिवत्, पृ. 49
7. राही मासूम रजा-हिम्मत जौनपुरी, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई., पृ. 53
8. राही मासूम रजा-टोपी शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, 1969 ई., पृ. 36
9. राही मासूम रजा-आधागांव, राजकमल प्रकाशन, 1966 ई, पृ. 321
10. राही मासूम रजा-दिल एक सादा कागज, राजकमल प्रकाशन, 1973 ई., पृ. 41
11. राही मासूम रजा-कटरा ब आर्जू, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2011 ई., पृ. 45
12. ओस की बूंद-राही मासूम रजा, पृ. 101
13. उपरिवत्, पृ. 113
14. उपरिवत्, पृ. 113
15. उपरिवत्, पृ. 107
16. राही मासूम रजा-आधागांव, राजकमल प्रकाशन, 1966 ई, पृ. 95
17. राही राही मासूम रजा-कटरा ब आर्जू, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2011 ई., पृ. 211
18. राही मासूम रजा-आधागांव, राजकमल प्रकाशन, 1966 ई, पृ. 19
19. राही मासूम रजा-दिल एक सादा कागज, राजकमल प्रकाशन, 1973 ई., पृ. 206
20. उपरिवत्, पृ. 238
21. राही मासूम रजा-हिम्मत जौनपुरी, राजकमल प्रकाशन, 1997 ई., पृ. 52

संस्कृत नाटिकाओं की कथावस्तु का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

डॉ० आशा सिंह रावत

असिस्टेण्ट प्रोफेसर-संस्कृत, शासकीय के0 आर0 जी0 पी0 जी0 स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

किसी भी रूपक की रचना के हेतु सर्वप्रथम कथा की आवश्यकता होती है। धनंजय ने दशरूपक में ''नेतृ-रसानुगुण्या कथा'' कहकर पारिभाषित किया है।अर्थात् कथा की रचना रस और नायक दोनों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। यह कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध या कवि कल्पित हो सकती है। कभी-कभी कवि कुछ अंश इतिहास से व कुछ अपनी कल्पना से ग्रहण कर कथावस्तु की रचना करता है। इस प्रकार कथा तीन प्रकार की होती है-

(1) ऐतिहासिक

(2) उत्पाद्य (कल्पित) तथा

(3) मिश्र।

नाटिकाओं की कथावस्तु अधिकांशत: कवि की कल्पना पर आधारित होती है। श्रृंगार इसका प्रधान रस होता है। रस युक्त वाक्य ही काव्य कहलाता है। भरत मुनि के अनुसार ''वाक्यं रसात्मकं काव्यं'' । यह रस ही काव्य की आत्मा कहलाता है। भरत मुनि के अनुसार रस के बिना कोई भी अर्थ प्रवर्तित नहीं होता-

''न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते।''

जिस प्रकार बीज से वृक्ष और फिर वृक्ष से पुष्प तथा फल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार श्रृंगारादिक रस ही मूल हैं और उन्हीं पर भाव व्यवस्थित होते हैं।

''यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् फलं तथा।
तथा मूलं रसा: सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिता।।''

किसी भी कार्य को करने का एक प्रयोजन होता है। उस प्रयोजन को पूर्ण करने पर ही अभीष्ट लक्ष्य या फल की प्राप्ति होती है। जिस हेतु कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। यह साधन रस और कथा के सम्यक् विकास में सहायक होते है। ''इसी बात को ध्यान में रखते हुए संस्कृत नाट्य साहित्य में अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, सन्धि तथा सन्ध्यंगों पर विचार किया गया है, जिससे कवि इसी को आधार मानकर अपनी कृति में रसाभिव्यक्ति के लिए उनका यथोचित निर्वाह कर सके।

अंकों का संयोजन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह पूर्ण रूप से रस से युक्त हो तथा उसकी अभिव्यक्ति करने वाला हो। अंकों का संयोजन मात्र नाट्यशास्त्रीय निर्देशों की पूर्ति करने हेतु नहीं किया जाना चाहिए-

''रसाभिव्यक्तिमपेक्ष्येषामंगानां संनिवेशम्
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया।।''

अर्थप्रकृतियाँ-

किसी भी रूपक में जिन घटनाओं का वर्णन किया जाता है वह दो प्रकार की होती है- आधिकारिक व प्रासंगिक। आधिकारिक, वृत्त को बीज, बिन्दु और कार्य, इन तीनों रूपों व प्रासंगिक बात को पताका और प्रकरी इन दो भेदों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

''प्रत्येक नाटक आदि में प्रधान कथावस्तु के नायक का एक लक्ष्य होता है, उसे ही फल कहा जाता है। अर्थप्रकृतियों का प्रयोग उसी फल की सिद्धि के लिए किया जाता है -अर्थप्रकृतय: प्रयोजनसिद्धिहेतव:।

बीज, बिन्दु और कार्य इन तीनों की उपस्थिति अनिवार्य है, किन्तु पताका और प्रकरी मुख्य कथा को गतिशील बनाने में अपना योगदान देती है अत: इनका होना न होना रूपक की कथावस्तु व उसकी रचना पर निर्भर करता है।

बीज-

जो कथा के प्रारम्भ में सूक्ष्म रूप से कहा जाता है और रूपक के फल का हेतु भी होता है, बीज कहलाता है। आचार्य विश्वनाथ ने बीज का लक्षण इस प्रकार किया है-

''अल्पमात्रमदुद्दिष्टं बहुश: यद्विसर्पति
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।''

अर्थात् जो आरम्भ में स्वल्पोदिष्ट रूप में कहा जाए किन्तु उसका विस्तार अनेक रूपों में किया जाए, उसे बीज कहते हैं- यह फल सिद्धि का प्रथम हेतु होता है।

रत्नावली नाटिका का सबसे महत्वपूर्ण प्रयोजन यह है कि महाराज उदयन रत्नावली को प्राप्त कर लें, जिसकी सिद्धि का हेतु मंत्री यौगन्धरायण व उसके प्रयास है। इसी को विष्कम्भक में बीज रूप से उपनिबद्ध किया गया है। यौगन्धरायण का यह कथन बीज तत्व को पूर्णत: परिलक्षित करता है-

''प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतो देवेनत्थं दत्तहस्तावलम्बे।
सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तु:।''

इस प्रकार नाटिका को आमुख में नटी व सूत्रधार का पारस्परिक संवाद मुख्य कथा को संकेत प्रदान करता है। इसी का विस्तार करते हुए कथानक का विकास होता है और अन्त में रत्नावली की प्राप्ति के रूप में काव्य के प्रयोजन की सिद्धि होती है। अत: यहाँ 'बीज' नामक अर्थप्रकृति का आरोप स्पष्टत: दिखाई पड़ता है।

बिन्दु-

कथावस्तु की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए और उसके प्रवाह के विच्छिन्न होने पर कथानक को जोड़ने व आगे बढ़ाने के लिए कारण रूप में प्रस्तुत होने वाली बात बिन्दु कहलाती है। यह सम्पूर्ण कथा में अनिवार्य रूप से व्याप्त रहता है।

''हेतोशदेदेऽनुसन्धानं बहूनां बिन्दुरापलात्।''

नाट्यशास्त्र के अनुसार- सागरिका के हृदय में महाराज उदयन के प्रति अनुराग, उनके दर्शन हेतु लालसा उत्पन्न करना ही 'बिन्दु' है

'विद्धशालभंजिका' इस नाटिका की कथावस्तु का मुख्य प्रयोजन है विद्याधरमल्ल व मृगांकवली का समागम। चारायण का 'आलोक विवाह' अवान्तर कार्य है, जिसका प्रयोजन अन्त:पुरवासियों का मनोरंजन करना है, लेकिन इस प्रयोजन के समाप्त हो जाने पर इसका मुख्य प्रयोजन से विच्छेद होने लगता है। अत: कथानक को जोड़ने व उसे गतिशीलता प्रदान करने के उद्देश्य से महाराज विद्याधरमल्ल के कुवलयवीथी की ओर जाने व मृगांकवली को कन्दुकक्रीड़ा में मग्न देखकर उसकी सखी के शब्दों में आते हुए उन्मादमयी विरह स्थिति का वर्णन सुनने के दृश्य की रचना की जाती है।

मृगांकवली की विरह अवस्था के वर्णन को सुनकर महाराज के मन में उसके प्रति जो अभिरुचि जाग्रत होती है, उससे कथा पुन: प्रवाह को प्राप्त होती है। महाराज के मन में नायिका के प्रति अभिरुचि जाग्रत करना 'बिन्दु' का ही लक्षण है।

पताका-

पताका का अर्थ होता है- ध्वजा। ध्वजा नायक का असाधारण चिह्न होती है और उसकी सहायक होती है। उसी प्रकार प्रधान फल की सिद्धि हेतु जिस प्रासंगिक इतिवृत की सहायता ली जाती है, उसे पताका नाम से अभिहित किया जाता है। यह प्रधान नायक

के अभीष्ट की सिद्धि के लिए सदैव तत्पर रहता है, जिसमें प्रसंगवश उसका अपना भी कुछ प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, जैसे रामायण का सुग्रीव वृतान्त। नाटिकाओं में इसका प्रायः अभाव ही पाया जाता है।

प्रकरी-

''प्रासंगिकं प्रदेशाख्यं चरितं प्रकरीमता प्रकरी च प्रदेशभाक्।''

प्रकरी की कथा एकदेशीय होती है जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी दूर तक चलती है। प्रकरी नायक भी प्रधान नायक के सहायक के रूप कथावस्तु का हिस्सा होता है जो निरपेक्ष भाव से प्रधान नायक की सहायता करता है, जैसे- रामचरित में जटायु।

पताका और प्रकरी मुख्य कथा को गतिशील बनाए रखने में सहायक होती है, किन्तु इनकी स्थिति रूपक में अनिवार्य नहीं होती है। विद्धशालभंजिका नाटिका में ''चारायण का मिथ्याविवाहविडम्बन'' तथा ''मेखला जीवन-दान'' यह दोनों ही प्रसंग प्रकरी के उदाहरण हैं।

कार्य-

यह पाँच अर्थप्रकृतियों में से अन्तिम है। यह एक अचेतन साधन है, जो प्रत्येक रूपक में आवश्यक रूप से विद्यमान रहता है, किन्तु यह फल नहीं अपितु फल-प्राप्ति का उपाय मात्र है, जैसे- सैन्य सामग्री, दुर्ग कोश, धन आदि।

''साध्ये बीजसहकारी कार्यम।''

कार्य वह साधन है, जो किसी भी काव्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक अर्थात् अभीष्ट फल की सिद्धिपर्यन्त चलता रहता है।

पांचों प्रकार की अर्थप्रकृतियों का संक्षिप्त विवरण रूपकों में उनकी उपादेयता को सिद्ध करने हेतु पर्याप्त है। इनका न तो समावेश ही प्रत्येक रूपक में किया जाता है और न ही परित्याग कथावस्तु की आवश्यकतानुसार इनका उपयोग किया जाता है। जिन नायकों को अपने व्यापार की सिद्धि हेतु अन्य सहायकों की आवश्यकता नहीं होती, उन रूपकों में पताका व प्रकरी का प्रयोग नहीं किया जाता। उनमें तीन अर्थ प्रकृतियों- बीज, बिन्दु एवम् कार्य का प्रयोग होता है, जिनको सहायक की आवश्यकता पड़ती है वहाँ प्रसंगानुसार पताका या प्रकरी में से किसी एक का प्रयोग होने पर चार और दोनों का प्रयोग होने पर ये पाँचों उपाय काम में आते हैं-

''सहायानपेक्षाणां नायकानां वृत्ते बीज-बिन्दु कार्याणि त्रय एवोपायाः सहायापेक्षाणां तु पताका-प्रकरीभ्यां, अन्ततरयां वा सह पंच चत्वारो वेति।''

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जब नाट्यकार जब किसी नाट्य की कथावस्तु की रचना करता है तो उसमें कुछ घटनाओं का वर्णन करता है। जब इस नाट्य का मंचन किया जाता है तो अभिनेता, दर्शकों के हृदय में उस भाव या रस का संचार अपने अभिनय के माध्यम से करने की चेष्टा करता है। इसीलिए नाट्यकार के द्वारा कथानक के क्रमिक विकास और सुश्लिष्टता को ध्यान में रखते हुए संस्कृत रूपकों की कथावस्तु को पांच अवस्थाओं, पंच अर्थप्रकृतियों और पांच सन्धियों से युक्त बनाया जाता है, ताकि कवि अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सके अर्थात् दर्शकों की उत्सुकता एवम् काव्य की सरसता को अन्त तक बनाए रख सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. दशरूपकम्, प्रथम प्रकाश
2. नाट्यशास्त्रम्, प्रथम अध्याय
3. नाट्यशास्त्रम्, 6/39
4. नाट्यशास्त्रम्, 6/39
5. साहित्यदर्पणम्, 6/20
6. साहित्यदर्पणम्, 6/20
7. साहित्यदर्पणम्, 1/29
8. रत्नावली, 1/7

9. नाट्यदर्पणम्, 1/32
10. विद्धशालभंजिका, द्वितीयांक, पृ. 55-57
11. साहित्यदर्पणम्, 6/68
12. दशरूपकम्, 1/13
13. दशरूपकम्, 1/13
14. विद्धशालभंजिका, तृतीयांक
15. नाट्यदर्पणम्, 1/33
16. नाट्यदर्पणम्, 1/33 (वृत्ति)

अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत जानकीजीवनम् महाकाव्य में रस-योजना

डॉ० बाबूलाल मीना

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एम0 एस0 जे0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

अभिराज राजेन्द्र मिश्र जानकीजीवनम् महाकाव्य में माधुर्यता, सरसता एवं संवर्धन के लिए रस का समावेश किया गया है। महाकाव्य में मनोहरता लाने के लिए रस का सन्निवेश अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, जिससे सहृदयों को काव्य रस का मधुर आस्वादन मिल सके।

रस को काव्य की आत्मा माना गया है, जिससे महाकाव्य अत्यन्त रमणीय एवं मनोहर बनता है, जो सहृदयों को आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द परमेश्वर की प्राप्ति कराता है।

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति'।[1]

रस शब्द का अर्थ है - वह वस्तु विशेष जिनका आस्वादन किया जाय, - 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'। रस तो कई प्रकार के होते हैं, जैसे परमात्मरूप रस, मधुररस, गन्ध, सोम, मधु आदि को भी रस ही कहा जाता है लेकिन 'रसनं रसः आस्वादः' के अनुसार जिनका हम आस्वादन करते हैं, उनको रस कहते हैं। इस आधार पर श्रृंगार, करूण, हास्य आदि को रस कहते हैं क्योंकि ये आस्वाद रूप हैं।

रस आस्वादने धातु से 'घ' प्रत्यय पूर्वक 'रस' शब्द बनता है।[2] इस प्रकार जो किसी भी सहृदयों को रसन क्रिया में लीन कर दे, ये ही तत्व रस कहलाते हैं।

रस सिद्धान्त का आदि प्रवर्तक भरत मुनि को माना जाता है। भरत मुनि के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन काव्य में नहीं होता - न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[3]

भरत मुनि ने महाकाव्यों में प्रयोग होने वाले रसों की संख्या आठ बतायी है-

श्रृंगार हास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।[4]

मम्मट ने भरत के आठ रसों को मानते हुए नवें रस शान्त रस को भी माना है -

निर्वेदस्थायीभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।[5]

आचार्य विश्वनाथ ने श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत आठ रसों के जैसे ही शान्त रस को भी माना है -

श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।[6]

पं. जगन्नाथ ने रसों की संख्या नौ ही मानी है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में मुनीन्द्र सम्मत कहकर वात्सल्य रस का प्रतिपादन किया है।

आचार्य भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरणम् में स्थायी भाव आठ माने हैं किन्तु रसों की संख्या बारह मानी है - श्रृंगार, करुण, वीर, अद्भुत रौद्र, भयानक, बीभत्स, हास्य, शान्त, वात्सल्य उदात्त एवं उद्धत।[7]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में रसों का मनोहर एवं सुन्दर सन्निवेश सहृदयों को आनन्द की प्राप्ति कराता है। जानकीजीवनम् में श्रृंगार रस को अंगी रस के रूप में विलसित किया गया है। महाकाव्य में श्रृंगार रस के संयोग श्रृंगार एवं विप्रलम्भ श्रृंगार के सभी अवस्थाओं का वर्णन प्राप्त होता है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में अंगरस के रूप में हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत शान्तरसों का पल्लवन किया गया है।

श्रृंगार रसः- मन्मथोद्भेद अर्थात् कामभावना के उदय को श्रृंग कहते हैं -'श्रृंग' से सम्बद्ध होने के कारण नायक नायिका की पारस्परिक रति भावना परिपुष्ट होकर श्रृंगार रस का रूप धारण करती है।

श्रृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।

पुरूष प्रमदाभूमिः श्रृंगार इति गीयते।।[8]

श्रृंगार रस के दो भेद हैं - सम्भोग तथा विप्रलम्भ श्रृंगार।

सम्भोग श्रृंगारः- लज्जादि के कारण जो व्यवहार निषिद्ध है, ऐसे इष्टदर्शन, चुम्बन, आलिंगनादि जिसमें नायक और नायिका दोनों मिलकर भोगते हैं, उसे सम्भोग श्रृंगार कहते हैं।[9]

सम्भोग या संयोग श्रृंगार का उदाहरण जानकीजीवनम् का निम्नलिखित पद्य है, जिसमें सम्भोग श्रृंगार को मर्यादित एवं रमणीय रूप में विलसित किया गया है -

अन्तःपुरप्रतोलीषु चरन्ती निभृतम्मुदा।

स्तम्भकोजनिलीनेन प्रियेण गोपितात्मना।।

मुंचमुंचेति सव्रीडं भणन्ती मृदुवाचिकम।

कदाचिच्च दृढं बद्धवा भुजयोराशु चुम्बिता।।[10]

महाकाव्य में सभी जगह राम सीता की हृदयस्थ प्रीति का आस्वादन सहृदयों को होता रहा है। सीता रनिवास की अटारियों में चुपचाप प्रसन्न मन से संचरण करती हुई कभी कभी अपने आपकों खम्भों से छिपाए हुए प्रियतम राम के द्वारा भुजाओं में कस कर भर लिए जाने पर चूम ली जाती है। सहसा सहृदयों को श्रृंगार रस की अनुभूति होती है।

यहाँ पर सीता (नायिका) रति का आलम्बन विभाव राम है तथा नायक राम सम्मत रति का आलम्बन सीता है। अन्तः पुर का एकान्त स्थल उद्दीपन विभाव है। दर्शन, आलिंगन, चुम्बन, लज्जा व्यभिचारी भाव हैं।

वियोग श्रृंगारः- विप्रलम्भ श्रृंगार की स्थिति वह है, जिसमें नायक नायिका का परस्पर अनुराग रहता है, उनका चित्त एक दूसरे के प्रति आकृष्ट रहता है किन्तु किसी कारण से उन्हें एक दूसरे से दूर रहना पड़े, उनका मिलन न हो पाता हो तो वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार रहता है-।

तत्रायोगो अनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः

पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः।[11]

विप्रलम्भ श्रृंगार चार प्रकार का होता है - पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण। रावण के द्वारा अपहृत सीता राम से अलग कर दी गई हैं -

मौक्तिकश्रुपृषन्ति नेत्रसरोरुहाभ्यां दण्डकेषु बृहन्ति पर्णचये गिरन्ती।

व्याधहस्तगतेव वत्सतरी स्वनन्ती जानकी विलाप शून्य दिशीक्षमाणा।[12]

नायिका सीता के लिए प्रवासजन्यवियोग अत्यधिक असहनीय है। वह चक्षुओं से अश्रु गिराते हुए करुण विलाप करने लगी।

हास्य रस - विकृत आकार वेष, वाणी के दर्शन से चित्त के विकास (खिल जाना) को 'हास' कहते हैं।

वागादि वैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते।।[13]

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में लक्ष्मण जब उर्मिला को पंकिला तथा मिथिला को शिथिला कहकर चिढाते हैं, तब सीता अपनी वाणी से लक्ष्मण को परास्त कर देती हैं। यथा -

कूष्माण्डालाबुतुल्या: किं मिथिलाया: कुमारिका:।

यास्तु य: कोऽपि गृहणीयात् पक्वान्नाशनलोलुप:।।

वीर्यशुल्काभवन्त्येता: काऽत्र कार्या विचारणा।

अयोध्यादारिका एव सन्ति दानार्पणक्षमा:।।

एवमार्यवचोयुक्त्या सिद्धमैथिलगौरवा।

उर्मिलाऽपि जहासोच्चौर तालशब्दविकस्वरा।।

करुण रस:- किसी इष्ट वस्तु के नाश पर या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति पर उत्पन्न शोक स्थायी भाव की पुष्टि करुण रस है। विश्वनाथ के अनुसार -

'इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्।'[14]

जानकीजीवनम् में करुण रस की प्राप्ति वहां होती है, जब कैकेयी के द्वारा चौदह वर्ष के लिए राम का वनवास माँगने पर राजा दशरथ पुत्र के वियोग की आशंका में अत्यधिक विह्वल हो जाते हैं-

निशम्यैव वाचोऽपतद्भूमितल्पे विसंज्ञो नृपश्छिन्नमूलदुकल्प:।

चिरस्थायिनीं तामतिक्रम्य मूर्च्छां सनेत्राश्रुपातं स्खलद्वागुवाच।।[15]

यहाँ पर राजा दशरथ अपने प्रिय पुत्र के वियोग में व्याकुल हैं। दशरथ के शोक के लिए राम आलम्बन विभाव, उनका भूतल पर गिरना, मूर्च्छा रोदन, कण्ठ का भर आना अनुभाव तथा जड़ता दैन्य से पोषित करुण रस को प्राप्त कर रहा है।

रौद्र रस:- रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। विरोधियों के प्रति जो हृदय में तीक्ष्णता या प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है, वही क्रोध कहलाता है।

प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोध: क्रोध इष्यते।[16]

रामचन्द्र जी के वनवास काल में शूर्पणखा के नाक काट दिए जाने पर शूर्पणखा जब अपने भाइयों से अपनी दुर्दशा का वर्णन करती है, तो अत्यन्त क्रोधित होकर दण्डक वन को घेर लेते हैं। राम और लक्ष्मण को मारने के लिए इस स्थिति में रौद्ररस का परिपाक अच्छा दिखाई पड़ता है।

वीक्ष्यशूर्पणखागतिं प्ररुषऽग्निदीप्त: स्वाभिमानपर: खरोऽभियौप्रहर्तुम्

दूषणत्रिशिर: पुरस्सरमेत्य तूर्णं सोऽरुणद् विपिनं सहस्त्रशतप्रवीरे:।[17]

वीर रस:- वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। धीरोदात्त गुणों से युक्त नामक उत्कृष्ट उत्साह वाला भाव वीर रस कहलाता है। यह महेन्द्र देवता तथा सुवर्णवर्ण वाला होता है। वीर रस चार प्रकार का होता है - दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, दयावीर।

जानकीजीवनम् में वीर रस का उदाहरण इस प्रकार है - हनुमान का लंका जाकर अशोक वाटिका को उजाड़ने में उत्साहपूर्वक राम - रावण के संग्राम में योद्धाओं के द्वारा प्रचण्ड शौर्य पराक्रम वीर रस की अत्यन्त शोभनीय अभिव्यंजन करने में कवि सक्षम रहा है -

ततस्तुमुलसंगरो हयुभयपक्षयोर्जुज्युवे

स्वपक्षजयशब्दित: प्रचुरशंखभेरीरव:।

गजाश्वरथसंकुल: प्रकटसिंहनादोदधुरो।

बलाबलविचारणारहित इष्टविध्यद्वध:।।[18]

जीतने योग्य शत्रु एवं सेना परस्पर आलम्बन विभाव है। अपने - अपने पक्ष की स्वयं जय जयकार की ध्वनि करना, शंख एवं भेरी की ध्वनि का पूर्वरूप वातावरण उद्दीपन तथा उत्साह में आकर शत्रु का वध करने के लिए प्रयत्न करना अनुभाव है तथा गर्व करना व्यभिचारि भाव हैं।

भयानक रस:- भयानक रस का स्थायी भाव भय है। 'यमराज' इसके देवता हैं। किसी विकृत स्वर अथवा विकृत सत्व या भीषण वस्तु के कारण चित्त में जो विकलता उत्पन्न होती है, उसे भय कहते हैं। जिससे अन्दर से भय का भाव उत्पन्न होता है, भय का

उत्पन्न होना ही आलम्बन है। भयभीत करने वाली चेष्टा या वातावरण जिससे भय जाग्रत होता है उसे उद्दीपन कहते हैं। भाषण, प्रलय, विह्वल होकर देना स्वेद, वैवर्ण्य आदि अनुभाव कहलाते हैं। जुगुप्सा, सम्भ्रम गरण, ग्लानि आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में जब रावण सन्यासी अतिथि के विकराल स्वरूप में उपस्थित हो जाता है, तो जानकी (सीता) के लिए यह अत्यन्त भयावह स्थिति हो जाती है। यथा –

एवमादि विजल्प्य छन्नतनुं च हित्वा आस्थितः स्वतनुं विभूतिमयी दशास्यः।
तद् वचांसि निशिम्य रूपमवेक्ष्य मूलं मैथिली भय विह्वला विकलाऽचलाभूत्।।[19]

यह रावण का वास्तविक स्वरूप में प्रकट होना आलम्बन भाव है। उसकी कुटिलतापूर्वक वाणी का बोलना उद्दीपन विभाव है। माता जानकी की अपनी असहाय स्थिति से रक्षा की आशा न रहने से जो चेष्टायें उत्पन्न हो रही थी, वे अनुभाव हैं। रावण के वास्तविक स्वरूप को देखकर जानकी के अन्दर जो भय विह्लता, विकलता, गतिहीनता, आशंका का होना व्यभिचारी भाव हैं।

अद्भुत रसः– अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन, श्रवण आदि से होने वाला चित्त का विकास ही विस्मय कहलाता है।

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।।[20]

इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु या विलक्षण व्यक्ति है। वहाँ का वातावरण या उस अलौकिक वस्तु के गुणों की महिमा उद्दीपन विभाव है स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, नेत्र विकासादि इसके अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में अद्भुत रस कतिपय स्थलों पर दिखाई देता है। सर्वप्रथम सीता के जन्म से पूर्व ही अद्भुत अवस्था उत्पन्न होती है। सीता माता की जन्म की अवस्था पूर्वरूप से आश्चर्य जनक ही है। सीरध्वज के द्वारा भूमि पर हल चलाना, हल के नोक लग जाने पर टूटा हुआ घड़ा का दिखाई देना उसमें एक कोमल सुन्दर रमणीय बालिका का शयन करते हुए देखकर राजा और सम्पूर्ण प्रजा आश्चर्यचकित हो गयी–

दृगं चलानि द्युतिभिर्नयन्ती मलीमसान्धत्वममन्दवेगा।
सभाजयन्ती कुतुकं समेषां युगान्तमेघोदरदामिनीव।
व्यलोकि सर्वैरपि लांगलाग्रप्रहारभिन्नोदरकुम्भतल्पे,
सुखं शयाना मदिरायताक्षी दिवौकसां श्रीरिव कापि बाला।।

यहाँ पर भूमि से उत्पन्न कन्या आलम्बन विभाव है, उस समय का वातावरण या दृश्य उद्दीपन है। नेत्रों के द्वारा देखा जाना अनुभाव तथा राजा और प्रजा का हर्षित होना, सभी का उस कन्या के प्रति आकर्षित होना व्यभिचारी भाव है। बालिका के जन्म होने के साथ वर्षा का होना प्राचीन अकाल का समापन एक विलक्षण घटना है। घनघोर वर्षा का होना विस्मयावह दृश्य है, जो अद्भुत रस को उत्पन्न करती है।

शान्त रसः– शान्त रस का स्थायी भाव है– निर्वेद। अनित्य एवं दुःखमय संसार की असारता ही शान्त रस का आलम्बन है। सत्संग तीर्थाटनादि इसके उद्दीपन हैं। रोमांचादि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण मति आदि व्यभिचारी भाव हैं। जानकीजीवनम् महाकाव्य में शान्तरस को अंगरस के रूप में रखा गया है। इस महाकाव्य के षोडश सर्ग में अनेक स्थलों पर शान्त रस का प्रयोग किया गया है। चित्रकूट, वाल्मीकि आश्रम एवं प्रयागराज की पावनता का वर्णन हठात् ही वृत्तियों को शमित कर देने में सक्षम है।[21]

इसी प्रकार भारद्वाज आश्रम का वर्णन शान्त रस का आस्वादन करवाता है –

इति जनकजनूजां साधु सम्बोध्य रामः पवनगति विमानं स्थातुमत्रादिदेश।
रघुपतिमवलोक्य प्रीतद्दृष्ट्या महर्षिः पुलकभरवृतांगस्सौम्यवाग्भिर्ननन्द।।
निखिलविपिनवृत्तं वेद्मि रूठैस्तपौभिर्न खलु किमपि गूढं मत्कृते रामभद्र।
श्रितकपिपतिसख्यो बद्वसिन्धुर्जितारिर्विलसिस ननुदिष्ट्यातीर्णकान्ता श्वासः।।[22]

परमात्मास्वरूप राम आलम्बन विभाव हैं, जो महर्षि भरद्वाज एवं वहाँ के तपस्वियों को देखकर शम उत्पन्न होता है, प्रयाग राज का वातावरण उद्दीपन विभाव प्रेम पूर्वक दर्शन, रोमांच हृदय के कलुषता को दूर करने में अमोघ मन्त्र का स्वरूप राम की जय

जयकार की ध्वनि, भावपूर्ण वचनों के द्वारा अभ्यर्थना एवं स्वागत करना अनुभाव, प्रेम, हर्ष, पुलक, स्मरण व्यभिचारी भाव हैं, जो शान्त रस सहृदयों को आह्लादित कर रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अभिराज राजेन्द्र मिश्र रचित जानकीजीवनम् महाकाव्य विविध नवरसों से युक्त है। यह महाकाव्य सरस रमणीय एवं मनोहर है। नायक राम एवं नायिका सीता के जीवन में धीरता, गम्भीरता एवं हास्य को सृजित करना ही अभिनव सृष्टि है। जानकीजीवनम् में श्रृंगार रस की प्रधानता है। इस महाकाव्य में श्रृंगार के सभी पहलुओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो सहृदयों को अत्यन्त आनन्दित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तैत्तिरीयोपनिषद 12/72
2. रस् आस्वादने पुंसि संज्ञायां घः प्रायोण इति घ। रस्यते इति रसः।
3. भरतमुनि का नाट्यशास्त्र अध्याय – 6
4. भरत ना. शा. 6/16
5. काव्य प्रकाश 4/सूत्र 47
6. सा. द. 3/182
7. सरस्वती कण्ठाभरण 5/164
8. रस निरूपण पेज नं. 16
9. नागेश्वरी टीका (काव्य प्रकाश)
10. जानकीजीवनम् 9/48 , 49
11. द. रु 4/50/112
12. जानकीजीवनम 11/106
13. सा. द. 3/176
14. साहित्य दर्पण 3/17
15. जानकीजीवनम् 10/68
16. सा. द. 3/177
17. जानकीजीवनम् 11/56
18. जानकीजीवनम् 14/40
19. जानकीजीवनम् 11/97
20. सा. द. 3/180
21. जानकीजीवनम् 16/44
22. जानकीजीवनम् 16/47/48

बिहार की राजनीति में महिलाओं की भूमिका (1952 से 2014 तक) एक अध्ययन

डॉ० अनिल कुमार सिंह

विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

बिहार भारतीय संघ का एक राज्य है। 1922 ई0 में डॉ0 सच्चिदानन्द सिन्हा तथा अन्य बिहारी नेताओं के प्रयास से बिहार बंगाल से अलग हो गया। भारत सरकार अधिनियम, 1919 से द्वैत शासन लागू होने पर बिहार का संवैधानिक विकास शुरू हुआ। 1935 के अधिनियम से बिहार में प्रान्तीय स्वायत्ता प्राप्त होने पर काँग्रेस ने प्रथम मंत्रिमंडल का गठन किया। महात्मा गाँधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, चम्पारण सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहारी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। 1946 में काँग्रेस ने यहाँ दूसरी मंत्रिमंडल बनाया जो भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात प्रथम आम चुनाव 1952 तक चलता रहा।

लोकसभा एवं बिहार विधानसभा चुनावों में महिलाओं की मतदाता के रूप में भूमिका:

बिहार में महिलाओं की आबादी 4.61 करोड़ और 2015 की मतदाता सूची के अनुसार महिला मतदाताओं की संख्या 3.11 करोड़ है। राज्य में हिन्दू महिलाओं के बीच साक्षरता दर 33.4 प्रतिशत है और मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर 31.5 प्रतिशत है। आँकड़ें बताते है कि आधी आबादी में एक तिहाई ही शिक्षित हैं।

बिहार में वोट के प्रति जागरूकता के बावजूद महिलाओं की आधी आबादी वोट नहीं डालती हैं। 1962 के चुनाव में राज्य की 32 प्रतिशत ही महिलाओं ने वोट डाले थे। 1967 से 1972 के चुनाव में यह औसत बढ़कर 41 प्रतिशत तक हो गया। 1977 में यह घटकर 38 प्रतिशत हो गया। 1980 और 1985 के चुनावों में क्रमशः 46 व 45 प्रतिशत ने वोट डाले। परन्तु बिहार में मतदान में उस समय वष्द्धि हुई, जब बिहार की राजनीति पर केन्द्र सरकार का प्रभाव बढ़ा। 1989 में केंन्द्र में वी.पी. सिंह की सरकार बनी। केन्द्र के साथ बिहार में भी सत्ता का समीकरण बदला। 'मण्डल और कमंडल' की राजनीति शुरू हुई। 1990 के विधानसभा चुनाव में काँग्रेस सत्ता से बेदखल हो गयी। बिहार में आरक्षण की राजनीति हावी हो गयी। 1990 के चुनाव में अचानक महिलाओं के मताधिकार में 1985 की तुलना में आठ प्रतिशत की वष्द्धि हुई। यह पिछड़ों की गोलबंदी का असर था। वोट का प्रतिशत यह भी बताता है कि सत्ता बदलने की चुनावी राजनीति में महिला वोटरों ने सक्रिय भागीदारी निभाई। इस चुनाव में काँग्रेस सत्ता से बाहर और लालू सत्ता में आए।

वह पिछड़ों के सामाजिक सशक्तिकरण और लालू प्रसाद के करिश्में का दौर था। 1990 की तुलना में 1995 में 53.80 प्रतिशत महिलाओं ने वोट डाले, जो वर्श 2000 के चुनाव में गिरकर 53.28 प्रतिशत हो गया। महिलाओं के मताधिकार का गिरना यह संकेत देता है कि बिहार में महिलाएँ वोट देने के प्रति उदासीन हो रही थी, जबकि सत्ता पर मुख्यमंत्री राबड़ी देवी एक महिला ही काबिज थी। फरवरी, 2005 के विधानसभा चुनाव में कुल 42.51 प्रतिशत महिलाओं ने वोट डाले, नवम्बर 2005 में यह बढ़कर 44.62 प्रतिशत हो गया। अर्थात लगभग 2 प्रतिशत अधिक महिलायें इस चुनाव में वोट डाले। बिहार विधानसभा चुनाव 2010 में महिलाओं ने पुरूषों से संख्या में कम होने के बावजूद मतदान में आगे रही। इस चुनाव में कुल डाले गए 52.65 प्रतिशत वोट में 51.11 प्रतिशत पुरूश के मुकाबले 54.44 प्रतिशत महिलाओं ने वोट डाले। वोट का रिकॉर्ड बनाने वाले जिलों की पहली श्रेणी में नौ जिले शामिल हैं, जिसमें 62.25 प्रतिशत के साथ सुपौल सबसे अग्रणी है। वोटर टर्न आउट बढ़ाने में बिहार के पंचायती निकाय के चुनावों में 50

प्रतिशत महिलाओं को आरक्षण, स्कूली शिक्षा में लड़कियों का साईकिल एवं पोशाक, ग्रामीण क्षेत्रों में आँगनबारी केन्द्रों की स्थापना, सर्वशिक्षा अभियान और पढ़ाई की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

बिहार के संसदीय और विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व:

आजादी मिलने के पश्चात महिलाओं को बालिग मताधिकार के आधार पर वोट देने और चुनाव में प्रत्याशी बनने के लिए पुरूषों की तरह अधिकार तो मिला, लेकिन इन्हें आबादी के अनुरूप प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका।

बिहार में लोकसभा के लिए वर्तमान में 40 सीटें है। अविभाजित बिहार (जब बिहार में झारखण्ड शामिल था) में 54 सीटें थी। राज्य में अब सामान्य सीटें 33 और अनुसूचित जाति के लिए 7 सीटें आरक्षित है। 1952 से 2014 तक बिहार से (61) महिलाएँ ही चुनी जा सकी। बिहार से लोकसभा के लिए सबसे अधिक महिलाएँ राजीव गाँधी के जमाने में चुनी गयी। जब 1984 में उनकी संख्या 9 थी। वहीं राज्यसभा के लिए चुनी जानेवाली महिलाओं की अधिकतम संख्या तीन रही है। वर्श 2014 के 16 वीं लोकसभा चुनाव में बिहार से मात्र तीन महिला लोकसभा पहुँच सकीं। इनमें शिवहर संसदीय क्षेत्र से रमा देवी, सुपौल से रंजीत रंजन तथा मूँगेर से वीणा शाही है।

बिहार में आजादी के बाद हुए 1952 से 2015 तक विधानसभा चुनाव में 277 महिलाएँ विधानसभा में पहुँची। सबसे अधिक 1957 में 34 तथा सबसे कम फरवरी 2005 में मात्र 3 महिलायें चुनी गयीं।

इनमें सबसे दयनीय स्थिति मुस्लिम महिलाओं की रही है। बिहार विधानसभा के लिए अबतक सिर्फ 13 मुस्लिम महिलायें चुनी गयी। आरक्षित सीट से 37 अनुसूचित जाति की महिलायें चुनी गयी। बिहार विधानसभा परिषद के लिए निर्वाचित या नामजद महिलाओं की अधिकतम संख्या 8 रही है। 1952 से 1984 तक उनकी संख्या 3 से 8 के बीच रही है। 1986 के बाद महिलाओं की संख्या 3 से आगे नहीं बढ़ सकी।

बिहार की राजनीति में महिलाएँ हाशिए पर ही रही हैं। राज्य की राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति बहुत ही कम रही है। जो महिलाएँ राजनीति में रही, वे भी पति की छाया तले ही राजनीति करती रहीं। यहाँ तक बिहार की प्रथम महिला मुख्यमंत्री राबड़ी देवी भी इसका अपवाद नहीं है। चारा घोटाले में जेल जाने की नौबत आने पर राज्य की सत्ता पर अपना नियंत्रण कायम रखने के लिए लालू प्रसाद ने अब तक घर के काम-काज संभालने वाली अपनी पत्नी को मुख्यमंत्री बना दिया। सच्चाई तो यह है कि बिहार के अर्द्ध-सामंतवादी समाज में महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भूमिका निभाने का बहुत कम मौका मिला है। ऊँची जातियों और ऊँची पिछड़ी जातियों और मुस्लिमों में पितृसत्ता का प्रभाव बहुत अधिक हावी रहा। यहाँ महिलाओं की भूमिका घरेलू कामों तक सिमटी रही। निम्न पिछड़ी जातियों और दलित परिवारों में पितष्सत्ता की जकड़न तुलनात्मक रूप से काफी ढीली रही। लेकिन ये समूह मुख्य रूप से आर्थिक बदहाली और जीविका की जरूरतों से जूझते समूह हैं। संसदीय राजनीति में इन समूहों को बहुत कम प्रतिनिधित्व मिला। संसदीय राजनीति से अलग उग्र नक्सलवादी राजनीति में दलित और कुछ निम्न पिछड़ी जातियों की महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई है।

यदि हम बिहार विधानसभा में अधिक आबादी के प्रतिनिधित्व पर विचार करें, तो यह साफ हो जाता है कि बिहार विधानसभा में पहुँचने वाली महिला नेताओं की गणना उँगलियों पर की जा सकती है।

इसके अलावा, महिला प्रतिनिधियों के साथ दूसरी विडम्बनाएँ भी जुड़ी हैं। जो महिला चुनाव जीतने में सफल रही हैं, उनमें से कई प्रमुख राजनीतिक घरानों से जुड़ी हैं, दूसरी कई अपराधी नेताओं की माँ या पत्नी हैं। चुनाव जीतने में सफल महिलाओं की समाजिक पष्ठभूमि पर विचार करने से यह बात स्पश्ट होती है। कि महिलाओं को मिले सीमित प्रतिनिधित्व में समाज के कुछ प्रमुख तबकों की महिलाएँ पूरी तरह गायब हैं। उदाहरणार्थ-यदि हम अक्टूबर, नवम्बर 2005 में चुनकर आई महिला विधायकों की सामाजिक पष्टभूमि पर विचार करे, तो यह स्पश्ट होता है कि ऊँची जातियों से 8, ऊँची पिछड़ी जातियों से 10 (6 यादव, 2 कोइरी, 1 कुर्मी और 1 बनिया) और दलित जातियों से छः महिला चुनाव जीतने में सफल रही है। निष्चित रूप से संविधान द्वारा प्रतिनिधि निकायों में अनुसूचित जातियों को मिले आरक्षण का फायदा दलित महिलाओं को भी मिला है। लेकिन सबसे आष्चर्य एवं दुखद बात यह है कि निम्न पिछड़ी जातियों या मुस्लिम जातियों से कोई भी महिला चुनाव जीतने में सफल नहीं रही है। दरअसल स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अक्टूबर-नवम्बर 2005 के विधान सभा चुनावों तक केवल 6 मुस्लिम महिलाएँ ही बिहार विधानसभा का चुनाव

जीतने में सफल रही हैं। बिहार में किसी भी राजनीतिक दल ने महिलाओं की सक्रीय राजनीति में भागीदारी बनाने की कोशिश नहीं की। राजनीतिक दल उम्मीदवारों को टिकट देते समय बहुत कम और चुनिन्दा महिलाओं को ही टिकट देते हैं।

स्पष्टतः महिलाओं को मंत्रिपरिषद् में भी बहुत कम प्रतिनिधित्व मिला। बिहार के पितृसत्तात्मक समाज की जकड़न को तोड़ने तथा राजनीति और जीवन के दूसरे क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए महिलाओं को आरक्षण दिये जाने की सख्त जरूरत है। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि 2001 में हुए पंचायत चुनावों में महिलाओं को 33 प्रतिषत आरक्षण दिया गया था। 2006 के बिहार पंचायती राज अधिनियम द्वारा पंचायत चुनावों में स्थानीय निकायों के सभी स्तरों पर महिलाओं को 50 फीसद आरक्षण दिया गया। इन सबकी वजह से स्थानीय स्तर की राजनीति में महिलाओं की सक्रियता में खासी बढ़ोत्तरी हुयी है। पंचायत स्तर पर महिलाओं को दिए गए आरक्षण का सकारात्मक पहलू यह है कि इसमें दलित महिलाओं का कोटा भी निर्धारित कर दिया गया है। इससे दलित महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी। निम्न पिछड़ी जातियों और मुस्लिम महिलाओं को भी इसी तरह का आरक्षण दिये जाने की जरूरत है। बहुत से आलोचक यह मानते हैं कि इस तरह का आरक्षण मुखौटे के रूप में महिलाओं को आगे करेगा और वास्तविक सत्ता उनके पुरुष संरक्षक के पास ही रहेगी। इस तरह की आलोचनाओं में कुछ दम है। लेकिन यह भी सच है कि स्थानीय स्तर पर की प्रतिनिधित्व निकायों में महिलाओं की उपस्थिति से जमीनी स्तर पर पितृसत्ता की जकड़न कम होगी। संसद और विधानमंडलों में भी स्थानीय निकायों की भाँति ही महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने की जरूरत है।

सन्दर्भ सूची:

1. वी. एन., सिंह, जनमेजय, आधुनिकता एवं महिला सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली 2012
2. विल्सन, कल्पना, ''स्मॉल कल्टीवेटरस इन बिहार एंड न्यू टेक्नोलॉजी-च्वाइस और कम्पलसन'', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, मार्च 30, 2005, पृष्ठ 129-38
3. शर्मा, राधाकृष्ण, नेशनिलज्म, सोशल रिफार्म एंड इंडियन वुमन, पृश्ठ 80-81
4. श्रीकांत, बिहार के चुनावी भूगोल, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना, पृष्ठ 56
5. 2014 लोकसभा पोल्स, रिविल्स, हेडलयन्स, सी0 वोटर सर्वे'', इंडिया टुडे, 21 मई, 2014
6. सिरकार, नीलाजन, ''दी मैथ्स ऑफ बीजेपी इलेक्ट्रोरल वीन'', दि हिन्दू: बिजनेस लाइन, जनू, 2014
7. बसु, दुर्गा दास, इन्ट्रोडक्शन टू द कन्स्टीच्यूशन ऑफ इण्डिया, लेक्सिस नेक्सिस, पब्लिकेशन, नागपुर, 2009, पृष्ठ 199
8. रिपोर्ट आन जेनरल इलेक्शन इन बिहार 1937, पृष्ठ 28
9. बिहार निर्वाचन आयोग 2010 का आँकड़ें
10. रिटर्न सोविंग द रिजल्ट ऑफ इलेक्शन सेंट्रल लेजिस्लेटिव एसेम्बली एंड द प्रोविजनल लेजिस्लेयर-1945-46, पृष्ठ-181

भारतीय जन नाट्य संघ और नेमिचंद्र जैन

डॉ० विनय कुमार

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), सत्यवती कॉलेज (सांधय), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

1943 ई० में बने भारतीय जन नाट्य संघ (आगे से, इप्टा) ने हिंदी नाटक और रंगमंच को नई सोच और दिशा दी। हिंदी नाटक और रंगमंच के इतिहास में इप्टा को एक महत्त्वपूर्ण बिंदु की तरह देखा जा सकता है। इप्टा ने नाटकों को सीधे-सीधे सामाजिक और राजनैतिक जनजागरण का माध्यम मानकर उनका उपयोग किया। इस नाट्य आंदोलन ने न केवल नाटक और रंगमंच बल्कि नाट्य-समीक्षा के बुनियादी सरोकारों को बदलने में भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

इप्टा ने रंगालोचना को भी भीतर तक प्रभावित किया। आज हम हिंदी रंगालोचना को जिस रूप में देख रहे हैं उसके विकास में इप्टा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इप्टा ने हिंदी रंगमंच और रंगालोचना को किस तरह प्रभावित किया इसे समझने के लिए इप्टा की पष्ठभूमि पर संक्षेप में नजर डालना आवश्यक है।

इप्टा के गठन की पष्ठभूमि में 1940 ई० के दशक में देश में साम्राज्यवाद, फासीवाद विरोधी लहर और गुलाम भारत की भूखमरी एवं बेकारी थी। इसका तात्कालिक कारण बंगाल बना, जहाँ से 'भूका है बंगाली रे साथी, भूका है बंगाल' की अलख पूरे देश में फैलने लगी। द्वितीय विश्व युद्ध के आतंककारी माहौल के बीच 1940 ई० में कोलकत्ता विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों ने 'यूथ कल्चरल इंस्टीट्यूट' की स्थापना की। जिनका काम विचार गोष्ठी, नाट्य, नृत्य और गायन की प्रस्तुति करना था। इस युवा संगठन का जुड़ाव 1936 ई० में बने प्रगतिशील लेखक संघ से था। धीरे-धीरे युद्ध और अकाल विरोधी यह आंदोलन जोर पकड़ता गया। इसी के फलस्वरूप मार्च, 1942 ई० में फासीवाद-विरोधी लेखक और शिल्पी संघ नामक एक नया मंच सामने आया। एक ओर रामानंद चट्टोपाध्याय इसके अध्यक्ष थे, तो दूसरी ओर विष्णु डे और सुभाष मुखोपाध्याय जैसे बंगला के प्रतिष्ठित कवि संयुक्त सचिव बनाए गए थे।

इस संगठन ने व्यापक पैमाने पर फासिस्ट विरोधी एवं युद्ध-विरोधी आंदोलन को फैलाया। बंगाल का मशहूर 'कल्चरल स्क्वॉयड' बिनय राय के नेतृत्व में पूरे देश में यह बताने के लिए घूम रहा था कि 'भूका है बंगाली रे साथी, भूका है बंगाल'। इसने भूखे बंगाल के लिए राशि एकत्रित की। इसके साथ ही, इस स्क्वॉयड ने विभिन्न राज्यों के कलाकारों और बुद्धिजीवियों को सांस्कृतिक संगठन बनाने के लिए प्रेरित भी किया।

1942-43 ई० के आसपास ही अलग-अलग काम कर रहे जत्थों ने एक राष्ट्रव्यापी सांस्कृतिक आंदोलन चलाने वाले केंद्रीय संगठन की जरूरत महसूस की। यह ठीक प्रगतिशील लेखक संघ की तर्ज पर होना था। सन् 1931 ई० में शिवदान सिंह चौहान ने अपने एक लेख के अंतर्गत भारत में भी यूरोप के 'यूनिटी थियेटर' अमेरिका के 'प्रचार' या 'क्रांतिकारी थियेटर' एवं जापान की 'जापान विरोधी नाटक समिति' की तर्ज पर 'राष्ट्रीय जन नाट्यशाला की जरूरत महसूस की।

बंगाल कल्चरल स्क्वॉयड की सफलता को देखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर भी इसी तरह के संगठन बनाने की जरूरत महसूस हुई। बंबई में 22-25 मई 1943 ई० के बीच प्रगतिशील लेखक संघ के चौथे अधिवेशन में इस मसले पर काफी गंभीरता से विचार-विमर्श किया गया। मारवाड़ी विद्यालय सभागार में दो दिन लगातार अनौपचारिक बैठकों के बाद 25 मई 1943 ई० को प्रगतिशील लेखक संघ के अनुवर्ती संगठन के तौर पर इप्टा का विधिवत गठन हुआ।[1]

अधिवेशन में इप्टा का मसौदा प्रस्ताव संगठन की पहली महासचिव अनिल डिसिल्वा ने प्रस्तुत किया था। अनिल डिसिल्वा श्रीलंकाई मूल की संस्कृतिकर्मी थीं और ज्यादातर बैंग्लोर में सक्रिय रही थीं। उन्होंने इप्टा का उद्देश्य प्रकट करते हुए कहा, ''यह सम्मेलन रंगमंच और परंपरागत कलाओं को पुनरुज्जीवित करने और साथ ही साथ उन्हें स्वतंत्रता, सांस्कृतिक उन्नति और आर्थिक न्याय की अभिव्यक्ति और संगठन बनाने के लिए संपूर्ण भारत में नाट्यांदोलन शुरू करने की आवश्यकता को स्वीकार करता है। अब वर्तमान भारतीय जननाट्य आंदोलन का यह कर्त्तव्य है कि वह मंच और अन्य परंपरागत कलाओं के माध्यम से अपनी जनता के अधिकारों से जुड़ी मानवीय स्थितियों का विस्तृत और स्मरणीय चित्रण करे तथा जनता को उसके अधिकारों और समस्याओं के स्वरूप और उसके समाधानों के प्रति जागरूक करे। यह इस आंदोलन का कर्त्तव्य है कि जनता में विश्व की प्रगतिशील शक्तियों के साथ मिलकर साहस और निश्चय के साथ अपने दुश्मन के विरुद्ध संघर्ष का उत्साह पैदा करें।''[2] इप्टा ने घोषणा की कि 'हमारी कला की असली नायक जनता है।'

इप्टा का पहला उद्घाटन भाषण प्रो. हीरेन मुखर्जी ने दिया। प्रो. मुखर्जी ने सभी कलाकारों को स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय का नया समाज बनाने के लिए समर्पित हो जाने का आह्वान किया। खासकर नाटक और रंगमंच के बारे में उनकी टिप्पणी थी ''रंगमंच को वास्तविक जनकला को विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए। नाटक सामूहिक प्रदर्शन है, लेखक, अभिनेता, निर्माता, दर्शक सभी मिलकर नाटक की रचना करते हैं। इसी एक तथ्य में बहुत सी संभावनाएँ हैं, लेकिन आधुनिक रंगमंच गहरी निराश पैदा करता है। हम सभी जानते हैं कि इसके मार्ग में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक जैसे कई अवरोध हैं। अन्य कलाओं की भाँति रंगमंच भी संकटग्रस्त पूँजीवाद का शिकार है।''[3]

इप्टा ने भारतीय रंगमंच के इतिहास में एक नई लहर की उम्मीदें जगाई थीं। जवाहरलाल नेहरू को भी इप्टा से इसी तरह की उम्मीदें थीं। इप्टा को भेजे अपने संदेश में नेहरू ने लिखा कि ''भारत में जननाट्य के विकास में मेरी बहुत रुचि है। मेरा ख्याल है कि यदि इसे जनता और उसकी परंपराओं पर आधारित किया जाए, तो इसकी बहुत गुंजाइश है। अन्यथा बात हवा में रह जाएगी। आपके सूचना-पत्र में पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई है कि आप जनता के इस दृष्टिकोण पर बल दे रहे हैं।''[4]

इप्टा ने बेहद उत्साह से देश भर में अलग-अलग प्रांतीय इकाइयों के जरिये जनता, खासकर किसान-मजदूरों को जागरूक करने के लिए नाटक करने शुरू किए। विजन भट्टाचार्य का नवान्न, उत्पल दत्त का कल्लोल, ख्वाजा अहमद का यह खून किसका है, या फिर बलराज साहनी का जुबैदा, सभी नाटकों ने पूरी नाट्य दृष्टि में परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अब नाटक सिर्फ हँसी-मजाक के लिए किया जाने वाला कर्म नहीं रह गया था, बल्कि इसे जनता के जीवन में बदलाव का भी एक जरिया माना जाने लगा था। इप्टा के आंदोलन के साथ विभिन्न दौर में अमर शेख, शंभु मित्र, होमी भाभा, कृश्चंदर, कैफी आजमी, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, बलराज साहनी, नेमिचंद्र जैन, राजेंद्र रघुवंशी, मन्नूलाल त्रिपाठी 'शील', मोहन सहगल, मुल्कराज आनंद, शैलेंद्र, कानून घोष, पंडित रविशंकर, सचिन शंकर, ए. के. हंगल, हबीब तनवीर, चित्तो प्रसाद, शातिवर्धन, रेखा जैन, ऋत्विक घटक, देवआनंद, चेतन आनंद, उत्पल दत्त, बासु भट्टाचार्य, रमेश तलवार, शबाना आजमी, फारुख शेख, जावेद सिद्दीकी जैसे कलाकार और संस्कृतिकर्मी जुड़े।

यूँ तो देश भर में इप्टा की इकाइयाँ अपने नाटक प्रस्तुत कर रही थीं, लेकिन उत्तर भारत में इलाहाबाद, कानपुर, पटना, आगरा, दिल्ली, भोपाल, जबलपुर जैसी इकाइयाँ कहीं अधिक सक्रिय थीं।

इप्टा ने अपने नाटकों के जरिये देश के रंग-परिवेश में सार्थक बदलाव लाने में बड़ी भूमिका निभाई। नेमिचंद्र जैन ने इप्टा की इस भूमिका को साफ करते हुए प्रतिभा अग्रवाल को दिए एक साक्षात्कार में कहा कि 'उस समय एक तरह का मयार जन नाट्य संघ ने, न सिर्फ अपने लिए बल्कि पूरे देश के नाट्य आंदोलन के लिए, नाट्य कर्म के लिए किया था। ऐसा इस कारण हुआ कि जो नाटक पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं, छोटी-मोटी सामाजिक सुधार की स्थितियों के चित्रण और गतानुगतिकता में उलझा और फँसा हुआ था, इप्टा ने उसके ढर्रे और जड़ता को तोड़कर उसमें बिल्कुल नए जीवन खंडों के साथ पेश किया और यथार्थ के परिवेश में अपनी परिस्थितियों से लड़ते जूझते इंसान को दिखाया। उसने दिखाया कि कैसे उस विभीषिका में आदमी का अपने ऊपर विश्वास बचा रहा और किस तरह से उसने फिर रचने की कोशिश की।''[5]

इप्टा ने हिंदी रंग-परिवेश ही नहीं बल्कि, हिंदी रंगालोचना को भी गहरे अर्थों में प्रभावित किया था। हालांकि ये प्रभाव आजादी के बाद खासकर नेमिचंद्र जैन, सुरेश अवस्थी, जगदीश चंद्र माथुर जैसे रंगालोचकों की रंगालोचना में कहीं अधिक मुखर रूप में सामने आया।

आजादी के कुछ सालों बाद यानी, 1950 ई० के आसपास से ही राष्ट्रीय स्तर पर इप्टा का ढाँचा बिखरने लगा था। इप्टा का अवसान कहने का यह मतलब कतई नहीं है कि इप्टा पूरी तरह खत्म हो गई थी, बल्कि इसका मतलब राष्ट्रीय स्तर पर उसका ढाँचा बिखर जाने और उसके अपने उद्देश्यों से भटकाव से है।

आजादी के बाद इप्टा के बिखराव का बहुत बड़ा कारण कम्युनिस्ट पार्टी की संगठन में बढ़ती दखलंदाजी और उसकी संकीर्ण नीतियाँ थीं। दरअसल आजादी के बाद इप्टा में यह सवाल उभरा कि सरकार का समर्थन किया जाए या उसका विरोध किया जाए। कम्युनिस्ट पार्टी का मानना था कि नई सरकार और राष्ट्रीय नेताओं ने व्यापक जनहितों के खिलाफ साम्राज्यवादी ताकतों के साथ कई तरह के समझौते कर लिए हैं। इसलिए उन्होंने सत्ता के खिलाफ सीधे संघर्ष का आह्वान किया।

इसी तरह जब तक कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व पी.सी. जोशी के हाथ में था तब तक इप्टा से जुड़े रंगकर्मियों को लगता था कि इप्टा एक हद तक स्वायत्त संगठन है, लेकिन 1948 में पालघाट में हुई चौथी पार्टी कांग्रेस में पी.सी. जोशी को हटाकर बी.टी. रणदिवे को कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव बना दिया गया। रणदिवे के महासचिव बनने के बाद इप्टा की गतिविधियों में कम्युनिस्ट पार्टी का हस्तक्षेप बढ़ता ही गया। हालात यहाँ तक पहुँच गए कि एक ऐसा दौर आया जब कम्युनिस्ट पार्टी के प्रोग्राम को किसी-न-किसी रूप में प्रचालित करना ही इप्टा का उद्देश्य बन गया।[6]

ऐसे में कला को किसी एक पार्टी के हिसाब से हाँकने के विरोधी कलाकार और रंगकर्मी इप्टा से अलग होते चले गए। इप्टा की कला के प्रति बढ़ती संकीर्ण अवधारणा के कारण ही शंभु मित्र, नेमिचंद्र जैन, ज्योतिरिन्द्र मैत्र, शांतिवर्धन, उत्पल दत्त, हबीब तनवीर जैसे लोग एक-एक करके इप्टा से अलग हो गए। बड़े कलाकारों के इप्टा से चले जाने का असर इप्टा के आम सदस्यों के उत्साह पर भी पड़ा।

पार्टी के हस्तक्षेप के कारण इप्टा अपने लक्ष्य से भटकने लगी थी। वह लोकजीवन से जुड़े नाटक करने की बजाए ज्यादातर यूरोपीय यथार्थवादी ढंग के नाटक ही करती रही। इसे स्पष्ट करते हुए नेमिचंद्र जैन कहते हैं कि ''बाद में इप्टा के नाट्यांदोलन का जो रूप बना उसमें अपने देश की परंपरा से जुड़े हुए लोकजीवन के नाट्यरूपों की तलाश नहीं की गई। यह तलाश बहुत बाद में अन्य रंगकर्मियों ने शुरू की चाहे वे इप्टा से ही आए हों, जैसे हबीब तनवीर, उनको लगा कि अगर अपने देश का रंगकर्म सार्थक बनाना है तो हमें लोकजीवन के कला रूपों की ओर जाना होगा। लेकिन जननाट्य संघ ने दुर्भाग्य से वह काम नाटक के क्षेत्र में नहीं किया, नृत्य और संगीत के क्षेत्र में बहुत हद तक किया। नाटक के क्षेत्र में जन नाट्य संघ का काम अधिकांशतः यूरोपीय यथार्थवादी ढाँचे की तर्ज पर ही चला और उस तक सीमित रहा। इप्टा ने कला को लोकजीवन से जोड़ने की प्रेरणा तो निश्चित रूप से दी, इसमें कोई शक नहीं है, यह अग्रगामी (पाइनरिंग) काम है, जो उस वक्त इप्टा ने किया। इतने बड़े पैमाने पर यह काम इससे पहले किसी ने नहीं किया। फिर भी वह बहुत सीमित हुआ। इसके आगे के जो चरण थे, जो किए जाने चाहिए थे, कला की दृष्टि से, कला की सार्थकता और विकास की दृष्टि से, वे फिर नहीं किए जा सके।''[7]

दूसरी ओर इप्टा के साथ एक और दिक्कत भी थी जिसकी बात कोलकत्ता के रंगालोचक एवं संस्कृतिकर्मी रुस्तम भरूचा ने किया है। रूस्तम भरूचा का कहना है कि भले ही इप्टा ने नाटकों के लिए 'जात्रा' और 'नौटंकी' जैसे पारंपरिक नाट्य रूपों का सहारा लिया था, लेकिन उसका नजरिया मुख्यतः शहरी था। दूसरे यह कि इप्टा के नाटकों से फासीवाद और साम्राज्यवाद की जो तस्वीर उभरी वह काफी अमूर्त थी।

राष्ट्रीय स्तर पर इप्टा का ढाँचा बिखरने के बाद भी विभिन्न शहरों की इकाइयाँ सक्रिय रहीं। मतलन राजेंद्र रघुवंशी के नेतृत्व में आगरा इप्टा और बंबई इप्टा तो काफी हद तक सक्रिय रही ही थीं। अन्य शहरों में इप्टा की गतिविधियाँ शिथिल पड़ीं। कई शहरों में इप्टा की इकाइयां किसी अन्य नाम से भी नाटक करती रहीं। लेकिन एक शहर की इकाई का दूसरे शहर की इकाई से संवाद नहीं रह गया था। बीच-बीच में इप्टा को फिर से संगठित करने की कोशिशें भी होती रहीं। 1990 ई० के दशक के शुरुआती सालों

में ये कोशिशें कुछ हद तक रंग लाती भी दिखती हैं। इस संदर्भ में इप्टा वार्ता के संपादक और रंगकर्मी हिमांशु राय बताते हैं, कि 'सन् 1982 ई॰ में रायगढ़ में इप्टा मध्यप्रदेश का प्रथम राज्य सम्मेलन हुआ और सन् 1984 ई॰ में जबलपुर में दूसरा राज्य सम्मेलन हुआ। इसी दौरान दिल्ली में इप्टा के पुनर्गठन के बारे में चिंता करते हुए बैठकों का सिलसिला शुरू हुआ। इन बैठकों से इप्टा के लोगों में बड़ा आत्मविश्वास पैदा हुआ। बैठकों में कैफी आजमी, ए.के. हंगल, राजेन्द्र रघुवंशी, रणवीर सिंह जी जैसे लोगों ने शिरकत की। नौजवानों में उत्तर प्रदेश से राकेश, जितेन्द्र रघुवंशी, बिहार से तनवीर अख्तर, मध्यप्रदेश से राजेश जोशी, हिमांशु राय, राजस्थान से रवि चतुर्वेदी, आदि ने शिरकत की। आंध्र प्रदेश में प्रजा नाट्य मंडली और केरल में के. पी.सी. का बना बनाया संगठन था। वहां से साथी आते ही थे। इन बैठकों में यह महसूस किया गया कि इप्टा की राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए इप्टा का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जाए।'[8]

इन्हीं कोशिशों का नतीजा था कि 1985 ई॰ में इप्टा का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित हुआ। यह सम्मेलन दिग्गज रंगकर्मी राजेंद्र रघुवंशी के सहयोग से हुआ। इस सम्मेलन की सफलता का जिक्र करते हुए हिमांशु राय कहते हैं, कि 'सन् 1985 ई॰ में आगरा में आयोजित इप्टा के राष्ट्रीय कन्वेंशन का इप्टा के पुनरूत्थान में अविस्मरणीय योगदान है। इस कन्वेंशन में एक राष्ट्रीय सम्मेलन से ज्यादा लोग एकत्रित हुए। एक विशाल धर्मशाला में सम्मेलन चला। सूर सदन में नाटकों के मंचन हुए। खूब चर्चाएँ। खूब मिलना जुलना। इप्टा से जुड़े लोग बहुत उत्साह और उमंग के साथ पूरे देश से जुड़े थे।....आगरा के कन्वेंशन की सफलता से उत्साहित होकर हैदराबाद में इप्टा का राष्ट्रीय सम्मेलन तय हुआ। हैदराबाद के बाद जयपुर, पटना और अभी अभी त्रिचूर सम्मेलन हुए। आगरा सम्मेलन में नेमिचंद्र जैन भी आये थे। आगरा में पहली बार वर्षों बाद विभिन्न प्रदेशों से प्रतिनिधियों की रिपोर्ट से इप्टा का विस्तार और प्रभाव सामने आया। पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, सभी प्रदेशों में इप्टा की सक्रिय इकाइयाँ सामने आईं। इप्टा के बहुत से दोस्त संगठन सामने आए जो अलग-अलग नामों से काम कर रहे थे लेकिन इप्टा के साथ थे। आज यदि देश में इप्टा फिर एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में सक्रिय हो सका है, तो इसके पीछे निश्चित रूप से आगरा कन्वेंशन का हाथ है।''[9]

इप्टा को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित करने की कोशिशें एक सीमित स्तर पर ही सफल रहीं। आज भी इप्टा की एक इकाई का दूसरे से कोई गहरा संबंध नहीं है। राष्ट्रीय फलक पर इप्टा का अब वैसा असर नहीं रह गया है जैसा शुरुआती दिनों में हुआ करता था।

हिंदी रंग परिवेश ही नहीं रंगालोचना को भी इप्टा ने गहरे अर्थों में प्रभावित किया। आजादी के बाद एक के बाद एक मोहन राकेश का आषाढ़ का एक दिन, जगदीशचंद्र माथुर का कोर्णाक, धर्मवीर भारती का अंधा युग, हबीब तनवीर का आगरा बाजार जैसे कई नाटक लिखे और मंचित किए गए। इन सभी नाटकों में विषय आजादी के बाद के सामाजिक, राजनैतिक हालात को ही बनाया गया, लेकिन इन नाटकों में अपनी जड़ों या कहें परंपराओं की ओर देखने की गहरी ललक भी दिखाई देती है। इसी के साथ आगरा बाजार जैसे नाटकों के साथ अपने लोकजीवन से जुड़े कलारूपों का रचनात्मक इस्तेमाल होना भी शुरू हो गया था। निश्चित रूप से इन सबमें कहीं न कहीं इप्टा की प्रेरक भूमिका थी।

नाटकों के साथ-साथ आजादी के बाद रंगालोचना के परिदृश्य में भी बदलाव होने शुरू हो गए थे। इस बदलाव का एक रूप 1949 ई॰ में प्रकाशित जगदीश चंद्र माथुर की किताब परंपराशील नाटक में दिखाई देता है। माथुर जी की किताब ने पारंपरिक नाटकों को नई दृष्टि से देखने का प्रस्ताव किया था। लेकिन इस, नजरिये का वास्तविक अर्थों में विकास उस समय नहीं हो सका। छठे दशक के मध्य से 'कल्पना'और 'धर्मयुग' जैसी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नाटक और रंगमंच पर चर्चाएँ होनी शुरू हुईं।

छठे दशक में हिंदी रंगालोचना में नए संदर्भों में नाटक और रंगमंच को परखने की कोशिशें शुरू हुईं। हालांकि हिंदी रंगालोचना गति नहीं पकड़ सकी या कहें एक मुकम्मल आकार नहीं ले पाई। इसका कारण है कि बहुत समय तक हिंदी के दैनिक अखबारों या अन्य साप्ताहिकों-मासिकों ने नाट्य समीक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और न नाटक के नए समीक्षक ही उभरकर आए। अक्सर विभिन्न रंग-मंडलियों के सदस्य ही प्रदर्शनों की समीक्षा लिखने लगे, जिसके कारण आत्मप्रशंसा या अन्य मंडलियों को गिराने की कोशिशें हुईं।[10]

इसके बाद सातवें दशक में शुरू हुए साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' और 'नटरंग' पत्रिका से हिंदी में नाटकों पर गंभीर चर्चा की शुरुआत हुई। इस दौर में नेमिचंद्र जैन और सुरेश अवस्थी ने हिंदी रंगालोचना को नई दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नेमिचंद्र जैन ने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'स्टेट्समैन', 'काउंटर प्वाइंट' आदि पत्र-पत्रिकाओं में जमकर नाटकों की समीक्षाएँ लिखीं। हिंदी में रंगालोचना को गंभीर रूप देने और साहित्यालोचना से अलग एक स्वतंत्र अनुशासन का रूप देने में नेमिचंद्र जैन का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ सूची

1. रंग दस्तावेज, खंड-2, संपादक-महेश आनंद, पृ॰ 205
2. रंग दस्तावेज, खंड-2, संपादक-महेश आनंद, पृ॰ 211
3. रंग दस्तावेज, खंड-2, संपादक-महेश आनंद, पृ॰ 214
4. रंग दस्तावेज, खंड-2, संपादक-महेश आनंद, पृ॰ 219
5. मेरे साक्षात्कार: जैन, नेमिचंद्र, किताबघर, 1998, पृ॰ 137
6. नटरंग, अंक-74/76, पृ॰ 230
7. मेरे साक्षात्कार: जैन, नेमिचंद्र, किताबघर, 1998, पृ॰ 138
8. Rustom Bharucha, REHEARSALS OF REVOLUTION, The Political Theatre of Bengal, Segul Books, Kolkatta (1983), पृ॰ 41
9. हिंमाशु राय, iptavarta.blogspot.com 12 मई 2009
10. हिंमाशु राय, iptavarta.blogspot.com 12 मई 2009

प्रधानमंत्री जन-धन योजना : वित्तीय समावेशन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम

डॉ० अनिल रायपुरिया

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, जे. एस. हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरोहा, उत्तर प्रदेश- 244221

सारांश: समय-समय पर भारत सरकार संगठित वित्तीय तंत्र में ग्रामीण उपभोक्ताओं के समावेश की दिशा में निरंतर प्रयास करती रही है। सरकार द्वारा निरंतर समावेशी विकास हेतु लक्ष्य निर्धारित किए जाते रहे हैं। वित्तीय समावेशन समावेशी विकास का एक प्रमुख पहलू है। वित्तीय समावेशन दशकों से आरबीआई और भारत सरकार की प्राथमिकता का लक्ष्य रहा है गरीबी उन्मूलन, सामाजिक विकास व आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय समावेशन एक वरदान की भांति है। वित्तीय समावेशन के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री जन धन योजना की शुरुआत हुयी, जो कि वर्तमान सरकार की सबसे बड़ी समाज कल्याण की योजनाओं में से एक हैं। प्रधानमंत्री जन धन योजना की शुरुआत श्सबका साथ सबका विकासश् के ध्येय को ध्यान में रखते हुए की गयी। देश के सभी परिवारों तक बैंकिंग सुविधाओं की पहुँच हो और सभी परिवारों का कम से कम एक बैंक खाता हो, यही इस योजना का मुख्य उद्देश्य है। प्रस्तुत शोध आलेख में प्रधानमंत्री जन धन योजना की वर्तमान स्थिति एवं वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता व भूमिका का वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्द: वित्तीय समावेशन, प्रधानमंत्री जन-धन योजना, आर्थिक विकास, बैंकिंग प्रणाली

1. प्रस्तावना: गरीबी उन्मूलन, सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु वित्तीय समावेशन को भारत सरकार ने बेहद महत्वपूर्ण बताया है। यदि लोग वृहद पैमाने पर वित्तीय सेवाओं से वंचित रहेंगे तो यह हमारे देश के समावेशी विकास के लक्ष्य की पूर्ति में बाधक होगा। नागरिकों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए एक ऐसी योजना की आवश्यकता थी, जिससे सभी इससे होने वाले लाभ और विकास का हिस्सा बन सकें। अत: इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री जन धन योजना की शुरुआत वर्तमान सरकार के द्वारा 28 अगस्त 2014 को की गयी, जिसकी घोषणा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के द्वारा लाल किले की प्राचीर से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 15 अगस्त 2014 को की गयी थी। एक अर्थव्यवस्था की उन्नति व विकास के लिए उसके बुनियादी ढांचे का मजबूत होना बहुत आवश्यक है यदि किसी देश का बुनियादी ढांचा ही कमजोर हो तो कितना भी प्रयास किया जाए अर्थव्यवस्था को मजबूत नहीं बनाया जा सकता। वित्तीय समावेशन अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने का एक यंत्र है जिसके तहत यह सुनिश्चित किया जाता है कि अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को भी आर्थिक लाभ से वंचित न रहना पड़े। जन धन योजना वित्तीय समावेशन को सफल बनाने का ही एक प्रयास है। जन धन योजना तथा वित्तीय समावेशन का विस्तृत अध्ययन इस प्रकार है-

1.1. प्रधानमंत्री जन-धन योजना: प्रधानमंत्री जन-धन योजना वित्तीय समावेशन की दिशा में एक पहल है। यह विश्व की सबसे बड़ी समावेशन योजना है, जिसकी घोषणा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 15 अगस्त 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा लाल किले की प्राचीर से अपने उद्बोधन में की गई थी। इस योजना का शुभारंभ 28 अगस्त 2014 को किया गया। इस योजना के शुभारंभ के अवसर पर प्रधानमंत्री ने इसे गरीबी के दुष्चक्र से निकलने का एक यंत्र बताया। भारत को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए इस योजना की आवश्यकता थी। प्रधानमंत्री ने इसके लिए तकरीबन 7.25 लाख बैंक कर्मचारियों को ईमेल भेजा था जिसमें उन्होंने 7.5 करोड़ बैंक खातों को खोलने के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा वित्तीय अस्पृश्यता को समाप्त करने में मदद करने का आग्रह किया था। भारत सरकार की इस योजना का नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज हुआ। भारत सरकार के वित्तीय सेवा विभाग ने 23 से 29 अगस्त 2014 के बीच सबसे अधिक खाते खोलकर गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज

कराया। 23 से 29 अगस्त 2014 के बीच खातों की संख्या 1,80,9 6,130 थी। यह योजना राष्ट्रीय वित्तीय समावेशन मिशन है, जिसे सही तरीके से वित्तीय सेवाओं जैसे बैंकिंग, बचत तथा जमा खाते, ऋृण, बीमा, पेंशन आदि लोगों की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए शुरू किया गया। इस योजना के अंतर्गत बैंक खाता किसी भी शाखा तथा व्यवसाय प्रतिनिधि आउटलेट में खोला जा सकता है, इस योजना के अंतर्गत खाता जीरो बैलेंस के साथ खोला जा सकता है हालांकि अगर खाताधारक चाहे तो वह न्यूनतम बैलेंस मानदंडों को पूरा कर सकता है।

इस योजना से जुड़े विशेष लाभ इस प्रकार हैं-

- खातों में जमा राशि पर ब्याज।
- रुपे कार्ड पर रू. 1,00,000 का मुफ्त दुर्घटना बीमा जिसे 28 अगस्त 2018 को बढ़ाकर 2,00,000 कर दिया गया।
- खातों में न्यूनतम शेष रखने की बाध्यता नही है।
- रू. 30,000 का जीवन बीमा।
- भारत में कहीं भी पैसे आसानी से भेजने की सुविधा।
- प्रत्यक्ष लाभ अंतरण योजना के लाभों की आसानी से प्राप्ति।
- 6 माह तक इन खातों के संतोषजनक परिचालन के पश्चात ओवरड्राफ्ट की सुविधा की प्राप्ति।
- पेंशन, बीमा उत्पादों तक पहुंच।
- प्रत्येक परिवार के एक खाते विशेषकर महिला के खाते में रू. 5000 की ओवरड्राफ्ट सुविधा, जो बढ़ाकर रू. 10000 कर दी गई है।

1.2. वित्तीय समावेशनः विश्व बैंक के अनुसार, वित्तीय समावेशन से आशय "व्यक्तियों और व्यवसायों के पास उपयोगी तथा वहनीय वित्तीय उत्पादों और सेवाओं तक पहुंच स्थापित होना जो उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहयोगी हों। इसमें लेनदेन, भुगतान, बचत, क्रेडिट और बीमा का उत्तरदायी वितरण सुनिश्चित किया जाता है"। वित्तीय समावेशन कम आय वाले लोगों और समाज के वंचित वर्ग के लोगों को उचित कीमत पर भुगतान, बचत, ऋृण आदि वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने का एक प्रयास है। इसे समावेशी वित्त पोषण भी कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य उन प्रतिबंधों को हटाना होता है जो वित्तीय क्षेत्र में भाग लेने से लोगों को बाहर रखते हैं और लोगों में किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वित्तीय सेवाओं को उपलब्ध कराना इसका मुख्य उद्देश्य माना जाता है। वित्तीय समावेशन की आवश्यकता इसीलिए होती है ताकि लोग बैंकों की सुविधा से वंचित ना रहे व मजबूरीवश अनौपचारिक बैंकिंग क्षेत्र में भाग ना लें जिसकी ब्याज दर बहुत अधिक होती है और उधार राशि काफी कम होती है। अनौपचारिक बैंकिंग क्षेत्र कानून की परिधि से बाहर होता है। यह लोगों के जीवन स्तर को काफी नीचे लेकर जाता है। वित्तीय समावेशन से न केवल सामाजिक लाभ होते हैं बल्कि इसमें व्यवसाय के नए अवसरों का सृजन भी होता है। प्रधानमंत्री वय वंदना योजना, जीवन सुरक्षा बंधन योजना, स्टैंड अप इंडिया योजना, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, अटल पेंशन योजना जैसी योजनाएं भारत में वित्तीय समावेशन की दृष्टि से शुरु की गयीं और निरंतर सफलतापूर्वक संचालित की जा रही हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्यः प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

- प्रधानमंत्री जन धन योजना एवं उसकी वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
- प्रधानमंत्री जन धन योजना के उद्देश्यों व प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- वित्तीय समावेशन में प्रधानमंत्री जन धन योजना की भूमिका का अध्ययन करना।

3. शोध प्रविधिः प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है, जिनका संग्रहण विभिन्न स्त्रोतों जैसे कि पत्रिकाएं, समाचार पत्र, जर्नल्स, आलेख, भारत सरकार के प्रकाशन एवं वेबसाइट व अन्य प्रकाशित माध्यमों से किया गया है। संग्रहीत समंको के आधार पर अध्ययन के निष्कर्ष के साथ सम्पूर्ण आलेख की रचना की गयी है।

4. प्रधानमंत्री जन-धन योजना की वर्तमान स्थिति: 2011 की जनगणना के अनुसार देश में बैंकिंग सुविधाओं की पहुँच केवल 58.7% परिवारों तक ही सीमित थी। 31 मार्च 2014 तक देश के बैंकिंग नेटवर्क में 1,15,082 बैंक शाखाएं व 1,60,055 एटीएम स्थापित थे। इनमे से 43,962 बैंक शाखाएं (38.2%) व 22,334 एटीएम (14.58%) ग्रामीण क्षेत्रों में थे। विश्व बैंक फाइंडेक्स सर्वेक्षण 2012 के अनुसार केवल 35% भारतीय व्यस्को के पास औपचारिक रूप से बैंक खाते थे। औपचारिक वित्तीय संस्थाओं तक लोगों की पहुंच में निरंतर सुधार हुआ किन्तु हजारों गांव बैंक शाखाओं व सुविधाओं तक पहुँच से दूर थे। सभी वाणिज्यिक बैंकों को मिलाकर 10% से भी कम उधार ग्रामीण क्षेत्रों को दिया जाता था, जहां कुल जनसंख्या का लगभग 70% निवास करती है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के आंकड़ों के अनुसार मार्च 2014 तक 6,40,867 गाँवो में से 46,126 गाँवो तक ही बैंको की पहुँच थी। इस प्रकार भारत में वित्तीय समावेशन अत्यंत आवश्यक हो गया, जिसकी पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय मिशन की आवश्यकता थी। जिसे ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री जन-धन योजना की शुरुआत 28 अगस्त 2014 को की गयी। इस योजना को अब तक 6 वर्ष पुरे किये जा चुके हैं। योजना के तहत अब तक 40.35 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को बैंकों से जोड़ा गया व 1.31 लाख करोड़ ₹ का कारोबार इस योजना के तहत अब तक हुआ है। इस योजना के तहत खोले गए बैंक खातों में से 63.5% खाते ग्रामीण लोगों के हैं। योजना के तहत खोले गए खातों में महिला खातों का प्रतिशत 55.2 है। प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के तहत अप्रैल से जून 2020 के द्वारा जन-धन योजना के अंतर्गत महिलाओ के खातों मे 30,705 करोड़ ₹ जमा किये गए हैं। लगभग 8 करोड़ जन-धन योजना खाताधारक सरकार से विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत प्रत्यक्ष लाभ अंतरण प्राप्त करते हैं।

5. प्रधानमंत्री जन-धन योजना की उपलब्धियां: इस योजना की अगस्त 2020 तक की उपलब्धियों को निम्नलिखित बिन्दुओं व शीर्षकों के माध्यमों से समझा जा सकता है-

5.1. जन-धन खाते:

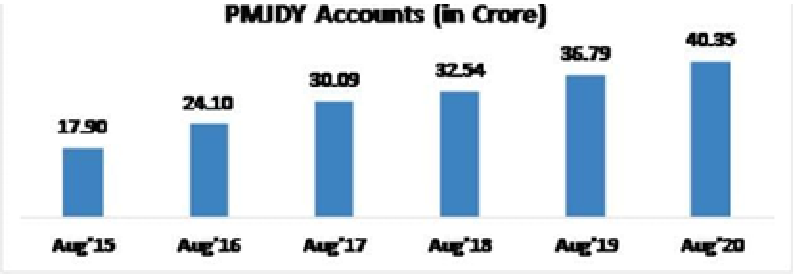

(स्त्रोत: https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1649108)

- 19 अगस्त 2020 के अनुसार इस योजना में खोले गए खातों की कुल संख्या: 40.35 करोड़ है, जिसमें ग्रामीण 63.6 प्रतिशत, महिला खाते: 55.2 प्रतिशत है।
- योजना के पहले वर्ष के दौरान 17.90 करोड़ खाते खोले गए।

5.2. जन-धन खातों में जमा:

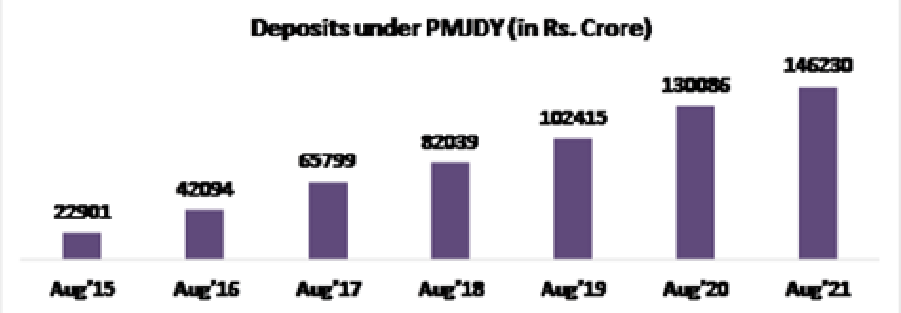

(स्त्रोत: https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1649108)

- जन-धन खातों के तहत कुल जमा रकम 1.31 लाख करोड़ रुपये है।
- खातों की संख्या में 2.3 गुना वृद्धि (अगस्त 2015 से अगस्त 2020) होने के साथ ही जमा रकम में 5.7 गुना वृद्धि दर्ज की गई।

5.3. जन-धन योजना खाताधारकों को जारी रूपे कार्ड:

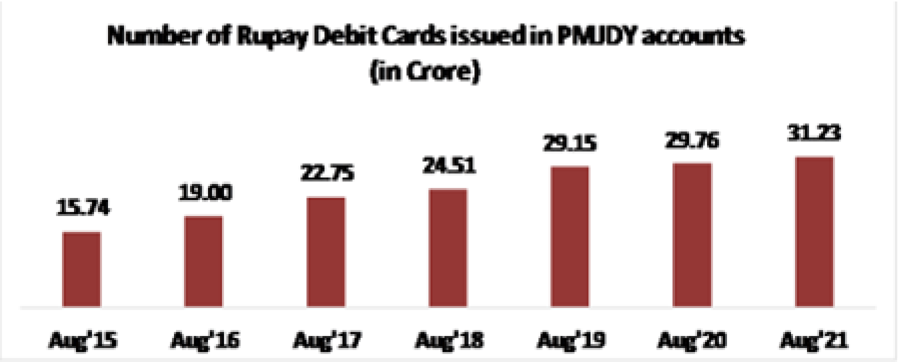

(स्त्रोत: https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1649108)

- अब तक कुल 29.75 करोड़ रूपे कार्ड जारी किए गए हैं।
- समय के साथ-साथ रूपे कार्डों की संख्या व उपयोगिता बढ़ रही है।

5.4. पीएमजेडीवाई महिला लाभार्थियों के लिए प्रधानमंत्री गरीब कल्याण पैकेज: वित्तमंत्री द्वारा 26 मार्च 2020 को की गई घोषणा के अनुसार, प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना के तहत प्रधानमंत्री जन-धन योजना के महिला खाताधारकों के खातों में तीन महीनों (अप्रैल 2020 से जून 2020) के दौरान 500 रुपये प्रति माह रकम जमा कराई गई। अप्रैल 2020 से जून 2020 के दौरान महिला पीएमजेडीवाई खाता धारकों के खातों में कुल मिलाकर 30,705 करोड़ रुपये जमा कराए गए हैं।

6. वित्तीय समावेशन में प्रधानमंत्री जन-धन योजना की भूमिका: वित्तीय समावेशन हेतु राष्ट्रीय मिशन या प्रधानमंत्री जन-धन योजना को भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवाओं के विभाग द्वारा शुरु किया गया। इस योजना को शुरु करने का सरकार का मुख्य उद्देश्य उन लोगों तक बैंकिंग सुविधाओं की पहुँच प्रदान करना था, जो बैंकिंग सेवाओं से वंचित थे। जिससे कि वें भी बैंकिंग क्षेत्र से जुड़ सके और बैंकिंग सुविधाओं का लाभ लेते हुए वित्तीय रूप से अर्थव्यवस्था में समावेशित हो सकें। देश के आर्थिक विकास व गरीबों के कल्याण हेतु वित्तीय समावेशन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस योजना के अंतर्गत लोगों को मूलभूत बैंक खाते की प्राप्ति होती है और साथ ही साथ बीमा सुविधा व एक अतिरिक्त अधिविकर्ष की सुविधा प्राप्त होती है। लोगों को इस योजना में रुपे डेबिट कार्ड की सुविधा प्राप्त होती है, जिससे वह कहीं भी नजदीकी एटीएम के माध्यम से धनराशि आहरित कर सकते हैं एवं ऑनलाइन पेमेन्ट आदि कर सकते हैं। इस प्रकार लोग बैंको से जुड़कर उनके द्वारा द्वारा प्रदान किये जाने वाले ऑफर्स का लाभ उठा सकते हैं, उनके द्वारा प्रदान की जाने की सेवाओं का, सुविधाओं का प्रयोग कर सकते हैं, साथ ही समय समय पर सरकार के द्वारा विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएं बैंको के माध्यम से प्रदान की जाती हैं, इस योजना से जुड़कर लोग सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं को भी प्राप्त कर सकते हैं, सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रत्यक्ष लाभ अंतरण सुविधा उनमे से एक प्रमुख सुविधा है। लोगों के बैंकिंग सुविधाओं से जुड़ने व उनका वित्तीय समावेश हो जाने से उनमे छोटी छोटी बचतें संग्रहित करने की आदत का विकास होगा, जिन्हें वह स्वयं के पास न रखकर अपने बैंक खातों में रखेंगे, व बीमा जैसे प्रतिफल प्रदान करने वाले क्षेत्रो में निवेश करेंगे, जिससे लोगों की निवेश आदतों में वृद्धि होंगी, निवेश आदतों में वृद्धि होने से देश में पूंजी निर्माण में वृद्धि होंगी, जिसके परिणामस्वरुप देश के आर्थिक विकास में वृद्धि होंगी।

7. निष्कर्ष: किसी देश के सतत विकास के लिए वित्तीय समावेशन महत्वपूर्ण है। एक विकासशील देश के रूप में भारत ने वित्तीय समावेशन के महत्व को समझा है और अपनी वित्तीय प्रणाली को अधिक समावेशी बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत है। वित्तीय समावेशन के अंतर्गत भारत में वित्तीय साक्षरता, सूक्ष्म वित्त संस्थाओं को व्यापार की सुविधा पहुंचाना, तथा बैंकिंग प्रणाली को सुचारू रूप से चलाना भी शामिल है। भारत वित्तीय समावेशन की तरफ अग्रसर है परंतु पूर्ण वित्तीय समावेशन तभी संभव है जब लोग अनौपचारिक स्रोतों जैसे सेठ, साहूकारों व महाजनों की बजाय औपचारिक वित्तीय प्रणाली द्वारा पेश किए गए उत्पादों का और सेवाओं का लाभ उठाएं तथा प्रधानमंत्री जन धन योजना में दिए जाने वाले लाभों का उपयोग करें। प्रधानमंत्री जन-धन योजना ने वित्तीय समावेशन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा तथा यह एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में उभरी है। जिसका उद्देश्य देश के हर घर को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना है इस प्रकार प्रधानमंत्री जन-धन योजना देश के हर व्यक्ति को वित्तीय रूप से समावेशी बनाना चाहती है। यह केवल बैंक में खाता खोल लेने तक सीमित नहीं है बल्कि इसने अन्य वित्तीय उत्पादों व सेवाओं को खाताधारकों के लिए सुलभ बना दिया है तथा और भी सुविधाएं जैसे उधार, पेंशन, व बीमा आदि को खाताधारकों के लिए सुगम बना दिया है। इसलिए इस योजना ने देश को पूर्ण वित्तीय समावेशन के करीब लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदर्भ:

- Bagli, S. (2012). A Study of Financial Inclusion in India. RADIX International Journal of Economics & Business Management, 1 (8).
- Chowhan, S. S., & Pande, J. C. (2014). Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana: A Giant Leap Towards Financial Inclusion. International Journal of Research in Management & Business Studies, 19-22.
- Goyal, M., & Khera, M. (2016). Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana: A Step Towards Financial Inclusion. Pacific Business Review International, 8(9), 1–8.
- Grant, M. (2019). Financial Inclusion. Retrieved from https://www.investopedia.com/terms/f/financial- inclusion.asp
- Joshi, M., & Rajpurohit, V. P. (2016). Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (the Financial Inclusion):
- A Study of Awareness. SSRN Electronic Journal, January. https://doi.org/10.2139/ssrn.2816493
- Kaur, H., & Singh, K. N. (2015). Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (Pmjdy): A Leap towards Financial Inclusion in India. International Journal of Emerging Research in Management &Technology, 4 (1), 25-29.
- Mohan, B. (2014). Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana: Features, needs, and challenges. International Journal of Marketing Financial Services & Management Research Services and Mgt. Res 13:111-17.
- Raval, H. R. (2015). Shaping New India through Financial Inclusion in the form of PMJDY. International Journal of Research in Humanities & Social Sciences, 3 (5), 34-38.
- Sri Narendra Modi, Hon'ble Prime Minister of India. (2014). Pradhan Mantri Jan-Dhan Yojana. Ministry of Finance, Department of Financial Services. New Delhi: Government of India.
- The World Bank Group. (2008). Financial Inclusion: Financial inclusion is a key enabler to reducing poverty and boosting prosperity. Retrieved from https://www.worldbank.org/en/topic/financialinclusion/
- Varghese, G., & Viswanathan, L. (2018). Normative perspectives on financial inclusion: Facts beyond statistics. Journal of Public Affairs, 18(4), e1829. Advance online publication. doi:10.1002/pa.1829
- https://www.rbi.org.in/Scripts/PublicationReportDetails.aspx?UrlPage=&ID=1154
- https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1649108

पंजाब-हरियाणा में फसल अवशेषों का दहनः एक बढ़ती पर्यावरणीय समस्या

अशोक कुमार

नेट, जेआरएफ, शोधार्थी, भूगोल विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

शोध सारः यह शोधपत्र फसल अवशेष के जलाने से उत्पन्न समस्याओं तथा फसल अवशेष के दहन को कम करने के लिए विभिन्न वैकल्पिक तकनीकों एवं रणनीतियों पर प्रकाश डालता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या कृषि तथा कृषि संबंधित व्यवसायों से अपनी आजीविका अर्जित करती है। पंजाब व हरियाणा देश के प्रमुख कृषि उत्पादक राज्य हैं। ये प्रदेश देश में खदानों के उत्पादन में प्रमुख योगदान देते हैं। इन प्रदेशों में कृषि उत्पादकता अधिक होने के के साथ-साथ फसलों के अवशेष भी अधिक उत्पन्न होते हैं। फसली अवशेषों की मात्रा अधिक होने के कारण उनका निपटान किसानों के लिए एक चुनौती बन गई है जिसके कारण किसान फसल अवशेषों को अपने खेतों में ही जला देते हैं। इन फसली अवशेषों को जलाने से उत्तर भारत में विशेषकर हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर में वायु प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है। पिछले कुछ वर्षों से इन प्रदेशों में निरंतर चावल व गेहूं की चक्रीय कृषि की जा रही है जिसके कारण वायु प्रदूषण के साथ-साथ इन प्रदेशों में जलभराव, मृदा में लवणता की वृद्धि तथा मृदा क्षरण की समस्या भी उत्पन्न हो गई हैं। फसली अवशेषों के दहन को कम करने के लिए सरकार ने कुछ सकारात्मक कदम उठाए हैं ताकि बढ़ती वायु प्रदूषण की समस्या को कम किया जा सके।

कुंजी शब्दः फसल अवशेष, मृदा क्षरण, पर्यावरण अवक्रमण, सतत पोषणीय विकास

भूमिकाः परंपरागत कृषि में साधारण कृषि यंत्रों का प्रयोग किया जाता था जिसके कारण अधिकतर कृषि कार्य जैसे- फसलों की बिजाई, कटाई तथा थ्रेसिंग आदि हाथों से होता था। लेकिन भारत में 1970 के दशक के बाद कृषि में आधुनिक कृषि यंत्रों के प्रयोग किया जाने लगा। जहां एक ओर आधुनिक कृषि यंत्रीकरण से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर कृषि सम्बन्धी कार्यों से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो गई। एक अनुमान के अनुसार जहां पहले फसलों की कटाई हाथों से करने से फसली डंठल मात्र 3 से 5 सेंटीमीटर शेष रहता था। वही आज आधुनिक कृषि यंत्रों जैसे- कंबाइन से कटाई के कारण फसली डंठल 20 से 25 सेंटीमीटर ऊंचा रह जाता है जिसके कारण बड़ी मात्रा में फसल अवशेष उत्पन्न होता है। भारत में प्रतिवर्ष 500 से 550 मिलियन मीट्रिक टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं। जिसमें से लगभग 16 प्रतिशत फसल अवशेष खेतों में जला दिये जाते हैं।[i] भारतीय कृषि अनुसंधान के अनुसार प्रतिवर्ष धान फसल अवशेष का लगभग 80 प्रतिशत जला दिया जाता है।[ii] कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान जोधपुर के अनुसार पंजाब और हरियाणा के किसान प्रतिवर्ष अक्टूबर नवंबर के महीने में लगभग 35 मिलियन टन फसल अवशेष जलाते हैं।[iii] भारतीय कृषि मंत्रालय के अनुसार उत्तर प्रदेश पंजाब व हरियाणा में 1 अक्टूबर 2019 से 3 नवंबर 2019 के मध्य पराली जलाने के कुल का 30402 घटनाओं की जानकारी मिली। जिनमें से पंजाब में सबसे अधिक 25366 हरियाणा में 4414 और उत्तर प्रदेश में 1622 घटनाएं हैं।[iv]

किसान फसली डंठल के निपटान हेतु उसमें आग लगा देता है जो वायु प्रदूषण का एक बड़ा कारण बनता है। सबसे अधिक मात्रा में फसली अवशेष खरीफ की फसल चावल से उत्पन्न होता है। चावल धान की फसल की थ्रेसिंग के बाद प्राप्त होता है। धान की कटाई व थ्रेसिंग अक्टूबर-नवंबर के महीने में की जाती है। धान की फसली अवशेष पराली के निपटान हेतु किसान इसमें

आग लगा देते हैं जिसके परिणाम स्वरूप अक्टूबर- नवंबर के महीनों में उत्तर भारत में विशेषकर पंजाब, हरियाणा, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वायु प्रदूषण की एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। अप्रैल-मई के महीने में गेहूं की फसल अवशेष को किसान आग लगा देते हैं जिससे न केवल वायु प्रदूषण होता है बल्कि स्थानीय तापमान में भी वृद्धि होती है।

पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में अनुमानित पराली उत्पादन और दहन (2018)

राज्य	*पराली उत्पादन मिलियन टन में*	*पराली दहन मिलियन टन में*
पंजाब	22	18.7
हरियाणा	7.5	3.0
उत्तर प्रदेश	4.4	1.3
कुल	33.9	23

स्रोत: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

धान की फसल अवशेष या पराली जलाने के प्रमुख कारण-

1 धान व गेहूं की फसलों की कटाई कंबाइन मशीनों से अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई से की जाती है जिसके बड़ी मात्रा में धान व गेहूं के ठूंठ खेतों में रह जाते हैं।

2 रबी के मौसम की शुरुआत में धान की कटाई और गेहूं की बुवाई के मध्य समय कम बचता है जिसके कारण किसान खेतों में ही पराली को आग लगा देते हैं।

3 हरियाणा पंजाब में भूजल निकासी को हतोत्साहित करने के लिए किसानों को धान की रोपाई देरी से करने के लिए बाध्य किया जाता है।

4 अक्टूबर-नवंबर के महीने दक्षिण पश्चिम मानसून की वापसी के होते हैं जिसके कारण किसानों को शीघ्रता से खेत खाली करने होते हैं।

5 हाथ की कटाई करने में महंगा श्रम तथा कई बार श्रमिकों का समय पर मिलना।

6 चावल आदि के भूसे से अधिक आय प्राप्त न होना।

फसल अवशेष या पराली जलाने के प्रतिकूल प्रभाव:

वायु प्रदूषण व भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि- धुएं और धूल के कण विकीरण को अवशोषित कर भूमण्डलीय ताप वृद्धि को बढ़ावा देते हैं और बढ़ते हुए वायुमंडलीय तापमान से प्रति एकड़ उपज कम होती चली जाती है। इसके साथ-साथ धुएं और धूल के कण प्रात:काल के समय वायुमण्डल में बहुत निचले स्तर पर जमा हो जाते हैं जिससे आंखों और गले के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। विषैले धुएं से न केवल पर्यावरण प्रदुषण होता बल्कि मानव स्वास्थ्य विशेषत: बच्चों के फेफड़ो पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।[v]

मृदा में पोषक तत्व कमी होना- फसल अवशेषों के दहन उसमें उपस्थित विद्यमान पोषक तत्वों के साथ.साथ भूमि की उर्वरा शक्ति भी कम होती है। एक टन धान की पराली जलाने से 5.5 किलोग्राम नाइट्रोजन 2.3 किलोग्राम फास्फोरस 2.5 किलोग्राम पोटैशियम 1.2 किलोग्राम सल्फर तथा 1.8 किलोग्राम कैल्शियम नष्ट हो जाता है।[vi]

मृदा के भौतिक व रासायनिक गुण पर प्रतिकूल प्रभाव- फसल अवशेषों के जलाने से मृदा के तापमान में वृद्धि होती है जिसके कारण मृदा की ऊपरी परत सख्त हो जाती है मृदा में जल धारण करने की क्षमता कम हो जाती है।

पारिस्थितिकी संकट या समस्या- फसल अवशेष के दहन से खेत में बहुत से ऐसे कीट पतंगे तथा जीव जंतु जो फसल उत्पादन के लिए उपयोगी होते हैं ए जीने किसान मित्र प्राणी कहा जाता है यह सभी नष्ट हो जाते हैं।[vii]

आर्थिक हानि- फसल अवशेष के जलाने से बहुत अधिक मात्रा में आर्थिक हानि होती है उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान हैदराबाद के अनुसार किसानों को प्रतिवर्ष लगभग 18 मिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर यूरिया का तथा 30 से 35 मिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर सभी पोषक तत्व की हानि उठानी पड़ती है।[viii]

यद्यपि सरकार ने फसल अवशेष जलाने पर प्रतिबंध लगाया है। सरकार ने फसल अवशेष ना जलाने वाले किसानों को प्रोत्साहन राशि व सब्सिडी देने से फसल अवशेष दहन की घटनाओं में कमी आई है। लेकिन कानूनी प्रावधान के अतिरिक्त कुछ अन्य तरीके भी हैं जो इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकते हैं जैसे-

- फसल अवशेष को मृदा में मिलाकर जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है और प्रदूषण से भी बचा जा सकता है। फसल अवशेष को अपेक्षाकृत लंबे समय तक मृदा में मिलाने से मृदा में पोषक तत्वों की वृद्धि होती है।[ix]
- फसल अवशेष जैसे धान की पराली और गेहूं के भूसे का उपयोग पशु चारा के रूप में किया जा सकता है।
- फसल अवशिष्टों से निर्मित खाद का प्रयोग रसायनिक खादों के साथ करने से फसलों की उपज का स्तर सतत रूप से बना रहता है तथा उपज में भी वद्धि होती है।
- धान की पराली और गेहूं के भूसे का प्रयोग मशरूम उगाने के लिए स्ट्रौबरी की खेती में पलवार आदि में भी उपयोग किया जा सकता है।[x]

निष्कर्ष: फसल अवशेषों का निपटान विशेषकर धान की पराली कृषि व पर्यावरण दोनों के लिए एक गंभीर समस्या है। भारतीय कृषि अनुसंधान तथा दोनों राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए प्रभावी कदमों के कारण ही सकारात्मक परिणाम है कि पराली जलाने के मामले में तेजी से गिरावट आ रही है। किसानों को अधिक से अधिक पराली निपटान के वैकल्पिक उपायों के बारे में शिक्षित किया जाए। सरकार के साथ-साथ किसानों ने भी इस समस्या के निपटान में अपना महत्वपूर्ण योगदान देना होगा।

सन्दर्भ सूची

1 Devi S., et al., 2017, "Crop residue recycling for economic and environmental sustainability: The case of India," Open Agriculture; 2(1): 486-494.

2 https://cprindia.org/crop-burning-as-a-source-of-air-pollution-in-national/

2 file:///C:/Users/home/Downloads/CROP%20RESIDUE%20WASTE%20OR%20WEALTH.pdf

4 https://www.bhaskar.com/local/haryana/hisar/bhiwani/news/50-grant-on-crop-residue-management-equipment-no-government-facility-will-be-provided-if-farmer-burns-stubble-127680880.html

5 Alder, T. (2010), "Respiratory Health: Measuring the Health Effect of Crops Burning", 118 (II), A 475.

6 *https://www.downtoearth.org.in/blog/agriculture/stubble-burning-a-problem-for-the-environment-agriculture-and-humans-64912*

7 यादव ए.के., 2010 ''गेहूं के फानों को खेत में जलाना है हानिकारक'' फसल संवाद: मार्च 2010:7.

8 Kang M.D. 2018, Plough stubble back into soil," The Tribune Chandigarh, 15 may 2018 page: 9.

9 Singh R.B. (2000), "Environmental Consequences of Agricultural Development: A Case Study From the Green Revolution in State of Haryana", Indian Journal of Agriculture Ecosystems and Environment, Vol. 82, pp 97-103.

10 Singh, N., Nyuur, R., and Richmond, B. 2019. "Renewable Energy Development as a Driver of Economic Growth: Evidence from Multivariate Panel Data Analysis," Sustainability (11:8), p. 2418.

महिला सशक्तीकरण में जनसंचार की भूमिका

उमेश सिंह

शोध छात्र- समाजशास्त्र विभाग, शोध केन्द्र-सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज, बदलापुर जौनपुर, उ0प्र0।

जनसंचार का उल्लेख करते ही हमारा ध्यान मुद्रण, पत्र (डाक) दूरभाष, टेलीग्राफ, रेडियो आदि संचार के साधनों की ओर जाता हैं ये सभी उपकरण शताब्दियों से चले आ रहे हैं तथा यह सभ्यता या विज्ञान के विश्वास का परिणाम है। जनसंचार के साधन, विचारों, सूचनाओं, उत्प्रेरक संकेतों के आदान प्रदान से ही हमारे समग्र जीवन, मूल्यों और संस्कृति का निर्माण होता है। जनसंचार एक प्लेटफार्म है जिससे संदेश, सूचना एवं विचार आम लोगों तक पहुँचते है।

जन

जन की अवधारणा अर्थात् 'जन' शब्द का प्रयोग बड़ी संख्या में एकत्र लोगों के लिए प्रयोग होता है। यह अंग्रेजी शब्द 'मास' (Mass) के पर्याय रूप में जाना जाता है। 'मास' शब्द के पर्याय रूप में दोनों के कारण आधुनिक संदर्भों में 'जन' शब्द को आम समान के लोग तथा जीवन्त सामाजिक शक्ति के अर्थों के रूप में देखा जा सकता है।

संचार

संचार मानव जीवन का एक मुख्य अंग है। एशले फ्लाएड का मानना है कि ''व्यक्ति कुछ समय तक भूख और प्यास सहन कर सकता है, परन्तु यदि उसे पराधीन करके संप्रेषण करने से रोक दिया जाए तो उसे ''भावात्मक धक्का' सा लगेगा। उस स्थिति में भी अंतः-संचार चलता रहेगा। उसे किसी तरह से रोका नहीं जा सकता'' इसलिए संचार के बिना व्यक्ति या जीवन मृत अवस्था के समान ही होता है यदि संचार को जीवन का पर्याय कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होती। संचार एक ऐसी जटिल प्रक्रिया का परिणाम है जिसमें दो या दो से अधिक लोगों के बीच अर्थपूर्ण जटिल संदेशों का आदान - प्रदान किया जाता है। ये संदेश संप्रेषक और प्रापक के बीच सामंजस्य और समझदारी बनाते है।

जनसंचार की परिभाषा

- राइट सी.आर :-"जनसंचार विस्तृत विजातीय और अज्ञात संचार से अप्रत्यक्ष जुड़ा है।''
- ओटो एव. लारसन :-"जनसंचार बिखरे हुए जनों केउन प्रतीकों का प्रेषण है जो अवैयक्तिय साधनों से अज्ञात गंतव्य को लेने जाते है।''
- जांडेन :-"संगठित स्रोत द्वारा विस्तृत विजातीय, बिखरी हुई जनता को तकनीकी माध्यम से जो संदेश प्राप्त होता है, उसे जनसंचार कहते है।''

जनसंचार के विविध माध्यम

- समाचार-पत्र/पत्रिकाएँ:- समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं का इतिहास संचार माध्यमों सबसे अधिक पुराना है। आज भी विश्व की अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं इन पत्र-पत्रिकाओं के रूप में इतिहास का जीवन्त दस्तावेज बन चुकी है।
- पुस्तकें:- समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं के आलावा पुस्तकों का भी जनसंचार में महत्वपूर्ण योगदान है। पुस्तकें व्यक्ति की मित्र होती है।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम :- आधुनिक तकनीकों की सहायता से संचार के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के द्वारा प्रगति की है।

- रेडियो :- आज भले ही हम टेलीविजन और इंटरनेट की आंधी में रेडियो जैसे जनसंचार के सशक्त माध्यम को भुला चुके है लेकिन रेडियो की उपयोगिता और महत्व वही लोग जानते है जोगांव देहातों में रहते हैं तथा आर्थिक रूप से कमजोर है ।
- टेलीविजन:- जहां रेडियो केवल श्रव्य माध्यम है वहीं टेलीविजन श्रव्यख्र दृश्य साधन है यह दृश्यों को भी प्रसारित करता है।
- फिल्म:- यहां छायाचित्र गतिशील चित्रों के अधिकार का श्रेय थामस ऐडिसन को दिया जाता है। उन्होने भारत में सन् 1888 में इसका आरम्भ किया।

वीडियों-आडियो:-वीडियों पत्रकारिता पर रेडियो तथा टेलीविजन की तरह सरकार का नियंत्रण नहीं है। यह पुरी तरह से एक निजी माध्यम है। जिसके द्वारा जनता का मनोरंजन और ज्ञानवर्धन होता है।

महिलाएं और जनसंचार के माध्यम

महिलाओं के लिए जनसंचार के माध्यम आज एक आवश्यकता बन गया है। जनसंचार माध्यमों का महिलाओं पर प्रभाव जानने से पहले यह जानना भी आवश्यक है कि जनसंचार के साधनों का महिलाओं के लिए क्या महत्व है? और वे जनसंचार के मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं। आज, शहरों के साथ-साथ गांवों में जनसंचार के साधनों की व्यापक पहुंच ने इसे महिलाओं के लिए सुलभ बना दिया है। वैसे तो रेडियो और टीवी महिलाओं से जुड़े विषयों पर लंबे समय से कार्यक्रम प्रसारित करते रहे हैं, लेकिन क्या यह कार्यक्रम वर्तमान संदर्भ में उनके लिए वास्तव में प्रासंगिक और उपयोगी है और इसका उन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इन सभी का विश्लेषण करना आवश्यक है।

वैश्वीकरण के इस युग में, उपभोक्तावादी संस्कृति जिसने पिछले एक दशक से जन्म लिया है, उसका प्रभाव पूरी दुनिया में देखा जा रहा है। जनसंचार भी इस प्रभाव से अछूता नहीं है। टीवी चौनल उन्हीं तथ्यों को देखने और दिखाने के लिए तत्पर रहते हैं जो महिलाओं को सबसे ज्यादा लुभावने लग सकते हैं। महिलाओं के बदलते जनसंचार व्यवहार और उपयोग के कारण प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया संस्थान महिला को ध्यान में रखकर कई कार्यक्रमों का बना रही हैं। यही नहीं उनकी पसंद को ध्यान में रखते हुए सप्ताह में एक बार किसी भी धारावाहिक में टर्निंग प्वाइंट दिखाने का प्रचलन शुरू हो चुका है, ताकि महिला दर्शकों की अमुक कार्यक्रम विशेष के प्रति उत्सुकता बनी रहे और वे पूरे सप्ताह उसे देखने को बाध्य हों।

दूसरी ओर, महिलाओं की बढ़ती सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी जनसंचार पर उनकी निर्भरता को बढ़ा रही है। आज समाचार पत्र, पत्रिकाएं, टीवी, इंटरनेट किसी न किसी रूप में महिलाओं के दैनिक जीवन का हिस्सा बन गए हैं। कुल मिलाकर जनसंचार वर्तमान समय में महिलाओं के लिए एक आवश्यक और महत्वपूर्ण आदत के रूप में विकसित हो गया है। हर महिला चाहे वह गाँव या शहर हो, अनपढ़ हो या शिक्षित, अमीर हो या गरीब, किसी भी भाषा, जाति, वर्ग, धर्म और व्यवसाय से संबंधित हो, उसे किसी न किसी रूप में जनसंचार से जुड़ा होना चाहिए। है। महिलाओं के लिए जनसंचार के महत्व की बात करें तो संचार के हर माध्यम की प्राथमिकता हर क्षेत्र की महिलाओं के लिए अलग-अलग होती है. जबकि टीवी और रेडियो ग्रामीण महिलाओं के लिए सूचना, सूचना और मनोरंजन के मुख्य स्रोत हैं, प्रिंट और इंटरनेट शहरी महिलाओं की दैनिक गतिविधियों और देखभाल मीडिया में अपनी जगह बना रहे हैं। खासकर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम हर क्षेत्र और वर्ग की महिलाओं के बीच अपनी गहरी पैठ बना रहा है।

महिलाओं के प्रति आम धारणा विकसित करने और उनके अधिकारों के लिए आवाज बुलंद करने में जनसंचार की भूमिका को सदैव प्रभावी और जरूरी माना गया है। वहीं महिलाओं के प्रति लोगों की सोच में वर्तमान में जो परिवर्तन दिखता है उसके पीछे जनसंचार के माध्यम ही प्रमुख कारक है। चाहे वो समान अधिकार की बात हो या पुरूषों के समान सुविधाएं उपलब्ध करवाने की, संचार ने लोगों की धारणा को बदलने में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका है "सामाजिक दृष्टिकोण के निर्माण में मास मीडिया की निर्विवाद भूमिका है। संचार न केवल बनाया जाता है बल्कि समाज में बदलाव लाने का भी काम करता है।"[1]

महिलाओं के लिए सबसे प्रभावी और उपयोगी कौन सा जनसंचार है, इस बारे में भी समय-समय पर चर्चा होती रही है। ''पिछले 250 वर्षों से महिलाएं अपना संचार माध्यम बनाने का प्रयास कर रही हैं जो क्षेत्र और समय की सीमा की परिधि से बाहर हो।'' दूसरी ओर, महिलाओं के लिए कई बार परम्परागत संचार को अधिक प्रभावी माना जाता है। इसके कई स्थानीय कारण भी हो सकते हैं 'मौखिक संचार, जहां आमने-सामने का संचार होता है, महिलाओं के बीच सूचना का सबसे अधिक लोकप्रिय स्रोत है।[2]

जनसंचार के माध्यमों में महिलाओं पर प्रभाव के बारे में अध्ययन करने के लिए कई एजेन्सियों द्वारा समय-समय पर शोध कराए जाते रहते हैं, लेकिन विकासशील देशों जैसे कि भारत में ये इसका प्रचलन बहुत कम है। इस जगह महिला की प्रस्थिति के बदलाव में संचार माध्यमों की भूमिका का पठन न करके औसतन देशवासियों की रीडरशिप, रेडियो लिशनरशिप, टेलीविजन इंटरनेट प्रयोग की से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण किया जाता है। ''महिला जनसंचार पर हुए कुछ अध्ययन ऐतिहासिक तथ्यों और महिलाओं में एक विशेष प्रकार की जागृति पर ही केन्द्रित है।''[3]

दूसरी ओर, कभी-कभी स्थानीय कारण और सरकारी नीतियां भी अरब देशों की तरह महिलाओं के जनसंचार के माध्यम को निर्धारित करने का काम करती हैं। यहां पर कई सामाजिक बाधाएं और प्रतिबन्ध होने के कारण संचार महिलाओं के लिए आसानी से उपलब्ध होने वाला माध्यम नहीं है। दूसरे विकसित और विकासशील देशों में स्थिति इससे काफी भिन्न है। वहां पर महिलाएं अपने उद्देश्य और सुविधा के अनुसार संचार का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है।

वर्तमान संदर्भ में, महिलाओं की स्थिति में बदलाव में मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करने वाले अध्ययन केवल मास मीडिया के उपयोग पर डेटा दिखाते हैं, न कि उनकी उपयोगिता और महिलाओं की स्थिति पर उनकी प्रभावशीलता। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि महिलाओं के लिए मीडिया की भूमिका और इसके उपयोग की अवधि भी देश और पर्यावरण पर निर्भर करती है। वहीं मीडिया या निर्भरता के कारण इसका उपयोग, हमारी दैनिक आदत में शामिल हो गया है। जैसे लोगों की खाने-पीने और दूसरी चीजों की आदत हैसंचार माध्यमों का इस्तेमाल भी आदतन हो गया है। कोई जानकारी के लिए संचार का उपयोग करता है, तो कोई मनोरंजन या सूचना के लिए। यह किसी के लिए समय काटने की गतिविधि है, तो कोई व्यक्ति अपने सम्पर्क क्षेत्र को बढ़ाने और दूसरों के साथ जुड़ने के लिए इसका प्रयोग करता है। कहीं-कहीं यह पूरी तरह से व्यावसायिक कार्यों पर भी निर्भर है। इस प्रकार आज जनसंचार किसी न किसी रूप में प्रत्येक महिला की आवश्यकता और उनकी परिस्थिति परिवर्तन में मुख्य भूमिका भी निभा रहा है।

निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

1. राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की जागरूकता के संदर्भ में संचार के साधनों में वृद्धि हुई है। पता लगाना
2. कामकाजी महिलाओं के आर्थिक आधार में बदलाव से संरचनात्मक परिवर्तन भी होते हैं। इस संरचनात्मक परिवर्तन में संचार साधनों की उपयोगिता का पता लगाना।
3. महिलाओं के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में संचार साधनों की भूमिका का पता लगाना।
4. महिलाओं के शैक्षिक उत्थान में संचार साधनों के सम्बन्धों का पता लगाना।
5. महिलाओं की सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ाने के लिए संचार के साधनों के बारे में जागरूकता का पता लगाना।
6. विश्व की घटनाओं के ज्ञान में महिलाओं द्वारा संचार के साधनों के उपयोग के बारे में पता लगाना।
7. महिलाओं में संचार साधनों के प्रयोग में प्रेरक कारकों को ज्ञात करना।

संदर्भ

[1] Steiner, L. (1992). The history and structure of women''s alternative media. Women making meanings: new feminist directions in communication, Lana f. Rakow, Routledge, newyork, London, p. 126

[2] http://www. Academicjournals.org/article/article1379596401- Nwafor%20and%20Akubue.pdf

[3] Steiner, L. (1992). The history and structure of women''s alternative media. Women making meanings: new feminist directions in communication, Lana f. Rakow, Routledge, newyork, London, p. 126.

शिक्षा और समायोजन

विकास सिंह

शोध छात्र- बी0एड0 विभाग, शोध केन्द्र-सल्तनत बहादुर पी0जी0 कालेज, बदलापुर जौनपुर, उ0प्र0

किसी राष्ट्र के भौतिक एवं मानव संसाधन ही उसे अग्रणी राष्ट्रों की कतार में खड़ा करने के लिए सक्षम बनाते हैं। भौतिक संसाधनों की उपलब्धता सीमित एवं प्रकृतिजन्य होने के कारण आज के युग में मानव संसाधनों के विकास पर अधिक जोर दिया जाने लगा है। निःसन्देह किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन मानव है। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है जब उस राष्ट्र के सभी नागरिकों को विकास के सर्वोत्तम अवसर मिलें तथा वे उन अवसरों का लाभ उठाने के लिए समर्थ हों।[1] मानव को पृथ्वी का सबसे विलक्षण, विचारशील तथा सक्रिय प्राणी माना जाता है। अपनी मानसिक क्षमता, चिन्तन प्रक्रिया तथा सृजनात्मक शक्ति के आधार पर मानव ने न केवल ब्रह्माण्ड की परिधि को लाँघा है वरन् अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का विकास करते हुये आनन्दायक जीवन व्यतीत करने की दिशा में अग्रसर हुआ है। परन्तु मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा-प्रणाली ही है।

समायोजन

समायोजन को समंजन, सामंजस्य, अनुकूलन या व्यवस्थापन भी कहा जाता है। समायोजन तथा कुसमायोजन वस्तुतः दो परस्पर परिस्थितियाँ है जो व्यक्ति एवं उसकी परिस्थितियों के बीच के सामंजस्य को बनाती है। समायोजन वस्तुतः व्यक्ति की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं तथा लक्ष्यों का उसकी परिस्थितियों से तालमेल का सूचक होता है।[2]

समायोजन शब्द वस्तुतः दो शब्दों- से मिलकर बना है। सम का तात्पर्य भली-भाँति, अच्छी तरह से या समान रूप से होता है, जबकि आयोजन का अर्थ अच्छी तरह से व्यवस्था करने से होता है। अतएव समायोजन शब्द का अर्थ सुव्यवस्था करने या अच्छे ढंग से व्यवस्था करने से है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि घटना को योग्य बनाने की प्रक्रिया ही समायोजन है जिसमें व्यक्ति की आवश्यकताएँ तो पूरी हो जायें परन्तु उसे कोई कुण्ठा, तनाव या मानसिक द्वन्दव उत्पन्न न होने पाए। निःसन्देह सभी प्राणियों की भाँति मनुष्य की भी अनेक आवश्यकतायें होती हैं जो व्यक्ति को लक्ष्य पाने की दिशा में प्रेरित करता है। जब व्यक्ति को अपने लक्ष्य की आसानी से मिल जाता है तो उसे संतोष का अनुभव होता है परन्तु जब लक्ष्य प्राप्त करने में उसे बाधाओं का सामना करना पड़ता है तो उसे एक अप्रिय अनुभूति होती है जिसे असंतोष, हताशा, निराशा या कुण्ठा कहते हैं। इसी प्रकार जब व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और रुचियों के प्रतिकूल घटना का सामना करना तो उसके अंदर मानसिक कुण्ठा और मानसिक द्वन्द्व के परिणामस्वरूप व्यक्ति में मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। यदि वह सहज ढंग से इन बाधाओं को दूर करने में सफल रहता है तब उसका वातावरण के साथ समायोजन हो जाता है। परन्तु यदि वह बाधाओं को दूर करने में असमर्थ रहता है तथा अवांछनीय मार्ग अपना लेता है तो कुसमायोजन उत्पन्न हो जाता है। समायोजन की यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवनकाल में निरन्तर चलती रहती है।

गेट्स तथा अन्यों के अनुसार- प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है जिससे वह अपने तथा अपने वातावरण के बीच अधिक संतुलित सम्बन्ध बनाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि समायोजन व्यक्ति के द्वारा अपनी परिस्थितियों व आवश्यकताओं के साथ अनुकूलन करने की प्रक्रिया का परिणाम होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, दशाओं आदि के जीवन की वास्तविकताओं के अनुरूप ढालकर अपने तथा वातावरण के मध्य एक संतोषजनक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तब उसे समंजित व्यक्ति कहा जा

सकता है। यह व्यक्ति के देखने, सोचने एवं करने के बीच परस्पर एकीकरण का परिणाम होता है। मनोवैज्ञानिक एकीकरण की यह अवस्था अच्छे समायोजन का परिचायक होती है।

(i) रचनात्मक समायोजन-

जब मनुष्य किसी भी क्षेत्र में रचनात्मक तरीके से समायोजन की कोशिश करता है तो इस तरह के समायोजन की प्रवृत्ति को रचनात्मक समायोजन कहा जाता है। उदाहरण के लिए जब भी कोई व्यक्ति सामाजिक क्षेत्रों में सेवा के लिए व्यवहारिक गतिविधियों को अपनाता है लेकिन सफलता नहीं मिल सकने की हताशा में धार्मिकता की शरण में चला जाता है तो वो इस क्षेत्र में रचनात्मकता की प्रवृत्तियों को अपनाने लगता है। इसलिए इस तरह की व्यवहारिक प्रवृत्तियों को रचनात्मक समायोजन कहा जा सकता है।

(i स्थानापन्न समायोजन-

जब भी कोई मनुष्य अपने कर्म क्षेत्र में असफलता की प्राप्ति करता है तो वह इस असफलता क लिए सदैव दूसरों पर ही आरोपण एवम् प्रत्यारोपण करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी क्षेत्र अलग में समायोजन स्थापित न कर सकने के कारण वह अपनी निराशा या कुंठा को दूसरे पर आरोप लगाकर समायोजित करने की कोशिश करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी परीक्षा में असफल होता है तो इसके लिए वो या तो मूल्यांकन प्रणाली को अनुचित ठहराता है या फिर अध्यापक के पढ़ाने के तरीके पर सवालिया निशान लगाता है।

(ii मानसिक समायोजन-

हर व्यक्ति की अपनी मानसिक संरचना विशेष एवम् व्यक्ति निष्ठ होती है और वो इसी के आधार पर निर्णय लेने के लिए प्रयत्न करता है। इसलिए मानसिक संरचना विशेष के आधार पर लिये गये निर्णय को मानसिक समायोजन के वर्ग में श्रेणीबद्ध करते हैं।

समायोजन के लिए प्रयासरत व्यक्तियों की विशेषताएँ-

(i) रचनात्मक समायोजन-

जब मनुष्य किसी भी क्षेत्र में रचनात्मक तरीके से समायोजन की कोशिश करता है तो इस तरह के समायोजन की प्रवृत्ति को रचनात्मक समायोजन कहा जाता है। उदाहरण के लिए जब भी कोई व्यक्ति सामाजिक क्षेत्रों में सेवा के लिए व्यवहारिक गतिविधियों को अपनाता है लेकिन सफलता नहीं मिल सकने की हताशा में धार्मिकता की शरण में चला जाता है तो वो इस क्षेत्र में रचनात्मकता की प्रवृत्तियों को अपनाने लगता है। इसलिए इस तरह की व्यवहारिक प्रवृत्तियों को रचनात्मक समायोजन कहा जा सकता है।[3]

(i स्थानापन्न समायोजन-

जब भी कोई मनुष्य अपने कर्म क्षेत्र में असफलता की प्राप्ति करता है तो वह इस असफलता क लिए सदैव दूसरों पर ही आरोपण एवम् प्रत्यारोपण करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी क्षेत्र अलग में समायोजन स्थापित न कर सकने के कारण वह अपनी निराशा या कुंठा को दूसरे पर आरोप लगाकर समायोजित करने की कोशिश करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी परीक्षा में असफल होता है तो इसके लिए वो या तो मूल्यांकन प्रणाली को अनुचित ठहराता है या फिर अध्यापक के पढ़ाने के तरीके पर सवालिया निशान लगाता है।

(iii) मानसिक समायोजन-

हर व्यक्ति की अपनी मानसिक संरचना विशेष एवम् व्यक्ति निष्ठ होती है और वो इसी के आधार पर निर्णय लेने के लिए प्रयत्न करता है। इसलिए मानसिक संरचना विशेष के आधार पर लिये गये निर्णय को मानसिक समायोजन के वर्ग में श्रेणीबद्ध करते हैं।

सामाजिक रूप से समायोजन-

यह कहा जाता है और सामाजिक रूप से सत्य भी है वह आदमी एक सामाजिक सृजनहै।बिना समाज के उसके जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। जब से मनुष्य का धरती पर पदार्पण होता है, उसे समाज के साथ अनुक्रिया के द्वारा समायोजन करना ही पड़ता है। मनुष्य के बाल्यावस्था से ही समायोजन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। उदाहरण के लिए बच्चों के साथ क्रीडा करना, मित्रता आरम्भ करना में हिस्सा लेना तथा अन्यान्य रूचियों का विकास करना आदि। शनैः शनैः उसकी समाज

के प्रति अवबोधन क्षमता और रूचियाँ विकसित होने लगती है। अब वो अपने परिवेशों को समझना भी शुरू कर देता है।

(iv) व्यक्तित्व में संतुलन-

जिन व्यक्तियों में आवश्यकताओं की पूर्ति अनुसार भी समायोजन क्षमता अधिक होती है, तो उसमें वातावरण के अनुसार भी समायोजन करने की क्षमता सर्वाधिक है। ऐसे व्यक्तियों का जीवन संतुलित है। समाज के कल्याण के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति पूर्ण रूप से समायोजित हो और ऐसे ही लोग अपने परिवार समाज और संप्रदाय के लिए बेहतर और भले साबित होते है। क्योंकि यदि किसी व्यक्ति का समाज के साथ समायोजन नहीं हो पाता है तो ऐसे ही व्यक्ति समाज को भारी क्षति एवम् नुकसान पहुँचाते है। इसके अलावा दूसरे लोगों को भी इससे फायदा नहीं हो पाता। इसलिए आवश्यक है कि विद्यालय बालकों को भलीभाँति समायोजन स्थापित करने में सहयोग दें।[4]

अपने आप से और वातावरण से समायोजन स्थापित करना भी एक आवश्यक गुण है और इस क्षमता का विकास तभी संभव है, जब स्वयमेव इतनी अधिक शक्ति एवं क्षमता विकसित हो कि किसी भी तरह की निराशा एवं कुंठा या किसी भी तरह के बाहरी और भीतरी दबावों को झेलने की क्षमता विकसित हो ताकि सहनशीलता के गुण का विकास हो।

संदर्भ

1 Fuller, F.F. (1969). Concerns of teachers: A developmental conceptualization. American Educational Research Journal, 6,p. 162

2 Fuller, F.F. (1969). Concerns of teachers: A developmental conceptualization. American Educational Research Journal, 6,p. 162

3 Gilliam, W.S. & Zigler, E.F. (2001), A Critical Meta-analysis ofall Evaluations of State-funded Preschool from 1977 to 1998:Implications for Policy, Service Delivery and ProgramEvaluation. Early Childhood Research Quarterly, 15, 441-474.

4 Dev, Psychol (2013), A Study of Social-emotional Adjustmentlevels of Preschool Children in Relation to Peer Relationship,PMC, 41(5)

संस्कृत नाटको में प्रतिबिम्बित वर्ण-व्यवस्था

डॉ० सुमित कुमार मंडन

कृषि अर्थशास्त्र विभाग, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

किसी भी राष्ट्र की सम्पूर्ण गतिविधियां वहां के समाज द्वारा ही संचालित होती है। जितनी ही जिस राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था व्यवस्थित रहेगी, उतनी ही उस राष्ट्र का भविष्य दिनानुदिन समुज्ज्वल होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय संस्कृति के आधारस्तम्भभूत अपौरूषेय (वेद) ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में उल्लिखित है:-

ब्राह्मणो*स्यमुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।

ऋग्वेद 10/90/11

ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मणों को, भुजा से क्षत्रियों को, दोनों जंघाओं से वैश्यों को, तथा चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया।

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं गुणों एवं कर्मों के आधार पर चार वर्णों की सृष्टि की है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।

श्रीमद्भगवद्गीता 4/13

और आगे भी स्वाभाविक गुणों के आधार पर कार्यों का विभाजन किया गया-

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणः।

श्रीमद्भगवद्गीता 18/41

हमारे ऋषि महर्षियों ने समाजोत्थान के लिए ही वर्ण-व्यवस्था के बारे में गहन चिन्तन एवं मनन किया होगा जो समाजशास्त्रीय तत्वों के आधार पर विकसित हुई होगी। इसका चतुर्वर्ण में विभाजन सम्भवतः अर्थशास्त्र के सैधान्तिक आधार पर आधारित था। चारो वर्णों के अपने-अपने कर्तव्य सुनिश्चित थे। साथ ही साथ इन चारों वर्णो का एक अपना-अपना वैशिष्ट्य है। मनुस्मृति के 9वें एवं 10वें अध्याय में चारों वर्णो से युक्त विधि-विधानों का विस्तारपूर्वक मनु द्वारा वर्णन किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी उपरोक्त की चर्चा चर्चित है। गीता 18/42-44

जैसा कि सर्वविदित है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसमें भी काव्य, काव्यों में नाटक का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। कहा भी गया है-

''काव्येषु नाटकं रम्यम्''

नाटक हमारे यथार्थ जीवन के सर्वाधिक समीप है, उनका मानव जीवन और समाज के साथ अतिनैकट्य सम्बन्ध है। नाटक में पात्रों की वेश-भूषा, आकृति, भाव-भंगिमा, शब्दोच्चारण आदि किया-कलापों और कथनोपकथनों के माध्यम से समाज में अतुलनीय परिवर्तन होता है। संस्कृत नाटक की यह विशेषता है कि तात्कालीन युग के सामाजिक वर्गो, मान्यताओं, निष्ठाओं, आर्थिक एवं नैतिक व्यवस्थाओं तथा राजनीतिक प्रयोजनों को बड़ी ही सच्चाई से पेश करता है, जिससे समाज निश्चित ही प्रभावित होता है।

भारतीय नाटकों की यह महती विशेषता है कि वे सर्वदैव नियमतः सुखान्त ही होते हैं। नाटक के आरम्भ या अन्त में कितनी भी दु:खद तथा करूणोत्पादक घटनायें प्रदर्शित की जाय उनका अन्त सदा सुखद, कल्याणकारक तथा मंगलसाधक ही होता है। (संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0 477)

संस्कृत नाटक के काल खण्ड में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप बहुत ही मजबूत था। हमारा भारतीय समाज वर्ण-चतुष्टय रूपी श्रृंखला के शक्तियुक्त बंधन से बंधा हुआ था। नाटकों में लिखित चतुर्णा वर्णानामभयमिव.....। प्रतिमा 4/7

यदुतिष्ठति वर्णेभ्यो --------।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/14

असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणाम् रक्षिता -------।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/11 के बाद।

इत्यादि प्रयोग तात्कालिकी वर्ण-व्यवस्था के स्थिर एवं निश्चित स्वरूप के ही बोधक है। इन चारों वर्णों के विभाजन के चलते ही वर्ण परम्परा मर्यादायुक्त एवं मजबूत था। धार्मशास्त्रों द्वारा बतलाये गये ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के अलग-अलग आचार व्यवहार थे, जिससे वर्णानुसार सभी का कर्तव्य सुनिश्चित किया गया था। इन कर्तव्यों का अक्षरश: पालन करना सभी सामाजिकों के लिए अनिवार्य था। इन आदर्शों के पालन में राजा अपनी प्रजा के साथ निरन्तर प्रयत्नशील रहता था, जिसके कारण राजा को वर्ण-व्यवस्था का रक्षक (अभि0 5/11 के बाद) और चारों वर्णो को अभय (प्रतिमा 4/7) प्रदान करने वाला कहा गया है। राजा के देख-रेख में सभी लोग अपने-अपने वर्णानुसार वर्णधर्म का पालन करते थे, व नीच वर्ण भी कुमार्ग का अनुसरण नहीं करता था। वर्णधर्म व्यवस्था के सहयोग में राजा और प्रजा अनवरत् प्रयासरत थे-

न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/10

ब्राह्मण: चारों वर्णों में ब्राह्मण का स्थान प्रथम था, जिसका केवल वर्णों में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसकी पूजा होती थी-

द्विजोतमा पूज्यतमा: पृथिव्याम्।

मध्यमव्यायोग 1/9

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों ब्राह्मण की पूर्ण मनोयोग से पूजा करते थे। जब विशिष्ट ब्राह्मणों का आगमन होता था तब राजा उनके स्वागतार्थ अपने आसन को छोड़कर खड़ा हो जाता था। शायद इसी के चलते कण्व-शिष्यों के आगमन की सूचना प्राप्त कर ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में राजा दुष्यन्त अपना आसन छोड़कर अग्निगृह में उन लोगों की प्रतीक्षा करता था। ''मालविकाग्निमित्रम्'' में राजा अग्निमित्र आचार्य गणदास और हरदास को देखकर बड़े ही सम्मान के साथ उन दोनों को आसन प्रदान करता है-

स्वागतं भवद्भ्याम्।----- आसने तावदत्र भवतो:।

1/12 के बाद

ब्राह्मण द्वारा किये गये सभी अपराध क्षम्य थे-

सर्वापराधोऽवधयत्वान्मुच्यतां द्विजसत्तम:।

मध्यमव्यायोग 1/34

यदि ब्राह्मण पर हत्या का अपराध भी न्यायाधीश द्वारा सिद्ध होता है, तो भी उसे ससम्मान राष्ट्र से निकाल दिया जाता था। जैसा कि मृच्छकटिक में चारूदत को न्यायाधीश द्वारा अपराध सिद्ध होने पर उसे राष्ट्रनिष्कासन का दण्ड दिया गया-

अयं हि पातकी विप्रो न वधयो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मातु निर्वास्यो विभवैरक्षतै: सह।।

मृच्छकटिकम् 9/39

ब्राह्मण के प्राणों की रक्षा करने के लिए क्षत्रिय लोग अपनी प्राणों का न्योछावर करना भी धर्म मानते थे-

क्षत्रियकुलोत्पन्नोऽहम्। पूज्यतमा: खलु ब्राह्मणा:। तस्माच्छरीरेण ब्राह्मण शरीरं विनिपातुमिच्छामि।। मध्यमव्यायोग 1/पृ034

अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव शट् कर्माण्यग्रजन्मनः।।

मनुस्मृति 10/75

मनु द्वारा निर्दिष्ट ब्राह्मणों के ये परमकर्तव्य थे- अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह।

इनका पूर्ण पालन करना ब्राह्मणों के लिये अनिवार्य था। इन सभी में विद्याध्ययन को परम कर्तव्य और विद्या से आभूषणवत् सुशोभित होते थे-

विद्याविशेषालंकृतः किं कोऽपि ब्राह्मणयुवा काम्यते?

मृच्छकटिकम् 2/पृ0 93

ब्राह्मण ही वेद-वेदांगों के मनन-चिन्तक और वेदमन्त्रों के पठन-पाठन का सर्वाधिकारी था।

अध्ययन के साथ ही साथ अध्यापन भी ब्राह्मणों का विशेष धर्म था, जिसके महर्षि कण्व और आचार्य द्रोण साक्षात् मूर्ति ही है। इनके नित्य दिनचर्या में हवन, यज्ञादि का आयोजन सम्मिलित था-

भो नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि----- प्रतिमा गृहं प्रविष्टः।

प्रतिमा 3/पृ0 77

राजा आदि के द्वारा अयोजित यज्ञानुष्ठान आदि को सम्यक् सम्पादित करने के लिए विद्वान ब्राह्मणों को ही आहूत कर उन्हें पर्याप्त दक्षिणा प्रदान करने की परम्परा थी। पवित्र कार्यो में ब्राह्मण को दक्षिणा देना भी सम्मिलित था। सामाजिक उत्सवों -

वसन्तोत्सवोपायनलोलुपेनार्यगौतमेन कथितम् ---।

मालविकाग्निमित्रम् 3/पृ0 290

समारोहों एवं व्रत-उपवास आदि धार्मिक आयोजनों के सुअवसर पर ब्राह्मण को दक्षिणा देना बहुत ही पुण्य कार्य था-

आर्य! सम्पन्नं भोजनं निःसपत्नं च। अपि च दक्षिणा कापि ते भविष्यति।।

मृच्छकटिकम् 1/पृ0 20

कुछ ब्राह्मण ऐसे भी थे, जो दान-दक्षिणादि स्वीकार नही करते थे। ऐसे ही शर्विलक के पिता चारों वेदो के ज्ञाता और अप्रतिग्राहक अर्थात दान नही लेने वाले थे। मृच्छकटिकम् 3/पृ0 169

यज्ञोपवित ब्राह्मण का बड़ा ही उपकारक था-

यज्ञोपवितं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्------।

मृच्छकटिकम् 3/पृ0 155

बिना यज्ञोपवित के द्विज द्विजत्व का दावा भी नही कर सकता है। ब्राह्मणत्व के अभिज्ञान में अन्यान्य वेश-भूषा के साथ शिखा का भी एक प्रमुख स्थान निर्धारित था। बूढ़े ब्राह्मण का अत्यधिक उम्र होने पर यष्टि (लाठी) भी एक साधन था-

विप्रा यान्ति वयः प्रकर्षशिथिला यष्टि त्रिपादक्रमाः-----।

पंचरात्र 1/5

मनुस्मृतिकार के अनुसार जबकि ब्राह्मण की मुख्य वृत्ति अध्यापन, यज्ञादि ही है तथापि आपत्तिकाल में जीविकोपार्जन के लिए व्यापार, कृषि, गोपालन तथा वाणिज्य वृत्ति को स्वीकार कर सकता है। इसका साक्षात् प्रमाण मृच्छकटिकम् का चारूदत्त ही है जो जात्या ब्राह्मण होते हुए भी वाणिज्य एवं व्यापार की जीविकोपार्जन के लिए स्वीकार करने के कारण सार्थवाह संज्ञा से अभिहित हुआ-

अवन्तिपुर्य्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारूदत्तः।

मृच्छकटिकम् 1/6

क्षत्रिय: सामाजिक संरचना में चतुर्वर्णो में ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का ही स्थान सुनिश्चित है। इनका प्रमुख कर्तव्य प्रजानुरंजन, शासन, युद्ध आदि निर्धारित था। शुक्रनीतिकार ने क्षत्रियों के बारे में कहा है कि -

लोकसंरक्षणे दक्ष: शूरोदात्त: पराक्रमी, दुष्टनिग्रहशीलेय: स वै क्षत्रिय उच्चते।

शुक्रनीति 1/41

जो प्रजा के रक्षण करने मे निपुण हो शूर और पराक्रमी हो, और जो दुष्टों को दमन करने में समर्थ हो वही वास्तव में क्षत्रिय हो सकता है। इन्हीं क्षत्रियोचित आदर्शों के पालक के रूप में ये नाटकों में दृष्टिगोचर होते है। क्षत्रिय ही प्राय: शासक (राजा) हुआ करते थे। अपने सुखेच्छा को त्याग कर प्रजा के कल्याण में हमेशा लगे रहते थे, यह उनका प्रतिदिन का ही कार्य है-

स्वसुखनिरभिलाष: खिद्यसे लोकहेतो:।
प्रतिदिनमथवा ते वत्तिरेवं विधौव।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/7

इस बात की पुष्टि मनुस्मृति द्वारा भी हुई है। राजा अपनी प्रजा का ख्याल संतानवत् करता था। राजा दुष्यन्त ने यह उद्‌घोष किया कि प्रजा में जो-जो व्यक्ति अपने बन्धु से रहित हुआ हो, पाप को छोड़कर शेष बन्धु हमें ही समझे-

येन येन वियुज्यन्ते प्रजा: स्निग्धोन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6/23 क्षत्रियोचित गुणों में पूर्ण पराक्रमी और बलशाली सम्मिलित था। अपने शौर्य के बल पर ही ये दीन दु:खियों की रक्षा करते थे-

आर्तत्रणाय व: शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/11

प्रतिमा नाटक में रावण द्वारा सीता का हरण किया जा रहा था उसी समय सीता का यह वक्तव्य है कि यदि राम क्षात्र धर्म को मानते हों हमें अपने पराक्रम से बचा लें-

क्षात्रधर्मे यदि स्निग्ध: कुर्याद् राम: पराक्रमम्।

प्रतिमा 5/21

क्षत्रियों की सम्पत्ति उनके शस्त्र भी होते थे-

बाणधीना क्षत्रियाणां समृद्धि: -------।

पंचरात्र 1/24

वे ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों को भी न्योछावर करने में हमेशा तैयार रहते थे। प्रतिज्ञा पालन क्षत्रियों के लिए व्रत के समान था-

तस्मात् प्रतिज्ञां कुरू वीर!
सत्यां सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम्।

पंचरात्र 1/49

क्षत्रिय-कुमारों को धनुर्विद्या और शस्त्रविद्या का ज्ञान अनिवार्य था। विक्रमोर्वशीयम् नाटक में च्यवनऋषि अपने आश्रम में पुरूरवा के पुत्र आयु को अन्य विद्याओं के साथ क्षत्रियोचित धनुर्विद्या की शिक्षा देते है-

*गृहीतविद्यो धनुर्वेद*भिविनीत:।*

विक्रमोर्वशीयम् 5/पृ0246

वैश्य: वर्णाश्रम के कम में वैश्यों का स्थान तृतीय निर्धारित था इनके लिये नाटकों में वणिज-

वणिजयुवा वा काम्यते (मृच्छकटिकम् 2/पृ097) नैगम (विक्रमोर्वशीयम् 4/पृ0113), श्रेष्ठी (श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति मृच्छकटिकम् 2/पृ0 95), सार्थवाह, विश आदि शब्द प्रयुक्त किये गये है।

समाज में वैश्यों का गौरवपूर्ण स्थान था। राष्ट्र की समृद्धि के लिये अन्यान्य नगरों में भ्रमण कर व्यापार के माध्यम से अपने भी वैभव का विस्तार करते थे-

किमनेकनगराभिगमनजनितविभवविस्तारोवणिजयुवा।

मृच्छकटिकम् 2/पृ093

स्थल मार्ग के साथ-साथ समुद्र मार्ग से भी व्यापार करते थे इसका प्रमाण अभिज्ञानशाकुन्तलम् में समुद्रव्यापारी धनमित्र है।

शूद्रः भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्रो का स्थान अन्तिम माना जाता था। समाज में चारों वर्ण में शूद्र का स्थान नीच था-

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मुर्खोऽपि वर्णाधामः-------।

मृच्छकटिकम्1/32

विष्णुपुराण में भी आया है-

ब्राह्मणक्षत्रवैश्याश्च चरेन्नित्यममत्सरः।
कुर्वस्तु शूद्रः शूश्रूषा लोकान्जयति धार्मतः।।

विष्णुपुराण 5/9

इनका प्रमुख कार्य पूर्वोक्त तीनों वर्णो का सेवा करना था जिसमें ब्राह्मण की सेवा सर्वश्रेष्ठ है। अन्य वर्णों के समान शूद्रो को विशेषाधिकार नही प्रदान किया गया था। ये वेदमंत्रों के पठन-पाठन के अधिकार से वंचित थे। देवपूजन के समय बिना मंत्रोच्चारण के ये देवताओं को प्रणाम कर लेते थे-

----- वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रर्चितदैवतः।

प्रतिमा 3/6

मनुस्मृतिकार के अनुसार अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मो का अधिकारी न होने पर भी वह पाकयज्ञ कर सकता था। धर्मज्ञ और धर्म के अभिलाषी तथा सत्पुरूषों जैसे आचरण करने वाले शूद्र पंचमहायज्ञों को मन्त्ररहित अनुष्ठान करके यश का भागी हो सकते थे।

शूद्रों से ब्राह्मण छूआ-छूत का भेद रखते थे उनको हमेशा अपने से अलग रखते थे-

द्विज इव वृषलं पार्श्वे न सहते।

पंचरात्र 1/6

अन्यजः चारों वर्णों के अतिरिक्त कुछ उपजातियां भी थी। कुछ दो वर्णों के प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न वर्ण भी थी जिनकी संज्ञा अन्त्यज थी। कुछ विद्वान अन्त्यज की गणना शूद्रों में करते है। किन्तु दोनों में महान भेद है। अन्त्यज शूद्र (चाण्डाल) हो सकते है। ब्राह्मण और शूद्र से उत्पन्न पुत्र को चाण्डाल कहा जाता है। इनको मनु ने वर्णसंकर कहा है-

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधामो नृणाम्।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्ण संकराः।।

मनुस्मृति 10/12

चीन देश से आये हुए यात्री अपने यात्रा विवरण में लिखे है कि दास चाण्डाल नगर से बाहर ही निवास करते है। जब ये नगर में प्रवेश करते है तब उस समय लकड़ी की पट्टी से बाजा बजाते है, जिससे कि इनका लोगो से स्पर्श न हो सके- (फाह्यान का यात्र विवरण) मृच्छकटिक में भी-

अपसरत आर्याः अपसरतां किं प्रेक्षधवे-------।

मृच्छकटिकम् 10/पृ0 525

चाण्डालो का मुख्य आजीविका मछली मारना, शिकार करना और मांस बेचना था।

जाति-व्यवस्था: धीरे-धीरे सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ चारों वर्णों में अन्तर्जातीय विवाह होने लगा जिससे उत्पन्न सन्तान को वर्णसंकर कहा जाता था। मालविकाग्निमित्रम् में महारानी धारिणी का वर्णावर भाई वीरसेन वर्णसंकर सन्तान ही प्रतीत होता है-

अस्ति देव्या वर्णावरो भ्राता वीरसेनो नाम----।

मालविकाग्निमित्रम् 1/पृ0 266

धीरे-धीरे सौकर्यवश लोग अपने -अपने इच्छानुसार अनेक उद्योगों में संलग्न हुए जिसके कारण व्यवसायिक जातियों का आविर्भाव हुआ। जैसे- शिल्पी, धीवर, नापित, चर्मकार, कुम्भकार आदि जातियां है-

अहो बकुलावलिका। सखि! देव्या इदं शिल्पि सकाशादानीतम्----।

मालविकाग्निमित्रम् 1/पृ0263

चारो वर्णों के सामान्य धर्म है- क्षमा, दान, दया, त्याग, अनसूया, गुरू और शास्त्र का अनुगमन सत्य, ईश्वर और परलोक के अस्तित्व में विश्वास, इन्द्रियनिग्रह एवं ब्राह्मणों का सम्मान।

अन्त में समय तो परिवर्तनशील है लेकिन जो समाज को सही एवं सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए ही वर्ण व्यवस्था बनाया गया था। और उस व्यवस्था के अनुरूप ही सभी लोग अपने दायित्व समझकर उसको मनोयोग पूर्वक पूर्ण करते थे। जिससे तत्कालीन समाज उच्च पथ पर अग्रसर हो रहा था, लेकिन पाश्चात्य प्रभाव के कारण लोग अपने-अपने कर्तव्य को भार समझकर पथच्युत हो रहे है। साथ ही साथ देश काल परिस्थिति के अनुसार जो वैदिककालीन परम्परा निर्बाध गति से प्रवाहित हो रही थी उसको परिष्कृत एवं परिमार्जित करके वर्तमान पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने की महती आवश्यकता है, न तो लोग दिनानुदिन अपने धर्म, कर्म के मार्ग से भटक कर एक दिन समाज के अस्तित्व को भी समाप्त कर देंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कालिदास ग्रन्थावली रेवा प्रसाद द्विवेदी
2. मृच्छकटिकम् सम्पादक डॉ जगदीश चन्द्र मिश्रा
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य वलदेव उपाध्याय
4. मनुस्मृति सम्पादक केशव प्रसाद द्विवेदी
5. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व पंडित व्रज वल्लभ द्विवेदी
6. प्राचीन भारत का इतिहास भगवत शरण उपाध्याय

शिशुपालवधम्: एक राजनैतिक अवलोकन

पिंकी निशा

संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय पटना

डॉ० किरणमाला

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य में अलंकृत शैली के प्रबल समर्थक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। माघ का समय 675 ई. के लगभग मान्य है। उनके काव्य में कलापक्ष की कमनीयता एवं उत्कृष्टता से प्रभावित होकर ''माघे सन्ति त्रयो गुणा:''[1], मेघे माघे गतं वय:[2]'' तथा ''तावत् भा भारर्वेभाति यावन्माघस्य नोदय:[3]'', इत्यादि सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। शिशुपालवध का कथानक महाभारत से गृहीत है। इसमें वीररस, अड्गीरस के रूप में वर्णित है। माघ में पांडित्य पूर्णत: परिलक्षित होता है। उन्हें वेदशास्त्र, पुराण, दर्शन ओर राजनीतिशास्त्र आदि का विशद ज्ञान था। संस्कृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनके विषय में एक उक्ति है – ''नवसर्गगते माघेनवशब्दो न विद्यते[4]''।

उन्होंने महाभारत की कथा में अपनी उद्भावना शक्ति एवं कल्पना के प्रयोग के द्वारा अनेक परिवर्तन कर उसे विपुलकाय प्रबन्ध के रूप में वर्णित कर अपने कवित्व एवं पांडित्य का परिचय दिया है।

इसमें देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल का पूर्वजन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख श्री कृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, शिशुपाल का अभद्र व्यवहार और क्रुद्ध श्री कृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है।

राजनीति और साहित्य का घनिष्ठ संबंध है। कवि तत्कालीन राजनीति से प्रभावित होकर उसका वर्णन अपनी रचना में करता है। माघ भी इसके अपवाद में है। महाकवि माघ का राजनीति शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट है। उन्हें राजनीति के विभिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने षड्गुण-शक्तित्रय, अड्गपञ्चक, तीन उदय, विजिगिषु, द्वादश राजमण्डल आदि पारिभाषिक शब्दों का समीचीन प्रयोग किया है।

द्वितीय सर्ग में उद्धव और बलराम के मुख से तथा राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर और भीम के मुख से राजनीति के जटिल से जटिल समस्याओं का हल कराया है। इन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के अनुरूप राजनीति का वर्णन किया है। ''शिशुपालवध'' के समान राजनीति का वर्णन अन्य काव्यों में नहीं मिलता है। यों तो पूरे शिशुपालवध में यथा स्थान राजनीतिक सिद्धान्तों का समयक् निरूपण किया गया है, किन्तु द्वितीय सर्ग में राजनीति का भण्डार भरा हुआ परिलक्षित होता है।

''स्वशक्त्युपचये केचित् परस्य व्यसनेऽपरे।[5]
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम।।''

इसमें कुछ राजशास्त्राचार्यों के सिद्धांत के अनुसार, अपनी शक्ति की वृद्धि के समय शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिए और कुछ के अनुसार, ''शत्रु के विपदग्रस्त होने की स्थिति में चढ़ाई करनी चाहिए'' इस सिद्धांत के अनुसार शत्रु वध के लिए उदयत् होने के लिए प्रेरित किया गया है।

भारतीय राजनीतिशास्त्र की भाषा में संधि विग्रह, याद, आसन, द्वैधी भाव तथा समाश्रय ये राजनीति के छः गुण माने जाते हैं। प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति ये तीन शक्तियाँ हैं, इन तीन शक्तियों से उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ भी तीन प्रकार की हैं। वृद्धि, क्षय तथा स्थान ये तीन प्रकार के उदय कहलाते हैं। इनका निरूपण निम्न श्लोक में किया गया है –

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।[6]

ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुमेधसोऽप्यलम्।।

शत्रु को सम्यक् रीति से नष्ट किये बिना प्रतिष्ठा दुर्लभ है। धूलि को कीचड़ बनाये बिना जल स्थिर नहीं होता। इस तथ्य को निरूपित करते हुए कवि का कथन है –

''विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।[7]

अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते।।''

जिस प्रकार शून्यवादियों के मत में स्कन्धा पञ्चक को छोड़कर शरीर में अन्य आत्मा नहीं है, उसी तरह संधि, विग्रह आदि कार्यों में अङ्ग पञ्चक के अतिरिक्त मंत्र नहीं है। मंत्र की सिद्धि होनी चाहिए केवल पाठ नहीं, इस बात का उल्लेख निम्नलिखित श्लोक में द्रष्ट्व्य है–

''सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।[8]

सौगतानामिवात्माऽन्योनास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।

इस विषय में कामन्दकीय वचन भी द्रष्ट्व्य हैं।

''सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।''[9]

उपाय का आश्रम करने पर भी प्रमाद करने वाले पुरुष के कार्य नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि सोनेवाला व्याध मृग के रास्ते पर बैठा हुआ भी मृगों को नहीं मार सकता है।

''उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।[10]

हन्ति नोपशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान।।''

विजय की इच्छा करनेवाला अकेला बारह प्रकार के राजाओं में बारह प्रकार के सूर्य के बीच में दिनकर की तरह उत्साह को न छोड़ता हुआ उदय के लिए समर्थ होता है। अतः उत्साह की आवश्यकता बताते हुए कवि का कथन है–

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।''[11]

जिगिषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते।।

बुद्धि ही जिनका शस्त्र है, प्रकृति (राज्याङ्ग) जिसके अङ्ग हैं, भली भाँति ही मन्त्र-गुप्ति ही जिसका कवच है, और गुप्तचर ही जिसके नेत्र तथा दूत ही जिसके मुख हैं ऐसा राजा कोई लोकोत्तर पुरुष होता है।

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो धनसंवृतिकञ्चुकः।[12]

चारेक्षणो दूतमुखः पुरूषः कोऽपि पार्थिवः।।

एक कार्य रूपी सूत्र में बंधे हुए यातव्य, पृष्ठ ग्राही आदि बारह प्रकार के राजारूपी माला में अधिक तेजस्वी विजय राजा मध्यमणि की तरह कार्य करता है, अर्थात सर्वश्रेष्ठ होता है।

यातव्यपार्ष्णिग्राहादिमालामधिकद्युतिः।[13]

एकार्थतन्तुप्रोतायां नायको नायकायते।।

अपनी शक्ति का विचार करता हुआ सन्धि–विग्रहादिरूपी रसायन का सेवन करें। ऐसा करने से स्वाभ्यादि और हस्त–पादादि अङ्ग स्थिर और बलवान होते हैं।

''षाड्गुण्यमुपयुञ्जीतशक्तयपेक्षो रसायनम्।[14]
भवन्त्यस्येवउमड्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च।।''

शक्य कार्य में क्षमा करने वाले राजाओं की शक्तिपूर्वक सन्धिविग्रहादि प्रयोग करने पर वृद्धि होती है। अपने बल का विचार न करके आरम्भ करना क्षयसम्पत्ति का आदि कारण।

''स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरड्गिनाम्।[15]
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः।।''

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि माघ महावैयाकरण, दार्शनिक, राजनीति विशारद एवं नीतिशास्त्री भी थे। शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में उद्धव, श्रीकृष्ण एवं बलराम के संवाद के माध्यम से अनेक राजनीतिक गुत्थियाँ सुलझायी गयी हैं तथा राज्यशास्त्र के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है। राजनीतिशास्त्रानुसार राजा के बारह भेदों का वर्णन, सात राज्याड्गों तथा शत्रु के अठारह तीर्थों का वर्णन इनके प्रगाढ़ अनुशीलन का परिणाम है।[16]

''माघ'' और उनके ''शिशुपालवध'' के संबंध में कहा गया है -

''नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीरः प्रधानो रस
श्रृड्गारादिभिरड्गवान विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रस्थागमाद्य पायषिषयश्चैद्यावसादः फलं
धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्।।

संदर्भः

(1) प्रशस्तिपरख प्रसिद्ध उक्ति
(2) माघविषयक प्रशस्तिपरख उक्ति
(3) वही
(4) वही
(5) माघ - शिशुपालवधम् - 2/57
(6) वही - वही - 2/26
(7) वही - वही - 2/34
(8) वही - वही - 2/28
(9) कामन्दक - कामन्दकनीतिशार
(10) माघ - शिशुपालवधम् - 2/80
(11) वही - वही - 2/81
(12) वही - वही - 2/82
(13) वही - वही - 2/92
(14) वही - वही - 2/93
(15) वही - वही - 2/94
(16) डा. राजवंश सहाय हीरा - संस्कृत साहित्य कोश पृष्ठ-387

अपराध और दण्ड के सिद्धान्त

हरिओम गुप्ता

एल एल. एम., महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय बरेली

"उद्वेजयति तीक्ष्णेनप, मृदुना परिभूयते,

तस्ताद्यथार्हतो दण्ड: जयेतपक्ष मनाश्रित:।।" – कौटिल्य

शोध सारांश:- आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि "कठोरतम दण्ड से प्रजा विचलित होती है। कोमल दण्ड से प्रजा तिरस्कार करने लगती है। अत: दण्ड की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।" दंड का मूल उद्देश्य अपराध को रोकना है तथा प्रत्येक दंड का प्रभाव द पड़ता है (1) अपराध कृत्य को करने वाले व्यक्ति को पुन: ऐसा करने से रोकना (2) समाज के दूसरे सदस्यों को उसी प्रकार के अपराध को करने से रोकना[1] इससे पहले कि हम दण्ड के सिद्धान्तों की बात करें, ये जान लेना समीचीन होगा कि अपराध क्या है और दण्ड किसे कहते हैं? अपराध एक ऐसा कृत्य है जो समाज विरोधी है और जिसके लिए विधायिक ने दण्ड का प्रावधान किया गया है। दण्ड शब्द का अर्थ प्रमुख रूप से राजनीतिशास्त्र और प्रशासन के सम्बंध में किया जाता है। कामंदक नीतिसार, शुक्रनीति और महाभारत के शान्तिपर्व में दी गई परिभाषा के अनुसार अपराधों का दमन दण्ड कहलाता है और किसी को दण्डित करने के लिए जिस नीति को अपनाया जाताा है उसे ही दण्डनीति या दण्ड के सिद्धांत कहते हैं। प्राचीन साहित्यों को पढ़ने पर यह पता चलता है कि दण्ड और इसके सिद्धान्तों की उत्पत्ति राज्य संस्था की उत्पत्ति के साथ हुई होगी। महाभारत के शांन्तिपर्व में कहा गया है कि मानवजाति की प्रारिम्भक स्थिति अत्यन्त पवित्र, दोषरहित कर्म, सत्प्रकृति आदि की थी जब न तो कोई राज्य था, न कोई राजा था, न दण्ड था और न दण्डी था। लोग धर्माचरण के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करते थे। श्लोक कुछ इस प्रकार है:-

"न राज्यो न च राजासीत, न दण्डो न च दाण्डिका।

स्वमेव प्रजा: सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्य्।।"

मुख्य शब्द: दण्ड, अपराध, दण्ड के सिद्धान्त

कैली के अनुसार - अपराध उन अवैधानिक कार्यो को कहते हैं, जिनके बदले में दण्ड दिया जा सकता है और वे क्षम्य नहीं होते।

स्टीफेन के अनुसार - अपराध से अभिप्राय ऐसे अधिकारों के अतिक्रमण से है, जिनका परिमाण उस अतिक्रमण से संबंधित समाज में फैली हुई दुष्कृतियों से है।

आस्टिन के अनुसार - अपराध वे अवैधानिक कृत्य हैं, जिनके साबित हो जाने पर न्यायालय दण्ड देता है।

अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था प्राचीन समय से चली आ रही है। मनुस्मृति में अपराध को महापातक, अनुपातक तथा उपपातक आदि तीन भागों में विभाजित कर कठोर दण्ड की व्यवस्था की है।

जहाँ तक दण्ड के सिद्धान्तों का प्रश्न है, यह सभ्य समाज की देन है। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ है, दण्ड की व्यवस्था भी बदल गई है।

दंड विधि का विकास:- दंड विधि के विकास के इतिहास का अध्ययन क्रमशाह प्रारंभिक रोमन दंड विधि, प्रारंभिक आंगल दंड विधि,और प्रारंभिक भारतीय दंड विधि के अनुक्रम में किया जा सकता है

प्रारंभिक रोमन दंड विधि:- रोमन विधि विशेषकर उसकी दंड विधि ने यूरोप के हर राष्ट्र की विधि पर अपना व्यापक प्रभाव डाला है[2] अत: रोम में उसके विकास का इतिहास जानना आवश्यक है रोम की प्राचीनतम दंड विधि twelve tables 420 ईसा पूर्व

में लिखी गई थी इनमें से आठ में पटल पर अपराधों का उल्लेख किया गया था जिसे डे डेलिक्टिसकी संज्ञा दी गई थी इसमें 26 items थे जिसमें विभिन्न प्रकार के अपराधों का उल्लेख किया गया था इन के अध्ययन से ज्ञात होता था कि उस व्यक्ति में उस समय बहुत अधिक शक्ति निहित की गई थी जिसे दंड विधि का प्रशासन देखना पड़ता था।

दण्ड[3] के मुख्यतया चार प्रयोजन माने गए हैं, जिन्हें हम दण्ड के सिद्धान्त भी कह सकते हैं:-

(1) निवारणार्थ सिद्धान्त- अपराध के निवारण हेतु

(2) निषेधात्मक सिद्धान्त - अपराध के निषेध हेतु

(3) प्रतिकारात्मक सिद्धांत - बदला लेने हेतु

(4) सुधारात्मक सिद्धान्त - अपराधी में सुधार हेतु।

(1) प्रतिशोधात्मक सिद्धान्तः- दण्ड का प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त प्रतिशोध या बदले की भावना पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी को उसके अनुपात में ही दण्डित किया जाना चाहिए। कॉण्ट के अनुसार यह सिद्धान्त फ्जैसे को तैसाय् वाली लोकोक्ति पर आधारित है।

अधिकांश दण्डशास्त्री दण्ड के प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते, क्योंकि उनके विचार से अपराधी को दण्डित इसलिए नहीं किया जाता कि वह अपनी करनी का फल भोगे, बल्कि इसलिए किया जाता है कि समाज से उसे दूर रखा जाना अपराधों के निवारण में सहायक होता है। यही कारण है कि वर्तमान दण्डशास्त्री इस सिद्धान्त में अधिक रुचि नहीं दिखाते हैं तथा प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त का महत्व दिनों-दिन घटता जा रहा है।सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया आंख के लिए आंख का सिद्धांत ना तो उचित है और ना ही वांछनीय है दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (3) में वर्णित नियम इसे स्वीकार नहीं करते हैं[4]

(2) प्रायश्चितात्मक सिद्धान्तः- दण्ड के प्रायश्चितात्मक सिद्धान्त से आशय यह है कि अभियुक्त को दण्डित कर कारागार में इसलिये रखना आवश्यक है कि उसे अपने किये पर पश्चाताप करने का अवसर मिले। कारागार में जब दण्डित अपराधी एकान्त पाता है, तो उसके मन में सहज ही अपने कुकृत्य के प्रति पश्चाताप और आत्मग्लानि उत्पन्न होती है। प्रसिद्ध दार्शनिक विधिशास्त्री हीगेल ने भी दण्ड के प्रायश्चितात्मक सिद्धान्त का समर्थन किया है।

एकांत कारावास का उद्देश्य प्रायः यही है कि अभियुक्त को अपने अपराधकृत्य के लिए पश्चाताप करने का अवसर मिले और वह आत्मग्लानि के परिणामस्वरूप स्वयं को स्वस्थ नागरिक के रूप में पुनर्स्थापित कर सके।

(3) निरोधात्मक सिद्धान्तः- इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी को कारावासित करके पुनः अपराध के प्रति उसमें अरुचि उत्पन्न करना अपराध की रोकथाम का सर्वोत्तम उपाय माना गया है। इस प्रकार का अपराधी की अपराध करने की इच्छा को समाप्त कर देता है, जिससे वह पुनः अपराध की ओर अग्रसर न हो। हत्या करने वाले अपराधी को मृत्युदण्ड दिया जाना निरोधात्मक दण्ड का उदाहरण है।दंड या उसकी व्यवस्था यदि सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाती है तो उसकी प्रतिष्ठा में कमी आती है भाभी अपराधियों में भय उत्पन्न करने तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित दंड दिया जाना आवश्यक है[5]

आलोचकों का मत है कि यह सिद्धान्त अधूरा है, क्योंकि इसके अन्तर्गत अपराधी को केवल समाज से पृथक् रखे जाने पर जोर दिया गया है, न कि इस दौरान उसके सुधार पर; लेकिन अपराधी को सदैव के लिए तो कारागार में नही रखा जा सकता है, क्योंकि उसकी कालावधि समाप्त होते ही वह समाज में लौटेगा और संभवतः अधिक समाज विरोधी बन जाने के कारण पुनः अपराध करेगा। अतः अपराधी की मानसिकता में सुधार किया जाना परम आवश्यक है।

(4) सुधारात्मक सिद्धान्तः- अपराध एवं अपराधियों के प्रति वैज्ञानिक उपागमन ने यह पूर्णतः सिद्ध कर दिया कि यातनात्मक दण्ड प्रभावोत्पादक न होकर अपराधियों को अधिक खतरनाक तथा समाजद्रोही बना देता है। आपराधिक न्याय-प्रशासन में अमानुषिक एवं क्रूर दण्ड देकर उसके व्यक्तित्व को नष्ट नहीं किया जाना चाहिये। बल्कि उपचारात्मक दण्ड पद्धति द्वारा उसे समाज में पुनर्वासित करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

सामण्ड ने सुधारात्मक दण्ड-पद्धति के विषय में तीन प्रमुख आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। प्रथम यह कि इस पद्धति के अन्तर्गत अपराधियों को शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए कारागारों को सुखद आवास-गृहों में परिवर्तित करना होगा। ऐसे आरामदेह कारागारों में रहने वाले कैदियों के मन से दण्ड का भय पूर्णतः समाप्त हो जायेगा और वे स्वयं के सुधार की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देंगे। द्वितीय यह कि सुधारात्मक दण्ड का उन अपराधियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जो स्वभावतः दुश्चरित्र, कुकर्मी या हिंसात्मक प्रवृत्ति के हैं।

वर्तमान में सुधारात्मक दण्ड प्रणाली ही सबसे ज्यादा प्रचलित और समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के बीच मान्य है। इसका आधार है, अपराध से घृणा करना चाहिए, अपराधी से नहीं।।

"सभ्यता के विकास के क्रम में भी यद्यपि सभी देशों में संभावित दोषियों के प्रति दोषों के गंभीर परिणाम और दंडयातनाओं का भय उपस्थित करने के लिय कठोर अवरोधक दंड दिए जाते रहे हैं, पर कभी-कभी सुधारात्मक प्रवृत्तियाँ भी उठती रही हैं।

प्राचीन रोम में दोषी को जेल में डाल देना मात्र ही सबसे बड़ा दंड माना गया और उसके बाद कोई यातना आवश्यक नहीं समझी गई । भारतवर्ष में कौटिल्य की रचनाओं में अपराधी को कारगर में प्रायश्चित्त कराने और अपने पापों का बोध कराने की व्यवस्था के द्वारा उन्हें विशुद्ध कराने का उल्लेख मिलता है।

अशोक ने भी अपने चतुर्थ स्तंभलेख में व्यवहारसमता और दंडसमता के साथ शुद्धचरित्र, वाले दोषियों के दंडों को कम करने का आदेश दिया है। ये बातें दंड विधान की सुधारात्मक प्रवृत्ति की ही द्योतक हैं।

स्मृतियों में धिग्दंड अथवा वाग्दंड की चर्चाएँ आती हैं, जो सर्वदा कायदंड और वधदंड से पहले आता था। उसका तात्पर्य यह था कि सामाजिक निंदा मात्र से यदि काम चल जाय तो कठोर यातनाओं की आवश्यकताएँ ही क्या 20वीं सदी में दंडविधान को सुधारात्मक स्वरूप देने के प्रयत्न लगातार किये जा रहे हैं। 1872 ई में लन्दन में एक अंतरराष्ट्रीय जेल सुधार और दंडविधान के किसी अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को निश्चित करने के लिये सभा का आयोजन किया गया था।समाज की सुरक्षा तथा आपराधिक प्रवृत्ति को समाप्त करना विधि का उद्देश होना चाहिए जिसे केवल उचित दंड व्यवस्था के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है[6]

Bachan Singh v- State of Punjab[7] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने विरल से विरलतम मामलों में ही मृत्युदंड देने का सिद्धांत स्थापित किया है

Mithu v- State of Punjab[8] सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 303 को असंवैधानिक घोषित किया गया

यह न्यायालय का कर्तव्य है कि अपराध के लिए दोषी पाए जाने वाले व्यक्ति को विधि द्वारा वृद्ध दंड आरोपित करें स्त्रियों के विरुद्ध किए गए लैंगिक अपराधों के साथ कठोरता और कढ़ाई का बढ़ता किया जाना और भला संघ के लिए दोस्त से दो व्यक्ति के साथ ग्रुप पर दंड का रोपण किया जाना चाहिए[9]

[10]धीरे धीरे कठोर दंडों के स्थान पर अपराधी के नैतिक जीवन के सुधार को ही लक्ष्य माना जाने लगा है । उसमें भय की अपेक्षा आशा अधिक रखी जाने लगी है। दंड के सुधारात्मक सिद्धांत में उसका विधान दोषी की अवस्था, सामाजिक वातावरण और स्थितिविशेष के आधार पर किया जाता है। दोषों के लिये समाज और वातावरण को भी उत्तरदायी माना जाता है। अतः दोषी को सुधारने के लिये मनोवैज्ञानिक उपायों का प्रयोग, उसका वैयक्तिक स्तर पर विचार, दोषी बालकों के लिय सुधारगृह की व्यवस्था, औद्योगिक शिक्षा, साधारण शिक्षा, नैतिक और धार्मिक व्याख्यान और अन्य सुनियोजित व्यवस्थाएँ की जाती हैं।

असंभव नहीं कि कुछ सदियों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को छीन लेना ही (जेल में रखना) सबसे बड़ा दंड माना जाए और मानव स्वभाव इतना उदात्त और पवित्र हो जाये कि मृत्यु दंड और आजीवन कारावास जैसे दंडों की आवश्यकता ही न रहे।

संदर्भ

1 Halsburys law in England,3rd Edn.
2 STEPHEN,HISTORY OF ENGLISH CRIMINAL LAW,VOL I,P.48
3 मनुस्मृति में लिखा है कि दंड मानव समूह पर शासन करता है दंड ही उसकी उनकी सभी ओर से सुरक्षा करता है दंड जागता रहता है जबकि सब सोए हुए हैं अतः विद्वान पुरुष दंड को ही धर्म मानते हैं
4 Sheikh Giasuddin v State of A.P.(1977)3SCC287:1977SCC(cri)496.
5 Earabhadrappav.State of Karnataka (1983)2SCC330:1983SCC(cri)447.
6 Sevaka Perumal v.State of Tamilnadu,(1991)3SCC471:1991SCC(cri)724
7 (1980)2SCC684:1980SCC(cri)580:AIR1980SC898.
8 AIR01983 SC 473.
9 State of M.P.v Babulal,(2008)1SCC234(2008)1SCC(cri)188.
10

हिंदी दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त मानवीय संवेदनानाएंः एक अध्ययन

भानु प्रताप

शोध निर्देशक (हिंदी विभाग), बुंदेलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

सारांश

साहित्य मानवीय भावनाओं की वास्तविक अभिव्यक्ति है। चौतन्य जगत में, जब एक सामान्य, सरल जीवन बाधाओं के मौन से प्रबल हो जाता है, तो जीवन उससे छुटकारा पाने के लिए हाथापाई शुरू कर देता है। वाणी संकलन, अभिव्यक्ति बनाने और दिल की गहराइयों को छूने में सक्षम है।

'मानवत' के बिना किसी भी समाज के अस्तित्व की कल्पना करना संभव नहीं है। समाज उस समाज के निवासियों की स्थिति, विचारधारा और प्रचलित मानवीय मूल्यों के आधार पर बनता और विकसित होता है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में नैतिकता का पतन समाज के सभी क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। निस्संदेह इसका कारण मानवीय मूल्यों का क्षरण है। बचपन से ही मानवीय नैतिक मूल्यों का विकास करने वाली दादी-नानी द्वारा सुनाई गई कहानियाँ चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन कहानियों के माध्यम से बच्चों को मानवीय नैतिक मूल्यों से अवगत कराया गया, जिसके परिणामस्वरूप समाज में सद्भाव और आपसी सद्भाव का निर्माण हुआ। मानव नैतिक मूल्यों को मानव समाज की स्थापना के समय से ही माना जाता रहा है, क्योंकि ये मूल्य समाज को संगठित और मार्गदर्शन करते रहे हैं। ये मूल्य मनुष्य के बिना मौजूद नहीं हैं।

साहित्य मनुष्य की उदात्त भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति है। इस आधार पर साहित्य का सीधा संबंध मानवीय नैतिक मूल्यों से है। संक्षेप में, मानव नैतिक मूल्य मानव समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और साहित्य इन मूल्यों का संरक्षण और पोषण करता है। हिंदी के नैतिक मूल्यवादी साहित्य ने मानव समाज को मानवीय नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए सदैव प्रेरित किया है। हिन्दी साहित्य न केवल 'कला के लिए कला' के सिद्धांत का पालन करता है, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों का एक समूह, परंपरा से संपर्क और जीवन मूल्यों का संरक्षण हिंदी साहित्य का लक्ष्य है।

मूल शब्दः मध्यकालीनता, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, दलित, संस्कृति, प्रवचन, अवधारणा, प्रासंगिकता, समाज, उपेक्षा, शोषण, अस्पृश्यता आदि।

परिचय

'दलित' शब्द भारतीय समाज में एक विशेष वर्ग के लिए इस्तेमाल की जाने वाली आधुनिक भावना का प्रतिबिंब है, जिसे हिंदी शब्दकोश में 'रौंदा या कुचला' के रूप में वर्णित किया गया है। भारतीय समाज जाति व्यवस्था पर आधारित समाज रहा है, जिसके कारण निम्न और उच्च जाति संरचना की अवधारणा पाई जाती है, अर्थात समाज में, एक विशेष वर्ण द्वारा दूसरे को निम्न कहकर उत्पीड़ित, उपेक्षित किया जाता है।

भारतीय साहित्य में दलित साहित्य को एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। इसमें कोई शक नहीं है। दलित साहित्य ने एक व्यापक वर्ग बनाया है। जिन लेखकों को उनकी भाषा, विचार और संवेदनशीलता से जानबूझकर बहिष्कृत और हाशिए पर रखा गया था, वे

अपने साहित्य को केंद्र में ले आए। दलित साहित्यिक चेतना महानगरों से लेकर गाँवों और देहात तक पहुँची।

दलित साहित्य स्वयं जीवन की अभिव्यक्ति है। हिंदी दलित साहित्य के कारण हिंदी समृद्ध और सक्षम हो गई है। भारत के बाहर कई देशों में हिंदी पढ़ाई जाती है। दलित साहित्य अब विदेशी साहित्यकारों से अपरिचित नहीं है। बल्कि बहुसंख्यक दलित साहित्य को भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों को जानने को प्राथमिकता दे रहे हैं।

आत्मकथा हिन्दी साहित्य में गद्य का एक रूप है। आत्मकथा में व्यक्ति यादों से अपनी कहानी खुद लिखता है। आत्मकथा में निष्पक्षता है। दलित साहित्य का तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन पर केंद्रित साहित्यिक आंदोलन से है, जिसकी उत्पत्ति दलित पैंथर से मानी जाती है। हिंदू सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण दलितों को न्याय, शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया। उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अछूत माना जाता था। दलित साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है, जहां दलित पैंथर आंदोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों के लेखकों ने लेखों, कविताओं, निबंधों, आत्मकथाओं, व्यंग्यों, कहानियां आदि के माध्यम से अपनी भावनाओं, दर्द, दुखों और पीड़ाओं को आम जनता के सामने व्यक्त किया।

आत्मकथाएँ दुनिया की सभी भाषाओं में लिखी जाती हैं। लेकिन इसे एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय, मराठी में रचित दलित आत्मकथाओं को दिया जा सकता है। मराठी दलित आत्मकथाओं से प्रेरणा लेकर, भारत की अन्य भाषाओं में भी दलित आत्मकथाएँ लिखी गई। हिंदी दलित आत्मकथाएँ लिखने से भी इसकी जड़ें मजबूत हुई।

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाएं

भगवान दास की पहली सामाजिक आत्मकथा हिंदी में – 'मैं भंगी हूं' प्रकाशित हुई थी। उस समय दलित आत्मकथा को इतनी प्रतिष्ठा भी नहीं मिली थी। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 'मैं भंगी हूं' कोई व्यक्तिगत आत्मकथा नहीं है, बल्कि एक पूर्ण जाति की सामाजिक आत्मकथा होने के कारण दलित साहित्य के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण होते हुए भी यह कृति इसके दायरे में नहीं आती है। रचनात्मक दलित आत्मकथा। रचनात्मक दलित आत्मकथा लिखने में पहल करने वाले मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कौशल्या बैसंत्री, श्योराज सिंह बेचन, कुसुम वाययोग, सूरजपाल चौहान, रूपनारायण मिश्रा आदि प्रमुख हैं।

मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' (1995) लिखने के बाद सामाजिक आत्मकथा 'मैं भंगी हूं' भी खूब चर्चा में आई। लेकिन साहित्य की पहली आत्मकथा का दर्जा 'अपने अपने पिंजरे' को दिया गया है। फिर ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (1996), कौशल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' (1999), श्योराज सिंह बेचौन 'मेरा बचपन मेरे कंधों परश, डॉ. डी.डी. आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिलश, नाथूराम सागर 'मुझसे चोर कहा' (1996), अमर सिंह चौहान 'गुलामी में मुझे गुलामश, माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवनश, सूरजपाल सिंह चौहान 'तिरस्कृत' (2002) और 'सतपत' (2006), रूपनारायण सोनकर 'नागफनी' (2007), तुलसीराम 'मुर्दहियाश(2010) तथा मणिकर्णिका (2014), आदि ने अपनी जड़ें मजबूत कीं। इतना ही नहीं मोहनदास नैमिश्यराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो चुका है। कुल मिलाकर हिंदी आत्मकथा की शुरुआत बहुत ही कम समय में परिपक्व हुई है।

अपने-अपने पिंजरे

'अपने-अपने पिंजरे' (1995) को हिंदी साहित्य की पहली दलित आत्मकथा माना जाता है। इस आत्मकथा के लेखक मोहनदास नैमिश्यराय हैं। उन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास भी लिखे हैं। मोहनदास ने इस आत्मकथा की शुरुआत अपनी पत्रकारिता शैली में अपने शहर मेरठ के विस्तृत विवरण के साथ की है। जिसमें 1857 के प्रथम युद्ध में पंडित नेहरू का इम्पल कार में कई बार शहर का दौरा और अंबेडकर का शहर का दौरा आदि का उल्लेख किया गया है। इस शहर के बाद लेखक निजी जीवन का चित्रण करता हुआ दिखाई देता है। बचपन में माँ की मृत्यु और उसके बाद पिता की दूसरी शादी का उल्लेख है। ताई माँ उसे उठाती है। उनके गाँव की बस्ती में चमार जाति के अस्सी घर थे, उनका काम मेहनताना था। भैंस और गाय के मांस को आम तौर पर खाए जाने के भी चित्रण हैं।

जूठन

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में आर्थिक, गरीबी, सामाजिक उपेक्षा, घटिया परिस्थितियों, अभाव, विपत्ति, कड़वे अनुभव का यथार्थवादी चित्रण है जो लेखक ने 'जूठन' में अनुभव किया है। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था, छुआछूत, जातिगत भेदभाव का सजीव चित्रण 'जूठन' में किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा, 'जूठन' में इसे गंभीरता से लिया गया है। प्रस्तुतीकरण और भाषा के स्तर पर यह रचना पाठकों की अंतरात्मा को झकझोर देती है। भारतीय जीवन में निर्मित जाति-व्यवस्था के प्रश्न को इस कृति में गहन चिन्तन के साथ उठाया गया है। दलितों का दर्द और उनका संघर्ष पाठक की भावनाओं से जुड़कर मानवीय संवेदना को जगाने का प्रयास करता है, इसीलिए यह पुस्तक पाठकों के बीच इतनी लोकप्रिय हो गई है।

तिरस्कृत

आत्मकथा 'तिरस्कृत' (2002) के लेखक सूरजपाल चौहान हैं। उसके बाद लेखक 'संतप्त' नामक एक और आत्मकथा लिखता है। सूरजपाल एक कवि और कहानीकार भी हैं। इस आत्मकथा के आरंभ से लेकर अंत तक हमें गाँव और शहर के उच्च जाति के लोगों द्वारा दलितों को कैसे प्रताड़ित किया जाता है, इसका हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है।

नागफनी

'नागफनी' के आत्मकथाकार रूपनारायण सोनकर एक सफल नाटककार और उपन्यासकार भी हैं। हाल ही में उनके उपन्यास 'डंक' और 'सूरदन' ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों की कतार में खड़ा कर दिया है। इन दोनों उपन्यासों की चर्चा लंबे समय तक चलेगी। नागफनी की आत्मकथा में सोनकर जी ने अपमान, शोषण और असमानता के दर्द को उजागर किया है।

दोहरा अभिशाप

कौशल्या बैसंत्री ने आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' लिखी है। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा को हिंदी दलित साहित्य की पहली महिला आत्मकथा माना जाता है। कौशल्या बैसंत्री की यह आत्मकथा उनके जीवन के प्रत्येक पर्व को पाठकों के सामने जिस प्रकार प्रस्तुत करती है, वह साहस का कार्य है। इस आत्मकथा की एक विशेषता इसकी भाषा है, जो जीवन के गंभीर और कड़वे अनुभवों को तटस्थ भाव से व्यक्त करती है। एक दलित महिला को दोहरे अभिशाप से गुजरना पड़ता है - एक महिला होने के नाते, दूसरी दलित होने के नाते। कौशल्या बैसंत्री इन दोनों शापों को एक साथ जीती हैं, जो उनके अनुभव की दुनिया को गहरा करती हैं।

शिकंजे का दर्द

सुशीला ने आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' लिखी है। सुशीला टाकभौरे की इस आत्मकथा में जिस तरह से उनके पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष को शब्दों में बयां किया गया है, वह इसे दलित साहित्य में एक विशेष स्थान देता है।

एक आत्मकथाकार स्त्री होने के दर्द और दलित जीवन की विसंगतियों को व्यक्त करने में सफल रहा है, इसलिए यह दलित साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है।

मुर्दहिया

तुलसीराम, 'मुर्दहिया' आत्मकथा के लेखक हैं। 'मुर्दहिया' पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक ग्रामीण इलाके में शिक्षा के लिए संघर्ष कर रहे एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है। जहां सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विसंगतियां कदम दर कदम दलित के रास्ते में आड़े आ रही हैं और उसके भीतर हीन भावना पैदा करने की तमाम साजिशें रच रही हैं। लेकिन एक दलित अपने आत्मविश्वास के बल पर इन सभी विसंगतियों को दूर करने के लिए संघर्ष करता है और बड़े विश्वविद्यालय में विदेशी भाषा का विद्वान बन जाता है। यह इस कार्य को गंभीर चिंता का विषय बनाता है, जिसे पाठकों और आलोचकों ने स्वीकार किया है।

मणिकर्णिका

मणिकर्णिका प्रसिद्ध दलित साहित्यकार डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' का दूसरा भाग है। हिंदी दलित आत्मकथाओं में डॉ. तुलसीराम का पहला खंड 'मुर्दहिया' 2010 में प्रकाशित और दूसरा खंड 'मणिकर्णिका' 2013 में दलित समाज की त्रासदी और भारतीय समाज की विडंबना का एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आख्यान है। यह कार्य समाज, संस्कृति, इतिहास और राजनीति की उन परतों को उजागर करता है जो अब तक अनकही और अछूती थीं। भारतीय समाज की सच्चाई का आईना दिखाता है बुद्धिजीवी, देखिए कैसी है 21वीं सदी के भारत की तस्वीर? यह सिर्फ एक आत्मकथा नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण दलित साहित्य की पीड़ा का वास्तविक रूप है, यह उनका अनुभव है।

निष्कर्ष

दलित साहित्य में उपन्यास शैली का विस्तार होना अभी बाकी है। शायद अनुभव के सटीक अनुभव को व्यक्त करने के दबाव ने दलित साहित्य में कलात्मक निर्माण में बाधा डाली। हालांकि, अपनी बात को व्यक्त करने के लिए कलात्मक पैमाने को ठीक कर इसकी स्वाभाविकता को नष्ट करने का खतरा है। सुशीला टाकभौरे का उपन्यास 'तुम्हे बदलना ही होगा' अपनी सामग्री और प्रवाह के कारण ध्यान आकर्षित करता है। सुशीला जी की निगाहें समाज के कई सवालों पर टिकी हैं। दलित साहित्य की मुख्य चिंता जातिवाद का अंत है। यह चिंता उनके उपन्यास में व्यक्त की गई है। उनके उपन्यास में प्रस्ताव है कि लोग अंतर्जातीय विवाह करते हैं लेकिन उच्च जातियां काफी हद तक अंतर्जातीय विवाह करती हैं। यह रवैया बदलना होगा, तभी समाज से जाति का खात्मा होगा। दलित साहित्य की आलोचना भी विकसित की जानी चाहिए। दलित साहित्य का दलित दृष्टिकोण से आलोचनात्मक मूल्यांकन अभी भी एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है।

इस प्रकार, पिछले डेढ़ दशक से दलित आत्मकथाकारों ने कुछ ऐसी आत्मकथाएँ लिखी हैं, जिनसे दलित साहित्य ने हिंदी साहित्य को बल के साथ अपना अस्तित्व बनाया है। दलित साहित्य न केवल साहित्य के बारे में जानकारी देता है, बल्कि समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, इतिहास, दर्शन आदि के बारे में जानकारी देता है और यह सब आम आदमी द्वारा बोली जाने वाली भाषा में होता है। इसमें सबसे बड़ी भूमिका हिंदी दलित साहित्य की है।

ग्रंथसूची

1. वीर भारत तलवार: 'दलित साहित्य के बढ़ते कदम', हिंदी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन (सं हरिराम), अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली, 2017
2. सुशीला टाकभौरे: शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2011
3. मोहनदास नैमिशराय: रंग कितने संग मेरे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2019
4. पुनीता जैन: हिंदी दलित आत्मकथाएँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
5. हरिराम: 'अपने-अपने पिंजरे में दलित समाज', हिंदी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन (सं हरिराम), अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली, 2017
6. अतिथि सम्पादक श्यौराज सिंह 'बेचौन', सत्ता-विमर्श और दलित विशेषांक, हंस (सं. राजेंद्र यादव)
7. मैनेजर पाण्डेय: 'तुलसीराम की आत्मकथा: अनुभव और सोच का संगम', तुलसीराम व्यक्तित्व और कृतित्व, (सं. श्रीधरम),
8. अजमेर सिंह काजल: 'मेरा बचपन मेरे कंधो पर', हिंदी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन (सं हरिराम), अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली, 2017
9. पुनीता जैन: हिंदी दलित आत्मकथाएँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
10. मोहनदास नैमिशराय: हिंदी दलित साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2018
11. हरिराम: 'दोहरा अभिशाप में दलित स्त्री संघर्ष', हिंदी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन (सं हरिराम), अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली, 2017

12. बजरंग बिहारी तिवारी: दलित साहित्य: एक अंतर्यात्रा, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015
13. तुलसीराम: मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाचवाँ संस्करण, 2016
14. जितेन्द्र यादव: 'मुर्दहिया और अन्धविश्वास', अपनी माटी (अंक 22), अगस्त, 2016, http://www.apnimaati.com/2016/01/blog-post_76.html
15. प्रभु लाल वर्मा: हिंदी में महिला आत्मकथाकारों का आत्मकथा लेखन, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, 2017
16. पुनीता जैन: हिंदी दलित आत्मकथाएँ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
17. मोहनदास नैमिशराय: हिंदी दलित साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2018
18. जय प्रकाश कर्दम: दलित साहित्य सामाजिक बदलाव की पटकथा, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016
19. ओमप्रकाश वाल्मीकि: जूठन (भाग-एक), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, 2017
20. तुलसीराम: मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाचवाँ संस्करण, 2016
21. मोहनदास नैमिशराय: अपने-अपने पिंजरे (भाग दो), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000

उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण व शिक्षा

आरती कनौजिया

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र, शषिभूषण गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ

भारत में समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग चुनकर अप्रैल, 1951 से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास की यात्रा शुरू की गई। आर्थिक विकास में हमें यघपि सफलताएँ मिली परन्तु फिर भी अपेक्षित स्तर तक विकास करने में हम पीछे रह गयें। देश के आर्थिक कलेवर में क्रान्तिकारी परिवर्तन नही आ सका। अत: अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तन को दृष्टिगत रख कर भारत ने भी अपने आर्थिक विकास की नीति सुधार का बीड़ा 1991 में उठाया और इस नीति को नई आर्थिक नीति कहा गया। नई आर्थिक नीति के अर्न्तगत किये गये उपाय निम्नलिखित है:-

- नियंत्रित व्यवस्था के स्थान पर उदार की नीति।
- सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित कर निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन।
- उत्पादन की उन्नत टेक्नालॉजी लागू करना।
- कृषि के आधुनिकीकरण का प्रोत्साहन।
- व्यापार नीति, मौद्रिक नीति तथा राजस्व में व्यापक परिर्वतन।
- राजकोषिय घाटे पर नियंत्रण।

उपरोक्त सभी उपायों को 'नई आर्थिक नीति' कहा जाता है। रिर्जव बैंक के गर्वनर डॉ0 सी0 रंगराजन के अनुसार, "नई आर्थिक नीति में जुलाई, 1991 के बाद से किये गये विभिन्न नीतिगत उपाय और परिवर्तन शामिल है। इन सभी उपायों का लक्ष्य अर्थव्यवस्था की कुशलता को बढ़ाना है। विविध नियंत्रणों वाले विनिमय तन्त्र की चाहे वह निजी क्षेत्र में क्यों न हो, क्षमता बिखर जाती है और प्रतियोगिता कर स्तर भी घट जाता है। नई आर्थिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में और अधिक प्रतियोगी वातावरण तैयार करना है ताकि प्रणाली की उत्पादकता तथा कुशलता में सुधार हो।"

संक्षेप में नयी आर्थिक नीति के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में जो सुधार हुए है, उन्हें ही नये आर्थिक- सुधार कहा जाता है। उक्त आर्थिक सुधारों का प्रभाव अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर पड़ा है। हमारी शिक्षा व्यवस्था भी इससे अछुती नही है। यह आर्थिक सुधारों का ही परिणाम है कि हमारी शिक्षा, राज्य व देश की सीमा से परे विश्व पटल पर आ गयी है। वैज्ञानिक विकास में क्रान्ति, प्रतियोगिता वृद्धि, विद्यालयी व उच्च शिक्षा में तकनीकीं का प्रयोग, समयनुसार शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन, शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण, व्यवसायिक व तकनीकी शिक्षण-प्रशिक्षण पर बल आदि अर्थिक सुधारों का ही प्रतिफल है।

नये आर्थिक सुधार

नयी अर्थिक नीतियों की विशेषताओं को नये अर्थिक सुधारों के रूप में व्यक्त किया जा सकता हे। नये अर्थिक सुधार मुख्य रूप से निम्नलिखित है:-

(i) उदारीकरण (Liberalisation)
(ii) निजीकरण (Privatisation)
(iii) विश्वव्यापीकरण (Globalisation)

उदारीकरण

उदारीकरण का आशय नियमों व प्रतिबन्धों में ढील देने या उदारता बरतने से है। जब सरकार औद्योगिक नीति, श्रम-नीति, आयात निर्यात नीति कर नीति आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विनियोग, उत्पादन तथा वितरण में प्रतिबन्धों को हटाती है तो इस उदारीकरण की नीति कहा जाता है।

उदारीकरण के उद्देश्यः- उदारीकरण नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः-

1. घरेलू उत्पादन प्रणाली में सुधार तथा उत्पादन क्षमता में विकास करना।
2. रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।
3. वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना।
4. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होगा।

भारत में उदारीकरण नीतिः- भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गॉधी द्वारा सत्ता सॅभालने के साथ सन् 1985 से ही उदारीकरण का युग प्रारम्भ हुआ। 1985-91 की अवधि के दौरान उदारीकरण का क्रम जारी रहा। औद्योगिक विस्तार व आधुनिकीकरण के वास्ते सभी ईकाईयों को विभिन्न प्रकार से प्रोत्सहन व छूटे दी गई परन्तु हमें आशातीत सफलता नही मिली। अतः यह आवश्यक समझा गया कि हमारी अर्थिक नीतियॉ और औद्योगिक नीतियों में मूलभूत परिर्वतन किये जाए। इस पृष्ठभूमि में जुलाई, 1991 में नई आर्थिक नीति का शुभारम्भ किया गया।

गहन उदारीकरण नीति (1991 के बाद की अवधि):- 1991 के दशक के प्रारम्भ में नरसिंह राव सरकार के आगमन के साथ ही नई आर्थिक नीति में औद्योगिक, व्यापारिक वित्तीय मोद्रिक इत्यादि क्षेत्रों में उदारीकरण का प्रसार किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने, भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने तथा देश की अर्थव्यवस्था को निजीकरण की ओर मोड़ने की दिशा में अनेक कदम उठाये गये है।

सरकारी क्षेत्र में उदारीकरणः- सार्वजनिक क्षेत्र का कार्य आशा के अनुरूप नही रहा। अतः इस क्षेत्र की औद्योगिक भूमिका को सीमित करने का प्रयास किया गया। अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या-17 थी जिसे घटा कर 8 कर दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ उधमों द्वारा सरकारी शेयर पूँजी के कुछ भाग को वित्तीय संस्थाओं, आम जनता तथा कर्मचारियों ने बेचने का प्रावधान है।

निजीकरण

निजीकरण से यह अभिप्राय है कि ऐसी औद्योगिक ईकाईयों के स्वामित्व को निजी क्षेत्र में हस्तान्तरित कर देना जो कि अभी तक सरकारी स्वामित्व तथा नियंत्रण में थी। व्यापक अर्थों में अर्थव्यवस्था के निजीकरण से यह भी समझाा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था की गतिविधियें से निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाए। अर्थव्यवस्था के निजीकरण के क्रम में से कोई भी कदम उठाये जा सकते हैः-

1. ऐसे सार्वजानिक प्रतिष्ठानों का प्रबन्ध एवं नियंत्रण जिनका संचालन सरकारी विभागों के रूप में किया जा रहा था, निजी उपक्रमियों को सौप दिया जाए, जैसे- रेलवे, डाक-तार आदि।
2. विराष्ट्रीयकरण (Denationalisation)
3. सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर रोक लगा दी जाए।
4. निजी क्षेत्र में ऐसे उद्योगों की स्थापना को अनुमति देना जो कि अब तक सार्वजनिक क्षेत्र में ही स्थापित किये जा सकते थे।

अतः स्पष्ट है कि ऐसे कोई भी तरीके अथवा नीतिगत उपाय जिनके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र का कार्य-क्षेत्र संकुचिक होता है और निजी-क्षेत्र के कार्य-क्षेत्र का विस्तार होता है, निजीकरण कहलाते हे। इस वि-शासनीकरण (De-Govnmentalisation), वि-नियोजीकरण (Investorisation) तथा विपणीकरण (Maketisation), की संज्ञा दी गई है।

भारत में निजीकरण 1985 में नई कॉंग्रेस सरकार ने आर्थिक उदारीकरण को प्रारम्भ किया जिसके अन्तर्गत निजी क्षेत्र को अधिक महत्वपूर्ण उत्तदायित्व सौपें जाने का विचार रखा गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गॉंधी ने घोषणा की कि "सार्वजनिक क्षेत्र बहुत अधिक क्षेत्रों में फैल गया है जहॉं इसे नही होना चाहिए। हम अपने सार्वजानिक क्षेत्र को ऐसे कार्यों में लगायेगें जो निजी क्षेत्र नही कर सकता परन्तु हम निजी क्षेत्र के लिए अधिक क्षेत्र खोल देगें, ताकि इसका विस्तार हो सके और अर्थव्यवस्था अधिक स्वतन्त्र रूप से विकसित हो सके।"

आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में 1991 में निजीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये जब सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों में 20 प्रतिशत अविनियोग करने का निर्णय लिया। दूसरा महत्वपूर्ण घटक सार्वजनिक उपक्रमों की अकुशलता है। सार्वजनिक क्षेत्र के जो उपक्रम लाभ भी प्राप्त कर रहे है, उनमें से अधिकांश एकाधिकारी कम्पनियॉं है। इसके अतिरक्ति विश्व के घटनाक्रमों के तहत भी सरकार ने निजीकरण को बल देना प्रारम्भ किया।

उदारीकरण एवं निजीकरण में अन्तर:- उदारीकरण एंव निजीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते है फिर भी इसमें निम्न अन्तर है।

1. उदारीकरण एक व्यापक अवधारणा है जो विकास के हर क्षेत्र में लागू की जा सकती है, जबकि निजीकरण एक संकुचित अवधारणा है और उसको विकास के हर क्षेत्र में आसानी से अपनाया नही जा सकता। निजीकरण, उदारीकरण का एक अंग है।
2. उदारीकरण में शासकीय नियंत्रण के अधीन उद्योगों को पूर्ण रूप से विकसित करने का अवसर दिया जाता है, जबकि निजीकरण में पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण के लिए व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र होता है तथा लाभ-हानि स्वयं वहन करता है।
3. उदारीकरण औद्योगिक विकास और सार्वजनिक लाभ की भावना को ध्यान में रखते हुए अपनाया जाता है, जबकि निजीकरण औद्योगिक विकास के साथ-साथ निजी लाभ की भावना से ही प्रेरित होता है।
4. उद्योगो का समयबद्ध आधुनिकीकरण और विस्तार सुनिश्चित करने के लिए उदारीकरण की अहम् भूमिका है उद्योगों के निजीकरण के माध्यम से ही यह सम्भव है।

विश्वव्यापीकरण

विश्वव्यापीकरण का अर्थ है देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना वस्तुत: राष्ट्रो की राजनीतिक सीमाओं के आर-पार अर्थिक लेन-देन की प्रक्रिओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण से तात्पर्य भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व के दृष्टिकोण से अधिक उदार बनाने से है, ताकि हमारे व्यापार का विस्तार विश्व के अधिकांश देशों मे हो जाए।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित बिंदु सम्मिलित है

a) विदेशी कम्पनियों को भारत की विभिन्न अर्थिक गतिविधियों ने निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी विनियोग के लिए खोलना।

b) विदेशी विनिमय नियंत्रण को धीरे-धीरे समाप्त करके बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में आने व विनियोग करने की सुवध एएँ प्रदान करना।

c) मात्रात्मक प्रतिबन्धों के स्थान पर धीरे-धीरे प्रशुल्को को प्रतिस्थापित करना और फिर उन्हें भी कम करते जाना, ताकि आयात उदारीकरण कार्यक्रमों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सकें।

d) भारतीय कम्पनियों को विदेशी कम्पनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना और दूसरे देशों में संयुक्त परियोजनाएँ चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना।

e) विभिन्न प्रकार के निर्थात प्रोत्साहनों के स्थान पर विनिमय दर में परिर्वतनों द्वारा निर्थातों को प्रोत्साहित करना।

संक्षेप में विश्वव्यापीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत, लाभ दशाओं का विदोहन करने की दिशा में अग्रसर होता है।

भारतीयकरण से विश्वव्यापीकरण की ओरः- भारत सरकार ने आठवे दशक के आरम्भ से ही विश्वव्यापीकरण की ओर प्रयास करना शुरू कर दिया था। आठवे दशक से ही बहुत से ऐसे क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय निगमों को प्रवेश करने की अनुमति दी गई जिनमें उन्हें पहले काम करने की अनुमति नही थी, विदेशी पूँजी को बहुत सी रियायते दी गई, आयात उदारीकरण की प्रक्रिया को तेज किया गया, विनिमय दर में निरन्तर मूल्य हास निर्यातों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया तथा विदेशी विनिमय नियमन् को कड़ाई से लागू कया गया परन्तु विश्वव्यापीकरण की प्रक्रिया में तेजी जुलाई 1991 में लागू की गई अर्थिक नीति के परिणामस्वरूप ही आई।

विश्वव्यापीकरण के प्रभावः- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारत में अपने पैर स्थापित कर लिए है। भारत में ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, इटली, दक्षिण कोरिया, नीदरलैण्ड, जापान आदि की कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियाॅ विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में संलग्न है। आज अधिकांश आधारभूत परियोजनाओं को विश्व की मशहूर कम्पनियाॅ भारतीय भागदीरों के साय सफलतापूर्वक काम कर रही है। आज एशिया में चीन के बाद विश्व के जितने भी पूँजी निवेशक है, भारत में उधम लगाने का पूरा प्रयास कर रहे है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने निवेश को बढ़ावा देकर औद्योगिक विकास की गति को तेज करने तथा देश को 'मैन्यूफैक्चरिंग हब' बनाने के लिए 'मेक इन इंडिया कार्यक्रम' की औपचारिक शुरूआत 25 सितम्बर 2014 को की। इस अवसर पर सरकार की आरे उधमियों को भरोसा दिलाते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि सरकार बिजनेय के माहौल को आसान बनाकर देश को आगें ले जाना चाहती है। इस दृष्टि से बदलाव की शुरूआत सेल्फ सर्टिफिकेशन से सरकार ने की है। इस अवसर पर भारत के पास उपलब्ध 3-डी शक्ति (डेमोक्रेसी, डेमोग्राफी एवं डिमांड) का उल्लेख उन्होने किया। इसके साथ ही देश की लुक ईस्ट नीति के साथ लिंक वेस्ट का मंत्र भी उन्होनें दिया और कहा कि इन दोनो को जोड़कर ग्लोबल विजन के साथ हम आगे बढ़ना चाहते है।

उदारीकरण, निजीकरण वैश्वीकरण और शिक्षा

उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण, अर्थिक सुधारों से जुड़ी प्रक्रिया है पर अब यह महसूस किया जाने लगा है कि शिक्षा भी अर्थिक महत्व का विषय है। आज शिक्षा का प्रयोग ' अर्थिक विकास के साधन' के रूप में किया जाने लगा है। आज व्यक्तित्व का विकास नहीं, व्यक्ति को 'मानव-संसाधन' माना जाने लगा है। ऐसे में हर देश व्यवसायिक शिक्षा के नवीनतम क्षेत्रों की खोज मे जुटा है और वही आगे बढ़ पा रहा है जो जितनी जल्दी और जितने ज्यादा क्षेत्रों में व्यावसायिक-शिक्षा की व्यवस्था कर पा रहा है। व्यवसायिक-शिक्षा उत्पादकता बढाती है। इस कारण वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी 'स्किल-डेवलपमेंट' पर बल देते है। उत्पादन के दो कारक है। श्रम तथा उधमशीलता जो शिक्षा के प्रभाव से ही विकसित होते है। उद्योगों के या कृषि के दोनो के विकास से राष्ट्र का अर्थिक विकास होता है। शिक्षा कुशल श्रमिकों को प्रशिक्षित कर कृषि व उद्योग दोनो क्षेत्रों के विकास में योगदान देती है। शिक्षा मानव-संसाधन का विकास करती है। इसका प्रभाव प्राथमिक स्तर से ही देखने को मिलता है।

भारत में शिक्षा पर अर्थिक सुधारों का सीधा प्रभाव देखने को मिलता है। शिक्षा चाहे विद्यालय स्तर की हो या विश्वविद्यालय स्तर की, अर्थिक सुधारों का प्रभाव उनकी ढांचागत स्थिति व गुणवत्ता पर पड़ा है। भारतीय संविधान के अनुसार शिक्षा राज्य का दायित्व है लेकिन शिक्षा की घटती गुणवत्ता व फैली अव्यवस्था के कारण शिक्षा के निजीकरण पर बल दिया जाने लगा। निजी विद्यालयों में शिक्षा को गुणवत्ता व उपलब्ध आधुनिक संसाधनों के कारण सरकारों विद्यालयों को अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए कड़ी चनौतियों का समाना करना पड़ रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा में सुधार व इसे अन्तराष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए होड़ लग गई। अन्तराष्ट्रीय स्तर के विद्यालयों व विश्वविद्यालयों के प्रवेश ने शिक्षा संस्थाओं में प्रतियोगिता बढ़ा दी जिससे शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिर्वतन देखने को मिलता है।

1. सरकारी विद्यालयों में ढांचागत संसाधनों में वृद्धि पर बलः- भारत के प्रत्येक राज्य में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विद्यालयों के प्रवेश व उनमें उपलब्ध भौतिक संसाधनों ने अभिभावकों का ध्यान अपनी ओर खींचा है जिससे सरकारी विद्यालयों में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए, परिर्वतन अनिवार्य हो गया। विद्यालयों को कम्प्यूटर उपलब्ध कराये गये, कम्प्यूटर शिक्षा, अंग्रेजी विषय की शिक्षा, पाठ्यक्रम में सुधार, शौचालयों की व्यवस्था, कमरों व बिजली की व्यवस्था में सुधार किया गया।

2. शिक्षा के उद्देश्यों में परिर्वतनः- अर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप हमारी शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिर्वतन आया है। आज शिक्षा का उद्देश्यों व्यक्तित्व विकास के अतिरिक्त व्यवसायिक विकास पर अधिक बल देता है। विधार्थी को शिक्षित व प्रशिक्षित कर विश्व मंच पर खड़े होने के लिए तैयार करना है।
3. अभिभावकों की सोच में परिर्वतनः- समय के साथ अभिभावकों की सोच में परिर्वतन आया है। वे प्रारम्भ से ही अपने बच्चों को ऐसे शिक्षा संस्थानों मे प्रवेश देना चाहते है जिससे उनमें उच्च व्यवसायिक आकंक्षा विकसित हो। वे बच्चों को देश की सीमा से परें विश्व स्तर की शिक्षा व प्रशिक्षण के लिए प्रेरित कर रहे है।

सन्दर्भ ग्रन्थावली

शिक्षा में नवाचार एवं नवीन प्रवृत्तियां : आलोक प्रकाशन लखनऊ, उ0प्र0

सिविल सर्विसेज टाइम्स : एक ध्रुवीय विश्व के खतरे, (26 मई 2007)

भारतीय अर्थव्यवस्था : एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, राम नगर, नई दिल्ली (2008)

प्राथमिक शिक्षा के अधिकार के संबंध में संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानः निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के विशेष सदर्भ में

उग्रसेन वर्मा

शोध छात्र, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

"जीवन जीने की कला सीखना ही सच्ची शिक्षा है। यह बाहरी ज्ञान को मस्तिष्क के अन्दर भरने की यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि विद्यार्थी के अन्दर निहित सभी सकारात्मक, सृजनात्मक प्रतिभाओं को उजागर करने की प्रकिया है।" - स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सारांश

भारत के संविधान में भी शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया गया साथ ही उच्चतम न्यायालय ने भी मोहिनी जैन और उन्नी कृष्णन के वाद के माध्यम से स्पष्ट कर दिया कि शिक्षा के अधिकार को और भी महत्व देने की आवश्यकता है। निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बालक का अधिकार अधिनियम, 2009 एक वृहद् और सारभौमिक अधिनियम है जिसके अन्तर्गत बच्चों की शिक्षा के संबंध में विस्तृत नियम बनाया गया है। इसके अन्तर्गत निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बालक का अधिकार, प्रवेश न दिए गये बालकों या जिन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा पूरी नहीं की है, के लिए विशेष उपबन्ध, अन्य विद्यालय में स्थानान्तरण का अधिकार, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी का विद्यालय स्थापित करने का कर्त्तव्य, वित्तीय और अन्य उत्तरदायित्वों में हिस्सा बाँटना, समुचित सरकार के कर्त्तव्य, स्थानीय प्राधिकारी का कर्त्तव्य, माता-पिता और संरक्षक का कर्त्तव्य, समुचित सरकार का विद्यालय पूर्व शिक्षा के लिए व्यवस्था करना, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए विद्यालय के उत्तरदायित्व की सीमा, प्रवेश के लिए किसी प्रति व्यक्ति फीस, प्रवेश के लिए आयु का सबूत, प्रवेश से इन्कार नहीं किया जाना, रोकने या निष्कासन का प्रतिषेध, बालक को शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का प्रतिषेध, शिक्षकों के कर्त्तव्य और शिकायतों को दूर करना, शिक्षक द्वारा प्राइवेट ट्यूशन का प्रतिषेध, बालक के शिक्षा के अधिकार को मॉनिटर करना, निर्देश जारी करने की शक्ति इत्यादि विषयों को समावेश किया गया है।

महत्वपूण शब्दावली- प्राथमिक शिक्षा, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का बालक का अधिकार अधिनियम, 2009, संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधान, लोकतान्त्रिक प्रणाली, संविधान के 86वाँ संशोधन अधिनियम, 2002, विद्यालय प्रबन्धन समिति, इत्यादि।

परिचय

दुनियाँ में सबसे बेहतर शिक्षा व्यवस्था फिनलैंड की मानी जाती है। यहाँ की व्यवस्था की मुरीद पूरी दुनियाँ है, क्योंकि यहाँ पढ़ाई का तरीका बिल्कुल अलग और अनोखा है। फिनलैंड की शिक्षा व्यवस्था कई लोगों को अटपटी भी लग सकती है। लेकिन यहाँ पढ़ाई के तरीकों पर रोज नए प्रयोग किए जा रहे हैं। इन्हें स्कूलों में अपनाया भी जा रहा है, ताकि बच्चे पढ़ाई के बोझ तले

दबे नहीं बल्कि बिना किसी दबाव के उनमें निखार आए। यहाँ बच्चों को वैज्ञानिक तरीके से पढ़ाने पर जोर दिया जाता है। उनकी क्षमता व योग्यता को अंक के आधार पर नहीं आंका जाता है, न ही बच्चों के तुलनात्मक विकास पर चर्चा होती है। दुनियाँ भर के शिक्षक फिनलैंड के शैक्षणिक तरीके से सबक ले रहे हैं, लेकिन इन सब में यहाँ शिक्षकों की विशेष ट्रेनिंग का बड़ा योगदान है। फिनलैंड में अध्यापन को सबसे सम्मानजनक पेशा माना जाता है।[1]

प्राचीन भारतीय समाज में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति काफी सुदृढ और मजबूत थी। वैदिक काल में भारतीय शिक्षा गुरूकूल पद्धति पर आधारित थी जिसके अन्तर्गत बच्चों के आध्यत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास पर बल दिया जाता था। बाद में बौद्ध धर्म, जैन धर्म के पश्चात मुस्लिम धर्म के अनुसार होने लगा। बाद में ईस्ट इण्डियाँ कम्पनी की स्थापना के साथ ही यह मिशनरियों के माध्यम से संचालित होना शुरू हुआ जो आज तक जारी है। भारत में आज भी शिक्षा की गुणवत्ता में मिशनरियों द्वारा स्थापित स्कूलों की ज्यादा मांग है। प्राचीन ब्रिटिश भारतीय शिक्षा का इतिहस लॉर्ड मिण्टों, चार्ल्स ग्राण्ट, 1833 के आज्ञा पत्र, मैकाले का विवरण पत्र, वुड का घोषणा पत्र, स्थेनली का प्रेषण डिस्पैच, हण्टर आयोग, 1882, सैडलर आयोग, 1917, हटॉग कमेटी, 1929, सार्जेण्ट रिपोर्ट और भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, 1950, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, इसमें संशोधन, 1992, और हाल में ही भारत ने भी नई शिक्षा नीति, 2020 के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा में अमूल-चूल परिवर्तन किये है।

संवैधानिक प्रावधान

शिक्षा का अधिकार एक मूलभूत मानव अधिकार है। किसी भी लोकतान्त्रिक प्रणाली की सरकार की सफलता वहाँ के सभी नागरिकों के शिक्षित होने पर निर्भर करती है। एक शिक्षित नागरिक स्वयं को विकसित करता है और साथ ही साथ अपने देश को भी विकास की ओर आगे बढ़ाने में योगदान करता है। शिक्षा ही एक व्यक्ति को मानव की गरिमा प्रदान करती है। हमारे देश में यह कहा गया है कि एक अशिक्षित व्यक्ति पशु के समान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा का महत्व सर्वविदित है। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओं ने सभी बालकों को शिक्षा देने का कर्त्तव्य संविधान में राज्य के नीति-निदेशक तत्व के रूप में भाग IV में रखा था। अनु० 45 के अधीन राज्य का 14 वर्ष की आयु के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने का कर्त्तव्य था। यह माना गया था कि जनता द्वारा चुनी हुई सरकारें संविधान के इस निदेश को ईमानदारी से कार्यान्वित करेंगी। नीति-निदेशकों को मूल अधिकारों से कम महत्व नहीं दिया गया है।[2]

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 यह प्रावधानित करता है कि, 'भारत राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को 'विधि के समक्ष समता' और 'विधियों के समान संरक्षण' से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा। दोनों वाक्यांशों में कुछ समानता और अन्तर है। इसका तात्पर्य है कि समान को समान न्याय।[3] मेनका गाँधी बनाम भारत संघ,[4] के वाद में स्पष्ट किया गया है कि समता एक गतिशील अवधारणा है, जिसके अनेक रूप और आयाम है और इसे परम्परागत और सिद्धान्तवाद की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। अनुच्छेद 14 राज्य की कार्यवाहियों में मनमानेपन को वर्जित करता है और समान व्यवहार को सुनिश्चित करता है।

संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान में अनु० 21 के पश्चात् एक नया अनु० 21(ए) जोड़ा गया है जो यह उपबन्धित करता है कि "राज्य ऐसी रीति से जैसा कि विधि बना कर निर्धारित करे कि 6-14 वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबन्ध करेगा।"

अनुच्छेद 21 यह उपबन्धित करता है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं। उच्चतम न्यायालय ने मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य,[5] के मामलें में अपने ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक का मूल अधिकार है। इस वाद में न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत 'प्राणों' के अधिकार में 'शिक्षा पाने का अधिकार' भी एक मूल अधिकार है और कालेजों द्वारा कैपिटेशन फीस लेना नागरिकों को इस अधिकार से वंचित करता है। अतः कैपिटेशन फीस अवैध है। कैपिटेशन फीस के कारण निर्धन छात्र शिक्षा पाने से वंचित हो जाते है और धनी और अयोग्य छात्र उसे पैसों के आधार पर प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक नागरिक को शिक्षा उपबन्ध कराना राज्य का संवैधानिक दायित्व है। बिना शिक्षा के कोई भी नागरिक अपने अन्य मूल अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता है। इसी को आगे बढाते हुये उन्नीकृष्णन

बनाम आन्ध्र प्रदेश,[6] इस वाद में ही न्यायालय ने मोहिनी जैन वाद द्वारा दिये गये निर्णय को कायम रखा और कहा कि शिक्षा पाने का अधिकार अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत एक मूल अधिकार है और सभी को शिक्षा उपलब्ध कराना राज्य का उत्तरदायित्व है किन्तु उस पर एक परिसीमा लगा दिया कि यह अधिकार 14 वर्ष के बच्चों के लिए ही सीमित है। उच्च शिक्षा के मामलों में यह अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करेगा। भारतीय संविधान के अंतर्गत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखाने या खदान या किसी अन्य खतरनाक व्यवसाय में नियोजित करने पर रोक लगाता है।[7]

राज्य ऐसी नीतियाँ निर्धारित करेगा जिससे पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति की अनुकूल न हो।[8]

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के वैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान में भी शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया गया साथ ही उच्चतम न्यायालय ने भी मोहिनी जैन और उन्नी कृष्णन के वाद के माध्यम से स्पष्ट कर दिया कि शिक्षा के अधिकार को और भी महत्व देने की आवश्यकता है। इसी क्रम में संसद ने दिसम्बर 2002 में अनुच्छेद 21(ए) (भाग 3) के माध्यम से 86वें संशोधन विधेयक के द्वारा 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित कर दिया गया। अक्टूबर 2003 में इस अनुच्छेद में वर्णित कानून, बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2003 का पहला मसौदा तैयार कर अक्टूबर 2003 में वेबसाइट पर डाला गया और आम लोगों से इस पर राय और सुझाव आमंत्रित किए गये। 2004 में मसौदे पर प्राप्त सुझावों के मद्देनजर नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2004 का संशोधित प्रारूप तैयार कर वेबसाइट पर डाला गया।[9] जून, 2005 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने शिक्षा के अधिकार विधेयक का प्रारूप तैयार किया और उसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सौंपा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इसे नैक (National Advisory Council) के पास भेजा। नैक ने इस विधेयक को प्रधानमंत्री के ध्यानार्थ भेजा। 14 जुलाई 2006 में वित्त समिति और योजना आयोग ने विधेयक को कोष के अभाव का कारण बताते हुए नामंजूर कर दिया और एक मॉडल विधेयक तैयार कर आवश्यक व्यवस्था करने के लिए राज्यों के पास भेजा। 19 जुलाई, 2006 में अनेक संगठनों को योजना बनाने, बैठक करने तथा संसद की कार्यवाही के प्रभाव पर विचार करने एवं भावी रणनीति तय करने और जिला तथा ग्राम स्तर पर उठाये जाने वाले कदमों पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया। और इतनी प्रक्रियाओं के बाद भारतीय संविधान में संशोधन के 6 साल बाद केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने शिक्षा के अधिकार विधेयक को मंजूरी दे दी और इसे संसद की स्वीकृति के लिए भेजा जायेगा। जिसे आजादी के 61 साल बाद भारत सरकार ने मंजूरी दे दी, जिससे 6 से 14 साल के आयु वर्ग के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा पाना उनका मौलिक अधिकार बन गया।

बचपन बचाओ आन्दोलन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया एवं अन्य,[10] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 14, 21, 23, 32 और 39 सभी बालकों को अन्याय से बचाने के लिए ही प्रभावी किए गये हैं अत: उन्हें बन्धक बनाना, बालश्रम कराना, उनका यौन शोषण करना, उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार करना आदि, सभी असवैधानिक कृत्य होगा तथा जो भारतीय दण्ड संहिता में भी दण्डनीय अपराध है। इसी तरह के अपराधों में बच्चों का सर्कस में काम में लेना भी उनके साथ अत्याचार करना ही माना जायेगा, जिससे उन्हें बचाना प्रशासन का कर्तव्य है तथा यह भी व्यवस्था करनी होगी कि उन्हें प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रवेश दिलाया जाय और उसे पूरा करने तक उसमें किसी प्रकार की रुकावट न हो।

पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ,[11] के मामले में यह तर्क दिया गया कि भवन निर्माण कारखाने में एम्पलायमेंट ऑफ चिल्ड्रेन ऐक्ट, 1939 लागू नहीं होता है, क्योंकि अधिनियम की अनुसूची में "निर्माण-कार्य" का उल्लेख नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने उस तर्क को अस्वीकार करते हुए यह निर्णय दिया कि भवन निर्माण कार्य अनु० 24 के अन्तर्गत एक जोखिम वाला कार्य है अत: उसमें 14 वर्ष के बच्चों को नियोजित नहीं किया जा सकता है, भले ही उसका उल्लेख अधिनियम की अनुसूची में न किया गया हो। न्यायाधिपति श्री भगवती ने इस बात पर दु:ख प्रकट करते हुए राज्य सरकारों को सलाह दिया कि "भवन-निर्माण कार्य" को अधिनियम में शामिल करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र कदम उठाएँ और इसको सुनिश्चित करें कि अनु० 24 के संवैधानिक आदेश का देश के किसी भी भाग में उल्लंघन न किया जाये। इसी प्रकार, लेबरर्स वर्किंग आन सलाल हाइड्रो प्रोजेक्ट बनाम जम्मू और कश्मीर,[12] के मामले में पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स के मामले में दिये विनिश्चय की पुष्ट

करते हुए कहा गया है कि निर्माण कार्य एक जोखिम वाला कार्य है अत: 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को उसमें नियोजित नहीं किया जा सकता है।

इस अधिनियम की सबसे महत्त्वपूर्ण धारा है, क्योंकि यही वह धारा है जिसमें इस अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण प्रावधान बनाये गये हैं, जिन्हें 1-8-2012 में किये गये संशोधन के द्वारा काफी विस्तृत कर दिया गया है। इसके अनुसार छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु वर्ग के प्रत्येक बालक/बालिका को प्रारम्भिक शिक्षा किसी आस-पास के विद्यालय में नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से प्राप्त होगी। यही इस अधिनियम का सम्पूर्ण सार है।[13]

अधिनियम की धारा 4 में कुछ विशेष वर्ग के छात्रों के लिए अलग से उपबन्ध किए गये हैं। धारा 5 में बालकों के अन्य विद्यालयों में स्थानान्तरण के लिए प्रावधान किए गये हैं। समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया गया है, कि इस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए ऐसे क्षेत्र या सीमाओं के भीतर जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय उपलब्ध नहीं है, वहाँ समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी का यह दायित्व निर्धारित किया गया है कि वह इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के तीन वर्ष के भीतर ऐसे स्थानों पर विद्यालयों की स्थापना करे, ताकि बच्चों की पढ़ाई का उद्देश्य पूर्ण हो सके।[14] केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार पर यह समवर्ती उत्तरदायित्व अधिरोपित किया गया है कि वह इस अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए निधियाँ उपलब्ध कराये, जिससे विद्यालयों का कार्य सुचारु रूप से चल सके, अन्यथा बिना पूँजी के कोई भी कार्य सम्भव नहीं है और फलस्वरूप इस अधिनियम का उद्देश्य प्राप्त करना असम्भव हो जायेगा।[15]

समुचित सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बालक को नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराना है।[16] सुदीप श्रीवास्तव बनाम स्टेट ऑफ छत्तीसगढ़ एवं अन्य,[17] के मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 में दिया गया बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार सिर्फ छ: वर्ष से चौदह वर्ष तक के बालकों के लिए है, उनसे अधिक आयु वर्ग के बालकों के लिए नहीं। जहाँ धारा 8 में समुचित सरकार के कर्तव्यों के बारे में बताया गया है, वहीं धारा 9 में स्थानीय प्राधिकारी के कर्तव्यों के बारे में उल्लेख किया गया है। वैसे- स्थानीय प्राधिकारी के कर्तव्य भी करीब-करीब वही है। उसी प्रकार माता-पिता का यह कर्त्तव्य तय किया गया है कि वह आस-पास में अपने बालक या प्रतिपाल्य को प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कराने के लिए विद्यालय में प्रवेश कराये।[18]

धारा 11 में एक विशेष व्यवस्था की गई है कि तीन वर्ष से ऊपर के बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए तैयार करने के लिए भी सरकार व्यवस्था कर सकती है, जैसे नर्सरी, यू.के.जी., एल.के.जी. आदि कक्षाओं में बच्चों को तैयारी करवाना, ताकि जब वह छह वर्ष तक की आयु पूरी कर ले तब वह प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाएँ। धारा 12 में विद्यालयों और शिक्षकों को नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए क्या-क्या उत्तरदायित्व होंगे, उसके बारे में उल्लेख है। अनेक विद्यालयों में प्रवेश के लिए बालक या उसके माता-पिता अथवा संरक्षक को अनुवीक्षण प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था तथा प्रत्येक बालक पर प्रति-व्यक्ति फीस (ब्ंचपजंजपवद विमे) लगाई जाती थी।[19]

मि. मोहिनी जैन बनाम स्टेट ऑफ कर्नाटक एवं अन्य,[20] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विद्यालयों के द्वारा वसूल की जाने वाली प्रति-व्यक्ति फीस (Capitation Fees) पूरी तरह से नागरिकों के शिक्षा के अधिकार को नकारा कर रहा है जिसे किसी भी तरीके से उचित नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना भी न केवल धारा 3 के विरुद्ध है बल्कि यह असंवैधानिक और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन भी है। अत: ऐसी अधिसूचना को निरस्त किया गया। धारा 14 में बालक का प्रारम्भिक शिक्षा में प्रवेश के लिए आयु के प्रमाण के बारे में प्रावधान किए गये हैं।

किसी भी बालक को प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रवेश से इन्कार नहीं किया जा सकता है अन्यथा इस अधिनियम का महत्त्व ही खत्म करने के बराबर हो जायेगा, इसलिए अगर कोई बालक किसी कारणवश समय पर विद्यालय में प्रवेश नहीं ले पाता है और विस्तारित अवधि तक भी प्रवेश नहीं ले पाता है तो भी अगर वह विस्तारित अवधि के बाद भी प्रवेश चाहता है तो भी उसे प्रवेश से इन्कार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह स्पष्ट प्रावधान है, कि किसी बालक को अकादमिक वर्ष के प्रारम्भ पर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर या बाद में उसे विद्यालय में प्रवेश दिया जायेगा।[21] प्रारम्भिक शिक्षा पूरी होने तक किसी बच्चे को निष्कासित नहीं किया जायेगा।[22]

यह प्रथा भी प्राचीन काल से चली आ रही है कि अगर बच्चा हमारी इच्छा के अनुसार नहीं सीख रहा हो तो उसे शारीरिक और मानसिक दण्ड दिया जाना चाहिए, ताकि वह डर के कारण हम जैसा चाहेंगे वह वैसा ही सीखने का प्रयास करेगा, लेकिन धारा 17 में इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रावधान किए गये हैं कि किसी भी बालक को किसी भी परिस्थिति में शारीरिक दण्ड और मानसिक रूप से उत्पीडिघ्त नहीं किया जा सकता है। समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित विद्यालय, इनके स्वामित्वाधीन कोई विद्यालय, या इनके नियंत्रणाधीन कोई विद्यालय, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् उपर्युक्त विद्यालयों को छोड़कर अन्य कोई भी विद्यालय सक्षम प्राधिकारी से मान्यता प्रमाण-पत्र प्राप्त किए बिना स्थापित नहीं करेगा और न ही कार्य कर सकेगा।[23] स्टेट ऑफ केरल एवं अन्य बनाम ऐडेड अपर प्राइमरी स्कूल,[24] के मामले में केरल उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कोई भी स्कूल बिना इजाजत के बन्द नहीं किया जा सकती है, क्योंकि इससे वहाँ रह रहे और पढ़ रहे बच्चों के लिए पढ़ाई की समस्या हो जायेगी, इसलिए सम्बन्धित अधिकारियों की इजाजत के बाद ही किसी स्कूल को बन्द किया जा सकता है। जहाँ उपर्युक्त धारा 18 में किसी विद्यालय को मान्यता देने के बारे में बताया गया है वहाँ इस धारा 19 में उन मान और मानक के बारे में बताया गया है जो किसी विद्यालय के लिए अपनाना आवश्यक है।

केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार होगा कि वह अधिसूचना जारी कर समय-समय पर आवश्यकतानुसार किसी मान और मानक को जो अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट है, में परिवर्तन कर सकती है या उसका लोप कर सकती है या उसमें आवश्यक संशोधन कर सकती है।[25] प्रत्येक विद्यालय में एक विद्यालय प्रबन्धन समिति बनाई जायेगी। विद्यालय प्रबन्धन समिति का गठन स्थानीय प्राधिकारी, बालकों के माता-पिता या संरक्षक और शिक्षकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी, लेकिन इसमें यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इस समिति में कम से कम तीन-चौथाई सदस्य माता-पिता या संरक्षक होंगे।[26]

धारा 22 के अनुसार प्रत्येक विद्यालय प्रबन्धन समिति, वह विद्यालय जो अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रबंन्धित है, चाहे वह धर्म या भाषा के आधार पर हो या सहायता प्राप्त विद्यालय हो, के अलावा समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली योजनाओं और दिए जाने वाले अनुदानों के आधार पर विहित रीति में एक विद्यालय विकास योजना तैयार करेगी। धारा 23 में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए आवश्यक अर्हताएं और सेवा के निबन्धन और शर्तों के बारे में बताया गया है, ताकि किसी को किसी प्रकार की गलतफहमी न हो। धारा 24 में शिक्षको के कर्त्तव्य एवं शिकायतों को दूर करना बताया गया है। धारा 25 में छात्र-शिक्षक अनुपात के बारे में प्रावधान किये गये है जिसके अनुसार इस अधिनियम के लागू होने की तारीख से तीन वर्ष के भीतर समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे, कि प्रत्येक विद्यालय में छात्र-शिक्षक अनुपात अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गये नियमानुसार बना रहे।

कमेटी ऑफ मैनेजमेन्ट बनाम स्टेट ऑफ यू. पी. एवं अन्य,[27] के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि शिक्षकों की नियुक्ति के लिए धारा 23 में दिए गये प्रावधानों का पालना करना आवश्यक है, इसलिए अगर याचिकाकर्ता ने एन. सी.टी.ई. के द्वारा तय की गई योग्यता नहीं प्राप्त की है, तो उसे शिक्षक के रूप में नियुक्ति नहीं दी जा सकती है।

जब भी प्रशासन के समक्ष कोई अतिरिक्त कार्य आता है तो वहाँ पर शिक्षकों को ही काम पर लगा लिया जाता है जिसका विपरीत प्रभाव बालकों की शिक्षा पर ही पड़ता है, हालाँकि कुछ कार्यों के लिए तो वैसे भी कानून में ही स्पष्ट कर दिया है, जैसे दस वर्षीय जनसंख्या जनगणना, विभीषिका राहत कार्यों या संसद, स्थानीय प्राधिकारी या राज्य विधान मंडलों आदि के निर्वाचनों से सम्बन्धित कार्यों से भिन्न अन्य गैर-शैक्षिक प्रयोजनों के लिए शिक्षकों को नहीं लगाया जायेगा।[28] धारा 29 में पाठ्डक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया (Curriculum and Evaluation Procedure) के बारे में बताया गया है, जिसके अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाठ्डक्रम और उसका मूल्यांकन प्रक्रिया का निर्धारण अकादमिक प्राधिकरण द्वारा किया जायेगा। यह अकादमिक प्राधिकरण समुचित सरकार की अधिसूचना द्वारा अधिकथित की जायेगी। किसी भी बालक की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण होने तक कोई बोर्ड परीक्षा नहीं ली जायेगी।[29]

राजेन्द्र कुन्तल बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान एवं अन्य,[30] के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने प्राथमिक स्तर पर परीक्षा लेने को गलत नहीं माना और तय किया कि यह सिर्फ बालक की योग्यता को मापने के लिए ली जाती है। अत: ऐसा करना अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत नहीं माना जायेगा।

बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 31 से 34 तक में बालकों के अधिकारों के संरक्षण के बारे में बताया गया है, जिसमें से धारा 31 में बालकों के शिक्षा के अधिकार को मॉनिटर करने की बात कही गई है, जिसके अनुसार बालकों के अधिकारों के संरक्षण और अभिवर्धन करने के लिए अधिनियम की धारा 3 में गठित राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग और धारा 17 में गठित राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग पर जिम्मेदारी डाली गई है, कि वह उन अधिनियम में दिए गए कदमों के अतिरिक्त हर वक्त इस बात को भी मॉनिटर करते रहेंगे कि बालकों के अधिकारों में किसी प्रकार की कोई कमी या बाधा तो नहीं आ रही है और अगर ऐसा है तो उसे दूर करने का प्रयास करेंगे।

अगर किसी व्यक्ति को किसी बालक के अधिकार के संबंध में कोई शिकायत आती है, तो वह उस स्थान का क्षेत्राधिकार रखने वाले स्थानीय अधिकारी के समक्ष लिखित में शिकायत कर सकेगा ऐसी शिकायत प्राप्त होने पर स्थानीय प्राधिकारी का यह कर्तव्य है, कि वह संबंधित पक्षकार को उचित सुनवाई का अवसर प्रदान करके मामले का निस्तारण करें और यदि उस स्थानीय प्राधिकारी के निर्णय से कोई व्यक्ति संतुष्ट नहीं है, तो वह अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए राज्य आयोग या धारा 31(3) के अधीन भी प्राधिकारी के समक्ष अपील कर उसका निस्तारण प्राप्त कर सकता है।[31] इस प्रकार, केंद्रीय सरकार अधिसूचना जारी कर एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् का गठन करेंगी, जिसमें अधिकतम 15 या उतने सदस्य होंगे जितने केंद्र सरकार सुनिश्चित करें, जो प्रारंभिक शिक्षा और बाल विकास के क्षेत्र में ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव रखने वाले होंगे। यह परिषद् केंद्र सरकार को प्रारंभिक शिक्षा आदि के संबंध में परामर्श देगा।[32] इसी प्रकार, राज्य सरकार द्वारा भी एक राज्य सलाहकार परिषद् का गठन किया गया, जिसमें 15 से अनधिक उतने सदस्य होंगे जितना कि राज्य सरकार सुनिश्चित करें यह सभी सदस्य बाल विकास के क्षेत्र में ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्ति होंगे।[33]

धारा 35 में केन्द्रीय सरकार की निदेश जारी करने की शक्तियों के बारे में बताया गया है। धारा 38 में समुचित सरकार के नियम बनाने की शक्तियों के बारे में उल्लेख किया गया है। धारा 39 नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा के अधिकार (संशोधित) अधिनियम, 2012 के द्वारा जोड़ी गई है, जिसमें केन्द्र सरकार की कठिनाइयों को दूर करने की शक्तियों के बारे में बताया गया है कि अगर इस अधिनियम के प्रावधानों का कार्यान्वयन करने में किसी प्रकार की कठिनाई आ रही हो तो उसे दूर करने के लिए केन्द्र इस अधिनियम के प्रावधानों से असंगत प्रावधान के आदेश राजपत्र में प्रकाशित कर सकती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि मोहिनी जैन और उन्नी कृष्णन के वाद से ही शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार मान लिया गया था, लेकिन 2009 में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम द्वारा 6 से 14 वर्ष के बच्चों को इसे मुफ्त और अनिवार्य करने संबंधी अधिनियम बनाया गया तथा इसे मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया है। लेकिन आज भी इस अधिनियम की कुछ कमियों और अन्य कारणों से इसके उद्देश्य को पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया जा सका है।

संदर्भ ग्रथ सूची

1 https://www.amarujala.com/columns/blog/know-about-the-interesting-facts-of-finland-education-system?pageId=1

2 डॉ. जय नारायण पांडेय, भारत का संविधान 311 (सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 48वाँ संस्करण–2015)।

3 प्रो. डायसी, लॉ ऑफ कान्टिटूशन, 10वॉ संस्करण, पृ.–49।

4 ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 507।

5 (1992) 3 एस.सी.सी. 666।

6 (1993) 4 एस.सी.सी. 645।

7 भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24।

8 भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 (ङ)।

9 Available at: http://education-nic-inlast visited on ¼25@02@2022½A

10 ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 3361।

11 ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 1473।
12 ए.आई.आर. (1984) एम.सी. 177।
13 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 3(1)।
14 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 6।
15 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 7(1)।
16 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 8।
17 ए.आई.आर. 2009 (छत्तीसगढ़) 31।
18 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-10।
19 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-13।
20 ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 1858।
21 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-15।
22 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-16।
23 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-18।
24 2015 (83) आर.सी.आर. (सि.) 506।
25 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-20।
26 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-21।
27 2012 (91) ए.एल.आर. 653।
28 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-27।
29 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा-30।
30 2016 ए.आई.आर. (राज) 60।
31 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 32।
32 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 33।
33 बालकों का अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा- 34।

दलित जीवन की दास्ताँ 'मुक्तिपर्व'

अमनदीप कौर

एम.ए. (हिन्दी), एम.फिल (हिन्दी), यू.जी.सी. नेट

उत्तराधुनिक युग में उठ रहे साहित्यिक विमर्शों में से 'दलित विमर्श' एक महत्त्वपूर्ण विमर्श है। यह हिन्दी साहित्य में तेजी से बढ़ती हुई एक धारा है, जिसमें पूरे हिन्दी साहित्य के पाठ और विचारधारा को एक नया आयाम प्रदान किया है। इसमें शताब्दियों से शोषण का शिकार हो रही दलित वर्ग की संवेदनाओं की वाणी मिली है। दलित समाज का शोषण, अत्याचार, अनाचार, पीड़ा आदि दलित साहित्य का आद्य है।

'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है, जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है। अत: समाज का वह वर्ग जो कुचला गया ही दलित है। दलित वर्ग का शोषण शताब्दियों से उच्च वर्ग, राजाओ-महाराजाओं, सामन्तों, जमींदारों द्वारा किया जाता है, इन्हें समाज में शूद्र माना जाता था। सीमित दृष्टि में दलित का अर्थ अस्पृश्य, हरिजन, ही दलित है जिन्हें युगों से उच्च वर्ग ने पैरों तले कुचला है। उनका स्पर्श भी निषेध माना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, ''दलित शब्द का अर्थ है- ''जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़न, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, हतोत्साहित, वंचित आदि।[1]

भगवानदास कहार के अनुसार, ''दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य यह है कि एक ऐसे वर्ग समूह या जाति विशेष का व्यक्ति अथवा जाति के धन, सम्पत्ति, माल, अधिकार एवं हरण किसी अन्य सत्ता शक्ति सम्पन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता है।''[2] अत: दलित के अन्तर्गत उन जातियों का समावेश होता है, जिन्हें परम्परा से हीन अस्पृश्य समझा जाता है और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शारीरिक और मानसिक सभी दृष्टियों से शोषण का शिकार बनाया गया है। इन्हें ही दलित कहा जाता है।

दलित जीवन की विसंगतियां उनके दु:ख-दर्द को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य दलित साहित्य कहा जा सकता है जिसमें दलित साहित्यकारों ने दलितों, पीडिघ्तों, शोषितों, उपेक्षितों और असहाय वर्ग के अभावग्रस्त दयनीय, उपेक्षित जीवन की समस्याओं तथा उनकी संवेदनाओं को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति दी है। इन साहित्यकारों ने दलितोत्थान के लिए उन्हें प्रेरित किया तथा उनमें नई चेतना का संचार किया है। यह समाज में सभी तरह की वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति, ऊंच-नीच, भेद-भाव का विरोध करता है। दलित जीवन विचारनीय मुद्दों को अपने साहित्य का विषय बनाता है।

मोहनदास नैमिशराय ने अपने उपन्यास 'मुक्ति पर्व' में दलित जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला हैं। इस उपन्यास में उन्होंने डेढ़ चमार जाति के एक दलित परिवार के माध्यम से दलित जीव की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विषमताओं को मुखरित किया है। उपन्यास की कथावस्तु आजादी आन्दोलनों को मुखरित किया है। उपन्यास की कथावस्तु आजादी आन्दोलनों से लेकर आजादी के बाद तक के परिवेश को समेटे हुए है। उपन्यास में समाज दो वर्गों में विभाजित है एक तरह हर प्रकार की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न उच्च वर्ग है तथा दूसरी तरफ भूख, गरीबी, दरिद्रता, मजबूरी, विवशता तथा लाचारी से पीड़ित दलित वर्ग। दोनों के रहने की जगहों तथा दोनों के परिवेश-परिस्थितियों के अन्तर को उपन्यासकार इस प्रकार व्यक्त करता है। ''उधर बाग-बगीचे थे तो इधर जंगल। उधर बाजार थे, पनघट थे, मन्दिर थे, इधर श्मशान, कूड़ाघर, कलालों की दुकानें।[3] इस तरह स्वर्ण तथा दलित जीवन में अनेक भिन्नता दिखाई देती है। एक तरफ गुलाम, मजदूर समाज परिवार है, जिसे दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद भी दो वक्त की रोटी नहीं मिलती। दूसरी तरफ सम्पन्न वर्ग हवेली, महलों में रहते नवाब, जमींदार हैं- ''मालिक लोग मजे से पहलवानी करते, मुर्गों की लड़ाई का मजा लेते, रात में रंडियों के कोठों पर जाते, जहां वे गीत-संगीत की महफिलों में देर रात तक जमे होते।

नाचने वालियों के नाज-ओ-नखरे उठाते, उनकी एक-एक अदा पर सैकड़ों-हजारों रुपये लुटा देते।''4 वहीं दूसरी ओर दलित लोगों को पेट भर भोजन भी कभी-कभार ही मिलता है। उनके रहने तक के लिए पक्के घर नहीं हैं। जिसके बारे में उपन्यासकार लिखता है- ''बस्ती में पक्के मकान कम थे ओर कच्चे अधिक''[5] अत: दलितों को रहने के लिए पर्याप्त पक्के मकान भी न थे।

इस दलित वर्ग में कामकाज के स्पर्धनों के नाम पर जूते-चप्पल बनाने का काम ही था जिसके सहारे इनके परिवार का पालन-पोषण होता था। बस्ती में अधिक दलित परिवार का पालन-पोषण होता था। बस्ती में अधिक दलित परिवार इसी व्यवसाय से जुड़े होते हैं, बाकी मजदूरी करते हैं, ''बस्ती के अधिकांश घरों में जूते-चप्पल का व्यवसाय होता है। शेष मजदूरी करते हैं, उनमें कोई कलेक्टर था न पटवारी।''[6] इस तरह उनके जीवन की आर्थिक स्थिति अधिक मजबूत नहीं है कि वह अपनी सारी जरूरतों को पूरा कर सके।

समाज में उच्च माने जाने वाले सवर्ण जिनमें जमींदार, नवाब, काश्तकार आदि दलितों का पग-पग शोषण करते हैं। इनके साथ जानवरों-सा सलूक किया जाता है। उनके प्रति सवर्णों का व्यवहार अमानवीय है। उपन्यास में नवाब अली वर्दी खां द्वारा बन्सी की हथेली पर थूकना, सहृदय व्यक्ति में आसूं और घृणा को बरबस उपस्थित करता है- ''बंसी ने उनकी तरफ हथेली की। नवाब साहब ने उस पर अन्दर का बलगम थूक दिया। ढेर सारी खकारी बंसी की हथेली पर उगल दी गई थी। नवाब साहब के लिए वही उगालदान था और वही पीकदान। बंसी की आंखों में आसूं भर आये थे, पर मुंह से उफ तक न की थी उसने।'' इस प्रकार सवर्ण लोग दलितों के कूड़ेदान के समान मानते हैं और उनके मन में उनके लिए कोई संवेदना नहीं।

दलितों की स्थिति समाज में सवर्णों के सामने इतने निचले दर्जे की थी कि वे मजदूर-गरीब, दलित लोग सवर्णों के समान नाम रखने की भी इनकी अनुभूति न दी थी। पंडित वर्ग ने इनके लिए निचले दर्जे के नामों को इजाद कर रखा था। समाज में इनके प्रति उपेक्षित भाव रखा जाता था। उपन्यास में पंडित केशव प्रसाद बंसी के लड़के का नाम 'बुद्ध' रखते हैं। जिस घर बस्ती की लुगाइयां पंडित पर व्यंग्य करती कहती हैं- ''पंडित जी, क्या नाम रखा? ....कालू, चेतू, भाना, बुद्ध, रगडू, झगडू या फिर भगडू ....बतलाओ न पंडित जी, दलितों की जन्म-पत्री में कुछ और नाम बताओ.... नाटू, मंगलू, सीरिया, ...घुरिया, कुडिया, रमिया क्या यही नाम हमारे हिस्से रहे हैं।''[7] बंसी अपने बेटे का नाम पंडित के कहे अनुसार न रखकर 'सुनीत' रखता है। वह पंडित की बात का विरोध करता है और उपन्यास में पग-पग सवर्णों द्वारा दलितों का शोषण तथा अपमान किया जाता है। बस्ती में दलितों के लिए खोले गए स्कूल 'नूतन प्राइमरी स्कूल' में कोई भी स्वर्ण पढ़ाने के लिए तैयार नहीं होते। उपन्यासकार के शब्दों में, ''कोई अध्यापक बस्ती में बढ़ाने के लिए तैयार नहीं होता। वे सभी अध्यापक सवर्ण थे।''[8]

सुनीत को डेढ़ चमार होने के कारण उपेक्षा, अपमान तथा घृणा का सामना करना पड़ता है। स्कूल में 500 में से 450 अंक लाने वाला बस्ती का वह पहला लड़का था। स्कूल में पढ़ाई के दौरान एक बार उसने किताब में एक चित्र देखा था जिसमें ब्राह्मण को प्याऊ पर लोटे से पानी पीता और दलित को चमड़े से बनी नलकी से पीता दिखाया गया है। जब वह मास्टर जी के साथ प्याऊ पर पानी पीने जाते हैं और पंडित जी से सागर से पानी पिलाने की बात करता है तो पंडित कहता-कहता रुक जाता है तो उसके वाक्य को वह खुद पूरा करता है, ''पर तुम तो .... हाँ हाँ पंडित जी, हम डेढ चमार हैं।''[9]

इस तरह सुनीत को बार-बार दलित होने का अभिशाप झेलना पड़ता है। स्कूल में कोई उससे नहीं बोलता। दलित होने के कारण उसे स्कूल में हमेशा दूसरे स्थान पर ही रहना पड़ता है। स्कूल के चार-पांच सवर्ण अध्यापक मिलकर राकेश और अजय शर्मा को सवर्ण होने के कारण पहले स्थान पर लाया जाता है।

धार्मिक स्तर पर भी दलितों को प्रताड़ना, जलीलता का शिकार होना पड़ता है। उनके साथ अभद्र, अमानवीय व्यवहार किया जाता है। ईश्वर को केवल सवर्णो ने केवल अपने तक ही सीमित रखा हुआ है। दलितों को सवर्णों के मन्दिरों तक में जाने की आज्ञा तक न थी। अपनी इस तिरस्कृत स्थिति पर दु:खी और निराश होता हुआ बंसी कहता है, ''क्या हमारे हिस्से में देवी-देवता नहीं हैं, हमारे कौन से देवी-देवता हैं। हम किनकी पूजा करें, न मन्दिरों में उनके लिए प्रवेश है और न मस्जिदों में। क्या वे इन्सान नहीं हैं।''[10]

स्कूल में जब सुनीत अपने मित्र के साथ सकूल के आहाते में बने शिव मन्दिर में प्रवेश कर जाता है पर जैसे ही शिवानन्द शर्मा उन्हें देखते हैं तो भड़क जाते हैं और कहते हैं, ''एक मांस काटने वाला और दूसरा मांस खींचने वाला। हे भगवान! सत्यानास हो

तुम्हारा। हमारा तो मन्दिर ही भ्रष्ट कर दिया।''[11] इस प्रकार चहुं ओर दलितों को अपमानित होना पड़ता है। इसी अपमान के कारण दलितों में विद्रोह का स्वर उठने लगता है।

अत: निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि अपने इस उपन्यास में मोहनदास नैमिशराय ने दलित जीवन के कटु सत्यों को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनका अस्तित्व समाज में जानवरों से भी बदतर है। उनकी दयनीय तथा समाज में अपमानित व्यवहार के द्वारा लेखक पाठक वर्ग का दलित जीवन की सच्चाइयों से साक्षात्कार करवाता है तथा उन्हें दलितों की स्थिति पर सोचने तथा उनकी स्थिति में सुधार के लिए सोचने पर बाध्य करता है।

संदर्भ:

1 मोहनदास नैमिशराय, मुक्तिबोध, पृ. 18
2 वही, पृ. 27
3 वही, पृ. 39
4 वही, पृ. 73
5 वही, पृ. 51
6 वही, पृ. 87
7 वही, पृ. 91
8 वही, पृ. 93
9 वही, पृ. 36
10 वही, पृ. 43
11 वही, पृ. 37

भारत की सामाजिक समस्यायें

डॉ० सविता नागर

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, एन. आर.ई. सी. कॉलेज खुर्जा, उत्तर प्रदेश

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुये मानव के हितों में समानता एवं असमानता भी देखने को मिलती है। इन्हीं मानवीय हितों में साम्यता एवं असमानता के आधार पर समाज में मानवीय सम्बन्धों का निर्माण होता है। समाज में मानव सम्बन्धों में हितों के मध्य असाम्यता के परिणामस्वरूप तनाव देखने को मिलता है। समाज में व्यक्तियों के द्वारा हितों की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न किये जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उनमें प्रतिस्पर्धा होती है। यह स्पर्धा प्रायः समाज के अल्प संसाधनों, शाक्ति तथा प्रसिद्धि की प्राप्ति आदि के लिये व्यक्तियों के मध्य होती है। समाज में संसाधनों, मूल्यों तथा शाक्ति के असमान वितरण के परिणामस्वरूप कई समस्यायें पैदा होती है।[1] इन्हीं समस्याओं के समाधान हेतु सामाजिक ढाँचे के मूल्यों, नीतियों आदि में क्रियान्वयन एवं परिवर्तन किया जाता है। मानव समाज में निरन्तर परिवर्तन देखने को मिलता है परंतु सभी प्रकार के परिवर्तनों को प्रगति नहीं कहा जा सकता। भारत में पिछले 66 वर्षो में बहुत सामाजिक परिवर्तन हुये है और आज भी हो रहे है परंतु इन सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद समाज में संघर्ष, हिंसा व्याप्त हैं जातिवाद, साम्प्रदायिकता, नक्सलवाद, अभाव-गरीब, मानवाधिकार हनन, भ्रष्टाचार आदि सामाजिक समस्यायें समकालीन भारतीय समाज में अपनी उपस्थिति बनाये हुये हैं। वर्तमान में देश इन अनगिनत सामाजिक द्वन्द्वों से जूझ रहा है। समकालीन भारतीय समाज में अनेक ऐसी समस्याएँ है जिनका समुचित हल नहीं निकल पाया है। व्यवस्था और उस पर हावी विकासवादी विचारधारा से मिले आश्वासनों के बावजूद समाज में पीड़ित, अभावग्रस्त जनता इनके समाधान से दूर हैं। इस परिघटना के लिए दो कारण उत्तरदायी माने जा सकते हैं, पहला तो यह कि लोकतांत्रिक राष्ट्र-निर्माण और समाज परिवर्तन की कार्य सूची पर पूरी तरह अमल नहीं किया गया। दूसरा कारण यह लगता है कि भारतीय यथार्थ अपनी अंतर्निहित जटिलता, तरह-तरह के विभाजनों और विरोधाभासों के कारण सामान्य विश्लेषणों और विचारधारात्मक व्याख्याओं के पारंपरिक ढाँचे में फिट होने के लिये तैयार नहीं है। लम्बे समय तम धैर्य और सहनशीलता दिखाने के बाद लोगों का विश्वास डगमागाने लगा है और वे कुंठित महसूस कर रहे हैं और आन्दोलन, प्रत्यक्ष हिंसक कार्यवाहियों का मार्ग अपना रहे हैं।[4] भारतीय राजव्यवस्था, प्रशासनिक तंत्र एवं आर्थिक नीतियाँ और राजनीतिक दलों द्वारा लम्बे समय से अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ा जा रहा है। परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सारतत्त्व को समझते हुये जनता द्वारा जनता, समाज से जुड़े मामलों, सामाजिक समस्याओं को अपने हाथ में लिया जा रहा है।

सामाजिक समस्यायें

समाजिक समस्या को सामाजिक आदर्श का विचलन माना गया है जो सामूहिक प्रयत्न से ही ठीक हो सकता है। इस परिभाषा के दो तत्त्व महत्त्वपूर्ण है एक आदर्श से कम है, यानि कि जो अवांछनीय या असाधारण है, और जो सामूहिक समस्यायें, द्वन्द्व समाज की संरचनाओं के कार्य- निर्वाह में समस्याएँ उत्पन्न करती है। इनके समाधान के लिये सामाजिक संरचनाओं का पुनर्गठन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं की पुनः संरचना की आवश्यकता हो जाती है। समय के साथ-साथ सामाजिक द्वन्द्व बदलते रहते हैं। इनके स्वरूप व प्रकृति में अंतर आता रहता है। सामाजिक संघर्ष की परिभाषा के बारे में रेनहार्ट ने कहा है कि यह 'वह स्थिति है जिससे समाज का एक खण्ड या बड़ा भाग प्रभावित होता है और जिससे ऐसे हानिकारक परिणाम हो सकते हैं अथवा होते हैं और जिनका सामूहिक रूप से सामाधान सम्भव हैं।[5] इस प्रकार किसी सामाजिक समस्यात्मक स्थिति के लिये कोई एक या कुछ व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होते और इस पर नियंत्रण पाना एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के वश की बात नहीं होती। इसका उत्तरदायित्व सामान्य रूप

से पूरे समाज पर होता है। हाटर्न और लेस्ले का मानना है कि सामाजिक द्वन्द्व 'एक स्थिति है जो व्यक्तियों की बड़ी संख्या को ऐसे तरीकों से प्रभावित करती है जो अवांछनीय समझे जाते हैं और यह सोचा जाता है कि सामूहिक सामाजिक क्रिया के द्वारा उसके बारे में कुछ किया जा सकता है।[6] सामाजिक समस्या में एक नैतिक मूल्यांकन होता है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप ऐसी भावना होती है कि स्थिति हानिकारक है और इसमें परिवर्तन आवश्यक है।

सामाजिक समस्याओं, द्वन्द्वों का समाधान एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों से नहीं हो सकता। सारी सामाजिक समस्याओं से सामाजिक स्तर पर ही निबटा जा सकता है अर्थात् इनका समाधान जनता की रूचि, वाद-विवाद, जनमत-रचना और दबाव से ही हो सकता है। सामाजिक द्वन्द्व समाज के मूल्यों और संस्थाओं के संदर्भ में देखे जा सकता हैं। सामाजिक द्वन्द्व अंतर्सबंधिता होते हैं और इनकी उत्पत्ति का कोई समान आधार होता है। सामाजिक द्वन्द्वों के परिणाम सामाजिक होते हैं अर्थात् ये समाज के सभी खण्डों पर प्रभाव डालते हैं। सामाजिक द्वन्द्वों का दायित्व सामाजिक है तथा इनके निवारण के लिये एक सामूहिक उपागम की आवश्यकता होती है।

सामाजिक द्वन्द्वों के परिणामस्वरूप विकृत सामाजिक स्थितियों का जन्म होता हैं। ये सभी समाजों में उत्पन्न होती है, चाहे वे समाज साधारण हो यानी कि छोटे, पृथक् समरूप समाज हो जिनमें सामूहिक एकात्मकता की दृढ़ भावना होती है और जिनमें परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है या जटिल हो जिनमें द्वितीयक सम्बन्ध, गुमनामी, एकाकीपन, तीव्र गतिशीलता और अत्यधिक विशेषज्ञता होती है और जिनमें परिवर्तन अधिक शीघ्र होता है। अर्थात् जहाँ कहीं भी और जब भी व्यक्तियों के समूह में पारस्परिक सम्बन्ध प्रभावित होते हैं। रेनहार्ट ने सामाजिक द्वन्द्वों के विकास में तीन तत्त्वों का उल्लेख किया है-

(1) स्वार्थो और क्रियाओं का विभेदीकरण और गुणन।

(2) समाजिक परिवर्तन और सभ्यता के विकास की आवृति को त्वरित करना।

(3) विश्लेषण करने की मानव की अन्तर्दृष्टि।

समाज में विभिन्न समूहों की विभिन्न मूल्य व्यवस्थाएँ होती है। दो या दो से अधिक समूहों के मूल्यों में असंगति व्यक्तियों की अपनी भूमिका पालन में यदि हस्तक्षेप करती है तो उसे मूल्य संघर्ष कहा जाता है। सामाजिक द्वन्द्वों की उत्पत्ति एवं विकास में मूल्यों के संघर्षो का भी महत्त्व होता है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण समाजों में समस्याएँ उत्पन्न होती है। भारतीय समाज में पिछले पाँच-छ: दशकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। हमने निश्चित सामूहिक लक्ष्यों में से कई लक्ष्य प्राप्त कर लिये हैं फिर भी हमारी सामाजिक व्यवस्था में कई अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गये हैं। मौलिक रूप में मानव समाज में शांति-सौहार्द्र की प्राप्ति चाहता है तथा वर्तमान में इस उद्देश्य की प्राप्ति में उदारवादी व मार्क्सवादी प्रतिमानों की प्रभावशीलता अल्प ही सिद्ध हुयी है। भारतीय समाज के वर्तमान परिदृश्य में नक्सलवादी हिंसा, भ्रष्टाचार कट्टरता साम्प्रदायिकता, मानवाधिकार हनन, सामाजिक असमानता तथा पर्यावरण असंतुलन आदि कई द्वन्द्व अपना सार्थक समाधान चाहते हैं।

21वीं शताब्दी के भारतीय समाज में अगर हम विभिन्न संघर्षो, द्वन्द्वों का विश्लेषण करें तो चार प्रमुख समस्याएँ हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं-

1. समाज में हिंसा का बढ़ता स्तर तथा इस पर नियंत्रण के साधनों की प्रभावशीलता का क्षरण होना।
2. सम्पत्ति और प्राकृतिक संसाधनों का समाज में असमान वितरण, असंयमित उपभोग का बढ़ना।
3. शासकों तथा राजनीतिज्ञों की कट्टरपंथी धार्मिक तत्त्वों और समूहों पर बढ़ती निर्भरता।
4. नैतिक, आध्यात्मिक और नीतिशास्त्र के मूल्यों, मानदंडों का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि के व्यावहारिक पक्षों में गिरता महत्त्व। भारतीय समाज में विगत दो-तीन दशकों के समय का विश्लेषण करने पर हमें समकालीन भारतीय समाज में हिंसा के बढ़ते स्तर तथा नैतिक मूल्यों के पतन के कारण भारतीय समाज में विभिन्न संघर्ष तथा द्वन्द्व अपना अस्तित्व बना चुके है। भारतीय समाज के समक्ष वर्तमान में राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया अपना पूर्ण रूप हासिल नहीं कर पायी है परिणामस्वरूप समाज में जातिवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता, नक्सलवाद तथा भ्रष्टाचार रूपी सामाजिक द्वन्द्व अपनी उपस्थिति बनाये हुये हैं। सरकारों तथा शासन अभिजनों द्वारा इनके समाधान हेतु किये गये अभी तक के प्रयास

पूर्ण रूप से सफल नहीं रहे हैं। समय-समय पर इन संघर्षो का निहित स्वार्थो द्वारा अपने संकीर्ण हितों की प्राप्ति के लिये उपयोग किया जाता है। आजादी के सत्तर वर्षो बाद भी इन सारी समस्याओं को हल नहीं कर पाये हैं। बेशक गंभीर कमियाँ रह गयी है, नई कमजोरियाँ उभर आई है, नए खतरे पैदा हो गये हैं। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में भी हुयी कुल प्रगति से भारतीय जनमानस को अन्य समस्याओं को हल करने की प्रेरणा लेनी होगी।

नक्सलवाद

भारत में विगत कुछ वर्षो से नक्सलवाद आंतरिक सुरक्षा के लिये बड़ी गंभीर चुनौती बनकर उभरा है। भारत में हिंसक होते जा रहे नक्सलवादी आन्दोलन ने राज्य व केन्द्र सरकार मे प्रयासों को इसके समाधान में अप्रभावी ही सिद्ध किया है। नक्सलवादी आन्दोलन का नाम भारत में साम्यवादी आन्दोलन में कई संगठनात्मक उतार-चढ़ावों के बीच प. बंगाल के दूर-दराज के एक अति पिछडे गाँव 'नक्सलवादी' में मार्च, 1967 से जुड़ा हुआ माना जाता है। 1967 में यहाँ के आदिवासी भूमिहीन कृषक एवं मजदूर समुदाय ने भूस्वामियों की शोषण व अन्यायपूर्ण नीतियों के विरूद्ध हथियार उठाये। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता चारू मजूमदार व कानू सान्याल ने सत्ता के खिलाफ एक सशस्त्र संघर्ष की शुरूआत की। उनका मानना था कि भारतीय कृषक और मजदूरों की दुर्दशा के लिये सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार है जिसकी वजह से उच्च वर्गो का शासन तंत्र और परिणामस्वरूप कृषि तंत्र पर दबदबा हो गया है। जिसे सशस्त्र संघर्ष से ही समाप्त किया जा सकता है। 'नक्सलवादियों ने कम्यूनिस्ट क्रांतिकारियों की एक अखिल भारतीय समन्वय समिति बनाई, भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी से अलग हो गये और सरकार के खिलाफ भूमिगत सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया। इसके बाद यह आंदोलन शीघ्र ही देश के अन्य राज्यों आन्ध्रप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, केरल, उत्तरप्रदेश में भी फैल गया और इसी प्रकार की पार्टी व गुटों की स्थापना हुई। देश के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी और नवयुवक भी इस आंदोलन से जुड़ गये। इस आन्दोलन के समर्थक, माओवादी क्रान्तिकारी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि अन्याय व शोषण से छुटकारा पाने का एकमात्र तरीका सशक्त क्रांन्ति है। नक्सलवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का समर्थन करते हैं।

सर्वप्रथम 1967-71 के वर्षो में पश्चिम बंगाल और बिहार राज्यों में नक्सलवादी सशस्त्र घटनाओं की शुरूआत हुयी। पश्चिम बंगाल में चारू मजूमदार और कानू सन्याल, आंध्रप्रदेश में बी.सत्यनारायण और टी.नागारेड्डी और केरल में कुनीफल नारायणन् और के.पी. आर. गोपालन आदि नक्सलवादियों ने भूमिहीन मजदूरों को संगठित कर गुरिल्ला युद्ध पद्धति के आधार पर भूमिपतियों के विरूद्ध खुनी संघर्ष की नीति अपनायी।

1990 में नक्सलवादी आंदोलन ने आंध्रप्रदेश, बिहार एवं झारखण्ड के कुछ क्षेत्रों में पुन: जोर पकड़ा। इस बार इसकी जड़े और गहरी हो गयी। इस आंदोलन के विभिन्न संगठनों के मध्य बेहतर तालमेल, सामंजस्य, संवाद व सम्प्रेषण था ताकि देश के विभिन्न भागों से आंदोलन को संचालित किया जा सके। इसका परिणाम तीन बड़े नक्सलवाली समूहों-माओवादी साम्यवादी केन्द्र (एम.सी. सी.), पीपुल्स वार ग्रुप (पी.डब्ल्यू.जी.) तथा भारतीय साम्यावादी दल (एम.एल.) के रूप में सामने आये। बाद में 2004 में इन तीनों समूहों ने संयुक्त होकर एक समूह 'भारतीय साम्यवादी दल' का गठन किया गया।

नक्सलवादियों का दावा है कि वे देश के 182 जिलों में मौजूद हैं। एक आंकलन यह भी है कि 20 राज्यों के करीब 220 जिलों में नक्सली किसी न किसी रूप में मौजूद हैं जो देश का लगभग 40 फीसदी क्षेत्र है। भौगोलिक दृष्टि से देश के करीब 92 हजार वर्ग कि.मी. नक्सली प्रभाव वाले क्षेत्र को 'रेड कोरिडोर' कहा जाता है। नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्र की सीमा नेपाल से शुरू होकर दक्षिण कर्नाटक तक जाती है। देश की खुफिया एजेंसी 'रॉ' के अनुसार करीब 2,00,000 सशस्त्र नक्सलवादी और 50,000 रेगुलर कैडर अलग-अलग संगठनों में काम कर रहे है। इनसे सहानुभूति रखने वाले भूमिहीन, कृषक, मजदूर, अभावग्रस्त, उपेक्षित आदिवासियों की संख्या लाखों में है।

जिन राज्यों में नक्सलवाद पूरे प्रभाव के साथ मौजूद है उनमें झारखण्ड, बिहार, आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और प.बंगाल प्रमुख है। छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले तथा प.बंगाल में 'जंगल महल' व लालगढ़ ऐसे क्षेत्र हैं जो राज्य विरोधी नक्सल से बुरी तरह प्रभावित हैं।

साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा

भारतीय संविधान द्वारा भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है फिर भी आज साम्प्रदायिकता भारतीय समाज और राजनीति के लिये सबसे गंभीर खतरे के रूप में सामने आया है। यह धर्मनिरपेक्षता की जड़े खोखली कर रहा है, भारतीय जनता द्वारा कठिनाई से हासिल की हुई एकता के लिये संकट बन गया है। स्वतंत्र भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या के विश्लेषण से पूर्व धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता की अवधाराणाओं को परिभाषित करने की आवश्यकता है। मूलत: धर्मनिरपेक्षता का अर्थ राजसत्ता और राजनीति से धर्म का अलगाव और धर्म को निजी और व्यक्तिगत मामला मानता है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि राजसत्ता अपने नागरिकों के बीच उनके धर्म एवं जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करे।[22] साम्प्रदायिकता एक ऐसी विचारधारा है जो इस विश्वास पर आधारित है कि भारतीय समाज ऐसे धार्मिक समुदायों में बँटा हुआ है जिसके आर्थिक, राजनीति, सामाजिक और सांस्कृतिक हित अलग-अलग हैं और यहाँ तक कि अपने धार्मिक अवसरों के कारण एक दूसरे के शत्रु हैं। एक विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता का मूलभूत अर्थ साम्प्रदायिक विचारों और चिंतन शैली का प्रसार करना होता है। जब एक अल्पसंख्यक समुदाय को लगता है कि उसका कई दशकों से अन्याय से दमन हुआ है और उसका शोषण और वंचन हो रहा है और वह प्रतिक्रिया दिखाता और तीखा विरोध करता है, कभी हिंसात्मक रूप से भी तो यह साम्प्रदायिकता कही जा सकती है। यह विरोध किसी विशेष समुदाय पर झूठे आरोप लगाना, क्षति पहुँचाना और जान बूझकर अपमानित करने का रूप ले लेता है। साम्प्रदायिक व्यक्ति वे हैं जो राजनीति को धर्म के माध्यत से चलाते हैं। नेताओं में वे धार्मिक नेता 'साम्प्रदायिक' है जो अपने धार्मिक समुदायों को व्यापारिक उद्यम और संस्था मानते हैं। 'बहु सांस्कृतिक' समाज में सामाजिक तनाव तथा द्वन्द्व वास्तव में विभिन्न समूहों के बीच चल रहे सत्ता द्वन्द्व के लक्षण है। इस पारस्परिक द्वन्द्व को सैद्धान्तिक स्तर पर धर्म की शिला पर खड़ा करना एक साम्प्रदायिक विचारधारा के रूप में सम्प्रदायवाद का मूल सार है। साम्प्रदायिकता का आचरण कई प्रकार से किया जाता है, उदाहरण के लिये, राजनीतिक साम्प्रदायिकता, धार्मिक साम्प्रदायिकता और आर्थिक साम्प्रदायिकता। राजनीतिक साम्प्रदायिकता चिरस्थायी या टिकाऊ राजनीतिक स्वार्थपरायण की उपज है और इसको इस प्रकार विकसित और सुरक्षित किया जाता है कि जिससे अपने कुकर्म छुप जायें और दूसरे व्यक्तियों का ध्यान इस ओर से हट जाये।

टी.के. ऊमन ने साम्प्रदायिकता के छह आयाम बतलायें हैं, आत्सातीकरणवादी, कल्याणकारी, पलायनवादी, प्रतिशोधवादी, अलगववादी और पार्थक्यवादी। आत्मसातीकरणवादी साम्प्रदायिकता वह है जिसमें छोटे धार्मिक समूहों का बड़े धार्मिक समूह में समावेश कर लिया जाता है। कल्याणकारी साम्प्रदायिकता का लक्ष्य किसी विशेष समुदाय अपने को राजनीति से अलग रखता है। प्रतिशोधपूर्ण साम्प्रदायिकता दूसरे धार्मिक समुदायों के सदस्यों को हानि और चोट पहुँचाने का प्रयत्न करती हैं। पृथकतावादी या अलगाववादी साम्प्रदायिकता वह है जिसमें एक धार्मिक समुदाय अपनी संस्कृति की विशेषता बनाये रखना चाहता है और देश में एक अलग राज्य की माँग करता है। धार्मिक साम्प्रदायिकता वह है जिसमें एक धार्मिक समुदाय अपनी अलग राजनीतिक पहचान चाहता है और एक स्वतंत्र देश की मांग करता है। इन छह प्रकार की साम्प्रदायिकता में से पिछले तीन रुप समस्यायें खड़ी करते हैं और जिनके कारण आन्दोलन, साम्प्रदायिक झगड़े, आंतकवाद और बगावत उत्पन्न होते हैं।

भारत के बहुलवादी समाज में अनेक धार्मिक समुदाय हैं जैसे हिन्दू (82.63 प्रतिशत), मुसलमान (11.36 प्रतिशत), ईसाई (2. 43 प्रतिशत), सिख (1.96 प्रतिशत), बौद्ध (0.71 प्रतिशत), जैन (0.48 प्रतिशत) आदि। हिन्दू कई सम्प्रदायों में बंटे हुए हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक संबंध एक लंबे अंतराल से तनावपूर्ण रहे हैं, जबकि हिन्दुओं और सिखों ने एक दूसरों को कुछ वर्षो के लिए विशेष कर 1984 से 1990 के बीच संदेह की दृष्टि से देखना शुरू किया था।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी शासन की विरासत है। साम्प्रदायिकता आज महत्वपूर्ण तरीके से परिवर्तित सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में चलती है। अब यह एक ऐसी समस्या समझी जाती है जो देश के विकास की प्रक्रिया में बाधा और विकार उत्पन्न करती है। हमारे धर्मनिरपेक्ष आदर्शो के लिये जिन पर हमारा संविधान बल देता है, यह अकेला सबसे बड़ा खतरा है। साम्प्रदायिक स्वार्थ साम्प्रदायिक द्वेष की आग को भड़काते रहते हैं।

साम्प्रदायिक हिंसा एक सामूहिक हिंसा है। जब समुदाय के लोगों का एक बड़ा भाग अपने सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो जाता है या यह महसूस करता है कि उनके विरूद्ध भेदभाव हो रहा है और उन्हे समान अवसरों से वंचित रखा जा रहा है, तो उसमें कुण्ठा और मोह भंग की भावनाएं जागृत हो जाती हैं। यह सामूहिक कुण्ठा कहा जाता और यह सामूहिक हिंसा को जन्म देती है। फिर भी समस्त समुदाय हिंसात्मक विरोध प्रदर्शित नही करता।

दरअसल में असंतुष्ट व्यक्ति जो सत्ता में होने वाले अभिजनों के विरूद्ध जो कार्यक्रम आयोजित करते हैं वह प्राय: अहिंसात्मक होता है। वह केवल प्रतिवादियों का एक छोटा-सा दल ही होता है जो अहिंसा को अप्रभावी मानता है और संघर्ष की सफलता के लिये हिंसा को अत्यावश्यक समझता है। यही गुट अपनी विचारधारा की शक्ति की पुष्टि करने के लिये प्रत्येक अविचारित अवसर का हिंसा का प्रयोग करने के लिये उपयोग करता है।

यह उप-समूह, जिसका हिंसात्मक आचरण होता है, समस्त समुदाय या असंतुष्ट व्यक्तियों के समूचे समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इस उप-समूह के आचरण का अधिकांशतया समूह के बाकी व्यक्ति साफ-साफ तरीके से समर्थन नहीं करते। जिन परिस्थितियों के कारण सामूहिक साम्प्रदायिक हिंसा होती है वे हैं-तनाव, पद की कुण्ठा और विभिन्न प्रकार की संकट-स्थितियाँ। हिंसा का उपयोग आक्रामकता से इसलिये करते हैं क्योंकि वे असुरक्षा और चिन्ता से ग्रसित होते हैं। इन भावनाओं और चिन्ताओं की उत्पत्ति उन सामाजिक अवरोधों से होती है जो दमनात्मक सामाजिक व्यवस्थाएँ और सत्ताधारी अभिजनों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। इन भावनाओं की उत्पत्ति उस व्यक्ति की पृष्ठभूमि और पालन-पोषण से भी होती है जिसने उस व्यक्ति के लिये कठिनाइयाँ उत्पन्न की हैं और जो उस व्यक्ति के सामाजिक प्रतिमानों और सामाजिक संस्थाओं के प्रति असंगत और अवास्तविक मनोवृत्तियों की प्रवृति को और बिगाड़ देती है।

व्यक्ति अकेले में कमजोर और असुरक्षित होता है। शक्ति संग्रहण, सम्मेलन, जमाव, सामूहिकता और समूहों में होती है। एक व्यक्ति अपने लाभ और सुरक्षा के लिये उनमें मिल जाता है। समाज में हर समय विभिन्न ध्रुवताएँ विद्यमान होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिये ये ध्रुवताएँ दो प्रकार की होती हैं-स्थाई और अस्थाई। पहली श्रेणी में सिद्धान्त, धर्म, भाषा, क्षेत्र और लिंग आते हैं।

गुच्छ समूह में रहने की सामाजिक गतिकी यह होती है कि गुच्छ समूह दंगा-प्रवृत स्थिति के उभारने में अति सिद्ध होते हैं क्योंकि अन्तर-व्यक्तिगत सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं और ऐसी उत्तेजनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें एक का दूसरे के प्रति जानबूझ कर किया गया अपमान, वंचना और चोट समझा जाता है। ऐसी घटनाएं गुच्छ समूहों के अधिकांश लोगों को अपनी ही ध्रुवता वाली जनसंख्या में सम्पर्क बनाने के लिये प्रोत्साहित करती है और यह जन विद्रोह पैदा करने में मदद करती हैं।

नेतृत्व के स्तर पर दिया जाने वाला साम्प्रदायिक आह्वान भी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया में तेजी लाता है। साम्प्रदायिक हिंसा के लिये दंगाप्रवृत क्षेत्रों में तनाव बनने के लक्षणों पर रोक लगाना और रोकने का प्रबंध करना आवश्यक है।

दंगा प्रवृत क्षेत्रों में तनाव-प्रबन्ध के लिये अन्तर-गुट झगड़ों से सम्बन्धित सूचकांक तैयार करने की आवश्यकता है। ये सूचकांक हैं-तनाव बढाने वाले विवाद-विषयों की पहचान, सामूहिक चिन्ताओं की जानकारी, विवाद-विषयों का उपचार और भंग हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्रतिष्ठित करना, वार्तालाप, कार्यरत गुटों को गतिशील बनाना और अफवाहों को रोकना। अफवाह प्रबन्ध में अफवाह क्षेत्र को अलग करना, प्रति सन्तुलन अफवाह फैलाने वालों को निष्क्रिय करना और लोक प्रशासन को संवेदनशील बनाना।

अस्सी के दशक में लगभग 4000 व्यक्ति साम्प्रदायिक दंगों में मारे गये। यदि उमड़ते हुए साम्प्रदायिकता के इस ज्वार को उल्टा नहीं गया तो यह सारे देश को बहाकर ले जायेगा। इसके हल दोनों राजनीतिक-मनोवैज्ञानिक और प्रशासनिक-आर्थिक हैं। स्वतंत्रता से पहले यह दलील देना सरल था कि साम्प्रदायिक हिंसा अंग्रेजों की 'फूट डालों और राज करो' नीति का परिणाम थी। अब वास्तविकता अधिक जटिल है। धर्म का राजनीतिकरण हो गया है और राजनीति का अपराधीकरण। जब तक सब समुदाय अपने को एक राष्ट्र का भाग नहीं मानते, तब तक साम्प्रदायिक अशान्ति को रोकना कठिन होगा। एक देश, जो अपनी नीतियों के धर्मनिरपेरक्ष होने पर गर्व करता है, को ऐसे राजनीतिज्ञों से सावधान रहना चाहिये जो केवल अपने धार्मिक समुदाय के लिए ही बोलते हैं। उसे ऐसे अधिकारियों को अनावृत और पृथक कर देना चाहिये जो धर्म निरपेक्षता को केवल एक सैद्धाान्तिक संभावना ही मानते हैं। पुलिस अब और समय के लिये साम्प्रदायिक समस्या को पनपने नहीं दे सकती जिस प्रकार से वह अब तक पनपी है।

साम्प्रदायिक दंगों से निबटने के लिये निम्नलिखित प्रभावी कदम उठाये जा सकते हैं, साम्प्रदायिक मानसिकता रखने वाले राजनीतिज्ञों को रोकना और उन्हें चुनाव लड़ने से वंचित करना, धर्मान्ध लोगों को प्रतिरोधक दण्ड देना, दोष निवारक उपायों का उपयोग करना, जैसे पुलिस विभाग को राजनीतिज्ञों के नियंत्रण से मुक्त करना, पुलिस के खुफिया विभाग को शक्तिशाली बनाना, पुलिस बल की पुनः संरचना करना, पुलिस प्रशासन को अधिक संवेदनशील बनाना, पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में संशोधन करना और उन्हें धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने के योग्य बनाना। एक कुशल पुलिस संगठन, प्रबद्ध पुलिस कर्मचारी और सुसज्जित और विशेष प्रशिक्षण प्राप्त पुलिस दल निश्चित रूप से सकारात्मक परिणाम देंगे।

सरकार को ऐसे उपाय भी करने होंगे जिससे कि भेदभाव और वंचन, जो वास्तविक रूप से नहीं हैं, की भावनाएँ खत्म हो जायें। सरकार को अग्रवादी साम्प्रदायिक व्यक्तियों को तथा उनकी कानून की व्यवस्था समाप्त करने की क्षमता को लक्ष्य मानना होगा। कश्मीर में पार्थक्यवादी, पंजाब में उग्रवादी, केरल में इस्लामिक सेवक संघ, उत्तरप्रदेश में बजरंग दल तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ व शिव सेना जैसे संगठनों के विरूद्ध सरकार को अपनी अमन चैन व शान्ति स्थापित रखने सम्बन्धी मशीनरी द्वारा सामना करना होगा। 1980 के दशक व 1990 दशक के पहले तीन वर्षो में पायी जाने वाली साम्प्रदायिकता ने धर्मनिरपेक्ष सरकार पर उत्तरदायित्व डाला था कि वह उभरते हुए साम्प्रदायिक तत्वों का नाश करे। परन्तु अब भी साम्प्रदायिकता धीरे-धीरे बढ़ रही है, धर्मनिरपेक्षता पीछे जा रही है तथा राज्य रक्षाणात्मक कार्य कर रहा है। 'ब्लू स्टार आपरेशन' के बाद की अवस्था में सरकार रक्षणात्मक थी, 'शाह बानो केस' में सरकार पीछे जा रही थी अयोध्या में मंदिर-मस्जिद विवाद पर 1992 में और नवम्बर 1993 में कश्मीर में हजरतबल दरगाह विवाद पर सरकार घेरे से बाहर थी। इन सभी परिस्थितियों में सिख, मुस्लिम और हिन्दू सम्प्रदायवादी आक्रमण पर थे। अतः सरकार को अल्पकालीन व दीर्घकालीन रणनीतियों द्वारा हिन्दू, मुस्लिम और सिख साम्प्रदायिकता का सामना करना होगा।

भ्रष्टाचार की समस्या

भारत में लगता है कि इक्कीसवी शताब्दी में भी भ्रष्टाचार को बढ़ने से रोकना असम्भव होगा। भ्रष्टाचार को 'निजी लाभ के लिए सार्वजनिक शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करना जिसमें कानून तोड़ना शामिल हो या जिससे समाज के मानदण्डों का विचलन हुआ हो' माना जाता है। डी.एच.बेली ने भ्रष्टाचार को इस प्रकार बताया है 'निजी लाभ के विचार के परिणामस्वरूप सत्ता का दुरूपयोग जो धन सम्बन्धित नहीं भी हो सकता है।' एन्ड्रिस्की ने कहा है, 'ऐसे तरीकों में सार्वजनिक शक्ति का निजी लाभ के लिए प्रयोग जो कानून का उल्लंघन करता हो।' जे.नाई का कहना है कि 'भ्रष्टाचार निजी लाभों के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग दर्शाता है।' भ्रष्टाचार को इस प्रकार भी समझाया गया है, 'यह आर्थिक या प्रतिष्ठा सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भूमिका के प्रति औपचारिक कर्त्तव्यों से विचलन है।'

'समाज में भ्रष्टाचार अनेक स्वरूपों में फैला हुआ है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-रिश्वत देने वाले के पक्ष में अवैध, बेइमानी से युक्त कार्य करने से युक्त कार्य करने को प्रेरित करने के लिए नकद या वस्तु या उपहार में दिया गया, भाई-भतीजावाद सम्बन्धियों को अनावश्यक पक्षपात द्वारा संरक्षण प्रदान करना, दुर्विनियोग दूसरे के धन को अपने प्रयोग में लेना, संरक्षण द्वारा गलत समर्थन दिया जाना और इस प्रकार पद का दुरुपयोग कराना और पक्षपात एक व्यक्ति को छोड़कर दूसरे को अनावश्यक वरीयता देना।

भ्रष्टाचार एक विश्वव्यापी तथ्य है। यह अनन्त समय से प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। भारत में कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राज्य कोष के सरकारी कर्मचारी द्वारा गबन किये जाने का सन्दर्भ दिया है। इसमें कर्मचारियों द्वारा अपनाए जाने वाले लगभग 50 प्रकार के गबन और अन्य भ्रष्ट तरीकों का वर्णन किया है। अशोक के शासनकाल में भ्रष्टाचार कम पैमाने पर पाया जाता था।[31] मध्ययुगीन समाज में भी भ्रष्टाचार का क्षेत्र कम था क्योंकि कर वसूली के लिए कम से कम अधिकारी थे। ब्रिटिश शासनकाल में रिश्वत न केवल भारतीय अफसरों द्वारा स्वीकार की जाती थी बल्कि उच्च पदस्थ अंग्रेज अधिकारियों द्वारा भी।[32] स्वतंत्रता के बाद यद्यपि राष्ट्रीय स्तर का उच्च राजनैतिक अभिजात वर्ग एक दो दशकों तक अति ईमानदार बना रहा, किन्तु तीसरे (1962) और चौथे (1967) चुनावों के बाद नवोदित राजनीतिक अभिजात वर्ग ने अपने ईमानदार होने के विषय में जनता का विश्वास खो दिया। सभी स्तरों के सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत सरकारी कर्मचारियों ने छोटी बातों के लिए बड़ी-बड़ी रिश्वतें स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। आज केन्द्रीय एवं राज्य दोनों स्तरों पर ईमानदार छवि में मंत्रियों और प्रशासकों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है।[33]

न केवल एशियाई देशों को, बल्कि यूरोपीय और विकसित देशों को भी भ्रष्टाचार का कैंसर खाता चला जा रहा है। लोकसेवकों में भ्रष्टाचार हमेशा एक या दूसरे रूप में विद्यमान रहा है, यद्यापि इसका स्वरूप, आयाम, प्रकार और छवि समय-समय और

स्थान-स्थान पर बदलते रहे हैं। एक समय था जब रिश्वत गलत कार्यो को कराने के लिए दी जाती थी लेकिन अब सही कार्य को सही समय पर कराने के लिए दी जाती है।

कानूनी प्रावधानों के अन्तर्गत लोकसेवकों के निम्नलिखित व्यवहार भ्रष्ट कहे गये हैं।[34]-(1) अधिकारिक हैसियत से किए गए कार्य के लिए पुरस्कार स्वरूप भेंट स्वीकार करना, (2) अवैध रूप से कोई भी वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करना, (3) सार्वजनिक सम्पत्ति का धोखधड़ी से दुरुपयोग करना, (4) सरकारी व्यवहार से सम्बन्धित किसी व्यक्ति से कीमती वस्तु खरीदने के लिए धन उधार लेना यह मानते हुए कि उधार लिया धन वापस नहीं किया जाना है। (5) जानबूझ कर नियमों की अनदेखी करते हुए देयकों आदि के भुगतान करने से बचने में नागरिकों की मदद करना, (6) किसी बहाने से किसी कर्त्तव्य को करने से इन्कार करना जिससे दूसरों का फायदा होता हो।

भ्रष्टाचार की सम्भावना उन क्षेत्रों में अधिक है जहाँ महत्वपूर्ण निर्णय किए जाते है, जैसे कर संग्रह का मूल्यांकन, ठेके स्वीकृत करना, बिल पास करना, चैक जारी करना, आपूर्ति को मान्यता देना आदि। भ्रष्टाचार न केवल उच्च स्तर पर व्याप्त है, बल्कि निम्न स्तर तक भी फैला हुआ है।

यह सर्वविदित है कि एक बड़ी संख्या में राजनीतिज्ञ न केवल भारत में बल्कि विश्व में भ्रष्ट हैं। राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश होने पर लोगों को कभी आघात नहीं पहुँचता। ईमानदार राजनीतिज्ञ वर्तमान में लुप्तप्राय प्रजाति होती जा रही है। गत दो या अधिक दशकों में हमारे देश में भारी दलाली और परोक्ष भुगतान से सम्बन्धित अनेक घोटाले और आर्थिक अनियमितताओं के मामले प्रकाश में आए हैं। इन घोटालों में अधिकतर मुख्यमंत्री, मंत्री, महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर आसीन नेता, नौकारशाह और बड़े व्यापारी शामिल रहे हैं। लेकिन साक्ष्य के अभाव के कमजोर आधार पर अपराधियों को प्रकाशित, खोजने, पकड़ने मुकदमा चलाने और दण्डित करने में कुछ भी नहीं किया गया।

भारतीय जनमत संस्था (Indian Institute of Public opinion) ने सितम्बर, 1997 में भ्रष्टाचार से संबधित दिल्ली व चेन्नई में 1500 व्यक्तियों पर एक सर्वेक्षण किया था। अधिक संख्या 88.8 प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना था कि भ्रष्टाचार एक गम्भीर समस्या है जबकि 1.3 प्रतिशत लोगों की राय इसके विरूद्ध थी तथा 10 प्रतिशत ने इसके बारे में कोई राय व्यक्त नहीं की।

भ्रष्टाचार को बढ़ाने वाले कुछ कारक इस प्रकार भी हैं, पहला कारक है एक अधिकारी के हाथ में शक्ति का केन्द्रित होना जिस कारण उसके लिए मनमाना निर्णय करना सम्भव है। दूसरा कारण है आर्थिक व सामाजिक पिछड़ापन। तीसरा कारण है उपनिवेशवादी और सामन्ती ताकतों से शक्ति प्राप्त लोगों की जनता के द्वारा अधीनता स्वीकार करना। चौथा कारण है अधिकारियों का गैरजिम्मेदारीपूर्ण रवैया और प्रशासनिक विलम्ब। पाँचवा कारण है भ्रष्टाचार के मामलों में उदासीनता से निपटाना। अंतिम कारक जनता की चीख-पुकार में कमी तथा जनमंच की कमी है जो भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठा सके। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी मुलायम है कि लोग सबसे भ्रष्ट व्यक्ति के विरूद्ध निष्क्रिय और गूंगे बन जाते हैं, उनके समाज विरोधी व्यवहार को सहन करते हैं और शक्तिशाली जन-प्रचार करने में असफल रहते हैं।

मानवाधिकार हनन

मानवाधिकार मनुष्य के वे न्यूनतम अधिकार हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को केवल इसलिये प्राप्त होने चाहिये कि वे मनुष्य हैं। डेविड बीथम और केबिन बोयले के अनुसार 'मानवाधिकार एवं मूल स्वतंत्रतायें वे व्यक्तिगत अधिकार हैं, जो मानवीय आवश्यकताओं एवं क्षमताओं पर आधारित है।' किसी समुदाय, राष्ट्र, जाति, धर्म या लिंगपरक पहचान पर निर्भर किये बिना, लघुत्तम समापवर्त्य के रूप में, हर मनुष्य के कुछ न्यूनतम अधिकार है। इस धारणा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य 'व्यक्ति' है। मनुष्य ही है, जो विवेक एवं चेतना से सम्पन्न होता है। यह विवेक एवं चेतना मनुष्य को गरिमायुक्त बनाते हैं तथा उसके जीवन को पाश्विक अस्तित्व से आगे एक उच्चतर धरातल पर ले जाते हैं। यह गरिमा प्राकृतिक विवशता, सामाजिक पराधीनता एवं सार्वभौम पीड़ा के विरुद्ध मनुष्य के विवेक एवं चेतनाधारित संघर्ष में अभिव्यक्त होती है। अत: मनुष्य के संदर्भ में जिंदा रहने की प्राथमिक जैविक इच्छा 'मानवीय गरिमा के साथ जीने' का रूप ग्रहण कर लेती है। यह 'मानवीय गरिमा' मूलभमत मानवीय मूल्य है। इसी मूल्य से स्वतंत्रता, नैतिकता, शालीनता, सहृदयता आदि सभी मूल्य निकलते हैं। चूँकि प्रत्येक मनुष्य गरिमामय है। अत: उसकी गरिमा की समान स्वीकृति मानवीय सारतत्व

की सामाजिक प्रतिष्ठा की आधारभूत शर्त है। मानवाधिकार की धारणा मनुष्य की गरिमा एवं इसके परिणामस्वरूप व्यक्तित्व की स्वीकृति एवं प्रतिष्ठा पर आधारित है।

मानवाधिकार की अवधारणा इतिहास की लम्बी अवधि में सत्ता के स्वेच्छाचारी दुष्प्रयोग को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुयी। प्रारम्भ में यह राज्यों के भीतर ही लागू होती थी। लेकिन धीरे-धीरे यह आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि मानवाधिकारों का संरक्षण एवं प्रोत्साहन किया जाना समूची मानवता का सरोकार है। अनेक सोपानों को पार करते हुये 10 सितम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' की गयी।[38] इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि, 'सब मनुष्यों की स्वाभाविक गरिमा एवं समानता तथा अहरणीय अधिकारों को मान्यता देकर ही विश्व का सर्वसाधारण की सबसे बड़ी आकांक्षा ऐसे विश्व का निर्माण करना है, जिसमें मानव-मात्र को अभिव्यक्ति एवं आस्था की स्वतंत्रता के साथ-साथ भय एवं अभाव से भी स्वतंत्रता प्राप्त हो। यदि मनुष्य को अत्याचार एवं उत्पीड़न के विरुद्ध-अंतिम उपाय के रूप में विद्रोह के लिये विवश नहीं करना है, तो यह आवश्यक है कि 'विधि के शासन' के द्वारा मानवाधिकारों की रक्षा की जाये।[39]

इसी क्रम में भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा-पत्र के समकक्ष भारतीय नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। साथ ही, संविधान की प्रस्तावना की भावना का वर्णन है। इनके अनुरूप भारत एक सम्पन्न तथा कल्याणकारी राष्ट्र होने के साथ-साथ नागरिकों के जीवन के लिये मूलभूत व आवश्यक अधिकारों को उपलबध कराने के लिये समय-समय पर अनेक नीतियाँ, विधान, संस्थाओं का प्रावधान किया गया है। इनमें व्यक्ति के प्राय: उन सभी अधिकारों को जोड़ा गया है जो उसे जीवन, उसे अच्छे तरीके से जीने और राजनीतिक एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के अवसर प्रदान करते हैं।

वर्तमान में मानवाधिकारों की सुरक्षा एवं हनन की चर्चा में कई प्रश्न उभर कर सामने आते हैं। वर्तमान मानवाधिकार विमर्श जो मुख्यत: संस्था प्रधान एवं विधानप्रधान है, इनके समक्ष अनेक चुनौतियाँ-विमानवीयकरण, अराजकता, आतंक, विलग्नता, दमन जो मूल में मानवीयता का ही दमन कर रही है।

वर्तमान विश्व के पूंजीवाद के ढाँचे में मानवाधिकारों की रक्षा एवं इनकी उपलब्धता के लिये चुनौतियाँ पैदा हो रही है। कई बार असंवेदनशील ढंग से इन मानवाधिकारों की उपेक्षा की जाती है। कोई भी राष्ट्र अथवा राज्य-सत्ता जो अपनी जनता के जीवन-स्तर को सुधारने-सँवारने एवं उसे ऊँचा उठाने के लिए कृत-संकल्प है वह मानवाधिकारों की सुरक्षा एवं मानव-विकास के लिए समान नागरिक अधिकार के प्रति भी प्रतिबद्ध होगा। इसके लिए कुछ मूलभूत संकल्पनाएँ आवश्यक हैं, मसलन किसी भी स्तर पर एवं किसी भी तरीके से सामाजिक भेदभाव का अन्त, भय एवं आतंक से मुक्ति, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मानवीय सम्भावनाओं के विकास एवं उनकी व्यावहारिक क्रियान्विति की आजादी, न्याय एवं उसकी रक्षा हेतु कानूनी प्रक्रियाओं की सुरक्षा एवं सम्मान की गारंटी, शोषण से मुक्ति, मर्यादानुकूल पसंदीदा रोजगार की छूट एवं विशुद्ध ऐच्छिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण एवं रोक। नवस्वाधीन देशों के राष्ट्रीय पुनर्निमाण के क्षेत्र में मानवाधिकारों की रक्षा एवं संवर्द्धन के सामने चार प्रमुख चुनौतियाँ हैं-

1. अनपेक्षित ढंग से जाति, धर्म, नस्ल, रंग और क्षेत्र आदि के आधार पर बनने वाले असमतल स्थानीय समुदायों अथवा भौगोलिक इकाईयों को समतामूलक भावना के आधार पर अल्पसंख्यकों से जोड़ने की है।
2. राज्य-शक्ति का स्वैच्छिक उपयोग है। चुनी हुई सरकारें अपने तानाशाहीपूर्ण व्यवहार के कारण बहुत जल्दी अपना जनसमर्थन एवं जनसहानुभूति खो देती है। जब चुने हुए प्रतिनिधि स्वयं को कानून से ऊपर समझने लगते हैं और अपनी इच्छानुसार बगैर किसी उचित संवैधानिक कारणों के जजों, नागरिक सेवा के अधिकारियों, असहमति रखने वाले अन्य राज्यों की सरकारों को हटाना शुरू करते हैं, तब प्रजातांत्रिक संस्थाएँ कमजोर पड़ने लगती हैं और मानवाधिकार का दायरा सिकुड़कर क्रमश: निष्प्रभावी होने लगता है।
3. तीसरी चुनौती मानवाधिकारों के आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित है। कतिपय जनतांत्रिक प्रणलियाँ महत्त्वपूर्ण समूहों के सामाजिक-आर्थिक हितों एवं अधिकारों की अवहेलना करती सी प्रतीत होती है।
4. चौथी और अन्तिम चुनौती उस इच्छाशक्ति की है जिसके अभाव में एकाधिकारवादी सर्वसत्तात्मक प्रवृत्तियाँ और परम्पराएँ सिर उठाती है और उनसे अपेक्षित बर्ताव का जनतांत्रिक संकल्प कमजोर पड़ जाता है। इसकी परिणति हिंसा एवं अराजकतापूर्ण ढंग से सामाजिक-राजनैतिक नियम-कायदों के प्रतिकूल आचरण में होती है।

उपर्युक्त प्रत्येक स्थिति में मानवाधिकार गम्भीर रूप से प्रभावित होता है। अल्पसंख्यकों पर ज्यादतियाँ होती हैं, बच्चे एवं युवा अशिक्षित, भूखे, बेरोजगार एवं रोगग्रस्त होते हैं। पत्रकार सच्चाई बताने से डरते हैं, न्यायविदों को धमकियाँ मिलती है, विरोधी राजनीतिक दलों एवं व्यक्तियों-बुद्धिजीवियों को प्रताड़ित करने के साथ-साथ मानवाधिकारों के पक्ष में आवाज उठाने वाले कार्यकर्त्ताओं का खुलासा किया जाता है। इस तरह की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हिंसा में जनतांत्रिक प्रक्रियाओं में आधारभूत आस्था एवं विश्वास को ही नष्ट करने का प्रयास किया जाता है।

आज भारतीय समाज में हमें अनेकों बार मानवीय गरिमा की सुरक्षा की गारंटी देने वाले मानवाधिकारों का उल्लंघन देखने को मिलता है। भारतीय परिदृश्य में बालश्रम, दलित अन्याचार, महिलाओं एवं बच्चों के साथ क्रुर व्यवहार, बंदियों को अमानवीय प्रताड़ना, अल्पसंख्यकों के धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्यों का हनन, राज्य व शासन तंत्र द्वारा शक्ति का अनैतिक प्रयोग, समाज के उपेक्षित, निर्धन व अभावग्रस्त लोगों के लिए भोजन, आवास, स्वास्थ्य, शुद्ध पेयजल, प्राथमिक, शिक्षा, रोजगार व जीवन-यापन के साधनों आदि का अभाव, सुरक्षित व स्वच्छ पर्यावरण का अभाव, विकास के अवसरों का अभाव आदि में मानवाधिकार हनन की घटनाओं की उपस्थिति देखने को मिलती है।

समकालीन भारतीय समाज में समग्र एवं समावेशी विकास की आवश्यकता बड़ी गहनता से महसूस एवं उद्घोषित की जाती है परंतु इसकी प्राप्ति के लिये किये गये प्रयास, नीतियाँ, विधानों एवं संस्थाओं के कार्य-कलापों व क्रियान्वयन में बड़े असहाय सिद्ध होते दिखते है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने जिस सोच एवं उद्देश्य के साथ संविधान निर्माण किया आज उसमें कई सारी विकृतियाँ समाज के समक्ष आ गयी है। कई बार समाज में इन मानवाधिकारों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप पैदा हुयी विकृतियों को रोकने व मिटाने का हमारे ये नीतियाँ, विधान, संस्थाये, न्यायपालिका भी सक्षम सिद्ध नहीं हो पाती जनता के प्रति जवाबदेयिता एक ऐसा तत्व है जो सत्ता और उससे सम्बन्धित प्रतिष्ठानों को मानव विकारों के प्रति संवेदनशील होने के लिए विवश करता है और यही वह तत्त्व है जिसका भारतीय न्याय व्यवस्था एवं शासन के अन्य अंगों में पूरी तरह अभाव दिखाई देता है। मानवाधिकारों के सम्बन्ध में बनायी गयी संस्थायें, कानून या आयोग भी मानावाधिकार हनन की विभिन्न समस्याओं का समुचित समाधान करने में अल्पप्रभावी सिद्ध हुये हैं।

मानवाधिकारों का प्रश्न सामायिक परिदृश्य में व्यापक प्रश्न है जिसमें व्यक्ति के विकास, उसके जीवन एवं उसकी वंचनाओं से जुडे सभी प्रश्न मानवाधिकारों के व्यापक सरोकारों के प्रतीक है। विकासशील समाजों में ये प्रश्न राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति के अस्तित्व से जुड़े हुये हैं। भारत जैसे विकासशील समाजों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं पोषण, निर्भयता जैसे मूलभूत मानवाधिकारों से वंचित है। सामाजिक समरसता के अनेक नारों और प्रयासों के बावजूद भारतीय समाज आज भी जातियों, वर्गो एवं श्रेणियों के छोटे-छोटे दायरों में बँटा हुआ है। स्वतंत्र भारत ने विकास के अपने प्रतिमान में सामाजिक न्याय को अपनाने के बावजूद हमें दलितों के मानवाधिकारों के उल्लंघन की घटनायें समय-समय पर देखने को मिल जाती है। भूमण्डीकरण के वर्तमान दौर में मानवाधिकारों के प्रश्नों पर चिंता के बावजूद राज्यों के अपेक्षित सहयोग का अभाव है। अल्प विकसित एवं विकासशील देश भूमण्डलीकृत अर्थ व्यवस्था में सीमान्तक है परिणामस्वरूप इन देशों के नागरिकों के जीवन स्तर एवं मानवाधिकारों की उपलब्धता की सुनिश्चितता में कोई अंतर नही आया है।

उपर्युक्त विश्लेषित मानवाधिकारों की समस्या के समुचित एवं समग्र समाधान हेतु राज्य-शासन तंत्रों की कार्य कुशलता के साथ-साथ नागरिकों को भी अपने मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिये निरन्तर सजग, चेतनायुक्त तथा आवश्यकतानुसार संघर्षशील होना आवश्यक हैं। भूमण्डीकरण के दौर में मानवाधिकारों के हनन की जो नवीन चुनौतियाँ उभर रही है उनका सामना करने के लिये, भूमण्डलीकरण द्वारा प्रस्तुत अवसरों एवं सीमाओं दोनों के यथा सम्भव आकलन पर आधारित रणनीतियाँ बनाई जानी चाहिये। यू.एन. डी.पी. ने अपने ह्यूमन डवलपमेंट रिपोर्ट, 2005 में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिये एक व्यापक दृष्टिकोण की पेशकश करते हुये यह सुझाव दिया है कि प्रत्येक देश को मानवाधिकारों की सुनिश्चितता के लिये अपनी सामाजिक संरचनाओं को सुदृढ करने की आवश्यकता है। राजनीतिक अभिजनों द्वारा सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग को भी रोका जाना अपरिहार्य है।

अन्ततः भारतीय समाज में व्यक्तियों के लिये अनिवार्य इन मूलभूत मानवाधिकारों को उपलब्ध करवाकर सुखी, समुद्ध एवं समस्या, संघर्ष व द्वन्द्व विहीन समाज के निर्माण की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। समाज में सभी मनुष्य मानवता की दृष्टि

से मनुष्यता से सम्बन्ध रखते हैं। कानून, संस्थाओं के माध्यम से मानवता नहीं सिखाई जा सकती है। यह एक मानसिकता का प्रश्न है जिसके लिये समाज में गिरते स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। हम समकालीन समाज की समस्याओं को इनके अतीत को भुलाकर समाधान की दिशा में आगे बढ़े, तो निश्चय ही मानवाधिकारों का संरक्षण कर पायेंगे।

संदर्भ सूची

1. क्रोजर लुईस, द फंकशन ऑफ सोशियल कॉनफ्लिक्ट, द फ्री प्रेस, फिलाडेल्फिया, पृ. 28
2. राम आहूजा, सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 1,2
3. रामजी यादव, सामाजिक समस्याएँ, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2008, पृ.4
4. राम आहूजा, सामाजिम समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.7
5. रेनहार्ट, जिलेट, मीडाँस पॉल एण्ड जिलेट, सोशियल प्रॉब्लम्स एण्ड सोशियल पोलिसी, अमेरीकन बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1962, पृ.24
6. हार्टन, पॉल बी.एण्ड लिसली गेराल्ड, दी सोशियोलॉजी एण्ड सोशियल प्रॉब्लम्स (चतुर्थ संस्करण), एप्लीटन प. कम्पनी, न्यूयार्क, 1970, पृ.68
7. रेनहार्ट, जिलेट, मीडाँस पॉल एण्ड जिलेट, सोशियल प्रॉब्लम्स एण्ड सोशियल पोलिसी, अमेरीकन बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1962, पृ.14
8. रामचन्द्र गुहा, इंडिया आफ्टर गांधी, हार्पर एण्ड कॉलिंस, नोयडा, जुलाई 2007, पृ.35
9. टानहार्ट ऑफ इंडिया, बम्बई, 31 मई,1967
10. चंद्र विपिन, आजादी के बाद का भारत (1947-2000), हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ.310-311
11. चारू मजूमदार: ए फ्यू वडर्स टु दि रेवोल्यूशनरी स्टूडेंट्स एण्ड यूथ, स्टेट्समैन, मार्च 1970
12. विप्लव दास गुप्त, नक्सलवादी आंदोलन, (अनु.संजय), मैकमिलन इण्डिया लि.,नई दिल्ली, 1981, पृ.149
13. श्याम सिंह चौहान, भारत में नक्सलवाद, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, नवम्बर, 2010 पृष्ठ87-89
14. इडिया टुडे, भारत को बड़े खतरे, लेख, नवम्बर 2009, पृ.35
15. रामचन्द्र गुहा, इंडिया अफ्टर गांधी, उपरोक्त, 2009
16. सच्चिदानन्द मूर्ति, माओवादी संकट, मलयालम मनोरमा, ईयर बुक, 2011
17. इंडिया टुडे, भारत को बड़े खतरे, लेख, नवम्बर 2009, पृ.42
18. इंडिया टुडे, भारत को बड़े खतरे, लेख, नवम्बर 2009, पृ.42
19. ष्यााम सिंह चौहान, भारत में नक्सलवाद, प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर, 2010

पाटीदार नो इतिहास

पटेल हसमुखभाई भीखाभाई

पीएचडी, स्कॉलर (इतिहास विभाग), उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी पाटण

ईडर राज्य-साबरकांठा में प्राचीन काल से ही पाटीदार समुदाय बड़ी संख्या में निवास करता रहा है। मध्य गुजरात में लेउआ पाटीदारों की विशेष आबादी है। उत्तरी गुजरात में कडवा पाटीदारों का निवास है। उत्तरी गुजरात की आंजणा पाटीदारों का उपनाम 'चौधरी' भी है। उत्तरी गुजरात में पाटीदार खुद को 'पटेल' भी कहते हैं, लेउआ पाटीदारों की कुल देवी अहमदाबाद के पास अडालज में है, जबकि कडवा पाटीदारों की कुल देवी उंझा में उमियामाता हैं। पाटीदार एक किसान कॉम है। पृथ्वी को फाड़कर चावल और धन का उत्पादन करने वाला एक समृद्ध समुदाय है। 'पिष्टपेशन ना करो, यह तो समझे, आया समझ, कहने वाले, निश्चिंत, बेफिकर लोग हैं। 'ईडर इलाके के पाटीदारों ने गुजरात को कई अजूबे दिए हैं।

'पाटीदार' शब्द मध्य गुजरात के खेड़ा जिले के किसान-जमींदारों के लिए प्रचलन में था, गुजरात में पाटीदारों की चार मुख्य उपजातियाँ हैं: कडवा, लेउआ, आंजणा और मातिया। पटेल के अलावा पाटीदारों के उपनाम देसाई और अमीन भी हैं। इस बात में मूलभूत अंतर है कि एक 'पाटीदार' खुद खेती करता था, जबकि 'देसाई' और 'अमीन' खुद खेती नहीं करते थे बल्कि दूसरों को खेती करने देते थे। साथ ही 'देसाई' एक सामंत भी थे। 'पाटीदार' लोग अब खुद को 'पटेल' कहते हैं। हालांकि 'पटेल' कोई जाति नहीं बल्कि 'मोभादार' का पद है। 'पटेल' का अर्थ है मुखी या गाँव का गणमान्य व्यक्ति, जो पहले के समय में ग्रामीणों और राजा के बीच एक सेतु की तरह था।

भूमि का अर्थ 'पाटी' होता है, इसलिए उन्हें पाटीदार कहा जाता था। कुर्म ऋषि के वंशज होने के कारण उन्हें कुर्मी कहा जाता था। उनका मूल स्थान पंजाब माना जाता है। इनकी उत्पत्ति को लेकर तरह-तरह की कहानियां प्रचलित हैं। शोधकर्ता गोपालदास सोमभाई पटेल और महेंद्र गोकलदास पटेल ने अपनी पुस्तक 'पाटीदारों के प्रेम और कुश के साथ संबंध' के बारे में लिखा है, 'रामचंद्रजी अयोध्या के राजा थे। उनके दो बेटे थे: लव और कुश। लव और कुश पंजाब की ओर चढ़ाई की ओर वहाँ के राजा को हराया, वहा लव के नाम पर 'लवकुटी' नगर वर्तमान में पाकिस्तान में लाहौर का शहर बनाया गया था। लाहौर के बसने के बाद, लव और कुश ने पंजाब के कुछ हिस्सों में शांति और व्यवस्था स्थापित की. इस प्रकार कुर्मी क्षत्रियों ने इस हिस्से में शांतिपूर्वक खेती करना शुरू कर दिया। जिस क्षेत्र में लव ने शांति और व्यवस्था स्थापित की उसे लेया के नाम से जानने लगे। जिस क्षेत्र में कुश ने शांति और व्यवस्था स्थापित की, वह कुशड या 'करड के नाम से मशहूर है। (करड बाद में हिंदी में खरड बन गया।) वर्तमान गुजरात के पाटीदार इस समय पंजाब के लेया और करड क्षेत्र में रहते थे और कुर्मी क्षत्रिय के रूप में जाने जाते थे।

पाटीदार लव और कुश के वंशज नहीं हैं क्योंकि वर्तमान गुजरात के पाटीदार (उस समय के कुर्मी क्षत्रिय) लव और कुश के प्रत्यक्ष वंशज नहीं हैं, बल्कि उस क्षेत्र के मूल निवासी हैं जहां लव और कुश ने पंजाब के लेया और करड क्षेत्र में शांति और व्यवस्था स्थापित की थी। अगर गुजरात के पाटीदार लव और कुश के सीधे वंशज होते तो उनकी पहली बस्ती पंजाब के बजाय अयोध्या में होती इसलिए यह समझा जाता है कि पाटीदार लव और कुश के वंशज नहीं हैं बल्कि पंजाब के कुर्मी क्षत्रिय हैं। पंजाब के या क्षेत्र के कुर्मीओ को लेउवा कणबी और करड क्षेत्र के कुर्मी को कड़वा कणबी कहा जाता है। इस तरह गुजरात के वर्तमान पाटीदारों को लेउवा कणबी और कड़वा कणबी कहा जाता है। लोर कुर्मियों ने लेया क्षेत्र को छोड़ दिया और अजमेर, मारवाड़, जयपुर, भीनमाल और वर्तमान पाटणवाड़ा होते हुए 'अडालज' क्षेत्र में आ गए। लेउवा और कडवा कणबी उत्तरी गुजरात और 'अडालज' क्षेत्र में क्रमशः गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ में फैल गए। जैसे जैसे अडालज में लेउआ कणबी की आबादी बढ़ी, वे क्रमशः धारोतार, भाल, वांकल और कानम तक पहुँच गए। वहां से कठलाल, कपडवंज और सावली होते हुए चांपानेर गए।

'कणबी सहित मूल निवासियों का इतिहास' के संबंध में मणिलाल जी. कपूरिया और भरत सी पटेल लिखते हैं, ष्यह द्रविड़ और नागा राजवंशों की पांच हजार साल पुरानी सभ्यता थी। द्रविड़ और नागा राजवंशों से कृष्ण के समय में 56 राजवंश का उदय हुआ, जिन्हें 56 कोटि यादव भी कहा जाता है। मान्यता प्राप्त है। इन 56 प्रकार के राजवंशों में से प्रत्येक में, कुछ परिवारों ने कृषि पेशा अपनाया, जिसे कालानुक्रमिक रूप से 'कणबी' कहा जाता है, जिसे आज पटेलों के नाम से भी जाना जाता है। कडवा और कणबी जाति में अलग-अलग उपनाम उनके अलग-अलग गोत्रों को दर्शाते हैं। 'कांबी जाति के लोग एक ही वंश के नहीं होते बल्कि एक ही पेशे को करने वाले पेशेवर वर्ग के विभिन्न वंशों के होते हैं, जो धीरे-धीरे एक जाति बन गया है। मोहनजो दडो और हड़प्पा में पाए जाने वाले शिव लिंग निस्संदेह नागा और द्रविड़ राजवंशों के आदिवासी लोगों की मातृसत्तात्मक संस्कृति से जुड़े हैं। शंकर मूल निवासी गणराज्य के प्रमुख थे जिन्हें शंभू के नाम से भी जाना जाता है। शंभू ने उमा या उमिया से शादी की। इसलिए हम उमाशंकर या उमियाशंकर कहते हैं। उमा या उमिया एक भील युवती है, जो पूरे देश में आदिवासी जनजातियों द्वारा एक माँ के रूप में पूजनीय है, और कड़वी कानबी जाति उमा को देवी की देवी के रूप में पूजती है। जो दर्शाता है कि 'कणबी' जाति एक कालानुक्रमिक रूप से परिवर्तित जाति है जो मूल द्रविड़ और नागावंश से विकसित हुई है।"

गोपालदास पटेल और गोकलदास पटेल पाटीदारों के लिए झूठी किंवदंतियों के बारे में नोट करते हैं, "बारोटो किताबें और लोककथाएं 600 ईस्वी से 1300 ईस्वी तक की हैं, गुजरात के चावड़ा, सोलंकी और वाघेला राजाओं के समय तक बरोटो, भाटचारणो और भट्टों के साथ। क्षत्रिय युद्ध के समय में शूरातों को चढ़ाने के लिए कवि क्षत्रियों की सच्ची और झूठी प्रशंसा करते थे। इन शूरातों की प्रशंसा से उन्होंने कुर्मी (कणबी) क्षत्रियों की उत्पत्ति के बारे में कुछ किंवदंतियाँ, लोककथाएँ और गपशप फैलाई। बाद में, ब्राह्मणों ने भी प्रशंसा की पाटीदार विवाह और अन्य संस्कारों के लिए। बहने वाली मुकी: (1) पाटीदार लव और कुश के वंशज हैं। (आर) पाटीदार लेहक और कैटक के वंशज हैं। (3) पाटीदार मिट्टी के पुतलों से बने होते हैं। (4) पाटीदार हैं भगवान के पुत्र। (5) पाटीदारों को एक ही समय में शादी करनी चाहिए। फिर 1300 और 1600 ईस्वी के बीच बारोट और वहीवंचाओ ने पाटीदारों की वंशावली और उनकी संपत्तियों को रिकॉर्ड करना शुरू कर दिया। मूल लेखन के माध्यम से सुना। इस प्रकार बरोटो द्वारा लिखी गई कहानियां 1297 ईस्वी से 1411 ईस्वी तक पाटीदारों की अराजकता के दौरान कल्पना की गई चीजें हैं। 1300 ईस्वी के बाद भी, कुछ वंशावली भी पक्षपातपूर्ण रूप से पक्षपातपूर्ण मूल से जुड़ी हुई हैं।

मान्यता प्राप्त है। इन 56 प्रकार के राजवंशों में से प्रत्येक में, कुछ परिवारों ने कृषि पेशा अपनाया, जिसे कालानुक्रमिक रूप से 'कणबी' कहा जाता है, जिसे आज पटेलों के नाम से भी जाना जाता है। कडवा और कणबी जाति में अलग-अलग उपनाम उनके अलग-अलग गोत्रों को दर्शाते हैं। 'कांबी जाति के लोग एक ही वंश के नहीं होते बल्कि एक ही पेशे को करने वाले पेशेवर वर्ग के विभिन्न वंशों के होते हैं, जो धीरे-धीरे एक जाति बन गया है। मोहनजो दडो और हड़प्पा में पाए जाने वाले शिव लिंग निस्संदेह नागा और द्रविड़ राजवंशों के आदिवासी लोगों की मातृसत्तात्मक संस्कृति से जुड़े हैं। शंकर मूल निवासी गणराज्य के प्रमुख थे जिन्हें शंभू के नाम से भी जाना जाता है। शंभू ने उमा या उमिया से शादी की। इसलिए हम उमाशंकर या उमियाशंकर कहते हैं। उमा या उमिया एक भील युवती है, जो पूरे देश में आदिवासी जनजातियों द्वारा एक माँ के रूप में पूजनीय है, और कड़वी कानबी जाति उमा को देवी की देवी के रूप में पूजती है। जो दर्शाता है कि श्कणबीश जाति एक कालानुक्रमिक रूप से परिवर्तित जाति है जो मूल द्रविड़ और नागावंश से विकसित हुई है।"

गोपालदास पटेल और गोकलदास पटेल पाटीदारों के लिए झूठी किंवदंतियों के बारे में नोट करते हैं, "बारोटो किताबें और लोककथाएं 600 ईस्वी से 1300 ईस्वी तक की हैं, गुजरात के चावड़ा, सोलंकी और वाघेला राजाओं के समय तक बरोटो, भाटचारणो और भट्टों के साथ। क्षत्रिय युद्ध के समय में शूरातों को चढ़ाने के लिए कवि क्षत्रियों की सच्ची और झूठी प्रशंसा करते थे। इन शूरातों की प्रशंसा से उन्होंने कुर्मी (कणबी) क्षत्रियों की उत्पत्ति के बारे में कुछ किंवदंतियाँ, लोककथाएँ और गपशप फैलाई। बाद में, ब्राह्मणों ने भी प्रशंसा की पाटीदार विवाह और अन्य संस्कारों के लिए। बहने वाली मुकी: (1) पाटीदार लव और कुश के वंशज हैं। (आर) पाटीदार लेहक और कैटक के वंशज हैं। (3) पाटीदार मिट्टी के पुतलों से बने होते हैं। (4) पाटीदार हैं भगवान के पुत्र। (5) पाटीदारों को एक ही समय में शादी करनी चाहिए।, फिर 1300 और 1600 ईस्वी के बीच बारोट और वहीवंचाओ ने पाटीदारों की वंशावली और उनकी संपत्तियों को रिकॉर्ड करना शुरू कर दिया। मूल लेखन के माध्यम से सुना। इस प्रकार बरोटो द्वारा लिखी गई कहानियां 1297 ईस्वी से 1411 ईस्वी तक पाटीदारों की अराजकता के दौरान कल्पना की गई चीजें हैं। 10300 ईस्वी के बाद भी, कुछ वंशावली भी पक्षपातपूर्ण रूप से पक्षपातपूर्ण मूल से जुड़ी हुई हैं।

संदर्भसूचि

(१) डॉ.डी.एम्. भद्रे सरिया, 'इडर राज्य नो इतिहास', दामिनी पब्लिकेशन्स, प्रथम आवृत्ति -२०२२, अमदावाद

(२) गोकुलभाई सोमभाई पटेल तथा अशोकभाई गोकलदास पटेल, 'गुजरातनो पाटीदार नो इतिहास -२, संस्कार सरदार पटेल कोलोनी स्टेडियम रोड, अमदावाद

(३) चंद्रकांत बक्षी, 'महा जाती गुजराती', यश प्रिन्टर्स, नव भारत साहित्य मंदिर, अमदावाद -२००४

(४) आर.टी.सावलिया, गुजरातना पाटीदारो परंपराश, संशोधन प्रकाशन केंद्र, अमदावाद

(५) मंगुभाई पटेल, 'पाटीदारोनी गौरव गाथा पाटीदार', संशोधन तथा प्रकाशन केंद्र, अमदावाद

(६) पटेल सीताराम भाई, 'श्री उमिया माताजी दर्शन' प्रचार तथा प्रकाशन कमिटी श्री उमिया माताजी संस्थान उंझा

बिहार में आरक्षण लागू होने के बाद सामाजिक और राजनीतिक पहलूओं पर क्रांतिकारी परिवर्तनः एक अध्ययन

प्रदीप कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण)

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत आरक्षण लागू होने के बाद समाजिक और राजनीतिक पहलूओं पर किस प्रकार क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं उनके विषय यहाँ बताने का प्रयास किया गया है। इस परिवर्तन के संबंध में बिहार में 1990-2005 तक की स्थिति का अध्ययन किया गया है। आरक्षण की नीतियों के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों और समाजसुधारकों ने अपने दृष्टीकोण के माध्यम से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है आरक्षण नीति में सबसे महत्वपूर्ण पहलू के रूप में सामने दिखाई पड़ता है इसका मुख्य कारण यह है कि जातिवाद हिन्दू समाज के संगठन का एक बुनियादी पहलू है जातिवादी आहार जन्म से ही निर्धारित हो जाती है अर्थात जब किसी बच्चे का जन्म किसी परिवार में होता है तो उस बच्चे की पहचान उस परिवार की जाति से मानी जाने लगती है। तथा उसे बदला नहीं जा सकता है। वही यदि अमीरी-गरीबी पेशा धर्म को आधार माना जाय तो यह निश्चित नहीं होता है क्योंकि ऐसी स्थिति परिवर्तनशील माना जाता है[1] जो समय के साथ बदल सकता है। लेकिन जातिवादी च्यवस्था ऐसी व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक अपरिवर्तनशील होता है अतः आरक्षण नीति में जातिवाद को ही आधार मानना ठीक माना जा सकता है। अतः अनेक समाजसुधारकों की राय में अपनी रिपोर्ट के माध्यम से जाति को आरक्षण का आधार मानकर आरक्षण की योजना बनायी गयी तथा स्वीकार किया गया। 16 नवम्बर 1992 के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने जाति को मूल सामाजिक आधार के रूप में स्वीकार करते हुए इसे उचित ठहराया है।[2] उपरोक्त विभिन्न विचार धाराओं के समीक्षा आधार पर अनेक तथ्य सामने आते हैं।:-

(क) यह सन्य है कि आरक्षण नीति में जाति व्यवस्था का बोलबाला किसी न किसी रूप में हमेशा कायम रहेगा लेकिन इसके विरोध में आर्थिक आधार तथा कुशलता की भी बाते होती रहेंगी।[3]

(ख) यह भी सन्य है कि जब तक समाजिक व्यवस्था में एकरूपता नहीं होगा तब तक आरक्षण की व्यवस्था बनी रहेंगी लेकिन निकट भविष्य में जाति व्यवस्था वर्गविभेद जैसी कुरुतियाँ समाप्त होने की कोई सम्भावना नहीं प्रतित होता है।

(ग) आरक्षण प्राप्त करने वाले पर्याप्त मात्रा में जागरूक होने के बावजूद भी इसे त्यागने को तैयार नही हैं।

राज्यों में पिछड़े वर्गों का आरक्षणः-

अगर हम इस विषय पर कुछ पहले का अध्ययन करें तो पायेंगे कि भारत की राज्य सरकारे पिछले 100 वर्षो से दलित व पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये जा रही थी। मद्रास सरकार ने 1885 पिछड़ों के कल्याण हेतु शैक्षणिक संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के छात्रों को वित्तिय प्रदान की थी। इसके बाद मैसूर राज्य के सरकार ने भी ऐसी ही कदम उठाया था।[4] उसके उपरान्त दक्षिण के राज्यों ने इसके लिए अनेक कार्यक्रम बनाये और लागू किये अनेक राज्यों ने पिछड़ो के उत्थान के लिए सरकारी नौकरियों तथा शिक्षण संस्थानों से आरक्षण की व्यवस्था की। विभिन्न राज्यों ने पिछड़ों के आरक्षण की तुलनात्मक अध्ययन करने पर मालूम होता है कि इसमें क्षेत्रीय विभेद स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों के कारण आरक्षण

व्यवस्था तीव्र रही है जबकि उत्तर भारत में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन के अभाव के कारण वहाँ आरक्षण व्यवस्था धीमी रही है। विश्लेषण की दृष्टि से पूरे भारत के तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।:-

(i) प्रायद्वीप समूह के राज्य जिसमें आन्ध्रप्रदेश कर्नाटक केरल, तमिलनाडू सहित महाराष्ट्र प्रमुख है। इन राज्यों में काफी लम्बे समय से अर्थात स्वतंत्रता के पूर्व से ही आरक्षण और विस्तृत सुविधाओं की लम्बी परंपरा रही है जहाँ पर आरक्षण सीमा 40 प्रतिशत से लेकर 45 प्रतिशत तक भी पहुंच चुकी है।

(ii) मध्यपूर्व क्षेत्र के राज्य जैसे, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा मध्यप्रदेश राजस्थान, गुजरात शामिल है जिन्होंने पहले वर्ग के राज्यों की अपेक्षा विपरित परंपरा का पालन किया है ऐसे राज्यों में आरक्षण का प्रतिशत कम रहा है। इन राज्यों में पिछड़े वर्गों के श्रेणी का कोई महत्वपूर्ण प्रयोग नहीं हुआ।

(iii) उत्तरी क्षेत्र के राज्यों ने मध्य नीति अपनाई है अत: वहाँ आरक्षण नीति दक्षिण भारत के राज्यों के अनुरूप है। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश सम्प्रदायिक तथा भगौलिक अधारों का मिश्रण है।

बिहार जम्मू कश्मीर की आंक्षी दक्षिण भारत के राज्यों की तरह सम्प्रदायिक और जातियं आधार पर पिछड़े वर्ग में आरक्षण का निर्धारण की व्यवस्था करता है।

जब मंडल आयोग की सस्त्रुतियों के लागू होने के बाद आरक्षण का प्रकरण उठाया गया था तो उस समय आरक्षण की सुविधा देने समाजिक न्याय की भावना की जगह राजनीतिक भावना प्रबल थी। संविधान के निर्माण के साथ जो अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण को नीति अपनायी गयी वह राजनैतिक न होकर संतुलन बनाने के लिए था। अत: विभिन्न समुदायों के मध्य विषमताओं को दूर करने के लिए आरक्षण को लागू करना आवश्यक माना गया।[5]

अनुच्छेद 15, 16 और 29 में सभी नागरिकों को शिक्षा रोजगार एवं अन्य सुविधाओं को समान रूप से देने की बात कही गयी है अनुच्छेद 16 के अनुसार यह उल्लेख है कि राज्य सरकार किसी पिछड़े वर्गों के न्युक्ति के पदों में आरक्षण देने के प्रावधानों से नहीं रोकेगी; यदि राज्य सरकार के राय में राज्य के अधीन सेवाओं में कम प्रतिनिधित्व नहीं है। अनुच्छेद 15(4), 16(4) के अन्तर्गत कमजोर वर्गों को जो विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं उससे यह प्रतित होता है कि ये शिक्षा तथा बेरोजगार के मूल अधिकारों के विरोधी है। इस पर यह तर्क दिया जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 और 29 के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को दिये गये समान अवसर और व्यवहार के अनुच्छेद 15, 16 के अनुसार काफी कमजोर कर दिया गया है क्यों कि इस अनुच्छेद के माध्यम से कमजोर वर्गो के उन्नति के लिए राज्यों को विशेष अधिकार दिये गये हैं। चुकीं मूल अधिकारों का सम्बन्ध मुख्यत: व्यक्तियों के अधिकारों से होता है अत: व्यक्तिगत प्रतारण से अधिक समाजिक प्रतारण अधिक कठिन होता है अत: मूल अधिकारों के अलावा कमजोर वर्गों के समूहीक उन्थान के लिए विशेषाधिकार जैसी बातों का होना स्वभाविक बन जाता है। वास्तव में मूल अधिकारों का लक्ष्य भी उस समय तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि शोषितों के वैद्य, अधिकारों की रक्षा के लिए उचित वातावरण तैयार न किया जाय। इसी वातावरण को तैयार करने के उद्देश्य से आरक्षण को लागू एवं प्रभावी बनाया गया। संविधान सभा में भी हरिजनों को जो हुआ छूत तथा अश्पृश्यता के कारण समाजिक व्यवस्था से बिल्कुल अलग से सरकारी संरक्षण देने का फेसला किया गया। लेकिन आरक्षण व्यवस्था के बावजूद भी उनकी भागीदारी पुरी नहीं हो सकी है।[6]

आरक्षण के माध्यम से पिछड़े वर्गों को अधिक प्रतिनिधत्व देकर उनकी प्रतिमा को सामने लाने का प्रयास किया गया है हाँ यह भी सत्य है कि पिछड़ो, दलितों के लिए जो शैक्षकि संस्थाओं और नौकरियों में छुट प्रदान की गयी है उससे कहि न कहि प्रतिभवान प्रभावित होते हैं। और पिछड़ो को आरक्षण मिलने के कारण अपना पद प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। इस विषय में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस व्यवस्था के कारण पिछड़ न जाए।

आरक्षण के पक्षधरों का कहना है कि प्रतिद्वंद्वता समान लोगों में होना चाहिए क्योंकि समाज द्वारा पहले पीछे धकेल दिये गये लोगों को तभी संतुलन किया जा सकता है जब उन्हें विशेष अवसाद प्रदान किया जायेगा।

इस प्रकार आरक्षण सर्मथकों तथा आरक्षण विरोधियों के अपने-अपने तर्क है जिसका कोई अन्त नहीं है फिर भी लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य में पिछड़ों के उत्थान के लिए नीति बनाना आवश्यक है इसके साथ ही समाज के अन्य नागरिकों को असुविधा न हों। दूसरी ओर यह भी जरूरी है कि पिछड़े वर्ग के लोग अपने विशेषाधिकार के अलावा अपने योग्यता को बढ़ाने का प्रयास करें जिससे आरक्षण को समाप्त करने जैसी कटाक्ष वाले बातें नहीं हो सके।

संदर्भ

1 हो, श्रीकान्त, बिहार राज्य और समाज पृ. 15 2003

2 वही पृ. 17

3 वही पृ. 18

4 वही पृ. 19

5 वही पृ. 20

6 वही पृ. 22

नगद भुगतान और सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० रेनू सिंह राणा

एसोसिएट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र विभाग), एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियाबाद

भूमिका

डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर या डीबीटी भारत सरकार का एक नया तंत्र है, जिसके माध्यम से लोगों के बैंक खातों में सीधे पैसा ट्रांसफर किया जाता है। और उम्मीद की जाती है कि बैंक खातों में सब्सिडी जमा करने से लीकेज, देरी आदि समस्याएं समाप्त हो जाएँगी।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, केंद्र और राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की संयुक्त जिम्मेदारी को परिभाषित करता है। राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को आवश्यक खाद्यान्नों के आवंटन के लिए, केंद्र से प्रत्येक राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में निर्दिष्ट डिपो में खाद्यान्न के परिवहन और भारतीय खाद्य निगम के नामित गोदामों से उचित मूल्य की दुकानों तक खाद्यान्न की डिलीवरी/ सहायता प्रदान करना केंद्र की जिम्मेदारी है। और अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राज्य/केंद्र शासित प्रदेश जिम्मेदार हैं। जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ पात्र परिवारों की पहचान, पात्र परिवारों को राशन कार्ड जारी करना, खाद्यान्न का वितरण, उचित मूल्य की दुकानों के लाइसेंस जारी करना, दुकानों की निगरानी, प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र की स्थापना और लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत करना शामिल है।

पीडीएस का वार्षिक खर्च तीस हजार करोड़ रुपये से अधिक है, जिसमें लगभग 16 करोड़ परिवार शामिल हैं। यह संभवत: दुनिया में अपनी तरह का सबसे बड़ा खाद्य वितरण नेटवर्क है। दिसंबर 2019 तक जब 5.55 लाख फर्जी मजदूरों का मामला पकड़ा गया तो उन्हें मनरेगा योजना से हटा दिया गया। जिससे 24 हजार 162 करोड़ रुपये की बचत हुई है।

मूल शब्द: प्रत्यक्ष लाभ अंतरण, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, खाद्य वितरण, आधार, जन-धन खाता।

परिचय

डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर, दरअसल एलपीजी गैस सब्सिडी, मनरेगा भुगतान, वृद्धावस्था पेंशन, छात्रवृत्ति जैसी तमाम सामाजिक सहायता की योजनाओं के लाभार्थियों के बैंक खाते में सीधे पैसे ट्रांसफर करने की योजना है। यूं तो डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर(डीबीटी) स्कीम, एक जनवरी 2013 से शुरू हुई थी और इसमें भारत के 291 जिलों को शामिल किया गया था। योजना का लाभ उठाने के लिए उपभोक्ता के पास आधार नंबर होना अनिवार्य था। योजना की व्यापक समीक्षा और उपभोक्ता के सामने आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए, योजना में यथोचित संशोधन किए गए। संशोधित योजना को प्रथम चरण में 15.11.2014 से 54 जिलों में फिर से शुरू किया गया और 01.01.2015 से देश के बाकी हिस्सों को भी इसमें शामिल किया गया।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण योजना (DBT) का जिक्र सबसे पहले, तत्कालीन वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने वर्ष 2011-12 में अपने केंद्रीय बजट भाषण में किया था। उस समय उन्होंने कहा था कि सरकार केरोसिन, एलपीजी और उर्वरकों के लिए सीधे नकद सब्सिडी देना चाहती है।

इन मदों में सीधे नकद भुगतान करने के तौर-तरीकों को देखने के लिए नंदन-नीलेकणि की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया गया था, जिसने फरवरी 2012 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। पिछले छह वर्षों में डीबीटी के तहत लाभार्थियों के खातों में 12 लाख 95 हजार 468 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए गए हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) का मतलब, गरीबों के लिए न्यूनतम मूल्य पर खाद्य और खाद्यान्न वितरण के प्रबंधन की व्यवस्था करना है।

भारतीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली की स्थापना भारत सरकार के उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय द्वारा खाद्य और सार्वजनिक वितरण के लिए भारत के गरीबों को रियायती दरों पर खाद्य और गैर-खाद्य वस्तुओं को वितरित करने के लिए की गई थी। वितरित की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में गेहूं, चावल, चीनी और मिट्टी का तेल शामिल हैं। जिन्हें देश भर के कई राज्यों में स्थापित उचित मूल्य की दुकानों (जिन्हें राशन की दुकानों के रूप में भी जाना जाता है) के नेटवर्क के माध्यम से वितरित किया जाता है। भारतीय खाद्य निगम, एक राज्य के स्वामित्व वाला निगम है जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) का रखरखाव करता है।

आज भारत के पास चीन के अलावा दुनिया में खाद्यान्न का सबसे बड़ा भंडार है, जिस पर सरकार 750 अरब रुपये खर्च करती है। पूरे देश में गरीब लोगों को खाद्यान्न का वितरण राज्य सरकारों द्वारा प्रबंधित किया जाता है। 2011 तक, भारत भर में 505,879 उचित मूल्य की दुकानें (एफपीएस) थीं। पीडीएस योजना के तहत, गरीबी रेखा से नीचे का प्रत्येक परिवार हर महीने 35 किलोग्राम चावल या गेहूं के लिए पात्र है, जबकि गरीबी रेखा से ऊपर का परिवार मासिक आधार पर 15 किलोग्राम खाद्यान्न का हकदार है। हालांकि, वितरण प्रक्रिया की दक्षता के बारे में चिंताएं हैं।

कवरेज और सार्वजनिक व्यय के मामले में इसे सबसे महत्वपूर्ण खाद्य सुरक्षा नेटवर्क माना जाता है। फिर भी, राशन की दुकानों द्वारा आपूर्ति किया जाने वाला खाद्यान्न, गरीबों की खाद्यान जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। भारत में पीडीएस बीजों की खपत का औसत स्तर प्रति व्यक्ति प्रति माह केवल 1 किलोग्राम है। पीडीएस की शहरी पूर्वाग्रह और आबादी के गरीब वर्गों को प्रभावी ढंग से सेवा देने में विफलता के लिए आलोचना की गई है। गरीबों को लक्षित पीडीएस महंगा है और इसे कम जरूरतमंद लोगों से छुड़ाने की प्रक्रिया में बहुत अधिक भ्रष्टाचार है।

आधार, मोबाइल लिंक की अनिवार्यता से सरकारी राशन वितरण में 66 हजार करोड़ रुपए से ज्यादा की धनराशि को सरकार गलत हाथों में जाने से रोक सकी। खाद्य और सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (PDS) से जुड़े अधिकारियों के मुताबिक, टेक्नोलॉजी की मदद से कुल 2.98 करोड़ फर्जी लाभार्थियों को सिस्टम से हटाने के कारण कुल 66 हजार 896 करोड़ रुपए बचाए गए। डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर स्कीम की वेबसाइट पर उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक, सरकार के 51 मंत्रालयों ने 31 दिसंबर 2019 तक कुल 1 लाख 70 हजार 377 करोड़ रुपए बचाए।

इलेक्ट्रानिक पेमेंट फ्रेमवर्क के जरिए उन सभी योजनाओं में सीधे लाभार्थियों के खाते में पैसा जाने लगा, जिसमें नकद भुगतान की व्यवस्था रही। देश में 38 करोड़ से अधिक जनधन खाते, सौ करोड़ आधार, सौ करोड़ मोबाइल से डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर को धरातल पर उतारने में आसानी मिली है।

केंद्र और राज्य की जिम्मेदारियां

पीडीएस को विनियमित करने की जिम्मेदारी केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा साझा की जाती है। केंद्र सरकार के पास खाद्यान्न की खरीद, भंडारण, परिवहन और थोक आवंटन की जिम्मेदारी है। राज्य सरकारें इसे उचित मूल्य की दुकानों (एफपीएस) के एक स्थापित नेटवर्क के माध्यम से उपभोक्ताओं को वितरित करने के लिए जिम्मेदार हैं। राज्य सरकारें बीपीएल परिवारों की पहचान, राशन कार्ड जारी करने और एफपीएस के कामकाज की निगरानी सहित परिचालन जिम्मेदारियों के लिए भी जिम्मेदार हैं।

उचित मूल्य की दुकान (एफपीएस)

एक सार्वजनिक अन्न वितरण की दुकान; जिसे उचित मूल्य की दुकान (FPS) के रूप में भी जाना जाता है। भारत सरकार द्वारा स्थापित सार्वजनिक व्यवस्था का एक हिस्सा है। जो गरीबों को रियायती कीमतों पर राशन वितरित करती है। स्थानीय रूप से

इन्हें राशन की दुकानों के रूप में जाना जाता है, जहाँ मुख्य रूप से गेहूं, चावल और चीनी को बाजार मूल्य से कम कीमत पर बेचा जाता है। इनमे अन्य आवश्यक वस्तुओं की भी बिक्री की जा सकती है। सामान खरीदने के लिए, राशन कार्ड होना जरूरी है। इन दुकानों का सामान यद्यपिं काफी सस्ता है, लेकिन गुणवत्ता औसत दर्जे की है। अधिकांश इलाकों, गांवों, कस्बों और शहरों में अब राशन की दुकानें मौजूद हैं।

कमियां

भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली खामियों रहित नहीं है। लगभग 4 करोड़ गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को कवर करनेवाली योजना में निम्नलिखित संरचनात्मक कमियों और गड़बड़ियों का पता चला है:

1. राशन की दुकानों में उपभोक्ताओं को घटिया अनाज मिलने के मामले बढ़ते जा रहे हैं।
2. डीलर भारतीय खाद्य निगम (FCI) से प्राप्त अच्छी आपूर्ति को घटिया स्टॉक से बदल देते हैं और अच्छी गुणवत्ता वाले FCI स्टॉक को निजी दुकानदारों को बेचते हैं।
3. खुले बाजार में खाद्यान्न बेचने के लिए बड़ी संख्या में फर्जी कार्ड बनाने वाले अवैध उचित मूल्य दुकान मालिक पाए गए हैं।
4. FPS डीलर को न्यूनतम लाभ मिलता है। जिसके कारण वे कदाचार, अवैध रूप से माल का डायवर्जन, होल्डिंग और कालाबाजारी का सहारा लेते हैं।
5. कई कदाचार, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन को कई गरीबों के लिए मुश्किल बनाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उनकी खाद्य असुरक्षा होती है।
6. विभिन्न राज्यों में पीडीएस सेवाओं की स्थिति और वितरण के लिए परिवारों की पहचान अनियमित और त्रुटिपूर्ण रही है। आधार यूआईडीएआई कार्ड के हालिया विकास ने, प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के साथ-साथ पीडी सेवाओं की पहचान और वितरण की समस्या को हल करने में मदद की है।
7. एफपीएस का क्षेत्रीय आवंटन और कवरेज असंतोषजनक है। इससे आवश्यक वस्तुओं के मूल्य स्थिरीकरण का मुख्य उद्देश्य हासिल नहीं किया गया है।

कई योजनाओं ने पीडीएस से सहायता प्राप्त लोगों की संख्या में वृद्धि की है, लेकिन यह संख्या बहुत कम है। एफपीएस की खराब निगरानी और जवाबदेही की कमी ने, गरीबों के लिए आवंटित स्टॉक के अच्छे हिस्से का उपभोग करने वाले बिचौलियों को प्रेरित किया है। जरुरतमंदों को राशन कार्ड नहीं मिलते, जबकि अपात्र कई कार्ड बनवा लेते हैं। गरीबी से त्रस्त ग्रामीणों में, पीडीएस और एफपीएस की मौजूदगी के बारे में जागरूकता का अभाव भी निराशाजनक है।

गरीबी रेखा से नीचे के कई परिवारों को, मौसमी प्रवासी श्रमिक होने या अनधिकृत कॉलोनियों में रहने के कारण राशन कार्ड नहीं मिल पा रहे हैं। कई परिवार पैसे के लिए अपने राशन कार्ड गिरवी रख देते हैं। भारत में सामाजिक सुरक्षा और सुरक्षा कार्यक्रमों की योजना और संरचना में स्पष्टता की कमी के परिणामस्वरूप गरीबों के लिए कई कार्ड तैयार किए गए हैं। कार्ड के समग्र उपयोग के संबंध में सीमित जानकारी ने बीपीएल परिवारों को नए कार्ड के लिए पंजीकरण करने से हतोत्साहित किया है और तो कई परिवारों द्वारा कार्ड के अवैध निर्माण में वृद्धि की है।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (डीबीटी)

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (2013) द्वारा लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के लिए, खाद्य अधिकार प्रदान करने हेतु नकद हस्तांतरण जैसी योजनाएँ प्रदान की जाती हैं। नकद हस्तांतरण के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की धारा 12 के प्रावधानों के अनुसार, सरकार ने अगस्त, 2015 में श्खाद्य सब्सिडी के नकद हस्तांतरण नियम, 2015 को अधिसूचित किया।

प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण का उद्देश्य

(i) बड़ी मात्रा में खाद्यान्न की वास्तविक आवाजाही कम करना

(ii) लाभार्थियों को उनके उपभोग को चुनने के लिए अधिक स्वायत्तता प्रदान करना

(iii) आहार में विविधता को बढ़ाना
(iv) रिसाव को कम करना
(v) बेहतर लक्ष्यीकरण को सुगम बनाना
(vi) वित्तीय समावेशन को बढ़ाना, आदि हैं।

खाद्यान्नों का प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण मार्च 2016 में केंद्र शासित प्रदेशों; चंडीगढ़, पुडुचेरी तथा दादरा और नगर हवेली के कुछ हिस्सों में शुरू किया गया था। जिसके तहत सब्सिडी के बराबर नकद सीधे पात्र परिवारों के बैंक खातों में स्थानांतरित किया जाता है, ताकि वे खुले बाजार से खाद्यान्न खरीद सकें। यह योजना राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के लिए वैकल्पिक है। इस योजना का कार्यान्वयन राज्य सरकार की लिखित अनुमति के साथ राज्य/ केंद्र शासित प्रदेश या राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में एक निर्दिष्ट क्षेत्र में संचालित है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यान्न वितरण की मौजूदा व्यवस्था को, इस योजना के अंतर्गत नहीं आने वाले शेष क्षेत्रों में जारी रखा जा सकता है।

प्रत्यीक्ष लाभ अंतरण के अंतर्गत जारी वार्षिक नकदी राजसहायता

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण के अंतर्गत जारी वार्षिक नकद राशि					
(करोड़ रुपए में)					
	2015-16	**2016-17**	**2017-18**	**2018-19**	**2019-20**
चंडीगढ़	12.33	28.04	34.50	37.38	41.35
पुडुच्चेरी	46.64	99.11	107.35	116.84	130.40
दादरा व नगर हवेली	0.35	5.21	5.01	5.23	6.38
कुल	**59.31**	**132.35**	**146.86**	**159.45**	**178.13**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का इतिहास

मध्य युग में, अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली में राशन प्रणाली के तहत आपूर्ति और मांग का प्रबंधन करने के लिए वहां के खाद्यान्न, कपड़े, घोड़ों की कीमत को नियमित रूप से नियंत्रित करने का प्रयास किया। हालांकि उसके बाद इसे बंद कर दिया गया था। उसके बाद ब्रिटिश राज में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1944 ई. में फिर से शुरू किया गया था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत, उचित मूल्य पर गेहूं, चावल, चीनी और ईंधन उपलब्ध कराने के लिए खाद्य सुरक्षा के तहत आम जनता। एक कार्य योजना तैयार की गई और व्यवस्थित रूप से लागू की गई। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को किसानों से खरीद के साथ एकीकृत किया गया था और एक विस्तृत नेटवर्क बनाया गया था। इस नेटवर्क के तहत, विभिन्न सरकारी एजेंसियों जैसे भारतीय खाद्य निगम, राज्य निगमों का गठन किया गया था। ये एजेंसियां रबी और खरीफ सीजन के दौरान किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर गेहूं और धान की खरीद करती हैं और इसे खरीदने के बाद धान से चावल निकालकर अपने गोदामों में रख देती हैं। गोदामों में रखे अनाज को उचित दर विक्रेताओं या कोटदारों के माध्यम से लाभार्थियों के बीच सस्ती दरों पर वितरित किया जाता है। ताकि मजदूरों, गरीब, निम्न मध्यम वर्ग को औसत दर्जे का गेहूं, चावल, चीनी, ईंधन सस्ती दरों पर मिल सके। और वह संविधान द्वारा प्रदान किए गए जीवन के अधिकार से सुरक्षित रहे।

जाहिर है इसमें काफी पैसा खर्च होता है, जिसे सरकार सब्सिडी के रूप में वहन करती है। फिलहाल इस पर करीब 1.5 लाख करोड़ रुपये खर्च होते हैं। इससे देश में खाद्यान्न के उत्पादन, उपलब्धता और वितरण को नियमित और नियंत्रित तरीके से करने में

मदद मिलती है, जो पूरी तरह से सरकार और उसकी एजेंसियों के नियंत्रण में है। सब्सिडी और सरकारी नियंत्रण के कारण कोई भी बड़ा व्यापारी इन अनाज (गेहूं, चावल) के व्यापार में शामिल नहीं होता है, हालांकि स्थानीय व्यापारी इसे स्थानीय स्तर पर करते हैं। इस प्रणाली के कारण अन्य कृषि उत्पादों की तुलना में धान, गेहूं की कीमतों में कोई बड़ा उतार-चढ़ाव नहीं होता है और कीमतों में स्थिरता बनी रहती है। किसानों को कम या ज्यादा न्यूनतम समर्थन मूल्य भी मिलता है, वे गेहूं, धान की खेती में अधिक रुचि लेते हैं और पिछले 25-30 वर्षों में गेहूं और धान के बोए गए क्षेत्र में वृद्धि हुई है। अन्य नकदी फसलों की तुलना में गेहूँ-धान की बुवाई का विकल्प हालांकि बहुत लाभदायक नहीं है, लेकिन यह सुरक्षित रहता है और अक्सर आत्महत्या का कारण नहीं बनता है। इसके विपरीत, प्याज, टमाटर, आलू, कपास जैसी नकदी फसलों के उत्पादक पूरी तरह से बाजार की ताकतों पर निर्भर हैं। कई बार जब कीमतें बहुत कम होती हैं, तो उन्हें ऋण के कारण अपनी जान भी गंवानी पड़ जाती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विडंबना

अब बात करते हैं इस प्रणाली की खामियों और इसके समाधानों की। सत्तर और अस्सी के दशक में, जैसे-जैसे शीर्ष स्तर की नौकरशाही में भ्रष्टाचार का प्रभाव बढ़ता गया, उसका निचले स्तरों पर प्रभाव होना स्वाभाविक था। इस अवधि के दौरान भ्रष्टाचार का सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर भी काफी प्रभाव पड़ा। चूंकि मजदूरी भारत के गांवों में राशन/खाद्यान्न के रूप में भी उपलब्ध थी। इसलिए, मजदूर वर्ग के लिए खाद्यान्न की जरूरतें भी कम थीं। चीनी वह खरीद नहीं पा रहा था। जो काश्तकार थे, अब हरित क्रांति के प्रभाव से उपज इतनी बढ़ गई थी कि उन्हें पर्याप्त खाद्यान्न मिल रहा था, बल्कि वे बाजार या सरकारी केंद्रों में अधिशेष अनाज बेचकर कम पैसे ले रहे थे। ऐसे में कार्डधारकों के बीच चीनी की कम मांग और उच्च व्यावसायिक मांग के कारण कालाबाजारी बढ़ गई। अब कोटे की दुकानें भ्रष्टाचार का प्रतीक बन चुकी थीं। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली नब्बे के दशक में शुरू की गई थी, जिसमें गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को खाद्यान्न, चीनी सस्ते दर पर उपलब्ध कराया जाता था, जबकि गरीबी रेखा से ऊपर के लोगों को केवल सब्सिडी वाला ईंधन उपलब्ध कराया जाता था। यहीं से समाज की सत्ता-संरचना कार्य करने लगी। गाँवों में, उच्च जातियों के अपात्र भी अक्सर कार्ड बना लेते थे, जबकि कम संख्या या कमजोर और पिछड़ी जातियों को हाशिये पर छोड़ दिया जाता था। जिन कमजोर लोगों के कार्ड बनते थे, वे दबंग कोटदार और प्रधान से हाथ मिला कर अपना हिस्सा खाते थे। यहां तक कि शीर्ष सरकार ने भी इसे स्वीकार किया था। वहां भी तबादला, पोस्टिंग में खूब धन उगाही होती थी। उधर, सभी इस बात से सहमत थे कि अगर कोटेदार ने पूरा नहीं बांटा तो लंबे समय से मिलने वाले कमीशन में कोई सुधार नहीं हुआ। उनका कमीशन बहुत कम था, जो माल ढुलाई भी नहीं कर सकता था। किसी भी सुधार के लिए कोई ठोस और समग्र प्रयास नहीं थे, बल्कि प्रवर्तन, निलंबन के प्रतिबंध लगाए गए थे। वर्ष 2014-15 तक जब तक लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली चालू थी, अंत्योदय कार्ड पर 6 रुपये प्रति क्विंटल, बीपीएल और एपीएल पर 12 रुपये प्रति क्विंटल की दर से कमीशन देय था। एक कोटेदार के पास तीनों तरह के कार्ड हुआ करते थे, तो क्या अंत्योदय गेहूं का परिवहन बीपीएल गेहूं के परिवहन से सस्ता था? जबकि वस्तु, मात्रा, दूरी सब समान हैं!

यह हमारे सिस्टम की उदासीनता और निष्क्रियता का उदाहरण है, जबकि उस समय केवल पल्लादारी की कीमत बारह रुपये प्रति क्विंटल थी। परिवहन की लागत, बिक्री में मजदूरी, लाभ, मकान का किराया, अभिलेखों का रखरखाव अलग-अलग थे। इस समय तक खरीदारी काफी बढ़ गई थी। भारतीय खाद्य निगम के पास इतना अधिक अनाज था कि वह उचित प्रबंधन और रखरखाव के बिना सड़ने लगा। यह खबर राष्ट्रीय मीडिया में छाई रही। राष्ट्रीय मीडिया रिपोर्टों और न्यायपालिका के हस्तक्षेप के बाद 2011-12 में इसे सस्ती दरों पर वितरित किया गया था। इससे खाद्यान्न की आमद में वृद्धि हुई और खाद्य सब्सिडी की मात्रा भी बढ़ी। इसकी सफलता से प्रभावित होकर तत्कालीन कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूपीए ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक पारित करवाया और बहुत सस्ते दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की गारंटी ली।

एनडीए सरकार के उद्देश्य

2014 में वर्तमान सरकार प्रचंड बहुमत और विकास का नारा लेकर आई थी। आते ही उन्होंने देखा कि सब्सिडी की राशि बढ़ती जा रही है, जिससे टैक्स से मिलने वाले पैसे का इस्तेमाल दूसरे कामों में नहीं हो रहा है। ऐसे में उन्होंने सब्सिडी खत्म करने के तमाम उपाय करने शुरू कर दिए। इससे कॉरपोरेट क्षेत्र के लिए उन क्षेत्रों में अपने व्यवसाय का विस्तार करना आसान हो जाता जहां

सब्सिडी के कारण अघोषित प्रतिबंध थे, जिन वस्तुओं पर सरकार का एकाधिकार था, क्योंकि केवल सरकार ही सब्सिडी दे सकती थी। निजी संगठित क्षेत्र दूर से ही इन क्षेत्रों के विपणन में प्रवेश करना चाह रहा था। पहले डीजल पर सब्सिडी खत्म की, फिर एलपीजी में घटाई। उर्वरकों में प्रत्यक्ष धन हस्तांतरण भी शुरू हो गया। इससे कपटपूर्ण खपत पर कुछ हद तक रोक लग गई और कालाबाजारी में कमी आई। सरकारी सब्सिडी भी छोड़ दी गई, लेकिन इसका वास्तविक लाभ आम जनता को उतना नहीं मिला, जितना मिलना चाहिए था। कारण थे बैंकिंग क्षेत्र की अक्षमता, लापरवाही और इंटरनेट की धीमी गति जैसे कारक। लाभार्थी के खाते में सब्सिडी देने में अनुचित देरी ने किसानों, उपभोक्ताओं को परेशान और हतोत्साहित किया।

फिर बैंक मिनिमम बैलेंस के नाम पर गरीबों को मिलने वाली छोटी-सी रकम भी काट रहे हैं। ऐसे में देरी के कारण सब्सिडी की राशि, किसान या उपभोक्ता तक वास्तविक रूप में नहीं पहुंच पाती है और बैंक खाते बंद हो जाते हैं। ऐसे में यह सोचना कि डायरेक्ट कैश ट्रांसफर (डीबीटी) एक फुलप्रूफ व्यवस्था है जिसमें वास्तविक लाभार्थी को पूरा लाभ नहीं मिल रहा है, सिर्फ एक गलतफहमी है। वास्तव में इसके गहन अध्ययन की जरूरत है, ताकि सही तस्वीर सामने आ सके। एलपीजी और उर्वरक क्षेत्र में प्राप्त आंशिक सफलता से सरकार बहुत उत्साहित थी और इसे तुरंत राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा योजना के लिए लागू करने का निर्णय लिया गया। पांडिचेरी, चंडीगढ़ और दमन-दीव में एक पायलट योजना लागू की गई थी। बाद के अध्ययनों में इसमें कई खामियां सामने आई। हालांकि यह भारत का सबसे समृद्ध और विकसित क्षेत्र है, जहां इंफ्रास्ट्रक्चर ठीक है।

नगदी हस्तांतरण की कवायद

अब राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के तहत खाद्यान्न के लिए दी जाने वाली सब्सिडी को सीधे नकद हस्तांतरण के तहत पूरे देश में लागू करने के लिए जोरदार प्रयास किए जा रहे हैं। इसलिए सभी राशन कार्डों और मौजूदा इकाइयों को आधार और बैंक खाते से जोड़ने की कवायद चल रही है, ताकि इसके माध्यम से नकद हस्तांतरण की योजना को लागू किया जा सके, लेकिन इसे लागू करने में वास्तविक जमीन पर कई चुनौतियां हैं. योजना और खाद्यान्न। कई बड़े कॉरपोरेट गिद्धों की नजर केके के रिटेल कारोबार पर टिकी है ताकि वे इस सेक्टर में मुनाफा कमा सकें। इसलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कुछ परिस्थितिजन्य खामियों को अपने खरीद प्रचार चौनलों के माध्यम से प्रचारित कर इसकी आड़ में इसे खत्म करने का अभियान चलाया जा रहा है. जबकि यह बेहद संवेदनशील मुद्दा है, जिससे करोड़ों लोगों की भूख जुड़ी हुई है। जो लाखों कमियों के बावजूद करोड़ों का पेट भरता है और आधुनिक भारत में आबादी 30 करोड़ से 130 करोड़ होने के बावजूद अकाल या भुखमरी न के बराबर है। अगर हम इस समय की तुलना पूर्ववर्ती ब्रिटिश काल से करें तो सच्चाई सामने आती है।

कवि दुष्यंत कुमार ने ऐसे प्रयासों के लिए कहा है - 'अगर इस नदी के किनारे ठंडी हवा आती है,' लहरों से टकराती है तो नाव जर्जर हो जाती है।

इस प्रणाली में आने वाली कठिनाईयां

अब देखते हैं कि कैसे एलपीजी या उर्वरक क्षेत्र में आंशिक रूप से सफल प्रत्यक्ष हस्तांतरण खाद्यान्न योजना में एक बड़ी समस्या बन जाएगा। सबसे पहले तो आज भी खाद्यान्न के लाभार्थियों की तुलना में उर्वरकों और एलपीजी के उपयोगकर्ताओं की संख्या कम है। चार लोगों के एक मध्यमवर्गीय परिवार को महीने में औसतन एक एलपीजी सिलेंडर की जरूरत होती है, तो गरीबों को हर 3-4 महीने में एक सिलेंडर की जरूरत होती है। अधिकांश लाभार्थी शहरी क्षेत्रों से हैं, इसलिए उन्होंने अपना डेटाबेस ठीक से बनाए रखा है। इसमें उत्पादन और वितरण सरकारी कंपनियों और उनके एजेंटों द्वारा किया जाता है, इसलिए वे साधन संपन्न पेशेवर हैं। अधिकांश मध्यम वर्ग के लोगों की आय इतनी अधिक है कि उन्हें अगली बार गैस प्राप्त करने के लिए सब्सिडी राशि पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। मूल्य स्थिरता और एकरूपता इन वस्तुओं (एलपीजी और उर्वरक) की विशेषता है, क्योंकि इनका उत्पादन कुछ चुनिंदा कंपनियों द्वारा किया जाता है और वितरण भी नियमित होता है। ऐसे में पूरे भारत में उत्पादन, वितरण और नियमित नियंत्रित प्रणाली की एकरूपता के कारण कीमतों की एकरूपता संभव है, जबकि खाद्य क्षेत्र में उत्पादन एक समान नहीं है और न ही उत्पादन की लागत एक समान है। गंगा या कावेरी बेसिन में उत्पादन की लागत मध्य प्रदेश की तुलना में कम होगी। इसी तरह, पंजाब में उत्पादकता अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। इस क्षेत्रीय असमानता के कारण कीमतों में भी अंतर है। मुंबई में चावल या गेहूं की कीमत पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी भी अन्य गांव की तुलना में अधिक होगी। अब सवाल यह उठता है कि

किस आधार पर कैश ट्रांसफर किया जाएगा? क्या मुंबई में प्रचलित कीमत या गंगा बेसिन के किसी गांव में प्रचलित कीमत समान होगी? वास्तव में, नकद हस्तांतरण में सबसे बड़ी चुनौती मूल्य निर्धारण है।

दूसरी समस्या एक विश्वसनीय, प्रभावी, सुलभ और सहज डेटाबेस बनाने की है। क्योंकि गांव या पिछड़े इलाकों में लोग अच्छे तरीके से रिकॉर्ड नहीं रखते हैं। ऐसे में कई गरीब परिवार ऐसे हैं, जिनका आधार कार्ड नहीं बना है या नहीं बना है तो डाक विभाग की लापरवाही के कारण वह उस व्यक्ति तक नहीं पहुंच पाया है। तो वह व्यक्ति इस नंबर से अनजान है। उसे नहीं पता कि फिर से आधार नंबर कैसे मिलेगा। यह उसे लाभ से वंचित कर सकता है। लोग अलग-अलग रिकॉर्ड में अलग-अलग नाम लिखते हैं। जैसे आधार में कॉल नेम है, वैसे ही राशन कार्ड से सरनेम गायब है। ऐसी असंख्य त्रुटियों के कारण नकद हस्तांतरण में परेशानी होगी, क्योंकि बैंक में आधार, खाता और राशन कार्ड के नाम पूरी तरह मेल खाने चाहिए। इस प्रकार एक विश्वसनीय और प्रभावी डेटाबेस बनाना अभी भी एक कठिन कार्य है। इसमें सबसे ज्यादा असर सबसे कम पढ़े-लिखे और सबसे पिछड़े इलाकों पर पड़ेगा। एक तरह से उस परिवार को समावेशी बनाने की बजाय आधार उसे तमाम योजनाओं से बाहर करने का जरिया बन गया है।

बैंकिंग शर्तें

तीसरी समस्या बैंकों से जुड़ी है। भारत में बैंकों की अधिकांश शाखाएँ शहरों और कस्बों में स्थित हैं। गांवों, विशेष रूप से आदिवासी बहुल इलाकों में 50-50 किमी तक कोई शाखा नहीं है। उदाहरण के लिए निकटतम शाखा सोनभद्र में जुगैल, कुरारी जैसे गांवों से 40-45 किमी दूर है। चूंकि सब्सिडी की मात्रा कम यानी 200-400 रुपये होगी। ऐसे में उस दूर की शाखा से पैसे निकालना काफी मुश्किल काम साबित होगा. यदि संयोगवश या दुर्भाग्य से उस दिन एटीएम खराब हो जाता है या बैंक का सर्वर डाउन हो जाता है, तो उस दिन के वेतन और आने-जाने के किराए के रूप में नकदी नष्ट हो जाएगी। एटीएम या बैंकिंग सुविधाएं सिर्फ शहरों और कस्बों में हैं। निश्चित रूप से देहात में पीडीएस की दुकानें हैं, जंगल भी हर तीन किमी के दायरे में हैं, जहां हर महीने राशन मिलता है, जबकि खाते में नकदी आने से लाभार्थी बैंक पर निर्भर होगा। बैंक इस रकम का एक बड़ा हिस्सा मिनिमम बैलेंस के नाम पर भी हड़प लेंगे।

बैंकिंग सेक्टर के कमजोर होने से एक और समस्या पैदा होगी। उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में औसतन तीन लाख राशन कार्ड प्रचलित हैं। अब ऐसे में बैंक को हर महीने तीन लाख खातों में सब्सिडी का पैसा भेजना होगा। यदि हम किसी जिले में बैंक शाखाओं की संख्या और उनके अन्य कार्यों का एक मोटा अनुमान दें तो यह बैंकों के लिए मुश्किल साबित होगा। अब चूंकि राशि कम होगी, इसलिए इसके लिए नई शाखाएं भी नहीं खोली जा सकतीं। अब तक जिले में पेंशन जिनकी संख्या 50-60 हजार है, हर तीन-छह माह में ही दी जाती है, भेजने में असमर्थता के कारण इस माह का कार्य उसी माह में हो जाता है। ऐसे में हर महीने लाखों का लेन-देन करना बेहद मुश्किल काम होगा।

अब राशन की जरूरत रोज है, ऐसे में पूरा पीडीएस बैंकों में जाएगा और बैंकों की हालत किसी से छिपी नहीं है। ऐसे में डायरेक्ट कैश ट्रांसफर नहीं होने से पूरा देश रोने लगेगा। आधार को लिंक करने में सख्ती के चलते झारखंड समेत कई राज्यों में इस वक्त भूख से लोगों की मौत हो चुकी है। जब बैंकों की लापरवाही या अधिक काम के कारण पीडीएस विफल हो जाएगा और गरीबों को बाजार दर पर खरीदे गए अनाज से भरण-पोषण करना होगा। उस स्थिति के बारे में सोचकर आत्मा कांप उठती है। नकद हस्तांतरण योजना के मूल में देश के कुछ बड़े लोग खाद्यान्न के खुदरा व्यापार पर नजर रख रहे हैं। उन्हें इस क्षेत्र से अपार संपत्ति अर्जित करनी है। ऐसे में नकद हस्तांतरण योजना एक भयावह भूल साबित होगी। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा योजना के लिए।

अब सवाल उठता है कि क्या किया जाए? क्या उत्तर प्रदेश के शहरी क्षेत्रों में प्रचलित ई-पास मशीनों के उपयोग से आधार के अंगूठे का मिलान करके सस्ती दर पर अनाज वितरित किया जाना चाहिए? जाहिर है कि 10-12 फीसदी लोगों के अंगूठे भी नहीं मिलते। फिर उन्हें किसी समिति या पर्यवेक्षक की उपस्थिति में प्रॉक्सी जैसे अन्य विकल्पों में विभाजित किया जाना चाहिए, लेकिन यह किसी भी मामले में 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसे में खाद्यान्न का दुरुपयोग और डायवर्जन भी रुकेगा और बैंकों के सहयोग से सार्वजनिक वितरण प्रणाली नहीं होगी। आधार और अंगूठा मिलान के बाद, केवल वास्तविक लाभार्थी ही लाभ ले सकेगा।

निष्कर्ष

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का नाम आने पर अक्सर लोगों के आँखों के सामने एक नकारा, भ्रष्ट तंत्र की तस्वीर उभरती है, जिसकी नुमाइंदगी उचित दर विक्रेता या कोटेदार नामक जीव करते हैं। वे अक्सर कम तौलते हैं या मूल्य अधिक लेते हैं। राशन, केरोसिन देने में हीला-हवाली करते हैं। कभी-कभी पूरा राशन या केरोसिन बेंच देते हैं और बहाना बना देते हैं कि इस महीने आया ही नहीं। ऐसे में लगता रहा है कि क्या इस व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए या यह अप्रासंगिक हो चुकी है। अब केन्द्र सरकार ने निर्णय लिया है कि लाभार्थियों को अनाज या अन्य वस्तुओं के बदले नकद राशि उनके खाते में स्थानान्तरित कर देगी, ताकि वह बाजार से उन वस्तुओं को खरीद सके। प्रथम दृष्टया डी.बी.टी. या प्रत्यक्ष हस्तानान्तरण बेहद साफ-सुथरी उचित और उपयोगी लगती है। किन्तु यदि हम अपने देश के खाद्यान्न के उत्पादन, विपणन, वितरण, बाजार के गतिकी, उपभोक्ताओं की जागरुकता व बैंकिंग सेक्टर की क्षमता के बारे में विचार करें तथा इनके सन्दर्भों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खामियों का विश्लेषण करें। तब यही लगता है कि तमाम खामियों के बावजूद, सार्वजनिक वितरण प्रणाली खाद्य सुरक्षा में अहम भूमिका निभा रही है। तथा इसे हटाकर प्रत्यक्ष नगद हस्तान्तरण लाने के लिए विस्तृत अनुभव और समझदार कार्ययोजना की जरूरत है अन्यथा इसका हश्र नोटबंदी से भी बुरा होगा।

सन्दर्भ

1. .PDS - Department of Food and Public Distribution, Official website at Ministry of Consumer Affairs, Food and Public Distribution
2. Public Distribution System (PDS), in 10th Plan at Planning Commission of India
3. Excess Food Stocks, PDS and Procurement Policy Working Paper No. 5/2002-PC, by Arvind Virmani and P.V. Rajeev, Planning Commission, Government of India, December 2001
4. "Handbook on Direct Benefit Transfer (DBT)" (PDF). NITI Aayog, Planning Commission, Government of India. 2013.
5. Muralidharan, Karthik; Niehaus, Paul; Sukhtankar, Sandip (1 October 2016). "Building State Capacity: Evidence from Biometric Smartcards in India". American Economic Review. 106 (10): 2895–2929. doi:10.1257/aer.20141346. ISSN 0002-8282.
6. Status and Performance of Direct Benefit Transfer (DBT) Scheme in Karnataka (PDF), Kishan Jindal, Principal Investigator, NABARD Consultancy Services, Karnataka Evaluation Authority, Department of Planning, Programme Monitoring and Statistics, Government of Karnataka, March 2020
7. Jain, Abhishek; Agrawal, Shalu; Ganesan, Karthik (2018), Asselt, Harro van; Skovgaard, Jakob (eds.), "Lessons from the World's Largest Subsidy Benefit Transfer Scheme: The Case of Liquefied Petroleum Gas Subsidy Reform in India", The Politics of Fossil Fuel Subsidies and their Reform, Cambridge: Cambridge University Press, pp. 212–228, ISBN 978-1-108-41679-5, retrieved 20 April 2022
8. Sabherwal, Rashi; Sharma, Devesh; Trivedi, Neeraj (17 November 2019). "Using direct benefit transfers to transfer benefits to women: a perspective from India". Development in Practice. 29 (8): 1001–1013. doi:10.1080/09614524.2019.1653264. ISSN 0961-4524. S2CID 211461063.
9. Barnwal, Prabhat (2016). "Curbing Leakage in Public Programs with Direct Benefit Transfers. Evidence from India's Fuel Subsidies and Black Markets" (PDF). World Bank Public Documents.

पंचायती राज एवं अफसरतंत्र

शालिनी सिंह

शोध छात्रा, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

स्वाधीनता पश्चात् निचले स्तर पर लोकतंत्र स्थापित करने का प्रश्न बहुत जोरों पर था। संविधान सभा में इस विषय पर काफी विचार-विमर्श हुआ। इसके पश्चात् इसे राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व के अनुच्छेद 40 में समाहित किया गया जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया कि राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो। राज्य अपने-अपने ढंग से पंचायती राज को लागू करते रहे। केन्द्र सरकार पंचायती राज की स्थिति जानने के लिए समय-समय पर समितियाँ बनाती रही, जिनमें बलवंत राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति एवं सिंघ्वी समिति प्रमुख हैं।

पंचायती राज में ग्रामीण समाज में परिवर्त्तन लाने की भूमिका के बारे में काफी आशाएँ बँधी थी परंतु वैसी सफलता इसे प्राप्त नहीं हुई। पंचायत संबंधी बलवंत राय मेहता समिति तथा अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को लागू करने के बाद भी देश में विकासात्मक काम की अनेक खामियाँ पंचायती राज प्रणाली को प्रभावित करती रही है। पंचायत के चुनाव कराने में काफी विलम्ब, पंचायतों को बार-बार निलम्बित, अधिक्रमित एवं विघटित किया गया। कार्यात्मक और वित्तीय स्वायत्तता की कमी रही। सीमान्त और कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व काफी कम रहा। यदा-कदा प्रतिबंधित सरकारी अनुदान दिया गया। पंचायतों के काम में बाधा पहुँची तथा उन्हें स्थानीय स्तर पर काम करने की स्वतंत्रता नहीं मिली जैसा कि संविधान के अनुच्छेद-40 में परिकल्पना की गई थी।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने ब्रिटिशकालीन प्रशासनिक ढाँचे में ज्यादा आधारभूत परिवर्त्तन नहीं किया। सरकार द्वारा प्रायोजित सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने ग्रामीण विकास के लिए नयी प्रशासनिक इकाईयों की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जिसके फलस्वरूप सामुदायिक विकास प्रखण्डों की स्थापना की गई। इस खण्ड का मुख्य प्रशासक प्रखण्ड विकास पदाधिकारी को बनाया गया है, जिसे प्रखण्ड-स्तर पर विकास-कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गई परन्तु विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि प्रखण्ड विकास पदाधिकारी पद ने प्रखण्ड-स्तर पर सक्रिय जन सहयोग प्राप्त करने की अपेक्षा प्रशासनिक शक्तियों में उपयोग करके जन-सहयोग की समस्याओं को और अधिक जटिल बना दिया।

आर्थिक नीतियों को तो उदार बनाया गया लेकिन अफसरशाही को उदार एवं उद्यमी बनाने की कोई गंभीर कोशिश नहीं की गयी इसका नतीजा कामचोरी एवं भ्रष्टाचार हमारे सामने है। हमारी गिनती दुनिया के पिछड़े देशों में होती है। देश की इस बदहाली के लिए नौकरशाही का वह ढांचा जिम्मेदार है जिसे पाने के बाद भी हमने बदला नहीं। ब्रिटिश पद्धति पर आधारित इस अफसरशाही ढांचे में अफसरों की शान सबसे ऊपर है। अपने साम्राज्य को बनाये रखने के लिए अंग्रेजों ने अफसरशाही को जो ताकत दी थी उस ताकत के सहारे अफसरों ने सारे अधिकर हड़प लिए।

पंचायती राज निकायों के अधिकांश कर्मचारी राज्य सरकारों के विभागों के नियमित संवर्ग से लिए जाते हैं। उनमें पंचायती राज की नई व्यवस्था में लोगों की स्वैच्छिक भागीदारी प्रदान करने के लिए अपेक्षित कार्यकुशलता और मनोवृत्ति का आभाव है। पंचायती राज संस्थाओं के स्थानांतरित नौकरशाही विकास-कार्यों को शुरू करने के लिए आमतौर पर उपयुक्त नहीं। उन्हें केवल शासन और व्यवस्था की समस्याओं से निपटने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अलावा वे जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों से आदेश लेने में

कतराते हैं। इसके परिणामस्वरूप जन-प्रतिनिधि और नौकरशाही के बीच लगातार खींचातान रहती है, जिससे समुचित विकास नहीं हो पाता।

प्रशासनिक और राजनीतिक दाव पेच के वातावरण में विकास प्रशासन दम तोड़ रहा है। प्रखण्ड-स्तर पर क्रियान्वित विकास कार्यक्रमों में रिश्वतखोरी फैल गयी है। सरपंच, प्रधान और विकास पदाधिकारी विकास योजनाओं की रकम का बहुत बड़ा भाग हड़प जाते हैं। सरकारी कर्मचारी विकास-कार्यक्रमों को निजी स्वार्थसिद्धि का साधन समझते हैं।

भारत में विकास प्रशासन इन समस्याओं में उलझ गया है कि जनता के समक्ष अपनी तस्वीर बिगाड़ बैठा है। इसकी आधारभूत इकाई पंचायती विकास में रुकावट की वस्तु बनकर रह गयी हैं। प्रशासन समाज के कमजोर वर्गों को लाभ पहुँचाने में असफल रहा है। भारतीय विकास प्रशासन में लगी नौकरशाही में अनेक दोष हैं जिससे विकास-कार्यक्रमों से संबंधित फल की प्राप्ति नहीं हो सकी है। प्रखंड विकास पदाधिकारी नौकरशाही प्रवृत्तियों से ग्रस्त हैं। उच्चाधिकारियों में अनुत्तरदायित्व एवं लालफीताशाही आदि दुर्गुणों के चलते भारतीय प्रशासन सफलता की वांछित रफ्तार नहीं पकड़ सका है।

भारत के लिए आर्थिक समृद्धि का प्रतीक गाँव हैं। देश तभी फलेगा-फूलेगा जब उसकी आत्मा के रूप में गाँव की प्रगति हो। गाँव का सर्वांगीण विकास पंचायतों के माध्यम से ही सम्भव है। विकासशील देशों में सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तन लाने का बहुत कुछ दायित्व नौकरशाही के कन्धों पर होता है इसलिए नौकरशाही को विकास के यंत्र के रूप में बदलने की आवश्यकता है। इसको प्रभावी बनाने के लिए कई सुझाव हैं।

राज्य स्तरीय नौकरशाही को प्रधानत: विकास-संबंधी नवीन कार्यों का भार वहन करना पड़ता है। अत: गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से उन्हें पर्याप्त शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है जिससे वे विकास-कार्यों का सम्पादन करने का वांछित यंत्र सिद्ध हो सके।

विकास-कार्यो में जन-सहभागिता बढ़ाने वाली संस्थाओं के सुझावों को अधिक मान्यता मिलनी चाहिए तथा पंचायत को प्रशासनिक यंत्र के रूप में विकसित करना चाहिए, न कि राजनीतिक संस्था के रूप में। शिक्षा, कृषि, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य, आदि क्षेत्रों में स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग को स्वीकार किया जाना चाहिए।

अधिकारियों को पंचायतों के मित्र, दार्शनिक, और पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के प्रति राज्य सरकारों तथा जिला अधिकारियों का उदासीन होना उनके लिए घातक सिद्ध होगा। राज्य सरकार उनके तकनीकी अभिकरणों तथा जिला अधिकारियों को पंचायती राज संस्थाओं को मार्ग-निर्देशन कर प्रोत्साहन देता रहे।

उन्हें जनता को अधिकतम सुविधा देने का मौका देने वाले शिक्षकों का कार्य करना है। इसके साथ ही उन्हें अहंकार व उच्च वर्गों की खोखली धारणाओं को त्याग देना चाहिये।

प्रशासन को जटिल प्रक्रिया के घेरे को तोड़कर उद्देश्यपरक बनाना होगा। तभी हमारी विकास योजनाओं के केन्द्र-बिन्दु, गरीबों और पिछड़ों, का सामाजिक और आर्थिक उत्थान हो सकेगा। प्रशासन को उस दिशा में उन्मुख बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रक्रिया को उद्देश्य न मानकर उपलब्धि के मूल्यांकन को आधार बनाया जाए, प्रशासन को उपलब्धि की जिम्मेदारी दी जाए लक्ष्य और उपलब्धि को प्रचारित किया जाए तथा लाभार्थी को सहभागी बनने का मौका दिया जाए।

73 वें संविधान संशोधन अधिनियम ने मजबूत तथा सशक्त पंचायती राज संस्थाओं की नींव रखी है जो ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय सहित आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रभावी तंत्र के रूप में काम करने लगी है। पंचायती राज के नये प्रतिमान की सफलता इस बात पर निर्भर है कि इन्हें प्रभावी तरीके से चलाने में नौकरशाही की भूमिका कितनी सहयोगी एवं सार्थक है।

देश में सूचना का अधिकार, कानून का लागू होना इस विषय में एक क्रांतिकारी कदम है। इससे न केवल भ्रष्टाचार रुकेगा बल्कि आम जनता को जानकारी भी मिल सकेगी। आशा है, इससे हमारे लोकतंत्र को और मजबूती मिलेगी। लेकिन यह सही मायनों में तभी लाभदायक सिद्ध होगा जब इसके माध्यम से व्यवस्था में सहभागिता बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त हो।

संदर्भ सूची–

1. संविधान 73वाँ संशोधन अधिनियम 1992
2. बिहार पंचायती राज अधिनियम, 1993
3. बिहार पंचायती राज अधिनियम, 2006
4. बी. एल फड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन, आगरा।
5. चेतकर झा, भारतीय स्थानीय स्वशासन, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना।
6. उमेश प्रसाद सिंह, पंचायती राज–व्यवस्था में पंचायत समिति की भूमिका, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

प्राचीन भारतीय समाज में परिवार का आदर्शरूप: वर्तमान की आवश्यकता

गोपाल लाल सालवी

सहायक आचार्य समाजशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ (राजस्थान)

परिवार समाज की वह इकाई है, जिससे समाज का अस्तित्व है, अन्यथा परिवार के बिना समाज की सत्ता सम्भव नहीं। परिवार एक ऐसी मूलभूत संस्था है, जिसमें व्यक्तियों का वह समूह रहता है जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के सम्बन्धों द्वारा एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं और उसके सदस्यों के रूप में अन्त:क्रियाएँ करते हुए अपने सम्पूर्ण कर्तव्यों एवं दायित्वों का भलीभाँति निर्वहन करते हैं।[1] वैसे भिन्न-भिन्न विद्वानों, विचारकों, मानव शास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और शास्त्रवेत्ताओं ने परिवार को अपनी-अपनी अवधारणा तथा शास्त्रीय मान्यता के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में परिभाषित किया है[2] जिससे ज्ञात होता है कि परिवार सामाजिक मान्यता प्राप्त सम्बन्धों से आबद्ध स्त्री-पुरुष तथा उनकी संतति से निर्मित एक आदर्श प्रकार की ढाँचा युक्त इकाई है और इसी से समाज का अस्तित्व है।

समाजशास्त्रीय कोश के अनुसार[3] -

परिवार नामक संस्था में स्त्री-पुरुष अपने बच्चों के साथ रहते हैं और उनके बीच सामाजिक मान्यता प्राप्त अधिकारों एवं कर्तव्यों की एक प्रणाली होती है।

समाजशास्त्री सी. जकरमैन ने ऐसी संस्था को परिवार माना है, जिसमें पति-पत्नी के साथ अन्य कई सदस्य एक साथ रहकर जीवन व्यतीत करते हैं।[4] चूँकि परिवार विविध कार्यो वाली संस्था है,[5] जहाँ व्यक्तित्व निर्माण का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है, अत: परिवार की सत्ता न केवल व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है, वरन् समाज के लिए भी यह अत्यावश्यक और अनेकश: महत्वपूर्ण है। विवाह द्वारा जब व्यक्ति परिवार का निर्माण करता है और अपनी संतति के माध्यम से उसे बढ़ाता है, तो यह केवल व्यक्तिगत रूप से सम्बद्ध नहीं रह जाता, वरन् सामाजिक सम्बद्धता और प्रतिबद्धता बन जाती है। वह परिवार के साथ-साथ समाज से भी बँध जाता है। एक समाज के कर्तव्य, दायित्व, नियमोपनियम, अनुशासन, आदर्श प्रतिमान तथा धर्मकर्म आदि-आदि सभी कुछ इस परिवार नामक संस्था पर निर्भर करते हैं और उसी की गतिविधियों से निर्धारित होते हैं। क्योंकि व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज का अस्तित्व है। अत: परिवार व समाज दोनों के प्रति उसके कर्तव्य व धर्म अवश्यमेव पालनीय होते हैं। सामाजिक जीवन का प्रारम्भ परिवार से ही होता है।

वैदिक कालीन प्राचीन भारतीय समाज और परिवार को देखें, तो वह प्रणाली और परिकल्पना देखी जा सकती है, जो आदर्शों से सराबोर है और जिसके द्वारा समन्वयात्मक प्रवृत्ति से भौतिक व आध्यात्मिक जीवन के लक्ष्यों को प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, भोग एवं योग तथा कामना और साधना के द्वारा साधा जाता रहा है। जिसकी सिद्धि हेतु कुछ विशिष्ट नियम, धर्म, कर्तव्य और अवधारणाएँ बनाई गई, जो व्यक्ति, परिवार और समाज के कार्य और आदर्श बन गए; संस्कृति और समाज के सौन्दर्यात्मक मूल्य बन गए। विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश[6] और फिर संतानोत्पत्ति द्वारा परिवार एवं वंशवर्द्धन, धर्मशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय प्रणाली व विधिनियमों के अनुसार एक सद्गृहस्थ व सामाजिक के कर्तव्यों और धर्मों का सम्पादन[7], समाजीकरण, विभिन्न सांवेगिक सद्भावों

का पोषण इत्यादि सभी परिवार नामक संस्था द्वारा संभव है। ये समस्त अवसर और गतिविधियाँ व्यक्ति व समाज के लिए अनेकशः हितकारी सिद्ध होती हैं। व्यक्ति तथा परिवार इन प्रणालियों व प्रक्रियाओं के द्वारा अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति भी करता है; प्रेम, सौहार्द, सुरक्षा, सहयोग, सहानुभूति का पूर्ण अवसर उसे परिवार में प्राप्त होता है।

परिवार की संकल्पना के साथ ही इसकी सत्ता के प्रारम्भ से संयुक्त परिवार की प्रथा वैदिक, वैदिकोत्तर तथा उसके बाद के कालों में निरन्तर देखी जा सकती है। प्राचीन वाङ्मय के विभिन्न शास्त्रग्रन्थों - धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र, समाज शास्त्र आदि में स्पष्ट संकेत व उल्लेख संयुक्त परिवार पद्धति की सत्ता के सूचक हैं। संयुक्त परिवारों में व्यक्तित्व के विकास के जो अवसर प्राप्त होते हैं, वे एकल परिवारों में नहीं। सम्बन्धों एवं भावनाओं की प्रगाढ़ता भी संयुक्त परिवारों में ही अधिक रहती है; क्योंकि वहाँ परिवार की कई पीढिय्यों के लोग अथवा दादा-दादी, माता-पिता, पुत्र-पुत्रवधू तथा उनकी संतानें एक साथ रहने से भावनात्मक सुदृढ़ता और प्रगाढ़ता अधिक होती है; साथ ही समाजीकरण में व्यक्ति अधिक सक्रिय भूमिका निभाता है।

ऋग्वेद के 'सूर्या' सूक्त में सूर्या के विवाह के अवसर पर विवाह द्वारा गृहस्थाश्रम की शुरूआत तथा संयुक्त परिवार प्रथा के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।[8] विवाह के बाद ही मर्यादित कामसेवन करने, श्रेष्ठ सन्तान से सम्पन्न होने[9], वर-वधू को एक साथ प्रसन्नता से रहते हुए अपनी आयु व्यतीत करने एवं घर के पुत्र-पौत्रों या उत्तम सन्तति से भरापूरा आनन्दमय बने रखने की कामना एवं प्रार्थना[10] तत्कालीन संयुक्त परिवार के आदर्शस्वरूप की अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार अथर्ववेद के स्वापन एवं सांमनस्य सूक्त आदर्श संयुक्त परिवार के स्वरूप और सत्ता को व्यक्त करते हैं। केवल वैदिक तथा वैदिकोत्तर ही नहीं, इसके बाद के कालों में भी- रामायण, महाभारत एवं तदनन्तर के समाज में भी आदर्श परिवार की सत्ता और संयुक्त परिवार की प्रथा देखी गई है। जहाँ वृद्धों से लेकर बालकों तक सभी को शिष्ट, सभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्तित्व के साथ परिवार एवं समाज में सक्रियता के साथ स्व-स्व भूमिकाओं का निर्वहन और धर्मकर्म का सम्पादन करते देखा जा सकता है।[11] भौतिकतावादी और व्यक्तिनिष्ठ प्रवृत्ति तथा संस्कृति से परे धार्मिक-आध्यात्मिक प्रवृत्ति एवं सामाजिकता का प्राधान्य प्राचीन परिवारों की आदर्शोन्मुखता का सूचक है। प्राचीन समय में मनुष्य जीवन की सार्थकता, पारिवारिक सदस्य की कर्तव्यपरायणता तथा श्रेष्ठ सामाजिक की भूमिका को देखते हुए जीवन एवं समाज लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने कर्तव्य और दायित्वों का पूर्ण निर्वहन करता था। अतः जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में समाज व शास्त्रविहित चार आश्रमों की यात्रा तय करते हुए भिन्न-भिन्न आश्रमों में अभीष्ट लक्ष्यों व ध्येयों को प्राप्त करने हेतु साधना रत रहता था।[12] चारों आश्रमों का सिरमौर गृहस्थाश्रम परिवार एवं समाज की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः एक गृहस्थ को धर्म-अर्थ-कामादि पुरुषार्थों की सिद्धि,[13] पंचमहायज्ञों के सम्पादन[14] तथा ऋणत्रय से मुक्ति[15] का अवसर परिवार में रहकर प्राप्त होता है तथा उनकी पूर्णता व सफलता परिवार के बिना सम्भव नहीं। इन समस्त धर्मकर्मों का निर्वाह केवल वैयक्तिक उद्देश्यों की पूर्णता का ही द्योतक नहीं है, वरन् समाजधर्म और और समष्टिहित की वह प्रक्रिया और परम्परा इससे सम्बद्ध है, जिसमें एक परिवार में रहने वाले व्यक्ति अथवा एक गृहस्थ के द्वारा किए गए प्रतिदिन के क्रियाकलाप उसकी धार्मिक व सामाजिक कर्तव्यों और दायित्वों से परिपूर्ण जीवनशैली बन जाती है। इस व्यवस्था से सर्वथा भिन्न समाज और परिवार व्यवस्था, जो यत्र-तत्र आधुनिक समाज में प्रचलित हो चुकी है और जिसका प्रभाव एवं प्रसार निरन्तर बढ़ रहा है- विवाह संस्कार के बिना स्वाभाविक इच्छा 'काम' की पूर्ति और गृहस्थाश्रम में प्रविष्टि/अर्थात् बिना विवाह संस्कार के साथ रहते हुए परिवार बनाना और सन्तानोत्पत्ति कर उसे बढ़ाना- यह स्थिति हमारे आदर्शों से परिपूरित समाज व संस्कृति के न तो अनुकूल है और न ही आदर्श परिवार व समाज की संकल्पना इसमें निहित है। क्योंकि समाज शास्त्रीय तथा धर्मशास्त्रीय विधिनियमों के विरुद्ध बनाया गया परिवार का अस्तित्व न तो उस परिवार के सदस्यों को सामाजिक, धार्मिक तथा विधिक मान्यता के अभाव में सामाजिक संबल और सुरक्षा प्रदान कर सकता है और न ही ऐसे परिवारों में भावनात्मक और संवेगात्मक सुदृढ़ता व सुरक्षा होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया से ऐसे परिवार कटे हुए रहते हैं और सामाजिक व सांस्कृतिक प्रदूषण का कारण भी बनते हैं। किन्हीं उच्चादर्शों व मर्यादाओं के पालन और स्थापना में इनका योगदान नगण्य रहता है, अपितु आदर्शों का पतन एवं मर्यादाओं का अतिक्रमण ही देखा जाता है। ऐसे ही अनेक कारण हैं, जो वर्तमान की ऐसी परिवार व्यवस्था तथा परिवार के स्वरूप को आदर्शहीन सिद्ध करते हैं। अतः समाज व संस्कृति के आदर्शों को बनाए रखने हेतु प्राचीन परिवार व्यवस्था की माँग प्रासंगिक है।

प्राचीन समय में संयुक्त परिवार में परिवार की कई पीढिय्यों का एक साथ मिलजुलकर रहना परिवार व समाज के विविध आदर्शों की अभिव्यक्ति करता है। परिवार के सदस्य, चाहे वे वृद्ध हों, युवा हो, बालक या बच्चे हों, सभी एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से इस तरह सम्बद्ध होते थे कि अभय, सुरक्षा, सहयोग, सद्भाव, प्रेम, वात्सल्य, ममत्व आदि-आदि विभिन्न भावों की प्रबलता परिवार के सामूहिक वातावरण में होने से व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का अवसर प्रत्येक सदस्य को प्राप्त होता था। सुख-दु:ख तथा समृद्धि-अभाव में सभी लोग पूरी आत्मीयता के साथ मिलकर रहते थे।

परिवार के सदस्य तथा बालक और युवा जैसा अपने से बड़ों व छोटों को व्यवहार करते देखते हैं, वैसा ही वे सीखते हैं और स्वयं भी वे वैसा ही आचरण-व्यवहार एवं गतिविधियाँ करते हैं। चूँकि प्राचीन समय में घर-परिवार और समाज के परिवेश में आदर्शों की व्यापकता थी, अत: परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार और उचित शिष्टाचार का पालन करते थे। माता-पिता, गुरुजनों और वृद्धजनों का पूर्ण आदर-सम्मान परिवार में होता था। बड़े-बुजुर्ग तथा माता-पिता के सान्निध्य में रहकर बच्चे एवं युवा पीढ़ी हमारी संस्कृति और समाज के जीवनमूल्यों को जानते और आत्मसात् करते थे। धार्मिकता, नैतिकता और सच्चरित्रता का समावेश और विकास बालकों व युवाओं में संयुक्त परिवार में रहकर बखूबी होता था। वहीं आज संयुक्त परिवारों के विघटन और एकाकी परिवारों के प्रचलन ने संस्कृति व समाज के मूल्यों को पतित बना दिया है। घर के बुजुर्गों का वृद्धाश्रमों में परित्याग, स्वार्थी प्रवृत्ति के चलते घर के वृद्धों के प्रति उपेक्षा तथा पक्षपात के भाव हमारी संस्कृति पर कलंक हैं और समाज का दूषण हैं। एकाकी परिवारों में पल-बढ़ रहे बच्चों में असुरक्षा की भावना, सांवेगिक अस्थिरता और तनाव, मनोवैज्ञानिक विकृतियाँ, भावनात्मक अलगाव आदि-आदि अनेक समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती देखी जा सकती हैं, जिनके दुष्परिणाम अनेक रूपों में सामने आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व का पूर्ण और स्वस्थ विकास नहीं हो पाता तथा बालक एवं युवाओं के आचरण-व्यवहार में नकारात्मक परिवर्तन तेजी से आने लगते हैं; जो अशिष्टता, असभ्यता और अवसाद के रूप में सामने आते हैं।

संयुक्त परिवार स्वस्थ मनोरंजन का साधन होते थे। शिक्षाप्रद व नैतिक कथा-कहानियों, वीरगाथाएँ और हँसी-ठिठोली युक्त वार्तालाप एवं प्रसंग, अभिनय, विभिन्न गतिविधियाँ स्वस्थ मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन होती थीं[16] जिनका परिवार के सभी सदस्यों की उपस्थिति एवं सहभागितापूर्वक आनन्द उठाया जाता था। दिनभर की श्रमशीलता से उत्पन्न थकान को दूर करने का सर्वश्रेष्ठ साधन परिवारजनों का सान्निध्य और उनके बीच व्यतीत किए गए समय के अन्तराल की विभिन्न गतिविधियाँ होती थीं। इसके विपरीत आज के एकल परिवार हों या कुछेक संयुक्त परिवार- इनकी स्थिति यह बन चुकी है कि किसी भी सदस्य को, यहाँ तक कि माता-पिता को शिशुओं तक के लिए समय नहीं रहता। ऐसी स्थितियाँ बालक या व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण, विकास तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत गम्भीर हैं। ऐसे परिवेश में असुरक्षा, असन्तोष तथा अवसाद पनपना स्वाभाविक है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए घातक है।

निष्कर्ष:

प्राचीन समाज एवं संस्कृति आदर्शों से सराबोर रहे हैं। समाज की इकाई परिवार का स्वरूप प्रत्येक दृष्टि से हमारी संस्कृति के अनुकूल तथा उसके विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करने वाला देखा जा सकता है। एक अच्छे व्यक्ति, गृहस्थ, सामाजिक एवं नागरिक बनने का स्थल परिवार ही होता था और उसकी संयुक्त कुटुम्ब पद्धति सुसंस्कृत एवं पूर्ण विकसित व्यक्तित्व की धुरी होने से ऐसे परिवार स्वस्थ, उन्नत, अनुशासित और सबल समाज की नींव होते थे। व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से प्राचीन संयुक्त परिवारों तथा उनके आदर्श रूप अतिमहत्व के सिद्ध होते थे। आज टूटते संयुक्त परिवार तथा एकल परिवारों का अस्तित्व, आदर्शविहीन जीवनशैली तथा परिवार की प्रणाली अनेक समस्याओं का कारण बनती देखी गई हैं। भावनात्मक अलगाव तथा अमर्यादित आचरण हमारे समाज व संस्कृति के दूषण बन रहे हैं। ऐसी ही अनेकानेक अन्य समस्याएँ एवं विकृतियाँ व्यक्ति, घर, परिवार और समाज में पनप रही हैं। अत: आज हमें आवश्यकता है- प्राचीन आदर्श परिपूरित परिवार और समाज व्यवस्था को पुनर्जीवित व स्थापित करने की। यह व्यष्टि-समष्टि सबके हित के लिए जरूरी है।

संन्दर्भ स्थल एवं सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अथर्ववेद संहितागत परिवार-मीमांसा: मयूरा प्रसाद, नारायण प्रकाशन, जयपुर; अध्याय-3 'परिवार का स्वरूप', पृष्ठ-60
2. वही, पृष्ठ-60
3. समाजशास्त्र कोश-1944

4- The Social life of Monkeys and Apes, Page No. 225

5. Social Disorganization, Page No. 361 & "Any Institution has a variety of functions and the family is perhaps the most multifarious of all - Elliot and Merrill."
6. भारतीय संस्कृति के मूल आधार: रमेश चन्द्र घुसिंगा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर; अध्याय -6, पृष्ठ 72-73 'विवाह संस्कार'
7. मनुस्मृति, चौखम्बा प्रकाशन; अध्याय 3-4
8. ऋग्वेद, 10/85 सूक्त
9. वही, 10/85/36-38
10. वही, 10/85/42
11. महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय-97 - 'गृहस्थ धर्म एवं पञ्चयज्ञ कर्म'
12. वही, शान्तिपर्व, अध्याय 60-63
13. भारतीय संस्कृति के मूल आधार, अध्याय-7
14. वही, अध्याय-6, पृष्ठ 59-61 एवं मनुस्मृति, 3/67-71
15. मनुस्मृति, 6/35 एवं भारतीय संस्कृति का विकास: डॉ. मंगल देव शास्त्री, पृष्ठ-186
16. अथर्ववेद संहितागत परिवार-मीमांसा, अध्याय-3, पृष्ठ-65

भारतीय समाज और संस्कृति में आश्रम व्यवस्थाः स्वरूप एवं महत्व

डॉ० ममता सिंघल

सहायक आचार्य समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, कपासन, चित्तौडगढ (राज0)

हिन्दू समाज और संस्कृति में सदैव से कर्म, श्रम और आदर्शों की प्रधानता रही है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि, विचारकों तथा सुविज्ञ आर्यजनों ने मानव जीवन और समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करने तथा व्यक्ति और समाज को लौकिक-पारलौकिक उन्नयन में प्रवृत्त करने की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है। चूँकि प्राचीन समय में मानव दीर्घायु होता था और यह दीर्घायु शत वर्ष अथवा शताधिक वर्षों तक मानव के जीवन जीने की आशा व कामना के रूप में रही है। जैसा कि प्राचीन समय में मानव कामना करता रहा है कि सभी सौ वर्षों तक जीएँ-

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ।[1]

सौ वर्ष ही नहीं, बल्कि दीनता और पराधीनता रहित होकर सौ वर्ष से भी अधिक जीने की कामना देखी गई है-

शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात।[2]

यह केवल चिरायु होने की कामना एवं प्रार्थना ही नहीं थीं, वरन् प्राचीन समय में यथार्थ में भी यह कामना फलीभूत होती देखी गई है; क्योंकि सौ वर्षों तक जीने वाला मानव चारों आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के दायित्वों को अपने जीवन काल में भली-भाँति निभाता था और वह इन आश्रमों में भिन्न-भिन्न अवस्था में सेवनीय व करणीय पुरुषार्थों का भी सम्यक् सम्पादन करता था।[3] प्रारम्भ के 25 वर्ष ब्रह्मचारी के रूप में ब्रह्मचर्याश्रम में विद्यार्जन के लिए, 26 से 50 वर्ष तक की आयु गृहस्थ जीवन में धनार्जन व काम सेवन के लिए, 51 से 75 वर्ष की आयु गृहस्थ के बाद वानप्रस्थी बनकर वानप्रस्थाश्रम में ईशाराधना व पुण्यार्जन के लिए तथा 76 से 100 वर्ष की आयु अथवा शेष जीवन-पर्यन्त संन्यासाश्रम में रहकर मोक्ष-साधना हेतु रखी गई। इस प्रकार यह चतुराश्रम व्यवस्था समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, वैचारिक और व्यावहारिक दृष्टि से पूर्णतः मानव को श्रम व कर्तव्य निरत बनाए रखने की सुव्यवस्था भी है तथा जीवन व समाज को आदर्शाभिमुख व उन्नत बनाए रखने की भी व्यवस्था रही है।

वास्तव में आश्रम शब्द का अर्थ ही उसके स्वरूप व कार्यों का द्योतक है; क्योंकि आश्रम शब्द 'श्रम्' धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ- 'श्रम करना' या 'प्रयास करना' है।[4] चारों आश्रमों में मनुष्य पुरुषार्थ विशेष की प्राप्ति के लिए खूब प्रयास करता है और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष- इन चार पुरुषार्थों को चार आश्रमों की व्यवस्था के माध्यम से सिद्ध करने का पूरा प्रयास करता है और वास्तव में उन्हें सिद्ध करता भी है।

हिन्दू समाज के परिदृश्य में इन चार आश्रमों का स्वरूप व महत्व इस प्रकार है-

ब्रह्मचर्य आश्रम - मानव जीवन की आयु के प्रारम्भिक 25 वर्षों में व्यक्ति अत्यन्त नियम-संयमपूर्वक अनुशासित जीवन जीते हुए ज्ञान प्राप्ति करता था। विभिन्न विद्याओं व शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर शिक्षित होना, बौद्धिक व चारित्रिक विकास करना तथा त्याग-तपोमय जीवनपूर्वक श्रेष्ठ व आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करना- ब्रह्मचर्याश्रम की साधना से ही सम्भव होता था।[5] ब्रह्मचर्य

आश्रम की व्यवस्था मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत, शिक्षित बनाने तथा उसका बौद्धिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। क्योंकि यही वह समय और अवस्था थी, जबकि बालक गुरुजनों एवं बड़ों के प्रति श्रद्धा भक्ति, मान-सम्मान के भाव पालता-पोषता था; समस्त दुष्कृत्यों व दुराचार से दूर रहता था; मद्य-मांसादि से, विकारों भावों से, जीव हिंसा से तथा जितने भी असत् व बुरे कार्य हैं, उनसे मन-वचन-कर्म से पूरी तरह दूर रहकर श्रेष्ठ चरित्र व व्यक्तित्व का निर्माण कर सद्समाज सृजन में अपनी भूमिका निभाता था। इस प्रकार आदर्श समाज के निर्माण में ब्रह्मचर्य आश्रम की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण, बलवती सिद्ध होती थी; क्योंकि सद्व्यक्तित्व से ही सद्समाज का निर्माण होता है।

गृहस्थ आश्रम - चारों आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ तथा अतिमहत्वपूर्ण इसी आश्रम को माना गया है।[6] इसकी श्रेष्ठता के एक नहीं, वरन् अनेक कारण हैं। यथा- अन्य सभी आश्रम इसी गृहस्थाश्रम पर आश्रित होते हैं। व्यक्ति अर्थ और काम पुरुषार्थ को इसी आश्रम में सम्पादित करता है। सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से तथा यज्ञ-यागादि द्वारा देवऋण से मुक्ति भी इसी आश्रम द्वारा होती है। इसी प्रकार बहुत सी ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं, जो इस आश्रम की महत्ता व श्रेष्ठता के कारण स्वरूप देखी जा सकती हैं। स्मृति[7] , धर्मसूत्र[8] , पुराण[9] आदि धर्मशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय[10] ग्रन्थों में इस आश्रम के स्वरूप व बहुविध महत्व के उल्लेख मिलते हैं। यह आश्रम अन्य सभी आश्रमों का जनक तथा उनकी स्थिति का कारण है। मनुस्मृति में अन्य सभी आश्रमों की अपेक्षा इस आश्रम का महत्व एवं उसकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है-

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।[11]

एवं- *यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम्।*
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितम्।।[12]

गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में ज्येष्ठ भी है और श्रेष्ठ भी। सांसारिक जीवन के उपभोग का अवसर इसी आश्रम में प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य जीवन की समाप्ति के पश्चात् व्यक्ति युवावस्था में इस आश्रम में वैवाहिक संस्कार के सम्पन्न होने पर प्रवेश करता है। फिर वह इस आश्रम में घर-परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने समस्त कर्तव्यों का निर्वहन करता है। धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिकादि समस्त उन्नति और इनसे जुड़े हुए सभी दायित्व व्यक्ति इस आश्रम में पूरे करता है। पंचमहायज्ञ एवं धर्मार्थकाम पुरुषार्थों का संतुलित सम्पादन, ऋणों से मुक्ति, दस प्रकार का धर्माचरण, धर्मानुसार आजीविका सम्पादन इत्यादि समस्त कार्य गृहस्थ के साथ-साथ समाज व संस्कृति से जुड़े हुए हैं। एक सद्गृहस्थ की आदर्श जीवनशैली सम्पूर्ण समाज की सुव्यवस्था और आदर्शों की आधायिका बनती है। अतः व्यष्टि-समष्टि की दृष्टि से गृहस्थाश्रम सदैव से अतिमहत्वपूर्ण रहा है और आज भी है। वास्तव में सन्तानोत्पत्ति द्वारा सृष्टि की सतत् विद्यमानता और निरन्तरता को बनाए रखने की दृष्टि से भी यह आश्रम अत्यावश्यक व महत्वपूर्ण है, तो समाज व संस्कृति के विविध आदर्शों व उन्नयन की दृष्टि से भी। सद्गृहस्थ के पवित्र आचार-विचार और सदाचार पर सम्पूर्ण समाज व संतति के संस्कार निर्भर करते हैं। स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी मानने की तथा स्त्री के बिना पुरुष को अपूर्ण मानने की विचारधारा स्त्री की समाज में महत्ता को भी व्यक्त करती है और गृहस्थाश्रम की अपरिहार्य आवश्यकता व महत्व को भी। यह हमारे समाज व संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है।

वानप्रस्थ आश्रम - गृहस्थाश्रम के बाद व्यक्ति का इस आश्रम में प्रवेश होता है। गृहस्थ के कर्तव्यों की इति श्री के बाद सांसारिक माया-मोह का त्यागकर व्यक्ति वन की ओर प्रस्थान कर पत्नी सहित अथवा एकाकी त्याग-तपोमय जीवन व्यतीत करता है।[13] अरण्य में रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति ईशाराधना में निरत रहता है तथा पुण्यार्जन करता है। वास्तव में देखा जाए तो यह गृहस्थाश्रम व संन्यासाश्रम के बीच की कड़ी है, जो सांसारिक सुख-भोगों के बाद और मोक्ष साधना से पहले व्यक्ति को अगले आश्रम व पुरुषार्थ हेतु तैयार करती है। गृहस्थ जीवन की व्यस्तता के बाद तथा आयु-अवस्था की परिपक्वतानुसार व्यक्ति को कुछ विश्राम भी जरूरी होता है और जीवन के परम ध्येय-मोक्ष साधना के लिए धर्माध्यात्म के सम्पादन द्वारा स्वयं को इस योग्य भी बनाना होता है। अतः वानप्रस्थ में रहकर व्यक्ति घर-परिवार व संसार के झंझटों से मुक्त रहकर स्वयं को समस्त द्वन्द्वों को सहने

योग्य भी बना लेता है और गूढ़ ज्ञान की प्राप्ति, तप: साधना, बौद्धिक व आध्यात्मिक उन्नति का अवसर भी उसे प्राप्त हो जाता है। यह सत्य बात है कि वानप्रस्थी तपस्वियों ने अरण्य प्रदेश के शान्त-एकान्त वातावरण में गूढ़तम, रहस्यमय ज्ञान की प्राप्ति की और आरण्यक साहित्य की रचना की। मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्यक्ति व समाज के लक्ष्य इस आश्रम से स्पष्टत: जुड़े हुए देखे गए हैं; जिनकी प्राप्ति हेतु इस आश्रम में वानप्रस्थी को कठोर नियमोपनियमों का पालन करना पड़ता है। वानप्रस्थाश्रम को 'वैखानस' आश्रम भी कहा जाता है- "वैखानसा नाम वानप्रस्था:।"[14] महाभारत में वानप्रस्थियों को तपस्या के धनी वालखिल्य कहा गया है- "वालखिल्यांस्तपोधनान्"[15]

संन्यास आश्रम - जीवन का अन्तिम व चतुर्थाश्रम है। वानप्रस्थाश्रम के बाद जीवन पर्यन्त संन्यासी बनकर रहते हुए जीवन के परम ध्येय- मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रयास किया जाता है। इसके लिए अतिक्लिष्ट साधना करनी पड़ती है। एकाकी जीवन व्यतीत करता हुआ संन्यासी अन्य सभी कर्तव्यों से मुक्त रहता है, बस केवल स्थिर बुद्धि होकर विशुद्ध ब्रह्म की साधना करता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि संन्यासी के लिए कोई कर्तव्य कर्म नहीं है; वह आवश्यक एवं संन्यासाश्रम-विहित कर्मों को तो करता है, परन्तु पूर्णत: अनासक्त भाव से। जैसा कि गीता में कहा गया है- "अनाश्रित: कर्मफलं कार्यं कर्म करोति य:। स संन्यासी ....।"[16]

इन्द्रिय संयम; राग-द्वेषादि विकारी भावों का त्याग; अहिंसा, सत्यादि व्रतों का पूर्ण पालन; स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानादि नियमों का पालन तथा इसके अतिरिक्त अन्य नियम व धर्मकर्म संन्यासी के लिए आवश्यक रूप से पालनीय रहे हैं।[17] "सादा जीवन उच्च विचार" का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप से सिद्धान्त व व्यवहार में संन्यासी के लिए पालनीय रहा है। वास्तव में संन्यासाश्रम की व्यवस्था जीवन के अंतिम पड़ाव में व्यक्ति को निर्लिप्त-निस्पृह बनाकर मोक्षसाधना के कार्यक्रम में निरत करने हेतु की गई है। मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह आश्रम व्यक्ति को शुद्ध, सात्विक, समभावी व सदाचारी बने रहने तथा सर्वजनहिताय कार्य करने का अवसर प्रदान करने की भी व्यवस्था है; क्योंकि इस आश्रम में व्यक्ति भले ही स्वाध्यात्मिक उन्नयन तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है; परन्तु साथ ही वह अपने सत्कार्यों से समष्टि के लिए भी सुखप्रदायक सिद्ध होता है। यथा- सबके प्रति समान दृष्टि रखना, सबको अभय प्रदान करना, काम-क्रोधादि दुर्गुणों से दूर रहना तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् के प्रति कृतज्ञ बने रहना और कभी किसी से द्रोह न करना- इत्यादि समस्त आचरण-व्यवहार[18] हमारे समाज व संस्कृति के अनुकूल भी है और उच्चादर्श भी; ऐसा आचरण व्यक्ति के मन-मस्तिष्क और व्यक्तित्व का परिमार्जन भी करता है, तो समाज को भी संस्कारी और उन्नत बनाता है।

उपसंहार - भारतीय समाज और संस्कृति में चार आश्रमों की यह व्यवस्था व्यक्ति से सम्बन्धित होते हुए भी पूरी तरह समाज से सम्बन्धित वह व्यवस्था है, जो प्रत्येक मनुष्य को आजीवन कर्म एवं श्रम निरत बनाए रखती है। सदाचार पालन पूर्वक स्व-स्व धर्मकर्म को सम्पादित करता हुआ प्रत्येक मानव व्यष्टि व समष्टि-दोनों के हित के लिए कार्य करता है और ज्ञान, कर्म, त्याग व अध्यात्म की कुशलता को प्राप्त कर जीवन के चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कर लेता है। चारों ही आश्रमों में सदाचार का पालन, विकारी भावों का त्याग, सत्य-अहिंसादि का मन-वचन-कर्मपूर्वक पालन, कठोर त्याग और तपश्चर्या, धृतिक्षमादि धर्म का पालन तथा अन्त: एवं बाह्यकरण की पूर्ण शुचिता आदि-आदि को अपरिहार्य माना गया है। वह वास्तव में समाज की स्वस्थता, संस्कार और आदर्शों की स्थापना व सुदृढ़ता का जनक है। क्योंकि व्यष्टि का आदर्श ही समष्टि उत्थान का कारण सिद्ध होता है। अत: जीवन की सम्पूर्ण आयु, चाहे वह सौ वर्ष से कम हो या अधिक, व्यक्ति को अपनी जीवनावधि को ज्ञान, धर्मकर्म, त्याग और अध्यात्य- इन सभी की साधना में लगाना चाहिए। क्योंकि पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि एवं सुव्यवस्थित जीवन व समाज का स्वरूप अव्यवस्थित जीवन से कदापि सम्भव नहीं। प्राचीन समय हो या अर्वाचीन, जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रह्मचारी जीवन जीते हुए पूर्ण अनुशासन व संयम के साथ ज्ञानप्राप्ति, युवावस्था में विवाह-संस्कार के बाद धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों का संतुलित पालन, तदनन्तर भोग अथवा प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति की ओर उन्मुख होते हुए वानप्रस्थाश्रम में ईशाराधना व पुण्यप्राप्ति में रत रहते हुए त्यागमय एवं तपोमय जीवन और अन्त में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु प्रयास करने से मोक्षप्राप्ति का लक्ष्य- इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण जीवनयात्रा में इन चार पड़ावों पर व्यक्ति को स्व और पर के लिए वांछित व आवश्यक समस्त कर्तव्यों को करने के अवसर प्राप्त होते हैं। यही सम्पूर्ण जीवन की साधना है और हमारे समाज व संस्कृति की सुव्यवस्था, उज्ज्वलता एवं सृष्टि चक्र की निरन्तरता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. यजुर्वेद, 36/24 तथा अथर्ववेद, 19/67/1-2; सम्पादक - श्री सत्यवीर शास्त्री, डी.पी.बी. पब्लिकेशन्स।
2. यजुर्वेद, 36/24 एवं अन्य स्थल अथर्ववेद, 19/67/7-8
3. भारत की प्राचीन संस्कृतिः राम जी उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; अध्याय-3 'आश्रम', पृष्ठ 38-39
4. वही, पृष्ठ-38
5 .प्राचीन भारत का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहासः डॉ. निरंजन सिंह योगमणि, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ-288
6. मनुस्मृति, टीकाकार- पं श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन; 3/77-78 6/87-90
7. व्यासस्मृति 4/2-4, 13-14 एवं मनुस्मृति, 6/89
8. गौतम धर्मसूत्र, 3/3 "तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम्।"
9. वायु पुराण, 8/172
10. महाभारत, अनुशासनपर्व/141/25-26, 39
11. मनुस्मृति, 3/77
12. वही, 6/90
13. महाभारत, अनुशासनपर्व/ अध्याय-142
14. महाभारत, अनुशासनपर्व/ अध्याय-142, पृष्ठ-5932 पर दाक्षिणात्य पद्य पाठ।
15. महाभारत, अनुशासनपर्व/ अध्याय-142, पृष्ठ-5933 पर दाक्षिणात्य पद्य पाठ।
16. श्रीमद्भगवद्गीता, 6/1
17. महाभारत, अनुशासनपर्व/145/पृष्ठ-6009 पर दाक्षिणात्य पाठ
18. भारत की प्राचीन संस्कृति, अध्याय-3, पृष्ठ 55-59

मध्यवर्गीय समाज की संवेदना

सत्यप्रकाश

शोध छात्र (हिन्दी), महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

मध्यवर्ग एक ऐसे व्यक्ति का समूह माना गया है, जिसका ''आर्थिक स्वार्थ एक समान हो, जिसके धन कमाने से लेकर पैदा करने तक के रास्ते एक से हो तथा समाज में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से एक सा स्थान प्राप्त हो।''

डॉ. मंजुलता गुप्ता ने वित्त के आधार पर समाज में तीन प्रकार स्तर बताये हैं-उच्च, मध्य एवं निम्न, इन्हीं आधारों पर किसी भी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का आंकलन उनके पास उपलब्ध धन के आधार पर किया जाता है, जिसका मूल व्यवसाय माना गया है तथा व्यावसाय को इन्होंने तीन वर्गों में बांटा है-नौकरी पेशा, उद्योग तथा व्यापार। नौकरी पेशा में भी दो प्रकार की नौकरी का वर्णन किया है, प्रथम-उच्च स्तर की नौकरी तथा द्वितीय मध्य स्तर की नौकरी। उच्च स्तर की नौकरियों में डॉक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर, वकील, सरकारी उच्च पदाधिकारी इत्यादि तथा मध्य स्तर में शिक्षक, क्लर्क, लेखाकार, चपरासी इत्यादि। इसी प्रकार उद्योग में भी दो स्तर हैं-उच्च स्तर एवं मध्य स्तर तथा उच्च स्तर के उद्योग जहाँ यंत्रीकरण से कार्य बड़े पैमाने पर होते हैं तथा मध्य स्तर के उद्योग जहाँ छोटे स्तर पर कुटीर एवं लघु उद्योग के माध्यम से उद्योग होते हैं। इसी प्रकार व्यापार को भी दो वर्गों में बांटा गया है पूंजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग। पूंजीपतियों द्वारा उच्च स्तर का व्यापार जहाँ व्यक्ति अथवा पूंजीपति अपना पैसा लगाकर उद्योग करते हैं। व्यापार में दो प्रकार के व्यापार होते हैं प्रथम संस्थागत व्यापार, जिसमें कम्पनी, फर्म के माध्यम से सामग्री का वितरण किया जाता है और आय अर्जित करता है दूसरा दुकानदार जो संस्थागत व्यापारियों से माल खरीदकर माल की बिक्री करते हैं और आय अर्जित करता है। वहीं मजदूर वर्ग जो कारखानों में काम करके वेतन भोगी होती है।

औद्योगीकिरण एवं व्यावसायीकरण के इस दौर में आज का युवा पारिवारिक रिश्ते-नाते के प्रति सहोदर भावना की जगह तटस्थ देखने को मिल रही है तथा व्यासाय के स्थलों के अंतर ने दूरियां बना दी हैं, जिसका असर परिवार के बड़े-बूढ़ों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, यही कारण है वर्तमान परिवेश में अनेक वयोवृद्ध ऐसे पाये गये जो निर्वासित जिन्दगी जीने हेतु मजबूर हैं। यह समस्या किसी एक वर्ग में नहीं अपितु सभी वर्गों में देखने को मिल रही हैं स्वच्छंद वातावरण का प्रभाव पति-पत्नी के रिश्तों में टकराहट स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। आज का मध्यमवर्गीय पुरुष पत्नी के साथ मात्र देह समर्पण के स्वार्थ में जीवन जी रहा है, यही कारण है कि आज दाम्पत्य जीवन तार-तार होकर बिखर गया है।

समकालीन कथाकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में प्रतिष्ठित नेतागण की दोगली नीति, शोषित मजदूरों की दमित, आक्रोशित स्थिति, स्त्री के शोषण एवं संत्रास, बेरोजगारी जैसे अनेक मुद्दों को अपनी संवेदना के माध्यम से साहित्य में पिरोया है।

प्रत्येक मानव के अन्तर्गत की भावना जो उसकी संवेदना होती है उसे पवित्र माना गया है। वर्तमान समय में संवेदना का प्रयोग प्राय: लोगों की सहानुभूति प्रकट करने के लिए हो रहा है, जबकि संवेदना का तात्पर्य ज्ञान एवं ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव करने को कहते हैं। संवेदना मन की चेतना की वह अवस्था, जिसे हम विश्व की वस्तु विशेष के ज्ञान की अपेक्षा उसके गुणों का ज्ञान होता है।

मनोविज्ञान में संवेदना का अंग्रेजी शब्द ैमदेंजपवदश् से है, जिसका तात्पर्य ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव करने को कहे हैं, यही कारण है कि साहित्य एवं मनोविज्ञान दोनों विषयों में संवेदना अंतर्निहित मानी जाती है। खासतौर पर जब मानवीय संवेदनाओं की बात करते हैं तब उसका अर्थ मात्र ज्ञानेद्रियों के अनुभव तक न रहकर मानव के मन की गहराई में छिपी दया, करुणा एवं सहानुभूति की उदात्त

वृत्तियों तक हो जाता है। किसी भी समाज की संवेदना के लिए उत्तेजक की जरूरत पड़ती है, जिसके गुण हमारे मन में संवेदना उत्पन्न करते हैं। संवेदना को प्राय: तीन वर्गों में बांटा गया है-1. विशिष्ट संवेदना, 2. अन्तर अवयव संवेदना तथा स्नायविक संवेदना। विशिष्ट संवेदना से तात्पर्य है कि बाहरी उत्तेजना के द्वारा होने वाली संवेदना को विशिष्ट संवेदना कहते हैं।

समकालीन कहानीकारों ने संवेदना के विविध आयाम तथा उसके स्वरूप को अपनी रचनाओं में प्रदर्शित किया है। सत्य तो यही है कि किसी भी साहित्य का मूल सम्बन्ध मानव की संवेदना से हो। संवेदना के बगैर साहित्य नहीं बन सकता, चाहे उसमें बुद्धिवाद का कितना ही उहापोह क्यों न हो? दर्शन की नई-नई भंगिमाएं क्यों न हो? बुद्धि दर्शन, ज्ञान, चिंतन, विज्ञान सबको सर्वप्रथम जीवन में आत्मसात करना पड़ता है इसके पश्चात् ही कोई मानव संवेदना का अंग बन सकता है तभी शक्तिशाली रचनाकार की उत्पत्ती होती है अथवा ताकतकवर साहित्य की सृष्टि होती है।

वर्तमान में आत्मीय रिश्तों को विक्षिप्त अवस्था में मनुष्य जीने हेतु विवश है, क्योंकि औद्योगिकीकरण में सलग्न पुत्र अपने बीबी-बच्चों के साथ नगर/महानगरों में बस जाते हैं और माता-पिता से सम्पर्क कम होने लगता है, जो इस बात का द्योतक है कि महानगरीय वातावरण भरी भागदौड़ जीवन शैली का, यही कारण है कि आज औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति ने परिवार के मध्य खण्डित भाव का बीज बोने में सफल रहा है। जबकि यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मानव का मन सदैव कुछ न कुछ नया पाने हेतु लालायित रहता है। आज का मानव औद्योगिकीकरण के युग में जीवन यापन कर रहा है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति सीमित साधनों में नहीं कर पा रहा है, जिसके कारण वह नौकरी एवं व्यवसाय करने हेतु पलायन कर रहे हैं जबकि परिवार के बुजुर्ग अपनी परिवार को समेटने के लिये चिंतित हैं। इत्यादि समस्याओं को कथाकार अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त संवेदना के माध्यम से चित्रित करते हैं।

उपनिवेशी विचारवादों की झोंक के कारण परिवार के सदस्यों में उपयोगिता की दृष्टि का सृजन हुआ। समाज की पुरानी स्थायित्व संवेदनाएँ जैसे-स्नेह, ममत्व, आत्मीयता, सम्मान एवं सहानुभूति सभी में परिवर्तन देखने को मिलने लगा, जिसके कारण पारिवारिक रिश्तों में हीनता, उपेक्षा, परायापन, संवेदनहीनता की नई भाव संवेदनाएं हावी हो जाती है। अर्थ की आकांक्षा और अपने रुतबे के आगे लोगों को अपनों की संवेदनाएँ दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार की संवेदनाओं को समकालीन कथाकार अपने कहानियों के माध्यम से पाठकों की संवेनाओं को जाग्रत करने की कोशिश करता है।

मध्यवर्गीय समाज में पति-पत्नी के टूटते सम्बंधों का प्रमुख कारण सामंती मानसिकता के पुरुष अपनी पत्नी के प्रति देहगामी सोच को प्रदर्शित करती है। आधुनिकता के समय पति-पत्नी दैहिक सम्बंधों के कारण ही जीवन यापन कर रहे हैं। स्वार्थी मनोधारा के कारण आज दाम्पत्य के वैवाहिक सम्बंध शरीर की आवश्यकता तक सिकुड़ गये हैं। आज के दाम्पत्य में बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद का दबाव बढ़ रहा है। ऐसी समस्याओं को कथाकार पति-पत्नी की संवेदनाओं को पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश करता है और टूटते दाम्पत्य जीवन को सही दिशा देने हेतु प्रयासरत रहता है।

मध्यवर्गीय समाज में व्यक्ति अर्थ के कारण भावहीन बनता जा रहा है। वर्तमान समय में लोगों में इंसानियत, आदर-सम्मान, सहानभूति, स्नेह जैसे शब्द निरर्थक लगने लगे हैं। सदैव अर्थ के लोभ, द्वेष, स्वार्थ, घृणा, मर्यादाहीनता इत्यादि नये मूल्यों ने अपनी जड़े बना रही हैं। इन जड़ों को समाप्त करने हेतु एक रचनाकार अपनी साहित्य में मध्यवर्गीय परिवार के संवेदनाओं के साथ उतरता है जो इन मूल्यों की रखा करने हेतु उसका अपना प्रयास होता है। इसी प्रकार अर्थ के अभाव में व्यक्ति अपने सारे रिश्ते-नाते भूल चुका है। और अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अक्षम महसूस कर रहा है, जिसके कारण उनके रिश्तों में कड़वाहट, झगड़े एवं तनाव उत्पन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में समकालीन कलाकार अपनी रचनाओं में आर्थिक पक्ष को मजबूत करते हुए समाज की विसंगतियों को उजागर करते हैं।

अत: स्पष्ट है कि समकालीन कथाकारों ने अपने साहित्य में पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक इत्यादि संवेदनाओं के मुद्दों को नई संवेदनाओं के साथ पाठकों के सम्मुख रखा हैं। सामाजिक व्यवस्था में पनप रही विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को कथाकार अपनी संवेदना के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से अपने पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयास करता है और भूमण्डलीकरण के समय में बाजार, संस्कृति की खरीद-फरोख्त के रूप में उत्पादक और उपभोक्ताओं की संवेनाओं को भी उजागर करता है। भौतिक सुख की लालसा में किस प्रकार से मध्यमवर्गीय समाज अपनी संवेदनाओं को खो देता है उसका यथार्थ चित्रांकन कथाकार उपन्यास में करता है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. प्रो.रंजन, पैसा चोर पूँजी, श्याम प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 30
2. गुप्ता, मंजूलता, हिन्दी उपन्यासः समाज और व्यक्ति का द्वंद्व, सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ.सं. 10
3. भूपेन्द्र भूप सिंह, 1987, मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, श्याम प्रकाशन, जयपुर
4. कुमार वचनदेव, 1973, लेखक और परिवेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. शर्मा वासुदेव, 1990, साठोत्तरी हिन्दी कहानी मूल्यों की तलाश, सहयोग प्रकाशन दिल्ली।

अभिराजराजेन्द्रविरचितम् वामनावतरणम् के आलोक में नारी-विमर्श

रोहणी तिवारी

अनुसंधानकर्त्री, संस्कृत, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद), उत्तर प्रदेश

डॉ० सुकेश शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद), उत्तर प्रदेश

सारांश:

अभिराज राजेन्द्र विरचित वामनावतरणम् में देवमाता अदिति के माध्यम से अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ संकल्पित नारी के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। वामनावतरणम् महाकाव्य में देवमाता अदिति के रूप में वर्णित नारी-चरित्र स्त्रियोचित भावुकता से मुक्ति एवं अंत:करण की शुद्धि के उपरान्त आध्यात्मिक उन्मुखीकरण द्वारा परमार्थ सत्य ज्ञाता के रूप में कांतियुक्त हो उठता है। निश्चित रूप से लेखक ने स्त्रियोचित भावुकता एवं सामान्य गुणों यथा हर्ष, विषादानुभूति एवं वात्सल्य आदि धारी सांसारिक नारी को दर्शाया है जो तप द्वारा आत्मिक शुद्धि के उपरान्त आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य देवमाता अदिति की चारित्रिक विशेषताओं को नारी विमर्श के वर्तमान परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करना है। उपर्युक्त उल्लेखित उद्देश्य की पूर्ति हेतु मूलत: द्वितीयक सूचना स्रोतों का प्रयोग किया गया तथा त्रिस्तरीय सूचना संग्रहण के अंतर्गत विषय विशेषज्ञ के अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार का भी प्रयोग किया गया। अध्ययनोपरान्त स्पष्ट होता है कि नारी के दृढ़ संकल्प एवं अभीष्ट लक्ष्य के प्रति समर्पित प्रयास के फलस्वरूप सामान्य नारी न सिर्फ लौकिक जगत के चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है अपितु अलौकिक जगत में भी परमार्थ सत्य ज्ञाता के रूप में आध्यात्मिक पराकाष्ठा को प्राप्त करती है।

उल्लेखनीय परिभाषिक शब्दावली: स्त्रियोचित भावुकता, आध्यात्मिक उन्मुखीकरण, परमार्थ सत्य।

1. **परिचय:** वामनावतरणम् के पंचम एवं षष्ठ सर्ग देवमाता अदिति के माध्यम से एक सामान्य नारी का वर्णन किया गया हैं जो स्त्रियोचित भावुकता के विविध गुणों को धारण करती है परन्तु यही सामान्य नारी जब अभीष्ट लक्ष्य के प्रति दृढ़ संकल्पित हो जाती है तो परमार्थ सत्य की प्राप्ति के दुष्कर लक्ष्य को सहज रूप से प्राप्त करती है। पंचम सर्ग का प्रारम्भ देवमाता अदिति के संतप्त से आरम्भ होता है जो कि अपने पुत्र इंद्र को विषादयुक्त तथा दैत्यराज बालि द्वारा अपहत ऐश्वर्य वाला देखकर विधाता अर्थात् भाग्य को बारम्बार कोसने लगती है। पुत्रमोह में देवमाता अदिति न सुखपूर्वक खा पाती थी, न ही पी पाती थी और न ही क्षण भर के लिए सो पाती थी। देवमाता अदिति की शोकाकुल अवस्था की अनुभूति कर स्वभार्या से महामहिम कश्यप ने पूछा कि "आज तुम्हारा मनोरम मुखमण्डल प्रभात कालीन कमल पुष्प की कांति को क्यों नहीं धारण कर रहा है? हे देवी! तुम्हारे नेत्र युगल पावस की वर्षा जैसी रहस्यमयी स्थित को क्यों ग्रस्त हो चुके हैं? हे मानिनी! इस समय तुम्हारे दुख एवं विपत्ति-चक्र का कारण क्या है? उसे मुझे बताओ तो? मैं तुम्हारा पति हूं, तुम्हारा सहचर हूं और तुम्हारी विपत्तियों के प्रशमन में समर्थ हूं (मिश्र, 1995, पृ. 72)।"

स्वामी की बातों को सुनकर अदिति ने पूज्यनीय पति को अपने पुत्राभ्युदय के संकटापन्न हो जाने से उत्पन्न, वात्सल्य की आंच में होने वाली व्यथा की अनुभूति को व्यक्त किया। करुणावरूणालय महर्षि कश्यप के लिए प्रभविष्णु अदिति का इस प्रकार सांसारिक नारी की भांति पुत्रमोह से व्यथित हो विषादग्रस्त हो जाना एक विचित्र बात थी परन्तु मनोकल्पित कामना को पूर्ण करने हेतु महर्षि ने केशवतोषण नामक पयो व्रत की रम्य विधि का उपदेश देकर, देवमाता अदिति का आध्यात्मिक उन्मुखीकरण किया। पुरुषोत्तम विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले इस पयोव्रत के फलस्वरुप, विपत्ति के निवारणार्थ, स्वयं विष्णु ने देवमाता अदिति का पुत्र बन समस्त शोको को दूर कर दिया। "परमपुरुष देवाधिदेव बालरूप धारी श्रीहरि को अपनी कोख में जन्मा देख देवमाता अदिति परम विस्मित होकर आमोद भार से भर उठीं तथा अपने मातृत्व सौभाग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया (मिश्र, 1995, पृ. 81)।" विषादग्रस्त अदिति पुत्र की बाल क्रीड़ा से रस विभोर होकर अतिशय सुखी हुई। निश्चित ही बाल रूप के भगवान विष्णु को पाकर वह परमाश्चर्य को प्राप्त हो उठी। जिसके विराट अस्तित्व में संसार का विस्तार समाहित है, समुद्र जिसके लिए गाय के खुर की भांति है, वह लीला पुरुष वामन रूप में, कभी हिरण को पकड़ पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा है, तो कभी बुभुक्षावश गला फाड़कर ऊंचे स्वर में रोने लगता है। इस प्रकार की भांति भांति बाल क्रीड़ाओं को देखकर देवमाता अदिति कहती कि "परमार्थ सत्य को जान लेने के बाद अब मैं भ्रांति में नहीं पडूंगी। हे जगदीश्वर! आप जी भरकर अपनी लीला का स्फुट प्रदर्शन करें, भले ही मैंने आप को जन्म दिया है फिर भी हे प्रभो! मैं निरन्तर आपके चरण कमलों में अर्पित एक भक्त हूं (मिश्र, 1995, पृ. 94)।"

2. **शोध के उद्देश्य:** प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य देवमाता अदिति की चारित्रिक विशेषताओं यथा स्त्रियोचित भावुकता, ममत्व से परिपूर्णता, कुशल गृहणी, विषादयुक्तता, पुत्रमोहग्रस्तता, अहिंसक भावना तथा परिपूत मनोवृत्ति धारिणी, तपस्विनी, देदीप्यमान मनोहर कांति से युक्तता, वत्सल भक्तिरस विभोरता, परमार्थ सत्य ज्ञाता के अंतर्गत नारी विमर्श प्रस्तुत करना है।

3. **पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन:** प्रस्तुत शोध पत्र हेतु तीन स्तर पर पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन किया गया। प्रथम स्तर पर मूलभूत महाकाव्य मिश्र, अभिराज राजेंद्र1 (1995) द्वारा विरचित "वामनावतरणम्" का अध्ययन किया गया। द्वितीय स्तर पर सम्बन्धित प्रकाशित शोध पत्र के अंतर्गत मालव, राजमल2 (2014) द्वारा रचित "आधुनिक संस्कृत साहित्य में वामनावतरणम् महाकाव्य का महत्व" नामक शोध पत्र के अंतर्गत प्रमुख नायक एवं प्रतिनायक पात्रों के चरित्र चित्रण के साथ-साथ प्रकृति के उद्दीपनपूर्ण वर्णन एवं काव्यशास्त्रीय विशेषताओं यथा भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार पर भी व्यापक रूप से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ततपश्चात तृतीय स्तर पर प्रकाशित शोध के अंतर्गत शर्मा, गोपीचंद3 (2006) द्वारा "अभिराज राजेंद्र मिश्र विरचित वामनावतरणम् महाकाव्य: एक अध्ययन" तथा शर्मा, प्रियंका4 (2011) द्वारा "अभिराज राजेंद्र मिश्र प्रणीत वामनावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन" विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

4. **शोध प्रविधि:** प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं के संग्रहण पर आधारित है। द्वितीयक सूचनाओं के संग्रहण हेतु त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रयोग किया गया जिसके प्रथम स्तर पर प्रकाशित मूल स्रोत वामनावतरणम् को सम्मिलित किया गया। द्वितीय स्तर पर गौण सूचना स्रोतों के अंतर्गत प्रकाशित शोध पत्र तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्ध को सम्मिलित किया गया तथा तृतीय स्तर के अन्तर्गत विषय विशेषज्ञों के अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार को सम्मिलित किया गया। अंत में तीनों स्तरों पर प्राप्त सूचनाओं का संश्लेषण कर सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

5. **विवेचना:** देवमाता अदिति की चारित्रिक विशेषताओं के माध्यम से नारी विमर्ष: वामनावतरणम् महाकाव्य में नारी अन्त:करण के रूपान्तरण एवं आध्यात्मिक उन्मुखीकरण द्वारा अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करने हेतु दृढ-संकल्पित हैं। देवमाता अदिति पुत्र मोह में विषादग्रस्त हैं परन्तु वे कुशल गृहणी हैं तथा अहिंसक और परिपूत मनोवृत्ति को धारण करने वाली वह तपस्विनी हैं जो परमार्थ सत्य को प्राप्त कर देदीप्यमान मनोहर कान्ति से युक्त हो जाती हैं और जगतपालक के वात्सल्य रुपी भक्ति रस में डूब जाती है। वामनावतरणम् महाकाव्य के आधार पर देवमाता अदिति के रूप में नारी की अधोलिखित चारित्रिक विशेषताएं सुस्पष्ट होती हैं:-

5.1 **स्त्रियोचित भावुकता:** भावुकता स्त्री का नैसर्गिक गुण है। पुत्र पर विपत्ति एवं संकट काल में यह भावुकता चरमोत्कर्ष पर होती है, ऐसी संतप्त नारी विधाता को भी कोसने लगती है। अपने पुत्र इंद्र को विषाद युक्त तथा दैत्यराज बाली द्वारा अपहृत ऐश्वर्या वाला देखकर देवमाता अदिति भी इसी प्रकार सन्तप्त होकर विधाता या भाग्य को बारम्बार कोसने लगती हैं।

अवलोक्य सुतं त्रिदशाधिपतिं
बलिना हृतवैभवमार्तियुतम्
अदितिर्जननी परितापचयं
समवाप शशाप च भूरि विधिम्5।।5/1।।

5.2 **ममत्व से परिपूर्णता:** मां सदैव पुत्र की कुशलता से आह्लादित एवं पुत्र की अकुशलता से विषादग्रस्त होती है। ममत्व से परिपूर्ण आदर्श मां के रूप में देवमाता अदिति अपने पुत्र की विपत्ति को हृदय में धारण करते हुए न तो सुखपूर्वक खा पाती थी, न ही पी पाती थी, न ही क्षण भर के लिए सो पाती थी अश्रूभार से प्रसन्नता से हंस भी नहीं पाती थी अर्थात् ममता के कारण मृत्यु की सी गति वाली हो उठी।

तनयाऽभ्युदयामृतवारिनिधि-
प्रविहाररता सुखिनी शफरी।
च्युतनीरसुखा मरणैकगतिं
र्गतिमाप ममत्वभरैर्ग्लपिता।।5/2।।
न बुभोज सुखं निपपौ न सुखं
क्षणमात्रमपि स्वपिति स्म न वा।
न जहास मुदा हृदि सन्दधती
ह्ययदितिविंपदं नयनाश्रुरता6।।5/3।।

नैसर्गिक ममत्व के कारण ही देवमाता अदिति पुत्राभ्युदय के संकटापन्न हो जाने पर वात्सल्य की आंच में व्यथा या ताप का अनुभव कर रही है।

5.3 **कुशल गृहणी-धर्मपरायणता:** देवमाता ममत्व एवं भावुकता धारण करने के साथ-साथ एक कुशल गृहणी के रूप में आश्रम की अतिथियों की याचकों की हविष्यात्रों की संतृप्ति हेतु निरन्तर संलग्न है इसीलिए महामहिम कश्यप देवमाता अदिति को गृहमेधिनी के साथ-साथ गृहकार्य में लीन मनोवृत्तिवाली कहकर सम्बोधित करते हैं।

गृहकार्यनिलीनमना भवती
प्रघुणं न गृहागतमाद्रियत ?
अथवा हविषा न मखज्वलनं
हुतवत्यपि देवि! यथावसरम्7 ?? 5/8।।

5.4 **विषादयुक्तता:** देवमाता अदिति, बालीराज रूपी बैरी के अभ्युदय से उत्पन्न पीड़ा के सम्मुख पुत्र एवं पति के वैभव से उत्पन्न संपूर्ण सुख को छोटा समझ कर विषाद ग्रस्त हैं तथा स्वमनोरथ सिद्ध हेतु महामहिम कश्यप मुनि के चरण युगल में समर्पित हो विनतीरत है कि "मुझ पर दया करिए तथा मुझे उबार लीजिए"। प्रिया के वचनों को सुनकर करुणालय महर्षि कश्यप ने इस तरल विषाद को त्यागने का अनुरोध किया।

अमितं भवतात्सुखमत्र विभो!
सुदृशां सुतकान्तविभूतिकृतम्।
अतियाति तथापि सपत्नधृताऽ
भ्युदयस्सकलं तदमोघसुखम्।।5/14।।
दनुजा अपि नाथ! तवैव सुता-
स्तदवैमि तथापि सुताश्रयिणी।
विपदां शमनाय तवाङ्घ्रियुगं

स्वमनोरथसिद्धिदमद्य भजे8।।5/15।।

तनया मम यान्तु पुनर्विभवं

विजयं सुयशश्च यथा प्रसभम।

विधिमद्य विधेहि निधेहि दयां

दयमान विभो! ननु धारय माम्।5/17।।

वनितावचनानि निपीय ततः

करूणावरूणालयककश्यपकः ।

अदितिं निजगाद लसद्धृदयां

त्यज देवि! विषादमिमं तरलम्9।।5/18।।

5.5 **पुत्रमोह ग्रस्तता:** भावुकता, ममता, विषाद आदि का मूल कारण सांसारिक पुत्र मोहमात्र है इसीलिए करुणावरूणालय महर्षि कश्यप अपनी प्रिया अदिति से कहते हैं कि हे मानिनि! तुम प्रभविष्णु हो, वेद के रहस्यों में पारंगत हो, परमार्थिक गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ हो, तथापि संततियों के प्रति उत्पन्न प्रेम के कारण व्यथित हो रही हो जो मोह मात्र हैं। अरे यह तो विचित्र बात है, कहां तो आत्मा (चौतन्य) से पृथक, नाशवान यह पंचभौतिक शरीर और कहां प्रकृति से भी परे चिन्मय, निर्बम्ध तथा आत्मसंज्ञक सुकीर्ति का भाजनभूत। भला इस पृथ्वी पर स्थिर रूप से कौन किसकी जननी है, कौन किसका जनक है और कौन किसका पुत्र है? हे देवी! फिर भी यदि तुम व्यथित हो रही हो तो इसका मूल कारण तुम्हारा सांसारिक मोह मात्र है।

प्रभविष्णुरसि श्रुतितत्वगता

परमार्थरहस्यविकाशवती।

सुतवत्सलतानिहतासि तथाऽ

प्यथि मानिनि! हन्त विचित्रमिदम्।5/19।।

क्व नु भौतिकतत्वशरीरमिद

पृथगात्म विनाशि परः प्रकृतेः।

क्व च चिन्मय आत्मसुकीर्तिधरी

ननु बन्धनमुक्त इह प्रथितः।।5/20।।

ज्ननी खलु का जनकोऽपि च क-

स्मनुजो भुवि कस्य च को नियतः?

अयि देवि! तथापि यदि व्यथसे

ननु कारणमत्र विमोहकृतम्10।।5/21।।

5.6 **अहिंसक भावना तथा परिपूत मनोवृत्ति:** देवी या नारी ने यत्नपूर्वक असत्प्रवृत्तियों को तिलांजलि देकर तथा ऊंचे नीचे भोगों ऐश्वर्यो तथा लोगों को त्याग कर सकने में सक्षम हो पाती हैं अगर उसकी मनोवृत्ति अहिंसक और परिपूत हो। देवमाता अदिति इसी अहिंसक भावना और परिपूत मनोवृत्ति वाली नारी हैं, इसी कारण उन्होंने प्रयत्नपूर्वक असत्प्रवृत्तियों को तिलांजलि देने में सफलता पाई है।

उच्चावचन् भोगविभोगलोभान्

असत्प्रवत्तिञ्च विधूय यत्नैः।

अहिंस्रभावा परिपूतचिता

रराध सा तं शिपिविष्टविष्णुम्11 ।।5/39।।

5.7 **तपस्विनी:** विष्णु आराधना में लीन, देवमाता अदिति ने अपने अंत:करण को इतना शुद्ध निर्मल, संयमित और अनुशासित कर लिया कि समस्त दीन-हीन याचकों तथा अन्धजनों के भोजन कर लेने के पश्चात ही व्रतनिष्ठा अदिति रात्रिबेला में, सिर्फ प्राण रक्षा मात्र के लिए भुक्तावशेष के पयस को नैवैद्य के रूप में ग्रहण करती थी। विष्णु चरणों में लीन अदिति भी समस्त सांसारिक भावों को उपेक्षित कर विष्णुमय हृदय वाली, विष्णुमय बुद्धि वाली, विष्णुमय क्रियाओं वाली, एकदम विष्णुमय हो उठी।

तथाऽदिति: सर्वमुपेक्ष्य भावं

सांसारिकं विष्णुपदावसक्ता।

विष्णवन्तरा विष्णुमतिर्बभूव

विष्णुक्रिया विष्णुमयी निकामम्12।।5/43।।

5.8 **देदीप्यमान मनोहर कांतियुक्तता:** विष्णु आराधना एवं तपस्या से उत्पन्न तेज से अदिति शमी की भांति देदीप्यमान मनोहर कांति से युक्त हो गयी और कश्यप द्वारा अधिष्ठित जगत पालक महाविष्णु सरीखे दिव्य गर्भ को प्रभूत सौभाग्य के साथ सुखपूर्वक धारण किया।

अथामर्त्यमाता शमीवाग्निगर्भा

सुखं कश्यपाधिष्ठितं दिव्यगर्भम्

दधार प्रभाभासिताङ्गी मनोज्ञ।

महाविष्णुकल्पं लसद्भूरिभाग्यम्13।।6/6।।

*5.9 **वत्सल भक्तिरस विभोरता:** महामाया मोहग्रस्त स्वभाव वाली अदिति तपस्या द्वारा अंत: करण को रूपांतरित कर जगत पालक की मां के रूप में पुत्र की बाल क्रीड़ा से रस विभोर होकर अतिशय सुखी हुई। विष्णु चरणों की तपस्या में लीन होकर ज्ञात उत्कृष्ट रहस्य की स्मृति आते ही पुत्र रूप में भगवान विष्णु की बाल लीला को देखकर वह परमाश्चर्य को प्राप्त हो उठी।*

शिशुक्रीडयाऽऽह्लादिता सा निकामं

सुखं प्राप मायावसक्तप्रवृत्ति:।

स्मृते सद्रहस्ये परं विस्मय सा

दधे पुत्ररूपं हरिञ्चावलोक्य14।। 6/22।।

5.10 **परमार्थ सत्य ज्ञाता:** जिस परम सत्य की ओर महामहिम कश्यप ने देवमाता अदिति को उन्मुख किया था उसी परम सत्य का साक्षात्कार जब देवमाता अदिति ने किया तब वह बरबस बोल उठी कि परमार्थ सत्य को जान लेने के बाद अब मैं भ्रान्ति में नहीं पडूंगी। हे जगदीश्वर! आप जी भर कर अपने लीला का स्फुट प्रदर्शन करें। भले ही मैंने आपको जन्म दिया है फिर भी हे प्रभु! मैं निरन्तर आपके चरण कमलों में अर्पित भक्त हूं।

न विभ्रान्तिष्यामि विज्ञाततत्वा

स्फुटं लीलय त्वं निकामं परेश!

प्रसूताऽस्म्यहं कामदेवं तथापि

प्रभो! पादपद्मावसक्तास्मि नित्यम्15।।6/28।।

6. **उपसंहार:** स्त्रियोचित भावुकता एवं सांसारिक पुत्रमोह को धारण करने वाली देवमाता अदिति के आलम्बन से लेखक विषादयुक्त, मोहग्रस्त एवं भावुकता धारण करने वाली वर्तमान समय की सामान्य सांसारिक एवं लौकिक नारी को प्रस्तुत करते हैं जो पयोव्रत के नियम, संयम एवं तप मार्ग का अनुसरण कर आध्यात्मिक उन्मुखीकरण द्वारा परमार्थ सत्य का प्रत्यक्षीकरण कर अपने विषाद से मुक्ति पाकर आध्यात्मिक पराकाष्ठा को प्राप्त करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. मिश्र, अभिराजराजेन्द्र (1995). वामनावतरणम्, अक्षयवट प्रकाशन, 26 बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद।
2. मालव, राजमल (2014). आधुनिक संस्कृत साहित्य में वामनावतरणम् महाकाव्य का महत्व, शोध श्री, वर्ष 4, संस्करण 2, पृ. 1-9।
3. शर्मा, गोपीचंद (2006). अभिराज राजेंद्र मिश्र विरचित वामनावतरणम् महाकाव्य: एक अध्ययन, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश।
4. शर्मा, प्रियंका (2011). अभिराज राजेंद्र मिश्र प्रणीत वामनावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।
5. वामनावतरणम्, पृ. 70, पंचम सर्ग, श्लोक 1
6. वामनावतरणम्, पृ. 70, पंचम सर्ग, श्लोक 2 से 3
7. वामनावतरणम्, पृ. 70, पंचम सर्ग, श्लोक 8
8. वामनावतरणम्, पृ. 74, पंचम सर्ग, श्लोक 14 से 15
9. वामनावतरणम्, पृ. 74 एवं 75, पंचम सर्ग, श्लोक 17 से 18
10. वामनावतरणम्, पृ. 75 एवं 76, पंचम सर्ग, श्लोक 19 से 21
11. वामनावतरणम्, पृ. 81, पंचम सर्ग, श्लोक 39
12. वामनावतरणम्, पृ. 82, पंचम सर्ग, श्लोक 43
13. वामनावतरणम्, पृ. 87, षष्ठ सर्ग, श्लोक 6
14. वामनावतरणम्, पृ. 92, षष्ठ सर्ग, श्लोक 22
15. वामनावतरणम्, पृ. 94, षष्ठ सर्ग, श्लोक 28

राजपूतों का उद्भव एवं विकास

पंकज कुमार गुप्ता

प्रवक्ता (इतिहास), पी.पी.एन. इन्टर कॉलेज कानपुर

राजपूतों के उदभव के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किये है जिनमें तीन मत प्रमुख हैं। प्रथम मतानुसार राजपूत विदेशी है। दूसरा मत उन्हें देशी मानता है, जबकि तीसरा मत राजपूतों को देशी-विदेशी मिश्रित उत्पत्ति की मान्यता रखता है। 7वीं से 12वीं शताब्दी के उत्तर भारत के इतिहास को "राजपूत काल" के नाम से जाना जाता है। कुछ इतिहासकारों ने प्राचीन काल एवं मध्यकाल के मध्य के इस काल को सन्धि काल भी कहा है। इस काल के महत्वपूर्ण राजपूत वंशजों में गुर्जर प्रतिहार पाल, चन्देल, चाहमान, गढ़वाल, चालुक्य और परमार आदि आते हैं। राजपूत शब्द संस्कृत के राजपुत्र का ही अपभ्रंश है। सम्भवत: प्राचीन काल में इस शब्द का प्रयोग किसी जाति के रूप में न करके राज परिवार के सदस्यों के लिए किया जाता था पर हर्ष के मृत्यु के बाद राजपूत या राजपूत शब्द का प्रयोग जाति के रूप में होने लगा। जबकि एक अन्य मान्यता के अनुसार राजपूत शब्द राजस्थान के कुछ भागों में किसी क्षत्रिय सरदार या जागीरदार के पुत्र को कहा जाता है, जिसका अर्थ है "राजसी रक्त का वंशज श्री जयनारायण आसोपा का मानना है कि वैदिक कालीन 'राजपुत्र राजन्य' या 'क्षत्रिय वर्ग की कालान्तर में राजपूत जाति में परिणित हो गये। ऋग्वेद में "कश्य द्यत धवस्ता भवय: कस्य बानरा, राजपुत्रेव सवनाय गच्छत" यजुर्वेद में "पशवीराजपुत्रो गोपायति राजन्यो वे प्रजानामधिपति रायुघुवं आयुरेव गोपायत्पथों क्षेत्रमेव गोपयते तथा ऋग्वेद में ही ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्वाहूराजन्य कृत: के रेखांकित शब्द यह स्पष्ट करते है कि राजपुत्र तथा राजन्य समनार्थक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। राजन्य क्षत्रिय अर्थात् योद्धाओं के लिए प्रयुक्त होता था जो राज्य के अधिपति थे। मनुस्मृति में भी क्षत्रिय का अर्थ योद्धा बताया गया है। कौटिल्य ने राजा के पुत्रों के लिए, कालिदास एवं अश्वघोष ने सामन्त पुत्रों के लिए कल्हण ने (राजतरंगिणी) भूस्वामियों के लिए 'राजपूत' शब्दों का प्रयोग किया है। महाभारत काल के बाद राजपूत एक शासक वर्ग तथा क्षत्रिय एक जाति के रूप में माने गये।

राजपूतों का उदभव एवं विकास राजपूतों की उत्पत्ति एवं विकास प्रक्रिया को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के मतों को निम्न वर्ग में विभक्त किया जा सकता है- (i) अग्निवंशीय मत (ii) सूर्य एवं चन्द्रवंशीय मत (iii) विदेशी वंशज का मत (iv) गुर्जर वंश का मत (v) ब्राह्मण वंशीय मत (vi) वैदिक आर्य मत गुर्जर प्रतिहार राजवंश का उदभव गुर्जर-प्रतिहार वंश की उत्पत्ति भी विवादग्रस्त है। विदेशी मत के समर्थक विद्वानों ने इस वंश को खजर नामक जाति की संतान माना है जो हूणों के साथ भारत आयी थी। कॅम्पबेल तथा जैक्सन ने सर्वप्रथम इस मत का समर्थन किया बाद में डॉ. भण्डारकर तथा त्रिपाठी आदि विद्वानों ने इसे पुष्ट कर दिया परन्तु यह मात्र कल्पना पर आधारित है क्योंकि विदेशी आक्रमणकारियों में खजर नामक किसी भी जाति के विषय में हमें भारतीय अथवा विदेशी साक्ष्य से कोई भी सूचना नहीं मिलती। खजर तथा गुजर में शब्दों के अतिरिक्त कोई साम्य नहीं लगता। सी. वी. वैद्य, जी.एस. ओझा, दशरथ शर्मा जैसे विद्वान गुर्जर प्रतिहारों को भारतीय माना है। वे इस शब्द का अर्थ गुर्जर देश का प्रतिहार अर्थात् शासक लगाते हैं। गुर्जर शब्द स्थानवाचक है, जातिवाचक नही (के.एम. मुन्शी)। गुर्जर शब्द का उल्लेख पाँचवी छठवीं शताब्दी से मिलने लगता है। भारत के शास्त्रकारी ने गुर्जरो को सर्वत्र ब्राह्मण कहा है, ह्वेनसांग गुर्जर नरेश को क्षत्रिय बताता है। पृथ्वीराजरासो में अग्नि कुल के सिद्धान्त द्वारा खजर नामक जाति से गुर्जरों की उत्पत्ति सिद्ध नही होती है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रतिहारी नामक याजको का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में अपने कर्मों को छोड़कर ये क्षत्रियों की वृत्ति अपना ली तथा अपने को राम के भाई लक्ष्मण से सम्बद्ध कर लिया (बी.एन. पाठक)। मिहिर भोज भी ग्वालियर प्रशस्ति लेख में भी राम के छोटे भाई लक्ष्मण से जोड़ा गया। है जो मेघनाथ के विरुद्ध युद्ध कर शत्रुओं को रोकने में प्रतिहार अर्थात् गढ़ के द्वारपाल का काम किया था। चन्देल राजपूत वंश का उदभव: चन्देल राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी प्रथम वर्णन धंग के

खजुराहो स्थित लक्ष्मण जी (चतुर्भुज) मन्दिर से प्राप्त होने वाले विक्रम स. 1011 के एक शिलालेख में मिलता है। विश्व की उत्पत्ति करने वाले पुरुष पुराण से मरीचि और अत्रि ऋषियों की उत्पत्ति हुई। अत्रि के पुत्र चन्द्रात्रेय तपस्या द्वारा अपरमित शक्ति प्राप्त कर ऐसे राजाओं (भुजुजाम) को जन्म दिया जिसके पास पृथ्वी के संहार और रक्षण की शक्ति थी। उन्हीं के वंश में नन्नुक नृप की उत्पत्ति हुई जो चन्देल राजपूत वंश का पहला राजा था। खजुराहों के धंग के दूसरे लेख वि.स. 1056) में अत्रि के नेत्रकाल से चन्द्रमा और चन्द्रात्रेय से चन्देलों की उत्पत्ति हुई। परमर्दिदेव के वि.स. 1252 का बाघारि अथवा बाटेश्वर शिला लेख भी उनकी उत्पत्ति अत्रि चन्द्रमा और चन्द्रात्रेय से बताता है। चन्देल राजपूतों का इतिहास प्रकट करने वाले अधिकांश अभिलेखों में इस राजवंश को चन्द्र और उसके पुत्र चन्दात्रेय का ही वंशज (चन्द्रात्रेय मुनेर्महीयसीकुले अथवा चन्द्रात्रेय नरेन्द्राणां वंश) माना गया है।

दुधई शिलालेख (देवलब्धि) में चन्द्रेल्ल शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ. कीलहार्न ने इसे चन्द्र और इल्ला (इला) से मानते हुए चन्देलों का मूल प्राकृत नाम यह माना है कि चन्द्र और अत्रि से जोड़ने वाला संस्कृत नाम चन्दात्रेय कदाचित बाद में अपना लिया गया होगा। मूल चन्द्रेल्ल शब्द अपने संक्षिप्त रूप चन्द्रतल. चन्देल्ल अथवा चन्देल साहित्य और अभिलेखों में प्रयुक्त होने लगा। इन साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि चन्देल राजा अपने को चन्द्रवंशी राजपूत मानते थे और उनका मूल पुरूष चन्द्रात्रेय था।

पृथ्वीराजरासो के महोबा खण्ड अथवा परमालरासो में एक अंश "चन्द्र-ब्रह्म उत्पत्ति खण्ड" लिखा है। इसमें एक कथन है कि "चन्द्र ने कहा कि बनारस के गढ़वाल राजा के पुरोहित इन्द्रजीत की पुत्री हेमवती से चन्देलों का जन्म हुआ।" विसेन्ट स्मिथ ने यह माना है कि "चन्देल स्थानीय जनजातियों- गौड़, भील, भाट, कोल, चमार आदि से उत्पन्न हुए।" चाहमान राजपूत वंश की उत्पत्ति चाहमान राजपूतों के उत्पत्ति के बारे में बहुत अधिक मतभेद है। चाहमान राजपूतों के उत्पत्ति सम्बन्धी इतिहासकारों ने विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है जो निम्न है। सूर्यवंशीमत: पृथ्वीराजविजय (जयानक) एवं हम्मीर महाकाव्य के अनुसार ष्जब ब्रह्मा ने सूर्यमण्डल की सहस्त्र किरणों पर ध्यान केन्द्रित किया तो सूर्यमण्डल से चाहमानों की उत्पत्ति हुई।" सुर्जन चरित (कवि चन्द्रशेखर) में कहा गया है कि "जब ब्रह्म पुष्कर में यज्ञ कर रहे थे तो सूर्य मण्डल से चाहमानों की उत्पत्ति हुई।" विग्रहराज विसलदेव का सरस्वती मन्दिर (अढ़ाई दिन का झोपड़ा नामक मस्जिद) में लिखित एक खण्डित अभिलेख में उत्कीर्ण है कि अजमेर के चाहमान वंश का संस्थापक इच्छवाकु और राम के कुल (रघुवंश) में उत्पन्न हुआ था। वेदला प्रशस्ति (पृथ्वीराज तृतीय) में भी चाहमानों को सूर्यवंशी माना गया है। श्री आर.बी. चौहान का मत है कि चौहानों की उत्पत्ति कलियुग में हुई जब बुद्ध को अवतार मान लिया गया तथा मलेच्छो ने भारत पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये बाद के शिलालेखों में चौहानों को क्षत्रिय कहा गया है। चन्द्रवंशी मत: आबू शिलालेख (लुंगतिदेव, 1320 ई.) में कहा गया है कि 'श्वत्स' ने चन्द्रमा की सहायता से चौहानों की उत्पत्ति की। हाँसी शिलालेख (पृथ्वीराज द्वितीय) में चौहानों का चन्द्रवंशी होना उत्कीर्ण है।" पृथ्वीराजरासो का अग्निवंश मत इसका खण्डन करता है। इन्द्रवंशी मत: मेवाड़ी ताम्रपत्र (1119 ई.) पर उत्कीर्ण लेख में चौहानों की उत्पत्ति इन्द्र से मानी गयी है।

इस लेख में प्राचीधिका पति शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ सूर्य माना जाता है अधिकांश इतिहासकार, इसका अर्थ इन्द्र मानते हैं। श्री आर.बी. सिंह ने इस लेख के आधार पर चौहानों को सूर्यवंशी माना है क्योंकि इन्द्र की बारह आदित्यों (सूर्यो) की गणना की जाती है। अग्निवंशी मत पृथ्वीराजरासो (चन्दबरदाई द्वारा लिखित) में प्रतिहार चालुक्य, परमार तथा चौहानों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानी गयी है परन्तु यह भाटों की कपोल कल्पना मात्र है।

विदेशी उत्पत्ति का मत टॉड का मत है कि "चौहान विदेशी तक्षक जाति के वशंज है जिसकी एक शाखा ने भारत पर आक्रमण किया था।" श्री जैक्सन के मतानुसार "सभी अग्निवंशी राजपूत गुर्जर विदेशी जाति के थे।" अरब लेखकों के आधार पर कैम्पबेल तथा भण्डारकर ने चौहानों की उत्पत्ति खजर (जोर्जियन) जाति से मानते हैं बेडेन पावेल का मानना है कि "सभी राजपूत तथा जाट पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में आकर बसने वाली विदेशी जातियाँ इण्डों सिथियन, गुर्जर, हूण आदि थे जो कालान्तर में राजपूत बन गये। श्री विलियम क्रूक तथा स्मिथ का मत है कि "सभी राजपूत उन विदेशी जातियों से उत्पन्न हैं जिन्हें अग्निकुण्ड से पवित्र कर भारतीय बनाया गया।" ब्राह्मणवंशी मत: बिजौलिया लेख (1170 ई.) में प्रारम्भिक चौहान राजा सामन्त को वत्स गोत्र का ब्राह्मण कहा गया है। सूंडा पहाड़ी के शिलालेख में चाहमान वीर के नेत्रों में वत्स का प्रकाश बतलाया गया है। आबू पर्वत लूगतिदेव के लेख (1320 ई.) में भी चन्द्रमा की सहायता से वत्स द्वारा चौहानों की उत्पत्ति बतलायी गयी है।

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने चौहानों की उत्पत्ति के बारे में बताया है कि "क्षत्रिय अपने पुरोहितों का गोत्र धारण कर लेते थे और अन्य क्षत्रिय वंशों की तरह प्रारम्भ में वे भी ब्राह्मण रहे हो तथा किसी परिस्थितिवश अथवा स्वेच्छा से क्षत्रिय वर्ण स्वीकार कर लिया हो।" ब्रह्मा के चुलुक से उत्पत्ति बडनगर प्रशस्ति में उल्लेख है कि "राक्षसों के उत्पाद मचाने पर देवताओं ने ब्रह्मा से रक्षा करने

की प्रार्थना की, ब्रह्मा ने गंगा के पानी अपने चुलुक में लेकर एक वीर पुरुष की उत्पत्ति की तथा उसका नाम चौलुक्य रखा। यहाँ चुलुका का अर्थ हथेली से है। विल्हण के ग्रन्थ विक्रमांक देव चरित के अनुसार चालुक्य वंश में हरित तथा मानव्य हुए जिन्होंने पहले अयोध्या में राज्य किया फिर दक्षिण की ओर चले गये। कलचुरी शिलालेख में अंकित है कि "महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर द्रोण भारद्वाज ने अपने चुलुक में जल लेकर चालुक्य की उत्पत्ति की।" गुजरात के चालुक्यों के लेखों में भी चुलुक उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार इस मत के अनुसार चालुक्य मूलतः ब्राह्मण वर्ण मानते हैं। सूर्यवंशी मत : चालुक्य अरिकेसरी (राष्ट्रकूटों का सामन्त) के एक ताम्रपत्र में जो उत्तरी अर्काट के मेलवादी स्थान से प्राप्त हुआ है। यह उल्लेख है कि ष्चालुक्य की उत्पत्ति सूर्य से हुई है।"

श्री सी.वी. वैद्य के अनुसार ष्चालुक्यों का मानव्य गोत्र उन्हें सूर्यवंशी सिद्ध करता है।" क्षत्रिय वशीमत : चीनी यात्री ह्वेनसांग ने चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय को जन्म से क्षत्रिय कहा है। एपिग्राफिया इण्डिका के आधार पर सरकार का मानना है कि बादामी के चालुक्यों को विश्वास है कि वे हरित पुत्र है और मानव्य गोत्र के है। उनका पालन-पोषण मानव मात्र की सात माताओं द्वारा हुआ। उन्होंने कार्तिकेय देवता की कृपा से विष्णु द्वारा अपना राज्यचिन्ह प्राप्त किया जिससे वे निरन्तर विजय प्राप्त करते रहे। बादामी के चालुक्य मूलतः कन्नड़ थे जो स्वयं को क्षत्रिय कहते थे।

विदेशी उत्पत्ति का मत : श्री जैक्सन तथा श्री डी.आर. भण्डारकर चालुक्यों को विदेशी जाति गुर्जरों के वंश मानते हैं। इनके अनुसार अग्निकुल की चार शाखायें जो गुर्जरों के नेतृत्व में भारत आयी। उन्हें आबू के अग्निकुण्ड द्वारा पवित्र किया गया ताकि वे ब्राह्मणों की रक्षा बौद्धों तथा उनके विदेशी मित्रों से कर सके। जेम्स कैम्पबेल ने माना है कि "कदम्बो की भाँति चालुक्य भी मानव्य गोत्र के हरित पुत्र थे जिससे प्रतीत होता है कि वे विदेशी जाति के ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग के थे।" कैम्पबेल का मत है कि गुर्जरों का एक दल भारत में दक्षिण की ओर मद्रास तक चला गया और चालुक्य कहलाया तथा दूसरा दल कन्नौज से गुजरात तक पहुँच पाया। श्री आसोपा का मत है कि चालुक्य गुर्जर नहीं थे तथा गुर्जर विदेशी न होकर भारतीय थे। निम्नवर्गीय मत श्री एम. लैकोट का मानना है कि चालुक्य निम्न वर्ग के चुल्लु क्षुद्र से सम्बन्धित है। 'चुलिका' शब्द पाली भाषा का 'चुल्लु' है जिसकी व्युत्पत्ति क्षुद्र से हुई है। चालुक्य जैसे प्रतापी शासकों को निम्न वर्ग से सम्बन्धित मानना निराधार है।

अग्निवंशीय मत टॉड ने आबू पर्वत के अग्निकुण्ड से चालुक्य, प्रतिहार तथा चाहमानों की उत्पत्ति मानी है। इसके अनुसार अग्निद्वारा विदेशी जातियों को पवित्र कर क्षत्रिय बनाया गया है। श्री बी.एन. रेक के अनुसार "जिन क्षत्रियों के पूर्वज बौद्ध बन गये थे, उन्हें ब्राह्मणों ने अग्निद्वारा पवित्र किया" श्री आसोपा का मत है कि प्राचीन काल में सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय तो थे किन्तु अग्निवंशीय क्षत्रिय का परिचायक आरम्भिक साहित्या में अग्नेय अग्निजया, अग्निवेश्य तथा अग्निस्तम्भ के रूप में सर्वप्रथम मिलता है।

परमार राजपूतों का उद्‌भव गुर्जर प्रतिहारों चाहमानों और चालुक्यों की अग्निकुण्ड से उत्पत्ति परमारों के सम्बन्ध में भी लागू होते हैं। परन्तु गुर्जर प्रतिहार, चालुक्य, चाहमान के अभिलेख और समकालीन ग्रन्थ परमार राजपूतो को कही भी अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुआ नहीं बताते। परमारयुगीन साहित्य और अभिलेख स्पष्टतः इस अनुश्रुति का उल्लेख करते हैं। श्री डी.सी. गांगुली का मत है कि "परमार राष्ट्रकूटवंशी थे।" अग्निवंशीय मतः नवसाहसांकचरित्र (पद्मगुप्त) नामक महाकाव्य में परमारों की उत्पत्ति अर्बुदाचल से जोड़ी गयी है। परमारो के उदयपुर प्रशस्ति (1072 ई.) शिलालेख में उत्कीर्ण है कि इच्छवाकुकुल के पुरोहित वशिष्ठ की कामधेनू विश्वामित्र ने चुरा लिया था। दुखी अरुन्धती की आँसुओं ने वशिष्ठ ऋषि की क्रोधाग्नि प्रज्वलित कर दी। उनकी यज्ञाग्नि में फेकी हुई आहुति से हाथ में तीर धनुष लिये हुए स्वर्णकवची एक ऐसा वीर उत्पन्न हुआ जिसने कामधेनू बलपूर्वक विश्वामित्र से छिनकर वशिष्ठ के हवाले कर दी। वशिष्ठ ने प्रसन्न होकर इस वीर का नाम परमार अर्थात शत्रुसंहारक रखा। इसी वीर के वंशज परमार राजपूत कहलाये।" इस तथ्य की पुष्टि नागपुर शिलालेख, बसन्तगढ़ शिलालेख तथा आबू पर्वत शिलालेख (1230 ई.) से भी होती है।

धनपाल के तिलकमंजरी में भी परमारों की इस उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है 'आइन-ए-अकबरी' ग्रन्थ में भी परमारों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बताई गयी है। आबू शिलालेख में परमार धूम अथवा धुँआ के आधार पर पदमगुप्त ने उसे अग्निवंशी मान लिया था। टॉड, कुक तथा स्मिथ का मत है कि "विदेशी जातियों को अग्निद्वारा पवित्र कर उन्हें राजपूत बनाया गया। जबकि श्री बी.एन. राऊ के अनुसार इस क्षत्रिय वंशों के पूर्वजों ने बौद्ध धर्म अपना लिया था। अतः ब्राह्मणों ने अग्निद्वारा पवित्र कर पुनः क्षत्रिय

(राजपूत) बनाया।" श्री आसोपा की मान्यता है कि प्राचीन काल में सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय होते थे किन्तु अब अग्निवंशीय क्षत्रिय हुए जिसमें परमार भी थे। परमार अर्बुद (आबू) क्षेत्र के अग्निपूजक वशिष्ठ ब्राह्मण थे जिन्होंने शत्रुओं से युद्ध करने हेतु शस्त्र धारण किये और राजपूत कहलाये।"

दैवी उत्पत्ति का मत : कैम्पबेल ने भाटों के कथा के आधार पर यह माना है कि एक बार इन्द्र ने दुर्वा (घास) का पुतला बनाया और उसे अमृत अभिसिंचित कर अग्निकुण्ड में डाल दिया। संजीवन मंत्र का उच्चारण करते ही अग्निशिखा से एक वीर उत्पन्न हुआ जो मार-मार (संहार करो) चिल्लाने लगा। इसी कारण इसे परमार (सत्रु का संहारक) रखा गया। इस वीर को आबूधार व उज्जैन विरासत में मिले, यह मत कल्पना मात्र है राष्ट्रकूटवंशी मत हसल अभिलेख (948 ई.) के आधार पर डी.सी. गांगुली ने यह माना है कि परमार राजपूतों का राष्ट्रकूट होना इस बात से प्रमाणित है कि वाक्यपति मुज ने अमोघवर्ष श्री बल्लभ और पृथ्वीवल्लभ जैसी राष्ट्रकूट उपाधियों धारण की। वे परमारों का मूल स्थान दक्षिण भारत में होने का प्रमाण फजल की आइने अकबरी से देते हैं।

डॉ. दशरथ शर्मा का कथन है कि ष्मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के लेख कन्नड़ भाषा में अंकित है जबकि परमारों की संस्कृत भाषा में परमारों और राष्ट्रकूटों (राठौरों) में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होना उन्हें राष्ट्रकूट वंशी सिद्ध नहीं करता। अत: यह मान्य नहीं है। पुरुरईवंशी मत: श्री लासेन की मान्यता है कि टॉलमी यूनानी लेखकों द्वारा उल्लिखित 'पुरुरई' जाति से परमरों की उत्पत्ति हुई किन्तु बर्गेश ने इसे खण्डन करते हुए कहा है कि पुरुरई एक स्थान विशेष के निवासी थे, न कि कोई जाति विशेष के थे। पाटनारायण लेख (1287ई.) तथा बसतगढ़ लेखों (1022 ई.) में परमारों को सिरोही जिले के वदपुर स्थान का निवासी बतलाया गया है। श्री आसोपा ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि संस्कृत लेख में प्रागवाट स्थान ही टॉलमी द्वारा उल्लिखित स्थान पुरुरई हो सकता है। ब्रह्मक्षत्र कुलवंशी मत: पिंगल सूत्रवृत्ति (हल्लायुद्ध) में परमार राजा भुंज को ब्रह्मक्षत्र कुल (ब्राह्मण व क्षत्रिय परिवार) का वंशज बतलाया गया है। सेन गुहिलोत और चाहमान ऐसे ही 'ब्रह्मक्षत्र' अथवा 'ब्रह्मक्षत्रकुलीन' थे जिन्हें ब्रह्ममक्षतान्वित विप्रकुलनन्दन अथवा विप्र कहा गया है। ये बाद में क्षत्रिय कर्तव्य अपना लिये। शुग सातवाहन कदम्ब तथा पल्लव भी प्राचीन काल में ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय धर्म अपनाकर क्षत्रिय कहलाये थे। अत: परमारों को मूलत: वशिष्ठ ब्राह्मण और बाद का वशिष्ठ गोत्री क्षत्रिय स्वीकार करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. आसोपा, जे.एन. ओरिजिन ऑफ राजपूत ।
2. पाठक, बी. एन. उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास ।
3. गांगुली, डी.सी. हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी ।
4. भण्डारकर, डॉ. डी.सी. इण्डिया अथॉरिटी, वाल्यूम 11.
5. ओझा, डॉ. जी.एस. राजपूताना का इतिहास ।
6. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ राजस्थान का इतिहास, प्रथम भाग ।
7. शर्मा, डॉ. दशरथ: अर्ली चौहान डायनेस्टी
8. मजूमदार, डॉ. आर.सी. द अर्ली हिस्ट्री ऑफ बंगाल
9. नियोगी, रोमा हिस्ट्री ऑफ द गहड़वाल डाइनेस्टी ।

रघुवीर सहाय की कहानियाँः एक सम्पूर्ण आदमी की तलाश

अनुज्ञा यादव

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

न्याय और समता के जिन आदर्शों की बात रघुवीर सहायक अपनी कविताओं और लेखों में उठाते हैं, उनकी आकार ग्रहण करने की प्रक्रिया हमें उनकी कहानियों में मिलती है। इस दृष्टि से रघुवीर सहाय जी की कहानियाँ उनकी कविताओं और उनके व्यक्तित्व को समझने का आधार बनती है। मूल रूप से कवि-पत्रकार होने के कारण उनके कहानीकार रूप को विशेष चर्चा नहीं मिली। रघुवीर सहाय की कविता का उत्स उनकी कहानियों में छुपा है। उनकी कहानियाँ हिन्दी कहानी-विधा को एक नया और सार्थक आयाम प्रदान करती है। जिस प्रकार मुक्तिबोध की कहानियाँ समकालीन अवधारणाओं से अलग हटकर एक नई दृष्टि की माँग के कारण हिन्दी कहानी आलोचना में उपेक्षित नहीं, वैसे ही रघुवीर सहाय की कहानियाँ भी समकालीन धारा से अलग होने के कारण चर्चा में नहीं रहीं। रघुवीर सहाय की कहानियाँ अपने समय और समाज से बहुत अलग और आगे की कहानियाँ थी। इनकी कहानियाँ स्वयं ही कहानी विधा का अतिक्रमण करती है और यथार्थ के घेरे से बाहर निकलकर यथार्थ को देखती हैं। इनकी कहानियों में एक भावुकताहीन आलोचना दृष्टि है। ये यथार्थ को बिना लाग-लपेट निहंग रूप में दिखाती हैं। रघुवीर सहाय अपने व्यक्तित्व और समाज में एक सम्पूर्ण आदमी की तलाश करते हैं। वह सामाजिक यथार्थ का एक बिरल रूप हमारे समक्ष अपनी कहानियों के माध्यम से रखते हैं।

डॉ0 नामवर सिंह ने सबसे पहले रघुवीर सहाय की कहानियों पर ध्यान दिलाते हुए लिखा था- ''........ उनकी कहानियों में भावुकताहीन एक नया यथार्थ आ रहा था, जिसका विकास आगे चलकर रघुवीर सहाय की कविताओं में दिखाई पड़ा।''[1] रघुवीर सहाय की कविताओं का ही एक रूप हमें उनकी कहानियों में भी दिखाई पड़ता है। 'वर्तमान साहित्य' के कहानी विशेषांक में रघुवीर सहाय की कहानियों की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा था- ''रघुवीर सहाय की कहानियों की चर्चा कहानी आन्दोलन के ढर्रे से अलग होने के कारण बहुत नहीं हुई है। पर अन्तर्वस्तु की विशिष्टता और मानवीय यथार्थ की विसंगति को देखने के नए ढंग के कारण उनका महत्व बना रहेगा। 'मेरे और नंगी औरत के बीच' जैसी कहानियाँ हिन्दी में अधिक नहीं लिखी गई हैं।''[2] रघुवीर सहाय की कहानियों को भले हिन्दी कहानियों की परम्परा से अलग समझा जाता है, लेकिन उनके लेखन पर हिन्दी कहानी विधा की परम्पराओं का प्रभाव संस्कार रूप में अवश्य दिखता है जिस प्रकार जैनेन्द्र ने गद्य को तोड़कर भाषा को एक नया स्वरूप अपनी कहानियों में दिया, वही रघुवीर सहाय की कहानियों की भी विशेषता है। विजय मोहन सिंह जैनेन्द्र की कहानी 'जान्हवी' और सहाय जी की कहानी 'मेरे और नंगी औरत के बीच' को जोड़ते हुए लिखते हैं-"'मेरे और नंगी औरत' के बीच को आधुनिक क्लासिक कहानी माना जा सकता है। वह हिन्दी कहानी में एक विस्फोटक प्रस्थान बिन्दु है। .... प्याज के छिलकों को अलगकर समझने वाली कहानी नहीं है, हालांकि उसको समझने की प्रक्रिया कुछ ऐसी ही बनती है। इससे कमतर उलझाव के साथ उसे समझा नहीं जा सकता। हिन्दी में इस कहानी के संदर्भ में जिस कहानी की याद आती है, वह है जैनेन्द्र की 'जान्हवी'। 'जान्हवी' की भाँति ही यह कहानी थी एक स्थिति और एक रिश्ते को समझने की प्रक्रिया में ही स्तर-स्तर पर प्रतीक बनती चली जाती है।''[3]

रघुवीर सहाय की कहानियाँ भाषा एवं बुनावट के अतिरिक्त जीवन के प्रति अलग दृष्टिकोण रखती है, इसी कारण हम इनकी कहानियों की तुलना अन्य हिन्दी कहानीकार के साथ साधारण तौर पर नहीं कर पाते। जिस समय विसंगति, मानवीय करूणा और

विडम्बना पर कहानियाँ लिखीं जा रही थीं, उस समय रघुवीर सहाय करूणा की चीरफाड़ कर रहे थे, जिस पर सबसे पहला ध्यान नामवर सिंह का गया। हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध ही हैं, जिनकी कहानियाँ अलग धरातल के बावजूद रघुवीर सहाय की ही भाँति यथार्थ का अतिक्रमण करती हैं। इनकी कहानियों में जैसे भावुकता विहीन यथार्थ और करूणासिक्तता का नकार है, वैसे ही हमें मुक्तिबोध, श्रीकान्त वर्मा एवं कुँवर नारायण में भी मिलता है। परन्तु कुँवर नारायण और श्रीकान्त वर्मा जैसी सपाटबयानी इनमें नहीं है। सूक्ष्म ब्यौरों के चित्रण में इनकी कहानियों को निर्मल वर्मा की कहानियों से जोड़कर देख सकते हैं।

यथार्थ से बाहर निकल यथार्थ को देखने और भावुकताविहीन यथार्थ के संदर्भ में रघुवीर सहाय की कहानी 'कहानी की कला' को लेते हैं। ये कहानी ब्यौरों या घटनाओं से बिल्कुल अलग होने के साथ-साथ रघुवीर सहाय की कला के प्रति दृष्टिकोण खोलती है। यह कहानी, कहानी विधा की सीमाओं का अतिक्रमण करती आत्मपरक निबन्ध और पुराने गद्य शैली निबन्धों की भाँति विचारों की आवाजाही होने देती है, परन्तु कहानी का कहानीपन बना रहता है। अगर पाठक कहानी को कहानी के प्रचलित रूप से अलग हटकर पढ़ने और समझने की क्षमता रखता है तो यह कहानी उसे निश्चित ही नई दुनिया में ले जाएगी, जहाँ पाठक स्वयं कहानीकार से संवाद कर कहानी बनाता-तोड़ता चलता है। पाठक भी लेखक के साथ इसमें शामिल हो जाता है। यह कहानी एक गहन मानवीय सत्य का उद्घाटन करते हुए कहानी-विधा के बारे में पाठक को एक नई एवं गहरी दृष्टि प्रदान करती है।

एक सम्पूर्ण आदमी की तलाश के कई आयाम हमें रघुवीर सहाय की कहानियों में छिपे हुए मिलते हैं। यह खोज पूरे आदमियत को पा लेने की खोज है। यह तलाश आत्म निरीक्षण एवं पश्चाताप के बिना असम्भव है। 'सेब' 'एक जीता-जागता व्यक्ति', 'मेरे और नंगी औरत के बीच', 'एक छोटी सी यात्रा', 'मुक्ति का क्षण' आदि कहानियों में हम रघुवीर सहाय को करूणा को संशय की दृष्टि से देखते हुए पाते हैं। मंगलेश डबराल लिखते हैं- ''.......... करूणा उनकी रचनाओं में एक विचार की शक्ल में आई, जिसमें वह किसी विपन्न पर की गई दया नहीं और न निजी विपत्ति की आत्मदया है। दया और आत्मदया, दोनों रघुवीर सहाय की निगाह में इंसान को एक दर्जा नीचे गिराकर उसे एक इस्तेमाल योग्य वस्तु में बदल देने और उसके विरोध की क्षमता छीन लेने वाली चीजें थी।..... व कभी-कभी कहते भी थे कि हिन्दी में सहानुभूति, दुःख, करूणा और मृत्यु का व्यापार भी चल रहा है।''[4]

'जो आदमी हम बना रहे हैं' कहानी-संग्रह की कहानियों में हम तरह-तरह से आज बने हुए आदमी की तस्वीर पाते हैं। अपनी कहानियों में अलग-अलग परिस्थितियों को चुनने और भाषा से ही रघुवीर सहाय ऐसे संकेत दे देते हैं, जो समाज और उस आदमी से परिचित कर देते हैं, जो आज का आदमी है। 'मुठभेड़' कहानी में शुरू में ही अखबारों पर टिप्पणी है, जो नित्य जीवन का हिस्सा है- ''सारे शहर के अखबार उसमें थे, सबको तख्त पर बिछाया। कितनी दयनीय स्थिति थी। सारी दुनिया में कुछ आदमियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार चौबीस घंटे के अन्दर हमारी नियति को जहाँ-तहाँ से मोड़ने की कोशिश की थी...... उस वक्त तक शिवराम की माँ के मरने की खबर ही ताजी खबर थी। इसे एक कागज पर चींटी जैसे अक्षरों में लिखूँ और उसे अखबार में चिपका दूँ।''[5] कहानी छोटे-छोटे वाक्यों और रोजमर्रा से जुड़ी शारीरिक अनुभूतियों में कहानी चलती है। यह कहानी एक तरह की संवेदनहीनता और काम को निपटा देने जैसी मशीनी कार्य को बताती है। यह रघुवीर सहाय का भाषाई कौशलपूर्ण खेल है, जो छोटे-छोटे बेकार से लगते ब्यौरों में बंटा हुआ है। इस व्यक्तिगत तैयारी में मरे व्यक्ति का कहीं जिक्र नहीं जैसे अखबार में नहीं है। इस कहानी में कहानीकार की 'मुठभेड़' किससे है? अपने आस-पास की दुनिया से और स्वयं से। इस 'मुठभेड़' का क्या परिणाम है? उस आदमी से साक्षात्कार जो इस दुनिया में बन रहे हैं। विजय मोहन सिंह रघुवीर सहाय की कहानियों पर लिखे लेख 'दया के विरूद्ध' में लिखते हैं- ''वे अटूट, निष्पलक और सूक्ष्म निरीक्षण की कहानियाँ हैं जिनमें से क्रमशः एक स्पंदित, चमकता हुआ सच निकल आता है। .... ये सब इसी मुठभेड़ की कहानियाँ हैं। एक ऐसी मुठभेड़ जो लगता है हिन्दी कहानी में पहली बार हो रही हो या जो शायद जैनेन्द्र की शुरू की कहानियों में हुई दीखती है। मुठभेड़ कहानी की थीम यानी कथावस्तु क्या है............. उसकी असली थीम शायद वही है, जो आदमी हम बना रहे है।''[6]

रघुवीर सहाय एक सम्पूर्ण आदमी की तलाश में अपनी कहानियों में 'करूणा' एवं 'नफरत' को एक थीम की भाँति प्रयोग करते हैं। यह उनके सम्पूर्ण जीवनदृष्टि और रचनाशीलता को समझने का महत्वपूर्ण आधार है। श्री विनय दूबे लिखते हैं- ''रघुवीर सहाय मनुष्य की करूणा के........... कवि हैं .... उनकी काव्य-चिन्ता मानवीय रिश्तों की कोमलतम भावभूमियों की चिन्ता है। इन्हीं भावभूमियों में वे समाज और सामाजिक संघर्षो की गहन पड़ताल एवं पहचान भी करते रहे हैं। इन भावभूमियों के केन्द्र में करूणा है जो विगलित नहीं, अपितु विचारवान है।......... उनकी सारी राजनीति गरीब भारतीय के छोटे-छोटे सुखों के लिए है। इसी के साथ वे कभी हंसते हैं, कभी विनोद करते हैं, कभी गुस्से का आचरण करते हैं, कभी झुंझलाते हैं और कभी व्यंग्य करते हैं।''7 कोमल

मानवीय रिश्तों की चाह, न्याय और समानता के आदर्श पर रिश्तों की पड़ताल इनके लिए मुख्य प्रयोजन है। अन्ततः जो आदमी हम बना रहे, उसकी पहचान कर उसे सम्पूर्ण आदमी बनाने की जरूरत ही पैदा होती है। न्याय और समता की कसौटी पर करूणा को जाँचकर कहानीकार गलदश्रु भावनात्मकता को खारिज तो करते ही हैं, साथ ही करूणा शब्द को उसकी निष्क्रियता से बाहर निकाल एक स्वस्थ नैतिक आयाम प्रदान करते हैं। रघुवीर सहाय की कहानियों में करूणा की जांच न्याय और समता से संगति रखती है। वह हर व्यक्ति की अद्वितीयता और स्वतंत्रता बनी रहने देती है। यह लगभग एक आत्मालय की भाँति चलती है। इसके साथ ही साथ चलती है नफरत की जाँच जो मनुष्य से सच्ची सम्पृक्ति से उपजी हताशा एवं पीड़ा है। लोगों के मध्य फैली संवेदनहीनता के शून्य को भरने के पूरक का कार्य करती है। नफरत से मुक्ति एवं संवेदनशील होना ही अन्ततः एक सम्पूर्ण व्यक्ति की तलाश है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. पहल पत्रिकाः 1985, पृष्ठ-8
2. वर्तमान साहित्यः कहानी महा विशेषांक, 1991, पृष्ठ-510
3. रघुवीर सहायः विजय मोहन सिंह, पृष्ठ-40
4. वही, पृष्ठ-97
5. रघुवीर सहाय रचनावली, भाग-2, पृष्ठ-86
6. रघुवीर सहायः पृष्ठ 38-39
7. जो आदमी हम बना रहे हैं-रघुवीर सहाय, भूमिका।

राष्ट्रीय उग्रवाद आन्दोलन में विपिनचन्द्र पाल का योगदान

डॉ० सिद्धेश्वर नारायण उपाध्याय

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग,महिला पी०जी०कालेज, बहराइच

विपिनचन्द्र पाल का जन्म 7 नवम्बर 1858 ई में ढाका में हुआ था। विपिनचन्द्र पाल के पिता रामचन्द्र पाल ढाका के अधीनस्थ न्यायधीश के पेशकार थे। विपिनचन्द्र पाल ने हाई स्कूल की परीक्षा सिलहट के एक अंग्रेजी स्कूल से उत्तीर्ण किया था। उच्च शिक्षा कलकत्ता वर्तमान कोलकाता से प्राप्त किया था। विपिनचन्द्र पाल ने अपना जीवन एक अध्यापक के रूप में प्रारंम्भ किया।

1905 ई में बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन के दिनों में राजनीतिक मंच पर आये, उन्होंने बहिष्कार स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा का संदेश देश के कोने-कोने में दिया। विपिनचन्द्र पाल बालगंगाधर तिलक से भी उग्र विचारधारा के व्यक्ति थे। वे स्वराज्य ब्रिटिश सरकार से उपहार में लेने के पक्ष में नहीं थे।[1]

विपिनचन्द्र पाल का जन्म भारतीय इतिहास के ऐसे समय में हुआ था जब देश लड़खड़ाते मध्य युग की लम्बी अंधेरी गुफा से निकलकर आधुनिक युग के प्रकाश में पदार्पण कर रहा था। ऐसे अंधेरे से प्रकाश और स्वतंत्रता की तरफ ले जाने वाले महापुरुष राजाराम मोहन राय थे। 18वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के बढ़ते हुए हमले से पतन के कगार पर खड़े हुए, मुगल शासकों को इस पराजय के कारण आर्थिक क्षेत्र में एक ठहराव आ गया और अनेक सांस्कृतिक उलझने पैदा हो गयीं। ऐसी स्थिति में बंगाल के लिए अंधविश्वासों और पूर्व ग्रहों के घुटन से निकलना जरूरी था ताकि एक आधुनिक समाज के निर्माण का सूत्रपात हो सके और लोग स्वतंत्रता की सांस ले सकें।[2]

विपिनचन्द्र पाल ने सोलह वर्ष की आयु पार करते ही कलकता विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। विपिनचन्द्र पाल ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में 1875 से 1878 ई तक लगभग 4 चार वर्ष शिक्षा ग्रहण किया। यही वह समय था जब भारत की नयी राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे उभर रही थी। विपिनचन्द्र पाल के अनुसार इस नयी राष्ट्रीय चेतना का उदय आधुनिक यूरोपीय चिंतन और इतिहास सम्पर्क से रचे गये। बंगला साहित्य में पुर्नजागरण के कारण हुआ। बंकिमचन्द्र चटर्जी विशेषरूप से इस नवपुर्नजागरण के नेता थे। 1873 से 1874 ई में प्रकाशित बंकिमचन्द्र चटर्जी का बंग दर्शन इस पुर्नजागरण का सबसे पहला पत्र था। बंकिमचन्द्र चटर्जी के आस पास ऐसे विख्यात बुद्धिजीवियों का एक समूह एकत्र हो गया था। जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुन्दरतम पुष्प माने जाते थे। हेमचन्द्र बनर्जी इस पुर्नजागरण के कवि थें राधा कृष्ण बनर्जी इस काल के साहित्यकार थे। अक्ष्यचन्द्र सरकार, तारा प्रसाद चटर्जी, चन्द्रनाथ बसु निबंधकार थे। बंग दर्शन समकालीन साहित्य चिंतन के लिए वैसा ही काम किया जैसा कि महान फ्रैंच विश्वकोषकारों (एक साइक्लोपीडिया) ने 18वीं शताब्दी के यूरोप और फांसीसी साहित्य के लिए किया था।[3]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से विपिनचन्द्र पाल का सम्बन्ध 1886ई में कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में हुआ। उन्होंने इस अधिवेशन में सिलहट के एक प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया था। राष्ट्रीय मंच से पहली बार बोलते हुए, उन्होंने जूरी द्वारा विचारण की अवधि बढ़ाये जाने का समर्थन किया। इस समय वह इस विचारधारा से प्रभावित थे कि भारतीय समाज और राजनीतिक यूरोपीय प्रभाव के अन्तर्गत प्रगति करेगी और इनकी राय थी कि जबतक सिविल सेवा में पर्याप्त भारतीयों की सहभागिता से उनमें सुधार न हो तबतक न्याय व्यवस्था यूरोपीयों के हाथों में रहे। 1886ई में कलकत्ता कांग्रेस के अधीवेशन में विपिनचन्द्र पाल को दूसरे प्रान्तों के राजनेताओं के समक्ष आने के अवसर मिला।[4]

ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा और कांग्रेस प्रेम दोनों के समीकरण में विपिनचन्द्र पाल ने भारत के जनता के मुक्ति के उपकरण के रूप में ब्रिटिश राज्य के प्रति अपनी आस्था प्रकट किया। राष्ट्रीय स्तर के अन्य राजनेताओं जैसे दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, के०टी० तैलंग, मदनमोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले आदि की भांति विपिनचन्द्र पाल भी इस समय ब्रिटिश राज्य में अटूट विश्वास रखते थे। 20वीं सदी के आरम्भ में ज्यों-ज्यों परिस्थितियां बदलती गयी। विपिनचन्द्र पाल के राजनीतिक विचारों और ब्रिटिश सरकार के प्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा।

विपिनचन्द्र पाल ने 1888 ई में आकलैण्ड और ए०आ०ह्यूम विवाद मसले में भाग लिया और उनके बारे में अपने विचार प्रकट किया। ए०ओ०ह्यूम कांग्रेस के संस्थापक सदस्य थे और 1857 की क्रान्ति के समय भारतीय सिविल सेवा के सदस्य थे। इनका विश्वास था कि कांग्रेस शिक्षित वर्ग के राजनीतिक संगठन के रूप में भारत में उभरते जनमत के लिए एक संवैधानिक झरोखे का काम करेगी। अब उन्होंने मांग रखी कि इसे सवैधानिक आंदोलन का एक राजनीतिक मंच बना दिया जाए।

उत्तर प्रदेश के ततकालीन गर्वनर आकलैण्ड कालविन ए०आ०ह्यूम के विचारों के विरोध में अपने विचार प्रेस के माध्यम से किए। इस विवाद में विपिनचन्द्र पाल ने प्रेस के स्तम्भों के माध्यम से आकलैण्ड कालविन का समर्थन किया और कांग्रेस के आंदोलन में जनसमूह के शामिल होने को उन्होंने ब्रिटिश सरकार के लिए ही नहीं बल्कि भारत के लिए भी खतरा बताया क्योंकि देश में वास्तविक स्वाधीनता आंदोलन चलाने के लिए ब्रिटिश आधिपत्य जारी रहना आवश्यक है कि जिससे कि ऐसी सरकार स्थापित किया जा सके जो जनता द्वारा जनता के लिए हो।[5]

3 दिसम्बर 1903 ई के रिजले के पत्र ने तो बंगाल में सुलगती चिंगारी को और भी भड़का दिया। इस पत्र में बंगाल विभाजन की योजना दी हुई थी। और इस योजना को 12 दिसम्बर 1903 ई के भारत राजपत्र में अधिसूचना के रूप में प्रकाशित किया गया था। रिजले के पत्र में प्रस्ताव था कि वर्तमान बंगाल का पुनर्गठन करके बराबर आकार के दो प्रान्त बनाये जायेंगे। 1874 ई में असम को बंगाल से अलग करके उसमें तीन बंगाल के भावी जिले जोड़ दिये गये और उसे एक मुख्यआयुक्त के आधीन रखा गया। बंगाल विभाजन की योजना प्रकाशित होने से विपिनचन्द्र पाल के राजनीतिक विचारों में भारी परिवर्तन आया।

जनवरी 1904 ई में कलकत्ता के टाउन हाल में ब्रह्मसमाज की वर्षगांठ के अवसर पर भाषण देते हुए विपिनचन्द्र पाल ने भारत की राजनीतिक स्थिति को सत्तारूढ़ जाति और देश के सपूतों में हित संघर्ष की संज्ञा दी। 1902 ई तक उनके मन में ब्रिटिश सरकार और सम्राज्य के प्रति जो निष्ठा बनी हुई थी। वह जनवरी 1904 ई में पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गयी। उन्होंने कहा था-"आधुनिक ब्रिटिश सम्राज्यवाद की प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी और दमनकारी प्रवृित्तियों के संयुक्त प्रभाव में उनके उद्धार के मिशन और शक्तियों में-----भारत की जनता की पुरानी आस्था को खंडित किया है।[6]

विभाजन के इस फैसले की इस घोषणा के कुछ दिन बाद विपिनचन्द्र पाल ने 29 जुलाई 1906 ई को उदारवादियों की उदार राजनीतिक तरीके को बिल्कुल बेकार बताया। विपिनचन्द्र पाल ने लोगों से कहा कि वे इस भ्रम में न रहें कि इंग्लैण्ड में उदारवादी दल सत्ता में आयेगा। कितनी भी याचनाएं करें ज्ञापन दें। शिष्टमण्डल यहां से इंग्लैंड भेजें। भारत के प्रति ब्रिटिश राजनीतिज्ञों चाहे वे अनुदारवादी हों या उदारवादी। उनके बुनियादी रवैये में कोई परिवर्तन नहीं होगा। राजनीतिक संघर्ष की उदारवादी पद्धति की कठोर सीमाओं का उल्लेख करते हों। विपिनचन्द्र पाल ने कहा कि-विभाजन के प्रस्ताव को खण्डित करने के लिए संवैधानिक संघर्ष के उदारवादी पद्धति की असफलता ही वह प्रथम आधार और आरम्भिक बिन्दु था जहां से उग्र राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। रोचक बात यह है कि जब संवैधानिक संघर्ष की पद्धति का जनसाधारण पर प्रभाव समाप्त हो गया तो पूर्व राजनीतिक उद्देश्य ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का तीव्र आवाहन बंगाल के एक उदारवादी पत्रकार कृष्ण कुमार मित्र ने ही किया था।

बहिष्कार का समर्थन करने के लिए कृत संकल्प जनसभाओं की लहर उतनी फैले कि सात अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउन हाल में एक विशाल जनसभा आयोजित की गयी थी। टाउन हाल की सभाओं में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का जो आवाहन किया गया, उसके परिणाम स्वरूप बंगाल में विभाजन विरोधी राजनीतिक आंदोलन में एक नयी गति आयी।[7]

उदारवादियों और उग्रवादियों की नीतियों में जो अन्तर था वह 1905 के कांग्रेस अधिवेशन उभर कर सामने आया। वह अधिवेशन बनारस में विभाजन के भय के वातारण में हुआ था। उस समय लार्ड कर्जन भारत के वायसराय का पद संभालने वाले थे। यद्यपि दादाभाई नौरोजी ने बाल गंगाधर तिलक को सलाह दिया कि आपस में फूट पैदा नहीं होना चाहिए। फिर भी आपसी मतभेद छुप नहीं पाया। उदारवादी और उग्रवादी नेताओं ने एक होकर के बंगाल विभाजन की निन्दा किया। इस विषय में प्रस्ताव पेश करते हुए,

सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने कहा था कि-जब तक विभाजन का प्रस्ताव रद्द नहीं होगा तब तक आंदोलन भी बंद नहीं होगा।

लेकिन उदारवादियों और उग्रवादियों के समूहों में अन्तर उस समय सामने आया जब यह प्रस्ताव पेश हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में गोपाल कृष्णगोखल ने स्वदेशाी आन्दोलन की प्रशंसा किया लेकिन बहिष्कार आन्दोलन के संबंध में चेतावनी दिया। मदनमोहन मालवीय ने एक आमसभा में घोषण किया कि कांग्रेस बहिष्कार आन्दोलन की वकालत नहीं करती और उसने अन्य प्रान्तों में बहिष्कार आन्दोलन को फैलाने का विरोध किया। दूसरी तरफ उग्रवादियों की तरफ से लालालाजपत राय ने कांग्रेस जनों पर यह छाप डाली कि बहिष्कार में भारत में एक नये राजनीतिक युग का सूत्रपात किया है।[8]

बंगाल में विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष और ब्रह्मा बांधव उपाध्याय ने महाराष्ट्रा में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने पंजाब के लालालाजपत राय ने 1906 ई के मध्य कांग्रेस के अन्दर एक नया राजनीतिक गुट तैयार किया। बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में नये राजनीतिक गुट ने एक शक्तिशाली आन्दोलन छेड़ दिया। बंगाल के उग्रवादियों ने इस सुनहरे मौके का फायदा उठाया और उग्र राष्ट्रवाद की विचारधारा और कार्यक्रम के अनुरूप नये आन्दोलन को ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी रंग दिया।[9]

इस समय उग्रवादी दल का कहना था कि ब्रिटिश सरकार के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग न किया जाये। ब्रिटिश माल का बहिष्कार किया जाये और उनके अनुचित बातों का विरोध किया जाये। भारत को किसी भी कीमत पर अंग्रेजों से स्वतंत्र कराया जाये। उदारवादियों की नीतियों से नाराज होकर कांग्रेस का एक बहुत बड़ा वर्ग विशेषकर नवयुवकों में इस नीति के प्रति विश्वास नहीं रहा और 1906 से कांग्रेस का नेतृत्व उग्रवादियों के हाथ में आ गया। इस दल का नेतृत्व विपिनचन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और अरविन्द घोष के हाथों में चला गया। 1907 ई में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो दलों में विभाजित हो गयी। और दोनों दलों के बीच ऐनीबेसेन्ट के सहयोग से लखनऊ पैक्ट के तहत 1916 ई में समझौता हो पाया।[10]

राष्ट्रीय उग्रवाद आन्दोलन में विपिनचन्द्र पाल का योगदान भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिन्होंने उग्रवाद दल को पूरे देश में काफी सुदृढ़ किया। जिससे ब्रिटिश सरकार अत्यधिक प्रभावित हुई। विशेषकर स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन के अन्तर्गत पूरे भारत के लागों को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया। जो आगे चलकर भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ सूचीः

1. शिवनारायन सिंह राना- भारत भूमि का इतिहास भाग-2, पृष्ठ संख्या 223
2. चटर्जी सरल कुमार- आधुनिक भारत के निर्माता, पृष्ठ संख्या 5
3. विपिनचनद्र पाल मेमोरियल ऑफ माई लाईफ 2003 टाइम्स, पृष्ठ संख्या 333
4. विपिनचन्द्र पाल राइटिंग्ज एण्ड स्पीचेज, पृष्ठ संख्या 4
5. विपिनचन्द्र पाल मेमोरीज ऑफ माई लाईफ एण्ड टाईम्स, पृष्ठ संख्या 445
6. सप्लीमेण्ट टू न्यू इण्डिया 4 फरवरी 1904
7. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस बनारस अधिवेशन 1905, जवाहर लाल नेहरू संग्रहालय एवं पुस्तकालय नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 73
8. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस बनारस अधिवेशन 1905, जवाहर लाल नेहरू संग्रहालय एवं पुस्तकालय नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 74
9. विपिनचन्द्र पाल स्वदेशी और स्वराज्य, पृष्ठ संख्या 48
10. सत्यकेतु विद्यालंकार-भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या 65

जायसी के रहस्यवाद का मूल तत्व प्रेम

डॉ० वेदवती सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी०ए०वी०पी०जी० कालेज, गोरखपुर

साधारणत: रहस्यवाद का अर्थ गोपन से लिया जाता है। मनुष्य को जो कुछ प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है-जो इन्द्रियगोचर, बुद्धिगम्य और तर्क्य ह-उससे ही वह सन्तुष्ट न होकर वह अगम्य और अतर्क्य के प्रति जिज्ञासु होता है उसके अस्तित्व को स्वीकार करता है, और अन्तत: उससे एकात्म भाव स्थापित करना चाहता है वहीं रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। जिसे विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढ़ंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

प्रो0 रानाडे के अनुसार-''रहस्यवाद एक मनोदशा है जिसमें हमें ईश्वर का सीधा स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रातिभ ज्ञान हो जाता है।''

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार-''अपनी अंत: स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा सत्य परम तत्व या ईश्वर का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।''

श्री जयशंकर प्रसाद के अनुसार रहस्यवाद आत्मा की मूल संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा है।''

पिंगल पैटिसन का स्पष्ट मत है कि ''परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मिलन के परम पवित्र आनन्द को उपलब्ध कराने का मानवीय मन का प्रयत्न रहस्यवाद है।''

वास्तव में रहस्यवाद एक प्रकार का अनुभववाद है। ज्ञानी जिस रहस्य को साधना द्वारा प्रयत्नपूर्वक सुलझाने का प्रयास करता है अनुभूति प्रवण व्यक्ति उसे निवेदन अथवा रागानुभव के प्रत्यक्ष करता है। आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए लिखा है ''जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन मानकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है- वहाँ रहस्यवाद होता है।''

जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद पर विचार करते हुए लिखा है। ''अद्वैतवाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है कवि कल्पना या भावना नहीं, वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है- अर्थात् जब उसका संचार भावक्षेत्र में होता है तब उच्चकोटि के भावनात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।'' अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं- एक आत्मा और परमात्मा में अभेद और दूसरा ब्रह्म और जगत में अभेद, साधना के क्षेत्र में पहले पर बल दिया जाता है और भावना के क्षेत्र में दूसरे पर।''

रहस्यवाद के भेद-आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो भेद किये है -

1. साधनात्मक रहस्यवाद
2. भावनात्मक रहस्यवाद

उनकी दृष्टि में भारतीय योगमार्ग एक प्रकार का साधनात्मक रहस्यवाद है, क्योंकि अनेक अप्राकृतिक तथा जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार करने तथा साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कराने की आशा देता है। कुछ विद्वानों ने रहस्यवाद के पाँच भेद किये हैं -

1. दार्शनिक रहस्यवाद
2. प्रेममूलक रहस्यवाद

3. सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद
4. भक्तिमूलक रहस्यवाद
5. प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद

ये वर्गीकरण रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के आधारों और साधक की मनोदशओं को दृष्टि में रखकर किये गये हैं।

डॉ0 त्रियुणायत ने रहस्यानुभूति की प्रतिक्रियाओं के आधार पर रहस्यवाद को दो वर्गो में बॉटा है-

1. अन्तर्मुखी रहस्यवाद
2. बहिमुखी रहस्यवाद

उनके अनुसार ''अन्तर्मुखी प्रक्रिया में साधक अपने हृदयस्थ प्रियतम की खोज करता है और वहिर्मुखी साधना में वह सारे विश्व में अपने प्रियतम के दर्शन। अन्तर्मुखी रहस्यवाद शुद्ध भाव मूलक और योग मूलक दोनों प्रकार का होता है। बहिर्मुखी रहस्यवाद के अन्तर्गत प्रकृतिमूलक और अभिव्यक्ति मूलक आदि भेद आते हैं। इस प्रकार जायसी का भावमूलक रहस्यवाद अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी उभय प्रकार का है।''

जायसी का रहस्यवाद- अन्तर्मुखी रहस्य साधना की मूल अवस्था भावातिरेकता है। इस अवस्था में साधक अपने प्रियतम की अनेक झाकियों के दर्शन करता है। पद्मावत में सिहलद्वीप वर्णन खण्ड और 'सात समुद्र वर्णन खण्ड' ब्राह्यात्मक प्रतीक होते हुए भी अन्तर्मुखी है। सिंहलद्वीप वास्तव में हृदय का प्रतीक है जो परमात्मा का निवास स्थान है साधारण व्यक्ति की वहाँ तक पहुँच नहीं है। -

जबहि द्वीप नियरावा आई, जनु कविलास नियर भा आई।

जायसी में हठयोगिक रहस्यवाद अनेक रूपों में दिखायी देता है। भावना या प्रेम भावना के आवरण में आवृत्त, प्रकृति के आवरण में आवृत्त और जटिल अभिव्यक्ति के आवरण में आवृत्त। चंद और सूर्य की साधना, योग में प्रमुख है। चन्द्र और सूर्य का प्रयोग कहीं इड़ा और पिंगला के लिए हुआ है कहीं कुण्डलिनी और सहस्त्रार के लिए। मेरूदण्ड के बायी और इड़ा और दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी स्थित है। इन दोनों के मध्यम सुषुम्ना नाड़ी है। सुषुम्ना के सबसे नीचे कुण्डलिनी है। जब साधक कुण्डलिनी को जागृत करता है तो जागृत होकर कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के भीतर से ऊपर सिर की ओर चढ़ने लगती है। चक्रों को पार करते हुए ब्रह्मरंध्र में पहुँच जाती है तत्पश्चात मन और शरीर का सम्बन्ध छूट जाता है और योगी पूर्ण समाधि या तुरीयवस्था को प्राप्त कर ब्रह्म के स्वरूप में मग्न हो जाता है।

सिहलद्वीप खण्ड, सात समुद्र खण्ड, पद्मावती रत्नसेन विवाह खण्ड पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड सभी में योगियों की इस अवस्था का चित्रण किया गया है। सूफी साधना में साधकों की चार अवस्थाओं का चित्रण किया गया है। -

1. शरीयत
2. तरीकत
3. हकीकत
4. मारिफत

शरीयत से तात्पर्य विधि निषेध का सम्यक पालन। तरीकत अर्थात् बाहरी क्रियाकलाप से परे हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान। हकीकत भक्ति और उपासना के उपरान्त सम्यक बोध। मारिफत अर्थात् साधना की उच्चतम भूमि में आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना। जायसी के काव्य में इन चारों अवस्थाओं का वर्ण है -

नवो खण्ड नौ पौरी, और तहँ बज्र केवार।
चारि बसेरे सौं चढ़े, सत सौ उतरै पार।।

तूरीयावस्था प्राप्त होने से पूर्व साधक को अनेक मन:स्थितियों से गुजरना पड़ता है। पहली स्थिति जागरण की है। आत्मा शुद्ध और चौतन्य है। उसका सांसारिक वस्तुओं से जुड़ना अस्वाभाविक है। वह शुद्ध चौतन्य से एकात्मकता स्थापित करने के लिए तड़पती है, गुरू के उपदेश द्वारा इस संसार के मिथ्या ज्ञान का उसे बोध होता है। पद्मावत में हीरामन तोते (गुरू) द्वारा पद्मावत (परमात्मा) के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रत्नसेन का संसार से विमुख हो जाना जागरण की अवस्था है। परमात्मा से एकता स्थापित करने के लिए सांसारिक वासनाओं का परित्याग करना पड़ता है अत: परिष्कार की आवश्यकता होती है। रत्नसेन का योगी वेश में सात

समुद्र पार करना परिष्कार है। सूफी साधना के अनेक नियम और विधान है जिनमें तौबा (अनुताप) खौफ (ईश्वर का भय) तवक्कुल (ईश्वर का विश्वास), फकर (दैन्य), सब्र धैर्य, रजा (शान्ति), रिजा (आशा), शुक्र (अनुग्रह) आदि स्थितियाँ आती है। जो पद्मावत में देखी जा सकती हैं। चौथी स्थिति प्रकाशानुभव की है जिसमें साधक को साध्य की अनुभूति होती है। शिव मन्दिर में पद्मावती से प्रथम भेंट प्रकाशानुभव है। सत्ता से पूर्ण एकता स्थापित होने से पूर्व साधक को सांसारिक विघ्नों से एक बार फिर संघर्ष करना पड़ता है जिसे विघ्नों की रात कहा जाता है। गंधर्वसेन द्वारा रत्नसेन को पकड़ना विघ्नों की रात के अन्तर्गत आता है और इसके पश्चात पूर्ण ऐक्य की स्थिति आती है जिसमें साधक साध्य से पूर्ण एकात्मकता स्थापित कर लेता है पद्मावती से रत्नसेन का पूर्ण मिलन (पूर्ण ऐक्य) है। इस प्रकार साधक रत्नसेन के साधना विकास के पाँच सोपान है।

भावनात्मक रहस्यवाद-भावनात्मक रहस्यवाद का मूल तत्व प्रेम है। सूफी सन्त अचार का कहना है कि ''ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम रहस्यवादी को साधना मार्ग में अग्रसर और उर्ध्वमुखी करता है।'' सरजान ऑफ क्रास का कहना है ''प्रेम का सूत्र आत्मा और परमात्मा को इतनी घनिष्ठता से एक में बाँध देता है कि वह दोनों को मिलाकर एकरस कर देता है।'' सूफी रहस्वादी कट्टर प्रेममार्गी थे। जायसी भी प्रेममार्ग के महत्व को अच्छी प्रकार समझते थे। उनकी दृष्टि में गुरू या पीर की सर्वप्रमुख देन 'प्रेम' है। उन्होंने स्तुति खण्ड में कहा भी है -

सैयद असरफ पीर पियारा, जेहि मोहि पन्थ दीन्ह उजियारा।
लेसा हिए प्रेम कर दीया, उठी जोतिभा निरमल हीया।।

दैवी प्रेम से सम्पन्न व्यक्ति को तीनों लोक और चौदहो खण्ड में प्रेम से अधिक प्रिय कोई वस्तु दिखायी नहीं देती -

तीनि लोक चौदह खण्ड, सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छाँड़ि नहि लोन किछु, जो मन देखा बुझि।।

अलौकिक प्रेम के उत्पन्न होते ही मनुष्य की लोकाशक्ति पूर्ण वैराग्य में परिवर्तित हो जाती है। वह अलौकिक प्रेम में बावला हो जाता है।

जब भा चेत उठा बैरागा, बाउर जनो सोय उठि जागा।।
प्रेम का घाव कोई नहीं जान सकता जिसको लगता है वही जानता है-
प्रेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पर सोई।।

जायसी उसको ''पिउ हिरदय महँ भेट न होई को रे मिलाव कहौं केहि रोई।'' के अतिरिक्त उसके रूप की छटा प्रकृति के नाना रूपों में देखते हैं। इस दृश्यमान जगत् में जो कुछ भी सुन्दर, कान्तियुक्त है वह सब उसी की आत्मा का प्रतिबिम्ब है।-

जेहि दिन दसन जोति निरमई, वहुते जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती रतन पदारथ मानिक मोती।।

इतना ही नहीं पद्मावती का स्पर्श प्राप्त करते ही सरोवर मानसरोवर का काया परिवर्तन हो गया तथा उसके नेत्रों की ज्योति से कमलों की उत्पत्ति हुई तथा दाँतों की ज्योति से नाना प्रकार के रत्न उत्पन्न हुए -

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन परसे, पावा रूप रूप के दरसे।
मलय समीर बास तन आई, भा सीतल, गै तयनि बुझाई।

X X X

नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।।

मानसरोवर के भीतर उस प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न अपरिमित आनन्द की जो अनुभूति होती है उसकी व्यंजना देखिये -

देखि मानसर रूप सोहावा, हिय हुलास पुरइन होइ छावा।
गा अधियार रैन मसिछूटी, भा भिनसार किरन-रवि फूटी।
कवँल बिगस तस बिहंसी देही, भँबर दसन होई कै रस लेही।

सम्पूर्ण प्रकृति ही उस प्रियतम के बाणों से बिद्ध दिखायी देती है और उसे पाने का उपक्रम करती है–

उन्ह बानन्ह अस के जो न मारा, बेन्ध रहा सगरौ संसारा।
गगन नखत जो जाहि न गने, वे सब बान ओहि के हने।
धरती बान वेधि के राखी, साखी ठाढ़ देहि सब साखी।
रोंव रोंव मानुस तन ठाढ़े, सूतहि सूत धेध अस गाड़े।

जायसी का यह मानना है कि पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर दोनों एक थे, किन्तु न जाने किसने इसमें भेद कर डाला–

धरती सरग मिले हुत दोऊ, केइ निगार के दीन्ह बिछोऊ।

जायसी का यह मानना है कि सम्पूर्ण प्रकृति उसी के वियोग में जल रही है। उसी ब्रह्म का वियोग सम्पूर्ण प्रकृति में फैला हआ है –

सूरज बूड़ि उठा होइ राता, औ मजीठ टेसू वन राता।
भा बसन्त राती वनसपती, औ रति सब जोगी जती।
भूमि जो भीजि भयउ सब गेरू, औ राते सब पंख पखेरू।

किन्तु ईश्वर का प्राप्त करना इतना आसान नहीं है वहाँ पहुँचने के लिए कष्टसाध्य साधना की आवश्यकता होती है बिना साधना पूर्ण किये कोई वहाँ तक नहीं पहुँच सकता है –

पवन जाइ तेहि पहुचौ चाहा, मारा तैसि लोटि भुंइ परा।
आगिनि उठी जरि बुझी नियाना, धुआ उठा, उठि बीच बिलाना।

लेकिन जब साधक कष्टसाध्य साधना के उपरान्त उसे प्राप्त कर लेता है तो उसे अपरमित आनन्द की प्राप्ति होती है–

देखि मानसर रूप सोहावा, हिय हुलास पुरइन होई छावा।
गा अधियार रैन मसिछूटी, भा भिनसार किरन रवि फूटी।

इस प्रकार जायसी काव्य में रहस्यवाद का चरम सौन्दर्य मिलता है। डॉ0 गोविन्द त्रिगुणायत का कहना है ''हिन्दी साहित्य ही क्या विश्व साहित्य में भी उनकी जोड़ का रहस्यवादी कवि कठिनता से मिलेगा।''

x

जायसी ने सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन अपने काव्य में किया है और सूफी साधना के अनुसार आध्यात्मिक प्रेम विशेषत: उसके विरह पक्ष को प्रस्तुत किया है। आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति में ही रहस्य भावना की सृष्टि हुई है। यह रहस्य भावना अनेक रूपों में उनके काव्य में आयी है। रहस्य भावना में इतने रूप इतनी भावभूमियाँ सम्भवत: हिन्दी काव्य में अन्यत्र दृष्टिगत न हो। उनकी मार्मिक अभिव्यक्ति से अभीभूत होकर ही शुक्ल जी ने उन्हे हिन्दी का एकमात्र रहस्यवादी कवि माना है।

अत: हम कह सकते हैं कि जायसी हिन्दी में श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि है उन्होंने आत्मा परमात्मा की एकता स्थापित कर अद्वैतवादी रहस्यवाद की स्थापना की उनका अद्वैती रहस्यवाद सरस, मधु, आकर्षक है। जायसी भावनात्मक रहस्यवाद की भावना को लेकर रचना करने वाले श्रेष्ठ कवि है। उनके रहस्यवाद में प्रेम तत्व प्रधान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. पद्मावत: वासुदेव शरण अग्रवाल
2. पद्मावत: राजनाथ शर्मा
3. जायसी एक नयी दृष्टि: रघुवंश
4. पद्मावत एक अनुशीलत: इन्द्रचन्द्र नारंग
5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: रामकुमार वर्मा
6. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ: डॉ0 शिवकुमार शर्मा
7. त्रिवेणी: आचार्य: रामचन्द्र शुक्ल

गाँधी जी के नई तालीम का अध्ययन करना

संजीव कुमार शुक्ल

शोध छात्र, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० कल्पना सिंह

शोध निर्देशिका, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षिप्त सारांश- प्रजातन्त्र की सफलता के लिए प्रौढ़ों को भी शिक्षा देना आवश्यक है। अशिक्षित होने के कारण वे आज के प्रगतिशील युग में अपने को समायोजित करने में असमर्थ पाते हैं। अनपढ़ व्यक्ति अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों से भी अनभिज्ञ रहते हैं इसलिए वे अपने को एक कुशल तथा जिम्मेदार नागरिक के रूप में भी सिद्ध नहीं कर पाते। अत: राज्य का कर्त्तव्य है कि वह निरक्षर व्यक्तियों का साक्षर बनाए। प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए राज्य को प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता अभियान के कार्यक्रमों की योजना तैयार करनी चाहिए। निरक्षरता का कारण सामाजिक रूढ़ियाँ, धार्मिक विश्वास, वर्ण व्यवस्था तथा जाति प्रथा है। आज प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान कराना नहीं है अपितु व्यावहारिक ज्ञान कराना है। व्यावहारिक जीवन में आर्थिक और सामाजिक लाभ मिल सके। प्रो0 वी0 के0 आर0 वी0 राव0 ने प्रौढ़ शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''प्रौढ़ शिक्षा और प्रौढ़ साक्षरता के बिना न तो देश का राजनैतिक विकास हो सकता है और न आर्थिक और सामाजिक विकास की गति को तीव्र बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द:- गाँधी जी के नई तालीम, ऐतिहासिक अनुसन्धान इत्यादि।

प्रस्तावना:- अन्तर्राष्ट्रीय जगत को यदि दृष्टिपथ में रखा जाय तो युद्ध की संभावना प्रबल होती दिखायी पड़ रही है। व्याप्त युद्ध के बादल चतुर्दिक मंडरा रहे हैं। इसके पीछे प्रगतिशील राष्ट्रों की शोषण की नीति है जो पूँजीवाद पर आधारित है चाहे वह व्यक्तिगत् पूँजीवाद हो या राज्य-नियंत्रित पूँजीवाद हो। गाँधी जी ने शान्ति का एक मार्ग दिखाया है। वह है अहिंसक क्रांति पर आधारित शान्ति का, सर्वोदय का। अत: यह आवश्यक है कि सूक्ष्म दृष्टि से गाँधी जी के विचारों का अध्ययन किया जाए। महात्मा गाँधी ने राजनीतिक, सामाजिक एवं अन्य क्षेत्रों में इतनी ख्याति अर्जित की और राजनीति तथा समाज के क्षेत्र में उनका योगदान इतना महान रहा कि उनका शिक्षा-क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्राय: लोगों की दृष्टि से ओझल हो जाता है, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में उनकी विचारधारा किसी उच्च कोटि की शिक्षाशास्त्री के विचारधारा से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। महात्मा गाँधी ने शिक्षा पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा, जिससे उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों को क्रमानुसार समझा जा सके। उन्होंने समय-समय पर अपने विचार सभाओं में तथा 'हरिजन' के अनेक लेखों में व्यक्त किये। उनके अनुसार शिक्षा के मूल्यों को अनुभव में ही खोजना चाहिए। शिक्षा की कोई भी योजना बने किन्तु शिक्षा के द्वारा बालक के व्यवहार में कुशलता का आना आवश्यक है। व्यवहार के कौशल प्राप्त करने के लिए बालक को हस्त कार्य, निरीक्षण, अनुभव, प्रयोग सेवा तथा प्रेम का आश्रय लेना होगा। इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को गाँधी जी कई नामों-नई तालीम, बुनियादी शिक्षा या बेसिक शिक्षा से सम्बोधित करते हैं। गाँधी जी का कहना है कि ''जो शिक्षा चित की शुद्धि न करे, निर्वाह का साधन न बनाये तथा भाषा-पाण्डित्य मौजूद हो, वह सच्ची शिक्षा नहीं है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि:- सन् 1916 में गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस लौटे और फिर देश की आजादी के लिये अपने कदम उठाना शुरु किये। सन् 1920 में काँग्रेस नेता बालगंगाधर तिलक की मृत्यु के बाद गाँधी जी ही काँग्रेस के मार्गदर्शक

बने। सन् 1914-1919 के बीच प्रथम विश्वयुद्ध हुआ था जिसमें आप द्वारा ब्रिटिश हुकूमत की सहायता इस शर्त के आधार पर की गयी कि वे वापस आने पर भारत को आजाद कर देंगे, परन्तु ऐसा कुछ अँग्रेजों ने नहीं किया। फिर गाँधी जी देश के आजादी के लिये कई आन्दोलन चलाये। प्रमुख आन्दोलन में असहयोग आन्दोलन 1920 का, अवज्ञा आन्दोलन 1930, अँग्रेजों भारत छोड़ों आन्दोलन 1942 का। वैसे तो गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन ही एक आन्दोलन रहा। गाँधी जी द्वारा सन् 1918 में चम्पारन और खेड़ा सत्याग्रह चलाया गया था जो शुरुआती व सफल आन्दोलन था जिसे ब्रिटिश लैंडलार्ड के खिलाफ चलाया गया था। जिसमें भारतीय किसानों को नील की खेती करने के लिये जोर दिया जा रहा था, जिससे किसान असहमत थे। वे गाँधी जी की मद् से यह आन्दोलन चलाये व सफल रहे। इसी वर्ष गुजरात प्रान्त में अवस्थित खेड़ा जिला बाढ़ की चपेट में था, जिससे वे किसान ब्रिटिश सरकार को टैक्स नही दे पा रहे थे, तो असहयोग आन्दोलन चलाकर आपने टैक्स में छूट दिलावायी थी। इस आन्दोलन में गाँधी जी को अपार जनसमर्थन मिला जिससे ब्रिटिश सरकार को टैक्स सम्बन्धी नियमों को संशोधित करना पड़ा। सन् 1919 में खिलाफत आन्दोलन किया गया जो डूबती काँग्रेस की बचाने के लिये किया गया। हिन्दू-मूस्लिम एकता द्वारा ब्रिटिश सरकार को निकालने के लिये आपने प्रयास शुरु किये, जिसके लिये आप द्वारा मुस्लिम समाज के साथ मिलकर वैश्विक स्तर पर मुस्लिम कालिफ के खिलाफ चलाया गया था। गाँधी द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र के मुस्लिम समाज के साथ एक कांफ्रेंस किया। इस आन्दोलन ने मुस्लिमों का बहुत सहयोग किया और इसी प्रयास ने गाँधी जी को राष्ट्रीय नेता बना दिया और काँग्रेस में उनकी खास जगह बन गयी परन्तु सन् 1922 में यह आन्दोलन बन्द हो गया और इसके बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये आप पूरी जिन्दगी लड़ते रहे और हिन्दू-मुस्लिम के बीच दूरियों बढ़ती गयीं।

अध्ययन का औचित्यः- गाँधी जी के दर्शन का आधार भारतीय आदर्शवाद है। उन्हें ईश्वर में अटल विश्वास था। उनके अनुसार हम सब अलग-अलग शरीर धारण करते हैं, परन्तु हम सब में आत्मा एक ही है। यह आत्मा उस परमात्मा का अंश है, जिसे कोई राम कहता है और कोई रहीम। कोई अल्लाह कहता है और कोई ईसा। वे कहते थे कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें अनगिनत हैं, परन्तु उन सब का स्रोत एक ही है, इसी प्रकार इस संसार में विभिन्नता के होते हुए भी इनका रचयिता एक ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि गाँधी जी ने विभिन्नता में एकता का दर्शन किया। उनके दर्शन के मोटे तौर पर चार प्रमुख तत्व हैं:-

1. सत्यः- गाँधी जी के जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना था। उनका विश्वास था कि संसार नाशवान है। केवल ईश्वर ही अमर है। अतः मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना है। वे कहते थे कि ईश्वर को प्राप्त करने का सबसे अच्छा साधन केवल एक ही है, वह है-सत्य। उनका विश्वास था कि सत्य सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है। इनमें अनेक सिद्धान्त विशेष रूप से शिवम् तथा सुन्दरम् निहित हैं। गाँधी जी के लिए ईश्वर और सत्य में कोई अन्तर न था। वे कहते थे कि यदि कोई व्यक्ति मन, वचन तथा कर्म अथवा कार्य में सत्य का प्रयोग करता है, तो उसे ईश्वर अवश्य प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार सत्य का अर्थ केवल वचन तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिए। इसलिए गाँधी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन को सत्य की खोज में व्यतीत किया।

2. अहिंसाः- अहिंसा गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। उनका विश्वास था कि सत्य पालन केवल अहिंसा के द्वारा ही सम्भव है। अतः गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा को एक-दूसरे से सम्बन्धित मानते हुए इस बात पर बल दिया कि यदि जीवन का लक्ष्य उस सत्य रूपी ईश्वर को प्राप्त करना है तो उसकी प्राप्ति का साधन केवल एक ही है वह हैं-अहिंसा। अहिंसा का अर्थ बताते हुए गाँधी जी ने स्वयं लिखा है-''अहिंसा प्रत्येक प्राणी के विरुद्ध द्वेष का अभाव है यह गतिशील दशा है इसका अर्थ चेतन रूप से कष्ट भोगना है। अहिंसा अपने सक्रिय रूप में जीवन के प्रति सद्भावना है। यह शुद्ध प्रेम है।''

3. निर्भयताः- गाँधी जी की अहिंसा नकारात्मक न होकर सकारात्मक थी जिसके अन्तर्गत निर्भयता तथा सत्याग्रह दो तत्व सम्मिलित थे। अतः निर्भयता गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है। गाँधी जी को विश्वास था कि बिना निर्भयता के सत्य तथा अहिंसा का पालन करना असम्भव है। इस दृष्टि से डरपोक तथा कायर व्यक्ति सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन नहीं कर सकता। निर्भयता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने लिखा है- ''निर्भयता का अर्थ है-समस्त वाह्य भयों से मुक्ति, जैसे बीमारी का भय, शारीरिक चोट का भय तथा मृत्यु का भय, सम्पत्तिविहीन होने का भय, अपने प्रियजन की मृत्यु का भय, प्रतिष्ठा खोने का भय, अनुचित कार्य करने का भय इत्यादि।''

4. सत्याग्रहः- गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह शब्द का अर्थ है-सत्य का दृढ़ अवलम्बन। यह सिद्धान्त सत्य तथा प्यार पर आधारित है। इसके अन्तर्गत विरोधी को कष्ट नहीं दिया जाता, अपितु उससे सत्य का समर्थ स्वयं कों कष्ट देकर कराया जाता है।

गाँधी जी के शब्दों में- ''इस सिद्धान्त का अर्थ है-विरोधी को कष्ट देकर नहीं अपितु स्वयं अपने आपको कष्ट देकर सत्य का समर्थन कराना।''

गाँधी जी के शिक्षा दर्शन में हमें प्रकृतिवादी, आदर्शवादी, यथार्थवादी तथा प्रयोजनवादी दर्शन का आभास मिलता है। गाँधी जी के दार्शनिक एवं शैक्षिक चिन्तन के आधार पर उनकी विचारधारा को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है-

साहित्यावलोकनः- साहित्य की समीक्षा का अर्थ, शोध के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके यह दिखाना है कि उसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र में एक योगदान रहा। साहित्य पुनरावलोकन का कार्य अत्यन्त सृजनात्मक एवं थकाने वाला होता है, क्योंकि शोधकर्त्रीओं को अपने अध्ययन को युक्ति पूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को विलक्षण ढ़ंग से एकत्र करना होता है।

गाँधी जी से सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षणः-

प्रीति (2018)- ''महात्मा गाँधी जी की शिक्षा नीति कुछ नहीं बल्कि वह सब कुछ है जिससे अंखण्ड भारत, चारित्रिक व आत्मनिर्भर स्वावलम्बी बनाने वाली है। इस नीति का कार्बनिक मिश्रण जॉन डी0 वी0 और रूसों के सिद्धान्तों का है जबकि प्रायोगिक ज्ञान लागू करने पर गरीब भारत के नाम से गरीबी हट जाती। इसके लिये गाँधी जी अपने प्रयोग दक्षिणी अफ्रीका से प्रारम्भ किया जो फेनिक्स व टालस्टाय आश्रम से होते हुये भारत में आकर इसके प्रयोग की साधना किये। गाँधी जी एक महान शिक्षाशास्त्री थे जो 07-14 वर्ष के विद्यार्थियों को अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा प्रदान करके आत्मनिर्भर व साहसी रोजगार परक तथा चरित्रवान व स्वावलम्बी बनाना चाहते थे।''

डामोर सूर्या (2019)- ''शिक्षा के सभी प्रश्न अन्ततः शिक्षण उपागम के प्रश्न होते है। यह कथन पूर्णतया सत्य है। शैक्षिक समस्यायों के समाधान के लिये शिक्षक उपागम अति आवश्यक है। इसके लिये हमें राष्ट्र के चिन्तकों की विचारधारा को अपनाना होगा। सभी विचारकों के दर्शनों का अध्ययन करने के पश्चात् शोधकर्त्ता द्वारा महात्मा गाँधी जी के शैक्षिक विचारों के महत्व को प्राथमिकता की गयी। अतः शोधकर्त्ता द्वारा महात्मा गाँधी जी के साहित्य का अध्ययन करके उनमें से शोध प्रबन्ध के प्रश्नों को खोजने का प्रयत्न किया गया।''

मिश्रा ज्योत्सनावली (2020)- ''महात्मा गाँधी जी भारत एक महामानव थे। उनका जीवन हमें सत्य के आधार पर चलने की प्रेरणास्रोत है। उनकी माता धार्मिक रही, जिसका उनके जीवन को सँवारने में बहुत ही सहायता मिली और वे अपना जीवन सत्य, अहिंसा व प्रेम केन्द्रित बनाये। उन्होंने अपना जीवन देश के स्वतन्त्रता हेतु आन्दोलन पर न्यौछारवर कर दिया, जिसमें असहयोग आन्दोलन ने अंग्रेजों के पैर उखाड़ दिया। महात्मा गाँधी आदर्शवादी चिंतक थे वे ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे और आत्मा के विकास के लिये तत्पर रहते थें। वे हमेंशा व्यक्ति की भौतिक व आत्मज्ञान का चरित्र देना चाहते थें। वे चाहते थे लोग मिलजुल कर रहेंगे, तो स्वस्थ व सबल भारत बन सकेगा। उन्हें सत्याग्रह करके आन्दोलन आगे बढ़ाकर देश को आजाद कराया और वर्ग संघर्ष समाज का हिन्दू मुस्लिम विद्वेष को दूर नहीं कर पाये जिससे देश दो भागों में विभाजित हो गया और वे हत्या के शिकार हुये।''

डार रईस अहमद (2021)-''तकनीकि की विधियाँ आज हमें बताती है कि पर्यावरण में बदलाव आ रहा है। जीवन जीने का स्तर में वृद्धि हो रही है। हृदय से हमें आदर्शवाद को स्वीकारना ही इन आदर्शों को अपने जीवन में उतारना होगा। महात्मा गाँधी जी का शिक्षा दर्शन मानवता लिये हुये आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, व्यवहारवाद तथा अस्तित्ववाद का सम्मिलित रूप है। महात्मा गाँधी जी अपने दर्शन में प्रकृतिवाद व व्यवहारवाद को उतारने को कहते है। महात्मा गाँधी जी का आदर्श सत्य, अहिंसा व प्रेम था जिसे अपने जीवन में आत्मीकरण कराने वाली प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा गया। करके सीखने को बढ़ावा देते है। महात्मा गाँधी जी इस पक्ष के थे कि बेसिक शिक्षा के अध्ययन से छात्र चरित्रवान, आत्मनिर्भर व कुशल शिल्प तैयार होगें और उनका व्यक्तित्व आत्मर्भिरता का स्वावलम्बी बनेगा।''

गोयल शिखा (2022)- ''महात्मा गाँधी जी का जीवन और संघर्ष विधियों का प्रभाव लोगों पर पड़ा आदमी की महानता जीवन के प्रभाव में दिखता हैं। अन्य में बदलाव की आवश्यकता है। गाँधी जी के जीवन के प्रयोग को इसमें लगाना था। जो उनकी मृत्यु के दशकों बाद पढ़ने के काबिल है। उनकी जीवन शैली वर्तमान में लोगों के लिये प्रेरणा स्रोत है।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि. ''गाँधी जी के नई तालीम का अध्ययन करना।''

अध्ययन विधिः-शोध करने की विधि कालक्रम के अनुसार निर्धारित किया जाता है जिसमें भूतकाल पर आधारित अनुसंन्धान ऐतिहासिक द्वारा किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन भूतकालीन व्यवस्था का है जिसे पूर्ण करने में ऐतिहासिक शोध का प्रयोग किया जाता है।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण व व्याख्याः- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''गाँधी जी की नयी तालीम का अध्ययन करना'' इसके लिये पुस्तकालय के ग्रन्थों से निम्नलिखित सामग्री का संकलन किया।

वर्धा योजनाः- अंग्रेजों की द्वैध शासन प्रणाली से भारतीय सन्तुष्ट नहीं थे। वे उसकी समाप्ति की माँग कर रहे थे। समय के नब्ज पहचानते हुए ब्रिटिश संसद ने 1935 में 'भारत सरकार अधिनियम, 1935 पास किया। यह अधिनियम 1937 में लागू किया गया। इस अधिनियम से भारत में द्वैध शासन की समाप्ति हुई और प्रान्तों में स्वशासन स्थापित हुआ। उस समय भारत 11 प्रान्तों में विभाजित था। इन 11 प्रान्तों में से 07 प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्री मण्डल बने और एक नए युग की शुरुआत हुई। उस समय राष्ट्र का नेतृत्व गाँधी जी के हाथों में था। उन्होंने 11 अगस्त 1937 के अखबार में प्रान्तीय सरकारों को 07 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लेने का सुझाव दिया। उसके बाद उन्होंने 02 अक्टूबर 1937 के हरिजन में लिखा कि प्राथमिक शिक्षा 07 वर्ष या इससे अधिक समय की हो और इसमें अंग्रेजी को छोड़कर वे सब विषय विषय पढ़ाए जाएँ जिन्हें मैट्रीकुलेशन परीक्षा के लिये पढ़ाया जाता है। साथ ही किसी हस्तशिल्प अथवा उद्योग को अनिवार्य रूप से पढ़ाया-सिखाया जाए। गाँधी जी के इन विचारों से देश में एक नई शैक्षिक क्रान्ति का शुभारम्भ हुआ।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन, वर्धाः- 22-23 अक्टूबर 1937 को वर्धा में 'मारवाड़ी शिक्षा मण्डल' की रजत जयन्ती मनाई जाने वाली थी। श्रीमन्नारायण अग्रवाल इसके आयोजक थे। गाँधी जी ने उन्हें इस अवसर पर एक शिक्षा सम्मेलन का आयोजन करने का सुझाव दिया। अग्रवाल साहब ने इस अवसर पर भारत के सातों कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के शिक्षा मन्त्रियों और देश के चोटी के शिक्षाशात्रियों, विचारकों और राष्ट्रीय नेताओं को आमन्त्रित किया और 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' का आयोजन किया। इसे 'वर्धा शिक्षा सम्मेलन' भी कहा जाता है। इस सम्मेलन का सभापतित्व स्वयं गाँधी जी ने किया था। सभापति पद से बोलते हुए गाँधी जी ने अपने शैक्षिक विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने तत्कालीन शिक्षा को अपव्ययपूर्ण और हानिप्रद बताया। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में 07 मूलभूत बातें कहीं। पहली यह है कि देश में 07 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो। दूसरी यह है कि यह शिक्षा सभी के लिए समान हो। तीसरी यह कि यह शिक्षा देश की ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं के अनुरुप हो। चौथा यह कि इसमें भाषा, गणित आदि की शिक्षा के साथ-साथ बच्चों को सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, भोजन के नियम और माता-पिता के कार्यों में हाथ बँटाने की शिक्षा दी जाए। पांचवी यह है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। छठी यह कि इसमें कृषि और भारतीय हस्त कौशलों की शिक्षा दी जाए। और सातवीं तथा अन्तिम यह कि समस्त शिक्षा हस्तकौशलों के माध्यम से दी जाए और शिक्षा को स्वावलम्बी बनाया जाए। उन्होंने इस बात पर बहुत बल दिया कि स्कूलों में होने वाले उत्पादन से स्कूलों का व्यय निकलना चाहिए और इस शिक्षा को प्राप्त करने के बाद बच्चे अपनी जीविका कमाने योग्य होने चाहिए। गाँधी जी के इन विचारों पर खुलकर चर्चा हुई और अन्त में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुए-

1. राष्ट्र के 07 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
3. शिक्षा किसी हस्तकौशल के माध्यम से दी जाए।
4. इस स्तर का पाठ्यक्रम बच्चों की अपनी आवश्यकताओं के आधार पर बनाया जाए।
5. यह शिक्षा स्वावलम्बी हो, स्कूलों में होने वाले उत्पादन से शिक्षकों के वेतन का भुगतान किया जा सके।

डॉ0 जाकिर हुसैन समिति, 1937:- अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन वर्धा में प्रस्तावित राष्ट्रीय शिक्षा योजना को अन्तिम रूप देने के लिए जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ0 जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इसे जाकिर हुसैन समिति कहा जाता है। समिति ने अपनी रिपोर्ट दो भागों में प्रस्तुत की। प्रथम रिपोर्ट दिसम्बर 1937 में प्रस्तुत की। इसमें वर्धा शिक्षा योजना के सिद्धान्त पाठ्यक्रम प्रशासन और निरीक्षण कार्य पर प्रकाश डाला गया था। दूसरी रिपोर्ट अप्रैल 1938 में प्रस्तुत की। इसमें आधारभूत हस्तकौशलों से पाठ्यक्रम के अन्य विषयों का सहसम्बन्ध स्थापित करने पर प्रकाश डाला गया था। समिति ने इस योजना को बुनियादी तालीम का नाम दिया।

हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन, 1938:- फरवरी 1938 में हरिपुरा में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में डॉ0 जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट को प्रस्तुत किया गया। कांग्रेस ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया और साथ ही इसे सभी कांग्रेस शासित प्रदेशों में लागू करने का निर्णय लिया। आज इसे ही वर्धा शिक्षा योजना, बुनियादी तालीम, बुनियादी शिक्षा और बेसिक शिक्षा कई नामों से जाना जाता है, परन्तु अंग्रेजी में बेसिक एजूकेशन ही कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में इसे बेसिक शिक्षा का नाम दिया गया है, अत: हम इसे बेसिक शिक्षा के नाम से ही प्रस्तुत कर रहे है।

बेसिक शिक्षा:- डॉ0 जाकिर हुसैन द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार जो बेसिक शिक्षा हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में स्वीकार की गई यहाँ उसका क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है।

बेसिक शिक्षा की रूपरेखा:- प्रारम्भ में बेसिक शिक्षा निम्नलिखित रूप में स्वीकार की गई थी-

1. 07 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
3 सम्पूर्ण शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प अथवा उद्योग पर आधारित हो।
4. शल्प का चुनाव बच्चों की योग्यता और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए।
5. बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपयोग हो और उनसे आर्थिक लाभ किया जाए, स्कूलों का व्यय पूरा किया जाए।
6. शिल्पों की शिक्षा इस प्रकार दी जाए कि उससे बच्चे जीविकोपार्जन कर सकें।
7. शिल्पों की शिक्षा में आर्थिक महत्व के साथ-साथ उसके सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व को स्थान दिया जाए।

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त:- बेसिक शिक्षा निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्तों पर विकसित की गई थी-

1. शिक्षा को अनिवार्य एवं नि:शुल्क बनाने का सिद्धान्त:- गाँधी जी शिक्षा को मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि किसी बच्चे को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना उसके अधिकार का हनन, है यह कार्य असत्य है और मानवीय कसौटी पर हिंसा है। उन्होंने सर्वप्रथम इस बात पर ही बल दिया कि राज्य को 07 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

2. शिक्षा को आत्मनिर्भर अर्थात् सैल्फ सपोर्टिंग बनाने का सिद्धान्त:- गाँधी जी के सामने सार्वभौमिक अनिवार्य और नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न था और उस समय राज्य के पास इसकी व्यवस्था करने के साधन नहीं थे। अत: उन्होंने स्कूलों में हस्तशिल्पों की शिक्षा अनिवार्य करने पर बल दिया। उनका अनुमान था कि बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुओं से स्कूलों का व्यय निकल सकेगा।

3. सत्य, अहिंसा और सर्वोदय का सिद्धान्त:- गाँधी जी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। वे समाज में होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण को हिंसा मानते थे। और उस समय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों का शोषणा कर रहे थे। तभी गाँधी जी ने सबके लिए समान शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार किया, इनमें छोटे-बड़े का भेद नहीं होगा, कोई किसी का शोषण नहीं करेगा, सबको अपने उत्थान के समान अवसर प्राप्त होंगे।

4. शिक्षा को जीवन से जोड़ने का सिद्धान्त:- उस समय अंग्रेजी शिक्षा का भारतीयों के वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। गाँधी जी ने शिक्षा को बच्चों के वास्तविक जीवन, उनके प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण और घरेलू एवं क्षेत्रीय उद्योग धन्धों पर आधारित कर उसे उनके वास्तविक जीवन से जोड़ने पर बल दिया।

5. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनाने का सिद्धान्त:- गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि मातृभाषा पर बच्चों का स्वाभाविक अधिकार होता है, उसी के माध्यम से जन शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। यही कारण है कि बेसिक शिक्षा में अभिव्यक्ति के आधारभूत माध्यम मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना सिद्धान्त: स्वीकार किया गया।

6. शिक्षा को हस्तकौशलों पर केन्द्रित करने का सिद्धान्त:- शिक्षा को किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग पर केन्द्रित करने के पीछे गाँधी जी के कई विचार थे। पहला यह कि वे बच्चों को कायिक श्रम का महत्व बताना चाहते थे। दूसरा यह कि वे बच्चों को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे, उन्हें जीविकोपार्जन करने योग्य बनाना चाहते थे। तीसरा यह है कि वे सबका उदय करना चाहते थे। चौथा यह कि वे शिक्षा को गाँवों के जीवन से जोड़ना चाहते थे। और पाँचवा एवं अन्तिम यह कि वे शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे, स्कूलों में होने वाले उत्पादन से स्कूलों का व्यय निकालना चाहते थे।

7. ज्ञान को एक ईकाई के रूप में विकसित करने का सिद्धान्तः- यदि भौतिक दृष्टि से देखें तो शिक्षा का एक ही लक्ष्य होता है-मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिए तैयार करना। तब पाठ्यचर्या के समस्त विषयों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध मनुष्य के वास्तविक जीवन से होना चाहिए। इसी दृष्टि से गाँधी जी ने ज्ञान को पूर्ण इकाई के रूप में विकसित करने पर बल दिया था। उनके इसी विचार ने शिक्षण का सहसम्बन्ध विधि को जन्म दिया। मोवैज्ञानिक दृष्टि से भी ज्ञान पूर्ण इकाई होता है, उसे पूर्ण ईकाई के रूप में ही विकसित करना चाहिए।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्यः- बेसिक शिक्षा का अर्थ है-बच्चों के आधारभूत ज्ञान एवं कौशल का ज्ञान करना, उन्हें सामान्य जीवन के लिए तैयार करना। इस हेतु बेसिक शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य निर्शिचत किए गए-

1. शारीरिक एवं मानसिक विकासः- गाँधी जी इस तथ्य से अवगत थे कि मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी है इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास पर बल दिया और तदनुकूल शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण करने पर बल दिया।

2. सर्वोदय समाज की स्थापनाः- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः शिक्षा द्वारा मनुष्य का सामाजिक विकास होना चाहिए। परन्तु गाँधी जी का सामाजिक विकास से एक विशिष्ट अर्थ था। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें कोई किसी का शोषण नहीं करेगा, सब एक-दूसरे से प्रेम करेंगे, सब एक-दूसरे का सहयोग करेंगे, सब एक-दूसरे की उन्नति में सहायक बनेंगे, सबका उदय होगा।

3. सांस्कृतिक विकास- उस काल में उच्च वर्ग के भारतीय पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक होते जा रहे थे। तब गाँधी जी ने बड़े बलपूर्वक लिखा था कि यदि किसी स्थिति में पहुँचकर कोई पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयासों से पूर्णयता अनभिज्ञ हो जाती है या उसे अपनी संस्कृति पर लज्जा आने लगती है तो वह नष्ट हो जाती है। इसलिये उन्होंने अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए बेसिक शिक्षा का विधान किया था।

4. चारित्रिक एवं नैतिक विकास- गाँधी जी चरित्र बल के महत्व को जानते थे। उनके साथियों ने भी शिक्षा द्वारा बच्चों के चरित्र निर्माण पर बल दिया। यह बेसिक शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

5. व्यावसायिक विकास- गाँधी जी ने इस सम्बन्ध में दो बात कहीं-पहली यह है कि बच्चों को जो भी हस्तकौशल सिखाए जाएँ उनसे स्कूलों में इतना उत्पादन हो कि उसके विक्रय लाभ से स्कूलों का व्यय निकाला जा सके और दूसरी यह कि- इन हस्तकौशलों अथवा उद्योगों को सीखने के बाद बच्चे अपनी जीविका कमा सकें। गाँधी जी ने आर्थिक अभावों से मुक्ति पाने के लिए इसे सबसे अधिक महत्व दिया। उनके सभी साथी उनके तर्क से सहमत थे।

6. नगरिकता का विकास- राष्ट्र की दृष्टि से व्यक्ति नागरिक कहा जाता है। किसी भी राष्ट्र के नागरिकों के लिए यह आवश्यक होता है कि राष्ट्र के नियमों का पालन करें, राष्ट्र के प्रति वफादार हों, अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, अपने अधिकारों की रक्षा करें। किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का यह प्रमुख उद्देश्य होता है। बेसिक शिक्षा एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना है, इसका यह उद्देश्य होना स्वाभाविक है।

7. आध्यात्मिक विकास- गाँधी जी के अपने शब्दों में-'शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर मन और आत्मा के सर्वागीण और सर्वोकृष्ट विकास से है, तब स्पष्ट है कि गाँधी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य का आध्यात्मिक विकास भी करना चाहते थे। परन्तु इसके लिए वे किसी धर्म की शिक्षा दिए जाने के पक्ष में नहीं थे, वे समभाव द्वारा इसकी प्राप्ति पर बल देते थे।

बेसिक शिक्षा की पाठ्यचर्याः- बेसिक शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अग्रांकित क्रियाप्रधान पाठ्यचर्या का निर्माण किय गया-

1. हस्तकौशल एवं उद्योग (कताई, बुनाई, बागवानी, कृषि, काष्ठ कला, चर्म कार्य, पुस्तक कला, मिट्टी का काम और मछली पालन आदि)
2. मातृभाषा
3. हिन्दुस्तानी (हिन्दी), उनके लिए जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।
4. व्यावहारिक गणित (नाप-तौल, अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित)
5. सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र एवं सामाजिक अध्ययन)

6. सामान्य विज्ञान (प्रकृति निरीक्षण, बागवानी, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान और गृह विज्ञान)
7. संगीत
8. चित्रकला
9. स्वास्थ्य विज्ञान (सफाई, व्यायाम एवं खेलकूद)
10. आचरण शिक्षा (नैतिक शिक्षा, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्सवों का मनाना और समाज सेवा कार्य)

विशेष- इसमें सर्वाधिक महत्व हस्तकौशल एवं उद्योगों को दिया गया था। प्रारम्भ में इसके लिए 05 घण्टा 30 मिनट में से 03 घण्टे 20 मिनट प्रतिदिन का समय निश्चित किया गया था, बाद में यह समय घटा दिया गया।

1. कक्षा 05 तक सबके लिए समान पाठ्यचर्या। कक्षा 06 में छात्राएँ आधारभूत शिल्प में गृह विज्ञान ले सकती थी। बाद में कक्षा 07 औा 08 में वाणिज्य, संस्कृत और आधुनिक भारतीय शिक्षा की व्यवस्था भी की जाने लगी।
2. बेसिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में धार्मिक शिक्षा के स्थान नहीं दिया गया है केवल सर्वधर्मसम्मत नैतिक शिक्षा को ही स्थान दिया गया है।

बेसिक शिक्षा की शिक्षण विधिः- बेसिक शिक्षा में परम्परागत् कथन और पुस्तक प्रणाली के स्थान पर क्रियाप्रधान शिक्षण विधि पर बल दिया गया है। इस विधि की मुख्य विशेषताएँ हैं-

1. बेसिक शिक्षा में क्रिया एवं अनुभवों को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। बच्चों को प्रकृति का निरीक्षण करने और सामाजिक कार्यों में भाग लेने के अवसर दिए जाते हैं और इस प्रकार उन्हें स्वयं अनुभव द्वारा सीखने के अवसर दिए जाते हैं।
2. बेसिक शिक्षा में समस्त विषयों एवं क्रियाओं को एक-दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाता है, इसे सहसम्बन्ध विधि कहते हैं। प्रारम्भ में सहसम्बन्ध का आधार किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग को ही रखा गया था, आगे चलकर प्राकृतिक पर्यावरण अथवा सामाजिक पर्यावरण को भी उसका आधार बनाए जाने की स्वीकृति दी गई। इस विधि में बच्चे वास्तविक परिस्थितियों में वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हुए वास्तविक ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करते हैं और उस सबको एक पूर्ण इकाई के रूप में प्राप्त करते हैं।
3. बेसिक शिक्षा में बच्चों को जीवन की वास्तविक क्रियाओं के माध्यम से वास्तविक ज्ञान कराया जाता है।
4. बेसिक शिक्षा में मातृभाषा का ज्ञान भी स्वाभाविक रूप से कराया जाता है- पहले मौखिक भाषा (सुनना-बोलना) सिखाई जाती है उसके बाद लिखित भाषा (पढ़ना और लिखना) सिखाई जाती है।
5. बेसिक शिक्षा में बच्चों को आत्मभिव्यक्ति के स्वतन्त्र अवसर प्रदान किए जाते है।

बेसिक शिक्षा में शिक्षकः- डॉ0 जाकिर हुसैन समिति ने इस बात पर बल दिया कि प्राथमिक स्तर पर पुरूष शिक्षकों के स्थान पर महिला शिक्षिकाओं को वरीयता दी जाए। साथ ही इस बात पर बल दिया कि प्राथमिक शिक्षक कम से कम मैट्रिक पास हों और शिक्षण प्रशिक्षण प्राप्त हों।

बेसिक शिक्षकों का प्रशिक्षणः- प्रारम्भ में बेसिक शिक्षा के शिक्षकों के लिए दो प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई-एक तीन वर्षीय प्रशिक्षण की और दूसरी एक वर्षीय प्रशिक्षण की। तीन वर्षीय प्रशिक्षण उनके लिए जिन्हें प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने का कोई अनुभव नहीं था या तीन वर्ष से कम का अनुभव था और एक वर्षीय प्रशिक्षण उनके लिए जिन्हें तीन वर्ष से अधिक का शिक्षण अनुभव था।

बेसिक शिक्षा में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाः- गाँधी जी यह बात जानते थे कि विभिन्न धर्मो वाले इस देश में किसी एक धर्म की शिक्षा देना सभी को स्वीकार नहीं होगा। फिर इस बेसिक शिक्षा का अन्तिम रूप देने वाले भी विभिन्न धर्मावलम्बी थे। यही कारण है कि इसमें धार्मिक शिक्षा को स्थान न देकर सर्वधर्मसम्मत नैतिक शिक्षा देने की ही व्यवस्था की गई।

बेसिक शिक्षा का मूल्यांकन एवं गुण-दोष विवेचनः- किसी वस्तु विचार अथवा क्रिया का मूल्यांकन कुछ मूलभूत मानदण्डों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका आयोजन समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए

किया जाता है, उसके हित साधन के लिए किया जाता है। तब बेसिक शिक्षा का मूल्यांकन भारतीय समाज के लिए उसकी उपयोगिता के आधार पर किया जाना चाहिए। इस कसौटी पर कसने पर बेसिक शिक्षा में निम्नलिखित गुण-दोष उजागर होते हैं-

बेसिक शिक्षा के गुण:- सच बात तो यह है कि सिद्धान्त रूप में तो यह योजना बड़ी उपयोगी नजरआती है परन्तु प्रयोग रूप एकदम अनुपयुक्त रही है। इसके सिद्धान्तों को ही हम इसके गुण मान सकते हैं।

1. **आत्मनिर्भर योजना:-** उस समय सरकार के पास अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्रथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। बेसिक शिक्षा को हस्तकौशलों पर आधारित कर उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से स्कूलों का व्यय निकालने का विचार बड़ा उपायोगी लगता था। ऐसी नहीं हो पाया, यह दूसरी बात है।
2. **मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल:-** बेसिक शिक्षा में मनुष्य के शारीरिक,मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक विकास पर बल दिया गया है। यह बात दूसरी है कि हम इसके द्वारा इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सके।
3. **वास्तविक जीवन की तैयारी-** उस समय हमारा देश ग्रामों का देश था, इसलिए बेसिक शिक्षा में बच्चों को ग्रामीण उद्योग-कृषि एवं पशुपालन आदि और ग्रामीण हस्तकौशलों-कताई एवं बुनाई की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने की व्यवस्था की गई थी और यह आशा की गई थी कि इसे प्राप्त करने के बाद वे अपनी जीविका कमा सकेंगे। सिद्धान्त: यह बात बहुत अच्छी है। यह बातदूसरी है कि हम बेसिक शिक्षा द्वारा ऐसा नहीं कर सके।
4. **भारतीयों के लिए आधारभूत पाठ्यचर्या-** बेसिक शिक्षा भारतीयों के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित है। इसमें मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त आवश्यक विषयों और सामाजिक क्रियाओं को स्थान दिया गया है और सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें हिन्दुस्तानी (हिन्दी) को पूरे देश के बच्चों के लिए अनिवार्य किया गया है। काश हम ऐसा कर सके होते तो पूरा देश एक सूत्र में बँध गया होता।
5. **वर्ग भेद की समाप्ति-** हमारे देश में जाति, धर्म और श्रम आदि अनेक आधारों पर अनेक प्रकार के वर्ग हैं। बेसिक शिक्षा में सबके लिए समान शिक्षा और सबके लिए समान सेवा कार्य की व्यवस्था की गई है। इस सबसे वर्ग भेद यदि समाप्त नहीं तो कम तो किया ही जा सकता है।
6. **शारीरिक एवं मानसिक श्रम के अन्तर की समाप्ति-** उस समय अंग्रेज हमें थोड़ी सी अंग्रेजी सिखा कर बाबू बना देते थे, हमारा ओहदा ऊँचा कर देते थे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मानसिक श्रम करने वाले शारीरिक श्रम करने वालों को हेय समझने लगे। बेसिक शिक्षा में सभी बच्चों के लिए हस्तकौशल अथवा उद्योग की शिक्षा और समाज सेवा कार्य अनिवार्य किए गए। जब सब श्रम करेंगे तो श्रम करने वालों को हेय कौन समझेगा ? इससे वर्ग भेद की समाप्ति होनी चाहिए थी। यह बात दूसरी है कि ऐसा कुछ नहीं हो पाया।
7. **क्रियाप्रधान शिक्षण विधि-** बेसिक शिक्षा में वास्तविक परिस्थितियों में वास्तविक क्रियाओं में भाग लेते हुए स्वयं के अनुभव से सीखने के अवसर दिए जाते हैं। यह सीखने की मनोवैज्ञानिक विधि है। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान एवं कौशल स्थायी होता है।
8. **समस्त ज्ञान एवं क्रियाओं में एकीकरण-** बेसिक शिक्षा में ज्ञान और क्रिया को अभिन्न माना जाता है और पाठ्यचर्या के समस्त विषयों एवं क्रियाओं को किसी हस्तकौशल अथवा उद्योग अथवा प्राकृतिक पर्यावरण अथवा सामाजिक पर्यावरण के माध्यम से एक इकाई के रूप में विकसित किया जाता है। बेसिक शिक्षा में इसे समवाय विधि कहते हैं।यह शिक्षण की एक उपयुक्त विधि है।
9. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा-** यूँ उस समय तक अंग्रेजों ने भी प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही बना दिया था, परन्तु इसके साथ अंग्रेजी माध्यम के प्राथमिक स्कूल भी चल रहे थे। गाँधी जी ने केवल मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर बल दिया। तभी समानता आ सकती है।
10. **विद्यालय और समाज में निकट का सम्बन्ध-** अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली में विद्यालयों का भारतीय जन-जीवन से निकट का सम्बन्ध नहीं था। बेसिक शिक्षा में विद्यालयों और समाज के इस अन्तर को समाप्त किया गया। विद्यालयों में समाज की भाषा, समाज के हस्तकौशल, समाज के उद्योग समाज के उत्सव और समाज की अन्य क्रियाओं को स्थान दिया गया। इससे विद्यालय और समाज में निकट का सम्बन्ध स्थापित हुआ।

शोध निष्कर्षः- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष प्राप्त हुये है-

महात्मा गाँधी जी की नई तालीम शिक्षा व्यवस्था में छात्र आत्मसंयमी, सक्रिय, निपुण, कौशलयुक्त, शिल्प का जानकार, चरित्रवान तथा अच्छा भारतीय नागरिक राष्ट्रभक्त तैयार किया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थः- संस्कृति का शिक्षा के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक समाज की शिक्षा-व्यवस्था का उस समाज की संस्कृति पर स्पष्ट प्रभाव होता है। समाज की शिक्षा व्यवस्था का आधार समाज की आवश्यकताएँ होती है, इनकी पूर्ति शिक्षा द्वारा ही की जाती है। शिक्षा-व्यवस्था पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। हम जो कुछ भी लिखते हैं। उस पर हमारी संस्कृति पर स्पष्ट छाप होती है और वह शिक्षा के साथ संस्कृति के घनिष्ठ सम्बन्ध को सिद्ध करती है। सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि का सीधा प्रभाव हमारे सोचने, समझने, कार्य-करने स्मरण करने आदि क्रियाओं पर पड़ता है। व्यक्ति उन तत्वों को शीघ्र अपनाने का प्रयास करता है जो समाज में उच्च मान्यता प्राप्त किये हुए होती है और संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग मानी जाती है। संस्कृति समाज में अन्य वस्तु को सीखने और धारण करने की अमान्य वस्तुओं के भूल जाने की प्रेरणा देती है। स्पष्ट है कि शिक्षा और संस्कृति का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ऐसे समाज जो कम विकसित होते हैं जहाँ केवल मानव जीवन को सामान्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है वहाँ शिक्षा व्यवस्था भी साधारण होती है चूँकि संस्कृति जटिल होती है। संस्कृति के स्वरूप के जटिल होने से ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करने के लिए सर्वाधिक शिक्षा की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए विद्यालयों की जरुरत होती है। संसार में अनेक संस्कृति हैं उन सबके तत्वों में वैभिन्नय है। संस्कृति और शिक्षा दोनों एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित करती है निम्न तथ्यों के माध्यम से माना जा सकता है।

सन्दर्भ गन्थ सूचीः

- डामोर सूर्या (2019); ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों का वर्तमान समय में तुलनात्मक अध्ययन'' ई0 जर्नल ऑफ मल्टी डिसिप्लनरी रिसर्च एण्ड डेपलपमेंट वाल0 1, इसू- 01 अप्रैल 2019, ISSN 2581-9135.
- सिंह एन0 के0 (2020); ''राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी की नई तालीम शिक्षा पद्धति का स्वरूप एवं शिक्षा दर्शन'' रिसर्च गेट.
- रानी सुनील (2020); ''महात्मा गाँधी जी के शैक्षिक चिन्तन का अध्ययन तथा वर्तमान भारतीय समाज में उसकी सार्थकता'' IJAER ISSN 3435-5746.
- प्रभात कुमार जैन (2020); ''महात्मा गाँधी जी और बेसिक शिक्षा'' उदृत महात्मा गाँधी जी फ्राम होली डीड्स दो अनहोली डेथ बुक्स ISBN -978-81-947224-7.2.
- मिश्रा ज्योत्सनावली (2020); ''ए ब्रीफ विव ऑफ गाँधी जी लाइफ ऐंड फिलोसोफी'' शोध छात्रा, तिब्रूगढ़ यूनिवर्सिटी आसाम.
- गुर्जर गोपाल (2021); ''महात्मा गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा की संकल्पना: बुनियादी प्रश्नों की बुनियादी पड़ताल'' साहित्य व समाज का दस्तावेजीकरण गुरुवार, दिसम्बर30. 2021.
- हुमायूँ कबीर विश्वास (2021); ''ए स्टडी ऑन महात्मा गाँधी जी बेसिक एज्यूकेशन एण्ड इट्स रेजीवेंस इन द मार्डन एज्यूकेशन'' इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेंस इन सांइटिफिक रिसर्च एण्ड डेवेलवमेंट बाल-05, इसू-02 पैछ 2456-6470.
- डार रईस अहमद (2021); ''एज्यूकेशनल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी ऐंड डॉ. मोहम्मद इकबाल एण्ड रेलीवेंस टू कन्टेम्पोरेटी वर्ल्ड सरताज अहमद भट्'' IJAMSR 2581-4287.
- यादव अजय (2022); ''महात्मा गाँधी जी'' रिसर्च सेंटर राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर.
- गोयल शिखा (2022); ''महात्मा गाँधी जी बायोग्राफी: फेमिली, एज्यूकेशन, हिस्ट्री मूवमेंट्स एण्ड फैक्ट्स'' जोश 30 जनवरी 2022.
- टंडन श्रुति (2022); ''गाँधी जी के शैक्षिक विचार'' शोध-पत्र मेन्थ्रू

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन का अध्ययन

निमेश कुमार सिंह

शोधार्थी, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़

डॉ० निशात परवीन

शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़

संक्षिप्त सारांश: सन् 1947 में भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। तब स्वतन्त्र भारत के संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व नि:शुल्क बनाने का संकल्प किया। इसमें कहा गया है कि ''संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र के सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु होने तक नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। ''इस संवैधानिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अनेक राज्यों में प्राथमिक शिक्षा अधिनियम बनाये गये जिनमें प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व नि:शुल्क बनाने के कार्यक्रम व नीति निर्धारित की गई है। परन्तु संवैधानिक निर्देश तथा राज्यों द्वारा पारित अधिनियमों के बावजूद भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व नि:शुल्क बनाने का प्रयास अभी तक पूरा नहीं हो सका है।

मुख्य शब्द:- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, गर्ंिव ब्त् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- प्रस्तुत अध्ययन शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है इसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास, ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है, और उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इस सम्बन्ध में भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री प0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''यदि हमारे बच्चों को आज शिक्षा से वंचित रखा जायेगा, तो हमारे भारत की कल क्या दशा होगी? देश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्रदान करना राज्य का कर्त्तव्य है और मैं यह भी कहना चाहूँगा, कि देश के प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान का दायित्व राज्य का कर्त्तव्य है।''

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी शिक्षा के अधिकार को मानवाधिकार की मान्यता प्रदान की है। शिक्षा के अधिकार को मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 26 में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रंसविदा की धारा 14 में स्थान दिया गया है। प्रत्येक राष्ट्र की सरकार अपने प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय विधि से सम्बद्ध है। भारत में भी अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा देश के बच्चों के प्रति अपने दायित्व निर्वहन के प्रयास हेतु अनेक कार्यक्रम चलाए तथा अधिनियम पारित किये गये इन सब में मील का पत्थर साबित होने वाला कानून है, शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009)। नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मांग सन् 1882 ई0 में दादा भाई नौरोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग के सामने रखी थी। सन् 1911 में प्रसिद्ध राजनैतिक नेता व शिक्षाविद् श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए अपना प्रसिद्ध 'गोखले बिल' प्रस्तुत किया। सन् 1918 में विट्ठलभाई पटेल के प्रयासों से एक कानून

बनाकर मुम्बई म्यूनिसिपल क्षेत्र में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसका अनुसरण करते हुए सन् 1919 में बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल व उडिघ्सा ने 1920 में मध्य प्रदेश व असम में तथा 1951 में मैसूर में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम बनाये गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुच्छेद 45 के माध्यम से देश में अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा देने का प्रावधान किया गया। भारतीय संविधान में 86 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा 6-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए शिक्षा के मौलिक अधिकार का प्रावधान है। इस अधिनियम की विशेष बात यह है कि गरीब परिवारों के वे बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा से वंचित है, उनके लिए निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान रखा गया है। विधि आयोग ने निजी विद्यालयों में शिक्षा से वंचित बच्चों के लिए आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत करने का सुझाव दिया था। यह विधेयक कैबिनेट द्वारा 2 जुलाई 2009 को स्वीकृत किया गया। राज्य सभा ने इस बिल को 20 जुलाई, 2009 को व लोक सभा ने 4 अगस्त, 2009 को पारित किया तथा 26 जुलाई, 2009 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के बाद 27 अगस्त 2009 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया। अप्रैल 2010 से इसे लागू कर दिया गया है।

अध्ययन का औचित्य:- स्वतन्त्रता के बाद से आज तक भारत सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के विकास के सन्दर्भ में कोई समितियाँ एवं योजनाएँ चलाई गयी तथा आजादी के समय से तुलना किया गया तो यह भी तथ्य सामने आया है कि आज हमारी प्राथमिक शिक्षा काफी विकसित हो चुकी है, लेकिन क्या वास्तव में भारत सरकार भारत के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान कर रही है? क्या जिन बच्चों को प्राथमिक शिक्षा मिल रही है उसका गुणात्मक स्तर उच्च है? इस प्रश्नों का उत्तर अवश्य ही एक विचारणीय तथ्य है, क्योंकि नियमों एवं कानूनों के बनने एवं उनके क्रियान्वयन में जमीन-आसमान का अन्तर है। शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों में अधिक शुल्क लिया जाता है जिससे शिक्षा अधिकार अधिनियम का उल्लंघन हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति और भी गम्भीर है। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों की पर्याप्त संख्या में अभाव जिससे छात्र-अध्यापक अनुपात असंतुलित होने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। इस हेतु विशेष प्रयास करने होगें, साथ ही छात्रों में शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए आधारभूत सुविधाएँ प्रदान की जाय। किन्तु आज भी ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षकों, कक्षा-कक्ष, खेल-कूद सामग्री, शारीरिक प्रशिक्षण, बैठक व्यवस्था आदि की पर्याप्त सुविधाएँ न होना भी अधिनियम के मूल उद्देश्यों गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा के क्रियान्वयन पर रोक लगा देता है। अधिनियम में शिक्षा के विकास के लिए सरकारी एवं निजी क्षेत्र की सहभागिता की बात की गयी है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सभी का सहयोग अपेक्षित है। निजी विद्यालयों में सरकारी विद्यालयों की तुलना में ऊँचा शुल्क वसूल किया जाता है वहाँ 25 प्रतिशत आरक्षण कमजोर वर्ग को दिये जाने का प्रावधान है लेकिन सशय पैदा कर देता है कि क्या ये 25 प्रतिशत स्थान झूठे आय प्रमाण-पत्र प्रस्तुत कर समृद्ध अभिभावकों की संताने इस सम्भ्रान्त विद्यालयों में प्रवेश ले सकने में सफल होंगे। फलत: शिक्षा के माध्यम से असमानताएँ फलेंगी।

साहित्यावलोकन:- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोशों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है जिनके अध्ययन के माध्यम से अनुसंधानकर्त्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं का निर्माण, अध्ययन की रूप रेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

यादव यशवन्त (2019); ‘‘संसद में 04 अगस्त 2009 को बच्चों का नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित हो गया। यह ऐतिहासिक विधान 06 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के केन्द्र और राज्य सरकारों के दायित्व को रेखांकित करता है। अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया है कि 06 से 14 वर्ष वर्ष तक बच्चों को अपने पड़ोस के विद्यालय में 8वीं कक्षा तक बुनियादी शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है। यदि कोई बच्चा 06 वर्ष की आयु पर किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं ले पाता है तो यह बाद में अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में प्रवेश ले सकता है। उसे अपनी कक्षा के स्तर पर आने के लिए नि:शुल्क प्रशिक्षण पाने का भी अधिकार होगा। किसी भी बच्चे को प्रवेश से इन्कार नहीं किया जाएगा और जब तक उसकी बुनियादी शिक्षा पूर्ण नहीं हो जाती उसे न तो विद्यालय से निकाला जायेगा और नहीं उसे रोका जायेगा यदि वह निर्धारित 14 वर्ष की आयु तक वह बुनियादी शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाता तो उसके बाद भी पढ़ाई पूरी होने तक उसे नि:शुल्क शिक्षा दी जाती रहेगी। सरकारी विलय तो नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करेंगे ही, निजी विशेष श्रेणी

वाले विद्यालयों को भी आर्थिक रूप से निर्बल समुदायों के बच्चों के लिए पहली कक्षा में 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित करना होगा। प्रत्येक अभिभावक का यह दायित्व होगा कि वह 06 से 14 वर्ष के अपने बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कराएँ।

यादव दीनानाथ (2020)– ''शिक्षा ज्ञान प्राप्ति की अंधकार पर प्रकाश की जीत की उन्नति एवं विकास की अन्तहीन यात्रा है। इसी की ही बदौलत आज मानव विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति एवं सभ्यता के शिखर पर पहुँचे हैं जिसके फलस्वरूप आदिकाल के वस्त्रविहीन आखेटेक और भोजन संग्राहक कबाइली समुदाय में रहने वाला मनुष्य आज साइबर समुदाय का अहम् हिस्सा है। कोई भी व्यक्ति समाज एवम् देश कितना ही दरिद्र हो कितना ही संसाधनहीन हो, पिछड़ा हो उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर सिर्फ शिक्षा के माध्यम से ही पहुँच सकता है आज के परिप्रेक्ष्य में यह निर्विवाद सत्य साबित है। अत: आज सर्वांगीण विकास की आकांक्षा रखने वाला कोई भी राष्ट्र शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दिए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि कुशल एवं राष्ट्रपयोगी मानव संसाधन शिक्षा से ही तैयार होंगे। शिक्षा चाहे वह प्राथमिक माध्यमिक ए उच्च हो अपने आप में महत्वपूर्ण है किसी की भी उपेक्षा किसी व्यक्ति, समाज देश के लिए घातक सिद्ध साबित होती है। परन्तु जिस प्रकार रेत की बुनियाद पर महल तैयार नहीं किया जा सकता, बिना सही ढंग से चलना सीखे दौड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार बिना गुणवत्तापूर्ण उचित प्राथमिक शिक्षा के कुशल मानव संसाधन योग्य नागरिक एवम् उच्च शिक्षा की कल्पना बेकार है, इसलिए उन्नत आदर्श एवम् व्यवस्थित समाज के लिए साक्षरता का शत-प्रतिशत होना नितांत आवश्यक है ऐसे में यह आवश्यक है कि बच्चे जो देश के भविष्य होते हैं देश के भावी कर्णधार होते हैं, शिक्षा से वंचित न रहने पाए। यदि बच्चे ही अज्ञानता एवं अशिक्षा की गर्त में समा जायेगे तो देश का समाज का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। दुर्भाग्य से भारत की तस्वीर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के मामले में बड़ी भयावह रही हैं आजादी से पहले एवम् बाद से अभी तक के हालात चिन्ताजनक ही कहे जायेंगे। आज भी लगभग 05 करोड़ बच्चे ऐसे हैं जो शिक्षा से वंचित हैं शायद इसी विकट समस्या के सामधान के लिए भारत सरकार ने 86 वें संविधान संसोधन विधेयक के बाद 06 अगस्त वर्ष 2009 में संसद में नि5शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक पारित किया और 01 अप्रैल 2010 से इसे लागू कर दिया गया। अब 06-14 वर्ष के बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार उनका मौलिक अधिकार है।

पांडे रामानन्द (2021)– ''बच्चे देश के दर्पण हैं, वे राष्ट्र की मुस्कुराहट हैं। बच्चें में वर्तमान करवट लेता है और भविष्य के बीज उसी में बोये जा सकते हैं। किसी भी राष्ट्र की समृद्धि के लिए मौलिक तत्व शिक्षा है और प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला है। संविधान के नीतिनिर्देशक तत्व के अन्तर्गत अनुच्छेद 45 के तहत निहित अनिवार्य एवं नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा के नैतिक दायित्व को अपेक्षित सफलता न मिलने के कारण संविधान में 86वें संशोधन द्वारा 21 (क) और 51 (क) की व्यवस्था करके इसे मौलिक अधिकार और मौलिक कर्त्तव्य का दर्जा दिया गया। अर्थाभाव से ग्रस्त बहुत से अभिभावक अपने बच्चे को साक्षर बनाने हेतु अक्षम है। आर्थिक तंगी बच्चों को बालश्रम हेतु मजबूर कर देती है। अभी भी लगभग एक करोड़ से अधिक बाल श्रमिक है जो 06-14 आयु वर्ग में प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित है। शिक्षकों को अतिरिक्त दायित्वों में मुक्ति आदि के माध्यम से उन्हें स्वयं ही रचनाशील दिशा में अभिमुख किया जा सकता है। पूरे देश में समान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे से गरीब एवं अमीर के सामाजिक गैप को भी समरसता एवं न्याय पर आधारित किया जा सकता है। नैतिक पक्षों को मजबूत बनाकर कदाचार एवं भ्रष्टाचार मुक्त एवं सदाचार युक्त मौलिकता प्रस्तुत की जा सकती है।''

जोसेफ जरीन (2021)– ''शिक्षा एक राष्ट्र के विकास के मुख्य स्तम्भों में से एक है और बच्चे शिक्षा के अग्रदूत है। एक राष्ट्र के लिये जमीनी स्तर पर शिक्षा प्रदान करना महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि बच्चों की शिक्षा का भविष्य के विकास का आधार बनाती है शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुये राष्ट्रों व विभिन्न संगठनों ने बच्चों को शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य कर दिया है। न्छब्ब् 1989 के रिपोर्ट को भारत ने 1992 में पुष्टि किया था। सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा का अधिकार है। वह भी अनिवार्य और मुफ्त होनी चाहिये।''

दूबे सुरेन्द्र (2022)– ''वर्तमान वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अग्रणी रखने की दृष्टि से बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करना राष्ट्र का दायित्व है किन्तु भारत का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि वह अभी तक अपने बच्चों के लिए शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं कर पाया है। भारत के संविधान में राज्य को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि राज्य संविधान के लागू होने के दस वर्षों के भीतर बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रबन्ध करेगा। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू शिक्षा और ज्ञान के बहुत बड़े पक्षधर थे, लेकिन उन्हें कारखाने और बाँध बनाना ज्यादा जरूरी लगा। बच्चों को शिक्षित करना उनके लिए कोई जरूरी काम नहीं था। अशिक्षित लोगों की विराट सेना को लेकर वे पता नहीं किस तरह का देश बनाना चाहते थे। बच्चों को, खासकर उन बच्चों को जिनके

माता-पिता अपनी सन्तानों को स्कूल नहीं भेज सकते थे, प्राइमरी शिक्षा तक से वंचित रखने का यह षडयन्त्र आगे भी जारी रहा। मनमोहन सिंह सरकार को बधाई दी जानी चाहिए कि उसने एक भूले हुए स्वप्न को जागृत किया है और बच्चों को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून संसद से पास कराया। बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के तहत 06 वर्ष से 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा सत्र 2010-2011 से लागू हो गया है। शिक्षा अधिकार कानून देश के सभी राज्यों में जम्मू कश्मीर को छोड़कर 01 अप्रैल 2010 से पारित हो चुका है।

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन का अध्ययन करना''।

शोध अध्ययन की परिकल्पना:- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि '''सरकारी व निजी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन की मात्रा में सार्थक अन्तर नहीं हैं।''

शोध विधि:- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा very (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा अममपत का अर्थ जव सववा होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्राय: सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टि:- समष्टि किसी भी शोध में शामिल की जाने वाली निश्चित भू-भाग के व्याष्टियों के समूह से होता है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि आजमगढ़ मण्डल के समस्त प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के निजी व सरकारी विद्यालयों के शिक्षक थे।

प्रतिदर्श:- किसी भी समष्टि से पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला अंश प्रतिदर्श कहलाता है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन में कुल 300 शिक्षकों का चयन किया गया था। जो अपने समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। जो समष्टि का 5.9% थी। अनुसन्धान में प्राय: प्राचलिक विधि का प्रयोग सम्भव नहीं होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकत: अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्रचलित विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्रचलित विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है। प्रस्तुत अध्ययन में कुल 300 शिक्षकों को शामिल किया गया जिनमें आजमगढ़, बलिया, मऊ से क्रमश: 100-100 तथा सरकारी व निजी विद्यालयों से आधे-आधे थे।

वर्ग	*निजी विद्यालय*	*सरकारी विद्यालय*	*योग*
आजमगढ़	50	50	100
बलिया	50	50	100
मऊ	50	50	100
योग	150	150	300

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण स्वनिर्मित था जिसका मानकीकरण किया गया था।

आँकड़ों का संकलन करने के लिये 30 कथनों की अनुसूची बनाई गयी थी जो हाँ/नहीं पर आधारित थी जिसमें हाँ पर प्रतिक्रिया देने पर 01 अंक और नहीं पर 0 अंक प्रदान किया गया था। अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता गुणांक 0.68 तथा विशेषज्ञ वैधता गुणांक 0.82 प्राप्त हुआ था। व्याख्या के लिये मानक प्रतिशतांक ही प्रयोग किया गया था जितना उच्च प्रतिशत रहा उतना ही क्रियान्वयन सही पाया गया।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्याः- प्रस्तुत अध्ययन का प्रथम उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) के क्रियान्वयन का अध्ययन करना'' इसके लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका तैयार हुयी।

तालिका-1 सरकारी विद्यालय के शिक्षकों की प्रतिक्रिया

क्र.सं.	*कथन*	*प्रतिक्रिया/मात्रा*
1.	शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार है।	100
2.	उम्र 06 से 14 वर्ष के बच्चे सभी आ रहे है।	82
3.	बच्चों को पुस्तकें, यूनीफार्म दिया जा रहा है।	78
4.	मध्याहन आहार की गुणवत्ता मिलती है।	52
5.	जातिगत् भेदभाव नहीं होता है।	88
6.	धार्मिक भेदभाव नहीं होता है।	92
7.	निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीटों पर इनकी व्यवस्था है।	12
8.	बच्चों का नामांकन बढ़ा है।	89
9.	शिक्षक बच्चों को प्रेरित करते है।	78
10.	अधिकारी निगरानी कर रहे है।	92
11.	विद्यालय के अगल-बगल गरीबी के कारण बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं है।	48
12.	बच्चे उत्साहित है।	72
13.	विद्यालय में स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था है।	82
14.	विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिये अलग-अलग शैचालय है।	98
15.	सफाईकर्मी नियमित जाता है।	52
16.	आसन व्यवस्था पर्याप्त है।	48
17.	कक्ष साफ सुथरे हवादार है।	42
18.	पुस्तकों के साथ कम्प्यूटर प्रशिक्षण भी दिया जाता है।	12
19.	समय-समय प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था है।	12
20.	बच्चों के खेलने का सामान पर्याप्त है।	23
21.	क्रीड़ा मैदान हरा-भरा है।	18
22.	शिक्षक बच्चों के साथ सहभाग करते है।	72
23.	शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त है।	23
24.	शिक्षक विषय के ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान देते है।	46
25.	बाल सभा करायी जाती है।	97
26.	नियमित प्रार्थना होती है।	100
27.	पी.टी. करायी जाती है।	44
28.	पोषण युक्त खाद्य पदार्थ वितरित होता है।	38
29.	बच्चों के ड्रेस स्वच्छ रहते हैं।	52
30	बच्चों को सफाई के प्रति जागरुक किया जाता है।	78

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि कथन-01 पर शिक्षकों ने 100% हाँ कहा है कि शिक्षा मौलिक आधिकार है। कथन-02 पर 82% शिक्षकों ने प्रतिक्रिया दी कि 06 से 14 वर्ष के बच्चे विद्यालय आ रहे है जबकि शेष 18%ने इस पर नहीं कहा अत: जागरुकता में कहीं लापरवाही स्कूल प्रशासन की है जिसके सुधार की आवश्यकता है। कथन-03 पर 78% शिक्षक प्रतिक्रिया दे रहे हैं कि बच्चों को नि:शुल्क पुस्तकें व यूनिफार्म दिया जा रहा है जबकि 22% ने नहीं पर बताया और समय से सुविधा न मिलना इसका कारण स्पष्ट होना। अत: सरकारी तंत्रों को सक्रिय रहकर समय पर इन सभी व्यवस्था को की जानी चाहिये। कथन-04 पर 52% शिक्षकों मध्याहन आहार की गुणवत्ता पर हाँ के लिये प्रति क्रिया दिया और 48% ने नहीं पर कहा जिससे स्पष्ट होता है कि कहीं तो अधिकारियों और हेडमास्टर की मिलीभगत से गुणवत्ता में कमी आ रही है जिस पर सरकार को निगरानी करनी पड़ेगी। कथन-05 पर 88% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिया कि विद्यालयों में जातिगत भेदभाव नहीं होता है परन्तु 12% इसके विरूद्ध रहे जो यह स्पष्ट करता है कि थोड़े बहुत भेदभाव की गंजाइश बनी हुयी है। कथन-06 पर 92% ने स्पष्ट किया कि धर्मगत् भेदभाव नहीं होता है इसका मतलब है कि विभिन्न धमों के बच्चे विद्यालय में पढ़ते है परन्तु थोड़ा बहुत इस प्रकार का भेदभाव है जो कि नहीं होनी चाहिये। कथन-07 पर मात्र 12% ने हाँ बताया हैं के निजी विद्यालयों में 25% सीट आरक्षित है परन्तु 88% ने नहीं में बताकर सिरे से नकार दिया जिसमें ज्यादातर निजी विद्यालय के शिक्षक थे। इस पर सरकार को कड़ा कदम उठाना चाहिये कि निजी विद्यालय नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की दिशा में काम करें तभी शिक्षा के अधिकार अधिनियम का सही क्रियान्वयन हो पायेगा। कथन-08 पर 89% ने कहाँ कि नामांकन बढ़ा है जबकि 11% इसे नकारे हैं यहाँ भी प्रयास करने की जरुरत है। कथन-09 में 78% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दी अर्थात् शिक्षक प्रेरित करते हैं को मान लिया जबकि 22% ने नकारा हैं कि शिक्षक पढ़ाकर घर जाते है वे प्रेरित इत्यादि के लिये अलग से समय बच्चों को नहीं देते है। कथन-10 पर 92% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कि अधिकारी निगरानी करते है परन्तु 8% दूर-दराज के क्षेत्रों के अध्यापकों ने बताया कभी कोई नहीं आता है जिसमें सुधार होना चाहिये। कथन-11 पर 48% शिक्षकों ने हाँ पर सहमति दिये जो यह कहते है कि विद्यालय के अलग-बगल गरीबी के कारण कोई बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं है जबकि 52% शिक्षक इसको सिरे से नकार दिये कि गरीब आदमी अपने बच्चों से बालश्रम कराते हैं जो कि गलत है परन्तु सुनते नहीं सरकार को इस दिशा में प्रयास करना चाहिये। कथन-12 पर 72% शिक्षकों ने हाँ पर अपनी प्रतिक्रिया दिया है कि बच्चे उत्साहित होकर आते है जबकि 28% कहते है कि अभिभावक की जबरदस्ती के कारण आते है इसके लिये विद्यालय पर्यावरण में खेलने की समान और क्रीड़ा मैदान में क्रीड़ा के शिक्षक को खेलाना चाहिये ताकि बच्चे पढ़ने व खेलने तथा खाने की दिशा में अग्रसर हों। कथन-13 पर 82% शिक्षकों ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कहते है कि विद्यालय में स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था है जबकि 18% कहते है कि केवल हैंड पम्प हैं जो प्राय: खराब पड़ते है। इस तरफ प्रशासन को ध्यान देना चाहिये। कथन-14 पर 98% ने हाँ में सहमति दिया है कि विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिये शौचालय अलग-अलग है जो कि अच्छी बात हैं यह प्रयास सराहनीय है। कथन-15 पर 52% ने हाँ में कहा कि सफाईकर्मी नियमित आते है जबकि 48% कहते हैं कि सफाईकर्मी लापरवाह है जिसके लिये प्रशासन को सख्त होना चाहिये। कथन-16 पर 48% ने हाँ में प्रतिक्रिया दिये कि आसन व्यवस्था पर्याप्त पूर्ण नहीं है जिस पर सरकार को ध्यान देना है। कथन-17 पर 42% ने हाँ पर सहमति दिया है कि कक्ष साफ सुथरे तथा हवादार है जबकि 58% ने इसके विपक्ष बताया है सरकार को इस बात पर ध्यान देना चाहिये। कथन-18 पर 12% ने हाँ पर कहा कि पुस्तकों के साथ कम्प्यूटर प्रशिक्षण दिया जाता है अर्थात् वे विद्यालय जो मॉडल व कम्पोजिट प्रकार के हैं। 88% का कहना है कि सभी सरकारी प्राथमिक विद्यालय को कम्प्यूटर प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। कथन-19 पर हाँ के पक्ष में भी मात्र 12% ने ही प्रतिक्रिया दिया है कि समय-समय पर प्राथमिक विद्यालय चिकित्सा दी जाती है जबकि 88% का कहना है कि कभी-कभी साल में एकाक बार ऐसा होता है ऐसा नियमित नहीं है सरकार की नियमित देखरेख की व्यवस्था चिकित्सकों द्वारा की जानी चाहिये। कथन-20 पर 23% शिक्षकों ने हाँ कहा है कि बच्चों के खेलने का समान पर्याप्त है जबकि 77% का कहना है कि पर्याप्त नहीं हैं। इस दिशा में प्रशासन को ध्यान में रखना चाहिये। कथन-21 पर 18% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दी है कि क्रीड़ा मैदान हरा भरा है परन्तु 82% विपक्ष में हैं इस दिशा में सरकार को ध्यान देना चाहिये। कथन-22 पर 72% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये है कि शिक्षक छात्रों के साथ सहभाग करते है परन्तु 28% विरुद्ध हैं विद्यालय प्रशासन को ध्यान रखना चाहिये। कथन-23 पर हाँ की

दिशा में प्रतिक्रि 23% है कि शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त हैं परन्तु 77% विरुद्ध है कि मॉडल व कम्पोजिट विद्यालयों में ऐसा हो सकता है परन्तु अन्य में नहीं अर्थात् सरकार सभी पर बराबर ध्यान देगी तभी शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 सक्रिय होगा। कथन-24 पर हाँ की प्रतिक्रिया का प्रतिशत मात्रा 46% है कि शिक्षक विषय के ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा का ज्ञान देते है जबकि 54% ने कहा सभी शिक्षकों में अध्यापन के साथ-साथ खेलकूद की व्यवस्था से भी जुड़ना होगा। कथन-25 पर 97% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कि बाल सभा करायी जाती है जो बच्चों के विकास के लिये आवश्यक भी है। कथन-26 पर 100% ने शिक्षकों सहमति दिया कि नियमित प्रार्थना होती हैं जो कि अच्छी बात है। कथन-27 पर 44% ने हाँ पर प्रतिक्रिया किया कि पी0टी0 करायी जाती है जबकि 56% ने कहा नियमित नहीं है जो कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं इसे नियमित करने पर विद्यालय प्रशासन को ध्यान देना चाहिये। कथन-28 पर 38% ने हाँ कहा कि विद्यार्थियों को पोषण युक्त खाद्य पदार्थ दिया जाता है जबकि 62% ने कहा कि खाना दिया जाता है पोषण युक्त ऐसा अनिवार्य हीं है यह ध्यान देने योग्य है। कथन-29 पर 32% ने हाँ कहा कि बच्चों के ड्रेस स्वच्छ होते है जबकि 48% ने कहा कि ऐसा सम्भव नहीं हो पाता है। कथन-30 पर 78% ने हाँ पर प्रतिक्रिया किये कि बच्चों की सफाई के प्रति जागरुक किया जाता है जबकि 22% ने कहा कि इस दिशा में विद्यालय लापरवाह है जिसके लिये सरकारी निगरानी आवश्यक है।

शोध निष्कर्षः- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण व व्याख्या से निष्कर्ष प्राप्त हुये। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक शिक्षा के अनिवार्य अधिनियम (2009) के क्रियान्वयन करने में समर्पित है।

शैक्षिक निहितार्थः- प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक शिक्षा को महत्वपूर्ण बनाने से सम्बन्धित है तथा गरीब व पिछड़े बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में जोड़ने के लिये किया गया सरकारी प्रयास सराहनीय है। यह अधिनियम शिक्षा को मौलिक अधिकार की श्रेणी में लाता है जिससे समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े व कमजोर परिवार के बच्चों मुख्य धारा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ले सकें व देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। इस दिशा में सरकार की दृढ़ता ने संयुक्त राष्ट्र संघ के इस महाअभियान को अंगीकार करते हुये अंततः (2009) में यह अधिनियम संवैधानिक दर्जा पाया और 01 अप्रैल 2010 से लागू कर दिया गया। उस समय की कांग्रेस सरकार के तत्कालीन प्रधानमन्त्री माननीय मनमोहन सिंह ने देश की शैक्षिक विकास की दिशा में एक मील का पत्थर स्थापित किया जो अपने 12 वर्षों की यात्रा में देश के विभिन्न क्षेत्रों से वंचित व दलित तथा पिछड़ों के परिवार के बच्चों को शिक्षा के मुख्यधारा में जोड़ता चला जा रहा है। यह सराहनीय पहल को मूर्तरूप देने में सरकार अपनी मानीटरिंग कर रही है परन्तु उसकी गति मन्द है। सरकारी प्रयास के साथ-साथ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को इस दिशा में अपना योगदान देने होंगे और समर्पित होकर अपने आस-पास के सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों को विद्यालय तक पहुँचाना होगा। अच्छे सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों को बालश्रम से परहेज करते हुये इन बच्चों को स्कूल तक भेजने की जिम्मेदारी लेनी होगी तभी राष्ट्र की साक्षरता दर 100 प्रतिशत हो सकेगी। देश के सभी बच्चे शिक्षित होगे तभी पुराना भारत अपने जगतगुरू के स्वप्न को साकार करते हुए नया भारत, स्किल्ड इंडिघ्या बन सकेगा। इस दिशा में वर्तमान सरकार राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 2020 के क्रियान्वयन पर अमार्दा है जरूर यह स्वप्न 2035 तक पूरा होगा और 2050 तक भारत विश्व की शिक्षा में अपना योगदान प्रथम स्तर पर दे सकेगा। प्रस्तुत अध्ययन इस दिशा एक सार्थक प्रयास है जो राष्ट्रीय शिक्षा की मुहीम में अपना अमूतपूर्व मूल्यवान योगदान देता रहेगा ऐसा शोधकर्त्ता को विश्वास है।

शिक्षा के विकास के लिए प्रत्येक राष्ट्र प्रयासरत् रहे हैं। भारत में भी शिक्षा के विकास के लिए मुगल काल, ब्रिटिश भारत में अनेक प्रयास किए गये किन्तु यह सब मात्र प्रयास ही रह गया। जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब भारतीय संविधान को राज्य के नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत रखा है। नीति निदेशक तत्व राज्य की इच्छा पर आधारित होने के कारण शिक्षा का समुचित विकास नहीं हो सका है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शिक्षा के विकास पर की गयी एक टिप्पणी के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने संविधान में 13 वाँ संशोधन अधिनियम 2002 पारित करके अनुच्छेद 21क के तहत मूल अधिकार और 51क में 11 वाँ मूल कर्तव्य जोड़कर शिक्षा को एक साथ मूल अधिकार और कर्तव्य घोषित किया। परिणामस्वरूप शिक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी गयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- सिंह राकेश (2018); ''शिक्षा एक मौलिक अधिकार'' शोधपत्र।
- यादव यशवन्त (2019); ''शिक्षा के अधिकार अधिनियम में संशोधन एवं आवश्यकता'' एज्यूकेशन पालिसी इन इण्डिया।
- यादव दीनानाथ (2020); ''शिक्षा का अधिकार: प्रावधान, चुनौतियाँ एवम् समाधान'' शैक्षिक रिपोर्ट मानव संसाधन मंत्रालय।
- पांडे रामानन्द (2021); ''सामाजिक संरचना: शिक्षा का अधिकार'' कुरुक्षेत्र।
- जोसेफ जरीन (2021); ''बिहार, उत्तर प्रदेश और झारखण्ड राज्यों के सन्दर्भ में शिक्षा के अधिकार का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण: एक सिंहावलोकन'' प्श्रैत्ण
- दूबे सुरेन्द्र (2022); ''शिक्षा का अधिकार कानून: प्रमुख चुनौतियाँ'' शैक्षिक निबन्ध विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
- मिश्र रामश्वर नाथ (2022); ''मौलिक शिक्षा: एक विकास क्रम'' योजना।
- सिंह नरेन्द्र कुमार (2022); ''ज्ञान मूल्य एवं शिक्षा का अधिकार'' शोधपत्र।

माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्रों और छात्राओं की शैक्षिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन

पशुपति नाथ सिंह

शोध छात्र, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० कल्पना सिंह

शोध निर्देशिका, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षिप्त सारांश- रुचि एवं योग्यता का सम्बन्ध भी बहुत घनिष्ठ है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक है। ज्ञानार्जन एवं अधिगम की प्रक्रिया रुचि एवं योग्यता दोनों के सहयोग से ही प्राप्त हो सकते हैं। इनमें से एक के होने पर तथा दूसरे के अभाव में यह सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ किसी छात्र में यदि संगीत सीखने की योग्यता है पर उसे उसमें रुचि नहीं है तो वह संगीत नहीं सीख सकता। इसके विपरीत यदि रुचि नहीं है तो केवल योग्यता के द्वारा निपुणता नहीं पाई जा सकती। इसी प्रकार योग्यता होने पर भी रुचि के अभाव में कोई कार्य नहीं सीखा जा सकता।

मुख्य शब्दः- शैक्षिक रुचि, मानकीकृत मापनी, अभिवृ़ि मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, ब्द् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावनाः- माध्यमिक शब्द का अर्थ है- मध्य की। माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की शिक्षा है। अंग्रेजी में इसके लिए सेकेण्डरी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है- दूसरे स्तर की, पहले स्तर की प्राथमिक और उसके बाद दूसरे स्तर की यह सेकेण्डरी शिक्षा। आज किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच की कड़ी होती है, अपने में पूर्ण इकाई होती है और बच्चों के निर्माण की शिक्षा होती है। परन्तु यह शिक्षा बच्चों की किस आयु से किस आयु तक अर्थात् किस कक्षा से किस कक्षा तक चले और इसकी क्या पाठ्यचर्या हो, इस विषय में भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न-भिन्न निर्णय हैं।

हमारे देश में प्राचीन और मध्यकाल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित रही-प्राथमिक और उच्च। इस देश में माध्यमिक शिक्षा का श्रीगणेश आधुनिक युग में ईसाई मिशनरियों ने किया। सर्वप्रथम तो उन्होंने यहाँ प्राथमिक विद्यालय खोले, उसके बाद उन्होंने प्राथमिक शिक्षा उत्तीर्ण बच्चों के लिए अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की। दूसरी तरफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की। परन्तु यह माध्यमिक शिक्षा आज की माध्यमिक शिक्षा से भिन्न थी। भारत में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने में सबसे बड़ी भूमिका वुड के घोषणा पत्र, 1854 की रही। उसमें माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यक्रम निश्चित किए गए। 1882 में ब्रिटेन सरकार ने भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को दो वर्गों में विभाजित करने का सुझाव दिया-(अ) साहित्यिक और (ब) व्यावसायिक। परन्तु उस समय देश की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि अंग्रेजों के शासन काल में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप साहित्यिक ही रहा।

अध्ययन की पृष्ठभूमि:- यह केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा चलाए जाने वाली साझा योजना है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में तो केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों ने 75:25 के अनुपात में व्यय किया परन्तु बारहवीं पंचवर्षीय योजना में 50:50 के अनुपात में व्यय करेंगी। इसके लिए प्रत्येक प्रान्त में राज्य स्तर पर राज्य माध्यमिक अभियान समिति का गठन किया जा रहा है और जिला स्तर पर जिला माध्यमिक शिक्षा अभियान समिति का गठन किया जा रहा है। जिला माध्यमिक शिक्षा अभियान समितियाँ जिले स्तर पर योजना तैयार कर राज्य माध्यमिक शिक्षा अभियान समिति के पास भेज रही हैं और राज्य माध्यमिक शिक्षा अभियान समितियाँ उन्हें वरीयता क्रम में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान समिति के पास भेज रही है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान समिति उन्हें वरीयता क्रम में अनुदान दे रही है। साथ में यह शर्त है कि केन्द्र से अनुदान राशि प्राप्त होने के 30 दिन के अन्दर राज्य सरकारें अपना अंश प्रदान करेंगी। यह योजना कई राज्यों में लागू कर दी गई है। उ0 प्र0 सरकार ने भी दिसम्बर, 2009 में इसे स्वीकार कर लिया था। आशा है कि शेष प्रान्तीय सरकारें भी इस योजना को शीघ्र शुरु कर देंगी। बहरहाल 2011 तक 14-18 आयु वर्ग के लगभग 12 करोड़ बच्चों में से लगभग 05 करोड़ बच्चे माध्यमिक शिक्षा में पंजीकृत हो गए थे, शेष 7 करोड़ बच्चे अभी भी माध्यमिक शिक्षा से बाहर हैं। वर्तमान में देश में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) शुरु हो गई है। इस योजना में शिक्षा के लिए.................... करोड़ रुपये निर्धारित किये गये थे जिनमें से ....करोड़ रुपये माध्यमिक शिक्षा के प्रसार और उन्नयन के लिए निर्धारित किए गए हैं। इस योजना का मुख्य लक्ष्य माध्यमिक शिक्षा कक्षा 9 से 10 के सर्व सुलभ बनाना और उच्च माध्यमिक शिक्षा +2 पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की उचित व्यवस्था करना है। इसके लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान जारी रहेगा। साथ ही माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने और इस स्तर पर परीक्षा प्रणाली में सुधार करने का प्रयत्न किया जाएगा। वर्तमान में केन्द्रीय सरकार ग्रेड प्रणाली पर बल दे रही है परन्तु इससे लाभ कम, हानि अधिक होगी। अब तक भारत में माध्यमिक शिक्षा की मात्रात्मक प्रगति के नीचे अंकित तालिका में एक दृष्टि में देखा-समझा जा सकता है।

स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति

वर्श	माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, इण्टर व पूर्व जूनियर कॉलेजों की संख्या	माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, इण्टर व पूर्व जूनियर कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्र–छात्राओं की संख्या
1946–47	11,907	0,26,82,000
1950–51	7,288	0,15,20,000
1960–61	17,257	0,34,63,000
1970–71	37,051	0,76,00,000
1980–81	51,573	1,10,00,000
1990–91	79,796	1,91,00,000
2000–01	126,047	2,76,00,000
2007–08	1,72,990	4,45,00,000
2009–10	1,90,643	4,86,32,384
2010–11	1,92,000	5,00,00,000
अनुमानित		

स्रोत: सलेक्टेड एजूकेशनल स्टेटिस्टिक्स, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, 2011 और जहाँ तक स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक शिक्षा में होने वाले गुणात्मक उन्नयन का प्रश्न है, इस पर सर्वप्रथम बल दिया विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948-49 ने। इस आयोग की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया कि उच्च शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है इससे पूर्व की माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना। बस तभी से हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा के उन्नयन की प्रक्रिया शुरु हुई। इसके बाद माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53 ने इसके पाठ्यक्रम और इस स्तर की मूल्यांकन प्रणाली में सुधार के अनेक सुझाव दिए। उसके सुझावों के आधार पर भारत में बहुउद्देश्यीय पाठ्यक्रम तैयार किए गए और सामान्य माध्यमिक विद्यालयों को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिवर्तित करना शुरु किया गया, परन्तु ये पाठ्यक्रम सही रूप में नहीं चलाए जा सके। भारत में माध्यमिक शिक्षा के समस्त क्षेत्रों में उन्नयन की प्रक्रिया अपने सही अर्थों में 1961 में स्थापित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा शुरु

की गई। इसमें सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के अनुसार, 1975 में पूरे देश के लिए माध्यमिक स्तर की आधारभूत पाठ्यचर्या तैयार की। इसके बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 के आधार पर 1988 में इसे नया रूप दिया और 1992 में संशोधित शिक्षा नीति द्वारा उसे 2000 में पुनः नया रूप दिया। और सरकार बदलते ही जब नीति में थोड़ा परिवर्तन हुआ तो 2005 में उसे नए जोश एवं होश के साथ प्रस्तुत किया। वर्तमान में पूरे देश के लिए माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य व्यापक एवं सुनिश्चित हैं उसकी आधारभूत पाठ्यचर्या भी विस्तृत विविध एवं सुनिश्चित है, उसकी मूल्यांकन प्रणाली में भी भारी सुधार हुआ है, उसमें निबन्धात्मक प्रश्नों के साथ लघुउत्तरीय और वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाने लगे हैं, रटने के स्थान पर समझने पर अधिक बल दिया जाने लगा है और अधिकतर प्रान्तों में सत्त मूल्यांकन की प्रक्रिया शुरु हो चुकी है। और सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें सतत् सुधार की प्रक्रिया शुरु हो चुकी है।

अध्ययन का औचित्यः- हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था करना प्रान्तीय सरकारों का उत्तरदायित्व है, यह पूर्ण रूप से प्रान्तीय सरकारों के प्रशासन एवं नियन्त्रण में है। हाँ, केन्द्रीय सरकार इस क्षेत्र में पूरे देश के लिए नीति का निर्धारण करती है, उनका मार्गदर्शन करती है और विशेष योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता देती है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि प्रायः सभी प्रान्तों में अनेक प्रकार के माध्यमिक विद्यालय चल रहे हैं। इन्हें मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-सरकारी और गैरसरकारी। सरकारी विद्यालय भी अनेक प्रकार के हैं-केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित; जैसे-केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय एवं रेलवे विद्यालय और प्रान्तीय सरकारों द्वारा संचालित राजकीय विद्यालय। गैरसरकारी माध्यमिक विद्यालय भी अनेक प्रकार के हैं; जैसे-स्थानीय निकायों द्वारा संचालित और निजी संस्थाओं द्वारा संचालित विद्यालय, सम्प्रदाय विशेष द्वारा संचालित विद्यालय और धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित विद्यालय। कुछ शैक्षिक संगठन भी माध्यमिक विद्यालय चला रहे हैं; जैसे-विद्याभारती। इन सबमें पब्लिक स्कूल विशेष आकर्षण के केन्द्र है। इन भिन्न-भिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का प्रशासन एवं उनकी वित्त व्यवस्था भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में होती है; किन्हीं पर केन्द्र सरकार का नियन्त्रण है, किन्हीं पर प्रान्तीय सरकारों का नियन्त्रण है और कुछ स्वायत्तशासी हैं। अधिकतर गैरसरकारी माध्यमिक विद्यालय तो शिक्षा की दुकान और फैक्ट्रियों की तरह चल रहे हैं। आज लगभग सभी प्रान्तों में इन विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासन एवं नियन्त्रण की और इनकी वित्तीय व्यवस्था करने की बड़ी समस्या है।

समस्या के कारणः- इस समस्या के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

1. पहला यह कि हमारे देश में केन्द्रीय सरकार शिक्षा सम्बन्धी नीति अवश्य बनाती है परन्तु उसके अनुपालन के लिए प्रान्तीय सरकारों को बाध्य नहीं कर सकती।
2. फिर केन्द्रीय सरकार की शिक्षा सम्बन्धी नीतियाँ भी प्रायः इतनी लचर होती हैं कि प्रान्तीय सरकारें उन्हें अपने-अपने हित में तोड़-मरोड़ लेती हैं।
3. तीसरा कारण यह है कि प्रान्तीय सरकारें अकेले माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पा रही हैं, जन सहयोग लेना उनकी विवशता है और जन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं पर नियन्त्रण करना अपने में कठिन कार्य है।
4. चौथा मुख्य कारण ढीला प्रशासन तन्त्र है। लोकतन्त्र प्रणाली में कठोर नियन्त्रण व्यवस्था को अच्छा नहीं समझा जाता।
5. पाँचवां कारण संसाधन की कमी है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का शिक्षा बजट आवश्यकता से बहुत कम रहता है।

समस्या का समाधानः- किसी समस्या का समाधान उसके कारणों को दूर करने से किया जा सकता है-

1. केन्द्र सरकार द्वारा जो भी शैक्षिक नीतियाँ निश्चित की जाएँ, प्रान्तीय सरकारों को उनका अनुपालन करना आवश्यक हो।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति सुस्पष्ट होनी चाहिए।
3. जन सहयोग राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुकूल ही लिया जाए, माध्यमिक स्तर की शिक्षा संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान करना हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। किसी भी प्रान्त में केवल केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय और नवोदय विद्यालय केन्द्र सरकार के नियन्त्रण में होने चाहिए और शेष सभी माध्यमिक विद्यालय प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण में होने चाहिए।
4. किसी भी प्रान्त में शैक्षिक प्रशासन तन्त्र को मजबूत बनाना आवश्यक है। साथ ही इसे चुस्त और दुरुस्त बनाना आवश्यक है।

5. वित्तीय समस्या का समाधान तो शिक्षा बजट को बढ़ाने से ही किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार को अपने बजट में शिक्षा के लिए 6 प्रतिशत का प्रावधान तो तुरन्त करना चाहिए और निकट भविष्य में इसे बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर देना चाहिए। प्रान्तीय सरकारों को भी अपने शिक्षा बजट में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। जन सहयोग तो फिर भी आवश्यक होगा।

साहित्यावलोकन:- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

शैक्षिक रुचि से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण:-

सिंह पूनम (2017)- ''वर्तमान समय में बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था एक ही शिक्षण संस्था में एक ही स्थान पर किया जाता है कुछ विद्वानों का विचार है कि सहशिक्षा में पूरी तरह से समान पाठ्यक्रम का होना आवश्यक नहीं हैं। बालक और बालिकाओं की रुचियाँ एवं अभिक्षमताओं में कुछ अन्तर होता है। इसलिये इनके पाठ्यक्रम में भी अन्तर होना आवश्यक हो जाता है। जैसे सहशिक्षण संस्थाओं में बालक के लिये कृषि, तकनीकी, सैन्य विज्ञान आदि विषय और बालिकाओं के लिये गृहविज्ञान, सिलाई, चित्रकारी और संगीत आदि विषय रखे जा सकते है। इस तरह पाठ्यक्रम में विविधता का कारण बालक एवं बालिकाओं के रुचियों में अन्तर होना है। यह शोध उच्चत माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के रुचि का तुलनात्मक अध्ययन है जिसका निष्कर्ष यह बताता है कि बालक व बालिकाओं की रुचि में अन्तर पाया जाता है।''

सेन (2019)- ''मिजोरम के चम्फल जिले में माध्यमिक स्तर के बच्चों की शैक्षिक रुचि का अध्ययन करना इस अध्ययन का उद्देश्य है। शैक्षिक रुचि सात क्षेत्रों में मापते है। छात्र व छात्राओं की शैक्षिक रुचि का अन्तर का अध्ययन करना था। कुछ छात्र कला के क्षेत्र में तथा विज्ञान के छात्र प्रौद्योगिकी में शैक्षिक रुचि रखते हैं। ''

रानी रजनी (2019)- ''शिक्षण व्यवसाय के लिये शिक्षकों की व्यावसायिक रुचि हेतु समय-समय पर उनके अध्यापकीय ज्ञान एवं कौशल के विकास हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है फिर भी अधिकांश शिक्षक अपने कार्य में उद्देश्यहीन होते है बहुत से ऐसे होते है जो अपने व्यवसाय के प्रति रुचि नही रखते और अपने कार्यों के प्रति समर्पित नहीं होते है यदि कोई शिक्षक अपने शिक्षण व्यवसाय के प्रति समर्पित नहीं हो तो उनका शिक्षण कार्य प्रभावित होगा। व्यक्ति की वे रुचियाँ जो किसी व्यवसाय उत्पादक कार्य अथवा धनोपार्जन के स्रोत से सम्बन्धित होती है उन्हें व्यावसायिक अभिरुचि कहते है अत: प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक विद्यालय के 150 शिक्षकों पर किया गया और निष्कर्ष पाया गया कि ग्रामीण शिक्षक व शहरी शिक्षकों में व्यावसायिक रुचि के लिये सार्थक अन्तर होता है।''

बृंदा ब्रिजेले (2021)- ''इस अध्ययन का उद्देश्य पूर्वी खाली हेल्स जिला मेघालय भारत में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक रुचि तथा शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सम्बन्ध प्रस्तुत करना है। अध्ययन के लिये इस्तेमाल किया जाने वाला मानकीकृत उपकरण कुलश्रेष्ठ 2016 द्वारा शैक्षिक रुचि रिकार्ड है। शैक्षणिक उपलब्धि का आकलन करने के लिये छात्रों के अंतिम वर्ष के परीक्षा परिणाम एकत्र किये। अध्ययन का न्यादर्श मेघालय बोर्ड ऑफ स्कूल्स एजूकेशन के 15 माध्यमिक विद्यालयों के 300 छात्र शामिल थे लिंग व स्थान के समान प्रतिनिधित्व के साथ स्तरीकृत यादृच्छिक नमूनाकरण विधि प्रयोग में लायी गयी। पियर्सन सहसम्बन्ध गुणांक तथा टी0 विश्लेषण करते हुये परिणाम प्राप्त हुआ कि शैक्षिक रुचि और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य नकारात्मक सम्बन्ध पाया गया। लिंग के सन्दर्भ में शैक्षिक रुचि में महत्वपूर्ण अन्तर पाया गया लेकिन माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के स्थान के बीच कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं पाया गया।''

सिंह एन. के. (2022)- ''सामान्यतया रुचि का तात्पर्य हमारी पसन्द से होता है जिस वस्तु में हमारी रुचि होती है उस पर हमारा ध्यान स्वाभाविक रुप से केन्द्रित हो जाता है। यह हमारे मानसिक अनुभवों से सम्बन्ध रखने वाला प्रेरक है। रुचि दिया हुआ अवधान है और अवधान रुचि का क्रियात्मक रूप है। रुचि एक प्रेरक शक्ति है जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया के प्रति ध्यान देने के लिये प्रेरित करती है। जो वस्तु हमारे साथ अत्यधिक सम्बन्धित होता है। उसके प्रति हमारी रुचि होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि-

1. रुचि मनुष्य की मानसिक संरचना है।
2. मनुष्य में रुचियों का विकास जीवन पर्यन्त चलता रहता है।

3. रुचि सीखने में आने वाली समस्याओं को दूर करती है। जिससे थकावट का अनुभव नहीं होता है।
4. हमारी रुचियों का सम्बन्ध हमारी आवश्यकताओं, लक्ष्यों तथा इच्छाओं से होता है।
5. रुचियाँ जन्मजात व अर्जित दोनों हो सकती है।
6. जो रुचि अपने आप उत्पन्न होती है और जिसका आधार मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती है उसे जन्मजात या नैसर्गिक रुचि कहा जाता है जैसे खाने में रुचि, संग्रह करने में रुचि आदि।
7. वातावरण के प्रभाव से स्वत: या इच्छा द्वारा प्राप्त रुचि अर्जित रुचि कहलाती है जैसे पढ़ने, गाने व अभिव्यक्ति की रुचि।
8. बच्चों की रुचि का पता लगाने के लिये रुचि परीक्षणों का निर्माण किया जाता है।''

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित कि या गया था कि ''माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्रों और छात्राओं की शैक्षिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पना:- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्रों और छात्राओं की शैक्षिक रुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।''

शोध के प्रकार:- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। बेस्ट के शब्दों में, ''विवरणात्मक अनुसंधान वर्तमान स्थिति की व्याख्या तथा विवेचना प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध उन स्थितियों तथा सम्बन्धों से है जिनका अस्तित्व वर्तमान में है, अथवा उन व्यवहारों से है, जो कि प्रचलित है, व उन दृष्टिकोणों अथवा अभिवृत्तियों से है, जिनका प्रचलन है, व ऐसे प्रक्रमों से है, जोकि सक्रिय है, तथा अपने प्रभावों से प्रचलित है, जिन्हें अनुभव किया जा रहा है, अथवा उपनीतियों से है, जोकि विकासशील हैं।

स्पष्टत: ऐसे अनुसंधान का स्वरुप अत्यधिक व्यापक, विस्तृत तथा विषम होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अध्ययन-जैसे सर्वेक्षण, विकासात्मक अध्ययन, व्यक्तिवृत्त अध्ययन, अर्न्तवस्तु अध्ययन, जनमत अध्ययन, सहसम्बन्ध अध्ययन, व उन्नति अध्ययन आदि सम्मिलित रहते हैं। इन विभिन्न तथा विविध अध्ययनों को एक ही प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत सम्मिलित करना निश्चितत: सुविधाजनक तथा वैधानिक है।

शोध विधि:- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा अमतल (veeir) पर आधारित है, जबकि ैवत का अर्थ वअमत तथा अममपत का अर्थ जव सववा होता है। इस प्रकार ैनतअमल का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्राय: सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टि:- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि यू0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0एस0ई0 द्वारा संचालित समस्त कक्षा 09 के छात्र है जो जौनपुर जनपद से है। किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण इकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

न्यादर्श:- प्रस्तुत अध्ययन के न्यादर्श का आकार 500 होगा। जिसमें माध्यम व लिंग के आधार पर आधे-आधे होंगे। न्यादर्श अपनी समष्टि की लघु चित्र प्रस्तुत करती है।

तालिका 1 न्यादर्श वितरण

समूह	*छात्र*	*छात्रायें*	*योग*
हिन्दी	125	125	250
अंग्रेजी	125	125	250
योग	250	250	500

न्यादर्श:- प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श का चयन यादृच्छिकरण प्रविधि के लाटरी रीति द्वारा किया गया है जिसके लिये जौनपुर जनपद में यू0पी0 बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालयों में शहरी विद्यालयों की सूची से लाटरी विधि द्वारा पाँच विद्यालय का चयन किया गया। ठीक इसी प्रकार 05 अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय चयनित किये गये। सेक्शन का चयन भी लाटरी तरीके से किये गया जिसका सारणी विवरण निम्नलिखित है।

तालिका 2 विद्यालय सहित तालिका विवरण

क्र.स.	विद्यालय	माध्यम	छात्रों की संख्या	छात्राओं की संख्या	योग
1.	तिलकधारी इण्टर कॉलेज, जौनपुर	हिन्दी	60	00	60
2.	मुक्ते□वर बालिका इण्टर कॉलेज, जौनपुर	हिन्दी	00	60	60
3.	बी.आर. पी. इण्टर कॉलेज, जौनपुर.	हिन्दी	40	40	80
4.	सरस्वती उ0मा0 विद्यालय जौनपुर	हिन्दी	15	15	30
5.	राज कॉलेज जौनपुर	हिन्दी	10	10	20
6.	नेहरु बालोद्यान जौनपुर	अंग्रेजी	30	30	60
7.	राधिका बालिका विद्यालय जौनपुर	अंग्रेजी	25	25	50
8.	हरिहर सिंह पब्लिक स्कूल जौनपुर	अंग्रेजी	40	40	80
9.	सनबीम जौनपुर	अंग्रेजी	15	15	30
10.	सेन्ट पैट्रिक जौनपुर	अंग्रेजी	15	15	30
	कुल योग				500

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन हेतु जो शोध उपकरणों का निर्माण स्वयं शोधकर्त्ता द्वारा शोध निर्देशक के निर्देशन में किया गया। इनके विवरण अधोलिखित है।

शैक्षिक रुचि प्रपत्र:- स्वनिर्मित इस प्रपत्र में कुल 50 कथन है जो मानकीकृत टी0 मूल्य ज्ञात करके रखे गये हैं। प्रत्येक पद का विश्लेषण करते हुए कठिनाई स्तर तथा विभेदन मूल्य ज्ञात किये गये हैं। इसमें कुल आठ आयाम हैं । आयाम के आधार पर अलग और पूरे उपकरण की अर्द्धविच्छेद विधि द्वारा विश्वसनीयता गुणांक ज्ञात की गयी थी। वैधता गुणांक विशेषज्ञों की सहायता से ज्ञात की गयी थी।

तालिका 3 शैक्षिक रुचि प्रपत्र की विश्वसनीयता गुणांक

क्र0सं0	*क्षेत्र*	*कथन की संख्या*	*विश्वसनीयता गुणांक*	*वैधता गुणांक*
1.	कृषि	8	0.92	0.91
2.	कामर्स	5	0.68	0.82
3.	विज्ञान	5	0.74	0.88
4.	कला	10	0.62	0.79
5.	शिक्षा संकाय	5	0.81	0.90
6.	डेयरी उद्योग	7	0.71	0.88
7.	चिकित्सा	5	0.58	0.76
8.	अभियांत्रिकी	5	0.57	0.75
	कुल पर	50	0.70	0.84

उपकरण में सही कथन पर निशान लगाने पर 01 अंक प्राप्त होगा इस प्रकार न्यूनतम 0 अधिकतम 50 अंक प्राप्त करता है। व्याख्यात्मक मानक प्रतिशतांक है। प्रत्येक कथन के सामने सहमत/असहमत लिखा है।

उत्तर पत्रक

सहमत कथन	1, 2, 3, 4, 5, 6, 11, 12, 13, 17, 18, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 34, 35, 36, 37, 44, 45, 49, 50.
असहमत कथन	7, 8, 9, 10, 14, 15, 16, 19, 20, 21, 22, 23, 32, 33, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 46, 47, 48.

प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकी:- प्रस्तुत अनुसंधान के अन्तर्गत उपरोक्त मापनी का प्रयोग करते हुए प्राप्त किये गये आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकी का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में CR मूल्य 2 X 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी तथा प्रोडक्ट मूमेंन्ट सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग आंकड़ों के विश्लेषण हेतु किया गया ।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण व व्याख्या:- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्रों व छात्राओं की शैक्षिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन'' इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक रुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।'' इसके लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका का निर्माण हुआ।

तालिका 4 हिन्दी माध्यम के छात्रों व छात्राओं की शैक्षिक रुचि सम्बन्धी सी0आर0 मूल्य विश्लेषण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी.आर.मूल्य	P
छात्र	125	35.32	9.46	1.61	0.534	.05 =1.97
छात्रायें	125	36.18	10.28			.01 =2.60 df (248)

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के छात्रों का शैक्षिक रुचि पर मध्यमान 35.32 तथा मानक विचलन 9.46 हैं जबकि छात्राओं का मध्यमान 36.18 तथा मानक विचलन 10.28 है जिनसे अभिकलित मानक त्रुटि 1.61 और सी. आर. मूल्य 0.534 है जो df (248) के .05 सार्थकता स्तर पर 1.97 से कम है जिसके आधार पर बनायी गयी शून्य परिकल्पना ''माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक रुचि में सार्थक अन्तर नहीं है'' स्थापित हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी माध्यम के छात्र व छात्रायें समान शैक्षिक रुचि के होते हैं। इस अध्ययन का समर्थन पूनम (2010) का अध्ययन करता है। इस परिणाम के सम्भवत: कारण है कि वर्तमान में छात्र व छात्रायें दोनों की अध्ययन में रुचि बढ़ी है अभिभावक जागरुक हैं। छात्रायें भी अग्रसर हो रही है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष प्राप्त हुये है।

हिन्दी माध्यम के छात्र व छात्रायें शैक्षिक रुचि में समान होते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ:- माध्यमिक शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है, ''मध्य की शिक्षा''। यदि प्राथमिक शिक्षा को शिक्षा का प्रथम सोपान माना जाए और विश्वविद्यालय शिक्षा को शिक्षा का तीसरा अथवा अन्तिम सोपान माना जाए तो माध्यमिक शिक्षा को दूसरा सोपान अथवा इन दोनों के बीच की कड़ी कहा जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा की परिभाषा एक महत्वपूर्ण विषय है। अभी इसकी परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकती कि यह कहाँ से आरम्भ होती है तथा कहाँ तक चलती है। वैसे प्राय: माध्यमिक शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जो प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करती है। यह शिक्षा विश्वविद्यालय शिक्षा से पहले की शिक्षा है और प्राथमिक शिक्षा के बाद की। प्राय: माध्यमिक शिक्षा के चार रूप भारत में देखने को मिलते हैं-

1. कक्षा 8 से कक्षा 10, जिसे हाई स्कूल भी कहा जाता है।
2. सेकेण्डरी शिक्षा, 9 से 10,

3. सीनियर सेकेण्डरी शिक्षा, कक्षा 11 तथा 12,
4. कक्षा 9 से 12, (हायर सेकेन्डरी शिक्षा)

यह शिक्षा किशोरों की शिक्षा भी कही जाती है। इसमें उनकी विभिन्न आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाता है। इस शिक्षा में प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक उपलब्धियों को परिपक्वता दी जाती है। ज्ञान तथा कौशलों को विस्तृत एवं जीवनोपयोगी बनाने और मूल्यों और आदतों का निर्माण करने पर बल दिया जाता है। यह शिक्षा एक पूर्ण इकाई भी हो सकती है अर्थात् इसके पश्चात् सभी छात्रों को विश्वविद्यालय शिक्षा की आवश्यकता नहीं रहती। इस शिक्षा द्वारा छात्र स्वावलम्बी भी हो सकते हैं। यह शिक्षा सामान्य अथवा विशिष्ट भी हो सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सारिका (2017); ''युवा बच्चों में शैक्षिक रूझान'' यूके एसेज डॉट काम.
- गाँधी नरेश (2017); ''स्टडी ऑफ एज्यूकेशनल इन्टरेस्ट इन रिलेशन टू स्कूल इनवॉयरानमेंट'' NJMRD, ISSN 2455.9040 वाल-02 इसू-03 पेज 381-383.
- सिंह पूनम (2017); ''उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की रुचि का तुलनात्मक अध्ययन'' IJMER, ISSN 2455.4588 वाल-02 इसू-01.
- सेन (2019); ''एज्यूकेशनल इन्ट्रेस्ट्स ऑफ सेकेन्ड्री स्कूल स्टूडेंट्स ऑफ चम्फल डिस्ट्रिक्ट, मिजोरम'' On IJSE, ISSN- 2496. 3293 वाल 04, इसू-02.
- तिवारी श्वेता (2019); ''अभिरुचि-सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' IJSRT वाल-06, इसू-01 ISSN 2395-6011.
- रानी रजनी (2019); ''माध्यमिक स्तर के विज्ञान एवं कला संकाय के अध्यापकों की व्यावसायिक रुचि का लिंग, क्षेत्र और विद्यालय प्रकार के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन'' शोधार्थिनी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समा. मद्रास.
- बृंदा ब्रिजेले (2021); ''एज्यूकेशनल इन्टरस्ट्स इन रिलेशन टू एकेडेमिक एचिवमेंट ऑफ दे सेकेंड्री स्कूल स्टूडेंट्स'' इन मेघालय इंडिया.
- गुप्ता पूनम (2022); ''साइकोलाजिकल एनालिसिस ऑफ एज्यूकेशनल इन्टरेस्ट विथ स्पेशल रेफरेन्स टू ऐडाल सेंट्स'' IJRIIE, ISSN 2395.4398 वाल-08 इसू-01.
- सिंह एन. के. (2022); ''रुचि का विश्लेषण'' शोध पत्र, सेमिनार.

भारत भूटान सम्बन्धः एक दृष्टि

रामपत

शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र एवं लोक प्रशासन विभाग, डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भूटान, पूर्वी हिमालय में स्थित एक छोटा-सा देश है। यहाँ बौद्ध धर्मावलंबियों का बहुमत है जिसकी जनसंख्या लगभग 8 लाख है। भूटान की सुरक्षा, विदेश नीति या बाह्य मामलों का दायित्व मूलतः भारत पर है। भू-राजनीति की दृष्टि से उत्तरी-पूर्वी राज्यों के सीमावर्ती होने के कारण और चीन के साथ भौगोलिक निकटता के कारण भूटान का भारत के लिए विशेष महत्त्व है। वर्ष 1949 में जब चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तथा इसी समय चीन द्वारा तिब्बत पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया। परिणामतः भारत के लिए भूटान, सिक्किम और नेपाल तीनों क्षेत्रों का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया। भारतीय सुरक्षा संरचना के अंतर्गत इन हिमालयी क्षेत्रों की सुरक्षा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह नीति ब्रिटिश भारत के समय से ही संचालित है। नेपाल, भूटान और सिक्किम के क्षेत्रों की वैधानिक प्रकृति में भिन्नता है, क्योंकि नेपाल पूर्णतः एक संप्रभु देश है, जबकि आरंभ में सिक्किम एक संरक्षित प्रांत था, जिसका वर्ष 1975 में भारत में विलय हो गया। भूटान, एक स्वतंत्र देश है, जो संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य भी है।

चीन के नेता माओ ने अपनी एक मान्यता में यह प्रतिपादित किया कि चीन हाथ है तथा तिब्बत हथेली, जिसकी पांच अंगुलियां क्रमशः लद्दाख, नेपाल, भूटान, सिक्किम व अरुणाचल प्रदेश हैं। वर्ष 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद, चीन द्वारा भारत विरोधी नीति के परिणामस्वरूप चीन की नेपाल में बढ़ती सक्रियता के कारण भूटान का महत्त्व निर्विवाद रूप में देखा गया तथा चीन ने लगातार यह प्रयत्न किया कि वह भूटान में अपने दूतावास खोल सके। परंतु भूटान के द्वारा यह स्पष्ट कहा गया है कि जब तक भूटान एवं चीन के बीच के सीमा विवाद हल नहीं होंगे, तब तक भूटान में चीन को दूतावास खोलने की अनुमति नहीं दी जाएगी। चीन, भूटान में विद्यमान आंतरिक संबंधों को भी भारत के विरुद्ध बताने का प्रयास करता रहता है। इसके बावजूद भारत एवं भूटान के संबंध सदैव मधुर और मित्रतापूर्ण रहे हैं।

ब्रिटिश भारत तथा भूटान के मध्य विशेष राजनीतिक संबंध थे जो वर्ष 1865 में दोनों देशों के बीच सिनचुलु संधि में देखा जा सकता है। इसके तहत भूटान को सीमावर्ती कुछ भू-भाग के बदले वार्षिक अनुदान के करार किए गए। ब्रिटिश इस बात पर राजी हुए कि वे भूटान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, लेकिन भूटान की विदेश नीति इंग्लैंड द्वारा तय की जाएगी। बाद में वर्ष 1947 के पश्चात् यही भूमिका भारत को मिली एवं दो साल बाद वर्ष 1949 में भारत-भूटान समझौते के तहत भारत ने भूटान की वह सारी जमीन उसे लौटा दी, जो अंग्रेजों के अधीन थी। इस समझौते के तहत भारत को भूटान की विदेश नीति एवं रक्षा नीति में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका दी गई तथा भारत-भूटान के मध्य अत्यधिक मधुर एवं मित्रतापूर्ण संबंध बने हुए हैं। भारत और भूटान के बीच आरंभ से ही मधुर और मित्रतापूर्ण संबंध थे तथा भूटान, दक्षिण एशिया का एक मात्र देश है, जिसका चीन के साथ कूटनीतिक संबंध नहीं है।

वर्ष 1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद भूटान का महत्त्व भारत के लिए और अधिक बढ़ गया तथा भारत और भूटान के बीच औपचारिक कूटनीतिक संबंधों की स्थापना वर्ष 1968 में हुई। वर्ष 1971 में भूटान, संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना, जिससे यह स्पष्ट है कि भूटान, एक स्वतंत्र और संप्रभु राज्य है तथा भूटान में राजतंत्रीय शासन विद्यमान था। परंतु वर्ष 2006 में भूटान ने संवैधानिक राजतंत्र को स्वीकार कर लिया तथा भूटान राजतंत्रीय शासन से शांतिपूर्ण रूप में लोकतांत्रिक शासन में परिवर्तित हो गया। भूटान में पहला बहुदलीय लोकतांत्रिक चुनाव वर्ष 2008 में हुआ भारत-भूटान के बीच संबंध और प्रगाढ़ हुए।

वर्ष 2008 में भूटान में लोकतंत्र की बहाली हुई। भूटान में लोकतंत्र का यह परिवर्तन शांतिपूर्ण रूप में हुआ, जिसमें भारत की निर्णायक भूमिका थी। भूटान और भारत के बीच मधुर राजनीतिक संबंध बने हुए हैं। भूटान में केवल तीन देशों का दूतावास है-भारत, बांग्लादेश और कुवैत। भूटान का विश्व के चार देशों में दूतावास है-भारत, बांग्लादेश, बेल्जियम और थाइलैंड। वर्तमान समय में समूचे दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में लोकतंत्र की बहाली हो गई है। भूटान में यह प्रक्रिया शांतिपूर्ण रूप में आरंभ हुई (वर्ष 2004 के बाद)। ऐसा माना जाता है कि नेपाल में चल रहे संघर्ष को देखते हुए भूटान में भी राजतंत्रीय व्यवस्था के विरोध की संभावना थी, क्योंकि भूटान में भूटानी मूल के द्रुकपा और नेपालियों के मध्य पहले से ही संघर्ष विद्यमान है। महाराजा ने भूटान को आंतरिक संघर्ष से बचाने के लिए लोकतांत्रिक प्रक्रिया आरंभ की।

मार्च 2008 में भूटान में नए लोकतांत्रिक चुनाव हुए। भारत ने भूटान में लोकतंत्र की बहाली एवं चुनाव कराने में भी पूर्ण सहयोग दिया। भारतीय प्रधानमंत्री ने भूटान की संसद को संबोधित करते हुए कहा था कि लोकतंत्र मात्र चुनाव आयोजित करना नहीं है, बल्कि आम लोगों की भलाई के लिए शक्ति का प्रयोग करना है। भारत के सहयोग के द्वारा भूटान का सकल घरेलू उत्पाद का 42 प्रतिशत भाग जल विद्युत परियोजनाओं से प्राप्त होता है। भूटान, दक्षिण एशिया का सबसे अधिक प्रतिव्यक्ति आय वाला देश है। भूटान के पास जल विद्युत संसाधन का बहुत बड़ा भाग है।

भारत-भूटान के मध्य शांति और मित्रता की संधि नेपाल के समान ही है। भारत-भूटान संबंधों का आधार वर्ष 1949 में हस्ताक्षरित संधि है, जिसमें उल्लिखित है कि भूटान अपनी विदेश नीति का संचालन भारत के निर्देशों के अनुसार करेगा, परंतु भारत, भूटान के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा साथ ही संधि में यह उल्लेख था कि भूटान, भारत की अनुमति के बिना अन्य देशों से अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य हथियार नहीं खरीदेगा। व्यावहारिक रूप में भूटान की सुरक्षा का समूचा दायित्व भारत का है। भारतीय सेनाएं भूटान की सुरक्षा भी करती हैं।

भूटान में लोकतंत्र की बहाली के बाद वर्ष 1949 की मित्रता की संधि में संशोधन किया गया। इससे पहले इस संधि में यह उल्लिखित था कि भूटान की विदेश नीति भारत के द्वारा निर्धारित होगी। परंतु वर्ष 2007 में इसे संशोधित करके कहा गया है कि भारत और भूटान आपसी सहायता के द्वारा विदेश नीति का निर्माण करेंगे और भूटान को अन्य देशों से हथियार खरीदने की भी अनुमति दे दी गई।

भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने 16-17 मई, 2008 के दौरान भूटान की यात्रा की, जिसमें उन्होंने लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई संसद के प्रथम अधिवेशन को संबोधित किया। इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने घोषणा की कि वर्ष 2020 तक भारत, भूटान में पनबिजली विकास का लक्ष्य दोगुना करेगा, ताकि भूटान, भारत को 10,000 मेगावाट बिजली का निर्यात कर सके। भारत और भूटान के बीच कायम किए जा रहे प्रथम रेल संपर्क के लिए भारत सरकार सहायता जारी करेगी और भूटानी विद्यार्थियों के लिए प्रतिष्ठित 'नेहरू- वांग्चुक स्कॉलरशिप' की स्थापना की गई। वर्तमान आर्थिक उदारीकरण के दौर में भी भारत-भूटान के मध्य बेहतर संबंधों का निर्माण किया जा रहा है। भूटान पनबिजली क्षमता से संपन्न राष्ट्र है, जबकि भारत को अपनी आर्थिक वृद्धि दर बनाए रखने के लिए बड़ी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता है। चुक्खा पन बिजली परियोजना दोनों देशों के मध्य आर्थिक सहयोग का बेहतर उदाहरण है। यह उल्लेखनीय है कि भूटान के समूचे सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भारत की भूमिका अत्यधिक निर्णायक है। दक्षेस के थिम्पू सम्मेलन में 'साफ्टा' के अंतर्गत सेवाओं के व्यापार की अनुमति दी गई है।

भारत के पूर्वोत्तर राज्य उग्रवादी हिंसा से प्रभावित हैं और पूर्वोत्तर राज्यों में कार्य करने वाले उग्रवादी संगठन भूटान में शरण प्राप्त करते हैं। नेपाल में विद्यमान नक्सलवादी भी भूटान में अपना प्रभाव बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। भूटान, भारत के सिलीगुड़ी गलियारे के निकट स्थित है। इसलिए भूटान की असुरक्षा भारत की सुरक्षा चिंता बन जाती है। दिसंबर, 2003 में भारत और भूटान के द्वारा भूटान में उग्रवादियों के विरुद्ध 'ऑपरेशन ऑल क्लियर' आरंभ किया गया और उग्रवादी संगठनों के विरुद्ध प्रभावी कार्यवाही की गई, जिससे उग्रवादी संगठन भूटान में शरण नहीं लेते। उत्तरी-पूर्वी राज्यों में कार्यरत आतंकवादी संगठनों के विरुद्ध भारत और भूटान के आपसी सहयोग के द्वारा संयुक्त कार्यवाही 'ऑपरेशन ऑल क्लियर' की गई। इसलिए भूटान, भारत के लिए निर्विवाद तौर पर महत्त्वपूर्ण है।

जुलाई, 2013 में भूटान में द्वितीय आम चुनाव संपन्न हुआ, जिसमें सत्तारूढ़ डी. पी. टी. पार्टी को हार का सामना करना पड़ा तथा विपक्षी दल पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी चुनाव में विजयी रही। पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी ने संसदीय चुनाव में 47 में से 32 सीटों

पर विजय प्राप्त की तथा इसके नेता 'शेरिंग तोबगे' अगस्त, 2013 में प्रधानमंत्री बने। यह चुनाव दोनों देशों के संबंधों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण रहे। चुनाव से पहले भारत सरकार ने भूटान के लोगों को गैस व केरोसीन पदार्थों पर दी जा रही सब्सिडी पर रोक लगा दी, फलतः डी. पी. टी. पार्टी ने चुनावों में भारत विरोधी प्रचार किया तथा प्रधानमंत्री थिनले ने इसे भूटान के आत्मसम्मान के खिलाफ माना। परंतु चुनावों में डी. पी. टी. पार्टी और प्रधानमंत्री थिनेल की हार से भारत विरोधी भावनाओं को नकार दिया। भारतीय प्रधानमंत्री की भूटान यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री मोदी ने 16 जून, 2014 में संसद की संयुक्त बैठक को संबोधित किया तथा 600 मेगावाट की खोलोंगचु जल विद्युत परियोजना की आधारशिला भी रखी।

भूटान, भारत का विश्वसनीय पड़ोसी राष्ट्र है, जिसके साथ भारत के आपसी रिश्ते बहुत मधुर हैं। भारत के ऊर्जा संकट को भूटान कम कर सकता है। भारत-भूटान दोनों चीनी सैनिकों की घुसपैठ से परेशान हैं, जो दोनों देशों को एक-दूसरे के करीब लाते हैं। वर्तमान समय में भारत को अपनी आर्थिक वृद्धि दर 10 प्रतिशत तक बढ़ाने के लिए विशाल ऊर्जा संसाधनों की आवश्यकता है। चुक्खा और ताला जल विद्युत परियोजनाएं भारत और भूटान के बीच जल विद्युत ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। इन परियोजनाओं में भारत ने 100 प्रतिशत निवेश किया है तथा यह समझौता 99 वर्षों के लिए है। वर्ष 2020 तक भारत और भूटान द्वारा 10 हजार मेगावाट बिजली के साझे उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है, जिससे भूटान की आर्थिक संवृद्धि होगी और भारत को ऊर्जा (बिजली) प्राप्त होगी। भूटान का आर्थिक व्यापार मुख्यतया भारत के साथ है और भूटान के कुल निर्यात का 85 प्रतिशत भाग भारत को दिया जाता है तथा भूटान अपने समूचे आयात का 72 प्रतिशत भाग भारत से आयात करता है।

भारत-भूटान के बीच आर्थिक सहयोग के अलावा पर्यावरण संरक्षण के लिए भी सहयोग हो रहे हैं, क्योंकि पर्यावरणीय समस्या आर्थिक विकास को प्रभावित कर रही है। पर्यावरणीय क्षेत्र में दोनों देशों के बीच सहयोग का उदाहरण ऑपरेशन राइनो है। अक्टूबर, 2013 में दोनों देशों ने दुर्लभ प्रजाति के जीव राइनो को बचाने हेतु ऑपरेशन राइनो आरंभ किया तथा दोनों देशों के मध्य पर्यावरणीय तथा प्रजातीय संरक्षण का यह सर्वोत्तम उदाहरण है।

वर्तमान में चीन और भूटान के बीच सीमा विवाद बने हुए हैं। चीन के द्वारा भूटान के 300 वर्ग किमी. के क्षेत्र पर अपना दावा किया जा रहा है। चीन और भूटान के बीच सीमा विवाद चुंबी घाटी के क्षेत्र में है, जो भारत के सिलीगुड़ी कॉरिडोर से अत्यधिक निकट है (पांच किमी. की दूरी पर) तथा चुंबी घाटी की सामरिक स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि चीन तिब्बत, भूटान और भारत की सीमाएं यहां मिलती हैं। इसीलिए यह भारत के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है। चीन, वर्तमान समय में भूटान में अपना दूतावास खोलने का प्रयत्न कर रहा है तथा वर्ष 2017 तक चीन चुंबी घाटी तक रेल लाइन बिछाने की योजना पर विचार कर रहा है। वर्तमान में भारत के द्वारा भूटान के साथ सांस्कृतिक संबंध सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। दोनों देशों के बीच बौद्ध धर्म का साझा सांस्कृतिक आधार है। वर्तमान में भूटान को सबसे बड़ी आर्थिक सहायता भारत के द्वारा प्रदान की जा रही है जिसे बढ़ाने की आवश्यकता है।

भूटान के कुछ लोग चीन के साथ बेहतर संबंध बनाने पर जोर दे रहे हैं। उनका तर्क है कि चीन के साथ व्यापार से भूटान को ज्यादा फायदा होगा। भूटान के लिए कोलकाता से व्यापार करना ज्यादा खर्चीला होता है। भूटान ने वर्ष 2014 तक जापान को दूतावास खोलने की अनुमति प्रदान कर दी हैं। भारत और भूटान के बीच विकास एवं व्यापार को और प्रभावी करने पर बल दिया जा रहा है तथा पर्यावरणीय क्षेत्रों में भी दोनों देशों के बीच सहयोग हो रहे हैं।

भारत-भूटान संबंध फिलहाल जल विद्युत सहयोग पर निर्भर हैं, जिसे विविधतापूर्ण बनाने की आवश्यकता है। भूमि आबद्ध देश होने के नाते भूटान की भारत पर निर्भरता स्वाभाविक है तथा भारत, भूटान को दक्षेस के माध्यम से भी प्रभावी सहयोग कर रहा है। भारत, चीन के प्रभाव को भूटान में कम करने का प्रयत्न कर रहा है, लेकिन चीन को पूर्णतया प्रतिबंधित कर देना संभव नहीं है।

भूटान में बौद्ध धर्म को मानने वाले डुकपा समुदाय का बहुमत है और नेपाली मूल के लोग रोजगार के लिए भूटान में जाते हैं, जिसका स्थानीय द्रुकपा समुदाय के द्वारा विरोध किया जा रहा है। भारत और भूटान के मध्य किसी प्रकार के विवाद नहीं हैं, परंतु भूटान में भूटानी द्रुकपा और नेपाली मूल के लोगों के मध्य संघर्ष से भारत प्रभावित हो जाता है, क्योंकि भूटानी मूल के लोगों का यह आरोप है कि नेपालियों के आने से भूटानी अपने ही देश में अल्पसंख्यक बनने की कगार पर हैं। वर्तमान में सिक्किम में भोटिया और लेप्चा तथा भूटान में पाए जाने वाले द्रुकपा और तिब्बतियों के मध्य घनिष्ठ सांस्कृतिक और धार्मिक संबंध पाए जाते हैं।

भूटानी, नेपाली मूल के लोगों को अपने देश से भगा रहे हैं, जो भारत और नेपाल में आकर शरण लेते हैं। नेपाल इस समस्या को सुलझाने के लिए भारत से हस्तक्षेप करने का अनुरोध करता है। वर्ष 2012 में भूटानी सरकार ने भारतीयों को कार्य करने हेतु 'वर्क परमिट' अनिवार्य कर दिया, जबकि दोनों देशों के नागरिकों को एक-दूसरे के भू-भाग में कार्य करने एवं विचरण की स्वतंत्रता लंबे समय से प्राप्त है। भूटानी नागरिक भारत में सरकारी नौकरी हेतु आवेदन कर सकते हैं। भूटान इमीग्रेशन विभाग ने वर्क परमिट के बगैर कार्य करने वाले भारतीयों पर 9,990 रुपये का जुर्माना लगाया। यह प्रावधान दोनों देशों के मध्य संपन्न वर्ष 2007 के समझौते का स्पष्ट उल्लंघन है, जिसमें कहा गया है दोनों देशों के नागरिकों को समान मान्यता मिलेगी।

1949 की भारत-भूटान संधि के अनुसार भूटान की सुरक्षा का दायित्व भारत का है और भूटान में भारतीय सेनाओं की तैनाती है। चीन और भूटान के बीच सीमा विवाद बने हुए हैं, जिसमें डोकलाम भी शामिल है। वर्तमान में डोकलाम विवाद (जून-अगस्त 2017) भारत और चीन के बीच में विवाद के रूप में परिवर्तित हो गया, क्योंकि भूटान की सुरक्षा का दायित्व भारत का है। इसलिए भारत ने चीन के द्वारा किये जा रहे विवादित सड़क निर्माण के कार्य को रोक दिया, जिसके विरोध में चीन ने अत्यधिक हिंसक और आक्रमक प्रतिक्रिया की। परंतु भारत ने अपनी सेनाएं पीछे नहीं की और चीनी आक्रामक रणनीति के समक्ष न झुकना भारत की कूटनीतिक विजय है। डोकलाम विवाद एवं वैश्विक जनमत जापान के द्वारा डोकलाम मुद्दे पर भारत का समर्थन किया गया और हिंसक तरीके से एकतरफा रूप में सीमा में बदलाव का विरोध किया गया। चीन ने नेपाल पर दबाव बनाकर भारत के समक्ष काला पानी विवाद उठाने के लिए कहा, परंतु नेपाल ने इस मुद्दे पर चीन का समर्थन नहीं किया। रूस ने भी तटस्थता की नीति अपनाई तथा अमेरिका के द्वारा समस्या के कूटनीतिक समाधान पर बल दिया गया, जिसका अभिप्राय है कि विश्व जनमत ने परोक्ष रूप में भारतीय दृष्टिकोण का ही समर्थन किया।

डोकलाम में चुंबी घाटी सामरिक रूप में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह ऊंचाई पर स्थित है, उससे भी बढ़कर यह सिलीगुड़ी गलियारे के अत्यधिक निकट है, जो समूचे पूर्वोत्तर क्षेत्र को भारत के साथ जोड़ता है। इसलिए यहां चीन की सेनाओं की तैनाती से समूचे पूर्वोत्तर क्षेत्र की सुरक्षा खतरे में आ जाती है। यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि डोकलाम विवाद का शांतिपूर्ण समाधान हो गया है। परंतु चीन के नेता शी. जिंगपिंग की साम्यवादी दल में अत्यधिक शक्तिशाली स्थिति हो गई है। इसलिए भविष्य में भी चीन की नीतियां अत्यधिक आक्रामक होंगी, जो भारत की सुरक्षा के लिए बड़ी चुनौती बनी रहेगी और विचारकों का यह भी कहना है कि डोकलाम मुद्दे पर चीन का आक्रामक दृष्टिकोण भारत के द्वारा चीन द्वारा प्रस्तावित रोड एण्ड बेल्ट की परियोजना में भाग लेने से इनकार करना भी था।

भूटान नरेश जिग्मे खेसर नामग्याल वांगचुक नवंबर, 2017 में भारत की यात्रा पर आए। यह यात्रा इसलिए भी महत्त्वपूर्ण रही, क्योंकि यह डोकलाम विवाद के तुरंत बाद की भारत यात्रा है। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य व्यापारिक, सुरक्षा संबंधों को आगे ले जाने पर सहमति बनी। भूटान ने डोकलाम पर चीनी अतिक्रमण का विरोध किया।

निष्कर्षत: भारत, विश्व के सर्वाधिक विशाल देशों में से एक है जबकि भूटान, दुनिया का एक छोटा देश है। इसके बावजूद भारत-भूटान संबंध मधुर व मित्रतापूर्ण हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भारत का दृष्टिकोण छोटे पड़ोसियों के प्रति आधिपत्यपूर्ण नहीं है बल्कि उदारतापूर्ण है।

संदर्भ सूची-

1. https:èkèkwww.indembthimphu.gov.inèkpages.php?id=549
2. https:èkèkwww.insightsonindia.comèkinternational-relationsèkindia-and-its-neighborhoodèkindia-bhutan-relationsèkchallenges-in-relation-b-w-india-and-bhutanèk
3. स्वतंत्र भारत की विदेश नीति- वी.पी. दत्त, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 2007, छठा संस्करण-2015।
4. भारत की विदेश नीति: चुनौती और रणनीति-राजीव सीकरी, प्रकाशक-सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, भारत, संस्करण 2017।
5. भारतीय विदेश नीति: भूमंडलीकरण के दौर में-राजेश मिश्रा, प्रकाशक-ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण 2019।

जिला भोजपुर में साक्षरता दर के परिवर्तनशील स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण

अनिल कुमार शर्मा

शोध छात्र, पी.जी. भूगोल विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा, बिहार

सारांशः- साक्षरता का शाब्दिक अर्थ न्यूनतम साक्षरता निपूर्णता से है अर्थात कोई व्यक्ति किसी एक भाषा को पढ़ और समझ कर लिख सकता हो तो उसे साक्षर माना जाता है। साक्षरता मानव विकास का एक महत्वपूर्ण मानक है। साक्षरता को आर्थिक विकास, सामाजिक विकास एवं राजनितिक विकास का सूचक माना जाता है। आधुनिक युग में वही देश समुचित एवं तेजी से विकास कर सकता है जहाँ पर साक्षरता दर अधिक हो। साक्षरता एक ऐसा साधन है जो समाज को एक असभ्य समाज से सभ्य समाज की ओर ले जाता है। क्योंकि साक्षरता मनुष्य में मानसिक एकाकीपन की समाप्ति कर शांतिपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण भाई बंधू वाले समाज का निर्माण करता है। साक्षरता अन्य जन्संख्यीकीय लक्षणों जैसे प्रवास, जन्मदर, मृत्युदर इत्यादि को भी प्रभावित करता है। भारत जैसे विशाल विकाशील देश में जैसे जैसे जनसंख्या बढती गई वैसे वैसे यहाँ साक्षर और निरक्षर लोगों की संख्या भी बढ़ती गई देश में जहाँ एक तरफ केरल जैसा उच्च साक्षरता वाला राज्य है तो वही दूसरी तरफ बिहार जैसे निम्नतम साक्षरता वाला राज्य भी है। भारत में साक्षरता के स्थानिक वितरण में प्रादेशिक असमानता पायी जाती है। और यही असमानता भोजपुर जिला में भी दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत शोध पत्र जिला भोजपुर में साक्षरता दर के परिवर्तनशील स्थानिक वितरण प्रतिरूप के अध्ययन से सम्बंधित है। इस अध्ययन हेतु द्वितीयक आंकड़ो का विश्लेषण माध्य एवं मानक विचलन जैसे सांख्यिकीय विधियों द्वारा किया गया है। इस शोधपत्र का उद्देश्य है भोजपुर जिला में साक्षरता के इस वितरण प्रतिरूप का अध्ययन करना।एवं निम्न,मध्यम एवं उच्च साक्षरता स्तर वाले प्रखंडो की पहचान करना तथा साक्षरता के निम्न स्तर वाले प्रखंडो में साक्षरता स्तर उच्च करने हेतु जनजागरूकता पर विशेष बल देना हैं।

उल्लेखनीय पारिभाषिक पदावलीः- आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, राजनितिक विकास , साक्षरता

1.प्रस्तावनाः भूगोल स्थानीय वितरणों का विज्ञान है। भूगोल में हम मुख्यतः पृथ्वी तल पर स्थित तत्वों के वितरण का अध्ययन करते है। कोई भी तत्वों का अध्ययन स्थानीय क्षेत्र से प्रारम्भ करने पर उसके अनेक भौगोलिक तथ्यों का स्पस्टीकरण हो जाता है और पता चलता है की कौन-कौन से कारक मिलकर भौलोगिक वातारण का निर्माण करते है उन उन कारको को विश्लेषित करके एक सिधान्त बनाते है जिसके द्वारा विश्व के किसी भी भाग में स्थित ऐसे तथ्य के बारे में कल्पना द्वारा सही अनुमान लगाया जा सकता है। भुगोल में हम पुरे ग्लोब का अध्ययन करते है लेकिन हम ग्लोब पर स्थित सभी जगह जा नहीं सकते है तो हम सिधान्त के द्वारा ही कल्पना करके अध्ययन करते है अतः भुगोल का अधिकांश अध्ययन कल्पना पर ही आधारित होता है। स्थानिक वितरण से परिवर्तिनशील तत्वों के क्षेत्रीय संबंधो का पता लगाने में सरलता होती है। पुरे पृथ्वी का धरातल विविधता का परिचायक है। जिस प्रकार धरातल पर सभी जगह जनसंख्या एक सामान नहीं पाई जाती है उसी प्रकार साक्षरता भी सभी जगह एक सामान नहीं पाई जाती है। साक्षरता का शाब्दिक अर्थ है, अक्षर का ज्ञान होना। भारत में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अनुसार अगर कोई व्यक्ति अपना नाम लिखने और पढने की योग्यता हासिल कर लेता है तो उसे साक्षर माना जाता है। साक्षरता एक ऐसा साधन है जो समाज को एक असभ्य समाज से सभ्य समाज की ओर ले जाता है। साक्षरता अन्य जनसांख्यिकीय लक्षणों जैसे प्रवास, जन्मदर ,मृत्युदर इत्यादि को भी प्रभावित करता है। विभिन्न क्षेत्रो में पाए जाने वाले साक्षर लोगो के संख्या के विभिन्नता को ही साक्षरता का स्थानिक वितरण प्रतिरूप कहते है। दुनिया भर में साक्षरता के गहन अध्ययन करने के लिए इसे वैश्विक एवं क्षेत्रीय स्थर पर अलग अलग विभागों

में बाट कर इसका अध्ययन किया जाता है। साक्षरता का स्थानिक वितरण के अध्ययन से उस क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनितिक विकास के स्तर एवं विकास की सम्भावनाओं का पता लगाया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र भोजपुर जिला में साक्षरता का स्थानिक विभिन्नता दृष्टिगोचर हुआ है।

2. अध्ययन के उद्देश्य: प्रस्तुत शोधपत्र के निम्नलिखित उद्देश्य है:

(1) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर विगत जनगणना वर्ष 2001 में कुल साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।

(2) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर कुल साक्षरता के वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 में स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।

(3) भोजपुर जिला में प्रखण्ड स्तर पर विगत जनगणना वर्ष 2001 एवं वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 में कुल साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत करना।

3. विधितंत्र: प्रस्तुत शोध अध्ययन क्षेत्र भोजपुर है जो भारतवर्ष के बिहार राज्य में 25० 10' से 24० 40' उत्तरी अक्षांश तथा 83० 45' से 84० 45' पूर्वी देशांतर के मध्य अवस्थित एक जिला है। जिसका क्षेत्रफल 233729.15 हेक्टेयर हैं तथा यह पटना प्रमण्डल के अंतर्गत आता है। प्रस्तुत शोध द्वितीयक आंकड़ो पर आधारित है जिनका संग्रहण जनगणना रिपोर्ट 2001 एवं 2011 से किया गया है। प्रस्तुत शोध साक्षरता के स्थानिक-कालिक वितरण एवं असमानता पर केन्द्रित है। साक्षरता के स्थानिक एवं कालिक वितरण को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर निम्न,मध्यम एवं उच्च श्रेणियों में विभाजित कर विश्लेषण किया गया है।

4.पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन: साक्षरता जनांकिकीय भूगोल का एक अंग है जिसका अध्ययन जनसंख्या भूगोल में किया जाता है। भारत में जनसंख्या भूगोल का अध्ययन प्रो० जी०एस०गोसल, एवं आर०सी०चान्दना के द्वारा प्रारम्भ हुआ है। इसके बाद अनेक विद्वानों में जनसंख्या भुगोल तथा साक्षरता का अध्ययन किये है। डेविस (1955 पृ० 263-315) ने पाया की साक्षरता संक्रमण दर निम्न होने पर आर्थिक विकास दर मन्द होती है और साक्षरता संक्रमण दर तीव्र होने पर आर्थिक विकास दर भी तीव्र होती है। गोसल (1967 पृ०3) के अनुसार साक्षरता में स्थानिक विभेदन का कारण है कि वर्ण व्यवस्था में यह भावना विकसित हुई की शिक्षा तभी देनी चाहिए जब उसकी कार्यकारी आवश्यकता हो। गोल्डन (1968 पृ० 416) ने साक्षरता विभेदन का उदभव का कारण प्रत्येक साक्षरता स्तर पीछे समाज की पूर्ण संस्थागत संरचना को माना है। कृष्ण एवं श्याम (1973 पृ०204) के अनुसार महिला साक्षरता दर में कमी का कारण है "महिला घरेलु कार्यो में संलग्न रहती है इसीलिए महिलाओं के लिए साक्षरता का कार्यकारी महत्व कम है। फलत: इनकी साक्षरता पर कम ध्यान दिया जाता है"। विप्लव (2012 पृ०1) के अनुसार महिला पुरुष साक्षरता दर में अंतर का कारण "लड़कियों के साथ जन्म से ही भेद भाव किया जाने लगता है उसे विधालय से वंचित कर घरेलु कार्यो में लगा दिया जाता है और व्यवस्था की आड़ में विभेदीकरण का दौर शुरू हो जाता है।" शोधार्थी सुशील कुमार (2018) ने अपने शोध पत्र "साक्षरता के विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान में यह पाया की जिन जिन क्षेत्रो में जैसे - जैसे जनसंचार माध्यमों का विकास होता गया वैसे - वैसे उन क्षेत्रो में शिक्षा एवं साक्षरता का विकास होता गया।

5. विवेचना: प्रस्तुत शोध पत्र की विवेचना तीन बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है। प्रथम बिन्दु के अन्तर्गत वर्ष 2001में प्रखण्ड स्तर पर साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन किया गया है, द्वितीय बिन्दु अन्तर्गत वर्ष 2011 में प्रखण्ड स्तर पर साक्षरता के स्थानिक वितरण का अध्ययन किया गया है तथा तृतीय बिन्दु अन्तर्गत वर्ष 2001 एवं वर्ष 2011 में प्रखण्ड स्तर पर कुल साक्षरता दर का तुलनात्मक अध्ययन दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण को प्रस्तुत किया गया है।

5.1. भोजपुर जिला में विगत जनगणना वर्ष 2001 में कुल साक्षरता के स्थानिक वितरण: जनगणना वर्ष 2001 में भोजपुर जिले की कुल जनसंख्या 2243144 थी जिसमे 1073010 लोग साक्षर तथा 1170134 लोग निरक्षर थे अर्थात उस समय कुल साक्षरता दर 59.00 प्रतिशत था। वर्ष 2001 में भोजपुर जिले में सर्वाधिक साक्षर जनसंख्या वाला प्रखण्ड आरा था जहाँ पर कुल साक्षर जनसंख्या 213424 थी इसके बाद क्रमश: पीरो (97435), जगदीशपुर (91756), बड़हरा (89429), शाहपुर (82090), कोईलवर (79029), तरारी (72669), बिहियां (64455), उदवंतनगर (63384), अगिआवं (54701), सहार (45732), संदेश (40047), गड़हनी (39770) एवं सबसे कम साक्षर जनसंख्या वाला प्रखण्ड चरपोखरी था जहाँ कुल साक्षर जनसंख्या 39089 थी। (सारणी 1.1)

सारणी 1.1: भोजपुर जिला में कुल साक्षरता का स्थानिक वितरण (2001)

प्रखण्ड का नाम साक्षरता दर	*कुल साक्षर जनसंख्या*	*कुल निरक्षर जनसंख्या*	*कुल*
अगिआंव	54701	67450	55.4
आरा	213424	156220	69.7
बड़हरा	89429	105010	56.6
बिहिया	64455	74919	57
चरपोखरी	39089	45441	58
गड़हनी	39770	46555	57.4
जगदीशपुर	91756	120785	53.7
कोईलवर	79029	90535	57.3
पीरो	97435	109915	58.5
सहार	45732	53853	57.1
संदेश	40047	50212	55
शाहपुर	82090	103821	54.5
तरारी	72669	76544	60
उदवंतनगर	63384	68874	59.2
कुल	1073010	1170134	59

Source: Census of India, 2001

अगर वर्ष 2001 में भोजपुर जिले में इस साक्षरता वितरण को प्रतिशत के रूप में देखा जाये तो सर्वाधिक साक्षरता दर वाला प्रखण्ड आरा है जहाँ पर कुल साक्षरता दर 69.7 प्रतिशत था इसके बाद क्रमशः तरारी (60 प्रतिशत), उदवंतनगर (59.2 प्रतिशत), पीरो (58.5 प्रतिशत), चरपोखरी (58 प्रतिशत), गड़हनी (57.4 प्रतिशत), कोईलवर (57.3 प्रतिशत), सहार (57.1 प्रतिशत), बिहिया (57 प्रतिशत), बड़हरा (56.6 प्रतिशत), अगिआंव (55.4 प्रतिशत), संदेश (55 प्रतिशत), शाहपुर (54.5 प्रतिशत) एवं सबसे कम साक्षरता दर जगदीशपुर (53.7 प्रतिशत) था। (सारणी 1.1) इस वितरण को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर अति निम्न, निम्न, मध्यम एवं उच्च चार श्रेणियों में विभाजित किया जाये तो, अति निम्न या निम्न साक्षरता दर की श्रेणी में 64.28 प्रतिशत प्रखण्ड अर्थात 9 प्रखण्ड जगदीशपुर, शाहपुर, संदेश, अगिआंव, बड़हरा, बिहिया, सहार, कोईलवर, गड़हनी था। मध्यम साक्षरता दर की श्रेणी में 28.57 प्रतिशत प्रखण्ड अर्थात 4 प्रखण्ड चरपोखरी, पीरो, उदवंतनगर, तरारी था एवं उच्च साक्षरता दर की श्रेणी में 7.14 प्रतिशत प्रखण्ड अर्थात मात्र एक प्रखण्ड आरा था। (सारणी 1.2)

सारणी 1.2: भोजपुर जिला में कुल साक्षरता स्तर (2001)

साक्षरता स्तर	*प्रखण्ड की संख्या*	*प्रतिशत वितरण*	*प्रखण्ड का नाम*
अति निम्न	1	7.14	जगदीशपुर
निम्न	8	57.14	शाहपुर, संदेश, अगिआंव, बड़हरा, बिहिया, सहार, कोईलवर, गड़हनी,

मध्यम	4	28.57	चरपोखरी, पीरो, उदवंतनगर, तरारी
उच्च	1	7.14	आरा
कुल	14	100	

Source: Calculated by Researcher

5.2 भोजपुर जिला में वर्तमान जनगणना वर्ष 2011 में कुल साक्षरता के स्थानिक वितरणः अध्ययन क्षेत्र भोजपुर जिला में कुल जनसंख्या 2728407 है। जिसमे 1599151 लोग साक्षर तथा 1129256 लोग निरक्षर है। यहाँ सर्वाधिक साक्षरता वाला प्रखण्ड आरा है जहाँ पर कुल साक्षर लोगों की संख्या 298438 है। इसके बाद क्रमशः पीरो(149755), जगदीशपुर(148485), बड़हरा(138501), शाहपुर(124237), कोईलवर(117665), तरारी(107698), उदवंतनगर(90283), अगिआवं(83252), सहार(60916), संदेश(60529), चरपोखरी(57404), गड़हनी(56837) है। गड़हनी पुरे भोजपुर जिला में सबसे कम साक्षर जनसंख्या वाला प्रखण्ड है। (सारणी1.3)

सारणी 1.3ः भोजपुर जिला में कुल साक्षरता का स्थानिक वितरण (2011)

प्रखण्ड का नाम	*कुल साक्षर जनसंख्या*	*कुल निरक्षर जनसंख्या*	*कुल साक्षरता दर*
अगिआवं	83252	65121	67.09
आरा	298438	164180	76.37
बड़हरा	138501	102135	69.11
बिहिया	105151	73278	70.74
चरपोखरी	57404	43959	68.86
गड़हनी	56837	46425	66.77
जगदीशपुर	148485	115474	67.08
कोईलवर	117665	84510	70.65
पीरो	149755	105156	70.58
सहार	60916	49360	67.09
संदेश	60529	49183	66.73
शाहपुर	124237	88016	70.01
उदवंतनगर	90283	67526	69.41
तरारी	107698	74933	71.04

Source: Census of Indiaए 2011

अगर वर्ष 2011 की इस साक्षर जनसंख्या को प्रतिशत के रूप में वितरण किया जाए तो सर्वाधिक साक्षरता प्रतिशत वाला प्रखण्ड आरा(76.37 प्रतिशत) है। इसके बाद क्रमशः तरारी (71.04 प्रतिशत), बिहिया (70.74 प्रतिशत), कोईलवर (70.65 प्रतिशत), पीरो (70.58 प्रतिशत), शाहपुर (70.01 प्रतिशत), उदवंतनगर (69.41 प्रतिशत), बड़हरा (69.11 प्रतिशत), चरपोखरी (68.86 प्रतिशत), अगिआव ं(67.09 प्रतिशत), सहार (67.09 प्रतिशत), जगदीशपुर (67.08 प्रतिशत), गड़हनी (66.77 प्रतिशत), संदेश (66.73. प्रतिशत) है। साक्षर जनसंख्या के मामले में सबसे निचले स्थान पर गड़हनी है लेकिन प्रतिशत के नजर से सबसे कम साक्षरता प्रतिशत वाला प्रखण्ड संदेश है। (सारणी 1.3.) भोजपुर जिला में वर्ष 2011 में कुल साक्षरता दर 70.47 प्रतिशत है। कुल साक्षरता दर को माध्य एवं मानक विचलन के आधार पर अति निम्न, निम्न, मध्यम एवं उच्च चार श्रेणियों में विभाजित कर के इसका प्रतिशत वितरण निकला जाये तो यहाँ 50 प्रतिशत अर्थात 7 प्रखण्ड संदेश, गड़हनी, जगदीशपुर, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, बड़हरा में साक्षरता दर अति निम्न या निम्न है, मध्यम साक्षरता दर की श्रेणी में 42.8 प्रतिशत अर्थात 6 प्रखण्ड तरारी,

शाहपुर, पीरो, कोईलवर, बिहिया, उदवंतनगर है एवं उच्च साक्षरता दर की श्रेणी में मात्र 7.1 प्रतिशत अर्थात एक प्रखण्ड आरा है। (सारणी 1.4)

सारणी 1.4: भोजपुर जिला में कुल साक्षरता स्तर (2011)

साक्षरता स्तर	*प्रखण्ड की संख्या*	*प्रतिशत वितरण*	*प्रखण्ड का नाम*
अति निम्न	2	14.29	संदेश, गड़हनी
निम्न	5	35.71	जगदीशपुर, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, बड़हरा
मध्यम	6	42.86	तरारी, शाहपुर, पीरो, कोईलवर, बिहिया, उदवंतनगर
उच्च	1	7.14	आरा

Source: Calculated by Researcher

5.3 भोजपुर जिला में कुल साक्षरता दर में दशकीय परिवर्तन का स्थानिक वितरण: जनगणना वर्ष 2001 एवं 2011 को तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो, जहाँ वर्ष 2001 में निम्न या अति निम्न साक्षरता दर की श्रेणी में जगदीशपुर, शाहपुर, संदेश, अगिआंव, बड़हरा, बिहिया, सहार, कोईलवर, गड़हनी नामक नौ प्रखण्ड सम्मिलित थे। जो वर्ष 2011 में घटकर सात प्रखण्ड हो गए जिसमें वर्तमान में संदेश, गड़हनी, जगदीशपुर, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, बड़हरा सम्मिलित हैं। मध्यम साक्षरता दर की श्रेणी में वर्ष 2001 में चरपोखरी, पीरो, उदवंतनगर, तरारी नामक 4 प्रखण्ड थे, जो वर्ष 2011 में बढ़ कर छः प्रखण्ड हो गए जिसमें वर्तमान समय में तरारी, शाहपुर, पीरो, कोईलवर, बिहिया, उदवंतनगर सम्मिलित हैं। उच्च साक्षरता दर में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ है, वर्ष 2001 की तरह वर्ष 2011 में भी आरा उच्च साक्षरता दर वाला एक मात्र प्रखण्ड है। भोजपुर जिला में कुल साक्षरता दर में वर्ष 2001 से वर्ष 2011 के मध्य कुल दशकीय परिवर्तन 11.47 प्रतिशत हुआ हैं। दशकीय परिवर्तन के स्थानिक वितरण प्रतिरूप का विश्लेषण करने से ज्ञात होता हैं कि भोजपुर जिला में कुल साक्षरता दर में अतिनिम्न या निम्न दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड आरा, गड़हनी, उदवंतनगर, सहार, चरपोखरी है एवं मध्यम दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड अगिआंव, संदेश, तरारी, पीरो, बड़हरा, कोईलवर, जगदीशपुर, बिहिया है। कुल साक्षरता दर में उच्च दशकीय परिवर्तन वाले प्रखण्ड शाहपुर है। गड़हनी एक ऐसा प्रखण्ड है जहाँ कुल साक्षरता दर भी निम्नतम है एवं दशकीय परिवर्तन दर भी निम्नतम ही है। इसके साथ-साथ चरपोखरी एवं सहार भी ऐसा प्रखण्ड है जहाँ महिला साक्षरता दर निम्न है एवं दशकीय परिवर्तन भी निम्न ही हुआ है।

सारणी 1.5: कुल साक्षरता का दशकीय परिवर्तन (2001-2011)

प्रखण्ड का नाम	*दशकीय परिवर्तन*	*प्रखण्ड का नाम*	*दशकीय परिवर्तन*
आरा	6.67	तरारी	11.84
गड़हनी	9.37	पीरो	12.08
उदवंतनगर	9.41	बड़हरा	12.51
सहार	9.99	कोईलवर	13.35
चरपोखरी	10.86	जगदीशपुर	13.38
अगिआवं	11.69	बिहिया	13.74
संदेश	11.73	शाहपुर	15.51

Source: Calculated by Researcher

6. उपसंहार:- भोजपुर जिला में 7 प्रखण्ड ऐसे है जहाँ साक्षारता का स्तर निम्न है। विशेष रूप से नियोजन की आवश्यकता संदेश एवं गड़हनी नामक प्रखण्ड को है। वर्तमान में आधे से अधिक प्रखण्ड अर्थात 7 प्रखण्ड इसी श्रेणी में आते है। उच्च साक्षरता रखने वाला सिर्फ एक प्रखण्ड है जो की आरा है। स्पष्ट है की जैसे-जैसे नगरीय केन्द्र से प्रखण्ड की दूरी बढ़ती जाती है वैसे

वैसे शैक्षिक सुविधाओं के अभाव में साक्षरता का स्तर गिरता जाता है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि जन जागरूकता द्वारा साक्षरता की महत्ता को जन-जन में पहुंचाया जाए साथ ही उनको शिक्षा एवं साक्षरता हेतु कार्यशील सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों एवं नितियों से भी अवगत कराया जाए ताकि साक्षरता का मार्ग प्रशस्त हो सके और संदेश, गड़हनी, जगदीशपुर, अगिआंव, सहार, चरपोखरी, बड़हरा जैसे प्रखण्ड निम्न स्तर से मध्यम की ओर तथा तरारी, शाहपुर, पीरो, कोईलवर, बिहिया, उदवंतनगर अपने मध्यम स्तर से उच्च साक्षरता स्तर की ओर अग्रसर हो सके।

References :

- Davis, K. (1955). *Social and Demographic Aspects of Economic Development in India in Simoson Kuznets, et al.(ets), Economic, Growth : Brazil , India, Japan* , Duke University Press, Durham, pp. 263-315.
- Gosal, G. H. (1967). Regional Aspects of Rural Literacy in India, *Transactions of Indian Council of Geographers*, 4, pp. 3.
- Golden, H. (1968). Literacy, *International Encyclopaedia if the Social Sciences*, Macmillan Company and free press, 9, pp.416.
- Krishna, G. and Shyam, M. (1973). Spatial Perspective on Progress of Female Literacy in India: 1907-71, *Pacific Viewpoint*, 14, pp.204.
- विप्लव (2012). भारत में महिला मानवाधिकार, राहुल पब्लिशिंग हॉउस, मेरठ, पृ०1।
- कुमार, सुशील(2018). साक्षरता के विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

प्राचीन भारत में राज्य का स्वरूप एवं प्रकृति

प्रभु दयाल जयंत

कार्य वाहक प्रधानाचार्य, श्री शांति स्वरूप कृषि इंटर कॉलेज हापुड़, उत्तर प्रदेश

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य का जो स्वरूप स्पष्ट होता है उसमें राजा सर्वोच्च है। सम्पूर्ण केन्द्रीय शक्ति राजा के पास है। राजा मुख्य कार्यपालिका प्रधान है। राजा ही संप्रभुता का जीता-जगता स्वरूप है। प्रशासन न्याय, व्यवस्था, सेवा आदि सभी राजा के अधीन हैं। अर्थशास्त्र में कौटिल्य का मत है शासन के विभिन्न अध्यक्षों व अमात्यों की नियुक्ति राजा ही करता है। राज्य में हर विपत्ति या संघर्ष का समाधान राजा द्वारा ही किया जाता है। अतः सम्पूर्ण शासन व्यवस्था राजा के इर्द-गिर्द ही घूमती है। कौटिल्य ने राजा के कर्तव्यों एवं दायित्वों का भी वर्णन किया है।

राजा का पहला कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना है। प्रजा को प्रसन्न करने के लिए आवश्यक है कि राजा राज्य में शान्ति व्यवस्था एवं सुरक्षा की व्यवस्था करे। धर्म की स्थापना एवं रक्षा करे, कानूनों का पालन करवाए, न्यायालयों की स्थापना करे, कृषि, उद्योग एवं व्यापार का विकास एवं प्रोत्साहन करे। कौटिल्य के अनुसार राजा ही सर्वोच्च है। राजा संघर्ष के स्थिति में अपने विवेक से निर्णय करे। कौटिल्य ने राजा को कुछ विशेषाधिकार भी स्पष्ट किए हैं। कौटिल्य के समय में राजा किसी के अधीन नहीं था, वह करों से विमुक्त था, उसे न्यायालय में साक्षी के रूप में नहीं बुलाया जा सकता। परन्तु कौटिल्य के अनुसार राजा की सत्ता की सीमाएँ थीं। राजा के पास सत्ता तो थी लेकिन सतायुक्त होने के बावजूद राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। वह राज्य के आधारभूत कानून और संस्थाओं से ऊपर नहीं था। राजा के लिए व्यक्तियों के स्वधर्म, आचार और नैतिकता के परम्परागत नियमों और वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखना आवश्यक था। कौटिल्य राजा के लिए आदर्श स्वरुप कहते हैं वह प्रजा के सुख में सुख और प्रजा के हित में हित समझे तथा अपने आपको प्रिय लगने वाला कार्य न करके प्रजा को प्रिय लगने वाला कार्य ही करे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के आठवें अधिकरण के दूसरे अध्याय में स्पष्ट लिखा है की 'राजा राज्यमिति प्रकृति संक्षेप' अर्थात् संक्षेप में राज्य के केवल दो ही अंग हैं। राजा और राज्य। इस प्रकार स्पष्ट है कि कौटिल्य का राजा सर्वोपरि है।

राजतन्त्र भारत की सर्वाधिक मान्य शासन-प्रणाली थी। परिणामस्वरूप भारतीय ग्रन्थकारों ने प्रजातंत्र का सविस्तार वर्णन किया है। वैदिक युग में छोटे-छोटे जन राज्यों की सत्ता थी। इन जनों के सभी व्यक्ति प्रायः सजात या सनाभि होते थे। अनेक स्थलों पर यदु, पुरु, अणु, तुर्वशु आदि विशिष्ट जनों का वर्णन है। उत्तर वैदिक काल में प्रादेशिक राज्यों का विकास हुआ तथा 'विश' एव 'जन' के साथ-साथ अपने लिए राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। ब्राह्मण साहित्य में सम्राट का वर्णन किसी 'जन' के अधिपति के रूप में नहीं वरन् पृथ्वी अधिपति के रूप में होने लगा। यदि हम शुक्रनीतिसार के मत को मान लें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शासक को ब्रह्मा द्वारा जनता के सेवक के रूप में बनाया गया। वह जनता से आय के रूप में राजस्व एकत्रित करता था और उसकी सम्प्रभुता केवल सुरक्षा के लिए थी। मौलिक रूप से आर्य राजा केवल नेता माने जाते थे। उस सयम गैर-आर्य लोगों ने एक स्थायी वंश-परम्परगत राजतंत्र की व्यवस्था विकसित कर ली थी। वैदिक काल के आर्यो में यह भी विचार पनपने लगा था कि चक्रवर्ती राजा वह है जिसके अधीन कई राजा होते हैं। जब आर्य लोगों का भौगोलिक दृष्टि से काफी प्रसार हो गया तो उन्होंने राजपद की मान्यता में वास्तविक परिवर्तन किये। जब आक्रमणकारी जातियाँ गंगा-घाटी के मैदानों में फैल गयी तो चक्रवर्ती व्यवस्था के विचार मूर्त होने लगे। अब मुख्य राजा द्वारा अन्य राजाओं को अपने प्रभाव में रखने की परम्परा पैदा हुई। साम्राज्यवादी शक्ति की मान्यता धीरे-धीरे प्राचीन हिन्दू राजनीतिक परम्पराओं का एक अंग बन गई।

जब भारत के राजनीतिक संगठन के पहले 'आर्यावृत्त' को और बाद में समस्त हिन्दुस्तान को अपने क्षेत्र में समेट लिया तो उस व्यक्ति को सम्राट माना जाने लगा जिसका प्रभाव विंध्य प्रदेश के समस्त उत्तरी भागों या हिमालय से लेकर रामेश्वरम् तक के समूचे

भारत पर हो। उस युग में केवल सैनिक विजय द्वारा एक व्यक्ति सम्राट् नहीं बन जाता था। सैनिक विजय के आधार पर कोई भी एक बड़ा राजा बन सकता था, किन्तु सम्राट नहीं। सम्राट बनने के लिये इस बड़े राजा को अवश्मेघ या इसी प्रकार का अन्य कोई यज्ञ करना होता था। इस प्रकार सम्राट का पद वैदिक काल में भी कोई वंश परम्परागत पद न होकर एक व्यक्तिगत पद था। इसके द्वारा कोई अतिरिक्त शक्ति या उच्च सत्ता प्रदान नहीं की जाती थी। कौटिल्य ने परम्परागत हिन्दू साम्राज्य की मान्यता के क्षेत्र को परिभाषित करते हुए बतलाया है कि इसका अर्थ उस भू-भाग से है जो हिमालय और समुद्र के बीच में पड़ता है। यह भू-भाग नौ हजार योजन का है। जिस राजा का इस पर प्रभाव होगा वही सम्राट माना जा सकता है।

महाभारत काल के बाद से ही साम्राज्य के वंश-परम्परागत उत्तराधिकार की परम्पराएँ प्रचलित हो गईं। अनेक पौराणिक ग्रन्थों में जो वंश-परम्परा की सूचियाँ प्राप्त होती हैं उनसे इस परम्परा का अस्तित्व सिद्ध होता है। मौर्य साम्राज्य के समय से ही कुछ सीमा तक इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाया गया। भारत के तीन मौर्य सम्राट बने। सेनापति पुष्यमित्र ने यद्यपि सम्राट की उपाधि ग्रहण नहीं की किन्तु कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् से प्रतीत होता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ की परम्पराओं को जारी रखा। गुप्त साम्राज्य की भाँति ही भारसिवास एवं वाकाटक राजवंशों ने भी साम्राज्यवादी परम्परा को निभाया। भारसिवास राजवंश के बाद वाकाटक का नाम आता है। इन्होंने अपने पराक्रम से अनेक यज्ञों का आयोजन किया। स्वयं प्रवरसेन द्वारा ही चार अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किये गये जिनके परिणामस्वरूप उसने सम्राट की उपाधि धारण की। गुप्तवंश ने वाकाटकों से ही साम्राज्यवादी तत्त्वों को ग्रहण किया था। इतिहास में गुप्त साम्राज्य की स्थिति सुविदित है। पहले यह माना जाता था कि गुप्तवंश का प्रभाव केवल एक वंश विशेष तक ही सीमित रहा और उसी के साथ समाप्त हो गया। यह मान्यता आधुनिक शोधों से गलत साबित हो गई है। जब समुद्रगुप्त के वंशजों या आर्यावर्त से साम्राज्य समाप्त हो गया तो एक प्रकार से अराजकता छा गई और उसके बाद यह क्षेत्र उत्तर में शिलादित्य राजवंश तथा दक्षिण में चालुक्यों के बीच विभाजित हो गया। तब पुलकेशिन प्रथम ने वातापी में अश्वमेघ यज्ञ किया तथा पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया।

प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में एक बार ध्यान में रखने योग्य यह है कि हिन्दू राज्य पूर्णरूप से धर्म निरपेक्ष था। वी. के. सरकार का कहना है कि भारत में राजनीतिक इतिहासकार एवं दर्शन कभी भी धर्म के आधिपत्य में नहीं रहा। यहाँ राजनीति को धर्मशास्त्रों के अधिकार क्षेत्र से अलग रखा गया। कोई भी पुरोहित नागरिक प्रशासन के मामलों में सांसारिक अथवा आध्यात्मिक अधिकार की दृष्टि से हस्तक्षेप नहीं करता था। पुन: उनका कहना है कि 17वीं शताब्दी में स्थित अर्द्धधार्मिक सिक्ख राजनीतिक संगठन के अपवाद को छोड़कर हिन्दुस्तान में सच्चे अर्थों में कोई धार्मिक राज्य स्थापित नहीं किया गया सम्राट अशोक, हर्षवर्धन एवं धर्मपाल आदि के शासन काल में भी राज्य की सर्वोच्चता सत्ता के सांसारिक संगठन को शासकों के व्यक्तिगत धर्म के आगे बलिदान नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में यहाँ सम्राट एवं पुरोहितों के बीच उस प्रकार का संघर्ष उठने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जो मध्यकाल में पवित्र रोमन साम्राज्य तथा पोपशाही के बीच छिड़ा था। इस प्रकार प्राचीन भारतीय राजनीति में सदियों से धर्म निरपेक्षता के तत्त्व शाश्वत रहे हैं।

प्राचीन भारत के इतिहास में ऐसी सैकड़ों घटनाएं मौजूद हैं जिनसे स्पष्ट जानकारी मिलती है कि प्राचीन काल में हिन्दू राजाओं ने अपने राज्य में गैर-हिन्दू अधिकारियों की भी नियुक्ति कर रखी थी और उन्हें समुचित सम्मान दिया जाता था। पुरोहितों के कार्य को शाही परिवार एवं जनता के व्यक्तिगत धार्मिक जीवन तक ही सीमित कर दिया गया। राज्य की परिषद् में उनको केवल राष्ट्रीय एवं सामाजिक मेले तथा उत्सवों के आयोजन का ही कार्य सौंपा गया। राजा के कार्यों पर धार्मिक प्रतिबन्ध केवल उसी सीमा तक लगाया गया, जहाँ तक कि उसे स्वेच्छाचारी होने से रोका जा सके तथा राजा को जनहित के विरुद्ध कार्य न करने दिया जाए। भारतीय धर्मगुरूओं ने कभी भी धर्म को कानून के स्रोत के रूप में नहीं माना।

राज्य के विकास की उपयोगी सूचना हमें वेदों, पुराणों, महाभारत, रामायण एवं अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। राज्य के विकास की ऐतिहासिक सूचना हमें मौर्य साम्राज्य (ईसा पूर्व 323-185) से प्राप्त होती है। इस साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। सम्राट अशोक के शासनकाल में इस साम्राज्य के साथ वर्तमान अफ़गानिस्तान तथा ब्लूचिस्तान, सम्पूर्ण उत्तरी भारत, दक्षिणी भारत (कुछ भागों को छोड़कर) आदि भी शामिल हो गये। हिन्दुओं के इस सार्वभौम साम्राज्य की तुलना रोम साम्राज्य से की जा सकती है। इस प्रकार हिन्दू राज्य का अधिकार क्षेत्र सम्पूर्ण भारत पर व्याप्त था।

185 ईसा पूर्व मौर्य साम्राज्य के पतनोपरांत पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की नींव डाली। दक्षिण में सात-वाहन वंश का उद्भव हुआ। सिमुक द्वारा स्थापित आन्ध्र या सातवाहन वंश पश्चिमोत्तर भारत और दक्षिण भारत में एक बड़े साम्राज्य में बदल गया। गौतमीपुत्र

शातकर्णी के नेतृत्व में सात-वाहन साम्राज्य दृढ़ हुआ। वंश की राजधानी पाटलीपुत्र बनी रही। पुष्यमित्र ने विदेशी आक्रमणकारी को पराजित कर शुंग वंश का बड़ा नाम किया। इसका प्रशासन दक्षिणी भारत में समुद्र से लेकर समुद्र तक फैला हुआ था। इसकी पूर्व तथा पश्चिम में से दो राजधानियाँ थी। इन दक्षिणी साम्राज्यों ने पश्चिमी एशिया, यूनान, रोम, मिस्त्र एवं चीन आदि देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध विकसित किये। इनके विरोधी उत्तर से भारतीय तातार या कुषाण थे। इनकी राजधानी आधुनिक पेशावर में थी। इस उत्तरी एवं उत्तर-पश्चिमी शक्ति के चीन के हॉन साम्राज्य तथा रोमन साम्राज्य के साथ व्यापारिक एवं कूटनीतिक सम्बन्ध थे। इस वंश के सम्राट कनिष्क के समय से साम्राज्य का पर्याप्त विस्तार हो गया था। कुषाण साम्राज्य के माध्यम से भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का क्षेत्र केन्द्रीय एशिया तक व्याप्त हो गया। भारतीय इतिहास का दूसरा दृश्य गंगा की घाटी में विक्रमादित्य गुप्तों के साथ प्रारम्भ होता है। इनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। इनके काल में भारतीय संस्कृति का इतना विकास हुआ कि यह विश्व में अद्वितीय बन गई। महाकवि कालिदास के कथनानुसार विक्रमादित्य का राज्य समुद्र से समुद्र तक व्याप्त था जिस पर वह वायु के रथ द्वारा शासन चलाता था।

गुप्त साम्राज्य के यशस्वी समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त 'विक्रमादित्य' के नेतृत्व में गुप्त वंश का शासन पूरे भारत में व्याप्त हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतनोपरांत वर्द्धन साम्राज्य की यशोवर्द्धन के नेतृत्व में स्थापना हुई। हर्षवर्द्धन के नेतृत्व में वर्द्धन साम्राज्य पूरे उत्तरी भारत में फैल गया। हर्षवर्द्धन का समकालीन चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय था। चालुक्यों की राजधानी वातापी तथा नासिक में स्थित थी। वी. के. सरकार का कहना है कि मौर्य साम्राज्य के बाद लगभग 1600 वर्षों तक का भारत का इतिहास एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता है जिसमें राजनीतिक चेतना रही तथा सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विकास भरपूर होते रहे। भारत में राज्य व्यवस्था के साथ अश्वमेघ एवं राजसूय यज्ञों का महत्व प्रारम्भ से ही जुड़ गया था। मुसलमानों का आक्रमण होने के बाद भी भारत के मुर्धाभिषिक्त सम्राटों का न्यायोचित विचार समाप्त नहीं हुआ। विजयनगर के बादशाहों ने इस परम्परा को जीवित बनाए रखा। उन्होंने अपने आपको चालुक्यों की श्रेणी में ही रखा और यह बताया कि वे पौराणिक सम्राटों की ही परम्परा में है। मदुरा के मदनगोपाल स्वामी मन्दिर में विजयनगर के बादशाहों को सत्यासय के परिवार में सर्वप्रथम तथा चालुक्यों में हीरा वर्णित किया गया है।

उत्तरी भारत में मुसलमानों की विजय के बाद भी दो साम्राज्यवादी पक्ष बने रहे। दिल्ली में मुसलमान सुलतान को भारतीय साम्राज्य का स्वामी माना गया जबकि विजयनगर में वहाँ के राजाओं ने अपने आपको भारत का सच्चा स्वामी कहा। वे अपनी राजधानी हम्पी हस्तिनावति मानते थे तथा अपना साम्राज्य सेतु से सुमेरु तक फैला हुआ कहते थे। तालीकोटा युद्ध के बाद कुछ दशाब्दियों तक साम्राज्य की परम्पराओं को विजयनगर के राजाओं द्वारा बनाये रखा गया। बाद में शिवाजी ने इन परम्पराओं को अपने हाथ में लिया। इस नये हिन्दू राज्य को भी भारत के ऐतिहासिक राजवंशों से मिलाने तथा इसे न्यायोचित सिद्ध करने का प्रयास किया गया। शिवाजी ने समस्त वैदिक परम्पराओं को अपनाया तथा अपने आपको परम्परागत हिन्दुवाद द्वारा मान्य उचित मूर्धाभिषिक्त राजा घोषित किया।

उत्तर वैदिक काल में राजाओं के अंदर साम्राज्यवादी प्रविृत्ति का विकास तो हुआ ही साथ ही उनमें स्वेच्छाचारिता का विकास भी हुआ। इसका प्रमाण राजाओं द्वारा मनमाने ढंग से धारण की गयी उपाधियों से मिलता है। इस प्रवृत्ति का परिचय राजाओं की बदलती हुई उपाधियों से होता है। 'सम्राट' एवं अधिपति आदि उपाधियों को व्याख्यात्मक रूप से धार्मिक साहित्य में वर्णित किया गया है। इन उपाधियों का शताब्दी पूर्व के राजनीतिक एवं ऐतिहासिक साहित्य में कोई स्थान नहीं है। प्रारम्भकाल के राजा इन उपाधियों को कम प्रयुक्त करते थे ताकि उनमें आत्मभिमान एवं अहंकार की भावनाओं का उदय न हो सके। महाभारत में केवल राजा एवं महाराजा की उपाधियों का प्रयोग मिलता है। रामायण में भी ऐसा ही है। चन्द्रगुप्त तथा अशोक ने भी राजा तथा महाराजा से अधिक ऊँची किसी उपाधि का दावा नहीं किया था। कनिष्क ने अपने ताम्रपत्र में अपने आपको 'महाराजस्य राजाधिराजस्य देवपुत्रस्य' लिखने में भी संकोच नहीं किया।

हिन्दू राजाओं द्वारा पहले जो सरल तथा सीधी उपाधियाँ रखी जाती थीं, वे अब धीरे-धीरे मिटती चली गईं। इसके स्थान पर जटिल, लम्बी तथा आत्म प्रशंसक उपाधियाँ ग्रहण की जाने लगीं। विदेशी शासकों ने शहंशाह तथा देवपुत्र जैसी उपाधियाँ ग्रहण की। इनके प्रभाव से गुप्त सम्राट भी अछूते न रहे। उन्होंने महाराजाधिराज एवं परमेश्वर आदि की उपाधियाँ ग्रहण की। इसके बाद उपाधियों पर जोर दिया जाने लगा कि प्रत्येक छोटा-सा शासक भी अपने दरबारियों की वृद्धि का प्रयोग अधिक उपाधियों की खोज करने में लगाने लगा। दसवीं शताब्दी में स्थित बंगाल के सेन राजाओं की उपाधियों का विवरण इस प्रकार हैं-''महाराजाधिराज परमेश्वर, परम महेश्वर, परम महारका, मुखराजाधिराज श्रीमद् विजयसेन देव।'' कतिपय लेखकों के अनुसार ये उपाधियाँ तो केवल सम्मान का प्रदर्शन मात्र थी। इनके पीछे कोई आक्रमणकारी भावना समाविष्ट नहीं थीं। के. एम. पणिक्कर के अनुसार समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय

एवं स्कन्दगुप्त की राजशाही राजतन्त्र से सम्बन्धित हिन्दू विचारकों से भिन्न थी और यह भिन्नता उनके द्वारा अपनाई गई विशेष उपाधियों द्वारा प्रदर्शित की गई। उनके बाद थानेश्वर राजवंश द्वारा भी ऐसी ही उपाधियाँ ग्रहण की गई। इन राजाओं ने हूणों पर विजय पाने का दावा किया था। पुलकेशिन द्वितीय ने भी ऐसी ही अनेक उपाधियाँ ग्रहण की। इन चालुक्य राजाओं के बाद विजयनगर के राजाओं ने उपाधि ग्रहण करने की परम्परा को अपना लिया।

प्राचीन भारत में राज्य का जिस प्रकार विकास हुआ उसके फलस्वरूप अनेक राजनीतिक विचारों का आधारभूमि प्राप्त हुई। प्राचीन भारत में स्थित पौर, जनपद, श्रेणी तथा गण जैसे–व्यावसायिक संगठन एवं जाति व्यवस्था आदि को आधुनिक भारत में लोकमत, ट्रेन यूनियन एवं अन्य मजदूर संगठनों आदि के अधिकारों की भावना की पृष्ठभूमि कहा जाता है। आज के जनमत का आधार लोगों की निर्णय लेने की शक्ति है न कि बुद्धिमानों का परामर्श देने का अधिकार। पौर एवं जनपदों को हिन्दू विचारधारा के अनुसार परामर्श देने का अधिकार था। वे जाति एवं समूहों के प्रवक्ता माने जाते थे। इस दृष्टि से उनके स्तर को प्रतिनिधित्व पूर्ण भी कहा जा सकता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक स्वायत्त एवं स्वशासी नगर–सम्प्रभुताओं तथा स्वतन्त्र राष्ट्रमण्डलों का अस्तित्व रहा था। इनका अस्तित्व प्राय: उन समस्त युगों में रहा था जिन्होंने कि वैदिक साहित्य, जातकों, प्रारम्भिक जैन एवं बौद्ध पुस्तकों तथा महाभारत आदि को जन्म दिया था। इन युगों में इस प्रकार के राज्य बनते–बिगड़ते रहे थे। गुप्त साम्राज्य तक इनके अस्तित्व का उल्लेख प्राप्त होता है। भारत तथा सिकन्दर का उल्लेख करने वाले कुछ यूनानी एवं लैटिन साहित्य में इनमें थोड़ी मात्रा में व्याख्याएँ प्राप्त होती है। वे राष्ट्रीयतन्त्री होती थीं। वी. के. सरकार ने इनकी तुलना यूनान अथवा रोम में प्राप्त राज्यों की विशेषतओं से की है।

प्राचीन भारत में राजस्व का सिद्धांत

प्राचीन भारत में राजा दण्ड नीति अथवा धर्म के अधीन था। अत: कर व्यवस्था भी दण्ड नीति शास्त्र और धर्म शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुकूल थी। यद्यपि कर व्यवस्था वैदिक काल में विद्यमान थी, तथापि उस समय करारोपण के सिद्धान्त भली प्रकार विकसित नहीं हो पाये थे। अत: शासन–प्रणाली का स्वरूप चाहे जो हो राज–कर के विषय में शासन का मन चंचल नहीं होता था। इसी कारण शासक और शासित वर्ग में संघर्ष अथवा मनमुटाव का प्रश्न नहीं उत्पन्न होता था। मनु के अनुसार, राजा यदि प्रजा की रक्षा न करता हुआ, प्रजा से करों के द्वारा धन–संचय करता है तो ऐसा राजा नरकगामी होता है और प्रजा के सम्पूर्ण पापों के भार का वहन करने वाला बन जाता है। महाभारत के अनुसार, जो लोभी राजा ऐसे कर एकत्र करने के लिये, जो शास्त्रों से अनुमोदित नहीं है, मूर्खतापूर्वक अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है, वह स्वयं अपने ही साथ अन्याय करता है। अभिलेखीय प्रमाणों द्वारा ज्ञात होता है कि राज–कर सम्बन्धी नियमों का पालन भारतीय राजाओं द्वारा होता था। हम जानते हैं कि प्राचीन इतिहास में नन्द राजा अवैधानिक करों का ग्रहण करने के कारण प्रजा द्वारा घृणा के पात्र बन गये थे।

राजा की मुख्य आय कृषि–उपज का निश्चित 'भाग' अथवा 'अंश' था। बाजार में विक्रय के लिये आये हुए सामान में उसका अंश 1/10 अथवा परिस्थितियों के अनुसार होता था। इसके अतिरिक्त आयात तथा निर्यात कर शुल्क लिया जाता था। इनकी दर आदि निश्चित करने में राजा को थोड़ी–बहुत स्वतन्त्रता अवश्य थी।

हिन्दू-राजस्व का सिद्धांत

(1) हिन्दू राज कर सिद्धांत में न्यायसंगत कर उगाही पर बल दिया गया है। कर उगाही में निर्ममता को पाप बताया गया है। मनु सलाह देते हैं कि राजा को लालचवश होकर प्रजा की जड़ को नहीं काटना चाहिए। अधिक कर प्रजा और राजा दोनों के प्राण को क्षीण कर देता है। मनु ने कहा है कि जोंक, बछड़ा एवं मधुमक्खी की तरह कर थोड़ा–थोड़ा लेना चाहिए। राजा को न तो अपनी जड़ (कर न लेकर) और न दूसरों की जड़ (अधिक कर लेकर) काटनी चाहिए। यदि बछड़े को अधिक दूध पीने दिया जाये, तो वह बलवान होकर अधिक (भारी) भार वहन करने और कष्ट सहने योग्य होता है। राजा को उक्त सिद्धान्त का ध्यान रखकर प्रजा–रूपी दूध दुहना चाहिए। जिस प्रकार माली फूलों और फलों को तोड़ता है, परन्तु वृक्षों को हानि नहीं पहुँचाता है, मधुमक्खी शहद को चूसती है पर पुष्प को क्षति नहीं पहुँचाती है, उसी प्रकार राजा को हर ग्रहण करना चाहिए, परन्तु प्रजा को कोई कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए।

उपर्युक्त इन सजीव उपमाओं और रूपों के आधार पर डी. एम. झा. ने कहा है कि ''यद्यपि कराधान राजा या राज्य की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहायक होता है, पर प्रजा की जीविका के स्रोत को नष्ट करने के बदले इसके द्वारा उसके पास अपने भरण-पोषण के लिये पर्याप्त छोड़ देना चाहिए।'' इसकी तुलना सिन्मोन्डी के तीसरे नियम के साथ की जा सकती है, जिसके अनुसार हकरदाताओं के अस्तित्व के लिऐ जो चीजें अनिवार्य हैं उन्हें कराधान से बिल्कुल मुक्त रखा जाना चाहिए।''

(2) प्रजा पर कर का बोझ साधारण होना चाहिए। बड़ी-बड़ी योजनायें उसी राज्य की स़ल हो सकती हैं, जबकि वहाँ का राजा कर को अधिक भारी नहीं बनाता है और राज्य की सुरक्षा को ध्यान देता हुआ अल्पव्ययता से शासन की बागडोर संभालता है।

राज्य की विभिन्न कोटियां

राजाओं द्वारा धारण की गयी उपाधियों से मालूम होता है कि प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के राज्य हुआ करते थे। इनमें कुछ राज्य सचमुच में शक्तिशाली और प्रभावशाली हुआ करते थे जबकि कुछ सिर्फ प्रभावशाली उपाधियाँ धारण किए हुए थे। उनकी ताकत नहीं के बराबर थी। गुप्त साम्राज्य के बाद ये उपाधियाँ भारतीय राजनीतिक जीवन की मान्य विशेषताएँ बन गईं। सर्वोच्च शासक का पद विभिन्न उपाधियों से इंगित किया जाता था,–जैसे–परम् भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर। दूसरी ओर कम शक्ति वाले मुखियाओं को सभादिगत् पंचमहाशब्द, महासामन्ताधिपति कह कर पुकारा जाता था। इस काल के बाद एक अधीनस्थ मुखिया और स्वामी के बीच का अन्तर अन्य कुछ उपाधियों से इंगित किया गया। इस प्रकार उपाधियों के आधार पर हम राजतन्त्र के दो मुख्य अन्तरों का स्पष्ट दर्शन कर सकते हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि मौर्य काल से पूर्व भारतीय राजनीति का रूप क्या था?

शुक्ल यजुर्वेद में पाँच ऐसे मंत्र आते हैं जिनमें देवी-देवताओं को पाँच विभिन्न रूपों में सम्बोधित किया गया है। इन पाँच रूपों में उस समय राजाओं को सम्बोधित किया जाता था। इस सम्बोधन के तरीके के साथ-साथ पाँच दिशाएँ और देवताओं के पाँच विभिन्न वर्ग भी इंगित किये गये। राजन् को पूर्व दिशा एवं वसुओं से सम्बद्ध किया गया, विराट दक्षिण दिशा एवं रूद्रों से सम्बद्ध किया गया, सम्राटों का सम्बन्ध पश्चिम तथा आदित्यों से लगाया गया और स्वराट् का सम्बन्ध उत्तर एवं मारूतों से लगाया गया। इन चारों के अतिरिक्त अधिपति को उच्च दिशा एवं विश्वदेव से सम्बद्ध किया गया।

ऐतरेय ब्राह्मण में विशेष रूप से राजाओं की उन विभिन्न उपाधियों का उल्लेख है जो विभिन्न देशों में प्रभावशील थे। ऐतरेय ब्राह्मण का यह भाग इन्द्र के राज्याभिषेक समारोह से सम्बन्धित है। वसुओं ने इन्द्र का पूर्व दिशा में साम्राज्य के लिए स्वागत किया। उसके बाद प्राच्य दिशा के राजाओं को साम्राज्य के लिये उद्घाटित किया जाने लगा। इन्हें समराज कहा जाने लगा। उसके बाद रूद्रों ने दक्षिण क्षेत्र में इन्द्र का अभिषेक किया। इसीलिए दक्षिण क्षेत्र में सत्वत के सभी राजाओं को भोज्य के रूप में उद्घाटित किया गया और उन्हें भोज कहा गया। इसी प्रकार से आदित्यों ने पश्चिम में और उसे स्वराज्य के रूप में उद्घाटित किया गया। यही कारण है कि पश्चिम दिशा के नीच्य तथा अपाच्च के समस्त राजाओं को स्वराज्य के रूप में उद्घाटित किया गया तथा उन्हें स्वराज्य कहा गया। उसके बाद उत्तर दिशा में विश्व देवों ने उसे वैराज्य के रूप मे उद्घाटित किया, इसीलिए उत्तरी क्षेत्र में रहने वाले जनपदों में वैराज्य व्यवस्था प्रचलित हुई और उन्हें वैराज्य कहा गया। इसके बाद साध्याज्य तथा आपत्याज ने इन्द्र को मध्य क्षेत्र में राज्य के रूप में उद्घाटित किया। इसलिए कुरु, पांचाल के राजाओं को राज्य मान कर उन्हें राजन् के रूप में सम्बोधित किया गया है। इसके बाद मारूतों एवं अंगीरिसों ने इन्द्र का ऊपर के क्षेत्रों में स्वागत किया तथा वह पारमेस्थाया, महाराजा आधिपत्य और स्वास्थ्य आदि के रूप में सम्बोधित किया गया। इसके साथ किसी देश या जनता का नाम नहीं लगाया गया।

ऐतरेय ब्राह्मण में आये हुए वर्णन से यह विचार आता है कि साम्राज्य, भोज, स्वराज्य, विराज एवं राजन् आदि शब्दों को देश के विभिन्न भागों में शासक की उपाधियों के रूप में प्रयुक्त किया जाता था, किन्तु उनका अर्थ एक जैसा ही होता था। उनके बीच स्तरों की असमानता नहीं थी। अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करके भारतीय आचार्यों ने केवल नृपतंत्र का ही वर्णन अधिक किया है। सामयिक रूप से या प्रसंगवश कहीं-कहीं संघों का उल्लेख मात्र भी कर दिया गया है। भारतवर्ष में जनतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था का प्रचलन था। स्थान-स्थान पर विश्वपति एवं जनपति शब्दों का प्रयोग किया है। प्राचीन वैदिक काल में राज्य का रूप किसी स्थान विशेष अथवा वर्ग विशेष तक ही मर्यादित नहीं था, वरन् पूरे देश को ही इसमें समाहित किया जाता था। राजसूय यज्ञ के बाद राजा को किसी प्रदेश अथवा राज्य का नहीं, वरन् भारतों अथवा कुरु-पांचालों का शासक घोषित किया जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में देश के विभिन्न भागों में प्रचलित विभिन्न राज्यों का जो उल्लेख आया है उसके अनुसार यह माना जा सकता है कि प्राचीन भारत में

राज्यों का केवल एक रूप ही नहीं था, जिनका संक्षेप में वर्णन निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है–

(1) भोज्य शासन प्रणाली– प्राचीन भारत में शासन की प्रमुख प्रणालियों में से एक भोज्य प्रणाली भी थी। दरअसल भोज्य से तात्पर्य स्थान विशेष के नाम से होता है। अर्थात् किसी खास स्थान के नाम के आधार पर भी शासन प्रणाली का नाम रखा जाता था। 'भोज' शब्द का 'राज' शब्द के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका उल्लेख अनेक स्थानों, शिलालेखों एवं ग्रन्थों में हैं। अशोक के शिलालेखों से यह ज्ञात होता है कि भोज और राष्ट्रिक दोनों ही एक समान थे। भोज्य राज्यों को पैतृक शासन प्रणालियों के विपरीत माना गया है। इसका अर्थ यह हुआ है कि इन राज्यों में नेतृत्व पैतृक अथवा वंश-परम्परा के आधार पर नहीं होता था। इस व्यवस्था में नेतृत्व संयुक्त होता था। एक से अधिक नेता मिलकर शासक कार्यों का संचालन करते थे।

महाभारत के शान्तिपर्व में कई प्रकार के शासकों का वर्णन किया गया है–भोज्य शासन प्रणाली भी इन्हीं में से एक है। खारवेल के शिलालेखों में भी राष्ट्रिक तथा भोजक शासन प्रणालियों का वर्णन है। बाद के शिलालेखों में भोज तथा महाभोज का उल्लेख आता है। इस शासन प्रणाली में नेतृत्व साधारण वर्ग एवं उच्च वर्ग दोनों के ही हाथ में रहता था। ये नेता राज्य के समस्त अधिकारों को अपने हाथ में रखते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यदुवंशी लोगों में भोज्य शासन प्रणाली प्रचलित थी।

पाली त्रिपिटक में राज-व्यवस्था के इस रूप का उल्लेख आया है। इससे यह प्रकट होता है कि इस प्रकार की शासन प्रणाली पूर्वी भारत में प्रचलित रही होगी। पश्चिमी भारत में भी भोज नाम की एक जाति मिलती है। सम्भवत: यह जाति भी अपनी विशिष्ट शासन प्रणाली के कारण कही गई है। गुजरात में इस जाति के लोग पाये जाते हैं। यहाँ प्राचीन काल से ही इनका बाहुल्य है। कच्छ में इस नाम की एक देशी रियासत वर्तमान थी।

(2) स्वराज्य शासन प्रणाली– स्वराज्य शासन प्रणाली पर्याप्त विलक्षण मानी गई है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार पश्चिमी भारत में यह शासन प्रणाली प्रचलित थी। इस प्रणाली में शासक को स्वराष्ट्र कहा जाता था। स्वराष्ट्र का अर्थ ऐसे शासक से है जो स्वयं शाासन करने वाला हो। वेदोत्तर काल में एक सम्राट के अधीन अनेक छोटे-छोटे राज्य होते थे। हो सकता है कि इन्हीं को स्वराज्य के नाम से सम्बोधित किया जाता हो। स्वराष्ट्र के राज्य की सीमाएँ सम्राट की तुलना में बहुत सीमित होती थी। दोनों के बीच स्थित सीमा का वास्तविक अन्तर अभी तक ज्ञात नहीं हो सका हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में वाजपेय यज्ञ की प्रशंसा में कहा गया है कि इसे सम्पन्न करने वाले व्यक्ति को स्वराज्य प्राप्त होता है। इसमें 'स्वराज्य' शब्द से आशय अपने समान लोगों पर शासन करना बताया गया है। इससे यह पता चलता है कि ये लोग निर्वाचन के द्वारा अपना शासक चुनते होंगे। शासक चुने जाने के बाद उस व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से ज्येष्ठता प्राप्त हो जाती थी। जो व्यक्ति इस पद पर चुना जाए उसमें वे सभी योग्यताएँ होना अनिवार्य था जो इन्द्र में पाई जाती है। यह परम्परा इस मान्यता पर आधारित थी कि सर्वप्रथम इन्द्र ने ही अपनी योग्यताएँ प्रमाणित करके इस पद को प्राप्त किया था। डॉ. जायसवाल का अनुमान है कि स्वराज्य अभिषेक का अर्थ सम्भवत: गण या परिषद् के सभापति के रूप में नियुक्त होने से रहता होगा। गण के सभी सदस्य बराबर माने जाते थे। इस बात का प्रमाण महाभारत में भी प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यह शासन प्रणाली नीच्य एवं अपाच्य लोगों में प्रचलित थी। यजुर्वेद के समय में इसका प्रचलन उत्तरी भारत में था।

(3) वैराग्य शासन-प्रणाली– इस शासन प्रणाली का प्रचलन उत्तर भारत के हिमालय की तराई में था। यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मण से ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि देश के दूसरे भागों में भी शासन-प्रणाली प्रचलित थी। यजुर्वेद के समय में यह दक्षिण भारत के कतिपय भागों में प्रचलित थी। इस शासन प्रणाली का अर्थ राजा रहित शासन प्रणाली के रूप में किया जाता है। इस प्रणाली को प्रजातन्त्रात्मक भी कहा जाता है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष को राजा न बनाकर सम्पूर्ण देश अथवा जाति को राजपद के लिये अभिषिक्त किया जाता था। उत्तर भद्रों में यह राज्य व्यवस्था अपनाई गई थी। पाणिनी के समय से लेकर ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक वे लोग इसी प्रकार की शासन व्यवस्था के अधीन कार्य करते रहे। कौटिल्य ने वैराग्य को शासन-प्रणाली का एक रूप माना है। उनका मत है कि इस प्रकार की शासन प्रणाली खराब होती है। अत: इसे अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए। जिस प्रकार अरस्तू आदि यूनानी विचारक प्रजातन्त्र को घृणा की दृष्टि से देखते थे उसी प्रकार कौटिल्य ने भी इसे गर्हित माना है। उनका मत है कि इस शासन प्रणाली में जनता के मन में शासक के प्रति निजत्व की भावना पैदा नहीं हो सकती। फलत: राजनीतिक संगठन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

महाभारत में 'विराज' शब्द को राजा की विभिन्न उपाधियों में से एक माना है। जैन आचारांग सूत्रों में वैराज्य का उल्लेख आया है। पाणिनी के व्याकरण के आधार पर डॉ. जायसवाल ने यह मत प्रकट किया है कि भद्रों की राजधानी का नाम शाकल था जो आधुनिक श्यालकोट है। बाद में विदेशी आक्रमणों से प्रभावित होकर ये लोग दक्षिण प्रदेश में चले गये होंगे।

(4) राष्ट्रिक लोगों में प्रचलित शासन प्रणाली– इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत कोई वंशानुक्रमगत राजा नहीं होता था। इसका प्रचलन पश्चिम के राष्ट्रिक लोगों में था। इस बात का उल्लेख अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होता है। अशोक द्वारा इन लोगों के किसी राजा का उल्लेख नहीं किया गया है। खारवेल द्वारा भी इनका उल्लेख बहुवचन में किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतया इनका कोई एक राजा न होता था। इन लोगों में प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली का प्रचलन था। भोज्य शासन प्रणाली की भाँति ही पश्चिम में रहने वाले राष्ट्रिकों का नामकरण वहाँ की शासन प्रणाली के आधार पर ही हुआ होगा। कौटिल्य के अनुसार सुराष्ट्र के लोगों को कोई राजा उपाधिकारी शासक नहीं होता था। ये लोग प्रजातन्त्री थे। कई एक राज्यों का राष्ट्रिक या सुराष्ट्र नाम भी सम्भवत: वहाँ की इसी शासन प्रणाली के कारण पड़ा होगा।

(5) राजतंत्रात्मक शासन-प्रणाली– प्राचीन भारत में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन सामान्य रूप से प्राप्त होता है। वैदिक काल में राजाओं की उपाधियों के रूप में उनके पदों को गौरव एवं शक्ति के अनुसार राजा, महाराजा तथा सम्राट आदि कहा जाता था। स्वराज्य तथा भोज आदि राजतन्त्रों के कुछ रूप माने जाते जा सकते हैं। इन दोनों रूपों के अतिरिक्त शक्तिशाली राजा के लिए सम्राट्, सामन्तपर्यायी आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। बाद में इन शब्दों का स्थान अन्य पदों द्वारा ले लिया गया। सार्वभौम, चतुरन्ता एवं चक्रवर्ती आदि विभिन्न पदों का प्रयोग किया जाने लगा। जैन ग्रन्थ कल्पतरु के अनुसार जब भगवान महावीर गर्भ में थे तो त्रिशला को सोलह स्वप्न आए। इन स्वप्नों की व्याख्या कराई गई तो बताया कि यदि होने वाले लड़के ने राजपद ग्रहण किया तो वह चतुरन्ता चक्रवर्ती बनेगा और यदि वह दुनियादारी के चक्कर से विरक्त हो गया तो वह जैन मुनि बन जाएगा। इसी प्रकार महापरि निब्बाना सूक्त में बौद्ध लोगों ने तथागत की तुलना एक चक्रवर्ती से की हैं। कौटिल्य ने भी सार्वभौमिक राजा को एक चतुरन्ता अथवा चक्रवर्ती बताया है। कौटिल्य के अनुसार चतुरन्ता वह है, जो सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करता है। चक्रवर्ती के प्रभाव क्षेत्र की सीमा बताते हुए कौटिल्य ने उसे हिमालय से लेकर समुद्र तक की धरती माना है, जिसकी लम्बाई नौ हजार योजन है। यहाँ कौटिल्य के सामने पूरा भारतवर्ष था और इस प्रकार जो शासक पूरे भारत पर शासन करता है, उसी को वे चक्रवर्ती कहने को तैयार थे। भारतवर्ष की सीमा एवं प्रसारों को परिभाषित करते समय कौटिल्य ने पुराणों को आधार बनाया है। भारतवर्ष की सीमाओं को वायु पुराण एवं मत्स्य पुराण में वर्णित किया गया है। खारवेल ने अपने आप को कंलिग का चक्रवर्ती कहा है। चक्रवर्ती के समान ही ऐतरेय ब्राह्मण के सामन्त पर्यायी शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। भारत में चन्द्रगुप्त से पूर्व भी सार्वभौमिक राजा शासन करते थे।

राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का भी विभिन्न रूप मौजूद था। इनमें 'समराज' सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय था। 'समराज' शब्द में तीन बातें अन्तर्निहित बताई गई हैं–प्रथम, राजसूय यज्ञ का करने वाला, दूसरे, राजाओं का नियन्त्रक और तीसरे, मण्डल का स्वामी। इन तीनों विशेषताओं को इंगित करने के लिये चक्रवर्ती, अधीश्वर और मण्डलेश्वर आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। राजतन्त्र का एक रूप द्वैराज्य शासन प्रणाली बताई जाती है। द्वैराज्य शासन प्रणाली का अर्थ दो राजाओं का शासन बताया गया है। कौटिल्य के अनुसार इस प्रकार की सरकार पारस्परिक घृणा, पक्षपात और संघर्ष के कारण अन्त में समाप्त हो जाती है। जैन साधुओं ने ऐसे राज्यों से दूर रहने को कहा है। डॉ. डी. आर. भण्डारकर इस प्रकार के राज्य को दो राजाओं द्वारा प्रशासित स्पार्टा के समान मानते हैं। द्वैराज्य शासन व्यवस्था के भी विभिन्न रूप हो सकते थे–एक रूप तो वह था, जिसमें युद्ध सम्बन्धी निर्णय दो विभिन्न कुलों एवं वंश-परम्परागत राजाओं के द्वारा लिये जाते थे और वृद्ध जनों की परिषद् सर्वोच्च सत्ता के साथ पूरे राज्य पर शासन करती थी। कौटिल्य ने द्वैराज्य व्यवस्था के अन्य रूपों का भी वर्णन किया है जिसमें बाप-बेटे अथवा दो भाई मिलकर सम्मिलित रूप से शासन करते थे। इस दूसरे प्रकार में शासन प्रक्रिया एक ही कुल के दो राजाओं द्वारा संचालित की जाती थी। डॉ. जायसवाल के कथनानुसार, ''यह द्वैराज्य न तो एक-राज शासन था जिसमें कोई एक ही वंशानुक्रमिक राजा शासन करता हो और न ही ऐसा शासन था जिसमें थोड़े-से विशिष्ट व्यक्तियों के या बड़े-बड़े लोगों के हाथों में शासनाधिकार होता था। यह एक ऐसी शासन प्रणाली थी जो केवल भारत के ही इतिहास में पाई जाती है।'' प्राचीन भारत के अनेक सिक्के ऐसे प्राप्त हुए हैं जिन पर राजाओं के नाम लिखे हुए है।

राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली में कभी-कभी पूरा राज परिवार सामूहिक रूप से शासन किया करता था। इस तरह की शासन प्रणाली को संघीय कहा जाता था। इस प्रकार के संघ के दो उदाहरण स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। मौर्य वंश के आने से पूर्व मगध

पर शिशुनाग और नन्दराज वंशों का संयुक्त रूप से शासन था। अन्तिम राजा यहाँ 'कालाशोक' हुआ है। उसके बाद इस राज्य पर उसके दस पुत्रों ने संयुक्त रूप से राज्य किया। इसी प्रकार से नन्दवंश क सम्बन्ध में पुराणों में यह उल्लेख आता है कि इस वंश में एक पिता और आठ लड़के थे, जिन्होंने संयुक्त रूप से शासन किया। इस प्रकार के कुल संघों में राज्य पर शाही परिवार के पूरे परिवार का शासन होता था।

(6) संघ राज्य-व्यवस्था– प्राचीन भारत में संघीय राज्य–व्यवस्था का भी प्रचालन देखने को मिलता है। इस व्यवस्था में कुछ लोग समान उद्देश्य और कार्य–शैली के आधार पर एक संघ बनाकर शासन चलाते हैं। उद्देश्यों की विभिन्नता के आधार पर संघों को भी विभिन्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे–धार्मिक संघ (बौद्ध संघ), व्यापारिक संघ (श्रेणी), शस्त्रोपजीवी (हथियारों पर जीवित रहने वाले) आदि। इस प्रकार के संघों की कोई राजनीतिक प्रकृति नहीं होती। ऐसे अन्य संघ भी होते हैं जो एक प्रदेश विषय की शासन व्यवस्था का संचालन करने के लिये मिले हुए लोगों के संयोग होते हैं। इसी प्रकार के राजनीतिक संघों को कात्यायन द्वारा एक राज क्षत्रिय कबीलों का विपर्यय माना गया है। डॉ. भण्डारकर आदि इस प्रकार के संघों को गणराज्य शासन व्यवस्था के अनुरूप मानते हैं। राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की भाँति इन शासनों के भी विभिन्न रूप होते थे।

संघ शासन व्यवस्था का एक रूप वह था, जिसमें शासन शक्ति का प्रयोग सम्पूर्ण कुल द्वारा लिया जाता था। यहाँ कुल का अर्थ शाही परिवार के कुछ लोगों से नहीं, वरन् वंश या जाति के समस्त लोगों से है। इसका उदाहरण हमें शाक्यों की शासन प्रणाली में मिलता है। शाक्य राज्य में मजदूरों और कामगारों, अनुचरों, गाँव के मुखियाओं, पार्षदों तथा उप–राजाओं के बीच कार्य के सम्बन्ध में समझौता हो जाता था। जहाँ तक प्रशासक वर्ग का सम्बन्ध है, वह विभिन्न परिवारों में विभाजित रहता था। इन परिवारों के अध्यक्षों को राजन् कहा जाता था (और उनके पुत्रों को राजकुमार अथवा कुमार। सम्पूर्ण राज्य की दीक्षा करने के लिए एक मुखिया चुना जाता था, किन्तु यह किस प्रकार और कितने समय के लिये चुना जाता था, यह ज्ञात नहीं है। यह कुल का वरिष्ठ व्यक्ति माना जाता था। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि शाक्य वंश में उपराजा पार्षद और गाँव के मुखिया होते थे।

संघ शासन का दूसरा रूप पूग अथवा गण द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कत्यायन के अनुसार, एक गण विभिन्न परिवारों का योग था। प्राचीन काल के धार्मिक संघों का संगठन भी राजनीतिक संघों के अनुरूप ही होता था। जैन धर्म का प्रभावक वैशाली नगर में लिच्छवि गणराज्य में पैदा हुआ था तथा स्वयं इन गण के अध्यक्ष से सम्बन्धित था। जो उसने धार्मिक संघ बनाया तो यह स्वाभाविक था कि वह अपने राजनीतिक गण को आदर्श बना कर ही उसको संगठित करता, क्योंकि इसका उसको पर्याप्त ज्ञान था। राजनीतिक संघ की भाँति ही जैन संघ अनेक गणों में विभाजित था। ये गण अनेक कुलों में विभाजित थे। 'कुल' शाखाओं में और शाखाएँ सम्भागों में विभाजित थी। महाभारत में भी गण व्यवस्था का यत्किंचित् वृत्तान्त प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि गणों के सदस्य जन्म के परिवार की दृष्टि से एक दूसरे के समान होते हैं। महाभारत का सुझाव है कि यदि कुलों के बीच झगड़ा उत्पन्न हो जाए तो कुलों के वृद्ध जनों को उदासीन नहीं रहना चाहिए, वरना गण समाप्त हो जाएगा। यहाँ गण का अर्थ परिवारों के संघ के शासन से लिया गया है चाहे वह परिवार एक कुल अथवा एक जाति के हों अथवा न हों। कौटिल्य का कहना है कि कतिपय चुने हुए लोगों का गण द्वारा अपने में से मुखिया नियुक्त कर दिया जाता था। यह एक प्रकार से इसका मन्त्रिमण्डल होता था। यह मन्त्रिमण्डल गुप्तचर विभाग अथवा अत्यन्त गोपनीय प्रकृति के समस्त कार्यो का संचालन करता था। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में यद्यपि शासन की शक्तियाँ केवल कतिपय लोगों के हाथों में रहती थी, किन्तु फिर भी गण का प्रत्येक सदस्य राजा कहलाता था। इस शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में ललिता विस्तार का यह कथन पर्याप्त महत्व रखता है कि इसमें हर कोई यह सोचता है कि मैं राजा हूँ, मैं राजा हूँ, किन्तु कोई भी अकेला सही रूप से राजा नहीं होता।

सम्राट अशोक के शिलालेखों में तत्कालीन गणराज्यों का उल्लेख मिलता है। मौर्य राजाओं ने अनेक छोटे–छोटे राजाओं को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया, किन्तु वहाँ की शासन प्रणाली को पूर्ववत् ही रहने दिया। जब केन्द्रीय शक्ति का पतन हो गया तो ये राज्य रिर से स्वतंत्र हो गए। अशोक के समय के गणतंत्रों को दो भागों विभाजित किया जा सकता है–प्रथम भाग में वे गणराज्य आते हैं जो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थे और दूसरे भाग में साम्राज्य के बाहर वाले गणराज्यों को गिना जाता हैं। जातकों की भूमिका में दो स्थानों पर यह कहा गया है कि राज्य प्रशासन संचालित करने के लिए वैशाली में सात हजार सात सौ लिच्छवि राजा स्थित है। जैनों के कल्पसूत्रों में इनकी संख्या केवल नौ बताई गई है। जो सम्भवतया: मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या ही लगती है। महावस्तु ने वैशाली में स्थित चौरासी हजार लिच्छवि राजाओं का उल्लेख किया है। लिच्छवि लोग अपने राजा की उपाधि पर गर्व करते थे तथा उसे पाने के लिये उत्सुक रहते थे। इसके लिए राज्याभिषेक संस्कार किया जाता था। वैशाली में स्थित पुश्करनी

का जल राजा बनने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क पर छिड़का जाता था। वैशाली की पुष्करनी का जल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। उसे लोहे की चादर से ढका जाता था ताकि उसमें कोई चिड़िया भी प्रवेश न कर पा सके। उसके चारों ओर सख्त पहरा रहता था ताकि कोई व्यक्ति उसका पानी न ले सके। लिच्छवि में मरने के बाद उसका जो लड़का सम्पत्ति एवं पद का अधिकारी होता था, उसी को राजा बनाया जाता होगा। इन लिच्छवियों या वज्जियों के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचनाएँ बौद्ध ग्रन्थों एवं तत्कालीन साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है।

पालि साहित्य और संस्कृत ग्रन्थें से मालूम होता है कि कुछ कबीले बाह्य रूप से गणतांत्रिक दिखते थे परन्तु वास्तव में वे राजतान्त्रक शासन प्रणाली द्वारा संचालित होते थे। किन्तु कालान्तर में इन्होंने गणतांत्रिक स्वरूप ग्रहण कर लिया।

इन राजनीतिक संघों के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि जिस प्रकार राजा लोग समिति में मिलते हैं, उसी प्रकार समस्त औषधियाँ वैद्य से मिल जाती है। जो बीमारियों को दूर करती हैं ऋग्वेद का यह सूत्र बताता है कि एक राजा के स्थान पर कुछ राजाओं का शासन भी प्रचलित था। अथर्ववेद में भी कुलीनतन्त्र के सदस्यों को इंगित किया गया है। अत: यह मान्यता केवल कल्पना नहीं कही जा सकती कि ऋग्वेद के समय में गण व्यवस्था अथर्ववेद के काल में भी आ गई होगी।

गण व्यवस्था के साथ प्राचीन भारत में राजनीतिक संघों, निगम और जनपदों की व्यवस्था पाई जाती है। ये निगम कस्बों में एवं जनपद देहाती प्रदेशों में स्थापित थे। कुछ विचारकों ने 'निगम' शब्द का अर्थ श्रेणी से लगाया है, जबकि डॉ. भण्डारकर का कहना है कि इस शब्द का अर्थ हम व्यवयासी या व्यापारी से ले सकते हैं, एक श्रेणी से कभी नहीं। इस शब्द का अर्थ हम नागरिकों के एक ऐसे निकाय से ले सकते हैं जिनके सम्बन्ध में हिन्दू कानून को कार्य करने की क्षमता थी। नारदस्मृति में निगमों, श्रेणियों, गणों आदि संगठनों का उल्लेख मिलता है, उसमें निगम पद या अर्थ नागरिकों या पौऊर के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य भी श्रेणियों, पाखण्डियों और गणों के साथ-साथ निगमों के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं। अनेक सिक्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि पुराने पंजाब के हिन्दुओं में नागरिक स्वायत्तता या निगम का अस्तित्व उसी प्रकार था, जिस प्रकार एशिया माइनर के पश्चिम भाग पर यूनानियों में था। इन विभिन्न सिक्कों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रान्तीय स्वायत्तता या जनपद से प्राचीन भारतीय अनभिज्ञ न थे। जनपद राज्यों के अस्तित्व का प्रारम्भ बहुत समय पूर्व हो चुका था। ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसके सम्बन्ध में यत्किंचित् उल्लेख मिलता है। इसमें जनपद को राजन्य का ठीक विपरीत माना गया है और इस प्रकार हम इन्हें प्रजातन्त्रात्मक कह सकते हैं। प्रजातन्त्र मानने पर हमें इनको राजनीतिक संगठनों से पृथक् करके देखना होगा। जनपदों को कहीं-कहीं विराना भी कहा गया है, जिसका अर्थ होता है, राजाहीन या बिना राजा के राज्य। राजन्य, सिपि, कुरू और मद्रास विभिन्न कबीलों के नाम है, इसलिए जनपदों के कबीलों को प्रजातन्त्र कहा गया है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में नागरिक एवं कबीलेगत अनेक प्रकार के गणराज्य स्थापित थे। इन गणराज्यों का शासन प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता था, इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि राजनीति का कोई ऐसा ग्रन्थ आज तक हमें प्राप्त नहीं हुआ जिससे इन राजनीतिक निगमों को नियन्त्रित करने वाले संविधान की जानकारी हो सके। विनय पिटक में बौद्ध संघों को विनियमित करने वाले कुछ नियम सुरक्षित हैं, सम्भवत: ये नियम सभी राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संघों पर लागू होते थे।

(7) अराजक राज्य– प्राचीन भारत अराजक राज्यों से भी अनभिज्ञ नहीं था। अराजक राज्य का अर्थ अशान्तिपूर्ण समाज व्यवस्था या आततायियों के उपद्रव से नहीं है। इसके लिए भारतीय ग्रन्थों में मत्स्य न्यायपद का प्रयोग किया गया है। अतएव इसका अर्थ एक ऐसी शासन प्रणाली से था, जिसमें केवल कानून या धर्मशास्त्र को ही शासक माना जाता था, किसी व्यक्ति विशेष को नहीं। शासन का मुख्य आधार नागरिकों की स्वेच्छा थी, कोई सामाजिक बन्धन नहीं। प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था में व्यक्ति को स्वतन्त्रता दी जाती है। अराजक राज्य में वह पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग करता है। इस रूप में अराजक राज्य प्रजातन्त्र का उत्कृष्ट रूप माना जाता था।

राज्य की रचना के सिद्धान्त

राज्य के संगठन एवं रचना के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय आचार्यों ने दो प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन किया है–

(1) जैविक सिद्धान्त,

(2) यज्ञ का सिद्धान्त।

1. राज्य निर्माण का जैविक सिद्धान्त– राज्य निर्माण में सबसे स्वाभाविक भूमिका जैविक सिद्धांत निभाता है। इसमें विभिन्न भौगोलिक भाग समेकित होकर एक राज्य का निर्माण करते हैं और राजा अपने सहयोगियों के साथ इनके विकास पर बल देता है। इन भागों में किसी की उच्चता परिस्थितियों की गम्भीरता पर निर्भर करती है। नियन्त्रित करने वाला प्रमुख अंग ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। प्राचीन भारतीय समाज में विभिन्न कार्यों को रोकने के लिये अलग-अलग समूहों की रचना की गई थी, जो धर्मग्रन्थों में कथात्मक रूप में उपलब्ध है।

हिन्दू राज्य को जैविक सिद्धान्त मुख्य रूप से राज्य के सात तत्त्वों पर आधारित है। इन तत्त्वों में स्वामी, अमात्य, राष्ट्र या जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र को सम्मिलित किया गया है। राज्य के अंगों का वर्णन उनके महत्त्व की प्राथमिकता के अनुसार किया गया है। स्वामी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। स्पेलमैन का तर्क है कि राज्य का जैविक या सावयवी सिद्धान्त एक कार्यकारी मान्यता है। यह मूलरूप से नैतिक नहीं है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक संगठन और सामाजिक नैतिकता के बीच भेद किया जाना चाहिए। भारतीय ग्रन्थ राज्य की तुलना एक रथ से करते हैं और राज्य के संचालन के लिये प्रत्येक अंग को महत्वपूर्ण बनाते हैं। इसमें सावयवी सिद्धान्त की झलक मिलती है। मत्स्य-पुराण में एक जगह कहा गया है कि राजा जड़ है और उसकी प्रजा वृक्ष है। यहाँ निश्चय ही सावयवी सिद्धान्त की ओर संकेत किया गया है कि जिस प्रकार सावयवी सिद्धान्त के मुख्य पश्चिमी विचारक हर्बर्ट स्पेन्सर ने राज्य के विभिन्न अंगों की तुलना जीवधारी के शरीर से की है उसी प्रकार तुलना करते हुए शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि इस राज्यरूपी शरीर का ''राजा सिर है, मन्त्रिगण उसकी आँखें हैं, मित्रगण उसके कान है, कोष उसका मुँह है, किले उसकी भुजा हैं, जनता उसके हाथ हैं और सेना राज्य की इच्छाशक्ति है।'' इसी प्रकार के अनेक उल्लेखों और विविध प्रमाणों से इस बात की पुष्टि होती है कि राज्य के सावयवी सिद्धान्त से प्राचीन भारतीय अपरिचित नहीं थे।

2. राज्य निर्माण का यज्ञ सिद्धान्त– राज्य निर्माण का यज्ञ सिद्धांत प्राचीन भारत में धार्मिक सिद्धांत के रूप में भी प्रचलित था। पूरी दुनिया में यह सिद्धांत सिर्फ भारत में ही लोकप्रिय था। इस सिद्धांत में राज्य को यज्ञ का एक स्वरूप माना जाता था और यह माना जाता था कि राज्य जनता के लिए मोक्ष के माध्यम का काम करेगा। राजा के माध्यम से ही स्वर्ग की प्राप्ति की जा सकती थी। राज्य में यज्ञ करने वालों में राजा सर्वोच्च था। जिस प्रकार पुरोहितों द्वारा यज्ञ के सम्बन्ध में विस्तृत वार्त्ताओं का उल्लेख किया जाता था उसी प्रकार राजा द्वारा जनता के कर्त्तव्यों को विनियमित किया जाता था। कुल मिलाकर राज्य को एक यज्ञ माना गया था, जिसमें प्रत्येक अंग का एक विशेष कर्त्तव्य था। यज्ञ का उद्देश्य था स्वर्णिम भविष्य। इस यज्ञ ने प्राचीन भारत में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया और प्रत्येक भारतीय विशेषज्ञ इस बात से सहमत हैं।

यज्ञ की ईंटों को रखने के सम्बन्ध में सत्पथ ने राज्य और समाज की तुलना यज्ञ से की है। यह यज्ञ की एक ईंट है। उसके द्वारा मुख्य कार्य सम्पन्न किया जाता है। यदि वह नहीं है तो यज्ञ अधूरा है। दूसरे स्थान पर यज्ञ की अग्नि प्रज्जवलित करते समय सामाजिक अन्तर को मस्तिष्क में रखने की बात कही गयी है। यह उल्लेख है कि राजनीतिक सर्वोच्चता एवं सामाजिक अन्तर को ध्यान में रखकर ही एक व्यक्ति को यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए। स्वयं राजा को यह बताते समय विभिन्न वर्गों के कर्त्तव्यों को निर्धारित किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार, जब देवताओं और ऋषियों ने पुरुष का यज्ञ किया तो जाति प्रकट हुई। मनु के कथनानुसार, ब्राह्मणों को अध्ययन और अध्यापन का कार्य सौंपा गया। उन्हें अपने और दूसरों के लाभ के लिए यज्ञ करने को कहा गया। क्षत्रियों का कार्य जनता की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन करना आदि बताया गया। वैश्यों को पशुपालन, दान देना, यज्ञ कराना, व्यापार करना, धन उधार देना, कृषि करना आदि से सम्पन्न बनाया गया। शुद्रों को केवल एक ही कार्य बताया गया और वह था अन्य वर्गों की सहायता करना। वर्णो के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध व्यवस्था थी कि इन सभी को कुछ कार्य समान रूप से करने थे। वेदों का अध्ययन, यज्ञ करना आदि कार्य सभी को करने बताये गये। राजा का यह प्रमुख कार्य था कि वह सभी लोगों को उनके कर्त्तव्यों में रत रखकर उन्हें अधर्म के मार्ग से रोके। उसके लिए दण्डनीति का प्रयोग करे।

राजा द्वारा ब्राह्मणों को विशेष स्तर प्रदान किया जाता था। वह उनको कर से छूट देता था। उनकी आवश्यकताओं की सारी चीजें उपलब्ध कराता था। यह सब कुछ अकारण नहीं होता था। अग्नि पुराण के कथनानुसार ''राजा के संरक्षण में रहकर ब्राह्मणों द्वारा जो धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जाते थे, वे उनके जीवन को दीर्घ बनाने में तथा प्रजा की हालत को सुधारने में महत्वपूर्ण कार्य करते

थे।'' ये बातें परस्पर आश्रित थी। ब्राह्मणों का कार्य था–राजा को राजकीय मामलों में सही परामर्श देना और राज्य के सुख-समृति एवं आर्थिक उन्नयन के लिए धर्मादि कार्य करना। महाभारत में कहा गया है कि जिस राज्य के लोग धार्मिक क्रिया-कलापों में रुचि लेते हैं तथा धर्म के अनुसार ही आचरण करते हैं वह राज्य धन-धान्य से सम्पन्न होता है। राजा का कार्य भी अप्रत्यक्ष रूप से एक यज्ञ ही था। राजा द्वारा रक्षित रह कर सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक ठीक उसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, जिस प्रकार अपने माता-पिता के संरक्षण में रहकर बच्चे प्रसन्न होते हैं। राजा के कर्त्तव्य अन्य सभी कर्त्तव्यों में प्रमुख थे। मोक्ष की प्राप्ति के लिये अग्रसर करने वाले आध्यात्मिक कार्यों से भी अधिक उनका महत्त्व था। इस प्रकार का उल्लेख है कि देवता, माता, पितृ, गन्धर्व एवं राक्षस आदि सभी यज्ञ से शक्ति प्राप्त करते हैं और यज्ञ राजाओं पर निर्भर करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि राजा का भारी महत्त्व था, क्योंकि उसके बिना कोई यज्ञ सम्भव नहीं था। अतः यदि राजा को ही यज्ञ कह दिया तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- राम चरित मानस (तुलसीदास) गीता प्रेम
- के.एम. पणिक्कर- राजनय के सिद्धांत तथा व्यक्ता पृष्ठ-3
- शांतिपर्व राजनय, युद्ध और शांति तथा सरकार पर विचारों का श्रेष्ठ संग्रह है
- अल्तेका पृष्ठ 0269
- मजूमदाररू वैदिक युग, पृ. 25
- पणिक्कर पृष्ठ 026
- पणिक्कर पृष्ठ 027
- आपस्तम्बय 1/1/1/2-3,
- महावीरचरित 4/36-37
- मनुस्मृति, 12/08-15
- पाराशर 8/9/35, याज्ञवल्क्य, 1/1
- शुक्रनीति, 4/552-54
- अर्थशास्त्र, 3/1/56-57
- शुक्रनीति, 4/586-87, याज्ञवल्क्य, 2/5
- बुद्धचरित, 1/82
- मनुस्मृति, 8/336

हरियाणा के प्रसिद्ध सांगी चंद्रलाल भाट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० मुकेश

एसोसिएट प्रोफेसर, पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

रेखा

शोधार्थी, संगीत विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रस्तावना

हरियाणवी साहित्य को अगर कोई समृद्धता की ओर ले गया है, तो वह है इसकी सांग परंपरा। जितना योगदान इन सांग और सांगीयों का हरियाणवी साहित्य में है। उतना किसी अन्य विधा में नहीं है। इस योगदान के अंतर्गत लोक साहित्य को समृद्ध करने वाली सांग परंपरा को विकसित और उसे नए आयाम देने में सांगी 'चंद्रलाल भाट' का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है।

सांगी चंद्रलाल भाट ने सांग की इस कला को प्रसिद्धि दिलाने के लिए बहुत प्रयास किए हैं। उन्होंने हर फिल्मी धुनों, हर कुप्रथाओं पर हर धार्मिक कार्यों पर, हर देशभक्ति कार्यों पर कोई न कोई सांग अवश्य बनाया है। जिससे कि हर व्यक्ति में सांग को देखकर देशभक्ति की भावना उत्पन्न हो सके। सांगी चंद्रलाल भाट के सांगों ने लोगों के मन पर गहरी छाप छोड़ी है। जिन्होंने भारत-चीन, नौबहार, धर्मदेवी, कमला मदन आदि ऐसे कई सांगों की रचना की है। दुर्भाग्य से सांगी चंद्रलाल भाट हमारे बीच नहीं है। लेकिन आज भी इनके द्वारा बनाई गई रागनी सांग और गीतों को सम्मान के साथ गाया जाता है।

उनके दो लोकप्रिय शिष्य दमन और वेद उनकी इस सांग परंपरा को आज भी कायम रखे हुए हैं। सांगी चंद्रलाल भाट द्वारा बनाए गए हर सांग, रागिनी आज भी इनको भली-भांति याद है।

व्यक्तित्व

हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटवारे से पहले पंजाब की रियासत जींद में ग्राम चरखी दादरी जो आज के समय में हरियाणा प्रदेश के जिले भिवानी में स्थित है। इस क्षेत्र में अधिकतर रेतीली जमीन है और पानी की भारी कमी के कारण सूखा इलाका माना जाता था। उस समय यहां पर बारिश भी कम होती थी। खेती भी वर्षा होने पर ही बोई जाती थी।

इस क्षेत्र के चालीस गांवों में सांगवान गोत्र के जाटों का जमीनदारा था। चरखी दादरी के इन सभी चालीस गावों में सांगवान गोत्र के जाटों की चौधर होती थी, जो आज भी कायम है। चरखी दादरी में श्री 'माहियराम भाट' जो कि सांगी चंद्रलाल भाट के दादाजी थे। यहां पर यह अपने पूरे परिवार के साथ रहते थे। यह सांगवानों की वंशावली लिखते और उनका व्याख्यान करते थे। महिया राम कुछ गाने की कला को भी जानते थे जिससे उनका परिवार का गुजारा चलता था। क्योंकि वह सांगवानों की 1 वंशावली गाते थे, उससे सांगवान खुश होकर इनको पैसे अनाज, कपड़ा इत्यादि खुश हो कर देते थे। इससे इनके परिवार का गुजारा आसानी

से चल जाता था। श्री महिया राम के बेटे थे, सोहनलाल जो सांगी चंद्रलाल भाट के पिताजी थे। सोहन लाल बहुत अच्छा आल्हा उदल के भजन गाते थे। इनकी वाणी भी बहुत मधुर थी। इनको भी अपने पिताजी से थोड़ा बहुत संगीत का ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्री महिया राम के छः पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र श्री सोहनलाल, श्री शिवचरण, श्री मंगलचंद, श्री कबूल सिंह, श्री जहार सिंह, श्री चंदगीराम। श्री महिया राम ने अपने बड़े बेटे का विवाह जिला महेंद्रगढ़ के पाली ग्राम निवासी श्री लालाराम भाट की बेटी श्रीमती चावली देवी से सन् 1908 में हुआ था। श्रीमती चावली देवी बहुत ही सुंदर, सुशील व अच्छे स्वभाव की स्त्री थी। शादी के दो साल बाद चावली देवी ने एक पुत्री को जन्म दिया। लेकिन वह कुछ समय ही जीवित रही। इसके बाद सोहनलाल के विवाह को 10 साल हो गए, जो भी संतान होती वह जीवित नहीं रहती थी। पूरे 40 गांव में पीर बाबा की मानता थी। चावली देवी ने पीर बाबा की पूजा मन से की। वहां पर बैठे एक साधु बाबा ने चावली देवी को आशीर्वाद दिया की बेटी तुझे एक पुत्र की प्राप्ति होगी जोकि बड़ा ही होनहार, कीर्तिवान और तेजस्वी होगा। जिसका नाम समस्त भारत में जाना जाएगा और वह लंबी उम्र लेकर आएगा। काफी समय बाद फिर ग्राम चरखी दादरी में सांगी चन्द्रलाल भाट का जन्म सन् 1917 में रक्षाबंधन के दिन हुआ। परिवार में इतने दिनों बाद खुशी की लहर दौड़ आई। जिसके कारण आसपास के सभी गांव वाले बधाई देने के लिए आए।

सांगी चन्द्रलाल भाट की पारिवारिक स्थिति इनके दादा के समय कुछ ठीक नहीं थी, लेकिन उनके पिताजी सोहनलाल की कड़ी मेहनत के कारण परिवार की स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। घर में पूरा सांगीतिक वातावरण हमेशा रहता था। इसीलिए बचपन से ही सांगी चंद्रलाल भाट की संगीत में रुचि हो गई थी। सांगी चंद्रलाल भाट ने पांच वर्ष की आयु में प्राइमरी स्कूल में दाखिला करवाया गया। 10 वर्ष की उम्र तक पढ़ाई की और पांचवी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। इनका पढाई से ज्यादा संगीत में ज्यादा लगाव था। इसलिए चंद्रलाल भाट की पढ़ाई में रुचि नहीं बन पाई और पांचवी कक्षा के बाद इन्होंने स्कूल जाना बंद कर दिया। लेकिन सांगी चंद्रलाल भाट की उर्दू और संस्कृत पर अच्छी पकड़ थी। क्योंकि इनके दादाजी आल्हा उदल के भजनी होने के कारण इनके कई भजन संस्कृत में थे। इसीलिए इनको संस्कृत का ज्ञान था।

बचपन में हर समय गाना गुनगुनाते रहते थे। एक बार तो ये गाय चराने के लिए गए वहां पर गाना गाते समय इतना मगन हो गए कि इनको मालूम ही नहीं हुआ के सांप आ रहा है, इनको सांप ने काट लिया। वहीं पर तेज वैद्य ने इनका इलाज किया। सांगी चंद्रलाल भाट का मानना है कि सांप के काटने के बाद कभी भी जीवन में इनका गला खराब नहीं हुआ।

इनके पिता ने देखा कि इनकी पढ़ाई में कोई रुचि नहीं है। इसीलिए इनको संगीत की शिक्षा के लिए इनके चाचा श्री मंगलचंद के पास संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया। इनके सबसे पहले गुरु थे, इनके चाचा श्री मंगल चंद। वे जोगी गाया करते थे, वे आल्हा उदल व महाभारत के किस्से बहुत अच्छी प्रकार से गाते थे। सांगी चंद्रलाल भाट पढ़े-लिखे होने के कारण सारे ग्रंथ जैसे महाभारत, रामायण, गीता, पुराण एवं सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रंथों का अध्ययन करने लगे थे। सांगी चंद्रलाल भाट की आवाज बड़ी ही सुरीली व बुलंद थी। चंद्रलाल भाट ने लगभग बारह वर्ष की आयु में भगवान श्री कृष्ण की उपमा में एक भजन लिखा

टेकः नंद के दुलारे थारे द्वारका में बास भगत जनों न तेरे मिलने की आस तू ही चढ़ा दे, तू ही गिरा दे

कलीः तू ही भक्तों न पार तिरा दें

तोडः चंद्र की करा दे कृष्ण अपने वाली रास भक्तजनों न तेरे मिलने की आस

तेरह साल की उम्र में श्री चंद्रलाल ने पहली बार सांगी लख्मीचंद के सांग का प्रोग्राम देखकर वे उनसे बहुत प्रभावित हुए और उनके प्रशंसक बन गए। सांगी चंद्रलाल भाट ने अपने सांगी शुरुआती जीवन को गजना गौरी, मोहनादेवी, चम्पादे - माली, सत्यवान-सावित्री, हीर-रांझा, नौबहार- धर्मदेवी इत्यादि सांग लिखे। इन्होंने अपनी ही अलग ही सांग पार्टी बना रखी थी।

सांगी चंद्रलाल भाट की शादी 15 वर्ष की आयु में हरियाणा के खेवड़ा गांव जो वर्तमान में जिला सोनीपत में स्थित है, वही के रहने वाले श्री राजाराम भाट की बेटी भरपाई से तय कर दी। लेकिन शादी के कई वर्षों बाद भी भरपाई देवी को कोई संतान प्राप्त नहीं हुई। इसीलिए इनके माता-पिता ने भरपाई देवी की इच्छा से इनका दूसरा विवाह हरियाणा के जींद जिले के गांव भुरजट निवासी श्री सुमेरा भाट की बेटी फूलवती देवी से करवा दिया। लेकिन कई वर्श बाद भी फूलवती देवी को भी कोई संतान नहीं हुई। इसीलिए सांगी चंद्रलाल भाट के पिताजी ने भरपाई देवी व फूलवती देवी की इच्छा से तीसरा विवाह हरियाणा के जिला सोनीपत के गांव बिघल (पिनाना) गांव की चन्द्रोदेवी से करवा दिया। कुछ ही दिनों में दूसरी पत्नी फूलवती देवी को पुत्र प्राप्ति हुई। जो कि 17 महीने में भगवान को प्यारा हो गया।

सन् 1951 में दूसरे पुत्र को जन्म दिया। श्रीमती फूलवती देवी से आठ संताने पैदा हुई। जिसमें 4 लड़के और 3 लड़कियां हुई। चन्द्रोदेवी को भी एक लड़की हुई। घर में बच्चों की किलकारियां गूंज रही थी।

इसी बीच सांगी चन्द्रलाल भाट का के कामयाबी का सूरज चढ़ता ही जा रहा था। उन्होंने सांग के प्रचार-प्रसार करने में भारत का कोई भी कोना नहीं छोड़ा जहाँ पर वे कार्यक्रम देने के लिए न गए हो।

- सन् 1933-34 में सांगी चन्द्रलाल भाट अपनी सांग पार्टी को लेकर लाहौर सांग करने गए। जब इनकी उम्र 15 साल की ही थी।
- फौजियों की बटालियन में इनको सांग के प्रोग्राम करने के लिए बुलाया जाता था।
- सन् 1960 ईस्वी में भी मुंबई के (बुक रंग भवन) नामक स्टेडियम हॉल में सांग का प्रोग्राम किया था।
- सांग की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए कई जगह घूमे, जैसे - मेरठ, रुड़की, बरेली, पंजाब में फज्लका आदि।
- दत्त नगर के आसपास गांव में सैदपुर, बिकोली, ओगरी, पटोली मुकारी, कैहर का घटोली वालेनी, डोलचा नगला, सैदपुर, सिंघावली आदि सभी गांव में सांगी चंद्रलाल भाट ने प्रोग्राम दिये है।
- पूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का स्वागत गीत गाने के लिए इनको बुलाया गया था।
- उन्होंने उत्तर प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, पंजाब इन सभी प्रांतों में भाषा के अनुरूप सांग प्रस्तुत किया।

सांगी चंद्रलाल भाट का कुछ सामाजिक कार्यों में योगदान

1. उन्होंने अपने गांव दत्तनगर में स्कूल खुलवाया, जो की इन्हीं के नाम पर है।
2. गौ माता की गौ शालाओं के लिए सहायता की।
3. कुएं, सड़कें आदि कार्यों में भी सांग के द्वारा सहायता की।
4. सांगी चंद्रलाल भाट ने अपना एक मेडल जो कि लगभग 2 किलो सोने व 3 किलो चांदी का था, वह मेडल इंदिरा गांध ी रक्षा कोष के लिए दान कर दिया।
5. गरीब बेटियों की भाादी के लिए भी सांग के द्वारा बहुत सहायता की है।

सांगी चन्द्रलाल भाट की एक विशेषता यह भी थी कि वह बिना होंठ को मिलाएं और बिना जीभ को हिलाए भी गा सकते हैं। जो कि आज तक किसी सांगी ने नहीं किया है। इनमें एक विशेषता यह थी कि यह 10 मिनट के अंदर किसी भी प्रकार का गीत तैयार कर सकते थे।

सांगी चंद्रलाल भाट की मृत्यु दत्तनगर गांव उत्तर प्रदेश में हुई थी। इनका हिरनिया का ऑपरेशन मेरठ शहर के एक निजी अस्पताल में हुआ था। उसके दो-तीन दिन तक बुखार रहा, उसके बाद 4 अगस्त 2004 को एक चमकता सूरज ढल गया। सर्वाधिक सांगों के रचियता तथा सर्वाधिक समय तक सांग करने वाले सांगों के महाकवि क्रांतिकारी सांगी श्री चंद्रलाल भाट अपने पीछे सांगी शिष्यों की एक लंबी कतार छोड़ कर चले गए हैं।' एक अद्वितीय सांगी गायक संसार से हमेशा हमेशा के लिए चले गए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धनपत सिंह निवाणा कृत अमृतकलश आचार्य श्री भीलकराम सुरेश जांगिड़ उदय अक्षरधाम प्रकाशन करनाल रोड, कैथल (हरियाणा) - 136027
2. धनपत सिंह निदाणा कृत अमृतकलश, आचार्य श्री भीलकराम, सुरेश जांगिड़ उदय, पृ० 75

डॉ० बाबासाहेब के शिक्षाप्रद विचार

डॉ० अनिल विठ्ठल बाविस्कर

सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग प्रमुख, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, अक्कलकुवा, महाराष्ट्र

प्रस्तावना:

डॉ। बाबासाहेब के अनुसार शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक प्रभावी हथियार है। वे ऐसा मानते थे। डॉ। बाबासाहेब के शैक्षिक विचार तीव्र और शानदार हैं। उन्होंने अपने अकादमिक चिंतन की प्रखरता से श्अस्पृश्यताश के सामाजिक कलंक को ज्वाला बनाकर जला दिया। साथ ही, भारत में शिक्षा की चमक से स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना करके, उन्होंने शिक्षा के माध्यम से मानवता का निर्माण किया और भारत में संविधान के रूप में समानता के लोकतंत्र की स्थापना में एक शेर का हिस्सा लिया। डॉ। बाबासाहेब के अनुसार शिक्षा को लोगों को उनके कर्तव्य और अधिकारों के प्रति जागरूक करना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा के महत्व को विस्तार से बताया है।

शिक्षा की अवधारणा :-

बच्चों को स्कूल में बाराखड़ी ही नहीं पढ़ाना चाहिए बल्कि उनके मन को संस्कारी और गुणवान बनाना चाहिए। समाज के हित के लिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षित बच्चे सामाजिक प्रतिबद्धता के अपने कर्तव्यों का ठीक से और कुशलता से पालन कर सकें। स्कूल ऐसे कारखाने हैं जो अच्छे नागरिक और कर्तव्यपरायण नागरिक बनाते हैं। इस प्रक्रिया में भाग लेने वालों को इस ओर ध्यान देना चाहिए उन्होंने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है।

1) सच्ची शिक्षा वह है जो राष्ट्रीय हित और सामाजिक हित का सम्मान करती है।
2) शिक्षा केवल नोटबुक और कलम नहीं है, बल्कि शिक्षा बुद्धि को सत्य की ओर, भावना को मानवता की ओर, शरीर को श्रम की ओर ले जाने का मार्ग है
3) शिक्षा ज्ञान और विवेक का पक्का संगम है।

शिक्षा के उद्देश्य :-

डॉ। अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा व्यक्ति को श्बोधश देती है। नहीं तो शिक्षा के अभाव में वह पशु की तरह श्अज्ञानीश बना रहेगा और अपना और समाज का भला-बुरा नहीं सोच पाएगा। और इस प्रकार सामाजिक उत्थान की प्रक्रिया में अपना योगदान नहीं दे पाएगा। भारत में दलित समाज का उत्थान उन्हें पहले की तरह भोजन, वस्त्र और आश्रय प्रदान करके उच्च वर्ग की सेवा करने के लिए नहीं है, बल्कि उनके कारण उनके जीवन को निर्दयता से लूट लिया गया है। उनके लिए और उनके अपने और राष्ट्र के लिए शिक्षा का क्या महत्व है? इसे समझना ही वास्तविक श्शिक्षाश है।

शिक्षा का महत्त्व :-

शिक्षा व्यक्ति को उसके अधिकारों और कर्तव्यों से अवगत कराती है। अम्बेडकर ने समाज में शिक्षा के महत्व को विस्तार से बताया ताकि समाज में अछूतों को अपनी पहचान का एहसास हो सके। उन्होंने शिक्षा की तुलना बाघ के दूध से की है। शिक्षा बाघ का दूध है। वह गोली उस आदमी की गुर्राहट के बिना नहीं होगी। डॉ। बाबासाहेब अम्बेडकर के अनुसार, यदि आप समाज का

विकास करना चाहते हैं, तो आपको शिक्षा का प्रसार करना होगा। शिक्षा की कमी के कारण किसी को पता भी नहीं चलता कि कोई उसके साथ अन्याय कर रहा है और अनजाने में वह इन सभी अन्यायों को सहन करने की मूर्खता रखता है और ऐसे समुदाय को शिक्षित समुदाय द्वारा आसानी से गुलाम माना जाता है और उनका लाभ उठाता है। इसलिए इन अज्ञानी समुदायों में दोष पाए जाते हैं। ऐसे दोष हैं। यदि इन दोषों को दूर करना है, तो सबसे अच्छी दवा सचेत, प्रबुद्ध शिक्षा है। यही शिक्षा का वास्तविक महत्व है। यह डॉ. बाबासाहेब ज्ञान न केवल उपयोगी होता है, बल्कि उसका सही समय पर उपयोग भी होना चाहिए। नहीं तो ज्ञान केवल एक आभूषण बनकर रह जाएगा। ज्ञान के बिना कर्म अन्धा और व्यर्थ है। जब लोग शिक्षा के बिना काम करते हैं, तो यह मानव शक्ति की बर्बादी मात्र है। शिक्षा समाज और मनुष्य के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा लोगों के पक्षपाती रवैये को खत्म करती है। अनपढ़ लोगों का उन लोगों द्वारा फायदा उठाया जाता है जो उन पर हावी होते हैं। शिक्षा प्रमुख लोगों द्वारा बनाई गई समस्याओं से निपट सकती है शिक्षा विचारों में सुधार करती है। लोगों में विश्वास पैदा होता है। आत्मविश्वास के समान कोई अन्य देव शक्ति नहीं है। हमें खुद पर विश्वास नहीं खोना चाहिए। आत्मविश्वास को हमारे विकास का पहला चरण माना जाता है। जैसे खाने की संतुष्टि अस्थायी होती है, वैसे ही शिक्षा से अर्जित ज्ञान जीवन भर रहता है। पेट की भूख तो मिटनी ही चाहिए, पर मनुष्य को एक कदम आगे बढ़कर विद्या ग्रहण करके बुद्धि की इस भूख को तृप्त करना चाहिए। पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की ओर से डॉ. बाबासाहेब ने कहा कि निम्न समाज के उत्थान की समस्या आर्थिक मानी जाती है। लेकिन यह एक बड़ी गलती है. शिक्षा के प्रसार के अलावा और किसी चीज से दलितों की प्रगति नहीं होगी। मेरी राय में यह हमारी सभी सामाजिक बुराइयों की दवा है।

शिक्षा का कार्य:

चरित्र निर्माण के लिए शिक्षा का सृजन करना चाहिए। अम्बेडकर का वास्तविक योगदान था। चरित्र पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि ज्ञान/ज्ञान की प्राप्ति, सदाचार और विनय, आत्मीयता, प्रज्ञा और करुणा विकास में बाधक हैं। शिक्षा का वास्तविक कार्य व्यक्ति में इन सद्गुणों और मूल्यों का पालन करने की शक्ति पैदा करना और उसके अनुसार कार्य करने का दृढ़ संकल्प करना है। अत: शिक्षा के बिना मनुष्य का वास्तविक अर्थों में उद्धार संभव नहीं है। विद्या, विनय और शील उनके तीन देवता थे। ज्ञान मनुष्य को अहंकारी नहीं बनाना चाहिए बल्कि उसे विनम्र बनाना चाहिए और मनुष्य को विनय भी रखना चाहिए।

शिक्षा एक पवित्र कार्य है :-

डॉ। अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा एक पुनीत कार्य है, मानव निर्माण का यह कार्य वहीं होता है, स्थान (शैक्षणिक संस्थान) और माध्यम (शिक्षक) दोनों को अक्षुण्ण रखना चाहिए। अन्यथा शिक्षा के माध्यम से दिये जाने वाले श्संस्कारश ठीक से और प्रभावी ढंग से नहीं दिए जा सकेंगे और शिक्षा निष्प्रभावी हो जाएगी। स्कूल और कॉलेज पवित्र स्थान हैं और उनमें काम करने वाले मानवीय तत्वों (शिक्षकों) को छात्रों के मन में असीम आस्था रखनी चाहिए। उपरोक्त तत्व हमेशा के लिए।

शिक्षा: अन्न वस्त्र और निवारा :-

शिक्षा भोजन की तरह है। जैसे मनुष्य भोजन के बिना नहीं रह सकता, वैसे ही शिक्षा भी। अत्र का सेवन करने से व्यक्ति को शक्ति प्राप्त होती है और वह काम करता रहता है, भोजन करने से वह शरीर में अवशोषित होकर उसका रक्त बन जाता है। परिणामस्वरूप मनुष्य अधिक कुशलता से कार्य कर सकता है। डॉ। अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा मानव शरीर का अंग होना चाहिए। इसलिए उसका मन और तन स्वस्थ होना चाहिए अर्थात मनुष्य मनुष्य की तरह कार्य कर सकता है। अन्यथा वह शिक्षा के अभाव में पाशविक है। जिस प्रकार मनुष्य को जीने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। साथ ही उसे आजीवन शिक्षा की जरूरत है। अत: शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। वह चाहता था कि हर कोई जान जाए कि यह जीवन के साथ समाप्त होता है

समारोप:-

डॉ.बाबासाहेब के शैक्षिक विचार आम लोगों के साथ-साथ समाज के उत्थान के लिए थे। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मानव कल्याण के सिद्धांतों को प्राथमिकता देकर जीवित रहे। यह नहीं भुलाया जा सकता

है कि शिक्षा के माध्यम से इसे बनाने के लिए निरंतर प्रयास करना अभी भी आवश्यक है। समतावादी समाजपरिवर्तन, सामाजिक क्रांति और नए समाज का निर्माण उनके लक्ष्य थे और वे शिक्षा को उनके लिए एक प्रभावी उपकरण मानते थे।

ग्रंथ संपदा :

1) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के शैक्षिक विचार। गुरुप्रसाद कक्कड़. शिक्षा समीक्षा दिसम्बर 90 जनवरी 91, अंक 5 पृ
2) डॉ. शिक्षा बाबासाहेब अम्बेडकर बी.एच. कल्याणकर लोकराज्य 16-30 अप्रैल 1991 पृष्ठ सं
3) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के शैक्षिक कार्य। शोभा नारायण मस्कूर भारतीय शिक्षा मई 1991 पृष्ठ सं. 203-206
4) कौर धनंजय (2006) - डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर (आत्मकथा) मुंबई: लोकप्रिय प्रकाशन
5) प्रधान, जी.पी. (2009) - डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर इन हिज वर्ड्स, पुणे: सुगावा प्रकाशन
6) भोसले, शिवाजीराव (सितंबर 2009) दीपस्तंभ बोधिसत्व: डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर (पृष्ठ संख्या 357)

शिक्षा में ईश्वर भाई पटेल समिति की भूमिका

डॉ० हरजिंदर कौर

सहायक प्रोफेसर, खालसा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, रंजीत एवेन्यू, अमृतसर (पंजाब)

सारांशः

पिछले 70 वर्षों में भारत ने समय-समय पर बच्चों की शिक्षा में एसयूपीडब्ल्यू को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में शामिल करने और प्रत्येक बच्चे के समग्र विकास में इसके महत्व को शामिल करने के महत्व के बारे में कई प्रयास किए हैं। बच्चे की उम्र और रुचियों के साथ कार्य शिक्षा गतिविधियों को विकसित करने और सिंक्रनाइज करने के लक्ष्य के साथ, इस उद्देश्य के लिए कई दस्तावेजों ने विशिष्ट सिफारिशें की हैं। महात्मा गांधीजी के बेसिक शिक्षा कार्यक्रम, कोठारी आयोग की रिपोर्ट, ईश्वर भाई पटेल समिति की रिपोर्ट, राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन सी ई आर टी) के दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम, शिक्षा की राष्ट्रीय नीति सहित विभिन्न आयोगों और समितियों को अलग-अलग समय पर नियुक्त किया गया था। शिक्षा 1986, स्कूल शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन सी एफ एस ई)2000 और हाल ही में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन सी एफ) -2005, शिक्षा की मौजूदा प्रणाली, नीतियों और कार्यक्रमों में सर्वेक्षण, अध्ययन, समीक्षा और सुधार की सिफारिश करने के लिए। ईश्वर भाई पटेल समिति की शिक्षा में भूमिका पर विस्तार से चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

कीवर्डः पाठ्यचर्या, एसयूपीडब्ल्यू, ईश्वर भाई पटेल समिति, स्कूली शिक्षा, समग्र विकास

परिचयः

स्वतंत्रता के बाद से, उत्पादक गतिविधियों को पाठ्यक्रम में एक बहुत ही महत्वपूर्ण विशेषता दी गई है। संवैधानिक जनादेश के अनुसरण में, भारत सरकार ने देश के सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए कई उपाय शुरू किए हैं। शैक्षिक पुनर्निर्माण ऐसे उपायों में से एक रहा है। हमारी शिक्षा प्रणाली को अधिक यथार्थ वादी और उत्पादक बनाने के लिए अलग-अलग समय पर विभिन्न आयोगों और समितियों का गठन किया गया और शिक्षा और उत्पादकता के बीच की कड़ी को मजबूत करने के लिए स्कूली शिक्षा के सभी चरणों में काम को शामिल करने की आवश्यकता महसूस की गई। यह माना गया कि कार्य शिक्षा को कौशल और मूल्यों के विकास में एक शक्तिशाली उपकरण बनाया जा सकता है और इस प्रकार छात्रों में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया जा सकता है जो सामुदायिक सेवा और सामाजिक कार्य के माध्यम से देश के आर्थिक विकास को गति देने में सहायक होगा। बुनियादी शिक्षा की गांधीवादी अवधारणा में इसे हमेशा शिल्प शिक्षा का नाम दिया गया है। इसे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की केंद्रीय विशेषता माना जाता था। भाषा, गणित और पर्यावरण अध्ययन से संबंधित सभी शिक्षण अधिगम गतिविधियों को इसी में और इसके आसपास पढ़ाया जाना था। वास्तव में, शिल्प को सह संबंध के प्रमुख केंद्रों में से एक माना जाता था। बुनाई, कताई, कृषि और गत्ता, बेंत और बांस का काम आदि शिल्प गतिविधियों में शामिल थे। बच्चा और उसका वातावरण सह संबंध के अन्य दो केंद्र थे। 1964-66 के दौरान शिक्षा आयोग ने देश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति की समीक्षा की। यह पाया गया कि स्कूलों में शिल्प गतिविधियों को ज्यादातर एक अलग गतिविधि के रूप में किया जा रहा था। शिक्षा आयोग (1964-66) ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के एक शक्तिशाली साधन के रूप में शिक्षा की भूमिका पर बल दिया। आयोग ने निष्कर्ष निकाला कि राष्ट्रीय विकास की ओर ले जाने वाले शैक्षिक परिवर्तन को प्राप्त करने के साधनों में से एक शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ना था, और इस लिंक को सामान्य शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में कार्य अनुभव को पेश करके बनाया जा सकता है। द करिकुलम फॉर द टेन-इयर

स्कूल – ए फ्रेमवर्क (1976) में कोठारी आयोग की कल्पना के अनुसार स्कूल पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग के रूप में कार्य अनुभव शामिल था। ईश्वर भाई पटेल समिति (1977) द्वारा इसकी आगे समीक्षा की गई, जिसने सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्यों की गांधीवादी अवधारणा की पुष्टि की। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (1986) ने कार्य अनुभव को उद्देश्यपूर्ण और अर्थपूर्ण मानवीय कार्य के रूप में माना है, जिसके परिणामस्वरूप सामान या सेवाएं मिलती हैं, जो स्वास्थ्य और स्वच्छता, भोजन, कपड़े, आश्रय, मनोरंजन और सामाजिक सेवा के क्षेत्रों में समाज के लिए उपयोगी हैं। शिक्षा के विभिन्न चरणों में बच्चों की मानसिक योग्यताओं और मानवीय कौशलों तथा स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार। इसने स्थानीय समुदाय या बड़े पैमाने पर समाज के कल्याण और विकास के लिए सामाजिक जागरूकता और चिंता पैदा करने के लिए सामुदायिक कार्य और सामाजिक सेवा को समान महत्व दिया। स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन सी ई आर टी , 2000) ने स्कूली शिक्षा के विभिन्न चरणों में स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने की कला और कार्य शिक्षा के लिए अध्ययन की योजना का सुझाव दिया। स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने की कला का उद्देश्य स्कूली शिक्षा के प्रारंभिक चरण में बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इस स्तर पर स्वास्थ्य, खेलकूद, मनोरंजन गतिविधियों, सौन्दर्य विकास, सृजनात्मक गतिविधियों तथा मूल्योत्पादन घटकों पर बल दिया जाता है। प्राथमिक चरणों के लिए, कक्षा 1 से 5, स्वस्थ और उत्पादक जीवन की कला, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक चरणों के लिए, कार्य शिक्षा का सुझाव दिया गया है और उच्चतर माध्यमिक चरणों के लिए कार्य शिक्षा सामान्य व्यावसायिक पाठ्यक्रम का सुझाव दिया गया है।

ईश्वर भाई पटेल समिति (1977):

भारतीय शिक्षा प्रणाली को अधिक यथार्थवादी और उत्पादक बनाने के लिए स्कूली शिक्षा के भीतर काम को शामिल करने, शिक्षा और उत्पादकता के बीच की कड़ी को मजबूत करने और शिक्षा के भीतर कार्य कौशल और मूल्यों को विकसित करने की आवश्यकता महसूस की गई। सामुदायिक सेवा और सामाजिक कार्यों के माध्यम से देश के आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करने के लिए समय-समय पर विभिन्न समितियों का गठन किया गया है, जिनमें ईश्वर भाई पटेल समिति उल्लेखनीय है। ईश्वर भाई पटेल समिति को 1977 में 10 वर्षीय स्कूल प्रणाली की जांच करने के लिए नियुक्त किया गया था जिसमें समिति ने सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य एसयूपीडब्ल्यूध्अनुभव वी शब्द की सिफारिश की थी और यह भी सुझाव दिया गया था कि एसयूपीडब्ल्यू को स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। समिति की सिफारिशें। विभिन्न राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में, एसयूपीडब्ल्यू को स्कूल स्तर पर लागू किया गया। इसे पहली बार 1937 में शिल्प शिक्षा, 1967 में कार्य अनुभव और 1977 में सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य के रूप में जाना गया।

एसयूपीडब्ल्यूः स्कूल पाठ्यक्रम में केंद्रीय स्थानः

समीक्षा समिति ने सिफारिश की कि एसयूपीडब्ल्यू को स्कूली शिक्षा के सभी चरणों में स्कूल पाठ्यक्रम में एक केंद्रीय स्थान दिया जाना चाहिए, जिसका शीर्षक ''10 साल के स्कूल के लिए पाठ्यक्रम" (1977 पृष्ठ 11) है, और शैक्षणिक विषयों की सामग्री होनी चाहिए से अधिक से अधिक संबंधित हों। एनसीईआरटी का कहना है कि एसयूपीडब्ल्यू गतिविधियों को चुनते समय निम्नलिखित मानदंडों को ध्यान में रखा जा सकता है। गतिविधियों का एक शैक्षिक उद्देश्य होना चाहिए।

- यह बच्चों के विकासात्मक स्तर के अनुसार होना चाहिए।
- बच्चे के सर्वांगीण विकास में मदद करना।
- समस्या को सुलझाने के कौशल और रचनात्मक के साथ-साथ अलग-अलग सोच की भागीदारी होनी चाहिए।
- नैतिक और सौन्दर्यात्मक मूल्यों के मन में बैठाने और उनके विकास में सहायक।
- आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त करने में बच्चों की सहायता करना।
- उत्पाद जो छात्रों और समुदाय द्वारा सीधे उपभोग योग्य हैं।
- उत्पाद जो बिक्री योग्य हैं, या सामाजिक और आर्थिक मूल्य वाली सेवाएं।

इसके अलावा, निम्नलिखित मानदंडों पर विचार किया जाना चाहिए:

- आवश्यक उपकरण, सामग्री, तकनीक और सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हैं।
- उपयुक्त संसाधन कर्मियों को उपलब्ध होना चाहिए।
- गतिविधि को उपयोगी तरीके से पूरा करना संभव होना चाहिए।

स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर की गई एसयूपीडब्ल्यू गतिविधियाँ:

निम्न प्राथमिक स्तर: विभिन्न कार्य स्थितियों का दौरा जहां लोग स्थानीय सामुदायिक गतिविधियों जैसे मिट्टी के बर्तन बनाने, बुनाई, बढ़ईगीरी आदि में लगे हुए हैं, साथ ही विभिन्न सामुदायिक सेवा केंद्रों जैसे बस स्टॉप, डाकघर, फार्म हाउस, डेयरी का दौरा खेतों, और इतने पर। पेपर फोल्डिंग और पेपर क्राफ्ट्स, किचन गार्डनिंग, फ्लावर गार्डनिंग, प्लांट्स उगाना, किताब को कवर करने के लिए हैंड फोर्क, फावड़े आदि का इस्तेमाल, लिफाफे बनाने के लिए, स्कूल और कैंपस की सफाई, क्ले वर्क, पेपर कटिंग।

उच्च प्राथमिक स्तर: गुड़िया बनाना, सिलाई और बुनाई का काम, किताब की जिल्दसाजी, स्वच्छता अभियान, शिक्षण मॉडल तैयार करना, स्कूल परिसर का सौंदर्यीकरण, स्कूल, घर और समुदाय में वृक्षारोपण, स्क्रैप बुक रखरखाव (टिकट संग्रह, बीज संग्रह, चित्रों का संग्रह) विभिन्न क्षेत्रों के परिधानों की)।

माध्यमिक स्तर: ''अर्न व्हेन यू लर्न" योजना के तहत कॉयर डोर मैट, डस्टर, फाइल बोर्ड, स्क्वैश, जैम, अचार, मोमबत्ती, स्कूल बैग, कपड़े की रंगाई और छपाई, सिलाई की तैयारी जैसी गतिविधियाँ मंत्रालय द्वारा शुरू की गई हैं।

एसयूपीडब्ल्यू का महत्व:

- छात्रों को स्वतंत्र रूप से या समूहों में अभ्यास करने और मैन्युअल कार्यों को करने के लिए तैयार करता है।
- बच्चों को समुदाय में उपलब्ध विभिन्न नौकरियों और सेवाओं से परिचित कराता है।
- हाथ से काम करने वाले कामगारों के लिए प्रशंसा विकसित करें।
- काम करने और समाज में योगदान देने में रुचि को बढ़ावा देना।
- टीम वर्क के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करें।
- सहनशीलता, सहयोग और मदद जैसे मूल्यों की शिक्षा देना।
- श्रम और आत्मनिर्भरता के महत्व में विश्वास।
- दन-प्रतिदिन की सामुदायिक समस्याओं को हल करने के लिए कक्षा की शिक्षा और ज्ञान को लागू करने में फायदेमंद।
- विभिन्न प्रकार के कार्यों में शामिल सिद्धांतों को समझने में सहायता करता है।
- स्कूली शिक्षा के विभिन्न चरणों में उत्पादक कार्यों में छात्रों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करता है और उन्हें सीखने के दौरान कमाई करने की अनुमति देता है।
- राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में भाग लें।
- राज्य और राष्ट्रीय विकास उद्देश्यों की उपलब्धि।

एसयूपीडब्ल्यू का छात्रों के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा यदि इसे स्कूल के पाठ्यक्रम में इस तरह से एकीकृत किया जाता है कि छात्र अपने सौंदर्य बोध को विकसित करता है और आनंद लेता है और स्कूल और सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने में गर्व महसूस करता है। स्कूल, अपने हितधारकों के सहयोग से, छात्रों के बीच कार्य संस्कृति की सच्ची भावना पैदा करने में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं, जो भविष्य में राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करेगा।

उत्पादक कार्य शिक्षा पर आयोगों की सिफारिशें:

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, जिसे कोठारी आयोग (1964-66) के नाम से भी जाना जाता है, ने बताया कि स्कूल प्रणाली में शिक्षा के व्यवसायी करण के बाद कार्य अनुभव होना चाहिए। यह कहा गया कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को सीधे उत्पादकता से जोड़ा जाना चाहिए ताकि हमारे राष्ट्रीय विकास में योगदान दिया जा सके। इसलिए भारतीय स्कूलों में कार्य अनुभव की अवधारणा को लागू करने का प्रस्ताव किया गया था।

समीक्षा समिति जिसे ईश्वर भाई पटेल समिति के रूप में भी जाना जाता है, को 1977 में दस वर्षीय स्कूल प्रणाली की जांच के लिए नियुक्त किया गया था, जिसमें समिति ने कार्य अनुभव के लिए ''सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य'' (एसयूपीडब्ल्यू) शब्द की सिफारिश की, कि एसयूपीडब्ल्यू एक होना चाहिए।

इसे विभिन्न नामों से शुरू और कार्यान्वित किया गया है, जैसे शिल्प शिक्षा (1937), कार्य अनुभव (1967) और फिर सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य (1977)।

शिक्षा में एसयूपीडब्ल्यू की भूमिकाः

- एसयूपीडब्ल्यू का मतलब कार्य-आधारित शिक्षा है।
- यह संज्ञानात्मक और साइकोमोटर सीखने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है।
- यह सत्य, अहिंसा, आत्मनिर्भरता, श्रम की गरिमा और एक वर्गहीन समाज जैसे गांधीवादी मूल्यों को विकसित करने में मदद करता है।
- यह छात्रों को अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने में सक्षम बनाता है।
- यह छात्रों को दुनिया के काम को समझने में मदद करता है।
- यह छात्रों को काम के माध्यम से दुनिया के बारे में सिखाता है और उन्हें शारीरिक श्रमिकों का सम्मान करना सिखाता है।
- यह छात्रों को अपनी आजीविका कमाने में सक्षम बनाता है।

एसयूपीडब्ल्यू का छात्रों के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा यदि इसे स्कूल के पाठ्यक्रम में इस तरह एकीकृत किया जाता है कि छात्र के सौंदर्य बोध को आनंद मिलता है और स्कूल और सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने में गर्व महसूस होता है। स्कूल, अपने हितधारकों के सहयोग से, छात्रों के बीच कार्य संस्कृति की सच्ची भावना पैदा करने में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं, जो भविष्य में राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करेगा।

निष्कर्षः

एसयूपीडब्ल्यू प्राथमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। विद्यालयी पाठ्यचर्या की सभी गतिविधियाँ किसी न किसी प्रकार के उद्देश्यपूर्ण और अर्थपूर्ण उत्पादक कार्य स्थितियों से संबंधित होनी चाहिए। इस तरह की गतिविधियों में भाग लेने से बच्चे को उपकरणों को संभालने में कौशल हासिल करने में मदद मिलती है। बच्चे शारीरिक श्रम का सम्मान करना सीखते हैं और जो ऐसा करते हैं, वे स्वेच्छा से दूसरों की मदद और सेवा करते हैं। विद्यार्थियों का मूल्यांकन दैनिक गतिविधियों के अवलोकन पर आधारित होना चाहिए। यह विभिन्न कार्य परिस्थितियों में उनकी भागीदारी के स्तर को देखकर पूरा किया जा सकता है। शिक्षक कई अन्य कार्य अनुभव के अवसरों के बारे में सोच सकता है। ये बच्चों के सीखने की प्रकृति और तीव्रता को निर्धारित करने में सहायता करेंगे। कार्य अनुभव प्राथमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। प्राथमिक स्तर पर सभी गतिविधियाँ किसी प्रकार की उद्देश्यपूर्ण और सार्थक उत्पादक कार्य स्थितियों से संबंधित होनी चाहिए। कागज काटना, फाड़ना, चिपकाना, कागज या कार्डबोर्ड से उपयोगी वस्तुएँ बनाना, मिट्टी से काम करना, धागा डालना, सिलाई करना - ये सभी कार्य अनुभव के अंतर्गत आते हैं। इस तरह की गतिविधियों में भाग लेने से बच्चे को उपकरणों को संभालने में कौशल हासिल करने में मदद मिलती है। ये गतिविधियाँ बच्चे को विभिन्न प्रकार की सामग्रियों जैसे पत्ते, कागज, कार्डबोर्ड, कपड़ा, प्लास्टिक आदि में हेरफेर करने में भी सक्षम बनाती हैं। बच्चे शारीरिक काम और इसे करने वालों का सम्मान करना सीखते हैं। वे स्वेच्छा से दूसरों की मदद और सेवा करते हैं। विद्यार्थियों का मूल्यांकन दैनिक गतिविधियों के अवलोकन पर आधारित होना चाहिए। यह विभिन्न कार्य परिस्थितियों में उनकी भागीदारी के स्तर को देखकर पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ

- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/43707/1/Unit-1.pdf
- https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/7858/1/Unit-12.pdf
- https://stvincentpallotticollege.org/image/SUPW.pdf
- https://unacademy.com/content/full-forms/supw-full-form/
- https://www.mvce.ac.in/pdf/resources/1586279164_F_5_Ishwarbhai_Patel_Committee_Report_or_Report_Of_The_Review_Committee_On.pdf
- https://www.slideshare.net/thna1581981/iswar-bhai-patel-committee-drcthanavathi
- https://www.yourarticlelibrary.com/india-2/education-india-2/socially-useful-productive-work-supw-educational-system/89649

जैन परम्परा में आध्यात्मिक शिक्षा

डॉ० दुधनाथ चौधरी

एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैन शास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

मानव के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मानव का भौतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, चारित्रिक, सामाजिक विकास सम्भव है। जैन परम्परा में शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया गया है – 1. अध्यात्मिक शिक्षा, 2. लौकिक शिक्षा। जैन शिक्षा आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम तथा लौकिक उन्नति को द्वितीय स्थान पर रखती है। मोक्षोपयोगी ज्ञान अर्थात् मोघ्क्ष को केन्द्र मानकर जीव और जगत आदि सम्पूर्ण ज्ञेयत्व का ज्ञान आध्यात्मिक शिक्षा के अन्तर्गत आता है तथा जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा प्राप्त करना लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत आता है। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत पुरूषों की बहत्तर तथा स्त्रियों की चौंसठ कलाओं का समावेश है।

आध्यत्मिक शिक्षा का उद्देश्य

जैन शास्त्र का मूल उद्देश्य आत्मा की चरम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करना अर्थात् आध्यात्मिक चरम पद की उपलब्धि तथा मानव में सुप्त अन्तर्निहित आत्मशक्तियों का विकास करना है। व्यक्तित्व के चरम विकास की अवस्था को ही जैन दर्शन में मोक्ष कहा गया है।[1] मन, वचन और शरीर से किये गये प्रत्येक कर्म-अकर्म का शुभ-अशुभ कर्मबन्ध होता है। तब जीव सच्चे ज्ञान द्वारा अपने कर्मों को क्षीण करता है तत्पश्चात् परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जैसे धनार्थी पुरूष राजा को जानकर उसके प्रति श्रद्धा करता है, फिर प्रयत्नपूर्वक उसका अनुसरण कर सुन्दर रीति से उसकी सेवा करता है, तब कहीं वह धन उपलब्ध करने में सफल होता है, वैसे ही मोक्षार्थी को जीव रूपी राजा को सम्यक् प्रकार से जानकर तदनुरूप प्रवृत्ति करनी चाहिये, तब कहीं वह आत्मा की उपलब्धि में सफल होता है। अत: कहा जा सकता है कि वासना और उद्दाम प्रवृत्तियों के स्थान पर आत्मा-नियंत्रण और संयम की भावना को जागृत करना जैन शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

संसार में अनन्त प्राणी हैं और वे सभी सुख के अभिलाषी हैं। यद्यपि सभी की सुखकामना एक-सी नहीं होती है। पं0 सुखलाल संघवी ने सुखकार्मी प्राणियों के सुख के आधार पर दो वर्ग बताये हैं – पहले वर्ग में अल्प विकासवाले ऐसे प्राणी आते हैं जिनके सुख की कल्पना बाह्य साधनों तक सीमित है। दूसरे वर्ग में अधिक विकासवाले ऐसे प्राणी आते हैं जो बाह्य अर्थात् भौतिक साधनों की प्राप्ति में सुख न मानकर आत्यात्मिक गुणों की प्राप्ति में सुख मानते हैं। दोनों में अन्तर है कि पहला सुख पराधीन है और दूसरा स्वाधीन।[2] लेकिन जब तक मनुष्य पराधीन अर्थात् सजीव और निर्जीव पदार्थों में आसक्ति रखता है, तब तक वह दु:खों से मुक्त नहीं हो सकता।[3] आचारांग में कहा गया है कि कामनाओं का पूर्ण होना असम्भव है और जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता। कामेच्छुक मनुष्य शोक किया करता है, सन्ताप और परिताप उठाया करता है। तब तक मानव जीवन में आसक्ति बनी हुई है, मानवीय दु:ख बने हुए हैं।[4] इन दु:खों से छुटकारा तभी मिलता है जब मानव सांसारिक विषयों से निवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए जो प्रक्रियाएँ अपनायी जाती है, वे निवृत्ति कहलाती हैं तथा सांसारिक बन्धनों की ओर ले जानेवाली सभी क्रियाएँ प्रवृत्ति कहलाती हैं।

उमास्वाति ने मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाये हैं – सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र।[5] इन्हें त्रिरत्न के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इन्हें शिक्षा-साधना का कल्याण पथ माना गया है। त्रिरत्न मोक्ष-प्राप्ति के साधन हैं। शिक्षा-जगत में साधना का विशुद्ध होना बहुत ही जरूरी है, क्योंकि साधन के विशुद्ध होने पर ही विशुद्ध साध्य की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त तीनों साधनों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार से है –

यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना सम्यक्–दर्शन कहलाता है।[6] जैन दर्शन में सात तत्त्व स्वीकार किये गये हैं – जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन्हीं सात तत्त्वों के प्रति श्रद्धा रखना सम्यक्–दर्शन है। कुछ लोगों में तो यह स्वभावतः विद्यमान रहता है और कुछ इसे विद्योपार्जन एवं अभ्यास के द्वारा सीख भी सकते हैं।[7]

सम्यक् ज्ञान में जीव, अजीव, आदि मूल तत्त्वों का सविशेष ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान जीव में सदा विद्यमान रहता है और जब उस ज्ञान में सम्यकत्व का अविर्भाव होता है तब वह सम्यक् ज्ञान कहलाता है। सम्यक्–ज्ञान का अर्थ प्रमाणादि द्वारा यथार्थ ज्ञान से नहीं, बल्कि मिथ्यादृष्टि के निवारण से है। मिथ्यादृष्टि का निवारण ही मोक्ष में सहायक होता है। सम्यक् ज्ञान असन्दिग्ध तथा दोष रहित होता है।[8]

हिंसादि दोषों का त्याग और अहिंसादि महाव्रतों का पालन सम्यक्–चारित्र कहलाता है। पं0 सुखलाल संघवी के अनुसार सम्यक्–ज्ञान पूर्वक काषायिक भाव अर्थात् राग–द्वेष और योग (मानसिक, वाचिक और कायिक) क्रिया की निवृत्ति से होनेवाला स्वरूप रमण सम्यक्–चारित्र है।[9] शिक्षा का मूल सम्बन्ध सम्यक्–चारित्र से है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह–ये पाँच महाव्रत सम्यक्–चारित्र की प्राप्ति के प्रमुख साधन हैं। मैत्री, कारूण्य, माध्यस्थ्य आदि भावनाओं का चिन्तन तथा क्षमा, मार्दवादि दश धर्मों का पालन व मदिरा-मांसादि सप्त दुर्व्यसनों का परित्याग इन साधनों की पुष्टि करता है। सम्यक्–चारित्र के अंगों का अलग-अलग विवेचन निम्न रूप से है –

अहिंसा – सामान्यतया अहिंसा का अर्थ 'न हिंसा अहिंसा' या 'हिंसा विरोधिनी अहिंसा' से लिया जाता है। लेकिन जैन मतानुसार किसी भी जीव को तीन योग और जीन कारण से हिंसा न करना अहिंसा है।[10] तीन योग अर्थात् मन, वचन और काय तथा तीन करण अर्थात् करना, करवाना और अनुमोदन करना। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है –

1. मन से हिंसा न करना, न करवाना और न हिंसा का अनुमोदन करना।
2. वचन से हिंसा न करना, न करवाना और न हिंसा का अनुमोदन करना।
3. काय से हिंसा न करना, न करवाना और न हिंसा का अनुमोदन करना।

इन तीनों प्रकारों से प्राणी का घात न करना ही अहिंसा है। अहिंसा के पालन से मनुष्य में निर्भयता, वीरता, वत्सलता, क्षमा, दया आदि आत्मिक शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आत्मिक बल के सामने सभी पाशविक या आसुरी शक्तियाँ नतमस्तक हो जाती है।

सत्य- असत्य का परित्याग करना तथा यथाश्रुत वस्तु के स्वरूप का कथन सत्य कहलाता है। सत्य के लिए हितवादिता की आवश्यकता होती है। यदि भावना अहित हो जिससे किसी को कष्ट पहुँचता हो तो वह सत्य कथन भी अकथनीय होता है। 'अत्थतो अविसंवादि जहत्थमधुरं' अर्थात् वह सत्य है जो अर्थ से भूतार्थ सद्भूत अर्थवाला हो और अविसंवादी हो, यर्थाथ हो, मधुर हो। इसके साथ हीं उस सत्य - यथातथ्य अर्थ को प्रकट करने पर भी जिसके पीछे किसी प्रकार का छल, द्रोह, दम्भ आदि संयमविघातक कारण हो वह सत्य वचन असत्य ही समझा जायेगा।[11]

अस्तेय – बिना दिये गए परवस्तु को ग्रहण करना स्तेय कहलाता है। जैन मान्यता के अनुसार धन सम्पति मनुष्य का बाह्य जीवन है। अतः धन-सम्पति का अपहरण, मनुष्य के बाह्य जीवन का अपहरण है। सिर्फ चोरी करना ही नहीं बल्कि चोरी करने की प्रेरणा देना, चोरी की प्रशंसा करना, चोरी का माल खरीदना आदि सभी हिंसा है। अतः मन, वचन और काय से चोरी न करना, चोरी न करवाना और चोरी करनेवालों का अनुमोदन न करना ही अस्तेय महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य – तपस्याओं में सबसे उत्तम तप ब्रह्मचर्य है।[12] ज्ञान और दर्शन के उपार्जन के लिए दो शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है – स्मरण शक्ति और बौद्धिक प्रतिभा। ये दोनों शक्तियाँ ब्रह्मचर्य से प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य से ही आत्मिक, बौद्धिक, हार्दिक, विवेकीय एवं परीक्षणीय-निरीक्षणीय शक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। ब्रह्मचर्य से ही मन, वचन और काय की पवित्रता रहती है।

अपरिग्रह – मूर्च्छा ही परिग्रह है।[13] कोई भी वस्तु चाहे वह छोटी हो या बड़ी, जड़ हो या चेतन, बाह्य हो या आन्तरिक उसमें बन्ध जाना अर्थात् उसकी लगन में विवेकशून्य हो जाना परिग्रह है और इनका त्याग अपरिग्रह है। संसार के समस्त विषयों के प्रति राग तथा ममता का परित्याग कर देना ही अपरिग्रह है। अपरिग्रह के बिना हम अपने जीवन को उन्नत नहीं बना सकते हैं। धन-धान्य, घर-सामान, स्थावर, जंगम आदि कोई भी सम्पति, कर्मों से दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं है। 'उत्तराध्ययन' में कहा गया है – यदि धन-धान्य से परिपूर्ण यह सारा लोक भी किसी एक मनुष्य को दे दिया जाय तो भी उसे सन्तोष नहीं होगा। लोभी आत्मा की तृष्णा इसी तरह दुष्पुर होती है।[14]

जैन परम्परा में चार भावनाओं का विवेचन किया गया है, जिसमें मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ पंच व्रतों की प्राप्ति में उपकारक का कार्य करती हैं। भगवान् महावीर ने कहा है कि व्यक्ति को प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीवृत्ति, गुणिजनों के प्रति प्रमोदवृत्ति, दुःखी जनों के प्रति करूणावृत्ति और अयोग्य पात्रों के प्रति माध्यस्थ वृत्ति रखनी चाहिए।[15] मैत्री का विषय प्राणिमात्र है। दूसरे में अपनेपन की बुद्धि रखना अर्थात् अपने समान ही दूसरे को दुःखी न करने की वृत्ति अथवा भावना रखना मैत्रीवृत्ति है। जब यही मैत्रीवृत्ति प्राणिमात्र के साथ होती है तब हर मनुष्य में अहिंसक और सत्यवादिता का अंकुर प्रस्फुटित होता है। अपने से अधिक गुणवान के प्रति आदर रखना तथा उसके उत्कर्ष को देखकर प्रसन्न होना प्रमोदवृत्ति है। इस भावना का विषय अधिक गुणवान है। अधिक गुणवान के प्रति ही ईर्ष्या या असूया आदि दुर्वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। जब तक इस वृत्ति का नाश नहीं हो जाता तब तक अहिंसा, सत्य आदि व्रत नहीं टिक सकते हैं। इस प्रकार प्राणिमात्र के प्रति करूणा की भावना रखनी चाहिए। इस भावना का विषय केवल क्लेश से पीड़ित दुःखी प्राणी है, क्योंकि दुःखी, दन व अनाथ को ही अनुग्रह तथा मदद की अपेक्षा रहती है। यदि किसी पीड़ित को देखकर भी अनुकम्पा, अनुग्रह का भाव पैदा नहीं होता है तो अहिंसा का पालन असम्भव है। इसलिए जैन धर्म में करूणा की भावना आवश्यक मानी गयी है। इसी प्रकार जैन परम्परा के माध्यस्थ भावना का भी विवेचन किया गया है। माध्यस्थ्य भावना का विषय अविनीत या अयोग्य पात्र है। माध्यस्थ्य का अर्थ होता है – तटस्थता। तब नितान्त संस्कारहीन एवं अयोग्य पात्र मिल जाये जिसे सुधारने के सभी प्रयत्न विफल दिखायी दे तो ऐसी व्यक्ति के प्रति तटस्थ भाव रखना ही श्रेयस्कर है।[16]

दस धर्म

जैनचार्यों ने दस प्रकार के धर्मों का वर्णन किया है जो गृहस्थ और श्रमण दोनों के लिए समान रूप में आचरणीय है। 'आचारांग', 'मूलाचार', 'स्थानांग', 'समवायांग', और 'तत्त्वार्थ' आदि अनेक ग्रन्थों में इन धर्मों का वर्णन विस्तार से किया गया है। आचारांग में आठ सामान्य धर्मों का उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि जो धर्म में उत्थित अर्थात् तत्पर हैं उनको और जो धर्म में उत्थित नहीं है उनको भी निम्नलिखित बातों का उपदेश देना चाहिए – शान्ति, विरति, उपाम, निवृत्ति, शौच, आर्जव, मार्दव और लाघव।[17] 'स्थानांग' और 'समवायांग' में भी इन्हीं धर्मों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि 'स्थानांग' और 'समवायांग' की सूची 'आचारांग' से थोड़ी भिन्न है। 'तत्त्वार्थसूत्र' के अनुसार दस धर्म निम्न है – क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम तप, त्याग, अकिंचनता और ब्रह्मचर्य।[18] इन दस धर्मों का विवेचन निम्न प्रकार से है –

क्षमा – अनुचित व्यवहार के बाद भी किसी व्यक्ति के प्रति मन में क्रोध को न लाना, सहनशील रहना, क्रोध पैदा न होने देना और क्रोध को विवेक तथा नम्रता से निष्फल कर डालना क्षमा है। 'दशवैकालिक' में क्रोध को प्रीति का विनाशक कहा गया है। क्रोध कषाय के उपशमन के लिए क्षमा धर्म का विधान है। क्षमा के द्वारा ही क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।[19] पं0 सुखलाल संघवी ने क्षमा की साधना के पाँच उपाय बताये हैं[20] –

(क) अपने में क्रोध के निमित्त के होने या न होने का चिन्तन करना।

(ख) क्रोधवृत्ति के दोषों पर विचार करना।

(ग) बाल स्वभाव का विचार करना।

(घ) अपने किये हुए कर्म के परिणाम पर विचार करना।

(ङ) क्षमा के गुणों का चिन्तन करना।

जैन परम्प्रा में अपराधी को क्षमा करना और स्वयं के अपराधों के लिए जिसके प्रति अपराध किया गया है उससे क्षमायाचना करना साधक का परम कर्त्तव्य माना गया है। जैन साधक का प्रतिदिन यह उद्घोष होता है कि मैं सभी प्राणियों को क्षमा करता हूँ और सभी प्राणी मेरे अपराधों के लिए मुझे क्षमा करें। सभी प्राणियों से मेरी मित्रता है, किसी से मेरा वैर नहीं है।[21]

मार्दव – ऐसा आचरण जिसमें व्यक्ति अपने को दूसरों से बड़ा न समझे व जिसमें अपनी प्रशंसा और सम्मान की चाह न हो, वह मार्दव धर्म का द्योतक है। तत्त्वार्थसूत्र में इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है – 'चित्त में मृदुता और व्यवहार में भी नम्रवृत्ति का होना मार्दव गुण है। इसकी सिद्धि के लिए जाति, कुल, रूप ऐश्वर्य, विज्ञान (बुद्धि), श्रुत (शास्त्र), वीर्य (शि्क्त) के विषय में अपने को बड़ा या ऊँचा मानकर गर्वित न होना और इन वस्तुओं की विनश्वरता का विचार करके अभिमान के कांटे को निकाल फेंकना ही मार्दव धर्म है।[22]

आर्जव – भाव की विशुद्धि आर्जव कहलाता है जिसमें विचार, भाषण और व्यवहार की एकता का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आचारण में मन, वचन और कर्म की एकरूपता होना आर्जव धर्म का द्योतक है, परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए मन में भावों की निर्मलता और अभिप्राय का शुभ होना आवश्यक है।

शौच – साधारण शौच का अर्थ शुद्धता या सफाई से ग्रहण किया जाता है, लेकिन यहाँ शौच का अर्थ केवल बाहरी या शारीरिक शुद्धता से नहीं बल्कि आत्मिक शुद्धि से है। इतना ही नहीं बल्कि धर्म के साधनों तथा शरीर तक में भी आसक्ति न रखना शौच है।

सत्य – सत्पुरूषों के लिए हितकारी व यथार्थ वचन बोलना ही सत्य है। जो वास्तविक रूप में है उसे वैसा ही जानना, वैसा ही मानना, वैसा ही कहना और उसकी वैसा ही आचारण में लाना सत्य धर्म है।

संयम – मन, वचन और काय का नियमन करना संयम है। पाँच इन्द्रियों का निग्रह, पाँच अव्रतों का त्याग, चार कषायों का जप तथा मन, वचन और काय की विरति, ये सत्रह प्रकार के संयम है।

तप – तप जैन-साधना का प्राण है। तप को परिभाषित करते हुए पं0 सुखलाल संघवी ने कहा है – मलिन वृत्तियों को निर्मूल करने के निमित्त उपेक्षित शक्ति की साधना के लिए किया जानेवाला आत्मदमन तप है। इसे दूसरी भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है कि वासनाओं को क्षीण करने तथा समुचित आध्यात्मिक शक्ति की साधना के लिए शरीर, इन्द्रिय और मन को जिन-जिन उपायों से तपाया जाना है वे सभी तप कहे जाते हैं। आगम के प्रसिद्ध चूर्णिकार जिनदासगणी महत्तर ने तप की व्युत्पत्तिजन्य परिभाषा करते हुए कहा है – 'तप्यते अणेण पावं कम्ममिति तपो, अर्थात जिस साधना-आराधना से, उपासना से पापाकर्म तप्त हो जाते हैं उसे तप कहते हैं। तप के द्वारा ही आत्म की सुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं, दिव्य बल प्रकट होते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं, लब्धियाँ हैं, इतना ही नहीं केवलज्ञान और मोक्ष भी तप के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। 'प्रवचनसारोद्वार' के अनुसार – 'परिणाम तव्वसेणं इमाइंहुति लद्वीओ, अर्थात् जितनी भी लब्धियाँ हैं वे सभी तप के ही परिणाम है।[23] तप केवल भौतिक सिद्धि और समृद्धि का प्रदाता ही नहीं है, बल्कि वह अनन्त आध्यात्मिक समृद्धि का प्रदाता भी है।

त्याग – सामान्य रूप से त्याग का अर्थ 'छोड़ना' होता है। अप्राप्त भोगों की इच्छा नहीं करना और प्राप्त भोगों से विमुख होना त्याग है। नैतिक जीवन में त्याग की आवश्यकता है। बिना त्याग के नैतिकता का रहना सम्भव नहीं है। साधु जीवन और गृहस्थ जीवन दोनों के लिए त्याग धर्म आवश्यक बताया गया है। साधु जीवन में जो कुछ भी उपलब्ध है या नियमानुसार ग्राह्य है उसमें से कुछ को नित्य छोड़ते रहना या त्याग करते रहना जरूरी है। इसी प्रकार गृहस्थ को न केवल अपनी वासनाओं और भोगों की इच्छा का त्याग करना होता है, अपितु अपनी सम्पति एवं परिग्रह से भी दान के रूप में त्याग करते रहना आवश्यक बताया गया है।

आकिंचन्य – किसी भी वस्तु में समत्वबुद्धि न रखना आकिंचन्य है। समाज में जितने भी अनाचार – हिंसा, झूठ, चोरी आदि, होते हैं उसमें से अधिकतर का मूल कारण संगहवृत्ति होती है और इसी संग्रहवृत्ति से बचना अकिंचनता का मुख्य उद्देश्य है।

ब्रह्मचर्य – निज आत्मा में लीनता ब्रह्मचर्य है, परन्तु लौकिक जीवन में ब्रह्मचर्य से तात्पर्य कामभोग के त्याग से लिया जाता है। पं0 सुखलाल संघवी ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है – त्रुटियों से दूर रहने के लिए ज्ञानादि सद्गुणों का अभ्यास करना एवं गुरु ही अधीनता के सेवन के लिए गुरुकुल में बसना ब्रह्मचर्य है। यहाँ ब्रह्म का अर्थ गुरुकुल ग्रहण से है। गृहस्थ और उपासक दोनों के लिए ब्रह्मचर्य धर्म आवश्यक बताया गया है। दोनों को अपनी – अपनी मर्यादा के अनुकूल और निष्ठा से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस प्रकार जैन परम्परा में अध्यात्मिक शिक्षा का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची

1. तत्त्वार्थसूत्र – पं0 सुखलाल संघवी, 10/2
2. तत्त्वार्थसूत्र – सुखलाल संघवी – पृ0 10
3. सूत्रकृतांग – 1/1/2
4. आयारांग – 2/90
5. तत्त्वार्थसूत्र – 1/1
6. तत्त्वार्थसूत्र – 1/2

7. तत्त्वार्थाधिगम - 1/1/3
8. द्रव्यसंग्रह गाथा - 42
9. तत्त्वार्थसूत्र - पृ0 2
10. जैन धर्म में अहिंसा - पृ0 184
11. प्रश्न व्याकरण - पृ0 618
12. प्रश्न व्याकरण - 7/6
13. तत्त्वार्थसूत्र - 7/12
14. उत्तराध्ययन - 8/16
15. तत्त्वार्थ सूत्र - 7/6
16. दशवैकालिक - 8/38
17. आचारांग - 1/6/5/196
18. तत्त्वार्थसूत्र - 9/6
19. समवायांग - 10/6
20. तत्त्वार्थसूत्र - पृ0 208
21. आवश्यकसूत्र - क्षमापणा पाठ
22. तत्त्वार्थ सूत्र - पृ0 209
23. प्रवचनसारोद्धार - द्वार - 270

उच्च-माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया एवं शैक्षिक उपलब्धि पर ऑनलाइन शिक्षा का प्रभाव

तुलसीराम

पीएचडी शोधार्थी, शिक्षा संकाय, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

डॉ० चंद्रकांत शर्मा

शोध निर्देशक, प्राचार्य, अरावली टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, उदयपुर (राजस्थान)

सारांश

हम पारंपरिक रूप से गुरुकुल या कक्षा में जाते हैं और शिक्षक के सामने बैठकर उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। लेकिन इसमें अब शिक्षा के नवीनतम रूप,ऑनलाइन शिक्षाका दखल बढ़ गया है।हम अपने शिक्षक सेअब इन्टरनेट युक्त लैपटॉप या सेलफोन के माध्यम से मिलते हैं औरशिक्षा प्राप्त करते हैं।

वर्ष 1993 से ऑनलाइन शिक्षा को वैध शिक्षा माध्यम के रूप में भी स्वीकारकिया गया है। जिन्हें दूरस्थ शिक्षा कहा जाता है। इसमेंनिर्धारित पाठ्यक्रम को टै/डीवीडी और इन्टरनेट के माध्यम से पढाया जाता है। बड़ी- बड़ी सेवाओं; जैसे- सिविल सर्विस, इंजीनियरिंग और मेडिकल, कानून आदि की शिक्षा भी आज कई संस्थान ऑनलाइन उपलब्ध करवा रहे हैं।

ऑनलाइन माध्यम से विद्यार्थी इंटरनेट एवं इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जैसे-टीवी, कंप्यूटर, टेबलेट, लैपटॉप, रेडियो, स्मार्टफोन आदि के द्वारा घर बैठे ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। अब तो देश के अधिकांश लोग ऑनलाइन शिक्षा से परिचित हो चुके हैं।लेकिन यदि इसके दूसरे पहलू की तरफ ध्यान दें तो पता चलेगा कि; यह शिक्षा सभी को सीखने के समान अवसर प्रदान नहीं करती, कौशलों का प्रशिक्षण नहीं देती, गरीब-अमीर के बीच खाई पैदा करती है। शिक्षण एवं अध्ययन, ऐसी प्रक्रिया हैं जिनमें बहुत से कारक शामिल होते हैं। सीखने के अनुभवों में विस्तार करने हेतु सीखने वाला, जिस तरीके से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए नया ज्ञान और कौशल को समाहित करता है, वैसे ही ये सारे कारक आपस में संवाद की स्थिति में आते रहते हैं।

बीज शब्द: ऑनलाइन शिक्षा, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, दृष्टिकोण, ऑनलाइन प्लेटफार्म्स।

परिचय

वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा एक ऐसा सुनहरा विकल्प हैं; जो न केवल शिक्षा व्यवस्था कोगति दे सकता हैं, बल्कि अधिक आकर्षक तरीके से शिक्षक-छात्र के अनुभव और उपलब्धियों को भी बढा सकता है।

किसी शिक्षण संस्थान, कोचिंग सेंटर अथवा व्यक्तिगत ट्यूशन के दस गुना कम खर्च में, आसानी से घर बैठकर कभी भी ऑनलाइन कोर्स उपलब्ध हो जाते हैं।इनमें समय तथा धन की बचत के साथ ही शिक्षण संस्थान जाने में आने वाली ट्रेफिक, मौसम आदि की समस्याओं से भी निजात मिल जाएगी।

भारत में ऑनलाइन शिक्षा और कोर्स उपलब्ध कराने वाले प्रसिद्ध प्लेटफार्म बाईजूस, मेरिटनेशन, उत्कर्ष, ग्रेडअप आदि कुछ बड़े विख्यात नाम हैं। इनमे आप अपनी जरूरत के मुताबिक मुफ्त या शुल्क भुगतान वाले कोर्स चुन सकते हैं।

ऑनलाइन शिक्षण में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सरल, सुगम एवं बोधगम्य बनाने के लिए शिक्षक हर संभव प्रयास करते हैं। उपलब्ध बेहतर साधनों के माध्यम से शिक्षण को प्रभावशाली बना, अपनी बात आसानी से विद्यार्थियों तक पहुँचा कर उनको समयानुकूल नवीन एवं स्थाई ज्ञान प्रदान करना उनकी प्राथमिकता में शामिल है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि ऑनलाइन प्लेटफार्म्स, शिक्षण-अधिगम को प्रभावशाली बनाकर, उसके प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभा रहे हैं। ऑनलाइन माध्यम से डीप लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग, मशीन टू मशीन संचार तथा ई-शिक्षा आदि को बढ़ावा मिल रहा है।

भारत सरकार ने डिजिटल क्रांति लाने हेतु वर्ष 2015 में डिजिटल इंडिया मिशन की शुरुआत कर; अन्य क्षेत्रों के साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी अभिनव खोजों, गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों को बढ़ावा दिया है। इससे शिक्षक ऑनलाइन माध्यम (नोट्स, परिचर्चा, ब्लॉग, ई-शोध पत्र, ई-कक्षा, ई-बुक, ई-कंटेंट, कांफ्रेंसिंग एवं ऑडियो-वीडियो आदि) से अपने विचारों एवं स्तरीय नवीन विषय-वस्तु को विद्यार्थियों तक पहुँचा पा रहे हैं, तथा स्वयं भी ई-प्रशिक्षण प्राप्त करके शिक्षण-अधिगम के नए-नए तरीकों से परिचित हो रहे हैं। विभिन्न प्रकार के गेम्स एवं एप्लीकेशंस आदि के द्वारा सीखने से, बच्चों की बोध एवं परावर्ती क्षमता बढ़ रही है। चाहे-अनचाहे समाज का हर एक व्यक्ति ऑनलाइन शिक्षा और इसके लाभ से परिचित हो गया है। ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करने में स्काइप, व्हाट्सएप, यूट्यूब, फेसबुक, गूगल मीट, गूगल क्लास, जूम एवं माइक्रोसॉफ्ट टीम जैसे अनेकों प्लेटफार्मस् ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्ष 2018 में जहाँ 36.5 प्रतिशत बच्चों के पास मोबाइल था, वहीं वर्ष 2020 में यह प्रतिशत बढ़कर 61.8 प्रतिशत हो गया।

आज के बच्चे विभिन्न प्लेटफॉर्म के माध्यम से ऑनलाइन गेम, गाने, फिल्म, कहानियां, कविताएं और कार्टून आदि सीखते और खेलते रहते हैं। एक तरह से यह उनके जीवन का नियमित हिस्सा है। ऑनलाइन शिक्षा छात्रों को कई सीखने के अवसर प्रदान करती है। एलन (2014) इस संदर्भ में कहते हैं कि- "डिजिटल मीडिया बच्चों में सकारात्मक प्रेरणा का एक बहुत ही आसान स्रोत है।" भारत सरकार ने विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म लॉन्च किए हैं; जैसे दीक्षा पोर्टल, रीड अलॉन्ग ऐप, संपर्क बैठक ऐप, ई-पाठशाला, निष्ठा कार्यक्रम, स्वयंवर, स्वयं प्रभा, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी, स्पोकन ट्यूटोरियल, दूरदर्शन पर गंगा, वर्चुअल लैब, मोबाइल एप्लिकेशन और शिक्षा प्रयासों के लिए फ्री एंड ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर माता-पिता, शिक्षकों आदि तक पहुंचने के लिए बनाया गया है।

यद्यपि यह शिक्षा उन सभी उद्देश्यों को पूरा करने में सफल नहीं हो पाई है जो ऑफलाइन शिक्षा में प्राप्त हो रहे थे। ऑनलाइन शिक्षा सभी को समान सीखने के अवसर प्रदान नहीं करती है, कौशल का वांछित प्रशिक्षण प्रदान नहीं करती है, लिंग भेदभाव को बढ़ावा देती है और अमीर और गरीब के बीच एक अंतर भी पैदा करती है। जो छात्र ऑनलाइन शिक्षा लेते हैं, उन्हें ई-कक्षा में मुश्किल से 50 प्रतिशत उपस्थिति मिलती है। उन्हें विभिन्न प्रकार की बीमारियों जैसे आंख, सिर, पेट दर्द, हताशा, तनाव, अवसाद और अलगाव आदि से भी जूझना पड़ता है। इसके साथ ही बच्चे सामाजिक गतिविधियों से भी कट जाते हैं। बच्चों को ऑनलाइन पढ़ाई के दौरान चौट करने, गेम खेलने, मूवी देखने का एक तरह का अधिकार मिल गया है। इंटरनेट कनेक्टिविटी के लिए छात्र ई-कक्षा में शामिल होने, पेड़ों पर चढ़ने और पहाड़ की चोटी पर चढ़ने की कोशिश करते नजर आ रहे हैं। आर्थिक तंगी के कारण कई अभिभावकों ने अपने बच्चों के नाम निजी स्कूलों से कटवाए।

माता-पिता जो ऑनलाइन शिक्षा से संबंधित उपकरण, डेटा योजना आदि की व्यवस्था कर पाए, वह भी केवल एक या दो बच्चों तक ही सीमित रहे। जिन परिवारों में अधिक बच्चे हैं, वहां लड़कियां इन सुविधाओं से वंचित थीं। एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (ASAR-2019) में यह भी कहा गया है कि श्उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे सबसे अधिक आबादी वाले राज्यों

में भी बच्चों के पास सबसे कम स्मार्ट फोन थे।श केंद्रीय, नवोदय और अन्य स्कूलों के बच्चों, अभिभावकों, प्रधानाचार्यों और शिक्षकों पर ऑनलाइन शिक्षा पर एनसीईआरटी द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में यह पाया गया है कि 27 प्रतिशत बच्चों के पास न तो लैपटॉप हैं और न ही स्मार्ट फोन, 28 प्रतिशत अभिभावकों के पास ऑनलाइन कक्षाओं के लिए बिजली सबसे बड़ी बाधा थी और 17 प्रतिशत ने कक्षा के दौरान भाषा न समझ पाने की समस्या झेली।

जब सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अपेक्षाकृत मजबूत परिवारों के बहुत से बच्चों के लिए बुनियादी संसाधन उपलब्ध नहीं हैं, तो सरकारी विद्यालय के छात्रों और असहाय और दयनीय स्थिति, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अभिभावकों की स्थिति का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। देश में जहां सिर्फ 24 फीसदी घरों में ही इंटरनेट की सुविधा है, 11 फीसदी घरों में ही अपने कंप्यूटर हैं, 30 फीसदी लोगों के पास ही स्मार्टफोन है, 2 जून की रोटी के लिए मेहनत करने के बाद भी दैनिक मजदूरी नहीं मिल रही है, बच्चों को स्कूल जाने से पहले और बाद में अपने माता-पिता की मदद करनी है, वहां ऑनलाइन शिक्षा के बारे में बात करना एक तरह का पाखंड होगा।

एक जिज्ञासा महसूस की गई कि क्या ऑनलाइन शिक्षा सभी छात्रों को शामिल करने में प्रभावी थी? क्या यह शिक्षा वैकल्पिक शिक्षा के रूप में सफल रही? क्या यह शिक्षा छात्रों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही है? इन्हीं तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है। वर्तमान शोध से संबंधित साहित्य को देखने पर पता चलता है कि- मेहरा और ओमेडियन (2011) ने 76 प्रतिशत छात्रों में ई-लर्निंग के प्रति एक महत्वपूर्ण सकारात्मक दृष्टिकोण पाया, 82 प्रतिशत छात्रों ने इस शिक्षा को महत्वपूर्ण माना, जबकि 57 प्रतिशत छात्रों ने ई-लर्निंग अपनाने की इच्छा व्यक्त की।

मैकलॉघलिन और हॉलिंगवर्थ (2001), कॉनराड (2002), कौर (2004), चौपमैन (2005) आदि जैसे शोधकर्ताओं ने छात्रों के स्वास्थ्य, समायोजन क्षमता, उपलब्धि स्तर, समस्या समाधान और एक तुलनात्मक अध्ययन पर ई-लर्निंग के प्रभावों का अध्ययन किया है। साथ ही पारंपरिक और ऑनलाइन सीखने के बीच अध्ययन करने का प्रयास भी किया गया है।

ऑनलाइन शिक्षा की आवश्यकता

- ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से, छात्र सक्रिय होकर व्यक्तिगत रूप से अपने ज्ञान और दक्षताओं का निर्माण करता है। नतीजतन, वह खुद से सीखता है।
- ऑनलाइन शिक्षा में छात्र घर के अलावा कहीं से भी पढ़ाई कर सकते हैं। उदाहरण के लिए-छात्रावास, कॉलेज, साइबर कैफे आदि से। इससे आर्थिक रूप से अक्षम छात्र भी उपयोगी सामग्री का अध्ययन कर सकते हैं और शिक्षक-प्रशिक्षकों से संपर्क कर सकते हैं।
- ऑनलाइन शिक्षा से सप्ताह के सातों दिन- चौबीसों घंटे अध्ययन करना संभव हो जाता है, जिससे छात्र अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ाई कर सकते हैं।
- ऑनलाइन शिक्षा में, छात्र विषय वस्तु और विषय को वेब कॉन्फ्रेंसिंग में विषय विशेषज्ञ के माध्यम से या एक दूसरे के साथ बातचीत करके सीख सकते हैं। जिससे उनका पूर्व ज्ञान बढ़ता है।
- ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी दूर-दूर बैठे हुए भी, एक साथ-एक समूह में अध्ययन कर सकते हैं। जिससे उनका समाजीकरण भी होता है।

ऑनलाइन शिक्षा के फायदे

यहाँ कुछ बिन्दुओं के जरिये इस नवीन प्रणाली के फायदों को समझने का प्रयास करते हैं।

- ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली से छात्र घर बैठे, घर या विदेश में शिक्षा ग्रहण कर सकते है और अपनी डिग्री प्राप्त कर सकते है ।
- ऑनलाइन शिक्षा से आप किसी भी विषय मे या पाठ को समझ और उसकेबारे मे जान कर, अपने ज्ञान में बढ़ोतरी कर सकते है।
- कई छात्र जो कोचिंग सेंटर जाना चाहते है लेकिन दूर की वजह वे नहीं जा पाते है, वे ऑनलाइन क्लास से घर पर ही शिक्षा गृहण कर सकते है ।

- छात्र कोई भी समस्या आने बार शिक्षकों से समाधान ले सकते हैं, साथ हीकिसी भी वीडियो को बार-बार देख या रिकॉर्ड कर के अध्ययन कर सकते है ।

ऑनलाइन शिक्षा के हानियाँ

नीचे दिए गये बिन्दुओं की मदद से इस शिक्षण प्रणाली की हानियों के बारें में भी जान सकते हैं-

- शिक्षक और छात्र अधिकतर आठ घंटे ऑनलाइन टाइम बिताते हैं, जो उनकी मानसिक और शारीरिक स्थिति के लिए नुकसानदेह है।
- ऑनलाइन शिक्षा से सबसे बड़ा नुकसान यही है कि, माता-पिता चाहे अपनी आर्थिकस्थिति के विरुद्ध जाकर बच्चों को मोबाइल, लेपटॉप, कम्प्यूटर जैसी सुविधाउपलब्ध करा दें, लेकिन वे बच्चे की सही शिक्षा से अनजान ही रहते हैं।
- ऑनलाइन शिक्षा, शिक्षक और छात्रों के सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते।लेकिन अगर शिक्षा पारंपरिक हो तो, बच्चा उसी समय विषय सम्बंधित जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करसकता है।
- जब कोई छात्र स्कूल में पढाई में ध्यान नहीं लगा पाता, तो वह ऑनलाइन कैसे ध्यान केन्द्रित कर पायेगा।

अभिरूचि एक प्रकार की अर्जित अभिप्रेरणायें है, जो व्यक्ति के कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए अभिप्रेरित करती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक के अनुसार; व्यवहार को संचालित, निर्देशित, संगठित करने वाली शक्ति अभिप्रेरणा है। यहवह आन्तरिक शक्ति और बाह्य शक्ति है जो बालक-बालिका को अपने लक्ष्य के प्रति कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। अभिप्रेरणा का सही तरीके से प्रयोग करके सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को और भी अच्छे तरीकेसे सम्पादित किया जा सकता है। हम किसी भी कार्य को क्यों करते हैं? ये 'क्यों' शब्द का सम्बन्ध प्रेरणा से ही होताहै। अभिप्रेरित बालक-बालिका कार्य को शीघ्रता, सरलता, सहजता तथा सुगमता से सीखते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक बालक-बालिका जीवन के हर एक परिस्थितियों एवं वातावरण के संपर्क में आते हैं; जिसके कारण उसमें विभिन्न अनुभवों के प्रभाव में अलग-अलग प्रवृत्तियों, आदतों, अभिरूचियों एवं अभिप्रेरणाओं का विकास होता है। जब विद्यार्थी अभिप्रेरित हो किसी कार्य को करने लगते हैं, तो अपने उद्देश्यके प्रति गंभीरता से प्रयासरत होते है।वे अपने ही कुछ नियम आदर्श बना लेते हैं, एवं दिशा-निर्देशित होने के लिए मूल्य निर्धारित करते है। क्योंकि लक्ष्य तक पहुँचने में हमारे मूल्य अत्यन्त सहायक होते है।

निष्कर्ष

शिक्षा जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। शिक्षा हम किसी भी माध्यम के द्वाराग्रहण कर सकते है। शिक्षा मनुष्य को बौद्धिक रूप से तैयार करती है। वैसे हीआज के आधुनिक युग में शिक्षा प्राप्त करने का एक सरल तरीका है ऑनलाइन शिक्षा। आधुनिक समय में ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली एक वरदान की तरह है। जिसन`किसी कारण वश शिक्षा ग्रहण नहीं की वो ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली से नए आयामहसिल कर सकता है। प्रस्तुत शोध सुझाता है कि; ऑनलाइन शिक्षण के समय शिक्षकों द्वारा ऑडियो, वीडियो, ई-कंटेंट एवं व्याख्यान आदि में से किसी एक या दो ही रोचक-मनोरंजक तरीके से प्रस्तुत किए जाएँ।ऑनलाइन शिक्षा का समुचित उपयोग किया जाए तथा अभिभावक भी ऑनलाइन शिक्षण के समय बच्चों पर पैनी नजर रखें, उनसे वार्ता करें, मित्रवत व्यवहार करें, ताकि वह हमेशा डिजिटल गैजेट्स के सम्पर्क में न रहें और उनका स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहे।

कई मामलों में अभी ऑनलाइन शिक्षा में और सुधार की आवश्यकता हैं। इसक`उपरान्त भी दूर रहने वाले बच्चों के लिए यह शिक्षा का सबसे उत्कृष्ट माध्यम हैं।

सुझाव

- ऑनलाइन शिक्षण के समय अभिभावक बच्चों पर पैनी नजर रखें, उनसे वार्ता करें, मित्रवत व्यवहार करें। ताकि वह हमेशा डिजिटल गैजेट्स के सम्पर्क में न रहें और उनका स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहे।
- ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा के समय कला, नृत्य, गायन, वादन एवं अन्य कौशल आधारित कक्षाओं की निरन्तरता को बनाए रखा जाए। ताकि बच्चे अपनीकुंठा, दुश्चिंता, तनाव, अवसाद आदि को बाहर निकाल सकें और मनोरंजन के साथ कक्षा से जुड़े रहें।

- बच्चों को हमेशा ऑनलाइन शिक्षा में ही व्यस्त न रखा जाये। अभिभावक बच्चों से पेड़-पौधों की देखभाल, सिलाई-कढ़ाई, घर की सजावट, खाने की नई-नई डिशिस बनाने, क्राफ्ट, इंडोर गेम्स आदि कार्यों को स्वयं करे तथा बच्चों से भी करवाएँ। ताकि उनमें सौन्दर्यात्मक, कलात्मक क्षमता तथा कर्म के प्रति प्रतिबद्धता जैसे मूल्यों का रोपण हो।
- बच्चों से अंत:क्रिया एवं आत्मीयता बढ़ाने के लिये जरूरी है। शिक्षक कक्षा के समय बच्चों को उनके नाम से पुकारे, व्यक्तिगत कॉल करें, कहानी, कविता सुनाए, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को ध्यान से सुने तथा निराकरण हेतु उन्हे प्रेरित भी करे।
- ऑनलाइन शिक्षा को वैकल्पिक शिक्षा के रूप में प्रयोग किया जाये। समानान्तर या मिश्रित (ब्लेंडेड) शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये। तकनीकी जानकारी आज की जरुरत है, इससे किसी को भी वंचित न रखा जाए। यह शिक्षा सीखने के नवीन अवसर प्रदान करती है।
- समाज के सक्षम लोग, विद्यालय प्रबन्धक, समाजसेवी एवं निजी एप्लीकेशन/ एप्स निर्माता/ संचालक भी गरीब विद्यार्थियों को ध्यान से रखकर ऑनलाइन शिक्षा हेतु नि:शुल्क आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करें। ताकि वह भी मुख्यधारा से जुड़ सकें।
- विपरीत परिस्थितियों के अलावा भौतिक कक्षाओं को बढ़ावा दिया जाए, ताकि विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों का विकास हो।
- सरकार द्वारा विद्यार्थियों हेतु टेबलेट, लैपटॉप, स्मार्टफोन आदि की व्यवस्था की जाए। ऑनलाइन शिक्षण हेतु शिक्षकों, विद्यार्थियों को प्रशिक्षण भी दिया जाए।

ऑनलाइन शिक्षण में ऑडियो, वीडियो, ई-कंटेंट एवं व्याख्यान आदि में से किसी एक या दो का ही रोचक-मनोरंजक तरीके से प्रयोग किया जाए। चर्चा, सहगामी अधिगम (Collaborative Learning) को बढ़ावा दिया जाए। कभी-कभी कक्षा के स्थान पर ई-अभ्यास को बढ़ावा दिया जाए।

संदर्भ

1. अनिल कुमार तेवतिया: 'दिल्ली के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों और शिक्षकों पर लॉकडाउन के प्रभाव का अध्ययन', भारतीय आधुनिक शिक्षा (अंक-1), जुलाई, 2020, पृ. 23-29
2. ऑनलाइन क्लास कैसे जब 27 प्रतिशत बच्चों के पास फोन और लैपटॉप नहीं, अमर उजाला (बरेली संस्करण), 21 अगस्त, 2020 पृ. 14
3. लीला चंद्रन वाडिया : 'कोविड-19 के दौर में ऑनलाइन शिक्षा की जरूरत और चुनौतियाँ', 13 जुलाई, 2020 2020 https://www.orfonline.org/hindi/research/the-need-and-challenges-of-online-education-in-covid-19-era/
4. वसीम अहमद एवं अनिल कुमार : 'कोरोना महामारी में ऑनलाइन शिक्षा की भूमिका,चुनौतियाँ और भविष्य एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन', भारतीय आधुनिक शिक्षा (अंक-1), जुलाई, 2020, पृ. 40-50
5. शिक्षा की वार्षिक स्थिति रिपोर्ट (एनुअल स्टेटस ऑफ एजूकेशनल रिपोर्ट-ASAR) : 'शिक्षा पर असर', संम्पादकीय, अमर उजाला (बरेली संस्करण), 19 नवम्बर, 2021, पृ. 16
6. सुभाष कुशवाहा: 'निजी स्कूलों से गायब बच्चों का भविष्य', अमर उजाला (बरेली संस्करण), 08 जुलाई, 2021 पृ. 12
7. एलन, के०ए०, रायन, टी० एवं अन्य (2014) सोशल मीडिया यूज एण्ड सोशल कनेक्टेडनेस इन एडोलेसेंटस :द पॉजिटिव्ज एण्ड द पोटेंशियल पिटफाल्स, दआस्ट्रेलियन एजूकेशनल एण्ड डेपलपमेंटल साइकोलॉजिस्ट, 31(1), 18-31
8. अरोड़ा, ए०के० एंड श्रीनिवास, आर० (2020) इम्पैक्ट ऑफ पेंडमिक कोविड-19 ऑन द टीचिंग-लर्निंग प्रोसेस : ए स्टडी ऑफ हायर एजुकेशन टीचर्स, प्रबंधन : इंडियन जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, 13(4) D0I:10.17010/pijom/2020/v13i4/151825 http://indianjournalofmanagement.com/index.php/pijom/article/view/151825
9. चौपमैन, ई०ए०(2005) स्टूडेंट अचीवमेंट परसिस्टेंस एंड परसेप्शंस इन ऑनलाइन कोलाबोरेटिव क्लासेज, डिसरटेशन एब्सट्रैक्ट इंटरनेशनल, 66(2), 469

10. कोनराड, डी०एल०ई०(2002) कम्युनिटी, सोशल प्रेसेंस एंड इंगेजमेंट इन ऑनलाइन लर्निंग (डॉक्टोरल डिजरटेसन), वही, 64(7), 2455
11. कौर,ए०(2004) ए स्टडी ऑफ सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ नॉलेज एंड इट्स रिलेशनशिप टू अकादमिक यूसिंग असिंक्रोनस कांफ्रेंसिंग टूल, वही, 65(6), 76
12. मैक्लॉघलिन,सी० एंड होलिंगवर्थ,आर०डब्लू०(2001) डेवलपिंग साइंस स्टूडेंट्स मेटाकोगनिटिव प्रॉब्लम सोल्विंग स्किल्स ऑनलाइन, ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ एजुकेशन टेक्नोलॉजी, 17(1), 50-63
13. मेहरा,वी० एंड ओमिडियन,एफ०(2011) एक्सामिनिंग स्टूडेंट्स एटीटयूड टुवर्ड्स ई-लर्निंग: ए केस ऑफ इंडिया, मलेशियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 11(2),13-18
14. श्रीवास्तव, एस० एंड दवे, ए० सी०(2021) कोविड-19 सिनेरियो ऑफ ऑनलाइन एजुकेशन: ए स्टडी बेस्ड ऑन एक्सेप्टेंस लेवल ऑफ ऑनलाइन लर्निंग अमंग स्टूडेंट्स ऑफ गुजरात ड्यूरिंग लॉक-डाउन, इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 3(2), 40-56
15. विजयलक्ष्मी, वाई., दास,जे० एवं अन्य (2020), असेसमेंट ऑफ ई-लर्निंग रेडीनेस ऑफ अकादमिक स्टाफ एंड स्टूडेंट्स ऑफ हायर एजुकेशन इंस्टिट्यूट इन गुजरात, इंडियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 2(1), 31-45

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय रूढ़-मान्यताओं की चाक में पिसती स्त्री

शिल्पी यादव

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़

सारांशिका:- जहाँ तक उपन्यास में नारी का प्रश्न है तो यह स्वाभाविक है कि उसका चित्रण हो। उपन्यास में स्त्री-जीवन का विविध चित्रण दिखलाई पड़ता है। समय एवं परिवेश में बदलाव के साथ-साथ नारी के चित्रित स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। अधिकतर उसे पुरुष के मनोरंजन का साधन तथा उपभोग के रूप में ही देखा गया।

शब्द कोश:- उपन्यास, यथार्थ, चाक, सामाजिक, नारी।

हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास ही यथार्थ के धरातल पर हुआ है। केवल भावात्मकता से संयुक्त उपन्यास हिन्दी में न के बराबर है। "हिन्दी साहित्य के उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले-पहल प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है या हिन्दी उपन्यासों का वास्तविक विकास प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए। जब कुछ लोगों द्वारा यह बात कही जाती है तो उसके पीछे यही सत्य निहित होता है कि हिन्दी में उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को सही रूप में पहले-पहल प्रेमचन्द ने ही पहचाना। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में विषय और उद्देश्यों की दृष्टि से कुछ वैविध्य भले रहा हो लेकिन वे कहीं-न-कहीं एक हैं और वे सब-के-सब उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में असमर्थ हैं।"[1] अनेक विद्वान लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' (1882) को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहला मौलिक उपन्यास माना। मधुरेश जी कहते हैं "परीक्षा गुरु का महत्त्व एक ओर यदि बहुत निजी और वास्तविक लगने वाले घटना प्रसंगों के बीच कथा के विकास की दृष्टि से है तो दूसरी ओर मानवीय व्यवहार के वैविध्य और विस्तार में भी है। अनेक जातियों, वर्गो और धर्मो के पात्र इसमें हैं। वकील, व्यापारी, हाकिम, दलाल, वेश्यायें, ठेकेदार और संपादक आदि विभिन्न पेशे और धंधों के लोगों से बसी एक यथार्थ और वास्तविक दुनिया है।"[2] इसी बात को विस्तार देते हुए रामदरश मिश्र जी कहते हैं "परीक्षा गुरु हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ सामाजिक यथार्थ की पहचान से हुआ और सामाजिक यथार्थ की पहचान की यह यात्रा प्रेमचन्द, प्रसाद, यशपाल आदि से होती हुई आज तक पहुँची है तथा विविध आयाम धारण करने में समर्थ हुई है।"[3] डॉ0 विजय शंकर मल्ल परीक्षा गुरु के महत्त्व पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं "परीक्षा गुरु अपने समकालीन मध्यवर्गीय समाज और देश-दशा का विस्तृत परिचय देता है। एक नए मध्यवर्गीय व्यापारी की स्थिति का चित्रण करने वाले इस उपन्यास में इस वर्ग की पुरानी और नई पीढ़ी का वैषम्य सांकेतिक ढंग से अच्छे रूप में दिखलाया गया है।"[4] सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की जिस परम्परा की शुरूआत इस उपन्यास से हुई, वह निरन्तर गतिमान होती रही। समाज के भीतर से ही मनुष्य के जीवनानुभव का विस्तार होता है और इसी से उसके अनुभव में प्रौढ़ता भी आती है।

साहित्य और मनुष्य का जीवन एक-दूसरे से अंतर्सबंधित है। जैसे मछली और पानी। दोनों को एक-दूसरे से अलग करना मुश्किल है। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं है, व्यक्ति का जीवन समकालीन से प्रभावित होता है। अत: युगीन प्रभाव साहित्य में अवश्यसम्भावी है। देश-काल का प्रतिबिम्ब अपने-अपने साहित्य में परिलक्षित होता है।

नारी जीवन मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण है। मनुष्य जीवन का चित्रण करने वाला साहित्य इसकी अपेक्षा नहीं कर सकता। अत: हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य में नारी-जीवन

का चित्रण दिखाई पड़ता है। नारी और पुरुष परस्पर पूरक हैं। इनके अटूट बंधन से ही सृष्टि की श्रृंखला चली आ रही है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार "पुरुष विष्णु है, स्त्री लक्ष्मी। पुरुष विचार है, स्त्री भाषा। पुरुष धर्म है, स्त्री बुद्धि। पुरुष तर्क है, स्त्री रचना। पुरुष धैर्य है, स्त्री शांति। पुरुष हठ है, स्त्री इच्छा। पुरुष दया है, स्त्री दान। पुरुष मंत्र है, स्त्री उदाहरण। पुरुष अग्नि है, स्त्री ईंधन। पुरुष सूर्य है, स्त्री आभा। पुरुष विस्तार है, स्त्री सीमा। पुरुष समुद्र है, स्त्री किनारा। पुरुष धनी है, स्त्री धन। पुरुष युद्ध है, स्त्री शक्ति। पुरुष वृक्ष है, स्त्री फल। पुरुष संगीत है, स्त्री स्वर। पुरुष न्याय है, स्त्री सत्य। पुरुष सागर है, स्त्री नदी। पुरुष स्तम्भ है, स्त्री पताका। पुरुष शक्ति है, स्त्री सौन्दर्य। पुरुष आत्मा है, स्त्री शरीर।"[5] इस प्रकार प्राचीन काल से ही नारी के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। अपनी विभिन्न भूमिकाओं से स्त्री पुरुष के जीवन को सुन्दर और सुसम्पन्न बनाती है। स्त्री ही परिवार की संकल्पना को साकार करती है। वह स्नेहपूर्ण गृहस्थी का आधार-बिन्दु है।

वैदिक साहित्य में इस तरह प्राचीन काल से ही नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। भारतीय दर्शन में नारी को प्रकृति रूपा माना गया है। पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। नारी केवल जन्मदात्री नहीं है अपितु प्रेरणादात्री भी है। उसी प्रेरणा पुरुष को महान बनाने में समर्थ है। नारी का स्थान पुरुष के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डा0 रेखा कुलकर्णी जी अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहती है, "नारी के बिना पुरुष का जीवन पंगु है। नारी ही पुरुष के जीवन में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की स्थापना करती है। 'कन्या' होकर वह मानव के 'सत्यम्' को, 'पत्नी' बनकर उसके 'सुन्दरम्' को तथा 'माता' बनकर उसके 'शिवम्' को एक रूप प्रदान करती है।"[6]

युग बदला धीरे-धीरे नारी के सम्मान में भी बदलाव होने लगा। अब समाज में उसके प्रति आदर व सम्मान का वह भाव न रहा, जो पहले था। इसमें क्रमशः कमी आने लगी। मध्यकाल में उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों ने उसकी स्वतंत्रता को छीन लिया। उसकी सभी जिम्मेदारियाँ पुरुष के कंधो पर आ गई। स्वयं मनुस्मृति के अनुसार -

"पिता रक्षति कौमार्ये, भ्राता रक्षित यौवने।
स्थविरे रक्षन्ति पुत्राः न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।"[7]

समय बदला, परिवेश भी। देश में अंग्रेजों का आगमन हुआ, परिणामस्वरूप सामाजिक-राजनैतिक वातावरण में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से नारी चेतना जागृत होने लगी। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, एनी बेसेन्ट, महात्मा ज्योतिबाराव फुले, महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्र नेताओं और समाजसुधारकों ने नारी सुधार का नया मार्ग प्रशस्त किया। खोआ हुआ परम्परागत गौरव और सम्मान अब उसे प्राप्त होने लगा। हिन्दी साहित्य के मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र कुमार आदि जैसे साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं में नारी स्वतंत्रता की वकालत किया।

जहाँ तक उपन्यास में नारी का प्रश्न है तो उसका चित्रण होना स्वाभाविक है। उपन्यास में नारी के विविध जीवन का चित्रण दिखलाई पड़ता है। समय एवं परिवेश में परिवर्तन के साथ-साथ नारी के चित्रित स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। "हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल के उपन्यासों पर रीतिकाल की श्रृंगार परम्परा तथा फारसी परिपाटी का काफी प्रभाव परिलक्षित होता है। यह प्रभाव नारी-जीवन के चित्रण में भी दिखाई देता है। इस काल में नारी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। पुरुषों के मनोरंजन का साधन तथा उपभोग्या दासी के रूप में ही उसे देखा गया था। नारी जीवन सम्बन्धी विविध समस्याओं का बाजार गर्म था। इन समस्याओं को जैसे कि दहेज प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, पर्दा, अनमेल विवाह, बहु-विवाह, विधवा जीवन सुलझाने की अपेक्षा परम्परागत रूप में इनका पालन करने में ही समाज सार्थकता मानता था। समाज का प्रतिबिम्ब होने वाले उपन्यास में भी हमें इसी प्रकार के जीवन का चित्रण मिलता है। विविध समस्याओं से ग्रस्त, आत्मसम्मान रहित, अशिक्षित नारी के ही अधिकतर चित्र इन उपन्यासों में चित्रित किए गए हैं।"[8]

प्रेमचन्द युग में 'अबला नारी' 'सबला' बन गई, दासी से अब सहधर्मचारिणी थी अब। उसे पुरुष के बराबर अधिकार मिल गए थे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने नारी को अपने अस्तित्व का बोध कराया। विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश कर नारी ने अपने अस्तित्व को स्थापित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अपना परम्परागत गौरव और सम्मान पुनः प्राप्त होने लगा।

प्रेमचन्द पूर्व काल के हिन्दी उपन्यासों का समय सन् 1882-1918 ई0 तक माना जाता है। यह हिन्दी उपन्यास का आरम्भिक काल है। "प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासों की सबसे प्रमुख और सामान्य विशेषता है, उनका घटना प्रधान होना। यानी ये उपन्यास घटना-चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरंजन करना चाहते हैं या कोई उपदेश देना चाहते हैं।...... इस तरह प्रेमचन्द-पूर्व युग में तीन प्रकार के उपन्यास दिखाई पड़ते है:

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास:

तिलस्मी ऐयारी: (लेखक - देवकीनन्दन खत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, देवी प्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरेकृष्ण जौहर आदि)

जासूसी: (लेखक - गोपाल राम गहमरी, शिवनारायण द्विवेदी, शेर सिंह, रूद्रदत्त शर्मा, जयराम दास गुप्त आदि)

उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास: (लेखक - श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण, राधाचरण गोस्वामी, देवी प्रसाद शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, लज्जा राम मेहता आदि)

ऐतिहासिक उपन्यास: (लेखक - किशोरी लाल गोस्वामी, बलदेश प्रसाद मिश्र, कृष्ण प्रकाश सिंह, अखौरी ब्रजनन्दन सहाय, मिश्रबन्धु आदि)"[9]

इन सबके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत "भाग्यवती" (1877) उपन्यास नारी-चेतना और नारी-शिक्षा से सम्बद्ध है। "भाग्यवती आज की सुशिक्षित नारियों की तरह तो सुशिक्षित नहीं है, परन्तु उस युग में नारी जितना पढ़ सकती थी, उतनी शिक्षा उसकी थी। वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती है।"[10] इस युग की नारी के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 रेखा कुलकर्णी जी कहती है, "इस काल में नारी का सामाजिक जीवन अत्यन्त उपेक्षित था। पुरुषों के मन बदलाव का वह खिलौना थी, जो काम होने पर फेंक दिया जाता है। नारी की अवस्था इस खिलौने की तरह थी। उसके सुख-दुःखों से किसी को भी सहानुभूति नहीं थी। अनेक सामाजिक कुप्रथानाओं का बंधन उस पर था जिसके कारण उसका जीवन अधिकाधिक दुःखी बन गया था। परन्तु इन समस्याओं को सुलझाकर नष्ट करने का प्रयत्न तत्कालीन उपन्यासकारों ने नहीं किया। नारी का समाज में स्वतन्त्र अस्तित्व था ही नहीं। समाज जीवन के अभिन्न अंग के रूप में उसे स्वीकार नहीं किया गया था।"[11]

इस युग में स्त्री-शिक्षा का विरोध था, इसका मूल कारण पुरुष वर्चस्व था। उनका मानना था कि शिक्षा प्राप्तकर लड़कियाँ पुरुषों से अधिकारों का दावा करने लगेंगीं। इस युग में समाज में बाल-विवाह की मान्यता थी। जिस उम्र में लड़की विवाह का मतलब नहीं समझती थी, उस उम्र में उसका विवाह कर दिया जाता था वो भी ऐसे पुरुष से जो उससे उम्र में दो से ढ़ाई-तीन गुना बड़ा होता था। किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'त्रिवेणी' (1888) उपन्यास में ऐसे ही विवाह का उल्लेख है। 'वामा-शिक्षक' में भी ऐसे ही विवाह का उल्लेख है। अनमेल विवाह का प्रचलन था। विधवा विवाह की स्वतंत्रता न थी किन्तु पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसकी विधवा को सादा, पवित्र, आदर्श और कई तरह के प्रतिबन्धों से युक्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उसे वैधव्य के कठोर व्रत का पालन करना पड़ता था। युगीन उपन्यासकारों ने ऐसी विधवाओं की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है जो कठोर वैधव्य व्रत का पालन करती हैं। विधवा विवाह के पक्ष में वे बिल्कुल न रहे। विधवा के आदर्श रूप का वर्णन किया गया। ''सुशीला वास्तव में सुशीला निकली। उसने घोरतर कष्ट सहने पर भी संसार को दिखा दिया कि हिन्दू नारियाँ विधना होने पर अपने धर्म का निर्वाह किस तरह करती हैं। .... सुशीला का चरित्र आज-कल की विधवाओं के लिए नकल करने का नमूना है। जो विधवा सुशीला के चरित्र के अनुसार चलेगी, वह कभी दुःख न पावेगी, सदा ही उसकी कीर्ति होगी, ईश्वर उससे प्रसन्न होगा और अंत में उसका विधवापन से सदा के लिए छुटकारा होकर परलोक में अपने पति को पावेगी और फिर कभी उससे वियोग न होगा।"[12]

प्रेमचन्द से पूर्व का साहित्य जीवन पिछड़ेपन का शिकार था। अशिक्षा ने अनेक सामाजिक कुप्रथाओं को जन्म दिया। ये सामाजिक कुप्रथायें सामाजिक प्रगति में बाधक बनती रहीं। जाति-पाँति, छुआछूत के कड़े बंधनों ने सामाजिक समरसता के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया था। ऐसी स्थिति में जब लोग कई तरह की रूढ़ मान्यताओं से ग्रसित थे तो नारी स्वतंत्रता या उसकी दशा में आमूल-चूल परिवर्तन की बात बेमानी है। इस युग में नारी की स्वतंत्र सत्त को स्वीकृति नहीं मिली। वह पुरुष के अधीन ही रही। आर्थिक रूप से वह पुरुष पर निर्भर ही। अथाह मजबूरी में ही अर्थोपार्जन का कार्य कर सकी। ऐसा वही नारी कर सकी जो विवश थी। स्त्री से यह बिल्कुल अपेक्षा नहीं की जाती थी कि वह घर की चहारदीवारी को लाँघकर जीविकोपार्जन करें।

प्रेमचन्द पूर्व युग सांस्कृतिक पुनरुत्थान को युग है। ऐसे में समाज में राजनीति का विशेष प्रचलन नहीं है, उथल-पुथल नहीं, तो नारी का उससे दूर रहना स्वाभाविक ही है। ऐस में नारी के राजनैतिक पक्ष का वर्णन या चित्रण नहीं हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. रामदरश मिश्रः हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा, पृ0 15
2. मधुरेशः हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ0 14।
3. रामदरश मिश्रः हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा, पृ0 23
4. मधुरेशः हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ0 14।
5. डॉ0 रेखा कुलकर्णीः हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0 38
6. वही, पृ0 39
7. वही, पृ0 40
8. वही, पृ0 41-42
9. रामदरश मिश्रः हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा, पृ0 16, 18, 20
10. डॉ0 मो0 अजहर ढेरीवालाः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण, पृ0 26
11. डॉ0 रेखा कुलकर्णीः हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0 58
12. वही, पृ0 61-62

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में शासन प्रणाली का स्वरूप

डॉ० गौरव कुमार

प्रवक्ता संस्कृत, झम्मन लाल पी0जी0 कालेज, हसनपुर, अमरोहा (उ0प्र0)

प्राचीन काल से लेकर आज तक मनुष्य को कही न कही एक ऐसे मनुष्य की आवश्यकता प्रतीत हुई है जो सभी जन समुदाय का उचित-अनुचित व्यवहार देखकर सही और गलत का निर्णय ले सके तथा सभी का मार्गदर्शन कर सके।

मनु ने शासन उद्‌भावना के सम्बन्ध में दैवीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।[1] रामायण में भी राज्य या शासन की उत्पत्ति के विषय में दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त के ही संकेत मिलतें हैं।[2] ब्रह्मा की छींक से उत्पन्न हुए क्षुप को सभी लोकपालों की शक्तियों से युक्त कर प्रथम राजा के रूप में पृथ्वी पर भेजा।[3]

महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म ने दो सिद्धान्तों का संकेतिक रूप से वर्णन किया -

(1) दैवी सिद्धान्त[4] (2) अनुबन्धन का सिद्धान्त[5] यजुर्वेद के अनुसार राजा का राज्याभिषेक सोम, अग्नि, इन्द्र और सूर्य के तेज से युक्त का कर दिया जाता था।[6] यजुर्वेद में राजा को "दिवःसुनुः' अर्थात धुलोक का पुत्र कहा गया है।[7] अथर्ववेद में राजा को इन्द्र का अंश, सोम का अंश, वरूण का अंश, तथा सविता का अंश बताया गया है।[8] सभी देवता कोई न कोई विशिष्ट गुण रखते थे इसलिए राजा के चरित्र में सभी देवों के गुणों का सन्निवेश किया गया जिससे राजा सही रूप से शासन चला सके।

राजा एवं उसके कर्तव्य- कौटिल्य अर्थशास्त्र में शासन के स्वरूप के विषय में दैवी-उत्पत्ति सिद्धान्त तो दिखाई नही देता किन्तु अनुबन्धन सिद्धान्त के संकेत मिलते हैं। राजा के चरित्रिक गुणों के विषय में कौटिल्य ने बताया- राजा को इन्द्रियजीत, सत्कुलोत्पन्न, बुद्धिमान्, बलवान्, धार्मिक, सत्यवादी, तत्ववक्ता, आदर्शवान्, साहसी, अहिंसावादी, शीघ्रकार्य करने वाला, लोकप्रिय, बुद्धिमान्, अमात्यों से युक्त, दृढनिश्चयी, निरन्तर ज्ञानोपार्जन में लगा होना चाहिए।[9]

कौटिल्य ने कहा -

विद्याविनीतो राजा ही प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्‌क्ते सर्वभूहिते रतः ।।[10]

राजा को व्यवस्थित ढ़ंग से राज्य संचालन कें लिए राज कार्यो को सही समयानुसार बाँट लेना चाहिए। कौटिल्य ने राजा के दिन और रात में किये जाने वाले कार्यो को आठ-आठ भागों में विभक्त किया[11] तथा राजा को समयानुकूल भी अपने कार्यो का विभाजन कर लेना चाहिए।[12]

कौटिल्य ने राजा के नैमित्ति कर्तव्यों को बताते हुए कहा-कि उद्योग करना,यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु तथा मित्रों के साथ उनके गुण-दोष के आधार पर समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना।[13]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में प्रजा को सर्वोपरि माना है राजा को प्रजा के हितकारी कार्यो को करना चाहिए।[14] अतः राजा उचित-रीति से राज्यकार्यो को उद्योगशील होकर करता रहे। उद्योग को ही अर्थ का मूल कहा गया है-

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपयर्य।।[15]

मन्त्रिपरिषद् एवं उसके कर्तव्यः- किसी भी राष्ट्र की रक्षा व उन्नति उसके राजा एवं मंत्रियों पर निर्भर करती है राजा अपनी प्रजा की सुख - समृद्धि के लिए अमात्यों से विचार - विमर्श करता था। जिन लोकतांत्रिक संस्थानों में बठैकर मत्रियों आदि से विचार विमर्श किये जाते थे उन्हें सभा और समिति कहा जाता था। ऋग्वेद से पता चलता है कि "राष्ट्र संगमनी" प्रजा द्वारा बनाई गई प्रजा के प्रतिनिधियों की सभा होती थी।[16]

समिति का वर्णन ऋग्वेद मे भी प्राप्त होता है।[17] अथर्ववेद में 'सभा' और सीमित' को आदर्श कहा गया है जिसका सभासद यथार्थ व न्याय को कहने वाला हो-

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।

ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः।।[18]

सभा तथा समिति का आपस में ताल-मेल जरूरी था जिससे सभी सभासद एक साथ मिल सके तथा उनसे सही ज्ञान प्राप्त किया जा सके ।19सभा तथा समिति ऐसी संस्थाए थी जिनमें राष्ट्र के हित कें विषय में विचार- विमर्श किया जाता था।20 सभा तथा समिति का कार्य धर्म या नियम बनाना था।[21]वैदिक युग में राजा को परामर्श देने के लिए परामर्श दाता मण्डल होता था, जिन्हे 'रत्निन्' कहकर पुकारा जाता था।[22] अथर्ववेद में पाँच राजकर्ता प्राप्त होते है:- 1 रथकार, 2 कर्मार (शिल्पी), 3 सूत, 4 ग्रामणी 5 राजगण'।[23] तैत्तिरीय ब्राह्मण में 12 प्रकार के अमात्य बताये गये।[24] वाल्मीकि रामायण में दशरथ के आठ अमात्यों -धृष्टि, जयंत विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र का उल्लेख मिलता है।[25] मनु ने भी मंत्रीमण्डल में सात-आठ मंत्री रखने का सुझाव दिया-

सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ।।[26]

मनु ने अमात्य के जगह सचिव शब्द कर प्रयोग किया। वे सचिव स्वराज्य या स्वदेश में उत्पन्न, शास्त्रविद, शूरवीर, जिनके लक्ष्य और विचार निष्फल न हो जो कुलीन तथा जो सुपरीक्षित हो। अन्य आवश्यकतानुसार अमात्य नियुक्त करने की सलाह भी दी जो पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, सुनिश्चित, बुद्धि तथा पदार्थों के संग्रह करने में अति चतुर तथा सुपरीक्षित हो।[27]

कौटिल्य ने सभा तथा समिति के लिए 'मन्त्रिपरिषद्' शब्द का प्रयोग किया।[28] किन्तु मंत्रियों या अमात्यों की संख्या के विषय मे मौन हैं। उन्होनें कहा- ''यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः"[29] अर्थात् कार्य करने वाले पुरूषों के सामर्थ्यानुसार ही उनकी संख्या निश्चित हो।"

आचार्य भारद्वाज का मत है कि राजा को अपने सहपाठियों को अमात्य नियुक्त करना चाहिए क्योंकि वह उनसे सुपरिचित होता है और वह उनकी कार्य क्षमता को भी जान चुका होता है ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं।[30] जबकि आचार्य विशालाक्ष उनके मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि एक साथ उठने, बैठनें, खेलने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिस्कार कर सकते है। अतः गुप्तकार्यो में राजा का साथ देने वाले लोगों को अमात्य बनाना चाहिए।[31]

इन्हीं मतो को आगे ले जाते हुए आचार्य कौटिल्य का मत है कि किसी भी पुरूष के सामर्थ्य की स्थिति उनके कार्य की सफलता पर निर्भर करती है और उनकी यह कार्यक्षमता उनकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही जाँची जा सकती है- इसलिए राजा सहपाठीयों की भी अवहेलना न करे तथा वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।[32] अतः मंत्रियों और अमात्यों के अलग अलग पद थे।[33]

कौटिल्य के मंत्रिपरिषद में ऋत्विक, आचार्य, मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, पटरानी, आयुधाध्यक्ष, समाहर्ता, भांडागाराध्यक्ष, व्यापार का अध्यक्ष, तथा कृषि-अध्यक्ष आदि है।[34] जिसमें मंत्री पुरोहित,सेनापति और युवराज ये चारों मंत्रीपरिषद् में मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त द्वारपाल, पौर, अन्तपुर रक्षक, राष्ट्रपाल और अन्तःपाल ये भी मंत्री परिषद् के सदस्य थे।[35]

मंत्रियों की योग्यता- स्वदेशोत्पन्न, कुलीन, अवगुणशून्य निपुण सवार, ललित कलाओं के ज्ञाता, अर्थशास्त्र का विद्वान्, बुद्धिमान् स्मरणशक्ति सम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ, प्रतिवाद, तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ़, स्वामिभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान्, निरभिमानी स्थिरप्रकृति, प्रियदर्शी, और द्वेषवृत्तिरहित पुरूष प्रधानमंत्री पद के योग्य है। इनसे एक-चौथाई या आँधी योग्यताएँ हो तो उन्हें मध्यम या निकृष्ट मंत्री बनाना चाहिए। मंत्री नियुक्त करने से पूर्व अन्य बहुत सी जानकारी भी उनके विषय कर लेनी चाहिए।[36] राजा को प्रमाणिक पुरूषों द्वारा मंत्रियों को नियुक्त करने से पूर्व उनके निवास स्थान, आर्थिक स्थिति, उनकी योग्यता, शास्त्रों का ज्ञान, विभिन्न कार्यो में नियुक्त कर उनकी बुद्धि, स्मृति तथा चालाकी का ज्ञान, अनेक सभाओं में व्याख्यानो के माध्यम से उनकी वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिभा का ज्ञान आपत्तियों-विपत्तियों मे उनके साहस व

उत्साह, प्रभाव, तथा सहिष्णुत अर्थात् सहनशीलता का ज्ञान, व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता एवं स्वामी या राजा के प्रति दृढ़स्वामिभक्ति का ज्ञान, आस पास के लोगों से उसके शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिरवृत्ति की जानकारी करनी चाहिए तथा मीठे बोलने का स्वभाव तथा द्वेषरहित स्वभाव की परीक्षा राजा को स्वयं करनी चाहिए।[37]

कौटिल्य ने मंत्रीपरिषद् में कार्य करने वाले जनों को अनेक विभागों का अध्यक्ष बना दिया था और उनकी कार्य योजना भी निर्धारित कर दी

कोषाध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- कोषाध्यक्ष को कोषगृह, पण्यगृह (राजकीय विक्रेय वस्तुओं का स्थान), कोष्ठागार (भाण्डारघर), कुप्यगृह (अन्नागार), शस्त्रागार और कारागार (जेल) का निर्माण कराना चहिए।[38] कोषाध्यक्ष को राजकीय मुद्रा के जानकर पुरूषों को नियुक्त करना चाहिए जिससे नकली मुद्रा चलन में न आ सके।[39] कोषाध्यक्ष को विश्वासी लोगों की सहायता से धन-संग्रह का कार्य करना चाहिए तथा उसको जनपद और नगर की आय के विषय में जानकारी रखनी चाहिए। यदि उससे पिछले 100 वर्शो की आय का लेखा-जोखा पूछा जाये तो उसे आय-व्यय की जानकारी तुरन्त देनी तथा बचे धन को कोष में रखना चाहिए।[40] कोषाध्यक्ष को चाहिए कि वह मोती, अनेक प्रकार की मणियों हीरे, मूंगें, चन्दन, चमड़ें, कपासादि वस्तुओं की मूल्य, लक्षण, प्रकार तथा उनकी शुद्धता की जानकारी भी विस्तृत रूप से करनी चाहिए।[41] कोषाध्यक्ष को उपर्युक्त सभी वस्तुओं की देख-रेख, संस्कार सुरक्षा की जानकारी भी होनी चाहिए।[42]

समाहर्ता (कलक्टर जनरल) (माल-विभाग का मंत्री या धन-संग्रहाध्यक्ष) एवं उसके कर्तव्य- राजकीय धन संग्रह करने वाले को समाहर्ता कहा जाता है। समाहर्ता को दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु वन, ब्रज और व्यापार सम्बन्धि कार्यो का निरीक्षण करना चाहिए । तथा इन सभी से कर के रूप में धन संग्रह करे।[43] समाहर्ता को करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय तथा नीवी आदि कार्यो को सही रीति से करना चाहिए।[44]

कौटिल्य ने आय के तीन प्रकार बताये - 1 वर्तमान- प्रतिदिन की आमदनी, 2 पर्युषित- पिछले वर्ष का बकाया अथवा शत्रुदेश से प्राप्त धन, 3 अन्यजात-भूले हुए धन का याद आना, अपराध स्वरूप प्राप्त धन, कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, कांजीहाउस से प्राप्त धनु, उपहार स्वरूप प्राप्त धन शत्रुसेना से अपहृत धन तथा लावारिस का धन।[45] इसके अतिरिक्त सैन्य खर्च से बचा धन स्वास्थ्य-विभाग के व्यय से बचा धन, सरकारी इमारतों के बनवाने से बचा हुआ धन ''व्यय प्रत्याय'' कहा जाता है। यह भी एक आय का स्रोत है।[46]

व्यय के प्रकार - 1 नित्य-प्रतिदिन का नियमित व्यय 2 नित्योत्पादिक -नियमित व्यय से अधिक खर्च होने वाला धन, 3 लाभ-पाक्षिक मासिक तथा वार्षिक आय के लिए व्यय- धन 4 लाभोत्पादिक - जो नित्योत्पादिक जैसा है। नीवी- आय व्यय का सही हिसाब करके भी बचत रूप से प्राप्त धन को नीवी कहा जाता है।[47]

समाहर्ता को अनेक विधियों, उपलब्ध साधनों तथा मार्गो से राजकीय धन का संग्रह करना चाहिए तथा उसको आय व्यय तथा लाभ-हानि का सही लेखा-जोखा रखना चाहिए जिससे कभी पिछले व्यय करके विशेष आय की आशा करके तो व्यय करके आय बढ़ानी चाहिए।[48]

सेनापति एवं उसके कर्तव्य- सेना का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति को सेनापति कहा जाता है। अश्व विभागाध्यक्ष, हस्त्यध्यक्ष, रथसेनाध्यक्ष, पत्यध्यक्ष अर्थात पैदल सेनाध्यक्ष ये सभी सेनापति के निर्देशानुसार ही कार्य व्यापार करते है सेनापति को हर प्रकार युद्ध करने, हथियार चलाना, युद्धादि शास्त्रों का ज्ञान होना तथा चतुरंगीणी सेना के कार्य तथा स्थान की भी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।[49]

सेनापति को युद्ध, काल, देश, परिस्तिथि, व्यूह रचना तितर-बितर सेना को संगठित करना शत्रुसेना का नाश, दुर्ग-नाश, उचित समय पर युद्ध के लिए प्रस्थान इन सभी बातों का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।[50] सेनापति को युद्ध की परिस्तिथियों के अनुसार सांकेतिक भाषा का प्रयोग करके शत्रु सेना का नाश कर देना चाहिए।[51] राष्ट्र को सुरक्षित रखने में सेनापति की मुख्य भूमिका होती है। अगर राष्ट्र सुरक्षित होगा तो वह समृद्ध, सुख-शन्तिपूर्ण तथा धन-वैभव से परिपूर्ण होगा।

कोष्ठागाराध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- जिन अन्नगारों में राज्य से प्राप्त अन्न रखा जाता है उसके अध्यक्ष को कोष्ठागाराध्यक्ष कहा जाता है कोष्ठागाराध्यक्ष को 1. सीता, 2. राष्ट्र 3. क्रयिम 4. परिवर्त्तक 5. प्रामित्यक 6. आपमित्यक 7. सिंहनिका 8. अन्वजात 9. व्ययप्रत्याय 10. उपस्थान इन दस बातों का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।[52] उसको कूटा हुया साफ किया हुआ भूना हुआ सुखाया पकाया

हुआ सभी अन्न को तुलवाकर उसकी घटत-बढत की जानकारी करनी चाहिए। सभी धान्यों की शुद्धि प्रक्रिया का ज्ञान भी उसे होता है तथा अनेक प्रकार की खाद्यान्न वस्तुओं की जानकारी भी होती है।[53] सभी प्रकार के अन्नों तथा खाद्य पदार्थो को सुरक्षित रखने की सम्पूर्ण जानकारी उसको होती है।[54]

पण्याध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- राजा की ओर से नियुक्त तथा राज्य व्यापार की जानकारी प्राप्त तथा राज्य वस्तुओं के सुचारू रूप सेक्रय-विक्रय की जानकारी रखने वाले को पण्याध्यक्ष कहते है। राज्य के बाहर से आने वाली सभी वस्तुओं की जानकारी उसको होती है।उसको वस्तुओं के खरीदने तथा बेचने के सही समय का ज्ञान होना चाहिए। उसको अपने राज्य में उत्पन्न वस्तुओं को बिक्री के लिए एक स्थान निश्चित करना चाहिए तथा अन्य देशों या राज्य से प्राप्त वस्तुओं की बिक्री के लिए अनेक स्थान नियत करनें चाहिए।[55]

पण्य अध्यक्ष को वस्तुओं के सभी प्रकार के कर के विषय में जानकारी[56] तथा विक्रय के लिए जाने वाली वस्तुओं की सुरक्षा तथा वस्तुओं के भाव भी निर्धारित करने चाहिए जिससे व्यापारी वस्तुओं को एक-भाव बेच सके।[57]

कुप्याध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- राज्य द्वारा नियुक्त वनों तथा लकडी की जानकारी रखने वाले को कुप्याध्यक्ष कहते है। उसका कर्तव्य है कि वह जंगलों में नियुक्त पुरूषों द्वारा बढिया लकडी मंगवाये तथा लकडी के द्वारा निर्मित अन्य कार्यो को करवाये।[58] कुप्याध्यक्ष को सभी इमारती पेडो अनेक प्रकार की घासों तथा औषधीय पौधों का ज्ञान होता है।59 राजकीय कार्यो के लिए इन सबका प्रयोग किया जाता है।

आयुधागाराध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- आयुधागार अध्यक्ष युद्धोपयोगी सामग्री को कारीगरों से तैयार कराये तथा कारीगरों के वेतन की निश्चित करें। तथा शस्त्रागार में शस्त्रों के निर्माण, रख-रखाव,तथा उनके उपयोग का ध्यान रखे। तथा अस्त्रो-शस्त्रों की लम्बाई-चौडाई वजन तथा गिनती का भी ध्यान रखे।[60] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अनेक धातुओं तथा लकडी चमडें जैसी वस्तुओं से बनने बाले अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख किया है।[61]

कृषि विभागाध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- कृषि विभाग का अध्यक्ष कृषि शास्त्र, शुल्ब शास्त्र, वृक्ष विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करे। तथा सभी विद्याओं के विशेषज्ञों से सहायता लेकर सही समय पर सभी अन्नो,फलो, फूलों के बीजों का संग्रह करे। तथा समय आने पर उन फसलों का बीजारोपण करे।[62]

सभी प्रकार के फसलों के रोपण का समय, फसल की आवश्यकतानुसार सिचाई तथा फसल की समय पर कटाई का ज्ञान भी उसको होता है।[63] उसको ये सभी कार्य किसानों नौकरों, ग्वालों तथा दासो से करवाने चाहिए तथा उनके भोजन वेतन का प्रबन्ध करना चाहिए।[64] कटे हुए अनाज के रखने का प्रबन्ध भी उसको ही करना चाहिए।[65]

आबकारी विभागाध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- सुरा के प्रबन्धन के लिए राज्य की ओर से जो अधिकारी नियुक्त होता था उसे आबकारी विभागाध्यक्ष कहा जाता था। सुरा के निर्माण रख- रखाव, प्रकार तथा उपयोग की इसको समुचित जानकारी होती थी। शराब के निर्माण से लेकर व्यापार तक से कुशल व्यक्तियों तथा व्यापारियों से करवाता था।[66] शराब का ठेका एक बडे व्यापारी को दे दिया जाता था वह शराब को छोटे व्यापारियों के द्वारा क्रय-विक्रय कराता था।[67] शराब पीने के लिए अलग से मदिरालय बनवाये गये थे।[68]

शराब अनेक पदार्थो फलों चावल, सुराबीज, गुड, पीपल, दालचीनी आदि से बनाई जाती थी।[69] सुरा को बनाने के लिए स्त्रियों और बच्चों का प्रयोग किया जाता था।[70] उत्सवों के अवसर पर राजाज्ञा के बिना शराब बेचने वाले व्यक्तियों से कर का प्राबधान था।[71]

पशु विभागाध्यक्ष एवं उसके कर्तव्य- गाय, भैंस आदि पालतू पशुओं की देख-रेख में नियुक्त अधिकारी को गोऽध्यक्ष अर्थात पशुविभागाध्यक्ष कहा जाता है।[72] गोऽध्यक्ष को 1. वेतनीपग्रहिक 2. कर प्रतिकर 3. भग्नोत्सृष्टक 4. भागानुप्रविष्टक 5. व्रजपर्यग्र 6. नष्ट 7. विनष्ट 8. क्षीरघृतसञ्जात, इन आठों के विषय मे पूरी जानकारी होनी चाहिए।[73] अध्यक्ष को गोपालकों (गाय पालने वाला), पिण्डारकों अर्थात (भैंस पालने वाला) व्यक्तियों को वेतन पर या अन्न वस्त्रादि पर रखना चाहिए।[74] अध्यक्ष को मृत: जानवरों के सींग, हड्डी, चमड़ा, दाँत, खुर, आदि को सुरक्षित रखना चाहिए।[75] अध्यक्ष को पशु-व्यापारियों से भी कर लेना चाहिए।[76] पशुओं के भोजनादि की व्यवस्था का भी उसको ध्यान रखना चाहिए।[77] क्योकि-भोजन पानी आदि की अच्छी व्यवस्था रखने पर ही दुध -घी की वृद्धि निर्भर करती है।[78]

युवराज 'राजमाता' तथा पटरानी' भी परिषद् के महत्वपूर्ण सदस्य होते थें।[79] विशेष परिस्तिथियाँ उत्पन्न होने पर इन पर राज्य का कार्यभार सौपा जा सकता था।[80] आज की तरह ही सभी मंत्रियों के वेतन की व्यवस्था भी की गई थी। पद के महत्व के अनुरूप मत्रियों के वेतन को कई भागों में बाँटा गया था।[81]

उपर्युक्त मंत्रियों के अतिरिक्त तौल माप का अध्यक्ष[82], शुल्क का अध्यक्ष[83] सुत व्यवसाय का अध्यक्ष[84], मुद्रा तथा चरागाह विभाग के अध्यक्ष[85] अन्त:पाल[86], राष्ट्रपाल[87], आदि शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे। जिनके बिना शासन व्यवस्था को बनाये रखना असम्भव सा था।

अत: उपयुर्क्त विवेचन से स्पष्ट है कि कौटिल्य के समय में राज्य-शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनेक मंत्रियों, अनेक विभागों के अध्यक्षों की नियुक्ति की जाती थी। जिससे राज्य सुख-समृद्धि को प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ सूची:

1. मनुस्मृति-7/4-5, 7
2. पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजस:।
   अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य वरूणस्य च ।। वा० रा० - 3/40/12
3. वा० रा० -7/76/42-46
4. महाभा०- शन्ति पर्व - 68/ 40; 67/40-42
5. महाभा० - शान्ति पर्व - 21/21,23,25
6. यजुर्वेद - 24/10
7. वही- 6/6
8. अथर्ववेद-14/5/10
9. अर्थशा०- अधि०-1 /प्रक०-3 / अध्या०-6 /पेज- 18
10. अर्थशा०- अधि०-1 /प्रक०-2 / अध्या०-4 /पेज- 15
11. अर्थशा०- अधि०-1 /प्रक०-14 / अध्याय-18 / पेज-61-62
12. अर्थशा०-अधि०1 /प्रक०-14 / अध्याय-18-/ पेज -62
13. राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञ: कार्यानुशासनम् ।
    दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम।
    अर्थशा०-अधि-1/प्रक०-14/अध्याय-18/पेज-64
14. वही
15. वही
16. ऋग्वेद - 10/25/7
17. राजा न सत्य: समितीरियान:- ऋग्वेद
    यत्रौषधी: समग्मत राजान: समिताविन-ऋग्वेद- 10/94
18. अथर्व०-7/12/2
19. सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
    येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारू वदानि पितर: संगतेशु।।
    -अथर्व०-7/12/1
20. वैदिक राजनीति में राज्य की भूमिका- आचार्य प्रियव्त वाचस्पति पेज - 125
21. वही, पेज - 125
22.. हिन्दू पॉलिटी-के0पी0 जयसवाल-196 .197
23. अथर्व० - 6/7/5,3
24. तैत्तिरीय ० ब्रा० - 3/7/1
25. वा रा० - 1/7/3
26. मनु० - 7/54

27. मनु० - 7/60
28. अर्थशा०- अधि० -1/प्रक०-10/अध्याय-14/पेज-47
29. वही
30. अर्थशा० -अधि ०- 1/ प्रक० 3/ अध्याय-7/पेज-20
31. वही....
32. विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्या: सर्व एवैते कार्यो: स्युर्न तु मन्त्रिण: ।।
अर्थशा०-अधि०-1/प्रक०-3/अध्याय -7/पेज-22
33. अर्थशा० - अधि०-1/ प्रक० -3/अध्याय-7/पेज-22
34. अर्थशा०-अधि०-5/प्रक०-9/अध्याय-3/पेज- 421-422
35. वही ‘‘ ”
36. अर्थशा० - अधि० - 1/प्रक० - 4/ अध्याय - 8 / पेज - 23
37. अर्थशा० - अधि०-1/प्रक० - 4/अध्याय - 8 / पेज - 23
38. अर्थशा० -अधि० 2/प्रक० - 21/अध्याय - 5/ पेज-95
39. वही, पेज-97
40. वही, पेज-98
41. अर्थशा०- अधि० -2/प्रक०- 27/ अध्याय - 11/पेज-125-135
42. वही, पेज-135
43. अर्थशा० - अधि० 2/प्रक०-22/अध्याय-6/पेज-99
44. वही, पेज-101
45. वही घ्पेज-101
46. वही, पेज-102
47. वही, पेज-102
48. वही, पेज-102
49. अर्थशा०- अधि०-2/प्रक०-49-50/अध्याय -33/पेज-237
50. वही, पेज-237
51. वही, पेज-238
52. अर्थशा० -अधि०-2/प्रक०-31/अध्याय-15/पेज-157-158
53. वही, पेज-160-163
54. वही, पेज-163
55. अर्थशा०-अधि०- 2/प्रक०-32/अध्याय-16/पेज-164
56. वही, पेज-165-166
57. वही, पेज-165
58. अर्थशा०-अधि०-2/प्रक०- 33/अध्याय-17/पेज-167
59. वही, पेज-167-168
60. अर्थशा० - अधि०-2/प्रक०- 34/अध्याय- 18 /पेज - 170
61. वही, पेज-170 - 173
62. अर्थशा०- अधि०-2/प्रक०-40/अध्याय-24/पेज-195
63. वही, पेज-195-198

64. वही, पेज-199
65. वही, पेज 199
66. अर्थशा०/अधि०-/2/प्रक०-41/अध्याय-25/पेज-200
67. वही.
68. वही, पेज-201
69. अर्थशा० - अधि० -2 /प्रक० -41/अध्याय-25/पेज-202-203
70. वही, पेज- 204
71. वही, पेज - 204
72. अर्थशा० - अधि० -2/प्रक० - 45/अध्याय-29/पेज - 216
73. वही-पेज-216, 74.वही- पेज-216, 75.वही- पेज-219
76. वही-पेज-219, 77.वही-पेज-221, 78.वही- पेज - 220
79. अर्थशा०-अधि०-5/प्रक०-91/अध्याय-3/पेज-421
80. अर्थशा० - अधि०-5/प्रक० -94-95/अध्याय-6/पेज-432-436
81. अर्थशा० - अधि०-5/प्रक० - 91/अध्याय- 3 /पेज - 420-421
82. अर्थशा० - अधि० -2 /प्रक० -35/अध्याय-19/पेज-174-175
83. अर्थशा० - अधि०-2/प्रक० -37/अध्याय-21/पेज-185
84. अर्थशा० - अधि०-2/प्रक० - 39/अध्याय- 23/पेज- 192
85. अर्थशा० - अधि० -2 /प्रक० -51-52/अध्याय-34/पेज-139
86. अर्थशा० - अधि०-5/प्रक० -91/अध्याय-3/पेज-421
87. वही

प्राचीन काल में शैक्षणिक प्रणाली: बिहार के संदर्भ में

डॉ० राजीव कुमार

सह प्राध्यापक, इतिहास विभाग, महंथ महादेवानन्द महिला महाविद्यालय, आरा

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति के संबंध में हमें काल से जानकारियां मिलते है। प्रारम्भिक दिनों से ही इस शिक्षा पद्धति में ज्ञानार्जन की एक पद्धति भी काम करती हुई प्रतीत होता है। स्त्रोतों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान की प्रत्येक शाखा के लिए इसी तरह की एक विधि बन गई थी। जैसे-जैसे इस क्षेत्र में लोग आगे बढ़ते गए वैसे-वैसे नई-नई तकनीकों का प्रयोग बढ़ता गया। लेकिन प्राचीन भारत में ज्ञानार्जन को विभिन्न पद्धतियाँ मिलती है जिनके लिए स्थान और काल दोनों की भूमिका है।

प्राचीन भारत में छात्र बहुत कम आयु में ही गुरू के आश्रम में विद्यार्जन के लिए भेज दिए जाते थे। ये शिशु छात्र (माणवक) उस समय ठीक से बोलना भी नहीं जानते थे इसलिए सर्वप्रथम उन्हें अक्षराम्भ के बाद विभिन्न पाठों के उच्चारण का तरीका बतलाया जाता था जिसमें स्वर विज्ञान, छन्दशास्त्र, प्रारंभिक व्याकरण और शब्दशास्त्र से धीरे-धीरे अवगत कराया जाता था। तैत्तिरीय प्रतिशाख्या को धारणा है कि वेद के छात्र को सर्वप्रथम ध्वनि पर विचार करना चाहिए। कहां पर गुरू, कहां लघु, सम, दीर्घ, हस्व और प्लुत हो इस पर ध्यान देना चाहिए। लोप, आगम और विकास, प्रकृति, विकृति आदि के साथ-साथ स्वरित, उदात्त, नीच, नाद, श्वास तथा उद्‌गम पर भी ध्यान देना चाहिए। इतना हीं नहीं उस छात्र को पद पाठ एवं वर्ण पाठ का विशेषज्ञ भी होना चाहिए जिसमें कि उच्चारण को बहुत सारी गुत्थियों को वह ठीक से समझ सकें । ऐतरेय आरण्यक ने भी विस्तार से वैदिक अध्ययन के विधि-विधानों पर विचार किया है।[1]

पाणिनि के अध्ययन से व्याकरण शास्त्र के पठन-पाठन को प्रणालियों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले व्याकरण को कंठस्थ करने की प्रथा थी जिनकी प्रातकण्ठिक कहा जाता था। वे लोग एक-एक शब्द या एक-एक प्रतिपदिक को अलग-अलग कंठाग्र करते थे। इस परम्परा का उल्लेख पतञ्जलि ने किया है और उसने व्याकरण पढ़ने की नई पद्धति के प्रारंभ का संकेत दिया है। पहले लक्ष्य या प्रातिपादक के द्वारा व्याकरण पढ़ने का रिवाज था। लेकिन बाद में सूत्रों के निर्माण के बाद सूत्रों का अध्ययन ही व्याकरण के ज्ञान का साधन समझा जाने लगा।[2]

पाणिनि पूर्व वैयाकरणों ने विवादास्पद विषयों पर अपनी सम्मति दी थी। लेकिन पानि ने एक भिन्न शैली का प्रतिपादन किया। प्रत्येक प्रकरण में उसने पूर्व पक्ष को रखकर सिद्धान्त पक्ष में अपनी सम्मति देने का कोशिश की। पाणिनि ने संज्ञा या लोक प्रचलित सामाजिक व्यवहार और भाषा के रूपों का समर्थन हो नहीं किया है बल्कि व्याकरण के लिए उसे प्रमाण भी माना है। पाणिनि के विचार कि व्युत्पत्ति पर आश्रित शब्द के अर्थ से लोक प्रमाण या संज्ञा प्रामण हमेशा श्रेष्ठ है, पाणिनि के बाद वाले छात्रों के लिए प्रभावकारी हुआ। पूर्व व्याकरणों ने स्वर मूधन्य, संप्रसारण, सन्धि, समास, नम, आख्यात आदि विषयों पर नियमों का निर्माण किया था। पाणिनि ने उन सारी चीजों को करते हुए भी कृदन्त और तद्धित पर विस्तार से विचार किया। इनसे नए-नए प्रत्यय को जोड़कर विभिन्न तरह के अर्थो का बोध कराया जाता था। इससे अर्थ सामर्थ्य की वृद्धि हुई। इसमें जो थोड़ी त्रुटि रह गई इस पर वास्क ने नए ढंग से विचार किया और तद्धित और समास के शब्दों को तोड़-तोड़ कर अर्थो की कोटियों पर विचार करने के लिए निर्वचन की अनुशंसा की। पाणिनि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने अष्टाध्यायी को जीवित भाषा का यथार्थ प्रतिविम्ब बनाकर संस्कृत व्याकरण को चरण परिषदों के सीमित क्षेत्रों से निकालकर जनसामान्य के साथ जोड़ दिया। जहां तक कात्यापन और पतञ्जलि का कार्य है उनलोगों ने भी वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार लोक प्रमाण का प्रश्रय दिया।[3]

व्याकरण के प्रारम्भिक ज्ञान के बाद शास्त्रों को पढ़ने की जो प्रथा थी, उसमें कांग्रीकरण का बड़ा महत्व था। वैदिक शाखा ग्रन्थों या छन्दों को कंठस्थ करेन की प्रथा थी और ऐसे ही विद्वानों श्रोत्रिय कहलाते थे। संहिता पा० (निर्भुज), पदपाठ, (प्रतीर्ण) क्रम पा० आदि कई प्रकार से वैदिक मंत्रों का सस्वर पाठ करना वैदिक पारायण कहलाता था और जो नियमानुसार पारायण करता था उसे पारायणिक कहा जाता था। श्रावणी या भाद्रपद पूर्णिमा को उपाक्रम करने के बाद साढ़े चार महीने तक वेद का पारायण करने की परमपरा थी। इस काल में संयम-नियम से जीवन-यापन करना अनिवार्य था। स्थण्डिल पर सोनेवाला ब्रह्मचारी स्थाण्डिल कहा जाता था। उस समय पारायण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बोलने के कारण उसे ब्रह्मचारी की वाचंयम कहा जाता था। पतज्जलि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पढ़ाई का प्रारंभ वेद को कंठस्थ करने की प्रक्रिया से ही होता था। हालांकि इसके बाद भी आशंकाएं थी। आलोच्यकाल में वैदिक अध्ययन के कुछ नियम-कानून भी देखने को मिलते हैं। पहले ऋग्वेद के सूकतों को छात्रों को पढ़ा दिया जाता था। उसके बाद ऋषि, देवता ओर छन्द की सूचना उनको दी जाती थी और शिक्षक प्रत्येक ऋषि से संबंधित सूकों को छात्रों को पढ़कर सुनाते थे। छोटा सूकू एक दिन का पाठ माना जाता था।[4]

हिरण्यकेशी गह्य सूत्र में यह लिखित है कि प्रत्येक कांड को शुरूआत और समाप्ति पर उस सूकू के ऋषि के नाम छात्र की ओर से प्रार्थनाएं की जाती थी और वस्तुतः इसका स्वरूप एक महोत्सव की तरह हो जाता था। आपस्तम्ब ने भी इस तरह की चीजों की पुष्टि की है। गौतम धर्मसूत्र का कहना है कि जबतक सामवेद सुनाई पड़ता रहे तब तक ऋग्वेद और यजुर्वेद का अध्ययन नहीं करना चाहिए। लेकिन आपस्तम्ब ने कहा है कि यदि कोई वेद परोस में उच्चरित किया जाता हो तो सामवेद को नहीं शुरू करना चाहिए। यह भी एक महतवपूर्ण बात हैकि किसी भी छात्र को वेद का अध् ययन अपने मन से शुरू नहीं करना चाहिए बल्कि इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि क्रम का उल्लघंन निन्दनीय था। इन सारी चीजों के बावजूद स्त्रोतों में ऐसी चर्चा है कि गुरू पूरब बैठेगा या उत्तर, या उत्तर-पूरब। जहाँ एक ओर हम कंठाग्रीकरण के माध्यम से प्राचीन भारतीय ज्ञान को जिह्वा पर रखने की परम्परा थी वहां दूसरी और वाद-विवाद, अन्तर्मुखी चिन्तन और शंका-समाधान इत्यादि का भी रिवाज था। एक ही विद्यालय या आश्रम में सभी प्रणालिया एक ही साथ कार्यरत थी या नहीं कहना कठिन है। उपनिषद साहितय में नार्जन का तरीका प्रश्नोत्तर विधि वाला था। छात्र प्रश्न करते और शिक्षक उसका उत्तर देते। इन विमर्शो में कथा माध्यम से सोदाहरण समझाने की बात थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रश्न पूछने वाले के लिए प्रश्निन् तथा उत्तर देनेवाले के लिए प्रश्न विवाक शब्द का प्रयोग है, साथ ही बीच में प्रश्न पूछनेवाले दूसरे व्यक्ति के लिए अभि-प्रश्निन् शब्द का प्रयोग हुआ है। इस तरह के विवाद से छात्रों की चिन्तन प्रक्रिया काफी गहरी होती थी। तैत्तिरीय उपनिषद में वरुण ने अपने पुत्र भृगु को बार-बार समझाया और पांचवी बार मे भृगु विषय-वस्तु समझाने में सफल हो गया। इस तरह का दूसरा उदाहरण छान्दोग्योपनिषद में है कि मस्तिष्क और उसकी शक्ति शरीर में स्वास्थ्य पर निर्भर है तथा मानसिक वृतित शारीरिक अवसी पर निर्भर है, आदि को समझाने के लिए श्वेतकेतु के पिता ने अपने पुत्र को उपवास करवा दिया जिससे कि वह अपने अनुभव से जान सके कि शरीर ओर मस्तिष्क का कया समबंध हैं वह पन्द्रह दिनों का उपवास कर गया ओर उसके बाद पिता ने वेद को सुनाने का आग्रह किया। पुत्र को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसकी सारी जानकारी लुप्त हो गई थी और जैसे-जैसे वह भोजन लेने लगा वैसे-वैसे उसके स्मरण और ज्ञान लौट आए। बृहदारण्यक उपनिषद में स्पष्ट लिखा हे कि उच्च ज्ञान प्राप्ति तीन प्रक्रियाओं पर निर्भर है-श्रवण, मनन, निदिध्यासन। श्रवण के भी छः साधन है-(1) उपक्रम (2) अभ्यास (3) अपूर्वता (4) फल (5) अर्थवाद (6) उपपत्ति। मनन को एक ही चीज पर बार-बार सोचने की प्रक्रिया माना गया है और उससे विवेक की भूमिका आंकी गई है और निदिध्यासन एकाग्रह चिन्तन है। इन सारी चीजों के लिए योग की महत्ता बतलाई गई है जिसमें सारी चीजों से अपने को हटाकर किसी एक चिन्तन की ओर अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस क्रम में राधा कुमुद मुकर्जी का यह कहना कि प्राचीन भारत में कंठाग्रीकरण की प्रक्रियां ही ज्ञानार्जन का एक मात्र रास्ता है, गलत है वस्तुतः वासुदेवषरण अग्रवाल ने ठीक ही कहा है कि कंठाग्रीकरण तो शिक्षण विधि का एक अंग था। निरक्तकार ने भी चिन्तन विहीन कंठाग्रीकरण का विरोध किया है। उपर उपनिषद साहित्य में शिक्षा के जितने उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं वे सारे शिक्षण विधि में व्याया प्रणाली को सोदाहरण लागू करने के नमूने हैं। यह वस्तुतः शिल्प कला के ज्ञान से भी जुड़ा हुआ था।[5]

चिकित्सा इत्यादि के क्षेत्र में भी इस तरह के प्रयोग होते थे। साहित्य में यह चर्चा है कि जीवक तक्षशिला से स्नातक हुआ और वहं गुरू से अन्तिम भेंट करने गया तो गुरू ने दक्षिणा में एक क्षेत्र विशेष से ऐसा पौधा ढूढ़ लाने को कहा जिसका दवा की दृष्टि से कोई उपयोग न हो और जीवक ने पूरे क्षेत्र में घूमकर गुरु के पास लौटकर यह सूचना दी कि पूरे क्षेत्र में कोई ऐसा पौधा नहीं जिसका दवा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं हो। इससे ऐसा लगता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में सिद्धान्त की पढ़ाई के साथ-साथ

प्रयोगिक पर भी काफी जोर दिया जाता था। इसके अलावे भी दूसरे ब्राह्मण शिक्षा संस्थानों में भी इस तरह की प्रथा रही होगी क्योंकि इसको तो एक तकनीक के रूप में प्रयोग में लाया गया था। इसी का प्रयोग तो उपर भी चर्चित है जहां शरीर और मस्तिष्क के संबंध को जानने के लिए लम्बा उपवास कराया गया था। इस तरह के चिन्तन के कारण ही सम्पूर्ण उपनिषद् साहित्य की जिज्ञासा-प्रधान प्रवृत्ति का विकास हुआ जिसमें सारी मान्य धारणाओं पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे जिसके परिणामस्वरूप वैदिक रीति-रिवाजों को चुनौती दी जाने लगी। इसलिए नचिकिता ने अपने पिता के द्वारा किए गए यज्ञ में दान में दी गई गयों को संख्या बढ़ाने के लिए सूखी गाय देने पर व्यय-वाक्य का प्रयोग किया। जिसके परिणामस्वरूप उसके पिता की पारम्परिक मान्यता को वोट पहुंचा। उपनिषद साहित्य में जीवन से संबंधित बहुत सारे मौलिक प्रश्न किए गए जो वस्तुत: खघस तरह की शिक्षण पद्धति के ही परिणाम थे। लेकिन धीरे-धीरे ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था में निहित स्वार्थ के कारण नई प्रवृत्तियों का उदय हुआ और अन्धविश्वास का प्रभाव बढ़ने लगा। परिणामत: उपर वर्चित प्रवृत्ति धीरे-धीरे सूखने लगी।[6]

प्राचीन भारत में गुरू-शिष्य-प्रणाली (मौनिटोरियल सिस्टम) का अस्तित्व था। जहां एक तरफ गुरू शिष्य को पढाते थे वहां दूसरी तरफ उंचे वर्ग के छात्र नीचे वर्ग के छात्रों को भी पढाते थे। इसके कारण पूरे शिक्षण संस्थान में गुरू-शिष्य की एक सीढ़ीनुमा व्यवस्था थी जिसमें हर अगला पिछले का गुरू ही होता था। ऐसी पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हर छात्र को शिक्षक होने का भी बोध होता है जिसके परिणामस्वरूप उसको हमेशा उसी दृष्टि से तैयार रहने की आदत बन जाती थी जिससे योग्यता-वृद्धि में सुविधा होती थी और पूरे परिसर में एक उचित शैक्षणिक वातावरण भी बना रहता था। इससे एक लाभ और था कि गुरू की अनुपस्थिति सामान्य रूप से नहीं खटकती थी। आत्मविश्वास के विकास की दृष्टि से भी यह पद्धति उपयोगी थी।[7]

नालन्दा विश्वविद्यालय: एक उदार शासक अपने नाम को सदा जीवित रखता है। उसकी कृतियां युगों-युगों तक उसका नाम लेने एवं गुणगान करने को बाध्य करती है। ऐसे ही उदार शासकों में कुमारगुप्त प्रथम था, जो अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के समान ही वैष्णव धर्मावलम्बी था। जिसे गढ़वा अभिलेख "परमभागवत" कहता है। अन्य धर्मो के उत्थान म इस उदार शासक ने पर्याप्त सहायत एवं प्रोत्साहन दिया।[8]

कुमारगुप्त प्रथम के उदार शासन एवं धर्म सहिष्णुता का पता इस बात से चलता है कि उसके शासनकाल में अनेक देवताओं की उपासना होती थी। उसके शासन काल के अनेक लेखों से पता चलता है कि उसके राज्यपालों द्वारा भी अपने प्रिय आराध्य देवों के मन्दिर की स्थापना की गई थी। जैसा कि उसके अभिलेखों से पता चलता है कि मनकुंवर अभिलेख से ज्ञात होता है कि बुद्धमित्र नामक एक बौद्ध ने महात्मा बुद्ध की मूर्ति स्थापित की। मन्दसौर अभिलेख से पता चलता है कि पश्चिमी मालवा का राज्यपाल बन्धुवर्मा ने सूर्य मन्दिर की स्थापना कराई थी। उसी प्रकार कर्मदण्डा अभिलेख पृथ्वीसेण को शैव मतावलम्बी बताता है।

कुमारगुप्त प्रथम का शासन काल 415 ई.-455 ई. तक रहा था। लगभग 40 वर्षो का शासन-काल शान्तिप्रिय रहा था। कहीं से सम्राज्य की हानि नहीं हुई थी। इसका मुख्य कारण कुमारगुप्त की उदार नीतियां रही थी। उदारनोतियां किसी भी काल में किसी भी शासक को महान एवं यशस्वी बना देती है। कुमारगुप्त प्रथम के महान कार्यो में महान कार्य नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना रही है। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना "शुक्रादित्य" ने किया था। कुमारगुप्त प्रथम को एक उपाधि "महेन्द्रादित्य" थी। ये दोनों उपाधियाँ समानार्थी हैं। जो कुमारगुप्त प्रथम के लिए प्रयोग हुई है । यह उदार शासक अनेक संस्थाओं को दान दिया था।[9]

विक्रमशिला: विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना नालन्दा विश्वविद्यालय से प्रभावित होकर की गई लगती है । क्योंकि जब नालन्दा विश्वविद्यालय ख्याति प्राप्त कर रहा था, लगभग उसी काल में विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना आरम्भ हो गई थी।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना पाल शासक धर्मपाल द्वारा 775-800 ईड्ढ किया गया था। यह विश्वविद्यालय भागलपुर से 24 किलो मीटर दूर पूर्व की दिशा में है। यह विश्वविद्यालय पथरघाट नामक पहाड़ी पर स्थित है। यहां की खुदाई करने पर प्राचीन काल के खण्डहर प्राप्त होते हैं।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय एक महान, उदार एवं सृजनात्मक शासक की कृति मालूम पड़ता है। ऐसे विश्वव्यापी कृति बनाने का श्रेय ऐसे ही महान एवं उदार शासकों को प्राप्त होता है। यह संस्था अपने निर्माण काल से लेकर बारहवीं सदी तक अर्थात 400 वर्षो तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का विश्वविद्यालय बना रहा। इसके पीछे का मुख्य कारण उदार राजाओं का संरक्षण एवं सहयोग रहा है। कोई भी संस्था बिना राजकीय संरक्षण के विश्वव्यापी नहीं बन सकती है।

राजा धर्मपाल ने यहां पर अनेक मन्दिर एवं मठ बनवाया था। यहां पर 160 विहार तथा व्याख्यान के लिए अनेक कक्ष बने हुए थे । विहारों की संख्या को देखने से लगता है कि राजा धर्मपाल बौद्ध धर्मी था एवं बुद्ध के शिक्षा संबंधी विचार से प्रभावित था। चूंकि इसी के शासन काल में नालन्दा विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहा था तथा लोगों द्वारा गुप्तों राजाओं का गुणगान हो रहा था। क्योंकि शिक्षा के विकास के कारण ही गुप्त शासन काल स्वर्ण शासन काल का सुखद अनुभव करा रहा था। इसी को देखते हुए लगता है कि राजा धर्मपाल शिक्षा एवं विद्या प्रेमी शासक था। वह महसूस किया होगा कि नागरिकों एवं राज्य का विकास शिक्षा बिना सम्भव नहीं है।[10]

ओदन्तपुरी (उड्डयन्तपुर) विश्वविद्यालय: ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय की स्थापना पालवंश के संस्थापक गोपाल प्रथम ने किया था। गोपान प्रथम का शासन काल 750 ई. से 770 ई. तक रहता है। ओदन्तपुरी का वर्तमान नाम बिहारशरीफ हैं यह बिहार के नालन्दा जिले का वर्तमान में मुख्यालय है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना विद्या प्रेमी गोपाल के द्वारा की जाती है। यह विश्वविद्यालय अपने समय का अत्यन्त उच्च कोटि का शिक्षा केन्द्र था। जब नालन्दा विश्वविद्यालय अवन्ति की ओर-अग्रसर था उसी समय में ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय अपने चरमोत्कर्ष पर था। ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय पूवी भारत के पाँच विश्वविद्यालय की श्रृखंला का एक हिस्सा था। जिसमें नालन्दा विक्रमशिला, सोमपुरा, जगद्दल एवं ओदन्तपुरी था। यह विश्वविद्यालय 312 एकड़ भूमि में फैला हुआ था। यह बिहारशरीफ के हिरण्य पर्वत पर स्थित था। इसकी दिवारें 20 फीट मोटी एवं 40 फीट ऊँची थी। इसके उत्तर से दक्षिण द्वार की दूरी 3000 फीट एवं पूर्व से पश्चिम द्वार की दूरी 2500 फीट थी। यह भूमि एक प्राकृतिक पठार है। इस संस्थान के प्रचीर का आधार 60 फीट चौड़ा था तथा व्यास काफी लम्बा था जैसा कि इसकी परिधि 8500 सौ फीट से ज्ञात होता है।[11]

इस विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े भवन ईटों के बने हुए थे। जैसा कि बर्बाद हुए भवनों की प्रचुरता एवं खण्डहरों से पता चलता है। ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय अपने समय में नालन्दा से भी अधिक प्रसिद्ध हो चुका था। यह शिक्षण संस्थान जेतारि तथा अतिश जैसे आचार्यो की कर्मठता के कारण अपने प्रसिद्धि को पाया था। इस संस्थान को लगभग सभी पालवंशीय राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया था, तभी यह संस्थान अपनी प्रसिद्धि को प्राप्त किया था। राजा गोपाल के बाद धर्मपाल, देवपाल रामपाल आदि सभी नरेशों ने नालन्दा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की भांति इसे भी संरक्षण प्रदान किया था। कोई भी संस्थान बिना राजकीय संरक्षण प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है।

संदर्भ:

1. अष्टाध्यायी, 3.2.123 पर कात्यायन और पतज्जलि
2. वही
3. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० 344
4. वहीं, पृ० 345
5. वहीं, पृ० 346
6. प्रश्नोपनिषद, 3.2 तुलनीय केनोपनिषद एवं कठोपनिषद 7
7. वही
8. ए. बी. भटनागर एवं अनुराग भटनागर, प्राचीन शिक्षा का दार्शनिक आधार, विनय खरेजा, मेरठ, संस्करण- 2014, पृ० 67
9. ए.एस. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अनुराग प्रकाशन, बाराणसी, 1948, पृ० 162
10. डा. आर. के. मुखर्जी एन्शियन्ट इण्डियन एजुकेशन इन इण्डिया, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1969, पृ. 33
11. आर. के. मुखर्जी, एन्सिएन्ट एडुकेशन इन इण्डिया मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1969, पृ० 112

अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' का विशेष अध्ययन

प्रीति प्रकाश

शोधार्थी (हिन्दी), तेजपुर विश्वविद्यालय, असम

''एक वरिष्ठ कवि ने मुझसे बहुत पहले कहा था- छोटी-छोटी बहुत कर चुके, अब कुछ लम्बी सांस लो। मैं कोई जवाब न दे सका, क्योंकि फैशन 'लम्बी कविता' का ही था। जो दौड़ रहे थें वे तो लम्बी साँस ले ही रहे थें, जरूरत भी थी। लेकिन जो बैठे थे, खड़े थे वे भी लम्बी खींच रहे थें। 'लम्बी' बराबर बड़ी नहीं। 'छोटी' बराबर छोटी नहीं। लम्बी का उल्टा छोटी भी नहीं। लम्बी कविता के उलट नाटी कविता होगी। वहम है कि लम्बी होने भर से कविता बड़ी हो जायेगी। वहम अभी भी कायम है बदस्तूर । लेकिन कबीर के पद, विद्यापति के पद, तुलसीदास की विनयपत्रिका, गालिब मीर की गजलें, निराला की बहुलांश- क्या ये सब छोटी है? क्या कविता की श्रेष्ठता आयतन पर निर्भर है? या जीवन की सच्चाईयों का मार्मिक तीक्ष्ण बोध, एक पल की तडित ज्योति में जगत भर का बिम्ब- समाहार, एक कतरे में समुद्र को देखने का उद्‌यम? निर्वात में लम्बी साँस लेने से अच्छा है खुली साफ हवा में आराम से टहलना। कुछ दूर चलने के बाद देखा जाएगा।''[1]

साल 2002 में आयी अरुण कमल की आलोचनात्मक पुस्तक 'कविता और समय' में उनकी यह टिप्पणी संगृहीत है। इस संग्रह के आने के ठीक सत्रह साल बाद अरुण कमल का पांचवा कविता संग्रह योगफल आता है जिसमें साल 2011 से लेकर 2018 तक की कविताएँ संगृहीत हैं। इस संग्रह में अरुण कमल की सबसे लम्बी कविता 'प्रलय' शामिल है। जाहिर है अरुण कमल ने यह कविता फैशन के हिसाब से या दौड़ में बने रहने के लिए नहीं लिखी। फिर आखिर ऐसा क्या था जो अपेक्षाकृत छोटी कविताएँ लिखने वाले समकालीन कवि अरुण कमल लगभग 137 पंक्तियों की कविता 'प्रलय' लिखते हैं? इस सवाल का जवाब ढूँढने के पहले हमे लम्बी कविताओं को और उसकी समृद्ध परंपरा को समझना होगा।

डॉ० बलदेव वंशी अपनी पुस्तक श्लम्बी कविताएँ: वैचारिक सरोकार में लिखते हैं- ''आधुनिक जीवन बोध के अतिशय दबाव में हुए अनिवार्य बृहतर परिवर्तनों के कारण लम्बी कविता का उदय हुआ। प्रबंध काव्य के विकल्प के रूप में उभरी यह स्वतंत्र विधा है परन्तु इसमें प्रबंध की अपेक्षाओं का समूचा नकार नहीं है। यह सामाजिक-कलात्मक सरोकारों का निर्वाह करती हुई जीवन के किसी विशेष पक्ष को उसकी समग्रता एवं जीवन दृष्टि की संहति में उठाती है।''[2]

तो क्या ऐसा मान लिया जाए कि अरुण कमल जीवन बोध के तनाव को समग्रता में लिखने के लिए लम्बी कविता की तरफ रूख करते हैं। लेकिन यह दृष्टि तो अरुण कमल के पास पूर्व ही थी। पुतली में संसार भरने वाला कवि क्या संसार के तनाव से अवगत नहीं था? फिर ऐसा क्या था जो अब उन्होंने लम्बी कविता लिखी?

इस सम्बन्ध में नरेंद्र मोहन लिखते हैं- ''लम्बी कविता की रचना तभी संभव है जब सर्जनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मकता सिद्ध कर रहा हो।''[3]

अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' के परिपेक्ष्य में इस रचनात्मक दबाव को देखने के लिए यदि उसका रचना काल देखे तो प्रतीत होता है कि यह कविता 2011 से 2018 के बीच लिखी गयी है। यह समय राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से भयानक उठापटक का दौर था। केन्द्रीय सत्ता का स्वरुप इसी बीच बदला और केंद्र में आयी नयी सरकार ने जुमलों के मार्फत से एक नए और बेहतर भारत का स्वप्न भी दिखाया। लेकिन शीघ्र ही यह स्वप्न भी टूटने लगा और आम आदमी को यह समझ

आने लगा कि नए भारत में चाहे जो कुछ बदल जाए लेकिन उनके हालात तो नहीं ही बदल सकते। यह दबावपूर्ण समय था, धर्म के नाम पर हत्याएं हो रही थी, हाशिये का आदमी अब हाशिये पर भी रहने के लिए मशक्कत कर रहा था, बेरोजगारी लगातार नए आंकड़े छू रही थी, जन धन, आधार, मोबाइल (जैम) वैसे तो गरीबों के वित्तीय समावेशन की बात कर रहा था लेकिन गरीब आदमी के लिए अभी भी रोटी ही सबसे बड़ी समस्या थी। आधार ने आम आदमी को पहचान देने का वायदा तो किया लेकिन कितने लोग उसके न होने से गुमनामी के अँधेरे में खो गए उनका कोई लेखा जोखा नहीं रहा। मिला जुला कर यह भीषण विडम्बनाओं से भरा संकट का समय था। ऐसे संकट के समय में अरुण कमल ने लम्बी कविताओं की तरफ रूख किया और एक संश्लिष्ट कविता रची- 'प्रलय'।

अब सवाल यह भी है कि क्या सिर्फ आकार में लम्बी होने के कारण इस कविता को लम्बी कविता का नाम देना उचित होगा, या फिर यह कविता लम्बी कविता के और सभी मानकों पर भी खरी उतरती है? लम्बी कविता के पहचान हेतु रामदरश मिश्र ने लिखा है- ''छोटी कविता किसी एक काल खंड की संश्लिष्टता, आतंरिक संगति- विसंगति की चेतना से गुजरने के कारण उसमें शिल्प का भी अपेक्षाकृत एक समरूप होता है, भाषा बिम्ब और छंद में एक लय दिखाई देती है, मूड भी प्राय: एक ही रहता है। लेकिन लम्बी कविता अनेक खंडो की यात्रा है। ये अनेक खंड अपने स्वभाव में एक दुसरे से विषम होकर भी सन्दर्भ से जुड़े होते हैं।''[4]

डॉ. नरेंद्र मोहन लिखते हैं- "लम्बी कविता के विन्यास में आनुषांगिक भावनाओं, विचारों, प्रसंगों और तथ्यों को काव्यात्मक संवेदना और केन्द्रीय विचार के सन्दर्भ में रखना और तानना जरूरी है।''[5]

डॉ धीरेन्द्र पटेल के अनुसार ''सर्जनात्मक तनाव की अक्षुण्णता और दीर्घता ही लम्बी कविता में चरितार्थ होती है।"[6]

इन विद्वजनों की परिभाषाओं के आधार पर लम्बी कविता की पहचान हेतु निम्नांकित मानक निर्मित किये जा सकते हैं।

लम्बी कविताओं के पहचान के मानक

- अन्विति
- नाटकीयता
- विचार और केन्द्रीयता
- अंतहीन अंत
- सर्जनात्मक तनाव

अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' में अन्विति साफ नजर आती है। विभिन्न खण्डों में विभक्त इस कविता में सभी खंड, सभी तथ्य और सभी प्रसंग आपस में गुथे हुए हैं। कविता में नाटकीयता है, एक केन्द्रीय कथा लगातार चलती सी प्रतीत होती है। स्थितियों के पीछे की स्थितियां, व्यवहार, मानसिक आत्मिक क्रियाकलाप यहाँ अभिव्यक्त हो रहे हैं। पूरी कविता एक केंद्र के इर्द-गिर्द ही घूर्णन करती सी लगती है। भाव के साथ-साथ इस कविता में विचार भी है और इसके साथ ही है एक सृजनात्मक तनाव। कवि लिखते हैं-

''इतना अनिश्चय इतना भय
कहीं भी चौन नहीं जैसे तप्त रेत पर चल रहा हूँ''[7]

हिंदी साहित्य में लम्बी कविता की शुरुआत 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' से मानी जाती है। इसके पूर्व रचित छायावादी प्रकृति की दो अन्य लम्बी कविताएँ 'परिवर्तन' (पन्त 1926), श्प्रलय की छाया (प्रसाद 1933) अपने रचना विधान में, अपनी रूपात्मक - गीतात्मक रुचि एवं वैचारिक- चिन्तनात्मक आधार शिथिलता के कारण प्रथम लम्बी कविता होने की पात्रता अर्जित नहीं कर पाती। 'राम की शक्ति पूजा' के बाद हिंदी साहित्य के कुछ महत्वपूर्ण कवियों ने महत्वपूर्ण कविताओं की रचना की जिनमें प्रमुख हैं-

मुक्तिबोध - अँधेरे में

रघुवीर सहाय - आत्महत्या के विरुद्ध

अज्ञेय - असाध्य वीणा
राजकमल चौधरी- मुक्ति प्रसंग
धूमिल - पटकथा
सौमित्र मोहन- लुकमान अली
नागार्जुन- हरिजन गाथा
डॉ. बलदेव वंशी- उपनगर में वापसी
विजयदेव नारायण साही - अलविदा
रमेश गौड़- पतन गाथा
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना- कुआनो नदी
कैलाश वाजपेयी- महास्वप्न का मध्यांतर
नरेश मेहता- समय देवता
धर्मवीर भारती- प्रमुथ्य गाथा
मणि मधुकर- खंड खंड पाखण्ड
लीलाधर जगूड़ी- नाटक जारी है
प्रमोद सिन्हा- तलघर
हेमंत शेष - जारी इतिहास के विरूद्ध
रमेश गौड़- एक मामूली आदमी का बयान
राजीव सक्सेना- अस्तित्व का गीत
दूधनाथ सिंह- सुरंग से लौटते हुए
नरेंद्र मोहन- एक अग्निकांड जगहे बदलता हुआ

लम्बी कविता की इस समृद्ध परंपरा में अरुण कमल की कविता 'प्रलय' एक नया अध्याय जोड़ती है। नया इसलिए क्योंकि इसमें वर्तमान समय है और समय से सम्बंधित सभी सरोकार हैं। मानव जाति के लिए 'प्रलय' एक ऐसी विनाशकारी मिथकीय परिघटना रही है जिसने उसके अस्तित्व पर ही संकट खड़ा कर दिया है।

प्रलय का मिथक कविता को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है। लेकिन समकालीन परिस्थिति को दिखाने के लिए अरुण कमल ने मिथक क्यों चुना? इस सम्बन्ध में डॉ. धीरेन्द्र पटेल अपनी पुस्तक 'हिंदी की लम्बी कविताओं में अन्त: संघर्ष: परंपरा एवं प्रवाह' में लिखते हैं- ''मिथक जातीय स्मृतियों, आशयों, आकांक्षाओं के साथ अचेतन की गहराईयों तक जुड़ा रहता है। इसलिए युग-सत्य की सच्चाईयों को प्रस्तुत करने, अपनी जातीय अस्मिता को उपलब्ध करने के लिए रचनाकार को एक व्यापक परिचित भूमिका का आधार देता है। युग-सत्य, मिथक के आश्रय एवं उसके सूक्ष्म सूत्रों से प्रतीकीकृत होकर वर्तमान परिवेश की परिस्थितियों एवं भाव राशि में उद्वेलन करता है।''[8]

'प्रलय' के आधार पर हिंदी साहित्य में एक बहुत ही महत्वपूर्ण महाकाव्य जयशंकर प्रसाद की श्कामायनी' है। लेकिन 'कामायनी' में जहाँ प्रलय के बाद के घटनाक्रम हैं तो वहीँ अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' वस्तुत: प्रलय की पूर्व पीठिका है। कामायनी में 'मनु' 'श्रद्धा' और 'इड़ा' जैसे मिथकीय और पौराणिक किरदार केंद्र में हैं तो वही अरुण कमल की कविता 'प्रलय' में रिक्शा वाला, बर्तन बासन करने वाली युवती, खाड़ी कमाने के लिए खाड़ी गया आदमी, काम ढूंढती विधवा महिला जैसे आम लोग केंद्र में हैं।

'प्रलय' मिथक का प्रयोग यहाँ युगीन सत्य की बारीकियों को सामने लाने के लिए किया जा रहा है। सत्य जो बहुत संश्लिष्ट और बहु-स्तरीय है। सत्य जिसकें ताने बाने उलझ चुके हैं उसे अभिव्यक्त करने में मिथक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रलय कहानी के केंद्र में यह साधारण मनुष्य है और है उसकी परिस्थितियां, जो उसे किसी प्रलय का भान कराती है।

कविता की शुरुआत 'प्रलय' से पूर्व की तैयारी से होती है। किन्हीं दो लोगों के बीच संवाद हैं, कौन हैं ये दो लोग? नर और नारी, या मनु और सतरूपा। नर पूछता है- वो क्या कर रही है? नारी जवाब देती है कि वह चावल, दाल नमक जमा कर रही है क्योंकि उसे घनघोर बारिश की आशंका है, उसे युद्ध की आशंका है। नारी कहीं दूर चली जाती है बस उसकी आवाज रह रहकर आती है, जैसे बिजली चमक रही हो। अकेला रह जाता है पुरुष, वो जो प्रलय की आशंका से त्रस्त है या वो जो अँधेरे में चक्कर लगा रहा है। मुक्तिबोध अपने कविता 'अँधेरे में' में लिखते हैं-

''कोई अनजानी अन- पहचानी आकृति।
कौन वह दिखायी जो देता, पर
नहीं जाना जाता
कौन मनु?''[9]

अरुण कमल की कविता का सूत्रधार भी चिंतित है और भय से भरा हुआ है।

अरुण कमल लिखते हैं-

'उस रात लगातार चमकती रही बिजलियाँ
पूरा आसमान बेंतों के नीले निशान से क्षत विक्षत'[10]

पहले सुखाड़ और गर्मी इतनी की रक्त का जल भाप बन गया। उसके बाद मुसलाधार बारिश हुयी। यहाँ कवि ग्लोबल वार्मिंग और मौसम में अचानक आये परिवर्तन की तरफ इशारा कर रहे हैं। बढ़ते औद्योगिकरण और प्रदूषण ने प्राकृतिक आपदाओं को आमंत्रित किया है। इन प्राकृतिक आपदाओं का शिकार अगर सबसे अधिक कोई हुआ है तो वो हैं अभाव में जीवन जी रहे लोग। वर्ल्ड इकनोमिक फोरम की एक रिपोर्ट बताती हैं कि ग्लोबल वार्मिंग गरीबों को और गरीबी की तरफ धकेल रही है।[11]

"इतनी बारिश की पहाड़ी नदियाँ लाल हो जाए।"

नदियों का लाल हो जाना यानी खून की नदियाँ बहना। यह उत्सव नहीं मातम का वक्त है। आम के पेड़ के टिकोले बच्चों के इन्तजार में हैं लेकिन बच्चे तो गुम हो गए हैं। गुम तो कवि भी हो गया है। उसे उसके खेत और उसके घर का पता नहीं मिल रहा है। उसके गाँव में उसे कोई नहीं पहचान रहा है। कवि अपनी नींद खो दी है, घर ने अपने रहनवार खो दिए हैं और लोगों ने अपनी पहचान। यह प्रलय का ही तो वक्त है।

कवि को प्रतीत होता है जैसे पूरा देश ढोल-नगाड़े रात्रि जागरण, अखंड जयकारे की आवाज के साथ वध स्थल की और जा रहा है। ये पंक्तियाँ देश में धर्म के नाम पर हो रही हिंसा को बता रही हैं। कहाँ जा रहे हैं ये लोग पूजा पाठ करते हुए? इस वध स्थल पर किसका वध होगा- क्या मानवता का, या मानव का। कवि को वह अनजान युवती कहती हैं- मेरा तो यही वध स्थल है, और वह भंसार में चली जाती है। यह भी कितनी बड़ी विडंबना है कि जिस भंसार से लोग जीवन पाते हैं वही भंसार वधस्थल में तब्दील होता जा रहा है।

आगे के खंड में कवि सरकार और उसकी नीतियों की आलोचना करते है। 'आधार' जिसे आम आदमी का अधिकार कहा गया है उसने आम आदमी को कैसे अपने गिरफ्त में ले लिया है, कवि इसकी चर्चा करते हैं।

'इसके बिना न घर में रह सकते हैं न बाहर
न राशन न पानी न गैस न दवा न सफर न सराय
न बैल न गाय'[12]

स्पष्ट है कि आदमी के जीवन की बुनियादी जरूरतें भी अब एक सरकारी कागज के अभाव में पूरी नहीं हो पा रही है। जब इंसान से ज्यादा सरकारी दस्तावेज जरूरी हो जाए तो फिर ऐसे वक्त को आम आदमी के जीवन में प्रलय ही तो कहेंगे।

इसी खंड में आगे कवि गांधी नाम के राजनीतिकरण पर बात करते हैं। वो कहते हैं कि गांधी तो एक झाड़ू का नाम है। गांधी अब नोट और रुपये पर हैं। साबरमती सूख गयी है। यह गांधी के आदर्शों का क्षरण है। गांधी ने जो संघर्ष आम आदमी के हक में किये थें उसी का इस्तेमाल अब राजनीतिक दल अपने हक में कर रहे हैं।

''गांधी का नाम मत लो
गांधी तो अब एक झाड़ू का नाम है
नोट रूपइये पर आश्रम है धाम है''[13]

कवि पहचान के इस संकट से जूझ ही रहा है कि उसे कोई एक पर्ची थमा दे रहा है जिसमें उसके द्वारा किये जाने वाले सारे कामों की सूची है। यह सूची उसके जीवन के हर एक प्रसंग को नियंत्रित कर रही है। उसके भोजन की आदतों से लेकर उसके पहनावे तक को नियंत्रित कर रही यह सूची दरअसल लोकतंत्र की आड़ में छुपे उस निरंकुश तंत्र का चेहरा सामने ला रही है जिसने बीते एक दशक में पूरे देश को अपने गिरफ्त में ले लिया है। इस निरंकुश तंत्र का चरित्र बहुत शातिर है और उससे बचना लगभग नामुमकिन। यहाँ कवि शिल्प की दृष्टि से एक बहुत ही संश्लिष्ट पंक्ति रखता है-

''जो कहे वो करो
करो या मरो''[14]

एक समय गांधी जी ने 'करो या मरो' का नारा दिया था। लेकिन तब एक नैतिक लक्ष्य के लिए कार्य चल रहा था, पर अभी तो निरंकुश तंत्र के इशारों पर काम करना जनता की मजबूरी में तब्दील हो गया है।

यह शासन का निरंकुश तंत्र है जो जनता को अपनी इच्छानुसार चलने को विवश करता है। बीते कुछ सालों में जिसने शासन के इस तंत्र के खिलाफ जाने की कोशिश की उस पर शासन की गाज गिरी है। निरंकुशता का भय इंसान को बेजुबानों में तब्दील कर रहा है।

कितने बेजुबान हैं ये लोग, जो विस्थापित हो रहे हैं, जो अपने घर-बार से दूर, अपनी मिट्टी से दूर होते जा रहे हैं और शरणार्थियों में तब्दील होते जा रहे हैं। युद्धों ने राष्ट्रों के शासकों को चाहे जो दिया हो लेकिन आम आदमी को सिर्फ जहालत की जिन्दगी दी है-

''युद्ध सिर्फ वही नहीं होता जो मोर्चे पर होता है
युद्ध लगातार चल रहा है हर घर हर जीवन में''[15]

और इसका परिणाम है लगातार बढ़ रहा अपराध, लगातार बढ़ रही नफरतें और लोगों के दिलों में बढ़ रही दूरियां।

''लड़ाईयां इतनी होगी कि हर व्यक्ति का अपना राष्ट्र होगा
सब अपने अपने तलवे की भूमि पर अडिग
हर व्यक्ति का अपना ध्वज हर जाति का अपना कवि-''[16]

इतनी नफरत, इतनी आग यह प्रलय नहीं तो और क्या है? इस प्रलय से बचने के लिए कवि गंगा की शरण में जाता है। कवि जैसे स्वप्न में हो। यह कवि का एकालाप है, गंगा के सामने उसका विलाप है। वह माँ गंगा से अपने पितरों को बचाने की दुहाई करता है। कवि को डर है कि अतीतभक्षी उसके पितरों को मिटा देंगे। चेक लेखक मिलान कुंदेरा कहते हैं- ''एक तानाशाही व्यवस्था की सबसे बड़ी आकांक्षा होती है कि वह किसी तरह मनुष्य की स्मृति को मिटा सके, क्योंकि उसे मिटाकर ही वर्तमान के झूठ को स्वीकार किया जा सकता है।''

कवि इस तानाशाही व्यवस्था, इन अतीतभक्षियों से ही अपने इतिहास को, अपने लोगों के इतिहास को बचाना चाहता है। लेकिन आम लोगों के जीवन की अजाबें कम हो तब तो। आम आदमी तो मजबूर है शासन की चक्की में पिसने के लिए। कवि इस बात से गमजदा है, कवि गमजदा है अपने देश के युवाओं के बुरे हालात से। ये कैसा वक्त है जब गाँव खाली हो रहे हैं और शहर भर रहे हैं। कहाँ जा रहे हैं यो गाँव के लोग, क्या ये शहरों को आबाद करने में खुद को मिटा रहे हैं।

किशोर जिसका कलेजा चिड़िया की तरह कमजोर है, वो रिक्शा खींच रहा है। अभी-अभी युवा हुयी लडकी घर- घर बर्तन धो रही है। शहर इस नए खून को चूसकर ही तो फैल रहा है। जब देश का वर्तमान इतना कठोर है तो उसके भविष्य को लेकर क्या ही आशा की जा सकती है। वाकई यह प्रलय का दिन है। जब भिक्षुक का कटोरा चोरी हो जाए, सोये भिखारी का चीवर कोई ले जाए और अंधे को रास्ता दिखाने के बहाने उसकी छडी छीनकर कोई भाग जाए, जब वेश्याएं, यतीम और बूढ़े अपंग लोग लुटे जाने लगे तो वह वक्त ही प्रलय है।

तो वह प्रलय नहीं तो और क्या है? कहाँ गुम हो गए हैं मानवीय मूल्य? क्यों इतनी कम हो गयी है इंसानियत?

धूमिल अपनी पुस्तक पटकथा में लिखते है-

"सुनो।
आज मैं तुम्हें सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई छोटी है।
इस दुनियां में भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क
रोटी है।"[17]

भूखे आदमी को नैतिकता का ज्ञान देना पाप है। लेकिन यह कैसा विकास है जिसमे मनुष्य और रोटी के बीच का फासला बढ़ता ही जा रहा है। जिसमें इंसानियत रोज थोडा और मर रही है।

जब नदियों का पानी बाढ़ बन कर नालों नालियों से होकर रक्त तक बहने लगे। जब मजबूर और बेसहारा लोगों को भी लूटा जाने लगे तो समझो प्रलय का दिन आ गया। परतंत्रता और फासिज्म ही तो प्रलय है। यह कैसा जन-धन है जो हर एक की जेब से धन खींच ले रहा है।

लेकिन सरकार को इससे क्या है? उसे तो गठजोड़ ऐसा बिठाना है, जोड़ घटाव ऐसा करना है कि परिणाम हमेशा सत्ता ही रहे। फिर इसके लिए चाहे जाति विभेद करना पड़े या धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलानी हो।

"जाति एक दुधारू नहीं दुधारी तलवार है
और विभाजन असमाप्त कार्यक्रम
इसमें किसी भ्रम का प्रश्न नहीं
सात पुश्त बैठे खायेगा"[18]

एक चक्र चल रहा है। लोग गाँव से बेहतर जिन्दगी की तलाश में शहर पलायन कर रहे हैं। लेकिन शहर उन्हें खुद में सोख ले रहा है। उनका वजूद उनका अस्तित्व निगल ले रहा है। गाँवों में अब शहर गए अपने लोगों के इन्तजार के सिवाय कुछ भी तो शेष नहीं है। एक अरब से कुछ ज्यादा आबादी वाले लोगों में से अगर कुछ हजार लोग गायब भी हो जाए तो क्या ही फर्क पड़ता है। कुछ लोग काम की तलाश में हैं, कुछ काम पर गए लेकिन अब उनकी तलाश हो रही है। यह प्रलय नहीं तो और क्या है। चील के मूंह में सांप, सांप के मुंह में मेढक, मेढक के मुंह में कीट की तरह एक व्यक्ति दुसरे का शिकार कर रहा है। यही तो प्रलय है। सब कुछ जैसे पानी से ही घिरा है, कहीं रेत, धरती या हिमालय नहीं। यही तो प्रलय है। इस तरह कविता एक अंतहीन अंत के साथ समाप्त होती है। कविता का शीर्षक 'प्रलय' कविता की आखिरी पंक्ति में तीन बार आता है, और एक गुंजन पैदा करता है। जैसे किसी गहरे कुँए से आवाज आ रही हो-

"उड़ी जा रही चील नीले स्वच्छ गगन में
नीचे पानी केवल पानी पानी पानी
कहीं नहीं धरती न रेत न हिमालय
प्रलय प्रलय प्रलय"[19]

'प्रलय' एक केन्द्रीय भाव की तरह पूरी कविता में है। संघर्षरत आदमी यहाँ केंद्र में है। लेकिन वह भी एक साथ कई सारे भावों को समाहित किये हुए है। निराशा, संशय, डर, दु:ख, कोशिश, याचना, प्रतिकार जैसे तमाम भाव कविता में उस संघर्षरत मानव के द्वारा आते जाते हैं। वह मूल्यों का विघटन देख रहा है और उसे पूरा विश्वास है कि प्रलय आने वाला है। लेकिन यहाँ एक बात विशेष तौर पर उल्लेखनीय है, कि वह आस्थाविहीन मनुष्य नहीं है। वह लगातार खराब होती परिस्थितियों का सामान्यीकरण नहीं करता बल्कि वह यह स्वीकार करता है कि ऐसा होना प्रलय का सूचक है। उसका अब भी मूल्यों में विश्वास है और अब भी वह इस प्रलय से पार पाने की कोशिश में लगा है। यही जिजीविषा इस कविता के मूल में है।

इस कविता के केंद्र का मनुष्य और स्वयं यह कविता एक तरह से यथास्थितिवाद के प्रतिकार में खड़ी है। सारांश यह कि हिंदी की लम्बी कविताओं की समृद्ध परंपरा में अरुण कमल की लम्बी कविता 'प्रलय' एक नया अध्याय जोडती है।

सन्दर्भ सूची

1. कविता और समय, अरुण कमल, पृष्ठ 218
2. लम्बी कविताएँ: वैचारिक सरोकार, डॉ बलदेव वंशी, पृष्ठ 9
3. लम्बी कविताओं का रचना विधान, डॉ. नरेंद्र मोहन, पृष्ठ 8
4. डॉ. रामदरश मिश्र, 'मतान्तर' प्रवेशांक, मार्च 1970, संपादन- आनंद प्रकाश, डॉ. राजकुमार शर्मा, राजेन्द्र पाल, पृष्ठ संख्या- 27
5. लम्बी कविताओं का रचना विधान, डॉ. नरेंद्र मोहन, पृष्ठ 5
6. लम्बी कविता: स्वरुप, सृजन एवं परम्परा, डॉ. धीरेन्द्र पटेल, पृष्ठ 10
7. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 89
8. लम्बी कविता: स्वरुप, सृजन एवं परम्परा, डॉ. धीरेन्द्र पटेल, पृष्ठ 111
9. अँधेरे में (कविता संग्रह- चाँद का मुख टेढ़ा है, मुक्तिबोध, ज्ञानपीठ प्रकाशन
10. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 84
11. https://www.weforum.org/agenda/2020/10/climate-change-poor-hardest-how-protect- them/
12. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 86
13. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 86
14. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 87
15. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 87
16. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 88
17. पटकथा- कविता संग्रह, धूमिल की कविताएँ, सम्पादक- सुखवीर सिंह
18. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 90
19. प्रलय, योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 90

ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव: एक अध्ययन

डॉ० सौम्या शंकर

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, समाज विज्ञान एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

रितेश सिंह

शोध छात्र, समाजशास्त्र, समाज विज्ञान एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

शोध संक्षेप

इस शोध का उद्देश्य उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती जनपद के ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन करना है। इस अध्ययन के लिए हमने वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया हैं, जिसमें हमने सांख्यिकी उपकरण का प्रयोग किया है। आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण के लिए चित्र का भी इस्तेमाल किया गया है। इस शोध का निष्कर्ष यह है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकि का प्रयोग करते है। कृषि कार्यों में कीटनाशकों और उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग करते हैं। आधुनिक कृषि तकनीकि से आय में वृद्धि हुई है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को बढ़ाया है।

शब्द संकेत- वैश्वीकरण, ग्रामीण समाज।

प्रस्तावना

ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभावों का अवलोकन करने से पूर्व यह आवश्यक होगा की ग्रामीण समाज और वैश्वीकरण की अवधारणाओं को समझा जाये अत: हम यहां दोनो के अर्थ को समझते हुए प्रभावों की चर्चा करेगें।

ग्रामीण समाज:- ग्रामीण समाज वह है जहां पर उनके सदस्यों की ज्यादातर जरूरतों की पूर्ति कृषि तथा पशुपालन के माध्यम से पूर्ण हो जाती है। ग्रामीण समाजों में जनसंख्या का घनत्व काफी कम होता है। जनघनत्व कम होने के कारण कृषक का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से होता है। ग्रामीण समाज एक प्रकार से सरल समाज होता है जहां नगरों या महानगरों की सभ्यता के समान बनावटी भौतिक संस्कृति का जाल बिछा नहीं होता है। ग्रामीण समाज की अवधारणा को हम और अधिक स्पष्ट रूप से देख सकते है। संयुक्त राज्य जनगणना ब्यूरों के अनुसार किसी विशिष्ट स्थान की जनसंख्या के आकार और घनत्व के आधार पर ग्रामीण समाज को परिभाषित किया जा सकता है। भारत में प्राय: ग्रामीण शब्द की व्याख्या आय के आधार पर की जाती है।[1]

''ग्रामीण समुदाय परस्पर सम्बन्धित अथवा असम्बन्धित उन व्यक्तियों का समूह है जो कभी अनियमित रूप से एक अकेले परिवार से अधिक विस्तृत एक बहुत बड़े गृह अथवा परस्पर निकट स्थित गृहों में तथा कभी एक गली में रहता है तथा मूलत: अनेक कृषि योग्य खेतों में सामान्य रूप से खेती करता है, मैदानी भूमि को आपस में बांट लेता है तथा आस-पास की बेकार भूमि पर पशु चराता है एवं निकटवर्ती समुदाय की सीमाओं तक वह समुदाय अपने अधिकार का दावा करता है।''[2]

''ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं एवं ऐसे व्यक्तियों का समावेश होता है,जो एक छोटे से केन्द्र से चारो ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य एवं प्राथमिक हितों द्वारा आपस में बंधे रहते हैं।''[3]

''एक ग्रामीण समुदाय में स्थानीय क्षेत्रों के लोगों की सामाजिक अन्त: क्रिया तथा उसकी संस्थाएं सम्मिलित हैं जिनमें वह सामान्य क्रियाओं के केन्द्र खेती के चारों ओर बिखरी झोपड़ियों या ग्रामों में रहता है।''[4]

''ग्रामीण समाज व्यक्तियों का एक ऐसा सामाजिक समूह है, जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं तथा जीवन के सामान्य ढ़ंग को अपनाते हैं।''[5]

ग्रामीण समाज सम्बन्धी विभिन्न विचारों को देखने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण समाज प्रत्यक्ष सम्बन्धों पर आधारित है जिसके ज्यादातर व्यक्ति उन सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक तथा अन्य सेवाओं का प्रयोग करते हैं, जो उनके सामूहिक जीवन के लिए जरूरी है। ग्रामीण समाज में जीवन के आधारभूत मुद्दों, मनोभावों तथा क्रियाओं के सम्बन्ध में एक प्रकार का समझौता होता है जो सामान्यत: किसी गांव या कस्बे पर आधारित होता है। मूलत: ग्रामीण समाज की निर्भरता कृषि पर होती है,तथा खेती के द्वारा ही अपनी आजीविका का संचालन करता है, और साथ ही साथ आप-पास की बंजर भूमि को पशुओं के चराने में उपयोग करता है। साथ ही निकटवर्ती समुदायों की सीमाओं तक वह अपने अधिकारों का दावा करते हैं।

वैश्वीकरण:- वैश्वीकरण आज एक वैश्विक प्रघटना या बहस के लिए एक वैश्विक मुद्दा है। भले ही यह कोई नई घटना या प्रक्रिया न हो, परन्तु वास्तव में यह कोई पुरानी अवधारणा भी नहीं है। दुनिया के लोगो ने न तो कभी इस अवधारणा का प्रयोग किया था और न ही कभी इसके विषय में सुना था। पिछली शताब्दी में 80 के दशक से यह अवधारणा प्रचलन में आई और इसने विश्व समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकर्षिक किया।

वास्तविक रूप में देखें तो भूमण्डलीकरण, पूँजी, श्रम, प्रौद्योगिकी, वस्तुओं और ज्ञान का राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार निर्बाध संचरण है। यह आर्थिक संवृद्धि के उद्देश्य से दुनिया के देशों और व्यक्तियों के मध्य एकीकरण और अन्तक्रिया की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को उच्च क्षमता वाली संचार प्रौद्योगिकी जैसे-टेलीफोन, कम्प्यूटर तथा इंटरनेट ने सुगम बनाया है। इस प्रकार से देखे तो यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक प्रक्रिया हैं,जिसमें सीमा सम्बन्धी बहुत सारी औपचारिकताएं और आपत्तियां नहीं होती।[6]

मूलत: वैश्वीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया है, जो उदारीकरण तथा वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी एवं वित्त के राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर स्वतन्त्र संचालन को अभिव्यक्त करती है, जिसके कारण आज देश में विदेशी फर्में बहुत कुछ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगी हैं। लोग विदेशी वस्तुएं खरीदने लगे हैं और स्थानीय बचत का काफी हिस्सा देश के बाहर निवेश किया जाने लगा है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वैश्वीकरण राजनैतिक अथवा सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया नहीं है। इसका अर्थ केवल इतना है कि राजनैतिक तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया होते हुए भी भूमण्डलीकरण मूल रूप से एक आर्थिक प्रक्रिया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि भूमण्डलीकरण से आत्मनिर्भर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को एक-दूसरे से सम्बद्ध होने संबन्धी प्रक्रियाओं व सम्बन्धों के एक जटिल समुच्च सहित आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयकरण का बोध होता है।[7]

वैश्वीकरण के सैद्धान्तीकरण में एन्थोनी गिडिन्स की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होने अपनी पुस्तक ''द कान्सीक्वेनसेस ऑफ मॉडर्निटी'' (1990) में कहा है कि आधुनिकता का बहुत बड़ा परिणाम वैश्वीकरण है। यह इसलिए कि वैश्वीकरण में समय और स्थान को सामाजिक जीवन में नये सिरे से परिभाषित किया गया है। अपनी इस अवधारणा के स्पष्टीकरण में वे कहते हैं कि आज की दुनिया में संचार और उत्पादन तथा विनिमय की जो जटिल व्यवस्था बनी है उसने सम्पूर्ण स्थानीयता को कमजोर कर दिया है।[8]

वैश्वीकरण की प्रक्रिया द्वारा विश्व नागरिकता की भावना का विकास होता है जिसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र सभी राष्ट्रों के नागरिकों का ध्यान रखकर नीतियों का निर्धारण करता है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया के कारण ही ज्ञान का सर्वव्यापीकरण सम्भव हुआ है जिस कारण एक देश में होने वाले आविष्कार केवल उसी देश की सम्पत्ति मात्र नहीं रहते बल्कि वे सम्पूर्ण विश्वधरोहर बन जाते हैं। इससे दोनों देशों के बीच का अन्तर समाप्त हो जाता है। वैश्वीकरण नये उपकरणों और तकनीकों को बढ़ावा देता है। वैश्वीकरण के ही कारण विश्वस्तरीय समस्याओं का समाधान जिनमें शान्ति, सुरक्षा, गरीबी, अशिक्षा व बेरोजगारी आदि प्रमुख हैं भी सम्भव हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

- उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती जनपद के ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

निदर्शन प्रतिचयन

प्रस्तुत अध्ययन में निदर्शन द्वारा उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती जनपद के अंतर्गत 79 व्यक्तियों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र

अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के अंतर्गत आने वाले श्रावस्ती जनपद का चयन किया गया है ।

अध्ययन की इकाई

इस अध्ययन के लिए 100 गृह समूहों में से 79 व्यक्तियों का चयन किया गया है ।

निदर्शन की तकनीक

इस अध्ययन के लिए असम्भाविता सुविधात्मक निदर्शन तकनीक का प्रयोग किया गया है क्योंकि यह तकनीक सुविधाजनक है एवं कम समय में यह सेंपलिंग की जा सकती है।

अनुसंधान क्रियाविधि

इस अध्ययन के लिए अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है क्योंकि अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के द्वारा नई खोज की जा सकती है जिसमें कई प्रकार के सांख्यिकी के उपकरण लगाए जाते हैं जो हमें सही निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

आंकड़ा संग्रहण

उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती जनपद के ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए हमने प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ा एकत्रित किया है। प्राथमिक आंकड़ा एकत्रित करने के लिए हमने एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया है एवं द्वितीयक आंकड़ा के लिए हमने कई प्रकार के राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं का अध्ययन किया है तथा समाचार पत्रों का भी इस्तेमाल ग्रामीण समाज पर वैश्वीकरण का प्रभाव की अधिक जानकारी के लिए किया गया है।

सांख्यिकीय उपकरण

इस अध्ययन के विश्लेषण के लिए मैनें कई प्रकार के सांख्यिकी उपकरणों का प्रयोग किया है जिसमें प्रमुख रूप से आवृत्ति टेस्ट एवं प्रतिशत आंकड़ा विश्लेषण (Freqyency Test/ Percentage Analysis), का प्रयोग मुख्य रूप से किया है।

आंकड़ा विश्लेषण

आंकड़ा विश्लेषण के लिए प्रथम स्तर का अध्ययन किया गया है जिसमें प्रथम स्तर में आवृत्ति टेस्ट एवं प्रतिशत आंकड़ा विश्लेषण का प्रयोग किया गया है जो निम्नवत है:

सारणी संख्या-1.0 उत्तरदाताओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

mŸkjnkrkvksa dh lkekftd&vkfFkZd i"BHkwfe		vkofŸk	çfr'kr
आयु	40 से 50 वर्ष	28	35.44
	51 से 55 वर्ष	4	5.06
	56 से 60 वर्ष	31	39.24
	61 से 65 वर्ष	8	10.13
	65 वर्ष से ऊपर	8	10.13
लिंग	पुरूष	67	84.81
	महिला	12	15.19
शैक्षिक स्तर	अषिक्षित	32	40.51
	जूनियर हाईस्कूल	16	20.25
	10th	7	8.86
	12 th	4	5.06
	स्नातक	16	20.25
	परास्नातक	4	5.06
वैवाहिक स्तर	विवाहित	67	84.81
	अविवाहित	4	5.06
	विधवा/विधुर	8	10.13
पारिवारिक संरचना	संयुक्त	48	60.76
	एकाकी	31	39.24
पारिवारिक आय	वार्षिक–20000 रू0 से कम	12	15.19
	20000 से 40000	19	24.05
	40001 से 50000	8	10.13
	50001 से 75000	12	15.19
	75000 से ऊपर	28	35.44
व्यवसाय	कृषि	43	54.43
	मजदूरी	24	30.38
	व्यापार	8	10.13
	अन्य	4	5.06
dqy ;ksx		79	100-00

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि 35.44 प्रतिशत उत्तरदाता 40-50 वर्ष आयु वर्ग के हैं। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाता 51-55 वर्ष आयु वर्ग के हैं। 39.24 प्रतिशत उत्तरदाता 56-60 वर्ष आयु वर्ग के हैं। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाता 61-65 वर्ष आयु वर्ग के हैं तथा 10.13 प्रतिशत उत्तरदाता 65 वर्ष से ऊपर आयु वर्ग के हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अधिकांश उत्तरदाता 56 से 60 वर्ष के मध्य के हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में सभी आयु वर्ग के उत्तरदाता की सहभागिता रही है व अधिकांश उत्तरदाता 50 से 60 वर्षके मध्य के हैं। 84.86 प्रतिशत उत्तरदाता पुरूष हैं तथा 15.19 प्रतिशत उत्तरदाता महिला हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता पुरूष हैं। 40.51 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। 20.25 प्रतिशत उत्तरदाता जूनियर हाईस्कूल तक शिक्षित हैं। 8.86 प्रतिशत उत्तरदाता 10वीं तक शिक्षित हैं।

5.06 प्रतिशत उत्तरदाता 12वीं तक शिक्षित हैं। 20.25 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक तक शिक्षित हैं। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाता परास्नातक तक शिक्षित हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता अशिक्षित हैं। 84.81 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित हैं। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाता विधवा/विधुर हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता विवाहित हैं। 60.76 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवारिक संरचना से हैं। 39. 24 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता संयुक्त परिवारिक संरचना से हैं। 15.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 20000 रू से कम है। 24.05 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 20000 से 40000 है। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 40001 से 50000 है। 15.19 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 50001 से 75000 है। 35.44 प्रतिशत उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 75000 से ऊपर है अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 75000 से ऊपर है। 54.43 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि का कार्य करते हैं। 30.38 प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी का कार्य करते हैं। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाता व्यापार करते हैं। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य कार्य करते हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता कृषि का कार्य करते हैं।

वैश्वीकरण का सामाजिक - सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव

D;k vki /kkfeZd dk;ZØe djrs gS\

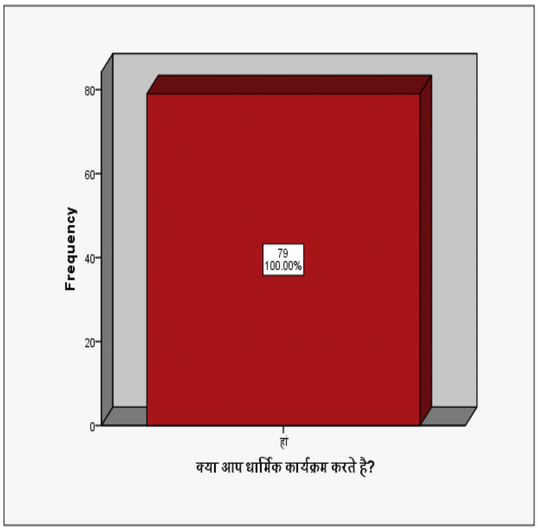

D;k /kkfeZd dk;ZØeksa esa lkewfgd mRlkg esa dksbZ cnyko vk;k gS\

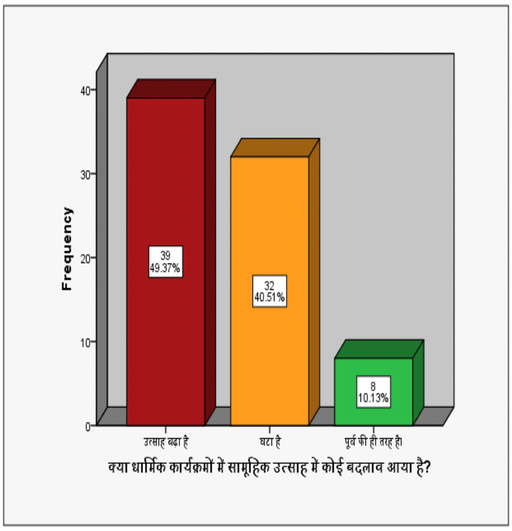

बार चार्ट संख्या-1.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट है कि सभी 100.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की धर्मिक कार्यक्रम करते हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में सभी उत्तरदाताओं ने कहा की धार्मिक कार्यक्रम करते हैं। 49. 37 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की धार्मिक कार्यक्रमों में सामूहिक उत्साह बढ़ा है 40.51 प्रतिशत उत्तरदाता ने कहा की धार्मिक कार्यक्रमों में सामूहिक उत्साह घटा है 10.13 प्रतिशत उत्तरदाता ने कहा की धार्मिक कार्यक्रमों में सामूहिक उत्साह पूर्व की ही तरह है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता ने कहा की धार्मिक कार्यक्रमों में सामूहिक उत्साह बढ़ा है।

vk/kfud lapkj d s lk/kuksa dk ç;ksx djus d s ihNs D;k dkj.k g\	vki eksckby dk ç;ksx fdld s fy, djrs g\
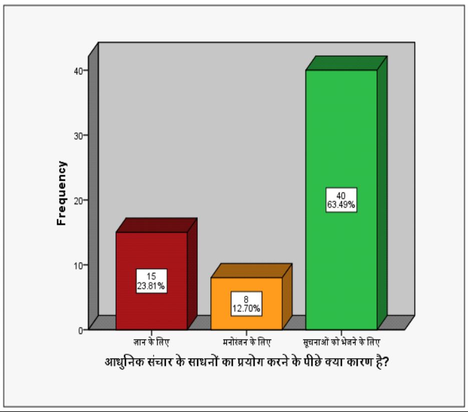	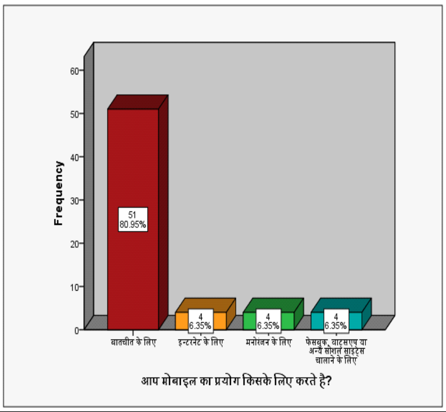

बार चार्ट संख्या-2.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट है कि 23.81 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक संचारके साधनों का प्रयोग ज्ञान के लिए किया जाता हैं। 12.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक संचार के साधनों का प्रयोग मनोरंजन के लिए लिए किया जाता है। 63.49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक संचार के साधनों का प्रयोग सूचनाओं को भेजने के लिए किया जाता है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक संचार के साधनों का प्रयोग सूचनाओं को भेजने के लिए किया जाता है। 80.95 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की मोबाइल का प्रयोग, बातचीत के लिए करते हैं, 6.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की मोबाइल का प्रयोग, इन्टरनेट के लिए करते हैं, 6.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की मोबाइल का प्रयोग, मनोरंजन के लिए करते हैं, 6.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की मोबाइल का प्रयोग, फेसबुक, वाट्सएप् या अन्य सोशल साइट्स चलाने के लिए करते हैं, अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की मोबाइल का प्रयोग, फेसबुक, वाट्सएप् या अन्य सोशल साइट्स चालाने के लिए करते हैं।

D;k vk/kfudrk d s ifj.kkeLo:i xzkeh.k {ks= esa i;kZoj.k dks {kfr igqaph g\	D;k NqvkNwr dh Hkkouk esa ifjorZu vk;k g\
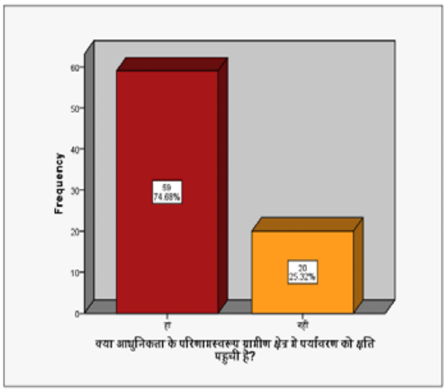	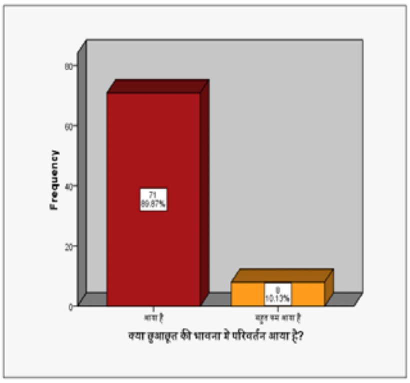

बार चार्ट संख्या-3.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट है कि 74.68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिकता के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण को क्षति पहुची है। 25.32 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिकता के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण को क्षति नहीं पहुची है। अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिकता के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण को क्षति पहुची है। 89.87 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की छुआछूत की भावना में परिवर्तन आया है । 10.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की छुआछूत की भावना में परिवर्तन बहुत कम आया है। अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की छुआछूत की भावना में परिवर्तन आया है।

<table>
<tr><td>D;k vkidk yxrk gS fd fookg lEcU/k viuh gh tkfr esa gksuk pkfg,\</td><td>D;k vki viuk xkao ds lHkh tkfr;ksa ds O;fä;ksa ds lkFk [kkuk [kk ldrs gS\</td></tr>
<tr><td>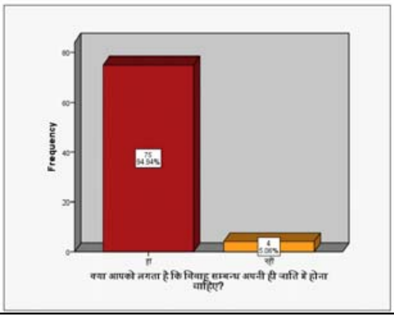
</td><td>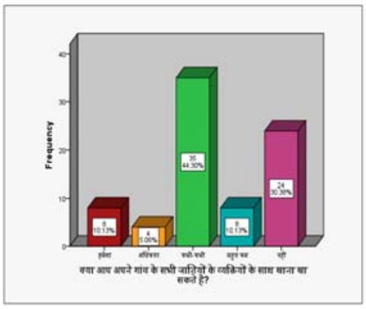
</td></tr>
</table>

बार चार्ट संख्या-4.0

उपर्युक्त सारणी व बार चार्ट से स्पष्ट है कि 94.94 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की हां विवाह सम्बन्ध अपनी ही जाति में, होना चाहिए। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की विवाह सम्बन्ध अपनी ही जाति में,नहीं होना चाहिए,अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की विवाह सम्बन्ध अपनी ही जाति में, होना चाहिए। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ हमेशा खाना खा सकते हैं। 5.06 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ अधिकतर खाना खा सकते हैं। 44.30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ कभी-कभी खाना खा सकते हैं। 10.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ बहुत कम खाना खा सकते हैं ।30.38 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ खाना नहीं खा सकते हैं। अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा हैं कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ कभी-कभी खाना खा सकते हैं।

<table>
<tr><td>D;k vki ekurs gS fd ifjokj ds egRoiw.kZ fu.kZ;ksa esa efgykvksa dh jk; yuh pkfg,\</td><td>D;k vkidks yxrk gS fd efgykvksa dks dgha Hkh vkus&tkus dh iw.kZ Lora=rk gksuh pkfg,\</td></tr>
<tr><td>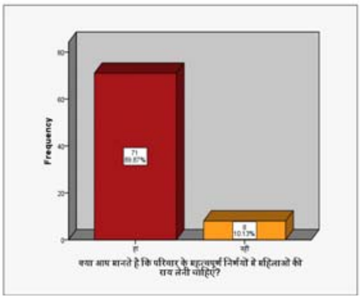
</td><td>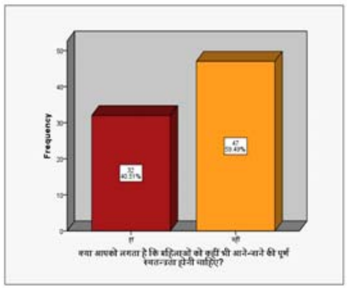
</td></tr>
</table>

बार चार्ट संख्या-5.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट हैं कि 89.87 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में महिलाओं की राय लेनी चाहिए । 10.13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में महिलाओं की राय नहीं लेनी चाहिए अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा हैं कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में महिलाओं की राय लेनी चाहिए। 40.51 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की महिलाओं को कहीं भी आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। 59.49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की महिलाओं को कहीं भी आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए । अतः आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की महिलाओं को कहीं भी आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए।

क्या आप परिवार की महिलाओं को शिक्षा, रोजगार हेतु बाहर जाना उचित मानते हैं?

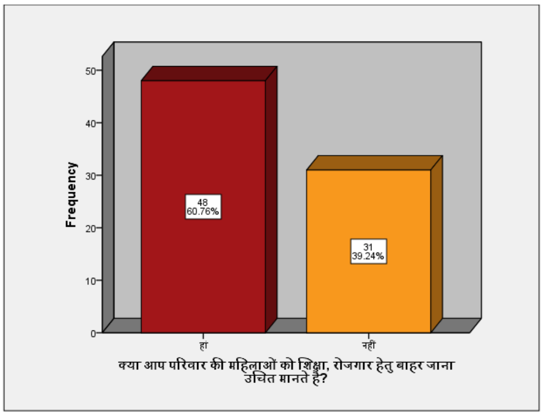

बार चार्ट संख्या-6.0

D;k vki —f"k d {k= e uohu rduhfd dk ç;kx djr g\	D;k vki —f"k dk;k e dhVuk'kd vkj mPp x.koÙkk;q ch tk dk ç;kx djr g\
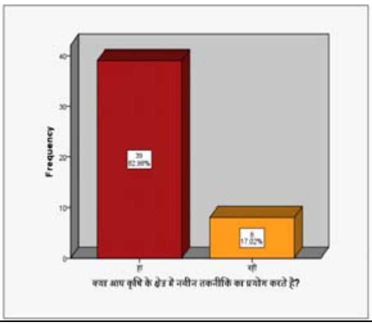	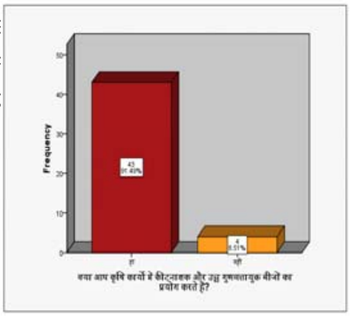

...हा की परिवार की महिलाओं को शिक्षा, रोजगार हेतु बाहर ...हिलाओं को शिक्षा, रोजगार हेतु बाहर जाना उचित नहीं है। ...श उत्तरदाताओं ने कहा की परिवार की महिलाओं को शिक्षा,

...वैश्वीकरण

बार चार्ट संख्या-7.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट हैं कि 82.98 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकि का प्रयोग करते हैं । 17.02 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकि का प्रयोग नहीं करते हैं। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा हैं कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकि का प्रयोग करते हैं। 91. 49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि कार्यों में कीटनाशक और उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग करते हैं। 8.51 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि कार्यों में कीटनाशक और उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग नहीं करते हैं। अत: आंकड़ों के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि कार्यों में कीटनाशक और उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग करते हैं।

D;k vk/kfud —f"k rduhfd ls vki dh vk; esa of) gbZ gS\	D;k vk/kfud —f"k i)fr us xzkeh.k {ks=ksa esa cjkstxkjh dks c<k;k gS\
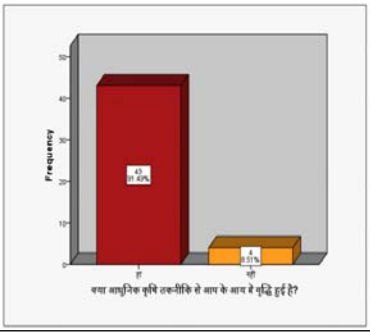	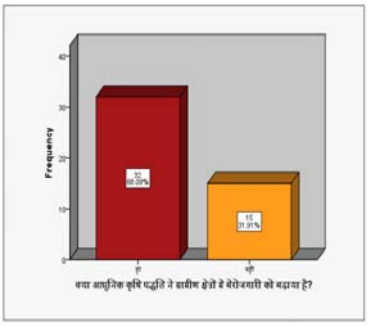

बार चार्ट संख्या-8.0

उपर्युक्त बार चार्ट से स्पष्ट है कि 91.49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि तकनीकि से आय में वृद्धि हुई है। 8.51 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि तकनीकि से आय में वृद्धि नहीं हुई है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि तकनीकि से आय में वृद्धि हुई है। 68.09 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को बढ़ाया है। 31.91 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को नहीं बढ़ाया है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा हैं कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को बढ़ाया है।

निष्कर्ष

इस शोध का निष्कर्ष यह है कि अध्ययन में सभी आयु वर्ग के उत्तरदाता की सहभागिता रही है व अधिकांश उत्तरदाता 56 से 60 वर्ष के मध्य के हैं। अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता पुरूष हैं। अधिकांश उत्तरदाता अशिक्षित हैं। अधिकांश उत्तरदाता विवाहित हैं। 60.76 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त पारिवारिक संरचना से हैं। अधिकांश उत्तरदाता संयुक्त पारिवारिक संरचना से हैं। अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं की वार्षिक आय 75000 से ऊपर है। अधिकांश उत्तरदाता कृषि का कार्य करते है।

वैश्वीकरण का सामाजिक - सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव

अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में सभी उत्तरदाताओं ने कहा की धार्मिक कार्यक्रम करते हैं। अधिकांश उत्तरदाता ने कहा की धार्मिक कार्यक्रमों में सामूहिक उत्साह बढ़ा है। आधुनिक संचार के साधनों का प्रयोग सूचनाओं को भेजने के लिए किया जाता है। मोबाइल का प्रयोग, फेसबुक, वाट्सएप् या अन्य सोशल साइट्स चालाने के लिए करते हैं। आधुनिकता के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में पर्यावरण को क्षति पहुची है। छुआछूत की भावना में परिवर्तन आया है। विवाह सम्बन्ध अपनी ही जाति में, होना चाहिए। अपने गांव के सभी जातियों के व्यक्तियों के साथ कभी-कभी खाना खा सकते हैं। परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में महिलाओं की राय लेनी चाहिए। अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की महिलाओं को कहीं भी आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिए। परिवार की महिलाओं को शिक्षा, रोजगार हेतु बाहर जाना उचित है।

ग्रामीण अर्थतन्त्र एवं वैश्वीकरण

अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीकि का प्रयोग करते हैं। कृषि कार्यों में कीटनाशक और उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का प्रयोग करते हैं। आधुनिक कृषि तकनीकि से आय में वृद्धि हुई है। अत: आंकड़ो के अवलोकन से ज्ञात हो रहा है कि अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाताओं ने कहा की आधुनिक कृषि पद्धति ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को बढ़ाया है।

संदर्भ

1. जैन, प्रकाश चन्द्र (2019): ग्रामीण समाजशास्त्र भारतीय परिप्रेक्ष्य, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–48.
2. लवानिया, एम0एम0 एवं जैन, शशी के0 (2011): ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ–59.
3. Merrill, Francis Ellsworth & Eldredge, H. Wentworth (2007): Culture and Society: An Introduction to Sociology, Prentice-Hall, University of California, Page- 336.
4. Sanderson, Dwight (2006): The Rural Community: The Natural History of a Sociological Group, Ginn Publisher, University of Michigan, Page-42.
5. जैन, प्रकाश चन्द्र (2019): ग्रामीण समाजशास्त्र भारतीय परिप्रेक्ष्य, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–49.
6. सिंह, शिवबहाल (2010): विकास का समाजशास्त्र, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–173
7. सिंह, राम गोपाल (2011): वैश्वीकरण मीडिया और समाज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृष्ठ–2.
8. दोषी, एस0एल0 (2019): आधुनिक समाजशास्त्रीय विचारक, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ–382.

पर्यावरणीय राजनीतिः कुछ अवधारणात्मक मुद्दे

निखिल कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

भूमिका

'याले सेंटर फॉर इन्भीरॉन्मेंटल लॉ एण्ड पॉलिसी' द्वारा तैयार 2014 के पर्यावरण उपलब्धि सूचकांक (इनभीरॉन्मेंटल परफॉरमेंस इन्डेक्स) के अनुसार भारत की कोटि रैंक 178 देशों में 155 वां है। जलवायु न्याय कौन दिलाएगा? क्या जलवायु पर किसी का नियंत्रण है जो आह्वान मात्र से जलवायु न्याय मिल जायगा? हम जानते हैं कि पर्यावरणीय संतुलन के बिगड़ने का मुख्य कारण मानवीय गतिविधियां ही है। मनुष्य वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों (CO2, CH4, N2O¼ का उत्सर्जन विभिन्न तरीकों से करता रहा है। विकास के क्रम में उठाए गए सभी कदम पर्यावरण के विरूद्ध पड़े क्योंकि हमने इसे ध्यान में रख कर कदम नहीं उठाए। पिछले कुछ दशकों से हम सतत विकास (sustainable development) का नारा लगा तो रहे हैं पर उस दिशा में मजबूत प्रयास नहीं कर पाते। विपन्नता एवं आर्थिक पिछड़ापन से निपटने में पर्यावरण पर ही चोट पड़ता है। बड़े-बड़े डैम, सड़कें, उद्योगों की स्थापता आदि में हम पर्यावरण को छेड़ते रहे हैं। हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर्यावरण स्वयंसेवियों को नजरअंदाज करती रही है। सुन्दर लाल बहुगुणा द्वारा संचालित चिपको आंदोलन या राजेन्द्र सिंह द्वारा जल संरक्षण के कार्य या मेधा पाटेकर द्वारा नर्मदा बचाओ आन्दोलन कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनका राष्ट्रव्यापी प्रसार नहीं हुआ और न हीं उनके आधार पर ऐसी नीतियां बनाई गई जिससे हमारा पर्यावरण संरक्षित रह सके। आज विडम्बना यह है कि पर्यावरण का प्रदूषण जो भी करे फल सभी को भुगतना पड़ता है। एक ओर सम्पन्न देश या सम्पन्न वर्ग ज्यादा प्रदूषण करते हैं और दूसरी ओर गरीब देश एवं समाज सर्वव्यापी प्रेरक की कमी है। प्राचीन काल से ही पर्यावरण की संरक्षा भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण अंग रही है। धर्म के पालन के क्रम में राजा-प्रजा दोनों प्रकृति की संरक्षा करते थे। परन्तु आज ऐसे तत्व का लोप हो गया है। मेरी मान्यता है कि ऐसी स्थिति की प्राप्ति केवल राजनीति से की जा सकती है।

बढ़ती भूमण्डलीय उष्मा एवं जलवायु परिवर्तन की स्थिति का विकासशील देशों खासकर भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थ व्यवस्था एवं इसके प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया है कि दक्षिण और दक्षिणपूर्व एशिया के वायुमण्डल में CO2 कार्बन डाई ऑक्साइड का जमाव लगभग दुगुना हो गया है जिसका परिणाम यह होगा कि जल्द ही इस क्षेत्र में भारी वर्षा की आवृति बहुत अधिक बढ़ जायगी। इन परिवर्तनों से प्राकृतिक आपदाओं और महामारियों की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। जलप्लाव और वाष्पीकरण के स्वरूप में परिवर्तन के कारण न केवल सतही जल अपितु भूमिगत जल का भी क्षरण हो रहा है जिसका सीधा प्रभाव आर्थिक गतिविधियों, मानव वस्तियों और मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। अर्थात् कृषि, शहरी जीवन, जंगलों की प्राकृतिक पर्यावरण और जलसंसाधन जैसे क्षेत्र इसके चपेट में आसानी से आ गये हैं।

प्राकृतिक आपदाओं का सीधा प्रभाव खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासीय कुव्यवस्था के रूप में कृषि पर भी पड़ता है। भारत के उच्चावच में 7500 कि.मी. समुद्र तट पर समुद्री संसाधनों पर निर्भर रहने वाली आबादी चक्रवातों, सुनामी एवं तुफानों का सामना करते हैं। 65 प्रतिशत नदी घाटियों में रहने वाली आबादी बाढ़ एवं सुखे से ग्रसित हैं। उन आपदाओं का प्रभाव गरीबों पर अधिक होता है। इन आपदाओं के अतिरिक्त भूमि क्षरण का कुप्रभाव स्पष्ट दिखता है। कृषि वैज्ञानिकों का मत है कि 0.50 तापमान की वृद्धि से गेहूँ के उत्पादन में 10 प्रतिशत की कमी आ जाती है। इसके अलावा फसलों की अवधि में भी वृद्धि, फसलों के प्रकाश

संश्लेषण की क्रिया में तथा हानिकारक कीटों में वृद्धि के कारण कृषि में प्रयुक्त खादों की क्षमता में भी कमी आ जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि पर्यावरण संरक्षित होगा ता रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का भी हल आसानी से निकलेगा।

यहां तीन मान्यताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं-

पहला, पर्यावरण में ह्रास का मुख्य कारण प्रकृति नहीं बल्कि मानवीय गतिविधियां और उनसे उत्पन्न परिस्थितियां हैं। दूसरा, प्राकृतिक स्तर पर वातावरण में हुए ह्रास की भरपाई प्रकृति स्वयं कर लेती है परन्तु मानवीय गतिविधियों द्वारा हुए ह्रास की भरपाई प्रकृति नहीं कर सकती तथा तीसरा, राजनीतिक मुद्दे पर लाने में कोई दिलचस्पी नहीं होती क्योंकि इनसे उनको चुनावी लाभ नहीं मिलता। अत: इससे निर्मित नीतियों के कार्यान्वियन में ढ़ीलाई आ जाती है।

उपरोक्त परिस्थितियों के आलोक में पर्यावरण का अध्ययन राजनीतिक दृष्टिकोण से करना आवश्यक प्रतित होता है। जिसे विद्वानों ने पर्यावरणीय राजनीति एक व्यापक शब्द है जो 1990 के दशक से प्रयोग में आने लगा। यहां तक कि कुछ विद्वानों ने तो राजनीतिक चिंतन की उदारवादी धारा में भी इसे ढ़ूढ़ने का प्रयास किया। प्रस्तुत लेख में पर्यावरणीय राजनीति के अध्ययन के प्रयासों को निम्न प्रमुख आयामों में आकलन या समीक्षा करने का प्रयास किया गया है-

1. पर्यावरणीय राजनीति के पारिभाषिक तथा सैद्धांतिक आयाम,
2. सतत् विकास,
3. जलवायु परिवर्तत तथा प्रदूषण के दुष्प्रभावों के रोकथाम के लिए बनाई गई नीतियाँ,
4. पर्यावरण संरक्षा में बने न्यायशास्त्र, तथा
5. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति आदि।

प्रस्तुत आलेख में लेखक द्वारा इन्हीं आयामों के संदर्भ में उपलब्ध साहित्य का सिंहावलोकन किया गया है।

पर्यावरण राजनीति : पारिभाषिक एवं अवधारणात्मक पक्ष

यद्यपि पर्यावरण के प्रति चिंता को सबसे पहले 1834 में थॉमस रॉवरी ने प्रकट किया और लोगों को इस ओर ध्यान आकृष्ट किया फिर भी 1960 से 90 के दशक में लोगों के अन्दर यह जागृति उत्पन्न हुई कि सम्पूर्ण मानव-जाति विश्व के साधन एवं सामाजिक तथा प्राकृतिक दूषित हो रहा हैं और इसी के फलस्वरूप विकास नीतियों और योजनाओं के संदर्भ में सार्वजनिक वाद-विवाद आरम्भ हो गया। 1963 में प्रदूषण की समस्याओं को सुलझाने के लिए दो संगठन Friends of Earth or Green Politics की स्थापना की गयी।

डॉबसन ने राजनीतिक चिन्तन धारा में पर्यावरण संबंधी चिन्ता को इंगित किया है। उसने यह पाया कि लगभग सभी राजनीति चिन्तक खासकर उदारवादी चिन्तको ने मनुष्यों के अधिकारों से आगे जाकर जानवरों के अधिकारों का भी चिन्ता किया है। प्रकृति को अक्षुण रखना भी उनके विचारों में सम्मिलित है। डॉबसन ने रेखांकित किया है कि प्राचीन चिन्तक जैसे प्लेटो, अरस्तु आदि ने भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। रॉबर्ट गार्नर ने पर्यावरण राजनीति को विस्तृत रूप से परिभाषित किया है तथा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में पर्यावरण की भूमिका चिन्हित किया है। हेगर एवं फिसर ने बताया है कि विभिन्न संस्कृतियों में प्रकृति के साथ जीवन बिताने की परम्परा रही है। फलस्वरूप पर्यावरणीय राजनीति विभिन्न संस्कृतियों के तालमेल में रही हैं हेवुड ने राजनीति विचारधारा के परिक्षण में पर्यावरण के महत्व को चिन्हित किया है। जे0 हेयिस ने विकासशील देशों में शक्ति की राजनीति का पर्यावरणीय आन्दोलन के साथ संबंधो को परिलक्षित किया है। पॉल राबिन्स ने स्थानीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के बीच विरोधाभाषों को चिन्हित किया है। रॉबिन्स का ध्यियन भौगोलिक रानीति पर आधारित है। एक सम्पादित ग्रन्थ में वाटसन इत्यादी ने मौसम परिवर्तन के क्षेत्रीय प्रभावों का विवेचन किया हैं इसमें विभिन्न लेखको द्वारा जलवायु परिवर्तन के विभिन्न मुद्दों पर लेख संग्रहित है। उचिता डे जोयशा ने, दक्षिण एशिया के देशों में सस्टेनेबल कन्जम्सन की स्थिति का गहन अध्ययन किया है उसने पर्यावरण एवं विकास के विरोधाभाषो की गहरायी से विवेचना की है।

यहां 'पर्यावरणीय राजनीति' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसलिए यहां इसे स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। पर्यावरणीय साहित्य में इसके लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है जैसे 'हरित या ग्रीन', 'पारिस्थितिकी' और पर्यावरण संरक्षा। हरित या ग्रीन

शब्द का प्रयोग 1950 की दशक से ही होता रहा है। परन्तु आजकल तो पर्यावरणपेक्षी हर घटना, परिघटना तथा विचार को ग्रीन शब्द से व्यक्त किया जाता है जैसे ग्रीन टेक्नॉलॉजी, ग्रीन बिल्डिंग, ग्रीन पॉलिटिकल पार्टी आदि। पारिस्थितिकी या इकॉलॉगिज्म का अर्थ मानव और प्रकृति के बीच अंत:क्रिया या अंत: संबंधों का अध्ययन करने से है। वर्तमान औद्योगिक समाज में पर्यावरण संरक्षा शब्द का खूब प्रयोग होता है जिसका तात्पर्य आर्थिक वृद्धि और भौतिक साधनों पर पर्यावरण ह्रास से उत्पन्न खतरों से निपटने एवं हरित प्रबंधन करने से है। इसी क्रम में सतत् (Sustainble) का नाम दिया गया है ताकि आने वाली पीढ़ीको कम से कम वर्तमान पर्यावरण मिल सके। गार्नर ने 'पर्यावरणीय राजनीति' पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'यह सर्वमान्य है कि आधुनिक औद्योगिक समाज की संरचनाओं में वातावरणीय ह्रास के कुप्रभावों को कम करने के लिए थोड़ा बहुत परिवर्तन करने मात्र से पर्यावरणीय त्रासदी को रोका नहीं जा सकता बल्कि आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में मौलिक परिवर्तन कर एक भिन्न संस्थाओं एवं मूल्यों वाले समाज की रचना करना है ताकि इस संकट की गम्भीरता को समझते हुए लोगों के जीवन को संतोषजनक और परिपूर्ण बनाया जा सके।' पर्यावरणीय राजनीति से हमारा तात्पर्य ऐसी राजनीतिक व्यवस्था से है जिसमें मानव और प्रकृति द्वारा एक दूसरे को प्रभावित करने वाले तत्वों का प्रबंधन सही तरीके से किया जा सके। इस प्रकार यह पर्यावरण का वैज्ञानिक अध्ययन करना या समाज का पर्यावरणीय अध्ययन करना नहीं है' अपितु यह राजनीतिक निर्णयों का पर्यावरण एक राजनीतिक मुद्दा बनता है अथवा नहीं बनता है। इसमें राजनीतिक संस्थाओं का सार्वजनिक पर्यावरणीय संदर्भ में मूल्यांकन को प्रेरित किया जाता है। अर्थात् पर्यावरण के प्रति सकारात्मक या नाकारात्मक सरकारी प्रतिक्रियाओं तथा इस विषय पर बने नीतियों एवं कानूनों में सतत् विकास की बाधाओं की पहचान कर निर्णय निर्माण हेतु उपाय सुझाना भी पर्यावरणीय राजनीति का ही उद्देश्य है।

आर. के. वर्मा ने स्पष्ट किया है कि पर्यावरण का अध्ययन राजनीति विज्ञान से तब संबंधित हो जाता है जब या ता पर्यावरणीय ह्रास का असर मानव जीवन पर पड़ता हो या मानव जीवन और गतिविधियों का प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता हो। पर्यावरण केवल एक वैज्ञानिक परिघटना नहीं है बल्कि यह राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक तथा विकास से संबंधित है। पर्यावरणीय राजनीति के दो आयाम हैं- पहला, पर्यावरण से जब राजनीतिक प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा दूसरा, राजनीतिक प्रक्रिया या राजनीतिक निर्णयों से पर्यावरण प्रभावित होता हो। अर्थात् सरकार अपने नीति निर्माण प्रक्रिया द्वारा पर्यावरणीय मामलों को कैसे निपटाया जाता है जैसा विषय पर्यावरणीय राजनीति का विषय वस्तु है। यहां गार्नर की चिंता उल्लेखनीय है- 'We must also seek to explain why it is that the environment has become a political issue, what impact political decisions have had on environment, why some decisions were taken rather than others and finally what political structures are best able to protect the environment.'

कई विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न तरीकों से विवेचित किया है। पर्यावरणीय राजनीति यह बताने का प्रयास करता है कि मानवता किस प्रकार पर्यावरण को सतत् रखने के लिए स्वयं को व्यवस्थित करते हैं। ड्राइजेक और स्कॉल्सबर्ग (Dryzek and Schlosbery) ने इस विषय के 1960 के दशक से विकसित होना मानते हैं जबकि रॉजेनबर्ग इसे पृथ्वी दिवस के परिणाम के रूप में 1970 के दशक से मानते हैं। जो भी काल हो यह बीसवीं सदी के मध्य से अधिक प्रचलित हुआ और दिनों दिन विकसित होता गया। ड्राईजेक एवं स्कॉल्स्वर्ग ने ठीक ही लिखा है- 'Environemental politics today encompasses discussions of the various political, social and economic causes of ecological problems and crises, the ethics of our relationship with natural system that sustain us; our environmental movements and designs for alternative, more sustainable forms of political organisations'.

पर्यावरण और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति:

पर्यावरणीय चिंता कुछ खास देशों तक ही नहीं बल्कि विकसित देशों सहित विकासशील देशों की चिंता बन गई है। इन चिंताओं में उर्जा का संचयन, हातिकारक कचड़े, न्युक्लियर शक्ति की दु:स्थितियां, वायु एवं जल प्रदूषण, प्रजातियों का लोप, पशुओं के अधिकार, जंगली जीवों की संरक्षा, जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय जोखिमों का समान वितरण प्रमुख हैं। संक्षेप में कहा जाय तो यह बहुर्राष्ट्रीय स्तर का मुद्दा बन गया है। जलवायु परिवर्तन मुहिम की पृष्ठभूमि विवादों से भरी पड़ी है। पर्यावरण के कुप्रभावों को न केवल प्रदूषित करने वाले देश ही नहीं अपितु अन्य गरीब देशों को भी झेलना पड़ता है। इस प्रकार विश्व स्तर पर सहयोग न हो तो कुछ भी ठीक नहीं हो सकता। विकासशील देशों को तीव्र विकास दर चाहिए जिससे पर्यावरण को हानि पहुंचती है। इसी

लिए विकसित देशों द्वारा सतत् विकास का हो हल्ला उठाकर विकासशील देशों पर दबाव डाला जाता है। मार्टल ने ठीक ही लिखा है- 'One of the major criticisms of environmentalists is that they are essentially engaged in a selfish, class based exercise which seeks to deprive the less ffaluent people of the world of the standard of living themselves enjoy.' इस विषय के विद्वानों द्वारा विश्वस्तरीय पर्यावरणीय राजनीति का अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की दिशा में करने की होड़ लग गई। फलस्वरूप राजनीतिक शक्तियां इन संस्थाओं के निर्माण एवं कार्यकरण में बल दे रहीं हैं। हैरिस सने सर्वाधिक विस्तृत विवरण देते हुए अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक शक्तियों का अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की ओर खींचा है।

पेरिस में हुए इक्कीसवें सम्मेलन में सभी देशों ने मिल कर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए एक पुख्ता कार्यक्रम दिया। अमेरिका और चीन के राष्ट्रपति ने इसके प्रति अपनी प्रयत्नों और प्रतिबद्धताओं पर पानी फिरता नजर आ रहा है। रिपब्लिक कांग्रेस ने मौसम परिवर्तन विज्ञान को मात्र अटकलबाजी और निराधार कल्पना का विज्ञान मानते हुए पिछले सम्मेलन की बातों को मानने से इनकार कर दिया हैं रिपब्लिकन पार्टी का एजेंडा कार्बनडाइऑक्साइड के उत्सर्जन पर किसी नियंत्रण के खिलाफ जाता है। उनके अनुसार मौसम परिवर्तन एजेंडा अर्थव्यवस्था, उर्जा सेक्टर और लोगों के जीवन पर सरकारी नियंत्रण का उदारवादियों का पकाया हुआ वैश्विक षडयंत्र है। पर्यावरण आंदोलन को वामपंथी आतंकवाद तक कहा गया। यह विडंबना ही है कि रिपब्लिकन राष्ट्रपति रिचर्ड निकसन ने ही दिसम्बर 1970 में क्लीन एयर एक्अ पर हस्ताक्षर किया था और इसे ऐतिहासिक कदम तक बताया था। लेकिन 1980 में रिपब्लिकन रोनाल्ड रिगन के राष्ट्रपति बनने के बाद से ही पर्यावरण आंदोलन के उपर रूढिवादियों की मार पड़नी शुरू हो गयी। पर्यावरण सुधार के लिए आवंटित धनराशि में कटौती की गयी, साथ ही नवीकरणीय उर्जा पर किए जा रहे शोधों को भी टाल दिया गया। यह विरोध इतना तीखा था कि जिमी कार्टर के समय व्हाइट हाउस पर लगाये गये सोलर पैनल तक को उतार दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि खनिज तेल, गैस और कोयला लॉबी इस रूढ़िवादी विचारधारा को अपना समर्थन दे रहे हैं। रिपब्लिकन अपने इस पक्ष को डिरेग्युलेशन के नाम से लागु कर रहे हैं।

नवनिर्वाचित राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के वक्तव्य लगातार उसी चिंताजनक रुढ़िवादी अर्थव्यवस्था की ओर संकेत कर रहे है। ट्रंप न सिर्फ पर्यावरण मुहिम के खिलाफ है, बल्कि नाभिकीय हथियारों की होड़ में भी खुल कर दिखायी दे रहे हैं। पूरी दुनिय इतनी चिंतित है कि कई हस्तियों और देशों ने बराक ओबामा से जाते-जाते कुछ ऐसा करने का भी आग्रह किया है कि ट्रंप इस पृथ्वी को नाभिकीय अस्त्रों से न उड़ा सकें।

जहां एक ओर, अमेरिका पर्यावरण संरक्षण की अवहेलना करने पर तुला हुआ है, वहीं दक्षिण एशिया पर मौसम परिवर्तन के बारे में इंटरगवर्नमेंटल पेनल ऑन कलाइमेट चेंज ने अपनी पांचवीं रिपोर्ट में बताया है कि वर्ष 2005 में मुंबई में और 2008 में कोसी नदी की बाढ़ के कारण 60 हजार लोग नेपाल में और 35 लाख लोग भारत में बेघर हुए थे। दक्षिण एशिया में दुनिया की एक बहुत बड़ी आबादी रहती है, बल्कि इस सदी के मध्य तक दुनिया की आधी आबादी दक्षिण एशिया में रह रही होगी। कई देश, कई शहर और बस्तियां कम उंचाई की जगहों पर अवस्थित हैं। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण बढ़ते नापमान की वजह से इस सदी के अंत तक समुन्द्र तल से 88 सेमी तक बढ़ सकता है। इसी सम्मेलन में वर्ल्ड मेटेरोलॉजिकल ऑर्गेनाइजेशन द्वारा प्रस्तुत रिर्पोट में वर्ष 2015-16 के दौरान अल-निनो के कारण समुद्र तल में पन्द्रह मिमी बढ़ोतरी की बात की गई है। समुद्र तल में इस तेजी से उठान के कारण बांग्लादेश जैसा देश पूरी तरह से तबाह हो सकता है। बस्तियां और इन्फ्रॉस्टक्चर डूबेंगे, गर्मी तथा अन्न और पानी की कमी के कारण मौतें बढेंगी। करोड़ों लोग विस्थापित होंगे और अमेरिका जैसे देश इसके लिए जिम्मेवार होंगे।

एक तरफ, जहां अमेरिका पर्यावरण आंदोलन को असफल करने पर तुला हुआ है, वही चीन इस मुहिम को अपना नेतृत्व देता दिखायी दे रहा है। सभी देशों को अपनी-अपनी जिम्मेवारी के अनुसार सन् 2020 से पेरिस सहमति का क्रियान्वयन करना है। चीन ने 2020 तक नवीकरणीय उर्जा के विकास के लिए एक बड़े कार्यक्रम की घोषणा कर दी हैं। चीन सौर उर्जा उत्पादन में सबसे बड़े देश बन चुका है। इसी प्रकार फ्रांस ने भी कार्बन उत्सर्जन कम करने के लिए एक दीर्घावधि योजना तैयार की है। जर्मनी ने इस साल जुलाई में अपनी अध्यक्षता में आयोजित होने वाले जी-20 सभा में मौसम परिवर्तन को प्रमुख एजेंडा बनाने का निर्णय किया है।

संदर्भ सूचीः

1. Angel Hsu, Marc Levy and Kim Samuel, Environment Performance Index, Yale University, Davaos, Switzerland, 2014
2. Vinod Kumar Sharma; Global Warming: Its Impact on India, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 2008 (Background paper of annual conference)
3. Ashish Agrawal, Varghese Paul and Soumitri Das, "Forest Fesources: Degradation, Livelihoods, and Climate Change," in Looking Back to change Track
4. Ravindra Kumar Verma, "Paryavarniye Rajniti: …………" Lok Prashashan, Oct-Dec, 2015
5. Amita Baviskar, "For a Cultural Politics of Natural Resources", Economic and Political Weekly, 29 November, 2003.
6. Andrew Heywood; Political Ideologes: An Introduction, MacMillan, Basingtoke, 1992
7. Robert Garner; Environmental Politics, Prentice Hall, Hrverster Wheatsheaf, London, 1995
8. Ravindra kumar Verma; "Environmentalism and International Politics: A Perspective of Developing Countries", Political Discourse, 2016
9. Robert Garner, Environmental Politics, Prentice Hall, Harverster Wheatsheaf, London, 1995, p.2
10. Walter A. Rosenbaum, Environmental Politics and Policy, (second Edition), East West Press Pvt. Ltd., New Delhi
11. Dryzek and Scholosberg, op cit, p.1
12. L Martel, Ecology and Society, Polity Pub, Cambridge, 1994
13. See Loren Cass, Global Environmental Politics, last modified on 31 August, 2015, retrieved from internet by the author on 11 April, 2016
14. Paul G. Harris (Ed), Routledge Handbook of Global Environmental Politics, Routledge, New York, 2014.

हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग के समक्ष उभरती चुनौतियाँ

कृष्ण कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, गवर्नमेंट कॉलेज, जींद, हरियाणा

शोधालेख सार: – वस्तुतः हरियाणा प्रदेश भारत का एक भू-व्यवस्थित राज्य है, जिसका क्षेत्रफल 44212 वर्ग किलोमीटर है। चूंकि रामायण और महाभारत कालीन कई सुन्दर शहर निरन्तर हरियाणा प्रदेश के पर्यटन के आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ कुरूक्षेत्र महाभारत कालीन ऐतिहासिक शहर है जहाँ सूर्य ग्रहण के अवसर पर ब्रहम सरोवर में स्नान करना अति पुन्य का काम माना जाता है। गीता जयंती महोत्सव भी इसी शहर में मनाया जाता है। इसी तरह पानीपत, करनाल, अंबाला, हिसार, फरीदाबाद, नारनौल आदि शहर भी ऐतिहासिक पर्यटन का प्रमुख केन्द्र माने जाते है। प्रति वर्ष फरीदाबाद में फरवरी मास में सुरजकुंड का हस्तशिल्प मेला विश्व प्रसिद्ध है। इसलिए प्रत्येक वर्ष बडी संख्या में मेला देखने देश-विदेश से पर्यटक बड़ी संख्या में आते रहते हैं। फिर भी कई कारणों से हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग का उतना विकास नहीं हो पाया है जितना एक उद्योग के रूप में होना चाहिए था। आज हरियाणा में पर्यटन से जुड़ी कुछ समस्याएँ तथा चुनौतियाँ हैं जो इस प्रदेश में पर्यटन उद्योग के विकास को प्रभावित करती हैं। फिर भी हरियाणा प्रदेश धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक महत्व के पर्यटन स्थलों, वर्ष भर आयोजित होने वाले कई परम्परागत् महोत्सवों सहित विश्व प्रसिद्ध गीता जंयती महोत्सव आदि विविध आकर्षणों से सदा परिपूर्ण रहा है। आज हरियाणा प्रदेश अपनी प्राकृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक समृद्वि के साथ न केवल पर्यटन गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र है बल्कि पर्यटन उद्योग के विकसित होने की अपार संभावनाओं को भी समेटे हुए है। प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणा प्रदेश के संदर्भ में पर्यटन उद्योग के समक्ष उभरती चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है और शोधार्थी द्धारा कुछ सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं।

मूल शब्द:- पर्यटन उद्योग, विदेशी पर्यटक, ऐतिहासिक महत्व, गीता जयंती समारोह, सुरजकुंड।

भूमिका:- हरियाणा भारत का ऐसा राज्य है जो अपने में अनेकों ऐतिहासिक रहस्यों को समेटे हुए है। हरियाणा की स्थापना 01 नवम्बर 1966 को हुई, इससे पहले यह पंजाब प्रांत का हिस्सा था। यह क्षेत्र भारत के उत्तर पश्चिम भाग में $27^{0}39'$ उत्तरी अक्षांश से $30^{0}55'5''$ उत्तरी अक्षांश तथा $74^{0}28'$ पूर्वी देशांतर से $77^{0}36'$ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इसका क्षेत्रफल 44212 वर्ग किलोमीटर है। यदि प्राचीन साहित्य का अवलोकन किया जाये तो ज्ञात होता है कि आदिकाल से ही इस प्रदेश के ऐतिहासिक महत्व को लेकर समय-समय पर मानव के मन में यहाँ पर स्थित रामायण व महाभारत कालीन नगरों तथा यहां के निवासियों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की अनवरत इच्छा चली आ रही है। अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु अनेक साहसिक लोगों द्वारा समय-समय पर विभिन्न प्रयास भी किये जाते रहे हैं। इसके लिए कोलम्बस, वास्को-द-गामा, फाह्यान, मेगस्थनीज, ह्वेनसांग, राहुल सांकृत्यायन और शंकराचार्य आदि महान साहसी यात्रियों ने अपने प्रयास किये। आज भी इस क्षेत्र में पर्यटन की अपार संभावनाएं तलाशी जा रही हैं और हरियाणा सरकार इस प्रदेश को पर्यटन के मानचित्र पर एक प्रसिद्ध उद्योग केन्द्र के रूप में उभरते देखना चाहती है। अतः आज इस राज्य में पर्यटन को अब एक प्रमुख उद्योग के रूप में पहचाना जाने लगा है। वास्तव में यह उद्योग बिना चिमनी व धुएं का एक ऐसा उद्योग है जिसमें सेवा और सौहार्द्र का ही उपयोग 'इनपुट' के रूप में किया जाता है।

हरियाणा में पर्यटन उद्योग का विकास:- चूंकि हम 21वीं सदी में जी रहे हैं और यह सदी नये-नये उद्योगों के विकास द्धारा देश-प्रदेश को विश्व मानचित्र पर उभारने की है। इस रूप में हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग को बहुआयामी बनाने के लिये हरियाणा

सरकार ने नई पर्यटन नीति की घोषणा की है जो इस प्रदेश में योजनाबद्ध तरीके से पर्यटन का विकास करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है, क्योकि नई पर्यटन नीति के द्वारा हरियाणा प्रदेश में पर्यटन की वृहद् संभावनाओं को तलाशने में सहायता मिल रही है और इसके दूरगामी परिणाम सामने आ रहे हैं। इस दिशा में अग्रसर होते हुए राज्य सरकार ने 'सिंगल टेबल पद्धति' 'पर्यटन मित्र' तथा 'पर्यटन पुलिस' नामक संस्थाओं की स्थापना की है। इस नीति के अन्तर्गत् हरियाणा सरकार ने प्राचीन विरासत संरक्षित करने के लिये 'हैरिटेज जोन' तथा 'हैरिटेज सिटी' की स्थापना की दिशा में अपने कदम आगे बढाये हैं। इसके लिए पर्यटन विभाग द्वारा सभी धार्मिक स्थलों पर आधारभूत सुविधायें व नये कार्यक्रमों, जैसे- योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, साहसिक खेल आदि पर भी विशेष बल दिया गया है। हरियाणा में पर्यटन की दिशा में हुई प्रगति को देखते हुए सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि पर्यटन उद्योग में आगामी 10 वर्षो में लगभग 5 लाख प्रत्यक्ष रोजगार तथा 50 लाख अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे जो हरियाणा प्रदेश में बढती बेरोजगारी पर अंकुश लगाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध होगा।

हरियाणा में पर्यटन उद्योग से संम्बंधित प्रमुख चुनौतियाँ: वर्तमान समय में हरियाणा सरकार द्वारा प्रदेश को पर्यटन उद्योग की दिशा में निरंतर आगे ले जाने के लिए प्रयास जारी हैं, लेकिन इस रास्ते में कई ऐसी समस्याएं व चुनौतियाँ उभर रही हैं जो पर्यटन उद्योग की विकास गति को बाधित करती है। ये प्रमुख चुनौतियाँ निम्न प्रकार से हैं:-

- आधारभूत ढांचे की समस्या:- हम इस बात से अवगत है कि जब कोई पर्यटक हरियाणा की भूमि पर आता है तो उसी समय से उसे पर्यटन स्थल के प्रवेश मार्ग, परिवहन के साधन, बिजली, पानी, निकास व्यवस्था तथा संचार साधनों की अव्यवस्थाओं से जुझना पड़ता है। साथ ही इन आधारभूत संरचनाओं में आवास व्यवस्था तथा यातायात व्यवस्था की कमी भी सामने आती है। यही कारण है कि हरियाणा में पर्यटन उद्योग के विकास की गति धीमी है। आज हरियाणा प्रदेश में ऐसे पर्यटन स्थल भी हैं जिनका समुचित विकास नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यहाँ की अविकसित आधारभूत संरचना है, जैसे- वायु, रेल या जल परिवहन, प्रवेश मार्गो की सम्बद्धता तथा पर्यटन स्थलों पर आतिथ्य सेवा-सत्कार का अपर्याप्त होना। कई पर्यटकों से प्राप्त जानकारी के आधार पर यह देखा गया है कि इन आधारभूत सुविधाओं की कमी भी पर्यटन उद्योग के विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। हरियाणा प्रदेश में पर्यटक अधिकतर सडक परिवहन का ही उपयोग करते हैं, अत: सबसे बड़ी चुनौती तो व्यवस्थित सम्बद्ध सड़कों के निर्माण तथा रेल परिवहन में सुधार की है, ताकि प्रदेश के सभी पर्यटन स्थलों को सुगमता से आपस में जोड़ा जा सकें। इसके साथ-साथ विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए वायु परिवहन को भी विकसित करना अत्यंत आवश्यक है।
- बुनियादी सुख-सुविधाओं का अभाव:- हम जानते है कि हरियाणा प्रदेश में विभिन्न पर्यटन स्थलों पर तथा पर्यटन स्थल तक जाने वाले मार्गो के मध्य अच्छी सुविधाओं की कमी है, जिसके कारण हरियाणा में पर्यटन उद्योग अधिक विकसित नहीं हो पाया है। अगर पर्यटन उद्योग को अच्छे से विकसित करना है तो बुनियादी सुविधाएँ जैसे- पीने का पानी, साफ सुथरे प्रतीक्षालय, प्रसाधन, प्राथमिक उपचार की व्यवस्था आदि पर्यटकों के लिए उपलब्ध हों। इसके साथ-साथ पर्यटको की सुविधा के लिए लॉज, केफेटेरिया, पार्किंग सुविधाएँ आदि सुविधाओं का प्रबन्ध करना भी अत्यंत करना आवश्यक है।
- अकुशल मानव संसाधन:- आज हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग के सामने कुशल तथा योग्य कर्मचारियों का अभाव एक बड़ी चुनौती बनकर उभर रहा है। वास्तव में किसी भी उद्योग में रोजगार के हर स्तर पर चाहे प्रबंधकीय हो या निरीक्षकीय या अन्य कर्मचारी सभी को प्रशिक्षण की आवश्यकता है। तुलनात्मक दृष्टि से यह पाया गया है कि बैंकिग, खुदरा, एयरलाईन्स तथा अन्य क्षेत्रों में रोजगार के विभिन्न अवसर हैं, जबकि पर्यटन उद्योग में कुशल व प्रशिक्षित मानव संसाध नो की कमी देखने को मिलती है। अत: सर्वप्रथम पर्यटन उद्योग में कार्यरत् सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है।
- सेवा विभाग की कमी:- यह बात सर्वविदित है कि किसी भी पर्यटक को ना केवल टुर आपरेटर्स या होटल स्टॉफ से पारस्परिक वार्तालाप या व्यवहार करना पड़ता है, बल्कि विभिन्न पृष्ठभूमि से आये हुए व्यवसायियों तथा अनुभवियों से भी व्यवहार करना पड़ता है, जैसे- रेलवे या बस स्टेशन को स्टॉफ, विमानतलों को स्टॉफ, टेक्सी आपरटेर्स, यात्रा एजेंसियाँ, छोटे-छोटे होटेल्स, ढाबा तथा सड़क किनारे की भोजनालय, विरासत स्थलों पर स्टॉफ, टुर गाईड आदि। चूंकि इन सभी सेवा विभागों द्वारा प्रदान की गई सेवा का प्रभाव पर्यटन स्थल के विकास पर पड़ता है, अत: सरकार के समक्ष इन समस्त

विभागों को प्रशिक्षण देना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इसके लिए भारत सरकार ने एक नारा भी दिया है ''अतिथी देवो भव''। इसलिए इस नारे को व्यावहारिक रूप से आत्मसात करना अति आवश्यक है।

- विपणन तथा प्रचार सेवाओं का अभाव:- किसी भी उद्योग के विकास के लिए विपणन तथा प्रचार सेवाओं की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। आज अन्य प्रदेशों की तुलना में हरियाणा प्रदेश में पर्यटन का विपणन तथा प्रचार कम हुआ है, इसी कारण से हरियाणा प्रदेश में पर्यटन का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। वैसे तो पर्यटन मंत्रालय द्वारा हरियाणा पर्यटन के प्रचार-प्रसार हेतु विज्ञापन भी बनाया गया है, किन्तु इस प्रतियोगिता के समय में अन्य प्रदेशों की तुलना में हरियाणा सरकार द्धारा जारी बजट बहुत कम है।
- अनावश्क करारोपण - आज हरियाणा सरकार एक तरफ तो पर्यटन उद्योग को विकसित करने की दिशा में तत्पर दिखाई देती है तथा दुसरी तरफ पर्यटन सेवाओं पर विभिन्न तरह के कर लाद दिये गये हैं, जैसे- टुर आपरेटर्स, ट्रांसपोर्ट्स, एयर लाईन उद्योग तथा होटल्स पर लगाये जाने वाले सेवा कर, विलासिता कर, यातायात पर कर आदि। वास्तव में इन सभी करों का भार अप्रत्यक्ष रूप से पर्यटक पर ही आता है, जिससे इस उद्योग की विकास की गति धीमी है। भारत में यात्रा व पर्यटन पर कर की दर अधिक है, जिसने हरियाणा और भारत पर्यटन उद्योग को मंहगा बना दिया है। इस अधिक कर भार से पर्यटक हरियाणा में पर्यटन पर व्यय करने में विचार करता है जिसकी वजह से पर्यटन उद्योग के विकास की प्रकिया बाधित हो रही है।
- उचित सुरक्षा व्यवस्था की कमी:- हम जानते है कि पर्यटन उद्योग के विकास में विगत कई वर्षों से असुरक्षा की भावना एक गहन समस्या के रूप में उभर रही है। देश में होने वाले आंतकी हमलों तथा राजनीतिक अस्थिरता (अशांति) के चलते विदेशी पर्यटकों का आकर्षण कम हो रहा है। वर्ष 2008 में मुम्बई में हुए आतंकवादी हमले के बाद पर्यटन उद्योग के विकास को जोर का धक्का लगा है। इसी तरह धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला जम्मू-कश्मीर आतंकवाद के कारण ही पर्यटन की दिशा में काफी पिछड चुका है। वर्तमान समय में सभी पर्यटकों की सुरक्षा करना सरकार के लिए एक महत्वपुर्ण चुनौती मानी जा सकती है। इसलिए किसी भी प्रदेश में पर्यटन उद्योग के विकास के लिए पर्यटकों का विश्वास प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।
- निरंतर बढते सायबर अपराध:- विगत कुछ समय से संचार एवं तकनीकी युग में कम्प्युटर के द्वारा किये जाने वाली अपराधिक गतिविधियों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। इसलिए आज पर्यटन उद्योग को इस चुनौती का भी सामना करना पड़ रहा है। हम जानते हैं कि कुछ वर्षो में इंटरनेट को तीव्र गति से उपयोग पर्यटन उद्योग में भी हो रहा है, चाहे वह आनलाईन टिकट बुकिंग या कोई बैंकिंग व्यवहार। आनलाईन किये जाने वाले व्यवहार में कई तरह के छल-कपट करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। जहाँ एक तरफ तो ऑनलाईन व्यवहारों से पर्यटन उद्योग में सुदृढ़ विकास हुआ है, वहीं दुसरी तरफ आनलाईन व्यवहारों की सुरक्षा एक महत्वपुर्ण चुनौती बन गयी है। अत: बदलते तकनीकि परिवेश में पर्यटन उद्योग के विकास के लिए आनलाईन बुकिंग को अधिक सुरक्षित तथा पारदर्शी बनाना आवश्यक है। इस दिशा में पर्यटकों में भी इसकी सुरक्षा हेतु जागरूकता लाना बहुत जरूरी है ताकि वे सावधानीपूर्वक आनलाईन सुविधाओं का लाभ ले सकें।
- पर्यटन नियमों का कठोर होना:- वर्तमान समय में विदेशी पर्यटकों तथा टूर ऑपरेटर्स दोनों को ही वीजा हेतु जो भारतीय सरकारी नियम हैं, वे कठोर हैं, जिसके कारण पर्यटकों पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। इसलिए पर्यटन को बढावा देने के लिए भारत सरकार को प्रयत्न करना चाहिए कि वीजा सम्बंधी समस्याओं का सामना दोनों को ना करना पड़े। जितने अधिक विदेशी पर्यटक भारत आएंगें, उतना ही अधिक हमारे देश में विदेशी मुद्रा का आगमन होगा। हम जानते है कि पर्यटन उद्योग आंतरिक संरचना सम्बंधी समस्याओं की वजह से भी धीमी गति से प्रगति कर रहा है, जैसे- अव्यवस्थित तथा अपर्याप्त सड़कें, पानी, निकास व्यवस्था, होटल्स, रेस्टोरेंट, संचार व्यवस्थाएँ तथा पर्यटकों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने के लिए कुशल तथा योग्य प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी आदि। इसके साथ-साथ सेवा कर, विलासिता कर तथा यातायात कर की दर अधिक होने से भी पर्यटकों की संख्या में कमी आती है। इसलिए भारत सरकार के दिशा-निर्देश पर ही राज्य सरकारों को भी अपने पर्यटन संबंधी नियमों की कठोरता से बचने के प्रयास करने चाहिएं ताकि भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार पर्यटन सेवाओं के माध्यम से वृद्धि कर सके।
- महिला पर्यटकों में असुरक्षा की भावना:- प्राय: यह देखने में आता है कि जो विदेशी महिला पर्यटक अकेली भारत भ्रमण पर आती है तो कई बार उसके साथ छेडछाड तथा रेप जैसी घटनाएं घटित होती हैं। हमारे हरियाणा प्रदेश में महिलाओं

के साथ होने वाले दुर्व्यवहार तथा दुष्कर्मों के कारण भी पर्यटकों के आगमन में कमी रहती है। इस तरह की शर्मनाक तथा अपराधिक घटनाओं के चलते महिला पर्यटकों की संख्या में कमी आई है। भारत में अकेले महिला का एकांत स्थान पर पर्यटन चाहे वह भारतीय महिला हो या विदेशी महिला सुरक्षित नहीं है। अतः महिला पर्यटकों की सुरक्षा हेतू उचित वातावरण निर्मित किया जाए ताकि महिला पर्यटकों का भी पर्यटन उद्योग की दिशा में ध्यान आकर्षित हो।

- पर्यटन स्थलों की विपरीत परिस्थितियाँ - वर्तमान समय में पर्यटन स्थलों की भाषा, वेशभूषा, भोजन, रहन-सहन आदि में अंतर होना स्वाभाविक हैं। आज सभी लोग अभी इतने अभ्यस्त नहीं हैं कि बदलते परिवेश में अपने को शीघ्र ढाल सकें तथा इन विषमताओं को झेल सकें। इसके साथ ही मुद्रा प्रणाली की भिन्नता भी एक बडीृ कठिनाई है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में पासपोर्ट, वीजा आदि बनवाने की प्रक्रिया भी अन्य देशों की तुलना में अत्यधिक कठिन है और इस झंझट में पड़ना सबके लिए संभव नहीं है।
- पर्यटन शिक्षा का अभाव:- आधुनिक परिवेश में विश्व के कई देशों में पर्यटन को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में ही अनिवार्य रूप से शामिल किया गया है ताकि सभी लोगों को पर्यटन के लाभों को लेकर अवगत कराया जा सके। लेकिन भारत में इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई है। आज भारत के मात्र तीन-चार विश्वविद्यालय ही इसका अध्यापन अपने यहाँ ऐच्छिक विषय के रूप से करा रहे हैं।
- अन्य बाधाएँ - प्रायः यह देखने में आया है कि हरियाणा प्रदेश के ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व के पर्यटन स्थलों पर अतिक्रमण हो चुका है। इसके साथ-साथ पर्यटन स्थल पर फैलती अफवाहें एवं भ्राँतियाँ, पर्यटन स्थल में फैलता प्रदूषण, घटते वन क्षेत्र एवं वन्य जीव, यातायात के साधनों का अभाव, पहुँच मार्गों की समुचित व्यवस्था का अभाव, राज्य, स्थानीय, पचांयत आदि स्तरों पर पर्यटन के क्षेत्र में व्याप्त उदासीनता देखी जाती है जिससे पर्यटन उद्योग धीमी गति से विकसित हो रहा है।

हरियाणा में पर्यटन उद्योग के विकास हेतु सुझाव:- हरियाणा सरकार ने विगत वर्षों में पर्यटन उद्योग के विकास के लिए हरियाणा पर्यटन विकास निगम की स्थापना की है, जिसका प्रमुख उद्देश्य हरियाणा में स्थित पर्यटन स्थलों पर पर्यटकों के लिए आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। इसी के अंतर्गत पर्यटन स्थलों में पर्यटन होटल-मोटर, पर्यटन ग्राम, लॉज, बंगला, कॉटेज आदि स्थापित कर पर्यटकों की सुविधाएं बढ़ाई गई है। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में जैसे-दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, मुम्बई, अहमदाबाद, हैदराबाद आदि शहरों में भारतीय पर्यटन निगम के उपग्रहीय केन्द्र स्थापित किए गए हैं, जिनका उद्देश्य पर्यटकों को अलग-अलग प्रदेशों की पर्यटन सम्बधी जानकारी उपलब्ध कराना है। परंतु अनेकों प्रयासों के बाद भी केरल, गोवा जैसे राज्यों की तुलना में प्रचार-प्रसार के लिए हरियाणा को केन्द्र की तरफ से नाममात्र की राशि प्राप्त होती रही है। इसलिए हरियाणा प्रदेश में पर्यटन उद्योग के विकास हेतू निम्नलिखित सुझाव अपेक्षित हैं: -

- सरकार द्धारा आधारभूत संरचना तैयार करना।
- पर्यटन स्थलों पर सड़क एवं बिजली की सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
- पर्यटन उद्योग के विकास हेतू यातायात के साधनों का प्रबंध करना।
- पर्यटन काउंटरों एवं विज्ञापनों द्वारा पर्यटक सेवाओं का प्रचार-प्रसार करना।
- पर्यटन को बढावा देने के लिए अधिक से अधिक पर्यटकों को आकर्षित करने का प्रयास करना।
- पर्यटकों के लिए प्रशिक्षित एवं सस्ते गाइड की व्यवस्था करना।
- विदेशी पर्यटकों की सुरक्षा हेतू उचित प्रशासनिक मशीनरी का प्रबंध करना।

सारांश:- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरियाणा प्रदेश में अनेकों ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व के पर्यटन स्थलों के होने के बाद भी इस क्षेत्र में पर्यटन उद्योग का समुचित विकास नहीं हो पाया है। फिर भी विगत कुछ वर्षों से कई प्रकार की समस्याओं अथवा चुनौतियों का समाधान कर पर्यटन को और अधिक विकसित करने की दिशा में हरियाणा सरकार प्रयासरत है। फिर भी हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि हरियाणा सरकार को अपने क्षेत्र में पर्यटन सेवाओं का उचित एवं प्रभावी योजनाएँ, नीतियाँ एवं नियम बनाने की आवश्यकता है, ताकि हरियाणा में पर्यटन उद्योग के विकास को और अधिक गति प्रदान करने के साथ-साथ राज्य की आय व सकल घरेलू उत्पाद की दर को भी बढाया जा सके।

सन्दर्भ सूचीः-

- कुमार, एम0, (1992), टूरिज्म टुडे, कनिष्क पब्लिकेशन, दिल्ली।
- कुमार, अक्षय, (1997), पर्यटन प्रबंधन, कॉमनवेल्थ प्रकाशक, नई दिल्ली।
- राय, विनय एवं पवार, आर0 एस0, (2006), पर्यटन और इसका विकास, सोनाली पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- लक्ष्मण, के0 पी0, (2008), पर्यटन विकासः समस्याएं और संभावनाएँ, ए0बी0डी0 प्रकाशक, जयपुर।
- भाटिया, ए0 के0, (2010), पर्यटन विकास-सिद्धांत और अभ्यास, स्टेर्लिंग प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हुसैन माजीद, (2011), भारत का भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल, नई दिल्ली।
- https://www.holidify.com/state/haryana/top-destinations-places-to-visit.html.
- https://www.fabhotels.com/blog/india-tourism/haryana-tourism.
- https://www.tourmyindia.com/states/haryana.
- https://www.haryanaonline.in/about/tourism.
- https://www.tourism-of-india.com/haryana.
- https://haryanaforest.gov.in/eco-tourism.
- https://panchkula.nic.in/tourism.
- https://haryanatourism.gov.in.

गांधीजी के आर्थिक विचार आज के संदर्भ में

नीरु यादव

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, मंगलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ (उ0प्र0)

आर्थिक आयामों का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के उत्थान से जुडा हुआ है। हमारा समाज तभी प्रभावशाली बन सकता है जब हमारा आर्थिक विकास अधिक हो, आर्थिक समस्यांए अधिक होने से समाज में अनेक और समस्यांए जन्म लेगी जो समाज के सामने एक चुनौती खडी कर देगी। इसलिए राजनीतिक चिन्तको के द्वारा राजनीतिक और सामाजिक विचारों के साथ -साथ आर्थिक विचारों पर भी बल दिया गया। आधुनिक भारत के राष्टपिता गांधी जी विश्व की महान विभूतियों में से एक है, जो केवल भारत की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के युग पुरूष कहे जाते है। आज भारत गांधी जी के सिद्वान्तों को मानकर ही प्रगति के पथ पर अग्रसर है। गांधीजी के महान आदर्शो में आत्मबल एवं आत्मानुशासन की प्रेरणा अनुभूतिशील रही है। गांधी जी ने भारतीय जीवन को नए उत्कर्ष प्रदान किए है। अतः गांधीजी का जीवन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

मुख्य बिन्दु - चिन्तक, आर्थिक, सामाजिक, चिन्तन, राजनीति

उद्वेश्य - इस शोध पत्र का मुख्य उद्वेश्य वर्तमान समय में गांधी जी के विचारों को अधिक प्रासांगिक करके देखना है। आज भी गांधी जी के विचार उतने ही प्रासांगिक है जितने 100 वर्ष पहले थे। आज भी शिक्षा, समानता, बन्धुत्व, अन्तोदय योजना एवं समाज के संसाधनों का उचित एवं अनुकूलतम उपयोग गांधी जी विचारों से और भी प्रभावी बना देते है।

विधि तंत्र - अपने शोध को गति देने के लिए आगमन व निगमन पद्वतियों का प्रयोग किया जाता है। विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषण विधियों का प्रयोग किया गया है। हमारे पास उपलब्ध किताबों, पत्र -पत्रिकाओं की सहायता से उपरोक्त विचार को पुष्ट करने की कोशिश की गई है। कि आज भी ये विचार इतने प्रासांगिक है जितने पहले थे।

विश्लेषण - गांधीजी एक महान अध्यात्मिक पुरूष एवं नेता होने के अतिरिक्त एक महान विचारक भी थे। जिन्होनें भारत में समाजवाद की स्थापना पल्लवित कर अनेक विषयों पर निःसंकोच विचार व्यक्त किये जैसे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, नीति, धर्म, अहिंसा, राष्टवाद, अन्तर्राष्टीयतावाद आदि। वे एक महान् समाज सुधारक के रूप में जाने जाते है। यही कारण है कि उनकी तुलना प्रसिद्व यूनानी दार्शनिक सुकरात तथा प्रसिद्व अमेरिकी राष्टपति अब्राहिम लिंकन के समान महान् विभूतियों से की जाती है। गांधी जी ने केवल भारतीय राष्टीय आन्दोलन के प्रणेता थे अपितु भारत को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने और आर्थिक असमानता के भेद को कम करने के लिए अपने विचार स्पष्ट किए। इन्ही विचारों के कारण आचार्य नरेन्द्र देव ने गांधी जी को आधुनिक युग का एक अद्वितीय युग पुरूष कहा है।

गांधी जी के आर्थिक विचार -

- गांधी जी के आर्थिक विचार आर्थिक समानता के पक्षधर रहे है। उनका मानना था कि आर्थिक मजबूती से सामाजिक समानता तेजी से आएगी।
- आर्थिक मजबूती समाज में आने से समतावादी समाज की स्थाना का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा।
- बेरोजगारी, शोषण एवं पिछडेपन जैसी आर्थिक समस्याओं का समाधान संभव हो सकेगा।
- आर्थिक समता मिलने से पारस्परिक सहयोग की भावना को बल मिलेगा और समतामूलक समाज की स्थापना होगी।
- ये सभी विचार भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के अनुसार ही फलीभूत होगें।
- आर्थिक समानता आ जाने से समाज में संसाधनों का वितरण उचित रूप से संभव हो सकेगा।

गांधी जी ने अपने राजनीतिक चिन्तन में आर्थिक सुधार की व्यापक योजना प्रस्तुत की। उस समय अंग्रेजो की दमनकारी एवं शोषणकारी नीतियों के चलते भारतीय समाज की आर्थिक दरिद्रता स्पष्ट रूप से झलक रही थी। चारों ओर आर्थिक असमानता, के भेद को कम करने के लिए अपने विचार स्पष्ट किये।

वर्तमान समय में गांधी की अनेक धारणाओं में से आर्थिक विचारों की धारणा पर गंभीरता से विचार मात्र कोरी कल्पना नहीं है। वर्तमान समय में बदलते परिवेश को देखकर कई बार ऐसा लगता है कि आज विश्व -परिदृश्य तेजी से परिवर्तित हो रहा है। ऐसे में गांधी जी के विचार और अधिक मजबूत होकर उभर रहे है। गांधीजी ने अपने राजनीतिक चिन्तन में आर्थिक सुधार की व्यापक योजना प्रस्तुत की। उस समय अंग्रेजो की दमनकारी नीतियों के कारण भारतीय समाज की आर्थिक दरिद्रता स्पष्ट रूप से झलक रही थी। चारों ओर आर्थिक असमानता, भुखमरी, अन्याय, शोषण एवं बेरोजगारी का साम्राज्य व्याप्त था। औद्योगिकीकरण के कारण भारतीय कुटीर उद्योग चौपट हो चुके थे। भारत में उत्पादित कच्चा माल इंग्लैण्ड भेज दिया जाता था। जिसका प्रतिकूल प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर पडा। राजनीति में समाज की अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में गांधी जी का विचार था कि सच्चा अर्थशास्त्र नैतिकता के नियमों के प्रतिकूल हो ही नहीं सकता। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय चाहता है। वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह अंतिम पंक्ति में खडा सबसे गरीब व्यक्ति ही क्यों न हो, उसका सामाजिक हित चाहता है।

गांधी जी के ये विचार यर्थाथ व व्यवहार पर आधारित थे। जिन्हें अपनाकर कोई भी राज्य अपना उत्कर्ष कर सकता है। गांधी जी के आर्थिक विचारों के प्रमुख पांच बिन्दु निम्न रहे है -

1. औद्योगिकीकरण व मशीनीकरण का विरोध।
2. कुटीर उद्योग धन्धों का समर्थन।
3. व्यक्तिगत सम्पत्ति व संरक्षण (टस्टीशिप) की धारणा।
4. अपरिग्रह की धारणा।
5. वर्ग सहयोग की धारणा।

गांधी जी ने अपने विचारों में औद्योगिक क्रान्ति और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न केन्द्रीयकृत अर्थव्यवस्था का विरोध किया है। वे बडी मशीनों व यंत्रो के पक्षधर नहीं थे। उनके अनुसार अधिक मशीनीकरण मानव जाति के पतन का कारण है। उनका विचार था कि समाज में व्याप्त धृणा, द्वेष, और स्वार्थ में जो वृद्वि हुई है। वह अप्रत्यक्ष रूप से मशीनीकरण के ही परिणाम स्वरूप है। इससे पूरी पूंजी का चन्द मुठिटयों में केन्द्रीयकरण हो जाता है जिसके प्रभावधीन भीषण बेरोजगारी, श्रम का पतन और शोषण का बढाना उत्पादन का विशेष हाथों में केन्द्रीयकरण एवं वितरण की समस्या आदि उत्पन्न हो जाती है। उनका विचार था कि यदि किसी राष्ट में संसाधनों की तुलना में जनशक्ति कम हो तो मशीनों का प्रयोग उचित ठहराया जा सकता है। किन्तु भारत में तो भरपूर जनशक्ति उपलब्ध है इसलिए मशनीकरण एक बुराई है इससे पूंजी कुछ ही हाथों में केन्द्रित होने लगती है। इससे मानव का आर्थिक समानता का लक्ष्य समाप्त हो जाता है।

गांधी जी राष्टीय विकास के लिए विकेन्द्रीयकरण के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर बल देते थे। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गांव एक स्वंतंत्र आर्थिक इकाई के रूप में काम करेगा। उनका विचार था कि जब उत्पादन कुटीर एवं लघु उद्योगो के द्वारा होगा। इससे हर गांव के प्रत्येक घर में उत्पादन होगा और इससे बेरोजगारी की समस्या खत्म होगी, उसमें आत्मानुशासन व नैतिकता का विकास होगा। यही कारण था कि गांधी जी ने ''चरखा'' व खादी ग्रामोद्योग पर विशेष बल दिया। उन्होने इसका गांव -गांव प्रचार किया और कहा कि गांवो को आत्मनिर्भर बनाया जाए। गांधी जी का यह विचार देश में स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए बेहद महत्वपूर्ण था। टस्टीशिप या संरक्षणता के सम्बन्ध में गांधी जी का मानना था कि जब तक समाज और विश्व में स्थायी शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। आर्थिक अन्याय और असमानता को दूर करने के लिए गांधी जी न सादा जीवन उच्च विचार पर बल देते हुए मानव को अपरिग्रह के विचार से अवगत कराया। उनका विचार था कि प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं के लिए ही धन संचय करना चाहिए, अपनी आवश्यकताए कम होगी हमें उतना ही कम असंतोष होगा। वो अध्यात्मिक विचारों के पक्षधर थे और उनका मानना था कि भारत जैसे गरीब देश में जनता का अपनी आवश्यकता सीमित करके ही सही सुख की प्राप्ति संभव हो सकती है। गांधी जी ने वर्ग सहयोग की धारणा पर बल दिया। वो सम्पूर्ण मानव जाति का भला चाहते थे। मानवता की सेवा करना, सभी को उन्नति का मार्ग दिखलाना उनकी जीवन शैली थी। वे साम्यवादी दर्शन के विपरीत

ये हिमायत करते है कि श्रमिक एवं पूंजीपतियों के हित विरोधाभासी न होकर एक –दूसरे के पूरक होते है। अतः सामूहिक प्रयत्नों के आधार पर उद्योगों का विकास होना चाहिए।

वर्तमान समय में गांधी जी के विचारों की प्रांसागिकता – गांधी दर्शन जितना पवित्र और आदर्शात्मक था, उतना ही उस समय की परिस्थितियों के अनुसार उपयोगी था। किन्तु वर्तमान समय में ऐसा लगता है कि हम इससे दूर होते जा रहे है। ऐसा लगने लगा है कि वर्तमान समय में झूठ, धोखाधडी, वर्ग'संधर्ष, दांव-पेच, युद्व जनक पर्यावरण, हिन्दु मुस्लिम दीवारें और बढने लगी है। पश्चिमी सभ्यता का अंधा अनुकरण जारी है, जहॉ स्वदेशी को विकसित कर गांवो का विकास करना ध्येय था वहॉ शहर बस रहे है। गरीबी और अमीरों के बीच का दायरा निरन्तर चौडा होता जा रहा है। पूंजीवादियों की साजिशे चल रही है और शोषण की राजनीति आरम्भ हो गयी है। हमारा स्वदेशी मिशन और राष्टीयता का नारा अब बहुराष्टीय कम्पनियों की भेंट चढ चुका है। इन सबसे ऐसा एहसास होता है कि गांधी जी के आर्थिक विचार निरन्तर खोते जा रहे है। इस पर गौर तबल करने की महत्ती आवश्यकता है।

आज की पारिस्थितियों में गांधी जी द्वारा दिए गए आर्थिक विचारों में कुटीर उद्योग, टस्टीशिप धारणा, स्वदेश, अपरिग्रह और वर्ग सहयोग की अवधारणा की महत्ती आवश्यकता महसूस हो रही है। हस्तशिल्प को फिर से खडा करने की जरूरत है। आज हस्तशिल्प उद्योग और हथकरधा पुन जीवित करने की महत्ती आवश्यकता है। आज सौहार्दपूर्ण माहौल के लिए, मानवता को जिन्दा रखने के लिए गांधी जी के विचारों को अपनाने की आवश्यकता है। आज का मानव आधुनिकता की दौड में भाग रहा है, किन्तु उसे ये भी नही पता कि उसे जाना कहॉ है? वह निरन्तर अंधानुकरण कर रहा है। अपना सुकून ताक पर रखकर मानव मशीन बन गया है, ऐसे में समाज का ये दायित्व बनता है कि विकास के साथ –साथ सादगी और अपनी आवश्यकताएॅ कम कर ले तो निश्चत तौर पर हम अधिक संतोषप्रद जिन्दगी गुजार पाएगें। छोटी –छोटी खुशियों में मानव सुकून ढूढें और सीमित संसाधनों से काम चलाए तो निश्चत रूप से वह अधिक खुश होगा। आज के युग में गांधी जी के दर्शन को अपनाकर भी बहुत सारी समस्याओं के समाधान किए जा सकते है। आज हमें पश्चिमीकरण की अंधी दौड से हट कर थोडा गांधी जी के विचारों को मानकर देश के विकास में योगदान देने की महत्ती आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. डॉ. पुखराज जैन – राजनीति विज्ञान 1995 पृष्ठ –297
2. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा – आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास।
3. प्रताप सिंह – गांधी जी का दर्शन पृष्ठ –125
4. पी.भट्टाचार्य – गांधी दर्शन, पृष्ठ – 185
5. डॉ. डी.के.मिश्रा – गांधी जी के विचार पृष्ठ – 118
6. आर.एल.सिंह – प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक पृष्ठ –421
7. डॉ.राजेश जैन, डालचन्द जैन, भारतीय राजनीति के नए आयाम।
8. डॉ.सी.पी.मिश्रा –ग्रामीण विकास के सम्बन्ध में गांधी जी के परिकल्पना एवं उसकी प्रासांगिकता।
9. डॉ.आर.एन.त्रिवेदी– भारतीय राजनीतिक व्यवस्था।
10. डॉ.वी.वी.तायल – भारतीय शासन और राजनीति।
11. डॉ.हरिशचन्द्र शर्मा – भारत में राज्यों की राजनीति।
12. डॉ. एम.पी.राय – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पृष्ठ – 271
13. डॉ. अरूण चतुर्वेदी – राजनीति के विविध आयाम – पृष्ठ 209
14. क्रानिकल, मई 1996 – नई दिल्ली पृष्ठ – 67
15. डॉ. पुखराज जैन – भारतीय शासन एवं राजनीति पृष्ठ – 655,656

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था

डॉ० राजीव कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एल०एस० कॉलेज, मुजफ्फरपुर

वैदिक साहित्य प्राचीन भारतीय समाज के सामाजिक जीवन को जानने का महत्वपूर्ण आधार है। भारतीय समाज की विभिन्न व्यवस्थाएं चाहे सामाजिक हो या आर्थिक, राजनीति हो या सांस्कृतिक हो, इन सभी का आधार प्राचीन वैदिक कालीन समाज रहा है। सामाजिक संरचना का मूल आधार स्तंभ वर्ण व्यवस्था है। कालान्तर में यही वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। भारतीय सामाजिक जीवन में जाति-व्यवस्था जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था, अत्यन्त प्रारम्भिक काल से एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में विद्यमान रही है। ऋग्वेद काल में समाज को पुरुष का रूपक दिया गया है। उस समाजरूपी पुरुष के चार अंग हैं– मुख ब्राह्मण, मस्तक, भुजाऐं क्षत्रिय, जंघाऐं वैश्य एवं पाद को शूद्र के रूप में कल्पित किया गया।[1]

सर्वप्रथम ऋग्वेद का अध्ययन से उस समय के सामाजिक वर्ण व्यवस्था की उत्पति पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में 'आर्य' और 'अनार्य' शब्द जन समुदाय के लिए उपयोग किये गये हैं। पश्चिमोत्तर भारत में (सप्त सिंधु प्रदेश) में अधिकार स्थापित कर बसने के लिए उन्हें भारत के मूल निवासियों से संघर्ष करना पड़ा जिन्हें 'दस्यु'[2] 'दास'[3] आदि नामों से सम्बोधित किया गया। दस्यु या दास के सम्बोधन का कारण ऐसा विदित होता है कि आर्यो ने जब यहाँ के मूल निवासियों को पराजित कर दिया, तब बहुत से मूल निवासी तो इस क्षेत्र से भाग कर भारत के दूसरे क्षेत्रों में बस गये और कुछ यहीं रह गये जिन्हें दस्यु या 'दास' के रूप में मान लिया गया। ये लोग यज्ञादि कर्म तथा आर्यो के देवताओं में विश्वास नहीं रखते थे। ऋग्वेद में इन्हें अकर्म, अमन्तु, अन्यव्रत, अमुख आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया हैं तथा ऋग्वेद[4] में इन्द्र से इन दासों के नाश के लिए प्रार्थना की गई है। कीथ एवं मैक्डोनल ने वैदिक इन्डैक्स में लिखा है कि इन्द्र ने दस्युहत्या की। ऋग्वेद में दस्यु को अमानुष, अन्यव्रत अयज्वान, अदेवयु आदि नामों संबोधित किया है।[5] तथा इन्द्र से उसके नाश की प्रार्थना की गई है।

ऋग्वेद का एक मंत्र उल्लेखनीय है, जिसमें, क्रमशः ब्रह्न, क्षत और विश् की श्री वृद्धि के लिए तथा उन्हें बुद्धि, बाहुबल एवं पशुधन प्रदान करने के लिए अश्विनों से प्रार्थना की गई है।[6] यह अधिक संभव लगता है कि प्रारम्भ में 'ब्रह्म' तथा 'क्षत्र' केवल दो ही वर्ग थे और आर्यो में जनसामान्य को विश् कहा जाता था। कालान्तर में विश् के अन्तर्गत कृषि कर्म, पशुपालन, वाणिज्य कर्म में लगे हुए लोगों को वैश्य तथा पराभूत अनार्यो को, आर्थिक विपन्नता तथा अन्य कारणों से सेवा कर्म आदि में लगे लोगों को शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई।

वस्तुतः पुरुष सूक्त के मंत्र में समाज को एक कायिक इकाई के रूप में परिकल्पित किया है। प्रकृति के समान समाज को भी दैवी पुरुष से उद्भूत माना गया है। समाज के विविध वर्ग उसके विविध अंगों के समरूप हैं। इसमें यह उपलक्षित है कि समाज व्यक्ति के समान है तथा इसके निर्मायक वर्ग अलग-अलग कार्य व्यापारों में प्रवृत्त विविध अंगों के समान हैं।

यह सहज ही प्लेटो की उस अवधारणा की याद दिलाता है, जिसमें समाज को व्यक्ति के रूप में परिकल्पित किया गया है जिसका ईकाईपन परस्पर सम्बद्ध कार्यात्मक वैविधयों में अन्तर्निहित है। मुख के समान ब्राह्मण प्रार्थना एवं शिक्षण से सम्बद्ध है तथा उसकी शक्ति शब्द अथवा 'ब्रह्मन् में निहित है। व्यक्ति की भुजाओं के समान क्षत्रिय राज्य एवं जनसामान्य की रक्षा करता है जबकि जांघों अथवा शरीर के निचले भाग के अनुरूप वैश्य सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी अर्थशक्ति से वहन करता है। समाज की आर्थिक समस्याओं का समाधान 'विशु' पर था। समाज की सेवा में प्रवृत्त लोगों को शूद्र अभिधान प्राप्त हुआ है।[7]

ऋग्वेद काल में वर्ण-व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी, अपितु वृत्तिपरक थी, जिन्हें अपनी इच्छा और क्षमता के अनुसार कोई भी आर्य अपना सकता था। यदि इस काल में इन वर्गो ने परवर्ती काल की जातियों का स्वरूप ग्रहण कर लिया होता तो ऋग्वेद में इनका उल्लेख केवल एक बार नहीं हुआ होता।

ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग संपूर्ण आर्य जनसमुदाय के लिए हुआ है। जिसके विरोध में 'दास वर्ण' अथवा दस्युवर्ण' की चर्चा की गई है। आर्य समुदाय के विभिन्न वर्गों के लिए शब्दों के प्रयोग में दृश्यमान लचीलापन भी उनके निरुद्ध न होने की ओर संकेत करता है।' राजन्य 'वैश्य' तथा शूद्र शब्द केवल पुरुष सूक्त में उल्लिखित हुये हैं।

ऋग्वेद में क्षत्रिय शब्द का प्रयोग जाति के अर्थ में न होकर केवल शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के अर्थ में हुआ है।' ब्राह्मण, शब्द का प्रयोग भी सामान्यत: प्रतिभावान् अथवा गुणवान् के अर्थ में हुआ है, केवल कुछ दृष्टान्तों में ही यह व्यवसाय कर्म से 'पुरोहित' इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे व्यक्ति के लिए केवल 'ब्रह्म' अथवा 'ब्राह्मण' शब्दों का ही प्रयोग नहीं हुआ है। 'कारू' 'विप्र' 'कवि' वेधस् आदि अन्य शब्द हैं जिनका प्रयोग भी इसी अर्थ में किया गया है। कई दृष्टान्तों में 'विश' शब्द का प्रयोग कृषक अथवा व्यापारी वर्ग के अर्थ में न होकर सम्पूर्ण आर्य जनसमुदाय के लिए किया गया है।[8] ऋग्वेद के प्रथम मंडल के पन्द्रहवें सूक्त में स्तुति करने वाला ऋषि स्वयं को वरुण का 'विश्' अर्थात सामान्य जन कहलाता है।

ऋग्वैदिकाल में विविध व्यवसाय वंशानुगत नहीं हुए थे। एक ही परिवार में भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न व्यवसायों को अपनाये जाने के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। एक मंत्र में एक ऋषि कहते हैं। 'मैं मंत्र का रचयिता हूँ, मेरे पिता चिकित्सक हैं, मेरी माता चक्की पीसने वाली है'।[9] एक ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है वह उसे एक धनवान व्यक्ति बनाये।[10]

एक अन्य मंत्र में भी ब्राह्मण, द्वारा चिकित्सा कर्म अपनाने का उल्लेख है।[11] ब्राह्मण, ऋषि भृगु, के वंशजों में से कुछ का रथ बनाने में दक्ष शिल्पियों के रूप में उल्लेख किया गया है।[12] इसी प्रकार ऋभुगण दक्ष शिल्पी थे किन्तु उन्हें दैवी सम्मान प्रदान किया गया है।[13] वंशानुगतिक जाति व्यवस्था में इस प्रकार के दृष्टान्तों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर ऊंच-नीच की भावना का सर्वथा अभाव था और न ही पारस्परिक खान-पान पर कोई बंधन था। एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्गों में विवाह कर सकता था।[14] ऋग्वैदिक काल में अंगिरस कुल प्रसिद्ध ऋषि-कुल था, असंग नामक राजा का विवाह इस कुल की एक कन्या के साथ हुआ था।[15] कक्षीवान् नामक ऋषि ने राजा रचनय की कन्याओं से विवाह किया था।[16]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण, में प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था पर्याप्त विकसित एवं जटिल हो चली थी तथा इसमें परवर्ती जाति व्यवस्था के विभिन्न लक्षणों का संनिवेश हो गया था। शतपथ ब्राह्मण, में विभिन्न वर्णो के लोगों को बुलाने के लिए अलग-अलग संबोधनों की व्यवस्था की गई है।[17] यही नहीं मृत्युपरान्त उनके लिए अलग-अलग आकार की चिन्ताओं की व्यवस्था की गई है।[18] इसी ब्राह्मण, में यह कहा गया है कि गायत्री मंत्र के पाठ का प्रारम्भ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अलग-अलग प्रकार से करें।[19]

यज्ञ के अवसर पर अलग-अलग वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग भी बताया गया है।[20] शूद्रों को इन धार्मिक कृत्यों से बहिष्कृत ही रखा गया है। अपनी दक्षिण पूर्वाभिमुख विस्तरण की प्रक्रिया में आर्यजन कई आर्येत्तर जन जातियों के संपर्क में आये। यहाँ के मूल निवासियों के साथ संबंध ने उनकी सामाजिक व्यवस्था को नया आयाम दिया। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को स्पष्टरूपेण वैश्यों से श्रेष्ठ माना गया है।

वाजसनेयी संहिता में ब्राह्मणों को राजा से श्रेष्ठ माना गया है।[21] शतपथ ब्राह्मण, के अनुसार राजा का निर्भरशील होने पर भी ब्राह्मण, राजा से श्रेष्ठ है।[22] राजा की शक्ति का आधार ब्राह्मण, है।[23] किन्तु दूसरी ओर काठक संहिता में ब्राह्मण, के ऊपर क्षत्रिय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।[24] और ऐतरेय ब्राह्मण, में भी एक जगह ब्राह्मण को क्षत्रिय से नीचा कहा गया है।[25]

फिर भी सामाजिक श्रेष्ठता के लिए दोनों वर्णों में संघर्ष का अस्तित्व मानना ठीक नहीं है। ब्राह्मण, और क्षत्रिय की तुलना में वैश्य वर्ण की हीनता की चर्चा कई ग्रंथों में मिलती है।[26] मुख्य रूप से यह वर्ण कृषि कार्य एवं पशुपालन में प्रवृत्त था। साथ ही

साथ वाणिज्य कर्म एवं विविध उद्योग शिल्पों का भी अनुसरण करते थे। वैश्य वर्ण को ऐसे कई सामाजिक व धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जो शूद्र वर्ण को अनुपलब्ध थे।

वैश्य वेदाध्ययन कर सकता था, वह न केवल यज्ञों में भाग लेता था अपितु उसे यज्ञ करने का अधिकार था।[27] ब्राह्मण, और क्षत्रिय के समान उपनयनकर्म भी वैश्यों का होता था जो इनके वैदिक शिक्षा का अधिकारी होने का परिचायक है। वैसे यह बात और है कि वैश्य वर्ण अपना श्रम और समय वैदिक शिक्षा में प्रवीण होने की चेष्टा में न लगाकर अपनी व्यावसायिक शिक्षा तथा उसके बल पर धनोपार्जन में लगाता था।

शूद्र वर्ण में मूलत: आर्येत्तर तत्व का प्राधान्य था किन्तु उत्तर वैदिक काल के अंत में सूत्रकाल तक आते-आते आर्य समाज में हीन व्यवसाय में लगे लोगों को भी इस वर्ण के अन्तर्गत रख दिया गया था। आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पिछड़े आर्यजनों को शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। शूद्रों को हीन स्थान प्राप्त था। वह दूसरों का सेवक था जिसे उसका स्वामी इच्छानुसार निष्कासित कर सकता था।[28]

शूद्रों के साथ वैवाहिक संबंध ठीक नहीं माना जाता था किन्तु सामाजिक निषेध होने पर भी उच्च वर्ण के लोग शूद्र स्त्रियों से विवाह कर लिया करते थे।[29] शूद्रों को कई सामाजिक तथा धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा गया था।

शतपथ ब्राह्मण, के अनुसार यज्ञ की अग्नि शूद्र के लिए अस्पृश्य है।[30] यद्यपि शूद्रों को धार्मिक अधिकार नहीं दिये गये थे किन्तु उन्हें अस्पृश्य नहीं माना जाता था जैसा कि आपस्तम्बधर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि यज्ञ के अवसर पर आर्य लोग भोजन भी बनवाते थे।[31] शूद्रों का मुख्य कार्य दूसरों की सेवा करना माना गया।[32] शूद्र श्रमजीवी थे।

'अस्तु' वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था सांस्कृतिक विकास का कारण बनी, क्योंकि सभी वर्णों के लोग पूरी निष्ठा, लगन और समर्पण के साथ अपना-अपना कार्य करते थे। उनमें किसी प्रकार का वैमनस्य या भेदभाव नहीं था।

सभी वर्ण वाले परस्पर मिलकर वैदिक संस्कृति के विकास में गति दी और सामाजिक समरसता के साथ मानव कल्याण के विकास को बल दिया, जिससे एक सुसंगठित कर्म प्रधान समाज का निर्माण हुआ।

संदर्भ-ग्रंथ

1. ऋग्वेद-10.90.12
2. ऋग्वेद-10.49.3,10.212.8
3. ऋग्वेद-05.34.6,10.86.19
4. ऋग्वेद-10.22.8
5. ऋग्वेद-8.70.11
6. ऋग्वेद-8.35.16-18
7. प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, जी.एस.पी. मिश्र, पृ.-58
8. ऋग्वेद-1.251
9. ऋग्वेद-9.112.3
10. ऋग्वेद-3.43.5
11. ऋग्वेद-10.97.22
12. ऋग्वेद-10.39.14
13. ऋग्वेद-1.161.1-3
14. दि ओरिजन एण्ड ग्रील आव कास्ट इन इन्डिया पृ.-64

15. ऋग्वेद-8.134
16. ऋग्वेद-1.126
17. शतपथ ब्राह्मण-1.2.4.12
18. शतपथ ब्राह्मण-13.8.3.11
19. शतपथ ब्राह्मण-2.1.3.4
20. शतपथ ब्राह्मण-5.3.2.11
21. वाजसनेयी संहिता-1.21
22. शतपथ ब्राह्मण-1.2.3.3
23. शतपथ ब्राह्मण-4.1.4.6,12.7.3.12
24. काठक संहिता -28.5
25. ऐतरेय ब्राह्मण-7.29.4
26. तैत्तिरीय संहिता -2.5.10.1, शतपथ ब्राह्मण-6.4.4.13
27. ऐतरेय ब्राह्मण-1.9, तैत्तिरीय ब्राह्मण-1.1.4.8.1
28. ऐतरेय ब्राह्मण-7.29
29. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ-126
30. शतपथ ब्राह्मण-6.4.4.9
31. आपस्तम्ब धर्मसूत्र - (11,3,1-4)
32. जैमिनीय ब्राह्मण-1.686.9

स्वामी विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारणा

डॉ. अनुराधा जायसवाल

वरीय व्याख्याता, आर.एन. कॉलेज, हाजीपुर

स्वामी विवेकानंद जी की दृष्टि में स्वतंत्रता मानव समाज के विकास का मूल-मन्त्र है। सम्पूर्ण विश्व में जहाँ जीवन अनुभव होता है उस अनुभूति का नाम 'स्वतंत्रता' है। हम अपने सुख और अपनी जाति के सुख के निमित्त असंख्य लोगों को दासता के बन्धन में नहीं बांध सकते। स्वामी विवेकानन्द ने अपने विचारों में सदैव स्वतन्त्रता की अपरिपक्वता पर बल दिया। उनके अनुसार स्वतंत्रता आत्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के लिए आवश्यक है। 'हमें ऐसे सामाजिक बन्धनों को, जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं, शीघ्रता से समाप्त कर देना चाहिए। ऐसी संस्थाओं के विकास के निमित्त हमें प्रयत्नशील होना चाहिए, जो स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसरित हों यह सही है कि तात्विक अर्थों में स्वामी जी केवल माया के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान कतरे हैं, किन्तु उन्होंने अपनी आध्यात्मिक भावनाओं के साथ-साथ मनुष्य की सामाजिक और अन्य दिशाओं में प्रगति के लिए स्वतंत्रता को एक अपरिहार्य वरदान माना है।

स्वामी जी राजनीति से अलग रहे, उन्हें अपने वक्त के राजनीतिज्ञ पसंद नहीं थे। लेकिन उन्होंने आजादी, बराबरी और जनता को उठाने की जरूरत पर बार-बार बल दिया। सिर्फ सोच-विचार और काम-काज की आजादी ही जिन्दगी, तरक्की और खुशहाली की शर्त है।' विचार व कार्य की स्वतंत्रता ही जीवन, उन्नति व हित-साधन का एकमात्र मार्ग है। जहाँ यह स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ मनुष्य जाति या राष्ट्र की उन्नति सम्भव नहीं है। उपनिषदों ने मनुष्य के विकास के लिए हर प्रकार की स्वतंत्रता को उपयुक्त माना है। मनुष्य अपने विकास की सीमाओं का निर्धारण यदि स्वयं नहीं करेगा तब तक उसके विकास का मार्ग एकदम अवरूद्ध हो जाएगा और वह दिशाविहीन होकर पथभ्रष्ट हो जायेगा, एतदर्थ स्वतंत्रता मानव की अस्वाभाविक जिज्ञासा नहीं है बल्कि उसके विकास की आधारशिला है।

विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारणा मूल रूप से आध्यात्मिक थी। यह शाश्वत सत्य की प्राप्ति की दिशा में एक लम्बा कदम था। उनके अनुसार, स्वतंत्रता अपरिमित, अहस्तांतरणीय तथा अपरिवर्तनीय होती है। उनके इस कथन में उपनिषदों की झलक मिलती है। वह स्वतंत्रता की उपनिषदों वाली अवधारणा के प्रति हृदय से कृतज्ञ थे। स्वतंत्रता की प्रकृति के अध्ययन पर उपनिषदों व संतों का गहन प्रभाव पड़ा था। उन्होंने यह अनुभव किया था कि ब्रह्माण्ड का उदय स्वतंत्रता में है तथा उसका विलय भी स्वतंत्रता में होता है। उपनिषदों की परम्परा का पालन करते हुए विवेकानन्द ने स्वर्ग की जगह मुक्ति तथा मुक्ति की जगह ज्ञान का पाठ पढ़ाया।

विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारण को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) आध्यात्मिक स्वतंत्रता,

(ख) व्यक्तिगत स्वतंत्रता,

(ग) सामाजिक स्वतंत्रता, तथा

(घ) आर्थिक स्वतंत्रता।

उनकी स्वतंत्रता की अवधारणा समग्र थी, इसलिए वह इन सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं में समन्वय चाहते थे।

आध्यात्मिक स्वतंत्रता

विवेकानन्द स्वतंत्रता को सभी सजीवों तथा निर्जीवों के लिए आध्यात्मिक रूप से स्वाभाविक मानते थे। वह इसे आंतरिक जीवन तथा ब्रह्य प्रकृति के संघर्ष की उपज के रूप में देखते थे। उनकी आध्यात्मिक स्वतंत्रता की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि

स्वतंत्रता सामाजिक रचना न होकर व्यक्ति का जन्मजात अधिकार है। वह व्यक्ति की स्वतंत्रता के किसी भी बाहरी संस्था द्वारा निर्धारण को स्वीकार नहीं करते थे। क्योंकि स्वतंत्रता की अवधारण अपने आप में सम्पूर्ण है, इसलिए विवेकानन्द उस पर किसी भी तरह के प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं करते थे। विवेकानन्द ने स्वतंत्रता को उसके सम्पूर्ण तथा अनुपातिक दोनों ही रूपों में देखा। उनकी सम्पूर्ण स्वतंत्रता आत्मा की प्रकृति है। इसे किसी भी तरह व्यक्ति से जुदा नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता को काल्पनिक, अव्यक्त अथवा अव्यावहारिक नहीं माना चाहिए। राजनैतिक दर्शन तभी सार्थक होता है, जब वह सम्पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए चिन्तित होता है तथा इसकी प्राप्ति व विस्तार के लिए प्रयत्न करता है। अब तक की राजनैतिक विचारधारा की आस्था केवल अनुपातिक स्वतंत्रता की थी, जो मात्र प्रासंगिक तथा परिस्थितिक थी और जिसने व्यक्ति की स्वतंत्रता की सम्पूर्णता की अनदेखी की। राजनैतिक दर्शन मानव को केवल एक सामाजिक इकाई के रूप में देखता है, उसे समाज पर आश्रित मानता है और इस बात का प्रचार करता है कि व्यक्ति का विकास व स्वतंत्रता उसके उद्देश्य हैं जिनका निर्धारण समाज के द्वारा ही किया जाना चाहिए, लेकिन मानव का मूल्य उन सबसे श्रेष्ठ है, जिसकी कल्पना सामाजिक तथा राजनैतिक विचारकों ने की थी। विवेकानन्द के अनुसार व्यक्ति की प्रकृति वास्तव में आध्यात्मिक है। उसका सामाजिक जीवन उसके सम्पूर्ण जीवन का केवल एक भाग है। व्यक्ति ऐसी श्रेष्ठतर चीजों की आकांक्षा रखता है, जिसे प्रदान करने की समाज में सामर्थ्य ही नहीं होती। मनुष्य के लिए ऐसा जीवन तभी संभव होगा जब वह सम्पूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श की प्राप्ति में लगा रहे। वास्तव में, समाज तभी सभ्य बनता है जब वह अपनी आत्मा के विकास को प्रोत्साहित करता है तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के क्षेत्र का विस्तार करता है। इसलिए, आध्यात्मिक स्वतंत्रता उस समय तक अधूरी ही रहेगी, जब तक व्यक्ति का आनुपातिक स्वतंत्रता का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो जाता। स्वतंत्रता की यह आध्यात्मिक अवधारणा प्रतिस्पर्धात्मक न होकर, परमार्थ की ओर अग्रसर करती है, व्यति तथा समाज में एकरूपता लाती है तथा स्वतंत्रता के विकास को सुनिश्चित करती है, जिससे सभी को समान रूप से स्वतंत्रता उपलब्ध रहे। यह जीवन के लिए संघर्ष मात्र न होकर जीवन की एकता की आध्यात्मिक खोज है। उनके आध्यात्मिक स्वतंत्रता में विश्वास ने उन्हें यह मानने पर मजबूर कर दिया कि व्यक्ति की स्वतंत्रता सामाजिक स्वतंत्रता के लिए कोई खतरा नहीं है। यह तो सामाजिक स्वतंत्रता की पोषक है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता

विवेकानन्द यह मानते थे कि आनुपातिक स्वतंत्रता तथा सम्पूर्ण स्वतंत्रता दोनों ही पावन हैं। स्वतंत्रता व्यक्तियों का सवभाविक स्वामित्व है और हर व्यक्ति को शरीर, मस्तिष्क हृदय की स्वतंत्पाता का विकास करना चाहिए। उनका व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अभिप्राय केवल सम्पत्ति के दुरूपयोग के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने मात्र से नहीं था। उनका अभिप्राय था कि हम में से हर एक को अपनी इच्छानुसार अपने शरीर, अपनी बुद्धि तथा अपनी संपत्ति का, दूसरों को नुकसान पहुंचाए बगैर, प्रयोग करने का स्वाभाविक अधिकार होना चाहिए।

विवेकानन्द यह मानते थे कि व्यक्ति स्वतंत्रता का मुक्त रूप से पालन करके अपने को परिपूर्ण बना लेता है और परिपूर्ण व्यक्तियों के प्रयत्नों से ही समाज परिपूर्ण बनता है। समाज की शक्ति तथा चेतना व्यक्ति की पहल और स्वतंत्रता पर निर्भर करती है। इसीलिए वह व्यक्ति के विकास तथा स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना चाहते थे। वह उसकी स्वतंत्रता में किसी भी तरह का हस्तक्षेप नहीं चाहते थे, क्योंकि जब तक व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बाहरी दबाव पड़ता रहेगा उसकी स्वतंत्रता का विकास नहीं होगा। उनका कहना था : 'यह मानना एक कि कोई प्रकार का दृष्टिकोण औरों के विकास में मदद देगा। यह एक ऐसी खतरनाक बात है जिसने दुनिया के करोड़ों लोगों के विकास के अवरूद्ध कर दिया। हमें तो केवल ऐसा माहौल कायम करना चाहिए जिसमें सभी को स्वतंत्रता की रोशनी दिखाई दे। दूसरे शब्दों में, समाज को स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में व्यक्ति की मदद करनी चाहिए, उस पर रोक नहीं लगनी चाहिए, क्योंकि, समाज तो व्यक्तियों द्वारा अपनी सहायता के लिए बनाया गया एक संगठन मात्र है उसका अस्तित्व व्यक्ति के लिए है। समाज व्यक्ति के लिए होता है न कि व्यक्ति समाज के लिए।

व्यक्तियों के अधिकार

विवेकानन्द की स्वतंत्रता में आस्था ने उन्हें समाज में रहने वाले व्यक्तियों के अधिकारों की वकालत के लिए प्रेरित किया। उनका कहना था कि अधिकारों की समानता के अभाव में स्वतंत्रता अर्थहीन ही रहेगी। इसलिए उन्होंने सबके समान अधिकारों और विकास के लिए समान अवसरों की उपलब्धि पर जोर दिया।

वह नहीं चाहते थे कि किसी भी बहाने किसी की स्वतंत्रता छीनी जाए। समाज के किसी भी वर्ग को स्वंतत्रता पर अपना अधिकार नहीं जताना चाहिए। उन्होंने कहा : 'जो लोग यह कहते और मानते हैं कि यदि उपेक्षित और गरीब लोगों को स्वतंत्रता दी गई और उनके बच्चों को अपना जीवन बेहतर बनाने के लिए वह सब अवसर दिए गए जो धनी और प्रतिष्ठित लोगों तथा उनके बच्चों को मिलते हैं, तो वह पतित हो जाएंगे। वह ऐसी बात या तो समाज कल्याण के लिए कहते हैं या फिर अपने स्वार्थ से अंधे होकर।' विवेकानन्द के अनुसार, व्यक्तियों के अधिकार उतने ही स्वाभाविक तथा अहस्तांतरणीय हैं जितनी उनकी स्वतंत्रता। व्यक्ति के स्वाभाविक अधिकारों में विवेकानन्द ने मुख्य रूप से स्वतंत्रता, समानता, परिवार, संपत्ति तथा विचारों की अभिव्यक्ति के अधिकार सम्मिलित माने। व्यक्ति के स्वाभाविक अधिकारों को मान्यता प्रदान करने में समाज में व्याप्त सभी प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त हो जाएंगे और उनके स्थान पर व्यक्ति की समता का अधिकार सर्वोपरि हो जाएगा। वह विशेषाधिकारों को घातक तथा अत्याचारी मानते थे। विशेषाधिकारों से पनपनेवाले अपमान व तिरस्कार को बर्दाश्त करने के लिए वह कभी भी तैयार नहीं हुए। उनका विचार था कि विशेषाधिकार व्यक्ति के विकास में बाधक होते हैं, लोगों को अमानवीय बना देते हैं तथा अनेकानुक सामाजिक विषमताओं तथा अन्याय को बनाए रखते हैं। इसलिए उन्होंने समाज के सम्पन्न वर्गों तथा पादरियों के विशेषाधिकारों की आलोचना की। 'विवेकानन्द का वैदान्तिक स्वंत्रता का मिशन, अपने सामाजिक रूप में, विशेषधिकारों तथा तुष्टिकरण की नीति को समूल उखाड़ फेंकने का था।' इसीलिए, विवेकानन्द ने पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर सामाजिक समानता पर जोर डाला। अमेरिका जैसे पश्चिमी राष्ट्रों से जितनी अच्छी बातें उन्होंने ग्रहण कीं और उन्हें भारत में अपनाने की वकालत की, उनमें सामाजिक समानता का आदर्श सर्वोपरि था।

उनकी व्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा ने व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों तथा उनसे सम्बन्धित समस्याओं को भी प्रभावित किया। विवेकानन्द के अनुसार समाज तो केवल एक माध्यम है, एक साधन है, जिससे व्यक्ति की स्वतंत्रता का पोषण होना चाहिए। उसे सीमित करने का या उस पर बन्धन लगाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। उनका मानना था कि अन्तत: समाज व्यक्ति के कल्याण के लिए निर्मित हुआ है न कि व्यक्ति समाज के लिए।

सामाजिक स्वतंत्रता

जब विवेकानन्द सामाजिक स्वतंत्रता की बात करते हैं तो वह यह मानकर चलते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता का समाज की स्वतंत्रता से घनिष्ट सम्बन्ध है। उनका मानना था कि जो दूसरों को स्वतंत्रता नहीं प्रदान कर सकता उसे स्वयं स्वतंत्रता का अवसर नहीं होना चाहिए। वह ईर्ष्या पर आधारित अथवा अन्य प्रकार से ऐसे विस्फोटक सामाजिक प्रतिबन्धों के विरूद्ध थे, जो व्यक्ति की पहल तथा सामाजिक विकास के मार्ग में बाधा डालते हों। उनका मत था कि समुचित विकास के लिए समाज को एक स्वीकार्य दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा अन्य समुदायों के आदर्शों में भी, जो उचित लगे, उसे स्वीकार करके समाज के विकास की गुणवत्ता को बढ़ाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, सामाजिक स्वतंत्रता से उनका अभिप्राय एक ऐसे सामाजिक जीवन से था, जो विकासशील हो, तथा जो विकास सामाजिक समता तथा स्वतंत्रता के समन्वय से ही संभव है। उन्होंने समता व स्वतंत्रता को एक-दूसरे से अलग मानते हुए उनके एक-दूसरे के पूरक माना। उनके विचार में सामाजिक स्वतंत्रता को सामाजिक एकता तथा समता को प्रोत्साहित करना चाहिए। समाज में अनेकता है, असमानता है और इसलिए सबको ऊपर उठने का अवसर मिलना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसी एक वर्ग को तो समूचा अवसर मिल जाए और किसी को बिल्कुल भी न मिले। यह तो हो सकता है कि किसी को कम मिले किसी को ज्यादा और, जहां तक संभव हो, बलवान के मुकाबले निर्बल को अधिक अवसर मिलने चाहिए। उदाहरण के तौर पर, धनी तथा प्रबुद्ध वर्ग के लोगों के मुकाबले में निरक्षरों तथा गरीबों को पढ़ने-लिखने के अवसर अधिक मिलने चाहिए। सामाजिक स्वतंत्रता तथा समता से सम्बन्धित विवेकानन्द के इन विचारों से उनके समय के समाज को और उसके आदेशात्मक दृष्टिकोण को बहुत बड़ा झटका लगा।

सामाजिक नियतिवाद की आलोचना

विवेकानन्द द्वारा व्यक्ति के अधिकारों का पक्ष लेना, सामाजिक तथा धार्मिक विशेषाधिकारों की आलोचना तथा सामाजिक स्वतंत्रता तथा समता का उनका पक्षधार होना सामाजिक नियतिवाद से मेल नहीं खाता। यहां यह कहा जा सकता है कि जहां विवेकानन्द समाज की आलोचना करते हैं, वहां उनके दिमाग में भारतीय समाज की तस्वीर है, जिसकी विकृतियों, उसके सर्वाधिकारवादी दृष्टिकोण तथा गतिहीनता की वह निन्दा करते हैं। वह ऐसे समाज को भी स्वीकार नहीं करते, जिसका धर्म रसोई

घर तक सीमित है और जो छुआछूत पर आधारित हो। उनका यह मानना था कि भारत की वर्तमान जाति-व्यवस्था भारत के विकास के मार्ग में बाधक है। यह उसे संकुचित बनाती है, उसे अवरूद्ध करती है, उसमें अलगाव लाती है और जो एक ऐसे कागजी आधार पर खड़ी है जो कभी भी गिर सकता है। यह समाज एक ऐसा समाज है जिसमें पारस्परिक सम्वाद है ही नहीं। इस प्रकार, सामाजिक नियतिवाद, व्यक्ति तथा समाज के विकास में बाधा डालता है। उन्होंने सामाजिक प्रतिबन्धों की निन्दा की तथा व्यक्ति को समाज की निरकुंशता से मुक्ति कराने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया।

सामाजिक समन्वय

विवेकानन्द समाज के आदेशात्मक दृष्टिकोण की आलोचना करने मात्र से संतुष्ट नहीं थे। वह तो केवल एक नकारात्मक बात होगी। उन्होंने सकारात्मक तरीके से समाज को एक उदारवारी तथा स्वीकारणीय दृटिकोण अपनाने के लिए और केवल अपने आप में सीमित न होकर दूसरों से सीखने के लिए भी प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि सामाजिक समन्वय के अभाव में समाज का विकास सम्भव न होगा। आंतरिक प्रतिक्रिया तथा विकासवादी ताकतों के बाहरी दबाव में दूसरे का कोई महत्त्व नहीं है। विवेकानन्द के इन विचारों के हेगल के शब्दावली में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है कि सामाजिक प्रतिक्रिया उनका 'वाद' था, सामाजिक स्वतंत्रता उसका 'प्रतिवाद' तथा सामाजिक स्वीकार्यता तथा ज्ञन का आदन-प्रदान उसका समन्वय अथवा 'संवाद' था। जहां तक भारत का प्रश्न है विवेकानन्द सामाजिक समन्वय की प्रक्रिया द्वारा इसे गतिशील बनाना चाहते थे। उदाहरण के लिए, जिस प्रकार का समन्वय वह चाहते थे उसे उन्हीं के शब्दों में ऐ ऐसे नए भारत की संज्ञा दी जा सकती है, जिसका मस्तिष्क वेदान्तवादी था तथा शरीर मुस्लिम। दूसरे शब्दों में, इसे वेदान्तिक स्वत्रंतता का इस्लामिक समता से समन्वय कहा जा सकता है। विवेकानन्द पूर्व की आध्यात्मिक स्वतंत्रता का पश्चिम की सामाजिक स्वतंत्रता से सामंजस्य करना चाहते थे। वह भारत को एक ऐसा आदर्श समाज बनाना चाहते थे, जिसमें विचारों ओर संस्थान का परस्पर समन्वय हो। उनके विचारों में यूनान के मस्तिष्क में यूरोप की स्फुर्ति तथा हिन्दुओं की आध्यात्मिकता को जोड़कर एक सम्मिश्रित समाज की स्थापना करनी होगी।

विवेकानन्द चाहते थे कि भारतीय समाज ऐसा हो जिसमें सबको समुचित स्थान मिल पाए, जिसमें परस्पर सहयोग हो तथा एक दूसरे के प्रति सद्भावना हो। दूसरी ओर, मार्क्स के सामाजिक विरोध, गतिरोध, क्रांति तथा युद्ध का पाठ पढ़ाया। वी.पी. वर्मा के अनुसार, आधुनिक भारत में न तो हिंसक क्रांति के लिए कोई स्थान था और नही क्रमिक विकास के लिए, जिसका विवेकानन्द ने सुझाव दिया था। भारतीय समाज को आवश्यकता है उन जनतंत्रीय साधनों की, जो शीघ्रता से परिवर्तन ला सकें।

आर्थिक स्वतंत्रता

आर्थिक स्वतंत्रता से विवेकानन्द का अभिप्राय अभाव से मुक्ति का था। उनके अनुसार, अगर कोई चीज व्यक्ति की स्वतंत्रता में सबसे अधिक बाधक है तो वह है उसकी निर्धनता। उनके विचार में बौद्धिक स्वंतत्रता तथा व्यक्ति की प्रसन्नता परस्पर सम्बन्धित हैं। उनका कहना था कि हर समाज में बच्चों जैसे अबोध व्यक्ति होते हैं जो समता तथा स्वतंत्रता का कुछ न कुछ अनुभव तो करना ही चाहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी सदस्यों को ज्ञान तथा सम्पत्ति का समान अवसर प्राप्त हो। लेकिन जब विवेकानन्द सम्पत्ति के अधिकार की बात करते हैं, तो वह शोषण पर आधारित संगह-प्रवृत्ति की बात नहीं करते। वह नैतिकता तथा परमार्थ की भावना पर आधारित सम्पत्ति के अधिकार की बात करते हैं। आर्थिक असमानताओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है, क्योंकि लोगों की क्षमताएं तथा योग्ताएं असमान हैं इसलिए समाज में असमानताएं हैं जब तक सबको समान अवसर प्राप्त नहीं होगा सामाजिक असमानताएँ व्याप्त रहेंगी। जैसे-जैसे आर्थिक अवसर मिलते जाएंगे, आर्थिक विषमताएं कम होती जाएंगी। क्योंकि विवेकानन्द का व्यक्ति नैतिक है, शोषण करने वाला अथवा संग्रह-प्रवृत्ति वाला नहीं है, इसलिए वह अपने पर आर्थिक अंकुश लगा रखा है और समाज-सेवा के उद्देश्य से प्रेरित होकर अपनी धन-संग्रह की प्रवृत्ति पर काबू पा सकता है क्योंकि व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से अधिकाधिक स्वतंत्र होना चाहता है, इसलिए उससे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने आर्थिक लाभ के लिए औरों का आर्थिक शोषण नहीं करेगा। वह तो अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को घटाने का प्रयत्न करेगा और अपने पर कम-से-कम खर्च करके बची हुई सम्पति को सम्पत्ति-विहीन वर्गो के आर्थिक कल्याण के लिए लगा देगा। लेकिन यहां पर यह ध्यान में रखना भी जरूरी है कि विवेकानन्द यह नहीं चाहते थे कि व्यक्ति अपने आर्थिक

लाभ को अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता को, अपनी आर्थिक खुशहाली को पूरी तरह त्याग कर साधु हो जाए। वह तो इतना चाहते थे कि अपने पर होने वाले खर्च में से जो कुछ बच सके उसे दूसरों की आर्थिक खुशी के लिए लगा दे, जिससे न केवल वह फल-फूले, बल्कि औरों को भी फलने-फूलने दे।

दूसरे शब्दों में, व्यक्ति को अपने आर्थिक हितों को संरक्षित रखते हुए, एक धार्मिक भावना से ओत-प्रोत होकर समाज के आर्थिक कल्याण तथा विकास व खुशहाली में भी अपना योगदान देना चाहिए। विवेकानन्द ने कहा : 'सम्पत्ति तो बांटने के लिए होती है, जोड़ने के लिए नहीं।' इसलिए, इसका उद्देश्य केवल व्यक्ति का कल्याण ही नहीं, समाज का कल्याण भी है। विवेकानन्द का यह सिद्धान्त गांधी की आर्थिक न्यासिता के सिद्धान्त से मेल खाता है, क्योंकि दोनों ने सम्पत्ति के व्यक्तिगत तथा सामाजिक पहलुओं को पहचाना और उसकी व्यक्ति व समाज दोनों की आर्थिक खुशहाली के लिए प्रयोग करने की बात कही। विवेकानन्द ने भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को व्यक्तिगत रूप से भी देखा ओर सामाजिक रूप से भी। वह आर्थिक जीवन को आध्यात्मिकता से जोड़ना चाहते थे। उनका विचार था कि समाज को बनाए रखने के लिए आर्थिक धर्म के साथ-साथ सामाजिक धर्म को भी निभाना होगा, जिससे कि व्यक्ति व समाज दोनों ही अपने दुनियावी कर्तव्यों को निभा सकें। विवेकानन्द ने स्वतंत्रता, मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए समाज का परित्याग करना आवश्यक नहीं समझा। संन्यास का रास्ता तो गिने-चुने लोगों के लिए होता है, जो किसी-न-किसी कारण समाज से परे रहना ही पसंद करते हैं। वह तो केवल इतना चाहते थे कि मनुष्य अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन स्वार्थहीनता की भावना से करे। स्वार्थहीन गतिविधि ही आध्यात्मिक जीवन का मार्ग है। यही वह मोक्ष है, जो आज समाज में जीवित रहते हुए मिलती है, समाज छोड़ने या मर जाने पर नहीं। विवेकानन्द का यह दर्शन हिन्दू समाज की सामाजिक तथा अर्थिक योजना के अनुकूल है, चाहे उसे पुरूषार्थ के नाम से पुकारा जाए, आश्रम-धर्म के नाम से जाना जाए या फिर वर्णाश्रम-धर्म के नाम से।

कर्मयोग की बात करते हुए विवेकानन्द ने एक आदर्श गृहस्थी की परिभाषा भी की। वह अपने घर के व सम्पूर्ण समाज का रखवाला होता है। उसे अपना परिवार चलाना होता है। नैतिकता के नियमों का पालन करवाना होता है। सम्पत्ति का अर्जन करना व करवाना होता है। जो ऐसा नहीं करता उसे सुस्त, निकम्मा, अनैतिक व अधार्मिक माना जाता है। इस प्रकार, व्यक्ति का अपना, अपने परिवार तथा समाज का भौतिक जीवन व भौतिक कल्याण एक नैतिक उत्तरदायित्व है, जो उसे आध्यात्मिकता के रास्ते से दूर ले जाने के बजाए, उसे आध्यात्मिक स्वतंत्रता के करीब लाता है। विवेकानन्द, गांधी की तरह, न तो निर्धनता का जीवन जीने का परामर्श देते हैं, न ही उसकी बढ़-चढ़कर प्रशंसा करते हैं।

भौतिकवाद तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता का समन्वय

विवेकानन्द पदार्थ तथा आत्मा को एक समान मानते हैं और कहते हैं कि भौतिक जीवन की प्राप्ति आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए अनिवार्य है। यह दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं और यदि दोनां को पाना सम्भव न हो और दोनों में से किसी एक को चुनना हो तो वह, गांधी की तरह, आध्यात्मिक जीवन को प्राथमिकता न देकर भौतिक कल्याण को प्राथमिकता देंगे, क्योंकि उसके अभाव में तो आध्यात्मिक जीवन संभव है ही न हीं। 'भूखे पेट न भजन गोपाला।' अर्थात् भूखे पेट तो पूजा भी नहीं होता। उन्होंने कहा : 'मैं ऐसे ईश्वर की आराधना नही करूँगा जो स्वर्ग में तो आनन्द प्रदान करे लेकिन इस दुनिया में रहते हुए रोटी भी नसीब न कराए।' उनके विचार में एक भूखे इनसान को धर्म का पाठ पढ़ाना उसका अपमान करने के अलावे और कुछ नहीं है। भूखे को भगवान के दर्शन की जगह केवल दो रोटियां चाहिएं। अगर दो रोटी भी उसे नहीं मिलेगी तो भगवान का दर्शन करने की उसमें शक्ति भी कैसे आएगी। धर्म की बात केवल उस समाज में सार्थक होती है, जहां लोगों को न्यूनतम भौतिक आवश्यकताएँ पूरी कर दी गई हों। जिस समाज में सभी को रोटी, कपड़ा और मकान मिल गया हो, उसी समाज में आध्यात्मिकता, भगवान या धर्म की चर्चा करना प्रासंगिक होता है। आर्थिक सम्पन्नता के अभाव में स्वर्ग में मोक्ष की प्राप्ति के वायदे का कोई महत्त्व नहीं होता। इस प्रकार, विवेकानन्द समाज का ऐसा पुनर्गठन करना चाहते थे, जिसमें सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन का संतुलित समन्वय हो। इस समन्वय को उन्होंने 'उन्नत आध्यात्मवाद' के नाम से भी पुकारा। विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारणा, जैसा की हमने देखा, भौतिक रूप से आध्यात्मिक है। वह यह मानते थे कि स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास हो ही नहीं सकता। उसकी स्वतंत्रता उसके समाज के साथ सम्बन्धों पर निर्भर करता है। उनका मानना था कि समाज का महत्त्व तभी तक है, जब तक वह व्यक्ति के विकास को प्रोत्साहित करे, उसमें स्वयं बाधा बनकर न खड़ा हो जाए। जब व्यक्ति स्वयं स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए दूसरों की स्वतंत्रता को भी प्रोत्साहित करता है तो वह स्वतंत्रता के दायरे का विस्तार करता है।

विवेकानन्द चाहते थे कि जनता का जीवन स्तर उठाने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता होना अनिवार्य है। आर्थिक स्तर के विकास से ही आध्यात्मिकता के स्तर का भी विकास होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि विवेकानन्द की स्वतंत्रता की अवधारणा एक समन्वित अवधारणा है जिसमें एक ओर तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का सामाजिक स्वतंत्रता से समन्वय है तथा दूसरी ओर, आर्थिक स्वतंत्रता से आध्यात्मिक स्वतंत्रता का समन्वय है।

संदर्भ

- Gangeya Mukherji: An Alternative Idea of India : Tagore and Vivekananda, Routledge India, 2011
- P.R. Bhuyan: Swami Vivekananda: Messiah of Resurgent India, Atlantic, 2003
- Rajagopal Chattopadhyaya: Swami Vivekananda in India: A Corrective Biography, Motilal Banarsidass, 1999
- Amiya P. Sen: The Indispensable Vivekananda : An Anthology for Our Times, Permanent Black, 2006

बिहार में महात्मा गाँधी (1917)

डॉ. जीतेन्द्र प्रसाद

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, रामलखन सिंह यादव कॉलेज, बेतिया (प. चम्पारण) बिहार

जुल्म की ज्यादती से जुझने का जज्बा एक ऐसा आदर्श है, जो जिन्दगी को यथार्थ बना देता है, मानव को महामानव बना देता है और दस्यु को महर्षि बना देता है। पुराकाल से सत् पुरूषों में समतल से शून्य की ओर जाने की लालसा पलती रही है। मोहनदासकरम चन्द गाँधी एक ऐसे मानव का नाम है जिसने शून्य की ओर नहीं देखा, समतल को ही साधना का स्थल बनाया। समस्त कर्मो की प्रयोगशाला के रूप में भारतीय भूमि को, साधन स्वरूप किसान भाइयों को अपना कर उन्होंने वैदेशिक उपनिवेशवाद को राष्ट्र से समाप्त कर दिया।

गाँधी युग में नस्ल-भेद और अर्थ-भेद के बीच संघर्ष था। दक्षिण अफ्रिका से नस्लवाद के विरूद्ध युद्ध जीतने के पश्चात् गाँधीजी ने बिहार में वैदेशिक अर्थनीति के विरूद्ध सत्याग्रही युद्ध छेडा। नीलहेसाहबों के हुक्म से किसानों पर तिन कठिया प्रणाली का अत्यन्त बुरा दबाव पड़ रहा था। समाज में जनता और शासन के बीच जमीन और आसमान का सा अन्तर था। छुआ-छूत की धनीभूत पीड़ा से अवर्णजातियॉ अत्यन्त विकल थी। चम्पारण के किसान पं. राजकुमार शुक्ल, श्री संतभगत और पीर मोहम्मद मोनिस के प्रयासों से गाँधी जी बिहार तो आ गए, किन्तु सुधार कार्यो में इन व्यक्तियों की अगुआई से काम न चलते देख उन्होंने कमान अपने हाथों में ले लिया।

अप्रैल 10, 1917 बुद्ध, महावीर, चन्द्रगुप्त, अशोक, गुरूगोविन्द सिंह और शेरसाह सूरी की कृतियों से गौरन्वित बिहार के शानदार इतिहास में राष्ट्रपिता गाँधी की कर्मभूमि होने की शुरूयात को भी दर्ज करने के सौभाग्य का दिन।

आज के दिन ही सवेरे की गाड़ी से कलकत्ता से दक्षिण अफ्रिका के नस्लवाद के खिलाफ अहिंसक संग्राम के विजयी नायक मोहनदास करमचन्द्र गाँधी, राजकुमार शुक्ल के साथ चम्पारण जाने के क्रम में पटना पहुँचे थे। गाँधी जी को साथ लेते हुए राज कुमार शुक्ल पटना के नामी वकील राजेन्द्र बाबू के यहाँ पहुँचे। उन दिनों डा. राजेन्द्र प्रसाद पुरी गए हुए थे। राजेन्द्र बाबू के नौकर ने राज कुमार को एक देहाती मुवक्किल और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पीड़ितो और गरीबों के मसीहा सिद्ध हुए गाँधीजी को भी वैसा हीं एक देहाती समझ राजेन्द्रबाबू के बाल्टी से कुएँ से पानी निकालने की इजाजत दी और न ही शौचालय इस्तेमाल करने की। देहाती राजकुमार शुक्ल के लिए इसतरह का व्यवहार कोई नई बात नहीं थी। बड़े लोगों के यहाँ गरीबों का इस तरह अपमान झेलना आश्चर्य की बात नहीं थी। लेकिन पहलीबार बिहार पहुँचे गाँधी के लिए यह व्यवहार अचम्भित कर देने वाला था। व्यापक छुआ-छुत और अमीरों और गरीबों के बीच मौजूद खाई और दूषित मानसिकता ने उन्हें हिला कर रख दिया। यह बिहार की वास्तविक परिस्थिति का पहला तर्जुबा था।

गाँधीजी के अनुसार इन दिलचस्प तजुर्बो से मुझे राजकुमार शुक्ल के सीधेपन का अंक्षजा हुआ और उनकी इज्जत मेरे दिल में और बढ़ गयी। मगर मैंने समझ लिया कि उनकी अगुआई से काम नहीं चलेगा, अब मामला अपने हाथ में ही ले लेना होगा।

अपनी आत्मकथा के तेरहवें अध्याय के भाग पाँच में वे लिखते हैं मुझे मौलाना मजहरूल हक से उस समय से मुलाकात थी जब वे लंदन में बैरिस्ट्री की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उसके बाद 1915 में जिस साल वे मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे, बंबई की कॉग्रेस में उन से फिर मुलाकात हुयी और उन्होंने दावत दी थी कि जब पटना आना हो तो मेरे घर ठहरें। उस वक्त उनकी दावत याद आयी और मैंने एक दस्ती पत्र द्वारा उनको सूचित किया कि चम्पारण जाने के सिलसिले में मैं पटना आया हूँ, वे तुरंत अपनी मोटर कार लेकर पहुँचे और अपने साथ ले गए। शाम को उन्होंने मुजफ्फरपुर के लिए रवाना कर दिया।

तिरहुत प्रमण्डल के चारों जिले मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सारण और चम्पारण में नील की खेती ज्यादा होती थी। सर्व प्रथम 1813 ई. में कर्नल हिक्की नामक अंग्रेज ने बारा (चकिया) में नीलहा कोठी की स्थापना की। सन् 1824 ई. में मोरेनहिल नामक अंग्रेज ने लालसरैया में नील की कोठी स्थापित की। 1866 ई. में चम्पारण को अगला जिला बनाया गया। 19वीं शताब्दी के अंत तक चम्पारण में अंग्रेजों ने अनेक कोठियाँ स्थापित कर ली। ये लोग 'खुरकी कोतवाली' और 'तिनकठिया' व्यवस्था के द्वारा किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार करा कर उनका शोषण करते थे। 'खुदकटी' व्यवस्था के द्वारा अंग्रेज रैयतों को कुछ रूपैया देकर उनकी कुल जमीन, घर इत्यादि जरपेशगी रख लेते थे और जीवनभर उन से नील की खेती कराते थे। इस तरह 'तिनकठिया' प्रथा के द्वारा किसानों को अपने खेत के प्रत्येक बीघा के तीन कठ्ठे में नील की खेती करनी पड़ती थी। उनमें खर्च रैयत का होता था और बिना मुअवजा दिए नील अंग्रेज ले जाते थे। इतना हीं नहीं 'बपही पुतही' यानि जब बाप मर जाये तो उसका बेटा बिना कोई निश्चित राशि दिए अपने जमीन का वैधानिक वारिस नही बन सकता था। चम्पारणवासी नीलहे अंग्रेज लोगों के इस जुल्म के भुक्तभोगी थे। 1905 में उनके खिलाफ आवाज उठी।

चम्पारण के सतवारिया ग्राम के निवासी पं. राज कुमार शुल्क भी अंग्रेज जमींदार के अत्याचार से पीड़ित थे। राजकुमार शुल्क ने अंग्रेजों का विरोध एवं पीड़ितों की सहायता करना शुरू किया। इससे बेलवा कोठी का अंग्रेज मैनेजर ए.सी.एमन बहुत क्रुध हुआ। शुल्क के विरोध को दबाने के लिए अंग्रेज मैनेजर एमन उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ देने लगा। उनकी पुरी फसल नष्ट कर दी जाती थी। मुरली भरहवा स्थित उनके मकान को नष्ट कर दिया गया। उनकी जमीन और सम्पति जब्त कर ली गयी। स्वयं एमन ने उनकी पीठ पर कोड़े बरसाये। बेलवा कोठी के मैनेजर ए.सी.एमन ने तो नियम ही बना रखा था कि ब्याह कर लायी गयी पतोहू पहली रात सलामी के लिए कोठी पहुँचायी जाये। अंग्रेज मैनेजर के अत्याचारों से तंग आकर उन्होंने अंग्रेजो की भारत से विदाई हेतु प्रतिज्ञा कर ली। इस कार्य को पूरा करने के लिए उन्होंने पहले मोतिहारी के यशस्वी पुरूष श्री गोरखप्रसाद तथा बिहार के यशस्वी अधिवक्ता एवं कॉग्रेसी नेता श्री ब्रजकिशोर प्रसाद से भेंट की तथा किसानों पर हो रहे अत्याचार के बारे में बताया।

अंग्रेजो के अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति के लिए किसान आन्दोलन के नेता राजकुमार शुक्ल के नेतृत्व में मोहनदास करमचन्द गाँधी को चम्पारण बुलाने हेतु तीन व्यक्तियों को जिम्मेदारी सौंपी गयी।

1. पं. राजकुमार शुक्ल ग्राम-मुरली भरहवा
2. श्री संत भगत ग्राम- अमोलवा
3. पीर मोहम्मद मोनिस ग्राम - बेतिया

सर्वसम्मति से यह भी तय हुआ कि शेख गुलाब, शीतलराय और राजकुमार शुक्ल 1916 ई में लखनऊ में होने वाले कॉग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भाग लें। लखनऊ अधिवेशन में किसानों के प्रतिनिधि राजकुमार शुक्ल को पहली बार किसान मंच से सम्पूर्ण भारत के प्रतिनिधियों के सामने किसानों पर हो रहे अत्याचार एवं शोषण का वर्णन करने का मौका मिला। गाँधी जी ने चम्पारण की हालत सुनकर सहानुभूति जताई एवं चम्पारण आने का आश्वासन दिया।

बिहार आने के बाद राजकुमार शुक्ल ने 27 फरवरी 1917 ई. को बेतिया से कैथी में एक मार्मिक पत्र लिखा, ''किस्सा सुनते हो रोज औरों के, आज मेरी भी दास्तान सुनो'' गाँधीजी ने जवाब दिया कि अप्रैल 1917 ई. में कॉग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में होने वाला है। मैं कलकत्ता में भूपेन्द्र बसु के घर पर ठहरूँगा, वही आकर मिलें। पं. राजकुमार शुक्ल, शेख गुलाब और शीतल राय गाँधीजी को लाने के लिए कलकत्ता चले गए।

अगले दिन मोहनदास करमचन्द गाँधी बिहार प्लैन्टर्स एसोसिएशन के मंत्री जे.एम. विल्सन से मिले। उन्होंने कहा कि अंग्रेज के **'तीन कठिया'** कानून के चलते किसानों एवं उनके रैयतों पर हो रहे जुल्म की जाँच करना चाहता हूँ। विल्सन के दूत ने एक पत्र दिया जिसमें लिखा था, मिस्टर गाँधी, चम्पारण में किसी तरह की जाँच की जरूरत नहीं है। गाँधीजी 13 अप्रैल 1917 ई. को तिरहुत के कमिश्नर एफ मोशेंड़ से मिले। मोशेंड ने तिरहुत छोड़ने की सलाह दी और कहा कि आपको चम्पारण आने की जरूरत नहीं है। तिरहुत के कमिश्नर ने चम्पारण के मजिस्ट्रेट को आदेश दिया कि गाँधीजी के चम्पारण आने की स्थिति में धारा 144 के तहत कारवाई करें।

15 अप्रैल को गाँधीजी धरणीधर प्रसाद के साथ शाम में 3 बजे मोतिहारी स्टेशन पहुँचे तथा मोतिहारी के वकील गोरख प्रसाद के घर चले गए। अगले दिन उन्हें जसवली पट्टी गाँव के व्यक्ति पर जमींनदार के अत्याचार की सूचना मिली। 16 अप्रैल को गाँधीजी

हाथी पर सवार होकर रामनवमी प्रसाद के साथ जसवली पट्टी के लिए रवाना हुए। रास्ते में ही पुलिस के दारोगा ने गाँधीजी को चम्पारण के जिला मजिस्ट्रेट डब्लू.बी. हिकॉक का पत्र दिया। पत्र में लिखा था आपके चम्पारण आने से शांति व्यवस्था भंग होने और प्राणहानि होने का खतरा है। अत: चम्पारण आने का विचार त्याग दें। गाँधीजी ने उस आदेश को मानने से इंकार कर दिया और इसके लिए किसी भी दंड़ को भुगतने का फैसला कर लिया। इसके बाद गाँधीजी ने डा. राजेन्द्र प्रसाद और सी.एफ.एन्ड्रयूज से चम्पारण आने का निवेदन किया।

18 अप्रैल 1917 ई. को महात्मा गाँधी पर सरकारी आदेश तोड़ने के आरोप में कारवाई शुरू हुयी। 18 अप्रैल को एस.डी.ओ. मोतिहारी के कार्यालय में गाँधीजी को उपस्थित होने का आदेश मिला। जहाँ धारा 144 और 188 के उलंधन के आरोप में गाँधीजी को सफाई देनी थी। एस.डी.ओ. मोतिहारी की अदालत में महात्मा गाँधी ने जो ऐतिहासिक ब्यान दिया वह उनके निजी जीवन एवं राष्ट्रीय आन्दोलन (चम्पारण सत्याग्रह) के इतिहास में अमर है। गाँधीजी ने अपने चम्पारण आने के उदेश्यों को स्पष्टता के साथ रखने के साथ पूरी जानकारी प्राप्त किये बिना चम्पारण से जाने से इंकार कर दिया और सरकारी आदेशों की अवमानना करते हुए हर सरकारी फैसले को झेलने की तैयारी की घोषणा की। स्थिति की गंभिरता को देखते हुए जिला प्रशासन ने 20 अप्रैल को मुकदमा वापस ले लिया।

18 अप्रैल 1917 ई. को गाँधी जी ने मोतिहारी के एस.डी.ओ. कोर्ट में जो लिखित वक्तव्य दिया, वह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो बाद के दिनों में स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत सिद्ध हुआ।

एस.डी.ओ. मोतिहारी के अदालत में गाँधीजी द्वारा जो वक्तव्य दिया गया उसके अंश प्रकार है अदालत की आज्ञा से मैं संक्षेप में बताना चाहता हूँ कि नोटिस द्वारा जो मुझे आज्ञा दी गई, उसकी अवज्ञा मैंने क्योंकी। मेरी समझ में यह स्थानीय अधिकारियों और मेरे मध्य में मतभेद का प्रश्न है। मैं इस देश में राष्ट्रीय तथा मानव सेवा करने के विचार से आया हूँ। यहाँ आकर उन रैयतों की सहायता करने के लिए, जिनके साथ कहा जाता है कि नीलहे साहब अच्छा व्यवहार नहीं करते, मुझ से आग्रह किया गया था, पर जब तक मैं सब बातें अच्छी तरह न जान लेता तब तक उन लोगों की सहायता नहीं कर सकता था। इसलिए मैं, यदि हो सके, तो अधिकारियों और नीलवरों की सहायता से, सब बातें जानने के लिए आया हूँ। मैं किसी दूसरे उदेश्य से नहीं आया हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं होता कि मेरे यहाँ आने से किसी प्रकार शांतिभंग या प्राणहानि हो सकती है। मैं यह कह सकता हूँ कि ऐसी बातों का मुझे बहुत कुछ अनुभव है। अधिकारियों को जो कठिनाईयाँ होती है उनको मैं समझता हूँ और मैं यह भी मानता हूँ कि उन्हें जो सूचना मिलती है वे केवल उसी के अनुसार काम कर सकते है। कानून मानने वाले व्यक्ति की तरह मेरी प्रवृति यही होनी चाहिए थी और ऐसी प्रवृति हुई भी थी कि मैं इस आज्ञा का पालन करूँ। पर मैं उन लोगों के प्रति, जिनके कारण मैं यहॉ आया हूँ, अपने कर्त्तव्य का उलंघन नहीं कर सकता था। मैं समझता हूँ कि मैं उनलोगों के बीच में रह कर ही उनकी भलाई कर सकता हूँ। इस कारण मैं स्वच्छा से इस स्थान से नहीं जा सकता था। दो कर्त्तव्यों के परस्पर विरोध की दशा में मैं केवल यहीं कर सकता था कि अपने हटाने की सारी जिम्मेदारी शासकों पर छोड़ दूँ। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि भारत के सार्वजनिक जीवन में मेरी जैसी स्थिति वाले लोगों को आदर्श उपस्थित करने मे बहुत ही सचेत रहना पड़ता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस स्थिति में मैं हूँ, उस स्थिति में प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति को वही काम करना अच्छा है, जो इस समय मैने करने का निश्चय किया है और वह यह कि बिना किसी प्रकार का विरोध किये आज्ञा न मानने का दंड सहने के लिए तैयार हो जाऊँ (Penalty of Disobedience) मैंने जो ब्यान दिया है वह इसलिए नहीं कि जो दंड हमें मिलने वाला है वह कम किया जाय, पर इस बात दिखलाने के लिए मैंने सरकारी आज्ञा की अवज्ञा इस कारण से नहीं की है कि मुझे सरकार के प्रति श्रद्धा नहीं है, बल्कि इस कारण से है कि मैंने उससे भी उच्चतर आज्ञा-अपनी विवके-बुद्धि की आज्ञा का पालन करना उचित समझा है।

'' फानूस बनके जिसकी हिफाजत हवा करे।
वह शम्मा क्या बुझे जिसे रौशन खुदा करें।। ''

इस ऐतिहासिक जीत के बाद गाँधीजी 22 अप्रैल 1917 ई. को बेतिया के लिए रवाना हुए। शाम में अपार जनसमुह के साथ हजारीमल धर्मशाला पहुँचे। उसी धर्मशाला में अपने स्वतंत्रता सेनानियों के साथ महीनों रह कर गाँधीजी ने चम्पारण के हजारों शोषित, पीड़ित किसानों की व्यथा सुनी। इसी धर्मशाला में पहली बार ग्रामीणों ने अपनी जुबान खोलने की हिम्मत जुटाई तथा 850 गाँवो

के लगभग 10 हजार किसानों ने नीलहे गोरों के अत्याचारों से सम्बन्धित बयानों को लिखित रूप से दर्ज कराया। गाँधीजी 22 अप्रैल को ब्रजकिशोर प्रसाद एवं राजकुमार शुक्ल के साथ लौकरिया गाँव पहुँचे। 27 अप्रैल को नरकटियागंज पहुँचे। 27 अप्रैल 1917 ई. को महात्मा गाँधी, ब्रजकिशोर बाबू, रामनवमी बाबू, विन्ध्यवासिनी बाबू, अवधेश प्रसाद आदि के साथ शिकारपुर होते हुए राजकुमार शुक्ल के घर मुरली भरहवा पहुँचे। वे लोग बेलवा कोठी के नीलहा मैनेजर ए.सी.एमन से मिलने भी गए तथा रात में अमोलवा के संत राउत के घर ठहरे। चम्पारण के गाँवों में घुमते हुए गाँधीजी ने भितिहरवा में एक महुआ पेड़ के नीचे बैठ कर उपस्थित लोगों के बीच निरक्षरता दूर करने के लिए संकल्प लिया। इस प्रकार मई 1917 ई. से अक्टुबर 1917 ई. तक लोगों के हालात का व्योरा इक्ट्ठा करते रहे। गाँधीजी की लोकप्रियता से प्रभावित होकर बिहार के तत्कालीन गर्वनर सर एडवर्ड़ गेट ने चम्पारण की स्थिति या मामले की जाँच के लिए एक आयोग का गठन किया और गाँधीजी को इसका सदस्य बनाया। इस जाँच आयोग नीलहों और जमींनदारों के प्रतिनिधि के रूप में गाँधीजी प्रतिनियुक्त थे। उन्होंने आयोग को यह समझाया कि '' तिनकठिया प्रथा'' खत्म होनी चाहिए। जाँच कमिटी ने सभी शिकायतों को सही पाया और ''तिनकठिया प्रथा'' को समाप्त करने हेतु 4 अक्टुबर 1917 ई. को जाँच समिति (आयोग) ने सरकार से सिफारिश किया। एक कानून बना कर (चम्पारण कृषि अधिनियम) ''तिन कठिया प्रथा'' उठा लिया गया। साथ ही गोरे बगान मालिकों को अवैध वसूली का 25 प्रतिशत हिस्सा किसानों को वापस करना पड़ा।

इस प्रकार नीलहों के राज्य का अस्त हुआ तथा नील की खेती के अभिशाप से किसानों को मुक्ति मिली। चम्पारण की समस्या का समाधान हुआ तथा चम्पारण 'सत्याग्रह' की सफलता के फलस्वरूप गाँधीजी राष्ट्रीय नेता बन गये तथा मोहनदास करमचन्द गाँधी को 'महात्मा' बनने का अवसर मिला। दक्षिण अफ्रिका से लौट कर भारत में 'अहिंसा एवं सत्याग्रह' का सफल प्रयोग चम्पारण की धरती पर ही किया गया। उन्होंने चम्पारण में शोषण और पीछड़ेपन को समाप्त करने के लिए कई पाठशालायें स्थापित की। चम्पारण ही नहीं हिन्दुस्तान में गाँधीजी की प्रथम सत्याग्रह की यह अभूतपूर्व सफलता थी। बहुत कम दिनों के अन्दर पहली अहिंसक लड़ाई को सुखद अंजाम तक पहुँचना चौंका देने वाला था। भारत में पहले सत्याग्रह की कामयाबी ने लोगों के अन्दर उत्साह पैदा कर दिया। इसके बाद आजादी की लड़ाई के इतिहास का ''सत्याग्रही-युग'' जो 'गाँधी-युग'' कहलाया, की शुरूआत हुयी। इस शुरूआती पहल ने ही किसानों के अन्दर अत्याचारों के विरूद्ध खड़े होने और अहिंसक प्रतिकार करने की हिम्मत पैदा कर दी।

गाँधी सेवा संघ का पाँचवा अधिवेशन चम्पारण के वृन्दावन में 3 मई से 8 मई 1939 ई. तक आयोजित हुआ था। उसके उद्घाटन के लिए गाँधीजी चम्पारण आये थे। उनके साथ कस्तुरवा गाँधीजी, महादेव देसाई, प्यारेलाल और डॉ. सुशीलानैयर भी आयीं थी। बंगाल से डॉ. पी.पी. घोष भी अधिवेशन में भाग लेने अपने साथियों के साथ वहाँ मौजूद थे। गाँधीजी ने अपने सम्बोधन में चरखा, अहिंसा, सत्याग्रह आदि पर तफसीली रोशनी डाली थी। फलस्वरूप चम्पारण की जनता में दैनिक समय सारणी के साथ चरखा जुड़ गया जिसका व्यापक प्रभाव बिहार के अन्य जिलों और गाँवों पर पड़ा। बिहारवासी जातिगत भेद-भाव को भूल कर भाईचारे के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के सामाधान हेतु चौपालों पर एक साथ बैठने लगे। सौहार्द के इस अद्‌भुत वातावरण में वर्ग-भेदवादी हिंसा के लिए जगह नहीं बच सकी। एक जुटता आती गयी और स्वतंत्तता संग्राम का आन्दोलन तीव्र से तीव्रतर होता गया। गाँधीजी द्वारा दी गई बुनयादी विद्यालय की अवधारणा से जनता में स्वावलंबन की आशा जगने लगी और विचार संकल्प का आकार ग्रहण करने लगे। यही संकल्प हमारी स्वतंत्तता का मूल कारण बना।

जय गाँधी! जय संकल्प!

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय बिहार सरकार, पटना
2. Gandhi in Champaran - डॉ. डी. जी तेन्दुलकर
3. गाँधी की आत्मकथा – Mahatma Gandhi
4. Gandhi in Bihar – P.C. Roy Chandhi, Raj Bhasha Patna
5. राधा गोविन्द प्रसाद - Secretariat Press Patna 1976

6. National Movement in india – Dr. Rajendra Prasad.
7. Bihar District Gazetteer – P.C. Chaudhary, Revenues Deptt. Patna.
8. बिहार स्वतंत्रता संग्राम से जुटे हुए बिहार के कुछ ऐतिहासिक स्थल के विवरण :– मंत्रीमंडल सचिवालय एवं समन्वय विभाग, पटना (बिहार)
9. The Journal of Bihar & Orissa Research Socienty Part I & II 1930, 1932.
10. बिहार विधान सभा वादवृत रिपोर्ट (सरकारी रिपोर्ट) 15.02.54 से 23.02.54 राजकीय मद्रणालय (बिहार पटना)
11. असरफ कादरी – राष्ट्रीय आन्दोलन और चम्पारण के स्वंतत्रता सेनानी।

अधीतकालीन अर्थ संयोजन (ई.पू. 600–ई.पू. 200 तक)

सुनील कुमार

शोध छात्र, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

अधीतकालीन अर्थ संयोजन अपने द्रुतगामी लेकिन बुनियादी परिवर्तनों के लिहाज से तो विशिष्ट है ही उपयोगिता एवं व्यापकता के मद्देनजर भी इसके निर्णायक दखल को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। जहाँ एक ओर यह क्रान्तिकारी परिवर्तनों के साथ प्रयाण करती है वहीं दूसरी ओर कुछ नए आयाम, कुछ नए प्रश्न भी प्रक्षिप्त करती है। कुछ तो इतिहास के स्वाभाविक विकासक्रम के तहत और बहुत कुछ मानवीय मेधा के अमन्द उन्नयन के फलस्वरूप विशिष्ट बन बैठी आलोच्य कालावधि की अनोखी अर्थ संरचना के उत्प्रेरक तत्व कई हैं, मसलन–लौह तकनीक का कृषि में अनुप्रयोग, मध्य गंगाघाटी में शहरों का अभ्युदय एवं विकास, विविध हस्त शिल्पों का बड़े तफसील में सूक्ष्मतम विभाजन, व्यावसायिक संघो–श्रेणी संगठनों का विकास, मुद्रा अर्थ व्यवस्था, उद्योग धन्धे तथा व्यापार एवं वाणिज्य।

महान् मौर्यों का अभ्युदय इस विशिष्ट कालावधि की अति विशिष्ट परिघटना थी। अर्थ व्यवस्था में एक नई चीज का अनुभव किया जाने लगा और वह था राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था और उसका सुचारू प्रशासनिक नियमन। विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में राजकीय समर्थन से एक उछाल सा आया। अर्थार्जन की हर संभावना को तालाश गया। लगभग सभी वस्तुओं पर कराधान राजस्व की वृद्धि में सहायक हुआ।

खानाबदोश चारागाही अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रूपान्तरित हो चली थी। महज निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था, अधिशेष और उपभोग की अर्थव्यवस्था हो गई। लौह तकनीक ने विविध शिल्पकारों की दक्षता एवं कार्य क्षमता दोनों को बढ़ावा दिया। शिल्पियों की तकनीकी दक्षता से किसानों की पैदावार को बढ़ावा मिला। इस अधिशेष ने उपभोक्ता वर्ग को स्थापित कर दिया। कारीगरों को उनकी दक्षता एवं कला का मूल्य मिलने लगा था और वह भी मुद्रा के रूप में। मुद्राओं के प्रचलन ने लेन–देन को काफी सुगम बना दिया जिससे व्यापारिक गतिविधियों को बहुत बढ़ावा मिला। बड़े भू–भाग पर एक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था से आवागमन सुगम हुआ होगा एवं आन्तरिक तथा वाह्य व्यापारिक सिलसिले शुरू हुए होंगे।

नगरीकरण के लिए एक आधारभूत संरचना विकसित हो चुकी थी और प्रो. रामशरण शर्मा ने अपने वैदुष्य विवेचन में पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के तर्क पूर्ण समायोजन से आलोच्य कालावधि में नगरों के अस्तित्व को एक ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध कर दिया है।[1]

आर्थिक क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों ने तत्कालीन सामाजिक संगठन को भी कुछ सर्वथा नई भंगिमाओं से लैस कर दिया।[3] समृद्धि एवं ऐश्वर्य का ग्राफ जहाँ उच्चतम बिन्दुओं को दर्शा रहा था वहीं निर्धनता एवं गरीबी भी उसी ग्राफ में निम्नतम बिन्दुओं को प्रदर्शित कर रही थी।[4]

अधीत कालीन अर्थ संजोजन को अध्ययन की सुविधा के लिहाज से एवं अवश्य ही बेहतर समझ एवं उसकी तर्क संगत व्याख्या के लिए मौर्य पूर्व यानी 600 ई पू. से 322 ई. पू. एवं मौर्ययुगीन यानी 322 ई. पू. से 200 ई. पू. के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

इसके विभिन्न अवयवों की गहन गवेषणां एवं विस्तृत विवेचन के क्रम में सबसे पहले पड़ताल होगी कृषि एवं तत्सम्बन्धी विविध गतिविधियों की। आलोच्य कालावधि में लोगों की बहुसंख्या जीविकोपार्जन हेतु कृषि पर आश्रित थी। बौद्ध विनय में कृषि को उत्कृष्ट व्यवसायों में उत्कृष्टतम् माना गया है।[5] परन्तु यह उत्कृष्टतम व्यवसाय भी भूमि के बिना तो ही नहीं सकता था, अत: सबसे पहले तो भूमि स्वामित्व की प्रकृति पर विचार आवश्यक प्रतीत होता है कि आखिर भूमि किसके अधीन थी और उस पर स्वामित्व निर्धारण का मानक क्या था?

वस्तुत: यह विषय बड़ा विवादित है। कुछ विचारक राजा के स्वत्व को स्थापित करते हैं तो कुछ व्यक्ति के स्वत्व का महत्व देते प्रतीत होते हैं। वी.ए. स्मिथ[6] जे. एन. समद्दर[7] तथा व्यूलर[8] इत्यादि ने भू-स्वामित्व के प्रसंग पर विचार करते हुए भूमि पर राजा के स्वामित्व का अभिनिश्चयन किया है। परन्तु विद्वानों का एक बड़ा वर्ग[9] भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा के साथ खड़ा प्रतीत होता है, जो अध्येय युग में भी भू-अवधारणा की प्रचलित पद्धति प्रतीत होती है[10]। पालिमहावग्ग का एक उद्धरण तो बड़े स्पष्ट शब्दों में अभिव्यंजित करता है कि भूमि भी पशु अथवा धन की तरह व्यक्तिगत सम्पत्ति है एवं इसका स्वामी कोई भी स्त्री अथवा पुरुष हो सकता है[11] विनय पिटक से यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य कालावधि में भूमि बेची या गिरवी रखी जा सकती थी।[12]

आम्रपाली ने अपनी वाटिका बौद्ध संघ को दान स्वरूप दे दिया था।[13] गौतम ने भी स्पष्ट किया है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का स्वामी क्रय-विक्रय, दाय स्वरूप प्राप्ति, बंटवारा, अभिग्रहण इत्यादि के आधार पर होता है।[14] राजकुमार जेत तथा राजगृह के श्रेष्ठी के मध्य उठा वह प्रसिद्ध विवाद जो जेतनवन के क्रय-विक्रय को लेकर उत्पन्न हुआ था, प्रकारान्तर से भूमि पर व्यक्ति के स्वत्व की कानूनी मुहर प्रतीत होता है।[15] उपरोक्त स्थितियों का अवलोकन इस तथ्य में संदेह की संभावना ही नहीं रहने देता कि बुद्धकालीन भारत या कहें मौर्य पूर्व उत्तरी भारत में भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व की अवधारणा एक आम हकीकत थी।

अब मौर्य युग में भू-स्वामित्व की संकल्पना की शल्य क्रिया के अन्तर्गत मेगस्थनीज के इस विवादस्पद कथन को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया है कि राजा भूमि का स्वामी होता था,[16] क्योंकि अन्य साक्ष्यों के आलोक में इतना भर ही अनुमित किया जा सका कि राजा भूमि का मालिक नहीं अपितु संरक्षक मात्र था[17] और वार्षिक कर के रूप में उपज का एक निश्चित भाग प्राप्त करता था।[18]

सच तो यह है कि मौर्य साम्राज्य इतना विस्तृत था कि भूमि पर मिल्कियत की कोई भी एक विधि सर्वत्र नहीं पाई जा सकती थी। फिर भी व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा बलवती एवं सुप्रचलित प्रतीत होती है। कौटिल्य ने भूमि की बिक्री से उत्पन्न विवादों के हवाले से भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की अभिव्यंजना की है। एक व्यक्ति द्वारा खेत के स्वामी की अनुमति के बिना उस खेत विशेष से पशु लेकर जाने का उद्धरण आया है।[19] सीमा निर्धारण को लेकर उपजे विवादों का अगर विवरण है[20] तो जबरन किसी के खेत के अधिग्रहण पर दण्ड का भी विधान है।[21] मनु महाराज भी खेत उसी का मानते हैं जिसने उसे खेती के योग्य बनाया।[22]

एक अवलोकन इस बात का भी उचित या कहें प्रसंगोचित प्रतीत होता है[23] कि कौटिल्य और मनु जैसे राजतंत्र के समर्थक और साम्राज्यवादी सिद्धान्तों के पोषक विचारक व्यक्ति के स्वत्व की बात कैसे करने लगे। जहां एक तरफ कौटिल्य ने[24] राजा के भूमि पर स्वामित्व की उद्घोषणाएं की हैं तो मनु ने भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है।[25] परन्तु ये तथ्य कुछ विश्लेषण की मांग कर रहे हैं। कौटिल्य ने कहा है कि जो व्यक्ति खेती करने में अक्षम हो राजा को चाहिए कि उनके खेत जब्त कर लें।[26] इसमें भी प्रथम अधिकार व्यक्ति के स्वत्व का ही अवबोधक है। यदि वह अक्षम हैं, तब राजा का अधिकार बनता है। अन्यत्र भी कौटिल्य ने राजा को स्तत्व तभी प्रदान किया है जब या तो वाद-विवाद के चलते या वंशजों के न होने की स्थिति में कोई जमीन परती रह जाने की संभावना रहती रही हो।[27]

कौटिल्य की मंशा अधिकाधिक राजस्व की उगाही थी जिससे इतनी विशाल राजशाही निर्वाध चलती रहे। उसने भूमि पर व्यक्ति के स्तत्व को बढ़ावा दिया ताकि किसान अधिक उत्पादन के लिए उत्प्रेरित हों परन्तु किसी भी स्थिति में भूमि खाली न रहे इसलिए एक कृषि अधीक्षक के निरीक्षण में ऐसी भूमि पर भी खेती को बढ़ावा दिया जो राज्य द्वारा अधिग्रहीत की जाती थी। वस्तुत: यह

अर्थ व्यवस्था में कृषि के महत्व का अभिद्योतन तो है ही, कृषि की अधिकतम संभावनाओं की खोज एवं उनके अधिकतम दोहान की सुचारू सुव्यवस्था भी है।

अब कृषि योग्य भूमि के वर्गीकरण की विवेचना वाजिब होगी क्योंकि जब कृषि की महत्ता इतनी अधिक बढ़ चुकी थी तो उसक वर्गीकरण एवं उसके प्रकारों पर भी ध्यान दिया जाता रहा होगा। पालिविनय के एक दृष्टान्त में 'जाता पथवी' और 'अजाता पथवी' यानी उपजाऊ और अनुपजाऊ भूमि के रूप में वर्गीकरण प्राप्त होता है।[28]

एक सुत्त में खेत के तीन प्रकारों की चर्चा है-1 उत्कृष्ट, 2. मध्यश्रेणी के 3. निम्म श्रेणी के, जो संभवतः जंगल या ऊसर रहा होगा। भिक्षुओं की तुलना उत्कृष्ट श्रेणी के खेत से, उपासकों की मध्यम श्रेणी से एवं अन्य धर्मानुयायियों की तुलना तीसरी श्रेणी यानी निम्नतम कोटि के खेत से की गई है।[29] खेत सुत्त में[30] आठ अच्छे प्रकार के खेतों का विवरण है तो आठ कम उपजाऊ श्रेणियां भी वर्णित हैं।[31]

वह भूमि जो पथरीली रेतीली न हो तथा जिसमें सिंचाई सुलभ हो, वह अच्छी एवं उपजाऊ भूमि मानी जाी थी।[32] एवं इसके विपरीत भूमि अनुपजाऊ मानी जाती रही होगी। खेतों के आकार प्रकार सुविधानुसार निर्धारित किए जाते रहे होंगे। उन पर मेड़ बांधी जाती थी। इससे जहां सीमांकन आसान हो जाता रहा होगा वही सिंचाई की सुविधा भी बढ़ जाती रही होगी। उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर यह अनुमानित होता है कि कृषि योग्य भूमि छोटे-छोटे खेतों में बंटी रहती होगी क्योंकि सुविधा इस तरह इस समय भी है और उस भी रही होगी।[33] हां, फसलों के आधार पर खेतों की पहचान की परम्परा दृष्टिगोचर होती है क्योंकि विनय में[34] 'यवखेत्त, (जिस खेत में यव बोया गया हो) एवं 'सालिखेत्त' (जिसमं सालि बोया गया हो) का उल्लेख तो आता ही है पाणिनि[35] ने भी ब्रैहैय (एक तरह का चावल 'ब्रीहि' जिसमे बोया गया हो) शालेय, (शालि का खेत) यव्य इत्यादि का जिक्र किया है।

अब आलोच्य कालावधि में कृषि के स्वरूप उसकी प्रक्रिया, प्रविधि एवं उपकरणों का लेखा जोखा उपादेय ही नहीं अपितु आवश्यक भी प्रतीत होता है। ताकि यह पता चले कि कैसे प्राविधिक शक्तियों के विकास ने कृषि के स्वरूप को प्रभावित किया, उत्पादन बढ़ा कर अधिशेष एवं उपभोग की अर्थव्यवस्था का सूत्रपात किया।

अपने पूर्ववर्ती काल की तुलना में बुद्ध का काल यानी मौर्य पूर्व काल कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि का काल है। चुल्लवग्ग के हवाले से प्रो.जी.एस.पी मिश्र[36] कृषि प्रक्रिया के सिलसिले वार व्यौरा का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि ने भी कृषि कार्यों का काफी तफसील में जाकर विवरण प्रस्तुत किया है।[37] गृहय सूत्रों में कृषि तथा पंशुपालन की वृद्धि सुरक्षा तथा संरक्षा के निमित्त कई यज्ञों के प्रतिपादन का विधान दिया गया है।[38]

सर्वप्रथम खेतों की जुताई का विवरण आता है। पाणिनी खेतों के दो या तीन बार जोते जाने की बात कहते है और इस कार्य के लिए 'हल' को व्यवहृत बताते हैं[39]। हल के लिए 'लांगल' शब्द का प्रयोग हम वैदिक काल में देख-जान चुके हैं।[50] और पालि बौद्ध ग्रन्थों में हल के लिए 'हल' शब्द के अतिरिक्त 'सीर' का भी प्रयोग किया है[42]। हल की फाल निश्चित ही लोहे की बनी रहती होगी।[43] लोहे के हल के फाल के विकल्प के तौर पर 'कुद्याल' अथवा फावड़ा भी प्रयुक्त होता रहा होगा।[44] इन उदाहरणों से यह निष्कर्षित होता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में जुताई के प्रति विशेष सावधानी बरती जाती थी और जैसा कि डॉ.वी.एस. अग्रवाल ने पाणिनी मेगस्थनीज और कौटिल्य का हवाला देते हुए स्थापित भी किया है कि जुताई तीन बार, सात बार या इससे भी अधिक बार की जाती थी।[45]

हल खीचने के लिए बैलों का जोड़ा उपयोग में लाया जाता था।[46] आज भी कृषि-प्रौघोगिकी की इतनी प्रगति के बावजूद व्यापक रूप से बैलों द्वारा ही जुताई होती है और तब तो कृषि कार्यों में पशुओं का उपयोग अपने आप में उच्च तकनीक का प्रवर्तन था। खेत जोतने के क्रम में हल के द्वारा धरती पर पड़ी लकीरों 'हराई' के लिए 'सीता' शब्द का व्यवहार होता था।[47]

अच्छी तरह से जुताई के बाद तैयार खेत में बीज-बपन होता था। विनय की टीका करते हुए बुद्धघोष ने 'उदकवप्प' तथा 'थूलवप्प' नामक बोवाई की दो विधियाँ भी बताई है।[48] प्रथम प्रकार जलमग्न खेत में बोआई से तो दूसरा सूखे खेत में बोआई से सम्बद्ध प्रतीत होता है। बोवाई के काम में स्त्रियों की भी भागीदारी होती थी[49] जो सम्भवतः निम्न वर्णो की ही होती रही होगी जिनके

पतियों को भी कृषि कार्य में नियोजित किया गया रहा होगा[50] बीजों की भी कम से कम पांच कोटिया निर्धारित पाये हैं,[51] 'मूल बीज', जड़ का बीच के रूप में प्रयोग, 'खंधबीज' या 'स्कन्ध' बीज जिसमें तना बोया जाता था, 'फलबीज' जिसमें जोड़ों को बोया जाता था, 'बीज बीज' जिसमें बीज का ही बपन होता था।

आलोच्य कालावधि में कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकास था धान रोपने की पद्धति का प्रवर्तन।[52] प्रारम्भिक पालिग्रन्थों के आधार पर धान की रोपाई को ई.पू. 500 के आस-पास प्रचलित हुआ माना जा सकता है, क्योंकि धान की रोपाई के सम्बद्ध कई शब्द तत्कालीन पालि ग्रन्थों में खोजे जा सकते हैं।[53] एक और पालि शब्द 'बीजनि पतिट्ठापोत्ति' स्पष्टत: पौधों की रोपाई अभिव्यंजित करता है।[54]

वैदिक शब्द 'व्रीहि' और वैदिकोत्तर शब्द 'शालि' के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए[55] यह स्थापना उचित ही प्रतीत होती है कि 'व्रीहि' बिन रोपाई के तथा 'शालि' को रोपवा. पद्धति से उगाया जाता था।[56] इस तथ्य में संदेह तो नहीं ही प्रतीत होता कि आलोच्य कालावधि में रोपाई की विधि सुप्रचलित थी। केले की रोपाई के भी साक्ष्य मिलते हैं।[57] श्वेतांवर जैन ग्रंथ 'नायाधम्म कहाओं[58] में धान की रोपाई को प्रदर्शित करने वाला वाक्यांश 'उक्खायणिहये' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'उखाड़ना और रोपना' के आधार पर प्रो. शर्मा[59] रोपवाँ पद्धति के प्रचलन में एक और मजबूत तर्क पेश करते हैं। चूंकि रोपवाँ पद्धति से उपज में गुणात्मक वृद्धि होती है अत: इस विधि के प्रर्वतक को काफी महत्व दिया गया।

कृषि उत्पादों में धान के अतिरिक्त हम जौ को एक प्रमुख फसल के रूप में चर्चित पाते हैं।[60] बाजरा, चना, मटर, मूँग, उर्द, शालि, व्रीहि, तण्डुल, ईख, नारियल इत्यादि भी उपजाया जाता था।[61] आम, सेब, जम्बूफल, अंजीर, अंगूर, केला, खजूर जैसे कई फल उगाए जाते थे।[62] मिर्च, अदरक, राई, लहसुन, जीरा इत्यादि की भी खेती प्रचलित थी।[63] हाँ, गोधूम अथवा गेहूँ इस समय तक कृषि उत्पादों में कोई महत्वपूर्ण स्थान रखता नहीं प्रतीत होता।[64]

फसलों के पक जाने पर उसे 'असिएहि'[65] से काटकर 'खलमण्डल'[66] यानी खलिहान में लाते थे एवं तत्पश्चात् 'सुप्पकत्त'[67] से साफ करते थे।

तिल का प्रयोग कई कामों में होता था। खाद्य व्यंजन बनाने एवं तिल का तेल निकालने में[68] तो जौ और चावल के साथ धार्मिक कार्यों में तिल का उपयोग[69] उसे एक महत्वपूर्ण फसल बना देता है।

प्रो. जी.एस.पी मिश्र तत्कालीन जन जीवन में सरसों एवं एरण्ड के तेलों का प्रयोग भी स्वीकार करते हैं एवं दीपक जलाने तथा भित्ति चित्रों के निर्माण में उसे उपयोगी भी बनाते हैं।[70]

चूँकि भारत के वस्त्र उद्योग की अपनी ख्याति रही है अत: तत्सम्बन्धी उत्पादन भी अवश्य होता रहा होगा जैसे कपास के अलावे 'खोम' जिसे अलसी भी कहा जाता था, साण (सान) एंव भंग (मांग) इत्यादि रूई प्रदान करने वाले अन्य पौधे भी थे जिनसे वस्त्रों के निर्माण में सहायता मिलती थी।[71] प्रो. मिश्रा स्पष्ट करते हैं कि पालि विनय में 'रूक्खतूल' का उल्लेख सेमल के वृक्ष से प्राप्त कपास से सन्दर्भित है।[72]

इस काल की एक और विशिष्टता नये पौधों एवं फलदायी वृक्षों के उपयोग में उभर कर सामने आती है। जंबु,[73] मधृक[74] तथा पलाश[75] का ज्ञान आर्थिक रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ होगा।

मौर्य युग यानी आलोच्य कालावधि के द्वितीय उपभाग (322 ई.पू. से 200 ई.पू.) को कृषि की अभूतपूर्व उन्नति एवं तकनीकी निवेश के लिए जाना जाता है। राज्य के द्वारा कृषि के प्रति प्रदर्शित उत्सुकता इसके विकास का सर्वप्रमुख कारण बनी। कौटिल्य परती भूमि[76] और बन[77] को भी खेती के लायक बनाने की सम्भावनाओं को टटोलते हैं उपज की बढ़ोत्तरी के लिए विविध किस्मों की खादों के प्रयोग पर भी बल देते हैं।[78] कौटिल्य तीन तरह की फसलों का व्यौरा देते हैं,[79] पहली कोटि की फसलें शालि, ब्रीहि, कोदों, तिल, ककुनी, दारद, वरक इत्यादि वर्षा के प्रारम्भ काल में दूसरी कोटि की फसलें मूँग, उड़द, और शिम्ब वर्षा के मध्य में, तथा तीसरी कोटि की फसलें कुशुम्भ, मसूर, कुलथी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा के अन्त में। बीजों के यथा समय बोए जाने पर कौटिल्य ने विशेष ध्यान दिया तथा कृषि कार्यो के निमित्त नियुक्त पदाधिकारी 'सीताध्यक्ष' से इसे सुनिश्चित करने को कहा

जाता था।[80] आजकल गाँवों में खेती की समय सारिणी को लेकर एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'आगिल खेती आगे-आगे, पाछिल खेती पाछे-पाछे' इस तरह की समयबद्धता कृषि कार्यों में उस समय भी बरती जाती थी। तात्पर्य यह कि मौर्य युग कृषि के विस्तारीकरण का युग तो था ही, उसकी सम्भावनाओं की पहचान और उसके असीमित दोहन का काल भी था। कृषि अर्थव्यवस्था के लाभ पहली बार इतने स्पष्ट रूपों में सतह पर आते हैं।

मनु ने भी कृषि पर यथेष्ट ध्यान दिया है तथा इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन करते हुए प्रमुख उत्पादों का विवरण भी दिया है।[81]

सिंचाई की व्यवस्था कृषि से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि शेष बातों का कोई मतलब नहीं रह जाता जब तक सिंचाई की उत्तम व्यवस्था नहीं हों। आलोच्य कालावधि में लोग न सिर्फ इसके महत्व से परिचित थे अपितु इसकी बेहतरी के लिए उद्यम भी करते थे।

गौतम बुद्ध के समय में नहरों और नालियों के निर्माण की जानकारी मिलती है।[82] इच्छित जगहों पर सिंचाई के लिए कई योजनाएँ बनायी गई एवं उनका सफल क्रियान्वयन भी हुआ।[83] जातकों में नहरों एवं तालाब निर्माण की चर्चा है।[84] अष्टाध्यायी से भी यह पता चलता है कि लोग सिंचाई के लिए प्राकृतिक वर्षा पर ही निर्भर नहीं थे अपितु स्वयं के उद्योगों से कुएँ एवं नहरें बनाकर सिंचाई की सुविधा बहाल करते थे।[85] धर्म सूत्रों में राजा और प्रजा दोनों से तालाब तथा कुएँ बनवाए जाने की अपेक्षा की गई है।[86]

जैन ग्रन्थ वृहत्कल्प भाष्य के विवरण के आधार पर ऐसा अनुमित होता है कि स्थान विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप सिंचाई की व्यवस्था बदलती रहती थी, जैसे लाट देश में वर्षा के जल से, सिन्धु देश में नदियों के द्वारा, द्रविण देश में तालाबों के द्वारा उत्तरापथ में कुओं से तो कहीं-कहीं बाढ़ के पानी से सिंचाई की व्यवस्था बहाल रखी जाती थी।[87]

कुंओं से पानी निकालने के लिए विशेष प्रत्यन करने पड़ते थे। 'तुल', 'करकटक' तथा 'चक्कवट्टक' की सहायता से पानी निकाला जाता था।[88] आधुनिक सन्दर्भो में इन्हें क्रमशः 'ढेंकुल' 'पुर' तथा 'रहट' के द्वारा बेहतर समझा जा सकता है।

मौर्य युग में खेती के विकास में जो सर्व प्रधान कारक सिद्ध हुआ वह था राज्य द्वारा सिंचाई सुविधाओं का सुचारू प्रबन्धन एवं किसानों के हित में निर्वाध जलापूर्ति का नियमन[89]। अर्थशास्त्र में अच्छा प्रशासन उसे बताया गया है जिसके अन्तर्गत किसान को फसलों की सिंचाई के लिए सिर्फ प्राकृतिक जलापूर्ति यानी वर्षा पर आश्रित न रहना पड़े[90]। कौटिल्य ने सिंचाई की सुचारू सुव्यवस्था हेतु जहाँ संसाधनों के समुचित संयोजन पर बल दिया है,[91] वहीं कई तरह की सावधानियाँ भी बताई है जिन पर अमल किया जाना चाहिए।[92]

परन्तु यदि कुछ अवांछित-असामाजिक तत्वों द्वारा सिंचाई सुविधाओं को नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है तो उसके लिए पर्याप्त दण्ड की भी व्यवस्था, अर्थशास्त्र में पायी जाती है,[93] जैसे तालाब को क्षति पहुँचाने के आरोप प्रमाणित हो जाने पर दोषी व्यक्ति को तालाब में डुबो देने का विधान किया गया।[94] सिंचाई हेतु सरकारी प्रयासों की अभिलेखिक पुष्टि भी हो जाती है जब रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के द्वारा यह तथ्य सामने आता है कि मौर्य शासकों द्वारा या कहें चन्द्रगुप्त और अशोक के राजत्वकाल में उनके प्रान्तीय प्रशासकों द्वारा सुदर्शन झील का निर्माण एवं मरम्मत करायी गयी थी एवं एतद् द्वारा सिंचाई व्यवस्था को दुरूस्त किया गया था।[95] मौर्य काल में सिंचाई की नालियों की देखरेख निर्माण एवं मरम्मती के लिए एक सरकारी कर्मचारी ही नियुक्त होता था।[96]

संदर्भ संकेत

1. प्रधानतया लोहे के फाल की खेती से आशय हैं।
   - (क) एक परवर्ती पालि ग्रन्थ में 'अयंगल' अथवा लोहे के हल के फाल का विवरण प्राप्त होता है (पालि इंग्लिश डिक्सरी, पालिटेक्ट सोसायटी, लंदन 1921 में 'अयनंगल' शब्द के अन्तर्गत टी. डब्लू. राइज डेविड्स इत्यादि विद्वान)
   - (ख) सुत्तनिपात के कोकालिक सुत्त में लौह फाल को दिन भर धूप में तपाए जाने का उल्लेख है।
   - (ग) पाणिनि ने लोहे की फाल को 'अयोविकार कुशी' कहा है। पुनश्च पाणिनि एवं प्रारम्भिक पालिग्रन्थ 'अयोधन' की चर्चा भी करते हैं जो शायद 'हथौड़ा' को अभिव्यक्त करता है, उपरोक्त सन्दर्भो के लिए देखे रामशरण शर्मा की 'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं' पृ.-138, एवं विवरण हेतु, वही, पृ.-137, 38, 39, 40, 41, 42, 43,

2. शर्मा आर.एस, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, राजकमल प्रकाशन, पृ.-156-57
शर्मा आर.एस, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ.-146-47,
3. कौसाम्बी डी.डी, द कल्वर एण्ड सिविलाइजेशन आफ इण्डिया इन हिस्टारिकल, आउटलाइन, लन्दन 1965 पृ.-100.102।
4. जहां श्रेष्ठियों एवं गहपतियों के ऐश्वर्य पूर्ण जीवनचर्या के दृष्टान्त भरे पड़े हैं वहीं दरिद्रता के भी अनेकशः उद्धरण मिलते हैं, जैसे-महावग्ग, पृ.-230, 266 एवं पाराजिक पृ.-91
5. पाचितिय पृ.-11
6. स्मिथ, वी.ए., अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ.-173
7. समद्दर, जे.एन., लेक्चर्स आन दि इकानामिक कन्डीशन इन एन्श्येट इण्डिया, कलकत्ता 1922, पृ.-168।
8. द. सैक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट, जि.-35 पृ.-259, मनु 8.39 पर टिप्पणी
9. द्र., के.पी जायसवाल, हिन्दू पालिटी, पृ.-330 के.आर. आयंगार, ऐन्श्येण्ट इण्डियन इकानामिक थाट, पृ.-104, अन्यानेक विद्वान भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व की पुष्टि के लिए वैदिक साक्ष्यों का हवाला देते है। जैसे श्रेडर, मैकडानेल और कीथ, वन्द्योपाध्याय तथा धोपाल इत्यादि। इनके विस्तृत विवरण के लिए ओम प्रकाश की पुस्तक 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, चतुर्थ संस्करण के आर्थिक इतिहास खण्ड के द्वितीय अध्याय की सन्दर्भ संख्याएं 1,2,3 और 4 देखी जा सकती है, अपरंच जी.एस.पी मिश्र की 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था' पृ.-148 भी द्रष्टव्य है।
10. यवरवेत्त सामी ब्राह्मणवत्थु, पाचितिय, पृ.362, वही पृ. 71 आचारंग सूत्र (जैन सूत्र भाग 1) पृ. 19, यहाँ स्पष्ट शब्दों में भूमि और गृह की चर्चा सम्पत्ति के व्यक्तिगत मद मे है। जातक, 3, 301 आगे(दीघ निकाय, 12.7।
11. महावग्ग, पृ. 156, द्र मिश्र जी.एस.पी., प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 184-''इधधन भिक्खवे....हिरण्यं वादे देमि, सुवण्णं वाते देमि खेत्त बाते देमि...चीवरं''
12. विनय पिटक 2, 158, 159
13. महावग्ग, पृ. 248, थेरी गाथा, 340
14. गौतम, 10, 39, 41
15. चुल्लवग्ग, पृ. 252-253
16. थापर रोमिला, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन(पृ. 61
17. जायसवाल, के.पी., हिन्दू पालिटी, खण्ड 2, पृ.-137, 88
18. श्रीमती राइज डेविड्स, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि. 1, अं. 8, पृ. 176।
19. अर्थशास्त्र 3.9.7
20. वही 3, 10, 26
21. अर्थशास्त्र, 3, 17, 8
22. मनुस्मृति, 9.44
''पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्व विदो विदुः
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्।।''
23. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ.-599
24. अर्थशास्त्र 2.24, 2.1
भट्टस्वामी का भाष्य, अर्थशास्त्र 2.24
25. मनुस्मृति, 8.39 मेघातिथि, मनु 8.39
26. अर्थशास्त्र, 2.1.10
27. अर्थशास्त्र, 3.9

28. पाचित्तिय, पृ. 53, 'जाता पथवी' और 'अजाता पथवी' का अर्थ उपजाऊ और अनुपजाऊ भूमि ज्यादा तर्कसंगत प्रतीत होता है, जिसे जी.एस.पी. मिश्र ने अपनी पुस्तक 'दि एज आफ विनय' की पृ. सं. 243-44 पर टि. 24 के रूप में प्रस्तावित किया है। 'बुक आफ दि डिसिप्लिन' भाग-2 पृ. 233-24 पर आई. वी. हार्नर ने इसका अर्थ 'नेचुरल' तथा 'आर्टीफिसिलय' बताया है परन्तु बाद में उन्होंने भी प्रो. मिश्र के अनुवाद को ही संस्तुति प्रदान की है।
29. संयुक्त निकाय, 4, 314-17
30. अंगुत्तर निकाय, 4. 237-38
31. अंगुत्तर निकाय, 4.237
32. मिश्र, जी.एस.पी 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ.186।
33. विस्तृत विवरण के लिए देंखे, मिश्र जी.एस.पी 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थ व्यवस्था, पृ.-185-86
34. पाराजिक, पृ. 28
35. अष्टाध्यायी, 5.2.2
36. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 186।
37. अग्रवाल, वी.एस., पाणिनि कालीन भारतवर्ष, हिन्दी, वाराणसी, 1996 पृ. 201।
38. रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज, अध्याय 19।
39. अग्रवाल, ऊपर उल्लिखित, पृ. 199।
40. द्र. वैदिक इंडेक्स, जि. 2, पृ. 31।
41. चुल्लवग्ग, पृ. 279।
    अत्यत्र, पालि इंग्लिश डिक्शनरी में 'नंगल' शब्द के अन्तर्गत्त यह बताया गया है कि प्रारम्भिक पालिग्रन्थों के यह शब्द बहुशः प्रयुक्त है।
42. अष्टाध्यायी, 3.2.183, 4.3.124; 4.4.81।
43. लोहे की फाल के प्रयोग से सम्बन्धित विवरण के लिए देखें इसी अध्याय की सन्दर्भ संख्या-10।
44. बौधायन धर्मसूत्र, 3.2.5.6।
45. अग्रवाल, पूर्वोद्धृ, पृ. 200।
46. सोमदत्त जातक, जातक, जि. 2. संख्या 211, पृ. 115।
47. जी.एस.पी मिश्र, दि एज आफ विनय, पृ. 245. सीता का कृषि की देवी के रूप में उल्लेख, ऋग्वेद तथा परवर्ती संहिताओं में और गृह्यसूत्रों में सीता का हराइयो की देवी के रूप में वर्णन जरूर एक ही तथ्य की ओर इशारा करते है कि इनका आपसी सह सम्बन्ध है। हराई से ही 'सीता' जनक की पुत्री का जन्म भी आकस्मिक नहीं प्रतीत होता।
48. आई.वी. हार्नर, द वुक आफ दि डिसिप्लिन भाग 1 पृ. 220. टि.1
49 पाराजिक पृ. 189।
50. विशेष विवरण के लिए देखें प्रस्तुत पुस्तक का आगामी अध्याय एवं उसकी संदर्भ सं. 28।
51. जी.एस.पी. मिश्र, दि एज आफ विनय, पृ. 245-46।
52. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, पृ. 143।
53. पालि इंगलिश डिक्शनरी में 'रोपेति' शब्द के अन्तर्गत।
54. अंगुत्तरनिकाय, 1, पृ. 239-40 'पतिटठोपेत्ति' शब्दा को पालि इंग्लिश डिक्शनरी में भी देखा जा सकता है जिसकी इसका अर्थ, 'स्थापित करना' प्रतिष्टापित करना, में रख देना इत्यादि किया गया है।
55. वी.एस. अग्रवाल, ऊपर उल्लिखित पृ. 204, 'ब्रीहि' वर्षा ऋतु की फसल और शरद ऋतु की फसल के रूप में 'शा' को व्यवहृत बताया गया हैं। दोनों ही शब्द चावल को अभिव्यंजित करते है।

56. वही।

रोपवाँ पद्धति के विकास, प्रवर्तन एवं बुद्ध के समय में इसके प्रचलन से सम्बन्धित विस्तृत विवरण के लिए देखें-रामशरण शर्मा की पुस्तक, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ पृ. 143-45।

57. पालि इंग्लिश डिक्शनरी में 'कदली' शब्द के अन्तर्गत पालिग्रन्थों में केले से सम्बन्धित उल्लेखों के सन्दर्भ में।
58. संपा.एन.सी. वैद्य पूना, 1940, 7, 68 पृ. 86।
59. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक एवं सामाजिक संरचनाएँ पृ. 145
60. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 576, रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचाएं पृ. 146।
61. जातक, 2, पृ. 74, 1, 429, 5.37, 1, 429, 2. 135, 3.383., 4.276, 5.405, 6.530, 2.240, 6.539, 4.364।
62. जातक 6.529
63. जातक, 1.244, 2.63, 3.225, 5.120, 6.536।
64. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 146
65. नायाधम्मकहा, 7.86 सूयगडम 4.7.12
66. जातक 2, 141, 6.197
67. नायाधम्मकहा 7.86 सूयगडम, 4, 7.12
68. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 192।
69. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं पृ. 146
70. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ. 192
71. वही
72. वही,

जैन ग्रन्थों एवं पालि विनय में उल्लिखित कृषि उत्पादनों एव अन्नों की विस्तृत जानकारी के लिए द्र.जे.सी जैन, कैनन्स पृ. 90-92 एवं जी.एस.पी मिश्र की दि एज आफ विनय, पृ. 249-53।

73. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं पृ. 147
74. वही
75. वही
76. अर्थशास्त्र 2.1 (कर देम्यः कृत क्षेत्राणि....अकृतानि नादेयात्)
77. वही, (स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्)
78. वही 2.24, जानवरों की अस्थियाँ एवं गोबर की मिश्रित खाद तथा मछलियों को भी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।
79. अर्थशास्त्र 2.24
80. अर्थशास्त्र, 2.24
81. मनुस्मृति 9.330, 9.38-39, 6.11, 10.84।
82. महावग्ग, 8.12.1-2
83. चुल्लवग्ग, 7.12, 5.17.2
84. जातक, 1. 199, 1. 336, 2.412
85. अष्टाध्यायी, 4.3.136, 3.3.51, 3.3.123
86. विष्णुधर्मसूत्र, 91.1, वशिष्ठ धर्मसूत, 17, 8

87. उद्घृत जे. सी. जैन, लाइफ इन ऐन्श्येष्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स भाग-1 पृ. 89
88. चुल्लवग्ग, पृ. 292, जैन वृहत्कल्प भाष्य में 'रहट' के लिए 'अरहट्ट' शब्द आता है। जे.सी. जैन पूर्वोक्त प्र. 89
89. प्रो. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 154
90. अर्थशास्त्र 6.1
91. अर्थशास्त्र 2.24
92. अर्थशास्त्र 2.9
93. द्र. जी.एस.पी. मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 188-189
94. द्र. राजबलिपाण्डेय, हिस्टारिल एण्ड लिटेरेरी इन्सक्रिप्शंस पृ. 62-63
96. स्ट्रैवो, 15.1.50

ब्राह्मणवाद के विरूद्ध प्राचीन भारत में विद्रोह एवं बौद्ध धर्म का उत्थान

डॉ. शेखर सिंह

अतिथि प्राध्यापक, इतिहास विभाग, रामानुजम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

वस्तुत: बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मणवाद के मध्य संघर्ष भारतीय इतिहास की एक सचाई है।[1] मौर्य साम्राज्य के पतन और ब्राह्मणों के राज्यारोहण को ब्राह्मण प्रतिक्रिया स्वरूप देखा जाता है।[2] यह सामाजिक और धार्मिक प्रतिक्रिया की राजनैतिक अभिव्यक्ति थी। यह सही है कि वर्णभेद और जातिभेद की व्यवस्था पर निर्णायक चोट तो बौद्ध और जैन आन्दोलन भी नहीं कर पाए परन्तु जन्म आधारित श्रेष्ठतापर सतत् सवाल खड़े करते रहे।[3] जाहिर है कि इससे सर्वाधिक असुविधा ब्राह्मणों को ही हुई। मनुस्मृति को इस युग की रचना माना जा सकता है।[4]

इस ग्रन्थ में ब्राह्मणों की उत्कृष्टता का उत्कट् निदर्शन है।[5] बौद्धों के द्वारा की गई क्षतिपूर्ति के निमित्त ब्राह्मणो को अपनी विशिष्टताओं को बनाए रखने हेतु कुछ अतिरिक्त प्रयास भी करने पड़े जिसके तहत् काफी कठोर आचार संहिता का प्रतिपादन हुआ।[6] यह कुपित नियमन था एवं स्वाभाविक रूप से इसकी गाज शूद्रों एवं वैश्यों पर ही गिरनी थी। अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर इन्हीं का सर्वाधिक शोषण करते थे तो अब और अधिक विशिष्टता के तर्क पर अधिक शोषण होने लगा। बुद्ध के विचार-प्रचार और अशोक के सदाशयी क्रियान्वयन से निम्नवर्णों की बेहतरी की जो कुछ भी थोड़ी सी आस बँधी थी, उसे सिरे से खारिज कर दिया गया।

अशोक की धारणा थी कि धर्म के प्रचार से मानव देवताओं से मिलेगे।[7] इसी धारणा के तहत धर्म महामात्रों ने जनजातीय लोगों के बीच धर्म का प्रचार भी किया। जो धर्म प्रचारित हुआ रहा होगा, शरीर उसका जो भी रहा हो, आत्मा बौद्ध धर्म ही रहा होगा, जिससे प्रभावित होकर विशाल जनजातीय समुदाय सभ्य समाज की ओर प्रस्थान करता है। खाद्य संग्राहक न रह कर करद कृषक बनता है। यह उत्संस्करण की सुविचारित नीति थी।[8] यानी धन और जन पर सुनियोजित कब्जा। इस तरह अशोक के राजनैतिक प्रभामण्डल के तले बौद्धों की सुविचारित नीति का यह सूत्रपात्र था कि अधिकाधिक लोग भेदभाव रहित धर्म भी स्वीकार करें और राजस्व भी दें ताकि राजनैतिक शक्ति भी बढ़े।

परन्तु इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही ब्राह्मण समाज शकों एवं यवनों को अपने समाहित करता है। वे उत्कृष्ट योद्धा थे और विजेता थे। इस आधार पर उनकी सामाजिक और राजनैतिक हैसियत थी। वैसे इस म्लेच्छ वर्ग का स्वाभाविक सम्मिलन तो बौद्धों के साथ होना चाहिए था क्योंकि वहाँ तो जाति-वर्ण, ऊँच-नीच जन्म-कर्म का कोई विचार ही नही था। परन्तु ब्राह्मण धर्म झटपट इन्हें क्षत्रिय वर्ण में शामिल कर लेता है। यहाँ उनके जन्म-कर्म का कोई विचार नहीं किया जाता। तर्क यह है कि विदेशी जातियाँ मूलत: क्षत्रिय ही थी जो क्रियालोप एंव ब्राह्मणों के सम्पर्क में न रहने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हुई।[9] परन्तु पुनश्च सम्पर्क में आने के कारण उनका क्षत्रियत्व वापस लौटा हुआ माना गया एवं उन्हे क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया। पतंजलि ने भी शकों को विदेशी होने के बाद भी अस्पृश्य नहीं माना है।[10]

महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित है कि युद्ध कर्म करना विदेशी जातियों का मूल कर्म था। अत: उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया।[11] यहां एक स्वाभाविक जिज्ञासा सप्रश्न होती है कि यदि युद्ध कर्म ही क्षत्रियत्व का आधार था तो महान् धनुर्धारी कर्ण जीवन पर्यन्त सूत-पूत क्यों और किस आधार पर बना रहा?

विदेशी जातियों के प्रति यह सदाशयी लचीलापन कहीं आन्तरिक चुनौतियों एवं प्रतिरोधों के परिशमन हेतु बाहरी समर्थन की आवश्यकता के तहत तो नहीं था?

जीवन की व्यवस्था के सन्दर्भ में भी हल्की सी प्रतिक्रिया के दर्शन होते हैं। बौद्धों द्वारा श्रमण विचार धारा को पुष्ट किया गया। जैन मत भी इसी विचार धारा का पोषक था।

तत्कालीन समाज में इसका बड़ा असर देखा गया क्योंकि काफी बड़ी आबादी स्त्री-पुरुष श्रमण जीवन की ओर आकर्षित हुई। यह पहले से चले आ रहे ब्राह्मण धर्म की आश्रम व्यवस्था के सिद्धान्तो के प्रतिकूल बैठता था।

बहुत संभव है कि उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप मनु से सुव्यवस्थित गृहस्थ जीवन पर बल दिया हो। उन्होंने प्रतिपादित किया कि गृहस्थ हुए ही मनुष्य धर्म और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वहन कर सकता है। अत: गृहस्थ आश्रम ही सर्वश्रेष्ठ है।[12] अन्यत्र भी गृहस्थाश्रम की महत्ता के प्रतिपादक साक्ष्य पाये जाते हैं।[13] संन्यास को पापिष्ठा कहा गया है।[14]

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धों के भिक्षु जीवन के प्रति इस यग में एक नकार का भाव स्वत: ही प्रतिक्रिया का रूप लेकर उभरता है। एक तो पहले से ही ब्राह्मण सन्यासियों की अच्छी-खासी जमात थी। उसपर जैन एवं बौद्ध भिक्षुओं की बाढ़ तो वास्तव में एक बोझ थी। इसी से सन्दर्भित एक अन्य रोचक तथ्य विमर्श्य हो जाता है कि क्यों तत्कालीन सभी ग्रन्थ चाहे बौद्ध चाहे जैन चाहे ब्राह्मण निरपवाद रूप से दान के सद्गुणों का बखान करते नहीं अघाते।[15] यह परजीवी जमात के पालन पोषण का सुनियोजित अभिमान था, जिसमें आश्चर्य जनक रूप से सभी धर्म सम्प्रदायों में आपसी एका के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए चयनित काल विशेष में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं समाज की आधार शिला वर्ण व्यवस्था के विकास एवं स्वरूप को लेकर भी कुछ प्रश्न उठा खड़े हुए हैं।

प्रो. शर्मा ने अपने वैदुष्य विवेचन में इस व्यवस्था के बारे में जो अभिमत दिया है वह ज्यादा सुसंगत प्रतीत होता है। वे किसनों, कारीगरों भाड़े के मजदूरों और खेतिहर गुलामों के द्वारा उत्पन्न सामाजिक अधिशेष के उपभोग के निमित्त वर्णव्यवस्था को आविष्कृत हुआ पाते हैं।[16]

ऋग्वैदिक, उत्तर वैदिक और वैदिकोत्तर यानी आलोच्य कालावधि की और क्रमिक विकास के क्रम में अर्थव्यवस्था विकसित होती है। निर्वाह की अर्थव्यवस्था जैसे-जैसे अधिशेष और उपभोग की अर्थव्यवस्था की ओर प्रयाण करती है। वर्ण व्यवस्था उतनी ही अनुदार, संकीर्ण और जटिल होती गई। दस्तकारी और कृषि में लौह तकनीक के प्रयोग से किसान भरण-पोषण से अतिरिक्त भी पैदा करने लगा। दस्तकारी में विकास ने किसानों को बेहतर औजार तो उपलब्ध कराए ही, उच्च सामाजिक तबके के लिए भोग-विलास के अवयव भी उपलब्ध कराए। यहीं पर ब्राह्मण विचारकों ने एक सर्वथा नवीन सामाजिक तंत्र की नींव डाली, ताकि आलोच्य कालावधि में आर्थिक प्रगति, विकास एवं विस्तार का फल मजदूरों एवं कृषकों को न मिल कर राजाओं और पुरोहितों को मिले।[17]

इस अद्भुत सामाजिक तंत्र, व्यवस्था और संगठन को वर्णव्यवस्था कहा गया। यह जन्मगत आधारों पर लोगों की स्तरीकृत करने का स्वेच्छात्मक प्रयास था,[18] न कि दैवी विधान। यह ऐसी व्यवस्था थी जिसमें मूल उत्पादन कर्ता निम्नतम पायदान पर रहे और अधिशेष के व्यवस्थापक, वितरक एवं उपभोक्ता सामाजिक संगठन के शीर्ष पर विराजमान हुए। वैश्य-शूद्र श्रम पर आधारित इस सामाजिक संरचना में ब्राह्मण और क्षत्रिय किसानों और कारीगरों द्वारा किए गए श्रम एवं धन पर आराम की जिन्दगी जीते थे। चूंकि बौद्ध एवं जैन विचार धाराओं के'प्रचार-प्रसार' या उस व्यवस्था के पोषकों की भाषा में कहें तो 'उकसावे' के कारण कभी-कभी इस व्यवस्था के गहरे संकट में पड़ जाने की आशंका भी सताती रही होगी। अत: यह व्यवस्था निर्वाध चलती रहे, इसके लिए पुनर्जन्म सिद्धान्त की व्यूह रचना की गई। गौतम ने यह प्रतिपादन किया है कि 'अनेक जातियों तथा श्रेणियों के लोग, जो सदा अपना कर्तव्य

पालन करते हुए जीवन यापन करते हैं, वे मृत्यु के उपरान्त अपने सत्कर्मों का फल भोगते हैं और अपने पुण्य के अवशिष्ट भाग के प्रताप से ऐसे श्रेष्ठ देशों, जातियों तथा परिवारों में जन्म लेते हैं, जो सौन्दर्य, दीर्घ जीवन, वेदज्ञान, सदाचरण, धन, सुख तथा बुद्धिमत्ता से युक्त होते है। जो इसके विपरीत कार्य करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं और पुन: विभिन्न निम्न स्थितियों में जन्म लेते हैं।[19] आपस्तम्ब की व्यवस्था कुछ और आगे की है नीची जातियों के लोग यदि अपने विहित कर्यव्यों का पालन करते हैं, निष्ठापूर्वक पालन करते हैं जो अगले जन्मों में उच्च जातियों में जन्म लेते हैं।[20] मनु ने व्यवस्था दी है कि वैश्य और शूद्र अपने निर्धारित कर्मो से विच्युत न हो, नहीं तो भारी दुर्व्यवस्था फैल जाएगी।[21] उनके विहित कर्तव्यों को हम पिछले अध्याय में रेखांकित कर चुके हैं[22] और चूंकि यह उनके पिछले जन्मों का कर्मफल है इसलिए कुड़बुड़ाने का कोई कारण नहीं यदि कारण हो भी तो कोई औचित्य नहीं क्योंकि इस जन्म में अपने-अपने विहित वर्ण कर्मों को निर्लिप्त भाव से करते जाने पर ही अगले जन्मों में उच्चतर वर्णों में जन्म संभव था।

इस प्रकार एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया गया जो जगत् और जीवन में प्रतिवाद की सीमा निर्धारित करती है।[23] या यूँ कहें विरोधों की धार को भोथरा बनाती है। यह चालाक दिमाग द्वारा ऊसर भूमि मे रुग्ण बीजों की अच्छे उर्वरकों द्वारा खेती है। भावी जीवन में दण्ड और पुरस्कार की व्यवस्था ब्राह्मणवाद की आधारशिला है।[24] एक तो यह मलाई मार लेने की चालाकी थी, दूसरे जन्म-जन्मांतरों तक उसे सुरक्षित रखने की साजिश भी थी।

इसीलिए जैसे-जैसे प्राविधिक शक्तियों के विकास के चलते अर्थव्यवस्था समृद्ध होती गई उसके अधिकाधिक लाभ हड़पने के लिए सामाजिक जकड़बन्दी बढ़ती गई। अधिग्रहण के मामले का लेकर पुरोहितों और राजाओं के मध्य भी वैमनस्य एवं कटुता के दर्शन होते हैं। परन्तु क्योंकि दोनों के हित एक थे अत: वैश्यों-शूद्रों के विरूद्ध एक जुट हो जाने की आपसी समझदारी उनमें विकसित हो गई थी।

कुछ विचार 'विवाह' नामक संगठन के स्वरूप और उसक निहितार्थो को लेकर भी एक अध्येता के रूप में मेरे-मस्तिष्क में उमड़ रहे हैं। विवाह चूंकि परिवार एवं समाज के लिए एक अत्यावश्यक संस्था थी। चार पुरुषार्थो में से एक 'काम' को वैध एवं मर्यादित अभिव्यक्ति की हित साधना के लिए हथियार के रूप में व्यहृत कर लिया लेकिन इस हित साधना में उच्च वर्णों की स्त्रियों को कुछ ज्यादा ही कीमत चुकानी पड़ी।

पहले, मातृ सत्ता और स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता का विवाह के प्रकारों पर पड़ने वाला प्रभाव विश्लेष्य हो उठा है। विवाह के आठ प्रकारों में पहले चार जो धर्म्य एवं स्वीकृत प्रकार के है, उनमें केवल पिता की सहमति आवश्यक है और वे पहले दोनों वर्णों विशेषकर ब्राह्मणों के लिए विहित है।[25]

कौटिल्य इनके धर्म्य एवं स्वीकृत होने के कारणों को पीछे पितृसत्तात्मक तत्वों की प्रमुखता बताते हैं[26] जो उचित ही प्रतीत होती है क्योंकि अधर्म्य या अस्वीकृत प्रकार जो निम्न वर्णों के लिए विहित थे, उनमें माता एवं पिता दोनों की सहमति आवश्यक थी।[27] यह विर्मश का विषय है कि माता की सहमति की आवश्यकता होते ही अन्तिम चार प्रकार अधर्म्य क्यों हो गए।

संदर्भ संकेत

1. वी.आर. अम्बेडकर, द अनटचेविल्स, 1969, पृ. 147।
2. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारतीय का सामजिक इतिहास, पृ. 123।
3. सुत्तनिपात, 1.7.21; 3.5.57।
4. व्यूलर ने मनुस्मृति का काल ई.पू. 200 से 200 ई. तक के मध्य में माना है। द्र., सेक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट 25 प्रस्तावना, जायवसवाल ने इसे शुंगवंश में होने वाली ब्राह्मण प्रतिक्रिया का समकालीन माना है। द्र., मनु एवं याज्ञवल्क्य, पृ. 25-32।
5. मनुस्मृति 1.93, उत्तम अंग (मुख) के उत्पन्न होने के कारण, क्षत्रियादि से पहले उत्पन्न होने के कारण, वेदों के धारणकर्ता होने के नाते ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है।
   उत्मागोंद्भा ज्येष्ठ्याद ब्राह्मणश्चैव धारणात्

सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो: ब्राह्मण: प्रभु:।

कई अन्य उल्लेख भी दृष्टव्य है, मनुस्मृति 1.95; 1.96; 1.97, 1.98, 1.99 इत्यादि।

6. विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.21; इसमें सुमन्त को उद्घृत करते हुए दुराचारी ब्राह्मण प्राणदण्ड अभिहित किया गया है। बौधायन धर्मसूत्र, 1.10; 18.19 ब्रहम हत्या गुरुतल्प, सुवर्ण स्तेय, सुरापान करने पर तप्त लोहे से दागकर निर्वासित कर देना चाहिए।
7. शर्मा रामशरण, प्रारम्भिक भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास पृ. 158।
8. उत्संस्करण की नीति द्र. वही, पृ. 158।

   निम्न संस्कृति के लोगों का उच्चतर संस्कृति में विलयन से सम्बन्धित नीति। महाकाव्य 'रामायण' की नर-वानर मैत्री क्या उत्संस्करण की नीति ही थी? या राम के द्वारा अपने हितों के निमित्त वानरों का उपयोग कर लिया गया और उन्हें अपने समाज में अपनी नियति के साथ छोड़ दिया गया। संभव है कि वानर जाति के प्रति राम की सदाशयता रही हो परन्तु इस मात्र से कुछ ठोस होता है? कितने वानरों को सुसंस्कृत बनाया गया। सामाजिक-राजनैतिक संरचना में कोई पद अथवा आधार दिया गया? समय समाज के अनुरूप अनुकूलित किया गया? इसकी तुलना में कम से कम अशोक ने जरूर कुछ सदाशयी क्रियान्वयन भी किया था। भले ही राजनैतिक आर्थिक हितों के लिए ही
9. मनुस्मृति 10 43-44

   ''शनकैस्तु क्रियालोपादिमा: क्षत्रिय जातय:

   वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च''।10, 43

   ''पौण्ड्रकाश्चौण्ड्र द्रविणा कम्बोजा यवना: शका:

   पारदापह्ल्वाशचीना किराता: दारदा: खशा:, 10.44।
10. पतंजलि महाभाष्य 2.4.10।
11. महाभारत अनुशासन पर्व, 33.21.23।
12. मनुस्मृति, 3.77

    यथा वायु सामश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव: तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा:।
13. मनुस्मृति 6.10।

    यथा नदी नदा: सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् तथैव: श्रमिण: सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् व्यास स्मृतति, 4, 2-2; 13-14 महाभारत शान्ति पर्व, 12.6।
14. जयशंकर मिश्र, पूर्वोक्त पृ. 231।
15. विस्तृत विवरण के लिए दृष्टव्य।

    रामशराण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ.159।
16. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 51।
17. विस्तृत विवरण के लिए देखे रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 158

    अन्यत्र भी, रामशरण शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास पृ. 94-99, 315-316।
18. आर.सी. मजूमदार ऐन्श्येन्ट इण्डिया, पृ. 49।
19. गौतम धर्म सूत्र 5.8.235।
20. आपस्तम्ब धर्म सूत्र, पृ., 102-3
21. मनुस्मृति, 9.418 ''वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कारयेत्।

    तो हिच्युतौ स्वकर्मभ्य: क्षोभयेतामिदं जगत्स्र
22. वैश्य वर्ण के विहित कर्तव्यों के लिए देखें, अध्याय 3 सन्दर्भ संख्याए 132, 144, 145।

    शूद्र वर्ण के विहित कर्तव्यों के लिए देखें उसी अध्याय की संदर्भ सं. 149, 150, 151।

23. ए. स्वीतजर, इण्डियन थॉट एण्ड इट्स डेवलपमेन्ट 1956, पृ. 46।
24. जे.टी. व्हीलर, ऐन्श्येण्ड एण्ड हिन्दू इण्डिया 1961, पृ. 46।
25. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 74-75।
26. अर्थशास्त्र, शामा शस्त्री संस्करण 1924 111.2 अन्यत्रयी द्र. गौतम 14-15।
    विष्णु 27-28, नारद 44।
    आदिपर्व, 67.10
27. अर्थशास्त्र 111.2।
    पितृ प्रमाणाश्चत्वारः पूर्व धर्म्याः मातृपितृ प्रमाणारशेषः।

उत्तर वैदिककालीन सामाजिक संरचना

डॉ. सपना वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन भारत एवं एशियाई अध्ययन, आर.एम.डब्लू कॉलेज, नवादा

उत्तरवैदिक कालीन कालावधि (ई.पू.600 से ई.पू.200) क्रान्तिकारी परिवर्तनों की साक्षी रही थी। तत्कालीन समाज नई चुनौतियों के रू-ब-रू था। प्रतिरोध, परिवर्तन की पहली शर्त होते हैं और एक तरफ जहाँ नवीन अर्थ संयोजन के द्वारा भौतिक जीवन में आए परिवर्तन प्रतिरोध को जन्म दे रहे थे वहीं दूसरी तरफ बौद्ध और जैन विचारधाराओं की प्लेट-विवर्तनिकी भूमिका परिवर्तन की मानसिकता बना रही थी। लौह तकनीक से परिचय, प्रयोग एवं प्रसार ने परिवर्तन के औजार भी थमा दिए। सब कुछ बदल रहा था। पूर्व की सारी मान्यताएँ जाँची-परखी जाने लगी, पारम्परिक भारतीय समाज, दुरूह धार्मिक कर्मकाण्डों, जटिल याज्ञिक क्रियाओं, वर्णों एवं जातियों के आधार पर भेद परक स्तरीकरण, धर्म के आधार पर शोषण की संस्थाओं का पोषण, रूढ़ एवं अप्रासंगिक मान्यताओं के प्रचलन के परिणाम स्वरूप जर्जर हो चला था। वह टूटने के कगार पर था। और टूटा भी। लेकिन आर्थिक क्रिया व्यापारों के दबाव में एक धर्म आधारित समाज की संरचनाओं का टूट जाना या कहें भहरा जाना एक बड़ी परिघटना तो अवश्य थीं परन्तु रोचक भी कम नहीं थी। रोचक इन सन्दर्भों में कि श्रमजीवी वर्ग पर परजीवी वर्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई।

उत्पादन वर्ग निम्न वर्णी रहे और उपभोक्ता वर्ग उच्च वर्णी हो गए। औद्योगिक विकास ने नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना की तो दूसरी ओर धार्मिक असमानताओं को भी जन्म दिया। एक ऐसे सामाजिक तंत्र का ताना-बाना बुना गया जिसमें आर्थिक विकास के लाभों को उच्च वर्णों के लिए सुरक्षित किया गया[2] क्योंकि भूमि एवं उत्पादन के अन्य साधनों पर नियंत्रण भी स्वाभाविक रूप से इन्हीं वर्णो का यानी ब्राह्मणों,[3] क्षत्रियों,[4] एवं सेट्ठियों[5] का ही था।

प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण की जटिल प्रक्रियाओं की बेहतर समझ के लिए डॉ. ए.पी ओझा का वैदुष्य विवेचन काफी सहायक सिद्ध होता है जिसमें उन्होंने शास्त्रीय एवं लौकिक[6] दो प्रकार कें स्तरीकरण की चर्चा की है, जिसमें पहले का आधार था, समाज का परम्परागत चतुर्वर्णीय विभाजन[7] तो दूसरे का आधार बनी राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक समृद्धि[8]। अधीत कालीन समाज इन दोनों की आधारों पर स्तरीकृत था। इस सत्य से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि प्राचीन भारतीय समाज के स्तरीकरण में शास्त्रीय आदर्शों पर आधृत नियमन ही निर्णायक भूमिका निभाता रहा[9] और लौकिक प्रवृत्ति या तो नेपथ्य में रही या फिर मंच पर कठपुतली बनी रही।

आलोच्य कालावधि में कुछ 'विशिष्ट आर्थिक गतिविधियों के चलते[10] पहली बार स्तरीकरण की लौकिक प्रवृत्ति भी मंच संचालन में सूत्रधार की भूमिका हथियाने की उत्सुकता और दक्षता प्रदर्शित करती है। एक नई व्यवस्था और नया सिद्धान्त विकल्प के रूप में सामने था। अधीत काल की सामाजिक संरचना, उस पर पड़ते दबावों, परिणाम स्वरूप हुए संशोधनों, परिवर्तनों एवं प्रतिरोधों की सही-सही जानकारी के लिए दो उपभागों में, पहला 600 से 322 ई.पू. और दूसरा 322 ई.पू. से 200 ई.पू विभाजन सुविधाजनक प्रतीत होता है दूसरे शब्दों में कहें तो 'मौर्य पूर्व' और 'मौर्य युगीन' विभाजन और विश्लेषण विषय की सटीक एवं बेहतर व्याख्या करता प्रतीत होता है।

अधीतकालीन सामाजिक संरचना, चातुर्वर्ण व्यवस्था के आधार पर विभेदीकृत एवं स्तरीकृत, शोषण एवं दमन की अमानवीय स्थितियों का चरम निदर्शन प्रतीत होती हैं। यहाँ तक कि देवगण भी इस भेदपरक मानसिकता से बचे नहीं रह सके।[11]

वैदिक काल की भाँति वर्ण निर्धारण का आधार कर्म नहीं रह गया था और जन्म के आधार पर वर्ण निर्णयन[12] जाति प्रथा की ओर अग्रसरण का स्वाभाविक साक्ष्य बन बैठता है। तत्कालीन समाज में जातियों के बहुश: उल्लेखों के फलस्वरूप यह अनुमान लगाया आसान हो जाता है कि उस समय जाति व्यवस्था एवं सर्व स्वीकृत संस्था के रूप में विद्यमान थी। धर्मसूत्रों में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न जातियों का उल्लेख है।[13] चारों वर्णो के लिए जाति शब्द ही व्यवहृत होता था।[14]

पालि बौद्ध ग्रन्थों में विभिन्न जातियों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर[15] तत्कालीन सामाजिक संगठन को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है-'उक्कट्ठ' उत्कृष्ट तथा हीन। क्षत्रिय और ब्राह्मण जातियाँ उत्कृष्ट जातियों में तथा चाण्डाल, वेण, निषाद, रथकार तथा पुक्कुस इत्यादि जातियाँ हीन जातियों में गिनी गई हैं। एक अन्य प्रमुख विशेषता इस युग में उभर कर सामने आती है कि विभिन्न जातियाँ अलग-अलग ग्रामों में बसने लगी। ब्राह्मण ग्राम[16], क्षत्रिय ग्राम[17], वनिय ग्राम[18], निषाद ग्राम[19], चाण्डाल ग्राम[20] इत्यादि जातिगत आधार पर बने ग्रामों का उल्लेख मिलता है।

तात्पर्य यह कि बुद्ध युग यानी मौर्य पूर्व युग में जातिभेद अपनी पराकष्ठा पर था। इसकी 'आक्टोपसी गिरफ्त' में तत्कालीन जन जीवन की समस्त सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाएँ घुट रही थीं। सर्वाधिक शोचनीय दशा शूद्रों की थी। द्विजातियों द्वारा मात्र और मात्र अपने लाभ के लिए जो साँठ-गाँठ किया गया था उसके तहत तमाम अशक्तताएँ 'हीन' जातियों पर थोप दी गई। इन्हें भी शूद्र वर्णान्तर्गत ही रखा गया[21]। कतिपय उल्लेखों के अनुशीलन से यह सम्भावना सहज ही अनुमित हो जाती है कि अस्पृश्यता की भावना भी उस समय की सामाजिक परिस्थितियों में सिर उठाने लगी थी।[22] पाणिनी के द्वारा ('निरवसित') तथा ('अनिरवसित') के रूपों में शूद्रों के वर्गीकरण से भी यह संकेतित होता है कि कुछ जातियाँ विशेष घृणित समझी जाने लगी थीं, इतनी कि, आर्य समाज की सीमा के अंतर्गत उनका निवास सम्भव नहीं रह गया था।[23] बहुत संभव है- चाण्डाल एवं पुक्कुस ऐसी ही जातियाँ रही हों। रीज डेविड्ज का दीघ निकाय के हवाले से यह निष्कर्षण कि चाण्डाल एवं पुक्कुस चारो वर्णों अतएव शूद्रों से भी अलग थे,[24] अस्पृश्यता एवं आर्य आबादी से पृथक्करण से सन्दर्भ में उचित ही प्रतीत होता है।

अधीत कालीन सामाजिक संगठन में अशौच की परिकल्पना, उसका प्रबल प्रचार एवं व्यापक स्वीकृति के साक्ष्य विभिन्न धर्मसूत्रों में बिखरे पड़े हैं।[25] उन्हें कुत्तों और कौवों के साथ जोड़ा गया।[26] चाण्डाल को देखने, उसकी वाँणी सुनने या उसके समीप आ जाने मात्र से भी अशौच के लगने का उल्लेख देखा जा सकता है, जैसे-उस स्थान पर वेद का पठन-पाठन वर्जित है जहाँ को चाण्डाल ठहरा हुआ हो,[27] या जहाँ से दिखाई पड़ रहा हो,[28] या जहाँ से वेद पाठन की ध्वनि उसके कानों में जा सकती हो।[29]

प्राचीन पालि ग्रन्थों में भी 'हीन जातियों' के रूप में चंडाल, नेसाद, वेण, रथकार और पुक्कुस के अनेकश: उल्लेख मिल जाते हैं।[30] इन हीन जातियों का ब्राह्मण कालीन समाज के अस्पृश्य जातियों से साम्य भी दृष्टिगत होता है[31]। हीन व्यवसायों, कार्यो एवं जातियों की गणना एवं वर्गीकरण प्रो. रामशरण शर्मा के मतानुसार मौर्यपूर्व काल की प्रवृत्ति मानी जा सकती है।[32] अपने निष्कर्षण के पक्ष में उन्होंने विनयपिटक के एक साक्ष्य का हवाला दिया है जिसमें बुद्ध ने निर्देश दिया है कि भिक्षुओं से उनकी जाति इत्यादि पूछ कर अपमानित न करें।[33]

वस्तुत: जन्मना और कर्मणा दोनों ही आधारों पर ये जातियाँ अधम समझी जाने लगी। चाण्डालों के समान निषादों की भी स्थिति अपने कर्म, प्रकृति[34] 'शिकार' के कारण हीन हो गई और ये अपने गावों में निवास करने लगे।[35] फिक ने बड़ी रोचक तुलना करते हुए बताया है कि शिकारियों का स्थान प्राचीन यूनान में भी निचली पायदानों पर ही रहा।[36]

रथकार, जिन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों में अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर हासिल था,[37] जातकों में कुछ हीनतर स्थितियों में प्रतिबिम्बित किया गया है। क्योंकि सम्भवत: उसने चमड़े पर आधारित शिल्प भी अपना लिया था।[38] लेकिन बौद्ध ग्रन्थों में जिसमें सामान्य रूप से क्षत्रियों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है, रथकार, जो कि रथ के पहिए भी बनाता था[39] और इसलिए राजा अर्थात् प्रकारान्तर से क्षत्रियों के सहायक का ही काम करता था, उसे अधम जाति का माना जाना, क्या लगभग सर्वस्वीकृत इस मान्यता पर कि बौद्ध धर्म क्षत्रियों की वकालत करता है, हमें सप्रश्न नहीं कर देता? प्रो. शर्मा की यह मान्यता ठीक ही प्रतीत होती है कि चूँकि बौद्ध धर्म में युद्धों के प्रति घृणा का भाव मिलता है और ये आवश्यक रूप से उससे जुड़े हुए थे अत: इनके प्रति भी उनकी दुर्भावना समझी जा सकती है।[40]

वेणों[41] के सम्बन्ध मे भी ऐसी ही पृच्छा प्रकट होती है कि यदि 'वैण' और 'तक्षक' शब्द एक ही अर्थ अभिव्यंजित करते हैं[42] तो जिस तक्षक को वैदिक समाज में एक सम्माननीय दर्जा हासिल था उसे बौद्ध साहित्य हीन जातियों में परिगिगणत करता है। परवर्ती जातकों में छिटपुट उल्लेखों को छोड़कर चाण्डालों के स्तर तक इनकी हीनावस्था या अस्पृश्यता[43] प्रमाणित करने के साक्ष्य नहीं पाए जाते।

अब अस्पृश्यता एवं हीन जातियों पर बुद्ध के विचारों का परीक्षण अनिवार्य प्रतीत होता है, क्योंकि तमाम अनुशीलनों के उपरान्त, मेरी ऐसी मान्यता बनी है, कि उन्होंने बिना किसी भेदभाव के मानव मात्र के लिए सम्मान एवं समता के सिद्धान्तों का परिपोषण किया।

बुद्ध ने कहा कि कोई भी मनुष्य जन्म के आधार पर न तो चाण्डाल होता है और न ही ब्राह्मण।[44] उच्च वर्णों में जन्म लेने वाले मरते नहीं क्या? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सभी तो मरते हैं।[45] उन्होंने चारों वर्णों के लोगों को भिक्षु बनने की संस्तुति की है[46] एवं चाण्डालों तथा पुक्कुसों को निर्वाण प्राप्ति के सर्वथा योग्य बताया है।[47]

ज्ञान पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती देते हुए यह प्रतिपादित किया कि शिक्षक बनने की योग्यता किसी जाति विशेष की बपौती नहीं। शिक्षक कोई भी हो सकता है और वह चाण्डाल या पुक्कुस ही क्यों न हो, सर्वथा आदरणीय है।[48] बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य क्या था इसका एक उद्धरण विशेष द्रष्टव्य है जिसमें एक ब्राह्मण चाण्डाल से जादू सीखता है परन्तु संकोचवश उसे गुरू की प्रतिष्ठा नहीं दे पाता फलतः अपनी विद्या भूल जाता है।[49] एक अन्य प्रसंग में एक ज्ञानी चाण्डाल द्वारा शास्त्रार्थ में हार जाने के बाद एक ब्राह्मण युवक को उस चाण्डाल के समक्ष नतशीष होना पड़ा था।[50]

जैन ग्रन्थों के अनुशीलनोपरान्त[51] भी यही निष्कर्षित होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के विपरीत ये भी चाण्डालादि निम्न जातियो-जनजातियों के प्रति उदार ही थे एवं जन्म का भेदभाव यहाँ भी नहीं था। वस्तुतः इस विमर्श का उद्देश्य यह सिद्ध करना नहीं है कि बुद्ध एवं महावीर की शिक्षाओं ने अस्पृश्यता एंव भेदभाव को समाप्त कर दिया। कोई बड़ा आमूल-चूल परिवर्तन हो गया उनकी स्थितियों में।

उन्होंने ब्राह्मणों के वर्चस्व वाली समाज व्यवस्था के अन्यायों को चिन्हित किया, ज्ञान तथा नैतिक आचरण को सर्वाधिक महत्व दिया। ये स्थितियाँ बदल सकती है' इस कोंण से सोचने को संभव बना दिया यह सम्भावना कि शूद्र क्या चाण्डाल भी निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं बहुत बड़ी बात थी और सुत्तनिपात का विख्यात मातंग (वसलसुत्त' का चाण्डाल पुत्तो सोपाको) प्रकरण[52] इस संभावना को सत्य तो बना ही गया, भले ही अफवाद स्वरूप। आदिम जातियों की हीन संस्कृति एवं शारीरिक श्रम के प्रति घृणाभाव तथा जन्मना भेदभाव को दरकिनार करते हुए गुण एवं नैतिकता के महत्व को प्रतिष्ठापित किया एवं समाज के निम्नतम के निकृष्टतम प्रतिरूप चाण्डाल को भी उसके अस्तित्व का एवं गरिमा का बोध कराया।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यानी मौर्ययुगीन भारत में भी अस्पृश्यता एवं चाण्डालों के बारे में धर्मसूत्रों में वर्णित व्यवस्थाओं की ही अभिव्यंजना है। एक उल्लेखनीय अन्तर यह किया गया है कि चाण्डालों को अन्य शूद्र जातियों के धर्म-कर्म से वंचित रखा गया।[53] उनका निवास स्थान श्मशान बताकर[54] उनकी निम्नतम स्थिति स्पष्ट कर दी जाती है। स्पर्श के लिए दण्ड का विधान सर्वप्रथम कौटिल्य ने ही दिया जो चाण्डाल आदि जातियों पर ही लागू होता था।[55] चाण्डालों की आर्थिक स्थिति उनकी मजदूरी पर निर्भर करती थी जो उनके द्वारा किए गए तरह-तरहके कामों के एवज में मिलती थी उनके काम थे आत्म हत्या करने वाले लोगों को रस्सी से बांधकर सड़कों पर घसीटना[56], व्यभिचारी स्त्री के शरीर पर कोड़े लगाना,[57] नई बस्तियों की सुरक्षा[58] इत्यादि कौटिल्य युग में इनकी पेशागत स्थिति कुछ स्पष्ट हो जाती है एवं तत्कालीन अर्थतंत्र की व्यापकता में इनकी भी उपस्थिति को उपयोगी बना लिया जाता है इन्हें अस्पृश्यता के नाम पर निठल्ला परजीवी नहीं बनाये रखा जा सकता था।

अस्पृश्यता पर विमर्श सबसे पहले इसलिए जरूरी हो गया कि अधीतकालीन सामाजिक संगठन की यह नई विशेषता थी एवं भेदपरक व्यवस्था की चरम अभिव्यक्ति भी। अब चातुर्वर्णाधारित एवं जाति आधारित समाज में परम्परागत वर्णों की विशेषताएँ, उनकी स्थिति, भौतिक एवं वैचारिक परिवर्तनों के दबावों में उनके आपसी अन्तर्सम्बन्धों, जातियों का सम्मिलन एवं उनका स्थान अभिनिश्चयन, विशेषतया शूद्रों की स्थिति, स्त्री समाज की दशा इत्यादि बातों पर विचार किया जाएगा।

संदर्भ संकेत

1. पूर्ण विवरण के लिए द्रष्टव्यः शर्मा रामशरण, शूद्राज इन एंशियण्ट इण्डिया:, द्वितीय संस्करण, दिल्ली–1980, पृ.–95.98, 315.16
2. शर्मा रामशरण, भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, पृ.–158
3. जातक, 3–293 4–276– ये दो उल्लेख मगध क्षेत्र के है सुत्तनिपात 1–4। यह उल्लेख काशी क्षेत्र का है। यें सभी बड़े प्रक्षेत्रों के उल्लेख हैं जिन पर ब्राह्मणों का स्वामित्व था।
4. रिचई फिक, दि सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ इस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम पृ.–314, दत्तः ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट (पृ. –268–69)
5. फाइजर, दि प्राब्लम आफ दि सेट्ठि इन बुद्धिस्ट जातकाज; (आर्कीव ओरियण्टलानी, प्राग, 22), पृ.–238–265
6. ओझा आदित्य प्रसाद, 'प्राचीन भारत में पराधीन समुदाय का सामाजिक स्तरीकरण, हिन्दी कलम, सं– नीलकान्त, अंक–2, जनवरी–जून–1995, पृ.–87।
7. वही, पृ.–87, विस्तृत विवरण हेतु– द्र.–वही अध्याय 2।
8. वही, पृ.–87, विस्तृत विवरण हेतु– द्र.–वही अध्याय 2।
9. ओझा, आदित्य प्रसाद, प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण, इलाहाबाद, 1992।
10. विशिष्ट आर्थिक–गतिविधिँ–लौह तकनीक का कृषि एवं दस्तरी में प्रयोग, अधिशेष उत्पादन नगरीकरण, शिलपौद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं वाणिज्यिक गतिविधियों से आशय।
11. काणे.पी.वी., हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जि.–2, भाग–1, पृ. 42। अग्नि, बृहस्पति–ब्राह्मण वर्ण के इन्द्र, वरूण, सोम, यम–क्षत्रिय वर्ण के वसु, रूद्र, विश्वे देवा तथा तथा मरूत वैश्य वर्ण के पूषण–शूद्र वर्ण के।
12. पाराजिक, पृ.–306, (ब्राह्मणोनाम् जातिया ब्राह्मणो)
13. गौतम धर्मसूत्र, 21.6–10, 18–24, 4–14, बौधायन धर्मसूत्र, 1.9.3, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.24,9,5।
14. फिक, दि सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ इस्ट इण्डियाँ इन बुद्धाज टाइम; पृ.–30.31।
15. पाचित्तिय पृ.–9.10।
16. बौद्ध पिटकों में अनेक ब्राह्मण ग्रामों का उल्लेख आता है जैसे–खानुमत (दीर्घ निकाय 1, पृ.–127), एक नाल, (बुक आफ सेक्रेड सेइंग्स 1, पृ.–216),
    सार्लिन्दय, (जाक 3, पृ.–293), जातक 4,पृ.–276, इत्यादि।
17. वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ.–85.86
18. वही।
19. जातक 2, पृ.–36; जातक 4, पृ.–413, जातक 6, पृ.–71।
20. जातक 4, पृ.–200; 376, 390, महावंश 4/41।
21. मिश्र, जी.एस.पी, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थ व्यवस्था, पृ.–137।
22. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2–1,2, 8–9, बौधायन धर्मसूत्र प्रथम, 1,5,9,5; 1.5.11.36, गौतम धर्मसूत्र 14.30, वशिष्ठ धर्मसूत्र 23.30।
23. अष्टाध्यायी, 2.4.110
24. टी. डब्ल्यू राइज डेविड्ज, डायलाग्स, आफ द बुद्ध भाग 1, पृ.–99.100, अमबट्ठसुत्त की भूमिका।
25. देखें–इसी अध्याय में संदर्भ सं.–221
26. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2,4,9, 9, गौतम धर्मसूत्र, 15.24।
27. आपस्तम्ब धमसूत्र, 1.3.9.15; गौतम धर्मसूत्र 14.19 वशिष्ठ धर्मसूत्र, 13.11
28. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.3.9.17।
29. वशिष्ठ धर्मसूत्र, 23,34।
30. मज्झिम निकाय, 3, 169–78; 2
31. शर्मा रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ.–118।

32. शर्मा रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ.-118
33. विनय पिटक, 4, 4-11, शर्मा रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ.-118, सन्दर्भ सं.-342।
34. जातक, 2, पृ.-200, 6, पृ.-71,170
जातक 5, पृ.-110, 337
मनुस्मृति, 10/48, इसकी तिथि अपेक्षाकृत बाद की है परन्तु इसमें निषाद के कर्म में मछली मारना बताया गया है।
35. जातक, 6, पृ.-71,
36. फिक रिचर्ड, सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ इस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, पृ.-322
37. गृह्यसूत्रों में उसके उपनयन सम्बन्धी विधान भी प्राप्त होते हैं जो निश्चित ही उसकी उच्चतर सामाजिक हैसियत का द्योतक हैं। यथा-भारद्वाज गृह्यसूत्र वसन्ते ब्राह्मणमुनीत...वर्षा रथकारं शिशिरे वा(बौधायन गृहासूत्र 5.6, 8.5 जैमिन मीमांसा सूत्र, 1.50.
38. जातक, 51; द्र.-पेतवत्थु अठकथा, 1.13
बोस सोशल एण्ड रूरल इकानामी आफ नार्दर्न इण्डिया, पृ.-456
39. अंगुत्तर निकाय, 1पृ.-111.113
40. शर्मा, आर.एस, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ.-120.
41. बोस, पूर्वोद्धृत, पु.-454.55
जातक, पृ.-251, इन उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि 'वेण' जनजाति वॉस के काम एवं शिकार द्वारा जीवनयापन करती थी।
42. सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट, पृ.-173.
जातक पृ.-306, वेण जाति ति तक्षक जाति
43. जातक पृ.-306
44. सुत्तनिपात, 1.7.21; 3.9.57।
45. विमानवत्थु, 5.13.15, पेतवत्थु, 2.6.12।
46. मज्झिम निकाय, 1 पृ.-211, पृ.-182.84।
संयुक्त निकाय 1.99; विनय पिटक पृ.-239
अंगुत्तर निकाय, पृ.-202, दीघ निकाय, पृ.-8.98
47. जातक, पृ.-194; पृ.-303.
48. जातक, पृ.-200
49. जातक, पृ.-200
50. जातक पृ.-233-35
51. दस.कु; पृ.-45. जैन ग्रन्थ पृ.-229
इस परवर्ती जैन ग्रन्थ में मातंग के राजा के द्वारा शिक्षा ग्रहण का उल्लेख है।
उत्तरा, यह ज्ञात होता है कि एक सोबाग (श्वपाक) हरिशेन एक ब्राह्मण को विभिन्न उपदेश देता है।
आचारंग सुत्त, 1.2.2
52. सुत्त निपात 1.7. 22-23
1.7.137-39 सुत्तनिपात, सुत्तनिपात के कुछ प्रकरण बौद्ध साहित्य मे प्राचीनतम होने का दावा करते हैं। इसमें विख्यात मातंग का उल्लेख है जो कई ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के श्रेष्ठ था एवं तपबल से देवयान पर सवार होकर ब्रह्मलोक तक पहुँचने में समर्थ हो सका था।
53. अर्थशास्त्र, 3.7.37
54. अर्थशास्त्र, 2.4.23,
55. अर्थशास्त्र, 3.19.9,
अर्थशास्त्र, 3.19.10,
56. अर्थशास्त्र, 4.7. 25-26
57. अर्थशास्त्र, 3.3.28

प्रथम विश्व युद्ध तक भारत में आर्थिक चिंतन

डॉ. राम किशोर सिंह

इतिहास विभाग, समता कॉलेज, जन्दाहा (वैशाली)

मुम्बई में 28 दिसम्बर, 1885 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बहुत पहले, राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं (इनमें से अनेक ने कांग्रेस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई) ने अपना बहुत समय और शक्ति गहन अध्ययन में और भारत की आर्थिक स्थिति में आ रही गिरावट को समझने के लिए समर्पित किया था। यदि हम आंकड़ों को देखें तो, 1824-25 में ही लोगों में व्याप्त असंतोष और शांतिपूर्ण प्रतिरोध की शरण में जाने का उल्लेख मिलता है। बिशप रेगिनॉल्ड हीबर ने भारत में अपने निवास के दौरान उत्तरी प्रांतों की यात्रा की और एक छोटे मध्यम वर्ग का अस्तित्व पाया, जो कि अत्यन्त सुस्पष्ट था। उन्होंने हाऊस टैक्स लगाने के विरुद्ध वाराणसी के लोगों के विद्रोह के बारे में चर्चा की। ''बनारस और उसके पड़ोस की पूरी जनसंख्या ने तब तक धरना पर बैठने का निर्णय लिया, जब तक कि उनकी शिकायतों का निवारण नहीं होता।'' ''लगभग 3,00,000 व्यक्तियों ने अपना गृह त्याग दिया, अपनी दुकानें बंद कर दीं, कम्पनी में अपना काम स्थगित कर दिया, रसद तैयार किया, उनमें से अनेकों ने बंधे हाथों और झुके सरों के साथ बैठ कर खाना खाया।'' ''दमन के विरुद्ध, विरोध के इस आश्चर्यजनक तरीके ने'' सरकार को टैक्स वापस लेने के लिए बाध्य कर दिया।[1]

राजा राममोहन राय संभवत: ऐसे पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण की चर्चा की और उनका यह विचार था कि यहां उद्यमी लोगों के वर्ग और समूह का अस्तित्व है परन्तु ''व्यवसाय आरंभ करने के लिए इनके पास पर्याप्त पूंजी का अभाव है।''[2] उन्होंने ब्रिटिश लोगों द्वारा लागू किए गए ''दमामी व्यवस्था'' और ''रैयतवारी व्यवस्था'' पर तीखा प्रहार किया। उनके अनुसार, ''दोनों व्यवस्थाओं के अन्तर्गत किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। एक के अन्तर्गत, वे जमीन्दारों की धनलोलुपता और उनकी महत्वाकांक्षा की दया पर जीवित रहते हैं और दूसरे के अन्तर्गत वे सर्वेकत्ताओं और दूसरे सरकारी राजस्व अधिकारियों की लूट खसोट और षड्यंत्र का शिकार होते हैं।

इन दोनों के प्रति मुझे गहरी सहानुभूति है। जहां तक बंगाल के खेतिहर किसानों का संबंध है, वहां बड़े भूपति करों का मूल्यांकन करने में सरकार के साथ ही सम्मिलित हो गए, इसके सम्मिलित होने के कारण भी निर्धन किसानों को किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं हुई। खेती के मौसम में, जब अन्न की कीमत कम रहती है, उस समय भूपति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरे अन्न को बेच दिया जाता है तथा श्रमिकों के और उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए बहुत ही कम या नहीं के बराबर अनाज छोड़ा जाता है।''[3] इस मान्यता के आधार पर अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण अत्यन्त ही आवश्यक है और यह तब तक संभव नहीं है जब तक ब्रिटिश द्वारा लागू की गई भूमि व्यवस्था का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा निर्धन और वंचित ही रहा तथा इसके पास भी कृषि में निवेश करने हेतु पूंजी का अभाव था। खेत जोतनेवाले किसानों के पक्ष में भूमि संबंधों में युक्तिसंगत परिवर्तन की आवश्यकता थी। उनका यह विचार था कि ''भारतीय श्रमिकों के पास भी दूसरे सुसम्य लोगों की तरह विकास की समान क्षमता है।''[4]

प्रोफेसर बी. एन. गांगुली के अनुसार, राजामोहन राय ''एक आधुनिक, परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था और व्यावहारिक ग्रामीण पृष्ठभूमि से युक्त राजतंत्र की खोज में थे। एक तरफ तो, इस आधार के बिना किसी भी आधुनिक औद्योगीकरण का अस्तित्व इस कृषि प्रधान देश में समाप्त हो जाता, वहीं दूसरी तरफ, भारत की ग्रामीण संस्कृति की विशेषताओं का ध्यान रखे बिना कोई भी औद्योगीकरण फलदायी नहीं हो सकता था।''[5] उनका यह विचार था कि हमें आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञानार्जन पर निर्भर होना चाहिए। वह पूरे देश में पश्चिमी शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे और ''राष्ट्रीय विकास के हित में विज्ञान और यूरोपियन कला के ज्ञान का सम्मिश्रण करना चाहते थे।'' यहां उस बिन्दु का उल्लेख अवश्य ही करना चाहिए कि राजा राम मोहन राय ही पहले आरंभिक

भारतीय नेता थे जिन्होंने 'राष्ट्रीय' शब्द का प्रयोग किया तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को समग्र रूप में देखा। हमें यह भी अवश्य ही नहीं भूलना चाहिए कि एक राष्ट्र के रूप में भारत की अवधारणा का कोई अस्तित्व नहीं था।

उस समय जब राजा राम मोहन राय जीवित और कार्यरत थे, ब्रिटिश षडयंत्र न तो पूरी प्रकट हुआ था, न ही यह इतना तीव्र और दयारहित था, जैसा कि 1857 के बाद हुआ। ब्रिटिश अधिकारियों ने स्वयं को इतनी दूरी पर नहीं रखा था जैसा कि उन्होंने बाद में किया। इसलिए, उन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशियों को ''आधुनिकीकरण का संवाहक'' कहा। दादाभाई नौरोजी पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने औपनिवेशिक शोषण और इसकी चालों और षडयंत्र को समझने के लिए अपनी अंतदृष्टि विकसित की तथा इस तथ्य को स्पष्ट किया कि भारतीयों की स्थिति दयनीय इसलिए नहीं है कि उनमें आनुवांशिक अयोग्यता है, परन्तु ऐसा इसलिए है कि वे अपने द्वारा उत्पादित किए गए धन के एक विशाल हिस्से से स्वयं ही वंचित हैं। 1876 में, अपने अध्ययन के आधार पर तथा ''भारत की निर्धनता'' का अध्ययन करने के बाद उन्होंने इस पर बल देते हए कहा, ''भारत गंभीर रूप से अनेक प्रकार से पीड़ित है और यह निर्धनता में डूबता जा रहा है।'' और लोग इतने अधिक गरीब थे कि वे अपने जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा करने में सक्षम नहीं थे। 1881 मे उन्होंने ''भारत की दयनीय, दिल को दहलाने वाली और खून खौलाने वाली स्थिति'' के बारे में चर्चा की। 1900 मे उन्होंने कहा, ''सत्य तो यह है कि भारतीय मात्र गुलाम है। इनकी स्थिति अमेरिकी दासों से भी बदतर है। उनकी देखभाल उनके मालिकों के द्वारा की जाती है, जिनकी सम्पत्ति वे स्वयं हैं।''[6] 1867-68 में प्रति व्यक्ति औसत आय मात्र 20 रू. ही थी, इस आंकड़े के आधार पर उन्होंने इस तथ्य को प्रमाणित किया। यह राशि तो उससे भी कम थी, जितनी एक कैदी को अपने खर्च के लिए प्राप्त होती है। सरकारी रिपोर्टों के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय जेलों में, उत्तर पश्चिमी प्रांत में एक कैदी को अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में 21 रू. और 13 आना खर्च होते हैं, चेन्नई में लगभग 53 रू. और 2 आना खर्च होते हैं। मुम्बई में यह राशि 47 रू. और 7 आना है तथा बंगाल में 31 रू. और 11 आना है। इस प्रकार, जेल से बाहर रहनेवाले व्यक्ति की स्थिति जेल के अन्दर रहनेवाले व्यक्ति से भी बदतर है।[7] भारतीय लोगों की अथाह दुर्दशा का वर्णन करने के लिए, उन्होंने अपनी प्रसिद्ध, ड्रेन थ्योरी को प्रस्तुत किया, जो ब्रिटिश संग्रहालय मे किए गए कष्टकारी अध्ययन और अत्यन्त ही सावधानी पूर्वक संग्रह किए गए आंकड़ों और गणना का परिणाम थी। वास्तव में, यह सिद्धांत राजा राममोहन राय के विचारों में भी समाहित था, जिन्होंने 1831 में 'हाऊस ऑफ कॉमन्स सेलेक्ट कमिटी' से यह कहा कि ''अब यूरोपियन भारत से प्रति वर्ष बहुत बड़ी राशि लेकर वहां अपना भाग्य निर्माण करते हैं।'' उन्होंने यह कहा कि यदि यह धन भारत से बाहर नहीं जाता तो शायद देश और भी अधिक बेहतर स्थिति में होता और इसका विकास होता।[8] नौरोजी ने औपनिवेशिक शोषण के षड्यंत्र को बेनकाब करने के लिए इसे अत्यन्त ही शक्तिशाली सिद्धांत माना। उन्होंने अपना स्मरणीय ग्रंथ ''पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया'' प्रस्तुत किया, (प्रथम बार 1901 में प्रकाशित हुआ) जिसमें ''ड्रेन थ्योरी'' की सुसंगत और विश्वसनीय व्याख्या की गई थी। उन्होंने ''इस आर्थिक पिछड़ेपन को बाह्य और आंतरिक पिछड़ापन माना। यह इस प्रकार का षडयंत्र था जिसने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के संसाधनों की अत्यन्त ही निचले स्तर से लूट खसोट की। इसके अतिरिक्त जो भी था, उसका उत्पादन एक अत्यन्त ही जटिल प्रक्रिया के द्वारा होता था तथा बाहरी व्यापार के द्वारा इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को सोख लिया था तथा इसकी गतिविधियां भी इसी प्रकार की एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया द्वारा एकतरफा धन के स्थानान्तरण द्वारा नियंत्रित की जाती थीं।''[9]

भारत से धन का निष्कासन अनेक कारणों से हुआ, जैसे अनावश्यक निर्यात, असमान प्रतिफल के बिना किया गया व्यापार, यूरोपियन श्रमिकों के द्वारा बचत के रूप में इंग्लैंड भेजा गया धन, जिससे उनके परिवार का भरण-पोषण होता था, अपने इस्तेमाल के लिए ब्रिटिश वस्तुओं को खरीदने के लिए व्यय किया गया धन, भारत में ब्रिटिश वस्तुओं की खरीदारी के लिय व्यय किया गया धन, सरकार द्वारा की गई खरीदारी को ''गृह व्यय'' (होम चार्जेज) के अर्न्तगत सम्मिलित न किया जाना (इंग्लैंड में भारतीय कार्यालय की देखभाल पर किया गया व्यय), इंग्लैंड में शुल्क जिसके अर्न्तगत भारत में जनता द्वारा लिए गए ऋण का सूद भी सम्मिलित है, एक्सचेंज में घाटा, उत्पादनकारी कार्यों के लिए व्यय किया गया धन, भारत में ब्रिटिश सेना की देखभाल के लिए किया गया व्यय तथा भारतीय सेना की सहायता से ब्रिटिश शासन के विस्तार के लिए ब्रिटिश यात्राओं पर किया गया व्यय। यह सब इसलिए संभव था कि भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्र नहीं था एवं इसकी अर्थव्यवस्था का स्वरूप औपनिवेशिक था। यदि भारत राजनीतिक दृष्टिकोण से स्वतंत्र होता, तो इसकी अथव्यवस्था का स्वरूप कुछ अलग ही होता। इसके संसाधनों का प्रयोग घरेलू रोजगार और उसके अवसरों के उत्पादन के लिए किया जाता एवं इसे देश में उत्पादन की जानेवाली वस्तुओं के लिए खर्च किया जाता तथा भारत की अर्थव्यवस्था का विकास भी होता।

दादा भाई नौरोजी ने यह भी इंगित किया कि प्रशासन, सेना और जनोपयोगी सेवाओं के शीर्ष पदों पर अधिकांशत: अंग्रेजों का आधिपत्य है, जिसके लिए उन्हें अत्यन्त ही अच्छा वेतन और भत्ते प्राप्त होते हैं। उन्होंने इस दावे को स्वीकार नहीं किया कि उनकी 'सेवाएं', 'अदृश्य निर्यात' के रूप में है, जिसके लिए उन्हें वैध वेतन प्राप्त होता है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि यह वेतन और दिए जाने वाले भत्ते किसी भी रूप में उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के अनुरूप नहीं हैं। दूसरी बात यह थी कि जब तक भारतीय इन नौकरियों में नहीं आते, उन्हें किसी भी प्रकार का अनुभव या प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता। भारत ने रेलवे के विकास के लिए ऋण लिया था, जिससे देश की अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण में सहायता प्राप्त होती। उन्होंने प्रचार करने वाले ब्रिटिश लोगों को उत्तर देते हुए कहा कि, ''ब्रिटिश भारत का अपना धन यहां से बाहर ले जाया जाता है, पुन: वही धन ऋण के रूप में वापस भारत आता है तथा इस ऋण के लिए उसे सूद देना पड़ता है। यह पूरी प्रक्रिया अत्यन्त ही विकृत और उत्तेजित करने वाली है। यह एक विध्वंसक समाधान नहीं तो और क्या है?''[10]

नौरोजी के एक अत्यन्त ही विशिष्ट समकालीन, कार्ल मार्क्स ने भी अपने आंकड़ों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला। उन्होंने उद्धरण देते हुए कहा, ''भारत को एक 'अच्छी सरकार' को चढ़ावे के रूप में मात्र 50 लाख देना पड़ता है, ब्रिटिश पूंजी के लिए दिया गया सूद और लाभांश इत्यादि, इसमें उस धन की गणना नहीं की जाती है, जिसे अधिकारी अपनी तनख्वाह से बचत के रूप में प्रति वर्ष अपने घर भेजते हैं या फिर अंग्रेज व्यापारियों के द्वारा इंग्लैंड में जिस पूंजी का निवेश किया जाता है।''[11] मार्क्स ने एन. एफ. डेनियलसन को फरवरी 1881 में एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा, ''अंग्रेज भारतीयों से लगान, रेलवे के लिए लाभांश, सेना और दूसरे अधिकारियों की पेंशन, अफगान और दूसरे युद्धों के लिए जो भी वार्षिक रूप से लेते हैं – यह उस धन से अलग रखते हैं – यदि हम सिर्फ उन वस्तुओं के मूल्य की चर्चा करें, जिसे भारत प्रति वर्ष नि:शुल्क रूप में इंग्लैंड भेजता है तो यह छ: करोड़ खेतिहर और औद्योगिक श्रमिकों की आय से अधिक है।''[12]

उन्होंने सही विचारधारा के लोगों को प्रभावित करने के लिए, चाहे वे भारतीय हों या ब्रिटिश और भारत से बाहर भेजे जा रहे धन को रोकने के लिए बहुत प्रचार किया। जुलाई, 1900 को इंग्लैंड की एक सभा में, जिसमें अनेक अंग्रेज उपस्थित थे उन्होंने कहा कि, ''आप इंग्लैंड में प्रति वर्ष, प्रति व्यक्ति 50 शिलिंग या उससे कुछ अधिक टैक्स के रूप में देते हैं। हम भारत में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति मात्र तीन या चार शिलिंग ही देते हैं। इससे आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हमलोग विश्व में सबसे कम टैक्स अदा करने वाले लोग हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है। आप इस देश (इंग्लैंड) में जो टैक्स देते हैं, वह टैक्स देनेवालों के हाथों से सरकार के हाथों में जाता है, वहां से वह पुन: अनेक रूपों मे अपने देश में ही वापस आता है, यह लोगों के पास वापस लौट आता है और व्यापार की उन्नति होती है। आपकी सम्पत्ति में कोई कमी नहीं होती है। आपके टैक्स अनेक हाथों से होकर गुजरते हैं। जो भी आप देते हैं, आपको अवश्य ही वापस मिलना चाहिए। किसी भी घाटे का अर्थ है शक्ति का बहुत अधिक नुकसान। मान लें कि आप एक वर्ष में दस करोड़ पौंड देते हैं और सरकार उस धन का इस प्रकार से उपयोग करती है उसका मात्र एक हिस्सा ही आपके पास लौट कर आता है, बाकी हिस्सा देश के बाहर चला जाता है। इस स्थिति में आपका ही खून चूसा जा रहा है, आपका जीवन आंशिक रूप से बाहर जा रहा है। मान लें कि दस करोड़ पौंड में से मात्र 8 करोड़ पौंड ही आपके पास वेतन, व्यापार और उत्पादन के रूप में वापस आ रहा है, तो आपने 2 करोड़ पौंड खो दिए। प्रति वर्ष आप इसी प्रकार दुर्बल और कमजोर होते जाएंगे। लोगों से टैक्स लेना और उनकी हत्या करने के बीच यही अंतर है।''[13]

दादा भाई ने माल्थस के जनसंख्या के इस सिद्धान्त को अस्वीकार किया कि भारत गरीब था और विकास की दर ज्यादा नहीं थी क्योंकि यहाँ की जनसंख्या में अत्यन्त ही तेज गति से वृद्धि हो रही थी। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा, ''यह अर्थशास्त्र के नियमों का सहानुभूति विहीन संचालन नहीं है, बल्कि यह ब्रिटिश नीति की विचारहीन और सहानुभूति विहीन गतिविधि है। यह भारत की सामग्री को भारत में ही खाने जैसा है तथा भारत से धन का निष्कासन है। संक्षेप में, इस रक्त स्राव ने अर्थशास्त्र के नियमों को निर्ममतापूर्वक विकृत कर दिया है, जो भारत को नष्ट कर रहा है। बढ़ती जनसंख्या के विषय में चर्चा करना, खाद्य सामग्री तथा अन्य वस्तुओं का उत्पादन करने में लोगों के जीवन निर्वाह की वस्तुओं की आपूर्ति करने में देश की असमर्थता – इन सब के विषय

में बहस करना निरर्थक है, यदि देश निरंतर, बिना रूके अपनी ही पूंजी से वंचित रहने के लिए विवश है।''[14] उनकी व्याख्या के अनुसार, उत्पादक गतिविधियों के प्रसार की कमी, विशेष रूप से आधुनिक उद्योग की जो पूंजी की कमी के कारण ग्रसित है, भारत में निर्धनता है। औपनिवेशिक शासन और इसकी नीतियों के कारण पूंजी के निर्माण में बाधाएं आई हैं। इस प्रकार, निर्धनता के उन्मूलन के लिए स्वराज या राजनीतिक स्वतंत्रता का अभ्युदय सबसे अहम और आवश्यक पूर्वस्थिति के रूप में हुआ। भारत के पास प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन और पर्याप्त श्रम है। परन्तु यहां पूंजी का नितांत अभाव है। पूंजी के बिना कृषि योग्य भूमि का विशाल क्षेत्र ''खनिज पदार्थों का विशाल भंडार तथा दूसरे अविकसित संसाधन'' और प्रचुर मात्रा में श्रम की उपलब्धता का कोई महत्व नहीं है। यदि इस देश के पास पूंजी होती, तो उसका अत्यन्त ही सावधानीपूर्वक और सुसंगत तरीके से प्रयोग करने पर अवश्य ही उत्पादन में वृद्धि होती, रोजगार के अवसरों का निर्माण होता और गरीबी का सफाया हो जाता।

पूंजी की समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक था कि धन के निष्कासन की प्रक्रिया को उलटा कर दिया जाए। इसके लिए निम्नांकित प्रयासों की आवश्यकता थी, जैसे - भारत में जो भी उत्पादन होता था, उसे यहीं रखना चाहिए, आम जनता के ऋण का बोझ कम होना चाहिए, ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन, भत्ते और पेंशन पर एक सीमा के बाद रोक लगनी चाहिए, जहां तक संभव हो भारतीयों को रोजगार उपलब्ध कराना और भारत-ब्रिटिश के वित्तीय संबंधों की युक्तिसंगत व्यवस्था का निर्माण करना। दादाभाई इस तथ्य से सहमत थे कि राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप के बिना भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास नहीं हो सकता। साथ ही वह निजी उद्यमों को भी अनुमति प्रदान करना चाहते थे, वह भारतीय और विदेशी, दोनों ही प्रकार के उद्यमों को एक पूर्वनिर्धारित नीति और अनुशासन के अन्तर्गत ही रखना चाहते थे। इसके लिए दो वस्तुओं की आवश्यकता थी : पहली, राजनीतिक स्वतंत्रता और दूसरी, राज्य के द्वारा प्राप्त उचित मार्ग निर्देशन। उन्होंने कहा, ''जब तक यहां के प्रशासन में राष्ट्र के लोगों का योगदान नहीं होगा, देशभक्ति और स्वहित की शक्तिशाली भावना तब तक कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकती है।''[15] तत्पश्चात्, ''यदि भारतीयों को उचित मार्ग निर्देशन और प्रोत्साहन प्राप्त होता है, तो वे भी बहुत कुछ कर सकते हैं। मैं भयभीत हूं कि उन्हें प्रोत्साहन देने से अधिकारी चौकन्ने हो सकते हैं।''[16]

उन्हें इस बात का आभास था कि स्वतंत्र भारत में अर्थव्यवस्था मिश्रित होगी। कार्यों में ''सरकार और निजी उद्यमों का संबंध, जिसमें सरकार का नियंत्रण अत्यन्त ही आवश्यक है, ताकि अपने हिस्से के अनुसार प्रत्येक को उसका लाभ प्राप्त हो सके...यह लोगों में स्वहित की भावना की वृद्धि करने में अत्यन्त ही अनुकूल साबित होगा, जिसकी कमी के कारण बहुत कुछ नष्ट हो जाता है।''[17] इससे पहले कि हम यह चर्चा समाप्त करें, हमें इसे ध्यान में रखना चाहिए कि दादा भाई न केवल देश में उद्योगों की स्थापना के पक्ष मे थे, बल्कि विदेशी कम्पनियों के व्यापक स्तर पर राष्ट्रीयकरण किए जाने के भी समर्थक थे।[18] महादेव गोविन्द रानाडे न केवल अपने समय के राष्ट्रवादी नेताओं में सबसे निर्भीक और साहसी थे, बल्कि एक प्रशिक्षित अर्थशास्त्री भी थे। उन्होंने भारतीय समस्याओं के प्रति ''ब्रिटिश क्लासिकल पोलिटिकल इकोनॉमी'' के दृष्टिकोण की न केवल भर्त्सना की, बल्कि अपने एक व्याख्यान में तर्कों के द्वारा इसे धराशायी कर दिया। इसकी मान्यताएं जैसे - व्यक्तिवाद का प्रचलन, अपने स्वहित की इच्छा को विकसित करना, उत्पादन में निपुणता और दक्षता को विकसित करने के लिये स्वतंत्र और असीमित प्रतियोगिता, राष्ट्र के हस्तक्षेप का विरोध, कुछ प्रचलित और साधारण विनियम जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण तथा पूंजी और श्रम की स्वतंत्र गतिविधियां इत्यादि - यह सभी भारतीय स्थितियों पर लागू नहीं किए जा सकते थे। भारत में आर्थिक और सामाजिक स्थितियां अत्यन्त ही भिन्न थीं तथा ब्रिटिश नीतियां जो पूर्णत: ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों के दृष्टिकोण तथा विचारों पर आधारित थीं, इससे भारत को लाभ से अधिक हानि ही हुई।[19]

संदर्भ :

1. बी. एन. गांगुली, इंडियन इकॉनमिक थॉट : नाइन्टींथ सेंचुरी पर्सपेक्टिव, नई दिल्ली, 1977, पृ. 33, पृ. 30-32 भी देखें।
2. वही, पृ. 37 और सुशोभन चन्द्र सरकार, राजमोहन राय ऑन इंडियन इकॉनमी, कलकत्ता 1965, पृ. 64.
3. सुशोभन चन्द्र सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ. 9, 13, 14.
4. बी. एन. गांगुली, पूर्वोद्धृत, पृ. 48.
5. वही, पृ. 87.
6. विपिन चंद्र द राइज एंड ग्रोथ ऑफ इकॉनमिक नेशनलिज्म इन इंडिया, नई दिल्ली 1966, पृ. 8.

7. वही, पृ. 16–17, 20.
8. सुशोभन चन्द्र सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ. 18.
9. बी. एन. गांगुली, दादाभाई नौरोजी एंड ड्रेन थ्योरी, मुम्बई, 1965, पृ. 3.
10. वही, पृ. 23.
11. कार्ल मार्क्स, कैपिटल, खंड ण्ण्ए मास्को, 1959, पृ. 577. पृ 400–411, 539–569 भी देखें।
12. कार्ल मार्क्स, ऑन कोलोनियलिज्म, मास्को, पृ. 304.
13. पी. के. गोपालकृष्णन, डवलपमेंट ऑफ इकॉनमिक आइडियाज इन इंडिया नई दिल्ली, 1959, पृ. 28.
14. बी. एन. गांगुली, पूर्वोद्धृत, पृ. 136.
15. वही, पृ. 145.
16. वही।
17. वही।
18. विपिन चंद्र, पूर्वोद्धृत, पृ. 110–111.
19. एम. जी. रानाडे, एस्सेज ऑन इंडियन इकॉनमिक्स, मद्रास, 1916, पृ. 20–30.

भारतीय राजनीति में नेहरू का उदय

डॉ. अभय कुमार[1] एवं सुबोध कुमार[2]

1. प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राम लखन सिंह यादव कॉलेज, बेतिया

2. इतिहास विभाग, गोपेश्वर कॉलेज, हथुआ, गोपालगंज

जनवरी 12, 1905 को भारत के वयोवृद्ध व्यक्ति दादाभाई नौरोजी ने दिनशाँ एड़लजी वाचा को एक पत्र लिखा : ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वयं अपने ही विरुद्ध युवा पीढ़ी में एक असंतोष और अधैर्य उत्पन्न किया है, जो अत्यन्त ही धीमा और गैर विकासवादी है। यह उनका अपना विकास और प्रगति है...'' इसके आगे उन्होंने कहा कि अब मुख्य कार्य यह है कि ''जिस क्रांति की आज आवश्यकता है उसका ही विस्तार करना - चाहे वह शांतिपूर्ण हो या उग्र...।''[1]

जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अगली पीढ़ी ने वैसा ही व्यवहार किया जैसा नौरोजी ने भविष्यवाणी की थी। इस पीढ़ी ने अपना असंतोष और अधैर्य व्यक्त किया क्योंकि भारत से जुड़ी वास्तविकताओं को समझने की कांग्रेस की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी थी, समस्याओं के प्रति इसका दृष्टिकोण संकीर्ण था और यह समस्याओं का मौलिक और पारंपरिक समाधान ढूंढने में सक्षम नहीं थी। पुरानी पीढ़ी ने अब तक जो पृष्ठभूमि तैयार की थी, उसके कारण नई पीढ़ी भारत की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक थी। हमें याद करना चाहिए कि 1891 में जस्टिस रानाडे ने गोखले से क्या कहा था जब पूना सार्वजनिक सभा द्वारा लिखे गए दो लाईन के पत्र के उत्तर ने उन्हें अत्यन्त निराश कर दिया था। रानाडे ने उस समय कहा था, ''आपको इस बात का अहसास नहीं है कि भारत के इतिहास में हमारा क्या स्थान है। ये ज्ञापन आंशिक रूप से ही सरकार को संबोधित किए हैं, वास्तव में ये लोगों को ही संबोधित किए जाते हैं, ताकि वे इन विषयों पर सोचना सीख सकें। इस कार्य को बिना किसी परिणाम की आशा के अनेक वर्षों तक निरंतर किया जाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार की राजनीति इस देश में पूर्णत: नई है।''[2]

पुरानी पीढ़ी ने गुणवता के संदर्भ में जिन स्थितियों और परिस्थितियों में कार्य आरम्भ किया था, नई पीढ़ी ने उस कार्य को निरंतर जारी रखा। पुरानी पीढ़ी एक तरफ आर्थिक चिंतन और इसके विश्लेषण के बीच तथा दूसरी तरफ राजनीतिक दृष्टिकोण के संदर्भ में जिस असंगति का सामना कर रही थी, नई पीढ़ी ने इसे भी दूर किया। हमारे पूर्वजों ने जिस व्यापक आर्थिक योजनाओं की रूप रेखा बनाई थी, आज की नई पीढ़ी ने उन योजनाओं के अनेक तत्वों को एक साथ जोड़ा। इसने इसमें निहित अस्पष्टता और असंदिग्धता को भी दूर किया। इसने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए किए गए भारत के संघर्ष को साम्राज्यवाद के विरुद्ध शोषितों और गरीबों के द्वारा किए गए विश्वव्यापी संघर्ष से जोड़ा। इसने भारतीय जनता को सम्पूर्ण विश्व में व्यापक स्तर पर हो रहे परिवर्तन के प्रति भी जागरूक बनाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन में नए स्तर के आर्थिक चिंतन में आए परिवर्तन की सराहना करने से पूर्व, हमें प्रथम विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न हुई वास्तविक स्थिति पर एक नज़र डालनी पड़ेगी।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद यह स्पष्ट हो गया कि भारत में आंतरिक रूप से ब्रिटिश शासन के सुधार की कोई संभावना नहीं है ताकि औद्योगिकीकृत आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्माण किया जा सके एवं शोषित लोगों को ऊपर उठाने के लिए संगठनात्मक सुधारों का कार्यान्वयन किया जा सके। अब अधिक से अधिक लोग इस बिन्दु पर सहमत थे कि ब्रिटिश लोगों का मुख्य उद्देश्य भारत और इसकी अर्थव्यवस्था को अपने अधीन ही रखना था। इस स्थिति में, भारत के लिए किसी भी प्रकार की प्रगति करना असंभव था। अकाल, प्लेग, इनफ्लूएंजा और दूसरी महामारियों के कारण हजारों लोग मौत के मुँह में जा रहे थे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि सरकार पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। हमें स्वामी विवेकानन्द, तिलक, नौरोजी और दूसरों के प्रयासों

को धन्यवाद देना चाहिए, जिसके कारण लोग धीरे-धीरे अधिक आत्म विश्वासी बन गए। विवेकानन्द के संदेश के अनुसार, ''भारत की एकमात्र आशा यहां की जनता में निहित है। उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक रूप में मृत है।'' इस संदेश ने युवाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया। धीरे-धीरे, यह महसूस किया जाने लगा कि जनता की सहभागिता के बिना कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन प्रभावशाली नहीं हो सकते थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ ही लोग धीरे-धीरे पश्चिम में हो रहे विकास के सम्पर्क में आए तथा प्रजातंत्र, राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता जैसे विचारों ने उन्हें आकर्षित करना और प्रभावित करना आरंभ कर दिया। लोगों के अन्दर भारत को एक सुदृढ़, स्वतंत्र और औद्योगिकीकृत अर्थव्यवस्था बनाने की एक तीव्र इच्छा ने अपनी जड़ें जमा लीं।

एशिया के एक छोटे जापान जैसे देश के एक आधुनिक अर्थव्यवस्था के रूप में उदय ने लोगों को झकझोर दिया और प्रेरित किया। 1896 में इथियोपिया के द्वारा इटली की सेना के पराजय और 1905 में रूस के जार की हार ने यह स्वीकार कराया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी अपराजेय नहीं है और यूरोपियन वर्चस्व मात्र एक मिथक है। तिलक के ''केसरी'' ने दिसम्बर 6, 1904 को लिखा,

''वह ऐसा समय ही था कि एशियावासियों के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था, इसलिए, वे अपने व्यक्तिगत उत्साह और वीरता के बावजूद यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष अपने स्व की रक्षा करने में असमर्थ थे। यह भी विश्वास किया जाता था कि विधाता ने एशिया, अफ्रीका और अमेरिका जैसे महाद्वीपों की रचना ही इसलिए की थी कि यूरोपीय राष्ट्र इन्हें अपने नियंत्रण में रख सकें. ..रूस-जापान के युद्ध से इस प्रकार के विश्वास को एक करारा झटका लगा और इन विचारों के माननेवाले अब यह देखने लगे कि एशियावासियों के लिए स्वयं को एक आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने और अपने यूरोपीय प्रतियोगियों के स्तर तक स्वयं को ले जाने के लिए कुछ भी असंभाव्य नहीं है।''[3]

''द कराँची क्रोनिकल'' ने 18 जून, 1905 को इस विषय में अत्यन्त ही स्पष्टता के साथ अपनी टिप्पणी करते हुए कहा,

''एशियावासियों ने जो कुछ किया, दूसरे कर सकते हैं...यदि जापान रूस को प्रताड़ित कर सकता है, तो भारत भी उसी समान स्तर पर इंग्लैंड को प्रताड़ित कर सकता है...हम ब्रिटिश लोगों को समुद्र में तैरने के लिए छोड़ दें और स्वयं विश्व की महान शक्तियों में से एक जापान के साथ किनारे पर रहें।''[4]

1905 की रूस क्रांति ने महात्मा गांधी जैसे भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकर्षित किया, जो उस समय दक्षिण अफ्रिका में थे और उन्होंने वहीं से इस क्रांति पर अनेक टिप्पणियाँ कीं। उन्होंने लिखा, ''राज्य के कार्यों के संचालन में हमारा कोई योगदान नहीं है और हम बिना किसी आपत्ति के कर देते हैं, यही स्थिति रूस के निवासियों की भी है। इस प्रकार के शोषण को देखते हुए, रूस के निवासी समय-समय पर वीरतापूर्वक इसके विरुद्ध भी खड़े हुए हैं। कुछ समय पूर्व भी रूस में एक विद्रोह हुआ था।''[5] उन्होंने इससे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न किया और भारत के वॉयसराय की तुलना ज़ार से करते हुए यह घोषणा कि,

''हम लोग भी उसी शक्ति और वीरता का प्रदर्शन कर सकते हैं जैसा रूस की जनता ने किया है।''[6]

1906 में कलकत्ता में हुए कांग्रेस के अधिवेशन को दादा भाई नौरोजी ने अध्यक्ष के पद से संबोधित करते हुए रूस की प्रथम क्रांति एवं चीन, जापान में हुई घटनाओं का उल्लेख करते हुए कहा,

''यदि पूर्व में चीन, एशिया के पश्चिम में फारस जैसे देश जग रहे हैं, जापान पहले से ही जग चुका है और रूस अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहा है - और इनमें से सभी तानाशाह हैं, तो क्या ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के स्वतंत्र नागरिक इस तानाशाही के अर्न्तगत रह सकते हैं - वे लोग जो इस विश्व में सभ्यता के जनक हैं?''[7]

तिलक और उनके सहयोगियों ने अत्यन्त ही उत्सुकतापूर्वक रूस के क्रांतिकारियों की विधियों का अध्ययन किया एवं इस संभावना को खोजने का प्रयत्न किया कि ये विधियां भारत में लागू की जा सकती हैं या नहीं। वह इस बिन्दु पर सहमत थे कि इन विधियों को भारत में लागू किए जाने की आवश्यकता है, हालांकि इन दोनों देशों की परिस्थितियां पूर्ण रूप से समान नहीं थीं। ''भारत की मिट्टी चाहे कितनी भी गरीब क्यों न हो, यह तो निश्चित है कि शोषण और दमन के वृक्षों में भारत में भी वे ही फल लगेंगे, जैसे कि रूस में लगे हैं।''[8]

अक्टूबर क्रांति के पश्चात् अनेक भारतीय क्रांतिकारी जैसे मैडम कामा, वीरेन्द्र नाथ चट्टोपध्याय, श्यामजी कृष्ण वर्मा, रानोजी राव, राजा महेन्द्र प्रताप, बरकतुल्ला और अन्य लोगों ने रूस के क्रांतिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया और इनमें से कुछ ने लेनिन से

मुलाकात भी की। लाला लाजपत राय का यह विश्वास था कि, ''उत्तर पश्चिम में प्रजातांत्रिक चीन और सुदूर उत्तर में बोल्शेविक रूस के साथ ही भारत पर भी तानाशाही रूप से शासन स्थापित करना अत्यन्त ही मूर्खतापूर्ण होगा। यहां तक कि भगवान भी ऐसा नहीं कर सकता है।''[9]

यहाँ इसका उल्लेख अवश्य ही किया जाना चाहिए कि अक्टूबर क्रांति और समाजवादी शासन के बारे में सूचनाओं के अभाव ने अनेक राष्ट्रवादी नेताओं के दिमाग में कुछ संदेह उत्पन्न कर दिया था। उदाहरणस्वरूप - चित्तरंजन दास ने 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन में यह कहा कि,

''रूस में हुई तत्कालीन क्रांति का अध्ययन ही रूचिकर है। इस क्रांति ने अब जो रूप धारणा किया है, वह मुख्यत: रूस की अनैच्छिक प्रतिभा से संबंधित मार्क्स के सिद्धांतों और हठधर्मिता की ताकतों के कारण ही हुआ। पुन: हिंसा यहां विफल हो जाएगी। यदि मैंने इस स्थिति का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया होता तो मैंने प्रतिक्रांति की आशा की होती। रूस की मिट्टी को अवश्य ही कार्ल मार्क्स के समाजवाद से स्वयं को स्वतंत्र कराने के लिए संघर्ष करना चाहिए। यह एक स्वतंत्र आन्दोलन साबित हो सकता है या ऐसा भी हो सकता है कि वर्तमान आन्दोलन में ही उस स्वतंत्रता की शक्तियाँ निहित हों। इस बीच, रूस का भाग्य, संतुलन प्राप्त करने का प्रयास करते हुए लड़खड़ा रहा है।''[10]

यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि, कुछ निश्चित परिस्थितियों में परिवर्तन हुए जिसने कांग्रेस के स्वरूप को प्रभावित किया। प्रभावशाली नेता के रूप में महात्मा गांधी के अभ्युदय ने इसे जनता की पार्टी के रूप में परिवर्तित कर दिया, अब यह केवल विशेष रूप से शहरी संभ्रांत वर्ग की पार्टी ही थी। गांधीजी ने औपनिवेशिक आधिपत्य को दूर करने तथा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पुर्नजागरण के लिए इसे एक जुझारू संगठन बना दिया। उन्होंने रचनात्मक योजनाओं जैसे खादी और ग्रामीण उद्योगों पर विशेष रूप से बल दिया, जिसके कारण कांग्रेस के आर्थिक चिंतन को एक नई दिशा प्राप्त हुई। कांग्रेस ने विशेष रूप से कृषि की समस्याओं के बारे में सोचना आरंभ कर दिया। कांग्रेस के नेताओं ने अनेक स्तरों पर उनके असंतोष और विद्रोह में स्वयं हिस्सा लिया। महात्मा गांधी भी स्वयं बिहार और गुजरात में किसानों के आन्दोलन में सक्रिय थे।

औद्योगिक श्रमिकों की प्रथम संगठित राष्ट्रीय इकाई का जन्म 31 अक्टूबर, 1920 में हुआ। लाला लाजपत राय ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता की जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू, सरदार पटेल और एनी बेसेंट जैसे लोग भी उपस्थित थे। इस प्रकार, औद्योगिक श्रमिकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में लाया गया और उनकी समस्याओं और उनके चिन्तन को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की योजनाओं और विचार विमर्श में स्थान प्राप्त हुआ।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, रौलेट अधिनियम के विरुद्ध किया गया विद्रोह, जालियावाला बाग का नरसंहार, खिलाफत और असहयोग आन्दोलन ने कांग्रेस और स्वतंत्रता आन्दोलन को नई ऊँचाइयों तक पहुंचाया। अनेक राष्ट्रीय स्कूलों और राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों जैसे काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई, वहां अध्ययन और परीक्षा का माध्यम भारतीय भाषा थी। इन विश्वविद्यालयों की स्थापना और गांधीजी की रचनात्मक योजना ने न केवल कांग्रेस का संदेश जनता तक पहुंचाया, बल्कि असंख्य समर्पित कार्यकत्ताओं को भी उत्पन्न किया। अब कांग्रेस और जनता एक दूसरे से भली-भांति परिचित हो गई।

इसी समय, कार्यकत्ताओं और नेताओं की एक नई पीढ़ी ने कांग्रेस में प्रवेश किया। हालांकि, इन लोगों ने गांधीजी को अपने सर्वश्रेष्ठ नेता के रूप में स्वीकार कर लिया था, परन्तु वास्तव में इनके नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ही थे, जिन्होंने न केवल कांग्रेस के चिंतन का विस्तार करने में इसकी मदद की, बल्कि आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने से जुड़ी दुविधा को भी दूर किया। नेहरू ने औपनिवेशिक देशों की आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए और साम्राज्यवाद के विरुद्ध किए जा रहे विश्वव्यापी संघर्ष को कांग्रेस और स्वतंत्रता आन्दोलन से जोड़ा। उन्होंने समाजवाद, राजनीतिक प्रजातंत्र और योजना जैसे विचारों को जन्म दिया, तथा इन्हें कांग्रेस द्वारा की जा रही स्वदेशी और स्वराज की मांग से जोड़ा। उन्होंने कांग्रेस के भ्रम को भी दूर करने में अपना योगदान दिया।

एक व्यापक, मौलिक और एकीकृत आर्थिक योजना का विकास करने और इसे सुदृढ़ बनाने का श्रेय उन्हें ही जाता है। उन्होंने अपने समकालीनों से आगे बढ़कर भविष्य की ओर देखा।

नेहरू का कांग्रेस से जुड़ाव 1912 में आरंभ हुआ, जब वह इंग्लैंड में अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद भारत वापस आए। वह बांकीपुर (पटना) कांग्रेस में सम्मिलत हुए, जिसकी अध्यक्षता गोखले ने की थी। हालांकि, वह गोखले की सच्चाई, कर्मठता और ईमानदारी से प्रभावित थे, परन्तु कांग्रेस उन्हें किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर सकी क्योंकि, ''यह अंग्रेजी भाषा जाननेवाले संभ्रांत वर्ग के लोगों का समूह था, जहाँ कोट और पैंट पहने लोग ही दिखते थे। वास्तव में, यह एक सामाजिक संगठन था जिसमें रंच मात्र भी राजनीतिक उत्तेजना या तनाव नहीं था।''[11]

आरंभ से ही, नेहरू के ये विचार थे कि भारत की गरीबी, दुर्दशा, शोषण, सांस्कृतिक और बौद्धिक पतन के लिए ब्रिटिश शासन ही उत्तरदायी है और यहां के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में आत्म विश्वास नहीं है। वह कांग्रेस के नेताओं की गतिविधियों से अत्यन्त ही असंतुष्ट थे।[12] ''ये सभी लोग दूसरी ही दुनियां में रहते हैं तथा यह आम जनता और निम्न मध्य वर्ग से कटे हुए हैं।

इस प्रकार, जब गांधीजी ने आम जनता को कांग्रेस की राजनीति और राष्ट्रीय आन्दोलन में एक निर्धारक कारक के रूप में सम्मिलत किया, तब नेहरू उनकी तरफ आकर्षित हुए, हालांकि नेहरू और गांधीजी के बीच कई अवसरों पर मतभेद हुए थे। गांधीजी के सम्पर्क में आने से पहले ही नेहरू ने राजनीति में रूचि लेना आरंभ कर दिया था और अपने लिए उपयुक्त स्थान खोज रहे थे। नरमपंथियों ने अपनी कायरता और गम्भीरता के कारण उनमें नफरत पैदा किया। उन्होंने उच्च मध्यम वर्ग कर प्रतिनिधित्व किया।

उस समय नेहरू एक विशुद्ध राष्ट्रवादी थे, हालांकि ''उनके द्वारा किया अध्ययन उनके मस्तिष्क में समाजवादी विचारों के अंगारों को पुनः भड़का रहा था'' परन्तु ''यह अस्पष्ट विचार मगर अपेक्षाकृत अधिक मानवीय और काल्पनिक थे।''[13]

आरंभ में, उन्होंने स्वयं ही यह स्वीकार किया था कि ''मेरी राजनीति मेरे वर्ग के, बुर्जुआ लोगों की है।''[14] ''औद्योगिक श्रमिक राष्ट्रीय रूप से एकीकृत एवं संगठित नहीं थे तथा राष्ट्रीय राजनीति पर उनका अत्यन्त कम प्रभाव था। ''किसान अंधे, गारीबी के मारे और शोषित थे, जो अपने दयनीय भाग्य पर आश्रित थे तथा जिनके भी सम्पर्क में आए, सबने उनका शोषण किया। जैसे - सरकार, भूपति, उधार देनेवाले साहूकार, अधिकारी, पुलिस, वकील, पुजारी इत्यादि।''[15]

कुल मिलाकार समाचार पत्र भी लोगों की समस्याओं से जुड़े नहीं थे। ये समाचार पत्र भी हमेशा पूंजीपतियों, भूपतियों, राजाओं और ब्रिटिश लोगों के हित में ही अपनी आवाज उठाते थे। इनमें से कुछ जो राष्ट्र के हितों का समर्थन करते थे, वे हमेशा भय में जीते थे और उन्हें निरंतर आतंकित किया जाता था।

स्थिति अत्यन्त ही निराशाजनक थी, परन्तु तीन चीजों ने जवाहर लाल नेहरू को बचाया और उन्हें उत्साहित किया। वह स्वयं गांधीजी के सम्पर्क में आए, अवध में किसान आन्दोलन में सम्मिलत हुए तथा सोवियत यूनियन में हुई घटनाओं ने उन्हें प्रभावित किया।

संदर्भ:

1. आर. पी. मसानी, ''दादाभाई नौरोजी : द ग्रैंड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया'', लंदन, 1939, पृ. 441.
2. विपिन चंद्र, उद्धृत, पृ. 758.
3. विपिन चंद्र, ''आधुनिक भारत'', नई दिल्ली, 1971, पृ. 238.
4. पूर्वोद्धृत।
5. ''कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी'', खंड 5, नई दिल्ली, 1961, पृ. 5.
6. वही, पृ. 131-132.
7. शंकर घोष, पूर्वोद्धृत, पृ. 62.

8. ''केसरी'', अगस्त 13, 1907.
9. फिरोज चंद, ''लाजपत राय - जीवन और कार्य, नई दिल्ली'', 1978, पृ. 311.
10. शंकर घोष, पूर्वोद्धृत, पृ. 121.
11. जवाहरलाल नहेरू, एक आत्मकथा, नई दिल्ली, 1962, पृ. 27.
12. पूर्वोद्धृत, पृ. 29.
13. पूर्वोद्धृत, पृ. 35.
14. पूर्वोद्धृत, पृ. 48.
15. पूर्वोद्धृत,

मगध साम्राज्य का उत्थान एवं उस काल की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

इंदु शेखर नारायण सिंह

उपाचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, डी.बी.के.एन. कॉलेज, नरहन स्टेट ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

छठी शताब्दी ई.पू. के प्रारंभ में मगध पटना तथा गया के निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित था। इसके उत्तर तथा पश्चिम में क्रमशः सोन तथा गंगा नदियाँ थीं। इसकी राजधानी राजगृह पाँच पहाड़ियों से घिरा अभेद्य शहर था। पांचवी शताब्दी ई.पू. के आस-पास राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर दी गयी। मगध के चारों ओर सुरक्षा के पर्याप्त साधन उपलब्ध थे। अर्थात् सामरिक दृष्टि से मगध की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी।

हयंक वंश

इस वंश का संस्थापक बिम्बिसार था। बिम्बिसार को अश्वघोष ने हर्यंक कुल का बताया है। मगध के पड़ोसी राज्य अवंति, कौशल, वत्स, वज्जि आदि थे, जिनके साथ बिम्बिसार ने मैत्री संबंध बनाये रखने का प्रयास किया। उसने अनेक राज्यों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये। उसकी पटरानी कोशल देवी कौशल नरेश महाकोशल की पुत्री एवं प्रसेनजीत की बहन थी। उसने लिच्छवी राजा चेटक की सातवीं पुत्री चेलना से भी विवाह किया।

उसकी तीसरी रानी खेमा पंजाब क्षेत्र में स्थित शाकल राजा की पुत्री थी। बिम्बिसार ने शक्तिशाली राष्ट्रों से संघर्ष करना उचित नहीं समझा, बल्कि उनसे कूटनीतिक संबंध स्थापित किये। बिम्बिसार साम्राज्य विस्तार का समर्थक था। अंग पर आक्रमण कर उसने उसे अपने प्रांत में मिला लिया। बिम्बिसार का साम्राज्य उत्तर में गंगा के उत्तरी भाग, दक्षिण में छोटानागपुर, पूर्व में अंग तथा पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत था। महावंश में बिम्बिसार द्वारा 52 वर्ष शासन करने का विवेचन मिलता है जबकि पुराणों में उसका कार्यकाल 28 वर्ष कहा गया है।

बिम्बिसार के बाद अजातशत्रु शासक बना। माना जाता है कि उसने अपने पिता का वध कर सत्ता संभाली। वज्जिसंघ एक शक्तिशाली गणराज्य था जो अजातशत्रु के लिए परेशानी का कारण था। मगध ने इस संघ के उन्मूलन का निश्चय किया। अजातशत्रु ने वैशाली पर आक्रमण कर वैशाली एवं काशी का कुछ भाग मगध में सम्मिलित कर लिया। मगध साम्राज्य उत्तर में गंगा घाटी तक विस्तृत हो गया। अजातशत्रु के बाद उदायिन शासक बना। जिसका उत्तराधिकारी नंदीवर्मन और उसका उत्तराधिकारी शिशुनाग था, जिसने शिशुनाग वंश की स्थापना की। उसने वैशाली को अपनी दूसरी राजधानी बनायी।

नंद वंश

मगध साम्राज्य में नंदवंश के आविर्भाव् के साथ पहली बार गांगेय प्रदेश के अतिरिक्त दक्षिण भारत के विस्तृत भू-भाग को सम्मिलित किया जा सका और सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोने की दृष्टि से भारतीय साम्राज्य की स्थापना की संभावना दृष्टिगोचर होने लगी। मगध साम्राज्य को गंगा की उपत्यका से बाहर दक्षिण की ओर बढ़ाने का श्रेय नंद वंश को प्राप्त हुआ। शिशुनाग वंश को समाप्त कर मगध में नंद वंश ने सत्ता स्थापित की। पुराणों के अनुसार महापद्म नंद वंश का प्रथम शासक था। महापद्म

नंद बिम्बिसार एवं अजातशत्रु की भांति घोर साम्राज्यवादी शासक था। पुराणों में नंद वंश के संस्थापक को सर्वक्षत्रान्तक एवं एकराट कहा गया। उसके पास एक विशाल सेना थी उसने कई लड़ाइयाँ लड़ी एवं विजय प्राप्त की। महापद्म के उत्तराधिकारी आठ पुत्र कहे गये हैं जिन्होंने संभवत: एक साथ शासन किया था। 323 ई.पू. चन्द्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश का नाश कर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की।

राजनीतिक अवस्था और प्रशासन

बुद्धकाल से पूर्व की शताब्दी राजनीतिक अंतर्विरोधों का युग रही थी। जब जनजातीय संगठन का एक नयी राजनीतिक संस्था राजतंत्र से संघर्ष हुआ। किसी विशेष क्षेत्र में स्थायी रूप से बस जाने से किसी जन अथवा जनों के समूह को एक भौगोलिक अभिज्ञता मिल गयी और बाद में उस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करके इस अभिज्ञता को ठोस रूप दिया गया। इस अधिकार को बनाये रखने के लिए या तो प्रजातंत्र के रूप में या राजतंत्र के रूप में एक राजनीतिक संस्था आवश्यक थी। इस काल में राजत्व के सिद्धांत में भी बहुत से परिवर्तन हुये। इस काल में जनपद का स्थान महाजनपद ले रहा था तथा राज्य के अंतर्गत बहुत-सी गैर आर्य जनजातियाँ भी शामिल हो रही थीं।

कर का भुगतान करने वाले अब नये आर्थिक समूहों का निर्माण हो रहा था। अत: करारोपण प्रणाली नियमित हो गयी एवं बलि, शुल्क और भाग नामक कर पूरी तरह स्थापित हो गये। इसके साथ राजा की शक्ति में वृद्धि हुयी, क्योंकि स्थायी सेना एवं रक्त संबंध से पृथक् नौकरशाही की स्थापना हुई। इस काल में सर्वप्रथम स्थायी सेना का गठन हुआ। इसके प्रमाण हैं कि बिंबिसार अपने को क्षत्रीय बिंबिसार कहता है जिसका अर्थ है सेना का बिम्बिसार।

कोशल का शासक उसी तरह अपने को अधिकारमदमर्त्त कहता था। राजा की शक्ति में वृद्धि हुयी और उसे 'ब्राह्मण और सेठी' को भूमि अनुदान देने में समुदाय की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं थी। रक्त संबंध से पृथक् नौकरशाही स्थापित हुई। पुरोहित वर्ग से अधिकतर अधिकारी चुने जाते थे। नये अधिकारियों में आयुक्त एवं महामन्त की चर्चा मिलती है। उत्तर वैदिक काल में हम करारोपण से जुड़े 'भागदुध' नामक अधिकारी की चर्चा सुनते थे। किंतु इस युग में करारोपण से जुड़े आधे दर्जन अधिकारियों की चर्चा सुनते हैं।

बलिसाधक: यह बलि वसूल करने वाला अधिकारी था।

शौल्किक: यह शुल्काध्यक्ष था, जिसका कार्य शुल्क वसूलना था।

रज्जुग्राहक: यह भूमि की माप करने वाला अधिकारी था।

द्रोणमापक: यह अनाज के तौल का निरीक्षण करने वाला अधिकारी था। जातक कथाओं में हमें कुछ दमनात्मक कार्यवाही की चर्चा भी मिलती है। दो अधिकारी तुन्दिया एवं अकाशिया बलपूर्वक कर की वसूली करते थे।

इसी के साथ सभा एवं समिति जैसी आदिम संस्थाओं का अंत हो गया और उनका स्थान परिषद् ने ले लिया। राजकीय मुहर का प्रथम प्रयोग इसी युग में आरंभ हुआ। इसी तरह राजकीय दस्तावेज की परंपरा भी यहीं से शुरू हुई। 'अक्षपटलाधिकृत' नामक अधिकारी की नियुक्ति हुई।

कौटिल्य राज्य के लोक कल्याणकारी रूप पर बल देता है। कानून एवं अदालत का प्रथम विकास इसी युग में हुआ। प्रशासन में लेखन कला के विकास के साथ दक्षता आयी। जाति विभाजित समाज में पुराने समतावादी कानून बाधक सिद्ध हो रहे थे। अत: कबिलायी कानून का स्थान जाति कानूनों ने ले लिया। प्रशासन की छोटी इकाई के रूप में कुल के स्थान पर ग्राम स्थापित हुआ। ग्राम और उससे ऊपर की इकाइयों की चर्चा समकालीन ग्रंथों में की गयी है। ये इकाइयाँ इस प्रकार हैं–

1. ग्राम
2. खर्वटक–200 ग्रामों का संघ
3. द्रोणमुख–400 ग्रामों का संघ
4. पतन–व्यापार या खानों का केंद्र

5. मंतभ–दस हजार ग्रामों और दुर्गों का संघ
6. नगर
7. निगम–व्यापारियों की बस्ती।
8. राजधानी

इस युग में प्रथम बार निवास की भूमि और कृषि की भूमि अलग-अलग हुई। राजा की शक्ति में विकास के परिणामस्वरूप राजस्व से संबंधित दो अवधारणाएँ विकसित हुईं। इस युग में राजतंत्र के अतिरिक्त गणतंत्र भी थे, इन्हें हम गण या संघ के नाम से जानते हैं। गणतंत्र में वास्तविक सत्ता कबिलायी अल्पतंत्र में निहित थी। शासक वर्ग शाक्यों एवं लिच्छवी के गणराज्यों में एक ही गोत्र एवं एक ही वर्ण के होते थे।

वैशाली के लिच्छवियों की सभा में 7707 सदस्य थे जो राजा कहलाते थे। इन सदस्यों में ब्राह्मणों को शामिल नहीं किया गया था। जैसे–मौर्योत्तर काल में मालवों एवं श्रूद्रकों के गणराज्य में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को नागरिकाता प्राप्त थी, किंतु दासों एवं शूद्रों को नहीं। इसी तरह पंजाब में व्यास नदी के आस-पास एक ऐसा गणतंत्र था, जिसके सभागार में ऐसे ही लोग सदस्य हो सकते थे जो कम-से-कम एक हाथी दे सकते थे। शाक्यों एवं लिच्छवियों का प्रशासन तंत्र सरल था, इसमें राजा, उपराजा, सेनापति एवं भांडागारिक (राजकोषाध्यक्ष) शामिल होते थे।

ग्रीक लेखकों के अनुसार उ.प. के एक राज्य, 'पातल' में एक विशिष्ट प्रकार की व्यवस्था थी। इसमें युद्ध के समय दो वंशानुगत राजा मिलकर शासन करते थे और शांति के समय शासन का संचालन वृद्ध जनों की एक परिषद् द्वारा होता था। उसी तरह 'सौभूति' एवं 'अम्बष्ठ' के गणतंत्र में बच्चों के लालन-पालन का अधिभार राज्य अपने हाथ में लेता था, ताकि बच्चे स्वस्थ पैदा हो सकें। 'मूषिकवंश' एक ऐसा राज्य था, जहाँ दास नहीं पाये जाते थे। इस युग में भी राजा अपनी वैधानिक स्थिति मजबूत करने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ करते थे।

अर्थव्यवस्था

उत्तर-पश्चिमी भारत और पश्चिमी एशिया के बीच व्यापार की संभावनाओं ने इस युग में नगर के विकास को बहुत प्रोत्साहन दिया। 700 ई॰ पू॰ के आस-पास उत्तर प्रदेश एवं बिहार की जनता की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये। पाणिनि की अष्टाध्यायी और सुतनिपात के अनुसार खेत की दो या तीन बार जुतायी होती थी। कृषि उत्पादन में धान की रोपायी और लोहे के उपकरणों के ज्ञान ने क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। चावल उत्पादक मध्य गंगा घाटी में गेहूँ उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी की तुलना में अधिक उत्पादन होता था।

उत्पादन अधिशेष से जनसंख्या वृद्धि संभव हुई। इसके अतिरिक्त उत्पादन में यज्ञ पर खर्च करने की प्रवृत्ति कम हो गयी। सांख्यायन गृहसूत्र में बैल द्वारा खेती करने, हल चलाने एवं मंत्रों के साथ समस्त कृषि प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का उल्लेख है। पाणिनि के समय खेतों का सर्वेक्षण करने वाले अधिकारी को 'क्षेत्रकार' कहा जाता था।

बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार छः निवर्तन भूमि की उपज से एक परिवार का भरण-पोषण होता था। अतः इससे ज्ञात होता है कि भूमि-माप की इकाई निवर्तन कहलाती थी और एक निवर्तन भूमि डेढ़ एकड़ के बराबर होती थी। सूत्रग्रंथों में दो प्रकार के जौ-(यव और यवानी) तथा पाँच प्रकार के चावल (कृष्ण ब्रिही, महाब्रिही, हायन, यवक और पष्टिक) का उल्लेख है। ईख की खेती की चर्चा बौद्ध ग्रंथों में की गयी है। प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य में शलिल (चावल) की 4 किस्मों की चर्चा की गयी (रक्त शलि, कालम शलि, गंधशलि, महाशलि) है।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में खेतपति, खेतस्वामी या वथूपति की चर्चा की गयी है। इसका अर्थ है कि–भूमि के अलग-अलग स्वामी होते थे। इससे यह संकेत मिलता है, भू-व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना विकसित हो चुकी थी। कृषि में भी बड़े-बड़े फार्मों का विकास हुआ। माना जाता है कि 500 हलों से खेती की जाती थी। अब बौद्धग्रंथों के अनुसार कृषि में दासों, कर्मकारों एवं पस्सों को लगाया जाता था। वैदिक युग में याजक (यज्ञ करने वाला) और पशुचारक थे, किंतु छठी सदी ई.पू. में वे पहली बार विशाल

पितृसत्तात्मक परिवार का मुखिया बन गये। उन्हें धन के कारण संमान प्राप्त हुआ। राज्य की सेना को गृहपति मेंडक वेतन देता था और बुद्ध संघ की सेवा के लिए उसने 1250 गौ सेवकों को नियुक्त किया था। उसी तरह अनाथपिंडक संपंन गृहपति था।

इन काल में राजगृह में 18 प्रकार के शिल्पों की चर्चा की गयी है। शिल्पों का न केवल विशिष्टीकरण हुआ, बल्कि शिल्पों का क्षेत्रीयकरण भी हुआ। कुंभकार की 500 दुकानें वैशाली के सदलपुत्त में थीं। जुलाहों की भी अलग-अलग बस्तियाँ थीं। जुलाहों का वार्ड तंतुवायधान कहलाता था। हाथी दाँत का काम करने वाले 'दंतकारवीथि' कहलाते थे। रंगरेजों का कार्य करने वाले 'रंगरेजकार विथि' कहलाते थे।

यह काल NBPW चरण से जुड़ा हुआ था। इसी काल में 300 ई॰ पूर्व॰ ठण्ब्ण के आस-पास घेरेदार कुये एवं पक्के ईंटों का प्रयोग होने लगा। 500 ई॰ पूर्व॰ के आस-पास धातु के आहत सिक्के का प्रारंभ हुआ। आरंभ में आहत सिक्के चांदी के बनाये जाते थे, किंतु तांबे के भी होते थे। पंचमार्क सिक्के में धातु के टुकड़ों पर हाथी, मछली, सांड, अर्द्धचंद्र की आकृतियाँ बनायी जाती थीं। विशेष रूप से ये पूर्वी उत्तर प्रदेश, मगध और तक्षशिला में पाये गये हैं। कुछ अन्य सिक्कों की भी चर्चा हुयी है, यथा- कर्षापण, पाद, माशक, काकणिक, सुर्वण (निष्क)। बिबिंसार और अजातशत्रु के काल में राजगृह में पाँच मास, एक पाद के बराबर होता था।

पाणिनि के काल में निम्नलिखित सिक्के चलते थे—निष्क, पण, पाद, मास, शान (तांबे का सिक्का)। श्रेणियों के पदाधिकारियों को चौधरी (प्रमुख) और जेठक (ज्येष्ठक) और भा।डागारिक कहा जाता था। बिना श्रेणियों के संगठित उद्योगों का संचालन ज्येष्ठक करते थे। व्यापार-प्रमुख या मुखिया 'महासेठी' कहलाता था। कारवाँ (व्यापारियों का काफिला), सितारों और कौये की सहायता से 'थलनिय्याम' के नेतृत्व में चलता था। बुद्ध काल में आर्थिक संघों को अत्यधिक स्वायत्तता प्राप्त थी। वे वस्तुओं के मूल्य निश्चित करते थे।

निजी सदस्यों पर गहरी पकड़ थी और इसके लिए उन्हें राज्य की ओर से भी मान्यता प्रदान की गयी थी। वे भ्रष्ट सदस्यों का निष्कासन कर सकते थे। किसी भी स्त्री को बौद्ध संघ की सदस्यता के लिए अपने पति के अतिरिक्त पति के संघ की अनुमति भी लेनी पड़ती थी।

प्रारंभिक धर्मसूत्रों में ऋणों पर ब्याज 1¼ प्रतिशत प्रतिमास (15 प्रतिशत वार्षिक) था। वाणिज्य व्यापार विकसित अवस्था में थी। एक मार्ग ताम्रलिप्ति से पाटलिपुत्र एवं श्रावस्ती के माध्यम से उज्जैन होते हुये भड़ौंच से जुड़ता था। दूसरा मार्ग मथुरा—राजस्थान—तक्षशिला से जुड़ा था। व्यापार की वृद्धि के लिए पांडय सिद्धि संस्कार किया जाता था। इसमें सोम की पूजा की जाती थी।

बुद्धकाल को द्वितीय नगरीकरण का काल भी कहा जाता है। प्रथम नगरीकरण सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान हुआ था। तैत्तिरीय आरन्यक में पहली बार नगर की चर्चा की गयी है। उस काल में कुल 60 नगर थे, जिनमें श्रावस्ती जैसे 20 नगर थे। बुद्ध काल में 6 बड़े नगर या महानगर थे—यथा राजगृह, चंपा, काशी, श्रावस्ती, साकेत तथा कौशांबी। इस तरह आर्थिक जीवन के बदलते हुये रूप इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

समाज

इस काल में ब्राह्मणों के वर्चस्व को क्षत्रियों से चुनौती मिली। आश्चर्य नहीं कि दोनों धार्मिक क्रांतियों के अग्रेता क्षत्रिय थे। हमें ब्राह्मण साहित्यों से इस काल की सामाजिक जानकारी मिलती है। उपनिषदों के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का एक बड़ा भागसूत्र के रूप में लिखा गया। सूत्र साहित्य की रचना बौद्धधर्म के प्रचार का मुकाबला करने के लिए हुयी थी। कल्पसूत्र का सूत्रसाहित्य में विशेष महत्व है। कल्पसूत्र तीन भागों में विभाजित है-स्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। आगे सूत्रों की ही भाँति स्मृतियों में भी सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था का प्रतिपादन हुआ। फिर भी दोनों में अंतर है। गद्य और पद्य दोनों में सूत्रसाहित्य है, जबकि स्मृति साहित्य केवल पद्य में है। सूत्र और स्मृति साहित्य मिलकर शास्त्र कहे जाते हैं। गौतमधर्मसूत्र सबसे प्राचीन माना जाता है। प्रारंभ में गौतम, बौधायन, वशिष्ठ एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र लिखे गये।

गौतम एवं वशिष्ठ उत्तर भारत के हैं, जबकि बौधायन एवं अपास्तम्ब दक्षिण भारत के। कतिपय मुद्दों पर इन सूत्रकारों के बीच भी मतभेद हैं। उदाहरण के लिए गौतम एवं बौधायन आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा करता है, जबकि अपास्तम्ब सूत्र केवल छः प्रकार के विवाहों की चर्चा करता है। उसी तरह बौधायन उत्तराधिकार में बड़े पुत्र को एक बड़े अंग दिये जाने का हिमायत करता

है, जबकि आपस्तम्ब इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता है। इसी प्रकार गौतम ब्राह्मण को विशिष्ट स्थिति में ब्याज पर धन देने का अधिकार देता है अर्थात् अगर वह किसी मध्यस्थ के माध्यम से दिया जाये। फिर वह ब्राह्मण को कृषि एवं वाणिज्य व्यापार करने का अधिकार देता है। बौधायन दूसरी तरफ महत्वपूर्ण गतिविधि 'समुद्र-यात्रा' की निंदा करता है तथा उसे अधर्म करार देता है। इस काल में वर्ण व्यवस्था का जन्म हो गया। समाज का कबिलायी ढाँचा टूट गया था और सूत्र साहित्य के द्वारा जाति पर आधारित समाज को नियमबद्ध करने की कोशिश की गयी।समाज में यज्ञ की प्रतिष्ठा के साथ ब्राह्मणों का दर्जा सर्वश्रेष्ठ हो गया। महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मणों को 5 वर्गों में विभाजित किया है-

1. ब्रह्म समां (ब्रह्मा के समान)।
2. देव समां (देवताओं के समान)।
3. मर्यादा (जो अपने जातीय गौरव का पालन कर रहा हो)।
4. सभिन्न मर्यादा (जो अपनी जातीय मर्यादा से च्युत हो चुका है)।
5. ब्राह्मण चांडाल (वह ब्राह्मण, जो चा।डाल के समान हो)।

अन्य वर्णो का राजा शासक था, परंतु ब्राह्मण वर्ग का नहीं। ब्राह्मणों को किसी प्रकार का शारीरिक दंड नहीं दिया जाता था और वे कर से भी मुक्त होते थे। एक ही अपराध के लिए चारों वर्णों को अलग-अलग सजायें निर्धारित की गयी थीं। ब्राह्मणों को सबसे कम एवं शूद्रों को सबसे अधिक सजा मिलती थी। ब्याज की राशि भी उसी तरह अलग-अलग लगती थी। क्षत्रिय वर्ण की प्रतिष्ठा अब इसलिए बढ़ गयी थी, क्योंकि अब लोहे के उपकरण युद्धास्त्रों के रूप में प्रयुक्त होने लगे थे। कृषि उपकरण और उत्पादन में विकास से वैश्य वर्ण की आर्थिक क्षमता भी बढ़ गयी और बड़े-बड़े गृहपति अस्तित्व में आए।

गौतम ने शूद्र को अनार्य कहा है। पाणिनि ने शूद्रों को दो वर्गो में विभाजित किया है–(1) अनिर्वासित (अबहिष्कृत) तथा (2) निर्वासित (बहिष्कृत) ब्राह्मण शूद्रों का स्पर्श किया हुआ भोजन नहीं करते थे। शूद्रों के साथ द्विजों का भोजन और विवाह निषिद्ध था, किंतु ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है कि शूद्रों को इस काल में अंत्येष्टि में अग्नि में आहुति देने का अधिकार प्राप्त था। सांख्यायन स्रौतसूत्र के अनुसार शूद्र भी ओदन एवं महाव्रत नामक संस्कार में तीन अन्य वर्णों के साथ भाग ले सकता था। अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह के आधार पर जाति का निर्धारण सबसे पहले बौधायन ने किया। प्रारंभिक बौद्धग्रंथों में हीनसीप्प शब्द का निम्न जातियों के लिए प्रयोग हुआ है। इनमें प्रायः 5 हीन जातियों का उल्लेख हुआ है–चांडाल, निषाद, वेण, रथकार व पुक्कुस। बुद्ध और महावीर जन्म से जाति के समर्थक नहीं थे, बल्कि वे कर्म पर आधारित जाति व्यवस्था के पक्षपाती थे। जैनग्रंथ पन्नवणा में देश, जाति, कुल, कर्म, भाषा और शिल्प के आधार पर 5 प्रकार के आर्य बताये गये हैं। परिवार के मुखिया के अधिकारों में वृद्धि हुई। वह अपने पुत्र को संपति के अधिकार से वंचित कर सकता था। सूत्रसाहित्य में पिता के द्वारा पुत्र को दे देने या बेच देने का संकेत है।

पाणिनि ने अविवाहित कन्या के लिए 'कुमार' शब्द का प्रयोग किया है। जिस समय वह विवाह योग्य हो जाती थी, उस समय उसे 'वर्या' कहा जाता था। अपनी इच्छा से पति चुनने वाली कन्या को 'पतिव्रा' कहा जाता था। सामान्यतः स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आयी। दहेज व्यवस्था का प्रचलन प्रारंभ हुआ। स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन कर दी गयी। उत्तराधिकार में भी उनके साथ भेदभाव बरता जाने लगा। आपस्तम्ब ने उसी दशा में पुत्री को पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी माना है, जब उसका कोई सपिंड उत्तराधिकारी हो। पहली बार सती प्रथा का साहित्यिक साक्ष्य तब प्राप्त होता है, जब एक ग्रीक लेखक ने उत्तर -पश्चिम में इस प्रथा की चर्चा की तथा दूसरी बार महाभारत में पांडव की पत्नी माद्री के सहगमन की चर्चा में। इस काल में दास व्यवस्था प्रचलित थी। 'विनय पिटक' में तीन प्रकार के दासों की चर्चा की गयी है। 1. घर में दासी से उत्पन्न। 2. युद्ध में बंदी किया हुआ। 3. धन से खरीदा हुआ। दीघनिकाय में चौथे प्रकार के दास (स्वेच्छा से दास बनने) की चर्चा की गयी है। दासों को कृषि कार्य में लगाया जाता था।

संदर्भ

- Reginald Stephen Copleston: Buddhism : Primitive and Present in Magadha and in Ceylon, AES, 1994
- D.C. Ahir: Asoka the Great, B.R. Pub., 1995
- S.R. Bakshi, S. Gajrani and Hari Singh: Early Aryans to Swaraj, Sarup, 2005
- S.P. Nanda: History of Ancient India, Dominant Pub, 2010
- P.C. Pant and Vidula Jayaswal: Ancient Ceramics : Historical Enquiries and Scientific Approaches, Agam, 1997

मौर्यों के केंद्रीय शासन का संगठन

पुष्पा दासगुप्ता

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, तिलका मांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

मौर्य काल में शासन के विविध विभाग 'तीर्थ' कहलाते थे। इनकी संख्या अठारह होती थी। प्रत्येक तीर्थ एक महामात्य के अधीन रहता था। इन अठारह महामात्यों और उनके विविध कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी है–

1. मंत्री और पुरोहित: मंत्री तथा पुरोहित प्रधानमंत्री तथा प्रमुख धर्माधिकारी थे। ये दोनों अलग-अलग पद थे, पर संभवत: चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में आचार्य चाणक्य मंत्री और पुरोहित दोनों पदों पर विद्यमान थे। बाद में राधागुप्त जैसे प्रतापी अमात्य भी संभवत: मंत्री और पुरोहित दोनों पदों पर रहे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इन दोनों पदों का उल्लेख प्राय: साथ-साथ आया है। राजा इन्हीं के साथ मिलकर अन्य राजकर्मचारियों के शौचाशौच की परीक्षा लेता था, प्रजा की सम्मति जानने के लिए गुप्तचरों को नियत करता था, विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति और परराष्ट्र नीति का संचालन करता था। शिक्षा का कार्य भी इन्हीं के अधीन रहता था। राज्य के अन्य विभागों पर भी मंत्री और पुरोहित का निरीक्षण रहता था। राजा इन्हीं के परामर्श से अपने राज्यकार्य का संचालन करता था।
2. समाहर्ता: यह राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी था। विविध जनपदों के शासन के लिए नियुक्त राजपुरुषों को जहाँ समाहर्ता कहते थे, वहाँ सब जनपदों के शासन का संचालन करने वाला विभाग (तीर्थ) भी 'समाहर्ता' नामक अमात्य के अधीन था। इस विभाग का सर्वप्रधान कार्य राजकीय करों को एकत्र करना था।

   समाहर्ता के अधीन अनेक 'अध्यक्ष' होते थे, जो अपने-अपने विभाग के राजकीय करों को एकत्रित करते थे और व्यापार, व्यवसाय आदि का संचालन करते थे। ऐसे कुछ अध्यक्ष निम्नलिखित थे–

   (क) शुल्काध्यक्ष: इसका कार्य विविध प्रकार के व्यापार से संबंध रखने वाले अनेक प्रकार के शुल्कों (करों) को एकत्र करना था।

   (ख) पौतवाध्यक्ष: तौल और माप के परिमाणों पर नियंत्रण रखने वाले राजपुरुषों को पौतवाध्यक्ष कहते थे। इन परिमाणों को ठीक न रखने पर जुर्माना लिया जाता था।

   (ग) मानाध्यक्ष: देश और काल को मापने के विविध साधनों का नियंत्रण राज्य के अधीन था। यह कार्य मानाध्यक्ष के अधिकार में होता था।

   (घ) सूत्राध्यक्ष: राज्य की ओर से अनेक व्यवसाय चलाये जाते थे। विधवा, विकलांग मनुष्य, अनाथ लड़की, भिखारी, राज्य के कैदी, वेश्याओं की वृद्ध माताएँ, वृद्ध राजदासी, देवदासी आदि के पालन-पोषण के लिए राज्य की ओर से उन्हें काम दिया जाता था। इन कार्यों में सूत कातना, कवच बनाना, कपड़ा बुनना और रस्सी बनाना मुख्य थे। इन सब कार्यों पर सूत्राध्यक्ष का नियंत्रण रहता था।

   (ङ) सीताध्यक्ष: कृषि विभाग के अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहते थे। वह न केवल देश में कृषि की उन्नति पर ही ध्यान देता था, अपितु राजकीय भूमि पर दास, मजदूर आदि से खेती भी करवाता था।

   (च) सुराध्यक्ष: शराब का निर्माण तथा प्रयोग राज्य द्वारा नियंत्रित था। सुराध्यक्ष शराब बनवाता था, उसकी बिक्री का प्रबंध करता था तथा उसके प्रयोग पर नियंत्रण रखता था।

(छ) सूनाध्यक्षः इसका कार्य बूचड़खानों को नियंत्रण रखना था। बूचड़खानों के संबंध में अनेक प्रकार के नियम होते थे। अनेक प्रकार के पशुओं और पक्षियों की हत्या निषिद्ध थी। सूनाध्यक्ष न केवल देश के विविध बूचड़खानों को नियंत्रित करता था, अपितु राजकीय पशु-वधशालाओं का प्रबंध भी उसके हाथों में था।

(ज) गणिकाध्यक्षः मौर्यकाल में वेश्याओं का प्रयोग राजनीतिक दृष्टि से भी किया जाता था। संघ-प्रधान, समांत आदि को वश में लाने के लिए गणिकाएँ प्रयुक्त की जाती थीं। अतः बहुत-सी वेश्यायें राज्य की ओर से भी नियत होती थीं। राजा के स्नान, मर्दन, छत्रधारण, सेविका, पीठिका, रथ पर साथ चलने आदि के लिए भी राज्य की ओर से वेश्याओं को रखा जाता था। यह सब विभाग गणिकाध्यक्ष के अधीन था। स्वतंत्र वेश्याओं का संपूर्ण प्रबंध तथा निरीक्षण भी इसी विभाग के कार्य थे।

(झ) मुद्राध्यक्षः देश से बाहर जाने या देश में आने के लिए राजकीय मुद्रा प्राप्त करना आवश्यक होता था। यह कार्य मुद्राध्यक्ष के अधीन था।

(ञ) विवीताध्यक्षः गोचर भूमियों का प्रबंध इस विभाग का कार्य था। चोर तथा हिंसक जंतु चरागाहों को नुकसान न पहुंचाएं, यह प्रबंध करना; जहाँ पशुओं के पीने का जल न उपलब्ध हो, वहाँ उसका प्रबंध करना; तालाब तथा कुएँ बनवाना इसी विभाग के कार्य थे। जंगल की सड़कों को ठीक रखना, व्यापारियों के माल की रक्षा करना, काफिलों को डाकुओं से बचाना तथा शत्रुओं के हमलों की सूचना राजा को देना, यह सब कार्य विवीताध्यक्ष को सुपुर्द थे।

(ट) नावाध्यक्षः जलमार्गों का सब प्रबंध नावाध्यक्ष के अधीन था। छोटी-बड़ी नदियों, समुद्रतटों तथा महासमुद्रों को पार करने वाली नौकाओं और जहाजों का प्रबंध वही करता था। जलमार्ग से यात्रा करने पर क्या किराया लगे, यह सब नावाध्यक्ष द्वारा ही तय किया जाता था।

(ठ) गो-अध्यक्षः राजकीय आय तथा सैनिक दृष्टि से राज्य की ओर से गायों तथा अन्य उपयोगी पशुओं की उन्नति का विशेष प्रयत्न होता था। राज्य की ओर से बड़ी-बड़ी गोशालायें भी होती थीं। इन सबका प्रबंध गो-अध्यक्ष के अधीन था।

(ड) अश्वाध्यक्षः सैनिक दृष्टि से उस समय घोड़ों का बड़ा महत्व था। उनके पालन, नस्ल की उन्नति आदि पर राज्य की ओर से बहुत ध्यान दिया जाता था। घोड़ों को युद्ध के लिए तैयार करने के लिए अनेक प्रकार के अभ्यास या कवायद करायी जाती थी। ये सब कार्य अश्वाध्यक्ष के अधीन थे।

(ढ) हस्त्याध्यक्षः यह जंगलों से हाथियों को पकड़वाने, हस्तिवनों की रक्षा करने तथा हाथियों के पालन और सैनिक दृष्टि से उन्हें तैयार करने का कार्य करता था। इसी तरह ऊँट, खच्चर, भैंस, बकरी आदि के लिए भी पृथक् उप-विभाग थे।

(ण) कुप्याध्यक्षः कुप्य पदार्थों का अभिप्राय शाक, महुआ, तिल, शीशम, खैर, शिरीष, देवदार, कत्था, राल, औषधि आदि से है। ये सब पदार्थ जंगलों में पैदा होते हैं। कुप्याध्यक्ष का यह कार्य था, कि जंगलों में उत्पन्न होने वाले विविध पदार्थों को एकत्र कराके उन्हें कारखानों में भेज दे, ताकि वहाँ कच्चे माल को तैयार माल के रूप में परिवर्तित किया जा सके। कुप्याध्यक्ष के अधीन द्रव्यपाल और वनपाल नाम के कर्मचारी होते थे, जो जंगलों से कुप्य द्रव्यों को एकत्र कराने तथा जंगलों की रक्षा का कार्य करते थे।

(त) पण्याध्यक्षः यह न केवल स्वदेशी और विदेशी व्यापार का नियंत्रण करता था, अपितु राज्य द्वारा अधिकृत व निर्मित पदार्थों को बेचने का भी प्रबंध करता था।

(थ) लक्षणाध्यक्षः संपूर्ण मुद्रा पद्धति (करेंसी) इसके अधीन थी। मौर्य युग का प्रधान सिक्का पण कहलाता था, जो चाँदी का बना होता था। पण के अतिरिक्त अर्द्धपण, पादपण तथा अष्टभागपण नाम के सिक्के भी होते थे।

(द) आकराध्यक्ष: मौर्यकाल में आकरों (खानों) से धातुओं और अन्य बहुमूल्य पदार्थों को निकालने का कार्य बहुत उन्नत था। यह सब कार्य आकराध्यक्ष के अधीन रहता था। उसके अधीन अन्य अनेक उपाध्यक्ष होते थे, जिनमें लोहाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष, खन्याध्यक्ष और सुवर्णाध्यक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय थे।

(ध) देवताध्यक्ष: विविध देवताओं और उनके मंदिरों का प्रबंध इसके अधीन रहता था।

(न) सौवर्णिक: टकसाल के अध्यक्ष को सौवर्णिक कहते थे।

3. सन्निधाता: राजकीय कोषाधिकरण का यह प्रमुख अधिकारी था। राजकीय कोष का विभाग सन्निधाता के हाथ में होता था। राजकीय आय और व्यय का हिसाब रखना और उसके संबंध में नीति का निर्धारण करना सन्निधाता का ही कार्य था। चाणक्य ने लिखा है–सन्निधाता को सैकड़ों वर्ष की बाहरी तथा अंदरूनी आय-व्यय का परिज्ञान होना चाहिए, जिससे कि वह बिना किसी संकोच या घबराहट के तुरंत व्ययशेष अथवा अधिशेष (नेट इन्कम या सरप्लस) को बता सके। सन्निधाता के अधीन भी अनेक उपविभाग थे–कोषगृह, पण्यगृह, कोष्ठागार, कुप्यगृह, आयुधागार और बंधनागार ऐसे उप-विभाग थे, जिन पर सन्निधाता का नियंत्रण था।

   कोषाध्यक्ष, कोषगृह के अध्यक्ष को कहते थे। वह कोषगृह में सब प्रकार के रत्नों तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों का संग्रह करता था। चाणक्य के अनुसार कोषाध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह रत्नों के मूल्य, प्रमाण, लक्षण, जाति, रूप, प्रयोग, संशोधन, देश तथा काल के अनुसार उनका घिसना या नष्ट होना, मिलावट, हानि का प्रत्युपाय आदि बातों का परिज्ञान रखे। राजकीय पण्य (विक्रेय पदार्थ) पण्यगृह में एकत्र किये जाते थे। राज्य की तरफ से जिन अनेक व्यवसायों का संचालन होता था, उनसे तैयार किये गये पदार्थ सन्निधाता के अधीन पण्यगृह में भेज दिये जाते थे।

   पण्याध्यक्ष का राजकीय पण्य की बिक्री के अतिरिक्त यह कार्य भी था कि वह अन्य विक्रेय माल की बिक्री को नियंत्रित करे। माल के विक्रय के संबंध से अर्थशास्त्र में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि उसे जनता की भलाई की दृष्टि से बेचा जाय। वे पदार्थ कोष्ठागार में संगृहीत किये जाते थे, जिनकी राज्य को आवश्यकता रहती थी। सेना, राजपुरुष आदि के खर्च के लिए राज्य की ओर से जो माल खरीदा जाता था या स्वयं बनाया जाता था या बदले में प्राप्त किया जाता था। वह सब कोष्ठागार में रखा जाता था। कुप्यगृह में कुप्य पदार्थ (जंगल से प्राप्तव्य विविध प्रकार के काष्ठ, ईंधन आदि) एकत्र किये जाते थे। सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह आयुधागार में रहता था। कारागार (जेलखाना) का विभाग भी सन्निधाता के अधीन था।

4. सेनापति: यह युद्धविभाग का महामात्य अर्थात् सेनाध्यक्ष होता था। चाणक्य ने सेनापति की अर्हताओं और दायित्वों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि सेनापति संपूर्ण युद्ध-विद्या तथा अस्त्र-शस्त्र विद्या में पारंगत हो, हाथी, घोड़ा तथा रथ के संचालन में समर्थ हो।

   वह चतुरंग (पदाति, अश्व, रथ, हस्ति) सेना के कार्य तथा स्थान का निरीक्षण करे। अपनी भूमि (मोर्चा), युद्ध का समय, शत्रु की सेना, सुदृढ़ व्यूह का भेदन, टूटे हुए व्यूह का फिर से निर्माण, एकत्रित सेना को तितर-बितर करना, तितर-बितर हुयी सेना का संहार करना, किले को तोड़ना, युद्धयात्रा का समय आदि बातों का हर समय ध्यान रखे।

5. युवराज: जहाँ युवराज, राजा की मृत्यु के बाद राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता था, वहाँ राजा के जीवनकाल में भी वह शासन के कार्यों में सहयोग देता था। उसका तीर्थ (विभाग) अलग था और शासन संबंधी अनेक अधिकार उसे प्राप्त रहते थे। राजा की अनुपस्थिति में वह (रीजेंट) का भी कार्य करता था। वह समदत्त शासन कार्यों में राजा की सहायता करता था।

6. प्रदेष्टा: मौर्यकाल में न्यायालय दो प्रकार के होते थे, धर्मस्थीय और कंटकशोधन। कंटकशोधन न्यायालयों के न्यायाधीश को प्रदेष्टा कहते थे। विविध अध्यक्षों और राजपुरुषों पर नियंत्रन रखना और वे बेईमानी, चोरी, रिश्वत आदि से अपने को अलग रखें इसका ध्यान रखना भी प्रदेष्टा का कार्य था।

7. नायक: नायक सेना के मुख्य संचालक को कहते थे। सेनापति सैन्य-विभाग का महामात्य होता था, पर नायक सेना का युद्धक्षेत्र में संचालन करता था। स्कंधावार (छावनी) तैयार कराने का काम उसी के हाथ में था। युद्ध का अवसर आने पर विविध सैनिकों को क्या-क्या काम दिया जाय, सेना की व्यूह-रचना कैसे की जाय आदि इन सब बातों का निर्णय नायक ही करता था। युद्ध के समय वह सेना के आगे रहता था।
8. व्यावहारिक: धर्मस्थीय न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश को व्यावहारिक कहते थे। इसी को 'धर्मस्थ' भी कहते थे।
9. कार्मांतिक: मौर्यकाल में राज्य की ओर से अनेक कारखानों का संचालन होता था। खानों, जंगलों, खेतों आदि से एकत्र कच्चे माल को विविध प्रकार के तैयार माल में परिवर्तित करने के लिए राज्य की ओर से जो कारखाने थे, उनका संचालन कार्मांतिक के अधीन था।
10. मंत्रिपरिषद् अध्यक्ष: राजा को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् होती थी। उसका एक पृथक् विभाग होता था, जिसके अध्यक्ष की गिनती राज्य के प्रधान अठारह तीर्थों में की जाती थी।
11. दंडपाल: सेना के दो महामात्यों, सेनापति और नायक का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दंडपाल भी सेना के साथ ही संबंध रखता था। इसका विशेष कार्य सेना की सब आवश्यकताओं को पूरा करना और उसके लिए सब प्रबंध करना होता था।
12. अंतपाल: मगध साम्राज्य में सीमांत प्रदेशों का बड़ा महत्व था। उस समय सीमा की रक्षा के लिए बहुत-से दुर्ग बनाये जाते थे। विदेशी सेना जब आक्रमण करके अपने राज्य की सीमा को लांघने लगे, तो ये दुर्ग देश की रक्षा के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध होते थे। सीमाप्रदेश के रास्तों पर भी जगह-जगह छावनियाँ डाली जाती थीं, जिनकी व्यवस्था का कार्य अंतपाल के सुपुर्द था। सीमाप्रांत में ऐसी अनेक जातियों को बसाया जाता था, जिन्हें लड़ाई में ही आनंद आता था और जिनका पेशा ही युद्ध करना होता था। इन्हें साम, दाम और भेद द्वारा अपने पक्ष में रखा जाता था। शत्रु के आक्रमण करने पर ये सब जातियाँ उसका मुकाबला करने के लिए उठ खड़ी होती थीं। इनकी व्यवस्था भी अंतपाल के ही हाथ में थी।
13. दुर्गपाल: जिस प्रकार सीमा-प्रदेशों के दुर्ग अंतपाल के अधीन थे, वैसे ही साम्राज्य के अंतर्वर्ती दुर्ग दुर्गपाल के अधिकार में रहते थे। इस युग में बड़े-बड़े नगर भी दुर्ग के रूप में ही बसे होते थे। इन सब की दुर्ग-रूप में व्यवस्था दुर्गपाल के हाथ में होती थी।
14. नागरक: जैसे जनपदों का शासन समाहर्ता के अधीन था, वैसे ही पुरों या नगरों के शासन का सर्वोच्च अधिकारी नागरक होता था। विशेषतया, राजधानी का शासन नागरक के हाथ में रहता था। साम्राज्य में राजधानी की विशेष महत्ता होती थी। पाटलिपुत्र उस युग में संसार का बसे बड़ा नगर था। रोम और एथेंस का विस्तार पाटलिपुत्र की अपेक्षा बहुत कम था। 9 मील लम्बे और 1½ मील चौड़े इस विशाल नगर का प्रबंध एक पृथक् महामात्य के अधीन हो, यह उचित ही था।
15. प्रशास्ता: चाणक्य के अनुसार 'राजकीय आज्ञाओं पर शासन आश्रित होता है। संधि और विग्रह का मूल राजकीय आज्ञाएँ ही होती हैं। इन सब आज्ञाओं (राजशासन) को लिपिबद्ध करने के लिए एक पृथक् विभाग था, जिसके प्रधान अधिकारी को प्रशास्ता कहते थे। राज्य के लिए सब विभागों का रिकार्ड रखना भी इसी का काम था। उसके अधीन जो विशाल कार्यालय होता था, उसे 'अक्षपटल' कहते थे। राजकीय कर्मचारियों के वेतन, नौकरी की शर्तें, विविध देशों, जनपदों, ग्रामों, श्रेणियों आदि के धर्म, व्यवहार तथा चरित्र आदि का उल्लेख और खानों, कारखानों आदि के कार्य का हिसाब किताब इत्यादि सब अक्षपटल में भली-भाँति 'पंजीकृत' किये जाते थे।'
16. दौवारिक: राजप्रासाद का यह प्रधान पदाधिकारी होता था। मगध-साम्राज्य के कूटस्थानीय राजा का राजप्रासाद अत्यंत विशाल था, जिसमें हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष रहते थे। इन सबका प्रबंध करना और अंत:पुर के आंतरिक शत्रुओं से राज्य की रक्षा करना दौवारिक का कार्य था। दौवारिक एक अत्यंत महत्वपूर्ण पदाधिकारी होता था। यह हर्षचरित्र से भी ज्ञात होता है, जहाँ 'पारिपात्र' नाम के दौवारिक का वर्णन कर उसे 'महाप्रतीहारों में मुख्य' कहा गया है।

17. आंतर्वंशिक: आंतर्वंशिक राजा का निजी अंगरक्षक सेना के अध्यक्ष को कहते थे। अंत:पुर के अंदर भी आंतर्वंशिक के विश्वस्त सैनिक राजा की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहते थे। जिस समय राजा रानी से मिलता था, तभी वह अकेला होता था। पर उस समय भी यह भली-भाँति देख लिया जाता था कि रानी के शयनागार में कोई अन्य व्यक्ति तो छिपा हुआ नहीं है। परिचारिकाएँ रानी की भी अच्छी तरह तलाशी ले लेती थीं। यह सब प्रबंध आंतर्वंशिक के अधीन होता था।
18. आटविक: 'आटविक बल' मगध-साम्राज्य की सेना में का बड़ा महत्व था। मगध-सम्राटों ने अपनी शक्ति के विस्तार में इन आटविक सेनाओं का भली-भाँति उपयोग किया था। इन्हीं के प्रधान राजकर्मचारी को आटविक या अटविपाल कहते थे और उसे राज्य के अठारह तीर्थों में से एक माना जाता था। यूनानी लेखकों ने तीन प्रकार के कर्मचारियों की चर्चा की है। इनमें एग्रोनोमाई, एरिस्टोनोमाई और सैनिक कार्यों की देखभाल करने वाले अधिकारी होते थे। सिंचाई और भूमि की पैमाइश का, शिकार तथा कृषि वनसंपदा, कारखानों और खानों का निरीक्षण इनका दायित्व एरिस्टोनोमाई नगर कमिश्नर होते थे। मेगस्थनीज भारतीय समाज के प्रवर्गीय श्रेणीकरण के क्रम पर जाँच अधिकारियों की श्रेणी का उल्लेख करते हैं। डियोडोरस ने एपिसकोपोई तथा एरियन ने इफोरोई के रूप में इसका उल्लेख किया है।

संदर्भ

- Irfan Habib and Vivekanand Jha: Mauryan India, Tulika, 2004
- Upinder Singh: A History of Ancient and Early Medieval India : From the Stone Age to the 12th Century, Pearson Education, 2008
- S.R. Goyal: Brahmi Script : An Invention of the Early Maurya Period, Kusumanjali, 2006
- S.R. Goyal: The Kautiliya Arthasastra : Its Author, Date and Relevance for the Maurya Period, Kusumanjali, 2000

मुगल अर्थव्यवस्था की सीमाऐं

रेणु कुमारी

व्याख्याता, जय प्रकाश कॉलेज, आरा

भू-राजस्व प्रणाली

मुगल काल में भू-राजस्व आय का प्रमुख स्रोत था इसलिए उसकी मात्रा, उसके आकलन एवं उसकी वसूली की ओर अधिक ध्यान दिया गया। दो भागों में मुगल साम्राज्य के राजस्व को बाँटा जा सकता है-केंद्रीय अथवा शाही तथा स्थानीय अथवा प्रान्तीय। स्थानीय राजस्व स्पष्टत: बिना केन्द्रीय सरकार के वित्त-सम्बन्धी अधिकारियों से पूछे ही वसूला तथा खर्च किया जाता था। विभिन्न छोटे-छोटे करों से यह प्राप्त किया जाता था, जो ''उत्पादन एवं उपभोग, व्यापार एवं धंधों, सामाजिक जीवन की विभिन्न घटनाओं तथा सबसे अधिक परिवहन पर'' लगाये जाते थे। केन्द्रीय राजस्व के प्रधान साधन थे-भूमि-राजस्व चुंगी, टकसाल, उत्तराधिकार, लूट एवं हर्जाना, उपहार, एकाधिकार तथा प्रत्येक मनुष्य पर लगनेवाला कर (पॉल-टैक्स)। इनमें पुराने जमाने की तरह राज्य की आय का सबसे महत्वपूर्ण साधन था भू-राजस्व। मुगलों के समय भू-राजस्व उत्पादन का हिस्सा होता था। यह भूमि पर कर नहीं वरन उत्पादन और उपज पर कर होता था। ऐतिहासिक 'आइन-ए-अकबरी' के अनुसार भू-राजस्व राज द्वारा दिये जाने वाले संरक्षण और न्याय व्यवस्था के बदले लिए जाने वाला संप्रभुता शुल्क था। भू-राजस्व के लिए मुगल शासन में फारसी शब्द माल और मालवाजिब का प्रयोग किया जाता था। खराज शब्द की नियमित रूप से चर्चा नहीं मिलती थी।

अकबर के समय प्रयोग : एतमद खाँ के अधीन 1563 ई. में संपूर्ण साम्राज्य का 18 परगनों में विभाजन हुआ और प्रत्येक परगने में एक करोड़ी नामक अधिकारी की नियुक्ति की गई।

मुज्जफर खाँ के अधीन 1564 ई. में दूसरा प्रयोग किया गया। 1568 ई. में शिहाबुद्दीन के अधीन तीसरा प्रयोग किया गया। इसने नसक प्रणाली पर बल दिया। मुज्जफर खाँ और उसके अधीन अधिकारी के रूप में टोडरमल की 1571 ई. में नियुक्ति की गई। इस प्रयोग में भूमि माप पर बल दिया गया। 1573 ई. में गुजरात विजय के बाद टोडरमल ने गुजरात में भूमि माप की पद्धति अपनायी। अकबर इस पद्धति से संतुष्ट हुआ। टोडरमल की नियुक्ति 1582 ई. में दीवान-ए-आला के रूप में हुयी और कई प्रयोगों के बाद टोडरमल के द्वारा जब्ती या आइन-ए-दहशाला पद्धति को अपनाया गया। पाँच चरण जब्ती पद्धति में होते थे।

भूमि की माप : इस चरण में भूमि माप की इकाई के रूप में पहले शेरशाह के द्वारा अपनाये गये 'गज-ए-सिकन्दरी' के बदले 'इलाही गज' का प्रयोग किया। 'इलाही गज' 33 ईंच और 41 अंगुल का होता था।

जब्ती व्यवस्था के लाभ

1. भूमि की माप को कभी भी जाँचा जा सकता था।
2. निर्धारित दस्तूरों के कारण पदाधिकारियों की मनमानी नहीं चल सकती थी।
3. स्थायी दस्तूरों के निर्धारण के बाद भू-राजस्व की अनिश्चितता और उतार-चढ़ाव में कमी आ गई।

सीमाएँ

1. भूमि की उर्वरता समान न होने पर उसे लागू नहीं किया जा सकता था।

2. उत्पादकता की अनिश्चितता का दण्ड केवल किसानों को भुगतान करना पड़ता था और यह किसानों के लिए हानिकारक था।
3. यह एक महंगी प्रणाली थी क्योंकि इसमें माप करने वाले दल को पारिश्रमिक के रूप में प्रति बीघा 1 दाम की दर से जरीवाना देना पड़ता था।
4. माप करते समय कर्मचारियों के द्वारा गड़बड़ी एवं धोखाधड़ी की समस्या भी बनी रहती थी।

भूमि का वर्गीकरण : उत्पादकता के आधार पर शेरशाह ने भूमि का श्रेणीकरण किया था किंतु अकबर ने उत्पादकता के बदले बारंबारता पर अधिक बल दिया किंतु बारंबारता पर बल देते हुए भी उसने उत्पादकता के आधार को भी बनाये रखा। बारंबारता के आधार पर भूमि चार प्रकार की होती थी।

1. पोलज : दो फसलें इसमें एक वर्ष में होती थी।
2. परती : दो फसलों के बाद इसमें किन्हीं कारणों से एक वर्ष के लिए भूमि को खाली छोड़ दिया जाता था।
3. चाचर : इसमें तीन या चार वर्षों में खेती होती थी।
4. बंजर : पाँच वर्षों तक इसमें खेती नहीं होती थी।

भूमि को उत्पादकता के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया गया : 1. उत्तम 2. मध्यम 3. निम्न।

भू-राजस्व का निर्धारण : एक दर तालिका भू-राजस्व के निर्धारण के लिए बनायी गयी। उस दर तालिका को रय के नाम से जाना जाता था। भू-राजस्व के निर्धारण में निचले स्तर पर बीघा को और ऊँचे स्तर पर परगना को इकाई माना जाता था। भू-राजस्व के निर्धारण के लिए संबंधित क्षेत्र के दस वर्षों के उत्पादन का औसत निकाला जाता था। यह औसत 1571 और 81 के बीच के वर्षों को बनाया गया था। जब्ती व्यवस्था में भू-राजस्व का निर्धारण करते समय नाबाद क्षेत्र (जिसमें फसल न हुयी हो) को छोड़ दिया जाता था।

अनाजों का नगद में परिवर्तन : स्थानीय बाजार के मूल्यों को ध्यान में रखते हुए अनाजों के नगद में परिवर्तन के लिए साम्राज्य को दस्तूर में बाँट दिया जाता था और प्रत्येक दस्तूर में अनाजों के मूल्यों के दस वर्षों का औसत निकाला जाता था। नगदी फसलों में नील, पान, हल्दी और पोस्त अपवाद था। उनकी दरें कुछ अच्छे वर्षों की फसल को ध्यान में रखकर तय की जाती थी।

भू-राजस्व का संग्रह : सरकारी अधिकारियों को भू-राजस्व के संग्रह के लिए 'दस्तूर अल अमल' (निर्देश) दिया जाता था। भू-राजस्व की वसूली करने वाले अधिकारी में सरकार के स्तर पर अमाल गुजार और परगने के स्तर पर आमिल होता था। कानूनगो प्रत्येक परगने में होता था जो गाँव के पटवारियों का प्रमुख होता था। गाँव भू-राजस्व के संग्रह में सबसे छोटी इकाई था। ग्रामीण अधिकारियों में मुकद्दम और पटवारी होता था। मुकद्दम गाँव का मुखिया होता था ओर अपनी सेवा के बदले उसके द्वारा वसूले गये राजस्व में से उसे 2.5 प्रतिशत प्राप्त होता था। एक प्रमुख अधिकारी अमीन था। अमीन का पद शाहजहाँ के शासन काल में आया। अमीन का मुख्य कार्य भू-राजस्व का निर्धारण था। भू राजस्व की दर सामान्यत: कुल उपज की 1/3 थी। किंतु मोरलैण्ड और इरफान हबीब का मानना है कि भू राजस्व की दर उत्पादन का आधा या तीन चौथाई थी। कश्मीर में अकबर ने कुल उत्पादन के आधे भाग की वसूली का आदेश दिया था। इस मामले में औरंगजेब ने स्पष्ट घोषणा की कि भू-राजस्व शरियत के अनुसार कुल उत्पादन के आधे से अधिक नहीं होना चाहिए। जब्ती या आइन-ए-दहशाला आगरा, लाहौर और गुजरात में लागू की गयी। अन्य पद्धतियाँ भी जब्ती प्रणाली के अतिरिक्त प्रचलित थीं। उदाहरण के लिए बँटाई या गल्लाबख्शी निगार-नामा-ए-मुंशी के अनुसार फसल बँटवारे को सर्वोत्तम प्रणाली कहा गया है।

नसक या कानकूत प्रणाली भी इसके अतिरिक्त प्रचलित थी। कानकूत संभवत: व्यक्तियों पर न लगाकर व्यक्तियों के समूह पर लगाया जाता था। सम्पूर्ण साम्राज्य का विभाजन खालिसा, जागीर, सयूरगल या मदद-ए-माश में होता था। मदद-ए-माश की देख-भाल सद्र-उस-सुद्र के अंतर्गत एक विभाग करता था।

वजीफा नकद सहायता को कहा जाता था। इस प्रकार के अनुदान पाने वाले व्यक्ति का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता था। अकबर ने इस प्रकार के अनुदान पर 100 बीघा प्रति व्यक्ति की सीमा निर्धारित की। अकबर ने कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए

आधी खेती योग्य भूमि और आधी जुती या बंजर भूमि देने की प्रथा चलाई। अनुदान प्राप्तकर्त्ता को पूरे जीवन के लिए अनुदान प्राप्त होता था और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी अनुदान की नवीनीकरण के लिए आवेदन कर सकते थे। उत्तराधिकारियों को आम तौर पर अनुदान का एक अंश प्राप्त होता था। जहाँगीर के द्वारा अकबर के दिये गये अनुदानों का नवीनीकरण किया गया।

परन्तु शाहजहाँ के द्वारा इसकी सीमा 30 बीघा और औरंगजेब के द्वारा इसकी सीमा 20 बीघा कर दी गई। अपने शासन के 30वें वर्ष में सारे अनुदानों को आनुवांशिक बना दिया। किंतु उसने उन अनुदानों को एक प्रकार का ऋण माना न कि संपत्ति। उसके शासन के उत्तरार्ध में और उसकी मृत्यु के बाद अनुदान प्राप्तकर्त्ता जमीन को खरीदने बेचने या हस्तांतरित करने लगे। इस कारण धीरे-धीरे इन अनुदानों का अधिकार-क्षेत्र जमींदारी अनुदानों के समकक्ष हो गया। इस प्रकार के अनुदानों का राजस्व अकबर के शासन-काल में कुल राजस्व का 5.84 प्रतिशत हो गया। अधिकांश अनुदान उपरी गंगा प्रदेश अर्थात् दिल्ली और इलाहाबाद के क्षेत्र में थे।

उन परगनों में लगभग 70 प्रतिशत सयुरगल अनुदान केन्द्रित थे जो गैर मुसलमानों जमींदार के अधिकार में थे। एक दूसरे प्रकार का अनुदान वक्फ कहलाता था जो धार्मिक कार्यों के लिए दिया जाता था। इसकी आमदनी मकबरों, समाधियों एवं मदरसों के रख-रखाव पर खर्च होती थी। बंजर भूमि को 'मदद ए मास' अनुदान की सहायता से विकसित करने में मदद की जाती थी। 18वीं शताब्दी के आरंभ तक ये अनुदान सभी प्रकार के लेन-देन में जमींदार भूमि के रूप में प्रयुक्त किए जाने लगे। जमींदार दो शब्दों से बना है–जमीन (भूमि) और दार (ग्रहण करना)। मुगल काल से पहले जमींदार शब्द का प्रयोग इलाके के प्रधान के लिए किया जाता था किंतु अकबर के समय से यह शब्द किसी भी व्यक्ति के उत्पादन से सीधा हिस्सा ग्रहण करने के लिए आनुवांशिक दावों के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा था।

कई स्थानीय शब्द जमींदार शब्द के प्रचलित थे :–उदाहरण के लिए दोआब में खूत और मुकद्दम अवध में राजस्थान और गुजरात में बैठ या वन्ठ। जमींदारी का मतलब भूमि पर संपत्ति का अधिकार नहीं था। यह मात्र भूमि उत्पादन पर जमींदारों का दावा था जो राज्य के भू-राजस्व के साथ-साथ था किंतु उसका क्रय-विक्रय किया जा सकता था। यह अनुवांशिक एवं विभाज्य था। भू-राजस्व की वसूली का अधिकार जब जमींदारों को नहीं दिया जाता था वहाँ भी उन्हें मालिकाना के रूप में भू-राजस्व का 10 प्रतिशत प्राप्त हो जाता था।

इसके अतिरिक्त वे दस्तूरी सुमारी (पगड़ी), खान सुमारी (गृहकर) विवाह, जन्म आदि पर भी कर लगाते थे। 'आइन ए अकबरी' के अनुसार मुगल साम्राज्य में जमींदारों की सेना में 44 लाख से अधिक सिपाही थे। बंगाल में उनके पास हजारों नावें थीं। उनकी स्थिति स्वायत्त शासकों की तरह थी। वे राजा, राव, राणा, रावत आदि कहलाते थे। परगने का अधिकारी चौधरी होता था और परगने के अन्य जमींदारों से कर वसूलता था। अपने परंपरागत नानकार के अतिरिक्त चौधरियों का वसूले गये भू-राजस्व में भी अलग से हिस्सा मिलता था जिसे चौधराई कहा जाता था जो कुल राजस्व का 2.5 प्रतिशत होता था। चौधरी की नियुक्ति जमींदारों के विपरीत राज्य द्वारा होती थी और उसे ठीक ढंग से काम न करने पर किसी समय हटाया जा सकता था।

आनुवांशिक पदाधिकारी प्रत्येक गाँव में होता था। गाँव का मुखिया उत्तर भारत में मुकद्दम तथा पटेल कहलाता था। उसे गाँव में राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी और वसूले गये राजस्व में नगद हिस्सा मिलता था। लेखपाल भी उनकी सहायता के लिए होते थे जो उत्तर भारत में पटवारी तथा दक्षिण भारत में कुलकर्णी कहलाते थे। मुकद्दम और पटवारी के पद तथा उनसे जुड़े हुए अधिकार वंशानुगत होते थे। कृषकों के भूमि संबंधी अधिकार स्पष्ट नहीं थे, जब तक वे खेती करते थे तब तक उनका अधिकार होता था। धनी किसानों को उत्तर भारत में खुदकाश्त, राजस्थान में घरहुल और महाराष्ट्र में मिरासदार कहा जाता था। उत्तर भारत में उसी तरह गरीब किसानों को रेजा और रियाजा, राजस्थान में पालती और महाराष्ट्र में कुन्वी कहा जाता था। किसान वर्ग के विभाजन का केवल आर्थिक ही आधार नहीं होता था। गाँव के स्थायी निवासी उत्तर भारत में खुदकाश्त, महाराष्ट्र में मिरासदार ओर दक्कन में थालकर कहा जाता था और अस्थायी निवासी को उत्तर भारत में पाहिकाश्त और महाराष्ट्र में उपरी कहा जाता था।

खुदकाश्त : वे किसान जो अपनी भूमि पर खेती करते थे।

पाहिकाश्त : जिनके पास अपने हल बैल होते थे और वे दूसरे गाँव में जाकर खेती करते थे।

मुजारियन : बटाईदारों जैसी उनकी स्थिति होती थी और वे प्राय: इनाम की भूमि पर काम करते थे।

पर्शियन व्हील का सिंचाई के लिए प्रयोग होता था। कुएँ से जल निकालने के लिए लीवर का प्रयोग होता था।

'आइन-ए-अकबरी' में 17 रबी फसल और 26 खरीफ फसल बताये गये हैं।

कलम लगाने की प्रणाली मुगल काल में विकसित हुई। मुगल काल में खरीफ फसल के साथ-साथ रबी फसल का भी महत्त्व बढ़ने लगा। सभी मुगल शासकों में शाहजहाँ ने दो नहरें बनवायी 1. नहर फैज 2. शाही नहर।

16वीं शताब्दी में पुर्त्तगाली ने तंबाकू को भारत में लाये और महाराष्ट्र में तंबाकू की खेती शुरू हुई। ज्वार की खेती 17वीं शताब्दी में शुरू हुई। 18वीं सदी में मक्का की खेती महाराष्ट्र एवं पूर्वी राजस्थान में प्रारंभ हुई। कॉफी का उत्पादन 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ और 18वीं सदी में आलू, लाल मिर्च और टमाटर की खेती शुरू हुई। अमेरिका को तंबाकू, अन्नानास, काजू, आलू का निर्यात होता था। मध्य एशिया को तरबूजा, अमरूद, खरबूजा का निर्यात होता था। लैटिन अमेरिका को मक्का का निर्यात होता था। जिंस-ए-कामिल या 'जिंस-ए-आला' नकदी फसल को कहा जाता था। नकदी फसलों में सबसे अधिक खेती गन्ना की होती थी। फिर कपास, नील, अफीम और तंबाकू की खेती होती थी। अमेरिका से पुर्तगालियों द्वारा अन्नानास, पपीता और काजू लाए गये थे। काबुल से चेरी लाई गयी और उसका कलम लगाकर कश्मीर में उसकी खेती शुरू की गई।

1550 ई. में कलम लगाने की पद्धति विकसित हुई। बयाना और सरखेज के नील की माँग सबसे अधिक थी। आगरा के निकट बयाना में उपजाया जाने वाला नील उत्तम कोटी का माना जाता था ओर उसका मूल्य भी ज्यादा होता था। बिहार तथा मालवा में अच्छे प्रकार के अफीम की खेती होती थी। काली मिर्च, लौंग, इलायची, अदरख और हल्दी बड़े पैमाने पर उगाया जाता था।

वाणिज्य ओर व्यापार का मुगल काल में विकास हुआ। इसकी वजह यह थी कि काबुल और कंधार कुषाण काल के बाद पहली बार भारतीय साम्राज्य के अंतर्गत आया। व्यापारिक कारवां कंधार से पश्चिम एशिया के लिए जाते थे। मुल्तान भी व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र था। लाहौर और बुरहानपुर भी व्यापारिक केन्द्र थे। लाहौर एक तरफ काबुल और कंधार से जुड़ा हुआ था तो दूसरी और दिल्ली और आगरा से जुड़ा हुआ था।

सूती वस्त्र उत्पादन के केन्द्र : पटना, जौनपुर, बुरहानपुर गुजरात में पाटन तथा बंगाल में उड़ीसा तक का क्षेत्र सूती वस्त्र उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। मलमल के लिए बंगाल में ढाका विश्व प्रसिद्ध था। बंगाल में रेशमी वस्त्र (तसर) का भी उत्पादन होता था। बंगाल चावल एवं चीनी का भी निर्यात करता था। बिहार और दक्षिण प्रायद्वीप में शोरा का उत्पादन होता था। अकबर के समय गलीचा ओर साल बनाने की कला विकसित हुई। गलीचा बनाने के केन्द्र आगरा और लाहौर थे जबकि साल बनाने का केन्द्र आगरा ओर कश्मीर था।

महत्त्वपूर्ण बंदरगाह निम्नलिखित थे:–सिंध में लाहौरी बन्दर, गुजरात में पाटन और खंभात, महाराष्ट्र में रत्नागिरी, दाभोल और भतकल, मालाबार में कोचीन और कालीकट, बंगाल में सत्गाँव और सोनारगाँव, गुजरात में भड़ौच महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे। आयात की महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ सोना, चाँदी, हाथी दाँत, कच्चा रेशम, औषधि, घोड़ा, टीन, आदि थी। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ मसाले, मलमल, सूती वस्त्र, सोरा, नील और बंगाल से संभवत: चावल और चीनी थी। बोहरा व्यापारी उत्तर पश्चिम के व्यापार में सक्रिय थे। इनमें हिन्दू, जैन और मुसलमान तीनों शामिल थे। दो महत्त्वपूर्ण व्यापारी विरजी बोहरा और अब्दुल गफूर बोहरा थे।

संदर्भ

- S.R. Bakshi and S.K. Sharma: Society, Culture and Administration in Mughal India, Deep & Deep, 2000
- S.P. Verma: Aspects of Mughal Painting, Vol. I. Expressions and Impressions, Abhinav Pub, 2009
- Sanjeev P. Srivastava: Jahangir : A Connoisseur of Mughal Art, Abhinav, 2001
- H.S. Bhatia: Mughal Empire in India : Their Political, Legal, Social, Cultural, Religious and Military Systems, Deep and Deep, 2001
- Susan Stronge: Made for Mughal Emperors : Royal Treasures from Hindustan, Roli Books, 2010
- Zaheda Khanam: Birds and Animals in Mughal Miniature Paintings, D.K. Printworld, 2009

मौर्य शासन में राजकीय आय-व्यय का लेखा-जोखा

डॉ. सुनील कुमार

एम.ए., पीएच.डी., काशीपुर (वैशाली)

मौर्य शासन काल में भू-राजस्व सरकार की आय का सर्वमान्य स्रोत बन चुका था और यह महसूस किया जाने लगा कि कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार होने पर नियमित कराधान से राजस्व में भी सुनिश्चित वृद्धि होगी। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राजकीय आय के निम्नलिखित साधन दिये गये हैं–

1. दुर्ग–मगध-साम्राज्य को नगरों से जो विविध आमदनी प्राप्त होती थी, उसे दुर्ग कहा जाता था। दुर्गों से आय के विविध साधन निम्नलिखित थे–(क) शुल्क–चुंगी; (ख) पौतव–तौल और माप के साधनों को प्रामाणित करने से प्राप्त कर; (ग) दंड–जुर्माना; (घ) नागरक–नगर के शासक द्वारा किये गये जुर्मानों से आय; (ङ) लक्षणाध्यक्ष–मुद्रा पद्धति की आय; (च) मुद्रा–नगर प्रवेश के समय मुद्रा (सरकारी पास) लेने से होने वाली आमदनी; (छ) सुरा–शराब के ठेकों की आय; (ज) सूना–बूचड़खानों की आमदनी; (झ) सूत्र–राज्य की और से सूत कातने आदि के जो काम कराये जाते थे, उनकी आमदनी; (ञ) तेल–तेल के व्यवसाय पर जो, राज्य कर वसूल किया जाता था, उसकी आय (ट) घृत–घी के कारोबार से वसूल होने वाला कर (ठ) नमक–नमक बनाने पर लगाया गया कर; (ड) सौवर्णिक–सुनारों से वसूल होने वाला कर; (ढ) पण्यसंस्था–राजकीय पण्य की बिक्री से होने वाली आय। (ण) वेश्या–वेश्याओं द्वारा आय तथा स्वतंत्र व्यवसाय करने वाली वेश्याओं से कर; (त) द्यूत–जुए की आय; (थ) वास्तुक–अचल संपत्ति से वसूल किया जाने वाला कर तथा जायदाद की बिक्री के समय लिया जाने वाला कर; (द) संस्था–कारीगरों तथा शिल्पियों की श्रेणियों से वसूल होने वाला कर; (ध) देवताध्यक्ष–धर्म मंदिरों से प्राप्त होने वाली आय का अंश; (न) द्वार–नगर के द्वार से आने या जाने वाले माल पर लिया हुआ कर; (प) वाहिरकादेय–अत्यंत धनी लोगों से लिया जाने वाला अतिरिक्त कर।
2. राष्ट्र–राज्य के देहातों या जनपद से जो आमदनी होती थी, उसे राष्ट्र कहते थे। इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रकार की आय होती थी–(क) सीता–राज्य की अपनी जमीनों से होने वाली आय; (ख) भाग–जिन जमीनों पर राज्य का स्वामित्व नहीं था, उनसे वसूल किया जाने वाला अंश; (ग) बलि–तीर्थस्थान आदि धार्मिक स्थानों पर लगा हुआ विशेष कर; (घ) वणिक्–देहात के व्यापार पर लिया जाने वाला कर; (ङ) नदी–नदियों पर बने हुए पुलों पर से पार उतरने पर लिया जाने वाला कर; (च) नाव–नौका से नदी पार करने पर लिया जाने वाला कर; (छ) पट्टन–कस्बों के कर; (ज) विवीत–चरागाहों के कर; (झ) वर्तनी–सड़कों के कर; (अ) चोर रज्जु–चोरों की गिरफ्तारी से प्राप्त होने वाली आमदनी।
3. खनि–मौर्य-युग में खानें राज्य की संपत्ति होती थी। सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मुक्ता, शंख, लोहा, नमक, पत्थर तथा अन्य अनेक प्रकार की खानों से राज्यकोष को बहुत आय होती थी।
4. सेतु–जो आय पुष्पों और फूलों के उद्यान, शाक के खेत और मूलों (मूली, शलगम, कंद आदि) के खेतों से होती थी, उसे सेतु कहते थे।
5. वन–उस युग में जंगलों पर राज्य का अधिकार होता था। जंगलों से राज्य की अनेक प्रकार की आय होती थी।
6. व्रज–गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी आदि पशुओं से होने वाली आय को व्रज कहते थे। मौर्य काल में राज्य की अपनी पशुशालाएँ भी होती थी।

7. वणिक्पथ–दो प्रकार के वणिक्पथ होते थे, स्थल-पथ और जल-पथ। इनसे होने वाली आय वणिक्पथ कहलाती थी।

आय के ये सात साधन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकीय आय के अंतर्गत वर्णित हैं। यदि आधुनिक राजस्व शास्त्र के अनुसार मौर्यकाल की राजकीय आय का हम अनुशीलन करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते हैं:

1. भूमिकर–राज्य को जमीन से दो प्रकार की आमदनी होती थी-सीता और भाग। राज्य को अपनी जमीनों से जो आमदनी होती थी, उसे 'सीता' कहते थे। राज्य की अपनी संपत्ति, जो जमीनें नहीं थी, उनसे 'भाग' वसूल किया जाता था। जो किसान स्वतंत्र रूप से खेती करते थे और सिंचाई का प्रबंध भी अपने आप करते थे, उनसे जमीन के उत्तम या निकृष्ट होने के अनुसार कुल उपज का 1/4 या 1/5 भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता था। जो किसान सरकार सिंचाई के लिए से जल लेते थे, उनके भूमिकर की दर अलग थी। जिन जमीनों की सिंचाई कूप आदि से हाथ द्वारा पानी खींचकर होती थी, उनसे उपज का 1/5 भाग लिया जाता था, जिनको चरस, रहट आदि द्वारा पानी खींचकर सींचने के लिए दिया जाता था, उनसे उपज का 1/4 भाग लिया जाता था। जहाँ सिंचाई पंप, वातयंत्र आदि द्वारा होती, उनसे उपज का 3/4 भाग लेने का नियम था। नदी या नहर से सिंचाई होने की दशा में भूमिकर की मात्रा उपज का चौथाई भाग होती थी।कोई किसान यदि तालाब या पक्के मकान को नये सिरे से बनाये तो उसे पाँच साल के लिए भूमिकर से मुक्त कर दिया जाता था। टूटे-फूटे तालाब या मकान का सुधार करने पर चार वर्ष तक और बने हुए को बढ़ाने पर तीन साल तक भूमिकर नहीं लिया जाता था।

2. तटकर– मौर्यकाल में दो प्रकार के तटकर होते थे, निष्क्राम्य (निर्यातकर) और प्रवेश्य (आयात-कर)। आयात माल पर कर की मात्रा प्राय: 20 फीसदी थी। सन के कपड़े, मलमल, रेशम, लोहा, पारा आदि अनेक पदार्थों पर कर की दर 10 फीसदी थी। कुछ पदार्थों पर कर की मात्रा 5, 6¼, 7½ और 12½ फीसदी भी होती थी। पर साधारण नियम 20 फीसदी का ही था। कुछ देशों के साथ आयात-कर के संबंध में रियायत भी की जाती थी। इसे 'देशोपकार' कहते थे। चाणक्य ने लिखा है–'देश और जाति के चरित्र के अनुसार नये और पुराने माल पर कर स्थापित करें। अन्य क्षेत्रों के अपकार करने पर शुल्क को बढ़ा दे। जिन व्यवसायों पर राज्य का एकाधिकार था, उनके अन्य देशों से आने पर अतिरिक्त-कर (वैधरण) भी लिया जाता था।' उदाहरण के लिए यदि नमक को विदेश से मँगाना हो, तो 16 $^{2}/_{3}$ फीसदी आयात-कर तो लिया ही जाता था, पर साथ ही उतना वैधरण (हर्जाना या अतिरिक्त-कर) भी देना पड़ता था, जितना कि विदेशी नमक के आने से नमक के राजकीय व्यवसाय को हानि पहुँची हो। इसी तरह तेल, शराब आदि राज्याधिकृत वस्तुओं के आयात पर भी हर्जाना देना होता था। इस आयात का उद्देश्य राजकीय आमदनी को बढ़ाना ही था। विदेशी व्यापार के संबंध में आचार्य चाणक्य की नीति यह थी–'विदेशी माल को अनुग्रह से स्वदेश में प्रवेश कराया जाय। इसके लिए नाविकों तथा विदेशी माल के व्यापारियों के लिए मुनाफे के ऊपर लिया जाने वाला कर माफ कर दिया जाय।' कर निर्यात माल पर भी लिया जाता था, यह तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है, पर इस कर की दर क्या थी, इस संबंध में कोई सूचना चाणक्य ने नहीं दी।

   अर्थशास्त्र के निम्नलिखित वाक्य अपने देश के माल को बाहर भेजने के संबंध में महत्व के हैं–'जल-मार्ग से विदेश में माल को भेजने से पहले मार्ग-व्यय, भोजन-व्यय, विनिमय में प्राप्त होने वाले विदेशी माल की कीमत तथा मात्रा, यात्राकाल, भय-प्रतीकार के उपाय में हुआ व्यय, बंदरगाहों के रिवाज, नियमों आदि का पता लगाएं। भिन्न-भिन्न देशों के नियमों को जानकर जिन देशों में माल भेजने से लाभ समझें, वहाँ माल भेजा जाय। जहाँ हानि की संभावना हो, वहाँ से दूर रहें।' इसी प्रकार परदेश में व्यापार के लिए, पण्य एवं प्रतिपण्य (निर्यात माल और उसके बदले में आने वाला माल) के मूल्य में चुंगी, सड़क-कर, गाड़ी का खर्च, दुर्ग का कर, नौका के भाड़े का खर्च आदि घटाकर शुद्ध लाभ का अनुमान करें। यदि इस ढंग से लाभ न मालूम पड़े तो यह देखें कि अपने देश की चीज के बदले में कोई ऐसी वस्तु विदेश से मँगाई जा सकती है या नहीं, जिससे लाभ रहे। इसमें संदेह नहीं कि आचार्य चाणक्य विदेशी व्यापार को उत्तम मानते थे और उसकी वृद्धि में देश का लाभ समझते थे।

3. बिक्री पर कर–बिक्री पर शुल्क लेने की भी मौर्यकाल में व्यवस्था थी। चाणक्य ने लिखा है कि उत्पत्ति स्थान पर कोई भी पदार्थ बेचा नहीं जा सकता। कोई भी वस्तु शुल्क से न बच सके, इसलिए यह नियम बनाया गया था कि जो इस

नियम का उल्लंघन करे, उन पर भारी जुर्माना लगाया जाय। इन जुर्मानों की मात्रा बहुत अधिक थी। खानों से खनिज पदार्थ खरीदने पर 600 पण और खेत से अनाज मोल लेने पर 53 पण जुर्माने की व्यवस्था थी। सारा माल पहले शुल्काध्यक्ष के पास लाया जाता था। शुल्क दे देने के बाद उन पर 'अभिज्ञानमुद्रा' लगायी जाती थी। उसके बाद ही माल की बिक्री हो सकती थी, पहले नहीं। शुल्क की मात्रा के संबंध में यह विवरण उद्धृत करने योग्य है–'नाप कर बेचे जाने वाले पदार्थों पर 6¼ फीसदी, तोलकर बेचे जाने वाले पदार्थों पर 5 फीसदी और गिनकर बेचे जाने वाले पदार्थों पर 9ऋ प्रतिशत शुल्क लिया जाय।'

4. प्रत्यक्ष कर–जो विविध प्रत्यक्ष कर मौर्ययुग में लगाये जाते थे, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–
   (क) तौल और माप के परिमाणों पर चार माषक कर लिया जाता था। प्रामाणिक बट्टों और माप के साधनों को काम में न लाने पर दंड के रूप में 27द्ध पण जुर्माना लिया जाता था।
   (ख) जुआ खेलने की अनुमति लेने पर कर देना पड़ता था और जो धन जुए में जीता जाय, उसका 5 फीसदी राज्य लेता था।
   (ग) रूप से आजीविका चलाने वाली वेश्याओं से दैनिक आमदनी का दुगना प्रतिमास कर-रूप में लिया जाता था। इसी तरह के कर नटों, नाटक करने वालों, रस्सी पर नाचने वालों, गायकों, वादकों, नर्तकों व अन्य तमाशा करने वालों से भी वसूल करने का नियम था। पर यदि ये लोग विदेशी हों, तो इनसे पाँच पण अतिरिक्त कर लिया जाता था।
   (घ) अनेक कर धोबी, सुनार और इस तरह के अन्य शिल्पियों पर भी लगाये जाते थे। इन्हें अपना व्यवसाय चलाने के लिए 'लायसेंस' लेना होता था।
5. राज्य द्वारा अधिकृत व्यवसायों से आय–जिन व्यवसायों पर राज्य का एकाधिपत्य था, उनमें खानें, जंगल, नमक का निर्माण और अस्त्र-शस्त्र का कारोबार मुख्य थे। इनके अतिरिक्त शराब का निर्माण भी राज्य के ही अधीन था। इन सबसे राज्य को अच्छी आमदनी होती थी। अनेक व्यापारियों पर भी राज्य का स्वत्व उस युग में होता था। राज्य की ओर से जो पदार्थ बिक्री के लिए तैयार कराये जाते थे, उनकी बिक्री भी वह स्वयं ही करता था।
6. जुर्मानों से आय–अनेक अपराधों के लिए दंड के रूप में जुर्माना मौर्यकाल में लिया जाता था। इनका बड़े विस्तार से वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र से उपलब्ध होता है।
7. विविध–पूर्णतया मुद्रापद्धति राज्य के हाथ में होती थी। सुवर्ण (सोने के) पण (चांदी के), मषक (तांबे के) आदि सिक्के (रूप) टकसाल में बनते थे। व्यक्ति, जो चाहे अपनी धातु ले जाकर टकसाल में सिक्के ढलवा सकता था। पर इसके लिए एक निश्चित प्रीमियम देना पड़ता था। जो कोई सरकारी टकसाल में नियमानुसार सिक्के न बनवाकर स्वयं बनाता था, उस पर 25 पण जुर्माना किया जाता था। गरीब और अशक्त व्यक्तियों के गुजारे का प्रबंध राज्य करता था, पर इस तरह के लोगों से सूत कातने, कपड़ा बुनने, रस्सी बँलने आदि के काम भी लिए जाते थे। राज्य को इनसे भी आय होती थी।

आपात्काल में इन सबके अतिरिक्त संपत्ति पर अनेक प्रकार के विशेष कर लगाये जाते थे। अर्थशास्त्र में इनका भी विस्तार से वर्णन किया गया है। ऐसे अवसर पर सोना-चाँदी, मणि-मुक्ता आदि का व्यापार करने वाले धनी लोगों से 2 फीसदी अतिरिक्त कर लिया जाता था। अन्य प्रकार के व्यापारियों व व्यवसायियों से भी ऐसे अवसरों पर विशेष कर की व्यवस्था थी, जिसकी मात्रा 50 फीसदी से 2½ फीसदी तक होती थी। ऐसे अवसरों पर मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं से भी उपहार और दान लिए लिए जाते थे। जनता से अनुरोध किया जाता था कि ऐसे अवसर पर उदारतापूर्वक राज्य को धन दें। इसके लिए दानियों का अनेक प्रकार से सम्मान भी किया जाता था। जो आमदनी राज्य को विविध करों से होती थी, उसके व्यय के संबंध में भी बहुत-सी उपयोगी बातें कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होती हैं। यहाँ इनका भी संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी है।

1. राजकर्मचारियों के वेतन–विविध राजकर्मचारियों के वेतनों की दरें अर्थशास्त्र में उल्लिखित हैं। इसमें मंत्री, पुरोहित, सेनापति जैसे बड़े पदाधिकारियों को 4000 पण मासिक वेतन दिया गया है। प्रशास्ता, समाहर्ता और आंतर्वशिक सदृश्य कर्मचारियों को 2000 पण मासिक; नायक, व्यावहारिक, अंतपाल आदि को 1000 पण मासिक; अश्वमुख्य, रथमुख्य आदि को 660 पण मासिक; विविध अध्यक्षों को 330 पण मासिक; पदाति सैनिक, लेखक, संख्यायक आदि को 42 पण मासिक और अन्य छोटे-छोटे कर्मचारियों को 5 पण मासिक वेतन मिलता था। यदि इनके अतिरिक्त किसी राजसेवक की राजसेवा करते हुए मृत्यु हो जाती थी तो उसके पुत्र और स्त्री को कुछ वेतन मिलता रहता था। साथ ही, उसके बालक, वृद्ध तथा व्याधिपीड़ित संबंधियों के साथ अनेक प्रकार के अनुग्रह प्रदर्शित किये जाते थे।
2. सैनिक व्यय–सेना के विविध सिपाहियों और अधिकारियों को किस दर से वेतन मिलता था, इसका पूरा विवरण अर्थशास्त्र में मिलता है। मेगस्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में 6 लाख पदाति, तीस हजार अश्वारोही, 9000 हाथी और 8000 रथ थे। यदि अर्थशास्त्र में लिखी दर से इन्हें वेतन दिया जाता था, तो केवल वेतनों में ही प्रतिवर्ष 36½ करोड़ पण खर्च हो जाते थे। इसमें संदेह नहीं कि मगध-साम्राज्य में सैनिक व्यय की मात्रा बहुत अधिक होती थी।
3. शिक्षा–जो व्यय मौर्यकाल में राज्य की ओर से शिक्षा के लिए किया जाता था, उसे देवपूजा कहते थे। अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्रतीत होता है कि अनेक शिक्षणालयों का संचालन राज्य की ओर से भी होता था और इनके शिक्षकों को राजा द्वारा वेतन दिया जाता था। इसे भृति या वृत्ति न कह कर 'पूजा वेतन' (आनरेरियम) कहते थे। इनकी दर प्राय: 500 पण से 1000 पण वार्षिक तक होती थी।
4. दान–बालक, वृद्ध, व्याधिपीड़ित, आपत्तिग्रस्त और इसी तरह के अन्य व्यक्तियों का भरण-पोषण राज्य की ओर से होता था। इस खर्च को दान कहते थे।
5. सहायता–अनेक कार्यों में सरकार की ओर से अनेकविध लोगों की सहायता की जाती थी। मेगस्थनीज के अनुसार शिल्पी लोगों को राज्यकोष से अनेक प्रकार से सहायता प्राप्त होती थी। उन्हें समय-समय पर न केवल करों से मुक्त किया जाता था, बल्कि राज्यकोष से धन भी दिया जाता था।
6. सार्वजनिक आमोद-प्रमोद–वे पुण्यस्थान, उद्यान, चिड़िया घर आदि इस विभाग के अंतर्गत हैं, जिनका निर्माण राज्य की ओर से किया जाता था। राज्य की ओर से पशु, पक्षी, साँप आदि जंतुओं के बहुत-से 'वाट' बनाये जाते थे, जिनका उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना था।
7. सार्वजनिक हित के कार्य–मौर्यकाल में राज्य की ओर से जनता की स्वास्थ्यरक्षा व चिकित्सालय आदि का प्रबंध किया जाता था। दुर्भिक्ष, आग, महामारी आदि आपत्तियों से भी जनता की रक्षा की जाती थी। जहाँ जल की कमी हो, वहाँ कूप, तड़ाग आदि बनवाने का विशेष ध्यान रखा जाता था। राज्य को इन सब में बहुत खर्च करना पड़ता था और राजकीय आमदनी का पर्याप्त अंश इन कार्यों में व्यय हो जाता था।
8. राजा का वैयक्तिक खर्च–राजा का मौर्यकाल में वैयक्तिक खर्च भी कम नहीं था। अंत:पुर बहुत शानदार और विशाल बनाये जाते थे। सैकड़ों दौवारिक और हजारों आंतर्वशिक सैनिक हमेशा राजमहल में विद्यमान रहते थे। राजा बहुत शान के साथ रहता था।

राजा के निजी ठाठ-बाट में भी बहुत अधिक व्यय होता था। केवल पाकशाला (रसोई) का खर्च इतना अधिक था कि चाणक्य ने व्यय के विभागों में उसका भी पृथक् रूप से उल्लेख किया है। राजप्रासाद की अपनी पृथक् पशु-वधशाला (बूचड़खाना) होती थी। राजमहल और अंत:पुर के निवासी स्त्री-पुरुषों की संख्या हजारों में रहती थी। राजा के परिवार के विविध व्यक्तियों को राज्यकोष से वेतन दिया जाता था। इसकी दर भी बहुत अधिक होती थी। युवराज, राजमाता और राजमहिषी को चार-चार हजार पण मासिक और कुमार तथा कुमारियों को एक-एक हजार पण मासिक वेतन दिया जाता था।

संदर्भ

- Sambhu Nath Mondal, Mr Shankar Prasad Saha: Decipherment of the Indus-Brahmi Inscriptions of Chandraketugarh (Gangahrada) - The Mohenjodaro of East India, 2006
- Prithvi K. Agrawala: Early Indian Bronzes, Prithvi Prakashan, 1977
- K. Antonova, G. Bongard-Levin, G. Kotovsky: A History of India, Commonwealth, 2004
- D.C. Ahir: Asoka the Great, B.R. Pub., 1995
- G.C. Chauley: Early Buddhist Art in India (300 B.C. to 300 A.D.), Sundeep, 1998

हिन्दी कविता पर लोक साहित्य का प्रभाव

प्रवीण कुमारी

एम.ए. (एम.डी.यू., रोहतक), पी.एच.डी., सी.सी.एस.यू. (मेरठ)

यद्यपि साहित्य का सीधा संबंध मनुष्य के जीवन से होता है और उसका लक्ष्य मनुष्यता का उन्नयन ही होता है, उसके सभी अंग उतने लोकप्रिय नहीं रहे हैं जितनी कविता। शुरू से ही कविता अपनी रागात्मक शक्ति की प्रबलता के कारण लोकमन से गहरे रूप से जुड़ी रही है। कारण, कविता में सिर्फ व्यक्ति क्शिेष के राग-विराग एवं सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति ही नहीं होती वरन् संपूर्ण समाज के उल्लास एवं शोक के क्षणों को अभिव्यक्ति मिलती है। इसीलिए किसी भी देश के काव्य-साहित्य का आदि स्वरूप एवं उसकी सभ्यता एवं विकास का उत्स वहाँ के लोक जीवन की गंगाधारा में सहज ढूँढ़ा जा सकती है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने लोक साहित्य को आदिम मानव का उल्लास मय संगीत माना है। संभवत: आदिम मानव से उनका तात्पर्य उस जनसमुदाय से है जो आधुनिकता के प्रति कोई रुचि नहीं रखता और अपनी परंपरा की नाल से जुड़े रहने में ही आनंद का अनुभव करता है। अपनी मिट्टी के प्रति वह विशेष आग्रही होता है। परंतु इस स्थापना को स्वीकार कर लेने के बाद भारतीय लोक साहित्य की विशाल संपदा को देखते हुए यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि यहाँ का लोक साहित्य अपनी परंपरा से घनीभूत रूप से जुड़े रहने के बावजूद नये-नये परिवर्तनों के साथ अपनी विरासत को आगे भी बढ़ाता रहा है और जैसे-जैसे लोक में बदलाव होता है वैसे-वैसे लोक साहित्य में भी स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है।

इसका कारण यह है कि मनुष्य स्वभावत: सुखान्वेषी होता है। मोटे तौर पर उसका ध्येय संपत्ति, मान-मर्यादा, पद-प्रतिष्ठा, संतान आदि का पाना और उनका उपभोग करना होता है। परंतु, सारी संपत्ति, मर्यादादि की अनित्यता और जीवन की क्षणभंगुरता उसे उदासी से भर देती है। उसकी दशा कारूणिक हो जाती है। इस के बावजूद मनुष्य अपनी सारी संभावनाओं एवं शक्ति से इस दु:खमय एवं करुण जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता ही है। मानव की चेतना मन की जिस बुनियादी अवस्था से प्रभावित होती है वह यही दु:खमय भव-चक्र है। सुख एवं दु:ख को, मिलन एवं विरह को, जीवन एवं मरण को कैसे ग्रहण करें– किस रूप में अंगीकार करें, कैसे झेलें, कैसे नियंत्रित करें–यही बातें लोक-साहित्य के उत्स की भूमि है। यहीं से लोक-साहित्य का मर्म उत्पन्न होता है। मन के सुख-दुखात्मक होने की इस प्रवृत्ति का नैसर्गिक कारण संभवत: इन्द्रियों का बहिर्मुखी होना है जिसका समापन अंतत: करुणा में होता है और संभवत: इसीलिए जीवन और साहित्य में करुण रस को प्रमुख माना गया है–''एको रस: करुण एव'' कहकर। यही करुणा लोक-साहित्य में विविध स्रोतों से एवं विविध रूपों में प्रकट होती है। तभी रामनरेश त्रिपाठी कहते हैं–''ग्रामगीत किसी पुरुष या स्त्री विशेष की रचना नहीं है बल्कि स्वयं प्रकृति का गान है। यह गान प्रकृति ने हृदय में बैठकर किया है। इसमें मष्तिष्क का मेल नहीं है। इन गीतों द्वारा एक समाज की सरस्वती बोली है।'' लोक साहित्य प्रकृति का गान है–इसका अर्थ है लोक साहित्य सामाजिक रचना है जिसकी रचना तो व्यक्ति-विशेष ही करता है मगर वह रचनाकार संपूर्ण श्रोता-भोक्ता समाज का प्रतिनिधि होता है। समाज भाव-राशि है तो रचयिता एक माध्यम। ऐसा लोक साहित्य संपूर्ण समाज का धरोहर हो जाता है जिनको शिष्ट समाज में रहकर भी मानव भूलता नहीं, भूल ही नहीं सकता। लोक-साहित्य में मानव की अनुभूतियों का साधारणीकरण हो जाता है क्योंकि उसमें संस्कृति का अकलुष रूप प्रवहमान होता है। आजकल इसे ''फॉक सांग्स'' या ''फॉकलोर'' कहा जा रहा है जिसका अर्थ है–शिष्ट या श्रेण्य साहित्य से इतर का साहित्य।

संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा रही या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है परंतु यह निश्चय है कि उसके दो भेदों–वैदिक तथा लौकिक–में से लौकिक संस्कृत को पाणिनि ने व्याकरणबद्ध किया। इसी लौकिक संस्कृत को कालांतर में संस्कृत या देवभाषा कहा जाने लगा। परंतु व्याकरणबद्ध होकर भी संस्कृत अबाध गति से विकसित होती रही। हेमचंद्र एवं मार्कण्डेय इस विकसित भाषा प्राकृत के प्रसिद्ध वैयाकरण हुए। प्राकृत-काल का प्रथम चरण (500 ई॰ पू॰ से सन् ईस्वी तक) पालि का है। दूसरा चरण (सन् ईस्वी से 500 ई॰ तक) प्राकृत का एवं तीसरे चरण की लोकभाषा अपभ्रंश है।

पालि में धम्मपद एवं मिलिन्दपनहो आदि प्रमुख ग्रंथ हैं पर मूलत: यह भाषा जातक-कथाओं के कारण लोकप्रिय हुई। स्वयं बुद्ध की इच्छा थी कि ''लोग अपनी-अपनी भाषा में उनके उपदेशों को पढ़ें।''[1] बौद्धों एवं जैनों ने ''गाथा'' नाम से प्रचुर साहित्य की रचना की। इन गाथाओं में इस काल की प्रसिद्ध लौकिक कहानियों का सारांश प्रस्तुत किया गया है जिनका विकास गुणाढ्य की वृहत् कथा में होता है। गाथा सप्तशती की कविताओं का प्रभाव परवर्ती अपभ्रंश एवं हिन्दी कविता पर स्पष्ट देखा जा सकता है। अपभ्रंश भाषा के प्राचीनतम उदाहरण नाट्यशास्त्र में मिलते हैं जिसके चौदहवें अध्याय में नाट्यधर्मी एवं लोकधर्मी प्रवृतियों का उल्लेख हुआ है तथा इसी आधार पर रूपकों-उपरूपकों के कई भेद किए गए हैं। अपभ्रंश में अनेक जैन काव्य ग्रंथ भी मिलते हैं जिनका ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व है जिनमें जम्बूसामी रास, आदि पुराण, दोहाकोश, पाहुड़ दोहा, पडम चरिउ तथा भविसयत्त कथा का विशेष स्थान है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इन ग्रंथों की चर्चा की है। अपभ्रंश को लोकप्रचलित काव्य-भाषा भी कहा गया है और साहित्यक भाषा का रूप ग्रहण करने के पूर्व इसे देश भाषा कहा जाता था। भाषा की दृष्टि से यह देश भाषा काव्य ही वस्तुत: लोकभाषा है जिसके माध्यम से लोक-साहित्य विविध काव्य-रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। यह साहित्य दोहा शैली में है, दोहा-चौपाई शैली में है तथा गेय पदों के रूपों में भी है।

''मंत्रयान, ब्रजयान एवं सहजयान के सिद्ध योगी चाहते थे कि उनके विचार अधिकाधिक जनता तक पहुँचे फलत: उन्होंने अपभ्रंश-मिश्रित देशभाषा को माध्यम बनाया। इसे हिन्दी साहित्य पर लोकभाषा का सर्वप्रथम प्रभाव माना जा सकता है।''[2] ये सिद्ध रहस्यमार्गियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार अपनी 'बानी' को पहेली के रूप में उस तरह रखते थे कि उनसे कुतूहल एवं जिज्ञासा उत्पन्न हो तथा कोई बिरला ही बूझे। ''बलद बियाएल गबिया बांझे, पिटा दुहिए एतिना सांझो'' जैसी उक्तियों को लोक जीवन में प्रचलित पहेलियों का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। निर्गुणमार्गी कवियों ने कालान्तर में इसी तरह की उलटवांसियों का भरपूर प्रयोग किया है।

महान् व्यक्तित्व के धनी सरहपा ने अपने अभिनव विचारों को एक नये अपभ्रंश में अभिव्यक्त किया जिसे हेमचन्द्र ने ग्राम्य अपभ्रंश तथा पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अग्रसरीभूत अपभ्रंश कहा है। ''सरहपा ने न केवल पूर्वी गीत परंपरा के रूप विधान को प्रभावित किया बल्कि उसके कथ्य को भी अनुप्राणित किया तथा आमुष्मिकता एवं ऐहिकता का संयोग घटित किया है। शास्त्रीयता से स्वच्छंदता की ओर अभिनिवेश पूर्ण गमन सरहपा की विशेषता है। इसके भूरिश: प्रमाण हैं, वे वर्णवृत्तों से मात्रिक छंदों की ओर आए मार्गी संगीत से देशी संगीत की दिशा में अग्रसर हुए तथा निर्वाण की जगह संसार को महत्व दिया। वे बुद्ध की तरह लोकभाषा के समर्थक, ब्राह्याचार विरोधी, रूढ़िभंजक, जीवन की वीणा के संवादी सुरों के प्रशंसक तथा विचार-स्वातंत्र्य के पुरस्कर्त्ता थे। ग्रंथों की गुलामी, गुरूडम, गतानुगतिकता एवं परंपरा से निष्कृति का उन्होंने मंत्रोच्चार किया। उन्होंने संस्कृत का प्रकांड विद्वान होकर भी लोकभाषा में लिखा और शास्त्र को लोक के पास ले आए।''[3] उनकी भाव-भाषा, लोकोक्ति व्यंग्योक्ति एवं उलटवांसियों को कबीर एवं उनकी शिष्य-परंपरा ने पूरी तरह आत्मसात किया है।

सिद्ध-नाथ-पंथ की जो विशेषताएँ संत-काव्य परंपरा में दिखाई देती है वे महाराष्ट्रीय संत काव्य-परंपरा में भी स्पष्ट दिखती है जिनका प्रारंभ कबीर से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व हो चुका था और जिसमें मुकुंदराज, चक्रधर, नामदेव एवं संत ज्ञानेश्वर (1275-1393) जैसे संत गुरू-महिमा, ब्रह्म-जीव-संबंध पंचमहाभूत, सगुण-निगुर्ण, जाति-विरोध, आदि कवियों को सहज शैली में जनसामान्य तक पहुँचाने की शुरूआत कर चुके थे। मराठी-संत काव्य परंपरा हिन्दी संतकाव्य परंपरा का मेरूदंड है।

15वीं-16वीं सदी में पूर्वोत्तर भारत में फैले नाथ-पंथी योगियों ने भी लोकभाषा को ही अपने सिद्धांतों के प्रचार का माध्यम बनाया। राजा भरथरी का गीत लोक कथानक ही है जिस का प्रभाव कबीर, दादू, नानक आदि की बानी पर स्पष्ट दिखाई देता है। भरथरी का गीत देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश में है। आचार्य शुक्ल ने भी लोकभाषा के साहित्य का होना स्वीकार किया है जो चारणों-भाटों द्वारा राज्याश्रय तक पहुंचा था। आगे उन्होंने पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो एवं आल्हा की चर्चा की है जो वस्तुत: लोकभाषा का साहित्य है। प्रशस्ति-काव्यों से अधिक इस युग के प्रेम-काव्य लोकगीतों से प्रभावित है। ढोला मारू रा दोहा, थेरी गाथाओं के ललित गीत, प्राकृत की गाहा सतसई, मुंज के दोहे तथा सनेस रास ऐसे ही उदाहरण हैं। वीरगाथा काल के समाप्त होते-होते खुसरो अपनी लोकगीत-शैली का परिचय देते हैं। ''अम्मा मेरे बाबा को भेजेगी कि सावन आया''-शत-प्रतिशत लोकगीत का आभास देता है। विद्यापति की पदावली की भाषा वह मैथिली है जो जनसामान्य में बोली जाती थी। ''देसिल बयना सब जन मिट्ठा।'' विद्यापति की अपभ्रंश रचनाओं में भी दोहा-चौपाई, छंद एवं गाथा मिलते हैं तथा भाषा का रूप बहुत कुछ पूरबी या पूरब की बोली है। पदावली आद्यंत लोक-तत्वों से समृद्ध है।

भक्तिकाल में शिष्ट या श्रेण्य साहित्य या वेद-पंथ का लोक-साहित्य से एक मजबूत सान्निध्य होता है। इस काल की पराधीन स्थिति एवं दरबारी मानसिकता के दबाव के बीच भी अगर उच्च कोटि की काव्य रचना हुई तो इसका कारण यही है कि समाज के ऊपरी धरातल के कदम के नीचे सामान्य ''लोक'' की अजस्र अंत:सलिला मौन किंतु शक्तिशाली रूप से विभिन्न तटों को

प्रभावित कर रही थी। कवि-भक्तों ने महसूस किया और कराया कि भक्ति के बिना शास्त्र-ज्ञान एवं पाण्डित्य व्यर्थ है।'' प्रमाणों के बल पर यही अनुमान होता है कि शास्त्रों से लोक बेपरवाह होता जा रहा था।''[4] यही कारण है कि भक्त-कवियों ने अकस्मात ''प्राकृत जनगुणगाना'' का पूर्ण तिरस्कार कर दिया, कविता जनोन्मुख होती गई, निगमागम छूटते गए, प्रशस्ति काव्य-सृजन रूका-संस्कृत भाषा का तिरस्कार हुआ। कुल मिलाकर भक्ति साहित्य वेद-परंपरा के विरुद्ध लोक-मन के विद्रोह का साहित्य है। कबीर का मन पूरी तरह लोक-मन है। ''हाथ में कुंडी बगल में सोंटा'' वाले कबीर को, मसि-कागद नहीं छूने वाले कबीर को ''चारो दिशा जगीरी में'' मिल गई है। उन्होंने ईश्वर-कृपा एवं गुरू कृपा से प्राप्त प्रतिभा को अशिक्षित-अनपढ़ लोक-मन की ओर मोड़ा है। कबीर परंपरा के सारे संतों ने पोथी (शास्त्र) का बहिष्कार कर लोक-परंपरा, लोक-विश्वास एवं लोक-जीवन के मूल्यों को काव्य का विषय बनाया है। रज्जब कहते हैं–

सुमिरन करे सो सास्तर, बुधि उपजे सो वेद ।
विषया तजे सो व्याकरण, रज्जब पाया भेद ।

डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय का विचार है कि ''कबीर की कविता पूरे उत्तर भारत की कविता है। ''बोली हमारी पूरबी'' का तात्पर्य यही है कि कबीर की कविता भोजपुरी की कविता है।''[5] यही कारण है कि कबीर की कविता लोकधुनों एवं निर्गुण-भजन के रूप में आज तक बजती रही है। शुक्ल जी ने ''सूरसागर'' को ''किसी चली आती हुई गीत-काव्य-परंपरा का, चाहे वह मौखिक ही क्यों न हो, पूर्ण विकास'' कहा है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि ''वैष्णव भक्ति-पद महायानों की भक्ति का ही विकसित रूप है यहां तक कि नाम-संकीर्त्तन भी'' तथा ''वैष्णव-धर्म शास्त्रीय-धर्म से लोक-धर्म अधिक है।'' तात्पर्य यह कि संपूर्ण भक्ति-साहित्य लोकोन्मुखी है। यह शास्त्रों से न शुरू होता है न अंत करता है। लोक-संवेदना ही इसकी प्रस्थान बिन्दु है। कोई छोटा-बड़ा नहीं है, सब एक ही प्रभु की संतान हैं तथा प्रभुवर्ग की संपन्नता एवं शक्ति आम आदमी के स्वाभिमान के समक्ष कुछ नहीं है–इन सिद्धांतों को जनमानस ने महारसायन की तरह स्वीकार किया है। संत ज्ञानेश्वर की ''ज्ञानेश्वरी'' के तीसरे अध्याय में अर्जुन कृष्ण से निवेदन करता है–भगवान, इसे मराठी में कहें।'' यह भक्तिकाल का सबसे क्रांतिकारी वाक्य है क्योंकि एक देवता से देववाणी छोड़कर लोकवाणी स्वीकारने को कहा गया है। पहली बार दलितों-उपेक्षितों ने भी अपनी मातृभाषा में अपने अनुभव रखे। यह लोक वर्चस्व का प्रारंभ है। भक्ति काल में आम जनता भी कवि बनी है।

यद्यपि रीति-काव्य श्रृंगार-प्रधान एवं लाक्षणिक काव्य माना गया है तथापि यह लोक-तत्त्वों से पूरी तरह उदासीन नहीं है। सतसई-काव्य में जीवन की विविध सरणियों एवं अनुभवों को अनुस्यूत किया गया है। मुक्तकों, लोकोक्तियों एवं कहावतों में, ऋतु-वर्णन के सवैयों में, सौंदर्य-वर्णन एवं वियोग-वर्णनों में लोक-रूढ़ियों को पर्याप्त स्थान मिला है। सेनापति ने जाड़े में ठिठुरती गरीब औरत की आंखों में चूल्हा जलाते समय बहने वाले लोर का चित्रण किया है। पद्माकर ''तीज'' का वर्णन करते हैं। महावर, बेदी, काजर, अंजन, अंगराग, तरौना, बेसर, बिछुआ नथ, हार, वाजूबंद, करघनी, पायल, उपटन सब लोक जीवन के ही तो उपजीव्य हैं। भारतेन्दु-युगीन काव्य की प्रवृत्ति बहुत कुछ भक्ति युगीन प्रवृत्ति ही है। इस काव्य में सब प्रकार की सामाजिक समस्याओं को लोक भाषा के द्वारा लोक-तात्त्विक प्रयोगों द्वारा आमजन तक पहुंचाने की कोशिश की गई है। भारतेन्दु ने व्रजभाषा (लोकभाषा) को ही काव्य-भाषा रहने दिया, अनेक लोकप्रिय पौराणिक इतिवृत्तों को गेय बनाया तथा अनेक क्षेत्रीय भाषाओं-उपभाषाओं के शब्दों का निराभास प्रयोग किया, लौकिक छंदों, कजरी, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, होरी, चैता, विरहा, लावनी, कजरी एवं गजल आदि को पुनः प्रतिष्ठित किया। भारतेन्दु मंडल के कुछ कवियों ने विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, कन्या की विदाई के गीत, जेवनार के समय की गाली, विनय, स्तुति, पराती, भजन, आरती, कीर्तन, लोरी, संझा एवं नेग-निछावर-परिक्षावन तक के गीत लिखे। इस तरह लोक यहाँ भी विस्मृत नहीं हुआ है।

द्विवेदी युगीन काव्य में खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई मगर कवि कलाकारी-पच्चीकारी, शब्द-चातुरी एवं बौद्धिकता से दूर ही रहे। गुप्त जी ने यशोधरा में ''लोरी'' लिखी। हरिऔध ने जन्मोत्सव-नामकरण आदि लोक संस्कारों पर व्रज भाषा में भी गीत लिखा और शकुन-अपशकुन, स्वप्न-विचार, मुहूर्त-विचार, झाड़-फूंक, देवी-देवताओं की मनौती–सब को ''प्रियप्रवास'' में स्थान दिया जो मूलतः लोकमन में निवास करते हैं।

संदर्भ

1. आधुनिक हिन्दी कविता का शिल्प, हरदयाल।
2. आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, हरी चरण शर्मा।
3. आधुनिक हिन्दी कविता का वैचारिक पक्ष, रतन कुमार।
4. आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, विनोद कुमार मिश्रा।

‘कफन’ कहानी : समीक्षा

डॉ० मीना कुमारी

सहायक प्रोफेसर, विभाग - हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, नारनौल

शोधालेख सार

प्रेमचन्द हिन्दी के उन थोड़े लेखकों में एक हैं, जिनके साहित्य पर अलग-अलग कोणों से विचार किया गया है। हिन्दी में जब दलित विमर्श का आरम्भ हुआ तो सबसे पहले चर्चा में प्रेमचन्द ही आए, क्योंकि हिन्दी साहित्य के 1936 तक के इतिहास में वे अकेले ऐसे लेखक हैं, जिसने दलित परिवार में जन्म तो नहीं लिया, लेकिन जिसने उनकी पीड़ा और संघर्ष को पूरी ताकत से वाणी दी। दलित विमर्श से जुड़े कुछ विमर्शकारों ने प्रेमचन्द की घनघोर आलोचना की, तो कुछ ने यह माना कि प्रेमचन्द उनके आदर्श नहीं, प्रेरणास्त्रोत हो सकते हैं।

मुल शब्द: कफन, दलित समाज, उल्लास, संवेदनहीन, सवर्ण, पूंजीवादी व्यवस्था

भूमिका

"प्रेमचन्द का दलित-विमर्श व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। इसमें केवल अस्पृश्य जातियों का ही दर्द नहीं है, बल्कि वे सब निम्न जातियां है, जो दलित समाज का अंग है। इस संबंध में स्वामी विवेकानन्द की जो दृष्टि थी, वही प्रेमचन्द की है। प्रेमचन्द के दलित-विमर्श में चमार, भंगी, बंजारे, अनाथ, दाई, माली, गोंडिन, भुनगी, कहारिन, धोबी, मदारी,-मदारिन, घसियारा, शुद्र, हरकारा, भगत, कंजड़, गरीब, गुंडा, घसियारिन, नौकर, आदि अनेक निम्न जातियों का समाज है और उनके पात्र एवं उनके घर-परिवार तथा जीवन की कहानियां है। इसमें तिरस्कृत पीड़ित शोषित, दमित सभी नीच जातियां है, वे चाहे अस्पृश्य है या अपृश्य, पर वे सभी दलित हैं।"

प्रेमचन्द के विपुल साहित्य में से उनके सृजनात्मक साहित्य में अभिव्यक्त दलित विमर्श से ही अधिकांश विवाद पैदा हुए है। उनकी ‘कफन’ कहानी पर ‘दलित विरोधी’ होने का आरोप लगा है। परन्तु यह सत्य नहीं। भले ही विमर्शकारों ने उनकी निन्दा या आलोचना की हो।

प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी ‘कफन‘ (दिसम्बर, 1935) के संबंध पर चर्चा करना जरूरी है। ‘‘कफन कहानी की अनेक पहलुओं से व्याख्या हुई है, किन्तु मेरी दृष्टि में यह मृत्यु पर जीवन की विजय की कहानी है। घीसू और माधव कफन के पैसों से अपने जीवन की सबसे बड़ी इच्छा पूरी करते हैं। वे मयखाने में बैठकर शराब पीते है, खूब खाते हैं और आनंद की अनुभूति में आत्म-विभोर होकर नाचते-गाने लगते है और गिर पड़ते है। अत: कफन को दलित-विरोधी कहानी कहने का कोई औचित्य नही हैं, जबकि कहानी में मौत और कफन के परिवेश में उसके पात्र, चाहे कुछ क्षणों के लिए सही, अपनी चिर लालसा को तृप्त करते है और आनन्द-विभोर होकर नाचने लगते हैं।

‘‘भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पुडियों का पतल उठाकर एक भिखारी को दे दिया और देने के गौरव आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई।

‘कफन’ कहानी पर हिन्दी साहित्य में जो बहस उठी थी, हिन्दी आलोचकों ने उसे गम्भीरता से नहीं लिया है। जो कहानी दलित जीवन को नाकारा, अकर्मण्य सिद्ध करती हो, उन्हे असभ्य, नीच गैर जिम्मेदार बताती हो, वह कहानी आज भी हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में पाठ्यक्रमों में पढ़ाई जा रही है। इसी तरह गोदान के सिलिया प्रसंग को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है।

सवाल यह है कि घीसू और माधव नामक चरित्रों के माध्यम से प्रेमचन्द क्या दिखाना चाह रहे थे। उनमें मानवीय मूल्यों के क्षरण का चित्रण क्या आरोपित प्रतीत होता है। क्या कहीं यह कहानी दलित समाज को गैर जिम्मेदार दिखाने में भूमिका निभाती है। जिनके लिए बुधिया स्त्री नहीं अपनी जरूरतें पूरी करने का औजार मात्र है। उससे पत्नी या बहू के रिश्ते का मानवीय बोध उनमें मर चुका है। बच्चा और बुधिया जीते हैं या मरते हैं, इसकी बहुत अधिक चिंता उन्हें नहीं है। इस तरह के संवेदनहीन चरित्रों के लिए भूने जा रहे आलुओं में अपने हिस्से की चिंता होना स्वाभाविक है। अब जरा दलित दृष्टिकोण से 'कफन' कहानी को देखें। यदि आप दलित अस्मिता को दृष्टि में रखकर कहानी का विश्लेषण करेगें या घीसू और माधव को दलितों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मानकर इस कहानी की व्याख्या करेगें तो दिक्कत होगी ही। एक दलित के मन में घीसू और माधव का ऐसा आचरण देखकर कैसा बोध जागेगा।

वहां प्रेमचन्द की वही दृष्टि काम कर रही है जो समाज में जातिगत असमानता को लेकर उनके अन्दर विकसित हुई थी। समस्या वहां आन खड़ी होती है जहां आलोचक जातिवाद के प्रति प्रेमचन्द के दृष्टिकोणा को भुलाकर 'कफन' कहानी के पात्रों को दलित वर्ग से सायास उठाया हुआ मान लेते है। यह सायास गढ़ी गई कहानी नहीं है। घीसू और माधव जैसा निठल्लापन लिए पात्र न ही किसी समाज के प्रतिनिधि है और न ही अपवाद। ऐसे मिलते-जुलते चरित्र किसी भी वंचित जाति से हो सकते हैं। इसके लिए जाति विशेष को किसी तरह का दोष देना भी एक तरह का पूर्वग्रह होगा, क्योंकि घीसू और माधव को इन स्थितियों तक लेकर आने के लिए जिम्मेदार वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें कुछ जातियों को हाशिये पर रखकर सदियों से उनके शोषण का सिलसिला कायम रखा।

जहां तक 'कफन' कहानी का संबंध है, घीसू और माधव जैसे पात्रों की निर्मिती और उनमें मानवीय मूल्यों में क्षरण के तर्क कहानी में ही मौजूद है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं लिया जा सकता कि दलित समाज के आचरण का प्रतिनिधित्व घीसू और माधव करते हैं, चिंतन में समस्या वहाँ आती है जब वह इन्हें प्रतिनिधि पात्रों की तरह देखना शुरू कर देते हैं। दलित समाज में शोषण के विरोध में संघर्ष के कारगर तरीके खोजने वाले पात्र अपनी जगह होगें, संघर्ष करके और विरोध सहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तित्व भी वहां होंगें, विद्रोही चरित्र भी होगे और घीसू-माधव जैसे पात्र भी। स्याह और सफेद हर समाज की हकीकत है। जब मेहनत-मजदूरी करके भी कोई जाति जलालत और भूख से निजात नहीं पा सकती तो फिर वहां कुछ लोगों के स्वभाव में कामचोरी और अकर्मण्यता स्वाभाविक रूप से आ सकती है, जो अमानवीयता की पराकाष्ठा तक भी जा सकती है। इन्हीं पात्रों की फितरत का वर्णन प्रेमचन्द ने 'कफन' कहानी में घीसू और माधव जैसे पात्रों के माध्यम से किया है कहानी में यह कतई आभास नहीं होता कि घीसू और माधव दलित समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं, बल्कि उनके अमानवीय होने के पीछे के कारणों पर विचार करने के लिए यह कहानी पाठक को प्रेरित करती है।

प्रेमचन्द की दलितों के प्रति क्या दृष्टि थी। क्या वह सवर्णो को किसी प्रकार की छूट देने के पक्ष में थे या फिर उन पर सवर्ण होने के नाते किसी तरह के पूर्वग्रह हावी थे। फिर क्यों उनके लिए प्रसव पीड़ा से जूझ रही बुधिया की पीड़ा से ज्यादा महत्वपूर्ण भूने हुए आलू हैं। हमें देखना होगा कि घीसू और माधव ऐसे पात्र है। कहानी यह प्रश्न उठाती है कि इन पात्रों में संवेदनाओं के क्षरण का जिम्मेदार कौन है। प्रेमचन्द के अनुभव और दृष्टि में समाज के जिस वर्ग से यह पात्र आए, उन्होंने एक बेहतर कहानी के रूप में स्थितियों को ढाल दिया। कहना जरूरी है कि एक बेहतर रचनाकार की दृष्टि समाज में मौजूद उन कारणों की ओर भी जाती है जिनकी उत्पत्ति के कारणों को समाज सामान्यत: लक्षित नहीं कर पाता।

'कफन' कहानी एक यथार्थवादी है समाज में व्याप्त शोषण व्यवस्था व उनके दुष्परिणामों को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। सदियों से पेट की भूख ने उन्हे पशु तुल्य, आलसी और निकम्मा बना दिया है। भारतीय समाज में अगर घीसू और माधव काम न करने के कारण भूखे मर रहे हैं तो काम करने वालों की स्थिति भी अधिक अच्छी नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था आदमी को भर पेट भोजन के बिना रखती है। इसी कारण अपने ही परिवार के एक सदस्य के मरने से ज्यादा चिंता उन्हे अपने पेट भरने की होती है। बुधिया के मर जाने के बाद जब कफन के लिए चन्दा आता है तो दोनों हल्का कफन लेने की बात पर सहमत होते हुए कहते हैं ''रात को कफन कौन देखता है लाश उठते-उठते रात हो जाएगी, कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है।" प्रताड़ना व अत्याचार को सहन करते हुए कभी-कभी उनके मन में कर्म व खुशहाल जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। जिसका वर्णन 'कफन' कहानी में किया गया है। यह कहानी आलोचना की दृष्टि से बहुत ही चर्चित रही है। इस कहानी के आधार पर प्रेमचन्द पर आरोप लगाया जाता है, कि वे दलितों के सच्चे समर्थक नहीं है। इस कहानी में घीसू और माधव गरीब व कामचोर

पिता-पुत्र है, जो कि पूरे गांव में बदनाम हैं। वे दोनों आलू खाते रहते हैं और माधव की पत्नी प्रसव पीड़ा के कारण मर जाती है। उनके कफन के लिए इक्कठे किये गए पैसों से वे भरपेट भोजन करते हैं। माधव ने कभी भरपेट स्वादिष्ट भोजन नही किया है और घीसू ने बीस साल पहले किसी बारात में भरपेट खाना खाया था। कहीं ना कहीं उनकी बेकारी व कामचोरी का मूल कारण पक्षपात व अन्याय है। इसलिए मुंशी प्रेमचन्द जी ने घीसू और माधव के विषय में कहा है कि, ''जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न भी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहां इस तरह की मनोवृति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।"

''माघव की पत्नी मर जाती है तब जमीनदार सहित गांव के बड़े-बडेघ लोग मदद करने से मना नही करते और कफन के लिए पांच रूपये जमा हो गए तब माधव कहता है -

''कैसा रिवाज है, जिस औरत को जिंदा रहते हुए अच्छे कपड़े पहनने के लिए नहीं मिले, उसे मरने पर नया कफन ओढाना होगा। ये पांच रूपये मिलते तो अच्छे से दवाई कर लेते। शायद आज वो जिन्दा होती।"

यह हमारे समाज की विडम्बना है कि कुछ लोगों द्वारा प्रेमचन्द की किसी रचना पर कोई आरोप लगा देना, फिर दूसरे पक्ष द्वारा उसकी सफाई प्रस्तुत करना हिन्दी आलोचना में एक प्रवृति बनती जा रही है। अभियुक्त की तरह सफाई देने में यह पद्धति असल में मनमाने आरोपों का जवाब देने की बजाय इस प्रवृति को ओर प्रोत्साहित करने का ही काम कर रही है। कफन कहानी की जिस प्रकार परस्पर विरोधी व्याख्याएं हुई है उससे यह कहानी श्रेष्ठ साहित्य की ही नहींं अपितू मानवीय साहित्य होने पर भी संदेह बताया है। जहां कुछ आलोचकों ने इसे श्रेष्ठ कहानियों में माना है, वहीं कुछ आलोचक इसे घटिया कहानी मानते है। जबकि कुछ आलोचकों के लिए यह एक दारूण चित्रण है, कुछ के लिए यह एक दलित विरोधी कहानी है। जहां कुछ लोग इसे अत्यन्त यथार्थवादी कहानीी मानते हैं।

विवाद केवल कफन पर ही नहीं है। प्रेमचन्द की संवेदना और उनकी दृष्टि को भी लेकर है। कफन कहानी आलोचकों के अनुसार संवेदना और दृष्टि के हिसाब से अनैतिक है। कफन कहानी इस तरह के विवादों में घिरी हुई है।

"कफन" पर होने वाले विवादों के आलोक में हम और प्रेमचन्द की संवेदना का तो विश्लेषण करेगें। कफन कहानी पर विवाद पहले भी चलते रहे है और आज भी हो रहे है। कफन कहानी पर एक चौकाने वाली व्याख्या सामने आई है।

बहुचर्चित विचारक डॉ0 धर्मवीर ने प्रेमचन्द सामन्त का मुंशी नानक पुस्तक में की है। इसमें डॉ0 धर्मबीर ने दो बातों पर आपत्ति उठाई है पहली बात यह कि प्रेमचन्द कायस्थ यानि सवर्ण हिन्दु थे तो उन्हे सवर्णो पर ही कहानी लिखनी थी। प्रेमचन्द ने जैसे लिखा है - ''कि चमारों का कुनबा था और सारे गांव में बदनाम।"

इसलिए जिसे हम घीसू और माधव को असंवेदनशीलता का नाम दिया जाता है वह असलियत में उनका विद्रोह है वरना स्वयं सोचिए कौन ऐसा पिता होगा जो अपने बच्चे को ऐसे छोड़ देगा। घीसू और माधव को यह बर्दाश्त नहीं था कि किसी ओर का बच्चा उनके सिर पर थोप दिया जाए इसलिए उन्होने इस परम्परा पर रोक लगानी थीं' इसके लिए ''चाहे बुधिया मरे और चाहे बुधिया के पेट का बच्चा मरे प्रेमचन्द चूंकि सांमत और जमींदार के मुंशी थे इसलिए सच को छुपा गए।' ऐसे अनेको विवाद प्रेमचन्द पर लगे है।

निष्कर्षतः -

कहानी 'कफन' में कथानक की मूल संवेदना यह है कि आधुनिक, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी और निकम्मे समाज-व्यवस्था के कारण सर्वहारा वर्ग कितना स्वार्थी, कामचोर और जड़ हो जाता है कि वह अपनी मृतक पुत्रवधू और पत्नी के कफन के लिए एकत्रित चन्दे के धन को शराब पीने में व्यय कर डालता है और अन्त में अपने कुकृत्य के लिए समाज को कोसता है। कहानी में ग्रामीण परिवेश की रूढ़ि ग्रस्तता और बेकारी का भी सफल चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द जी ने आर्थिक शोषण के विरूद्ध क्रान्ति भावना भरना तथा गरीब व्यक्ति किस स्तर तक संवेदन शून्य और जड़ बन जाता है घीसू और माधव इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

सन्दर्भ सूचि -

1. डॉ0 धर्मबीर भारती: - प्रेमचन्द: सामन्त का मुंशी।
2. प्रेमचन्द : ''कफन" कहानी

हिन्दी साहित्य में बुद्ध की प्रासंगिकता

डॉ० वर्षा रानी

हिन्दी विभाग, नालंदा महिला कॉलेज, बिहारशरीफ, नालंदा

समीदृय अध्ययन ''हिन्दी साहित्य में बुद्ध की प्रासंगिकता'' का साहित्यिक अध्ययन है। बौद्ध के विचार में साहित्य नीहत् न होकर समुचित व्यवस्था को दर्शाती है। हिन्दी साहित्य में बुद्ध का स्थान एक परोपकारी एवं सृष्टि संरचना के वैचारिक दृष्टिकाण को प्रस्तुत करता है जिसमें नदी के प्रवाह की तरह होता है, जो निरंतर आगे बढ़ता है। उसमें न कोई रूकावट आती है और न ही कोई उसे भंग करता है। हाँ समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन आते रहते हैं और परिवर्तन के अनुरूप ही साहित्य को नयी व प्रवृत्तियाँ, नयी दिशाएँ मिलती है। किसी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धराओं एवं विविध प्रवृतियों के आधार पर उसे विभाजित करना है। हिन्दी साहित्य में बौद्ध द्वारा विभिन्न जातको और शिलालेखो द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिसमें विनय पिटक का स्थान सबसे उपर माना जाता है। युग की परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृतियाँ परिवर्तित होती रहती है। हिन्दी साहित्य के विषय में यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन बौद्ध के विभिन्न प्रसांगिकता पर हिन्दी साहित्य द्वारा प्रस्तुत किये गये है।

कुंजिकाः हिन्दी साहित्य, नैतिक उत्थान, भारतीय इतिहास, प्रवृतियाँ, परिवर्तन इत्यादि।

हिन्दी भारत की मूल भाषा है इसकी उत्पत्ति हमारे प्राचीन शास्त्रों में भी अंकित है जहाॅ पर वृहस्पति, मनु और कौटल्य जैसे विचारको ने हिन्दी साहित्य की प्रासांगितका को प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक हिंदी साहित्य की विधिवत शुरूआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हुई है और लगभग यही समय भारत में लुप्तप्राय बौद्ध धर्म के पुर्नजागरण-काल का भी है। इस समय जेम्स प्रिंसेप और अलेक्जेन्डर कनिंघम जैसे पुरातत्वविदों और मैक्समूलर जैसे उदभट संस्कृत विद्वानों के सत्प्रयास से बौद्ध धर्म के तीर्थस्थलों, स्मारकों व पाली एवं संस्कृत बौद्ध साहित्य का पुनरुद्धार हुआ।[1]

हिन्दी साहित्य की संरचना एवं इसकी उपब्धि इस बात से भी लगाई जा सकती है कि विश्व का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय नालंदा जो कि अब खण्डर में तबदिल हो गया है वहाॅ भी कुछ साक्ष्य हिन्दी साहित्य संरचना के मिले है। भारत में भी बौद्ध धर्म के इस पुनर्जागरण का श्रेय कुछ हद तक पाश्चात्य-जगत को जाता है जिसने इसमें रूचि ली और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित स्थलों व साहित्य का परिष्कार किया। एक ओर ईसाई धर्म के प्रोटेस्टेंट मत वाले ब्रिटेन ने बौद्ध धर्म के 'सुधारवादी रूप', स्थाविरवाद (थेरवाद) में अपनी रूची दिखाते हुए अपने अधीनस्थ श्रीलंका के स्थविरवाद बौद्ध धर्म के पाली ग्रंथों को प्रकाशित किया तो दूसरी ओर कैथोलिक मतानुयायी फ्रांस एवं इटली के विद्वानों ने चीन, जापान एवं तिब्बत में उपलब्ध महायान सूत्रों और भाष्यों में अपनी रूचि दिखायी।[2] ओल्डेन बर्ग, रिज डेविड्स, स्त्चेरबातस्की जैसे बौद्ध विद्वानों के प्रयत्नों से संस्कृत एवं पाली ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुए तथा बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण तथ्यों और साहित्य से बाह्य जगत को अवगत कराया। एडविन आर्नाल्ड, सोपेनहावर तथा हर्मन हेसे जैसे दार्शनिकों और साहित्यकारों अपनी रचनाओं के विषय वस्तु के रूप में बुद्ध और बौद्ध दर्शन को ग्रहण कर उसकी मुक्तकंठ प्रशंसा की।

महात्मा बुद्ध जिन्हें सिद्धार्थ के भी नाम से जाने जाते है इनका भी जीवन काल जन्म और मृत्यू के बीच खोज में बितती है और उन्हे यह स्मरण में साहित्य के द्वारा प्रकाश में आता है जिसमें वे राम का अनुसरण करते हुए यह पता लगाने का प्रयास करते है कि क्या जीवन केबल सूख भोगने और विपत्तीयों का सामना करने के लिए ही बना है। अतः बौद्ध धर्म के इस पुनर्जागरण ने हिंदी जन-मानस को भी प्रभावित किया। ईश्वरवाद और आत्मवाद के अनिच्छुक इस धर्म दर्शन के समन्वयवादी रूप ने आधुनिक हिंदी

साहित्य को एक नयी स्फूर्ति और चेतना दी लेकिन फिर भी एक बात स्पष्ट है कि आरंभिक दौर के आधुनिक हिंदी युग के कवि और रचनाकार भले ही अपनी रचनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में कुछ प्रेरणा ली हो पर उनकी रचनाओं पर बौद्ध दर्शन के मूलभूत दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव अत्यंत अल्प था और जो कुछ भी दार्शनिक पृष्ठभूमि इनके रचनाओं में परिलक्षित हुई वह बौद्ध धर्म के तुलना में बौद्ध दर्शन से कुछ हद तक साम्यता रखने वाले औपनिशदिक दर्शन के अधिक निकट थी।[3] इसका एक प्रत्यक्ष कारण तो यह था कि उस समय में बौद्ध दर्शन के मूलभूत ग्रंथों की अनुपलब्धता थी। वस्तुत: बौद्ध धर्म और दर्शन से संबंधित अधिकांश प्रामाणिक साहित्य व शोध ग्रंथों का प्रकाशन पिछले चार-पांच दशकों में ही संभव हो सका है और यही कारण है कि प्रस्तुत लेख में जिन रचनाकारों या रचनाओं में बौद्ध धर्म-दर्शन के प्रभाव का अध्ययन किया है, संभवत: उनमें से अधिकांश बौद्ध धर्म के सैद्धांतिक स्वरूप से उस स्तर पर परिचित नहीं हो पाये थे जिस स्तर पर आज हुआ जा सकता है।[4] कुछ अपवादों को छोड़कर, इन रचनाकारों की कृतियां मुख्यत: बौद्ध धर्म के उस स्वरूप से अनुप्राणित हैं जो बौद्ध धर्म को औपनिशदिक दर्शन से विरासत में मिली हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रा नंदन पंत, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, 'अज्ञेय', यशपाल, रांगेय राघव और मोहन राकेश की कुछरचनायें बौद्ध दर्शन से प्रत्यक्षत: संबंध रखती हैं।

वरिष्ठ आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने एडविन आर्नाल्ड द्वारा रचित 'द लाईट आफ एशिया' का अनुवाद 'बुद्धचरित' नाम से किया है जो मूलत: बुद्ध के जीवन की एक रूप-रेखा प्रस्तुत करती है।5 बौद्ध धर्म से संबंधित प्रारंभिक रचनाओं में गुप्त जी की 'यशोधरा' एक प्रमुख कृति है जो बुद्ध की पत्नी यशोधरा के नारी मन की सविस्तार करूण-गाथा है।

छायावादी चिंतनधारा के प्रमुख स्तंभ जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित नाटक-राजश्री, विशाखा, अजातशत्रु, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त तथा सम्राट कनिष्क के घटनाक्रम उन सम्राटों से संबंधित है जिन्होंने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय दिया। इनके साहित्य में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त यत्र-तत्र मिलते हैं।6 व्यक्ति निर्वाण की अपेक्षा समष्टि हित पर अधिक बल देकर इन्होंने बौद्ध धर्म के महायान परंपरा वाले दर्शन को अपनाया है। इनकी रचनाओं में संसार के संघर्षों से विरक्त होकर संसार त्याग का उपदेश न होकर निष्काम भाव से कर्मरत रहने की प्रेरणा है। महादेवी वर्मा की रचनाओं में बौद्ध धर्म के दुखवाद और करुणा के सिद्धांत का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इसी तरह छायावाद के एक अन्य स्तंभ निराला की रचनाओं में बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग दिखता है। यद्यपि निराला बुद्ध की कठिन साधना व उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों से प्रभावित तो लगते हैं पर वे उनके मध्यम मार्ग के दर्शन की चर्चा नहीं करते। सुमित्रा नंदन पंत ने भी अपने विपुल वांग्मय में 'बुद्ध के प्रति' एक छोटी कविता लिखकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

बौद्ध के विचार में चिंतन और सृजन के विलक्षण प्रतिभा वाले हजारी प्रसाद द्विवेदी के दो उपन्यासों, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चंद्रलेखा' की कथा-वस्तु बौद्ध धर्म के तांत्रिक रूप से संबंधित है। बाणभट्ट की आत्मकथा के अंतिम भाग में द्विवेदी जी ने बौद्ध आचार्य सुगतभद्र के वार्तालाप के माध्यम से तत्कालीन बौद्ध धर्म का तंत्रोन्नमुखी रूप दिखलाया है।7 चारू चंद्रलेख की कथा-वस्तु का काल 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के परवर्ती युग का है जब बौद्ध धर्म का तांत्रिक संप्रदाय चर्मोत्कर्ष पर था, जो इस उपन्यास की कथा-वस्तु का एक बडा भाग है। तांत्रिक बौद्ध दर्शन के साथ किंवदंतियों को मिलाकर द्विवेदी जी ने बौद्ध धर्म में आई विकृतियों को भी दिखाया है। 'भदंत अमोघवज्र' के माध्यम से द्विवेदी जी ने बौद्ध दर्शन के महायान संप्रदाय की प्रासंगिकता को उजागर किया है जिसमें व्यक्तिगत मुक्ति की जगह समष्टि के चित्त के परिष्कार की श्रेष्ठता स्थापित की गयी है।

विविन्न रचनाकारों ने अज्ञेय आधुनिक हिंदी साहित्य के उन चंद रचनाकारों में से हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों को गहराई से समझा है। 'असाध्य वीणा' और 'आंगन के पार-द्वार' की रचनाओं पर बौद्ध दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है।8 इन्होंने 'उत्तरप्रियदर्शी' नामक एक काव्य नाटक की रचना भी की है जो अशोक के कलिंग विजय के बाद के घटना क्रमों पर आधारित है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने दो उपन्यासों 'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' की कथावस्तु में बौद्ध मतों का साम्यवादी विचारधारा के साथ समन्वय किया है। 'सिंह सेनापति' मे लिच्छवी के प्रजातंत्र के सामाजिक विशेषताओं का चित्रण है। इसमें नायक 'सिंह सेनापति' बुद्ध ओर संघ की शरण में चला जाता है। 'जय यौधेय', जो गुप्तकाल की घटनाओं पर आधारित है, में अनित्यवाद और अनात्मवाद आदि बौद्ध सिद्धांतों की पुष्टी की गयी है।[9] ऐतिहासिक उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री की रचना 'बोधिवृक्ष की छाया में' बौद्ध धर्म के तीन शलाका पुरूष बुद्ध, अशोक और हर्षवर्धन के जीवन-वृत को प्रस्तुत करती है। 'वैशाली की नगरवधु' इनकी एक अन्य रचना है जिसका कथानक बौद्ध की समकालीन राजनर्तकी आम्रपाली पर आधारित है।

इसप्रकार हम देखते है कि विभिन्न काल में विचारकों ने हिन्दी साहित्य के प्रति अपनी विभिन्न भावनायें प्रस्तुत की है जो कि साहित्य के परिपेक्ष्य में उपस्थित है। क्रातिकारी एवं मार्क्सवादी चिंतक यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की कथा-वस्तु हर्षवर्धन काल से संबंधित है। भौतिकवादी दर्शन पर आधारित इस उपन्यास में पतनोन्मुख बौद्धकालीन समाज का चित्रण है। 'अमिता' यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है जो अशोक के कलिंग विजय पर आधरित है। यशपाल ने अपने इन दोनों उपन्यासों में मूलत: राजनितिक और सामाजिक मुद्दों की ही चर्चा की है। प्रगतिशील कथा-साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ रांगेय राघव ने अपने दो ऐतिहासिक उपन्यासों में बौद्धकालीन घटनाओं को अपनी कथा क विषय बनाया है। 'यशोधरा जीत गई' में रांगेय राघव ने बुद्ध और यशोधरा को माध्यम बनाते हुए नारी जीवन धर्म को तत्कालीन परिस्थितियों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवेचन किया है। अपने एक अन्य उपन्यास 'चीवर' में रांगेय राघव ने सम्राट हर्षवर्धन और उनकी बहन राज्यश्री की कथा के माध्यम से उस समय के राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर बौद्ध धर्म के प्रभाव को दर्शाया है।[10] इन दोनों उपन्यासों में बौद्ध धर्म दर्शन की मान्यताओं और इसके उदात्त मानवीय स्वरूप की स्वीकृति स्पष्ट दिखती है। मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंश' का कथानक बुद्ध के जीवनकाल से संबंधित है। नंद और सुंदरी के वार्तालापों पर बौद्ध दर्शन का परोक्ष प्रभाव है।

समकालीन हिन्दी साहित्य पर भी बौद्ध धर्म का प्रभाव दिख रहा है। हिन्दी पत्रिकाओं में स्थापित व नए रचनाकारों की रचनाओ मे यदाकदा बुद्ध से सम्बन्धित घटनाओ या बौद्ध दर्शन की झलक मिल जाती है। हाल में ही प्रकाशित कवि केदारनाथ सिंह के काव्य संकलन 'तोलसतोय व साइकिल'की कविता 'बुद्ध से'उल्लेखनीयहै।

स्वातंत्रोतर भारत में सामजिक और राजनितिक नवजागरण, जवाहरलाल नेहरू के सत्प्रयास व लोहिया और अंबेडकर के विचारों के कारण बौद्ध धर्म एक बार फिर चर्चा में आया है।[11] अंबेडकर की चिंतन- शैली तथा उनकी पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' बौद्ध धर्म की नई अवधारणा प्रस्तुत करती है। यद्यपि अंबेडकरस्वयं बौद्ध धर्म के कई मूलभूत सिद्धांत, जैसे चार आर्य सत्य के प्रति अपनी शंका प्रकट करते हैं फिर भी बुद्ध और बौद्ध धर्म के मानवीय दृष्टिकोण से अत्यंत प्रभावित हैं। अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को नए सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है जिससे जड़तावादी विचार व्यवस्था को तोड़ने की प्रेरणा मिलती है तथा दलित विमर्श साहित्य के अधिकांश हिंदी रचनाकार इससे प्रेरित हुए हैं। रूढीग्रस्त परंपराओं से असंतुष्ट कई साहित्यकारों ने अपने साहित्य को इस नई धारा से जोड़ा है। बुद्ध के जातिगत श्रेष्ठता के विरोधीमूलक स्वर ने दलित साहित्य को प्रभावित किया है जिससे वर्तमान हिंदी साहित्य का संपूर्ण फलक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है।[12] हालांकि जहां दया पवार और अर्जुन डांगले जैसे मराठी तथा अन्य भारतीय भाषा के दलित साहित्यकारों के रचनाओं का सरोकार बुद्ध या उनके धर्म से प्रत्यक्षत: जुडा हुआ है वहीं हिंदी के अधिकांश दलित साहित्यकारों ने अपने अनुभव को ही आधार भूमि मानते हुए अपनी रचनाओं को गतिदी है।[13] इनकी अधिकांश रचनाएं बौद्ध धर्म दर्शन के उस पक्ष से अंशत: जुडी हैं जिनमें भेदमूलक व्यवस्था का विरोध और परिवर्तन का संकल्प सन्नहित है।

निष्कर्ष: अध्ययन के माध्यम से यह विचार प्रस्तुत करना था की हिन्दी साहित्य में बौद्ध की प्रासांगिकता एक उदारवादी के रूप में प्रस्तुत होता है जहॉ पर प्रत्यक्षत: हम यह कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म-दर्शन से हिंदी साहित्य धारा से को एक नई गति मिली है, फिर भी इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि यह धारा वर्तमान राजनीतिक प्रभाव से अछूती रही है। बौद्ध दर्शन के मूल स्वर की उपेक्षा कर यह साहित्य-धारा बुद्ध के दर्शन के बुनियादी सामाजिक व मानवीय सैद्धांतिक मूल्यों को नकारती रही है। बुद्ध को मतवाद व पंथवाद की संकीर्णता में बांधकर उनकी देशना के दार्शनिक पक्ष को नजरअंदाज कर, प्राय:उन्हें भौतिकवादी समाज सुधारक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। बुद्ध के दर्शनका सम्यक अध्ययन जीवन-दर्शन मूलत: आत्ममुक्ति के उदघोष का है। वह भौतिकवाद ओर संसार से पलायन, इन दोनों अतियों को नकार कर मध्यम-मार्ग का उपदेश है। यह दर्शन मानव को आत्मग्राही दृष्टि ओर आत्मकेंद्रितता से मुक्त कर,उसे परार्थ हित में समर्पित कर,जीवन को एक नया अर्थ देने का है। बौद्ध धर्म के इस पक्ष की ओर अभी हिंदी साहित्कारों की दृष्टि सामान्यत: नहीं गयी है। इसके लिए विभिन्न साहित्यों की संरचना के माध्यम से यह पता लगाना आवश्यक हो जाता है कि बौद्ध के विचार प्रकृति, मानव और पूरे ब्रामांड को इस प्रकार सजोता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी (एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली संस्करण - 1986)
2. हिंदी साहित्य कोश, संपादक: धीरेन्द्र वर्मा (ज्ञानमंडल, वाराणसी, संस्करण - 1960)
3. महादेवी, संपादक: इंद्रनाथ मदान, (राधाकृष्ण, दिल्ली, संस्करण - 1973)

4. स्कंदगुप्त - जयशंकर प्रसाद, (राजकमल, दिल्ली -1994)
5. चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, (अनुपम, पटना - 2006)
6. राहुल सांकृत्यायन: व्यक्तित्व एवं कृतित्व - संपादित (अलका प्रकाशन, कानपुर - 1995)
7. भारतीय साहित्य के निर्माता: यशपाल - कमला प्रसाद (साहित्य अकादमी, दिल्ली - 1984)
8. दिव्या - यशपाल (विप्लव, लखनऊ दृ 1958)
9. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली - भाग - 1 (राजकमल, दिल्ली - 1981)
10. आलोचना, त्रैमासिक (जनवरी-मार्च - 2008, राजकमल, दिल्ली)
11. कितने नावें कितनी बार - अज्ञेय (भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली - 1983)
12. कथाकार रांगेय राघव - डा. कमलाकर गंगावने (साहित्य रत्नालय, कानपुर -1982)
13. बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष - संपादक: पी. वी. बापट (प्रकाशन विभाग, दिल्ली - 2008)

छत्तीसगढ़ शासन की नरवा गरूवा, घुरूवा और बाड़ी योजना का राज्य के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में योगदान का एक राजनैतिक अध्ययन

डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी

शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य एस. आर. सी. एस कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

आकांक्षा साहू

शोधार्थी, एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

प्रस्तावना:-

हमारा देश कृषि प्रधान देश हैं महात्मा गाँधी कहते थें कि वास्तविक भारत का दर्शन गाँव में ही संभव हैं जहाँ भारत कि आत्मा बसी हुई हैं देश कुल साढ़े छ: लाख से ज्यादा गाँव हैं और इन गाँवो में देश कि लगभग 65 प्रतिशत आबादी निवास करती हैं कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पात में लगभग 14 प्रतिशत योगदान हैं किसी भी देश कि समृद्धि वहाँ उपस्थित प्राकृतिक संसाधन पर निर्भर करती हैं।

हमारा भारत देश गाँवो का देश हैं गाँवो को आत्मनिर्भर बनाकर लोगो को स्वालंबी बनाया जा सकता हैं छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा छत्तीसगढ़ के गाँवो को उनकी संस्कृति और परंपरा के करीब रखते हुए उनकी तरक्की का तरीका निकाला गया छत्तीसगढ़ कि इन अनूठी पहल का नारा हैं ''छत्तीसगढ़ के चार चिन्हारी नरवा, गरूवा, घुरूवा, बाड़ी गाँव ल बचाना हे संगवारी" जो देश के हर गाँव के लिए स्थायी और संपूर्ण विकास का रास्ता पूर्ण हैं। सर्वप्रथम 22.01.2019 को माननीय मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में जनघोषणा पत्र की विषय में इस योजना क्रियान्वयन के संबंध में रूपरेखा तय करने उच्च स्तरीय बैठक संपन्न हुई। बैठक के प्रारंभ में माननीय मुख्यमंत्री जी के सलाहकार श्री प्रदीप शर्मा द्वारा नरवा, गरवा, घुरवा और बाड़ी के द्वारा छत्तीसगढ़ प्रदेश में सुराजी की संकल्पना को साकार करने के संबंध में प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत करते हुए अवगत कराया गया कि छत्तीसगढ़ की विशिष्ठ भौगोलिक संरचना के कारण जी कि प्रचुर मात्रा उपलब्ध हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य जल, जंगल एवं प्राकृतिक संसाधनो से भरपूर हैं। राज्य में हजारो किस्म की धान, विभिन्न फसलें, फल, साग सब्जी का उत्पादन होता है। कृषि क्षेत्र में उत्पादन को बढ़ाने के साथ-साथ कृषि विकास एवं कृषक कल्याण दोनो एक दूसरे के दो पहलू हैं और दोनो का समग्र विकास तभी संभव हैं जब राज्य में चिन्हारी ''नरवा, गरूवा, घुरूवा एवं बाड़ी'' का भरपूर विकास हो इसलिए शासन ने "सुराजी गाँव योजना'' की परिकल्पना की हैं जिसके अंतर्गत नरवा, गरूवा, घुरूवा एवं बाड़ी का विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया हैं। नरवा कार्यक्रम के अंतर्गत राज्य में उपलब्ध जल स्त्रोतो का संरक्षण करने से ग्रामीण अंचलो में किसानो

को पानी उपलब्धता सुनिश्चित होगी और पशु-पक्षियों का जीवन सुरक्षित होगा। गरूवा कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण अंचलो में पशुओं के रख रखाव तथा देखभाल हेतु सामूहिक व्यवस्था नही होने से फसल को नुकसान होता हैं। फसलो को नुकसान से बचाने तथा पशुओं की देख-रेख, सुधार हेतु गरूवा (पशुधन विकास) कार्यक्रम उद्देशित हैं। घुरूवा कार्यक्रम के अंतर्गत आज के रासायनिक खाद् के युग में "घुरूवा'' से जैविक खाद् का उत्पादन को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक हैं ताकि किसानो को कम लागत से जैविक खाद् उपलब्ध हो और भूमि उपजाऊ को बढ़ाया जा सकें।

बाड़ी कार्यक्रम के अंतर्गत प्रत्येक गांवो में ग्रामीणो के घरों के पीछे भूमि पर साग-सब्जी, फलो का उत्पादन किया जाता हैं। परंतु संसाधनो की कमी के कारण ग्रामीणों की बाड़ी विकास कार्यक्रम को प्राथमिकता दी हैं। जिसके अंतर्गत बाड़ी कार्यक्रमों के क्रियान्वय विभागों द्वारा संचालित योजनाओं के अभिसरण से साग-सब्जी, फलों के उत्पादन का प्रोत्साहन किया जायेगा।

इस प्रकार कि योजना देश में पहली बार शुरू की गई हैं और इस योजना कि तारीफ स्वयं प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी और अन्य राज्यो के मुख्यमंत्रियो ने प्रशंसा कर चूके हैं।

शोध अध्ययनः-

प्रस्तुत अध्ययन छ.ग. शासन नरवा, गरवा, घुरूवा और बाड़ी योजना का राज्य के निर्माण क्षेत्र के समाजिक एवं आर्थिक विकार का एक राजनितिक अध्ययन से संबंधित हैं ऐसे में उन संदर्भित अध्ययनो कि समीक्षा कि गई जो अध्ययन कि दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं वे निम्नानुसार हैं।

1. ध्रुव डॉ कन्हैया लाल 2016 ने अपने अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रो में पंचायती राज व्यवस्था द्वारा शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन की स्थिति को स्पष्ट किया हैं उन्होने अपने अध्ययन में बताया कि शासकीय योजनाओ के उचित क्रियान्वयन से विकास को गति मिली हैं।
2. दन्ता डॉ. रेवाचंद 2015 में अपने अध्ययन में जनजाति बहुल्य ग्रामीण क्षेत्र में शासकीय योजनाओ के क्रियान्वयन सम्बंधित अध्ययन में स्पष्ट किया कि शासकीय योजनाओ से विकास को गति मिली हैं।

शोध अध्ययन के उद्देश्य-

प्रस्तुत विषय में छ.ग. शासन कि नरूवा, गरूवा, घुरूवा और बाड़ी योजना का राज्य के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का राजनैतिक अध्ययन'' संदर्भ में हैं। जिसके के अध्ययन के लिए निम्नानुसार प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किया गया हैं, जिन्हें आधार मानकर अध्ययन किया गया हैं -

1. इस योजना के क्रियान्वयन से ग्रामीण क्षेत्रों का परंपरागत तरीको से विकास हो रहा है ।
2. इस योजना से प्राकृतिक संसाधनो का सदुपयोग हो रहा है ।

शोध की परिकल्पना

किसी भी शोध में हम उपकल्पना के बिना एक कदम भी आगे नही बढ़ सकते हैं। शोध परिकल्पना एक कार्यकारी आधार होता हैं जो कि शोधार्थी को एक दिशा प्रदान करता हैं शोध उपकल्पना को एक ऐसी कल्पना कहा जाता हैं जिसका परीक्षण शोध कार्य के दौरान किया जाता हैं। मेरे द्वारा चयनित इस शोध विषय में मेरी पूर्व कल्पना निम्नानुसार हैं।

1. अध्ययन क्षेत्र से कृषि व ग्रामीण विकास स्थानीय स्तर पर उन्नत हो रहा हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रो से तालाब व नालों का विस्तार व संरक्षण होने से सिंचाई व पेयजल की समस्या का समाधान संभव हैं।

शोध विषय का राजनीतिक महत्व

योजना को बनाना व क्रियान्वित करना राजनीतिक इच्छा शक्ति में निर्भर करता हैं इसमे छत्तीसगढ़ के सभी 90 विधायक और स्थानीय जन प्रतिनिधि पंचायतो के सभी जन प्रतिनिधि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इसमे सम्मिलित हैं। और उनकी सहभागिता के बिना यह योजना पूर्ण रूप से सफल नही हो सकती। अतः इस दृष्टिकोण से राजनीतिक महत्व बना हुआ हैं।

प्रस्तुत शोध विधि-

प्रस्तुत शोध की विधितंत्र को निम्नानुसार भागों में विभक्त किया गया हैं।

1. अध्ययन क्षेत्र का चुनाव - विकास की से अध्ययन क्षेत्र के रूप में दुर्ग जिले को लिया गया हैं। जहाँ ''छ.ग. शासन की नरवा, गरूवा, घुरूवा और बाड़ी योजना का राज्य के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का एक राजनैतिक अध्ययन'' का अध्ययन किया गया हैं।
2. अध्ययन इकाई- प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत इकाई के रूप में दुर्ग जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में योजना के प्रभाव का अध्ययन किया गया हैं।
3. उत्तरदाताओ का चुनाव- प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र दुर्ग जिले के ग्राम ग्रामीण क्षेत्र से उद्देश्यपूर्ण निर्देशन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त किया गया हैं।
4. तथ्य संकलन पद्धति, प्रविधि एवं उपकरण-प्रस्तावित शोधकार्य हेतु तथ्यों का संकलन दो प्रकार से किया गया हैं:-
   (1) प्राथमिक स्त्रोत (2) द्वितीयक स्त्रोत

1. प्राथमिक स्त्रोत - इसके अंतर्गत निम्नलिखित आधार पर शोध सामग्री हेतु अध्ययन व विश्लेषण किया गया हैं।

अ. प्रश्नावली/साक्षात्कार: उत्तरदाताओं से साक्षात्कार दैव निर्देशन के आधार पर प्रश्नावली के माध्यम से लिए किया गया हैं ।

ब. अवलोकन: दुर्ग जिले के 3 तहसील दुर्ग, पाटन, धमधा के अंतर्गत कुल 300 उत्तरदाताओं का चयन कर अवलोकन किया गया हैं। जिसमें प्रमुख ग्रामो का भ्रमण कर, पंचो, सरपंचो, जनपद सदस्यों, ग्रामीणों एवं योजना से जुड़े हुए अधिकारियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तर का सत्यापन किया गया हैं।

स. दैव निदर्षन: समग्र में दैव निदर्शन वृहत् इकाई का लघु स्वरूप होता हैं, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप में चुनना निदर्शन कहलाता हैं। निदर्शन बहुत बड़े समूह का एक छोटा प्रतिनिधित्व होता हैं, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होते हैं। अध्ययन क्षेत्र दुर्ग जिले के अंतर्गत 3 तहसील दुर्ग, पाटन, धमधा, से शोध के लिए लगभग 300 उत्तरदाताओ का चयन किया गया हैं।

2. द्वितीयक स्त्रोत:- इसके अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र में जिला प्रशासन व शासन के नीति व विकास कार्यो से संबंधित विभिन्न शोध प्रबंध एवं पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित तथ्य एवं इंटरनेट द्वारा प्राप्त सामग्री को शामिल किया गया हैं, जिसमें दुर्ग जिलाधीश कार्यालय, जिला पंचायत, दुर्ग नगर पालिक कार्यालय के अधिकारी/कर्मचारियों के कार्यप्रणाली व सुझाव सम्मिलित किया गया हैं।

तथ्यो का संकलन:-

उत्तदाताओ के प्रकृति के आधार पर विकास के योजनाओं से संबंधित अधिकारी कर्मचारी से साक्षात्कार किया गया हैं। साथ ही शोध कार्य के दौरान अध्ययन क्षेत्र के लोगों से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीक के द्वारा भी तथ्यों का संकलन किया गया हैं।

निष्कर्ष -

छत्तीसगढ़ शासन कि महत्वकांक्षी योजना नरवा, गरूवा, घुरूवा, बाड़ी योजना का सकारात्मक प्रभाव दिख रहा हैं ग्राम पंचायतो में गौठानो के माध्यम से पशुओ के डे केयर कि तरह विकसित किया जा रहा हैं हर गाँव में ग्राम सभा और ग्राम पंचायत के बीच गौठान समन्वय समिति बनाकर इसे संचालित करके गोठान में जो गोबर और गौमूत्र इकट्ठा होगा उससे आय के साधन विकसित किया जा रहा हैं। गोबर से जैविक खाद बेचा जा रहा हैं और इससे महिला स्व-सहायता समूह की महिलाओ को भी रोजगार मिल रहा है। और नरवा के माध्यम से नालो एवं नहरो में चेक डेन का निर्माण किया जा रहा हैं ताकि बारिश का पानी संरक्षण हो सके और वॉटर रिचार्ज से गिरते भूस्तर पर रोक लगा सकें। घुरूवा के माध्यम से खाद् बनाने एवं जैविक विधि से खेती करने में लोग रूची ले रहे हैं, और इससे महिला स्व.सहायता समूह की महिलाओ को भी रोजगार मिल रहा है। और छोटे और मंझौले किसान

इस योजना से लाभांवित हो रहे हैं। प्रशासन द्वारा सब्सिडी के माध्यम से किसानो को लाभ मिल रहा हैं। बाड़ी के माध्यम से यह घर से लगा बगीचे में पोषण हेतु फल, साग सब्जी उगाई जा सके और आय के साधन के रूप में किसान इस योजना का लाभ ले रहें हैं।

छ.ग. के वर्तमान मुख्यमंत्री माननीय भूपेश बघेल जी ने हॉर्वर्ड यूनिवर्सिटी में कॉस्ट एंड पॉलिटिक्स विषय पर व्याख्यान दिए। इस अवसर पर बघेल ने उपस्थित हॉर्वर्ड के स्टूडेंट्स को विशेषकर नरवा, गरूवा, घुरूवा और बाड़ी योजना के विषय में विस्तृत जानकारी दी। वहां के स्टूडेंट ने इस कॉन्सेप्ट को गंभीरता से सुना और इस नए यूनिक योजना की तारीफ की।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. अवस्थी डॉ. ए.पी. अवस्थी, ''विकास प्रशासन'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, 2000 पृष्ठ क्रमांक 1-33, आगरा।
2. मदन जी. आर. ''विकास का समाजशास्त्र" विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर, 2009 पृष्ठ क्रमांक 6 दिल्ली।
3. बालू अलेन बालू, ''आधुनिक राजनीति और शासन'' मैकमिलन पब्लिशिंग, 2012 पृष्ठ क्रमांक 107 दिल्ली।
4. घोष भोलानाथ, ''लीडरशिप एण्ड डेवलपमेंट'' मोहित पब्लिकेशन नई 1966 पृष्ठ क्रमांक 36 दिल्ली।
5. सिंह आनंद प्रकाश, "ग्रामीण शक्ति संरचना के बदले प्रतिमान" डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, 1989 पृष्ठ 82, दिल्ली

उरांव जनजाति के युवाओं में बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ- जिला-जशपुर)

डॉ० अनिता कुर्रे

शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य आई.एस.बी.एम.विश्वविद्यालय, छुरा, गरियाबंद (छ.ग.)

खोगेन्द्र साहू

शोधार्थी, आई.एस.बी.एम.विश्वविद्यालय, छुरा, गरियाबंद (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

प्राचीन काल से ही भारत में जनजातियों का अस्तित्व रहा है। जनजाति परिवारों का एक ऐसा समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित क्षेत्र में निवास करते हैं, ये लोग अपने जीवनयापन के लिए एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनके साधनों का उपयोग करते हैं। वे जंगलों में पैदा होने वाली अनेक प्रकार की वस्तुओं के समूह को कृषि या स्थानांतर कृषि के साथ सममिश्रित करते है। और इसी प्रकार ये अपने दैनिक जीवन को चलाते हैं इनकी विशिष्ट संस्कृति एवं नैसर्गिक जीवन अध्ययनकर्ताओं का आकर्षण रहा है, विश्व में जनजातिय आबादी की दृष्टि से भारत, अफ्रीका के पश्चात द्वितीय क्रम पर है। भारत के लिए गर्व का विषय है, कि ये जनजातियाँ ही भारतीय प्रायद्वीप के मूल आदिवासी है, जनजातियों में हमारे पूर्वजों द्वारा धारित उच्च मूल्य जैसे विश्वासपात्र, ईमानदारी, सहिष्णुता, स्वास्थ्य, समानता तथा स्त्रियों के लिए सम्मान आदि आज भी विद्यमान है, जिसने भारत वर्ष को संसार की एक महान सभ्यता का स्थान दिया।

डॉ अम्बेडकर साहब ने संविधान में सबको समानता का अधिकार दिये हैं, जिसमें उपर वर्णित अनुच्छेद के अनुसार आदिवासियों को उनके परम्परा, रीति-रिवाज एवं संस्कृति के साथ-साथ आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन के साथ-साथ उनकी सुरक्षा का भी प्रावधान है। इसलिए संविधान का बिना अध्ययन किये या फिर आदिवासी और अम्बेडकर विषय पर अगर अध्ययन करें तो नेहरू जी से ज्यादा अम्बेडकर जी का योगदान है।

छत्तीसगढ़ राज्य में 5 विशेष पिछड़ी जनजातियों बिरहोर अबूझमाड़िया, कमार, पहाड़ी कोरवा एवं बैगा के विकास के लिए विशेष अभिकरण का गठन किया है। छत्तीसगढ़ के 10 जिलों में निवासरत इन जनजातियों की संख्या 1,14,483 है। विशेष रूप से कमजोर जनजातियों समूह के विकास हेतु 6 जिला स्तरीय अभिकरण प्रदेश में गठित है। इनमें से बैगा जनजाति बिलासपुर, जशपुर व कवर्धा जिलों में पाए जाते हैं, इनके परिवार 16 हजार 675 है। जनसंख्या करीब 7 लाख 71 हजार 862 है। ये 522 गाँव में बसे हैं। राज्य में अनुसूचित जनजाति की संख्या 66.16 लाख है। जो कि कुल जनसंख्या का 31.76 प्रतिशत है, किंतु आज भी अधिकांशत: अनुसूचित जनजातियाँ अशिक्षित है। अनुसूचित जनजातियों की स्थिति अच्छी नहीं है, इस कारण समुदाय में बच्चे शिक्षा के स्थान पर श्रम करते हैं व युवाओं से यह अपेक्षा की जाती है, कि वे स्कूल जाने के स्थान पर श्रम करें। शिक्षा के प्रति जनजातीय लोगों

की परंपरागत व रूढ़िवादी मानसिकता है। ये शिक्षा को गैर जरूरी मानते हैं। यदि समाज में प्रत्येक युवा वर्ग की शिक्षा को स्वीकार किया जाता है तो प्रत्येक युवा की शिक्षा के महत्व को भी व्यावहारिक रूप में स्वीकार करना होगा। समाज के उन्नति एवं प्रगति के लिए युवाओं के सहयोग भी अत्यधिक आवश्यक है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचयः

1 नवंबर, 1956 को जब मध्य प्रदेश को भारत के एक नए राज्य के रूप में संगठित किया गया, तो जशपुर इसका हिस्सा बन गया। 25 मई 1998 तक, यह क्षेत्र रायगढ़ जिले का एक हिस्सा बना रहा। मध्य प्रदेश के कई जिलों के व्यापक क्षेत्र के कारण, एक जिला पुनर्गठन आयोग, जो कि न्यायमूर्ति जी के अध्यक्ष है। दुबे, उस समय के मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह ने 1982 में गठित किए थे। आयोग ने 1989 में अपनी रिपोर्ट सौंपी। 1992 में, एम.पी. के मुख्यमंत्री श्री सुंदरलाल पटवा ने राज्य में 16 नए जिले का गठन किया, जशपुर उनमें से एक था। न्यायिक हितों के कारण उन्होंने कहा कि घोषणा उस समय निष्पादित नहीं की जा सकती। लोगों की आकांक्षाओं को जन्म देते हुए, मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने 22 मई, 1998 को 16 जिलों के निर्माण का ऐलान किया। एक सार्वजनिक समारोह में जिले के प्रभारी मंत्री श्री चेनेश राम रथिया ने औपचारिक रूप से घोषणा की जशपुर जिला का निर्माण 25 मई 1998 को, श्री नारायणन शुक्ला ने इस नए गठित जिले के कलेक्टर का पदभार संभाला। एक नया राज्य के रूप में छत्तीसगढ़ के संगठन पर, जशपुर इस प्रांत का एक हिस्सा है।

छत्तीसगढ़ के उत्तर-पूर्व में स्थित, जशपुर घने जंगल और हरी वनस्पतियों से समृद्ध है। जिले के उत्तरी क्षेत्र में पहाड़ियों और पहाड़ों की एक लंबी श्रृंखला होती है, कभी-कभी एक-दूसरे के समानांतर चलती है या कहीं-कहीं क्रेस-क्रॉसिंग होता है। हरे भरे इलाके और घाटियों में सुरुचिपूर्ण प्राकृतिक सुंदरता मौजूद है। समुद्र स्तर से 2500 से 3500 मीटर ऊपर औसत ऊंचाई रखने के लिए, जिले 220 17 'एन से 23015' एन अक्षांश और 83030 'ई टू-'ई रेखांश के बीच स्थित है। यह पूर्व में झारखंड के गुमला जिले, पश्चिम में सरगुजा, झारखंड के कुछ हिस्सों और उत्तर में सरगुजा और दक्षिण में रायगढ़ और सुंदरगढ़ (उड़ीसा) जिलों से घिरा हुआ है। 5339.78 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का क्षेत्रफल होने के साथ 2001 की जनगणना के अनुसार जशपुर जिले की आबादी 851669 है। लिंगानुसार इसमें 424747 पुरुष और 4,26,922 महिलाएं हैं, जिसमें अनुसूचित जनजातियों की संख्या 530378 है जो कुल जनसंख्या का 62.37 प्रतिशत है। राज्य आबादी का 03.35 प्रतिशत यहां रहते हैं। आबादी का घनत्व 127 वर्ग प्रति वर्ग किमी है। जनसंख्या वृद्धि दर 14.60 प्रतिशत है तथा साक्षरता दर 67.92 जिसमें पुरूष 77.32 प्रतिशत एवं महिलाओं का 58.61 प्रतिशत है। कुल जनसंख्या का 96 प्रतिशत ग्रामीण है।

छोटनागपुर पठार के पश्चिमी विस्तार पर स्थित जशपुर, छत्तीसगढ़ प्रांत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र का निर्माण करता है। गहरी, घने और व्यापक जंगलों, कई धाराएं और नदियों ने देश में स्वर्गीय सौंदर्य उत्पन्न, प्रवाह और पूरक बनाया है। अतीत में, इस क्षेत्र को यशपुर और बाद में जगदीशपुर के रूप में जाना जाता था और वर्तमान में यह जशपुर है।

जशपुर की धरती और मिट्टी में समृद्ध जैव-विविधता, पर्याप्त खनिज जमा, अच्छी तरह वितरित जल निकासी प्रणाली, शांत वातावरण और ईमानदार, मेहनती, शांतिप्रिय कार्य बल शामिल हैं। प्रकृति ने उदारता से सब कुछ दिया है भूमि के लोग अपने विरोध रवैये के साथ प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

शोध साहित्य का पुनरावलोकनः-

किसी भी शोधकर्ता के लिए यह जरुरी है कि वह पूर्व में किये गये शोध कार्यो का पुनरावलोकन करे, इससे शोध कार्य में अपेक्षित सहयोग मिलता है। प्रस्तावित अध्ययन में शोध कार्य करने की प्रासांगिकता बनी हुई है।

1. गौरव (2011) इस लेख में "भारत की जनजातियों के बीच सामाजिक परिवर्तन" में लेखक ने विभिन्न जनजातियों में हो रहे सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न तथ्यों तथा परिणाम की चर्चा की है, उन्होंने बताया कि सामाजिक परिवर्तन सभी आदिवासी समाजों में जगह ले रहा है। कुछ आदिवासी समुदायों के बीच जाति के गठन, जाति समाज की विशेषताओं को आत्मसात किया है। इस परिवर्तन के विभिन्न तत्वों में वे जनसंख्यात्मक, प्रौद्योगिकी, आर्थिक तथा भौगोलिक कारको का उल्लेख किया है। उन्होंने बताया कि जनजातीय समूदायों और जातियों के बीच संचार सुविधाओं का विस्तार स्वतंत्रता के बाद ज्यादा हुआ है और 73वें संविधान संशोधन के बाद परिवर्तन आया है।

2. कुमार मनोज (2011) ने अपने लेख- "अंग्रेज भी उराँवों को दास नहीं बना सके" में उन्होंने बताया कि छत्तीसगढ़ की दूसरी जनजातियों की तरह उराँव जनजाति की परम्परायें जीवन शैली भी भिन्न है। सर्वाधिक जनसंख्या में साक्षरता में तथा परिवर्तनशीलता अपनाने में ये अग्रणी है। इसीलिए अंग्रेजों ने कभी इन पर अधिपत्य नहीं पर पाये, परिर्वतनशील उराँव अपने को समय के परिवर्तन के साथ खुद को ढाल लेते हैं।
3. खरे आर.एस. (2011) इन्होंने छोटानागपुर में उराँव जनजाति का संस्कृतिकरण तथा उस को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या किया है। इनके अनुसार वर्तमान समय में जो संस्कृति परिवर्तन आया है वह विभिन्न कारकों का प्रभाव है जैसे औद्योगिकरण, नगरीकरण, सामुदायिक विकास, और पंचायतीराज का जो यह प्रायोजित कार्यक्रम था योजना आयोग, भारत सरकार का है। इसके अतिरिक्त उराँवों को अर्थव्यवस्था, परिवार, विवाह, एवं धर्म पर प्रभाव का विस्तृत वर्णन किया है।

अध्ययन विषय का समाजशास्त्रीय महत्वः-

वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक विकास की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है, जिसका मूलभूत लक्ष्य यही है कि गांवों से पुरानी व्यवस्था को परिवर्तित करके एक ऐसे समता मूलक समाज की रचना की जाए जिसमें असमानता, अन्याय व शोषण की लकीरें विद्यमान नहीं हो। समाज के सभी जाति, वर्ग, महिला व पुरुष एवं युवाओं के अधिकारों को संरक्षित व सुरक्षित करना संभव हो सकें। बेरोजगारी गरीबी व भूखमरी जैसे दानवों से मुक्त गांव स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के प्रतिबिम्ब हो। इस प्रकार से सामाजिक एवं आर्थिक विकास के कार्य पर प्रशस्त गांव ही देश के विकास की वास्तविक तस्वीर के प्रत्यक्ष साक्षी होंगे तथा इस जटिल कार्य के सम्पादन में युवाओं की भूमिका सर्वोपरि एवं महत्वपूर्ण साबित होगी।

अध्ययन का उद्देश्य -

प्रस्तुत अध्ययन उरांव जनजाति के युवाओं में बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (जशपुर जिले के विशेष संदर्भ में) पर आधारित है जिसके प्रमुख उद्देश्य निम्न है-

1. यह अध्ययन उरांव जनजाति के युवाओं के लिए सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का उनके आर्थिक-सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में कार्य कर रही हैं।
2. उरांव जनजाति युवाओं के हित में शासन द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी होगी जो उनके विकास के लिए सहायक सिद्ध होगी।

शोध की संभावित परिकल्पनाएं -

शोध कार्य एक ऐसा सोच या विचार है जो शोधकर्ता को अपनी शोध का समस्या हेतु निर्मित करता है। शोधकर्ता की परिकल्पना यह आवश्यक नहीं है कि वह सत्य हो, कभी-कभी असत्य भी हो सकता है। शोध की परिकल्पना शोधकर्ता को एक मार्गदर्शन प्रदान करता है परिकल्पना का निर्माण सामाजिक समस्या को हल करने में किया जाएगा। प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पना निम्न है-

1. उरांव जनजाति के युवाओं के लिए सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का उनके आर्थिक-सामाजिक विकास में सहायक हैं।
2. उरांव जनजाति के युवाओं के हित में सरकार द्वारा चलाई जा रही समस्त योजनाओं की जानकारी युवाओं को प्राप्त होगी, जो उनके आर्थिक-सामाजिक स्थिति में परिवर्तन में सहायक हो रही हैं।

अध्ययन की पद्धतिः-

प्रस्तुत शोध हेतु सामग्री एवं सूचनाओं का संग्रहण दो प्रकार से किया गया हैं।

1. प्राथमिक स्त्रोत
2. द्वितीयक स्त्रोत

1) प्राथमिक स्त्रोत

प्रश्नावली तैयार कर, चयनित विषयों से साक्षात्कार, निर्दशन करना, लोगों से संपर्क करना, जिसमें साक्षात्कार के लिए चुने हुए ग्रामों, जन प्रतिनिधियों की सामाजिक व आर्थिक भूमिका से संबंधित अध्ययन अवलोकन व सर्वेक्षण के माध्यम से प्राप्त जानकारी के आधार पर विश्ल‍षण किया गया हैं।

दैव निदर्शनः-

समग्र में दैव निदर्शन वृहत इकाई का लघु स्वरूप होता है। जिसमें से कुछ ईकाइयो को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रुप में चुनना निदर्शन कहलाता है। निदर्शन बहुत बड़े समूह का एक छोटा प्रतिनिधि होता है, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होते है। शोध प्रबंध की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के चयनित 300 उळारदाताओं का दैव निदर्शन द्वारा अभिमत प्राप्त किया जाएगा। जिसमें जशपुर जिले के सभी पांच तहसील में से तीन तहसील क्रमशः कुनकुरी, जशपुर एवं पत्थलगाँव को अध्ययन हेतु चयन किया गया है। चयनित तहसीलों से 10-10 ग्राम पंचायतों एवं प्रत्येक ग्राम पंचायत से 10 उत्तरदाताओं का अभिमत लिया जाना है। इस प्रकार शोध प्रबंध में कुल 300 उत्तरदाताओं का अभिमत प्राप्त किया गया हैं।

उत्तरदाताओं के चयन का आधारः-

उपरोक्तानुसार 300 उत्तरदाताओं का चयन किया जाना प्रस्तुत है जिसमें अध्ययन क्षेत्र में निवासरत समस्त श्रेणी के व्यक्तियों के समावेश किया गया हैं।

साक्षात्कार अनुसूची -

इस विषय से संबंधित प्रश्नों की एक सूची होती है, जिसे क्रमबद्ध रूप में लिखा जाता है। इन प्रश्नों को साक्षात्कारकर्ता पूछता जाता है और रिक्त स्थान में उनके सामने लिखता जाता है। यह प्रश्नावली का ही एक रूप है। साक्षात्कार अनुसूची में उत्तरदाता का नाम स्थान, आयु, जाति, वैवाहिक स्थिति, धर्म व्यवसाय आदि का उल्लेख होता है। और उसके बाद अध्ययन समस्या से संबंधित अनेक प्रश्न होते हैं। साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग औपचारिक एवं निर्देशित साक्षात्कारों के लिए किया जाता है।

अवलोकन विधि -

अवलोकन प्रविधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है। अवलोकन का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिनमें नेत्रों द्वारा नवीन तथा प्राथमिक तथ्यों का विचार पूर्व संकलन किया गया हैं।

शोध उपकरण -

1. अनुसूची - प्रश्नावली के समान ही अनुसूची भी तथ्य संकलन करने की एक प्रमुख विधि है। अनुसूची भी एक प्रश्नों की एक तालिका होती है लेकिन इसे डाक के द्वारा नहीं भेजा जाता है, बल्कि अध्ययनकर्ता स्वयं इसे लेकर उत्तरदाता के पास जाते हैं, उनसे प्रश्न पूछते हैं। और उन उत्तरों को अनुसूची में भरते हैं।
2. साक्षात्कार निर्देशिका - साक्षात्कार निर्देशिका एक लिखित प्रपत्र. होता है। जिसमें समस्या के विभिन्न पक्षों का विवरण होता है। अनिर्दिष्ट और अनौपचारिक साक्षात्कार में इसका प्रयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। साक्षात्कार पथ प्रदर्शिका में समस्या के विभिन्न पहलुओं की रूपरेखा निहित होती हैं। इसमें साक्षात्कार की पूर्ण योजना का विवरण होता है।

द्वितीयक स्त्रोतः

इसके अंतर्गत विषय से संबंधित प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकें, लेख, शोध प्रबंध, समाचार पत्र, पाठ्य पुस्तक तथा शासन द्वारा समय-समय पर योजनाओं से संबंधित प्रकाशित पुस्तिक‍ं का अध्ययन किया गया हैं। केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा पारित अधिनियमों संशोधनों व नियमों का अध्ययन करना और जिला प्रशासन से संबंधित सूचनाएं आकड़े एवं इंटरनेट आदि का अध्ययन किया गया हैं।

तथ्यों का संकलनः

उत्तरदाताओं की प्रकृति के आधार पर उरांव जनजाति के पंचायत प्रतिनिधियों से संबंधित साक्षात्कार, अनुसूची के द्वारा किया गया हैं। साथ ही शोध कार्य के दौरान क्षेत्र के लोगों से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीकी तथ्यों का भी संकलन किया गया हैं।

निष्कर्ष- जशपुर जिले में समाज कल्याण हेतु राज्य शासन द्वारा संचालित योजनाएँ निम्नलिखित है:- सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना एसुखद समर्थन योजनाए इंदिरा गांधीए राष्ट्रीय वृद्धावस्थाए पेंशन योजनाए विकलांग छात्रवृत्ति योजनाए वरिष्ठ नागरिक सहायता योजनाए छत्तीसगढ़ मुख्यमंत्री की तीर्थ यात्रा योजनाएराष्ट्रीय परिवार सहायता योजनाए इसके अलावा जनजाति क्षेत्र होने के कारण जिले में जनजातियों के आर्थिक सामाजिक विकास के लिए सरकार द्वारा जनजातीय कल्याण हेतु आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से इनके कल्याण हेतु संचालित है, जो अध्ययन विषय उरांव जनजाति के युवाओं में बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन अंतर्गत जशपुर जिले में निवासरत उरांव जनजाति के युवाओं के विकास में सहायक है।

उरांव जनजाति के युवाओं में कानूनी क्षमता का विकास के साथ-साथ न्याय तक पहुँचने से वंचित नहीं होना पड़ता है एवं उरांव जनजाति के व्यक्तियों के लिये भेदभाव के न्याय तक समान पहुँच सुनिश्चित करने के लिये, सुविधाओं एवं सेवाओं का सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध कराई जाती है।

उरांव जनजाति के युवाओं में संवेदनशील व्यक्ति को कानूनी प्रक्रिया में मदद मिलती हैं, सुनवाई में हिस्से लेने की अनुमति, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से सुनवाई में हिस्सा लेने की छूट जैसे उनके लिये अधिक अनौपचारिक वातावरण का निर्माण सरकार द्वारा किये गये हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. सिंह, ए.के. (1984). 'ट्राईबल डेवलपमेंट इन इण्डिया'. नई दिल्ली: क्लासिकल पब्लिकेशन.
2. एस,एस.शशि. (1978), 'द ट्राइबल वीमन ऑफ इण्डिया', दिल्ली.
3. बापूजी,एम. (1993). 'ट्राइबल डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन'. नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशिंग हाउस.
4. एल्विन, वेरियर. (1939). 'द बैगा जॉन मुर्रय अलबेमार्ले स्ट्रीट, लंदन.
5. नदीम, हसनैन. (2006). 'जनजातीय भारत', नई दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स.
6. शर्मा, के.के. एवं सैनी, ए. (2011). 'भू-भण्डलीयकरण का अनुसूचित जनजाति अर्थव्यवस्था का प्रभाव'. रायपुर: वैभव पब्लिकेशन.

समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ० अनिता कुर्रे

शोध निर्देशक,सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य आई.एस.बी.एम.विश्वविद्यालय, छुरा, गरियाबंद (छ.ग.)

आशुकृत कुमार साहू

शोधार्थी, आई.एस.बी.एम.विश्वविद्यालय,छुरा, गरियाबंद (छ.ग.)

प्रस्तावनाः-

विश्व में जब से प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई है। उसी के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ने लगा क्योंकि किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जन अपेक्षाओं के अनुकूल शासन द्वारा नीति निर्माण एवं उसका क्रियान्वयन करके एक लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को प्रशासन द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। जब संसार के अलग-अलग देशों में राजतंत्र कुलीन तंत्र व अधिनायक तंत्र जैसी व्यवस्था व्यवस्थाएं संचालित हो रही थी उसमें सत्ता का केन्द्रीकरण होने से स्थानीय स्तर की समस्याओं का निराकरण संभव नहीं था। परन्तु प्रजातांत्रिक व्यवस्था के प्रारंभ होने पर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के अधिकांश देशों के सत्ता के केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण पर अधिक जोर दिया जाने लगा चाहे वह संसदीय लोकतंत्र हो अथवा अध्यक्षीय लोकतंत्र हो उसमें अवधारणा प्रतीत होने लगी कि स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय के इकाइयों के मध्य से ही किया जा सकता है क्योंकि वहां के इर्द-गिर्द के दिन प्रतिदिन की अलग-अलग समस्याओं से कोई भी केंद्रीय प्रशासन का संपर्क होना संभव नहीं है दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों की छोटी-छोटी समस्याओं का निराकरण करके स्थानीय संसाधनों के माध्यम से विकास की गति को बढ़ावा देने और सतत रूप से इस प्रक्रिया को जारी रखने के लिए सत्ता का केंद्रीकरण एवं स्थानीय संसाधनों का दोहन आवश्यक है और यह सब जिला एवं तहसील स्तर पर ही संभव है।

स्वतंत्रता के बाद भारत जैसे विशाल देश में जहां कश्मीर से कन्याकुमारी तक अनेक रियासतें राजे रजवाड़े एवं जमीदारी व जागीरदारी जैसी व्यवस्थाओं की मजबूत पकड़ थी अधिकांश आम जनता अशिक्षित होने के साथ-साथ जन जागरूकता से अनभिज्ञ व परंपरा वादी तथा अंधविश्वासी थे इस प्रकार की चुनौतियों को दूर करने के लिए जहां लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की अदम्य साहस दूरदर्शिता पूर्ण नेतृत्व के कारण 500 से अधिक रियासतों का भारत में विशाल विलय करण महत्वपूर्ण कार्य तथा व्याकरण करना महत्वपूर्ण कार्य था।

भारत में ग्राम पंचायतों की स्थापना से केंद्र व राज्य की सभी जन कल्याणकारी योजनाओं का संचालन व क्रियान्वयन स्थानीय स्तर पर सरपंच के माध्यम से प्रारंभ हुई। इनमें से जिला प्रशासन की जिम्मेदारी व सभ्यता तथा कार्य क्षेत्र में वृद्धि के साथ-साथ सत्ता का विकेंद्रीकरण तेजी के साथ प्रारंभ हुआ।

अध्ययन का सामाजिक महत्वः-

राज्य निर्माण के बाद अध्ययन क्षेत्र में सम्रग विकास हेतु, जिसमें सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक विकास को ध्यान में रखकर समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं के सर्वागीण विकास के लिए नई योजनाओं को प्रारंभ किया गया है, जिसमें केन्द्र व राज्य दोनों की योजनाएं जो प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित हो रही है, जिस पूरा नियंत्रण प्रशासन का होता है, जिसमें अधिकारी वर्ग के रूप में जिलाधीश से लेकर पटवारी तक सम्मिलित है और जनप्रतिनिधि के रूप में सांसद, विधायक, मंत्री एवं सरपंच सभी सम्मिलित है। जिले में प्रशासन के माध्यम से महिलाओं के लिए राज्य व केन्द्र सरकार की अनेक जनकल्याणकारी योजनाएं संचालित की जा रही है, जिसमें राज्य सरकार द्वारा राज्य के समस्त महिलाओं के लिए मुख्य योजना चलाई जा रही है। इससे जिले के महिलाओं को लाभ मिल रहा है। जिले में जहां शासन द्वारा हितग्राहियों के लाभार्थ के लिए अनेक योजना संचालित की जा रही है। वहीं दूसरी ओर जनप्रतिनिधि निचले स्तर के शासकीय कर्मचारियों द्वारा योजनाओं के संचालन में गड़बड़ी की जा रही है परन्तु शीर्ष स्तर के अधिकारियों द्वारा समय पर निरक्षण कर इसमें अंकुश लगाने का प्रयास किया जा रहा है। ग्रामीण बुनयादी ढ़ाचें को विकसित करने हेतु पूर्व में संचालित योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों और योजनाओं को जनकल्याणकारी बनाने के लिए इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है, कि इन योजनाओं में ग्रामीण ढांचागत सुविधाओं के लिए सामान गुणवत्ता वाले मानकों का निर्धारण करता है या नहीं। जिले में समाज कल्याण विभाग की लागू सभी योजनाएँ जिला प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है परंतु महिलाओं के सर्वागीण विकास जब हों तब योजनाओं की सार्थकता सिद्ध होगी।

जिले में महिलाओं के सर्वागीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि बिना किसी भेदभाव के विकास को परिलक्षित करना है, तो समाज कल्याण विभाग के विभिन्न योजनाओं को जिले के प्रत्येक विकासखंड में सामान रूप से संचालित करना होगा तभी महिलाओं का संपूर्ण विकास संभव है।

शोध साहित्य का पुनरावलोकनः-

प्रस्तुत अध्ययन समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के सर्वागीण विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में) से संबंधित हैं ऐसे में उन संदर्भित अध्ययनों की समीक्षा की गई हैं जो अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है वे निम्नानुसार हैः-

सरला गोपालन (1996) जी द्वारा अपनें अध्ययन में महिलाओं को विकास की अवधारणा से सम्बद्द किया गया है तथा इस प्रतिमान के परिवर्तित स्वरूप का भी विस्तृत विश्लेषण किया गया है जो इस विषय को लोककल्याण तथा सामाजिक कल्याण से जोड़ता है। 1970 का दशक इस सन्दर्भ में महिलाओं की क्रियात्मक सक्रिय भूमिका के उद्‌भव के लिए विशेष रूप से रेखाकित किया गया है। विकास अवधारणा के अन्तर्गत सार्वमीमिक रूप से सामाजिक राजनीतिक सुधार की आवश्यकता को विभिन्न स्वरूपों से सीधे समाज तथा समुदाय की गतिविधियों से सम्बन्धित होना तथा प्राथमिकता स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को आपनें निष्कर्ष रूप में इस दिशा में महत्वपूर्ण बताया है।

समिता सेन (2000) के द्वारा अपनें शोध में महिला आन्दोलन तथा उसकी पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण मे महिला आन्दोलन तथा भारतीय समाज में यूनिफार्म सिविल कोड तथा विधायिका मे महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण से सम्बन्धित परिस्थितियों का जमीनी अध्ययन किया गया है। आपके अध्ययन मे महिला प्रश्नों को समय तथा परिस्थितियों के अनुसार विभाजित करके मुख्य विषय को रेखांकित किया गया है।

जी. श्रीनिवासन और अन्य (2010) ने महिला स्व-सहायता समूह और विकास की लागतों का कषिगत याजनाओं के साथ एक अध्ययन किया और पाया कि कृषि सतत् रूप से विकास के लिए आवश्यक है। प्रयोगात्मक खेती की नई तकनीक द्वारा खाद्यान्न

उत्पादन वृद्धि ने देश की आर्थिक परिस्थिति को एक नया मोड़ दिया। देश के उत्तर पश्चिम राज्यों पंजाब हरियाणा व प. उत्तर प्रदेश में खाद्यान्न विशेषकर गेहूं के उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग द्वारा हरित कान्ति का आविर्भाव हुआ ।

अध्ययन का उद्देश्य -

प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए निम्नानुसार प्रमुख उदेद्श्य निर्धारित किया गया हैं, जिन्हें आधार मानकर अध्ययन किया गया हैं।

1. महिलाओं की विभिन्न बदलते आयामों, कारणों को अध्ययन किया गया हैं। ।
2. समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं से महिलाओं को अवगत कराया गया हैं।

शोध की परिकल्पना -

शोध परिकल्पना एक कार्यकारी आधार होता हैं जो कि शोधार्थी को एक दिशा प्रदान करता हैं। शोध उपकल्पना को एक ऐसी कल्पना कहा जाता है, जिसका परीक्षण शोध कार्य के दौरान किया जाता हैं। मेरे द्वारा चयनित इस शोध विषय में मेरी पूर्व कल्पना निम्नानुसार किया गया हैं।

1. समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं से महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराने में सफलता मिल रहा है।
2. महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं से समाज में पिछड़ापन व गरीबी दूर हो सका हैं।

प्रस्तुत शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध की विधितंत्र को निम्नांकित भागों में विभक्त किया गया हैं।

1. अध्ययन क्षेत्र का चुनाव -महिलाओं के विकास की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के रूप में बिलासपुर जिले को लिया गया है। जहाँ समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं के विकास कार्यो का अध्ययन किया गया हैं।
2. अध्ययनगत इकाई -प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत इकाई के रूप में समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में) किया गया हैं।
3. उत्तरदाताओं का चुनाव -प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले के नागरिक व युवा उत्तरदाता का चुनाव बहुस्तरीय निदर्शन के द्वारा किया गया है, जिसके अंतर्गत बिलासपुर जिले के 4 विकासखंड कोटा, तखतपुर, बिल्हा एवं मस्तूरी के अंतर्गत प्रत्येक विकासखण्ड से 75-75 उत्तरदाताओं का चयन कर उद्देश्यपूर्ण निर्देशन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त कर विश्लेषण किया गया हैं।

तथ्य संकलन पद्धति, प्रविधि एवं उपकरण-

प्रस्तुत शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध की विधितंत्र को निम्नांकित भागों में विभक्त किया गया हैं।

1. अध्ययन क्षेत्र का चुनाव-विकास की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के रूप में बिलासपुर जिले को लिया गया है। समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया हैं। जिले में 22 जिला पंचायत सदस्य, 4 विकासखण्ड और 483 ग्राम पंचायत, तथा राजस्व ग्राम 708 है। अध्ययन हेतु कोटा, तखतपुर, बिल्हा और मस्तुरी विकासखण्ड में शोध का अध्ययन के लिए चुनाव किया गया है।
2. अध्ययनगत इकाई- अध्ययनगत इकाई के रूप में समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में) पर अध्ययन किया गया हैं।
3. उत्तरदाताओं का चुनाव- अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले के ग्राम पंचायत, क्षेत्रांतर्गत जनप्रतिनिधियों, अधिकारी/कर्मचारियों तथा आम नागरिकों में से उत्तरदाता का चुनाव बहुस्तरीय निदर्शन के आधार पर किया गया है, जिसमें क्रमश: कोटा (अनुसूचित जनजाति), तखतपुर (अन्य पिछड़ा वर्ग), मस्तुरी (अनुसूचित जाति) तथा बिल्हा (समान्य वर्ग) की बहुलता

विकासखण्ड क्षेत्र में आता है, जिसके अंतर्गत उन्ही 4 विकासखण्डों से प्रत्येक विकास खण्ड से 5 ग्राम पंचायत एवं प्रत्येक ग्राम पंचायत से 15 उत्तरदाताओं का चयन कर उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त कर विश्लेषण किया गया हैं।

4. तथ्य संकलन पद्धति, प्रविधि एवं उपकरण- शोधकार्य हेतु तथ्यों का संकलन दो प्रकार से किया गया हैं।:-

(i) प्राथमिक स्त्रोत

(ii) द्वितीयक स्त्रोत

(i) प्राथमिक स्त्रोत- इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपकरण के माध्यम से अध्ययन व विश्लेषण किया गया हैं।

अ. प्रश्नावली/साक्षात्कार: उत्तरदाताओं से साक्षात्कार दैव निदर्शन के आधार पर प्रश्नावली के माध्यम से किया गया हैं।

ब. अवलोकन: बिलासपुर जिले के 4 विकासखंड कोटा, तखतपुर, बिल्हा एवं मस्तूरी के अंतर्गत प्रत्येक विकासखण्ड से 75-75 उत्तरदाताओं का चयन कर कुल 300 उत्तरदाताओं का साक्षात्कार लिया जाना है, जिसमें प्रमुख ग्रामों का भ्रमण कर, पंचों, सरपंचों, अधिवक्ता, शिक्षक, विकासखण्ड अधिकारी ग्रामीणों एवं अधिकारियों/ कर्मचारियों, हितग्राहियों, जनप्रतिनिधियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तर का सत्यापन किया गया हैं।

स. दैव निदर्शन: समग्र में दैव निदर्शन वृहत इकाई का लघु स्वरूप होता है, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप में चुनना निदर्शन कहलाता है। निदर्शन बहुत बड़े समूह का एक छोटा प्रतिनिधित्व होता है, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होते हैं। अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले के अंतर्गत 4 विकासखंड कोटा, तखतपुर, मस्तूरी एवं बिल्हा से शोध के लिए लगभग 300 उत्तरदाताओं का चयन किया जावेगा, जिसमें बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों से 5-5 ग्राम पंचायत एवं प्रत्येक ग्राम पंचायत से 15-15 उत्तरदाताओं का अभिमत लिया गया हैं। इस प्रकार शोध प्रबंध में 300 उत्तरदाताओं का अभिमत लिया गया हैं।

द. सर्वेक्षण: बिलासपुर जिले के चारों विकासखण्डों कोटा, तखतपुर मस्तूरी एवं बिल्हा विकासखण्ड में निवासरत परिवारों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सर्वेक्षण कर अध्ययन किया गया हैं।

(ii) द्वितीयक स्त्रोत:- इसके अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन में पंचायती राज व्यवस्था की प्रासंगिकता विषय अंतर्गत शोध प्रबंध एवं पत्र-पत्रिकाएं, शासकीय अभिलेख, प्रतिवेदन, रिपोर्ट, समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित तथ्य, एवं इंटरनेट द्वारा प्राप्त सामग्री को शामिल किया गया हैं।

तथ्यों का संकलन:-

उत्तरदाताओं के प्रकृति के आधार समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित योजनाओं से महिलाओं के विकास का समीक्षात्मक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विशेष संदर्भ में) संबंधित साक्षात्कार चयनित उत्तरदाताओं से किया गया हैं। साथ ही शोध कार्य के दौरान अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाताओं से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीक के द्वारा भी तथ्यों का संकलन किया गया हैं।

अपेक्षित परिणाम: -

प्रस्तुत कार्य से निम्नलिखित संभावित परिणाम प्राप्त होंगे।

1. समाज कल्याण विभाग द्वारा महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं से महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराने में सफलता मिल रही हैं।
2. महिलाओं के लिए संचालित योजनाओं से समाज में पिछड़ापन व गरीबी को दूर किया जा रहा हैं।

निष्कर्ष -

20 वीं शताब्दी तक महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ था, परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में कई परिवर्तन आये हैं। वर्तमान में एक परिवार में पुरूष के बराबर महिला को भी स्वीकार किया गया हैं, जिससे महिलाओं के

पारिवारिक स्थिति में उन्नति हुई है, पर्दाप्रथा, अशिक्षा, बाल-विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि अनेक प्रथाओं को समाप्त कर दिया गया। आज नारी की बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक दृष्टिकोण से अधिक सक्षम है और स्वतंत्र है। परंतु महिलाओं में यह संतोषजनक है या नहीं तथा इससे स्त्रियां संतुष्ट हैं या नहीं यह जानने हेतु हमने इस विषय का चयन किया गया हैं।

वर्तमान में पश्चिमीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण व्यापक परिवर्तन हो रहा है तथा इस परिवर्तन के साथ-साथ महिलाओं की सामाजिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। यह परिवर्तन धनात्मक है या ऋणात्मक यह जानने के लिए हमने इस विषय का चयन किया गया हैं। महिलाओं की स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन आया है। पहले महिलाओं का कार्यक्षेत्र मात्र घर तक ही सीमित होता था, पर आज उद्योग धन्धे और कारखाने से लेकर धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, व्यवसायिक अध्यापन क्षेत्रों में कार्यरत हैं। उनकी आर्थिक स्वतंत्रता ने उन्हें किन-किन स्तरों पर सुरक्षा व स्वतंत्रता प्रदान की है। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण ही सामाजिक स्थिति में कितना परिवर्तन आया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुये हैं। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, महिलाओं को विवाह की एक निश्चित आयु प्रदान की गई जिससे महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ। महिलाओं को पुरूष के समान ही परिवार के सदस्यों का भरण पोषण का अधिकार दिया गया तथा संविधान में उन्हें बराबरी का अधिकार दिया गया। महिलाओं पर लगाये गये अनुबंधों को समाप्त कर दिया गया है। आज महिलायें चिकित्सा, व्यवसायिक शिक्षा सभी क्षेत्रों में कार्य कर रहीं हैं। आज महिलाओं व पुरूषों को समान शिक्षा प्रदान की जाती है, तथा महिलायें ऊँची शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। पंचायतों में महिलायें बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी निभा रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कुमार, राज: अम्बेडकर एण्ड वुमन, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ क्र 96
- भसीन कमला, पितृसत्ता, कालीफार वीमंन, नई दिल्ली, 1994 पृष्ठ -1-5
- शाह, तृपष्टि डॉ: नारी आन्दोलन का इतिहास, उन्नति-विकास शिक्षण संगठन एवं सहियर (स्त्री संगठन), बंसीधर ऑफसेट, अहमदाबाद, 2009 पृष्ट--30
- बानो, असराम: वुमन एंड सोशल चेंज, रिफरेन्स प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ-107
- पटेल, आहूजा के उमा देवी, एस एण्ड टाडाज, जी एन: वुमन एण्ड डेवलपमेण्ट, न्यूयार्क, प्रैगर, 1999, पृष्ठ 203
- परवीन गजाला: इम्पॉवरमेण्ट ऑफ वुमन इन इंडिया, मानक पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2011 पृष्ठ-89
- सिंह, इन्दु प्रकाश: इंडियन वुमन द कैपचर्ड बींग, इन्टेलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ-21-29

पंचायती राज व्यवस्था में जनसमस्या के निवारण में ग्राम सभा की भूमिका का अध्ययन (दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर

शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर, महाविद्यालय डोंगरगढ (छ.ग.)

डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी

सह निर्देशक, पूर्व प्राचार्य एस. आर. सी. एस कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

सुभाष कुमार सोनी

शोधार्थी, एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

प्रस्तावना

ग्राम सभा पंचायती राज की मूल निकाय है। ग्राम सभा किसी एक गाँव या पंचायत का चुनाव करने वाले गांवों के समूह की मतदाता सूची में शामिल व्यक्तियों से मिलकर बनी संस्था हैं, गतिशील और प्रबुद्ध ग्रामसभा पंचायती राज की सफलता के केन्द्र में होती है। किसी ग्राम की निर्वाचक नामवली में जो नाम दर्ज होते है, उन व्यक्तियों को सामूहिक रुप से ग्राम सभा कहा जाता है। हमारे भारतीय गणतंत्र में चार सभायें है। लोकसभा, राज्यसभा, विधान सभा और ग्राम सभा। इन चारों में भी ग्राम सभा एक मूल सभा है, क्योंकि पहली तीनों सभाओं में जनता के सीधे घुमाकर (अप्रत्यक्ष रुप से) चुने हुये प्रतिनिधि होते हैं, परंतु ग्राम सभा में तो स्वयं जनता उपस्थित होती है।

प्रशासन का दायित्व होता है कि वह जनसामान्य की समस्याओं को सुने तथा व्यक्तिगत कार्य में अथवा शासकीय योजनाओं के लाभ प्राप्त करने में कोई समस्या उत्पन्न होती है, तो उसका निराकरण करें ताकि जनसामान्य को शासन एवं प्रशासन पर विश्वास कायम रहे एवं प्रत्येक व्यक्ति यह महसूस कर सके कि शासन उसकी समस्याओं के निराकरण में उसके साथ है एवं पीड़ित पक्ष की प्रत्येक बात शासन स्तर पर हल की जा सकती है। छत्तीसगढ़ अविभाजित मध्यप्रदेश के समय से एक पिछड़ा क्षेत्र रहा है। इसलिए यहाँ कृषि प्रधान व ग्रामीण बाहुल क्षेत्र होने के कारण स्थानीय स्तर पर प्रशासन में स्थानीय जनप्रतिनिधियों सरपंच, पंच के सहयोग से स्थानीय जन समस्या का निवारण होता रहा है। शासन स्तर पर जाँच रिपोर्ट के माध्यम से जनसामान्य की समस्या एवं उसके संभावित निराकरण से शासन को अवगत कराया जाता है।

जनसमस्या -

व्यक्ति को (जन सामान्य को) निजी एवं शासकीय योजनाओं के लाभ हेतु शासन एवं प्रशासन से सहयोग की अपेक्षा होती है कि वह उसका समाधान करे और उसकी समस्या का हल हो सके। जनसमस्याएं ग्रामीण स्तर पर दो प्रकार की होती है-

1. व्यक्तिगत: जहाँ किसी व्यक्ति विशेष की समस्या हो।
2. सामूहिक: जहाँ किसी समूह अथवा पूरे ग्राम का हित हो।

छत्तीसगढ़ शासन हेतु जनसमस्याओं के निवारण हेतु प्रयास -

1. शासन स्तर पर -शासन द्वारा सामान्य प्रशासन विभाग के अंतर्गत प्रकोष्ठ किया गया है, जिसे जन समस्या निवारण प्रकोष्ठ कहा जाता है। जन सामान्य जिन समस्याओं का निवारण शासन स्तर पर चाहता है, वे यहाँ आवेदन प्रस्तुत करते हैं।
2. जिला स्तर पर -छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में जिला स्तरीय जनसमस्या निवारण शिविर का आयोजन किया जाता है। यह शिविर जिले के ग्रामीण अंचलों में आयोजित किया जाता है, जिसमें जिला स्तर के सभी विभाग के प्रमुख एवं जनप्रतिनिधि उपस्थित रहकर लोगों की समस्याएं सुनते है एवं तत्काल निराकरण किया जाता है।

   दुर्ग जिले में माह में लगभग दो जनसमस्या निवारण शिविर दो अलग-अलग तहसीलों में आयोजित किए जाते हैं, जिसमें कलेक्टर एवं सभी विभाग के जिला प्रमुख अपने मैदानी अधिकारियों सहित उपस्थित रहते हैं।
3. स्थानीय स्तर पर - स्थानीय ग्राम पंचायत, विकासखंड एवं तहसील स्तर पर व्यक्ति अपनी जनसमस्या के निराकरण हेतु आवेदन प्रस्तुत करते हैं, जिसका निवारण स्थानीय जनप्रतिनिधियों द्वारा स्वयं अथवा प्रशासन के सहयोग से करते हैं।

अध्ययन विषय का राजनीतिक महत्व -

पंचायती राज व्यवस्था को 73वें संविधान संशोधन में ग्रामसभा की स्वायत्तशासी इकाई के रूप में सशक्त किया गया है। इसमें प्रावधान किया गया है कि कार्य योजना का अनुमोदन, आय, व्यय का अनुमोदान, हितग्राहियो का चयन तथा गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों के जीवन स्तर को उठाने की योजनाओं का अनुमोदन मानीटरिंग एवं नियंत्रण पंचायती राज व्यवस्था में प्रथमत: ग्राम सा करती है।

राज्यपाल किसी भी ग्राम या ग्रामों के समूह को ग्राम घोषित करता है। ऐसे प्रत्येक ग्राम के लिये ग्राम सभा का किया जाता है। ग्राम के सभी व्यक्ति मतदाता इसके सदस्य होते हैं। ग्राम सभा कभी भी भंग नहीं होती है। ग्राम सभा की वर्ष में कम से कम क बैठकें अनिवार्य हैं। ग्राम सभा के बैठक के लिए गणपर्ति ग्रामसभा के सदस्यों की कुल संख्या के दशमांश (1/10 से अधिक) सदस्यों के जिसमें एक तिहाई से अधिक महिलाओं की उपस्थिति होने पर ही होती है।,

पंचायती राजव्यवस्था के अंतर्गत ग्राम सभा की स्थापना की गई है, जो राज्य सरकार के बनायें नियमों के अधीन व साधारण या विशेष आदेशों के अनुरूप उसके अधीन रहते हुए समस्याओं का निवारण करते हैं। ये ग्राम के आर्थिक विकास तथा ऐसी स्कीमों की पहचान तथा उनकी प्राथमिकता के सिद्धातों को अधिकाधिक करते हैं। ग्राम सभा गरीबी उन्मूलन तथा अन्य कार्यक्रमों के अधीन हिताधिकारियों के रूप में व्यक्तियों की पहचान करता है।

ग्राम पंचायत ऐसे मामलों को ग्राम समा के समक्ष रखती हैं जिन्हें कि जनपद पंचायत, जिला पंचायत, कलेक्टर या किसी निर्मित्त प्राधिकृत कोई अधिकारी ऐसे सम्मेलंन के समक्ष रखे जाने की अपेक्षा करें । ग्राम पंचायत के अधीन अपने समक्ष के मामलों के संबंध में ग्राम समा द्वारा की गई सिफारिशों का कार्यान्वित करती है।

अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त विवरण -

छत्तीसगढ़ राज्य के 33 जिलों में से दुर्ग जिला प्रशासनिक, राजनीतिक औद्योगिक दृष्टि से न केवल प्रांत वल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी अपना अलग स्थान रखता है। मिलाई इस्पात संयंत्र के कारण इसका और भी महत्व बढ़ गया है, इसी कारण से इसे औद्योगिक शहर के नाम से भी जाना जाता है।

दुर्ग जिले के नाम की उत्पत्ति मुख्यालय नगर दुर्ग के नाम पर हुई है, जो कल्चुरियों के अधीन किले से प्रशासित होने वाले गढ़ों के एक गढ़ का मुख्यालय भी रहा है। दुर्ग जिले में मुख्य नदी शिवनाथ तथा उसके सहायक नदियों के रुप में तांदुला, खरखरा, खारुन, सरई घरण्डी और अनार नदियाँ है।

दुर्ग जिले में 3 तहसीलें है। दुर्ग की कुल जनसंख्या लगभग 33,43,872 हैं। यहाँ विभिन्न जाति और धर्म के लोग रहते हैं। 15 अगस्त 2013 को छ.ग. शासन द्वारा दुर्ग संभाग का गठन किया गया हैं जिसके अंतर्गत दुर्ग, राजनांदगाँव, बालोद, बेमेतरा और कबीरधाम जिले आते हैं।

शोघ साहित्य का पुनरावलोकन -

ग्रामीण जीवन और नेतृत्व के विषय में अनेक अध्ययन किये गये हैं पर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज व्यवस्था से संबंधित ज्यादातर अध्ययन बलवंत राय मेहता कमेटी (1957 की रिपोर्ट के पश्चात् ही देखने को मिलता है। क्योंकि इसी कमेटी के बाद भारत में पंचायती राज व्यवस्था की नींव पड़ी। जनससमस्या के निवारण में ग्रामसभा की भूमिका से संबंधित ऐसे उन संदर्भित अध्ययनों की समीक्षा की गई है जो, अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं। जो कि निम्नलिखित हैं-

1. बी.सी, नरूला (2009) इसके अध्ययन में पंचायती राज व्यवस्था को प्रारंभिक बिन्दु ग्रामसभा को ही बताया गया है और ग्रामसभा को गांव की विधायिका भी कहा गया है, लेकिन फिर भी आज ग्राम सभा को उच्च प्रचार-प्रसार की कमी, ग्रामवासियों के पास समय का अभाव शिक्षा एवं पर्याप्त अनुभव का अमाव और ग्राम सभा के पास पर्याप्त शक्तियों का अभाव देखने को मिला।
2. बिस्वाल तपन (2017) इसके अध्ययन में पंचायती राज को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243 में विस्तार से उल्लेख करते हैं, और अनुच्छेद 243 (ए) में ग्राम सभा को भी विस्तारित किया है, क्योंकि ग्राम स्तर पर पंचायतों की संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता ग्राम सभा है। उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण स्तर पर प्रशासन व नेतृत्व पर पंचायत स्तर पर अनेक प्रदेशों में शोध कार्य हुए है. परन्तु प्रस्तावित शोध क्षेत्र में जनसमस्याओं व प्रशासन से संबंधित ग्रामीण स्तर पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। अतएव इस विषय पर शोध कार्य करने की प्रासंगिकता बनी हुई है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य -

किसी भी अनुसंधान समस्या का चुनाव करने के साथ शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शोध अध्ययन के उद्देश्य को निर्धारित करें ताकि अपने उद्देश्य को सही ढ़ंग से प्राप्त कर सके। अत: उद्देश्य का निर्धारण आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित मुख्य उददेश्य हैं-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में जनसमस्याओं के निवारण में आने वाली समस्याओं का अध्ययन किया गया हैं।
2. संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा ग्राम सभा को प्रदान किये गये अधिकारों एवं कार्यों का अध्ययन किया गया हैं।

प्रस्तुत शोध परिकल्पनाएं -

किसी भी अध्ययन का आरंभ परिकल्पानओं के बिना संभव नहीं हैं, ये अनुसंधानकर्ता के मार्गदर्शक होते है और निश्चित निष्कर्षों की प्राप्ति संभव होता है। इस शोध कार्य के कुछ परिकल्पनाएँ हैं ये परिकल्पनाएँ शोधार्थी के व्यक्तिगत मतों, मूल्यों, अनुभवों पर आधारित निष्कर्ष पूर्णत: निष्पक्ष है।

1. ग्रामीण क्षेत्रों में आने वाली जनसमस्या का निराकरण स्थानीय निवासियों द्वारा किया जा रहा हैं।
2. पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम सभा के अस्तित्व में आने से ग्रामीणों के छोटे-छोटे प्रकरणों का निराकरण कर रही है।

प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धतियाँ -

प्रस्तुत शोध हेतु सामग्री एवं सूचनाओं का संग्रहण दो प्रकार से किया गया हैं।

1. प्राथमिक स्त्रोत

2. द्वितीयक स्त्रोत

1. प्राथमिक स्त्रोत - प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत प्रश्नावली तैयार करना, उत्तरदाताओं का साक्षात्कार, सैम्पलिंग करना, चयनित ग्रामसभा के उत्तरदाताओं व ग्रामीण से सम्पर्क किया गया हैं। जिसमें संबंधित 300 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के माध्यम से उनके मार्ग में आने वाली व्यावहारिक कठिनाईयों एवं अन्य विषयों की जानकारी प्राप्त कर अवलोकन व सर्वेक्षण के आधार पर विश्लेषण किया गया हैं।

(अ) सैम्पलिंग - एक सैम्पल किसी बड़ी इकाई के लघु स्वरुप के आधार पर समग्र संगठन का ज्ञान करता है। चूंकि समूचे छत्तीसगढ़ के लोगों से प्रत्यक्ष संपर्क करना संभव नहीं हैं। इसीलिए रैण्डम सैम्पलिंग के आधार पर चयनित उत्तरदाताओं से ही साक्षात्कार लिया और जानकारी प्राप्त किया गया हैं।

(ब) अवलोकन एवं सर्वेक्षण - छत्तीसगढ़ 33 के जिलों में सम्मिलित दुर्ग जिले का चयन किया गया हैं। उनसे साक्षात्कार एवं प्रश्नावली के के द्वारा सम्पर्क करना सर्वेक्षण व अलोकन पद्धति के आधार पर जानकारी प्राप्त किया गया हैं।

(स) विश्लेषण करना - प्रश्नावली व साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त प्रश्नों के उत्तरों का विश्लेषण करना एवं विश्लेषण के पश्चात निष्कर्ष निकाला गया हैं।

2. द्वितीयक स्त्रोत - द्वितीयक स्त्रोत के अंतर्गत विषय से संबंधित प्रकाशित पत्र- पत्रिकाओं, पुस्तकें, लेख, शोध ग्रंथ, पंचायतों से संबंधित पुस्तिका, आदि आते हैं। जिला पंचायत, जिला प्रशासन से संबंधित सूचनाएँ, आँकड़े आदि का अध्ययन किया गया हैं।

निष्कर्ष

ग्राम सभा की स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण लोगों को ग्रामीण स्तर पर समस्याओं के समाधान कर उनके समय व धन की बचत करना है, अपितु ग्राम समा इन कार्यो एवं उद्देश्यों को पूरा करने के लिये प्रयासरत हैं, और साथ ही साथ इन ग्रामीणों की समस्याओं के निवारण करने में निष्पक्षता के साथ समाधान करने में सकारात्मक मूमिका अदा कर रहे हैं। जो ग्राम सभा में अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और महिला वर्ग से प्रतिनिधि शामिल होते हैं। ग्राम सभा को जिन समस्याओं के निवारण की शक्ति प्राप्त हैं साथ ही ग्राम सभा को प्रदत्त अधिकारों एवं कार्यो को देखने का प्रयास किया गया है, जिसमें ग्रामीणों की को के स्तर की भी जानकारी ली गई है तथा ग्रामीणों के दृष्टिकोण एवं ग्राम समा के कार्य संपादन में आने वाली समस्याओं को भी देखा गया है। ग्राम सभा किस हद तक ग्रामाणो की समस्याओं विशेषत: अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य कमजोर वर्गों के. जा साथ उसकी भूमिका तथा ग्रामीण स्तर पर लोगों की जन समस्या के निवारण का सूक्ष्म रूप देखने को मिला।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अवस्थी, डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिविल विधि संग्रह, जबलपुर लॉ हाउस प्रकाशन, 1998.
2. खन्ना, बी.एस. पंचायती राज में भारत, नई दिल्ली: दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन 1994.
3. देसाई, बसंत, पंचायती राज जनता को शक्ति, मुम्बई: हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 1990.
4. पटेल, अनुज कुमार, छत्तीसगढ़ पंचायती राज अधिनियम 1993, रायपुर: छत्तीसगढ़ राज ग्रामीण विकास संस्थान, 2018.
5. भार्गव, बी एस, पंचायती राज सिस्टम एण्ड पॉलिटिक्स पार्टीज, नई दिल्ली: आशीष पब्लिशिंग, 1995.

छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत में महिला आरक्षण के प्रभाव का एक राजनैतिक अध्ययन (बिलासपुर जिले के विषेष संदर्भ में)

डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी

शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य एस. आर. सी. एस कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

खोरबहरा प्रसाद

शोधार्थी, एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

प्रस्तावना

यत्र नार्यस्तुर पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता

कथित वाक्य पूरी तरह सत्य है कि जहाँ नारी की पूजा व सम्मान किया जाता है वहाँ देवता का निवास होता है। ग्रामीण विकास में महिलाओं को पंचायत राजनीति में महिलाओं की अतीत एवं वर्तमान में भागीदारी की समीक्षा आज के परिदृश्य में अनिवार्य है। हमारे प्राचीन ग्रंथ व धर्मशास्त्रों के अनुसार समाज में महिलाओं के स्थान को सर्वोपरि माना गया है इतना ही नहीं बल्कि वे राष्ट्र-राज्य के निर्माण की प्रक्रिया मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आजादी के बाद ग्रामीण विकास एवं भारतीय राजनीति मे महिलाओं का योगदान क्रमशः बढ़ता गया। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी के मामले में स्वीडन दुनिया में प्रथम स्थान रखता है। यहाँ पर इनकी भागीदारी लगभग 41 प्रतिशत है तथा नार्वे में भी ठीक स्थिति है, जहाँ 39 प्रतिशत है। एशिया में महिलाओं की सर्वाधिक भागीदारी चीन की है जो 21 प्रतिशत है। भारत का स्थान इस मामले में दुनिया में 65 वाँ तथा एशिया में 11 वां स्थान पर है। राज्य में गावों की सरकार यानी पंच परमेश्वर के रूप में इसाफ देने वाली संस्थाओ में महिलाओं ने धाक जमा ली है। प्रदेश में पंचायतों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण है। इसके बावजूद वे छत्तीसगढ़ में करीब 60 फीसदी गावों की सरकार चला रही है। यानी अनारक्षित क्षेत्रों में भी महिलाएं पुरुषो को पीछे छोड़ रही है। प्रदेश में कुल 10 हजार 971 ग्राम पंचायतें, 146 जनपद पंचायतें तथा 27 जिला पंचायतें हैं। तीनों इकाईयो के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या लगभग 1 लाख 90 हजार है। इनमें आधे से अधिक पदों पर महिलाएं काबिज है। राज्य सरकार ने सन 2008 में महिला आरक्षण 33 से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया था। ताकि इससे पंचायत-राज प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी और अधिक बढ़ाई जा सके। पंचायत चुनाव से गांव-गांव में महिलाएं नेतृत्व करने लगी।

वर्तमान में पंचायत राज संस्थाओं में महिलाओं का दबदबा कायम हो गया है। कहने को तो आरक्षण मात्र 50 प्रतिशत है, लेकिन निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों पर नजर डालें तो उनमें से निर्वाचित महिलाओं की संख्या 60 प्रतिशत तक हो गई है। संवैधानिक

प्रावधान अनुच्छेद 40 राज्य के नीति निदेशक तत्वों के तहत पंचायत के गठन का प्रावधान किया गया है। तथा 73 वें संविधान संशोधन 1992 में पंचायती राज व्यवस्था का अनुच्छेद 243 (अ) (क) से 243 (ण) (ज) के रूप में विस्तार किया गया है। जिसका वर्णन संविधान के भाग-9 में वर्णित है। महिला आरक्षण केवल 33 प्रतिशत या 50 प्रतिशत महिलाओं को राजनीति में लाना ही नहीं बल्कि राजनीति में आने वाली महिलाओं के लिए आवश्यक है कि वे राजनीतिक संस्थाओं के प्रति जागरूक रहे। विश्व, देश, समाज की समस्याओं से परिचित रहे। क्योंकि वेतन आरक्षण से ही महिलाओं का विकास हो जायेगा यह सम्भव नहीं। बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य की रोशनी जलाना होगा सामाजिक अंधविश्वास, अशिक्षा, जनसंख्या कम करने का प्रयास करना होगा तथा राजनीति में साफ सुथरा माहौल बनाना होगा, तभी घर चलाने वाली महिलाएं राष्ट्र व पंचायत को सुचारू रूप से चला सकती है। इसके लिए सार्थक प्रयास जरूरी है। इसमें सरकार जनता महिलाओं सभी का सहयोग व सामंजस्य आवश्यक है। तभी देश की महिलाओं का सामाजिक संरक्षण होगा एवं महिलाओं की अस्मिता की रक्षा होगी।

महिलाओं को आरक्षण की आवश्यकता: वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि सामाजिक, आर्थिक अवरोधों एवं पिछड़ेपन के चलते विकास, प्रशासन सत्ता नीति-निर्माण, राजनीति इत्यादि क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता केवल प्रतीकात्मक हैं। महिलाओं की सम्पूर्ण हिस्सा का छोटा सा अनुपात ही सत्ता एवं विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी क्षमता तथा प्रतिभा के बल आ सकता है तथा महिलाओं का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी विकास विभिन्न क्षेत्र में अपनी सहभागिता से वंचित हैं। महिला आरक्षण विधेयक भारतीय संसद प्रस्तुत किया गया वह विधेयक है जिसके पारित होने से संसद में महिलाओं की भागीदारी 33 प्रतिशत रखी गई।

73 वें संविधान संशोधन से पूर्व पंचायतों में पुरुषों की प्रधानता होती थी। महिलाओ को अपवाद स्वरूप ही जगह मिल पाती थी, लेकिन 73 वें संविधान संशोधन 1992 में महिलाओ के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। यह प्रावधान तीनो स्तरों के सभी पदो पर किया गया तथा वर्तमान में छत्तीसगढ़ पंचायत चुनाव में महिला आरक्षण 50 प्रतिशत का प्रावधान किया गया हैं।

शोध अध्ययन

चौधरी कृष्ण चन्द्र (2018) ने अपने शोध पत्र ''पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी'' में लिखा है कि महिलाओं के नेतृत्व में आगे आने से विकास कार्यों को अधिक निष्ठा एवं ईमानदारी से आगे ले जाने, हरियाली बढ़ाने एवं जल संरक्षण को बढ़ावा देने जैसे सामजिक सुधारों को प्राथमिकता देने मे सफलता मिलती है।

- कुमार, राजेश (2018) ने शोध ग्रंथ ''पंचायती राज एवं महिला नेतृत्व विकास एवं विमर्श'' के अंतर्गत लिखा है कि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं एवं पुरुषों की समान भागीदारी ग्रामीण समाज एवं देश की संतुलित विकास को बढ़ावा देगी जिससे अंतत: भारतीय लोकतंत्र को मजबूती मिलेगी।
- नेगी, डी.पी. एवं सिंह प्रीतम (2019) ने अपने लेख ''वीमेन चेंजिग द फेस ऑफ रूरल गवर्नेस: एविडेंस फ्रॉम राजस्थान'' में लिखा है कि महिलाओं की भागीदारी ने पंचायती राज संस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है एवं उन्होंने यह माना कि जब पंचायत में एक शिक्षित महिला सरपंच के रूप में होती हैं तो पंचायत के विकास का स्तर बढ़ जाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य:

- ग्रामीण विकास में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का अध्ययन किया गया हैं।
- ग्रामीण महिलाओं के राजनीतिक विकास में समाज के द्वारा किये जाने वाले अवरोधों का अध्ययन किया गया हैं।

प्रस्तुत शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध की विधितंत्र को निम्नांकित भागो में विभक्त किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का चुनाव- छत्तीसगढ़ राज्य के ग्रामीण विकास में ग्राम पंचायत में महिला आरक्षण के प्रभाव का एक राजनैतिक अध्ययन अंतर्गत बिलासपुर जिले को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन किया गया हैं।

अध्ययनगत इकाई- प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत इकाई के रूप में बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा को लिया गया है।

उत्तरदाताओं का चुनाव- प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा के ग्राम पंचायतों, जिला पंचायत, जनपद पंचायत व जिला प्रशासन के अधिकारियों/कर्मचारियों व नागरिकों में से उत्तरदाता का चुनाव बहुस्तरीय निर्देशन के द्वारा किया गया हैं, जिसके अंतर्गत उन्हीं क्षेत्रों से प्रत्येक ग्राम पंचायत से 60 उत्तरदाताओ का चयन कर उद्देश्यपूर्ण निर्देशन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त कर विश्लेषण किया गया हैं।

तथ्य संकलन पद्धति, प्रविधि एवं उपकरण- प्रस्तावित शोधकार्य हेतु तथ्यो का संकलन दो प्रकार से किया गया है:-

1. प्राथमिक स्त्रोत:- इसके अंतर्गत निम्नलिखित आधार पर शोध सामग्री हेतु अध्ययन व विश्लेषण किया जायेगा।

अ. प्रश्नावली/साक्षात्कार उत्तरदाताओ से साक्षात्कार दैव निदर्शन के आधार पर प्रश्नावली के माध्यम से लिये जायेंगे।

ब. अवलोकन:- बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा के प्रमुख ग्राम पंचायतों के अंतर्गत प्रत्येक ग्राम पंचायतें से 60-60 उत्तरदाताओं का चयन कर कुल 300 उत्तरदाताओं का चयन कर अवलोकन किया गया है, जिसमें प्रमुख ग्रामों का भ्रमण कर, पंचों, सरपंचों, जनपद सदस्यों, ग्रामीण एवं योजना से जुड़े हुए अधिकारियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तर का सत्यापन किया गया है

स. दैव निदर्शन:-समग्र मे दैव निदर्शन वृहत इकाई का लघु स्वरूप होता है, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप मे चुनना निदर्शन कहलाता है। निदर्शन बहुत बडे समूह का एक छोटा प्रतिनिधित्व होता है, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होतें है। अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या से शोध के लिए लगभग 300 उत्तरदाताओं का चयन किया है, जिसमें बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा के 5-5 ग्राम पंचायतों से 15-15 लोगों का अभिमत लिया किया गया है।

सर्वेक्षण:- बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा विकासखंड में निवासरत सभी श्रेणी के परिवारों का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सर्वेक्षण कर अध्ययन किया गया है।

2. द्वितीयक स्त्रोत - इसके अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र मे जिला प्रशासन व शासन के नीति व विकास कार्यो से संबंधित विभिन्न शोध प्रबंध एवं पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्रो में समय-समय पर प्रकाशित तथ्य एवं इंटरनेट द्वारा प्राप्त सामग्री को शामिल किया जाना है, जिसमें बिलासपुर जिले के 4 विकासखण्डों, क्रमशः तखतपुर, बिल्हा, मस्तूरी एवं कोटा विकासखण्ड अंतर्गत नागरिकों, जनपद पंचायत, जिला पंचायत कार्यालय के अधिकारी/कर्मचारियों से कार्यप्रणाली व सुझाव सम्मिलित किया जाना है। अध्ययन क्षेत्र अंतर्गत चयनित ग्राम पंचायतों के नागरिकों से साक्षात्कार लिया गया है।

3. तथ्यों का संकलन - उत्तरदाताओं के प्रकृति के आधार पर जिला प्रशासन व विकास से संबंधित साक्षात्कार चयनित उत्तरदाताओं से किया जाना है साथ ही शोध कार्य के दौरान अध्ययन क्षेत्र के लोगो से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीक के द्वारा भी तथ्यो का संकलन किया गया है।

निष्कर्ष

राज्य निर्माण के बाद छत्तीसगढ़ शासन द्वारा राज्य में पंचायती राज अधिनियम में कुछ संशोधन करते हुए महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण प्रावधानित किया गया है। आरक्षण मिलने के पश्चात महिलाओं में राजनीतिक सहभागिता में तेजी से अभिवृद्धि हुई है।

अध्ययन क्षेत्र बिलासपुर जिले में पूर्व की तुलना में वर्तमान समय में महिला प्रतिनिधित्व एवं राजनीतिक सहभागिता के दर में बढ़ोतरी हुई है और निश्चित ही यह संवैधानिक पहल ग्रामीण विकास की दिशा में कारगर सिद्ध होगा एवं शोध के परिणाम में बिलासपुर जिले में हुए महिला आरक्षण से विकास कार्यों में जो गति आई है, इसके दूरगामी परिणाम शोध के माध्यम से प्राप्त किया गया हैं।

वास्तव में महिला प्रतिनिधि आपस में बैठकर अपने स्तर पर किये जा सकने वाले कार्यों को तीन सूची में बाँट सकती हैं। पुरुष प्रतिनिधियों की तुलना में महिला प्रतिनिधित्व अधिक कारगर साबित हो सकती है, क्योंकि परिवार संचालन के लिए महिलाएं मूलतः अपने आप में संलग्न हुआ करती है ऐसे कार्य जिसे पंचायत स्तर पर बातचीत या जनसम्पर्क के आधार पर किया जा सकता है, जैसे भ्रुण-हत्या, बाल विवाह, नशाबन्दी, बच्चों को स्कूल भेजना, शिक्षकों का समय से उपस्थिति, श्रमिकों को संगठित करना आदि। इन कामों को करने में किसी धन एवं बाहरी मदद की आवश्यकता नहीं, केवल संस्थागत लगाव होना चाहिए।

ग्राम सभा स्तर पर

- स्व सहायता समूहों को ग्राम सभा की बैठक में अधिक से अधिक संख्या में भाग लेने को प्रेरित एवं उत्साहित करती है।
- ग्राम सभा द्वारा गठित निगरानी समितियों में महिलाओं को भागीदारी बढ़ाई जाती है।
- ग्राम सभा में कुछ मूलभूत प्रश्न उठाकर, जैसे, गरीबी रेखा से नीचे रह रहे व्यक्तियों का क्रमवार चयन, सड़क निर्माण योजना में स्थान का निर्धारण रोजगार योजना से जोड़कर स्थानीय स्तर पर निर्माण कार्य की परियोजना आदि में महिलाओं को प्राथमिकता दिलाती हैं।

ग्राम पंचायत स्तर पर

- स्थानीय विकास की कार्य योजनाओं का निर्माण करने तथा उनमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- महिला शौचालय के निर्माण एवं सामान्य स्वच्छता सम्बन्धी प्रयासों में तेजी लाई जा सकती है।
- सभी बच्चों को स्कूल भेजने का प्रयास सफलीभूत हो सकता है।
- सामाजिक-सामुदायिक कार्यों में स्त्री-पुरुष समानता के मूल्यों को स्थापित करने में मदद मिल सकती है। ग्राम पंचायत-स्तर पर विकासात्मक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहन दे सकती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- चौधरी,कृष्ण चंद्र (2018) ''पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी" कुरुक्षेत्र जुलाई पृ. 104
- कुमार, राजेश (2018) ''पंचायती राज एवं महिला नेतृत्व विकास-एक विमर्श", रिसर्च रिव्यु जर्नल पृ. 92
- सिघला, पामेला (2016). ''वीमेन्स पार्टिशिपेशन इन पंचायती राजः नेचर एंड इफ्फेक्टिवनेश" रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृ. 28
- पंडा, ए.एन. एवं रामबाबू (2015) ''वुमन इम्पोवेर्मेंट इन पंचायती राज सिस्टमः उत्तरप्रदेश", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च पृ. 104

दुर्ग जिले के अहिवारा विधान सभा क्षेत्र के विकास में अनुसूचित जाति के जनप्रतिनिधियों के योगदान का राजनीतिक अध्ययन

डॉ० डी० एन० सूर्यवंशी

शोध निर्देशक, पूर्व प्राचार्य एस. आर. सी. एस कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

संदीप कुमार

शोधार्थी, एस.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छग.)

प्रस्तावना:-

भारत देश अनेक विविधताएँ एवं संस्कृति का देश है, आदिकाल से ही लेकर अर्वाचीन काल तक विभिन्न प्रजातियों, संस्कृतियों संप्रदायों तथा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि रही है। यहाँ सामाजिक व्यवस्था और संगठन के निर्माण में विभिन्न संप्रदायों प्रजातियों का अलग-अलग भूमिका रहा है। इनके द्वारा देश को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया गया है। अनुसूचित जातियों और विभिन्न जातियों के सिद्धाँत तथा संस्कार भारतीय व्यवस्था का प्रमुख स्तम्भ है।

अनेक दुर्गम परिक्षेत्र से लेकर सुगम व्यवस्था तक सैकड़ो वर्षो से अनुसूचित जाति अपनी सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक पहचान बनाये हुए हैं। अनुसूचित जाति अनेक क्षेत्रों मे निवास करते हैं और इनका विशिष्ट पहचान भी है। भारतीय संविधान निर्माण सभा में भी इन जातियों का उल्लेख किया गया है। इनका संक्षिप्त विवरण अनुसूचित जाति के जनप्रतिनिधियों के द्वारा किये गये कार्यो मे समाहित है। भारत के संविधान में राज्यों के विभिन्न क्षेत्रो मे अनुसूचित जाति निवासरत है, अलग-अलग जाति धर्म के लोग भी अनुसूचित जाति में सम्मलित हैं, संविधान के अनुच्छेद 341-342 मे इनका उल्लेख किया गया है, इनके जनप्रतिनिधियों के द्वारा राज्य के विकास मे किये गये सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अध्ययन विशेष कर मध्यप्रदेश से पृथक छत्तीसगढ़ के संदर्भ में अध्ययन करना अनुसूचित जाति जनप्रतिनिधियों के द्वारा राज्य के विकास में विभिन्न क्षेत्रो में उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। उन कार्यो का विशेष राजनीतिक अध्ययन शोध कार्य का उद्देश्य है शोध कार्य के उद्देश्य पूर्ति के लिये अनुसूचित जातियों के जनप्रतिनिधियों द्वारा किये गये उल्लेखनीय कार्यो का अध्ययन किया जाएगा। अहिवारा विधानसभा क्षेत्र में विकास के सभी कार्यो का अवलोकन किया जाना है

प्रस्तुत शोध मे जनप्रतिनिधियों के द्वारा समाज की बेहतरी के लिये प्रत्येक क्षेत्र के लोगो को शासन की संचालित जनकल्याणकारी योजनाओं और संभावित विकास की सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाना है, जिसमे सौर सुजला योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्जवला योजना, खुले मे शौच मुक्त योजना, गौठान योजना, ग्रामीण विकास की योजना, अंतव्यवसायी योजना, छात्र-छात्राओं की छात्रवृत्ति की योजना, सभी का ग्रामीण स्तर पर संचालन और उसका ग्रामीण जीवन पर उन योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन का उनके जीवन स्तर मे बदलाव और व्यवहारिक और आदतों में बदलाव का भी अध्ययन किया जाना है जनप्रतिनिधियों के

कार्यशैली का अवलोकन भी किया जाना है क्षेत्र की जनता से प्राप्त अभिमत को भी आधार बनाया जाएगा संपूर्ण क्षेत्र के कुछ हिस्सों का भ्रमण किया जाएगा और सदृश्य अभिमत प्राप्त किया गया है। सन 2001 में देश की तेरहवीं जनगणना के अंतिम आंकड़ों के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य की कुल जनसंख्या 2,08,33803 है। राज्य में कुल 44 अनुसूची जातियां निवास करती है। इस प्रकार राज्य की कुल जनसंख्या 11.6 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जाति का है।

छत्तीसगढ़ राज्य की अनुसूचित जातियों की सूची:- संविधान में संशोधन (अनुसूचित जातियाँ) आदेश 1950 संविधान में संशोधन (अनुसूचित जातियाँ) आदेश 1950 में (अ) पद-2 में अंक ग्प्प् के लिए अंक ग्प्प्

प्रतिस्थापित की जावे। अनुसूची में भाग XXIi~ के बाद निम्नलिखित जोड़ा जावे। भाग ग्प्प् छत्तीसगढ़ के जातियों का नाम-1. औधेलिया 2. बागरी-बागड़ी 3. बहना-बहाना 4. बलाही-बलाई 5. बांछड़ा 6. बराहर, बंसोड़ 7. बरगूंडा 8. बसोर, बरूड़, बंसोर, बंसोडी, बॉसफोर, बसार 9. बेड़िया 10. बेलदार, सुनकर 11. भंगी, मेहत्तर, बाल्मिकी, लालबेगी, धरकर 12. भानुमति 13. चडार, 14. चमार, चमारी, बेरवा, भांबी, जाटव, मोची, रेगर, नोना, रोहीदास, रामनामी, सतनामी, सूर्यवंशी, सूर्यरामनामी, अहिरवार, मागन, रैदास. 15. चिडार 16. चिकवा, चिकवी, 17. चितार, 18 दहैत, दहायत, दाहत 19. देवार 20 धानुक 21. ढेड, ढेर 22. डोहोर, 23. डोम, डुमार, डोमे, डोमार, डोरिस 24. गांड़ा, गाड़ी 25. घासी, घसिया 26. होलिया 27.कंजर, 28. कतिया, पथरिया 29. खाटक 30. कोली, कोरी 31. खंगार, कनेरा, मिरधा 32. कुचबंधिया 33. महार, मेहरा, मेहर 34. मांग, मांगगरोड़ी, मांगगारूड़ी देखनीमांग मांगमहासी, मदारी, गारूड़ी, राधेमांग 35. मेघवाल 36. मोधिया 37. मुस्कान 38. नट, कालबेलिया, सपेरा, नवदिगर, कुबुतर 39. पासी, 40 रूज्झार 41. सांसी, सांसिया 42. सिलावट 43. झमराल 44. तुरी.

शोध विषय का क्षेत्र एवं संक्षिप्त परिचय:- उपरोक्त क्षेत्र संपूर्ण राज्य मे किये गये सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र है छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न जिलों मे निवासरत अनुसूचित जाति एवं अन्य सभी जातियों के विकास मे किये गये कार्य है छत्तीसगढ़ राज्य 1 नवंबर सन् 2000 को अपने मातृ राज्य मध्यप्रदेश से अलग होकर एक नये राज्य के रूप मे विकास कर रही है। प्रस्तुत शोध कार्य दुर्ग जिले के अंतर्गत आने वाले विधानसभा क्षेत्रों का विवरण इस प्रकार है।

1.	पाटन क्रमांक	62
2.	दुर्ग ग्रामीण क्रमांक	63
3.	दुर्ग शहर क्रमांक	64
4.	भिलाई नगर क्रमांक	65
5.	वैशाली नगर क्रमांक	66
6.	अहिवारा क्रमांक	67

प्रस्तुत शोध कार्य अहिवारा विधानसभा क्रमांक 67 का अध्ययन किया गया है। जो छत्तीसगढ शासन के द्वारा अनुसूचित जाति संवर्ग के आरक्षित सीट है

इसके अंतर्गत शहरी और ग्रामीण जनसंख्या का सम्मिश्रण दिखाई देता है इस क्षेत्र मे कुल मतदाताओं की संख्या 188860 है, जिसमें पुरूषों की आबादी 51 प्रतिशत और महिलाओं का 49 प्रतिशत है। अहिवारा की औसत साक्षरता दर 66 प्रतिशत है

यह ऑकडा 2013 विधानसभा चुनाव से प्राप्त जानकारी के आधार पर है। अहिवारा क्षेत्र प्राकृतिक और औद्योगिक सम्पदा से परिपूर्ण है यहॉ खेती भी उन्नत पैमाने पर की जाती है दुर्ग जिले के केन्द्र में स्थित अहिवारा विधानसभा क्षेत्र मे 250 मतदान केन्द्र है।

शोध अध्ययन

संबंधित शोध अध्ययन जनप्रतिनिधियों के द्वारा राज्य में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में किये गये कार्यो पर शोध कार्य किये गये है, उन कार्यो की मदद से वर्तमान शोध को गति एवं दिशा मिलती है राज्य के विकास मे अनुसूचित जाति जनप्रतिनिधियों की तथा राज्य के संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुसूचित जाति जनप्रतिनिधियों तथा राज्य के संस्थाओ के द्वारा सुदूर क्षेत्रों तक किये गये विकास से संबंधित विषयों तथा स्थानों का प्रमुख रूप से अध्ययन किया गया है।

- शर्मा, रूपेश कुमार (2009) जिला पंचायत अध्यक्षों की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन (पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर) ने जिला पंचायत अध्यक्षों की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन कर छत्तीसगढ़ के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न जिलों में अलग-अलग जाति धर्म के लोगों का बोलबाला है, क्योंकि क्षेत्रवाद की राजनीति के द्वारा यह समझने में सहायता मिली की जनसंख्या की बहुलता भी छत्तीसगढ़ की राजनीति में शिखर पर विद्यमान है चूँकि छत्तीसगढ़ में जातीय-व्यवस्था बहुत गहराई से दिखाई देतीं है।
- किरानी, तिग्गा (2016) राजनांदगाँव जिले की पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन (पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर) के अध्ययन मे यह बात स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों मे भी महिला सशक्तिकरण का विकास हो रहा है और राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाएँ भाग ले रही है।
- मार्को, प्रियंका (2016) छत्तीसगढ़ मे अनुसूचित जनजाति समुदाय के विकास मे आरक्षण का प्रभाव एक अध्ययन राजनांदगाँव जिले के अंबागढ़ चौकी तहसील के विशेष संदर्भ मे (पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय) इनके द्वारा समुदाय के आरक्षण का विशेष महत्व है आनुपातिक आरक्षण के माध्यम से समाज के पिछड़े लोग समाज की राजनीति और सरकारी तंत्र के नौकरियों में सहभागिता से अपने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में उन्नति और प्रगति कर रहे हैं।

शोध अध्ययन के उद्देष्य:

1. केन्द्र एवं राज्य सरकार की राज्य में अनुसूचित जाति के लिये संचालित योजना का अध्ययन किया गया है।
2. राज्य प्रशासन का अनुसूचित जाति के विकास में भूमिका व महत्व का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध विधि:- प्रस्तावित शोध की विधितंत्र को निम्नांकित भागो में विभक्त किया गया है।

1. अध्ययन क्षेत्र का चुनाव- विकास की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र के रूप में अहिवारा विधानसभा को लिया गया है। जहॉ विकास कार्यो में जनप्रतिनिधियों की भूमिका का अध्ययन किया गया है।
2. अध्ययनगत इकाई- प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत इकाई के रूप में अहिवारा विधानसभा के शहरी/ग्रामीण क्षेत्रो के विकास मे किये गये कार्यो का अध्ययन किया गया है।
3. उत्तरदाताओं का चुनाव- प्रस्तुत अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र अहिवारा विधानसभा के ग्राम पंचायत, जिला पंचायत, जनपद पंचायत व जिला प्रशासन व नागरिक के उत्तरदाता का चुनाव बहुस्तरीय निर्देशन के द्वारा किया जाना है, जिसके अंतर्गत उन्ही क्षेत्रो से प्रत्येक ग्राम पंचायत से 60 उत्तरदाताओ का चयन कर उद्देश्यपूर्ण निर्देशन के माध्यम से कुल 300 उत्तरदाताओं से अभिमत प्राप्त कर विश्लेषण किया गया है।
4. तथ्य संकलन पद्धति, प्रविधि एवं उपकरण- प्रस्तुत शोधकार्य हेतु तथ्यो का संकलन दो प्रकार से किया गया है:-

1. प्राथमिक स्त्रोत
2. द्वितीयक स्त्रोत

1. प्राथमिक स्त्रोत:- इसके अंतर्गत निम्नलिखित आधार पर शोध सामग्री हेतु अध्ययन व विश्लेषण किया गया है।

अ. प्रश्नावली/साक्षात्कार उत्तरदाताओ से साक्षात्कार दैव निदर्शन के आधार पर प्रश्नावली के माध्यम किया गया है।

ब. अवलोकन: अहिवारा विधानसभा के प्रमुख शहरी और ग्रामीण क्षेत्रो के अंतर्गत प्रत्येक ग्रामो के 60-60 उत्तरदाताओं का चयन कर कुल 300 उत्तरदाताओं का चयन कर अवलोकन किया गया है, जिसमे प्रमुख ग्रामों का भ्रमण कर, पंचों, सरपंचों, जनपद सदस्यों, ग्रामीण एवं योजना से जुड़े हुए अधिकारियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तर का सत्यापन किया गया है।

स. दैव निदर्शन समग्र मे दैव निदर्शन वृहत इकाई का लघु स्वरूप होता है, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप मे चुनना निदर्शन कहलाता है।

निदर्शन बहुत बडे समूह का एक छोटा प्रतिनिधित्व होता है, जिसमें समूह के समस्त लक्षण विद्यमान होतें है। अध्ययन क्षेत्र अहिवारा विधानसभा के अंतर्गत ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या से शोध के लिए लगभग 300 उत्तरदाताओं का चयन किया है, जिसमे अहिवारा विधानसभा क्षेत्र के सभी ग्रामों एवं प्रत्येक ग्राम से 10-10 लोगों का अभिमत लिया गया है।

द. सर्वेक्षण: अहिवारा विधानसभा के सभी क्षेत्रों के अंतर्गत निवासरत सभी श्रेणी के परिवारो का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सर्वेक्षण कर अध्ययन किया गया है।

2. द्वितीयक स्त्रोत - इसके अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र मे जिला प्रशासन व शासन के नीति व विकास कार्यो से संबंधित विभिन्न शोध प्रबंध एवं पत्र-पत्रिकाएं,, समाचार पत्रो में समय-समय पर प्रकाशित तथ्य एवं इंटरनेट द्वारा प्राप्त सामग्री को शामिल किया गया है, जिसमे अहिवारा क्षेत्र, जिलाधीश कार्यालय, दुर्ग जिला पंचायत, अहिवारा नगर पालिका, कार्यालय के अधि कारी/कर्मचारियो के कार्यप्रणाली व सुझाव सम्मिलित किया गया है।

   तथ्यों का संकलन - उत्तरदाताओं के प्रकृति के आधार पर जिला प्रशासन व विकास से संबंधित साक्षात्कार चयनित उत्तरदाताओ से किया गया है साथ ही शोध कार्य के दौरान अध्ययन क्षेत्र के लोगो से समूह वार्ता व अवलोकन तकनीक के द्वारा भी तथ्यो का संकलन किया गया है।

निष्कर्ष

जनप्रतिनिधियों के द्वारा क्षेत्र में विभिन्न काम एवं उल्लेखनीय योगदान दिया एवं किया गया है। प्रस्तुत कार्यक्षेत्र में जनप्रतिनिधियों के आर्थिक, सामाजिक एवं साँस्कृतिक क्षेत्र में बहुत अधिक कार्य किया गया है इनमें बहुत से कार्य ऐसे भी है जिसमें जनप्रतिनिधियों के द्वारा व्यक्तिगत तौर पर भी कार्य किया गया जिसमें मुख्य रुप से आर्थिक सहायता जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार काम के लिये बजट प्रदान करना एवं उनका क्रियान्वयन कहाँ तक हुआ है कि नहीं इसका भी समय-समय पर जनप्रतिनिधियों अपने क्षेत्र में जाकर निरीक्षण एवं परीक्षण करता है क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों के द्वारा साँस्कृतिक कार्य भी किया जाता है जैसे विभिन्न समाजों के मेला कार्यक्रमों में शामिल होना उनका द्वारा सामाजिक उत्थान एवं उनके प्रगति के लिये जो कार्य किया जाता वह सभी योगदान में आता है। शोध कार्य के द्वारा संबंधित क्षेत्र में हो रहे कार्यो और सरकार की विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन भली प्रकार से उस क्षेत्र मे हो रहा है कि नहीं इसको सामने लाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- शुक्ल हीरालाल, 1920 गुरू घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धाॅत हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृ.90
- चटर्जी, एस.के, 1995, द शेड्यूल कास्टस एण्ड ट्राइबल्स इन इंडिया, डॉन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, पृ.164.
- श्रीनिवास, एम.एन., 1966, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एलाइड् पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.154
- शुक्ला. शान्ता., 2012, छत्तीसगढ़ का सामाजिक, आर्थिक इतिहास नेशनल पब्लिसिंग हाऊस नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, पृ. 34.
- वर्मा भगवानसिंग, 2003, छत्तीसगढ़ का इतिहास राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रारंभ से 1947 ई. तक पृ.105

मिथिलाभाषा रामायणमे समसामयिकता चित्रण।

डॉ० अरूण कुमार ठाकुर

सहायक प्राध्यापक, मैथिली विभाग, जे0 एन0 कॉलेज, मधुबनी

साहित्यकार अपन युगक प्रतिनिधि कहबैत छथि कारण हुनक कृतिपर ओहि समाज ओ युगक स्पष्ट छाप पड़ैत अछि जकर अन्तर्गत ओ साहित्यक निर्माण करैत छथि। एहि दृष्टिएँ प्रत्येक साहित्यकार ओहि समाजक प्रति ऋणी सेहो रहैत छथि जाहि सामाजिक परिवेश मे जीवन-यापन कऽ ओ साहित्यक सृजन करैत छथि। ओना इहो निर्विवाद जे साहित्यकार जँ समाजक प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना सँ प्रभाव ग्रहण करैत छथि तँ संगहि अपन सत्साहित्यक द्वारा ओ प्रत्येक सामाजिक गतिविधिकँ परिवर्त्तित ओ नियंत्रित करबाक सामर्थ्य सेहो रखैत छथि एहि दृष्टिएँ हुनक समाजक प्रति उत्तरदायित्व आर अधिक बढ़ि जाइत अछि। अपन एहि उत्तरदायित्वक परिपालनमे जे साहित्यकार जतेक सफाल होइत छथि से ततेक लोकप्रियता अर्जित करैत छथि। कवीश्वर चन्दाझा मैथिली काव्यजगतमे युगस्रष्टा साहित्यकार मानल जाइत छथि जे अपन दायित्वक निर्वाहमे कनेको शिथिलता नहि देखओलनि अछि। अपन अन्यान्य रचनाक संगहि ओ मिथिलाभाषा रामायणमे जाहि ढगँ प्रकारान्तरेँ समसामयिक परिस्थितिक दिग्दर्शन करबैत छथि जे प्रशंसनीय अछि। ओना रामायण एक धार्मिक ग्रंथ अछि तँ एहिमे समाजक सांगोपांग वर्णनक ने तँ समुचित अवसरे अबैछ आ ने तँ से कोनो दृष्टिएँ महत्त्वपूर्ण मानल जाएत। तथापि रामायणमे समसामयिक परिस्थितिक जे वर्णन भेटैत अछि से कविक लोकोन्मुखी दृष्टिकोण ओ हुनक विलक्षण काव्य-प्रतिभेक परिचायक मानल जाएत।

कवीश्वर चन्दाझाक रामायणक प्रकाशित भेना शताधिक वर्ष भऽ गेल होएत। एहि कालावधिमे समाजक प्रत्येक क्षेत्र मे परिवर्त्तन आएल अछि। एक दिस जँ लोकक जीवन-यापनक ढंगमे परिवर्त्तन आएल अछि तँ दोसर दिस भौतिकवादक बढ़ैत प्रभावक परिणामस्वरूप व्यक्तिक धनलोलुपतामे वृद्धि भेल अछि जकर प्रतिफल अछि लोकमे बढ़ैत नैतिक पतन जे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्थाकँ प्रभावित कएलक अछि। ओना कवीश्वरक समकालीन सामाजिक व्यवस्था आजुक अपेक्षा सभ दृष्टिएँ उत्तम मानल जाएत मुदा ह्रासोन्मुख समाजक वर्णन जाहि ढगँ कवीश्वर कएने छथि ताहिसँ एतेकतँ अवश्य संकेत भेटैत अछि जे अपन समसामयिक सामाजिक परिस्थितिसँ कवीश्वर सन्तुष्ट नहि छलाह। मिथिलाभाषा रामायणक आरम्भहिमे कवीश्वर द्वारा जाहि ढगँ कलियुगक वर्णन भेल अछि से आगत समयक पूर्वाभासतँ करबितहिँ अछि संगहि तत्कालीन सामाजिक कुव्यवस्थाक संकेत सेहो दैत अछि। कवीश्वर द्वारा जे मिथिलाभाषा रामायणमे कलियुगक वर्णन प्रस्तुत कएल गेल अछि तकर किछु पंक्ति द्रष्टव्य थिक:-

होयत कलियुग जखना घोर। सभ जन लम्पट सभजन चोर।।
सत्य कथा ककरहु नहि नीक। दुराचार रत मन सबहीक।।
पर अपवाद मध्य मन निरत। पर-धनमे अभिलाषी फिरत।।
माय-बापमे द्वेष अलेष। अपनँ संसारी सुख देख।।
सभजन त्यागत निज निजजाति। वंचक व्यवहारी दिन-राति।।
नीचक उन्नति हयत अपार। शूद्र-निरत ब्राह्मण आचार।।[1]

एहि वर्णनकँ देखलासँ कुण्ठाग्रस्त लोकक बदलैत मनोवृत्तिक संकेत तँ भेटितहिँ अछि संगहिँ इहो बुझबाक योग्य भऽ जाइछ जे आजुक सामाजिक कुव्यवस्था ओ अनैतिक व्यापारक 'वीज वपन' कवीश्वरक समयमे पूर्णरूपेँ भऽ चुकल छल, अन्यथा ओ एहि प्रकारक वर्णनक सन्निवेश करब आवश्यक नहि बुझितथि। ओना पूर्वहिँ उल्लेख कऽ चुकल छी जे रामायण एक धार्मिक ग्रंथ अछि आ एकर उद्देश्यो अछि श्रीरामक प्रति भक्ति भावना जाग्रत कऽ मोक्षक मार्ग प्रशस्त करब आ तँ कवीश्वर लिखनहुँ छथि:-

अज्ञानहुँ जे करय नर, रामनाम उच्चार।

अन्त पावि गति उत्तमा घुरि न आब संसार।।[2]

इएह कारण अछि जे सम्पूर्ण रामायणमे बड़ कम स्थल एहेन अछि जतऽ समसामयिक परिस्थितिक वर्णन करबाक अवसर भेटैत हो तथापि जतऽ कतहु एहि प्रकारक अवसर आएल अछि कवीश्वर तकर सम्यक उपयोग करबामे पाछाँ नहि रहलाह अछि।

कवीश्वरक रामायणक सूक्ष्म अवलोकनसँ स्पष्ट होएत जे घटना ओ परिस्थतिकेँ मिथिलाक संस्कृति-संस्कार, अचार-विचार, रीति-नीतिक परिवेश देबामे कवि पूर्ण सफल रहलाह अछि। जतऽ कतहु अवसर भेटलनि अपन मिथिलाक माटि-पानिक विशेषताकेँ उजागर करबाक प्रयास अवश्य कएलनि। एक-आध प्रसंगक उल्लेखसँ ई विषय आर अधिक स्पष्ट भऽ जाएत। बालकाण्डमे विश्वामित्रक संग राम-लक्ष्मणक मिथिला आगमनक समय श्रीराम द्वारा मिथिलाक श्री-समृद्धिक जाहि ढंगेँ वर्णन भेल अछि से मिथिलाक भव्य चित्र अंकित करैत अछि। संगहिँ तात्कालिक मिथिलाक प्राकृतिक सौन्दर्य ओ वैभवक अनुमान लगएबाक हेतु बाध्य करैत अछि। मुदा ई वर्णन मात्र कल्पने पर आधारित नहि अछि अपितु कवीश्वरक समकालीन मिथिलाक सामाजिक परिस्थितिक अनुमान सेहो एहिसँ लगाओल जा सकैछ। द्रष्टव्य थिक मिथिला वर्णनक किछु पंक्ति:-

की दिव्य भूमि मिथिला हम आबि गेलौँ।

देखैत मात्र मन लक्ष्मण तृप्त भेलौँ।।

की दिव्य फूल फल वृक्ष अनन्त धान।

पक्षी-विलक्षण करै अछि रम्य गान।।[3]

कवि शस्य-श्यामला मिथिलाक संस्कृति ओ व्यवस्थाक चमत्कारिक चित्र अंकित करैत कहैत छथि जे मिथिलामे पर्याप्त मात्रामे अन्न उपजैत छल। यत्र-तत्र कृष्णसारमृग देखल जाइत छल। तत्कालीन मिथिलाक संगीत-साधना लोकजीवनमे अत्यधिक परिव्याप्त ओ समृद्ध छल। एहिठामक सामान्य खेतक रखबारो सभक लोकगीतक ध्वनि ततेक प्रभावोत्पादक, मनोमुग्धकारी, आकर्षक छल जे मनुष्यक कोन कथा भूख-प्याससँ आकुल-व्याकुल जंगली-पशु सभ सेहो आकृष्ट भऽ भूख-प्यास बिसरि गीत गेनिहारक अनुकूल आचरण करबाक हेतु बाध्य भऽ जाइत छल। शास्त्र ज्ञानक परिचर्चा समस्त मिथिलामे ततेक प्रचलित छल जे एहिठामक उन्मुक्त सुक-सारिका सन मनुष्यक वाणीक अनुकरण कएनिहार पक्षियो सभ शास्त्रक विविध सिद्धान्तक सद्य: उच्चारण करैत पाओल जाइत छल:-

शाली-गोप गीतिकाँ सुप्रीति रीति शूनि-शूनि।

खेत शस्य खाथि नै कुरंग आखि मूनि-मूनि।।

सत्य तीरहूति यज्ञ-भूमि पुण्य देनिहार।

शास्त्रकेँ बजैत बेस कीर बैसि डारि-डारि।।[4]

एहि पदसँ तत्कालीन मिथिलाक शास्त्र ओ संगीत विषयक उत्कर्षक पराकाष्ठा अभिव्यंजित भेल अछि। शान्ति ओ सुरक्षा एहिठामक लोकक कोन कथा जे पशु-पक्षी पर्यन्तके निर्भीक ओ शास्त्रकलाक मर्मज्ञ बना देने छल।

तत्कालीन मिथिलाक वैशिष्ट्य ओ महात्म्यक उल्लेख करैत कवीश्वर लिखलनि अछि:-

नदी मातृक क्षेत्र सुन्दर शस्य सौं सम्पन्न।

समय सिर पर होय वर्षा बहुत संचित अन्न।।

दयायुत नर सकल सुन्दर स्वच्छ सभ व्यवहार।

सकल विद्या-उदधि मिथिला विदित भरि संसार।।[5]

नदी सभक द्वारा सिंचित सम्पूर्ण मिथिलाक खेत सभ विलक्षण-विलक्षण अन्नसँ भरल-पुरल छल। उचित समय पर वर्षा होइत छल तेँ मिथिलामे अन्नक पर्याप्त संचय छल। मिथिलाक मनुष्य सुभग, दयासँ युक्त तथा निष्कलुष व्यवहारवला छल। मिथिला सकल विद्याक समुद्रेक रूपमे सम्पूर्ण संसारमे प्रख्यात छल।

पुन: कवि तत्कालीन मिथिलाक प्रफुल्ल-पंकजसँ भरल विलक्षण जलाशय सभक स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करैत स्वाभावोक्ति एवं समासोक्ति अलंकारक विन्यास करैत लिखलनि अछि:-

प्रपूर्ण सन् तडाग की सुधा समान वारिसौँ
विचित्र पद्मिनी-वनी विहंग वारि-चारिसौँ।
द्विरेफ गुंजि गुंजि कँ महामदान्ध घूमिकँ
सरोजनीक अंग सुप्त वार-वार चूमिकँ।[6]

अमृतक समान जलसँ उमड़ल (लवालव भरल) पोखरि सभमे विविध-प्रकारक जलचर पक्षी सभक जलविहारक संग पुरैनिक अधिकता देखना जाइत छल। कमलक मधुपान कऽ मदान्ध मधुकर (भ्रमर) कमलनीक अंग-प्रत्यंग चुम्बन ओ आलिंगन करैत कमलनिएक संग सूति रहैत छल।

मिथिलाक प्रकृति-विलासमे सौन्दर्यक प्रतीक कमल, विवेकक प्रतीक हंस उर्ध्वमुख अभियानक प्रतीकक संगहि सात्त्विक आहारवान जीविकाक प्रतीक काण्डव आदिक उपस्थिति, मधुक भण्डार, सौन्दर्यक शृंगार, सरसता एवं सुस्वादक प्रतीक कमलक-मधुक आधिक्यैँ भ्रमरक मधुर गूँजार तथा निर्भय शान्तिक व्याप्ति सम्पूर्ण मिथिलामे विराजमान छल।

कवीश्वरक रामायणमे समसामयिक परिस्थितिक चित्रण पर विचार करबाकाल एहि विषय पर ध्यान राखब अतिआवश्यक जे कवीश्वर मिथिलावासी छलाह आहुनका मिथिलाक माटि-पानिसँ जे स्नेह छलनि तकरे परिणाम थिक जे जतऽ कतहु अवसर भेटलनि ओ प्रकारान्तरैँ एहि स्नेहकँ अभिव्यक्त करबाक चेष्टा अवश्य कएलनि। मिथिला आदिकालसँ अपन सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचारक हेतु प्रसिद्ध रहैत आएल अछि। एहि तथ्यकँ कवीश्वर अपन रामायणमे सेहो स्पष्ट करबाक प्रयास कएलनि अछि। मिथिलाक कतिपय लौकिक व्यवहारक संगहिँ लोकआस्था आदिक उल्लेख सेहो कविश्वरक द्वारा स्थल-स्थल पर कएल गेल अछि।

रामायणक आरम्भहिमे पुत्र-यज्ञक प्रसंगमे मिथिलाक लौकिक व्यवहारक परिचय भेटैत अछि। पुत्रक अभाव मे राजा-दशरथ अत्यन्त खिन्न रहैत छलाह। गुरू वशिष्ठमुनि एकदिन परामर्श देलनि जे अपन मित्र रोमपाद ऋषिक बेटी-जमाय (शान्ता शृंगी मुनि) कँ बजाए जँ पुत्रयज्ञ सम्पन्न करावथि तँ निश्चय सन्तानक प्राप्ति हेतैन्हि। उक्त दुनूगोटे रोमपाद ऋषिक ओतऽ स्थायी रूपैँ रहैत छलाह। तँ राजा दशरथ रोमपाद ओतऽ पहुँचलाह आ अपन बेटी-जमायकँ अयोध्या जाय देबाक हेतु हुनकासँ अनुरोध कएलथिन। हुनक आज्ञा पाबि राजा दशरथ हुनका दुनू गोटे कँ अयोध्या अनलनि। एहि प्रसंग ई ध्यान देबाक विषयजे अपन देशमे एहि प्रकारक प्रथा अछि जे मित्रक-कन्या पुत्रीक समान होइत अछि आ तँ ओकर संग तदनुकूले व्यवहार कएल जाइत अछि। एहि औपचारिकताक पालन राजा दशरथ सेहो करैत छथि आ शान्ता तथा शृंगी मुनिकँ अपन संग अयोध्या अनैत छथि। एहिठाम बेटी जमाइक अनुरूप हुनक सत्कार होइत अछि। नव वर-कनियाँकँ जे व्यवहार होएबाक चाही तकरो पालन कएल जाइत अछि। हुनक चुमाओन कराओल जाइत अछि। आ एहि हेतु नगरभरि हकार पड़ैत अछि। कवीश्वर शब्दमे एकर वर्णन देखल जाए:-

कयल लेआओन कन्या जानि।
रोमपाद घर सब लेल मानि।।
चलला कन्या-संग जमाय।
दशरथ हर्ष कहल नहि जाय।।
पहुँचलाह नृप अपना नगर।
भेल हकार नगरमे सगर।।
त्निक चुमाओन उत्सव गीति।
सुता जमाइक सनसब रीति।।[7]

यद्यपि एहि घटनाक उल्लेख अध्यात्म-रामायण (जे कवीश्वरक आधार ग्रंथ थिक) मे सेहो भेल अछि मुदा जाहि प्रकारैँ कवीश्वर एकर विराद वर्णन कएने छथि से अन्य कोनो रामायणमे नहि भेटैछ।

मिथिलाभाषा रामायणक कतिपय स्थल सभ एहन अछि जतऽ प्रकारान्तरैँ मैथिल ओ मिथिलाक संस्कृतिक प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होइत अछि। किछु दृष्टान्तक उल्लेखसँ एकरा स्पष्ट कएल जा सकैछ। कवीश्वरक रामायणक 'अयोध्याकाण्ड' मे रामक राज्याभिषेकक अवसरक हेतु वशिष्ठ द्वारा जाहि वस्तुविधानक निर्देश दशरथसँ कएल गेल अछि ताहिमे विभिन्न तीर्थस्थानक जलसँ परिपूरित स्वर्णकलश, दही, दूवि, दूर्वाक्षत आदिक उल्लेख अछि:-

कनक कलस नाना तीर्थोदक, पूरित रहै हजारे।

दधि दूर्वाक्षत कुङ्कुमचाही मत्स्य प्रशस्त भारे।।[8]

कुमारि कन्याक पूजाक उल्लेख द्रष्टव्य थिक:-

प्रात: काल सकल भूषणयुत सत्कुल बहुत कुमारी।

मध्य कक्षमे पूजन हेतुक पूर्वहि रह तैयारी।।[9]

मिथिलामे कुमारि कन्याकँ (छोट वालिका) भगवती मानि (अष्टवर्षात् भवेतगौरी........) पूजा करबाक प्रथा एखनहुँ अछि। विभिन्न शुभकार्य ओ मांगलिक अवसर पर कुमारि भोजन करएबाक परिपाटी देखल जाइत अछि। एकर अतिरिक्त सीता विवाहसँ पूर्व घटकैती, सिद्धान्त लिखाएब, शुभदिन ओ शुभलग्नक विचार करब, गीत गबैत परिछनि करब, बिधिकरी द्वारा विधि सम्पन्न कराएब, सुआसिनि (गामक बेटी) द्वारा अंगने-अंगने हकार देब, कन्या-वरक विदा होएबाकाल समदाउनि गायब आदि सभ जे वर्णित अछि से मिथिलाक समसामयिक संस्कृति अनुरूप अछि। ताहूमे कवीश्वर 'तिरहुति रीति' दऽ स्पष्टे कऽ देल अछि:-

दशरथ नृपति निकट अयलाह। घटना शतानन्द लयलाह।।

शुभ सिद्धान्त नगर भेल ख्यात। हर्षयँ पड़य न पृथिवी लात।।

आयल सुदिन सुलग्न सुयोग। हलचल सकल चलल उद्योग।।

जनिकर परिछनि गबइत गीति। विधि कर विधिकरि तिरहुति रीति।।

बहुत सुवासिनि नगर हकार। जनक कयल भल कुल-व्यवहार।।[10]

सीताक सासुर बिदा होएबाकाल परिजन ओ महिलालोकनिक द्वारा समदाउनि गाओल जाइछ:-

समदाउनि गायिनि-गण गाब।

ककरा नयन नोर नहि आब।।[11]

वस्तुत: मिथिलाभाषा रामायणमे सीता-रामक विवाहक वर्णनक क्रममे तत्कालीन मिथिलामे जे प्रचलित रीति छल तकर चित्रणसँ समसामयिक मैथिल संस्कृतिक दिग्दर्शन होइत अछि।

मिथिलाक एकगोट बड़ पैघ विशेषता अछि जे कन्यागत कतबो पैघ रहथु मुदा ओ वरक पिताक समक्ष नतमस्तक रहैत छथि। राजा दशरथ जखन मिथिला अबैत छथि तँ स्वयं राजाजनक हुनका अरियाति कऽ अनैत छथि:-

आनल दूरहिसँ अड़िआति। से व्यवहार विहित छल जाति।।[12]

औपचारिकताक एतेक निर्वाह मैथिल छोड़ि आन के कऽ सकैत अछि।

रामायणमे स्थल-स्थल पर कबुला-पाती एवं लोक आस्था सभक चर्चा तत्कालीन मिथिलाक सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाक संकेत दैत अछि। वनगमनक क्रममे सीता गंगा नदी कँ पार करबाकाल सुरसरिकँ प्रणाम करैत कहैत छथिन जे हुनकालोकनिक वनवासक अवधि निर्विघ्न समाप्त होएए आ तँ ओ गंगाकँ छागर तथा मदिरा चढ़एबाक कबुला करैत छथि:-

हे सुरसरि वन-दुख निस्तार। घुरब करब पूजा विस्तार।।

मदिरा मांस विविध उपचार। करब यथाविधि वारम्बार।।[13]

एखनो कमला, गंगा, बागमती प्रभृति देव नदीक प्रति अभिष्ट सिद्धिक हेतु मदिरा, मांस आदि कबुला कएल जाइत अछि। ई मिथिलाक कौलिक (शाक्त) मत प्रधान संस्कृतिक स्पष्ट प्रभाव थिक। एहि प्रसंग डॉ0 अमर नाथ झाक मन्तव्य अछि- 'वस्तुत: राजधानीसँ निर्वासित पतिक अनुगामिनी सीताक हृदयमे जे विड़रो बहि रहल छल तकर शान्तिक हेतु ओ गंगा सँ अनुनय-विनय कोना नहि करितथि तथा गंगाक समीपमे प्रणिपात करबाक हेतु छागर-पाठी कबुला करब मिथिलाक सुदीर्घ परम्पराक अनुकूल थिक।[14]

आजुक वैज्ञानिक युगमे प्राचीन लोकमान्यता ओ अन्धविश्वासक जड़ि हिलि गेल प्रतीत होअए लागल अछि। मुदा भारतीय जनजीवनसँ सम्पृक्त एहि तत्त्व सभक पूर्णलोप होएबामे बहुत समय लागत। कवीश्वर अपन रामायणमे एहि लोकविश्वास (जकरा अन्ध-विश्वासक संज्ञा देल जाइछ) सभक संकेत सेहो देने छथि जेना-शुभ-अशुभक विचार, सगुण विचार आदि) डॉ0 रमाकान्त झा मिथिला-भाषा रामायणक भूमिका मे लिखलनि अछि- 'मिथिलाभाषा रामायणक अनेक विशिष्टतामे एक मुख्य विशिष्टता थिकैक

घटना एवं परिस्थितिकेँ मिथिलाक संस्कृति, संस्कार, आचार-विचार, रीति-नीतिक परिवेश देब। रामक राज्याभिषेकक हेतु वशिष्ठ द्वारा निर्दिरष्ट-वस्तु विधानमे कुमारि पूजाक प्रधानता। (प्रातः काल सकल भूषणयुत् सत्कुल बहुत कुमारी) लंका-विजयोपरान्त अयोध्यागमन पर रामक चुमाओन (प्रभु चुमाओन विविध उत्सव भेल विधि तेहिठाम) सीता-रामक विवाह प्रसंगमे जनक-पुरोहित शतानन्दक घटकैती करब, (घटना शतानन्द लयलाह) दशरथक स्वीकृति पर 'सिद्धान्त' लिखायब, मिथिला पहुँचलापर रामक 'परिछनि' (जनिकर परिछन) सीताक पितृगृह त्यागक समय करूणा विहल कण्ठसँ स्त्रीगणक 'समदाउनि' गायब आदि मि0 भा0 रा0क राम कथा पर मैथिल संस्कृतिक प्रभाव निर्दिष्ट करैछ।[15]

मिथिलाभाषा रामायणक रचना जाहि सामाजिक परिवेशमे कवीश्वर द्वारा भेल अछि सेहो तत्कालीन समसामयिक परिस्थितिक संकैत दैत अछि। कारण, संस्कृत भाषा साहित्यिक सुदीर्घ ओ समृद्ध परम्पराक कारणेँ एहिठामक लोकक हृदयमे जे मातृभाषाक प्रति उदासीनता ओ उपेक्षाक भाव व्याप्त छल तकरे प्रतिक्रिया कवीश्वरक रामायणकेँ मानल जा सकैछ, जकरा माध्यमे कवीश्वर ई चेष्टा कएल जे मिथिलाक लोकक हृदयमे मातृभाषाक प्रति सम्मानक भाव जाग्रत हो तथा वैदेहीक मातृभाषाक (मैथिली) माध्यमेँ एहिठामक लोकमे राम-कथाक प्रचार-प्रसार हो एहि उद्देश्यकेँ ओ रामायणक आरंभहिमे प्रकारान्तरेँ व्यक्त कएने छथि। देखल जाए किछु पंक्तिः-

भवति भवतु लोके सत्कथायाः प्रचारो।
जनक नृपति पुत्री-मातृभाषाचिंतायाः।।[16]

एहि संक्षिप्त विवेचन सँ स्पष्टतः प्रतीत होइछ जे मिथिला भाषा रामायणमे समसामयिक परिस्थितिक प्रत्यक्षतः उल्लेख नहिओ रहैत घटना सभक वर्णनक क्रममे कतिपय सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषता सभक उल्लेख स्थल-स्थल पर दृष्टिगोचर होइत अछि जे समसामयिक परिस्थितिक चित्र-प्रस्तुत करबामे पूर्ण सहायक भेल अछि। वस्तुतः एहने स्थल सभ मिथिला भाषा रामायणमे मौलिकता आनि देने अछि।

सन्दर्भ-संकेतः-

1. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-कवीश्वर चन्दा झा-मैथिली अकादमी पटना-1977
2. मिथिलाभाषा रामायण उत्तरकाण्ड-सप्तम अध्याय-पृ0-383
3. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-28
4. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-29
5. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-29
6. तत्रैव रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-29
7. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-द्वितीय अध्याय-पृ0-15
8. मिथिलाभाषा रामायण-अयोध्याकाण्ड-द्वितीय अध्याय-पृ0-59
9. मिथिलाभाषा रामायण-अयोध्याकाण्ड-द्वितीय अध्याय-पृ0-59
10. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-45
11. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-49
12. मिथिलाभाषा रामायण-बालकाण्ड-पृष्ठ अध्याय-पृ0-44
13. मिथिलाभाषा रामायण-अयोध्याकाण्ड-षष्ठ अध्याय-पृ0-87
14. कवीश्वर चन्दाझा ओ हुनक मिथिलाभाषा रामायण-डॉ0 अमरनाथ झा
15. मिथिलाभाषा रामायण-भूमिका-डॉ0 रमाकान्त झा-मैथिली अकादमी पटना, 1977-पृ0-ङ
16. मिथिलाभाषा रामायण कवीश्वर चन्दाझा-बालकाण्ड-पृ0-02

प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली और उच्च शिक्षा विभाग कर्मचारी संतुष्टि पर इसका प्रभाव

डॉ० आशीष कुमार शुक्ला

(एसोसिएट प्रोफेसर), वाणिज्य विभाग, नेहरू ग्राम भारती (डीम्ड यूनिवर्सिटी), प्रयागराज

अनुज कुमार सिंह

रिसर्च स्कॉलर, वाणिज्य विभाग, नेहरू ग्राम भारती (डीम्ड यूनिवर्सिटी), प्रयागराज

सारांश

प्रदर्शन मूल्यांकन मानव संसाधन प्रबंधन के मुख्य कार्यों में से एक है। यह न केवल प्रबंधन के लिए बल्कि कर्मचारियों के लिए भी उपयोगी है ताकि वे प्रबंधन के दृष्टिकोण से अपने प्रदर्शन के बारे में जान और समझ सकें। इस पेपर में शोधकर्ता ने कर्मचारियों की प्रेरणा पर प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली के संबंध का आकलन करने की कोशिश की है। इस उद्देश्य के लिए उच्च शिक्षा विभाग के स्टाफ सदस्यों के बीच एक अनुभवजन्य अध्ययन किया गया है और प्रश्नावली के माध्यम से डेटा एकत्र किया गया था। अनुसंधान के दौरान यह देखा गया है कि निष्पादन मूल्यांकन और कार्य अभिप्रेरणा के बीच संबंध की स्थापना उस विशेष क्षेत्र में प्रयुक्त निष्पादन मूल्यांकन प्रणाली के प्रकार और पारदशता पर निर्भर करती है जिसके साथ निष्पादन मूल्यांकन की पूरी प्रक्रिया की गई थी। उच्च शिक्षा विभाग में जहां सर्वेक्षण किया गया था, कर्मचारियों की गोपनीय रिपोर्ट लिखने का अभ्यास कर रहे हैं और विश्लेषण किए गए डेटा प्रदर्शन ई मूल्यांकन और कार्य प्रेरणा के बीच कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं देते हैं।

कीवर्ड: कार्य प्रेरणा; प्रदर्शन मूल्यांकन

परिचय

मानव संसाधन किसी भी संगठन के लिए महत्वपूर्ण है यह उपयोगी संसाधनों में से एक है। यदि मानव संसाधन या किसी भी संगठन के कर्मचारी खुश नहीं होंगे, तो वे संगठन में सबसे अच्छा नहीं करेंगे और इसके विपरीत। इसलिए मानव संसाधन का प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है। संगठन विभिन्न तरीकों से कर्मचारी को अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए संतुष्ट करने और प्रेरित करने की कोशिश करता है और प्रदर्शन मूल्यांकन उनमें से एक है।

संगठन के कर्मचारी अपने प्रदर्शन पर मूल्यांकन प्राप्त करने पर बेहतर प्रदर्शन करते हैं। वे प्रेरित होते हैं और जब उनके प्रदर्शन का मूल्यांकन किया जाता है और किसी भी संगठन द्वारा उपयुक्त रूप से पुरस्कृत किया जाता है।

प्रदर्शन मूल्यांकन सीधे कर्मचारियों के नौकरी प्रदर्शन से संबंधित है। अगर कर्मचारियों को उनके अच्छे प्रदर्शन पर कोई प्रशंसा नहीं दी जाती है तो वे फिर से उतना काम नहीं करेंगे। प्रदर्शन मूल्यांकन संतुष्टि सीधे नौकरी के प्रदर्शन से संबंधित है। प्रदर्शन मूल्यांकन और नौकरी के प्रदर्शन के संबंध में, आंतरिक प्रेरणा नामक मध्यस्थ हो सकता है। आंतरिक प्रेरणा रिश्ते को बढ़ा सकती है; प्रेरणा के कारण सकारात्मक कार्य प्रदर्शन को ध्यान में रखा जा सकता है।

यह शोध कार्य प्रेरणा के साथ प्रदर्शन मूल्यांकन के संबंध को खोजने के लिए आयोजित किया गया है।

प्रदर्शन मूल्यांकन और प्रेरणा का संबंध

डमीज के लिए प्रदर्शन मूल्यांकन और वाक्यांशों से केन लॉयड ने संबंध स्थापित करने की कोशिश की है और उनकी राय के अनुसार, प्रेरणा वह प्रक्रिया है जो कर्मचारियों को सक्रिय करती है और उन्हें अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। अच्छी तरह से डिजाइन और अच्छी तरह से निष्पादित प्रदर्शन मूल्यांकन में एक मजबूत है प्रेरक प्रभाव। मूल्यांकन में कर्मचारियों का प्रेरित करने की शक्ति है क्योंकि वे कई परस्पर जुड़े लाभ प्रदान करते है।

वे सुधार की आवश्यकता को प्रदर्शित करते हैं: यदि कर्मचारियों को स्पष्ट समझ नहीं है कि वे कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं, तो उन्हें कोई सुधार करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता है।

वे उच्च-स्तरीय मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं: शोधकर्ताओं ने यह पता लगाना जारी रखा है कि मान्यता बड़ी संख्या में कर्मचारियों के लिए प्रेरणा के सबसे शक्तिशाली रूपों में से एक है। यद्यपि आप नौकरी पर मान्यता के कई संभावित स्रोत पा सकते हैं, प्रदर्शन मूल्यांकन कर्मचारियों के लिए अपने प्रबंधक से औपचारिक, महत्वपूर्ण और स्थायी मान्यता प्राप्त करने का अवसर है।

वे व्यक्तिगत मूल्य की भावना का निर्माण करते हैं: जब प्रबंधक कर्मचारियों के साथ प्रदर्शन की सावधानीपूर्वक समीक्षा, विश्लेषण, दस्तावेज और चर्चा करने के लिए समय और प्रयास लेते हैं, तो कर्मचारियों के लिए अंतर्निहित संदेश यह है कि वे महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, और यह अकेले काफी फायदेमंद है, चाहे प्रतिक्रिया सकारात्मक हो या नहीं।

वे व्यक्तिगत विकास को बढ़ाते हैं: प्रदर्शन मूल्यांकन उन कर्मचारियों के लिए प्रेरक हैं जोव्यक्तिगत सीखने, विकास और विकास को बढ़ाने की तलाश में हैं। मूल्यांकन इस तरह की प्रगति के लिए आवश्यक जानकारी, अंतर्दृष्टि और उपकरणों का एक अत्यधिक मूल्यवान स्रोत है। प्रदर्शन मूल्यांकन उन कर्मचारियों के लिए समान रूप से प्रेरक हैं जिनकी आवश्यकताएं उपलब्धि, लक्ष्य प्राप्ति और व्यक्तिगत प्रभावशीलता, सम्मान और विश्वास को महसूस करने पर केंद्रित हैं।

वे कर्मचारियों को बदल देते हैं: जब कर्मचारी खराब प्रदर्शन कर रहे होते हैं, तो प्रदर्शन मूल्यांकन वेकअप कॉल प्रदान कर सकते हैं जिसे उन्हें फिर से केंद्रित और पुन: सक्रिय करने की आवश्यकता होती है। प्रदर्शन मूल्यांकन के साथ, हालांकि, सत्र का उद्देश्य सख्ती से अनुशासनात्मक नहीं है, इसलिए कर्मचारी को अधिक ग्रहणशील और खुले दिमाग के साथ चलने की अधिक संभावना है। नतीजतन, किसी कर्मचारी के संदिग्ध प्रदर्शन के बारे में आपकी टिप्पणियों को सुनने और परिणामस्वरूप कार्रवाई उत्पन्न करने का एक उत्कृष्ट मौका है।

वे संतुष्टि बढ़ाते हैं: जब प्रदर्शन मूल्यांकन ऐसे क्षेत्रों में कर्मचारियों की जरूरतों को पूरा करते हैं जैसे कि मान्यता प्राप्त करना, उपलब्धि और क्षमता को महसूस करना, विकास का अनुभव करना और उद्देश्यों को पूरा करना, तो वे कर्मचारियों की नौकरी की संतुष्टि में भी योगदान दे रहे हैं, और यह आज काम पर सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। जब कर्मचारी संतुष्ट होते हैं, तो कुछ सबसे अधिक दिखाई देने वाले संकेतक कम कारोबार, अनुपस्थिति और कठोरता होते हैं।

साहित्य की समीक्षा

प्रदर्शन मूल्यांकन पर अतीत में कई शोध किए गए हैं। शोधकर्ताओं को उन शोधों से अलग-अलग परिणाम मिले। इसके अलावा, साहित्य की समीक्षा की गई और इन समीक्षाओं के आधार पर, परिकल्पना विकसित की गई।

प्रायद्वीपीय एमअलेसिया में एक शोध किया गया था जिसमें यह पाया गया था कि प्रदर्शन मूल्यांकन के साथ संतुष्टि सकारात्मक रूप से कार्य प्रदर्शन और नौकरी की प्रतिबद्धता को प्रभावित करती है। यह मात्रात्मक अनुसंधान था और सहसंबंध और प्रतिगमन विश्लेषण का उपयोग रेसियाआरसीएच के परिणाम का विश्लेषण करने के लिए किया गया था।[1]

अल्लामेह, एसएम, (एनडी) द्वारा किए गए एक अन्य शोध से पता चला है कि नौकरी के प्रदर्शन के साथ प्रदर्शन मूल्यांकन का संबंध है। परिणाम ने यह भी संकेत दिया कि प्रदर्शन मूल्यांकन संतुष्टि का टर्नओवर इंटेंशनसे संबंध महत्वपूर्ण नहीं है और आंतरिक कार्य प्रेरणा को कम करने की भूमिका है। आबादी में एस्फहान विश्वविद्यालय के कर्मचारी शामिल थे।[2]

कुवास[3] द्वारा किए गए शोध में संकेत दिया गया कि प्रदर्शन मूल्यांकन जो बी प्रतिबद्धता से काफी संबंधित था, आंतरिक प्रेरणा ने नौकरी के प्रदर्शन और प्रदर्शन मूल्यांकन के संबंधों की मध्यस्थता की।

केन्या में एक अन्य शोध से पता चला है कि प्रदर्शन मूल्यांकन का नौकरी के प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जो प्रेरणा की ओर जाता है। यह अध्ययन राज्य के मंत्रालय में किसके लिए आयोजित किया गया है?

सार्वजनिक सेवा। जनसंख्या में 600 लोग शामिल थे और नमूने में 354 लोग शामिल थे जिन्हें 12 समूहों में विभाजित किया गया था। परिणाम का विश्लेषण करने के लिए दो विधियों का उपयोग किया गया था(4)

आईबीबीयूएल के अकादमिक कर्मचारियों की प्रेरणा और प्रदर्शन के बीच एक और अध्ययन आयोजित किया गया था। नमूने के रूप में 141 लोगों को लिया गया। प्रश्नावली का उपयोग डेटा के संग्रह के रूप में किया गया था। परिणाम का विश्लेषण करने के लिए प्रतिगमन और सहसंबंध तकनीक का उपयोग किया गया था। परिणामों से पता चला कि प्रेरणा और नौकरी के प्रदर्शन के बीच मध्यम सकारात्मक सहसंबंध मौजूद है। यहपता चला है कि प्रेरणा नौकरी के प्रदर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

अब यह अध्ययन प्रयागराज क्षेत्र के उच्च शिक्षा विभाग क्षेत्र में प्रदर्शन मूल्यांकन और कार्य प्रेरणा के संबंध को गहराई से जानने के लिए किया गया है क्योंकि इस क्षेत्र और इस संबंध पर पहले कोई शोध नहीं किया गया है। इसलिए इस अंतर को भरने के लिए यह अध्ययन किया गया है।

अनुसंधान उद्देश्य/ अनुसंधान प्रश्न

साहित्य की महत्वपूर्ण समीक्षा से यह ध्यान दिया जाता है कि प्रदर्शन मूल्यांकन, प्रेरणा और नौकरी के प्रदर्शन के बीच एक संबंध है। इसलिए यह शोध निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर देने के उद्देश्य से आयोजित किया गया है: (i) उच्च शिक्षा विभाग क्षेत्र में समग्र मूल्यांकन प्रणाली का अध्ययन करना (ii) कर्मचारियों की प्रेरणा पर प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली के प्रभाव का विश्लेषण करना।

परिकल्पना का विकास

एक परिकल्पना शोधकर्ता द्वारा एक प्रारंभिक या अस्थायी स्पष्टीकरण या अभिधारणा है कि शोधकर्ता एक जांच के परिणाम को क्या मानता है। यह एक सूचित /शिक्षित अनुमान है। यह सेर टैन चर के बारे में शोधकर्ता की अपेक्षा को इंगित करता है। यह सबसे विशिष्ट तरीका है जिसमें किसी समस्या का उत्तर बताया जा सकता है।

अनुसंधान परिकल्पना अध्ययन में स्वतंत्र और निर्भर चर के बारे में की गई विशिष्ट परीक्षण योग्य भविष्यवाणियां हैं। परिकल्पना को अध्ययन में उपयोग किए जाने वाले भाग स्वतंत्र और निर्भर चर के संदर्भ में रखा गया है।

साहित्य समीक्षा के आधार पर, निर्भर और स्वतंत्र चर सहित सभी चर की पहचान की जाती है, अब इन चरों के आधार पर, अध्ययन की परिकल्पना को "प्रदर्शन मूल्यांकन का कर्मचारी की प्रेरणा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है" के रूप में विकसित किया गया है।

अनुसंधान पद्धति

यह अध्ययन प्रदर्शन मूल्यांकन और प्रेरणा के बीच संबंध स्थापित करने पर केंद्रित है और हमारे अध्ययन ने प्रयागराज शहर के उच्च शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को कवर किया है।

मात्रात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया था क्योंकि यह इस प्रकार के अनुसंधान के लिए सुविधाजनक है। अध्ययन के लिए आबादी में प्रयागराज क्षेत्र के सभी उच्च शिक्षा विभाग के कर्मचारी शामिल थे। नमूने में शामिल थे

86. समय और संसाधनों की कमी के कारण सुविधाजनक नमूने की तकनीक का उपयोग करके नमूना चुना गया था।

परिणामों का विश्लेषण करने के लिए प्रतिगमन और सहसंबंध विश्लेषण का उपयोग किया गया था। एसपीएसएस का उपयोग परिणामों को मापने और विश्लेषण करने के लिए किया गया था। विश्वसनीयता विश्लेषण का उपयोग डेटा के रिलिबिलिट वाई की जांच करने के लिए किया गया था।

निष्कर्षों

विश्वसनीयता विश्लेषण व्याख्या

चूंकि सभी चर में .500 से ऊपर अल्फा होता है, इसलिए डेटा अध्ययन के लिए विश्वसनीय है। तालिका 1: विश्वसनीयता विश्लेषण के परिणाम:

नहीं।	चर	आइटम	अल्फा
1	काम की प्रेरणा	7	0.568
2	प्रदर्शन मूल्यांकन	6	0.573

प्रतिगमन विश्लेषण

प्रतिगमन विश्लेषण का उपयोग दूसरे चर के कारण एक चर की परिवर्तनशीलता की जांच करने के लिए किया जाता है। इसका उपयोगप्रेरणा और प्रदर्शन मूल्यांकन के कारण कार्य प्रदर्शन में परिवर्तनशीलता की जांच करने के लिए किया गया था।

यह ध्यान दिया जाता है कि प्रदर्शन मूल्यांकन और कार्य प्रेरणा का संबंध महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि आर स्क्वायर केवल 0.02646 है और पी मान 0.05 से अधिक है, इसलिए हमें शून्य परिकल्पना को स्वीकार करना होगा कि कार्य प्रेरणा और प्रदर्शन मूल्यांकन के बीच महत्वहीन संबंध है।

समाप्ति

उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रदर्शन मूल्यांकन और प्रेरक आयन के साथ कार्य प्रदर्शन का एक महत्वहीन संबंध है।

यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि उच्च शिक्षा विभाग के कर्मचारियों का उच्च प्रेरक स्तर है क्योंकि अधिकांश उत्तरदाताओं ने अपने प्रेरक स्तर का मूल्यांकन करने के लिए कहे गए बयान पर सहमति व्यक्त की है जैसे: मेरी नौकरी मेरे करियर के लिए फायदेमंद है, मेरा बॉस मुझे पूरी तरह से उपयोग करने की क्षमता की अनुमति देता है; काम पर जाना सुखद है; मुझे काम पर अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य पसंद है; मैं अपनी नौकरी प्रोफाइल से संतुष्ट हूं; मेरा बॉस जानकारी संचार करने में अच्छा है; मैं इस संगठन में अच्छे कैरियर की संभावनाएं देखता हूं और संगठन मेरी सेवा को महत्व देता है।

डेटा विश्लेषण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कुल 25% उत्तरदाताओं ने दृढ़ता से प्रेरित किया और 20% उत्तरदाता यह नहीं कह सकते कि उनके काम उन्हें प्रेरित करते हैं या नहीं और अधिकांश उत्तरदाताओं यानी 55% ने काम करने के लिए प्रेरित होने के तथ्य की पुष्टि की।

यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि कर्मचारी प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली, प्रदर्शन केसाथ इनाम की लिंकिंग और विभिन्न मानदंडों से अवगत हैं जिनके खिलाफ उनके प्रदर्शन का मूल्यांकन किया गया था और तथ्यों से अवगत हैं कि उनकी प्रोत्साहन प्रणाली और पदोन्नति प्रदर्शन मूल्यांकन से जुड़ी हुई है। हालांकि, और हालांकि वे इस तथ्य से सहमतहैं कि वे जानते हैं कि उनकी सफलता को मापा गया था, और उनके बॉस काम पर लगाए गए अतिरिक्त प्रयास को पहचानते हैं और पुरस्कृत प्रणाली प्रदर्शन पर आधारित है।

डेटा विश्लेषण भी प्रदर्शन के साथ उत्तरदाताओं की संतुष्टि के तथ्य की पुष्टि करता है क्योंकि केवल 17% न तो संतुष्ट हैं या असंतुष्ट हैं और केवल 34% उत्तरदाता सबसे संतुष्ट हैं और अधिकांश उत्तरदाता संतुष्ट हैं।

सीमाओं

अध्ययन की सटीकता विशुद्ध रूप से उत्तरदाताओं द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित है। हमारे अध्ययन का क्षेत्र केवल उच्च शिक्षा विभाग तक ही सीमित है जो किसी भी अन्य क्षेत्रों पर हमारे निष्कर्षों की प्रयोज्यता को सीमित करता है। हमारे शोध का भौगोलिक क्षेत्र प्रयागराज शहर तक सीमित है

व्यावहारिक निहितार्थ

यह अध्ययन उच्च शिक्षा विभाग क्षेत्र में कर्मचारी प्रेरणा और प्रदर्शन मूल्यांकन के संबंध को जानने के लिए किया गया है। यह अध्ययन इन दोनों के बीच नकारात्मक संबंध को दर्शाता है। इसलिए, उच्च शिक्षा विभाग अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रदर्शन मूल्यांकन के अन्य तरीकों को अपनाकर इन दोनों के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास करें जो उच्च शिक्षा विभाग अधिकारियों को इससे प्रेरित होने और संगठन में अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहन देता है।

यह अध्ययन अपने कर्मचारियों के लिए प्रदर्शन एपर एआईएसल प्रणाली को लागू करने में संगठन की मदद और मार्गदर्शनकरेगा और उन्हें उच्च प्रदर्शन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगा। इससे उन्हें अपने संगठन के कार्य प्रदर्शन को बढ़ाने में मदद मिलेगी। प्रदर्शन मूल्यांकन और प्रेरणा उनके लिए वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में बेहतर अवसर स्थापित कर सकती है। व्यावहारिक प्रभावों के लिए इस अध्ययन का बहुत महत्व है।

संदर्भ

1. अब्दुलासलम, डी और एमए 2012: नाइजीरिया में स्टेट यूनिवर्सिटी के अकादमिक कर्मचारियों की प्रेरणा और नौकरी का प्रदर्शन: इब्राहिम बदामासी बाबांगिदा विश्वविद्यालय लपाई, विगर राज्य का मामला।
2. अल्लामेह एसएम, जे असघई एसएस एस्फहानी और एच काकरी (एनडी), "प्रदर्शन मूल्यांकन संतुष्टि और कार्य प्रदर्शन भावात्मक प्रतिबद्धता और टर्नओवर इरादे के बीच संबंध। ज्ञान, संस्कृति और परिवर्तन प्रबंधन के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 10: 109-124।
3. गुप्ता, जे (एट), "उधार प्रथाओं के विशेष संदर्भ के साथ भारत में सहकारी बैंकों पर एक अध्ययन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एंड रिसर्च पब्लिकेशन, वॉल्यूम 2, अंक 10, अक्टूबर 2012 1 आईएसएसएन 2250-3153
4. कुवास, पी, 2006। प्रदर्शन मूल्यांकनसंतुष्टि और कर्मचारी परिणाम "कार्य प्रेरणा की भूमिकाओं की मध्यस्थता और मॉडरेटिंग" है। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमेंट, 17 (3): 504-522
5. लिलियन, जी.ओ., पी माल्हूको और एन। सीताती 201. सिविल सेवकों पर प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली का प्रभाव, कबारक विश्वविद्यालय पहला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (पीपी: 1-7)
6. सईद, आर (एट), "पाकिस्तान के बैंकिंग क्षेत्र में कर्मचारी के उत्पादन पर प्रदर्शन मूल्यांकन और प्रेरणा का प्रभावष, वर्ल्ड एप्लाइड साइंसेज जर्नल 26 (3): 415, 2013
7. शौकत, एस (एट), "बैंकिंग संगठनों में प्रदर्शन मूल्यांकन", रिसर्च वर्ल्ड- जर्नल ऑफ आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स वॉल्यूम -4, अंक -3 (1), जुलाई 2013
8. उबेदा, सीएल और एफसी सैंटोस, 2007, ब्राजील के अनुसंधान केंद्र में कर्मचारी विकास और प्रदर्शन मूल्यांकन", यूरोपीय जर्नल ऑफ इनोवेशन मैनेजमेंट, 10 (1): 109-125।
9. विग्नसेवरन, आर. 2005. "प्रदर्शन मूल्यांकन संतुष्टि और कर्मचारी परिणामों के बीच संबंध। प्रायद्वीपीय मलेशिया में किया गया एक अध्ययन।

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान में चुनौतियां (बेरोजगारी के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० शकुन्तला मीना

सहायक आचार्य ई.ए.एफ.एम. महारानी श्री जया राजकीय महाविद्यालय भरतपुर (राजः)

परिचय- भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकसित अर्थव्यवस्था है। इसके समक्ष अनेक चुनौतियां है। विस्फोटक जनसंख्या वृद्धि, देश में गरीबी का आकार, भारत में आर्थिक विषमताऐं (वैयक्तिक आप विषमताऐ, उपभोग सम्बन्धी विषमताऐं, क्षेत्रीय असमान्ता) एवं बेरोजगारी भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण समस्या है। विलिपग बेवरिज के अनुसार "संसार में पाँच आर्थिक राक्षस सदैव मनुष्य जाति को ग्रसित करने को तैयार रहते हैं। निर्धनता, रोग, अज्ञानता, गन्दगी और बेकारी। परन्तु सबसे भयंकर राक्षस बेकारी का है। देश में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि ऊँची है। प्रतिवर्ष जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण श्रम शक्ति भी तीव्र गति से बढ़ रही है। उसको काम देने के लिए भूमि, पूंजी, उद्यम आदि नहीं बढ़ते है। 2017-2018 में बेरोजगारी दर 6.1 प्रतिशत रही जो कि पिछले 45 वर्षो में सबसे अधिक है। ग्रामीण पुरुषों 5.8 प्रतिशत व शहरी पुरुषों में 7.1 प्रतिशत रही है। भारत में बेरोजगारी ढाँचागत है। संरचनात्मक बेरोजगारी, अल्परोजगार, खुली बेरोजगारी, तकनीकी बेरोजगारी, चक्रीय बेराजगारी, शिक्षित बेराजगारी, छिपी बेरोजगारी, प्रतिरोधात्मक बेरोजगारी, धीमा विकास जनसंख्या वृद्धि अनुपयुक्त शिक्षा, तकनीक आदि के कारण बढ़ रही है।

बेरोजगारी समाज व राष्ट्र दोनों के लिए हानिकारक है। बेराजगारी व्यक्तियों को सामाजिक बुराईयों व अपराध की ओर ले जाती है। तेजी से हो रही आर्थिक संवृद्धि के सामने बेरोजगारी चुनौति बनकर खड़ी है सरकार द्वारा समय रहते ही इसका त्वरित व सार्थक हल निकालना आवश्यक है जिससे देश चुनौतियों का सामना करते हुए विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा हो सके।

भारत की अर्थव्यवस्था एक विकाशील अर्थव्यवस्था है इसके समक्ष अनेक चुनौतियां है। प्रतिवर्ष जनसंख्या वृद्धि व बेराजगारी की सबसे भयानक स्थिति है। दिन प्रतिदिन बेरोजगारी और भी घातक बनती जा रही है।

विस्फोटक जनसंख्या वृद्धि होने के कारण श्रम शक्ति भी तेज गति से बढ़ रही है। लेकिन उस श्रम शक्ति को उतने रोजगार उपलब्ध नहीं हो रहे है।

बेरोजगारी का अर्थः-

व्यक्ति मजदूरी की प्रचलित दरों से कुछ कम दरों पर भी काम करने को तैयार है योग्यता से कम के कार्य पर भी काम करने को तैयार है। लेकित उसे काम नहीं मिल रहा है।

1. सरविलिपम बेवरिज ने कहा था कि "संसार में पाँच राक्षस मानव जाति को ग्रसित करने को तैयार रहते हैं- गरीबी, अज्ञानता, बीमारी, एंव बेराजगारी।" इन सब में बेरोजगारी सबसे घातक है।
2. केनन के अनुसार-अनैछिक बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें लोग मजदूरी की प्रचलित दरों से कम पर भी काम करने को तैयार हो जाते है।

विकासशील देशों का ढाँचा ही बेरोजगारी का मुख्य कारण है। भारत में जनसंख्या वृद्धि साथ-साथ श्रम शक्ति बढ़ती जा रही है। लेकित उत्पादन के अन्य साधन भूमि, पूंजी, उद्योग, तकनीकि, ज्ञान इन सभी का अभाव है। भारत में कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि की दर अधिक दर होने के कारण बेराजगारी का आकार तेजी से बढ़ रहा है।

भारत में पायी जाने वाली बेरोजगारी मूलतः सरंननात्मक अथवा ढाँचागत बेरोजगारी है। भारत में बेराजगारी का आधार है काम करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति, काम की खोज करने का प्रयास करने वाले व्यक्ति, कार्य एवं पद के अनुरूप धनार्जन न करने वाला व्यक्ति, शारिरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ सक्षम व्यक्ति बेरोजगारी की श्रेणी में आते है। इसमें बालिग व स्वस्थ व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है। सम्पन्नता के कारण कार्य करने के को जो इच्छुक नही है। उन्हें सम्मिलित नही किया जाता है।

भारत में ग्रामीण व शहरी दो तरह की बेरोजगारी पाई जाती है। शहरी क्षेत्रों में शिक्षित तकनीकी व औद्योगिक ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प रोजगार, खुली बेरोजगारी, मौसमी बेराजगारी चक्रीय बेरोजगारी पाई जाती है।

1. शिक्षित बेरोजगारी- जब व्यक्ति पढ़ा लिखा है और उसे योग्यता व इच्छा के अनुसार कार्य नहीं मिलता हैं शिक्षित व्यक्ति शारीरिक श्रम वालाकार्य न करना चाहता है।
2. तकनीकी बेरोजगारी-उत्पादन में नई तकनीकी को लागू करनें से बेकारी फैलती है यह बेराजगारी उद्योग व कृषि दोनों में ही पायी जाती है।
3. खुली या दृश्य बेराजगारी- जब ढूंढने वाले को कोई काम भी नहीं मिलता है वह दर-दर की ठोकरे खाते हैं। गांवों के सभी लोग शहरों में काम की तलाश में आते हैं काम नहीं मिलता है अपना टीफिन खाकर वापस चले जाते हैं।
4. अदृश्य एवं छीपी बेरोजगारी- जिसमें व्यक्ति काम करते तो नजर आते हैं लेकिन उनकी सीमांत उत्पादकता बहुत कम या शून्य होती है ऐसी श्रम शक्ति काम से हटा कर अन्य जगह लगा भी दिया जाए तो भी उत्पादकता पर कोई फर्क नही पडेगा।
5. मौसमी बेरोजगारी- जब व्यक्ति को किसी मौसम विषेष में ही काम मिलता है बाकी समय वह बेरोजगार रहते हैं जैसे चीनी व गुड़, ऊनी वस्त्र, शीतल पेय, आदि उद्योग।
6. चक्रिय बेरोजगारी- जो बेरोजगारी मंदी के समय प्रभाव पूर्ण मांग में कमी के कारण होती है चक्रिय बेरोजगारी कहलाती है।
7. संरचनात्मक याढांचागत बेरोजगारी- भारत में बेरोजगारी की प्रकृति संरचनात्मक कारक ही है अल्पविकास के कारण सड़क, विद्युत उत्पाद, सिंचाई एवं सीमेंट, पैट्रोलियम पदार्थ, मशीनरी जैसे आधारभूत कारखानों एवं उत्पादनों की कमी के कारण रोजगार के अवसर कम हैं।

बेरोजगारी के कारण-

अर्थव्यवस्था में धीमी वृद्धि, राष्ट्रीय रोजगार नीति का अभाव, पिछड़ी हुई कृषि व्यवस्था, पूँजी गहन तकनीक पर बल, श्रम गतिहीनता, दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति, उद्योगों की स्थापित क्षमता का कम उपयोग प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव, सार्वजनिक क्षेत्र में कम विनियोग, अनुपयुक्त तकनीक देश का पढ़ा-लिखा युवक सुविधा-भोगी होता जा रहा है। शारीरिक श्रम के प्रति उसकी निष्ठा कम हुई है बड़े उद्योग व वैश्वीकरण के युग में लघु व कुटिर उद्योगों का पतन हो रहा है। शिक्षा का अभाव, रोजगार के अवसरों में कमी, प्रदर्शन व हड़ताल जैसी समस्याएं, कम बचत तथा निवेश, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, कृषि व मौसमी व्यवसाय में सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश का अभाव, निजी क्षेत्र के समक्ष अनिश्चितता व सरकारी नियंत्रणों की भरमार, आर्थिक योजनाऐं, कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी के कारण उद्योगों को संचालित करने के लिए विदेशी कर्मचारियों को बाहर से लाना 2017-18 में बेरोजगारी की दर 6 प्रतिशत रही जो 45 वर्षो में सर्वाधिक आंकी गयी है। यह नई डिजाइन या नये मेट्रिक के आधार पर तैयार की गयी है। इसके अनुसार शहरों में बेरोजगारी की दर 7.8 प्रतिशत एवं गांवों में 5.3 प्रतिशत आंकी गयी थीं। ग्रामीण महिलाओं में बेरोजगारी 3.8 प्रतिशत व शहरी महिलाओं में 10.8 प्रतिशत आंकी गयी। जून 2022 में अखिल भारतीय बेरोजगारी 7.8 प्रतिशत, शहरी 7.30 प्रतिशत व ग्रामीण 8.03 प्रतिशत थी। जो बेरोजगारी 2017-18 में 6.1 प्रतिशत थी वो 2020 में बढ़कर 7.11 प्रतिशत हो गयी। जो देश की अर्थव्यवस्था के लिए सही संकेत नहीं है।

क्योंकि बेरोजगारी गरीबी की जननी है इससे युवा पीढ़ी में असंतोष व्याप्त होकर क्रांति की ज्वाला फूट सकती है। सामाजिक अपराधों में वृद्धि होती है जिससे व्यक्ति चोरी, डकैती, रिश्वतखोरी वं भ्रष्टाचार जैसी सामाजिक बुराईयों का जन्म होगा। युवा पीढ़ी में हीन भावना व पारिवारिक कटुता बढ़ती है। राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था से लोगों का विश्वास उठ रहा है। हताशा व निराशा के कारण युवा पीढ़ी शराब व नशे की आदि हो रही है। व आत्महत्या जैसे कदम उठा रहे है। भारत में बेरोजगारी के कारण सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का आहत एवं ह्रास हुआ है।

बेरोजगारी दूर करने के लिए सुझाव व सरकार द्वारा उठाए गये कदम व प्रयास

1. तेजी से बढ़ती हुई संख्या पर प्रभावी नियंत्रण
2. कृषि जन्य, पशु जन्य, खनिज उद्योगों का तेजी से विकास
3. लघु व कुटिर उद्योगों को प्रोत्साहन देना
4. स्वदेशी स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहन
5. रोजगारोन्मुख एवं संस्कारित शिक्षा प्रणाली का विकास
6. प्राकृतिक साधनों का समुचित एवं पूर्ण उपयोग
7. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर नियंत्रण
8. रोजगार विस्तार वाले क्षेत्रों को प्रोत्साहन
9. स्वरोजगार को प्रोत्साहन देना
10. ग्रामीण औद्योगिकरण
11. कृषि के सहायक धंधों का विकास
12. ग्रामीण क्षेत्र में निर्माण कार्यो को बढ़ावा
13. श्रम की गतिशीलता में वृद्धि
14. महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाना, आधारभूत ढ़ांचें का विकास

सरकार द्वारा किये गये प्रयास-

भारत में आयोजन प्रक्रिया की शुरूआत से बेरोजगारी समस्या को स्वीकार किया। बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार को दूरगामी प्रयास करेन होंगें, शिक्षा प्रणाली में सुधार, जनसंख्या नियंत्रण की नीति बनाना, रोजगार नीति बनाना, निजी क्षेत्रों में काम करने के लायक बनाने के लिए प्रशिक्षण व कौशल कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, खेतीहर मजदूर गारंटी रोजगार योजना, ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना, जवाहर रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण स्वरोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, रोजगार योजना 1997 में स्वर्ण जयन्ती कृषि रोजगार योजना, ग्रामीण क्षेत्रों में लाभकारी अवसर न होने के कारण आय में तेजी से गिरावट हुई बिगड़ती हुई आर्थिक

स्थिति से मजबूर होकर कई किसानों ने आत्महत्या की। इस त्रासदी को स्वीकार करते हुए यूपी सरकार द्वारा साझा न्यूनतम कार्यक्रम की घोषणा की और राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम पारित किया। यह एक्ट 2005 में नरेगा के नाम से जाना जाता है। इसमें 100 दिन की काम की गारटी होती है यह ग्रमीण क्षेत्रों में काम देने में मील का पत्थर साबित हुआ है। 2 अक्टूबर 2009 को इस योजना का नाम मनरेगा कर दिया। ये एक सरकार द्वारा श्रम कानून और सामाजिक सुरक्षा उपाय है।

निष्कर्ष- यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त सभी उपाय उस समय तक विफल रहेंगे जब तक की नये रोजगार प्राप्त करने वाली श्रम शक्ति को नियंत्रित नहीं किया जायेगा। इसके लिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना आवश्यक है नही तो कोई रोजगार नीति सफल नहीं होगी। विकसित देश बनने का सपना भी साकार होना असंभव होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कोली एल.एन. भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा प्रकाशक-2016 पृं. 264-273
2. गोविल डॉ. आर.के., दयाल, डॉ.एस., कृषि अर्थषास्त्र, लक्ष्मीनारयण अग्रवाल आगरा, पब्लिकेशन 2013-14 पृ. 188-195
3. गुप्ता डॉ. वी.पी. स्वामी, डॉ.एच.आर. भारत में आर्थिक पर्यावरण, आर.बी.डी. पव्लिकेशन 2011-12 पृ. 31.1 से 31.18
4. दत्त गौरव, महाजन अश्विनी, भारतीय अर्थव्यवस्था एस. चद्रं एंड कम्पनी प्रा. लि. रामनगर नई दिल्ली 51 वॉ संस्करण 2013
5. नाथूराम का लक्ष्मीनारायण भारतीय अर्थव्यवस्था आर.बी.डी. पब्लिकेशन 2020-21 पृं. 23.1से 23.19
6. जाट प्रो. डी.आर, वशिष्ठ, भिंडा, जैन भारत में अर्थिक पर्यावरण, अजमेर बुक कम्पनी जयपुर 2011-12 पृं. 27.1 से 27.8
7. मिश्र. एस.के. पुरी वी.के, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिकेषन हाउस 2010पृ. 166-180
8. समाचार पत्र
9. बुलेटिन

गद्दी जनजाति में नुआला परम्परा का संचारीय पक्ष

रविंद्र सिंह

शोधार्थी, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, राजस्थान

सारांश: भारतवर्ष के विभिन्न हिस्सों में वास करने वाली जनजातियां सनातन समाज की समृद्ध परम्पराओं एवं मूल्यों की प्रतिनिधि रही हैं। ये मूल्य एवं परम्पराएं लोकगीतों और नृत्यों के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी संचरण करते रहे हैं। हिमाचल प्रदेश से सम्बन्ध रखने वाली गद्दी जनजाति की भी एक बेहद समृद्ध संस्कृति रही है। प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में वास करने वाली गद्दी जनजाति में नुआला परम्परा का हमेशा से विशेष महत्व रहा है। नुआला परम्परा भगवान शिव के पूजन से सम्बन्धित है। नुआला में शिव की माला की स्थापना कर भगवान शिव की लीला से जुड़े लोकगीत झूम-झूमकर गाए जाते हैं। गहराई के साथ यदि विश्लेषण किया जाए, तो शिव नुआला महज एक सामाजिक आयोजन न होकर संचार की दृष्टि से परम्परा एवं मूल्यों की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। इस शोध लेख के माध्यम से गद्दी जनजाति में बहुप्रचलित नुआला परम्परा के संचारीय पक्षों का अध्ययन किया जाएगा। इसमें समझने का प्रयास किया जाएगा कि किस प्रकार से नुआला परंपरा इस समूची जनजाति के लिए भगवान शिव के समक्ष उनके प्रति आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति बन जाती है और कोई लिखित दस्तावेज न होने के बावजूद गद्दी जनजाति में यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचकर आवश्यक मूल्यों का संचार करती रही है।

शब्द संकेत: गद्दी जनजाति, शिव पूजन, नुआला, परम्परा एवं मूल्य, संचार, लोक गीत, लोक नृत्य, एंचली इत्यादि

प्रस्तावना: हिमाचल प्रदेश, खासकर चम्बा और कांगड़ा जिला में वास करने वाली गद्दी जनजाति आज भी शिव पूजन के लिए नुआला की प्राचीन परम्परा का श्रद्धापूर्वक निर्वहन कर रही है। मान्यता है कि नुआला में भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए गद्दी समुदाय के लोग एंचलियां यानी शिव की स्तुति में गीत गाते हैं। नुआले के आयोजन में जोगी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सबसे पहले जोगी अपनी परंपरागत वेशभूषा में आ पहुँचता है। कान में मुद्रा, गले में मेखला सिर पर भगवा पगड़ी, धोती पहने जोगी पहुँच जाता है। जोगी के पास दवात्रा या दपात्रा, कंसी, काहन-पहल, नांदी, सॉगल, धूपमाला, धूपपात्र आदि सामग्री होती है। उसके पहुँचते ही मंडप बनाने का कार्य प्रारंभ हो जाता है।[1]

इस पूरे कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए नौ लोगों का विशेष महत्व रहता है। सम्भवत: इन्हीं नौ लोगों के महत्व के कारण इस परम्परा का नामकरण नुआला के रूप में हुआ है। इनमें शामिल चार लोगों को बन्दे कहा जाता है। ये चारों पूरी रात भोलेनाथ की स्तुति का गुणगान करते हैं। इसके अलावा इस समागम के सफल आयोजन के लिए कुटआल, बुटआल, शिव मण्डल तैयार करने वाला, चेला और रसोइया पूरी रात अपना सक्रिय सहयोग देते हैं। नुआला के दिन सभी नौ व्यक्तियों-आयोजक या जजमान, पुरोहित, जोगी, कोरवाल, बटवाल तथा चार बन्दे (गायक) को व्रत रखना होता है। जोगी, पुरोहित तथा गायकों के आते ही पैर धुलवाए जाते हैं। उन्हें उचित स्थान पर बिठाकर दान-दक्षिणा दी जाती है। जोगी नांद बजाता है, शिव की जय जयकार करता है और मंडप बनाने के लिए सामग्री लेता जाता है।[2]

नुआले के सफल आयोजन के लिए सबसे पहले एक फूलमाला बनाई जाती है। इसे नुआला के पवित्र स्थान पर टांगा जाता है। इसके पश्चात गेहूं के आटे का मंडल सजाया जाता है। यह मंडल सजाने का कार्य पुरोहित का रहता है। मंडल में 32 कोठे बनाए जाते हैं। इसके बीच में चार छोटे कैलाश और बीच में एक बड़ा कैलाश पर्वत बनाया जाता है। इसी मण्डल में भगवान शिव का ध्यान कर धूप-दीप किया जाता है। इसके बाद पूजा-अर्चना के लिए बनाए गए विशेष प्रसाद को चढ़ाया जाता है। इस प्रसाद में

घर में दाल का बड़ा और बबरू बनाए जाते हैं। इस सन्दर्भ में सुदर्शन वशिष्ठ लिखते हैं, मंडप को मंदला कहते हैं। पुरोहित आटे की रेखाएँ बनाकर मंडप बनाता है। मंडप में 32, 36 या 84 खाने या कोठे बनाए जाते हैं। लगभग एक वर्ग गज भूमि को पहले से गोबर से लीप-पोतकर तैयार रखा जाता है। मंडप के बीचोबीच कैलास बनाया जाता है। बीच में छत के ऊपर एक ऊनी डोरी लटकाई जाती है जो पुष्पमाला लटकाने के लिए होती है। आटे के कैलास, चार वेद बनाए जाते हैं। कैलास के आगे शिव-पार्वती की प्रतिमा और मेवे आदि रखे जाते हैं। कोष्ठों में चावल, माश, नमक, बब्बरू रखे जाते हैं। छत से फूलमालाएँ लटकाई जाती हैं।[3] इस प्रकार विधिवत रूप से मंडल सजाने और पूजा-अर्चना के बाद पूरी रात चार भागों में भगवान शिव की स्तुति में एंचलियों का गायन और नृत्य किया जाता है।

नुआला के संचारीय पक्ष

नुआला महज एक सामाजिक समागम नहीं है, बल्कि इसमें गद्दी जनजाति की परंपराएं एवं मूल्य, भगवान शिव के प्रति श्रद्धा एवं आस्था का संचार देखने को मिलता है। नुआला के संचारीय पक्षों का वर्णन अधोलिखित है,

लोकगीतों का संकलन

लोक गीत किसी भी समाज के लोकमानस की एक स्पष्ट झलक देते हैं। इनके माध्यम से किसी एक पीढ़ी की परंपराओं और मूल्यों का सहज रूप से संचरण होता चलता है। लोक गीतों के संचारीय पक्ष को उद्घाटित करते हुए डॉ. बलबीर कुंद्रा ने लिखा है, लोक गीत वस्तुत: लोक की धरोहर है, किसी व्यक्ति की नहीं। उनमें लोक के कल्याण की इच्छा निहित होती है। ये अपने मूल में समूह के साथ जुड़े होते हैं। इनमें शब्द, स्वर, ताल, लय छन्द सभी सामूहिक रूप लिए होते हैं। ये किसी भी समाज व संस्कृति के दर्पण, रक्षक व पोषक होते हैं। लोकगीतों की मूलत: चार कोटियाँ बनाई जा सकती हैं-1. संस्कार सम्बन्धी लोकगीत 2. सामाजिक लोकगीत 3. धार्मिक लोकगीत 4. मनोविनोद के लोकगीत। भारत में यह मान्यता चली आ रही है कि बिना गीत के कोई रीत नहीं होती है। भारत में जन्म से लेकर मृत्यु तक लोकगीतों की परम्परा को देखा जा सकता है। सरलता, सरसता, मधुरता और लयबद्धता लोकगीतों के वे प्राण तत्त्व हैं जिनके कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये शीघ्र कंठस्थ हो जाते हैं। तन्मयता गेयता संक्षिप्तता, भावात्मकता और कोमलता के कारण लोकगीतों ने लोकमानस में अपनी जगह बनाई है।[4]

इस प्रकार से यह लोकगीत एक कालखंड में अर्जित किए गए ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे संप्रेषित करने का भी प्रभावी ढंग से कार्य करते रहे हैं। इस दृष्टि से लोकगीतों का संचारीय महत्व सहज रूप से समझा जा सकता है। लोकगीतों के महत्व को रेखांकित करते हुए लोक संस्कृति के प्रखर विद्वान चंद्राकर लिखते हैं, लोकगीतों का अस्तित्व असंख्य कंठों पर मौखिक परम्परा के रूप में विद्यमान है। इन गीतों में जीवन के अभावों से जूझते हुए मनुष्य को सुंदर सपने दिखाने और उन सपनों में समस्त सुखों का उपभोग करने की बात इतनी सुन्दरता, सहजता, सरलता से प्रस्तुत कर दिया जाता है कि श्रोता वर्ग उन सपनों में पूरी तरह से खो जाता है और अपने आपको उस क्षण गीतों में वर्णित सुखों को भोक्ता मानकर काल्पनिक संसार में विचरण करने लगता है। लोकगीतों की यही सर्वाधिक विशिष्टता है।[5]

वहीं, नुआला के दौरान गद्दी जनजाति के लोकगीतों का गायन किया जाता है। इनके माध्यम से जहां नुआला भगवान भोलेनाथ की आराधना का माध्यम बनता है, वहीं समाज अपने पूर्वजों के अनुभवजनित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बढ़ाते हुए उसे अमरत्व भी प्रदान करता है।

चंद्राकर लोकगीत की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखते हैं, लोकगीत जन-सामान्य के भावों, विचारों-आचारों एवं संस्कारों के सहज एवं प्रभावी संवाहक होते हैं। भारतीय समाज की विविधता लोकगीतों में भी प्रकट होती है। भारत के हर प्रांत में बसे विविध भाषी समाज में प्राय: प्रत्येक संस्कार, विधि, तीज-त्यौहार एवं कर्म के लोकगीत पाये जाते हैं। इन गीतों में व्यक्ति और समाज की अभिव्यक्ति होती है। यद्यपि हमारे देश में हर प्रांत में लोकगीतों का प्रचलन है, तथापि उत्तर भारत और बिहार में इसका प्रचलन सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। ये गीत तीज, त्यौहार, फसलों की कटाई, बच्चे के जन्म, विवाह, मुण्डन आदि अवसरों पर विशेष रूप से गाये जाते है। ग्रामीण जनता इन गीतों को बड़े चाव ते गाती और सुनती है। एक तरह से ग्रामीण जन संचार के लिए लोकगीत एक सहज एवं प्रभावी माध्यम है।[6]

लोक नृत्यः हाव-भाव व अंग-संचालन से अभिव्यक्ति

लोक नृत्य अति प्राचीन समय से ही अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम रहे हैं। संचार में लोकनृत्य के महत्व को बताते हुए डॉ. बलबीर कुंद्रा लिखते हैं कि ये लोक जीवन के उल्लास की सशक्त अभिव्यक्ति है। इनकी प्रस्तुति में वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं ताल और लय के माध्यम से और हाव-भाव व अंग-संचालन से अभिव्यक्त की जाती है। भावनाओं की अभिव्यक्ति और भावोत्पत्ति के लिए नृत्य एक नैसर्गिक माध्यम है। वर्षाकाल आने पर मोर का नृत्य के द्वारा अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करना, कोयल का कूकना आदि नैसर्गिक है। सदियों पहले से मनुष्य अपने आनन्द मंगल को अभिव्यक्त करने के लिए अपने मन की लय को अभिव्यक्त करने के लिए अंग-भगिमाओं का जो प्रदर्शन करता रहा है, वह लोक नृत्यों के रूप में सामने आया है।[7]

निष्कर्षः संचार प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संस्कारों, परंपराओं और मूल्यों के संवाहन में संचार प्रक्रिया केंद्रीय भूमिका में रहती है। नुआला की समृद्ध परंपरा के माध्यम से लोक गीत और संगीत संचरण का एक सशक्त माध्यम रहा है। गद्दी जनजाति की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी धरोहर से प्राप्त मूल्यों और परंपराओं से परिचित होती रही है। गद्दी जनजाति की मौजूदा पीढ़ी में भी आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद इस बहुमूल्य परंपरा को मूल रूप में जीवंत रखने के साथ-साथ इसके विकास को लेकर जबरदस्त प्रतिबद्धता दिखाई है। संचार और संवाद के सेतु स्थापित करने में नुआला परंपरा की प्रासंगिकता निरंतर बढ़ती जा रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1 वशिष्ठ, सुदर्शन, हिमालय गाथा, सुहानी बुक्स, 2007, पृष्ठ-287
2 वशिष्ठ, सुदर्शन, हिमालय गाथा, सुहानी बुक्स, 2007, पृष्ठ-287
3 कुंद्रा, डॉ. बलबीर, संचार से जनसंचार और जनसंपर्क तक, केके पब्लिकेशंज, ई-बुक, पृष्ठ-82
4 चंद्राकर, शै., छत्तीसगढ़ लोकनाट्यों में शास्त्रीय तत्व शोध प्रबंध 1999, पृष्ठ-75
5 एस. माधव, प्रयोजनमूलक हिन्दी, प्रयुक्ति और अनुवाद, वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ-70, 71
6 कुंद्रा, डॉ. बलबीर, संचार से जनसंचार और जनसंपर्क तक, केके पब्लिकेशंज, ई-बुक पृष्ठ-81

हिन्दुओं तथा मुसलमानों के प्रति अंग्रेजी शासन की नीति (प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (1857) के सन्दर्भ में)

डॉ० भूप सिंह बल्हारा

ऐसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, राजकिय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, पंचकूला

अंग्रेजी शक्ति के भारत में अभ्युदय और विशेषकर सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्र संग्राम के बाद अंग्रेजी शासकों की धारणा, यह रही है कि इस संग्राम को पृष्ठभूमि में भारतीय मुसलमान ही प्रमुखतः सक्रिय थे और इसलिये उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं को उभारने की चेष्टा की[1]। काल क्रमानुसार जब उन्होंने हिन्दु समाज में उभरती हुई चेतना के चिन्ह देखे तो उन्होंने हिन्दु समाज के विरूद्ध मुस्लिम समुदाय को समर्थन दिया। इस प्रकार एक समुदाय को दूसरे समुदाय के विरूध में खड़ा किया। दोनों के बीच में धर्म संस्कृति, मूल्य, मान्यता, राजनीतिक और प्रशासनिक भागीदारी आदि के नाम पर संकीर्ण मतभेद उत्पन्न किये[2]।

इन घटनाओं ने हो हिन्दु तथा मुसलमान दोनों को एक-दूसरे से शंकित रख[3]। यह सम्पूर्ण राजनीति उत्थान, पतन मूलतः 1857 के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उपरान्त प्रारम्भ हुआ, किन्तु उसके सूत्र 1857 के पूर्व इतिहास में विद्यमान हैं। अंग्रेजी शासकों ने तो कुशलतापूर्वक अपने हित में उनका प्रयोग किया। 12वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारतवर्ष तुर्क और मुगलों के अधीन रहा। मुस्लिम एक आक्रान्ता शक्ति के रूप में भारत आये और उन्होंने स्थानीय हिन्दु शासकों को परास्त कर अपने वर्चस्व की स्थापना के लिए अमानवीय शक्ति का प्रयोग किया।

यह उनकी बाध्यता हो सकती थी, किन्तु इस बाध्यता ने मुस्लिम और भारतीय समाज को पृथक कर दिया भारत में मुस्लिम साम्राज्य हिन्दुओं के उत्पीड़न और शौषण के बलबूते टिका रहा तथा स्वयं को आक्रान्ता न समझकर वास्तविक शासक समझने लगे। हिन्दु इस शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध अपनी अभिव्यक्ति समय-समय पर करता रहा। कुछ हिन्दु शासक और अभिजात वर्ग मुसलमानों से मिल गया और कुछ मुस्लिम विरोध को प्रकट करते रहे। कुछ हिन्दु शासक और अभिजात वर्ग मुसलमानों से मिल गया और कुद मुस्लिम विरोध को प्रकट करता रहा। लगभग सात सौ वर्षो तक का सल्तनत तथा मुगल काल का इतिहास उक्त तथ्य की पुष्टि करता है[4]।

18वीं शताब्दी में जब अंग्रेजी व्यापारियों ने तत्कालीन अस्त-व्यस्त भारत की राजनीति में अपने पैर जमाने शुरू किए तो उनका महत्त्वपूर्ण प्रतिरोध हिन्दु जमींदारों से नहीं अपितु मुस्लिम सम्राट तथा मुसलमानों से हुआ। अतः अंग्रेजों ने अपना प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी मुसलमानों को समझा, इसके परिणाम- स्वरूप हिन्दुओं को मुसलमानों ने अपना समर्थन दिया। राबर्ट क्लाइव ने 30 दिसम्बर, 1758 के अपने पत्र में लिखा, ''मुसलमान शक्ति के स्थान पर विश्वासघात से सत्ता हस्तगत करने में विश्वास रखते हैं और दूसरे के प्रति एहसान मानने की प्रवृत्ति उनकी नहीं है''[5]।

अंग्रेजी प्रशासकों के विचार में मुसलमान, क्रूर और उदण्ड थे[6]। इस मुस्लिम विरोधी मानसिकता का ही परिणाम था, कि उन्होंने 1857 के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम या सैनिक विद्रोह के लिए मुसलमानों को उत्तरदायी ठहराया। कंनिघम ने लिखा, ''मुसलमानों का अंग्रेजों के प्रति व्यक्तिगत विद्वेष था, इसलिए वे अपनी सत्ता तथा इज्जत दोनों को अपमानित समझते थे[7]।'' मुस्लिम विरोध करते हुए अंग्रेजो ने हिन्दूओं को शिक्षा, प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में बढ़ाया दिया।

इसका फायदा हिन्दुओं ने उठाया क्योंकि हिन्दु कई शताब्दियों से मुस्लिम उत्पीड़न को झेल रहे थे8। 1857 के बाद मुसलमानों के प्रति असहिष्णु अंग्रेजी दृष्टिकोण वस्तुत: मुसलमानों के अंग्रेजी विरोध का परिणाम था। मुसलमान तत्कालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अग्रण्य थे। अत: अंग्रेजी विरोध का मोहरा बन गये। कुछ इतिहासकारों ने अंग्रेजी शासकों द्वारा अपनाई जा रही-आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सैनिक नीतियों और उनके घात-प्रतिघातों से जन्मे राजनीतिक वातावरण को 1857 के संग्राम हेतु उत्तरदायी माना है[9]।

1857 ई० का विद्रोह यद्यपि कुचल दिया गया। परन्तु हिन्दू और मुसलमानों के बीच की दूरी कम करने की दृष्टि से इसने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया 1857 ई0 के विरोध को उकसाने में मुस्लिम नवाबों, जमींदारों और जागीरदारों का विशेष हाथ था, इसलिए 1857 के पश्चात् अंग्रेजी शासकों का मुस्लिम विरोधी हो जाना स्वाभाविक था, अंग्रेजी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि सदियों से चले आने वाले हिन्दू और मुस्लिम विरोध की खाई को और चौड़ा करने से ही उनके शासन की नींव गहरी और दृढ़ हो सकती है। अत: सोची समझी रणनीति के अनुसार अंग्रेजी ने मुसलमानों की निष्ठा पर अविश्वास करना प्रारम्भ किया[10]।

मुसलमान अंग्रेजी शासन को घृणा की दृष्टि से देखते थे। प्रत्येक विकास के कार्य को अपने धर्म पार सीधा-सीधा अतिक्रमण मानते थे। परिणामस्वरूप तत्कालीन भारतीय समाज में वे पृथक ही नहीं हुए अपितु विकास की दौड़ में भी पिछड़ गये यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि बंगाल जो कि मुस्लिम बहुल प्रान्त था सन् 1870-71 में एक लाख हिन्दू विद्यार्थियों की तुलना में मात्र 14,000 मुस्लिम विद्यार्थी ही पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क में थे[11]।

मुसलमानों की इस अवस्था को देखकर सर सैयद अहमद खाँ ने 'द लायल मोहम्मडन ऑफ इण्डिया' नामक शीर्षक से उर्दू में एक पत्र तैयार किया और उसका अंग्रेजी अनुवाद करवाकर अंग्रेजी प्रशासकों के समक्ष प्रस्तुत किया। इस पत्र को तत्कालीन प्रशासकों की हिन्दू नीति के विपरीत मुस्लिम प्रतिक्रिया के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। पत्र में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि 1857 के संग्राम के लिए मुस्लिम ही पूर्णत: उत्तरदायी नहीं हैं[12]। सर सैयद अहमद खाँ की सोच सर जॉन कैम्पबैल के सोच से मेल-खाती थी। जिसमें उन्होंने सैनिक विद्रोह के लिए केवल मुसलमानों को ही नहीं बल्कि हिन्दुओं को भी सैनिक विद्रोह के लिए उत्तरदायी माना था[13]। हंटर ने तो यह निष्कर्ष निकाला कि कोई भी मुसलमान अंग्रेजी सेना में प्रवेश नहीं पा सकता था[14]। अपने कथन को सिद्ध करने के लिए उसने यह उल्लेख किया है कि तत्कालीन अंग्रेजी असैनिक सेवाओं के उच्चतम स्तर पर 3 हिन्दू और 1 मुसलमान, दूसरे स्तर पर 10 हिन्दू और 1 मुसलमान, तीसरे स्तर पर 24 हिन्दू और 3 मुसलमान और निम्न स्तर पर 39 हिन्दू और 4 मुसलमान पदासीन थे[15]।

हंटर ने चिकित्सा शिक्षा के विभिन्न स्तरों के क्षेत्र में 111 हिन्दू और 1 मुसलमान एवं निम्न स्तरीय असैनिक सेवाओं में 417 हिन्दू और 6 मुसलमान, राजस्व सेवा में डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार तथा सब मजिस्ट्रेट के स्तरों पर 320 हिन्दू और 13 मुसलमान उद्धत किये हैं। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि तत्कालीन अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा विभिन्न सेवाओं में मुसलमानों को स्वीकार नहीं किया जाता था[16]।

मुस्लिम इतिहासकारों का मत है कि मुसलमानों के प्रति एक सोची समझी अंग्रेजी नीति के अन्तर्गत उन्हें प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति नहीं दी जाती थी। उपर्युक्त के अन्तर्गत यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि जहाँ हिन्दुओं ने अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी व्यवस्था को सीखा और समझा, वहीं मुसलमान अपनी तथाकथित अभिजात्यता के स्वप्नलोक के परिवेश में रहते हुए उसे सीखने और समझने से कतराते रहे। इस स्थिति में यदि हिन्दुओं को आर्थिक पद और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तो उसके लिए हिन्दुओं के अंग्रेजी समर्थन की अपेक्षा मुसलमानों के प्रति उनको घृणा अधिक उत्तरदायी थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शताब्दियों से पद-दलित हिन्दू सम्प्रदाय के समक्ष अपने विकास के लिए इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था कि वह अंग्रेजी उदारता को अंगीकार करता।

मुसलमानों के प्रति अंग्रेजी शासकों के अविश्वास एवं उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण के कारण ही सर सैयद अहमद ने अपने जीवन काल में मुसलमानों में जागृति लाने के लिए अनथक प्रयास किये और उनके समक्ष यह स्पष्ट किया कि उनका अतीत (जिस समय वे भारत के शासक थे) समाप्त हो चुका है। हिन्दू सम्प्रदाय उनकी तुलना में आगे बढ़ चुका है। अत: उन्हें भी अंग्रेजी परिवेश में अपने आपको ढालना चाहिए ताकि उन्हें इसका लाभ प्राप्त हो सके[17]।

सन्दर्भ

1. रफीक जकारिया, राइज ऑफ मुस्लिम्स इन इण्डियन पॉलिटिक्स बम्बई, 1978 पृ0 5
2. वाई0 बी0 माथुर, ग्रोथ ऑफ मुस्लिम पोलिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली, 1979 पृ0 287-288
3. जे० जे० पाल, जिन्ना एण्ड द क्रियेशन ऑफ पाकिस्तान, दिल्ली, 1983, पृ० 153
4. प्रथा दीक्षित, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक सन्दर्भ, नई दिल्ली, 1980, पृ० 2-5
5. रफीक जकारिया, पूर्वोक्त, पृ0 6
6. वही, पृ0 5
7. कनिंघम, अर्ल कैनिंग पृ0 65 रफीक जकारिया पृ0 6
8. द बाम्बे गजट, फरवरी 16, 1874
9. बी० डी० महाजन, नैशनलिस्ट मूवमैंट इन इण्डिया, नई दिल्ली 1976, पृ० 3-11
10. रफीक जकारिया, पूर्वोक्त, पृ० 8
11. डब्लू0 डब्लू0 हण्टर, लाईफ ऑफ द अर्ल ऑफ मेयो, वाल्यूम प्प् पृ० 307-308
12. शान मोहम्मद, सर सैयद अहमद खां, मेरठ 1969, पृ० 109
13. कैम्प बैल, मैमोरीज ऑफ माई इण्डियन कैरियर प्प, पृ० 391-402
14. डब्लू0 डब्लू0 हण्टर, इण्डियन मुसलमान्स लन्दन 1972 पृ० 159
15. वही., पृ० 163
16. रफीक जकारिया, उपरोक्त., पृ० 13-17
17. वाई0 बी0 माथुर, उपरोक्त, पृ० 36

मार्क्सवाद पर राम मनोहर लोहिया के विचारः एक अन्वेषण

डॉ० शक्ति सिंह शेखावत

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा राजस्थान, जयपुर

शोध सारांश- प्रख्यात राजनीतिज्ञ एवं राजनीतिक चिंतक राम मनोहर लोहिया समाजवादी चिंतन धारा के अग्रणी विचारक है। लोहिया के विचारों पर मुख्य रूप से कार्ल मार्क्स और गांधी का सर्वाधिक प्रभाव रहा है किन्तु लोहिया ने अपने मौलिक चिंतन एवं व्यावहारपरक दृष्टि के आधार पर मार्क्स एवं मार्क्सवाद के चिंतन से खुलकर अपनी सहमति तथा असहमति दृशायी साथ ही भारतीय एवं एशियाई दृष्टि से भी मार्क्स एवं मार्क्सवादी चिंतन को समझने एवं व्यक्त करने का प्रयास किया। लोहिया ने साम्यवाद को यूरोप का ऐसा हथियार माना जिनके माध्यम से वह दुनियां पर अपना प्रभुत्व कायम रख सके। साथ ही साथ लोहिया ने मार्क्स एवं मार्क्सवादी चिंतन की विसंगतियों को उजागर किया। लोहिया मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में केवल भौतिक तत्व पर बल देने को एकांकी मानते हैं, वर्ग संघर्ष सिद्धांत में लोहिया नस्ल एवं जाती संघर्ष को तथा एशियाई देशों के शोषण से भी जोड़ते है। लोहिया मार्क्स के इतिहास की आर्थिक व्याख्या के तहत युग विभाजन के भी अस्वीकार करते है। लोहिया मार्क्स के पूंजीवादी विकास के सिद्धांत, अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत एवं प्रकारांतर में क्रांति के सिद्धात को अधुरा बताते हुवे मार्क्स द्वारा की गई भविष्यवाणियों को गलत साबित करते हैं। साथ ही लोहिया सत्ता के विकेन्द्रीकरण, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, मानवाधिकार, अहिंसा एवं सत्याग्रह की कसौटी पर मार्क्स एवं मार्क्सवादी विचारों की समीक्षा करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में मार्क्स एवं मार्क्सवादी चिंतन पर लोहिया के समीक्षात्मक विचारों का विवेचन किया गया है।

संकेताक्षर- मार्क्सवाद, समाजवाद, समाजीकृत श्रम, उत्क्रांति,

परिचयात्मक

लोहिया ना केवल एक राजनीतिज्ञ थे वरन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक विषयों पर भारत एवं वैश्विक धरातल पर अपने चिंतन लेखन एवं भाषण से व्यक्त करते रहे। लोहिया वैचारिक रूप से समाजवादी चिंतन धारा से ओतप्रोत है, मार्क्स एवं गांधी के चिंतन ने उन्हें प्रभावित भी किया। लोहिया ने जिस विचारधारा को धीरे-धीरे अपनाया उसके निर्माण में गांधी, मार्क्स और स्वयं लोहिया का चिंतन शामिल है, लेकिन लोहिया मार्क्स एवं गांधी से प्रेरित होने के बावजूद मार्क्स एवं गांधी के चिंतन से ना सिर्फ विमत रखते थे वरन उनके चिंतन और उनके प्रदत्त सिद्धान्तों की कटू आलोचना भी की है। लोहिया कहते है कि मेरा मानना है की गांधीवादी या मार्क्सवाही होना मूर्खतापूर्ण है और गांधीवादी या मार्क्सवादी विरोधी होना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है। मार्क्स की तरह गांधी से सीखने के लिए बेशकीमती खजाने है, लेकिन सीखना तभी हो सकता है जब संदर्भ का ढांचा किसी काल या व्यक्ति से नही लिया गया हो।[1] अर्थात लोहिया ने व्यावहारिक बौद्धिक चिंतन की कसौटी के आधार पर मार्क्स, मार्क्सवादी चिंतन के संबंध में अपने विचार दिये। लोहिया कहते है कि मार्क्सवादी सिद्धांत के अपने विशाल व्यावहारिक अंतर्विरोधों ने मुझे उद्विग्न कर दिया, लोहिया के मार्क्सवादी विचारों पर आलोचकों ने जब लोहिया पर वैचारिक हमले किये लो लोहिया ने जवाब में सन् 1952 के पचमढ़ी में सोशलिस्ट पार्टी के आयोजन की अध्यक्षता करते हुवे कहा कि "मार्क्सवाद की भाषा बोलने वाले यह नहीं जानते की मार्क्स के कुछ मूलभूत विचार अधूरे है जैसे कि उनका पूँजीवाद की उत्क्रांति संबंधी सिद्धांत"।[2]

लोहिया ने तो साम्यवाद को एशिया के विरुद्ध यूरोप का नवीनतम हथियार माना। 300 वर्षो से उदारवाद, ईसाई धर्म या पूँजीवाद ने यूरोप के शाही उद्देश्यों की सेवा की। ये पुराने हथियार कुंद हो गये। यूरोप की अपराजित बुद्धि दुनिया पर अपनी फिसलती पकड़ को बनाए रखने के लिए एक और वैचारिक हथियार का उपयोग कर रही है।[3] लोहिया ने जब यह कहा कि मार्क्सवाद गोरे लोगों का काले लोगों के विरुद्ध अंतिम हथियार है तो यह कथन बहुत से लोगों को मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति एक गहरा अन्याय प्रतीत होता था।[4] जबकि डॉ. लोहिया ने जब मार्क्सवाद का अध्ययन किया तो उनकी दृष्टि सबसे पहले उन विसंगतियों पर पड़ी जिनकी तरफ उनके पहले किसी विचारक या अध्येता की दृष्टि नहीं पड़ी थी।

मार्क्सवादी सिद्धांतों की समीक्षा

द्वंद्वात्मक भौतिकवादः लोहिया मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के विरोधी नहीं थे किन्तु वे द्वन्द्वात्मक भौतिवाद को समग्र नहीं मानकर एकांगी मानते है। लोहिया मनुष्य की चेतना और उसकी भौतिक परिस्थिति को अन्योन्याश्रित है मानते है, दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती है इसलिए इन्हें एक दूसरे के अधीनस्थ नहीं किया जा सकता। लोहिया के अनुसार सामाजिक विकास में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों तत्वों का मिश्रण हुवा वे द्वंद्ववाद में केवल भौतिक तत्त्व को अस्वीकार करते है अर्थात लोहिया ने मार्क्स के भौतिकवाद के साथ हीगल के विचार और मन को एकाकार कर दिया। मार्क्स के एकांगी विचार को सर्वांगीण कर दिया। लोहिया के अनुसार मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या बहुत ही आकर्षक तो है लेकिन आश्चर्य यह है कि इनसे किसी भी अँधेरे कमरे में प्रकाश नही पड़ता। लोहिया के अनुसार इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या यथास्थिति की सेवा करने वाला सिद्धांत है अर्थात यूरोप और अमेरिका की महानता का पद्म पोषण करने वाला है।

वर्ग संघर्षः मार्क्सवादियों का दावा है कि मानव सभ्यता का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। लेकिन वे भूल जाते है कि नस्ल के संघर्षो ने भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछली कुछ सदियों से चूसने और शोषण की एक प्रक्रिया चल रही है- दुनिया के दो तिहाई हिस्से को एक तिहाई से खून बह रहा है और खाली कर रहा है। इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती।[5] अति वर्ग संघर्ष एक राष्ट्र के अंदर ही नही अपितु राष्ट्रों के मध्य भी है जहाँ यूरोप एवं अमेरिका द्वारा एशियाई देशों का शोषण करते हैं। लोहिया के अनुसार मानव इतिहास में संघर्ष केवल वर्गो के मध्य ही नहीं, अपितु जातियों में मध्य भी संघर्ष होते है। लोहिया मार्क्स के पाश्चात्य पूँजीवाद के साथ-साथ भारत में ब्राह्मणी पूँजीवाद को स्वीकार करते हैं। जबकि मार्क्स ने वर्ग की बात की है, जाति ही नहीं[6] लोहिया के अनुसार इतिहास को वर्ग संघर्षो का इतिहास बताना पूँजीवादी सभ्यता के निदान और पूर्वानुमान में अपर्याप्त और काफी हद तक गलत है। इसके बजाय यह कहना सही प्रतीत होता है कि मानव जाति ने वर्गो को जातियों में स्थिर करने और जातियों को वर्गो में ढीला करने के बीच बारी बारी काम किया है।[7] लोहिया ने इतिहास के निर्धारक तत्वों में वर्ग के स्थान पर नस्ल और जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को चिन्हित किया है। दोनों विचारको में मूल अंतर यह है कि मार्क्स आर्थिक वर्ग संघर्ष की बात करते है वहीं लोहिया जाति, भाषा, सम्पत्ति वर्ग संघर्ष की बात करते हैं। लोहिया के अनुसार भारत में वर्ण या जाति को तोड़ें बिना समाजवाद की कल्पना नहीं की जा सकती

इतिहास की आर्थिक व्याख्याः मार्क्स के अनुसार प्राचीन मध्य और आधुनिक काल में क्रमशः मालिक सामंत और पूंजीपति शोषक वर्ग तथा दास, कृषक और श्रमिक वर्ग शोषित वर्ग रहे है। लोहिया इस प्रकार के युग विभाजन को नहीं मानते, उनके अनुसार चाहे विभिन्न क्षेत्रों के लिए समय की अवधि का कितना भी अंतर क्यों ना मान लिया जाये यह सिद्ध करने के लिए कि किसी विशेष कालखण्ड में समस्त दुनियां में सामंती व्यवस्था थी अथवा दास युग में भारत में भी निरंकुशता थी तथ्यों को बहुत तोड़ना मरोड़ना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने लिखा है कि "केवल यूरोप का ही नहीं बल्कि समस्त दुनिया का मानव इतिहास इन तीन या चार युगों में बांटा जा सकता है, इसमें गंभीर शंका है।[8]

पूँजीवादी समाज के स्वतः संचालन के अनुसार पूंजीवादी देश पश्चिमी यूरोप और अमेरिका को साम्यवादी समाज को जन्म देना चाहिए था। इसी तर्क से यदि हम पीछे देखे तो इन्ही क्षेत्रों को सामंतशाही और उसके पहले के युगों में भी नेता होना चाहिए था, क्योंकि यदि पूंजी का इतिहास और भविष्य के लिए प्रयोग हो सकता है तो भूतकाल के लिए भी प्रयोग हो सकना चाहिए। मार्क्स ने श्रम को एक भाव पदार्थ माना है, किन्तु यथार्थ में वह ऐसा नहीं है।[9]

पूंजीवादी विकासः पूँजीवादी विकास का सिद्धान्त इस तथ्य में निहित है कि श्रम किसी अन्य वस्तु की तरह, वस्तु है। पूंजीपति श्रम खरीदतें हैं ताकि वे इसकी मदद से बिक्री के लिए अन्य वस्तुओं का उत्पादन कर सके, लेकिन श्रम, उन्य वस्तुको के विपरीत,

अपने आप में दो विरोधाभासी मूल्य रखता है। हर दूसरी वस्तु का एक ही सुसंगत मूल्य होता है। पूँजीवाद की गत्यातमक शक्ति से समझने में अपनी बुनियादी गलती के कारण मार्क्सवादी, साम्राज्यवादी श्रमिकों में गरीबी बढ़ने की आशा करते रहे, जबकि उन्हें यह बात औपनिवेशिक श्रम में देखनी चाहिए थी। पूँजीवाद की कब्र खोदने वाले मुख्यत: पूंजीवादी देशों के मजदूर नहीं बल्कि उपनिवेशों की जनता है।[(10)] पूँजीवादी विकास का यह फरमान है कि विकास की प्रक्रिया में ही उसे खुद को खत्म करना होगा। हत्या इसलिए होती है क्योंकि पूँजी का सह संकेंद्रण और श्रम का समाजीकरण आपस में जुड़ जाते हैं और साथ में बढ़ती हुई गरीबी भी। यह इन तीन परिघटनाओं का संयुक्त रूप है जो मार्क्स को क्रांति के इस मूलभूत नियम को निर्धारित करने और यह कहने में सक्षम बनाता है कि पूंजीवादी श्रृंखला अपने सबसे मजबूत बिंदू पर टूट जायेगी, जो स्पष्ट रूप से एक पूर्ण त्रुटि है। लेकिन मार्क्स यह सोचने में गलत हो गये कि तीनों परिघटनाएं एक ही के अंदर प्रकट होगी।[(11)]

हिन्दुस्तान जैसे देश में साधारण जनता यानी गरीब आदमी क्रांति को इतना नही समझेगा, जितना कि राहत वाली राजनीति को वह बराबरी को इतना नही समझेगा, जितना की बख्सीस को। उसको अगर थोड़ा बहुत पैस मिलता रहे, जितनी की उसको आकांक्षा है तो वह इसे ज्यादा पसंद करेगा, चाहे वह पैसा और समाज में उसका स्थान बहुत नीचे दर्जे का हो लेकिन कुछ मिला तो सही।[12] पूंजी के केन्द्रीकरण में गरीबी की अनुपस्थिति को समझा सकने में मार्क्सवादी सिद्धांतो की इस कमजोरी के कारण, पूंजीवाद में औद्योगिक संकट के सभी वर्जन में भी दोष आ गया है। पूरी उन्नीसवी शताब्दी में उद्योग धंधों पर नियमित संकट आते रहे है, किंतु उतनी ही नियमितता से संकट दूर भी होते रहे है। गरीबी की बढ़ोतरी और धनहीनता का नियम सबसे पहले खत्म हो जाता है। इस बात से इन्कार करना निरर्थक होगा कि मार्क्स द्वारा इस नियम के प्रतिपादन के सत्तर वर्ष बाद और सर्वप्रथम पूंजी के बड़े बड़े केंद्र बनने के पच्चीस वर्ष उपरांत पूँजीवादी देशों में श्रमिक वर्ग, न केवल धन हीन नहीं हुवा, पहले से अधिक गरीब नही हुआ, वरन उसके जीवन के स्तर में निरंतर सुधार ही होता गया।[(13)]

अतिरिक्त मूल्य: मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धानानुसार पूंजीपति शोषण करके श्रमिक का अतिरिक्त मूल्य हथिया लेता है और धन का केंद्रीकरण करता है, यह पूंजीवादी व्यवस्था श्रमिकों की संख्या को बढ़ाती है उनमें वर्ग चेतना लाती है तथा उन्हें विश्वव्यापी एकता का अवसर प्रदान करती है तथा अधिकाधिक शोषण के कारण क्रांति की परिस्थिति उत्पन्न करती है लेकिन लोहिया इससे पूर्णतया सहमत नहीं है उनके अनुसार समाजीकृत उत्पादन के संबंध में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बड़े बड़े उद्योग धन्धो और एकाधिकारवादी पूंजी का जन्म तो हुआ है किन्तु छोटे पूंजीपति समाप्त नहीं हुवे है। दरअसल बड़े धंधों के हिस्सेदारों या स्वयं अपने धंधों के स्वामी व्यवस्थापक के रूप में छोटे पूंजीपतियों की संख्या बढ़ी ही है। लोहिया के अनुसार भेदों और मजदूरी की विभिन्नता ने श्रमिक वर्ग की कथित एकता को केवल एक सुभेक्षा में परिवर्तित कर दिया है।

इतिहास ने पूँजीवादी विकास के सिद्धानों के साथ सबसे बड़ी चाल यह खेली कि क्रांति जर्मनी में जहाँ उसकी आशा थी या पश्चिमी यूरोप के अन्य विकसित देश में न होकर रूस में हुई, पूंजीवादी विकास में नियमों के अनुसार पूँजीवादी ढांचों को वही टूटना था, जहाँ वह पूँजी के केन्द्रीकरण और समाजीकृत श्रम के साथ चल सकने में असमर्थ हो। वर्ग संघर्ष के इस सिद्धांत ने एक बेतुकी छलांग कैसे लगा ली, इसे मार्क्सवादी सिद्धातों में अब तक नही बताया जा सका है। न उनमें इसे सम्मिलित ही किया जा सका है।[(14)] यद्यपि पूँजी के एकत्रीकरण के सम्बंध में मार्क्सवाद बिल्कुल सही है। एक इष्टि से औद्योगिक एकाधिकार और श्रम के समाजीकरण के प्रश्नों के संबंधों में भी यही सही है किन्तु यह गरीबी में वृद्धि, वर्ग संघर्ष और विश्वक्रांति के संबंध में सत्य से दूर है।

मार्क्स की भविष्यवाणिया: लोहिया का मत था कि मजदूरों के समाजीकरण, पूँजी केन्द्रीकरण और सर्वहारा की गरीबी की वृद्धि सम्बंधी मार्क्स की तीनों भविष्यवाणियां सत्य निकली, किन्तु इस रूप में नही जिस रूप में उसने की थी। मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार उपर्युक्त तीनों तथ्यों को एक ही अर्थव्यवस्था के अंतर्गत घटित होना चाहिए, जबकि वे पृथक-पृथक अर्थव्यवस्थाओं में घटित हुई। पूँजी का केन्द्रीकरण और मजदूरों का समाजीकरण पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में हुआ और सर्वहारा वर्ग की गरीबी विश्व के दो तृतीयांश देशों की पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में बढ़ी है। लोहिया ने छोटे पूँजीपतियों (मध्य वर्ग) के लोप की मार्क्स की भविष्यवाणी को गलत बताया, लोहिया के मत में मध्यम वर्ग की संख्या बढ़ी है, घटी नही।

उत्पादन के संबंध और उत्पादन की शक्तिया: मार्क्स केवल पूँजीवादी उत्पादन के संबंधो को विनष्ट करना चाहता है, जबकि डॉ० लोहिया पूँजीवादी उत्पादन के संबंधों और पूँजीवादी, उत्पादन की शक्तियों, दोनों को समाप्त करना चाहते है। मार्क्स केवल पूंजीपति वर्ग को समाप्त करना चाहते है जबकि लोहिया पूँजीपति वर्ग और उसके द्वारा दिये गये उत्पादन के विशाल साधनों को

भी समाप्त करना चाहते है। मार्क्स पूंजीशाही बड़े बड़े के उद्योग चाहता है, जबकि लोहिया तेल, बिजली, पेट्रोल, आदि से परिचालित ऐसे छोटे छोटे यंत्रों पर आधारित उद्योगों की स्थापना करना चाहते है, जो कि साधनहीन छोटे छोटे श्रमिकों, कृषकों और अन्य गरीब वर्गों को उपलब्ध हो सके इस अंतर के प्रमुख दो कारण प्रतीत होते है। प्रथम कारण ही यह है कि मार्क्स यूरोप और अमेरिका जैसे साधनयुक्त देशों की प्रगति पर अपनी दृष्टि गड़ाये थे, जबकि लोहिया भारत जैसे अविकसित और निर्धन देश की प्रगति पर दूसरा कारण यह है कि मार्क्स केंद्रीकरण को उचित मानते है, जबकि लोहिया विकेंद्रीकरण को।[15]

केंदीकरण एवं विकेंद्रीकरण: लोहिया के अनुसार जहाँ आर्थिक जनतंत्र नहीं है वहा राजनीतिक लोकतंत्र नही हो सकता इसी तरह जहाँ राजनैतिक लोकतंत्र नहीं है वहाँ आर्थिक लोकतंत्र नही हो सकता। इसलिए लोकतंत्र के लिए आर्थिक और राजनैतिक विकेंद्रीकरण आवश्यक है जबकि मार्क्सवादी व्यवस्था में आर्थिक और राजनैतिक शक्ति का केन्द्रीकरण है। मार्क्स व्यक्तिगत पूँजी को छीनकर राज्य को सौंपता है। यह तो उत्पादन संबंधों का हस्तांतरण मात्र है, क्योंकि व्यक्ति पूंजीपति का स्थान राज्य जैसा पूंजीपति ले लेता है और श्रमिक तो फिर भी पराधीन रहता है। यह आत्म-स्वाभिमानी न होकर नौकर मात्र रह जाता है, क्योंकि जो उसके पास छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धंधे रह भी जाते हैं, वे राष्ट्रीकृत बडे यंत्रों की तुलना में टिक नही पाते। उसकी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति तुलनात्मक ढंग से अधिक हो जाती है क्योंकि व्यक्ति पूँजीपति जैसा शोषण राज्य पूँजीपति नहीं करता। मार्क्स के दर्शन में सर्वहारा वर्ग के इस प्रकार के अधिनायकत्व का कभी अंत नही होता। मार्क्स द्वारा बताया गया वह साम्यवाद कभी नही आता जिसमें राज्य मुरझा जायेगा और मात्र वस्तुओं का प्रशासन रह जायेगा, सन 1917 ई. के बाद अब भी रूस में उपर्युक्त अधिनायकत्व ही चल रहा है। जिसके गर्भ में मार्क्स का अंतिम चरण, शायद ही जन्म लेगा। साम्यवादी दल के कठोर नियंत्रण ने व्यक्तियों की स्वतंत्रता को भी हजम कर लिया है। क्या व्यक्ति तोते की तरह केवल रोटी पाकर पिंजड़े में बंद रह सकता है। इसलिए मार्क्स के विपरीत लोहिया विकेंद्रित राष्ट्रीयकरण, लघु उद्योग धंधों तथा ऐसी विकेन्द्रित राजनैतिक व्यवस्था चाहते है जिसमें व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक हाथ बँटा सकता है। मार्क्स का समाजवादी दर्शन एक आर्थिक दर्शन मात्र है, जो कि भौतिक समता और विशेषत आर्थिक समता का सिद्धांत है इसके विपरीत लोहिया का समाजवाद एक जीवन दर्शन है समता विभिन्न पहलुओं का महत्व है। लोहिया के समता के तीन पहलू बताए भौतिक, सहानुभूतिगत अथवा मानसिक तथा आध्यात्मिक।[16]

समता, स्वतंत्रता एवं मानवाधिकार: मार्क्स के आर्थिक समता के अतिरिक्त अन्य मानव अधिकारों की कोई कल्पना नही की, क्योंकि वह मानव अधिकारों को आर्थिक समता पर ही अवलम्बित मानता था। उसका यह विचार स्वप्न मात्र था। मार्क्सवाद का जो रूप रूस, चीन अथवा अन्य साम्यवादी देशों में आया उससे यह स्पष्ट होता है कि साम्यवाद आर्थिक समता की झूठी बलिवेदी पर मानव के समस्त मानव अधिकारों को बलिदान करना चाहता है। इस प्रकार की शासन व्यवस्था राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्तियों के जनतांत्रिक शासन के अधिकारों भाषण देने, सभा करने और विचार अभिव्यक्ति के अधिकारों के लिए गंभीर संकट उत्पन्न करती है

मार्क्स के सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व संक्रांति काल नही बल्कि अंतिम लक्ष्य बन गया है और अधिनायकत्व तथा मानव के मौलिक अधिकार दो विरोधी विचार है जिसका साथ-साथ चलना प्राय: असंभव होता है। इसके विपरीत लोहिया ने मानव के भाषण देने, सभा करने, विचार अभिव्यक्त करने, सविनय अवज्ञा करने के मूल अधिकारों को मान्यता ही और उनके लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। लोहिया ने बौद्धिक स्वातंत्र्य के अधिकार का समर्थन किया। एवं अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में थे। लोहिया समाजवादी होते हुवे, बौद्धिक स्वातंत्र्य पर साम्यवादी देशों द्वारा लगाये गये अंकुश के कट्टर आलोचक थे। साम्यवादी व्यवस्था इन्सान को मौलिक अधिकारों से वंचित रखती है। लोहिया अहिंसा तथा बौद्धिक स्वातंत्र्य दोनों में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि किसी भी सरकार द्वारा निर्मित अत्याचारी एवं अन्यायी कानूनों का प्रतिरोध करने का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए। लेकिन ऐसा अहिंसात्मक तथा शांतमय ढंग से होना चाहिए।[17]

लोहिया के अनुसार सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने के दो रास्ते है- प्रथम शस्त्र या रक्त रंजित क्रांति का और दूसरा सविनय अवज्ञा या सत्याग्रह का प्रथम मार्ग का अनुसरण इतिहास में कई बार किया जा चुका है और वह प्रशस्त रूप धारण नहीं कर सका, अत: उसका महत्व नही। दूसरा मार्ग सत्याग्रह का है।

मार्क्स से जो दर्शन विश्व को दिया वह केवल आर्थिक समता लाने का प्रयास है। मार्क्स आर्थिक समता को ही समाजवाद समझता है। लोहिया मार्क्स से एक पग अधिक आगे है क्योंकि लोहिया ने समता के साथ साथ सम्पन्नता लाने के भी सिद्धांत और कार्यक्रम बताए है। उनका समाजवाद केवल समता का अपितु सम्पनता का भी दर्शन है। मार्क्स क साध्य वर्गहीन और राज्य हीन

समाज की स्थापना है जबकि लोहिया का साध्य उस वर्गहीन व वर्णहीन राज्य की स्थापना है जिसमें लोक-भाषा, लोक भूषा, लोक भोजन लोक-संस्कृति का स्वतंत्र विचरण हो और जिसमें समता के साथ-साथ सम्पनता और स्वतंत्रता का भी उपयोग लोग कर सके।[(18)]

जनतांत्रिक दृष्टि से अधिक विकसित देशों में मार्क्स ने भले ही दबे दिल से संवैधानिक साधनों की संभाव्यता स्वीकारी हो किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसने हिंसात्मक क्रांति में अपना विश्वास प्रकट किया वे भविष्य के जनतंत्र के लिए वर्तमान में अधिनायकत्व को स्वीकारता है। वह आज असत्य का फैलाव करके कल चरम सत्य की स्थापना करना चाहता है। कल की अहिंसा के लिए वह आज हिंसा करता है और कल के जीवन के लिए आज हत्या करता है। इसके विपरीत डॉ० लोहिया साक्षात्कार सिद्धांत के सृष्टा और सत्यागृह मार्ग के अनुयायी है। व्यक्तिगत हिंसा मानव अधिकार के विरुद्ध है।[(19)]

निष्कर्ष

लोहिया के मतानुसार मार्क्स पश्चिम और गांधी पूर्व के प्रतीक बनकर रह गये। लोहिया पूर्व और पश्चिम को एकीकृत करना चाहते थे। इसलिये यह कहा जा सकता है कि लोहिया ने गांधीवाद और मार्क्सवाद को मिलाकर भारतीय समाजवाद का निर्माण किया परन्तु लोहिया ने मार्क्स, मार्क्सवाद, गांधी या गांधीवाद का ना तो अंध समर्थन किया और ना ही अंध विरोध। समाजवादी नेताओ में केवल लोहिया ही अकेले थे जिन्होंने मार्क्सवाद का इतना पैना विश्लेषण और उसके चिंतन की विसंगति की स्पष्ट पकड़ लोहिया के पहले या बाद में किसी ने नहीं की थी। लोहिया द्वारा मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धांतो का ना केवल सिद्धांत स्तर पर वरन यथार्थ के व्यवहारिक धरातल पर विशद एवं विश्लेषणात्मक विवेचन किया। लोहिया ने द्वंदात्मक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष, इतिहास की आर्थिक व्याख्या, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत जैसे मार्क्सवादी मूलभूत सिद्धांतो का तत्कालीन यूरोप के साथ साथ एशिया विशेषकर भारत की आर्थिक सामाजिक परिसिस्थिति के आधार पर विश्लेषणात्मक विवेचन किया स लोहिया समता मूलक समाज की स्थापना के प्रेरक होने के साथ साथ मानवतावादी मूल्यों से भी सरोकार रखते थे स अत: व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों तथा गांधी से प्रेरित होने के कारण अहिंसा जैसे मूल्यों की कसौटी पर मार्क्सवाद का आकलन किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोहिया राममनोहर मार्क्स, गांधी एक सोशलिज्म, नवहिन्द प्रकाशन, 1960, हैदराबाद, पृ.सं. 1
2. शरद, ओंकार, लोहिया (एक प्रामाणिक जीवनी) लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ.सं. 181
3. लोहिया, राममनोहर, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, नवहिन्द पब्लिकेशन हैदराबाद, 1960, पृ.सं. 260
4. राय, रामकमल, राममनोहर लोहिया आचरण की भाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2008, पृ.सं. 124
5. लोहिया राममनोहर मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, नवहिन्द प्रकाशन, 1960, पृ.स. 3676. लोहिया राम मनोहर, हिन्दू बनाम हिन्दू, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012 पृ.सं.40
7. लोहिया राममनोहर मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, नवहिन्द प्रकाशन, 1960, पृ.सं.258
8. दीक्षित, ताराचन्द, डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृ.सं. 223
9. लोहिया, राम मनोहर, अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे, लोकभारती प्रकाशन, 2017, पृ.सं.26
10. वही, पृ. सं. 39
11. लोहिया राममनोहर मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म, नवहिन्द प्रकाशन, 1960, पृ.सं.101
12. शम्भू नाथ, सामाजिक क्रान्ति के दस्तावेज, भाग-1, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006
13. लोहिया, राम मनोहर, अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे, लोकभारती प्रकाशन, 2017, पृ.सं.14,15
14. वही पृ.सं.17
15. दीक्षित, ताराचन्द, डॉ.राम मनोहर लोहिया, लोन भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ.सं.226
16. वही, पृ. सं. 228
17. नागर, डॉ. पुरषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनितिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999, पृ.स. 726
18. दीक्षित, ताराचंद, डॉ0 राम मनोहर लोहिया का समावादी दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2013, पृ.सं. 224
19. लोहिया, राम मनोहर, हिन्दू बनाम हिन्दू, लोग भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. सं.51

भारत में खादी एवं ग्रामोद्योग: ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

डॉ० पंकज गुप्ता

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एन.डी. राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा, जयपुर

शोध सारांश

स्वतंत्रता संग्राम के दौर में पंडित नेहरू ने खादी के लिए कहा था कि वह 'स्वतंत्रता की वर्दी' है, यह वह समय था। जब राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता की लड़ाई जीतने में स्वदेशी पर बल देते हुए खादी एवं ग्रामोद्योग कार्यक्रम की शुरूआत की थी। इसीलिए गाँधीजी ने चरखे को ग्रामीण पुनर्निमाण का आधार अहिंसा व मानव श्रम के महत्त्व का प्रतीक माना है। महात्मा गाँधी ने खादी मिशन का लक्ष्य ग्राम स्वराज्य' माना था। इसलिए वे कहते हैं कि "उस स्वराज्य का, जिसे हासिल किया, का सम्बन्ध ग्राम स्वराज्य के साथ है और खादी के बिना ग्राम स्वराज्य नहीं हो सकता। अत: खादी का जो मूल्य है, वह काल्पनिक नहीं, भावात्मक नहीं बल्कि वास्तविक है"। स्वतंत्रता पश्चात् खादी और ग्रामोद्योग सम्बन्धी कार्यों की योजना बनाने, उसका संगठन करने तथा योजना को लागू करने के लिए अप्रैल 1957 में खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग का गठन किया गया। आयोग खादी और ग्रामोद्योगों के विकास हेतु प्रमुख परियोजनाओं के अनुसंधान अथवा तैयार करने के अलावा, संबंधित खादी और/अथवा ग्रामोद्योगी समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप से अथवा अन्य अभिकरणों के माध्यम से अध्ययन करता है। प्रस्तुत अध्ययन वैश्वीकृत परिदृश्य में खादी और ग्रामोद्योग के प्रासंगिकता का परिक्षण करने का प्रयास करता है तथा भारत सरकार द्वारा खादी के संरक्षण-संवर्धन हेतु किये जा रहे नीतिगत निर्णयों का अन्वेषण करता है ताकि खादी को आत्मनिर्भर भारत का प्रमुख टूल बनाया जा सके।

संकेताक्षर: खादी, ग्रामोद्योग, आत्मनिर्भरता, प्रशिक्षण, विपणन, गुणवत्ता, सस्टेनेबल फैब्रिक्स

परिचयात्मक

प्राचीन काल में वस्त्र उत्पादन कार्य घर-घर में छोटे-छोटे यन्त्रों से किया जाता था। इन यन्त्रों को डेरा, तकली, चरखा, चरखी, करघा आदि नामों से ही बुना जाना जाता था। भारत में वस्त्र निर्माण की प्रक्रिया पूर्णतया हस्तकला के रूप में विकसित हुई। कपास से निर्मित वस्त्र हाथ से कते धागे द्वारा हाथ होता था। भारतीय कारीगर की कुशलता विश्व प्रसिद्ध महीन एवं कलात्मक वस्त्र 'मलमल' से जानी जा सकती है। इस बात पर्याप्त प्रमाण हैं कि भारत में बने सूती वस्त्र का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता था और वह उच्चकोटि का होता था। करीब 5 हजार वर्ष पूर्व हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भी इस कला का व्यापक प्रसार था। आधुनिक काल की 18वीं शताब्दी के मध्य तक भारत, विश्व भर में सूती वस्त्र के उत्पादन और व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। इस वस्त्र की मांग सबसे ज्यादा यूरोपीय देशों में थी।

यूरोप में औद्योगीकरण का युग आरम्भ होने के पश्चात् 1717 में वस्त्र उत्पादन का पहला कारखाना लगा। बाद धीरे-धीरे कताई बुनाई के अनेक कारखाने स्थापित हुए जिन्होंने भारतीय वस्त्र उद्योग को नष्ट कर दिया तथा भारतीय दस्तकारी के ह्रास का युग आरम्भ हो गया। अब भारत यूरोप के लिए कच्चे माल की आपूर्ति का केन्द्र बन गया। इस दौरान कताई-बुनाई में प्रचलित परम्परागत यन्त्र भी उपयोग के अभाव में प्राय: नष्ट होने लगे। फिर भी कई क्षेत्रों में मोटी कताई के यन्त्र कायम रहे। राजस्थान के गाँवों में

मोटी कताई करने वाले चरखे और करघे पर कहीं-कहीं कुछ जातियाँ परम्परागत रूप से वस्त्र उत्पादन का कार्य करती रहीं। गाँधीजी ने कताई-बुनाई की कला को नये तथा क्रान्तिकारी परिपेक्ष्य में प्रस्तुत कियाइसे गाँधीजी ने 'खादी' नाम से सम्बोधित किया।

खादी

'खादी' से तात्पर्य हाथ से कता व बुना गया वस्त्र होता है। गाँधीजी ने खादी को नयी अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दू बताया। क्योंकि खादी जहाँ सबको काम देती है, मिल का कपड़ा वहाँ कुछ ही आदमियों को काम देता है और बहुतों को सच्चे श्रम से वंचित कर देता है। खादी आम जनता की सेवा करती है, मिल के कपड़े का उद्देश्य धनिक वर्ग की सेवा करना होता है। खादी श्रमिकों की सेवा करती है, मिल का कपड़ा उनका शोषण करता है। 'खादी' मात्र एक वस्त्र ना होकर एक विचार के रूप में प्रतिष्ठित है। यह भारतीय स्वतन्त्रता के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ी। गाँधीजी ने खादी को स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ जोड़कर जन सामान्य के बीच प्रतिष्ठित किया। अत: यह राष्ट्रीयता का प्रतीक भी है।

गाँधीजी का 'चरखा' स्वदेशी का प्रतीक था। उन्होंने चरखे को उस समय देश के समक्ष आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया था जब यूरोप के देशों में बड़ी-बड़ी कपड़ा मिलें स्थापित हो चुकी थी जिनका दाम देशी कपड़े से कम था। गाँधीजी ने विदेशी कपड़े का बहिष्कार इसलिए नहीं किया कि वह इंग्लैण्ड से आ रहा था बल्कि इसलिए, कि उस कपड़े का उपयोग करके देश आत्मनिर्भर न बन पाता; लोगों में स्वावलम्बन व आत्मविश्वास न आ पाता; गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और अधिक बढ़ती। मिलों से तकनीकी विकास भले ही हो गया हो परन्तु यह समस्या का स्थायी समाधान नहीं था[2]।

इस प्रकार खादी अपनाने के सम्बन्ध में एक अन्य दृष्टिकोण भी है। मिलों से करोड़ों गाँव वालों को अधिक आय वाला अच्छा रोजगार मिल जाये तो भी स्वदेशी मिलों को समस्त राष्ट्र की आवश्यकताएँ पूरी करने में बहुत समय लग जाता, सम्भवत: कई दशाब्दियाँ। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी पूँजी की भी जरूरत पड़ती और यन्त्रों को मंगाने तथा उन्हें कुशलतापूर्वक चलाने के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता। इसके विपरीत गाँव के उद्योग धन्धे के रूप में खादी के लिए तो बहुत ही कम पूँजी चाहिए। गाँव में ही सभी आवश्यक यन्त्र बनाये सकते हैं और ऐसे कारीगरों की भी वहाँ कमी नहीं होती है। अत: गाँधीजी के लिए खादी केवल भावना की वस्तु नहीं थी, बल्कि देश की गरीबी को दूर करने, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब का भेद मिटाने तथा सारे देश की जनशक्ति का उपयोग करने का आधार थी। वस्तुत: इसमें सारी सामाजिक व्यवस्था को बदलने का तत्वज्ञान निहित है[3]। इसलिए गाँधीजी ने भारत की अर्थआत्मा के रूप में खादी की खोज की।

खादी की खोज

गाँधीजी ने खादी में भारत की आत्मा को देखा। उनकी राय में खादी मात्र वस्त्र नहीं अपितु स्वतन्त्र भारत की नई अर्थ रचना का प्रतीक थी। गाँधीजी ने खादी को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़कर इसे स्वदेशी का प्रतीक माना और मिल- वस्त्र को विदेशी शासन और शोषण का[4]। इसलिए मिल-वस्त्र का बहिष्कार आन्दोलन बड़े पैमाने पर चला। कांग्रेस ने खादी को स्वीकार किया और 1922 में प्रस्ताव पारित किया कि खादी-आन्दोलन का महान राजनैतिक मूल्य होने के अलावा वह भारत के करोड़ों गरीबों की आमदनी में कुछ वृद्धि भी करेगा। इस प्रकार खादी कांग्रेस के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गयी। एक से अधिक बार कांग्रेस के अधिवेशनों में खादी को स्वीकार किया गया और उसे बढ़ाने के प्रस्ताव पारित किये गये। कांग्रेस सदस्यों के लिए सूत कातना और खादी पहनना अनिवार्य किया गया।

चरखा संघ की स्थापना

गाँधीजी खादी को स्वदेशी और राष्ट्रीयता का प्रतीक मानते थे लेकिन इसी के साथ वे खादी को आर्थिक रूप देने के लिए भी प्रयत्नशील थे। खादी रोजी-रोटी का साधन बने, इस बारे में उनका चिन्तन बराबर चलता रहा। इस चिन्तन को मूर्त रूप देने की दृष्टि से उन्होंने इसे सार्वजनिक विचार-विमर्श के लिए सबके सामने रखा जिसमें स्पष्ट किया गया कि भारत में कातने वालों का ऐसा संघ स्थापित हो जो शुद्ध व्यावसायिक रूप का हो, स्थायी हो और कांग्रेस की नीति में परिवर्तन होने पर भी उसकी नीति में परिवर्तन

न हो। खादी सेवकों को इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि वे देहात का प्रतिनिधित्व करें और दूर-दराज के गाँवों तक चरखे का सन्देश पहुँचाकर वहाँ सच्चा राष्ट्रीय जीवन बनाये। 22-23 सितम्बर 1925 को पटना में कांग्रेस महासमिति की सभा हुई जिसमें चरखा संघ बनाना तय हुआ। उसी समय यह भी तय हुआ कि चरखा संघ स्वतन्त्र रूप से कार्य करे। दिसम्बर 1923 में काकिनाडा में कांग्रेस ने अखिल भारतीय खादी मण्डल की स्थापना की थी[5] जो कि बाद में चरखा संघ में विलीन हो गया।

चरखा संघ की स्थापना के बाद गाँधीजी प्रथम कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष बने तथा 1947 तक संघ उनके मार्ग दर्शन में चलता रहा। यह संघ गाँव के कमजोर वर्ग को रोजगार एवं आर्थिक आधार देने के साथ उनके शैक्षणिक विकास, स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक सुधार आदि के कार्य भी करता था। राजस्थान में चरखा संघ का कार्य 1925 में अजमेर में शुरू हुआ, श्री जमनालाल बजाज प्रतिनिधि एवं श्री बलवन्तराय देशपाण्डे मन्त्री बनाये गये। इसका कार्यालय अजमेर से 1935 में गोविन्दगढ़, मलिकपुर में स्थानान्तरित कर दिया गया।

चरखा संघ का विकेन्द्रीकरण

स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ चरखा संघ के माध्यम से देश भर में खादी के काम का व्यापक प्रसार हुआ। उस समय चरखा संघ इस कार्य के लिए केन्द्रीय संगठन का कार्य करता था। गाँधीजी आरम्भ से ही खादी कार्य के विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। 1946-47 में चरखा संघ के विकेन्द्रीकरण का क्रम आरम्भ हुआ बिहार व उत्तर प्रदेश का कार्य क्रमशः बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ तथा खादी आश्रम ने, राजस्थान में राजस्थान खादी संघ व अन्य संस्थाओं ने मध्य भाग का कार्य मध्य भारत खादी संघ ने सम्भाल लिया[6]। वर्ष 1949 तक देश भर में स्थानीय संस्थाओं का विस्तार हो गया और संघ का कार्य सिमटता गया।

बदलती परिस्थिति

स्वतंत्रता के पश्चात् खादी तथा अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों को गाँधीजी विकेन्द्रित रूप में समग्र ग्राम विकास की दृष्टि से गाँव-गाँव तक पहुँचाना चाहते थे। इसलिए 13 मार्च, 1948 को सेवाग्राम में हुए सम्मेलन में रचनात्मक कार्यक्रम के अलग-अलग कामों के लिए चलने वाली संस्थाओं को सम्मिलित कर उन्हें एक-दूसरे का पूरक बनाने की दृष्टि से सर्व सेवा संघ की स्थापना हुई। 11 मार्च, 1953 को चरखा संघ इसमें विलीन हो गया। इस प्रक्रिया में अखिल भारतीय गौ सेवा संघ, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, अखिल भारतीय तालीमी संघ आदि संस्थाएं भी सम्मिलित हो गयीं[7]। सर्व सेवा संघ की विभिन्न उपसमितियाँ अपने-अपने ढंग से कार्य करती थी जिनमें सबसे व्यापक कार्य खादी का था जो विकेन्द्रित होकर क्षेत्रीय संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा था।

खादी कार्य का बदलता स्वरूप

प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय खादी कार्य के स्वतन्त्र विकास के लिए यह सुझाव दिया गया कि खादी तथा ग्रामोद्योग का कार्य स्वतन्त्र संस्थाओं के माध्यम से किया जाना चाहिए तथा इसमें रोजगार की संभावना, ग्रामीण क्षेत्र के विकास, विभिन्न राज्यों में कार्य का समन्वय एवं वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए सक्षम केन्द्रीय संगठन बनाना चाहिए। योजना आयोग के सुझाव को ध्यान में रखकर जनवरी, 1953 में अखिल भारतीय खादी तथा ग्रामोद्योग के उत्पादन के लिए संगठनात्मक कार्य किया गया।

बोर्ड की स्थापना के समय यह अपेक्षा रखी गयी थी कि वह एक स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करेगा परन्तु प्रथम वर्ष में ही अनेक कठिनाईयों के कारण बोर्ड अपनी गति नहीं पकड़ पाया। परिणामस्वरूप भारतीय संसद में 1956 में कानून बना जिसके अन्तर्गत अखिल भारतीय खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग का गठन किया गया। यह कानून अप्रैल 1957 से लागू हुआ[8]। आयोग का मुख्य कार्य खादी और ग्रामोद्योग सम्बन्धी कार्यों की योजना बनाना, उसका संगठन करना तथा योजना को लागू करना माना गया।

आयोग के निम्नलिखित कार्य माने गये थे[9]-

1. खादी तथा ग्रामोद्योग के उत्पादन में लगे हुए व्यक्तियों के प्रशिक्षण की योजना बनाना और संगठन करना।
2. कच्चे माल और औजारों का भण्डारण तथा खादी व ग्रामोद्योग में लगे हुए व्यक्तियों को उचित दरों पर पुर्जे उपलब्ध कराना।

3. खादी व ग्रामोद्योगों की बिक्री एवं विपणन की व्यवस्था करना।
4. खादी के उत्पादन तकनीक, ग्रामोद्योग के विकास व खादी ग्रामोद्योगों से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन के लिए सुविधा उपलब्ध कराने के लिए अनुसन्धान करना एवं उन्हें प्रोत्साहन देना।
5. खादी व ग्रामोद्योग के विकास के लिए संस्थाओं को गतिशील रखने के लिए सहायता देना।
6. खादी उत्पादन या ग्रामोद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करना व उनका प्रसार करना।
7. खादी निर्माताओं और ग्रामोद्योगों में लगे लोगों में सहकारी प्रयास को बढ़ावा देना।
8. प्रामाणिकता कायम रखने की दृष्टि से खादी या किसी ग्रामोद्योग के उत्पादनों का विक्रेताओं को प्रमाण पत्र देना।
9. अन्य ऐसे कार्य जिन्हें आयोग निर्दिष्ट कर दे।

इस प्रकार खादी कार्य के लिए नई स्वायत्त एजेन्सी का गठन किया गया। इसके अन्तर्गत अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड एक सलाहकारी संगठन के रूप में रह गया। कार्यकारी अधिकार आयोग के पास चले गये। सर्व सेवा संघ की राय से अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग बोर्ड ने खादी को प्रामाणिक रूप से चलाने के लिए प्रमाण-पत्र समिति का गठन किया। इस समिति को स्वायत्त इकाई रखा गया तथा मुख्यालय लखनऊ में रखा गया। खादी कार्य में लगी संस्थाएँ प्रामाणिक खादी बनायें तथा प्रामाणिकता बनाये रखें, इसकी जाँच एवं प्रमाण पत्र देने का अधिकार प्रमाण पत्र समिति को दिया गया। समिति यह भी देखती है कि संस्था में हाथ कती व हाथ बुनी खादी ही बने इस कार्य में लगे दस्तकारों को निर्धारित दर से पारिश्रमिक मिले, खादी कार्य में लाभ का अंश भी निश्चित रहे। इन बातों की जाँच करके ही संस्थाओं को खादी उत्पादन का प्रमाण-पत्र दिया जाये। यह समिति प्रत्येक राज्य में प्रमाण पत्र के लिए भी संस्तुति करती है[10]।

अंबर चरखे के विकास के बाद देश भर में खादी के विकास को नई दिशा मिली। 1956-57 में अंबर चरखा मूल्यांकन समिति (खेर कमेटी) ने अपनी रिपोर्ट में खादी कार्य को विकेन्द्रित रूप से चलाने की सिफारिश की। परिणामस्वरूप जिले व उससे भी नीचे स्तर पर खादी संस्थाओं को विकेन्द्रित किया जाने लगा। यह क्रम आज तक चल रहा है और प्रखण्ड एवं उससे भी नीचे स्तर पर खादी संस्थाऐं विकेन्द्रित हो रही हैं।

संगठनात्मक स्वरूप

इस समय खादी कार्य दो प्रकार की संस्थाओं द्वारा किया जाता है-

1. खादी कार्य के लिए पंजीकृत संस्थाएँ
2. सहकारी समितियाँ

संस्थाओं को प्रमाण पत्र समिति, लखनऊ से खादी उत्पादन का प्रमाण पत्र लेना आवश्यक होता है आर्थिक दृष्टि से ये संस्थाऐं एवं सहकारी समितियाँ राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड या अखिल भारतीय खादी ग्रामोद्योग आयोग से जुड़ी होती हैं। इन्हें नियमानुसार योजनाओं के अन्तर्गत कार्य करने के लिए ऋण एवं अनुदान प्राप्त होता है। वर्तमान नीति के अनुसार संस्थाएँ खादी व ग्रामोद्योग आयोग की स्वीकृति से निश्चित सीमा में बैंकों से भी कर्ज लेती हैं। खादी ग्रामोद्योग आयोग का मुख्यालय मुम्बई में है तथा प्रत्येक राज्य में राज्य निदेशक का कार्यालय होता है, जो कि राज्य स्तर पर कार्य देखता है[11]।

ग्रामोद्योग

19 वीं शताब्दी के दौरान देश में आधुनिक संगठित उद्योगों से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वयंपोषित, फिर भी अलग-अलग गाँवों का समावेश था। ग्राम समुदाय के विविध कार्यों के लिए वहाँ सरल श्रम विभाजन आधार था। ग्राम समुदाय में ग्रामीण कारीगर एक अंग के रूप में स्थिर था। उन कारीगरों द्वारा कार्य की अपनाई गई तकनीक श्रम-सघन थी और वह क्षेत्र विशेष की संस्कृति एवं परम्परा तथा पुश्तैनी शिक्षा पर आधारित थी। जहाँ तक कच्चे माल को जुटाने, श्रम का उपयोग करने, उत्पादन करने, उत्पादित माल के बिक्री की बात थी, ग्रामोद्योगी इकाई एक समग्र इकाई होती थी।

इतिहास साक्षी रहा है कि ये सारे उद्योग प्राकृतिक आपदाओं एवं राजनैतिक उठा-पटक के बीच बने रहे एवं चलते रहे। तथापि, ब्रिटिश सत्ता के आरूढ़ होने के साथ एवं ग्रामोद्योगों को उनके द्वारा जानबूझकर हतोत्साहित करने, अर्थव्यवस्था में संगठित क्षेत्र की

शुरूआत करने से ग्रामोद्योग धीरे-धीरे अपनी पकड़ ढीली करने के लिए बाध्य हो गये। अपने उत्पादों के समक्ष गुणवत्ता और उसी भाँति कीमतों के मामले में वे बेतुकी प्रतियोगिता का सामना करने लगे।

ग्रामोद्योगों का महत्व

आजादी के बाद हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने विकास का जो मॉडल अपनाया था वह सफल नहीं रहा क्योंकि इससे देश की मूलभूत समस्याओं जैसे- गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि में कोई कमी नहीं आई। उल्टे पर्यावरण विनाश, साम्प्रदायिकता और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हमले और तेज हो गये। कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उत्पादन लघु उद्योगों में सम्भव नहीं है, ऐसी वस्तुओं को बाहर से मंगाने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन जो चीजें गाँवों में और लघु उद्योगों में आसानी से बनती है, उन्हें बाहर से मँगाना तो देश को गुलाम बनाना है[12]।

बड़े उद्योगों द्वारा औद्योगीकरण होने के कारण शहरीकरण को प्रोत्साहन मिलता है जिससे ग्रामीण व्यक्ति शहरों की ओर पलायन करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप शहरों में आवास, चिकित्सा जैसी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लेकिन कुटीर और लघु उद्योगों के माध्यम से शहरीकरण को रोका जा सकता है क्योंकि जब ग्रामीण को अपने गाँव में ही, अपने घर के पास रोजगार उपलब्ध होगा तो वे शहरों की ओर न भागकर गाँवों में अपने उद्योग धन्धों में व्यस्त रहकर अपनी आजीविका चला सकेंगे।

कुटीर और लघु उद्योगों में स्थिरता रहती है। बड़े उद्योगों में जब वस्तुओं की माँग घट जाती है तो बेरोजगारी बढ़ती है। तुलनात्मक दृष्टि से कुटीर एवं लघु उद्योगों में व्यापक स्तर पर मन्दी की स्थिरता नहीं होती, अत: इन उद्योगों में रोजगार की अधिक स्थिरता पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त उत्पादन प्रणाली अत्यधिक सरल होने के कारण इसके लिए अधिकतम तकनीकी ज्ञान और प्रबन्धकीय ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। लघु एवं कुटीर उद्योगों में श्रमिक व मालिक वे स्वयं होते हैं अथवा इन उद्योगों का स्वामी मजदूरों की समस्याओं के विषय में शीघ्र जानकारी प्राप्त कर उनका समाधान कर देता है। अत: उनमें आपस में कोई विवाद उत्पन्न नहीं होता है। इन उद्योगों में ऊँची गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन होता है जो अपने टिकाऊपन तथा कलात्मकता के कारण उपभोक्ता को अधिक संतुष्ट करती है[13]। ये उद्योग श्रम सघन हैं। भारत में श्रमिक अधिक है, पूँजी कम है अत: उत्पादन बढ़ाने हेतु इससे प्रभावी उपाय दूसरा कोई नहीं है।

वस्तुत: इस तरह हम यंत्रों, कलपुर्जो और बिजली अथवा अन्य किसी भी प्रकार की शक्ति के विरोधी नहीं होते हैं। इससे आग्रह मात्र इतना है कि ये यंत्र और शक्तियाँ विकेन्द्रित उद्योगों के क्षेत्र में लोगों की पहुँच के अन्दर ही हो। हम ऐसे यंत्रों और यंत्रीकरण के विरोधी हैं जिनका स्वामित्व कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में श्रम का शोषण करने के लिए ही हो। बड़े उद्योगों को ऐसी छूट कदापि नहीं दी जानी चाहिए कि वे छोटे उद्योगों का गला घोंट देबड़े और छोटे उद्योगों को एक-दूसरे की प्रगति एवं समृद्धि के लिए परस्पर सहायक उद्योगों की भूमिका निभानी चाहिए। इस संश्लेषण का प्रयोजन यह है कि एक ही साथ अधिकतम उत्पादन भी हो और उससे अधिक से अधिक लोगों को रोजगार सुलभ किया जा सके। दोनों ही उद्योगों को अपने उत्पादों को अधिक उपयोगी, समयानुकूल, उत्तम व हर प्रकार से गुणयुक्त बनाने के लिए निरन्तर नव-नवीन प्रयास और प्रयोग करते रहना चाहिए। इस प्रकार हमारे समक्ष ऐसे बड़े उद्योगों का चित्र प्रस्तुत हो जाता है जो कि सामुदायिक प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित होते हैं और ऐसे छोटे उद्योगों की सुचिन्तित कल्पना भी है जो कि स्वमेव अपना नियमन करें, अपने बल पर चलें और स्थानीय उपभोग के क्षेत्र में अच्छी सेवा उपलब्ध करायें[14]। इस प्रकार टेक्नोलॉजी हमारे विशाल श्रमशक्ति भण्डार के अनुकूल होनी चाहिए तथा इसका इस्तेमाल हमेशा इतना नियन्त्रित होना चाहिए कि रोजगार पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। तकनीक का स्तर और मशीनों का अधिकाधिक उपयोग इस मुख्य लक्ष्य से शासित होना चाहिए[15]।

कुटीर उद्योगों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है जबकि भारतीय संविधान में राज्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में कुटीर उद्योगों के विकास की आवश्यकता के बाबत जिक्र किया गया। उसी भाँति, भारतीय आयोजना के नींव के बतौर पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामोद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में न केवल ग्रामोद्योगों के लिए ग्रामीण विकास के अन्तर्गत केन्द्रीय स्थान देने की सिफारिश की गई, अपितु आयोग ने केन्द्रीय सरकार के स्तर पर एक संगठन की आवश्यकता को भी महसूस किया जो ग्रामोद्योगों की समस्याओं पर समीप से ध्यान दे सके और राज्य सरकारों, स्वयंसेवी रचनात्मक संगठनों एवं

ग्रामीण सहकारिताओं के द्वारा काम करने के लिए अनुकूल स्थितियाँ तैयार करने में भी सहायक हो सके। इसी वजह से अप्रैल, 1957 में खादी और ग्रामोद्योग आयोग का स्वायत्तशासी संगठन खड़ा हुआ।

विकास के इस क्षेत्र से संबंधित उपागम योजना दर योजना बदलता रहा। प्रथम योजना के दौरान ग्रामोद्योगों को कृषि के विकास से सम्बद्ध करके देखा गया और द्वितीय योजना में इस क्षेत्र के लिए एक स्वतंत्र स्थान बनाया गया क्योंकि उपभोक्ता सामग्रियों की मांग वृद्धिमान थी और उसे इस क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाकर पूरा किया जाना था। यह दृष्टि रखी गयी कि उपभोग्य सामग्रियों के उत्पादन में योगदान करके खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र उस स्फीतिकारी दबाव को कम कर सकेगा जो अर्थव्यवस्था में भारी उद्योगों में विनियोग द्वारा उद्भूत होगा।

तृतीय योजना में व इसके पश्चात् ग्रामीण औद्योगीकरण के सिद्धान्त का निरूपण हुआ और साथ ही ग्रामीण विकास में ग्रामीण उद्योगों के समग्रण पर जो दिया गया। इन कार्यक्रमों की समीक्षा अशोक मेहता समिति ने की तथा उस समिति की सिफारिशों के प्रकाश में इन कार्यक्रमों के उद्देश्य चतुर्थ योजना में और उसके आगे रखे गये:

1. रोजगार मुहैया कराने का सामाजिक उद्देश्य,
2. विक्रय मालों के उत्पादन का आर्थिक उद्देश्य,
3. जन समुदाय के मध्य आत्म-निर्भरता पैदा करने तथा ग्रामीण सामुदायिक भावना को सशक्त करने का व्यापक उद्देश्य।

खादी तथा ग्रामोद्योग समीक्षा समिति (रामकृष्णैया समिति) की सिफारिशों के आधार पर 1987 में खादी और ग्रामोद्योग अधिनियम के संशोधन होने तक केवल वे ही पारम्परिक ग्रामोद्योग मान्य थे जो आयोग के अधिनियम की अनुसूची में रखे गये थे। पहली बार संशोधित अधिनियम में ग्रामोद्योगों के लिए एक कानूनी परिभाषा प्रदान की गई। इसके अधीन ग्रामोद्योगों के बारे में, कि कितना विनियोग हो और ये इकाईयाँ कहाँ स्थापित हों, इसके बारे में न केवल सैद्धान्तिक अवधारणागत स्पष्टता आयी, बल्कि इस परिभाषा ने ग्रामोद्योगों के क्षेत्र को भी काफी विस्तारित एवं व्यापक कर दिया, क्योंकि अब कोई भी काम जो ग्रामीण क्षेत्रों में हो सकता है और यदि वह प्रति व्यक्ति आय के निर्धारित मापदण्ड को संतुष्ट करता है तो उसे ग्रामोद्योग माना जा सकता है। नई परिभाषा काफी बड़ा क्षेत्र प्रस्तुत करती है, जिसके तहत नए आधुनिक जीव्य ग्रामोद्योगी इकाईयों की स्थापना देहातों में उन पुरातन उद्योगों के साथ-साथ हो सकती है, जो दस्तकारी, रूचि और परम्परा से बंधे हुए हैं। यह बात ग्रामोद्योगों के बढ़ते कदम की दिशा में एक मोड़ सा है।

ग्रामोद्योग आंदोलन के प्रयाण में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना 1993 में घटी, जब भारत के प्रधानमंत्री जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति की अध्यक्षता में खादी ग्रामोद्योगी क्षेत्र के विकास को गति प्रदान करने के लिए उच्च सत्ताक समिति की नियुक्ति हुई[16]। इसकी सिफारिशें सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र में काफी हद तक प्रभावकारी होंगी। अत: ग्रामोद्योगों का मुख्य उद्देश्य अब ऐसी जीव्य परियोजनाएँ लगाना है। जो देहातों में पूर्णकालिक रोजगार दे सकती है पूर्णकालिक रोजगार प्रदान करने में न केवल इस क्षेत्र की प्रभविष्णुता को मान्यता प्रदान की गई बल्कि इसे एक लक्ष्य भी दिया गया है, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम में एक सुनिश्चित हिस्से का लक्ष्य ।

खादी एवं ग्रामोद्योग की वर्तमान स्थिति

खादी और ग्रामोद्याग आयोग एक विधिविहित संस्था है जिसकी स्थापना संसद के एक अधिनियम (1956 के 61 वें तथा 1987 के अधिनियम 12 एवं 2006 के अधिनियम 10 के) द्वारा हुई है। अप्रैल 1957 में स्थापित होते ही इसने पूर्व अखिल भारत खादी और ग्रामोद्योग मंडल का कार्यभार अपने हाथ में ले लिया[17]। यह संगठन भारत सरकार के सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्यरत हैं।

आयोग व्यापक उद्देश्य[18]

- रोजगार प्रदान करने का सामाजिक उद्देश्य
- बिक्री योग्य वस्तुओं का उत्पादन करने का आर्थिक उद्देश्य, और

- जनता में आत्मनिर्भरता एवं सुदृढ़ ग्राम स्वराज की भावना पैदा करने का व्यापक उद्देश्य प्रमुख कार्य[19]
- ग्रामीण विकास में लगे अन्य अभिकरणों से समन्वय स्थापित कर ग्रामीण क्षेत्रों में खादी और अन्य ग्रामोद्योग के विकास के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाते हुए इसे संबंर्धित, संगठित तथा कार्यान्वित करना।
- इसके कार्यो के अंतर्गत खादी और ग्रामोद्योग में लगे कारीगरों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन तथा उनमें सहयोगात्मक प्रयास की भावना उत्पन्न करने के अलावा, उत्पादकों की आपूर्ति हेतु कच्चा माल एवं औजारों के संग्रह को बढाना, अनिर्मित माल के रूप में कच्चा माल के प्रशोधन हेतु सामान्य सेवा सुविधा का सृजन तथा खादी और ग्रामोद्योगी उत्पादों के विपणन हेतु सुविधा का प्रावधान शामिल है।
- खादी और/अथवा ग्रामोद्योगी उत्पाद अथवा हस्तकलाओं की बिक्री एवं विपणन की प्रोन्नति हेतु आयोग जहाँ भी संभव एवं आवश्यक हो, स्थापित विपणन अभिकरणों से संपर्क कर सकता है।
- उत्पादकता बढ़ाने,श्रम को कम करने एवं उनकी स्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने एवं ऐसे अनुसंधान से प्राप्त प्रमुख परिणामों के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था करने की दृष्टि से गैर-परंपरागत ऊर्जा एवं विद्युत ऊर्जा के उपयोग के साथ-साथ खादी और ग्रामोद्योगी क्षेत्र में उपयोग लायी जा रही उत्पादन तकनीकी एवं औजारों में अनुसंधान को प्रोत्साहित एवं संवर्धित करने तथा इससे संबंधित समस्याओं के अध्ययन की सुविधा प्रदान करने का उत्तरदायित्व आयोग पर है।
- आयोग खादी और ग्रामोद्योगों के विकास एवं कार्यान्वयन हेतु संस्थाओं तथा व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान करता तथा डिजाईन की आपूर्ति, प्रोटोटाइप तथा अन्य तकनीकी सूचना के माध्यम से उनका मार्गदर्शन करता है।
- खादी और ग्रामोद्योगी गतिविधियों को क्रियान्वित करने में, आयोग उत्पादों की वास्तविकता एवं गुणवत्ता मानक तथा मानक के अनुरूप उत्पादों को सुनिश्चित करता है।

वर्तमान में खादी 5.74 लाख से अधिक ग्रामीण व्यक्तियों के लिए आजीविका का साधन है[20], जिसमें देश भर में फैले कत्तिन, बुनकर और अन्य कारीगर शामिल हैं। केवीआईसी खादी और ग्रामोद्योगी गतिविधियों के माध्यम से खादी और ग्रामोद्योगी संस्थाओं/इकाइयों को पूरे देश में बढ़ावा देता है। वर्ष 2019-20 के दौरान सम्पूर्ण केवीआई क्षेत्र में उत्पादन और बिक्री का कार्यनिष्पादन क्रमशः रु. 67,667.31 करोड और रु. 88,875.54 करोड़ तक पहुँच गया है, और पिछले पूरे वर्ष की तुलना में 16. 41% और 19.63% की वृद्धि दर्ज की गई[21]।

निष्कर्ष

खादी और ग्रामोद्योग भारत सरकार की नीति और वित्तीय सहायता के साथ पिछले छह दशकों में तेजी से बढ़ा है। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय (एमएसएमई) की विभिन्न योजनाएं, जो खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रम का मुख्य आधार हैं, ने स्थायी रोजगार के अवसर प्रदान करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है और गैर-कृषि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और समाज के वंचित वर्गो के सामाजिक-आर्थिक जीवन में सुधार की दिशा में योगदान दिया है।

खादी के पुनरोदय में सततता के बढते महत्व की मुख्य भूमिका है। हाथ से बुनी खादी को दुनिया भर में सराहना मिली है, क्योंकि यह टिकाऊ, जलवायु के अनुकूल, जैव निम्नीकरणीय और जैविक प्रकृति की है। सततता की बढ़ती जागरूकता के साथ, खादी की मांग में वृद्धि हुई है। खादी, महात्मा गांधी द्वारा उपयोग किए जाने वाले अपरंपरागत हथियारों में से एक के रूप में, भारत के स्वतंत्रता संग्राम का पर्याय है। 'चरखा' के साथ कपड़ा आत्मनिर्भरता का प्रतीक है। हाथ से काते और हाथ से बुने कपड़े "खादी" न केवल "स्वदेशी भावना" की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है, बल्कि मानवीय मूल्यों का भी प्रतिनिधित्व करती है। हाल के वर्षो में खादी ब्रांड भी देश के युवाओं के बीच एक फैशन स्टेटमेंट के रूप में उभर रहा है। जैसे-जैसे दुनिया पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होती जा रही है, वैसे-वैसे सस्टेनेबल फैब्रिक्स की मांग बढ़ती जा रही है। खादी में शून्य कार्बन फुट प्रिंट है, क्योंकि इसके निर्माण में किसी भी प्रकार के ईंधन का उपयोग नहीं होता है।

निष्कर्ष रूप में यह माना जा सकता है कि वर्तमान परिदृश्य में खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र रोजगार हेतु सर्वाधिक सम्भावना युक्त क्षेत्रों में से एक है। बेरोजगारों को नए उद्योग स्थापित करने हेतु केंद्र को राज्यों की भी सहकारी भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। साथ ही जब तक आर्थिक संकट को दूर नहीं करेंगे, तब तक गांव का उत्थान असंभव है। इसलिए, ग्रामीणों को अपने खाली समय का उपयोग करने और बेरोजगारों के लिए नए उद्योग स्थापित करने के लिए प्रेरित करना समय की मांग है।

सन्दर्भ सूची

1. सम्पूर्ण गाँधी वाड्मय, खण्ड 65, पृष्ठ संख्या 78
2. विजय कुमार, स्वदेशी आंदोलन और गाँधीजी, ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका, अगस्त-सितम्बर 1995, पृष्ठ संख्या 25
3. अवध प्रसाद, गाँधीजी और औद्योगीकरण, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1970, पृष्ठ संख्या 58
4. अवध प्रसाद, खादी तकनीक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1974, पृष्ठ संख्या 38
5. जाजू कृष्णदास तथा सहस्त्रबुद्धि, अखिल भारतीय चरखा संघ का इतिहास, अखिल भारतीय सेवा संघ, काशी, 1958, पृष्ठ संख्या 34
6. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 41-42
7. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 52
8. खादी और ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम, 1956, पृष्ठ संख्या 2
9. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या 7-8
10. टिप्पणी 4, पृष्ठ संख्या 64
11. स्त्रोत, शोधार्थी द्वारा राजस्थान खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड, जयपुर में उपस्थित होकर एकत्रित की गई सामग्री के आधार पर
12. विज कुमार, पूर्वोक्त पृष्ठ संख्या 26
13. आर. एन. सिंह, इक्कीसवीं सदी की आर्थिक समस्या और गाँधीजी के विचार की उपादेयता, ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका, अगस्त 1995, पृष्ठ संख्या 31
14. जी. रामचन्द्रन, गाँधीवादी अर्थशास्त्र का मर्म, ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका, जुलाई 1995, पृष्ठ संख्या 28
15. पी. सामू लोकनाथन, गाँधीजी- उनके आर्थिक और सामाजिक विचार, ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका, जुलाई 1995, पृष्ठ संख्या 20
16. कमल टावरी और पीताम्बर भट्ट, खादी व ग्रामोद्योग (संपादकीय), ग्रामीण अर्थ विषयक पत्रिका, जुलाई 1995
17. अर्चना बंसल: राजस्थान खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड: एक संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2006) पृष्ठ संख्या- 89
18. डब्ल्युडब्ल्युडब्ल्यु.केवीआईसी.जीओवी.इन
19. उपर्युक्त
20. वार्षिक प्रतिवेदन 2019-20, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, पृष्ठ संख्या-14
21. उपर्युक्त

अंगदेश का इतिहास

डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली

अंग नाम सर्वप्रथम अथर्ववेद[1] में मिलता है। वायुपुराण[2] और ब्रहाम्पुराण के अनुसार धर्मरथ और उसके पुत्र चित्ररत का (जिसे ऋग्वेद के अनुसार इन्द्र' ने अप के साथ सरयू तट पर अपने भक्तों के हित के लिए पराजित किया) प्रभुत्व उत्तरप्रदेश के पूर्वी भाग, बिहार और पूर्व में बंगोपसागर तक फैला था। अंग की नगरी विटंकपुर समुद्र के तट पर थी दूसरी ओर सरयू नदी अंग-राज्य में बहती थी। इसकी उत्तरी सीमा गंगा थीए किन्तु कोशी नदी कभी अंग में और कभी विदेह राज्य में बहती थी। 'शक्ति-संगम-तंत्र' अंग की सीमा एक शिव मन्दिर से दूसरे शिव मन्दिर तक-सम्प्रति वैधनाथ से पुरी एवं भुवनेश्वर पर्यन्त बतलाता है

महाभारत के अनुसार अंग. वंग एक ही राज्य थाए जिसके राजा मगध में अवस्थित गौतम के आश्रम में जाकर प्रसन्न होते थे। प्राचीनतम बौद्ध दृग्रं- 'अंगुत्तर निकाय बौद्ध संस्कृत ग्रंथ 'महाभारत'१० तथा प्राचीन जैन-ग्रंथ भगवत सूत्र में जो पोटश महाजनपदों की तालिका दी गई हैए वह प्रमाणित करता है कि अंग एक महाजनपद था अंग में मानभूमि, वीरभूमि,

मुशिदाबाद और संताल परगना- ये सभी इलाके सम्मिलित थे। वैदिक ग्रंथ में अंग अस्पष्ट रूप सेए सिर्फ प्राच्य के निवासी थे और बाद में निवास बदलता रहा, वर्णित है। जहाँ अंग-जाति कमी सरयूए सोन और गंगा के तट पर बसती थीए वहीं बोद्ध काल में वह चम्पा और गंगा के संगम पर चली आई। इस तरह अंग-महाजनपद की भौगोलिक सीमा और उसका विस्तार काल-क्रम से घटता बढ़ता रहा है। पर इतना तो निबिंबद है कि आज का भागलपुर प्राचीन अंग की राजधानी और सम्प्रति उसके मुख्य नगर का प्रतिनिधित्व करता है। गंगा और चम्पा के संगम पर बसी 'चम्पा' अंग की राजधानी थी। मालिनी, चम्पा, चम्पापुरी, लोम्पाद और कर्णपू आदि कई नाम आज के भागलपुर के निकटस्थ चम्पा अतीत में रह चुके है। रामायण' के अनुसार श्मदन शिव के आश्रम से शिव के क्रोध से भस्मीभूत होने के डर से भागा और उसने जहाँ अपना शरीर त्याग किया, उसे अंग कह जाने लगा। 'महाभारत और पुराणों के अनुसार बली के क्षेत्रज पुत्रों ने अपने नाम से राज्य बसाया था। चन्द्रवंशी ययाति के पौत(अगु के पुत्र) तितिक्षु ने 'प्राब्य' में 'आण्व-राज्य' की स्थापना की जिसकी समृद्धि और सीमा का विस्तार आण्व-वंश के महान पराक्रमी राजा वली के राज्य में चतुर्दिक हुआ। बली, राजा सगर के समकालीन थे। उनकी रानी सुदेष्णा को ऋषि दिग्रहतम् मामा-तेप से पाँच पुत्र उत्पन्न हुएए जिनके नाम थे..अंग, वंग, कलिंग, पुन्द्र और सूक्ष्म। हुवेनसंग भी इस पौराणिक परम्परा की पुष्टि करता है। वह कहता है, इस कल्प के आदि में मनुष्य गृहहीन जंगली थे। एक अप्सरा स्वर्ग से आई। उसने गंगा में स्नान किया और गर्भवती हो गई। इसके चार पुत्र हुए, जिन्होंने संसार को चार भागों में विभाजित कर अपनी-अपनी नगरी बसाई। प्रथम नगरी का नाम चम्पा था। बौद्धों के अनुसार अपने शरीर की सुन्दरता के कारण ये लोग अपने को अंग कहते थे। महाभारत 'अंग के लोगों को सुजाति या अच्छे वंश का बतल ता है। अंग में कालकम से दिविरथ, धर्मरथ, चित्ररथ आदि अनेक पराक्रमी राजा हुए। इस वंश की सातवीं पीढ़ी में राजा लोगपाद हुए, जो अयोध्या के राजा दशरथ के समकालीन थे।

यह सर्वविदित है कि अंग की राजधानी चम्पा थीए किन्तु कथा सरित्सागर के मत के अनुसार इसकी राजधानी विटंकपुर समुद्र तट पर अवस्थित थी। चम्पा की नींव राजा चम्प ने सम्भवत: कलि संवत् १०६१ में डाली। इसका प्राचीन नाम मालिनी था। राजा चम्प महान पराक्रमी राजा लोमपाद के प्रपौत्र थे। कथा इस प्रकार है कि राजा लोमपाद महान् धनुर्धर थे और अपने समकालीन अयोध्या के राजा दशरथ के परम मित्र थे। परन्तु राजी लोमपाद संतानहीन थे। अस्तु उन्होंने अपने अभिन्न मित्र राजा दशरथ (अयोध्या) की पुत्री शांता को गोद लिया। इसी शांता का विवाह ऋषि शृंगि से हुआ। ऋषि शृंगि ने लोमपाद के लिए पु-कामेष्टि

यज्ञ कियाए जिससे लोमपाद को चतुरंग या तरंग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा दशरथ के लिए भी पुत्रे कमेष्टि यज्ञ किया था)। चतुरंग या तरंग को पृथुलाक्ष नामक पुल उत्पन्न हुआ और पृथुलाक्ष के पुत्र हुए चम्प, जिन्होंने 'चम्पा' नगरी बसाई। चम्प के वंश में ही आगे चल-कर राजा अधिरथ हुए। राजा अधिरथ ने ही कुमारी कुन्ती द्वारा गंगा में प्रवाहित कर्ण का पालन पोषण किया और बाद में कुरुराज दुर्योधन द्वारा अंग के राज-मुकुट से विभूषित हुआ। अपने समय का अद्वितीय वीर और दानी राजा कर्ण शौर्य और दानशीलता के प्रतीक हो गये तथा उन्होंने आजम्न कुरुराज से अपनी मित्रता को कायम रखकर उसका अभूतपूर्व आदर्श विश्व में उपस्थित किया। इसका अवशेष भागलपुर के पश्चिम चम्पानगर या कर्णगढ़ में आज भी वर्त्तमान है। गंगा तट पर बसने के कारण यह नगर वाणिज्य का केन्द्र हो गया और बुद्ध की मृत्यु के समय यह भारत के छह प्रमुख नगरों में से एक थाए यथा-चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी। इस नगर का ऐश्वयं बढ़ता गया और यहां के व्यापारी सुवर्णभूमि (बर्मा का निचला भाग मलयए सुमात्रा) तक इस बन्दरगाह की नावों पर जाते थे। नगर के वासियों ने सुदूर हिंद-चीन प्रायद्वीप में अपने नाम का एक उपनिवेश बसाया: एक तड़ाग के पास चम्पकलता के सघन कुजों से घिरा 'चम्पा' सबनता से बसा हुआ एक समृद्धशाली नगर था। इस सुन्दर नगरी में शृंगाटक (तीन सड़कों का संगम) चेमीय (मंदिर) तथा तड़ाग थे और सुगन्धित वृक्षों की पंक्तियों सड़क के किनारे थीं। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुवेनसंग ने चम्पा की महिमा का वर्णन किया है वह लिखता है। "चम्पा एक विस्तृत प्रदेश है। इसकी राजधानी चम्पा और गंगातीर पर अवस्थित है। यह समतल तथा उर्वर है तथा सुचारु रूप से कृषित हुआ करता है। वायु मृदु तथा ईपद्रुष्ण है। अधिवासी सरल और सत्यवादी हैं। यहाँ बहुत जीर्ण संघाराम हैं। इन सब मठों में प्रायरू दो सौ बौद्ध यात्री निवास करते हैं। ये हीनयान मतावलम्बी हैं। यहाँ कोई तीस देव मन्दिर हैं। राजधानी के चारों ओर स्थित प्राचीर इस्टक-निर्मित अति उच्च और शत्रुगण के लिए दुराद्रभ्प है। 'प्राचीन काल में आज के बिहार की भौगोलिक सीमा के अंतर्गत तीन प्रसिद्ध राज्य या महा-जनपद थे, यथा..मगध, अंग विदेह या मीथिला। अंग का अतीत अत्यंत गौरवमय रहा है।

भारतीय सभ्यता-संस्कृति की प्रात: वेला में यह ग्रात्य धर्म और वैदिक धर्म की धात्री भूमि बना। अंगिरस, पैप्पिलाद और ऋष्पगि जैसे मंद्रष्टा ऋषियों ने अपनी अमोल वाणी से इसे प्ला-वित किया। इस मूमि को बारहवें जैनतीशंकर वासुपूज्य तथा जैन महावीर की प्रथम शिवा चन्दनबाला की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। भगवान बुद्ध के मौद्गलव जैसे शिष्या तथा विशाखा' जैसी शिष्या यहीं की धूल में लोट-लोट कर बड़े हुए थे।

"भोटिया ग्रन्थों में 'सहोर' (सबौर), 'भगल' (भंगल-भागलपुर) का वर्णन आता लिखा है। श्रीवजासन" को पूर्व दिशा में भंगल महादेश है। इस भंगल देश में बड़ा नगर है भिक्तपुरी। इस देश का नामांतर 'सहोर' है, जिसके भीतर 'भिक्रमपुरी' नामक नगर है। फिर लिखा है: पूर्व दिशा देशोत्तम 'सहोर' है। वहाँ 'भिक्रमपुरी' महानगर है। इसी ग्रंथ में विक्रम-शिला के सम्बंध में बहुत सारी बातें हैं। इसी में विक्रमशिल। के पंडित दीपंकर के बुलाने की भी चर्चा है। इन उद्धरणों के आधार पर महापंडित राहुल सांकृत्यायन के निष्कर्षानुसार 'सहोर' वर्त्तमान 'सबीर' है। इसका दूसरा नाम भंगल या 'भगल' है। इसकी राजधानी श्विक्रमपुरी' या "भागलपुर' है। भागलपुर से थोड़ी दूर पर गंगा तट पर पहाड़ी के ऊपर विक्रमशिला है। यों तो, विक्रमशिला के लिए सुल्तानगंज उपयुक्त स्थान माना जायगाए परन्तु मेरे विचार में विक्रमशिला सुल्तानगंज से पथरघाट तक यह फैला हुआ होगा। भविष्य में सबौर, सुल्तानगंज और कहलगांव की खुदाई ही इस बात पर ठीक-ठीक प्रकाश डाल सकेगी। अंग का वर्णन मौर्य किंवा गुप्तकाल में कुछ विशेष नहीं मिलता। सम्भव है, मौर्य एवं गुप्त-वंश की गौरव-गारिमा में इसका अस्तित्व ही धूमिल पड़ गया हो। किंतु, पालवंश के उदय के साथ जब विक्रमशिला में विश्वविधित बौद्ध विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, तब अंग का गौरव एक बार पुनरू जाग उठा। इस बार का गौरव शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता का था। विक्रमशिला के संस्थापक धर्मपाल कहे जाते हैं। इसका स्थान सुल्तानगंज, सर और पत्थरघट्टा (कहलगांव) माना जाता है। पालवंशी राजाओं ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय को अधिक-से-अधिक आगे बढ़ाकर काफी ख्याति दी है। विक्रमशिला के इन्हीं गौरवमय दिनों में..आचार्य रत्नाकर शान्ति ने लंका में और अतिश दीपंकर श्रीज्ञान. आदि ने भारतीय सभ्यता संस्कृति की ध्वजा अन्यत्र फहराई। यही समय थाए जब चीन तक अंग की ख्याति फैल गई थी। मुगल काल मेंण् शोषण और उत्पीड़न के उस काल में भी अंग का महत्व कम नहीं हुआ।

शाहजहाँ के पुत्र शाहशुजा" को भागलपुर इतना प्यारा लगा कि उसने शुजागंज या शुजानगर ही बसा दिया। अंगरेजी शासन काल में भागलपुर शोषण और दोहन के बाद भी विदेशी शासन के विरुद्ध लोहा लेता रहा। आधुनिक बिहार गणतंत्र भारत का एक प्रसिद्ध राज्य है। यह राज्य छोटानागपुर, भोजपुर मगधए वैशाली, मिथिला और अंग मिलाकर बना है। आज जो पूर्वीय बिहार हैए वही अंग है। इस अंग देश की सीमा कालक्रम से घटत-बढ़ती और बदलती रही है। एक समय यह अंगए जैसा कि 'दशक्ति-संगम-संव' में

कथित है: वैद्यनाथ से लेकर वर्तमान पुरी जिले के अन्तर्गत भुवनेश्वर पर्यन्त अंग देश था। अंग-देशवासियों ने अपने गौरव के दिनों अपना उपनिवेश पूर्वीय द्वीप.पुजों में कायम किया था। भारत के भीतर भारत के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों में बदरी-केदार से रामेश्वरम् और कन्याकुमारी तक और कामरूप से द्वारिका तक में अंग-देश का छिट-पुट उपनिवेश देखा जा सकता है। आज का अंग आधुनिक भागलपुर प्रमंडल में समाविष्ट है। इसके पाँच जिले है: भागलपुर, मुंगेर, पूर्णियाँ, सहरसा और संताल परगना। भौगोलिक अंग की पहचान और ऐतिहासक विकास से इसका संबंध विभिन्न संदर्भो में चर्चा से पता चलता है कि यह एक जनपद के रूप में उभराए लगभग 6.बी.सी.में महाजनपद एक स्वतंत्र के रूप में मध्य गंगा घाटी का भू-राजनीतिक खंड बनाए इसके बाद यह मगध राज्य का और अधिकांश का हिस्सा बन गया संभवत: मौर्य काल में यह एक प्रमुख उप-इकाई के रूप में अस्तित्व में था। नंदाकाल दृ गुप्त और उत्तर-गुप्त काल के दौरान यह' एक अलग इकाई के रूप में अपनी स्थिति को फिर से पुनर्जीवित किया जो जारी रहा पाल-सेना काल तक।

संदर्भ संकेत

१ अथर्ववेद-५-२२-१४।

२ वायुपुराण-६६-१०२।

३ ब्रह्मपुराण -१३-३६।

४ ऋग्वेद -४-३१-१८।

५ कथा-सरित्सागर-२५-३५, २६, ११५, ८२-८३, १६।

६ विमलचरण लाहा का ज्योग्रफी ऑफ अर्ली पुद्धिज्म-६।

७ शक्ति संगम-तंत्र-सप्तम पटल।

८ महाभारत-२-४४-६।

६ अंगुत्तर निकाय दृ १-२१३, ४, २५२, २५६, २६०।

१० महावस्तु।

११ भगवती सूत्र।

१२ प्राङ मौर्य बिहार- पृ० स० ७१।

१३ रामायण-१-३२।

१४ महाभारत -१-१०४।

भारत - नेपाल के राजनैतिक और व्यापारिक संबंधों पर चीन का प्रभाव: एक विश्लेषण

सिम्पी कुमारी गुप्ता

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय, मेदिनीनगर, पलामू (झारखण्ड)

सारांश

कोरोना काल में नेपाल की तराई के व्यापार को बहुत बड़ा झटका लगा है। सीमा सील होने के कारण नेपाल की तराई व नेपाल के पर्यटन पर जाने वाले भारतीयों की आवाजाही पूरी तरह से ठप हो गई है। कोरोना के साथ लिपुलेख, कालापानी विवाद ने नेपाल के प्रति भारतीयों की हमदर्दी भी कम हो गई है। यही कारण है नेपाल का पर्यटन उद्योग चौपट हो गया है और नेपाल की तराई के शहर व बाजारों से भी रौनक गायब हो गई है। भारत से जुड़ी नेपाल की लंबी सीमा में बिहार, उत्तर प्रदेश से सटे जिलों के लोगों से नेपाल की तराई के बाजारों में जो रौनक थी वह गायब हो चुकी है। भारतीय सीमा से जुड़े नेपाली बाजार में 80 प्रतिशत की खरीदारी भारतीय करते रहे। नेपाल की तराई में बसे मधेशी भारतीय मूल के नेपाली हैं और उनका समर्थन आज भी भारत के साथ है। नेपाल का हजारों करोड़ का व्यापार व पर्यटन भारतीयों के पैसे पर निर्भर है।

भारत नेपाल सीमा कोरोना को देखते हुए सील है। सिर्फ जिन्हें अनुमति मिली है, उन्हें ही प्रवेश मिल पा रहा है। इस बीच विवादित नक्शे को लेकर भी गतिरोध बरकरार है। दोनों देशों के सीमावर्ती क्षेत्र के लोगों पर इसका असर दिखा है। ज्यादा प्रभाव इन दिनों खुदरा व्यापार पर पड़ा है। क्योंकि भारत एवं नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र के ज्यादा लोग जरूरत की छोटी मोटी सामग्री की खरीदारी सीमा से लगे बाजारों से करते हैं। लेकिन हालात बदले तो सब कुछ ठप हो गया और करोड़ों का खुदरा व्यापार प्रभावित हुआ।

मूल शब्द: भारत, नेपाल, व्यापार, सीमावर्ती, लिपुलेख, धार-चूला, कालापानी, पारगमन, कोरोना, आई.एस.आई.

प्रस्तावना

भारत नेपाल सम्बन्धों में नवम्बर 1994 में एक नया मोड़ आया, जब कम्युनिस्ट नेता मनमोहन अधिकारी नेपाल के प्रधानमंत्री बने। तब यह आशंका व्यक्त की जाने लगी कि भारत-नेपाल सम्बन्धों की मधुरता कम होगी। लेकिन फरवरी, 1995 में भारत यात्रा के दौरान मनमोहन अधिकारी ने परिस्थितियों में बदलाव और संधि की कुछ आपत्तिजनक व्यवस्थाओं के कारण भारत-नेपाल संधि 1950 में संशोधन की मांग की। परिणामत: इस पर भविष्य में बात-चीत के लिए सहमति बनी। इसके अतिरिक्त नेपाल मे भूटान शरणार्थियों के विषय में, भारत के व्यवसायियों को नेपाल में पूंजीनिवेश के बारे में आश्वासन दिये गये। संयुक्त विज्ञप्ति में यह घोषणा की गई कि कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष की सुरक्षा के लिए खतरनाक कार्यवाहियों को अपनी जमीन पर नही होने देगा। इस तरह मनमोहन अधिकारी को भारत विरोधी होने की पूर्व भ्रांति का खण्डन हुआ।

भारत-नेपाल सम्बन्धों को सुधारने के लिए 1995 में जब शेर बहादुर देउबा नेपाल के प्रधानमंत्री बने तो भारत के साथ पानी तथा विद्युत सहित कई लम्बित पडी योजनाओं के सम्बन्ध में ऐतिहासिक समझौता किये। इस दौरान भारत के विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी सन 1996 में नेपाल यात्रा पर गये और जलसंसाधन और विद्युत ऊर्जा को विषय पर उलझे मामलों को सुलझाया और भारत-नेपाल संधि-1950 के बारे में भी स्पष्ट कर दिया कि इस संधि में संशोधन करने का कोई प्रावधान नही है, केवल इसे समाप्त

किया जा सकता है। इस प्रकार भारत के स्पष्ट वक्तव्यों, साफ इरादों और दोनों देशों के बीच हुए समझौतों से दोनों देशों के बीच गलतफहमिया तो दूर हुई ही साथ ही मधुर सम्बन्ध भी विकसित हुए।

पृष्ठभूमि

भारत-नेपाल सम्बन्धों को मधुर और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ करने हेतु 1998-99 में नेपाल की महाकाली परियोजना के साथ-साथ नेपाल के आयात-निर्यात को सुगम बनाने के लिए उसे पारगमन अधिकार दिये गये तथा जो पारगमन संधि की अवधि 5 दिसम्बर 1998 को समाप्त हो गई थी, उस पर 5 जनवरी 1999 को दोनो देशों के वाणिज्य मंत्रियों ने हस्ताक्षर कर उसे 5 जनवरी 2005 तक के लिए बढ़ा दिया। इस कड़ी में भारत-नेपाल सीमा पर स्थित नो मेन्स लैण्ड पर बढ़ रहे अतिक्रमण एवं अपराध और दूसरे देशों में पलायन को रोकने के लिए दोनों देशों ने संयुक्त प्रयास किये जिसका सार्थक परिणाम रहा।

2001 में राजमहल की क्रांति के दौरान राजपरिवार के सदस्यों की हत्या और ज्ञानेन्द्र के नेपाल नरेश होने की घटना के समय भारत नेपाल सम्बन्धों में कुछ तनाव आने की गुंजाइश थी। क्योंकि नेपाल के कुछ राजनीतिक दल और संगठन भारत की ओर भी संकेत कर रहे थे, लेकिन दोनों देशों की सरकारों ने संयम से काम किया और 183 सरकारी स्तर पर एक दूसरे के विरूद्ध कोई भी आरोप-प्रत्यारोप नहीं हुये। इसी दौरान भारत और नेपाल के गृह सचिव के बीच हुई त्रिदिवसीय वार्ता मे भारत व नेपाल के बीच 1800 किलोमीटर की सीमा पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं के निराकरण के लिए प्रभावी कदम उठाने पर सहमति हुई। इन समस्याओं में आतंकवादियों को सीमा पार करने से रोकना तथा तस्करी व नशीली दवाओं को लाने पर निगाह रखना शामिल है। यह भी एक सुपरिचित तथ्य है कि पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आई०एस.आई0 ने नेपाल में अपना जाल फैला रखा है और वहाँ वे भारत विरोधी गतिविधियों का संचालन करते है। बात-चीत में नेपाल के प्रतिनिधिमण्डल ने अपने देश में माओवादी उग्रपंथियों की बढ़ती हुई गतिविधियों से भारत को अवगत कराया। दरअसल दोनों देशों की सुरक्षा को खतरा पैदा करने की चेष्टाएं हो रही है, इसलिए भारत व नेपाल में अधिकारी स्तर पर घनिष्ठ तालमेल व सम्पर्क आवश्यक है। दोनों देशों की लम्बी सीमा पर जो प्रवेश व निकास के रास्ते हैं, उन्हें और युक्तिसंगत बनाने पर भी विचार-विमर्श हुआ। साथ ही दोनों देशों के बीच पुलिस बल और नागरिक सुरक्षा से सम्बद्ध अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए आपसी सहयोग बढ़ाने पर भी सहमति हुई।

सितम्बर, 2008 में नेपाल के नवनिर्वाचित माओवादी प्रधानमंत्री प्रचंड (पुष्प कमल दहल) भारत के यात्रा पर आये और भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी, विपक्ष के नेता लाल कृष्ण आडवाणी वं यूपीए अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधी के साथ उनकी अलग-अलग वार्तायें हुई। इस दौरान 1950 की भारत व नेपाल संधि का मुद्दा प्रमुख रहा। इसके अतिरिक्त 1964 के कोसी नदी समझौता पर भी गम्भीर चर्चा हुई। प्रधान मंत्री की वार्ता के पश्चात जारी संयुक्त वक्तव्य में कहा गया है कि नेपाल व भारत आपसी सम्बन्धों को और अधिक मजबूत बनायेगें तथा नेपाल मे आधारिक संरचना के विकास व औद्योगीकरण हेतु भारत मदद करेगा। तत्कालिक सहायता के तौर पर गेहूँ, चावल, चीनी व मक्का आदि जरूरी फसलों के निर्यात पर लगे प्रतिबन्ध पर नेपाल के लिये छूट दी जायेगी। इस क्रम में भारत-नेपाल मधुर सम्बन्ध को कायम रखने तथा नेपाल के आर्थिक विकास में सहयोग देने हेतु भारत के उद्यमियों ने नेपाल की मदद के लिए पर्यटन, कृषि एवं आधारिक संरचना के क्षेत्र में निवेश पर जोर दिया। भारत नेपाल सम्बन्धों को मधुरता प्रदान करने के लिए अक्टूबर-2011 के दौरान नेपाल के प्रधानमंत्री डॉ बाबूराम भट्टाराई एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ भारत की यात्रा पर आये। इस यात्रा के दौरान भारत ने एक एमीनेन्ट पर्सन्स ग्रुप स्थापित करने पर सहमति दी जो नेपाल सम्बन्धों को मजबूत एवं विस्तारित करने के उपाय सुझाये। दोनों देशो के प्रधानमंत्रियों की उपस्थिति में भारत-नेपाल द्वितीय निवेश प्रोटेक्शन एवं संवर्द्धन समझौता पर हस्ताक्षर हुए। इस क्रम में भारत द्वारा नेपाल के आर्थिक विकास में सहयोग करने तथा नेपाल के तराई क्षेत्र में विकास की सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से नेपाल को भारत से जुड़े उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में समेकित चेक पोस्टों के विकास, क्रास बार्डर, रेल लिंक तथा तराई क्षेत्र में फीडर रोड तथा पार्श्विक सड़कों के विकास के जरिये आधारभूत संरचना का विकास करने में सहायता देने की बात की गयी। साथ ही नेपाल में व्यापार को बढ़ावा देने से पनबिजली, कृषि, पर्यटन और बुनियादी ढ़ाचा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आपसी लाभ के लिए भारतीय निवेश के प्रमुख विस्तार की सम्भावनाओं को देखते हुए नेपाल में स्थापित करने एवं उसके सहयोग करने की बात प्रमुख रही।

नेपाल को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं राजनीतिक-सामाजिक रूप से मजबूत बनाने के लिए अगस्त-2014 में भारतीय प्रधानमंत्री नेपाल की यात्रा पर गये और वहाँ के राष्ट्रपति श्री रामबरन यादव, प्रधानमंत्री श्री सुशील कोइराला, संविधान सभा के

अध्यक्ष एवं विदेश मंत्री महेन्द्र बहादुर पाण्डेय और व्यवसायिक समुदाय एवं राजनीतिक दलों से बातचीत की। भारतीय प्रधानमंत्री ने इस दौरान नेपाल को आर्थिक सहायता देने और सम्बन्ध मजबूत करने की बात की। तथा अपने सम्बोधन भाषण मे कहा कि नेपाल सीता और जनक की भूमि है, इसका भारत से सम्बन्ध हिमालय और गंगा जितने पुराने है। इस प्रकार नेपाल के प्राचीन सम्बन्धों की तरफ इशारा किया। इस क्रम में उन्होनें कहा कि मेरी यात्रा हमारी प्रकृति, इतिहास, संस्कृति, अध्यात्म और धर्म की साझा विरासत को प्रदर्शित करती है। यह यात्रा नेपाल के साथ हमारे सम्बन्धों को एक नये स्तर पर ले जाने के निश्चय को उजागर करती है। इस दौरान दोनों देश के बीच व्यापार और निवेश, जल-विद्युत, कृषि-प्रसंस्करण, पर्यावरण, पर्यटन, शिक्षा, संस्कृति सहित प्रमुख क्षेत्रों में अपने द्विपक्षीय सहयोग को मजबूत बनाने के लिए नेपाली नेतृत्व और व्यवसायिक नेताओं के साथ महत्वपूर्ण चर्चा हुई। साथ ही नेपाल पर्यटन विकास, नेपाल में गोइत्रे नियन्त्रण कार्यक्रम एवं सरकारी नियंत्रण वाले टीवी चौनल दूरदर्शन और नेपाल टेलीविजन के बीच परस्पर सहयोग सम्बन्धी सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर भी किये गये। भारत की तरफ से नेपाल के लिए सड़क और जलविद्युत हेतु एक अरब डालर अनुदान के रूप में भी दिया गया। इस तरह से भारतीय प्रधानमंत्री की यह नेपाल यात्रा विकास और दोनों देशों के बीच एक नयी शुरूआत पर केन्द्रित रही साथ ही यह उम्मीद जतायी गयी की भारत नेपाल सम्बन्ध दक्षिणी एशिया की साझेदारी और समृद्धि के लिए आदर्श और प्रेरक बल का काम करेगे।

अप्रैल 2015 में नेपाल में भूकम्प ने दोनों देशों के मध्य आपसी समझ एवं दोस्ती का एक नया ही रूप प्रस्तुत किया। भारत द्वारा न केवल आर्थिक रूप से नेपाल का सहयोग किया गया बल्कि सेना द्वारा राहत कार्यक्रम का संचालन कर नेपाल को पुन: भारत के साथ अपने सम्बन्धों को एक नये आयाम पर पहुंचाने की सम्भावना भी व्यक्त की गई। इसके अलावा भारत द्वारा नेपाल को इसकी नदियों पर ऊँचे बॉध बनाने के साथ-साथ गहरे जलाशयों का निर्माण करने तथा खाद्य नियन्त्रण, नौचालन एवं उत्तर-प्रदेश, बिहार में सिंचाई एवं शहरी घटकों के प्रयोग को भी अनुमति दी है।

नेपाल की राजनीतिक उथल-पुथल एवं नये संविधान की रचना में आने वाली नित नई चुनौतियों का प्रभाव न केवल इसकी अर्थव्यवस्था पर पड़ा है, बल्कि भारत-नेपाल सम्बन्धों पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। हलाँकि इस सम्बन्ध में दोनों देशों की सरकारो के द्वारा निरन्तर प्रयास किये जा रहे है। तथापि बदलते क्षेत्रीय सम्बन्धों में यह न तो बहुत आसान है और न ही बहुत कठिन। सम्भवत: इसका कारण यह है कि हमेशा से ही भारत-नेपाल के मध्य मधुर एवं सहयोगात्मक सम्बन्ध रहे है। जैसा कि हम सभी जानते है कि पिछले कुछ दिनों में भारत एवं चीन के मध्य डोकलाम मुद्दे को लेकर तनाव की स्थिति बनी। ऐसे में भारत के लिए अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों को मजबूत बनाना बहुत जरूरी हो गया है। यह तभी सम्भव है जब भारत अपनी राष्ट्रीय राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था के मध्य सामंजस्य बैठाते हुए अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में गम्भीरता से विचार-विमर्श करे।

वस्तुत: भारत नहीं चाहेगा कि चीन के समक्ष किसी मुद्दे पर वह अकेला पड़े इसलिए उसके पड़ोसी देशों का पर्याप्त समर्थन करने की आवश्यकता है।

भारत नेपाल सम्बन्धों को नया आयाम देने के लिए अगस्त, 2017 में नेपाल के नवनियुक्त प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा भारत यात्रा पर आये। यात्रा के दौरान भारतीय नेताओं के साथ पहले की योजनाओं को कार्यान्वित करने तथा कुछ वर्तमान जरूरी मुद्दो पर बातचीत की। मुद्दों में मधेसी मुद्दा, न्यायाधीशों, राजपूतों एवं सरकारी व्यक्तियों की नियुक्ति प्रमुख रहा। हालाँकि नेपाली प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान इस सम्बन्ध में बेहतर प्रयास किये जा रहे हैं, ताकि दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों को एक नये मुकाम पर पहुँचाया जा सके। ओली की चीन से नजदीकी शायद ही किसी से छिपी हो, लेकिन उसके शासन में नेपाल की आंतरिक राजनीति पर बीजिंग का प्रभाव केवल बढा ही है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि पुष्प कमल दहल प्रचंड, माधव कुमार नेपाल और झलनाथ खनाल की तरफ से कुर्सी से हटने की कोशिशों के बाद ओली खुद नेपाल कम्युनिस्ट पार्ट में अलग-थलग पड़ गए हैं।

2016 में जब प्रचंड ने ओली को सत्ताच्युत किया था तो उस समय चीन के अखबार 'ग्लोबल टाइम्स' ने उनकी आलोचना करते हुए एक लेख में कहा था कि, 'काठमांडू कैसे बीजिंग के साथ सहयोग का अवसर गंवा सकता है'। इस सबके बीच नेपाल में व्यापक स्तर पर प्रभाव बढ़ाने के लिए देश में चीन की राजदूत होउ यानकी को जरिया बनाया जा रहा है।

उसके अलावा खनाल, माधव नेपाल और बामदेव गौतम ने भी ओली पर अपने बयानों से भारत के साथ समीकरण बिगाड़ने और पार्टी को अपमानजनक स्थिति में खड़ा करने का आरोप लगाया। नेपाल के विशेषज्ञों का मानना है कि भारत का लेकर ओली

का टकरावपूर्ण रवैया चीन के सक्रिय समर्थन के बिना संभव नहीं था। पीएम ओली ने कालापानी विवाद में भी चीन की भूमिका का बचाव किया।

काठमांडू स्थित थिंक-टैंक इंस्टीटयूट फार इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट स्टडीज के सीनियर फेलो और काठमांडू पोस्ट के पूर्व मुख्य संपादक अखिलेश उपाध्याय कहते हैं, 'भारतीय सेना प्रमुख की हालिया असंवेदनशील टिप्पणी ने नेपाल को बहुत निराश किया है'।

इसके अलावा नेपाल, सीमा विवाद को लेकर भारत के साथ एक बैठक की मांग कर रहा था। लेकिन नई दिल्ली ने इस पर कोई जवाब नहीं दिया है। कुल मिलाकर सभी बातों ने काठमांडू की नाराजगी बढ़ा दी है।' उपाध्याय ने कहा, "जहां तक चीन की बात है, इसका प्रभाव दुनिया में बढ़ रहा है, तो स्वाभाविक है कि वह इसे अपने पड़ोस में भी बढ़ाएगा। नया चीन पुराने हिमालय को एक बाधा के रूप में नहीं देखता।''

घरेलू राजनीति तो बस एक पहलू है, यह भी बेहद महत्वपूर्ण है कि बीजिंग आर्थिक रूप से नेपाल के लिए कितनी बड़ी जरूरत है। 2019 में चीन और नेपाल के बीच व्यापार 1.5 बिलियन डालर तक पहुंच गया, लगभग 170,000 चीनी पर्यटक 2019 में नेपाल यात्रा पर आए और चीन नेपाल में दूसरा सबसे बड़ा पर्यटक स्रोत बन गया है। आंकड़ें बताते हैं कि नेपाल को कुल सहायता देने के मामले में चीन नेपाल के द्विपक्षीय विकास सहयोग भागीदारों में पहले स्थान पर है। चीन का कुल अनुदान 106 मिलियन डालर है और वह नेपाल के सभी बहुपक्षीय और द्विपक्षीय विकास सहयोग भागीदारों में पहले स्थान पर है।

चीन की मदद वाली 25 भूकंप-रोधी पुनर्निर्माण परियोजनाएं, काठमांडू रिंग रोड इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट का पहला चरण और काठमांडू दरबार हाई स्कूल पुनर्निर्माण परियोजना सहित 12 परियोजनाएं अब तक पूरी हो चुकी हैं, जबकि अन्य परियोजनाएं भी व्यवस्थित और संगठित तरीके से चल रही हैं।

चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड परियोजना के पीछे नेपाल पर ध्यान केंद्रित करने का उद्देश्य निहित है। विशेषज्ञ बीजिंग के इस झुकाव को बड़ा दांव लगाने और भारत पर आर्थिक निर्भरता घटाने की नेपाल की इच्छा का नतीजा भी मानते हैं। काठमांडू पोस्ट में स्तंभकार अमीश मुल्मी कहते हैं- "नेपाल का उत्तर की ओर रुख करना बदलाव के दौर में नेपाल के घरेलू मामलों में भारत की तरफ से जरूरत से ज्यादा दखल, जो 2015 में नाकेबंदी के रूप में सामने आया, देने की प्रतिक्रिया है। क्योंकि भारत पर आर्थिक निर्भरता घटाने के लिए इसकी दरकार है। चीन की मदद से उसे बुनियादी ढांचे के विकास के जरिये आर्थिक वृद्धि की संभावना भी नजर आती है"।

इसके अलावा चीन, पोखरा अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा परियोजना में भी शामिल है। इसकी प्रभारी कंपनी चीन की सीएएमसी इंजीनियरिंग ने काठमांडू परियोजना के वित्त पोषण के लिए मार्च 2016 में चीन के एक्जिम बैंक के साथ 215.96 मिलियन डालर का साफ्ट लोन करार भी किया था। चीन का नेपाल के विनिर्माण और जलविद्युत क्षेत्रों में भी निवेश हैं। नेपाल-चीन का संयुक्त उपक्रम होंगशी-शिवम सीमेंट प्राइवेट लिमिटेड, इस हिमालयी राष्ट्र का सबसे बड़ा सीमेंट उत्पादक है। वित्त वर्ष 2018-19 में भारत के साथ नेपाल का व्यापार घाटा 85,519 करोड़ रुपये तक पहुंच गया, जबकि चीन के साथ यह 20,340 करोड़ रुपये रहा।

नेपाल में भारतीय दूतावास की वेबसाइट के मुताबिक भारत, नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार और विदेशी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत है और नेपाल के लगभग पूरे थर्ड कंट्री ट्रेड के लिए पारगमन सुविधा देता है। नेपाल के लिए भारत उसके दो-तिहाई से अधिक वाणिज्यिक व्यापार, सेवाओं में लगभग एक-तिहाई व्यापार, एक-तिहाई प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, पेट्रोलियम की लगभग 100 प्रतिशत आपूर्ति, भारत में काम करने वाले श्रमिकों, पेशेवरों और पेंशनरों द्वारा वहां भेजी जाने वाली राशि के एक बड़े हिस्से के लिहाज से एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

चीन नेपाल में सरकारी अधिकारियों, नौकरशाहों, राजनेताओं आदि के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है। 2019-20 में चीन की तरफ से नेपाली सिविल सेवकों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति और प्रशिक्षण कार्यक्रम तेजी से बढ़कर 850 हो गए जिनकी संख्या 2004 में सिर्फ 20 ही थी। चीन कोविड महामारी से निपटने के उपायों को लेकर वीडियो कांफ्रेंस के माध्यम से नेपाल की मदद करता रहा है।

चीन के लिए नेपाल के साथ बढ़ती नजदीकी ने देश में निर्वासित तिब्बतियों की राजनीतिक गतिविधि का लगभग खात्मा सुनिश्चित किया है। विभिन्न सुरक्षा समझौतों और आदान-प्रदान के कारण देश में तिब्बती शरणार्थियों की आवाजाही भी उल्लेखनीय रूप से घटी है। नेपाली आव्रजन अधिकारियों के आंकड़े बताते हैं कि 2010 में 1248 की तुलना में 2015 में मात्र 85 ऐसे आवेदन

आए जिसमें तिब्बतियों ने भारत जाने के लिए परमिट मांगा। नेपाल के मामलों पर नियंत्रण से बीजिंग को देश में भारतीय और पश्चिमी प्रभाव कम करने में भी मदद मिलती है। दक्षिण एशिया में भारतीय प्रभाव घटाने की चीन की महत्वाकांक्षा और मौजूदा सरकार की राष्ट्रवादी, भारत विरोधी स्थिति के बीच एक समन्वय बढ़ रहा है। यह 2013 में शी की तरफ से शुरू की गई पड़ोस नीति से भी स्पष्ट है।

निष्कर्ष

नेपाल के प्रधानमंत्री सुशील कोईराला ने 26 मई 2014 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शपथग्रहण समारोह में शामिल होने के लिए भारत की यात्रा की थी। इसके बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने दो बार नेपाल की यात्रा की। अप्रैल 2015 में नेपाल में भीषण भूकंप के बाद भारत ने नेपाल का आर्थिक, मानवीय और नैतिक समर्थन किया। भारत ने भूकंप से तबाह हो चुके नेपाल को बड़े पैमाने पर पुननिर्माण कार्यक्रम के लिए एक बिलियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक सहायता दी। अपने पिछले दौरे में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी नेपाल के विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हुए दोनों के बीच संबंधों को नई ऊंचाई पर ले जाने के लिए हर जरूरी कदम उठाने का वादा किया। उन्होंने संप्रभुत्ता और नेपाल के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया। उन्होंने नेपाली जनता का दिल जीतने का सफलतापूर्वक प्रयास किया। साथ ही उन्होंने भारत की वर्चस्ववादी छवि को दूर करने में भी काफी सहायता हासिल की।

सन्दर्भ सूची

1. जे.एन. दीक्षित: भारत की विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. आशीष त्रिपाठी: भारत नेपाल सम्बन्ध और दक्षेस, फस्ट प्रिन्ट पब्लिकेशन, जनवरी, 2017
3. मुकेश देवी: नेपाल-चीन के बढ़ते संबंध: भारत की सुरक्षा चिन्ता, ब्लू रोज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2017
4. प्रमोद कुमार: भारत-नेपाल सम्बन्ध: चुनौतियां एवं समाधान, ए.एस.आर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018
5. राम सागर शुक्ल: अनजान पड़ोसी, भारत-नेपाल, सनातन प्रकाशन, लखनऊ, 2019
6. अरूण मिश्र: भारत-नेपाल संबंध के विभिन्न आयाम, उदय पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2020
7. हिन्दुस्तान टाईम्स, 15 दिसम्बर 2011
8. दैनिक जागरण, 29 अप्रैल 2015
9. प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 2017
10. Puran Chandra, 'India in Asian Continent', (New Delhi, Swastik Publications, 2014)

जंभवाणी और अल्पाहार

प्रवीण कुमार रामावत

शोधार्थी, हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन

गुरू जम्भेश्वर द्वारा प्रणीत उनतीस नियमों का पालन करने से प्राणीमात्र का कल्याण हो जाता है। उन्होनें जनमानस की आम बोलचाल की भाषा में उपदेश दिए, ताकि वो सरलता से ज्ञान प्राप्त कर सके और उसे आत्मसात कर सके। गुरू जम्भेश्वर ने मनुष्य को जीवन जीने की सहज विधि से परिचित करवाया। वे कालजयी महापुरूष थे। उन्होनें सामान्य जन के जीवन को समझा, उनके पहलुओं के संबंध में चिंतन और मनन किया।

संसार के सभी जीवो का मूलाधार आहार है। जिस पर संपूर्ण सृष्टि का अस्तित्व टिका हुआ है। आहार के आधार पर हम प्राणियों को विभेदीकरण करते है। इस जगत मे मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है, क्योकि मनुष्य विवेकशील प्राणी है। मुनष्य के पास चिंतन और मनन करने की शक्ति है। गुरू जम्भेश्वर ने मनुष्य के आहार को लेकर गहरा चिंतन और मनन किया और उसे अपने धर्म नियमों की आचार संहिता में इसे शामिल किया।

सांख्य दर्शन के अष्टांग योग में भी अल्पाहार का उल्लेख किया गया है। अल्पाहार के अंतर्गत मनुष्य को आवश्यकतानुसार ही भोजन करना चाहिए। न अधिक और न ही कम। मांस, मछली और अण्डे का निषेध किया गया है। मनुष्य को शुद्ध शाकाहारी होना चाहिए। गुरू जम्भेश्वर ने शाकाहारी बनने पर विशेष बल दिया है। मनुष्य जिस प्रकार का खाना खाता है, उसी के अनुरूप उसमें बुद्धि का विकास होता है। यदि आपका आहार शुद्ध नही है तो आपके विचारों में शुद्धता कैसे आ सकती है। पुरानी कहावतो मे कहा गया है।-

जैसा खावै अन्न, वैसा होवे मन।

वैज्ञानिक इस बात को सिद्ध कर चुके है कि असंतुलित आहार और मांसाहार बीमारियों को आमंत्रण देते है। आयुर्वेद में भी आहार के बारे में उल्लेख किया गया है। मनुष्य की आहार नली संकुचन के माध्यम से भोजन का पाचन करती है तथा भोजन को नली में आगे जाने का रास्ता देती है। भरपेट आहर ग्रहण करने से आमाशय में स्थान रिक्त नही रहता है, जिससे भोजन का पाचन सही तरीके से नही हो पाता है और पेट दर्द की समस्या पैदा होती है। जब तक भोजन का सही तरीके से पाचन नही हो पाता है तब तक मनुष्य को रूगण अवस्था में रहना पडता है।

ज्यादा भोजन शरीर में वसा की मात्रा को बढाता है और उसका मोटापा बढता जााता है। मोटापा से मुनष्य को कई प्रकार की बीमारियों से जूझना पडता है। शरीर का सारा भार उसके पैरों पर पडता है जिससे उसके घुटनों में कमजोरी आने लगती है और हर पल चुस्ती रहती है। मनुष्य को चलने में परेशानी का सामना करना पडता है। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य को संतुलित मात्रा में आहार को ग्रहण करना चाहिए।

जो मनुष्य खाने के लिए ही जीते है उनके जीवन का कोई उद्देश्य नही होता है। मुनष्य को सदैव जीने के लिए आहार करना चाहिए। गुरू जम्भेश्वर ने सबदवाणी में कहा है कि-

जां जन मंत्र विष्णु न जंप्यौ, कांध सहे दुख भारू।[1]

अर्थात जिस मुनष्य ने भगवान विष्णु की आराधना नही की और उसके नाम का स्मरण नही किया वे मुनष्य बोझा ढोनें वाले पशुओं के समान है जो अपने कंधों पर दु:खों का भार ढोते रहते है। ऐसे मुनष्य का जीवन निरर्थक है।

अल्पाहार करने से कई फायदे है जैसे हम शरीर से अधिकतम उर्जा का उपयोग कर सकते है। शरीर में स्फूर्ति रहती है। कार्य करने गति आती है। प्रतिजैविक क्रिया का बढना। अत्यधिक मात्रा मे किया गया भोजन मुनष्य को सदैव परेशानी में डालता है। गुरू जम्भेश्वर ने सबदवाणी में कहा है कि-

घण तण जिम्या को गुण नाहीं, मल भरिया भण्डारू।

आगै पीछै माटी झूलै, भूला बहैज भारू।।[2]

अर्थात अत्यधिक डट कर भोजन करने से कोई फायदा नही होता है। पेट तो मलिन वस्तुओं से भरा पडा है। ज्यादा मात्रा में आहार करने से शरीर ही बढता है, कहने का तात्पर्य है कि शरीर के आगे और पीछे जंघा झूलने लगती है। यह केवल माटी का ही रूप है।

मनुष्य को सप्ताह में एक दिवस का उपवास निसंदेह रखना चाहिए जिससे शरीर को आराम मिल सके। उपवास ऐसा होना चाहिए कि हम एक समय के भोजन का त्याग कर दे, इससे मुनष्य को अच्छे परिणाम प्राप्त होते है। अल्पाहार के अंतर्गत मनुष्य को दो समय का ही आहार ग्रहण करना चाहिए। अनावश्यक खाद्य सामग्री से परहेज करना चाहिए। अल्पाहार का यह भी आशय नही कि हमें प्रतिदिन उपवास रखना चाहिए। यदि ऐसा करते है तो हम स्वयं के शरीर के साथ खिलवाड कर रहे है। हमें शुद्ध और संतुलित आहार लेना चाहिए। भोजन करते समय यह ज्ञात होना चाहिए कि पेट भर जाये उससे पहले कुछ जग्ह आमाशय में रखनी चाहिए, ताकि पाचन क्रिया प्राकृतिक और स्वभाविक रूप से हो पाये।

छात्र जीवन में अल्पाहार का विशेंष महत्व है। बचपन से अल्पाहार की आदत होनी चाहिए ताकि जीवन का सर्वागिण विकास हो सके। अच्छा और संतुलित आहार मुनष्य के भीतर अच्छे संस्कारों को जन्म देता है। मनुष्य को स्वस्थ जीवन अपनाने के लिए अल्पाहार के महत्व को समझना होगा।

संदर्भ सूची

1. 1. जम्भसागर,कृष्णानंद आचार्य, प्रकाशक जांभाणी साहित्य अकादमी, बारहवा संस्करण 2018,पृ.सं. 44
2. जम्भसागर,कृष्णानंद आचार्य, प्रकाशक जांभाणी साहित्य अकादमी, बारहवा संस्करण 2018,पृ.सं. 66

हिंदी साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केंद्र, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

किसी भी इंसान के जीवन में मूल्यों का अहम योगदान रहता है क्योंकि इन्हीं के आधार पर अच्छा-बुरा, सही-गलत की परख की जाती है। किसी देश का साहित्य उस देश की भावनाओं का दर्पण होता है। यह उक्ति भारतीय साहित्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती है।

हम पाते हैं कि साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

जीवन मूल्य किसी भी समाज की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपरिहार्य उपादान होते हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, मूल्यों के प्रति प्राचीन काल से ही सजग एवं संवेदनशील रही हैं।

मूल शब्द: जीवन मूल्य, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, समाज, आधुनिकता, भौतिक, आध्यात्मिक, भक्तिकाल।

परिचय

साहित्य, समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, ''जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।''

हिंदी साहित्य का पटल अत्यंत व्यापक है। विगत 1000 वर्षों में रचित विशाल साहित्य जो हिंदी भाषी प्रदेश में रचा गया, हिंदी साहित्य के अंतर्गत समाविष्ट है। इसे मोटे तौर पर चार कालखंडों - आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक कल में विभक्त किया गया है। साहित्य साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, जिन्हें मोटे तौर पर पद्य और गद्य में विभक्त किया गया है। साहित्य का व्यापक उद्देश्य 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय:' माना गया है। वह रसानुभूति के द्वारा आनंद प्रदान करता है, श्रेय को प्रेय रूप में व्यक्त करता है तथा लोककल्याण का विधान करता है।

जीवन मूल्यों का तात्पर्य उन मान्यताओं से है जिन्हें हम अपने जीवन में आदर्श मानकर अपनाते हैं। वह जीवन पद्धति जो किसी व्यक्ति को आदर्श मानव बनाती है, जीवन मूल्य कही जाती है। नैतिकता, सदाचार, परोपकार, वृद्ध सेवा, नारी सम्मान, उदारता, स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम, अहिंसा, आध्यात्मिकता, विश्वबंधुत्व आदि हमारे जीवन मूल्य हैं जो काल सापेक्ष नहीं हैं। ये न कभी बदलते हैं और न कभी बदलेंगे। गाँधी जी ने जीवन मूल्यों को अपनाकर यह दिखाया कि वे अप्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। महापुरुषों के उपदेशों की प्रासंगिकता पर कभी प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता।

यद्यपि भारतीय साहित्य का विषय क्षेत्र अधिकांशतः धर्म ही है, किन्तु अन्य विषयों पर भी साहित्यिक रचनायें लिखी गई। कला, विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी विषयों पर साहित्य निर्माण हुआ। इस देश ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों को ही सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक माना है। साहित्य के सभी अंगों में साहित्य-सृजन हुआ।

जब हम हिन्दी साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हिंदी साहित्य के चारों कालों के साहित्य का अध्ययन करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हजारों सालों में बहुत परिवर्तन हुए और ये सभी परिवर्तन इन युगों के साहित्य में दिखाई पड़ते है। सांस्कृतिक राष्ट्रीय और सामाजिक स्तरों पर हजारों सालों तक भारत ज्यों का त्यों बना हुआ है। उसमें अनेक समस्याओं रीति-रिवाजों में व्यापक अन्तर आया है। इस अन्तर की अनुरूपता में ही हमे साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति मिलती है।

आदिकालीन साहित्य

इस काल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथा काल नाम दिया है। जिसका अर्थ है-इस युग के साहित्य में वीरों की गाथाएँ लिखी गई है। सभी रासो ग्रन्थ प्रायः युद्धों के चित्रण से भरे पड़े है। यद्यपि जहाँ तहाँ श्रंगार रस का भी चित्रण हुआ है।

इसके अतिरिक्त इस युग में सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य भी मिलता है, जिसे हम धार्मिक साहित्य कहते हैं। नाथ साहित्य गोरखनाथ की परम्परा से आया है और सिद्ध बौद्ध धर्म का पतन होने पर हीनयान और महायान शाखाओं के रूप में उभरा है। जिसमें तन्त्र साधना को महत्त्व दिया है। जैन साहित्य जैन धर्म पर आश्रित है। मूल्यों की दृष्टि से इस पूरे साहित्य का विश्लेषण किया जाए तो मूल्य स्पष्ट तौर पर उभर कर सामने आते है।

इसके अतिरिक्त प्रेम और विरह का सजीव चित्रण इस युग के साहित्य में मिलता है।

इस युग के साहित्य की दूसरी विशेषता यह है कि भाषा की दृष्टि से यह युग संक्रमण का युग था। जब अपभ्रंश हिन्दी से अलग हो रही थी। इसलिए कुछ रचनाओं में अपभ्रंश हिन्दी मिली है और बाद की रचनाओं में आरम्भिक हिंदी मिलती है।

कुल मिलाकर आदिकालीन साहित्य भारतीय धार्मिक विविधता से लेकर राष्ट्रीय इतिहास परिवेश और प्रकृति समाज और जन-जीवन नर-नारी, विश्वास और साधना के साथ भारतीय परम्पारिक मूल्यों की भी रक्षा करता है।

भक्ति कालीन साहित्य

भक्ति कालीन निर्गुण और सगुण भक्ति के आधार पर मूल्यों की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है कि दया, करुणा, सौहार्द, परस्पर सद्भाव, नारी का महत्त्व जैसे - सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ आत्मा के उन्नयन और ईश्वर प्राप्ति जैसे उच्चतर मूल्य, कोई भी व्यक्ति ईश्वर की प्राप्ति समता भाव से कर सकता है।

रामभक्ति में दास्य भक्ति के द्वारा मर्यादा की सीमाएँ निर्धारित की गई हैं। जिनके सामजिक और व्यावहारिक दोनों रूप प्रस्तुत किए गए है। सघन साधना की दृष्टि से ज्ञानवस्था और समाधि जैसे नियमों का प्रावधान भी मिलता है। इसलिए भक्तिकाल को लौकिक और पारलौकिक मूल्यों की स्थापना के कारण स्वर्ण युग भी कहा जाता है।

रीतिकालीन साहित्य

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल आता है। रीतिकाल में सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों को प्रायः अस्वीकृत कर दिया गया। वास्तव में यह युग सामंती युग था जिसमें विलासिता को महत्त्व मिला। इसलिए पूरी कविता सुर, सुन्दरी और सुराही, कंचन, कामिनी और काम को केन्द्र में रखकर लिखी गई। अतः मूल्यों की दृष्टि से इस काल में बहुत सार्थकता नहीं प्राप्त होती है।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय जो राष्ट्रीय एकता दिखाई देती थी, वह अब कहीं नहीं दिखती। कारण यह कि हमारे सामने महान लक्ष्य नहीं हैं। साहित्य का मूल उद्देश्य लोक-कल्याण रहा है। लोकमंगल के आधार पर ही साहित्यिक कृतियों की श्रेष्ठता की पहचान की जाती है। तुलसी ने जिन मूल्यों का उल्लेख रामचरितमानस में किया वे कभी अप्रासंगिक नहीं हो सकते। उन्होंने तो कविता का उद्देश्य ही लोकमंगल का विधान माना है -

कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

गाँधीजी ने लक्ष्य हासिल करने के लिए केवल नैतिक मूल्यों का सहारा लिया। वे कहते थे कि अनैतिक मार्ग से हम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं करेंगे। नकल के माध्यम से परीक्षा में उत्तीर्ण होना उन्हें ठीक नहीं लगता था इसलिए उन्होंने श्केटलश की स्पेलिंग गलत लिख दी, आगे वाले छात्र की कापी से नकल नहीं की। गाँधी का चरित्र आधुनिक भारतीय साहित्य के लिए 'उपजीव्य' रहा। अनेक काव्य ग्रंथ, गाँधी जी के जीवन से प्रेरित होकर लिखे गए।

वर्तमान राजनेता हमारे आदर्श नहीं हो सकते। वे येन-केन प्रकरेण सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं भले ही इसके लिए उन्हें आदर्शो की तिलांजलि देनी पड़े। हमारे वर्तमान राजनेताओं से कोई भी हमारा आदर्श नही बन सकता। इस तथ्य को दुष्यंत इस रूप में व्यक्त करते हैं -

जिंदगानी का कोई मकसद नही है,
एक भी कद आज आदम कद नहीं है।

भारतीय राजनीति में जातिवाद, धर्म, समुदाय, क्षेत्रवाद, भाषा आदि का बोलबाला है। कोई तेलंगाना के नाम पर राजनीति कर रहा है, तो कोई दलितों का मसीहा बनकर मनुवादी व्यवस्था पर उंगली उठा रहा है। कोई धर्म का ठेकेदार बनकर एक समुदाय विशेष के वोटों पर अपनी बपौती समझ रहा है तो कोई भाषा की राजनीति कर रहा है। समग्र देश की एकता के सूत्र में बाँधने वाली राजनीति अब कहीं दिखाई नहीं देती। क्षेत्रीय दल, भारत को समग्र राष्ट्र के रूप में देख सकने की दृष्टि नही रखते। राजनीति में तात्कालिक हित प्रमुख हो गए हैं, दीर्घकालीन नीतियों पर बल नहीं दिया जाता। परिणामतः अनेक प्रकार की पीड़ाएँ सर्वत्र व्याप्त हैं। परिवर्तन के लिए जूझते कवि की यह आवाज हमें भीतर तक विलगित कर देती हैं -

हो गई है पीर पर्वत सी पीघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।।

भारतीय साहित्य नैतिक मूल्यों का पक्षधर रहा है। साहित्य में हित की भावना सर्वोपरि है। जो हित साधन नहीं करता उसे साहित्य की परिधि में नही रख सकते। गोस्वामी तुलसीदास , कबीरदास जैसे महान कवि अपने साहित्य का उद्देश्य श्लोककल्याणश को मानते हैं। कबीर को जो अच्छा लगा और जो कुछ अच्छा नहीं लगा उसे डंके की चोट पर निडर होकर कहा। सम्पूर्ण संत साहित्य में मानव मूल्यों के प्रति आग्रह, नैतिकतावादी दृष्टिकोण एवं सदाचारी को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति विद्यमान है। तुलसी अपने काव्य का उद्देश्य लोकमंगल को स्वीकार करते हैं।

प्रेमचंद ने श्गोदानश के माध्यम से अन्याय और शोषण का विरोध किया। हिंदी के प्रगतिवादी साहित्यकार शोषण के विरोधी हैं। जयशंकर प्रसाद के सभी नाटक राष्ट्रीयता के प्रखर स्वर से युक्त हैं और उनके सभी श्नायकश आदर्श पात्र की विशेषताओं से सम्पन्न हैं। यही नहीं अपितु उनके नाटकों के स्त्री पात्र कर्तव्य, देश-प्रेम , त्याग , बलिदान की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

जयशंकर प्रसाद के नाटक ध्रुस्वामिनी में कोमा के पिता मिहिरदेव शकराज से कहते हैं की राजनीति में नीति प्रमुख है, उससे अलग होकर भला किसे सफलता मिल सकती है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय जो भारतीय साहित्य लिखा गया वह राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, त्याग और बलिदान की भावना से भरा हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी ने श्पुष्प की अभिलाषाश नामक कविता के माध्यम से हजारों नौजवानों को त्याग के लिए प्रेरित किया -

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर सीस चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के माध्यम से देश के नवयुवकों के लक्ष्य में देशप्रेम एवं राष्ट्रभक्ति की भावना जाग्रत की तथा मानवता का पाठ पढ़ाया -

मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए जिए।

प्रसाद जी ने अपने नाटकों में राष्ट्र प्रेम का बिगुल फूँका -

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

राष्ट्र कवि दिनकर ने अपनी ओजस्वी वाणी में कुरुक्षेत्र की रचना कर युद्ध और शान्ति की समस्या पर प्रकाश डाला तथा कुरुक्षेत्र के छठवें सर्ग में यह प्रतिपादित किया कि वैज्ञानिक प्रगति का उपयोग मानवता के विनाश में नही होना चाहिए -

सावधान मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार।
तो इसे दे फेंक तज कर मोह स्मृति के पार।।
हो चुका है सिध्द है तो शिशु अभी नादान।
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।।

पृथ्वी पर रहने वाले मानव की सार्थकता दूसरों को मारने में नहीं अपितु दूसरों के लिए आत्म-त्याग करने में है -

रसवती भू के मनुज का श्रेय।
यह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय।।
श्रेय उस के प्राण में बहती प्रणय की वायु।
मानवों के हेतु अर्पित मानवों के आयु।।

प्रगतिवाद के स्वर भी दिनकर की कविता में उपलब्ध होते हैं जो सामाजिक विषमता पर करारा प्रहार करते हैं-

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की गोदी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।।

दुष्यतं की गजलों में व्यवस्था से मोह के भंग दिखाई पड़ता है -

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए।
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।।

भारतीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति जैसे हमें कबीर और तुलसी में मिलती है, वैसी परवर्ती काल में कम दिखाई पड़ती है। तुलसी का श्रामचरितमानसश आदर्श व्यवहार का तथा मानव मूल्यों का दर्पण है। राम के रूप में एक ऐसे चरित्र को उन्होंने प्रस्तुत किया है जो आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श पति तथा आदर्श राजा की कसौटी पर खरे उतरते हैं। रामराज्य की जो परिकल्पना श्रामचरित मानसश में प्रस्तुत की गई है, वह किसी भी आदर्श शासन व्यवस्था का श्मॉडलश बन सकती है।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि-

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिये

कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की।

आधुनिक काल का हिन्दी साहित्य

मध्यकाल तक चिन्तन के केन्द्र में ईश्वर रहा। आधुनिक काल में सोच के केन्द्र में मानव आ गया। इसलिए आधुनिक काल में भारतीय नवजागरण और अन्य सुधारवादी आंदोलनों ने नए समाज के गठन पर बल दिया। जो धर्म और जाति निरपेक्ष दलन और शोषण से युक्त समाज है। इसलिए आधुनिक युग साहित्य में पुरुष और स्त्री हिंदी साहित्य में भारतीय मूल्यों की अभिव्यक्ति बराबरी की स्थिति को लेकर विकास के नए मार्ग कथा साहित्य में मिलते है।

भारतेन्दु से लेकर आज तक के पूरे साहित्य में जहाँ भारतीय समाज व्यवस्था का एक नया रूप सामने आता है। वही पर पाश्चात्य प्रभावों में मार्क्सवाद और प्रभाववाद का प्रभाव पड़ा। मार्क्सवाद का प्रभाव प्रगतिवादी कविता में देखा जा सकता है।

आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है।

उपर्युक्त विश्लेषणों आधार पर हम निष्कर्षत: कह सकते है कि हिंदी साहित्य रूढ़ियों की अपनी यात्रा में समय के साथ चलते हुए सदैव मानवहित में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति सदा सचेत रहा।

निष्कर्ष

साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित हैं। कल्पना के साथ सांस्कृतिक मूल्यों का समुच्चय, परंपरा से संपृक्ति और जीवन मूल्यों की सुरक्षा ही भारतीय साहित्य का ध्येय रहा है।

हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

निश्चय ही यह निष्कर्ष निकालना समीचीन है कि हिंदी साहित्य में जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्त्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, सम्वत् 2040, पृ. 52
2. साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. देवराज उपाध्याय, पृ. 179
3. भारतीय साहित्य, नीलिमा शर्मा, विकास प्रकाशन, कानपुर पृ. संख्या 79।
4. भारतीय साहित्य, नीलिमा शर्मा, विकास प्रकाशन, कानपुर पृष्ठ 81
5. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण प्रकाशन, इलाहाबाद 1971 पृष्ठ 318
6. बदलते जीवन मूल्य और हिंदी उपन्यास, ज्योत्सना प्रसाद, पृ. 2
7. डॉ. भरत कुमार सिंह: स्वातंत्र्योतर हिंदी काव्य में जीवन मूल्य, प्रथम खण्ड
8. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य
9. डॉ. हुकुमचंद राजपाल: आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य
10. सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोष भाग 1
11. सं. डॉ. वासुदेव सिंह, कबीर

वर्तमान परिवेश में गुणवत्तापूर्ण उच्च-शिक्षा की उभरती चुनौतियाँ एवं समाधान: एक आकलन

डॉ० अरविन्द कुमार सिंह

अध्यक्ष, इतिहास विभाग, एम०एस० कॉलेज, भागलपुर, ति०माँ० भागलपुर वि०वि० भागलपुर

परिवर्तन प्रकृति का शास्वत नियम है। आज हम न केवल इक्कीसवीं सदी की कालक्रम से गुजर रहे हैं, बल्कि वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की नीतियों के प्रपंच में आर्थिक विकास एवं मानव खुशहाली की बात कर रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत प्रस्थापित द्वि-ध्रुबीय विश्वव्यवस्था 1991 में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् एक-ध्रुबीय विश्व व्यवस्था में तब्दील होकर रह गई है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक एवं मानवीयता के संदर्भ में नई सोच एवं नये-नये विचारों का विकास देखा जा रहा है जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मानवीय जीवन के सभी पक्ष यथा संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा विज्ञान एवं शिक्षा भी इसी तरह के संक्रमण से ग्रस्त दिखायी पड़ रहे हैं। आज चिन्तन के क्षेत्र में ''इतिहास का अन्त'' तथा ''विचारधारा का अन्त'' की बात हो रही है और उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। कल तक जिन मुल्यो एवं विचारों को महत्व दिया जा रहा था, तथा जो संस्थाएँ माननीय विकास के लिए काफी उपयोगी थी, आज उन मूल्यों एवं संस्थाओं की प्रासंगिकता खत्म होती जा रही है। इस संदर्भ में. आल्विन टॉफलर की टिप्पणी ''उद्योगवाद की मृत्यु और एक नयी संस्कृति के उद्‌भव''[1] काफी समीचीन नजर आ रहे हैं। इस तरह समय के बदलते परिवेश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी जो चिन्तन एवं मार्ग चले आ रहे हैं, वे भी कहीं न कहीं अपनी प्रासंगिकता को खोते नजर आ रहे हैं और इस तरह बदलती परिस्थिति एवं नये युग की मान्यताओं के परिवेश में उच्च- शिक्षा की चुनौतियों एवं समाधान का एक निरपेक्ष मूल्यांकन करना हमारा दायित्व बन जाता है।

कहना नहीं होगा, कि अगर युग की बदलती जरूरतों एवं मानवीय अवश्यकताओं के अनुरूपसमसामयिक, परिमार्जित एवं अनुकूलितशैक्षिक मूल्यों को नहीं अपनाने की भूल करते हैं तो न केवल हमारी विश्व विद्यालयी शिक्षा- पद्धति अप्रासंगिक हो जायेगी, बल्कि शिक्षा जगत के लिए सामूहिक आत्महत्या के समान होगी। अत: बदलती परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के संदर्भ में उच्चशिक्षा के समक्ष सर्वाधिक बृहतर चुनौती वैकल्पिक पाठ्यक्रमों का निर्माण करने की है जो न केवल लोकतांत्रिक मान्यताओं के अनुरूप तथा समावेशी विकास की तीव्र प्रगति की आकाक्षाओं से परिपूर्ण हो बल्कि वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण से सम्बन्धित मूल्यों एवं शक्तियों को आत्मसात करने की क्षमता रखता हो। सच तो यह है कि विश्वविद्यालयी संरचना एवं विद्यार्थियों के प्रति उनकी मानसिकता में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है किन्तु विद्यार्थी बदल चुके हैं। इस तरह उच्च शिक्षा की जरूरत आज बदलाव की चुनौती से उबरने की हो रही है, क्योंकि बदलती परिस्थितियों के दलदल से निकलने तथा यथास्थिति को मिटाने पर ही भविष्य को संरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि राष्ट्र अपने विश्वविद्यालयों का दर्पण होता है और इसकी प्रगति एवं विकास, ही राष्ट्र प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंचाने का काम करता है।

पूर्व भारत के राष्ट्रपति ए.पी.जे. कलमा ने 17 मार्च 2003 को प्रकाशित इण्डिया टुडे समाचार पत्र में अपने आलेख में वर्तमान समाज को ज्ञान समाज बताया है। उनकी मान्यता रही है कि वर्तमान समाज दो अर्थों में ज्ञान समाज है जिसमें प्रथम नवीकरण के स्त्रोत जो आज मुख्यत: शोध और विकास पर अवलम्बित है। विज्ञान एवं तकनीक में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। साथ ही दूसरे अर्थ

में किसी समाज की उपलब्धि उसके सकल घरेलू उत्पाद और रोजगार की संभावनाओं के आधार पर मूल्यांकित होता है और इसकी बढ़ती संभावना ज्ञान के क्षेत्र में दिखाई पड़ रही है। स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर हमने 19वीं सदी की यह धारणा कि विज्ञान का क्षेत्र सीमित है और हमने उसकी सीमाओं को खोजने में सफलता हासिल करली है, वहीं आज यह मान्यता सर्वजनीन हो चुकी है कि ज्ञान की सीमाएँ अनन्त हैं, क्योंकि इसका क्षेत्र निरन्तर विकासोन्मुख दिखाई पड़ रहा है। कहना नहीं होगा कि विज्ञान की उपलब्धियों के विस्तार में विश्वविद्यालयों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है जिसमें अमेरिका, जापान एवं जर्मन विश्वविद्यालयों के नाम अग्रगण्य रहे है। आज के परिवेश में विश्वविद्यालय न केवल एक मुख्य संस्था के रूप में उभर चुकी हैं, बल्कि वर्तमान समाज में ज्ञान के विस्तार शोध एवं सामान्य शिक्षा के संदर्भ में नये आयामों को विस्तृत करती नजर आ रही है। समाज एवं राजव्यवस्था की उम्मीदें भी विश्वविद्यालय जैसे उच्च शैक्षिक संस्थाओं से बढ़ती जा रही है। अगर परम्परागत स्वरूप में विश्वविद्यालयों में शोध-वैज्ञानिकों का भंडार रहा है जिनके पास विशिष्ट वोद्धिक व्यक्तियों का समूह होता है जो समाज एवं सरकार तथा सभी तरह के निजी संस्थाओं, पत्रकारिता, दुरसंचार जगत की जरूरतों के मुताबिक कार्मिकों का निर्माण करते हैं। इस तरह कौशल-निर्माण, प्रबंधन, व्यवहारवादी एवं सैद्धान्तिक अध्ययन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान विश्वविद्यालयों की है। किन्तु भारत में उच्च शिक्षण-संस्थाओं के लोकतांत्रिकरण तथा वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की आर्थिक नीतियों के भूचाल की वजह से नयेनये विषयों की जरूरतों ने विश्वविद्यालयी-संरचनाव्यवस्था के संदर्भ में अनेकानेक चुनोतियाँ खड़ी कर दी है।

किसी भी व्यवस्था (system) की जीवतंता की जरूरत इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें 'सीखने की क्षमता' हो। साथ ही जीवंतता का अभिप्राय है कि आन्तरिक एवं बाह्य चुनौतियों का सामना करने की उसमें क्षमता है।[2] इसी उद्देश्य के मद्देनजर विश्वविद्यालयों को स्वायतता प्रदान की गई है। विश्वविद्यालय समाज का दर्पण होता है जो उसकी संस्कृति, इतिहास एवं विविधता तथा उसकी आलोचनात्मक एवं निर्माणात्मक दृष्टि से गतिशीलता को प्रतिबिम्बित करते रहता है। यह कहना ज्यादा नही होगा, कि विश्वविद्यालय समाज एवं राष्ट्र की जीवतता का मानक होता है जो सभी तरह के भविष्योन्मुख परिवर्तनों एवं चुनौतियों की प्रति सचेत करते हुए समाज को नई दृष्टि प्रदान करने का काम करता है। स्पष्ट है कि ज्ञानविज्ञान के विस्तार के साथ साथ- सत्य की खोज जैसे पारम्परिक दायित्वों का निर्वहन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य है।

जहाँतक भारत में उच्च शिक्षा के विकास से सम्बन्धित ऐतिहासिक विश्लेषण का सवाल है तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में न केवल उच्च-शिक्षा का विकास हुआ, बल्कि सामान्य व्यक्तियों के लिये भी उच्च शिक्षा की प्राप्ति का मार्ग सुगम होने लगा। जहां 1950 के दौरान ग्यारह निजी संस्थानों के साथसाथ मात्र 25 विश्वविद्यालयी स्तर के संस्थान तथा कॉलेजों की संख्या मात्र 700 और एक लाख विद्यार्थी ही महज अध्ययन करते थे। विश्वविद्यालय सेवा आयोग के वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक 31 मार्च 2011 को भारत में केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की संख्या 43. राज्य विश्वविद्यालयों की संख्या 265. राज्य-स्तरीय निजी विश्वविद्यालयों की संख्या 80, राज्य विधेयकों द्वारा स्थापित पाँच संस्थाएँ तथा (डीम्ड) 130 मान्य विश्वविद्यालय स्तरीय संस्थाएँ कुल लगभग 523 विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाएँ रही हैं, जिनमें कॉलेजों की संख्या 33,023 रही हैं। किन्तु उपरोक्त विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाओं में 345 राज्य और राज्य स्तरीय निजी विश्वविद्यालयों में से 92 राज्य विश्वविद्यालय तथा 79 राज्य स्तरीय निजी विश्वविद्यालयों को विश्वविद्यालय सेवा आयोग कानून 1956 की धारा 12 (B) के मुताबिक किसी तरह की केन्द्रीय सहायता के लिये अनुपयुक्त माने गये थे। इसी तहर राष्ट्रव्यापी 33023 कॉलेजों में केवल 6417 (9.4%) को ही केन्द्रीय सहायता के लिये विश्वविद्यालय सेवा आयोग ने यथोचित ठहराया। इन आँकड़ों से यह तथ्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि कॉलेजों की संख्या में बढ़ोतरी हुई तथा विद्यार्थियों की उच्च-शिक्षा में भागीदारी सुनिश्चित हुई, किन्तु उच्च-शिक्षा के संरचनात्मक विकास तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सबाल है- वह काफी चिन्तनीय है।

गौरतलब तथ्य है कि मार्च 2011 के अन्तिम दिनों तक विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में सभी स्तरों तथा पाठ्यक्रमों के छात्रों की संख्या 2010 के 156.35 लाख से बढ़कर 167.75 लाख हो गई जो वृद्धिदर 8.6 से से ज्यादा रही है। इसी तरह 1990 के दशक में उच्च शिक्षा में वृद्धिदर- 5.80 पाई गई थी, जबकि इस नई शताब्दी में बढ़ोतरी 6.87% हो गई है। इतना ही नहीं उच्च शिक्षा में करीब 86% छात्र स्नातक स्तर पर है. 12% स्नातकोतर स्तर पर, एक प्रतिशत डिप्लोमा या सार्टिफिकेट कोर्सो में हैं और शेष एक प्रतिशत एम.फिल. तथा पी-एच.डी. कार्यक्रमों में कार्यक्रमों में संलग्न हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि करीब 90% स्नातक स्तर के विद्यार्थी और 71% स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थी सम्बद्ध महाविद्यालयों में हैं, जब कि शेष छात्र ही अंगीभूत महाविद्यालयों में हैं। आज भी कला में सर्वाधिक अधिक 40% विद्यार्थी है जब कि 18.42% विज्ञान, वाणिज्य और प्रबंधन विषयों में और 28% नामांकन पेशा आधारित विषयों खासकर इंजीनियरिंग, फार्मेसी, चिकित्सा तथा अन्य विषयों में शामिल देखे जा रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मापदण्ड उसके शिक्षित एवं बुद्धिमान जनता के विस्तार के अनुपात पर निर्भर करता है। इसी तरह डॉ राधाकृष्णन की धारणा रही है कि सभ्यता के पथप्रदर्शक विश्वविद्यालयों में होते हैं जो प्रशिक्षित होते हैं तथा जो राष्ट्र के आंतरिक जीवन के गर्भगृह हुआ करते हैं। स्मरणीय है कि शिक्षा की राष्ट्रीय नीति एम. पी. ई. ने भी शिक्षा को वर्तमान एवं भविष्य के लिए (एक अनुठा निवेश बताया है। किन्तु वर्तमान परिवेश में हमारी शिक्षा आज के उद्योगों के लिए उपयोगी कुशलता एवं गुणवत्तापूर्ण अभ्यर्थियों को मुहैया कराने में विफल साबित रही है। कैंपस नियुक्तियों एवं नौकरी के मेले जैसे आयोजनों में हमारे 10 से 15 प्रतिशत छात्र ही नियुक्तियाँ ले पाते हैं और शेष 65% अभ्याथियों का अयोग्य साबित होना उनकी शिक्षा एवं कौशल पर प्रश्न खड़ा कर देता है जो गहन चिन्तन का विषय है। यह उच्च शिक्षा के विकास एवं गुणवत्ता के संदर्भ में चुनौती खड़ा करता है। National Skill Report 2014 ने हमारे यहाँ स्नातकों को नियोजन के लिए काबिल घोषित नहीं किया है। एक लाख उच्च शिक्षित अभ्यर्थियों में केवल 34% को ही उपयुक्त माना है। 2006 में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने भी उच्च शिक्षा में व्याप्त इसी के बड़े भाषणों में ''मौन संकट'' को निदृष्ट किया था। राजनेताओं के बड़े-बड़े भाषणों में उच्च षिक्षा के विकास, गुणवतापूर्ण शिक्षा तथा जनसांख्यिकी लामांश की बातें हुआ करती हैं, किन्तु उनकी कार्य संस्कृति उच्च शिक्षा को नीचे धकेलने की हो कर रह गई है। फरवरी 2014 के प्रभात खबर, भागलपुर, सम्पादकीय आलेख में उच्च शिक्षा की बदतर स्थिति के संदर्भ यह उधृत रहा है कि बिहार के भिखारियों के एक सर्वे में यह तथ्य उभर कर आया है कि हर सौ भिखारियों में एक स्नातक उत्तीर्ण है।[3] स्पष्ट है कि पढ़े लिखे लोग भीख मांगने को बाध्य हैं जो उच्च शिक्षा के विकासएवं उपलब्धियों की दिशा में एक मद्दा मजाक से ज्यादा कुछ नहीं रह गया है। ''टाइम्स हायर एडुकेशन'' के द्वारा बिक्स देशों तथा अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों की उच्च शिक्षा के रिपोर्ट में चीन को उच्च शिक्षा की श्रेष्ठ शक्ति कहा गया है। जहाँ दक्षिण अफ्रिका, तायवान, तुर्की जैसे देश दसवें पायदान पर है, वहीं भारत के पंजाब विश्वविद्यालय को उत्तम बताया गया हैं और भारत के मात्र 10 संस्थानों को ही स्थान मिला है। आश्चर्य तो यह है कि आई.आई. टी. मद्रास जे.एन.यू. यादवपुर जैसे विश्वविद्यालयों के साथ 47 वें स्थान पर है[4] जो गहन चिन्तन का विषय है।

विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों के औचित्य का मूल कारण शिक्षा और शोध होता है और इन दोनों के समन्वय एवं सहयोग से ही विश्वविद्यालयों को प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता मिलती है। यह निर्विवाद तथ्य है कि शिक्षा के बिना शोध अपूर्ण है। साथ ही किसी भी देश की शक्ति व दौलत के रूप में वहाँ डॉक्टरी शोध को आँका जाता है। शोध ही समाज, व्यवस्था, समुदाय तथा राष्ट्र को नई दृष्टि प्रदान करता है। किन्तु विडम्वना है कि जहाँ जापान में 10 लाख जनसंख्या पर 28 पी-एच.डी. हो रही है, अमेरिका में 30 भारत में मात्र 45 हो रही है। तकनीकी शिक्षा में तो यह संख्या और नगण्य है।[5] इतना ही नहीं भारत में एम.टेक. और पी-एच. डी. शोधों की काफी कमी देखी जा रही है। शोधों के संदर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चुनौती साहित्यिक नकल एवं भाव हरण की उभरती जा रही है। राज्य स्तरीय विश्वविद्यालयों में तमाम सर्तकता पूर्ण उपायों को अमल में प्रयुक्त करने वावजूद भी सामाजिक विज्ञान में प्री-पी-एच.डी. परीक्षाओं एवं विभागीय शोध परिषद, विश्वविद्यालय शोध परिषद् खुली पी-एच.डी. मौखिकी परीक्षा आदि के स्तर दिशानुदिन बद से बदतर होते जा रहे हैं। शोध पत्रिकाओं में शोध आधारित शिक्षकों की प्रोन्नति की की प्रोज्जति वजह से आलेखों का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है और शोध-पत्रिकाओं की बाढ़-सी परिदृश्य दिखाई पड़ रही है जो उच्च शिक्षा की गुणवता के संदर्भ में गंभीर चुनौती बन रही है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों को शिक्षा के उमरते नये नये आयामों से जोड़ने लिए Academy Stffa College की भी स्थापना की गई हैं। किन्तु इन कॉलेजों की शिक्षण प्रणाली का स्तर काफी चिन्तनीय है। द टेलीग्राफ (पटना) 7 जनवरी, 2014 में प्रकाशित रिपोर्ट में प्रबुद्ध शिक्षकों का मत है कि देश के 67 Academic stall College के द्वारा शिक्षकों को दिये जाने वाले प्रशिक्षण का स्तर मात्र प्रारम्भिक स्तर के ज्ञान के पुनरावर्तन से अधिक नहीं है। साथ ही UGC ने भी विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों में, Refresher courses और Orientation Courses में शामिल होने की धीमी प्रवृति पर खेद व्यक्त किया है। विडम्बनापूर्ण चुनौतियों रूप में उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में जहाँ शिक्षको का कार्यस्थल में अनुपस्थिति का मामला उजागर हो रहा है, वहीं दूसरी ओर देश की सभी बड़ी कारपोरेट कम्पनियाँ यह राग अलापती रहती है कि बिहार से डिग्री प्राप्त युवक व युवतियाँ योग्य नहीं होंगे और बिहार मे एक दो जगहों के अलावे कम्पनियाँ नहीं के बराबर ही आती है। स्पष्ट कि भारत में विश्वविद्यालयी व्यवस्था चरमरा चुकी है। खासकर वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की नीतियों ने शिक्षा को बाजारू वस्तु बनाकर रख दिया है। विश्व के कई विश्वविद्यालय अंतराष्ट्रीय शिक्षा की दुकानों के रूप में काम कर रही है और दूसरे देशों में शाखाएं स्थापित कर अपने ब्रैण्ड की विक्री कर

अर्थोपार्जन में लगे हुए हैं। भारत की स्थिति तो और भी भयावह हो गई है धनी वर्म के लोग अपने को बच्चों को निजी संस्थानों के माध्यम से शिक्षा दिलाकर बड़ी नौकरियों में स्थापित कर लेते हैं, किन्तु गरीबों व वंचितों के बच्चे सरकारी क्षेत्रों से शिक्षा प्राप्त कर बेकार और निरुपाय होकर रह जाते हैं। भारत में तमाम हिंसात्मक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में बेरोजगारी बढ़ाने वाली शिक्षा की परिणति ही उजागर हो रही है।

वर्तमान परिवेश में विकासशील देशों में सूचना और संचार के साधन तो उपलब्ध हैं, किन्तु उनका उपयोग राष्ट्रीय एवं सामाजिक हित में करने की चुनौती बनी हुई है और माननीय सुरक्षा एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रस्थापना में साकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। शिक्षा वह माध्यम है जिसमें तकनीकी विकास के द्वार खोलने की क्षमता होती है और शिक्षा जगत के शिक्षकों एवं छात्रों की छिपी शक्ति का यथोचित उपयोग किया जा सकता है, किन्तु यह प्रयास नहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। खासकर वैश्वीकरण की वजह से आर्थिक विकास एवं सामाजिक विकास के नये आयामों को स्थापित कर दिया है। सूचना-तकनीकी ने ज्ञान के मंडार को खोल दिया है। विकासशील देशों के साथ विकसित देशों से उधार एवं खरीदने के साथ साथ आवश्यकतानुसार उपयोग करने की चुनौती उतनी ही जटिल हैं जितनी एक नवीन तकनीक विकसित करने की है।

आज उच्च शिक्षा की गुणवता की चर्चा जोरशोर से की जाती है। और भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक दिनों से ही - विभिन्न संस्थाएँ उच्च शिक्षा के संरचनात्मक विकास एवं उपलब्धियों की जाँच के निर्मित अनेक गुणवत्ता नियंत्रण संस्थानों को भी बनाया गया है। स्मरणीय है कि भारत में में NAAC, AICTE MCI- DCI, PCI जैसी संस्थाएँ विश्वविद्यालयों की संरचनात्मक विशिष्टता तथा गुणवत्ता की जाँच की दिशा में काम करती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली इतनी लचर होती है कि कभी-कभी इनकी प्रतिवेदन में विरोधाभासी मूल्यांकन सन्निहित रहता है। कहना नहीं होगा कि गरीबों के टैक्स पर पलने तथा समृद्ध होने वाले इन संस्थाओं के होने के वाबजूद भी विश्वविद्यालयों की स्थिति न तो सुधर रही है और न ही गुणवत्ता में वृद्धि देखी जा रही है। 4 जुलाई 2011 को प्रकाशित यूनिवर्सिटी न्युज वाल्यूम 47, न-27) में पीकृष्णा रवि ने बताया है कि मात्र 25% केन्द्रीय विश्वविद्यालय । ग्रेड हासिल कर सके है जबकि 27% राज्य विश्वविद्यालय और 52% मान्य विश्वविद्यालय। ग्रेड या उससे उपर मूल्यांकित किये गये हैं और ज्यादातर केन्द्रीय, राज्य एवं मान्य विश्वविद्यालय को मध्यम दर्जे का ग्रेड मिला है।[6]

वस्तुतः उपरोक्त आंकलन उच्च शिक्षण संस्थाओं की औचित्यता व उपयोगिता पर प्रश्न खड़ा करता नजर आ रहा है। भारत जैसे विकासशील देशों की राजव्यवस्थाओं की ओर से निरन्तर उच्च शिक्षण संस्थाओं के विकास एवं छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की दिशा में कवायद की कार्यसंस्कृति नजर आ रही है, जो गहन - चिन्तन का विषय है। सच तो यह है, कि विकासशील देशों की विडम्बना यह देखी जा रही है कि वह अपनी आम जनता की मूल आवश्यकताओं खासकर सुशासन: प्रशासनिक पारदर्शिता एवं सामान्य सुरक्षा प्रदान करने में भी विफल साबित हो रही है। मोटे तौर पर विकासशील देशों के लिए तीन कार्यो की अपरिहार्यता रहती है, जिनमें शांतिकार्य, स्वतंत्रता कार्य एवं एकीकरण का कार्य आते हैं। यहाँ गौर करने की जरूरत है कि शिक्षाव्यवस्था को अगर दुरुस्त कर दिया जाता तो उपरोक्त तीनों कार्यो को धरातल पर आसानी से संभव हो जाते। शिक्षा व्यवस्था की सुहद्धता पर ही साहित्य एवं कला, तकनीकि खोज, राजनीतिक विकास एवं समृद्धि नेतृत्व क्षमता, सैनिक एवं सामरिक शक्ति के साथ-साथ सामाजिक स्थिति का उत्तरोत्तर विकास निर्भर करता है और अगर शिक्षा तंत्र ही- दुर्बल अवस्था में हो, तो विकास की उम्मीद कोरी कल्पना हो जाती है। वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में सीखने वाले तथा अच्छा सीखने को तैयार होने वाले भी वैश्विक बाजार की मागों अनुरूप अपने को लाभकारी पदों पर समायोजित करते हैं। स्मरणीय कि शिक्षा ही ज्ञान के संवर्द्धन एवं परिशोधन का माध्यम है, और शोध और अन्वेषण का केन्द्र है जिससे चतुर्दिक विकास की परिकल्पना साकार हो सकती है. किन्तु इसके लिए उच्च शिक्षा की गुणवता निहायत जरूरी होती है।[7]

शिक्षा एक साथ सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्र निर्माण का महत्वपूर्ण माध्यम है। किन्तु राष्ट्रनिर्माण के लिए न केवल शिक्षा में - सुधार की जरूरत होती हैं बल्कि समतामूलक समाज की प्रस्थापना, अलोकतांत्रिक भावनाओं को दूर कर लोकतांत्रिक वातावरण को सुनिश्चित करते हुए समाज के प्रति कर्तव्यबोध का भी जागरण करने की आवश्यकता होती है। किन्तु वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रमों एवं शिक्षणपद्धति प्रजातांत्रिक नागरिकता के निर्माण की दिशा में विफल साबित हो रही है। सच्चाई है कि विद्यार्थियों में अलगाववाद एवं सामाजनीतिक विछिन्नता के भावों अभिवृद्धि हो रही है।[8] जो दुखद- परिणाम है। इस तरह वर्तमान परिवेश में खासकर 21वीं सदी तथा वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की दौर में शिक्षा से हमारी अपेक्षा है कि यह छात्रों को सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की दिशा में जागृत करें, उसमें सीखने की ललक पैदा करें एवं सामाजिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सम्मान एवं

प्रतिबद्धता पैदा करने का काम करे, ताकि उनके द्वारा सम्पादित नागरिक दायित्वों में ज्ञान एवं कौशल स्पष्ट रूप से प्रतिविम्बित हो। किन्तु वर्तमान शिक्षा व्यवस्था विरोधाभासी नजर आ रही और न केवल राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित समरसता का अभाव नजर आ रहा है बल्कि शिक्षण संस्थाएँ जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय एवं भाषागत विभेद सम्बन्धी मूल्यों के कठोर बंधन में जकड़ी दिखाई पड़ रही है। देश काल के बदलते परिवेश में उच्च शिक्षा के पुराने ढर्रो में परिवर्तन लाने की जरूरत है क्योंकि हठधर्मिता उपयोगी साबित नहीं हो सकती है।[9] इतना ही नहीं अगर सरकारी उच्च शिक्षण संस्थाओं को व्यक्तिगत साझेदारी के जिम्मे दिया जाता है तो शिक्षा समाजोपयोगी कम हो जायेगी और बाजार के उपयोग की वस्तु बन कर रह जायेगी, और यह स्थिति भारत जैसे विकासशील देशों के लिये काफी खतरनाक साबित होगी।

उपरोक्त विश्लेषण से यह तथ्य आमरकर आता है कि भारत के उच्च शिक्षण संस्थाओं व विश्वविद्यालयों के समक्ष कुछ महत्वपूर्ण चुनौतिया है जिनके समाधान पर ही विश्वविद्यालयों की स्थिति एवं गुणवतापूर्ण शिक्षा की उम्मीद की जा सकती हैं, जिनकी चर्चा निम्नांकित ढंग से की जा सकती हैं:-

सर्वप्रथम विश्वविद्यालयों के समक्ष पहली चुनौती संस्थाओं में दूरदृष्टि का अभाव है। आज अधिकांश विश्वविद्यालयों के द्वारा तृतीय श्रेणी के फिजूलपंथी ज्ञान तृतीय स्तर के विक्रेताओं द्वारा तृतीय दर्जे के विद्यार्थियों को उपलब्ध कराया जा रहा है। स्थिति यह है, जो ज्ञान या विद्या छात्रों को अपने पैरो पर खड़े होने अथवा स्वावलम्बन की शिक्षा मुहैया नहीं करा पाता है उस विद्या से परिवार, समाज और राष्ट्र की क्या अपेक्षा हो सकती है? खासकर विश्वविद्यालयों में वैश्वीकरण के चलते शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यकताओं को समझने एवं आत्मसात करने वाली क्षमता विकसित नहीं हो सकी है। स्पष्ट है कि आज यह कहा जा रहा है कि भारत नौजवानों का देश है जहाँ 25 वर्ष से कम आयु की जनसंख्या 50% देश में है। अंत हमारे नौजवानों का भविष्य क्या होगा? भारतीय नौजवान सिर्फ शिक्षा की चाह नहीं करता है बल्कि सशक्तिकरण की आकांक्षा रखता है क्योंकि वह अपने पैरों पर खड़ा होकर परिवार एवं समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना व सहारा बनाना चाहता है। अत: बदलती परिस्थिति का सामना करने के लिये जहाँ सशक्त दूरदृष्टि अपनाने की आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर विश्वविद्यालयों में अंतरवैषयिक विषयों के अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि विद्यार्थियों में विशिष्ट विषयों की गहन, आलोचनात्मक एवं विवरणात्मक ज्ञान प्रदान करने की भूमिका निभाये न कि सामान्य विषयों की सामान्य शिक्षा प्रदान करने की परम्परा को कायम रखा जाया इस तरह उच्च शिक्षा के भविष्य को ध्यान में रखते हुए बदलाव की जरूरत है।

स्मरणीय है कि आजादी के पश्चात् पंडित नेहरू ने तकनीकी संस्थाओं की नींव कायम किया और राजीव गाँधी ने सूचना प्रौद्योगिकी के दरवाजे को खोला, किन्तु कालांतर में आने वाली सरकारों के द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में गहन सुधार की दिशा में सकारात्मक कदम नहीं उठाया गया। इसके लिए समाज के प्रबुद्ध नागरिकों, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को ही आगे आना पड़ेगा। यद्यपि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की केन्द्र सरकार ने नई शिक्षा नीति की शुरूआत की है। आशा है कि नई शिक्षा नीति उच्च शिक्षण संस्थाओं की संस्थागत विकास व गुणवत्तापूर्ण यथा विद्यार्थियों को आत्म- स्वावलम्बन की शिक्षा प्रदान कर सकेगी।

दूसरे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दूसरी चुनौती "नव परिवर्तन का अभाव" देखी जा रही है। वर्तमान उच्च शिक्षा का स्वरूप न केवल सैद्धान्तिक है बल्कि संकीर्ण एवं बिखराव भरी है, जिसके चलते ऐसी शिक्षा की भूमिका एवं दायित्व का भ्रमजाल बना हुआ है। यों तो भारत में उच्च शिक्षा के विकास का क्रम 1817 में हिन्दु कॉलेज तथा 1824 में कलकता के संस्कृत कॉलेज की स्थापना से आरंभ हुआ है। किन्तु अंग्रेजी शिक्षा 1854 में मैकाले पद्धति की छत्रछाया में सम्पूर्ण भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किये हुए हैं। साथ ही आज भी किसी तरह का परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ रहा है। परिवर्तन की दिशा में मात्र शिक्षक, विद्यार्थी, भाषा एवं वातावरण में भले ही बदलाव का संकेत महसूस किया जा सकता है। यह ठीक है बिदलते समय के अन्तराल में पाठ्यक्रम में भले ही बदलाव किया रहा है किन्तु यह बदलाव स्वतंत्र राष्ट्र के विकास के निमित्त कतिपय अपरिहार्यताओं स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा एवं न्याय की स्थापना के निमित आवश्यक मानकों के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है। स्मरणीय है कि 1970 के दशक में अमेरिका एवं जापान जैसे यूरोपीय देशों में वहाँ की राजनीतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक गठबंधन के चलते उच्च शिक्षा के संदर्भ में पहचान का संकट उभरा था किन्तु वहाँ इस स्थिति का मुकाबला किया गया। साथ ही यहाँ निजी कम्पनियों एवं उद्योगों के साथ समन्वयकर शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों का पुनर्निर्धारण कर लिया गया। जहाँ एक ओर बाजार से तालमेल स्थापित करने का प्रयास किया गया, वही दूसरी ओर आलोचनात्मक दृष्टि शोध एवं अनुसंधान पर काफी ध्यान दिया जाने लगा।यही कारण है कि अमेरिकी विश्वविद्यालयों को विश्व में प्रतिमान के रूप में स्वीकर किया जा रहा है। भारत में भी पेशेवर शिक्षा के कतिपय उत्कृष्ट संस्थान

हैं जिनके छात्रों को विभिन्न कंपनियों को सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ है। किन्तु इस तरह के संस्थानों की आवश्यकता देश के प्रत्येक राज्य एवं हर जिले में स्थापित करने की जरूरत आ पड़ी हैं ताकि हमारे नवयुवकों के देश को विश्व की महान शति के रूप में रूपांतरित करने का मार्ग प्रशस्त कर दें। यह भी तभी संभव है जब कि हमारे देश के नीतिनिर्माताओं एवं प्रशासकों की कार्य-संस्कृति में नवीन सोच दूर दृष्टि एवं राष्ट्रीय प्रतिवद्धता का भाव समायोजित हो। स्पष्ट है कि भारत में भी उच्च शिक्षा के संदर्भ में जापान, चीन, सिंगापुर की तरह अध्यन की विषयवस्तु- शिक्षण प्रक्रिया से लेकर विद्यार्थियों के नामांकन एवं परीक्षा पद्धति में परिवर्तन लाने की जरूरत है। इस सुधार से ही उच्चशिक्षा के संदर्भ में नव परिवर्तन के अभाव की चुनौती से निजात पाया जा सकता है।

तीसरे, भारत में उच्च शिक्षा के संदर्भ में शोधकार्यो के प्रति उदासीनता की चुनौती दृष्टिगोची होती हैं। किसी भी विषय में किया जानेवाला शोध समाज पर महत्वपूर्ण डालता है। स्थिति यह है कि शोध के प्रति उदासीनता की वजह से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं का निदान को ढूँढ़ने में असफल हो रहे हैं। जबकि भारतीय विश्वविद्यालयों को शोध की दिशा में अग्रगन्य होने की जरूरत है। शोध जहां आवश्यकताओं के निदान के लिये आवश्यक है। वहीं विषयगत समस्याओं का आलोचनात्मक तरीके से स्पष्ट करने के लिए भी आवश्यक होता है।[10] इस तरह शोध की उदासीनता से उबरने की दिशा में हमें नवीन सोच की जरूरत है, तभी परंपरागत विचारधारा की जंजीर से बाहर निकला जा सकता है। स्मरणीय है जहाँ 1983 में चीन में इंजिनियरिंग के क्षेत्र में मात्र चार पी-एच.डी. को हुआ था, वहीं 2003 में वहाँ मात्र 6242 शोध हुए थे, किन्तु उसी काल में भारत में 139 से 739 की वृद्धि हुई थी। इस तरह जहाँ चीन विज्ञान एवं तकनीक क्षेत्र में प्रसिद्धि की ओर बढ़ रहा है, वही भारत आगे से पीछे की ओर जा रहा है। अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर, राज्यों ने स्नातक स्तर पर तथा सबसे नीचले स्तर पर सामुदायिक कॉलेज के द्वारा व्यवसायिक दक्षता में छात्रों को प्रवीण बनाने का काम किया जा रहा है। इस तरह हम देखते हैं कि कैलिफोर्निया में शोध को बढ़ावा देने के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था की गई है। भारत में इस व्यवस्था का अभाव है बल्कि कई विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर एवं पी-एच.डी. सम्बन्धी कार्यक्रम आज भी एक साथ ही संचालित किये जा रहे हैं।

चौथे भारत में उच्च उच्च शिक्षा के नियमन के लिये विभिन्न तरह के विश्वविद्यालयों की व्यवस्था की गई हैं। केन्द्र पोषित विश्वविद्यालय, राज्य, पोषित विश्वविद्यालय राज्य-निजी विश्वविद्यालय एवं मान्य विश्वविद्यलयों के साथ-साथ कई तरह के सम्बद्ध और अंगीभूत कॉलेज हैं, जिनके द्वारा सिर्फ छात्रों को डिग्री बांटने का काम किया जाता है। ज्ञातव्य है कि शिक्षा राज्य का विषय है जिसके चलते एक ओर जहां इन संस्थाओं में संसाधन का अभाव रहता है. वहीं दूसरी ओर इन पर केन्द्र का नियंत्रण रहता है। स्थिति यह रहती हैं कि संरचनात्मक निर्माण, शिक्षकों के वेतन, संसाधनों का आवंटन फीस निर्धारण, पारितोषिक तथा शोध के लिए फंड जैसी सभी चीजों के लिए सरकार पर निर्भरता बनी रहती है। सरकारी हस्तक्षेप की वजह से ज्यादातर विश्वविद्यालय राजनीतिकृत होकर रह जाते हैं, जिसके चलते पठन पाठन एवं शोध का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। स्पष्ट है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की दिशा में आय के स्रोतों पर पुनर्विचार की जरूरत आ पड़ी हैं।[11]

अन्ततः उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नेतृत्व की अदूरदर्शिता भी एक बहुत महत्वपूर्ण चुनौती बनी अन्नतः हुई हैं। किसी भी संस्था को नवीनीकृत एवं उपलब्धियों से परिपूर्ण करने के लिये आदर्शवादी स्वप्नदृष्टाओं की जरूरत होती है। नेतृत्व का अर्थ होता है कि उनमें निर्णय लेने एवं कार्यान्वित करने की क्षमता के साथ साथ उत्तरदायित्व का भाव निहित हो। वर्तमान परिवेश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमें एक ऐसे स्वप्नद्रष्टा की जरूरत है जो उच्च शिक्षण-संस्थाओं व विश्वविद्यालयों को विभिन्न व्यवसायों, सरकार, अन्तः सरकारी संगठनों, चिन्तकों एवं गैरसरकारी संगठनों के बीच तादात्मयता स्थापित कर विकास को आगे की ओर बढ़ाने का निर्वहन कर सके भारत में उच्च शिक्षण संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षण के क्षेत्र में नेतृत्व जीवनवृत्ति की प्रगति सर्वोच्च चरण होता है जो बुढ़ापे में प्राप्त होता है जबकि उनमें स्वयं के लिए आनन्दपरक हो सकता है। किन्तु समाज को देने के लिए कुछ रह नहीं पाता है। इतना ही नहीं देश के नेतृत्वकर्ताओं छात्रों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा प्रबुद्ध नागरिकों के साथ समन्वयात्मक विमर्श के आधार पर शिक्षा को नई दिशा प्रदान करने वाली कार्य-संस्कृति का सर्वथा अभाव रहा है। यह सच्चाई है कि समाज बहुत ही गतिशील होता है। अगर समाज का साथ हो, तो किसी भी संस्था का कायान्तर आसानी से किया जा सकता है। अतः उच्च शिक्षा की दिशा में समाज को साथ रखकर इसके विकास के औचित्य को स्थापित करने वाली नेतृत्वकर्ताओं की कार्य प्रणाली की जरूरत है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिवेश में उच्च शिक्षा को अपनी चुनौतियों की जंजीर से निकालना है तो पूर्वाग्रहों से मुक्ति का मार्ग अपनाना होगा। वर्तमान उपभोक्तावादी समाज व्यवस्था में ज्ञान शक्ति का प्रतीक है और शक्ति वह माध्यम है

जिसके द्वारा अर्थ की प्राप्ति होती है। समाज का बहुसंख्यक अभिवंचित समुदाय की पहली पीढ़ि को शिक्षा का प्रकाश प्राप्त हुआ है, जिन्हें रोजगार के माध्यम से अपने विकास के रास्ते ढूँढने होंगे। कहना नहीं होगा कि भारतीय समाज का ऐतिहासिक स्वरूप एक ज्ञान समाज का है तभी तो यह कहा जाता रहा है कि विद्वान की पूजा सर्वत्र होती है। विन्तु विडम्बना है कि समाज के हर वर्ग ने अपने ज्ञान को बांटने का काम नहीं किया। अत: आज के वैश्विक परिवेश में हमें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समाज की उभरती चुनौतियों ब आवश्यकताओं के अनुरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नये पाठ्यक्रमों, नये प्रयोगों तथा अनुसंधानों की दिशा में विकास करना होगा, तभी हमें विदेशी विश्वविद्यालयों की बढ़ते प्रभाव से जहाँ एक और मुक्ति मिल सकती हैं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्र की अस्मिता एवं संस्कृति की रक्षा हो सकती है और देश की निष्कपट एवं निरीह युवाशक्ति का उच्च शिक्षा के क्षेत्र में होनेवाले आर्थिक दोहन से बचाव किया जा सकता है।

संदर्भ सूची:

1. रैंड, अयान; कैपिटलिज्म: द अननोन आइडियल, सिगनेट बुक्स, पृ०-90
2. हाल, इवान पी; ''क्रियेटिविटी विदाउट डायवर्सिटी? द एनोमेलस केस ऑफ जापनीय यूनिवर्सिटी, 1997
3. प्रभात खबर, सम्पादकीय, भागलपुर, एक फरबरी, 2014
4. तिबारी, संजय; ''रिसर्च इन्नोवेशन इन हायर एडुकेशन फॉर सस्टेनबेलिटी एण्ड इनक्लूसीविटी'', यूनीवर्सीटी न्यूज, सत्तरह जून से तेईस जून 2013 में राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की उच्च शिक्षा के संदर्भ वक्तब्य।
5. कौर, अमरदीप; ''स्टेटस आफ रिसर्च एण्ड रिसर्च पब्लिकेशन्स इन इण्डिया'' यूनीवर्सिटी न्यूज, नं०-41, चौदह अक्टूबर' 2013, पृ०-15
6. राव, पी.कृष्णा; यूनीवर्सिटी न्यूज, वाल्यूम-47, नं.27, चार अक्टूबर, 2011, पृ०-2-4
7. अबरोल, डी; 'डेमोक्रेटाइजिंग इण्डियन हायर एडुकेशन', सोशल चेंज, वाल्यूम 36, नं.-3, पृ०-120-160
8. थोराट, एस; अनलर्निंग अनडेमोक्रेटिक वैल्यूज द हिन्दू, छब्बीस दिसम्बर' 2013
9. तिलक, बी.जी., ''लैसेज-फेयरिज्म इन हायर एडुकेषन इन इण्डिया'' अरूण कुमार (सं.) चौलेंजेज फेसिंग इण्डियन यूनिवर्सीटीज, सोवेनियर, जे.एन.यू., नई दिल्ली, पृ०-67-68
10. शुक्ला, एम; कम्पीटींग थ्रू नालेज: विल्डिंग ए नर्लिंग आर्गेनाइजेशन, रेसपान्स बुक्स, नई दिल्ली, 2004
11. हिन्दुस्तान टाइम्स, पटना, 20 मार्च, 2013

भारत के कृषि विश्वविद्यालयों और संस्थानों में उपयोग की जाने वाली प्रमुख डेटाबेस सेवाएँ

डॉ० कन्हैया लाल शर्मा

वनस्थली विश्वविद्यालय, तह. निवाई, टोंक, राजस्थान-304022

सारांश

यह लेख भारत के विश्वविद्यालयों और संस्थानों में उपयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के का वर्णन करता है, इस लेख में डेटाबेस की परिचय, विशेषताएँ एवम प्रकार का वर्णन किया गया है, साथ ही कृषि के मुख्य डेटाबेस जैसे कैब डेटाबेस, अगरिस डेटाबेस, अग्रिकोला, बायोसीस डेटाबेस, खाद्य और मानव पोषण डेटाबेस, उपलब्ध खाद्य और मानव पोषण डेटाबेस, विज्ञान उद्धरण सूचकांक, जैविक सार, जैव प्रौद्योगिकी सार का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

मुख्य शब्दः आईसीएआर, सीएबी, एजीआरआईएस, एफएओ, रासायनिक सार सेवा (सीएएस, आदि)

1.0 परिचयः

डेटाबेस एक सुचना संग्रह है जिसका निर्माण सुचना संसाधनों से आसानी से सुचना प्राप्त करने के लिय, एवं ज्ञान को अद्यतन करने के लिए किया जाता है। डेटाबेस का उपयोग किसी भी प्रकार के डेटा को संग्रहीत करने और एक्सेस करने के लिए किया जाता है, ताकि सुचन का आसानी से अवलोकन और विश्लेषण किया जा सके। डेटाबेस को सूचनाओं के एक संगठित संग्रह के रूप में जाना जा सकता है।

1.1 डेटाबेस सेवावो की विशेषताएँः डेटाबेसेस में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं;

- डेटाबेस उच्च-गुणवत्ता एवं विश्वसनीता वाली सुचना प्रदान करते हैं जो की गूगल जैसे सामान्य खोज इंजन के माध्यम से उपलब्ध नहीं हो सकती है। इसमें प्राथमिक स्रोत सामग्री, ई बुक्स, अकादमिक पत्रिकाये, पत्रिका और समाचार पत्रों के लेख शामिल हैं।
- डेटाबेस को आसानी से व्यवस्थित और अनुक्रमित किया जा सकता है, जिससे विशिष्ट जानकारी प्राप्त करना आसान हो जाता है। उपयोगकर्ताओं को उनके खोज परिणामों को आसानी से प्राप्त के लिए, ये अक्सर खोज उपकरण और फिल्टर उपयोग करते हैं।
- डेटाबेस में अक्सर उपयोगकर्ताओं को उनके स्रोतों को उचित रूप से उद्धृत करने में मदद करने के लिए उद्धरण उपकरण और अन्य संसाधन शामिल किये जाते हैं। यह अकादमिक शोध के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहां साहित्यिक चोरी से बचने के लिए स्रोतों का सटीक उद्धरण देना महत्वपूर्ण होता है।
- कई पुस्तकालय डेटाबेस उन सामग्रियों को भी प्रदान करते हैं जो इंटरनेट पर स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं हैं और उन तक पहुंचने के लिए सदस्यता या विशेष विशेषाधिकार की आवश्यकता हो सकती है। लाइब्रेरी डेटाबेस का उपयोग करके, आप अपनी लाइब्रेरी के माध्यम से इन सामग्रियों तक निःशुल्क पहुंच सकते हैं।

- लाइब्रेरी डेटाबेस को नियमित रूप से अपडेट किया जाता है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उनमें मौजूद जानकारी सही और सटीक है।

1.2 लाइब्रेरी डेटाबेस के प्रकार: लाइब्रेरी डेटाबेस कई प्रकार के होते हैं, जिनमें शामिल हैं

ग्रंथ सूची डेटाबेस: इन डेटाबेस में ग्रंथ सूची रिकॉर्ड, या प्रकाशित कार्यों का विवरण, जैसे किताबें, लेख और अन्य दस्तावेज शामिल हैं। उनमें आम तौर पर शीर्षक, लेखक, प्रकाशक और प्रकाशन तिथि जैसी जानकारी शामिल होती है। ग्रंथ सूची डेटाबेस का उपयोग अक्सर विशिष्ट कार्यों का पता लगाने या किसी लेखक या प्रकाशक के बारे में जानकारी खोजने के लिए किया जाता है।

पूर्ण-पाठ डेटाबेस: इन डेटाबेस में प्रकाशित कार्यों का पूरा पाठ होता है, जैसे लेख, किताबें और अन्य दस्तावेज। इनका उपयोग अक्सर विशिष्ट जानकारी खोजने या किसी विशेष विषय पर शोध करने के लिए किया जाता है।

प्राथमिक स्रोत डेटाबेस: इन डेटाबेस में मूल दस्तावेज या सामग्री होती है, जैसे पत्र, तस्वीरें और अन्य ऐतिहासिक दस्तावेज। इनका उपयोग अक्सर शोधकर्ताओं और छात्रों द्वारा किसी विशेष समय अवधि या स्थान के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन करने के लिए किया जाता है।

विषय-विशिष्ट डेटाबेस: इन डेटाबेस में किसी विशिष्ट विषय या अनुशासन से संबंधित जानकारी होती है, जैसे कानून, विज्ञान या चिकित्सा। इनका उपयोग अक्सर शोधकर्ताओं और छात्रों द्वारा किया जाता है जो अध्ययन के एक विशिष्ट क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

बहु-विषयक डेटाबेस: इन डेटाबेस में विषयों और विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला की जानकारी होती है। इनका उपयोग अक्सर शोधकर्ताओं और छात्रों द्वारा किया जाता है जो एक ऐसे विषय पर काम कर रहे हैं जो कई विषयों तक फैला हुआ है।

संदर्भ डेटाबेस: इन डेटाबेस में संदर्भ सामग्री होती है, जैसे शब्दकोश, विश्वकोश और अन्य संदर्भ कार्य। इनका उपयोग अक्सर शोधकर्ताओं और छात्रों द्वारा पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करने या किसी विशेष विषय का सामान्य अवलोकन प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

2.0 भारत में कृषि में प्रयुक्त डेटाबेस सेवाएँ:

निम्नलिखित डेटाबेस पर कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाते समय उपयोग किए जाते हैं

(i) सीएबीआई डेटाबेस: सीएबी इंटरनेशनल, लंदन ने 1973 से 3 मिलियन रिकॉर्ड के सार के साथ एक कम्प्यूटरीकृत ग्रंथसूची डेटाबेस बनाया है। किताबों, मोनोग्राफ, सम्मेलन कार्यवाही, रिपोर्ट, बुलेटिन इत्यादि के साथ 11,000 से अधिक प्रमुख कृषि पत्रिकाओं को स्कैन करके सालाना 1.6 लाख रिकॉर्ड इसमें जोड़े जाते हैं। यह कृषि, वानिकी, डेयरी, पशु और पशु चिकित्सा विज्ञान, खाद्य और पोषण इत्यादि में विश्वव्यापी सूचना स्रोतों को कवर करने वाला सबसे बड़ा पेशेवर रूप से विकसित डेटाबेस है, सीएबीआई डेटाबेस प्रकाशित है 47 अमूर्त पत्रिकाओं में और सीडी-रोम पर भी तैयार किया गया है। यह इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।

(ii) अग्रीस डेटाबेस: कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रणाली (एफएओ, रोम) ने 1975 से एक ग्रंथ सूची डेटाबेस बनाया है। 1985 तक यह पूरी तरह से एक ग्रंथ सूची संदर्भ डेटाबेस था, लेकिन 1986 से इसने सार को अनुक्रमित करना भी शुरू कर दिया। वर्तमान में, इसमें केवल 21% सार शामिल हैं। एग्रीस कृषि, वानिकी, मत्स्य पालन, पशु और पशु चिकित्सा विज्ञान, भोजन और पोषण, पर्यावरण आदि का विश्वव्यापी ग्रंथ सूची कवरेज प्रदान करता है। एग्रीस डेटाबेस पूरी तरह से कम्प्यूटरीकृत है और इंटरनेट पर उपलब्ध है। इसे सीडी-रोम के साथ-साथ "एग्रीनडेक्स" (मासिक सेवा) शीर्षक के तहत प्रिंट रूप में भी जारी किया जाता है।

(iii) एग्रीकोला: एग्रीकल्चर ऑन-लाइन एक्सेस 1970 से राष्ट्रीय कृषि पुस्तकालय (यूएसए) द्वारा बनाया गया एक ग्रंथ सूची डेटाबेस है। आज, यह कृषि और संबद्ध विषयों की विस्तृत श्रृंखला को कवर करने वाले ग्रंथ सूची उद्धरणों का सबसे व्यापक स्रोत है- पादप विज्ञान, कृषि, पशु विज्ञान, जलीय कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, वानिकी, पोषण, आदि। इसमें जर्नल लेख, मोनोग्राफ, थीसिस, पेटेंट, रिपोर्ट, ए-वी सामग्री के सार के साथ 3.3 मिलियन उद्धरण शामिल हैं। आदि,

सालाना 1,00,000 रिकॉर्ड जोड़ना। एग्रीकोला 1970 से एनएएल पर ऑनलाइन उपलब्ध है और इंटरनेट के साथ-साथ सीडी-रोम और मैग्नेटिक टेप पर भी उपलब्ध है। इसका प्रिंट संस्करण 'कृषि की ग्रंथ सूची' है।

(iv) भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद द्वारा विकसित डेटाबेस: भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद द्वारा विभिन्न प्रकार के डेटाबेस विकसित किया गये है ज्यो निम्नलिखित है।

- कृषि अनुसंधान डेटा बुक, भारत के पशु आनुवंशिक संसाधन (आईसीएआर-एनबीएजीआर)
- अक्रिसी- भारत की जलीय आनुवंशिक संसाधन सूचना प्रणाली, सिअरी जर्मप्लाज्म डाटा
- कपास डेटाबेस (आईसीएआर-सीआईसीआर)

(v) बायोसिस डेटाबेस: बायोसिस (बायोसाइंस इंफॉर्मेशन सर्विस, फिलाडेल्फिया) जीवन विज्ञान, आनुवंशिकी, विष विज्ञान और प्राणीशास्त्र साहित्य सहित जैव विज्ञान के क्षेत्र में दुनिया का सबसे व्यापक ग्रंथ सूची डेटाबेस है। हार्ड डिस्क पर इसके बायोसिस प्रीव्यूज डेटाबेस में 1985 से उपलब्ध सार के साथ 7 मिलियन से अधिक ग्रंथ सूची रिकॉर्ड शामिल हैं और यह ऑनलाइन के साथ-साथ सीडी-रोम पर भी उपलब्ध है।

(vi) खाद्य और मानव पोषण डेटाबेस: संयुक्त राष्ट्र के एफएओ (खाद्य और कृषि संगठन) ने 1975 से इस ग्रंथ सूची डेटाबेस का निर्माण किया है जो खाद्य और कृषि, स्वास्थ्य विज्ञान और पोषण आदि को कवर करता है। इसमें 3,11,000 रिकॉर्ड शामिल हैं और सालाना 25,000 सार जोड़े जाते हैं।

(vii) सीडी-रोम पर उपलब्ध खाद्य और मानव पोषण डेटाबेस: एफएओ के एजीआरआईएस समन्वय समूह का एक डेटाबेस कृषि, खाद्य पदार्थ और पोषण, स्वास्थ्य पर ग्रंथ सूची संबंधी साहित्य प्रदान करता है। सीडी को अर्धवार्षिक रूप से अद्यतन किया जाता है।

(viii) खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी सार (एफएसटीए): खाद्य सूचना सेवा (आईएफआईएस), यूएसए द्वारा मासिक रूप से विकसित किया जाता हैं। इसमें 3,11,000 रिकॉर्ड शामिल हैं और सालाना लगभग 25,000 रिकॉर्ड जोड़े जाते हैं। खाद्य सूचना सेवा (आईएफआईएस-) एक व्यापक डेटाबेस है जो जैव प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, डेयरी विज्ञान, खाद्य विनिर्माण, खाद्य सूक्ष्म जीव विज्ञान, खाद्य कानून और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों की पैकेजिंग सहित खाद्य विज्ञान, खाद्य उत्पादों और खाद्य प्रसंस्करण के विभिन्न पहलुओं को शामिल करता है। एफएसटीए सीडी में 1969 से आज तक लगभग 5,00,000 ग्रंथ सूची रिकॉर्ड शामिल हैं, जो खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 2000 प्रमुख वैज्ञानिक पत्रिकाओं से स्कैन किए गए हैं।

(ix) विज्ञान उद्धरण सूचकांक (एससीआई): वैज्ञानिक सूचना संस्थान (आईएसआई), (फिलाडेल्फिया) तीन भागों में विज्ञान उद्धरण सूचकांक प्रकाशित करता है (i) उद्धरण सूचकांक (ii) जर्नल उद्धरण रिपोर्ट और वैज्ञानिक और तकनीकी कार्यवाही के सूचकांक के साथ स्रोत सूचकांक। एससीआई डेटाबेस में 3300 प्रमुख पत्रिकाओं से उद्धरण साहित्य शामिल है। सीडी-रोम पर एससीआई में कृषि जैविक विज्ञान सहित सभी व्यावहारिक और सैद्धांतिक विज्ञानों पर 1980 के उद्धरण शामिल हैं। आईएसआई (फिलाडेल्फिया) इंटरनेट पर उपलब्ध है।

(x) सीडी-रोम पर वर्तमान सामग्री: सबसे तेज वर्तमान जागरूकता सेवा (सीएएस) "वर्तमान सामग्री" (सीसी) विभिन्न श्रृंखलाओं में जारी की गई है, अर्थात (i) सीसी: कृषि, जीवविज्ञान और पर्यावरण विज्ञान, (ii) सीसी: जीवन विज्ञान, (iii) सीसी: सामाजिक और व्यवहार विज्ञान आदि।। सीडी-रोम पर सीसी साप्ताहिक जारी किया जाता है। प्रत्येक साप्ताहिक सीडी-रोम पूरे वर्ष का वर्तमान सामग्री प्रकाशित डेटा प्रस्तुत करता है और इस प्रकार एक समय में लगातार 52 सप्ताह की जानकारी ब्राउज करने या खोजने की सुविधा प्रदान करता है। इस प्रकार, यह कंप्यूटर नेटवर्क पर डेटा/सूचना खोज की सुविधा प्रदान करता है।

उपर्युक्त डेटाबेस के अलावा, कृषि से संबंधित कुछ अन्य डेटाबेस भी हैं जो इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। ये इस प्रकार हैं i

(i) जैविक सार (बीए): यह थॉमसन रॉयटर्स द्वारा अपनी सहायक कंपनी BIOSIS के माध्यम से निर्मित एक डेटाबेस है। इसमें 1926 से प्रकाशित जीव विज्ञान, जैव रसायन, जैव प्रौद्योगिकी, वनस्पति विज्ञान, पूर्व-नैदानिक और प्रयोगात्मक चिकित्सा, फार्माकोलॉजी, प्राणीशास्त्र, कृषि और पशु चिकित्सा के क्षेत्र में सहकर्मी-समीक्षित अकादमिक जर्नल लेखों के सार शामिल हैं। यह प्रिंट और ऑनलाइन भी उपलब्ध है। इसमें 11.3 मिलियन रिकॉर्ड शामिल हैं।

(ii) बायोटेक्नोलॉजी सार: डेरवेंट पब्लिकेशंस लिमिटेड ने 1982 से दुनिया की 1200 से अधिक प्रमुख वैज्ञानिक और तकनीकी पत्रिकाओं को स्कैन करके जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक कम्प्यूटरीकृत डेटाबेस बनाया है। ऑनलाइन डेटाबेस में जीव विज्ञान, जैव प्रौद्योगिकी, रसायन, खाद्य और कृषि, आनुवंशिकी, स्वास्थ्य विज्ञान, फार्मास्यूटिकल्स, पादप आनुवंशिकी, प्रजनन और अपशिष्ट आदि के क्षेत्रों में 1,40,000 सार शामिल हैं।

(iii) रासायनिक सार सेवा (सीएएस): सीएएस, अमेरिकन केमिकल सोसाइटी का एक प्रकाशन हैं ज्यो रासायनिक सुचना में दुनिया का अग्रणी स्रोत है। कंपनी के मालिकाना डेटाबेस बै वैज्ञानिकों द्वारा क्यूरेट किए जाते हैं और दुनिया भर में रासायनिक और दवा कंपनियों, विश्वविद्यालयों, सरकारी संगठनों और पेटेंट कार्यालयों द्वारा रासायनिक जानकारी के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपयोग किया जाता हैं। इन डेटाबेसों को उन्नत खोज और विश्लेषण प्रौद्योगिकियों के साथ जोड़कर, सिएऐस डेटाबेस वैज्ञानिक खोज के लिए एक वर्तमान, पूर्ण और क्रॉस-लिंक्ड डिजिटल सूचना वातावरण प्रदान करते हैं। सिएऐस कोलंबस, ओहियो, संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित है। 1907 में अपनी शुरुआत के बाद से केमिकल एब्स्ट्रैक्ट ने सिएऐस डेटाबेस के लिए 15 मिलियन से अधिक सार प्रकाशित किए हैं। केमिकल एब्स्ट्रैक्ट्स (सीए) 1907 से अमेरिकन केमिकल सोसाइटी (कोलंबिया) से अपने संचयी सूचकांकों के साथ साप्ताहिक अंक भी प्रकाशित करता है। अर्धवार्षिक, दशकीय और 5वार्षिक सूचकांक भी प्रकाशित करता है। सीए ने 87 वर्षों की लंबी यात्रा के बाद 7 मार्च 1994 को खंड 120 (नंबर 12) में अपना 15 मिलियनवाँ सार प्रकाशित किया। इसके प्रत्येक साप्ताहिक अंक में (i) लेखक, (ii) रासायनिक पदार्थ और (iii) सूत्र सूचकांक शामिल किये हैं। अब, रासायनिक सार सीडी-रोम में भी उपलब्ध हैं।

(iv) शोध प्रबंध सार इंटरनेशनल (डीएआई): शोध प्रबंध सार अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे यूनिवर्सिटी माइक्रोफिल्म्स इंटरनेशनल, (मिशिगन, यूएसए) से दो श्रृंखलाओं में मुद्रित रूप में एक मासिक सार सेवा है- (ए) मानविकी और सामाजिक विज्ञान, (बी) विज्ञान और इंजीनियरिंग। अब, सीडी पर शोध प्रबंध सार में अमेरिकी डॉक्टरेट शोध प्रबंध और व्यापक शोध प्रबंध सूचकांक के साथ शोध प्रबंध सार इंटरनेशनल शामिल है। डीएआई में 1861 से अर्थशास्त्र, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि के साथ-साथ जैव प्रौद्योगिकी, रसायन विज्ञान, गणित, आनुवंशिकी, चिकित्सा, फार्मास्यूटिकल्स, पशु चिकित्सा विज्ञान और प्राणीशास्त्र आदि पर 12,00,000 उद्धरण शामिल किये हैं।

(v) वेल्थ ऑफ इंडिया: द वेल्थ ऑफ इंडिया, भारत के पौधों, जानवरों और खनिजों के कच्चे माल संसाधनों पर एक विश्वकोश श्रृंखला, उनकी घटना, वितरण, विवरण, संरचना, उपयोग और व्यापार का विवरण देती है। यह श्रृंखला, जो अपनी प्रामाणिकता के लिए जानी जाती है, सूचना स्रोतों की एक विस्तृत श्रृंखला में बिखरी हुई जानकारी की सर्वोत्कृष्टता है। प्रत्येक संसाधन प्रोफाइल एक मोनोग्राफिक प्रस्तुति है जो सही नामकरण से शुरू होती है, स्थानीय भाषा में ज्ञात नाम, एक संक्षिप्त विवरण, भारत में वितरण के मुख्य क्षेत्र, पौधों के मामले में खेती के व्यापक पैरामीटर, पौधों और जानवरों के मामले में रोग संबंधी समस्याएं, रासायनिक घटक, उत्पाद, उपयोग, उत्पादन, खपत (खनिजों के मामले में), और व्यापार का डेटा प्रधान करता है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर, नई दिल्ली) के तहत राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान (एनआईएससीओएम)ने भारतीय आर्थिक संयंत्रों पर अपना वेल्थ ऑफ इंडिया (कच्चा माल श्रृंखला) डेटाबेस सीडी-रोम पर 'वेल्थ एशिया' शीर्षक के तहत प्रकाशित किया है और स्वास्थ्य और पर्यावरण पर अन्य सीडी क्रमश: 'हेल्थ एशिया' और पर्यावरण एशिया के रूप में प्रकाशित की हैं। वेल्थ एशिया में भारत के 5000 आर्थिक संयंत्रों के बारे में पूर्ण पाठ्य जानकारी शामिल है। पर्यावरण एशिया भी पर्यावरण और संबंधित पहलुओं से संबंधित बहुत महत्वपूर्ण पूर्ण डेटाबेस है।

चुनौतियाँ: डेटाबेस की स्थापना, संचालन और रखरखाव में कई प्रकार कीचुनौतियो का सामना करना पड़ता हैं, ज्यो निम्नलिखित है:

- डेटा की सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि डेटा एक मूल्यवान व्यावसायिक संपत्ति है। डेटा भंडार की सुरक्षा के लिए कुशल साइबर सुरक्षा कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, जो महंगा हो सकता है।
- डेटा की अखंडता सुनिश्चित करती है कि डेटा भरोसेमंद है। डेटा अखंडता हासिल करना हमेशा आसान नहीं होता है क्योंकि इसका मतलब डेटाबेस तक पहुंच को केवल उन लोगों तक सीमित करना है जो इसे संभालने के लिए योग्य हैं।
- डेटाबेस प्रदर्शन के लिए नियमित डेटाबेस अपडेट और रखरखाव की आवश्यकता होती है।

- डेटाबेस एकीकरण भी मुश्किल हो सकता है। इसमें विभिन्न प्रकार के डेटाबेस और संरचनाओं से डेटा स्रोतों को एक ही डेटाबेस में या डेटा लेक और डेटा वेयरहाउस में एकीकृत करना शामिल होता है।

संदर्भ

https://www.techtarget.com
http://www.cera.jccc.in/
https://www.cabdirect.org/
https://agris.fao.org/
https://www.ebsco.com/products/research-databases/biosis-previews

प्रेमचंद युगीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

डॉ० सुमित्रा कुमारी

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, महिला महाविद्यालय, झोझू कलां (चरखी दादरी)

शोधालेख सार

प्रेमचंद युग से पूर्व सन् 1857 में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम जैसी घटना घट चुकी थी। भले ही अंग्रेज इस स्वतंत्रता संग्राम को विफल करने में सफल रहे परन्तु भारतीयों के मन में जो आक्रोश, घृणा थी उसे न समाप्त कर सके। प्रेमचंद युग में राजनीतिक गतिविधियों को मुख्यत: निम्न वर्गो में बाँटा जा सकता है -

(i) कांग्रेस का जन्म एवं उसके राजनीतिक प्रयास

(ii) शस्त्र क्रांति का प्रयास

(iii) गांधी जी के राजनीतिक आंदोलन

(iv) देसी रियासतों में राजनीतिक गतिविधियाँ

मूल शब्द: संशोधित, आन्दोलन, काश्तकार, अधिवेशन, प्रतिनिधि, प्रशासन, स्वशासन।

भूमिका - कांग्रेस का जन्म एवं उसके राजनीतिक प्रयास:

कांग्रेस का गठन होने से पूर्व सन् 1877 में 'रायल टाइटिल्स एक्ट' की घोषणा के तहत महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। सन् 1880 में लार्ड रिपन ने कार्यभार सम्भालने के पश्चात 'इलबर्ट-बिल' तैयार किया। जिसके अनुसार कानून की दृष्टि में अंग्रेज और भारतीयों का समान समझना था। परन्तु इसका संशोधित रूप ही पास हो सका। जिसमें अंग्रेजों का मुकद्मा एक सेशन जनन या जिलाधीश के द्वारा ही किया जा सकता था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की जो व्यापक राजनीतिक आंदोलन में आम जनता को खींचने के लिए काश्तकारों के अधिकार और चाय-बगान के मजदूरों के अधिकार के लिए उन्हें संगठित करने का प्रयास कर रही थी। सन् 1884 में 'मद्रास महाजन सभा' व सन् 1885 में फिरोजशाह मेहता द्वारा 'बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन' की स्थापना हुई। इस प्रकार भारतीय समाज के मध्य वर्ग के शिक्षित लोग संगठित होते जा रहे थे।

राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक श्री ए०ओ०ह्यूम थे। उन्हें भारतीय समाज में बढ़ते असंतोष को भाँपने का अवसर मिला। ''मुझे न तो तब तनिक भी संदेह था और न आज है कि उस समय हम सचमुच एक भयंकर क्रांति के खतरे के बीच से गुजर रहे थे।'' परिणामस्वरूप उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से सम्पर्क किया और उनके सहयोग से बम्बई में दिसम्बर 1885 में भारतीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता डब्लू०सी० बनर्जी ने की तथा इसके उद्देश्यों में प्रमुख उद्देश्य थे - देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी भारतीय राष्ट्रीय राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना, जाति-धर्म-प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, देश में जनमत को प्रशिक्षित तथा संगठित करना।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही एक छोटे स्तर पर भारत की मुक्ति का आन्दोलन आरम्भ हुआ। ''1886 में कांग्रेस ने 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों और समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसम्बर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्दी ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुँच गई। इसके प्रतिनिधि

यों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली स्नातक कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को सम्बोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुँच दी गई थी।''

आरम्भ में राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी माँगे मनवाने के लिए प्रार्थना पत्रों, सभाओं, प्रस्तावों आदि के माध्यम से अंग्रेजी प्रशासन तक पहुँचाने का प्रयास किया। उनका विचार था कि वे धीरे-धीरे एक-एक करके इन माँगों को पूरा करवा लेंगे। परन्तु उनका यह विचार अत्यंत ही खोखला सिद्ध हुआ। वे अपनी माँगों को पूरी करवाने में सक्षम तो न हो सके, परन्तु धीरे-धीरे जनमत उनकी ओर बढ़ रहा था। सन् 1905 तक आते-आते राष्ट्रीय कांग्रेस में ऐसे उक्त विचारों के नेता आ चुके थे जो ढुल-मुल नीतियों पर विश्वास नहीं करते थे। कांग्रेस के आरम्भिक नेताओं जिनमें गोखले, बनर्जी, रासबिहारी घोष आदि सम्मलित थे, उनकी कार्यप्रणाली के आध ार पर उन्हें नरम दल के नेता भी कहा जाता है। सन् 1905 के आस पास तक गरम दल के नेताओं, जिसमें लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक आदि का कांग्रेस में उदय हो चुका था।

सन् 1899 में कलकत्ता नगर निगम में भारतीय सदस्यों की संख्या कम करने का निर्णय 1904 में विश्वविद्यालय अधिनियम, 1896 और 1900 के बीच में अकाल के समय भुखमरी से मरे लाखों लोग आदि कई ऐसी घटनाएँ थी। जिसमें राष्ट्रीय कांग्रेस में नरम दलीय नेताओं की नीतियों को धक्का लगा। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भी ब्रिटिश शासन अधिक प्रगतिशील नहीं रहा। अत: अधिक से अधिक भारतीयों को यह विश्वास होता जा रहा था कि देश की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए एवं स्वशासन आवश्यक है, राजनीतिक पराधीनता का मतलब है – भारतीय जनता के विकास को रोकना।

सन् 1905 में बंगाल का विभाजन किया गया। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लार्ड कर्जन ने बंगाली मुसलमानों की एकता व उनके विकास को ही बंग-भंग का ध्येय बताया था। ''बंगाली मुसलमानों की एकता का ऐसा अवसर प्रदान किया जा रहा है जो मुसलमान सूबेदारों और बादशाहों के समय से उन्हें नसीब नहीं हुआ था।'' जबकि 6 दिसम्बर 1904 को एक आधिकारिक टिप्पणी करते हुए गृह सचिव हिसले ने लिखा है – ''एक जुट बंगाल अपने आप में एक शक्ति है। बंगाल अगर विभाजित हो तो सभी भागों की दिशाएँ अलग-अलग होगी। यही बात कांग्रेस के नेता महसूस करते हैं; उनकी आशंकाएँ पूरी तरह सही है और इस योजना का महत्त्व इसी में है. . . हमारा एक उद्देश्य हमारे शासन के विरोधियों को तोड़ना और इस प्रकार उन्हें कमजोर करना है।'' यद्यपि बंगाल विभाजन का भरपूर विरोध हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'आमार सोनार बंगला' इसी समय लिखा। हिन्दू-मुसलमानों ने रक्षा बंधन के अवसर पर एक-दूसरे की कलाइयों पर राखियाँ बाँधी। परन्तु इस का सबसे बड़ा प्रभाव राष्ट्रीय कांग्रेस पर पड़ा क्योंकि अब उग्र दल के नेताओं को भरपूर समर्थन मिल रहा था।

सन् 1907 के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के मुद्दे सभापति के निर्वाचन को लेकर दोनों दलों में मतभेद पैदा हो गया। अत: उग्रदल नरमदल से अलग हो गया। यहाँ पर यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भले ही कांग्रेस पर नरमदल के नेताओं का प्रभाव था परन्तु जनता के हृदय पर उग्र दल के नेताओं का ही प्रभाव था। ब्रिटिश सरकार भी उग्र दल के नेताओं की घोर विरोधी थी। अत: सन् 1908 में तिलक को छह वर्ष की सजा सुनाकर माण्डले जेल में भेज दिया गया।

सन् 1916 में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के प्रयत्न से लखनऊ अधिवेशन में नरम व गरम दोनों दलों ने भाग लिया। कांग्रेस पर नरमदल का प्रभाव कम होता जा रहा था क्योंकि गोपाल कृष्ण गोखले और फिरोजशाह मेहता जैसे नेताओं का निधन हो चुका था। धीरे-ध ीरे कांग्रेस संघर्ष करने वाली संस्था बनती जा रही थी। बम्बई के विशेष अधिवेशन के बाद नरम दल नेताओं ने कांग्रेस से अलग होकर एक नई पार्टी का गठन किया। जिसका नाम उन्होंने 'लिबरल फेडरेशन' रखा। ''1917 के अंत में कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कराया जिसमें कहा गया था कि एकता के सूत्र में बँधी हुई भारतीय जनता की ओर से कांग्रेस महामहिम सम्राट को अत्यंत निष्ठापूर्वक और सम्मान के साथ गहरे प्रेम का विश्वास दिलाती है और यह निवेदन करती है कि भारत की जनता हर कीमत पर और हर तरह की परेशानियों के बीच रहकर भी ब्रिटिश साम्राज्य का साथ देगी।'' अत: यह कहा जा सकता है कि सन् 1917 तक भी भारतीय कांग्रेस की निष्ठा अंग्रेजी शासन के प्रति बनी हुई थी। सन् 1916 में लोकमान्य तिलक ने 'होमरूल लीग' की स्थापना की। तिलक और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ब्रिटिश साम्राज्य के अंतगर्त 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के समर्थक थे। होमरूल-लीग का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था। श्रीमती बेसेन्ट अरंडेल एवं वाडिया साहब की गिरफ्तारी से होमरूल आन्दोलन को और भी बल मिला।

सन् 1918 में प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। भारत ने इस युद्ध से ब्रिटेन की सहायता इसी आशा से की थी कि महायुद्ध समाप्त होने पर भारत को स्वशासन का अधिकार दे दिया जायेगा लेकिन युद्धोपरान्त भी भारत की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सन् 1919 भारत में अत्यधिक राजनीतिक उथल-पुथल का वर्ष रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् तुर्की के खलीफा को राजनायिक अधि कार सीमित कर दिए गए। अनेक धार्मिक स्थानों को तुर्की के अधिकार क्षेत्र से बाहर कर दिया गया। विश्व के अन्य मुसलमानों की भाँति भारत के मुसलमानों ने भी खलीफा इस दुर्गति व अपने धार्मिक स्थानों पर गैर मुसलमानों के आधिपत्य से नाराज थे। भारत में भी मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन आरम्भ किया जिसका भारतीय कांग्रेस ने भी समर्थन किया, फलत: भारत से हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल मिला। परन्तु यह एकता थोड़े ही समय तक रही।

कांग्रेस अधिवेशन अमृतसर में होना निश्चित था, परन्तु इस अधिवेशन के तीन-चार दिन पहले दो प्रमुख कांग्रेसी नेताओं डॉ० सत्यपाल व डॉ० सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर लिया। अमृतसर में इसका घोर विरोध किया गया फलत: वहाँ पर मार्शल लॉ लगा दिया गया, परन्तु 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला बाग में निहत्थे बच्चे, बूढ़ों, स्त्रियों व पुरुषों की एक सभा का आयोजन हुआ, जिस पर जनरल डायर ने अंधाधुंध गोलियाँ चलवाई। जलियाँवाला बाग बहुत बड़ा बाग था, मगर इसमें से निकलने का केवल एक रास्ता था, शेष तीन ओर से वह मकानों से घिरा था। डायर ने बाग को फौज द्वारा घेर लिया और निकास-द्वार पर एक फौजी दस्ता खड़ा कर दिया। उसके बाद उसने अपने फौजियों को राइफलों और मशीनगनों द्वारा अन्दर घिरी भीड़ पर गोली बरसाने का हुक्म दिया। वे तब तक गोली बरसाते रहे जब तक गोलियाँ खत्म न हो गई। हजारों लोग मरे और घायल हुए।''

सन् 1919 में ही रोलेट एक्ट लागू किया जिसने महात्मा गाँधी को प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ा। इसी दौरान गाँधी ने असहयोग आंदोलन आरम्भ किया। जिसका अध्ययन दूसरे शीर्षक के अंतर्गत किया जाएगा। सन् 1922 में चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने एक अलग पार्टी 'स्वराज पार्टी' का गठन किया। उनका विचार था कि केवल आंदोलन के माध्यम से स्वशासन प्राप्त नहीं हो सका जबकि गाँधी जी व उनके समर्थक असहयोग आंदोलन के दौरान चुनावों का भी बहिष्कार करना चाहते थे। कांग्रेस को एक और विभाजन से बचाने के लिए 'स्वराज पार्टी' ने कांग्रेस के कार्यक्रमों के अनुसार ही कार्य करने का निर्णय लिया परन्तु 1923 के चुनावों में भाग लिया, जिसमें उसे अच्छी सफलता मिली। सन् 1925 में चितरंजन दास के निधन से न केवल 'स्वराज पार्टी' बल्कि कांग्रेस को भी एक गहरा आघात लगा।

सन् 1925 से 1927 तक समय राजनीति के दृष्टिकोण से कोई विशेष न रहा। असहयोग आंदोलन के उतार व खिलाफत आंदोलन के समाप्त हो जाने से हिन्दू-मुस्लिम एकता भी समाप्त हो गई। देश के विभिन्न स्थानो पर हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़े हुए। यद्यपि गाँधी जी ने जनता से एकता बनाए रखने के लिए बार-बार आग्रह किया, परन्तु उस पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

सन् 1927 में साइमन कमीशन भारत आया। इस कमीशन में किसी भी भारतीय को सदस्यता नहीं दी गई थी। अत: इसका विरोध होना स्वाभाविक ही था। लाहौर में लाला लाजपत राय के नेतृत्व में साइमन के वहाँ पहुँचने पर विरोध किया गया। पुलिस के लाठी-चार्ज से लाला लाजपत राय घायल हुए व कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई।

सन् 1928 में वामपंथियों के बढ़ते प्रभाव को देखकर कांग्रेस के नेताओं ने एक प्रस्ताव रखा गया। जिसकी रूपरेखा मोतीलाल नेहरू ने बनाई थी। इस योजना के अंतर्गत स्वतंत्रता के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन ही एक उत्तरदायी सरकार का गठन करने का विचार था। परन्तु जवाहरलाल नेहरू व सुभाषचन्द्र बोस ने इसका खुलकर विरोध किया, फिर भी योजना इस आधार पर स्वीकार की ली गई कि सरकार को एक वर्ष का समय और दिया जाये, उसके पश्चात् ही सरकार के विरुद्ध आंदोलन छोड़ने का निर्णय लिया गया। कांग्रेस ने इस आंदोलन का नेतृत्व गाँधी जी को सौंप दिया और इसका नाम रखा 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' जिसका विवेचन 'गाँधी जी के राजनीतिक आंदोलन' शीर्षक के अंतर्गत किया जाएगा।

सन् 1934 में बिहार में भयंकर भूकम्प आया जिसने सारे राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर खींचा। पटना में तीन वर्ष पश्चात् सन् 1934 में कांग्रेस अधिवेशन हुआ जिसमें कौंसिल-चुनावों में भाग लेने सम्बन्धी निर्णय भी पारित हुआ। सन् 1934 के अन्त में महात्मा गाँध ी ने कांग्रेस से त्याग पत्र दे दिया। ''1934 के सत्र में गाँधी ने कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया, उनका काम फिलहाल पूरा हो चुका था। कांग्रेस से अलग होते हुए उन्होंने एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने बताया कि मुझमें और अनेक कांग्रेसियों में मतभेद

है और वह बढ़ता ही जा रहा है। यह स्पष्ट था कि कांग्रेसियों के बहुमत के लिए अहिंसा कोई बुनियादी धर्म नहीं था बल्कि यक एक नीति थी।'' सन् 1935 में भारत का नया संविधान बना जिसमें कांग्रेस स्पष्ट रूप से संतुष्ट न थी फिर भी उसने चुनावों में भाग लेने का निर्णय लिया। इस चुनाव की तैयारियों के दौरान ही 8 अक्टूबर 1936 को प्रेमचंद का निधन हो गया।

निष्कर्ष: सन् 1857 में स्वतंत्रता संग्राम भारतीयों ने इस उम्मीद के साथ लड़ा था कि हमें अंग्रेज सरकार से मुक्ति मिल जाएगी। परन्तु 1857 का स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजों ने कुचल दिया। भारत की आजादी के लिए कांग्रेस का जन्म हुआ। श्री ए०ओ० ह्यूम का आकलन था कि भारतीय तथा अंग्रेज सरकार में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो लेकिन ऐसा संभव न हो सका। 1905 में कांग्रेस नरमदल और गरमदल में दो भागों मेघं बँट गयी। गरमदल का विश्वास था कि नरमदल की नीतियों से स्वशासन स्थापित न हो सका। गाँध ी जी ने प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों को अंग्रेजों के पक्ष में लड़ने के लिए सेना में भेजा, परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों का दमन व अत्याचार आरम्भ कर दिया। 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला बाग में निहत्थै भारतीय जिनमें स्त्री पुरुष व बालक सभी को गोलियों से भून दिया। परिणामस्वरूप स्वराज पार्टी का उदय हुआ। कुल मिलाकर प्रेमचन्द युग भारतीय राजनीति का उथल-पुथल का युग था।

संदर्भ सूची:

1) रजनी पाम दत्त - 'आज का भारत' राजीव बेरी, मैकमिलन इंडिया लि० 2/10, अंसारी रोड़ नई दिल्ली-02, प्रथम हिन्दी संस्करण 1977 का पुनर्मुद्रण - 1996
2) विपिन चन्द्र - 'आधुनिक भारत' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रथम संस्करण 1990 का पुनर्मुद्रण 1998
3) अमृतराय - 'प्रेमचन्द: कलम का सिपाही', हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962

यशपाल की कहानियों में नारी संचेतना : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० हेमन्त पाल घृतलहरे

सहायक प्राध्यापक - हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय सनावल, जिला - बलरामपुर-रामानुजगंज (छ. ग.)

शोधसार

साहित्य समाज का दर्पण होता है, जो समाज में व्याप्त यथार्थ अनुभूतियों का साक्षात चरित्रांकन होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन और कौतूहल का विस्तार करना नहीं होता बल्कि साहित्य का परम उद्देश्य सत्य की खोज करना, समाज को एक दिशा प्रदान करना, मानवीय चेतना को जागृत करना, युगीन संवेदनाओं को तत्कालीन प्रासंगिकता के अनुकूल चित्रित करना आदि होता है। इस प्रकार मानव समाज में जो हो रहा है, उसे साहित्यकार अपने साहित्य में प्रकट करता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जन्म लेता है, पलता है अत: समाज की गतिविधियों से उनका जीवन परिचालित होता है। साहित्यकार भी मनुष्य है। वह भी उसी सामाजिक चेतना से उद्‌भूत होता है। सामान्य मानव से साहित्यकार की चेतना शक्ति अधिक होती है। अत: वह समाज को उसकी अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित करवाने के लिए साहित्यिक अभिव्यक्ति को माध्यम बनाता है। विशिष्ट साहित्यकार यशपाल की कहानियों में यह समस्त विशेषताएं परिलक्षित होती हैं। उनकी कहानियों में प्रगतिवाद एवं साम्यवाद के दर्शन होते हैं। वह मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक रहे हैं। अत: उनकी कहानियों में यह विचारधारा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अत्याचार एवं शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है और रूढ़ियों और अंधविश्वासों का खंडन करते हुए प्रगति के मार्ग पर चलने की राह दिखाइ है।

यशपाल ने अपनी कहानियों के माध्यम से सर्वाधिक नारी वेदना को प्रस्तुत किया है। भारत को स्वतंत्र हुए 75 वर्ष होने के आए लेकिन आज भी नारी पर जो अत्याचार हो रहा है, जो वह अत्याचार से शोषण से उबर नहीं हो पाई है, उसके हृदय की इस वेदना को, पीड़ा को, अनुभूतियों को यशपाल ने यथार्थ रूप के साथ प्रस्तुत किया है। अत: यशपाल की कहानियों में विशेष रूप से नारी संचेतना देखने को मिलती है।

शब्द कुंजी:- यशपाल, कहानियां, नारी संचेतना, समीक्षात्मक, अध्ययन, परिस्थिति, समाज, समस्या।

आलेख प्रस्तुति

यशपाल की गणना आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में की जाती है। वे स्वतंत्रता के बाद तथा प्रगतिवादी मार्क्सवादी लेखक रहे हैं। कहानी लेखन में जहाँ समष्टीवाद की बात आये, वहाँ यशपाल प्रेमचंद के बाद पहले लेखक है, जो उस धारा के होते हुए भी उससे भिन्न हैं। यशपाल ने अपने पहले कहानी संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' से लेकर 'लैम्प शेड' (सत्रहवाँ) तक 208 कहानियाँ लिखीं। उन चालीस वर्षों के दौरान कहानी क्षेत्र में अनेक आंदोलन हुए उन सब में जुड़ते हुए भी वे अछूते रहें। इसका कारण था, सामाजिक चित्रण। उन्होंने समाज में देखे हुए मुद्दों पर अपनी कलम चलाई। खासकर नारी विषयक उनका दृष्टिकोण उदारवादी रहा है। नारी के मनोभावों को वे बखूबी पहचानते थे।

यशपाल मानते थे कि नारी समाज की व्यवस्थापक है। नारी और पुरुष परस्पर पूरक हैं। 'शिव-पार्वती' के राजकीय तक्षक के शब्दों में "हे नारी रूपा देवी, आश्रय देने के लिए समर्थ तुम्हारे इसी रूप को पाने में पुरुष तुम्हारे लिए साधना करता है।" परंतु नारी

के इसी रूप को पुरुष अपना अधिकार समझकर उसे अपनी दासी बना लेता है और नारी का जीवन समस्याओं से ग्रस्त हो जाता है। पुरुषप्रधान समाज ने नारी को बेड़ियों में जकड़ लिया है। यशपाल ने अपनी कहानियों में ऐसी नारियों को वाचा दी है, जो बंधन से मुक्त होना चाहती हैं और पुरुष प्रधान समाज को यह बतलाना चाहा है कि नारी इस प्रकार के वातावरण से क्या अनुभव करती है।

यशपाल जिस देशकाल व वातावरण से संबंध रखते थे, वहाँ की नारियों की स्थिति का भी उन्होंने उल्लेख किया है। इसलिए इनकी कहानियों में कहीं न कहीं नारी जागरण मिल जाता है। समसामयिक समाज में जो परिवर्तन हो रहा था, रूढ़ियों और परंपराओं के विरूद्ध जो विद्रोह हो रहा था, पाश्चात्य तथा शिक्षा व साहित्य का जो प्रभाव पड़ रहा था, इन सबके द्वारा नारी जागरण की पृष्ठभूमि तैयार हुई। गुरूकुल कांगड़ी में इसके विपरीत संकीर्णता तथा सीमाएँ थीं जो यशपाल की चेतना से भिन्न थीं। सामन्तवादी समाज में नारी की दशा बुरी थी। घोर अन्याय और बन्धन हुए। पुरुष प्रधान समाज में नारी का अस्तित्व ही खो गया था। स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत संपत्ति बन गई थी। विवाहित नारी पर पुरुष अपना एकाधिकार मानता था, परंतु वह पूर्णतः स्वतंत्र था। पत्नी अपने पति परिवार एवं परंपरागत रूढ़ियों में उलझी हुई थी। मुक्ति के लिए आत्महत्या ही एकमात्र सहारा था। ये सारी हकीकत यशपाल की कहानियों में उजागर हुई है। इन कहानियों में जितनी भी नारी जागरण एवं नारी शोषण विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है, उन सबके मूल में उन्होंने पुरुष प्रधान समाज, सत्ता के अत्याचारों को ही दर्शाया हैं। यशपाल की अधिकत्तर कहानियों में यही नारी भावना और उनकी समस्या किसी-न-किसी प्रकार जुड़ी रहती हैं। उन्हीं के शब्दों में देखें कि पुरुष को नारी की किस प्रकार आवश्यकता है- "जैसे सूर्य के प्रकाश में हम सूर्य को पकड़ लेने की आवश्यकता नहीं समझते, उन किरणों से स्वयं ही हमारी आवश्यकता पूरी हो जाती है, वैसे ही वह (पुरुष) अपने जीवन में अनुभव होनेवाले सुनसान अंधेरे में नारी की उपस्थिति का प्रकाश चाहता है।

यशपाल की कहानियों में नारी के विधवा जीवन की समस्या

यशपाल ने 'वैष्णवी' और 'जादू के चावल' कहानियों में विधवा जीवन को चित्रित किया है। वैष्णवी में द्रौपदी, जो पोदी के नाम से जानी जाती है, 6 वर्ष की आयु में विधवा हो जाती है। उसके खेलने कूदने की उम्र में उसको वैधव्य झेलना पड़ता है। अपनी उम्र की लड़कियों के हाथ में चूड़ियां देखकर वह चूड़ियां पहनने की जिद करती है। उसकी बालसहज उत्सुकता उसे गुड़िया खिलौने घरों से खेलने के लिए अपनी ओर आकर्षित करती है। हर बार इसी वजह से मां के द्वारा पीटी जाती है।

"पोदी घर और बाहर सभी जगह अनावश्यक और तिरस्कृत थी गली-मुहल्ले के बड़े-बूढ़े बताते है आठ-दस वर्ष की रांड पोदी उपेक्षित और निरपेक्षित-सी भोले पुरोहित के दरवाजे पर और गली में बनी रहती थी, मुहल्ले के लावारिस कुत्तों पिल्लों की तरह, जिन्हें लोग घृणा से दुत्कारते और दया से सहते रहते हैं"।

यशपाल ने प्रस्तुत चित्रण के माध्यम से एक छोटी सी बालिका की कोमल भावनाओं पर समाज के द्वारा हर पल किए जाने वाले प्रहार को चित्रित किया है। जो वास्तविक और यथार्थ रूप में प्रत्येक हृदय को झकझोर देने वाला है।

वैश्यावृत्ति की समस्या

मार्क्सवादी साहित्यकार होने के कारण यशपाल का ध्यान हर एक उस मुद्दे से खिंचता है, जो शोषण का विषय हो। वैश्यावृत्ति हमारे समाज का कलंक है तथा शोषण एवं अनैतिकता की चरमसीमा है। यशपाल ने अपनी अनेक कहानियों में वैश्याओं की समस्या तथा उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वैश्यावृत्ति पूँजीवादी समाज की देन है। जो मात्र अपने मनोरंजन, अपने स्वार्थ के लिए शोषण करना ही जानते हैं। यहाँ व्यक्ति, नारी को एक वस्तु या साधन के रूप में देखता है। 'गंडेरी' कहानी में यशपाल ने वैश्या जीवन का करूण अध्याय खोला है। जब जवानी नहीं रहती तो वैश्या का जीवन और नर्क बन जाता है। 'गडेरी' की बाई जी राधेलाल के यहाँ मुजरा करने जाती है। मेकअप से उम्र छुपाने का प्रयास करती है। अधिक ठुमका लगाती है, पर लोग उल्टे उसकी हँसी उड़ाते हैं और कहते हैं- "राधेलाल, साली को एक पैसा मत देना। कब्र में पैर लटके हैं, चली है मुजरा करने"। यशपाल कहते हैं- "वैश्या के पास उसका जवान बदन एक मात्र पूँजी होती है। बदन की यह पूँजी आयु के साथ घटती है। उमर ढलने पर वैश्या दाँतों में दबाकर चूसी जा चूकी गंडेरी की भाँति नीरस हो जाती है। सच में बाई जी गंडेरी ही है। न जाने कितने दाँतों तले दबाकर चूसी हुई। बाई जी की बेबसी को देखकर जगमोहन कल्पना करता है- "बाई जी चीथड़ों में लिपटी टीन का कटोरा लिए गली में कोने पर खड़ी, दुआ देकर चुकटी-भर आटा माँग रही है। उनके चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं"।

इस प्रकार यहाँ लेखक ने वैश्याओं की ढलती उम्र की बेबसी और मजबूरी का चित्रण किया है। अपनी कहानी के माध्यम से यशपाल ने वैश्याओं के प्रति अपने विशिष्ट दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि स्त्रियां अर्थाभाव में अपने उदर की क्षुधा तृप्ति के लिए वैश्यावृत्ति को अपना लेती हैं। वास्तविकता में देखा जाए तो वैश्यावृत्ति उन्हें चारित्रिक हीनता प्रदान करती है, जबकि आत्मिक रूप में वह निर्दोष होती हैं।

वैवाहिक जीवन की समस्या

यशपाल ने वैवाहिक जीवन की विसंगतियों को अपने साहित्य में चित्रित किया है। यहाँ सामान्यत: दो कारण दिखाई पड़ते हैं- (1) विवाहेत्तर आकर्षण और पारस्परिक संदेह, (2) पुरुष द्वारा नारी का शोषण। यशपाल के कथा- साहित्य में विवाहेतर आकर्षण और सन्देह के कारण नारी की स्थिति और भी दयनीय बन जाती है।

यशपाल ने 'जहाँ हसद नहीं' और 'अपनी चीज' में ऐसी नायिकाओं का चित्रण किया है जो परपुरुष से आकर्षित होती हैं। पति को इस बात की भनक लगने पर उसका जीना दुश्वार हो जाता है। 'अपनी चीज' की नायिका आलोक कर्नल कौशिक की वृद्धि, वीरता और भावुकता के मेल से आकृष्ट होती है। इस बात का पता आलोक के पति को चलता है। वह आलोक के साथ अत्यंत सख्ताई से पेश आता है और एक दिन ऐसा आता है, जब आलोक के पति के ऊपर खून सवार हो जाता है और कर्नल की हत्या कर देता है। इस प्रकार दो हँसते-खेलते परिवार बिखर जाते हैं।

'मिट्ठो के आँसू' की 'मिट्ठो और' उत्तराधिकारी की मानी की समस्या एक ही है। मिट्ठो और मानी के पति नौकरी-धंधे के लिए बरसों उनसे दूर रहते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों परपुरुष की ओर आकृष्ट होती है।

'औरत' कहानी में भी इसी तरह बेमेल विवाह की समस्या के कारण नारी के जीवन में अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। रितिया का विवाह बिरजू नामक वृद्ध से कर दिया जाता है। हमारे समाज में अभी भी कई कन्याएँ इसी प्रकार बलि चढ़ा दी जाती हैं।

इस प्रकार यशपाल की कहानियों में नारी पारंपरिक न होकर, आधुनिक एवं समस्याओं से लड़नेवाली है, परंतु यहाँ इन समस्याओं के चित्रण के माध्यम से यशपाल यह भी बताना चाहते हैं कि नारी या पुरुष का पारस्परिक आकर्षण या विवाहेतर संबंध दोनों के वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन को क्षति पहुँचाता है। पति के संदेह से नारी का जीवन नर्क बन जाता है। दोनों स्थितियाँ परिवार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

शोषण की समस्या

यशपाल ने अपनी हर कहानी में शोषण को ही केन्द्र में रखा है। चाहे वह नारी हो, दलित हो या कोई निम्नवर्गीय गरीब हो, हर कोई किसी न किसी के हाथों शोषित है। यशपाल मार्क्सवादी एवं साम्यवादी होने के नाते उनकी दृष्टि में यही मुद्दे आये हैं। भारतीय समाज पुरुष प्रधान होने के कारण नारी का शोषण सदियों से होता रहा है। मिथ्या परंपराएँ तथा बिना कारण के रीति-रिवाजों के ढकोसले नारी का शोषण करते आये हैं। संसार रथ को चलाने के लिए नारी पुरुष दोनों समान पहिये होते हुए दोनों में असमानता रखी जाती है, जबकि समाज की व्युत्पत्ति का स्त्रोत स्त्री है फिर भी वह इतनी अपमानित, पीड़ित एवं शोषित क्यों है? क्योंकि पुरुष उसे वस्तु समझता है । नारी की पराधिनता का दूसरा कारण हमारी सामाजिक मान्यताओं और परंपरागत आदशों से संबंधित है। नारी सदियों से शोषित रही है अत: आज भी पुरुष वर्ग उसे इसी रूप में देखना चाहता है।

आज की व्यवस्था में नारी का स्थान क्या है, यह यशपाल की नजर से देखें तो 'कुछ समझ न सका' कहानी में व्यास और सुजला के संवाद में शब्दित किया गया है। व्यास कहता है- "पुरुष के लिए उपयोगी जीवों में स्त्री का स्थान मुर्गी से ऊँचा है"।

इसी प्रकार पहाड़ी लोगों की अंधश्रद्धा व्यक्त करती हुई एक कहानी 'डायन' है। सुर्जू एक भोली-भाली युवती है, उसे पुंदना से प्रेम हो जाता है। वह उसके साथ भाग जाती है। पुंदना के घर पर अलग ही रिवाज था। परंपरा के नाम पर सुर्जू को पुंदना के शेष तीन भाइयों की पत्नी भी बनना पड़ता है। इस कहानी में रूढ़ियों के मजाक के साथ परंपराओं और अंधविश्वासों से समाज का शोषण करनेवाले पुरोहित पर भी व्यंग्य किया है।

लैम्पशेड' कहानी में काम-वासना के लिए नारी के उत्पीड़न का चित्रण किया है। इसमें तानाशाही तथा शोषण का निर्दय निरूपण किया गया है। इसके द्वारा बताया गया है कि हम क्या हैं? हम किस प्रकार एक मनुष्य से इस तरह का व्यवहार कर सकते हैं?

जर्मन सेना के सैनिकों के लिए यहुदी स्त्रियों को जबरदस्ती पकड़कर वेश्या बनाया जाता था। इतना ही नहीं, परंतु उनकी बाई कोहनी से कलाई तक गुदना करके श्वेश्या जर्मन सेना के लिएश ऐसा लिख दिया जाता था।

इस प्रकार यशपाल ने अपनी कहानियों में बताया है कि स्त्री का घर, परिवार और समाज में शोषण होता ही रहा है। यही नहीं कि मात्र जिस पुरुष के पास स्त्रियाँ रहती हैं, वहीं उसका शोषण हो रहा है, परंतु स्त्रियाँ जहाँ रहती हैं, जिस समाज में होती है, वहाँ उसका शोषण होता है। यशपाल अपनी कहानियों में व्यंग्यात्मक रूप से चित्रण करते हुए समाज की पशुता का प्रदर्शन करते हैं। सामाजिक माना गया प्राणी मानव, जब नारी की बात आती है, तब पशुता की ओर चल पड़ता है। यशपाल समाज की नारी को जागृति की ओर ले जाना चाहते हैं।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि यशपाल ने अपनी कहानियों में यथार्थ का चित्रण किया है। समाज की परंपराएं मान्यताएँ रीति-रिवाज के बंधनों से घिरी नारी को यशपाल ने केन्द्र में रखा है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यशपाल ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को चित्रित किया है और इन्हीं के साथ-साथ नारी पात्रों के द्वारा नारी चेतना की चर्चा भी की है। यशपाल ने अपनी कहानियों में अपने युग के कहानीकारों से भिन्न रूप को अभिव्यक्त किया है। यशपाल ने मार्क्सवादी के रूप में सामाजिक समस्याओं को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के प्रत्येक पहलू का स्पर्श किया है। उन्होंने समाज में नारी की स्थिति को दर्शाते हुए उसकी कोमल भावनाओं को भी चित्रित किया है। समाज में नारी की स्थिति क्या है? वह उसे वैसे ही रखना चाहती है अथवा बदलना चाहती है, इन भावनाओं के साथ-साथ नारी का विविध रूढ़ियों, प्रथाओं, अधिकारों, जिम्मेदारियों के द्वारा हो रहे शोषण को भी उन्होंने अभिव्यक्त किया है। समाज किस प्रकार से पवित्रता, धर्म और नैतिकता के साथ जोड़कर नारी का शोषण करता है, इसका यथार्थ चित्र यशपाल की कहानियों में वर्णित है। यह बात यहां बेधड़क रूप से निर्देशित की गई है, कि चाहे वह विधवा हो, वैश्य हो, विवाहित हो, प्रेमिका हो या कुमारी हो अथवा बिन ब्याही औरत हो, सबके साथ कोई न कोई रूप में समाज शोषण करता रहा है। यह बात बखूबी यशपाल की कहानियों में वर्णित की गई है। इन सभी दृश्यों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यशपाल की कहानियों का गूढ़ चिंतन अतिअपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यशपाल- लैंपशेड, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
2. यशपाल- तर्क का तूफान, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
3. यशपाल- तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
4. यशपाल- भस्मावृत चिंगारी, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
5. यशपाल- ज्ञानदान, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
6. यशपाल- वो दुनिया, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
7. यशपाल- खच्चर और आदमी, लोक भारती पेपरबैक्स, विप्लव कार्यालय लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010.
8. डॉ मीनाक्षी व्यास- नई चेतना और सामाजिक विधान, रोशनी पब्लिकेशन कानपुर, सन 2008.
9. डॉ कुसुम अग्रवाल- यशपाल का कथा साहित्य, क्लासिक पब्लिकेशन हाउस, जयपुर, सन 1987.
10. सी०एम० योहन्नान- यशपाल का कहानी संसार: एक अंतरंग परिचय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद सन 2005.

संत कबीर कृतियों एवं संगीत का अंतर्सम्बंध

राकेश

पीएच०डी० शोधार्थी, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)

प्रो० (डॉ०) विमल

शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

संत कबीर साहेब 15वीं शताब्दी के एक सत्य रूपी जीवन जीने वाले महान संत थे जिन्होंने समाज की झूठी रीति रिवाजों, एवं आडम्बरों से मुक्त होकर जीवन यापन किया था। इनका जन्म विक्रम संवत 1455 को ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा को हुआ था। इनके पिता का नाम नीरू जुलाहा एवं माता का नाम नीमा था। सतं कबीर के जन्म से सम्बंधित एक साखि निम्नलिखित है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।

जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी तिथि प्रकट भए।

घन गरजे दामिनी दमकै, बूंदे बरसे झर लाग गए।

लहरतारा तालाब में कमल खिलें, तहं कबीर भानु प्रकट भए।[1]

संत कबीर ने अपनी काव्य कला में मानव को प्रत्येक मार्ग पर सच्चाई से चलने की प्रेरणा प्रदान की है। संत कबीर की वाणी के बारे में कहा गया है कि कबीर साहेब की वाणी अटपटी है यह शीघ्रता से किसी को समझ नहीं आती है इसे समझने के लिए किसी सत्यपुरुष अथवा गुरू की आवश्यकता पड़ती है। इस संदर्भ में दो पंक्तियां, मिम्निलिखित है-

कबीर वाणी अटपटी झटपट लखि ना जाए।

जो जन इसको लखि लवे, वां की खटपट ही मिट जाए।[2]

संत कबीर काव्य एवं संगीत का अति घनिष्ठ सम्बंध है। संत कबीर की तीन प्रकार की रचनाएँ है जो विश्व भर में प्रचलित हैं मुख्य रूप से साखि, शब्द (बाणी) एवं रमैनी। जनसाधारण में इन्हीं तीन रचनाओं का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। संत कबीर का काव्य सांगीतिक तत्वों से परिपूर्ण है। संत कबीर साहेब के समग्र काव्य के प्रचार-प्रसार में संगीत का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर से लेकर ग्रामिण आँचल के लोक कलाकारों तक गाई जाने वाली संत कबीर की समस्त रचनाएँ सांगीतिक तत्वों से ओतप्रोत हैं। शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने अधिकतर राग आधारित तत्वों से निहित रचनाएँ प्रचारित-प्रसारित की हैं जैसे- पं० कुमार गंधर्व द्वारा गाई रचनाओं में शास्त्रीय तालों जैसे- तीनताल, एकताल आदि का प्रयोग किया है। सुगम संगीत के कलाकारों जैसे अनूप जलोटा, कुमार वीशु, मदन गोपाल आदि ने अधिकतर कहरवा, रूपक, दादरा आदि तलों में बद्ध रचनाएँ गाई हैं। इसके अतिरिक्त पद्म श्री प्रहलाद सिहँ टिपान्या, कालूराम बामनिया, नीरज आर्य, शबनम विरमानी, आदि गायकों ने लोक संगीत शैली को आधार बनाकर संत कबीर वाणियों प्रचार-प्रसार किया है।

भूमिका

संत कबीर काव्य कला का संगीत कला के साथ एक पारम्परिक संयोग है जो वर्षो से चला आ रहा है। यदि संगीत ना होता तो कबीर काव्य को पुरुष ही समझ पाते परन्तु संगीत की मीठी धुनों ने इस काव्य शैली की समस्त रचनाओं को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया है। संत कबीर की रचनाओं में संगीत के तीनों प्रकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत तीनों विधाओं के गायक वादकों ने इसे प्रचारित-प्रसारित करने में अपना योगदान दिया है। शास्त्रीय

संगीत की कलाकारा विदुषी सुमित्रा गुहा, किशोरी अमोनकर ने 'घट-घट में पंछी बोलता है" 'मोको कहाँ ढूंढे बन्दे, आदि रचनानाओं को शास्त्रीय सांगीतिक तत्वों से ओत-प्रोत करके गाया है। तीनलाल की विलम्बित एवं मध्य लय को आधार बनाकर भिन्न-भिन्न रागों में स्वरबद्ध करके श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया है। सुगम संगीत के कलाकार अनूप जलोटा कुमार वीशू मदन गोपाल जैसे अनेक गायकों ने सरल धूनों में स्वरबद्ध करके अनेक रचनाओं को जीवन्त किया है जैसे- चदरिया झीनी रे झीनी, बुरा जो देखन मैं चला, मेरे सतगुरु देई बता, इसके अतिरिक्त संत कबीर काव्य के प्रचार-प्रसार में लोक संगीत के कलाकारों का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

इसमें लोक संगीत आधारित अनेक मंच जैसे- लोकायन, राजस्थान कबीर यात्रा, ताना बाना, माटी बानी आदि का भी योगदान रहा है। ये उपरोक्त ऐसे मन्च हैं जो लोक कलाकारों को संत कबीर वाणी आदि के प्रचार-प्रसार एवं स्तुति हेतु अवसर प्रदान करते हैं। अभी पिछले दिनों श्री गोपाल जी के निर्देशानुसार ''राजस्थान कबीर यात्रा" का आयोजन हुआ जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक के 300 कलाकार एवं तीन लाख श्रोताओं ने भाग लिया था। इसमें मैं स्वयं भी एक कलाकार के रूप में विद्यमान रहा हूँ इसमें कालुराम बामनिया, नीरज आर्य शबनम् विरमानी, मूरालाल मारवाड़ी काशंम खां, भंवरी देवी, जैसे अनेक अंतर्राष्ट्रीय लोक कलाकारों, ने कबीर कृतियों का गुणगान किया। संत कबीर सम्बंधित इन कार्यक्रमों से संगीत के सभी पक्षों का प्रयोग भलिभांति किया जाता है। कबीर कृतियों में संगीत की अति महत्वपूर्ण भूमिका है।

संत कबीर काव्य अथवा रचनाओं में संगीत एक जड़ के समान कार्यरत है जबकि संगीत उसकी जड़ है। इन रचनाओं में विभिन्न सांगीतिक तत्व विद्यमान हैं जो समय व स्थिति के अनुसार कलाकारों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।

संत कबीर काव्य में प्रयोग होने वाले सांगीतिक तत्व

राग- संत कबीर की रचनाएँ अधिकतर आशा शिवरंजनी, देश, काफी, पीलू आदि रागों मे स्वरबद्ध हैं।

ताल- इन कृतियों में प्रयोग होने वाली मुख्य ताले कहरवा, चांचर (दीपचन्दी) तीनताल आदि हैं।

लय- ये रचनाएँ मध्य एवं द्रुत लय पर ही निर्भर रहती हैं।

स्वर- इन कृतियों में स्वर पक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाता है। संत कबीर की सर्वाधिक रचनाओं में स्वर को अधिक देर तक गाया जाता है जैसे ''इन सुरता को करणो है ब्या ऽ ऽ ऽ ह ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ। अधिकतर रचनाएं कोमल स्वरों सें निर्मित होती हैं जो गम्भीर प्रकृति एवं करूण रस को उत्पन्न करती हैं।

एक रचना जो राग मधुवन्ती पर आधारित है तथा कहरवा ताल में लिपिबद्ध है। इसे पं० भीमसेन जोशी के द्वारा प्रचारित-प्रसारित किया गया है जो निम्नलिखित है-

स्वरलिपि- गुरुबिन कौन बतावै बाट, राग मधुवन्ती, ताल कहरवा

1	2	3	4	5	6	7	8
स्थाई :							
				मं	मं	प	–
				गु	रु	बि	न
नी	–	ध	प	मं	ग	मं	प
कौ	ऽ	न	ब	ता	ऽ	वे	ऽ
धा	–	–	–	धापा	मंपा	धानी	––
बा	ऽ	ऽ	ट	हाँ ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
नी–	–	रें	सांनी	नी	सांनी	ध	प
बड़ा	ऽ	वि	कऽ	ट	ऽऽ	र	म
प	–	–	–				
घा	ऽ	ऽ	ट				
×				0			
अंतरा :							
				धनी	सानी	धा	धा–
				भ्रान्ती	कीप	हा	डी–
नी	सा	रे	पा	मं	–	रे	रे
न	दि	या	ऽ	बी	ऽ	च	में
रे	मं	मं	पा	–	ध	नी	–
अ	हं	का	ऽ	र	की	ऽ	ऽ
धा	–	–	–				
ला	ऽ	ऽ	ट				
×				0			

इसके अतिरिक्त कबीर कृतित्व में मीण्ड, खटका, मुर्की, तान आलाप आदि सभी सांगीतिक तत्वों का प्रयोग होता है। पं० कुमार गंधर्व अधिक आलाप एवं बोलतानों को प्रयोग करते हुए गायन करतें हैं। पं० भीमसेन जोशी इन रचनाओं में राग विस्तार एवं आलापचारी को महत्व देते हैं इनके द्वारा गाई एक रचना 'नाम जपन क्युं छोड़ दिया, में पं० जी ने करूण रस से भरपूर शास्त्रीय शैली को प्रयोग किया है जिसमें कहरवा ताल की मध्य गति को प्रधानता प्रदान की है। ये भजन यू-टयूब इत्यादि पर भी अपलोड किए गए हैं।

संत कबीर के काव्य में निर्गुण निराकार ब्रह्म को मान्यता प्रदान की गई है। उनकी अनेकों रचनाओं में ऐसा दर्शाया गया है जैसे-

तेरा साईं तुझमे, ज्यों पुहपन में बास,
कस्तूरी के मृग ज्यूं, फिरी फिरी सूंघे घास
संपटि मांहि समाइया, सो साहिब नही होई,
सकल माण्ड में रम रह्या, साहिब कहिए सोई।।[4]

ये रचनाएँ संगीतबद्ध होकर मानव के हृदय पर सीधा प्रहार करती हैं। इनकी चोट मार्मिक है जिसे भी लगी वो सुधर गया जिसे नही लगी वो बिखर गया। ये ऐसी रचनाएं हैं जिनमें मानव को संदेश दिया गया है कि ये देश बेगाना है जहाँ तू सब कुछ स्थाई कर रहा है धन बटोर रहा है। इसी विषय संबन्धित संत कबीर की एक रचना जो राग आशावरी में स्वर बद्ध तथा ताल कहरवा में ताल बद्ध है-

रहना नही देश बिगाना है

1. ये संसार कागज की पुड़िया, बूंद लगे गल जाना है।
2. ये संसार ओस का मोती, हवा चले डुल जाना है।
3. ये संसार झाड़ और झीखर, निरख-परख पगधरना है।
4. कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।[5]

प्रसिद्ध भजन एवं गजल गायक श्री अनूप जलोटा के द्वारा राग देश पर आधारित कबीर रचना चदरिया झीनी रे झीनी जिसमें भजनी कहरवा ताल एवं राग देश का प्रयोग किया गया है।

यह रचना सतं कबीर की गेयात्मक रचनाओं में अति महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस रचना में अनूप जलोटा ने अपनी मधुर वाणी से अतं में तीन चार रागों का भी तिरोभाव-आर्विभाव किया है जो श्रोताओं के चित को प्रसन्न करते हैं। संत कबीर की रचनाओं एवं संगीत के प्रचार-प्रसार का सबसे बड़ा योगदान 'राजस्थान कबीर यात्रा' मंच का है जिसे श्री गोपाल जी द्वारा संचालित किया जाता है। इस यात्रा में देश विदेश के सैंकड़ो कलाकार अपनी मण्डली के साथ कबीर वाणी प्रस्तुत करते हैं। इसमें सैंकड़ो गायक-वादक अपनी-अपनी शैली एवं बोली में कबीर वाणियों का गुणगान करते हैं। इनकी सभी प्रस्तुतियों को मिडिया (फेस बुक, यू-टयूब, इन्सटाग्राम आदि) के माध्यम से लाखों श्रोताओं तक भेजा जाता है। ये सभी प्रस्तुति पूर्ण रूप से संगीतमयी होती हैं।

अतः अंत में कह सकते हैं कि संत कबीर की रचनाओं एवं संगीत का गहरा अंतर्सम्बध है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, डॉ० मुरारीलाल 'सुरस' कबीर की काव्य-कला, पृ० - 10
2. टिपान्या, प्रहलाद सिंह, अंतर्राष्ट्रीय कबीर भजन गायक के साक्षात्कार द्वारा संकलित
3. वेदान्त भारद्वाज के साक्षात्कार द्वारा प्राप्त ध्वन्यांकन के आधार पर स्वं निर्मित
4. शर्मा, डॉ० मुरारी लाल 'सुरस', कबीर की काव्य-कला पृ० - 60
5. रहना नहीं देश बिराना है, https:èkèkajabshahari

“गणेश शंकर विद्यार्थी की धार्मिक व सांस्कृतिक चेतनाः एक मूल्यांकन”

आदित्य पाठक

शोधार्थी, नेट-जे.आर.एफ. हिंदी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

धर्म और संस्कृति सामाजिक जीवन में विशेष महत्व रखती है। धर्म तथा संस्कृति को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता देखी जाती रही है।विद्यार्थी जी के काल में समाज धर्म की विकृति के कारण विषाक्त हो गया था तथा सभी धर्म परस्पर शत्रु की तरह बर्ताव करने लगे थे। इस शत्रुता का विद्यार्थी जी ने प्रबल विरोध किया। साथ ही किसी धर्म की मलिनता को दूर करने हेतु सार्थक प्रयास किया। यह उनकी धार्मिक चेतना का फल है। काल के प्रभाव में आने पर संस्कृति दोषयुक्त हो जाती है। इन्हीं दोषों का समाधान अपनी लेखनी के माध्यम से करने की स्तुत्य कोशिश किया। इससे विद्यार्थी जी की सांस्कृतिक चेतना परिलक्षित होती है।

विद्यार्थी जी के समय में धार्मिक संगठन विशेष रूप से हिन्दू तथा मुसलमान दोनों द्वारा अलग-अलग बनाये जा रहे थे।दोनों परस्पर दुश्मनी की निगाह से देखने लगे थे। इस वैर की भावना को दूर कर धर्म के लिए प्रयास विद्यार्थी जी ने किया। उनकी मान्यता थी कि दूसरे धर्म के लोगों से अपने धर्म की धर्म की रक्षा की जगह अपने धर्म में काल-प्रवाहके कारण आयी मलिनता को दूर किया जाए। उन्होंने तटस्थता के साथ हिन्दू धर्म के विविध क्षेत्रों की वस्तुस्थिति बतलाई। यह विद्यार्थी जी की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे केवल समस्याएँ नहीं गिनाते हैं बल्कि उनके समाधान करने का प्रयास भी करते हैं।

‘हिन्दू महासभा’ उस समय के हिन्दू संगठनों में सबसे ऊपर थी।वह हिंदुओं के पक्ष की बात करती थी और मुसलमानों के प्रति घृणा और वैर भाव पैदा कर रही थी। यह विद्यार्थी जी को ठीक न लगा।उन्होंने ‘हिन्दु महासभा’ को संबोधित करते हुए कहा- “इसलिए हमारा प्रथम अनुरोध हिन्दू महासभा से यह है कि वह इस विरोध और प्रतिशोध के काँटे को हिन्दू संगठन की छाती से निकाले। यदि हिन्दू महासभा इस काम को करने में हीला-हवाला करेगी तो वह देश के प्रति विश्वासघात करेगी”।[1]

विद्यार्थी जी हिन्दू धर्म से जुड़े चार क्षेत्रों-मंदिर, तीर्थ, संस्कार एवं बाबा-वैरागी की विसंगतियाँ दिखलाई हैं। विद्यार्थी जी चाहते थे कि इन क्षेत्रों की विसंगतियों को दूर करने के लिए ‘महासभा’ ठोस कदम उठाये। मंदिरों में दिए जा रहे दान का समुचित उपयोग समाजोत्थान में हो। साथ ही मंदिरों में व्याप्त अव्यवस्था दूर हो तथा प्रबंधन के लिए एक समिति का निर्माण किया जाय।

तीर्थ-स्थलओं में लूट का वातावरण था।आम जन को अनेक प्रकार के आडंबर कर, भयभीत कर दान के रूप में धन की उगाही की जाती थी।इस तरह के दूषित वातावरण से विद्यार्थी जी अत्यंत चिंतित थे। इसलिए कुछ तीर्थस्थलों के विषय में उन्होंने अत्यंत कटु वचन का प्रयोग करते हुए कहा- “हरिद्वार, वाराणसी, अयोध्या, प्रयाग, अवंतिका आदि तीर्थों की दशा जिन सज्जनों ने देखी है उनसे यह बात छिपी नहीं है कि हमारे वर्तमान तीर्थ का वेश्यागृहों के सदृश अपवित्र हैं”[2]

विद्यार्थी जी के मानना था कि धार्मिक रीति-रिवाजों के ज्ञान के अभाव में अनेक लोगों का शोषण किया जाता है।उन रीति-रिवाजों को केंद्र में एक सर्वसामान्य के लिए एक पुस्तक का प्रकाशन किया जाय।इससे आम जन उन संस्कारों की विभिन्न प्रक्रियाओं से परिचित हो सकेंगे। इससे विभिन्न धार्मिक संस्कारों के नाम पर होने वाले ठग से बचा जा सकेगा। इस क्षेत्र में ‘महासभा’ को कार्य करना चाहिए। इसी पर विद्यार्थी जी ने कहा- “हिन्दू महासभा को चाहिए कि वह संस्कार संबंधी एक ऐसी सरल पुस्तिका प्रकाशित करे, जो मत-मतांतरोंके आचार्यों द्वारा अनुमोदित हो। ऐसा करने से उससे कई पुरोहित-प्रताड़ित, अज्ञ, निर्धन हिन्दुओं को सहायता मिलेगी”[3]

उस समय बाबा-वैरागियों के आचरण शास्त्र-विरुद्ध थे। उनके बाह्य और आंतरिक जीवन में बहुत बड़ा अंतर था। लोक जीवन में सदाचरण करना, परमात्मा की अनन्य भक्ति करनातथा काम, क्रोधादिक विकारों से मुक्ति पाने की प्रेरणा देना आदि अनेक कार्य करते हुए वे दिखते थे। किंतु, आंतरिक जीवन में वासनाओं में लिप्त रहकर धनार्जन के विविध हथकंडे आजमाते थे। ऐसे पाखंडी बाबाओं पर विद्यार्थी जी इस पर कहते हैं- "ये आलस्य, दुराचार, घृणित जीवन और पाखंडकी चलती-फिरती मूर्तियाँ हमारे समाज की कितनी अधिक क्षति करती हैं, इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं है"[4]

विद्यार्थीयुगीन समाज में धर्म के नाम पर देश में वैमनस्यपूर्ण माहौल था। धर्म का नाम सुनते ही आम जन को आक्रोश आ जाता था। यह उन आम भोले-भाले लोगों में ही देखने को मिलता था जो शिक्षित नहीं थे। धर्म के ज्ञानाभाव के कारण चालाक राजनेताओं द्वारा उन लोगों की बुद्धि भ्रष्ट कर दी जाती थी। ऐसी भ्रष्ट बुद्धि वालों के पास अपना ज्ञान नहीं था कि वे सही या गलत को समझ सकें। उन्हें इतना ही बताया जाता था कि धर्म या मजहब के नाम पर जान देना या लेना जायज है। मुट्ठी भर की संख्या वाले उन चालाक लोगों ने पूरे समाज में धार्मिक उन्माद पैदा कर रखा था। इससे वे अपनी स्वार्थ-लिप्सा कर रहे थे। इस पर विद्यार्थी जी ने कहा- "यहाँ है बुद्धि पर परदा डालकर पहले ईश्वर और आत्मा का स्थान अपने लिए लेना और फिर धर्म, ईमान, ईश्वर और आत्मा के नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए लोगों को लड़ाना-भिड़ाना"[5] यह दोनों धर्मों में समान रूप से विद्यमान था। इसी पर उन्होंने आगे लिखा- "रमुआ पासी और बुद्धू मियाँ धर्म और ईमान को जानें या न जानें, परन्तु उसके नाम पर उबल पड़ते हैं, और जान लेने और जान देने के तैयार हो जाते हैं"[6]

'जिहाद' एक ऐसा शब्द है जो विद्यार्थी जी के समय से लेकर अबतक सबसे ज्यादा विवादित रहा है। इस 'जिहाद' को लेकर विद्यार्थी जी का स्पष्ट मानना था कि धार्मिक 'जिहाद' की जरूरत देश को नहीं है। यदि जिहाद करना ही है तो धर्म के नाम पर हो रहे दंगों और खुलेआम कत्लेआम के विरुद्ध कीजिए। राष्ट्र की स्वाधीनता के मार्ग पर अवरोध पैदा करने वाले उन अवरोधकों के विरुद्ध जिहाद की जरूरत है। इससे यही जिहाद राष्ट्र -हित में योगदान देगा। उदाहरण के रूप में वैदिक यज्ञों में पशुविरोधी आचरणों को दूर करने हेतु बुद्ध ने जिहाद किया था। फिर काल -प्रवाह में बौद्ध मठों में व्याप्त अनाचार और धार्मिक मलिनता को स्वच्छ और पवित्र बनाने हेतु शंकराचार्य ने जिहाद किया। इसी तरहहर युग किसी-न-किसी विसंगति के विरुद्ध जिहाद होता रहा है। विद्यार्थी जी के युग की धार्मिक विद्रूपताओं को दूर करने के लिए समाज को जिहाद करने प्रेरणा विद्यार्थी जी दे रहे थे। कारण कि इन्हीं विद्रूपताओं के कारण हिन्दू -मुसलमान एक-दूसरे के शत्रु बन बैठे थे। इस पर उन्होंने ने स्पष्ट लिखा "हम इस धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध जिहाद छेड़ना चाहते हैं। हम न तो ऐसे धर्म को धर्म कहते हैं और न ऐसी मूर्खता को धर्म-स्नेह के नाम से पुकारने को तैयार हैं। चाहे हिंदू हो या मुसलमान यदि वे अपने वाक्यों को तर्क,बुद्धि और अनुभव-ज्ञान के बल पर पुष्ट नहीं कर सकते तो हम उन कार्यों को ढकोसला कहेंगे"[7]

विद्यार्थी जी के समय में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था द्वारा भारतीयों पर नित्य अत्याचार किए जा रहे थे।उस परतंत्रता में सांस्कृतिक क्रियाकलापों के प्रति विद्यार्थी जी विचारधारा अलग थी। देश में दो तरह के वर्ग थे। पहला साधनहीन वर्ग तो दूसरा साधनसम्पन वर्ग। साधनहीन वर्ग वाले बहुसंख्यक थे और साधनसंपन्न वर्ग वाले अल्पसंख्यक। देश की अधिकांश जनता गरीबी के भार तले दबी हुई थी। किंतु, साधन-संपन्न वर्ग उसे नजरंदाज किया करता था। वे इसी वैषम्य को दिखलाते हुए विद्यार्थी जी ने कहा- "उन्हें मतलब नहीं कि जननी के किस अंचल में छेद हो गया। उन्हें सरोकार नहीं कि किस झोपड़े की दीवारें अब गिरीं और तब गिरीं। वे जानना नहीं चाहती कि जिस घडी उनके यहाँ दीवाली है उसी घडी दूसरों के यहाँ, उन्हीं के से दूसरे, उन्हीं की-सी मिट्टी के बने दूसरे और दूसरे भी नहीं, किन्तु अपनों ही के यहाँ दीवाला है"[7] ऐसी विषमता को देखते हुए वे चाहते थे कि दीपावली में उनके अंदर सोयी हुयी संवेदना जाग जाये।। वे महसूस कर सकें दूसरों के कष्टों को,तभी त्योहारों की सार्थकता है।कहने का अभिप्राय है कि संस्कृति हमें बहुकुछ सिखाती है। उससे प्रेरणा लेकर हमें स्वयं और समाज का उत्थान करना चाहिए। यह उत्थान व्यक्तित्व के गुणों से संबंधित है। परंपरा का अंधानुकरण संस्कृति को निष्प्राण बना देता है।उसमें मलिनता आ जाती है।इसीलिए विद्यार्थी जी दीपमाला से अनुरोध करते हैं "दीपमाला! तेरे प्रकाश में,सुख और समृद्धि-स्वरूपा इस ज्योति में देश की आत्मा दरिद्रता के साथ,अपनी अशक्तता और असमर्थता का चित्र पूरे हृदय के साथ देखे। वह देखे कि भारतवासी कीट-पतंगों की मौत मर रहे हैं"[8] सांस्कृतिक क्रियाकलाप का उद्येश्य व्यक्ति को मानवीय मूल्यों से युक्त करके ऊर्जावान बनाना है। दीपमाला के मा से विद्यार्थी जी आम जन को समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि दीपावली असत्य के विरुद्ध सत्य की जीत का संदेश देती है यदि हम सच्चे अर्थ में दीपावली मनाना चाहते हैं तो हमें असत्य और अत्याचार की प्रतिमूर्ति अंग्रेजी शासन-व्यवस्था के विरुद्ध हुंकार भरना चाहिए।यदि ऐसा नहीं

करते हो तो पीढ़ी कभी माफ नहीं करेगी। इसीलिए उन्होंने कहा- "फिर तेरी जागती ज्योति का दोष न होगा, समझा जाएगा कि मनुष्य में, मनुष्य कहलाते हुए भी देखने और समझने की शक्ति नहीं रही"[9]

होली भारतीय समाज में मनाया जाने वाला सबसे बड़ा लोकपर्व है। यह उल्लास का पर्व है।सभी लोग एक दूसरे को प्रेमपूर्वक रंग लगाते हैं।। मजाक और शोर इस पर्व का अभिन्न अंग हैं। विद्यार्थी जी ने भारतीयों को इस तरह से उल्लसित होते देखा तो वे आग-बबूला हो गये। कारण यह कि भारतीयों का हर जगह तिरस्कार किया जा रहा था। उनके साथ पशुओं-सा बर्ताव होता था। वे नित्य गरीब होते जा रहे थे। ऐसी विकराल स्थिति में आनंदातिरेक में होली मनाना मूर्खता का परिचायक था। अपने वर्त्तमान शोचनीय दशा के प्रति किसी को चिंता नहीं थी। इस पर विद्यार्थी जी ने उन लोगों को डाँटते हुए कहा- "हँसने का नहीं, रोने का स्थान है, जब हम देखते हैं, कि हर तरह की पराधीनता की बेड़ियों में बँधे होने पर भी, पेट-भर भोजन के लिए तरसते और शरीर को रोगों का घर बनाए हुए भी,लोग ऐसे अवसर पर कहकहे मारने से बाज नहीं आते"[10] यह झूठा उल्लास वर्तमान की भयावह स्थिति को भूलने का प्रयास मात्र है। हम अपने युग के वैषम्य को दूर करने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। तभी हम सच्चे अर्थ में होली मना सकेंगे।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि विद्यार्थी जी ने धार्मिक धर्म व संस्कृति से संबद्ध विषयों की जड़ तक जाकर उसका विश्लेषण व मूल्यांकन किया है। घर्म और संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण अनेक प्रकार की विद्रूपताएँ धर्म और संस्कृति के साथ जुड़ गई। इन विद्रूपताओं को उद्भाषितकर विद्यार्थी जी ने उनके समाधान का स्तुत्य प्रयास किया जो उनकी धार्मिक चेतना व सांस्कृतिक चेतना का सुफल था।

संदर्भ

1 सलिल, सुरेश(संपा)- गणेशशंकर विद्यार्थी रचनावली भाग-1, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नइ दिल्ली, पृष्ठ-संख्या.302

2 वही, पृष्ठ -संख्या-303

3 वही

4 वही.पृष्ठ-संख्या.304

5 वही.पृष्ठ-सख्या.306

6 वही.पृष्ठ-संख्या.305

7 वही.पृष्ठ-संख्या.317

8 वही.पृष्ठ-संख्या.231

9 वही

10 वही

11 वही.पृष्ठ-संख्या.226

गीतांजली 'श्री' कृत 'रेत समाधि' उपन्यास में नारी संघर्ष की सामाजिक चेतना

राखी

एम. ए. (हिन्दी), एम. एड., एच.टेट, नेट

भूमिका

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह दिन-प्रतिदिन अपनी आजीविका के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसी कारण संघर्ष उसके जीवन का एक अहम हिस्सा बन गया है, जैसे-जैसे मानव जीवन में बदलाव आता है, वैसे-वैसे उसके मन में इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, कुंठाएँ और आवेग जन्म लेने लगते हैं और वह उनके लिए प्रयत्नशील रहता है। जब कभी परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल होती है, तो वह उन्हें अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है, यहीं से आरंभ होता है मनुष्य के वास्तविक संघर्ष का अर्थात् दो विरोधी प्रवृत्तियों में टकराव ही संघर्ष कहलाता है। इसके बाद मनुष्य में जागृत होती है, चेतना अर्थात ऐसा संघर्ष जिसका परिणाम सकारात्मक हो और उसके पीछे काम करने वाली मानवीय शक्ति 'चेतना' कहलाती है। इस प्रकार संघर्ष व चेतना का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

संघर्ष का अर्थ

'संघर्ष' का शाब्दिक अर्थ है- टकराना, परस्पर, द्वेष रखना या मुठभेड़। यह अंग्रेजी भाषा के 'Struggle' शब्द का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है- प्रयत्न करना, अधिक परिश्रम करना और दो विरोधी दलों में टकराव होना।

इसी प्रकार संघर्ष का अर्थ है, 'एक तरह का टकराव'। जहाँ दो विपरीत परिस्थितियाँ होगी, वहीं दोनों में टकराव होगा और इसे ही 'संघर्ष' कहा जा सकता है।

डॉ० यश गुलाटी ने 'संघर्ष' को परिभाषित करते हुए कहा है- "संघर्ष जिंदगी की अनिवार्य शर्त है और अस्तित्व की सुरक्षा और पहचान का एकमात्र औजार भी है।"[1]

संघर्ष मानव जीवन से ही आरंभ हो जाता है। जन्म के बाद वह अपने वातावरण के साथ संघर्ष करता और धीरे-धीरे जब वह बड़ा हो जाता है तो उसे पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार संघर्ष मानव जीवन में आदि से अंत तक चलने वाली प्रक्रिया है।

समय के साथ मनुष्य को परिवार व समाज के मूल्यों, रीति-रिवाजों, परंपराओं और मान्यताओं के साथ निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। आधुनिक युग में समाज में स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष, असंतोष ने अपनी जगह बना ली है। समाज में पीढ़ियों की टकराहट, पारिवारिक विघटन, शोषण, तनाव और असमानता का वातावरण छा चुका है। व्यक्ति के मानवीय अधिकारों का हनन होने लगा है। समाज में व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ चुका है और इन्हीं में से एक है- नारी। आज समाज में नारी की अस्मिता का खतरा है। वह शिक्षित व जागरूक होते हुए भी पुरुषवादी सत्ता के शोषण का शिकार हो रही है। आज की नारी शिक्षित है, वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, यही कारण है वह अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है। यह संघर्ष कहलाता है पुरुषवादी सत्ता और नारी के बीच संघर्ष।

इस प्रकार नारी को समाज में एक मानवीय प्राणी, समाज का आधार होते हुए भी अपने मानवीय मूल्यों और अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है।

चेतना

संघर्ष करके मनुष्य को अपने लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंचाने के लिए जो मानवीय शक्ति कार्य करती है वह है 'चेतना'। चेतना मनुष्य की वह जीवनदायिनी प्रेरणा शक्ति है, जिसके बिना केवल संघर्ष से उसे उसके वास्तविक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाते।

चेतना का अर्थ

चेतना शब्द अंग्रेजी के 'Conciousness' शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसका अर्थ है- आभास होना। अन्य अर्थों में कहें तो जहाँ इच्छा, संवेदना, समझ, आभास, चेतनता अथवा सचेत है, वही चेतना है।

बाबू श्याम सुंदर दास ने "चेतना का अर्थ - (1) बुद्धि (2) मनोवृति (3) ज्ञानात्मक मनोवृति (4) स्मृति, सुधि, वाद (5) चेतनता, चौतन्य, संज्ञा, होश'' बताया है। "चेतना मानव मस्तिष्क का वह विशेष गुण है।''[2]

इस प्रकार चेतना का अभिप्राय है, सोचना, विचारना, समझना और बुद्धि विवेक से काम लेना। इसके अभाव में केवल संघर्ष व्यक्ति को सफलता नहीं दिला सकता। कोरा संघर्ष विध्वंसकारी साबित हो सकता है।

नारी संघर्ष चेतना

समाज की आधारशिला के रूप में नर और नारी दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों एक गाड़ी के दो पहियों की तरह है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व गौण है, लेकिन पुरुषवादी समाज ने नारी को सदा ही हेय दृष्टि से देखा है। यह बात और है कि पाषाण काल में समाज में मातृसत्ता का वर्चस्व था, लेकिन धीरे-धीरे पुरुष ने श्रम विभाजन को आधार बनाकर नारी का क्षेत्र व दर्जा सीमित कर दिया और अपना क्षेत्र विस्तृत कर लिया। फिर उसे देवी, अबला व भोग्या समझा जाने लगा। यह काल था वैदिककाल। इसके बाद तो जैसे नारी की स्थिति दिन-प्रतिदिन और काल दर काल इतनी दयनीय होती चली गई कि समाज का स्वरूप मातृसत्ता की जगह पितृसत्ता में परिवर्तित हो गया।

आज स्थिति यह है कि उसे शिक्षित होते हुए भी शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। समय के साथ-साथ वह जागरूक अवश्य हुई है, लेकिन उसे शारीरिक व मानसिक प्रताड़नाओं को सहना पड़ रहा है। संविधान में स्त्री-पुरुष समानता का प्रावधान है, देश में 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसी योजनाएँ देश के प्रधानमंत्री चला रहे हैं, लेकिन क्या केवल प्रावधान बनाने से और योजनाएँ बनाने से सारा समाधान हो सकता है। आज भी समाज में कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, यौन उत्पीड़न जैसी गंभीर समस्याएँ समाज में व्याप्त है। जब तक बेटी बचेगी नहीं तो पढ़ेगी कैसे? जब तक बेटी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होगी तो वह अपने अधिकारों के लिए लड़ेगी कैसे? इस ओर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। स्त्री को भी इसके लिए संघर्ष करना होगा और चेतना जागृत करनी होगी। उसे अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर अपनी बुद्धि व विवेक के बल पर समाज की पुरुषवादी सत्ता के प्रति संघर्ष करना होगा। समाज में सभी को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। धर्म, रीति-रिवाज, मूल्य व सामाजिक मान्यताओं के बंधनों में बांधकर नारी शोषण बंद करना होगा तभी एक सुदृढ़ व समृद्ध समाज का निर्माण हो सकता है।

'रेत समाधि' उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना समाज से जुड़ने के कारण मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। समाज में रहकर उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक समाज के अपने बंधन व दायरे होते हैं, जिन्हें लांघना उनके लिए विरोध उत्पन्न कर सकता है। समाज की मर्यादा और सीमाओं का सबसे अधिक पालन करना पड़ता है नारी को। घर परिवार के प्रति जिम्मेदारी और घर से बाहर की जिम्मेदारी का दायित्व उसे ही निभाना पड़ता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए एक सफल साहित्यकार सदैव अपने साहित्य में अपने युग परिवेश से प्रभावित होकर अपने अनुभवों को अवश्य चित्रित करता है। एक साहित्यकार युग दृष्टा ही नहीं भविष्य दृष्टा भी होता है। वह अतीत और वर्तमान से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में उनका चित्रण कर भविष्य के मानवीय आदर्शो व संभावनाओं को भी प्रदर्शित करता है।

गीतांजलि श्री जी का 'रेत समाधि' उपन्यास हिंदी गद्य साहित्य के लिए एक अमूल्य निधि है। इस उपन्यास में उन्होंने अतीत व वर्तमान का सामंजस्य कर नारी की समस्याओं, संघर्षों के साथ-साथ कई दृष्टियों से पाठक वर्ग को आकर्षित किया है। इसमें दर्शाया गया है कि किस प्रकार एक नारी अपनी सीमाओं को लांघकर परंपराओं को तोड़कर मर्यादाओं से निकलकर समाज के सामने अपनी संघर्ष चेतना का प्रमाण देती है, जिसके लिए उम्र भी एक सीमा मानी जाती है।

'रेत समाधि' उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना का वर्णन इस प्रकार है-

1. पारिवारिक संघर्ष

परिवार समाज की सबसे पहली सीढ़ी है। परिवार के आपसी संबंधों पर ही उसकी नींव टिकी होती है, लेकिन आपसी मनमुटाव के कारण संबंधों में दरार पारिवारिक विघटन का कारण बन जाती है। समाज के नियम, परंपराएँ व मर्यादाएँ जो केवल नारी के लिए आवश्यक माने जाते हैं, में घिरकर जब वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होकर संघर्ष करने लगती है तो कई बार असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण उसके मन की स्थिति द्वंद्वात्मक हो जाती है।

'रेत समाधि' उपन्यास में ऐसी ही स्थिति का चित्रण किया गया है, जिसमें घर की बेटी मर्यादाओं के कारण घर की दहलीज पर पैर उठाए खड़ी है कि अन्दर जाऊँ या नहीं। "हवा में उठा पाँव हवा में रुका सवाल बन गया- मैं इस तरफ हूँ कि उस तरफ?"[3]

इस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है कि जब मैं घर से चली गई थी तो अब मेरा घर ही मेरा अपना है। कहने का अभिप्राय हैं कि वह बड़े भाई के घर को अपना नहीं समझती।

इसी प्रकार घर की बहू भी अपने पति के हर सवाल का जवाब बड़ी ही निर्भीकता से देती है। वह उसे बार-बार नीचा दिखाने की कोशिश करता है, लेकिन वह तर्क सहित अपनी हर बात को सामने रखती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी का अपना घर नहीं होता। मायके में वह किसी की बेटी व बहन होती है, वहाँ उसके पिता व भाई का घर होता है और ससुराल में वह बहू पत्नी और माँ होती है, वहाँ उसके ससुर, पति और बेटे का घर होता है। यही स्थिति उपन्यास में बहू की होती है। उसका पति हर समय उसके साथ नोक-झोंक रखता है। वह बिना पूछे उसकी साड़ियाँ अपनी माँ जो हॉस्पिटल में है, को दे देता है, इस पर वह कहती है-

"पत्नी की आँखें फटी की मेरी अलमारी से ये कब इन्हें निकाल लाये और पुराना घाव हरियाया की मेरी चीज कभी मेरी थी कि नहीं। ससुराल में जो चाहे उन पर हाथ मार ले, मेरे बच्चों तक को मुझे पालने न दिया, कभी बुआ जी की गोदी, कभी दादा दादी की और घर तो जग भर की सराय, मुझे पता ही क्या कि अपना घर किसे कहते हैं।"[4]

इसी प्रकार समाज की परंपराओं के विरोध में नारी की संघर्ष चेतना बेटी के माध्यम से भी उजागर होती है। जब बेटी को उसके पिताजी और बड़े भाई घर से बाहर दोस्तों से मिलने नहीं जाने देते तो वह अपनी माँ के सहारे बाहर जाती और अपने दोस्तों के साथ घूमती फिरती, अंताक्षरी खेलती और हँसती गाती। अपनी माँ का साथ पाकर वह घर की परंपरा, मर्यादा और सुरक्षा को तोड़कर स्वतंत्र व स्वच्छंद घूमती। यहाँ पर अम्मा की संघर्ष चेतना दृष्टिगोचर होती है। वह भी अपनी बेटी को खिड़की से उसके दोस्तों के साथ जाने में मदद करती और जब वह अपने घर रहने लगी तो अम्मा कभी-कभी परिवार से छुपाकर झाड़ी पार उसे साड़ी देती और उसके ब्लाउज का नाप लेती, जिसके कारण झाड़ी के काँटे भी चुभ जाते हैं, लेकिन अपनी बेटी के लिए वह सब कुछ सहने को तैयार थी।

अम्मा एक पत्नी के रूप में भी संघर्ष करती नजर आती है। देश विभाजन से पहले वह लाहौर रहती थी, जो विभाजन के बाद पाकिस्तान चला गया। वह अपने शौहर अनवर के साथ वहाँ रहती थी लेकिन देश के विभाजन के कारण वह भारत की और अनवर पाकिस्तान का होकर रह गया, लेकिन अपने सच्चे प्रेम के खातिर वह पाकिस्तान जाती है, उसे वहाँ कैद कर लिया जाता है और अंत में वह अनेक संघर्षो के बावजूद अपने शौहर से मिलने में कामयाब हो जाती है। यह बात अलग है कि वह वही गोली का शिकार हो जाती है और रेगिस्तान की रेत में ही अंतिम साँस लेती है।

2. लिंग भेद के प्रति संघर्ष

लिंगभेद की समस्या समाज के लिए गंभीर होती जा रही है। बच्चे के जन्म से ही परिवार में यह समस्या आरंभ हो जाती है। बेटे के जन्म पर खुशी व बेटी के जन्म पर घर में मातम छा जाता। धीरे-धीरे जब वे बड़े होते जाते हैं तो सीमाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं कि बेटा स्वतंत्र और बेटी के लिए मर्यादा में रहना अनिवार्य है। घर परिवार के बुजुर्ग अपना उत्तरदायित्व अपने बेटे को सौंपते हैं और यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। माँ-बाप की जिम्मेदारियों को निभाना बेटे का दायित्व समझा जाता और बेटी को पराया व कमजोर समझा जाता है। घर पर उसका दायित्व पिता और भाई का और ससुराल में उसका दायित्व पति और बेटे पर होता है, लेकिन 'रेत समाधि' उपन्यास में इसी लिंग भेद के प्रति बेटी के संघर्ष को दर्शाया गया है। जब अम्मा बीमार होती है तो वे उसकी देखभाल करने आती रहती है और एक अम्मा जब घर से बिना किसी को बताए कहीं चली जाती है तो बेटी उसे अपने साथ अपने घर ले जाती है और उनकी एक माँ की तरह देखभाल कर उन्हें नया जीवन प्रदान करती है।

"बेटी ने माँ बनकर, माँ को बेटी बनाया और उनके माथे पर हाथ फेरा। आ गयी यहाँ, अब न जाने दूँगी। कैसी कमजोर हो गई है, मैं ना होती तो गिर ही पड़ती, इतने में हाँफ गई। न जाने इस दौरान कहाँ गिरती पड़ती रही? कहने को इतने सारे लोग, देखने वाले और बेचारी बेसहारा को न देख पाएँ अभी भी धूल कहीं-कहीं जमीं रह गई है। कब से नहाई न होगी। सो लेने दो। फिर मैं स्पंज कर दूंगी, धीरे-धीरे न जिला दूँ तो देखना।"[5] इस प्रकार सभी को अपने समाज में लिंग भेद के समस्या को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए।

3. प्रकृति के लिए संघर्ष

ईश्वर ने प्रकृति के रूप में मनुष्य को अनमोल उपहार भेंट किया है- लेकिन मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दिनों-दिन इसका दोहन करता है जा रहा है। बड़ी ही निर्ममता से वृक्षों को काट रहा है, पानी व हवा को दूषित कर रहा है। अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए मनमाने ढंग से उसको नष्ट कर रहा है। कहीं तो कारखानों से निकलने वाला अपशिष्ट और धुआँ, कहीं विषैली गैसों का रिसाव, कहीं दूषित पानी, कहीं घरों में प्रयोग होने वाले उपकरणों की गैसे, कहीं वनों का कटाव आदि प्रकृति के लिए खतरा हैं। यही कारण है कि इस गलत छेड़छाड़ के कारण प्रकृति भी अपना विनाशकारी रूप दिखाना प्रारंभ कर देती है। कभी असमय बारिश, कभी ज्यादा गर्मी, कभी ज्यादा सर्दी, कभी सूखा, कभी बाढ़, ध्रुवीय बर्फ का पिघलना, ओजोन परत में छेद आदि इसके विनाशकारी संकेत हैं। पर्यावरण की सुरक्षा प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इसके लिए मनुष्य को प्रकृति के प्रति सचेत होना होगा और आवश्यकता से ज्यादा इसके संसाधनों के प्रयोग पर रोक लगानी होगी। यदि इससे संबंधित मुद्दों पर विचार किया जाए तो काफी हद तक प्रकृति का संरक्षण किया जा सकता है।

'रेत समाधि' उपन्यास में अम्मा के माध्यम से लेखिका ने नारी की इसी संघर्ष चेतना को चित्रित करने का प्रयास किया है। पहले तो अम्मा बड़े बेटे के घर में परिवार से विमुख होकर लेटी रहती थी, लेकिन जब वह अपनी बेटी के घर चली जाती है तो उसमें नई चेतना जागृत होती है। अम्मा का नया जीवन शुरू होता है। उनका पेड़-पौधों व पक्षियों से लगाव हो जाता है। अम्मा बेटी के घर में बालकनी में पौधे लगाती है और उनकी देखभाल करती है। वो मिट्टी मे हाथ साने रहती और कौवे व चिड़िया से बतियाती रहती। चिड़िया की सीटी के साथ-साथ सीटी बजाती। इसी के साथ-साथ वे अपने शरीर के लिए भी प्राकृतिक चीजों का इस्तेमाल करती जो रोजी बुआ उन्हें सुझाती थी।

अम्मा सोसाइटी वालों से भी प्रकृति के लिए झगड़ पड़ती और पेड़ काटने को लेकर उन्हें काफी कुछ सुनाती। उन्होंने पेड़ों की डालियाँ काटने के लिए भी माली को मना कर दिया जब सोसाइटी वालों ने कहा जीव-जंतु, छिपकली, कीड़े, मकड़ियाँ, गिलहरी, चूहे, पक्षी आदि पेड़ों पर चढ़कर यह देख लेते हैं कि अंदर घरों में मेज पर रसीले फल रखे हैं और बंदर, बिल्ली आदि पेड़ों के सहारे घर में घुस आते हैं, तो अम्मा ने कहा कि सिर्फ डालियाँ छाँटनी है, पेड़ नहीं काटना। मैं यहीं खड़ी देख रही हूँ। इस पर सभी हँस पड़ते। इस प्रकार अम्मा ने अपने विवेक से पेड़ों को काटने से बचाया और प्रकृति के संरक्षण की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।

4. उम्र की सीमाओं को तोड़ती नारी

मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा गया है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। यें चारों अवस्थाएँ है, मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिशु का जीवन पराश्रित होता है, बाल्यावस्था में बच्चा चलना फिरना, बोलना सीख जाता है लेकिन वह परवरिश के लिए अपने परिवार पर निर्भर होता है। युवावस्था में व्यक्ति पढ़-लिख कर आत्मनिर्भर बन जाता और गृहस्थी भी संभाल लेता है, लेकिन वृद्धावस्था उम्र की वो सीमा है, जहाँ पहुँचकर व्यक्ति पराश्रित हो जाता है। बुढ़ापे में व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक क्षमता कमजोर होने लगती है लेकिन 'रेत-समाधि' उपन्यास में इस धारणा के प्रति संघर्ष करती अस्सी वर्षीय अम्मा केवल उम्र की ही नहीं अपितु देशों के मध्य बनी सीमा को भी तोड़ती और लाँघती नजर आती है। अस्सी वर्षीय अम्मा जो परिवार से पीठ करके बिस्तर पर लेटी रहती, बेटी के घर जाकर मानो उनमें नए जीवन का संचार होता है। वह अपने आपको बिल्कुल तरोताजा महसूस करने लगती है। रोजी के साथ काम करती है, उसके साथ घण्टों बतियाति और घूमती है। घर के छोटे-मोटे काम जैसे चाय बनाना, खरल में कभी सौंफ मलना, लहसुन कूचना, भुने मसाले कूटना, खुद उठना, खुद नहाना, खुद खाना आदि। इतना ही नहीं इन्होंने घर की बालकनी में गमलों में पौधे भी लगाए और उन्हें हाथों से पुचकारती भी। अकेली बैठकर आसमान व पेड़ों से बतियाती हैं।

जब रोजी लापता हो जाती है तो भी वह केके और अपने पोते सिड को लेकर पुलिस स्टेशन रिपोर्ट लिखवाने जाती है। जब वह आनाकानी करता है, तो उसे धमकी देकर रोजी का पता निकलवाती है। ''अम्मा ने छड़ी चलायी। आप गुमशुदाई का केस दर्ज करिए''[6] अपनी उम्र के इस पड़ाव पर वह अपने पोते से अपना पासपोर्ट बनवा कर लाहौर जाती है, अपनी बेटी के साथ रोजी की दी हुई चिरौंजी देने उसके रिश्तेदारों को और अपने शौहर अनवर से मिलने। वह अपने दोनों कार्यों में सफल भी होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास में नारी की सामाजिक संघर्ष चेतना उभरकर हमारे सामने आती है, जहाँ उम्र कोई सीमा नहीं है।

5. समाज में उपेक्षित किन्नर समुदाय के लिए संघर्ष

किन्नर को हमारे समाज में स्त्री और पुरुष किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जाता। इन्हें समाज में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। संविधान में इन्हें तीसरा लिंग घोषित किया गया है, लेकिन समाज में इन्हें सम्मान नहीं दिया जाता, बावजूद एक मानवीय इकाई के। केवल शारीरिक संकेतों के आधार पर इस तरह मानव की उपेक्षा सही नहीं है। समाज की इसी मान्यता का विरोध करती अम्मा रोजी (हिजड़ा) के साथ मानवीय रिश्ते बनाती है। अम्मा रोजी के साथ हर प्रकार की बातें करती है। वह उसके साथ घंटों बिताती है। उसके साथ बैठकर खिलौने बनाती है, उसके साथ घूमने जाती है, उससे अपनी बीमारियों का इलाज करवाती है और जब रोजी लापता हो जाती है तो पुलिस वालों को मजबूर कर देती है उसे खोज निकालने के लिए वह उनके साथ उसे ढूंढने झील के किनारे वाली बस्ती में भी जाती है। जब रोजी मर जाती है, तो अस्पताल में भी उसकी लाश को देखने जाती है। अम्मा का रोजी के साथ आत्मीय रिश्ता बन चुका था, वह उसी दोस्ती को निभाने अस्सी साल की उम्र में पाकिस्तान जाती है उसके लिए किसी रिश्तेदार को चिरौंजी देने।

"पाकिस्तान कौन जाता है?
रोजी! अम्मा का जवाब।
रोजी से क्या मतलब, सब चीखे और एक दूसरे की चीख पर चौक कर कूदे।
इसे कहते हैं भूत सवार होना।
'उसको जाना था।',
'वो गई',
'चिरौंजी नहीं ले गई।'
'तो क्या?'
मैं ले जाऊंगी।

बड़े पत्नी किचलू ताया डॉक्टर मिरासी केके बेटी, सब कूदे हुंकारे और चुप होकर सोचने लगे, करे तो क्या?''[7]

इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास में नारी संघर्ष चेतना का उपेक्षित किन्नर समुदाय के प्रति सकारात्मक पक्ष उभरकर हमारे सामने आता है, जो एक सराहनीय कदम है।

6. आत्मनिर्भरता के लिए नारी संघर्ष

आधुनिक युग में नारी शिक्षित और जागरूक है। वह रोजगार के अवसर पाकर आत्मनिर्भर बन जाती है। लेकिन समाज उसकी योग्यता व आत्मनिर्भरता पर तरह-तरह के सवाल खड़े करता है। उस पर आरोप लगाता है। उसे केवल हेय दृष्टि से देखता है। पुरुष नारी को अपने समक्ष पाकर अपनी ही सत्ता के लिए खतरा मानता है, लेकिन उपन्यास में नारी को अपनी समस्याओं से जूझते हुए आत्मनिर्भरता के लिए संघर्षरत दर्शाया गया है। वह आर्थिक समस्याओं का सामना बड़े ही साहस और धैर्य के साथ करती है और अंत में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

घर की बेटी जिसे उसके प्रेमी अकेला छोड़कर चले जाते हैं। एक बार उसकी शादी भी टूट जाती है, कारण था बेटी के भाई व पिता का आर्थिक सहयोग न मिल पाना। इसलिए वह बेचारी अकेली रह जाती है और उसके पास पैसे भी नहीं होते। घर वह इसलिए नहीं जाना चाहती क्योंकि वह अपनी मर्जी से आई थी और अब उसे अकेले ही संघर्ष करना था। वह एक जर्नलिस्ट थी। कभी-कभी उसका भाई उसको इक्का-दुक्का किताबों की बिक्री करवा देता था। उसके कपड़ों की हालत देखकर अंदाजा लगाया जा सकता था कि उसकी हालत इतनी खस्ता थी, लेकिन उसने संघर्ष जारी रखा और वह कामयाब हो गई।

"हमदर्दी हवा नहीं हुई पर विस्तृत जरूर हुई, जब पत्रिकाएँ, अखबार इस बहन और बेटी के फोटो छापने लगे और टेलीविजन भी साक्षात्कार दिखाने लगे। उसके मशवरों के चर्चे छेड़ते थे कि नारी चेतना, लिंगभेद, फीमेल ऑर्गेजम, ऊलजलूल, हाय हाय।

हमदर्दी के और गड़बड़ाने के दिन आए जब बेचारी ने अच्छे बड़ों के मोहल्ले में बड़ा फ्लैट खरीद लिया और टीवी, माइक्रोवेव गाड़ी भी। पता चला आए रोज हवाई अड्डे जा रही है या कहीं से आ रही है और देश-विदेश घूमती है। कुछ घर में दबी जुबान में छिड़ी कि आजकल यह हथकंडे सही, गलत, पैसे और नाम कमाने के, नेटवर्किंग आनी चाहिए और औरत हो, कम उम्र तो. ...... तो....... तो....... और तो।''[8]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास में आत्मनिर्भर बनने के लिए बेटी संघर्षरत रहती है, लेकिन फिर भी उसे गलत समझा जा सकता है, क्योंकि वह एक नारी है।

7. भोगवाद के प्रति नारी संघर्ष

समाज में नारी को भोग व प्रदर्शन की वस्तु के रूप में देखा जाने लगा है। चाहे समाज का कोई भी क्षेत्र हो, उसे धर्म, संस्कृति के आधार पर अनेक पाखंडियों के धोखे का शिकार होना पड़ता । मीडिया जो लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। आज नारी को अंग प्रदर्शन के लिए प्रयोग कर रहा है। नारी सौंदर्य की वस्तु बनकर रह गई है। परिवार में वह पुरुषवादी सत्ता के कारण शोषित हो रही है। हर स्थान पर वह पुरुष की हवस का शिकार हो रही है।

'रेत समाधि' उपन्यास में लेखिका ने इसी प्रकार की पुरुष मानसिकता के प्रति संघर्ष करती नारी का चित्रण है। परिवार की बेटी, जिसका प्रेमी है केके, वह बार-बार कोशिश करता है बेटी का उपभोग करने की लेकिन वह बड़ी ही समझदारी से काम लेती है।

"बेटी को उसके होंठ सूखे, चिपचिपे लगे। हटो, उसने केके को धकेला। कोई आ जाएगा।

बिल्ली, चूहा, कौवा केके ने उसे चटाई पर लुढ़का दिया।

अम्मा....... उसने कहने की कोशिश की।

अंदर छुपी है? केके के हाथों में मस्ती, जबान पे मजाक।

वह सब जगह हैं, बेटी का तन बोला पर स्वर फूटा, हटो कहीं वो लौट आएँ।

केके उस पर झुका। उसने मुँह जो हँसता सा, खोला कि लार की एक लंबी धार वहाँ से बेटी के चेहरे पर चू गई। ऐसी रेशेदार कि चाहो तो उँगली पर धागे की तरह लपेट लो।''[9]

इसी प्रकार केके कई बार उसके साथ गलत व्यवहार करता है और उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है, लेकिन बेटी अपने आपको बचाने में कामयाब हो जाती है। पुरुष को अपनी यह मानसिकता बदलनी होगी क्योंकि नारी भी तो समाज की एक मानवीय इकाई है। उसे भी स्वतंत्र व स्वच्छंद जीवन जीने का अधिकार है।

जब अम्मा जैसी अनेक लड़कियों का पाकिस्तानी सांप्रदायिक दंगों के दौरान अपहरण करके गाड़ियों में डाल कर ले जाया जा रहा था, तो वहाँ भी पुरुष की हैवानियत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

''कौन थे? बहसते सारी हिंदू कहानियाँ आपकी? ये तो हम पर जुल्म। ठहाके फूटे। दो चार इधर करो, मेहरबानो। और ठहाके लगे। चारों बड़ी फुर्सत की जगह पा गए हो। अम्मा कुछ लम्हें हमें भी गुजारने दो।''[10]

सभी लड़कियाँ मौका पाकर इनसे बच निकली, लेकिन रेत के बवंडर में जिंदगी की आखिरी सांस तक संघर्ष करती हुई, वहीं अपनी जान गवाँ बैठी। लेकिन अम्मा रोजी और अपने प्राण बचाने में कामयाब हो गई।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण नारी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज की पुरुषवादी सत्ता, चाहे दिखावे के लिए कितनी भी उदारता दिखाए लेकिन वह वास्तविक रुप से स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए खतरा है। नारी को स्वयं अपने अस्तित्व, सामाजिक भागीदारी व संघर्ष को साबित कर एक नया इतिहास रचना ही होगा। किसी भी उन्नत राष्ट्र की संकल्पना बिना स्त्री के अधूरी है। 'रेत समाधि' उपन्यास में लेखिका ने नारी की इसी जागरूकता का परिचय दिया है कि भले ही समाज में उसके सामने पितृसत्ता के कारण अनेक समस्याएँ उभर कर आती है लेकिन अपनी सीमाओं और रूढ़िवादी परंपराओं को लाँघकर वह अपनी बुद्धि और विवेक से उनका सामना करने का साहस रखती है, यही वास्तविक नारी शक्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- गीतांजलि श्री, 'रेत समाधि', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018
- डॉ० यश गुलाटी, 'कविता और संघर्ष चेतना', इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के 71, कृष्ण नगर, दिल्ली 110001
- (संपादक) (बाबू) श्यामसुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, द्वितीय खण्ड, काशी नागरी प्रचारिणी सभी संस्करण-1928

काशीनाथ सिंह के संस्मरणों में त्रिलोचन, धूमिल और रविंद्र कालिया

अनुपमा

शोधप्रज्ञा, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० विजय कुमार

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

हिंदी के साहित्यकारों की यह विशेषता रही है कि उनके संस्मरणों में सबसे ज्यादा उनके करीबी साहित्यकार ही होते हैं। वैसे तो राजनीतिज्ञों, समाज सेवकों, प्रख्यात हस्तियों को याद करते हुए, उनके साथ बिताए हुए पलों को भी कई साहित्यकारों ने संस्मरण के रूप में कलमबद्ध किया है। लेकिन अपने मित्र साहित्यकारों के साथ के क्षणों को लिखते वक्त साहित्यकार अत्यंत आत्मीय दिखाई पड़ता है। उसकी भाषा बेलौस और कृत्रिमता मुक्त हो जाती है। यह स्वाभाविक ही है कि मित्रों के साथ के संस्मरण लिखने में सीमा और मर्यादा का विशेष ख्याल नहीं रखना पड़ता है। काशीनाथ जी ने भी अपने साहित्यिक मित्रों के साथ बिताए हुए पलों को खूब लिखा है। काशीनाथ खुद ही हिंदी के चर्चित साहित्यकार रहे हैं साथ ही उनके बड़े भाई डॉ० नामवर सिंह भारत के सबसे प्रसिद्ध आलोचक के तौर पर ख्यात हैं, ऐसे में उनकी परिधि में सम्पूर्ण भारतवर्ष के हिंदी-अहिंदी साहित्यकार निश्चित रूप से रहे होंगे। धूमिल और त्रिलोचन काशीनाथ के ऐसे मित्र थे जिनके बिना काशीनाथ एक समय बनारस में अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इस आलेख में रविंद्र कालिया को भी इसलिए समाहित किया गया है क्योंकि उनको याद करते हुए काशीनाथ हिंदी जगत के सफेद-स्याह पक्ष को उजागर करते हैं। हिंदी साहित्य के मठाधीशों के सामने किस प्रकार तथाकथित विशिष्ट हिंदी साहित्यकारों की घिग्घी बंध जाती है, इसका सुंदर चित्रण रविंद्र कालिया से सबंधित संस्मरण में किया गया है।

काशीनाथ ने त्रिलोचन को केंद्र में रख कर एक बड़ा ही रोचक संस्मरण लिखा है। संस्मरण का शीर्षक 'दंतकथाओं में त्रिलोचन' है। दरअसल सच्चाई यह है कि त्रिलोचन के विषय में पूरे बनारस में कई किंवदंतियां प्रसिद्ध थीं। कोई कहता कि वे एक बार में पानी से पूर्णत: भरी सुराही पी कर खत्म कर देते हैं तो कोई कहता कि वे जिसके यहां खाने चले जाते उसकी रसोई समाप्त हो जाती है पर त्रिलोचन तृप्त नहीं होते। कोई यह कहता कि वे लाहौर में रिक्शा चलाया करते थे। वस्तुत: काशी में त्रिलोचन की दंतकथाएं प्रसिद्ध थीं, संभवत: इसीलिए एक 'दंतकथा' काशीनाथजी ने भी लिख डाली। काशीनाथ ने कभी एक बार त्रिलोचन से चुहल करने के लिए पूछा कि क्या यह सच है कि आपने ही 1857ई० में मंगल पांडेय के भीतर राष्ट्रीय चेतना का संचार किया था तो उन्होंने इस बात का प्रतिवाद किया और कहा- "नहीं, यह झूठ है। उनके गाँव में मेरी ननिहाल जरूर थी। छुट्टियों में जाता भी था। उनके साथ गुल्ली-डंडा भी खेलता था, कुश्तियाँ भी लड़ता था। वे मेरे अच्छे मित्र बन गए थे, लेकिन जिन दिनों वे फौज में भर्ती हुए, उन्हीं दिनों मैं 'सुख-सागर' वाले मुंशी सदासुख लाल के बुलावे पर आगरा चला गया था।"[1] मंगल पांडेय और अपने जन्म और जीवन काल में इतना अंतर होने के बावजूद वह त्रिलोचन ही थे जो पूरी प्रमाणिकता के साथ झूठ बोल देते हैं। न केवल इतना ही बल्कि वे ऐसे-ऐसे ऐतिहासिक रहस्यों का उद्घाटन करते थे जिसके सामने बड़े-बड़े इतिहासकार पानी भरते नजर आते। त्रिलोचन का व्यक्तित्व ऐसा गतिमान था कि काशीनाथ ने लिखा है- "मैंने कभी त्रिलोचन को सोए हुए नहीं देखा। जब भी देखा,

चलते हुए देखा है। मुझे नहीं मालूम कि वह कभी सोता भी है या नहीं।"[2] वस्तुत: त्रिलोचन के व्यक्तित्व को समझना सहज नहीं है। काशीनाथ ने उनके बनारसी मन को टटोला था इसी लिए उनकी बहुत कद्र करते थे।

त्रिलोचन की कई विशेषताओं में जिस सबसे अच्छी विशेषता को काशीनाथ ने उजागर किया है, वह है उनका स्वाभिमानी व्यक्तित्व। घर में खाने को चाहे दाने रहें या नहीं, पर्व-त्योहार में पत्नी को पहनने के लिए साड़ी रहे या नहीं त्रिलोचन ने बनारस में कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। पुत्र के यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बन जाने के बावजूद उन्होंने अपनी खुद्दारी का परिचय देते हुए जीवनशैली में कोई परिवर्तन नहीं किया। काशीनाथ जीवनपर्यंत आर्थिक विपन्नता में जीते रहे लेकिन कभी किसी से ये नहीं कहा कि "इन दिनों बड़ी तंगी में दिन कट रहे हैं।

-हो सके तो कोई काम-धंधा दिलाओ।

-बीवी को होली पर साड़ी चाहिए, काई बन्दोबस्त करो।

- बेटा मनमानी कर रहा है, मेरी नहीं सुनता।

- जाहिल और मूर्ख सहायक तिवारी मेरा बॉस हो गया है।

- मेरा कुर्ता चिथड़ा हो गया है, पाजामा तार-तार हो गया है, चप्पल टूट गई है, सर्दी हो गई है, बुखार आ गया है, सिरदर्द हो रहा है, पड़ोसी ने स्कूटर खरीद ली है, बीवी बीमार है और मुँह फुलाए है, आदि-आदि।"[3] कह सकते हैं कि त्रिलोचन के जीवन पर बनारस का दर्शन सपष्ट रूप से हावी था।काशी का गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपने को राजा समझता है और बड़े-बड़ों को शास्त्रार्थ में पराजित करने का दंभ भरता है। त्रिलोचन किसी को हराने का दंभ तो नहीं भरते थे लेकिन उन्होंने कभी भी अपने स्वाभिमान से कोई समझौता नहीं किया।

सुदामा पांडे धूमिल तो काशीनाथ के यार कम भाई ज्यादा थे। धूमिल को बहुत करीब से जानने और समझने के बाद काशीनाथ ने उनके विषय में लिखा है "धूमिल वह कबाड़ी है जो ऐसे हर सामान को बड़ी सावधानी और एहतियात से बटोरता रहता है, जिसे दूसरे रद्दी और फालतू समझकर छोड़ा या फेंका करते हैं।"[4] धूमिल की इस विशेषता को समझने के लिए उनकी कविताओं में झांकना पड़ेगा। 'मोचीराम' जैसी कलाजयी रचनाएं धूमिल जैसा 'कबाड़ी' ही लिख सकता था। धूमिल कवि के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे, और साथ ही बदल रहा था उनका व्यक्तित्व। काशीनाथ ने इस बात को महसूस किया कि तर्कों और बहसों को धूमिल ने जीत-हार का प्रश्न बनाना शुरू कर दिया है। बनारस तो बहसों-व्यंग्यों का शहर है लेकिन वहां लंबे समय तक रहने के बावजूद इस अहंकारी प्रवृत्ति का उभरना धूमिल की कमजोरी को उजागर करता है। निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं- "उसके दिमाग में उसकी कविताओं की चर्चा और साहित्यिक स्वीकृति चढ़ने लगी थी, जिसके चलते वह बहस 'बहस के लिए' करने पर उतारू हो जाता था। वह घुमा-फिराकर, अपनी बात पर तब तक अड़ा रहता था जब तक आप चुप न हो जाएँ या झल्लाकर कह न दें कि तुम्हीं सही हो। बहस उसके लिए सहमति-असहमति या विचार-विनिमय या सही-गलत की नहीं, जय-पराजय की चीज थी। उसके लिए यह 'विवाद' या 'संवाद' नहीं, एकालाप होती जा रही थी जिसमें दूसरा-तीसरा सिर्फ श्रोता होकर रह जाता था। उसकी यह उग्रता और आक्रामकता तब और बढ़ जाती जब प्रतिवादी एक नहीं, कई हों।"[5] धूमिल का अपना अक्खड़ व्यक्तित्व था लेकिन इन सब के बीच उनके भीतर एक 'भीष्म पितामह' विद्यमान थे। जिन्हें जगत में किसी भी वस्तु या प्रिय जन का कोई मोह नहीं था। धूमिल स्वीकार करते हुए कहते हैं- "मेरे जैसा पतित, नीच, स्वार्थी और नमकहराम आदमी नहीं हो सकता, लेकिन कहीं-न-कहीं मुझमें भयंकर संन्यास और उदासीनता है। मैं किसी समय तुम्हें छोड़ सकता हूँ और मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। छोडूंगा और भूल जाऊँगा।"[6] धूमिल ऐसा बोल कर कोई रहस्योद्घाटन नहीं करते बल्कि वे अपने चिर-परिचित व्यक्तित्व को बखूबी जानते थे, इसी लिए अपने सबसे अभिन्न काशी को इस के लिए तैयार कर रहे थे। धूमिल को संभवत: इस बात का भी भान हो चला था कि वे चंद दिनों के ही मेहमान हैं। वे गए और ऐसे गए कि काशी को हमेशा के लिए अकेला कर गए।

काशीनाथ के अन्य मित्रों यथा त्रिलोचन, धूमिल, दूधनाथ आदि से इतर रविंद्र कालिया उनके आत्मीय मित्र नहीं अपितु प्रोफेशनल मित्र ठहरते हैं। काशीनाथ ने अपने संस्मरणों में उनकी ऐसी-ऐसी प्रशंसा की है जो प्रशंसा कम गाली ज्यादा प्रतीत होती है। 'किस्सा साढ़े चार यार' के आरंभ में ही वे लिखते हैं- "किस्सा-कहानी में नामी-गिरामी! शराफत की लत के मारे बेचारे, इसके बावजूद परम हरामी! इन हरामियों में सिरमौर रवीन्द्र कालिया। मेरा खयाल है कि वह यदि 'हरामीपन' पर उतर आए तो राजेन्द्र यादव तो मान लीजिए आजकल शरीफ आदमी हो चले हैं, लेकिन कमलेश्वर जैसे 'चूड़ामणि' भी उसके आगे पानी भरें।"[7] इन पंक्तियों में काशी स्पष्ट रूप से कालिया, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर को बनारस के प्रिय शब्दों से अलंकृत कर रहे हैं। यूं तो वे शब्दों के प्रयोग में सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर के गालियों का झन्नाटेदार प्रयोग करने से भी बाज नहीं आते लेकिन इन पंक्तियों में

उन्होंने तीनों महान विभूतियों को बख्श दिया है। काशी के दिल में कालिया को लेकर बहुत अच्छी भावना नहीं थी। संभवतः वे उन्हें एक लिजलिजा व्यक्ति मानते थे। कालिया के दिल के विषय में काशी ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है- "कालिया ने सोचा कि जमाना बदल गया है और अब एक दिल से काम चलनेवाल नहीं। सो, उसने कई दिलों का बंदोबस्त किया-एक प्रेम के लिए, दूसरा मोहल्लेवालों के लिए, तीसरा साहित्यकारों के लिए, चौथा 'संजय गांधी' के लिए।"[8] देखा जाए तो इन पंक्तियों में काशीनाथ का क्षोभ ही नजर आता है। कालिया के व्यक्तित्व में काशीनाथ को चापलूसी की बू भी आती थी। जिस प्रकार वे राजनेताओं को साधने की कोशिश करते थे, काशी को लगता था कि वे ऐसा इस लिए करते हैं ताकि उन्हें भी कृपा स्वरूप कुछ प्राप्त हो जाए। इस संदर्भ में जब काशीनाथ ने कालिया से पूछा तब कालिया ने इलाहाबाद वाला गोल-मोल उत्तर दिया जिस पर ठेठ बनारसी अंदाज में काशीनाथ ने कहा "देखो, चूतिया मत बनाओ। मेरे कहने का मतलब... एम.एल.ए. या एम.पी. का टिकट या राज्यसभा की मेंबरी या और कोई एसाइनमेंट..."[9] काशीनाथ कोई लाग-लपेट नहीं रखते, वे भदेस हैं, इसका वे हमेशा भान कराते रहते हैं। कालिया के प्रपंची रूप का उद्घाटन कमलेश्वर ने भी काशीनाथ के सामने किया था। आरा के एक सम्मेलन में जब कालिया, काशीनाथ, विजयमोहन आदि साथ बैठे थे तभी कमलेश्वर ने कहा था- "... और कालिया, आज तीसमार खाँ बन रहे हो तुम, जबकि आज तुम्हारी जिन कहानियों की चर्चा हो रही है, वे सारे शीर्षक मेरे लगाए हुए हैं।... काशी, आपस में मार करते थे ये सब कि अगले अंक की पहली कहानी मेरी हो। यह कहता था कि मेरी, वह कहता था कि मेरी..."[10] कमलेश्वर ने सब के सामने कालिया आदि लेखकों के विषय में यह तक कहा की इन्हें कहानीकार मैंने बनाया है। कमलेश्वर गलियां देते रहे लेकिन सयाने कालिया ने कोई विशेष प्रतिवाद नहीं किया। यही उनकी कूटनीति का परिचायक है। महत्त्वपूर्ण यह है कि कमलेश्वर के जाते ही काशीनाथ को पकड़कर कालिया फिर से शेखी बघारने लगे। कूटनीति की सारी हदें पार करते हुए उन्होंने इस विवाद में नामवर जी को भी घसीट लिया। दरअसल काशीनाथ से करीब होने के लिए स्वयं को नामवर के खेमे का आदमी सिद्ध करना भी कालिया की कुशल स्ट्रेटजी का ही नतीजा था। उन्होंने बहुत शातिराना अंदाज में कहा "मैं उसके जबड़े तोड़ देता काशी, लेकिन तुम नहीं समझ सकते... पिछले दिनों नामवरजी बम्बई आए थे। भारती और यह नहीं चाहते थे कि हममें से कोई उनसे मिले, बातें करें लेकिन यह कैसे हो सकता था? नामवरजी हमें कितना प्यार करते हैं, तुम नहीं जानते। हम उनके साथ बराबर रहे, उन्हें श्सी ऑफश भी किया... यही खुन्नस है इन सबों को।"[11] साहित्यकारों की ऐसी नग्न सच्चाई बता कर काशीनाथ ने अपने संस्मरणों को और भी जीवंत कर दिया है। काशीनाथ जी की यही विशेषता उन्हें अन्य हिंदी साहित्यकारों से अलग करती है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि 'याद हो कि न याद हो' एक ऐसी संस्मरण की मुक्कमल पुस्तक है, जिसे पढ़ कर हिंदी साहित्य की रीति-नीति को समझा जा सकता है। संभव है कि काशीनाथ भी इतने बड़े लेखक नहीं बन पाते, क्योंकि जिस प्रकार की राजनीति हिंदी साहित्य के मठाधीश करते हैं वहां टिक पाना सब के बस की बात नहीं है। काशीनाथ ने बनारस के औघड़ व्यक्तित्व को आत्मसात किया था इसीलिए वे अनथक भाव से लिखते रहे। डंके की चोट पर उन्होंने हिंदी लेखकों के सच को उजागर किया और कभी किसी से डरे नहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) सिंह, काशीनाथ, याद हो कि न याद हो, दंतकथाओं में त्रिलोचन, संस्करण-2020, पृ -32
2) वही, पृ -33
3) वही, पृ - 35
4) वही, जी ही जाने है आह मत पूछो, पृ -72
5) वही, पृ -74
6) वही, पृ - 79
7) वही, किस्सा साढ़े चार यार, पृ -90
8) वही
9) वही, पृ -91
10) वही, पृ -95
11) वही, पृ -97

आधुनिक कहानियों में नवीन अवधारणाओं का परिवेश

डॉ० राजश्री पी. मोरे

हिंदी विभागाध्यक्ष, उस्मानिया महिला विश्वविद्यालय, कोटी, हैदराबाद

हिंदी की लंबी कहानियाँ आधुनिक देन नहीं है बल्कि यह साहित्यिक विधा की प्राचीन देन है। यह विधा प्राचीन साहित्यकारों ने प्रदान की है। इसलिए समकालीन युग में यह कहना समीचीन होगा कि लंबी कहानी की विधा तदर्थ अथवा आधुनिक है। लंबी कहानी अपने आप में परिपक्व अवस्था में सृजित होती है। लंबी कहानियों के लेखक अनुभवी दर्शित होते हैं। उन्होंने अपने अनुभव को बहुत ही संयम से अनुभूत करके लंबी कहानी के रूप में संप्रेषित किया है। देखा जाए तो विशेष रूप से समकालीन लंबी कहानियां एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्योंकि इन कहानियों में लेखकों ने समकालीन समय के लगभग सभी क्षेत्रों पर लिखा है। इन कहानियों में समसामयिक सभी परिवेश दर्शित होते हैं।

लंबी कहानी की चर्चा होती है तो सर्वप्रथम राजेंद्र यादव जी को याद करना आवश्यक हो जाता है। लंबी कहानी की परंपरा को यादव जी का विशेष योगदान रहा है। इनके संपादन में निकलने वाली 'हंस' ने सर्वप्रथम अपने पहले ही अंक में 'लंबी कहानी' का अंकन प्रस्तुत किया था। राजेंद्र यादव जी ने हंस में इसका स्थान सुरक्षित कर दिया था। हंस के प्रत्येक संस्करण में लंबी कहानी का प्रकाशन होना एक परंपरा बन गई थी। यहीं से लंबी कहानियों की पहचान बढ़ने लगी। लंबी कहानियों का बोलबाला संपूर्ण हिंदी जगत में अपना अस्तित्व जमाने लगा। कहानीकारों ने इस पत्रिका के लिए लंबी कहानी लिखनी प्रारंभ कर दी। धीरे-धीरे लंबी कहानी ने काफी तेज रफ्तार पकड़ ली। इसमें नवीन अवधारणाओं को स्थान दिया गया। इन अवधारणाओं के साथ कहानी को खुले आकाश में विचरण करने का अवकाश मिला और लंबी कहानी में संभावनाओं का एक नया रूप दर्शित होने लगा। इसके माध्यम से साहित्यकार किसी भी विषय को विस्तार के साथ प्रस्तुत करने में आसानी महसूस करने लगे। समकालीन समय की सभी घटनाओं, अवधारणाओं, जटिलताओं, विभिन्न संदर्भों, विडंबना, समस्याओं आदि को प्रदर्शित करने के लिए लंबी कहानी ने एक स्वास्थ्य माध्यम प्रस्तुत किया। इससे कहानीकारों को एक सुविधाजनक माध्यम मिला। आज के जीवन की महीन से महीन समस्याओं को देखने के लिए साहित्य की यह विधा सक्षम मानी गई। आज के सभी इंद्रधनुषी रंगों को पहचानने की क्षमता इस विधा में पाई गई है। यह विधा लघु भी नहीं है और अधिक विस्तृत भी। साधारण कहानियों की तरह यह 5-10 पृष्ठों में समाप्त भी नहीं होती और उपन्यासों के समान दो सौ-तीन सौ पृष्ठों तक खींचती भी नहीं। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है क्योंकि पाठक रचनाओं को अल्प समय में समाप्त करना नहीं चाहता और ना ही उसे अधिक समय तक एक ही रचना के साथ रहना पसंद आता है। उसे कोई मध्य का पठन साधन चाहिए जो लंबी कहानियों ने पूरा कर दिया है।

समकालीन समय में यदि ध्यान पूर्वक दृष्टिपात करें तो एक ओर पारंपरिक ग्राम तथा उसके पुराने मूल्यों के मध्य जीवन व्यतीत कर रहे ग्रामवासी और दूसरी ओर आधुनिकतम प्रकरणों से सिक्त शहरी जीवन में व्याप्त संचार, सूचना, बाद, आदि में हो रहे तीव्र परिवर्तन के साथ मेल बैठाना बहुत ही कठिन कार्य हो गया है। शहर और गांव के मध्य सामंजस्य स्थापित करना आज के जीवन की सबसे कठिन कसौटी है। इन दोनों परिवेशओं के लोग अपने आप में इस बात को लेकर चिंतित भी दिखाई देते हैं। लंबी कहानी लिखने वाले लेखकों ने इसी चिंता को यथार्थ रूप से सभी परिवेशों के अंतर्गत उभारने का प्रयास किया गया है।

हिंदी लंबी कहानियों में नई धाराओं को देखा गया। इसमें जनवादी चेतना को नया चिंतन प्राप्त हुआ। साहित्य की दूसरी विधाओं के समान लंबी कहानियों में भी एक नया मोड़ देखा गया। कहानीकारों ने तत्कालीन जीवन की विसंगतियों को अनुभूत करके उसे अभिव्यक्ति प्रदान की। यह अभिव्यक्ति कहानीकारों के अंतर से प्रस्फुटित होती दिखाई दी। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी रचनाएं जीवन से संबंधित सभी दृष्टिकोणों में प्रामाणिकता उत्पन्न करती हुई देखी जा सकती है। इस समय के लेखन में बुद्धिजीवियों

को भी एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ। उनके व्यवसाय में आने वाली समस्याओं का यथार्थ वर्णन देखा जा सकता है। बुद्धिजीवी पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त और समानताओं का भी अंकन किया गया। इस युग की मूल्यहीनता, आधुनिकता, अकेलापन, स्वच्छंदतावाद, योन स्वच्छंदता आदि का यथार्थ और प्रभावकारी चित्रण प्रस्तुत किया गया। समकालीन समय में यथार्थ के प्रति जिस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है उसका भी वर्णन दिखाई देता है। इन कहानियों में सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों का वर्णन देखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन में आते हुए अनेकानेक परिवर्तनों को भी संप्रेषित किया गया है। इनमें मानवी जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल्यहीनता से अभिशप्त व्यवस्था कि जर्जरता को भी दर्शाया गया द्य धार्मिक भेदभाव को लेकर समाज में राजनीतिक नेता अशांति फैलाते हैं। जिसके कारण धर्मनिरपेक्षता किस हद तक असुरक्षित पड़ी हुई है। इस प्रकार की संकीर्ण भावनाओं के कारण आए दिन दंगे फसाद होते रहते हैं। इन कहानियों में यह भी अंकित किया गया है कि स्वतंत्रता के पश्चात इतने वर्ष बीत गए और फिर भी लोकतांत्रिक मूल्यों को चरितार्थ नहीं किया जा सका इन कहानियों में नौकरशाही व्यवस्था पर भी चर्चा हुई है। इनमें भ्रष्टाचार, गैर जिम्मेदार, और कर्मठता, स्वार्थपरता आदि जैसे गुणों से आच्छादित नेताओं पर कटाक्ष किया गया है।

प्रत्येक साहित्यकार अपने आप को तभी संतुष्टि प्रदान कर सकता है जब वह समाज में किसी न किसी प्रकार की क्रांति लाने में सफल होता हो। साहित्यकार ही है जो समाज में बदलाव लाने के विभिन्न तरीकों को अपनी कलम की ताकत के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है। हिंदी लंबी कहानियों में एक अत्यंत नवीन मोड़ को तीव्रता से हिंदी साहित्य जगत में लाने का प्रयास राजेंद्र यादव, मोहन राम, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर आदि साहित्यकारों ने किया है। संपूर्ण हिंदी साहित्य जगत के लिए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। समकालीन समय में लंबी कहानियाँ समाज के हर एक वर्ग को समान धरातल प्रदान करती है। समाज को नई दृष्टि से देखती है।

लंबी कहानी एक उपन्यास के छोटे रूप में अर्थात लघु उपन्यास के रूप में देखी जा सकती है। इसमें कथानक का गठन बड़ी तेजी से होता है। इसमें से किसी भी संदर्भ को छोड़ा नहीं जा सकता। कोई भी वाक्य शब्द अप्रासंगिक नहीं होता। आवश्यकतानुसार ही प्रसंगो को लिया जाता है। लंबी कहानी में केंद्रीय संवेदना को प्रमुखता दी गई है। इसमें कलात्मकता का अभाव नहीं है। आकर्षण के रूप में भी लंबी कहानियां अपने आप में पूर्ण सफल दिखाई देती है। इसके प्रत्येक अंश को पार की दृष्टि से देखना कहानीकार का प्रथम कर्तव्य और उद्देश्य बन गया है। लंबी कहानी समकालीन समय की एक महत्वपूर्ण और विशेष विधा के रूप में अपना अस्तित्व बना रही है। इसमें केवल विस्तृतता या लंबाई ही नहीं है बल्कि युगबोध का संपूर्ण विश्लेषण इसमें पाया गया है। यही कारण है कि साहित्यिक विधा कहानी से लंबी कहानी अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए हैं। इसमें लंबापन लघु उपन्यास जैसा दर्शित होता है परंतु यह अंतरंग की दृष्टि से बिल्कुल अलग है। अनेक स्थानों पर इसकी भी लघुता देखी जा सकती है। समकालीन जीवन के यथार्थ को इसमें संजोने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि युगबोध को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है।

मैत्रेई पुष्पा की लंबी कहानी 'गोमा हंसती है, ओमप्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर, अखिलेश द्वारा कृत 'जलडमरूमध्य', 'विश्व बाजार अकाउंट' जयनंदन द्वारा रचित है, प्रेमपाल शर्मा का 'पिज्जा और छेदीलाल', प्रत्यक्षा द्वारा रचित 'दिलनवाज तुम बहुत अच्छी हो उमाशंकर चौधरी द्वारा लिखी गई 'शेक्सपियर क्या तुम उससे मिलना चाहोगे' आदि लंबी कहानियों में नवीन अवधारणा और परिवेश को देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. ग्यारह लंबी कहानियां, निर्मल वर्मा, भूमिका, प्रकाशन,भारतीय ज्ञानपीठ
2. हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ सुरेन्द्र चौधरी, हिंदी कहानी: रचना प्रक्रिया
3. साहित्यिक विधाएँ, डॉ शशिभूषण सिंघल
4. साहित्य की विधाएँ, पुनर्विचार, डॉ हरी मोहन
5. हिंदी गद्य इधर की उपलब्धियां, पुष्पपाल सिंह
6. कृष्णा अग्निहोत्री, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी
7. अमरकांत का कहानी साहित्य कथ्य और शिल्प, शिव नाथ त्रिपाठी

दरभंगा सदर प्रखण्डः अनुसूचित जातीय जनांकिकी

डॉ० रतन कुमार झा

पर्यवेक्षक, ऐसोशिएट प्रोफेसर, भूगोल, मारवाड़ी कॉलेज, दरभंगा

मृत्युंजय कुमार

शोधार्थी, भूगोल, ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा।

सारांशः

किसी भी देश का विकास वहाँ प्राप्त संसाधनों के समुचित उपयोग पर निर्भर करता है तथा मानव संसाधनों का उपयोगकर्ता तथा उपभोगकर्ता अर्थात् मानव किसी देश के आर्थिक, सामाजिक विकास का वह महत्वपूर्ण पक्ष है, जो प्राप्त संसाधन का उपयोग कर विकास को गति प्रदान करता है। इस प्रकार जनसंख्या किसी देश के आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना का निर्माण करता है। जनसंख्या का अध्ययन जनसंख्या भूगोल का मूल तत्व है। जनसंख्या भूगोल के अध्ययन पर अमेरिकी विद्वान जेलिन्सकी (1966) ने प्रकाश डालते हुए अपने पुस्तक "A prologue to population Geography में लिखा है, कि" जनसंख्या भूगोल वह विज्ञान है, जो उन विधियों की व्याख्या करता है, जिसमें स्थलों की भौगोलिक प्रकृति निर्मित होती है, और इसके प्रतिक्रिया स्वरूप जनसंख्या तत्व का एक समूह उत्पन्न होता है, जो क्षेत्र और समय दोनों के सन्दर्भ में परिवर्तनशील होता है, क्योंकि वे तत्व परस्पर तथा अनेक अजनांकिकी तत्वों के प्रति अन्त:क्रिया करते हुए अपने व्यावहारिक नियमों का अनुसरण करते है।''

विगत कुछ दशकों में भूगोल विषय में जनसंख्या से संबंधित अध्ययन का रूझान बढ़ा है। भूगोल में भू क्षेत्र के अध्ययन के अलावा अन्य संबंधित अध्ययन को भी महत्व दिया जाने लगा है। मनुष्य प्रकृति का एक अभिन्न अंग है। वह अपने जीविकोपार्जन हेतु प्राकृतिक वातावरण से अनेक रूपों में सामनजस्य स्थापित करना चाहता है, तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें विभिन्न तरह के संसोधन करता है। जनसंख्या भूगोल का उदभव 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस आदि के भूगोलवेत्ताओं के द्वारा हुआ। सन् 1830 में रॉयल ज्योग्राफीकल सोसाईटी के स्थापना उपरान्त डॉर्विन के विकासवादी सिद्धांत द्वारा भूगोल के विषय स्वरूप को विकसित होने का गौरव प्राप्त हुआ। फ्रांस के विद्वानों ने प्रादेशिक भूगोल के समरूप ही मानव भूगोल के क्षेत्र में सिद्धांतों का प्रतिपादन कर एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार किया। अमेरिकी विद्वान कार्ल सावर ने मानव को महत्वपूर्ण मानते हुए, भूगोल को सामाजिक विज्ञान की संज्ञा दी तथा साथ ही मानव के अध्ययन पर विशेष बल दिया। मानव का अध्ययन ही जनांकिकीय कहलाता है। जनसंख्या भूगोल मानव भूगोल का नवनिर्मित शाखा है, जिसमें जनांकिकीय संबंधी अनेक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

दरभंगा सदर प्रखण्ड में अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या 44842 है, जो कुल आबादी का 15.95% है तथा अनुसूचित जाति आबादी में दशकीय (200-11) वृद्धि 21% का रहा है। साथ ही दरभंगा सदर प्रखण्ड की कुल आबादी 280997 है, तथा दशकीय वृद्धि (2001-11) 27.63% का रहा है।

प्रस्तुत शोध दरभंगा सदर प्रखण्ड में अनुसूचित जातियों की जनांकिकी पर दृष्टिगत है।

मुख्य शब्द- अनुसूचित जाति, जनसंख्या, दरभंगा सदर, दशकीय वृद्धि।

भूमिका- दलित से तात्पर्य ऐसे वर्ग से है, जो समाज में छूआ-छूत की भावना एवं सामाजिक बहिष्कारों से पीड़ित होते है। जबसे दलित शब्द प्रचलित हुआ है, तब से लेकर आज तक इनकी स्थिति अध्ययन का मुद्दा बना हुआ है। दलितों के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानने के लिए सबसे पहले वैदिक युग की चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है। वैदिक युग को दो भागों-ऋगवैदिक काल तथा उत्तरवैदिक काल में बाँटा गया है। ऋगवैदिक काल में श्रम विभाजन के आधार पर बाह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य तीन वर्णों में विभाजित किया गया था। इसके अतिरिक्त ऋग्वैदिक काल के अंतिम क्षण में शूद्र नामक एक नया वर्ण भी अस्तित्व में आया। ऋगवैदिक काल में वर्ण व्यवस्था मूलत: कर्म पर आधारित थी। जैसे ऋग्वेद में एक स्थान पर एक ऋषि का कथन है, कि मैं कवि हूँ। मेरा बेटा वैद्य है, तथा मेरी माता अन्य पीसने का कार्य करती है। साधन भिन्न है, किन्तु सभी धन की कामना करते है तथा यह समाज जन्म अथवा वंश पर आधारित न होकर व्यक्ति के गुण और कर्म पर आधारित थी।

प्रस्तुत शोध क्षेत्र में बिहार के 22 अनुसूचित जातियों में से प्रमुखत: डोम, दुसाध, चमार, मुसहर, हलखोर, धोबी, खतवे इत्यादि जातियाँ निवास करती है। जिनका सर्वेक्षण एवं अध्ययन करके इनके जनांकिकी का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र:

दरभंगा सदर प्रखण्ड बिहार के उत्तरी मैदान में स्थित दरभंगा जिला का एक प्रमुख प्रखण्ड है। यह प्रखण्ड 187 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है तथा $26^0$10* उत्तरी अक्षांश से $26^0$15? उत्तरी अक्षांश तक तथा $85^0$50? पूर्वी देशांतर से $86^0$9? पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। इस प्रखण्ड के उत्तर में क्वेटी, दक्षिण में हनुमाननगर तथा बहादुरपूर, पूरब में मनीगाछी तथा पश्चिम में सिंघवारा प्रखण्ड स्थित है।

विधि तंत्र:

विधि तंत्र शोध की कुंजी होती है। विधि तंत्र की सहायता से शोध कार्य में आँकड़ों एवं तथ्यों को संचालित करके अनुसंधान के कार्य को एक नया रूप दिया जाता है। इस शोध में प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग साक्षात्कार एवं अवलोकन के द्वारा किया गया है। तथा उनका सम्पादन कर विश्लेषण किया गया है। साथ ही दरभंगा जिला जनसंख्या प्रतिवेदन (DCH) 2001 तथा 2011 का उपयोग किया गया है।

शोध का उद्देश्य:

प्रस्तुत शोध दरभंगा सदर प्रखण्ड के अनुसूचित जाति के जनांकिकी पर आधारित है। इस प्रखण्ड में अनुसूचित जाति का प्रतिशत बहुत कम है। जो कुल आबादी का मात्र 15.95% है। जो निश्चित ही कम है। अत: शोध लेख का निम्न उद्देश्य है।

1. इस क्षेत्र में पंचायतवार अनुसूचित जातियों में जनसंख्या का आंकलन करना है।
2. 2001-2011 के बीच जनसंख्या में वृद्धि का आंकलन करना है।

शोध समस्या एवं विश्लेषण:

संसाधनों के वितरण में भिन्नता एवं विविधता तथा अन्य भौगोलिक कारकों के प्रभाव के कारण किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या का वितरण एक समान नहीं होता है। कहीं जनसंख्या का वसाब बहुत अधिक तो कहीं बहुत ही विरल पाया जाता है, यह असमानता मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं एवं सुख सुविधाओं का परिणाम है। वस्तुत: मनुष्य वहीं वसना पसन्द करते है, जहाँ उन्हें सभी तरह की सुख सुविधाएँ प्राप्त होते है। प्राचीन काल में मनुष्य नदियों तथा जल स्रोतों के पास बसना पसन्द करते थे, जिससे उन्हें पेय-जल के साथ-साथ आर्थिक क्रिया का संचालन एवं परिवहन की सुविधाएँ मिलती थी। मेसोपोटामिया की सभ्यता, सिन्धु-घाटी की सभ्यता आदि इसके स्पष्ट उदाहरण है।

जनसंख्या का असमान वितरण वास्तव में संसाधनों के वितरण या प्राप्तता में असमानता का परिणाम है। दूसरी तरफ जनवितरण में असमानता विकास को भी प्रभावित करता है। संसाधनों की तुलना में जनसंख्या का केन्द्रण अधिक होता है, वहाँ बेरोजगारी, गरीबी

अधिक पाये जाते है, तथा विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, वहीं संसाधन के तुलना में आबादी अनुकूल या कम रहने पर रोजगार के अवसर एवं मजदूरी दोनों ही अधिक मिलते है, जिसमें विकास का दर ऊँचा रहता है। लेकिन संसाधन की उपलब्धता के अनुपात में जनसंख्या बहुत कम होने पर संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है, जिससे विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। फिर भी वितरण में असमानता पायी जाती है। जिसके लिए उत्तरदायी कारकों में प्रमुखतः बाढ़ एवं सुखार जैसे प्राकृतिक आपदाएँ, शहरी क्षेत्रों में उच्च मजदूरी का मिलना एवं अधिक रोजगार के अवसर प्रमुख है। अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वितरण कहीं अधिक है, तो कहीं कम है, जिसका प्रमुख कारण भौतिक तथा मानवीय कारणों के साथ-साथ कुछ अन्य कारण भी है, जो जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करते है। जैसे कृषि की दशा, रोजगार के अवसर यातायात के साधन, बाढ़ तथा सूखा, राजनीतिक स्थिति आदि प्रमुख है। दरभंगा सदर प्रखण्ड में पंचायतवार सामान्य एवं अनुसूचित जाति की आबादी का वितरण तालिका संख्या-1.1 में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या- 1.1: दरभंगा सदर प्रखण्डः पंचायतवार सामान्य एवं अनुसूचित जाति की आबादी, 2011
(आबादी प्रतिशत में)

Ø- l-	iapk;r	dqy vkcknh ¼iz[k.M dk izfr'kr½			vuqlwfpr tkfr vkcknh ¼iz[k.M dk izfr'kr½		
		P	**M**	**F**	**P**	**M**	**F**
1.	कंसी	4.24	4.23	4.26	3.28	3.12	3.38
2.	शिशो पू0	2.34	2.38	2.30	1.38	1.43	1.34
3.	शिशो पूर्वी	5.51	5.48	5.56	5.80	5.76	5.85
4.	शहवाजपुर	3.69	3.71	3.67	4.96	4.96	4.97
5.	वासुदेवपुर	4.32	4.35	4.28	2.08	2.20	1.94
6.	रानीपुर	4.95	4.97	4.94	6.62	8.10	6.40
7.	सारामहम्मद	6.15	6.20	6.10	9.35	9.40	9.31
8.	कवीरचक	3.78	3.76	3.81	6.22	6.13	6.30
9.	धोई	4.57	4.64	4.50	1.71	1.66	1.70
10.	खुटवारा	4.18	4.25	4.10	2.38	2.30	2.46
11.	बिजुली	4.90	4.97	4.82	4.40	4.4	4.40
12.	बलहा	4.58	4.58	4.61	5.58	5.50	5.67
13.	छोटाईपट्टी	4.34	4.30	4.41	3.42	3.40	3.44
14.	दुलारपुर	4.50	4.51	4.50	8.02	8.00	8.03
15.	लोआम	3.96	3.94	3.10	0.86	0.87	0.84
16.	मुरिया	4.32	4.20	4.50	1.70	1.61	1.80
17.	अदलपुर	4.59	4.61	4.60	2.75	2.76	2.73
18.	भालपट्टी	2.93	2.87	3.01	3.47	3.50	3.46
19.	खरूआ	4.10	4.12	4.12	4.07	4.00	4.15
20.	अतिहर	4.15	4.10	4.22	2.70	2..69	2.65
2.1.	सोनकी	4.44	4.44	4.44	5.11	2.20	4.96
22.	घोरघट्टा	3.65	3.65	3.65	6.69	6.65	6.73
23.	नैनाघाट	5.70	5.75	5.64	7.45	7.56	7.34
कुल		100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00

स्रोत- भारतीय जनगणना प्रतिवदेन (2011): सीरीज 11,
बिहार खण्ड XII B DCH, दरभंगा।

मानचित्र संख्या-1.1: दरभंगा: सदर प्रखण्ड पंचायतवार अनुसूचित जाति की आबादी (प्रतिशत में 2011)

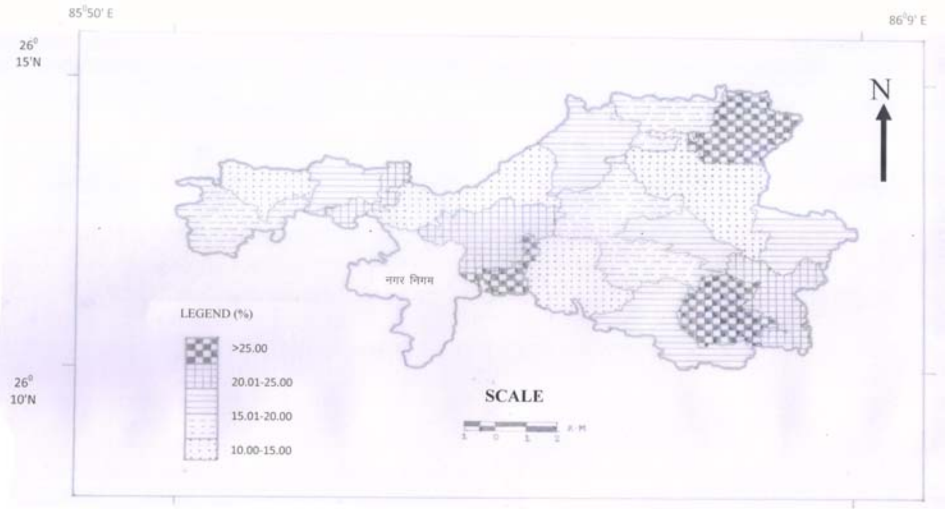

उपर्युक्त तालिका संख्या 1.1 से ज्ञात होता है, कि अध्ययन क्षेत्र में सबसे अधिक आाबादी वाला पंचायत सारामहम्मद है, जहाँ की आबादी 17289 है, जो प्रखंड के कुल जनसंख्या का 6.15 प्रतिशत है तथा सबसे कम आबादी 6591 शिशो पश्चिमी पंचायत में (प्रखण्ड का 2.34%) है।

मानचित्र संख्या 1.1 दर्शाता है, कि अनुसूचित जाति की आबादी का सर्वाधिक संकेन्द्रण अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी पूर्वी भाग तथा द0 पूर्वी भाग के पंचायत क्रमशः दुलारपुर, घोरघट्टा एवं कबीरचक में है। इन पंचायतों में अनुसूचित जाति की आबादी पंचायत के कुल जनसंख्या का एक चौथाई से अधिक है। इसी तरह 20 से 25 प्रतिशत अनुसूचित आबादी वाले पंचायत भी उपरोक्त पंचायत से सटे या आस-पास अवस्थित है। ये पंचायत क्रमशः सारामहम्मद, शहवाजपुर, रानीपुर एवं नैनाघाट है। इन पंचायतों में से सारामहम्मद, रानीपुर तथा शहवाजपुर दरभंगा शहर से सटे हुए है। अतः यहाँ के मजदूरों को कृषि क्षेत्र के अलावा शहरी क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर प्राप्त होते है। इसी कारण इन पंचायतों में अनुसूचित जाति की आबादी अधिक है।

उपरोक्त शहरी क्षेत्र से सटे पंचायत के अलावा सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है। जहाँ अनुसूचित जाति आबादी 20 प्रतिशत या उससे भी कम है। इसके अंतर्गत कुल 16 पंचायत है, जिसमें सात पंचायत क्रमशः अदलपुर, मुरिया, धोई, लोआम, खुटवारा, वासुदेवपुर तथा शिशो प0 है, जहाँ 10 प्रतिशत से भी कम अनुसूचित जातीय आबादी है तथा पूर्वी, मध्य एवं उत्तर पूर्वी भाग में अवस्थित बिजुली, छोटाईपट्टी, कंसी तथा अतिहर पंचायतों में आबादी 10 से 15 प्रतिशत के बीच है। वहीं 15 से 20 प्रतिशत आबादी वाले पंचायतों में क्रमशः बलहा, सोनकी, भालपट्टी, खरूआ तथा शिशो पूर्वी है। इन पंचायतों में बाढ़ के दौरान कृषि कार्य बंद हो जाने के कारण रोजगार का अभाव हो जाता है, तथा गरीबी के कारण यहाँ के मजदूर वर्ग के लोग देश के अन्य भाग में रोजगार हेतु पलायन करते है। जिसके कारण यहाँ जनसंख्या का संकेन्द्रण कम पाया जाता है।

जनसंख्या वृद्धिः

''जिस प्रकार घर में भूखे बच्चे से ग्रसित परिवार के मुखिया कोई गहरा ठोस कार्य करने में असमर्थ होता है, ठीक उसी प्रकार अविकसित तथा निर्धन जनसंख्या वृद्धि के जाल में बुरी तरह फँसता जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि तो स्वभाविक है, क्योंकि यह वृद्धि शून्य नहीं हो सकती। शून्य का अर्थ है, कि सृष्टि का विकास रूक जाना।

लेकिन यह वृद्धि अत्यन्त विस्फोटक एवं तीव्रगति से हो रही है, जो निश्चित ही चिंता का विषय हैं, विश्व की इस ज्वलंत समस्या से सम्पूर्ण विश्व समुदाय इस समस्या से चिंतित है। चाहे वह विकसित देश हो या विकासशील देश। यह सत्य है, कि विकसित देश के अर्थव्यवस्था पर इस वृद्धि का प्रभाव कम देखा गया है, लेकिन विकासशील देशों पर तो यह वृद्धि कोई प्राकृतिक-आपदा से कम नहीं हैं, जो हर तरह की सुविधा होने के बावजूद भी मानव को पंगु बना रहा है।

''भारत के संदर्भ में देखा जाय तो जनगणना के शुरूआत 1872 से लेकर 2011 के बीच में 1891-01 तथा 1911 के दशक में ही जनसंख्या में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की की गई थी। जिसका कारण भीषण अकाल तथा महामारी था। विश्व की जनसंख्या वृद्धि में भारत का योगदान वर्तमान में सबसे अधिक है। जनसंख्या में वृद्धि मुख्यत: निम्न कारणों से होता है, जैसे-विवाह की आयु का कम होना, जन्म-दर एवं मृत्यु-दर के मध्य अन्तराल का अधिक होना, प्रजन्न दर का ऊँचा होना, प्रचलित अंधविश्वास, ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े परिवार का होना, प्रवास होना, सामाजिक सुरक्षा हेतु परिवार की सुरक्षा आदि।''

भारत के जनगणना के अनुसार दरभंगा सदर प्रखण्ड की आबादी वर्ष 2001 में 229138 थी जो बढ़कर 2011 में 280997 हो गई है। इस प्रकार इस एक दशक में प्रखण्ड की आबादी में 51859 व्यक्ति अर्थात 27.63 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वहीं अनुसूचित जाति की आबादी इसी अवधि में 37026 व्यक्ति से बढ़कर 44842 हो गई और 21 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर्ज की गई।

अनुसूचित जातियों में सबसे अधिक दशकीय वृद्धि शिशो पश्चिमी पंचायत में 76.98 है तथा सबसे कम दशकीय वृद्धि कंसी पंचायत का रहा जो 9.69 प्रतिशत है। अनुसूचित जातीय जनसंख्या में यहाँ ऋणात्मक वृद्धि भी पाया गया है। सबसे अधिक कमी भालपट्टी पंचायत का रहा है, जहाँ 2001 के तुलना में 2011 में 28.72 प्रतिशत की कमी हुई है, वही अदलपुर में 20.64 प्रतिशत, धोई में 20 प्रतिशत, मुरिया में 16.88 प्रतिशत तथा खरूआ पंचायत में 4.09 प्रतिशत की कमी पायी गयी है। क्षेत्रीय अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या में कहीं भी वास्तविक ऋणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। इस ऋणात्मक वृद्धि का मुख्य कारण वर्ष 2011 के जनगणना के पूर्व पंचायत का पुन: परिसीमन है। इस परिसीमन में धोई, मुरिया, अदलपुर, भालपट्टी एवं खरूआ पंचायत के कुछ भाग कटकर बगल के पंचायत में शामिल कर दिया गया। अत: जहाँ भी ऋणात्मक वृद्धि मिलता है, जो तालिका संख्या 1.2 से स्पष्ट है।

तालिका -1.2: दरभंगा सदर प्रखण्ड: अनुसूचित जातीय दशकीय जनसंख्या वृद्धि 2001-2011

Ø-l-	iapk;r	tula[;k ¼2001½	tula[;k ¼2011½	tula[;k of) ¼n'kdh;½	n'kdh; of) izfr'kr esa
1.	कंसी	1341	1471	130	9.69
2.	शिशो प0	352	623	271	76.18
3.	शिशो पू0	2006	2601	595	29.66
4.	शहवाजपुर	1723	2228	505	29.30
5.	वासुदेवपुर	850	935	85	10.00
6.	रानीपुर	2191	2970	779	35.55
7.	सारामहम्मद	3249	4194	945	29.08
8.	कबीरचक	1854	2786	932	50.26
9.	धोई	960	765	−195	−20.00
10.	खुटवारा	922	1068	146	15.83
11.	बिजुली	1541	1974	433	28.09
12.	बलहा	2036	2500	436	21.41
13.	छोटाईपट्ट	.1197	1534	337	28.15
14.	दुलारपुर	2469	3594	1125	45.56
15.	लोआम	346	385	39	11.27
16.	मुरिया	918	763	−155	−20.64
17.	अदलपुर	1555	1234	−321	−16.88
18.	भालपट्टी	2183	1556	−627	−20.64
19.	खरूआ	1904	1826	−78	−28.72
20.	अतिहर	922	12.09	287	4.09
21.	सोनकी	1690	2282	592	31.12
22.	घोरघट्टा	1890	3000	1110	35.02
23.	नैनाघाट	2824	3344	520	58.73
दरभंगा सदर प्रखण्ड		36445	44842	8397	18.42

स्रोत- Census of India (2001 part XII (A,B(, 2011 part XII B) : Series-11, Bihar, DCH, Darbhanga.

निष्कर्ष:

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि इस प्रखण्ड में पंचायतवार अनुसूचित जातीय जनसंख्या में असमानता पायी जाती है। मुख्य रूप नगरीय क्षेत्र से दूरी तथा कृषि बहुल क्षेत्र से प्रभावित होते है, अर्थात् जो क्षेत्र शहर से नजदीक है, वहाँ जनसंख्या का संकेन्द्र आधिक है, साथ ही जहाँ कृषि की बहुलता है, वहाँ भी इन वर्गों का संकेन्द्रण अधिक है। इसके अतिरिक्त सवर्णों की तुलना में दशकीय वृद्धि कम हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. ममोरिया चतुर्भुज (2012) भारत का भूगोल (SBPD, Publication), पृष्ठ–01
2. भारतीय जनगणना प्रतिवेदन (2001, 2011) सीरीज–11, बिहार खण्ड– XII B, DCH दरभंगा।
3. राय प्रज्ञान (2014): मानव विकास सूचकांक और आर्थिक विकास उत्तर प्रदेश के संदर्भ में (बीर बहादूर विश्वविद्यालय, जौनपुर)
4. अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्या (2010): फोकस समूह का आधार पत्र, NECERT
5. त्रिपाठी रामनरेश (2009): जनसंख्या भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन
6. त्रिपाठी हरिओम (2012): ग्रामीण तथा नगरीय समाज शास्त्र शिवांक प्रकाशन नई दिल्ली।
7. खत्री कुमार हरीश, अग्रवाल विजय (2015): जनसंख्या भूगोल, कैलाश पुस्तक प्रकाशन।

भारत में ई-शासनः अवसर एवं चुनौतियाँ

ऋतेश भारद्वाज एवं दिव्या

सार

आज भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग समाज के सभी क्षेत्रों में किया जा रहा है। ताकि इसके प्रभाव को बेहतर बनाया जा सके। इसी कारण इस पद्धति का प्रयोग लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी किया जा रहा है, जिसे ई-शासन कहा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित ई-शासन न केवल समाज को आर्थिक लाभ पहुँचाएगा बल्कि इसका प्रभाव सामाजिक, वित्तीय, तकनीकी व सांस्कृतिक पहलुओं से संबंधित मुद्दों पर भी पड़ेगा। भारत सरकार द्वारा ई-शासन को सुशासन के मूल यंत्र के रूप में प्रयोग किया जा रहा है ताकि शासन व्यवस्था को 'स्मार्ट' शासन में बदला जा सके। परन्तु भारत की विविधता के कारण ई-शासन के क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ आ रही हैं। इसी कारण भारत में ई-शासन के उद्देश्यों को पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया जा सका है। इसलिए यह आवश्यक है कि ई-शासन के क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों का समाधान करते हुए, सभी उपभोक्ताओं तक ई-शासन सेवाओं का लाभ पहुँचाया जाये।

भूमिका

आज प्रौद्योगिकी में हो रहे तेज विकास ने हमारे जीवन को जीने के तरीकों के साथ-साथ समाज की मांगों में रचनात्मक बदलाव किए हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी समाज में गतिशील परिवर्तन ला रही है और जीवन के प्रत्येक पहलुओं को प्रभावित कर रही है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी उन सभी प्रौद्योगिकियों को संदर्भित करती है जो दूरसंचार के माध्यम से सूचना तक पहुँच प्रदान करती है। यह सूचना प्रौद्योगिकी की तरह है परन्तु मुख्य रूप से संचार प्रौद्योगिकियों पर केंद्रित है। इसमें भिन्न प्रकार के वायरलेस नेटवर्क, मोबाईल फोन, इंटरनेट और अन्य प्रकार के संचार माध्यम शामिल हैं। भारत में 1956 में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए पहला कम्प्यूटर लाया गया, जिसका नाम 'होलेरिथ एचईसी-2एम' था, जिसे पश्चिम बंगाल राज्य के कोलकाता शहर के भारतीय सांख्यिकी संस्था में स्थापित किया गया। परन्तु, असल में भारत में ई-शासन की शुरुआत 1970 में इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग और 1976 में राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की स्थापना के साथ हुई। राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की शुरुआत इलेक्ट्रॉनिक आयोग द्वारा की गई। इसके द्वारा सबसे पहले देश के सभी जिलों को आपस में जोड़ने का काम किया गया ताकि शासन को सुचारु रूप से चलाया जा सके। भारत में वर्ष 1980 तक लगभग सभी सरकारी विभागों में कम्प्यूटर को स्थापित किया गया, परन्तु इसका इस्तेमाल केवल आँकड़ों के संग्रहण तक ही सीमित रहा।

वर्ष 1987 में भारत सरकार द्वारा ई-शासन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय उपग्रह पर आधारित कम्प्यूटर नेटवर्क (NICNET) की शुरुआत की गई, जिसके फलस्वरूप देश के सभी जिलों के कार्यालयों में कम्प्यूटर स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय सूचना केन्द्र की सहायता से जिला सूचना केन्द्र (DISNIC) की स्थापना की गई, जिसके लिए सभी राज्य सरकारों को निःशुल्क हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर प्रदान किए गए। परिणामस्वरूप वर्ष 1990 तक राज्यों की राजधानियों में निकनेट (NICNET) स्थापित हुआ व साथ ही सभी जिला मुख्यालयों में डिसनिक (DISNIC) का विस्तार हुआ। वहीं लगभग दस साल बाद वर्ष 1999 में सरकार द्वारा केन्द्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का गठन किया गया। उसके बाद, वर्ष 2000 में ई-शासन के क्रियान्वयन के लिए सभी केन्द्रीय मंत्रालयों और विभागों के लिए 12 सूत्री न्यूनतम कार्यसूची तैयार की गयी। साथ ही साथ 15 अगस्त 2000 को केन्द्रीय सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय में अलग से एक 'ई-शासन केन्द्र' की स्थापना की गयी, जो पूरे देश में ई-शासन के विस्तार के लिए कार्य कर रही है।

भारत सरकार द्वारा ई-शासन को पूर्ण वैधानिकता प्रदान करने के संबंध में 'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000' (Information Technology Act, 2000) को 9 जून, 2000 को पारित किया गया और 18 अक्टूबर, 2000 को लागू किया गया। यह अधिनियम प्रदान करता है- "इलैक्ट्रानिक डाटा के आदान-प्रदान द्वारा और इलैक्ट्रानिक संसूचना के अन्य साधनों द्वारा, जिन्हें सामान्यतया 'इलैक्ट्रानिक वाणिज्य' कहा जाता है और जिनमें संसूचना और सूचना के भंडारण के कागज-आधारित तरीकों के अनुकल्पों का उपयोग अंतर्वलित है, लिए गए संव्यवहारों को विधिक मान्यता देने, सरकारी अभिकरणों में दस्तावेजों को इलैक्ट्रानिक रूप से फाइल करना सुकर बनाने और भारतीय दंड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, बैंककार वही साक्ष्य अधिनियम 1891 और भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 का और संशोधन करने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम।"

इस अधिनियम द्वारा सूचना व संचार प्रौद्योगिकी को विस्तार मिला साथ ही साथ साइबर अपराधों में हो रही वृद्धि को नियंत्रित करने के प्रावधान किए गए। साथ ही अधिनियम के तृतीय अध्याय में ई-शासन के संबंध में बनाए गए नियमों का वर्णन किया गया है।

ई-शासन की परिभाषा

किसी भी तकनीकी नवाचार का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है और यह केवल तकनीकी नवाचारों को मानव समाज में सफलतापूर्वक आत्मसात करने से ही प्राप्त हो सकता है। ई-शासन, इलेक्ट्रॉनिक वातावरण के शासन से ना अधिक है ना कम है। बल्कि यह इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग करते हुए यह उस वातावरण का और उस वातावरण के भीतर का शासन दोनो है। ई-शासन शामिल करता है- ई-भागीदारी उपकरण, ई-निर्णय निर्माण, ई-परामर्श, ई-लोकतंत्र, ई-संचार आदि। ई-शासन का मुख्य उद्देश्य-सरकार और व्यावसायिक उद्यमों (G2B), सरकार और नागरिकों (G2C) और अंतर-एजेंसी संबंधों (G2G) को अधिक सुविधाजनक, अनुकूल, सस्ता व पारदर्शी बनाना है। ई-शासन को अंग्रेजी में इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस कहा जाता है, यह शासन का एक नया संस्करण है। ई-शासन को शासन की ऐसी प्रणाली से जोड़ा गया है जिसमें सरकारी सेवाओं और सूचनाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक विधियों और उपकरणों को इस्तेमाल में लिया जाता है। विश्व बैंक समूह (WBG) द्वारा दी गई ई-शासन की परिभाषा इस बात पर जोर देती है कि सभी नागरिकों में सरकारी सेवाओं का बेहतर वितरण हो, व्यापार और उद्योग के साथ बेहतर संपर्क हो, सूचना के माध्यम से नागरिक सशक्तिकरण हो, और अधिक कुशल सरकारी प्रबंधन हो।

इसका अर्थ यह हुआ कि सरकार के विभिन्न अंग, सूचना प्रौद्योगिकी, नेटवर्किंग, मोबाइल कंप्यूटिंग आदि के माध्यम से आम नागरिक, सामुदायिक हित समूहों और व्यवसाय के साथ अपने संबंधों को फिर से परिभाषित करते हैं। ई-शासन का रणनीतिक जोर एक ऐसा वैश्विक केंद्र विकसित करने में है जहाँ स्थानीय और वैश्विक स्तर पर समुदायों को जोड़ा जाए, लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो, आर्थिक इंजन को सक्रिय बनाया जाए और व्यक्ति की क्षमता को बढ़ाया जाए। यह रणनीतिक जोर तभी वास्तविकता में आ सकते हैं जब ऐसे संचार ढांचों (communication infrastructure) का विकास किया जाए जो वैश्विक नेटवर्क के अनुकूल हो।

सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित ई-शासन ना केवल समाज को आर्थिक लाभ पहुँचाएगा बल्कि इसका प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वित्तीय पहलुओं से संबंधित मुद्दों पर भी पड़ेगा। साथ ही यह दुर्लभ संसाधनों के वितरण और उपयोग को समान रूप से सुगम बनाएगा। ई-शासन सरकारी सेवाओं में पारदर्शिता और खुला व्यवहार के द्वारा एक खुली सरकार और सूचना व जन तक सभी की पहुँच को सुगम बनाएगा, ऐसा सूचना के अनंत विस्तार योग्य, प्रसार और तत्काल प्रसारण के माध्यम से होता है।

मौलिक रूप से ई-शासन का अर्थ- सरकारी नागरिक इंटरफेस को न केवल कुशल बल्कि पारदर्शी भी बनाना है। ई-शासन का विचार इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क के माध्यम से जनता को देश के सभी विभागों में सरकारी सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने की क्षमता पैदा करना है। ई-शासन ने तकनीकी नवाचार के माध्यम से-शासन के बुनियादी चरित्र, कार्यात्मक शैली, परिचालन पद्धति, वैचारिक, यहाँ तक की आत्मा और हृदय को बदल दिया है साथ ही यह सीधे तौर पर ऐसा पैकेज प्रदान करता है जिसमें कुशलता, समयबद्धता, प्रभावशाली लागत, पारदर्शिता, ग्राहक-उन्मुखता, नागरिक समझ के साथ-साथ मनमानी के विध्वंस जैसे आदर्श शामिल हैं।

ई-शासन निश्चित रूप से नौकरशाही की लालफीताशाही पर हमला है जो अनावश्यक काम में देरी और भ्रष्टाचार फैलता है। यह उन नागरिकों की नियमित भागीदारी के लिए जगह बनाता है, जो सार्वजनिक सेवाओं के ग्राहकों के रूप में सूचना और प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकारी गतिविधियों तक अपनी सीधी पहुँच रखना चाहते हैं। इसके द्वारा ना केवल सरकारी गतिविधियों को ऑनलाइन देखा जा सकता है बल्कि ई-मेल और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के माध्यम से सरकार को महत्त्वपूर्ण जानकारी (इनपुट) भी प्रदान की जा सकती है।

ई-शासन का उदय, नई मीडिया और नवीनतम तकनीकों को सरकार और नागरिकों प्रयोग और सीखने की बढ़ती रुचि के कारण हुआ है। इसने नेतृत्व की नई शैली, नीति और निवेश के नए तरीके, शिक्षा तक पहुँच, नागरिकों की सुनना और सूचना एवं सेवाओं को व्यवस्थित व वितरित करना शामिल है। सूचना और प्रौद्योगिकी पर आधारित ई-शासन ने बेहतर क्षमताओं के साथ सरकारी नवाचारों में एक नए युग की शुरुआत की है जैसे- संगठनात्मक क्षमता या कार्यक्षमता में वृद्धि, सुविधाजनक एवं विश्वसनीय सेवा वितरण, न्यूनतम टैक्सेक्शन लागत, सार्वजनिक निर्णय लेने में सुधार, सरकारी मामलों में नागरिकों की अधिक से अधिक भागीदारी, सरकार व नागरिकों के बीच विश्वास बनाने में सहायक, कार्यवाहियों को पारदर्शी बनाकर सरकार को अधिक जवाबदेह बनाना, धोखाधड़ी पर अधिक नियंत्रण और भ्रष्टाचार में कमी, विकास के अवसर प्रदान करना- विशेष रूप से ग्रामीण वंचित समुदायों और समाज के हाशिए पर पड़े वर्ग जैसे महिलाएँ, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, कागजी कार्यवाही में कमी, कृषि उत्पादकता में सुधार, संसाधन प्रबंधन मे सुधार आदि।

अगर देखा जाए तो ई-शासन के लिए प्रयास पिछले एक दशक से शुरु हुए हैं परन्तु पिछले कुछ सौ वर्षों में इसने तेजी से गति पकड़ी है। सरकार खुद को अब एक नियामक के रूप में नहीं बल्कि व्यवसाय के फेसिलिटेटर (facilitator) के रूप में पेश करने की कोशिश कर रही है। ई-शासन नियमों और विनियमों, संगठनात्मक संरचना और सरकारी अधिकारियों के जनता के साथ व्यवहार करने के रवैये में बदलाव ला रहा है।

ई-शासनः सुशासन के लिए एक अनिवार्य शर्त

संयुक्त राष्ट्र घोषणा (2000) ने सदस्य देशों से 'सुशासन' को बढ़ावा देने का आह्वान किया। घोषणा ने लोकतंत्र और कानून के शासन (Rule of Law) के सिद्धांतों को लागू करने की क्षमता को मजबूत करने और अधिक समावेशी राजनीतिक प्रक्रिया के लिए सामूहिक रूप से काम करने की आवश्यकता पर जोर दिया। साथ ही नागरिकों को शासन में वास्तविक भागीदारी और जनता के सूचना तक पहुँच के अधिकार को सुनिश्चित करने पर जोर दिया। यह सब सार्वजनिक प्रशासनिक कार्यों में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग को मानव विकास से साधन के रूप में जन-केंद्रित, लोकतांत्रिक और सहभागी शासन के साधन के रूप में कार्य करने की स्थिति में रखता है। ई-शासन सेवाएँ प्रदान करता है, जैसे कर फॉर्म भरना, लाइसेंस का नवीनीकरण, ऑनलाइन भुगतान, मतदाता जानकारी, जन्म और मृत्यु प्रमाण पत्र, सार्वजनिक जानकारी, धनराशि अंतरणा, आय और जाति प्रमाण पत्र, विवाह प्रमाण पत्र, PAN कार्ड, रेलवे रिसर्वेशन, प्रवेश परीक्षा आदि।

ई-शासन एक अच्छे और पारदर्शी प्रशासन के लिए एक पूर्व शर्त है जिसमें ई-सरकार के द्वारा समर्थित ई-लोकतंत्र है साथ ही जिसमें ई-व्यवसाय आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख प्रेरक के रूप में कार्य करता है। संविधान सभी नागरिकों को समानता की गारंटी प्रदान करता है चाहे वो व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति, रंग, भाषा या राजनीतिक विश्वास रखता हो। फिर भी हमें स्वतंत्र न्यायपालिका, ईमानदार सरकार और मनुष्य होने का सम्मान की आवश्यकता है।

सुशासन में 'सु' (good) का अर्थ उन निर्णयों, नीतियों और कार्यो से है जिनका उद्देश्य सभी का कल्याण करना है। लोकतंत्र को आमतौर पर लोगों की सरकार, लोगों द्वारा और लोगों के लिए के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें अच्छे, कल्याणकारी या हितकारी शासन को सुशासन के लिए आवश्यक शर्त माना जाता है। वर्ष 1989 में, विश्व बैंक ने सुशासन की अवधारण पर प्रकाश डाला। सुशासन से उनका अभिप्राय था- अच्छा सार्वजनिक प्रबंधन (sound public management) और इस संदर्भ में उन्होंने चार आयामों की पहचान की (i) सार्वजनिक क्षेत्र प्रबंधन, (ii) जवाबदेही, (iii) विकास और सूचना के लिए कानूनी ढांचा और (iv) पारदर्शिता। सुशासन एक ऐसा वातावरण बनाने पर जोर देता है जो मजबूत और समान विकास को बढ़ावा दे। साथ ही यह मजबूत आर्थिक नीतियों का एक अनिवार्य पूरक है। लोक प्रशासन में सुशासन का अर्थ है विविध हितों प्रबंधकीय स्वायत्तता और प्रशासनिक स्वतंत्रता के साथ नागरिकों और हितधारकों के लिए गुणवत्तापूर्ण सेवाओं का प्रावधान करना। सुशासन नियंत्रण में कमी, व्यक्तिगत

और संगठनात्मक प्रदर्शन की मान्यता और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से सभी संसाधनों की आसान उपलब्धता की आवश्यकता पर जोर देती है जिससे खुली प्रतिस्पर्धा का विकास होता है जो निजी क्षेत्र के विपरीत लोक सेवकों में अनुशासन की भावना पैदा करता है। सुशासन सभी हितधारकों के हितों को ध्यान में रखते हुए, पदजमत और पदजतं-सरकारी इंटरफेस और लेनदेन में एक सहयोगात्मक दृष्टिकोण का प्रयास करता है। एक देश को समता, गरीबी उन्मूलन और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए सुशासन की आवश्यकता होती है, जो न्यायसंगत व ईमानदार व्यावसायिक गतिविधियों के लिए लोकतांत्रिक सिद्धांतों का ढांचा प्रदान करता है। इसलिए विकसित वैश्विक समुदाय का हिस्सा बनने के लिए, एक देश की विकास प्रक्रियाओं में ई-शासन के माध्यम से सुशासन पैदा करना अत्यधिक आवश्यक है।

देश में जो विरोधाभासी स्थिति पैदा हो रही है, वह यह है कि लोग अब सूचना प्रौद्योगिकी को संदेह की दृष्टि से नहीं देखते हैं। बल्कि आम जनता को यह एहसास हो रहा है कि उसे ई-शासन के माध्यम से सुशासन से अत्यधिक लाभ होने वाला है इसलिए वह उसे अपना रहे हैं और देखा जाए तो लोग बहुत लम्बे समय से सरकार के साथ अपने संबंधों को लेकर परेशान हैं जैसे तरह-तरह के फॉर्म भरना, कागजी कार्रवाईयाँ, काम में देरी, गोपनीयता, सत्तावाद और नकारात्मक व्यवहार आदि। लोग ई-शासन या सुशासन के माध्यम से इन सभी परेशानियों, जो एक बुरे सपने की तरह है से बाहर आना चाहते हैं। जनता ये सब और नहीं चाहती है इसलिए सुशासन की मांग, कागज रहित कार्यालय (paperless ffoice) का नारा, गोपनीयता से छुटकारा, पारदर्शिता और सूचना के अधिकार पर जोर दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी उन्हें वह सब दे सकती है जो सुशासन की सफलता के लिए जरूरी है और सुशासन का दूसरा नाम ई-शासन है।

इस प्रकार भारत सरकार द्वारा ई-शासन को सुशासन के मूल मंत्र के रूप में रूप में प्रयोग किया जा रहा है ताकि व्यवस्था को 'स्मार्ट' शासन में बदला जा सके। परन्तु ई-शासन को पूर्ण रूप से लागू करना आसान कार्य नहीं है क्योंकि भारत एक गाँवों का देश है जिसकी आर्थिक, सामाजिक व पर्यावरणीय स्थिति ई-शासन के बेहतर क्रियान्वयन के लिए अनुकूल नहीं है विकासशील देश की अपेक्षा एक विकसित देश में ई-शासन का क्रियान्वयन सरल है क्योंकि विकसित देश में ई-शासन के प्रयोग के लिए आवश्यक परिवेश विकसित होता है, परन्तु अभी भारत में ई-शासन के लिए आवश्यक परिवेश पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है। फलस्वरूप भारतीय परिवेश में ई-शासन के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं।

ई-शासन की चुनौतियाँ

ई-शासन के चार स्तंभ माने जाते हैं- लोग, प्रक्रिया, प्रौद्योगिकी और संसाधन। इसलिए ई-शासन की जो चुनौतियाँ लोगों से सम्बन्धित हैं वह हैं- सरकारी उदासीनता, सरकार में कौशल की कमी, लोगों में इच्छा की कमी आदि; प्रक्रिया से सम्बन्धित चुनौतियाँ- प्रक्रिया मॉडल की कमी, खराब कानूनी संस्थागत ढांचा, यथास्थितिवाद, जटिल वसूली आदि; प्रौद्योगिकी से सम्बंधित चुनौतियाँ- वास्तुकला की कमी, मानकों की कमी, खराब संचार आधारभूत संरचना, और हार्डवेयर दृष्टिकोण आदि; और संसाधन से सम्बंधित चुनौतियाँ- बजट की कमी, परियोजना प्रबंधन कौशल की कमी, निजी क्षेत्र की उदासीनता आदि।

आज ई-शासन सरकारों के लिए प्रमुख चुनौती है क्योंकि इसमें कई हितधारक और प्रक्रियाएँ शामिल हैं और यह समन्वय एवं सहयोग के साथ-साथ प्रबंधकीय और वित्तीय संसाधनों की मांग करता है। निम्नलिखित बाधाएँ जो सार्वजनिक संगठन में ई-शासन के क्रियान्वयन के रास्ते में खड़ी हैं वो इस प्रकार हैं-

i) प्रशासनिक चुनौतियाँ- प्रशासन, शासन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग होता है। इसलिए सुशासन के लिए एक अच्छा प्रशासन अनिवार्य है। अच्छे प्रशासन से अभिप्राय एक ऐसे प्रशासन से है जो भ्रष्टाचार मुक्त, पारदर्शी, जवाबदेह, उत्तरदायी और नैतिक हो। परन्तु भारत में ई-शासन के क्रियान्वयन में असमानता है। कुछ राज्य - केरल, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि में ई-शासन का तेजी से विस्तार है परन्तु दूसरे राज्यों में प्रक्रिया धीमी है। दूसरा, प्रशासन में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक बाधा सरकारी कर्मचारियों की मानसिकता है। वे केवल मैनुअल मोड में काम करने के आदी हैं उन पर अभी औपनिवेशिक मानसिकता का दबदबा है, जो सुशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधा है। भारत में ई-शासन प्रणाली योजना और डिजाइन जवच.कवूद मॉडल पर आधारित है।

ii) सामाजिक चुनौतियाँ- भारत में विभिन्न संस्कृति और धर्मों के लोग निवास करते हैं जो अपने राज्यों में अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग करते हैं और यही भाषा की विविधता भारत में ई-शासन के क्रियान्वयन में बहुत बड़ी बाधा है। क्योंकि

ई-शासन में ज्यादातर आवेदन अंग्रेजी भाषा में दिए जाते हैं जिसे सभी के लिए समझना कठिन है। साथ ही ज्यादातर लोगों को कम्प्यूटर की पूर्ण जानकारी नहीं है। बहुत से लोग ई-शासन की सुविधाओं को मान्य नहीं मानते। वे इस शंका में रहते हैं कि उनसे कोई गलती ना हो जाए, जिसके लिए जागरुकता अभियान चलाने की आवश्यकता है। आम नागरिकों के लिए सरकारी वेबसाईट को समझना कठिन है क्योंकि वेबसाईट की सरंचना जटिल होती है और साक्षरता की कमी के कारण वे उसे समझ व प्रयोग नहीं कर पाते। साथ ही ऐसी अनेकों सेवाएँ हैं जिन तक नागरिकों की पहुँच सुनिश्चित नहीं हो जाती है भारत की इतनी विशाल जनसंख्या तक ई-शासन की सेवा की पहुँच को सुनिश्चित करना बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है साथ ही इसके क्रियान्वयन में एक बड़ी चुनौती जन-जागरुकता का अभाव है। महिलाओं को ई-शासन का समान रूप से लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है और ऐसा समाज के पितृसत्तात्मक चरित्र, साक्षरता स्तर में कमी, जागरुकता की कमी, निर्णय-निर्माण संरचनाओं में महिलाओं की अनुपस्थिति आदि चुनौतियों के कारण पैदा होता है।

iii) राजनीतिक चुनौतियाँ- ई-शासन को राजनीतिक प्रक्रिया के भाग के रूप में देखा जाता है जो सुशासन के लिए शासन में सुधार से संबंधित है। इसलिए जो अभिनेताओं की इच्छा, राजनीति प्रक्रियाओं के नियंत्रण और मार्गदर्शन को प्रभावित करते हैं वो ई-शासन के माध्यम से सुशासन को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं परन्तु राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में, ई-शासन प्रक्रियाओं में गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो पाएगा। इसी कारण भारत में अभिनेताओं की ई-शासन को प्रभावी बनाने की इच्छाशक्ति में कमी के कारण इसका क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो पाया है।

iv) आर्थिक चुनौतियाँ- भारत एक विकासशील देश है जिसकी आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे है। वहीं ई-शासन के बेहतर संचालन, क्रियान्वयन व रख-रखाव के लिए धन की जरूरत है परन्तु इस क्षेत्र को अनदेखा किया जा रहा है इसलिए आवश्यक है कि इसके क्रियान्वयन और बेहतर विस्तार के लिए ज्यादा से ज्यादा लागत लगाई जाए ताकि सभी तक इसका लाभ पहुँच सके। साथ ही तेजी से हो रहे सूचना व प्रौद्योगिकी उपकरणों में बदलाव के कारण सरकार द्वारा उन्हें पुनः नवीकरण करना बहुत मुश्किल है इसलिए पुराने उपकरण होने से संगठन के कार्यो की गति धीमी हो रही है और भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण ऑनलाइन सेवाएँ लेना तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को स्वतंत्र प्रयोग करना सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें अत्यधिक खर्च होता है।

v) तकनीकी चुनौतियाँ- तकनीकी संसाधनों में समय के साथ बदलाव देखा जा सकता है और इसके प्रयोग करने की प्रक्रिया भी बदल रही है इसलिए कार्य पद्धति व तकनीकी प्रणाली में बदलाव व नवीनता के कारण विभिन्न संगठनों के बीच बेहतर सामंजस्य नहीं बन पाता है और सभी कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए यह जरूरी है कि सभी संगठनों में तकनीकी में बदलाव समान रूप से एक ही समय पर किया जाए। साथ ही ई-शासन परियोजना के क्रियान्वयन की समयावधि वर्ष 2012 रखी गई थी परन्तु इसका क्रियान्वयन अभी भी जारी है अर्थात् किसी भी परियोजना का समय पर पूरा न होना एक बड़ी समस्या है। ई-शासन की सेवाओं को मल्टी मॉडल इंटरेक्शन के आधार पर उपलब्ध किया जाना चाहिए ताकि लोग अपनी सुविधा व जानकारी के अनुसार सेवा का लाभ प्राप्त कर सके। प्रत्येक व्यक्ति को ई-शासन की सेवाओं का लाभ उठाते समय यह भय रहता है कि कहीं उसकी व्यक्तिगत जानकारी जैसे आधार संख्या, आयकर, बैंक OTP का दुरुपयोग न हो जाए। इसलिए उपभोक्ताओं को यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि उनके द्वारा दी गई जानकारी को गोपनीय व सुरक्षित रखा जाएगा।

उपर्युक्त चुनौतियों से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक चुनौतियों को दूर करने के लिए सभी क्षेत्रों में ई-शासन की पहुँच को सुनिश्चित किया जाना चाहिए तथा सरल व क्षेत्रिय भाषा में ई-शासन सेवा का प्रबंध किया जाना चाहिए। साथ ही जनता में जागरुकता को बढ़ावा देकर उन्हें ई-शासन के लाभ व उपयोगिता की पूर्ण जानकारी दी जानी चाहिए। वहीं सरकारी कर्मचारियों की मानसिकता में बदलाव की भी आवश्यकता है ताकि कवूद जव जवच मॉडल का प्रयोग करके ई-शासन को प्रभावशाली बनाया जा सके। साथ ही आर्थिक चुनौतियों को दूर किया जाना भी अतिआवश्यक है ताकि तकनीकी चुनौतियों को दूर किया जा सके और ऐसा केवल ज्यादा लागत से ही सम्भव है ताकि प्रौद्योगिकी के नए उपकरणों को प्रयोग में लाया जा सके। इसलिए सरकार को ज्यादा बजट की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके साथ ही उपभोक्ताओं द्वारा दी गई जानकारियों व व्यक्तिगत आँकड़ों की गोपनीयता व सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा उपभोक्ता ई-शासन की सेवाओं का लाभ उठा सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा के आधार पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ई-शासन के माध्यम से नागरिकों तक प्रशासनिक सेवाओं की पहुँच को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है। ताकि सभी नागरिकों को बहुत ही कम समय व कम खर्च में बेहतर सेवा का लाभ प्राप्त हो। भारत का नागरिक होने के नाते सुशासन प्राप्त करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और सरकार का यह कर्तव्य है कि वह अच्छा शासन करे और राज्य को कल्याणोन्मुखी, लोक निर्देशित और सेवा संचालित बनाए। एक सरकार केवल अच्छा, पारदर्शी और प्रभावशाली शासन प्रदान करके ही अपने अस्तित्व को बनाए रख सकती है। परन्तु भारत जैसे विशाल व विविधता वाले देश को ई-शासन के क्रियान्वयन को पूर्ण करने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे- जागरुकता का अभाव, धन की कमी, स्थानीय व भाषा सम्बन्धी समस्या, साक्षरता का अभाव, अभिनेताओं में इच्छाशक्ति का अभाव, महिलाओं को ई-शासन सेवाओं का असमान लाभ इत्यादि। निम्न समस्याओं को दूर करने के बाद ही ई-शासन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

ई-शासन सच में एक सक्षम (E-enabled) सरकार, प्रभावी (E-ffeective) और अति उत्कृष्ट (E-excellent) सरकार है। ई-शासन आने वाला भविष्य है और हमें उसकी तरफ बढ़ना चाहिए ताकि हमारी आने वाली पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित किया जा सके।

References

Yadav, S. 'Implementing e-governance in India exploring the administrative reforms agenda', *The Indian Journal of Political Science*, Vol.70, No.3, July- Sept. 2009, pp. 679-692.

Bannister, F. and R. Connolly 'Defining e-Governance', *Indiana University Press*, Vol. 8, No. 2 (Winter 2012), pp. 9.

Barthwal, C.P. 'E-Governance for good governance', *The Indian Journal of Political Science* , Vol. 64, No. 3èk4, (July-December, 2003), pp. 290-291.

Dawes, S.S. 'The Evolution and Continuing Challenges of E-Governance', *Public Administration Review* , Dec., 2008, Vol. 68, pp. S86-S102.

Saxena, A. 'E-Governance good governance: The Indian context', *The Indian Journal of Political Science*, Vol. 66, No. 2 (Apr.-June, 2005), pp. 315-324.

Sumanjeet 'E-Governance: An overview in the Indian context', *The Indian Journal of Political Science*, Vol. 67, No. 4 (OCT.-DEC., 2006), pp. 858-860.

Mohanty, P.K. 'Using e-Tools for Good Governance & Administrative Reforms', *Indian Journal of Computer Science*, 1(1):22, 2016.

Kumar, P. et al. 'E-Governance in India: Definitions, Challenges and Solution', *International Journal of Computer Science*, Vol. 101, No. 16, Sept. 2014, pp. 1.

Prabhu, C. 'E-Governance; Concept and case studies, *PHI Uearing Private Limited*, New Delhi, 2012, pp. 10-11.

Dey, Bata K. 'E-governance in India: Problems, Challenges and Opportunities— A Futures Vision', *Indian Journal of Public administration*, XLVI (3, July- Sept. 2000).

Government of India, The Information Technology Act, 2000. New Delhi, June 9, 2000, pp. 1.

Kapoor, Jagadish C. 'IT and Good Governance', *Indian Journal of Public administration*, XLVI (3, July- Sept. 2000).

Malick, M.H. and A.V.K. Murthy. 'The Challenge of E-Governance', *Indian Journal of Public administration*, Vol. XLVII, No.2, April-June 2001, pp. 237-239.

Sharma, T. 'E-Governance: Process Reengineering Approach', *Indian Journal of Public administration*, Vol.XLVIII, No.4, Oct.- Dec. 2002.

Bhattacharya, M. (2015), '*New Horizons of Public Administration*', Generic, India.

Chakrabarty, B. and P. Chand. (2016), *Public Administration in a Globalizing World: Theories and Practices*, Sage publications, New Delhi.

दास, सीमा (2017). 'भारत में ई-प्रशासन की चुनौतियाँ', लोक प्रष्ठासन नई दिल्ली, 9(1), जनवरी-जून 2017, पृ.सं. 81-91.

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभाव पर अध्ययन

डॉ० रेखा नरेन्द्र जिभकाटे नवखरे

शोध निर्देशक, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

हेमन्त कुमार खटकर

शोधार्थी, श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

प्रस्तावनाः- महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.ने अब्दुल कलाम जी कहा था, भगवान ने हमारे मस्तिष्क और क्षमताएँ दी हैं। ईश्वर की प्रार्थना हमें इन शक्तियों को विकसित करने में मदद करती है। शिक्षा ऐसा मशाल है, जिससे अहंकार से उजाले की ओर जा सकते हैं एवाहम प्रकाशन हो सकते हैं अर्थात यह कह सकते हैं कि शिक्षा प्रकाश है जो सभी का विकास करती है और हमें तेजस्वी बनाने में सहायता प्रदान करती है। अर्न्तनहित शक्तियों को प्रस्फुरित कर हमें विकास की ओर अग्रसर करती है, जिससे सम्पूर्ण मानव को पतन नहीाहमेशा उत्थान की ओर ले जाता है, साथ ही साथ शिक्षा हमारे व्यवहार को उत्तम बनाने में मुख्य रूप से सहायक सिद्ध होता है और हमें सम्पूर्णता प्रदान करता है। ज्ञान का संचय हमें संग्रहण करती है, जिसके फलस्वरूप अच्छे कार्यो को करने में तथा अच्छा व्यक्तित्व निर्माण में सहायता प्रदान करती है। जिससे व्यक्ति अपनी नैसर्गिक क्षमताओं को पूर्ण विकास कर सके तथा बदलते हुए परिवेश से अनुकुलन व समायोजन कर अपने विचार कार्य एवं कृति रूपी पुष्प की खुशबु दुर-दुर तक फैल सके तथा समाज एवं राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में सक्रिय योगदान दे सके। भारत में शिक्षा को इस प्रकार स्त्रोत की संज्ञा दी है, जो मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सच्चा पथ प्रदर्शन करती है। शिक्षा मानवीय उद्घृत करते हुए विभिन्न वर्ग संघर्षो तथा क्षेत्रियता जैसी बुराईयों को दूर कर समानता की भावना पल्लवित करती है।

रस्क के शब्दों में- अध्ययन ज्ञान या ग्रहण शक्ति को सुरक्षित रखने योग्यताओं को प्राप्त करने या समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाने वाला नियोजित प्रयास है। स्पष्ट है कि अध्ययन शक्ति अपनी स्वेच्छा से अपना ज्ञान ग्रहण शक्ति बढाने के लिए करता है,जो अभ्यास के साथ आदत का रूप् ग्रहण कर लेती है।

मार्गन एवं गिलीलैण्ड के मतानुसारः-

हम जो भी हैं, उन सब का योग व्यक्तित्व के नाम से पुकारा जाता है।

डेशिल के तानुसारः- व्यक्तित्व व्यक्ति के संगठित व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है।

शिक्षा का महत्व समय के साथ बढ़ता जा रहा है। आजकल सभी अपने बच्चो को शिक्षित बनाना चाहता है। समय के साथ शिक्षा के मायने में बदल गए है पुरातन समय की शिक्षा में चरित्र निर्माण पर बल दिया जाता था इसलिए अधिकतर धार्मिक और

नीति-संबंधी शिक्षा ही दी जाती थी परन्तु तत्कालीन समय में सब शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मौलिक रूप से व्यवसाय का निर्माण रह गया है। अतः शिक्षा में ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी का अधिकाधिक समावेश हो गया है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा एक व्यवसाय बनती जा रही है। मूल्य व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को बनाने में सर्वोत्तम भूमिका अदा करते है। व्यक्ति का व्यवहार तथा उसका चरित्र काफी हद तक उसके मूल्यों पर निर्भर करता हैं व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरित करने में मूल्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। विद्यार्थी विशेषतः माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के द्वन्दों में फंस कर रह जाते है। ऐसे ही समय में वे अपने लिये सही तथा गलत को जानते है। नैतिकता एक व्यापक गुण है, उसे कोशिश करनी चाहिए कि किसी भी दशा में छूटने ना पाये। नैतिकता का अर्थ है नीतिपूर्ण आचरण। नीति, कर्म का मनोविज्ञान है तथा एक प्रकार से शील एवं नैतिकता का सत्य-असत्य विवेचन है। बुरे मार्गो से सही मार्ग पर ले चलना ही नीति है। नीति का आशय होता है सही-गलत व्यवहार का दर्शाने सम्बन्धी सिद्धान्त। प्रायः हर सामाजिक वर्ग के खुद के बनाये हुए मानदण्ड तथा नियम होते है जो कि समाज के सदस्यों को नियंत्रित मार्गदर्शन करते है। यह मानदण्ड तथा नियम समाज में व्यक्ति के कल्याण हेतु बनाये जाते है। नैतिक मूल्य नियमों का एक समुच्चय है जो कि व्यक्ति को सही-गलत का मूल्यांकन करने के लिए निर्देशित करता है। विद्यार्थियों के शैक्षणिक काल को उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर प्रभावित करता है उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थी निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों से अच्छी शिक्षा प्राप्त करने से सक्षम होते है और उनमें नैतिक मूल्य भी बेहतर तरीके से विकसित होते है। एक बालक में उत्कृष्ट नैतिक मूल्यों के विकास में उसके परिवार की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण योगदान होता है शिक्षा प्राप्त करने का सबसे मुख्य अभिकरण विद्यालय है और विद्यालय वातावरण विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास में मुख्य भूमिका का निर्वहन करता है। विद्यालयी वातावरण विद्यार्थियों के भविष्य की दिशा प्रदान करते हैं। विद्यालय वातावरण से हमारा तात्पर्य विद्यालय वातावरण की उन परिस्थितियों से है जो अध्यापक, शिक्षण अधिगम सामग्री तथा शिक्षण विधि के संयोग से उत्पन्न होती है तथा जिसका सापेक्षिक प्रभाव विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है तथा विद्यार्थी भी अपनी कर्मेन्द्रियों के माध्यम से विद्यालय परिस्थिति के अनुसार व्यवहार प्रदर्शित करने, लगता है। जॉन डी0वी0 के अनुसार गृह वातावरण में रहने वाले बालक का दृष्टिकोण संकुचित व उनमें सामाजिकता व त्याग की भावना विकसित नही हो पाती लेकिन विद्यालय वातावरण के सम्पर्क में आने पर बालक का दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। विद्यालय वातावरण में शैक्षिक प्रबन्ध जितना अधिक संतोषप्रद होगा विद्यार्थियों का शैक्षिक अधिगम में उतना ही सुविधा होगी। बालक का सामाजिक आर्थिक स्तर, विद्यालयी वातावरण दोनों ही वो तथ्य है जो उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालको के नैतिक मूल्यों को प्रभावित करते हैं।

उच्चतर माध्यमिक स्तरः-

उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा-11 तथा कक्षा-12 को संदर्भित करता है तथा यह प्राथमिक या हाईस्कूल तथा स्नातक का मध्यवर्ती स्तर होता है। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा केवल 2 वर्ष की होती है। अवधि और कक्षाओं के संदर्भ में शिक्षा के इस स्तर पर एकरूपता है अर्थात् सभी राज्य तथा संघ शासित क्षेत्र इस 10+2 पैटर्न का पालन करते है भारत में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 11वीं से 12वीं कक्षा शामिल है तथा 16 से 18 वर्ष के बीच की आयु के विद्यार्थी होते हैं शिक्षा के इस स्तर पर विद्यार्थियों को अपनी पंसदीदा वर्ग तथा विषय के चुनाव की स्वतंत्रता है कला, वाणिज्य, विज्ञान (चिकित्सा और गैर चिकित्सा) का उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में जाना जाता है उच्चतर माध्यमिक स्तर में विद्यार्थियों को अपने हितों के आधार पर अपने विषयों का चयन करना होता है।

सामाजिक-आर्थिक स्तरः-

सामाजिक-आर्थिक स्तर से तात्पर्य सामाजिक व आर्थिक स्तर के जटिल संमिश्रण से है। यह व्यक्ति को जिस समाज में वह रहता है, में एक विशेष संस्थिति, उसके भौतिक सम्पत्ति व संसाधनों तथा सामाजिक-सास्कृतिक प्रतिष्ठा, शक्ति व प्रभाव के आधार पर प्रदान करता है। इसमे।उसकी प्रस्थिति यथा जाति, पारिवारिक प्रतिष्ठा, शिक्षा का स्तर, व्यवसाय, वार्षिक आय व कुल सम्पत्ति आदि आते हैं। इलियट और मैरिल के अनुसार-''प्रस्थिति व्यक्ति का एक पद है जिसे व्यक्ति किसी समूह में अपने लिंग, आयु, परिवार, धर्म, व्यवसाय, विवाह अथवा प्रयत्नों आदि के कारण प्राप्त करता है।''

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययनः-

सम्बन्धित साहित्य के द्वारा शोध समस्या परिभाषीकरण, उद्देश्य, शोध परिकल्पना एवं उनका सीमांकन करने में सहायक होता है। उक्त संदर्भ में वेस्ट महोदय का कथन है-"व्यावहारिक दृष्टिकोण से सारा मानव ज्ञान पुस्तकों एवं पुस्तकालयों में प्राप्त किया जा सकता है अन्य जीवों के अतिरिक्त जो प्रत्यके पीढ़ी में नये सिरे से प्रारम्भ करते है। मानव समाज अपने प्राचीन अनुभवों को संग्रहीत एवं सुरक्षित रखता है। ज्ञान के अथाह भण्डार में मानव का निरंतर योग सभी क्षेत्रों में उनके विकास का आधार है।"

- सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा भौतिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में अधिकांश अनुसंधान परियोजना का आधार है। यह शोधकर्ता को उस क्षेत्र या क्षत्रे में वर्तमान ज्ञान से परिचित कराने की अनुमति देता है, जिसमें वह अपना शोध करने जा रहे है।
- सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा शोधार्थी को शोध क्षेत्र की सीमाओं के निर्धारण को परिभाषित करती है यह समस्या को परिभाषित करने तथा समस्या के सीमाकंन में सहायता प्रदान करती है।
- साहित्य समीक्षा का वास्तविक परिणाम शोध के लिए आँकड़े प्रदान करना है।

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से लाभः-

सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से शोधकर्ता को निम्नलिखित लाभ होते है-

- इससे अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचाव होता है।
- अध्ययन उस क्षेत्र में अब तक हुए कार्य की सूचना देता है।
- यह शोध समस्या के चुनाव, विश्लेषण तथा समस्या में सहायक होता है।
- यह समस्या के अध्ययन में सूक्ष्मता उत्पन्न करता है।
- यह शोधकर्ता के समय की बचत करता है।

सम्बन्धित शोध कार्यो का विवरणः-

सामाजिक-आर्थिक स्तरः-

शर्मा, एस0 (2003) ने व्यवसाय के चयन पर सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन किया। इन्होनें शोध के द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि विद्यार्थियों ने व्यवसाय का चयन केन्द्रित तथा विशिष्ट तरीके से किया। अभिभावकों की अभिवृत्ति विद्यार्थियों के व्यावसायिक चयन से सम्बन्धित पाई गयी।

श्रीवास्तव (1998) ने इम्पैक्ट ऑफ वैल्यूज एण्ड एडजस्टमेन्ट ऑन क्रिएटिविटी इन द इफैक्ट ऑफ सोसिओ-इकोनॉमिक स्टेट्स ऑफ देने अमंग द कॉलेज स्टूडेन्ट्स पर अध्ययन किया और निष्कर्ष के रूप में पाया कि स्नातक अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया।

विद्यालयी वातावरणः-

शर्मा, वी0 (1989) ने अपने अध्ययन-ए स्टडी ऑफ लर्निंग इनवायरमेंट अमंग सर्टेन टाइप ऑफ स्कूल में निष्कर्ष दिया कि कक्षा-कक्ष में सीखने का वातावरण विद्यालय के प्रकार बदलने के साथ-साथ नहीं बदलता है। प्राइवेट तथा सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का वातावरण भिन्न-भिन्न होता है।

अनुसंधान अंतरालः-

किसी शोध कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व शोध से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के द्वारा उस शोध क्षेत्र में हो चुके शोध की जानकारी अनुसंधानकर्ता को प्राप्त हो जाती है। तथा साथ ही अनुसंधानकर्ता शोध के लिए अपनायी जाने वाली विधि, प्रयोग से उपयोग लाये जाने वाले उपकरणों एवं आँकड़ो के विश्लेषण में प्रयुक्त की गयी प्रविधि की जानकारी भी मिल जाती है।

अंतराल निम्नलिखित है:-

1. प्रस्तुत अनुसंधान में कार्य क्षेत में छत्तीसगढ़ के धमतरी जिलें को लिया गया है।
2. धमतरी जिलें कें उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 12वी के विद्यार्थियों को लिया गया है।
3. 12वी के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर अनुसंधान है।

अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है:-

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण के विभिन्न आयामों के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना का महत्व:-

1. परिकल्पना उचित तथा शोध उपयोगी उपकरण तथा प्रविधियों के चुनाव में सहायता प्रदान करती है जिससे अज्ञात तथ्यों का ज्ञान प्राप्त होता है।
2. परिकल्पना निष्कर्षो की आधारशिला है।
3. अनुसंधान परिकल्पनायें नवीन अनुसंधान कार्यो के लिए प्रोत्साहन प्रदान करती है।

HO_1 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_2 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में उनकी सामाजिक-आर्थिक स्तर के विभिन्न स्तरों में सार्थक अन्तर नहीं है।

HO_3 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के विद्यालयी वातावरण के विभिन्न स्तरों के सम्बन्ध में सार्थक अन्तर नहीं है।

चर:-

स्वतंत्र चर-सामाजिक-आर्थिक स्तर

आश्रित चर-विद्यालयी वातावरण

शोध चयन विधि:- प्रस्तुत शोध अध्ययन में बहुस्तरीय सरल यादृच्छिक न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श:-

न्यादर्श के अभाव में वैज्ञानिक या सामाजिक अनुसंधान असंभव है। जिन शैक्षणिक अथवा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का हम अध्ययन करना चाहते है वह अनेक इकाईयों से सम्बन्धित होती है जिसके कारण सबका साक्षात्कार परीक्षण तथा नियंत्रित परिस्थितियों में अवलोकन करना संभव नहीं है। समष्टि की समस्त इकाईयों में से अध्ययन हेतु कुछ इकाईयों के समूह को न्यादर्श कहते हैं। न्यादर्श समूचे इकाई में चुनी हुयी कुछ ऐसी इकाईयों का समूह है जो समूचे समूह का प्रतिनिधित्व करती है। शोध जनसंख्या से न्यादर्श का चयन करने के लिए छत्तीसगढके उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से बहुस्तरीय सरल संयोगिक विधि _Multiple Simple Random Method¼ द्वारा 600 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

छत्तीसगढके कुछ जिले में चयन न्यादर्श उच्चतर माध्यमिक स्कूलों जिसमें कक्षा 12वी के विद्यार्थियों में से 600 को लिया गया।

डेटा संग्रह के लिए प्रयुक्त उपकरण:-

2. सामाजिक-आर्थिक स्तर स्केल- डॉ0 आभ्या आर0 जोग्लेकर एवं रूपा सल्होत्रा _SESS - JASR¼
3. विद्यालय वातावरण परिसूची- डॉ0 के0एस0 मिश्रा

निष्कर्ष:

- विद्यालय वातावरण के आयाम अनुमोदन का छात्र एवं छात्राओं पर प्रभाव पड़ता है तथा यह छात्राओं की अपेक्षा छात्रों पर अधिक प्रभाव डालता है। निष्कर्ष में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में लिंग के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के विद्यालयी वातावरण के अनुमोदन प्रत्यय में अन्तर पाया गया।
- छात्राओं के नैतिक मूल्यों के आयाम क्रमशः निष्ठा तथा मानवता उनकी सामाजिक-आर्थिक स्तर से प्रभावित होता है। अतः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर के कारण उनके नैतिक मूल्यों के आयामों निष्ठा एवं मानवता में अन्तर पाया गया।

सीमांएः-

1. शोध अध्ययन छत्तीसगढ के धमतरी जिले तक सीमित रखा गया है।
2. शोध अध्ययन उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (कक्षा-12) तक सीमित है।
3. अध्ययन में केवल तीन चरों नैतिक मूल्य, सामाजिक आर्थिक स्तर तथा विद्यालय वातावरण को ध्यान में रखा गया है।

कालेजियम प्रणाली और न्यायिक सुधार

डॉ० श्रीमती माया यादव

सहायक प्राध्यापक, शासकीय जे.पी. वर्मा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

ऋषि कुमार चन्द्रा

सहायक प्राध्यापक, शासकीय नवीन महाविद्यालय, चन्द्रपुर जिला-सक्ती (छ.ग.)

कालेजियम प्रणाली ने न्यायपालिका को सुधारने में आशानुरूप सफल नहीं हो पाई है, 1993 से चली आ रही न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रणाली की इस व्यवस्था पर अब ऊंगली उठाने लगी है, क्या कार्यपालिका के द्वारा ही जजों की नियुक्ति हो या जजों की नियुक्ति के लिए एक आयोग का गठन हो। न्यायपालिका में सुधार की शुरुआत यदि न्यायालय ही करे, तो यह एक बेहतर कदम सिद्ध होगा तथा एक आदर्श स्थिति होगी। नेताओं की विश्वसनीयता घटती जा रही है, विधायिका ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग बनाकर गंभीर कोशिश की, किंतु सर्वोच्च न्यायालय ने उसमें कुछ खामियां गिनाकर उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया,ऐसी स्थिति में अब न्यायपालिका को ही ठोस कदम उठाए जाने की जरूरत है।

शोध का उद्देश्य-

1 न्यायपालिका की खामियों को उजागर करना तथा खामियों को दूर करने हेतु सुझाव देना।

2 कालेजियम प्रणाली को बेहतर बनाने हेतु सुझाव देना।

3 योग्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए सुझाव देना।

4 गरीब व वंचित वर्गों को नि:शुल्क न्याय दिलाने के लिए सुझाव देना।

कालेजियम का इतिहास-

यूं तो इसकी शुरुआत 1993 से हुई थी, किंतु इसकी पटकथा पहले से लिखी जा रही थी। आपातकाल के दौरान जिस प्रकार से कार्यपालिका के द्वारा न्यायपालिका में मनमर्जी से वरिष्ठता का उल्लंघन करते हुए जजों की नियुक्ति की, उससे न्यायपालिका में आवाजें उठनी शुरू हो चुकी है, कि न्यायपालिका को निष्पक्ष बनाने के लिए कठोर कदम उठाने होंगे। पहली बार सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में वरिष्ठता का उल्लंघन फरवरी 1964 में हुआ, किंतु उस वक्त के वरिष्ठ न्यायाधीश जस्टिस इमाम गंभीर रूप से बीमार थे, इसलिए ऐसा किया गया। कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच की टकराव की शुरुआत पंडित नेहरू के समय से ही हो चुकी थी, जब भारत के प्रथम मुख्य न्यायाधीश हीरालाल जे कानिया का निधन न्यायाधीश रहते हुए 06.11.1951 को हुआ, तब उस वक्त प्रधानमंत्री नेहरू बाम्बे हाइकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश एम सी छागला को भारत के मुख्य न्यायाधीश बनाना चाहते थे,ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के छ: जज उस समय के वरिष्ठ न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री के पक्ष में प्रधानमंत्री पर दबाव डाला और यह कहा, कि यदि पतंजलि शास्त्री को मुख्य न्यायाधीश नहीं बनाया जाता है, तो वे इस्तीफा दे देंगे, ऐसी स्थिति में नेहरू ने वरिष्ठता के सिद्धांत का आदर करते हुए पतंजलि शास्त्री को मुख्य न्यायाधीश बनाया,तब से वरिष्ठता के नियम की शुरुआत हुई। वरिष्ठता के नियम का दूसरा उल्लंघन तब हुआ, जब 25.04.1973 को मुख्य न्यायाधीश सीकरी

सेवानिवृत्त हुए, तब तीन वरिष्ठ न्यायाधीश शेलट, हेगड़े और ग्रोवर की वरिष्ठता को दरकिनार करते हुए मुख्य न्यायाधीश के पद पर अजीत नाथ रे को नियुक्त किया गया, तब विरोध स्वरुप तीनों वरिष्ठ न्यायाधीशों ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, कहा जाता है, कि रे को दो घंटे के भीतर शपथ लेने को कहा गया।उस समय बार काउंसिल ने भी रे की नियुक्ति का विरोध किया था। रे की नियुक्ति की घटना को भारतीय न्यायिक इतिहास का काला दिन कहा जाता है। ज्ञातव्य हो, कि बहुचर्चित केशवानंद भारती की सुनवाई 25.04.1973 को समाप्त हुई थी। इसी प्रकार वरिष्ठता सिद्धांत का तीसरी बार अतिक्रमण इंदिरा गांधी के समय 28.01.1977 को किया गया, जब मुख्य न्यायाधीश ए एन रे सेवानिवृत्त हुए, तो वरिष्ठ न्यायाधीश एच आर खन्ना के स्थान पर एम एच बेग को मुख्य न्यायाधीश बनाया गया, विरोध स्वरुप एच आर खन्ना ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। वरिष्ठता के नियम का पहला उल्लंघन न्यायसंगत था, जबकि दूसरा और तीसरा उल्लंघन न्याय का खुला उल्लंघन था, ज्ञातव्य हो, कि वरिष्ठता के नियम का दूसरा और तीसरा उल्लंघन इंदिरा गांधी के समय हुआ, निश्चय ही इंदिरा गांधी ने ऐसा करके कालेजियम प्रणाली पर सोचने के लिए जजों को प्रेरित किया, क्योंकि निष्पक्ष न्यायालय संविधान की मूल भावना है, संविधान की मूल भावना से छेड़छाड़ करने का अधिकार संसद को भी नहीं है, ऐसा सर्वोच्च न्यायालय ने दो बार कहा है, प्रथम बार केशवानंद भारती केस में और दूसरा बार मिनर्वा मिल केस में। कालेजियम की इतिहास की चर्चा में तीन जज केस का उल्लेख करना आवश्यक है।

प्रथम जज केस-

एस पी गुप्ता बनाम भारत संघ 30.12.1981 को यह निर्णय आया कि राष्ट्रपति उचित कारणों से न्यायाधीश बनाने के लिए मुख्य न्यायाधीश द्वारा अनुशंसित व्यक्तियों के नामों को अस्वीकार कर सकते हैं तथा इसी प्रकार तबादलों के मामलों पर भी मुख्य न्यायाधीश के सलाह को मानने से मना कर सकते हैं, इससे नियुक्ति प्रक्रिया में कार्यपालिका को न्यायपालिका से अधिक शक्ति मिल गई।

द्वितीय जज केस-

06.10.1993 को सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स आन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ मामले में नौ न्यायाधीश की पीठ ने फैसला सुनाते हुए कहा कि सर्वोच्च न्यायालय में जजों की नियुक्ति कालेजियम के द्वारा की जाएगी। द्वितीय जज केस में कहा गया, कि जजों की नियुक्ति में परामर्श का अर्थ वास्तव में सहमति है। संविधान में कहा गया है, कि जजों की नियुक्ति में राष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेंगे 06.10.1993 के फैसले में संस्थागत परामर्श की बात कही गई, परामर्श अकेले मुख्य न्यायाधीश का नहीं होगा, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ तीन न्यायाधीश का परामर्श होगा।

तृतीय जज केस-

1998 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि कालेजियम में पांच वरिष्ठ न्यायाधीश होंगे। इसी प्रकार यदि कालेजियम में भावी मुख्य न्यायाधीश नहीं होता है, तो कालेजियम में छः सदस्य होते हैं, छठवां सदस्य भावी मुख्य न्यायाधीश होता है। छठवां सदस्य जस्टिस संजीव खन्ना थे, क्योंकि वे वर्तमान मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ के उत्तराधिकारी हैं। 1998 में तत्कालीन राष्ट्रपति के आर नारायणन ने सर्वोच्च न्यायालय से पूछा था कि कालेजियम को न्यायसंगत कैसे ठहराया जाएगा, तब सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में स्वीकार किया कि अब कालेजियम में 5 जज होंगे।

नकारात्मक बिंदु-

1 महिलाओं का हाइकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में कम प्रतिनिधित्व निश्चय ही आधी जनसंख्या महिलाओं की है, किंतु उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है, जो कि चिंताजनक है। सच्चाई यह है, कि विधि के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है, किंतु शीर्ष न्यायालयों में उनकी भागीदारी उस दृष्टि से नहीं बढ़ रही है।

2 अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व भारत के शीर्ष न्यायालय तथा तमाम उच्च न्यायालयों में आशा के अनुरूप नहीं है। अल्पसंख्यक समुदायों में जैन, पारसी आदि धर्मावलंबी अत्यधिक शिक्षित हैं, फिर भी न्यायपालिका में अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व निराशाजनक है।

3 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ा वर्ग का भी प्रतिनिधित्व सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में बहुत ही कम है।देश की जनसंख्या में पिछड़े वर्ग की आबादी आधे से अधिक है, किंतु शीर्ष न्यायालय में पिछड़े वर्ग के जज को ढूंढना पड़ता है।इसी प्रकार अनुसूचित जाति और जनजाति का प्रतिनिधित्व तमाम हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में अत्यधिक अल्प है।

4 भाई भतीजावाद उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय में भाई भतीजावाद चरम पर है। कालेजियम प्रणाली के बाद न्यायाधीश अपने रिश्तेदारों को जज बनाने में लगे हुए हैं, जिसके खिलाफ बहुत अधिक आक्रोश है,एक रिपोर्ट के अनुसार 90 प्रतिशत जज लगभग 550 परिवारों से ही आते हैं।

5 भ्रष्टाचार- सिक्किम हाइकोर्ट के जज जस्टिस दिनाकरण के विरुद्ध भ्रष्टाचार के कारण ही महाभियोग की कार्रवाई शुरू हुई थी और उन्होंने महाभियोग से बचने के लिए अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

6 कालेजियम प्रणाली की खामियों को स्वय ंन्यायाधीश भी स्वीकार करने लगे हैं।

7 उच्च न्यायालयों में बहुतायत रिक्त पद उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के बहुत सारे पद रिक्त है, इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थिति काफी चिंताजनक है, इससे स्पष्ट होता है,कि कालेजियम प्रणाली रिक्त स्थानों को तेजी से भरने में नाकाम रही है। कानून मंत्री किरेन रिजिजू ने संसद में अपने जवाब में कहा कि उच्च न्यायालयों में 30 प्रतिशत जजों के पद रिक्त हैं।कुल 1114 न्यायाधीशों के पद उच्च न्यायालयों में स्वीकृत है, जिसमें 780 पदों में न्यायाधीश कार्यरत हैं,शेष पद रिक्त हैं। कानून मंत्री ने बताते हुए कहा, कि 216 न्यायाधीश के पदों के लिए कालेजियम की कोई सिफारिश सरकार के पास नहीं आई है।

8 सन 2001 में उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एस पी भरूचा ने कहा था कि 20 प्रतिशत न्यायाधीश भ्रष्ट हैं।

9 पूर्व कानून मंत्री शांति भूषण ने सितंबर 2010 में उच्चतम न्यायालय को बताया कि देश के 16 मुख्य न्यायाधीशों में कम से कम आठ निश्चित तौर पर भ्रष्ट थे

10 एस एन ढींगरा (पूर्व न्यायाधीश हाईकोर्ट दिल्ली) ने कहा था-नेता नहीं चाहते, कि न्यायपालिका में सुधार हो, यदि न्यायपालिका सशक्त होगी, तो नेता जेल में होंगे, यदि ज्यादा जज होगा, तो शीघ्र निर्णय होगा।

11 कालेजियम का विचार नियंत्रण व संतुलन के सिद्धांत के खिलाफ है। कालेजियम प्रणाली मांटेसक्यू के भावनाओं का अनादर करता है।

12 लोकतांत्रिक भावनाएं यह अपेक्षा करती है, कि जजों की नियुक्ति में सरकार की भी भागीदारी हो, किंतु कालेजियम प्रणाली इस विचार के विरूद्ध है।

13 सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक नियुक्ति आयोग को पूरी तरह खारिज नहीं करना था, उसके आपत्ति जनक हिस्सा को ही खारिज करना था।

14 पूरी दुनिया में एकमात्र देश भारत है, जहां जजों की नियुक्ति जजों के द्वारा ही की जाती है।

न्यायपालिका की खामियां-

1 वकीलों के बिना न्यायालय नहीं चल पाता। जस्टिस खेहर ने एक बार अदालत से बाहर जाते हुए कहा था, कि वकील आएंगे, तो मुझे बुला लेना।यह समस्या भी भारतीय न्याय पालिका को कमजोर बना देती है।

2 महंगे वकील केस को लटका देते हैं और अमीरों को फायदा पहुंचाते हैं।

3 एक जज, दूसरे जज के रिश्तेदार वकील को प्राथमिकता देता है, यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो दूसरा जज भी उनके बच्चे या रिश्तेदार को प्राथमिकता नहीं देगा।

4 लोअर कोर्टो में 227000 मुकदमें हैं, सर्वप्रथम लोअर कोर्टो को सुधारना होगा।प्रश्न यह है, कि लोअर कोर्टों की वेकेंसी हाईकोर्ट क्यों नहीं भरती?

5 92 प्रतिशत जज पारिवारिक पृष्ठभूमि से आते हैं।

6 कालेजियम प्रणाली कुलीनतंत्र का प्रतीक है।

7 जजों की नियुक्ति में पारदर्शिता नहीं है।

8 अत्यंत पिछड़े व गरीबी रेखा से नीचे वालों का सर्वोच्च न्यायालय में प्रतिनिधित्व नहीं है।

9 भाई भतीजावाद चरम सीमा तक पहुंच गई है।एक ही परिवार के 7 सदस्य जज बन चुके हैं।

10 सर्वोच्च न्यायालय कहती है कि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के नियुक्ति में पारदर्शिता हो, निर्वाचन आयोग के सदस्यों की नियुक्ति में पारदर्शिता हो,ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि न्यायपालिका में भी जजों की नयुक्ति में भी पारदर्शिता हो।

11 जजों की नियुक्ति में सरकार का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है।

न्यायपालिका के सुधार के लिए सुझाव-

1 जुबानी दलील के लिए समय सीमा निर्धारित हो।

2 एक समान मुकदमों की सुनवाई एक साथ की जानी चाहिए।

3 लोअर कोर्ट के आधारभूत संरचना पर गाइडलाइंस सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी जानी चाहिए, जैसे कोर्ट का साइज, महिला और पुरूषों के लिए पृथक पृथक टायलेट।

4 अखिल भारतीय न्यायिक सेवा शुरू की जानी चाहिए।

5 सरकार को न्यायिक नियुक्ति आयोग संबंधी विधेयक पुनः संसद में लाना चाहिए, जिसमें पुरानी खामियों को दूर किया जाना चाहिए।

6 निचली न्यायालयों में रिक्त जजों की भर्ती को यथाशीघ्र पूरा किया जाना चाहिए।

7 जमीनों का नापजोख करके उसे आनलाइन की जानी चाहिए, जिससे जमीन संबंधी झगड़ों का निपटारा आसानी से हो सके।

8 निचली न्यायालयों में भ्रष्टाचार चरम पर है, ऐसा सांसद राजीव शुक्ला का मानना है,ऐसी स्थिति में निचली अदालतों पर सतत् निगरानी रखनी होगी, और अधिकाधिक तकनीक का इस्तेमाल करना होगा।

9 लोअर कोर्ट में सेवानिवृत्ति के 6 माह पूर्व भर्ती की प्रक्रिया शुरू हो जानी चाहिए

10 लोअर कोर्ट में अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के माध्यम से जजों की भर्ती की जानी चाहिए।

11 राज्यसभा को चाहिए, कि वह अनुच्छेद 312 के अंतर्गत अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना करें।

12 जजों व वकीलों का सिंडिकेट बन चुका है,इसको तोड़ने के लिए न्यायपालिका को गंभीरता से चिंतन करना होगा।

13 मध्यप्रदेश में पांच जजों को अधिक काम करने के कारण अस्पताल में भर्ती करना पड़ा, अतः अधिक जजों की भर्ती शीघ्रता से करना होगा। एक प्रसिद्ध पत्रकार अमृताराय का कथन है, कि एक जज, दो जज का काम कर रहे हैं।

14 विधि आयोग का सुझाव है, कि भारत के मुख्य न्यायाधीश का कार्यकाल 2 साल तय किया जाय। विधि आयोग ने इसे 2022 से अमल में लाने को कहा था। मुख्य न्यायाधीश का कार्यकाल अत्यंत अल्प होता है, तो वे महत्वपूर्ण कदम नहीं उठा पाते, बहुधा देखा गया है कि, मुख्य न्यायाधीशों का कार्यकाल अल्प अवधि का होता है।

15 एम ओ पी में समय सीमा तय हो, ज्ञातव्य हो कि एम ओ पी दस्तावेजों का एक समूह है, जो सुप्रीम कोर्ट और हाइकोर्ट के न्यायाधीशों के स्थानांतरण, पदोन्नति तथा नियुक्ति के लिए मार्गदर्शन करता है।एम ओपी का अर्थ होता है मेमोरेंडम आफ प्रोसेड्यूर आफ हाई कोर्ट जजेस

16 सर्वोच्च न्यायालयों तथा उच्च न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में वरिष्ठता का पालन किया जाना चाहिए।

17 पूर्व विधि मंत्री अरुण जेटली का कथन है, कि सेवानिवृत्ति के पश्चात जजों को पोस्ट नहीं दिया जाना चाहिए।

18 बुद्धिजीवी मनीष छिब्बर का कथन है, कि जजों को पूरा वेतन,पेंशन के रूप में दिया जाना चाहिए। अमेरिका में सेवानिवृत्ति के पश्चात् पूरा वेतन दिया जाता है, ताकि जज सरकार के प्रलोभन में न आए अथवा सरकार के प्रभाव में न आए।

19 यदि किसी नागरिक के पास किसी न्यायाधीश के खिलाफ ठोस सबूत है, तो उस जज को महाभियोग प्रकिया से ही हटाया जा सकता है। महाभियोग के अतिरिक्त हटाने का कोई अन्य उपाय नहीं है। नागरिकों को यह अधिकार मिलना चाहिए, कि कोई एथारिटी के पास उस जज के खिलाफ सबूत पेश करे और शिकायत करें।

20 सेवानिवृत्त जजों को 70 की आयु तक पूरा वेतन दिया जाए, फिर अन्य नियुक्तियां किया जाए। वर्तमान कालेजियम को बेहतर बनाने हेतु सुझाव इंडियन एक्सप्रेस के पत्रकार मनीष छिब्बर ने कहा कि कालेजियम ही ठीक है, यदि नेता गलत हैं तो क्या चुनाव प्रक्रिया को बदल दें? कालेजियम को ही सुधारा जाए। जाने माने कानूनविद प्रशांत भूषण का कथन है कि फुल टाइम न्यायिक नियुक्ति आयोग हो। जजों के पास इतना समय नहीं होता कि सही जज का चयन कर सकें। सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों के खिलाफ की गई शिकायतों को सुनने वाली एक समिति हो। मनीष छिब्बर का कहना है, कि भारत के मुख्य न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक 6 माह में आम जनता को सूचना दे, कि किन किन जजों के खिलाफ शिकायत आया है और उन शिकायतो ंका क्या निराकरण किया गया। जाने माने बुद्धिजीवी आर एस सेठी का मत है कि कालेजियम ठीक है, किंतु कालेजियम में और अधिक पारदर्शिता की आवश्यकता है।उनका सुझाव है कि प्रत्येक हाईकोर्ट में एक समिति हो, जो जजों का सूची तैयार करें, उसी सूची से ही जजों की नियुक्ति हो और ऐसा ही समिति सुप्रीम कोर्ट में हो, जो जजों का चयन कर कालेजियम को दे। जज चयन समिति के सुझाए नामों में से ही जजों का चयन हो। कालेजियम को उस सूची से बाहर जाकर जज चयन करने का अधिकार नहो। कालेजियम में विचार लिखित में हो, वर्तमान में लिखित में नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ वकील विराग गुप्ता का कथन है कि कालेजियम में जिन व्यक्तियों के नामों पर नियुक्ति के लिए विमर्श हो रहा है, उससे जुड़ा कोई रिश्तेदार,जानपहचान वाला कोई व्यक्ति कालेजियम का हिस्सा नहीं होना चाहिए। कालेजियम का अपना एक सचिवालय होना चाहिए, कालेजियम की बैठकों का रिकार्ड रखा जाना चाहिए।किन किन नामों पर चर्चा हुई, किस आधार पर नियुक्ति हुई। इन सबकी जानकारी होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के खंडपीठ कुछ न्यायाधीशों का कथन है, कि मुंबई, चेन्नई और कोलकाता में सर्वोच्च न्यायालय का खंडपीठ होना चाहिए, इससे न्याय व्यवस्था सस्ती होगी तथा आम जनता को इससे महत्वपूर्ण लाभ होगा, किंतु कुछ न्यायविद इससे असहमत हैं, मेरे विचार से खंडपीठ बना देनी चाहिए और वर्तमान सर्वोच्च न्यायालय को केवल संवैधानिक मुकदमों की सुनवाई करनी चाहिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय तक मुकदमे बहुत कम जाते हैं, मेरे विचार से अमरीकी प्रणाली को हमें भी अपनाना चाहिए, इस संबंध में मेरा सुझाव है, कि उच्च न्यायालय को यह प्रमाणित करना होगा,कि यह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में सुने जाने योग्य है, तभी वह सर्वोच्च न्यायालय में सुने जाय।

वर्तमान कालेजियम प्रणाली-

जजों की नियुक्ति में वर्तमान कालेजियम प्रणाली में सर्वोच्च न्यायालय में पांच वरिष्ठ जज शामिल होते हैं, पांच वरिष्ठ जज ही तय करते हैं,कि जज किन लोगों को बनाया जाय, वर्तमान में जज दो तरीके से बनाए जाते हैं। प्रथम बार काउंसिल से तथा द्वितीय न्यायिक सेवा से। इसी प्रकार कालेजियम के द्वारा जजों का स्थानांतरण भी किया जाता है,एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में जजों का स्थानांतरण भी कालेजियम के द्वारा ही व्यवहार में किया जाता है।भारत के कुल 25 उच्च न्यायालयों में भी जजों की नियुक्ति कालेजियम प्रणाली के द्वारा ही किया जाता है, सर्वोच्च न्यायालय की तरह उच्च न्यायालयों में भी कालेजियम प्रणाली काम करती है, उच्च न्यायालयों में वरिष्ठ तीन जज कालेजियम के हिस्से होते हैं। उच्च न्यायालयीन की कालेजियम की सिफारिश सर्वोच्च न्यायालय जाती है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कानून मंत्रालय को सिफारिश भेजी जाती है, कानून मंत्रालय के अनुमोदन के उपरांत राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी किया जाता है, इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश के नेतृत्व वाली कालेजियम के द्वारा कानून मंत्रालय को सिफारिश भेजी जाती है, स्थानांतरण में भी यही प्रक्रिया अपनाई जाती है। वर्तमान कालेजियम प्रणाली में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि कानून मंत्रालय अर्थात सरकारी पक्ष कालेजियम के किसी नाम पर सहमत नहीं है, तो कालेजियम द्वारा प्रेषित उस नाम पर पुनर्विचार के लिए कालेजियम से कह सकती है और यदि कालेजियम उस नाम पर अड़ जाती है, तो सरकारी पक्ष को मानना पड़ता है, कहने का तात्पर्य यह है कि कालेजियम ही वर्तमान में प्रभावी है। वर्तमान कालेजियम प्रणाली की जबरदस्त वकालत सेकंड जज केस के समय जाने माने कानूनविद फली एस नरीमन ने की थी, सेकंड जज केस के समय भारत के मुख्य न्यायाधीश एम एन वेंकटचलैया थे।फली एस नरीमन को बाद मे कालेजियम प्रणाली से निराशा हुई। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोगक् 99 वां संविधान संशोधन विधेयक 2014 पारित हुआ। इस विधेयक का उद्देश्य

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए कालेजियम प्रणाली के स्थान पर एक स्वतंत्र आयोग का गठन करना था। यह विधेयक कानून भी बना, किंतु मुख्य न्यायाधीश जे एस खेहर की नेतृत्व वाली पीठ ने इस कानून को असंवैधानिक करार दे दिया और निरस्त कर दिया।मेरा मानना है कि सर्वोच्च न्यायालय को इस कानून के उन्हीं कंडिकाओं को निरस्त करना था, जो असंवैधानिक था, पूरी कानून को निरस्त करना उचित नहीं था।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के अनुसार उसमें 6 सदस्यों का प्रावधान था, 6 सदस्यों में से 3 सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश, 1 सदस्य पदेन न्याय व कानून मंत्री तथा 2 नागरिक समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति। नागरिक समाज के प्रतिष्ठित 2 व्यक्तियों का चयन एक समिति करेगी,इस चयन समिति में प्रधानमंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा लोकसभा के नेता प्रतिपक्ष होंगे।यह भी शर्त जोड़ा गया,कि नागरिक समाज के प्रतिष्ठित 2 व्यक्ति में एक व्यक्ति अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक या महिला होना आवश्यक है। न्यायिक नियुक्ति आयोग को वीटो पावर भी दिया गया,वीटो पावर के संबंध में यह कहा गया कि, 6 सदस्यों में से कोई भी 2 सदस्य वीटो का इस्तेमाल कर सकते हैं। राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा किया जाएगा।

न्यायिक नियुक्ति आयोग के ऋणात्मक बिंदुकृ-

(1) वीटो पावर का उल्लेख करना मुझे उचित नहीं लगा।

(2) कानून व न्याय मंत्री को पदेन सदस्य बनाना न्यायसंगत नहीं है, यदि ऐसा व्यक्ति कानून व न्याय मंत्री बना हो,जिसे कानून की जानकारी ही न हो, तब क्या होगा।

(3) न्यायिक नियुक्ति आयोग संबंधी विधेयक को लाने से पहले अच्छा सा होमवर्क शायद नहीं किया गया था, कुछ विशेषज्ञों का आरोप है, कि सरकार के द्वारा जल्दबाजी में यह विधेयक लाया गया था।

न्यायिक नियुक्ति आयोग को बेहतर बनाने के सुझाव-

(1) कानून व न्याय मंत्री को पदेन सदस्य बनाए जाने के बजाय यह प्रावधान करना था,कि सरकारी पक्ष से ऐसे सदस्य नियुक्त किए जाएं, जिन्हें कानून का बेहतर समझ हो।

(2) वीटो पावर संबंधी प्रावधान समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

(3) न्यायिक नियुक्ति आयोग में नियुक्त होने वाले जजों के अतिरिक्त तीन सदस्यों का कार्यकाल स्पष्ट किया जाना चाहिए। कार्यकाल कम से कम 3 साल होनी चाहिए। सरकारी पक्ष के सदस्य पर कार्यकाल संबंधी प्रावधान नहीं होनी चाहिए। न्यायिक नियुक्ति आयोग के प्रसंग में एक महत्वपूर्ण घटना अक्टूबर 2019 में हुआ, जब 17 अक्टूबर 2019 को मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई की अध्यक्षता में नौ सदस्यीय पीठ ने सेकंड जज केस पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया। याचिका खारिज करते हुए पीठ ने यह सवाल किया कि 9071दिन की देरी से पुनर्विचार याचिका क्यों प्रस्तुत किया गया,इस सवाल का जवाब याचिका कर्ताओं की ओर से संतोष जनक नहीं दिया गया। ज्ञातव्य हो कि सेकंड जज केस 24 अक्टूबर 1993 में आया था, जिसके तहत् कालेजियम प्रणाली की शुरुआत हुई। सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट इन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम यूनियन आफ इंडिया का केस सेकंड जज केस के रूप में मशहूर है। वास्तव में सेकंड जज केस पर पुनर्विचार याचिका लाने का उद्देश्य न्यायिक पारदर्शिता और न्यायिक सुधार था, वकीलों का एक समूह इस दिशा में कार्य कर रही है।

निष्कर्ष-

तमाम उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय में जजों के सेवानिवृत्त होने के एक माह पूर्व ही जजों की नियुक्ति प्रक्रिया शुरू कर दी जानी चाहिए। न्यायपालिका को सुधारने के लिए निचले स्तर पर कार्य प्रारंभ करना होगा, निचली न्यायालयों में जजों के पद शीघ्रता से भरने के लिए संबंधित उच्च न्यायालयों को पहल करनी होगी। न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में एक बेहतर विधेयक सरकार को लाना चाहिए, जिसमें नियुक्ति करने वाले सभी सदस्य कानून के जानकार हों अथवा सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में एक ऐसी समिति का गठन हो, जो जजों की नियुक्ति का कार्य देखे।वर्तमान कालेजियम प्रणाली को जारी रखने

से समस्या यह है, कि जजों की तलाश में हमारे जजों का काफी समय चला जाता है। अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का गठन भी शीघ्रता से किया जाना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

(1) देशबंधु 17.10.2015 का अंक दिल्ली।
(2) दैनिक भास्कर 17.10.2015 बिलासपुर अंक।
(3) द हिंदू 09.12.2022
(4) प्रवक्ता काम 19.10.2015 पीयूष द्विवेदी।
(5) सामान्य ज्ञान दर्पण फरवरी 2017।
(6) बी बी सी 13.08.2014 सिद्धार्थ वरदराजन।
(7) न्यायपालिका दशा एवं दिशा 2019 जस्टिस राजेन्द्र प्रसाद।
(8) नवभारत टाइम्स 14.10.2022
(9) बी बी सी 14.04.2015 नितिन श्रीवास्तव।
(10) भारतीय शासन एवं राजनीति डाक्टर पुखराज जैन ISBN 9789389111699

सौन्दर्य मीमांसा की भारतीय अवधारणा

डॉ० लता शर्मा

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सौन्दर्य शब्द की उत्पत्ति 'सुन्दर' शब्द से "यञ् प्रत्यय (तद्धित) पूर्वक होती है। 'सुन्दरता का भाव' ही 'सौन्दर्य' है। अंग्रेजी भाषा में इसके लिए 'ऐस्थेटिक्स' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह मूल यूनानी शब्द। जवंदजपावे से निष्पन्न है। यह शब्द यूनानी भाषा में ऐस्थेसिस में परिवर्तित हुआ जिसका अर्थ है 'ऐन्द्रिय सुख की चेतना'। पुन: इस ऐस्थेसिस से 'ऐस्थेटिक' शब्द बना जो सौन्दर्य का समानवाची शब्द है और अन्तत: इसका बहुवचनान्त रूप ऐस्थेस्टिक्स प्रचलन में आया जो 'सौन्दर्यशास्त्र' का समानान्तर वाचक है। ऐस्थेटिक्स का अर्थ है- ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम से किया गया अध्ययन। प्राय: सम्पूर्ण अध्ययन शोध-लेख सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा का प्रारम्भ ऐस्थेटिक्स् शब्द का अर्थ बताकर उसके हिन्दी समानान्तर पद के रूप में करते हैं किन्तु ध्यातव्य है कि हमारी सांस्कृतिक, साहित्यक परम्परा में ये अवधारणा आदिकाल से है। सम्पूर्ण परवर्ती सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा में 'रस' और उसका आस्वादन एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव के रूप में दिखाई देता है और उसका आदिस्रोत अथर्ववेद है।

रसो वै स: रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।

अत: हमारी सौन्दर्यानुभूति की अवधारणा वेदकाल से जुड़ जाती है। उसके पश्चात् कलाओं में सौन्दर्य की अवधारणा भी लगभग 1000 से 2000 ई. पूर्व के काल से जुड़ती है। महाभारत के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश श्रीमद्भगवतगीता में श्रीकृष्ण की उक्ति है- संसार में जो भी सुन्दर, ओजस्वी, कान्तिमय तथा लालित्यपूर्ण, प्रतीत होता है उसका उद्गम मैं ही हूं। सुन्दर वस्तुओं का सौन्दर्य मैं हूँ। मेरे सौन्दर्य से प्रभावित होने के कारण वस्तुएँ सुन्दर प्रतीत होती हैं। सौन्दर्य मेरी दिव्य कान्ति का एक अंश मात्र है। यहाँ मैं स्पष्टत: चेतन तत्त्व के प्रकाश और आनन्द से संपृक्त है। यही सत्यं शिवं सुन्दरम् की अवधारणा के रूप में कालान्तर में भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप- आख्यायक तथ्य के रूप में विकसित हुआ। यहाँ भी द्रष्टव्य है कि सुन्दरता का भाव सत्य और शिव से सम्बद्ध है जो सत्य है वही कल्याणकारी है और जो सत्यपूर्ण कल्याण से सम्बद्ध है, केवल वही सुन्दर है अर्थात् सुन्दरता या सौन्दर्य इन्द्रिय सम्बद्ध नहीं है वह तो समस्त सृष्टि का कल्याणमय अनुभूत तथ्य है। रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार- "सत्य के साथ मंगल के पूर्ण सामंजस्य को यदि हम देख सके तो फिर सौन्दर्य हमारे लिए अगोचर नहीं रहता।" (सौन्दर्यशास्त्र के मूलाधार)

स्पष्टत: भारतीय साहित्य और संस्कृति में यह अवधारणा आधुनिक नहीं, अत्यंत प्राचीन है जबकि पाश्चात्य दर्शन में प्रयुक्त 'ऐस्थेटिक्स' की अवधारणा प्राय: सुकरात, अरस्तु के दर्शन से दिखाई देती है। वहाँ इसका प्रथम प्रादुर्भाव लगभग छठीं शताब्दी ई. पू. थेलीस से माना जा सकता है जिन्होंने दर्शन को एक स्वतंत्र शास्त्र के चिन्तन के रूप में ग्रहण किया। सौन्दर्यशास्त्र के रूप में इसका क्रमबद्ध विवेचन प्लेटो के दर्शन में ही उपलब्ध होता है। लगभग 500 ई.पू. प्लेटो के सौन्दर्य सम्बन्धी विचार मूलत: दार्शनिक चिन्तन के सन्दर्भ में ही उपलब्ध होते हैं। तदनुसार अन्तिम तत्त्व नित्य, स्थायी, अपरिवर्तनशील है जो सभी वस्तुओं और घटनाओं का आधारभूत सार है। 'विशेष' सुन्दर हो सकता है किन्तु वह सौन्दर्य नहीं है। वस्तुओं की अपनी स्वतंत्र सुन्दरता नहीं होती है। सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित करती है अर्थात् यह बौद्धिक प्रत्यय एवं आनन्द है। कालान्तर में यही भाव ऐस्थेटिक्स के रूप में पल्लवित और पुष्पित हुआ और आनन्द का विषय है कि यह भी सत्य, शिव और सुन्दर से सम्बद्ध हो गया। सुन्दर 'परम्' है और पूर्ण है तथा सुन्दर होने के लिए नैतिक होना आवश्यक है।

सुन्दरता मूलत: ऐन्द्रियक बोध का विषय है। कोई भी वस्तु, स्वर, ध्वनि, स्वाद, रूप, गन्ध सुन्दर हो सकती है। अच्छा लगने का भाव सुन्दरता ही है क्योंकि इस भाव को हम कहीं न कहीं, किसी न किसी इन्द्रिय के माध्यम से ग्रहण करते हैं। अत: मूलत:

यह ऐन्द्रियक ज्ञान रहा। किन्तु इन्द्रिय ग्राह्य गुण निश्चित ही व्यक्तिगत और एकांगी ही होता है। यह भी सत्य है। नितान्त वैयक्तिक ज्ञान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही सन्दर्भों में कल्याणकारी नहीं होता। इसलिए हमारे यहाँ तो विचार व्यष्टि और समष्टि को जोड़ कर किया जाता है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इस भाव और विचार का ही परिणाम है कि प्रत्येक विचार स्वत: ही व्यष्टि को छोड़कर समष्टि के कल्याण भाव, उदात्तता से जुड़ जाता है और अन्तत: उसकी सत्ता परम सत्ता से सम्बद्ध हो जाती है। यही प्रक्रिया हम सौन्दर्य शास्त्र के सन्दर्भ में भी अनुभव कर सकते हैं। सम्भवत: आदिकालीन वैदिक ऋषि प्रकृति के सौन्दर्य से अधिक अभिभूत अर्थात् ऐन्द्रिय बोध वहां अधिक प्रभावी था, किन्तु उपनिषद् और स्मृति काल पूर्णत: उसे आध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले जाता है। वहाँ ऐन्द्रियक ज्ञान आत्मबोधोन्मुख होकर कल्याणकारी स्वरूप में विकसित होता है। यह कल्याणकारी भाव आनन्द और अन्तत: ब्रह्म से सापेक्ष हो जाता है।

ऐन्द्रियक बोध से आत्मानुभूति की इस यात्रा को हम संस्कृत साहित्य की यात्रा के साथ बढ़ता हुआ देख सकते हैं। वाचस्पत्यम् कोश में 'सुन्दर' शब्द की व्युत्पत्ति 'उन्द्' धातु से दी गई है। 'सु+उन्द्+अरन्' सु-अर्थात् सुष्ठु, उन्द का तात्पर्य है- 'आर्द्र करना' अरन् कर्तृवाचक प्रत्यय है। तदनुसार 'जो मन को भली-भांति आर्द्र करने वाला है।' वह सुन्दर है। यहाँ आर्द्रता निश्चित ही आन्तरिक अनुभूति है। बाह्य इन्द्रियों के संसर्ग से प्राप्त ज्ञान जो अन्त: करण को आर्द्र करने में सक्षम है अर्थात् ऐन्द्रियक सुख अन्तिम परिणति नहीं है। वह आत्मानुभूति के स्तर तक पहुँचना चाहिए, तभी सुन्दर की संज्ञा को प्राप्त होगा।

सुन्दर की उत्पत्ति 'नन्द' धातु से भी है। नन्द नन्दय अर्थात् जो भली प्रकार प्रसन्न करे वही सुन्दर है। यही प्रसन्नता आनन्द से जुड़ती है जो आत्मा का स्वरूप है-सच्चिदानन्द और यही परम् सत्ता का भी स्वरूप है। अर्थात् ऐन्द्रियक बोध स्वत: परम् आनन्द की सत्ता से जुड़कर आत्मानुभूति की यात्रा को पूर्ण करता है।

हलायुध कोश के अनुसार 'दृ' धातु भी सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति करती है। सुष्ठु उनत्ति आर्दीकरोति चित्तं इत्ति सुन्दरम् अर्थात् जो चित्त को द्रवित करने की क्षमता रखता हो वही सुन्दर है। श्शब्द कल्प्रदुम सुन्दरम् के समानवाची पदों में सौम्यम्, बन्धुरम्, वामम्, रामम्, अभिरामम्, पेशलम्, नंदितम्, दिव्यम् आदि का उल्लेख करता है। (शब्दकल्पदुम) अमरकोश में इसके पर्याय हैं-

सुंदरं रुचिरं चारू, सुषमं साधु शोभनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मंजु मंजुलम्।।
अभीष्टेऽभीप्सितं हृदयं दयितम् वल्लभम्।।
(अमरकोश 3/52-53)

स्पष्टत: 'सुर्न' धातु से उत्पन्न वैदिक पद 'सौन्दर्य' प्रथमत: ऐन्द्रियक बोध हेतु ही प्रयुक्त रहा किन्तु व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि से जोड़ने की भारतीय भावना ने इस शब्द को लौकिक संस्कृत काल तक पर्याप्त विस्तृत कर दिया और यह ऐन्द्रिय बोध से आत्मानुभूति की विस्तृत भावभूमि का वाचक बन गया।

उपनिषदों में यह पूर्णत: आत्माभिमुख दिखाई देता है। बाह्य प्रकृति की अपेक्षा आत्मा का ऐश्वर्य उपनिषद् काल का मूल लक्षण था। तदनुसार चराचर में व्याप्त ईश्वर आनन्द रूप है। सृष्टि की उत्पत्ति और उसका लय इसी सच्चिदानन्द में प्रतिभासित होता है। ऐतिहासिक काव्यों में भी सौन्दर्य के इस स्वरूप का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। इसके पश्चात् सभी संस्कृत कवियों ने अपने काव्यों में सौन्दर्य के समानवाची शब्दों का प्रभूत प्रयोग किया जो इस यात्रा को रेखांकित करता दिखाई देता है। कालिदास की शकुन्तला इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। प्रारम्भिक आकर्षण अथवा ऐन्द्रियक ज्ञान सौन्दर्य की अनुभूति का कारक है किन्तु वह ग्राह्य तभी है जब आत्मानुभूति के स्तर पर पहुँचता है। विरह की अग्नि में भौतिक वासनाओं के दग्ध होने पर ही शकुन्तला और दुष्यन्त का प्रेम ग्राह्य है और सौन्दर्यानुभूति की सार्थकता भी।

रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्।
रमणीयता च लोकोत्तराहलादजनक ज्ञानगोचरता।।

यहाँ स्पष्टत: रमणीयता ऐन्द्रियक बोध से जुड़ती है और उसकी परिणति श्लोकोत्तराहलादकताश आत्मानुभूति की व्याख्या है।

श्री लीलाधर गुप्त ने इसे इस प्रकार व्याख्यायित किया है- "सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों और मानव मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।'

माघ नित नवीनता को सौन्दर्य का आख्यायक कहते हैं।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:

यह नवीनता कहीं न कहीं आत्मिक स्तर पर ही अनुभूत हो सकती है। ऐन्द्रियक स्तर पर नवीनता की व्याख्या सम्भव नहीं है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- "सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है।" वस्तुत: स्थूल या सूक्ष्म जगत् में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए पदार्थ के गोचर रूप के साथ प्रमाता-प्रेक्षक की ऐन्द्रिय चेतना का सामंजस्य और उसके फलस्वरूप प्रमाता की चित्त वृत्ति का समीकरण आवश्यक होता है। वस्तुत: सौन्दर्य की अनुभूति प्रक्रिया में ऐन्द्रिय होते हुए भी अपने चरम परिणाम में चिन्मय अर्थात् भाव कल्पना तथा प्रज्ञा का विषय हो जाता है। इसलिए ही भारतीय परम्परा रस के ब्रह्म के अथवा आनन्द के उद्रेक में सत्वमयी वृत्ति को स्वीकार करती है। यहाँ रज व तम का लेशमात्र भी उद्रेक नहीं है। भारतीय परम्परा मूलत: सौन्दर्य का विवेचन न कर आनन्द का ही विवेचन करती है। यहाँ सौन्दर्यानुभूति का विवेचन मूलत: आत्मानुभूति का सूक्ष्म गहन विश्लेषण ही है। हमारी परम्परा में सुन्दर अधिकतर प्रिय अथवा प्रीतिकर का पर्याय है और प्रीतिकर की सत्ता 'आत्मन: कामाय' है। अर्थात् आत्मपरितोषकारक इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति एक प्रकार की आनन्दमयी चेतना है। आनन्द आत्मा का लक्षण है अत: सौन्दर्यशास्त्र भी, भारतीय बोध दर्शन दृष्टि से, ऐन्द्रियक बोध से दृष्टि से आत्मानुभूति की यात्रा का ही शास्त्र है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-भारतीय सौंदर्य शास्त्र - प्रो. विजयपाल शास्त्री

2-शब्द कल्पद्रुम - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली

3-अमरकोश -अमर सिंह विरचित -ईस्टर्न बुक लिंकर्स

4- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति -चौखंबा प्रकाशन

5- रस गंगाधर चौखंबा सुरभारती प्रकाशन

6-सौंदर्य शास्त्र के तत्त्व -डॉ. कुमार विमल

7-भारतीय संस्कृति के तत्त्व -आदर्श प्रकाशन जयपुर

8- संस्कृत साहित्य का वृहद इतिहास - डॉ. बलदेव उपाध्याय

9- सौंदर्य शास्त्र एक तत्त्व मीमांसीय अध्ययन - डॉ. लक्ष्मी सक्सेना

अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता

डॉ० अमित कुमार सिंह कुशवाहा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पंचशील डिग्री कॉलेज, मीरजापुर (उ०प्र०)

सारांश

शिक्षा प्रणाली में अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का विशेष महत्व है। इनके माध्यम से शिक्षकों को नवीनतम ज्ञान, विकास तकनीकों, शिक्षा विधियों और कौशलों से अवगत कराया जाता है, जो उनके व्यावसायिक विकास और शिक्षण कौशल के सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा उनकी प्रगति का मापन होता है और इससे शिक्षकों को उनके क्षेत्र में उच्चतर स्तर की प्रदर्शन करने में सहायता मिलती है।

बीज शब्द: एचईआई, एएससी, यूजीसी-एचआरडीसी, ओपी, आरसी, सीपीडी, एनईपी।

परिचय:

पेशा को नौकरी कि तुलना में अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षण एक प्रकार का पेशा है। जो प्रशिक्षण के माध्यम से अपने चुने हुए क्षेत्र में सक्षम बनता है; सतत व्यावसायिक विकास (सीपीडी) के माध्यम से अपने कौशल को बनाए रखता है; और जनता के हितों की रक्षा के लिए नैतिक रूप से व्यवहार करने के लिए प्रतिबद्ध है। अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम युवा महत्वाकांक्षी दिमाग में निरंतर ज्ञान संवर्धन का प्रसार करने, गुणात्मक ज्ञान के माध्यम से शिक्षण पेशे कि गुणवत्ता बनाए रखने और नई चुनौती का सामना करने के लिए बेहतर और संतुलित समाज बनाने में भी मदद करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भी शिक्षा प्रणाली की बदलती जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षकों के निरंतर व्यावसायिक विकास की आवश्यकता पर जोर देती है। शिक्षकों को उनके ज्ञान और कौशल को बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कार्यशालाओं और अन्य सीखने के अवसरों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सीपीडी एक योजनाबद्ध निरंतर और आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है; जिसके तहत शिक्षक अपने व्यक्तिगत और व्यावसायिक गुणों को विकसित करने और अपने ज्ञान, कौशल और अभ्यास में सुधार करने का प्रयास करते हैं, जिससे उनका सशक्तिकरण होता है, साथ ही उनके संस्थान में सुधार होता है। सीपीडी से शिक्षको के संगठन और उनके विद्यार्थियों का विकास होता है।

विश्वविद्यालय की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए कैरियर के सभी चरणों में उच्च शिक्षा संस्थान (एचईआई) के ऊर्जावान, प्रेरित और सक्षम संकाय को तैयार करना; जिसमें संकाय प्रतिबिंब, मूल्यांकन और विद्वतापूर्ण कार्यों के लिए आवश्यक समय समर्पित करता है, पाठ्यक्रम सीखना, डिजाइन करना, विकसित करना और पढ़ाना जारी रखता है, विद्वानों और कलाकारों के रूप में काम करता है। एचईआई अंतर-विषयक, अंतर्राष्ट्रीय और बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण और गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है और कार्यक्रम और विश्वविद्यालय प्रशासन में नया योगदान देता है।

हालाँकि, देश के यूजीसी-एचआरडीसी केंद्र सेवारत शिक्षकों के निरंतर व्यावसायिक विकास के लिए विभिन्न अल्पकालिक पाठ्यक्रम और ब्रिज कोर्स आयोजित करते हैं। यहां केवल अभिविन्यास कार्यक्रम (ओपी) और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (आरसी) में उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में उनके योगदान पर विस्तृत चर्चा की गई है।

अध्ययन का उद्देश्य:

'अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम कि प्रासंगिकता' विषयक अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने का एक प्रयास है-

- संकाय संवर्धन एवं व्यावसायिक विकास में मदद करना।
- शिक्षकों में आत्मनिर्भरता की गुणवत्ता के विकास में मदद करना।
- शिक्षकों के अनुभवों का आदान-प्रदान हेतु अवसर प्रदान करना।
- शिक्षकों में नवीनतम ज्ञान और तकनीकी विकास में मदद करना।
- शिक्षकों को सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक वातावरण के बारे में जागरूकत करना।

पृष्ठभूमि:

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण साधन है। भारत में विश्वविद्यालय-1194, स्टैंडअलोन-12497 और कॉलेज-49,083 हैं, जिनमें कुल छात्र नामांकन लगभग 31 मिलियन से भी अधिक है। शिक्षकों के ज्ञान और शोध को ताजा करने एवं अभिवृद्ध करने के क्रम में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और उसके कार्य कार्यक्रम के अनुसरण में, देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थानों में 66 अकादमिक स्टाफ कॉलेज (एएससी) स्थापित किए थे। जिसे अब यूजीसी-एचआरडीसी के नाम से जानते हैं, यह नव नियुक्त व्याख्याताओं के लिए विशेष रूप से डिजाइन किए गए अभिविन्यास कार्यक्रम और सेवारत शिक्षकों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित कर रहे हैं।

अभिविन्यास कार्यक्रम का उद्देश्य युवा व्याख्याताओं में सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक वातावरण के बारे में जागरूकता के साथ-साथ आत्म-क्षमता और आत्मविश्वास की खोज के माध्यम से आत्मनिर्भरता की गुणवत्ता विकसित करना है। अभिविन्यास कार्यक्रम भारतीय समाज की समस्याओं के बारे में शिक्षकों को जागरूक करने और राष्ट्रीय विकास में वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन समस्याओं के समाधान में शिक्षा और शिक्षकों की भूमिका में योगदान देता है। पुनश्चर्या पाठ्यक्रम सेवारत शिक्षकों को अपने साथियों के साथ अनुभवों का आदान-प्रदान करने और एक-दूसरे से पारस्परिक रूप से सीखने का अवसर प्रदान करता है। यह विषयों में नवीनतम प्रगति, तकनीकी प्रगति आदि से अवगत होने का एक मंच होगा। इस शोध लेख में हम अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता पर विस्तृत विश्लेषण करेंगे और इनके महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता का विश्लेषण

विश्वविद्यालय और कॉलेजों में नवनियुक्त अध्यापकों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन अध्यापकों को सामान्यत: कोई प्रशिक्षण नहीं प्राप्त होता है, इसलिए इन कार्यक्रमों का आयोजन यूजीसी-एचआरडीसी के विभिन्न केंद्रों पर होता है। ये कार्यक्रम चार सप्ताह की अवधि के लिए तैयार किए जाते हैं। कार्यक्रम के दौरान नवनियुक्त अध्यापकों का मूल्यांकन समय-समय पर किया जाता है। यह कार्यक्रम नवनियुक्त अध्यापकों को विभिन्न विषयों की जानकारी प्रदान करता है, जहां उन्हें शिक्षण विधियाँ, शिक्षण कौशल, व्यवस्थापन और प्रबंधन, विश्वविद्यालय में अध्यापकों की भूमिका, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था और संस्कृति से शिक्षा के संबंध आदि विभिन्न विषयों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

वर्तमान में विभिन्न विषयों में ज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है, जिसके कारण शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन कार्य में प्राप्त की हुई शिक्षा पुरानी पढ़ने लगती है। इसलिए, विशेष विषयों में तेजी से बदलते ज्ञान को अध्यापकों को पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के माध्यम से जानकारी प्रदान की जाती है। यह पाठ्यक्रम तीन सप्ताह का होता है। पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में भाग लेने से पहले अध्यापक के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम पूरा करना आवश्यक होता है। यह कार्यक्रम अध्यापकों को विशेष विषयों में होने वाले नवीनतम विकास से अवगत कराता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि हेतु अनेक नवाचारों का प्रादुर्भाव हुआ है। छात्रों को प्रभावशाली दिशा-निर्देशन के उद्देश्य से नवीन शिक्षण विधियों और प्रविधियों का विकास हुआ है। हालांकि, इनका प्रभावशाली रूप से उपयोग करने के लिए शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों को भी इनका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान के अभाव में, शिक्षक स्वयं इनका उत्तम ढंग से प्रयोग

करने में सक्षम नहीं होंगे। सरकार द्वारा सेवारत शिक्षकों के कौशल विकास और उनके व्यावसायिक विकास के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इनमें भाग लेकर सेवारत शिक्षक अपने शिक्षण कौशल का विकास कर सकते हैं, साथ ही समाज में व्याप्त जटिलताओं के परिणामस्वरूप समाज के समायोजन और उन्नति के उद्देश्य से उन नवाचारों से परिचित होते हैं और उनका उपयोग करते हुए कक्षा में प्रभावशाली दिशा-निर्देशन के माध्यम से छात्रों में भी उन नवाचारों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करते हैं।

उच्च शिक्षा में कार्यरत सेवारत शिक्षकों के कौशल विकास और व्यावसायिक संवर्धन के उद्देश्य के लिए यूजीसी-एचआरडीसी द्वारा अभिविन्यास कार्यक्रम एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (Orientation ProgrammeAnd Refresher Courses) का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का उद्देश्य शिक्षकों के शिक्षण कौशल में सुधार करने के साथ-साथ उनके व्यावसायिक विकास को भी प्रोत्साहित करना है।

शिक्षकों का व्यावसायिक विकास अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि वे अपने कार्यों को अधिक कुशलता के साथ निर्वहन कर सकें और अपने ज्ञान, जागरूकता और प्रेरणा में वृद्धि कर सकें। शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद या अपने व्यावसायिक कार्यक्रम की शुरुआत में, शिक्षकों के लिए कुछ कार्यक्रमों में भाग लेना आवश्यक और महत्वपूर्ण होता है क्योंकि ये पाठ्यक्रम उन्हें अपने व्यावसायिक क्षेत्र से परिचित कराने में मदद करते हैं।

शिक्षा क्षेत्र में अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आधुनिक शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण तत्व हैं। ओपी और आरसी की प्रासंगिकता, यानी उनकी सामर्थ्यता और उपयोगिता, शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण है। ये पाठ्यक्रम शिक्षायात्रा में सुधार और शिक्षा स्तर में गुणवत्ता की प्रोत्साहना करने का साधन होते हैं। ओपी और आरसी शिक्षकों को नवीनतम ज्ञान, विकास तकनीकों, शिक्षा विधियों और शिक्षान कौशलों के संकलन का अवसर प्रदान करते हैं। इससे शिक्षकों का व्यावसायिक विकास होता है और वे अद्यतनित ज्ञान को कक्षाओं में अध्यापन करके छात्रों को योग्य बनाने में सक्षम होते हैं।

अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में मूल्यांकन का महत्व अत्यंत उच्च होता है। यह मूल्यांकन प्रक्रिया शिक्षायात्रा के दौरान शिक्षकों की प्रगति और कौशल में सुधार को मापने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। विषय-विशेषज्ञों द्वारा दिए गए ज्ञान के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है जिसमें; विमर्श, सेमिनार, सूक्ष्म शिक्षण, कंप्यूटर कार्य आदि शामिल होते हैं। इसके अलावा, प्रत्येक पाठ्यक्रम के अंत में विषयवार परीक्षण आयोजित किया जाता है जो शिक्षकों की ज्ञानार्जन क्षमता और कौशल का मापन करता है। पूरे कार्यक्रम के दौरान शिक्षकों का मूल्यांकन उपलब्धियों के आधार पर किया जाता है, जिससे उन्हें उनकी सामरिकता का मूल्यांकन करने में मदद मिलती है और इससे शिक्षकों को अपने क्षेत्र में कौशल का संवर्धन करने का अवसर मिलता है।

अतः हम कह सकते है कि यूजीसी-एचआरडीसी उच्च शिक्षा के कार्यरत सेवारत शिक्षण के व्यावसायिक विकास तथा उनमें शिक्षण कौशल की वृद्धि हेतु निरन्तर किसी न किसी प्रकार में कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता है जिनमें भाग लेकर शिक्षक नवीन नवाचारों से परिचित हो सकेंगे; शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त जटिलताओं का प्रभावशाली ढंग से समाधान कर सकेंगे। शिक्षा के गुणात्मक स्तर में वृद्धि में अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिससे शिक्षक नवीन शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों के प्रयोग के प्रति दक्ष और वे अपने अनुदेशन को और अधिक प्रभावशाली बना सकेंगे। जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा की मात्रात्मक वृद्धि के साथ-साथ गुणात्मक विकास भी सम्भव हो सके।

निष्कर्ष:

उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के निरंतर व्यावसायिक विकास को दिशा देने में अभिविन्यास कार्यक्रम एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम सहयोग प्रदान करते है, जिससे उनके कौशल में अभिवृद्धि होती है। इसके अलावा, आधुनिक रुझानों और विशेष अनुशासन के ज्ञान को भी सीखने का मौका मिलता है, जिससे उनके संबंधित संस्थानों में शिक्षण आयोजित करने में सहायता मिलती है। इसके परिणामस्वरूप, छात्रों का उद्यमी भाव विकसित होता है और अध्ययन-अध्यापन की गुणवत्ता बढ़ती है। इसके साथ ही, यह भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली के सर्वांगीण शैक्षणिक विकास के लिए भी सहायक साबित होता है।

संदर्भः

1. Aggrawal, J.C. (1996). TeachersAnd Education inA Developing Society. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt.
2. Sharma, S. P. (2012). Teacher Education: Principles, TheoriesAnd Practices. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt.
3. Mohanty, J. (2003). Teacher Education. New Delhi: DeepAnd Deep Publications Pvt.
4. गुप्ता, एस.पी. (2016). भारतीय शिक्षा कि समस्याएं. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन
5. गुप्ता, आ. और गुप्ता, ए. (2019). अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम: शिक्षा में नए दिशानिर्देश. शिक्षण अनुसंधान एवं आवासीय अभियांत्रिकी जर्नल, 17(2), 51-64.
6. शर्मा, स. और गुप्ता, प. (2018). अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम: शिक्षायात्रा के लिए अपूर्व संसाधन. शिक्षण और प्रशिक्षण, 12(4), 117-129.
7. शर्मा, अ. (2017). अभिविन्यास कार्यक्रम और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम: शिक्षा में नए दौर की ओर. शिक्षण और प्रशिक्षण, 11(3), 77-86.
8. https://hrdc.ugc.ac.in/WebAsset/files/Guidelines2019.pdf
9. https://www.ugc.gov.in/pdfnews/7518552_Hindi-HRDC-file.pdf
10. https://dashboard.aishe.gov.in/hedirectory/#/institutionDirectory

जनपद, जनपदीयता और साहित्य

डॉ० रामाशंकर कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

भारतीय इतिहास और साहित्य में 'जनपद' भौगोलिक संरचना को अभिव्यक्त करने वाला अति प्राचीन शब्द है। सांस्कृतिक विचारक वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'जनपद' की उत्पत्ति सम्राट अशोक के उस शब्द को माना है, जिसमें कहा गया है कि 'जानपदसा च जनसा दसने धमनुसाथि च धम पलि पुछा च',- अर्थात्, जनपद जन का दर्शन, जनपद जन के लिए धर्म का सीखावन और जनपद जन के साथ मिलकर धर्मविषयक पूछ-ताछ।'[1] सम्राट अशोक ने इसी विचार के द्वारा जनता के नैतिक और धर्मिक, आचार और विचार को निर्मित किया था। इस तरह के प्रयासों के कारण ही सम्राट अशोक का राज्य सर्वाधिक समरस व्यवस्था वाला राज्य रहा है। वासुदेव शरण अग्रवाल बताते हैं कि 'जनपद के तीन मुख्य द्वार हैं- प्रथम भूमि और भूमि से संबंधित वस्तुओं का अध्ययन, द्वितीय भूमि पर बसने वाले जन का अध्ययन और तृतीय जन की संस्कृति या जीवन का अध्ययन।''[2] अर्थात् जनपद में लोक, संस्कृति और वहाँ प्रचलित शब्द समाहित हैं।

'जनपद' शब्द काफी व्यापक है। जनसामान्य में यह प्रचलित है कि किसी देश का एक प्रांत, भू-भाग, अंचल क्षेत्र, जो सांस्कृतिक-भौगोलिक दृष्टि से अलग पहचान रखता हो, 'जनपद' कहलाता है। अंग्रेजी में इसे 'रीजन' कहते हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में इसकी परिभाषा देते हुए कहा गया है कि 'जनपद से तात्पर्य उस भूखण्ड, प्रदेश अथवा किसी सीमा तक परिभाषित भू-भाग से है, जो कुछ प्राकृतिक आकारों, जलवायु संबंधी दशाओं, विशेष जीव अथवा वनस्पति आदि के कारण भिन्नता रखता है।'[3] यह भिन्नता समाज वैज्ञानिक नजरिए से इतिहास, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र में मिलती है। इतिहास की बात करें तो गौतम बुद्ध के समय का भारत जनपद में ही विभाजित था।

'जनपद' का दायरा बहुत व्यापक है। इसका प्रयोग भी विविध तरीके से किया जाता है। कहीं इसका रूप प्रादेशिक या क्षेत्रीय है, तो कहीं स्थानीय और जातीय। जैसे जब फ्रांसीसी आन्दोलन का प्रभाव अमेरिका में पहुँचा तो वहाँ स्थानीयता के रंग से सराबोर एक विशेष प्रकार की साहित्यिक रचना प्रारंभ हुई। जोसेफ टी.शिप्ले नामक विद्वान लिखते हैं: 'कुछ लेखकों की प्रवृत्ति किसी क्षेत्र विशेष से जुड़कर, उस क्षेत्र-विशेष का विस्तृत वर्णन तथा वहाँ के लोगों के जीवन और भविष्य को बेहतर तरीके से परखना हो गया है।'[4] ऐसा लिखने का कारण यह था कि वहाँ के विचारकों के लेखन में स्थानीयता का रंग अधिक चढ़ने लगा था। जिसे लेकर विद्वानों में बहस छिड़ गई थी कि यह सही है या गलत। हालांकि स्थनीयता अपनी क्षेत्रीय रंगत में सही है, लेकिन नागर जन उसे उस रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, जिस रूप में उसे अभिव्यक्त किया जाता है।

भारतीय भाषाओं, विशेषकर साहित्यिक नजरिए से इस शब्द को परिभाषित करने का प्रयास रामविलास शर्मा ने भी किया है। वह 'जनपद' शब्द की जगह उसके निर्माण की प्रक्रिया को महत्व देते हैं। उनका मानना है कि जनपद बनने की प्रक्रिया सामाजिक विकास की दूसरी अवस्था में प्रारंभ हुई। 'जाति और साहित्य' नामक अपने निबंध में लिखते हैं- 'सामाजिक विकास की दूसरी अवस्था में श्रम का विशेषीकरण होता है।...भूमि का स्वामित्व जब कुछ कुटुंबों के हाथ में सिमट आता है, तब कारीगरों और किसानों का श्रम फल भूस्वामी और उनके समर्थक पुरोहित हड़पने लगते हैं। इन भूस्वामियों को राजन्य या सामंत कहते हैं।...ऐसे सामंती समाजों के निवास भूमि को हमारे यहाँ 'जनपद' कहते हैं। इसलिए इन समाजों के गठन के रूप को हम जन कह सकते हैं। गणों और जनों में भेद यह है कि गण अक्सर घुमंतू जीवन बिताते हैं, जन किसी प्रदेश में स्थाई रूप से रहते हैं।'[5] इस प्रकार उन्होंने जनपद के सामंतवादी चरित्र को भी उजागर किया है। जनपद के सामाजिक-आर्थिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने जनपदों के आपसी संबंध को भी स्पष्ट किया है। उन्हीं के शब्दों में- 'सामंती समाज में विनिमय का विकास बहुत सीमित रहता है। उत्पादन

का लक्ष्य अपने प्रदेश की आवश्यकता पूरी करना होता है। इस कारण आर्थिक संबंधों के विचार से जनपद एक-दूसरे से अलग रहते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा जब किसी जनपद के लोग विनिमय के लिए माल तैयार करते हैं, तब आर्थिक संबंधों का विस्तार होता है। ऐसे में जनपदों का अलगाव खत्म होने लगता है।'[6] असल में जनपदों का जीवन आपसी सहयोग पर आधरित था। उसमें धन के आदान प्रदान के बजाय वस्तु-विनिमय की परंपरा थी। लेकिन समय के साथ होने वाले आर्थिक परिवर्तनों ने उस व्यवस्था को तोड़ दिया है। आज स्थिति में बहुत अधिक बदलाव आ गया है। 'जनपद' भौगोलिक सच के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक सच भी हो गया है।

प्रगतिशील आलोचक शिवदान सिंह चौहान के अनुसार, 'जनपद एक ऐसा भूखंड है जिस पर बसने वालों की एक भाषा हो, एक ऐतिहासिक परंपरा हो, एक संस्कृति हो और एक आर्थिक-सामाजिक जीवन हो, रहा हो या भविष्य में भी हो सकता हो, अर्थात् वह जनसमुदाय एक विशिष्ट जाति हो।'[7] जनपद का मूल आधार जातीय जीवन है जो किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक परंपरा, संस्कृति और भाषा से जुड़ा होता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी 'जनपद' को लोक से जुड़ा हुआ बताते हैं। उन्हीं के शब्दों में- 'लोक शब्द का अर्थ जनपद भी है और उसकी सीमा नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।'[8] उनके दायरे में 'वह सारा मानव समुदाय आता है, जिसमें आदिम मानस की अभिव्यक्ति हुई है। यह आदिम मानस मोहन जोदड़ो-हड़प्पा से लेकर आदिम जाति के विश्वासों और आज के सभ्य समाज के विभिन्न अनुष्ठानों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस सूत्र को मिलाने वाली कड़ी लोक-मानस है।'[9] इसमें जहाँ तक लोक मानस का प्रश्न है, 'वह किसी वर्ग अथवा जाति विशेष से संबद्ध नहीं है। वह तो सर्वत्र मानस के मूल में विद्यमान है। यह जंगल में भी मिलेगा और शहर में भी। भारतीय समाज में नागरिक और ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है।'[10] शहरों में एक राज्य या किसी अंचल विशेष के लोगों का एक बस्ती/मुहल्ला बनाकर रहना इसका उदाहरण है। ऐसी बस्तियाँ केवल सांप्रदायिक सोच के कारण नहीं बल्कि सांस्कृतिक या लोक सुलभ जरूरतों के कारण भी बनती हैं। आगे के शोध कर्ताओं ने इस शब्द को और अधिक विस्तार दिया है।[11]

बदलाव प्रकृति का नियम है। समय के साथ जनपदीय रचनात्मक संरचनाएं बिखर रही हैं। उनकी जगह 'नकल की संस्कृति' ले रही है, जिसमें स्थिरता और मानवता का अभाव है। इस सदी के शुरुआती दशक में यह कयास लगाया जा रहा था कि तेजी से हो रहे नगरीकरण के कारण जनपदीय व्यवस्था खतरे में है। लेकिन अब यह निष्कर्ष निकला है कि 'जनपदीय' व्यवस्था का नुकसान नगरीकरण से अधिक संचार व्यवस्था ने किया है। मूल्यों पर आधारित जनपदीय व्यवस्था धीरे-धीरे सिकुड़ती जा रही है। बौद्धकाल में जनपद का जो स्वरूप था, वह आज बिल्कुल नहीं है। उसके बाद जनपद की जो पहचान बनी है, उसका आधार भौगोलिक और सांस्कृतिक है। कुछ जनपदों के संघर्ष के केंद्र में अस्मिता का सवाल भी है। स्थानीय दल इस तरह के आंदोलनों को समर्थन दे रहे हैं। अर्थात् जनपद पहले की मूल पहचान से अलग एक प्रकार की पहचान और पा गए हैं, जिसको लेकर दबाव समूह विकसित हो रहे हैं। आज 'जनपद' अपने पूर्व रूप से पूरी तरह अलग हो गया है। लेकिन भारतीय जनमानस में उसका मूल अभी भी जिन्दा है। उसको न समझ पाने के कारण ही देश में असमानता बढ़ रही है। जनपदीय आन्दोलन खड़े हो रहे हैं। जनता सरकार के व्यवहार पर बार-बार आक्रोश व्यक्त कर रही है।

विविधता भरे भारतीय समाज में जनपदीय चेतना लोक-ज्ञान का प्रमाण है। भारतीय समाज की बनावट या बुनावट देखें तो कह सकते हैं कि यह देश कई राज्यों और उसमें व्याप्त विविध संस्कृतियों का एक ऐसा समूह है, जिसमें विविधता के साथ सांस्कृतिक एकता मिलती है। वैसे तो 'पानी और बानी' में बहुत अंतर है लेकिन पर्व-त्यौहार, व्रत-उपवास आदि इस 'अंतर' को खत्म कर देते हैं। व्यावहारिक तौर पर देखा जाय तो यही अंतर जनपद का निर्माण करते हैं या कहें कि उसकी सीमा का निर्धारण करने में सहयोग करते हैं। इनकी अपनी एक स्वतंत्र अर्थवत्ता है। यह अर्थवत्ता कई रूपों में भाषा, रोजाना के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों और प्रतीकों में व्यक्त होती है। यही कारण है कि यहाँ प्रचलित सांस्कृतिक रूपों और आचारों को व्यवस्थित रूप में पढ़ने और समझने की दरकार होती है। साथ ही लोक और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए भी जनपदीय अध्ययन की जरूरत पड़ती है। 'जाने-माने सांस्कृतिक इतिहासकार, भाषाविद् और भारतीय कला के विद्वान वासुदेवशरण अग्रवाल लोक और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए 'जनपदीय अध्ययन की आँख' विकसित करने की बात करते हैं।'[12] भारतीय जनपद इसी लोक के ज्ञान के आधर पर विकसित हुए हैं। यह सही है कि समय के अनुसार संरचनाएं बदलती रहती हैं लेकिन तमाम परिवर्तनों के बाद भी उनका मूल रूप वही रहता है।

वासुदेव शरण अग्रवाल ने जनपद के विभिन्न पहलुओं पर बहुत बारीकी से विचार करने वाले विद्वान माने जाते हैं। एक जगह वह जनपद संरचना को और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, 'भारत जनपदों का देश है। ग्रामों के समूह जनपद हैं। गाँवों और जनपदों का ताँता हमारे चारों ओर फैला हुआ है और इस भूमि के अधिकांश जन गाँवों और जनपदों में ही बसे हुए हैं। गाँव-बस्तियाँ हमारी संस्कृति की धात्री हैं। गाँव सच्चे अर्थों में पृथ्वी के पुत्र हैं। गाँव के जीवन की जड़ें धरती का आश्रय पाकर पनपती हैं। गाँवों में जन के जीवन को टिकाऊ आधार मिलता है। शहरों का जीवन उखड़ा हुआ जान पड़ता है। जनपदों का जीवन हजारों वर्षों की अटूट परम्परा को लिए हुए है। गाँवों में जन की सत्ता और महिमा एवं जन-जीवन की स्वाभाविक सरल निज रूपता जनपदों में सुरक्षित है, जहाँ बाहरी अंकुशों से जीवन की प्राणदायिनी शक्ति पर कम प्रहार हुआ है। जनपदीय जीवन-स्थिति, शांति और अपनी ही मानस भूमि की अविचल टेक ढूंढता है। इसके विपरीत 'पुर' का जीवन धूम-धाम के नए ठाट रचता है। दोनों के दो पथ हैं। इतिहास के उतार-चढ़ाव में वे कभी एक-दूसरे से टकरातें हैं, कभी मेल ढूँढ़ते हैं और फिर कभी एक-दूसरे से परे हट जाते हैं। वैदिक काल से आज तक यही लहरिया गति चलती आ रही है।'[13] यह क्रम जितना लंबा है उतना ही व्यवस्थित भी है। क्योंकि इसका निर्माण एक दिन में नहीं हुआ। बल्कि जीवन के साथ यह भी एक सतत विकास की प्रक्रिया है। यह विकास जरूरी नहीं है कि क्षैतिज या एकरेखीय हो, बहुमुखी भी हो सकता है।

हिंदी साहित्य में 'जनपदीय' संरचना को उसके मूल में जीने का कार्य फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन जैसे अनेक साहित्यकारों ने किया है। रेणु का उपन्यास 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' एवं कहानी 'तीसरी कसम' जनपदीयता को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त करते हैं। रेणु ने पूर्णिया (बिहार) की मिट्टी से लेकर वहां की बाढ़/बीमारी और सुख-दुःख का बहुत सुंदर वर्णन किया है। अपनी अभिव्यक्ति में जनपद की वैचारिक/सांस्कृतिक विविधता को मिलाने का काम करते हैं। नागार्जुन जनपदीय विश्लेषण को और सूक्ष्म बनाते हुए उसे और अधिक विस्तार देने का कार्य करते हैं। नागार्जुन यायावरी करने वाले व्यक्ति थे, लेकिन देश भ्रमण के बाद भी उनको असली शांति 'तरउनी गाँव'[14] में मिलती थी। घर से दूर रहने पर अपने परिवार को याद करने के साथ ही उस धरती से विछोह को भी महसूस करते थे। यह वही धरती है, जहाँ उनका बचपन बीता है। वह अपनी जीवन संगिनी को याद करते हुए मिथिलांचल को भी याद करते हैं। उनकी रचनाएं यह बताती हैं कि जितना वह अपनी पत्नी को प्रेम करते थे उतना ही मिथिला की उस माटी को भी करते थे, जिसने उन्हें जीवन को समझने और जानने का विभिन्न अवसर और माध्यम दिया। उनकी एक कविता है-'घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल/याद आता तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल/......याद आते स्वजन/जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख/स्मृति-विहंगम को कभी थकने नहीं देगी पाँख/याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम...../धन्य वे जिनकी उपज के भाग/अन्न-पानी और भाजी साग/फूल-फल औ' कंद-मूल अनेकविध मधु-मांस/विपुल उनका ऋण, सधा सकता न मैं दश-मांस।''[15]

नागार्जुन मछलियां, आम आदि का बहुत सुंदर वर्णन करते हैं। कलमी आमों में बम्बईया, किसुनभोग, कलकतिया, फजली, दमड़ी, जर्दालू, शाह पसंद, सुकुल, सिपिया, कपुरिया, दुर्गीलाल का केरवा, बथुआ, राढ़ी, भदई आदि का जिस तरह वह वर्णन करते हैं, ऐसा लगता है कि उनके 'मिथिला जनपद' के बाहर आम के इन प्रकारों की कोई कल्पना ही नहीं है। इन किस्मों की बारीकियों के सन्दर्भ में इतना विश्वास से बताते हैं, जैसे सदियों से यही काम करते रहे हों। जैसे-'किसुन भोग दुलरुआ ठहरा, जरा सी असावधनी से उसमें पीलू पड़ जाते हैं। गूदा कड़ा और काफी रहता है उसमें। शकल बिल्कुल गोल। कलकतिया गरीबों व साधरण जनता का प्रिय ठहरा, खूब फलता है और सालों-साल। भादों तक टिकता है। माकूल मिठास और भरपूर गुदा। सुलभ और सस्ता। उसका नाम ही गरीबनेवाज रख दिया लोगों ने।'[16] अपनी खास वर्णन शैली से नागार्जुन जनपदीय विशेषता और प्रकृति का सामंजस्य दिखा देते हैं। नागार्जुन इसलिए भी ऐसा कर पाते हैं, क्योंकि वह 'जनपद' के स्वरूप और उसके लोकज्ञान को समझते हैं।

'जनपदीयता' भारतीय संस्कृति और प्रकृति की आत्मा है। अपनी विविधता के साथ भी जनपद भौगोलिक संरचना में सभी चीजों को अपने अंदर समाहित किए हुए चलता है। जनपदीय संस्कृति बौद्ध काल में विकसित हुई हो सकती है लेकिन समय के साथ उसका विस्तार और विविधता निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और आज भी अनेक क्षेत्र और समाज 'जनपद की आंख' अर्थात् ग्रामीण अंचल को अपनी पहचान बनाए हुए हैं। खेती-किसानी से लेकर पर्व-त्योहार और व्रत-उपवास का जैसा प्रचलन जनपदों में है, विकास के नित नए प्रतिमान भी उन विशेषताओं और उनके महत्व को आगे ले जाने का कार्य कर रही है।

संदर्भ

1. अभय कुमार दुबे- सं.- प्रतिमान-अर्द्धवार्षिक पत्रिका- अंक 2, वर्ष 2013 पृ. 818।
2. वही. पृ. 822।
3. "A Large tract of land' a country' a more or less defined portion of earth's. now esp as distinguished by certain natural feature, climatic conditions, a special fauna or flora or the like."- The Oxforde English Dictionary, University press, London, year 1991, Vol viii, Pg. 37 .
2. "The tendency of some writers to set their works in a particular locality, presented in some details or effecting the lives and fortunes of inhabitants."- Josef T.Shipley- Dictionary of World Litrary Terms, Edition 1971, Pg. 337 .
5. डॉ. रामविलास शर्मा- हिन्दी साहित्य का इतिहास: पुनर्लेखन की समस्याएँ, संस्करण 1986, पृ. 27-28।
6. डॉ. रामविलास शर्मा- हिन्दी साहित्य का इतिहास: पुनर्लेखन की समस्याएँ, संस्करण 1986, पृ. 28।
7. शिवदान सिंह चौहान- साहित्य की समस्याएँ, संस्करण 1998, पृ. 279।
8. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी- विचार और वितर्क, संस्करण 1972, पृ. 196।
9. श्रीनारायण पाण्डेय- साहित्य और लोक साहित्य, संस्करण 2001, पृ. 78।
10. श्याम परमार- भारतीय लोक साहित्य, संस्करण 2001, पृ. 10।
11. डॉ. अनिल सिंह अपने शोध-प्रबंध 'नागार्जुन के साहित्य में जनपदीय समाज और संस्कृति' में 'जनपद' की परिभाषा देते हुए लिखते हैं: ''जनपद' एक समूह वाची शब्द है और किसी विशेष भौगोलिक संरचना की सूचना देता है। दूसरे शब्दों में जनपद ग्रामों का ऐसा समूह है, जो सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अपना पृथक अस्तित्व रखता है।''- नागार्जुन के साहित्य में जनपदीय समाज और संस्कृति, 2006, पृ. 4।
12. राकेश पाण्डेय- प्रतिमान -त्रैमासिक पत्रिका- जुलाई से दिसंबर 2013, वर्ष एक, खंड 1, अंक 2, पृ. 810।
13. राकेश पाण्डेय- प्रतिमान -त्रैमासिक पत्रिका- जुलाई से दिसंबर 2013, वर्ष एक, खंड 1, अंक 2, पृ. 818-819।
14. नागार्जुन का पैतृक गांव।
15. शोभाकांत-;सं.द्ध नागार्जुन रचनावली, खंड-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 41।
16. शोभाकांत-;सं.द्ध नागार्जुन रचनावली खंड-4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2011, पृ. 11।

उपेन्द्र दोषीक मनोज दासक कथा ओ कहिनीक विश्लेषण

भोगेन्द्र प्रसाद सिंह

शोधार्थी, यू०जी०सी०नेट/जे०आर०एफ० विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मैथिली साहित्यक जगतमे राष्ट्रवादी प्रतिष्ठित साहित्यकार 'उपेन्द्र दोषी' कथा आ काव्यक क्षेत्रमे सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी कथाकारक रूपमे परिचित तऽ छलैथे, आब एहि मनोज दासक कथा ओ कहिनी (अनुवादक) संग एकटा विशिष्ट, हस्ताक्षर कविक रूपमे हमरा सभक बीच उपस्थित छथि।

हिनक ई मनोज दासक कथा ओ कहिनी (अनुवाद) पहिल संस्करण 1999 ई०मे साहित्य अकादेमी नई दिल्लीसँ प्रकाशित भेल अछि, एहि 261 पृष्ठक पोथीमे 42 गोट कथा संगृहीत अछि, जे थिक- अपहृत टोपीक रहस्य, चिड़ै, घरमुहाँ, चोर! चोर!! लजबिज्जीक गाछ, बिलाड़ि, अन्दरक दानव, जौंआँ, सितार आ हमर बेटी, इनार, बिहाड़ि छुटलापर, उत्थान, सात प्रवीण बन्धु, राति आ परात, तरूणगिरीक तपस्वी आ प्रवीण बन्धु, निपत्ता ओ साँझ, राय सिंहक डायरी, जग्गू मिसर आ उपग्रह, भुतहीकोठी मे एक राति, विषकन्याक कथा, घुन्ना शैतान, तेसर जीव, मनुख आ बानर, बाबुलपुरक साँढ़, अनेक फूल, अनेक, सीताक वर, लभुर्भा पर्वतपर मध्याह्न, शेष जगत, शशक-मनोविज्ञान, बाध, समुद्रक क्षुधा आविष्कार, कन्या, दुपहरि राति, मोमबत्ती, गुदगुदिया दाई, दुखान्तक शल्यक्रिया, तीन गोट महग भोट, रविवासरीय संगीत, एकटा दुखांतक दुखांत, वन- भ्रमण, सहानुभूति।

हमरा मिथिलामे खिस्सा-पेहानी काव्यक प्रमुख विधा थिक। मिथिलामे खिस्सा-पेहानी कहब आ सुनब बहुत पहिनहिसँ आबि रहल अछि। बुढ़-पुरान सभ बेदराकँ खिस्सा-पेहानी सुनबैत आ सुनैत अछि, आ ओहिसँ मनोरंजन सेहो भेटैत अछि।

एखनो जे किछु बुढ़-पुरान सभ बँचल अछि, ओना तँ पहिलुक बुढ़-पुरान सभ मड़ि गेल, एखनो जे एक-आध बँचल अछि ओ ओहिना नमहर खिस्सा-पेहानी कहि कऽ मनोरंजन करैत अछि। ओएह खिस्सा सभ कथाक रूपमे विकसित भऽ गेल अछि। अन्तर एतबे अछि कथाक स्रष्टा केओ दोसर वक्ता केओ आन रहैत छलाह। कथा सुनौनिहार लोकनिकँ पोथी पतरा उनिटएबाक कोनो जरूरी नहि किन्तु कथाकार सभ कथाक रचना कऽ लिपिबद्ध कऽ दैत छथि। आ पाठक वर्ग कथा पढ़ि अहलादित होइत छथि। पूर्वमे सभटा राजा-महराजा, दैत्य, देवता, पशु, पक्षी, चिड़ै चटक कथा सभ रहैत छल। किन्तु आई-काल्हिक कथा साहित्यक अंग बनि गेल थिक जे सभकँ रूचिकर आ दिशा निर्देशक बुझना जाइत अछि।

सर्व प्रथम हम एहि मनोज दासक कथा ओ कहिनीक चर्चा करए जा रहल छी। मनोज दासक कथा ओ कहिनी कथा संग्रह इंगित करैत कहैत छथि जे एहिमे संगृहीत कथा सभमे मनोज दासक कथा ओ कहिनीक कथा-वस्तु विद्यमान रहत। वस्तुतः कुल ब्यालिसोटा कथा-संग्रहकँ हम पढ़ि गेलहुँ आ प्रायः सभ कथामे रोचकता अछिए। तँ पूर्णतः सार्थक एकर नाम मनोज दासक कथा ओ कहिनी कथा अछि। एहिमे पहिल कथा संगृहीत अछि जकर पौराणिक आधार अछि मनोज दासक कथा ओ कहिनी शीर्षकहिमे लागल अछि।

कथाकार दोषी जीक पौराणिक व्यवहारक आधार पर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "अपहृत टोपीक रहस्य' शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे महाराणाक प्रसिद्धि एक निष्ठावान आ उदार व्यक्तिक रूपमे छल। आतिथ्यमे हुनक बराबरी केओ नहि कय सकैत छल। हुनकर दूटा पोखरि नीक-नीक माछसँ भरल रहैत छलनि। बहुत रास गाय सेहो पोसने रहथि। साँचे महाराणा बाबू सभ तरहँ सम्पन्न छलाह।"[1]

मनोज दासक कथा ओ कहिनीक मैथिलीक रूपान्तरक अनुबंध साहित्य अकादेमीसँ जखन हुनका भेटलनि तखन ओ आश्चर्यचकित रहि गेलनि। आ प्रशन्नतो भेलनि। हुनक साहित्य-लेखन मैथिली आ हिन्दी धरि सीमित अछि। आन भाषाक ज्ञान भले हो, मुदा ओहिमे साहित्य-रचनाक प्रवृत्तं नहि अछि। तँ एहि अनुवाद-कार्यकँ पाबि चकति भेलनि, आ संगहि खुशी सेहो भेलनि जे साहित्यक कार्यक क्षेत्रमे अनायासे बृद्धि भऽ गेलनि।

कथाकार दोषी जीक समाजमे पौराणिक व्यवहारक आधार पर सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि "चिड़ै शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे शिकारमे एकरहि कहै छै स्वर्णावसर। जँ कनेक धैर्य आ सावधानीसँ गोली लगाओल जाए तँ तीनू चिड़ै एकहि बेर खसि पड़त। ओहूना गोधूली बेलाक एहि सुन्दर समयमे जल्दी करबाक जरूरते की? राय साहेब कोनो ससरऽवला कीड़ा जकाँ नहुएँ-नहुएँ अपन स्थिति बदललनि आ निशान साधलनि।"[2]

मनोज दासक जन्म (1934) ई०मे भेल रहनि ताहि विशिष्ट कथा शिल्पीमे सँ छथि जिनका देश-विदेशमे बेस ख्याति भेटल छनि। ओड़िया आ अँगरेजीमे समान रूपैँ लिखनिहार मनोज दासक पहिल कृति चौदहे वर्षक वयसमे प्रकाशित भेल छल। पन्द्रह वर्षक वयसमे 'दिगंत' नामक पत्रिकाक आरम्भ कयलनि जे बादमे ओड़ियाक एकटा प्रमुख विचार-प्रधान सांस्कृतिक पत्रिकाक रूपमे स्थापित भऽ गेल।

कवि दोषी जीक व्यवहारक आधार पर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि। "घरमुहाँ शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे डाक्टर साहाक वयस आब एकासी वर्षक भेलनि। एक दिन साँझ कऽ ओ अपन मुख्य सहायक डा. जयसूर्य आ किछु अन्य सहायक लोकनिकँ अपन चेम्बरमे बजौलनि आ गोषणा कयलनि।"[3]

युवावस्थामे ई राजनीतिमे सेहो सक्रिय रहलाह आ एहि क्रममे हुनका जेहल सेहो जाय पड़लनि। बांगडुंगमे आयोजित एफ्रो-एशियाई छात्र परिषदमे सेहो 1956 ई० मे शामिल भेलाह।

कटकक एकटा महाविद्यालयमे चारि वर्ष धरि अध्यापन कयलाक बाद, 1963 ई०मे ई श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी चल गेलाह आ' सम्प्रति ओतहि 'श्री अरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र' मे अँगरेजी साहित्य प्राध्यापक छलैथ।

कवि दोषी जी समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "चोर! चोर!! शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे वृन्दावन दू दिनसँ किछु नहि खयने रहय। कारण भूखसँ व्याकुल ओकर बेटी अनु आ ओकर एक नान्हिटा बेटा अकस्मात् दू कोस दूरसँ ओकरा ओतय आबि गेलि रहैक। वृन्दावनकँ प्रशन्नता छलैक आ अपनापर गर्व सेहो जे-जे ओ ओकरा घुरबासँ पहिने एक थारी भात खोआ सकत आ ओकर निवेदन सेहो स्वीकार कऽ सकत।"[4]

हिनक करीब सात गोट कथा-संग्रह अंग्रेजीमे आ' ओतबेक ओड़िया भाषामे प्रकाशित भऽ चुकल अछि। अपन कथा-संग्रह 'मनोज दासक कथा ओ कहिनी' पर वर्ष 1972 ई०क साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त कयलनि। एकर अतिरिक्त आनो-आन पुरस्कारसँ सम्मानित भऽ चुकल छथि।

कवि दोषी जी सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "लजबिज्जीक गाछ शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे पूसक रातिक भोरक समय छल। इंस्पेक्टर राव एहि पहरमे कंबलक पूरा गर्मी लेमय चाहैत छलाह। तखनहि टेलिफोनक घंटी बाजल आ बजैत रहल। राव चाहलनि जे घंटी कोनहुना बंद भऽ जाय। ओ फूकि-फूकि कऽ ओकरा बंद कय देबय चाहैत छलाह। मने ओ टेलिफोनक घंटी नहि मोमबत्ती हो।"[5]

एहि पुरस्कृत कथा सभक रूपान्तरकार थिकाह मैथिली साहित्यक सुपरिचित कवि कथाकार श्री उपेन्द्र दोषी जनिक कतोको मैथिलीक कथा प्रकाशित अछि आ आन भाषा सभमे अनुदित सेहो। श्री दोषी लगभग बीस वर्षसँ ओड़िया भाषा-साहित्य, समाज आ' सभ्यता-संस्कृतिक निकट सम्पर्कमे रहि रहल छथि।

कवि दोषी जीक समाजमे पौराणिक व्यवहारक आधारपर सिद्ध करबाक चेष्टा कयलनि अछि- "बिलाड़ि शीर्षक कथामे कहल गेल अछि जे साँझक समय रहैक। घरमे कने-मने अन्हार रहैक। पहिल-पहिल नियुक्ति पत्र भेटल रहनि। हुनका गुणपुर जिलाक डिप्टी कलक्टरक पदपर ज्वाइन करबाक रहनि। माता जीक संगे लऽ जयबाक रहनि। माता जी भानस कयने रहथि नाना प्रकारक पूरी-पकवान, तीमन-तरकारी आ माछ-भातक सचार लगौने रहथि। ओहि असर पर विलाड़ि पहुँचकए अगिला पंजासँ नहुए-नहुए माछक एकटा कुटिया घीचय चाहलक।"[6]

साहित्य अकादेमीसँ प्रकाशित प्रस्तुत कथा-संग्रह मनोज दासक कथा कल्पनाशीलताक उत्कृष्ट उदाहरण थिक। मुदा ई कल्पना मात्र नहि थिक। ई नव अर्थवत्ता आ ठोस आधार लेने रहैत अछि। जेना-जेना कथा आगू बढ़ैत अछि, अर्थवत्ता आर गहींर होइत जाइत अछि आ' लगैत अछि जे मनोज दासमे अर्थवत्ता गस्सल अछि। विभिन्न स्थिति ओ परिदृश्य पर हुनक पकड़ मजगूत छनि। ओ कखनो कथामे व्यंग्य पुट दैत छथि तऽ कखनो करूणाक। संगहि ओ मानवीयताक कतेको पक्षकेँ सेहो उद्ाटित करैत छथि।

कवि दोषी जीक पौराणिक व्यवहारक आधारपर समाजमे सिद्ध करबाक प्रयास कएलनि अछि- "अन्दरक दानव शीर्षक कथामे कहल गेल छै जे चारि-पाँच वर्षक हमर दुलारू बेटी नीन पड़ि गेल रहय। हम ओकरा वचन देने रहिऐक जे जल्दीसँ-जल्दी एकटा असली बानर आनि देबौक। ओ अपन जीवनमे पहिल खेप एक सप्ताहक लेल अपन मायसँ फराक भऽ रहलि छलि। हमरा मोन छल जे हमर बंगलाक चौकीदार एकटा बानर पोसने रहय।"[7]

इएह कारण थिक जे हुनक 'आदमी आ बानर', 'अपन-अपन विवेक', 'कुबरा चोर', 'चुम्बन', 'बाबुलपुरक साँढ़', 'तेसर जीव', 'घुन्ना शैतान', 'हीरा', 'दोसराइत', 'नव खोज', 'मोमबत्ती', 'कुतूरीदाइ', 'लापता', 'हेरायल टोपीक रहस्य', 'चोर! चोर!!' आदि कथा अमिट प्रभाव छोड़ैत अछि आ' ई अनुभव करबैत अछि। जे लेखक साधारण होइतहुँ असाधारण छथि तथा सृजनशीलताक आयामकेँ विस्तार दैत छथि। इएह कारण थिक जे ई कथा सभ भाषिक सीमा टपि कऽ सार्वभौम भऽ गेल अछि।

कवि उपेन्द्र दोषी अपन विचार व्यक्त करैत कहलनि अछि एवं सिद्ध करबाक प्रयास कयलनि अछि- "जौआँ शीर्षक कथामे कहलनि अछि जे बड़ पुरान गप्प थिक। ई शताब्दी शुरूओ ने भेल छल। युवक ऋषिकेश चौधरी अपन गाम घुरल छलाह। गत तीन माससँ ओ कलकत्तामे छलाह। वसन्तक भोर रहैक। चारूकात हरियरी पसरल। कोइली सभ गाछक डारिपर बैसि कोनो राग अलापैत रहय। गामक बाध एखनहु जेना हरियरीक कोरमे ओंाइत रहय।"[8]

कथाकार लोकनि कथामे स्त्रीक हास्य-व्यंग्य चित्रण कएने छथि। एहि छोट-छिन आलेखमे एक-एक कथापर संक्षिप्तो चर्चा करब सम्भव नहि भए सकल किन्तु हम त' इएह कहब जे संग्रहक सभ कथामे मनोज दासक कथा ओ कहिनीक परिचर्चा भेल अछि, रोचकता अछि। कोनो कथा पढ़य लागब तँ बीचमे छोड़बाक मोन नहि होएत। ओकर परिणाम धरि पहुँचव उताहुलता रहत। कथाक सभसँ पै गुण होइत अछि उपदेश।

कथाकारक ई पहिल कथा संग्रह थिक कथा सभमे पूर्ण परिपक्वता अछि। कथा सभ गुणसँ समन्वित अछि। हिनक कथा सभमे यथार्थता अछि जे कल्पनाक संयोगसँ चमत्कारक बनल अछि। अधिकांश कथा बुझि पड़ैत अछि लेखकक देखल पड़ेखल अछि। वस्तुत: कथामे सभ किछु सत्ये बुझना जाइत अछि मात्र नाम तारिख आ स्थान बदलल रहैत अछि। कथाकार उपेन्द्र दोषी रोचक कथा आ कविताक माध्यमसँ ग्रामीण समाजकेँ प्रेरित करैत छथि आ मैथिली साहित्यकेँ आगाँ बढ़बैत सुरभित करैत छथि।

सन्दर्भ:

1. दोषी, उपेन्द्र, मनोज दासक कथा ओ कहिनी, प्रका० वर्ष 1999 ई०, पहिल संस्करण, प्रकाशित साहित्य अकादेमी नई दिल्ली पृ.- 09
2. ओएह, पृ.- 18
3. ओएह, पृ.- 25
4. ओएह, पृ.- 34
5. ओएह, पृ.- 38
6. ओएह, पृ.- 46, 47
7. ओएह, पृ.- 51
8. ओएह, पृ.- 54

धीरेश्वर झा धीरेन्द्रक उपन्यासमे स्त्री विमर्श

रमण जी

शोधकर्ता, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

धीरेश्वर झा 'धीरेन्द्र (लोहना, मधुबनी; 14.07.1934-09-01-2004) मिथिलाक संग-संग नेपालीय मैथिली साहित्यक शिखर व्यक्तित्त्वक रूपमे जानल जाइत छथि। हिनक कार्य क्षेत्र मुख्यत: नेपाल छल। साहित्यक लगभग सभ विधामे हिनक रचनात्मक हस्तक्षेप रेखांकन योग्य मानल गेल अछि। उपन्यासकार, कथाकार, कवि सम्पादक, आलोचक, आदि सभ रूपमे डा. धीरेन्द्रक प्रतिष्ठा अक्षुण्ण अछि![1] 'भोरूकवा' (1965), 'कादो आ कोइला (1980), 'ठुमुकि बहू कमली (1983) ई तीन गोट उपन्यास हिनका मैथिलीक श्रेष्ठ उपन्यासकार बना देलक! 'भोरूकवा' दलित समाजक इच्छा आकांक्षा आ 'सपनाक संग-संग ओहि समाजक दमन आ उत्पीड़नक विश्वसनीय चित्रण प्रस्तुत करबामे पूर्ण समर्थ उपन्यास मानल गेल अछि। 'कादो आ कोइला' गामक आ शहरक जीवनक साम्य वैषम्य आ द्वन्द्वक कथा वचौत अर्थ आओर कामक अन्तहीन लिप्साक वृहत आख्यान रचौत अछि। हिनक तेसर उपन्यास ठुमुकि बहू कमला स्त्री जागरणक उद्घोष करैत स्त्री-शक्तिक सन्धान करैत अछि। कथा वा गल्प रचनामे डा. धीरेन्द्र मैथिलक गल्पक इतिहासमे नव दिशाक अनुसन्धान करतनि! गल्प संग्रहक रूपमे कुहेस आ किरण (1982), शतरूपा आ मनु (1984) तथा 'नव-मन्दिर' (1990) हिनक प्रमुख कथा संग्रह थिक। डॉ. धीरेन्द्रक कथा 1982 सँ लए 1990 तक प्रकाशित नव मन्दिरक सभ कथा 1949 मे लिखल गेल अछि! 1984 में प्रकाशित श्पझाइत घूरक आगिक पन्द्रहो गोट कथा 1953-54 के लिखल गेल अछि। 'शतरूपा आ मनु कथा संग्रहक अधिकांश कथा 1955 से लएके 1960 धरिक कथा अछि!

उपन्यासमे किसान परिवारक स्त्रीक मनोदशा आ ओकर संघर्षक चित्रण खूब नीक जकाँ भेल अछि। भोरूकबाक शेयरी हो वा 'तुमुकि बहू' कमलाक सीसापानीवाली दुनू कठिन संघर्षसँ गुजरैत अछि मुदा ओ सभ कतौ विचारने तऽ नहि होइत अछि। स्त्रीक ई विचलन 'कादो आ कोइला'मे अवश्य भेटैत अछि! कादो आ कोइलाक कोशलियाक शरीरपर सामंतक गिद्ध दृष्टि छै! बातक जनतब कोशलिया के होइ छैत ओ विचलित भ' उठैत अछि। ओ अपन शरीर अपन प्रेमीके सौपय चाहैए (एकटा एहन प्रेमी जकरा ओकर मान-मर्यादाक परवाहि रहै) मुदा ओकर शरीर के कोनो गिद्धरूपी पुरुष नोचौ से ओकरा एकदमे मंजूर नहि छै। मुदा स्थिति एहन बनि जाइ छै जे आइ राति ओकरा अपन शरीर ल' क' गिद्ध लग हाजिर होम पड़तै! आ ते ओइसँ पहिने ओ अपन शरीर अपन प्रेमी के सौंपि दैत अछि। कोशलियाक शरीरपर कोशलियाक अधिकार छै। ओकर देहयष्टिके देखि कश लार चुबबैबला कोनो कुत्सित मानसिकतावला पुरुषक कोनो अधिकार ओकर शरीरपर नहि छै। आ तें कोशलिया अपन शरीर अपन प्रेमीके सौप देलाक बाद विष खा क' ओ अपन जान द' दैत अछि! चाहे मिथिलाक बेटी सीता हो वा भोरूकवाक थेथरी हो। ई सभ त्यागक प्रतिमूर्ति अछि। मुदा त्यागक इएह प्रतिमूर्ति सभ पुरुषवादी मानसिकताक कारणे सभ कालखंडमे लांछित आ कलंकित कएल जाइत रहल अछि। पुरुषवादी लांछन केर शिकार रामायणमे सीतेटा नहि होइत छथि अपितु 'भोरूकवा 'मे थेथरी सेहो होइत अछि! मिथिलाक खेतिहर समाजमे स्त्रीक जे भूमिका होइ छै, ओ संभ्रांत परिवारसँ एकदमे भिन्न होइत अछि। खेतिहर समाजमे स्त्री पुरुषक बीच ओहन भेद नहि होइ छै जेहन भेद तथा कथित संभ्रांत पारिवारमे होइत अछि। तथाकथित संभ्रांत पारिवारमे स्त्रीक उपभोगक वस्तु बुझल जाइत अछि मुदा खेतिहर समाजमे स्त्री जीवन संगिनी होइत अछि। घरसँ ल' क' खेत खरिहान घरि स्त्रीक बिना एतए कोनो काज संभव नहि छैक। से समाजक पुरुष जँ खेतमे हरबाही करैत अछि त' स्त्री खेतक कमैनी करैत अछि। स्त्री-पुरुषक अथक परिश्रमक बाद ओकर घरमे अन्नक किछु दाना आबि पबैत है। घरक पुरुष भने ओकर भावनाके बुझेत होइ मुदा अबैत जाइत ओकरा कतेको दृष्टिसँ सामना कर पड़ैत है। 'भोरूकवाक धेधरी सेहो ऐ सँ भिन्न नहि अछि! द्विरागमनक बादेसँ ओकर चर्चा भरि गाममे भ' रहल छै। सांमत राधे मिश्र

ओकर देहयष्टिपर गिद्ध दृष्टि गड़ौने छथि। ओ थेथरीक देह के हासिल करबाक लेल रंग-बिरंगक चालि चलैत छथि। मुदा थेथरी राधे मिश्रक सभ चालि-कुचालिके" खूब नीक जकाँ बुझैत अछि। थेथरी स्वाभिमान आ आदर्शक संग जीवन जीब चाहैत अछि! इएह ओकर शक्ति सेहो छै आ इएह ओकर दुःखक कारण सेहो ओ ननकुआक जननी नहैत नहि अछि जे राधे मिसिरक गुलामी करैत अछि। जकरा राधे मिसर द्विरागमनक दोसरे दिन अपना लग बजा लैत छै! एकर बादो जहन ओकरा मोन होइ छै, ओ ननबुआक जननीके अपना ओत बजा लैत अछि! मुदा एकर विपरीत थेथरी अछि जे स्वाभिमानक संग जीव चाहैए आ इएह स्वाभिमानक संग ओ अपन पारिवारक रक्षा सेहो कर चाहैए। थेथरीक चरित्र समाजमे एकटा आदर्शक स्थापना करैत अछि। राधे मिसर अपन यौनेच्छाक पूर्तिक लेल सभ तरहक कुकर्म करैत अछि। ओ थेथरिक ससुर ठकबाक कुसियारक खेतमे आगि लगा दैत अछि! बीस टाका कर्जक बदला पचास टाकाक कागज बनबा लैत अछि। थेथरीक पति मुसहरबा के ऐ दुष्टक निकलबाक कोनो बाट नहि भेटैत अछि त' ओ दरभंगा जा क रिक्शा चलबए लगैत अछि। जखन थेथरीक बापके ई पता चलैत है तश ओ बेटीक विदागरी करेबा लेल ई सोचिक अबैत अछि जे ओकर समधिक किछु भार कम भश जेतै मुदा थेथरी अपन परिवारके ऐ हालतिमे छोड़ि के नहि जाय चाहैत अछि थेथरी सभटा सुनि रहल छल। मुदा एहि बीचमे यदि हम माय-बाप (सासु-ससुर) के छोड़ि गाम जा कए बैसि रही तँ की ओकरा दुःख नै हेतै... उर्दू! हम नै जायब! जाबत ओ नै आओत नै जायब! दृढ़ निर्णय क' लेलक थेथरी आ निघोख भ' बापोंके सुना देलकैक बाउ! एखनि हम गाम नै जा सकब मायके हमर गोरलग्गी कहि दिहक आ कहि दिहक जे हम ओकरे जकाँ धैरजसँ विपत्तिक दिन बितायब। आशीर्वाद दैह बाउ! नीक दिन आ तै तँ गाम आयब आ मास-दू मास रहबो करब, मुदा एखनि नै।[2] ठुमुकि बहू कमलाक सीसापानीवाली एक्मी सेहो जीवट महिला अछि। ओ भोरूकवाक थेधरी नौत आदर्शवादी त नहि अछि मुदा ओ साहसी धरि खूब अछि। आ ई साहस ओकरा अपन नेपाल स्थित नैहर सीसापानी सं भेटल छै। सीसापानीवालीक साहसक दर्शन पाठकके उपन्यासक शुरुआतेमे भ' जाइत अछि- मुदा कंटीर मिसरक कुहरब समाप्तो ने भेल छल कि ताबतेमे एकटा चमत्कार जकाँ भ' गेलै। हहायल-फुहायल जनकाक सीसापानीवाली भाउज आएलि आ दुनू बाल्टीके टानि लेलक आ आंगन दिशि जाइत जाइत बेश पकठोस जकाँ बाजलि माछ रान्हि खेतै जे मेहनति कए पकड़ने छै, आर के खेतै? चलै चलौ। एहनो जुलुम भेरैए।[3] कंटीर मिसर कें सीसापानीवालीक देहयाष्टि आकर्षित करैत छै। सीसापानीवालीके" देखि क' ओकर कुत्सित भावना जागि उठैत अछि! आ ते कंटीर मिसर ओकर अपहरणक योजना बनबैत अछि। सीसापानीवाली अपन आत्मरक्षाक लेल सिरमा तश्रे मे खुखुरी रखैत अछि आ जहन अपहरणकर्ता दरबज्जा खोलबा लेल हाथ अंदर करैत अछि तश ओ खुखुरी से ओकर हाथ काटि दैत अछि। सीसापानीवातीक चरित्र एकटा विद्रोही महिलाक चरित्र अछि जकर चित्रण डॉ. धीरेन्द्र संपूर्णता ईमानदारीक संग करैत छथि। ओ एहन महिला सभके अपन उपन्यासक पात्र बनबैत छथि जकरा बुझलापर समस्त मिथिलाक महिलाक दशा-दिशाके जानल जा सकैए। स्त्री विमर्श देखबामे अबैत अछि।

सन्दर्भः

1. धीरेन्द्र. कादो आ कोइला-साधना-प्रकाशन, 1980-85
2. धीरेन्द्र. भोरूकवा, साधना प्रकाशन-1965-67
3. धीरेन्द्र, ठुमुकि बहु कमला-साधना प्रकाशन-1983-5

समान नागरिक संहिताः एक वैज्ञानिक अध्ययन

ऋषि कुमार चन्द्रा

सहायक प्राध्यापक, शास. नवीन महाविद्यालय, चन्द्रपुर (छ.ग.)

डॉ० माया यादव

सहायक प्राध्यापक, शास.जे. पी. वर्मा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

आज हम 21वीं सदी में जीवन जी रहे हैं, ऐसी स्थिति में आधुनिक समाज के अनुरूप जीवन का निर्वाह करें, यह समय की मांग है, पूरा देश एक परिवार की तरह है, अतः पूरे देश में एक ही कानून हो, यह समय की पुकार है, यदि अपराधिक कानूनों पर पूरे देश में एक समान कानून हो सकता है, तो सिविल कानून भी पूरे देश में एक समान होना चाहिए।

उद्देश्य

(1) एक समान कानून न होने के परिणाम का अध्ययन।

(2) असमान कानूनों के कारण महिलाओं और पुरुषों के मध्य भेदभाव का अध्ययन।

(3) असमान कानूनों से अदालतों की समस्याओं का अध्ययन।

(4) असमान कानूनों से राष्ट्र निर्माण की समस्या का अध्ययन।

(5) समान नागरिक संहिता बनाने से आधुनिक राष्ट्र का निर्माण क्या संभव है, इस विषय पर अध्ययन करना।

संविधान में समान नागरिक संहिता का भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता का उल्लेख है, यह भारतीय संविधान के भाग 4 में उल्लिखित है, नीति निदेशक तत्व के अंतर्गत यह आता है। भारतीय संविधान के भाग 3 का यदि अतिक्रमण होता है, तो कोई भी व्यक्ति न्यायालय का शरण ले सकता है, भाग तीन के अंतर्गत मौलिक अधिकार का विवेचन है, जबकि संविधान के भाग 4 के अतिक्रमण पर न्यायालय नहीं जाया जा सकता है, नीति निदेशक तत्त्वों के कियान्वयन के लिए उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय सरकार को बाध्य नहीं कर सकती। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 37यह इंगित करती है, कि राज्य के नीति निदेशक तत्व संबंधी प्रावधानों को किसी भी न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसमें निहित सिद्धांत शासन व्यवस्था में मौलिक प्रवृत्ति के होंगे। वस्तुतःनीति निदेशक तत्व, सरकार के दिशा निर्देश के लिए है, जबकि मौलिक अधिकार, नागरिकों के लिए है। नीति निदेशक तत्त्वों की संख्या, मौलिक अधिकारों की तुलना में व्यापक है, इसके सैद्धांतिक महत्व पर विमर्श करते हुए संविधान विशेषज्ञों ने संविधान सभा के बहस में कहा था, कि कोई भी जिम्मेदार और लोकप्रिय सरकार, नीति निदेशक तत्त्वों को नजरंदाज नहीं कर सकते। नीति निदेशक तत्त्वों के उल्लंघन करने पर सरकार को चुनाव के समय परेशानी उठानी पड़ सकती है, चुनाव में पराजय झेलना पड़ सकता है, इसीलिए कहा जाता है, कि यदि मौलिक अधिकारों को न्यायालय से संरक्षण मिला हुआ है, तो नीति निदेशक तत्त्वों को जनता से संरक्षण मिला हुआ है। जब संविधान लागू किया जा रहा था, उस वक्त देश की स्थिति चिंताजनक थी, आर्थिक हालात ऐसे नहीं थे, कि नीति निदेशक तत्त्वों को लागू किया जा सके, इसी प्रकार से अनुच्छेद

44 को लागू करने में दिक्कत आ रही थी, क्योंकि उस समय का परंपरागत समाज इसे स्वीकार करने की स्थिति में नहीं थी, उस समय देश में शिक्षा की स्थिति भी चिंताजनक थी, इसलिए इसे भविष्य के लिए छोड़ दिया गया। आज वह समय आ गया है,आज देश में शिक्षा का स्तर भी बेहतर हुई है और परंपरागत समाज के सोच में असाधारण परिवर्तन आया है।आज का समाज निष्पक्ष और तार्किक हो चुका है।

विश्व में समान नागरिक संहिता-विश्व के अनेक विकसित व विकासशील देशों में समान नागरिक संहिता लागू है। मलेशिया, तुर्की, इंडोनेशिया, सूडान, मिश्र, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, बांग्लादेश, आयरलैंड आदि देशों में समान नागरिक संहिता लागू है। वर्तमान में विश्व के 125 देशों में समान नागरिक संहिता लागू है।

न्यायपालिका में समान नागरिक संहिता के मुकदमे- सरला मुद्गल केस 1995 कल्याणी नामक संस्था के मुखिया का नाम सरला मुद्गल थीं। कल्याणी एक गैर सरकारी संगठन है, जो जरूरतमंद और संकटग्रस्त महिलाओं के साथ काम करता है।सरला मुद्गल केस में न्यायपालिका के समक्ष यह सवाल आया, कि क्या हिन्दू कानून के तहत् विवाह करने वाला एक हिंदू पति इस्लाम अपनाकर दूसरी शादी कर सकता है, सर्वोच्च न्यायालय ने माना, कि दूसरी शादी के लिए इस्लाम अपनाना मुस्लिम पर्सनल लॉ का दुरुपयोग है, न्यायालय ने स्पष्ट कहा, कि हिंदू विवाह को हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के तहत भंग किया जा सकता है, केवल इस्लाम में परिवर्तित होकर दोबारा शादी करने से न केवल हिंदू धर्म का, बल्कि मुस्लिम धर्म का भी हनन होता है। इस्लाम में धर्मान्तरण और दोबारा शादी करने से अधिनियम के तहत् हिंदू विवाह अधिनियम अपने आप भंग नहीं होगा और इस प्रकार इस्लाम कबूल करने के बाद की गई दूसरी शादी भारतीय दंड संहिता के धारा 494 के तहत् अपराध होगी। समान नागरिक संहिता का भारत में प्रयोग भारत में गोवा ऐसा राज्य है, जहां समान नागरिक संहिता लागू है, 1961 में गोवा, पुर्तगाली साम्राज्य से स्वतंत्र हुआ, वहां 1961से पहले ही पुर्तगाल सिविल कोड 1867 लागू है, पुर्तगाल का भारत में संविलियन के साथ पुराने कानून को भारतीय प्रशासन द्वारा स्वीकार कर लिया गया, गोवा में समान नागरिक संहिता लागू होने से कोई समस्या नहीं है, प्रशासन सुचारू रूप से संचालित है, हालांकि गोवा के कानून में सुधार की आवश्यकता है, गोवा के कानून के अनुसार 25 वर्ष की आयु तक यदि कोई हिंदू महिला माँ नहीं बनती है, तो हिन्दू पुरुष को दूसरा विवाह करने की आजादी है, इसी प्रकार यदि कोई हिंदू महिला 30 वर्ष की आयु तक पुत्र पैदा नहीं करती, तो हिन्दू पुरुष को दूसरा विवाह करने की आजादी है, यह कानून आज के परिप्रेक्ष्य में दकियानूसी है, यदि महिला मां नहीं बन पा रही है, इसके लिए जिम्मेदार केवल महिला हो, यह आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार यदि महिला पुत्र पैदा नहीं कर रही है, तो इसके लिए जिम्मेदार पुरुष होता है, वैसे भी महिला-पुरुष समानता के इस युग में यह अप्रासंगिक है, गोवा के नियम के अनुसार मुस्लिम दूसरा विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार कैथोलिक चर्च में हुआ विवाह जीवनभर के लिए होता है, कैथोलिक चर्च तलाक की अनुमति नहीं देती, गोवा में भी आज के परिप्रेक्ष्य के अनुसार समान कानून बनाए जाने की आवश्यकता है, अतः आवश्यकता इस बात की है,कि समान नागरिक संहिता कानून को पूरे देश में लागू करने पर विचार किया जा सकता है।

समान नागरिक संहिता से होने वाले संभावित लाभ-

(1) समान नागरिक संहिता लागू होने से लैंगिक भेदभाव समाप्त हो जाएगा।

(2) महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि होगी

(3) बेटियों को पिता के संपत्ति पर अधिकार मिलेगा।

(4) देश में किसी भी जाति, धर्म, वर्ग के नागरिकों के अधिकारों का सुरक्षा होगा, यदिअधिकारों का हनन होता है, तो उन्हें न्यायपालिका के द्वारा न्याय मिलेगा।

(5) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14तथा 15सही मायने में समान नागरिक संहिता काही दूसरा नाम है।

(6) कानून सरल और स्पष्ट होगा।

(7) कानून में एकरुपता और निरंतरता आएगी।

(8) कानून में सुधार और आधुनिकीकरण आएगा।

(9) समान नागरिक संहिता से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलेगा, जिससे महिलाओं कोघर से बाहर काम करने की आजादी और अधिकार मिलेगा।

(10) महिला सशक्तिकरण से भारत का आर्थिक विकास होगा।
(11) समाज में समानता आएगी।
(12) अल्पसंख्यक, देश की मुख्यधारा से जुड़ेंगे।
(13) देश, सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़ेगा।
(14) देश का एकीकरण तीव्रता से होगा।
(15) देश में अलगाववाद की प्रवृत्ति में कमी आएगी।
(16) न्यायालय की काम करने की क्षमता में वृद्धि होगी।
(17) जजों को फैसला सुनाने में सुविधा होगी।
(18) न्यायालय में मुकदमों की संख्या में कमी आएगी।
(19) अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं में आत्मविश्वास जागृत होगा।
(20) अभी इसाई तथा मुस्लिम समाज में 18से कम उम्र की लड़कियों का विवाह, उनके रीतिरिवाज के अनुसार वैध है, यदि समान नागरिक संहिता लागू होती है, तो सभी धर्म तथासभी समुदाय एवम् जातियों के लड़कियों के लिए विवाह की आयु कम से कम 18 वर्षकर दी जाएगी, इससे बाल विवाह की संख्या में कमी आएगी।

समान नागरिक संहिता का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -सरदार भगत सिंह को फांसी दिए जाने के बाद कांग्रेस के करांची अधिवेशन में कांग्रेसी नेताओं ने समान नागरिक संहिता की मांग, अंग्रेजी सरकार के समक्ष उठाए थे, किंतु अंग्रेजों ने मांग को अनसुना कर दिया। सरदार वल्लभ भाई पटेल समान नागरिक संहिता की मांग करने वाले प्रमुख नेताओं में से एक थे। आजादी के बाद संविधान सभा की बहस में अनुच्छेद 35 के तहत् चर्चा हुआ था, किंतु 23/11/1948 को समान नागरिक संहिता को अनुच्छेद 44 में शामिल किया गया। अप्रैल 1985 में सर्वोच्च न्यायालय ने शाहबानो प्रकरण में समान नागरिक संहिता की बात पहली बार की,

मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम केस- में पांच बच्चों की मां 62 वर्षीय शाहबानो तलाक के बाद अपने पति के खिलाफ गुजारा भत्ता के लिए कानूनी लड़ाई लड़ते लड़ते सर्वोच्च न्यायालय पहुंची थी, ज्ञातव्यहो कि शाहबानो के पति इंदौर निवासी मोहम्मद अहमद खान ने 1978 में अपनी पत्नी शाहबानो को तलाक दे दिया था, मुस्लिम पारिवारिक कानून के अनुसार पति, अपनी पत्नी के इच्छा के खिलाफ ऐसा कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपराध दंड संहिता की धारा 125 के अंतर्गत निर्णय लिया, जो हर किसी पर लागू होता है,चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या सम्प्रदाय का हो। धारा 125 पत्नी के भरण पोषण का प्रावधानकरती है। न्यायालय का निर्देश था, कि शाहबानो को जीवन निर्वाह राशि दी जाय। सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के खिलाफ रुढ़िवादी मुसलमानों ने विरोध प्रदर्शन किया। रूढ़िवादी मुस्लिमों का मानना था, कि सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय उनकी संस्कृति और विधानों पर अनाधिकार हस्तक्षेप था। विरोध करने वाले प्रमुख मुस्लिम नेताओं में एम जे अकबर तथा सैयद शहाबुद्दीन थे। तत्कालीन राजीव गांधी की सरकार ने कट्टरपंथी मुस्लिमों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और 1986 में संसद में मुस्लिम महिलाओं के गुजारा भत्ते से संबंधित नया कानून बनाकर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयको पलट दिया।उस समय के सरकार के एक राज्य मंत्री आरिफ मोहम्मद खान ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का स्वागत किया और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के समर्थन में मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया, क्योंकि तत्कालीन सरकार का -ष्टिकोण कट्टर पंथियों के विचारों से मिलती थी।अनेक राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है, कि तत्कालीन राजीव गांधी की सरकार की वह नीति मुस्लिम तुष्टिकरण की थी। सरकार ने जो कानून बनाया, उसके अनुसार पति के लिए गुजारा भत्ता देने का उत्तरदायित्व इद्दत समय के लिए सीमित कर दिया गया, ज्ञातव्य हो कि इद्दत के दरम्यान कोई मुस्लिम महिला अन्य पुरुष से निकाह नहीं कर सकती।इसका मुख्य उद्देश्य तलाक या पूर्व पति की मृत्यु के बाद पैदा हुए बच्चे के पितृत्व के बारे में किसी प्रकार के संदेह को दूरकरना है।

जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय दिल्ली के प्रोफेसर जुनैद हारिस के अनुसार इद्दत का समय 4 माह 10 दिन होता है।इस समय में गैर मर्दों से पर्दा भी जरूरी है।इद्दत के दरम्यान मेकअप पर प्रतिबंध है, यहां तक कि शीशा देखने की भी मनाही है। स्पष्ट है, कि मुस्लिम महिलाओं की स्थिति चिंताजनक है, इसीलिए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता महसूस हो रही है। सर्वोच्च न्यायालय ने कालांतर में डेनियल लतीफी बनाम भारत संघ मामले में और शमीमा फारुकी बनाम शाहिद खानसहित बाद के फैसलों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने मामले की वैधता को आश्वस्त करने वाले तरीके से अधिनियम की व्याख्या की और

परिणामस्वरूप शाहबानो फैसले को बरकरार रखा गया और मुस्लिम महिला (तलाक पर आधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986 को रद्द कर दिया गया। आल इण्डिया शिया पर्सनल लॉ बोर्ड सहित कुछमुसलमानों ने तलाकशुदा मुस्लिम पत्नी के भरण पोषण के अधिकार को पूर्ण बनाने केसर्वोच्च न्यायालय के आदेश का समर्थन किया।इस प्रकार समान नागरिक संहिता की वास्तविक नींव सर्वोच्च न्यायालय ने रख दी।

डेनियल लतीफी मामला -संसद द्वारा 1986 में बनाए गए मुस्लिम महिला भरण पोषण कानून को इस केस के माध्यम से चुनौती दी गई और यह कहा गया कि यह कानून अनुच्छेद 14और 15के तहत् समानता के अधिकार के साथ-साथ अनुच्छेद 21 के तहत् जीवन के अधिकार का उल्लंघन करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने शाहबानो केस में अपने दिए गए फैसले को संवैधानिक मानते हुए इसे CRPC की धारा 125 के साथ सुसंगत बनाया और यह माना गया कि इद्दत अवधि के दौरान पत्नी को मिलने वाली राशि इतनी बड़ी होनी चाहिए, कि वहइद्दत के दौरान उनका भरण पोषण कर सके और साथ ही उसके भविष्य को बेहतर कर सके। इस प्रकार देश के कानून के तहत् एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला जीवनभर या पुनर्विवाह होने तक भरण पोषण के प्रावधान की हकदार है।

जान वल्लामट्टम केस- इस मामले में केरल के एक पुजारी जान वल्लामट्टम ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 118की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी, जो भारत में गैर हिंदुओं के लिए लागू है। श्री वल्लामट्टम ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 118 ईसाइयों के खिलाफ भेदभावपूर्ण थी, क्योंकि यह वसीयत द्वारा धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संपत्ति के दान पर अनुचित प्रतिबंध लगाती है, न्यायालयीन पीठ ने इस धारा को असंवैधानिक करार दिया।

विशेष विवाह अधिनियम- इसे 1954 में अधिनियमित किया गया था,इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी धार्मिक व व्यक्तिगत कानून के बाहर नागरिक विवाह का प्रावधान है।

उत्तराधिकार अधिनियम- हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 मूल रुप से बेटियों को पैतृक संपत्ति में विरासत का अधिकार नहीं देता था, वे केवल संयुक्त हिंदू परिवार से भरण पोषण का अधिकार मांग सकते थे, लेकिन 09/09/2005 को अधिनियम में एक संशोधन द्वारा इस असमानता को दूर कर दिया गया।

हिंदू कोड बिल- हिंदू कानूनों में सुधार के लिए अंबेडकर द्वारा विधेयक का मसौदा तैयार किया गया था, जिसमें तलाक को वैध बनाया गया तथा बहुविवाह काविरोध किया गया, बेटियों को विरासत का अधिकार दिया गया। उस समय कट्टरपंथी हिंदुओं ने हिंदू कोड बिल का तीव्र विरोध किया, जिसके कारण सरकार के द्वारा इसबिल को वापस लिया गया, विरोध स्वरुप अंबेडकर ने कानून मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया, वास्तव में अंबेडकर आधुनिक भारत के निर्माण के लिए काफी दूरदर्शिता से इस बिल को बनाया था। हिंदू कोड बिल के असफल होने पर 4अलग-अलग कानून के जरिए एक पतला संस्करण संसद द्वारा पारित किया गया, और समान नागरिक संहिता की दिशा में एक कदम बढ़ाया गया।

स्वतंत्रता पूर्व (औपनिवेशिक युग)-

अक्टूबर 1840 की लेक्सलोकी रिपोर्ट- इसमें अपराधों, साक्ष्यों और अनुबंधों से संबंधित भारतीय कानून के संहिताकरण में एकरुपता के महत्व और आवश्यकता पर बल दिया गया, लेकिन इसने यह भी सिफारिश की, कि हिंदुओं और मुसलमानो के व्यक्तिगत कानूनों को इस तरह के संहितकरण से बाहर रखा जाना चाहिए। संविधान के प्रारुपण के दौरान नेहरू और अंबेडकर जैसे प्रमुख नेताओं ने समान नागरिक संहिता पर जोर दिया, किंतु धार्मिक कट्टरपंथियों के विरोध और तत्कालीन समय की जनता की जागरूकता की कमी के कारण उस समय के सुधारवादी संविधान विशेषज्ञों ने समान नागरिक संहिता को नीति निदेशक तत्त्वों में शामिल करने पर सहमति जताई और यह उम्मीद की,कि भविष्य में जब जनमानस शिक्षित और जागरूक हो जाएंगे, तो इसे क्रियान्वित करेंगे।

मैं व्यक्तिगत रूप से समझ नहीं पा रहा हूं, कि किसी धर्म को यह विशाल, व्यापक क्षेत्राधिकार क्यों दिया जाना चाहिए, ऐसे में तो धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर हस्तक्षेप करेगा और विधायिका को उस क्षेत्र पर अतिक्रमण से रोकेगा। यह स्वतंत्रता हमें क्या करने के लिए मिली है? हमारी सामाजिक व्यवस्था असमानता, भेदभाव और अन्य चीजों से भरी है।यह स्वतंत्रता हमें इसलिए मिली है, कि हम सामाजिक व्यवस्था में जहां हमारे मौलिक अधिकारों के साथ विरोध है, वहां सुधार कर सकें -बी आर अंबेडकर।

विधि और न्याय मंत्रालय द्वारा 2016 में समान नागरिक संहिता से संबंधित मुद्दों के समग्र अध्ययन हेतु एक विधि आयोग का गठन किया गया। आयोग ने भारतीय बहुलवादी संस्कृति के साथ ही महिला अधिकारों की सर्वोच्चता के मुद्दे को इंगित किया, आयोग ने कहा कि महिला अधिकारों को वरीयता देना प्रत्येक धर्म और संस्थान का कर्तव्य होना चाहिए, आयोग के अनुसार समाज के असमानता की स्थिति उत्पन्न करने वाली समस्त रुढ़ियों की समीक्षा की जानी चाहिए, इसलिए सभी निजी कानूनों की प्रक्रियाओं को संहिताबद्ध करने की आवश्यकता है, जिससे उनसे संबंधित पूर्वाग्रह तथा रुढ़िवादी तत्व सामने आ सके, वैश्विक स्तर पर प्रचलित मानवाधिकारों की -ष्टिकोण से सर्वमान्य व्यक्तिगत कानूनों को वरीयता मिलनी चाहिए। लड़कों व लड़कियों की विवाह आयु को न्यूनतममानक के रूप में तय करने की सिफारिश की गई है, जिससे समाज में समानता स्थापित हो सके।

आज के ज्वलंत मुद्दे-

(1) वर्तमान में मुस्लिम महिलाओं को संपत्ति में केवल 25 प्रतिशत अधिकार मिला हुआ है, जोलैंगिक असमानता को इंगित करती है, इस कारण भी समान नागरिक संहिता का प्रश्नसामयिक है।

(2) क्या वर्तमान में अल्पसंख्यकों को, बहुसंख्यकों से अधिक अधिकार मिला हुआ है, ज्ञातव्य होकि अल्पसंख्यकों को अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान खोलने का अधिकार अनुच्छेद 30 केतहत् मिला हुआ है।

(3) मुस्लिम धर्म में बहुविवाह प्रथा है, और बहुविवाह करने का अधिकार केवल पुरुषों को है, यह लैंगिक असमानता को दिखाती है।

(4) आज के सभ्य समाज में जीवन साथी के जीवित रहते द्वितीय विवाह को उचित नहींठहराया जा सकता, आज भी भारत में बहुविवाह हो रहा है, मुस्लिम महिलाओं कोबहुविवाह करने का अधिकार नहीं है, केवल पुरुषों को है, यह समानता के अधिकार काउल्लंघन है। आवश्यकता आदर्श स्थिति को अपनाने का है।

(5) मुस्लिम महिला 15 की आयु पूर्ण होने पर विवाह कर सकती है, यह स्पष्टतया बाल विवाहको बढ़ावा देता है।बाल विवाह होने से यदि महिला मां बनती है, तो जच्चा-बच्चा दोनोंके जीवन को खतरा होता है, इसलिए भी समान नागरिक संहिता की आवश्यकता है।चिकित्सा जगत के विशेषज्ञों की राय है, कि महिला को न्यूनतम 19 की आयु में मांबनना चाहिए।

(6) आज लिव इन रिलेशनशिप का चलन बढ़ता जा रहा है, इस पर भी कानून बनाने कीआवश्यकता महसूस की जा रही है, इस परि-श्य में भी हमें सोचना होगा।

(7) सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक समान नागरिक संहिता पर कानून बनाने के लिए आठ बारसरकार से कह चुकी है।

(8) सितंबर 2019 में सर्वोच्च न्यायालय ने समान नागरिक संहिता लागू नहीं होने पर चिंताजताई थी।

(9) कहीं महिलाएं सशक्त न हो जाए, इसलिए शायद पुरुष जाति समान नागरिक संहिता काविरोध करती है, मुस्लिम समुदाय में शाहबानो प्रकरण में यही देखने को मिला था।

(10) यदि क्रिमिनल मामलों में समान नागरिक संहिता हो सकती है, तो सिविल कानूनों मेंसमान नागरिक संहिता क्यों नहीं?

(11) सिविल कानूनों में किन-किन विषयों पर समान नागरिक संहिता लागू होनी चाहिए? सामान्य रूप से विधि विशेषज्ञों की राय में 5 विषय है (1) विवाह (2) तलाक (3) उत्तराधिकार (4) गुजारा भत्ता (5) गोद लेना।

(12) विधि विशेषज्ञ जिन पांच विषयों पर समान नागरिक संहिता बनाने का सुझाव दे रहेहैं, वह सभी विषय कहीं न कहीं महिलाओं से जुड़ा हुआ है।

(13) समान नागरिक संहिता की बात इसलिए भी उठ रही है, ताकि महिला सशक्तिकरण कोबढ़ावा दिया जा सके, महिला सशक्तिकरण होने से भारतीय जीडीपी में वृद्धि होगी, मुद्दादेश के विकास से जुड़ा हुआ है।

समान नागरिक संहिता और आदिवासी समुदाय- कुछ आदिवासी परंपराएं समान नागरिक संहिता के मार्ग में बाधक बन रही है, किंतुअब आदिवासी समुदाय में भी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी से हो रहा है, पूर्वोत्तर भारत में यह समस्या आ सकती है,इसी प्रकार झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में विशेष अध्ययन की आवश्यकता है, उनसे व्यापक तौर पर रायशुमारी करने की जरूरत है।

निष्कर्ष- आजादी के समय और वर्तमान में जमीन-आसमान का अंतर -ष्टिगोचर हो रहा है, आजादी के वक्त भारत में शिक्षा तथा जागरुकता का स्तर बहुत कम था, इसलिए उस वक्त प्रगतिशील विधेयक हिंदू कोड बिल का विरोध कट्टरपंथी हिंदुओं ने ही किया था, किंतु आज भारत की 80प्रतिशत आबादी शिक्षित है। आज के भारत में अमरीका की जनसंख्या से भी अधिक मध्यम वर्ग है, अतः समय आ गया है, कि समान नागरिक संहिता की दिशा में बड़ा कदम उठाया जाय, यदि आदिवासी समुदाय की चिंता अधिक है, तो आदिवासी समाजको फिलहाल इसके दायरे से बाहर रखा जा सकता है, किंतु शुरुआत होनी ही चाहिए, यदि समान नागरिक संहिता लागू होने से किसी वर्ग, धर्म या समुदाय को कोई समस्या होगी, तो निष्पक्ष न्यायपालिका भारत में कार्यरत है,ही।न्याय अवश्य मिलेगा और भारत एक नई दिशा में कदम बढ़ा सकता है, मेरा मानना है, कि इस दिशा में छोटी कदम बढ़ाने से भविष्य में न्यायपालिका भी अपने न्यायिक फैसले से समान नागरिक संहिता को बेहतर बनाने में योगदान करेगी,जिस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय अपने न्यायिक फैसले से भी संविधान को जीवंत बनाने में योगदान देती है, वैसे ही हमें यहां केवल शुरुआत करना होगा,शेष समस्या मूलक कार्य न्यायपालिका पर छोड़ देना चाहिए और इसी प्रकार भविष्य में संसद उन कानूनों में संशोधन भी कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

(1) -ष्टिकोण कोचिंग दिल्ली का आलेख

(2) BBC लंदन का लेख।

(3) तस्लीमा नसरीन -लज्जा।

(4) पुष्पेश पंत- भूमंडलीकरण एवं भारत

(5) अनूप बरनवाल-समान नागरिक संहिता चुनौतियां एवं समाधान।

(6) बी. आर. अंबेडकर- Nationalism and Islam.

(7) आरिफ मोहम्मद खान-Text and Context ISBN-13,978-8129116826

(8) मौलाना वहीदुद्दीन-समान नागरिक संहिता

(9) स्वाति सिंह-जागरण, (विशेष अंक) समाचार पत्र देहरादून अंक

(10) शिवेंद्र तिवारी- अमर उजाला नई दिल्ली अंक

मानस में चिन्तन

डॉ० हीरालाल शर्मा

सहा. प्राध्या. हिन्दी, शास. बिलासा कन्या स्नातकोत्तर, महाविद्यालय बिलासपुर

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग भवेत।

सभी का सुख, सभी की प्रसन्नता, सभी के लिये मंगल कामना की भावना भारतीय मानस की मूल भावना का प्रतिनिधित्व करती है। साहित्यिक परिस्थितियां जैसी होंगी, उस काल के साहित्य का स्वरुप भी वैसा ही होगा, विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार साहित्य की भाव-भूमि आदर्शवादी होना चाहिये तथा दूसरे वर्ग के अनुसार यथार्थवादी। वास्तव में जीवन साहित्य का आधार है चाहे वह व्यक्ति विशेष हो- परिवार- का हो, समाज का हो, राष्ट्र का हो अथवा विश्व का। जीवन के बिना साहित्य की कल्पना असंभव है, और रामचरित मानस तो एक ऐसा प्रतिपाद्य है कि जिसमें सामाजिक आदर्शों को बड़े ही अनूठे ढंग से व्यक्त किया गया है। इसमें गुरु-शिष्य, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन इत्यादि के आदर्शों को इस तरह से व्यक्त किया गया है कि मानस भारतीय समाज का आईना हो गया है।

यथा- राम तुम्हारा वृत्त ही स्वयं काव्य है।

कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।

राम का चरित्र ही जो एक आदर्श के रूप में, ईश्वर के प्रतिरुप में लब्ध प्रतिष्ठित है। जिसके माध्यम से भक्ति की स्थापना का सार्थक प्रयास है, भक्ति के साथ दार्शनिक धाराओं का प्रतिपादन भी हुआ है- चाहे वेदान्त का अद्वैत हो या विशिष्टाद्वैतवाद शुद्ध द्वैतवाद हो या केवला द्वैतवाद, से सभी विभिन्न प्रसंगानुसार विवेचित है वैसे भी सांख्य, वैशेषिक आदि दार्शनिक प्रणालियां भी मानस में अछूती- नहीं रही है। मानस में जिस धर्म का विवेचन उपस्थित किया गया है वह केवल सैद्धांतिक आदर्श को नहीं प्रस्तुत करता प्रत्युत व्यावहारिक अभिव्यंजना ही उसका अभिप्रेत है। उसका यह लक्ष्य पंचायतन को केन्द्र में बनाकर अनेक चरित्रों के माध्यम से साकार किया गया है। राम यदि समस्त दार्शनिक सिद्धांतों और मानवीय गुणों के मूर्तिमान प्रतीक है, तो भरत धर्म के जीते-जागते रुप है।

रामचरित मानस की वैज्ञानिकता- मानस अनेक पुराण, वेद और आगम शास्त्रों से सम्मत तथ्य इस मानस के उपादान है। रामायण में वर्णित तथा अन्यत्र उपलब्ध श्री राम की जीवनगाथा है वह समस्त इस मानस का आधार है। लोग तर्क-वितर्क करते हैं ईश्वर निर्गुण है या सगुण हैं पर जो दार्शनिक अनुभूति का विषय है, मीमांसा जिसका क्रम है, उसके लिये निर्गुण भी है और सगुण भी-

सगुनहिं अगुनहि नहिं कुछ भेदा,

मानस में विज्ञान बुद्धि का प्रतीक है, राम जब चौदह वर्षो तक वनवास में रहते हैं उन दिनों वे बाह्य शत्रुओं का नाश करते हैं, और आंतरिक शत्रु का विनाश भरत करते हैं। इस प्रकार जब बाह्य और आंतरिक आसुरी शक्तियां विनष्ट होती है, तब राम राज्य बनता है। जब तक अयोध्या में मंथरा है और लंका में सूर्पनखा- भोगवादी विचारधारा का प्रतीक तब तक समाज में लोभ वासना का साम्राज्य है, जब राम अयोध्या लौटते है, तब गुरु वशिष्ठ कहते हैं- राघवेन्द्र को राज्याभिषेक के लिये स्नान करा दो। सेवक उन्हें स्नान कराने को प्रवृत्त होते है तब श्रीराम कहते हैं- मुझे गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य है- पर पहले उन्हें स्नान कराओ, जिन्होंने लंका जीता है अर्थात् वानर। और श्री गणेश सबसे नीचले क्रम की पूजा से होता है- 'प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई'। अर्थात् राम राज्य

का श्रीगणेश राजा से नहिं अपितु बन्दरों से होता है। आशय यह भी है कि सुख का बंटवारा कदापि ऊपर से नहीं होना चाहिये, नीचे क्रम से ही सुख का बंटवारा होना चाहिये।

मानस का मूल स्वर है- राम की प्राप्ति।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा, किए जोग जप जाग बिरागा।

राम इतिहास पुरुष नहीं, भाव पुरुष है, तुलसी का भावात्मक दृष्टिकोण राम को सार्वकालिक, सार्वभौमिक, और सार्वजनीन बना देता है। इसीलिए मानस के राम का न जन्म होता है और न ही मरण। उनका प्रकाट्य होता है किन्तु कुछ बाते हैं जो खटकती है- समदरसी है नाम तिहारो। तुम्हारा नाम तो समदरसी है, फिर-

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी

पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।

1. बाली वध- राम छिपकर बाण चलाते हैं बालि मारा जाता है। उत्तर तुमने अनुज वधू को सठ बलपूर्वक अपने पास रख लिया है, इसलिये सठ हो अघ-कर्मी हो, अतएव वध्य हो। अनार्य परम्परा में बड़े भाई की पत्नी से विवाह करना संगत है, पर छोटे भाई की पत्नी, ग्रहण जघन्य अपराध है, वह पुत्री स्वरुपा है। इसलिये तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। बालि वधु पश्चात् पत्नी तारा को सुग्रीव अपनाता है। और पुत्र अंगद को अपने साथ रखते है और ऐसा नहीं किये जाने पर खूनी संघर्ष होता, बहुत लोग-हत होते।
2. सूर्पनखा विरुपकरण- सूर्पनखा का कृत्य नारी के व्यवहार के विपरीत था, वह अशोभन था, लोग यह भूल जाते हैं कि सूर्पनखा का विरुपकरण तब तक नहीं किया गया जब तक वह आततायी का रुप धारण नहीं करती, वैसे भी आततायी का वध होना चाहिये, जबकि ऐसा नहीं हुआ है। उसका रुप-मद के भ्रम को तोड़ा गया है।
3. राम नारी निन्दक थे- ताड़ने के अधिकारी' यहां अर्थ का अनर्थ हुआ है- राम समुद्र से रास्ता- मांगते हैं, वह नहीं देता, राम तब क्रुद्ध हो समुद्र के प्रति, सठ, कुटिल, सह-कृपण ममतारत अतिलोभी, क्रोधी, धामी, और ऊसर आदि विशेषण लगाते उस पर संहार करते हैं, इस पर समुद्र भयाकुल हो राम से कहता है- ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।
4. मानस के माध्यम से ब्राम्हणवाद को प्रश्रय दिया गया है और शूद्रों की निन्दा हुई है- शुद्र गुणहीन होते है, तुलसी के राम अछूत समझे जाने वाले निषादराज एवं ढोल किरातों को गले लगाते हैं। काम-प्रधान वानरों और क्रोध प्रधान राक्षसों को मित्र और सहृदय स्वीकारते हैं। शबरी के जूठे बेर प्रेम से खाते हैं।

आदर्श सामने होने से मनुष्यों की शिक्षा में अत्यंत सुभीता होता है। राम को सदा आदर्शों का खजाना कहा गया है, उनके चरित्र से मनुष्य सब तरह की सत् शिक्षा प्राप्त कर सकता है, मनुष्यों की सत् शिक्षा के लिये जितना गुरुपद का कार्य रामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसी का चरित्र नहीं कर सकता।

संदर्भः-

1. कल्याण अंक (श्री राम भक्ति) वर्ष 68 अंक 9।
2. धर्म और जीवन- स्वामी आत्मानंद
3. तुलसी काव्य मीमांसा- उदयभानु सिंह

स्वास्थ्य पत्रकारिता की आवश्यकता एवं चुनौतियों का अध्ययन

डॉ० अमृत कुमार

सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, झारखण्ड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, रांची

सारांश

मानव जीवन में स्वास्थ्य के बिना कुछ भी संभव नहीं है. स्वस्थ रहने की कुंजी एक पीठी से दूसरी पीढ़ी तक परंपरागत संचार माध्यम से संचारित होती रही है समाज में समय समय पर तकनीक एवं अर्थव्यवस्था के नए प्रतिमानों ने सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन भी किया है। वर्तमान युग के आते आते एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जहाँ अब सूचनाओं का आधान प्रदान आधुनिक मीडिया के माध्यम से होने लगा है। यहाँ तक कि स्वास्थ्य रहने से सम्बंधित जानकारी भी हमें मीडिया से ही प्राप्त हो पा रही है। समय के साथ साथ नयी नयी बिमारिओं का भी आगमन हो गया है ऐसे में स्वास्थ्य पत्रकारिता की चुनौतियाँ काफी बढ़ गई है।

शब्द कुंजी: स्वास्थ्य, स्वास्थ्य पत्रकारिता, संचार।

भूमिका: स्वास्थ्य प्रत्येक प्राणी से सम्बंधित है। राजनीति, खेल, अर्थ आदि के बिना मानव रह सकता है लेकिन स्वास्थ्य के बगैर मानव की कल्पना नहीं की जा सकती है। पत्रकारिता के उद्‌भव एवं विकास में ही मानव कल्याण शामिल है। अत: यह आवश्यक है कि मानव हित हेतु पत्रकारिता स्वास्थ्य के विषय को गंभीरता से ले और समाज में स्वास्थ्य चेतना का निर्माण करें। स्वास्थ्य पत्रकारिता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर बहुत अवयवों को अपने में समेटे हुये है। ऐसे सभी तत्व अथवा कारक जिनका असर स्वास्थ्य पर पड़ता है को स्वास्थ्य से जोड़ कर प्रकाशित किया जा सकता है। स्वास्थ्य संबंधी समाचारों का प्रकाशन एक संवेदनशील मामला है अत: स्वास्थ्य समाचार लेखन एवं प्रकाशन के लिए एक नीति निर्धारण कि भी अनिवार्य आवश्यकता है।

"समाचार पत्र, पत्रिकाओं, दूरदर्शन, रेडियो तथा अन्य माध्यमों के लिए स्वास्थ्य संबंधी समाचारों, सूचनाओं, वार्ताओं, विचारों का लेखन, रिपोर्ट करना, सम्पादन करना, प्रस्तुतीकरण करना, स्वास्थ्य पत्रकारिता है।" लेकिन "स्वास्थ्य पत्रकारिता का उद्देश्यों में मात्र सूचना देना ही शामिल नहीं है, सूचना में समाचार और समाचारों से लोकहित और जनहित होना चाहिए। गरीब भी बीमार न रहे, उसमें भी स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता आये, यही सबसे बड़ा उद्देश्य है।" इसी भावना के अंतर्गत पत्रकारिता का स्वास्थ्य लोकतान्त्रिक प्रकट होता है। स्वास्थ्य पत्रकारिता के माध्यम से भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से संबन्धित घटनाओं को चेतना निर्माण हेतु प्रसारित किया जाता है। हम कह सकते हैं कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता पैदा करने के मकसद से सूचनाओं को प्रसारित करना स्वास्थ्य पत्रकारिता के मूल में निहित है। स्वास्थ्य पत्रकारिता की शुरुआत सांस्कृतिक संचार, वेद, चिकित्सीय पुस्तकों डाक्टर, हाकिम, आदि के माध्यम से हुआ। उदारीकरण के उपरांत हिन्दी पत्रकारिता का तीव्र विकास हुआ तथा पत्रकारिता के विभिन्न विधाओं के साथ-साथ स्वास्थ्य पत्रकारिता का भी विकास होने लगा। स्वास्थ्य पत्रकारिता के विकास की दिशा में एक नया अध्याय जुड़ा कि अब गैर चिकित्सकीय अनुभव वाले पत्रकार भी स्वास्थ्य पत्रकारिता में भाग लेने लगे। पत्रकारों के जुडने से स्वास्थ्य पत्रकारिता का बहुआयामी प्रकाशन प्रस्तुत होने लगा।

स्वास्थ्य-पत्रकारिता: विकास यात्रा: भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता का विकास आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के माध्यम से हुआ। आयुर्वेद का प्रारम्भ तो आदिवासी समाज की देन है लेकिन लिखित संहिता न हो पाने के कारण आदिवासी आयुर्वेद चिकित्सा ज्ञान

का फैलाव वर्तमान आधुनिक स्वास्थ्य पत्रकारिता में वह स्थान नहीं बना पायी जिसकी वह हकदार थी। महर्षि चरक पहले संपादक थे जिन्होंने समस्त उपलब्ध चिकित्सकीय ज्ञान को समेत कर 'चरकसंहिता' में संपादित-संकलित कर प्रस्तुत किया। शुश्रुत ने 'शुश्रुत संहिता' का लेखन किया। स्वास्थ्य पत्रकारिता के इतिहास का प्रारंभ मानव के उद्‌भव के साथ ही प्रारंभ होता है। वास्तव में, मानव के जीवन की विकास यात्रा ही स्वास्थ्य- पत्रकारिता की विकास यात्रा है। प्रथमत: जब मनुष्य बीमार पड़ा होगा और उसने अपने प्राकृतिक ज्ञान का उपयोग कर बीमारी का उपचार किया होगा, फिर इस ज्ञान को अपनी आगे वाली पीढ़ी तक मौखिक या लिखित तौर से पहुंचाया होगा। स्वास्थ्य संबंधी प्राचीन ज्ञान हमारे वेदों में उपलब्ध है। वास्तव में स्वदेशी चिकित्सा पद्धति, लोक चिकित्सा पद्धति तथा आदिवासियों, ग्रामीणों में प्रचलित घरेलू नुस्खे सब मिलकर एक सम्पूर्ण स्वास्थ्य-कार्यक्रम बनाते हैं।

वेदों में स्वास्थ्य पद्धति का विस्तृत वर्णन है। यजुर्वेद में औषधियों का उल्लेख है। पशुओं तथा मानव के रोगों का उल्लेख है। शल्यक्रिया, रसायन, औषधि विज्ञान, वनस्पतियों की जानकारी आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है। मध्य काल में चिकित्सा-संबंधी ज्ञान का जनहित के लिए व्यापक उपयोग होने लगा। पशु चिकित्सा भी विकसित थी। माधव-निदान नामक प्रसिद्ध ग्रंथ इसी युग की रचना है। इसी काल में औषधालय, चिकित्सालय बनाने शुरू हुए। फाहियान ने अपने विवरण में पाटलिपुत्र के एक औषधालय का वर्णन किया है। वर्तमान यूरोपियन चिकित्सा शास्त्र का आधार भी भारतीय चिकित्सीय ज्ञान ही है।

स्वास्थ्य सूचना की आवश्यकता: सभी मानव समुदाय के लिए संप्रेषण अनिवार्य है। सभी व्यक्ति अधिकतर समय सूचनाओं को ग्रहण में व्यस्त रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को सूचनाएँ प्रदान करने तथा कार्य करने का ज्ञान करने एवं निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में संप्रेषण की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्येक संप्रेषण के चार मुख्य घटक होते हैं- (1) संदेश, (2) संदेशवाहक,(3) संदेश ग्रहण करने वाला, (4) संप्रेषण का माध्यम। इन्हीं चारों प्रक्रियाओं के द्वारा संप्रेषण की प्रक्रिया का चक्र पूरा होता है।

सामान्य जनता को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करने के लिए पोस्टर, स्वास्थ्य पत्रिका, फिल्म, रेडियो, टेलीविजन, प्रदर्शनी आदि का उपयोग किया जाता है। ये सभी स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने में योगदान देते हैं।

व्यापक अर्थ में संप्रेषण का तात्पर्य मानवीय अन्त: क्रिया के प्रत्येक पक्ष का सूचनाओं के आदान-प्रदान के द्वारा नियंत्रण और निर्देशन होता है। विशिष्ट अर्थ में यह, संप्रेषण प्रक्रिया का तात्पर्य संचार संचार के वृहद साधनों जैसे- समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म इत्यादि से है। सूचना संप्रेषण के प्रभाव के कारण ही परंपरागत समाजिक संचरना में परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्र हुई तथा आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

मैकलेलैंड ने परंपरागत समाजों में साक्षरता और सूचना संप्रेषण के साधनों के पारस्परिक संबंध को दर्शाते हुये लिखा है कि "संप्रेषण के साधनों द्वारा साक्षरता का विकास होता है और साक्षरता के विकास द्वारा संप्रेषण के साधनों का और अधिक उपभोग होता है। अत: संप्रेषण के साधनों का विस्तार और उसमें सहभागिता नगरीकरण और की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण सूचांक है।" मैकलेलैंड ने सूचना सम्प्रेषण के साधनों का प्रमुख योगदान व्यक्ति में अर्जनात्मक प्रेरणा का विकास माना है। यह "अर्जनात्मक प्रेरणा सामाजिक प्रगति और विकास की एक आवश्यक पूर्व दशा है।" सूचना संप्रेषण हमारे "सामाजिक पर्यावरण" का एक आवश्यक और सर्वव्यापी अंग है। वस्तुत: मानव समाज का सूचनाओं एक जाल है तथा प्रत्येक सामाजिक क्रिया किसी न किसी प्रकार सम्प्रेषण की प्रक्रिया से संबन्धित है।

बिल्वर शैम ने सूचना संप्रेषण की प्रक्रिया के महत्व का मूल्यांकन करते हुये बताया कि (1) सूचना संप्रेषण के साधन जिस प्रकार की सूचनाएं प्रसारित करते है, उसी के अनुरूप समाज की मूल्यात्मक व्यवस्था का विकास होता है। , (2) संप्रेषण संरचना का आकार, संचार के वृहद साधन और श्रोतागण एक समाज के आर्थिक विकास को प्रतिबिंबित करते हैं, (3) सूचना संप्रेषण के साधनों का जाल यह निर्धारित करता है कि सूचनाएँ कहां से प्रसारित हो रही है, उन्हें कौन ग्रहण कर रहा है तथा समूह में समंजस्य और सुदृढ़ता का माध्यम क्या है तथा (4) सूचना संप्रेषण के साधनों का स्वामित्व अर्थात के साधनों का उद्देश्यपूर्ण नियंत्रण किसी व्यवस्था के राजनीतिक दर्शनों को प्रतिबिंबित करता है।

मैथ्यूज एवं प्रोथ्रो के अनुसार संप्रेषण के साधनों के आधुनिकीकरण में परंपरा व आधुनिकता के मध्य सांस्कृतिक विषययुक्तता को जन्म दिया है। नगरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में सूचना संप्रेषण के साधनों का एक विशेष महत्व है। सूचना संप्रेषण के साधनों में सहभागिता की मात्रात्मक वृद्धि यह दर्शाती है कि नगरीय जीवन शैली को व्यक्ति ने किसी सीमा तक अपना लिया है। इन साधनों में सहभागिता साक्षरता के प्रसार और आधुनिक औद्योगिक समाज के उपभोगवादी प्रवृत्ति का भी परिचायक है।

"संप्रेषण की प्रक्रिया का एक उद्देश्य व्यक्तियों या उनके समूह के सम्पूर्ण स्वास्थ्य को प्रोन्नत करने हेतु व्यवहार एवं अभिवृत्तियों के विकास के लिए शिक्षित करना है। संप्रेषण समुदाय स्वास्थ्य क्रिया-कलापों का केंद्र है।" संप्रेषण का उद्देश्य तीन मुख्य बिन्दुओं में बंटा जा सकता है: (1) सूचना (2) प्रचार (3) मनोरंजन उदाहरणार्थ परिवार नियोजन के संदर्भ में संप्रेषण का उद्देश्य सूचनाएं प्रदान करना है, न की मनोरंजन करना।

उपर्युक्त सभी विद्वतजन के विचार इस ओर इंगित करते हैं कि समाज में सूचना सम्प्रेषण जनमत का निर्माण करता है। भारत के संदर्भ में अगर हम देखें तो हम पाते हैं कि पोलियो भारत में एक समय चिंता का विषय थी लेकिन द्वारा लगातार सूचनाओं को प्रेषित कर जनता के मध्य एक जागरूकता का निर्माण किया जिससे आज पोलियो कि समस्या पर भारत ने सफलता हासिल कि है। आज सभी लोग पोलियो ड्रॉप बच्चों को पिलाने के लिए जागरूक हैं।

यौन रोग पर चर्चा करना भारतीय सामाजिक परिवेश में परिवार के अंतर्गत काफी मुश्किल है। यौन रोग पर चर्चा करना भले ही परिवार के अंदर करना संभव नहीं है लेकिन इस रोग के प्रति सचेत रहना सभी की आवश्यकता भी है। यौन रोग की उत्पत्ति के कारणों व निदान के उपाय का ज्ञान होना की नितांत आवश्यकता है। वर्तमान समय में उदाहरण के लिए एड्स रोग की जानकारी उसके उत्पत्ति के कारणों, बचाव के उपाय आदि की जानकारी का होगा मानव समाज के लिए आवश्यक है। ऐसे समय में मीडिया माध्यम से सूचनाओं का संचरण आवश्यक हो जाता है। आज युवाओं में एड्स से संबंधित जानकारी का प्रसार करने में सरकार सफल है क्योंकि मीडिया के विभिन्न माध्यमों ने इस दिशा में सकारात्मक प्रयास किया।

शोधार्थी ने अपने शोध अध्ययन में जो साक्षात्कार लिए के अनुसार डॉक्टरों ने यह बताया की पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वे लगातार बीमारियों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। उनका यह भी मानना था कि कई बार मीडिया द्वारा प्रकाशित समाचारों पर वे सहज विश्वास नहीं करते क्योंकि कई सूचनाएं भ्रामक भी होती हैं। फिर भी उन्होंने माना की मीडिया द्वारा प्रसारित खबर कई बार उन्हें नये प्रकार के रोग को जानने में मदद पहुंचाते है। मीडिया के समाचारों के आधार पर वे आपस में आवश्यकता पड़ने पर चर्चा भी करते हैं।

जानकारी का सही समय पर प्रेषण कर बीमारी के प्रभाव को कम किया जा सकता है। डेंगू को लेकर एक तथ्य स्पष्ट है कि इस बीमारी में पारासीटामोल के अलावा कोई अन्य दवाई नहीं लेना चाहिये। मच्छर किन-किन कारणों से पनपते हैं को जनता तक प्रसारित कर तथा उन कारकों को दूर करने की अपील कर रोग के प्रभाव को कम कर सकते हैं। साथ ही सरकार को सही समय पर संबंधित क्षेत्र जहां मच्छर पैदा होने की पूरी संभावना है कि जानकारी अपने प्रकाशनों के माध्यम से देकर उस क्षेत्र में मच्छर उन्मूलन के प्रति सरकार का ध्यान लाया जा सकता है।

भारत में यह कटु सत्य है कि सम्पूर्ण देश में शुद्ध पेय जल कि व्यवस्था सरकार द्वारा नहीं कि जा सकी है। दूषित पेज जल की समस्या से ग्रषित होकर मानव स्वास्थ्य खराब होना आम बात है। मीडिया जल संबंधी समस्या का लगातार प्रकाशन कर क्षेत्र में शुद्ध पेयजल आपूर्ति हेतु सरकार का ध्यान आकृष्ट कर सकती है। जबतक क्षेत्र में शुद्ध जल कि व्यवस्था न हो जाये तबतक जल को पीने योग्य बनाने हेतु किये जा सकने वाले उपायों को जनता तक प्रेषित कर बीमारी की प्रभावशीलता को कम कर सकती है।

स्वास्थ्य का संबंध प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण से जुड़ा हुआ है। पर्यावरण का क्षरण रोकने में मीडिया अपनी प्रभावशाली भूमिका को निभा सकता है। केवल सरकारी रिपोर्ट का प्रकाशन न कर मीडिया अगर लगातार अवैध व अनावश्यक वनों की कटाई, अनावश्यक विस्थापन आदि को अपने प्रकाशनों में लाये तो सरकार पर्यावरण क्षरण को रोकने हेतु ठोस कदम उठाने को बाध्य होगी। पर्यावरण के मामले में मीडिया केवल समाचार ही प्रकाशित करने तक ही सिमित न रहे बल्कि सरकार को दिशा निर्देश भी प्रदान करें।

स्वास्थ्य पत्रकारिता की चुनौतियाँ: स्वास्थ्य अपने आप में इतना प्रभावी विषय है कि इसके प्रकाशन के लिए अलग से पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता महसूस की गयी। परिणामस्वरूप हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में स्वास्थ्य विषयक पत्रकारिता वर्तमान समय में हो रही है। वर्तमान समय में कई दैनिक समाचारपत्र भी स्वास्थ्य की गंभीरता को समझते हुये अलग से परिशिष्ठ देने लगे हैं। इसके साथ कई साप्ताहिक व मासिक पत्रिका स्वास्थ्य केंद्रित निकल रही है।

दैनिक समाचारपत्रों ने अपने लगातार प्रयास व कुशल प्रबंधन से अपने आप को जनता के समक्ष मुख्य मीडिया के रूप में स्थापित किया अत: जनता तक स्वास्थ्य सूचना को पहुंचाने का सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम दैनिक समाचारपत्र है। लेकिन समाचारपत्रों में केवल स्वास्थ्य संबंधी समाचार ही नहीं छपते बल्कि सभी प्रकार के समाचार छापे जाते हैं अत: स्थान की कमी सदैव बनी रहती है।

आज समाचारपत्रों मुख्य तौर पर राजनीतिक हो गए हैं। पत्रकार लगभग लगभग प्रत्येक समाचार में से राजनीति का अंश ढूंढने लगते हैं। प्रत्येक दिन कम से कम एक पृष्ठ खेल, अर्थव्यवस्था पर केन्द्रित जरूर होता है लेकिन स्वास्थ्य पर नहीं।

समाचारपत्रों में लगातार स्वास्थ्य संबंधी शोध का प्रकाशन होता है। स्वास्थ्य संबंधी शोध का प्रकाशन होना निश्चित तौर पर स्वास्थ्य हेतु एक सकारात्मक कदम है। समाचार पत्र लगातार ऐसे समाचारों को प्रकाशित कर लोगों तक स्वास्थ्य सूचना को पहुंचाने का कार्य करते हैं। लेकिन अवलोकन से प्राप्त तथ्यों के अनुसार, हिंदी समाचारपत्रों में स्वास्थ्य संबंधी जो शोध प्रकाशित होते हैं वह मुख्यत: अंग्रेजी समाचारपत्रों में पहले से ही प्रकाशित हो चुके शोध का हिंदी अनुवाद होता है, तथा इसे अनुवाद करने का कार्य प्रशिक्षु पत्रकार करते हैं। स्वास्थ्य से सम्बंधित समाचार के लिए राहत की बात है कि समाचारपत्रों द्वारा परिशिष्टों में स्वास्थ्य संबंधी फीचर को आसानी से स्थान मिल जाता है।

जिन स्वास्थ्य संबंधी सूचनाओं को समाचारपत्रों में आसानी से स्थान मिलता है उनमें सौंदर्य समाचारों की अधिकता देखी जा सकती है। यह सौदर्य बाजार के बढ़ते प्रभाव का परिणाम है। आज मीडिया के सभी माध्यमों को सौंदर्य से सम्बंधित विज्ञापन बड़ी संख्या में मिलते हैं अत: इसका प्रतिफल मीडिया के प्रकाशनों में आम तौर पर दिखता है।

कुल मिलकर मीडिया ने विज्ञापन को लेकर स्वास्थ्य पत्रकारिता का रुख मोड़ दिया है। समाचारपत्र में हेल्थ बुलेटिन का समाचार सौंदर्य स्वास्थ्य केंद्रित हो चला है।

वर्तमान समय में ऐसे पत्रकारों की संख्या ज्यादा है जिनके पर चिकित्सीय डिग्री तथा चिकित्सीय अनुभव कम है. ऐसे में यह एक चुनौती है कि ऐसे पत्रकार पूर्ण तौर पर समाचारों के साथ न्याय सकते हैं अथवा नहीं। आज साक्षरता दर पहले की तुलना में ज्यादा है अत: स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचारों की विज्ञानपरक प्रस्तुति भी एक चुनौती है।

निष्कर्ष: स्वास्थ्य सभी के लिए अनिवार्य है। और स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्य से सम्बंधित सूचनाएं अनिवार्य हैं। समय के साथ मीडिया ने स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचारों के प्रकाशन की गति को बढाया है। लेकिन विज्ञापनों ने चुनौती को बढ़ा दिया है। समाचारपत्रों को सामान्य बिमारियों से सम्बंधित अधिकांश विज्ञापन केवल सरकार से प्राप्त होता है जबकि ऐसी बीमारी जिनके इलाज में काफी खर्च है सरकारी और प्राइवेट दोनों सेक्टर से विज्ञापन मिलता है। आज लोग पहले की तुलना में ज्यादा पढ़े लिखे हैं उनकी इच्छा रहती है कि उन्हें स्वास्थ्य से सम्बंधित सूचनाएं शोधपरक भी प्राप्त हो। लेकिन अधिकांश स्वास्थ्य सम्बन्धी शोध अंग्रेजी में ही होते हैं अत: उनके अनुवाद करने में थोड़ी देरी होने के कारण क्षेत्रीय भाषा के समाचार उन सूचनाओं को त्वरित देने में थोड़े पीछे रह जाते हैं। आज स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाओं की अनिवार्य आवश्यकता सभी को है। विज्ञापनों की दौर, सूचना माध्यमों के अधिकाधिक विस्तार, नए नए रोगों के आगमन ने इसे चुनौतीपूर्ण बना दिया है। लेकिन स्वास्थ्य समाचारों की बढती अनिवार्यता के कारण सभी चुनौतियों के बावजूद स्वास्थ्य पत्रकारिता का निरंतर विकास हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (वैचारिक एवं संदर्भित):

- कोठारी, यशवंत. (1998). भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता. दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- Meclosky, H. (1968), Political Participation, International Encyclopaedia of Social Science. New York: Collier Macmillan, New York
- Mathews, D.R., and Prothro. J.W. (1966). Neogroes And The New Southern Politics. New York : Harcourt Brace and World.
- Park. J.E., And Park. K. (1990). Essentials of Community Health Nursing. Jabalpur: Simplex Printing Press.
- गुप्ता, रमणिका (सं.). (2008). आदिवासी विकास से विस्थापन तक. नयी दिल्ली रू राधाकृष्ण प्रकाशन.
- जोशी, रामशरण. (2004). आदमी, बैल और सपने, दिल्लीरू कल्याणी शिक्षा परिषद
- हसनैन, नदीम. (2010). जनजातीय भारत. नयी दिल्लीरू जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.
- पाण्डेय,गया. (2006). भारतीय मानवशास्त्र. नयी दिल्ली रू कान्सैप्ट पब्लिशिंग हाउस.
- चोपड़ा, ल. (2006). मीडिया और समाज. पंचकूलारू आधार प्रकाशन प्रा. लि.
- Sigerist, H.E. (1961). A History of Medicines, Vol. 2. New York: Oxford University Press.

महाभारत के शान्ति पर्व में वैराग्य

रणधीर सिंह

एम.ए., एम.फिल्., सेट शोधार्थी संस्कृत, राजर्षि' भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय अलवर (राज0)

भूमिका

वैराग्य का अर्थ- विराग (राग-विहीन) + "यञ् प्रत्यय से वैराग्य बना है, जो नपुंसकलिंग है। जिसका अर्थ विरक्ति, उदासीनता, अरुचि, अप्रसन्नता, शोक आदि होता है।[1] वैरागी या वैराग्य को अंग्रेजी (आंग्ल भाषा) में निम्न नाम मिलते हैं-

Recluse, Ascesis, An unattached person Renouncing, Worldly pleasures, Austerity, Penance, Detachment इत्यादि नाम मिलते हैं।[2]

सांसारिक कामों और सुख भोगों या किसी विशेष बात से होने वाली विरक्ति का भाव ही वैराग्य होता है। इसी का दूसरा नाम वीतराग है।

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:।
वीतरागभयक्रोध: स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।[3]

स्थिरचित्त व्यक्ति तीनों तापों से संघात से तनिक भी विचलित नहीं होता क्योंकि वह इन कष्टों (तापों) को भगवत्कृपा के रूप में लेता है और पूर्व पापों के कारण अपने को अधिक कष्ट के लिए योग्य मानता है और वह देखता है कि उसके सारे दु:ख भगवत्कृपा से रंचमात्र रह जाते हैं। इसी प्रकार जब वह सुखी होता है तो अपने को सुख के लिए अयोग्य मानकर इसका श्रेय भगवान को देता है। वह सोचता है कि भगवत्कृपा से ही वह ऐसी दु:खद स्थिति में है और भगवान की सेवा और अच्छी तरह से कर सकता है। भगवान की सेवा के लिए तो वह सदैव साहस करने के लिए सन्नद्ध रहता है। वह राग या वीतराग से प्रभावित नहीं होता है।

वैराग्य के कारण

वैराग्य कई हेतुओं से होता है- दु:ख से, भय से, विचार से, साधन से और परमात्मतत्त्व के बोध से। इन सब में पूर्व-पूर्व वैराग्य की अपेक्षा उत्तरोत्तर वैराग्य श्रेष्ठ है।

1. दु:ख से होने वाला वैराग्य- घर, धन, स्त्री, पुत्र, परिवार आदि की अनुकूलता न होने पर तथा परिस्थिति की प्रतिकूलता प्राप्त होने पर जो मन में संसार के त्याग की उकताहट से भी भावना होती है, उसे दु:ख से होने वाला वैराग्य कहते हैं।
2. भय से होने वाला वैराग्य- दु:ख से होने वाले वैराग्य की अपेक्षा भय से होने वाला वैराग्य श्रेष्ठ है। स्वास्थ्य भय, राज्य का भय, समाज का भय, मान-प्रतिष्ठा का भय, जन्म-मरण भय और नरकों का भय। इन अनेक प्रकार के भयों से होने वाले राग के अभाव को 'भय से होने वाला वैराग्य' कहते हैं।
3. विचार से होने वाला वैराग्य- भय से होने वाले की अपेक्षा विचार, विवेक से होने वाला वैराग्य ऊँचा है। विचार का अर्थ है- सत्-असत्, सार-असार, हेय-उपादेय और कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विवेक। इस विवेक से जो असत्, असार, हेय और अकर्तव्य का मन से परित्याग है अर्थात् इनके प्रति मन के राग का जो अभाव हो जाना है, उसको विचार से होने वाला वैराग्य कहते हैं।
4. भगवान की साधना करने से अन्त: करण निर्मल होता है। फिर उससे वैराग्य होता है। इस प्रकार का वैराग्य विचार से होने वाले वैराग्य से भी ऊँचा है।

5. परमात्मा की प्राप्ति हो जाने पर होने वाला वैराग्य बहुत ही अलौकिक है, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता, उसे न तो राग कह सकते हैं न वैराग्य ही। ऐसा विलक्षण वैराग्य परमात्मा प्राप्त महापुरुषों का ही होता है।

मूल विषय- महाभारत के शान्ति पर्व में वैराग्य

भीष्म उवाच-

मोक्षधर्मेषु नियतो लध्वाहारो जितेन्द्रियः।

प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थान तत्परं प्रकृतेर्धुवम्।।[4]

भीष्म जी कहते हैं- जो मनुष्य मितभोजी और जितेन्द्रिय होकर मोक्ष-प्राप्ति में सहायक धर्मों के पालन में संलग्न रहता है, वही प्रकृति से परे अविनाशी ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।

व्यास उवाच-

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।

नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विन्दति कश्चन।।[5]

व्यास जी कहते हैं- विद्या, तप, इन्द्रियों के निग्रह तथा सर्वस्व-त्याग के बिना कोई भी मनुष्य सिद्धि-जीवन में सफलता नहीं पा सकता।

अहेरिव गणाद् भीतः सौहियान्नरकादिव।

कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः।।[6]

जो जनसमुदाय को सर्प-सा समझकर उसके समीप जाने से डरता है, स्वादिष्ट भोजनजनित तृप्ति को नरक के समान मानकर उससे दूर रहता है तथा स्त्रियों को मुर्दो के समान जानकर उनकी ओर से विरक्त रहता है, उसे विद्वान लोग ब्रह्मज्ञानी समझते हैं।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।

दमस्योपनिषद् दानं दानस्योपनिषत्। तपः।।[7]

वेद का सा है सत्यवचन, सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम, इन्द्रिय-संयम का सार है दान और दान का सार है तप-अनुष्ठान।

तपस्योपनिषत्त्यागस्त्यागस्योपनिषत्सुखम्।

सुखस्योपनिषत् स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः।।[8]

तप का सार है त्याग, त्याग का सार है सुख, सुख का सार है स्वर्ग और स्वर्ग का सार है शान्ति।

मनसोऽप्रतिकूलानि प्रेत्य चेह च वाळछसि।

भूतानां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तस्व यतेन्द्रियः।।[9]

यदि तुम इस लोक और परलोक में अपने मनोऽनुकूल वस्तुएँ पाना चाहे तो अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर समस्त प्राणियों के प्रतिकूल आचरणों से दूर हट जाओ।

भीष्म उवाच-

जरामृत्यु हि भूतानां खादितारौ वृकाविव।

बलिनां दुर्बलानां च लधूनां महतामपि।।[10]

भीष्म जी कहते हैं- कोई बलवान् हो या दुर्बल बड़ा हो या छोटा-सब प्राणियों को वृद्धावस्था और मृत्यु व्याध्र की भाँति खा जाती है।

व्यास उवाच-

फेनमात्रोपमे देहे जीवे शकुनिवत् स्थिते।

अनित्ये प्रियसंवासे कथं स्वपिषि पुत्रक।।[11]

व्यास जी कहते हैं- बेटे! यह शरीर पानी के बुलबुले की भाँति नश्वर तथा क्षणभंगुर है। इसमें जीव पक्षी की भाँति बसा हुआ है। यहाँ प्रियजनों का सहवास भी सदा रहने वाला है। फिर भी तुम सोये क्यों पड़े हो असावधान क्यों हो?

अहःसु गण्यमानेषु क्षीयमाणे तथाऽऽयुषि।

जीविते लिख्यमाने च किमुत्थाय न धावसि।।[12]

तुम्हारी आयु के दिन गिने जा रहे हैं। आयु क्षीण होती जा रही है और जीवन मानो कहीं लिखा जा रहा है (समाप्त हो रहा है)। फिर भी तुम उठकर भागते क्यों नहीं (शीघ्रतापूर्वक अपने कर्तव्यपालन में क्यों नहीं लगते)?

धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते बलेन किं येन रिपुं न बाधते।

श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी।।[13]

उस धन से क्या लाभ, जिसे न दान दे सके, न ही उपभोग कर सके? उस बल से क्या लाभ जिससे शत्रु का दमन न हो सके। उस शास्त्र-ज्ञान से क्या लाभ, जिसके द्वारा मनुष्य धर्माचरण न कर सकें? उस जीवात्मा से क्या लाभ जो न तो जितेन्द्रिय है और न मन को ही वश में रख सकता है?

इन्द्रियाणां प्रसबेन दोषमृच्छज्यसंशयम्।

सन्नियभ्य तु तान्येव सिद्धिमाप्नोतिमानवः।।[14]

मनुष्य इन्द्रियों की विषयासक्ति के कारण दोष को प्राप्त होता है और उन्हीं इन्द्रियों को वश में कर लेने पर वह सिद्धि प्राप्त कर लेता है- इस तथ्य में तनिक भी संदेह नहीं है।

सारांश

वैभव व वैराग्य में वैराग्य ही श्रेष्ठ है। देखने में आता है कि जिनके पास अत्यधिक धन होता है वे लोग भी अधः पतन की ओर जाते हैं। यदि धन में श्रेष्ठता होती तो धनी लोगों का पतन कभी नहीं होता। उनका धन सदैव बना रहता है। उनकी संतानें भी सदैव अच्छे संस्कारों से युक्त रहती है। किन्तु देखने में आता है कि कोई भी व्यक्ति अपवाद से रहित नहीं पाया जाता है अर्थात् गरीब कभी धनवान बन जाते हैं। उनके बच्चे कभी-कभी संस्कार युक्त भी होते हैं।

धन में शान्ति निहित नहीं है।

देखने में आता है कि धनी व्यक्ति भी शान्ति पूर्ण जीवन व्यतीत नहीं कर पाते। उन्हें सदैव अपने धन की सुरक्षा करने में अनेक कष्टों को उठाना पड़ता है। जिनके पास अत्यधिक धन है उनको चोर, डाकुओं आदि से भय बना रहता है।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्तेनृपालाद् भयम्

मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।

शास्त्रेवादभयं गुणं खलभयं काये कृतान्ताद् भयम्

सर्ववस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।[15]

भोग में रोग का भय, ऊँचे कुल में उत्पन्न होने पर उसमें नीचे गिरने का भय, धन रहने पर राजा का भय, मान में दीनता का भय, बल रहने पर शत्रु का भय, सौन्दर्य में बुढ़ापे का भय, शास्त्र में वाद-विवाद का भय, गुणों में दुष्ट लोगों का भय, शरीर में मौत का भय, इस संसार में सभी पदार्थ भय से व्याप्त है, केवल मात्र वैराग्य में ही अभय है। अतः वैराग्य का महत्त्व सर्वविदित है।

सन्दर्भ-

1. पारिजात संस्कृत हिन्दी शब्द कोशः पृ. 888
2. Advanced Learner's Hindi English Dictionary Vol. II (न-ह) Dr. Hardev Bahri Page No. 1523
3. श्रीमद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय श्लोक 56

4. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 99
5. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 108
6. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 126
7. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 134
8. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 135
9. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 147
10. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 155
11. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 160
12. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 161
13. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 168
14. महा. शान्तिपर्व:. त्रिषष्टितमोऽध्याय: श्लोक:- 171
15. वैराग्य शतक श्लोक 31- वैद्य

आधुनिक गीतकारों की साहित्य दृष्टि

डॉ० आरती प्रसाद

सह-प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रास नारायण महाविद्यालय, पण्डौल, मधुबनी

प्रत्येक विधा के रचनाकार की अपनी रचना-दृष्टि होती है। यह रचना-दृष्टि स्वयं रचनाकार द्वारा रचित रचनाओं के द्वारा संकेतित होती है जिसमें एक से अधिक विधाओं का समावेश हो सकता है और इस प्रकार, उसकी रचना-दृष्टि परोक्षत: या प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हो सकती है। इस संदर्भ में, मैं यहां पर समकालीन गीतकारों को लूंगा और उनके गीतों के द्वारा प्राप्त रचना-दृष्टि को आरेखित करने का प्रयत्न करूंगा। उनके गीत-सृजन के उन अंशों का संकेत होगा जो उनके दृष्टिकोण को संकेतित कर सके। गीत की अवधारणा के बारे में वह क्या स्वीकार कर रहा है, यह गीत के अंशों के द्वारा व्यक्त होगा और इस प्रकार, गीत के ऐतिहासिक महत्त्व का भी दिग्दर्शन होगा। यही नहीं वरन गीतकार अपने अस्तित्व को भी अर्थ देगा तथा रचना के स्तर पर अपने सोच-संवदेन को भी संकेतित करेगा।

समकालीन गीतकारों ने गीत के ऐतिहासिक महत्त्व तथा उसके परिदृश्य पर यदा-कदा संकेत किए हैं, वे गीत की संरचना के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। यह एक ज्वलंत सत्य है कि साहित्य के क्षेत्र में गीत का अस्तित्व किसी न किसी रूप में रहा है। इस तथ्य को कवि प्रत्यक्ष न कहकर कबीर, सूर तथा मीरा बाई के माध्यम से कहता है, और यह सत्य प्रकट करता है कि कविता (साहित्य) के परिदृश्य से उन्हें नकारा नहीं जा सकता है–

साथ कबीर, सूर मीरा बाई होगी

तब तक कविता से गीत की नहीं विदाई होगी। (नचिकेता)

यह भी एक सत्य है कि समय के अनुसार गीत की संरचना में परिवर्तन आए हैं जो एक ऐतिहासिक सत्य है। आज स्थिति यह है कि गीत की संवेदना और संरचना में अंतर आया है, वह भी वैश्विक स्तर पर। यही कारण है कि गीत की संरचना पूर्व के कालों से भिन्न हो गई है। अत: आज का गीत अपनी संवेदना और सृजन में कुछ अनिश्चित और अनमना हो गया है जिसके कारण गीत की संरचना में एक भूचाल-सा आ गया है। यह भूचाल कवि द्वारा निर्मित नए छंदों के प्रयोग से आया है और साथ ही, कथ्य की दृष्टि से। यह सारी स्थिति है तो एक अगम-गति पर इस गति के आगे गीत या किसी भी विधा को अपने तरीके से सामना करना पड़ेगा जो समय की आवश्यकता भी है और नियति भी–

वैश्विक फलक पर
गीत की संवेदना है अनमनी
तुम लौट जाओ
प्यार के संसार में मायाजनी
इस अगम गति की चाल में
भूचाल की है रागिनी! (दिनेश सिंह)

गीत की संरचना में अंतर का महत्त्व रहा है और यह अंतर बाह्य घटनाओं के द्वंद्व के प्रकाश में घटित होता है और ये घटनाएं मूलत: अंतर के द्वंद्व को गति देती है। यही कारण है कि बाह्य घटनाओं का द्वंद्व जितना तीव्र होगा, उसी की सापेक्षता में अंतर का द्वंद्व भी तीव्र होगा। अत: गीत की संरचना में बाह्य और अंतर का सापेक्ष एवं द्वंद्वात्मक संबंध है। एक गीतकार गीत (या रचना को) को मात्र अंतर से संबंधित करता है, पर सत्य तो यह है कि यह आंतरिक बिंब उस समय तक अधूरा रहेगा जब तक वह बाह्य से संबंधित नहीं होगा। गीत को निम्न संरचना में गीतकार ने मात्र अंतर के महत्त्व को स्वीकार किया है जो मेरे विचार से सत्य का केवल...पक्ष है। फिर भी गीतकार ने अंतर के बिंब को झाड़ी में छिपे चिड़िया के द्वारा व्यक्त किया है जो अत्यंत सटीक एवं व्यंजनात्मक है–

गीत

सात रंगों का झरना

झरता मन के भीतर

अथवा कोई, चिड़िया चहक रही

झाड़ी में छिपकर। (नचिकेता)

गीत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में शब्द का अपना महत्त्व रहा है और यह महत्व सामान्य रूप से सभी जन-क्षेत्रों में अपनी भूमिका अदा करता रहा है। गीत और साहित्य के सभी क्षेत्रों में शब्द मात्र नहीं रहा जाता है, वरन वह किसी न किसी अर्थ या अवधारणा का वाहक होता है। सृजन के क्षेत्र में शब्द-प्रयोग एक जिम्मेदारी है और यह जिम्मेदारी अन्य ज्ञान-क्षेत्रों के लिए भी जरूरी है। शब्द प्रयोग शब्द केलि नहीं है जैसा कि देरिदा का मत है। यह एक सत्य है कि शब्द का अस्तित्व निरपेक्ष्य नहीं है और न अर्थ का। शब्द और अर्थ का संबंध सापेक्ष्य है और यह भी सत्य है कि एक शब्द भिन्न संदर्भों में भिन्न अर्थ का व्यंजक होता है। शब्द और अर्थ का यह संबंध अर्थ विज्ञान (सिमैंटिक्स) का क्षेत्र है। गीत का संरचना में और रचना प्रक्रिया में शब्द के महत्व तथा उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य को (जिसे अंधेरा कहा गया है) रचनाकार इस प्रकार व्यक्त करता है–

एक कोई शब्द/कोई गीत कोई राग बन

चटखता है धमनियों में अर्थ की लपटें पहन

चीरती हैं, अंधेरे की छातियों को। (माहेश्वरी तिवारी)

रचनाकार यही नहीं रुकता है, पर वह शब्द को कवि के अंदर बैठा हुआ उसे सार्थकता प्रदान करता है–

मुझे यों शब्द से भरता हुआ

कौन है मुझमें/मुझको सार्थक करता हुआ। (सत्यनारायण)

मेरे विचार से शब्द की सार्थकता दो प्रकार की होती है, रचनाक्रम और उसकी अभिव्यक्ति दोनों के लिए। एक शब्द की वह सार्थकता है जो परंपरा से प्राप्त रूपाकारों-आशयों (शब्द) का समय के अनुसार अर्थ-रूपांतरण करती है और दूसरी वह सार्थकता है जो ज्ञान-विज्ञान के नए रूपाकारों से प्राप्त होती है। काव्य शास्त्र...अमिधा से व्यंजना तक जो व्यापार होता है, वह एक प्रकार से शब्द और उसके अर्थ का ही व्यापार है–

अमिधा से व्यंजना तक/सब है भाषा की प्रतिमाएं

पता नहीं, किस-किस में बिंबित/हो मेरी अभिलाषाएं।

(मधु प्रसाद)

यह तो हुआ शब्द का सार्थक एवं अर्थपूर्ण प्रयोग, दूसरी ओर, रचना में शब्द का प्रयोग इस प्रकार से भी होता है कि सृजन अपना अस्तित्व को तलाशता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ का सापेक्ष्य संबंध, जो रचना को सार्थकता देता है। वह एक तरह से अर्थ को पूरी तरह से संकेतित नहीं कर पाता है–

शब्दों के पुल टूट रहे हैं/शब्दातीत मन:स्थितियां हैं

अर्थ सभी के टूट रहे हैं। (सूर्यभानु गुप्त)

जब शब्द और अर्थ का संबंध टूट जाता है, तब भाषा का स्वरूप यांत्रिक सा हो जाता है, तब लोग ऐसी भाषा से मोहित होकर उसे स्वीकार करते हैं। ऐसा मशीनी भाषा से होता यह है कि वह मानव के मध्य संपर्क की भाषा नहीं बन सकती है। कवि के द्वारा ऐसा समय अपाहिज होता है जिसकी चिंताओं को लिया नहीं जा सकता है अथवा उस भाषा प्रयोग पर रोया नहीं जा सकता है–

एक ही भाषा मशीनी है/ निकलती हर गली से

लोग उसको लिए फिरते/ शहर भर में बावले से

आदमी का आदमी से/ जोड़ने के शब्द खोए

इस अपाहिज समय की/ चिंताओं को कौन रोए।

(कुमार रविंद्र)

शब्द या भाषा का बाजारीकरण इस कदर हो रहा है कि वे अपने अर्थ-संबंधों को खोकर कविता या गीत मात्र समाचार बन कर रह गए हैं। ऐसी दशा में हम विश्वग्राम तक तो पहुंच गए, पर शब्द समय से अपने संवाद को खो चुका है, और ऐसी स्थिति में शब्द पथरा गए हैं। यह एक तरह से शब्द का अवमूल्यन है–

हमने शब्द लिखा या रिश्ते/ अर्थ हुआ बाजार/ कविता के माने खबरें हैं संवेदन: व्यापार/ भटकन की, उंगली थामे हम/ बहुत कठिन संवाद समय से शब्द सभी पथराए।

(राजेन्द्र गौतम)

यह तो हुआ शब्द का अवमूल्यन या उनका दुर्पप्रयोग। दूसरी ओर सृजन के क्षेत्र में शब्द मात्र शब्द न होकर किसी विचार, धारणा या संवेदना के व्यंजक होते हैं। ये शब्द अनेक दिशाओं से आते हैं और अपने साथ भिन्न विचारों के वाहक होते हैं। अत: भाषा की संरचना में ये शब्द इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि वे भाषा के अंग बन जाते हैं। यह शब्द का अर्थ विस्तार इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि वे भाषा के अंग बन जाते हैं। यह शब्द का अर्थ-विस्तार ही है और साथ ही उसका अंत:अनुशासनीय रूप भी–

कौन बहलाता है अब परी-कथाओं से
सौ विचार आते हैं, सभी दिशाओं से। (यश मालवीय)

फिर भी, हर रचनाकार अथवा गीतकार अपने विचार-संवेदन को अपने तरीके से रचनात्मक संदर्भ देता है। हर गीतकार का ट्रीटमेंट अलग-अलग होता है जो उस गीत-सृजन को नवीनता प्रदान करता है। अत: प्रत्येक गीतकार या रचनाकार का स्वर एक सा नहीं होता है, इसलिए ऐसा एक सा नियम सृजनात्मकता को बाधित करेगा–

हर गायक का अपना स्वर है/ हर स्वर की अपनी मादकता
ऐसा नियम न बांधो/ सारे गायक एक तरह से गाएं।

(जयकुमार 'जलज')

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा स्वयं गीतकारों का गीत के प्रति उसके ऐतिहासिक और धारणागत महत्त्व तथा गीत में प्रयुक्त शब्दों के परिदृश्य पर विचार करने के बाद गीत की संरचना में प्रयुक्त घटकों यथा छंद, लय, ध्वनि और सौंदर्य की निहित क्या है, इसे गीतकारों के गीत-अंशों के द्वारा रेखांकित करने का प्रयत्न है।

सन्दर्भ

1. आज का वैचारिक संघर्ष और मार्क्सवाद: खगेन्द्र ठाकुर
2. आज की कविता: विनय विश्वास
3. आज की कविता और कवि : राकेश गौतम
4. आधुनिक कथा साहित्य: संजय जैन
5. अभ्यूदय संवेदना का विकास: कविता सुरभि

पर्यावरणीय शिक्षा के प्रचार, प्रसार में अध्यापक की भूमिका
(Teacher's Role in Promotion, Dissemination of Environmental Education)

कुसुम देवी

(शोध-छात्रा) शिक्षा शास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती डीम्ड विश्वविद्यालय प्रयागराज

सारांश (Abstract):

शिक्षा जीवन के विकास का रास्ता दिखाती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपने प्रति समाज, राष्ट्र और पर्यावरण के प्रति, परिवेश के प्रति बोध प्राप्त करता है। मानव जीवन के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा के द्वारा पर्यावरण जागरूकता का प्रसार सरलता और प्रभावी तरीके से किया जा सकता है।

पर्यावरण चेतना का प्रारम्भिक स्वरूप उसके उपयोग तक सीमित था किन्तु अब यह बात नहीं है तथा विश्व स्तर पर यह अध्ययन का विषय बना हुआ है। पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने वाले कार्यक्रमों में समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को अपने पर्यावरण के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के प्रति संवेदनशील बनाना मुख्य उद्देश्य है। पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागृति एवं संवेदनशीलता के विकास से ही पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागृति एवं संवेदनशीलता के विकास से ही पर्यावरण चेतना का विकास होता है। निश्चय ही यह पर्यावरण की समुचित शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा द्वारा पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम को सरकार ने विभिन्न स्तर पर शुरू किया है। भारत में आजादी के बाद से प्रौढ़ शिक्षा या सामाजिक शिक्षा जैसे कार्यक्रमों को आरम्भ किया गया। पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रम को निम्न स्तर पर संचालित किया गया है। पर्यावरण चेतना का प्रारम्भिक स्वरूप उसके उपयोग तक सीमित था लेकिन अब यह वर्तमान शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर पर्यावरण चेतना के विभिन्न रूपों के अध्ययन से सम्बन्धित है। यह विश्वव्यापी अभियान के रूप में सिद्ध किये जाने की संकल्पना का रूप ले रही है। पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने वाले कार्यक्रमों में समाज में अधिकांश वर्ग के लोगों को पर्यावरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के प्रति संवेदनशील बनाना प्रमुख अधिकार होना चाहिए। वास्तविकता यह है कि आबादी के अधिकतर पढ़े-लिखे लोग भी पर्यावरण को पूर्ण रूप से नहीं समझते हैं। वे पर्यावरण में पारिस्थितिकी असन्तुलन एवं प्रदूषण की परिस्थितियों से अपरिचित हैं तथा इनसे सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी नहीं रखते हैं। जो लोग इन समस्याओं से परिचित हैं, वे इनके स्वरूप एवं गम्भीरता को भली-भाँति समझने की कोशिश नहीं करते। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा के कार्य सुचारू रूप से पूरा करने, पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के बारे में जन-जागरण लाने तथा उनसे उत्पन्न मानवीय संकटों को समझने में हमारे शिक्षकों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। शिक्षक अपने प्रभाव से प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक पर्यावरण सुधार में क्रान्ति ला सकता है।

मुख्य शब्दावली: पर्यावरण शिक्षा, प्रचार, प्रसार, अध्यापक, आदि।

पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा:

शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण से सम्बन्धित है। एक शिक्षित व्यक्ति खुद को और अपने पर्यावरण को भली-भाँति समझता है। पर्यावरणीय शिक्षा को निम्न परिभाषाओं के माध्यम से समझा जा सकता है- "पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया

है जिसके अन्तर्गत मनुष्य तथा उसके पर्यावरण (सांस्कृतिक तथा भौतिक-जैविक) के पारस्परिक सम्बन्ध तथा निर्भरता को समझने का प्रयास किया जाता है और उसको स्पष्ट करने हेतु कौशल, अभिवृत्ति एवं मूल्यों का विकास किया जाता है और यह निर्णय लिया जाता है कि क्या किया जाए? जिससे वातावरण की समस्याओं का समाधान किया जा सके और पर्यावरण में" गुणवत्ता लाई जा सके। "पर्यावरण शिक्षा जनसामान्य को दी जाने वाली वो शिक्षा है जिसके माध्यम से हरेक व्यक्ति' अपनी उन गतिविधियों को समझ सके जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं जिससे वे अपनी उन गतिविधियों को नियंत्रित कर सके और पर्यावरण के विभिन्न घटकों को विघटन से बचा सके। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि पर्यावरण शिक्षा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें इसके संरक्षण, रख रखाव तथा सुधार के बारे में सोचने, समझने और अपनी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए प्रेरित करती है। पर्यावरण के अर्थ और परिभाषा से पता चलता है कि पर्यावरण एक गतिविधि संकल्पना है जो स्थान एवं समय और व्यक्ति के अनुसार बदलता रहता है। पर्यावरण की तरह पर्यावरणीय शिक्षा भी एक गतिशील संकल्पना है क्योंकि समय एवं स्थान के अनुसार प्रत्येक पर्यावरण की विशेषताएँ बदल जाती हैं। शिकारी युग, कृषि युग एवं वर्तमान औद्योगिक युग के पर्यावरण की तुलना अगर हम करें तो पता चलता है कि आवश्यकताओं और उसकी पूर्ति के अनुसार हमारी सोच बदलती है और अपनी सोच के अनुसार हम पर्यावरण में संशोधन करते हैं। अत: पर्यावरणीय शिक्षा एवं उसकी प्रकृति को एक निश्चित सीमा में बाँधना मुश्किल है। चूँकि पर्यावरणीय शिक्षा में प्राकृतिक एवं मनुष्य निर्मित सभी प्रकार के पर्यावरण का समावेश किया जाता है जो कि अंत:अनुशासनिक प्रकृति को दर्शाता है। पर्यावरणीय शिक्षा केवल कला या विज्ञान नहीं है बल्कि इसके अन्तर्गत सभी विषय जैसे जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, तकनीकी, दर्शनशास्त्र एवं सौंदर्यशास्त्र इत्यादि शाखाओं को भी सम्मिलित किया जाता है जो इसके बहुआयामी प्रकृति को भी दर्शाता है।

यूनेस्को के सेमीनार के अनुसार, "पर्यावरण शिक्षा एक ढंग है जिससे पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त किया जाये। विज्ञान तथा अध्ययन क्षेत्र की पृथक् शाखा नहीं है अपितु जीवनपर्यन्त चलने वाली शिक्षा की एकीकृत प्रक्रिया है।"

मिश्र के अनुसार, "पर्यावरण शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की पर्यावरण के प्रति जागरूकता, ज्ञान, कौशलों, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों को विकसित किया जाता है, जिससे पर्यावरण का सुधार किया जा सके।"

पर्यावरण की विशेषताएँ: पर्यावरण की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

(i) पर्यावरणीय शिक्षा एक प्रक्रिया है जो हम मनुष्यों को पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों का बोध कराता है।

(ii) इसके माध्यम से हम मनुष्यों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, जागरूकता, ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का विकास किया जाता है ताकि पर्यावरण की महत्ता को समझकर इसके घटकों को विघटन से बचाया जा सके।

(iii) पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से विभिन्न प्रकार के पर्यावरण के बारे में जानकारी दी जाती है ताकि वास्तविक जीवन में पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों जैसे- भौतिक पर्यावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण एवं मनोवैज्ञानिक पर्यावरण इत्यादि का महत्त्व समझ हम इनकी गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहें।

(iv) पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से बालक को प्राकृतिक पर्यावरण की समस्याओं को समझने के लायक बनाया जाता है ताकि वो उस समस्या का समाधान कर सके।

(v) पर्यावरण शिक्षा बालक में कौशल एवं रचनात्मकता का विकास करती है जिससे वो अपने जीवन का संतुलित विकास कर सके।

(vi) पर्यावरण शिक्षा समस्या केन्द्रित, अंत: अनुशासनिक एवं बहुआयामी, मूल्य तथा समुदाय केन्द्रित एवं भविष्य की ओर उन्मुख होती है।

(vii) इसके माध्यम के पर्यावरण की मुख्य समस्याओं, उसके कारण एवं प्रभाव के बारे में जनसामान्य में जागरूकता फैलायी जाती है।

(viii) शिक्षा के विभिन्न आयामों, विधियों एवं प्रविधियों का उपयोग कर समस्या के वास्तविक कारणों तथा प्रभाव को जाँचा और परखा जाता है तथा औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा द्वारा समस्याओं का समाधान किया जाता है जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता में वृद्धि हो और हम मनुष्य एक गुणवत्तापूर्ण जीवन जी सकें।

पर्यावरण के प्रकार: पर्यावरण के निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं-

- भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण
- सांस्कृतिक या मानव निर्मित पर्यावरण

1. भौतिक या प्राकृतिक पर्यावरण: भौतिक पर्यावरण से तात्पर्य उन भौतिक क्रियाओं, प्रक्रियाओं और तत्वों से लिया जाता है जिनका मानव पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भौतिक शक्तियों में सौर्थिक शक्ति (तापमान), पृथ्वी की दैनिक व वार्षिक गति, गुरुत्वाकर्षण शक्ति भूपटल को प्रभावित करने वाले बल, ज्वालामुखी, भूकम्प आदि शामिल किये जाते हैं। इन शक्तियों द्वारा पृथ्वी पर अनेक प्रकार की क्रियायें होती हैं। इसके पर्यावरण के तत्व उत्पन्न होते हैं। इन सबका प्रभाव मानव की क्रियाओं पर पड़ता है। भौतिक प्रक्रियाओं में भूमि का अपक्षय, ताप विकिरण, संचालन, ताप संवहन, अवसादीकरण, वायु व जल की गतियाँ, जीवधारियों की गतियाँ, जन्म-मरण व विकास आदि आती हैं। इन प्रक्रियाओं द्वारा भौतिक पर्यावरण में अनेक क्रियायें उत्पन्न होती हैं। वे मानव के क्रिया-कलापों पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं। भौतिक तत्वों में उन तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है, जो भौतिक शक्तियों तथा प्रक्रियाओं के फलस्वरूप धरातल पर उत्पन्न होते हैं। इन तत्वों के निम्न तीन भेद हैं-

(i) भाववाचक तत्व- प्रदेश की ज्यामितीय स्थिति, प्राकृतिक संस्थिति, प्रदेश का क्षेत्रफल या विस्तार, प्रदेश की आकृति व भौगोलिक अवस्थिति।

(ii) भौतिक तत्व - भू-आकार, ऋतु एवं जलवायु, चट्टानें व खनिज, मिट्टियाँ, नदियाँ व जलाशय, भूमिगत जल, महासागर व तट।

(iii) जैविक तत्व- प्राकृतिक वनस्पति, प्रादेशिक जीव-जन्तु व सूक्ष्म जीवाणु।

ये सभी तत्व मिलकर मानव पर्यावरण का निर्माण करते हैं और मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं। इसे प्राथमिक, प्राकृतिक या भौतिक पर्यावरण आदि नामों से अभिहीत किया जाता है। ये समस्त तत्व प्रकृति की देन हैं, इनका मनुष्य ने सृजन नहीं किया है।

2. सांस्कृतिक या मानव निर्मित पर्यावरण : मानव द्वारा निर्मित सभी वस्तुएँ सांस्कृतिक पर्यावरण की अंग हैं। मनुष्य अपनी तकनीकी के बल पर प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लेता है। वह भूमि को जोतकर कृषि करता है, जंगलों को साफ करता है, सड़कें, रेलमार्ग व नहरें आदि बनाता है, पर्वतों को काटकर सुरंगें बनाता है, नई बस्तियाँ बसाता है, भूगर्भ से खनिज निकालता है, अनेक यन्त्र व उपकरण बनाता है तथा प्राकृतिक शक्तियां का विभिन्न प्रकार से दोहन कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मानव द्वारा बनाई गयी। समस्त वस्तुएँ जिस संस्कृति को जन्म देती हैं, उसे मानव निर्मित संस्कृति या प्राविधिक पर्यावरण कहते हैं। इसे मानव की पार्थिव संस्कृति भी कहा जा सकता है। मानव को सांस्कृतिक पर्यावरण में औजार, गहने, अधिवास, परिवहन व संचार के साधन (वायुयान, रेल, मोटर, तार, जलयान), प्रेस आदि सम्मिलित किये जाते हैं। मानव की शारीरिक व बौद्धिक क्षमतायें भी मानव संस्कृति के ही अंग हैं। ये मानव की सांस्कृतिक विरासत हैं। संस्कृति के इस भाग को अपार्थिव संस्कृति कहते हैं।

अत: स्पष्ट है कि भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्राकृतिक साम्राज्य की वे सभी शक्तियाँ, प्राक्रियायें तथा तत्व सम्मिलित हैं जिनका प्रभाव मानव की क्रियाओं, भोजन, वस्त्र तथा आदतों आदि पर पड़ता है। दूसरी ओर सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत मानव को संचालित करने वाले और सामाजिक क्रियाओं को निर्देशित करने वाले तत्व सम्मिलित हैं, जो मानव के जीवन स्तर पर निर्धारण करते हैं। अनुकूल पर्यावरण में जीवधारियों को कोई कठिनाई नहीं होती जबकि प्रतिकूल पर्यावरण में जीवों को रहने के लिए कठिनाई होती है। अनुकूल पर्यावरण उसे कहते हैं, जो किसी जीवधारी के अस्तित्व की रक्षा, विकास और उन्नति तथा वृद्धि में सहायक होता है। इसके विपरीत, जो पर्यावरण जीवधारी के अस्तित्व की रक्षा और विकास में बाधक होता है, उसे प्रतिकूल पर्यावरण कहा जाता है। कभी-कभी एक ही पर्यावरण किसी प्राणी या समूह के लिए एक परिस्थिति में अनुकूल हो सकता है तथा दूसरी स्थिति में प्रतिकूल हो सकता है। भिन्न-भिन्न पर्यावरण भिन्न-भिन्न प्राणियों के लिए अनुकूल तथा प्रतिकूल हुआ करते हैं।

पर्यावरण अध्ययन के विषय क्षेत्र तथा महत्व:

पर्यावरण के सभी भौतिक तत्वों (अजैव व जैव) में पर्यावरण के अजैव तत्त्व- जलवायविक तत्व (सूर्य का प्रकाश एवं ऊर्जा, तापमान, वर्षा, आर्द्रता, वायु, वायुमण्डलीय गैसें आदि), स्थल जगत तत्त्व (उच्चावच, ढाल, पर्वतों की दिशा), जलीय स्रोत (सागर,

झील, नदी, भूमिगत जल), मिट्टियाँ, खनिज व शैल (धात्विक व अधात्विक खनिज, ऊर्जा स्रोत एवं चट्टानें), भौगोलिक स्थिति (तटीय, महाद्वीपीय, सागरीय, द्वीपीय, पर्वतपदीय) आदि अधिक प्रभावशाली है। परन्तु जैव तत्वों में वनस्पति, जीव-जन्तु व सूक्ष्म जीवाणु भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। पर्यावरण के अजैव व जैव तत्व अपनी विशेषता के अनुसार पर्यावरण का निर्माण करते हैं। वे आपस में गुँथे हुए हैं। इनमें होने वाले परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव पर्यावरण के विविध अंगों पर पड़ता है। उदाहरणार्थ जलवायु में परिवर्तन होने से स्थलाकृति का विकास, जल स्रोत, मिट्टी तथा जैव तत्व आदि सभी प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार वनस्पतियों में परिवर्तन का प्रभाव जलवायु और अन्य जीवों पर भी पड़ता है।

पर्यावरण चेतना में शिक्षक की भूमिकाः

पर्यावरण चेतना का प्रारम्भिक स्वरूप उसके उपयोग तक सीमित था लेकिन अब यह वर्तमान शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर पर्यावरण चेतना के विभिन्न रूपों के अध्ययन से सम्बन्धित है। यह विश्वव्यापी अभियान के रूप में सिद्ध किये जाने की संकल्पना का रूप ले रही है। पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने वाले कार्यक्रमों में समाज में अधिकांश वर्ग के लोगों को पर्यावरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के प्रति संवेदनशील बनाना प्रमुख अधिकार होना चाहिए। वास्तविकता यह है कि आबादी के अधिकतर पढ़े-लिखे लोग भी पर्यावरण को पूर्ण रूप से नहीं समझते हैं। वे पर्यावरण में पारिस्थितिकी असन्तुलन एवं प्रदूषण की परिस्थितियों से अपरिचित हैं तथा इनसे सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी नहीं रखते हैं। जो लोग इन समस्याओं से परिचित हैं, वे इनके स्वरूप एवं गम्भीरता को भली-भाँति समझने की कोशिश नहीं करते। अतः पर्यावरण चेतना का सम्बन्ध संवेदनशीलता से है। जिसमें पर्यावरण के प्रति हमारी धारणा अर्थात् पर्यावरण को किस रूप में देखते हैं, पर्यावरण के प्रति कितने सचेष्ट हैं? इसकी जानकारी ज्ञात होती है। यह व्यक्ति के पर्यावरण के प्रति मानसिक अनुभूति का परिणाम है। अतः यह स्थायी न होकर परिवर्तित होती रहती है जिसके लिए उचित मार्गदर्शन प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागृति एवं संवेदनशीलता के विकास से ही पर्यावरण चेतना का विकास किया जा सकता है जिसके लिए शिक्षक की अहम् भूमिका हो सकती है-

(1) पर्यावरण की आज की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए शिक्षक अपनी कक्षाओं द्वारा आयोजित शिक्षक के तहत् या पाठ्य सहगामी क्रियाओं के आयोजन की अवधि में पर्याप्त भूमिका निभा सकता है।

(2) पर्यावरण चेतना सम्बन्धी फिल्मों, निबन्धों, लेखों एवं रिपोर्टों को सूक्ष्मतापूर्वक जानने में वह छात्रों की सहायता कर सकता है।

(3) पर्यावरण चेतना में प्रदूषण एवं विकृतियों के रूपों को विश्लेषित एवं मूल्यांकन करने में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(4) पर्यावरण चेतना गाँवों एवं शहरों में अभिभावकों तथा सामान्य लोगों के मध्य जाकर शिक्षक पर्यावरण चेतना उत्पन्न कर सकता है।

(5) अपने पर्यावरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का गहन अध्ययन करने की दृष्टि से छात्र को विशेष सहायता अपने सम्बन्धित विषयों के शिक्षकों से हो सकती है।

(6) पर्यावरण चेतना में विशेष स्थानों के दृष्टान्तों का साक्षात्कार कराने में शिक्षक की अहम् भूमिका होती है।

भारत में पर्यावरण चेतना विकसित करने के लिए लगातार वृद्धि हुई है। अतः इसको एक जन आन्दोलन बनाना अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण विषय को उचित जानकारी शिक्षकों द्वारा दी जा सकती है जिसका निराकरण निरक्षर लोगों में कराया जा सकता है।

इस दिशा में सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों को तीव्र करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके साथ ही विषय को एक आन्दोलन के रूप में चलाया जाए। आधुनिक तकनीकी में दूरदर्शन जो जनसंचार का सशक्त साधन के रूप में उभरा है, उसके द्वारा पर्यावरण चेतना जागृति के लिए कार्यक्रम चलाये जायें तथा प्रचार-प्रसार के तरीकों में पर्यावरण की जागरूकता को ज्यादा महत्त्व दें जिससे यह जनमानस पर प्रभाव डाल सके एवं संवेदनशीलता विकसित की जा सके। अध्यापक शिक्षक का रूप अत्यधिक व्यापक होना चाहिए। पूर्व सेवा या सेवारत शिक्षकों को पर्यावरण चेतना एवं व्यावहारिकता का विकास किया जाये। औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को सम्मिलित किया जाये। संचार माध्यमों तथा दूरवर्ती शिक्षा का पर्यावरण शिक्षा

में महत्त्वपूर्ण योगदान है। दूरवर्ती शिक्षा का एक शिक्षा के विकल्प के रूप में विकास हुआ है, जो अपेक्षाकृत मितव्ययी वैकल्पिक पद्धति है। इस प्रणाली को शिक्षक प्रशिक्षण में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य पाठ्यक्रम के रूप में सम्मिलित किया जाये तथा सतत् शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्यावरण की पाठ्य-वस्तु के महत्त्व को भी स्थान दिया जाना चाहिए।

पर्यावरण जागरूकता मे शिक्षक की भूमिका:

शिक्षा जीवन के विकास का रास्ता दिखाती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य अपने प्रति समाज, राष्ट्र और पर्यावरण के प्रति, परिवेश के प्रति बोध प्राप्त करता है। मानव जीवन के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा के द्वारा पर्यावरण जागरूकता का प्रसार सरलता और प्रभावी तरीके से किया जा सकता है।

पर्यावरण चेतना का प्रारम्भिक स्वरूप उसके उपयोग तक सीमित था किन्तु अब यह बात नहीं है तथा विश्व स्तर पर यह अध्ययन का विषय बना हुआ है। पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने वाले कार्यक्रमों में समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को अपने पर्यावरण के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों के प्रति संवेदनशील बनाना मुख्य उद्देश्य है। पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागृति एवं संवेदनशीलता के विकास से ही पर्यावरण एवं पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागृति एवं संवेदनशीलता के विकास से ही पर्यावरण चेतना का विकास होता है। निश्चय ही यह पर्यावरण की समुचित शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा द्वारा पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम को सरकार ने विभिन्न स्तर पर शुरू किया है। भारत में आजादी के बाद से प्रौढ़ शिक्षा या सामाजिक शिक्षा जैसे कार्यक्रमों को आरम्भ किया गया। पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रम को निम्न स्तर पर संचालित किया गया है।

पर्यावरण जागरूकता सतत् शिक्षा द्वारा भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँव में रहती है वहाँ शिक्षा की सुविधाएँ नहीं हैं। सरकार की प्रतिबद्धता और प्रयासों के बावजूद बहुत से लोग शिक्षा से आज भी वंचित हैं। यद्यपि संविधान में सभी को शिक्षा का अधिकार दिया गया है। इसके लिए अनेक तरह के कार्यक्रम यथा प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, दूरवर्ती शिक्षा, औपचारिक शिक्षा को आरम्भ किया गया है। इन प्रारूपों के अपने-अपने कार्यक्रम तथा लक्ष्य ग्रुप हैं। प्रौढ़ शिक्षा में सभी निरक्षर स्त्री पुरुष तथा बच्चों को साक्षर बनाना है। वैसे शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा कभी पूर्ण नहीं होती। उसकी प्रवृत्ति गतिशीलता की है। प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान, आविष्कार एवं विकास होते रहते हैं। इसलिए देश की प्रगति और समृद्धि के लिए आवश्यक है कि देश के नागरिकों को अपने क्षेत्र का ज्ञान हो। इसके लिए सतत् शिक्षा बहुत उपयोगी साबित हुई है। सतत् शिक्षा के कार्यक्रमों द्वारा व्यक्तियों को इस योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है कि वे अपने क्षेत्र, व्यवसाय एवं उद्योग में आधुनिकतम ज्ञान प्राप्त करते रहें और समुचित कौशलों, योग्यताओं तथा अभिवृत्तियों का निरन्तर विकास होता रहे।

पर्यावरण जागरूकता स्कूली शिक्षा द्वारा- स्कूल शिक्षा द्वारा बच्चों को पर्यावरण का बोध प्रारम्भिक स्तर से कराया जाता है। स्कूली बच्चों को साक्षर और योग्य बनाने के लिए दी जाने वाली शिक्षा के साथ-ही-साथ पर्यावरण की शिक्षा भी दी जाती है जिससे वे अपने विषय के बोध के साथ-साथ पर्यावरण के उससे सम्बन्ध को जान सकें तथा अपने विषय क्षेत्र में पर्यावरणीय मूल्यों से परिचित हो सकें।

पर्यावरण जागरूकता सामाजिक वानिकी द्वारा- पर्यावरण जागरूकता के लिए सामूहिक प्रयास किया जाना आवश्यक होता है। इसके लिए समाज के सभी समुदाय को उसकी जिम्मेदारी का अहसास कराना तथा उसे पर्यावरण के महत्त्व को समझाना बहुत आवश्यक होता है। सामाजिक वानिकी एक ऐसा प्रत्यय है जिसके द्वारा समाज के जुड़ने के साथ-साथ सामुदायिक जिम्मेदारी का अहसास होता है तथा पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण भी होता है। अतः सामाजिक वानिकी को पर्यावरणीय जागरूकता का एक महत्त्वपूर्ण घटक माना जा सकता है।

पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार मे शिक्षक की भूमिका : पर्यावरण संरक्षण एवं सुधार के अभियान को व्यापक तौर पर चलाने के लिए पूरे समाज की जिम्मेदारी है किन्तु शिक्षक समाज का एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वयुक्त सदस्य है। इसलिए इस लक्ष्य की प्राप्ति में उसकी भूमिका विशेष रूप से मानी गयी है। शिक्षक का सम्बन्ध विभिन्न आयु वर्ग के छात्रों से होता है। एक पथ-प्रदर्शक की भाँति वह समाज की विविध समस्याओं से उन्हें अवगत कराकर उनका नवीन एवं सफल समाधान ढूँढ़ने हेतु छात्रों को प्रेरित करता है। आज के समय में 'पर्यावरण प्रदूषण' एक ज्वलन्त समस्या है जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में पूरे विश्व को उसके भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में विकृति लाकर प्रभावित कर रही है। अतः समाज के बुद्धिजीवी वर्ग से शिक्षक इस समस्या विशेष के

प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में विशेष भूमिका निभा सकता है क्योंकि वह समाज की समस्याओं का विद्यालय जैसी प्रयोगशाला में संशोधन करने वाला एक संवेदनशील एवं जिम्मेदार नागरिक होता है जो अपने छात्रों में अपने वातावरण या पर्यावरण, भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक के प्रति चेतना विकसित करने के लिए विविध कार्यक्रमों का आयोजन कर सकता है।

(1) पाठ्य सहगामी क्रियाओं के आयोजन द्वारा पर्यावरण चेतना विकसित करने हेतु पर्याप्त भूमिका निभाई जा सकती है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत छात्रों द्वारा निम्नांकित क्रियाएँ करवाई जा सकती हैं जिससे पर्यावरण में सुधार हो सकेगा। शिक्षक स्वयं अपनी उपस्थिति में उन्हें उत्प्रेरित कर भौतिक पर्यावरण की वर्तमान स्थिति को सुधारने में मदद कर सकता है क्योंकि शिक्षक विद्यालय में विभिन्न विषयों का ज्ञान विद्यार्थियों को देता है। इसलिए उस विषय के साथ विभिन्न तरह के पर्यावरण की जानकारी सहज ढंग से दे सकता है।

1. वृक्षारोपण, हरी-भरी वाटिकाओं का संरक्षण करना तथा कराना।
2. पार्कों एवं जलाशयों की सफाई करवाना तथा स्वच्छता के प्रति जन साधारण को जागरूक बनाने हेतु स्थान-स्थान पर छात्रों द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए संदेश पट्टिकाओं को लगवाना।
3. अपशिष्ट पदार्थों, कूड़ों इत्यादि को उपयुक्त स्थान पर रखने की आदत विकसित करना प्राय: शिक्षित समाज में आज भी ये कमियाँ दिखायी देती हैं।
4. छात्रों को पर्यावरण को स्वच्छ रखने के प्रति जागरूक बनाने की शिक्षा देना साथ ही क्रियात्मक रूप में गन्दी बस्तियों एवं गाँवों में उन्हें ले जाकर ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करवाना जिससे जन सामान्य पर्यावरण सुधार के प्रति सजग हो सके और इसे सुधारने के लिए सभी वर्ग के लोगों का सहयोग ले सके।

(2) पर्यावरण के तीनों स्वरूपों- भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक में उत्पन्न प्रदूषण व विकृतियों के स्वरूपों को विश्लेषित एवं मूल्यांकित करने में भी शिक्षक की सहायता महत्त्वपूर्ण हो सकती है।

(3) पर्यावरण सम्बन्धी फिल्मों, निबन्धों, लेखों एवं रिपोर्टों को सूचित करने तथा पूर्व निर्मित सामग्रियों में अपेक्षित सुधार लाकर उन्हें सूक्ष्म रूप से समझने में छात्रों की सहायता कर सकता है।

(4) पर्यावरण चेतना विकसित करने में विशेष भूमिका- पर्यावरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों को गहराई में अध्ययन करने की दृष्टि से छात्रों के प्रति एवं विशेष रूप से एक विशेष प्रतिनिधि के रूप में शिक्षक विशेष भूमिका निभा सकता है। भौतिक, सामाजिक एवं समाज के मनोवैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित शिक्षक छात्रों को इन क्षेत्रों से सम्बन्धित नवीन जानकारियों से अवगत कराकर पर्यावरण सुधार के प्रति क्रान्ति ला सकता है।

(अ) शिक्षक वैज्ञानिक की भाँति समस्याओं की पहचान कराकर उनके सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों को अपने छात्रों के समक्ष विश्लेषित कर सकता है तथा प्रत्येक तथ्य की तर्कपूर्ण व्याख्या कर सकता है जिससे छात्रों का मन मस्तिष्क प्रत्यक्ष एवं सक्रिय रूप में प्रभावित हो सकेगा।

(ब) चूँकि शिक्षक समाज का प्रतिनिधि सदस्य है। शिक्षक का महत्त्वपूर्ण दायित्व उसके कन्धों पर है। उसका प्रत्यक्ष सम्पर्क सामाजिक क्षेत्र से होता है। अत: सामाजिक पर्यावरण में उत्पन्न भयावह "स्थिति, विकृति को कम करने में वह विशेष भूमिका निभा सकता है क्योंकि वह समाज का एक जिम्मेदार एवं संवेदनशील व्यक्ति विशेष होता है।

(स) शिक्षक मनोवैज्ञानिक की भाँति छात्रों की संवेदना, कुण्ठा के प्रति जागरूक होकर एक मित्र की भाँति उनकी विक्षिप्तताओं को समझकर उपयुक्त संसाधन ढूँढ़ कर सामान्य स्थिति में ला सकता है तथा उनमें प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण का विकास कर सकता है जिससे वे अपनी कुण्ठाओं को समाज पर आरोपित न करें वरन् विद्यालय में ही उसका अशोधन किया जाए एवं एक स्वस्थ मानसिक स्थिति वाला जिम्मेदार नागरिक का सृजन कर सकें।

(5) पर्यटन द्वारा शिक्षा - छात्रों को भ्रमण एवं पर्यटन के माध्यम से विशिष्ट स्थलों एवं आत्म-विकृतियों तथा प्रदूषणों के दृष्टान्त प्रस्तुत कराकर शिक्षक विशेष भूमिका निभा सकता है। ऐसे स्थलों पर वह प्रदूषण द्वारा पड़े प्रभावों का निरीक्षण करने में अपने अनुभवों द्वारा छात्रों की सहायता कर सकता है।

(6) सम्पर्क कार्यक्रमों के आयोजन में विशेष भूमिका- शिक्षक प्रसार शिक्षा के माध्यम से एक कार्यकर्ता की भाँति गाँवों, शहरों में अभिभावकों तथा सामान्य लोगों के बीच जाकर पर्यावरण प्रदूषण एवं उनके दुष्परिणामों की जानकारी दे सकता है।

आयाम का उद्देश्य जन-जन में हलचल पैदा करना, किसी निश्चित लक्ष्य के प्रति कार्य करने के लिए प्रेरित करना होना आवश्यक है।

राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम मे शिक्षक की भूमिका:

राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने पर्यावरणीय जागरूकता के लिए शिक्षा को माध्यम बनाया है। 1986 में पर्यावरण शिक्षा केन्द्र अहमदाबाद ने सम्पूर्ण देश में पर्यावरणीय जागरूकता अभियान चलाया। एक वर्ष की अवधि में सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में 45 केन्द्रों पर लगभग 6 हजार शिक्षकों को प्रशिक्षण देकर तथा विभिन्न प्रदेशों की सरकारों के सहयोग से जिला, ब्लाक, तहसील स्तर, गाँव स्तर पर पर्यावरण जागरूकता के लिए कार्यक्रम चलाया गया। पर्यावरण चेतना एवं जागरूकता का यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने वाला देश का पहला ऐसा कार्यक्रम था जिसमें शिक्षा के माध्यम से कार्य किया गया और रोचक तरीके से लोगों को जागरूक बनाया गया।

भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 1986 में एक राष्ट्रीय चेतना कार्यक्रम चलाया गया जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय चेतना जागृत करना था। इसी अभियान के क्रम में प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय पर्यावरण विभाग ने राष्ट्रीय पर्यावरण कार्यक्रम घोषित किये तथा 19 नवम्बर से 18 दिसम्बर तक एक माह को पर्यावरण माह का नाम दिया गया। यह चेतना का कार्यक्रम राष्ट्रीय पर्यावरण माह इस अवधि में प्रत्येक वर्ष पूरे देश में मनाया जाता है। इस अभियान में छात्रों, युवाओं, अध्यापकों, महिलाओं, पुरुषों, जनजातियों, प्रशासकों, व्यवसायियों तथा औद्योगिक श्रमिकों, सशस्त्र सेनाओं एवं जनसामान्य को सम्मिलित किया जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर चलाये जाने वाले पर्यावरण के माह के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में पर्यावरण के प्रति एक लहर पैदा कर दी गयी तथा शिक्षकों में पर्यावरण चेतना जागृत कर यह कार्यक्रम देश में प्रभावी ढंग से संचालित किया जा रहा है। इसके अलावा पर्यावरण विभाग अपने उत्कृष्ट केन्द्रों के माध्यम से पूरे देश में पर्यावरण माह के लिए विस्तृत कार्यक्रम भी प्रस्तुत करता है। संचार माध्यम तथा स्वयंसेवी संस्थाएँ भी इसमें उल्लेखनीय भूमिका निभाती हैं। राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण चेतना जागृत करने हेतु बहुत सारे पुरस्कार आदि भारत में पर्यावरण के प्रति चेतना जागृत करने में देश भर में विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

पर्यावरण की विकृति से अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वन तथा वन्य जीवों की कमी, खनिजों की कमी, ईंधन का अभाव, भोजन तथा आवास की अपर्याप्तता, बाढ़-सूखा आदि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याएँ आदि प्रमुख हैं। ये सभी मानव जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व हैं। अतः इनकी विकृति से जीवन पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अनेक प्रकार के रोगों, विसंगतियों, मारामारी आदि इसी के परिणाम हैं। प्रकृति ने सभी जीवों के लिए सभी चीजें समान रूप से दी हैं। पर मनुष्य की विकासवादी गति से पर्यावरण की वितरण व्यवस्था के प्रति असन्तुलन का खतरा पैदा कर दिया जिससे पर्यावरण की स्थिति बिगड़ गई। ऐसा पर्यावरण के प्रति जागरूकता के अभाव के कारण अधिक हुआ। पर्यावरणीय खतरों से मनुष्य अब सावधान होने लगा है तथा पर्यावरण के प्रति उसमें जागरूकता का भावबोध बढ़ने लगा है। पर्यावरण के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे प्रयासों के अतिरिक्त राज्य सरकारों तथा समाज ने भी अपनी जिम्मेदारी महसूस करते हुए इस दिशा में कई कदम उठाये हैं। राज्य सरकार ने 'पर्यावरण कल्याण कार्यक्रम' चला रखे हैं। विभिन्न उद्योगों से पर्यावरण को क्षति कम पहुँचे इस हेतु राज्य सरकारों ने राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन किया हुआ है। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान के अन्तर्गत एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाया है जिसे 1986 से चलाया जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता कार्यक्रम मे शिक्षक की भूमिका:

अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों, जिनमें संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, प्रकृति एवं संसाधनों के संरक्षण का अन्तर राष्ट्रीय संघ और अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिषद् आदि के सहयोग से 1968 में पेरिस में आयोजित जीवनमण्डल कांफ्रेंस में पर्यावरण के बारे में प्रमुख रूप से वैज्ञानिकों ने अपनी चिन्ता व्यक्त की। सन् 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र संघ की पहल पर 'मानव पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में पर्यावरण की समस्या को विश्व स्तर पर राजनीतिक मुद्दा बनाया गया और यह महसूस किया गया कि पर्यावरण चेतना अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित करने के लिए सघन प्रयास किया जाना चाहिए। भारत सरकार ने भी विश्व की चिन्ता से सहमति जताते हुए एक अलग पर्यावरण विभाग की स्थापना की।

'मानव पर्यावरण' पर हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 26 सूत्रीय कार्यक्रम तय हुआ जिसमें पर्यावरणीय शिक्षा एवं जागरूकता की आवश्यकता पर सम्भावित कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की गयी और पूरे विश्व में 5 जून को पर्यावरण चेतना के लिए 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाये जाने की घोषणा की गई। इस सम्मेलन का पूरी दुनिया पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके बाद दुनिया के विभिन्न कोनों में पर्यावरण के प्रति चिन्ता और इसके लिए जागरूकता कार्यक्रम प्रारम्भ हुए। पर्यावरण को शिक्षा के माध्यम से समझाने के लिए पहल हुई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पर्यावरण उन्मुखी बनाने पर बल दिया गया। पर्यावरण चेतना समाज के प्रत्येक वर्ग तथा प्रत्येक स्तर के लोगों तक पहुँचाने की दिशा में कारगर कदम उठाए गये पर्यावरण शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग बनाने पर भी बल दिया गया जिससे पूरी शैक्षिक प्रक्रिया में समन्वय लाया जा सके। पर्यावरण के प्रति चेतना करने में तथा उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने हेतु पर्यावरण शिक्षा को शैक्षिक कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया, इससे पर्यावरण शिक्षा को काफी बढ़ावा मिला।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता के लिए पूरे विश्व में 22 अप्रैल को 'पृथ्वी दिवस' घोषित किया गया और पृथ्वी को किसी भी प्रकार की विकृति से बचाने के लिए जनजागरूकता अभियान शुरू किया गया। 16 दिसम्बर को ओजोन दिवस घोषित किया गया। पूरी दुनिया में ओजोन परत की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करने की दिशा में यह सकारात्मक पहल है। इस दिन पूरी दुनिया में ओजोन परत के खतरे से जनसामान्य को आगाह करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। इसी क्रम में अन्तर्राष्ट्रीय जनजागरूकता के लिए 22 मार्च को 'विश्व जल दिवस' का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है। इस दिन जीवन में जल के महत्त्व और उसके संरक्षण के बारे में लोगों को बताया जाता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता के लिए अनेक कार्यक्रम बनाये गये हैं और प्रतिवर्ष कुछ महत्त्वपूर्ण दिनों को पर्यावरण चिन्ता और चेतना से जोड़कर मनाया जाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा के कार्य सुचारू रूप से पूरा करने, पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के बारे में जन-जागरण लाने तथा उनसे उत्पन्न मानवीय संकटों को समझने में हमारे शिक्षकों की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। शिक्षक अपने प्रभाव से प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक पर्यावरण सुधार में क्रान्ति ला सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. तोमर, ए. (2017), पर्यावरण शिक्षा नई दिल्ली: काल्पेज प्रकाशन
2. मिश्रा, के. (2012), महेश्वर और मंडलेश्वर के वितरक छात्रों, जिला-खार्गोन (एम.पी) के बीच पर्यावरण जागरूकता, अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ वैज्ञानिक और अनुसंधान प्रकाशन, 2 (11), 01-3
3. कुमार, एन.पी. (2013), आचार्य नागार्जुन विश्वविद्यालय में शिक्षण संकाय के बीच पर्यावरण शिक्षा के बारे में जागरूकता पर एक मामला अध्ययन, मास्टर शोध प्रबंध इग्नू, नई दिल्ली
4. गोपीनाथ, जी.(2014), केरल राज्य के जिले में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच पर्यावरण जागरूकता पर एक अध्ययन, अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ एजुकेशन और मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, 3 (2), 54-57
5. बार्मन, एन. (2015), माध्यमिक स्तर के छात्रों के बीच पर्यावरण जागरूकता का एक तुलनात्मक अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ साइंस, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में अभिनव अनुसंधान, 4 (3), 7575-7579
6. सुंदर, एस. (2015), बी.एड के पर्यावरण जागरूकता का एक तुलनात्मक अध्ययन कॉलेज के छात्रों के साथ उनके सेक्स और उनकी आत्म-अवधारणा के संबंध में सामाजिक विज्ञान और मानविकी में एजीयू इंटरनेशनल जर्नल ऑफिस, 1
7. बर्डन, एस. (2017), असम के जिले में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के बीच पर्यावरण जागरूकता पर एक अध्ययन, अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा और अनुसंधान के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 2 (2), 17-19।
8. लारिजनी, एम. (2017), उच्च प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के बीच पर्यावरण जागरूकता का आकलन जर्नल ऑफ इक्वियन ऑफ इक्वोलॉजी, 31 (2), 121-124
9. पूनम (2017), रोहतक में माध्यमिक स्तर के छात्रों के बीच पर्यावरण जागरूकता का एक तुलनात्मक अध्ययन भारतीय और भारत के शिक्षा और अनुसंधान, भारत (आईआई), 39-41
10. शर्मा, एन.के. (2006), लिंग, ग्रामीण शहरी पृष्ठभूमि और शैक्षणिक धाराओं के संबंध में कॉलेज के छात्रों के पर्यावरण जागरूकता पर एक अध्ययन, शिक्षा में नए क्षितिज के ऑनलाइन जर्नल, 4 (2), 15-20

11. अस्थना, एस. और द्विवेदी, डी. के. (2015), बी.एड. के बीच पर्यावरण जागरूकता का एक अध्ययन, देहरादून जिले के उत्तमखंद अंतर्राष्ट्रीय जर्नल ऑफ वैज्ञानिक और अभिनव अनुसंधान, 3 (1), 75-79
12. गुप्ता, एन. (2017), शहरी और ग्रामीण स्कूल के छात्रों के पर्यावरण जागरूकता इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग डेवलपमेंट एंड रिसर्च, 5 (1), 128-131
13. कपिल, एच. के. (2007), अनुसंधान विधियां, आगराः हरप्रसाद भार्गव।
14. गुप्ता, एस.पी. (2005), साख्यिकीय विधियां, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन।
15. सारस्वत, मालती (1979), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊः आलोक प्रकाशन।
16. राय, पारसनाथ (2006), शैक्षिक अनुसंधान, आगराः लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।

पूर्व माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिरुचि में समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन

(Study of the Influence of Society and Culture in the Educational Interest of Students Studying at Pre Secondary Level)

संजय कुमार वर्मा

(शोध छात्र) लाइफ लांग लर्निंग विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्यप्रदेश, भारत

सारांश (Abstract):

प्रस्तुत शोध, पूर्व माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिरुचि में समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन है, उद्देश्य में कला वर्ग और विज्ञान वर्ग के माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक अभिरुचि में समाज और संस्कृति की भूमिका का अध्ययन किया गया है प्रस्तुत समस्या के आधार पर शोध के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जनपद के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है। अध्ययन में पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समाज और संस्कृति एवं शैक्षिक अभिरुचि में तुलनात्मक अध्ययन जानने के लिए उद्देश्यपरक न्याय दर्शन विधि का उपयोग किया गया है। इस चयन के लिए अध्ययनरत् पूर्व माध्यमिक विद्यालयों का चयन कर कक्षा 11 के कला एवं विज्ञान वर्ग से 200 छात्र एवं छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है। डॉ. करुणा शंकर मिश्र द्वारा निर्मित समाज एवं संस्कृति उपकरण का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण के लिए साख्यिकी विधि के रूप में मानक विचलन, मध्यमान, टी अनुपात का प्रयोग किया गया है। संस्कृति सामाजिक अंत:क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं सप्रथाएँ समाविष्ट होती हैं। संस्कृति भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के उपयुक्त मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और सम्यक् चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है। यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियंत्रण करती है।

प्रमुख शब्दावली: पूर्व माध्यमिक स्तर, कला वर्ग के छात्र एवं छात्राएं, विज्ञान वर्ग के छात्र एवं छात्राएं, शैक्षिक अभिरुचि, समाज, संस्कृति आदि।

प्रस्तावना:

कोई भी बालक जब जन्म लेता है तो वह परिवार के सदस्य के रूप में उसका लालन-पालन किया जाने लगता है। परिवार में उसका विकास होता है। वह असहाय रहता है। वह परिवार से कुछ सीखने का प्रयास करता है और सीखता भी है। उसकी प्रथम शिक्षिका उसकी मां होती है। आगे चलकर वह समाज के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। वह समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं संस्कृति के कार्यों को भलीभांति समझने लगता है। जिसमें उसके परिवार की अहम भूमिका होती है। जिस परिवार में बच्चे को घर में समय-समय पर स्नेह मिलता रहता है उस घर के बालक का भावात्मक विकास भी अच्छा होता है। समाज के रीति-रिवाजों में उसकी

भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है वह शैक्षिक अभिरुचि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगता है। संस्कृति सामाजिक अंत: क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं सप्रथाएँ समाविष्ट होती हैं। संस्कृति भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के उपयुक्त मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और सम्यक् चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है। यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियंत्रण करती है। समाज एवं संस्कृति परिवार के लिए एक महत्वपूर्ण कारक होते हैं जिसमें बालक का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास होता है। सीखने सिखाने की सब प्रयोजन युक्त सतत प्रक्रिया ही शिक्षा कहलाती है। शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक सांस्कृतिक, शक्तियों का विकास करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने समस्याओं का समाधान करता है। जीवन को आनंदमय बनाता है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान में वृद्धि के द्वारा व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना है। जिसके फलस्वरूप बालक को जीवन में सफलता मिलती है। शिक्षा की प्रक्रिया के अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षा उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है और शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न शिक्षण प्रक्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इन्हीं शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति ही शैक्षिक अभिरुचि कहलाती है। शैक्षिक अभिरुचि को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। जिसके कारण बालकों की शैक्षिक अभिरुचि भिन्न-भिन्न होती है। किसी की कम होती है और किसी की अधिक होती है। यह ज्ञात करने के लिए अभिरुचि के कारणों को घटाया जा सकता है। प्रभावित करने वाले कारकों में समाज एवं संस्कृति एक महत्वपूर्ण कारक होते हैं। समाज और संस्कृति पर प्रभाव खो जाने पर ही समाज के अधिक अनुकूल बनाया जा सकता है। बालक की सूची को समाज के अनुकूल बढ़ाया भी जा सकता है और शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त हो जाने पर ही समाज के अधिक अनुकूल वालों को बनाया जा सकता है। बालक को समाज के अनुकूल बढ़ाया भी जा सकता है और शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हमें उसके शैक्षिक अभिरुचि का समाधान करना चाहिए। बालक समाज और संस्कृत के प्रभाव के फलस्वरूप ही अपनी शैक्षिक अभिरुचि को बदल सकता है और उसके ऊपर प्रभाव अधिक डाल सकता है जो कि एक महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

साहित्यिक स्रोत:

संबंधित शोध के साहित्य के अध्ययन के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अग्रवाल 1986, एस के पांडे 1992, विल एक्ट एस ऑल सन 1993, अग्रवाल और कपूर 1998, असरानी एवं अन्य 2005, आक्टन तथा अन्य 2007, बाजपेई 2009, आनंद सरोज 2010, श्रीवास्तव, सरोज कुमार 2011, में समाज और संस्कृत में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव शैक्षिक विषयों एवं सामाजिक बौद्धिक स्तर पर माध्यमिक विद्यालय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक अभिरुचि था। विद्यालयों में शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन किया एवं शैक्षिक उपलब्धि और योग्यता का अध्ययन किया गया है। परंतु इनके द्वारा छात्रों की शैक्षिक अभिरुचि पर समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इन सभी साधनों की गंभीरता पूर्वक अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि बहुत कम शोधकर्ताओं ने अभी तक समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन किया है। क्या, कैसी, कितना, प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक का उनकी शैक्षिक अभिरुचि पर क्या प्रभाव पड़ता है। यह सोच शोधकर्ता के जिज्ञासा का विषय है, इस जिज्ञासा की संतुष्टि के लिए ही शोधकर्ता ने इस समस्या का चयन किया है।

शोध का शीर्षक:

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक निम्न है "पूर्व माध्यमिक शिक्षा स्तर पर अध्यनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक अभिरुचि में समाज और संस्कृति के प्रभाव का अध्ययन" है।

शोध का उद्देश्य:

शोध का उद्देश्य निम्न है।

1. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना
2. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना
3. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना
4. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन करना

परिकल्पना:

शोध की निम्नलिखित परिकल्पना है।

1. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य सार्थक अन्तर है।
2. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य सार्थक अन्तर है।
3. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य सार्थक अन्तर है।
4. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य सार्थक अन्तर है।

शोध विधि:

प्रस्तुत समस्या के आधार पर शोधकर्ता द्वारा अनुसंधान के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श:

प्रस्तुत अध्ययन में सुल्तानपुर जनपद के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में अध्यनरत विद्यार्थियों को जनसंख्या माना गया है। अध्ययन में पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की समाज व संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के प्रभाव को जानने के लिए उद्देश्यपरक न्यादर्शन विधि का उपयोग किया गया है। इसके लिए पूर्व माध्यमिक स्तर पर कक्षा 11 के 200 छात्र एवं छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि के द्वारा किया गया है।

उपकरण:

उपकरण के रूप में डॉ. करुणा शंकर मिश्र द्वारा निर्मित समाज एवं संस्कृत प्रश्नावली एवं शैक्षिक अभिरुचि के लिए डॉ. काजी गौस आलम एवं डॉ राम जी श्रीवास्तव द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधि:

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा आँकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी परीक्षण आदि सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तो का विश्लेषण एवं व्याख्या:

पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारणी संख्या, 01: पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का गुणांक:

[redacted]	[redacted] (N)	df
[redacted]	50	0.327
[redacted]	50	0.327

व्याख्या:

तालिका संख्या एक के अवलोकन से स्पष्ट है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज और संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव की गणना की गई है। जिसमें आर का मान 0.327 प्राप्त हुआ जो कि 48 स्वतंत्राश (df) के लिए .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 0.273 से अधिक है अर्थात् सार्थक अन्तर है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है।

अत: कहा जा सकता है कि पूर्व माध्यमिक शिक्षा स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज व संस्कृति का प्रभाव शैक्षिक अभिरूचि पर पड़ता है। अर्थात दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।

पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारणी संख्या, 02: पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का गुणांक:

[redacted]	[redacted] (N)	df
[redacted]	50	0.359
[redacted]	50	0.359

व्याख्या:

तालिका संख्या दो के अवलोकन से स्पष्ट है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों के समाज और संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव की गणना की गई है। जिसमें आर का मान 0.359 प्राप्त हुआ जो कि 48 स्वतंत्राश (df) के लिए .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 0.273 से अधिक है अर्थात् अन्तर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: कहा जा सकता है कि पूर्व माध्यमिक शिक्षा स्तर के कला वर्ग के छात्राओं के समाज व संस्कृति का प्रभाव शैक्षिक अभिरूचि पर पड़ता है। अर्थात दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।

पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारणी संख्या, 03: पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का गुणांक:

[redacted]	[redacted] (N)	df
[redacted]	50	0.280
[redacted]	50	0.280

व्याख्या:

तालिका संख्या तीन के अवलोकन से स्पष्ट है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज और संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव की गणना की गई है। जिसमें आर का मान 0.280 प्राप्त हुआ जो कि 48 स्वतंत्राश (df) के लिए .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 0.273 से अधिक है अर्थात् अन्तर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: कहा जा सकता है कि पूर्व माध्यमिक शिक्षा स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज व संस्कृति का प्रभाव शैक्षिक अभिरूचि पर पड़ता है। अर्थात दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।

पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का विश्लेषण एवं व्याख्या:

सारणी संख्या, 04: पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं के समाज एवं संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव का गुणांक:

[redacted]	[redacted] (N)	df
[redacted]	50	0.290
[redacted]	50	0.290

व्याख्या:

तालिका संख्या एक के अवलोकन से स्पष्ट है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों के समाज और संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि के मध्य प्रभाव की गणना की गई है। जिसमें आर का मान 0.290 प्राप्त हुआ जो कि 48 स्वतंत्राश (df) के लिए .05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 0.273 से अधिक है अर्थात् अन्तर सार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। अत: कहा जा सकता है कि पूर्व माध्यमिक शिक्षा स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं के समाज व संस्कृति का प्रभाव शैक्षिक अभिरूचि पर पड़ता है। अर्थात दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

1. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्रों पर समाज व संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का प्रभाव पड़ता है।
2. पूर्व माध्यमिक स्तर के कला वर्ग के छात्राओं पर समाज व संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का प्रभाव पड़ता है।
3. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्रों पर समाज व संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का प्रभाव पड़ता है।
4. पूर्व माध्यमिक स्तर के विज्ञान वर्ग के छात्राओं पर समाज व संस्कृति और शैक्षिक अभिरुचि का प्रभाव पड़ता है।

सन्दर्भ सूची:

1. अग्रवाल, सी.(2003),भारतीय नारी: विविध आयाम, दिल्ली: इंडियन पब्लिशर्स।
2. कपिल, एच. के. (2007), अनुसंधान विधियां, आगरा: हरप्रसाद भार्गव।
3. कुमार, आर. (2005), नारी के बदलते आयाम, नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस।
4. गुप्ता, एस.पी. (2005), साख्यिकीय विधियां, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
5. सारस्वत, मालती (1979), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, लखनऊ: आलोक प्रकाशन।
6. राजा रमन, इंदिरा (2007), 11वीं योजना में महिलाएं, योजना 51(2),।
7. राय, पारसनाथ (2006), शैक्षिक अनुसंधान, आगरा: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल।
8. सरीन एवं स्टीन (2005), शैक्षिक अनुसंधान विधियां, विनोद पुस्तक मंदिर।
9. पाठक, पी.डी.,(2005), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर।

10.Kiran, U. V.A comparative study of personalityAmong school goingAnd non-school goingAdolescents.Asian Journal of Home Science, 7(2), (2012),

12. Lyn Crage “Parental education, time in paid workAnd time with children “British Journal of Sociology 57(4) © London School of EconomicsAnd Political Science (2006),
13. Hangal, S.AndAminabhavi, V.A Self- Concept, Emotional MaturityAndAchievement Motivation of theAdolescent Children of Employed MothersAnd Homemakers. Journal of the IndianAcademy ofApplied Psychology, 33(1), (2007),
14. Hock, E; McBride, S; &Gnezda, M. Maternal separationAnxiety: mother-mother infant separation from the maternal perspective. Child development, 60, (2004),
15. Ahsan, D. M., & Kumar, D.A.A study of theAcademicAchievement of children belonging to workingAnd non-working mothers. International Journal of EducationAndAllied Sciences, 5(2), (2013),

मगरमुंहा' उपन्यास में आंतरिक व बाह्य जगत के संघर्ष की अनेक परतों के मध्य व्यक्ति और समाज के संबंधों की पड़ताल

डॉ० बिभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, वी एस जे महाविद्यालय, राजनगर
(ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा)

उपन्यास का शीर्षक 'मगरमुँहा' पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है, और इस जिज्ञासा का समाधान उपन्यास पढ़ने के पश्चात ही होता है। उपन्यास में व्यक्ति की आंतरिक शक्ति, इच्छाशक्ति एवं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रक्षालन द्वारा बेहतर व्यक्ति एवं समाज की नयी संरचना का स्वप्न और उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। एक व्यक्ति से आरंभ होकर यह प्रयास मुहल्ले, नगर और देश की बेहतरी के लिए है। आदर्श और यथार्थ तथा परंपरा और आधुनिकता के बीच का संतुलन ही जीवन की निरंतरता को समुचित प्रवाह प्रदान करता है। शिखर का चरित्र आदर्श की चरमसीमा का स्पर्श करता है, तो देवव्रत घोर यथार्थवादी है। शिखर ने उज्जैन प्रथम अभियान की शुरुआत की तो देवव्रत ने उसे नित नयी ऊंचाई की ओर अग्रसर किया। इस अभियान का मूल उद्देश्य है, समस्त मानव का कल्याण, जिसकी शुरुआत अपने मुहल्ले से होती है। अधिकतर पात्र आदर्शवादी हैं, विशेष रूप से शिखर। इस आदर्शवाद को कायम रखने हेतु उसे घोर कष्ट सहन करना पड़ता है। गायत्री के प्रति उसके मन में जो प्रेम था, उसे वह अपने आदर्शों के कारण झुठलाना चाहता था, और इस प्रयास में लगातार पलायन कर रहा था। इसी पलायन के क्रम में वह अपने मित्र श्याम कलेवर दुबे के घर, फिर किराए के घर, सेवाधाम आश्रम, पंचक्रोशी यात्रा कहाँ-कहाँ नहीं भटकता है। पंचक्रोशी यात्रा के दौरान वह अनुभव करता है कि उसे हेलुशिनेशन (मतिभ्रम) की बीमारी लग गयी है, साथ ही नींद में चलने की बीमारी भी। बचपन में उसे सरो जीजी ने बताया था कि इस मुहल्ले के मुँह पर बाढ़ में कभी मगर आ गया था, इसीलिए इसका नाम 'मगरमुँहा' पड़ा। मगरमुँहा से वह इस कदर भाग रहा था कि उसकी स्थिति मानसिक विक्षिप्त के समान हो गयी थी।। स्वयं से जूझते हुए उसकी मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि उसे हर तरफ मगरमच्छ दिखाई पड़ता है।

उज्जैन नगरी वास्तव में प्राचीन भारतीय सभ्यता, मान्यता, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, और सामाजिक संरचना की जीवंत मिसाल है। इस पौराणिक और पुरा ऐतिहासिक नगरी उज्जैन को इस उपन्यास के केंद्र में रखा गया है। इसी प्राचीन नगरी का प्राचीन मुहल्ला है- 'मगरमुँहा'। उपन्यास के कथानक का आरंभ इसी 'मगरमुँहा' मुहल्ले से होता है।

मुहल्ला, शहर, और देश के साथ व्यक्ति के जो अनुभव होते हैं, वो ताउम्र उसे अपनी मिट्टी से जोड़े रखते हैं। यदि एक तरफ व्यक्ति मुहल्ले, शहर और देश में रहता है, तो दूसरी तरफ मुहल्ला, शहर और देश भी उसके भीतर रहता है। स्थान विशेष के साथ मनुष्य का गहरा संबंध होता है। प्राय: उपन्यासों के फलक को बाह्यजगत और अंतर्जगत के दायरों में विभाजित कर लिखने और विश्लेषित करने की कठोर परंपरा रही है। परंतु प्रस्तुत उपन्यास 'मगरमुँहा' में ऐसी कोई विभाजन रेखा उपस्थित नहीं है। एक ओर देश-काल वातावरण पूरी समग्रता में चित्रित है, तो दूसरी ओर मानव-मन की भीतरी परतें परत-दर-परत खुलती चली गयी हैं। चेतन और अवचेतन मन की अनुभूतियों के संघर्ष में मनुष्य का निरंतर स्वयं से जूझना, सामाजिक मान्यताओं, मर्यादाओं के बन्धन की छटपटाहट को झेलने के लिए बाध्य होना, आदर्श की स्थापना के लिए इच्छाओं, आकांक्षाओं, कामनाओं की उपेक्षा करना, प्रेम के स्थान पर त्याग का चयन करना आदि परिस्थितियों का उपन्यासकर ने अत्यंत सजीव चित्रण किया है। उपन्यास का नायक एक

आदर्शवादी व्यक्ति है, यश, मर्यादा, सिद्धान्त इन सबका वजन उसके कंधे पर इतना अधिक बढ़ता गया है, कि वह स्वयं उस बड़प्पन के बोझ के नीचे दब कर मिट गया है।

"क्या यश भी मनुष्य के साथ यही खेल खेलता है, जब यश का कद मनुष्य से बड़ा हो जाता है? कितना अजीब होता है यह खेल कि मनुष्य पहले तो स्वयं यश के पीछे भागता है, किन्तु जब वो यश के घोड़े पर सवार हो जाता है और वो घोड़ा दौड़ पड़ता है तब वो पाता है कि घोड़े के मुँह में तो लगाम ही नहीं है। कितना असहाय हो जाता है मनुष्य उस वल्गा-विहीन अश्व पर आरूढ़ होकर।"[1]

कथानक में कई मोड़ आते हैं, इन मोड़ों और घटनाओं से जुड़े विविध चित्र उपन्यास में उपस्थित हैं। मानव जीवन के अच्छे बुरे अनुभव, बचपन की यादें और उन यादों के माध्यम से बाल-मनोविज्ञान का चित्रण, मनुष्यों के आपसी संबंध, विशेष रूप से वे संबंध जो रक्त-आधारित नहीं होते बल्कि प्रेम और मैत्री पर आधारित होते हैं।

स्त्री-पुरुष का सहज आकर्षण, उम्र तथा अन्य सामाजिक बंधनों को नहीं मानने वाला प्रेम। कुछ ऐसा ही प्रेम है गायत्री और शिखर का। हालांकि उपन्यासकर ने तर्क जुटाया है कि सरो के साथ शिखर का रक्त संबंध नहीं है। तर्क को मजबूती देने के लिए यह भी जोड़ा है कि गायत्री सरो की अपनी बेटी नहीं है। लेकिन शिखर इतना आदर्शवादी चरित्र है, कि उपन्यासकार के दोनों तर्कों को दबाकर अपने प्रेम का बलिदान देता है। यद्यपि इन परिस्थितियों में वह टूटता है, रोता है, साधू की शरण में जाता है। साधू द्वारा शराब पिलाने पर उस पर बिगड़ता है कि उसने उसे भ्रष्ट कर दिया। नशे की हालत में साधू उसे उसके घर पहुँचाता है, जहाँ रूपा उसकी सेवा करती है। नशे में वह रूपा को गायत्री समझता है, वह तन-मन का सम्पूर्ण नियंत्रण खो बैठता है। यहाँ उपन्यासकार ने अतिआदर्शवाद की परिणति को अतियथार्थवाद में ढलते हुए चित्रित किया है। मनुष्य जब स्वयं की और दूसरों की आँखों में भी महान बनने की कोशिश करता है, तो प्रायः वह अपना विवेक खो देता है। एक सामान्य मनुष्य के जीवन की सहजता खो देता है।

उपन्यास का आरंभ ही नायक की उस ग्लानि से होता है, जिसमें वह पहले गायत्री से स्वप्न में, और जागने पर वास्तव में प्रेम करता है। यह प्रेम का एक उद्दाम क्षण था, जिसमें दोनों पल भर के लिए एक-दूसरे में खो गए थे, और अपने सच्चे प्रेम का मौन प्रदर्शन किया था।

रूपा का परमानंद जोशी से भी ऐसा ही प्रेम था, जो उम्र, संबंध आदि बंधनों को नहीं मानता।

"उनके गले में बाँहें डाले रूपा ने जोशी जी को देखा और रुआँसी बोल पड़ी- "मैं आपसे प्रेम करती हूँ।" जोशी सहज रूप में बोले- "तो फिर रो क्यों रही हो? यह तो अच्छी बात है कि तुम मुझसे प्रेम करती हो। आखिर मैं तुम्हारा काकू हूँ।"

"नहीं-नहीं, काकू नहीं, काकू नहीं। मैं तो आपकी प्रेयसी हूँ।"[2]

परन्तु रूपा को परमानंद जोशी और उनकी पत्नी दोनों मिलकर समझाते हैं, और रूपा अपने मन को समझा लेती है, और परमानंद जोशी को काकू के रूप में स्वीकार कर लेती है। वह काकू और काकी माँ दोनों से बहुत प्यार करती है, और दोनों की बहुत इज्जत करती है।

रूपा के पति के नए घर में गृहप्रवेश था, जिसे हाउस वार्मिंग पार्टी का नाम दिया गया था। इस पार्टी में रूपा के पति के दोस्तों ने जोशी जी का अपमान किया, रूपा ने उन लोगों का विरोध किया।

"आप राइटर हैं, यह तो समझ में आ गया। मगर काम क्या करते हैं? व्हाट इज योर जॉब?"

थोड़ी सख्ती से परमानंद जी बोले- "चलिए अंग्रेजी में ही बोल देता हूँ। राइटिंग इज माय ओनली फुलटाइम जॉब।"

"यू मीन, राइटिंग इज योर लाइवली हुड?"

"जी नहीं, मैं आजीविका के लिए नहीं लिखता।"

"वेरी स्ट्रेंज, हाउ डु यू रन योर हाउसहोल्ड?"

रूपा ने हस्तक्षेप किया- "एक्स्क्यूज मी, नो पर्सनल क्वैशचौन प्लीज।"[3]

रूपा के विरोध पर उसके पति ने अपने दोस्तों की तरफदारी की, और कहा कि वह उसके दोस्तों से इस तरह बात नहीं कर सकती। उसने उसे थप्पड़ मारा, उसे घर से निकल जाने को कहा, उसी वक्त रूपा ने कह दिया कि उसे तलाक चाहिए। पति का घर छोडने के बाद रूपा जोशी दंपति के साथ ही रहने लगी। कभी-कभार दो-एक दिन के लिए मायके जाती थी। जोशी जी के

साथ रूपा कविता, कहानी और उपन्यास लिखने लगी, और धीरे-धीरे एक कवयित्री के रूप में स्थापित हो गयी।

शिखर और उसकी जीजी सरो रक्त- संबंध से नहीं जुड़े हैं। शिखर सरो की सहेली पारो का भाई है। पारो की मृत्यु के पश्चात सरो उसे अपने घर ले आई थी और उसे अपने बेटे की तरह पाला था। शिखर के चाचा ने शिखर को अपने साथ ले जाने की पूरी कोशिश की थी, पर सरो ने उनकी एक नहीं सुनी।

-"पहले मुझे मेरी बात खत्म करने दीजिए। इसे आप पत्थर की लकीर मान लीजिए कि शिखर का भविष्य हमारे और सिर्फ हमारे साथ अब जुड़ गया है। आपने मेरे इस फैसले के खिलाफ एक भी शब्द बोला तो मैं महाभारत मचाऊँगी और आपकी भयानक बदनामी होगी। मेरे फैसले के खिलाफ, मैं किसी का भी मुँह नोच सकती हूँ।"[4]

पारो की चचेरी बहन लक्ष्मी गर्भवती पारो की देखभाल के लिए आई थी। इसी दौरान लक्ष्मी और पारो के पति के बीच संबंध बन गए। पारो गर्भावस्था में इस झटके को सहन न कर सकी, और उसकी मृत्यु हो गयी।

"बिस्तर पर नजर पड़ते ही उसकी आँखें फटी की फटी रह गयीं। लक्ष्मी उसके पति के साथ लिपटी हुई गहरी नींद में सो रही थी। पारो के दिल की धड़कनें इतनी तेज हो गयीं कि वो स्वयं अपनी धड़कन महसूस कर सकती थी। उसके दिमाग की नस बेतरह तड़पने लगी और मुँह से आर्तनाद निकला- 'लक्ष्मी'[5]

पारो चचेरी बहन और पति द्वारा दिए गए इस धोखे से बाहर नहीं निकाल पायी। उसे सरो के अतिरिक्त किसी पर भरोसा नहीं था। माता-पिता पहले ही चल बसे थे, वह किसी भी कीमत पर अपने भाई शिखर को चाचा के साथ नहीं भेजना चाहती थी।

उपन्यास के अंत में उज्जैन के खास चौराहे पर शिखर की मूर्ति लगाई जाती है, परंतु शिखर की इच्छानुसार चेहरा सपाट रखा जाता है। शिखर का मानना था कि यदि किसी की मूर्ति की स्थापना की जाए, तो उसका चेहरा सपाट रखा जाना चाहिए, ताकि हजारों-लाखों लोग उसमें अपना चेहरा देख सकें। शिखर और रूपा के पुत्र को गायत्री अपनी गोद में ले उसे 'भारत प्रथम' नाम देती है। उपन्यास व्यष्टि और समष्टि के आपसी सम्बन्धों को भलीभाँति पुष्ट करता है। यद्यपि लेखक ने आदर्श और यथार्थ के संतुलन और समन्वय का प्रयास किया है, पर जाने-अनजाने आदर्श की तरफ अधिक उन्मुख हुए हैं। प्रूफ की कमी कई स्थानों पर खटकती है, जो कथा-प्रवाह में बढ़ा उपस्थित करती है। आवरण चित्र अशोक भौमिक की है, अमूर्त चित्र की तो विशेषता ही यही होती है कि दर्शक उसमें जो ढूँढना चाहे ढूंढ ले। उपन्यास का शीर्षक जितनी जिज्ञासा पैदा करता है, उतनी ही जिज्ञासा आवरण चित्र भी उत्पन्न करती है। इस दृष्टि से शीर्षक और आवरण चित्र एक-दूसरे के अनुकूल हैं। सम्पूर्ण कथा के साथ आरंभ से लेकर अंत तक व्यक्ति और स्थान के सम्बन्धों को महत्व दिया गया है। फिर चाहे वह उज्जैन के तांगे के वर्णन द्वारा किया गया हो, चाहे उज्जैन प्रथम और भारत प्रथम अभियान द्वारा। उपन्यास का शीर्षक भी मुहल्ले के नाम पर रखा गया है, यद्यपि यह कथा नायक कि जन्म भूमि नहीं है, परंतु उसी मुहल्ले में उसके जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पल बीते हैं। सरो जीजी, नरोत्तम जीजा और गायत्री का प्यार और सहयोग मिला है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मगरमुँहा पृ. 35-36
2. वही पृ. 69
3. वही पृ. 136
4. वही पृ. 146

भगवद्गीता का मानवीय दर्शनः एक नई दृष्टि

डॉ० विश्वामित्र पांडेय

प्रोफेसर, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

महाभारत के भीष्मपर्व के अठारह अध्यायों का एक अंश *'श्रीमद्भगवद्गीता'* के नाम से प्रसिद्ध है। 'श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि है। यद्यपि ये गीता विशालतम महाभारत का अंग है तथापि इसे स्वतंत्र ग्रंथ का महत्व मिला है। प्राचीन काल से ही इस पर अनेक व्याख्यायें लिखी गई है। आज भी विश्व में सर्वाधिक प्रचलित संस्कृत ग्रंथ गीता को ही माना जाता है। पाश्चात्य विद्वान् हम्बोल्ट ने गीता से प्रभावित होकर कहा है कि- 'किसी ज्ञात भाषा में उपलब्ध गीतों में सम्भवतः सबसे अधिक सुन्दर और दार्शनिक गीता है। गीता शास्त्र विश्व जगत् की परम निधि है। महाभारत के युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन को कर्ममूलक उपदेश दिए जिसका संकलन गीता के 700 श्लोकों में हुआ है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय गीता में 18 अध्याय में हैं। इन अध्यायों में प्रत्येक *'योग'* के नाम से विख्यात है। गीता के प्रणेता महर्षि वेदव्यास हैं किन्तु उपदेशों के प्रवक्ता के रूप में भगवान् श्री कृष्ण का नाम अमर है। गीता के महत्व के विषय में कहा गया है कि समस्त उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया यह अमृतमय दुग्ध है जिसे गोपालनन्दन श्री कृष्ण ने अर्जुन को बछड़ा मानकर दुहा तथा परवर्ती विद्वान् इसका पान करते हैं।

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥"

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने गीता की प्रशंसा करते हुए इसे मानव धर्म की संहिता बताया है इसकी तुलना कामधेनु और कल्पवृक्ष से की गई है। दार्शनिक विचारों को सरलतम भाषा में अभिव्यक्त करने वाले गीता का प्रचार भारतीय जनमानस में अत्यधिक है।

गीता के लोकप्रसिद्धि इसलिए हुई है क्योंकि पूर्ववर्ती एकांगी मार्गों का समन्वय किया गया है। उपनिषदों के केवल ज्ञान मार्ग पर, ब्राह्मण कर्मकाण्डों में केवल भक्ति मार्ग पर तथा विभिन्न देवताओं के वैदिक उपासकों में केवल भक्ति मार्ग पर बल दिया जाता था। गीता में इन सभी विचारों का समन्वय किया गया है तथा इसे योग कहा गया है। योग का अर्थ है तीनों का समन्वय। गीता में योग के विषय में दो परिभाषाएँ मिलती हैं-

क) 'योगः कर्मसु कौशलम्'[1] अर्थात् विभिन्न कर्मों को कुशलतापूर्वक करना योग है।

ख) 'समत्वं योग उच्यते'[2] अर्थात् कर्म के समय समत्व दर्शन करना यानि सुख-दुख लाभ हानि आदि की चिन्ता न करना योग है।

गीता मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को ही प्रधान साधन के रूप में स्वीकार करती है। ज्ञान योग पर आचार्य शंकर ने, भक्ति योग पर आचार्य रामानुज ने तथा कर्मयोग पर मीमांसकों ने गम्भीर विवेचन किया है।

लोकमान्य तिलक ने गीता को कर्मयोग प्रधान ग्रंथ माना है। दैवीय सेवा अर्थात् कर्म के द्वारा हम सर्वोच्च सत्ता तक पहुंच सकते हैं, जिससे अमूर्त भी मूर्त रूप धारण करता है, वह भी कर्म है। कर्म अनादि है और सृष्टि का कार्य किस प्रकार होता है, कहना कठिन है। सृष्टि के अन्त में समस्त जगत् एक सूक्ष्म कार्य रूपी बीज की अवस्था में विद्यमान रहता है और अगली सृष्टि में अंकुर रूप में प्रस्फुटित रहने के लिए उद्यत रहता है।[3]

वेदों तथा उपनिषदों में वैदिक कर्मयोग का प्रतिपादन किया गया है। कर्मयोग के अनुसार यज्ञ सम्पादन को मनुष्य का परम कर्त्तव्य बताया गया है। इसे स्वर्गप्राप्ति का साधन भी कहा गया है- *'अश्वमेधेन यजेत स्वर्गकामी'।* कठोपनिषद् में नचिकेता ने यम से उस अग्नि यज्ञ के विषय में जिज्ञासा प्रकट की जिससे स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है।[4] ईशावस्योपनिषद् में वेदविहित निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया गया है। जिससे मनुष्य कर्म से लिप्त नहीं होता है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्मिन् न कर्म लिप्यते।[5]

गीता के अनुसार कोई मनुष्य किसी क्षण कर्म से रहित नहीं होता है- *न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।* इसकी कुंजी है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।[6]

कर्म में फल की आसक्ति न रखना कर्मयोग है। किन्तु फल की इच्छा न रखने से कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म योग में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों का समन्वय है। गीता कर्म का निषेध नहीं करती अपितु कर्म में फलाशक्ति का निषेध करती है। अज्ञान के कारण कर्म को छोड़ना तमोगुण युक्त त्याग है। परिणामों के भय से कर्मो को छोड़ना रजोगुण युक्त त्याग है। कर्म का सबसे उत्तम रूप है- अनासक्ति की भावना से और परिणाम के भय से सर्वथा रहित होकर कर्म का सम्पादन, क्योंकि इसमें सात्त्विक गुण का प्राचुर्य है।

कर्म का त्याग अनुचित है। बिना किसी पुरस्कार की आशा से जो कर्म किया जाता है वही सच्चा त्याग है। गीता के अनुसार जब हमें कोई कर्म करना ही है तो हमारा आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे धर्म का हित हो तथा जिसका परिणाम आध्यात्मिक शान्ति और सन्तोष की प्राप्ति हो। कर्म मार्ग आचरण का वह मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।

गीता के अनुसार कर्म के द्वारा ही संसार के साथ सम्बन्ध स्थिर होता है। मनुष्य का महत्वाकांक्षी आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति है जिसे भौतिक तत्त्वों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करने तथा आत्मा की पूर्णता प्राप्त करने में सत्कर्म सहायक होता है। सत्कर्म के साथ-साथ मनुष्य को उन्हीं कर्मो का सम्पादन करना चाहिए, जिससे अधिकाधिक लोगों का लाभ हो। वेदों में सिर्फ स्वहित से सम्बन्धित कर्मो का निषेध किया गया है। गीता में इस सत्य को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

'भुजते ते त्वधं पापा या पचन्त्यात्मकारणात्'।[7]

अर्थात् जो अपने लिए पकाते हैं वे पाप का भक्षण करते हैं। अतः मनुष्य जाति से यह अपेक्षित है कि वे *'सर्व जन हिताय या सर्व जन सुखाय'* कर्म का सम्पादन करें। मनुष्य को संकुचित नहीं अपितु व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए- यही गीता का सन्देश है।

गीता के अनुसार निष्क्रिय रहकर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है और न ही शरीरधारी जीव नितान्त रूप से कर्म का त्याग कर सकते हैं। अतः कर्म का त्याग कर सन्यास ग्रहण करने का इच्छुक मनुष्य को गीता सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। कर्म ही संसार-चक्र की गति को जारी रखता है और प्रत्येक व्यक्ति को इस चक्र की गति को सक्रिय रखने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जब तक मोक्ष प्राप्त न हो तबतक कर्म का सम्पादन अनिवार्य है।

गीता के अनुसार हमें इस प्रकार का कर्म करना चाहिए जिससे वह हमें बन्धन में न डाल सके। ईश्वर भी मनुष्य जाति के लिए कर्म करता है। अतः अर्जुन को आदेश दिया गया है कि युद्ध करो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो। मनुष्य मात्र की सेवा ईश्वर की उपासना है। निष्काम भाव से तथा विदेहवृत्ति से संसार एवं ईश्वर के निमित किया गया। कर्म बन्धन का कारण नहीं होता है।

कर्म योग ज्ञानी के लिए होता है, साधारण जनों के लिए नहीं। इसलिए यह निष्काम कर्म ज्ञान की अपेक्षा रखता है जो भगवद् प्राप्ति का एक अन्य मार्ग है। ज्ञान शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों को सुरक्षित रखता है। जब इन्द्रियों को विषयोपभोग से पृथक किया जाता है तो भी मन में भोग की लालसा बनी रहती है। यह भोग की लालसा आत्मज्ञान से निवृत्त होती है। ज्ञान से ही परम शान्ति मिलती है। ज्ञान को गीता का पवित्रतम पदार्थ कहा गया है-

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'[8]

मोक्ष प्राप्ति हेतु ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान अनिवार्य है -

'ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः'।

कठोपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रतिपादित है कि जब मनुष्य के हृदय में स्थित समस्त कामनाओं का उन्मूलन हो जाता है तो मर्त्य का ज्ञान प्राप्त होता है जिसके द्वारा वह मोक्ष या ब्रह्म को प्राप्त करता है –

'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामाः
येऽस्या हृदि स्थिताः।'[9]

गीता में इस स्थिति को ब्राह्मी स्थिति कहा गया है जो व्यवसायात्मिका बुद्धि के द्वारा समस्त कामनाओं के नाश से सम्भव है। इस अवस्था में प्राण त्यागकर मनुष्य मोक्ष पाता है–

'प्रजहति यदा कामान् सर्वान्
पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते''[10]

गीता दो प्रकार के ज्ञान का प्रतिपादन करती है– एक वह जो बुद्धि के द्वारा बाह्य जगत् के अस्तित्व को समझाने का प्रयत्न करता है और दूसरा वह जो अर्न्तदृष्टि के बल से इन भासमान घटनाओं की शृंखला की पृष्ठभूमि में जो परमत्व है उसे ग्रहण कराता है। समस्त ज्ञान ईश्वर का ज्ञान है। विज्ञान और दर्शन दोनों ही अनादि अनन्त आत्मा के अन्दर वस्तुओं के एकत्व रूपी सत्य को पहचानने का प्रयत्न करते हैं। विज्ञान विषयक ज्ञान रजोगुण प्रधान है एवं आध्यात्मिक ज्ञान सत्वगुण प्रधान है।

गीता में ज्ञान तथा कर्म के साथ भक्ति को भी मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है। उपनिषदों में उपासना का प्रतिपादन किया गया है। मन, सूर्य, चन्द्र आदि में विद्यमान पुरुष जिसे ब्रह्म माना गया है, उपासना के विषय है। उपासना उपास्य का विस्तार करती है ताकि उसके प्रति अनुराग एवं प्रशंसा का भाव समृद्ध हो। ऋग्वेद के 'द्यौ' मेरे पिता है 'अदिति' मेरी माता है आदि कथनों में भक्ति भावना तथा श्रद्धा का दर्शन होता है। भक्ति शब्द का सर्वविदित अर्थ में प्रयोग श्वेताश्वतर उपनिषद् में हुआ है– *'यस्य देवे परा भक्तिः'*। कठोपनिषद् में आस्था या श्रद्धा ब्रह्म प्राप्ति के लिए प्रथम आवश्यक तत्व कहा गया है।[11] गीता में भी कहा गया है–

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।'

भक्ति ज्ञान एवं कर्म दोनों से भिन्न भावनामयी आसक्ति का नाम है। भक्ति मार्ग किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होकर सभी प्राणियों के लिए है। यह अत्यधिक सुगम मार्ग है। सर्वोपरि ब्रह्म के प्रति भक्ति एक शरीरधारी ईश्वर को मानने से ही सजीव है जो मूर्तिमान व्यक्ति है और आनन्द एवं सौन्दर्य से पूर्ण है। जो अपना सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर देता है उसे ईश्वर का द्वार खुला मिलता है। जो उसके चरणों में अपने को झुका देता है उसे भगवान् कहते हैं– यह मेरा प्रतिवचन है कि वह जो मुझसे प्रेम करता है नष्ट नहीं होता है।

'कौन्तेय प्रति जानीहि न मे
भक्तः प्रणश्यति।'[12]

कर्म फल का निवारण भी भगवद्– भक्ति से सम्भव है। यह कर्म विधान का अतिक्रमण नहीं है अपितु उक्त विधानानुसार भक्तिरूप कर्म का भी पुरस्कार मिलना चाहिए। कृष्ण कहते हैं यदि पापी मनुष्य भी अनन्यभाव और प्रेम के साथ मेरी भक्ति करता है तो वह भी धर्मात्मा है। भगवान् किसी के पुण्य या पाप को नहीं देखता है। वह मनुष्य का हमेशा ध्यान रखता है। इसलिए कहा गया है– मुझे न कोई प्रिय है और न अप्रिय, मेरे भक्त मुझे प्रिय हैं–

'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे
द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि
ते तेषु चाप्यहम्।[13]

ईश्वर के प्रति प्रेम या भक्ति अवर्णनीय है। ईश्वर का निवास प्रत्येक मनुष्य में है। ईश्वर विनम्र अथवा दीन मनुष्य से प्रेम करता है। भक्त अपने को सर्वथा ईश्वर की दया पर छोड़ देता है। नितान्त निर्भरता ही कल्याण का मार्ग है–

'मान्मया भव मद्‌भक्तों मद्याजी
मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।"[14]

सच्ची भक्ति गीता के अनुसार ईश्वर में विश्वास उससे प्रेम, उसके प्रति श्रद्धा एवं उसी के अन्दर प्रवेश का नाम है। वह स्वयं ही अपना पुरस्कार है। विचारों एवं पूजा की विधि में मनुष्य को स्वतंत्रता दी गई है। मनुष्य के जैसे विचार होते है वह वैसा ही हो जाता है। जिस किसी पदार्थ में उसका श्रद्धा या भक्ति होगी वही उसे प्राप्त हो जाएगा। पूजा करने वाला जिस किसी स्वरूप की पूजा श्रद्धा भक्ति के साथ करता है मैं उसी स्वरूप के प्रति उसकी भक्ति को स्थिर करता हूँ।

'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।''[15]

उसी श्रद्धा को धारण करके वह उक्त देवता की पूजा करने का प्रयत्न करता है। उसी से उसे सब उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है जो वस्तुत: मेरे द्वारा दी गई है। भक्ति के विविध प्रकार हैं। ईश्वर की शक्ति, ज्ञान तथा साधुता का चिन्तन भक्तिपूर्ण हृदय से निरन्तर उसका स्तरण अन्यान्य व्यक्तियों के साथ उसके गुणों के विषय में सम्भाषण अपने साथियों के साथ उसके स्तुतिपरक गीतों का गायन और समस्या कर्मों को ईश्वर की सेवा के भाव से करना। यों तो भगवान् को सभी भक्त प्रिय है लेकिन ज्ञानी सबसे अधिक प्रिय है-

'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं
च मम प्रियः।"[16]

आतुर, जिज्ञासु और स्वार्थवश भक्ति करने वालों के उद्देश्य तुच्छ होते हैं और जब उनकी इच्छा की पूर्ति हो जाती है तो ईश्वर के प्रति प्रेम रखना छोड़ देते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष उसकी उपासना सदा ही आत्मा के पवित्र भाव से करते हैं।

"यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।"[17]

ज्ञान और भक्ति परस्पर एक दूसरे के ऊपर निर्भर हो जाते है। सच्ची भक्ति नि:स्वार्थ आचरण के द्वारा प्रकट होती है। गीता का आदर्श वह भक्त है जिसमें प्रेम के साथ-साथ ज्ञान का प्रकाश है और जो मनुष्य जाति के लिए कष्ट उठाने को लालायित रहता है। भक्ति गीता का हृदय है। गीता का आरम्भ भी प्राप्ति या शरणागति से होता है।

अर्जुन कहते हैं -

'शिष्यऽस्तेऽहं शाद्यि मां त्वां प्रपन्नम्।'

गीता का अंत भी इसी से होता है-

'मामेकं शरणं व्रज'।

यह भक्ति योग, ज्ञान योग और कर्म योग से अनुप्राणित है। पराभक्ति, परमज्ञान तथा निष्काम कर्म ये तीनों वस्तुत: एक ही है। तीनों का अर्थ है- निर्विकल्प, अपरोक्ष आत्मानुभूति। कर्म करके चित्त शुद्धि प्राप्त करके, ज्ञान निष्ठा को प्राप्त करके भी पुरुष तब तक ज्ञान को प्राप्त नहीं करता है जब तक उसमें भक्ति का उदय न हो-

'भक्तया मामभिजानाति यावान्यशचास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥''[18]

गीता कर्म, भक्ति और ज्ञान को पृथक-पृथक मार्ग न मानकर एक दूसरे से पूरक के रूप में स्वीकार करती है। भक्ति ज्ञान और कर्म को मोह केवल लौकिक व्यवहार में होता है। अपनी अन्तिम अवस्था में ये सब के सब उपरोक्ष अनुभूति में 'परिणत हो जाते हैं। इन तीनों का समन्वय व्यावहारिक जीवन के लिए भी कल्याणकारी है। सच्चा कर्मयोगी भक्तिभाव से युक्त होकर सफलता-पूर्वक जीवन जीता है। वह अपने सभी कर्मों का कृष्णार्पण भाव से सम्पन्न करते हुए सभी प्राणियों में एक ही आत्मतत्त्व का दर्शन करता है।

पाद-टिप्पणीः

1. श्री मद्भगवद्गीता, 2/50.
2. वही, 2/48
3. गीता सौरभम्, विनोदकुमार शर्मा पृ०-24.
4. *कठोपनिषद्*, 1/18.
5. *ईशावास्योपनिषद्*, 1/2
6. *श्री मद्भगवद्गीता*, 2/17
7. वही, 3.13
8. वही, 18.16
9. *कठोपनिषद्*, 6.14
10. वृहा, 4.4.7
11. *गीता*, 2.55
12. *कठोपनिषद्*, 6.13
13. *गीता*, 9.31
14. वही, 9.29
15. वही, 18.65
16. वही, 7.21
17. वही, 7.17
18. वही, 18.55

वर्तमान परिवेश में मूल्य एवं मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकताः शिक्षा एवं शिक्षक के संदर्भ में

ज्योति बाला राय

सहा. प्राध्यापक, अध्यापक शिक्षा संस्थान पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर

संरांशः "मूल्यों के बिना शिक्षा, चाहे वह कितनी भी उपयोगी क्यों न हो, मनुष्य को एक चतुर शैतान बनती प्रतीत होती हैं" लुईस शिक्षा का उपदेश्य, क्रियात्मक एवं संज्ञानात्म ही नहीं हैं यह समाज के नागरिकों के भावात्मक विकास एवं समग्र गुणवत्ता के उन्नयन का एक प्रभावी उपकरण हैं द्य जिसमें मूल्य शिक्षा एक आवश्यक प्रक्रिया हैं, शिक्षा एवं शिक्षा वह माध्यम हैं जिससे मूल्यों को विद्यार्थीयों में समाहित किया जा सकता हैं

कुंजी- शिक्षा, मूल्य, शिक्षक, मूल्यशिक्षा,

प्रस्तावनाः- शिक्षा का असल उद्देश्य है राष्ट्र निर्माण में मानव क्षमता का भरपूर उपयोग। इसके लिए जरूरी होता है सभी को भरसक एक समान शिक्षा मिले। यही वह मूल कारण है जिसने शिक्षा के प्रति कल्याण की दृष्टि को बदल कर अधिकार आधारित दृष्टिकोण प्रदान किया। इस प्रकार इन चुनौतियों के क्रम में शिक्षा की नींव प्रारम्भिक शिक्षा है जिसमें प्राथमिक एवं उच्चतर प्राथमिक शिक्षा दोनों शामिल हैं। प्रारम्भिक शिक्षा तक सबकी पहुँच हो, इसके लिए बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009, 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ। नामांकन और हाजिरी बढ़ाने के साथ-साथ बच्चों के स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के लिए किए गए प्रमुख उपायों- 'स्कूल में राष्ट्रीय मध्याह्न भोजन'- कार्यक्रम को भी शामिल किया गया है।

जब हम शिक्षा पर चर्चा कर रहे हैं तो मूल्य उससे अछूता कैसे रह सकता है? मूल्य शिक्षा की आत्मा है और मूल्यपरक शिक्षा का दायित्व सबका है परिवार का भी, विद्यालय का भी और समाज का भी। परिवार और समाज अनौपचारिक मूल्यपरक शिक्षा का दायित्व निभाते हैं, किन्तु शिक्षक के कंधों पर औपचारिक और अनौपचारिक मूल्यपरक शिक्षा का दायित्व है। शिक्षक विद्यार्थी के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेदनात्मक, नैतिक और अध्यात्मिक दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता है। मूल्यपरक शिक्षा के क्रम में शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों को इतना सक्षम बनावे कि छात्र स्वयं मूल्यों की तलाशकर नैतिक निर्णय ले सकें।

मूल्य मीमांसाः- मूल्यमीमांसा दर्शन की एक शाखा है। मूल्यमीमांसा अंग्रेजी शब्द "एग्जियोलॉजी" का हिंदी रूपांतर है। एग्जियोलॉजी शब्द "एक्सियस" शब्द यूनानी शब्द "एक्सियस" और "लागस" का अर्थ मूल्य या कीमत है तथा "लागस" का अर्थ तर्क, सिद्धांत या मीमांसा है। अतः एग्जियोलॉजी या मूल्यमीमांसा का तात्पर्य उस विज्ञान से है जिसके अंतर्गत मूल्य स्वरूप, प्रकार और उसकी तात्विक सत्ता का अध्ययन या विवेचन किया जाता है। किसी वस्तु के दो पक्ष हो सकते है- तथ्य और उसका मूल्य।

तथ्य पर विचार करना उस वस्तु का वर्णन कहलाएगा और उसके मूल्य का निरूपण उसका गुणादषारण। मूल्य विषयक निर्णय वस्तु की किसी आदर्श से तुलना करके किसी व्यक्ति द्वारा उपस्थित किया जाता है। हमारे सभी अनुभवों में मूल्यों मापदंड ही होते हैं। सौंदर्यशास्त्र में सुंदर असुंदर का मूल्यांकन, संगीत, साहित्य और कला में माधुर्य और सरसता का मूल्यांकन और धर्म में मूल्यों के संरक्षण का प्रयत्न तो सभी को स्वीकृत है किंतु साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि आचारशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि में भी मूल्यों की समस्याओं पर ही विचार किया जाता है। मूल्यमीमांसा के अंतर्गत इन सभी शास्त्रों और विज्ञानों के मूल्यों का अलग विवेचन नहीं किया जाता वरन् इन सर्वव्यापी मूल्यों के स्वरूप और प्रकृति पर विचार किया जाता है। इस प्रकार आधुनिक युग में मूल्यमीमांसा दर्शन की एक शाखा बनकर द्रुत गति से पल्लवित हो रही है।

मूल्य का तात्पर्य किसी मूल्य का भाव हो सकता है या उसका अभाव हो सकता है। इसके अतिरिक्त भाव या अभाव न होकर कोई मूल्य तटस्थ भी हो सकता है। मूल्य शब्द का प्रयोग इनमें से किसी भी स्थिति के लिये हो सकता है। इसलिये मूल्यमीमांसा को मूल्य का विज्ञान कहना अधिक युक्तिसंगत नहीं है। फिर भी सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि जिस प्रकार आचार शास्त्र का विवेचन सही और गलत पर केंद्रित रहता है वैसे ही मूल्यमीमांसा का विवेचन प्रायरू अच्छे और बुरे से संबंधित होता है।

मूल्यमीमांसा के अंतर्गत मुख्यतः मूल्य का स्वरूप, मूल्य के प्रकार, मूल्य का भाव सिद्धांत और मूल्य के तात्विक संस्करण का अध्ययन किया जाता है। दार्शनिकों ने मूल्य के स्वरूप की अवधारणा विभिन्न प्रकार से की है। स्पिनोजा आदि ने उसी को मूल्य माना है जिससे किसी इच्छा की तृप्ति होती है।

मूल्य विभिन्न प्रकार के होते हैं। उनका कई प्रकार से विभाजन किया जा सकता है। प्रायः दार्शनिक अंतर्वर्ती और बहिर्वर्ती मूल्यों का भेद करते है। अंतर्वर्ती मूल्य का स्वतंत्र रूप से अपने लिये ही मूल्य होता है। इन मूल्यों को पाने का प्रयत्न इसलिये नहीं किया जाता कि उनके द्वारा किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। वस्तुतः इन मूल्यों को पा लेना ही अंतिम लक्ष्य होता है। बाह्यमूल्य अंतर्वर्ती मूल्यों की प्राप्ति के लिये एक साधन या यंत्र मात्र होते हैं। एक ओर ऐसे वेदांत दर्शन हैं जिनका विश्वास है कि निर्गुण बाह्यरूप में अंतर्वर्ती मूल्य की ही अंतिम सत्ता है, उसके अतिरिक्त सभी बहिर्वर्ती मूल्य हैं जो भ्रांति मात्र है। दूसरी ओर ऐसे फलवादी हैं जो यंत्रवादी सिद्धांत (इंस्टक्र मेंटलिज्म) का समर्थन करते हैं और अंतर्वर्ती मूल्यों का खंडन करते हैं। द्वैतवादी मूल्यमीमांसक अंतर्वर्ती और बहिर्वर्ती दोनों प्रकार के मूल्यों का अस्तित्व मानते हैं। एक शाश्वत होते है और दूसरे नश्वर अधिकांश दार्शनिक इसी सिद्धांत को थोड़े बहुत हेर फेर से स्वीकार करते हैं। कुछ अंतर्वर्ती मूल्यों को प्रधानता देते है और बहिर्वर्ती मूल्यों को उनके अधीनस्थ मानते हैं। कुछ लोग बहिर्वर्ती मूल्यों को प्रधानता देते हैं और अंतर्वर्ती मूल्यों को बहिर्वर्ती मूल्यों की उत्पत्ति या परिणाम मानते हैं। कुछ दार्शनिक (बाहम) ऐसे भी हैं जो सभी वस्तुओं में दोनों प्रकार के मूल्य अपरिहार्य रूप से मानते हैं। वे यह नहीं अस्वीकार करते कि कहीं एक की प्रधानता होती है तो कहीं दूसरे की किंतु ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें शुद्ध अंतर्वर्ती या बिल्कुल बहिर्वर्ती मूल्य ही हों।

मूल्य का माप सिद्धांत मनोवैज्ञानिक हो सकता है और तार्किक भी। सुखवादी दार्शनिक मूल्य की माप सुखानुभूति से करते

हैं। एरेस्टीपस व्यक्ति के सुख और बेंथम समाज के सुख का मूल्य को मापदंड मानते हैं। बेंथम ने ऐसे सुखगणक की खोज की थी जिसमें सुख की गहनता, स्थायित्व, निश्चितता, निकटत्व, उपयोगिता, पवित्रता व्यापकत्व आदि के अंक निर्धारित कर सुख को मापा जा सकता है। यह मूल्य के मापन का मनोवैज्ञानिक प्रयास है। मारटेन्यू और ब्रेंटानों अंतदृष्टि से मूल्य की माप संभव समझते हैं। कुछ अध्यात्मवादियों ने वस्तुगत आदर्श निश्चित कर रखे हैं और उन्हीं से तुलना करके मूल्यों का मापन करते हैं। कुछ दार्शनिक समष्टि और सामंजस्य में ही मूल्य का गुणावधारण उचित बतलाते हैं। प्रकृत्तिवादी दार्शनिक जैविक विकास और वातावरण से समंजन को मूल्य की माप मानते हैं। जिस वस्तु, क्रिया या परिस्थिति में जीव का विकास अधिक द्रुत गति से होता है उसका अधिक मूल्य है इसके विपरीत जिनसे जीवन में बाधा उपस्थित होती है, उनको मूल्य नहीं दिया जाता।

मूल्य मीमांसा के क्षेत्र में मानव जीवन के आदर्श एवं मूल्यों की विवेचना आती है। मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की विवेचना आती है और मानव के करणीय तथा अकरणीय कर्मों की विवेचना को ही नीति शास्त्र कहते है। हम जानते है कि कोई भी आदर्श, मूल्य का रूप तभी धारण करता है जब वह हमारे आचरण में परिलक्षित होता है, हमारे आचरण का अंश बन जाता है। इसमें इस शब्द की व्याख्या के साथ-साथ जीवन की वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त करने की विधियां भी आती हैं।

मूल्य के प्रकारः- मूल्य मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं

1- यांत्रिक मूल्य जैसे ख्र रूचि, ऐश्वर्य, समृद्धि आदि

2- आत्मिक मूल्य जैसे ख्र स्वास्थ्य, सम्मान, पवित्रता आदि।

यांत्रिक मूल्य जहाँ विरोधाभास उत्पन्न करते हैं, वहीँ आध्यात्मिक मूल्य शांति एवं सहयोग लाते हैं। सन् 1979 में बी.आर. गोयल द्वारा 83 मूल्यों की एक सूची बनायीं गई हैं तत्पश्चात डॉ. वी.के. गोकक ने 1981 में इन मूल्यों को पांच आधारभूत मानवीय मूल्यों के रूप में वर्गीकृत किया। इस प्रकार ये पांच मानवीय मूल्य मुख्य मूल्यों की श्रेणी में आते हैं। ये पञ्च मानवीय मूल्य हैं- सत्य, अच्छा चरित्र शांति, प्रेम एवं अहिंसा।

ये पांच मानवीय अथवा मुख्य मूल्य सर्वभौमिक रूप से सभी धर्मों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं परन्तु इनकी तुलना में उपमुल्य अधिक प्रेक्षणीय होते हैं, जबकि मुख्य की सही पहचान कर पाना कभी-कभी कठिन हो जाता हैं क्योंकि कभी-कभी कुछ व्यक्ति इनका दिखावा भी करते हैं, जबकि वास्तव में वे इसे हृदय से अपनाते नहीं हैं।

मूल्य शिक्षाः- समाज के आदर्शों एवं मूल्यों के अनुरूप व्यक्तियों को संतुष्ट करने एवं एक उत्तम जीवन प्राप्ति हेतु शिक्षा व्यक्ति में मूल्य निर्माण की एक प्रक्रिया है। दार्शनिकों, शिक्षाविदों आदि सभी ने चरित्र निर्माण व अन्तर्निहित गुणों के विकास अथवा समन्वित व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षा को महत्त्वपूर्ण बताया है। इन मूल्यों के विकास एवं निर्माण हेतु प्राचीन समय से हमारे गुरुकुलों, आश्रमों एवं वर्तमान विद्यालयों में पृथक रूप से मूल्य शिक्षा देने पर जोर दिया जा रहा है।

मूल्य शिक्षा शिक्षार्थी के चरित्र एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। यह बालकों में एक निश्चित एवं उपयुक्त समय पर मूल्यों का विकास करती है साथ ही उसमें विद्यमान जन्मजात आत्म-केन्द्रीयता को निःस्वार्थता, अपरिपक्वता को परिपक्वता और बाल्यावस्था को युवावस्था में परिवर्तित कर उन्हें एक मूक श्रोता से एक शक्तिशाली वक्ता में परिवर्तित करती है।

भारतीय संविधान द्वारा भी प्रस्तावना के अन्तर्गत चार सार्वभौमिक मूल्यों का वर्णन किया गया है जो मूल्य शिक्षा को महत्ता प्रदान करते हैं। ये मूल्य निम्नलिखित हैं-

1. स्वतंत्र-विचारों, विश्वासों, आदर्शों, भावनाओं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता।
2. समान अवसरों की समानता।
3. बन्धुत्व-व्यक्ति का सम्मान बनाये रखते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता बनाये रखना।
4. न्याय-सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक किसी भी स्तर पर किसी भी वर्ग के साथ अन्याय ना होने देना एवं एक व्यक्ति की स्वतंत्रता को दूसरे के मार्ग में बाधक न बनने देना।

इसके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 36 से 51 तक प्रदत्त मूल अधिकार एवं अनुच्छेद 51 (ए) में प्रदत्त मूल कर्तव्य भी राष्ट्रीय मूल्यों को प्रदर्शित करते हैं जो कहीं न कहीं मुख्य अथवा उपमूल्यों के ही रूप हैं। एक निश्चित एवं सही दिशा प्रदान करना ही मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

मूल्य निर्धारण में विद्यालय शिक्षक की भूमिकाः- मूल्यों पर थोथी व्याख्या देकर मूल्यों का विकास नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार तैरना सिखाने के लिए प्रशिक्षक को स्वयं पानी में उतर कर तैराकी सिखानी पड़ती है, उसी प्रकार मूल्य शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह विद्यार्थियों को जीवन जल में उतरने और अपने मूल्यों द्वारा उनका सामना करने हेतु स्वयं के व्यवहार द्वारा प्रेरित करें। उनमें प्रयोगात्मक योग्यताओं का विकास करें जिससे विद्यार्थी जीवन की प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार रहें।

निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से शिक्षक अपने विद्यार्थियों में मूल्य का प्रसार कर सकता है-

(1) विद्यार्थियों को प्रेरित करके शिक्षक अपने विद्यार्थियों के लिए आदर्श होता है। अतः शिक्षकों को अपने व्यवहार, विचार आदि के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए, जिससे वे जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का सामना कर सकें और अपने उदीयमान भविष्य का निर्माण कर सकें।

(II) महापुरुषों की जीवनियों द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना शिक्षक अपने विद्यार्थियों को महापुरुषों के विचार एवं आचरण को आत्मसात करने के लिए प्रेरित करें।

(III) विभिन्न नैतिक गुणों का विकास करना विद्यालयी शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों में शांति, प्रेम, धर्मनिरपेक्षता, एकता, सहयोग, सांस्कृतिक, संवर्धन, सृजनात्मकता, राष्ट्रीय एकता एवं बन्धुत्व आदि गुणों के विकास हेतु निरंतर प्रयास करते रहना चाहि।

(IV) शिक्षार्थियों को उत्पादक एवं सृजनात्मक क्रियाओं में संलग्न करना

विद्यालय के शिक्षकों को सतही ज्ञान से हटकर मूलभूत आदर्शों, मूल्यों हेतु अपने विद्यार्थियों के अंतर्निहित गुणों-अवगुणों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें सृजनात्मक एवं उत्पादक क्रियाओं में संलग्न करना चाहिए।

V) पाठ्येतर क्रियाओं पर बल विद्यालयों में पाठ्यक्रम का पूर्ण ज्ञान देने के साथ-साथ पाठ्येतर क्रियाओं जैसे समूह कार्य, हस्तकौशल आदि का भी प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए।

(VI) आत्म-सम्मान का भाव विकसित करना विद्यालयी शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों के व्यक्तिगत गुणों का सम्मान करते हुए उनमें आत्म-सम्मान व आत्म-प्रकाशन के भाव विकसित करने चाहिए। इसके लिए उन्हें अपने विद्यार्थियों को हीनदृष्टि से न देखते हुए उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करनी चाहिए।

(VII) अपने विचार प्रकट करने के अवसर देना शिक्षक को विद्यार्थियों के स्वानुभव प्रकट करने के अवसर प्रदान करना चाहिए। इस हेतु सप्ताह में एक दिन के क्रियाकलाप ऐसे हों जिनमें विद्यार्थी अपने विचार प्रकट करें।

(VIII) शिक्षकों द्वारा पूर्ण समर्पण भाव से शिक्षा देना शिक्षक को पूर्ण समर्पण भाव से विद्यार्थियों को शिक्षित करना चाहिए और उनके अन्तर्निहित गुणों को उजागर करते हुए उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

(IX) अनुशासन बनाये रखना अनुशासनहीन छात्रों को केवल दण्डित नहीं करना चाहिए, बल्कि उनकी योग्यता को जानकर उन्हें अन्य सृजनात्मक क्रियाओं में संलग्न किया जाए ताकि उनके नकारात्मक व्यवहारों को पनपने का अवसर न मिल पाए।

(X) पूर्ण मनुष्य बनने की शिक्षा विद्यालय में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों के शारीरिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक विकास द्वारा उनको पूर्ण मानव बनाने का प्रयास किया जाए। प्राथमिक स्तर पर शिक्षक इन्द्रधनुष के सात रंगों की भाँति अपने व्यक्तित्व में इन सात गुणों के रंग को भरते हुए मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्यों को अपनी कक्षा में प्राप्त कर सकता है। निम्न मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान देते हुए हम मूल्य शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं-

निष्कर्ष- "अच्छे मूल्य एक स्वस्थ चरित्र की सहज अभिव्यक्तियों है और मूल्य केन्द्रीय रूप का निर्माण करते हैं जिसके चारों ओर हमारी गतिविधियों, इच्छाएँ और महत्वाकाएँ अवस्थित होता है।

मूल्य परक शिक्षा से आशय इस शिक्षा से है, जिससे हमारे नैतिक, सामाजिक सांस्कृति एवं आध्यात्मिक मूल्य समाहित है। इसमें विभिन्न विषयों को मूल्य परक बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तिव में समाहित करने पर बल दिया जाता है। जिससे उनका संतुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास हों।

मूल्य निर्माण प्रक्रिया में शिक्षा एवं शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान है। मूल्य निर्माण में शिक्षक की भूमिका बढ़ जाती है। शिक्षा के साथ मूल्य समाहित रहे एवं विधार्थीयों के चरित्र निर्माण, विभिन्न नैतिक मूल्यों के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाती है। छात्र एक भारत के कुशल नागरिक बन सके, यही मूल्य परक शिक्षा का अर्थ है।

संदर्भ ग्रन्थ

- भासकराचार्युल, वाई एंड राव, डी. पुल्ला (2009), द रोल ऑफ टीचर्स इन स्ट्रेंथनिंग वैल्यू एजुकेशन।
- लोढ़ा, महावीरमल (2013), नैतिक शिक्षा: विविध आयाम, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- एन.सी.ई.आर.टी. (2012), एजुकेशन फॉर वैल्यूज इन स्कूल्स-ए फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।
- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (2015), भारत: वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय।
- सिन्हा, एच.पी.(2018).भारतीय दर्शन की रुपरेखा. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली. आईएसबीएन नंबर द्य
- उपाध्याय, डी. एस. (2007). मीमांसा दर्शनम्- सत्यधर्म प्रकाशन, नई दिल्ली।

छत्तीसगढ़ के शैल चित्रों की प्रासंगिकता-ऐतिहासिक दृष्टिकोण

डॉ० देवनारायण बंजारे

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास अध्ययन स्नातकोत्तर विभाग,
शासकीय मयूरध्वज महादानी राजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चांपा

छत्तीसगढ़ में प्राप्तज प्राचीन शैल चित्र युक्त शैलाओं में से एक है, इसा पूर्व 30 हजार वर्ष तिथी निर्धारित की गयी है। इन खोजकर्ता श्री एण्डरसन द्वारा लगभग 1910 में की गई। इंडिया पेंटिंग में 1918 में तथा इन्साक्लोपिडिया ब्रिटेन ने 13वें अंक में रायगढ़ जिले के सिंघनपुर के शैलचित्रों का प्रकाशन पहली बार हुआ। शैल चित्र मानव जाति की समृद्ध आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते है। और इन शैल चित्रों का इनके रचनाकारों आत्मा की अमर कृति प्रतिबिम्ब का प्रतिरूप है। मानव द्वारा निर्मित चिन्हों/चित्रों/मूर्तियों की प्राकृतिक रूप से पत्थरों पर उकेरे जाते थे।

शैलचित्रों में शिलाखण्ड और चबूतरों पर रेखाचित्रों के उत्कीर्ण, छपाई, आवास स्थल पर की गयी नक्काशी साथ ही साथ प्राचीन गुफाएं के आंकड़े आदि शामिल किये गये हैं सबसे सुंदर शैलचित्र मध्यप्रदेश के विन्ध्याचल पर्वत की श्रृंखलाओं में एवं उत्तर प्रदेश के कैमूर की पहाड़ी पर मिले हैं।

प्रागैतिहासिक शैल गुफा चित्र की रॉक कट वास्तुकला और चट्टानों से बने मंदिर और मूर्तियां शैलचित्र के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं।

शैलचित्रों का महत्वः-

शैलचित्र मानव जाति का समृद्ध आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक एवं सांस्कृति के विरासत में दर्शाते हैं। इनके चित्र रचनाकारों के वंशज के लिए काफी महत्व रखता है।

मानव के लिए काफी महत्व है इनकी सुंन्दरता, प्रतीकात्मकता इतिहास को समृद्धशाली बनाती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर व्यापक रूप से सराहनीय और बहुमूल्य धरोहर है।

शैलचित्र विविध सांस्कृतिक परम्पराएं को वैश्विक समुदायों की विविध जीवनमूल्य सांस्कृतिक परम्पराओं को पहचानें और जानने में सहायक सिद्ध होगी।

यह शैलचित्र प्रागैतिहासिक शैलचित्र का उपलब्ध साक्ष्य है यह तो कोई न पुस्तक व न लिखित दस्तावेज उपलब्ध है।

शैलचित्रों के अवशेष मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्द्रप्रदेश, बिहार, कर्नाटक तथा छत्तीसगढ़ स्थित कई गुफाओं व दीवारों पर पाये जाते हैं।

जानवरों का सामूहिक शिकार करते हुए एवं नृत्यु करते हुए जम्मू कश्मीर के शैलचित्र उत्कृष्ट उदाहरण है।

शोध का उद्देश्यः

इस शोध का उद्देश्य प्राचीन धरोहरों एवं आत्मा की कलात्मकता को प्रकाशित करना है जिसमें हम शैलचित्रों के भावनात्मक जीवन शैली को पहचान कर सामूहिक समन्वय स्थापित कर एकीकृत समाज की स्थापना कर सके।

शोधि:- अवलोकन एवं संमक संग्रहण में मिश्रित विधि का उपयोग किया गया है एवं छत्तीसगढ़ के शैलचित्रों पर केन्द्रित है।

जब से मानव धरती पर अवरित हुआ है तब से मानव अपनी अभिव्यक्ति, विचार, भावनाएँ को अपने कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। कला मानवीय जीवन मूल्यों को अपनी आत्मभाव से विभूषित होकर प्रदर्शित करता है। छत्तीसगढ़ राज्य विभिन्न कलाकृति को संजोये रखा है। चित्रकला छत्तीसगढ़ की देन है, जिसके माध्यम से कलाकारों ने अपने-अपने काल को प्रभावित किया है। छत्तीसगढ़ में चित्रकला का लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन समय में चित्रकला कन्दराओं, गुफाओं एवं चट्टानों पर उकेरे गये थे। कालान्तर में विशेषकर पाषाण युग की समाप्ति के पश्चात् आधुनिक काल में चित्रकला का माध्यम कागज एवं केनवास (कपड़ा) ही हो गया।

छत्तीसगढ़ में भित्त चित्रकला प्राचीन लोककला के रूप में जाना जाता है। छत्तीसगढ़ में प्राय: अधिकांश सिनों पर आड़ी-टेढ़ी रेखाओं से अंकित भित्त चित्र की परम्पराएँ पायी जाती है। आदिकाल में मानव जीवन में शनै:-शनै: गुफाओं, कन्दराओं में उसे सुरक्षा एवं संरक्षण महसूश होने लगी, तब से शैलों में उकेरने के संकेत मिलते हैं, जिसके द्वारा खिंची गई रेखाएँ, आकृतियाँ एक नये कला के रूप में उभरकर सामने आयी, जिसे ''आदिम संस्कृति (कला)'' के नाम से जाना जाता है।

छत्तीसगढ़ में इस कलाकृति को मानव द्वारा निर्मित प्रागैतिहासिक काल का चित्र कहा गया है। समय के साथ-ही-साथ मानव में बौद्धिक विकास हुआ तब वह पर्वत, गुफाएँ, कन्दराओं को छोड़कर स्वयं द्वारा निर्मित घरों में रहने लगे। प्रागैतिहासिककाल में चित्रों में प्राकृतिक, दृश्यों में फल-फूल, पशु-पक्षियों की कलाकृतियाँ एवं मानवीय जीवनमूल्यों की संघर्ष गाथा की अभिव्यक्ति भी होती थी। प्राचीनकाल में जगली जानवकरों के आखेट करता हुआ सुन्दर सदृश्य भित्तों में अंकित है।

छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिला शैल चित्रों के लिए विश्व का मानव शैल चित्र सिंघनपुर में है। यह पुरातत्वेत्ता एवं इतिहासकारों को ध्यान आकृष्ट कराता है। इस संबंध में विभिन्न इतिहासकार द्वारा अपना विचार अभिव्यक्त किये एवं प्रकाशित कराये। इनमें से छत्तीसगढ़ के पं. लोचन प्रसाद पाण्डे ने सिंघनपुर के ऐतिहासिक महत्व को गौरवान्ति किया। इनमें आज भी संरक्षित चित्र सामूहिक नृत्य, शिकार, जंगली भैंसा, हिरण व अश्व आदि के चित्र बड़ी संख्या में सुरक्षित है। रायगढ़ जिले के दूसरा विख्यात शैलाश्रय है। ''काबरा के गुफा''। इस शैलाश्रय के चित्र भी बड़े गहरे रंग के अंकित है। यहाँ के इन शैलचित्रों में प्रमुख रूप से कछुवा है। यहाँ छिपकली, घड़ियाल व सांभर आदि पशु-पक्षियों के चित्र अंकित है। इसी रायगढ़ जिले में ओंगना- शैलाश्रय, कर्माशैलाश्रय आदि में सामूहिक नृत्य, पशु-पक्षी, मछली, बरहा (जंगली सुअर), बलूआ पत्थर पर अंकित है। जशपुर जिले में ''देउरकेना'' स्थित एक शिवमंदिर उल्लेखनीय है। यहाँ पत्थर पर तराशी गई यक्ष-यक्षिणी, गज, अश्व, सिंह, गणेश, पार्वती आदि प्रतिमाएँ हैं।

शैलचित्र एवं स्थापत्यकला के दृष्टिकोण से छत्तीसगढ़ का एक मात्र 'खम्भे' के शक्ल में स्थित गुफा जांजगीर-चांपा जिले के बलौदा विकासखण्ड के अंतर्गत 'खम्भेश्वरी की गुफा (खमदाई गुफा) है, जहाँ प्राचीन आदिम मानव खम्भे के शक्ल में 10 फीट ऊँचाई की गुफा में निवासरत् थे। वहाँ लोगों को जंगली जानवरों एवं धूप एवं वर्षा से संरक्षित होने लगी। कालान्तर में खम्भदेश्वरी गुफा मातृदेवी के रूप में पूजने लगे। अम्बिकापुर के 'रामगढ़' की पहाड़ी में कालिदास जी के मेघदूत ग्रंथों की रचना हुई। यह विश्व का प्रथम रंगमंच (नाट्यशाला) था। ''सीताबेगरा'' की गुफा में भगवान राम, लक्ष्मण एवं सीता वनवास बिताये थे जहाँ उनके पद्चिन्हों के अवशेष भी विद्यमान है। भित्त चित्र के विकास का क्रम प्रागैतिहासिक काल शैलचित्रों के मूल प्रेरणा स्त्रोत माने जाते हैं। पौराणिक तथ्यों में भी पशु-पक्षियों के चित्र अंकित है। एक भोजपुरी लोकगीत में अत्यन्त करूण कथा अंकित है। छत्तीसगढ़ में भित्त चित्र के रूप में- दशहरे, दीपावली, लक्ष्मी पूजा, कृष्णा जन्माष्टमी आदि पर्व पर अपने भित्तों में चित्र अंकित परम्परा उत्साह को प्रदर्शित करता है। यह शैल चित्र सरगुजा, बस्तर, रायगढ़, जशपुर, जांजगीर-चांपा, कोरबा, कवर्धा आदि क्षेत्रों में आज भी गौरवगाथा को संजोए हुए है।

छत्तीसगढ़ में चित्र अंकित करने का प्रमुख माध्यम गोबर, गेरू, चूना, छुई, पत्तों के रंग ही प्रमुख था, जो आज भी प्रचलित है। ये सामाजिक समरसता, सरलता, सांस्कृतिक धरोहर के संजोय रखने में आज भी विद्यमान है। छत्तीसगढ़ के भित्त चित्र के कलाकार- स्व. श्रीमती सोनाबाई एवं मीठी बाई आदि के अमूल्य योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने सजीवता कलाकृति, चित्रण दिया है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी जी द्वारा उनके अमूल्य योगदान के लिए सम्मानित किया गया था।

वास्तव में छत्तीसगढ़ के शैल चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण बीहड़-जनजातिय क्षेत्रों में आज भी देखने को मिलता है। विशेषकर बस्त अंचलों में जिसमें जनजातियों की जीवन शैली, कलाकृतियाँ, रूढ़ियाँ, लोककला, परम्पराएँ आदि उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र - छत्तीसगढ़ का राजनीतिक एवं सांस्कृति इतिहास
2. मदनलाल गुप्ता - छत्तीसगढ़ दर्शन
3. डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ला - छत्तीसगढ़ का समग्र इतिहास
4. बिलासपुर गजेटियर - 1978
5. डॉ. डी.एन. बंजारे - जाजल्या पत्रिका, 2011, जांजगीर, जिला पंचायत द्वारा।
6. एवं नेट से

नागरिक समाज का भारतीय लोकतंत्र में महत्व एवं योगदान

राखी भारती

विषय-राजनीति विज्ञान, आर्य नगर भिलाई छ. ग.

रामकुमारी

विषय-राजनीति विज्ञान, ओमपुर रजगामार, कोरबा, छ.ग.

सारांशः- लोकतांत्रिक और जवाब देही सार्वजनिक संसाधनों का कुशल उपयोग भारतीय राज्य सहित सभी आधुनिक राज्य के लिए जुड़वा चुनौतियां हैं। कुछ मायनो में नए दौर ने इस तीव्र आर्थिक वृद्धि में मुनाफे के लिए काम करने वाले निजी क्षेत्र की भूमिकाओं को महत्वपूर्ण बना दिया है। सरकार अकेले इन समस्याओं से नहीं निपट सकती इसलिए निजी क्षेत्र को एक भागीदार के रूप में देखा जाता है। ठीक इसी तरह नए दौर ने समावेशी वृद्धि और लोकतांत्रिक शासन में नागरिक समाज की भूमिका को एक भागीदार के रूप में वैधता देना शुरू कर दिया है। बहुत से विचारों का कहना है कि नागरिक समाज आधुनिक पूंजीवाद और औपचारिक लोकतंत्र से जन्मी एक व्यवस्था है।

शब्दकुजीं- उद्योग, शैलियों, लोकतंत्र, विस्तारित, शोषित, सामानता, उपभोग, पूंजीवाद।

प्रस्तावना- वर्तमान में आशावाद तथा ऊर्जा का एक नया गुंजन है। जहां एक तरफ भारतीय लोकतंत्र प्रगतिशील है, वहीं दूसरी तरफ भूख गरीबी बेरोजगारी का वातावरण व्याप्त है। भारतीय लोकतंत्र में एक तिहाई जिले गरीबी एवं भूख से पीड़ित है तथा शोषित पीड़ित हिंसा का सामना कर रहें है। भारत ही नही पूरे विश्व में सुरक्षा संबंधी चिंताएं नीति निर्माता पर हावी हो रही है। जिसके कारण आतंकवाद नक्सलवाद जैसे समस्याओं का विश्व सामना कर रहा है। बढ़ती हुई आर्थिक वृद्धि देश व समुदाय के बीच आय व संपदा की असमनताओं के कारण सामानता स्थापित करने में लगे हुए है। भारत एक महाशधि के रूप में उभर रहा है। देश भर में उत्पादन और उपभोग की नई शैलियों तथा तकनीक का प्रचार-प्रसार हो रहा है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण ने नए उद्योग तथा नये अवसरों को जन्म दिया है। कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र को पीछे छोड़ते हुए सेवा क्षेत्र ने अपना वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया है। वर्तमान विश्व में पर्यावरणीय समस्या तथा जलवायु परिवर्तन इस प्रगति पथ का परिणाम है। कुछ पुरानी चुनौतियां के साथ नए परिवेश में नई समस्याओं का जन्म हो रहा है। सरकार बदलाव के खातिर नई नीतियों को निरंतरता के साथ संतुलित करने का प्रयास कर रही है। जिस सरकार को पहले शासन लागू कर लोगों की समस्याओं को सुलझाने के रूप में आज लोगों के लिए खुद एक समस्या बनते जा रही है। लोकतांत्रिक और जवाब देही सार्वजनिक संसाधनों का कुशल उपयोग भारतीय राज्य सहित सभी आधुनिक राज्य के लिए जुड़वा चुनौतियां हैं। कुछ मायनो में नए दौर ने इस तीव्र आर्थिक वृद्धि में मुनाफे के लिए काम करने वाले निजी क्षेत्र की भूमिकाओं को महत्वपूर्ण बना दिया है। सरकार अकेले इन समस्याओं से नहीं निपट सकती इसलिए निजी क्षेत्र को एक भागीदार के रूप में देखा जाता है। ठीक इसी तरह नए दौर ने समावेशी वृद्धि और लोकतांत्रिक शासन में नागरिक समाज की भूमिका को एक भागीदार के रूप में वैधता देना शुरू कर दिया है। बहुत से विचारों का कहना है कि नागरिक समाज आधुनिक पूंजीवाद और औपचारिक लोकतंत्र से जन्मी एक व्यवस्था है। आधुनिक समाज के सम्मुख प्रस्तुत चुनौतियां के जवाब में गैर सरकारी

और लाभार्थी संगठनों के नए रूप में उभर रहे हैं, हालांकि यह किसी हद तक सही है लेकिन नागरिक संघों को स्वयं आधुनिकता का पर्याय बताना गलत होगा भारतीय समाज सहित दुनिया भर के समाज में नागरिक संघो ने ऐतिहासिक रूप से अनेकों महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। भारत के कई क्षेत्रों में सजा संसाधनों जल, जंगल, जमीन आदि का प्रबंध प्रबंधन सुसंगठित नागरिकों द्वारा किया गया था, जो समय के साथ-साथ भिन्न-भिन्न तरीके से विकसित हुए थे आदिवासी क्षेत्र में आज भी ऐसे संगठन कार्य कर रहे हैं।

नागरिक समाज स्वयं लोगों द्वारा संचालित समाज है, इसकी उत्पत्ति प्राचीन काल से हुई है हालांकि समय के साथ समय और अर्थ बदल गए हैं, रोमन शब्द सोसाइटस सिविलस इसका मूल शब्द है, जिसका पर्याय एक अच्छा समाज को माना जाता है। जर्मन दार्शनिक जिन्होंने नागरिक समाज शब्द और इसका अर्थ अंकित किया एक नागरिक समाज में लोग स्वेच्छा से समाज कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त करने या राज्य के सामने लोगों की समस्याओं को उठाने के लिए सामने आते हैं, मूल रूप में राज्य की कृतियों को नागरिक समाज द्वारा ठीक से भरा जा सकता है। ऐतिहासिक तौर पर नागरिक समाज का उपयोग लोकप्रिय आंदोलन के लिए किया गया था समय बीतने के साथ यह रिक्त स्थान गैर राज्य हित धारकों जैसे गैर सरकारी संगठन, स्वयं सहायता समूह, व्यापारिक संघ, सामाजिक आंदोलन और विशेष हितों के समूह की विविधता को शामिल करने के लिए विस्तारित हो गया। नागरिक समाज संगठन सरकारी नीतियों को प्रभावित कर सकते हैं तथा विश्वास और आपसी सम्मान के आधार पर समुदाय की भावना का निर्माण कर सकते हैं, इसलिए नागरिक समाज को आकार देने और पुन: व्यवस्थापित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नागरिक समाज भी सरकार और समाज के बीच एक कड़ी का काम करता है, वास्तविक व्यवहार में जहां सरकार भी विफल हो जाती है, नागरिक समाज को वह स्थान भरना चाहिए विशेष रूप से समाज के हास्य पर रहने वाले वंचित वर्ग की अपेक्षाओं पर नागरिक समाज को खरा उतरना चाहिए नागरिक समाज संगठन राज्य गैर लाभकारी शैक्षिक संस्थाएं है, जो सामाजिक क्षेत्र मैं लोगों द्वारा बनाई गई है जो राज्य एवं बाजार से अलग है, नागरिक समाज संगठन ही तो संबंधों का प्रतिनिधित्व करते हैं वे समुदाय आधारित लोगों के संगठनों के साथ-साथ गैर सरकारी संगठनों को भी शामिल कर सकते हैं।

भारत में नागरिक अधिकार आंदोलन का इतिहास:-

नागरिक अधिकार वह है, जैसे जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता, संपत्ति, कानून के लिए उपयुक्त योग्यता तथा धार्मिक अधिकार आदि नागरिक अधिकार माने जाते हैं। नागरिक अधिकार उदारवाद के दर्शन पर आधारित हैं। नागरिक अधिकार का मूल उद्देश्य कार्यपालिका द्वारा शक्ति के मनमाने प्रयोग को लाभ और कानून का शासन बनाए रखना है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सिर्फ आजादी का आंदोलन नहीं था, बल्कि यह सबसे बड़ा नागरिक अधिकार आंदोलन था।

विश्व के सबसे महान मानवाधिकारी आंदोलनकारीयों में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के महाड़ सत्याग्रह या चवदार तालाब आंदोलन, नाशिक का कालाराम मन्दिर आंदोलन और दलित बौद्ध आंदोलन प्रसिद्ध है, महात्मा गांधी का सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, ऐतिहासिक नागरिक आंदोलन है, भारतीय 4.एवं अन्य संगठन जो भी विकासात्मक कार्य का रथ हैं, जिन्हें आमतौर पर गैर सरकारी संगठन कहा जाता है।

राजनीति और नागरिक समाज:-

1. नागरिक समाज समूह बदलती वन विकास नीति दोषी अधिकारियों को स्थानांतरित करने निर्धनों और योगी वीडियो को आवास और चिकित्सा सहायता प्रदान करने आदि से विभिन्न सामाजिक लक्षण को प्राप्त करने हेतु सरकारों पर दबाव डालने के लिए नागरिकों को प्रयास सफलतापूर्वक संगठित करते हैं।
2. नागरिक संगठन सरकारी नीति के निर्माण और क्रियाकलाप के बारे में पारदर्शिता बढ़कर तथा सूचना की उपलब्धता में वृद्धि कर बेहतर शासन में योगदान कर सकते हैं।
3. नागरिक समाज संगठन विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्र को राजनीति और सार्वजनिक मामलों में आर्थिक पूर्णता में भाग लेने के लिए संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।
4. नागरिक समाज समूह बदलती वन विकास नीति दोषी अधिकारियों को स्थानांतरित करने निर्धनों और योगी वीडियो को आवास और चिकित्सा सहायता प्रदान करने आदि से विभिन्न सामाजिक लक्षण को प्राप्त करने हेतु सरकारों पर दबाव डालने के लिए नागरिकों को प्रयास सफलतापूर्वक संगठित करते हैं।

5. नागरिक समाज संगठन विविध तरीकों से सार्वजनिक सेवाओं को आकार देने वित्त पोषण करने और उन्हें डिलीवर करने में सीधे सरकार से हाथ मिलाकर कार्यकारी योगदान कर सकते हैं।
6. नागरिक समाज संगठन राजनीतिक जीवन में एक सक्रिय और रचनात्मक भूमिका अदा करते हैं। वे अधिक उचित अधिक ईमानदार पारदर्शी लोकतांत्रिक जवाबदेही शासन को बढ़ावा देते है।
7. नागरिक समाज समूह बदलती वन विकास नीति दोषी अधिकारियों को स्थानांतरित करने निर्धनों और योगी वीडियो को आवास और चिकित्सा सहायता प्रदान करने आदि से विभिन्न सामाजिक लक्षण को प्राप्त करने हेतु सरकारों पर दबाव डालने के लिए नागरिकों को प्रयास सफलतापूर्वक संगठित करते हैं।

नागरिक समाज सुशासन में योगदान कर सकता है, वह सामाजिक न्याय अधिकारों और कानून के शासन के क्षेत्र में है। भारत में सिविल समाज का उदय सामाजिक आंदोलन के कारण हुआ जब आजादी के वैसे लोगों को भी राजनीतिक सहभागिता का अवसर मिला जो कि पहले तमाम बुराइयों के कारण संभव नहीं था। तब पिछड़े वर्ग अनुसूचित जाति एवं जनजाति कृषक आदि ने भारतीय लोकतंत्र द्वारा दिए गए अवसर को पाने का प्रयास करने लगे भारत जैसे देश ने नागरिकों की संगठित अन्य रूपों में भी अभिव्यक्त होती है, जैसे जन आंदोलन एवं जन संघर्ष। महात्मा गांधी विवेकानंद और मदर टेरेसा जैसे लोगों ने समय-समय पर ऐसे आंदोलन को प्रेरणा प्रदान की है। बाबा आमटे, सुंदरलाल बहुगुणा, पांडुरंग शास्त्री के नेतृत्व में कुछ ऐसे ही जन आंदोलन आधुनिक भारत में नागरिक समाज की उभरती भूमिका को धार प्रदान करते हैं। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के मुद्दे पर प्रारंभ हुए बिहार के छात्रों के एक राज्य राजनीतिक आंदोलन ने अनंत केंद्र में सत्ता परिवर्तन को जन्म दिया जन लोकपाल की मांग को लेकर आना हजारे का आंदोलन तथा काले धन की विदेश से वापसी को लेकर बाबा रामदेव का आंदोलन 2011 देश के नागरिक समाज की ही उपज है।

नागरिक समाज के समुदाय आधारित संगठन इस प्रकार है:-

1. श्रमिकों किसानों के संग एवं समुदाय।
2. गैर सरकारी संगठन युवाओं के संगठन एवं समूह।
3. महिला संगठन एवं समूह।
4. धार्मिक संघ एवं समूह सहकारी समूह।

नागरिक समाज के समक्ष चुनौतियां:-दूसरी चुनौती जो नागरिक समाज के भीतर की है उनकी और वृहत्तर लक्षण के बीच की दूरी को कम करने की है।

1. नागरिक समाज के भीतर शक्ति और शक्ति असंतुलनों की चुनौती है। यह क्षेत्र जीवित और अत्यधिक विविध है, इसमें लाखों डॉलर बजट वाले बड़े राष्ट्रीय, गैर सरकारी संगठन और अत्यधिक सीमित संसाधन सूचना तथा सीमित पहुंच और क्षमता वाले अत्यंत लघु नागरिक आधारित संगठन दोनों शामिल हैं।
2. तीसरी आंतरिक चुनौती एक अधिक उचित और न्याय संगत वैश्विक प्रणाली के लिए संगत दृष्टि प्रस्तुत करने की है।
3. चौथी चुनौती वैधता की चुनौती और पारदर्शिता एवं जवाबदेही से संबंधित मुद्दे की है।

वर्तमान समय में नागरिक समाज की भूमिका:-

नागरिक समाज को एक तीसरी क्षेत्र के रूप में जाना जाता है लोकतंत्र को बनाने व मजबूत करने में नागरिक समाज की भूमिका इस प्रकार है-

1. नागरिक समाज संगठित व मुक्त समुदायों की हितों को प्रकट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है दूसरे शब्दों में नागरिक समाज स्थानीय समुदायों को मजबूत करने का काम करता है।
2. नागरिक बाजार पर इसका सकारात्मक प्रभाव है। इस प्रकार नागरिक समाज अच्छे शासन के घटक जैसे पारदर्शिता प्रभावशीलता खुलापन प्रक्रियात्मकता जवाबदेही का महत्वपूर्ण एजेंट है।
3. नागरिक समाज अच्छे शासन हेतु मार्ग निर्देशन बन सकता है पहले नीति विश्लेषण द्वारा और रणनीति को बनाकर प्रतिभागी के रूप में दूसरा राज्य के निष्पादन को नियमित व निर्देशित करके तथा लोक अधिकारियों के कार्य व व्यवहार को निर्देशित करके तीसरा सामाजिक पूंजी के निर्माण व निहित मूल्य में विश्वास पैदा कर सकता है।

निष्कर्षः- यद्यपि भारत में नागरिक समाज का कोई उल्लेख नहीं है पर संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार संघ बनाने का अधिकार, अभिव्यधि की स्वतंत्रता का अधिकार आदि अप्रत्यक्ष रूप से सिविल समाज की ओर इशारा करती है। इसकी अतिरिक्त सिविल समाज की स्थापना के आधार के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद, प्रजातंत्र, समाजवाद में नागरिकता के महत्व एवं योगदान को देखा जा सकता है। विधि का शासन भी नागरिक समाज के लिए आवश्यक है। नागरिक समाज की भूमिका राज्य की नीतियों पर निर्भर है, इसलिए दोनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। तनाव के क्षण उसी समय उत्पन्न होते हैं, जब सरकार टाल मटोल करने लगता है। नागरिक समाज एक उदेश्य है जिसे प्राप्त करना है। जब पारस्परिक सहयोग द्वारा एक पारस्परिक समझ से खाखा तैयार किया जाता है, तब नागरिक समाज राजनीनिक व सामाजिक परिवर्तनों हेतु एक वृहद विचार प्रस्तुत करता है। जो सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं के प्रतिरोध व वैकल्पिक समाधान हेतु एक व्यावहारिक आकार प्रदान करता है। जनता सिविल समाज के अंतर्गत संगठित हो तथा अपने हितों के प्रति जागरूक हो किसी भी लोकतंत्र के लिए एक आदर्श स्थिति यह है कि नागरिक समाज एवं राज्य एक साथ मिलकर कार्य करें।

संदर्भ ग्रंथः-

1. पीपल्स यूनिर्वसिटी इग्नू, भ्रष्टाचार के विरूद्ध अन्ना हजारे का संघर्ष।
2. डॉ. दिनेश कुमार, सामाजिक परिवर्तन के यंत्र के रूप में हमारा नागरिक समाज।
3. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, नागरिक समाज की प्रशासन में भूमिका।
4. नीतिशा, भारत में नागरिक समाज और उसकी भूमिका।
5. विकिपीडिया, hi.m.wikipedia.org नागरिक समाज।
6. डॉ. जितेन्द्र कुमार, गांधी दृष्टि का नागरिक समाज।
7. बसंत त्रिपाठी, नागरिक समाज।
8. डॉ. राजेश टण्डन, नागरिक समाज योगदान और चुनौतियां।

भ्रष्टाचार- एक समस्याः समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० दिलीप कुमार सोनी

समाजशास्त्र विभाग, शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी, म.प्र.

सारांश

भ्रष्टाचार एक व्यापक और जटिल समस्या है जो लगभग हर देश और समाज में पाई जाती है। यह समाज के सभी क्षेत्रों में, सरकारी कार्यालयों से लेकर निजी कंपनियों तक, और न्यायपालिका से लेकर शिक्षा प्रणाली तक फैली हुई है। भ्रष्टाचार का अर्थ है सार्वजनिक या निजी संसाधनों का दुरुपयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए। यह विभिन्न रूपों में प्रकट हो सकता है, जैसे रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, जबरन वसूली, और अनुचित प्रभाव। भ्रष्टाचार एक जटिल सामाजिक समस्या है, जो सभी समाजों को प्रभावित करती है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। अब इसे एक वैसे नरम देश के रूप में नहीं माना जाता जैसा कि कभी राजनीतिक वैज्ञानिकों के द्वारा माना जाता था। अब यह एक चौरतंत्र (kleptocracy) बन चुका है, एक प्रतिफल देश बन चुका है, जहां प्राप्त की जा सकने वाली किसी भी वस्तु को किसी मूल्य के बदले में प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ, ऐसा कहा जाता है, कि अपने आप कुछ भी नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति एक सरकारी नौकरी चाहता है, तो उसे पात्रता के मानदंडों को पूरा करने के बावजूद भी उच्च-अधिकारियों को लाखों रुपए देने होगें। प्रत्येक सरकारी कार्यालय में कार्य करवाने के लिए किसी को भी या तो सम्बन्धित कर्मचारी को धन देना पड़ता है अथवा किसी सिफारिश की व्यवस्था करनी पड़ती है। खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग में बेईमान श्रमिकों के द्वारा उत्पादों में मिलावट तथा घटतौली की जाती है, जो निर्दोष जनता के स्वास्थ्य एवं जीवन से खिलवाड़ किए जाने के द्वारा उपभोक्ताओं को धोखा देते हैं। संपत्ति कर के निर्धारण में किसी को भी घूस देनी पड़ती है, भले ही घर का निर्माण नियम एवं कायदे के अनुसार ही क्यों न करवाया गया हो।

भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार सबसे बुरा है। किसी भी नवनिर्वाचित विधानसभा सदस्य को सत्ताधारी दल का समर्थन करने के लिए करोड़ों रुपयों के साथ-साथ मंत्री पद का प्रस्ताव भी दिया जाता है। आज, भ्रष्टाचार ने एक आम समस्या का ऐसा रूप ग्रहण कर लिया है, कि यहां तक कि विधिसम्मत कार्य करवाने के लिए भी लोग घूस दिए जाने से परहेज नहीं करते। कुछ लोगों का कहना है कि जब अमेरिका, जापान, इंग्लैंड, फ्रांस, कनाडा तथा जर्मनी जैसे सर्वाधिक विकसित देशों तक में भी भ्रष्टाचार पाया जाता है, तो फिर भारत के बारे में हमें अनावश्यक सब से क्यों परेशान होना चाहिए? ये लोग यह भूल जाते हैं कि विकसित देशों में भ्रष्टाचार की प्रकृति हमारे देश में पाए जाने वाले भ्रष्टाचार की प्रकृति से भिन्न है। इन देशों में भ्रष्टाचार मात्र व्यवसायिक दिमागजों के सर्वोच्च स्तरों पर ही विद्यमान है, जबकि भारत में हमें रेलवे आरक्षण के लिए, न केवल पेशावर संस्थान में बल्कि प्राथमिक विद्यालय में एक बच्चे के प्रवेश के लिए, एक गैस सिलेंडर खरीदने के लिए, बिना हेलमेट के दो-पहिया वाहन चलाने के लिए, बकाया बिल को पास करवाने के लिए, कर का रिफंड प्राप्त करने के लिए तथा ऐसे ही अन्य कार्यों को करवाने के लिए घूस देनी पड़ती है। इस प्रकार, जहां दूसरे देशों में अवैध वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए घूस देना पड़ती है, वहीं भारत में वैध एवं अधिकृत वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए भी घूस देनी पड़ती है। और वास्तव में परेशान करने वाली बात यह है, कि भ्रष्टाचार को अब नागरिकों तथा सरकारी अधिकारियों के बीच की एक सामान्य अंतःक्रिया के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। ये सब मिलकर एक आम आदमी के दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार से, हमें इस प्रकार के भ्रष्ट कार्यों के प्रति भी चिंतित होना होगा।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भ्रष्टाचार ने हमारे समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है: (1) इसने देश के आर्थिक विकास को मंद कर दिया है। (2) इसने समाज में हिंसा तथा अराजकता को जन्म दे दिया है, क्योंकि भ्रष्ट व्यक्ति के पास कानून के क्रियान्वयनकर्ताओं को अपनी सेवा करने के लिए प्रभावित करने की शक्ति मौजूद होती है। (3) इसने जातिवाद, भाषावाद तथा सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। (4) इसने नैतिकता को समाप्त तथा व्यक्तिगत चरित्र को नष्ट कर दिया है। (5) इसने अकुशलता, भाई-भतीजावाद तथा अकर्मण्यता के स्तर को ऊपर उठा दिया है तथा प्रशासन के समस्त क्षेत्रों में अनुशासनहीनता को जन्म दे दिया है, जिससे आम आदमी का जीवन कष्टप्रद हो गया है। (6) इसने जनसाधारण की दृष्टि में अधिकारियों की विश्वसनीयता को कम कर दिया है। (7) इसने देश में काले-धन में वृद्धि कर दी है। (8) इसने खाद्य-पदार्थों में मिलावट, नकली औषधियों तथा अनेक उपभोक्ता वस्तुओं के अभाव को उत्पन्न कर दिया है। (9) इसने केन्द्र के साथ-साथ राज्य सरकारों को भी अस्थिर कर दिया है। अत:, हमें दृश्य एवं अदृश्य दोनों ही प्रकार के भ्रष्टाचार के ऐसे मामलों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा, जो हमारी अंतरात्मा को झकझोर देते हैं।

विश्व बैंक के द्वारा भ्रष्टाचार को मोटे तौर पर निजी लाभ के लिए सार्वजनिक पद के उपयोग किए जाने के रूप में परिभाषित किया गया है। साधारण भाषा में, इसे "घूस सम्बन्धी एक कार्य" के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इसे "निजी लाभ के लिए सार्वजनिक अधिकार का इस तरह उपयोग किए जाना जिससे कानून का उल्लंघन होता हो अथवा समाज के मानदंडों से अलग हटा जाता हो" के रूप में भी वर्णित किया गया है। डी. एच. बैले ने इसे "निजी लाभ, जिनका मौद्रिक होना अनिवार्य नहीं है, के मूल्य के परिणाम के रूप अधिकारों के दुरुपयोग" के रूप में स्पष्ट किया है (डगलस एंड जॉनसन, 1971 में उद्धृत)। एंडरिस्की इसे "ऐसे तरीकों से निजी लाभ के लिए सार्वजनिक अधिकारों का उपयोग किया जाना जो कुछ औपचारिक नियम अथवा कानून का अतिक्रमण करते हों" के रूप में मानते हैं (मेशेल, 1983 में उद्धृत)। सेफ्टेल ने प्रेक्षित किया है कि "भ्रष्टाचार ऐसा व्यवहार है, जो निजी लाभ के लिए सार्वजनिक भूमिका अथवा पद के उपयोग को शासित करने वाले मानदंडों एवं कर्त्तव्यों से किया गया विचलन हो" (मेशेल, 1983 में उद्धृत)। यह निजी लाभ कतिपय कार्यवाहियों के विरुद्ध लगाए गए निषेधों की उपेक्षा करने, कार्यवाही करने के लिए वैध विवेकाधिकार का उपयोग किए जाने, अथवा कार्यवाही करने के दायित्वों को पूरा किए जाने के द्वारा प्राप्त किया जाता है। जे.नाई (1967: 410) उल्लेख करते हैं कि "भ्रष्टाचार निजी लाभ के लिए सार्वजनिक पदों के गलत नाई (1967 दुरुपयोग को दर्शाता है" भ्रष्टाचार को आर्थिक अपना प्रास्थिति सम्बन्धी लाभों के लिए सार्वजनिक भूमिका के औपचारिक कर्तव्यों से विचलन" के रूप में भी वर्णित किया गया है।

समाज में भ्रष्टाचार अनेक रूपों में फैला हुआ है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं: घूस (नकद अथवा वस्तु अथवा उपहार के रूप में प्रस्तावित किया गया धन जो देने वाले के पक्ष में किसी अवैधानिक अथवा बेईमानीपूर्ण कार्य करवाने हेतु लालच के रूप में दिया गया हो), गबन (किसी दूसरे के धन का स्वयं के लिए उपयोग करना), संरक्षण (संरक्षक के द्वारा दिया गया गलत समर्थन/प्रोत्साहन तथा इस प्रकार अपने पद का दुरुपयोग), तथा पक्षपात (अनावश्यक रूप से एक को दूसरे पर प्राथमिकता प्रदान करना)।

भ्रष्टाचार: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Corruption: A Historical Perspective)

भ्रष्टाचार एक वैश्विक प्रघटना है। चिरकाल से लगभग प्रत्येक समाज में यह किसी न किसी रूप में पाया जाता रहा है। प्राचीन समय में, मिश्र, बेबीलोनियाई तथा यहूदी समाजों में न्यायाधीशों ने घूस ली थी। रोम में, सार्वजनिक पदों के लिए चुनावों में घूस एक आम बात थी। फ्रांस में, 15वीं शताब्दी के दौरान न्यायिक पदों की बिक्री की गई थी। 17वीं तथा 18वीं शताब्दियों में इंग्लैण्ड को एक 'सिंक होल' के रूप में वर्णित किया गया था। 19वीं शताब्दी में भी ब्रिटेन में भ्रष्टाचार इतना अधिक व्यापक था कि गिब्बन ने इसे संवैधानिक स्वतंत्रता के सर्वाधिक अचूक लक्षण के रूप में वर्णित कर डाला (सेमिनार, संख्या 421, सितम्बर 1994)।

भारत में भी, भ्रष्टाचार किसी न किसी रूप में चिरकाल से ही प्रचलित रहा है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र (सामासात्री, 1967: 15-17) में सरकारी सेवकों के द्वारा राजस्व में से गबन किए जाने का उल्लेख किया है। उन्होंने सरकारी सेवकों के द्वारा अपनाए जाने वाले लगभग चालीस प्रकार के गवनों तथा भ्रष्ट व्यवहारों का उल्लेख किया है। अशोक के शासन के दौरान, भ्रष्टाचार एक छोटे पैमाने पर प्रचलित था (मजूमदार, 1960: 113)। मध्ययुगीन समाज में, भ्रष्टाचार के लिए गुंजाइश न्यूनतम थी, क्योंकि करों के संग्रहण के लिए मात्र कुछ अधिकारी ही मौजूद होते थे। जितने समय में उन्होंने संपदा एकत्रित की, उन्हें प्रतिबंधित किए जाने के स्थान पर प्रसंशित किया गया। अंग्रेज शासन के दौरान, न केवल भारतीय अधिकारियों बल्कि उच्च पदस्थ अंग्रेज अधिकारियों

के द्वारा भी घूस स्वीकार की जाती थी। क्लाइव तथा वारेन हेस्टिंग्स को तो यहां तक भ्रष्ट पाया गया था, कि इंग्लैण्ड वापसी होने पर एक संसदीय समिति के द्वारा उनका विवरण किया गया था। प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आर्थिक गतिविधियों के विस्तार ने देश में भ्रष्टाचार के नए मार्गों को खोल दिया (हल्लाया, 1948: 13-51)1 युद्धकालीन नियंत्रणों, प्रतिबंधों तथा अभावों ने घूस, भ्रष्टाचार एवं पक्षपात के लिए प्रचुर मात्रा में अवसर प्रदान किए। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत, हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर शीर्षस्थ राजनीतिक अभिजात्य वर्ग कुछ समय के लिए ईमानदार बना रहा, लेकिन तीसरे तथा चौथे आम चुनावों के पश्चात् नए राजनीतिक अभिजात्य वर्ग ने अपने ईमानदार होने सम्बन्धी जनता के विश्वास को गवां दिया। यहां तक कि छोटे-मोटे कार्यों के लिए भी समस्त सार्वजनिक संस्थाओं में सभी स्तरों पर सरकारी कर्मचारियों द्वारा भारी मात्रा में घूस लेना प्रारंभ कर दिया। आज, केन्द्र तथा राज्य दोनों के ही स्तरों पर, ईमानदार छवि से युक्त राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों की संख्या को उंगलियों पर गिना जा सकता है। यहां तक कि प्रधानमंत्री पर भी भ्रष्ट व्यवहारों का आरोप लगाया जा चुका है (कोलगेट घोटाले, 2013 में)।ट्रांसपरेंसी इंटरनेशनल के भ्रष्टाचार संवेदन सूचकांक के अनुसार सन् 2015 में विश्व के 176 देशों में से भारत का स्थान 85वां था। आज, भारत में भ्रष्टाचार विश्व की प्रचलित दरों से ठीक दोगुना होते हुए अभी तक के अपने चरम स्तर पर है। वैश्विक आधार पर, जहां सन् 2012 में सार्वजनिक सेवाओं तथा स्थानों का उपयोग किए जाने के लिए 27 प्रतिशत लोगों ने घूस दी थी, वहीं भारत में ऐसा करने वाले लोगो का प्रतिशत 54 था। भारत में राजनीतिक दलों को सबसे अधिक भ्रष्ट पाया गया है. जिनकी भ्रष्टाचार की दर 5 के पैमाने पर 4.4 तक है (जिनमें से 1 न्यूनतम भ्रष्ट है जबकि 5 सबसे अधिक)।

भ्रष्टाचार अथवा सार्वजनिक बेईमानी के कारणों के रूप में अनेक की संख्या में कारकों का उल्लेख किया जा चुका है। पहला है राजनीतिक अभिजात्य वर्ग का उद्भव जो एक राष्ट्रोन्मुख के बजाय हितोन्मुख कार्यक्रमों एवं नीतियों में विश्वास करता है। वास्तव में, अंग्रेजी राज्य (शासन) के बाद के शासन को "मंत्रियों तथा नौकरशाहों का राज" कह कर वर्णित किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दो दशकों के दौरान राजनीतिक अभिजात्य वर्ग इस सीमा तक ईमानदार, समर्पित तथा राष्ट्रोन्मुख था, कि उन्होंने सदैव ही देश की प्रगति के लिए कार्य किया। बाद में, विशेषतौर पर सन् 1967 के चौथे आम चुनावों के उपरांत, केन्द्र तथा राज्यों में ऐसे व्यक्तियों ने राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ली, जिन्होंने मात्र निहित स्वाथों, जैसे, स्वयं, परिवार, जाति, क्षेत्र, दल तथा ऐसे ही अन्य के हितों के लिए ही कार्य किया। उनकी नीतियां एवं कार्यक्रम संयोगवश राष्ट्रोन्मुख रहे हो सकते हैं किन्तु अनिवार्य रूप से वे श्हितों पर आधारितश थे उन्होंने नौकरशाहों को भी इसी परंपरा का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित किया। हमारे देश में नौकरशाहों का एक बहुसंख्यक भाग श्कर्मकांडीश रहा है और वह समाज के लिए 'विकासोन्मुख' नीतियों की तुलना में अपने भत्तों तथा विशेषाधिकारों के प्रति अधिक चिंतित रहा है। इस प्रकार से राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाहों ने अपने अधिकारों एवं पदों का उपयोग अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाना प्रारंभ कर दिया। ऐसे नए व्यापारी नेता, जो सत्ताधारी लोगों के साथ बांटकर भी लाभ कमाए जाने की इच्छा रखते थे, भी लोकसेवकों के बीच भ्रष्ट व्यवहारों को अंधाधुंध रूप से बढ़ावा दिए जाने में समान रूप से उत्तरदायी हो गए। भ्रष्टाचार सरकारी अधिकारियों के निर्णय लेने के अधिकार से भी जन्म लेता है, जैसे, लाइसेंस जारी किया जाना, आयकर निर्धारण किया जाना, विस्तार दिया जाना इत्यादि। नियमों के स्थान पर यह नियमों की व्याख्या किया जाना होता है, जो अधिकारियों को घूस लेने तथा घूस को अपनी जेब में रखने की योग्यता प्रदान करता है। अनेक अधिकारी मात्र किसी स्थान विशेष पर अपनी नियुक्ति करवाने के लिए हजारों एवं लाखों रुपयों का इसलिए भुगतान करते हैं क्योंकि वे स्थान उन्हें अवैध पारितोषिक के रूप में हर महीने हजारों एवं लाखों रुपए कमा सकने के योग्य बना देगें। दूसरा कारण है सरकार की आर्थिक नीति। हाल ही में उजागर हुए घोटालों में से अधिकांश ऐसे क्षेत्रों में घटित हुए हैं जहां या तो खरीद सम्बन्धी नीतिया अथवा उनकी कीमतों को सरकार के द्वारा नियंत्रित किया गया था। चीनी, उर्वरक, तेल, सैन्य-हथियार, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, स्पेक्ट्रम इत्यादि इसके कुछ उदाहरणों में से हैं। कुछ वर्षों पूर्व एक अनिवासी भारतीय व्यापारी ने न्यायालय में यह दावा किया था, कि उसे एक भूतपूर्व भारतीय प्रधानमंत्री के द्वारा भारत को पल्प बेचे जाने का ठेका दिए जाने के लिए दिए गए मौखिक आश्वासन के साथ ही चन्द्रास्वामी को धन का भुगतान करना पड़ा था। इसी प्रकार की घूस का भुगतान बोफोर्स, दूरसंचार तथा अनेक अन्य घोटालों में भी किया गया था। वास्तविक मुद्दा है अर्थव्यवस्था को दिग्भ्रमित सरकारी नियंत्रणों के शिकंजे से स्वतंत्र किए जाने का। किन्तु इसके लिए निजीकरण के प्रति एक उतावलेपन से भरा एक दृष्टिकोण भी नहीं चलेगा। स्पष्ट एवं पारदर्शी नियमों की आवश्यकता है। कतिपय व्यक्तियों (जैसे मंत्री, अथवा महा-निदेशक अथवा सचिव) के द्वारा किया जाने वाला मनमानीपूर्ण निर्णयन भ्रष्टाचार को आमंत्रण है। महाराष्ट्र में 'एनरॉन' परियोजना इसलिए समस्याग्रस्त हो गई, क्योंकि सौदे की वार्तालाप एवं शर्ते रहस्यमयता से घिरी हुई थीं। तीसरे, भ्रष्टाचार अभाव के कारण जन्म लेता है।

भ्रष्टाचार के कारणों को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, विधायी एवं न्यायिक वर्गों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। आर्थिक कारणों में शामिल हैं: उच्च जीवनशैली के लिए उन्माद, मुद्रास्फीति, साइसेंस प्रणाली, मुनाफाखोरी की प्रवृत्तियाँ, तथा व्यवसायिक समुदाय में नैतिकता का अभाव। सामाजिक कारणों में शामिल हैं: जीवन का भौतिकवादी दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्यों का क्षय, अशिक्षा, अर्जनशील सांस्कृतिक गुण, सामंतवादी खुमार, जनता की सहनशीलता, सार्वजनिक उदासीनता तथा घोषणकारी सामाजिक संरचना। राजनीतिक कारणों में शामिल हैं, राजनीतिक संरक्षण, निष्प्रभावी राजनीतिक नेतृत्व, राजनीतिक उदासीनता, राजनीतिक अनैतिकता, चुनावी निधिकरण, राजनीतिज्ञों के साथ गठजोड़, तथा राजनीतिक उपसंस्कृति। विधायी कारक हैं, अपर्याप्त कानून, कानून में कमियाँ, तथा शनून को लागू किए जाने में लापरवाही। न्यायिक कारणों में शामिल हैं, महंगी न्याय प्रणाली, न्यायिक उदासीनता, न्यायाधीशों के मध्य प्रतिबद्धता का अभाव, तथा तकनीकी आधारों पर अभियुक्तों को बार-बार दोषमुक्त किया जाना।

इस प्रकार, भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है मनुष्यों का स्वभाव। आम लोगों में विलासिता एवं आराम हासिल करने के लिए बड़ी भूख होती है तथा इसी के परिणामस्वरूप वे स्वयं को ऐसी समस्त अनैतिक गतिविधियों में संलिप्त कर लेते हैं, जिनका परिणाम मौद्रिक अथवा भौतिक लाभों के रूप में प्राप्त होता है। इसके अलावा, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत सर्वाधिक महत्व नहीं प्रदान किया गया है, जो समाज के पतन के लिए अत्यधिक उत्तरदायी है। इसी के साथ-साथ, अपराधियों को दिया जाने वाला दंड भी अपर्याप्त है।

भ्रष्टाचार के प्रकार

धोखाधड़ी:-यह तब होती है जब कोई व्यक्ति या संगठन जानबूझकर झूठी जानकारी प्रस्तुत करता है या गलत जानकारी का उपयोग करके लाभ प्राप्त करता है। जबरन वसूली:-यह तब होती है जब कोई अधिकारी या व्यक्ति किसी से अवैध रूप से धन या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए धमकी देता है। पक्षपात:-जब कोई अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग करके किसी विशेष व्यक्ति या समूह को अनुचित लाभ पहुंचाता है। नेपोटिज्म:-जब कोई अधिकारी अपने रिश्तेदारों या दोस्तों को नौकरी या अन्य लाभ देने के लिए अपने पद का दुरुपयोग करता है। रिश्वतखोर:- जब कोई व्यक्ति, आमतौर पर एक अधिकारी, किसी सेवा या विशेष सुविधा के बदले में अवैध रूप से पैसा या उपहार स्वीकार करता है। लोकसेवकों के बीच भ्रष्टाचार सदैव ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है यद्यपि अलग-अलग समय तथा स्थान के साथ इसका आकार, आयाम, बनावट एवं रंग परिवर्तित होता रहा है। किसी समय में, गलत कार्य करवाने के लिए घूस दी जाती थी जबकि आज सही समय पर सही कार्य करवाने के लिए भी घूस दी जाती है। सार्वजनिक सेवाओं में किन कार्यों को 'भ्रष्ट' कहा गया है? यद्यपि 'भ्रष्टाचार' शब्द के व्यापक अर्थ होते हैं, तथापि कानून के प्रावधानों के अंतर्गत लोकसेवकों के बीच व्यवहार के निम्नलिखित प्रतिरूपों को 'भ्रष्ट' के रूप में वर्णित किया जा सकता है (मलहोत्रा, 1992: 254-256): (1) किसी आधिकारिक क्षमता में किए गए कार्य के लिए पुरस्कार के रूप में परितोषिक स्वीकार करना, (2) अवैध रूप से किसी वस्तु अथवा मौद्रिक लाभ प्राप्त करना, (3) सार्वजनिक संपत्ति का धोखाधड़ी पूर्वक गबन, (4) किसी के अपने ज्ञात आय के स्रोतों से अधिक के अनुपात में वित्तीय संसाधनों अथवा संपत्ति के कब्जे में होना, (5) आधिकारिक पद का दुरुपयोग अथवा गलत उपयोग करना, (6) मूल्यवान वस्तु खरीदने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति, जिसके साथ किसी का सरकारी व्यवहार हो, से इस 'ज्ञात' समझौते के आधार पर धन 'उधार' लेना 'उधार लिया गया धन' लौटाया नहीं जाएगा, (7) 'पदासीन व्यक्तियों' के द्वारा ऐसे व्यक्तियों से उपहार स्वीकार करना जिनके साथ उनके 'पदाधीन' सम्बन्ध हों, (8) सरकार को भुगतान के लिए देय बकायों/कर/शुल्क से बचने में नियमों की अवहेलना करते हुए किसी नागरिक की जानबूझकर सहायता करना, (9) किसी ऐसे आधार पर अपने कर्तव्य के निर्वहन से इंकार करना जिससे दूसरे पक्ष को लाभ प्राप्त हो सके (उदाहरणार्थ, किसी अपराधी को संरक्षण प्रदान करने के लिए पुलिस अधिकारी के द्वारा वाद पंजीकृत न किया जाना)।

सरकारी विभागों/मंत्रालयों में व्यापक भ्रष्टाचार लगभग एक परंपरा बन चुका है। केन्द्र सरकार में कम से कम पांच ऐसे मंत्रालय हैं जिन्हें धन पैदा करने के लिए सोने की खान माना जाता है। ये हैं। रक्षा, रेलवे, पेट्रोलियम, उर्जा, संचार तथा पीडब्ल्यूडी। इन मंत्रालयों का वार्षिक बजट अरबों रुपयों का होता है। बहां रक्षा खरीदों में 15 से 40 प्रतिशत तक की दलाली असामान्य नहीं है वहीं तेल एवं प्राकृतिक गैस का आयात भारी मात्रा में रिश्वत को जन्म देता है। हाल ही में, हमने संचार (2जी) तथा रेलवे मंत्रालयों के उदाहरणों को भी देखा है जहा लाखों करोड़ रुपयों की संलिप्तता वाले घोटालों को उजागर किया गया है। दोनों ही मामलों में, सम्बन्धित मंत्रियों का संलिप्त होना पाया गया है। जहां 2जी घोटाले की राशि लगभग 1,76,000 करोड़ रुपयों (सीएजी के अनुसार)

की है, वहीं रेलवे घोटाले में मंत्री के भतीजे पर रेलवे बोर्ड के सदस्य को सदस्य इलेक्ट्रिकल के पद पर पदोन्नत किए जाने के लिए २० लाख रुपए लिए जाने का आरोप लगाया गया है।

भ्रष्टाचार के कारण

1. नैतिकता की कमी:- जब समाज में नैतिकता और ईमानदारी का अभाव होता है, तो भ्रष्टाचार बढ़ने की संभावना अधिक होती है।
2. अधिकारियों की कम वेतन:-जब अधिकारियों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता है, तो वे अवैध तरीकों से धन कमाने की कोशिश करते हैं।
3. कानूनी प्रणाली की कमजोरी :- जब कानूनी प्रणाली में दोष होता है या न्याय मिलने में देरी होती है, तो लोग भ्रष्टाचार का सहारा लेते हैं।
4. शिक्षा का अभाव:- जब लोगों में शिक्षा का अभाव होता है, तो वे अपने अधिकारों के बारे में अनजान रहते हैं और भ्रष्टाचार का शिकार हो जाते हैं।
5. राजनीतिक दबाव:- जब राजनेता या उच्च पदस्थ अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग करते हैं और अधीनस्थ अधिकारियों पर दबाव डालते हैं, तो भ्रष्टाचार बढ़ता है।

भ्रष्टाचार के प्रभाव:-

भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में बात करते समय क्या हमें मात्र बड़े वित्तीय सौदों तथा घोटालों अथवा राजनीतिक, नौकरशाही सम्बन्धी, औद्योगिक, संस्थागत इत्यादि प्रकार के बारे में ही चिंता करनी चाहिए, अथवा हमें भ्रष्टाचार के उन मामलों के सम्बन्ध में भी चिंता करनी चाहिए जो प्रकट तो नहीं होते किन्तु हमारे दैनिक जीवन में व्याप्त हैं तथा हमारी नैतिकता के तानेबाने को कमजोर कर रहे हैं। कुछ लोग अनुभव करते हैं कि हमें भ्रष्टाचार को विभिन्न श्रेणियों में निथारना चाहिए। जहां एक विचार के अनुसार, राशि को भ्रष्टाचार के कार्य का मानदंड होना चाहिए, वहीं दूसरे विचार के अनुसार, ध्यान 'आवश्यकता' पर केन्द्रित किया जाना चाहिए। इसके अलावा एक अन्य विचार है, कि वांछित किया जाना चिंता करने किया गया 'मूल्य' उचित है।

1. आर्थिक नुकसान:- भ्रष्टाचार से देश की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान होता है। यह निवेशकों को डराता है और व्यापारिक माहौल को खराब करता है।
2. सामाजिक असमानता:- भ्रष्टाचार से समाज में असमानता बढ़ती है। यह गरीब और अमीर के बीच की खाई को बढ़ाता है।
3. विकास में बाधा:- भ्रष्टाचार से विकास परियोजनाएं प्रभावित होती हैं और संसाधनों का दुरुपयोग होता है, जिससे विकास की गति धीमी पड़ती है।
4. न्याय प्रणाली में अविश्वास:- जब न्याय प्रणाली में भ्रष्टाचार होता है, तो लोगों का न्याय प्रणाली पर विश्वास खत्म हो जाता है।
5. नैतिक पतन:- भ्रष्टाचार से समाज की नैतिकता और ईमानदारी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे समाज में नैतिक पतन होता है।

भ्रष्टाचार की रोकथाम

भारत में भ्रष्टाचार का मुकाबला करने के लिए निर्धारित की गई रूपरेखा व्यापक तौर पर दो दृष्टिकोणों पर आधारित रही है। ये हैं भ्रष्टाचार-विरोधी कानूनों को प्राख्यापित किया जाना तथा पुलिस एवं उसके समान अन्य कानून प्रवर्तक संस्थाओं को भ्रष्टाचार से सम्बन्धित अपराधों की जांच और अधिक कुशल एवं प्रभावी रूप से करने के लिए अधिकारों से संपन्न किया जाना।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (Prevention of Corruption Act, 1988)

भारत में भ्रष्टाचार-विरोधी कानूनों के बीच भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के प्रावधानों, भारतीय दंड संहिता तथा अपराध प्रक्रिया संहिता, एवं आपराधिक विधि अधिनियम, 1952

की कुछ धाराओं को एक साथ मिला दिया गया। इसके पीछे निहित एकमात्र विचार यह था, कि समस्त सुसंगत प्रावधानों को एक अधिनियम के अंतर्गत ले लिया जाए। यह पाते हुए कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके उपरांत लोकसेवकों के बीच घूस तथा भ्रष्टाचार में भारी वृद्धि हो चुकी है तथा अनेक बेईमान अधिकारियों ने अकूत संपदा एकत्रित कर ली है, तथा भारतीय दंड संहिता एवं अपराध प्रक्रिया संहिता के वर्तमान प्रावधान इस समस्या से निपट पाने हेतु अपर्याप्त हो चुके हैं, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 को पारित किया गया था। अपराध प्रक्रिया संहिता में, लोकसेवकों से सम्बन्धित अपराध संज्ञेय नहीं हैं, किन्तु सन् 1947 के अधिनियम ने न्यायालय के लिए आरोपी के विरूद्ध अपराध की कतिपय परिकल्पनाओं का बनाया जाना अनिवार्य कर दिया। सन् 1947 के अधिनियम ने सिद्ध करने का दायित्व अभियोजन से आरोपी पर स्थानांतरित कर दिया। आरोपी के विरूद्ध जांच किसी ऐसे अधिकारी के द्वारा की जानी थी, जो उप-अधीक्षक पुलिस की श्रेणी से नीचे के पद का न हो। सन् 1947 के अधिनियम ने घूस लिए जाने, गबन करने, मौद्रिक लाभ प्राप्त करने, आय के अनुपात से अधिक संपत्ति रखने, तथा आधिकारिक पद का दुरुपयोग किए जाने जैसे भ्रष्टाचार सम्बन्धी कार्यों को अपराध घोषित कर दिया। हालांकि, अभियोजन का अधिकार मात्र विभागीय अधिकारियों में निहित था न कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो में। सन् 1988 के अधिनियम ने 'लोकसेवक' शब्द की परिधि का विस्तार कर दिया तथा बड़ी संख्या में कर्मचारियों को इसी परिधि के अंदर ला दिया। केन्द्र सरकार तथा संघ शासित प्रदेश की सरकारों के कर्मचारियों के अलावा सार्वजनिक उपक्रमों, राष्ट्रीकृत बैंकों, केन्द्र तथा राज्य सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली सहकारी समितियों के पदाधिकारियों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, उप-कुलपतियों, केन्द्र तथा राज्य सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाले संस्थानों में प्रोफेसरों तथा वैज्ञानिकों, अथवा यहां तक कि स्थानीय प्राधिकरणों के कर्मचारियों को भी लोकसेवक के रूप में घोषित कर दिया गया है। हालांकि, संसद सदस्यों तथा विधान सभा सदस्यों, भले ही वे 'सार्वजनिक कर्तव्यों' का निर्वहन करते हैं, को अधिनियम की परिधि से बाहर रखा गया है। यह अधिनियम ऐसे समस्त 'भ्रष्ट' कार्यों को अपने अंतर्गत शामिल करता है जिन्हें सन् 1947 के अधिनियम के द्वारा शामिल किया गया था (घूस, गबन, मौद्रिक लाभ लिया जाना, आय के अनुपात से अधिक संपत्ति रखा जाना इत्यादि)। यह अधिनियम मात्र जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में लागू होता है, तथा देश के बाहर अथवा देश में रहने वाले समस्त भारतीय नागरिकों पर लागू होता है। यदि किसी लोकसेवक के विरुद्ध न्यायालय में अपराध सिद्ध हो जाता है तो यह न्यूनतम 6 महीनों किन्तु 5 वर्षों से अधिक नहीं के कारावास के साथ दंडनीय है। इस प्रकार से 6 महीनों का कारावास अनिवार्य है तथा इस सम्बन्ध में न्यायालयों के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है। यदि लोकसेवक को आदतन अपराध करने वाला पाया जाता है, तो उसे न्यूनतम 2 वर्षों तथा अधिकतम 7 वर्षों के लिए अर्थदंड के साथ दंडित किया जा सकता है

1. कठोर कानून:- भ्रष्टाचार के खिलाफ कठोर और प्रभावी कानून बनाने और उन्हें सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है।
2. प्रभावी निगरानी:- सरकारी और निजी संगठनों में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी निगरानी तंत्र की स्थापना आवश्यक है।
3. शिक्षा और जागरूकता:- भ्रष्टाचार के खिलाफ लोगों में शिक्षा और जागरूकता फैलाना जरूरी है, ताकि वे अपने अधिकारों के बारे में जान सकें और भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठा सकें।
4. वेतन वृद्धि: अधिकारियों और कर्मचारियों को उचित वेतन और लाभ प्रदान करना, ताकि वे अवैध तरीकों से धन कमाने की कोशिश न करें।
5. राजनीतिक इच्छाशक्ति:- भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए राजनीतिक नेतृत्व में इच्छाशक्ति और संकल्प होना आवश्यक है। उच्च पदस्थ अधिकारियों को ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए।

निष्कर्ष

भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या है जो समाज और राष्ट्र के विकास को बाधित करती है। इसे रोकने के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। सरकार, समाज, और व्यक्तिगत स्तर पर सभी को मिलकर भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़नी होगी। केवल तब ही हम एक न्यायसंगत और समृद्ध समाज का निर्माण कर सकते हैं, जहां हर व्यक्ति को समान अवसर और अधिकार मिल सके। क्या हमारे समाज में भ्रष्टाचार को रोक पाना संभव है? अधिकांश राजनीतिज्ञ जब सत्ता में पहली बार आते हैं, तो वे भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा करते हैं, किन्तु शीघ्र ही वे स्वयं भ्रष्ट हो जाते हैं तथा अपार संपदा एकत्रित

करना प्रारंभ कर देते हैं। सन् 1984 में जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने, उन्होंने भी भ्रष्टाचार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, किन्तु शीघ्र ही वे स्वयं भी बोफोर्स घूसकांड के शिकार बन गए। इस प्रकार से भ्रष्टाचार का संस्थानीकरण हो चुका है।

यदि हम वास्तव में भ्रष्टाचार से लड़ाई लड़ना चाहते हैं, तो इससे जुड़े अनेक ऐसे मिथक हैं, जिन्हें खंडित किया जाना होगा। इनमें से कुछ हैं: भ्रष्टाचार जीवन का एक तरीका बन चुका है और इसके सम्बन्ध में अब कुछ भी नहीं किया जा सकता, अथवा यह कि भ्रष्टाचार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की एक घटना है तथा यह लोकतंत्र में जनता को बहुत अधिक स्वतंत्रता एवं लाइसेंस प्रदान किए जाने का परिणाम है; अथवा यह कि अविकसित देशों के गरीब लोग आमतौर पर स्वभाव से ही बेईमान तथा विश्वास न किए जाने योग्य होते हैं तथा सरलता से लालच में आ जाते हैं, जबकि विकसित देशों के लोग अपेक्षाकृत कम भ्रष्ट हैं; अथवा यह कि भ्रष्टाचार मात्र निचले तथा अधीनस्थों के स्तरों पर ही विद्यमान है; अथवा यह कि भ्रष्टाचार शिक्षितों की तुलना में अशिक्षितों के बीच ही अधिक पाया जाता है; अथवा यह कि भ्रष्टाचार मुख्य रूप से राजनीतिज्ञों के कारण ही फैलता है। ये सभी भ्रम बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं तथा भ्रष्टाचार को रोकने के उपायों की योजना बनाते समय हमें उनके विरुद्ध सजग रहने की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार को कम करने के लिए कुछ तरीके सुझाए गए हैं। ये हैं पहला, हमें कानून, प्रक्रिया तथा प्रशासन पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। विशिष्ट स्थितियों में विशिष्ट प्रास्थिति के साथ बैठे व्यक्तियों के संगठन एवं व्यवहार से सम्बन्धित कानूनों एवं नियमों का होना अनिवार्य है। 'बुरे' कानूनों/नियमों को परिवर्तित अथवा समाप्त किया जाना होगा। यदि कानून/नियम बहुत अधिक कठोर, जटिल एवं अस्पष्ट होते हैं, तो ये भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। कानून ऐसे नहीं होने चाहिए कि वे विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए भारी गुंजाइश प्रदान करते हों। विवेकाधिकार को अधिकारी के पद तथा उसे सौंपी गई भूमिका के अनुरूप होना चाहिए। 'प्रशासनिक' कारकों में संरचनात्मक तथा क्रियात्मक दोनों ही पहलू शामिल होते हैं। किसी संस्था का ढांचा किस प्रकार का है, यही भ्रष्टाचार के लिए खामियों का निर्धारण करेगा। 'कामकाज' कार्य की उस 'जारी' प्रक्रिया को संदर्भित करता है, जो कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों, तथा अधीक्षण एवं खामियों के परिमाण इत्यादि को संदर्भित करता है। दूसरा, कृत्रिम कमियां तथा अभाव, जो अवैध पारितोषण की सुविधा प्रदान करता है, को नियंत्रित किया जाना होगा। तीसरे, सतर्कता में वृद्धि की जानी चाहिए। यह एक मिथक है, कि सतर्कता दक्षता को बाधित करती है; इसके विपरीत यह इसमें सुधार लाती है।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, क्या कभी जनता यह अनुभव करेगी, कि उन्हें भ्रष्टाचार जैसी बुराई से संघर्ष करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आवश्यकता है? वास्तव में, भ्रष्टाचार का बड़ा भाग लोगों की सहनशीलता अथवा इसके विरुद्ध संपूर्ण जनाक्रोश के अभाव के साथ-साथ इसका विरोध करने के लिए किसी शक्तिशाली जनमंच के मौजूद न होने के कारण विद्यमान है। जहां अनेक बौद्धिक, शिक्षित, सुविदित एवं मुखर नागरिकगण देश इस राक्षसी समस्या के सम्बन्ध में चिंताग्रस्त बने हुए हैं, वहीं वे अपने विरोध में को इसके विरुद्ध एक शक्तिशाली सार्वजनिक राय का रूप प्रदान करने में विफल रहे हैं। जिम्मेदार तथा प्रबुद्ध नागरिकों के द्वारा किया गया एक ठोस प्रयास निश्चित रूप से भ्रष्टाचार के स्तर को एक गंभीर आघात पहुंचा सकता है। यहां तक कि हमारे विश्वविद्यालय में युवजन भी समाजोन्मुख लक्ष्यों का बीड़ा उठा सकते हैं तथा इस बुराई को समाप्त करने के लिए आंदोलनों का आयोजन कर सकते हैं।

राज्य द्वारा चुनावों का यह वित्तपोषण नि:संदेहात्मक रूप से बड़ी सीमा तक भ्रष्टाचार को कम कर सकेगा। राज्य द्वारा चुनावों का वित्तपोषण न केवल भ्रष्ट व्यापारियों एवं हितधारक समूहों के द्वारा दिए जाने वाले योगदानों को समाप्त करेगा बल्कि यह विधानसभाओं में निष्ठावान व्यक्तियों को को पहुंचाते हुए, विभिन्न राजनीतिक दलों के द्वारा व्यय की गई धनराशि को एक समान बनाते हुए और ऐसे ही अन्य लाभों के साथ स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों में भी योगदान करेगा।

यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है, कि आज भ्रष्टाचार लोगों को आश्चर्यचकित नहीं करता। यहां तक कि गलत कार्य प्रकट हो जाने के बाद भी मंत्रीगण तथा अधिकारी बेदाग छूट जाते हैं। अधिक से अधिक, उनका स्थानांतरण कर दिया जाता है। जब तक भ्रष्टाचार कानूनी, नैतिक तथा सामाजिक प्रतिबंधों को आकर्षित करने में विफल रहेगा, तब तक इसे समाप्त किए जाने अथवा कम किए जाने की कोई आशा नहीं है। ऐसा संभव है कि भ्रष्टाचार को पूरी तरह से जड़ से न उखाड़ा जा सके, परंतु यह निश्चित रूप से संभव है कि इसे कम किया जा सके अथवा बर्दाश्त करने की सीमा के अंदर लाया जा सके। भ्रष्टाचार एक कैंसर है, जिससे मुक्ति पाने के लिए प्रत्येक भारतीय को प्रयास करना चाहिए। अपनी ईमानदारी एवं निष्ठा के लिए ज्ञात ईमानदार एवं समर्पित लोगों को सार्वजनिक जीवन में लाया जाना, लोकप्रिय रूप से उदारवादी नीति कहे जाने वाली अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियंत्रण में कमी,

तथा चुनावी खर्चों पर नियंत्रण, भ्रष्टाचार के लिए तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण नुस्खें हो सकते हैं। जनता ने लंबे समय से भ्रष्ट व्यक्तियों को सहन किया है। अब समय आ चुका है कि समर्पित राजनीतिक शासकों के द्वारा भ्रष्टाचार को रोके जाने को गंभीरतापूर्वक लिया जाए।

References

Choudhry, P.C., “Corruption”, Seminar, No. 421, September, 1994.

Douglas, Jack D. and Johnson, Robert, Deviance, Lippincott Co., Philadelphia, 1971. Hallaya, M., Corruption in India, 1948 (quoted by P.C. Choudhry in Seminar, No. 421, September, 1994).

Kohli, Suresh, Corruption in India, 1975 (quoted by P.C. Choudhry in Seminar, No. 421 September, 1994).

Levine, Victor T., Political Corruption: The Guana Case, Transaction Publishers, New

Brunsuick, New Jersey, 1957.

Machael, Clarke (ed.), Corruption: Causes and Consequences, Frances Pinter London, 1983. Majumdar, K.C., Ancient India, Motilal Banarasidass, New Delhi, 1960.

Malhotra, K.L., Facets of Vigilance, Malhotra Publications, Delhi, 1988 and 1992. Mathur, K.M., “Corruption in Administration”, Working Paper for DIG Police

Seminar held at Internal Security Academy, Mount Abu, from October 12 to October 17, 1992.

Monteiro, J.B., Corruption, Manaktalas, Bombay, 1966.

Nye, J., “Corruption and Political Development: A Cost-Benefit Analysis”, American

Political Review, Vol. 61, No. 2, 1967.

Samasastry, R., Arthasastra (translated), Mysore Printing House, Mysore, 1967. Sandhu, Veena and Narasimhan, T.E., “Kickback Nation”, Business Standard, 13 July 2013. Santhanam Committee Report on “Prevention of Corruption”, Government of India,1964.

Sunday Times of India, Calcutta, 27 November-3 December, 1994.

Szeftel, Morris, “Corruption and the Spoil System in Zambia”, in Machael Clarke), Corruption: Causes and Consequences, Frances Pinter, London, 1983. (ed.

Vittal, N., Ending Corruption: How to Clean up India, Penguin/Viking, New Delhi, 2012. Writh, Ronald and Simpkins, Edgar, Corruption in Developing Countries, Allen & Unwin, London, 1963.

राम अहूजा- “सामाजिक समस्याएं” रावत पब्लिकेशन जयपुर 2016

समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की भूमिका

अशोक कुमार

ग्रंथपाल, प्रतिभा कॉलेज ऑफ एजूकेशन, बालसी सरायपाली, जिला - महासमुन्द (छ.ग.)

ABSTRACT:

समाज तथा ग्रंथालयों का गहन सम्बन्ध है। समाज ऐसे लोगों का एक समूह होता है जो किसी विशेष प्रयोजन अथवा कार्य के लिए परस्पर मेल जोल रखते हैं और कुछ नियमों तथा परम्पराओं में भागीदार होते हैं। समाज का शाब्दिक अर्थ है; समुदाय या जनता या सामान्य लोग जो एक क्षेत्र में अथवा एक काल में इकट्ठे रहते हैं। ग्रंथालय लोगों से सम्बद्ध होने के नाते सामाजिक संस्थाएँ है। ग्रंथालयों का अस्तित्व ही समाज के लिए होता है। मानव सभ्यता पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि ग्रंथालय सभ्य समाज का एक अभिन्न अंग रहे हैं। समाज सेवा ही ग्रंथालयों का उद्देश्य है। ग्रंथालयों के प्रकार, विशेषतायें, प्रयोजन, कार्य तथा सेवाएँ सभी समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित होते हैं। ग्रंथालयों ने समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक विकास में सदैव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज के सभ्य समाज के निर्माण में ग्रंथालयों का सराहनीय योगदान रहा है।

KEYWORDS: ग्रंथालय, समाज, शोध और अनुसंधान, सांस्कृतिक सूचना संचार, धार्मिक, आध्यात्मिक।

प्रस्तावनाः-

ग्रंथालय समाज के चहुमुखी विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान करता है। समाज लोगों का एक समूह होता है जो किसी एक क्षेत्र अथवा काल में रहते है और परस्पर कुछ नियमों, रिति-रिवाजों तथा परम्पराओं से बंधे होते है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समज व्यक्तियों, उनके क्रियाकलापों तथा आस्थाओं का एकीकृत रूप होता है। आज का लोकतांत्रिक युग समतामुलक समाज की वकालत करता है। जिसमें प्रत्येक मानव को अपने विकास एवं शिक्षा के लिए बिना किसी भेदभाव के समान अवसर प्रदान होने चाहिए। तथा विभिन्न तरह के सुचनाओं का उपयोग मानवीय विकास के लिए बिना किसी भेदभाव के होने चाहिए। ग्रंथालयों द्वारा पुस्तको एवं सुचनाओं का संग्रहण, व्यवस्थापन और प्रसारण बिना किसी भेदभाव के समस्त उपयोगकर्ताओं को किया जाता है।

अध्ययन के उद्देश्यः-

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैः-

1. समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की भुमिका का अध्ययन करना।
2. समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक जीवन के विकास में ग्रंथालय की भूमिका का अध्ययन करना।
3. समाज के शिक्षा संस्कृति और मनोरंजन में ग्रंथालयों के महत्व एवं भूमिका का अध्ययन करना।
4. समाज के प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास में ग्रंथालयों के महत्व का अध्ययन करना।
5. समाज को एक ज्ञान निधि के रूप में विकसित करने में ग्रंथालय की भुमिका का अध्ययन करना।

ग्रंथालय से तात्पर्य:-

ग्रंथालय (Library) शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'स्पइतंतपं' लाईब्रेरिया से लिया गया है। 'लाईब्रेरिया' उस स्थान का नाम है जहाँ पर पुस्तकें अथवा अन्य मुद्रित तथा लिखित सामग्री सुरक्षा से रखी जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं की ग्रंथालय वह स्थान है जहाँ पर ज्ञान एवं सुचना प्रद सामग्री को एक व्यवस्थित ढ़ग से रखा जाता है ताकि उसका अधिकतम उपयोग हो सके।

ग्रंथालय के उद्देश्य

ग्रंथालय के उद्देश्य निम्नलिखित है:-

1. समाज के सभी व्यक्तियों को उनके स्वास्थ्य एवं बौद्धिक विकास के लिए पाठ्य एवं अन्य सुचनाप्रद सामग्री उपलब्ध कराना।
2. समाज में ज्ञान का प्रसार करना।
3. लोगों को जीवन पर्यन्त स्वशिक्षा प्रदान करना।
4. खाली समय के सदुपयोग के अवसर प्रदान करना।

ग्रंथालय के कार्य

ग्रंथालय के कार्य निम्नलिखित है:-

(1) ग्रंथालय में ग्रंथों एवं ग्रंथेतर अभिलेखों को उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करना।

(2) ज्ञान, शिक्षा और संस्कृति के विकास और विस्तार में वृद्धि करना। शिक्षा की सुविधा प्रदान करना।

(3) समाज में औपचारिक और अनौपचारिक जीवन पर्यन्त स्व

(4) समुदाय की संस्कृति को उन्नत बनाने में सुविधा प्रदान करना।

(5) शोध एवं अनुसंधान के विकास और विस्तार में सहायता करना।

समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की भुमिका:

समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की निम्नलिखित भुमिका है:-

(1) सांस्कृतिक स्तर को समुन्नत करने के लिए ग्रंथालय:- ग्रंथालय समाज में जनसाधारण की बुद्धि ज्ञान और सामाजिक स्तर को काफी हद तक बढ़ाते है। ये समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की सामान्य बुद्धि व ज्ञान को भी बढ़ाते है। ग्रंथालय पठन रूची का विकास करते है और व्यक्ति के सांस्कृतिक स्तर को बढ़ाकर उनके पढ़ने की रूचि में परिवर्तन भी लाते है।

(2) ग्रंथालय सुसंस्कृत नागरिक बनाने का साधन:- एक सु-सभ्य समाज से यह अपेक्षा की जाती है कि उसका प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो व शिक्षित समुदाय के मुल्यों और ग्रंथालय के महत्व से पूर्णत: अवगत हो। जहाँ कही भी सभ्यता है वहाँ ग्रंथ अवश्य होंगे और जहाँ ग्रंथ होगे वहाँ ग्रंथालय अवश्य होंगे।

(3) ग्रंथालय पुस्तकों के अध्ययन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है:- एक सामाजिक संस्था के रूप में ग्रंथालय न केवल पाठकों को पुस्तकें प्रदान करके संतुष्ट करते हैं बल्कि उनके उपयोग की आकांक्षा एवं माँग की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित करते हैं। लोगों में अध्ययन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हुए वह उन्हें ग्रंथालयोंन्मुखी बनाने व पुस्तकों के प्रति उनके ह्रदय में प्रेम भावना को जागृत करता है।

(4) ग्रंथालय सामाजिक सांजस्य की सुविधाएँ प्रदान करता है:- ग्रंथालय सामाजिक संस्था के रूप में उपयोगकर्ताओं में आपसी सम्पर्क स्थापित करने की सुविधा प्रदान करता है। ग्रंथालय समाज में पारस्परिक मेल मुलाकात के अवसर प्रदान करता है।

(5) ग्रंथालय ज्ञान संरक्षण करता है:- ग्रंथालय पुरालेखों और दुर्लभ प्रलेखों का संरक्षण साहित्यिक विरासत के रूप में भावी पीढ़ी के लिए रखता है। यह मानवता के साहित्यिक अवशेषों को विभिन्न भौतिक रूप में अनुसंधान के लिए संकलन रखता है।

(6) ग्रंथालय समाज के प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास में सहायक है:- प्रजातांत्रिक देशों और समाजों द्वारा प्रत्येक नागरिक को अपने विकास एवं शिक्षा के लिए बिना किसी भेदभाव के समान अवसर की वकालत करता है। तथा सुचनाओं का उपयोग मानवीय विकास के लिए बिना किसी भेदभाव के होने चाहिए इस बात पर बल देता है।

(7) ग्रंथालय समाज में सुचना के संचार में सहायक है:- ग्रंथालय द्वारा सुचनाओं और प्रलेखों का संग्रहण और व्यवस्थापन किया जाता है जिन कारण यह व्यवस्थित सुचनाओं का विशाल भंडार होता है तथा उपयोगकर्ता के आवश्यकतानुसार उन सुचनाओं का प्रसारण भी किया जाता है।

(8) ग्रंथालय शोध और अनुसंधान के कार्य में सहायक है:- आधुनिक विश्व और समाज अपने विकास के लिए शोधों पर आश्रित है और शोध कार्यो में सुचना और प्रलेखों की महत्ता जगजाहिर है। ग्रंथालयों द्वारा सुचनाओं और प्रलेखों का संग्रहण, व्यवस्थापन और प्रसारण किया जाता है। जिसका उपयोग शोध कार्यो हेतु अति महत्तपूर्ण है तथा ये शोध कार्यो के आधार स्तम्भ है।

(9) समाज को शिक्षित करने में ग्रंथालय का योगदान:- ग्रंथालय का सभी प्रकार की शिक्षा- औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। यह शिक्षा क्षेत्र में आधार स्तंभ की तरह कार्य करता है। और पुस्तकालय के बिना आधुनिक शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

(10) धार्मिक तथा अध्यात्मिक कार्यों में ग्रंथालय का योगदान:- ग्रंथालय में कई तरह की पुस्तके होती है। जिसमें कई तरह के सुचनात्मक मनोरंजनात्मक, प्रेरणात्मक आदि जानकारी दी गई होती है। प्रेरणात्मक पुस्तक प्राय: धर्म तथा अध्यात्मिक बातों पर आधारित होता है। इस तरह के पुस्तकों का संग्रह करके ग्रंथालयों द्वारा धार्मिक तथा अध्यात्मिक कार्यों में योगदान दिया जाता है।

निष्कर्ष:-

आधुनिक युग जो सुचना समाज के रूप में जाना जाता हैं। और इसके सदस्य होने के नाते हम अच्छी तरह जानते है कि आधुनिक समाज में मनुष्य की आवश्यकता में सबसे प्रमुख आवश्यकता शिक्षा और सुचना हैं। बिना शिक्षा के मनुष्य अपना विकास नहीं कर सकता हैं, और न ही वह समाज का उत्थान कर सकता हैं। मनुष्य के आत्मविकास में जितनी भुमिका शिक्षा की हैं, उतनी ही भूमिका समाज की प्रगति में ग्रंथालयों की हैं, जिस प्रकार शिक्षा के बिना मनुष्य का विकास नहीं हो सकता हैं, उसी प्रकार ग्रंथालयों के बिना समाज की प्रगति की कल्पना करना मुश्किल हैं। इस तरह से हम देखते हैं कि आज के सभ्य समाज के निर्माण में ग्रंथालयों का सराहनीय योगदान रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सैनी. ओ. पी., ग्रंथालय एवं समाज, वाई. के. पब्लिशर, आगरा
2. पाण्डेय एस. के., पुस्तकालय और समाज, ग्रंथ अकादमी, दिल्ली
3. शर्मा अरविंद कुमार, सूचना सम्प्रेशण और समाज, एस्स. एस्स. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
4. शर्मा प्रहल्लाद, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान, डॉ. एल. एन. यूनिवर्सीटी पब्लिकेशन, जयपुर

हिंदी ग़ज़ल-लेखन परम्परा और बिहार के ग़ज़लकार

अविनाश भारती

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार।

प्रो० राजेन्द्र साह

अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार।

हिन्दी ग़ज़ल मूलतः आधुनिक युग की देन है। ग़ज़ल के प्रति असाधारण रुचि उत्पन्न हुई है। आज बड़ी संख्या में ग़ज़लें लिखी जा रही हैं जिसमें बिहार भी विशिष्ट स्थान रखता है। हिन्दी भाषी ग़ज़ल जैसी नाजुक विधा को मातृभाषा की तरह अपना रहे हैं। साथ ही बौद्धिक यथार्थ की जगह वास्तविक जीवन के चित्रों को प्रमुखता दे रहे हैं जो सामाजिक संघर्ष को अतिरिक्त बल प्रदान करता है। ग़ज़ल वर्तमान समय की सबसे लोकप्रिय विधा है।

अगर ग़ज़ल की पूर्व पीठिका की बात की जाए तो आज से लगभग 700 वर्ष पूर्व जब सर्वप्रथम अमीर खुसरो (1253 ई. से 1325 ई.) ने कहा कि-

जे-हाल-ए-मिस्कीं मकुन तगाफुल दुराय नैनाँ बनाए बतियाँ,
कि ताब-ए-हिज्राँ नदारम ऐ जाँ न लेहू काहे लगाए छतियाँ। (1)

तब यहीं से ग़ज़ल-लेखन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। इस कारण भी अमीर खुसरो को हिन्दी और उर्दू का प्रथम ग़ज़लकार और प्रस्तोता माना जाता है।

विदित हो कि उर्दू में ग़ज़ल का आगमन फारसी से हुआ है। उर्दू के बाद हिन्दी और अन्य भाषाओं द्वारा भी ग़ज़ल को स्वीकार किया गया। खास करके हिन्दी ने इसके परंपरागत स्वरूप की जगह ग़ज़ल के परिमार्जित स्वरूप को अपनाया है। यहाँ परिमार्जित कहने का आशय शिल्प नहीं कथ्य का परिमार्जित होने से है।

पूर्व में ग़ज़ल का मतलब ही प्रेमिका से बातचीत या फिर प्रेमिका की सुन्दरता का वर्णन करना था। आसान शब्दों में कहे तो ग़ज़ल पूर्णतः असाहित्यिक और मनोरंजन का पर्याय थी। अमीर खुसरो के बाद संत कबीर दास (1398 ई. से 1420) ने कुछ ग़ज़लें कहीं। भाषाई स्तर पर कबीर की ग़ज़लें जरूर खुसरो से भिन्न हैं लेकिन कथ्य के स्तर पर नहीं। अर्थात उनकी ग़ज़लों के केन्द्र में भी प्रेम दिखाई पड़ता है। उदाहरण स्वरूप इनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल 'हमन है इश्क मस्ताना' के कुछ अशंआर देखे जा सकते हैं-

हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या,
रहें आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।
न पल बिछ्ड़ें पिया हम से न हम बिछड़े पियारे से,
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बे-क़रारी क्या।

'कबीरा' इश्क़ का माता दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाजुक है हमन सर बोझ भारी क्या।[2]

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यही प्रतीत होता है कि कबीरदास के बाद हिन्दी में ग़ज़ल-लेखन का कार्य कई शताब्दियों तक शिथिल रहा। कबीरदास के बाद कई दशकों के लंबे अंतराल के बाद जहाँगीर के समकालीन फारसी कवि प्यारेलाल शोकी (1550 ई.) ने हिन्दी ग़ज़ल को नया रंग प्रदान किया। प्यारेलाल शोकी की ग़ज़लों का कथ्य भी अलौकिक प्रेम की ओर इंगित करता है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों में मिथ्याडंबर एवं थोथी भक्ति के प्रदर्शन का विरोध करते हुए ईश्वर के रंग में रंग जाने तथा सच्चे परमेश्वर के दर्शन से जन्म को सफल एवं सार्थक करने का संदेश दिया है। इस बाबत इनकी ग़ज़लों के चंद अशंआर देखे जा सकते हैं-

जिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ,
जिन इश्क में सर ना दिया, सो जग जिया तो क्या हुआ?
जोगी न जंगम से बड़ा, रंग लाल कपड़े पहन के,
वाकिफ नहीं इस हाल से कपड़ रँगा तो क्या हुआ?
मारम जगत को छोड़कर, दिल तन से ते खिलवत पकड़,
'शोकी पियारेलाल' बिन, सबसे मिला तो क्या हुआ?(3)

प्यारेलाल शोकी के बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरिधर दास उर्फ बाबू गोपालचन्द्र (1833 ई. से 1873 ई.) अपने पूर्ववर्ती ग़ज़लकारों की परम्परा का अनुगमन करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कहा जा सकता है कि अमीर खुसरो, कबीर, प्यारेलाल शोकी, गिरिधर दास जैसे कवियों ने जिस धरती पर ग़ज़ल के जो बीज बोए, वे भारतेन्दु और उनके परवर्ती काल में अंकुरित एवं पल्लवित होकर हिन्दी ग़ज़ल साहित्य की श्रीवृद्धि में सहायक सिद्ध हुए।

भारतेन्दु युग (1850 ई. से 1900 ई.) में ग़ज़ल कहने वालों की सूची में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, चन्द्रभान 'बरहमन', बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पंडित प्रताप नारायण मिश्र प्रमुख रूप से सक्रिय नजर आते हैं।

भारतेन्दु युग की ग़ज़लें द्विवेदी युग तक आते-आते और संजीदा रूप अख़्तियार करती हुई प्रतीत होती हैं। इस युग के प्रमुख ग़ज़लकारों में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लाला भगवानदीन, पंडित नारायण प्रसाद 'बेताब', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', पंडित जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी', राष्ट्रकवि मैथिलिशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रामप्रसाद बिस्मिल, राधेश्याम कथवाचक, बिन्दु जी आदि ग़ज़ल सृजन में बेहद सक्रिय और प्रतिबद्ध नजर आती हैं।

छायावाद की ग़ज़लें छायावादी प्रवृतियों से लैस दिखाई पड़ती हैं। अर्थात आत्माभिव्यंजना, प्रेम, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रीयता और रहस्य का कमोबेश चित्रण उस वक्त की ग़ज़लों में देखा जा सकता है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का सन् 1946 में प्रकाशित संग्रह 'बेला' में गीत के साथ-साथ ग़ज़लें भी शामिल हैं। जो ग़ज़ल की बढ़ती लोकप्रियता और उपयोगिता का द्योतक है। कुछ ग़ज़ल आलोचनक आज भी निराला को हिन्दी ग़ज़ल के प्रणेता मानते हैं। उदाहरण स्वरूप निराला जी के प्रसिद्ध ग़ज़ल के चंद अशंआर प्रस्तुत हैं-

भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है,
देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में है।
पेड़ टूटेंगे, हिलेंगे, जोर की आँधी चली,
हाथ मत डालो, हटाओ पैर, बिच्छू बिल में है।
ताक पर है नमक-मिर्चा, लोग बिगड़ें या बनें,
सीख क्या होगी पराई, जब पिसाई सिल में है।[4]

छायावाद के प्रमुख स्तंभ जयशंकर (1899 ई. से 1937 ई.) ने भी कुछ छिटपुट ग़ज़लों का सृजन किया है। इस युग की ग़ज़लों में संस्कृत और उर्दू का प्रभाव साफ-साफ दिखाई पड़ता है। खास करके माखललाल चतुर्वेदी (1899 ई. से 1968 ई.) की ग़ज़लों में उर्दू शब्दों का यथोचित प्रयोग मिलता है। कहा जाता है कि चतुर्वेदी जी का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ, लिखना उन्होंने छायावादी युग में प्रारंभ किया, ग्रंथ उनके प्रयोगवादी युग में प्रकाशित हुए लेकिन उनके संस्कार द्विवेदी युग के हैं।[5]

छायावादोत्तर युग तक ग़ज़लकारों की फेहरिस्त लंबी होने लगी। इस सूची में रामेश्वर शुक्ल अंचल, हरिकृष्ण प्रेमी, नरेन्द्र शर्मा, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, बलबीर सिंह रंग, रामस्वरूप सिंदूर आदि प्रमुख नजर आते हैं। वहीं प्रयोगवादी युग के ग़ज़लकारों में शमशेर बहादुर सिंह (13.01.911 से 12.05.1993) पर ग़ज़ल का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इनकी ग़ज़लों में उर्दू का रंग सर्वत्र विद्यमान है। इन ग़ज़लों में विचारों की नवीनता एवं तीव्रता पूरे निखार पर है।

वही उम्र का एक पल कोई लाए,
तड़पती हुई-सी ग़ज़ल कोई लाए।
हकीकत को लाए तखैयुल से बाहर,
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए।
नजर तेरी दस्तूरे-फिरदौस लाई,
मेरी जिंदगी में अमल कोई लाए।[6]

शमशेर जी प्रेम एवं सौंदर्य के साथ-साथ पीड़ा को भी ग़ज़ल के वर्ण्य विषय का आवश्यक अंग मानते हैं।

इश्क की शायरी है ख़ाक, हुस्न का जिक्र है मजाक़,
दर्द में गर चमक नहीं, रूह में गर जिला नहीं।[7]

इनके बाद प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन शास्त्री (20.08.1917 से 09.12.2007) की ग़ज़लें भी हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनकी ग़ज़लों में आधुनिक सभ्यता का यथार्थ चित्रण किया गया है। महँगाई, बेरोजगारी एवं घुटन जैसी समस्याएं इनकी ग़ज़लों के केन्द्र में हैं। इस सन्दर्भ में एक ग़ज़ल के कुछ चुनिंदा अशंआर द्रष्टव्य है-

प्रबल जलबात पाकर सिंधु दुस्तर होता जाता है,
कठिन संघर्ष जीवन का कठिनतर होता जाता है।
कमाता एक था परिवार पूरा चौन करता था,
अकेले का भी जीवन अब तो दूभर होता जाता है।
'त्रिलोचन' तुम ग़ज़ल में खूब आये बात बन आई,
नए जीवन का स्वर अब गान का स्वर होता जाता है।[8]

आधुनिक हिन्दी युग के बड़े ग़ज़लगो दुष्यंत कुमार (01.09.1933 से 30.12.1975) का आगमन सठोत्तरी कविता के दौर में होता है जो समस्याओं और संघर्ष का युग होता है। दुष्यंत की ग़ज़लें समस्याओं और विसंगतियों को रेखांकित करती हैं। इनकी ग़ज़लों की लेखन प्रतिबद्धता इन्हें पूर्ववर्ती ग़ज़लकारों से भिन्न पहचान दिलाती है।

दुष्यंत की ग़ज़लों में बदलाव की तीव्र उत्कन्ठा है। इनकी ग़ज़लों की सहज भाषा आम जन-मानस पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती हैं।

वास्तव में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में जो आग है वह उस व्यक्ति की आग है जो सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रुपताओं को ध्यान से देखकर और समाज के बीच रहकर उसकी पीड़ा को पूर्णरूपेण समझते हुए भीतर ही भीतर सुलग रहा है। इस बाबत दुष्यंत कुमार की एक चर्चित ग़ज़ल के चंद अशंआर ध्यातव्य हैं-

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।[9]

दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल हिन्दी ग़ज़ल को नया तेवर और नये लिबास में प्रस्तुत करती है। ग़ज़ल-लेखन में इनके अद्वितीय प्रयास के कारण अधिकांश ग़ज़ल-आलोचक इन्हें आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल के प्रणेता भी मानते हैं।

दुष्यंत के बाद तो मानो ग़ज़ल लिखने वालों की भीड़-सी हो गई। इनके साथ और इनके बाद के कुछ नामों में हरिकृष्ण प्रेमी, सूर्यभानु गुप्त, चन्द्रसेन विराट, निरंकारदेव सेवक, हनुमंत नायडू, रामदरश मिश्र, बेकल उत्साही, मेयार सनेही, गोपाल दास नीरज, रामावतार त्यागी, कृष्णबिहारी नूर, नन्दलाल पाठक, कुँवर बेचौन, बालस्वरुप राही, दरवेश भारती, विज्ञान व्रत, हस्तीमल हस्ती, देवेन्द्र आर्य, राम मेश्राम, अदम गोंडवी, नार्वी, जहीर कुरेशी, कृष्ण कुमार 'बेदिल', मधु मधुमन, महेश अश्क, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, ज्ञानप्रकाश विवेक, डॉ. उर्मिलेश, डॉ. कृष्णकुमार नाज, अशोक रावत, राजेश रेड्डी, डॉ. शिवओम अंबर, महेश कटारे सुगम, महेश अग्रवाल, महेश अश्क, ऋषिपाल धीमान, हरेराम समीप, मधुवेश, ओमप्रकाश यती, गणेश गंभीर, दीक्षित दनकौरी, सुल्तान अहमद, कमलेश भट्ट कमल, पुरुषोत्तम यकीन, चाँद शेरी, वशिष्ठ अनूप, बी. आर. बिप्लवी, स्वदेश भटनागर, नीरज गोस्वामी, विनोद प्रसाद गुप्ता 'शलभ', द्विजेन्द्र द्विज, अशोक अंजुम, अशोक मिजाज नूर मुहम्मद नूर, रवि खंडेलवाल, विनय मिश्र, नवीन सी. चतुर्वेदी, द्विजेंद्र द्विज, प्रताप सोमवंशी, विजय स्वर्णकार, राकेश जोशी, आलोक श्रीवास्तव, धरवेन्द्र सिंह बेदार, अनुज अब्र, नज्म सुभाष, के. पी. अनमोल, गरिमा सक्सेना आदि प्रमुख रूप से ग़ज़ल-लेखन कार्य में सक्रिय नजर आते हैं।

वहीं अगर बिहार के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी ग़ज़ल-लेखन परम्परा की बात करे तो ज्ञात होता है कि बिहार में ग़ज़ल-लेखन की समृद्ध परम्परा रही है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने जिस ग़ज़ल परिपाटी की नींव रखी थी, आज के समकालीन ग़ज़लकार उसे मजबूती प्रदान करते हुए नजर आते हैं।

विदित हो कि बतौर ग़ज़लकार आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री (05.02.1916 से 07.04.2011) छायावादोत्तर युग में सक्रिय नजर आते हैं। आचार्य जी ने हिन्दी से पहले संस्कृत में भी ग़ज़लों का सृजन किया है। जानकीवल्लभ शास्त्री के ग़ज़ल-लेखन से प्रभावित होकर ही निराला जी ने अपने गीत-ग़ज़ल संग्रह 'बेला' को आचार्य जी को समर्पित किया था। वैसे तो जानकीवल्लभ शास्त्री सन् 1950 के आसपास से ही छिटपुट ग़ज़ल कहने लगे थे लेकिन उनका पहला ग़ज़ल संग्रह 'सुने कौन नग़्मा' सन् 1994 में समांतर प्रकाशन, शाजापुर (म. प्र.) से प्रकाशित हुआ था। संग्रह में अलग-अलग भावबोध की कुल 50 ग़ज़लें हैं। इनकी ग़ज़लों में मानवीय मूल्य, राष्ट्रीयता, मोहभंग, प्रकृति चित्रण आदि प्रमुखता से कथ्य का स्थान लेते हैं। उदाहरणार्थ एक ग़ज़ल के चंद अशंआर द्रष्टव्य हैं-

द्वार पर तेरे कभी आया नहीं,
होगा नभ, मैंने सर झुकाया नहीं।
गड़े पहाड़ तने, कितने दरख़्त,
बोझ धरती ने कम उठाया नहीं।
गीत उर्दू लिखे, ग़ज़ल हिन्दी,
उफ लड़ाना जबान आया नहीं।[10]

मुजफ्फरपुर जिले के काँटी प्रखण्ड वासी ग़ज़लगो नीतीश्वर शर्मा 'नीरज' (01.08.1944) ने भी आचार्य जानकीवल्लभ से प्रभावित होकर हिन्दी ग़ज़लों का सृजन किया है। वैसे नीतीश्वर शर्मा 'नीरज' भोजपुरी और अवधी के बड़े कवि थे लेकिन ग़ज़ल की लोकप्रियता से खुद को नहीं बचा सके। उनका एक ग़ज़ल संग्रह श्अक्सश जो सन् 1983 में प्रकाशित हुआ था, उनदिनों खूब चर्चा में भी रहा था। उनकी एक ग़ज़ल के चुनिंदा अशंआर हैं-

पत्थर के इस जहान में भगवान मिलेंगे,
खोजे से भी मगर नहीं इन्सान मिलेंगे।
शहरों में तरक्की के बहुत शोर सुने हैं,
जनपद यहाँ के आज भी सुनसान मिलेंगे।
दुखड़ा सुनाने चल पड़े तो सोच लो 'नीरज',
पग-पग पे बेदिली के दास्तान मिलेंगे।[11]

छन्दराज (08.01.1947) ग़ज़ल-साहित्य की बेहतरी को लेकर निरंतर प्रयासरत रहने वाले ग़ज़लकार थे। इनके दो ग़ज़ल संग्रह 'दर्द की फस्लें' (1984) और 'फैसला चाहिए' (1992) प्रकाशित हुए थे। इनके कुशल संपादन में लंबे समय तक 'तर्जनी' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी होता रहा जिसमें बतौर सम्पदाक अनिरुद्ध सिन्हा भी इनके सहयोगी थे। इनका एक शेंर ध्यातव्य है-

आदमी या कि मोम का पैकर,
एक लौ ही तो जान होती है।(12)

18 दिसम्बर 1944 को पूर्वी चम्पारण में जन्मे शिवशंकर मिश्र ने हिन्दी ग़ज़ल-आलोचना के क्षेत्र में अपनी अमिट पहचान बनाई है। उनका एक ग़ज़ल संग्रह 'ऐसे उदास मत हो' भी प्रकशित हो चुका है। साथ ही उनकी महत्वपूर्ण कृति 'हिन्दी ग़ज़ल की भूमिका' हिन्दी ग़ज़ल की अबतक की यात्रा का मुकम्मल दस्तावेज है।

चाँद मुंगेरी और दिनेश तपन जैसे वरिष्ठ ग़ज़लकार बिहार ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी ग़ज़ल की श्रीवृद्धि में अपना साहित्यिक योगदान दे रहे हैं। विदित हो कि चाँद मुंगेरी के अबतक तीन ग़ज़ल प्रकाशित हो चुके हैं- तलाश सूरज की, क्षितिज के पार और एक टुकड़ा धूप का। वहीं दिनेश तपन हिन्दी ग़ज़ल के साथ-साथ अंगिका साहित्य को नई ऊँचाई देने में प्रयासरत हैं।

संजीदा ग़ज़लगो प्रेमकिरण और रमेश कँवल निरंतर अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विसंगतियों को रेखांकित कर अपनी ग़ज़लधर्मिता का परिचय दे रहे हैं। उदाहरण स्वरूप प्रेमकिरण का एक शेंर देखा जा सकता है-

वही है यहाँ कामयाबे-सियासत,
वफादारियाँ जो बदलते रहेंगे।(13)

वरिष्ठ ग़ज़लगो और गीतकार रवीन्द्र उपाध्याय नीतीश्वर शर्मा 'नीरज' के साथ बिहार में हिन्दी ग़ज़ल की बेहतरी को लेकर प्रयासरत रहने वालों में से हैं। इन्हें भी आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के सानिध्य में फलने-फूलने का सौभाग्य प्राप्त है। 'धूप लिखेंगे छाँह लिखेंगे' और 'देखा है उन्हें' उनके गीतों और ग़ज़लों का संग्रह है। इनका एक प्रसिद्ध शेंर है-

दस्तकों के दिन गये, धक्के लगाकर देखिये,
बहुत सिजदे में रहे, अब सिर उठाकर देखिये।(14)

अनिरुद्ध सिन्हा और डॉ. भावना संपूर्ण हिन्दी ग़ज़ल-साहित्य के फलक पर ध्रुव तारे की भाँति प्रकाशमान् हैं। हिन्दी ग़ज़ल के प्रति इनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता अतुलनीय है। अनिरुद्ध सिन्हा और डॉ. भावना की अबतक दर्जनों मौलिक और सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जो हिन्दी ग़ज़ल के विकास और विस्तार में सहायक सिद्ध हो रही हैं। इन दोनों की ग़ज़लों में यथार्थ का खुरदुरापन है जो इनकी ग़ज़लों का वास्तविक सौंदर्य भी है। बतौर ग़ज़ल-आलोचक इनकी महत्ता और अधिक बढ़ जाती है। इनके अशआर अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं-

जमीं पे जुल्मो-सितम देख के ये लगता है,
हमारे सिर पे कोई आसमान है कि नहीं।
पुरानी रंजिशों से अब चलो बाहर निकलते हैं,
जरा सा तुम बदल जाओ जरा सा हम बदलते हैं।(15)
-अनिरुद्ध सिन्हा

हमेशा घर की बहुओं में हजारों दोष होते हैं,
हमेशा अपनी बेटी ही, हमें शालीन लगती है।(16)
-डॉ. भावना

उपरोक्त ग़ज़ल-साधकों के अलावे भी और कई महत्वपूर्ण नाम हैं जो अपने संजीदा ग़ज़ल-लेखन से बिहारी ग़ज़ल-साहित्य के साथ-साथ संपूर्ण हिन्दी ग़ज़ल-साहित्य को उसके वांछित मुकाम तक ले जाने को सृजनरत हैं। उन नामों में आचार्य फजलुर रहमान हाशमी, दीनानाथ सुमित्र, नचिकेता, शिवनंदन सिंह, ध्रुव गुप्त, आशा प्रभात, कुमार नयन, जितेंद्र जीवन, डॉ. सरोज कुमार वर्मा,

कैलाश झा किंकर, घनश्याम, मृत्युंजय मिश्र करुणेश, सुधीर कुमार प्रोग्रामर, डॉ. शिवनारायण, डॉ. अनिता सिंह, संजय कुमार कुन्दन, डॉ. नीलम श्रीवास्तव, राम नाथ बेखबर, डॉ. पंकज कर्ण, समीर परिमल, संजीव प्रभाकर, आराधना प्रसाद, विकास, डॉ. आरती कुमारी, डॉ. जियाउर रहमान जाफरी, ऋतुराज श्राजश, अभिषेक कुमार, मनजीत सिंह किनवार, राहुल शिवाय, विकास सोलंकी, रामनाथ शोधार्थी आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहार की भूमि हमेशा से आध्यात्मिक और साहित्यिक गुणों का केन्द्र रही है। बिहार की भूमि ने साहित्यिक गतिविधियों को मूर्त रूप प्रदान किया है। साहित्य की हर विधा ने यहाँ अपनी अमिट पहचान पाने में सफल हुई है।

आदि कवि विद्यापति से लेकर रामधारी सिंह दिनकर, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, बाबा नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, नलिन विलोचन शर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी, कवि किशोर, पद्मश्री उषाकिरण खान, अरुण कमल, आलोक धन्वा, बुद्धिनाथ मिश्र, अनामिका, राकेश बिहारी, राकेश रंजन, गीताश्री आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

एक ओर जहाँ बिहार का गद्य साहित्य जीवन के परिष्करण और उत्थान का साहित्य है वहीं दूसरी ओर पद्य साहित्य का भी अपना गरिमामय इतिहास है।

उल्लेखनीय है कि आज हिन्दी ग़ज़ल-साहित्य में जो निजता की प्रतिस्थापना हुई है उसमें दुष्यंत कुमार के बाद सबसे अधिक योगदान बिहार के समकालीन ग़ज़लकारों ने ही दिया है।

बिहार के ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल पर ही नहीं, उनमें निहित विचारों और उन विचारों की प्रेरक सामाजिक, राजनीतिक और अन्य जीवन से जुड़ी परिस्थितियों पर भी अपने ढंग से विचार कर लिखा है जो साहित्य-हित और लोक-हित में है।

अतः हिन्दी ग़ज़ल के विकास और विस्तार में बिहार के ग़ज़लधर्मी और प्रतिबद्ध ग़ज़लकारों के महती योगदान को किसी भी सूरत में नजर अंदाज नहीं किया जाएगा।

सन्दर्भ सूचीः

1. अमीर खुसरो, अमीर खुसरो, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1993, पृष्ठ-128
2. ग़ज़ल उसने छेड़ी-1, फरहत एहसास, रेख़्ता पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वर्ष-2016, पृष्ठ-23
3. हिन्दी ग़ज़लः उद्भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, वर्ष-2017, पृष्ठ-196
4. बेला, सुरकांत त्रिपाठी निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-2023 (तृतीय संस्करण), पृष्ठ- 75
5. हिन्दी ग़ज़लः उद्भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, वर्ष-2017, पृष्ठ-217
6. कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1961, पृष्ठ-17
7. वहीं, पृष्ठ-42
8. हिन्दी ग़ज़लः उद्भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, वर्ष-2017, पृष्ठ-227
9. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष -2016 (चौसठवाँ संस्करण), पृष्ठ-30
10. सुने कौन नग़्मा, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, समांतर प्रकाशन, शाजापुर, मध्य प्रदेश, वर्ष-1994, पृष्ठ-48
11. अक्स, नीतीश्वर शर्मा 'नीरज', मानव परिषद् प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, वर्ष-1983, पृष्ठ- 36
12. फैसला चाहिए, छन्दराज, संजय प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-1992, पष्ठ-41
13. तिलिस्म टूटेगा, प्रेमकिरण, बोधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-2021, पृष्ठ-140
14. धूप लिखेंगे छाँह लिखेंगे, रवीन्द्र उपाध्याय, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, वर्ष- 2000, पृष्ठ-54
15. संवेद, अनिरुद्ध सिन्हा, फरवरी 2021, पृष्ठ-33
16. वही, पृष्ठ-64

भारतीय राजनीतिक संस्कृति पर सोशल मीडिया का प्रभाव

बिजेन्द्र कुमार

यु.जी.सी नेट/जे.आर.एफ. स्कोलर, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

मीडिया जनसमूह तक सूचना, शिक्षा और मनोरंजन पहुंचाने का एक माध्यम है। यह संचार का सरल एवं सक्षम माध्यम है। जिसके द्वारा देश-विदेश की जानकारी, डाटा को एक साथ लाखों लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। प्राचीन काल में लोग अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने के लिए नृत्य, संगीत, नृत्यनाटिका आदि का प्रयोग करते थे। समय के साथ इसमें बदलाव आया और लोग अपनी बातों को आधुनिक।संचार माध्यमों द्वारा व्यक्त करने लगे, जिसे मीडिया कहा जाता है। यह एक सशक्त एवं महत्वपूर्ण संस्था है। यह किसी भी समाज या राष्ट्र का प्रतिबिम्ब होता है, तथा राष्ट्र या समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रतिबिम्बित करता है। इसने सदैव मानव के विचारों एवं व्यवहारों को प्रभावित किया है। विभिन्न देशों में होने वाली राजनैतिक व सामाजिक क्रांतियों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कारण ब्रिटिश विचारक आमण्ड वर्क ने इसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा है।

कुंजी शब्द: मीडिया, प्राचीन काल, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक

प्रस्तावना

प्रजातंत्र का मूलाधार है- स्वतत्रता, समानता और बन्धुत्व और जहां कहीं भी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होती है वहां लोकतंत्र असफल हो जाता है। इस स्वतंत्रता का सही ढ़ंग से प्रयोग मीडिया द्वारा ही किया जाता है। देश के सभी कोनों और घटनाओं पर इसकी पैनी दृष्टि होने के कारण ही शक्तिशाली शासक भी इसके महत्व एवं शक्ति की उपेक्षा नहीं कर पाते। इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण मिलते है, जब इसकी शक्ति को पहचानते हुए लोगों ने इसका उपयोग लोक परिवर्तन के भरोसेमंद हथियार के रूप में किया है।

आज भी इसकी ताकत के सामने बड़े से बड़ा नेता, उद्योगपति आदि सभी नतमस्तक है। जन जागरण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है- बच्चों को पोलियो की दवा पिलाने का अभियान, एड्स के प्रति जागरूकता फैलाने का कार्य लोगों को वोट डालने के लिए प्रेरित करना, बाल मजदूरी पर रोक लगाने के लिए प्रयास करना, धूम्रपान के खतरों से अवगत कराना जैसे नेक कार्यों में इसकी सराहनीय भूमिका रही है।

इसके अलावा यह देश के भ्रष्टाचारियों पर भी नजर रखती है, तथा समय-समय पर स्टिंग आपरेशन कर इन सफेदपोशों का काला चेहरा समाज के समक्ष प्रस्तुत करती है। इस प्रकार यह एक वरदान की तरह है। मीडिया का यथार्थ जानने की कोशिश करना ठीक वैसा ही है जैसे ब्रह्म के यथार्थ को जानने का प्रयास करना, यह अनुभव मात्र की वस्तु है यह अनुभवगम्य है तथा इन्द्रियातीत है। मनुष्य के सीधे-सादे जीवन को मीडिया ने केवल प्रभावित ही नहीं किया है वरन् परिवर्तित भी किया है। जिज्ञासा और संचार मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। एवं आदिकाल से ही मनुष्य देश-दुनिया, समाज और ब्रह्माण्ड के बारे में जानने को उत्सुक रहा है, तथा अपनी उत्सुकता को शांत करने के लिए वह धार्मिक प्रवचन, कथा-वार्ता, यात्र-वृत्तांत और पर्यटन का सहारा प्रारम्भिक युग से ही

लेता आ रहा है। परन्तु कालान्तर में सभ्यता के विकास और भाषा के आविष्कार के साथ मनुष्य की जिज्ञासा शांत करने की प्रक्रिया का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा, तथा सभ्यता के विकास के साथ वे बोलकर, गाकर तथा अभिनय द्वारा विचारों का आदान-प्रदान करने लगे। भाव सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया को संचार कहा जाता है। इसके लिए किसी न किसी माध्यम का होना आवश्यक है। आदिकालीन समाज में जहाँ संकेतों-प्रतीकों का आश्रय लिया जाता था वहीं सभ्यता के विकास के साथ धार्मिक कथाएं, प्रवचन, गीत, संगीत, पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, रेडियो, टेलीविजन और कम्प्यूटर आदि संचार माध्यमों के रूप में है।

भारत में संचार माध्यम (मीडिया)- एक स्वस्थ्य लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि वहां की मीडिया सशक्त, निष्पक्ष एवं दबाव मुक्त हो, चूंकि लोकतंत्र में जनहित को वरीयता दी जाती है, अतएव लोकतांत्रिक व्यवस्था में इसकी जिम्मेदारी कहीं अधिक बढ़ जाती है। चूंकि मीडिया को जनता की आवाज माना जाता है, इसलिए उससे निष्पक्षता एवं निर्भीकता की अपेक्षा लोकतंत्र के रक्षक के रूप में की जाती है। इसका निष्पक्ष एवं तटस्थ होना तथा सच से प्रतिबद्ध होना जरूरी है। लोकतंत्र में मीडिया को चतुर्थ जनशक्ति का स्थान इस लिए दिया गया है कि यह जनहितों की पैराकारी करते हुए सदैव लोकतंत्र को सार्थक आयाम देने के लिए कटिबद्ध रहता है।

भारतीय मीडिया ने अपने नैतिक उद्यमों, मूल्य आधारित पत्रकारिता, गम्भीर चिन्तन और सटीक बयानी से विशिष्ट पहचान बनाई है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए अति आवश्यक है।

राजनीतिक संस्कृति क्या है?

राजनीतिक विचारधारा, वैधता, संप्रभुता, राष्ट्रीयता, कानून का शासन जैसे विचारों के व्यवहारवादी विश्लेषण के क्रम में राजनीतिक संस्कृति के अवधारणा का जन्म हुआ। राजनीतिक संस्कृति एक समाजशास्त्रीय शब्द है जिसमें राजनीतिक विचारवाद, राष्ट्रीय लोकाचार, भावना तथा जनता के आधारभूत नैतिक मूल्य आदि सम्मिलित हैं। इस पदावली का प्रयोग सर्वप्रथम आमण्ड और पॉवेल ने अपनी पुस्तक कम्पेयरेटिव पॉलिटिक्स में किया। उसके बाद सिडनी भर्बा, लुसियन पाई आदि ने इस अवधारणा को विकसित किया। इसके पूर्व इस अवधारणा को स्पिरों ने राजनीतिक शैली तथा डेविड इस्टन ने पर्यावरण के रूप में प्रयोग किया था। परन्तु राजनीतिक संस्कृति शब्दावली को सबसे उपयुक्त मााना गया।

राजनीतिक संस्कृति भी सामान्य संस्कृति का एक अंग होता है जो समस्त समाज को राजनीति के प्रति आग्रह को प्रेंरित करता है। इसके तीन प्रमुख लक्षण है:-

1. अमूर्त नैतिक धारणा- राजनीतिक संस्कृति का मौलिक आधार व्यक्ति और समाज राजनीतिक मूल्य एवं विश्वास होते हैं। ये मूल्य एवं विश्वास सामान्य धारणाओं के अंग होते हैं जो मूर्त नहीं होते लोगों के मस्तिष्क में होते हैं जिन्हे समझा या महसूस किया जा सकता है।
2. अनेक तत्वों का समन्वित रूप- जिस प्रकार सामान्य संस्कृति में कई तत्व सम्मिलित होते हैं उसी प्रकार राजनीतिक संस्कृति भी कई तत्वों सामूहिक एवं समन्वित रूप है जिसमें जैसे ऐतिहासिक विरासत समाज की संस्कृति, विचारधारा, राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक संरचना जैसे तत्व सम्मिलित होते हैं।
3. गतिशीलता- एक तरफ जहां वह विभिन्न सामाजिक-आर्थिक, ऐतिहासिक तथा परम्परागत तत्वों से राजनीतिक संस्कृति का निर्माण होता है तो दूसरी तरफ यह बदलाओं को भी अंतरण करने की क्षमता होती है। बदली हुई परिस्थितियों एवं वाह्य बदलावों के कारण राजनीतिक संस्कृति में भी बदलाव आते हैं। ये बदलाव कई बार तीव्र कई बार धीरे धीरे होता है। उदाहरणार्थ 1947 के पहले भारत की राजनीतिक संस्कृति में संप्रभुता और स्वतंत्रता एवं विदेशी शासन के विरूद्ध संघर्ष प्रमुख थे परन्तु आजादी के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था के अतिरिक्त सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता आदि तत्व समाहित हो गये। इक्कीसवीं सदी में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद प्रबल हो रहा है।

भारतीय राजनीति संस्कृति की विशेषताएँ

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति की सर्वजातीयता पायी जाती है जिसके आधार पर विभिन्न व्यवस्थाओं की संस्कृति को अलग किया जा सकता है। अर्थात् जब राजनीतिक व्यवस्था के अन्दर राजनीतिक दिग्विन्यासों का एक समूह की स्थिति ग्रहण कर लेता है तो उसे दूसरी व्यवस्था से अलग किया जा सकता है। एक ही व्यवस्था में किसी खास क्षेत्र या वर्ग में अगर

दिगविन्यासों में थोड़ी भिन्नता होती है तो उसे उप-राजनीतिक संस्कृति का नाम देते हैं। जो भी हो विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर राजनीतिक संस्कृति के भेद बताए हैं।

क. सत्ता एवं शक्ति का आधार- लुसियन पाई ने सत्ता एवं शक्ति के आधार पर राजनीतिक संस्कृतियों को दो भागों में वर्गीकृत किया है- शासक एवं शक्तिधारियों की संस्कृति (Elite culture) तथा जनसाधारण की संस्कृति (mass culture)। उसने तर्क दिया कि जिन लोगों के हाथ में निर्णय लेने की शक्ति होती है उनका राजनीतिक विषयों पर दृष्टिकोण उन लोगों से भिन्न होता है जो राजनीतिक निर्णय निर्माण में सक्रिय भूमिका नहीं निभाते हैं।

ख. गतिशीलता के आधार पर- जिन राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन की प्रवृति तीव्र होती है उन्हें हम प्रगतिशील या परिवर्तनशील राजनीतिक संस्कृति का नाम देते हैं और जिनमें परिवर्तन की गति धीमी होती है उन्हे मन्द परिवर्तनवादी संस्कृति या स्थायित्व वाली संस्कृति कहते हैं उदाहरण के तौर पर बीसवीं सदी के मघ्य में स्वतंत्र हुए देशों में तीव्र परिवर्तन आये वहीं स्वीटजरलैण्ड में परिवर्तन की गति धीमी रही है।

ग. सर्वांगसमता के आधार पर- वाइजमैन ने व्यवस्था में व्याप्त सर्वांगसमता के आधार पर राजनीतिक संस्कृतियों को तीन विशुद्ध सर्वांगसमता तथा तीन मिश्रित सर्वांगसमता में वर्गीकृत किया है।

21 वीं सदी में इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया

21वीं सदी में, सोशल मीडिया लोगों को सोशल नेटवर्किंग साइट्स से जोड़ने में मदद करता है। सोशल मीडिया का इस्तेमाल दूसरे लोगों या संगठनों से जुड़ने के लिए किया जाता है और यह एक महत्वपूर्ण संचार उपकरण बन जाता है। सोशल मीडिया का इस्तेमाल लोग अपने अनुभव, समीक्षा, जानकारी, सलाह, चेतावनी, सुझाव और किसी भी तरह के मुद्दों को अपने संपर्कों या दोस्तों के साथ साझा करने के लिए करते हैं। सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी उपभोक्ता के निर्णय लेने को प्रभावित कर सकती है। सोशल मीडिया मार्केटिंग एक ऐसा तंत्र है जो लोगों को ऑनलाइन सोशल नेटवर्क के माध्यम से अपनी वेबसाइट, सामान या सेवाओं का विज्ञापन करने और पारंपरिक विज्ञापन चौनलों की तुलना में बहुत व्यापक दर्शकों से जुड़ने और उन तक पहुँचने का अधिकार देता है। सोशल मीडिया एक मजबूत समुदाय बनाने और प्रभावी मार्केटिंग और पहल खरीदारी करने में मदद करता है। इस शोधपत्र का उद्देश्य उपभोक्ता के खरीद निर्णयों में सोशल मीडिया मार्केटिंग यानी फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन, यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि के उपयोग की भूमिका की जांच करना है।

मीडिया (फेसबुक, ब्लॉग, यू-ट्यूब, इंस्टग्राम आदि) ने भारतीय राजनीति संस्कृति को सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप से प्रभावित किया-

- जनमत (Public Opinion) को 'लोकतंत्र की मुद्रा' कहा जाता है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म दिनानुदिन सार्वजनिक चर्चा और जनमत निर्माण के प्राथमिक आधार बनते जा रहे हैं। यह ऐसा माध्यम है जहाँ लोग दैनिक जीवन के विषयों से लेकर राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों तक बहस और संवाद करने में सक्षम हुए हैं।
- सोशल मीडिया अब मित्रों और परिवार से जुड़ने के अबोध माध्यम भर नहीं रह गए हैं। इसके बजाय ये राजनीतिक गतिविधि के और एक नए राजनीतिक संवाद के निर्माण के माध्यम में रूपांतरित हो गए हैं।

सोशल मीडिया भारतीय राजनीति को कैसे लाभ पहुँचाता है?

- जनता में जागरूकता का प्रसार- ऐतिहासिक रूप से लोग कभी भी सरकारी नीतियों को लेकर इतने जागरूक नहीं थे, जितने अब हैं। सोशल मीडिया के प्रभावी उपयोग के माध्यम से सरकारी पहुँच बढ़ रही है जहाँ विभिन्न सोशल मीडिया अभियानों के माध्यम लोगों में जागरूकता का प्रसार किया जा रहा है।
- उदाहरण के लिये, कोविड महामारी के दौरान सतर्कता संबंधी जागरूकता के प्रसार में और चिकित्सा हेतु लोगों के मार्गदर्शन में सोशल मीडिया अत्यंत प्रभावी साबित हुआ।
- अंतराल को दूर करना- सोशल मीडिया लोगों और उनके प्रतिनिधियों को निकट लाने में सहायक रहा है। संचार की बाधाएँ, जो लोगों को अपने नेताओं के साथ संवाद की अनुमति नहीं देती थीं, सोशल मीडिया के कारण पर्याप्त कम हो गई हैं। सोशल मीडिया पर राजनीतिज्ञ अपने समर्थकों तक पहुँच रहे हैं।

- वे सोशल मीडिया पर अपनी संलग्नताओं और पोस्टों के माध्यम से जनता को एक लूप या पाश में बनाए रखना सुनिश्चित कर रहे हैं। इसने आम नागरिकों की राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता में वृद्धि की है। इसके अलावा, भारत और उसके मित्र देशों के बीच राजनयिक संबंधों को प्रभावित करने के लिये सोशल मीडिया का सक्रिय रूप से उपयोग किया गया है।
- बाधाओं को कम करना- सोशल मीडिया मंच जनता-राजनेता संवाद का सस्ता और निम्न-बाधाकारी माध्यम प्रदान करते हैं जहाँ कई व्यक्तियों को राजनीतिक दौड़ में प्रवेश करने की अनुमति देकर राजनीतिक लोकतंत्र को संभावित रूप से गहन किया जा रहा है।
- बेहतर विश्लेषणात्मक प्रणाली- जनमत संग्रह के पारंपरिक तरीकों की तुलना में सोशल मीडिया कम मानवीय प्रयास के साथ समय और लागत प्रभावी डेटा संग्रह और विश्लेषण का अवसर देता है। 'डेटा एनालिटिक्स' प्रत्येक चुनाव अभियान का मूल रणनीति बनने के लिये स्वयं को विकसित कर चुका है। यह चुनाव अभियान समिति को मतदाताओं को बेहतर ढंग से समझने और अपनी नीतियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में मदद करता है।

सोशल मीडिया के राजनीतिकरण के नकारात्मक प्रभाव

- राजनीतिक ध्रुवीकरण- सोशल मीडिया की सबसे आम आलोचनाओं में से एक यह है कि यह 'इको चौंबर' (Echo Chambers) का निर्माण करता है जहाँ लोग केवल उन दृष्टिकोणों को देखते हैं जिनसे वे सहमत हैं। राजनीतिक अभियान कभी-कभी देश के विभिन्न हिस्सों में धार्मिक और सामाजिक तनाव पैदा करते हैं। सोशल मीडिया ने लोकलुभावन राजनीति (Populist Politics) की एक शैली को सक्षम किया है, जो अपने नकारात्मक पक्ष में 'हेट स्पीच' (Hate Speech) और अतिवादी संभाषण (Eutreme Speech) को (विशेष रूप से क्षेत्रीय भाषाओं में) डिजिटल स्पेस में पनपने की अनुमति देता है जिस पर प्रायः कोई नियंत्रण नहीं है।

साहित्य की समीक्षा

डॉ0 रूपा मंगलानीः- ने अपनी पुस्तक भारतीय शासन एवं राजनीति के सैद्वान्तिक एवं व्यवहारिक पहलुओं को छूने का प्रयास किया है। स्वतंत्रता की आधी शताब्दी पार कर चुका लोकतंत्र अभी भी गतिमान और निरन्तर अग्रसर राष्ट्र के रूप में सदैव गतिमान है।

डॉ0 पृथ्वीनाथ पाण्डेयः- ने अपनी पुस्तक में मीडिया के वर्तमान परिवेश का राजनीति पर पड़ रहे प्रभाव का अध्ययन किया है जो निम्नवत है- मीडिया वर्तमान व्यवस्था में एक आकर्षण बन गया है। देश की गुलामी के समय प्रकाशित होने वाले अधिकतर समाचार पत्र भारतीय भाषाओं मे प्रकाशित हुआ करते थे। और इसकी आर्थिक स्थिति भी दयनीय थी। सत्ता हस्तान्तरण के साथ स्थितियां बदली परन्तु प्रेस और राजनीति के सम्बन्ध अटूट रहे है।

निष्कर्षः-

मीडिया अथवा जनसंचार माध्यम किसी भी समाज या राष्ट्र की वास्तविक स्थिति के प्रतिबिम्ब होते हैं। यह संदेशों एवं सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने का एक सशक्त माध्यम है। यह संदेशों के माध्यम से की जाने वाली सामाजिक अन्तक्रिया है। इसे पहले प्रेस के नाम से जाना जाता था, एवं इसका कार्य विश्वभर मे घटित होने वाली सूचनाओं का संग्रहण कर सर्वजन को सुलभ करना था। समय के साथ इसके स्वूरूप में परिवर्तन हुआ तथा वर्तमान में इस अन्तःक्रिया का नामकरण मीडिया के रूप में हो गया।

मीडिया का शाब्दिक अर्थ है- माध्यम, साधन या सेतु। वर्तमान समय में इस शब्द का प्रयोग जनसंचार के माध्यम अर्थात रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं इत्यादि के लिए किया जाता है। यह किसी भी समाज या राष्ट्र का प्रतिबिम्ब होता है तथा राष्ट्र व समाज के राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रतिबिम्बित करती है। इसने सदैव मानव के विचारों एवं दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। विभिन्न देश में होने वाली राजनीतिक व सामाजिक क्रांतियों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है, इसी कारण ब्रिटिश विचारक एडमण्ड वर्क ने इसे लोकतंत्र का 'चौथा स्तंभ' कहा है। प्रजातंत्र का मूलाधार है- स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व और जहां कहीं भी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है।

सन्दर्भ

1. मित्तल, जे0के0 (1991), पार्लियामेंटरी डिसेंट डिफेक्षन एण्ड डेमोक्रेसी, 35 जे0 आई0 एल0 आई0-7
2. मिर्धा, आर0एन0 एवं जैन, आर0 बी0 (2001), रिव्यू आफ दी वर्किंग ऑफ पॉलिटिकल पार्टीज स्पेशियली विद रिलेशन टू इलेक्षन एण्ड रिफार्म आप्शंस, इस्टीट्यूट ऑफ कांस्टीट्यूशनल एवं पार्लियामेंटरी स्टडीज, नई दिल्ली
3. मित्र, राम (1992), ''कास्ट पोलराईजेशन एण्ड पॉलिटिक्स', सिण्डीकेट पब्लिकेशन, पटना.
4. मिश्र, एस0 एन0 (2011) भारतीय निर्वाचन संस्कृतिः दशा एवं दिशा, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी
5. मिश्र, मधुसूदन (1980), रायबरेली संसदीय निर्वाचन 1980, लोकतंत्र, समीक्षा संसदीय संविधान संस्थान, नई दिल्ली, जनवरी
6. मीना (2011), उत्तर प्रदेश विधानसभा में दलित विधायकों का अध्ययन 1997-2002, पी एच डी थीसीस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. मुलर, डब्ल्यू0 सी0 एण्ड स्ट्रोम, के0 (2003), कोलिएशंस गर्वमेण्ट इन वेस्टर्न यूरोप, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिबी प्रेस, लंदन
8. मेरियम, चार्ल्स ई0 (1939), दि डेमोक्रेसी एण्ड दी डेस्पोटिज्म, मैकग्रा-हिल एण्ड कं0, न्यूयार्क
9. मेहता, ए0 के0 एण्ड डी0 डी0 खन्ना (2003), पालिटिकल पार्टीज एण्ड पार्टी सिस्टम, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
10. मैकडानालड, नील ए0 (1963), पार्टी पर्सपेक्स्टिजःकम्परेटिव पॉलिटिक्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन

श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये अलंकारतत्त्वविमर्शः

सुनीलकुमारः[1]

शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, कन्या-गुरुकुलपरिसरः, गुरुकुलकांगडीसमविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्, उत्तराखण्डः

न कान्तमपि निर्भूषं विभातिवनितानानम्।[2]

ऐतिहासिकदृष्ट्या अलंकारसम्प्रदायस्य प्रवर्तकेषु आचार्यभामहः प्रथमो विद्वानाचार्यो बभूव। यद्यपि अलंकारशब्दस्य प्रचलनं प्रयोगश्च प्राचीनकालादेव दृश्यमानो वर्तते। अलंकृतिशब्दः ऋग्वेदे अरंकृतिः इति रूपे समालोक्यते। यथा का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवं दाशिम।[3] अतः अलंकारशास्त्रीयतत्त्वानां मूलस्रोतः वैदिकसाहित्यमेवेति स्वीकर्तव्यम्। वैदिकसाहित्येपि 'ईयुषीरागमुपमा शाश्वतीनाम्', 'तदप्युपमास्ति'[4]। इति पदानाम् उपमा तथा रूपकादि-अलंकाराणां नामग्रहणं निर्दिश्यते। प्राचीनकालादेव काव्यस्य बाह्यसौन्दर्यस्य आधायकतत्त्वरूपे अलंकाराणां महत्त्वं स्वीकृतमेव। आचार्यभामहेन तथा काव्यशास्त्रस्य अन्यैः आचार्यैः वक्रता तथा वैचित्र्यमेव अलंकाराणां समुत्पत्तौ कारणमिति मानितम्। तस्मादेव काव्यसौन्दर्यस्य वृद्धिरपि भवतीत्यपि समुल्लिखितम्। संस्कृतसर्जनस्य प्रथमचरणे अलंकारः काव्यशोभाधायकः इति कारणाद् धर्मस्य स्वरूपे प्रतिस्थापितम्। दण्डी- काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।[5] आचार्यदण्डिना काव्यशोभावर्धकं धर्मः अलंकारः इति प्रतिपादितम्। यथा रमणीमुखं सुन्दरं सदपि अलंकाराणामभावे सुशोभितं न भवति। तथैव काव्ये सौन्दर्यस्य सत्वेपि अलंकाराणामभावे पूर्णचमत्कारो नैवालोक्यते। आचार्यविश्वनाथेन प्रतिपादितम् शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः। रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेङ्गादिवत्।[6] शोभायाः अतिशायकाः रसभावादीनामुपकारकाः यश्च शब्दार्थयोः अस्थिरधर्मः अंगदादीव ते चालंकाराः कथ्यन्ते। उपमादयः काव्यस्य अलंकाराः भवन्ति। आचार्यजयदेवस्य मतानुसारं[7] अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती। असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती। यथा उष्णताविहीनस्य अग्नेः कल्पना असम्भवा उपहास्यास्पदं च भवति तथैव यो मानवः अलंकारं विना शब्दार्थयोः स्वरूपं काव्यमिति स्वीकरोति सः मानवः अग्नौ अपि तापस्य अभावं स्वीकुर्यात्। यथा अग्नौ अनुष्णत्वं सर्वथा असम्भवं भवति। तथैव अलंकारं विना शब्दार्थयोः काव्यं सर्वथा अस्वीकार्यम् एवं प्रकारेण सर्वैः आचार्यप्रवरैः अलंकाराणां महत्त्वं ज्ञातं तथा च स्वस्वग्रन्थेषु तद्विवेचनमपि विहितम्। वैदिकसंस्कृतौ लोकमङ्गलस्य कामनया कविवरः डॉ राधेश्यामगंगवारस्य प्रणीतश्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये निर्दिष्टालंकाराणामध्ययनेन विज्ञातं यत् कविना स्वकीये सुन्दरे महाकाव्ये अलंकाराणां बाहुल्यं सर्वत्र प्रसारितं वर्तते। कतिपयानाम् अलंकाराणां चर्चा इत्थं प्रकारेण कर्तुं शक्यते-

अनुप्रासः- अचार्यमम्मटमतानुसारम् लक्षणम्- वर्णसाम्यमनुप्रासः।[8]

वर्णानां समानता स्वराणाम् असमतायामपि व्यंजनानां समानतायाम् अनुप्रासः अलंकारो भवति। कतिपयानि समुदाहरणानि यथा निर्दिश्यन्ते-

वृद्धा विदग्धा विबुधा विधिज्ञाः
शूराः प्रसिद्धाः क्षितिपा विषण्णाः।
समर्प्य भारं तनयेषु हन्त
कैवल्यकामाः किल यान्ति काशीम्[9]*।।*

उपरि निर्दिष्टे श्लोके वकारस्य धकारस्य ककारस्य चावृत्तिः पौनःपुन्येनाभवत्। अतः अत्रानुप्रासः अलंकारो ज्ञेयो विज्ञैः।

वृत्यानुप्रासः- लक्षणम्- अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा। एकस्य सकृदप्येष वृत्यानुप्रास उच्यते।[10]

नैकव्यंजनानाम् एकेन प्रकारेण समानतायां वा नैकव्यंजनानां बहुवारमावृत्तौ सत्यां यद्वा नैकप्रकारेण नैकवर्णानामावृत्तौ किंवा एकवर्णस्य एकस्मिन् समये समानतायां यद्वा एकस्य वर्णस्य बहुशः आवृत्तौ सत्यां वृत्यानुप्रासः शब्दालंकारो भवति श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये

वृत्यानुप्रासः साधुतया प्रकाश्यते। 'विचिन्त्यामास विदग्धमानसो न वासयोग्या वसुधा तव प्रभो। शुभेतराचार विचारकारका विहिंसका मूढतमाः पदे पदे'।[11] यत्र च श्लोके कविना बहुशः तादृशाणां शब्दानां प्रयोगो विहितः तत्र व-वर्णस्य आवृत्तिः दरीदृश्यत अतः वृत्यानुप्रासः अलंकारः नूनं द्रष्टव्यः।

यमकालंकारः - लक्षणम्- सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहते।[12]

आचार्यविश्वनाथेन यमकालंकारस्य लक्षणविषये निगदितं यद् यदि अर्थवान् स्याच्चेत् भिन्नार्थवतां स्वरव्यंजकसमुदायानां तत्क्रमेण आवृत्तिः या भवति तत्र यमकालंकारो गृहीतव्यः। अत्र उभे पदे क्वचित् सार्थकता भवति क्वचिन्न भवति। क्वचित् पूर्वपदस्य सार्थकता भवति तथा उत्तरपदस्य निरर्थकता च भवति। अतः कथ्यते- सत्यर्थे इति "अर्थात् अर्थे सत्येव। तेनैव क्रमेण" अर्थात् तस्य क्रमस्य कथनेन एव। दमो मोदः'' इत्यादिः स्थूलयमकालंकारः पादावृत्तिः, अद्धावृत्तिः, श्लोकावृत्तिः, पादादिवृत्तिकारणात् बहुभेदवानिति ज्ञायते। सार्थको भूत्वापि भिन्नार्थकस्वरव्यंजनसमूहानां पूर्वक्रमेण आवृत्तिरेव यमकालंकारो भवति। महाकाव्येषु यत्र तत्र यमकालंकारः प्रचुरतया द्रष्टुं शक्यते। 'आयाताङ्गो महाबाहुर्विशालाक्षः शुभाननः कृष्णवर्णः शीतोष्णीषः कंचुकीव सकंचुकः।'[13] महाकाव्यस्य पंचमसर्गस्य एकस्मिन् श्लोके कंचुकीव सकंचुकः उभयत्र भिन्नार्थकस्य समानपदस्य आवृत्तिः संजाता। प्रथमः कंचुकीव इत्यस्यार्थः कंचुक्याः समानम्। द्वितीयः सकंचुकः इत्यस्यार्थः कंचुकधारी कश्चन पुरूषविशेषः। अतः अत्र यमकालंकारो ज्ञेयः।

अर्थालंकारः-

अर्थेन यस्मिन् काव्ये चमत्कृतिः समायाति, तत्र अर्थालंकारो भवति। साहित्याचार्यैः अर्थालंकारस्य संख्या बहुत्वेन स्वीकृता वर्तते। कवेः गंगवारस्य अस्मिन् समालोच्ये श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकम्, श्लेषः, स्वाभावोक्तिः, अतिशयोक्तिः, इत्यादीनाम् अलंकाराणां प्रयोगः सुन्दरतया अक्षीभवति।

1. **उपमालंकारः** - लक्षणम् - साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।।[14]

आचार्यविश्वनाथः स्वकीये साहित्यदर्पणग्रन्थे उपमालंकारस्य लक्षणं इत्थं व्यलेखि। एकस्मिन् वाक्ये द्वयोः पदार्थयोः वैधर्म्यरहितं वाच्यसादृश्यमेव उपमात्वेन स्वीकृतम्। एकस्मिन् वाक्ये प्रतिपादितस्य उपमानस्य उपमेयस्य च वैधर्म्यरहितत्वं वाच्यसाम्यत्वं च उपमालंकारो भवति। यथा 'अनन्यचित्तस्य तपस्विनस्ते स्वधर्मधुर्यस्य पितुः प्रयत्नैः। महारथो हस्तगतः सहायः किरातपशैरिव भूरिमायाः'।[15] श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यस्य तृतीयसर्गे गंगवारमहोदयेन उपमालंकारस्य अत्यधिकसौन्दर्यरूपेण वर्णनं व्यधायि। यथा श्लोके (किरातपशैरिव), उपमानं (सहायः) उपमेयः, इव उपमानवाचकः शब्दः अतः अत्र उपमालंकारो विद्यते। 'अंके निधायात्मसुतं सवित्री प्रभास्वरं चन्द्रमुखं चुचुम्ब। अथाचचक्षे महती कथेयं कुतूहलं वा श्रृणु वत्स मुंशी।'[16] अस्मिन् श्लोके सुतः उपमेयः चन्द्रमुखम् उपमानं भवति।

उत्प्रेक्षालंकार- लक्षणम्- सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।[17]

यत्र प्रकृते उपमेयस्य उपमानेन सह सम्भावना क्रियते, तत्र उत्प्रेक्षालंकारो भवति।[17] महाकाव्यस्य द्वितीयसर्गे उत्प्रेक्षालंकारस्य श्लोकः अत्यधिकसौन्दर्यरूपेण प्रदर्शितः। 'सायन्तने खेचरचक्रवर्ती ब्रह्माण्डभाण्डं विशदं विधाय। परिश्रमार्तो ज्वरितः कदाचिन् ममज्ज मोहादिव पश्चिमाब्धौ'।[18]

तत्र सूर्यवर्णनं यथा कृतम् कदाचित् सायंकाले नक्षत्राणां सम्राट् सूर्यः देवः ब्रह्माण्डरूपिणं ग्रहं पवित्रीकृत्य परिश्रमात् श्रान्तः सन् ज्वरग्रस्त इव जातः अर्थात् मोहे भूत्वा पश्चिमीसमुद्रतटे अस्तं गतः।

अत्रापि इव शब्दस्य प्रयोगः क्रियया सह अभूत्। तथा च सम्भावनामपि प्रकटयति अतः उत्प्रेक्षालंकारो बोद्धव्यः।

रूपकालंकारः - लक्षणम् - तद् रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[19]

यत्र उपमानस्य उपमेयस्य चाभेदारोपो भवति तत्र रूपकालंकारो बोध्यः[19] श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये बहुत्र स्थले रूपकालंकारस्य प्रयोगो विहितः। श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये रूपकालंकारस्य उदाहरणं द्रष्टव्यम्। 'पुलाकिनो नूतनपल्लवाम्बराः परिस्फुरन्मंजुलमंजरीभूतः। विकस्वराः सिन्धुकनागकेसराः प्रचक्रिरे जन्ममहोत्सवं शुभम्'।[20] यथा- यदा मुंशीरामः अजायत तदा वृक्षाः नवपल्लवसमन्वितानि वस्त्राणि धृतवन्तः, ते वृक्षाः नवपुष्पयुक्ताः नर्तितवन्तः। सिन्दुवारनागकेसरादयः शुभजन्मनि उपलक्ष्ये महोत्सवं समाचरितवन्तः। अत्र उपमेये उपमानस्य अभेदारोपः अस्मात् कारणात् रूपकालंकारो भवति।

श्लेषालंकारः-

लक्षणम्- श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते[21]। श्लेषः अलंकारः सः भवति, यत्र श्लिष्टः शब्दः नैकार्थेषु अभिव्यंज्यते। यथा- 'यथाजमुण्डानि तथार्द्रकं भृगं रुचिष्यचिंचालशुनानि राजिकाम्। त्रुटिं हरिद्रां लवणं धनीयकमूलब्ध निःशुल्कमितो वृकोदरः'।[22]

श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्यस्य पंचमे सर्गे वर्णितं यन्निरीक्षकस्य नानकमहोदस्य मित्रं अर्दलीजोखुमिश्रः चतुरः श्रृगालोदरः इव सः अजानां शिरांसि, धान्यादिवस्तूनि बहूनि मुक्तरूपेण प्राप्नोति स्म।

त्रुटिं हरिद्रां लवणं धनीयकमूलब्ध निःशुल्कमितो वृकोदरः।। एतादृशे प्रसङ्गे बहूनां नानार्थकशब्दानां प्रयोगः दरीदृश्यत अतः श्लेषालंकारो वर्तते।

स्वाभावोक्ति-अलंकारः - लक्षणम्- स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।[23]

बालकादीनां स्वकीयाः स्वाभाविकक्रियाः याः भवन्ति। तादृशस्य रूपस्य वर्णनं यद् भवति तत्र स्वाभावोक्ति-अलंकारो भवति।

कविना गंगवारेण श्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये स्वाभावोक्ति-अलंकारस्य सम्यग्रूपेण प्रतिपादनं विहितम्- 'कुलालताम्बूलिकमल्लमौष्कलाः कुविन्दकैवर्तकहारसौचिकाः।

अजापनिर्णेजकवैद्यतक्षकाः। सुखं न्यवात्सुर्मिलिताः परस्परम्।।[24]

कविना महाकाव्यस्य प्रथमसर्गे नगरेषु विद्यमानाः कुम्भकारादयः सर्वाः जातयः परस्परं सौहार्दपूर्वकं न्यवसन्निति विवेचितम्। एतादृशे स्थले कविना स्वाभावोक्ति-अलंकारस्य सुन्दरं वर्णनं व्यधायि। यथा-

वीररसप्रसङ्गेषु श्रोतारो हृष्टचेतसः।
समभूवन् च कारूण्ये रोदनाक्षिकुशेशयाः।।[25]

अत्र वीररसविषये श्रोतृणां मनांसि प्रफुल्लितानि भवन्ति। तथा करुणरसविषये जनानां नयनेषु अश्रुधाराः प्रवहन्ति। अतः अत्रापि तथैव स्वाभावोक्ति-अलंकारो विद्यते।

अतिशयोक्ति-अलंकारः - लक्षणम् - सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।[26]

अध्यवसायस्य सिद्धे अतिशयोक्ति-अलंकारो भवति। विषयस्य उपमेयस्य निगरणं कृत्वा विषयिणा उपमानेन सह अभेदज्ञानमेव अध्यवसायः उच्यते। लक्षणम्- निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्।[27]

अतिशयोक्तिः अतिशयेनोक्तिः अर्थात् यस्मिन् कथने अतिशयेन कस्यश्चित् विषयस्य प्रतिपादनं विधीयते। तत्रातिशयोक्ति-अलंकारो भवति। यथा-

'विवेद यावच्च यथायतं यत- स्तथा च तावच्च कलेवरं बृहत्।
विभुज्य सर्वं तलितं ततः परं करं स्वतुन्दे स्म दधाति दूषकः।।[28]

अत्र महाकाव्यस्य पंचमसर्गे पुलिसनिरीक्षकस्य नानकस्य अर्दलीजोखू मिश्रमहोदयेन सह वर्णनं दृश्यते। सः यावान् उन्नतः आसीत् तथैव स्थूलो बलिष्ठोपि आसीत। सप्तशिरसां मांसभक्षणं कृत्वा स्वोदरे हस्तं नियोज्य वसति स्म।

अत्र कविना जोखू महोदयस्य वर्णनं विधाय अतिशयोक्तीनां प्रयोगो विहितः अतः अतिशयोक्ति-अलंकारो भवत्यत्र।

अपह्नुति-अलंकारः - लक्षणम - प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यत्स्थापनं स्यादपह्नुतिः।[29]

अपह्नुतिः इत्यस्यार्थः गोपनम्। अत्र उपमेयस्य उपेक्षां विधाय उपमानस्य सिद्धतां प्रतिपादयति व्यवस्थापयति। यथा-

'न मेघमालां दिवि रङ्गमेदिनी न गर्जितं मन्द्रमृदङ्ग वादनम्।
ऋभुक्षिचापो न हि विभ्रमो भ्रुवः क्षणप्रभा नापि ननर्त नर्तना।।[30]

कविना महाकाव्यस्य नवमसर्गे अपह्नुति-अलंकारस्य सम्यग्रूपेण वर्णनं समाकारि। अन्तरिक्षे नासीत् मेघमाला, रंगभूमिः आसीत्। तत्र नासीत् गर्जनमपितु मृदंगध्वनिः आसीत्। नासीत् इन्द्रधनुः तत्रासीत् भृकुटीनां रमणीयता। नासीत् तत्र तडित् आसीत् तत्राभिनेत्र्याः नवलनृत्यम्। आकाशे मेघेषु जायमाना तडिच्छविः नर्तकीव प्रतीयते स्म[30]। अत्रापह्नुति-अलंकारमाध्यमेन कविना चमत्काररूपशैल्या वर्णनं प्रकटितम्। विस्ताररूपेण समस्तानाम् अलंकाराणां वर्णनमसम्भवमस्ति। किन्तु कविना स्वसामर्थ्यशक्त्या महाकाव्येषु अलंकाराणां सरितः प्रवाहिताः।

शोधसारांश:-

डॉ, राधेश्यामगंगवारमहोदयविरचितश्रद्धानन्दचरितमहाकाव्ये अलंकारणां निरूपणं प्रभावशालीति प्रतीयते। कविवरेण भाषाम् अलंकर्तुं महाकाव्ये अलंकारणां बहुशः वर्णनं व्यकारि। किन्तु कविवरः कुत्रापि अलंकाराणां समुदाहरणेषु कृत्रिमतां न प्रदर्शयामास। कविवरः साहित्यश्रियं अलंकृतानाम् अलंकाराणां भाषां भावानुसारं प्रकटयामास। कुत्रापि कथाप्रवाहे अवरोधः नैव समुत्पन्नः। कविः आश्रमवर्णने, गृहस्थाश्रमे, ऋषिचरित्रे, दाम्पत्यजीवनादिप्रसङ्गेषु आलंकारिकसौन्दर्य प्रदर्शयितुं महान् प्रयत्नश्चकार। कविः रसानुगुणमेव अलंकाराणां प्रयोगं विधाय कविताकामिन्याः शोभां वर्धयामास। कृतौ प्रयुक्ताः अलंकारा एव कथायाः प्रवाहं अग्रे वर्धयन्तः रसभावं प्रकटीकरणे पूर्णतः सहभागिनः सन्ति। महाकाव्ये भावान् प्रकटयितुं प्रान्जलजलं प्रभावशालिनं कर्तुं चालंकाराः स्वकीयां महतीं भूमिकां निर्वहन्ति। तस्य काव्यरूपस्योपवने अलंकाराः पुष्पगुच्छमिव सर्वत्राभिलषन्ति। इतिवृत्तप्रधाने महाकाव्ये कविः गंगवारः शब्दालंकारः अर्थालंकारश्च इत्यनयोः अलंकारयोः सम्यग्रूपेण प्रतिपादनमकार्षीत। कविवरः स्वकीयया वैदिकसंस्कृत्या सम्मिलितं विश्वमङ्गलकामनायै अलंकारयुक्तं सुन्दरं काव्यं विरचयामास।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, कन्या-गुरुकुलपरिसरः, गुरुकुलकांगडीसमविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्, उत्तराखण्डः,
2. भामहः, काव्यालंकारः 1/13
3. ऋग्वेदः 7/29/3
4. ऋग्वेदे - 1/113/95, शतपथब्राह्मणम् 15/5/1/5
5. काव्यादर्शः 2/1 ।
6. साहित्यदर्पणः 10/1
7. चन्द्रालोकः प्रथममयूखः 9 श्लोकः।
8. काव्यप्रकाशः 9/79
9. श्र0च0 6/7 पृ0 सं0 59।
10. साहित्यदर्पणः 10/4
11. श्र0च0 5/36 पृ0स0 56
12. सा0द0 10/8
13. श्र0च0 4/16 पृ0 सं0 41
14. सा0द0 10/14
15. श्र0च0 3/29 पृ0 सं0 33
16. श्र0च0 3/2 पृ0सं0 27
17. काव्यप्रकाशः 10 सूत्रम्- 137
18. श्र0च0 2/8 पृ0सं0 18
19. काव्यप्रकाशः 10/83
20. श्र0च0 1/52 पृ0सं0 13
21. साहित्यदर्पणः 10/11
22. श्र0च0 1/24 पृ0 स0 54
23. साहित्यदर्पणः 10/92
24. श्र0च0 1/15 पृ0सं0 4
25. श्र0च0 4/22 पृ0सं0 42
26. सा0द0 10/46
27. काव्यप्रकाशः 10/100
28. श्र0च0 5/25 पृ0सं0 54
29. सा0द0 10/39 पूर्वार्द्धम्।
30. श्र0च0 9/15 पृ0सं0 91

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता

रमेश कुमार गुप्ता

शोध-छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ल0 ना0 मिथिला, विश्वविद्यालय, दरभंगा

गांधीजी ने आधी सदी से भी अधिक समय तक हमारे देशवासियों के जीवन को प्रभावित किया। अधिकांश मुद्दों पर उनका दृष्टिकोण समग्र रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, स्वास्थ्य या शिक्षा था। उनके दर्शन व्यावहारिक और दूरदर्शी थे। ग्रामीण उनके आर्थिक विचार का केंद्र था। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के खिलाफ उनकी चेतावनी भविष्यवाणी थी। आज, जब भारतीय निरक्षरता दर 34.62% है, अपराध, हिंसा और भ्रष्टाचार अपने चरम पर है और हमारी आबादी का एक तिहाई से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं, यह वास्तव में शिक्षा के रूप में गांधीजी के योगदान की प्रासंगिकता को लुभाने वाला है। बुनियादी शिक्षा के अपने मॉडल के साथ-साथ उनके दर्शन, दृष्टिकोण और रणनीति को शामिल करते करना अनिवार्य हो गया है।

गांधीजी का मॉडल न केवल समग्र और व्यावहारिक था, बल्कि यह बहुत ही विकेंद्रीकृत और एकीकृत था, जिसमें पूरे समुदाय को प्रेरित करने और सामुदायिक स्तर बनाम राज्य में जिम्मेदारी और जवाबदेही को प्रेरित करने की क्षमता थी, उनके कुछ योगदानों को उजागर करने के लिए।

आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य आधार पर, भारत ब्रिटिशों के लिए पहली दर्जे का महत्व था और शिक्षा वह साधन था जिसके द्वारा उन्होंने विदेशी भाषा के माध्यम से एक अभिजात वर्ग को शिक्षित करने के एक अद्वितीय मॉडल के साथ प्रयोग करके अपने वर्चस्व को बनाए रखने और मजबूत करने की कोशिश की। हालांकि, लोकप्रिय धारणा के विपरीत, भारतीयों पर अंग्रेजी शिक्षा को मजबूर नहीं किया गया। अमीर भारतीय नागरिक अपने समाज को आधुनिक बनाने के लिए इस प्रणाली को स्थापित करने के लिए सक्रिय रूप से आगे आए थे। भारतीय स्कूल के लड़कों द्वारा अंग्रेजी भाषा में महारत हासिल करने में इतना समय व्यतीत किया गया कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही छूट गया। दर सीखने और परीक्षाओं पर प्रीमियम इतना अधिक था कि जिज्ञासु की वृद्धि और मन की प्रयोगात्मक तुला, आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, खेती नहीं की गई थी। लेकिन अधिक महत्वपूर्ण था, लड़कियों के लिए एक सामाजिक कल्याण गतिविधि और लड़कों के लिए एक निवेश के रूप में शिक्षा को देखने के दृष्टिकोण और मूल्यों में एक अदृश्य और काफी बदलाव था। परिणामस्वरूप, प्रणाली एक केंद्रीकृत और समान उच्च शिक्षा पर केंद्रित थी।

चूंकि शिक्षा की प्रणाली का जनता के लिए बहुत कम उपयोग था, इसलिए 6-11 वर्ष की आयु के बच्चों के साथ-साथ नामांकन के लिए अपर्याप्त सुविधाएं थीं। कई मायनों में स्थिति लड़कों की तुलना में लड़कियों को ज्यादा प्रभावित करती है। गांधीजी, जिन्होंने शिक्षा को मानव पूंजी में निवेश के रूप में देखा था, ने इस प्रणाली के खिलाफ चेतावनी दी क्योंकि इसने ग्रामीणों को अव्यवस्थित कर दिया, उन्हें असहाय और पंगु बना दिया और लगातार उन्हें गरीबी, बेरोजगारी और निराशा में डुबो दिया। इसके बजाय, उत्पादक कौशल उनके नई तालीम (बेसिक शिक्षा) पर ध्यान केंद्रित करते थे, भोजन, आश्रय और कपड़े प्रदान करते थे जो मानव अस्तित्व और सुरक्षा के लिए तीन बुनियादी आवश्यक वस्तुएं थीं।

औद्योगिक क्रांति द्वारा लाई गई सोसाइटी में दुनिया भर में आमूल-चूल बदलावों के प्रभाव को देखते हुए, गांधीजी की शिक्षा का दर्शन आर्थिक, राजनीतिक और बाल विकास एवं उनके सिद्धांतों के वैज्ञानिक अनुसंधान से प्राप्त उनके निष्कर्षों पर आधारित था, दक्षिण अफ्रीका में सफल प्रयोग। उन मूल परिवर्तनों में से एक था घरों से कारखानों और दुकानों में निर्माण को हटाना। घर

पर किए गए काम ने परिवार के सदस्यों को आजीवन शैक्षिक, समाजीकरण, संचार और व्यावसायिक लाभ प्रदान किया। इसने बेरोजगारी और अपराध दर को कम रखा। सहयोग और सम्मान की भावना प्रबल हुई, जिसे गांधीजी ने अपने मॉडल में पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

यदि शिक्षा सभी विकास और प्रगति की नींव है, तो लक्ष्य, लक्ष्य और उद्देश्य चार परस्पर जुड़े हुए और सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं जो पाठ्यक्रम सामग्री, पाठ्यक्रम और मूल्यांकन के माध्यम से शैक्षिक परिणामों को दिशा देते हैं। ये चार घटक चार परस्पर जुड़े हुए ब्लॉक्स अर्थात् महामारी विज्ञान (ज्ञान की प्रकृति), समाज, संस्कृति, व्यक्ति और सीखने के सिद्धांत से अत्यधिक प्रभावित हैं। लेकिन चूंकि उद्देश्य, लक्ष्य और उद्देश्य, सामूहिक रूप से पाठ्यक्रम के एक घटक के रूप में संपूर्ण शिक्षा कार्यक्रम के लिए दिशा और ध्यान प्रदान करते हैं, वे इन चार मूलभूत बलों के लिए विशेष रूप से संवेदनशील हैं।

यह गांधीजी थे, जिन्होंने 1937 में पहली बार आठ पाठ्य बलों की परस्परता को पहचाना और ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की निरर्थकता पर सवाल उठाया। दक्षिण अफ्रीका में शिक्षा के साथ अपने ज्ञान और सफल प्रयोगों के आधार पर, उन्होंने एक बुनियादी शिक्षा योजना को आगे बढ़ाया, जिसमें शांति और स्वतंत्रता के एक उद्देश्य को प्राप्त करने की योग्यता थी, जिसके लिए सभी मानव जाति आज तरस रही है। इसके अलावा, एक केंद्रीकृत योजना की निरर्थकता को पहचानने और कार्यक्रमों को लागू करने में नियंत्रण के लिए, उन्होंने गांव के गणराज्यों द्वारा लागू किए जाने वाले एक व्यापक लेकिन विकेंद्रीकृत मॉडल को भी रेखांकित किया। उनके मॉडल का महत्वपूर्ण उद्देश्य जनता के बीच उत्पादक और सामाजिक कौशल विकसित करना था। केंद्र के लिए, राज्यों के काम का समन्वय और मार्गदर्शन करने की समग्र जिम्मेदारियाँ बनीं ताकि राष्ट्रीय नीतियां जमीनी स्तर से विकसित हो सकें।

बेसिक शिक्षा पर दो साल के काम के बाद, 1941 में जामियानगर, दिल्ली में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। सरकारों, स्थानीय निकायों और पूरे देश में निजी उद्यम द्वारा संचालित बुनियादी स्कूलों के काम पर विभिन्न रिपोर्ट लगभग एकमत थीं। उनके आश्वासन की स्वास्थ्य और व्यवहार के सामान्य मानकों के साथ-साथ बौद्धिक प्राप्ति बहुत उत्साहजनक थी। इंग्लिश मीडियम स्कूलों की तुलना में, बेसिक स्कूलों में बच्चे आत्म-अभिव्यक्ति की अच्छी तरह से विकसित शक्ति के साथ अधिक सक्रिय, हंसमुख, आत्मनिर्भर थे। उन्हें सहकारी कार्यों की आदतों को प्राप्त करने के लिए पाया गया था और सामाजिक पूर्वाग्रह टूट रहे थे। शिक्षा में पाँच अन्य समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान शामिल हैं (1) सामाजिक, उत्पादक और शैक्षणिक कौशल पर ध्यान देने वाला एक आयु उपयुक्त और यथार्थवादी पाठ्यक्रम, (2) एक अत्यधिक पर्याप्त और प्रभावी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, (3) शिक्षा के वित्तपोषण को खाड़ी में रखना। स्थानीय समुदाय शिक्षा में अंतरराष्ट्रीय मानकों के लिए विवेकपूर्ण रूप से एक साथ प्रो विडिंग को वित्तीय रूप से बढ़ा और प्रबंधित कर सकता है, (4) वयस्क अशिक्षा, बेरोजगारी या बाल श्रम के लिए बहुत कम या कोई गुंजाइश नहीं छोड़ना और (5) स्थानीय समुदाय के हाथों में जिम्मेदारी और जवाबदेही को ध्यान में रखते हुए, फिर से जनसंख्या के स्वास्थ्य और प्रबंधनीय स्तरों में अंतरराष्ट्रीय मानकों के लिए प्रदान करते हैं। यह सब और बहुत कुछ उन्होंने अपने मॉडल के माध्यम से हासिल किया।

कागज का दूसरा ध्यान गांधीजी का प्रस्तावित और परीक्षण किया गया मानव सुरक्षा का विकल्प है जो मूर्त, प्राप्य, सस्ती, स्वदेशी और टिकाऊ है और गरीबी, असमानता और इसकी संबद्ध समस्याओं के खिलाफ एक इन्सुलेशन है। चूंकि एक कम्पोक्सलाइज्ड दृष्टिकोण कारण को संबोधित नहीं करता है, गांधीजी का विकल्प सबसे व्यापक और कारण को संबोधित करने के लिए एकीकृत था। उनके उदार मॉडल को एक नई नीति तैयार करने के लिए एक दिशानिर्देश के रूप में काम करने का प्रस्ताव दिया गया था। इसके कार्यान्वयन, प्रबंधन और वित्त को पूरी तरह से पंचायतों और स्थानीय निकायों के साथ निहित किया जाना था। उनके दर्शन, दृष्टिकोण और रणनीति को शामिल करते हुए उनके उदार मॉडल की छह मुख्य विशेषताएं हैं: 1. बुनियादी दर्शन, 2. उद्देश्य और लक्ष्य, 3. पांच चरण, 4. कार्य का कार्यक्रम, 5. कार्यान्वयन रणनीति, 6. प्राप्ति का मानक ।

गाँधी जी भारत के उन महापुरूषों में से एक हैं, जिन्होंने भारत की शैक्षिक व्यवस्था का अध्ययन किया तथा इससे जुड़ी समस्याओं पर विस्तार से चर्चा की। गाँधी जी, स्वय में एक सुधारवादी राजनीतिक विचारक थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि भारत में शिक्षा सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन और विकास के माध्यम से अपने को प्रतिबिम्बित करती है। इस रूप में यह आवश्यक है कि एक ओर तो जीवन के भौतिक संसाधनों में अत्यधिक रूचि को दूर किया जाए, तो दूसरी ओर जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति जनमानस में आस्था को राष्ट्रीय धरातल पर विकसित किया जाए। एक ऐसे समय में जब परिवर्तन की गति तेज है तो यह आवश्यक होगा कि शिक्षा के माध्यम से समाज की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए रणनीति तय की जाए। गांधी जी जीवन

पर्यन्त, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष करते रहे। गांधी जी एक शिक्षाशास्त्री नहीं थे क्योंकि उन्होंने शिक्षा शास्त्र के सिद्धांतों की विवेचना नहीं की परन्तु अपने सामाजिक वक्तव्यों के दौरान वे समय-सयम पर शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार रखते रहे। बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार आज भी प्रासंगिक है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी नवयुग के चेतना के प्रतीक, विचारक, शिक्षा शास्त्री, सन्त, दार्शानिक और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सर्वोच्च महारथी के रूप में उनकी ख्याति देश की सीमाओं को पार कर सम्पूर्ण विश्व में फैल गयी थी। वे एक महान समाज सुधारक राजनीतिज्ञ और सच्चे भक्त थे। बच्चों और भारत के भोले-भाले नागरिकों के प्यारे बापू हैं। बुद्धि जीवियों और विचारकों के लिए वे महात्मा हैं। राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से वे एक अन्तर्राष्ट्रीय नेता, उपदेष्टा तथा चिन्तक हैं। सम्पूर्ण विश्व हाड़ माँस के इस दुबले-पतले किन्तु अद्वितीय महामानव की विनम्रता के आगे नतमस्तक होकर उनके जीवन को प्रेरणाश्रोत मानता है। अल्वर्ट आइन्टीन जैसे दार्शनिक और वैज्ञानिक ने गांधी के विषय में कहा हैं- "आने वाली पीढ़ियाँ संभवत: मुश्किल से ही यह विश्वास करेगी कि गांधी जी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस पृथ्वी पर हुआ होगा।" गाँधी जी ने अपनी विचारधाराओं के माध्यम से भारत वासियों को ही नहीं वरन सम्पूर्ण मानव जाति को जो कुछ भी दिया है, उनको आंकना सम्भव नहीं है। जहां एक ओर सामान्य जीवन में उन्होंने लोगो को सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, सहयोग, परोपकार, श्रम कार्य के प्रति सम्मान आदि के भावों को जागृत करके व्यक्ति के जीवन दर्शन को ही बदल कर रख दिया है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान "बुनियादी शिक्षा योजना" के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

गांधी जी ने सन् 1937 में 'वर्धा शिक्षा योजना' का सूत्रपात किया। 'वर्धा शिक्षा योजना' एक ऐसा शैक्षिक सुधार था, जो भारतीय शिक्षा के इतिहास में आज तक के सर्वाधिक लोकप्रिय सुधारो में से एक है। उस समय देश में प्रचलित शिक्षा को गांधी जी ने पुस्तकीय, अव्यावहारिक, क्लर्क बनाने वाली, एकांगी, जीवन से दूर कुछ थोड़े से लोगों को प्राप्त, विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली एवं भारतीय परम्परा और संस्कृति से असम्बन्धित बताया था। इसे बुनियादी (आधार भूत) शिक्षा कहने का तात्पर्य था कियह शिक्षा, राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा संगठन के आधार के रूप, में प्रस्तुत की गई। यह शिक्षा सभी भारतीय को ऐसा आधार भूत, ज्ञान प्रदान करने के लिए निर्मित की गई कि जो उनको अपने वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने एवं प्रयोग करने में सहायक हो। इसमें शिक्षा का केन्द्र बिन्दु कोई हस्त कार्य होगा। इसलिए इसे बेसिक (आधार भूत) शिक्षा कहा है। "बेसिक शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा प्रणाली से है, जो बालकों को पुस्तकीय और अव्यावहारिक शिक्षा से हटा कर एक मूल उद्योग पर आधारित व्यावहारिक और सर्वांगीण विकास की शिक्षा देती है।"

गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा, बुनियादी सिंद्धातों पर आधारित हैं ये बुनियादी सिंद्धात नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा, मातृ भाषा के माध्यम से शिक्षा, स्वावलम्बी शिक्षा, जीवन से संबंधित शिक्षा, हस्त कौशल पर आधारित शिक्षा एवं नागरिकता की शिक्षा है। बुनियादी शिक्षा व्यक्ति और समाज के बुनियादी घनिष्ट सम्बन्धों पर आधारित है। इसीलिये बुनियादी शिक्षा जहाँ एक ओर व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाती है, वहीं दूसरी ओर समाज को भी स्वावलम्बी बनाती है। इस प्रकार यह व्यक्तिगत शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक शिक्षा भी है। सन् 1953 ई0 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, "Understanding of Basic Education" में बुनियादी शिक्षा को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है, "बेसिक स्कूल में व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वतन्त्रता की क्रियाएं सबसे प्रमुख मानी जाती है। शिशु की शिक्षा बालकों के मस्तिष्क में अव्यावहारिक विचारों को ठूंसना नहीं है। वह मूल रूप से उन्हें अच्छी आदतों नित्य कर्म, दांत, नाक, आंखों की सफाई, स्नान, शारीरिक व्यायाम, कपड़े धोना तथा अन्य दैनिक क्रियाओं के अनुभवों से प्रशिक्षित करना है, जिससे अच्छी आदतों का निर्माण हो सके।" बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों में भारत की दृष्टि से उपयोगी शिक्षा, बालकों का सर्वांगीण विकास, अच्छी नागरिकता, सर्वोदय की भावना, नैतिक, चारित्रिक एवं सांस्कृतिक विकास, क्रियात्मक शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं व्यावसायिक शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है। गाँधी जी की बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिल्प कार्य के अन्तर्गत कृषि, काष्ठकला, कताई, बुनाई, चमड़े का कार्य, मत्स्य पालन, कुम्हार का कार्य, बागवानी, फल संरक्षण स्थानीय हस्त कला को प्रमुखता दी गयी है।

शैक्षिक विषय के अन्तर्गत मातृ भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, प्रकृति अध्ययन, जन्तु विज्ञान, शारीरिक स्वास्थ्य विज्ञान, खगोल विज्ञान, स्वास्थ्य और महान व्यक्तियों की जीवनियां, हिन्दी, गृह विज्ञान, कला एवं शारीरिक शिक्षा (व्यायाम) को सम्मिलित किया गया। बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम को एकीकृत रूप में लगभग 5.5 घण्टे प्रतिदिन की अवधि के लिए निर्मित किया गया था। सभी विषयों के लिए निर्धारित पृथक-पृथक अवधि रखी गयी। बुनियादी शिक्षण की विधियों में क्रिया एवं अनुभव द्वारा सीखना एवं सह सम्बन्ध द्वारा सीखना विधि को मान्यता दी गई।

गाँधी जी के चिंतन में बुनियादी शिक्षा का अत्यंत विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है, क्योंकि वे इसे व्यक्ति के सामाजिक आर्थिक प्रगति, भौतिक विकास, राजनीतिक जागरूकता और नैतिक विकास का माध्यम मानते थे। उनके अनुसार साक्षरता का अर्थ यर्थाथ में शिक्षा नहीं है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मन और शरीर के विकास के संभावना को विकसित करना है। मन के विकास के लिए मौलिक सत्यों और शक्तिशाली विवेकशक्ति की जानकारी अति आवश्यक है। तर्क शास्त्र से मन की शक्तियों का प्रस्फुटन होता है। शारिरिक पक्ष के संबंध में गांधी जी का मानना है कि व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए। बुनियादी शिक्षा की गांधी वादी धारणा में इसका उद्देश्य शरीर (body) मन (Mind), हृदय (Heart) तथा आत्मपरकता (Spirit) की भावना को विकसित करना है। सच्ची शिक्षा व्यक्ति की मानसिक और शरीरिक क्षमता के विकास का माध्यम है। गांधी जी का मानना था कि सार्थक शिक्षा व्यक्ति के अन्तस में विद्यमान चेतना को जगाती है। सार्थक शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति में छिपी प्रतिभा को प्रकाश में लाया जा सकता है इसलिए गांधी जी के चिन्तन में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में विद्यमान सर्वश्रेष्ठ को बाहर लाना है। गांधी जी लिखते हैं कि साक्षरता का कोई अन्तिम बिन्दु नहीं है। यह मनुष्य को शिक्षा के योग्य बनाने का माध्यम है। गांधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य मात्र 'अच्छे मनुष्य पैदा' करना नहीं है वरन ऐसे मनुष्य का निर्माण करना है, जो अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन करें। वह कोई भी शिक्षा, जो इस उद्देश्य को प्रकाशित नहीं करती, वह शिक्षा अधूरी, आंशिक और निरर्थक है।

वैसे तो गांधी जी आदर्श वादी थे। पर यर्थाथ में गांधी जी एक प्रयोगवादी थे जो शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। वे मानते थे कि सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति में भागीदारी करने वाले मनुष्य, सामाजिक मनोवृत्ति (Social Spirit) के विकास में सहायक होते हैं, जिससे सामाजिक हित का प्रादुर्भाव होता है। गांधी जी की दृढ़ मान्यता थी कि शिक्षा को मनुष्य के व्यक्तित्व और प्रकारान्तर से उसे गतिशील समाज के सदस्य के रूप में विकसित होने के माध्यम के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए। एक सहकारी समाज के संरचनात्मक सदस्य होने के नाते उसके व्यक्तित्व का सामाजिक पक्ष विशेष महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. रामाश्रय राय- सेल्फ एण्ड सोसायटी, रोज पब्लिकेशन, नई दिल्ली- 2004, पृ. 123
2. जे.पी. कृपलानी- गाँधी हिज लाईफ एण्ड थाट, पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली-2016, पृ. 123
3. यंग इण्डिया - 13.10.1921
4. हरिजन - 9.10.1933
5. डॉ. वी.पी. वर्मा-दी पॉलिटीकल फिलोसफी ऑफ महात्मा गाँधी एण्ड सर्वोदय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2010, पृ. 231
6. महात्मा गाँधीः हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2014, पृ. 107
7. डॉ. धीरेन्द्र मोहन दत्तः महात्मा गांधी का दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना 2001, पृ. 82-83
8. डी० पी० नायर, टू ऑर्डस ए नेशनल सिस्टम ऑफ एडूकेशन, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ0- 51

उत्तम अभिशासन तथा उसके समक्ष चुनौतियॉ

डॉ० आभा तिवारी

सहा. प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, डी.पी. विप्र महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

पिछले कुछ दशकों में सुशासन समेत विभिन्न व्याख्याओं वाली शासन की अवधारणा व व्यवहार का महत्व काफी बढ़ा है। यद्यपि, संकुचित अर्थ में इसके केन्द्र में लोक प्रशासनिक संरचनाएँ, प्रक्रियाएँ सांस्थानिक विाकस आदि आते हैं, लेकिन व्यापक अर्थ में कहा जाए, तो यह प्रशासन में गुणवत्तापरक सुधार पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। अतः, शासन को प्रभावी व सक्षम बनाकर, तथा विकासात्मक प्रक्रिया को उत्पादनशील व नव दिशा प्रदान करने के लिए जिम्मेदारी, पारदर्शिता, भागीदारी तथा सशक्तीकरण जैसे सिद्धांतो पर जोर दिया जाता है। सुशासन न केवल रचनात्मक भागीदारी को प्रोत्साहित करता है, बल्कि विभिन्न तत्वों को एक साथ लाकर उसकी जन स्वीकार्यता को भी आगे बढ़ाता है। सुशासन, संस्थागत (निजी तथा लोक आदि) समावेशन को बढ़ावा देता है, तथा लोक सेवा प्रावधानों में लचीले तथा लागत-गुणवत्ता वाली परिणामोन्मुखी प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित करता है।

वैश्वीकरण के सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलू है। यह संबंधित देशों पर निर्भर करता है कि वह स्थानीय रूप से विशिष्ट शासन रणनीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन कर, वैश्वीकरण के लाभों का अधिकतम दोहन करे तथा सत्त विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास करे। बाजार तत्वों की प्रमुख भूमिका लगातार जारी रहेगी, लेकिन राज्य की भी भूमिका प्रभावी बनी रहेगी। वर्तमान परिदृश्य में, आवश्यकता इस बात की है कि राज्य, बाजार तथा नागरिक समाज संगठनों के बीच एक समन्वयात्मक तथा उत्पादनशील संबंध कायम हो। इस इकाई में इन्हीं विशेष मुद्दों पर चर्चा की गई है।

उद्देश्य

उत्तम अभिशासन की व्याख्या करना तथा उसके समक्ष चुनौतियों का विश्लेषण करना।

शोध तकनीक

प्राथमिक एवं द्वितियक शोक तकनीकों को प्रयोग किया गया है।

की वर्ड- अभिशासन, सुशासन, अभिशासन की चुनौतियाँ

उत्तम अभिशासन की अवधारणा

भारत के वैदिक साहित्य में पुराणों में उत्तम अभिशासन की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। रामायण में राम राज्य की अवधारणा से ही सुशासन या अभिशासन की अवधारणा का जन्म हुआ है। जब हम राम राज्य की कल्पना करते है तो यह मानतें है कि एक ऐसा राज्य जहॉ कोई दुखी या शोशित नहीं है। सर्वत्र न्याय विराजमान है। समानता विद्यमान है। सभी के अधिकार सुरक्षित है चाहे वह छोटा-बड़ा गरीब-अमीर, या किसी भी वर्ग का हों। मनुस्मृति में भी राजा के कर्तव्य अथवा राजा की दिनचर्या आदि को वर्णन मिलता है। जिसमें एक उत्तम अभिशासन के सारे क्रियाओं को विस्तुत में समझाया गया है वैसे ही जब कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन करते है तो प्रशासन प्रत्येक स्वर की चर्चा की गई है। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि राजा संपन्न हो तो उसकी

समृद्धी से प्रजा भी संपन्न होती है। राजा का जो शील हो वह शील प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी और उत्थान हो तो प्रजा में भी वे गुण आ जाते है। यदि राजा प्रमादी हो तो प्रजा भी वैसी हो जाती है।

सुशासन क्यों आवश्यक है?

- शासन में सुधार विकास प्रक्रिया का एक हिस्सा है।
- यह तर्क दिया जाता है कि प्रशासन में भागीदारी, शासन में पारदर्शिता और जवादेही सुनिश्चित कर शासन में व्यवस्थित परिवर्तन द्वारा भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया जा सकता है।
- सुशासन के अधिकार को नागरिकों के अधिकारों का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाता है।
- रिपोर्टो से पता चला है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, स्वच्छता, ग्रामीण रोजगार आदि के लिये सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय में काफी वृद्धि हुई है, जिसके वांछित परिणाम नहीं मिले हैं। इस विरोधाभास के केंद्र में पारदर्शी और जवाबदेही शासन का मुद्दा शामिल है।
- सुशासन के बिना कोई भी विकासात्मक योजना नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधान नहीं ला सकती है।
- लचर शासन व्यवस्था गरीबी उत्पन्न करती है और बढ़ावा भी देती है। इस बात के प्रमाण मिल रहे हैं कि आर्थिक सुधारों का लाभ समान रूप से नहीं मिल रहा है, साथ ही क्षेत्रीय और सामाजिक सांस्कृतिक असमानताएँ बढ़ी है।

सुशासन के 7सिद्धांत

1. भागीदारी
   - लेगों को वैद्य संगठनों या प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी राय देने में सक्षम होना चाहिये।
   - इसमें पुरूष एवं महिलाएँ, समाज के कमजोर वर्ग, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक आदि शामिल है।
   - भागीदारी का तात्पर्य संघ एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से भी है।
2. कानून का शासन
   - कानूनी ढाँचे को निष्पक्ष रूप से लागू किया जाना चाहिये, विशेषकर मानवाधिकार कानूनों के परिप्रेक्ष्य में।
   - ''कानून के शासन'' के बिना राजनीत, मत्स्य न्याय के सिद्धांत का पालन करेगी जिसका अर्थ है ताकतवर कमजोर पर हावी होगा।
3. सहमति उन्मुख
   - सर्वसम्मति उन्मुख निर्णय लेने से यह सुनिश्चित होता है कि भले ही प्रत्येक व्यक्ति, जो वह चाहता है उसे प्राप्त न कर पाए परंतु सभी को सामान्य न्यूनतम संसाधन उपलब्ध कराए जा सकते है, जो किसी अन्य के लिये हानिकारक भी नहीं होगा।
   - यह एक समुदाय के सर्वोत्तम हितों पर व्यापक आम सहमति को पूरा करने के लिये अलग-अलग हितों की मध्यस्थता करता है।
4. भागीदारी और समावेशिता
   - सुशासन एक समतामूलक समाज को बढ़ाव देता है।
   - लोगों को अपनी जीवन स्तर सुधारने या उसको बनाए रखने के अवसर प्राप्त होने चाहिये।
5. प्रभावशीलता और दक्षता
   - प्रक्रियाओं और संस्थानों को ऐसे परिणाम देने में सक्षम होना चाहिये जो उनके समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करते हो।

- अधिकतम उत्पादन के लिये समुदाय के संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिये।

6. जवाबदेही
    - सुशासन का उद्देश्य लोगों की बेहतरी है और यह सरकार द्वारा लोगों के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित किये बगैर नहीं किया सकता हैं।
    - सरकारी संस्थानों, निजी क्षेत्रों और नागरिक समाज संगठनों द्वारा सार्वजनिक एवं संस्थागत हितधारकों के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिये।
7. पारदर्शिता
    - सूचनाओं की प्राप्ति आम जनता के लिये सुलभ होनी चाहिये और यह उनके समझने और निगरानी योग्य होनी चाहिये।
    - इसका अर्थ मुक्त मीडिया और उन तक सूचना की समग्र पहुँच भी है।

सुशासन की राह में चुनौतियाँ

1. राजनीति का अपराधीकरण
    - एसोसिएशन और डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स'' रिपोर्ट के अनुसार, वष्र 2019 में गठित लोकसभा के कुल सांसदों में से 43 प्रतिशत सदस्य आपराधिक केस का सामना कर रहे हैं। इसमें वर्ष 2014 की तुलना में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
    - राजनीति का अपराधीकरण तथा राजनेताओं, सिविल सेवकों एवं व्यापारिक घरानों का गठजोड़ सार्वजनिक नीति निर्माण एवं शासन पर बुरा प्रभाव डालते है।
    - यद्यपि जनता के बीच राजनीतिक वर्ग का सम्मान लगातार कम होता जा रहा है, इसलिये ऐसे किसी व्यक्ति जिसके खिलाफ गंभीर एवं जघन्य अपराध व भ्रष्टाचार से संबंधित आरोप लंबित हैं, को आयोग्य घोषित करने के लिये जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 8 में संशोधन करना आवश्यक है।
2. भ्रष्टाचार
    - शासन की गुणवत्ता को सुधारने में भ्रष्टाचार एक बड़ी बाधा है। जबकि स्पष्ट रूप से मानव लालच भ्रष्टाचार का चालक है। यह भारत में भ्रष्टाचार की बढ़ती प्रवृत्ति में योगदान करने के लिये जिम्मेदार है।
    - ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी भ्रष्टाचार बोध सूचकांक 2019 के अनुसार, भारत की रैंकिंग 78 से फिसलकर 80 हो गई है।
3. लैंगिक असमानता
    - स्वामी विवेकानंद के अनुसार ''जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधान नहीं होगा, विश्व कल्याण के बारे में सोचना असंभव हैं जिस प्रकार एक पक्षी के लिये केवल एक पंख पर उड़ना असंभव होता है।''
    - किसी राष्ट्र की स्थिति का आकलन करने का एक तरीका यह है कि वहाँ की महिलाओं की स्थिति का अध्ययन किया जाए। चूँकि महिलाएँ कुल आबादी का लगभग 50प्रतिशत हैं, इसलियें सरकारी संस्थानों एवं अन्य संबंद्ध क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाया जाना चाहिये।
    - अर्थात् सुशासन सुनिश्चित करने के लिये महिलाओं का सशक्तिकरण आवश्यक है।
4. हिंसा की बढ़ती घटनाएँ
    - अवैध तरीके से बल का सहारा लेना कानून व्यवस्था की समस्या मानी जाती है किंतु सुशासन के सिद्धांतों के दृष्टिकोण से देखने पर लगता है कि शांति और व्यवस्था, विकास की दिशा में पहला कदम हैं।
5. न्याय में देरी
    - एक नागरिक को समय पर न्याय पाने का अधिकार है, किंतु कई ऐसे कारक है जिनकी वजह से एक सामान्य व्यक्ति को समय पर न्याय नहीं मिल पाता है।

6. समाजिक एवं अर्थिक रूप से पिछड़े लोगों का सीमांकन

विकास की प्रक्रिया में हाशियें पर स्थित समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो को मुख्यधारा में लाने के लिये कई संवैधानिक प्रावधान है किंतु वास्तविकाता में शिक्षा, आर्थिक गातिविधियों आदि जैसे कई क्षेत्रों में वे अभी भी पीछे हैं।

निष्कर्ष

- शासन की प्रभावी कार्यपद्धति देश के प्रत्येक नागरिक से संबंधित है। नागरिक राज्य द्वारा दी जाने वाली अच्छी सेवाओं का खर्च वहन करने लिये तैयार हैं, किंतु इसके लिये आवश्यक है की ऐसी एक पारदर्शी, जवाबदेह और बौद्धिक शासन प्रणाली हो जो पक्षपात एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।
- देश में सुशासन बहाल करने के लिये ''अंत्योदय'' के गांधीवादी सिद्धांत की प्रधानता हेतु हमारी राष्ट्रीय रणनीति में सुधार करने की आवश्यकता है।
- भारत को शासन में सत्यनिष्ठा की धारणा को विकसित करने पर भी ध्यान देना चाहिये ताकि शासन को अधिक नैतिक बनाया जा सके।
- सरकार का ''सबका साथ-सबका विकास एवं सबका - विश्वास ' के आदर्श पर कार्य करते रहना चाहिये जो समावेशी एवं सतत् विकास को बढ़ावा दे।

संदर्भ सूची

- डॉ. सुरेन्द्र कटारिया- कार्मिक प्रशासन
- डॉ. बी.एल फड़िया- लोक प्रशासन
- माहेश्वरी- भारतीय प्रशासन
- डॉ अवस्थी- तुलनात्मक लोक प्रशासन
- दृष्टि आई.ए.एस

वर्तमान राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कालिदास एवं भवभूति की नाट्यसूक्तियों की प्रासंगिकता

डॉ० श्याम बाबू शर्मा

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामदयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

संस्कृत साहित्य में नाटक लेखन की परम्परा अति प्राचीन है, जिसका कारण है कि प्रारम्भ से ही जनसाधारण के मनोरंजन के लिए नाटक सर्वश्रेष्ठ साधन रहे हैं। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति चाहे किसी भी रूचि का क्यों न हो, नाटक में उसे आत्मानुकूल विषय अवश्य ही मिल जाता है यथा:-

'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'।[1]

नाटक में कवि विविध पात्रों के अभिनय द्वारा कथ्यविषय को हृदयगंम करवाता है। पात्रों के मुख से उच्चरित सूक्तियाँ इसमें विशेष प्रभाव उत्पन्न करती हैं। कहा भी गया है कि -

'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति'।[2]

अर्थात् यदि एक शब्द को भी सम्यक् विधिपूर्वक समझकर उसका उचित प्रयोग किया जाए, तो वह इस लोक में व स्वर्ग में सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण कर देता है, अतः इस कथन के अनुसार तो प्रसंगपूर्वक उच्चरित सूक्ति भी कथोपकथन में जहाँ तीव्रता एवं तीक्ष्णता लाती है, वहीं पाठक एवं दर्शक के मन-मस्तिष्क में अपनी अमिट छाप भी छोड़ देती है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में महाकवि कालिदास एवं भवभूति का तुलनात्मक अध्ययन एक रोचक विषय रहा है। सूक्तियों के दृष्टिगत भी कहीं कालिदास आम्रमंजरी की तरह रसभरी सरसता-पगी सूक्तियों के द्वारा शृंगार का मजा चखा रहे हैं, तो कहीं भवभूति अपनी भावमयी भव्य-नव्य सूक्तियों के द्वारा पवित्र प्रेम की अभिव्यक्ति कर परम मंगलमय आदर्श की सृष्टि कर रहे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में महाकवियों की नाट्यकृतियों से 'राजनीति-विषयक' सूक्तियों को चुनकर उनकी वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में प्रासंगिता को समझने का प्रयास किया गया है।

महाकवि कालिदास एवं भवभूति की नाट्यकृतियों में प्रयुक्त राजनीति विषयक सूक्तियों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता पर दृष्टिपात करने से पूर्व भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित राजनीति विषयक ज्ञान से परिचित होना परमावश्यक है।

व्यापक रूप से 'राजनीति' शब्द राज्य, राजा-प्रजा एवं शासकों से सम्बद्ध नियमों, एवं तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रति वैयक्तिक दृष्टिकोण एवं प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता है। एक नागरिक में अपने देश और शासन के विषय में राजनीतिक चेतना विद्यमान रहती है। वह सामाजिक जीवन के निर्वहन के लिए राज्य संस्था का शासन स्वीकार करता है। राज्य-संस्था के अन्तर्गत उस देश के नागरिकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह नानाविध प्रकार से समाज की अन्य संस्थाओं, व्यक्तियों तथा उनके कर्त्तव्य, अधिकार एवं पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करता है। राजनैतिक परिपेक्ष्य को जाने बिना किसी देश, काल या समाज की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का यथार्थ मूल्यांकन करना संभव नहीं है, क्योंकि कहा भी गया है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात् राज्यव्यवस्थाा के अनुरूप ही सामान्य जनमानस की भी जीवनशैली होगी। राजा एवं राजधर्म पर ही राज्य की सुव्यवस्था को निर्भर करती है तथा प्रजापालन, शासन, दण्ड, युद्ध इत्यादि उसके मुख्य धर्म माने जाते हैं।

भारतवर्ष में सुव्यवस्थित राज्यव्यवस्था विद्यमान होने के प्रमाण वैदिककाल से ही प्राप्त होते हैं, जहाँ प्रजा कल्याण एवं समृद्धि को राजा पर ही आश्रित स्वीकार किया जाता है।[3] रामायणकार ने भी साम, दान, क्षमा, धर्म, सत्य, धृति, पराक्रम एवं अपराधियों को

दण्ड देना इत्यादि पृथिपालकों के धर्म कहे हैं[4] और पुत्रवत् प्रजा का पालन करना, प्रजापालन में तत्पर रहना, प्रजाजन[5] तथा वर्णाश्रम धर्म[6] का पालन राजा के प्रमुख धर्म कहे हैं। महाभारतकार ने राजा की कार्यसिद्धि के साधन चार उपाय (साम, दाम, दण्ड, भेद) गुप्तचर, उत्तम बुद्धि, सुरक्षित मन्त्रणा, पराक्रम, नियम, अनुग्रह और चतुरता को बताया है।[7] स्मृतिकार ने सप्तम अध्याय के अन्तर्गत राजधर्म का विवेचन निम्न श्लोक से प्रारम्भ करके किया है –

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।

संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा।।[8]

भारतीय संस्कृति की इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए महाकवि कालिदास एवं भवभूति ने भी अपनी नाट्यकृतियों में राजा एवं राज्य विषयक सूक्तियों के माध्यम से राजाओं के धर्म एवं राजनीति के ऐसे सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं, जोकि तत्कालीन समय के सदृश ही वर्तमानकालीन लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भी उतने ही प्रासंगिक प्रतीत होते हैं –

महाकवि कालिदास राजा की सर्वत्र सर्वगोचरता स्वीकार करते हैं[9], जोकि राज्यप्रशासन की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है। चूकिं प्रायशः दृष्टिगोचर होता है कि राज्य अथवा देश में उपद्रवी और पड़ोसी देश षड्यंत्र करते रहते हैं, जिनसे सावधान रहना एक राजा की दृष्टि से आवश्यक है। उपर्युक्त सूक्ति की यदि हम वर्तमान भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रासंगिकता देखें तो भारत सरकार के पास ऐसी अनेक खुफिया एजेंसी (रॉ.,आई.बी., सीआईडी., एन,आई.ए. इत्यादि) हैं, जिनके माध्यम से वे देश और विदेशों में नजर रखती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक देश के पास भी अपनी-अपनी खुफिया एजेंसी हैं।

महाकवि कालिदास राज्य प्रशासन में एक राजा के महत्त्व को अभिव्यक्त करने के लिए राजा को काल का निर्माता तक कह देते हैं[10], क्योंकि तत्कालीन समय में सर्म्पूण राजव्यवस्था राजा पर आश्रित होती थी। यद्यपि वर्तमान भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में ऐसा नहीं, क्योंकि देश का संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति को स्वीकार किया जाता है, किन्तु देश में प्रधानमन्त्री वास्तविक शासक होता है, वह संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। वह मन्त्रिपरिषद् की सहमति से कोई भी निर्णय लेता है, जिसे संसद के दोनों सदनों राज्यसभा तथा लोकसभा में पास करवाना आवश्यक होता है। जिसमें विपक्ष की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जोकि बिल पर उपयुक्ता और अनुपयुक्ता पर चर्चा में भाग लेता है।

महाकवि कालिदास राजा की व्यस्त दिनचर्या एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के दृष्टिगत कहते हैं कि राजाओं के समक्ष अवसर देखकर जाना चाहिए।[11] महाकवि की उक्त सूक्ति की प्रासंगिकता जितनी तत्कालीन समय में थी, उतनी आज भी है। किसी भी मन्त्री अथवा अधिकारी से भेंट करने के लिए पूर्व में अनुमति लेना राजनीतिक शिष्टाचार का एक अभिन्न अंग बन गया है।

महाकवि कालिदास एक राजा के लिए लोकतन्त्र के अधिकार को विश्रामरहित[12] व अनतिक्रमणीय[13] मानते हैं। चूकिं राज्य के सुचारु प्रशासन के लिए राजा को सदैव कर्त्तव्यरत रहना पड़ता है। महाकवि का उक्त विचार राज्य प्रशासन के दृष्टिगत उतना ही तर्कसंगत है। क्योंकि देश अथवा राज्य तभी प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है, यदि शासक सदैव सजग रहें।

महाकवि कालिदास एक सूक्ति के माध्यम से एक राजा की खिन्नता को व्यक्त करते हुए दण्ड वाले छत्र के समान राज्य को उसके लिए दुःखदायी मानते हैं।[14] अर्थात् जिस प्रकार एक छत्र धूप से बचाने की अपेक्षा पकड़ने वाले के लिए थकावट का कारण अधिक बनता है, उसी प्रकार एक राजा के लिए राज्य सुख की अपेक्षा दुःख का कारक अधिक होता है। चूकिं राजा का कार्य परहित के लिए होता है और परहित साधने के लिए व्यक्ति को स्वार्थ का त्याग करना पड़ता है और पराधीन व्यक्ति व्यक्तिगत प्रसन्नता के रस को अनुभव नहीं कर सकता है।

महाकवि कालिदास का मानना है कि एक राजा को इसलिए भी प्रजा के प्रति अविरत संलग्न रहना चाहिए, क्योंकि वह प्रजा से छठे अंश को कर के रूप में ग्रहण करता है।[15] उक्त सूक्ति तत्कालीन समय के सदृश ही वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है। वर्तमान में भी सरकारों के द्वारा प्रजा से अनेक प्रकार कर लिए जाते हैं, जिसके एवज में प्रजा की सेवा व सुरक्षा करना उनका धर्म है।

महाकवि कालिदास तत्कालीन समय में बहुपत्नी प्रथा की ओर संकेत करते हुए, विशेषकर राजाओं को अपनी नाट्यकृतियों में अनेक पत्नियों से युक्त चित्रित करते हैं।[16] यद्यपि वर्तमान में बहुपत्नी प्रथा को हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के तहत दंडनीय अपराध माना गया है।[17] हालांकि मुस्लिम समाज में यह प्रथा कदाचित् दृष्टिगोचर होती है।

महाकवि कालिदास तत्कालीन समय में राजा-प्रजा सम्बन्ध को चरितार्थ करते हुए एक राजा को हर प्रकार से प्रजा का बन्धु[18] व सभी प्रकार के दु:खों का अपकारक माना है।[19] राजा की प्रजा के प्रति बन्धु भावना पर दृष्टिपात करते हुए महाकवि भवभूति प्रजानुरञ्जन हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर करने का संदेश सूक्तियों में देते हैं।[20]

महाकवि भवभूति एक राजा का प्रजापालन में यथाविधि तथा सावधान चित्त से युक्त रहना आवश्यक मानते हैं।[21] इस विषय में महाकवि कालिदास एक राजा के लिए प्रजानुरञ्जन को इसलिए उपयुक्त मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में एक राजा के लिए प्रजासेवा से प्राप्त यश ही सब धनों में परमधन है।[22] किन्तु उपर्युक्त सूक्तियों को यदि वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के संदर्भ में देखें, तो प्रायश: अधिकर मन्त्रिगण व अधिकारीगण धनलोलुप होकर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी इत्यादि कुकृत्यों में संलिप्त हो कर्तव्यच्युत हो जाते हैं और वही कालान्तर में प्रजा असंतोष का कारण बनता है।

महाकवि कालिदास न्यायवस्था की ओर संकेत करते हुए असन्मार्गगामी को नियन्त्रित करना, पारस्परिक विवादों को शान्त करना और प्रजा की रक्षा करना[23] व अपराधी के लिए दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य मानते हैं।[24] महाकवि भवभूति राजदण्ड को इसलिए आवश्यक मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में ऐसा न करने पर प्रजाविप्लव हो सकता है तथा जिस प्रकार एक वैद्य शारीरियों में असाध्य और अन्य उपायों से न शान्त होने वाले रोग के दृष्टिगोचर होने पर उपचार करता है, उसी प्रकार एक राजा को प्रजा में दोष दृष्टिगोचर होने पर दण्ड देना चाहिए।[25] इसके साथ ही वे राजदण्ड को प्रायश्चित्त के समान पाप का निष्क्रय भी मानते हैं।[26] उक्त सूक्तियों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में अपराधियों को दण्ड देना आवश्यक माना जाता था व दण्ड देने का कार्य राजा स्वयं करता था। यदि उपर्युक्त सूक्तियों को वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था के परिदृश्य में देखें, तो न्यायपालिका पूर्णत: स्वतंत्र है और अपराधियो को दण्ड देने का कार्य करती है।

उक्त सूक्तियों के माध्यम से महाकवियों के द्वारा दिए गए संदेशों को यदि आज के राजनेता तदनुरूप ही अनुसरण कर लें, तो देश में पुन: रामराज्य स्थापित होने में कोई अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती है।

संदर्भग्रन्थ सूची:

1. मालविकाग्निमित्रम् 1.41
2. पाणिनीयसूत्र 6.1.84 पर व्याकरणमहाभाष्य
3. विशि राज्ञा प्रतिष्ठित:। यजुर्वेद 20.9
4. 'सामं दानं क्षमा धर्म: सत्यं धृतिपराक्रमो।
   पार्थिवानां गुणा राजदण्डश्चाप्यपराधिषु।। रामायण (किष्किन्धा काण्ड 17.27.28)
5. तथैव (उत्तरकाण्ड) 59.8.5
6. तर्थव (बालकाण्ड) 25.17
7. महाभारत (आरण्यकपर्व) 149.41.42
8. मनुस्मृति 7.1
9. किमीश्वराणां परोक्षम्। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.25/26
10. राजा कालस्य कारणम्। विक्रमोर्वशीयम् 4.11/12
11. अवसरोपसर्पणीया राजान:। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.1/2
12. अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकार:। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3/4
13. धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3
14. नातिश्रमापनयनाय यथाश्रमाय।
    राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.5/6

15. भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एवं, रात्रिदिवं गन्धवहः प्रयाति।
    शेषः सदैवाहितभूमिभारः, षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3/4
16. बहुवल्लभाः राजानः श्रूयते। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.16/17
17. The Hindu Marriage Act, 1955
18. त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.8
19. आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्त्तिहरेण राज्ञा भवितव्य। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.16
20. स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
    आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।। उत्तररामचरितम् 1.12
21. युक्तः प्रजनामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशा यत्परमं धनं वः। उत्तररामचरितम् 1.11
22. विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.13
23. नियमसि कुमार्गस्थितानादण्डः।
    प्रशयमसि विवादं कल्पसे रक्षणाय। अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.8
24. अपराधी शासनीयः। विक्रमोर्वशीयम् 5.2/3
25. असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शारीरिणः।
    यथावैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति।। महावीरचरितम् 4.23
26. प्रायश्चित्तमिव राजदण्डेऽप्येनसो निष्क्रमामनन्ति धर्माचार्यः। महावीरचरितम् 4.26/27

स्त्री मुक्ति आन्दोलन और दलित नारी चिंतनः एक विश्लेषण

डॉ० देवेंद्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय शक्ति जिला जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

स्त्री मुक्ति के सवालों पर चर्चा का आरम्भ चाँद पत्रिका के उस विशेषांक से करना बेहतर होगा जो 1927 के साल प्रकाशित हुआ था, उसी में अछूत-नारी की दुर्दशा को लेकर लेख है कि "यह कहते हुए हृदय विदीर्ण होता है; एवं लज्जा से हमारा सिर विनम्र हो जाता है कि अछूत और शूद्र जाति की देवियों को पथ-भ्रष्ट करने में द्विजाति के पुरुष-पुंगवों का भी बहुत कुछ हाथ रहता है।

देश की आजादी की लड़ाई रही हो या पुरुषों के साथ बराबरी का मामला, महिलाओं ने हर आंदोलन में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया है।

भारतीय समाज की सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी दलित स्त्री ने समाज की वर्जनाओं निषेधाज्ञाओं को लांघते हुऐ ब्राह्मणवादी व्यवस्था के मुख्य आधार स्तम्भ; पितृसत्ता, धर्म और जातीयता को हमेशा कड़ी टक्कर दी है। चाहें वह चिन्तन का क्षेत्र हो अथवा संघर्ष का, दोनो स्तरों पर उसने अपने अस्तित्व व अस्मिता की लड़ाई को प्राचीन काल से लेकर आज तक जारी रखा है।

दलित स्त्रियां चौतरफा शोषण की शिकार हैं। दलित होने के कारण, स्त्री होने के कारण, और उस पर भी दलित स्त्री तथा चौथा गरीबी के कारण। चौतरफा शोषण, अन्याय, अत्याचार के बावजूद वह अनवरत काल से संघर्ष करती रहीं हैं। पूर्व मध्यकाल में कुछ दलित संत कवयित्रियां है जो अपनी अप्रतिम प्रतिभा व जीवटता के कारण ही तमाम जातीय षडयंत्रों की शिकार होकर भी गुमनामी के अंधेरे में ना खोते हुए, समय के पथ पर अपने महत्वपूर्ण पद चिन्ह छोड़ने में सफल रही हैं। हालांकि उनकी राह बहुत कठिन थी।

आज हिन्दी साहित्य में दलित स्त्री विमर्श अन्य विमर्श की तरह एक अहम हिस्सा है, जिसकी सवर्ण साहित्य का स्त्री विमर्श और दलित पुरुषों का दलित विमर्श भी एक तरह से अनदेखी कर रहा था। यही कारण है कि दलितों में दलित यानी दलित स्त्री भी समाज और साहित्य में अपना स्थान निर्धारित करने के लिए आंदोलन कर रही हैं।

मूल शब्दः समाज, दलित स्त्री, दलित नारी चिंतन, साहित्य

दलित साहित्य में स्त्री एक विवादस्पद विषय है। इसकी खासियत यह है कि तमाम बोल्डनेस के बावजूद मुख्यधारा के साहित्य में नारी का वैसा कोई विरोध नहीं किया गया, जिससे पुरुषों को स्त्री-विरोधी कहा जा सके। इस्मत चुगताई, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान आदि के लेखन को लेकर कुछ विवाद अवश्य उठे; पर जल्द ही सतह पर आ गये। बाद में तो पुरुषों ने ही आगे बढ़कर नारीवादी साहित्य लिखे। लेकिन दलित साहित्य में नारी पर सवालों की झड़ी लग गयी। जाहिरन इसके दो खेमे बने—एक स्त्रियों के, दूसरे पुरुषों के। फिर स्त्रियों में भी दो-दो दल दिखायी देने लगे—एक नारीवादी, दूसरे उदारवादी। उसी प्रकार पुरुषों में भी दो परस्पर विरोधी खेमे हुए। ऐसे तमाम विवाद और विमर्श डॉ. धर्मवीर के 'जारसत्ता' सम्बन्धी विमर्शों को लेकर पैदा हुए और नारीवादी लेखिकाओं द्वारा डॉ. धर्मवीर और उनके समर्थकों को स्त्री-विरोधी करार दिया गया।

बात शुरू होती है डॉ. धर्मवीर की 'मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता' शृंखला में रचित 'प्रेमचन्द : सामन्त का मुंशी' पुस्तक के लोकार्पण से। स्त्रियों के व्यापक विरोध के कारण नामवर जी उक्त पुस्तक का लोकार्पण नहीं कर पाते हैं, फिर धर्मवीर की 'कामसूत्र की संतानें' और 'तीन हिन्दू स्त्रीलिंगों का चिन्तन' जैसी पुस्तकों पर विवाद छिड़ता है। और प्रतिक्रिया में 'मेरी पत्नी और भेड़िया' और 'प्रेमचन्द की नीली आँखें' जैसी किताबें आती हैं। इस प्रकार दलित साहित्य में स्त्री पर एक नया सवाल उठता है।

हिन्दी की मौलिक दलित आत्मकथाओं में स्त्री विमर्श के संदर्भों की बात करें तो कौसल्या बैसंत्री और सूरजपाल चौहान ने अपने अपने आत्मकथनों में अपने घर-परिवार की आमतौर पर गोपनीय रखी जाने वाली निजता को बड़े जीवट से सरेआम करने का हौसला दिखाया है। इन आत्मकथाकारों की आत्मबयानी इस हद तक अंतस् को खोलने वाला है कि पाठक इनकी करुण भावनाओं के साथ एकदम से एकाकार हो जाने को मानो विवश हो जाता है। इन दोनों आत्मकथाओं में स्वजनों-प्रियजनों के प्रति दिखलाई गई नाराजगी व शिकवे-शिकायतों में भी एक निरीहता और निश्छलता जैसी दिखती है। वैसे, मेरे इस कथन को किसी पक्षधरता का संकेतक न मान लिया जाए। इन आत्मकथाकारों के परिजनों का पक्ष जाने बिना आत्मकथाकार के बयानों, परिवादों, उलाहना-उत्तापों को सही करार देना एकपक्षीय कार्रवाई होगी।

दलित चेतना और नारी

दलित साहित्य में नारी के अध्ययन को हम दो भागों बाँटकर देख सकते हैं—एक दलित नारियों की स्थिति पर खुद नारियों और दलित लेखकों के दृष्टिकोण और दूसरा दलित रचनाओं में चित्रित नारी। बात स्त्रियों से ही शुरू करते हैं। दृष्टिकोण का सही पता आत्मवृत्तों से ही चलता है। किन्तु भारतीय साहित्य में स्त्रियों द्वारा लिखित आत्मवृत्त का घोर अभाव है। यद्यपि 'सीमान्तिनी उपदेश' जैसी कुछ रचनाएँ मिल जाती हैं, किन्तु ऐसी गुमनाम लेखिकाओं का पता लगा पाना कठिन काम है। सावित्री बाई के स्त्री स्कूल से शिक्षित होकर उनके साथ काम करनेवाली महिलाओं में फातिमा शेख और मुक्ताबाई का नाम लिया जाता है। किन्तु उनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती। महात्मा फूले के 'सत्यशोधक समाज' आंदोलन सेआनेवाली ताराबाई शिन्दे को प्रथम नारीवादी विचारक कहा जाता है; किन्तु उनकी भी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। 1814 में जन्मी मुक्ताबाई ने नवजागरण के उस आरम्भिक काल में भारतीय समाज की दुर्दशा पर अपने लेख लिखे, जब वह मात्र 14 साल की बच्ची थी। 1855 में लिखा यह आलेख महाराष्ट्र के 'ज्ञानोदय' अखबार में छपा था। उसने ब्राह्मणों को फटकार लगाते हुए कहा था, ''ऐ पढ़े-लिखे पंडितो, अपने खोखले ज्ञान को तोतारटन्त शैली में दोहराना छोड़ दो और सुनो, जो मैं कहना चाहती हूँ। ..... अपने उपर्युक्त पत्र में मुक्ताबाई ने पेशवाओं के शासन में दलितों (मांग और महार जाति के लोगों) पर ढाये जाते जुल्म का वर्णन किया था। किस तरह पेशवाओं के जमाने में दलितों को लाल सीसा/सिन्दूर पिला दिया जाता था और किस तरह उनको हवेलियों की बुनियाद में गाड़ दिया जाता था तथा किस तरह उनकी छाया से भी घृणा की जाती थी। उसने यह भी जोड़ा था कि आज भी दलित छात्र शिकायत नहीं कर सकते भले ही ब्राह्मण बच्चे उन्हें पत्थर से मारे और उन्हें घायल कर दें। वे चुपचाप सब बर्दाश्त करते हैं, क्योंकि वे जाानते हैं कि उन्हें फिर ब्राह्मणों के दरवाजे पर ही बचा-खुचा अन्न माँगने जाना पड़ेगा।''[1]

बाबा साहब के आंदोलन में स्त्रियों ने खुलकर हिस्सा लिया था। 1924 में स्थापित उनकी 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' में दलित महिलाएँ बढ़-चढ़कर भाग लेती थी। इसमें वेणुबाई भटकर और रंगूबाई शुभकर के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। ये दोनों महिलाएँ मंचों से भाषण दिया करती थीं। 1928 में बंबई में महिला मंडल की स्थापना हुई थी, जिसकी अध्यक्ष स्वयं डॉ. अम्बेडकर की पत्नी रमाबाई थीं। 1930 के नागपुर सम्मेलन में हजारों महिलाओं ने भाग लिया था। 1942 के 'अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन, नागपुर' में भी हजारों महिलाओं ने सिरकत कीं। इनमें सुलोचना डोगरे, कीर्ति पटेल, इंदिरा पाटिल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने सम्मेलन की अध्यक्षता से लेकर विभिन्न दायित्वों को सम्भाला। बाबा साहब के आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभानेवाली प्रमुख महिलाओं में जायबाई चौधरी, तुलसीबाई बनसोडे ('चोखामेला' पत्र के सम्पादन में पति की सहयोगिनी), मुक्ता सर्वगौड़ ('मिटमेली कवाड़े' आत्मकथा की लेखिका), राजश्री सर्वगौड़े (मुक्ता सर्वगौड़ की बेटी), शांताबाई दाणी आदि के नाम उल्लेखनीय है।''[2] इन तमाम दलित नारियों ने प्राथमिक तौर पर सवर्ण व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ी। उनकी शिकायत पुरुषवादी वर्चस्व से उतनी अधिक नहीं थी, जितनी ब्राह्मणवादी व्यवस्था से। दलित स्त्रियों की आरम्भिक मराठी रचनाओं में दलित पुरुषों के खिलाफ कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती।

नारी विमर्श और दलित साहित्य पर सहस्राधिक आज चर्चाएँ हो रही है अतः प्रथमतः यह जानें कि दलित साहित्य है क्या इसे जानने के लिए संक्षिप्त-रूप में यह चुभता, सत्य स्वीकार कर आगे बढ़ना चाहिए कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही दुर्भाग्यवशात् 'दलित' नामधारी समाज को योजनाबद्ध तरीके से वहिष्कृत समूह में डाल दिया गया है। शायद तब से जब मानव सभ्यता विकसित हुई और तथाकथित सभ्यों ने अपनी निजी स्वार्थ पूर्ति के लिए देश के एक बड़े वर्ग के नैसर्गिक हक को छल बल से छीन लिया है। ऐसी सकारात्मक सोचबद्ध मूल किये बगैर दलित साहित्य की वैचारिकी पर विमर्श, बीमार मानसिकता का द्योतक होगा। डा० चमनलाल ने 'दलित साहित्य' को परिभाषित करते हुए कहा'' दलित साहित्य वह साहित्य है, जो दलितों के जीवन, उनके सुख-दुख, उनकी सामाजिक- राजनीतिक स्थितियों, उनकी संस्कृति, उनकी आस्थाओं-अनास्थाओं, उनके शोषण उत्पीड़न तथा इस उत्पीड़न-शोषण का दलितों द्वारा प्रतिरोधा की परिस्थितियों को व्यापकता तथा गहराई के साथ, कलात्मकता से प्रस्तुत करता।

यह कैसी विडम्बना है कि संस्कृत और हिन्दी उभय साहित्यों के आदि कवि वाल्मीकि दलित जगत से आते हैं किन्तु सम्पूर्ण संस्कृत वाड.मय में दलित दयनीय-दशा का निदर्शन कराने वाली किसी ख्यात कवि कि कोई कृति ढूंढे नही मिलती। हाँ पाली साहित्य अवश्य दलितों के साथ न्याय करता दिखता है क्योंकि बौद्ध प्रभाव होने के कारण वहाँ करूणा विद्यमाँ है। जब जहाँ 'करूणा' शब्द का प्रयोग किया गया है तो इसी संदर्भ में जान लें कि दलित कौन हैं? आचार्य किशोर कुणाल के दस सूत्र वाक्य यहाँ उघृत करना समाचीन होगा।

दलित नारियों का दोहरा अभिशाप

किन्तु आज की मध्यम वर्गीय स्त्रियों के तेवर दूसरे हैं। आज की अधिकांश स्त्रीवादी लेखिकाओं ने बोल्ड लेखन ही किया है, जिसमें स्त्री को लेकर पुरुषवादी मूल्य-मान्ताओं का प्रतिकार हुआ है और यौन-नैतिकता प्रश्नांकित हुई है। कुछ दलित स्त्रियों ने भी पुरुषवादी मानसिकता के विरुद्ध स्त्री सवालों को उठाया है, जो दलित पुरुषों के विरुद्ध भी जाता है। इस दिशा में मराठी स्त्रियों ने प्रसंशनीय प्रयास किया है। वैसे तो मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा और रमणिका गुप्ता के नाम लिये जा सकते है, जिनकी आत्मकथाएँ आयी हैं। किन्तु दलित आलोचक उन्हें दलित रचनाकार नहीं मानते। इसलिए बात दलित स्त्री से ही करनी पड़ेगी। इस क्षेत्र में अभी तक एक ही दलित स्त्री कौसल्या वैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' का नाम लिया जा रहा है। 'दोहरा अभिशाप' किसी दलित स्त्री की पहली आत्मकथा है, जो हिन्दी में आयी। सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, रजत रानी मीनू, सुमित्रा मेहरोल आदि कुछ अन्य दलित स्त्रियों की आत्मकथाएँ भी आ रही हैं। फिलहाल 'दोहरा अभिशाप'
पर.....। दोहरा अभिशाप किसका? जाहिर है एक कामकाजी स्त्री का दायित्व-बोध पुरुष से अधिक हो जाता है—एक घर का, दूसरा बाहर का। उसी के अनुपात में उसका दुख और संघर्ष भी बढ़ जाता है। किन्तु स्त्री जब दलित हो, तो उसका संघर्ष पुरुष से कई गुणा अधिक हो जाता है। सामाजिक दृष्टि से उसे दो-दो मोर्चो पर लड़ना पड़ता है—एक पुरुषवादी वर्चस्व से, दूसरा जातिवादी व्यवस्था से। कौशल्या बैसंत्री का यह 'दोहरा अभिशाप' किसी एक स्त्री का अभिशाप नहीं है, बल्कि पूरी दलित स्त्री का अभिशाप है। भारतीय सन्दर्भ में स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा सतायी जाती हैं। उनका शोषण पुरुषवादी मानसिकता का परिणाम है। किन्तु दलित स्त्रियाँ इस मानसिकता से अपने पुरुषों द्वारा तो शोषित होती ही हैं, उन्हें सम्पूर्ण समाज द्वारा दलित होने का दंश भी झेलना पड़ता है। एक स्त्री के दलित-बोध की पीड़ा स्त्री होने की पीड़ा के साथ मिलकर और बड़ी हो जाती है। स्त्रियों के मामले में सवर्ण पुरुषों की सोच और दलित पुरुषों की सोच में कोई अन्तर नहीं। ''कौसल्या बैसंत्री का जीवन इस बात का प्रमाण है कि उनके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनकी बिरादरी के पुरुषों ने ही खड़ी कीं। उन्होंने बेवाक शब्दों में कह दिया कि बाबा साहेब के निकट सहयोगियों ने भी उसके साथ जबरन यौनाचार करना चाहा। उनकी बस्ती के लोगों ने ही उसका जीना मुश्किल कर दिया। इसलिए उसकी पहली मुठभेड़ सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं, दलित पुरुष सत्ता से है।''[3] कथानायिका के लिए न तो दलित पुरुष अपने हैं और न सवर्ण स्त्री। उसे भरोसा है, तो केवल अपने आप पर। वह अपना सहारा खुद बनना चाहती है। इसलिए वह कहती है, ''आज के अनुभव से हमने सीख लिया है कि हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं, अब हमें अपने पाँव पर खड़ा होकर अपने पर भरोसा रखकर आगे बढ़ना होगा।''[4]

'दोहरा अभिशाप' की नारी पात्र जीवन की चक्की के दोहरे पाटों के बीच पिस रही हैं। एक ओर उन्हें अपने परिवार और समाज से लड़ना पड़ता है, तो दूसरी ओर अपनी अस्मिता, मान- स्वाभिमान और जीवन की अन्य जरूरीआतों के लिए सवर्ण समाज से

लोहा लेना पड़ता है। अपने स्कूली जीवन का अनुभव सुनाती हुई लेखिका कहती हैं, ''मेरी कक्षा में हमारे समाज की एक लड़की पड़ती थी। वह बहुत दूर से स्कूल आती थी। कभी-कभी वह कक्षा में सो जाती थी। शिक्षक उसको बहुत डाँटते थे। कक्षा की सभी लड़कियाँ उसका मजाक उड़ाती थीं। वह रोती थी। एक दिन उसने मुझे बताया कि वह सवेरे चार बजे उठकर बर्तन, झाड़ू, खाना बनाना वगैरह-घर का सारा काम करके आती थी। उसकी दीदी पागल-सी थी। उसके पिता दर्जी का काम करते थे। शाम को घर का काम करके वह कभी-कभी पिताजी को शर्ट-ब्लाऊजों में बटन लगाने में भी मदद करती थी। सोने में बहुत देर हो जाती थी। उसके बहन-भाई भी स्कूल में पढ़ने जाते थे। घर के काम का सारा बोझ उसी पर रहता था।''[5] इस दलित छात्रा के साथ भी दोहरा अभिशाप लगा हुआ है।

कथा-नायिका अपने पति का वर्णन करती हुई कहती हैं, ''यह विद्यार्थी उस वक्त एम.ए., एल.एल.बी. करके डी.लिट् कर रहा था। यह कानपुर से निकलने वाले हिन्दी अखबार 'सावधान' और मद्रास से निकलने वाले एक अंग्रेजी दैनिक में लेख लिखता था। मैंने उसके लेख पढ़े थे....वह 'यू.पी. शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' का अध्यक्ष भी था।''[6] इस प्रकार पति एक लेखक है, और ताम्रपत्र-प्राप्त स्वतन्त्रता सेनानी है। वह उच्च पद पर नौकरी करता है और रिटायर्ड होने तक पत्नी का भरण-पोषण और पालन करता है। इधर पत्नी तमाम जिन्दगी घर में ही बैठी अम्बेडकर के नाम पर सम्मान की जिन्दगी जीने की आकांक्षी बनी रहती है। बीच में पति से मनमुटाव होता है और वह आम भारतीय औरतों की तरह पति की तमाम प्रताड़नाओं के बावजूद पत्नी बनकर घर में ही रहती है।

इस बीच उसका एक बच्चा भी मर जाता है और पांचवें बच्चे के जन्म के समय अपार मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। उपन्यास में लेखिका ने गिन-गिनकर पति की गलतियों को बताया है और कहा है, 'क्या ऐसे पति से श्रद्धा और प्यार हो सकता है। इतना ही नहीं, पति द्वारा छोड़े जाने पर वह अदालत में मुकद्दमा दायर करके उससे भरण-पोषण का खर्च वसूल लेती है। उसे पति से एक नियमित गुजारा भत्ता मिलता है। इस प्रसंग की चर्चा करती हुई लेखिका लिखती हैं, ''बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेन्द्र कुमार पर केस दायर किया। आज दस वर्षों से कोर्ट में केस अटका पड़ा है। मुझे हर माह 500 रुपये मेंटेनेंस में मिलते हैं। देवेन्द्र कुमार इसे देने में भी देर लगाता है, चार-चार महीने नहीं भेजता। अपने छोटे लड़के के पास रह रही हूँ।''[7]

यह है दलित औरतों का दोहरा अभिशाप! सवर्ण समाज और दलित पुरुषों को लेकर अधिकांश दलित स्त्रियों के पाठ ऐसे ही हैं।

दलित पुरुषों के तर्क

किन्तु एक दलित स्त्री के इस आत्मकथात्मक उपन्यास के बारे में खुद दलित लेखकों की दृष्टि क्या है? इसके लिए हम डॉ. धर्मवीर की इन पंक्तियों को देख सकते हैं–''भारत में मनुष्य का चिन्तन अभी तक 'दोहरे अभिशाप' तक गया है। ....दोहरा अभिशाप' का शीर्षक इसलिए अधूरा है, क्योंकि कौसल्या बैसंत्री की माँ के साथ अपने पति को लेकर ऐसा कोई अभिशाप नहीं था। उनकी माँ ने ऐसा कोई अभिशप्त जीवन नहीं जीया। उस समय पिता को इस बात से शिकायत नहीं रही कि वे पति से आगे रही हैं। लेखिका के माँ-बाप दोनों एक-दूसरे के होके रहे है। माँ ने घर में निर्णय लिए हैं। कौसल्या बैसंत्री की नानी ने भी अपने जीवन के बारे में स्वतन्त्र और निजी निर्णय लिये हैं और उनके सामने मेरा सिर झुकता है। मेरा विश्लेषण है कि कौसल्या बैसंत्री दलित नारी की तरह से अपने जीवन में निर्णय नहीं ले पायी। केवल एक विवाह का निर्णय उनका था और वही सफल नहीं हो पाया।''[8]

डॉ. धर्मवीर का साफ मानना है कि दलित औरतें सवर्ण औरतों की तरह परावलम्बी नहीं होतीं। वे कुल-मर्यादा के नाम पर घूँघट काढ़कर घर में नहीं बैठतीं। वे भी पुरुषों के साथ या अकेली घर और बाहर का काम करती हैं। उनके नौकर नहीं होते और होते भी हैं, तो वे नौकर नहीं उनके सहायक होते हैं, जिन्हें घर के अन्य सदस्यों की तरह उचित मान-सम्मान मिलना चाहिए। वे अपना निर्णय लेने में खुद सक्षम होती हैं और पुरुष के नालायक होने या उनसे बनाव नहीं होने पर वे अपने जीवन का निर्णय खुद ही ले सकती हैं। मगर कौसल्या बैसंत्री में ये बातें नहीं हैं। वह पढ़ी-लिखी थीं। पति से नहीं बनने पर नौकरी कर सकती थीं या दूसरा कोई काम करके एक उदाहरण पेश करतीं। केवल पति की कमाई पर आम हिन्दू औरतों की तरह आराम से अधिकार जताना और उसको भला-बुरा कहके उससे अच्छे व्यवहार की आशा करना दलित औरतों का काम नहीं है। इस प्रकार डॉ. धर्मवीर ने सामाजिक-सांस्कृतिक तर्कों द्वारा विषय का रुख ही बदल दिया है।

डॉ. धर्मवीर के अनुसार, ''यह दलित परम्परा की बात बिल्कुल नहीं है कि अपने अनचाहे पति से पाँच सौ रुपये महीने की भिखारिन बनी पड़ी है! वह ब्रिटिश भारत के कालिजों में पढ़ी है, उसके खाते-कमाते बच्चे हैं। दलित पत्नी ऐसे पैसों को फेंककर मारती है। यदि दस वर्ष से केस कोट में अटका पड़ा है तो कानून बदलो, संसद से कहो। गाँव या शहर की किस दलित पंचायत ने आज तक दस वर्ष तक वैवाहिक मामलों के फैसले रोके रखे हैं? दलित नारी होने के बावजूद, पीछे माँ और नानी की महान परम्परा होने के बावजूद लेखिका द्विज नारी बनकर क्यों बैठ गयी हैं? वास्तव में पति से भरण-पोषण माँग कर कौसल्या बैसंत्री ने दलित नारी के सम्मान और उसकी स्वतन्त्रता की नाक काटकर रख दी है।''[9]

समन्वय के विन्दु

डॉ. धर्मवीर के तर्क दलित औरतों के लिए आदर्श संहिता कहे जा सकते हैं, आम तौर से दलित सर्वहारा औरतें बहुत हद तक आत्मनिर्भर होती हैं; किन्तु यौन-सम्बन्धों को लेकर उन्हें कहीं-न-कहीं मजबूरी में अपने मालिकों से भी समझौता करना पड़ता है। इसलिए ऐसा सोचना एकतरफा और पुरुषवादी ही कहा जायेगा। ''दलित महिलाओं के भी सपने होते हैं और ये सपने किसी सवर्ण महिला के सपनों से अलग नहीं होते। दलित विचारक माने या न माने- दलित आन्दोलन का एक उद्देश्य उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाना भी रहा है। जब तक दलितों द्वारा कोई पुष्ट धारा नहीं बन जाती, सवर्ण समाज की धारा ही मुख्यधारा है। अर्थात् बेहतर जीवन शैली में आज वे ही बातें आती हैं, जिनकी कौसल्या वैसंत्री को अपेक्षा है। इसलिए एक दलित पत्नी भी पति से वे ही सारी अपेक्षाएँ रखती हैं, जो कोई सवर्ण पत्नी रखतीं। ऐसे में धर्मवीर का तर्क एकांगी कहा जाएगा। कौसल्या ने एक आम भारतीय नारी का पक्ष रखा है, चाहे वह दलित हो या सवर्ण। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाये कि कौसल्या बैसंत्री को दलित महिलाओं की तरह स्वावलम्बी बनने का प्रयास करना चाहिए, तो इसमें दो बातें हो सकती हैं। पहली तो यह कि इस स्थिति तक आते-आते बहुत देर हो चुकी होगी। दूसरी यह कि कौसल्या बैसंत्री जिस सामाजिक स्तर पर जी रही थीं, वह दलितों से काफी ऊँचा समर्थ सवर्ण का जीवन स्तर था। ....यहाँ पति से अपेक्षा या अधिकारों की माँग उसी सम्भ्रान्तता के तहत ही की जा रही है।''[10] इसीलिए डॉ. धर्मवीर के तर्क का रमणिका गुप्ता सहित अधिकांश दलित औरतों ने विरोध किया है।

दलित साहित्य में चित्रित नारी

दलित साहित्य में नारियों के चित्रण को दो भागों में बाँटा जा सकत है—एक दलित साहित्यकारों द्वारा चित्रित नारी, दूसरी गैर-दलित साहित्यकार और विचारकों द्वारा चित्रित नारी। दलित साहित्यकारों में जारसत्ता को लेकर डॉ. धर्मवीर के तर्क को देखा जा चुका है। कुछ अन्य दलित साहित्यकारों की रचनाओं पर हम आगे विचार करेंगे। इस बीच गैर-दलित साहित्य में चित्रित नारी के स्वरूप को देखें। दलित नारियाँ प्रेमचन्द के साहित्य में सर्वाधिक चित्रित हुई हैं। उनके कुछ चर्चित नारी चरित्रों में गांगी (ठाकुर का कुंआ), बुधिया (कफन) और सिलिया (गोदान) हैं। गांगी में जो भय और धर्मभीरूता है, वह समाज द्वारा सदियों के शोषण और भेदभाव के कारण उत्पन्न हुआ है। इसलिए वह साहस करके भी अपने बीमार पति के लिए ठाकुर के कुंएँ से पानी नहीं भर पाती। बुधिया की प्रसव-पीड़ा और उसके प्रति पति और ससुर की संवेदनहीनता को प्रेमचन्द ने भूख की मारक त्रासदी में घटित किया है। इसलिए दलित साहित्यकारों ने कफन को दलित विरोधी कहानी माना है। किन्तु सिलिया के माध्यम से सवर्णों द्वारा दलित नारियों से जारकर्म के विरुद्ध एक समाजशासीय विमर्श उभरकर आया है। मातादीन ब्राह्मण के मुँह में सरेआम हड्डी घुसेड़कर उसे चमार बनाने की कोशिश में चमारों के संधर्ष देखने लायक है। किन्तु दलित साहित्यकारों ने प्रेमचन्द तमाम दलित चिन्तन को सिरे से खारिज कर दिया है। डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचन्द के खुद के चरित्र और उनके साहित्य में आये जारकर्म को लेकर उन्हें सामंत का मुंशी तक कह दिया है। डॉ. धर्मवीर लिखते हैं कि ''दलित की समस्याओं का वर्णन करने से दलित साहित्य का सृजन नहीं हो जाता। दलित की भूख, पीड़ा और त्रासदी के बखान में उसकी इतिश्री नहीं होती। दलित साहित्य का असली सृजन तब होता है, जब उसमें दलित का चिन्तन आता है। सारे गैर-दलित लेखक उसके इसी चिन्तन से घबराते हैं। एक प्रेमचन्द की अलग से क्या कही जाये, कोई भी अन्य गैर-दलित लेखक इसका अपवाद नहीं हो सकता। दलित साहित्य उसे ही कहा जाएगा, जिसमें पारिवारिक जीवन में तलाक की अनुमति हो, स्त्री के लिए भरण-पोषण पर रोक लगे तथा जारकर्मी को जारकर्म की जिम्मेदारी से नवाजा जाये। प्रेमचन्द समेत कौन-सा गैर-दलित हिन्दू लेखक है, जो इन बातों को सपने में भी सोच सकता है? बचाव में आकर वह कभी वेद में डुबकी लगाएगा तो कभी महाभारत में कूदना चाहेगा, लेकिन जारकर्म से बचने के लिए उसे कहीं ठौर नहीं है।''[11]

जारकर्म पर छिड़ी बहस

प्रेमचन्द के दलित साहित्य को लेकर हिन्दी साहित्य की पूरी समाजशास्त्रीय चेतना ही प्रश्नों के घेरे में आ गयी है। और दलित स्त्रियों की सबसे बड़ी त्रासदी बलात्कार और रखैल बनने की मजबूरी पर तमाम विवाद हुए हैं। 'जनसत्ता' के सम्पादकीय आलेख 'दलित स्त्रियाँ किसकी सम्पति हैं?' में राजकिशोर ने धर्मवीर पर प्रश्न खड़ा करते हुए उन्हें स्त्रियों के प्रति अनुदारवादी और दलित अलगाववादी भी करार दिया है। और अन्ततः प्रेमचन्द की काट में वे कहते हैं कि ''एक ही समय में दो स्त्रियों से सम्बन्ध बनाना जारकर्म नहीं है, अगर इनमें से कोई भी किसी अन्य पुरुष की पत्नी नहीं है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि तब तक 'हिन्दू विवाह कानून' (हिन्दूकोड बिल) नहीं बना था और बहुविवाह या बहुगमन सामाजिक रूप से अमान्य नहीं था।....कामसूत्र तो और पहले की रचना है।''[12] मोहनदास नैमिशराय कहते हैं कि तो राजकिशोर जी के अनुसार हम मान लें कि तब महिलाओं के खिलाफ जारकर्म या व्यभिचार करना हिन्दू धर्म तथा नियमावली के तहत ठीक था।''[13]

राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि ''दरअसल 'जार' धर्मवीर का अब्सेशन है। वे हर चीज में जारसत्ता ढूँढ लेते हैं। मैनेजर पांडे ने धर्मवीर को पैदाइशी स्त्री विरोधी बतलाया है।''[14] ''अगर कोई स्त्री किसी पुरुष से मैत्री कर लेती है या दोनों साथ-साथ रहने लगते हैं, तो वहाँ 'रखैल' शब्द क्या अर्थ रखता है?''[15] प्रेमचन्द के इस 'पुनःपाठ' में दलित साहित्यकार भी आमने-सामने खड़े दिखायी पड़ते हैं। कंवल भारती और सूरजपाल चौहान जैसे दलित लेखक और विचारक जहाँ प्रेमचन्द के पक्ष में खड़े हैं, वहीं श्यौराज सिंह 'बेचैन' और मोहनदास नैमिशराय आदि डॉ. धर्मवीर के प्रेमचन्द-विरोधी स्वरों के साथ हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि और जयप्रकाश कर्दम जैसे लोग बीच-बचाव की मुद्रा में तटस्थ-से हैं।

अपने लेख 'धर्मपत्नियाँ-कर्मपत्नियाँ' में अनामिका लिखती हैं कि ''ब्राह्मणी आदेशों से अपेक्षाकृत स्वतन्त्र और आनुष्ठानिक शुचिता-अशुचिता के प्रतिमानों से मुक्त जार समाज में पुरुष दलित स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित कर जो बच्चे पैदा करते हैं, वे भी उनके ही होते हैं। दक्षिण में कहीं-कहीं तो दलित स्त्रियों से बच्चे पैदा करनेवाले द्विज जनेऊ बदलकर 'पवित्र स्नान' कर लेते हैं और पा जाते हैं छुट्टी। ...स्त्री मिट्टी का घड़ा है, मर्द पीतल का बटुवा। घड़ा भीतर से अशुद्ध होता है, पीतल का बटुवा धो-खंगालकर फिर से हाजिर।''[17]

डॉ. धर्मवीर की समाजशास्त्रीय चिन्ता अधिक वैधानिक और पारिवारिक है। वे प्रेमचन्द के सन्दर्भ में कहते हैं कि तीसरी औरत किसी की पत्नी भी होती हैं। ऐसे में मामला ज्यादा संगीन बन जाता है। उस घर के सारे सुख-चैन लूट जाते हैं। यह भारतीय परिवार व्यवस्था में एक भारी विक्षोभ और विसंगति है। हिन्दी साहित्य का पूरा का पूरा रीतिकाल और कृष्णकथा इसी परकीया-प्रेम पर आधारित है। ऐसे में ''बच्चों का पिता कौन होगा?—चमार घीसू का बेटा माधव चमार? पर इसे ही घीसू और माधव मानने को तैयार नहीं है—चाहे बुधिया मरे और चाहे बुधिया के पेट का बच्चा मरे। बुधिया की और बुधिया के बच्चे की फिक्र प्रेमचन्द को होनी चाहिए। 'कफन' कहानी लिखकर उन्होंने यह फिक्र भी की है कि घीसू और माधव को साहित्य के संसार में बदनाम करके रख दिया है। उधर, माधव भी प्रसव-शैय्या-अर्थात् मृत्यु शैय्या पर पड़ी हुई बुधिया के बारे में अपने बाप से चिढ़कर बोलता है-'मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?'[18] यहाँ घीसू, माधव और बुधिया की नियति पर धर्मवीर का मानना है कि बुधिया के पेट का बच्चा माधव का बच्चा हो ही नहीं सकता। वह जमींदार के बेटे या अन्य किसी सम्पन्न व्यक्ति का बच्चा होगा, जिसे माधव जानता होगा। इसलिए उसके प्रति उसकी यह निर्दयता है। यदि प्रेमचन्द ने कहानी में यह लिख दिया होता कि बुधिया के पेट का बच्चा जमींदार के बेटे से था, तो कहानी दलित कहानी बन जाती और तब इसकी धार दूसरी होती। मगर ऐसा नहीं हुआ है। सामान्य परिस्थिति में भूखे-से-भूखे और पतित से पतित व्यक्ति भी ऐसा नहीं कर सकता, जो घीसू और माधव ने बुधिया के साथ किया है। मानवीय संवेदना आज भी इतनी मरी नहीं है।

जारकर्म सामन्ती सोच और प्रवृत्ति का परिचायक है। किसी भी समाज में ऐसे सम्बन्ध निन्दनीय है। फिर भी ऐसे सम्बन्ध हैं। जहाँ तक गैर-दलित पुरुषों का दलित स्त्रियों के प्रति आकर्षण और सुलभता की बात है, तो ऐसा दलित पुरुषों का गैर-दलित स्त्रियों के साथ भी होता रहा है। सच तो यह है कि मानवीय प्रवृत्ति के अनुरूप स्त्री या पुरुष यौन-सम्बन्धों में जाति या धर्म नहीं देखते। ये बन्दिशें केवल शादी-विवाह जैसे सामाजिक सम्बन्धों में ही देखी जाती हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का जीवविज्ञान प्रायः पुरुष सम्बन्धों के समाज विज्ञान से अधिक उदार और मानवीय होता है। इसलिए इस पर गहराई से विचार करने की जरूरत है।

दलित उपन्यासों में चित्रित नारी

दलित स्त्रियों के यौन-शोषण और बलात्कार मुख्य समस्या है। मालिकों द्वारा दलित औरतों के यौन-शोषण और सामूहिक बलात्कार आम घटनाएँ हैं। दलित उपन्यास और कहानियों में इसकी जमकर चर्चा हुई है। जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' की कमला भी एक ऐसी ही दलित स्त्री है, जिसके साथ ईंट भट्ठे के मालिक और उसके साथियों द्वारा सामूहिक बलात्कार होता है। मालिकों के रोब और आतंक के कारण कोई आवाज नहीं उठाता। उसका बाप जब पुलिस में इसकी रपट लिखवाता है, तो उसे मारकर अधमरा कर दिया जाता है। पैसे और ताकत के सामने उसकी आवाज तो दब जाती है, किन्तु उसके मन का अपमान और प्रतिरोध भाव नहीं दबता। वह अपनी बेटी की जिन्दगी बर्बाद करनेवाले दरिन्दे से प्रतिशोध लेने की ठान लेता है। वह 'गँड़ासा' उठाता है और मालिक की खोज में चल पड़ता है। और जब एक जगह मालिक अकेला मिल जाता है, तो उपन्यासकार के शब्दों में, 'उसने आव देखा न ताव और गँड़ासा उठाकर (मालिक) के सिर पर दे मारा।' दलित चेतना की जोरदार अभिव्यक्ति इस उपन्यास की विशेषता है।

प्रेम कपाड़िया का चर्चित उपन्यास 'मिट्टी की सौगन्ध' भी बलात्कार के समाजशास्त्र पर आधारित है। उपन्यास की मुख्य नायिका शीला दसवीं पास है। किन्तु एक तो सुन्दर, दूसरी जवान और तीसरी दलित और गरीब औरत–समाज के दरिन्दों से वह कब तक बच सकती है? अन्ततः उसकी इज्जत लूट ली जाती है। गाँव के ठाकुर मदन सिंह को शीला की हेठी देखकर ताज्जुब और मलाल होता है–''वह आज तक हमारी सेज पर क्यों न सजी?' और वह अपनी सेज सजवाने पर तुल जाता है। शीला के प्रतिवाद करने पर वह परम्परा और प्रचलन का हवाला देकर उसकी सामाजिक औकात बता देता है, ''साली चमारिन होकर इतने नखरे दिखा रही है!''[19] यह है दलितों के प्रति सवर्णों का समाजशास्त्र।

हद तो तब हो जाती है, जब मदनसिंह द्वारा बलात्कारित शीला से उसका (मदन सिंह का) प्रगतिशील बेटा विजेन्द्र शादी करना चाहता है, तो उसकी दादी अपने सामन्ती चरित्र का गुणगान करने लगती है, ''हमारा खानदाान जमींदारों का है....हमारे खानदान के लड़के ऐय्यासी तो बड़े शौक से करते हैं, लेकिन ऐय्यासी के लिए चुनी गयी लड़की या औरत जमींदार घराने की बहू नहीं बनाई जा सकती है। .....वे हमारे लिए अछूत हैं। ....और एक अछूत हमारा रिश्तेदार कैसे बन सकता है?''[20] किन्तु एक पढ़ी-लिखी लड़की, चाहे वह दलित ही क्यों न हो, इसे कब तक बर्दास्त कर सकती है? शीला प्रतिशोध की ज्वाला में जल उठती है। शीला को उसकी जीवटवाली मौसी से ताकत मिलती है। वह उसे प्रेरित और प्रोत्साहित करती हुई कहती है, ''किसी से बदला लेने के लिए अपने अन्दर ताकत इकट्ठी करनी पड़ती है.....पहले उठ, तब मैं तुझे बताऊँगी।''[21] ठाकुर मदन सिंह ने इसी तरह रधिया की भी इज्जत लूटी थी, जिसने कुएँ में छलाँग लगा ली। अन्त में दलितों में इन दलित स्त्रियों के साथ बारी-बारी से हो रहे अत्याचार के खिलाफ बदला लेने की सामूहिक चेतना जगती है और वे सौगन्ध खाकर ठाकुरों से बदला लेते हैं।

'जस तस भई सवेर' दलित जीवन की विवशता और प्रतिरोध के द्वन्द्व की मार्मिक कथा है। इसमें दलित जीवन में बलात्कार जैसी स्त्री-त्रासदी का समाजशास्त्रीय विवेचन हुआ है। यहाँ इस जघन्य अपराध के विरुद्ध दलित प्रतिरोध और संघर्ष का शंखनादी विद्रोह भी है। उपन्यास की कथा रामरती, धुसिया और सन्नो की विवशता और प्रतिरोध के बीच घूमती है। तीनों गाँव के जमींदार चौधरी देवीपाल से बारी-बारी से बलात्कारित होती हैं। आरम्भ में अपने आर्थिक-सामाजिक प्रभाव से जमींदार उसके प्रतिरोध को कुंद कर पाने में सफल हो जाता है। विवश होकर ये स्त्रियाँ समाज के सामने मूक बनी रह जाती हैं। किन्तु जब शोषण और अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तो विद्रोह का लावा फूट पड़ता है। तीनों रणचंडी बन जाती हैं। पहले जब धुसिया का बलात्कार होता है, तो सन्नो उसका प्रतिरोध करती है और रामरति से कहती है, ''अभी हम तीनों मिलकर उस पापी को सबक सिखा सकती हैं। पुलिस में भी रपट करा सकती हैं।''[22]

किन्तु रामरति पुलिस की हकीकत जानती है। वह चुप रह जाती है। फिर सन्नो का भी बलात्कार हो जाता है। और अन्ततः चौधरी रामरति को भी बलात्कार का शिकार बनाकर उसे बार-बार इस कृत्य के लिए विवश करता है। पहले तो वह अपने पुत्र और पति की रक्षा के लिए विवश होकर ऐसा करती रहती है। किन्तु एक दिन जब उसके साथ बलात्कार होते हुए उसका सात वर्षीय बेटा देख लेता है, तो चौधरी का सफेद चेहरा स्याह हो जाता है। वह इस छोटे बच्चे से भी भयभीत हो जाता है। कहीं उसकी कलई खुल न जाये, इसलिए वह रामरति के उस छोटे बच्चे को कुएँ में फेंककर मार डालता है। इस जघन्य अन्याय से वह रणचंडी बन जाती है। वह गरज उठती है, ''आज मैं सारे गाँव के सामने तुम भलेमानुषों की कलई खोलकर रख दूँगी। आज मैं तुम्हें सबक

सिखाऊँगी। देवीपाल, अब धुसियावाली बात नहीं रही। निकल बाहर, लुच्चे, लम्पट ...''[23] हद तो तब हो जाती है जब रामरति का पति पुलिस के पास रपट लिखवाने पहुँचता है। पुलिस की सामन्तवादी मानसिकता दारोगा के शब्दों में यहाँ व्यक्त हुई है, ''साले, मादरचोद, हरामी की औलाद, तुमलोग इज्जतदार और शरीफ लोगों के खिलाफ झूठे मामले बनाते रहते हो! तुमलोगों को इज्जतदार लोगों की इज्जत से खेलते हुए शर्म नहीं आती। 'हरिजन एक्ट' का दुरूपयोग करते हो! अरे, नालायक के बीज, तेरी इज्जत ही क्या है, जो बिगड़ जाएगी।''[24]

दलित रचनाओं में दलित नारियों के बलात्कार, वेश्या बनने, भूख, गरीबी आदि का ही चित्रण के साथ-साथ उनके बहादुरीपूर्ण कारनामों का भी व्यापक वर्णन मिलता है। उक्त उपन्यासों के अलावा जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर', मोहनदास नैमिशराय के 'वीरांगना झलकारी बाई', 'आज बाजार बंद है', 'क्या मुझे खरीदोगे', भगवान दास मोरवाल के 'काला पहाड़', 'बाबूल तेरे देश में' और 'रेत' उपन्यास आदि में दलित नारी की समस्याओं को प्रमुखता के साथ उठाया गया है। आज बाजार बंद है और क्या मुझे खरीदोगे' में वेश्या जीवन की त्रासदी, और 'रेत' उपन्यास में कंजर (नट) जाति के स्त्री जीवन प्रमुखता के साथ चित्रित है।

दलित कविता और कहानियों में चित्रित नारी

दलित लेखक-लेखिकाओं की आत्मकथा और उपन्यासों में दलित नारियों की त्रासदी का वर्णन तो हुआ ही है; उनकी कविता और कहानियों में भी दलित नारियों का विशद चित्रण है। मोहनदास नैमिशराया की कविता और कहानियाँ, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता संग्रह 'सदियों का सन्ताप, 'बस्स बहुत हो चुका' की अनेक कविताएँ और 'जंगल की रानी' जैसी कहानियाँ, जयप्रकाश कर्दम की कविता संग्रह 'गूँगा नहीं था मैं, तिनका-तिनका आग' की कविताएँ, सूरजपाल चौहान, दयानन्द बटोही, सुदेश तनवर, कसुम वियोगी, श्यौराज सिंह 'बेचैन', मुसाफिर बैठा, अनिल चमड़िया, मुकेश मानस आदि दलित लेखकों की कविता और अनेक कहानियों में दलित स्त्रियों का जीवन शिद्दत के साथ चित्रित हुआ है। प्रह्लाद चन्द्र दास की कहानियाँ 'नचनी काकी' इस दृष्टि से खासा महत्त्वपूर्ण है। 'नचनी काकी' में डोम जाति की एक नाचनेवाली लड़की के जीवन की त्रासदियों का चित्रण है। लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा, रजनी तिलक, रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे, रजत रानी 'मीनू', अनिता भारती, कावेरी, सुशीला टाकभौरें की की कविता संग्रह 'स्वातिबूँद और खारे मोती' तथा 'यह तुम भी जानो' की कविताएँ तथा कई कहानियाँ इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी 'सिलिया' कहानी में दलित चरित्र सिलिया के माध्यम से एक दलित बालिका की शिक्षा और सामाजिक संघर्ष का यथार्थपूर्ण अंकन हुआ है। एक बड़े सवर्ण घराने के नेतानुमा लड़के के विवाह प्रस्ताव को सिलिया द्वारा ढुकराये जाने की घटना का चित्रण कर लेखिका ने दलितों के प्रति सवर्णों द्वारा किये जानेवाले दिखावे और ढोंग का पर्दाफाश किया है। रमणिका गुप्ता की कहानी 'बहु जुठाई' दलित स्त्रियों के यथार्थ पर एक मारक कहानी है। स्त्रियों की ओर से लिखी गयी तमाम कहानी और कविताओं में दलित स्त्री की प्रमुख समस्याओं को बारीकी से उकेरा गया है।

इस प्रकार दलित साहित्य में दलित नारी का विषद वर्णन मिलता है, जिसमें आज के जीवन का यथार्थ भी है आनेवाले कल का संकेत भी।

निष्कर्ष

कहते हैं कि स्त्रियों के लिए जमाना कभी नहीं बदलता है। आज भी कमोबेश हालात जस के तस ही हैं। स्त्रियों ने अपनी बीती हुई जिंदगी के स्याह पक्ष को लेखन में उकेरने की ठान ली, तब जाकर एक छिपा हुआ सच सामने आने लगा है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा के कथेतर गद्य साहित्य में दलित आत्मकथाओं की चर्चा करें तो हम पाते हैं कि वहाँ मौजूद समाज में पारिवारिक माहौल का जितना वर्णन आया है उसमें सबसे बड़ा चिंतनीय पक्ष स्त्री की कमजोर स्थिति है। रिश्तों के बीच की रिसती हुई ऊष्मा भी एक विषय हो सकता है। लगा कि स्त्री का दर्द लिखा जाना अभी शेष है। परिवार में पुरुष के भी अपने दु:ख-दर्द हैं जो सामने आने बाकी हैं। स्त्री चेतना के मुद्दे पर अभी समाज में जागरूकता के लिहाज से काफी कार्य करने की आवश्यकता है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज की जड़ें अभी ढीली नहीं हुई हैं। यह तस्वीर बदलने में अभी वक्त लगेगा। ईमानदारी से लिखना और अपने गलत बर्ताव को स्वीकारना, दोनों प्रक्रियाएँ जारी रखने की जरूरत है।

संदर्भ सूचीः-

1. सुभाष गाताडे का आलेख, 1857ः निरंतरता और परिवर्तन, उद्‌भावना, अंक–75, सं–प्रदीप सक्सेना, पृ.–284
2. दोनों गालों पर थप्पड़ : मोहनदास नैमिशराय, आधुनिकता के आईने में दलित, सं.– अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ–231–32 के आधार पर
3. बजरंग बिहारी तिवारी का आलेख, 'हंस', जुलाई, 2000
4. दोहरा अभिशाप, लेखिका-कौसल्या बैसन्त्री, पृ–17
5. वही, पृ.–102
6. वही
7. वही
8. 'हंस', दलित विशेषांक, अगस्त-2004
9. वही
10. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, ले.–हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृष्ठ–497
11. प्रेमचन्द : सामन्त का मुंशी, पृष्ठ–63
12. दलित स्त्रियाँ किसकी सम्पति है? : 'जनसत्ता', 3 अक्टुबर 2005
13. दलित कथाकारों में बँटवारे की राजनीति, 'दलित साहित्य वार्षिकी-2005, पृष्ठ–43.
14. पल-प्रतिपल, जून-सित. 2005
15. हंस, नव. 2005, सम्पादकीय
16. गोदान, पृष्ठ–208–09
17. दलित कथाकारों में बँटवारे की राजनीति, 'दलित साहित्य वार्षिकी-2005, पृष्ठ–44
18. प्रेमचन्द : सामन्त का मुंशी
19. मिट्टी की सौगंध, ले.–प्रेम कपाड़िया
20. वही
21. वही
22. जस तस भयी सवेर, लं.–सत्य प्रकाश
23. वही, पृ.–51
24. वही ।

राष्ट्रवादः भारतीय संदर्भ

राकेश कुमार

शोधार्थी, पीएचडी, प्रौढ़ सतत शिक्षा एवं प्रसार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश- प्रस्तुत शोध आलेख में राष्ट्रवाद के भारतीय सन्दर्भ और उसकी प्रकृति को जानने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्द- राष्ट्र, राष्ट्रवाद, भारतीय राष्ट्रवाद।

आँकड़ों के स्रोतः- प्रस्तुत अनुसंधान में द्वितीयक स्त्रोत से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

शोध विस्तार-

देश, राज्य, राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य इन सभी शब्दों का प्रयोग आपस में अदल-बदल कर किया जाता हैं। कई लोग सामाजिक विज्ञान और समाज के आम जन-जीवन में इन शब्दों का प्रयोग समान अर्थ के रूप में करते हैं परंतु इन चारों शब्दों की प्रकृति और अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

देश, जब कुछ लोगों का समूह एक निश्चित भूखंड पर वास करता है तो उस भूखंड को देश कहा जा सकता है। राज्य, जब उस देश के लोग स्वयं के लिए नियम-कानून और संविधान का निर्माण करते हैं और साथ ही उन नियम-कानून और संविधान को स्वयं के ऊपर लागू करते हैं तो वह देश राज्य बन जाता है। एक राज्य की अपनी एक राजनीतिक सीमा-रेखा होती है।

राष्ट्र, एक राष्ट्र का अपना एक साझा इतिहास, परंपरा, प्रतीक, झंडा और गान होता है। राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह होता है, जो जन्म से उस राष्ट्र से जुड़े हुए होते हैं।

'राष्ट्र' का अर्थ होता है, कुछ लोगों का समूह जो 'जन्म' या 'जन्म-स्थान' से जुड़ा होता है।'' (सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 2)

राष्ट्र-राज्य, जब एक राष्ट्र स्वयं के लिए नियम-कानून और संविधान की रचना करता है तथा उन नियम-कानून और संविधान को अपने ऊपर लागू करता है तो वह राष्ट्र, राष्ट्र-राज्य की श्रेणी में आ जाता है।

''राष्ट्र के लिए अंग्रेजी में छंजपवद शब्द का प्रयोग होता है। राष्ट्र की अवधारणा में सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु संस्कृति है। जब किसी देश की भौगोलिक सीमा, उसकी आबादी, उसकी अर्थव्यवस्था और उसकी सार्वभौमिकता के साथ उसकी संस्कृति पर एकान्वित होकर विचार किया जाता है तब वह देश राष्ट्र के रूप में जाना जाता है। इसी राष्ट्र के साथ जब शासनकारी राजनीतिक इकाई को विचार में लिया जाता है तब वह राष्ट्र-राज्य कहलाता है। जिसे अंग्रेजी में छंजपवद ै जंजम कहते हैं।''

(द्विवेदी, संजय (2018) (संपा.), राष्ट्रवाद, भारतीयता और पत्रकारिता, पृष्ठ 35)

एक राष्ट्र के लोग जब अपने राष्ट्र के साझा इतिहास, परंपरा, प्रतीक, झंडा और गान के प्रति सम्मान की भावना प्रदर्शित करते हैं तो इस सम्मान की भावना को राष्ट्रवाद कहा जाता है।

''राष्ट्रवाद एक भावना है जो किसी व्यक्ति के अंदर उसके राष्ट्र के प्रति होती है और ऐसी भावना उस राष्ट्र के गौरवमयी इतिहास से जुड़ी होती है।''

(सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 1)

राष्ट्र एक अवधारणा है और यह एक ऐसी अवधारणा है जिसके केन्द्र में राष्ट्र होता है और राष्ट्र को ही सर्वोच्च माना जाता है। एक राष्ट्र के मुख्य तत्त्वों में एक साझा इतिहास, परंपरा, भाषा, प्रतीक, संस्कृति, धर्म इत्यादि होते हैं।

''एक राष्ट्र का अर्थ है वहाँ के लोगों में भाषा, धर्म, प्रजाति आदि मामलों में साझापन।''

(सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 2)

राष्ट्र एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका निर्माण सतत चलता रहता है और इस सतत निर्माण में राष्ट्र का इतिहास बेहद ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब एक राष्ट्र में रहने वाले लोग उस राष्ट्र के साझा इतिहास में अपना विश्वास प्रकट करते हैं तो यह विश्वास ही उस राष्ट्र के लोगों को एकजुटता में बाँधता है। राष्ट्र के निर्माण में दूसरी प्रमुख आवश्यकता है भाषा। एक राष्ट्र की अपनी एक भाषा या भाषाएँ होती हैं। इसी भाषा के बूते हम आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं और विचारों के इसी आदान-प्रदान की प्रक्रिया के द्वारा उस राष्ट्र की संस्कृति विकसित होती है।

''पं. दीनदयाल उपाध्याय ने इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि विश्व में आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई 'राष्ट्र' है। अत: राष्ट्र की दृष्टि से भी विचार करें तो राष्ट्र के लिए चार बातों की आवश्यकता रहती है। प्रथम आवश्यकता है देश। देश भूमि और जन-दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं। किसी भूमि पर एक जन (समाज) रहता हो और वह उस भूमि को माँ के रूप में पूज्य समझे, तभी वह देश कहलाता है। जैसे दक्षिणी ध्रुव में कोई नहीं रहता, तो वह देश नहीं है। किन्तु भारत में हम रहते हैं, हम इसे माँ मानते हैं, इसलिए यह देश है। दूसरी आवश्यकता है सबकी इच्छाशक्ति याने सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरा एक व्यवस्था, जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं, इसके लिए हमारे यहाँ सबसे अच्छा शब्द प्रयुक्त हुआ है 'धर्म'। और चौथी है जीवन-आदर्श अर्थात् संस्कृति।''

(द्विवेदी, संजय (2018) (संपा), राष्ट्रवाद, भारतीयता और पत्रकारिता, पृष्ठ 35)

राष्ट्रवाद के विचार को समझने के लिए सबसे पहले राष्ट्र नामक विचार को समझने की आवश्यकता है। जहाँ एक ओर राष्ट्र के निर्माण के लिए भूमि, जन, सामूहिक जीवन का संकल्प और एक व्यवस्था बेहद जरूरी है। वहीं दूसरी ओर एक राष्ट्र के निर्माण के लिए राजनीतिक सम्प्रभुता भी बेहद आवश्यक है क्योंकि जब तक किसी राष्ट्र के पास अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होगा तब तक उस राष्ट्र को राष्ट्र नहीं कहा जा सकता है।

एक राष्ट्र के संचालन के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आंतरिक और बाहरी मामलों में स्वतंत्रता के साथ फैसलें ले सके और एक राष्ट्र तभी स्वतंत्र होकर अपने पक्ष में फैसलें ले सकता है जब उसके पास अपनी राजनीतिक सम्प्रभुता होगी और एक राष्ट्र के पास अपनी राजनीतिक सम्प्रभुता तब होती है जब उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है।

''किसी भी राष्ट्र का निर्माण उस राष्ट्र के जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति, भौगोलिक एकता के उपरान्त ही होता है। पराधीन राष्ट्र या गुलाम राष्ट्र को तब तक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता जब तक वह राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र नहीं हो गया है।''

(द्विवेदी, संजय (2018) (संपा.), राष्ट्रवाद, भारतीयता और पत्रकारिता, पृष्ठ 43)

अत: राष्ट्र को एक ऐसे जनसमूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि जिसकी अपनी राजनीतिक सीमा रेखा, समान परंपरा और परिपाटी तथा समान विश्वास हो और जिसके भीतर स्वयं को एक इकाई के रूप में एकजुट करने की राजनीतिक इच्छा हो।

एक राष्ट्र के लोग जब स्वयं के इतिहास, भाषा, परंपरा, प्रतीक और गान के प्रति सम्मान की भावना रखते हैं तो उस सम्मान की भावना को राष्ट्रवाद कहा जाता है।

''नेहरू के अंदर राष्ट्रवाद एक भावना के रूप में विकसित हुआ, जो एक ओर हिंदुस्तान के ''गौरवमयी'' प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति की उपज था, वहीं उनके समय में चल रहे गुलामी-आजादी के संवाद का।''

(सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 1)

अगर हम भारतीय राष्ट्रवाद को देखें तो हम पाते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद पश्चिम के देशों के राष्ट्रवाद से पूरी तरह भिन्न है। भारतीय राष्ट्रवाद का उदय स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हुआ था। अंग्रेजों ने भारत को हर स्तर पर पराधीनता की जड़ों में बाँध दिया था। भारतीय जनता इस पराधीनता की भावना से स्वतंत्र होना चाहती थी। विविधताओं में बँटी भारतीय जनता को इस पराधीनता का बोध हुआ और उसने एकजुट होकर अंग्रेजों का विरोध किया तथा अपना स्वतंत्रता संघर्ष आरंभ किया। परिणामस्वरूप भारतीय जनता में राष्ट्रवाद का संचार हुआ।

''पश्चिम के देशों में उपजे राष्ट्रवाद से अलग भारत जैसे तीसरे विश्व के देश के लोगों में राष्ट्रवाद की भावना का विकास आजादी की लड़ाई के दौरान उत्पन्न हुआ।''

(सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 1)

राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना होती है जिसमें एक राष्ट्र की जन चेतना, राजनीतिक और सांस्कृतिक बंधन, भाषाई प्रेम और स्वयं के इतिहास के प्रति गौरवमयी भाव विद्यमान हो। राष्ट्रवाद के द्वारा कई पराधीन राष्ट्रों को उस राष्ट्र की जनता ने स्वतंत्रता प्रदान करवाने में मदद की है और राष्ट्रवाद के द्वारा ही कई नव स्वतंत्र राष्ट्रों का निर्माण हुआ हैं। राष्ट्र और राष्ट्र-राज्यों के निर्माण में राष्ट्रवाद की निर्णायक भूमिका रही है।

''इस संदर्भ में रवींद्रनाथ टैगोर ने आधुनिक राष्ट्र-राज्य की आलोचना करते हुए इसे एक 'भौगोलिक राक्षस' कहा है। वे यह नहीं चाहते थे कि राष्ट्र-राज्य का विचार भारतीय समाज और सभ्यता से महत्त्वपूर्ण हो।''

(सिंह, अभय प्रसाद (2014) (संपा.), भारत में राष्ट्रवाद, पृष्ठ 6)

एक विचार के तौर पर राष्ट्रवाद के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही परिणाम रहे हैं। सकारात्मक विचार के तौर पर राष्ट्रवाद की भावना ने कई राष्ट्रों को स्वतंत्रता प्रदान करने में मदद की है तथा नए राष्ट्रों का निर्माण भी किया हैं। वहीं दूसरी ओर राष्ट्रवाद के कारण दो राष्ट्रों के बीच प्रतिस्पर्धा का माहौल भी उत्पन्न हुआ है। इस प्रतिस्पर्धा के माहौल के कारण दो राष्ट्रों के बीच संघर्ष और युद्ध का माहौल बना जिसके कारण मानव समाज को बेहद हानि पहुँची है। इसी कारण रवींद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्र-राज्यों को 'भौगोलिक राक्षस' कहा है क्योंकि राष्ट्र-राज्यों और उनकी राष्ट्रवाद की भावना के कारण कई बार युद्ध और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है।

निष्कर्ष:-

भारत के संदर्भ में राष्ट्रवाद के उदय के भिन्न तत्व हैं। उपनिवेशवादी विचार से प्रभावित लोग यह कहते हैं कि अंग्रेजों के शासन के कारण ही भारत में राजनीतिक जागरूकता और राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार हुआ। इन लोगों का यह मानना है कि अंग्रेजों के आने से पहले भारत न तो राष्ट्र था और न ही भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता और राजनीतिक एकता थी। इसके विपरीत राष्ट्रवादी विचार से प्रभावित लोगों का मानना हैं कि भारत अंग्रेजों के आने से पूर्व ही एक राष्ट्र था और इनका यह भी मानना हैं कि ये अंग्रेजी शासन ही था जिसने सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्तर पर भारत का शोषण किया। अंग्रेजों की शोषणकारी वृत्ति के कारण भारत का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास नहीं हो सका। उपनिवेशी शासन का विरोध करने के लिए तब के नेताओं ने विविधताओं में बँटी भारतीय जनता को एकजुट किया। यह भारतीय जनता भाषा, धर्म, नस्ल, संस्कृति और परंपरा के आधार पर भिन्न-भिन्न थी लेकिन उपनिवेशी शासन और परतंत्रता का विरोध करने के लिए यह जनता एकजुट हुई और इसी एकजुटता के कारण भारतीयों में राष्ट्रवाद और भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रसार हुआ।

उपनिवेशी शासन के विरोध के दौरान भारतीयों में अपने राष्ट्र, अपने समाज और अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान और आत्म-सम्मान का भाव जागृत हुआ और इसी आत्म-सम्मान के भाव ने स्वयं के लिए राष्ट्रीय पहचान की खोज की।

संदर्भ ग्रंथ:-

- सिंह, अ.प्र. (2014) "भारत में राष्ट्रवाद" नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड।
- आंबेडकर, डॉ.बी.आर. (2014). पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन
- आंबेडकर, डॉ.बी.आर. (2013). कांग्रेस और गाँधी ने अछूतों के लिए क्या किया, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन
- गुप्ता, एम. (2013). भारत में समाज. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी
- गुहा, आर (205). गाँधी भारत से पहले दिल्ली: पेंगुइन बुक्स
- चन्द्र, बी. (1996). भारतीय राष्ट्रवाद, दिल्ली: जवाहर पब्लिशर्स
- चन्द्र, बी. (2015). भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली: हिंदी क्रियान्वयन निदेशालय
- चन्द्र, बी. (2017). आजादी के बाद का भारत. नई दिल्ली: हिंदी क्रियान्वयन निदेशालय
- चन्द्र बी. (2016). आधुनिक भारत का इतिहास. नई दिल्ली: ओरियंट ब्लैकस्वॉन
- झा, एस. (2007). हिन्दी साहित्य को चम्पारण की देन. नई दिल्ली: गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति
- दीक्षित, टी. (2013). डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन इलाहाबाद: लोकभारती

मानव स्वास्थ्य में एनीमिया का महत्व

रूमा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग, केदार संत रामाश्रय महाविद्यालय, सरायरंजन, समस्तीपुर

हमारे भोजन में कुछ स्वास्थ्यप्रद पदार्थ होते हैं जिन्हें पोषक तत्व कहा जाता है। इनमें से लौह तत्व एक महत्वपूर्ण घटक है। यह लौह तत्व अर्थात् आइरन रक्त निर्माण के लिए अत्यन्त अनिवार्य होता है। लौह तत्व की कमी अर्थात् एनीमिया एक निहित बीमारी का परिणाम या लक्षण है। यह एक ऐसा रोग है जिसका कारण है—शरीर में रक्त बनाने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है, उनकी कमी होना। हमारे शरीर में करोड़ों की संख्या में लाल रक्त कण होते हैं, इन लाल रक्तकणों का काम फेफड़ों से ऑक्सीजन को लेकर हमारे शरीर को पहुंचाना होता है। जिससे यह हमारे पूरे शरीर में फैलकर काम करने की क्षमता प्रदान करता है। इन लाल रक्तकणों में एक रासायनिक पदार्थ पाया जाता है जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं हीमोग्लोबिन दो शब्दों से मिलकर बना है-हीम (अर्थात् लौह तत्व) एवं ग्लोबिन (अर्थात् बढ़ोत्तरी वाला तत्व प्रोटीन)

हीमोग्लोबिन + सांस द्वारा आक्सीजन – काम करने की शक्ति

अर्थात् हमारे शरीर में जितना अधिक हीमोग्लोबिन होगा, उतनी ही अधिक आक्सीजन मांसपेशियों और शरीर के कोने-कोने तक पहुंचेगी तथा उतनी ही अधिक हमारी कार्यक्षमता बढ़ेगी। इसके विपरीत यदि शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाए तो आवश्यकतानुसार आक्सीजन शरीर के विभिन्न सेलों को नहीं मिलती जिसके कारण हमारी कार्यक्षमता में कमी आ जाती है।

कम हीमाग्लोबिन+सांस द्वारा आक्सीजन—कम हीमोग्लोबिन से कम आक्सीजन

उत्तकों व मांसपेशियों में काम करने की क्षमता में कमी

जब व्यक्ति स्वस्थ होता है तो हीमोग्लोबिन का सामान्य स्तर पुरुषों में प्रति सौ मिलीलीटर रक्त में 13 ग्राम और स्त्रियों में 12 ग्राम माना जाता है। जब यह स्तर कम हो जाता है तो व्यक्ति में खून की कमी हो जाती है। जिस प्रकार वजन, मशीन के द्वारा नापा जाता है उसी प्रकार खून की एक बूंद लेकर उसमें हमोग्लोबिन नापा जाता है। प्रशांत क्षेत्र के देशों में अमीरों और गरीबों के मध्य एक गहरी खाई चिंताजनक रूप से बढ़ रही है। आर्थिक स्तर पर बढ़ता यह अंतर, माताओं एवं बच्चों के लिए घातक हो गया है। यूं तो पिछले चार दशकों में बाल मृत्यु में कमी आई है लेकिन बावजूद इसके भारत अभी भी बाल मृत्युदर कम करने के लिए निर्धारित किए गए विभिन्न सहस्राब्दि स्वास्थ्य लक्ष्यों, एमडीजी-1 (पोषण व आहार के स्तर को सुधारने के लिए तय किया गया लक्ष्य) एमडीजी-5 (माताओं के स्वास्थ्य स्तर को उठाने के लिए निर्धारित लक्ष्य), जोकि विभिन्न देशों द्वारा निर्धारित अवधि के अंदर स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय सुविधा प्राप्त कने से संबंधित लक्ष्य को प्राप्त करने में कई विकसित देशों और यहां तक कि श्रीलंका जैसे विकासशील देश से भी पीछे हैं। यह रिपोर्ट इस तथ्य का भी खुलासा करती है कि विश्व में कुल कम वजन के बच्चों में भारत का प्रतिशत 38 है, विश्व में कुल 42 प्रतिशत भारतीय बच्चे वह हैं जो पैदाइशी तौर पर कम वजन के होते हैं और चिकित्सा विज्ञान के अनुसार कम वजन के नवजात शिशुओं की जीवन प्रत्याशा स्वस्थ शिशुओं के मुकाबले 20 प्रतिशत कम होती है यही कारण है कि भारत में कुल शिशु मृत्युदर में से दो तिहाई शिशुओं की मौत जन्म लेने से 20 दिनों के अंदर हो जाती है। चिकित्सकीय सुविधाओं ने भारत में यद्यपि मृत्युदर को किसी अंश तक घटा दिया है परन्तु गैर संचारी एवं संचारी रोगों तथा पोषाहार की समस्याओं के कारण बीमारियों से ग्रस्त होने वाले बच्चों की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। उचित पोषण के अलावा 'टीकाकरण' बच्चों के स्वास्थ्य का रक्षक बन सकता है परंतु दुखद पहलू यह है कि यहां भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। राष्ट्रीय

परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की रिपोर्ट के मुताबिक बच्चों को टीका लगाने के संबंध में कोई सकारात्मक विकास नजर नहीं आ रहा है। आज भी मात्र 43.5 प्रतिशत बच्चों (12-23 महीनों) को ही सारे टीके लग पाते हैं। भारत दुनिया के उन चार मुख्य देशों में शामिल है जहां अब भी पोलियो के मरीज पाए जाते हैं। अगर हम आंकड़ों पर नजर डालें तो पाएंगे कि वर्ष 2005-06 में जहां 35 जिलों में पोलियो के 66 मामले थे वहीं 2006-07 में 87 जिलों में 490 मामले प्राप्त हुए हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि बच्चों के जीवन और मृत्यु के बीच आज सबसे घातक वार एड्स का है। नवजात बच्चों में एचआईवी संक्रमण बच्चे के जन्म या स्तनपान के समय होता है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 78 लाख 3 हजार गर्भवती महिलाएं एचआईवी संक्रमित होती हैं जिनमें से अनुमानतः 23,490 बच्चे एचआईवी से संक्रमित हो जाते हैं। केंद्र सरकार ने 2011 तक इसमें कमी लाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। रिपोर्ट के अनुसार 2011 तक अनुमानित हर वर्ष एचआईवी सर्वमित महिलाओं में से 80 प्रतिशत को प्रोफाइलेक्टिक एंटी रिट्रोवायल थेरैपी उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया है। माता-पिता से बच्चों में एचआईवी फैलने से रोकने से संबंधी कार्यक्रम (पीपीटीसीटी) को प्रभावी तरीके से लागू किए जाने से विषाणु के संचरण को शून्य प्रतिशत तक लाया जा सकता है। एड्स के अलावा न्यूमोनिया बच्चों के स्वास्थ्य को किस कदर नुकसान पहुंचा रहा है यूनिसेफ और विश्व संगठन की रिपोर्ट 'न्यूमोनिया द फॉरगाटेन किलर ऑफ चिल्ड्रेन' से स्पष्ट हो जाता है। रिपोर्ट में यह बताया गया है कि दुनिया भर में बच्चों की सर्वाधिक मौतें न्यूमोनिया के कारण होती हैं। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 4.4 करोड़ न्यूमोनिया के मामले सामने आते हैं। आंकड़े यह भी बताते हैं कि चेचक और मलेरिया से दुनिया में वर्ष 2004 में मरने वाले कुल 4,10,000 शिशुओं में 60 प्रतिशत शिशुओं की मौत भारत में हुई। यूनिसेफ ने 2015 तक शिशु मृत्यु का आंकड़ा 36 प्रति हजार लाने का लक्ष्य रखा है। यह लक्ष्य हासिल करने के लिए इस दर में 7.6 प्रतिशत वार्षिक कमी लाने का लक्ष्य रखा है। यह लक्ष्य हासिल करने के लिए इस दर मे 7.6 प्रतिशत वार्षिक कमी लाने की आवश्यकता है, जबकि वर्तमान में भारत 2.6 प्रतिशत की दर से हासिल कर सका है। भारत में बाल मृत्यु का एक प्रमुख कारण चिकित्सा सेवा में कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद ढांचागत आधार के अनुसार कुल 70.2 प्रतिशत विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी है। इसमें 75 प्रतिशत शिशु विशेषज्ञ, 70.9 प्रतिशत सर्जन तथा 60 प्रतिशत महिला रोग विशेषज्ञ की कमी बनी हुई है। इसी संदर्भ में अगस्त '08 को प्रधानमंत्री ने चिकित्सा ढांचे में क्षेत्रीय असंतुलन पर चिंता जताते हुए देशभर में चिकित्सीय सुविधाओं को तुरंत बढ़ाए जाने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा कि डॉक्टरों की कमी और चिकित्सा संस्थानों की मौजूदा संख्या बढ़ती मांग के अनुसार कम है। योजना आयोग की हाल ही की एक रिपोर्ट के अनुसार, देश को अगले पांच वर्षों में लगभग दस लाख नर्सों की आवश्यकता होगी। एनएफएचस-3 के अनुसार क्षेत्र के आधा पर स्वास्थ्य सेवाओं में अंतर पाया जाता है। जहां यह नागालैंड में 12 प्रतिशत है तो वहीं तमिलनाडू में यह 90 प्रतिशत है। इसी विषय को उठाते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि लगभग 60 प्रतिशत चिकित्सा शिक्षण सुविधाएं दक्षिण भारत में हैं जिसके कारण देशभर में चिकित्सा ढांचे और चिकित्सीय सुविधाओं में क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो गया है और इस कमी को दूर करने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय और राज्य सरकारों के सामूहिक प्रयास की जरूरत है। स्वस्थ्य भारत के अधूरे स्वप्न का कारण सिर्फ चिकित्सा सेवा में कमी ही नहीं, बल्कि देश में आर्थिक, जातीय, क्षेत्रीय और शैक्षणिक असमानता व लैंगिक विभेद की संकीर्ण विचारधाराएं भी हैं। भारतीय समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव और महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति बरती जाने वाली मानसिकता आज भी यथावत विद्यमान है। स्वस्थ स्त्री ही स्वस्थ बच्चे की जननी बन सकती है पर यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि भारत में हर तीन महिलाओं में से एक का वजन मानक वजन से कम है। कम उम्र में मातृत्व बोझ एवं गर्भावस्था के काल में पोषण एवं उचित आहार को लेकर बरती जाने वाली लापरवाही भी बाल मृत्यु को बढ़ावा देती है।

हीमोग्लोबिन का स्तर

आयु (वर्षों में)	*ग्राम/100 मि.ली.*
0-5	11
6-17	12
गर्भवती महिला	11
महिला	12
पुरुष	13

वैसे तो यह रोग किसी भी आयु समूह में हो सकता है परन्तु महिलाओं और बच्चों में यह अधिक पाया जाता है।

एनीमिया के कारण : एनीमिया के मुख्य कारण इस प्रकार है :-

1. रक्तक्षय- रक्तक्षय कई कारणों से हो सकता है जैसे महिलाओं में मासिक स्राव के समय लौह तत्वों की कमी हो जाती है। इन दिनों में एक दिन में सामान्यतया 5 मि.ग्राम लौह तत्व की कमी होती है जिसकी हमारे शरीर में भोजन के माध्यम से ही पूर्ति होती है। इसी प्रकार गर्भवती महिलाओं को लौह तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि उन्हें स्वयं व बच्चे दोनों को जरूरी लौह तत्वों की पूर्ति करनी होती है। जब कोई महिला गर्भधारण करती है तो उसके अंदर पल रहे शिशु का खून मां के खून से ही बनता है। ऐसी अवस्था में सामान्यतया मां के शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है। ऐसे में मां और बच्चे दोनों पर तुरन्त ध्यान न देने पर खतरा हो सकता है। इसी तरह नवजात शिशु प्रारंभिक छह माह तक अपनी आवश्यकता के लिए मां के दूध से लौह तत्व लेता है परंतु दस माह के बाद यदि उसे ऊपरी आहार पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता है तो वह एनीमिया का शिकार हो जाता है। भारत में 55 प्रतिशत लड़कियां तथा 57 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं एनीमिया का शिकार होती हैं। एनीमिया मौत एवं अवरूद्ध शारीरिक विकास का एक प्रमुख कारक है। भारत में 30 प्रतिशत नवजात शिशु एनीमिया के शिकार होते हैं।

इसी प्रकार बच्चों को भी लौह तत्वों की आवश्यकता अधिक होती है क्योंकि उनमें विकास जल्दी होता है। शरीर के बढ़ते आकार के लिए अधिक लौह तत्वों की आवश्यकता होती है जिनकी पूर्ति न होने पर वे एनीमिया के शिकार हो जाते हैं। खून की कमी भूख को प्रभावित करती है। अत: इन बच्चों की धीरे-धीरे भूख कम हो जाती है और कम खाना खाने से उनके विकास पर असर पड़ता है। बार-बार बीमार होने के कारण उनकी कमजोरी बढ़ जाती है और वे अपनी आयु के बच्चों की तुलना में पीछे रह जाते हैं।

2. लाल रक्तकण संबंधी बीमारियां- हमारे शरीर में लाल रक्तकण होते हैं जिनकी आयु 120 दिन/4 माह की होती है। इसके बाद के स्वयं नष्ट होकर फिर से नए लाल रक्तकण बन जाते हैं। इस प्रकार निर्माण और नष्ट होने की क्रिया स्वस्थ शरीर में निरन्तर चलती रहती है। परन्तु कई बार यदि यह संतुलन बिगड़ जाए तो भी एनीमिया हो जाता है। कुछ ऐसी जन्मजात बीमारियां होती हैं जो लाल रक्तकणों पर सीधा प्रहार करती हैं। ये या तो उनका आकार बदल देती है या उनके अन्दर के हीमोग्लोबिन के संगठन में हेर-फेर ला देती है। इस प्रकार की बीमारियों के निदान एवं उपचार में तत्परता बरतनी चाहिए।

3. असंतुलित आहार- भारत में एनीमिया का सबसे बड़ा कारण असंतुलित आहार है। कई बार हम जो भोजन खाते हैं, उनमें अज्ञानतावश उन तत्वों की कमी रह जाती है जिनसे लाल रक्तकण या हीमोग्लोबिन बनता है। जैसे-प्रोटीन, लोहा, विटामिन सी, विटामिन बी-12, विटामिन बी-6, कैल्सियम आदि। प्रोटीन दूध तथा दूध से बनी वस्तुओं, दालों, अनाज, मछली, मांस, आलू, केला, सोयाबीन, फली वाली सब्जियों में विद्यमान रहता है। विकास की अवस्था में प्रोटीन की ज्यादा आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से लोहा, कलेजी, हरी पत्तेदार सब्जियों, अंडे, मेवे, केले, फल, मांस, आलू आदि में सामान्य से अधिक मात्रा में मिलता है। इसी प्रकार विटामिन-सी खट्टे पदार्थों जैसे-नींबू, संतरा, आंवला, मौसमी, टमाटर, हरी सब्जियों में ज्यादा मिलता है। इस प्रकार शारीरिक वृद्धि एवं विकास की अवस्था में उपरोक्त सभी तत्वों खाद्य पदार्थों में विद्यमान रहने चाहिए।

4. कृमि की बीमारियां- कई बार हमारे शरीर में खाने-पीने की चीजों के माध्यम से कृमि प्रवेश कर जाते हैं, जिससे हम जो भी भोजन खाते हैं, वे उसका खून नहीं बनने देते। ये आतों पर चिपककर खून पोषण कर देते हैं। 'एन्काईलोस्टोमा' नाम का कृमि 91 दिन में 6/10 मिलीलीटर रक्त चूस जाता है जो कि नंगे पैर चलने के कारण शरीर में प्रवेश कर जाता है। अत: इसके लिए नंगे पांव जमीन पर चलना बंद करना चाहिए। इन कारणों के अतिरिक्त गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, बार-बार दवाइयां खाने से भी कई बार एनीमिया हो जाता है।

लक्षण : एनीमिया से ग्रस्त व्यक्ति में भूख की कमी, सांस चढ़ना, हृदय धड़कन में वृद्धि, निस्तेज आंखें, पीला चेहरा, सफेद नाखून तथा हाथों में सूजन प्रमुख लक्षण हो सकते हैं।

एनीमिया को ठीक करने के उपाय : गर्भवती महिलाओं को लौह तत्वों युक्त खाद्यान्नों का सेवन नियमित रूप से करना चाहिए। क्योंकि जब कोई महिला गर्भधारण करती है जो उसके अंदर पल रहे शिशु के खून की पूर्ति भी मां के खून से ही होता है। अत: मां के शरीर में लौह तत्व का एक बड़ा भंडार संग्रहित करना अनिवार्य होता है। इसके लिए महिला को डाक्टर के परामर्श

से कम से कम 100 गोलियों का सेवन प्रतिदिन एक गोली के रूप में अवश्य करना चाहिए। स्तनपान कराने वाली माता को लौह तत्वों की अधिक जरूरत होती है। दूध पिलाने वाली माता को भी लौह तत्वों (प्रोटीन, विटामिन, कैल्शियम आदि) से युक्त भोजन करना चाहिए ताकि उसके दूध के माध्यम से उपयुक्त मात्रा बच्चे को भी पर्याप्त हो सके तथा उसका शारीरिक ढ़ाचा सुदृढ़ हो सके।

खाने के साथ ताजी खटाई जैसे-नींबू, टमाटर, संतरा, आंवले का सेवन करना चाहिए। ऐसा करने से भोजन में जितना भी लौह तत्व हैं, वह पूर्णत: उपयोग हो जाता है। इसी प्रकार हरी मिर्च बेशक खाने में कड़वी लगती है परन्तु कच्ची स्थिति में यह विटामिन-सी का अच्छा स्रोत है। अत: इसे भोजन के साथ में अवश्य ग्रहण करना चाहिए। सब्जी को लोहे की कढ़ाई में पकाना चाहिए। ऐसा करने से कढ़ाई से लौहा निकलकर सब्जी में आ जाता है तथा शरीर इसका उपयोग खून बनाने में कर लेता है। बाल विकास अवस्था में लौह तत्वों का उपयोग सामान्य से अधिक मात्रा में करना चाहिए। भोजन में यदि संभव हो तो गुड़ का भी सेवन करना चाहिए।

जनसंख्या पर नियंत्रण भी करना चाहिए क्योंकि यदि जनसंख्या अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति को उचित मात्रा में संतुलित आहार मिलना कठिन होता है। बार-बार गर्भधारण के कारण और आहार में पोषण तत्वों की कमी की दुहरी मार से महिला का स्वास्थ्य जर्जर होता जाएगा। इसके अतिरिक्त दवाओं का अत्यधिक सेवन करने से भी बचना चाहिए। फर्श पर विशेषकर मिट्टीयुक्त जमीन पर नंगे पांव न चलने से तथा सही समय निदान और उपचार से एनीमिया जैसी जानलेवा बीमारियों से बचा जा सकता है।

भारतीय महिलाओं में साक्षरता एवं जागरूकता की कमी है जिसके कारण वे बच्चों की एवं स्वयं की समस्याओं को समझने में असमर्थ होती हैं, मातृ एवं बाल मृत्यु को बढ़ावा देती है। जातिगत विभेद एवं असमानता के कारण भी बच्चे एवं महिलाएं समय मृत्यु का शिकार बनती हैं। देश की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की भागीदारी 26 प्रतिशत है परंतु अनुसूचित जाति की लगभग 17 करोड़ एवं अनुसूचित जनजाति की लगभग आठ करोड़ जनसंख्या, प्रारंभिक स्वास्थ्य सुविधाओं को पाने से वंचित हैं। यूनिसेफ की रिपोर्ट में इस तथ्य की पुष्टि की गई और उल्लेखित भी किया गया है कि भारत में पिछड़ी जातियों के कुल बच्चों के तीन चौथाई बच्चे रक्तहीनता से ग्रस्त हैं। पिछड़ी जातियों में प्रसव के लिए आज भी देसी प्रसव प्रक्रिया का आश्रय लिया जाता है परिणामत: हर वर्ष बड़ी संख्या में बच्चों और महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। आर्थिक असमानता भी बाल मृत्यु को बढ़ावा देने के लिए उत्तरदायी है। वर्ष 2005-06 के मध्य जहां शहरी क्षेत्रों में बाल मृत्युदर प्रति हजार 44 थी वहीं इसी अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर 1,000 में 76 दर्ज हुई।

स्वस्थ भारत के स्वप्न को साकार करने के लिए सरकारी स्तर पर प्रयास जारी है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन केंद्र सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य एक पूर्ण क्रियाशील, समुदाय आधारित, विकेंद्रीकृत स्वास्थ्य सुपुर्दगी प्रणाली की स्थापना करना है। केंद्र सरकार ने ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत हर गांव में प्रशिक्षित सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता 'आशा' की नियुक्ति करने का निर्णय लिया यह योजना अभी 18 राज्यों में ही लागू है। 11वीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 0-3 वर्ष के बच्चों में कुपोषण को घटाकर आधा करना है तथा महिलाओं और बालिकाओं में खून की कमी को वर्तमान स्तर से आधा करना है।

राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भारत एवं सूनिसेफ ने अगस्त '08 को पांच वर्षीय एक्शन प्लान आरंभ किया। इस एक्शन का मुख्य उद्देश्य शिशु एवं मातृ मृत्युदर में कमी, कुपोषण के खिलाफ संघर्ष, स्वच्छता एवं शिशु रक्षा सुनिश्चित करना होगा। वर्ष 2008-12 के मध्य कंट्री प्रोग्राम के तहत विकास लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य के स्तर को बढ़ाने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं परन्तु असमानताओं का दंश जब तक भारतीय समाज को भेदता रहेगा तब तक बच्चों और माताओं की असामायिक मौतें भारत के लिए चिंता का विषय बनी रहेंगी।

संदर्भ

1. योजना - 2006
2. योजना - 2009
3. कुरूक्षेत्र - 2007
4. आहार और पोषण - उषा टंडन।

कवि मुक्तिबोध के काव्य में बिंबात्मकता

डॉ० मनीष कुमार चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दौलतराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

कविता के शिल्पगत अनुपंगों में बिंब-विधान का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक आलोचना ने इसे अत्यधिक महत्त्व दिया है। वस्तुतः बिंब भाषा को रचनात्मक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसके महत्त्व को स्वीकृति प्रदान करते हुए प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था कि काव्य में अर्थग्रहण नहीं, बिंबग्रहण होता है। हिंदी के जिन आधुनिक कवियों के काव्य में बिंबों का सघन और उत्कृष्ट प्रयोग दिखायी देता है, उनमें गजानन माधव मुक्तिबोध भी शामिल है। वस्तुतः मुक्तिबोध की कविताओं में बिंब भरे-पड़े हैं। आलोचकों ने उनकी कविताओं को 'बिंबों का नगर' कहा है। स्वयं मुक्तिबोध ने भी अपनी कविताओं की बिंबधर्मी प्रकृति को स्वीकार करते हुए लिखा है- "मैं बिना चित्र प्रस्तुत किए लिखता नहीं हूँ।"[1]

मुक्तिबोध के बिंब विधान की प्रकृति को कई स्तरों पर देखा और समझा जा सकता है। यदि हम रंग-प्रयोग की दृष्टि से उनकी कविताओं में निहित बिंबात्मकता को लक्षित करें तो हम पाएँगे कि वहाँ काले रंग का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। यह रंग कभी अंधेरे के रूप में आया है, कभी साँवलेपन के रूप में आया है और कभी किसी अन्य रूप में आया है। काले बिंबों के प्रयोग का कारण मुक्तिबोध के आंतरिक और बाह्य, दोनों जीवनों में निहित है। अपने एक पत्र में मुक्तिबोध लिखते हैं-"मेरी आँखों के सामने घर-गिरस्ती को देखकर काले सपने आया करते हैं। मैं वजन संभाल नहीं पाता और हर महीने की बीस तारीख के बाद दिवालियापन सताता रहता है क्रुद्धप्रेत-सा।"[2]

काले रंग के बिंबों का मुक्तिबोध ने बहुत रचनात्मक प्रयोग किया है। ये बिंब प्रतीकात्मक अर्थ धारण करते हैं। ये मनुष्य के अंतस् के साथ-साथ बाह्य जीवन के यथार्थ को भी अभिव्यंजित करते हैं। काले रंग के बिंब-प्रयोग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"भीमाकार पुलों के बहुत नीचे, भयभीत
मनुष्य बस्ती के बियाबान तटों पर
बहते हुए पथरीले नालों की धारा में
धराशायी चांदनी के होंठ काले पड़ गये।"[3]

मुक्तिबोध के बिंबों का विषय-क्षेत्र बहुत व्यापक और गहरा है। वे जीवन के कई क्षेत्रों से बिंबों का ग्रहण करते हैं। इन बिंबों में कई बिंब 'सेना' से संबंधित है। दमनकारी सत्ता-व्यवस्था के चरित्र को दिखाने के लिए उन्होंने ऐसे बिंबों का प्रयोग किया है। सत्ता का अत्याचार और अमानवीयता इनमें दिखाई देता है। ऐसा ही एक बिंब द्रष्टव्य है-

"उनके पीछे चल रहा
संगीन नोकों का चमकता जंगल
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीर्घ पांत
टैंक दल, मोर्टार, आर्टिलरी सन्नद्ध
धीरे-धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना
सैनिकों के पथराये चेहरे
चिढ़े हुए, झुलसे हुए, बिगड़े हुए, गहरे।"[4]

इस बिंब में प्रयुक्त संगीन की नोकें, टैंक, मोटर, आर्टिलरी आदि एक जीवंत दृश्य की सर्जना कर देते हैं और साथ-ही-साथ कवि के अभिप्रेत को भी संप्रेषित कर देते हैं। वस्तुतः यदि हम मुक्तिबोध के बिंबों की प्रकृति को देखें तो या तो उनका निर्माण उनके अशांत अवचेतन मन से हुआ है या फिर उनका आधार बाहरी जीवन का भयावह यथार्थ है। यही कारण है कि उनके काव्य में खंडहर, रक्त, हत्या, प्रेत आदि से जुड़े बिंब बड़ी संख्या में दिखाई देते हैं।

ऐन्द्रिय आधार पर बिंब के कई प्रकार होते हैं। स्पर्श, श्रव्य, दृश्य आदि ऐसे ही भेद हैं। इन सभी प्रकार के बिंबों का प्रयोग मुक्तिबोध करते हैं। इनमें सर्वाधिक दृश्य-बिंबों का प्रयोग हुआ है। उनके द्वारा निर्मित एक दृश्य-बिंब को निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है

''ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर,
बांह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ
फिर भी मैल।''[5]

मुक्तिबोध की कविताओं में स्पर्श-बिंब का प्रयोग अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है परन्तु उन्होंने अपनी जिन कविताओं में स्पर्श-बिंब का प्रयोग किया है वहाँ सशक्त और सूक्ष्म रूप में किया है। उनकी कविता 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग' की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप द्रष्टव्य हैं-

''स्वयं की ग्रीवा पर
फेरता हूँ हाथ कि
करता हूँ महसूस
एकाएक गरदन पर उगी हुई
सघन अयाल और
शब्दों पर उगे हुए बाल तथा
वाक्यों में ओरांग उटाँग के
बढ़े हुए नाखून।''[6]

मुक्तिबोध के काव्य में दृश्य-बिंबों के अलावा श्रव्य बिंब भी दिखाई देते हैं। उनकी कविता में दृश्य-बिंब जिस तरह सौंदर्य विहीन थे उसी प्रकार उनके श्रव्य बिंब में संगीतात्मकता का अभाव दिखाई देता है। उनके श्रव्य-बिंब परंपरागत काव्य के पुराने ढाँचे में फिट नहीं बैठते। मुक्तिबोध ने नवीन श्रव्य-बिंबों का प्रयोग किया है। श्रव्य-बिंब उनकी कविताओं में हमें कुछ इस तरह बंदूकों की धाँय-धाँय, सियारों की हुआँ-हुआँ, भागते पैरों की आहटें, पुलिस के सायरन आदि दिखाई देते हैं। मुक्तिबोध के 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित कविता में प्रयुक्त श्रव्य-बिंब का उदाहरण द्रष्टव्य है-

''पिछ्वाड़े, ढ़ेरों में खड़खड़
कोई गड़बड़
सर-सर करता छत चढ़ा,
फाँदकर दीवार बढ़ा
वह नाग।''[7]

अपनी प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' के माध्यम से मुक्तिबोध ने श्रव्य-बिंब का सशक्त रूप से प्रयोग किया है। अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण ये बिंब बहुत ही प्रभावकारी और अर्थसंपन्न बन गए हैं। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में श्रव्य-बिंब के प्रभावशाली प्रयोग को देखा जा सकता है-

''रात के दो है
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो
पास-पास आती हुई घहराती गूंजती
किसी रेलगाड़ी के पहियों की
आवाज।''[8]

एक अन्य ऐन्द्रिय बिंब घ्राण बिंब का प्रयोग भी मुक्तिबोध की कविताओं में परिलक्षित होता है। हालाँकि दृश्य-बिंब और श्रव्य-बिंब की अपेक्षा घ्राण बिंब का प्रयोग बहुत कम दिखाई देता है। लेकिन ये बिंब भी अपनी प्रभावशीलता में कमतर नहीं हैं। घ्राण बिंब का एक उदाहरण उनके काव्य में देखा जा सकता है-

''रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु-गंभीर महान् अस्तित्व
महकता है लगातार
मानो खँडहर-प्रसारों में उद्यान
गुलाब-चमेली के, रात्रि-तिमिर में
महकते हों, महकते ही रहते हों हर पल।''[9]

दृश्य-बिंब, श्रव्य-बिंब एवं घ्राण बिंब के अलावा मुक्तिबोध के काव्य में संश्लिष्ट बिंबों की सफल सर्जना परिलक्षित होती है। उन्होंने संश्लिष्ट बिंबों के साथ-साथ दृश्य और श्रव्य बिंबों को मिलाकर प्रयोग किया है जिससे ये बिंब काव्य को प्रभावी बनाने में सफल रहे हैं। मुक्तिबोध ने इन बिंबों को सूक्ष्म प्रसंगों, स्थितियों और घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। संश्लिष्ट-बिंब निर्माण-कला का उदाहरण मुक्तिबोध की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

''सूनापन सिहरा
अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की।''[10]

संश्लिष्ट बिंब का एक अन्य प्रभावशाली उदाहरण द्रष्टव्य है-

''चांटे से कनपटी टूटी कि अचानक
त्वचा उखड़ गई गाल की पूरी।
कान में भर गई
भयानक अनहद-नाद की भन-भन
आँखों में तैरीं
रक्तिम तितलियाँ, चिनगियाँ नीली।''[11]

उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर मुक्तिबोध के काव्य के बिंब-विधान का विश्लेषण करते हुए कहा जा सकता है कि उनका बिंब-बिधान सौंदर्यमूलक एवं संगीतात्मकता से युक्त नहीं था। उनका बिंब विधान आंतरिक मन की प्रेरणा की उपज है। डॉ. इंद्रनाथ मदान उनके बिंब-विधान को कुछ इस तरह से परिलक्षित किया है, वे लिखते हैं-

''मुक्तिबोध का संपूर्ण बिंब-विधान कविता में अलंकार के स्तर पर नहीं, बल्कि सृजन के स्तर पर है। यह उनकी आंतरिक विवशता का परिणाम है। बरगद की घनघोर शाखाओं की गठित अजगरी मेहराव, टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी, हड़ताली अक्षर, संवलायी चांदनी, जिंदगी भूरी नहीं खाकी है-इनमें बिंब अपने को बिंबित नहीं करता, कुछ और करता है, जिससे परिचित होकर कविता की राह से गुजरा जा सकता है।''[12]

मुक्तिबोध के उपर्युक्त काव्य पंक्तियों के विवेचन आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध की कविता बिंबधर्मी कविता है। उनके बिंब प्राचीन परम्परावादी नहीं बल्कि उन्होंने अपने बिंबों को नया स्वरूप प्रदान किया जो सौंदर्यात्मक एवं संगीतात्मक न होकर गहरे सामाजिक-राजनीतिक आशय को प्रतीकात्मक स्तर पर परिलक्षित करते हैं।

संदर्भ:

1. मुक्तिबोध रचनावली-5, पृ. 273
2. वही, पृ. 238
3. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ. 53
4. वही, पृ. 264
5. वही, पृ. 38
6. वही, पृ. 45
7. वही, पृ. 140
8. वही, पृ. 261
9. वही, पृ. 270
10. वही, पृ. 256
11. वही, पृ. 282
12. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, गजानन माधव मुक्तिबोध (सं. लक्ष्मण गौतम), पृ. 108

‘महाप्रस्थान’ में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना

डॉ० धर्मा रावत

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय(सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी के आधुनिक कवियों में नरेश मेहता काफी महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। आधुनिकता का मूल लक्ष्य मूल्यों की खोज रहा है। नरेश मेहता के काव्य में भी यही लक्ष्य दिखायी देता है। नरेश मेहता एक ऐसे कवि हैं जिन्हें भारतीय परंपरा का गहरा ज्ञान था। परंपरा के स्तर पर कई मूल्य उनके सामने उपस्थित थे। नरेश मेहता इन मूल्यों का परीक्षण अपने समय के आलोक में करते हैं और तदनुरूप उन्हें परिवर्धित-परिवर्तित करते चलते हैं। वे परंपरा को नकारने का उतावलापन नहीं दिखाते। उसके सकारात्मक मूल्यों को स्वीकार भी करते चलते हैं।

नरेश मेहता के काव्य में जिन मूल्यों के प्रति सचेतता दिखाई देती है उनमें एक महत्त्वपूर्ण अनुषंग राजनीतिक मूल्य है। वस्तुत: नरेश मेहता गहरे राजनीतिक बोध के कवि हैं। एक आधुनिक कवि होने के नाते उनके काव्य में राजनीतिक बोध का उपस्थित होना जरूरी भी लगता है। जो मध्ययुगीन समाज था वहाँ जीवन की नियामक शक्ति धर्म था। आधुनिक काल में धर्म का स्थान राजनीति ने ले लिया।

नरेश मेहता आधुनिक राजनीति के स्वरूप की पहचान रखनेवाले कवि हैं। उनके काव्य में मिथकीय स्तर पर आख्यान का सहारा लेते हुए आधुनिक राजनीति के स्वभाव और चरित्र का उद्घाटन किया गया है। इसके लिए उन्होंने रामायण और महाभारत की आख्यानपरक कथा का रचनात्मक उपयोग किया है। मुख्य रूप से उन्होंने अपनी रचनाओं संशय की एक रात, प्रवादपर्व और महाप्रस्थान में राजनीति को विषय बनाया है।

‘महाप्रस्थान’ में नरेश मेहता ने महाभारत की कथा का आश्रय लिया है। इसके माध्यम से उन्होंने राजनीति और राजव्यवस्था के प्रश्न पर गंभीर और विशद विचार किया है। अपनी इस रचना में वे मनुष्य के दुखों का आधार राज्य और राज्य-व्यवस्था को मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि राज्य को असीम शक्ति से संपन्न नहीं होना चाहिए। उनके मत से यदि राज्य-व्यवस्था समाज का प्रतिनिधित्व करने लगे तो पृथ्वी एक विशाल कारागार बन जाएगी। महाप्रस्थान में वे लिखते हैं-

“जिस दिन राज्य-व्यवस्था ही
संपूर्ण समाज
और मानवता का
प्रतिनिधित्व करने लगेगी-
विश्वास करो
यह पृथिवी
एक विशाल कारागार में परिणत हो जाएगी।”[1]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से हम देख सकते हैं कि नरेश मेहता यह मानते हैं कि जब राज्य-व्यवस्था निरंकुश हो जाती है तो अमानवीय हो जाती है। ऐसे में वह मनुष्य की स्वतंत्रता का हनन करती है और उसे अस्मिता-रहित कर देती है। इसलिए राज्य-व्यवस्था पर एक अंकुश भी आवश्यक होता है।

‘महाप्रस्थान’ के मुख्य चरित्र युधिष्ठिर हैं। युधिष्ठिर के माध्यम से नरेश मेहता राज्य-व्यवस्था संबंधी अपने चिंतन को प्रकट करते हैं। इस रचना में युधिष्ठिर यह मानते हैं कि मनुष्य की दुखपूर्ण और कष्टपूर्ण स्थिति के लिए राज्य-व्यवस्था ही उत्तरदायी है।

वे मानते हैं कि एक अन्यायी राजा का अंत व्यक्ति कर सकता है। किन्तु, उनका विचार है कि भविष्य में राज्य राजा से कहीं अधिक शक्तिशाली और कठोर हो जाएँगे और राज्य-व्यवस्थाएँ राज्य से भी अधिक षडयंत्रकारी हो जाएँगी और ऐसा होकर वे बहुत अमानवीय हो जाएँगी। वे कहते हैं-

"आज, नहीं तो कल
राजा से अधिक कठोर हो जाएँगे
ये राज्य-
और सुदूर भविष्य में
राज्य से भी अधिक अमानवीय हो जाएँगी
ये राज्य-व्यवस्थाएँ।
इनके दो आधार स्तम्भों-
युद्ध और आतंक
जिनका शिलान्यास
मनुष्य की आदिम प्रवृतियाँ
बारम्बार करती आयी हैं
एक दिन
युद्ध और आतंक ही
सामाजिकता के पर्याय बन जाएँगे।"[2]

नरेश मेहता यह मानते हैं कि ऐसी अमानवीय संस्थाओं पर प्रश्नचिह्न और अंकुश लगाने का काम दर्शन, धर्म और मानव प्रज्ञा करती आयी है। उनका मानना है कि सबसे बड़ा मूल्य धर्म होता है और धर्म का स्रोत राजसत्ता या राज्य-व्यवस्था नहीं होती बल्कि मानवीय विवेक होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि हमारी परंपरा भी राजनीति पर धर्म के अंकुश की पक्षधर है। इस धरातल पर नरेश मेहता परंपरा से एक महत् मूल्य का ग्रहण करते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु ऐसा करते हुए परंपरा के साथ वे आधुनिकता का समन्वय करते हैं। यह समन्वय इस रूप में है कि वे धर्म का स्रोत राज्य को नहीं मानते, बल्कि मानव-प्रज्ञा को मानते हैं। परंपरा के अनुसार राजा ही धर्मपालक होता है। किन्तु इस विचार को नरेश मेहता नहीं मानते। वे अपना मत अर्जुन और युधिष्ठिर की बातचीत के माध्यम से रखते हैं। 'महाप्रस्थान' में जब अर्जुन यह कहता है कि राजा धर्म का प्रतिपालक होता है तो युधिष्ठिर उससे चेतावनी के स्वर में कहते हैं-

"यह सबसे खतरनाक दर्शन है पार्थ!
क्रूरताओं और षड्यंत्रें के प्रतीक
राजा और राज्य
मानवीय उदात्तताओं और करुणा के प्रतीक
धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते।
पार्थ!
किसी कपोल-कल्पित कथा में भी
सिंह ने संन्यास ग्रहण नहीं किया।"[3]

वस्तुत: नरेश मेहता व्यक्ति और उसके मानवीय विवेक को राज्य और राज्य-व्यवस्था की तुलना में अधिक प्रश्रय देते हैं। वे मानते हैं कि ऐसी स्थिति में ही मनुष्य समाज प्रज्ञा और करुणा से संपन्न होगा जो एक स्वस्थ समाज और कल्याणकारी व्यवस्था के लिए आवश्यक है। उनका मत है कि यदि राज्य व्यक्ति और समाज के बीच में संबंध-सूत्र का काम करेगा तो मनुष्य का कल्याण असंभव

है क्योंकि राज्य-व्यवस्था व्यक्ति के दमन पर अपना स्वरूप ग्रहण करती है। सत्ता का स्वरूप ही विध्वंसकारी होता है जबकि आम मनुष्य सृजनकर्त्ता होता है। वे लिखते हैं-

ष्एक साधारण जन पृथिवि पर
हल की रेख से धन धान्य का भाषाग्रन्थ रचता है
जबकि सत्ताधारी पृथिवि पर
रथ की रेख से रक्तस्नात इतिहास लिखता है।
उसे तो चारों ओर
विद्रोह और षडयंत्र की गंध आती है,
और तब प्रत्येक बस्ती में
राज्य का अप्रतिम कारागार निर्मित होता जाता है।"[4]

इस तरह से हम देख सकते हैं कि युधिष्ठिर के माध्यम से नरेश मेहता साधारण मनुष्य को राज्य से अधिक महत्त्व देते हैं। वे उस व्यवस्था को अमानवीय मानते हैं जिसमें व्यक्ति से अधिक ताकतवर राज्य हो जाता है-

"राज्य के
अकूत शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना।
राज्य की गरिमा को
व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो।
किसी भी व्यवस्था का
व्यक्ति से बड़े हो जाने का अर्थ होगा
अमानवीय तंत्र।"[5]

वस्तुतः साधारण मनुष्य की पक्षधरता का तात्पर्य लोकतांत्रिक-व्यवस्था की पक्षधरता से है। प्रजातंत्र आधुनिक काल का एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मूल्य है। नरेश मेहता अपनी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'संशय की एक रात' में प्रजातंत्र को एक अनिवार्य राजनीतिक मूल्य बताते हैं। वे मानते हैं कि अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद प्रजातंत्र काम्य है क्योंकि मानव-कल्याण इसी के माध्यम से संभव है। 'संशय की एक रात' के केंद्रीय चरित्र राम सारे मूल्यों को संशय से देखते हैं किन्तु लोकतंत्र के सामने वे भी झुक जाते हैं। अपनी रचना 'प्रवादपर्व' में भी नरेश मेहता लोकतंत्र का पक्ष लेते हैं। इस कृति में राम मनुष्य की स्वतंत्रता की वकालत करते हैं। यहाँ वे न्याय के शासन की बात करते हैं। अपनी लोकतांत्रिक दृष्टि के कारण ही नरेश मेहता विश्वभर के लोकतांत्रिक संघर्षों पर दृष्टि रखते हैं। वे दक्षिण अफ्रीका के स्वतंत्रता-संघर्ष को लक्षित करते हुए लिखते हैं-

"किस-किसको सीखचों में बन्दी बनाओगे?
दुनिया की हर नदी
ध्रुवों के बीच सपाटे मारते सारे सागर
आकाश उठाये पर्वतों से लेकर
सातों द्वीपों के तमाम जंगल
उनके एक-एक पेड़
एक-एक पौधे
हवा
आकाश

किसका नाम नहीं हैं आज

मंडेला!!

हर नया बच्चा

पैदा होते ही

अपना पहला रोना शुरू करने के पहले

लेता है सिर्फ एक नाम

मंडेला!!

बताओ, किस-किस को सीखचों में बन्दी बनाओगे?"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरेश मेहता ने अपनी प्रबंधात्मक रचना महाप्रस्थान में अपनी राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है और वे लोकतंत्र के पक्ष में मजबूती से खड़े नजर आते हैं।

संदर्भ

1. नरेश मेहता, महाप्रस्थान, समिधा (खण्ड-2), पृ. 333
2. वही, पृ. 325
3. वही, पृ. 327
4. वही, पृ. 331
5. वही, पृ. 328
6. नरेश मेहता, देखना एक दिन, समिधा (खण्ड-2), पृ. 181

पक्षियों का प्रवास एक विकट समस्याः एक विश्लेषण

तबस्सुम आरा

पी.एच.डी., भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

प्रत्येक वर्ष प्रवासी पक्षियों को प्रजनन और शीतकालीन आवास स्थलों के बीच यात्रा करते समय अनेक खतरों का सामना करना पड़ता है।

प्रवास पक्षी के जीवन चक्र का एक खतरनाक हिस्सा है, जिसमें कई समझौते होते हैं; पक्षियों को बेहतर गुणवत्ता वाले आवासों में शीतकाल बिताने और प्रजनन से लाभ मिलता है, लेकिन इसके बदले उन्हें शिकार का अधिक जोखिम उठाना पड़ता है और ऊर्जा का अधिक व्यय करना पड़ता है।

प्रवास के दौरान होने वाले खतरों में इमारतों पर कांच की खिड़कियों और रेलिंग, बिजली की लाइनों और संचार टावरों जैसी मानव निर्मित वस्तुओं से टकराव, पालतू और जंगली घरेलू बिल्लियों द्वारा शिकार, वाहनों से टकराव और पक्षियों के लिए ईंधन भरने के लिए रुकने के लिए आवास की कमी शामिल है। आम धारणा के विपरीत, पवन टर्बाइनों से टकराव पक्षियों की मृत्यु दर के अन्य प्राथमिक स्रोतों की तुलना में अपेक्षाकृत कम अनुपात का प्रतिनिधित्व करता है। भुखमरी का खतरा तब बढ़ जाता है जब जलवायु परिवर्तन या विकास या कृषि के लिए आवास के नुकसान के कारण रुकने की जगहें खो जाती हैं। प्रजनन और सर्दियों के मैदानों दोनों पर मृत्यु दर समान कारणों से बढ़ सकती है।

मूल शब्दः प्रवास, पक्षी, प्रवासी पक्षी, जीवन चक्र, मौसमी परिवर्तन, प्रजनन,

प्रस्तावना

हमारी दुनिया जैव विविधता से भरी हुई है, हम अपने आस-पास विभिन्न प्रकार के पक्षियों, जानवरों और पौधों को देख सकते हैं। जानवरों और पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ हैं जो जीवित रहने और जीवन चक्र को चालू रखने के लिए विभिन्न रणनीतियों का उपयोग करती हैं। पक्षियों द्वारा अपनाई जाने वाली ऐसी ही एक रणनीति को प्रवास कहा जाता है। प्रवास बड़े समूहों में पक्षियों का एक नियमित मौसमी आंदोलन है।

प्रवासी पक्षियों के मामले में ऐसा तब होता है जब उन्हें अपना घर छोड़कर किसी दूसरी अनुकूल जगह पर जाना पड़ता है और इसके लिए उन्हें एक लंबी यात्रा करनी पड़ती है जिसमें इस बात की कोई गारंटी नहीं होती कि वे वापस लौट पाएंगे या नहीं लेकिन अगर वे प्रवास नहीं करते हैं, तो उस स्थिति में भी उनका जीवित रहना संभव नहीं है, इसलिए वे किसी भी स्थिति में प्रवास कर ही लेते हैं।

प्रवासन क्या है?

पक्षियों का प्रवास सबसे आकर्षक घटनाओं में से एक है, जिसमें पक्षी जीवित रहने के लिए अनुकूल परिस्थितियों और बढ़े हुए संसाधनों की तलाश में एक निवास स्थान से दूसरे निवास स्थान की यात्रा करते हैं और इसमें मूल स्थान पर वापस लौटने की

यात्रा भी शामिल होती है। यह मौसमी परिवर्तन या प्रजनन और गैर-प्रजनन स्थानों के बीच आवागमन के दौरान भी होता है। प्रवास एक आसान प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि पक्षियों को अपने गंतव्य तक पहुँचने के लिए लंबी दूरी तय करनी होती है और इन यात्राओं के दौरान उन्हें बहुत अधिक ऊर्जा, भोजन, पानी, पर्याप्त आराम आदि की आवश्यकता होती है और सभी प्रवास यात्राएँ सफल नहीं होती हैं और कुछ पक्षी इन यात्राओं में मर भी जाते हैं।

प्रवासी पक्षी क्या हैं?

वे पक्षी जो प्रजनन, भोजन और अपने बच्चों को पालने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते हैं, उन्हें प्रवासी पक्षी कहा जाता है। वे आमतौर पर प्रतिकूल स्थानों से कुछ अनुकूल स्थानों पर प्रवास करते हैं, जहाँ उपयुक्त परिस्थितियाँ, पर्याप्त भोजन और पानी के संसाधन और सुरक्षित भी होते हैं। अधिकांश पक्षी प्रजनन के मौसम के दौरान प्रवास करते हैं और अन्य भोजन के संसाधनों और मौसम में बदलाव के कारण प्रवास करते हैं।

प्रवासी पक्षियों के प्रकार

प्रवासी पक्षियों के प्रकार का अंदाजा उनके द्वारा अपनाए गए प्रवास के प्रकार से लगाया जा सकता है, जिसे निम्नलिखित से स्पष्ट किया जा सकता है:

- मौसमी प्रवास: यह मौसम में परिवर्तन के साथ होता है। पक्षी तब एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं जब वे कठोर परिस्थितियों में जीवित नहीं रह पाते।
- अक्षांशीय या देशांतरीय: इस प्रकार का प्रवास विभिन्न अक्षांशीय या देशांतरीय स्थानों के बीच होता है। या तो उत्तर से दक्षिण या पूर्व से पश्चिम या इसके विपरीत।
- ऊंचाई संबंधी: यह आमतौर पर उन पक्षियों के साथ होता है जो ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बच्चे देते हैं, और जब उन्हें वहां की कठोर परिस्थितियों के कारण फिर से पलायन करना पड़ता है।
- लूप: जो पक्षी इस प्रकार के प्रवास का अनुसरण करते हैं, वे पक्षी आमतौर पर दो स्थानों के संसाधनों का आनंद लेने के लिए बार-बार एक चक्र में वार्षिक प्रवास करते हैं।
- खानाबदोश: सटीक पैटर्न और उनके समय को समझना आसान नहीं है, वे तब तक एक स्थान पर रहते हैं जब तक पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं हो जाते अन्यथा वे पलायन कर जाते हैं।
- लीपफ्रॉग: यह एक प्रकार का स्किप माइग्रेशन है जिसमें पक्षी एक स्थिर आबादी को छोड़कर लंबी दूरी तक प्रवास करते हैं।
- विपरीत: पक्षियों में विचलन तब देखा जाता है जब वे भ्रमित होकर अप्रत्याशित रास्ता चुन लेते हैं और विपरीत दिशा में चले जाते हैं।

प्रवासी पक्षियों की विशेषताएं

- इन पक्षियों की शारीरिक संरचना अच्छी होती है, जिसके कारण वे तेजी से उड़कर तथा विभिन्न चीजों का अवलोकन करके लंबी दूरी तय कर सकते हैं।
- उनमें चीजों को अच्छी सटीकता से नेविगेट करने की क्षमता होती है। वे सूर्य, सितारों, पृथ्वी के चुंबकत्व आदि का उपयोग करते हैं।
- वे जानते हैं कि कब पलायन करना है और कब वापस लौटना है। अपने विशिष्ट कारणों से, वे दूर-दराज के स्थानों पर पलायन करने में संकोच नहीं करते।
- वे 16000 मील तक उड़ सकते हैं और कुछ पक्षी अपने गंतव्य तक पहुंचने के लिए 30 मील प्रति घंटे की गति से उड़ते हैं। इस गति से, वे 533 घंटों में पहुंच सकते हैं जबकि यदि वे प्रतिदिन 8 घंटे के आधार पर उड़ते हैं, तो वे 66 दिनों में अंतिम गंतव्य तक पहुंच सकते हैं।

- वे अलग-अलग गति और अलग-अलग ऊंचाई पर उड़ते हैं। कुछ पक्षी कम ऊंचाई पर उड़ते हैं जहाँ हम उन्हें देख सकते हैं जबकि कुछ पक्षी अधिक ऊंचाई पर भी उड़ते हैं जैसे कि सॉन्ग बर्ड जो 500 से 2000 फीट की ऊंचाई पर उड़ते हैं जबकि अगर हम गीज या गिद्धों की बात करें तो वे 29,000 से 37,000 फीट की ऊंचाई पर उड़ते हैं।
- प्रवास से पहले वे अपने शरीर का वजन बढ़ाकर या भोजन का भंडार बनाकर खुद को यात्रा के लिए तैयार करते हैं।
- विभिन्न पक्षी अलग-अलग समय पर प्रवास करते हैं, लेकिन अधिकांश पक्षी रात में उड़ना पसंद करते हैं, क्योंकि आमतौर पर रात का समय उनके लिए अधिक सुरक्षित होता है, क्योंकि उस समय शिकारियों की संख्या कम होती है या रात में ठंडी हवा होती है, जिससे वे आसानी से उड़ सकते हैं और आराम कर सकते हैं।
- वे अपनी वापसी की तैयारी भी करते हैं, क्योंकि लंबी दूरी की यात्रा में अपनी पूरी ऊर्जा समाप्त हो जाने के बाद, उन्हें आमतौर पर भूख लगती है और उन्हें भोजन और पानी की आवश्यकता होती है।

पक्षी प्रवास क्यों करते हैं?

इसके कई कारण हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं:

- भोजन उनके प्रवास का एक प्रमुख कारण है। यदि वे सभी एक ही स्थान पर रहते हैं तो प्रजनन के समय भोजन समाप्त हो जाएगा और भोजन की कमी हो जाएगी और इस प्रकार प्रजनन कम सफल होगा। इस प्रकार, वे भोजन-प्रचुर क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं।
- घोंसले के मौसम के दौरान, भोजन की कमी से न केवल वयस्क पक्षी प्रभावित होंगे, बल्कि बड़ी संख्या में शिकारी भी आकर्षित होंगे, क्योंकि वे उनके लिए आसान भोजन बन जाएंगे।
- पक्षी आमतौर पर अपने परिवार के लिए या हम कह सकते हैं कि स्वस्थ प्रजनन के लिए प्रवास करते हैं। उन्हें अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए हमेशा स्वस्थ परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। ये परिस्थितियाँ विभिन्न प्रजातियों पर निर्भर करती हैं जैसे भोजन के स्रोत, मौसम, आवास, पर्याप्त आश्रय, प्रजनन कॉलोनियाँ, सुरक्षा, आदि।
- दूसरा कारण जलवायु परिस्थितियों में बदलाव हो सकता है। इन परिस्थितियों में कोई भी गंभीर बदलाव उनके प्रवास का कारण बन सकता है क्योंकि इससे उनके लिए कठोर परिस्थितियों में जीवित रहना मुश्किल हो जाता है, चाहे वह बहुत ज्यादा गर्म हो या बहुत ज्यादा ठंडा।
- वे खुद को और अपनी संतानों को शिकारियों और बीमारियों से बचाने के लिए भी पलायन कर सकते हैं। वे आम तौर पर उन जगहों पर पलायन करते हैं जो शिकारियों के लिए दुर्गम हैं।

पक्षी प्रवास कैसे करते हैं?

- वे यात्रा के लिए विभिन्न शारीरिक अनुकूलन करते हैं, जैसे यात्रा के दौरान अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करने के लिए अतिरिक्त वसा का निर्माण करना।
- प्रवास से पहले अपने शरीर का वजन बढ़ाकर भोजन और पानी का भंडार बनाए रखना, वजन बढ़ने की इस घटना को हाइपरफेजिया के रूप में जाना जाता है और बहुत सारे पक्षी इस घटना का अनुभव करते हैं।
- वे अपनी उड़ान को आसान बनाने के लिए अपने पुराने पंख भी उतार देते हैं, ताकि उड़ने में कम ऊर्जा लगे।
- वे अपनी ऊँचाई भी बदलते थे। वे तेज और तेज यात्रा के लिए अधिक ऊँचाई पर उड़ते थे।
- वे अपने उड़ने के व्यवहार में भी बदलाव करते हैं। कभी-कभी जो पक्षी दिन में उड़ते थे, वे प्रवास के दौरान रात में उड़ते हैं।
- कभी-कभी वे वी आकार में भी उड़ते हैं या हम कह सकते हैं कि वे एक समूह में उस नेता का अनुसरण करते हैं जिसे अधिक अनुभव होता है और यह पैटर्न यात्रा को बहुत आसान बना देता है।

प्रवासी पक्षी-अपने आवास से बाहर जीवित रहना

वे पक्षी जो प्रजनन, भोजन और अपने बच्चों को पालने के लिए एक प्रतिकूल स्थान से दूसरे अनुकूल स्थान पर प्रवास करते हैं, उन्हें प्रवासी पक्षी कहा जाता है। वे ऐसे स्थानों पर प्रवास करते हैं जहाँ अच्छी जलवायु परिस्थितियों के साथ प्रचुर मात्रा में भोजन

और पानी के संसाधन होते हैं। वे यात्रा के लिए अलग-अलग शारीरिक अनुकूलन करते हैं जैसे कि अतिरिक्त वसा की आपूर्ति का निर्माण करना और प्रवास से पहले अपने शरीर का वजन बढ़ाकर भोजन और पानी का भंडार बनाए रखना।

प्रवासी पक्षी अपनी उड़ान को आसान बनाने के लिए अपने पुराने पंख उतार देते हैं और दूसरी ओर, वे अपने व्यवहार में भी बदलाव करते हैं। वे अपनी उड़ान के व्यवहार में बदलाव के साथ-साथ तेज और तेज यात्रा के लिए अधिक ऊँचाई पर उड़ते हैं। कभी-कभी वे पक्षी जो दिन में उड़ते थे, प्रवास के दौरान रात में उड़ते हैं। कभी-कभी वे ट पैटर्न में या हम कह सकते हैं कि एक समूह में भी उड़ते हैं जिससे यात्रा बहुत आसान हो जाती है। प्रवासी पक्षियों के कुछ उदाहरण और नाम हैं ब्लैक-हेडेड गूल, ग्रीन सैंडपाइपर, नॉर्दर्न लैपिंग, यूरेशियन हॉबी, ग्रे हेरॉन, साइबेरियन क्रेन या ग्रेटर फ्लेमिंगो आदि।

प्रकाश प्रदूषण का प्रवास पर असर

जबकि लंबी दूरी के प्रवासी पक्षी अपने निवास-स्थलों का उपयोग दिन में करते हैं, कई पक्षी वास्तविक दूरी अंधेरे की आड़ में तय करते हैं।

रात में प्रवास करने की यह रणनीति- जब शिकारी कम होते हैं, हवाएँ अनुकूल होती हैं, और ठंडी नम हवा होती है जो **पानी की हानि को कम करती है-** सहस्राब्दियों से पक्षियों के लिए बहुत बढ़िया काम करती रही है। साफ रातों में, रात्रि प्रवास का एक अतिरिक्त लाभ यह था कि पक्षियों को नेविगेशन सहायता के रूप में तारों वाले आकाश का उपयोग करने की अनुमति मिलती थी।

लेकिन पिछली सदी में पक्षियों का तारों वाला दृश्य फीका पड़ गया है। दुनिया की लगभग एक तिहाई मानव आबादी ऐसी जगहों पर रहती है जहाँ से वे अब आकाशगंगा नहीं देख सकते हैं, और प्रकाश प्रदूषण हर साल लगभग 2% की दर से बढ़ रहा है। इसके बजाय, पृथ्वी पर अलग-अलग तरह के नक्षत्र उभर आए हैं- अरबों कृत्रिम रोशनी नीचे से चमकती हुई ऊपर के दृश्य को धुंधला कर देती हैं।

2015 के एक अध्ययन में पाया गया कि पक्षियों के लिए सामूहिक मृत्यु की घटनाओं में 1940 से 2000 तक वृद्धि हुई है, जिसमें मौसम संबंधी घटनाएं सबसे आम कारण हैं। और मौसम खराब होता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल की 2018 की रिपोर्ट बताती है कि कैसे बदलती जलवायु दुनिया भर में अधिक तीव्र मौसम संबंधी घटनाओं का कारण बन रही है- अधिक तीव्र बारिश और बर्फबारी की घटनाएं, अधिक सूखा, अधिक बाढ़, अधिक गर्मी की लहरें, अधिक तूफानी लहरें।

और यह सिर्फ गंभीर मौसम की घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि जलवायु परिवर्तन की तेजी से बढ़ती तस्वीर है जो लंबी दूरी के पक्षियों के प्रवास को तबाह करने के लिए तैयार है। 24 साल के रडार डेटा का उपयोग करके 2019 में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि सभी पक्षी प्रजातियों में वसंत प्रवास हर दशक में लगभग दो दिन पहले हो रहा है।

प्रवासी पक्षियों के खतरे और संरक्षण

जब पक्षी एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते हैं तो उनके लिए कई खतरे हो सकते हैं। इन लंबी दूरी की यात्राओं को तय करने में बहुत ऊर्जा लगती है। प्रमुख खतरों में थकावट, भुखमरी, चोट लगना, शिकारियों या शिकारियों से खतरा, बीमारियाँ, प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाएँ या आपदाएँ आदि शामिल हैं।

उनके संरक्षण के लिए, हमारे पास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ब्डै अर्थात प्रवासी प्रजातियों पर कन्वेंशन है, जो बॉन कन्वेंशन के रूप में भी प्रसिद्ध है, जिसका उद्देश्य प्रवासी प्रजातियों जैसे प्रादेशिक, पक्षी या समुद्री को उनकी संपूर्ण सीमाओं में संरक्षित करना है और सभी देश उनके संरक्षण के लिए एक-दूसरे के साथ समन्वय करते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पक्षियों का प्रवास आसान काम नहीं है, लेकिन पक्षियों के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। उन्हें जीवित रहने और अपने बच्चों को पालने के लिए अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, जिसके लिए वे लंबी यात्राएँ करते हैं जो उनके लिए थकाऊ होती हैं और इन यात्राओं में उन्हें सीमाओं को पार करना पड़ता है, जिससे उनके लिए और अधिक समस्याएँ और खतरे पैदा हो सकते हैं और जिसके लिए हर देश को उनके लिए संरक्षण उपाय अपनाने चाहिए।

निष्कर्ष

पक्षियों को हर जगह देखा जा सकता है, फिर चाहे वह शहरी इलाके हों, या फिर ग्रामीण क्षेत्र। पक्षियों को पार्क से लेकर जंगलों, पहाड़ों, और आर्द्रभूमि और तटों के आसपास देखा जा सकता है। कुछ पक्षी ऐसे भी हैं, जिनकी गतिविधियां और व्यवहार मौसमी बदलावों की पहचान भी कराती हैं।

अधिकांश पक्षी कभी भी एक जगह नहीं ठहरते, और बदलते मौसम के अनुरूप से वे एक से दूसरे राज्य में प्रवास करते रहते हैं। पक्षियों की कई प्रजातियां तो ऐसी हैं, जो हजारों मील का सफर तय करके दूसरे देश पहुँच जाती हैं। इसके अलावा, पक्षी अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए सर्वोत्तम परिस्थितियों और आवास की तलाश में सैकड़ों और हजारों किलोमीटर का सफर तय करते हैं।

जो पक्षी वर्षा के पहले घोंसले बनाते हैं वे अकसर घास वाले, सपाट मैदान का चुनाव करते हैं। वर्षा के कारण जब जमीन पर कीड़ेमकोड़े, इल्ली आदि पैदा हो जाते हैं, कुछ पक्षी तब अंडे देते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं ताकि उन के बच्चों के लिए आसानी से भोजन उपलब्ध हो सके। गिद्ध, चील, बाज आदि पक्षी (जो अपने शिकार पर अचानक आक्रमण करते हैं) ठंड के मौसम में अंडे देते हैं तथा वसंत ऋतु तक उन के बच्चे उड़ने लायक हो जाते हैं।

प्रवास के लिए प्राथमिक प्रेरणा भोजन और प्रजनन स्थल हैं। सर्दियों में, कीड़े और अन्य खाद्य पदार्थ उत्तर में मिलना अधिक कठिन होता है, इसलिए पक्षी दक्षिण की ओर अधिक अनुकूल आवासों की ओर जाते हैं। वसंत और गर्मियों में, जब प्रजनन का समय होता है, तो पक्षी अपने प्रजनन क्षेत्रों को खोजने के लिए फिर से उत्तर की ओर यात्रा करते हैं।

प्रवासी पक्षी सर्दियों में अपने प्रजनन क्षेत्रों में कम तापमान और भोजन की कमी के कारण ध्रुवीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों से दूर चले जाते हैं। वसंत प्रवास के दौरान, पक्षी भोजन की अस्थायी अधिकता का फायदा उठाने के लिए अपने प्रजनन स्थलों पर लौट आते हैं, जिससे उन्हें अधिक बच्चे पैदा करने में मदद मिलती है।

प्रवासी पक्षियों की कई आबादी गंभीर रूप से कम हो रही है। इसके लिए मानवजनित कारणों में वनों की कटाई और आवास की हानि, शिकार, कीटनाशकों का उपयोग, शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं। प्रक्रियाओं और खतरों की पहचान और समझ हमें इन प्रजातियों के लिए प्रभावी प्रबंधन और संरक्षण रणनीतियों को लागू करने की अनुमति दे सकती है।

प्रवासी पक्षी जलवायु परिवर्तन से गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं क्योंकि वे अपने शीतकालीन क्षेत्रों से वसंत के मौसम में बदलावों का आकलन नहीं कर सकते हैं।

पक्षी अपने शीतकालीन आवासों को तब तक नहीं छोड़ सकते जब तक कि उनके पास अपनी प्रवास यात्रा का समर्थन करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा और वसा भंडार न हो, और चूंकि जल्दी पहुंचने वाले पक्षियों को आमतौर पर सबसे अच्छे संसाधन मिलते हैं, इसलिए अधिकांश प्रजातियों को जल्दी पहुंचने और जल्दी प्रस्थान के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। लुप्त होते प्रवास स्थल, अधिक गगनचुंबी इमारतें, अधिक शक्तिशाली तूफान- प्रवासी पक्षियों के लिए द्विवार्षिक उड़ानें जोखिमपूर्ण होती जा रही हैं।

सन्दर्भ

1. बुस्किर्क, जे.वी., मुलविहिल, आर.एस., और लेबरमैन, आर.सी. (2012)। अकेले फेनोटाइपिक प्लास्टिसिटी एवियन माइग्रेशन टाइमिंग में जलवायु-प्रेरित परिवर्तन की व्याख्या नहीं कर सकती। पारिस्थितिकी और विकास, 2(10), 2430-2437।
2. न्यूटन, आई. (2006). क्या प्रवास के दौरान अनुभव की जाने वाली परिस्थितियाँ पक्षियों की जनसंख्या के स्तर को सीमित कर सकती हैं? जर्नल ऑफ ऑर्निथोलॉजी, 147(2), 146-166.
3. हुट्टो, आरएल (1988)। क्या उष्णकटिबंधीय वनों की कटाई नियोट्रॉपिकल प्रवासी आबादी में रिपोर्ट की गई गिरावट के लिए जिम्मेदार है संग्रहीत 2010-12-30 पर वेबैक मशीन। अमेरिकन बर्ड्स, 42, 375-379।
4. 'फाबॉर्ग, जे., लेवे, डीजे, जॉनसन, डीएच, होम्स, आरटी, एंडर्स, एडी, बिल्डस्टीन, केएल, एट अल. (2010). नई दुनिया में प्रवासी भूमि पक्षियों का संरक्षण: क्या हम पर्याप्त जानते हैं?. पारिस्थितिकी अनुप्रयोग, 20(2), 398-418.
5. फाल्जोन, एम.ए. (2008)। जुनूनी शिकार की उड़ान: माल्टा और भूमध्य सागर में पारिस्थितिकी और राजनीति। एंथ्रोपोलॉजी टुडे, 24(1), 15-20।

6. एलिस, जेआई, विल्हेम, एसआई, हेड, ए., फ्रेजर, जीएस, रॉबर्टसन, जीएफ, रेल, जेएफ, एट अल. (2013)। 'कनाडा में समुद्री वाणिज्यिक मत्स्य पालन और अपतटीय तेल और गैस उत्पादन से प्रवासी पक्षियों की मृत्यु दरष। एवियन कंजर्वेशन एंड इकोलॉजी, 8(2), 4-10.
7. कैट्री, पी., एन्कर्नाकाओ, वी., अरौजो, ए., फियरन, पी., फियरन, ए., आर्मेलिन, एम. और डेलालोये, पी. 2004. क्या लंबी दूरी के प्रवासी पैसेरिन अपने पड़ाव स्थलों के प्रति वफादार हैं? जर्नल ऑफ एवियन बायोल. 35, 170-/181.
8. लैंक, डीबी, और यडेनबर्ग, आरसी (2003)। प्रवासी पड़ावों पर मृत्यु और खतरा: 'शिकार जोखिम' से जुड़ी समस्याएं। जर्नल ऑफ एवियन बायोलॉजी, 34(3), 225-228।
9. वीज, एफ.के., मोंटेवेची, डब्ल्यू.ए., डेवोरेन, जी.के., ह्यूटमैन, एफ., डायमंड, ए.डब्ल्यू., और लिंके, जे. (2001)। 'उत्तर-पश्चिमी अटलांटिक में अपतटीय तेल प्लेटफार्मों के आसपास समुद्री पक्षी खतरे में हैं'। समुद्री प्रदूषण बुलेटिन, 42(12), 1285-1290।
10. बेसिली, जी.डी.; टेम्पल, एस.ए. (1999)। ष्वेनेजुएला में डिकसीसेल्स और फसल क्षति: पारिस्थितिक मॉडल के साथ समस्या को परिभाषित करनाष। पारिस्थितिकी . 9 (2): 732-739.
11. कॉक्स, सी. (1991). ष्कीटनाशक और पक्षी: डीडीटी से लेकर आज के जहर तकष। जर्नल ऑफ पेस्टिसाइड रिफॉर्म . 11 (4): 16.
12. 'लॉन्गकोर, टी., और रिच, सी. (2004)। पारिस्थितिकी प्रकाश प्रदूषण। द इकोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ अमेरिका, 2(4), 191-198।
13. क्लेम, डी. (1990)। पक्षियों और खिड़कियों के बीच टकराव: मृत्यु दर और रोकथाम 3 जनवरी 2014 को वेबैक मशीन पर संग्रहीत। जर्नल ऑफ फील्ड ऑर्निथोलॉजी, 61(1), 120-128।
14. स्मिथ, रीड ए.; गैग्ने, मैरीस; फ्रेजर, केविन सी. (जनवरी 2021)। 'रात में प्रवास से पहले कृत्रिम प्रकाश एक ट्रांस-हेमिस्फेरिक प्रवासी गीत पक्षी के वसंत प्रवास समय को आगे बढ़ाता है'। पर्यावरण प्रदूषण। 269 : 116136. बिबकोड
15. लाओ, सिरेना; रॉबर्टसन, ब्रूस ए.; एंडरसन, अबीगैल डब्ल्यू.; ब्लेयर, रॉबर्ट बी.; एकल्स, जोआना डब्ल्यू.; टर्नर, रीड जे.; लॉस, स्कॉट आर. (जनवरी 2020)। 'रात में कृत्रिम प्रकाश और पक्षी-निर्माण टकराव पर ध्रुवीकृत प्रकाश का प्रभाव'। जैविक संरक्षण। 241 : 108358.
16. लॉस, स्कॉट आर.; विल, टॉम; लॉस, सारा एस.; मार्रा, पीटर पी. (2014-02-01)। 'संयुक्त राज्य अमेरिका में पक्षी-निर्माण टकराव: वार्षिक मृत्यु दर और प्रजातियों की भेद्यता का अनुमान'। कोंडोर। 116 (1): 8-23.

स्वतंत्रता संग्राम और डॉ. हेडगेवार

राकेश कुमार सिंह

हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के मूल में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति निहित थी। इस मुक्ति हेतु भारतीय जनमानस स्वधर्म, स्वदेशी, स्वभाषा, स्वराज की चेतना से अभिप्रेरित होकर प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष कर रहा था। इस संघर्ष में जनमानस ब्रिटिश सत्ता की नीतियों का विरोध आरम्भ से ही कर रहा था, लेकिन 1857 में यह संघर्ष लगभग राष्ट्रव्यापी हो गया। इस संघर्ष को भले ही अंग्रेजों ने दबा दिया हो लेकिन इसकी गूंज लम्बे समय तक बनी रही "यद्यपि अंग्रेजों ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को राजा-रजवाड़ों की बगावत कहकर नकार दिया, तथापि सत्य यह है कि इस देशव्यापी संग्राम के सेनानायकों ने भारत को एक युद्धस्थल बनाकर विदेशी तख्त को हिला दिया था। प्रत्येक पंथ, मजहब, क्षेत्र, जाति के लोगों ने एकजुटता का परिचय दिया। भारत में अंग्रेजों के अत्याचारी शासन के विरुद्ध 1857 में लड़े गए देशव्यापी सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम ने अंग्रेज शासकों के हिंदुत्व/भारत विरोधी कुटिल इरादों कों झकझोर कर रख दिया था। सात समुद्र पार से आए षंड्यंत्रकारी ईसाई-साम्राज्यवादियों की जड़ों को हिला देने वाले इस महास्वातत्र्य समर ने ही वास्तव में 1857 से 1947 तक लड़े गए स्वतंत्रत समर का शिलान्यास कर दिया था"।[1] फलस्वरुप स्वाधीनता की आकांक्षा अंततः प्रतिफलित हुई।

भारत में ऐसी कई स्वयंसेवी गैर सरकारी संगठन व संस्थाएं हैं जो भारतीय जन-जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, दार्शनिक कला आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं, लेकिन भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपनी संकल्पना में दूसरे संगठनों से अलग एक ऐसी स्वयंसेवी संस्था है, जिसमे स्वयंसेवक देश की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए प्रतिबद्ध होता है। संघ का लक्ष्य ऐसे ही स्वयंसेवकों का निर्माण है। डॉ. हेडगेवार का जन्म 1अप्रैल, 1889, वर्ष प्रतिपदा या हिंदू कैलेंडर (विक्रम संवत) के पहले दिन हुआ था।[2] एक बालक के दृढ़ संकल्प मौलिक विचार व देश के प्रति सर्वश्व समर्पण ने इनके जन्म की शुभ तिथि को नई पहचान दी। बालक केशव देखते ही देखते शीघ्र ही स्वाधीनता संघर्ष की महत्वपूर्ण कड़ी बन गए।आगे चलकर पूर्ण स्वाधीनता का दूरदर्शी विजन देने वाले संघ संस्थापक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक राष्ट्र के रूप में भारत का अस्तित्व और पहचान जल्द ही स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ गई। इसलिए डॉ. हेडगेवार ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में सहयोग के पक्षधर थे। संघ की स्थापना से पहले वे सशस्त्र क्रांतिकारियों से सक्रिय रूप से जुड़े थे और कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में इसके आंदोलनों में भी सक्रिय रूप से भाग लेते थे। फिर भी, एक खास विचारधारा के साथ एक नया संगठन बनाने और उसे अखिल भारतीय आंदोलन में बदलने के काम में खुद को झोंक देने के बाद भी उनके स्वभाव या दृष्टिकोण में कोई खास बदलाव नहीं आया। हेडगेवार की विनम्रता, व्यापक सोच और राष्ट्रहित के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में अद्वितीय है।[3]

संघ की शाखाएँ लोगों को व्यायामशाला या अखाड़े जैसी लग सकती हैं, लेकिन वास्तव में देशभक्ति की शिक्षा ही इसका मूल विषय था। शाखाओं में पहले से तय खेल, नियम, गीत और आंतरिक प्रवचनों में यह झलकता था। डॉ. हेडगेवार के लिए स्वराज भारत की सांस्कृतिक उन्नति के लिए एक आवश्यक शर्त थी। स्वराज पर उनके जोर देने से ही आरएसएस की स्थापना के पीछे के वास्तविक कारण पर बहस शुरू हुई। आमतौर पर यह माना जाता है कि डॉ. हेडगेवार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य से ही संघ की स्थापना की थी, लेकिन यह सही आकलन नहीं है। श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी कहते हैं,

"डॉ. हेडगेवार संघ को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए काम करने के लिए तैयार कर रहे थे, लेकिन उनका लक्ष्य भारत को एक मजबूत और समृद्ध राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था, और यह कार्य स्वतंत्रता प्राप्त किए बिना संभव नहीं था"।[4]

डॉ. हेडगेवार का मूल योगदान हिंदुओं को संगठित करने की नई संगठनात्मक तकनीकों और तरीकों में था। जिस समय संघ की शुरुआत हुई, उस समय उनकी गतिविधियाँ केवल नागपुर जिले तक ही सीमित थीं।[5] मात्रा नहीं, बल्कि गुणवत्ता उनकी मुख्य चिंता थी: वे स्वयंसेवक बनने के इच्छुक सदस्यों से चर्चा और पूछताछ के बाद ही नए सदस्यों को शामिल करने के पक्ष में थे। उन्होंने 'युवावस्था में ही उन्हें पकड़ लेने' की नीति का पालन किया- बारह से पंद्रह वर्ष की आयु के स्कूली लड़कों पर ध्यान केंद्रित किया गया, क्योंकि संघ के मूल ढांचे के अनुसार उनके दिमाग को ढालना आसान था। इन लड़कों को शारीरिक और वैचारिक दोनों तरह का प्रशिक्षण दिया गया, जिससे स्वयंसेवकों की तर्क क्षमताओं का लगातार परीक्षण किया गया। हेडगेवार और उनके पहले भर्ती समूह के बीच बहुत घनिष्ठ और आत्मीय संबंध विकसित हो गए थे।

इस प्रकार हेडगेवार से अपेक्षा की जाती थी कि वे युवा लड़कों के एक समूह का पोषण करेंगे जो व्यक्तिगत रूप से उनके साथ-साथ आरएसएस के आदर्शों के प्रति वफादार होंगे। उनके ये नए लड़के उनके लिए खास थे; उन्होंने उन्हें अन्य संगठनों और व्यक्तियों के लिए छोटे-मोटे काम नहीं करने दिए, जिससे उनमें आत्म-सम्मान की भावना विकसित हुई। उनके भर्ती हुए लोग स्पष्ट रूप से अन्य संगठनों के स्वयंसेवकों की तुलना में खुद को श्रेष्ठ महसूस करते थे। आखिरकार, उन्हें आरएसएस के भावी प्रचारक बनना था और उन्हें डॉ. हेडगेवार के 'हिंदू राष्ट्र' का संदेश ले जाना था। शाखा कार्यक्रम 1926 में शुरू हुआ। शारीरिक प्रशिक्षण के साथ-साथ, आरएसएस कार्यकर्ता या स्वयंसेवक (संगठन की रीढ़) 'मन के प्रशिक्षण' के लिए बौद्धिक और राजनीतिक प्रशिक्षण लेते थे। मंगलवार और गुरुवार को, एक राजनीतिक वर्ग आयोजित किया जाता था जो बाद में बौद्धिक प्रवचन में बदल गया। इसलिए, शाखा श्एक वैचारिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थी।[6] फिर भी संगठन का कोई नाम, झंडा, फंड और पदानुक्रम नहीं था। बहुत विचार-विमर्श के बाद, 1926 में राम नवमी के दिन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नाम चुना गया। हेडगेवार ने 'हिंदू' के बजाय 'राष्ट्रीय' को प्राथमिकता दी क्योंकि उनका मानना था कि 'हिंदू' और 'राष्ट्रीय' दोनों शब्द समानार्थी हैं। बाद में, एक झंडा चुना गया जो कथित तौर पर भगवान श्री राम का था, और कहा जाता है कि शिवाजी ने भी इसका इस्तेमाल किया था। गुरु समर्थ रामदास की जय और भारत माता की जय जैसे नारों के साथ, हिंदी और मराठी (शायद सी.पी. और बरार की द्विभाषी रचना को दर्शाती) में मिश्रित प्रार्थना तैयार की गई थी जिसे हर शाखा बैठक में गाया जाना था।[7]

शाखा प्रशिक्षण को और मजबूत करने के लिए, डॉ. ने 1927 में आरएसएस का पहला प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया। लड़कों को लाठी, तलवार, भाले और खंजर चलाने का प्रशिक्षण दिया गया।[8] वे हिंदू राष्ट्रवाद के विचार से भी प्रेरित थे। हेडगेवार जी ने अपने लड़कों को अनुशासन के माध्यम से ज्ञान प्रदान करने के लिए इन शिविरों में प्रमुख हिंदू नेताओं को आमंत्रित किया।

संगठन और इसकी विचारधारा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को तीव्र करने के लिए विभिन्न क्रांतिकारी परंपराओं को याद करते हुए सदस्यों को 'जीवन की शपथ' दिलाने की प्रथा 1928 में शुरू हुई। 99 स्वयंसेवकों के एक समूह ने जंगल में भगवाध्वज के सामने शपथ ली। आध्यात्मिक रूप से, ध्वज को आरएसएस का गुरु (प्रमुख) माना जाता है। हेडगेवार जी का मानना था कि किसी व्यक्ति के लिए बहुत अधिक सम्मान खतरनाक है और इसलिए स्वयंसेवकों को इस ध्वज के प्रति प्राथमिक निष्ठा की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। बुद्धिजीवियों की राजनीतिक कक्षाएं शाखाओं की एक नियमित विशेषता बन गई। प्रार्थना और जुलूस के लिए बिगुल का उपयोग शुरू किया गया था। प्रत्येक शाखा में छह नियमित उत्सव मनाए जाने लगे। सैन्य प्रशिक्षण भी दिया गया।[9]

हेडगेवार जी ने 1925 में नागपुर में केवल पाँच व्यक्तियों के साथ आरएसएस की शुरुआत की। 1931 तक, आरएसएस ने नागपुर और वर्धा से आगे विदर्भ क्षेत्र और मध्य प्रांत के हिंदी भाषी क्षेत्रों में विस्तार करना शुरू कर दिया। संघ ने इन प्रांतों के कई प्रमुख हिंदुओं की सक्रिय सहानुभूति और समर्थन हासिल करने में सफलता प्राप्त की, जिनमें नागपुर के राजा लक्ष्मणराव भोंसले, राजा राघोजी राव भोंसले, सर चिटनिविस, मा. तांबे (मध्य प्रदेश और बरार के पूर्व राज्यपाल), सर मोरोपंत जोशी, राव बहादुर केलकर (मध्य प्रदेश और बरार के पूर्व मंत्री) शामिल थे। इन प्रतिष्ठित लोगों के संरक्षण से, आरएसएस ने अकेले मध्य प्रदेश और बरार में 1937 तक अपनी सदस्यता 30,000 तक बढ़ा दी।[10]

संघ के कार्य के विस्तार के साथ ही शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता महसूस की गई, ताकि वे बुनियादी निर्देशों और श्बौद्धिक इनपुटश के साथ तैयार होकर मैदान में उतरें। वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के लिए पहला प्रशिक्षण शिविर 1929 में गर्मियों

की छुट्टियों के दौरान आयोजित किया गया था। स्वयंसेवक सुबह से शाम तक शारीरिक प्रशिक्षण के लिए मैदान में रहते थे और फिर डॉ. हेडगेवार द्वारा बौद्धिक प्रशिक्षण दिया जाता था। हालाँकि, डॉक्टर जी को एक क्रांतिकारी और कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में बहुत अनुभव था, लेकिन उन्होंने कभी उस अनुभव के बारे में बात नहीं की। ऐसा लगता था जैसे उन्होंने एक नई शुरुआत की हो। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में अपने सभी अनुभवों का उपयोग आरएसएस के काम को संरचित करने और नेटवर्क बनाने के लिए किया। उनका ध्यान हिंदू एकता और एक अनुशासित सामंजस्यपूर्ण हिंदू समाज बनाने पर था।

संघ की स्थापना के बाद भी हेडगेवार का कांग्रेस संगठन और उसके कार्यक्रमों के प्रति समर्पण कम नहीं हुआ। उन्होंने कांग्रेस से अलग होने के बारे में नहीं सोचा। वे और उनके करीबी सहयोगी हरिकृष्ण (अप्पाजी) जोशी प्रांतीय कांग्रेस समिति के सदस्य चुने गए। वे 1928 के अंत तक समिति में बने रहे। प्रांतीय कांग्रेस समिति में कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में डॉ. हेडगेवार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 30 जनवरी, 1927 को नागपुर शहर कांग्रेस ने चीन में सेना भेजने के सरकार के फैसले के विरोध में एक बैठक की। बैठक में सरकार के खिलाफ एक प्रस्ताव पारित किया गया। यह प्रस्ताव बैठक में संघ नेता एल.वी. परांजपे ने रखा था। प्रस्ताव में कहा गया था:

"यह बैठक सभी भारतीय नागरिकों से अपील करती है कि वे प्रदर्शन, प्रचार और प्रस्तावों जैसे सभी उचित तरीकों से सरकार द्वारा अपने सैन्य उद्देश्यों के लिए भारतीय नागरिकों के इस्तेमाल का विरोध करें।" यह प्रस्ताव डॉ. हेडगेवार ने तैयार किया था।[11]

1930 में महात्मा गांधी ने दांडी मार्च करते हुए 'नमक सत्याग्रह' शुरू किया था। हेडगेवार जी शुरू में 1930 के सत्याग्रह में हिस्सा लेने से हिचक रहे थे क्योंकि उन्हें लगा कि इससे आरएसएस का काम प्रभावित होगा अगर संघ सत्याग्रह में हिस्सा नहीं लिया तो।[12] एक प्रतिनिधिमंडल हेडगेवार जी से मिला और उन्हें समझाने की कोशिश की कि यह आंदोलन आजादी लाएगा, इसलिए संघ को इसमें पीछे नहीं रहना चाहिए। उस समय जब एक सज्जन ने हेडगेवार से कहा कि वे जेल जाने को तैयार हैं, तो हेडगेवार ने कहा, "बेशक आपको जाना चाहिए। लेकिन फिर आपके परिवार की देखभाल कौन करेगा?"[13]

अंततः अप्पाजी जोशी ने उन्हें आंदोलन में शामिल होने के लिए राजी कर लिया। हेडगेवार जी गिरफ्तार हुए और नौ महीने तक जेल में रहे। उन्होंने जेल में नेताओं और कार्यकर्ताओं से घनिष्ठ संबंध स्थापित किए, उन्हें संघ के काम के बारे में समझाया और भविष्य के काम के लिए सहयोग का वचन लिया। अपने काम को विस्तार देने के लिए एक 'बड़ी छलांग' लगाने की योजना बनाकर ही वे जेल से बाहर आए।[14] इस प्रकार, कांग्रेस के साथ उनके जुड़ाव ने बाद के वर्षों में आरएसएस का विस्तार करने में उनकी मदद की।

स्वयंसेवकों को भेजने का उनका प्राथमिक उद्देश्य प्रमुख हिंदू नेताओं के सामने एक प्रशिक्षित और अनुशासित कैडर की क्षमता का प्रदर्शन करना और भविष्य में उनकी सद्भावना अर्जित करना था। प्रशिक्षित युवा शक्ति की कमी के कारण, महासभा के नेताओं ने भी आरएसएस में संभावनाएं देखीं। महासभा के 1932 के दिल्ली अधिवेशन में, आरएसएस की गतिविधियों की सराहना करते हुए और पूरे देश में इसके नेटवर्क का विस्तार करने की तत्काल आवश्यकता व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया था। उसी वर्ष भाई परमानंद ने हेडगेवार जी को 'हिंद युवक परिषद' के कराची अधिवेशन में भाग लेने के लिए विशेष निमंत्रण भेजा।

हेडगेवार जी ने अपनी यात्राओं का उपयोग सिंध और पंजाब के प्रमुख हिंदू नेताओं से संपर्क स्थापित करने के लिए किया, जिन्होंने न केवल आरएसएस के लिए दरवाजे खोले बल्कि अपने क्षेत्रों में इसके प्रचार के लिए उत्साहपूर्वक काम भी किया। बाबाराव सावरकर ने डॉक्टर जी को दिल्ली और बनारस जैसे संघ के भविष्य के विस्तार क्षेत्रों में महासभा कार्यकर्ताओं के संपर्क में रखा। इस प्रकार, हिंदू महासभा की मदद से आरएसएस उत्तर-पश्चिम और उत्तरी क्षेत्रों में पैठ बनाने में सक्षम हो गया।[15]

हेडगेवार जी ने 1930 के दशक में आरएसएस के विस्तार के लिए दो प्रमुख रणनीति अपनाई। सबसे पहले, उन्होंने महाराष्ट्र के बाहर के विश्वविद्यालयों पर अपना ध्यान केंद्रित किया और अपने प्रशिक्षित स्वयंसेवकों को विश्वविद्यालय परिसरों में छात्रों की भर्ती के लिए भेजा। आरएसएस ने महामना मदन मोहन मालवीय जी की मदद से बनारस हिंदू विश्वविद्यालय परिसर में एक शाखा शुरू की। हेडगेवार जी के उत्तराधिकारी और संघ के दूसरे सरसंघचालक श्री एम.एस. गोलवलकर (श्री गुरुजी) को यहां भर्ती किया गया था। दूसरे, हेडगेवार ने हिंदू महासभा के प्रमुख सदस्यों से अनुरोध किया कि वे आरएसएस प्रचारकों को प्रतिष्ठित लोगों से मिलवाएं। जब आरएसएस मध्य प्रांत और बरार के बाहर प्रवेश की तलाश कर रहा था, तो हिंदू महासभा का विस्तार समर्थन उनके लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ।[16]

विस्तार और मजबूत वित्तीय स्थिति के साथ-साथ संघ एक क्षेत्रीय से अखिल भारतीय संगठन में तब्दील होने लगा। हेडगेवार जी बहुत व्यावहारिक थे; उन्होंने आरएसएस के 'महाराष्ट्रीयन चरित्र' को हल्का करने का फैसला किया ताकि इसे अन्य क्षेत्रीय हिंदू परंपराओं के लिए स्वीकार्य बनाया जा सके। इस प्रकार, हेडगेवार जी के अभिनव संगठनात्मक कौशल, उत्साह और दृढ़ता ने आरएसएस को कम समय में काफी बढ़ने में मदद की। 1940 तक, जब हेडगेवार जी की मृत्यु हो गई, तब तक असम, उड़ीसा और कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में आरएसएस की उपस्थिति थी। 1940 में संघ शिक्षा वर्ग (ओटीसी) को दिए अपने अंतिम भाषण में हेडगेवार जी ने कहा था, 'आज मैं अपनी आंखों के सामने एक लघु हिंदू राष्ट्र देख रहा हूं।[17]

असहयोग आंदोलन के बाद एक महत्वपूर्ण साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन साइमन कमीशन का बहिष्कार था। इस आयोग की नियुक्ति 1928 में ब्रिटिश सरकार ने की थी। कांग्रेस ने 1928 के बनारस अधिवेशन के दौरान श्वेत साइमन कमीशन का बहिष्कार करने और विरोध में अखिल भारतीय हड़ताल करने का संकल्प लिया था। डॉ. हेडगेवार कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य थे और अप्पाजी जोशी मध्य प्रांत के मराठी भाषी क्षेत्रों में महासचिव के रूप में कार्यरत थे। उनका कार्य साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन के बारे में जागरूकता फैलाना और बड़े पैमाने पर लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना था। उस समय नागपुर और उसके आसपास अठारह संघ शाखाएँ थीं। कांग्रेस ने साइमन कमीशन के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए एक बैठक बुलाने का सुझाव दिया। बैठक के प्रस्ताव में कहा गया था कि- इस देश के हिंदुओं और मुसलमानों को साम्राज्यवादी ताकतों को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए एकजुट होना चाहिए। फिर भी, मुस्लिम नेताओं ने अलग-अलग राजनीतिक दृष्टिकोण के कारण 1929 में साइमन कमीशन के मध्य प्रांत और बरार दौरे का स्वागत किया, जबकि हिंदू नेताओं ने किसी भी कीमत पर कमीशन के साथ सहयोग करने से साफ इनकार कर दिया।[18] संघ ने साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन में भी भाग लिया था। डॉ. हेडगेवार ने संघ के स्वयंसेवकों को कांग्रेस के मंच से काम करने का निर्देश दिया था। वे स्वयं इस विशेष आंदोलन की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के लिए जिम्मेदार थे।[19]

कुछ प्रमुख कांग्रेसियों ने संघ के विरुद्ध झूठे और मनगढ़ंत आरोप लगाने शुरू कर दिए। जब डॉ. हेडगेवार को इसकी जानकारी मिली, तो उन्होंने 24 अगस्त, 1929 को लिखा:

"मैंने पहले ही इसकी आशंका कर ली थी। हमें इन परिस्थितियों से परे सोचना होगा। हमें भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें। अपने विवेक और बुद्धि के अनुसार अपना कर्तव्य निभाने के बाद भी यदि हमारा विरोध होने लगे या कुछ लोग संघ का विरोध करना अपना कर्तव्य समझें, तो हम क्या कर सकते हैं?"[20]

1928-29 में राष्ट्रीय आंदोलन में सुस्ती पूरी तरह से गायब हो गई, जो असहयोग आंदोलन के निलंबन के बाद शुरू हुई थी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में, कांग्रेस अब एक और साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के लिए तैयार थी। गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करके अपना आंदोलन शुरू किया जब उन्होंने 6 अप्रैल, 1930 को अपने अनुयायियों के साथ दांडी में नमक कानून तोड़ा, जिससे 'नमक सत्याग्रह' शुरू हुआ। आंदोलन तीन दिनों के भीतर, 9 अप्रैल को मध्य प्रांत के मराठी क्षेत्र में शुरू हुआ, जहां नमक कानून तोड़ा गया। फिर भी, यह कोई महत्वपूर्ण परिणाम लाने में विफल रहा। सरकार ने सत्याग्रहियों को गिरफ्तार नहीं किया और किसी भी संभावित संघर्ष को टालती रही। परिणामस्वरूप, प्रांतीय कांग्रेस समिति ने मांग की कि संघर्ष को अधिक सार्थक बनाने के लिए जंगल सत्याग्रह को भी इसमें शामिल किया जाए, जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने स्वीकार कर लिया। मध्य प्रांत के वन विभाग के रिकॉर्ड के अनुसार लगभग 19,618 वर्ग मील में जंगल थे।[21]

सविनय अवज्ञा आंदोलन ने जनमानस में अपनी पकड़ बनानी शुरू कर दी थी और संघ गांधी जी के नेतृत्व में होने वाले आंदोलन में भाग लेने के लिए मानसिक रूप से तैयार था। डॉ. मुंजे की डायरी का यह उद्धरण संघ के अंदर उस समय के माहौल को दर्शाता है:

"शाम को मैंने गर्मी की छुट्टियों में प्रशिक्षण के लिए गांवों से यहां आए आरएसएस के सदस्यों को संबोधित किया। मैंने उनसे कहा कि संघ का आदर्श भारत को हिंदू राज्य बनाना और स्वराज को हिंदू राज बनाना है, जैसे अफगानिस्तान में स्वराज का मतलब मुस्लिम और अफगान राज है। मैंने लगभग एक घंटे तक भाषण दिया, लेकिन जिन लड़कों को मैंने संबोधित किया, उनके चेहरों से अंदाजा लगाया जा सकता था कि वे मेरे भाषण को बिल्कुल भी पसंद नहीं कर रहे थे। शायद महात्मा गांधी का सविनय अवज्ञा आंदोलन द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने का आंदोलन वहां मौजूद लोगों के दिमाग पर हावी हो रहा था, या शायद मेरा भाषण उतना अच्छा नहीं था।"[22]

स्वयंसेवक इस आंदोलन में शामिल होने वाले पहले लोगों में से थे, लेकिन जब तक डॉ. हेडगेवार ने अन्य स्वयंसेवकों के साथ मैदान में शामिल होने का फैसला नहीं किया, तब तक आंदोलन अपने चरम पर नहीं पहुंच गया। देश के उभरते राजनीतिक परिदृश्य में संघ का स्थान सुनिश्चित करने के लिए नवंबर 1929 में नागपुर में एक सम्मेलन बुलाया गया था। तीन दिवसीय बैठक के परिणामस्वरूप संघ नेतृत्व द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन को पूर्ण और बिना शर्त समर्थन देने का सामूहिक निर्णय लिया गया।[23]

डॉ. हेडगेवार के नेतृत्व में स्वयंसेवकों का एक समूह 14 जुलाई 1930 को जंगल सत्याग्रह के लिए नागपुर से रवाना हुआ। कार्यवाहक सरसंघचालक डॉ. परांजपे, वकील बालासाहेब ढाबले और बैरिस्टर गोविंदराव देशमुख नागपुर रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए लोगों के बड़े समूह में शामिल थे। स्टेशनों पर जमा हुई भीड़ में कई लोग शामिल हो गए। 16 जुलाई को सत्याग्रही पुसाद पहुंचे। 17 जुलाई को डॉ. हेडगेवार ने यवतमाल में एक विशाल सभा को संबोधित किया। आंदोलन के लिए स्थापित युद्ध परिषद द्वारा 21 जुलाई को हेडगेवार जी का सत्याग्रह निर्धारित किया गया था। युद्ध परिषद ने हेडगेवार के साथ आए सभी नेताओं को सत्याग्रहियों के विभिन्न समूहों का नेतृत्व करने का आदेश दिया था। श्री एम. एस. अणे ने जंगल सत्याग्रह के पहले चरण की शुरुआत की। लेकिन अपेक्षित सफलता उनसे दूर रही। एक सप्ताह के बाद आंदोलन को रोकना पड़ा क्योंकि कई जाने-माने नेता लगभग इतने ही समय से सत्याग्रह जुलूसों का नेतृत्व कर रहे थे। 21 जुलाई को परिषद ने सत्याग्रह का दूसरा चरण शुरू करने का निर्णय लिया, जिसका नेतृत्व डॉक्टर जी ने किया।[24]

8 अगस्त 1930 को संघ के सरसेनापति (मुख्य सेनापति) श्री मार्तंडराव जोग को मराठी सी.पी. में स्वयंसेवकों का कप्तान नियुक्त किया गया। युद्ध परिषद. जोग और भास्कर बडकस, एक साथी संघ स्वयंसेवक को 13 सितंबर 1930 को एम्प्रेस मिल्स पर धरना देने के लिए हिरासत में लिया गया था। उन्हें पहले नागपुर और बाद में रायपुर जेल ले जाया गया। उन्हें 7 जनवरी 1931 को रिहा कर दिया गया। हेडगेवार जी के पास सत्याग्रहियों का एक समूह था जिसमें आर्वी (जिला वर्धा) संघचालक, श्री नारायण गोपाल देशपांडे, प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सचिव और वर्धा संघचालक श्री अप्पाजी जोशी और अन्य शामिल थे। उन सभी को चार महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। इसके अलावा। 27 अगस्त 1930 को मुंजे जी और डॉ. मोरेश्वर गणेश आप्टे, देशपांडे की। आर्वी संघचालक जैसे उत्तराधिकारी को भी गिरफ्तार कर लिया गया।[25]

आरएसएस नेतृत्व स्पष्ट था कि 1930 का आंदोलन स्वतंत्रता की दिशा में एक कदम था, लेकिन यह अभी निर्णायक नहीं था। एक बार जब एक स्वयंसेवक ने सत्याग्रह करके जेल जाने की इच्छा व्यक्त की तो डॉ. हेडगेवार ने दोहराया कि जेल जाने का मतलब यह नहीं है कि किसी ने देश की आजादी में योगदान दिया है। यह उन विचारों के समान था जो उन्होंने 1920 में व्यक्त किए थे। उनके अनुसार, एक अल्पकालिक लक्ष्य सत्याग्रह के लिए जेल जाना होगा और दीर्घकालिक लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए समाज को संगठित करना होगा। जाहिर है, एक स्वयंसेवक से संगठन के प्रति (जेल जाने से ज्यादा) समर्पण करने को कहने वाले उनके बयान को तोड़-मरोड़कर पेश किया गया है। संघ की शपथ में स्पष्ट कहा गया था कि एक स्वयंसेवक हिंदू राष्ट्र की पूर्ण स्वतंत्रता की दिशा में काम करने के लिए संघ में शामिल हो रहा है। यह भी देखा जा सकता है कि आरएसएस नेताओं को यह भ्रम नहीं था कि यह आंदोलन आखिरी आंदोलन होगा। उनका उद्देश्य निष्ठावान और समर्पित स्वयंसेवकों का निर्माण करना था जो आने वाले समय में राष्ट्र के लिए खड़े हो सकें। युवा सदस्यों के लिए भी यह एक विकल्प था कि वे सत्याग्रह को चुनें या उस संगठन को मजबूत करने के लिए काम करना जारी रखें जिसका दीर्घकालिक लक्ष्य स्वतंत्रता और हिंदू समाज का सुधार था।[26]

सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रतिबंधित साहित्य पढ़ना शामिल था। नागपुर में संघ कार्यकर्ताओं द्वारा सार्वजनिक बैठकों में ऐसा साहित्य जोर-शोर से पढ़ा गया, जिसके बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बालाजी हुद्दार ने अपनी गिरफ्तारी से पहले नागपुर में एक सार्वजनिक सभा में सार्वजनिक रूप से पुलिस और सरकार पर सवाल उठाए थे, जहां उन्होंने मैजिनी और वीर सावरकर द्वारा लिखित प्रतिबंधित पुस्तकों के अंश पढ़े थे। 'जंगल सत्याग्रह' में भाग लेने के कारण गिरफ्तार होने से पहले, अपने कर्तव्यों से मुक्त होकर, नागपुर संघचालक श्री अप्पासाहेब हल्दे अब युद्ध परिषद के प्रमुख थे।[27] अंत में, डॉक्टर जी ने अपने संगठन और अपने कार्यों के माध्यम से प्रदर्शित किया कि किसी देश की सांस्कृतिक चेतना उसकी राजनीतिक प्रतिबद्धताओं की तुलना में देशभक्ति का एक मजबूत स्रोत है। इस प्रकार संघ के गैर-राजनीतिक स्वरूप ने स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति प्रतिबद्धता की भावना प्रदर्शित की जो इसकी भूमिका का संकेत था जो भविष्योन्मुखी थी।

जंगल सत्याग्रह का समाचार श्केसरीश समाचार पत्र के 20, 22 जुलाई 1930 तथा 2 अगस्त 1930 के अंक में भी प्रकाशित हुआ। डॉक्टर जी के जेल जाने के बाद सत्याग्रहियों की संख्या और भी बढ़ गयी। यह डॉ. हेडगेवार जी के अद्वितीय संगठनात्मक कौशल और प्रेरक व्यक्तित्व के कारण ही संभव हुआ। उन्होंने जो संगठन बनाया वह किसी व्यक्ति विशेष या नेता के प्रदर्शन पर निर्भर नहीं था। उन्होंने सच्चे अर्थों में कार्यकर्ता आधारित, स्व-प्रेरित संगठन के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की थी। यहां यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि 1920 के असहयोग आंदोलन की विफलता के अनुभवों के बाद वे स्वयंसेवकों को झूठी सांत्वना नहीं देना चाहते थे।[28]

सविनय अवज्ञा आंदोलन द्वारा संघ की साम्राज्यवाद-विरोधी प्रकृति को उजागर किया गया था। तब तक सरकार का मानना था कि संघ का कोई राजनीतिक महत्व नहीं है और यह किसी भी अन्य व्यायामशाला की तरह ही है। डॉ. हेडगेवार के संघ और उसके स्वयंसेवकों से संबंधों के साथ-साथ उनके द्वारा स्वयंसेवकों को दिए जाने वाले सैन्य प्रशिक्षण के कारण सरकार हमेशा उनसे सावधान रहती थी। साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलनों में शामिल होने के परिणामस्वरूप सरकार अब संघ की प्रकृति और चरित्र से पूरी तरह परिचित थी। इस डर से कि संघ बड़ा और अधिक शक्तिशाली हो जाएगा, सरकार ने उनसे निपटने और कठोर कदम उठाने के लिए अपनी रणनीति बनानी शुरू कर दी।[29]

केंद्र सरकार के सूचना विभाग के एक अधिकारी को नागपुर और मध्य प्रांत के अन्य क्षेत्रों का दौरा करने के लिए भेजा गया जहां उन्होंने संघ के संचालन के संबंध में कुछ विश्वासपात्रों से बात की। इस विशेष अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार, श्शसंघ में आतंकवादी संगठन के रूप में उभरने की क्षमता है।श्श इसमें लिखा है-

"सरकार की सैन्य शाखा ने तब से इस बारे में चिंता व्यक्त की है। औपनिवेशिक प्राधिकरण ने अंततः 1932 में इस विषय पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का अस्तित्व नागपुर में एकमात्र चिंताजनक कारक है। इसके नेताओं ने निस्संदेह सरकार के खिलाफ आंदोलनों में भाग लिया है नतीजतन, इस आंदोलन पर बारीकी से ध्यान देना जरूरी है।"[30]

इस समय तक, अंग्रेज आरएसएस के विकास से चिंतित थे। अब वे इसे एक छोटी घटना मानकर नजरअंदाज नहीं कर सकते थे। उन्होंने आरएसएस पर कड़ी नजर रखनी शुरू कर दी. मध्य प्रांत सरकार के मुख्य सचिव ई. गॉर्डन द्वारा 15 दिसंबर 1932 को जारी एक परिपत्र में आरएसएस के काम में सरकारी कर्मचारियों की भागीदारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, जिसमें दावा किया गया था कि यह एक सांप्रदायिक संगठन था और तेजी से राजनीतिक आंदोलनों में भाग ले रहा था।[31]

डॉक्टरजी ने कार्यकर्ताओं को पत्र लिखकर समझाया कि संघ सांप्रदायिक नहीं है क्योंकि वह किसी अन्य समुदाय का विरोधी नहीं है। उन्होंने कहा कि हमारे बिखरे हुए समाज को एकजुट करने को सांप्रदायिक नहीं कहा जा सकता. जनवरी 1933 में, उन्होंने मध्य प्रांत के पूर्व गृह मंत्री मोरोपंत जोशी को आरएसएस के मकर संक्रांति उत्सव में आमंत्रित किया। समारोह में उन्होंने कहा,

"हम मध्य प्रांत सरकार को चुनौती देते हैं कि वह बताए कि क्या आरएसएस ने किसी राजनीतिक आंदोलन में हिस्सा लिया है, या क्या हमने किसी अन्य समुदाय को परेशान किया है? आप किसी संगठन को तभी सांप्रदायिक कह सकते हैं, जब वह किसी दूसरे समुदाय के खिलाफ अभियान चलाए। लेकिन, बिना किसी ईर्ष्या या किसी अन्य समुदाय का अपमान किए स्वयं-संगठन के लिए एक साथ आना सांप्रदायिक नहीं कहा जा सकता।"[32]

डॉ. हेडगेवार की स्वतंत्रता की चाहत और अपने खराब स्वास्थ्य के कारण अपना काम पूरा करने में असमर्थता पर उनकी पीड़ा का वर्णन पूर्व सरकार्यवाह श्री एच. वी. कुलकर्णी ने किया था, जिन्होंने उद्धृत किया था कि:

"एक रात डॉक्टर जी ने मुझे अपने घर बुलाया। सबके सो जाने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'मुझे डर है कि कहीं हम विश्व युद्ध का यह सुनहरा मौका न गँवा दें। इस युद्ध से पहले भी हमें अपने संगठन को बहुत मजबूत बनाने की जरूरत थी। लेकिन यदि इस विशाल राष्ट्र के हर गांव में एक डॉ. हेडगेवार होता तो मेरा स्वतंत्र हिंदू राष्ट्र का सपना हकीकत में बदल गया होता। लेकिन ऐसा लगता है कि ईश्वर की इच्छा कुछ और ही है', इतना कहते हुए डॉ. हेडगेवार भावुक हो गए और उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े"[33]

संभवतः डॉक्टर जी की इसी पीड़ा ने श्री गुरुजी को सरसंघचालक बनने पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठनात्मक विकास को तीव्र गति से आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित किया। 21 जून 1940 को डॉक्टर जी परम धाम को प्राप्त हो गये।

संदर्भ

1 नरेंद्र सहगल- भारत की सर्वांग स्वतंत्रता, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ -21
2 राकेश सिन्हा, डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक (नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, 2003), पृ. 1
3 Ibid.
4 Ibid., p. 64.
5 Organiser, XXII (33), 29 March 1969, p. 2.
6 Christophe Jaffrelot, *The Hindu Nationalist Movement and Indian Politics and Indian Politics, 1925 to the 1990's: Strategies of Identity Building, Implantation and Mobilisation* (Delhi: Penguin Viking, 1996), p. 35.
7 K.R. Malkani, *The RSS Story* (Delhi: Impex India, 1980), p. 16.
8 Tapan Basu et al. *Khaki Shorts and Saffron Flags: A Critique of the Hindu Right* (Delhi: Orient Longman, 1993), p. 18.
9 N.H. Palkar, *Dr. K.B. Hedgewar* (Pune: Hari Vinayak Date, 1964), pp. 138-139.
10 Jayakar Papers, File No. 65 (67), National Archives of India, New Delhi.
11 Sinha, Dr. Keshav Baliram Hedgewar, p. 93.
12 C. P. Bhishikar. *Sanghvraksh ke Beej*: *Dr. Keshavrao Hedgewar* (Delhi: Suruchi Prakashan, 1988), p. 20.
13 *Shri Guruji Samagra Darshan*, Vol. IV (Nagpur: Bharatiya Vichar Sadhana, 1977), pp. 39-40.
14 Bhishikar, *Sanghvraksh ke Beej*, p. 20.
15 Kanungo, *RSS's tryst with politics*, pp. 47-48.
16 Kanungo, *RSS'S Tryst with Politics*, p. 49.
17 Ibid., p. 63.
18 Administrative Report of the Central Provinces and Berar; 1931-32; Vol-II; Government Printing Press, Nagpur, 1933, p. 9, cited in Sinha, *Dr. Keshav Baliram Hedgewar*, p. 65.
19 Sinha, *Dr. Keshav Baliram Hedgewar*, p. 65.
20 Ibid.
21 Ibid., pp. 66-67
22 Moonje Papers, Private Diary; June 3, 1930, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi, cited in Sinha, *Dr. Keshav Baliram Hedgewar*, p. 67.
23 Sinha, *Dr. Keshav Baliram Hedgewar*, p. 67.
24 Dr. Shrirang Godbole, *RSS and Forest Satyagraha: Role of Sangh Swayamsevaks*, https://www.newsbharati.com/Encyc/2022/8/28/RSS-and-Freedom-Struggle-Salt-and-Forest-Satyagraha-Role-of-Sangh-swayamsevaks.html, accessed on 18/04/2024
25 Ibid., p. 1016.
26 Ratan Sharda, RSS: *Evolution from an Organisation into a Movement*, (Delhi: Rupa Publication, 2020) pp. 37-38.
27 Kesari, December 9, 1938, cited in Sinha, *Dr. Keshav Baliram Hedgewar*, p. 71.
28 Ratan Sharda, *Sangh aur Swaraj: Swatantrata Andolan mein Sangh ki Bhoomika* (Delhi: Prabhat Prakashan, 2019), p. 29 .
29 Ibid., pp. 37-38.
30 Report on the Political Situation in the Central Provinces & Berar; July (second half) 1932; 1/12/40; Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi
31 Palkar, *Dr. Hedgewar Charita*, p. 264.
32 Ibid., p. 266.
33 Sharda, *Evolution from an Organisation into a Movement*, p. 54.

हिन्दी कविता में दलित मर्मः एक विश्लेषण

डॉ० अनिता

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्री अरबिंदो कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कलाकार की मानसिक अवस्था-विशेष में हृदय के भाव जब सहज रूप से छन्दोबद्ध होकर फूटते हैं तो उसे ही कविता कहते हैं। जहाँ तक दलित-काव्य की बात है, काव्य-साहित्य को किसी जाति-विशेष या वर्ग-विशेष में विभक्त कर देखना साहित्य के साथ अन्याय होगा। आज दलित-काव्य की रचना हो रही है, कल महादलित काव्य की भी रचना होगी ही और फिर अगड़े-पिछड़े वर्ग की कविता भी होगी। इसी की देखा-देखी ब्राह्मण-कवि, क्षत्रिय-कविता और वैश्य कविता में भी काव्य-साहित्य का विभाजन हो सकता है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री ने अपने 2007 ई० के जन्म-दिवस पर आयोजित अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा था कि 'काव्य को किसी जाति, वर्ण या वर्ग में विभक्त नहीं किया जा सकता।'

जो भी हो, आज कुछ विद्वानों ने काव्य की एक अलग ही श्रेणी बना दी है जो दलित काव्य के नाम से जानी जाती है। आलोचकों के अनुसार दलित काव्य में दलित कवियों द्वारा भोगे गये यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। 'दलित कविताओं में आज-साक्षात्कार है तो आत्म-चेतना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी।'[1]

पूर्व में दलित कविताएँ 'हंस' पत्रिका के 'सत्ता विमर्श' और 'दलित अंक में लगभग दो दर्जन कविताओं का प्रकाशन हुआ जिनमें 'गूंगा नहीं था मैं', 'तिनका तिनका आग' (जय प्रकाश कर्दम,) 'सदियों का संताप', 'वक्त! बहुत हो चुका' (ओमप्रकाश वाल्मीकि) 'एकलव्य' (माता प्रसाद), 'आग और आन्दोलन' (मोहन दास नैमिशराय), 'सतह से उठते हुए, चेतना के स्तर' (डॉ० एन. सिंह), 'यातना की आंखें' (दयानन्द बटरोही), 'सुनो ब्राह्मण' (मलखान सिंह), 'हार नहीं मानूँगा' (ईश कुमार गंगानिया), 'टुकड़े-टुकड़े दंस' (कुसुम वियोगी), 'हीरामन, किनारे भी मंझधार भी, कम्पिला' (डॉ. धर्मवीर), 'क्रौंच हूँ मैं', 'नई फसल' (श्यौराज सिंह बेचैन), 'नियति नहीं यह मेरी' (सुदेश तनवर), 'शब्द थके जरूर हैं' (चिरंगी लाल कटारिया), 'सवालों का सूरज', 'दखल देती कविता' (पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी), 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक', (विपिन बिहारी), 'पदचाप' (रजनी तिलक), 'बिरसा' (जियाला आर्य), 'पुश्तैनी पीड़ा' (तेजपाल सिंह तेज), 'दलित पचासा' (एस.आर.विद्रोही), 'अम्बेडकर शतक' (सोहनपाल सुमनाक्षर) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सर्वप्रथम दलित कविता की रचना अछूतानन्द ने की थी, जिसमें एक ओर तो उन्होंने इस भारत देश को परतंत्र बनाने वाले अंग्रेजों के प्रति विद्रोह का भाव व्यक्त किया था और दूसरी ओर मनुस्मृति तथा वेदों की प्रासंगिकता पर अपनी आवाज बुलन्द की थी–

पुरखे हमारे थे बादशाह, तुम्हें याद हो कि न याद हो,
अब हिन्द में हम हैं तबाह, तुम्हें याद हो कि न याद हो,
इतिहास में जो नामवर, तुम्हें याद हो कि न याद हो,
थे सभ्यता में अग्रसर, तुम्हें याद हो कि न याद हो,
आये थे आर्य यहाँ नये, तुम्हें याद हो कि न याद हो,
छल-बल से वे मालिक भये, तुम्हें याद हो कि न याद हो।'[2]

तत्पश्चात् स्वतंत्र भारत में दलित कविताएँ लिखी जाने लगीं। इन कविताओं का विषय शूद्रों और दलितों की स्त्रियों को बनाया गया और पुरुषों के वर्चस्व को ललकारा गया–

तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई?
गल चुकीं मोबत्तियाँ
आज वह जंगल की आग है
बुझाए न बुझेगी
आग का दरिया बन जाएगी
उसके तेवर पहचानो
सँभालो पुराने जेवर
थान के थान परिधान
नंगेपन पर उतरकर
पुरुष के सर्वस्व को नकार कर
नीचा दिखाएगी।[3]

दलित कविताओं में जाति-पाँति और छुआछूत पर तो कुठाराघात किया ही गया। सामाजिक रूढ़ि और अन्धविश्वास की अर्गला पर भी करारी चोट की गयी। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपनी एक कविता में धर्म की ठेकेदारों पर कसकर प्रहार किया है।

समाज की यथास्थिति को बनाये रखने के विरुद्ध भी दलित कवियों ने विद्रोह का शंख-निनाद किया है। इन कवियों ने पूजा-पाठ तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों की भी खिल्ली उड़ायी है और धर्मग्रन्थों की भी निन्दा की है। कर्मकाण्ड को इन कवियों ने बिल्कुल ही व्यर्थ माना है।

दलित कवियों ने भूतकाल के छल-प्रपंच को अच्छी तरह पहचान लिया है तथा मिथकों के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। वर्तमान समय का दलित कवि द्रोण के छल-प्रपंच से पूरी तरह परिचित है। इसीलिए वह नकली गुरु को पसन्द नहीं करता और न उनकी मूर्ति बनाकर उनके प्रति भक्ति का भाव दर्शाना चाहता है। आज का एकलव्य द्रोण की चाल को अच्छी तरह जान गया है। अब वह अपने छली गुरु को अपना अँगूठा काटकर देने को तैयार नहीं है। वह आत्म-चिन्तन के उपरान्त ही कोई काम करता है। तभी तो वह कहता है–

अँधेरे की गहन गुफा को
घाव सहने दो
जाओ द्रोण जाओ
दर्द को हरियाने दो
एकलव्य मैं पहले था
आज भी हूँ
अब जान गया हूँ
अँगूठा दान क्यों माँगते हो?[4]

दलित-लेखक मनुवादी व्यवस्था के प्रति मन में विद्रोह का भाव रखना है। उसके अनुसार भगवान ने चारों वर्ण की सृष्टि नहीं की, बल्कि वर्णों के ये चार विभाग मनु द्वारा निर्मित किये गये हैं और शूद्रों को सबसे नीच वर्ण माना गया है। इसलिए आज का शूद्र या दलित 'मनुस्मृति' को देखना भी नहीं चाहता है। इन शूद्रों में विगत वर्षों में कई बार 'मनुस्मृति' की प्रतियाँ भी जलाई है। उसे लगता है कि 'मनुस्मृति' के चलते ही समाज में वह घृणित, उपेक्षित और प्रताड़ित हो रहा है। तभी वह कहता है–

निश-दिन मनुस्मृति ये, हमको जला रही है,
ऊपर में उठने देती नीचे गिरा रही है......
ब्राह्मण व क्षत्रियों को, सब को बनाया अफसर,
हमको 'पुराने उतरन' पहनो बता रही है......
दौलत कभी न जोड़ें, गर हो तो छीन लें वह
फिर 'नीच' कह हमारा दिल भी दुखा रही है।......

(दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 408)[5]

दलित कवियों का हृदय ऐसे लोगों के प्रति विद्रोह का भाव रखता है जो उच्च वर्ण के महापुरूषों या उच्चवर्गीय स्त्रियों की तो प्रशंसा करता है, मगर दलित वर्ग की विभूतियों का स्मरण नहीं करता है। उसका कहना है कि अगर सवर्ण मंगल पाण्डे का स्मरण करता है तो उसे मातादीन भंगी और बिरसा मुण्डा को भी नहीं भूलना चाहिए। अगर वह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को याद करता है तो उसे झलकारी बाई को भी याद करना चाहिए। यहाँ ध्यान देने की बात है कि 'सदियों से सामाजिक प्रपंचों को झेलने के कारण दलित कवि का स्वर कटु हो गया है। यहाँ मुक्ति की छटपटाहट अनेक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की गई है। दलित कविता में व्यक्त 'मैं' ही हम है जिनमें समस्त दलित समाज की पीड़ा ध्वनित होती है। दलित साहित्य में पारम्परिक प्रतीकों के स्थान पर नए और मौलिक प्रतीकों की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ पेड़, जंगली सुअर, लोकतंत्र भेड़िये, घड़ियाल, कुत्ते आदि प्रतीक शोषण दमन और गुलामी को रेखांकित करते है। (दलित विमर्श और दलित साहित्य, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, पृ. सं. 215)[6]

जो भी हो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि 'पूरे दलित समुदाय के उत्पीड़न और शोषण के अनुभव कमोवेश एक जैसे रहे हैं। इसलिए स्वानुभूत दलित लेखन का एकरस हो जाना स्वाभाविक है।[7]

इस प्रकार ऊपरलिखित तथ्यों से स्पष्ट है कि दलित-काव्य में दलित चेतना की व्यंजना यथार्थ की पीठिका पर हुई है।

सन्दर्भानुक्रम

1. डॉ. सतीश कुमार राय, शोध निकष, वर्ष : 1, अंकः 2, जुलाई-दिसम्बर 2011, पृ. सं. 97
2. हरिनारायण ठाकुर–दलित साहित्य का सामाजशास्त्र, पृ. सं. 2009, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्सटीटूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ. सं. 407 से उद्धृत।
3. डॉ. सत्यरंजन–दलित–जागरण, पृ. सं., जानकी मुद्रणालय, जनकपुर धाम, (नेपाल), पृ सं. 14 से उद्धृत
4. दलित विमर्श और दलित साहित्य–बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, पृ. सं. 214
5. हंस, अगस्त 2004, पृ. सं. 188-189 से उद्धृत
6. दलित विमर्श और दलित साहित्य, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, पृ. सं. 215
7. सं. डॉ. एम. फीरोज अहमद–वाङ्मय, वर्ष-2, अंक-8, जनवरी-मार्च 2006, पृ. सं. 61

चेखव की कहानियाँः तात्कालिकता और शाश्वतता का द्वंद्व

रूपाली सिन्हा

पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

चेखव, यह नाम जेहन में उभरते ही, हमारे दिमाग में रूस के उस महान लेखक की छवि तैर जाती है जिसकी विलक्षण जागरूकता ने तात्कालीन रूसी जनमानस में गति कर रही चिंता को स्वर प्रदान किया, शब्द प्रदान किया। एक सर्फ परिवार से आने वाले चेखव का खुद का जीवन भी उस सामान्य व्यक्ति का चरित है जो उस समय (19वीं शती के अंत में) जीवन की कठोर पाठशाला में पढ़ रहा था। चारों ओर भ्रष्ट नौकरशाही अपने निरंकुश स्वरूप में विद्यमान थी जो कि जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ थी। 1861 में कृषक दास प्रथा का अंत हो जाने के बाद भी कृषकों का जीवन दरिद्र, दयनीय व अनिश्चित ही रहा। असमान भूमि वितरण और कर के बोझ के इसी समय औ्योगिकीकरण के कारण मजदूर वर्ग का उदय हुआ, पर अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति ने शोषण को प्रोत्साहन दिया, जिस कारण मजदूरों का जीवन और भी दयनीय हो गया। ऊपर से जार की सांस्कृतिक एकीकरण का अंध, अक्षम, अवैज्ञानिक, गैर तकनीकि तथा निर्दय प्रयास जनता को आस्था के स्तर पर भी तोड़ रहा था।

कुल मिलाकर यही समाज चेखव का समाज था- अनिवार्य व आधारभूत संसाधनों से सर्वथा वंचित समाज। चेखव ने इसी समाज में रहते हुए, इसी समाज को देखते हुए और इसी समाज को सुनते हुए विपुल साहित्य को रचा। दसियों नाटक व सैकड़ों कहानियों की रचना की की।

अपने नाटकों- जैसे चाइका (1896), चाचा वन्या (1897), तीन बहने (1901), चेरी की बगिया (1903) आदि में उन्होंने युग के द्वंद्व व संघर्ष का जीवंत वर्णन किया है जो कि कहानियों में और भी मार्मिक रूप में सामने आता है। इस संदर्भ में दो उद्धरण देख सकते हैं। पहला, "चेखव की छोटी कहाँनियों की विषय वस्तु बड़ी ही व्यापक और सारगर्भित होती थी। इन कृतियों में रूसी जीवन के विविध पक्ष प्रतिबिंबित हैं। जिसमें अन्याय, शोषण, शासन की निरंकुशता, जनता पर अत्याचार मानवीय व्यक्तित्व की अवमानना आदि तात्कालीन सामयिक प्रश्नों की ओर संकेत किया गया है।"[1] तथा दूसरा "चेखव की कहानियाँ उस समय के रूस का जीवित दस्तावेज है।"[2]

यदि इन उद्धरणों पर गौर किया जाए तो दोनों लेखक चेखव की रचनाओं में तात्कालिकता के स्वर को देख रहें हैं। बहुत हद तक यह सही भी है क्योंकि चेखव की कई रचनायें ऊपरी तौर पर तात्कालिक दिखती है। साथ ही चेखव ने स्वीकार भी किया है- "मैंने अपनी कहानियों को ठीक उसी तरह लिखा है, जिस तरह एक पत्रकार तकनीकी रूप से अपने व अपने पाठक के अलावा, किसी और की परवाह किये बिना अपने 'संदर्भ' लिखता है।"[3] पर गौर करें तो उन कहानियों का आंतरिक आवेग और उसमें निहित विचार किसी कालजयी रचना से कम नहीं होता। एक दृष्टि से चेखव तात्कालिकता के कहानीकार है, यानी अपने समय के परिवेश को चित्रित करने वाले लेखक। किन्तु उनकी तात्कालिकता ठंडी, बेजान, रोषहीन तात्कालिकता नहीं है। उनकी हर कहानी के पीछे एक दृष्टि, एक इशारा तथा एक इरादा है तत्कालीन परिवेश पर लिखी कहानियों का स्वभाव तात्कालिक अथवा क्षण भंगुर मात्र नहीं है।"[4]

इस आलेख में यह देखने की कोशिश की गई है कि उनकी कई तथाकथित तात्कालिक सी दिखने वाली कहानियाँ अन्य कहानीकारों की कहानियों से अधिक शाश्वत प्रासंगिक और समाज के आस्तित्व और विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाली निहायत जरूरी कहानियाँ है।

आज का व्यक्ति खुद से भाग रहा है। खुद से खुद को छुपा रहा है- इसका कारण है उसका नैतिक स्तर पर लगातार पिछड़ना, जिस कारण वह खुद का सामना करने से कतराता जा रहा है। पर यह प्रयास कभी सफल नहीं होता और व्यक्ति का खुद से सामना होता ही है। आज के मनुष्यों की इस स्थिति को चेखव की 'भय' कहानी बड़ी सफाई से व्यक्त करती हैं। इसमें एक जगह चेखव लिखतें है "मैं सामान्तया जीवन की तुच्छताओं से भयभीत हूँ जिनसे हममें से कोई अपने को नहीं छुपा सकता।" चेखव की इस कहानी में न सिर्फ इस नई मनोवृत्ति का चिन्ह खोजा जा सकता है बल्कि यह भी देख सकते हैं कि व्यक्ति कभी खुद से भाग नहीं सकता। पर जितने दिन यह सम्भव है व्यक्ति इसे बनाये रखता है। एक तरहबसे मनुष्य की प्रवृत्ति शुतुरमुर्ग जैसी है। रेत में आंख धसाएं खुद को भ्रम में रखता चला जाता है। अपनी आत्मा से समझौता कर लेने वाला व्यक्ति व्यक्तिवादी हो जाता है। उसके पास सिर्फ अपने सपने, अपनी खुशियों होती हैं। वह सिर्फ अपने बारे में सोचने लगता है। अपने समाज जहाँ से वह कभी आया था- के प्रति अत्यंत ही उदासीन हो जाता है, उस पर उसका 'व्यक्तिगत स्वार्थ' इस कदर हावी हो जाता है कि वह दुनियां को अवसर के चश्में से देखने लगता है। आज व्यक्ति संवदेनाओं को नहीं बल्कि स्वयं की वेदनाओं को अधिक से अधिक महत्व देने लगता है।"[5] चेखव ऐसे ही एक व्यक्ति से पाठकों का परिचय 'करौंदे' कहानी में कराते हैं- एक छोटे सरकारी क्लर्क की सबसे बड़ी इच्छा जायदाद खरीदने की है जहाँ पर वह करौंदे पैदा कर सके। उसका यह स्वप्न पूरा होता है। किंतु जायदाद का स्वामी बनने पर उसका चरित्र और स्वभाव हीं बदल जाता है। वह अन्य जमींदारो की तरह किसानों को शारीरिक दंड देने की आवश्यकता बताने लगता है वह अपनी जायदाद की देखभाल और अपने स्वार्थो में तल्लीन हो जाता है और बौद्धिक तथा सामाजिक कार्यो में उसकी कोई रूचि नहीं रह जाती। यह 'रूचि का अभाव वास्तव में उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता है जो कि आज के मानव में और भी गहराई से दिखती है। व्यक्ति जब तक शोषित होता है, वह चाहता है कि शोषण का समूल विनाश हो पर जैसे ही उसे 'शोषक' बनने का अवसर मिलता है वैसे हीं वह न सिर्फ इसे लपकता है बल्कि इसके लिए तर्क भी खोजने लगाता है।"[6] यह मानव मन का एक शाश्वत सत्य है जो कि आज के मानव में अधिक स्पष्टता से दिखता है और इसे चेखव दशकों पहले अपनी कहानी में दिखाते हैं।

ऊपर की दोनों कहानी का संदर्भ तात्कालिन रूसी समाज था, जिसमें जारशाही से पराजित आम मानव मन स्वयं का सामना करने से डरता है तो वहीं, वह अवसरवादी भी हो गया है जिससे शोषण के समाप्त होने की आशा को धक्का भी लगा है क्योंकि जैसे ही सम्भावना दिखती है व्यक्ति पूरा चरित्र बदल लेता है। पर इन कहानियों से निकलने वाले मूल्य शाश्वत ही हैं।

इसी प्रकार चेखव अपनी एक कहानी 'लापरवाही' में तात्कालीन रूसी समाज की वस्तुस्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हैं। इसके नायक प्योतर को एक पार्टी में वोदका पीने को नहीं मिलता है। जब वह घर आता है तो वह वोदका समझकर मिट्टी का तेल पी जाता है। पर जब उसे गलती का अहसास होता है तो वह अपनी साली को जगाता है। उसकी साली उसे बिना आज्ञा वोदका पीने के प्रयास के लिए डांटती है। प्योतर, भाग कर डॉक्टर के पास जाता है, कोई डॉक्टर नहीं मिलता, दवा विक्रेता भी रात में जगाने के लिए उसे डाटते हैं। अंत में वह अपनी मौत का इंतजार करते-करते सो जाता है। सुबह खुद को जिंदा पाकर अपनी साली से कहता है- 'यदि कोई व्यक्ति उपयुक्त और साधारण जीवन व्यतीत करता है तो उस पर विष असर नहीं कर सकता। उस समय के रूस की तरह आज के सामाजिक वातावरण में इतना विष भरा हुआ है कि व्यक्ति पर सम्भवत: साधारण विष का असर ही न हो। यह विष है- सहानुभूति के अभाव का, वैमनस्य, जलन व छल का। यह सच है कि बुद्धिजीवियों में इजाफा हुआ है पर यह भी उतना ही सत्य है कि समाज में विषैलापन भी उतना हीं बढ़ा है, इस दृष्टि से यह कहानी भी उतनी हीं प्रासंगिक साबित होती है।

चेखव के ह्दय में सदैव प्रजातंत्र का चिराग जलता रहा। अपनी 'सेब' शीर्षक कहानी में उन्होंने एक जमींदार की क्रूर प्रवृत्ति का मजाक उड़ाया है। एक प्रेमी युगल (जिनकी मंगनी हो चुकी है) एक जमींदार के सेबों के बाग में चले जाते हैं युवक अपनी प्रेमिका के लिए एक सेब तोड़ लेता है। जमींदार इसको क्रूर सजा देता है। वह लड़की को अपने प्रेमी के कोड़े मारने और लड़के को अपनी प्रेमिका के थप्पड़ मारने पर मजबूर करके दोनों को जलील करता है और उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाता है। अंत में वह उन दोनों को कहता है- 'अब तुम दोनों जा सकते हो। मैं तुम्हारे विवाह पर सेब भेज दूँगा।" दोनो प्रेमी वहाँ से चले जाते हैं। लड़का दायीं ओर चला जाता है और लड़की बायीं ओर और वे इसके बाद फिर कभी भी नहीं मिल पाए। उस समय का रूस प्रजांतत्र के लिए तरस रहा था पर आज का समाज प्रजातंत्र होते हुए भी प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए तरस रहा है। आज भी सर्वत्र व्यक्ति का भावनात्मक शोषण होता जा रहा है। व्यक्ति के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाया जा रहा है। प्रेमी युगलों को सार्वजनिक स्थल पर जलील करके संस्कृति की दुहाई दी जाती है। आज के समय तमाम बजरंग दलों और संस्कृति रक्षकों के समूह द्वारा प्रेमी

जोड़ों को पार्कों में पकड़ कर जलील किया जाता है, इस समस्या को चेखव ने एक सदी पहले अपनी कहानी में चित्रित कर दिया था। समाज में व्यक्ति को कुचलने की प्रक्रिया बढ़ गयी है। खमेलियोन (गिरगिट) नामक कहानी में चेखव ने छोटे सरकारी कर्मचारियों और नौकरशाही का मजाक उड़ाया है। इसमें खुशामदियों की खूब धज्जियाँ उड़ाई गई है। एक मजदूर को कुत्ते ने काट लिया है। लोगों की भीड़ देखकर थानेदार पहुँचता है। तथा अवसरवादिता का स्पष्ट परिचय देता है। जब तक उसे लगता है कि कुत्ता साधारण है। वह कुत्ते को मारने की बात करता है पर ज्योंही उसे पता चलता कि कुत्ता जनरल का है उसके तेवर बदल जाते हैं और आदमी के बजाए उसकी सहानुभूति कुत्ते के प्रति हो जाती है। यह कहानी भी तो रूस के सत्य का अतिक्रमण कर आज के सत्य के व्यक्त करती है। आज तो स्थिति यह है कि कुत्तों के खाने के लिए बिस्कुट है पर आम आदमी के लिए यह पहुँच से दूर है। किसी भी चीज का महत्व चाहे वह किसी भी स्तर का हो उसके पद पर निर्भर करने लगा है। यह कहानी भाई-भतीजावाद की ओर भी संकेत करती है जो कि चेखव के रूस से कहीं आगे निकल कर आज के समाज में अपना नग्न नृत्य दिखला रही है।

इसी प्रकार, स्मेर्त्य चिनोवनीका (क्लर्क की मृत्यु) में चेखव एक भयभीत आदमी की दासता की प्रवृत्ति की आलोचना करता है। एक क्लर्क चेव्योकोव दूरबीन लगाकर नाटक देख रहा है। रंगमंच की ओर देखकर वह अपने को इस नश्वर संसार का सबसे सुखी प्राणी समझ रहा है। अचानक उसे छींक आ जाती हैं और वह अपने आगे बैठे एक अधिकारी के गंजे सिर पर छींक देता है। क्लर्क ठीक तरह से माफी न मांग सकने के कारण और इस अपमान के परिणाम के भय से अपने प्राण त्याग देता है। यह 'भय' उस रूस के राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है, जहाँ अधिकारी व सेना का खौफ इस कदर था कि वह 'सुखी इंसान इतना डर जाता है कि दुनिया छोड़ देता है। संभवत: उसे खुद भी पता नहीं चला होगा इसका। यह भय उस समय के रूस में ही नहीं आज समस्त विश्व में व्याप्त है। कमजोर आश्रित देश विकसित देशों से डरते हैं। कमजोर जनता दबंगों से डरती है। सत्ताधारी विपक्ष को भयभीत करता है, कर्मचारी अपने अधिकारी से डरते हैं। वास्तव में यह डर ही बुरी चीज है। वास्तविक मूल्य तो 'सम्मान' होना चाहिए, सहयोग होना चाहिए पर 'डर' ने सबको अपदस्थ कर दिया है। चेखव इस कहानी में इसी डर को दिखाते हैं, जिसके पीछे का संकेत है कि हम सभी सकारात्मक और नैतिक उच्च मूल्यों को खो चुके हैं। साथ ही उस व्यवस्था का लगातार शिकार बनते जा रहे हैं जिसमें खुद को टिकाये रखना सबसे कठिन काम है और जिसमें फिसलने का मतलब है सर्वनाश। ये आज के समाज का ही तो सच है। कोई भी निरंकुश शासन अपनी आयु बढ़ाने के लिए सबसे पहले समाज को कमजोर बनाता है। शिक्षा, रोजगार और सांप्रदायिक मुद्दों में भटका कर। क्योंकि मजबूत समाज कभी भी उसे अपदस्थ कर सकता है। और समाज कमजोर होता है व्यक्तियों के बीच दूरी बनने से। यह दूरी बहुधा भावनात्मक होती है। रूस की जारशाही शासन व्यवस्था ने भी अपनी मजबूती के लिए यही प्रक्रिया अपनायी थी। जिसे (भावनात्मक दूरी) चेखव ने अपनी कहानी 'तस्का'(दु:ख) में दिखाया है। जिसके नायक ईयोन गाड़ीवान के पुत्र की मृत्यु हो गई है। उसके शोक में उसका कोई हाथ नहीं बटाता। अपनी शोक कथा अपनी गाड़ी में बैठने वाली सवारियों की सुनाकर अपने मन का बोझ हल्का करना चाहता है। पस्तु उन सबको अपनी-अपनी पड़ी है। उसकी शोक कथा कोई भी नहीं सुनता। अंत में जब वह घर वापिस आता है तो वह अपनी-थकी-मांदी घोडी को प्यार करने लगता है। इस प्यार में उसके मन के उद्घ्गार फूटकर यह निकलते हैं। यह अपनी घोड़ी को अस्तबल ले जाकर उसके सामने चारा रख देता है और उसे दिल खोलकर अपनी शोक कथा सुना देता है। वह अपनी घोड़ी से कहता है- "फर्ज करो तुम्हारे एक बच्चा हो और फर्ज करो वह बच्चा मर जाए, क्या तुम्हें इससे दुख नहीं होगा! अवश्य होगा।" घोड़ी चारा खाती रहती है. अपने मालिक की राम कहानी सुनती रहती है। आज के समय में समाज में मनुष्य इसी व्यथा से गुजर रहा है। तेजी से बढ़ती सुविधाओं और टेक्नोलॉजी के इस युग में इंसान इस कदर अकेला हुआ कि उसकी व्यथा सुन लेने वाला कोई फुरसत में नहीं। आत्मकेंद्रित इस उपभोक्तावादी समाज का हर दूसरा व्यक्ति आज अपनी मानसिक व्यथा किसी मनोचिकित्सक के पास जा कर सुनता और हल्का होता है।

आज किसी के पास वक्त नहीं है कि वह दूसरे को समझे, यहाँ तक की बात करने का भी वक्त नहीं है ओर इसके भी अपने तर्क हैं। रूसी बुद्धि जीवियों के बहुत से चित्र चेखव ने उपस्थित किये हैं, जिसमें से एक चेलोवेक व फुतल्याश्ये का नायक बेलीकोव है जो किसी प्रकार के 'नयेपन और ताजगी का शत्रु है। आज खाप पंचायत इसी का ज्वलंत उदाहरण है। इसी तरह उनकी एक कहानी है 'योनोच। यह एक कर्मठ व उत्साही डॉक्टर की, गाँव वालों के साहचर्य में बदल जाने की कहानी हैं गाँव में खूब परिश्रम करने वाला डॉक्टर वातावरण में अजनबीयत के कारण पहले तो एकांत प्रिय बनता है फिर वह गाँव वालों को हीन समझने लगता है। तथा अंत में पूरी तरह से अहंकारी व्यक्ति बन जाता है। दरअसल यह कहानी आज के समाज के उस वर्ग की ओर संकेत करती है जो

आज के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल व अजनबीयत ने अतिमहत्वाकांक्षी बन गया है साथ ही यह भी इंगित करती है कि कैसे मानव की संवेदनाये शुष्कता में बदल जाती है और वह स्वकेंद्रित, लालची व अहंवादी हो जाता है। इस प्रकार चेखव की कहानियों में तात्कालिकता का बाह्यबोध तो होता है पर केन्द्र में शाश्वत मूल्य ही है जो सदैव प्रासंगिक ही होता है। पर, चेखव की शाश्वत मूल्यों की फेहरिस्त यहीं समाप्त नहीं होती। मानव मन की सबसे बड़ी कुंजी जिसने हर परिस्थिति में मानव को पहले से बेहतर समय में पहुँचाया है- विश्वास है। यह आशा, विश्वास ही ऐसी चीज है जो मानव को उसकी जय यात्रा में ऊर्जा देती है। यही सपने दिखाती है, यही पूरे करवाती है। चेखव की कहानियों में यह शाश्वत मूल्य भी दिखता है। उनकी कहानी 'नेवंस्ता' में नायिका नाद्या कहती है- "काश, नयी जिंदगी जल्दी आ जाए। जब हम सिर ऊँचा करके आगे बढ़ सकें, किस्मत की आंखों में आंखे डालकर देख सकें यह जानते हुए कि हम सही हैं, खुश और आजाद रह सकें। ऐसी जिंदगी देर-सबेर आकर रहेगी।"

और अंत में एक बात और कमोबेश हर समाज एक जैसा होता है। समस्यायें भले नयी हों पर उनके केन्द्र में सदैव एक सा कोर होता है। इसीलिए जो साहित्यकार वास्तव में सकारात्मक अर्थों में साहित्य-रचना करता है, वह सदैव शाश्वत मानवता को महत्व देता है। चेखव ने भी यही किया है। उन्होंने तात्कालित रूस को अवश्य शब्द बद्ध किया है पर उनका पूरा ध्यान सिर्फ रूस पर नहीं बल्कि मानवता पर रहा है। तभी, हर वर्ग, हर वक्त व हर देश-समाज के लोगों का उसमें अपना अक्स दिख जाता है और इसीलिए उनके साहित्य में शाश्वत मूल्यों की पुष्टि हो जाती है। और चेखव चेतनाशील खंभात वक्ता के रूप में सदैव शाश्वतता के प्रदर्शक बने रहते हैं। अंत में तात्कालिकता के संगीत में शाश्वतता के राग को पहचानने के लिए, कविन्द्र रवीन्द्र की यह पंक्तियों सहायक होगी-

'दो फूल तेरे चरणों के लिए तोड़ लाया हूँ, जग की बगिया से जो सिर्फ तुझको अर्पित है पर, इसकी सुगंध सब ओर फैलेगी, फैलती चली जाएगी

संदर्भ:

1. गंगा प्रसाद दास चेखव का अदभुत संसार, पृ०-18
2. पांडेय रत्नाकर चेखव तथा रूसी समाज, पृ०-12
3. डॉ० राम प्रताप साही चेखव का जीवन तथा साहित्य पृ०-129
4. रॉबर्ट पाक एंटोन चेखव, पृ०- 187
5. प्रभाष पाठक आज की आदमीयत पृ०-210
6. एंतोन चेखव की चुनिदां कहानियां, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस

प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण

डॉ० रत्नेश कुमार सिंह

प्रो. (गेस्ट फेकल्टी), सत्यवती कॉलेज सांध्य (एन.सी.डब्ल्यू.ई.बी.), दिल्ली विश्वविद्यालय

देशी राजाओं, जमींदार, महाजन, पूंजीपति, सरकारी अमला, अंग्रेजी शिक्षा पद्धति, न्यायपालिका आदि का विरोध अंततः औपनिवेशिक शासन का ही विरोध था। इसके साथ ही किसानों, मजदूरों, दलितों, स्त्री, वेश्या, सांप्रदायिकता के शिकार साधारण जनों आदि के प्रति सहानुभूति मुक्ति आंदोलन का ही विस्तार था। रंगभूमि, कायाकल्प, गबन में कई ऐसे प्रसंग हैं जो स्वाधीनता आंदोलन से सीधे जुड़े हुए हैं। इस प्रकार प्रेमचंद ने सरकारी कोप से बचाव करते हुए आजादी की लड़ाई का चित्रण ईमानदारी के साथ किया है।

प्रेमचंद ने समकालीन मध्यवर्गीय समाज का जो अनेक प्रकार के अंतर्विरोधों, तर्कहीन सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ नैतिक धारणा से ग्रस्त था उसे अपने कथा संसार के माध्यम से प्रस्तुत किया। सेवासदन के कृष्णचंद्र और पदमसिंह शर्मा, रंगभूमि के ताहिर अली, निर्मला के उदयभानु लाल और मुंशी तोताराम, गबन के मुंशी दयानाथ और इंद्रभूषण आदि की समस्या मध्यवर्गीय अंतविरोधों की समस्याएं हैं। सेवासदन के दारोगा कृष्णचंद को बेटी के विवाह के लिए ईमानदारी छोड़कर रिश्वत लेनी पड़ती है। निर्मला के वकील साहब आय से ज्यादा खर्च करते हैं जिससे निर्मला के विवाह की समस्या पैदा हो जाती है और तोताराम जैसे अधेड़ से उसकी शादी होती है। गबन की पूरी समस्या ही मध्यवर्ग की समस्या है। इस तरह प्रेमचंद ने अपने कहानी तथा उपन्यासों में मध्यवर्गीय यथार्थ का प्रामाणिक चित्रण किया है। सेवासदन में पं. उमानाथ की पत्नी द्वारा कृष्णचंद के परिवार की उपेक्षा, रंगभूमि में ताहिर अली के परिवार में विमाता, निर्मला में मुंशी तोताराम का अपने ही पत्रों के प्रति टुच्चा रवैया तथा इस तरह के ढेरों प्रसंग और अनेक छोटी छोटी बातें तत्कालीन मध्यवर्गीय जिंदगी की सच्ची तस्वीरें हैं। यह सही है कि प्रेमचंद ग्रामीण जीवन-यथार्थ के चित्रण में अद्वितीय हैं, पर तत्कालीन मध्यवर्ग का भी वे उतनी ही सजीवता के साथ अंकन करते हैं।

सामंत और रैयत का यथार्थ: जमींदारी व्यवस्था

सामंत व्यवस्था का अर्थ: सामंतवाद को अंग्रेजी में फ्यूडल सिस्टम कहते हैं। फ्यूडल सिस्टम फ्यूड से बना है जिसका अर्थ है, भूमि का ऐसा कुछ भाग जो सेवा करने की कुछ शर्तों पर उसका स्वामी किसी सामंत को खेती के लिए देता था और इस समाज में खेती ही शक्ति का एकमात्र स्रोत थी। कुल मिलाकर, यह भूस्वामित्व एवं व्यक्तित्व संबंधों पर आधारित एक सामाजिक पद्धति होती थी, जिसमें परस्पर अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण होता था।

सामंतवाद के दो मौलिक विचार थे–

(1) प्रत्येक व्यक्ति का कोई स्वामी होना चाहिए जो उनकी रक्षा कर सके तथा जिसकी वह बदले में सेवा कर सके।

(2) सभी राजनैतिक एवं सामाजिक संबंधों का आधार भू-नियंत्रण था। वस्तुतः भूमि का अधिकार या भू-नियंत्रण ही इस संबंध का एकमात्र आधार था। संकट के समय इसी से पारस्परिक सेवा एवं सुरक्षा का भी कार्य होता था।

सामंती प्रथा का अर्थ और उत्पत्तिः सामंती प्रथा से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है, जिनमें कुछ चुने हुए लोग बिना किसी श्रम के भूमि से जीविकोपार्जन करते थे। इन्हीं लोगों का समूह सामंत वर्ग के नाम से जाना जाता था। सामंती प्रथा का विकास गुप्तोत्तर काल, विशेष रूप से 800 ई. से 1200 ई. के बीच हुआ। सामंती व्यवस्था की नींव हर्ष के शासनकाल में पड़ी। इसके बावजूद

भारत में यूरोप की तरह पूर्ण विकसित सामंती व्यवस्था की स्थिति कभी नहीं उत्पन्न हो सकी। भारतीय सामंतवाद में आर्थिक अनुबंध पर उतना बल नहीं दिया गया जितना कि यूरोपीय सामंतवाद के कुछ रूपों में दिया गया था।

सातवीं शताब्दी अर्थात् हर्षकाल से सरकारी अधिकारियों को नकद वेतन के स्थान पर दिए जाने वाले भूमि अनुदान ने सामंती प्रक्रिया को बल प्रदान किया। ऐसी भूमि प्राप्त करने वाला पदाधिकारी सामंत कहा गया। दूसरे प्रकार के सामंतों में पराजित राजा और उनके समर्थक तथा स्थानीय सरदार भी थे जो सीमित क्षेत्रों से राजस्व प्राप्त करते थे।

सामंतों के साथ दो बातें जुड़ी थीं–एक तो राजस्व के समस्त साधन उन्हें हस्तांतरित कर दिए जाते थे तथा दूसरे उन्हें उस भूमिखंड की आंतरिक सुरक्षा और प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना था। बड़े सामंत 'महासामंत', महामंडलेश्वर आदि तथा छोटे सामंत राजा, सामंत, रानका, ठाकुर एवं भोक्ता इत्यादि उपाधियाँ धारण करते थे। कालांतर में इस प्रथा का कुप्रभाव यह पड़ा कि राजा सामंतों पर अधिक निर्भर रहने लगे क्योंकि सामंत जनता से केवल कर ही नहीं वसूल करते थे बल्कि स्थायी सेना भी रखते थे। राजा आवश्यकता पड़ने पर इससे सैनिक सहायता लिया करता था जिससे केन्द्रीय शक्ति क्षीण होते गए तथा वे सामंतों पर निर्भर होते गए।

रैयतवाड़ी व्यवस्था: रैयतवाड़ी व्यवस्था 1792 ई. में मद्रास प्रेसिडेन्सी के बारामहल जिले में सर्वप्रथम लागू की गई। थॉमस मुनरो 1820 ई. से 1827 ई. के बीच मद्रास का गवर्नर रहा। रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रारंभिक प्रयोग के बाद मुनरो ने इसे 1820 ई. में सम्पूर्ण मद्रास में लागू कर दिया। इसके तहत कम्पनी तथा रैयतों (किसानों) के बीच सीधा समझौता या सम्बन्ध था। राजस्व के निर्धारण तथा लगान वसूली में किसी जमींदार या बिचौलिये की भूमिका नहीं होती थी। केप्टन रीड तथा थॉमस मुनरो द्वारा प्रत्येक पंजीकृत किसान को भूमि का स्वामी माना गया। वह राजस्व सीधे कंपनी को देगा और उसे अपनी भूमि के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था लेकिन कर न देने की स्थिति में उसे भूमि से वंचित होना पड़ता था। इस व्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष के तहत खेत की उपज का अनुमान कर उसका आधा राजस्व के रूप में जमा करना पड़ता था।

रैयतवाड़ी दो शब्दों के मेल से बना है जिसमें रैयत का आशय प्रजा या किसान से है एवं वाड़ी का आशय प्रबंधन से है अर्थात् किसानों के साथ प्रबंधन। इस पद्धति में भूमि का मालिकाना हक किसानों के पास था। भूमि को क्रय- विक्रय एवं गिरवी रखने की वस्तु बना दी गई। इस पद्धति में भू-राजस्व का दर वैसे तो 1/3 भाग होता था, लेकिन उसकी वास्तविक वसूली ज्यादा थी। इस पद्धति में भू-राजस्व का निर्धारण भूमि के उपज पर न करके भूमि पर किया जाता था।

भू-राजस्व का निर्धारण भूमि के उत्पादकता पर न करके भूमि पर किया गया, जो किसान के हित के लिए सही नहीं था। इसमें भू-राजस्व का दर इतना ज्यादा था कि किसान के पास अधिशेष नहीं बचता था। परिणामस्वरूप किसान महाजनों के चंगुल में फंसते गए और इस तरह महाजन ही एक छद्म जमींदार के रूप में उभरकर आने लगे। रैयतवाड़ी ढांचा साम्राज्यवादी था, जिसका केन्द्रीय उद्देश्य था, ''भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण करना''।

भू-राजस्व व्यवस्था: ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से पूर्व भारत में जो पूरे परागत भू-राजस्व व्यवस्था थी उसमें भूमि पर किसानों का अधिकार तथा फसल का एक भाग सरकार को दे दिया जाता था। 1765 ई. में इलाहाबाद की संधि से कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई। तब भी कंपनी ने पुरानी भू-राजस्व व्यवस्था को ही जारी रखा लेकिन भू-राजसव की दरें बढ़ा दी। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि कंपनी के खर्चे बढ़ रहे थे और भू-राजस्व ही ऐसा माध्यम था जिससे कंपनी को अधिकाधिक धन प्राप्त हो सकता था। यद्यपि क्लाइव और उसके उत्तराधिकारी ने प्रारंभ में भू-राजस्व पद्धति में कोई बड़ा बदलाव नहीं किया, किंतु कुछ वर्षों पश्चात् कंपनी ने अपने खर्चों की पूर्ति एवं अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भारत की कृषि व्यवस्था में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया तथा करों के निर्धारण और वसूली के लिए नई प्रकार के भू-राजस्व प्रणालियाँ कायम की।

अंग्रेजों ने भारत में मुख्य रूप से निम्नलिखित भू-राजस्व पद्धतियाँ अपनायी–

1. इजारेदारी प्रथा
2. स्थायी बंदोबस्त
3. रैयतवाड़ी व्यवस्था
4. महलवाड़ी पद्धति

1. इजारेदारी प्रथा: इस पद्धति को 1772 ई. में वॉरेन हेस्टिंग्स ने लागू कराया। इस प्रथा की दो विशेषताएँ थीं–
   (क) इसमें पंचवर्षीय ठेके की व्यवस्था थी तथा
   (ख) सबसे अधिक बोली लगाने वाली को भूमि ठेके पर दी जाती थी। इस व्यवस्था से कंपनी को लाभ तो हुआ परंतु उनकी वसूली में अस्थिरता आई। 1777 ई. में पंचवर्षीय ठेके की जगह ठेके की अवधि एक वर्ष कर दी गई। इस व्यवस्था का मुख्य दोष यह था कि प्रति वर्ष नए-नए व्यक्ति ठेका लेकर किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूलते थे।
2. स्थायी बंदोबस्त: इसे 'जमींदारी व्यवस्था' या 'इस्तमरारी व्यवस्था' के काम से भी जाना जाता है। इसे 1793 ई. में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश के बनारस खंड तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू किया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत ब्रिटिश भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 19 प्रतिशत भाग सम्मिलित था। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारों को भूमि का स्थायी मालिक बना दिया गया। भूमि पर उनका अधिकार पैतृक एवं हस्तांतरणीय था। जब तक वह एक निश्चित लगान सरकार को देते रहे तब तक उनको भूमि से पृथक् नहीं किया जा सकता था। परंतु किसानों को मात्र रैयतों का नीचा दर्जा दिया गया तथा उनसे भूमि संबंधी अधिकारों को छीन लिया गया। जमींदारों को किसानों से वसूल किए गए भू-राजस्व की कुल रकम का 10/11 भाग कंपनी को देना था तथा 1/11 भाग स्वयं रखना था। इस व्यवस्था से कंपनी की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।
3. रैयतवाड़ी व्यवस्था: मद्रास के तत्कालीन गवर्नर टॉमस मुनरो द्वारा 1820 ई. में प्रारंभ की गई। इस व्यवस्था को मद्रास, बंबई और असम के कुछ भागों में लागू किया गया। इस व्यवस्था में सरकार ने रैयतों अर्थात् किसानों से सीधा संपर्क किया। अब रैयतों को भूमि के मालिकाना हक तथा कब्जादारी अधिकार दे दिए गए तथा वे व्यक्तिगत रूप से स्वयं सरकार को लगान अदा करने के लिए उत्तरदायी थे। सरकार द्वारा इस व्यवस्था को लागू करने का उद्देश्य आय में वृद्धि करने के साथ-साथ बिचौलियों (जमींदारों) के वर्ग को समाप्त करना भी था।
4. महलवाड़ी पद्धति: इसे लॉर्ड हेस्टिंग्स ने मध्य प्रांत, आगरा एवं पंजाब में लागू कराया। इस व्यवस्था के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल की 30% भूमि आई। इस व्यवस्था में भू-राजस्व का बंदोबस्त एक पूरे गाँव महाल में जमींदारों या उन प्रधानों के साथ किया गया, जो सामूहिक रूप से पूरे गाँव या महाल का प्रमुख होने का दावा करते थे। इस व्यवस्था में लगान का निर्धारण महाल या संपूर्ण गाँव के उत्पादन के आधार पर होता था। मुखिया या महाल प्रमुख को यह अधिकार था कि वह लगान न अदा करने वाले किसान को उसकी भूमि में बेदखल कर दें।

इस प्रकार कंपनी ने भारत में भू-राजस्व उगाही के लिए विभिन्न कृषि व्यवस्थाओं को अपनाया। इन सभी व्यवस्थाओं के पीछे कंपनी का मूल उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व उगाही के लिए विभिन्न कृषि व्यवस्थाओं को अपनाया। इन सभी व्यवस्थाओं के पीछे कंपनी का मूल उद्देश्य अधिकतम भू-राजस्व वसूलना था, न कि किसानों के रत्ती भर भलाई के लिए कार्य करना। इसी कारण धीरे-धीरे भारतीय कृषि-व्यवस्था चौपट हो गई और भारतीय किसान बर्बाद हो गये।

भारत वर्ष के इतिहास में सर्वप्रथम इन बंदोबस्त द्वारा राज्य और कृषकों के बीच जमींदारों का वर्ग अंग्रेजों की नीति द्वारा स्थापित हुआ जिसके फलस्वरूप कृषकों के भू-संपत्ति अधिकार, जो अनादि काल से चले आ रहे थे, छिन गए। यह मध्यवर्ती वर्ग दिन-प्रतिदिन धनी होता गया क्योंकि अंग्रेज शासक अपनी कर राशि में से अधिक हिस्सा उन्हें प्रलोभन के रूप में देते रहे।

इन बंदोबस्तों में कृषकों के हितों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप उनका दु:ख, अपमान एवं दारिद्रय दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। कई बार अंग्रेज शासकों ने भी इस ओर ध्यान दिलाया कि कृषकों की भू-राजस्व की रक्षा की जाए एवं उनका लगान बंदोबस्त के समय तक निर्धारित कर दिया जाए। फिर भी कुछ नहीं किया गया। इसका कारण यह था कि अंग्रेज शासकों की धारणा यह थी कि जमींदारों के साथ व्यवहार में उदारता दिखाने पर जब वे सम्पन्न एवं संतुष्ट रहेंगे तो वे अपने असामियों को नहीं सताएंगे जिसके फलस्वरूप वे भी खुशहाल रहेंगे परंतु यह उनकी महान भूल थी क्योंकि जमींदारों ने हमेशा ही अपने कर्तव्य के साथ विश्वासघात किया। अत: अंग्रेज शासक यह महसूस करने लगे कि इस भूल का सुधार किया जाए। फलस्वरूप

उन्होंने कृषकों की दशा सुधारने के लिए भूमि संबंधी विधानों की व्यवस्था की। यह कदम जमींदारी प्रथा के अस्त की दिशा में प्रथम चरण कहा जा सकता है।

इस प्रथम चरण में, जो सन् 1859 ई. से 1929 ई. तक रहा, जो कानून बने उनसे जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए और उच्च श्रेणी के कृषकों को लाभ भी हुए। किंतु इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य जमींदारों को लगान वसूलने में सहूलियत देने का था जिससे वे राज्य को राजस्व ठीक समय पर दे सकें। सन् 1859 ई. में भूमि संबंधी पहला अधिनियम पास हुआ। यह अधिनियम समस्त ब्रिटिश भारत के लिए एक आदर्श भूमि अधिनियम था जिसके अनुरूप अधिनियम भारत के सभी भागों में पास हुआ और समय-समय पर उनमें संशोधन भी किए गए ताकि असंतुष्ट कृषकों को शांत किया जा सके। किंतु जमींदार फिर भी कृषकों को अपने न्यायपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण करों को वसूलने के लिए निचोड़ते रहे जिससे किसानों में घोर असंतोष तथा बेचैनी फैलने लगी।

जमींदारी प्रथा के अस्त के क्रम में दूसरा चरण सन् 1930 ई. से 1944 ई. तक रहा। इस समय में सारे देश में किसान आंदोलन होने लगे। इन आंदोलनों का बीज एक किसान सभा ने बोया था जो अखिल भारतीय कांग्रेस की इलाहाबाद बैठक में तारीख 11 फरवरी, 1918 ई. को हुई थी। तत्पश्चात् कांग्रेस किसानों के हितों को आगे बढ़ाने लगी। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनता में काफी जागृति पैदा हो गई। पंडित जवाहरलाल नेहरू उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी में तारीख 27 अक्टूबर, 1928 ई. में घोषणा की कि राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक है जब तक किसानों को शोषण से मुक्ति न प्राप्त हो। धीरे-धीरे किसानों की जागरुकता बढ़ी और साथ ही साथ उनकी व्याकुलता भी। किसान वर्ग अब अधिक मुखर हो गया और भू-राजस्व की स्थिरता एवं लगान में कमी की मांग करने लगा। किसान आंदोलनों से प्रभावित होकर रैयतवाड़ी क्षेत्रों में नये अधिनियम बनाए गए जिनसे कृषकों के हितों की रक्षा हो सके। मलाबार टेनेंसी एक्ट (1930 ई.) इस संबंध में सीमा चिह्न है। इसके बाद भोपाल लैंड रेवेन्यू एक्ट, 1935 तथा असमटेनेंसी एक्ट, 1935 पास हुए। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 के अन्तर्गत जब 'प्राविंशल आटोनोमी' का उद्घाटन हुआ तो प्रांतीय सरकारों ने भूमि सुधार अधिनियमों की व्यवस्था की जिनमें कृषकों को और अधिकार प्रदान किए गए तथा जमींदारों के अधिकारों की कटौती की गई। यू.पी. टेनेंसी एक्ट, 1939 तथा बंबई टेनेंसी एक्ट, 1939 विशिष्ट उदाहरण ऐसे व्यापक अधिनियमों के हैं जिनके द्वारा कृषकों को विशेष अधिकार दिए गए तथा कृषकों के हित में जमींदारों के कतिपथ अधिकार छीन लिए गए।

इन भूमि सुधार अधिनियमों के बनने पर भी जमींदारी प्रथा की बुराइयाँ विद्यमान रहीं, यद्यपि काफी हद तक जमींदारों को पंगु बना दिया गया था। 1939 ई. में शुरू द्वितीय विश्वयुद्ध तथा बाद में 1945 ई. में इसके समाप्ति के बाद जमींदारी प्रथा के अंत का अंतिम चरण आरंभ हुआ जो सन् 1945 से 1955 ई. तक चला। युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटिश सरकार ने 1945 ई. में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 ई. के अंतर्गत प्रांतीय सदनों के चुनाव कराने का फैसला किया। कांग्रेस ने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया और दिसंबर 1945 में चुनाव घोषणा पत्र निकाला। इस घोषणा पत्र में जमींदारी उन्मूलन के विषय में स्पष्टतया कहा गया कि भूमि व्यवस्था का सुधार, जिसकी भारत में अति आवश्यकता है, कृषकों तथा राज्य के बीच मध्यवर्ती वर्ग में हटाने से संबंधित है। इसलिए इस मध्यवर्ती वर्ग के अधिकारों का उचित प्रतिकर देकर प्राप्त कर लिया जाना चाहिए। इस घोषणा पत्र से अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा पत्रकार सभी सहमत थे। जमींदारी प्रथा भारतीय आर्थिक विकास में रुकावट डालती थी क्योंकि बड़े जमींदार हमेशा प्रतिक्रियावाद के समर्थक थे। 'लंदन इकोनोमिस्ट' ने इनके विषय में लिखा था कि 'इनमें से अधिकतर 'थैकरसे' के पात्र 'लार्ड स्टोन' की तरह दुश्चरित्र, 'जेन आस्टीन' के 'मिस्टर बेनेट' की तरह आलसी, 'सुर्तीजस्क्वायर' की तरह शराबी थे (Indian Land Problem G.D. Patel)। बंगाल लैंड कमीशन (सन् 1940 ई.) भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सन् 1793 ई. का स्थायी बंदोबस्त उस समय जिन भी कारणों से उचित समझा गया हो, आज की परिस्थिति में अनुपयुक्त है और जमींदारी प्रथा में इतनी बुराइयाँ उपज चुकी हैं कि यह अब राष्ट्र के हित में किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं रह गई है। भारतीय तथा पाश्चात्य अर्थवेत्ताओं की राय में जमींदारी उन्मूलन अधिक कृषि उत्पादन के लिए अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त यह प्रथा संसार के हर भाग में समयानुकूल न होने के कारण समाप्त हो चुकी है। यह प्रथा राज्य के लिए अधिक खर्चीली है। यह प्रथा इस समय ऐसी स्थिति पर पहुँच चुकी है कि यदि इसका उन्मूलन न किया गया होता तो इसके कारण न केवल राष्ट्रीय आर्थिक समस्या पर ही वरन् समाज सुरक्षा पर भी विपत्ति आ पड़ती।

अतः सन् 1946 ई. में चुनाव में सफलता के फलस्वरूप जब हर प्रांत में कांग्रेस मंत्रिमंडल बने तो चुनाव प्रतिज्ञा के अनुसार जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए विधेयक प्रस्तुत किए गए। ये विधेयक सन् 1950 ई. से 1955 ई. तक अधिनियम बनाकर

चालू हो गए जिनके परिणामस्वरूप जमींदारी प्रथा का भारत में उन्मूलन हो गया और कृषकों एवं राज्य के बीच पुन: सीधा संबंध स्थापित हो गया। भूमि के स्वत्वाधिकार अब कृषकों को वापस मिल गए जिनका उपयोग वे अनादि परंपरागत काल से करते चले आए थे।

इस प्रकार जिस जमींदारी प्रथा का उदय हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन से हुआ था उसका अंत भी उनके शासन के समाप्त होते ही हो गया। इस प्रथा की समाप्ति पर किसी ने तनिक भी शोक प्रकट नहीं किया, क्योंकि इसका विनाश होते ही पुराने सिद्धांत की, जिसके अनुसार भूमि का स्वामी कृषक होता था, पुनरावृत्ति हुई। जो दिनांक 2 अक्टूबर, 1951 को जमींदारी प्रथा की समाप्ति से हुई थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद - मानसरोवर भाग-1 से 8 (हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962 ई.)
2. प्रेमचंद - कफन (हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1961 ई.)
3. प्रेमचंद - गोदान (सरस्वती प्रेस, बनारस, 1961 ई.)
4. शिवरानी देवी - प्रेमचंद घर में (आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1959 ई.)
5. डॉ. कमलकिशोर गोयना - प्रेमचंद विश्वकोश खंड-1, 2 (प्रभात प्रकाशन, दिल्ली)
6. प्रेमचंद और उनका युग - राम विलास शर्मा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1993)
7. प्रेमचंद और भारतीय समाज - नामवर सिंह (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1996)

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी स्वर

डॉ० प्रणव कुमार ठाकुर

वर्तमान समय में आदिवासी जमात पर छाया संकट कोई नया नहीं है इन्हें लगातार छला गया है। समय के साथ समझौता करते हुए आदिवासी ने अपने अस्तित्व को कायम रखने हेतु कभी वन-गुफाओं में तो कभी कन्दराओं में शरण लिया। किन्तु तमाम झंझावतों को सहते हुए भी औपनिवेशिक सत्ता के व्यवस्थित एवं सुनियोजित रणनीति एवं वर्तमान में जारी लगातार कुचक्रों के बीच वे लहुलूहान होकर अपने जीवन-अस्तित्व को कायम रख सकने में अक्षम हो रहे हैं। अंग्रेजों की औपनिवेशिक सोच व नीति ने भारतीयों विशेषकर आदिवासियों के अस्तित्व को गहरे संकट में डाल दिया।

ब्रिटिश औपनिवेशिक दासता ने भारत के आदिवासियों के अस्तित्व को किस प्रकार संकटग्रस्त कर दिया इसका सटीक विश्लेषण 'धूणी तपे तीर' (हरिराम मीणा) 'जो इतिहास में नहीं है' (राकेश कुमार सिंह), 'बाजत अनहद ढ़ोल' (मधुकर सिंह) तथा 'मगरी मानगढ़' (राजेन्द्र मोहन भटनागर) करता है। स्थायी बंदोबस्त के फलस्वरूप अंग्रेजों ने आदिवासियों के जल-जंगल-जमीन के नैसर्गिक अधिकारों से उन्हें बेदखल कर दिया। यहाँ के जमींदारों एवं साहूकारों से समझौता कर अंग्रेजों ने आदिवासियों को जीवन जीने के प्राकृतिक अधिकारों से भी वंचित कर डाला। अत: अपने अस्तित्व पर छाये संकटों को दूर करने के लिए आदिवासियों ने व्यापक मुक्तिकामी संघर्ष (इतिहास के स्वर्णिम पन्नों पर बहुप्रचारित 1857 के सिपाही विद्रोही से भी काफी पहले सन् 1781 से ही) छेड़ दिया। 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में वर्णित संताल आंदोलन 'हूल' महज विद्रोह मात्र नहीं था वरन् अपनी अस्मिता, स्वायत्तता और संस्कृति के लिए वनपुत्रें का मुक्तिकामी संघर्ष था। संतालों की यह क्रांति अंग्रेजों को भारत से भगाने की प्रथम जनक्रान्ति थी।''[1] 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में भी अपने अस्तित्व संकट से मुक्ति हेतु औपनिवेशिक अंग्रेजी शासन एवं देसी सामंती प्रणाली के विरुद्ध आदिवासियों के संघर्ष-गाथा का उल्लेख हुआ है। इस उपन्यास में मानगढ़ पर्वत पर 'जलियांवाला काण्ड' से चार गुणा अधिक शहादत आदिवासियों की हुई, लेकिन इतिहास इस क्रूरता पर चुप्पी साधे बैठा है।

हिंदी उपन्यास के विकास की प्रक्रिया देखें तो उपन्यास में अब तक ऐतिहासिक प्रसंगों का उल्लेख प्राय: मुख्यधारा के समाज के यशोगाथा के रूप में हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यास की धारा इसकी ही समृद्ध कड़ी को सूचित करती हैं किन्तु हाल के दिनों में प्रकाशित आदिवासी जीवन-स्थितियों पर केन्द्रित अनलिखे ऐतिहासिक रूपकों की पड़ताल नये सिरे से करती है। इन उपन्यासों में 'धूणी तपे तीर' 'जो इतिहास में नहीं है', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'मगरी मानगढ़' इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इतिहास प्राय: राष्ट्र पर काबिज सत्ता द्वारा प्रायोजित रूप में लिखी जाता रहा है ताकि वे अपने को महिमामंडित कर दूसरों पर वर्चस्व कायम कर सकें। आरंभ में आर्य से लेकर, औपनिवेशिक शासक अंग्रेज एवं वर्तमान में सत्ताधारी तंत्र ने आदिवासियों के साथ यही किया। अपने परंपरागत प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा जमाए आर्यों का जब विरोध आदिवासियों ने किया उन्हें 'असुर अर्थात् विरोधी आचरण करने वाले' की संज्ञा दिया गया। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में असुर समुदाय के प्रति इतिहास में हुए इसी विडम्बना को नए अर्थ-संदर्भों में रेखांकित किया गया है। जो समुदाय अपने वैभवशाली अतीत को (लोहे बनाने की कला) समेटे हुए था उसे किस प्रकार हाशिए पर ढ़केल दिया गया इसका आख्यान रचता है- 'ग्लोबल गाँव के देवता'।

औपनिवेशिक सत्ता अंग्रेजों के प्रतिरोध के रूप में सन् 1857 ई. (प्रथम सिपाही विद्रोह) एवं जालियांवाला बाग की घटना को इतिहास में बहुप्रचारित रूप से स्पेस मिला है। किन्तु 1857 से पूर्व ही (लगभग 100 वर्ष पूर्व) अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों द्वारा कई बार सशक्त रूप में आंदोलनों और अनेक अवसरों पर अंग्रेजों को करारी मात भी खानी पड़ी, इस पर इतिहास की चुप्पी बेहद अफसोसजनक है। दक्षिणी राजस्थान के मानगढ़ पर्वत पर जालियांवाला बाग से चार गुणा अधिक शहादत आदिवासियों की अंग्रेजी शासन एवं स्थानीय सामंत-जमींदार के विरुद्ध संघर्ष करते हुए हुई। इतिहास की इस अप्रतिम गाथा को हरिराम मीणा वर्षों

के अनुसंधान के फलस्वरूप 'धूणी तपे तीर' उपन्यास के माध्यम से सामने लाते हैं। किन्तु विडम्बना यह है कि 'बनते भारतीय राष्ट्र' को इस आइने में देखने की कोशिश की अभी भी उपेक्षा की जा रही है। इतिहासकार भी अपने वर्गीय हित व औपनिवेशिक सोच से किस प्रकार मुक्त नहीं हो पाता है इसका एक बेहतर नमूना मानगढ़ पर्वत पर नरसंहार के संबंध में राजस्थान के महान इतिहासकार गौरीशंकर ओझा की टिप्पणी गौरतलब है- "मानगढ़ पर एकत्रित भीलों ने उत्पात मचा रखा था। फौज को गोलियाँ चलानी पड़ी। कुछ भील मारे गये।"[2]

अपने हक एवं अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासियों का संघर्ष उन्हें (इतिहासकार को) उत्पात नजर आता है। यहाँ इतिहास का का पूर्वाग्रह साफ नजर आता है।

राष्ट्र के निर्माण में सबसे अधिक कीमत उपेक्षित समुदायों विशेषकर आदिवासियों ने ही चुकाया है। विकास व राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया यथा-आधुनिकीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण व वैश्वीकरण आदि की सबसे ज्यादा कीमत देश के किसी भी नागरिक समुदाय की तुलना में आदिवासियों ने चुकायी है। जबकि इसके ठीक विपरीत मुख्यधारा के समाज के लोगों के लिए यह ऐश्वर्य का साधन बना। इस संबंध में 19 दिसम्बर 1946 को सत्ता हस्तांतरण के समय ही संविधान सभा में ऑब्जेक्टिव्स रिजॉल्युशन पर तीखे तेवर में बोलते हुए जयपाल सिंह मुण्डा का ऐतिहासिक वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है-

"मैं भी सिन्धु घाटी की सभ्यता की ही एक संतान हूँ और उसका इतिहास बताता है कि आप में से अधिकांश बाहर से आए हुए घुसपैठिए हैं। जहाँ तक हमारी बात है, बाहर से आए हुए लोगों ने हमारे लोगों को सिन्धु घाटी से जंगल की ओर खदेड़ा। हम लोगों का समूचा इतिहास बाहर से यहाँ आए लोगों के हाथों निरंतर शोषण और बेदखल किए जाने का इतिहास है।" [3]

पर हम देखते हैं कि स्वाधीनता के काफी वर्षों के बाद भी भारत (राष्ट्र) के भीतर आदिवासियों के इस उम्मीद एवं विश्वास को लगातार दगा दी गई। 'पठार पर कोहरा', 'जहाँ बाँस फूलते हैं' जैसे उपन्यास विकास एवं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को ही प्रश्नांकित करते हैं।

राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में मुख्यधारा का समाज जहाँ ज्यादा सशक्त नजर आता है वहीं आदिवासियों का जीवन लगातार उपेक्षित एवं संकटग्रस्त। राष्ट्र के निर्माण की कीमत उन्होंने विस्थापित होकर चुकाया है। आजादी के बाद योजनाबद्ध विकास से आर्थिक क्षेत्र में विशेषतया ऊर्जा, खनिज, भारी उद्योग, सिंचाई तथा आधारभूत विकास कार्यों में क्रांतिकारी प्रगति तो हुई लेकिन इस प्रगति की भारी कीमत आदिवासी समुदायों को विस्थापित होकर चुकानी पड़ी। इतना ही नहीं भूमि-अधिग्रहण संशोधन विधेयक, नई आर्थिक सुधार के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को जल्दी से जल्दी मनमानी जमीन दिए जाने हेतु लाया गया जिससे आदिवासी लगातार विस्थापित होकर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में सस्ते श्रमिक मजदूर की एक बड़ी जमात के रूप में खड़े हो गए। भारत सरकार के 'ग्रामीण विकास मंत्रलय' की 2004-05 की रिर्पोट इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है जिसके अनुसार आदिवासियों की जमीन पर कब्जे के 3,75,164 मामले दर्ज हुए हैं वहीं आदिवासी कृषकों की संख्या का ग्राफ (1961-1991, 76.45-68.09)लगातार घटती गई है जो इस बात का संकेत देता है-आदिवासी, जो भूमि मालिक/किसान थे, उनकी जमीन छीन उन्हें भूमिहीन श्रमिक मजदूर में तब्दील कर दिया जा रहा है। औद्योगिक प्रतिष्ठान किस तरह राष्ट्र की सर्वोच्च संस्था न्यायालय की अवमानना से लेकर वन अधिनियम आदि की धज्जियाँ उड़ाते हुए आदिवासी परिवेश में औद्योगिक कचरा उड़ेलकर उनके जीवन को विषाक्त बना रहे हैं इसका नमूना हमें 'पाँव तले दूब', 'सीता', 'मौसी', 'सावधान नीचे आग है', 'धार' आदि उपन्यासों में मिलता है। औद्योगिक नीतियों के छद्म का खुलासा 'पाँव तले दूब' उपन्यास में किया गया है- "झारखण्ड खनिज संपदा का भण्डार है। नए-नए उद्योग लगाए जा रहे हैं, नयी दुनिया की पगध्वनि। अगर सरकार ईमानदारी से इनका हक दे तो एक ही छलाँग में कई मंजिलें अपने-आप तय हो जाती हैं-पर अन्याय देखो, आदिवासियों को, जिनकी जमीन पर ये कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है- इस संपति में उनकी भागीदारी तो खत्म की ही जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसरों के पेट में।... कुल मिलाकर यह कि गाँवों की जिंदगी पहले से ज्यादा बदहाल है।"[4]

राष्ट्र के भीतर समानता, न्याय, लोकतंत्र जैसे मानवीय मूल्यों की अवस्थिति रहती है। लेकिन जहाँ पूँजीवाद और सत्ता तंत्र उपेक्षित समुदाय को ही नजरअंदाज कर उनके अस्तित्व को संकटग्रस्त बना दिया गया है वहाँ इन मूल्यों की बात करना बेईमानी होगी। नजरअंदज करने की प्रक्रिया में आदिवासियों में असंतोष की भावना पनपी। बड़े-बड़े उद्योगों और परियोजनाओं के कारण आदिवासियों की भूमियों का जबरन अधिग्रहण और तदनुसार उनका गलत-सलत विस्थापन ही उनमें फैल रही असंतोष का बड़ा

कारण है। आदिवासियों में व्याप्त असंतोष ही कई बार नक्सलवाद से संबंधित हिंसक घटनाओं के रूप में हमारे सामने आता है। दरअसल नक्सली गतिविधि में शामिल आदिवासियों के मनोविज्ञान को समझे बगैर अक्सर एक सतही वक्तव्य उछाल दिया जाता है। राष्ट्र के खिलाफ अंतहीन संघर्ष के संदर्भ 'आंतरिक सुरक्षा या युद्ध' (आउटलुक) शीर्षक से अरुंधति राय का वक्तव्य बेहद गंभीर है-

"फिलहाल, मध्यभारत में माओवादियों की जो गुरिल्ला सेना है, वे सभी गरीब-आदिवासी हैं। ये लंबे समय से भुखमरी के ऐसे हालत में जीते आ रहे हैं जिनकी तुलना सब-सहारन अफ्रीका के सुखाड़ से ही की जा सकती है। ये ऐसे लोग हैं जिनकी पहुँच तथाकथित आजादी के साठ साल बाद भी शिक्षा, स्वास्थ्य और कानूनी सेवाओं तक नहीं बन सकी है। दशकों से इनका बर्बर शोषण होता रहा है। छोटे-मोटे कारोबारी और सूदखोर इन्हें लगातार छलते रहे हैं। पुलिस और वन विभाग के कर्मचारी इनकी औरतों से बलात्कार को अपना अधिकार समझते रहे हैं।... इतना ही नहीं नये आर्थिक सुधारों के तहत व 'सेज' के नाम पर अनगिनत निगम, छोटे से लेकर दुनिया की बड़ी से बड़ी दैत्याकार स्टील और खनन कंपनियाँ- मित्तल, जिंदल, टाटा, एस्सार, पॉस्को, रियो टिंटो, बीएचपी बिलिटन और हाँ, वेदांता भी आदिवासियों की जमीन हड़पने में लगी हुई हैं। हर एक पहाड़ी, नदी और जंगल के लिए समझौता हो गया।"[5]

हाल के दिनो में नियमगिरि पर्वत (उड़िसा) के आदिवासियों के संघर्षो को इसी रूप में देखने की जरूरत है। दरअसल ओड़िसा के बॉक्ससाइट के पहाड़ की परियोजना चार खरब डॉलर ठहरती है, दंडकारण्य का जंगल जो पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, ओड़ीसा, आंध्र प्रदेश व महाराष्ट्र का वृहत्तर भू-भाग जिसमें सैकड़ों परियोजनाएँ शामिल हैं यह लाखों आदिवासियों का घर ही नहीं बल्कि इनमें स्थित पर्वत जीवन व आस्था के प्रतीक हैं। देश के विकास दर (जी.डी.पी) बढ़ाने के नाम पर सरकार खाये-पीये-अघाए लोगों के हित में 'ऑपरेशन ग्रीन हंट' व 'सलमा जुडूम' (आदिवासियों को ही आदिवासियों के खिलाफ हिंसा में संलग्न) जैसे हिंसक दस्तों का इस्तेमाल आदिवासियों को रौंदने व कुचलने के लिए लगातार किया जाता है। फिर भी हम आदिवासी से चुप्प रहने की अपेक्षा करें, यह सदी की सबसे शर्मनाक बात है। नक्सल समस्या को केन्द्र में रखकर आदिवासी जीवन पर अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास हिंदी में अभी तक मेरी नजर में नहीं दिखाई पड़ा है। किन्तु 'जंगल के आस-पास', 'जंगल जहाँ शुरु होता है', खुले गगन के लाल सितारे', 'जो घाटी ने कहा था', 'ग्लोबल गाँव के देवता' जैसे उपन्यासों में इन गतिविधियों का सूक्ष्म रूप में अंकन हुआ है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में अपने हक की लड़ाई लड़ते हुए आदिवासी जब पुलिस द्वारा गैरकानूनी फायरिंग में मारे जाते हैं तो मीडिया में आदिवासी को नक्सली बताया जाता है। मीडिया के पूँजीवादी इस चरित्र को समझने की जरूरत है।

धर्म की मूल प्रवृत्ति मानवीय होती है। किन्तु जब धर्म विशेष पहचान की राजनीति से जुड़ जाता है तो वर्चस्वशाली समूह छोटे-छोटे दमित वर्ग को जबरन अपना धर्म थोपने की कोशिश करते हैं। अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों को सांस्कृतिक दृष्टि से उपनिवेश बनाये रखने हेतु उन्हें ईसाई धर्म में धर्मांतरित किया। इस धर्मांतरण के कारण आदिवासी जीवन में सकारात्मक बदलाव भी हुआ। वे अंधेरे के जीवन को छोड़कर शिक्षित व चेतनशील होने लगे। किन्तु मानवीयता की इस आड़ में आदिवासी की मूल पहचान ही गायब हो गई जिसे आदिवासी समुदाय की नई पीढ़ी त्रसद अनुभव के रूप में करती है- "क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज में पहाड़ थे, नदियाँ थीं, पेड़ थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकॉनमिकली एक्सप्लाइट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर टेम्स अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिये हिंदू फंडामेडलिस्टों और आपमें अब कोई खास फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेजेज छीन लीं आप लोगों ने।"[6]

समकालीन उपन्यासों में दोयम दर्जे का जीवन बस कर रहे इन विमुक्त एवं घुमंतू जनजातियों का चित्रण हुआ है जिनमें 'अल्मा कबूतरी', 'रेत', व 'डेरा बस्ती का सफरनामा', 'पिछले पन्नों की औरतें', 'कब तक पुकारूँ', 'शैलूष', 'धरती मेरा घर', 'कगार की आग' जैसे उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं। 'अल्मा कबूतरी', 'रेत' व 'डेरा बस्ती का सफरनामा' इन सभी उपन्यासों में एक बात महत्त्वपूर्ण रूप में सामने आती है कि ये जनजातियाँ आज भी राष्ट्र एवं सभ्य समाज की नजर में हेय हैं। न्याय प्रणाली भी इनके प्रति उपेक्षा की दृष्टि अपनाती है। तथाकथित सभ्य समाज के शोषण व पुलिसिया बर्बरता के कारण वे अपराध में संलग्न रहते हैं। जीवन जीते रहने की अंतहीन जिजीविषा के कारण इन जनजातियों में जीवन व नैतिकता के प्रतिमान राष्ट्र व सभ्य समाज से बिल्कुल अलग नजर आते हैं। 'रेत' उपन्यास राष्ट्र को कटघरे में शामिल करने के साथ ही परंपरागत नैतिकता को भी चुनौती देती है- "इस मुलक में हम तो आज भी वैसे ही हैं, जैसे फिरंगियों के जमाने में थे। पहले फिरंगियों उनके दलाल-पिट्ठुओं ने हमारा जीना मुहाल कर रक्खा था, अब इन देशी फिरंगियों ने।ङ्क्षपूछो हम कंजरों से कि हमने अपने ही मुलक में कैसे-कैसे जुल्म सहे हैं। ङ्क्ष.दरोगा जी,

जैसे ये इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न, वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं। हमारे लिए तो यह देह ही हमारी मेहनत है। हमारे लिए तो यह दूसरों की तरह आम काम है।. वाह तुम्हारी मेहनत, मेहनत और हमारी मेहनत धंधा। तुम कहलाओं कमेरे और हम कहलाएँ रामजनी। यहाँ कहाँ का न्याय हुआ।"[7]

अंत में सार रूप में कहा जा सकता है हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन-स्थितियाँ राष्ट्रवाद के बने-बनाए प्रतिमान को निरस्त करती है। जहाँ जीवन ही खतरे में हो वहाँ राष्ट्र की बात करना ही अनुचित लगता है जब तथाकथित सभ्य समाज के ठेकेदार एवं राष्ट्र के नुमाइंदे आदिवासियों को (समान नागरिकता) मनुष्यता का दर्जा देने के लिए अभी भी तैयार नहीं है तो आदिवासी जीवन-स्थितियों की बेहतरी की बात करना ही बेईमानी होगी। हिंदी आलोचना का केन्द्रीय सरोकार ही मुख्यधारा के साहित्य को महिमामंडित करना जब एकमात्र लक्ष्य रह गया है तब उपेक्षितों के साहित्य से जाहिर सी बात उन्हें विशेष लगाव नहीं होगा। किन्तु आलोचना की अपनी परंपरा को समृद्ध कर यदि गतिशील बनाये रखना है तो आदिवासी समाज एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद की अवधारणा को पुनर्परिभाषित करना होगा ताकि 'वसुधैव कुटुम्बकम' वाली सूक्ति थोथी नजर नहीं आए।

संदर्भः

1. जो इतिहास में नहीं है (भूमिका), पृ. 9
2. धूणी तपे तीर (भूमिका), पृ. 19
3. जनपथ, जनवरी-फरवरी 2011, पृ. 50
4. पाँव तले दूब, पृ. 67
5. आउटलुक, अप्रैल 2010, पृ. 14
6. काला पादरी, पृ. 45
7. रेत, पृ. 153

महिलाओं के प्रति हिंसा एवं न्यायालय की भूमिकाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० प्रवीण कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर (विधि), सुधाकर महिला विधि महाविद्यालय, पाण्डेयपुर, वाराणसी

सारांशः

मनुष्य के द्वारा प्रारम्भ से ही एक ऐसे समाज की कल्पना की गयी थी, जिसमें सभी समान हो चाहे वह समाज कोई भी वर्ग, कोई भी जाति या चाहे कोई भी समुदाय हो। ऐसे समाज में प्रत्येक प्रकार के समानता की कल्पना की गई थी, परन्तु यह मात्र एक कोरी कल्पना ही थी, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं, समाज में ऐसी स्थिति कभी नहीं रही कि संसाधनों का समान वितरण हो और सभी के पास शक्ति के समान स्तर हो,''[1] चाहे वह स्त्री या पुरूष ही एक महत्वपूर्ण घटक होती है, जो कि माता पत्नी, बहन तथा आय उर्पाजक जैसी अनेक महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती है और यह असमानता सभी संस्कृतियों की विशेषता रही है।''[2]

महिलाओं के साथ होने वाला भेदभाव कब हिंसा एवं अत्याचार में परिवर्तित हो जाता है, यह किसी को भी यहाँ तक कि स्त्रियों को भी ज्ञात नहीं हो पाता है और वह उसे अपने जीवन में स्वभाविक मानकर सहती रहती है, ''फिर चाहे वह बाल-विवाह, दहेज प्रथा, यौन शोषण, बलात्कार, भ्रूण हत्या ही क्यों न हो।''[3] यह हिंसा एवं अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा, महिलाओं के लिये कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं है, चाहे वह घर सड़क, स्कूल, कालेज या अस्पताल ही क्यों न हो।

न्यायपालिका प्रारम्भ से ही मनुष्यों के मौलिक एवं मानवाधिकारों का संरक्षक रहा है इसने सदैव ही एक सजग प्रहरी की भांति कार्य किया है विनियों के प्रति होने वाली हिंसा को भी न्यायालय द्वारा समाप्त करने के लिये समय-समय पर निर्देश एवं आदेश विधापिका एवं कार्यपालिका दोनों ही जब अपने कार्यों के द्वारा महिलाओं को हिंसा एवं अत्याचार से मुक्ति नहीं दिला पाते है तो न्यायालय द्वारा मोर्चा सम्भाला जाता है।

महत्वपूर्ण शब्दावलीः महिलाओं, हिंसा एवं अत्याचार, हिंसा का स्वरूप, उच्चतम न्या0, विधापिका, संस्कृति, पित्तसत्ता, भारतीय परिवेश।

प्रस्तावनाः स्त्रियां समाज के निर्माण पोषण और विकास में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकारों से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, परन्तु उनके योगदान को सदैव ही नजर अंदाल किया जाता रहा है क्योंकि वह सब उनके सहज स्वभाविक कर्तव्य में शामिल कर लिया जाता है। उन्हें समाज में वह स्थान नहीं मिल पाता है जिसकी कि वह हकदार है। उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में द्वितीय श्रेणी के नागरिक का दर्जा मिला हुआ है।

''या नयिस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता, कदाचित किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति में नारी के लिये इतना महान उद्घोष उपलब्ध नहीं होगा, यह सत्य है, परन्तु यथार्थ यह भी है कि कन्या भ्रूण हत्या से लेकर जीवन के प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में महिलाये प्रारम्भ से ही हिंसा का आखेट होती आ रही है।''[4]

भारत में पित्तसतात्मक समाज होने के नाते लिंग के आधार पर व्यावसायिक भेदभाव किये जाते रहे है। "महिलाओं के प्रति यह भेदभाव बहुत हद तक उन सामजिक मूल्यों का नतीजा है जिनका लक्ष्य उन्हें पुरूष के अधिपत्य में एक निम्नतर स्थिति में रखना होता है। वैसे भी महिलाओं की व्यवसाय में भागीदारी बहुत ही सीमित है और जो है वह भी रोजगार देने वालों के अत्याचार एवं

शिक्षा से पीडित है।''[5] भारतीय परिवेश में स्त्री तस्वीर विरोधाभास युक्त है। सैद्धान्तिक तौर पर वह देखी कही जाती है, परन्तु व्यवसायिक जगत में वह स्त्री दासी की भूमिका निभा रही है। क्षोभ का विषय यह है कि ऐसे अनैतिक और हिंसक लोग समाज में पूरी सफेदी के साथ फिरते है, उन्हें दण्ड का लेशमाल भी भय नहीं है। ''हमारा दकियानूसी सामाजिक पक्ष उसे 'देवी' और 'दासी' से इतर मनुष्य मानने को तैयार ही नहीं है।''[6] पुरूषों ने महिलाओं को अव्यक्त व्यक्तित्व प्रदान कर अपनी कृत्रिम गरिमा को कायम रखने का सदैव प्रयास किया है। पुरूष रचित रीति रिवाजों ने महिला अर्द्धगति और अनुगामिनी बन कर रह गयी है।''[7]

महिला हिंसा का स्वरूप-''महिलाहिंसा का दर्शन समाज के संगठन से ही होने लगा था, इसमें मुख्य रूप से समाज की रचना, उत्पादन के साधनों में बदलाव, परिवार संस्था के अभ्युदय एवं स्वामित्व, सम्पत्ति के उदय के उदय के साथ-साथ सामाजिक संरचनाओं में आये परिवर्तनों ने स्त्री-पुरूष असमानता, भेदभाव सूत्रपात किया।[8] ''हिंसा की इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचानाओं, सांस्कृतिक नैतिक मूल्य, मानको, अर्थ वनत, राजनीति संस्थाओं समेत अनेक कारको का योगदान रहा है।''[9] यही स्थिति लगातार चलती रही चाहे वह मुगल काल हो या ब्रिटिश काल, शासन एवं सत्ता का परिवर्तन तो होता रहा, परन्तु र्स्त्रियों के विरूद्ध होने वाली हिंसा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, वह समय एवं काल के अनुसार बढ़ता ही चला गया।

यह हिंसा सामाजिक व्यवस्था का विश्वव्यापी एवं परम्परागत हिस्सा बन चुका है। ''विश्व में कई ऐसे देश है जिसमें स्त्रियों को कार्य के योग्य नहीं माना जाता है, धार्मिक कार्यो में उनको सिम्मलित नहीं किया जाता है, उनको आज भी दोयम दर्जे की स्थिति प्राप्त है,''[10] ''यूनीसेफ के एक सर्वे के अनुसार 15 से 49 तक की उम्र की महिलाओं ने अपने साथ होने वाली हिंसा को एक दैनिक दिनचर्या माना है जिसमें अफगानिस्तान तथा जेडिन में 90% माली में 98 प्रति गुएना तथा तिमोर में 86 और ऊच अफ्रीकी देशों में 80% है। अधिकता विकासशील देशों में पति की इच्छा को पूरा न कर पाना घरेलू हिंसा का उचित कारण माना गया है। करीब 68% लोग यह मानते हे कि पति की बात पर सहमत न होना, 47.9% के अनुसार संभाग से मना करना, 40% के अनुसार खाना पसन्द न होना इत्यादि हिंसा के लिये उचित आधार है।''[11]

''महिलाओं के खिलाफ हिंसा जीवन के सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में और उनके जीवन काल के किसी भी समय हो सकती है और इसमें उनके समुदायों के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक पक्षों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा अन्य कारण के रूप में उम्र, वर्ग, संस्कृति, जातिसता, धर्म, यौन अभिविन्यास और भौगोलिक क्षेत्र भी हिंसा को बढ़ावा देते है।''[12]

इस प्रकार महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी प्रकार की हिंसा समाहित है परन्तु जिस हिंसा का सामना महिलाओं को अपने दैनिक जीवन में करना पड़ता है वह है घरेलू हिंसा। घरेलू हिंसा को सामानतः हिंसा न मानकर एक प्रकार का अनुशासन, दिशा निर्देश, सामान्य व्यवहार ही माना जाता है इसलिये इस पर कोई ध्या नहीं देता है।

महिला हिंसा एवं न्यायालय की भूमिका-

भारतीय राज्य व्यवस्था का संचानल तीन प्रमुख अंगो विधापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के ऊपर आधारित है। न्यायपालिका एक सजग प्रहरी के रूप में यह देखता है कि ये दोनों अंग अपने कार्यो का सम्पादन संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत कर रहे है या नहीं।'' यही कारण है कि भारतीय न्यायपालिका को भारतीय संविधान का रक्षक कहा गया है।''[13] इसी लिये संविधान के द्वारा उसे एक स्वतन्त्र निकाय के रूप से स्थापित किया गया है।

''न्यायपालिका की स्वतन्त्रता संविधानकर्ताओं की सुनियोलित रणनीति का हिस्सा है क्योंकि संविधान निर्माताओं का मानना था कि स्वतन्त्र न्यापालिका के बिना वंचित वर्गो विशेषतः महिलाओं के लिये मूलभूत मानव अधिकारों को प्राप्त करना सम्भव न होगा।''[14] जब विधापिका एवं कार्यपालिका महिलाओं के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन में विफल होते है, तब यही न्यापालिका मोर्चा संभालकर महिलाओं के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है।''[15]

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के रूप में यह उपबंधित किया गया है कि ''भारत राज्य क्षेत्र में किसी को भी चाहे वह स्त्री हो या पुरूष विधि के समक्ष् समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य में इसी अवधारणा को अपनाया गया है। अतः स्पष्ट है कि केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व पर समानता को एक मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है।

संविधान किसी भी व्यक्ति के प्रति असमानता तक सहन नहीं कर सकता हे तो वह हिंसा को कैसे सहन कर सकता है, इसी अवधारणा को उच्चतम न्या0 के द्वारा काठीरंनिग बनाम सौराष्ट्र राज्य[16] के माले से अभिव्यक्त किया गया। इसी प्रकार प्रगति वर्गीज

बनाम सिरील जार्ब वर्गीज[17] के मामले में बम्बई उच्च न्या0 की पूर्ण पीठ ने भारतीय तलाक अधिनियम 1879 धारा 10, 17 और 20 को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया था कि इसमें ईसाई महिलाओं के अधिकारों का अनु 21 के अन्तर्गत हनन होता है।

राधाचरन बनाम उड़ीसा के मामले में उड़ीसा[18] उच्च न्या0 ने उड़ीसा राज्य न्यायिक सेवा नियम 1963 के उस प्रावधान को शून्य घोषित कर दिया जिसके तहत एक महिला को विवाहित होने के कारण जिला जज के पद पर नियुक्त होने के अयोग्य घोषित कर दिया।

कई ऐसे मामले है, जिसमें हमारे न्यायालयों से अपने निर्णय के द्वारा महिला अधिकारों को बढ़ावा और सामाजिक भेद-भाव को समाप्त किया। संविधान के अनु 23 में शोषण के विरूद्ध अधिकार को मूल अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इसी प्रकार के अन्य बलातश्रम को प्रतिसिद्ध करता है विधि के अनुसार दण्डनीय भी होगा। पीपुल्स यूनियन फार डिमोक्रेटिक राइटस बनाम भारत राज्य के मामले में उच्चतम न्या0 ने कहा कि ''यह उपलब्ध न केवल राज्य के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करता है, बल्कि निजी व्यक्तियों के प्रति भी संरक्षण प्रदान करता है।''[19]

गौरव जैन बनाम केन्द्रीय सरकार[20] के मामले में उच्चतम न्या0 ने देह व्यापार में महिला की दुर्दशा और इसके जन्म के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालते हुये उन्हें एक सम्मानित जीवन एवं जीविका प्रदान करने की व्यवस्था के लिये कहा। इसी प्रकार विशालजीत एवं भारत संघ[21] के मामले उच्च न्या0 ने अलु 161 में आवश्यक सुधार के लिये निर्देश दिये। जिसके द्वारा सभी राज्य सरकारों को निर्देशित किया गया कि बाल वेश्यावृत्ति को समाप्त किया जाये।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के मामले में उच्चतम न्या0 ने श्रमजीवी महिलाओं के प्रति कार्य के स्थान में होने वाले यौन उत्पीडन को रोकने के लिये अब तक कि इस प्रयोजन के लिये विधान नहीं बन जाता, विस्तृत मार्गदर्शक विहित किया।[22] दिल्ली डेमोक्रेटिक वर्किंग विमिन्स फोरम बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया[23] के मामले में महिलाओं के प्रति बढ़ते हुये यौन अपराधों के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त की और ऐसे मामलो को शीघ्र परीक्षण तथा उन्हें प्रतिकर व पुर्नवास को प्रदान करने का आदेश दिया। शामिल आरा बनाम राज्य[24] के मामले में उच्चतम न्या0 ने तिहरे तलाक को अविधिपूर्ण बताया।

स्टेट ऑफ पंजाब बनाम इकबाल सिंह के मामले में उच्चतम न्या0 ने पत्नी द्वारा की गयी हत्या को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के अन्तर्गत अपराध माना, इसी प्रकार ''झाप्सा कबाडी बनाम स्टेट ऑफ बिहार''[25] के मामले में 3 वर्षीय बालक का उसकी माँ की गोद से छीन लेना अपहरण माना गया, इस प्रकार न्यायालय द्वारा समय-समय पर अपने निर्णयो, आदेशों एवं निर्देशों के द्वारा महिलाओं के प्रति होने वाली पत्नी हिंसा को अन्याय एवं अपराध माना एवं उन्हें समाप्त करने के तरीके भीब ताये।

निष्कर्ष-

महिला हिंसा की जड़े हमारे समाज में बहुत गहराई तक जम गई हैं। परिवार एवं समाज के संबंधों में व्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अपमान तथा विद्रोह हिंसा का मुख्य कारण है। महिलाओं के प्रति हिंसा में दहेज, प्रताड़ना, महिला के साथ घर में मारपीट, धमकी देना, लैंगिक, मौखिक व भावनात्मक हिंसा व आर्थिक हिंसा प्रमुख है। घरेलू हिंसा महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा का एक जटिल और घिनौना रूप है।

भारत में महिला हिंसा की स्थिति इतनी भयावय है कि शिक्षित एवं अशिक्षित दोनो महिलाएं इसका प्रतिकार नहीं कर सकती है। यह तब की समाचार पत्रों की खबर बनती है जब निर्भया या हैदराबाद जैसी घटना जन्म लेती है अन्यथा महिला हिंसा को महिला के जीवन का एक अंश समझा जाता है। वह अगर अपनी शिकायत लेकर पुलिस थाने जाती है तो वहाँ कुलदीप सिंह सेंगर, आशा राम, राम रहीम जैसे लोगों के जानने वाले लोग उनकी शिकायत को सुनने का अवसर ही देते है एवं उल्टा उल्हें ही डराया व धमकाया जाता है।

महिला हिंसा को रोकने को सबल तरीका महिलाओं को आर्थिक मजबूती प्रदान करना है तब ही वह अपने विरूद्ध हो रहे अत्याचार को रोक पायेगी और उसका मुकाबला कर पायेगी। आर्थिक मजबूती उन्हें शिक्षित एवं प्रशिक्षित कर के प्रदान की जा सकती है जिससे सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं की उन तक जानकारी पहुँचना अति आवश्यक है। इसमें प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ आती है, जिनके लिये सरकार विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम व योजनाए बनाती है।

वर्तमान समय में न्यायालय भी महिला हिंसा के प्रति बहुत ही संवेदनशील बन गया है और प्रत्येक मामले को जो कि महिला हिंसा से जुड़ा हुआ है को बहुत ही संजीदे तरीके से हल करके निर्णय देता है और पीड़ित महिला को शिक्षा, पुर्नवास व आर्थिक सहयोग के लिये सरकार को आदेश भी देंती है, फिर चाहे वह अभी हाल में घटित उन्नाव की बलात्कार की घटना हो या एसिंड पीड़िता लक्ष्मी अग्रवाल की धटना हो, सभी मामलो में पीड़िता को प्रतिकार प्रदान करने का आदेश दिया गया।

संदर्भ

1. पी0ए0 सोरोकिन, 1959 ''सोसल एण्ड कल्चरल, मोबेलिटि'' द फ्री प्रेस ग्लैको, पृ0 117
2. जे0एल0 गिलिन एण्ड जे0पी0 गिलिन 1950, ''कल्चरल सोशियोलॉजी दि मैकमिलन कम्पनी'', न्यूर्याक, पृ0 83
3. जे0एस0 कोचर 2013, ''सम्पादकीय'', मानव अधिकार नई दिशाये, वार्षिक अंक-10 भोपाल, पृ0 87
4. अजीत रायजादा, 2000, महिला उत्पीडन समस्या और समाधान म0प्र0, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ0 87
5. एस0 मुखोपाध्याय 1981, वीमेंस वर्कस इन इण्डिया: ए केस ऑफ मार्केट सेगमेण्टेशन इन दि इडियन लेबर फोर्स, उ0 आर0 टी0 ई0 पी0, बैंकाक, पृ0 94-117
6. एस0सुमन 2014, ''अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव'' राधाकमल मुकर्जी चिन्तन एवं परम्परा, वर्ष 16, अंक 1 जनवरी-जून, पृ0 153
7. नीरा देसाई 1989, वीमेन इन मार्डन इण्डिया एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ0 79
8. के0एस0 पणिक्कर 1961, हिन्दू सोसाइटी एट दि फ्रासरोडस एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, पृ0 167
9. आशा कौसिक 2004, नारी सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, प्वाइन्टर प्रकाशन, जयपुर, पृ0 258
10. लाला राम एवं अनिला 2013, महिला हिंसा एवं लिंग भेद के सम्बन्ध में राष्ट्रीय एवं अन्त स्तर पर कानूनी उपबंध, मानव अधिकार, नई दिशाएं, वार्षिक अंक-10, पृ0 58
11. वी0एन0 सिंह एवं जनमेजय सिंह 2010, आधुनिकता एवं महिला सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0 225
12. एस0टी0 फ्राइड 2003, महिलाओं के विरूद्ध क्रूरता ''स्वास्थ्य एवं मानवाधिकर जर्नल, वा0-6, अंक-2, पृ0 88-111
13. एम0एस0 मोनिका 2012, रोल आफ इण्डियन ज्युडिशिरी टुर्वडस दि प्रोटेक्शन आफ ह्यूमन राइटस ऑफ वूमेन, रिसर्च एक्यो आई एम आर0 जर्नल वा0 3, इश्यू 3 सितम्बर
14. जयनारायण पाण्डेय 2008, भारत का संविधान 41वॉ संस्करण सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, पृ0 23
15. अजंली सिंह 2013, जुडिशियल एक्टिपिज्म-ए हेल्पिंग हैण्ड इन वूमेन इम्पाबरमेंट इण्टरनेशनज इंडेक्स एण्ड रिफ्रीड जर्नल वा0 5, इश्यू-50
16. ए0आई0आर0 1952, एस0सी0, 123-138
17. ए0आई0आर0, 1997, 349
18. ए0आई0आर0 1954, एस0सी0, 321
19. ए0आई0आर0 1982, एस0सी0, 1473
20. ए0आई0आर0 1997, एस0सी0, 302ए
21. ए0आई0आर0 1998, एस0सी0, 438
22. ए0आई0आर0 1997, एस0सी0, 3011
23. ए0आई0आर0 1995, एस0सी0, 14
24. ए0आई0आर0 1999, एस0सी0, 1149
25. ए0आई0आर0 2002, एस0सी0, 312

आधुनिक जन-जीवन में सन्त काव्य की प्रासंगिकता

डॉ० सुनीता रानी

सहायक प्रवक्ता कॉलेजः आई. बी. (पी.जी) महाविद्यालय, पानीपत

अतीत अपने वर्तमान में किसी न किसी रूप में हमेशा जीवित रहता है। कवि तब तक महान कहलाने का अधिकारी नहीं होता जब तक उसकी दृष्टि अपने वर्तमान की सीमाओं को भेद कर भविष्य के भवितव्य को न पढ़ ले। उनकी दृष्टि सार्व- कालिक एवं सार्वभौमिक होती है। उनके विचारों का यह तत्व है जो उन्हें सतत प्रासंगिक बनाए रहता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए वे प्रेरणा स्रोत बने रहते हैं। संतकवियों की जनकल्याणकारी वाणियाँ तत्युगीन समाज के संदर्भ में कही गई थीं किन्तु उनकी महत्ता इस बात में है कि वे वर्तमान में भी अपनी प्रासंगिक सार्थकता की ऊर्जा की ताजगी से सरोबार हैं। आज के समाज की राजनीतिक, धार्मिक आर्थिक दशा के परिप्रेक्ष्य में संत कवियों की वाणियों की प्रासंगिकता एवं सार्थकता ज्यों की त्यों वर्तमान है, यहाँ यही हमारे विवेचन का विषय है।

जातिगत विषमता के निवारण के संबंध में संत कवियों की रचनाएं आज प्रासंगिक हैं। जाति के इस मकड़ जाल से उभरने के लिए संत कवियों द्वारा प्रशस्त पथ के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

आज जब हम चारों ओर व्याप्त सामाजिक जड़ता तथा अराजकता की ओर उन्मुख होते हैं तब व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करने के लिए युगपुरुष की आवश्यकता महसूस करते हैं। कबीर का कालजयी व्यक्तित्व इस समय भी हमारे लिए ज्योतिपुंज है। कबीरदास मानवता के साक्षात् प्रतिमूर्ति एवं धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक समरसता के अग्रदूत हैं। 'कागद' और 'मासि' से अनस्पर्शित कबीर इक्कीसवीं सदी के उच्च शिक्षित मानव से कहीं अध्टिाक आधुनिक और प्रगतिशील हैं। कबीर की साखी, सबद और रमैनी आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं लोकप्रिय है जितनी मध्यकालीन समाज में थी। कबीर अनपढ़ थे, किन्तु जगत को उन्होंने खुली आँखों से देखा-परखा था। वे कहते हैं- ''मैं कहता हूँ आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।'' अत: उनकी बानियों में जीवन के अनुभवों से प्राप्त सत्य का साक्षात्कार होता है। यही कारण है कि लगभग छ: सौ वर्ष पूर्व कही लिखी गई कबीर की बानियाँ आज भी इतना ही प्रासंगिक है। बढ़ते समय के साथ जगत में भौतिक सुविधाएँ, साधन-सामग्री, सुख-वैभव आदि में वृद्धि अवश्य हुई है, किन्तु मानव सहज वृत्तियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। मानव सहज दुर्वृत्तियों के कारण मानव समाज में विसंगतियाँ आज भी मौजूद है। कबीर ने अपने युग की जिन-जिन विसंगतियों पर व्यंग्य किया था, वह आज के आधुनिक युग में भी उतना ही प्रासंगिक, सार्थक और सटीक प्रतीत होता है। इक्कीसवीं सदी के इस दौर में ज्ञान-विज्ञान, धर्म, जातियाँ, राजव्यवस्था और विचारों की अनेक शैलियाँ तथा जीवन एवं जगत की बहुत सी परम्पराएँ निरन्तर गतिमान है। नाना प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों (कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, टेलीविजन, रेडियो आदि) से सुसज्जित मानव धीरे-धीरे आध्यात्मिक जगत एवं पारिवारिक जीवन से कटता जा रहा। हमारा शिक्षित समाज सामाजिक कुसंस्कारों, अंधविश्वासो ं धार्मिक पाखण्डों, संवेदनाहीन सीमाओं और कर्मकाण्डों से उसी तरह ग्रस्त है जिस तरह विज्ञान और संचार तकनीकीविहीन कबीर युगीन समाज ग्रस्त था। इस दृष्टिकोण से आज यदि कबीर के समग्र साहित्य, रचना-दर्शन की परत दर परत विश्लेषण एवं व्याख्या की जाए तो यह सिद्ध हो जाएगा कि उनके साहित्य में आज की ही नहीं बल्कि आने वाले हजारों वर्षों के समाज को नूतन जीवन-दृष्टि एवं दिशा देने का सामर्थ्य है। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कबीर के व्यक्तित्व एवं काव्य का अध्ययन भारत के नव-निर्माण के लिए उपयोगी एवं प्रासंगिक सिद्ध होगा। इसमें संदेह नहीं।

संतकवियों ने धर्म के नाम पर आडम्बर एवं व्यर्थ के कर्मकाण्डों की घोर निन्दा की है। मात्र धर्म की डफली लेकर भागने-फिरने से कोई काम बनने वाला नहीं। हिन्दू-मुस्लिम सभी को बाह्य उपकरणों से युक्त पूजा विधान के स्थान पर आन्तरिक अथवा मानसिक पूजा करनी चाहिए। जब तक सभी धर्मों के मानने वालों में यह मानसिकता नहीं होंगी तब तक इससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता । सन्त कवि धरनीदास ने कहा है-

मन, वच, क्रम मोरे राम की सेवा
सकल लोक लोकन को देखा
बिनु जल जल जल भरि नहवावौ
बिना धूप के धूप धुपावौ[1]

धन का यह व्यक्तिक्रम समाज में शोषण की प्रवृति को बढ़ावा देता है। धन की असमानता से मानवता में कमी आती है। ऐसे धन और सत्ता के मदांधों के मन में अन्य लोगों के प्रति उपेक्षा और हीनता का भाव होता है। वे धन के बल पर अपने को समाज का नियामक समझते हैं।

शोषित वर्ग को अर्थाभाव के कारण कहीं से भी सम्मान नहीं मिलता। उसे दर-दर भटकना पड़ता है। समाज की इसी वास्तविकता को कबीरदास ने लक्ष्य किया-

निरधन आदर कोई न देई,
लाख जतन करै ओहु चित्त न धरेई ।
जो निरधन सरधन के जाई
आगे बैठा पीठ फिराई।।[2]

(संतकवि सत्य के समर्थक और झूठ तथा कपट विरोधी थे)

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप
जाके हिरदै सांच है ताके हिरदै आप[3]

कबीर ने पौराणिक हिन्दु धर्म के बह्याचारों, धार्मिक पूजा, उत्सव, मूर्ति की उपासना, ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड आदि को ढ़कोसला समझकर उनका कटु विरोध किया है। कबीर ने ऐसे व्यक्तियों का विरोध किया है जो माला हाथ में लेकर फेरते रहते हैं, किन्तु उनका मन विषय-वासनाओं में डूबा रहता है। प्रभु का स्मरण मात्र दिखावा होता है-

''कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणो, कहा फिरावै मोहि।।''[4]

कबीर की साखियों में समकालीन समाज तथा धर्म के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है समसामयिक जीवन में कबीर साहित्य की उतनी ही उपादेयता है, जितनी आज विज्ञान की। इक्कीसवीं सदी के द्वितीय दशक में हमारे सम्मुख मंदिर-मस्जिद के झगड़े हैं, जातिगत, ऊँच-नीच का भेद एवं आरक्षण की ज्वलंत समस्याएँ हैं। आज देश का संसद भ्रष्ट और चरित्रहीन नेताओं की र्शिक्त प्रदर्शन का अखाड़ा बना हुआ है। सामाजिक, धार्मिक, नैतिक दृष्टि से हमारा समग्र परिवेष कलुषित होता जा रहा है। अश्लीलता आधुनिकता का प्रर्याय बना हुआ है। अपशब्दों का प्रयोग फैशन बन गया है। आचरण की शुद्धता एवं अंत:करण की पवित्रता के प्रति कबीर का आग्रह वर्तमान जीवन के लिए अनिवार्य एवं सार्थक प्रतीत होता है। अधिकांश सामाजिक और राजनीतिक विद्वेष, अराजकता, विषाक्त वचनों का ही परिणाम है। आज के टूटते परिवार और बिखरते रिश्तों के पीछे मनुष्य की विकृत वाणी और अमर्यादित व्यवहार का ही सबसे बड़ा दोष है। सभ्य सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की मधुरता के लिए उनकी वाणी-संयम की शिक्षा आज भी प्रासांगिक है। इस अध्ययन से यह भी पता चलता है कि कबीर का समग्र चिंतन समाज-सापेक्ष है। उनकी वाणी में मध्यकालीन समाज में प्रचलित वर्णव्यवस्था, जातिभेद, छुआछूत, ब्राह्मणों और अन्य उच्च वर्गो की अमानुशिकता, वर्णाश्रम एवं षटदर्शन आधृत सामाजिक वैषम्य का कड़ी आलोचना की है। ईश्वरीय रचना में ब्राह्मण-शुद्र की अभेदता का प्रतिपादन करते हुए कबीर ने मानव-मानव की एकता का शाश्वत संदेश दिया है, जो आज भी प्रासंगिक है। छुआछूत के विरुद्ध कबीर वाणी का स्वर अत्यधिक उग्र है। छुआछूत मध्यकाल की सबसे क्रूरतम और अमानवीय कुप्रथा थी। जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता जैसी घृणित

कुसंस्कारों से हमारा आधुनिक समाज आज तक मुक्त नहीं हो सका है। निम्न जातियों की परछाई से भी दूर रहने वाले तथाकथित सफेदपोशों के दोहरे चरित्र का कबीर ने कच्चा चिट्ठा खोला है। समस्त जीवों को एक ही परमात्मा का अंश मानकर उन्होंने सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रस्तुत की है-

''ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय

स्वर्ण कलश मदिरा भरा, साधू निन्दे सोय।''[5]

हिन्दु और मुस्लिम के मध्य साम्प्रदायिक वैमनस्यता और विद्वेष की भावना कबीर कालीन समाज से आज कहीं ज्यादा उग्र है। धर्म के नाम पर देशभर में अनेकों दंगे हो चुके हैं तथा अब भी हो रहे हैं। राम जन्म-भूमि विवाद, बाबरी मस्जिद, गोधरा कांड, मुंबई आतंकवादी हमला, संसद पर हमला आदि जैसे कई दंगे इसके ज्वलंत एवं भयावह उदाहरण हैं। साम्प्रदायिकता की आग सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक स्थलों से लेकर शिक्षण संस्थानों तक में फैल चुकी है। मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है। वह अपनी ही कही बात से मुकर जाता है। अपनी छवि को अच्छी दिखाने के लिए वह अच्छी और नीतिपूर्ण बातें करता है पर इनको अपने व्यवहार में नहीं लाता। कबीर ने ऐसे लोगों पर व्यंग्य किया है-

''जैसी मुख से निकसे, तैसी चाले नाहिं।

मानिष नहिं ते स्वान गति, बाध्या जमपुर जाहि।''[6]

मनुष्य स्वार्थवश अपनी आवश्यकताओं से ज्यादा धन कमाने की कोशिश में जीवन के उद्देश्य को भूल जाता है। पैसे के पीछे वह ऐसे भागता है कि नीति, अनीति का विवेक भूल जाता है। अपनी आवश्यकतानुसार भविष्य के लिए धन संचय को यहाँ तक तो वाजिब है पर अनीति और अधर्म से धन एकत्रित करना पाप है धन की पोटली बाँध कर आज तक कोई ऊपर नहीं जा पाया है। पूरा जीवन धन संचय में बिताने वाले मनुष्यो पर कबीर ने धारदार कटाक्ष किया है-

''कबीर सो धन संचिये, जो आगे कू होई।

सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देखा कोई।।'

सांच के बराबर कोई तपस्या नहीं और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है। जो सत्य बोलते हैं उनके अंदर भगवान विराजमान है मलूकदास कहते हैं कि जो मनुष्य भेष बनाकर साधु बने फिरते हैं, उनका मन स्थिर नहीं रहता अर्थात उनका मन चंचल रहता है। लेकिन जिनका दिल साधु है अर्थात् पवित्र है, छलकपट से रहित है उनके साथ भगवान रहता है-

भेष फकीरी जे करे, मन नहिं आवे हाथ

दिल फकीरी जे ही रहैं, साहिब तिन के साथ"[7]

संत कवियों ने तन और मन को पवित्र रखने का उपदेश दिया है। वास्तव में विकार दूर करने का सबसे सरल उपाय यही है। दादू एक स्थल पर कहते हैं कि समस्त विकारों को दूर करने का एक ही उपाय- पवित्रता है-

मन निर्मल तन निर्मल भाई।

आन उपाय विकार न जाई।। 8

इस निर्मलता और सात्विकता की अभिव्यक्ति संतों ने विविध सद्गुणों के आचरणों पर बल देकर भी की है जैसे शील, क्षमा, संतोष, धीरज, जनता, दया आदि संत दादू में कहा है कि मन कालुषय को जन्म देने वाला है और वही कालूषय का प्रक्षालन कर सकता है। अतः उसी की साधना करनी चाहिए यथा

मन ही सो मल उपजै

मन ही सौ मल धोई

संत कवियों ने सहजाचरण के अंतर्गत त्याग को महत्व दिया है। सहज त्याग को संत दादू ने अपने शब्दों में बड़े सुंदर ढंग से व्यक्त किया है-

दादूराम छाड़े नहीं छाड़ै सब विकार

दादू सहजै होई सब दादू का मत सार

संत कवियों ने मानवता को धर्म का प्राण और सर्वस्व बताकर उसके आचरण को धर्म का मूल कहां है। संत साधु ध्यान में मानव धर्म की सबसे सरल और स्पष्ट शब्दों में व्याख्या की है कि सब वासनाओं को त्याग कर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है।

राम भजै विषया तजे आपा ने दिखावे

इस प्रकार मनुष्य की पूर्णता उसके सदाचरण से संपन्न होती है। पुण्य मानव धर्म मनुष्य में सदाचरण के संस्कार उत्पन्न करता है। मनुष्य अपनी मानसिक और शारीरिक दयनीय दशा में भी संत कवियों की वाणी का स्वर्ग मानवधर्म को धारण कर सकता है। मानव धर्म यदि जीवन में आत्मसात हो जाए तो समुदाय और समाज से बौद्धिक प्रदूषण समाप्त हो सकता है।

निष्कर्षः -

इस प्रकार संत कवियों की रचनायें सांस्कृतिक समन्वय, मानवतावादी दृष्टिकोण और राष्ट्रीय एकता की भावना की दृष्टि से अत्यधिक महत्व की है। आज आवश्यकता इस बात की है अपने इन परम्परागत सम्बन्धों को पहचानें और अलगाव तथा तनाव की जो स्थिति पैदा हो रही है, उसे दूर करें तथा अपनी राष्ट्रीय एकता को बनाये रखें। हमारी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को दृढ करने के लिए संत कवियों की वाणियाँ उपयोगी ठहरती हैं।

आधुनिक जन जीवन में संतो की प्रासंगिकता जानने के लिए, यह जरूरी हैं कि हम उनके जीवन-दर्शन एवं विचार धारा की उनकी रचनाओं के आधार पर सम्यक् विवेचना करें। समाज के अप्रिय रीति को देखकर संतो ने इतने तीखें प्रहार किये कि-ढ़ोगी बाबाओं, ब्राह्मणों, मौलवियों जिन्होने समाज में अंधविश्वास के माध्यम से अपना दबदबा बना रखा था उनके दिखावों की धज्जियाँ उड़ गयी। उनकी वाणी में तीखा एवं अनोखा व्यंग्य देखने को मिलता है, जो कि बौद्धिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। संतो की पावन वाणी आज के समाज और विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में उतनी ही प्रासंगिक, तेजोमय तथा उपयोगी सिद्ध होती है, जितनी कि उस समय में थी।

सन्दर्भ संकेतः-

1. धरनीदास की बानी, पृ० 7
2. संत सुधासार, प्रथम खंड, पृ० 91
3. संत बानी संग्रह, भाग 1, पृ० 46
4. कबीर ग्रंथावली, संपादक - डॉ. पुष्पपाल सिंह पृ० 83
5. ....वही...................... पृ० 19
6. ....वही...................... पृ० 78
7. संत बानी संग्रह, भाग 1, पृ० 94
8. संत सुधासार, प्रथम खंड, पृ० 530

उद्भिज्ज-परिषत् में वर्णित "अश्वत्थो हृषीकेश"

डॉ० नीलम गौड़

सहायक आचार्या अतिथि संस्कृत विभाग, आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय, दि. वि.

'उद्भिद्य जातानि यानि लतावृक्षादीनि तेषां परिषत् इति उद्भिज्ज-परिषत्' अर्थात् लता-वृक्षादि की सभा। वाचस्पत्यम् शब्दकोश के अनुसार- देहश्चतुर्विधोजन्तोर्ज्ञेय उत्पत्तिभेदतः। उद्भिज्जः स्वेदजोऽण्डोत्थश्चतुर्थश्च जरायुजः।। उद्भिद्यभूमिं निर्गच्छन्नुद्भिदः स्थावरश्च यः। इति विभज्य तदुत्पत्तिप्रकारस्तत्र दर्शितः।।[1] अमरकोश के अनुसार - स्वेदजाः कृमिदेशाद्याः पक्षिसर्पादयोऽण्डजाः। उद्भिदस्तरुगुल्माद्या उद्भिदुद्भिज्जमुद्भिदम्।[2] इस प्रकार उद्भिज्ज का अर्थ हुआ- भूमि से उत्पन्न वनस्पति, शाक आदि और उद्भिज्ज-परिषत् का अर्थ हुआ वनस्पतियों की सभा।

उद्भिज्ज-परिषत् पं0 हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य के प्रबंधों में से एक प्रबन्ध है। इसमें भट्टाचार्य जी ने आधुनिक मानव चरित का यथार्थ चित्रण किया है। प्रबन्ध के वर्ण्य-विषय पर चर्चा करने के पूर्व लेखक- पं0 हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य जी का परिचय जान लेते हैं। गद्य साहित्य में निबंध शैली के जन्मदाता के रूप में ओरिएण्टल कॉलेज लाहौर के संस्कृत प्राध्यापक पण्डित हृषीकेश भट्टाचार्य का नाम अमर है। ये जैसोर बांग्लादेश जिले के धुलियापुर ग्राम के मूल निवासी थे। विद्योदय नामक मासिक संस्कृत पत्र का 44 वर्षों तक इन्होंने सम्पादन किया था। समसामयिक विषयों पर विनोदपूर्ण शैली में संस्कृत निबंध लिखने से इन्हें विशेष ख्याति मिली। उनके निबन्धों का संग्रह प्रबन्धमंजरी के नाम से 1930 ईस्वी में प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन पद्मसिंह शर्मा और हरिदत्त शास्त्री ने किया था। इसमें कुल 11 निबन्ध संकलित हैं। जिसमें काव्यात्मकता के कारण उद्भिज्ज-परिषत् महारण्यपर्यवेक्षणम्, उदरदर्शनम् इत्यादि उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इनकी प्रसिद्ध कृति प्रबन्धमंजरी है, तथापि इनकी 6 संस्कृत कृतियाँ, 4 हिंदी भाषा की तथा 10 बांग्ला भाषा की रचनाएँ मिलती हैं।

प्रबन्धमंजरी नामक प्रबन्धसंग्रह को मिलाकर भट्टाचार्य जी के प्रकाशित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है- संस्कृत पुस्तकें- प्रबन्ध मंजरी (प्रबन्ध संग्रह) सुपद्माव्याकरणव्याख्यानम, कवितावलिः, राजपुत्रागमनम, प्राकृतव्याकरणम, संस्कृतश्रुतबोधः, प्रबोधचंद्रोदयनाटकव्याख्या। हिन्दी रचनाएं- छन्दबोध, अर्थसंग्रहानुवाद, दत्तक-चंद्रिकानुवाद, तर्कामृतानुवाद आदि। बांग्ला रचनाएं- हिंदी-व्याकरण, बांग्ला-व्याकरण, मेघदूत -पद्यानुवाद, तिथितत्वानुवाद, प्रायश्चित्ततत्वानुवाद, श्राद्धतत्त्वानुवाद, शुद्धितत्त्वानुवाद, मलमासतत्त्वानुवाद, शाण्डिल्यसूत्रानुवाद।

प्रबन्धमंजरी में उल्लिखित प्रबन्ध उद्भिज्ज-परिषद् में भट्टाचार्य जी ने आधुनिक मानव चरित का यथार्थ चित्रण किया है। मनुष्य के अत्याधुनिक अद्भुत कर्मो की सारहीनता प्रदर्शित की है। भारतीय दर्शन के नास्तिक व आस्तिक दोनों ही स्वरुपों को स्पष्ट कर मनुष्य के बुद्धि बल की चर्चा की है। चार्वाक दर्शन की ऐहिकता, नैयायिकों का अनुमान, मीमांसकों का कर्मवाद, सांख्यवादियों की शक्ति प्रकृति, वेदान्तियों की माया तथा जीव, प्राज्ञ एवं प्रकृति आदि स्वरुप सभी को समाविष्ट किया गया है।

उद्भिज्ज-परिषद् अर्थात् वनस्पतियों की इस सभा के अध्यक्ष हैं- अश्वत्थ अर्थात् पीपल का वृक्ष। अश्वत्थ का महत्व सभी को ज्ञात है। भगवद्गीता में भी विराट स्वरुप बताते हुए कृष्ण ने स्वयं को वनस्पतियों में अश्वत्थ बताया है- अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।[3] अश्वत्थ महोदय ने अपने भाषण में मानवों पर बहुत ही व्यंग्यपूर्ण प्रहार किए हैं।

आदि काल से ही मानव और उसके परिवेश के मध्य अटूट संबंध रहा है। प्राचीन ऋषियों ने इसकी चर्चा स्थान-स्थान पर की है उन ऋषियों ने बार बार दो तथ्यों पर बल दिया (1)मानव प्रकृति का आदर करे तथा (2)समाज के प्रति बन्धुत्व भाव रखे। इसके

परिणामस्वरूप पर्यावरण के दो प्रकार हो गए- प्राकृतिक पर्यावरण तथा सामाजिक पर्यावरण। वेदों में इन दोनों ही को लक्ष्य करके असंख्य मन्त्र उपलब्ध होते हैं। मानव तथा उसके परिवेश के मध्य का संबंध आज चिन्तन का विषय बन गया है। जो पर्यावरण चिन्तन के रुप में हमारे सम्मुख है। यही चिन्तन श्री भट्टाचार्य जी ने उद्भिज्ज परिषद् प्रबंध में अश्वत्थ के भाषण से व्यक्त किया है। प्रारम्भ में ही अश्वत्थ घोषणा करता है कि आज मानव-वार्ता ही हमारी चर्चा का विषय है- अश्वत्थो वदति- .... श्रृण्वन्तु भवन्तः, अद्य मानववार्तेवास्मत् समालोच्यविषयः।[4]

अश्वत्थ द्वारा प्रतिपादित भारतीय दर्शन चर्चा -

अश्वत्थ ने चार्वाक दर्शन से प्रारम्भ करते हुए कहा है कि - ते (मानव) ह्यात्मानमप्रतिहतैश्वर्यसम्पन्नं मत्वा न बिभ्यति किञ्चिदपि यथेच्छाचरणात।5 अर्थात् वे स्वयं को अबाध ऐश्वर्ययुक्त मान कर, इच्छानुसार (नियमरहित) होकर चलने से तनिक भी नहीं डरते हैं। चार्वाक को मानने वाले ये आधुनिक शैली को अपनाते हुए एक ही सिद्धान्त का पालन करते हैं - 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'।[6] कहने का तात्पर्य है कि आधुनिक शैली को अपनाने वाला मानव प्रकृति का ऋण ग्रहण करता जा रहा है इसमें वैदिक काल के मानव जैसी भावना नहीं है कि स्वयं की आवश्यकता के लिए भी पृथ्वी को खोदना होता था तो पृथ्वी को नमस्कार करके उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए दुःख की अभिव्यक्ति करता था कि मैं खनन कार्य कर रहा हूँ लेकिन जल्दी ही खनन में हुए गड्ढे को भर दूँगा- "यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु"[7] वनस्पतियों के उपभोग के समय भी उनको अधिक उगाने की इच्छा प्रकट करता था। ऐसी संवेदना आधुनिक शैली के मानव में नहीं दिखाई देती है।

आस्तिक दर्शन के सिद्धान्तों को बताते हुए प्रकृति, मात्रा, ईश्वर आदि का वर्णन करता है और वनस्पतियों का भारतीय मनुष्य से सम्बन्ध बहुत पुरातन बताते हुए कहता है - भारतीयमानवैरेवास्माकं कोऽपि सुचिरसम्बन्धो वर्व्वति।[8]

अश्वत्थ द्वारा प्राचीन शिक्षा पद्धति का उल्लेख -

भारत के सभी शास्त्र वनप्रदेश में ही प्रकट हुए है। पठन-पाठन, समीक्षा, विचार-कार्य सभी वन-प्रदेश में हुआ है। घने वन में रहने वाले अथाह ज्ञान से युक्त, शास्त्रकर्ता महर्षि वन भूमि पर ही बुद्धिमान् मूर्ख व सामान्य जन में शास्त्रों के प्रचार का कार्य करते थे। पूर्व्वसमयाद्वर्तमानसमयस्यान्यस्वरुपं संवृत्तं'[9] अर्थात् प्राचीन समय से अब का समय भिन्न हो गया है। प्राचीन काल में आश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत वनभूमि ही शिक्षण का स्थान होती थी वह अब बन्द कक्षों में, विद्यालयों में परिवर्तित हो गया है। हमारा स्थान विद्यालयों के अन्दर की तो दूर की बात है यदि बाहर भी हमें स्थान मिलता है और लम्बी भुजाएं करके हम विद्यालयों की दीवारों को छूते भी हैं तो हमारा छेदन कर दिया जाता है।

अश्वत्थ द्वारा अवतारवाद पर प्रहार-

आप ही देखिए किस प्रकार चतुराई से मनुष्य अपने निर्माता का भी निर्माण करने में सफल हो गए है, और अवतारवाद प्रसिद्ध हो गया है। पश्यन्तु भवन्तः कीदृशेन कौशलेन मानवाः स्वयं स्वस्रष्टुरपि स्रष्टारो जगद्विधातुरपि विधातारः सञ्जाताः।[10] श्रीमद्भगवद्गीता व उपनिषदों में यह वचन 'सम्भवामि युगे युगे'[11] पता नहीं किस क्षण में सम्मिलित हुआ जो अवतारवाद का आश्रय बन गया। कहने का तात्पर्य है कि यह अवतारवाद भी आडम्बरयुक्त होकर पर्यावरण को प्रदूषित करने में योगदान कर रहा है, जबकि वदिक काल के यज्ञ पर्यावरण शुद्धि हेतु होते थे।

पर्यावरण चेतनाहीन मानव हिंसक पशुओं से भी निकृष्ट-

अश्वत्थ का कथन है- मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता हूं कि मनुष्य हिंसक पशुओं से भी निकृष्ट है क्योंकि वह अपनी लालसाओं को नियन्त्रित नहीं कर पा रहा है। हिंसक पशु तो उदरपूर्ति के पश्चात् शान्त होकर एकान्त मे विश्राम करते हैं, लेकिन मानवों का हिंसा व्यापार अपने को और अधिक बड़ा महत्वशाली बनाने की इच्छा अन्तहीन और कभी समाप्त न होने वाली है।

......................मुक्तकण्ठं स्वीकरामि .... तेषां काचिदिह निर्दिष्टसीमा क्रूरचेष्टितानां, न मानवा इव ते निरवधिं हिंसावृतयो निरन्तरक्रूरकर्मनिरताश्च।[12]

पशुहत्या उसका आखेट है। स्वार्थ पूर्ति के लिए पशु-बलि के कार्य देखकर तो हम जड़ प्रकृति का भी हृदय फट जाता है। ये

तो अपनी और परायी सभी जाति के प्राणियों के प्रति ऐसा हिंसक व्यवहार करते हैं। किसी नियम का पालन नहीं करते, इनके लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं है। सत्य ही कहा है- कामनाओं के उपभोग से कामना कभी शान्त नहीं होती अपितु ये बढ़ती है। जो पृथ्वी पर धन धान्य पशु आदि हैं वे इस प्रकार के एक मनुष्य के लिए भी अपर्याप्त है। न जातुकामः कामनामुपभोगेनशाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। यत् पृथिव्याः वीहियवहिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न पर्याप्तमिति।[13]

वनस्पति, पशु तथा मानव सभी का अपना अपना महत्व-

मनुष्य को ईश्वर ने कुछ विशेष ही बनाया है। वनस्पति से पशुओं को तथा पशुओं से अधिक विशिष्टता मनुष्यों को- बुद्धि, विचारशील आदि गुण प्रदान करके की है। वनस्पति पर भी मनुष्यों का निर्विघ्न अधिकार है, आजकल हमारा जीना मरना उनकी इच्छा के ही अधीन है। उद्भिज्जेष्वपि मनुष्याणां परिलक्ष्यते खल्वव्याहता प्रभुता, साम्प्रतमस्माकं जीवनं मरणं वा सर्वथामीषामिच्छाधीनमेव।[14] वनस्पति, पशु तथा मानव के सम्मिलित महत्व को बताते हुए अश्वत्थ का कथन है -

तेष्वेकस्य सुकरं कर्मापरेषां सुदुष्करमेव[15] अर्थात् एक का सरल कार्य दूसरे के लिए अतिकठिन है। जो कर्म वृक्षजाति वाले सरलता से करते हैं वह पशु या मानव जाति कदापि नहीं कर सकती। इसी प्रकार पशुओं के विशिष्ट कार्य हमारे या मनुष्य द्वारा किए जाने दुष्कर होते हैं। मनुष्य के जो भी विशिष्ट कार्य है उनमें कार्य कारण भाव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

अश्वत्थ द्वारा टैटनिक की चर्चा-

जो ईश्वर की अनोखी रचना शक्ति से स्थापित कार्य-कारण संबंध को न मानकर अंहकारी हो जाता है। अर्थात् प्रकृति का निरादर करता है, पर्यावरण के प्रति असावधानी दर्शाता है। ऐसे मनुष्यों के टैटनिक16 नामक समुद्री जहाज जैसे ही प्रलंयकारी परिणाम होते हैं।

हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य के प्रबंध में प्राचीन लेखन पद्धति में आधुनिकतम विषयों का अनोखा प्रस्तुतीकरण हुआ है। उनके समीक्षक विद्वानों ने उन्हें जन्मान्तरापन्नो बाणः कहकर महाकवि बाण के सदृश माना है, किंतु बहुत उपयुक्त होते हुए भी यह कथन केवल उनकी शैली की विशेषताओं को ही अधिक लक्ष्य करता हैं। उनके प्रबंधन में जो समसामयिक आधुनिक भावनाओं एवं विषयों का समावेश हुआ है वह शैलीगत विशेषता के अतिरिक्त हैं। यद्यपि उनकी रचनाओं का आधार प्राचीन संस्कृत साहित्य ही था तथापि समसामयिक विषयों पर भी वह प्रायः लिखते रहते थे। ऐसी रचनाओं में व्यंग्य और विनोद का पुट सदैव रहता था जैसा कि महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने कहा है-To write-in that vein in Sanskrit in the 19th century is certainly a very creditable performance.[17]

वस्तुतः उस काल में संस्कृत मासिक पत्र का निकलना ही स्वयं में एक असंभव सी बात थी, उस पर भी उसमें पाश्चात्य विचार, सोचने का पाश्चात्य ढंग और पाश्चात्य साहित्य से लगाव तो और भी अधिक आश्चर्य का विषय है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण डॉ. जी. डब्ल्यू. लिटनर और मैक्समूलर आदि अनेक पाश्चात्य विद्वान भी शास्त्री जी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके प्रबंधन में साहित्य रस की निर्झरिणी विविधता के साथ प्रवाहित हुई है। कहीं उनमें धर्म की दुर्दशा का वर्णन करते हुए करुण रस का विकास हुआ है, कहीं विद्वानों द्वारा कर्तव्य का उपदेश देने में शांत रस का प्रवाह है, कहीं दर्शन विवेचन में अद्‌भुत रस का चमत्कार है, कहीं स्वार्थलिप्त मानव जाति की कठोरता के चित्रण में विभक्त रस का प्रयोग है, कहीं पशु और पक्षियों- वनस्पतियों की सभा के बहाने आधुनिक सभा-सम्मेलनों की छठा है, कहीं सिंह आदि की अप्रस्तुत प्रशंसा के द्वारा अहंकारी मनुष्य के रौद्र भावों को प्रकट किया गया है और कहीं हिंसक पशु आदि के माध्यम से भयानक रस का समावेश हुआ है। प्रबंधों में मनोरंजकता एवं उपदेशात्मकता एक साथ ही उपलब्ध होती है। पंडित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी के अनुसार- इमे प्रबंधाः ---------- काव्यस्य परमं प्रयोजनं सम्यक् निष्पादयन्ति।[18]

अर्थात् शास्त्री जी द्वारा लिखित प्रबंध न केवल तात्कालिक साहित्य सुलभ आनंद ही प्रदान करते हैं अपितु वे बहुत ही सुंदर शैली में कर्तव्य की प्रेरणा भी देते हैं। इस प्रकार शास्त्री जी के प्रबंधों द्वारा साहित्य के कान्तासम्मित उपदेश नाम के प्रयोजन की पूर्ति भी सहज ही हो जाती है।

शास्त्री जी की रचनाओं पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह कहना बड़ा कठिन है कि उनके विषय प्रतिपादन की शैली अधिक उत्कृष्ट है अथवा उसकी अभिव्यक्ति करने वाली उनकी भाषा शैली। वस्तुतः ये दोनों ही उनकी रचनाओं में समान स्तर पर उपलब्ध होती हैं। उनके विषय प्रतिपादन की शैली जितनी श्रेष्ठ है उतनी ही श्रेष्ठ उनकी अभिव्यक्ति शैली भी है।

निष्कर्ष रूप में ..... उद्भिज्ज-परिषत् के अध्ययन के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य के गद्य लेखकों में हृषीकेश शास्त्री का स्थान अत्यधिक ऊंचा है। आधुनिक संस्कृत लेखकों में वे सर्वश्रेष्ठ हैं इसमें तो किंचित् मात्र भी संदेह नहीं है। इस प्रबंध में शास्त्री जी ने आधुनिक नव्य, भव्य, सभ्य मानव चरित्र का जितना यथार्थ चित्रण किया है, मानवों के अत्यधिक अद्भुत कर्मों की जितनी सारहीनता प्रदर्शित की है, सांप्रदायिक मत-मतान्तरों और उनके अनुयायियों के दम्भ को जितना स्पष्ट किया है उससे शास्त्री जी की काव्य शक्ति का भली भांति अनुभव किया जा सकता है। उनकी अभिव्यक्ति में जितना प्रवाह है, भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद की जितनी प्रधानता है और साथ ही प्रतिपादन शैली में जितनी नाटकीयता है वह देखते ही बनती है। इसके साथ ही इस प्रबंध में उनके सभी भारतीय दर्शन के ज्ञान का भी अच्छा परिचय मिल जाता है। श्री भट्टाचार्य जी का यह प्रबंध व्यंग्यपूर्ण शैली में है, उन्होंने उद्भिज्ज-परिषत् के माध्यम से प्रकृति का निरादर करने वाले, पर्यावरण को दूषित करने वाले, आवश्यकता से अधिक उपभोग व संग्रह करने वाले मनुष्यों की सुप्त चेतना को जाग्रत करने का सफल प्रयास किया है।

पंडित हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य प्रणीत प्रबन्ध उद्भिज्ज परिषद् का अनुशीलन करने पर तत्काल जो प्रतिक्रिया मस्तिष्क में होती है और वाणी जिसे तत्काल अनुसरण भी करती है, वह है- काव्यं कवयः सर्वे तृणगुल्मद्रुमा यथा। अश्वत्थो हृषीकेश इह सर्वोपदेशनात्।।[19] संभवतः इस कथन की सत्यता में सबको सहसा विश्वास ना हो किंतु इसके पक्ष में जो तर्क मस्तिष्क में आता है, वह है कि यदि सम्पूर्ण काव्य-नाटकों का अनुशीलन करने के उपरान्त रघुवंश महाकाव्य में आए इंदुमती स्वयंवर प्रसंग के मात्र एक पद्य के आधार पर जिसमें इन्दुमती की तुलना दीपशिखा से की गई थी। महाकवि कालिदास को दीपशिखः कालिदासः कहकर काव्यरसिक सन्तोष का अनुभव कर सकते हैं और इसी भांति महाकवि माघ को उनकी एकमात्र रचना शिशुपालवध के मात्र एक पद्य के आधार पर, जिसमें उन्होंने रैवतक पर्वत की तुलना घण्टों वाले हाथी से की है, उन्हें घण्टामाघ कहकर साहित्य के मर्मज्ञ अपनी तत्वोन्मेषिणी दृष्टि का परिचय दे सकते हैं तो क्या कारण है कि अपने एक विस्तृत एवं सम्पूर्ण प्रबन्ध उद्भिज्ज परिषद् में स्वयं को अश्वत्थ के रूप में प्रस्तुत करके सम्पूर्ण प्रबन्ध को उत्तम पुरुष के माध्यम से लिखने के उपरांत भी श्री हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य को अश्वत्थो हृषीकेशः न कहा जाए? यह उनकी अमर कृति भी है। अतः उपयुक्त ही है- अश्वत्थो हृषीकेशः, अश्वत्थो हृषीकेशः, अश्वत्थो हृषीकेशः। इति।।

संदर्भ सूची

1. वाचस्पत्यम् पृष्ठ 1180
2. अमरकोश पृष्ठ 494
3. भगवद्गीता 10.26
4. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 39
5. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 41
6. भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृष्ठ 95
7. अथर्ववेद 12.1.35
8. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 53
9. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 54
10. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 55-56
11. भगवद्गीता 4.8
12. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 56-57
13. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 60
14. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 66
15. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 67
16. प्रबन्धमंजरी पृष्ठ 68
17. उद्भिज्जपरिषत् पृष्ठ 5
18. उद्भिज्जपरिषत् पृष्ठ 5
19. उद्भिज्जपरिषत् पृष्ठ 3

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, तारानाथ , वाचस्पत्यम्, ीजजचेरूध्ध्ेंपापेवनतबमण्वतहण
2. अमरसिंहकृत अमरकोष, रामाश्रमी टीका- पं0 हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी। पुनर्मुद्रित 2064 विक्रमाब्द।
3. गोयन्दका, जयदयाल- टीकाकार , तत्वविवेचनी हिन्दी टीका, भगवद्गीता, प्रकाशक- गीताप्रैस गोरखपुर।
4. भट्टाचार्य, हृषीकेश, प्रबन्धमंजरी, सम्पादक-पद्मसिंह शर्मा, प्रकाशक-श्री काशीनाथ शर्मा, काव्यकुटीर कार्यालय, बिजनौर उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1986 विक्रमाब्द।
5. प्रो. सिन्हा,हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1963.
6. भट्टाचार्य, हृषीकेश, उद्भिज्जपरिषत, सम्पादक- डॉ. कर्ण सिंह, प्रकाशक- साहित्य भण्डार, मेरठ।
7. डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्ज।
8. आचार्य सायण, अथर्ववेदसंहिता, सम्पादक-शंकर पाण्डुरंग पण्डित, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,1989
9. आचार्य उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रकाशक- चौखम्भा ओरियण्टला, पुनर्मुद्रित संस्करण 2014
10. डॉ. ऋषि उमा शंकर शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रकाशक- चौखम्भा भारती, अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण
11. डॉ. कृष्णलाल, वैदिक संग्रह, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली, संस्करण 2001
12. गोयन्दका, हरिकृष्णदास- व्याख्याकार, ईशादि नौ उपनिषद्, प्रकाशक- गीताप्रैस गोरखपुर।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी का स्थान

डॉ० राजकुमार एस. नांईक

सह-प्राध्यापक, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड

आधुनिक हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों का योगदान प्रशंसनीय रहा है। मन्नू भंडारी, मृदुलागर्ग, उषा प्रियंवदा, डॉ. कुसुम कुमार, पुष्पा मैत्रेयी, सुभद्राकुमारी चौहान, मृणाल पांडेय, ममता कालिया और शिवानी इत्यादि प्रमुख हैं।

हिंदी साहित्य की ख्यातनाम लेखिका कृष्णा सोबती का जन्म पंजाब के गुजरांवाला आज पाकिस्तान में जिले में सन् 18.02.1925 को हुआ था। लेखिका के जीवन में पंजाबी संस्कृति का प्रभाव होना स्वाभाविक है। उनके उपन्यासों में पंजाब के गंवाई और कस्बाई जीवन को मार्मिक रूप से चित्रित करके विशेष अभिव्यक्ति दी है। बचपन शिमला और दिल्ली में बीता। ग्रामीण और शहर की नारीगत समस्याओं का चित्रण कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में किया है। लोकजीवन और उसके सांस्कृतिक परिवेश की गहराइयों तक उतरनेवाली सूक्ष्म कलाकृति कृष्णा सोबती के पास है। नारी के विविधरूप और नारीजीवन को पहचानने की क्षमता और कला लेखिका में विशेष है। कृष्णाजी की रचनाधर्मिता मूलत: उद्देश्य के सत्य की खोज है। कुरिवाज, शोषण, अंधश्रद्धा और संकुचितता इत्यादी समस्याओं को चित्रित करके नई दिशा देकर नारी को ऊँचा स्थान देना प्रमुख विचार रहा है। वैसे तो लेखिका स्वयं अत्यधिक संवेदनशील नारी है ही। उनका स्वाभिमानी स्वभाव एवं विचार हमें उनके साहित्य में मिल जाते हैं। 'तीन पहाड़' की नायिका जया रोमानी संवेदना से परिपूर्ण होते हुए भी एक बार ठुकराए जाने पर फिर से नया संसार नहीं रचती। स्वाभिमान से, स्वावलंबी होते हुए भी एक बार ठुकराए जाने पर फिर से नया संसार नहीं रचती। स्वाभिमान से, स्वावलंबी बनकर जीवन यापन करती है। वैसे तो कृष्णा सोबती एक यथार्थवादी नारी है, वह इतिहास से ज्यादा आज में अत्यधिक विश्वास करती है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास डार से बिछुड़ी 1958, मित्रो मरजानी-1966, सूरज मुखी अंधेरे के 1972, जिंदगीनामा-1979, दिलोदानिश-1993, समय सरगम-2000 आदि इन उपन्यासों के अतिरिक्त कहानी, रेखाचित्र इत्यादि हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में उल्लेखनीय योगदान दिया है। कृष्णाजी ने नारी होने के नाते हिंदी उपन्यासों में नारी चरित्रों का पुरूषों से भी अधिक सूक्ष्म चित्रण करके अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया है। डॉ. शैल रस्तोगी के मतानुसार "उपन्यासों और नाटकों आदि में स्त्रियों के चरित्र का जैसा अच्छा चित्रांकन और विकास स्त्री लेखिकाओं के द्वारा होता है, वैसा अच्छा चित्रण और विकास पुरूष लेखकों के द्वारा नहीं होता" पुरूष लेखकों के उपन्यासों में प्राय: नारी पात्र या तो देवी होती थी या फिर दानवी। लेकिन महिला उपन्यासकार कृष्णाजी ने नारी के गुण दोष दोनों का समन्वय करके प्रभावशील सजीव चित्रण किया है। वैसे भी नारी में नारी का हृदय दहेज मिलता है। 'डार से बिछुड़ी' में पाशों की माँ के गुनाह की सजा उसका बेटी को मिलती है।

विधवा की समस्या में 'डार से बिछुडी' की नानी माँ विधवा है। विधवा होने के साथ ही परिवार का सारा कारोबार बहू-बेटों के हाथ में चला गया। पाशो के प्रति प्रेम व्यक्त नहीं कर सकती। वह बहुओं से कहती है कि- "बेटे को समझा बहू अभागी को इस बार तो बक्श दे"[3] इस उपन्यास में मेहर भी विधवा है। पाशो की मौसी और बरकल की पत्नी दोनों भी असहाय विधवाएँ हैं। 'मित्रों मरजानी' उपन्यास में फूलाँवंती की माँ मायावती भी विधवा है। उसका जीवन भी परावलंबी एवं निराधार ही है। 'दिलो दानिश' में छुन्ना, बुआजी, ताई आदि विधवाएँ हैं। हमारे भारतीय समाज में प्राय: अधिकांशत: विधवाओं को जबरदस्ती असहाय, अशोभनीय और परावलंबी बनाया जाता है। लेखिका ने इस दयनीय स्थिति को देखकर विधवा पुनर्विवाह पर बल दिया है।

जीवन साथी पसंदगी की समस्या- 'डार से बिछुडी' की पाशो को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं कर पाती। 'दिलों दानिश' की छुन्ना भी अपने मन से भुवन से विवाह करना चाहती है लेकिन वकील कृपानारायण और परिवार वाले उसे मान्यता नहीं देते। महकबानों भी वकील साहब से प्रेम करती है लेकिन विवाह नहीं का पाती। इसी के कारण वकील की रखैल बनकर रहती है और बिन बिहाई माँ बनना पड़ता है। आज जीवन साथी के चयन में स्वतंत्रता दिखाई पड़ती है।

अनमेल विवाह की समस्या में 'डार से बिछुड़ी' की पाशो की जिंदगी अनमेल विवाह के कारण ही बर्बाद हो चुकी है। 'दिलों दानिश' में कृपानारायण और कुटुम्ब के बीच में अनमेल दिखाई पड़ता है दोनों में झगड़े होते रहते है। 'मित्रो मरजानी' में सरदारीलाल का विवाह वेश्या पुत्री से निश्चित होता है जिसमें सोच-विचार, सलाह-मशवरा और जाँच-पडताल की अत्यधिक आवश्यकता होती है अन्यथा दाम्पत्य जीवन पति-पत्नी दोनों के लिए बोझ बन जाता है। अनमेल विवाह से अभिशप्त पाशों, कुटुंब और मित्रो अपनी जिंदगी में सुख की तलाश हेतु हमेशा संघर्ष करती रहती है। उपन्यासकार ने इन संघर्षशील नारियों का मार्मिक यथार्थ चित्रण किया है। शिक्षा की समस्या- 'डार से बिछुड़ी' की पाशो पढ़ी-लिखी नारी नहीं है। उसे मामा मामी ने पढ़ाया नहीं और मार पीट की शिकार होती रहती है। यदि वह पढ़ी-लिखी होती तो गलत व्यवहार का डटकर सामना करती। पिता समान उम्रवाले बूढ़े से शादी नहीं करती। 'मित्रो मरजानी' में मित्रो निरक्षर है। माँ के कहने पर अवैध यौन संबंध रखना पड़ता है। यदि वह पढ़ी-लिखी होती तो अनुचित यौन संबंध का विरोध करती तथा स्वावलंबी भी बन पाती। परिवार के विकास में योगदान दे सकती।

मात्र साधन रूप में नारी- कभी पैसों के लिए कभी किसी न किसी स्वार्थ हेतु कभी भोगविलास के साधन के रूप में नारी का उपयोग किया जाता है। अविवाहित कुमारी को बड़ी उम्र वाले पुरूषों को उपहार के रूप में लोभ लालच हेतु दे देते हैं, ऐसे अनेक उदाहरण हमारे समाज में मौजूद हैं। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो इसका प्रमाण है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में पाशो का शारिरिक, मानसिक शोषण होता है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो का भी शेषण होता है। 'सूरजमुखी अंधरे' की रत्ती का शोषण हमेशा पुरूष वर्ग करता रहता है। ऐसे ही 'दिलो दानिश' की महक का भी शोषण होता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में अकेलेपन की समस्या का चित्रण बड़ा ही मार्मिक है। डॅ. देवीशंकर अवस्थी के मतानुसार- 'आधुनिक मानव का अकेलेपन ही इसकी त्रासदी और विडंबना है।' विशेष रूप से शिक्षित, आत्मनिर्भर महिलाओं ने भौतिक सुख सुविधा प्राप्त की हो लेकिन उनमें से प्राय: अधिकांशत: महिलाएँ अकेलेपन का अनुभव कर रही हैं। 'समय सरगम' की आरप्या ने अकेलेपन को चुना है लेकिन अकेले जीने से और मरने से हमेशा डरती है। अंत में उसे ईशान जैसे विधुर का सहयोग लेना पड़ता है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो भी पूरे परिवार में रहकर भी नितान्त अकेली रहती है। 'दिलो दानिश' की महक भी अकेलपन का शिकार है। 'डार बिछुडी' की पाशो अकेलेपन से प्रभावित है। कहीं तो यह स्पष्ट दिखाई देता हैं कि अकेलेपन के एहसास ने कुछ महिलाओं को नैतिकमूल्यों से दूर रखा है।

अधिकारों से वंचित नारी का चित्रण-

'डार से बिछुड़ी' की पाशो अपनी इच्छा से शादी भी नहीं कर सकती और प्रेम भी नहीं कर सकती। मित्रो भी स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं ले सकती। डॉ.गोपालराय ने बताया हैं कि ''कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास में मित्रो के सीमित जीवन को ही स्थान दिया है। वह उसके व्यक्तित्व के विशिष्ट पक्ष स्नेहवंचिता और अधिकार वंचित रूप को ही उभारना चाहती है।''[4] 'दिलो दानिश' की छुन्ना अपनी मरजी से शादी नहीं कर सकती उसे अपना पति चुनने का अधिकार नहीं है। जब वह विधवा होती है तो उसकी हालत कारूणीय और दयनीय होती है।

कृष्णा जी ने अपने उपन्यासों में वृद्ध नारी की समस्या को भी चित्रित किया है। 'समय सागम' उपन्यास में दमयंती वृद्धावस्था में अपने परिवार की उपेक्षा से कुंठित हो जाती है। 'दिलो दानिश' की महक भी इसी समस्या से संघर्ष करती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो अवैध यौन समस्या से पीड़ित है। विधवा होने से पूर्व और बाद में भी उसका यौन शोषण होता है। इन सारी समस्याओं का यथार्थ चित्रण कृष्णा सोबती ने किया है। उन्होंने समाज द्वारा स्थापित नारी के मानदंड और मूल्यांकनों को नकारा है। लेखिका ने अपने आसपास के समाज को देखा, जाना नारी की विविध समस्याओं का देखा अनुभव किया तब उनका साहित्यक जीवन चौन से बैठ नहीं पाया, नारी की दशा एवं दिशा को ध्यान में रखकर अपने उपन्यासों में नारी को विशेष स्थान देकर सराहनीय चित्रण किया है।

संदर्भ सूची:

1. मित्रो मरजानी- कृष्ण सोबती- पृ.19
2. दिलोदानिश- वही- पृ. 175
3. डार से बिछुड़ी- वही- पृ. 14
4. उपन्यास का शिल्प- डॉ. गोपालराय- पृ. 34

भारत में कृषि विपणन की समस्यायें एवं उनका समाधानः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० श्याम कुमार मधुकर

सहायक प्राध्यापक एवं विभागसध्यक्ष वाणिज्य, शासकीय टीसीएल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जांजगीर, छत्तीसगढ़

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि क्षेत्र न केवल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है, बल्कि देश की बड़ी आबादी की आजीविका का प्रमुख साधन भी है। इसके बावजूद, कृषि विपणन प्रणाली में कई समस्याएँ हैं, जो किसानों की आय और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन में कृषि विपणन से संबंधित प्रमुख समस्याओं, जैसे बाजार संरचना का अभाव, बिचौलियों की अधिकता, मूल्य निर्धारण में असमानता, खराब भंडारण सुविधाओं, और अपर्याप्त परिवहन व्यवस्थाओं का गहन विश्लेषण किया गया है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए कई सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें ई-मार्केटिंग प्लेटफॉर्म जैसे ई-नाम (e-NAM) का सुदृढ़ीकरण, सहकारी विपणन समितियों को बढ़ावा, बिचौलियों की भूमिका को सीमित करना, और कृषि बाजारों में संरचनात्मक सुधार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, तकनीकी समाधान, जैसे मोबाइल एप्स और डिजिटल भुगतान प्रणालियों के माध्यम से किसानों को सीधे उपभोक्ताओं से जोड़ना, एक प्रभावी कदम हो सकता है।

यह अध्ययन नीतिगत सुधारों पर भी बल देता है, जिनमें किसानों के लिए बाजार की पारदर्शिता, न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का प्रभावी कार्यान्वयन, और भंडारण एवं कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं का विस्तार शामिल है। यह सुझाव दिया गया है कि इन सुधारों से न केवल किसानों की आय में वृद्धि होगी, बल्कि उन्हें बाजार में निष्पक्ष अवसर भी प्राप्त होंगे।

(**कुंजीशब्दः** कृषि विपणन, ई-नाम, बिचौलिये, न्यूनतम समर्थन मूल्य, डिजिटल कृषि, सहकारी विपणन, बाजार सुधार, संरचनात्मक सुधार)

परिचय (Introduction)

भारत में कृषि क्षेत्र का महत्वः भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 58% आबादी कृषि पर निर्भर करती है (भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण, 2020-21)। कृषि न केवल खाद्यान्न उत्पादन का आधार है, बल्कि यह देश की आर्थिक संरचना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में कृषि का योगदान लगभग 17-18% है। कृषि क्षेत्र न केवल रोजगार का प्रमुख स्रोत है, बल्कि यह देश की खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास का आधार भी है।

कृषि विपणन की भूमिका और वर्तमान स्थितिः कृषि विपणन का मतलब किसानों से लेकर उपभोक्ताओं तक कृषि उत्पादों के सुचारू वितरण से है। वर्तमान में, भारत की कृषि विपणन प्रणाली अनेक संरचनात्मक समस्याओं से ग्रस्त है। इसमें अपर्याप्त भंडारण सुविधाएँ, बाजार में बिचौलियों की भूमिका, और मूल्य अस्थिरता शामिल हैं। सरकार द्वारा शुरू की गई ई-नाम (e-NAM) जैसे डिजिटल पहल के बावजूद, यह प्रणाली अब भी कई चुनौतियों का सामना कर रही है।

समस्या की पहचान (Problem Identification)

कृषि विपणन में मुख्य चुनौतियाँ: भारत में कृषि विपणन में सबसे बड़ी समस्याएँ बिचौलियों की अधिकता, सीमित बाजार पहुंच, और अपर्याप्त भौतिक संरचना हैं। भारतीय कृषि बाजार, जैसे मंडियाँ, अधिकतर अव्यवस्थित हैं। किसानों को उनके उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) प्राप्त करने में भी कठिनाई होती है। साथ ही, खराब भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की कमी के कारण उत्पाद अक्सर खराब हो जाते हैं, जिससे किसानों को नुकसान उठाना पड़ता है।

किसानों की आय और जीवन स्तर पर विपणन प्रणाली का प्रभाव: अपर्याप्त विपणन प्रणाली के कारण किसानों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। यह उनकी आय और जीवन स्तर को प्रभावित करता है। विश्व बैंक की रिपोर्ट (2020) के अनुसार, भारत में 85% किसान छोटे और सीमांत किसान हैं, जिनके पास सीमित संसाधन हैं। इन समस्याओं का परिणाम यह होता है कि किसान अक्सर कर्ज के जाल में फंस जाते हैं और गरीबी में जीने को मजबूर होते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of the Study)

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कृषि विपणन की समस्याओं का विश्लेषण करना और उनके समाधान के लिए व्यवहार्य उपाय सुझाना है। इसमें मौजूदा नीतियों का आकलन, किसानों की समस्याओं को समझना, और कृषि विपणन प्रणाली को अधिक प्रभावी और समावेशी बनाने के उपाय प्रस्तुत करना शामिल है।

शोध प्रश्न (Research Questions)

1. कृषि विपणन में कौन-कौन सी प्रमुख समस्याएँ हैं? इस शोध का पहला प्रश्न भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में मौजूद संरचनात्मक, संगठनात्मक, और नीतिगत समस्याओं की पहचान करना है।
2. इन समस्याओं के समाधान के लिए कौन-कौन से कदम उठाए जा सकते हैं? दूसरा प्रश्न यह जानने पर केंद्रित है कि तकनीकी, नीतिगत, और संरचनात्मक सुधारों के माध्यम से इन समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है।

महत्व (Significance)

किसानों की आय में वृद्धि: यह अध्ययन न केवल कृषि विपणन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है, बल्कि यह किसानों की आय बढ़ाने और उनके जीवन स्तर में सुधार का एक रोडमैप भी प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, ई-नाम जैसे प्लेटफॉर्म किसानों को बिचौलियों से बचने और सीधे उपभोक्ताओं से जुड़ने में मदद कर सकते हैं (कृषि मंत्रालय, 2020)।

कृषि क्षेत्र के समग्र विकास में योगदान: कृषि विपणन सुधारों से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता और दक्षता में वृद्धि हो सकती है। यह देश की खाद्य सुरक्षा और अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करेगा। इसके अलावा, यह अध्ययन नीतिगत निर्माण और डिजिटल उपकरणों के उपयोग में योगदान देगा।

शोध पद्धति (Research Methodology)

डेटा संग्रह (Data Collection)

डेटा संग्रह किसी भी शोध कार्य की आधारशिला होती है। कृषि विपणन की समस्याओं और उनके समाधान का अध्ययन करने के लिए, दो प्रमुख प्रकार के डेटा का उपयोग किया गया है: प्राथमिक स्रोत और द्वितीयक स्रोत।

प्राथमिक स्रोत: किसान सर्वेक्षण और बाजार विश्लेषण: प्राथमिक डेटा संग्रह के लिए किसानों और बाजारों से सीधी जानकारी एकत्र की गई। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित कदम उठाए गए:

ख किसान सर्वेक्षण: किसान सर्वेक्षण के माध्यम से छोटे और सीमांत किसानों की समस्याओं को समझने की कोशिश की गई। यह सर्वेक्षण भारत के विभिन्न राज्यों के किसानों के साथ किया गया, जिसमें उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, और तमिलनाडु के किसान शामिल थे।

प्रश्नावली के माध्यम से किसानों से जानकारी प्राप्त की गई, जिसमें उनके उत्पादों की बिक्री, बाजार तक पहुंच, और बिचौलियों की भूमिका के बारे में पूछा गया। इस सर्वेक्षण में किसानों की आय, उनकी लागत, और विपणन के दौरान आने वाली बाधाओं पर भी ध्यान केंद्रित किया गया।

- **बाजार विश्लेषण:** मंडियों और ई-नाम (e-NAM) जैसे डिजिटल बाजारों का अध्ययन किया गया। बाजार विश्लेषण के लिए एपीएमसी मंडियों (APMC Mandis) और अन्य कृषि बाजारों की संरचना, संचालन और मूल्य निर्धारण प्रक्रिया का आकलन किया गया।

द्वितीयक स्रोत: सरकारी रिपोर्ट और शोध पत्र द्वितीयक डेटा संग्रह के लिए सरकारी रिपोर्ट, शोध पत्र, और अन्य साहित्यिक स्रोतों का उपयोग किया गया।

- **सरकारी रिपोर्ट:** कृषि मंत्रालय की रिपोर्ट, जैसे e-NAM Annual Report 2020 और Economic Survey 2020-21, ने भारत की कृषि विपणन प्रणाली की स्थिति को समझने में मदद की।
- **शोध पत्र:** कृषि विपणन की समस्याओं पर प्रकाशित शोध पत्रों और केस स्टडीज का अध्ययन किया गया। इनमें National Sample Survey Office (NSSO) की रिपोर्ट और विश्व बैंक की रिपोर्ट प्रमुख हैं।
- **अन्य स्रोत:** डिजिटल स्रोत, जैसे कृषि और ग्रामीण विकास से संबंधित वेबसाइट्स और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों की रिपोर्ट्स, को भी शामिल किया गया।

डेटा विश्लेषण (Data Analysis)

डेटा विश्लेषण का उद्देश्य एकत्रित आंकड़ों का उपयोग करके समस्याओं और संभावित समाधानों को स्पष्ट करना था। इसके लिए सांख्यिकीय उपकरणों और तकनीकों का उपयोग किया गया।

सांख्यिकीय उपकरणों और तकनीकों का उपयोग:

- **विवरणात्मक आंकड़े (Descriptive Statistics):** डेटा का प्राथमिक विश्लेषण करने के लिए औसत (mean), माध्यिका (median), और मानक विचलन (standard deviation) जैसे मापदंडों का उपयोग किया गया। उदाहरण के लिए, किसानों की औसत आय और उनके विपणन खर्च का मूल्यांकन किया गया।
- **रिग्रेशन विश्लेषण (Regression Analysis):** यह तकनीक किसानों की आय पर विपणन प्रक्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उपयोग की गई। यह विश्लेषण यह समझने में मदद करता है कि विपणन की संरचनात्मक समस्याएँ, जैसे बिचौलियों की भूमिका और मूल्य निर्धारण में अस्थिरता, किसानों की आय को कैसे प्रभावित करती हैं।
- **SWOT विश्लेषण (SWOT Analysis):** कृषि विपणन प्रणाली की ताकत (Strengths), कमजोरियाँ (Weaknesses), अवसर (Opportunities), और खतरे (Threats) का विश्लेषण किया गया। इससे नीतिगत सुझाव तैयार करने में मदद मिली।
- **समूह तुलना (Cluster Analysis):** अलग-अलग राज्यों के किसानों के विपणन अनुभवों और बाजार की उपलब्धता में अंतर को मापने के लिए समूह तुलना का उपयोग किया गया।

डेटा विजुअलाइजेशन (Data Visualization): डेटा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिए चार्ट, ग्राफ, और टेबल का उपयोग किया गया। इससे किसानों की समस्याओं और संभावित समाधानों को समझने में आसानी हुई। उदाहरण के लिए:

- किसानों की आय में सुधार के लिए विभिन्न नीतियों के प्रभाव को बार चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत किया गया।
- बाजार तक पहुंच और मूल्य स्थिरता पर बिचौलियों के प्रभाव को रेखीय ग्राफ के माध्यम से दर्शाया गया।

गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis): साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चा (Focus Group Discussions) से प्राप्त जानकारी का उपयोग किसानों की समस्याओं को समझने और उनकी प्राथमिकताओं को मापने के लिए किया गया।

डेटा संग्रह और विश्लेषण की इन विधियों ने कृषि विपणन की समस्याओं और उनके समाधान के लिए ठोस आधार तैयार किया। प्राथमिक और द्वितीयक डेटा का समेकन एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिससे न केवल समस्याओं का गहन विश्लेषण किया जा सकता है, बल्कि सुधार के लिए व्यवहारिक नीतियाँ और रणनीतियाँ भी तैयार की जा सकती हैं।

कृषि विपणन की समस्याएँ (Problems in Agricultural Marketing)

भारत में कृषि विपणन प्रणाली को प्रभावी बनाने में अनेक बाधाएँ हैं। ये समस्याएँ संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी स्तर पर पाई जाती हैं। इन समस्याओं के कारण किसानों को अपने उत्पादों के लिए उचित मूल्य प्राप्त करने में कठिनाई होती है, जिससे उनकी आय और जीवन स्तर प्रभावित होता है।

संरचनात्मक समस्याएँ (Structural Problems)

भौतिक अवसंरचना की कमी: भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में भौतिक अवसंरचना का अभाव एक प्रमुख चुनौती है। कई मंडियों में उचित सड़कें, बिजली, और जल सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। भंडारण की सुविधाओं की कमी के कारण 10-15% कृषि उत्पाद, विशेष रूप से फल और सब्जियाँ, खराब हो जाते हैं (FAO, 2020)। इस समस्या का मुख्य प्रभाव छोटे और सीमांत किसानों पर पड़ता है, जिनके पास अपने उत्पादों को सुरक्षित रखने के लिए निजी भंडारण की सुविधा नहीं होती।

परिवहन और भंडारण की समस्याएँ: भारत में ग्रामीण इलाकों में परिवहन सुविधाओं की कमी किसानों के लिए एक बड़ी बाधा है। खराब सड़कें और परिवहन के उच्च खर्च के कारण किसानों को अपने उत्पादों को नजदीकी बाजारों में ले जाने में कठिनाई होती है। इसके अलावा, ठंडा भंडारण (Cold Storage) की सीमित उपलब्धता के कारण किसान अपने उत्पादों को लंबे समय तक संरक्षित नहीं कर पाते, जिससे उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

संगठनात्मक समस्याएँ (Organizational Problems)

बिचौलियों की अधिकता: भारतीय कृषि विपणन में बिचौलियों का प्रमुख भूमिका निभाना एक बड़ी समस्या है। बिचौलिये किसानों से उनके उत्पाद सस्ते में खरीदते हैं और बाजार में ऊँचे दाम पर बेचते हैं, जिससे किसानों को उचित लाभ नहीं मिल पाता। यह समस्या APMC मंडियों के संचालन में पारदर्शिता की कमी और बाजार तक किसानों की सीधी पहुँच न होने के कारण उत्पन्न होती है।

सहकारी समितियों का कमजोर प्रदर्शन: कृषि विपणन में सहकारी समितियों की भूमिका महत्वपूर्ण है, लेकिन भारत में इनका प्रदर्शन कमजोर है। कई सहकारी समितियाँ वित्तीय और प्रबंधन समस्याओं का सामना कर रही हैं। इनमें भ्रष्टाचार और पारदर्शिता की कमी के कारण किसानों को लाभ नहीं मिल पाता। सहकारी समितियाँ किसानों और बाजार के बीच एक सेतु का काम कर सकती हैं, लेकिन इनकी प्रभावशीलता सीमित है।

नीतिगत समस्याएँ (Policy-Related Problems)

न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का प्रभावी कार्यान्वयन नहीं: न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) कृषि विपणन नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लेकिन इसका लाभ सभी किसानों तक नहीं पहुँच पाता। छोटे और सीमांत किसानों को MSP का लाभ नहीं मिल पाता क्योंकि वे अपने उत्पाद APMC मंडियों तक नहीं पहुँचा पाते। कई राज्यों में MSP नीति का प्रभावी कार्यान्वयन नहीं हो पाता, जिससे किसानों को अपनी उपज कम दामों पर बेचनी पड़ती है (Economic Survey, 2020-21)।

कानूनी और प्रशासनिक बाधाएँ: भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में कानूनी और प्रशासनिक बाधाएँ आम हैं। कई मंडियों में नियमों की जटिलता और भ्रष्टाचार के कारण किसानों को अपने उत्पाद बेचने में कठिनाई होती है। कृषि विपणन सुधारों की धीमी गति और प्रभावी नीतियों की अनुपस्थिति इन समस्याओं को और बढ़ाती हैं।

तकनीकी समस्याएँ (Technological Problems)

डिजिटल विपणन प्रणाली का सीमित उपयोग: डिजिटल विपणन प्रणाली, जैसे ई-नाम (e-NAM), किसानों और बाजारों को जोड़ने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल है। लेकिन डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग सीमित है। इसका मुख्य कारण ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट और स्मार्टफोन की सीमित पहुंच है।

ग्रामीण इलाकों में तकनीकी ज्ञान की कमी: तकनीकी ज्ञान की कमी किसानों को डिजिटल उपकरणों और सेवाओं का लाभ उठाने से रोकती है। ई-मार्केटिंग प्लेटफॉर्म का उपयोग करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और सहायता कई क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं है। इसके परिणामस्वरूप, किसान परंपरागत विपणन प्रणालियों पर निर्भर रहते हैं, जो अक्सर उनके लिए नुकसानदेह होती हैं।

भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी समस्याएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए भौतिक और डिजिटल अवसंरचना का विकास, बिचौलियों की भूमिका को सीमित करना, MSP नीति का प्रभावी कार्यान्वयन, और किसानों को तकनीकी ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है। इन सुधारों से न केवल किसानों की आय में वृद्धि होगी, बल्कि कृषि क्षेत्र में समग्र विकास भी होगा।

संभावित समाधान (Proposed Solutions)

भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में सुधार किसानों की आय बढ़ाने, उनकी उत्पादकता बढ़ाने, और कृषि क्षेत्र को आर्थिक रूप से स्थिर बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी सुधार इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संरचनात्मक सुधार (Structural Reforms)

कृषि बाजारों का आधुनिकीकरण: भारतीय कृषि बाजारों को आधुनिक बनाने की आवश्यकता है। इसमें मंडियों की भौतिक संरचना का सुधार, इलेक्ट्रॉनिक तौल मशीनों का उपयोग, और पारदर्शी नीलामी प्रक्रिया शामिल है। बेहतर सड़कों और परिवहन नेटवर्क का विकास किसानों को उनके उत्पादों को बाजार तक पहुंचाने में सहायता करेगा। आधुनिक मंडियों की स्थापना से किसानों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य मिल सकेगा।

भंडारण और कोल्ड स्टोरेज सुविधाओं का विस्तार: भारत में 30% तक कृषि उत्पाद खराब हो जाते हैं क्योंकि पर्याप्त भंडारण और कोल्ड स्टोरेज सुविधाएँ नहीं हैं (FAO, 2020)। भंडारण सुविधाओं के विस्तार के लिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल अपनाया जा सकता है। कोल्ड स्टोरेज नेटवर्क का विकास, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, फसल के खराब होने को रोकने में मदद करेगा। यह कदम किसानों को अपने उत्पाद को लंबे समय तक संरक्षित रखने और बेहतर बाजार अवसर प्राप्त करने में सहायता करेगा।

संगठनात्मक सुधार (Organizational Reforms)

सहकारी विपणन प्रणाली को सशक्त बनाना: सहकारी विपणन समितियाँ किसानों और बाजार के बीच सेतु का काम करती हैं। इन्हें मजबूत बनाने के लिए इनका प्रबंधन पारदर्शी और लोकतांत्रिक बनाना होगा। सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने और उन्हें आधुनिक तकनीकों से लैस करने से उनका प्रदर्शन सुधरेगा।

बिचौलियों की भूमिका को सीमित करना: बिचौलियों का प्रभाव सीमित करने के लिए किसानों को सीधे बाजारों तक पहुँच प्रदान की जानी चाहिए। इसके लिए कृषि उत्पादक संगठनों (FPOs) को प्रोत्साहित किया जा सकता है। ये संगठन किसानों को एकजुट करके सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से बेहतर मूल्य सुनिश्चित कर सकते हैं। डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म और मोबाइल एप्लिकेशन के उपयोग से बिचौलियों की भूमिका को और कम किया जा सकता है।

नीतिगत सुधार (Policy Reforms)

MSP के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए उपाय: न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) को प्रभावी बनाने के लिए सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी किसान इस योजना का लाभ उठा सकें। मंडियों में MSP लागू करने के लिए निगरानी तंत्र विकसित किया जा सकता है। इसके अलावा, छोटे और सीमांत किसानों को उनके गाँवों के पास MSP-आधारित खरीद केंद्र स्थापित करके सहायता प्रदान की जा सकती है।

किसानों को बाजार तक सीधी पहुंच: किसानों को बाजारों तक सीधी पहुँच प्रदान करने के लिए कृषि-व्यापार केंद्रों का विकास और सीधी बिक्री प्लेटफॉर्म, जैसे किसान मंडी और किसान मोबाइल वैन, को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। किसानों को उनके उत्पाद सीधे उपभोक्ताओं को बेचने की सुविधा देने से उनका लाभ बढ़ेगा और बाजार में पारदर्शिता आएगी।

तकनीकी सुधार (Technological Reforms)

ई-मार्केटिंग प्लेटफॉर्म का उपयोग: डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे ई-नाम (e-NAM) का व्यापक उपयोग करके कृषि विपणन को पारदर्शी और कुशल बनाया जा सकता है। यह प्लेटफॉर्म किसानों को देशभर के विभिन्न बाजारों से जोड़ता है, जिससे वे अपने उत्पादों का बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। ई-नाम के दायरे का विस्तार और इसके उपयोग को सरल बनाना आवश्यक है।

किसानों को डिजिटल उपकरणों और सेवाओं के प्रति जागरूक करना: तकनीकी सुधार तभी सफल हो सकते हैं जब किसानों को उनके उपयोग के लिए सक्षम बनाया जाए। इसके लिए जागरूकता अभियान, प्रशिक्षण कार्यक्रम, और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। मोबाइल एप्स और डिजिटल भुगतान प्रणाली का उपयोग किसानों को मार्केटिंग प्रक्रिया को सुगम बनाने में मदद कर सकता है।

संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी सुधार भारतीय कृषि विपणन प्रणाली को प्रभावी और पारदर्शी बनाने में सहायक हो सकते हैं। इन सुधारों के माध्यम से किसानों की आय में वृद्धि होगी, बाजार तक उनकी पहुँच बेहतर होगी, और कृषि क्षेत्र का समग्र विकास संभव होगा। सरकार, निजी क्षेत्र, और सहकारी संगठनों के संयुक्त प्रयास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अध्ययन के निष्कर्ष (Findings and Conclusion)

भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में सुधार किसानों की आय बढ़ाने, उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने और कृषि क्षेत्र के समग्र विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन ने कृषि विपणन प्रणाली की समस्याओं, उनके प्रभाव, और संभावित समाधानों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

प्रमुख निष्कर्ष (Key Findings)

समस्याओं और उनके प्रभाव का विश्लेषण: इस अध्ययन में यह पाया गया कि भारतीय कृषि विपणन प्रणाली कई संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी समस्याओं से ग्रस्त है। इनमें बिचौलियों की भूमिका, न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का प्रभावी कार्यान्वयन न होना, अपर्याप्त भंडारण और परिवहन सुविधाएँ, और डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म के सीमित उपयोग प्रमुख समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का सीधा प्रभाव किसानों की आय, उत्पादों के उचित मूल्य प्राप्ति, और उनकी बाजार तक पहुंच पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, खराब भंडारण सुविधाओं के कारण प्रति वर्ष 10-15% फसलें खराब हो जाती हैं (FAO, 2020)।

सुझाए गए समाधानों की प्रभावशीलता: अध्ययन में सुझाए गए समाधानों, जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग, सहकारी विपणन समितियों का सशक्तिकरण, और MSP के प्रभावी कार्यान्वयन, को प्रभावी पाया गया। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे ई-नाम (e-NAM) ने किसानों को अधिक पारदर्शिता और व्यापक बाजार पहुंच प्रदान की है। सहकारी समितियों के सुदृढ़ीकरण और भंडारण सुविधाओं के विस्तार से किसानों की फसल हानि में कमी आई है।

प्रभाव और लाभ (Impact and Benefits)

कृषि विपणन सुधारों का किसानों की आय पर प्रभाव: सुधारों से किसानों की आय में वृद्धि संभव है। उदाहरण के लिए, यदि किसान सीधे बाजारों तक पहुँच पाते हैं और बिचौलियों की भूमिका कम हो जाती है, तो वे अपने उत्पादों का अधिक लाभ उठा सकते हैं। एक अनुमान के अनुसार, बाजार सुधारों से किसानों की आय में 20-30% की वृद्धि हो सकती है (World Bank, 2020)।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव: कृषि विपणन सुधारों का प्रभाव केवल किसानों तक सीमित नहीं है; इसका व्यापक असर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। बेहतर विपणन प्रणाली कृषि क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाती है, जिससे कृषि निर्यात में वृद्धि होती है। यह ळक्न्च में कृषि क्षेत्र के योगदान को भी बढ़ाता है।

सामाजिक प्रभावः इन सुधारों का सामाजिक प्रभाव भी है। किसानों की आय बढ़ने से उनकी जीवन स्तर में सुधार होता है। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

भविष्य के सुझाव (Future Recommendations)

दीर्घकालिक सुधारों के लिए रोडमैपः

- **भंडारण और कोल्ड स्टोरेज का विस्तारः** सरकार और निजी क्षेत्र को मिलकर ग्रामीण क्षेत्रों में भंडारण नेटवर्क विकसित करना चाहिए।
- **डिजिटल प्लेटफॉर्म का सशक्तिकरणः** ई-नाम और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म को स्थानीय भाषाओं में सुलभ बनाना और किसानों को इसके उपयोग के लिए प्रशिक्षित करना आवश्यक है।
- **सहकारी समितियों का पुनर्गठनः** सहकारी समितियों के कार्यों में पारदर्शिता और कुशल प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए कानूनी और प्रशासनिक सुधार आवश्यक हैं।

अनुसंधान के नए क्षेत्रों की पहचानः

- **डिजिटल और डेटा-आधारित विपणनः** कृषि विपणन में AI और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करके अधिक कुशल प्रणालियाँ विकसित की जा सकती हैं।
- **कृषि निर्यात में सुधारः** कृषि उत्पादों के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों की आवश्यकताओं और मानकों पर शोध की आवश्यकता है।
- **स्थिरता और जलवायु-अनुकूल विपणनः** जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को देखते हुए, टिकाऊ विपणन प्रणालियों का विकास एक प्रमुख अनुसंधान क्षेत्र हो सकता है।

अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय कृषि विपणन प्रणाली में सुधार न केवल किसानों की आय और जीवन स्तर को बढ़ाने में मदद करेगा, बल्कि कृषि क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी और प्रभावी बनाने में भी सहायक होगा। संरचनात्मक, संगठनात्मक, नीतिगत, और तकनीकी सुधार इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन सुधारों को लागू करने में सरकार, निजी क्षेत्र, और सहकारी संगठनों की साझेदारी आवश्यक होगी।

इन सिफारिशों के प्रभावी कार्यान्वयन से कृषि क्षेत्र का समग्र विकास होगा और यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

संदर्भ (References)

1. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय। (2020)। ई-नाम वार्षिक रिपोर्ट 2020। https://enam.gov.in से प्राप्त। पृष्ठ 106-145।
2. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय। (2020)। ई-नाम वार्षिक रिपोर्ट 2020। https://enam.gov.in से प्राप्त। पृष्ठ 1-35।
3. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय। (2020)। ई-नाम वार्षिक रिपोर्ट 2020। https://enam.gov.in से प्राप्त। पृष्ठ 146-185।
4. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय। (2020)। ई-नाम वार्षिक रिपोर्ट 2020। https://enam.gov.in से प्राप्त। पृष्ठ 36-70।
5. कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय। (2020)। ई-नाम वार्षिक रिपोर्ट 2020। https://enam.gov.in से प्राप्त। पृष्ठ 71-105।
6. खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)। (2020)। भारतः कृषि बाजार सुधार। पृष्ठ 111-155।
7. खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)। (2020)। भारतः कृषि बाजार सुधार। पृष्ठ 156-200।
8. खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)। (2020)। भारतः कृषि बाजार सुधार। पृष्ठ 201-245।
9. खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)। (2020)। भारतः कृषि बाजार सुधार। पृष्ठ 20-65।
10. खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ)। (2020)। भारतः कृषि बाजार सुधार। पृष्ठ 66-110।
11. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण। (2020-21)। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। पृष्ठ 110-150।
12. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण। (2020-21)। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। पृष्ठ 151-190।

13. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण। (2020-21)। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। पृष्ठ 191-230।
14. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण। (2020-21)। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। पृष्ठ 231-270।
15. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण। (2020-21)। वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। पृष्ठ 271-310।
16. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। (2019)। कृषि परिवारों के प्रमुख संकेतक। पृष्ठ 121-160।
17. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। (2019)। कृषि परिवारों के प्रमुख संकेतक। पृष्ठ 161-200।
18. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। (2019)। कृषि परिवारों के प्रमुख संकेतक। पृष्ठ 201-240।
19. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। (2019)। कृषि परिवारों के प्रमुख संकेतक। पृष्ठ 50-85।
20. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ)। (2019)। कृषि परिवारों के प्रमुख संकेतक। पृष्ठ 86-120।
21. विश्व बैंक। (2020)। भारत में कृषि का रूपांतरण। https://worldbank.org से प्राप्त। पृष्ठ 46-90।
22. विश्व बैंक। (2020)। भारत में कृषि का रूपांतरण। https://worldbank.org से प्राप्त। पृष्ठ 5-45।
23. विश्व बैंक। (2020)। भारत में कृषि का रूपांतरण। पृष्ठ 131-175।
24. विश्व बैंक। (2020)। भारत में कृषि का रूपांतरण। पृष्ठ 176-220।
25. विश्व बैंक। (2020)। भारत में कृषि का रूपांतरण। पृष्ठ 91-130।

मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में प्रेम: शोषण का एक माध्यम

डॉ० अपराजिता राय

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर

जीवन का मूल आधार प्रेम है। यह एक शाश्वत वृत्ति है। 'हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार "प्रेम वह मनोवृत्ति है, जिसके अनुसार किसी वस्तु या व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में यह इच्छा होती है कि वह सदा हमारे साथ रहे।"[१] मुहब्बत, अनुराग, प्रीति इसके पर्यायवाची शब्द है। यह स्पष्ट है कि प्रेम एक सूक्ष्म भाव है जिसे एक निश्चित परिभाषा में समाहित करना एक दुरूह कार्य है। समय के बदलते दौर में प्रेम के आदर्श भी बदलते रहते हैं। प्रेम मनुष्यों के बीच सेतु का काम करती है। मनुष्य को अपने परिवार में माँ-बाप का निश्छल वात्सल्य प्रेम एवं दुलार, भाई-बहन का सात्विक स्नेह, पति-पत्नी का दाम्पत्य प्रेम, मित्रों की प्रीति उसके जीवन को सुखमय बना देता है। प्रेम के कारण ही व्यक्ति समाज, देश एवं विश्व स्तर पर मानवता का संदेश देते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना को साकार करता है। किन्तु आधुनिक परिवेश में जहाँ हर व्यक्ति सफल होने के लिए दूसरों को अपना प्रतिस्पर्धी समझता है, के लिए प्रेम के मायने बदल गए हैं। वर्त्तमान समाज में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो इस शाश्वत प्रेम की आड़ में अपनों का ही शोषण कर 'प्रेम' शब्द को कलंकित करते हैं या करने का प्रयास करते हैं। समाज के ऐसे ही दुर्गुणों को समकालीन उपन्यासकार मेहरुन्निसा परवेज ने अपने प्राय: सभी उपन्यासों में संजीदगी से वर्णन कर प्रेम के विभिन्न स्वरूपों में व्याप्त शोषण का उजागर किया है।

'आँखों की दहलीज' मेहरुन्निसा परवेज का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास अक्षर प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सर्वप्रथम १९६९ ई. में प्रकाशित किया गया। यह एक नारी प्रधान उपन्यास है, जिसकी नायिका तालिया नामक एक विवाहित महिला है। तालिया को जब पता चलता है कि उसका पति शमीम कभी पिता नहीं बन सकता है तब उसका झुकाव जावेद नामक एक पुरुष के प्रति हो जाता है। जावेद अपने छल एवं फरेब से तालिया को वशीभूत कर प्यार का नाटक करने लगा। तालिया जावेद के प्यार में डूब गई और सुनहले सपने देखने लगी। किन्तु एक दिन जब समाज के सामने इस सम्बन्ध का खुलासा हुआ तो जावेद ने अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए साफ मुकर गया। उसने तालिया से सारे संबंध तोड़ लिया। इस घटना से तालिया के आत्म सम्मान को गहरा धक्का लगा। वह अपराध बोध से ग्रसित होकर आत्म-हत्या करने की प्रयास की एवं काफी बीमार हो गई। ऐसी स्थिति में तालिया की एक दोस्त जमीला उससे मिलने उसके घर आई। तालिया के अनुरोध पर जमीला उसके यहाँ कुछ दिनों के लिए रूक गई। जमीला को जमशेद नामक एक युवक से प्यार था एवं दोनों एक दूसरे के साथ शादी भी करना चाहते थे। किन्तु एक सुनियोजित तरीके से तालिया ने धोखा देकर अपने पति शमीम का संबंध जमीला से करवा कर अपनी दुर्बल मानसिकता को उजागर करती है।

'उसका घर' मेहरुन्निसा परवेज का द्वितीय उपन्यास है। इस उपन्यास को नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा सन् १९७२ ई. में प्रकाशन किया गया। इस उपन्यास की प्रमुख नायिका इसाई परिवार की एलमा नामक एक युवती है, जिसके माँ-बाप का देहान्त हो चुका था। उसके पिता जगदलपुर के एक चर्च के पादरी थे। दम्मे के बीमारी के कारण ऐलमा के पति ने उसे तलाक दे दिया था। वह अपने भैया-भाभी, पिता की विधवा बहन 'आंटी' एवं उनकी बेटी रेशमा के साथ रहती थी। रेशमा, ऐलमा से पाँच वर्ष छोटी थी किन्तु दोनों मित्रवत रहती थी। रेशमा एक हिन्दू युवक देव से प्यार करती थी। वह देव के बेटी की अन-ब्याही माँ थी। देव रेशमा से शादी करना चाहता था किन्तु 'आंटी' इसके विरुद्ध थी। ऐलमा का भाई उससे उम्र में कई वर्ष बड़ा था एवं किसी

ऑफिस में काम करता था। संकोची स्वभाव के कारण ऐलमा अपने उपर हो रहे अत्याचारों को चुप-चाप सह लेती थी। वह अपनी भैया से काफी डरती भी थी। भाई पर बोझ नही बने, इसलिए वह एक स्कूल में नौकरी करने लगी थी। एक दिन भैया ने ऐलमा की मुलाकात अपने नए ऑफिसर आहूजा से अपने ही घर में करवाया। आहूजा का स्थानांतरण दिल्ली से यहाँ हुआ था। वह तलाकशुदा था। धीरे-धीरे ऐलमा अपने भाई और आहूजा के द्वारा फैलाए गए जाल में एक असहाय और मूक जानवर की तरह फँस गई। भैया ने फिल्म देखने के बहाने 'फिल्म हॉल' में ऐलमा को आहूजा के साथ अकेले छोड़ दिया। ऐलमा कभी सपनें में भी नहीं सोच सकती थी कि भैया उसके साथ ऐसा व्यवहार करेंगे। फिर उसके मन में विचार आया, शायद भैया चाहते हैं कि वह आहूजा से प्रेम करके दूसरी शादी कर ले और आगे का जीवन फिर शुरू करे। "शायद पापा होते तो वह भी अपनी जवान लड़की के साथ यही करते जो आज भैया कर रहे हैं।"[२] उसके सोचने का क्रम जब भंग हुआ तो उसने पाया कि आहूजा ने उसे एक बांह से घेर रखा था। फिल्म समाप्ति के बाद आहूजा उसे घर के बजाय एक सुनसान से गेस्ट हाउस में ले गया, जहाँ उसे रात बिताने को विवश होना पड़ा। यह क्रम बार-बार दोहराया जाने लगा।

आहूजा अब उसे जहाँ-तहाँ मिलने लगा। ऐलमा लोगों की नजरों से बचने के लिए, न चाहते हुए भी उसके कार में सवार हो जाती थी। दिन-प्रतिदिन आहूजा का दु:साहस बढने लगा। अब वह अपने व्यंग्य एवं अश्लील वाक्यों से ऐलमा को अपमानित करने और उसके स्वाभिमान को नष्ट करने लगा था। ऐलमा ने "आहूजा से सारी बातें मालूम कर ली थी कि भइया ने अपने लिए उसे आधार बनाया है। ऐलमा आहूजा के लिए पहली लड़की नही, उसे रात को सोने के लिए लड़की चाहिए। ऐलमा की तरह उसकी कितनी ही प्रेमिकाएँ हैं, जिनसे वह प्रेम जताता है। ऐलमा का प्रेम वह उधार-खाते में नहीं लिखता बल्कि भइया का बैंक-बैलेन्स काफी बढ़ रहा है।"[३]

एक दिन दम्मे की तकलीफ और पीड़ा के कारण ऐलमा बुखार से पीड़ित हो गई। उसे देखने के लिए भैया उसके कमरे में आए। भैया के व्यवहार से ऐलमा को काफी आघात सा लगा। उसने महसूस किया कि वह "उस व्यापारी की तरह आए हैं जिसका जानवर अच्छे दामों में बिकने वाला हो और उसे पता चले कि वह बीमार पर गया है।"[४] उसके भैया की असलियत अब किसी से छुपी नहीं रह गई थी। एक दिन भैया की झड़प किसी कारणवश 'आंटी' से हो गई। 'आंटी' क्रोध से उबलते हुए कहा, "पर मुझ जैसी औरत तो होगी, तुझ जैसा भाई नहीं होगा, जो अपनी बहन का सौदा करता हो। तुमने ऐनी को इसलिए तलाक दिलाया था ताकि उसकी सुन्दरता का सौदा तुम अपने ऑफिसरों से करो।"[५] उपन्यास की एक अन्य पात्रा सोफिया जिसने "बचपन में गरीबी के बहुत से नंगे रूप देखे थे"[६], ऐलमा से कहती है, "औरत प्यार के लिए भटकती है पर उसे प्यार नहीं मिलता। औरत हमेशा मर्द से घर का सुख मांगती है पर मर्द हमेशा उसे बाजारू सुख देता है। सब शरीर के सुख को चाहते हैं। प्यार की जो परिभाषा पहले आंकी गई थी आज वह बेकार और मजाक सी लगती है।"[७] सोफिया के शोषण की भी अलग दास्तान है। उसका शराबी बाप कच्ची शराब का काम करता था। वह घर से महीनों गायब रहता था। "जब वह आता तो माँ को कुछ रूपये देता और फिर अँधेरी कोठरी में खींच ले जाता जैसे दिए हुए रुपयों को वसूलना चाहता हो।"[८] एक रात शराब के नशे में वह जवान होती सोफिया के साथ सो गया। उसके बाप को बेटी और पत्नी में कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। इस प्रकार पुरुष का कोई भी रूप उसके जीवन में कभी पवित्र होकर नहीं आया। वह ऐलमा को सचेत करते हुए कहती है कि उसके दुकान पर आने वाले कुछ ग्राहक आहूजा और तुम्हारा नाम ले-लेकर खुलेआम अश्लील बातें करते हैं - "यही कि तुम्हारा भाई तुम्हारे सुन्दर शरीर के बदले झूठे वाउचर पर सिगनेचर करवा पैसा बैंक में भरता है।"[९] ऐलमा को सलाह देते हुए वह कहती है कि इस दल-दल से उसे स्वयं निकलना होगा। ऐलमा इस बात को काफी पहले ही समझ चुकी थी। उसे रेशमा और देव के प्रयास से मद्रास में एक नौकरी मिल गई। वह अपने दु:खद अतीत को त्यागकर अपने सुखद भविष्य की ओर प्रस्थान कर गई।

'कोरजा' मेहरुन्निसा परवेज का तृतीय उपन्यास है। यह एक नारी प्रधान उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् १९७७ ई. में हुआ था। मुस्लिम परिवारों में महिलाओं का शोषण इसका केन्द्र बिन्दु है। इसके कथावस्तु में कहीं वात्सल्य प्रेम को कलुषित करते हुए पिता है, तो कहीं भाई-बहन के पवित्र प्रेम को कलंकित करते हुए पुरुष, तो कहीं घर के नौकरों द्वारा अबोध बालिकाओं का यौन शोषण। उपन्यास की मुख्य पात्रा नसीमा है। नसीमा का नाना रहमान खाँ बस्तर का एक समृद्ध ठेकेदार था। बाहरी औरतों के आकर्षण के कारण उसने कभी अपने घर, बीबी और बच्चों की ओर ध्यान नहीं दिया। फलत: कई बच्चों के असमय काल कवलित हो जाने के बाद दो बेटियाँ फातमा एवं साजो किसी तरह बच गई। धीरे-धीरे फातमा जवान होने लगी। अय्याश रहमान खाँ, जिसका घर में कभी मन नहीं लगता था, दिन-रात घर पर ही रहने लगा। वह अपना प्यार अनायास ही फातमा पर उड़ेलने लगा। अनुभवी अरमान

बी. समझ गई कि यह "बाप का प्रेम नहीं उमड़ा है बल्कि यह मक्कार आदमी की बहशी आँखों का पानी था, जो घर में फुदकती नये परों की फड़फड़ाती चिड़ियाँ को एक ही बार में दबोच लेना चाहता था।"[९] वह सतर्क हो गई और उसने रहमान खाँ के विरोध के बावजूद आनन-फानन में फातमा का निकाह करीम मियाँ नामक एक नवयुवक से करवा दिया। रहमान खाँ तो पहले भी बच्चों को अपना नहीं कहते थे और जब फातमा की शादी उसकी मर्जी के खिलाफ हुई तो उसने हमेशा के लिए बेटी-दामाद को भूला दिया। समय के साथ फातमा दो बच्चों नसीमा एवं मुन्नवर की माँ बन गई। गरीबी और बीमारी के कारण मुन्नवर का देहान्त हो गया। आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण अक्सर फातमा और करीम में तकरार होने लगी। बात इतनी बढ़ जाती कि करीम उसे जानवरों की तरह पीटता। दोंनों के बीच दूरी बढ़ती गई। करीम ने फातमा को असहाय छोड़कर दूसरा घर बसा लिया। जीवन के कठिन संघर्ष, मुन्नवर की मृत्यु और बीमारी का उचित ईलाज न मिलने के कारण फातमा की मृत्यु हो गई। फलत: नसीमा को अपनी नानी के घर आना पड़ा। नाना रहमान खाँ की मृत्यु के बाद नानी के यहाँ भी गरीबी का साम्राज्य था। नानी के साथ उनकी बेटी साजो, उसके तीन छोटे-छोटे बच्चे रफीक, शफीक, मुन्नु और रहमान खाँ की बहन की पोती रब्बो रहती थी। साजो खाला असमय ही विधवा हो गई थी। अब परिवार का सारा बोझ उसी के कंधों पर था। परिवार में आमदनी का कोई निश्चित जरिया नहीं था। घर एवं खेत जुम्मन के पास गिरवी पड़े थे। ब्याज न चुका पाने के कारण सारी जायदाद डूब चुकी थी। जुम्मन कभी नाना रहमान खाँ का मुनीम हुआ करता था। साजो खाला उसकी गोद में खेलकर बड़ी हुई थी। अब अपने ही घर में आश्रय पाने के लिए साजो खाला को जुम्मन की अय्याशी का साधन बन जाना पड़ा था।

रब्बो की अपनी एक अलग कहानी थी। बचपन में ही उसकी माँ का देहान्त हो गया था। पिता ने दूसरी शादी कर ली। पिता की मृत्यु के बाद वह सौतेली माँ के साथ अकेली रह गई। सौतेली माँ के रिश्ते का एक भाई जमशेद का घर में आना-जाना था। उसने बड़ी चालाकी से माँ-बेटी दोनों को अपने प्रेम जाल में फंसा लिया। रब्बो गर्भवती हो गई। अब माँ-बेटी का रिश्ता बदल गया था। सौतेली माँ के अत्याचारों से तंग आकर वह नानी के यहाँ आ गई थी, जहाँ उसने एक मृत बच्चे को जन्म दिया। पड़ोस में रहने वाला एहसान नामक युवक, जो एक बैंककर्मी था सब कुछ जानते हुए भी रब्बो से प्रेम करने लगा। रब्बो भी उसे चाहने लगी। इसी बीच रब्बो के लिए एक विधुर का रिश्ता आया जिसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे। जब रब्बो ने एहसान से शादी करनी चाही तब वह अपनी मजबूरियों का हवाला देकर पीछे हट गया। चारों ओर से निराश रब्बो ने अंतत: अपना गर्भपात करा कर उस विधुर से शादी कर ली। उपन्यास के एक अन्य पात्र ननकू कोस्टा के माँ-बाप बचपन में ही गुजर गए। उसके काका ने उसकी जायदाद पाने के लिए उसका पालन-पोषण किया। वह लालची एवं धूर्त व्यक्ति था। वह रोज रात को शराब पीता था और बड़े प्रेम से ननकू को भट्ठी से शराब लाने भेजता था। अबोध ननकू ने एक दिन कौतूहलवश शराब पी और कुछ ही दिनों में वह शराब का आदी हो गया। जीवन के अनुभवों से अनजान वह सरल हृदय बालक अपने काका के बिछाए जाल में फँस कर अपनी सारी जायदाद गँवा बैठा।

'अकेला पलाश' मेहरुन्निसा परवेज का चतुर्थ उपन्यास है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् १९८१ ई. है। यह एक नारी प्रधान उपन्यास है। इसकी मुख्य पात्रा तहमीना है। उसकी माँ ने बचपन से ही दुख देखा था। सौतेली माँ का अत्याचार वह बचपन में ही भोग चुकी थी। उनके आतंक रूपी काँटा तहमीना की माँ के बालमन में ऐसा चुभा था, जो उसके जीवन पर्यन्त नही निकल पाया। तहमीना का पिता भी अय्यास किस्म का व्यक्ति था। घर का सारा पैसा वह बाहर की औरतों पर खर्च कर देता था। अपने और अपने बच्चों के अधिकार के लिए तहमीना की माँ जीवन भर पति से झगड़ती रही। घर में जब पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता, तो तहमीना के पिता सभी बच्चों के साथ-साथ उसके माँ को भी घर से निकाल देते थे। इस तरह कभी बुआ के घर में, तो कभी ददिहाल में, तो कभी ननिहाल में उनलोगों को महीनों गुजारना पड़ता था। इस तरह के असुरक्षित माहौल में तहमीना की माँ जिन्दगीभर एक सुरक्षित घरौंदे की तलाश में रही। तहमीना का बचपन ऐसे ही वातावरण में गुजरा। उसे जवान होते देख उसकी माँ भीतर से डर गई। माँ के मन में "यह भय समा गया कि बाप की हवस की शिकार बेटी न हो जाय और इस भय ने उनकी रात और दिन की नींद हराम कर दी।"[१०] अत: एक शाम उसने सुनियोजित तरीके से अपने पति के एक दोस्त जमशेद नामक व्यक्ति को तहमीना के कमरे में भेज दी। जमशेद जो तहमीना के पिता के उम्र का था, जिसके शक्ल-सूरत को तहमीना ने कभी पसंद नही किया था, उसके अपने ही कमरे में, माँ की सहमति से उसे लूट लिया था। इन बातों से अनजान तहमीना एक नन्हीं चिड़ियाँ की तरह सिर्फ थरथराकर और काँपकर रह गई। अब नियमित रूप से शाम के समय तहमीना के साथ यह घटना घटने लगी। एक दिन तहमीना की माँ ने उसके पिता से तहमीना की शादी जमशेद से करवाने के लिए चर्चा की। तहमीना के पिता को ऐसा लगा जैसे उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गया हो। वह किसी भी हालत में अपनी इतनी कम उम्र की लड़की की शादी अपने दोस्त जमशेद से नही करवाना

चाहते थे। पति-पत्नी के बीच तीखी बहस हुई और बात मार-पीट तक पहुँच गई। तहमीना की विचित्र स्थिति थी। जहाँ उसकी माँ अपनी बात पर अडिग थी, वहीं इसके पिता इसके विरुद्ध थे। अंत में तहमीना की माँ ने बड़ी चालाकी से तहमीना को हीं उसके पिता के सामने खड़ा कर दिया। पिता को जब उनके अनुपस्थिति में घर में घटित घटनाओं की जानकारी मिली तो वह भीतर से टूट गया। "वह समझ गए कि पत्नी ने अपनी ही लड़की के साथ खूबी से चाल चली है।"[११] अंतत: पिता को शादी की अनुमति देनी पड़ी। इस प्रकार तहमीना की माँ ने अपनी सुरक्षा के लिए अपनी बेटी का भविष्य तबाह कर डाला। इसकी पुष्टि तहमीना के विचारों से भी पता चलता है, "माँ ने क्या खूबी से उसे इस दलदल में झोंक दिया, जिससे वह चाहकर भी नहीं निकल सकती ! बस हाथ-पैर पटक कर रह जाती है या रोकर चुप हो जाती है।"[१२]

इस बेमेल विवाह से तहमीना का दाम्पत्य जीवन कभी सुखद नही रहा। वह पढ़ी-लिखी, सुलझे विचारों वाली एक खूबसूरत महिला थी। अत: व्यस्त रहने के लिए वह सामाजिक कार्यो से जुड़कर एक महिला कल्याणकारी संस्था की चेयरमेन बन गई। संस्था के आवश्यक कार्यों के दौरान उनकी मुलाकात शहर के एस.पी. तुषार से हुई। अविवाहित तुषार तहमीना के सौन्दर्य को देख मंत्रमुग्ध हो गया। वह चालाकी से तहमीना के कटु दाम्पत्य जीवन का फायदा उठाकर तहमीना का विश्वासपात्र बन गया। तहमीना उसे एक सभ्य, शिष्ट, शालीन और विचारवान पुरुष समझती थी। परन्तु तुषार अन्दर से एक धूर्त एवं मक्कार व्यक्ति था। तहमीना के यह कहने पर कि "तुम भूल रहे हो, मैं किसी की ब्याहता हूँ, किसी के साथ में ईमानदारी से जुड़े रहने की शर्त बांध दी गई है।"[१३] तुषार उससे कहता है, "तुम भी किस युग की बात कर रही हो? उसके प्रति ईमानदारी का डंका पीट रही हो जो तुम्हें कुछ न दे सका, या सही माने में कुछ देने में असमर्थ है।"[१४] भावनात्मक प्रेम की आड़ में तुषार की धूर्तता उसके इस कथन से जान पड़ता है, "नही, मैं तुमसे कुछ छीनना नही चाहता, मैं तो केवल तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि तुम अपने को मत मारो... मैं तुम्हारी मजबूरी समझता हूँ, बस मैं यह चाहता हूँ तुम मुझसे भी संबंध रखो और अपने घर के भी संबंध निभाओ।"[१५] तहमीना के यह कहने पर "यह पाप होगा तुषार... तुम मुझसे पाप करवाना चाहते हो?"[१६] तुषार ने अपने इस कथन से "पाप वगैरह कुछ नही है दुनियां में, जो मन को अच्छा लगता है न वही पुण्य है और जो अच्छा नही लगता वह पाप है।"[१७] तहमीना को निरुत्तर कर दिया। भावना के इन्ही क्षणों में तहमीना तुषार के छल भरे प्रेम को सही समझ बैठी। वह तन और मन दोनों से तुषार की हो गई। तुषार के लिए तहमीना ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। कुछ ही दिनों में दोनों के प्यार की चर्चा पूरे शहर में फैल गया। फलत: पहले जो तुषार तहमीना के लिए जीने और मरने की कसमें खाता था, वही तुषार समाज में अपनी मर्यादा और सम्मान बचाने के लिए तहमीना से दूरी बना लिया। एक दिन तहमीना तुषार से मिलने उसके दोस्त अजय के घर गई। तहमीना को देखते ही तुषार का चेहरा काला पड़ गया। उसने तहमीना को डांटते हुए कहा कि यदि इन सारी बातों को उसके पति जमशेद तक पहुँचा दी जाए तो उसकी स्थिति क्या होगी? तहमीना अब जान गई थी कि तुषार ने प्रेम के नाम पर उसका शोषण किया है।

उपन्यास की एक पात्रा विमला जो तहमीना की संस्था में एक सहायिका के पद पर कार्यरत थी, का जीवन मित्र-प्रेम एवं धर्म-प्रेम के कारण तबाह हो गया था। विमला एक सुखी सम्पन्न परिवार की एक शिक्षित युवती थी। उनकी एक दोस्त ने सन्यास धारण कर लिया था। विमला का झुकाव बचपन से ही धर्म के प्रति था। अत: अपने दोस्त के द्वारा बुलाने पर वह उसके आश्रम में आ गई। आश्रम में धर्म के नाम पर केवल पाखंड था, चारों ओर शोषण का जाल फैला हुआ था। लड़कियों को सेक्स-गुलाम बनाकर रखा जाता था। आश्रम के माध्यम से वहाँ हर बुरा काम होता था। विमला के विरोध करने पर उसे निवस्त्र कर रस्सियों से बांध दिया गया। पुन: बलात्कार का अंतहीन त्रासदी उसे झेलना पड़ा। जब उसके दोस्त ने देखा कि इस माहौल में विमला नही जी सकेगी तो एक दिन चुपके से उसे आश्रम से बाहर निकाल दिया। सन्यास धारण किए हुए विमला को उसके घर वालों ने समाज के डर से उसे ठुकरा दिया। फलत: विमला को एक दूसरे आश्रम में शरण लेनी पड़ी। इस आश्रम की हालत पहले की आश्रम से भी बुरी थी। मौका पाकर एक दिन वह वहाँ से भी भागकर एक दूसरी जगह श्री माँ के आश्रम में चली गई। यह एक पवित्र आश्रम था। कड़े नियमों एवं अनुशासन के कारण यहाँ का जीवन अत्यन्त ही कठिन था। अत: विमला यहाँ भी सामंजस्य नहीं कर पाई। इस तरह भटकते-भटकते उसे आखिरकार वह एक स्वामीजी के साथ रहने लगी जो उसे पितृवत स्नेह करता था। उन्होंने ही विमला को एक सुव्यवस्थित जीवन जीने की प्रेरणा देकर यह नौकरी दिलवायी थी। अब स्वामीजी का सारा खर्च नौकरी से मिले पैसे द्वारा विमला ही वहन करती थी। इस प्रकार प्रेम के वशीभूत विमला को हर व्यक्ति ने अपने-अपने ढ़ंग से शोषण किया। इस उपन्यास में ऐसी बहुत सारी घटनाओं का वर्णन है जिसमें प्रेम शोषण का एक माध्यम बन गया है। उपन्यास की एक अन्य पात्रा रजिया को विनोद नामक एक व्यक्ति अपने प्रेम में फँसा कर उसका शोषण करता है। जहाँ रजिया बीस-इक्कीस वर्ष की युवती है, तो वहीं

विनोद का भरा-पूरा परिवार। परिवार में दो बच्चे और उसकी पत्नी भी है। ऐसी ही कहानी एक विधवा दुलारी बाई की भी है, उसके दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे हैं। किन्तु एक ग्राम-सेवक के बहकावे में आकर गर्भवती हो जाती है। तहमीना के ऑफिस का बाबू प्यार के नाम पर कई लड़कियों का जीवन तबाह कर डाला था। उसने एक रईस विधवा को अपने प्रेम में फँसा कर पहले गर्भवती कर दिया, फिर गर्भपात कराने के लिए उल्टी-सीधी दवा देकर मार डाला। हद तो तब हो गई जब विधवा की सारी सम्पति हड़प कर उसके बेटे को एक अनाथ आश्रम में भेज दिया। तहमीना की मुँहबोली बड़ी बहन डॉ. नाहिद और डॉ. महेश अग्रवाल एक दूसरे से प्यार करते थे। वर्षों के प्रेम में इंतजार के बाद जब महेश की पोस्टिंग डॉ. नाहिद के साथ हो गई तो उनके प्रेम ने नाहिद के गर्भ में आकार लेना शुरू कर दिया। तब दोनों ने शादी कर ली। दोनों के परिवार वाले इस शादी के सख्त खिलाफ थे। डॉ. नाहिद के पिता उसके उपर आश्रित थे। अत: वे इस विवाह के खिलाफ थे। वहीं दूसरी ओर डॉ. अग्रवाल की माँ को अपनी बहू के रूप में एक मुस्लिम स्त्री को किसी भी परिस्थिति में स्वीकार करने को तैयार नही थी। वह पोते के जन्म से खुश तो थी परन्तु उसकी जन्म की परिस्थितियों को लक्ष्य कर अपने तानों से डॉ. नाहिद का हृदय छलनी कर देती थी। अपनी माँ के दबंग व्यक्तित्व के आगे डॉ. अग्रवाल असहाय नजर आते हैं। जिस प्रेम के कारण डॉ. नाहिद ने परिवार एवं समाज से विद्रोह कर शादी किया था, वह प्रेम उनके हृदय से न जाने कहां गुम हो गया। प्रेम ने उन्हें उस मोड़ पर पहुँचा दिया था, जहाँ उसके जीवन में कोई उमंग नहीं रह गया था।

'समरांगण' मेहरुन्निसा परवेज रचित पंचम उपन्यास है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् २००२ ई. है। पंडित गोपीलाल इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास की कथावस्तु का परिवेश सन् १८५७ ई. के आसपास का है। जब लालच के वशीभूत होकर व्यक्ति का चारित्रिक पतन होता है तो उसके लिए 'प्रेम' शब्द के मायने बदल जाते हैं। ऐसे व्यक्ति न केवल अपने परिवार और समाज के लिए घातक बन जाता है, बल्कि वह अपने मातृभूमि के साथ ही विश्वासघात कर उसे गुलामी के अंधकार में और आगे धकेल देता है। जब तक उसे अपनी गलतियों का एहसास होता है, तब तक सब कुछ उसके हाथों से फिसल चुका होता है और वह इस दलदल से निकलने योग्य नहीं रह पाता है। व्यक्ति के इसी चारित्रिक दोषों को आधार बनाकर उपन्यासकार मेहरुन्निसा परवेज ने इस उपन्यास की रचना की है। समधी मिर्जा इलाही बख्श एवं कुछ अन्य विश्वसनीय व्यक्तियों के विश्वासघात द्वारा ही २२ सितंबर १८५७ ई. के दिन बादशाह बहादुर शाह जफर को मेजर हडसन ने लाल किले में नजरबंद कर उनके बेटे मिर्जा एवं दो पोते खिदिर सुल्तान और अबू बकर को सार्वजनिक रूप से अपमानित कर मार डाला था। दिल्ली में भयंकर लूटपाट और मारकाट मच गई थी। ऐसे ही विषम परिस्थिति में पंडित गोपीलाल जो मूलत: एक कश्मीरी ब्राह्मण था एवं जीवन यापन के लिए दिल्ली के परांठे वाली गली में एक मिठाई की दुकान चलाता था, नवविवाहिता पत्नी सुहासिनी के साथ पिंडारियों के एक सरदार बंगाली सिंह की मदद से अपनी जान बचाकर किसी तरह जबलपुर आ गया। जबलपुर उसके लिए अनजान शहर था। यहाँ उसका भविष्य अनिश्चित था। न तो उसके हाथों में पैसे थे और न ही जीविका के कोई निश्चित साधन। ऐसे कठिन परिस्थिति में बंगाली सिंह ने उसे एक सज्जन मिट्ठू सिंह से मिलने की सलाह दी। मिट्ठू सिंह का जबलपुर में बहुत बड़ा कारोबार था। उनकी एक बड़ी हवेली थी, जिसमें वह अपनी पत्नी लता के साथ रहते थे। वह नि:संतान थे। उन्होंने गोपीलाल और सुहासिनी को अपने घर में आश्रय देकर अंग्रेजों के सैनिक छावनी में सब्जी पहुंचाने का ठेका दिलवा दिया। थोड़े हीं दिनों में गोपीलाल को व्यापार की समझ आ गई थी। उसे छावनी के लोगों से अच्छी मित्रता हो गई। वह मिट्ठू सिंह के कार्य भी संभालने लगे थे। मिट्ठू सिंह गोपीलाल को पुत्रवत् स्नेह करने लगे। गोपीलाल उनके सबसे अधिक विश्वास पात्र व्यक्ति बन गए थे। धीरे-धीरे गोपीलाल अंग्रेज अधिकारियों का विश्वासपात्र गुप्तचर भी बन गया जो आसपास की सारी गुप्त खबरें अंग्रेज अधिकारियों तक पहुंचाने लगा। जबलपुर आने के क्रम में ही गोपीलाल की मुलाकात नौटंकी की प्रसिद्ध नृत्य की बूंदाजान से हुई थी। बूंदाजान कला तथा सौंदर्य की साम्राज्ञी थी। जब गोपी लाल का व्यापार यहां जम गया तब अपनी सुहासिनी जैसी सुंदर, सुघर, रूपवती एवं पतिव्रता नारी से विश्वासघात करते हुए उनके साथ प्रेम करने लगा। बंगाली सिंह की सहायता से गोपीलाल ने एक आलीशान भवन खरीदकर बूंदाजान को उपहार स्वरूप दिया। बूंदाजान का सारा उत्तरदायित्व उसने अपने कंधों पर ले लिया एवं अपने फायदे के लिए अंग्रेजों की छावनी में उनके नृत्य एवं गायन का कार्यक्रम करवाने लगा। मिट्ठू सिंह जी को जब इन सारी बातों का पता चला तो ऐसे लगा जैसे उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गई हो। अब उसे असहाय सुहासिनी अपनी पुत्री जैसे लगने लगे। उन्होंने कुछ ही दिनों पहले चचेरे भाइयों के साथ चल रहे संपत्ति विवाद के कारण एवं कोर्ट कचहरी से बचने के लिए अपनी हवेली गोपीलाल के नाम इस उम्मीद में कर दी थी कि गोपीलाल कभी उसे धोखा नहीं दे सकता है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि विवाद सुलझने के उपरांत गोपीलाल उनकी संपत्ति वापस कर देगा। किन्तु

गोपीलाल के इस कृत्य ने उनके इस विश्वास की जड़ों को हिला दिया था। सुहासिनी के प्रति उसके विश्वासघात ने मिट्ठू सिंह जी को दु:ख और भविष्य की असुरक्षा के भंवर में डाल दिया। "कोठी तथा बाग-बगीचा गोपीलाल के नाम चढ़ाकर क्या उन्होंने अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली? अपना ही पाला-पोसा-पुचकारा सांप यदि अपने को ही डंस ले तो..?"[१८] - जैसे बुरे परिणामों के बारे में सोच कर उनकी पत्नी लता भी चिंतित रहने लगी। कई बरसों बाद सुहासिनी उनके इस दर्द को महसूस करते हुए अपनी बहू पृथा से कहती है ख्र "बेटा, यह घर बहुत विचित्र है। यह तो कोठी सूर्य भवन देख रही हो। यह हमारी नहीं है, यह तो मिट्ठू सिंह भाई साहब की है। अपने पारिवारिक झगड़ों के कारण उन्होंने इनके नाम लिख दी, जिसे बाद में तेरे ससुर ने लौटाया ही नहीं। इनके विश्वास को छला, यह दोनों पति-पत्नी भी देखो कैसे देव पुरुष हैं कि भाग्य का विपदा समझ कर गम खा गए। जब यह हवेली तोड़ी गई तो इसमें नीचे गड़ा खजाना निकला जिसकी जानकारी मिट्ठू सिंह को भी नहीं थी और न यह भेद तेरे ससुर ने इन्हें पता लगने दिया।"[१९]

समय के साथ गोपीलाल और बूंदाजान के संबंधों में भी दरार आने लगा। गोपीलाल के विरोध के बावजूद उसने एक सुंदर बच्ची को जन्म दिया। बूंदाजान गोपीलाल के स्वभाव परिवर्तन से काफी दुखी थी। वह बंगाली सिंह से कहती है - "मोह-माया में फँस कर मैंने क्या पाया? अपना सब दाँव पर लगा कर बैठ गई। आपके मित्र को तो झांकने की फुर्सत नहीं होती कि मैं जी रही हूँ या मर गई। बस, भूले भटके आ जाते हैं। पहले तो मुझे बरगला-बरगला कर मेरा सुख चौन छीन लिया। उन्होंने मुझे रास्ते से भटकाया था।"[२०] सफलता की सीढ़ियों पर चढ़कर गोपीलाल का आचरण स्वच्छंद हो गया था। अपने मूल स्वभाव को त्याग कर वह धृष्टता, ठग-विद्या, चरित्रहीनता, लालच - जैसे दुर्गुणों का दास बन चुका था। गोपीलाल के जीवन में बूंदाजान की उपयोगिता अब समाप्त हो चुकी थी। अत: बूंदाजान गोपीलाल का साथ छोड़कर अपने बच्चों के भविष्य को संवारने बंबई चली गई।

उपन्यास का एक अन्य पात्र लटारया जो शहर के प्रसिद्ध सेठ तोतामल के यहाँ नौकरी करता था। तोतामल दूर के रिश्ते में उसके ताऊ लगते थे। लटारया एक गरीब परिवार का नवयुवक था, जिसके माता-पिता गाँव में रहते थे। दूर के रिश्तेदार होने के कारण सेठ तोतामल को लटारया से बेहद स्नेह था। भारी-भरकम शरीर वाले तोतामल की उम्र करीब पचास वर्ष से ऊपर की थी किंतु उनकी पत्नी सेठानी माधवी बीस-तीस वर्ष की थी। वह निसंतान थे। लटारया ने सेठ के विश्वास का गलत फायदा उठाकर सेठानी को अपने प्रेमजाल में फंसा लिया। सेठानी को भी संतान चाहिए थी। अत: वह गर्भवती हो गई। सेठ इन सारी बातों से अनभिज्ञ था। लटारया ने चालाकी से बंगाली सिंह को सेठ से मिलवाया। जड़ी-बूटियों से इलाज करना बंगाली सिंह का पुश्तैनी धंधा था। बंगाली सिंह सेठ तोतामल की नब्ज देखकर जान गया की वह पिता नहीं बन सकता। किंतु लटारया प्रलोभन देकर बंगाली सिंह को सेठ का इलाज करने एवं उन्हें संतान-योग का झूठा विश्वास दिलवाने के लिए मना लिया। बंगाली सिंह जड़ी-बूटियों से बनी हुई दवाओं से सेठ और सेठानी का इलाज करने लगा। निश्चित समय पर सेठानी ने एक स्वस्थ एवं सुंदर बच्चे को जन्म दिया। सभी खुश थे। इसी बीच लटारया के माँ-बाप ने उसकी शादी गांव में किसी लड़की से तय कर दी। सेठानी ने लटारया से काफी अनुरोध किया कि इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे। उसने लटारया को बहुत समझाने की कोशिश की। किंतु लटारया ने सेठानी के अनुरोध को नहीं माना। निराश होकर सेठानी ने लटारया की होने वाली पत्नी के लिए आभूषण एवं उपहार देकर उसे गांव जाने की अनुमति दे दी लेकिन विवाह के दिन बेटे सहित आत्महत्या कर ली। माँ-बेटे की मृत्यु से सेठ दुख के अथाह सागर में डूब गया। बंगाली सिंह को जब यह ज्ञात हुआ तो वह उनसे मिलने उनके हवेली पर गए। बंगाली सिंह के पूछने पर सेठ ने तुतलाते हुए कहा - "भई, मलती नहीं तो तया तलती? उतते प्रीत थलक वह ब्याह तल रहा था। इस कारण अथने जीवन का अंत कर लिया।"[२१] आगे "हां वैद्यजी, आपने भी तूब इलाज किया था। देथिए, बिना आपकी दवा थाए मेरे घर संतान हुई थी।"[२२] - कह कर सेठ ने अपनी तिजोरी से बंगाली सिंह की दी हुई सारी दवाएं दिखा दी। सेठजी को लटारया और सेठानी के प्रेम की कथा मालूम थी। "मैं बुद्धू नहीं हूँ, तुम औल सब मुझे धोखा तेते लये न?"[२३]- भावावेश में कहते हुए सेठ रो पड़े। बंगाली सिंह समझ गए थे कि सेठजी सब कुछ जानते हुए भी पत्नी और लटारया के कपट को देखते और पचाते रहे। उन लोगों के छल को वह चुपचाप विष की तरह पीते रहे। बंगाली सिंह अपनी ही नजरों में शर्म और लज्जा से गिर गए।

'पासंग' मेहरुन्निसा परवेज रचित छठा उपन्यास है। इसका प्रकाशन वर्ष सन् २००४ ई. है। यह एक नारी प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की एक अन्य पात्रा बानोआपा प्रेम के नाम पर जीवन की हाट में अनजाने ही अपना सब कुछ गंवा कर एक लुटे-पिटे बरबाद जुआरी की तरह जीने को मजबूर हो जाती है। उसे नदीम नामक युवक से प्यार था। दोनों ने जिन्दगी का सुनहरा जाल बुना था। किन्तु समय से पहले ही वह जाल टूट गया। उसके सारे सपने बिखर गए। नदीम बानोआपा के खाला की ननद का बेटा था।

वह बी. ए. का एक होनहार छात्र था। बानो की पढ़ाई में वह उसे काफी मदद करता था। पढ़ाई के साथ-साथ दोनों के बीच जिन्दगी का पाठ भी शुरू हो गया। उसने कभी सपने में भी नही सोचा था कि नदीम से उसकी दूरी होगी। किन्तु अचानक देश विभाजन की आँधी ने आकर सब कुछ बर्बाद कर दिया। मुसलमानों का पाकिस्तान के लिए पलायन शुरु हो गया। हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़कने के कारण रिश्तों और आपसी भाईचारा का कोई मूल्य नही रह गया। ऐसी ही परिस्थितियों में नदीम अपने परिवार वालों के साथ पाकिस्तान चला गया। नदीम के पाकिस्तान चले जाने के कारण बानोआपा पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा। वह गर्भवती थी। बानो को इस स्थिति में पाकर उसके दादा और अब्बा उसे जान से मार देना चाहते थे। संयोगवश उसी समय रशीद चचा एक फरिश्ते की तरह वहाँ जा पहुँचे। रशीद चचा बानोआपा के दादा की बहन जैनब का बेटा था। उन्होंने किसी तरह से बानो की जिन्दगी बचाकर उसे रात के अँधेरे में अपनी विधवा मौसी बुलाकी बेगम के घर ले आया ताकि लोगों को उसके बारे में कुछ भी पता नही चले। बुलाकी बेगम के परिवार में कोई पुरुष नही था। वह अपनी अकेली पोती कनी के साथ रहती थी। कनी बानो से उम्र में काफी छोटी थी। निश्चित समय पर बानो ने एक बेटे को जन्म दी। भारतीय समाज की यह कड़वी सच्चाई है कि कुँआरी लड़कियों का माँ बनकर जीना मुश्किल है। समाज में रहने के लिए उसके द्वारा बनाये गए नियमों के विरुद्ध जाने में सामान्यत: किसी को साहस नही होता है। अत: परिवार के सभी लोगों ने मिलकर अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिए उस नवजात शिशु को हमेशा-हमेशा के लिए बानो के जीवन से अलग कर दिया। बानो अपने नन्हें से बेटे के लिए चीखती-चिल्लाती और तड़पती रह गई। कुछ दिनों बाद परिवार के सभी लोगों ने मिलकर रशीद चचा के आलसी, निकम्मे, कामचोर एवं बदसूरत बेटे दिलशाद का निकाह बानोआपा से करवा दिया। बानो को दिलशाद से मजबूरन निकाह करना पड़ा, उसे अपनी परिस्थितियों के आगे घुटने टेकने पड़े। दिलशाद की पहली बीबी मर गई थी। दिलशाद के साथ बानोआपा का दाम्पत्य जीवन सदैव ही कष्टप्रद रहा। दिलशाद की मृत्यु के बाद उसने घनघोर गरीबी में बच्चों का पालन किया। अन्तत: जीवन से हताश होकर वह पागल हो गई। पागलपन में वह दिनभर सड़कों पर घूमती रहती थी। वह सभी लोगों के हँसी का पात्र बनकर रह गई थी। मुहल्ले के सारे बच्चे उसके पीछे पड़े रहते थे। पागलपन के इसी दौर में एक दिन वह एक ट्रक के नीचे आ गई। पुलिस आई, पंचनामा हुआ किन्तु लोगों ने कोर्ट-कचहरी के डर से लाश को पहचानने से इनकार कर दिया। पुलिस ने उसे एक लावारिश लाश मानकर मामले को रफा-दफा कर दिया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यासों में प्रेम के जिस विविध रूपों का प्रकाशन हुआ है, लोगों ने उसे अपने स्वार्थ और लालच के वशीभूत होकर शोषण का एक माध्यम बना दिया है। वस्तुत: उनका यह आचरण प्रेम नहीं, अपितु धूर्त्तता एवं कायरतापूर्ण कृत्य है जो उनके अवसरवादिता को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ -

१. दास, श्याम सुन्दर(प्र.सं.) . हिन्दी शब्द सागर, छठा भाग. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी , पृ. ३२४४.
२. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ.२६.
३. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ.५८.
४. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ. ६२.
५. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ. ७३.
६. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ.८४.
७. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ.८३.
८. परवेज, मेहरुन्निसा. उसका घर. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७२, पृ.८५.
९. परवेज, मेहरुन्निसा. कोरजा. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९९७, पृ. २०.
१०. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१००.
११. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१०१.
१२. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.८२.
१३. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१३७.
१४. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१३७.
१५. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१३७.

१६. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ. १३७.
१७. परवेज, मेहरुन्निसा. अकेला पलाश. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ. १३७.
१८. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ. १४३-४४.
१९. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ. २३१-२३२.
२०. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.२४९.
२१. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१८४.
२२. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१८४.
२३. परवेज, मेहरुन्निसा. समरांगण. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण १९८१, पृ.१८४.

प्रवासी मजदूरों के पलायनात्मक चुनौतियों और प्राप्त अवसरों का अन्वेणात्मक पर्यालोचन

डॉ० शिवेन्द्र सिंह

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

शोध सारांश

कोरोना वायरस की वजह से लगाये गये लॉकडाउन की वजह से भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पडा है। लाखों लोगों का रोजगार छीन गया है, हजारों लोगों ने अपनी जान गवाई, चिकीत्सा क्षेत्र पर कभी न दिखाई देने वाला अति भार आ रहा है। औद्योगिक उत्पादन में भी कमी आ रही है। भारत की स्वतंत्रता के बाद मनुष्य के सबसे बडे पलायन का दृश्य भी हमें इस कोरोना महामारी ने दिखा दिया। इन सभी कोलाहल की परिस्थितीयों में सबसे अधिक परेशानियां, संकटों का सामना करना पडा प्रवासी मजदूरों को। जो अर्थव्यवस्था चलानेवाला एक बडा तपका है, लेकीन सबसे दुर्लक्षित वहीं हैं। लॉकडाउन होने की वजह से उन्होनें अपनी रोजी-रोटी गंवाई, सैकडों मील पैदल चलने को मजबूर हो गये, समय से मजदूरी भी नहीं मिली, ना खाने को मिला न पीने को पानी। ऐसी संकट की घडी में प्रवासी मजदूर अपने घर, गांव वापस लौट गये। इस घर वापसी ने उनके राज्यों के सामने कुछ चुनौतीयां खडी कर दी, साथ ही में कुछ अवसर भी प्रदान किये। इन सभी बातों का यहांपर विवेचन इस शोध कार्य में किया गया है।

शब्द संकेतः *प्रवासी मजदुर, पलायन, उनकी समस्याऐं, लक्ककडाउन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था आदि।*

शोध कार्य की पार्श्वभूमि

कोरोना वायरस महामारी से निजात पाने के लिए भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने देशवासियों की आरोग्य सुरक्षा को ध्यान में रखकर आनन-फानन में समूचे भारतवर्ष में 21 दिन के कड़े लॉकडाउन की घोषणा तारीख 24 मार्च 2020 को कर दी थी। जिसके परिणामस्वरूप कुछ अच्छे तथ्य सामने आये थे, जैसे की कोरोना वायरस को रोकने में कुछ हद तक भारत ने सफलता पा ली थी। इसके बावजूद भी बादमें कोविड-19 ने पुरे देशभर में हाहाकार मचा दिया था। कोविड-19 और लॉकडाउन की वजह से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले लोगों में शीर्ष स्थान पर थे, प्रवासी मजदुर! जो अपना घर, गांव छोड़कर मेहनत मजदूरी कर अपना पेट पालने के लिए शहरों की और चल दिए थे। क्यों की लॉकडाउन होने के बाद प्रवासी मजदूरों, महिलाओं और उनके साथ रह रहे उनके बच्चों के ऊपर समस्याओं का कहर बरपा जा रहा था। जिसमे सबसे बड़ा संकट था, उनके लिए खाद्य और स्वास्थ्य सुरक्षा। उनके पास न तो पैसे थे और न ही कुछ वस्तुऐं। इस लॉकडाउन स्थिति में पुरे देशभर में अनेक प्रकार की ऊवाहों ने प्रवासी मजदूरों के लिए मुश्किल घडी में संकट को और बढ़ावा दिया था।

रेल, बस एवं यात्रा के सभी अन्य मार्ग बंद हो जाने की वजह प्रवासी मजदूर पैदल ही अपने घरों की तरु चल पड़े थे। मगर इस दौरान मजदूरों और उनके परिवार के अन्य सदस्यों को कफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा था। कई मजदूरों की या उनके परिजनों की घर पंहुचने से पहले ही रास्ते में मौत हो गई, तो कई प्रवासी मजदूरों के घर वापस पहुंचने तक तबियत खराब हो गई थी। यह हाल सभी बड़े शहरों में दिखाई दे रहा था। पलायन की इस गंभीर स्थिति को देखते हुए केंद्रीय गृह मंत्रालय ने कुछ कदम उठाए, जिससे मजदूरों को किसी खान-पान की वस्तुओं का अभाव न हो या उनकी परेशानियाँ दूर की जा सके और उनका पलायन

भी रूक जाए। इसी बात पर गृह मंत्री अमित शाह जी ने राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों से बात करके यह सूचना कि वह प्रवासी मजदूरों की परेशानियों दूर कर उनके खाने-पीने एवं रहने की सुहलत मुहैया कराएं। यही बात फिरसे दिखाई देने का संदेह नजर आ रहा है। दिसंबर 2020 से देश में फिरसे कोरोना वायरस तेजी से फैल रहा है और कोरोना संक्रमित लोग एवं मृत होनेवालों की संख्या आसमान छू रही है। इसी तरह हालत लगातार बेकाबू होते गए तो, देशभर में एक बार फिर से लॉकडाउन लगाने की संभावना जताई जा रही है।

कोरोना महामारी के कारण से अपने राज्य में लौटे मजदूरों की वजह वहां की राज्य सरकारों के सामने एक नया संकट खड़ा कर दिया है, जो की कोरोना संक्रमण का है। इन मजदूरों की आवाजाही से उनके गावोंमें कोरोना फैल सकता है। साथही में इन लोगोंका पालन पोषण करना इनके हाथों को काम देना, इनका इलाज करना यह अनेको समस्याएं खड़ी हो रही है। इस विपरीत परिस्थिति में उत्तर प्रदेश जैसे राज्य ने प्रवासी मजदूरों को लौटने के बाद उनके हुनर के हिसाब से सुक्ष्म एवं लघु उद्योगों में रोजगार दिलाया है। प्रवासी मजदूरों का फिरसे पलायन रोकने के लिए उन्हें कई योजनाओं का लाभ देने की तैयारी की जा रही हैं। ऐसे मजदूरों के बच्चों की पढ़ाई से लेकर अस्पताल में होनेवाले इलाज का खर्चा प्रदेश शासन का श्रम विभाग उठाएगा। जो मजदुर भवन निर्माण में लगातार 90 दिनों तक कार्यरत रहेंगे, उनका पांच लाख रुपयों का बिमा प्रदेश की उत्तर सरकार करने जा रही है। इसका यह अर्थ निकालता है की, प्रवासी मजदुर अपने घर वापस लौटने के बाद उन्हें चुनौती न समझते हुए औद्योगिक उत्पादन बढ़ने का एक माध्यम माना जा रहा है, जिससे न की अर्थव्यवस्था सुधरेगी बल्कि उन प्रवासी मजदूरों का जीवनस्तर भी ऊँचा उठेगा। यूपी सरकार ने अन्य राज्यों से उत्तर प्रदेश लौटने वाले मजदूरों और श्रमिकों के लिए 20 से अधिक लाख रोजगार उपलब्ध कराने की योजना पर काम शुरू कर दिया है। जिसके तहत 25 लाख से अधिक लोगों का हुनर मैपिंग किया गया है और अपने घर लौटे 50 प्रतिशत से अधिक लोगों को काम भी दिया गया।

इसी तरह जिन राज्योंसे प्रवासी मजदुर शहरों की और पलायन करते रहते है, हर उस राज्य ने उनका अपने घर, अपने गांव लौट आना एक चुनौती न मानते हुए अवसर समझकर काम किया तो भविष्य में भारतवर्ष में पलायन की समस्या में कमी आ सकती है।

प्रस्तुत शोध कार्य के उद्देश्य

1. प्रवासी मजदूरों के वापस अपने घर लौटने से उनके राज्य के सामने आनेवाली चुनौतियों की जानकारी लेना।
2. प्रवासी मजदुर घर लौटने से उनके विकास के लिए राज्य सरकारों को उपलब्ध होने वाले अवसरों का अध्यन करना।
3. जहाँ से वे वापस जा रहे हैं, उस क्षेत्र के उद्योगों पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी लेना।

विधितंत्र

किसी भी शोध कार्य को पूरा करने के लिए शोध विधितंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विधितंत्र के सुचारु रूप से उपयोग करने पर शोध कार्य को संयमित, क्रमबद्ध, अवलोकन एवं विश्लेषणात्मक स्वरुप दिया जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य को पूरा करने के लिए विविध पुस्तकें, पत्रिकाएं, समाचार पत्र एवं इंटरनेट पर उपलब्ध सूचनाओं का सहारा लिया गया है, यानि इस वर्णनात्मक शोध कार्य के लिए द्वितीयक सूचनाओं एवं तथ्यों का आधार हैं।

शोध कार्य का महत्व

प्रस्तूत शोध कार्य मजदूरों के वापस अपने घर की और हो रहे पलायन के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याओंपर से परदा उठाता है। साथ ही में विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने प्रवासी मजदूरों के लिए निर्माण की रोजगार की सुविधाओं पर भी प्रकाश डालता है। यह शोध कार्य प्रवासी मजदूरों के आर्थिक विकास के लिए दिए गये कुछ सुझाव उपयोग में लाये जा सकते हैं।

प्रवासी मजदूरों का अपने घर की और पलायन से उत्पन्न हो रही चुनौतीयां एवं अवसर:

1. मजदूरों के वापस लौटने से उद्योगों को श्रमिकों की कमी महसूस हो रही है। जिससे उत्पादन पर बुरा असर हो रहा है। अंततः इससे देश के औद्योगिक उत्पादन की दर कम हो रही है।

2. लॉकडाउन की वजह से यातायात संबंधी उद्योग ठप्प हो गये, जो अभी तक संभल नहीं पाये है। और उपर से काम करनेवाले लोग न मिलने से जो उद्योग चालु हैं वे भी सुचारू रुप से चल नहीं पा रहे हैं।
3. प्रवासी मजदूरों को अपने गांव लौटने से वहां पर कोरोना संक्रमण के मामले बढते गये। जिससे कोरोना महामारी ने पूरे भारत में भीषण रुप धारण कर लिया। एवं स्वास्थ्य सेवायें डामाडौल हो गई।
4. राज्य सरकारों ने वापस आये मजदूरों तथा उनके परिजनों को मुफ्त में अनाज आदि का चीजें मुहैया कराई, जिससे सार्वजनिक वितरण व्यवस्था पर बहुत भार पडा।
5. वापस लौटे प्रवासी मजदूरों के हाथ को कुछ काम न होने की वजह से, उनके परिवारों की आर्थिक स्थिती चिंताजनक हो गई है। इस बात का स्थानिय अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत परिणाम हो रहा है।
6. केंद्र एवं राज्य सरकारों ने प्रवासी मजदूरों को घर तक पहुँचने के लिए मुफ्त में बसो एवं ट्रेनों की व्यवस्था की, जिससे भारी आर्थिक नुकसान उठाना पडा।
7. राज्य सरकारें अपने यहां लौटे मजदूरों को हूनर, कला कारिगरी का प्रशिक्षण देकर उनका भविष्य में होनेवाला पलायन रोक सकती हैं। वहीं पर रोजगार मिलने से उनके जीवनमान में भी सुधार हो सकता है।
8. केंद्र एवं राज्य सरकारें मिलकर प्रवासी मजदूरों की संख्या एवं अन्य जानकारी से कुछ डेटाबेस तैयार कर सकती हैं। ऐसा डेटाबेस भविष्य में प्रवासी मजदूरों के हित में बनाई जा रही नीतियों मे मददगार साबित हो सकता है।
9. उत्तर प्रदेश सरकार ने जिस तरह से प्रवासी मजदूरों का पलायन रोकने के लिए 17 योजनाओं का लाभ देने की तैयारी की है, उसी तरह से अन्य राज्य भी अपने मजदूरों के लिए प्रबंध कर सकते हैं। अगर पलायन कम हो जाता है तो शहरों की आधारभूत सुविधाओं पर आनेवाला भार कम हो सकता है।
10. अंततः प्रवासी मजदूरों की कमी से उद्योग ठप्प न हो इसलिए प्रवासी मजदूरों को उद्योगों द्वारा अच्छी सुविधाएं देने का प्रयास किया जाए।

निष्कर्ष एवं सुझाव

1. श्रम मंत्रालय के पास प्रवासी मजदूरों की संख्या का कोई डेटा नहीं है। इस बात से यह निश्चित होता है की प्रवासी मजदूरों के हक की बहुत सी बातें उन्हें नहीं मिलती। यहाँ पर राज्य सरकारों के लिए एक अवसर बनता है, जिससे वे प्रवासी मजदूरों का डेटा इकठ्ठा करें। यह बात मजदूरों को काम दिलाने में, उनको अधिक से सुविधाएं देने में मदद कर सकती है।
2. प्रवासी मजदुर जब अपनी काम की जगह वापस आएंगे तो उन्हें श्रम कानूनों के तहत मजदूरी देना, एक दिन में काम के सिर्फ 8 घंटे रखना, उनको पिने का स्वच्छ पानी, शौचालय की सुविधा, चिकित्सा की सुविधा समय पर उचित ढंग से मुहैय्या कराने में राज्य सरकारें मजदूरों के नियोक्ताओं से बात कर सकती हैं।
3. गुडगाँव में सन 2015 में श्रमिकों की मौत के बारे में आई अफवाहों के आधार पर उद्योग विहार में दो बड़े दंगे फसाद हुए थे। जिसमे वहां के कई कारखानों में तोड़फोड़ की गई, आगजनी हुई और उद्योगों का भरी नुकसान हुवा था। ऐसे दंगे न हो इसलिए उद्योगपति अपने श्रमिकों को अच्छा प्रशिक्षण दे, उनके काम के घंटे नियमानुसार रखे एवं उन्हें समय पर मजदुर दें।
4. पिछले साल 3 मई को जब लॉकडाउन खुला तो केंद्र सरकार ने श्रमिकों की नाराजगी कम करने के लिए 'श्रमिक विशेष ट्रेनों' को चलने की घोषणा की। ट्रेनों की संख्या बहुत कम थीं, क्योंकि पूंजीपतियों ने श्रमिकों की कमी की वजह से होने वाले संभावित नुकसान को भांप लिया था। इसलिए एक उद्योग संगठन ने मांग की कि केंद्रीय विधानों का उपयोग कर श्रमिकों को अपने काम पर वापस लौटने का आदेश दिया जाए। लेकिन ऐसा हुवा नहीं, उद्योगों में तालें पड़ गए और उन्हें बहुत नुकसान झेलना पड़ा। भविष्य में उद्योग संगठन सिर्फ अपने हित का विचार न करते हुए मजदूरों की भी खुशहाली के बारें में सोचना चाहिए।
5. गुजरात के एक व्यापारी संगठन ने मांग की थी की, राज्य में मजदूर संघ बनाने के अधिकार पर रोक लगा दी जाए। श्रम और रोजगार मंत्रालय की और से जारी किये गये बयान में कहा गया है कि 12 नियोक्ता संघों और उद्योग निकायों के

प्रतिनिधियों ने सरकार से अगले दो से तीन वर्षों के लिए श्रम कानूनों को निलंबित करने के लिए कहा, जिससे 'उद्योग को वर्तमान संकट से बाहर निकालने में मदद मिलें'। इसका अर्थ स्पष्ट होता है, की उद्योग भी परेषानीयों का सामना कर रहें हैं, जिन्हें सरकार की और से मदद की जरुरत है। लेकीन ऐसा करने पर प्रवासी मजदूरों समेत सभी मजदूरों का शोशण होने की संभावना बढ जाती है। यह परिस्थिती चिंताजनक आर्थिक विषमताओं का कारण बन सकती है। इसलिए श्रमिकों के हित को प्राथमिकता देते हुए श्रम कानूनों को निलंबित न किया जाए।

6. लॉकडाउन की वजह से सैकडों मील पैदल चलकर जा रहे, बहूत से मजदूरों की मौत हो गई। जैसे महाराष्ट्र के औरंगाबाद में ट्रेन की चपेट में आने से 16 लोगों की मौत हो गई। कुछ मजदूरों की ट्रक भीडंत से मौत हो गई। ऐसे लोगोंके परिजनों को मुआवजा जल्द से जल्द दिया जाए एवं उन्हे कहीं ना कहीं नौकरी दिलाने का प्रयास हो।
7. अपनें गांव वापस लौटे मजदूरों को किसी हूनर या कामकाज का प्रशिक्षण देकर उन्हें वहीं पर काम करणे के लिए सक्षम बनाया जाए। उन्हें कुटीर एवं लघू उद्योग शुरू करने के लिए पूंजि उपलब्ध कराने के साथ-साथ उनकी बनाई वस्तूऐं खरीदने-बेचने के लिए सहायता मिलें। ऐसा करने पर राज्य के लोगोंको काम भी उपलब्ध होगा और धीरे-धीरे उनकी आर्थिक स्थिती में भी सुधार आ सकेगा। उन्हें अपना घर, गांव छोडकर दुसरी जगह भटकने की जरुरत नहीं होगी।
8. ग्रामीण इलाकों से शहरों की और हो रहा पलायन, शहरों में बढती हुई गरीबी यह बातें भारत के ग्रामीण इलाकों के स्थायी कृषि संकट का प्रतिबिंब है। इसलिए केंद्र एवं राज्य के सरकारों ने कृषि के विकास पर ध्यान देने की जरुरत हैं। लेकीन प्रस्तूत समय में बढ रही कृषि निविष्ठाओं की किमते, असमय बारिश, सुखा-अकाल ऐसी गंभीर परिस्थितीयों के कारण किसान आर्थिक संकट की गहरी खाई में डुब रहा है। तो अगर कृषि एवं किसानों भलाई के लिए सरकारों ने अगर कुछ किया तो, बढता पलयान एवं घटता मानव विकास सूचकांक कुछ हद तक नियंत्रण में आ सकता है।
9. लॉकडाउन होने के पश्चात प्रवासी मजदूरों और महिलाओं को सबसे अधिक कठिनाईयां झेलना पडी थी। तभी से उनके लिए खाद्य और स्वास्थ्य सुरक्षा का संकट खडा हो गया है। इस विषय में राज्य सरकारों को और ज्यादा मेहनत करनी पडेगी, जिससे गरीब व बेरोजगार लोगोंको भविष्य में अपनी रोजी-रोटी चलाने में मुसीबतें न आए।
10. केंद्र सरकार द्वारा राहत पैकेज की घोषणा करते हुए, वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने स्वयंसेवी महिला समूहों को तीन महिने तक पांच सौ रुपये नकद भुगतान और मनरेगा के मजदूरों की मजदूरी में बढोतरी की घोषणाएं की थी। इन प्रयासों में दी जानेवाली रकम बहुत कम है और सिर्फ तीन महिने के लिए हैं । इस काल को भी 15-18 महिनों तक बढाया जा सकता है।
11. प्रवासी मजदूरों के लिए काम की जगह पर अपना खाना और स्वास्थ्य ठीक रखना कठिन काम होता है। उनका राशन कार्ड उनके घर पर होता है और उनकी पत्नी या मां के नाम से बना हुआ होता है। इसलिए केंद्र सरकार ऐसे प्रवासी मजदूरों को मानवीय आधार पर खाद्यान्न सुरक्षा के अंतर्गत बिना राशन कार्ड के अनाज उपलब्ध कराए।
12. भारत जैसे बडे देश में कोरोना महामारी का प्रभाव लंबे समय तक रह सकता है और उसके परिणाम भी बहुत गंभीर हो सकते हैं। इस स्थिती में सबसे गरीब और आर्थिक स्थिती में कमजोर लोगों के लिए खाद्यान्न एवं पोषण, स्वास्थ्य की सुरक्षा इन बातोंपर राज्य की सरकारों को अधिक से अधिक ध्यान देना होगा।
13. कोरोना महामारी के बीच केंद्र सरकार, सभी राज्यों की सरकारें एवं प्रतिपक्ष में राजनितीक संघर्ष होता दिखाई पडा है। जो श्रमिक स्पेशल ट्रेनें चलाने के समय या टीका वितरण, अन्य चिकीत्सा सामग्री वितरण में स्पष्ट रुप से दिखाई दिया है। इससे आम नागरिक एवं प्रवासी मजदूरों समेत समाज के सभी घटकों को बहुत दिक्कतों का सामना करना पडा। भविष्य में किसी भी सार्वजनिक हित के कार्यों में सरकारों को प्रतिपक्ष के साथ मिलकर काम करना चाहिए।
14. सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी इस संस्था की एक रिपोर्ट के अनुसार बिहार और झारखंड जैसे उत्तरी राज्यों में बेरोजगारी के में बढोतरी हो सकती है। जिससे अपने घर लौटे प्रवासी मजदुर एवं स्थानिय लोगोंको जीविकोपार्जन में दिक्कतें आ सकती हैं। ऐसा ना हो इसलिए, सरकारों ने मनरेगा ते अंतर्गत मजदूरी की रकम एवं काम की मात्रा को बढा देना चाहिए।
15. भारत दुनिया का दूसरा बडा फल एवं सब्जी उत्पादक देश है। इस दृष्टिकोन से ग्रामीण इलाकों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, कोल्ड चेन स्टोरेज एवं लॉजिस्टीक्स ऐसे उद्योगों का विकास कर रोजगार के अवसर बढाना राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है।

16. मजदूरों को काम की तलाश में अपना घर, गांव न छोडना पडे, इसलिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने की जरुरत है। जिसमें नियीमत बिजली की सप्लाई, पीने का स्वच्छ पानी, अच्छी सडकें और उद्योगों के लिए अन्य आधारभूत सुविधाऐं निर्माण करना पडेगी। जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं राज्य का विकास हो सकेगा। अंततः मजदूरों का पलायन भी कम हो सकेगा।

संदर्भसूची

1- Khanna, A., 2020. Impact of Migration of Labour Force due to Global COVID-19 Pandemic with Reference to India. *Journal of Health Management*, 22(02), p.181.

2- Ranjan, R., 2020. Impact of COVID-19 on Migrant Labourers of India and China. *Critical Sociology*, 12(02), p.1-6.

3- Azeez, A., 2020. The Impact of COVID-19 on Migrant Women Workers in India. *Eurasian Geography and Economics*, 62(01), p.93-112.

4. सिन्हा अमिताभ, कोरोना वायरसः प्रवासी मजदूरों के लिए क्या कर रही है मोदी सरकार–नजरिया. (2020, May 180. BBC- https://www.bbc.com/hindi/india-52701775

5. गाँव कनेक्शन, (2020, August 10). लॉकडाउन में जेवर, फोन, जमीन तक बेचा, कर्ज लिया, लेकिन सरकार के कामों से संतुष्ट हैं 74: ग्रामीणः *गांव कनेक्शन सर्वे,* https://www.gaonconnection.com/read/rural-indians-sold-watches-phone-land-took-loans-in-untold-impact-of-covid-crisis-on-rural-india—but-74-rural-citizens-satisfied-with-government-steps-gaon-connection-survey-47919?infinitescroll=k1

6. मिश्रा, कुशल., (2020, August 10). लॉकडाउन में पैदल लौटने को मजबूर हुए 23: प्रवासी मजदूरः गाँव कनेक्शन सर्वे. https://www.gaonconnection.com/desh/gaon-connection-survey-23-migrant-laborers-forced-to-return-home-on-foot-in-lockdown-47920

पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों में आर्थिक समावेशन

डॉ० पंकज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

दीनदयाल का स्पष्ट मानना था कि किसी देश को विकास के लिए एक स्वतंत्र नीति का अवलम्बन करना चाहिए। वह अर्थनीति उस देश के सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार हो। यह बात भारत पर भी लागू होती है। उनके आर्थिक विचार उनके दो सृजित तीन पुस्तकों, दो योजनाएंः वायदे, अनुपालन, आसर, द्वितीय भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशा तृतीय अवमूल्यन एक क्षति में देखा जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अफ्रीका तथा एशिया के अनेक देश स्वतंत्र हुए जो किसी न किसी देश के उपनिवेश थे। औपनिवेशिक काल में उनका अत्यधिक आर्थिक शोषण हुआ था। भारत भी उन्हीं देशों में से एक था, जो दीर्घ अवधि तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहने के उपरान्त 15 अगस्त, 1947 ई0 को स्वतंत्र हुआ। भारत सहित समस्त नव स्वतंत्र देशो के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती उनका आर्थिक विकास था। लगभग सभी देशों ने लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के प्रति आकर्षित हुए। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य के साथ सभी राजनीतिक दलों को आर्थिक नीति के साथ चलना होगा। क्योंकि बिना आर्थिक उन्नति के कोई भी राजनीतिक दल केवल सांस्कृतिक धार्मिक व शास्त्रीय अवधारणाओ के द्वारा ही राजनीतिक श्रेष्ठता नहीं स्थापित कर सकता। दीनदयाल का मानना था कि अर्थ नीति को सांस्कृतिक मूल्यों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सृजित करने का प्रयास होना चाहिए। उन्होंने भारतीय जनसंघ द्वारा 1953 ई0 में उत्तर प्रदेश में आयोजित कार्यकर्ता शिविर के लिए उन्होनं जो लेख लिखा उसका शीर्षक ही 'भारतीय जनसंघ की आर्थिक नीति' था।

उनके आर्थिक विचारों को उस समय की तीन आर्थिक घटनाओं पर उनके द्वारा दिये गये विचारों के आधार पर समझा जा सकता है। प्रथम, उत्तर प्रदेश के औद्योगिक शहर कानपुर में सूती मिल के मशीनीकरण को लेकर मजदूरों ने हड़ताल कर दिया इस पर दीनदयाल ने मजदूरों का पक्षपोषण करते हुए कहा कि आज निरंतर विज्ञान प्रगति कर रहा है। बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों में मशीनों का प्रयोग किया जा रहा है जिससे कि उत्पादन लागत को कम करके लाभ को अधिकतम किया जा सके। मशीनीकरण उन देशों के लिए तो वरदान है, जहाँ पर जनसंख्या कम है तथा बाजार बड़ी है। लेकिन भारत जैसे गरीब देशों के लिए जहाँ पर स्थापित दुकानदारों की जगह खामचों, रेहड़ियों, तथा ठेले वालों की संख्या अधिक है। यहाँ पर उद्योगों का मशीनीकरण बेकारी लेकर ही आयेगी।

दूसरे, दिल्ली नगर पालिका ने नियम बनाकर खोमचां, रेहड़ियों तथा ठेले वालों को पटरियों पर सामान बेचन पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके पीछ कारण दिया कि इनसे समान खरीदने वालों की भीड़ से ट्रैफिक की समस्या होती है, दूसरे दुकानदारों को भी समस्या होती है। तीसरे, दिल्ली जो देश की राजधानी है उसका सौंदर्य भी खराब होता है। इस प्रतिक्रिया देते हुए दीन दयाल ने कहा कि जिस प्रकार की समस्या भूमिहीन किसानों की है तथा दुकानदारों की वैसे ही समस्या खोमचे वालों, रेहड़ियों तथा ठेले वालों की भी है उनका भी कोई स्थायी समाधान निकालना चाहिए।

तीसरी आर्थिक घटना मध्य प्रदेश राज्य के हीरा खदानों की थीं। दीनदयाल के प्रभाव में भारतीय जनसंघ कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पारित करके कहा कि इन खदानों को उनके मालिकों से बिना कोई मुआवजा दिये लेकर उसे एक स्वतंत्र निगम को बनाकर दे दिया जाना चाहिए। इस तरह दीनदयाल के जो उपरोक्त चिचार है वह जनसंघ पर पूँजीवादी होने के लगने वाले आरोप से मेल नहीं खाते हैं। वस्तुतः दीनदयाल का आर्थिक चिंतन समानता तथा समष्टिवाद का पोषक है।

स्वतंत्रता के बाद भारत अन्य नव स्वतंत्र देशों की भाँति गरीबी बेरोजगारी तथा भुखमरी का सामना कर रहा था। देश के समक्ष आर्थिक विकास मुख्य चुनौती थी। वैश्विक स्तर पर तीन प्रणाली सामने थी, प्रथम अमेरिका की पूँजीवादी व्यवस्था तथा दूसरी पूर्व सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था और तीसरी यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था। प्राय: सभी भारतीय चिंतक मशीनों का उपयोग करके अधिकतम उत्पादन करके समस्याओं का समाधान ढूढ़ने का समर्थन कर रहे थे। दीनदयाल का मानना था कि भारतीय परिस्थितियाँ पश्चिमी परिस्थितियों से अलग हैं अत: उत्पादन के साधनों का भारतीयकरण करके उनका प्रयोग करना चाहिए। मात्र मशीनों का उत्पादन साधन के रूप में प्रयोग करना समस्या का समाधान नहीं अपितु कुटीर उद्योगों को आधार मानकर 'विकेन्द्रीकृत आर्थिक नीति' का अवलम्बन करना चाहिए।

विदेशी निवेश के सन्दर्भ में उनका दृष्टिकोण था कि विदेशी निवेश को बढ़ाने के लिए जो सुविधाएं विदेशी पूँजीपतियों को दी गयी थी उसके अनुसा वे किसी भारतीय सहयोगी के साथ संयुक्त निवेश कर सकते थे। ज्ञातव्य हो कि दीनदयाल के समय भारत में पूर्ण उदारवादी नीति नहीं अपनायी गयी थी बल्कि सीमित रूप में पूँजी निवेश को प्रोत्साहन देकर पूर्ण उदारीकरण की ओर भारत अपना कदम बढ़ा रहा था। दीनदयाल की आशंका थी कि इससे बडे-बडे विदेशी कंपनियां अपनी बडे-बड़े उद्योग खोलकर भारत के छोटे-छोटे उद्योंगो को समाप्त कर देंगे। विदेशी पूँजी निवेश द्वारा जो भी औद्योगिक इकाइयाँ लगायी गयी उनमे उत्पादन का संपूर्ण नियंत्रण विदशियों के हाथ में है। प्राय: सभी बड़े पदों पर विदेशियों को नियुक्त किया गया है जबकि छोटे पदों पर ही भारतीयों को नियुक्त किया गया। संचालक मंडल में कुछ ही भारतीय नियुक्त किये गये है, जिनकी भूमिका मात्र हाँ में हाँ मिलाने की है। वह एक तरह से विदेशी कंपनियों के एजेंट की तरह काम कर रहे हैं, जिसके लिए उन्हे ऊँचा वेतन दिया जा रहा है। इस प्रकार दीनदयाल विदेशी पूँजी निवेश से उत्पन्न खतरों पर भी दृष्टिपात किया।

स्वतंत्रता के बाद से ही भारत ने विकास के लिए विदेशी ऋण पर निर्भर हो गया। इसके दुष्प्रभावों का विश्लेषण करते हुए दीनदयाल ने तर्क दिया कि बढ़ते विदेशी ऋण के कारण उसका व्याज चुकाने में ही चौथी पंचवर्षीय योजना में औसत रूप से 245 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष आवश्यक होगा। उन्होंने यह भी कहा कि केवल बड़ी मशीनों को विदेश से लाकर भारत में बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने से ही काम नहीं चलेगा। उनके लिए आवश्यक कल पूर्जो उनके मरम्मत तथा आवश्यक कच्चा पदार्थो को भी आयात करन पड़ता है। जिसके लिए विदेशी मुद्रा खर्च करना पड़ता है। उन्होंने तीसरी पंचवर्षीय योजना का विश्लेषण करके बताया कि इस योजना में इस मद के लिए आवश्यक व्यय का अनुमान 3800 करोड़ के आस-पास है। यह राशि कुल आयात में व्यय होने वाली धन राशि से भी अधिक है।

दीनदयाल की दृष्टि मूल्य वृद्धि तथा मुनाफाखोरी को भी लेकर थी। उनका मानना था कि अधिकांश व्यापारी अत्यधिक लाभ कमाने की लालसा में वस्तुओं के मूल्य में अनावश्यक वृद्धि कर दे रहे हैं। इसे सरकार को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाना चाहिए। दूसरी ओर बहुत सी आवश्यक चीजों का उत्पादन एवं वितरण सरकार के हाथों में भी है। जैसे रेल भाड़ा, स्टील उत्पादन, पोस्टकार्ड, तार भेजने की दर, पेंसिलीन जैसी जीवन रक्षक दवाएं इत्यादि ऐसी वस्तुएं है जिनका मूल्य भी निरंतर बढ़ रहा है। सरकार को चाहिए कि इस मूल्य वृद्धि को रोके साथ ही विदेशों से जो गेहूँ जैसे अनाज आयात किये जा रहे हैं उन्हें भी सरकार दाम बढ़ाकर बेंच रही है। इसके लिए सरकार तथा योजन बनाने वाले दोषी हैं।

चौथी पंचवर्षीय योजना में यह कहा गया कि सरकारी आद्योगिक उत्पादन का मूल्य निर्धारण कम से कम 12 प्रतिशत लाभ को ध्यान रखकर होना चाहिए। दीनदयाल ने कहा कि यह यदि मितव्ययता, प्रबंधकीय कुशलता जैस वैज्ञानिक प्रबंधन से हो तो उचित है, अन्यथा कीमतों में वृद्धि कर लाभ कमाना मुनाफाखोरी ही है। जब वस्तुओं के मूंल्यों पर विचार होता है तब शहरी आबादी को ध्यान में रखा जाता है, देश के अन्नदाता अर्थात् किसान को छोड़ की अनदेखी की जाती है जो उचित नहीं है। जब तक किसान को लाभ नहीं होगा वह उत्पादन के लिए प्रोत्साहित नहीं होगा। इसलिए पूँजी निवेश की दिशा शहरों से मोड़कर ग्रामीण भारत की ओर करना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद उत्पादन के प्रथमिकताओं के विषय में उनका मानना था कि सबसे पहले नागरिकों के मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं जैसे रोटी, कपड़ा तथा मकान का उत्पादन हो उसके बाद ही विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन होना चाहिए।

वे भ्रष्टाचार के प्रति भी सचेत थे उन्होंने कहा कि शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, काला बाजारी, तथा कालाधन नियोजन प्रणाली को विफल कर रहा है। यद्यपि इन्हें समाप्त करने के लिए सरकार छापा तो मारती है आवश्यक कानून भी बनाती रहती है लेकिन इससे केवल मध्यम दूकानदार ही परेशान होता है। उपरोक्त दोष वैसे के वैसे ही बने रहते हैं। सरकारी नीतियों की जाँच करने के लिए एक स्वतंत्र आयोग बनाना चाहिए।

समतामूलक दार्शनिक विचारक होने के कारण वह आर्थिक तथा राजनीतिक लोकतंत्र को एक दूसरे का पूरक मानते थे। उन्होंने कहा कि यदि सभी को वोट का अधिकार प्रजातंत्र का मापदण्ड है तो सभी को काम आर्थिक लोकतंत्र का मापदण्ड है। प्रत्येक व्यक्ति को काम इस प्रकार से हो कि उसका जीविकोपार्जन हो सके तथा काम के बदले राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग भी प्राप्त हो अन्यथा वह बेरोजगार की श्रेणी में खड़ा होगा। कोई भी ऐसी अर्थव्यवस्था जो अपने नागरिकों को उनकी योग्यता के अनुसार कार्य करने की अवसर नहीं उपलब्ध करती है वह अलोकतांत्रिक ही होगी। यदि कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से उत्पादन करके यदि उसका स्वामी नहीं रहता है तो वह अपनी स्वतंत्रता ही बेंचता है।

भारत द्वारा जो पूँजीवादी औद्योगिकरण की प्रक्रिया अपनायी गयी है। कहीं वह भारत के परम्परागत उत्पादन प्रणाली लघु एवं कुटीर उद्योगों को समाप्त न कर दे इसके लिए संरक्षण एवं विनियमन की आवश्यकता है। दीनदयाल के अनुसार भारत ने पश्चिम का जो अंधानुकरण किया उसने विचौलियों को ही आगे बढ़ा रहीं है। भारत में औद्योगिक विकास स्वभाविक रूप से नहीं हो रहा है। जिस औद्योगिकरण को अपनाया गया है उसने लघु एवं कुटीर उद्योगों का गला घोंट रहा जो स्वयं में अलोकतांत्रिक है। उनका मानन था कि यदि आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करने के लिए स्वंयसेवी क्षेत्रों का विकास करना होगा जिसके लिए 'विकेंद्रीकृत' अर्थव्यवस्था का विकास करना आवश्यक है।

जिस प्रकार से प्रजातांत्रिक लोकतंत्र में व्यक्ति को अपना रचनात्मक विकास करने का पूरा अवसर प्राप्त होता है उसी प्रकार से आर्थिक लोकतंत्र में व्यक्ति को अपने कौशल के अनुसार सृजनात्मक कला द्वारा देश के विकास में योगदान देने का पूरा अवसर प्राप्त होना चाहिए। ''राजनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को जिस प्रकार तानाशाही नष्ट करती है उसी प्रकार अर्थनीति में व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को भारी पैमाने पर किया गया औद्योगिकरण नष्ट करता है। इसलिए तानाशाही की तरह ऐसा औद्योगिकरण वर्जनीय है।''

दीनदयाल ऐसी औद्योगिक विकास चाहते थे, जो सबको रोजगार देने में सहायक हो, उत्पादन का केन्द्रीकरण न होकर उसका विकेन्द्रीकरण, कृषि तथा ग्रामीण आवश्यकता का पूरक, प्रतिभा पलायन को रोक सके, मानव मूल्यों के प्रति संवेदनशील, यंत्र प्रधान की जगह मानवश्रम प्रधान होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि सरकारें प्रत्येक व्यक्ति को काम का सिद्धान्त स्वीकार करके नीतिगत निर्णय ले तो समान वितरण की दिशा निर्धारित किया जा सकता है। अपने विचारों को समझाने के लिए उन्होंने गणितीय सूत्र का सहारा लिया।

अत्यधिक औद्योगिकरण उत्पादन के केन्द्रीकरण को बढ़ावा देते हैं, जिससे आर्थिक असमानता बढ़ती है जिसके कारण सामाजिक समरसता भी खतरे पड़ जाती है। यह परंपरागत उद्योगों के पूरक नहीं बल्कि प्रतिद्वंदी है जो बेरोजगारी बढ़ाने वाली होती है। एक ऐसे समाज की संरचना होती है, जिसमें मानवीय मूल्यों का विशेष महत्व नहीं होता है। मनुष्य मजदूर बनकर रह जाता है, उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं होता बल्कि विभिन्न विकृतियों का शिकार हो जाता है। यह भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से साम्य नहीं रखती है।

इस तरह दीनदयाल ने आर्थिक मुद्दों पर पैनी दृष्टि रखतें हुए उस पर अधिकार पूर्ण ढंग से बोलते थे। लेकिन समस्या यह थी कि जनसंघ के प्राथमिकताओं में राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता, सांस्कृतिवाद प्राथमिकता में थी। इनके लिए उसने समय-समय पर आन्दोलन भी किया लेकिन आर्थिक मुद्दों पर उतना बल नहीं दिया जिसके कारण दीदयाल के आर्थिक विचार उस तरह से उभर कर नहीं आये जिस तरह से उनके राजनीतिक विचार आये।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

- विनायक वासुदेव 'पं0 दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन भाग-2, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली।
- उपाध्याय पंडित दीनदयाल 'राष्ट्रजीवन की दिशा' लोकहित प्रकाशन लखनऊ 1979।
- भारतीय जनसंघ, 'सिद्धान्त और नीति' भारतीय जनसंघ प्रकाशन, नई दिल्लीं।
- उपाध्याय दीनदयाल, 'पॉलिटिकल डायरी' (हिन्दी), सुरूचि प्रकाशन दिल्ली 1991।
- उपाध्याय दीनदयाल, चतुर्थ योजना: उद्देश्य और संभावनाएं, पांचजन्य, अपैल 8, 1966
- उपाध्याय दीनदयाल, हिन्दू संस्कृति की विशेषताएं, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1989
- एकात्म मानवदर्शन: दीनदयाल।
- ठेंगड़ी दत्तोपंत, 'संकेत रेखा' प्रकाशक भारतीय मजदूर संघ, नई दिल्ली, 1989
- नवल किशोर, मानववाद व साहित्य।
- दीनदयाल उपाध्याय बौद्धिक वर्ग पंजिका, संघ शिक्षा वर्ग, राजस्थान, 27 मई, 1967
- ठेंगड़ी दत्तोपंत, उपाध्याय, विचार दर्शन खण्ड-9, 1991
- उपाध्याय, भारतीय अर्थनीति, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ 1980।
- एकात्म दर्शन, अध्याय-4, राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ रचना दीनदयाल शोध संस्थान नई दिल्ली।
- पांचजन्य, 23 जनवरी, 1954 भारतीय जनंघ की आर्थिक नीति, भारतीय जनसंघ उ0 प्र0 प्रादेशिक सम्मेलन-1953
- पांचजन्य, 30 मार्च 1959 विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था से ही मानव मूल्यों की रक्षा, महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय।

संस्कृतवाङ्मय पर्यावरण चेतनाः एक विश्लेषण

अनुज कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

संस्कृतं न केवलं भारतस्य अपितु निखिल संसारस्य प्राचीनतमा भाषा अस्ति। अस्मिन् विषये नाऽस्ति कश्चित् विरोधः। वेदाः पृथिव्याः सर्व प्राचीनतया ग्रन्थाः। वेदास्तु संस्कृत भाषायामेव विलिखिताः। अतः अत्र विचारणीयमस्ति यत् वेदेषु पर्यावरणस्य चर्चा अस्ति नास्ति वा। यदि वेदेषु पर्यावरणस्य चर्चा अस्ति तदा निर्भ्रान्ततया इदं वियाप्यायते यत् पर्यावरण विषये अस्माकं पूर्वजाः अतीव सचेष्टाः आसन्। पर्यावरणस्य महत्वं ते पूर्वरूपेण अनुभवन्ति स्म।

'पर्यावरणम्' शब्दः 'परि' उपसर्गकः 'आ' उपपदात् 'वृञ् वरणे' धातौ 'ल्युट्' प्रत्ययात् (परि + आ + वृञ् + ल्युट्) निष्पन्नः अस्ति। अनेन अस्य निर्वचनम् 'परितः आवृञते जीवो येन तत् पर्यावरणम्। वयं सर्वे यैः तत्वैः यैर्कारकैर्वा आवृताः सन्ति तानि सर्वाणि पर्यावरणमेव। पशु-पक्षी-कीट-पतङ्गाः, वृक्ष-लता-जल-वायवः, सर्वे स्थावर-जङ्गमाश्च पर्यावरण संघटकाश्च।

परञ्च साम्प्रतं वैज्ञानिक दृष्टिकोणे मुख्य रूपेण प्रकृतिरेव पर्यावरणं नामोच्यते। प्राचीनकाले प्रकृतिः अत्यन्त-पवित्रतमा आसीत्। 'प्रकर्षा कृतिः प्रकृतिरिति' अस्य निर्वचनम्। प्रकृति-पुरुषः परस्परः साम्यः। का प्रकृतिः कः पुरुषः अन्योन्याश्रयः। पुरुषः ईश्वरः ब्रह्मइति। अतः प्रकृतिः तत्सारुप्यम्-व्रह्मैव। वस्तुतः पञ्च तत्वानि (क्षितिः, जलं, पावकं, गगनं, समीरम्) एव व्रह्म। अतः एषां रक्षा अनिवार्या।

वायुः पर्यावरणस्य प्रथमं कारकम्। को वायुः अस्य किञ्च महत्वं वयं सर्वे पूर्ण रूपेण जानीमः। वायुरेव प्राणाः। प्राणवायुः इत्यभिधानम्। वस्तुतः वायुः न केवलं माननां, कीट पतङ्गानां जीवनं अपितु सर्वाणां जड़-चेतनानां जीवनम्। ब्रह्मणः उत्पत्ति कारणं एव वायुः।

ऋग्वेदस्य एकादऽनुवाके त्रयोविंशति संख्यकानि सूक्तानि। अस्य परमेष्ठी नाम प्रजापतिः ऋषिः। वियदादि भावानां सृष्टि-स्थिति प्रलयादीनामत्र प्रतिपादत्वात् तेषां कर्त्ता परमात्मा देवता। अत्र कथितं नासदीये –

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योभा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म्म
न्नभः किमांसीद्गहनं गभीरम्।।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्नं आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास।।
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव

यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योम

न्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद।।

ऋग्वेदः सर्वेषु वेदेषु प्राचीनतमः। अत्राऽपि पर्यावरणस्य महत्वं प्रतिपादितम्। ''आसीदवातं स्वधया तदेकं '' मन्त्रेण ध्वन्यते यत् पञ्च तत्वानि एव अस्माकं सृष्टेः कारणानि सन्ति। अद्य न केवलं अस्माकं सर्वकारः अपितु सम्पूर्णं विश्वं पर्यावरण रक्षणाय, प्रदूषण दूरीकरणाय च चिन्तितोऽस्ति। सम्प्रति विश्वस्य सर्वे विद्वान्सः बुद्धिमन्तः वृक्षाणामावश्यकता अनुभवन्ति। परञ्च इयमवधारणा न केवला वर्तमाना अपितु अस्माकं ऋषय वेदमन्त्रेषु वृक्षेभ्यः मुहुर्मुहुः नमस्कुर्वन्ति।

यथा- नमोवृक्षेभ्यः (यजुर्वेद 16-17)

ओषधीनां पतये नमः (यजुर्वेद 16-16)

अरण्याणां पतये नमः (यजुर्वेद 16-20)

नमो वन्याय च (यजुर्वेद 16-34)

संसारस्य समस्त पदार्थेषु चेतना साक्षात्कार कर्तारः भारतीय मनीषिणः प्रकृतिं प्रति अतीव उदाराः आसन्। तेषां हि अति सूक्ष्मतमायां दृष्टौ प्रकृतिः सजीवतायाः साक्षात् प्रतिमूर्त्तिरस्ति। संस्कृत साहित्ये प्रकृत्या सह अस्माकं सम्बन्धः न केवलं वाह्य अपितु आभ्यन्तरिकः। यथा अस्माकं हृदि माता-पिता-पुत्री-भगिनी-सखा-बन्धूनां स्थानं तदैव प्रकृत्यारपि स्थानम् -

आञ्जनागन्धिं सुरभिं बहून्नाम कृषीवलाम्।

प्राह मृगाणां मातरं अरण्यामनिम शंस्तिम्।।

(यजुर्वेद 10-146-05)

अस्मिन् समये सर्वकारः पर्यावरणस्य महत्वं प्रतिपादयन् 'विश्व पर्यावरणः दिवसः' उत्सव रूपेण प्रकाशयति। वृक्षारोपणं प्रत्येके विद्यालये, महाविद्यालये, ग्रामे, नगरे, संस्थाने वा क्रियते। अस्य प्रचार-प्रसाराय च कोटि-कोटि रूप्यकाणि सर्वकारेण इतस्ततः विभज्यते। परञ्च सर्वकारः यदि अस्माकं ऋषीणां वचनानि पूर्वं एव अनुभवति तदा अभद्रा एतादृशी दशा न आयाति।

यथा-

मधुमान्नो वनस्पतिः (ऋग्वेद 01-90-08)

माध्वीर्नः सन्त्वोषधी (यजुर्वेद 13-27)

सुमित्राया: न आपः ओषधयः सन्तु (यजुर्वेद 36-27)

ओषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्ति (यजुर्वेद 36-17)

भारतीय संस्कृतौ वृक्षारोपणं कार्यं अतीव पुण्यकरं मन्यते। एकस्मिन् मंत्रे तु स्पष्ट निर्दिष्टमस्ति यत् वृक्षारोपणं अवश्यमेव करणीयम्। कदापि वृक्षाणां हिंसा न कार्या। यथा -

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्। (ऋग्वेद 10-101-11)

पुनश्च - याऽपौयौषधी हिंसी। (यजुर्वेद 6/12)

अत्र का हिंसा वृक्षाणाम् ? इतिजिज्ञासायां वृक्षाणां कृन्तनं एव वृक्षाणां हिंसा। वैदिक काले सर्वत्र यज्ञस्य महत्वं दृश्यते। यज्ञे होमः क्रियते। होमः प्रायः सर्वासु वैदिक क्रियासु अनिवार्यः। होमस्य किं महत्वम्? होमे विविधानि काष्ठानि घृतं च प्रयुज्यन्ते। अथर्ववेदानुसारे पर्यावरण रक्षाणाय होमः अत्यावश्यकः। होमात् निसृतः धूमः पर्यावरणं शुद्धं करोति। पर्यावरणे जीव जन्तुभिः मलमूत्रादि विसर्जनेन अनेक प्रकारकाणि प्रदूषणानि भवन्ति। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषणं तु निश्चितमेव भवति। भूमिपतितैः वृक्ष-लता-गुल्म पत्रादिभिश्च अतिभयंकरं प्रदूषणं भवति। अनेके कृमयः पर्यावरणे वायुमण्डले च जायन्ते शीर्णपत्रैः। अस्मत्कृते इमे कृमयः अतीव हानिकारकाः। तेषां दंशनैः स्पर्शैर्वा असाध्य रोगोपजायन्ते। अतः अति सूक्ष्म कृमिभिः शरीर रक्षणाय होमात् परं उत्सर्जिताः धूम्राः लाभकराः रोगनिवारकाः च भवन्ति।

यथा–

यज्ञ धूमस्य संपर्कात् दिशो भान्ति गतज्वराः। (शतपथ ब्राह्मणे)

पुनश्च – घृताहिवनः दीदिवः प्रतिष्भ।

रिसता दह्यग्ने त्वं रक्षस्वनः।। (ऋग्वेद)

अपि च – पञ्चराज्यानि वीरूथाम सोम श्रेष्ठ निब्रुमः।

दर्भा भंगो यवः सहस्ते नो मुञ्चत्वं हसः।। (अथर्व 11-06-15)

पुराणकालेऽपि वृक्षाः पूजनीयाः सन्ति। पूजायाः कारणं न केवलं भगवतभक्तिः अपितु पूजा व्याजेन पर्यावरण शुद्धि रोगनाशः एव मूल कारणं प्रतिभाति। यथा–

आदौ सर्ववृक्षमयं पूर्वं विश्वमजायत।

एते वृक्षाः महाश्रेष्ठाः सर्वे देवांश संभवः।।

(स्कन्द पुराण)

एकोहरिः सकलवृक्षगतो विभाति,

नाना रसैस्तु परिभावित मूर्त्तिरेव।

वृक्षाधिवासमगमत कमला च देवि

दुःखादि नाशकरी सततं स्मृताऽपि।।

(स्कन्द पुराण 6/247/21-22/224/9)

पद्मपुराणे यथा–

यः पुमान रोपयेत् वृक्षान् छाया पुष्प फलोपमान्।

सर्व सत्वोपयोगाय स याति परमां गतिम्।।

भारतवर्षे प्रायः सर्वेषु सनातन धर्मावलम्बीनां गृहेषु नार्यः वृक्षाणां पूजा करोति। स्कंद पुराणस्य षष्ठे अध्याये वृक्षारोपण प्रसंगे निम्नोक्त वृक्षाणां पूजा अनिवार्या। अहं स्पष्टमेव कथयामि यत् ये न वृक्षपूजकाः ते भारतीयाः न। द्रष्टव्यमस्ति अधः – अश्वत्थः–

अश्वत्थं रोपयेद यस्तु पृथिव्यां प्रयतोनरः।

तस्य पाप सहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्।।

स्कन्द(*ना0*) *6/247/38*

पलाशः – पलाशः सर्वदेवानां आधारो धर्म साधनम्।

यत्र लोकस्तु तस्य स्यातत्र पूज्यो महातरुः।।

स्कन्द 6/248/7

तुलसी– तुलसी रोपिता येन गृहस्थेन महाफला।

गृहे तस्य दारिद्र्यं जायते नात्र संशयः।।

स्कन्द 6/249/1

बिल्व वृक्ष –

अयं बिल्वतरुः श्रेष्ठः पवित्रा पाप नाशनः।

तस्य मूले स्थिता देवी गिरिजा नात्र संशय :।।

स्कन्द 6/251/14

धात्री – सर्वदेवमयी धात्री वासुदेवमनः प्रिया।

आरोपनीया सेव्या च पूजनीया सदा नरैः।।

स्कन्द(वै0) 12/13

वटवृक्ष - अमरस्त्वं कदाकल्पो हरेश्चायतनं वटः।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तुते।।

ब्रह्मपुराण 58/14

महाकवेः कालिदासस्य अति प्रशस्ता कृतिः 'रघुवंशम्' अस्ति। अस्य काव्यस्य द्वितीय सर्गे राज्ञः दिलीपस्य गोचारण-वर्णनं अस्ति। भारते गौः विशेष पूज्या अस्ति। गौः न केवला दुग्धदायिका। अस्याः मल-मूत्रे कृमेः नाशस्य अतुला, अवर्णनीया शक्तिः वर्तते। अनेनैव कारणेन राज्ञा दिलीपेन गोचारणं स्वीकृतम्। गोः दुग्धं संतानोत्पादिका शक्तिः धारयति। अतएव स्वप्राणान् दत्वाऽपि गो रक्षा, गो सेवा च राज्ञे दिलीपाय अतीव हितकरा प्रतिभाति। अत्रैव वृक्षाणामपि महत्वं दरिदृश्यते। वने एकः देवदारुः नामकः वृक्षः अस्ति। माता पार्वती इमं देवदारुं पुत्रवत् पालयति स्म। गतायां पार्वत्यां तस्य रक्षणाय एकं सिहं निरूपितवान्। भगवता शिवेन। यदा नन्दिन्या विघूर्णीकृता देवदारोः त्वक् तदा सिंहः क्रोधितोभूखा हन्तुं मिच्छति नन्दिनीम्। एतदवसरे सिंहः दिलीपं कथयति -

अयुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तन निसृतानां स्कन्दमातुः पयसां रअक्षः। (*रघुवंश **2/36***)

महाभारतेऽपि पर्यावरण रक्षणाय वृक्षाणां महत्वं दृश्यते।

यथा हि - एकोवृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्ण फलान्वितः। चैत्योभवति निर्ज्ञाती रूपनीयः सुपूजितः।।

(महाभारत आदिपर्व **138/25**)

पर्यावरण रक्षणाय नदीनांमहत्वम् - भारते प्रायः सर्वत्र हिन्दूनांकृते पर्यावरण रक्षणाय नदीनां महत्वं दृश्यते। पूजा प्रत्येकेषां भारतीयानां प्रायः दैनन्दिनी कार्यं विधते। पूजाऽऽरम्भ काले सर्वप्रथमं नदीनां स्मरणं क्रियते। स्नानकालेतु नदीनां स्मरणं प्रायः प्रत्येक भारतीयाः कुर्वन्ति। द्रष्टव्योऽस्ति अयं श्लोकः -

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धुकावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

पर्यावरण कारकेषु नदीनां जलधारणां, पर्वतानाञ्च च महत्वं सर्वविदितम्। वैदिककालात् प्रभृतिः आधुनिककालं यावत् एतेषां कारकानां महत्वं निस्संदिग्धम्। वेदेषु च स्पष्टं निगदितं यत् नदी संगम तटेषु ज्ञानिनां बुद्धिरुप जायते। उकतं च ऋग्वेदे -

उपगह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां।

(*ऋग्वेद **8/6/24***)

धियो विप्रोऽजायत्।। (*यजुर्वेद **26/15***)

महाभारतस्य शान्ति पर्वणि भगवता व्यासेन स्पष्टं उक्तं यत् पर्यावरण संरक्षण दृष्ट्या तडागानां निर्माणं, वृक्षाणां रोपणं, नदीनां सेवनं, जलाशयानां पवित्रीकरणं पुण्यकरं कार्यं विद्यते। यथा हि -

तस्यात्रडागं कुर्वीत आरामाश्चैव रोपयेत्।

(*शान्ति पर्व **58, 32***)

विवाहकाले प्रायः सर्वत्र वर वहवोः आशीर्वाद काले सुमंगली पाठः क्रियते पुरोहितैः विद्वद्भिश्च। गिरि-वृक्ष-नदीनां स्मरणं दम्पत्याः चिरजीवनाय क्रियते-

सा चन्द्रभागा वरुणात्वसी नदी,
कुर्वन्तु वः पूर्ण मनोरथं सदा।।

पर्यावरण संरक्षका: पर्वता: - पर्वतारपि पर्यावरण रक्षार्थमेव निर्मिता विधात्रा। पर्वता: प्रकृते: बहुमूल्या निधि:। पर्वत स्कंधे, अधित्यकायां उपत्यकायां वा विशालानि-विशालानि वनानि भवन्ति। पर्यावरण-संशुद्यर्थं सर्वोत्तं साधनानि सन्ति। संस्कृतस्य सर्वे प्राचीन कवय: नाटककारा: वा स्वस्मिन् काव्ये पर्वतानां वर्णनम् अत्र विस्तार पूर्वकं कृतवन्त: सन्ति। अस्मिन् सन्दर्भे दर्शनीयोऽस्ति महाकवे: महानाटककारस्य वा कुमारसंभवस्य वस्तु निर्देशात्मकं मङ्गलाचरणम्-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:।

पूर्वाऽपरौ तोयनिधौवगाह्य स्थित: पृथिव्यामिवमान दण्ड:।।

(कुमारसंभवम् 1-1)

देवो दानात् दीपनात् द्योतनात् वा। देवसम्बन्धिनो निरुक्तकारस्य इदं निर्वचनं प्रशस्तम्। हिमालये देवानां वास: अस्ति। स्वयं देवाधि-देवस्य शिवस्य वास: हिमालय: एव। हिमालय: न केवल: हिमवान् रूपेण ख्यात: अपितु अस्य उपत्यकायां वनानि सन्ति। उपत्यकायां च दिव्य औषधीया: वनस्पतय:। कथ्यते हिमालय विषये यत् अयं पृथिव्यां स्वर्ग तुल्य: अस्ति। रोगिणो अत्रागत्य रोग विमुक्ता: भवन्ति। मानसिक विक्षिप्ता: नरोऽपि स्वास्थ्यं लभन्ते। कुष्टरोगग्रस्तो अचिरं स्वस्थं भवति। अतएवोक्तम्-

यं सर्वशैलोऽपि परिकल्प्य वत्सं मेरौस्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहु: धरित्रीम्।। *(कुमारसंभवम् 1-2)*

हिमालयस्य स्थानं भारते विष्णुरूपात्मकं मन्यते। यथा विष्णु: कल्याण कारक: शान्तिदायक: तथैव हिमालयोऽपि। मुख्यतया भारत भू भागस्य समग्रं पर्यावरणं हिमालय पर्वतमालाभि: प्रभावितं भवति। भारतीय जलवायूनां नियमने हिमालयस्य महती भूमिका अस्ति। एकत: यत्र शीतकाले एशियात: आगन्तारं शीतवायुं रुणद्धि, येन शीतर्त्तौ अपि तापमानं न्यूनाधिक्यं न प्राप्नोति। शीतवायु: सर्वेभ्य: प्राणिभ्य: प्राणघातक: भवति। परञ्च ग्रीष्मर्त्तौ तु अयमेव हिमालय: वर्षोपकारक: भवति। अतएव निगद्यते कविना कालिदासेन -

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च व्यापको महिमा हरे:।

त्रिविक्रमोधतस्यासत्सि तु स्वाभाविकस्तव।।

(कुमारसंभव 6-71)

हिमालय: पर्यावरणं रक्षक:, संशोधक:, औषधीय वनस्पतीनां निधि: देवानां अधिवास: कथ्यते। एषां मूल: अत्रत्य: स्वच्छवायुरेव। अत्र भ्रमणमात्रेनैव रोगा: पलायन्ते। अतएव हलायुधकोषे कथितम् -

फल पाकावसानास्तु बुधैरोषधय: स्मृता: (इलायुधकोष)

पुनश्च - पृक्तस्तुषारै गिरि निर्झराणां
अनोकहा कम्पित पुष्पगन्धि :।
गंङ्गा प्रपातान्तं विरूदशष्णं
गौरी गुरोर्गह्वर माविवेश।। (रघुवंश 2-6)

एवं विध: सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मये वयं पश्याम: यत् पर्यावरण परिशुद्धृयर्थं अस्माकं ऋषय:, मुनय: कवय: सुचिन्तका सर्वे प्राचीनकालात् एव अतीव सचेष्टा आसन्। नद्य:, गिरय: न केवलं आनन्दवर्द्धका: अपितु मुख्यरूपेण पर्यावरण रक्षाकारेव।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद संहिता-दयानंद संस्थान
2. यजुर्वेद संहिता-दयानंद संस्थान
3. अथर्ववेद संहिता-दयानंद संस्थान
4. वाल्मीकि रामायण-गीता प्रेस, गोरखपुर
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास-ए. वी. कीथ.

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गैरोला
7. कालिदास ग्रन्थावली–अनु. श्री रामप्रताप त्रिपाठी
8. उत्तररामचरितम्–अनुवादक आचार्य प्रभु दत्त स्वामी
9. ऋक् सूक्त समुच्चय–डॉ. रामकृष्ण आचार्य
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–अनुवादक डॉ. बाबू राम त्रिपाठी
11. पर्यावरण और संस्कृति का सकंट, प्रथम संस्करण, 1992
12. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, देवराज, हिन्दी समिति लखनऊ 1957
13. पर्यावरण प्रदूषण और हम, सुजाता विष्ट, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली 1990

व्याहृति और महाव्याहृति के प्रतिपादन में सवितृ ऋक् की भूमिका

रोहित

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

सवितृ ऋक् सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम मन्त्र है, जो गायत्री मन्त्र के नाम से विश्व विख्यात है। सवितृ ऋक् आदि मन्त्र है और इसके रहस्य की व्याख्या वेदों में प्राप्य है। वेदों में इसकी उपस्थिति इसके वैशिष्ट्य और महत्त्व को दर्शाने के लिए पर्याप्त है।[1] ऋग्वेद शाकल संहिता में सवितृ ऋक् का वर्णन इस प्रकार है –

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।[2]

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनीय संहिता में सवितृ ऋक् का वर्णन कुछ इस प्रकार है –

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचायेदयात्।।[3]

सामवेद कौथुम संहिता उत्तरार्चिक में सवितृ ऋक् का वर्णन इस प्रकार है –

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्''।।[4]

हम साधारणतः जिसे गायत्री मन्त्र कहते हैं, ऋग्वेद के उस ऋक् (03.10.62) का स्वीकृत एवं यथार्थ नाम 'सवितृ ऋक्' है– गायत्री मन्त्र नहीं। संश्लिष्ट ऋक् में परमपुरूष को 'सविता'– ('सृ' धातु + तृण/तृच् प्रत्यय लगा कर यह शब्द निष्पन्न होता है) – नाम से सम्बोधन किया गया है। इसलिए ऋक् का नाम है – 'सवितृ ऋक्'। 'सविता' ('सवितृ' शब्द का प्रथमा एकवचन) एक पुलिंगवाचक शब्द है, जिसका अर्थ है स्रष्टा, जनक या पिता। सूर्य पृथ्वी का जनक है। इसीलिए सूर्य को सविता कहा जाता है। प्रथमोक्त सवितृ ऋक् गायत्री छन्द में रचित हुआ है। गायत्री छन्द की विशेषता, विशेष वैशिष्ट्य यह है कि गायत्री छन्द में कविता रचने के लिए 24 मात्र (सिलैब्ल्सि) की आवश्यकता पड़ती है। तीन पंक्तियाँ होनी चाहिए। प्रत्येक पंक्ति में आठ मात्रा अर्थात् तीन पंक्तियाँ और 3 ☓ 8 = 24 मात्राएँ। मन्त्र का मूल रूप था–

तत् सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

उपर्युक्त ऋक् को विश्लेषण करने पर देख पाते हैं कि द्वितीय पंक्ति में 8 मात्राएँ (Syllable)– 1– भर, 2– गो, 3– दे, 4– व, 5– स्य्, 6– धी, 7– म, 8– हि।

तृतीय पंक्ति में है– 1– धि, 2– यो, 3– यो, 4– नः, 5– प्र, 6– चो, 7– द, 8– यात्।

मगर पहिली पंक्ति में देखती हूँ कि 7 मात्राएँ हैं– 1– तत्, 2– स, 3– वि, 4– तुर्, 5– व, 6– रे, 7– ण्यं अर्थात् एक मात्रा कम पड़ती है।

इसलिए इस क्षेत्र में उच्चारण करने के समय तत्कालीन प्रचलित अलिखित व्याकरण-विधि का उल्लंघन करके भी उच्चारण करना पड़ता था और आज भी करना पडता है- 1- तत्, 2- स, 3- वि, 4- तुर्, 5- व, 6- रे, 7- णि, 8- ऊँ। मन्त्र के पूर्व में ऊँ भू र्भुवः स्वः ऊँ तथा सबसे अन्त में और एक ऊँ जुड़ जाता है, ये सभी मूलतः ऋग्वेदीय नहीं हैं- अथर्ववेदीय हैं। परमब्रह्म के सप्तलोकात्मक विकास भू, र्भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् हैं तथा मन्त्र में इनके सामूहिक नाम उच्चारित हैं। भू, र्भुवः, स्वः इन्हीं तीन लोकों के नाम जब लिए जाते हैं, तब उसके लिए 'महाव्याहृति' होता था। ये सभी ऋग्वेदीय मौलिक सवितृ ऋक् के अंश या अंग नहीं हैं। सवितृ ऋक् को व्यावहारिक क्षेत्र में उच्चारण करने के समय कहा जाता है -

"ऊँ भू र्भूवः स्वः ओम् तत्सविर्तुवरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ऊँ"

इस महाव्याहृति की संयुक्ति से सवितृ ऋक् का अर्थबोध दृढ़तर होता है। उसी से स्पष्ट हो जाता है। यह भू र्भूवः स्वः अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म कारणात्मक जगत् में सविता अर्थात् पिता की वरेण्य ज्योति का हम ध्यान करते हैं, जिससे वे हम लोगों की धी को (बुद्धि-मेधा को) सत्पथ पर परिचालित करें। इस मन्त्र की सहायता से परमपुरूष से अध्यात्म जगत् का दिशा-निर्देश प्राप्ति की एषणा जग जाने को ही वैदिकी दीक्षा कहा जाता है। यह वैदिकी दीक्षा ऋग्वेदीय सवितृ ऋक् के ऊपर मोटे तौर पर निर्भरशील थी।[5]

सप्तलोक का अर्थ है- भू-र्भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यलोक। इन सप्तलोकों को मिलित रूप में कहते हैं व्याहृति। जहाँ इन सप्तलोकों के प्रतिनिधि स्वरूप तीनों लोकों के अर्थात् भू-र्भूवः-स्वः - इन तीनों का नाम लिया जाता है, वहाँ इन प्रतिनिधिमूलक तीनों लोकों का नाम है महाव्याहृति। यह व्याहृति या महाव्याहृति मुख्यतः अथर्ववेद का उपजीव्य (मूल भाव) है। गायत्री मन्त्र (असल में सवितृ ऋक्) ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के दशम सूक्त का बासठवाँ ऋक् है। किन्तु इस सवितृ ऋक् का पूर्व उच्चारित भू-र्भुवः-स्वः मुख्यतः अथर्ववेदीय महाव्याहृति है- यह अंश भी ऋग्वैदिक गायत्री छन्द की परिधि में नहीं आता। इसलिए उसका अलग ढ़ंग से उच्चारण करना चाहिए जैसा कि उपर्युक्त ऋक् में दर्शाया गया है।[6]

'ऊँ भूर्भुवः स्वः ....' मन्त्र का आरम्भ होता है 'ऊँ' ध्वनि से। 'अ' प्रतिरूप करता है सृष्टि का; 'उ' पालन का; तथा 'म' प्रनाश का - जेनेरेशन (Generation), आपरेशन (Operation) एण्ड डिस्ट्रक्शन (Destruction)। 'जेनरेशन' शब्द का प्रथम अक्षर 'जी', 'आपरेशन' शब्द का 'ओ' तथा 'डिस्ट्रक्शन' का 'डी'- जी + ओ + डी = GOD।[7]

"भूर्भुवः स्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासाम् ह स्मैतां चतुर्थी माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद् ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। स्वरित्यसौ लोकः। मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।"[8]

उपर्युक्त श्लोक में सवितृ ऋक् के भू, र्भुवः, स्वः के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि भूः, भुवः, स्वः इस प्रकार ये प्रसिद्ध तीन व्याहृतियाँ हैं। उन तीनों की अपेक्षा से जो चौथी व्याहृति 'मह' इस नाम से प्रसिद्ध है, इसको महाचमस के पुत्र ने सबसे पहले जाना था। वह चौथी व्याहृति ही ब्रह्म है। वह आत्मा है। अन्य सब देवता (उसके) अङ्ग हैं। 'भूः' यह व्याहृति ही यह पृथ्वीलोक है। 'भुवः' यह अन्तरिक्ष-लोक है। 'स्वः' यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक है। 'महः' यह आदित्य-सूर्य है (क्योंकि) आदित्य से ही समस्त लोक महिमान्वित होते हैं।

"भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। स्वरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतिंशषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। स्वरिति यजूंषि। मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते"।[9]

उपर्युक्त श्लोक में सवितृ ऋक् के भू, र्भुवः, स्वः के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'भूः' यह व्याहृति ही अग्नि है। 'भुवः' यह वायु है। 'स्वः' यह आदित्य है। 'महः' यह चन्द्रमा है (क्योंकि) चन्द्रमा से ही समस्त ज्योतियाँ महिमावाली होती है। 'भूः' यह व्याहृति ही ऋग्वेद है। 'भुवः' यह सामवेद है। 'स्वः' यह यजुर्वेद है। 'महः' यह ब्रह्म है (क्योंकि) ब्रह्म से ही समस्त वेद महिमावान होते हैं।

"भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। स्वरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति"।[10]

उपर्युक्त श्लोक में सवितृ ऋक् के भू, र्भुवः, स्वः के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'भूः' यह व्याहृति ही प्राण है। 'भुवः' यह अपान है। 'स्वः' यह व्यान है। 'महः' यह अन्न है (क्योंकि) अन्न से ही समस्त प्राण महिमायुक्त होते हैं। वे ही ये चारों व्याहृतियाँ

चार प्रकार की हैं (अतएव) एक-एक के चार-चार भेद होने से कुल सोलह व्याहृतियाँ हैं। उनको जो तत्त्व से जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। इस ब्रह्मवेत्ता के लिए समस्त देवता भेंट समर्पण करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्वत: प्रमाणित है कि सवितृ ऋक् में व्याहृति और महाव्याहृति का अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ है जो नि:सन्देह रूप से सप्तलोकात्मक जगत् का वाचक है।

सन्दर्भ-संकेत अनुक्रमणिका:

1. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय, ब्रह्मवर्चस, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-3, द्वितीय संस्करण-1998, पृष्ठ संख्या- 243
2. ऋग्वेद, भाषा-भाष्य, प्रथम-भाग, महर्षि दयानन्द सरस्वती, दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली- 5, 3/62/10, पृष्ठ संख्या-366
3. यजुर्वेद-सामवेद, भाषा भाष्य सम्पूर्ण, महर्षि दयानन्द सरस्वती, दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली-5, 36/3, पृष्ठ संख्या- 278
4. वही, उत्तरार्चिक, 13/4/3, पृष्ठ संख्या- 139
5. पथकथा, भाग-1, श्री प्रभातरंजन सरकार, प्रथम संस्करण- 2010, पृष्ठ संख्या- 64-66
6. वर्णविचित्र, प्रथम खण्ड, श्री प्रभातरंजन सरकार, श्री काली आर्ट प्रेस, कलिकाता-6, प्रथम हिन्दी संस्करण-2000, पृष्ठ संख्या- 174-175
7. आनन्द वचनामृतम्, षड्विंश खण्ड, श्री श्री आनन्दमूर्त्ति, आनन्द प्रिण्टर्स, कलिकाता-39, प्रथम मुद्रांकन: अक्टूबर, 1995, पृष्ठ संख्या-69
8. ईशादि नौ उपनिषद्, हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर-05, सं. 2060, चौबीसवाँ संस्करण, तैत्तिरीयोपनिषद्, 1/5/1, पृष्ठ संख्या- 320-321
9. वही, 1/5/2, पृष्ठ संख्या- 322-323
10. वही, 1/5/3, पृष्ठ संख्या- 323-324

अन्य प्रकाशित आलेख:

1. “Water Resource Management of DRR-A Case study of Bero Block, Jharkhand State, India.” International Conference, EKDRM, 10-11 May, 2011, Vigyan Bhavan, New Delhi, India.
   National Institute of Disaster Management, 5-B, IIPA Campus, I.P. Estate, M.G. Road, New Delhi-110002.
2. “Prashnopnishad Mein Brahmavigyan,” Aunusandhanika, Volume-VIII, number-II, July, 2010, ISSN 0974-200X, Research Journal of Social Sciences & Humanities, Balihar Road, Morabadi, Ranchi-834008, Jharkhand (India), Website-www.anusandhanika.co.in, E-mail- anusandhanika@aol.in, Ph: +919835536035
3. “पर्यावरण प्रदूषण कारण एवं निदान सह अध्यात्म'', उड़ान, अंक- 22, मार्च 2006-मई 2006, पृष्ठ संख्या- 24-36, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका, झारखण्ड विधान सभा सचिवालय, सेक्टर-2, पोस्ट- धुर्वा, राँची-834004, झारखण्ड, वेबसाईट- www.jharkhandvidhansabha.nic.in, ई-मेल-jvsranchi2000@rediffmail.com] मोबाईल नं.- +919431356798
4. “आतंकवाद एक वैश्विक समस्या : कारण एवं निदान सह अध्यात्म'', उड़ान अंक-23, जून 2006-अगस्त 2006, पृष्ठ संख्या- 83-86, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
5. “संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक सुधार'', उड़ान, अंक-24, सितम्बर 2006-नवम्बर 2006, पृष्ठ संख्या- 122-129, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
6. “योग एक परिचय'' उड़ान, अंक-25, दिसम्बर 2006- फरवरी 2007, पृष्ठ संख्या- 57-67, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
7. “साहित्य बनाम लिटरेचर का यथार्थ'', उड़ान, अंक- 26, मार्च 2007-मई 2007, पृष्ठ संख्या- 119-122, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
8. “वैदिक साहित्य : एक सिंहावलोकन”, उड़ान, अंक- 27, जून 2007-अगस्त 2007, पृष्ठ संख्या- 93-106, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका

9. "प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों का अध्ययन", उड़ान, अंक-29, दिसम्बर 2007-फरवरी 2008, पृष्ठ संख्या- 92-105, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
10. "अवतारवाद एक समीक्षात्मक अध्ययन", उड़ान, अंक-31, जून 2008-अगस्त 2008, पृष्ठ संख्या- 69-93, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
11. "संगीत का सा, रे, गा, मा, पा....." उड़ान, अंक-32, सितम्बर 2008-नवम्बर 2008, पृष्ठ संख्या- 107-110, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
12. "संस्कारों का समीकरण", उड़ान, अंक-34, मार्च 2009-मई 2009, पृष्ठ संख्या- 64-77, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
13. "धर्म का मर्म", उड़ान, अंक-36, सितम्बर 2009-नवम्बर 2009, पृष्ठ संख्या- 82-96, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
14. "प्रजातंत्र की सफलता बनाम जनता की सहभागिता", उड़ान, अंक-41, दिसम्बर 2010-फरवरी 2011, पृष्ठ संख्या- 90-99, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका
15. "लोकपाल : जन चौकीदार या एक और नया सत्ता केन्द्र", उड़ान, अंक-43, जून 2011-अगस्त 2011, पृष्ठ संख्या- 28-35, झारखण्ड विधान सभा की त्रैमासिक पत्रिका

अन्य संभावित प्रकाश्य आलेखः

1. "धर्म-तत्त्व : महाभारत के सन्दर्भ में", दृष्टिपात, झारखण्ड का सर्वाधिक प्रसारित हिन्दी मासिक वर्ष- 8, अंक- 85, सितम्बर-2012, ISSN 2231-3079, अरूण कुमार झा, जे.एफ. 8/9, हरमू आवासीय कॉलोनी, राँची-834002, झारखण्ड, वेबसाईट- www.drishtipatpatrika.blogspot.com, drishtipat.com, ई-मेल- wgmrak@gmail.com, मोबाईल नं0- +919031975537, +919471760495
2. "आज का गॉड पार्टिकल : कल का कण-कण में भगवान'', दृष्टिपात, झारखण्ड का सर्वाधिक प्रसारित हिन्दी मासिक, वर्ष-8, अंक-86, अक्टूबर- 2012, ISSN 2231-3079

मूलाधार चक्र विमर्शः प्राचीन संस्कृत साहित्य के संदर्भ में

पुरूषोत्तम पाण्डेय

सहायक शिक्षक, श्री परशुरामगिरि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जीवधारा, पूर्वी चम्पारण

सारांश

संस्कृत साहित्य उस समुद्र की भांति है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, समाधान रूपी अनेकों रत्न समाहित हैं जिसका निदर्शन हमें प्राचीन साहित्य की वैज्ञानिकता, आध्यात्मिकता एवं चिकित्सा की उत्कृष्टता से हो जाता हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में मानव शरीर का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण किया गया हैं उस विश्लेषण में मानव शरीर चक्र भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। वेदों में, उपनिषदों में एवं प्राच्य संस्कृत ग्रंथों में मानव शरीर चक्रों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया हैं जो इस शोध पत्र का मूल आधार हैं।

मुख्य शब्द : मानव शरीर, संतुलन, संस्कृत साहित्य, षट्चक्र, मूलाधार चक्र, नाड़ियाँ आदि।

मानव शरीर में चक्र वह स्थान होता है जहाँ नाडियाँ गुच्हों के रूप में रहते हुए संपूर्ण शरीर अथवा विशेष भाग का संचालन करती हैं, इन ग्रंथियों में विभिन्न प्रकार के आवेगों से होने वाले स्राव से ही मनुष्य का व्यक्तित्व बनता हैं एवं उसमें संतुलन आता हैं।[1] सर्वमान्य संस्कृत साहित्य में शरीर चक्रों की संख्या 6, 7, 8, 9 तक मानी गयी हैं।

षट्चक्रों की उत्पत्ति का मूल चक्र होने के कारण इसे मूलाधार चक्र[2] साथ ही आधार चक्र, सुरगिने, पेल्विक प्लेक्सस आदि नामों से जाना जाता हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार मूलाधार का प्रतीक लाल रंग और चार पंखुड़ियों वाले कमल को माना गया है, इसका तत्त्व मिट्टी (पृथ्वी) जिसके देवता श्री गणेश एवं गुण – गंध और इन्द्रिय नासिका को माना गया हैं। सचित्र आयुर्वेदिक रचना शरीर द्वारा मूलाधार चक्र को इस प्रकार स्पष्ट किया गया हैं –

"मूलाधार चक्र को त्रिक अनुत्रिकीय जाल (sacro – coccyglel plexus) का प्रतिनिधि माना जा सकता है। द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ त्रिक तंत्रिका की अनुप्राथमिक शाखा (anterior primary rami of 2nd, 3rd , 4th, sacral nerves) से आशयिक शाखायें निकलकर सीधे श्रोणि गुहा स्थित कोष्टांगों में प्रविष्ट हो जाती हैं। यह शाखायें अवरोही बृहदान्त्र के भाग, आमाशय, मूत्राशय एवं गर्भाशय के अधोभाग पर पहुंचती हैं। त्रिक तंत्रिकाओं की यह परानुकम्पी शाखायें जननांगों (external genital organs) तक पहुँचकर लैंगिक प्रतिक्रियायें उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। यही तंत्रिकायें मलाशय, मूत्राशय एवं पौरुष ग्रंथि का अष्टीला (prostatic gland) का भी पोषण करती हैं। लैंगिक मांसपेशियों में लैंगिक उत्तेजना हेतु रक्त का भरपूर संवहन आवश्यक हैं। इसलिए योगियों ने मूलाधार चक्र के कामरूप कन्दर्प बाहु एवं स्वयंभू लिंग की भी संज्ञा दी हैं। अतः मूलाधार चक्र को सृष्टि हेतु मूल तत्त्व माना गया है। इसीलिए इसे मूलाधार चक्र की संज्ञा देना योग्य ही प्रतीत होता हैं।[3]

योग सिद्धांत एवं साधना में मूलाधार चक्र को पेल्विक प्लेक्सस के रूप में इस प्रकार वर्णित किया गया हैं - इन्होंने मूलाधार का स्थान लिंग अथवा योनि को माना है इनके अनुसार यह चार दलों वाला पद्म (कमल) है इसका वर्णन रक्त है तथा लोक भू हैं, वं, शं, षं, सं इसके अक्षर हैं तत्त्व पृथ्वी है, गुण गन्ध हैं, तत्त्वबीज लं है तथा बीज का वाहन एरावत हाथी है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय

नासिका तथा कर्मेन्द्रिय गुदा हैं इस मूलाधार चक्र के केंद्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलय बनायें हुए ब्रह्मनाड़ी की ओर सर्पिणी के समान मुख किए हुए कमलनाल रूप में कुंडलिनी शक्ति महाप्रकृति के साथ विद्यमान होती हैं।[4]

विभिन्न प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में मूलाधार चक्र के अस्तित्व को इस प्रकार संदर्भित किया गया है जिसका विवरण इस प्रकार है

1. ध्यानबिंदुपनिषत् के अनुसार प्रथम चक्र आधार हैं जो गुदा स्थान में हैं और उसमें चार दल वाला कमल हैं।

'आधाराख्ये गुदास्थाने पंकजं यच्चतुर्दलम्'[5]

2. योगचूडामण्युपनिषत् में षट् चक्रों में आधार चक्र को प्रथम चक्र एवं चार दल वाला माना गया हैं जो गुदा में स्थित हैं।[6]
3. योगकुंडल्युपनिषत् में मूलाधार का स्थान गुदा बताया गया हैं...

'आधार गुदामत्युक्तं'[7]

4. नृसिंहोंत्तरतापिन्युपनिषत् में पहला चक्र चार अरों वाला बताया गया हैं।[8]
5. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत् के तृतीय खंड में मूलाधार चक्र के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार हैं 'मूलाधार स्थित जो ब्रह्मचक्र हैं वह योनि के आकार के तीन घेरों वाला हैं, वहां कर्णिकामूल में सुप्त सर्प के आकार में कुंडलिनी शक्ति स्थित हैं –

'आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिरावृत्त भंगिमण्डलाकारं तत्र मूलकन्दे शक्तिः।[9]

6. षट्चक्र निरूपणम् में मूलाधार चक्र का निरूपण करते हुए कहा गया है कि मूलाधार चक्र सुषुम्ना के मुख से संलग्न होता है तथा लिंग के नीचे और गुदा के ऊपर अपान वाले स्थान पर इसकी स्थिति हैं। यह सोने के वर्ण के चार रक्त वर्ण पत्तों वाला है और अधोमुखी भी हैं, इसके पत्तों पर वं, शं, षं, सं चार अक्षर हैं जिनकी आभा सुवर्ण के समान हैं....

'अथाधारपद्मम् सुषुम्नास्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णा भवर्नैर्वकारदिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः।।[10]

आगे वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस कमल के बीच में चतुष्कोण पृथ्वीमण्डल हैं, जो चारों ओर से आठ शूलों से आवृत्त है यह अत्यंत सुंदर और पीले वर्ण का हैं। इसी में धरा का बीज हैं...

'अमुष्मिन् धरायाश्र्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासिशूलाष्टकैरावृतं तत् ।
लसत्पीतवर्णं तड़ित्कोमलांगं तदन्ते समास्ते धरायाः स्वबीजम्।।[11]

7. गोरक्षपद्धति के द्वारा मूलाधार चक्र को इस प्रकार स्पष्ट किया है ख्र कि गुदास्थान में आधार (मूलाधार) कमल हैं वह चार दलों वाला है उसके मध्य भाग को योनि या कामाख्या भी कहते हैं, यह योगियों द्वारा पूजनीय है, इसके मध्य में पश्चिममुखी महालिंग हैं जिसके मस्तक पर मणि का बिम्ब है जो इसे जानता हैं वह योग का ज्ञाता कहलाता हैं....

'आधाराख्ये गुदास्थाने पंकजं च चतुर्दलं।
तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवंदिता।।[12]

8. कुंडलिनी महायोगः साधना एवं सिद्धांत में मूलाधार चक्र के विषय में वर्णन मिलता हैं जो इस प्रकार हैं...मूलाधार चक्र में पृथ्वीतत्त्व की प्रधानता हैं, यह चक्र जीवरूपी शिव का स्थान हैं, इसी चक्र से जल, अग्नि, बिन्दु, नाद, हंस तथा मनस् की उत्पत्ति होती हैं। कुंडलिनी साधकों के अनुभवानुसार शरीर में गुदा तथा जननेंद्रिय के मध्य में एक त्रिकोण आकार का स्थल है जिसे योनिस्थान कहा जाता है इसमें एक लिंगाकार कन्द हैं जो जीवरूपी शिव का पर्याय है इसी कंद से हजारों नाडियाँ निकलकर शरीर के विभिन्न भागों में जाती है। इस कन्द को तीन बार गोलाकार रूप में लपेटे हुए विश्व की आधार रूप पराशक्ति कुंडलिनी योनि स्थान में ही प्रसुप्त अवस्था में स्थित रहती है यह योनिस्थान ही समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली आदिशक्ति कुंडलिनी का कामरूप नामक मूलपीठ स्थान है। जोकि योग की समस्त उपलब्धियों का मूल आधार है इसी कारण इसे मूलाधार कहते हैं एवं यही स्थान समस्त शरीर को सक्रिय रखने वाली शक्ति का केंद्र हैं।[13]
9. शिव संहिता के पंचम् पटल में मूलाधार चक्र को कुलनाम, स्वर्णाभा वाला तथा स्वयंभूलिंग से संगत माना है एवं उसी स्थान पर द्विरण्ड नामक सिद्ध और डाकिनी देवता भी हैं[14] तथा उसके मध्य में योनि स्थित हैं...

'तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र'।[15]

इसी वर्णन के साथ मूलाधार चक्र को शरीर की कांति उत्कृष्ट करने वाला, जठराग्नि, आरोग्य पटूता और सर्वज्ञता को उत्पन्न करने वाला भी बताया गया हैं....

'वपुष: कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम्।
आरोग्यं च पटुत्वं च सर्वज्ञत्वं च जायते'।।[16]

10. सिद्ध सिद्धांत पद्धति में ब्रह्म चक्र को प्रथम चक्र अर्थात् मूलाधार चक्र के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि यह तीन बार आवृत्त भगमंडल के समान होता है एवं उसके समीप मूलकन्द तथा कामरूप पीठ को स्थित मानना चाहिए।[17]
11. श्रीनाथचरितम् नाथ परंपरा का अद्वितीय ग्रन्थ है इसमें भिन्न - भिन्न स्थानों पर मूलाधार चक्र का वर्णन प्राप्त हो जाता है इसके अनुसार मूलाधार चक्र चार दलों वाला कमल हैं उसी के अंतर्गत त्रिकोणा कामपीठ है जिसके ध्यान मात्र से ही सिद्धों को समस्त पदार्थों की प्राप्ति हो जाती हैं ये गणेश जी का मूलाधार चक्र में निवास मानते हैं।[17]

"चतुर्दल विशिष्ट मूलाधार चक्रस्थापायमूषक वाहनाय सागोंपांग सहिताय स्वशक्तिसिद्धियुताय श्री महागणाधिपतयेअजपाजपानांसोअहमित्येवं रूपाणां षट्शतानि पाद्यादिकेय्ंचसमर्पयामि नम: प्रीयताम्।"[18]

12. श्री तंत्रालोकानुसार मूलाधार चक्र संबंधी अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया गया हैं कि समान वायु नाडियों से प्रवाहित होता है जिसके फलस्वरूप नाड़ियाँ दस भागों में विभक्त होकर कुछ नीचे, कुछ ऊपर और कुछ टेढ़ी ख्र तिरछी एक चक्र रूप में वहीं स्थित रहती हैं...

"एवं समानेअपि विधि: स हि हार्दिषु नाड़ीषु ।
संचरन्सर्वतोदिक्कं दशधैव विभाव्यते"।।[19]

13. आगम रहस्य में मूलाधार चक्र को आधार चक्र के रूप में रक्तवर्णी चार दलों और वं, शं, षं, सं चार वर्णों वाले गोदावरी के क्षेत्र के रूप में दर्शाया गया हैं–

"आधाराख्ये मूलचक्रे रक्तवर्णे चतुर्दले।
वादिसान्तार्ण संयुक्ते क्षेत्रे गोदावरीसमे।।[20]

14. श्रीनेत्रतंत्रम् के अनुसार मूलाधार चक्र का शरीर के अंदर वह स्थान है जहाँ मेरुदंड समाप्त होती है एवं यह नाभि और जननेंद्रिय इन दोनों के बीच में स्थित हैं।[21]
15. गौतमीय महातंत्र में मूलाधार चक्र को इस प्रकार स्पष्ट किया गया हैं ख्र छह चक्रों के मूल में होने के कारण प्रथम चक्र को मूलाधार चक्र कहा जाता हैं।

"मूलमाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदु:"।[22]

ये मूलाधार का वर्णन करते हुए आगे बताते हैं कि यह स्वर्ण की आभा वाला वं, शं, षं, सं चार दलों वाला है इसमें तप्त स्वर्ण ख्र सदृश कांतिमान चतुर्दल पद्म की भावना करनी चाहिए...

"तद्वाह्ये हेमवर्णाभं वं शं षं सं चतुर्दलम्।
द्रुत हेमसमप्रख्यम् पद्म तत्र विभावयेत्।[23]

मूलाधार चक्र से संबंधित उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि मानव शरीर में उपस्थित प्रथम चक्र मूलाधार चक्र को ऋषि ख्र मुनियों ने इस मानव देह की आधार शिला माना हैं एवं अपनी अनेक विशेषताओं के कारण ही हमारे प्राचीन ग्रंथों में मानव शरीर में स्थित चक्रों की उपयोगिता सिद्ध की गयी हैं मानव शरीर चक्र को आधार मानकर उस समय इसी विज्ञान के आधार पर ही मानव देह को स्वस्थ रखने का प्रयास किया जाता था, वर्तमान समय में भी अगर हम इसकी वैज्ञानिकता से परिचित हो जाये तो आज भी मानव जीवन को स्वस्थ रखने में भूमिका हो सकती हैं।

सन्दर्भ

1. जैनयोग सिद्धांत, पेज नं० 7।

2. षट्चक्रोपनिषद्, पेज नं० 29।
3. सचित्र आयुर्वेदीय रचना शरीर, पेज नं० 189-190।
4. योग सिद्धांत एवं साधना, पेज नं० 27।
5. ध्यानबिंदुपनिषत्, मंत्र संख्या-44।
6. योगचूड़ामण्युपनिषत्, मंत्र संख्या-3, 4।
7. योगकुण्डल्युपनिषत्, तृतीय अध्याय, मंत्र संख्या-10।
8. नृसिंहोंत्तरतापिन्युपनिषत्
9. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्-तृतीय खण्ड, मंत्र संख्या-1।
10. षट्चक्र निरूपणम्, पेज नं0-12।
11. षट्चक्र निरूपणम्, पेज नं0-22।
12. गोरक्षपद्धति, पेज नं0-12।
13. गोरक्षपद्धति, पेज नं0-15।
14. कुंडलिनी महायोग: साधना एवं सिद्धांत, पेज नं0-253।
15. शिवसंहिता, पेज नं0-22।
16. शिवसंहिता, पेज नं0-78।
17. शिवसंहिता, पेज नं0-80।
18. सिद्ध सिद्धांत पद्धति, पेज नं0-31।
19. श्रीनाथचरितम्, पेज नं0-409।
20. श्रीनाथचरितम्, पेज नं0-407।
21. श्रीतंत्रालोक भाग-2, षष्टमाह्निकम्, पेज नं0-441।
22. आगमरहस्य, सप्तम् पटल, 34 वाँ श्लोक, पेज नं 0-150।
23. श्रीनेत्रतंत्रम्, भूमिका भाग, पेज नं 0-22।
24. गौतमीयमहातंत्रम्, 32 वाँ अध्याय, पेज नं 0-327।
25. गौतमीयमहातंत्रम्, 32 वाँ अध्याय, पेज नं 0-326।

महाभारतस्य शान्तिपर्वणि समुपलब्धराजधर्मस्य विमर्शात्मकमध्ययनम्

ताराकान्त मित्र

मोतिहारी, बिहार

इतिहासे तथा च पुराणसाहित्ये महाकाव्यद्वयानां मध्ये महाभारतम् एकम् अन्यतमम् महाकाव्यरूपेण परिगण्यते। न केवलं विश्वकोशरूपेण अपितु स्मृतिशास्त्ररुपेण तथा धर्मशास्त्ररूपेणापि महाभारतस्य स्थानम् अन्यतमम्। राज्ञां पालनीय-कर्तव्यमेव राजधर्मः। रणस्य नीतिः एव राजधर्मः तथा राज्ञा धर्मः इति राजधर्मः। परन्तु अत्र राजा शब्देन केवल राज्ञः राजा इति नास्ति परन्तु शासकानां कर्तव्यमेव राजधर्मः। समाज-साहित्य-सामाजिक-जीवनम्, आध्यात्मिक-जीवनं सर्वस्मिन् क्षेत्रे राज्ञा कर्तव्य तथा राजधर्म अतीव सुष्ठुतया महर्षिवेदव्यासः महाभारते वर्णितवान्। यद्यपि सम्पूर्ण महाभारते सर्वस्मिन् पर्वणि राजधर्म-विषये चर्चा जाता परन्तु द्वादशपर्वणां मध्ये शान्तिपर्वणिवर्णित राजधर्मस्य अनुशीलनंप्रस्तुतशोधप्रपत्रस्य आलोच्य विषयः।

शोधप्रपत्रस्य उद्देश्यम्

- धर्मः किम् इति विषये आलोचनम्।
- राजधर्मस्य प्रकृत अर्थः।
- महाभारतस्य शान्तिपर्वानुयायी राजधर्मस्य वर्णनम्।
- मनुस्मृति-ग्रन्थे वर्णित-राजधर्मस्य सहितं महाभारते वर्णितस्य राजधर्मस्य सादृश्यम्।
- महाभारतस्य समये राज्ञां राज्यपालनं तथा तेषां कर्तव्य-विषये विशदवर्णनम्।

मुख्यबिन्दवः- राजधर्मः, शान्तिपर्व, मनुस्मृतिः, पुरुषार्थचतुष्टयम्, आश्रमचतुष्टयम्, धर्मः।

शोधप्रविधिः

अस्मिन् शोधप्रपत्रे तथ्यानुसन्धानात्मक-शोधप्रविधिं प्रयुक्तम्। तथ्यसंग्रहणस्य कृते प्राथमिकतथ्यरूपेण महाभारतमहाकाव्यं तथा मनुस्मृतिग्रन्थस्य सहाय्यं स्वीकृतम्। निगमनात्मक तथ्यानां परीक्षणार्थाय राजधर्मः तथा राजनीति-विषयक विविध पुस्तकानाम् उपयोगः कृतः।

विस्तृतालोचनम्

भारतस्य इतिहासे तथा च स्मृतिशास्त्रे महाभारतग्रन्थस्य नाम अन्यतमम्। महाभारतस्य ग्रन्थस्य महानुभवता तथा महत् आकारस्य कारणे अयं ग्रन्थः महाभारतम् इति उच्यते-

"महत्वात् भारवत्वात् महाभारतम् उच्यते"।

महाकविवेदव्यासरचित महाभारते वर्तमाने १००००० श्लोकाः तथा अष्टादशपर्वर्णि विद्यन्ते। महाकविवेदव्यासस्य मुखनिःसृत वाणीं श्रुत्वा भगवान् गणेशः प्रस्तुत ग्रन्थस्य लेखनकार्यं कृतवान्। महाकवि वेदव्यास केवल २४००० श्लोकानां रचनां कृतवान् यस्य नामकरणं 'जय' इति कृतम्। यत् महाभारतस्य मङ्गलाचरणात् प्रामाण्यते-

"नारायणं नमस्कृत्यं नरञ्चौव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्।।" [1]

जयमुदीरयेत् शब्दस्य अर्थः अत्र द्विविधः प्रथम जयस्य अर्थ तु जय नामक ग्रन्थस्य वर्णनं तथा द्वितीय जय शब्दस्य अर्थः जीत शब्दार्थक एवं नारायणं नरश्रेष्ठं तथा देवी सरस्वती वन्दनं पश्चात् पाण्डवस्य जयगाथा वर्णनं करोमि इति व्यासस्य अभिप्रायः। अस्मिन् महाकाव्ये वर्णित भीष्म-द्रोण-कर्ण-पञ्चपाण्डव-दुर्योधन-द्रौपदी-शकुनी आदि व्यक्तिवर्गस्य चरित्रचित्रणं महाकविव्यासेन अतिसिद्धहस्तेन कृतम्, यदा महर्षिव्यासः सर्वस्मिन् चरित्रस्य सहित अङ्गाङ्गिभावेन सम्बन्धासीत्।

Winterniz महोदयस्य मतानुसारेण "As the butter among all kinds of sour milk, as the Brahmin among the Aranyas, as the Aranyakas among the Vedas, as the drink of immortality among the quadrupeds is the best, so is of all narrative works (itihasa) Mahabharata is the best". शिक्षा-चिकित्साविद्या-देवदेवता-पर्वत-वनं प्रभृति विविधप्रकारस्य युद्धनीति-युद्धयात्रा-वर्णनं सूर्य चन्द्रादि शोभा वर्णनमादि विषयस्य चर्चाः प्राप्यन्ते यत् द्वारा महाकाव्यस्य सकल लक्षणं सम्पूर्णरूपे अस्मिन् ग्रन्थे स्पष्टरूपेण परिलक्ष्यते।

अष्टादशपर्वणां मध्ये शान्तिपर्व सर्वापेक्षा वृहत्तरपर्व अस्ति यन्मध्ये त्रिंशत्यधिक-चतुषष्ट्या श्लोकाःविद्यन्ते। सम्पूर्ण-पर्वणःउद्देश्यं पाठकवर्गाणां कृते मोक्षस्य मार्ग स्पष्टीकरणम्। उपदेशनुयायी तथा महत्वानुयायी शान्तिपर्वणः महत्वम्। महाभारतस्य भयङ्कर-युद्धस्य पश्चात् वेदव्यास युद्धस्य प्रासङ्गिकता किं तथा किं कारणे तद् युद्धमावश्यकमासीत् इति विषये शान्तिपर्वणि यथोचितयुक्तिं स्थापयित्वामहाभारते वर्णितं युद्धं धर्मयुद्धामासीत् इति विषये स्वकीय मतं प्रदत्तवान् येन ग्रन्थस्य उत्कर्षता वर्धने साहाय्यकं वर्तते। सर्वापेक्षया श्रेष्ठतमपर्व इदं पर्वासीत्। अतः वेदव्यासमहोदयः अस्मिन् पर्वणः उत्कर्षता वर्धनार्थं पुरुषार्थचतुष्टयस्य अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्षाणां विवरणं तथा आश्रम चतुष्ट ट्यस्य वर्णनं यथा ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्यास इति तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शुद्र इति वर्णचतुष्टयस्य समुचित वर्णनम् उदाहरणेन सहितं प्रदत्तवान्। पर्वणः नामकरणेन सहित पर्वणःविषयवस्तुन्यैपिव्यासमहोदयेन अतीव उत्तमरूपेण संयोज्यते। समाजस्य रीतिनीति विषये तथा राजधर्मस्य पालनस्य नियम विषयेऽपि सुस्पष्टं वर्णनं कृत्वा सामाजिक-शान्तिलाभस्य उपायोऽपि सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण वर्णितवान्। राजधर्मपालने राज्ञां तथा शासकानाम् आवश्यक भूमिका विषयैऽदि मार्ग दर्शितवान्।

धर्म शब्दस्य प्रयोगः विविधशास्त्रे विविध-अर्थेण क्रियते। भारतीय ज्ञान परम्परायां धर्मस्य स्वरूपं अतिव्यापकम्। यस्य व्याख्यानं वेदः तु काव्यं पर्यन्तं सम्पूर्ण संस्कृतवाङ्मये व्यापकरूपेण दरीदृश्यते। अलौकिक क्षेत्रे यत्र धर्मः पुरुषार्थस्य साधनं तत्रैव लौकिक-क्षेत्रे धर्मेण वस्तु स्वरूपस्य ज्ञानं भवति। यद्यपि उभयोः क्षेत्रयोः धर्मः आधारभूतः साधनरूपेण सञ्जानीते। लौकिक-क्षेत्रस्य ज्ञाने नैव पारलौकिक क्षेत्रस्य ज्ञानं भवति इति नियमः। अस्मात् एव पुरूषार्थ चतुष्टये धर्मार्थकामरूपी त्रिवर्गः मोक्षस्य साधनभूतः। धर्मानुसारम् अर्थस्य सिद्धिः, धर्मार्थानुसारं कामस्य सिद्धिः, धर्मार्थकामानुसारम् एव मोक्षस्य सिद्धिः सम्भवति। अयं धर्मः काव्यशास्त्रेऽपि उक्तम्। भामहेन काव्यालङ्कारे उक्तं-

"धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।।" [2]

अर्थात् साधुकाव्य-निषेवणेन धर्मार्थकाममोक्षेषु कलासु च दक्षता प्राप्यते। कीर्ति प्रीतिं च अपि प्राप्यते। यस्य धर्मस्य व्याख्यानं काव्यप्रकाशकारेण - 'रामादिवत् वर्तितव्यम्, न तु रावणादिवत्[3]' इतिव्यवहारःज्ञानार्थ कृतः। तर्हि धर्मेण काव्ये वस्तोः यथार्थ स्वरूपस्य ज्ञानं भवति। येन सम्यक् ज्ञानेन स्वर्गे च लोके च कामधुक् भवति। धर्मशास्त्रे धर्मस्यलक्षणं 'धारणाद् धर्मम्' इति। ध्रियते तिष्ठति वर्तते यः स धर्मः।

'राजधर्मः' इत्युक्ते "राज्ञो धर्मः इति राजधर्मः। राज्ञामवश्यकर्तव्ये प्रजापालनादौ कर्मणि"। राजाकतृक पालनं धर्मादि राजधर्म एव। राजा तस्य कर्तव्यम् प्रजानां कल्याणार्थ क्रियते। राजा सर्वदा प्रजानुरञ्जक भवितुं शक्यते। मनुस्मृतिग्रन्थस्य सप्तमोऽध्याये राजधर्मस्य विषय चर्चा जायते। तत्र भारतीय राजतन्त्र तथा राज्ञां आवश्यकं कर्तव्य अति सम्यक् रूपेण विचार्यते। राजनीति तथा राज्ञानुशासनमेव अति सुसज्जित रूपेण वर्णयते। भारतीय साहित्यशास्त्रे राज्ञां कर्तव्य बहुश्लोक माध्यमेन बहुत्र विचार्यते।

महाभारतस्य शान्तिपर्वण: राजधर्मानुशासनाध्याये युधिष्ठिर हस्तिनापुरस्य राजा निर्वाचनस्य पश्चात् भगवानश्रीकृष्णस्य परामर्शानुयायी पितामह भीष्मस्य निकटे राजधर्मविषये तथाप्रजापालनस्य प्रकृतनियमविषये जिज्ञासितवान्। पितामहभीष्मस्य सकाशं युधिष्ठिर: विविध प्रश्नं कृतवान्, यत् सर्वस्मिन् प्रश्नस्य उत्तरमपि पितामह अतीव धैर्येण अभिज्ञतापूर्वक दत्तवान्, समय-समये विभिन्न उदाहरणमपि आख्यान-उपाख्यान माध्यमेन पितामह प्रदत्तवान्।

प्रथमे पितामह भीष्म चतुर्णानां वर्णानां कर्तव्य विषये उक्तवान।

"ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तप:।

क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम्।।[4] *"*

अर्थात् ब्राह्मणानां धर्म: तु दानमध्ययनं तप: आदि। तर्हि ब्राह्मणं तेषां धर्म पालयते। परन्तु क्षत्रियाणां धर्म: तु समरे देहपातनम्। युद्धक्षेत्रे प्राणत्याग तथा शत्रूणां प्राणनाशमेव तेषां प्रधान धर्म:। अत: युद्धक्षेत्रे कौरवान् निहन्त्या भवान् क्षत्रियधर्मस्य पालनं कृतवान। न तु धर्मस्य प्रतिकूलमेव। पुन: पितामह उक्तवान् यत्-

"पितृन्पितामहान्पुत्रान्यगुरुन्सम्बन्धिबान्धवान्।

मिथ्याप्रवृत्तान्य: सांख्ये निहन्याद्धर्म एव स:।।[5] *"*

अर्थात् पिता-पितामह-पुत्र-गुरु-बान्धव: यो कोऽपि अन्याय तथा मिथ्यामचरति तेषां निहन्त्यमेव क्षत्रियाणाम् अन्यतम-धर्म:। क्षत्रिय: सदा धर्मस्यानुकूलम् आचरति। युद्धक्षेत्रे पापस्य विनाशमेव तेषाम् अनुकूलमेव-निहन्ति समरे पापान्क्षत्रियो य: स धर्मवित्।।[6] क्षत्रियाणाम् अस्मिन् धर्मस्योल्लेख: मनुस्मृति ग्रन्थस्य राजधर्म नामक सप्तमोध्याये उल्लिखितम्-

"तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवसेन्नराधिप:।

अनिष्टञ्चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत्।।[7] *"*

प्रत्यक्ष-माध्यमेन सर्वस्मिन् विषयस्य विवचनं राजानां कर्तव्यम् न तु अनुमानेन। प्रत्यक्षप्रमाणेन राजा किमपि सिद्धान्तं गृहीतुम्शक्यते। यदि अनुमानप्रमाणेन राजा किमपि सिद्धान्तं ग्राह्यते तर्हि यथोचित सिद्धान्तस्यभावे राज्ये अराजकता जायते।

मनुस्मृतिग्रन्थे उल्लिख्यते यत् राजा देश कालस्य सम्यक् विवेचना सिद्धान्तं ग्रहणीयम् अन्यथा देशे सामाजिक सन्तुलनस्य प्रतिबन्धकता उत्पद्यते-

"कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वत:।

कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुन: पुन:।।[8] *"*

पुन: पितामह उक्तम् यत् चतुर्णानां वर्णानां मनुष्याणां कृते दयाभावेन कार्य करणीयम् राज्ञां अन्यतमधर्म:। राजा सर्वदा सत्यवादी भवेत्। सत्यवाक्येन धर्माचरणेन तथा क्षमाशीलतामाध्यमेन राजा प्रजानां रञ्जयितुं शक्नुवन्ति-

"तस्मान्नित्यं दया कार्या चातुर्वर्ण्ये विपश्चिता।

धर्मात्मा सत्यवाक्चैव राजा रञ्जयति प्रजा:।।

क्षममाणं नृपं नित्यं नीच: परिभवेज्जन:।

हस्तियन्ता गजस्येव शिर एवारुरक्षति।।[9] *"*

कामज तथा क्रोधज सर्वस्मिन् प्रकार व्यसनानि परिवर्जनं राज्ञां कृते आवश्यकम्-

"व्यसनानि च सर्वाणि त्यजेत्तथा भूरिदक्षिण।

न चैव न प्रयुञ्जीत सङ्गं तु परिवर्जयेत्।।[10] *"*

षटषु-दुर्गेषु नृ दुर्ग श्रेष्ठमेव अत: नृ दुर्गे राज्ञां अधिष्ठानं सुरक्षितमेव-

"दुर्गेषु च महाराज षट्सु ये शास्त्रनिश्चिता:।

सर्वेषु तेषु मन्यन्ते नरदुर्गं सुदुस्तरम्।।[11] *"*

प्रजा तथा च राजा सर्वेषां कृते दण्डव्यवस्था प्रचलितासीत्। यदि राजा ब्रह्मतेजोमय: दण्डस्य सम्यक् परिचालनं कर्तुं समर्थ: तदा तस्मिन् राज्ये प्रजा: आनन्देन तिष्ठन्ति परन्तु राजा यदि दण्डस्य सम्यक् परिचालने असमर्थ: जात: तर्हि तद् राज्ये सर्वत्र अराजकता दरीदृश्यते–

"तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।

ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वर:।।[12]"

मनुस्मृति ग्रन्थे दण्डस्य प्रसङ्गे उच्यते–

"स राजा पुरुषो दण्ड: स नेता शासिता च स:।

चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभू: स्मृत:।।

दण्डो शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।

दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा:।।[13]"

राजा कदापि तस्य क्रोधस्य वशीभूतं न जायते। क्रोधं जीत्वा राजा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपि- चतुवर्णीनां पुरुषार्थानां माध्यमेन राज्यपालनम् उचितमिति।

गुप्तमन्त्रो जितक्रोधो शास्त्रार्थगतनिश्चय:।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च सततं रत:।।[14]

शत्रूणां अवज्ञा कदापि न करणीया। शत्रूणां बलस्य विषये अवज्ञा करणे दुर्बल राजापि बलीयसि भवितुं शक्यते। यत् प्रकारे स्वल्प अग्निखण्डोऽपि विशालाकार अग्निखण्डस्य रूपं धारयित्वा सर्वस्मिन् वशीभूतं कर्तुं समर्थ: इति।

न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलौपि बलीयसा।

अल्पौपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च।।[15]

एतावानात्मविजय: पञ्चवर्गाविनिग्रह:।

जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन्।।[16]

महाभारतस्य अष्टादश पर्वाणां मध्ये बहुत्र राजधर्मस्य उल्लेख: जायते। तन्मध्ये शान्ति पर्वणिराजधर्मध्यायपर्व नामक अध्याये राजधर्मस्य चर्चा अधिकं जातम्। प्रस्तुत प्रपत्रे मनुस्मृति ग्रन्थस्य सप्तमैध्याये वर्णित राजधर्मस्य सहित महाभारतस्य शान्तिपर्वणि वर्णित राजधर्मस्य सदृश्यम् तथा पितामह भीष्मेन वर्णित राजधर्मस्य प्रयोजनीयता तथा राजा कर्तव्यविषये चर्चा जाता।

फुटनोट

- महाभारतम् १.१.१
- काव्यालङ्कार: १.१
- काव्यप्रकाश: पृष्ठ:– ९१
- महाभारतम् १३.५४.१२
- महाभारतम् १९.४
- महाभारतम् १२.५५.१६
- मनुसंहिता १३.७
- मनुसंहिता १०.७
- महाभारतम्. ३५.५५.१२.
- महाभारतम् .१२.४६.४२
- महाभारतम् ३५.५६.१२

- महाभारतम् ३२.१४.१२
- मनुसंहिता १७-१८.७
- महा. १२.५७.१३
- महा. १२.५८.१७
- महा. १२.६९.४

सन्दर्भग्रन्थसूची

- Text Mahabharata, Vol 3,Published by Dr. R. N Dandekar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
- The Mahabharata of Vyasa (English Prose Translation), Kisari Mohan Ganguly,2003.
- Mahabharata, Rajsekhar Basu, M.C Sarkar and son private limited, Kolkata.
- Manava-Dharma Shastra(Institutes of Manu),Ganpat KrishnaJis press,1807.
- Uttar Rama Charitam with Viraraghavacharya’s Commentary, NIrnaya Sagara Press,1903.

अद्वैतवादी (वेदान्त, बौद्ध और त्रिक) दर्शनों में निहित सत् का स्वरूप

ईश्वर सिंह शेखावत

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना–

भारतीय दर्शन के वृहद् आकाश में अद्वैतवादी दर्शन अपनी विशेषताओं के कारण सर्वथा भिन्न एवं महत्त्वपूर्ण है। जिसमें परम/अन्तिम तत्त्व के स्तर पर अद्वैत को स्वीकार किया गया है। अद्वैत शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है द्वैत भाव से रहित अर्थात् अखण्ड़ता, अभेदता के भाव से युक्त होना। अद्वैतवादी दर्शन परम तत्त्व की अनुभूति की चरम सीमा है। अद्वैतवादियों के अनुसार यह सम्पूर्ण जगत् प्रपंचमात्र है जो एक ही ''परमतत्त्व'' की अभिव्यक्ति है अत: ''परमतत्त्व'' ही सर्वत्र व्याप्त होने के कारण द्वैत रूप में मान लिया जाता है।

अद्वैतवादी दर्शनों में शांकर वेदान्त, बौद्ध एवं त्रिक्, दर्शनों का प्रमुख स्थान है। इन दर्शनों की सर्वाधिक प्रसिद्धि का कारण इनकी दार्शनिक प्रौढ़ता है। इन सभी दर्शनों में एक परम तत्त्व को ही इस सम्पूर्ण प्रपंच रूप जगत् का आधार माना गया है चाहे वह ब्रह्म रूप में हो, शून्य रूप में हो, विज्ञान रूप में हो या फिर शिव रूप में हो।

सृष्टि, सृष्टिकर्ता जीव अथवा आत्मा के स्वरूप की आदिकालीन जिज्ञासा के समाधान का प्रयत्न सभी दर्शन करते हैं, किन्तु अद्वैतवादी दर्शनों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे सृष्टि में उपलब्ध, सर्वमान्य जड़ चेतन के द्वैत की व्याख्या एक परम तत्त्व के माध्यम से करे। इस व्याख्या के प्रकार भेद से ही सिद्धान्तों एवं दर्शनों में अन्तर उत्पन्न होता है। यहाँ इसी से सम्बन्धित अद्वैतवादी दर्शनों की प्रमुख मान्यताओं का निरूपण किया जा रहा है।

अद्वैत वेदान्त का परम तत्त्व 'ब्रह्म'–

वेदान्त दर्शन का परमतत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण रूप का वर्णन संहिताओं में प्रारम्भ होकर उपनिषदों में विस्तार को प्राप्त करता है एवं गौड़पाद, मण्डन मिश्र एवं शंकर आदि दार्शनिकों के प्रयत्न से निश्चित दार्शनिक सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लेता है। गौड़पादाचार्य, शंकराचार्य आदि दार्शनिकों ने ब्रह्म का वर्णन अज, अनिद्र, अस्वप्न, नामरूपरहित, सकृत विभाग, निर्गुण, सजातीय एवं विजातीय भेद से शून्य एक परम तत्त्व के रूप में किया है।

अन्तत: एक परम तत्त्व ब्रह्म को ही एकमात्र अद्वितीय सत्य एवं जगत् को मिथ्या प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म के अलावा कुछ भी सत् नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् एक प्रपंच है जो कि ब्रह्म का ही विवर्त है। यह सब कुछ ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म वाणी एवं मन से परे है, वह विषयों के अन्तर्गत नहीं है, अत: प्रत्यगात्मरूप, नित्यशुद्ध बुद्ध और मुक्त स्वभाव है–

''वाङ्मनसातीतमविषयान्त: पाति प्रत्यगात्मभूतं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं ब्रह्मेति''[1]

वेदान्त में ब्रह्म को ही प्रकृति, सृष्टि का उपादान तथा निमित्त कारण स्वीकार किया गया है। यहाँ पर समस्या यह है कि ब्रह्म को कारणरूप भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि कारणता के साथ ही ब्रह्म का देशकालादि से भी सम्बन्ध स्वीकार करना होगा, जिसके कारण निर्गुणत्व की हानि होगी।

यद्यपि अपेक्षाकृत अर्वाचीन वेदान्तसार आदि ग्रन्थों में ब्रह्म के उपादानत्व को एक भिन्न रूप में व्यक्त किया गया है कि जिस प्रकार एक मकड़ी तन्तु कार्य के प्रति अपनी प्रधानता से निमित्त कारण तथा अपने शरीर की प्रधानता से उपादान कारण होती है। उसी प्रकार ब्रह्म का उपादानत्व भी है। यदि इस तर्क को सही भी माना जाए तो अब उससे भी बड़ी समस्या ब्रह्म के निमित्त कारणत्व अर्थात् कर्तृत्व में आती है। ब्रह्म को इस जगत का कर्ता स्वीकार किया गया है किन्तु उस एक व्यापक, नित्य, तत्त्व में कर्तृत्व किस प्रकार संभव हो सकता है? कर्तृत्व मानने पर तो ब्रह्म में क्रिया व कर्म भी मानने पड़ेंगे और ऐसा मानने पर इसकी नित्यता बाधित हो जाएगी इसके समाधानार्थ अद्वैत वेदान्ती 'माया' नामक तत्त्व का वर्णन करते हैं। अविद्या अथवा माया के कारण ही ब्रह्म स्रष्टा, नियन्ता, कर्ता आदि विकल्पों से युक्त होता है।

अद्वैत वेदान्त में जगत् की अवधारणा-

पारमार्थिक दृष्टि से निर्गुण, निराकार, त्रिकालातीत अद्वैत तत्त्व ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करने पर भी अद्वैत वेदान्तियों ने मुख्यत: आचार्य शंकर ने व्यावहारिक दृष्टि से जगत् की भी सत्ता मानी है जिसके कर्ता के रूप में मायोपहित ब्रह्म को स्वीकार किया गया है जिसे ईश्वर भी कहा गया है। आचार्य गौड़पाद ने जगत की तुलना मिथ्या स्वप्न से की है। आचार्य मण्डन मिश्र के अनुसार चराचर जगत का नानात्व केवल भ्रम नहीं है, अपितु इसकी व्यावहारिक सत्ता है, निरपेक्ष सत्ता एक ही है।

जगत्प्रपंच का अनुभव होता है, इसलिए यह सत्य है, किन्तु यह त्रिकाल में अनुभूत न होने के कारण मिथ्या है, उसकी सत्यता स्वप्नज्ञान की भाँति ब्रह्मात्मकता विज्ञान से पूर्व ही रहती है- ''सर्व व्यवहाराणामेव प्राग्ब्रह्मात्मताविज्ञानात सत्यत्वोपपत्ते:, स्वप्न व्यवहारस्येव प्राक् प्रबोधात्।''[2]

परमार्थ दृष्टि से जगत् को असत् कहने और स्वप्न का उदाहरण देने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ब्रह्म-बोध की स्थिति में जगत् स्वप्न की भाँति लुप्त हो जाता है। ब्रह्मवेता जीवन्मुक्त व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् का लोप न होकर द्वैतमूलक नानारूपात्मक प्रपंच और उससे उत्पन्न होने वाले समस्त व्यवहारों का ही लोप होता है। जगत् के असत् होने का तात्पर्य है कि जगत की सत्ता ब्रह्म से पृथक् नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं हैं कि जगत् और ब्रह्म में अभेद है, ऐसा मानने पर तो जगत-प्रपंच से ब्रह्म का स्वरूप प्रभावित होगा। इसलिए भामतीकार ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्म और जगत् के अनन्यत्व से दोनों के अभेद का प्रतिपादन नहीं किया जा रहा है अपितु भेद का निषेध किया जा रहा है।

इस प्रकार अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् के मिथ्यात्व से तात्पर्य उसकी त्रिकालातीत ब्रह्म से भिन्न स्वतन्त्र सत्ता का नहीं होना है, जगत् को सर्वथा असत् अथवा शून्यरूप नहीं कहा गया है। स्वरूपत: ब्रह्म से भिन्न जगत् की ब्रह्म रूप अधिष्ठान में प्रतीति अध्यास- ''अध्यासो नामातस्मिँस्तद् बुद्धि:'' अथवा ''अध्यारोप- वस्तुन्यवस्त्वारोप: अध्यारोप:'' के कारण होती है। शुक्ति में रजत और रज्जु में सर्प की भाँति नामरूपादि से रहित चेतन तत्त्व में नाम-रूपात्मक अचेतन प्रपंचात्मक जगत् की सत्ता अध्यास के कारण ही प्रतीत होती है।

निर्मल आकाश में नीलादि के आरोप के समान ब्रह्म में जगत् का आरोप कर लेने पर भी उसकी अखण्डता एवं शुद्धता अबाधित रही है। जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब रहता है उसी प्रकार दोषों से रहित पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध ब्रह्म में समस्त प्रपंच अध्यस्त हैं। रज्जु से स्वतन्त्र सर्प की कल्पना का जिस प्रकार कोई औचित्य नहीं है, वैसे ही ब्रह्म से स्वतन्त्र जगत् की कल्पना सम्भव नहीं है, तथापि ये दोनों अभिन्न भी नहीं हैं। ब्रह्म और जगत् के इस अनिर्वचनीय सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए ''माया शक्ति'' की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। माया शक्ति से विशिष्ट परमात्मा इस जगत् का कारण है। शंकराचार्य ने कहा है कि एक ही परमेश्वर जो कूटस्थ, नित्य एवं विज्ञान स्वरूप है माया के द्वारा अनेक प्रकार का प्रतीत होता है। श्रुतिवाक्य सोऽकामयत बहु स्याम् प्रजायेय, की दृष्टि से भी ब्रह्म जगत का कर्ता है और शंकराचार्य ने भी यही स्वीकार किया है कि-.... इति समस्त जगत्सृष्टि निर्देशन प्राक्सृष्टेरद्वितीयं स्रष्टारमाचष्टे। साथ ही जगत् से भिन्न नहीं होने के कारण ब्रह्म अपनी ही कृति का कर्म भी है- ''इतश्च प्रकृतिर्ब्रह्म यत्कारणं ब्रह्मप्रक्रियायां, तदात्मानं स्वयमकुरूत''[3] इत्यात्मन: कर्मत्वं कर्तृत्वं च दर्शयति। आत्मानमिति कर्मत्वं, स्वयमकुरूतेति कर्तृत्वम्[4]

जगत् का कर्तृत्व ब्रह्म में माया के कारण माना गया है और माया सत् नहीं है क्योंकि ज्ञानकाल में उसका बाध होता है, वह असत् भी नहीं है क्योंकि व्यवहार में प्रतीति होती है इसीलिए उसे सदसद् से भिन्न अनिर्वचनीय कहा गया है। ''अव्यक्ता हि सा माया तत्त्वान्यत्वनिरूपणस्याशक्यत्वात्।''

सर्वव्यापी ब्रह्म की जीव रूप में प्रतीति भी माया के ही कारण होती है। आत्मा के विषय में किसी प्रकार की विप्रतिपति सम्भव नहीं- ''सर्वोह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति। यदि हि नात्मास्तित्व प्रसिद्धिः स्यात् सर्वो लोको नाहमस्मीति प्रतीयात। आत्मा च ब्रह्म।'' आत्मा ब्रह्म ही है।

बौद्ध दर्शन-

ई.पू. पाँचवी छठी शताब्दी में महात्मा बुद्ध हुए जिन्होंने संसार को दु:खमय मानकर इसके निवारण हेतु उपाय सुझाए एवं इस विषय में विस्तृत विवेचना की। भगवान बुद्ध के इन सरल उपदेशों को भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न रूपों में समझा जिससे इनके सरल उपदेश चार जटिल सम्प्रदायों में विभक्त हो गये।

इनमें शून्यवाद अथवा माध्यमिक तथा विज्ञानवाद अथवा योगाचार सम्प्रदाय बौद्ध दर्शन के प्रमुख अद्वैतवादी सम्प्रदाय है। शून्यवादी बौद्ध दर्शन तथा विज्ञानवादी बौद्ध दर्शन में भी एक परम तत्त्व को स्वीकार किया गया है तथा उसी से इस सम्पूर्ण संसार की व्याख्या की गई है। ये जगत् को सत् नहीं मानते और इस सम्पूर्ण आभास रूप जगत् के पीछे एक परम तत्त्व को मानते हैं। यह परम तत्त्व ही सम्पूर्ण सृष्टि अथवा जगत् का कर्ता है जिसके कारण यह जगत् आभासित होता है।

माध्यमिक दर्शन का परम तत्त्व ''शून्य''-

माध्यमिक दर्शन अद्वैतवादी परम्परा का एक प्रमुख दर्शन है जिसमें परम तत्त्व के रूप में ''शून्य'' को स्वीकार किया गया है। सामान्य भाषा में शून्य से अभाव का बोध होता है। किन्तु यहाँ पर इसका एक विशिष्ट अर्थ है और वह है- ''तत्त्व''। किसी वस्तु का वर्णन हम चार ही प्रकार से कर सकते हैं। वह ''है'' या ''नहीं है'' या ''है और नहीं है'' या ''न तो है और न नहीं है''। किन्तु तत्त्व के विषय में हम कुछ भी नहीं कह सकते। यह चतुष्कोटि विनिर्मुक्त और अनभिलाप्य है। परम तत्त्व शून्य ही है जो सत, असत् उभयात्मक अनुभयात्मक इन चार कोटियों से नितान्त मुक्त है अर्थात् शून्य उसे कहते हैं जो सत् भी नहीं हो, न असत् हो न सदसत् हो, न सदसत् से भिन्न ही हो। शून्य एक अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसका केवल ज्ञान ही है।

यहाँ पर तत्त्व और वस्तु दोनों के लिए ही शून्य शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर यह सापेक्षता, प्रतीत्यसमुत्पाद या संसार है जिसमें तत्त्व का अभाव है और पारमार्थिक दृष्टि से देखने पर यह तत्त्व या निर्वाण है जहाँ नानात्व का अभाव है। संसार अनिर्वचनीय है क्योंकि हम इसे सद्, असद्, उभयात्मक और अनुभयात्मक कुछ भी नहीं कह सकते; इसी प्रकार तत्त्व भी अनिर्वचनीय है। कहने का अर्थ यह है कि सब कुछ शून्य है। संसार शून्य है क्योंकि उसमें तत्त्व का अभाव है और तत्त्व भी शून्य है क्योंकि उसमें प्रपंच या नानात्व का अभाव है।

यहाँ शून्य का अर्थ अभाव नहीं बल्कि रहित है। सांसारिक वस्तुएँ तत्त्व से रहित है और तत्त्व प्रपंच से रहित है। शून्यवादी 'सत्' का अर्थ शाश्वत् सत्य के रूप में लेते हैं। उनके अनुसार संसार की वस्तुएँ सत् नहीं है क्योंकि वे शाश्वत नहीं हैं। वे नश्वर है। अत: जो लोग शाश्वत अर्थ में संसार के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं वे भ्रम में है। इसी प्रकार जो लोग संसार के अस्तित्व को नहीं मानते वे भी भ्रम में हैं क्योंकि वे संसार के अल्पकालीन अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते।

अतः शाश्वतवाद और उच्छेदवाद दोनों ही मिथ्या है। तत्त्व के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह दोनों के परे हैं-

अस्तीति शाश्वतग्रहो नास्तीत्युच्छेद दर्शनम्।
तस्मादस्तित्वनास्तित्वे नाश्रीयेत् विचक्षण:।।[6]

समस्त वर्णन बुद्धि द्वारा ही किया जाता है, किन्तु बुद्धि विप्रतिषेधों से युक्त है इसकी चार कोटियाँ हैं, किन्तु चारों परस्पर विरोधी है और विभिन्न विप्रतिषेधों को जन्म देती है। अत: तत्त्व बुद्धि की सभी कोटियों से परे है।

यह शून्य तत्त्व अनभिलाप्य है। सभी वस्तुओं का सारतत्त्व निरपेक्ष यह न तो उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है। बुद्ध स्वयं कहते हैं कि उस वस्तु का क्या वर्णन किया जाये और उसका कैसे ज्ञान प्राप्त किया जाये, जिसे वर्णमाला के अक्षरों में व्यक्त तक नहीं किया जा सकता अर्थात् यह 'शून्य' तत्त्व अनिर्वचनीय है।

शून्य की कर्तृता-

यद्यपि माध्यमिक दार्शनिकों ने जगत् का वर्णन अलातचक्र, स्वप्न, माया, प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि और मृगतृष्णा के रूप में किया है किन्तु उन वर्णनों का तात्पर्य पूर्ण अभाव नहीं है। इनके अनुसार संसार की वस्तुएँ पूर्ण रूप से सत् नहीं है क्योंकि यदि हम इनका

अर्थ भ्रम मात्र से ले तो भ्रम के लिए भी आधार तो होता ही है अत: पूर्ण अभाव असम्भव है। इसलिए अनुभवमूलक जगत् के लिए प्रयुक्त होने पर भ्रम का अर्थ है-बाह्य जगत की सतत परिवर्तनशील अवस्था।

नागार्जुन इस अनुभवमूलक जगत् के अधिष्ठान के रूप में एक ऐसे तत्त्व को मानते हैं जो शून्य ही नहीं, अपितु अपर प्रत्यय, शान्त, प्रपंचातीत, निर्विकल्प और अनानार्थ है।

अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपंचौरप्रपंचितम्
निर्विकल्पमनानार्थमेतत् तत्त्वस्य लक्षणम्।।[6]

इस तत्त्व को नागार्जुन ने परमार्थ शब्द से अभिहित किया है। यह वह तत्त्व है जिसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं है, जिसे सत्, असत्, सदसत् और सदसद्विलक्षण कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: शून्यवादियों के दृष्टिकोण से परमार्थ शून्य है, इसलिए नहीं कि यह शून्य है, बल्कि इसलिए कि व्यवहार के लिए प्रयुक्त कोई भी कोटि इसके लिए पर्याप्त नहीं है।

शून्यवादियों के जगत् का पूर्ण रूप से अभाव नहीं है यह शंकर का व्यावहारिक जगत् है। सम्पूर्ण जगत् तत्त्व से व्यक्त होता है। तत्त्व जगत् से परे है और जगत् के रूप में व्यक्त होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि तत्त्व और जगत् दो भिन्न सत्ताएँ हैं और न यह कि तत्त्व जगत् के रूप में परिवर्तित होता है, जैसा कि सांख्य मानता है। वस्तुत: यह प्रतीयमान जगत् तत्त्व है और तत्त्व ही सभी वस्तुओं का वास्तविक रूप है। सांसारिक वस्तुएँ तत्त्व की मिथ्या प्रतीति या संवृत रूप है। इसका रूप सदैव एकसा रहता है। इसलिए तत्त्व और जगत् में केवल विषयिगत भेद है, वस्तुगत नहीं। नागार्जुन के अनुसार तत्त्व और जगत, संसार और निर्वाण में कुछ भी अन्तर नहीं है। कार्य-कारण से परे रूप में देखने पर ये दोनों एक हैं।

इस दर्शन में परमार्थ के साथ-साथ 'संवृति' नामक एक सत्य की अवधारणा दी गई है। चन्द्रकीर्ति ने इसे अज्ञान (मूलाज्ञान या मूलाविद्या) की संज्ञा प्रदान की है। यह अज्ञान या अविद्या द्वारा प्रसूत है और अज्ञान या अविद्या का पर्याय है। वस्तुत: संवृति मानव बुद्धि की कृति है। यही जगत् और उसकी घटनाओं का कारण है। संवृत्ति को व्यवहारत: सत्य कहा जाता है वस्तुत: सत्य तो परमार्थ ही है। यह सम्पूर्ण संसार शून्य से अभिव्यक्त होता है। संसार की कोई वस्तु इससे परे नहीं है। अत: शून्य अभाव नहीं बल्कि समस्त जगत् का आधार है।

कुमारजीव के शब्दों में इसी के कारण जगत् की सभी वस्तुएँ सम्भव है, बिना इसके कुछ भी सम्भव नहीं। बुद्ध स्वयं कहते हैं कि हे सुभूति! शून्यता ही सभी धर्मों का आश्रय है। चतुष्कोटिविनिर्मुक्त होने के कारण ही वह शून्य है। इनके अनुसार यह जगत् कुछ भी नहीं वस्तुत: शून्य रूप ही है। शून्य ही सभी में भासता है। इस संसार को सत्, असत्, सदसत्, सदसद्विलक्षण किसी भी श्रेणी नहीं रखा जा सकता अत: यह भी शून्य है और इस समस्त जगत का अधिष्ठान वह परम तत्त्व शून्य है।

विज्ञानवादी दर्शन-

अद्वैतवादी बौद्ध दर्शनों में अगला प्रमुख स्थान विज्ञानवाद का है। इन्होंने शून्यवाद के इस सिद्धान्त का विरोध किया कि सब कुछ शून्य रूप है। इनके अनुसार ज्ञेय को प्राप्त करने वाले ज्ञाता की सत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता है। इनकी परिभाषा है कि-कम से कम अपना ज्ञान तो स्वीकार करें। अन्यथा ऐसा प्रसंग हो जायेगा कि समूचे संसार को अन्धा मानना पड़ेगा अर्थात् यदि ज्ञाता का ज्ञान भी शून्य ही हो तो जानने वाला कौन रहेगा। ऐसा ही धर्मकीर्ति ने भी कहा है- ''जो प्रत्यक्ष को भी नहीं मानता, पदार्थों की दृष्टि भी उसकी ठीक नहीं है।'' ''अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टि: प्रसिध्यति।'' माधवाचार्यकृत सर्वदर्शनसंग्रह में उद्धृत।

विज्ञानवादियों का परम तत्त्व विज्ञप्तिमात्रता अथवा विज्ञान-

विज्ञानवादी यह मानते हैं कि विज्ञान ही निरपेक्ष सत् है, इस सत्य का बोध बुद्धि की कोटियों द्वारा नहीं हो सकता। वसुबन्धु के अनुसार विज्ञप्तिमात्रता ही एकमात्र सत्ता है। यह परमार्थ और सभी वस्तुओं का सारतत्त्व है। सदा सर्वदा एकरस और नित्य होने के कारण इसे तथता भी कहते हैं-

धर्माणां परमार्थश्च स स यतस्तथतापिस।
सर्वकालं तथाभावात् सैव विज्ञप्तिमात्रता।।[7]

यह परतन्त्र (वस्तु) का अधिष्ठान है। इसी के कारण जगत् की प्रतीति होती है। किन्तु यह प्रतीयमान जगत् से भिन्न रूप वाली है। इसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। इसका कभी अन्यथाभाव नहीं होता। यही परिनिष्पन्न है। इन्होंने विज्ञप्तिमात्रता की निरपेक्ष सत्ता को विशुद्ध तर्कों के आधार पर प्रतिष्ठित किया और सिद्ध किया कि यही परम सत् है, बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व नहीं है। किन्तु यह शून्य नहीं बल्कि शून्य का भी अधिष्ठान है- ''शून्यता विद्यते त्वत्र तस्यामपि स विद्यते''[8]।

यह सर्वदोष-विर्निमुक्त, आनन्द स्वरूप, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, शाश्वत, ध्रुव, मुक्ति-स्वरूप और महामुनि बुद्ध का धर्मकाय है- 'स एवानास्रवो धातुरचिन्त्यः कुशलो ध्रुवः। सुखो विमुक्तिकायोऽसौ धर्माख्योऽयं महामुनेः।।'[9] यही वह सत्ता है जिससे अनन्त बुद्धों का आर्विभाव होता है। जब तक साधक का मन इस तत्त्व में लीन नहीं होता तब तक ग्राह्य और ग्राहक का द्वैत बना ही रहता है। किन्तु जब साधक समाधि में अपने सविकल्प मन को इस परम तत्त्व में विलीन कर देता है तब उसे विज्ञप्तिमात्रता के वास्तविक स्वरूप का दर्शन होता है।

वसुबन्धु ने क्षणिकवाद के विचार को इन्द्रियगोचर जगत् तक ही सीमित रखा है। उनका विज्ञान तो नित्य है। यद्यपि वसुबन्धु की भाँति दिङ्नाग और उनके अनुयायियों ने भी विज्ञप्ति या चित्त को ही निरपेक्ष सत् माना किन्तु संशोधित रूप में। दिङ्नाग क्षणिकवाद को विज्ञप्ति पर भी लागू करते हुए कहते हैं कि विज्ञप्ति शाश्वत नहीं बल्कि विज्ञानों की प्रतिक्षण परिवर्तनशील सन्तति मात्र है क्षणिकत्व ही इसका स्वरूप है। इनके अनुसार परमार्थ वह है जो कार्योत्पादन में सक्षम हो। किसी नित्य वस्तु से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि उत्पत्ति का अर्थ है परिवर्तन। उन्होंने क्षणिक विज्ञप्तिमात्रता को 'स्वलक्षण' नाम से अभिहित कर उसे निर्गुण, प्रपंचातीत, सर्वलक्षण शून्य अनिर्वचनीय और अनभिलाप्य, प्रत्यक्षगोचर बताया है।

विज्ञप्तिमात्रता के स्वरूप के विषय में यही मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि विज्ञप्तिमात्रता कूटस्थ नित्य है और इसी नित्यता के कारण ही यह ध्रुव और सुख स्वरूप है। संसार की अनित्य वस्तुएँ ही दुःख है। यह नित्य है अतः सुख है। यह विज्ञप्तिमात्रता बुद्धि की सभी कोटियों से परे है।

विज्ञप्तिमात्रता की जगत्कर्तृता-

यहाँ पर विज्ञान, पद, चित्त, बुद्धि शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ हैं। इस विषय में कहा गया है कि चूंकि बुद्धि को अपने अतिरिक्त कोई दूसरा ग्राह्य नहीं अतः उन विषयों के स्वरूप में रहने वाली वह बुद्धि स्वयं ही प्रकाश की तरह अपने स्वरूप को प्रकाशित करने वाली है। बुद्धि के द्वारा ग्राह्य दूसरा कोई पदार्थ नहीं है और न तो उससे बढ़कर कोई अनुभव ही है। अतः किसी भी ग्राह्य-ग्राहक के अभाव के कारण वह अपने आप ही प्रकाशित होती है-

नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्या नानुभवोऽपरः।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते।।[10]

बुद्धि ही अनादि वासना के वश से अनेक आकारों में प्रतीत होती है। यद्यपि बुद्धि का स्वरूप अविभक्त है, एक है तथापि विपर्यास (भ्रम) से भरी आँखों के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि ग्राह्य और ग्राहक की चेतना से इसमें भेद बना हुआ है।

अविभागोऽपिबुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लभ्यते।।[11]

इनके अनुसार यद्यपि बाह्य पदार्थों का अस्तित्व विज्ञान से भिन्न नहीं है तथापि यह अनुभवसिद्ध जगत् इसी का परिणाम है। विज्ञप्तिमात्रता से आत्मा (जीव) और पदार्थ युक्त निखिल जगत् की सृष्टि होती है।

काश्मीर शैव (त्रिक्) दर्शन-

अद्वैतवादी दर्शनों में प्रमुख काश्मीर शैव दर्शन आगम एवं निगमों की पूर्व परम्परा पर प्रतिष्ठित है। 8 वीं शती के उत्तरार्ध एवं नवीं शती के प्रारम्भ में उत्तर में काश्मीर शैव दर्शन के माध्यम से ही अद्वैतवाद का प्रादुर्भाव एवं व्यवस्थित दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में स्थापना हुई।

काश्मीर शैव दर्शन में परम तत्त्व ''शिव''

काश्मीर शैव दर्शन में परम तत्त्व के लिए चित, चिति शक्ति, शिव, महेश्वर, भैरव, अनुत्तर आदि नामों का व्यवहार मिलता है। वेदान्त के विपरीत यहाँ परम तत्त्व केवल सत् चित् स्वरूप नहीं है अपितु वह सत्ता अर्थात् 'भवनकर्तृता' और 'चितिक्रिया' से भी अविच्छन्न रूप से सम्बद्ध है।

परम तत्त्व स्वप्रकाश होने के साथ ही विमर्शमय भी है और विमर्श उसकी ज्ञान क्रिया शक्तियाँ है- 'विमर्श एव देवस्य शुद्धे ज्ञानक्रिये यत:।' विमर्श के कारण ही परमतत्त्व विश्वाकार, विश्वप्रकाश एवं विश्वसंहार में स्वतन्त्र रूप से स्फुरित होता है, इसी के द्वारा वह स्वभिन्न को आत्मरूप में, आत्मरूप को भिन्न रूप में व दोनों को एक रूप में प्रस्तुत करता है।

परम तत्त्व में शिव शक्ति का अभिन्न सामरस्य है, शक्ति के बिना शिव जड़ स्फटिक आदि जिन्हें अपनी सत्ता का भान नहीं होता, के समान हो जाएगा-

''न शिव: शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिव: शक्तस्तथा भावानिच्छया कर्तुमीहते।।
शक्तिशक्तिमतोर्भेद: शैवे जातु न वर्ण्यते।''[12]

शक्ति के बिना शिव शव है। इकार शक्ति का वाचक है- 'इकार: शक्ति:' और शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं है-

न शिव: शक्तिरहितो न शक्ति शिववर्जिता।
तादात्म्यनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।।

शक्ति ही प्रकाशरूप शिव का विमर्श है जिससे वह कर्तमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ होता है। अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से वह शिव से लेकर धरणिपर्यन्त षड्त्रिंशदात्म जगत् में अभिन्न रूप से स्फुरित होता है।

विश्वरूप में आभासित होने पर भी वह अपने स्वरूप से च्युत न होकर विश्वोत्तीर्ण भी बना रहता है। वह स्वतन्त्र रूप से विश्व का कारण है उसे विश्वरूप चित्र की सृष्टि के लिए तूलिका, वर्ण पट आदि किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती-

''स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।''[13]

परम शिव की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से दर्पण नगर न्याय से प्रकाशित विश्व के लौकिक दृष्टि से जड़ प्रतीत होने वाले पदार्थ वे हैं जिनमें शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति का आभासन कम मात्रा में हुआ है।

यह आभासन भी परमेश्वर की स्वतन्त्र्त्र इच्छाशक्ति का ही परिणाम है-

''परमेश्वर एव हि मायीयसर्ग चिकीर्षायां स्वस्वातन्त्र्येण बहिरवभासित भावराशिमध्यात् काँश्चिज्जड़ानपि प्राणादीन स्वगताहन्तात्मक कर्तत्वाभिषेकेण ग्राहकी भावयति, कांश्चिदपि शब्दादीन् इदन्तापात्रतया चिद्रूपतातिक्रमेण ग्राह्यतामापादयति; तेन प्राणादीनाम् जाड्येऽपि परमेश्वर स्वातन्त्र्यादेव चित्वम् इति।''[14]

इस प्रकार शिव अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से इस संसार के कुछ पदार्थों को ग्राह्य रूप में और कुछ को ग्राहक (चेतन, पशु, परिमित प्रमाता) रूप में प्रकाशित करता है। वस्तुत: शिव स्वयं ही स्वयं को पाशबद्ध संकुचित पशु के रूप में प्रकाशित करता है- ''शिव एव गृहीत पशुभाव''[15]

परम शिव स्वात्मप्रच्छादन की क्रीड़ा से स्वयं को पशु रूप में आभासित करता है; जिसमें उसकी इच्छा, ज्ञान, क्रियादि शक्तियों का स्वातन्त्र्य सीमित हो जाता है; जब परिमित प्रमाता इसे ही अपना वास्तविक स्वरूप समझने लगता है तो यह उसका बन्धन होता है और जब ज्ञान, योग, चर्या अथवा अनुग्रह के माध्यम से उसे आत्मस्वरूप का प्रत्यभिज्ञान हो जाता है तो यह उसका मोक्ष है। अभिनवगुप्त ने कहा है-

''मोक्षस्य नैव किंचिद् धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञान ग्रन्थिभिदा स्वशक्तयभिव्यक्ता मोक्ष:।।''[16]

इस प्रकार अपने स्वातन्त्र्योल्लास से वह परम शिव सतत सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह, निग्रह इन पंचकृत्यों में निरत रहता है।

इस दर्शन में कर्तृकर्मभाव ही कार्यकारणभाव है– ''स्वमते कर्तृकर्मभाव एव कार्यकारणभावः।''[17] कर्म कर्ता में ही पूर्णतः अभिन्न भाव से विश्रान्त रहता है। कर्ता की इच्छा का ज्ञानपूर्वक क्रियात्मक बाध्य आभासन ही कर्म कहा जा सकता है– ''कारणमपि कर्तर्येव विश्रान्तम्....... इति संविदात्मन्यवस्थितस्य चार्थस्य बहिरवभासनम्''[18] इस प्रकार कारण चाहे लौकिक हो या अलौकिक; कर्मरूपता में उसकी इच्छा ही प्रधान है। योगी अपनी इच्छा से निरूपादान ही घट निर्माण में समर्थ है और परमेश्वर अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से विश्व का उन्मीलन करता है। कारण बनने के लिए स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का होना आवश्यक है जो जड़ में कथमपि सम्भव नहीं है। साथ ही चेतन में इच्छा रहने मात्र से वह कारण नहीं बन सकता, क्योंकि इसके लिए क्रिया भी आवश्यक है।

क्रियाशक्ति से रहित चिन्मात्र इच्छा होने पर भी कुछ नहीं कर सकता। उस कर्ता को कारण नहीं माना जा सकता जिसमें कर्म करने की इच्छा और क्रिया की स्वतन्त्रता न हो। स्वातन्त्र्य ही तो कर्ता का गौरव एवं स्वरूप है। इस तथ्य को पाणिनि ने इन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना के बहुत पहले ही अपने सूत्र 'स्वतन्त्रः कर्ता'[19] में प्रतिष्ठापित कर दिया था। अभिनवगुप्त ने भी कहा है– ''अस्वतन्त्रस्य कर्तृत्व न हि जातूपपद्यते''[20]।

इस प्रकार चितिशक्ति से नित्यसम्पन्न कर्ता ही अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा विविध कार्यरूपों में आभासित होने में समर्थ है।[21] विविध कार्यरूपों में आभासन से कर्ता के एकत्व की हानि नहीं होती, इसे प्रतिबिम्बवाद अथवा दर्पण नगर न्याय के द्वारा समझाया जाता है। कारण और कार्य में कोई तात्त्विक भेद नहीं है, कार्य का अर्थ है– बाह्येन्द्रिय एवं अन्तरिन्द्रिय का विषय बनना–

''कार्यकारणालोके सान्तर्विपरिवर्तिनः।
उभयेन्द्रियवेद्यत्वं तस्य कस्यापिशक्तितः।।''[22]

इस दर्शन का परम वैशिष्ट्य यह है कि यह घटादि लौकिक कार्यो का भी कारण अथवा कर्ता परम शिव को ही मानता है। क्योंकि कुम्भकार में स्थित चेतना या संवित् वस्तुतः परा संवित ही है–

''कुम्भकारस्य या संविच्चक्रदण्डादियोजने।
शिव एव हि सा यस्मात्संविदः का विशिष्टता।।''[23]

इस प्रकार स्वतन्त्र शिव अपनी इच्छा से नियति दशा में कुम्भकार और मृदादि की परस्पर अपेक्षा से घटरूप कार्य उत्पन्न करता है, घटादि कर्म रूप में भी शिव ही आभासित होता है। अतः वही परम कारण है।[24]

इस दर्शन के अनुसार परमतत्त्व (परम शिव) स्वरूपतः अनिर्वचनीय है। इसे सामान्य ज्ञान अथवा तर्कबुद्धि द्वारा नहीं जाना जा सकता। परमशिव का ज्ञान आगम प्रमाण द्वारा ही हो सकता है जो कि उच्चतर ज्ञान की अभिव्यक्ति है।

तान्त्रिक परम्परा में परम तत्त्व को शक्तिरूप अथवा क्रियाशील माना गया है। परम चौतन्य को यहाँ ज्ञान एवं क्रिया दोनों रूप माना गया है। यहाँ चौतन्य निष्क्रिय नहीं वरन स्पन्दनशील है। उसकी स्पन्दनशीलता या क्रियात्मकता को शक्ति नाम से अभिहित किया गया है। चौतन्य तत्त्व या शिव वस्तुतः शिव एवं शक्ति ज्ञान एवं क्रिया, प्रकाश एवं विमर्श दोनों है।

इस दर्शन के अनुसार भी कर्म अपूर्णता का द्योतक है किन्तु इसके अनुसार स्पन्द या क्रिया का कर्म से मौलिक भेद है। शिव का स्वाभाविक क्रियारूप स्पन्द पूर्णता अथवा आनन्द का स्वाभाविक स्फुरण है। शिव में जो शक्तिरूपता है उसी से विश्व की रचना होती है। शिव सृष्टि–रचना करके भी सृष्टि से अछूता रहता है अर्थात् उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति में कोई कमी नहीं आती। सृष्टि करने के लिए शिव पर न तो कोई आन्तरिक बाध्यता है क्योंकि शिव पूर्ण है, इसमें कोई कमी नहीं है, जिसकी पूर्ति के लिए वह सृष्टि करे। सृष्टि करने के लिए शिव पर कोई बाह्य बाध्यता भी नहीं है क्योंकि शिव का कोई दूसरा विरोधी तत्त्व नहीं है। शिव ही एकमात्र परमतत्त्व है अतः सृष्टि क्रिया शिव की स्वाभाविक आनन्द की अभिव्यक्ति है।

शिव की जगत्कर्तृता–

तन्त्र दर्शन में जगत् को परमतत्त्व की ही अभिव्यक्ति माना गया है। जगत् तत्त्वतः शिव ही है। सृष्टि उसी का आत्म प्रसार है। उससे ही सभी पदार्थ आविर्भूत होते हैं तथा फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। सृष्टि शिव का उन्मीलन मात्र है जो उसकी इच्छा–शक्ति का ही प्रकटीकरण है। अपनी व्यक्तावस्था में भी जगत् शिव से भिन्न नहीं होता, इसकी प्रतीति मात्र भिन्न होती है। जगत् सदैव शिवमय बना रहता है। अपनी लीला के लिए परम शिव सृष्टि करता है और स्वयं को बन्धन में डालता है। सृष्टि करने में उसका कोई प्रयोजन निहित नहीं है। यह उसका स्वातन्त्र्य (स्वभाव) है।

इस विश्व के रचना में संयोजन वियोजन रूप प्रसार और संततिक्रम की चमत्कारातिशयदशा की क्रीडाशीलता में एक परमेश्वर ही इस विश्व का उल्लास करते हैं–

''तथा च तेषां हेतूनां संयोजनवियोजने।
नियते शिव एवैकः स्वतन्त्रः कर्तृतामियात्।।''[25]

आभासवाद–

शिव ही जगत् का एकमात्र कारण और कर्ता है। यह कार्य मात्र उसकी इच्छा से सम्पादित हो जाता है। जैसे कि योगी अपनी इच्छाशक्ति के बल से बिना किसी उपादान का अवलम्बन लिये मानसी सृष्टि कर लेता है–

चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीवः निरूपादानमर्थजातं प्रकाशयेत।।[26]

इस प्रकार के कारणत्व और कर्तृत्व को स्पष्ट करने के लिए शैवाचार्यो ने आभासवाद को स्वीकार किया है।

आभास महेश्वर की कल्पनाओं का बाह्य प्रकाशन मात्र है। आभास का अर्थ ईश्वर का किंचित प्रकाशित होना ही है। इस किंचित प्रकाशन में ही इस सम्पूर्ण विश्व के पदार्थ प्रकाशित हो उठते हैं। इस सृष्टि के लिए उसे किसी बाहरी उपादान या अन्य किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं होती। वह अपनी इच्छाशक्ति मात्र से ही ऐसा करने में समर्थ है। जो पदार्थ महेश्वर के ज्ञानस्वरूप हैं वे ही पदार्थ इस विश्वरूप में ज्ञेयरूप से प्रकट होते हैं। ये सभी ज्ञानरूप पदार्थ परमशिव में 'अहम्' के रूप में विश्रान्त रहते हैं और इच्छा से ही इदम् रूप से आभासित होते हैं। जैसे परमशिव नित्य ज्ञानस्वरूप और सत्य हैं, उसी प्रकार ये आभास भी सत्य हैं, मिथ्या नहीं। आभास परमशिव में नित्य रहते हुए भी उसके नित्य, शुद्ध, मुक्त स्वरूप में परिवर्तन नहीं ला सकते हैं।

परमतत्त्व की दृष्टि से कुछ भी भिन्न होकर भासित नहीं होता, जब उससे भिन्न कुछ है ही नहीं तो उससे भिन्न होकर भासित कैसे होगा। यदि यह जगत् भिन्न होकर भासित होता है, ऐसा माने तो अहम् सिद्धान्त ही खण्डित होता है। यदि कहें कि अभिन्न ही है तो वह कैसे है? क्योंकि वह तो सर्वत्र भिन्न–भिन्न रूप में दिखलाई पड़ता है। इसी भेद अभेद भूमिका को स्पष्ट करने के लिए त्रिक दर्शन में आभास की कल्पना की गई है।

यह जगत् अत्यन्त निर्मल परम भैरव की संवित् से अभिन्न होने पर भी एक दूसरे से तथा उससे भी भिन्न रूप में भासित होता है। स्वात्म व्योम में अनर्गल ईशान परम शिव ही इतनी बड़ी सृष्टि और संहार का प्रदर्शन करते हैं–

ततोऽसौ परमेशानः स्वात्मव्योमन्यनर्गलः।
इत्यतः सृष्टिसंहाराडम्बरस्य प्रदर्शकः।।[27]

इस दर्शन में परमतत्त्व को ही आत्मा माना है व आत्मा व शिव में अभेद है। आत्मा स्वयं प्रकाश रूप है। वह किसी दूसरे से भासित नहीं होता, अतः स्वछन्द है। अन्य सापेक्ष न होने के कारण स्वतन्त्र है। प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में समर्थ होने के कारण ही वह रत्नवत् भासमान है। प्रमाता प्रमेयमय समस्त भावसमूह रूप विश्व में भेदमय विकल्प का आभासन करता हुआ ही वह परमशिव अवस्थित रहता है। यह विश्वरूप प्रतिबिम्ब शिव से ही उदित हुआ है। उसी में प्रतिबिम्बित होता है, इसलिए यह जगत् शिव से अभिन्न ही है–

मत्तं एवोदितमिदं मय्येव प्रतिबिम्बितम्।
मदभिन्न जगच्चेति त्रिधोपायस्तु शाम्भवः।।[28]

शिव अपने प्रकाशरूप स्वभाव के उल्लास और चेतना से सदा संयुक्त होकर अविभाग रूप से समस्त विश्व को अभेद रूप से भासित करते हुए स्थित रहते हैं।

स्वातन्त्र्य शक्ति से युक्त शिव ही जगत् का कारण बनता है। परमशिव का यही स्वातन्त्र्य है कि वह अपने स्वयं को जानते हुए ही विश्व को सत् रूप में अवभासित करता है। प्रकृति के समान न तो जड़ वस्तु किसी का कारण हो सकती है और न ही ब्रह्म के समान चेतन अपितु चिति शक्ति से सम्पन्न कर्ता ही सृष्टि प्रक्रिया में प्रवृत्त होता है।

निष्कर्ष- इस प्रकार उपर्युक्त अद्वैत वेदान्त दर्शन पर आधारित चिन्तन का गहन अध्ययन करने पर यथार्थ सत् का वास्तविक ज्ञान होता होता है कि वह मूल तत्त्व निरन्तर अपने स्वरूप में बना रहता है। उसमें कोई विकृति आदि की सम्भावना भी कही या सोची नहीं जा सकती। वह सदैव चिरस्थायी आदि-अनन्त रूप में होता है जिसका अभाव नहीं हो सकता क्योंकि जिसका अभाव हो वह सत् हो ही नहीं सकता है। मनुष्य स्वयं के अज्ञानावरण के कारण अभावरूप में मानने लगता है। यह अज्ञानावरण विभिन्न संज्ञा से उपहित होता है। आवरण के हटने से यथार्थ स्वरूप के ज्ञात होने पर मनुष्य अपने वास्तविक स्वयं सत् स्वरूप हो जाता है। विभिन्न दार्शनिक चिन्तन परम्पराओं में इसका भी विविध नामकरण कर दिया जाता है परन्तु वह कोई पृथक् सत् नहीं है। वह समस्त ज्ञान का आदि है, अन्त है, वही यथार्थ सत् है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शास्त्री, पं. श्रीकृष्ण पन्त, ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, सम्वत् 1991
2. आचार्य बदरीनाथ शुक्ल, वेदान्तसार (सदानन्द), मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 2019
3. शास्त्री, डॉ. राकेश, चौखम्बा ओरियन्टिला, दिल्ली, प्रथम संस्करण (1 August 2024)
4. Mark Siderits & Shorya Katsura, Nagarjuna's Middle Way: Mulamadhyamakakarika (Classics Of Indian Buddhism), Wisdom Publications (11 June 2013)
5. सांस्कृतायन, राहुल, बौद्ध दर्शन, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, प्रथम, 2024
6. मिश्र, डॉ. पंकज कुमार, सर्वदर्शनसंग्रह एवं शंकरदर्शन, परिमल पब्लिकेशन प्रा.लि., 2016
7. गोविन्दसूरी, सर्वदर्शनसंग्रह (मध्वाचार्य), खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 2014
8. मिश्र परमहंस, तन्त्रालोक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000
9. द्विवेदी, डॉ. कमला, परमार्थसार, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी,1984
10. शास्त्री, डॉ. दयाशंकर, ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2001
11. द्विवेदी, डॉ. श्यामाकान्त, महार्थमञ्जरी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2008

सन्दर्भ-

1. ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य, 3/2/22
2. वेदान्तसार, 12
3. तैतिरीयोपनिषद् 2/7
4. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य 1/4/26
5. माध्यमिककारिका 15/10
6. माध्यमिककारिका, 18/9
7. त्रिंशिका, 25
8. मध्यान्तविभंग, 1/1
9. त्रिंशिका, 30
10. माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्ध दर्शन, श्लोक 14
11. माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्ध दर्शन, श्लोक 16
12. शिव दृष्टि, 3, 2-3
13. प्रत्यभिज्ञाहृदय, 2
14. तन्त्रालोक विवेक 5.8 पृ. 323
15. परमार्थसार 5
16. परमार्थसार, 60
17. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 2/4

18. तन्त्रालोक विवेक, 9/8
19. पाणिनि अष्टाध्यायी 1/4/54
20. तन्त्रालोक 9/9
21. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 2/4/19, परमार्थसार 12
22. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 2/4/4
23. तन्त्रालोक 9/36-37
24. तन्त्रालोक 9/7-8
25. तन्त्रालोक, 9/35
26. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, 1/5/7
27. तन्त्रालोक 3/3
28. महार्थमंजरी 59

प्रेम दर्शन-साहित्य के आलोक से'

डॉ० रोशनी मिश्रा

दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ. ग.)

सारांश

जीवन क्या है, उससे पूछो जो जिंदगी जीता है, ईश्वर क्या है? उससे पूछो जो उसकी पूजा करता है। प्रेम क्या है, इसे तो वह भी नहीं बता सकता जो प्रेम करता है। यदि यह एक संतोष है, तो प्रिय को पूरी तरह पाकर भी कहाँ मिलता है? यदि यह असंतोष है, तो प्रिय को पूरी तरह त्याग कर भी कहाँ मिलता है? शायद ये संतोष-असंतोष के बीच झुलती कोई फूलों भरी डाल है, तो कितना पाना, कितना त्यागना इसके बीच का फासला तय करने वाली अमूर्त रागात्मक शक्ति को बनाये रखना ही शायद प्रेम हो। या वहाँ प्रेम हो जहाँ स्मृति और विस्मृति के अंक इतने गुथें हो कि पहचान में आकर भी पहचान से परे हो। संसार में संतोषपूर्वक रहने का, ईश्वर को पाने का, उस तक पहुँचने का बस एक ही रास्ता है- और वह है प्रेम। प्रेम ही साधना है, प्रेम ही आराधना है, प्रेम ही मार्ग है और प्रेम ही गंतव्य।

की वर्ड - प्रेम साधना प्रेम आराधना।

चलो ऐसा सजदा करें कि सब दीवारें गूम हो जाएं।
जहाँ मस्ती अपने आप में ऐसी ढ़ले कि खुदी गूम हो जाएँ।।
(सूफी नारी राबिया)

अपने बच्चे से माँ का प्रेम इस पृथ्वी पर सबसे अधिक कुदरती है। यह नैसर्गिक और अनादि नाता है। यही रिश्ता बच्चे को उस आदिम और बेशर्त समर्पण का भी पहला परिचय देता है, जो निरंतर अपने शिशु के लिए सजग और ब्याकुल रहता आया है। इसमें अस्तित्व गत अभिन्नता से जन्मा प्यार छलकता है, जो जीवन को अपनी बाहों में कोमलता और गर्मजोशी से सहेजता है। जन्म के बाद सिर्फ माँ के दूध से ही शिशु का विकास नहीं होता। शिशु के विकास के लिए जो सबसे आवश्यक तत्व है, वह है माँ का स्नेह, माँ का अपनत्व और उसकी वह तत्परता जो शिशु को भरोसा दिलाती है, कि वह अकेला नहीं है, उसके साथ कोई और भी है, जो सिर्फ उसी के लिए है। माँ से मिला वात्सल्य परिवार के अन्य लोगों के लाड़ दुलार से विस्तार पाता हैं यह स्नेह और लाड़ दुलार प्रेम के ही प्रारंभिक रूप हैं। प्रेम मनुष्य की जीवनी शक्ति है, मनुष्य बने रहने की पहली षर्त है। यही सबमें दिखाई देने वाला ईश्वरीय भाव हैं, जो वसुधैव कुटुम्बकम का मूल मंत्र है।

प्रेम मनुष्य को विविध परिस्थितियों के लिए तैयार करता है। माँ का प्रेम शिशु को परिवार से जोड़ता है, परिजन से मिला प्रेम बच्चे को समाज से जोड़ता है, और समाज से मिला प्रेम व्यक्ति को देष से जोड़ता है। स्त्री पुरूष के बीच का प्रेम भी इसी की कड़ी है। यह प्रेम का सबसे अद्भूत रूप है। प्रेम के बाकी स्वरूप इसी केन्द्रीय लौ के इर्द-गिर्द घूते हैं। परमात्मा से आत्मा के अंतरंग प्रेभ की अभिव्यक्ति का माध्यम भी यह स्त्री-पुरूष भाव ही है। प्यार एक ऐसा खूबसूरत, सुकोमल और रूहानी भाव है, इसके रेश्मी एहसास को शिद्दत से महसूस करने वाला ही जान सकता है। यूँ ही दिल भर आए, दिल उदास हो उठे या यूँ ही दिल बेइंतहाँ खुश हो उठे। आस-पास सबकुछ महका-महका सा लगे। कोई रह रह के याद आए तो समझो ये प्यार है।

याद आए तो समझो ये प्यार है। बहुत गहरा दिल पर रूह की परतों में रचा बसा अलौकिक प्यार। प्रेम तभी रूहानी होता है, जब वह पूर्व निस्वार्थ हो। आत्मिक तल तक पहुँचा प्रेम ही हमारी ऊर्जा बन हममे समा जाता है। यही तो वो अजर अमर प्रेम है,

जो स्थायी होता है। ऐसा प्रेम शीश दिए बिना नहीं मिलता। इसके लिए तन-मन ही नहीं बल्कि समूचा अस्तित्व का समर्पण आवश्यक होता है।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।

राजा परजा जेहि रूचौ सीस देय लै जाय।। कबीर

इस प्रेम के न खोने का, न छीनने का और न मरने का भय होता है। असीम आनंदमय होता है यह प्रेम का ऐसा मानसरोवर जिसमें स्नान करने वाला तर जाता है। निदा फाजली के शब्दों में-

होश वालों को ख़बर क्या बेखूदी क्या चीज है?

इश्क कीजे फिर समझिए ज़िंदगी क्या चीज है? निदा फाजली

सच मानिए प्यार में जब तक भावनात्मक और आत्मिक स्पर्श न हो तन तक वह देह से जुड़ा सिर्फ एक 'स्थूल' भाव है। ये ही प्यार उस दशा में दिव्य सौंदर्य से भर उठता है। बेइंतहा मनभावन हो जाता है, जब उसमें हमारा अंतर्मन, हमारी आत्मा घुली मिली होती है।

प्रेम प्रेम सब को कहत प्रेम न जानत कोई

जो जन जों तो मरै जगत क्यों रोई रसखान

प्रेम वास्तव में क्या है? ये कोई नहीं जानता, जो जान लेता है, वो किसी भी हानि पर रोता नहीं है। जगत में ही जगत है।

मैंने जलकर जान लिया, अंतिम रहस्य पहचान लिया

मैंने आहूति बनकर देखा, यह प्रेम यश भी ज्वाला है। अज्ञेय

प्रेम अहंकार शुन्य स्थिति में ही संभव है। क्रोध अहंकार का पर्याय है। प्रेम हृदय में रहता है। अहंकार बुद्धि में। स्वभाव से दोनों ही विरोधाभासी है। प्रेम में व्यक्ति स्वयं को कभी नहीं देखा। न ही प्रेमी में कोई बुराई ही दिखाई देती है। प्रेमचंद के उपन्यास गोदान भी मालती का कथन- इस प्रकार है- ''मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है ....। मैं प्रेम को संदेह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं आत्मा की वस्तु है। वह संपूर्ण आत्म समर्पण है। उसके मंदिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।'' (गोदान-प्रेमचंद)

सच्चा प्रेम वही है जिसकी

तृप्ति आत्म बल पर हो निर्भर

त्याग बिना निश्प्राण प्रेम है,

करो प्रेम पर प्राण निछावर (रामनरेश त्रिपाठी)

प्यार, प्रतिष्ठा और परवाह ये तीन 'प' जिससे चाहोगे उससे नहीं मिलती। इसका ये कतई मतलब नहीं कि प्रेम अपना रास्ता ही बदल दें। निदा फाजली के शब्दों में -

तेरे जहान में ऐसा नहीं कि प्यार न हो,

जहाँ उम्मीद हो वहाँ हीं मिलता। (निदा फाजली)

पारो और देवदास के प्यार का हर पहलु कितना रूहानी और रूमानी है। दोनों कभी नहीं मिल पाते। उनके लिए दूरी एक दूसरे के लिए तड़फ ही उनका गहरा प्यार बनता चला जाता है। ये तड़फ ही उन्हें एकात्म कर देती है। उनकी साँसे रोम रोम एक दूसरे में समाहित है। गजब है मुहब्बत।

दिल में न हो जुर्रत, तो मुहब्बत नहीं मिलती।

खैरात में इतनी बड़ी, दौलत नहीं मिलती।। (निदा फाजली)

हमसे से हर किसी के जेहन में गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी अब तक है। किशोर वय का वो मासूम प्रेम- 'तेरी कुड़माई हो गई' और 'देखते नहीं ये रेशमी सालू' - ये संवाद भला किसे याद न होगा। यही प्रेम सुबेदारनी और लहना सिंह के फर्ज

और त्याग की अनुपम मिसाल बनती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इस संदर्भ में लिखा है- 'घटना उसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है।

सृश्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग।
राग रंजित चंद्रिका थी, उड़ा सुमन पराग।
और हँसना था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ।
चले दोनों, स्वप्न पथ में स्नेह संबल साथ। (कामायनी प्रसाद)

प्यार आत्मा का मिलन होता है, शरीर तो बेमानी हो जाता है, इमरोज की मुहब्बत ऐसी कि अंतिम दिनों अमृता से अगले जन्म का वादा ले लिया। सच इमरोज आने वाली पीढ़ी के लिए मिसाल होंगे। इन जैसे लोग रोज-रोज नहीं जन्म लेते।

संसार के समस्त रिश्तों का बंधन प्रेम ही है। इस प्रेम को केवल प्रेम की ही दरकार होती है और चाहिए तन्मयता आत्मविस्मृति की स्थिति। कबीर के अनुसार -

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि है, तब मैं नाहीं
प्रेम गली अति सांकरी जामे दोउ न समाही। कबीर

''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। भक्ति का स्थान मानव हृदय है। वहीं श्रद्धा और प्रेम के योग से उसका प्रादुर्भाव होता है। जहाँ उपासना है वहीं प्रेम है, भक्ति के शिखर पर ज्ञान है, और ज्ञान के शिखर पर प्रेम है। (चिंतामणी भागा शुक्ल)

हमारा यह समर्पण, प्रेम, निष्ठा और भक्ति ही निर्मल निराकार ब्रहम को भी सगुण साकार रूप देकर सक्रिय बना देता है।-

अग जगमय सब रहित विरागी।
प्रेम से प्रभु प्रगटई जिमि आगी।।
जाके हृदय भगति जसि प्रीति।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेही रीति।। तुलसीदास

ये तो भक्त के प्रेम का ही परिणाम है कि भक्तन जैसा चाहता है, भक्त वत्सल भगवान को भी वैसा होना पड़ता है।

वास्तव में प्यार एक शक्तिशाली भाव है, धैर्य और आत्म समर्पण इसे परवान चढ़ाते हैं, देह के तल पर प्यार तभी संपूर्ण होता है, जब उसमें आत्मा पसरी होती है। ये बात भी सच है - आकर्षण, प्यार, दुलार जब शरीर के साथ है। नखरे शरीर ही करता है, शरीर ही उठाता है, पर करवाती आत्मा है। आत्मा ही तो शरीर की ऊर्जा है। बेशक रिश्ते सीमेंट और ईटों की मजबूत दीवारों में कैद होकर नहीं पनपते उन्हें ठोस धरातल तो चाहिए। जीने के लिए खुली बाहों का आकाश तो चाहिए। जी हाँ इसीलिए प्यार है, तो तकरार है, रूठना-मनाना, नोंक-झोंक भी इसी का हिस्सा है।

तुम्ही से खफा हो, तुम्ही को मनाए
न तुम बाज आए न हम बाज आए। अज्ञात

प्यार के इस रेशमी ताने बाने में कहीं गांठ न हो उलझन न हो-

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टुटे से फिर ना जुड़े जुड़े गाँठ पड़ जाय। रहीम
सच पूछा जाय तो- 'जो तुम तोड़ो पिया, मैं नाहीं तोड़ूँ
तोसो प्रीत छोड़ कृष्णा कासे प्रीत जोड़ूँ। मीराबाई

इस हद तक पहुँचा प्रेम - कबीर के प्रेम की तरह हदे छोड़ बेहद हुआ करता है। ऐसा ही प्रेम नफरत की मुहब्बत ही नहीं बल्कि इबादत में तब्दिल कर देता है। प्यार, इश्क, मुहब्बत का रास्ता तो सीधा है- अति सुधो सनेहो को माया है - पर निर्वाह कठिन है- सिर का सौदा है-

कबीरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहीं

सीस उतारै भुई धरै तो बैठे घर माही। कबीर

हाँ स्व का एहसास बाकी हो वहाँ फासला भी बाकी है इसलिए मैं को हम में तब्दील कर दें। बिना साधन के दिलों के फासले तय कर ले, क्योंकि प्रेम में हासिल कुछ नहीं समर्पित सब कुछ होता है। यहाँ जबरदस्ती मजबुरी, लाचारी, बेबसी का कोई काम नहीं। सब कुछ अपने मन से अपनी इच्छा से होता है।

यूँ तो हम आगाह थे सैय्याद

के तदबीर से

हम असीरे-दामे-गुल अपनी

खुषी से हो गए। ('सागर' निजामी)

प्रेम और सब्र का चोली दामन का साथ है- इंतहा होते तक इंतजार सब कुछ भूला देने वाला खुमार यही तो है प्यार। इस प्यार को फिर मिलना ही मिलना है - इसमें कोई संदेह नहीं।

जेहि के जेहि पर सहज सनेहु।

तो तेहि मिलहि न कछु संदेहु तुलसीदास

सहज स्नेह, सहज प्रेम यानी जो हमारे सहज स्वभाव में शामिल हो जैसे पलके झपकाना हृदय का धड़कना, साँसों का आना जाना। इतना ही सहज प्रेम हो। तुलसी दास (रामचरित मानस) प्रेम की बात राधा की चाहत और मीरा के समर्पण बिन अधुरी ही रह जायेगी। राधा के साथ कृष्ण का पूर्व संयोग है- इतना कि कृष्ण के अंकुर द्वारा मथुरा ले जाये जाने पर राधा की स्थिति-माधव-माधव रटत राधा भर ली मधाई। कहने का तात्पर्य-तन से दूर रहने पर भी मन से एक होने का एहसास। आत्मविस्मृती का ये भाव भला और कहाँ मिल सकता है। वहीं मीरा के समर्पण में सर्वस्व झलकता है

मैं तो सांवरे क रंग राची

साजि श्रृंगार पग घुँघरू लोक लाज तजि नाची। मीराबाई

भारत में सूफी संतों की समृद्ध परंपरा है। गंगा जमुनी संस्कृति के इस देश में सर्वधर्म समभाव की यह अनुठी मिसाल पेश करता रहा है। सूफी प्रेम का मार्ग है। यह मनुष्य की आंतरिक यात्रा को प्रकट करने वाली जीवन शैली है। सूफियत का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है- परमात्मा से एकांतिक प्रेम। जहाँ विरह ही विरह है।

मिलन और विरह - दोनों ही अंतःकरण की वृत्ति विशेष है। विरह चाहे आत्मा से परमात्मा का हो या प्रिय से प्रिया का। उसकी पीड़ा में उसके मिलन की उत्कंठा में, निरंतर ही उठने वाली उसके यादों की टीस में। कभी प्रिय पर मानकर उपालंभ देने में जो आनंद मिलता है, उसे कहना अनिर्वचनीय है। इस विरह जनित पीड़ा से उमड़ आई अश्रु धारा हृदय के सारे विकारों को धो डालती है। धीरे-धीरे सुलगने वाली विरह की अगन अपने को जीवित रखने के लिए यादों की एक-एक कड़ियाँ स्वयं ही चून लेती हैं। इससे जो धुआँ उठता है- वह मेरे तेरे का भेद मिटा देता है इस स्थिति में आके विरह की जलन और भी मीठी लगने लगती है।

वास्तव में विरह सच्चे प्यार की कसौटी है। विरह जनित पीड़ा का ऐहसास प्रेम की एक निष्ठता को दर्शाता है। इस विरह से त्राण पाने के लिए विरही जब अपनी वेदना को विश्व-वेदना में, व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना को लोकमंगल में समाहित कर देता है, तब उसका परिणाम ओर भी सुखद होता है। इससे विरही के जीवन का अभाव भी भावों से भर जाता है, और देश समाज को भी इसके मंगलकारी फल प्राप्त होते है।

सार-बस इतना ही है -

हर पल में प्यार है।

हर लम्हें में खुषी है

खो दो तो यादें हैं,
जी लो तो जिंदगी है।

इसलिए जिंदगी के हल पल को खुशी से जीयो।

संदर्भ सूची -

1 सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यान अज्ञेय - सुनहरे शैवाल अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. 1966 पृष्ठ 102
2 प्रेमचंद - गोदान रतना सागर प्रा.लि. प्रकाशन दिल्ली 2000 पृष्ठ 209
3 रामनरेश त्रिपाठी काव्य संग्रह स्वप्न हिन्दी मंदिर प्रकाशन प्रयाग 1929 पृष्ठ 11
4 निदा फाजली साभार कविताकेश
5 जयशंकर प्रसाद कामायानी वासना सर्ग राजपाल प्रकाशन 2013 पृष्ठ 13
6 गो. तुलसी दास रामचरित मानस गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन 2011 पृष्ठ 19

गृहस्थाश्रम में नारी का महत्व

डॉ० प्रेरणा माथुर

सहायक आचार्य, प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही पत्नी गृहस्थ का मूल रही है। शतपथ के अनुसार पत्नी, पति का आधा अंग है। प्रचलित शब्द अर्धांगिनी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है, अत: जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता और सन्तानोत्पति नहीं करता तब तक उसे पूर्ण नहीं माना जाता क्योंकि पत्नी ही घर है। कहा भी गया है कि 'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी-ग्रहमुच्यते'। महाभारत में पत्नी के विषय में विशेष रूप से कहा गया है। उसके बिना घर, घर नहीं, क्योंकि गृहिणी ही घर है, गृहिणीहीन गृह वन ही है। अगर पेड़ के नीचे भी यदि पत्नी साथ हो तो वह घर है, अन्यथा पत्नी के बिना महल भी जंगल के समान प्रतीत होता है। क्योंकि घर की शोभा स्त्री से ही होती है, वही घर को बनाकर रखती है। घर को सुव्यवस्थित ढंग से चलाती है। संसार में भार्या के समान कोई बन्धु, आश्रम या धर्म कार्य में सहायक नहीं है, क्योंकि पत्नी सुख और दु:ख दोनों में समान रूप से पति के साथ रहती है। प्राचीनकाल से ही यह माना जाता है कि मनुष्य तीन ऋणों के साथ जन्म लेता है ऋषि-ऋण, देव-ऋण एवं पितृ-ऋण। इन ऋणों से ब्रह्मचर्य द्वारा, यज्ञ करके एवं सन्तानोत्पादन करके उऋण होता है जो कि स्त्री की सहायता से संभव होता है। पत्नी इन ऋणों में से अपने पति को दो ऋणों से मुक्त करती है, यज्ञादि में साथ देकर देवऋण से, पुत्रोत्पत्ति करके पितृऋण से। इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि सन्तति, अग्निहोत्र आदि धार्मिक कार्य, पति की सेवा, पितरों का और अपना स्वर्ग साधन करना पत्नी के हाथ में है। सन्तान का पालन-पोषण, अतिथि सत्कार और गृहकार्य ये सभी स्त्री के द्वारा ही किये जाते हैं। इस कारण स्त्री घर का श्रृंगार होती है। घर की लक्ष्मी और स्त्री दोनों बराबर हैं इनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। क्योंकि स्त्री को घर की लक्ष्मी माना जाता है। इसलिए पति को पत्नी को हर तरह से प्रसन्न रखना चाहिये और उसकी इच्छाओं का ध्यान रखना चाहिये। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता' जिस घर में नारी का सम्मान होता है वहां सुख समृद्धि निवास करते हैं। जिस घर में स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है, उस घर में सदा कल्याण रहता है।

मत्स्यपुराण में लिखा गया है कि यदि स्त्री प्रसन्न रहती है तो पूरा घर खुशहाल रहता है यदि स्त्री खिन्न मन से रहती है तो पूरा घर उजड़ा हुआ प्रतीत होता है। अत: पति को स्त्री को हर हाल में प्रसन्न रखना चाहिये। पत्नी के भरण-पोषण के साथ उसकी रक्षा करना भी पति का ही उत्तरदायित्व है।[1]

स्त्री धर्म और नियम

नारदजी स्त्रियों के धर्म और नियम के विषय में युधिष्ठिर जी को बताते हैं कि- पति की सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखना और सर्वदा पति के नियमों की रक्षा करना-ये पति को ही ईश्वर मानने वाली पतिव्रता स्त्रियों के धर्म हैं। साध्वी स्त्री को चाहिये कि घर को साफ-सुथरा रखे और अपने शरीर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत रखे। सामग्रियों को साफ करके रखे। अपने पति की सभी इच्छाओं को समय पर पूरा करे। विनय, इंद्रिय संयम, सत्य एवं प्रिय वचनों से पतिदेव की सेवा करे। समय के अनुसार जो कुछ मिल जाये, उसी में सन्तुष्ट रहे, और किसी भी वस्तु के लिए लालच नहीं करें। सभी कार्यो में चतुर एवं धर्मज्ञ हो। सत्य और प्रिय बोले। अपने कर्तव्यों में सावधान रहे। पवित्रता और प्रेम से परिपूर्ण रहकर, यदि पति पतित न हो तो उसका सहवास करे। जो लक्ष्मी के समान पतिपरायणा होकर अपने पति की उसे साक्षात भगवान का रुप समझ कर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोक में भगवत्सारूप्य को प्राप्त होते हैं और यह लक्ष्मीजी के समान आनन्दित होती है। इस प्रकार ये स्त्री के धर्म बताये गये है, क्योकि एक स्त्री ही पूरे घर को सुव्यवस्थित ढंग से चलाती है। एक अच्छी स्त्री ही ये सब कर्म करती है, इसलिये स्त्री के बिना घर-घर नहीं कहलाता है।

यथा

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता ।

तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ।। 25 ।।

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ।

स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृ टपरिच्छदा ।। 26 ।।

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।

वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ।। 27।।

संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ।

अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ।। 28 ।।

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ।

हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ।। 29।।[2]

श्रीमैत्रेयजी विदुरजी को देवहूति के पत्नी धर्म के विषय में बताते हैं कि–

जब देवहूति के माता–पिता लौट गये तब वह अपने पति कर्दमजी की सेवा में लग गयी। जैसे पार्वतीजी शंकरजी की सेवा करती हैं वैसे ही देवहूति कर्दमजी की परिचर्या करने लगीं। देवहूति ने काम–वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मद का त्याग करके बड़ी सावधानी और लगन के साथ अपने पति की सेवा की, उन्होंने विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुरभाषणादि गुणों से अपने पति को संतुष्ट कर लिया। देवहूति अपने पति को भगवान् से भी बढ़कर मानती थी, इसलिए उनकी सेवा में लगी रहती थी। जैसे–

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ।

नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ।। 1 ।।

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च।

सुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ।। 2।।

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।

अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ।। 3 ।।

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ।

दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ।। 4।।[3]

जब कर्दमजी ने देखा कि देवहूति तो हमारी बहुत सेवा कर रही है तब उनके हृदय में स्वयं दया का उदय हुआ और वे बड़े प्रेम से बोले कि देवी मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुमने अपने शरीर की परवाह किये बिना मेरी सेवा की है इसलिए मुझे मेरी तपस्या, समाधि, विद्या एवं आत्मयोग से भगवान् का जो अनुग्रह प्राप्त हुआ है, उसकी भागीदार तुम हो जाओ। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ उसके द्वारा तुम उन्हें देखो। स्त्री अपने मन से गृहकार्य करती है। पति के लिये वह अपना सब कुछ त्याग देती है इसलिए पति को भी उसकी इच्छाओं का ध्यान रखना चाहिये। पति के अच्छे कार्यों में पत्नी–पति की भागीदार होती है क्योंकि उसकी सहायता से ही उसे सफलता प्राप्त होती है। जिससे पुरुष जीवन में आगे बढ़ता है।

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः

शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।

यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो

नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ।। 6।।[4]

सूतजी शौनकजी को द्रोपदी की महानता के विषय में बताते हैं कि जब द्रोपदी ने देखा कि गुरुपुत्र अश्वत्थामा को बांधकर लाया जा रहा है, जिसका मुख निन्दित कर्म के कारण पहले से ही झुका हुआ है, तो उससे सहन नहीं हुआ। उसने कहा कि यह हमारा

गुरुपुत्र है। इसकी माता इसी के कारण सती नहीं हुई है। अपने बच्चों के वियोग में जैसा दुख हमें हो रहा है, वैसा ही दुःख इसके मरने पर इसकी माता को होगा। उन्होंने अर्जुन से कहा कि ये ब्राह्मण तो हमारे पूजनीय हैं। जिस गुरुवंश की नित्य पूजा और वन्दना करनी चाहिये, उसी को व्यथा पहुँचाना धर्म के विरुद्ध होगा। अतः इसे छोड़ दो इस प्रकार एक स्त्री विपत्ति के समय भी अपना धैर्य नहीं खोती और अपने पति को धर्म के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करने देती है। उसके सुख-दुःख में उसके साथ रहती है। जैसे-

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।

निरीक्ष्य कृ णापकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ।। 42 ।।

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती ।

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।। 43 ।।

तद धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ।

वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्यमभीक्ष्णशः ।। 46 ।।[5]

स्त्री कर्त्तव्य

श्रीकृष्ण जी के विदेश से आने पर रानियों ने जिन व्रत और नियमों का त्याग किया उसका वर्णन इस प्रकार है-अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण को बहुत दिनों के बाद घर आया देखकर रानियों के हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने केवल आसन को ही नही, बल्कि उन नियमों को भी त्याग दिया, जिन्हे उन्होने पति के विदेश जाने पर ग्रहण किया था। उस समय उनके मुख और नेत्रों में लज्जा छा गयी।

यहाँ पर यह बताया गया है कि पति के विदेश चले जाने पर स्त्री को विशेष नियमों का पालन करना चाहिये जो उसके कर्त्तव्य पालन में सहायक होते हैं।[6]

जिस स्त्री का पति विदेश गया हो, उसे इन नियमों का पालन करना चाहिए।

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् ।

हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ।। (याज्ञवल्क्यस्मृति)

जिसका पति विदेश गया हो, उस स्त्री को खेल-कूद, श्रृंगार, समाजिक उत्सवों में भाग लेना, हँसी त्याग देना चाहिए।

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ।

उत्तस्थुरात् सहसाऽऽसनाशयात् साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनानना ।। 31।।[6]

श्री मैत्रेयजी विदुरजी को बताते हैं कि किस प्रकार भगवान् शंकर के मना करने पर पार्वतीजी अपने पिता के घर गई और वहाँ अपने पति का अपमान देखकर अपने शरीर का त्याग कर दिया।

जब पार्वतीजी को पता चला कि उसके पिता ने यज्ञ का आयोजन किया है तो उन्होंने भी जाने के लिये जिद की। भगवान् शंकर के मना किये जाने पर वह नाराज हो गई। अपनी इच्छा पूरी न होने के कारण वे रोने लगी। जिस पति की सेवा परमेश्वर बुद्धि से करनी चाहिये, उससे अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई तो 'प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथु' (2) उनको ऐसे देखने लगी, जैसे भस्म कर देगी। शोक और क्रोध ने उनके चित्त को बेचौन कर दिया तथा स्त्री स्वभाव के कारण उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी। भगवान् शंकर को छोड़कर अपने मायके चल पड़ी। उनको अकेली जाते देखकर भगवान् के हजारों सेवक साथ चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर सर्वलोकेश्वरी देवी सती का यज्ञमण्डप में तो अनादर हुआ ही था, उन्होंने यह भी देखा कि उस यज्ञ में भगवान् शंकर के लिये कोई भाग नहीं दिया गया है और पिता दक्ष उनका बड़ा अपमान कर रहे हैं। इससे उन्हें बहुत क्रोध हुआ, ऐसा जान पड़ता था मानो वे अपने रोष से सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर देंगी।

पार्वतीजी ने अपने पिता से कहा कि आपने मेरे पति का अपरमान किया है। अतः आपके शरीर से उत्पन्न इस निन्दनीय देह को रखकर मुझे क्या करना है। आप जैसे दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मुझे लज्जा आती है। जो महापुरुषों का अपराध करता है, उससे होने वाले जन्म को भी धिक्कार है। भगवान् शंकर के द्वारा आपके साथ मेरा सम्बन्ध दर्शाते हुए मुझे हँसी में 'दाक्षायणी'

(दक्षकुमारी) के नाम से बुलाये जाने पर मुझे बड़ी ही लज्जा और खेद होगा। इसलिये उसके पहले ही मैं आपके अंग से उत्पन्न इस शवतुल्य शरीर को त्याग दूँगी।

इस प्रकार एक स्त्री त्याग की मूर्ति होती है। यह अपने पति के मान-सम्मान के लिये अपने भाई-बन्धु, माता-पिता सबका त्याग कर देती है। अगर पति का अपमान हो यहाँ तक कि अपना शरीर भी त्याग देती है। वह पति के अपमान को अपना अपमान समझती है। इसलिए पति को भी उसकी इच्छाओं का ध्यान रखना चाहिए। जैसे

ततो विनि:श्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।
पित्तौरगात्स्नैणविमूढ़धीर्गृहान् प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रिय: ।। ३ ।।
तामन्वगच्छन् द्रुतविक्रमां सती-मेकां त्रिनेत्रानुचरा: सहस्त्रश: ।
सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादय: पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथा: ।। 4।।
नैतेन देहेन हरे कृतागसो दहोद्‌भवेनालमलं कुजन्मना ।
व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्‌गत-स्तज्जन्म धिग् यो महतामवद्यकृत् ।। २२ ।।
गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषभध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मना: ।
व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्धयहं व्युत्स्त्रक्ष्य एतत्कुणपं त्वदङ्‌गजम् ।। 25।।[7]

राजा पृथु प्रजा को भूख से पीड़ित देखकर जब पृथ्वी को मारने के लिये धनुष-बाण उठाते हैं तो पृथ्वी राजा पृथु से कहती है कि प्रभु आप तो शरणागतवत्सल हैं, प्राणियों की रक्षा करना आपका धर्म है। फिर मैं तो स्त्री हूँ, अत्यन्त दीन और निरपराध हूँ। आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं? यदि स्त्री से कोई अपराध हो जाये तब भी लोग उस पर प्रहार करना पसन्द नहीं करते। आपके द्वारा ऐसा किया जाना धर्म के विरुद्ध होगा। बड़े से बड़ा अपराध करने पर भी स्त्री जाति दण्ड की अधिकारिणी नहीं होती है। यथा-

स त्वं जिघांससे कस्माहीनामकृतकिल्विषाम् ।
अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मत: ।। 19।।
प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृताग: स्वपि जन्तव: ।
किमुत त्वद्विधा राजन् करुणा दीनवत्सला: ।। 20[8]*।।*

कश्यपजी अपनी पत्नी दिति से कहते हैं कि-

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम्
मानस: सर्वभूतानां वासुदेव: श्रिय: पति: ।। 33।।
स एव देवतालिङ्‌गैर्नामरूपविकल्पितै: ।
इज्यते भगवान् पुम्भि: स्त्राभिश्च पतिरूपधृक् ।। 34 ।।
तस्मात्पतिव्रता नार्य: श्रेयस्कामा: सुमध्यमे ।
यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ।। 35 ।।
सोऽहं त्वयार्थितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तित: ।
तत्ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ।। 36।।[9]

अर्थात् शास्त्रों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि पति ही स्त्रियों का परमाराध्य इष्टदेव है। वे दिति से कहते हैं कि भगवान् वासुदेव ही समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं। विभिन्न देवताओं के रुप मे नाम और रुप के भेद से उन्ही की कल्पना हुई है। सभी पुरुष चाहे किसी भी देवता की उपासन करे-उन्ही की उपासना करते हैं। ठीक वैसे ही स्त्रियों के लिये भगवान् ने पति का रुप धारण किया है। वे उनकी उसी रूप में पूजा करती हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाली स्त्रियाँ पूरे तन-मन से अपने पति की ही पूजा करती हैं; क्योंकि पतिदेव ही उनके परम प्रियतम आत्मा और ईश्वर हैं। कल्याणि! तुमने बड़े प्रेमभाव और भक्ति से मेरी वैसी ही पूजा की है। अब मैं तुम्हारी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा गृहस्थियों के जीवन में ऐसा होना अत्यन्त दुर्लभ है।

स्त्री अपने पति को भगवान् रूप में समझकर तन-मन से उनकी सेवा करती है इसलिए पति को भी चाहिए कि वह उसकी सभी इच्छाओं को पूरा करे।

दिति के द्वारा आग्रह किये जाने पर उसका सम्मान करते हुए कश्यप जी ने कहा कि प्रिये! तुम्हारी इच्छा तो मेरे द्वारा अवश्य पूर्ण की जानी चाहिये क्योंकि पत्नी से ही धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी के सहारे ही मनुष्य दुःखरूपी समुद्र को पार कर लेता है। पत्नी ही गृहस्थ व्यक्ति के कर्त्तव्य पालन में सहायक होती है। पत्नी-पति के लिए वज्र है, कवच है। पतिव्रता स्त्री को तो त्रिविध पुरुषार्थ की कामना वाले पुरुष का आधा अंग माना गया है। उस पर अपनी गृहस्थी का भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता है। इन्द्रियरूप शत्रु पर अन्य आश्रमवालों को विजय प्राप्त करना कठिन है, लेकिन गृहस्थाश्रमी अपनी विवाहिता पत्नी की सहायता से उस पर आसानी से विजय प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार जैसे किले का स्वामी सुगमता से ही लूटने वालों को अपने अधीन कर लेता है। हम तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकते।

स्त्री के द्वारा ही तीन प्रकार के धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। स्त्री ही गृहस्थी का पूर्ण कार्य भार सँभालती है जिससे पुरुष निश्चिन्त होकर अतिथि-सत्कार, साधु-सेवा आदि कर सकता है। ये सब करने से ही तो हमें मोक्ष की प्राप्ति होती है। पत्नी की सहायता से ही पति सभी सुख-दुःख को सहन करता है। इसलिये स्त्री के इन सभी उपकारों का बदला पुरुष कभी नहीं चुका सकता है। 'अदितिं दितिं च'- इन्हीं अदिति को देवताओं की और दिति को दैत्यों की माता कहा गया है। ये सर्वशक्तिमति, विश्वहितैषिणी, सर्वग्राहिणी और स्वाधीन मानी गयी हैं। जैसे-

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ।
तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ।। 16।।
सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ।। 17 ।।
यामाहुरात्मनो हर्ध श्रेयस्कामस्य मानिनि ।
यत्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ।। 18।।
यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ।
वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यया ।। 19 ।।
न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरी ।
अप्यायुषा वा कात्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ।। 20।।[10]

श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित को बताते हैं कि जब अदिति दुःख में डूबी हुई थी, तब कश्यप ऋषि घूमते हुए अदिति के आश्रम पर आये। वहाँ पर उन्होंने देखा कि न सुख-शान्ति है और न किसी प्रकार का उत्साह या सजावट ही है। उन्होंने अपनी दुःखी पत्नी अदिति से पूछा कि तुम्हारे घर में कुशल तो है न, तुम्हारे धर्म व्यवहार में कमी तो नहीं हुई है। क्या अतिथि सेवा नहीं हुई है? ब्राह्मण के आदर में कोई कमी आ गयी? काल के कराल गाल में पड़े हुए लोगों का कुछ अमंगल तो नहीं हो रहा है। प्रिये! गृहस्थाश्रम तो, जो लोग योग नहीं कर सकते उन्हें भी योग का फल देने वाला है। इस गृहस्थाश्रम में रहकर धर्म, अर्थ और काम के सेवन में किसी प्रकार का विघ्न तो नहीं आ रहा है। घर में स्त्री का प्रसन्न रहना मंगल का प्रतीक होता है। यदि स्त्री प्रसन्न रहती है तो सब शुभ होता है। यथा-

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो ययान्यायमिदमाह कुरुद्वह।। 3।।
अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽऽगतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ।। 4।।
अपि वाकुशलं किञ्चद् गृहेषु गृहमेधिनि।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगोह्ययोगिनाम् ।। 5।।[11]

नारी को सम्मान न देने से होने वाली हानियाँ

आदिकाल से ही नारी भारतीय जीवन का आदर्श रही है। नारी स्नेह, ममता और त्याग की मूर्ति मानी जाती है। जिस घर में नारी का सम्मान होता है वहाँ सुख-समृद्धि निवास करते हैं। जिस घर में स्त्री प्रात:काल उठकर आंसू बहाती है उस घर के सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं। वह परिवार प्राय: नष्ट ही हो जाता है। नारी ही है जो घर-परिवार को सम्भाल कर रखती है। इस समय जब सब ओर धर्म नष्ट हो रहा है, केवल स्त्रियाँ ही ऐसी हैं जिनका धर्म बचा हुआ है। यदि उनका धर्म भी भ्रष्ट हो जाये तो जैसे कि श्रीमद्भागवत गीता में दिया गया है।

'स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकर: ।।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।' 41, 42
(श्रीमद्भगवद्गीता अ. 1)

स्त्रियों के दूषित-धर्मभ्रष्ट हो जाने पर वर्णसंकर संतान की उत्पत्ति होती है, वर्ण संकर संतान कुलघाती पुरुषों को तथा अपने कुल को भी नरक में ले जाने वाली होती। इस भगवद्वचन के अनुसार सब और सब प्रकार की हानि-ही-हानि होगी, इसलिए नारी के धर्म की रक्षा के लिए हमें नारी को सम्मान देना आवश्यक है। प्राचीन काल में सभी भगवान् श्रीराम, शिव, कृष्ण आदि ने अपनी पत्नी को अर्धांगिनी मानकर सम्मान दिया है. जिससे ये पतिव्रता होकर समाज के लिए आदर्श रही हैं। यदि घर में नारी को सम्मान नहीं मिलता तो वह घर के बाहर जाना शुरु कर देती है जो सही नहीं होता है। इससे हमारी सामाजिक व्यवस्था बिगडती है। भगवति श्रुति की घोषणा है- 'मातृदेवो भव' अर्थात् मातृ देव तुल्य हो। इसी घोषणा में माता की आराधना का विधान दिया गया है। राम की मर्यादा इसका प्रमाण है। अत: मानवसमाज का कर्त्तव्य है कि वह माता की आराधना करते हुए नारी समाज की आराधना करे जिससे समाज का कल्याण होगा। यदि नारी को सम्मान नहीं दिया जाएगा तो समाज का विनाश निश्चित है।

पति पत्नी का अर्धांग माना जाता है और पत्नी पति दोनों को मिलाकर एक पूरा होता है। यदि प्रत्येक आधा-आधा अपनी ओर खींचने लगे और जोर पड़ने पर यदि बीच से कटकर दोनों अलग-अलग हो जायँ तो क्या दशा होगी। दोनों मर जायेंगे। इसके विपरीत यदि दोनों एक-दूसरे के सहायक रहकर आपस में मिलकर रहें तो दोनों का जीवन सुखी होता है। और संसार भी तभी सुचारू रूप से चल सकता है। इसलिये पति-पत्नी दोनों गृहस्थी के लिए आवश्यक हैं। क्योंकि पत्नी के बिना घर में बच्चों और बूढ़े माता-पिता की देखभाल कौन करेगा। घर में नारी ही होती है जो हर चीज को संवार कर और सबमें स्नेह बनाये रखती है, जो घर को जोड़कर रखने के लिये आवश्यक है। जिस गृहस्थ के घर में नारी का अपमान होता है वह घर लक्ष्मी से शून्य हो जाता है। यदि घर में नारी नहीं होती तो घर नरक बन जाता है।

यदि समाज में हर व्यक्ति नारी को माता के समान आदर और सम्मान दे तो हमारा देश उन्नति के शिखर पर पहुँच जायेगा। अन्यथा उसका विनाश होने से कोई नहीं बचा सकता है। इसलिए हमें प्रयत्न करना चाहिए की हम नारी सम्मान को बनाकर रखें उसमें किसी प्रकार की कमी न आने दें।

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी का विशेष महत्व रहा है। नारी को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि नारी के द्वारा ही पुरुष को यज्ञ और धर्म की प्राप्ति होती है। पति और पत्नी एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं इसलिए तो पत्नी को अर्धांगिनी कहा जाता है। नारी के द्वारा ही वीर पुत्रों की उत्पत्ति होती है। वह ही घर-गृहस्थी को संभालकर रखती है। पाश्चात्य देशों की तुलना में आज भी भारत में नारी को सम्मान दिया जाता है।

वर्तमान युग में जब हर व्यक्ति स्वतन्त्र रहना चाहता है तो स्त्रियों को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है जिससे वे हर क्षेत्र में पुरुषों से कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य करती हैं। यह किसी भी बात में पुरुषों से कम नहीं है। यह केवल घर के कार्यों में ही कुशल नहीं है अपितु बाहर के कार्य भी आसानी से कर लेती है। आज के युग में नारी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिससे ये पढ़ लिखकर योग्य बनती हैं जो उनके मानसिक विकास में सहायक होती है। जिससे कोई भी उनका शोषण नहीं कर सकता है। हमारे समाज में आरम्भ से ही नारी आदर्श का प्रतीक रही है। वह अपने कत्तव्यों को अच्छी तरह से निभाना जानती है। नारी को आज भी समाज में आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। शिक्षा के कारण उसका महत्व और भी बढ़ गया है। आज की नारी वैज्ञानिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से हर क्षेत्र में आगे है। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण इन सब अच्छाइयों

के साथ-साथ कुछ भारतीय नारियों में दोष भी आ गए हैं। वे फैशन के चक्कर में अपने संस्कारों को भूलती जा रही हैं। अपने कर्त्तव्यों का सही ढंग से पालन नहीं करती जिससे परिवार में कलह बढ़ता है और उसका परिणाम यह होता है कि पति-पत्नी में तलाक हो जाता है। अगर साथ रहते भी हैं तो उनमें परस्पर प्रेम और सम्मान भाव खत्म हो जाता है। वे घर से बाहर काम करने जाती हैं तो बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाती जिससे बच्चे बिगड़ जाते हैं।

इस प्रकार आज नारी को भी यह प्रयत्न करना चाहिये कि वह इस नये युग में अपने संस्कारों को न छोड़े। बाहर के साथ-साथ घर को भी संभालकर रखे। इस उन्नति के साथ-साथ अपने अस्तित्व को बनाये रखे। संस्कारों का सही निर्वहन करने से नारी के महत्त्व व आत्मसम्मान दोनों में वृद्धि होती है और वह समाज में पूजनीय स्थान पाती है। अतः भारतीय नारी को कभी अपने संस्कारों को नहीं भूलना चाहिए। हमारे वेद, पुराण आदि धर्म ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि जो नारी संस्कारी होती है, उसका परिवार हमेशा सुखी व सम्पन्न होता है और हमेशा उन्नति करता है। इस प्रकार नारी अपने संस्कारों और कर्त्तव्य पालन के द्वारा अपने महत्त्व को बनाकर रख सकती है।[12]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गृहस्थाश्रम में नारी का अत्यधिक महत्व है। जिसकों भारतीय शास्त्रों के गार्हस्थ्य-आश्रम में भी वर्णित किया गया है।

संदर्भ सूची-

1. प्राचीन भारतीय शास्त्रों में वर्णित गार्हस्थ्य-आश्रम
2. श्रीमद्भा. पु., स्क. 7 अ. 11
3. श्रीमद्भा. पु., स्क. 3 अ. 23
4. श्रीमद्भा. पु., स्क. 3 अ. 23
5. श्रीमद् भा. पु., स्क. 1 अ. 7
6. श्रीमद् भा. पु., स्क. 1 अ. 11
7. श्रीमद्भा. पु., स्क. 4 अ. 4
8. श्रीमद्भा. पु., स्क. 4 अ. 17
9. श्रीमद्भा. पु., स्क. 6 अ. 18
10. श्रीमद्भा. पु., स्क. 3 अ. 14
11. श्रीमद्भा. पु., स्क. 8 अ. 16
12. कल्याण नारी-अंक, पृ. सं.16, 20, 23

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्ति व समाज सम्बन्धी विचारधारा का विश्लेषण

डॉ० प्रेम सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, विजय सिंह पथिक स्नातकोत्तर महाविद्याल; श्री महावीर जी, जिला करौली, राजस्थान

शोध सारांश

दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता माने जाते हैं। उनका उद्देश्य स्वतंत्रता की पुनर्रचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्व-दृष्टि प्रदान करना था। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए एकात्म मानववाद की विचारधारा दी। उन्हें जनसंघ की आर्थिक नीति का रचनाकार माना जाता है। उनका विचार था कि आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चिन्तक और संगठनकर्ता थे। वे भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष भी रहे। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानववाद नामक विचारधारा दी। वे एक समावेशित विचारधारा के समर्थक थे जो एक मजबूत और सशक्त भारत चाहते थे। राजनीति के अतिरिक्त साहित्य में भी उनकी गहरी अभिरुचि थी। उन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में कई लेख लिखे, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। पंडित जी का पूरा जीवन सत्य का पालन करते हुए समाज की सेवा करना था। पंडित जी के लिए समाज सेवा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म था। इस गृहस्थ त्यागी ने साधनों की पवित्रता बनाए रखते हुए समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, असमानता जैसी बुराइयों को समाप्त करने का संकल्प लिया और एक सुखी, समृद्ध, आत्मनिर्भर समाज की कल्पना की। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारत में सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त है। संस्कृति से किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि जो अनेक मन, रूचि, अचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता का मूल सूचक होता है पर विचार किया जाता है। आधुनिक समाज में जिस प्रकार से तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है उसमें व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र में एकता जैसी भावना का लोप होता दिखाई दे रहा है। कारण के रुप में अपने स्वार्थपरक विचारधारा को दूसरे व्यक्ति के ऊपर थोपने में लगा हुआ है। अपने स्वार्थपूर्ण जीवन को गतिशील बनाने में लगा हुआ है। अतः इस शोध पत्र में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्ति व समाज के कल्याण के सम्बंध में विचारों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य बिन्दुः- पंडित दीनदयाल उपाध्याय की विचारधारा, व्यक्ति व समाज, सामाजिक विचार, मानव कल्याण, सामाजिक व्यवस्था व जीवन दर्शन।

संक्षिप्त जीवनीः-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितम्बर 1916 को धनकिया नामक स्थान ,जयपुर अजमेर रेलवे लाइन के पास (राजस्थान) हुआ था। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था, नागला चंद्रभान दीनदयाल जी का पैतृक गांव था, और नगला चंद्रभान (फरह, मथुरा) के निवासी थे। उनकी माता का नाम रामप्यारी था, जो धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। पिता रेलवे में जलेसर रोड स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर थे। रेल की नौकरी होने के कारण उनके पिता का अधिक समय बाहर ही बीतता था। कभी-कभी छुट्टी मिलने पर ही घर आते थे।

दो वर्ष बाद दीनदयाल के भाई ने जन्म लिया, जिसका नाम शिवदयाल रखा गया। पिता भगवती प्रसाद ने बच्चों को ननिहाल भेज दिया। उस समय उपाध्याय जी के नाना चुन्नीलाल शुक्ल धानक्या (जयपुर, राज०) में स्टेशन मास्टर थे। नाना का परिवार बहुत बड़ा था। दीनदयाल अपने ममेरे भाइयों के साथ बड़े हुए। नाना का गाँव आगरा जिले में फतेहपुर सीकरी के पास 'गुड़ की मँढई' था।

दीनदयाल अभी 3 वर्ष के भी नहीं हुये थे, कि उनके पिता का देहान्त हो गया। पति की मृत्यु से माँ रामप्यारी को अपना जीवन अंधकारमय लगने लगा। वे अत्यधिक बीमार रहने लगीं। उन्हें क्षय रोग लग गया। 8 अगस्त 1924 को उनका भी देहावसान हो गया। उस समय दीनदयाल 7 वर्ष के थे। 1926 में नाना चुन्नीलाल भी नहीं रहे। 1931 में पालन करने वाली मामी का निधन हो गया। 18 नवम्बर 1934 को अनुज शिवदयाल ने भी उपाध्याय जी का साथ सदा के लिए छोड़कर दुनिया से विदा ले ली। 1935 में स्नेहमयी नानी भी स्वर्ग सिधार गयीं। 19 वर्ष की अवस्था तक उपाध्याय जी ने मृत्यु-दर्शन से गहन साक्षात्कार कर लिया था।

8वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उपाध्याय जी ने कल्याण हाईस्कूल, सीकर, राजस्थान से दसवीं की परीक्षा में बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1937 में पिलानी से इंटरमीडिएट की परीक्षा में पुनः बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1939 में कानपुर के सनातन धर्म कालेज से बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम०ए० करने के लिए सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में प्रवेश लिया और पूर्वार्द्ध में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। बीमार बहन रामादेवी की शुश्रूषा में लगे रहने के कारण उत्तरार्द्ध न कर सके। बहन की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। मामाजी के बहुत आग्रह पर उन्होंने प्रशासनिक परीक्षा दी, उत्तीर्ण भी हुये किन्तु अंगरेज सरकार की नौकरी नहीं की। 1941 में प्रयाग से बी०टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी०ए० और बी०टी० करने के बाद भी उन्होंने नौकरी नहीं की।

1937 में जब वह कानपुर से बी०ए० कर थे, अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये। संघ के संस्थापक डॉ० हेडगेवार का सान्निध्य कानपुर में ही मिला। उपाध्याय जी ने पढ़ाई पूरी होने के बाद संघ का दो वर्षों का प्रशिक्षण पूर्ण किया और संघ के जीवनव्रती प्रचारक हो गये। आजीवन संघ के प्रचारक रहे।

संघ के माध्यम से ही उपाध्याय जी राजनीति में आये। 21 अक्टूबर 1951 को डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। गुरुजी (गोलवलकर जी) की प्रेरणा इसमें निहित थी। 1952 में इसका प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। उपाध्याय जी इस दल के महामंत्री बने। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा- "यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएं, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

1967 तक उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 10/11 फरवरी 1968 की रात्रि में मुगलसराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई। 11 फरवरी को प्रातः पौने चार बजे सहायक स्टेशन मास्टर को खंभा नं० 1276 के पास कंकड़ पर पड़ी हुई लाश की सूचना मिली। शव प्लेटफार्म पर रखा गया तो लोगों की भीड़ में से चिल्लाया- "अरे, यह तो जनसंघ के अध्यक्ष दीन दयाल उपाध्याय हैं।" पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गयी?

उद्देश्यः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की विचारधारा का विश्लेषण करना।

2 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्ति एवं समाज सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करना।

परिकल्पनाः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की विचारधारा का व्यक्ति व समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

आंकड़ो के स्त्रोतः-

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग किया गया है जिसका संकलन पत्र पत्रिकाओं, सेमिनार, शोध ग्रंथों व पुस्तकों के किया गया है। शोध पत्र में वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है।

प्रमुख रचनाएंः-

दो योजनाएँ

राजनीतिक डायरी

राष्ट्र चिन्तनः यह पुस्तक दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिए गए भाषणों का संग्रह है।

भारतीय अर्थ नीतिः विकास की एक दिशा

भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन

सम्राट चन्द्रगुप्त

जगद्गुरु शंकराचार्य

एकात्म मानववाद

राष्ट्र जीवन की दिशा

एक प्रेम कथा

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की विचारधाराः-

दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता माने जाते हैं। उनका उद्देश्य स्वतंत्रता की पुनर्रचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्व-दृष्टि प्रदान करना था। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए एकात्म मानववाद की विचारधारा दी। उन्हें जनसंघ की आर्थिक नीति का रचनाकार माना जाता है। उनका विचार था कि आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख है। संस्कृति निष्ठा उपाध्याय के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवनदर्शन का पहला सूत्र है। उनके शब्दों में-

"भारत में रहने वाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन हैं। उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।"

"वसुधैव कुटुम्बकम्" भारतीय सभ्यता से प्रचलित है। इसी के अनुसार भारत में सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त हैं। संस्कृति से किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें, जो उसके मन, रुचि, आचार, विचार, कला-कौशल और सभ्यता की सूचक होती हैं, पर विचार होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह जीवन जीने की शैली है।

उपाध्याय जी पत्रकार होने के साथ-साथ चिन्तक और लेखक भी थे। उनकी असामयिक मृत्यु से यह बात स्पष्ट है कि जिस धारा में वे भारतीय राजनीति को ले जाना चाहते थे वह धारा हिन्दुत्व की थी। इसका संकेत उन्होंने अपनी कुछ कृतियों में भी दे दिया था। इसीलिए कालीकट अधिवेशन के बाद मीडिया का ध्यान उनकी ओर गया।

व्यक्ति और समाज के बीच संबंध-

पंडित जी का पूरा जीवन सत्य का पालन करते हुए समाज की सेवा करना था। पंडित जी के लिए समाज सेवा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म था। इस गृहस्थ त्यागी ने साधनों की पवित्रता बनाए रखते हुए समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, असमानता जैसी बुराइयों को समाप्त करने का संकल्प लिया और एक सुखी, समृद्ध, आत्मनिर्भर समाज की कल्पना की।

भारतीय परंपरा में व्यक्ति और समाज अलग नहीं हैं। भारत की सांस्कृतिक परंपरा व्यक्ति और समाज दोनों को एक मानती है। और समाज को महत्वपूर्ण माना है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार व्यक्ति और समाज में मूलभूत अंतर है। उनके विचारक भी व्यक्ति और समाज को भिन्न-भिन्न रूप में परिभाषित करते हैं। इस संबंध में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण स्पष्ट है "हम व्यक्ति और समाज को अलग-अलग भागों के रूप में, परस्पर विरोध की भूमिका में नहीं देख सकते। पश्चिम ने जिस समानता की बात की है, उसे हम विरोध के आधार पर स्वीकार नहीं कर सकते। वास्तव में सृष्टि में कोई भी दो चीजें एक जैसी नहीं हैं। विविधता ही सृष्टि का सौंदर्य है। इसलिए सबकी आवश्यकताएं एक जैसी नहीं हो सकतीं। आवश्यकताओं में अंतर भी स्तर

पर निर्भर करेगा। इसलिए अनेक स्तरों का होना भी स्वाभाविक है। समानता लाने की बात परस्पर प्रतिद्वंद्विता और ईर्ष्या उत्पन्न कर सकती है। इससे असंतोष और संघर्ष बढ़ सकता है लेकिन सर्वांगीण विकास का अवसर नहीं मिल सकता। इसलिए हमने समानता नहीं, आत्मीयता के आधार पर सोचना शुरू किया। घर में छोटा बच्चा हो या बुजुर्ग, दोनों कमाते नहीं इसलिए समान नहीं हो सकते लेकिन सामंजस्य से चलने वाले परिवार में सभी के लिए कर्तव्य बोध के साथ अपनी आवश्यकताएं पूरी करना संभव है। इसीलिए हम किसी एक अंग पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करना उचित नहीं समझते। हम समग्र के बारे में सोचने और सामंजस्य से व्यवहार करने में विश्वास करते हैं। इसीलिए हमारे विचार में व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक, सहायक और अविभाज्य हैं; दोनों असंगत संस्थाएं हैं।'' पंडित जी का स्पष्ट मत था कि व्यक्ति और समाज में संघर्ष नहीं हो सकता। हां, समय के साथ कुछ विकृतियां आ सकती हैं। लेकिन समाज उस विकृति को समाप्त करने का उपाय भी सुझाएगा। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यक्ति और समाज अविभाज्य हैं। और व्यक्ति और समाज की यह एकता विश्व समुदाय को भारत की देन है। पंडित जी सामाजिक समझौता सिद्धांत का भी विरोध करते हैं, जिसके अनुसार लोग अपने स्वार्थ के लिए समझौते के माध्यम से राज्य का निर्माण करते हैं। यद्यपि समझौते से राज्य का निर्माण हुआ, समाज का नहीं, लेकिन पाश्चात्य विचारक राज्य और समाज में अंतर नहीं करते। पंडित जी इसकी आलोचना करते हैं। समाज कोई निर्माण की वस्तु नहीं है। व्यक्ति का जन्म ही समाज में एक नवागंतुक होता है।

"प्राचीन विचारकों के अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों अविभाज्य हैं। इनके बीच कभी संघर्ष की संभावना नहीं हो सकती। पाश्चात्य विचारकों के व्यक्ति और समाज के संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। वे व्यक्तिवाद और समाजवाद के विपरीत विचारधाराएं प्रस्तुत करते हैं। वे दोनों के अस्तित्व की कल्पना भिन्न-भिन्न रूप से करते हैं। क्योंकि उनके पास समग्र दृष्टिकोण नहीं है। पंडित जी कहते हैं कि जब कोई पूछता है कि व्यक्ति बड़ा है या समाज? तब निष्कर्ष निकालना कठिन होता है, लेकिन हम कह सकते हैं कि समाज बड़ा है और व्यक्ति भी। या हम यह भी कह सकते हैं कि जितना बड़ा व्यक्ति उतना बड़ा समाज और जितना बड़ा समाज उतना बड़ा व्यक्ति। दोनों अविभाज्य हैं। पाश्चात्य चिंतन की प्रकृति द्वैतवादी है। वहां पति-पत्नी के संबंध को सामाजिक अनुष्ठान न मानकर समझौता माना जाता है। समझौता स्थायी भी हो सकता है और पूर्ण अलगाव भी। भारत का चिंतन अद्वैतवादी है।" 60 सामान्यत: व्यक्ति और समाज के संबंध में विचार करने वाले विचारकों में बहुत मतभेद है। उनका तर्क है कि यदि समाज का कल्याण होगा तो व्यक्ति का भी कल्याण होगा। व्यक्ति समाज पर निर्भर होता है। कई बार व्यक्ति उपेक्षित होता है। इन दोनों विचारधाराओं के बीच व्यक्ति को अधिक कष्ट होता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति और समाज दोनों ही कल्याण से वंचित रह जाते हैं। पंडित जी इन दोनों के बीच का मध्य मार्ग अपनाते हैं, "जिस समाज व्यवस्था में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, यानी समाज के व्यवहार में परस्पर अनुकूलता होगी, वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका सम्मान सुरक्षित रहेगा। व्यक्ति स्वतंत्र है। इसका अर्थ इस संदर्भ में यह है कि वह स्वतंत्र है कि वह दूसरों के अनुकूल कैसे बन सकता है? अपने जीवन में दूसरों के अनुकूल बनने के लिए सक्षम और समर्थ होना आवश्यक है। अनुकूल वही हो सकता है जिसके पास स्वयं की शक्ति हो। अनुकूल होने का अर्थ दूसरों पर निर्भर होना नहीं है। निर्भरता में दरिद्रता और स्वार्थ है। निर्भरता का भाव है। परस्पर अनुकूलता में निर्भरता का भाव नहीं होता। दूसरों के अनुकूल आचरण करने की स्वतंत्रता होती है। यानी एक-दूसरे के अनुकूल बनने में स्वयं का पुरुषार्थ प्रकट होता है। इस प्रकार व्यक्ति की अंतर्निहित शक्तियों का अधिकतम उपयोग करके दूसरों का भला करने की भावना से निरन्तर विकसित होने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध परस्पर स्वाभाविक है। परस्पर सहयोग से नैतिकता और आचार-विचार की भावना का विकास किया जा सकता है।

यह कहना पूर्णतया सत्य है कि कहीं भी औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से जीवन है, वहाँ पर समाज है। व्यक्ति और समाज में एक-दूसरे (समाज और व्यक्ति) पर निर्भरता प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। जहाँ व्यक्ति ने एक-दूसरे के साथ पारस्परिक रूप से सामाजिक सम्बन्धों को प्रतिस्थापित करके समाज के निर्माण और विकास को अग्रेतर करने में महती भूमिका निभाई है। समाज ने व्यक्ति का समाजीकरण करने के पश्चात् मानवीय संवेदना को प्रभावित कर एक परिपूर्ण गौड़ रुप से मौलिकता के रुप में स्थापित करके मानवीय व्यक्तित्व की आधारशीला को स्थापित किया है, जो कि व्यक्ति को संस्कृति से परिचित कराने में समाज ने सदैव रूप से सम्बन्ध को बुनियादी ढांचा में पिरोने का महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वस्तुत: व्यक्ति, समाज, संस्कृति, मूल्यांकनात्मक संस्थाएँ, समाज को अग्रसरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। ये एक-दूसरे के पर्याय हैं और आत्मनिर्भरता को बनाने में योग किया है। जो कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक-दूसरे के अभाव में विखण्डित हो जायेंगे। जहाँ मानव अपने

व्यक्तित्व के विकास के लिए सहयोग की आवश्यकता है। वहाँ समाज को व्यक्ति व्यक्ति के बीच पनपने वाले सामाजिक सम्बन्धों की एक के अभाव में दूसरे की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

अस्तु इसी समाज, व्यक्तित्व, संस्कृति, मूल्य का विवेचन पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने मानव समाज के उद्धार हेतु अपने अभेद्य विश्वास को एक रचनाकार के रुप में 'एकात्म मानववाद' जैसे अवधारणा को सृजित किया है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का युग निर्णायक कि भाँति समाज और व्यक्ति के बीच सम्बन्धात्मक रूप से एकात्म चिन्तन को सृजित किया है। पं. जी ने समाज निर्माण के भारतीय चित्त के विचार 'एकात्म मानववाद' से प्रारम्भ की। फलतः भारतीय स्वतंत्रता 1947 ई. के बाद जब भारतीयता के वैचारिकी में बदलाव देखा गया तो भारत के बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक विचारों में भी परिवर्तन दिखाई देना शुरु हुआ। चूँकि एक लम्बा समय भारत के ऊपर अंग्रेजी शासन का आच्छादित होने पर भारत के सम्पूर्ण वैचारिकी यथा, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक मूल्यादि संस्थात्मक विचारधाराओं पर भी प्रभाव पड़ा था। चूँकि भारत के समाज का स्वरूप कुछ भिन्न था।

पं. दीनदयाल जी ने समाज को उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि समाज की संगठित व्यवस्था अवस्था ही समाज की स्वाभाविक अवस्था है। अर्थात् जिस समाज में संगठनात्मक अवस्था का लोप हो वह समाज पूर्ण नहीं है। जिस समाज में सामुदायिकता छिन्न-भिन्न की स्थिति में हो वह समाज के निर्माण में एकात्म की भावना को सृजित करने में असफल होते हैं। जिस प्रकार से समाज के निर्माण के लिए छोटे-छोटे संस्थाओं (जैसे- व्यक्ति, मूल्य, संस्कृति, धर्म आदि) को संगठित होने की आवश्यकता होती है। तब समाज का निर्माण होता है। जिस प्रकार से छिन्न-भिन्न छोटे-छोटे कण, पत्थर, ईंटे, मकान आदि को पूर्ण नहीं माना जा सकता है उसी प्रकार से समाज है। अतः सामूहिकता ही एक भावी समाज की स्वाभाविक अवस्था होती है। इसके साथ ही साथ यह भी ज्ञात होना कि "हम सब के सब एक है।" इस एकता को पिरोने वाला वह कौन सा वस्तु है। उस वस्तु का भी ज्ञान होना अति आवश्यक है।'

पं. दीनदयाल जी ने समाज को परिभाषित करते है कि समाज में दो प्रकार के विचार होते हैं-1. सकारात्मक (भावात्मक विचार), 2. नकारात्मक। अर्थात् जो भाव बोध विचार होते हैं। हम भावात्मक आधार पर खड़े हैं। जीवन की एक दृष्टि हम सब के सामने प्रत्यक्ष रुप से विद्यान है। हम इस मानव योनि में जन्म लेने के कारण विरोधात्मक भाव को जन्म देना नहीं अपितु जोड़ने का भाव होना चाहिए।

पं. दीनदयाल जी समाज के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि आज के वर्तमान परिवेश में एक ऐसी विचारधाराएँ जन्म ले चुकी हैं कि आप किस 'वाद' में विश्वास करते हैं। हम केवल भारतीय संस्कृति तथा भारतीय विचारधारा में विश्वास करते हैं। पं. दीनदयाल जी ने आधुनिक वादों जैसे समाजवाद, पूँजीवाद, अराजकतावाद, अधिनायकवाद को पश्चिमी विचारधाराओं से जोड़ते हैं और उल्लेखित करते हैं कि समाज के लिए ये विचार विखण्डित हैं। अतः पश्चिमी समाज के जितने भी दर्शन हैं वे अधूरे है। वे सम्पूर्ण जीवन का विचार नहीं करते केवल दर्शन के किसी एक भाग का विचार करते हैं। इसलिए हम उनको स्वीकार नहीं करते हैं। अतः हमारी भारतीय संस्कृति कि सबसे सर्वप्रमुख विशेषता है कि हम सम्पूर्णता को मानते है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में चारो पुरुषार्थ अपने आप में एक मानव के जीवन का बुनियादी आधार के रुप में विद्यमान हैं।

सामाजिक व्यवस्था ही समाज को और मानव को प्रगति पथ पर अग्रसर कर सकता है। इस अर्थ में समाज व्यवस्था मानव की अपूर्ण कृति है, जिसका निर्माण मानव के सामाजिक सम्बन्धों एवं अन्तःक्रियाओं के द्वारा होता है। इस अमूर्त व्यवस्था के अन्तर्गत ही समाज की विभिन्न इकाईयाँ परस्पर एक क्रमबद्ध रुप से सम्बद्ध होकर उच्चतम् सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना करती हैं।"

पं. दीनदयाल उपाध्याय का चिन्तन भी कुछ इसी दिशा में झलकता है। पं. दीनदयाल जी के विचारानुसार "व्यक्ति जीवन का सर्वागीण तथा चारों पुरुषार्थो के अनुसार विचार करने वाला इनके लिए प्रयत्नशील रहने वाला साथ ही व्यक्ति से लेकर विश्व मानव तक परिवार, राष्ट्र आदि विविध एकात्म समूहों और उनसे भी परे जाकर परमेष्ठी से तादात्मय स्थापित करने की क्षमता रखने वाला एकात्म मानव ही इस दर्शन के लक्ष्य रुप में अभिप्रेत है।"

वस्तुतः समाज को एक पूर्ण मानकर व्यक्ति को भी विभिन्न अन्तःक्रियाओं के द्वारा अर्थात् चेतन या अचेतन रुप से वस्तुएं जैसे वृक्ष, लता, पुष्प, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि का समुच्चय है। इन सभी का एक संकलित रुप से विचार करना होगा। तब जाकर एक एकात्म रूपी समाज का निर्माण होगा। इन एक के भी अभाव में सामाजिक व्यवस्था का अनुनयन हो पाना असम्भव सा प्रतीत होगा।

मरण प्रकृतिः शरीरिणाम् विकृतिर्जीवनं मुच्यतेबुधै।"

जीवित को क्षणभंगुर, असार, दु:खयुक्त जानकर भी उसकी दीर्घकाल तक जीवित रहने की इच्छा समाप्त नहीं होती है। मानव के समस्त कार्य-व्यापार इसी अधिकाधिक सुख प्राप्ति की भावना से उत्पन्न होते है।

प्रकृति, आयु, संस्कार, मन, बुद्धि का विकास एवं कार्य-व्यापार में भिन्नता भले ही हो, लेकिन लक्ष्य समान है। निरामय तथा अविच्छिन्न सुख की प्राप्ति।

अत: मनुष्य का सर्वप्रमुख विचार होता है जीवित रहने की जिसके कारण मानव की समस्त अन्त:क्रियाएँ कार्यशील होती है। उनकी जो स्वाभावित मनोवृत्ति होती है उनके विभिन्न अभिलाषाओं को पूर्ण करती है। वरन् आज के भौतिक जीवन की जो स्वाभाविक अभिलाषा है वह 'एकांगी' होती जा रही है व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन की ओर अग्रसर होता दिखाई पड़ता है। भौतिक सुख मानव का अभीष्ट सुख बनता जा रहा है। आर्थिक मापदण्ड उनका सर्वस्व सुख का भागीदार बनता जा रहा है। आज मानव अपने एकांगी मार्ग को अपनाकर अपने आप को गर्त में ढकेलता जा रहा है। पं. दीनदयाल जी कहते हैं कि- "विविध विषय भोगों की पूर्ति ही मानव का सुख सर्वस्व होता जा रहा है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए 'राष्ट्र धर्म नामक मासिक पत्रिका में भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र में चारों है जिनके साथ जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी उनके बारे में बहुत भ्रम फैला हुआ है। इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि जब हम इन शब्दों का कोई पर्याय शब्दों के पीछे जो भी भाव उन भाषाओं में खड़े किये गये हैं, उन्हें अपने देश में भी आरोपित करने का प्रयास किया जाता है।

निष्कर्ष:-

पं. दीनदयाल जी के उपरोक्त अनमोल विचारों का अनुसरण करके हम आज के आधुनिक युग में भी भारत का चहुँमुखी विकास कर सकते हैं। पं. दीनदयाल जी की वैचारिकी समाज के ऐसे मानवतावादी विचारधारा रही है जो कि जाति, धर्म, समाज में भेदभाव से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवीय समाज की एकता अखण्डता की भावना से ओत-प्रोत रही है। आप की वैचारिकी न केवल भारतवर्ष में है बल्कि समस्त वैश्विक समाज को छुता हुआ दिखाई देता है। आज के आधुनिक दौर में पं. दीनदयाल जी आज के आत्मिक ज्ञान का पूँज कहे जाने वाली विचारधारा 'एकात्म मानववाद' समाज में एक मार्गदर्शन का कार्य करती है। पं. दीनदयाल जी द्वारा निर्मित सामाजिक दर्शन के सूत्र के रुप में भारत में रहने वाला मानव समूह एक जनपूँज है। जिसकी जीव प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन आदि सभी भारतीय संस्कृति के अमूल्य धरोहर के रुप में सृजित है, जो कि भारत में राष्ट्रवादिता के समान संस्कृति आधार का काम करती है। जब इन संस्कृतियों में लोगों के द्वारा निष्ठा की भावना हो तभी भारत एकात्म रह सकता है। भारतीय दर्शन की विशेषता वसुधैव कुटुम्बकम भी रही है। जो राष्ट्र, परिवार, समाज को एकता के सूत्र में बांधने का काम करती है। यह राष्ट्र को एकीकृत किये रहते हैं। पं. दीनदयाल जी ने अपने समाज दर्शन को इसी 'वसुधैव कुटुम्बकम' की विचारधारा से जोड़ने के लिए लोगों में एकात्मवाद जैसे शब्दों का निर्माण किये।

संदर्भ सूची:-

1. उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, खण्ड-1, ठेंगड़ी दन्तोपंत, सुरूचि प्रकाशन, केशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 109
2. उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, वी.वा.नेने, सुरूचि प्रकाशन, केशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 11.
3. शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 293.
4. यादव, राव जोशी (दक्षिण भारत, क्षेत्रीय प्रचारक) मौन स्मृति, राष्ट्र धर्म, जून-जुलाई, 1968, पृ. 168.
5. सागर, कृष्णानन्द, दीनदयाल उपाध्याय की वाणी, नई दिल्ली, 1992, पृ. 14.
6. सरावगी, राजीव कुमार, एकात्म मानव दर्शन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 102.
7. वासुदेव, विनायक नेने, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन, भाग-2, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 13.

वाक्यपदीयः व्याकरण शृंखला का मुख्य दार्शनिक ग्रन्थ

डॉ० सुषमा भारद्वाज

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय.

शोध सार

वाक्यपदीय, संस्कृत व्याकरण का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसे त्रिकाण्डी भी कहते हैं। वाक्यपदीय, व्याकरण शृंखला का मुख्य दार्शनिक ग्रन्थ है। इसके रचयिता नीतिशतक के रचयिता महावैयाकरण तथा योगिराज भर्तृहरि हैं। इनके गुरु का नाम वसुरात था। भर्तृहरि को किसी ने तीसरी, किसी ने चौथी तथा छठी या सातवी सदी में रखा है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने भाषा (वाच्) की प्रकृति और उसका वाह्य जगत से सम्बन्ध पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। यह ग्रंथ तीन भागों में विभक्त है जिन्हें "कांड" कहते हैं। यह समस्त ग्रंथ पद्य में लिखा गया है। प्रथम "ब्रह्मकांड" है जिसमें 157 कारिकाएँ हैं, दूसरा "वाक्यकांड है जिसमें 493 कारिकाएँ हैं और तीसरा "पदकांड" के नाम से प्रसिद्ध है।

मूल शब्दः वाक्यपदीय, संस्कृत व्याकरण, ग्रंथ, त्रिकाण्डी, नीतिशतक, महावैयाकरण, योगिराज भर्तृहरि

प्रस्तावना

वाक्यपदीय एक दार्शनिक कृति का नाम है जो आंशिक रूप से संस्कृत व्याकरण (व्याकरण) के विज्ञान से प्रेरित है।- संस्कृत व्याकरण को भारत की बौद्धिक परंपरा में भी दर्शन के रूप में स्वीकार किया जाता है। भर्तृहरि का वाक्यपदीय (5वीं शताब्दी) भाषा के दर्शन के क्षेत्र में ऐतिहासिक कृति है।

इसका प्रथम काण्ड ब्रह्मकाण्ड है जिसमें शब्द की प्रकृति की व्याख्या की गयी है। इसमें शब्द को ब्रह्म माना गया है और ब्रह्म की प्राप्ति के लिये शब्द को प्रमुख साधन बताया गया है।

दूसरे काण्ड में वाक्य के विषय में भर्तृहरि ने विभिन्न मत रखे हैं।

तीसरे काण्ड में अन्य दार्शनिक रीतियों के विषयों, जैसे- जाति, द्रव्य, काल आदि की चर्चा की गयी है। इसमें भर्तृहरि यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि विविध मत, एक ही वस्तु के अलग-अलग आयामों को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार वे सभी दर्शनों को अपने व्याकरण आधारित दर्शन द्वारा एकीकरण करने का प्रयास कर रहे हैं।

प्रथम काण्ड (ब्रह्मकाण्ड)

मूल में व्याकरण शास्त्र एक प्रकार से आगम शास्त्र है। इसकी अभिव्यक्ति महेश्वर से है। आगम के अनुसार शब्द के चार स्वरूप हैं- "परा", "पश्यंती", "मध्यमा" तथा "वैखरी"। इनमें "परा" ही ब्रह्म है। इसीलिए वाक्यपदीय की प्रथम कारिका में ही शब्दतत्व को अनादि और अनंत तथा अक्षर ब्रह्म कहा है। इसी परारूप ब्रह्म से संसार के पदार्थों की उत्पत्ति तथा व्यवहार विवर्तरूप में माना गया है। प्रथम कांड में, शब्दतत्व के दार्शनिक रूप का विचार है, अतएव इसे "ब्रह्मकांड" नाम दिया गया है और साधारण रूप में इसका वाचकत्व सिद्ध किया गया है। वस्तुतः यह आगमिक कांड है। आगम की दृष्टि से लिखा गया है।

इस कांड की कुछ उपयोगी तथा जानने योग्य बातें ये हैं-

उस ब्रह्म की प्राप्ति के उपाय तथा स्वरूप को महर्षियों ने "वेद" कहा है। यह एक होता हुआ भी अनेक मालूम होता है। इसीलिए ऋक् यजु", साम तथा अथर्वन् नाम से चार वेद कहे जाते हैं। ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 100, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 मिलाकर 1130 शाखाएँ वेद की हुई। ऐसा होने पर भी सभी वेदों तथा उनकी शाखाओं का एकमात्र प्रतिपाद्य विषय "कर्म" है। यह स्मरण रखना है कि जो शब्द या मंत्र जिस स्वर में जिस शाखा में पढ़ा गया है वह शब्द उसी तरह उच्चारण किए जाने पर फल देनेवाला होता है। वही शब्द उसी रूप में दूसरी शाखा में पढ़े जाने से इस शब्दोच्चारण का फल होगा अन्यथा नहीं, अथवा अन्य कोई फल देगा।

आगम के बिना कर्तव्य एवं अकर्तव्य का निश्चय नहीं हो सकता। ऋषियों में जो अतींद्रिय वस्तु को देखने का ज्ञान है वह भी आगम ही के द्वारा प्राप्त है (वाक्य. 1.37)। तर्क के द्वारा कोई यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता, वह परिवर्तनशील है। ऊँचे स्तर के ऋषियों के लिए भूत और भविष्य सभी प्रत्यक्ष हैं। ज्ञान के स्वप्रकाश होने के कारण उसमें आत्मा का स्वरूप तथा घट आदि ज्ञेय पदार्थ का स्वरूप दोनों भासित होते हैं। उसी प्रकार शब्द में अर्थ का स्वरूप और उसका अपना स्वरूप, दोनों की प्रतीति होती है।

जिस प्रकार जयापुष्प के के लाल रूप से संबद्ध ही स्फटिक का ग्रहण होता है उसी प्रकार स्फोट से मिली हुई ध्वनि का ही ग्रहण होता है। किसी का मत है कि जिस प्रकार इंद्रियों का गुण असंवेद्य होकर भी विषयों के ज्ञान का कारण है, उसी प्रकार ध्वनि असंवेद्य होती हुई भी शब्द के ज्ञान का कारण होती है। दूसरा मत है कि "दूरत्व" दोष के कारण स्फोट के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, केवल ध्वनि का ही भान होता है। तीसरा मत है कि स्फोट का भान तो होता है परंतु दूरत्व दोष के कारण अस्फुट रहता है, जैसे दूर होने के कारण किसी वस्तु का "परिमाण" स्पष्ट रूप में भासित नहीं होता।

अणुओं में सभी प्रकार की शक्तियाँ हैं, इसीलिए भेद और संसर्ग (वियोग तथा संयोग) रूप में अणुओं से (संसार के सभी) कार्य होते हैं। ये अणु छाया, आतप, तमस् तथा शब्द के रूप में परिणत होते रहते हैं। ये शक्तियाँ अभिव्यक्त होने के समय में बड़े प्रयत्न से प्रेरित की जाती हैं। और जिस प्रकार (जल के परमाणुओं के क्रमशः इकट्ठे होने से) बादल बनते हैं उसी प्रकार शब्द के परमाणु क्रमशः इकट्ठे होकर सभी कार्य करते हैं। इन परमाणुओं का नाम "शब्द" या "शब्दपरमाणु" है।

इस प्रकार शब्द के आगमिक स्वरूप का विवेचन तथा शब्द ही से समस्त जगत् की सृष्टि का निरूपण ब्रह्मकांड में है।

द्वितीय काण्ड

द्वितीय कांड में "पद" वाचक है या "वाक्य" इसका विशद विचार है। भिन्न-भिन्न मतों का आलोचन है। इसी कांड में भर्तृहरि ने कहा है- शब्द और अर्थ एक ही परमतत्व के दो भेद हैं जो पृथक् नहीं रहते (2.31)। ऋषियों को तत्त्व का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है किंतु उससे व्यवहार नहीं चल सकता। इसलिए व्यवहार के समय उन अनिर्वचनीय तत्वों का जिस प्रकार लोग व्यवहार करते हों उसी तरह सभी को करना चाहिए (2.143)। "प्रतिभा" को सभी प्रामाणिक मानते हैं और इसी के बल से पक्षियों के भी व्यवहार का ज्ञान लोगों को होता है (2। 149)। बीज बोने के साथ साथ "लाह" का रस आदि पदार्थ के मिला देने से उस बीज के फलों के रंग में तथा उसके फलों में भेद हो जाता है। "शास्त्रार्थ" की प्रक्रिया केवल अज्ञ लोगों को समझाने के लिए है, न कि तत्त्व के प्रतिपादन के लिए। शास्त्रों में प्रक्रियाओं के द्वारा अविद्या का ही विचार है। "अविद्या" के उपमर्दन के पश्चात् आगम के विकल्पों से रहित शास्त्रप्रक्रिया प्रपंचशून्य होने पर "विद्या" के रूप में प्रकट होती है। इसीलिए कहा है कि असत्य के मार्ग के द्वारा ही सत्य की प्राप्ति होती है, जैसे बालकों को पढ़ाते समय उन्हें पहले शास्त्रों का प्रतिपादन केवल प्रतारणमात्र होता है। इत्यादि दार्शनिक रूप से व्याकरण के तत्वों का विचार 493 कारिकाओं में दूसरे कांड में है।

तृतीय काण्ड

तीसरे कांड में "पदविचार" का प्रक्रम किया गया है। अर्थ द्वारा पदों की परीक्षा होती है। न्याय-वैशेषिक के मत में आकाश में सामान्य (जाति) नहीं है किंतु वाक्यपदीय के अनुसार मुख्य या औपाधिक देशभेद के कारण आकाश में भी जाति है (3.15-16)। "ज्ञान" स्वप्रकाश है। विषयज्ञान तथा उसका परामर्शज्ञान, ये दोनों भिन्न हैं। इस कांड में 13 खंड हैं जिनमें 450 से अधिक कारिकाओं में दार्शनिक रूप से व्याकरण के पदार्थों का विशद विचार किया गया है। यह कांड खंडित ही है।

टीकाएँ

वाक्यपदीय पर भूतिराज के पुत्र हेलाराज ने बहुत सुंदर तथा विस्तृत टीका लिखी है। आधुनिक समय में भी कुछ विद्वानों ने टीका लिखी है किंतु इन सबकी दृष्टि आगमिक न होने के कारण वाक्यपदीय का वास्तविक ज्ञान नहीं प्राप्त होता। इसकी बहुत सी कारिकाएँ नष्ट हुई मालूम होती हैं। युधिष्ठिर मीमांसक तथा साधूराम ने लुप्त कारिकाओं पर कुछ विचार किए हैं। व्याकरण के आगमिक रूप के विचार में इस ग्रंथ के समान अन्य ग्रंथ बहुत नहीं हैं।

निष्कर्ष

वाक्यपदीय यह ग्रन्थ संस्कृत व्याकरण का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। वाक्यपदीय व्याकरण शास्त्र का मुख्य दार्शनिक ग्रन्थ है। इसके रचयिता नीति शतक के रचयिता भर्तृहरि मुनि हैं। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने भाषा की प्रकृति के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

सन्दर्भ

1. शरथ पी. नाथ, वाक्यपदीय (वाक्य की अवधारणा का अध्ययन)
2. गौरपद दास, बलदेव विद्याभूषण द्वारा लिखित साहित्य-कौमुदी
3. एल. एन. शर्मा, शैव तंत्र: आत्म-जागरूकता का एक मार्ग
4. एम. शेषगिरी शास्त्री, संस्कृत पांडुलिपियों की वर्णनात्मक सूची, मद्रास
5. के. ए. सुब्रमण्यम अय्यर, भर्तृहरि के वाक्यपदीय
6. रंजनी एम., प्रत्यभिज्ञा और शंकर का अद्वैत (तुलनात्मक अध्ययन)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) का खाद्य प्रबंधन में योगदान

हिना कुमारी

शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सार

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खाद्य सुरक्षा में अहम भूमिका है तो वहीं दूसरी तरफ खाद्य प्रबंधन में भी इनके योगदान को नकारा नही जा सकता। गरीबों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में पीडीएस की भूमिका से तो हम भलिभांति परिचित हैं किन्तु पीडीएस का खाद्य प्रबंधन में योगदान के संबंध में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। शासन द्वारा जारी वार्षिक प्रतिवेदन, आर्थिक सर्वेक्षण से प्राप्त विगत पांच वर्षों (2016-17 से 2020-21) के आंकड़ो के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि, उपार्जित अनाज चावल और गेहूं के 80 से 90 फिसदी का उपयोग पीडीएस में किया जा रहा है जो कि अनाज की उपयोगिता तथा सुरक्षा के लिए इस योजना की महत्ता को इंगित करता है। इस प्रणाली से मोटा अनाज के उत्पादन को भी बढ़ावा मिल रहा है जो कि पीडीएस के माध्यम से गरीबों व जरूरतमंदों को उपलब्ध कराकर कुपोषण से लड़ने में कारगार सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली किसानो से उनके उपज को उचित मूल्य में खरीदकर जरूरतमंदों को उचित मूल्य में उपलब्ध कराया जा रहा है जो खाद्य प्रबंधन के लिए उचित मूल्य बराबर उचित मूल्य का एक नया समीकरण गढ़ रहा है, और यही खाद्य सुरक्षा का मूलमंत्र है, जो कि सतत विकास के दूसरे लक्ष्य शून्य भूखमरी को हासिल करने के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध शीर्षक के माध्यम से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के क्रियान्वयन का अध्ययन करते हुए पीडीएस का खाद्य प्रबंधन में योगदान का अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द: खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली, खाद्य सुरक्षा, खाद्य प्रबंधन, भारतीय खाद्य निगम, न्यूनतम समर्थन मूल्य, उचित मूल्य दुकान, सतत विकास के लक्ष्य।

परिचय

दुनिया भर में गरीबी में जी रहे एक अरब लोगों के लिए, अपने या अपने परिवार के लिए जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना एक रोजमर्रा की चुनौती है। इस असाध्य समस्या का समाधान करना विकास का मुख्य लक्ष्य है, और गरीबी के लिए शोध-आधारित नीति समाधानों की पहचान करना इस मिशन का मुख्य उद्देश्य है। कई शोधकर्ताओं ने गरीबी, आजीविका, खाद्य सुरक्षा और पोषण के बीच संबंधों का पता लगाया है और उन कार्यक्रमों और नीतियों का मूल्यांकन किया है जो परिवारों को गरीबी से बाहर निकलने में सबसे अच्छी मदद कर सकते हैं। यह कृषि प्रौद्योगिकी अपनाने और छोटे किसानों को बाजारों से जोड़ने के माध्यम से ग्रामीण आय वृद्धि और विकास को बढ़ावा देने की नीतियों को संबोधित करता है।

भारत की जनसंख्या अभी 1.04% की सालाना दर से बढ़ रही है। 2030 तक जनसँख्या 1.5 अरब तक पहुँचने का अनुमान है लेकिन इतनी बड़ी जनसँख्या का पेट भरने के लिए खाद्यान उत्पादन में अनेक समस्याएं हैं। जलवायु परिवर्तन न सिर्फ आजीविका, पानी की आपूर्ति और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर रहा है बल्कि खाद्य सुरक्षा के लिए भी चुनौती खड़ी कर रहा है। ऐसे में यह सवाल पैदा होता है कि क्या भारत जलवायु परिवर्तन के खतरों के बीच आने वाले समय में इतनी बड़ी जनसँख्या का पेट

भरने के लिए तैयार है? भारत आज जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, उनमें से खाद्य सुरक्षा की चुनौती सबसे प्रमुख है। न सिर्फ भारत बल्कि अन्य विकाशील देशों के सामने भी ये चुनौतियां हैं। जैसे-जैसे चुनौतियां बढ़ रही हैं, हमें बड़ी तत्परता से काम करने की जरूरत है।

पीडीएस एक ऐसा तंत्र है जिसके माध्यम से सरकार खाद्य सुरक्षा से संबंधित जरूरतों को पूरा करने की कोशिश कर रही है। प्रस्तुत अध्ययन में खाद्य सुरक्षा की स्थिति का विश्लेषण करने तथा अध्ययन क्षेत्र में तंत्र में सुधार हेतु सुझाव देने का प्रयास किया गया है।

भारतीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली

भारतीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली द्वारा स्थापित किया गया था भारत सरकार के तहत उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय, खाद्य और सार्वजनिक वितरण के लिए खाद्य और गैर खाद्य पदार्थो वितरित करने के लिए भारत के गरीब सब्सिडी दरों पर। वितरित की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में देश भर के कई राज्यों में स्थापित उचित मूल्य की दुकानों (जिन्हें राशन की दुकानों के रूप में भी जाना जाता है) के नेटवर्क के माध्यम से मुख्य खाद्यान्न, जैसे गेहूं, चावल, चीनी और मिट्टी के तेल जैसे आवश्यक ईंधन शामिल हैं। भारतीय खाद्य निगम, एक सरकारी स्वामित्व वाला निगम, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) की खरीद और रखरखाव करता है।

आज भारत के पास चीन के अलावा दुनिया में अनाज का सबसे बड़ा भंडार है, सरकार रुपये खर्च करती है। 750 अरब। पूरे देश में गरीब लोगों को खाद्यान्न का वितरण राज्य सरकारों द्वारा प्रबंधित किया जाता है। 2011 तक भारत भर में 5,05,879 उचित मूल्य की दुकानें (एफपीएस) थीं। पीडीएस योजना के तहत, गरीबी रेखा से नीचे का प्रत्येक परिवार हर महीने 35 किलोग्राम चावल या गेहूं के लिए पात्र है, जबकि गरीबी रेखा से ऊपर का परिवार मासिक आधार पर 15 किलोग्राम खाद्यान्न का हकदार है। गरीबी रेखा से नीचे के कार्ड धारक को 35 किलो अनाज दिया जाना चाहिए और गरीबी रेखा से ऊपर के कार्ड धारक को पीडीएस के मानदंडों के अनुसार 15 किलो अनाज दिया जाना चाहिए। हालांकि, वितरण प्रक्रिया की दक्षता के बारे में चिंताएं हैं।

कवरेज और सार्वजनिक व्यय में, इसे सबसे महत्वपूर्ण खाद्य सुरक्षा नेटवर्क माना जाता है। हालांकि, राशन की दुकानों द्वारा आपूर्ति किया जाने वाला खाद्यान्न गरीबों की खपत की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। भारत में पीडीएस बीजों की खपत का औसत स्तर प्रति व्यक्ति प्रति माह केवल 1 किलोग्राम है। पीडीएस की शहरी पूर्वाग्रह और आबादी के गरीब वर्गों की प्रभावी ढंग से सेवा करने में विफलता के लिए आलोचना की गई है। लक्षित पीडीएस महंगा है और गरीबों को कम जरूरतमंद लोगों से निकालने की प्रक्रिया में बहुत अधिक भ्रष्टाचार को जन्म देता है।

- ऐतिहासिक संदर्भ और विकास:
  - PDS की स्थापना युद्ध के बीच की अवधि में की गई थी, लेकिन 1960 के दशक में खाद्यान्नों की भारी कमी के कारण इसे प्रमुखता मिली।
  - इसे मुख्य रूप से शहरी अभाव वाले क्षेत्रों में किफायती कीमतों पर खाद्यान्न वितरित करने के लिए डिजाइन किया गया था।
  - समय के साथ, 1992 में शुरू की गई संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (RPDS) जैसी पहलों के माध्यम से PDS का दायरा ग्रामीण क्षेत्रों, विशेष रूप से उच्च गरीबी दर वाले क्षेत्रों को शामिल करने के लिए विस्तारित किया गया।
- संरचना और कार्यप्रणाली:
  - PDS केंद्र और राज्य सरकारों की संयुक्त जिम्मेदारी के तहत कार्य करता है।
  - केंद्र सरकार, भारतीय खाद्य निगम (FCI) के माध्यम से खाद्यान्नों की खरीद, भंडारण, परिवहन और थोक आवंटन का कार्य संभालती है।
  - राज्य सरकारें उचित मूल्य की दुकानों (FPS) के नेटवर्क के माध्यम से पात्र परिवारों को ये अनाज वितरित करने के लिए जिम्मेदार हैं।

- o वितरित की जाने वाली वस्तुओं में गेहूं, चावल, चीनी और केरोसिन शामिल हैं, कुछ राज्य दालें एवं खाद्य तेल जैसी अतिरिक्त वस्तुएँ भी प्रदान करते हैं।
- o विश्व बैंक के अनुसार, PDS पाँच लाख से अधिक उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से लगभग 800 मिलियन लोगों को सब्सिडी वाला अनाज प्रदान करता है।
- o यह गरीब परिवारों को खाद्य मूल्य आघातों से बचाने में सहायता करता है और आर्थिक संकट के समय गरीबी को कम करता है।

वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित मुख्य मुद्दे

- उच्च रिसाव: हाल के आंकड़ों के अनुसार, लाभार्थियों के लिए लक्षित लगभग 28% खाद्यान्न उन तक नहीं पहुँच पाता है, जो एक महत्वपूर्ण वित्तीय हानि है, जिसका अनुमान लगभग Rs.69,108 करोड़ प्रतिवर्ष है, और भूख एवं कुपोषण को कम करने के कार्यक्रम के प्राथमिक लक्ष्य को प्राप्त करने में विफलता है।
    - o प्रणाली में रिसाव के लिए उजागर किए गए कारण हैं भ्रष्टाचार एवं नौकरशाही की अक्षमताएँ; अपर्याप्त निगरानी तथा पर्यवेक्षण; खराब बुनियादी ढाँचा; और पहचान एवं लक्ष्यीकरण के मुद्दे।
- अक्षमताओं के साथ उच्च समावेशन: PDS वर्तमान में प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY) जैसी योजनाओं के तहत लगभग 57% जनसंख्या को संयोजित करती है। हालाँकि, प्रणालीगत अक्षमताओं के कारण खाद्यान्न का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो जाता है।
- खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव: PDS में रिसाव से लक्षित लाभार्थियों के लिए सब्सिडी वाले खाद्यान्न की उपलब्धता कम हो जाती है, जिससे आर्थिक रूप से वंचित लोगों में भूख और कुपोषण बढ़ जाता है।
    - o हाल के आंकड़ों के अनुसार, जनसँख्या का एक बड़ा हिस्सा अभी भी गरीबी रेखा से नीचे रहता है, और कई परिवार अपनी बुनियादी पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं।
- पोषण सुरक्षा: वर्तमान व्यवस्था पोषण सुरक्षा को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करती है, विशेषकर पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए। सिर्फ मुफ्त चावल और गेहूँ ही जनसँख्या की विविध पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं।
- भ्रष्टाचार और अक्षमता: रिसाव को रोकने के प्रयासों में उचित मूल्य की दुकानों (FPS) पर पॉइंट-ऑफ-सेल (PoS) सिस्टम की शुरुआत और आधार-आधारित बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण का उपयोग शामिल है।
    - o हालाँकि इन उपायों से कुछ हद तक रिसाव कम हुई है, लेकिन समस्या बनी हुई है, विशेषकर उन राज्यों में जहाँ भ्रष्टाचार और अक्षमता की दर अधिक है।

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित प्रमुख सरकारी पहल

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (NFSA): 2013 में अधिनियमित, NFSA का उद्देश्य लगभग 75% ग्रामीण जनसँख्या और 50% शहरी जनसँख्या को रियायती खाद्यान्न उपलब्ध कराना है।
    - o इसमें 16 करोड़ महिलाओं सहित लगभग 81 करोड़ लाभार्थी शामिल हैं, जो जनसँख्या के एक महत्वपूर्ण हिस्से के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं।
    - o इसने रिसाव को कम करने और PDS की दक्षता में सुधार करने में सहायता की है। उदाहरण के लिए, बिहार, छत्तीसगढ़ और ओडिशा जैसे राज्यों ने सुधारों को जल्दी अपनाने के कारण PDS रिसाव में आकस्मिक कमी देखी है।
- प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (PMGKAY): COVID-19 महामारी के दौरान शुरू की गई, PMGKAY लगभग 81.35 करोड़ लाभार्थियों को मुफ्त खाद्यान्न प्रदान करती है।
    - o गरीबों के सामने आने वाली आर्थिक कठिनाइयों को कम करने के लिए इसे 1 जनवरी, 2024 से अतिरिक्त पाँच वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया है।

- PM पोषण (पोषण शक्ति निर्माण) योजना: यह सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार लाने पर केंद्रित है।
    - o इसका उद्देश्य पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराकर भूख से निपटना और शिक्षा को बढ़ावा देना है, जिससे वंचित छात्रों के बीच नियमित स्कूल उपस्थिति को बढ़ावा मिले।
- अंत्योदय अन्न योजना (AAY):।AY समाज के सबसे कमजोर वर्गों को लक्षित करती है, जो सबसे गरीब लोगों को अत्यधिक सब्सिडी वाले खाद्यान्न उपलब्ध कराती है।
    - o यह सुनिश्चित करती है कि सबसे वंचित परिवारों को आवश्यक खाद्य पदार्थों तक पहुँच प्राप्त हो।

प्रमुख सुधार और भविष्य की दिशाएँ

- तकनीकी एकीकरण:
    - o बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण: रिसाव को कम करने के लिए FPS पर आधार-आधारित बायोमेट्रिक्स का उपयोग करें।
    - o PoS मशीनें: पारदर्शिता के लिए च्वै मशीन के उपयोग का विस्तार करें।
- लक्षित सब्सिडी:
    - o केवल सबसे कमजोर लोगों को ही मुफ्त भोजन उपलब्ध कराएं, अन्य लोगों से नाममात्र शुल्क लें।
- प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT):
    - o नकद हस्तांतरण: लचीलेपन के लिए वस्तु के बजाय नकद हस्तांतरण की ओर प्रवृति करें।
    - o खाद्य वाउचर: यह सुनिश्चित करने के लिए वाउचर का उपयोग करें कि सब्सिडी का उपयोग भोजन के लिए किया जाए।
- लाभार्थी कवरेज पर पुनर्विचार:
    - o अत्यंत गरीबी रेखा से ऊपर रहने वालों से डैच का आधा मूल्य लिया जाएगा, जिससे लागत कम हो जाएगी।
- कृषि में निवेश:
    - o सार्वजनिक वितरण प्रणाली की बचत का उपयोग ग्रामीण बुनियादी ढांचे और संधारणीय कृषि में सुधार के लिए करें।
- पोषण सुरक्षा बढ़ाना:
    - o PDS मदों में विविधता लाकर उनमें दालें, बाजरा और पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ शामिल करें।
- आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन:
    - o इन्वेंट्री प्रबंधन और वास्तविक समय ट्रैकिंग के लिए तकनीक का उपयोग करें।
    - o भ्रष्टाचार को कम करने के लिए एक समर्पित निरीक्षण टीम बनाएं।
- नीति सुधार:
    - o सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार: सार्वजनिक वितरण प्रणाली को आवश्यकता-आधारित बनाएं और सब्सिडी रिसाव को कम करें।
    - o पोषण पर ध्यान: खाद्य और पोषण सुरक्षा दोनों पर ध्यान दें।

आगे की राह

- भविष्य को देखते हुए, यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह जनसँख्या की उभरती जरूरतों को पूरा करे, PDS में निरंतर सुधार की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) का सुझाव है कि PDS प्रभावी रहा है, लेकिन यूनिवर्सल बेसिक इनकम (UBI) जैसे विकल्पों की खोज कम आय वाले परिवारों को अधिक कुशल सहायता प्रदान कर सकती है।
    - o हालांकि, समाज के कमजोर वर्गों पर प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए ऐसे किसी भी परिवर्तन के लिए सावधानीपूर्वक योजना और मजबूत कार्यान्वयन की आवश्यकता होगी।

• रिसाव की लगातार समस्या को दूर करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि संसाधनों का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए, भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार करना आवश्यक है। सबसे सुभेद्य जनसँख्या को लक्षित करके और बचत को कृषि निवेश की ओर पुनर्निर्देशित करके, भारत खाद्य तथा पोषण सुरक्षा दोनों को बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष

भारत के कई हिस्सों में खाद्य सुरक्षा एक बड़ी चिंता का विषय है क्योंकि भूख और कुपोषण अभी भी कायम है। मानव विकास के मानदंडों में से एक के रूप में, भारत के कई हिस्सों में खाद्य सुरक्षा को एक बुनियादी आवश्यकता माना जाता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली सरकार का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है जिसके माध्यम से सूक्ष्म स्तर पर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है। हालांकि यह बहुत महत्वपूर्ण माध्यम है लेकिन भारत में अन्य सरकारी नीतियों के साथ-साथ इसका काम खाद्य सुरक्षा के वांछित स्तर को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा है। खाद्य सुरक्षा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर बहुत सारा साहित्य है, पिछले अध्ययनों के निष्कर्षों में पाया गया है कि भारत के विभिन्न हिस्सों में खाद्यान्न के विशाल भंडार के बावजूद भूख और कुपोषण अभी भी कायम है। वर्तमान अध्ययन खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) की भूमिका, इसकी प्रभावशीलता और परिवारों की खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने पर पीडीएस के प्रभाव का पता लगाने की कोशिश करता है।

सन्दर्भ

1. Ahluwalia,Deepak (1993), Public Distribution of Food in India : Coverage, targetingAnd leakages, Food Policy, Vol.18,no1,pp 33-54.
2. Bhaskar Dutta, Bharat Ramaswami(2001), TargetingAnd efficiency in the Public Distribution System, EconomicAnd Political weekly,March,5,2001.
3. Bapna, S. L. (1990). 'Food, Security through the PDS: The Indian Experience'. In D. S. TyagiAnd V. S. Vyas (eds). IncreasingAccess to Food: TheAsian Experience. New Delhi: Sage Publications.
4. Cornia, G.A.,And Frances Stewart (1993). 'Two Errors of Targeting'. Journal of International Development, 5(5), 459-490.
5. Dreze, Jean,AndAmartya Sen. (1989). The Political Economy of Hunger, Vol. 1. Oxford: Clarendon Press.
6. Dreze, Jean,AndAmartya Sen (1990). The Political Economy of Hunger, Vol. 2. Oxford: Clarendon Press. Dreze, Jean,AndAmartya Sen (1991). The Political Economy of Hunger, Vol. 3. Oxford: Clarendon Press.
7. Government of India (2007). Public Distribution SystemAnd Other Sources of Household Consumption 2004-05, Volume I. NSS 61 st Round, July, Ministry of StatisticsAnd Programme Implementation, NSSO.
8. Government of India (2008). Economic Survey, 2007-2008. Ministry of Finance (availableAt http://indiabudget.nic.in).
9. MSSRF (M. S. Swaminathan Research Foundation)And World Food Programme (2001). Food InsecurityAtlas of Rural India. Chennai.
10. Planning Commission, PlanningAnd Evaluation Organization or PEO (2005). Performance Evaluation of Targeted Public Distribution System. March, New Delhi..
11. Shankar Kripa(1997), Revamped Public Distribution System: Who benefitsAnd how much?, economicAnd Political Weekly,vol.32,no.13,pp629-30.
12. Sen,Amartya K (1981). PovertyAnd Famines. Oxford: Clarendon Press.

हरियाणा के रेवाड़ी और भिवानी जिलों में छतरियों की स्थापत्य, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत: एक तुलनात्मक अध्ययन

संदीप कुमार

शोधार्थी (पीएच.डी.), दृश्य कला विभाग (ललित कला), महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

प्रो० भूप सिंह गुलिया

प्रोफेसर, दृश्य कला विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भूमिका

भारत की स्थापत्य विरासत में स्मारकीय संरचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है, जिनमें छतरियाँ एक विशेष स्थान रखती हैं। ये संरचनाएँ मूलत: स्मारक स्वरूप में निर्मित की गई थीं, जो शासकों, योद्धाओं, संतों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की स्मृति में बनाई जाती थीं। छतरियाँ न केवल स्थापत्य कला की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं, बल्कि समाज की सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं का भी प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं।

हरियाणा के रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियाँ स्थापत्य कला और ऐतिहासिक धरोहर के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। ये छतरियाँ प्राचीन भारतीय स्थापत्य परंपरा का अनुसरण करते हुए अपने विशिष्ट स्वरूप, अलंकरण और निर्माण तकनीक के कारण विशेष महत्त्व रखती हैं। इनका निर्माण मुख्य रूप से स्थानीय शासकों और प्रभावशाली परिवारों द्वारा कराया गया, जिनका उद्देश्य अपने पूर्वजों की स्मृति को संरक्षित रखना था।

शोध की प्रासंगिकता और महत्त्व

भारत की स्थापत्य परंपरा में छतरियाँ केवल एक संरचना भर नहीं हैं, बल्कि वे ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों से परिपूर्ण स्मारक हैं। हरियाणा के रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियाँ न केवल इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक धरोहर को दर्शाती हैं, बल्कि स्थापत्य कला, शिल्प कौशल और समाज के जीवन मूल्यों की झलक भी प्रस्तुत करती हैं।

इस शोध का उद्देश्य इन छतरियों की स्थापत्य विशेषताओं, निर्माण तकनीकों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन करना है। वर्तमान समय में इन छतरियों का संरक्षण एक महत्वपूर्ण चुनौती बन चुका है, क्योंकि शहरीकरण, प्राकृतिक आपदाएँ और देखरेख की कमी के कारण ये धरोहरें धीरे-धीरे नष्ट हो रही हैं। अत: इस शोध के माध्यम से छतरियों के संरक्षण की दिशा में उचित सुझाव प्रस्तुत किए जाएंगे, जिससे इन ऐतिहासिक धरोहरों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सके।

रेवाड़ी और भिवानी की छतरियाँ भले ही स्थानीय स्तर पर निर्मित हुई हों, लेकिन इनका महत्त्व राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी देखा जा सकता है। इनके स्थापत्य स्वरूप की तुलना भारत के अन्य राज्यों तथा विश्व की अन्य स्मारक परंपराओं से की जा सकती है, जिससे इनके महत्त्व को व्यापक दृष्टिकोण से समझा जा सकता है।

शोध का उद्देश्य

इस शोध में निम्नलिखित पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा –

1. छतरियों का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विश्लेषणरू रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, निर्माणकाल और सांस्कृतिक महत्त्व का अध्ययन किया जाएगा।
2. स्थापत्य एवं शिल्प शैली का अध्ययनरू छतरियों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री, स्थापत्य विशेषताएँ और शिल्प शैली की तुलना अन्य संरचनाओं से की जाएगी।
3. तुलनात्मक अध्ययनरू रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों की तुलना हरियाणा तथा अन्य राज्यों में स्थित छतरियों से की जाएगी, जिससे इनके स्थापत्य स्वरूप की विशेषताओं को समझा जा सके।
4. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में छतरियों का अध्ययनरू भारतीय छतरियों की तुलना विश्व की अन्य स्मारक स्थापत्य परंपराओं से की जाएगी।
5. संरक्षण एवं संरक्षण की रणनीतिरू वर्तमान में इन छतरियों की स्थिति और संरक्षण की आवश्यकता का विश्लेषण किया जाएगा तथा इनके संरक्षण हेतु प्रभावी सुझाव दिए जाएंगे।

इस अध्ययन के माध्यम से न केवल इन छतरियों का व्यापक दस्तावेजीकरण किया जाएगा, बल्कि इनकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्ता को पुनः स्थापित करने की दिशा में सार्थक प्रयास किया जाएगा।

हरियाणा की छतरियाँ: ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

छतरियों की अवधारणा और उनका ऐतिहासिक विकास

छतरियाँ भारतीय स्थापत्य परंपरा में स्मारकीय संरचनाएँ हैं, जो विशेष रूप से स्मृति चिन्ह के रूप में निर्मित की जाती हैं। इनका उपयोग शासकों, वीर योद्धाओं, धार्मिक संतों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों और कुलीन वर्ग की स्मृति को संरक्षित करने के लिए किया जाता था। छतरियों का शाब्दिक अर्थ ष्छाया देने वाला संरचनाष् होता है, जो प्रतीकात्मक रूप से सम्मान और श्रद्धांजलि का संकेत देती हैं।

चित्र 1. बीकानेर गांव रिवाड़ी की अनेक गुंबदों वाली विशाल छतरी

छतरियों की उत्पत्ति का संबंध प्राचीन भारत से जुड़ा हुआ है, जहाँ उन्हें स्मारकों और समाधि स्थलों के रूप में विकसित किया गया। गुप्तकाल, राजपूतकाल और मुगलकाल में छतरियों का निर्माण प्रचलित हुआ, जिसमें मुगल और राजपूत स्थापत्य शैलियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मुगल शासकों द्वारा निर्मित छतरियों में संगमरमर और बलुआ पत्थर का उपयोग किया गया, जबकि राजपूत शैली की छतरियाँ जटिल नक्काशी, शिखरों और गुंबदों से सुसज्जित होती थीं। मध्यकाल में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और हरियाणा सहित भारत के विभिन्न भागों में छतरियों का निर्माण हुआ।

छतरियों का ऐतिहासिक विकास केवल एक समाधि स्मारक तक सीमित नहीं रहा, बल्कि ये सामाजिक और धार्मिक केंद्रों के रूप में भी विकसित हुई। कई स्थानों पर छतरियाँ मंदिरों, बावड़ियों और धरोहर स्थलों के निकट स्थापित की गईं, जिससे उनकी सांस्कृतिक भूमिका और महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया।

भारतीय स्थापत्य परंपरा में छतरियों का स्थान

भारतीय स्थापत्य कला में छतरियों को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। स्थापत्य दृष्टि से ये संरचनाएँ मुख्य रूप से वर्गाकार या अष्टकोणीय आधार पर निर्मित होती हैं, जिनके ऊपर गुंबद और स्तंभों की उत्कृष्ट नक्काशी होती है। इनमें प्रयुक्त सामग्री आमतौर पर बलुआ पत्थर, संगमरमर और चूने की पच्चीकारी होती है।

छतरियों का निर्माण विभिन्न स्थापत्य शैलियों से प्रभावित रहा है। राजपूत और मुगल स्थापत्य में छतरियों की उपस्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। राजस्थान और मध्य प्रदेश के किलों तथा मंदिरों में छतरियों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया गया, जो स्थानीय शासकों की शक्ति और गौरव को प्रदर्शित करता था। मुगल काल में निर्मित छतरियाँ अधिकतर संगमरमर से बनी होती थीं और इनका प्रयोग विशेष रूप से शाही परिवारों की समाधि के रूप में किया जाता था।

भारतीय स्थापत्य परंपरा में छतरियों की उपस्थिति न केवल स्थापत्य सौंदर्य का प्रतीक थी, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं से भी जुड़ी हुई थी। इनमें जल संरचनाओं के समीप निर्मित छतरियों का विशेष महत्त्व था, जो यात्रियों और श्रद्धालुओं को विश्राम स्थल के रूप में सेवा प्रदान करती थीं।

हरियाणा में छतरियों की उपस्थिति और उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हरियाणा अपने समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहरों के लिए प्रसिद्ध है, और यहाँ स्थित छतरियाँ इस गौरवशाली परंपरा का अभिन्न अंग हैं। रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियाँ स्थापत्य कला, सामाजिक इतिहास और सांस्कृतिक विरासत की अनूठी मिसाल प्रस्तुत करती हैं।

हरियाणा में निर्मित छतरियाँ मुख्य रूप से राजपूत, जाट और अन्य स्थानीय शासकों द्वारा अपने पूर्वजों और योद्धाओं की स्मृति में बनवाई गई थीं। इन संरचनाओं की स्थापत्य शैली राजस्थान और उत्तर भारत के अन्य भागों से प्रभावित थी, लेकिन इनमें स्थानीय शिल्पकारों द्वारा विकसित विशिष्ट कलात्मक रूपांकन भी देखे जा सकते हैं।

रेवाड़ी और भिवानी में स्थित छतरियाँ स्थापत्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये भारतीय और मुगल स्थापत्य शैली के अद्वितीय संगम को प्रदर्शित करती हैं। इनमें उकेरी गई नक्काशी, स्तंभों की बनावट, और छतरियों की छतों पर उत्कीर्ण ज्यामितीय और पुष्पीय डिजाइन इनकी विशिष्ट पहचान को दर्शाते हैं।

इतिहासकारों और पुरातत्वविदों के अनुसार, हरियाणा की छतरियाँ न केवल स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना और परंपराओं का भी सजीव दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। कई छतरियों के साथ धर्मशालाएँ, बावड़ियाँ और जलाशय भी निर्मित किए गए थे, जिससे इनकी बहुआयामी उपयोगिता का संकेत मिलता है।

वर्तमान में हरियाणा की छतरियों को संरक्षण की आवश्यकता है, क्योंकि शहरीकरण और पर्यावरणीय क्षति के कारण कई महत्वपूर्ण संरचनाएँ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पहुँच चुकी हैं। यदि इन धरोहरों को उचित संरक्षण नहीं मिला, तो यह हमारी सांस्कृतिक

विरासत के लिए एक अपूरणीय क्षति होगी। इसलिए इन छतरियों का गहन अध्ययन और संरक्षण आज की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है।

रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियों का अध्ययन

रेवाड़ी और भिवानी जिलों में स्थित छतरियाँ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और स्थापत्य दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये छतरियाँ मुख्य रूप से 18वीं और 19वीं शताब्दी में स्थानीय शासकों, जमींदारों, योद्धाओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की स्मृति में निर्मित की गई थीं। इनमें से कुछ छतरियाँ मुगल और राजपूत स्थापत्य शैली के प्रभाव को प्रदर्शित करती हैं, जबकि कुछ में हरियाणा की स्थानीय निर्माण शैली के अद्वितीय तत्व देखे जा सकते हैं।

रेवाड़ी जिले की प्रमुख छतरियों में राव तुलाराम की छतरी और राव बालमुकुंद की छतरी विशेष उल्लेखनीय हैं। राव तुलाराम की छतरी, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान की स्मृति में बनाई गई थी। इसकी संरचना बलुआ पत्थर और संगमरमर से बनी हुई है, तथा इसमें जटिल नक्काशी और स्तंभों का उत्कृष्ट समावेश देखा जा सकता है। दूसरी ओर, राव बालमुकुंद की छतरी अपने भव्य स्थापत्य और विशिष्ट गुंबदाकार संरचना के लिए प्रसिद्ध है। इसकी दीवारों पर ज्यामितीय डिजाइन और पुष्पीय अलंकरण उकेरे गए हैं, जो राजस्थानी और मुगल शैलियों का सम्मिश्रण प्रस्तुत करते हैं।

भिवानी जिले में स्थित तोषाम क्षेत्र की छतरियाँ और महम के निकट छतरियाँ अपने ऐतिहासिक महत्त्व और वास्तुशिल्प सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। तोशाम की छतरियाँ 18वीं शताब्दी की बताई जाती हैं, जिनमें जटिल नक्काशी, मेहराबदार स्तंभ और गुंबदयुक्त संरचनाएँ शामिल हैं। वहीं, महम क्षेत्र की छतरियाँ लाल और पीले बलुआ पत्थर से निर्मित हैं, तथा इन पर परंपरागत भारतीय रूपांकनों की उत्कृष्ट कारीगरी देखी जा सकती है।

रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों के निर्माण में प्रयुक्त सामग्री और तकनीक स्थापत्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये छतरियाँ आमतौर पर स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्थर, चूना, ईंट और संगमरमर से बनाई गई थीं। अधिकतर छतरियाँ लाल और पीले बलुआ पत्थर से निर्मित की गई हैं, जो अपनी मजबूती और लंबे समय तक संरक्षित रहने की क्षमता के लिए जाना जाता है। कुछ छतरियों में संगमरमर का उपयोग अलंकरण और नक्काशी के लिए किया गया है, विशेषकर छत और स्तंभों पर। छतरियों की दीवारों और गुम्बदों को मजबूती प्रदान करने के लिए चूने और सुरखी का मिश्रण किया जाता था, जिससे वे दीर्घायु बनी रहती थीं।

निर्माण तकनीक की दृष्टि से, इन छतरियों में मेहराबदार द्वारों और पत्थर के स्तंभों का उपयोग प्रमुख रूप से किया गया है। कंक्रीट और प्लास्टर का प्रयोग छतरियों की सतह को चिकना बनाने और संरचनात्मक मजबूती के लिए किया गया। इनके अलंकरण में सुंदर फूलों, लताओं और ज्यामितीय डिजाइनों की नक्काशी प्रमुख है। कुछ छतरियों की दीवारों और छतों पर उकेरी गई नक्काशी अत्यंत प्रभावशाली होती है, जिससे उनके स्थापत्य वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है।

रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों की स्थापत्य विशेषताएँ इन्हें अन्य क्षेत्रों की छतरियों से अलग पहचान प्रदान करती हैं। अधिकतर छतरियों में अर्धगोलाकार या अष्टकोणीय गुंबदों का प्रयोग किया गया है, जो मुगल और राजपूत स्थापत्य कला के प्रभाव को दर्शाते हैं। कुछ छतरियों में पिरामिडनुमा छतें भी बनाई गई हैं, जो उत्तर भारतीय स्थापत्य शैली का परिचायक हैं। इन छतरियों में प्रयुक्त स्तंभों पर बारीक उत्कीर्णन किया गया है, जिनमें पशु, पक्षी, बेल-बूटे और ज्यामितीय आकृतियाँ उकेरी गई हैं। अधिकतर छतरियों में तीन या चार दिशाओं में खुले प्रवेश द्वार होते हैं, जिन पर सुंदर मेहराबदार डिजाइन बनाए गए हैं।

छतरियों की अलंकरण कला में पच्चीकारी और संगीतमय आकृतियों की चित्रकारी देखी जा सकती है। कुछ छतरियों में स्थानीय लोक कथाओं और धार्मिक प्रसंगों को भी चित्रित किया गया है। इनके चारों ओर वृक्षों और उद्यानों की उपस्थिति देखी जाती है, जिससे वे धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं।

इन छतरियों का संरक्षण न केवल ऐतिहासिक विरासत की रक्षा के लिए आवश्यक है, बल्कि यह भविष्य की पीढ़ियों को भी अपनी संस्कृति और परंपराओं से जोड़ने में सहायक सिद्ध होगा। रेवाड़ी और भिवानी जिलों की छतरियाँ स्थापत्य कला और ऐतिहासिक धरोहर के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनकी संरचनाओं में राजपूत, मुगल और स्थानीय स्थापत्य शैलियों का समन्वय देखा जा सकता है। इन छतरियों का संरक्षण और पुनरुद्धार, हरियाणा की स्थापत्य परंपरा को संरक्षित करने और इसकी ऐतिहासिक महत्ता को पुनर्स्थापित करने का महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है।

छतरियों की सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता

छतरियाँ न केवल स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण संरचनाएँ हैं, बल्कि इनका गहरा सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व भी है। ऐतिहासिक रूप से, छतरियाँ स्मारक स्वरूप में निर्मित की गई, जिनका संबंध सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक आस्थाओं और लोक विश्वासों से है। इनका निर्माण शासकों, वीर पुरुषों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की स्मृति में किया जाता था, जिससे वे समाज के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकें।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में छतरियों की भूमिका

छतरियाँ भारतीय समाज में स्मारक संस्कृति और श्रद्धांजलि अर्पित करने की परंपरा का प्रतीक रही हैं। प्राचीन काल से ही भारत में सम्माननीय व्यक्तियों के निधन के बाद उनके योगदान को चिरस्थायी बनाने के लिए स्मारक बनाए जाने की परंपरा रही है। छतरियाँ भी इसी परंपरा का एक अभिन्न अंग रही हैं। ये संरचनाएँ किसी महान योद्धा, राजा, संत या प्रतिष्ठित व्यक्ति की स्मृति को सहेजने के उद्देश्य से निर्मित की जाती थीं, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उनके जीवन और कार्यों से प्रेरणा ले सकें।

छतरियों का सामाजिक दृष्टि से एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह भी रहा है कि वे सामूहिक पहचान और सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक होती थीं। कई स्थानों पर ये छतरियाँ न केवल ऐतिहासिक स्मारक थीं, बल्कि सामाजिक मिलन केंद्रों के रूप में भी कार्य करती थीं। धार्मिक उत्सवों, मेलों और सांस्कृतिक आयोजनों में ये स्थल समुदाय के लोगों को एकजुट करने का माध्यम बनती थीं। ग्रामीण क्षेत्रों में छतरियों को सामूहिक बैठकों, निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और समाजिक संवाद के केंद्र के रूप में भी देखा जाता था।

अंतिम संस्कार एवं स्मारक स्थापत्य के रूप में छतरियों का महत्त्व

छतरियाँ स्मारक स्थापत्य की एक अद्वितीय विधा हैं, जो भारतीय समाज में मृतकों की स्मृति को संरक्षित रखने की परंपरा से जुड़ी हुई हैं। ये संरचनाएँ प्रायः उन व्यक्तियों की स्मृति में निर्मित की जाती थीं, जिनका समाज, राजनीति, युद्ध अथवा धर्म में विशेष योगदान रहा हो। भारत में अंतिम संस्कार से जुड़े अनेक स्थापत्य रूप प्रचलित रहे हैं, जिनमें समाधि, स्तूप और छतरियाँ प्रमुख हैं।

राजस्थानी, मुगल, मराठा और राजपूत स्थापत्य शैलियों में छतरियों का विशेष स्थान रहा है। विशेष रूप से राजपूत शासकों और वीर योद्धाओं की स्मृति में छतरियों का निर्माण किया जाता था। राजस्थान और हरियाणा में कई स्थानों पर ये संरचनाएँ समूह में देखी जाती हैं, जिन्हें 'छत्री समूह' कहा जाता है। इनका निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाता था, जो किसी वीरगति प्राप्त व्यक्ति से जुड़े होते थे, जिससे उसकी वीरता और शौर्य को स्मरण किया जा सके।

छतरियाँ न केवल मृतक की स्मृति में निर्मित होती थीं, बल्कि इनका निर्माण धर्म और आध्यात्मिकता से भी जुड़ा होता था। ऐसी मान्यता थी कि इन स्मारकों से आत्मा की शांति सुनिश्चित होती है और ये परलोक यात्रा में सहायता प्रदान करती हैं। कुछ छतरियों में समाधि स्थल भी बनाए जाते थे, जहाँ लोग मृतक के प्रति सम्मान प्रकट करने और उनकी आत्मा की शांति के लिए अनुष्ठान करने आते थे।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठानों में छतरियों की उपस्थिति

धार्मिक दृष्टिकोण से छतरियों का विशेष महत्त्व है। इन्हें केवल स्मारक के रूप में ही नहीं, बल्कि धार्मिक स्थल के रूप में भी देखा जाता था। भारत के कई हिस्सों में छतरियों का उपयोग पूजा-पाठ, यज्ञ और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया जाता रहा है। कुछ छतरियों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं, जिससे वे पूजा स्थल का रूप ले लेती थीं।

हरियाणा के कई क्षेत्रों में छतरियों को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों से जोड़ा जाता रहा है। इनमें पितृ पक्ष में श्राद्ध अनुष्ठान, हवन, और धार्मिक भजन-कीर्तन जैसे आयोजन संपन्न किए जाते थे। यह मान्यता थी कि इन स्थानों पर किए गए अनुष्ठानों से पूर्वजों को मोक्ष प्राप्त होता है। कई स्थानों पर छतरियों को गाँव की संरक्षक शक्ति मानकर इनकी पूजा-अर्चना की जाती थी।

चित्र 2: शोधार्थी द्वारा छतरी के नीचे प्रस्तर विधि में बने पैर का अध्ययन करना, बावल, जिला रिवाड़ी

छतरियों का धार्मिक महत्त्व इस तथ्य से भी जुड़ा है कि वे शक्ति, साहस और त्याग के प्रतीक माने जाते थे। वीरगति प्राप्त योद्धाओं की छतरियों को श्रद्धा और सम्मान के साथ देखा जाता था, और इनके प्रति स्थानीय जनता में विशेष आस्था बनी रहती थी। कई स्थानों पर इन छतरियों पर विशेष पर्वों और त्योहारों के अवसर पर श्रद्धालुओं का आगमन होता था, जहाँ वे पूजा-अर्चना करते और अपनी मनोकामनाएँ व्यक्त करते थे।

छतरियाँ केवल स्थापत्य की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान हैं। ये संरचनाएँ स्मारक संस्कृति का हिस्सा होते हुए भी समाज के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन से गहराई से जुड़ी हुई हैं। वे न केवल वीरगति प्राप्त व्यक्तियों और महान विभूतियों की स्मृति को चिरस्थायी बनाती हैं, बल्कि समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनती हैं। धार्मिक अनुष्ठानों, श्रद्धांजलि सभाओं और सांस्कृतिक आयोजनों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः, इन छतरियों का संरक्षण और पुनरुद्धार आवश्यक है, ताकि हमारी सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित रह सके और आने वाली पीढ़ियाँ अपने गौरवशाली अतीत से जुड़ी रह सकें।

रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों का तुलनात्मक अध्ययन

रेवाड़ी और भिवानी जिले हरियाणा की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर के प्रमुख केंद्र रहे हैं। यहाँ स्थित छतरियाँ स्थापत्य कला, शिल्पकौशल, और स्थानीय सांस्कृतिक प्रभावों को प्रतिबिंबित करती हैं। इन दोनों जिलों में निर्मित छतरियों के स्थापत्य रूप, निर्माण सामग्री, तकनीक और ऐतिहासिक संदर्भों में कुछ महत्वपूर्ण समानताएँ और भिन्नताएँ देखी जा सकती हैं, जो इन क्षेत्रों के स्थापत्य विकास की एक विशिष्ट पहचान प्रस्तुत करती हैं।

स्थापत्य और शिल्प शैली की तुलना

रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों की स्थापत्य शैली में कई समानताएँ पाई जाती हैं, क्योंकि दोनों जिलों में राजपूत और मुगल स्थापत्य प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। रेवाड़ी की छतरियाँ प्रायः अधिक अलंकृत और विस्तृत नक्काशीदार होती हैं, जिनमें स्तंभ, गुंबद और मेहराबों की जटिल संरचना देखी जा सकती है। दूसरी ओर, भिवानी की छतरियाँ अपेक्षाकृत सादगीपूर्ण हैं, जिनमें अधिकतर सीधी और सरल संरचनाएँ देखी जाती हैं।

रेवाड़ी की छतरियों में जालीदार काम, सुगठित स्तंभों और विस्तृत छतरीयुक्त छतों की प्रमुखता होती है, जो इन्हें अधिक प्रभावशाली बनाती हैं। इसके विपरीत, भिवानी की छतरियों में कम सजावटी तत्व होते हैं, लेकिन उनकी संरचनात्मक मजबूती और

अनुपातिक सौंदर्य इन्हें विशिष्ट बनाता है। इसके अतिरिक्त, रेवाड़ी की छतरियों में राजस्थानी स्थापत्य का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है, जबकि भिवानी में यह प्रभाव अपेक्षाकृत सीमित है।

निर्माण सामग्री एवं तकनीक की समानताएँ और भिन्नताएँ

निर्माण सामग्री और तकनीकी दृष्टि से भी दोनों जिलों की छतरियों में कुछ महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ पाई जाती हैं। रेवाड़ी की छतरियाँ मुख्य रूप से लाल बलुआ पत्थर और चूना पत्थर से निर्मित होती हैं, जबकि भिवानी में अधिकतर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्ची ईंट, पत्थर और चूने का उपयोग किया गया है।

रेवाड़ी की छतरियों के निर्माण में प्रयुक्त पत्थर की गुणवत्ता और उसकी नक्काशी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहाँ की छतरियों में उत्कृष्ट शिल्पकला के नमूने मिलते हैं, जिनमें फूल-पत्तियों की नक्काशी, ज्यामितीय पैटर्न, और धार्मिक प्रतीकों का समावेश देखने को मिलता है। इसके विपरीत, भिवानी की छतरियाँ अधिकतर सरल संरचनाओं वाली हैं, जिनमें शिल्पकला का प्रयोग कम मात्रा में किया गया है।

निर्माण तकनीक की दृष्टि से, रेवाड़ी की छतरियाँ अधिक विकसित हैं, जिनमें स्तंभों और छतों की मजबूती का विशेष ध्यान रखा गया है। यहाँ की छतरियों में बहुस्तरीय छतें और विस्तृत आंगन बनाए गए हैं, जो इन्हें एक प्रभावशाली स्थापत्य स्वरूप प्रदान करते हैं। वहीं, भिवानी की छतरियों में अपेक्षाकृत कम ऊँचाई और कम विस्तृत संरचनाएँ देखने को मिलती हैं, जिससे वे अधिक व्यावहारिक और कार्यात्मक प्रतीत होती हैं।

ऐतिहासिक संदर्भ और स्थानीय प्रभाव

इतिहास के दृष्टिकोण से, रेवाड़ी और भिवानी की छतरियों के निर्माण के पीछे विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ कार्यरत रही हैं। रेवाड़ी ऐतिहासिक रूप से एक प्रमुख व्यापारिक और सामरिक केंद्र रहा है, जहाँ राजपूत, मराठा और मुगलों का प्रभाव रहा है। यही कारण है कि यहाँ की छतरियों में इन विभिन्न शासकों के स्थापत्य तत्वों की झलक देखी जा सकती है।

भिवानी, जो ऐतिहासिक रूप से अधिकतर कृषि और धार्मिक गतिविधियों के लिए प्रसिद्ध रहा है, वहाँ की छतरियों का विकास भी स्थानीय आवश्यकताओं और धार्मिक आस्थाओं के अनुरूप हुआ है। यहाँ की छतरियाँ अधिकतर संतों, धार्मिक नेताओं, और स्थानीय सरदारों की स्मृति में बनाई गई हैं, जबकि रेवाड़ी की छतरियाँ अधिकतर योद्धाओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्मान में निर्मित की गई हैं।

स्थानीय प्रभावों की बात करें तो रेवाड़ी की छतरियों में राजस्थानी और मुगल स्थापत्य का अधिक प्रभाव देखा जाता है, जबकि भिवानी की छतरियों पर हरियाणवी ग्रामीण स्थापत्य शैली की छाप अधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। रेवाड़ी की छतरियों में जहाँ विस्तृत शिल्पकला और स्थापत्य की भव्यता प्रमुख है, वहीं भिवानी की छतरियाँ अधिक साधारण लेकिन मजबूत संरचनाएँ प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष

रेवाड़ी और भिवानी जिलों की छतरियाँ हरियाणा की स्थापत्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो स्थानीय इतिहास, समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। दोनों जिलों की छतरियों में कई समानताएँ पाई जाती हैं, विशेष रूप से उनकी संरचना और स्थापत्य शैली में, लेकिन निर्माण सामग्री, शिल्प शैली और ऐतिहासिक संदर्भों में महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं।

रेवाड़ी की छतरियाँ अधिक भव्य, अलंकृत और विस्तृत नक्काशी वाली होती हैं, जबकि भिवानी की छतरियाँ अपेक्षाकृत सादगीपूर्ण, लेकिन मजबूत और व्यावहारिक हैं। निर्माण सामग्री और तकनीक के स्तर पर भी दोनों जिलों की छतरियाँ भिन्न हैं, जहाँ रेवाड़ी में लाल बलुआ पत्थर और जटिल नक्काशी का उपयोग किया गया है, वहीं भिवानी में स्थानीय पत्थरों और ईंटों का अधिक प्रयोग किया गया है।

इतिहास और स्थानीय प्रभावों के आधार पर भी दोनों क्षेत्रों की छतरियाँ अलग-अलग पहचान प्रस्तुत करती हैं। रेवाड़ी की छतरियाँ अधिक राजकीय और सामरिक प्रभाव वाली हैं, जबकि भिवानी की छतरियाँ धार्मिक और स्थानीय समाज की आस्थाओं से जुड़ी

हुई हैं। इस प्रकार, रेवाड़ी और भिवानी की छतरियाँ न केवल स्थापत्य कला की विविधता को दर्शाती हैं, बल्कि वे हरियाणा की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का भी अभिन्न हिस्सा हैं, जिनका संरक्षण और अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. यादव, के.सी. – मॉडर्न हरियाणा (हिस्ट्री एण्ड कल्चर) – 2005 – मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, अंसारी रोड, दरियागंज, न्यू दिल्ली–02, पृ० 268
2. शुक्ला द्विवेजेन्द्रनाथ, 'भारतीय स्थापत्य' (शास्त्रीय एवं कलात्मक अध्ययन), 1968, प्रकाशक हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पृ० 174
3. कृष्ण देव–उत्तर भारत के मंदिर–1987, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ए–5 ग्रीन पार्क नई दिल्ली–110016
4. एस०वाई० कुरैशी – हरियाणा रीडिस्कवरड (ए बिबलियोग्राफी कल एरिया स्टडि वोलूम–1, 1985, इंडियन डोकूमेनटेशन सर्विस गुड़गांवा 122001 हरियाणा
5. हूकर, डेनिस – हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न आर्ट, 1989, पब्लिकेशन बॉक्सट्री लिमिटेड, ब्रॉड हाउस, 21 ब्रॉडवेल, लंदनण् पृ० 22
6. पुलिन, एरिक डी. – 'मनी डज नॉट मेक एनी डिफरेंस टू द ओपिनियंस दैट वी होल्ड': इंडिया, द सीआईए, एण्ड द कॉन्ग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम, 1951 –58, इंटेलिजेंस एण्ड नेशनल सिक्योरिटी, 26.2–3 (2011): 377–398
7. एस०वाई० कुरैशी – हरियाणा रीडिस्कवरड (ए बिबलियोग्राफी कल एरिया स्टडि वोलूम–1, 1985, इंडियन डोकूमेनटेशन सर्विस गुड़गांवा 122001 हरियाणा
8. कुमार, पी. (2018). हरियाणा में प्राचीन समाज और संस्कृति: एक पुरातात्विक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 6(1), 429–432.
9. के०सी० यादव – मॉड्रन हरियाणा (हिस्ट्री एण्ड कल्चर) 1803–1966 2002, अजय कुमार जैन फॉर मनोहर पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीबूटर 4753/23 अंसारी रोड दरियागंज, दिल्ली–110002
10. हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, भाषा विभाग हरियाणा, 1978, निदेशक भाषा विभाग, हरियाणा चण्डीगढ़, पृ० 46
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी, भारतीय कला परिचय, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, शाखी मण्डल, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, पृ० 30
12. Gulia Bhup Singh, 'Traditional Art of Haryana' 2005 Haryana Sanskriti publication, PP 17.26
13. श्री विन्धेश्वरी प्रसाद द्वीवेदी ज्यौतिषाचार्य (1977) वास्तु रत्नाकर: (अहिबल चक्रसहित:) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी 221001 (भारत) चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन के० 37/119 गोपाल मन्दिर लेन, पो० बा० 138, वाराणसी 221001

भारत की सुरक्षा के संदर्भ मे परमाणु हथियारों का महत्व: एक समीक्षा

डॉ० रंजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह सांध्य महाविध्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत का ये भी मानना था कि परमाणु प्रौद्योगिकी की राष्ट्रीय विकास में बहुत बड़ी भूमिका है। कुछ हद तक, उन्होंने यह भी सोचा कि परमाणु हथियार प्रौद्योगिकी की राष्ट्रीय रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, यदि परमाणु निरस्त्रीकरण के प्रयास विफल हो जाता है। ये कुछ विरोधाभासी नीति और समझ आज भी दिखाई देती हैं। 1947 को नेहरू ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि "आणविक शक्ति से मानव सभ्यता को नष्ट किया जा सकता है हम इसका प्रयोग शांति क्षेत्र में करना चाहते हैं"।[1] भारतीय नेताओं ने आमतौर पर परमाणु हथियारों को एक आवश्यक बुराई माना है। प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री और राजीव गांधी ने परमाणु हथियारों के लिए प्रतिबद्धता से बचने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाधान की मांग की; प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई ने हथियार कार्यक्रम को एक समय के लिए बंद कर दिया।[2] यहां तक कि प्रधान मंत्री अटल वाजपेयी, जिन्होंने 1998 में परमाणु परीक्षण का आदेश दिया था, दो दशक पहले अधिक महत्वाकांक्षी थे, 1979 में परमाणु हथियार कार्यक्रम को फिर से शुरू करने के खिलाफ देसाई के साथ मतदान कर रहे थे। कई विश्लेषकों ने निष्कर्ष निकाला है, बढ़ते परमाणु परीक्षण और एक प्रगतिशील रूप से अस्वीकार्य वैश्विक परमाणु व्यवस्था ने 1990 के दशक में नई दिल्ली को एक घोषित परमाणु शस्त्रागार की ओर बढ़ने के लिए मजबूर किया। परमाणु हथियारों के साथ इस असुविधा ने भारत के परमाणु हथियारों को देखने के तरीके को परिभाषित किया है।

1960 और 1990 के बीच के परमाणु हथियारों के बारे में भारतीय बहस में से अधिकांश ने इस बात पर विचार नहीं किया कि भारतीय रणनीति के ढांचे के भीतर परमाणु हथियारों का उपयोग कैसे किया जा सकता है। तर्क और प्रस्ताव बड़े पैमाने पर इसी प्रश्न पर घूमते रहा कि क्या भारत को परमाणु क्षमता की प्राप्ति के लिए जाना चाहिए, न कि भारत को परमाणु हथियारों के साथ क्या करना चाहिए। 1980 के दशक में ही के। सुब्रह्मण्यम और जनरल के. सुंदरजी जैसे कुछ भारतीय रणनीतिकारों ने यह लिखना शुरू कर दिया था कि परमाणु हथियार क्या उपयोगी हो सकते हैं।[3] यह उस समय निर्णयकर्ताओं के बीच इस तरह के सवालों पर अधिक ध्यान देने के साथ भी मेल खाता है। सुंदरजी और सुब्रह्मण्यम दोनों ने तर्क दिया कि शीत युद्ध के दौरान अमेरिका और सोवियत संघ ने जिस तरह के परमाणु शस्त्रों को विकसित किया था, वे अनावश्यक और बेकार थे। परमाणु निरोध (Nuclear deterrence) कम खर्चे और कम परमाणु अस्त्रों से भी हो सकता था। संक्षेप में, जैसा कि टेलिस ने तर्क दिया है, सुंदरजी और सुब्रह्मण्यम सुझाव दे रहे थे कि परमाणु हथियारों का एक दृष्टिकोण, जो सैन्य उपयोगिता के बजाय अपनी राजनीतिक शक्ति पर जोर देता है, युद्ध-लड़ने की क्षमता के बजाय इसकी प्रतिरोध क्षमता।[4] पूर्व भारतीय विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने यह तर्क दिया कि, 'परमाणु हथियारों की राजनीतिक उपयोगिता के बारे में यह दृष्टिकोण, राजनीतिक हथियारों और राजनीतिक स्वायत्तता प्रदान करने वाले परमाणु हथियारों के बारे में दलीलों में भी परिलक्षित होता है।[5] आश्चर्य नहीं कि अंतत: भारतीय परमाणु निवारक ने छोटी संख्या और प्रतिशोध लेने की क्षमता पर जोर दिया, इसके बजाय के एक ऐसे निवारक बल का निर्माण करना जो अन्य परमाणु शक्तियों के साथ समानता रखता हो।

लेकिन यह धारणा कि परमाणु हथियार राजनीतिक उपकरण हैं, मुख्य रूप से यह है कि भारत परमाणु हथियारों की उपयोगिता को कैसे देखता है। यह भारत के विचारों के बारे में नहीं बताता है कि अन्य राज्य, विशेष रूप से पाकिस्तान, परमाणु हथियार कैसे देख सकते हैं। वास्तव में भारतीय विचारों में दूसरों के हाथों में परमाणु हथियार होने के बारे में अत्यधिक निराशावादी हो सकता

है, यह मानते हुए कि अन्य राज्य नई दिल्ली के रूप में जिम्मेदार नहीं हैं या हो सकते हैं। परमाणु प्रसार पर भारत का दृष्टिकोण इस गहन निराशावादी दृष्टिकोण का एक संकेतक है कि भारत के पास अन्य राज्यों के परमाणु हथियारों के उपयोग की संभावना है। हालांकि भारत ने परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर आपत्ति जताई, लेकिन इसने प्रसार (परमाणु) को अंतरराष्ट्रीय स्थिरता के लिए खतरे के रूप में देखा है और चार दशकों और अधिक के अपने "अनुकरणीय अप्रसार रिकॉर्ड (exemplary non&proliferation record)" को बार-बार दोहराया है।[6] इस प्रकार परमाणु हथियारों के प्रसार के बारे में भारतीय दृष्टिकोण मौलिक रूप से केनेथ वाल्ट्ज[7] जैसे प्रसार आशावादियों की दलीलें 'ज्यादा (जितने देशो के पास होगा) और बेहतर हो सकता है' ('more may be better'), या 1991 से पहले चीन द्वारा अप्रसार की अवधारणा की कट्टरपंथी अस्वीकृति से अलग है।[8] भारतीय अधिकारी यह नहीं सोचते हैं कि परमाणु हथियारों ने इस क्षेत्र को स्थिर कर दिया है; बल्कि उनका मानना है कि पाकिस्तानी हाथों में परमाणु हथियार ने इस क्षेत्र में परमाणु जोखिम को बढ़ा दिया हैं क्योंकि पाकिस्तान को गैर-जिम्मेदार देश माना जाता है। यह विरोधाभास के एक बड़े पैटर्न पर फिट बैठता है जो मानता है कि अन्य शक्तियां, विशेष रूप से, पाकिस्तान उतने जिम्मेदार नहीं होंगे जितना कि भारत।

मिसाइल सुरक्षा के बारे में भारतीय विचार परमाणु हथियारों के बारे में विरोधाभासी भारतीय विचारों का एक और संकेत हैं। यदि परमाणु हथियार अनिवार्य रूप से राजनीतिक हथियार हैं, तो युद्ध लड़ने में प्रयोग करने योग्य नहीं है, मिसाइल डिफेंस के तर्क को समझना मुश्किल लगता है: स्पष्ट रूप से मिसाइल डिफेंस की आवश्यकता केवल तभी होती है जब कोई मानता है कि परमाणु हथियारों का इस्तेमाल होने वाला है। फिर भी, नई दिल्ली ने 1990 के दशक के मध्य से कम से कम एक बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा (बीएमडी) (ballistic missile defence) प्रणाली अपनाई है।[9] भारत की एक उपयुक्त बीएमडी प्रणाली की तलाश पाकिस्तान की मिसाइल वितरण क्षमता के विकास से जुड़ी हुई है, जिसमें चीनी मिसाइलों (M&11) का स्थानांतरण भी शामिल है। परमाणु हथियारों की तरह, नई दिल्ली में राजनीतिक नेतृत्व और विचारधारा में बदलाव के बावजूद बीएमडी प्रणाली की खोज जारी है। कई बार, भारत ने रूसी-निर्मित एस -300, इजरायल-अमेरिकी तीर और अमेरिका निर्मित पैट्रियट बैलिस्टिक मिसाइल रक्षा प्रणालियों की मांग की है। भारत में विकास के लिए घरेलू बीएमडी प्रणाली के बारे में भी सोचा जाता है, जो अभी भी अंडर-डेवलपमेंट आकाश सरफेस-टू-एयर मिसाइल (एसएएम) के आसपास निर्मित है। नई दिल्ली की एक दशक पुरानी खोज संभवत: असफल रही है क्योंकि भारतीय निर्णयकर्ताओं ने पर्याप्त विचार नहीं किया है कि भारत को किस तरह की प्रणाली की आवश्यकता है।

संदर्भ

1 इस दोहरे पहलू पर, देखें इट्टी अब्राहम, द मेकिंग ऑफ द इंडियन एटॉमिक बॉम्ब: साइंस, सेक्रेसी और पोस्टकोलोनियल स्टेट (न्यूयॉर्क: जेड बुक्स, 1998)।

3 लेफ्टिनेंट जनरल के। सुंदरजी, "परिचय", परम्परागत संतुलन पर परमाणु विषमता के प्रभाव में, कॉम्बैट पेपर्स नं। 1 (महू: कॉलेज ऑफ कॉम्बैट, मई 1981); के। सुब्रह्मण्यम, "न्यूक्लियर फोर्स डिजाइन और भारत के लिए न्यूनतम निवारक रणनीति", भारत कर्नाड में, भविष्य में इंपेरील्लेड: 1990 के दशक में भारत की सुरक्षा (नई दिल्ली: वाइकिंग, 1994), प. 176-95।

4 टेलिस, भारत का उभरता हुआ परमाणु आसन (posture), प. 261-96

5 "विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह के साथ साक्षात्कार," <http://meaindia.nic.in/interview/1999/11/25i01-htm>; और "ईएएम का साक्षात्कार सूडेसट्सचे जिटुंग, जर्मनी के साथ," <http%:// meaindia.nic.in/interview/1999/10/10i01.htm>

6 "इंडो-यूएस रिलेशंस: एन एजेंडा फॉर द फ्यूचर", विदेश सचिव श्री श्याम सरन का हेरिटेज फाउंडेशन, वाशिंगटन डीसी का 30 मार्च, 2006 का संबोधन, <httpL://www-indianembassy.org/newsite/ press_release / 2006 / मार्च / 43.asp>।

7 केनेथ एन वाल्ट्ज, द स्प्रेड ऑफ न्यूक्लियर वेपंस: मोर मे बी बेटर, एडेल्फी पेपर नं. 171 (लंदन: अंतर्राष्ट्रीय सामरिक अध्ययन संस्थान, 1981)।

8 मिंगक्वान झू, "चीन के परमाणु अप्रसार नीति का विकास," अप्रसार समीक्षा, वॉल्यूम. 4, दव. 2 (शीतकालीन 1997), प. 40- 48

9 राजेश राजगोपालन, "भारत: सबसे बड़ा लोकतंत्र और सबसे छोटी बहस?," समकालीन सुरक्षा नीति, खंड. 26, सं. 3 (दिसंबर 2005), प. 605-20. एक अलग दृष्टिकोण के लिए, हर्ष वी. पंत, "भारत ने मिसाइल डिफेंस का विमोचन किया," रक्षा अध्ययन, खंड. 5, नं. 2 (जून 2005), प. 228-46।

ब्रिटिश भारत में अकाल और अकाल आयोग

नीरज कुमार

U.G.C-NET

सारांश

सूखा एक गंभीर वैष्विक समस्या है और यह प्राचीन काल से एक स्थिति रही है। आज भी, दुनिया को सूखे की समस्या का सामना करना पड़ता है। अकाल एक ऐसी स्थिति है जो लंबे समय तक खाद्यान्न की गंभीर कमी के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है, जिससे व्यापक स्तर पर भुखमरी, गरीबी और जनसंख्या का कुपोषण होता है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या मृत्यु दर में वृद्धि होती है। भारतीय उपमहाद्वीप में सूखे के विभिन्न कारणों में अस्थिर वर्षा, वनों की कटाई और बाढ़ शामिल हैं, जो कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। प्राचीन और मध्यकाल में, भारतीय समाज अन्य समाजों की तरह पूरी तरह से कृषि पर निर्भर था। इस अवधि के दौरान, सूखे के कारण लोगों का जीवन प्रभावित हुआ। लेकिन शासक की उदार नीतियों के कारण, समय-समय पर राहत कार्य किए गए।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई अकाल पड़े। इनमें 1769-70 में बंगाल का अकाल, 1791-92 में मद्रास प्रांत का अकाल आदि शामिल हैं। कंपनी ने सहायता बहुत कम और देर से प्रदान की, जिसके कारण जनहानि और आर्थिक नुकसान हुआ।

1858 में, भारत का प्रशासन कंपनी से ब्रिटिश क्राउन को सौंपा गया। इस अवधि में, पहली बार ब्रिटिश सरकार ने भारत में सूखे की समस्या को कम करने के लिए समय-समय पर सूखा राहत समितियों की स्थापना की, जैसे कि स्मिथ समिति (1860-61), कैंपबेल आयोग (1866), स्ट्रेची आयोग (1880), लायल आयोग (1896), और मैकडॉनेल आयोग (1900)। इन समितियों के माध्यम से सूखे की जानकारी प्राप्त करने और सूखे को रोकने के प्रयास किए गए।

सांकेतिक शब्द:- अकाल, ब्रिटिश, स्मिथ समिति, कैंपबेल आयोग, स्ट्रेची आयोग, लायल आयोग, मैकडॉनेल आयोग।

परिचय

सूखा एक प्राचीन घटना है। प्राचीन काल में सूखे का वर्णन संस्कृत साहित्य और विदेशी तीर्थयात्रियों की रचनाओं में मिलता है। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में सूखे का वर्णन चाणक्य की पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में किया गया है, जिसमें राहत कार्य का उल्लेख है। प्राचीन और मध्यकाल में सूखे के कारण लोगों का जीवन प्रभावित हुआ। लेकिन शासक की उदार नीतियों के कारण समय-समय पर राहत कार्य किए गए।

दुनिया में अब तक सूखे की जानकारी और रिकॉर्ड बहुत ही सीमित है, और इसका उल्लेख इतिहास में मिलता है। इससे वैष्विक सूखे के मुख्य कारणों की खोज की जाती है, जिसमें समाज के कमजोर वर्ग और कृषि समुदाय खाद्य अनाज की कमी, युद्ध, आंतरिक अशांति, बाढ़, फसल कीट, और प्राकृतिक असंतुलन या अव्यवस्था के कारण पीड़ित हैं। सूखे की समस्या के कारण ग्रामीण जीवन में काफी हद तक व्यवधान उत्पन्न होता है।

सूखा केवल उन समाजों में होता है जो कृषि पर निर्भर होते हैं। प्री-ब्रिटिश, अर्थात प्राचीन और मध्यकालीन समय में, भारतीय समाज भी अन्य समाजों की तरह पूरी तरह से कृषि पर निर्भर था। हालांकि बुनकर, चमड़े के कारीगर, बढ़ई, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले आदि जैसे कारीगरों का व्यापार बड़े पैमाने पर होता था, लेकिन यह सभी कृषि से जुड़े हुए थे। बालुटेदार प्रणाली में, गांव

में बालुटेदारों द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं या सेवाओं का भुगतान अनाज के रूप में किया जाता था। इसके अलावा, बुनकरों को आवश्यक कच्चे माल जैसे कपास की आपूर्ति भी कृषि से ही होती थी। यह कृषि पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर थी। कुओं, छोटे तालाबों और बांधों के अलावा, उस समय बड़े सिंचाई के साधनों की कमी थी, और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी और औद्योगिक प्रगति का अभाव था। इसलिए, सूखे की स्थिति में, पानी का कोई बड़ा भंडार उपलब्ध नहीं होता था। जीविका के अन्य साधनों की भी कमी थी। ऐसे में, सूखे के परिणामस्वरूप खाद्यान्न की कमी होना स्वाभाविक था। इसके अलावा, इस अवधि में सूखे के कई अन्य कारण भी थे। भारी बारिश, ओलावृष्टि, फसल के कीड़े और टिड्डियों ने किसी क्षेत्र में फसलों को व्यापक नुकसान पहुँचाया। कभी-कभी, देवी, पटकी, प्लेग, इन्फ्लूएंजा जैसी बीमारियों के प्रकोप के कारण गांवों में जनसंख्या में कमी आ जाती थी, जिससे कृषि गतिविधियों में ठंडापन आ जाता था। इसके अलावा, इस समय संचार सुविधाओं की कमी के कारण, खाद्य अनाज को उन स्थानों से सूखा प्रभावित क्षेत्रों में तुरंत और बड़े पैमाने पर परिवहन करना संभव नहीं था। इसलिए, खाद्य अनाज की कमी को दूर करके सूखे की गंभीरता को कम करना संभव नहीं हो पाता था।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में अकालों का उल्लेख कई स्रोतों में मिलता है, जैसे वेद, रामायण, बौद्ध जातक कथाएँ, चाणक्य की अर्थशास्त्र, कल्हण की राजतरंगिणी, और विभिन्न संतों के अभंग। ये सभी स्रोत वंग्मय से उत्पन्न माने जाते हैं।[1]

19वीं सदी से पहले, सूखा एक स्वाभाविक घटना थी। इसके परिणामस्वरूप, सभी लोग भूखों मरे और जनसंख्या, मवेशियों, जानवरों और धन का भारी नुकसान हुआ। लेकिन आज के आधुनिक युग में, सूखे की प्रकृति में बदलाव आ गया है। इस स्थिति में गरीब लोग अमीरों की तुलना में अधिक प्रभावित होते हैं। इतिहासकारों के अध्ययन के अनुसार, ब्रिटिश काल से पहले, भारत में हर पचास वर्ष में कम से कम एक बार गंभीर सूखा पड़ता था।[2] अन्य समय में छोटे या स्थानीय सूखे होते थे। ग्यारहवीं से चौदहवीं सदी के बीच भारत में चौदह प्रमुख सूखे आए। इनमें से अधिकांश सूखे प्राकृतिक कारणों से हुए थे।

भूखमरी के प्रभाव प्री-ब्रिटिश काल में और सुधारात्मक प्रयास

इस काल में, कृषि पूरी तरह से प्रकृति की इच्छाओं पर निर्भर थी, इसलिए सूखा वास्तव में एक प्राकृतिक आपदा था। ऐसी स्थिति में, उस समय के शासक, जैसे कि राजा-महाराजा या नवाब, केवल इस आपदा को 'रोकने' का प्रयास कर सकते थे। इसके अलावा, चूंकि संपूर्ण अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर थी, कृषि गतिविधियों के सुचारू रूप से पुनः आरंभ होने के बिना अर्थव्यवस्था का संचालन संभव नहीं था।

इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि कई अवसरों पर, राजाओं ने सूखा प्रभावित लोगों की सहायता करने का प्रयास किया। इनमें खाद्यान्न की आपूर्ति, पेयजल की व्यवस्था, विकलांग, वृद्ध और गरीबों की सहायता, पशुओं के लिए चारा उपलब्ध कराना आदि शामिल थे। इसके लिए, राज्य से खाद्यान्न का निर्यात रोकने, खाद्यान्न का आयात करने और लोगों को सस्ते दामों पर उपलब्ध कराने के उपाय किए गए। यह जानकर कि पर्याप्त फसलों की कमी के कारण कृषि खाद देना संभव नहीं है, सरा (कर) को माफ करने का निर्णय लिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि राजाओं ने सड़कों, महलों या किलों का निर्माण करने, बड़ी संख्या में सैनिकों की भर्ती करने जैसे कार्य भी किए ताकि लोगों को आजीविका के साधन मिल सकें। साथ ही, शासकों ने किसानों को बीज, उपकरण, बैल और अतिरिक्त भूमि प्रदान की ताकि वे नए मौसम में फिर से खेती शुरू कर सकें, अक्सर जंगलों को साफ करने और नए गांवों के निर्माण में भी मदद की।[3]

निस्संदेह, सभी राजा या सामंत ऐसे कदम नहीं उठाते। इनमें से कई राजा और सामंत लोगों का शोषण करते रहे, यहां तक कि अकाल के समय भी। हालांकि, कई प्रसिद्ध राजाओं ने सूखे को कम करने के लिए कुछ उपाय किए। उदाहरण के लिए, 1629-31 के अकाल के दौरान, मुगल सम्राट शाहजहाँ ने आश्रय स्थल स्थापित किए, गरीबों को भोजन और धन वितरित किया और जनता पर दो वर्षों के लिए सभी कर माफ कर दिए। 1661 के दिल्ली और आगरा क्षेत्र के अकाल के दौरान, औरंगजेब ने स्वयं राहत कार्यों की निगरानी की। अकाल से राहत के लिए उन्होंने अपनी खजाने को खोला, पंजाब और बंगाल से बड़ी मात्रा में अनाज आयात किया और इसे जनता को बहुत कम कीमत पर बेचा। जो लोग अनाज खरीदने में असमर्थ थे, उन्हें राहत मिली। इस अवधि के दौरान जनता पर सभी कर माफ कर दिए गए और आवश्यकतानुसार लोगों में धन वितरित किया गया।

इस सूखे के दौरान, उदयपुर के महाराणा राज सिंह ने लाखों रुपये की लागत से एक सुंदर संगमरमर का टॉवर बनाया ताकि एक बड़े नहर के पानी को रोका जा सके। लोगों की सहायता से उन्होंने तीन मील लंबी मिट्टी की बांध भी बनाई। इसके

परिणामस्वरूप, इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई और कुछ स्थिरता बनी। 1802-03 के महाराष्ट्र के सूखे के दौरान, पेशवाओं ने बड़े पैमाने पर अनाज का आयात किया और भूमि राजस्व से छूट दी।[4] इसके अलावा, जमींदारों, व्यापारियों, और साहूकारों ने आधुनिक वर्ग के लोगों की निजी चौरिटी के माध्यम से सूखा प्रभावित लोगों को भोजन के होस्टल, पेयजल के फव्वारे और आश्रय जैसी सुविधाएं प्रदान कीं।

भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के दौरान अकाल

ब्रिटिशों के द्वारा, विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में, गंभीर सूखे के रिकॉर्ड मौजूद हैं। कंपनी के शासनकाल में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई अकाल आए। 1769-70 के बंगाल अकाल में लगभग 1/3 जनसंख्या अकाल के कारण मृत्यु को प्राप्त हुई। कंपनी सरकार ने कोई सुधारात्मक योजना लागू नहीं की और न ही सहायता प्रदान की। इसके अलावा, सूखे के दौरान उन्होंने चावल को कम कीमत पर खरीदा और उच्च कीमत पर बेचा, जिससे उन्हें भारी लाभ हुआ। 1781-82 में मद्रास में और 1784 में पूरे उत्तर भारत में अकाल आया। कंपनी सरकार ने राहत कार्य किए, लेकिन यह पर्याप्त नहीं था। 1833 में, गुंटूर जिले में 5 लाख में से 2 लाख लोग मारे गए। 1837 में, उत्तर भारत में फिर से गंभीर सूखा पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप कंपनी सरकार ने कुछ सार्वजनिक गतिविधियाँ शुरू कीं। लेकिन सहायता सूखा प्रभावित लोगों तक नहीं पहुंची। इसके कारण जनहानि और आर्थिक नुकसान हुआ। कंपनी के शासन के दौरान, आम लोगों को सूखे से बचाने और राहत कार्य के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किए गए। इसलिए, सूखा प्रभावित लोगों को कंपनी सरकार से पर्याप्त राहत कार्य नहीं मिला।

ब्रिटिश भारत में अकाल

1858 में, भारत का प्रशासन कंपनी से ब्रिटिश क्राउन के अधीन आ गया और रेलवे तथा अन्य संचार साधनों का विकास हुआ, जिससे विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई। इसने सूखे की समस्या के स्वरूप को बदल दिया। ब्रिटिश सरकार ने इस स्थिति को समझा और यह उसकी जिम्मेदारी बन गई कि वह भारत में सिंचाई कार्यो का विस्तार करे, कृषि कानून बनाए, सूखे को कम करने के प्रयास करे और सूखा नीति तैयार करे। इस अवधि में औसतन 10 गंभीर सूखे पड़े। 1860-61 में दिल्ली और आगरा में एक अकाल आया। यह पहली बार था जब अकाल पीड़ितों के लिए व्यवस्था की गई। सूखे के कारणों की जांच करने का निर्णय लिया गया और इसके लिए कर्नल स्मिथ को नियुक्त किया गया। उनकी रिपोर्ट में कोई ठोस सुझाव नहीं था। हालांकि 1866 में उड़ीसा में सूखा अधिक गंभीर था, लेकिन इसके लिए कोई तैयारी नहीं की गई। सरकार आपूर्ति और मांग के सिद्धांत का पालन कर रही थी, जिसके परिणामस्वरूप 13 लाख लोगों की मृत्यु हुई। इस बिंदु को सूखे के परिवर्तनों द्वारा सिद्ध किया गया। सरकार ने जॉर्ज कैंपबेल की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया।[5] 1876-78 के सूखे के दौरान, मद्रास, बंबई, उत्तर प्रदेश और पंजाब के राज्यों में गंभीर सूखा पड़ा। इस दौरान 5 करोड़ 80 लाख लोग सूखे की चपेट में आ गए। सरकार ने सूखे को रोकने के लिए सतही प्रयास किए। इस दौरान हजारों लोगों की मृत्यु हुई। 1942-43 का बंगाल का अकाल भारत के कई सूखों में सबसे भयानक और गंभीर था, जिसमें हजारों लोग मारे गए। इस सूखे की प्रकृति को देखते हुए, यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश सरकार की नीतियों और 1939 के द्वितीय विश्व युद्ध के कारण मानव का हाथ ईश्वर की तुलना में अधिक था।

ब्रिटिश शासन में अकाल के कारण

ब्रिटिशों के भारत आगमन के बाद, सूखे को प्रभावी ढंग से रोकने और समाप्त करने के लिए कोई समस्या नहीं थी। ब्रिटिश विस्तार के साथ व्यापार में वृद्धि हुई। इसके साथ ही, परिवहन और संचार के साधनों जैसे सड़कें, रेलमार्ग, डाक और तार का विकास हुआ। यदि भारत में आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा पूंजी उत्पादन विधियों के आधार पर सिंचाई, कृषि और उद्योगों का विकास और विस्तार किया गया होता, तो भारतीय अर्थव्यवस्था की प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने की क्षमता में वृद्धि होती। सूखा भारत से काफी हद तक समाप्त हो जाता। लेकिन इसके विपरीत हुआ।

भारत से खाद्य अनाज और कृषि उत्पाद जैसे जूट, कपास, चाय, नील आदि को कच्चे माल के रूप में ब्रिटेन निर्यात किया गया। वहीं, इंग्लैंड के मिलों से कपड़ा, चमड़े के सामान, बर्तन आदि आयात किए गए। सस्ते तैयार माल का उपयोग भारत में बढ़ने लगा। इसके परिणामस्वरूप, भारत के बुनकर, चमड़ा बनाने वाले, कारीगर आदि की वस्तुएं दुर्लभ हो गई, जिससे उनके व्यवसाय में

गिरावट आई। इसके अलावा, ब्रिटिशों ने यह सुनिश्चित किया कि भारत में कोई मिलें स्थापित न हों, ताकि इंग्लिश मिलों के सामान का यहां उपभोग किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप, एक ओर कृषि का विनाश हुआ और किसान अत्यधिक गरीब हो गए, वहीं दूसरी ओर, कारीगरी के विनाश और औद्योगिक विकास की कमी के कारण पूरी जनसंख्या आजीविका के लिए कृषि की ओर मुड़ गई। इससे कृषि पर जनसंख्या का बोझ बढ़ गया। ऐसे में, ब्रिटिशों के आगमन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखे का सामना करने की क्षमता कैसे बढ़ेगी? इसके विपरीत संभावनाएं भी घट गईं। थोड़ी सी बारिश भी कृषि प्रणाली को ध्वस्त कर देती थी और बढ़ती कृषि जनसंख्या सूखे के गर्त में गिर जाती थी।

ब्रिटिश अकाल राहत योजनाएँ सूखा आयोग

1. स्मिथ समिति, 1860-61

1860-61 में दिल्ली और आगरा क्षेत्र में एक अकाल आया। इस सूखे की गंभीरता को देखते हुए, ब्रिटिश सरकार ने पहली बार ब्रिटिश अधिकारी स्मिथ के नेतृत्व में स्मिथ समिति का गठन किया। इस समिति ने दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में सूखे की गंभीरता के बारे में जानकारी एकत्रित करने का कार्य किया।

2. कैंपबेल आयोग, 1866

1865-66 में उड़ीसा, बंगाल, बिहार और मद्रास में एक भयंकर सूखा पड़ा। इस सूखे में 20 लाख लोग मारे गए, जिनमें से अकेले उड़ीसा में 1 लाख लोग शामिल थे। इस सूखे की गंभीरता उड़ीसा क्षेत्र में सबसे अधिक थी, इसलिए इसे उड़ीसा सूखा भी कहा जाता है। इस सूखे की गंभीरता को देखते हुए, ब्रिटिश सरकार ने सर जॉर्ज कैंपबेल की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने इस सूखे के लिए सरकारी प्रणाली को जिम्मेदार ठहराया। इस समय सर जॉन लॉरेंस वायसराय थे।

3. स्ट्रेची आयोग, 1880

1876-78 का महान अकाल 19वीं सदी की शुरुआत के बाद का सबसे बड़ा आपदा था। मद्रास, बंबई, उत्तर प्रदेश और पंजाब इस आपदा से प्रभावित हुए, जिसमें लगभग 5 मिलियन लोग एक वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त हुए। सरकार ने सूखा प्रभावित लोगों की सहायता के लिए अधूरी कोशिशें कीं। 1880 में, वायसराय लिटन ने रिचर्ड स्ट्रेची की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया, जिसका उद्देश्य सामान्य सिद्धांतों का निर्माण करना और अकाल से स्थायी रूप से निपटने के उपायों का सुझाव देना था। इस आयोग को स्ट्रेची आयोग के नाम से जाना जाता है।

स्ट्रेची आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं[6]

i) आयोग ने समय-समय पर मजदूरी में समायोजन की सिफारिश की ताकि श्रमिकों को पर्याप्त भोजन मिल सके।

ii) राज्य की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह गरीबों को मुफ्त राहत प्रदान करे और उन व्यक्तियों की सूची तैयार करे जो इसके लिए पात्र हैं। इसमें भूमि राजस्व और किराए के निलंबन और छूट के संबंध में निर्देश दिए गए।

iii) भुखमरी से पहले रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। रोजगार का मुआवजा समय-समय पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

iv) सूखा राहत का खर्च प्रांतीय सरकारों द्वारा वहन किया जाना था। हालांकि, जब आवश्यक हो, केंद्र से सहायता प्रदान की गई।

v) सूखे के दौरान राहत शिविर खोले जाने चाहिए और खाद्यान्न का निर्यात रोका जाना चाहिए।

vi) भूमि राजस्व और अन्य करों में कमी की जानी चाहिए।

vii) जानवरों का अन्य स्थानों पर स्थानांतरण किया जाना चाहिए।

सरकार ने सामान्यतः आयोग की सिफारिशों को स्वीकार किया और अकाल निधि बनाने के लिए कदम उठाए गए। 1883 में, अस्थायी अकाल संहिता तैयार की गई, जिसने प्रांतीय सूखा संहिताओं के लिए मार्गदर्शक और आधार का कार्य किया।

4. लायल आयोग, 1896

पिछले सूखे के बाद 1896-97 का सूखा आया। इसने लगभग हर प्रांत को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया, और कुल मिलाकर यह सूखा 34 मिलियन की जनसंख्या को प्रभावित करने का अनुमान था। इस आयोग की अध्यक्षता सर जेम्स लायल ने की, जो

पंजाब के पूर्व उपराज्यपाल थे। उन्होंने 1896 में व्यक्त किए गए विचारों का अनुसरण किया। आयोग ने स्वीकार किए गए सिद्धांतों में कुछ बदलावों का सुझाव दिया ताकि अधिक लचीलापन प्रदान किया जा सके। आयोग ने सिंचाई सुविधाओं के विकास की सिफारिश की। लॉर्ड एल्गिन दूसरे वायसराय थे।

5. मैकडॉनेल आयोग, 1900

1899-1900 के अकाल के बाद, लॉर्ड कर्जन ने मैकडॉनेल की अध्यक्षता में एक अकाल आयोग का गठन किया। 1901 मंर एक रिपोर्ट में, उन्होंने राहत के सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन किया और आवश्यकतानुसार बदलावों का सुझाव दिया।

मैकडॉनेल आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं[7]

i) आयोग ने नैतिक नीति के लाभों पर जोर दिया।

ii) बीज और पशुओं की खरीद के लिए अग्रिम धनराशि का तात्कालिक वितरण और अस्थायी कुएं खोदने की सिफारिश की।

iii) जब राहत कार्य व्यापक होने की संभावना हो, तो प्रांतों में सूखा आयुक्तों की नियुक्ति का समर्थन किया।

iv) बड़े पैमाने पर गैर-सरकारी सहायता जुटाने पर जोर दिया गया।

v) बेहतर परिवहन सुविधाओं, कृषि बैंकों की स्थापना, सिंचाई सुविधाओं में सुधार और कृषि प्रथाओं में त्वरित सुधार के लिए ठोस कदम उठाने पर जोर दिया गया।

आयोग की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार किया गया, और कर्जन के भारत छोड़ने से पहले उन्होंने अकाल की रोकथाम और प्रबंधन के लिए कई उपाय किए। उदाहरण के लिए, जिला अधिकारियों को आपदा से नष्ट हुई फसलों को रद्द करने का अधिकार दिया गया। कर्जन ने 1901 में कृषि मार्गदर्शन के लिए निरीक्षक जनरल की नियुक्ति की। बंगाल के पूसा में एक कृषि अनुसंधान केंद्र की स्थापना की गई। हालांकि, अधिकांश उपाय अधूरे मन से किए गए।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है, जिसके कारण भारत के कुछ क्षेत्र सूखा प्रभावित क्षेत्रों में आते हैं। भारत के विशाल भूभाग और मानसूनी जलवायु सूखे की स्थिति में योगदान करते हैं। यह समस्या प्राचीन काल से चली आ रही है। ब्रिटिश काल के दौरान भी भारत के कुछ क्षेत्रों में कई सूखे पड़े। 1769-70 में बंगाल के अकाल के दौरान, ईस्ट इंडिया कंपनी के समय लगभग 1/3 जनसंख्या अकाल के कारण मृत्यु को प्राप्त हुई। कंपनी सरकार ने कोई सुधारात्मक योजना लागू नहीं की। 1781-82 में मद्रास में और 1784 में पूरे उत्तर भारत में अकाल पड़ा। कंपनी सरकार ने राहत कार्य किए, लेकिन वे अपर्याप्त थे। 1833 में गुंटूर जिले में 5 लाख में से 2 लाख लोग मारे गए। इसके अलावा, 1837 में उत्तर भारत में फिर से एक गंभीर सूखा पड़ा, और कंपनी सरकार ने राहत कार्य का आयोजन नहीं किया। इसके परिणामस्वरूप जनहानि और आर्थिक नुकसान हुआ।

1860-61 में दिल्ली और आगरा में एक अकाल आया। यह पहली बार था जब अकाल पीड़ितों के लिए व्यवस्था की गई। स्मिथ समिति का गठन स्मिथ के नेतृत्व में किया गया। इस समिति ने दिल्ली और उसके आसपास सूखे की गंभीरता के बारे में जानकारी जुटाने का कार्य किया।

हालांकि 1866 में उड़ीसा में सूखा अधिक गंभीर था, लेकिन इसके मुकाबले कोई तैयारी नहीं की गई। इसके परिणामस्वरूप 13 लाख लोगों की मृत्यु हुई। इस सूखे की गंभीरता को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने सर जॉर्ज कैंपबेल की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने इस सूखे के लिए सरकारी प्रणाली को जिम्मेदार ठहराया।

1876-78 का महान अकाल 19वीं सदी की शुरुआत के बाद का सबसे भयानक आपदा था। मद्रास, बंबई, उत्तर प्रदेश और पंजाब इस आपदा से प्रभावित हुए, जिसमें लगभग 5 मिलियन लोगों की एक वर्ष के भीतर मृत्यु हो गई। 1880 में, सूखे से स्थायी रूप से निपटने के लिए उपाय सुझाने के लिए रिचर्ड स्ट्रेची की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया। 1896-97 में एक और सूखा पड़ा, जिसने लगभग सभी प्रांतों को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया। इस बार, पंजाब के पूर्व उप-राज्यपाल सर जेम्स लायल की अध्यक्षता में एक आयोग ने 1896 में उनके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का अनुसरण किया।

1899-1900 के अकाल के बाद, लॉर्ड कर्जन ने मैकडॉनेल की अध्यक्षता में एक अकाल आयोग की नियुक्ति की। लेकिन किसानों की पीड़ा को कम करने के लिए प्रयास किए गए। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कृषि फसलों और जातीय जमींदारों के बीच का संबंध था, क्योंकि सूखे के दौरान भी कृषि फसलों को बलात्कारी तरीके से एकत्र किया गया। दादाभाई नौरोजी और रमेशचंद्र दत्त ने ब्रिटिश सरकार के सूखा राहत कार्य के संबंध में इस मुद्दे को सुलझाने का प्रयास किया। कांग्रेस ने सरकार पर सूखे के लिए दोषारोपण किया। ब्रिटिश सरकार ने एक समग्र राष्ट्रीय नीति अपनाने से इनकार कर दिया। इसलिए, यह स्पष्ट है कि भारतीय जनता को जीवन और धन का बड़ा नुकसान उठाना पड़ा।

संदर्भ

1. ब्रिटिश कालीन खंडेश और दुष्काल (मराठी) - लेखक: डॉ. संजय पाटिल
2. ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास (हिंदी) - लेखक: कृपा शंकर पांडे
3. भारत में गरीबी और अन-ब्रिटिश शासन (पेपर बैक) - लेखक: दादाभाई नौरोजी
4. उपनिवेशी भारत के अकाल - लेखक: राजेश रामपाल
5. 1899 का महान भारतीय सूखा - लेखक: कॉलिन एस. रामेज
6. भारत में ब्रिटिश शासन - लेखक: पंडित सुंदरलाल
7. उपनिवेशी पश्चिमी भारत में किसान, अकाल और राज्य - लेखक: डी. हॉल-मैथ्यूज

पाबना विद्रोह: एक ऐतिहासिक अवलोकन

सुषमा कुमारी

UGC - NET

सारांश

पाबना विद्रोह यूसुफशाही परगना के भीतर उत्पन्न हुआ, जो वर्तमान में पाबना के बड़े क्षेत्र में सिराजगंज जिले में स्थित है। जमींदारों ने किसानों से अवैध तरीके से मजबूरन कर, अबवाब (कर), अतिरिक्त किराया आदि के माध्यम से धन एकत्र किया। 1873 में पाबना के यूसुफशाही परगना के किसानों ने एक कृषि संघ का गठन किया, जिसने मुकदमे के खर्चों को पूरा करने के लिए धन जुटाया और सामूहिक बैठकें आयोजित कीं, जिसमें भैंसों के horns की आवाज से गांवों को बुलाया गया, ढोल बजाए गए और रात में गांव से गांव तक आवाजें भेजी गई, और कभी-कभी किराया भी रोका गया। अगले दशक में पूर्व बंगाल के कई पड़ोसी जिलों (ढाका, मयमंसिंह, त्रिपुरा, बकरगंज, फरिदपुर, बोगुरा और राजशाही) से भी इसी तरह की गतिविधियों की सूचना मिली। कोलकाता में जमींदारों के बीच किसानों की हिंसा और विद्रोह के बारे में कई चिंतित चर्चाओं के बावजूद, किसान प्रतिरोध मुख्यत: कानूनी और अहिंसक रहा, सिवाय पाबना में कुछ अस्थायी घटनाओं के। पाबना किसान विद्रोह जमींदारों के अत्याचार के खिलाफ एक प्रतिरोध आंदोलन में बदल गया। जमींदारों ने किसानों से अवैध तरीके से मजबूरन कर, अबवाब (कर), अतिरिक्त किराया आदि के माध्यम से धन एकत्र किया।

किसानों को अक्सर भूमि से बेदखल किया गया है, यह कहते हुए कि उन्होंने किराया नहीं चुकाया। जमींदारों ने किसानों को उचित कब्जा प्राप्त करने से रोकने का प्रयास किया, जो विद्रोह का कारण बना। किसान विभिन्न विद्रोहों के दौरान सम्मेलनों, अपीलों और मार्चो के माध्यम से अधिक संगठित हो गए हैं। उन्होंने अदालत का रुख किया, जमींदारों को चुनौती दी, जेल खर्चो के लिए बजट बढ़ाया, और आपराधिक युद्ध का शुल्क चुकाया। यह आंदोलन अहिंसक हो गया; हालाँकि, कुछ स्थानों पर जमींदारों की हत्या हुई और हिंसा भी हुई। इस आंदोलन के लक्ष्य भी अपेक्षाकृत सीमित थे, क्योंकि किराए का रोकना केवल कुछ विशेष इच्छाओं को पूरा करने का एक साधन बन गया, जैसे कि आकार मानक में परिवर्तन, अवैध करों का उन्मूलन, और किराए में कुछ कमी।

मुख्य शब्द - पाबना, विद्रोह, यूसुफशाही, परगना, जमींदारी, रियात

परिचय

पाबना विद्रोह 1873 से 1876 ईस्वी तक चला। पाबना जिले के कृषकों को 1859 ईस्वी में एक अधिनियम के तहत निष्कासन और किराए में वृद्धि से कुछ हद तक सुरक्षा मिली थी, फिर भी जमींदारों ने उनसे अत्यधिक किराया वसूला और उनकी भूमि के अधिकारों से वंचित कर दिया। 1873 ईस्वी में, पाबना के 'यूसुफ सराय' के किसानों ने जमींदारों के अत्याचार का सामना करने के लिए एक 'किसान संघ' का गठन किया। इस संगठन का मुख्य कार्य धन एकत्र करना और बैठकें आयोजित करना था। पूर्वी बंगाल में, ढाका, त्रिपुरा, बकरगंज, फरिदपुर, बोगरा और राजशाही जैसे कई जिलों में ऐसे आंदोलनों का आयोजन हुआ।[1] बढ़े हुए किराए का भुगतान रोककर, किसान संघ ने माप के मानकों में परिवर्तन, अवैध करों का उन्मूलन और किराए में कमी की मांगें पूरी करने का प्रयास किया। यह आंदोलन कुछ मामलों में अहिंसक था। यह एक आंदोलन था जो जमींदारों के खिलाफ था, न कि ब्रिटिशों के खिलाफ। पाबना के किसानों ने अपने अधिकारों की मांग करते हुए यह नारा दिया, 'हम महारानी की प्रजा बनना चाहते हैं और केवल उनकी।'[2] उस समय के गवर्नर कैंपबेल ने उनके मांगों को एक घोषणा में सही ठहराया। इस आंदोलन में ज्यादातर

किसान मुसलमान थे, जबकि अधिकांश जमींदार हिंदू थे। इस आंदोलन के प्रमुख नेताओं में ईशान चंद्र राय, शंभूपाल आदि शामिल थे। पाबना विद्रोह का समर्थन कई युवा बुद्धिजीवियों ने किया, जिनमें बंकिमचंद्र और आर.सी. दत्त शामिल थे। 1880 के दशक में जब बंगाल में टेनेन्सी बिल पर चर्चा चल रही थी, तब सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और द्वारका नाथ गांगुली ने एक संघ के माध्यम से किरायेदारों के अधिकारों की रक्षा के लिए अभियान चलाया। इन लोगों ने मांग की कि भूमि के स्वामित्व के अधिकार उन लोगों को दिए जाएं जो इसे खेती करते हैं।[3]

पाबना विद्रोह एक शांतिपूर्ण स्वभाव का आंदोलन था। किसान अपने हितों की रक्षा के लिए शांति से मांग कर रहे थे। यह आंदोलन सरकार के खिलाफ भी नहीं था, इसलिए पाबना आंदोलन को अप्रत्यक्ष रूप से सरकार का समर्थन मिला। 1873 ईस्वी में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर कैम्पबेल ने किसान संगठनों को उचित ठहराया। लेकिन बंगाल के जमींदारों ने इस आंदोलन को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश की। एक समाचार पत्र 'हिंदू पैट्रियट' ने प्रकाशित किया कि यह आंदोलन मुस्लिम किसानों द्वारा हिंदू जमींदारों के खिलाफ शुरू किया गया है।[4] हालांकि, कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इस आंदोलन को साम्प्रदायिक रंग देना गलत है, क्योंकि पाबना विद्रोह में हिंदू और मुस्लिम दोनों किसान शामिल थे। आंदोलन के नेता भी दोनों समुदायों के लोग थे, जैसे ईशान चंद्र राय, शंभू पाल और खुदी मल्लाह। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप, 1885 में बंगाल टेनेन्सी कानून पारित किया गया, जिसमें किसानों को कुछ राहत प्रदान करने के लिए प्रावधान किए गए।

भारतीय पारंपरिक राजस्व प्रणाली ने भूमि के मालिकों और जमींदारों को लाभ पहुँचाया। कृषक भूमि मालिकों के हाथों में एक साधन बन गए, जो उन्हें सबसे छोटे बहाने पर निकाल देते थे। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने मौजूदा राजस्व प्रणाली और भूमि मालिक-कृषक संबंधों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया, ताकि वे जमींदारों को अपने पक्ष में कर सकें और समय के साथ भारतीय कृषि परिदृश्य को अपने लाभ के लिए बदल सकें। भूमि मालिकों की धन और संपत्ति की लालसा और उपनिवेशी उदासीनता ने 1870 के दशक से कृषकों में कृषि असंतोष को जन्म दिया। कृषि भूमि के मालिकों ने किराए को कृषकों की सामर्थ्य से अधिक बढ़ा दिया, जिससे एक विशाल कृषि संकट उत्पन्न हुआ। इसलिए, साम्राज्यवादी शक्ति ने किरायेदारों की रक्षा के लिए कदम उठाने का निर्णय लिया। इसका परिणाम 1859 में बंगाल में अधिनियम X था, जिसके तहत 'हर रैयत जिसने बारह वर्षों तक भूमि की खेती की है, उसे उस भूमि में निवास का अधिकार है' और उसे 'उचित और समान दरों पर किराया चुकाना चाहिए।'[5] लेकिन इस कानून ने किरायेदारों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया – वे जो बारह वर्षों तक खेती करते थे और वे जो बारह वर्षों से कम। यह साम्राज्यवादियों की विभाजन और शासन की एक निहित रणनीति थी, जिसने भूमि मालिकों को नुकसान नहीं पहुँचाया, बल्कि जमींदारों के लाभ के लिए राजस्व विवादों की एक श्रृंखला को जन्म दिया।

इसके अतिरिक्त, बंगाल में (आदिवासी क्षेत्रों के अलावा) धन उगाही के खिलाफ विद्रोह हो रहे हैं, क्योंकि यहाँ भी महाजन अक्सर स्थानीय धनी किसान या जोतेदार में बदल जाते हैं, जिनका ऋण उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत, जमींदार की कोई प्रभावी स्थिति नहीं थी, और 'उच्च जमींदारी' के दावों ने 1870 के दशक और 80 के प्रारंभ में पूर्व बंगाल के बड़े हिस्सों में बड़े रैयतों द्वारा व्यापक संघर्ष को जन्म दिया। इस संघर्ष का केंद्र पाबना था, जो एक अत्यंत समृद्ध जिला था, जहाँ कई फसलों की खेती होती थी और जूट का व्यापार फल-फूल रहा था। यहाँ 50 प्रतिषत से अधिक किसानों ने अधिनियम X, 1859 के तहत अधिवास अधिकार प्राप्त कर लिए थे, जो उन्हें निष्कासन से सुरक्षा और किराए में वृद्धि पर कुछ प्रतिबंध प्रदान करता था।

1793 से 1872 तक जमींदारी किराए में सात गुना वृद्धि हुई, और जमींदारों ने 1860 के दशक और 70 के प्रारंभ में किराए को बढ़ाने के लिए एक संगठित प्रयास शुरू किया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के अबवाब (कर) का उपयोग किया, जिसमें मनमाने तरीके से माप के मानकों को लागू किया गया, जिससे कृषि क्षेत्र का विस्तार हुआ, और शारीरिक बल का भी सहारा लिया गया। ये गतिविधियाँ नए सुरक्षा अधिकारों पर एक हमले के समान थीं, जो काबिज रैयतों को प्राप्त हुए थे। 1873 में, पाबना के यूसुफशाही परगना के किसानों ने एक कृषि संघ का गठन किया, जिसने मुकदमे के खर्चों को पूरा करने के लिए धन जुटाया। उन्होंने सामूहिक बैठकें आयोजित कीं, जिसमें गांववालों को भैंसों की सींग, ढोल और रात के समय गांव से गांव तक आवाजें देकर बुलाया गया, और कभी-कभी किराया भी रोका गया। इसी तरह की गतिविधियाँ अगले दशक में पूर्वी बंगाल के कई पड़ोसी जिलों (ढाका, त्रिपुरा, बैकग्राउंड, फरिदपुर, बोगुरा और राजशाही) में भी देखी गई। हालांकि कोलकाता में जमींदारों के बीच किसान हिंसा और विद्रोह की बहुत चर्चा थी, लेकिन रैयतों का प्रतिरोध मुख्यतः कानूनी और अहिंसक था, सिवाय पाबना में कुछ बिखरे हुए घटनाओं के।

पाबना में वर्तमान विकास का तात्कालिक ऐतिहासिक अतीत एक मामला था जो जमींदारों द्वारा उर्कंदी गांव के चालीस-जीतमम प्रमुख रैयतों के खिलाफ दायर किया गया था। ये रैयत बढ़ी हुई किराया देने से इनकार कर रहे थे, जिसे उन्होंने अवैध बताया। रैयतों ने अदालत में किराया जमा कर दिया था। अपने दावों के समर्थन में, जमींदारों ने दस्तावेज प्रस्तुत किए और कहा कि रैयत पिछले एक दशक से उनसे मांगी गई किराया चुका रहे थे। शहजादपुर कोर्ट के मुंसिफ ने अप्रैल 1872 में जमींदारों के पक्ष में निर्णय दिया, लेकिन राजशाही के सिविल जज ने दिसंबर 1872 में इस निर्णय को पलट दिया, यह मानते हुए कि जमींदारों ने दस्तावेजों को श्गढ़ाश् था। अपीलीय अदालत का निर्णय रैयतों द्वारा जमींदारों पर उनकी नैतिक विजय के रूप में देखा गया। इस आंदोलन के लक्ष्य भी काफी सीमित थे, क्योंकि किराया रोकना केवल कुछ विशेष मांगों जैसे कि सामान्य माप में परिवर्तन, अवैध करों का उन्मूलन, और किराए में कुछ कमी प्राप्त करने का एक साधन था। पाबना का आंदोलन जानबूझकर ब्रिटिश विरोधी नहीं था- सबसे तीव्र मांग यह थी कि रैयत 'उनकी महारानी के रैयत' बनना चाहते थे।[6] इस प्रकार के अपीलें दूर के शासक के खिलाफ सीधे उत्पीड़क के खिलाफ आमतौर पर किसान आंदोलनों में देखी जाती हैं, और पाबना के रैयत वास्तव में कुछ किसान समर्थक आंदोलनों द्वारा प्रोत्साहित किए गए थे, जैसे कि लेफ्टिनेंट गवर्नर कैंपबेल का जुलाई 1873 में जारी किया गया घोषणा, जिसने किसान संगठनों को वैध माना, जबकि हिंसा की निंदा की।

पाबना विद्रोह और अन्य जिलों में हुई समान गतिविधियों ने बंगाली बुद्धिजीवियों के बीच तीव्र भिन्न प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कीं। जमींदारों द्वारा शासित ब्रिटिश भारतीय संघ ने कटु विरोध में बदल दिया, और इसके पत्रिका हिंदू पैट्रियट ने पाबना आंदोलन को हिंदू जमींदारों के खिलाफ मुस्लिम किसानों का साम्प्रदायिक आंदोलन के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया।

वास्तव में, हालांकि पाबना के अधिकांश किसान मुस्लिम थे और उनके जमींदार आमतौर पर हिंदू थे, साम्प्रदायिक तत्व वास्तव में अनुपस्थित था (20वीं सदी में जो अक्सर होता था, उसके विपरीत)। कृषि संघ के तीन प्रमुख नेता छोटे जमींदार ईशान चंद्र रॉय, गाँव के मुखिया शंभू पाल (दोनों जाति के हिंदू) और मुस्लिम जोतेदार खुड़ी मोल्ला थे।

संयोगवश, प्रभावित होने वाले जमींदारों में से एक प्रमुख व्यक्ति द्विजेंद्रनाथ ठाकुर थे, जो नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई थे। उन्होंने जुलाई 1873 में अधिकारियों से 'व्यवस्था और शांति की पुनर्स्थापना' के लिए कठोर कार्रवाई करने की सिफारिश की। पेशेवर संगठनों ने, जिनका बड़े जमींदारी से बहुत कम संबंध था, अधिक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया, जैसा कि आर.सी. दत्त की 'बंगाल की कृषकता' (1874) में स्पष्ट है और इसके कुछ समय बाद भारतीय संघ के अभियान में किरायेदार अधिकारों के समर्थन में (जिसमें कई रैयत सम्मेलनों का भी समावेश था) 1885 के किरायेदारी अधिनियम के आगमन के समय। इस अधिनियम के माध्यम से अधिग्रहण अधिकारों को संरक्षित और अत्यधिक विस्तारित किया गया, लेकिन यह भी महत्वपूर्ण है कि पाबना आंदोलन, बाद के भारतीय संघ के आंदोलन या सरकारी नियमों में उन किसानों के लिए कोई चिंता नहीं थी जिनके पास अधिग्रहण के दावे नहीं थे, जैसे कि साझेदारी करने वाले किसान या कृषि श्रमिक।[7]

जो काश्तकार पहले से ही अपनी भूमि को अन्य काश्तकारों को नियमित रूप से उप-भाड़े पर दे रहे थे, वे पूरी तरह से असुरक्षित रह गए, और कभी भी यह जोर नहीं दिया गया कि काश्तकारी अधिकारों को वास्तविक खेती से जोड़ा जाए। बंगाल में कृषि अशांति और पट्टेदारी के नियमों की इस पूरी अवधि का अंतिम परिणाम जटेदार एजेंसियों का विकास हुआ, जो जमींदारों के समान ही शोषक और शोषणकारी बन गए, जिन्हें वे धीरे-धीरे प्रतिस्थापित कर रहे थे। कुछ जमींदारों ने बलात् किराया और भूमि कर वसूल किया, जो अक्सर गरीब किसानों के लिए और भी अधिक कठिनाई पैदा करता था और इसके साथ ही उन्होंने किरायेदारों को 1859 के अधिनियम ग् के तहत काश्तकारी अधिकार प्राप्त करने से भी रोका। किसान, जो अक्सर किराया न चुकाने के कारण भूमि से बेदखल हो जाते थे, अतिरिक्त धन प्राप्त करने के लिए हिंसक कृत्यों को अंजाम देते थे। 1870 के दशक में जूट उत्पादन में गिरावट के कारण किसान अकाल का सामना कर रहे थे। कुछ जमींदारों ने भूमि कर में वृद्धि की घोषणा की, जिससे विद्रोह भड़क उठा। कुछ किसानों ने अपने परगनों को जमींदारी नियंत्रण से स्वतंत्र घोषित किया और जमींदारी 'लठियालों' या पुलिस से लड़ने के लिए एक स्थानीय सरकार स्थापित करने का प्रयास किया। विद्रोही सेना के प्रभारी उप-प्रतिनिधियों को विभिन्न क्षेत्रों में तैनात किया गया।

जब पाबना रियोट्स लीग (जो मई 1873 में स्थापित हुई) ने सार्वजनिक शांति को खतरे में डाला, तो अधिकारियों ने शांति बहाल करने के लिए हस्तक्षेप किया। चार जुलाई 1873 को, उस समय के बंगाल के उपराज्यपाल सर जॉर्ज कैंपबेल ने एक उद्घोषणा में किसानों को अत्यधिक जमींदार मांगों के खिलाफ ब्रिटिश सहायता का आश्वासन दिया और जमींदारों को सलाह दी कि वे अपने

दावों को केवल कानूनी तरीके से प्रस्तुत करें। पुलिस की कार्रवाई और 1873-1874 में आई और भीषण अकाल के बीच, विद्रोह शांत हो गया, लेकिन यह जमींदारों के खिलाफ किसानों के विद्रोह का एक चिंताजनक संकेत था, जो सदियों पुरानी दमनकारी व्यवस्था और साम्राज्य की गलत समझदारी के हस्तक्षेप के खिलाफ था।

निष्कर्ष

कृषि आंदोलन के कारण किसानों के बीच एकता और भेदभाव की भावना समाप्त हो गई, जिससे सभी वर्गों को एकजुट होने में मदद मिली। इस किसान आंदोलन के माध्यम से, किसानों ने अपनी मांगों को सीधे सरकार के सामने रखा, जिसके परिणामस्वरूप कृषि श्रमिकों को समय-समय पर लाभ मिलने लगा। किसान आंदोलन ने भारतीय किसानों के बीच कृषि के प्रति जागरूकता पैदा की, जिसके चलते किसानों को कृषि कानूनों के अधिकार दिए गए। इस आंदोलन ने किसानों को उनके साथ हो रहे शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ संगठित होने के लिए प्रेरित किया। विभिन्न स्थानों पर किसान सभाओं का गठन किया गया, जिससे किसानों की मांगों को सुना जा सके और उन्हें एकजुट करने में मदद मिली। स्वतंत्रता के बाद, भारत में कृषि सुधारों के लिए एक अधिनियम तैयार किया गया ताकि किसानों को सरकार की नीतियों से लाभ मिल सके। इन आंदोलनों ने स्वतंत्रता के बाद विभिन्न कृषि सुधारों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया, जैसे कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन। इसने भूमि मालिकों, अर्थात् किसानों को उनके वास्तविक अधिकारों के प्रति जागरूक किया और कृषि प्रणाली में परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू की।

संदर्भ

1. बी.एल. ग्रोवर और यशपाल: आधुनिक भारत का इतिहास
2. बिपिन मून: स्वतंत्रता संग्राम
3. सुमित सरकार: आधुनिक भारत
4. यूनिक दिल्ली
5. आर.एल. सुक्ला: आधुनिक इतिहास
6. एस.के. गुप्ता: आधुनिक भारत
7. इंटरनेट स्रोत

भगवानदास मोरवाल के साहित्य में 'उपेक्षित समाज एक अनुशीलन'

दीपाली आर्या

शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डी.एस.बी.परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)

हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार भगवानदास मोरवाल साहित्य लेखन के क्षेत्र में अलौकिक पहचान बना चुके हैं। इनका जन्म 23 जनवरी 1960 को मेवात (हरियाणा) में हुआ। मोरवाल जी ने कहानी, उपन्यास, संस्मरण, कविता और संपादन के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। उनका जीवन संघर्षमय रहा है और वह संघर्ष उनकी कृतियों झलकता है। इनका साहित्य सामाजिक हस्तक्षेप है, उन समस्त कुरीतियों, परम्पराओं के लिए जो मनुष्य को एक दूसरे से पृथक करता है, जो पुरुष को स्त्री से, अमीर को गरीब से, धर्म को धर्म से और एक जाति को दूसरी जाति से भिन्न करता हैं। तथा इनका साहित्य उपेक्षित, धुंधले से संदर्भों को समाज के समक्ष लाने का प्रयास कर रहा है। मोरवाल जी के साहित्य की विशेषता है कि वे विषय की तलाश में कहीं दूर तक नहीं भटकते। अपितु अपने आस-पास घटित घटनाओं को ही रचनाओं का विषय बनाकर सदैव से समाज को नव-नवीन विषय देते आ रहे हैं। इनका जीवन व्यापक संवेदनाओं,दृढ़ आस्थाओं और सशक्त प्रेरणाओं से भरा हुआ है इस प्रकार मोरवाल जी का साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब है और जीवन की विविधताओं का यथार्थ चित्रांकन हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था विभिन्न जाति समूह में विभक्त हैं यहाँ जाति समुदाय एक-दूसरे से बिखरे दृष्टिगत होते हैं। हिन्दू धर्म व्यवस्था के चातुर्वर्ण्य के आधार पर समाज को विभक्त किया हुआ हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र इन चार वर्गों में विभक्त समाज भारतीय समाज व्यवस्था को निर्वल बनाता है। तीन वर्गों के अधीन दबे हुए शुद्र वर्ण को मानव कहलाने का अधिकार नहीं है। यही वह समाज हैं जिसे आज भी आदिवासी, दलित, मजदूर और किसान के रूप में देखा जाता है। जो आर्थिक शिक्षा, सामाजिक तिरस्कार और अन्य जीवन निर्वाह की सुविधाओं के अभाव में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, ऐसे ही समाज को उपेक्षित की श्रेणी में रखा जाता है। असुविधाओं में जीवन यापन कर यह समाज प्रगति से वंचित रह जाता है और फिर उसे ही उपेक्षित समाज कहा जाता है। 'उपेक्षित' शब्द का प्रयोग 'दलित' शब्द के समान ही किया जाता है। चूँकि प्राचीनकाल से इनका ही शोषण करते हुए विकास से वंचित रखा गया है, इस कारण इन्हें अविकसित, पिछड़ा अथवा उपेक्षित समाज कहा जाने लगा। अत:उपेक्षित वह व्यक्ति एवं समाज है जो संकुचित सामाजिक दशा का अनुभव करता है। और सामाजिक विकास की धाराओं से जिन्हें उपेक्षित एवं वंचित रखा जाता है जिसमें दलित, आदिवासी, मजदूर, किसान और स्त्रियों को उपेक्षित समाज के अंतर्गत माना जाता हैं। हिन्दी समाज में उपेक्षित समाज की परेशानियों का वर्णन होता रहा है परन्तु आधुनिक काल का उत्तरार्द्ध भारतीय समाज-व्यवस्था में दलितों की परिस्थिति के चित्रण के साथ उनकी दयनीय स्थिति के कार्यकरणों का भी उद्घाटन हुआ है। इस दृष्टि से प्रेमचंद सहित कई ऐसे रचनाकार है जिन्होंने भारतीय समाज के हासिए में स्थित पीड़ित,दलित उपेक्षित एवं शोषितों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। इसी परम्परा में भगवानदास मोरवाल भी है जिनके कथा-साहित्य में उपेक्षित चरित्र भरपूर चेतना संपन्न हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इनके साहित्य में चित्रित उपेक्षित चरित्र न केवल सवर्णों के अत्याचार शोषण एवं दमन से त्रस्त है अपितु उनमें संघर्ष का भरपूर सामर्थ्य भी हैं।

प्राचीनकाल से चली आ रही जाति व्यवस्था के द्वारा आज भी समाज भिन्न-भिन्न वर्गों और जातियों में विभक्त है। आरंभ से ही समाज में उच्च जाति के लोगों द्वारा निम्न जाति के लोगों के साथ भेद-भाव होता रहा हैं। आज भी हमारे ग्रामीण समाज में छुआ-छूत के नियम वैसे ही है जिस प्रकार सदियों पूर्व थे। असगरी और पारो द्वारा गाँव के कुँए से पानी भरने में यह भेद-भाव

दृष्टिगत होता है। "बहाण,दूसरान को दीन खराब करना सू बढ़िया है ये दोनूँ सास-बहू अपना कुआँ पे कोई लू ना चली जाएँ...सिरकार ने बनवा तो राखा हैं चिमार-चुहड़ान् का अलग कुआँ।"[1] समाज में ऐसी धारणा स्थापित हो गई है कि जो लोग निम्न जाति के हैं वह अपवित्र है। इनका उच्च वर्ण के घरों और मंदिरों में प्रवेश वर्जित है और गाँवों में उनके लिए अलग कुँए का प्रबंध होता है। इन निम्न जाति के लोगों के प्रति उच्च जाति के लोगों में यह धारणा प्रचलित है कि अछूत के स्पर्श मात्र से उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है। यही धर्म तब भ्रष्ट नहीं होता जब उच्च जाति का पुरुष निम्न जाति की स्त्री के साथ जबरदस्ती कुकर्म करता है, उसे छूता है और कहीं का नहीं रखता है।

समाज में बलात्कार का समाजशास्त्र केवल प्राचीन सामाजिक कुप्रथाओं और पुरुष के अहं से ही नहीं संबंधित है अपितु इसके पीछे जातिगत उत्कृष्टता की तुल्यता भी कार्य करती है। साथिन के रूप में साफ-सफाई,परिवार नियोजन,लड़कियों की शिक्षा, भ्रूण हत्या,बाल विवाह तथा दहेज जैसे मामलों पर जागरूकता का अभियान चलाने वाली जानकी का रामकरन को उसकी बारह-तेरह साल की पुत्री का बाल-विवाह न करने के लिए समझाना ठाकुर रामकरन को इस कारण खराब लगता है क्योंकि वह निम्न जाति की है। "वह तो सुनते ही चिंघाड़ा कि एक कुम्हारी मुझे समझाएगी कानून।''[2] रामकरन ने जानकी की इस कोशिश को अपनी नाक का सवाल बना लिया और पुलिस को घूस देकर पुत्री का विवाह करवाने के पश्चात् एक दिन जानकी के पति "मोहनलाल को खूब मारा और फिर उसके हाथ-पाँव बाँधकर एक तरफ पटक दिया...'' और उसके सामने ही "तेरे ससुर और ताएसरे रामकरन जानकी की तरफ मुड़े और बारी-बारी से उसके साथ मुँह काला किया''[3] हमारे भारतीय समाज और इस कानून व्यवस्था पर भद्दा कलंक दिखाई देता है क्योंकि यह कानून व्यवस्था उच्च जाति व पैसे वालों के सामने घुटने टेक ही देती है। यह लोग कानून व्यवस्था का प्रयोग जब चाहे जैसे चाहे करते हैं। जानकी अपने साथ हुए बलात्कार को लेकर गुहार लगाती रह जाती है किन्तु उसे न्याय नहीं मिलता क्योंकि जानकी एक गरीब कमजोर और उपेक्षित समाज की होने के कारण कोई साक्षी नहीं मिलता और न्यायाधीश फैसला सुनाते है कि प्रतिष्ठित और धनी मनुष्य किसी का बलात्कार नहीं कर सकता। "दूसरा,यह कहा कि कोई मरद अपने किसी सगे-संबंधी के आगे ऐसा काम नहीं कर सकता। कोई अगड़ी जाति का मरद किसी छोटी जाति की औरत के साथ इसलिए ऐसा गलत काम नहीं कर सकता क्योंकि वह मैली होती है।''[4] कहने का तात्पर्य यह है कि जिस निम्न वर्ण की स्त्री को छू नहीं सकता बलात्कार क्या करेगा।

जातिगत श्रेष्ठता और सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर जानकी की बलि चढ़ जाती है। उच्च वर्ण के समाज का यह कुरूप यहीं तक सीमित नहीं है, वह स्वयं तो निम्न जाति की स्त्री का बलात्कार कर सकता है। या फिर उनका शोषण करता रहे परन्तु कभी भी यह सहन नहीं करता कि अपनी जाति की लड़की किसी निम्न जाति के लड़के से स्नेह अथवा मैत्री भाव भी रख ले। ऐसा होने का तात्पर्य है कि इस समाज में मुँह दिखलाने योग्य न रहना। सवर्ण समाज की नाक इस कदर ऊँची है कि वह अपने परिवार की लड़कियों को मृत्यु के द्वार पर पहुँचाने से भी पीछे नहीं हटते,क्योंकि इन पर दिखावटी समाज सर्वदा ही छाया हुआ रहता है।

हमारे भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की नींव ठोस हैं इसी व्यवस्था हेतु समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव उत्पन्न हुआ तथा जातीय भेद-भाव के कारण ही समाज में रंजिश बढ़ती है जिससे लोग मनुष्यता को भुलाकर छुआछूत जैसा मूर्खतापूर्ण व्यवहार करते हैं। जिसका चित्रण मोरवाल जी ने 'अरण्यकांड' कहानी में किया है,आज भी इस समाज में पंडित कृपाशंकर जैसे मनुष्य मौजूद है जिन्होंने "अपने यजमानों से आज तक उन्हें किसी ने बना-बनाया भोजन लेते हुए नहीं देखा होगा और अगर लेते भी हैं तो बनिया-बामनों से ही''...''यानी पंडित कृपाशंकर के अपने कुछ नियम हैं,अपने कुछ नेक धर्म हैं और अपने कुछ उसूल हैं। इन्हीं उसूलों में से एक उसूल यह भी है कि पंडित जी के चौतरे पर जहाँ उन्होंने ठाकुर जी का थड़ा बनवाया हुआ है,मजाल है छोटी-मोटी जाति के लोग वहाँ फटक भी जाएँ।"[5] एक दिन उनका मन छोटे पुत्र बनवारी लाल से मिलने को हुआ और वह दिल्ली चले जाते हैं किन्तु वहाँ जाकर उन्हें मकान मालकिन से मालूम होता है कि बनवारी तो कल से बाहर गया हुआ है दफ्तर के किसी काम से,और उनको वह कमरे की चाबी दे देती है। बनवारी घर पर नहीं था इसलिए उसकी मकान मालकिन चाय,पानी देती है। किन्तु पंडित कृपाशंकर इस इस दुविधा में फँसे हुए हैं कि "बनवारी का मकान मालिक है किस जाति का? रहन सहन से नहीं लगता कि वे किसी ऊँची जाति के होंगे''...''कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये लोग जान-बूझकर पानी-चाय पिलाकर उसके धर्म को''...और ''अंततः जीत संस्कारों और उसूलों की हुई और चाय से भरा कप पंडित कृपाशंकर ने पानी के गिलास की तरह निर्ममता से खाट के नीचे उँडेल दिया।"[6] उनका मानना हैं कि निम्न जाति के व्यक्ति के घर का खाकर कहीं वह अपवित्र न हो जाये। तथा वह बाहर भोजन करने के लिए निकल जाते है लेकिन जहाँ भी वह भोजन करने की सोचते है वहाँ मांस अवश्य ही बना रहता है जिस कारण

लौट आते है। अन्त में एक रहड़ी वाले द्वारा उस स्थान का पता चलता है जहाँ वह शुद्ध शाकाहारी भोजन खुशी-खुशी कर लेते है। घर लौटते हुए उन्हें रास्ते में मालूम होता है कि वह ढाबा तो ढेड़ का था तब पंडित कृपाशंकर हलक अंदर तक अंगूलियाँ डाल कर उल्टी के द्वारा सारा खाना बाहर निकाल देता है। घर जाकर सारे शरीर पर गंगाजल छिड़कर और पीकर स्वयं को शुद्ध करता है। ''हे गंगा मैया,तूने बड़े-बड़े पापियों के पाप धोए हैं... मेरा भी यह पाप धोना...हे गंगा मैया...मुझे क्षमा करना।''[7] जैसे की भगवान कह रहा होगा यह सब करने के लिए,सम्मानित कहे जाने वाले समाज के मध्य रहने वाला साफ-स्वच्छ उपेक्षित परिवार जो आर्थिक रूप से संपन्न हो तथा उच्च वर्ण के लोगों से भी अधिक तन-मन से स्वच्छ क्यों न रह ले फिर भी उच्च जाति के व्यक्तियों के मन में दबे हुए, पिछड़े, निम्न लोगों के प्रति आचार-व्यवहार में छुआछूत भरा आचरण झलक ही जाता है। क्योंकि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के बावजूद भी कहीं-कहीं निम्नवर्ण के प्रति उनके दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आया जिस कारण वह उन लोगों के साथ तिरस्कार पूर्ण व्यवहार करते रहते हैं।

जातीय भेद-भाव को बढ़ावा देने में हमारे समाज के भ्रष्ट राजनेता भी है जो अपने स्वार्थ के कारण चुनाव के वक्त यह नेता लोगों में जातीय भेद-भावना को भड़काकर जाति के नाम पर मत प्राप्त करते है। तथा घर-घर जाकर निम्न वर्ण के लोगों के प्रति आत्मीयता का दिखावा करने के प्रयास में कुछ भी कर जाने से नहीं चुकते ऐसा ही ज्ञानचंद जैन ने भी किया। ''जिस लाला ज्ञानचंद जैन की दुकान की पैड़ियों पर चढ़ने से पहले अपनी पणहा नीचे ही उतारनी पड़ती थी। झकाझक सफेद गाव-तकिए से दूर पाँयतों की ओर बैठना पड़ता था, उसी ज्ञानचंद जैन ने''...जगनी के घर आते ही "बिना किसी बेतकुल्लफी से खाट पर बैठते ही एक गिलास पानी की माँग कर बैठा?''[8] ऐसे ही राजनीति में मत प्राप्त करने के लिए सभी उपेक्षित समाज के व्यक्तियों को अपने हिन्दुत्व की गुहार लगाकर कि छुआछूत, ऊँच-नीच, धर्म, अमीर-गरीब जैसा कुछ नहीं है हम सब समान हैं,बोलकर बहुत आसानी से बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेता है। उच्च वर्ण के लोग चाहे बाहरी तौर पर जातीय भेदभावना का खंडन करते हैं। लेकिन उनके मन में जातीय प्रधानता की भावना हमेशा रहती है। अशिक्षा के कारण जमींदार, राजनीतिक और धार्मिक व्यक्ति निम्न वर्ग के साथ अमानवीय बर्ताव करते हैं, परिणामस्वरूप उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप शोषण हो रहा है। तथा सदियों से शोषण का शिकार और अपने अधिकारों से वंचित उपेक्षित समाज अब बोलने लगा है। विशेष रूप से निम्न वर्ण की युवा पीढ़ी में अपने अधिकारों व आत्मसम्मान के प्रति चेतना नजर आने लगी है। तथा यह युवा वर्ग राजनेताओं के प्रपंचों से अवगत हो चुका है इसीलिए इलेक्शन के दौरान लाला ज्ञानचंद जैन का किराए के लिए हजार रुपए देकर जाने पर युवा वर्ग आक्रोश में आ जाता है कि ''ज्ञानचंद जैन किराए के रूप में हजार रुपए क्यों देकर गया है? क्या वह हमें खरीदने आया है? क्या हम इतने गए-गुजरे हैं कि अपना किराया भर के वोट डालने भी नहीं जा सकते?"[9] आज यही उपेक्षित समाज संगठन का आधार लेकर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है और शोषण से छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा है। यहाँ मोरवाल जी ने ध्यान आकृष्ट किया है कि आज आधुनिक युग में निम्न वर्ण के लोग शिक्षा प्राप्त कर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो चुके हैं। तब अब यह चेतना ग्रामीण स्थानों पर भी नजर आने लगी है, भेदभाव और अत्याचार को भोग कर निम्न वर्ग की ग्रामीण स्त्रियाँ भी अब किसी उच्च वर्ग की धमकी को नहीं सुनती तथा कुएँ से पानी भरने के लिए मना करने पर वह गुस्से से चीख उठती है कि "कुआँ के तेरा खसम को है जो तू चबर-चबर बोल रही है।''[10]

वर्तमान युग में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् निःसंदेह ही गाँव की अपेक्षा शहरों में निम्न जाति पर हो रहे शोषण में परिवर्तन आ रहा है। जहाँ पूरी दुनियां में विज्ञान, तकनीक, उच्च शिक्षा एवं आधुनिकता का प्रसार तीव्रता से हो रहा है। वहीं हमारा समाज भी जातीय भेद-भावना से धीरे-धीरे बाहर निकल रहा है। आज व्यवसाय या शिक्षा से जुड़े सभी क्षेत्रों में उच्च व निम्न वर्ग के लोग एक साथ मिलजुल के कार्य करते हैं। शिक्षा ने जाति के बंधन से मुक्त करवाकर समाज में बंधुत्व की भावना को बढ़ाया है। आज समाज में उपेक्षित वर्ग अपने जातिगत व्यवसाय को त्याग कर अन्य रोजगार में प्रवेश कर रहा है। जिसका यथार्थ चित्रण मोरवाल जी ने प्रस्तुत किया है। जहाँ वर्षो से मनोहर की माँ गंदगी साफ करने का कार्य करती थी आज उसका पुत्र डॉक्टर बन चुका है, कमला के मनोहर से पूछने पर कि "तुमने यह डॉक्टरी ही क्यों चुनी, जबकि तुम और कुछ भी तो बन सकते थे जैसे वकील, इंजीनियर कुछ भी?'' तब वह बोला "दरअसल मैं उन जिस्मों का जी भरकर स्पर्श करना चाहता था जिनको छूने की बचपन में मैं कल्पनाएँ करता था,मैं उन कपड़ों की गंध एकदम पास से लेना चाहता था,जो कभी मेरे छूते ही उतारकर फेंक दिए जाते थे।''[11]

युग चेतना के इस दौर में यह जागृति निम्न वर्ग में ही नहीं अपितु उच्च वर्ग की युवा पीढ़ी में भी दिखनी आरम्भ हो चुकी है कुछ उच्च वर्ग के लोग अब जातिगत परंपरा को छोड़कर एक समान होकर मनुष्य को मनुष्य की तरह से देखकर उसके गुणों

को अपना रहे है न कि उसने किस समाज या वर्ग में जन्म लिया है इस बात को महत्त्व दे रहे है। इसी का उदाहरण है डॉ० शालिनी जो एक उच्च वर्ग की पढ़ी-लिखी लड़की है और एक उपेक्षित समाज के लड़के से विवाह करने के प्रश्न पर स्पष्ट कहती है कि ''मैं एक पढ़े-लिखे जीनियस डॉक्टर से शादी करने जा रही हूँ न कि एक झाड़ू लगाने वाले महतर से।''[12] इस तरह शिक्षित युवा पीढ़ी द्वारा किये जाने वाले अंतर्जातीय विवाह आज समाज में जातीय भेद-भाव के विरुद्ध एक उत्तम युक्ति है।

भारतीय संविधान में दलित, स्त्री व पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाने और समान रखने के लिए आरक्षण की नीति अपनाई है। जिसके लाभ से शिक्षा प्राप्त कर वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहे है व रोजगार के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त कर रहे है। सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं से उच्च वर्ग का व्यक्ति चिंतित रहता है, क्योंकि इन सुविधाओं के द्वारा निम्न वर्ग का व्यक्ति उन्हीं के बराबर आ जाता है। अत: आज वर्तमान युग में जो व्यक्ति जितनी बुद्धि के साथ ज्ञान अर्जित करता है,वह उतना ही उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है किसी भी क्षेत्र में। फिर चाहे वह व्यक्ति किसी भी वर्ग या जाति का क्यों न हो। तथा आज भारतीय समाज व्यवस्था में धीरे-धीरे जातीयता समाप्त हो रही है और सामाजिक एकता का कार्य आरम्भ हो रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देस में, पृ०- 27
2. भगवानदास मोरवाल, वंचना, पृ०- 54
3. वहीं, पृ०- 55
4. वहीं, पृ०- 56
5. भगवानदास मोरवाल, महराब और अन्य कहानियाँ, पृ०- 73
6. वहीं, पृ०- 78
7. वहीं, पृ०- 86
8. भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़, पृ०- 380
9. वहीं, पृ०- 388
10. भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देस में, पृ०-118
11. भगवानदास मोरवाल, सीढ़ियाँ, माँ और उसका देवता, पृ०- 187
12. वहीं, पृ०- 189

विचारधारा की अवधारणा का विकास

डॉ० शुभा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय आर०एन०एम० महाविद्यालय, भटगाँव, जिला-सारंगढ़, बिलाईगढ़ (छ०ग०)

विचारधारा कोट या कुर्ते जैसी कोई चीज नहीं है, जब मन किया एक उतारा और दूसरा पहन लिया। मेरे विचार से विचारधारा कुछ दूसरी ही चीज है। उसे आदमी मजबूती से पकड़ता है। वह समर्पण मांगती है। उसके लिए निष्ठा चाहिए, गहरा आंतरिक विश्वास चाहिए। उसी निष्ठा और गहरे विश्वास में से सब तरह के अभाव, कष्ट, निन्दा, अपमान और जेल, यातना सबकुछ सहने और जरूरत पड़ने पर अपने प्राण तक दे देने की ताकत आती है। जहां ये निष्ठा और समर्पण और अकुंठ विश्वास नहीं है, वहां फिर विचारधारा कैसी? अब सवाल पैदा होता है कि विचारधारा से हमारा क्या मतलब है? विचार तो आसानी से समझ में आता है। सबके मन में कभी कोई विचार आता रहता है। अभी मैं अपने बारे में सोच रही हूं, फिर अपने वर्ग के विषय में सोचने लगी, फिर देश की ज्वलंत समस्या-जैसे भारत-पाक संबंध या फिर आरक्षण नीति के बारे में सोचने लगी। किसान अपने खेतों के बारे में विचार करता है, गृहणी अपने घर-परिवार के बारे में। नेतागण के मन में कुछ दूसरे ही तरह के विचार आते रहते हैं–कैसे विधानसभा या लोकसभा का टिकट दुबारा-तिबारा हासिल किया जाय, मंत्रिमण्डल में कैसे घुसा जाय आदि-आदि। यानी कि सबके पास अपने-अपने विचार होते हैं और आदमी उन्हीं में गोते खाता रहता है। इसलिए विचार तो सब समझते हैं, पर विचारधारा जरा टेढ़ी खीर मालूम होती है। अमृत राय विचारधारा पर विचार करते हुए लिखते हैं, "'विचार' और 'धारा' दोनों ही शब्द संस्कृत से हिन्दी में आये हैं और हिन्दी के अपने हैं, लेकिन उन दोनों का सामासिक पद जो 'विचारधारा' है वह कदाचित् हमारे यहां का पुराना प्रयोग नहीं है। मेरा अनुमान है कि वह अंग्रेजी से हिन्दी में आया है और 'आइडियॉलोजी' का रूपांतर है।"[1]

'विचारधारा' के अर्थ के विकास का इतिहास एक जटिल स्वरूप धारण किए हुए है। कहीं विचारधारा 'विचारों के विज्ञान' के रूप में परिभाषित है तो कहीं 'छद्म चेतना' के रूप में। कहीं इसे 'लेखक की वर्गीय चेतना' के रूप में देखा गया है तो कहीं 'विश्वदृष्टि' के रूप में। और फिर आज के उत्तर आधुनिक समय में जबकि विचारधारा के अंत के फतवे जारी किए जा रहे हैं तो समस्या यह है कि आज के संदर्भ में विचारधारा से क्या अर्थ लगाएं? वास्तव में, 'विचारधारा' की किसी एक कालखंड में, किसी एक विचारक द्वारा, किसी एक संदर्भ में दी गई व्याख्या को ही आखिरी मानना एक भूल होगी। अत: हमें विचारधारा के अर्थ का वास्तविक स्वरूप निर्धारण हेतु इसके विकासक्रम तथा उस विकासक्रम में उभरते हुए इसके अर्थों की प्रकृति एवं उसके प्रयोजनों को ध्यान में रखना होगा।

विचारधारा की अवधारणा आधुनिक चिंतन की उपज है। सामान्यत: विचारधारा के अर्थ की व्याख्या मार्क्सवाद के संदर्भ में की जाती है लेकिन मार्क्स के पूर्व ही डीट्रेसी और नेपोलियन आदि ने विचारधारा के अर्थ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। फ्रांस के बुद्धिजीवी दार्शनिक डीट्रेसी ने 1797 ई. में पहली बार 'विचारधारा' शब्द का प्रयोग करते हुए इसे सामाजिक प्रक्रिया को समझने के लिए 'विचारों के विज्ञान' के रूप में परिभाषित किया। विचारधारा का प्रयोग ज्ञानमीमांसा तथा भाषाविज्ञान में भी हुआ है। नेपोलियन ने 'विचारधारा' की व्याख्या करते हुए विचारों के विज्ञान के रूप में इसकी आलोचना की। हेगेल तथा मार्क्स के मध्य के समय में धर्म, समाज तथा विचार प्रक्रिया पर लंबी बहस चली। फायरेबारव अपने ग्रंथ 'एसेंस ऑफ क्रिश्चनरी' में लिखते हैं कि विचारधारा का आस्थावाद से विरोध तथा भौतिकवाद और विवेकवाद से गहरा संबंध है।

विचारधारा के अर्थ के विकास में मार्क्स-एंगेल्स का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी रचनाओं में विचारधारा का अर्थ सब जगह एक समान नहीं है। विचारधारा की धारणा में परिवर्तन और विकास हुआ है। ''जर्मन विचारधारा'' नामक पुस्तक में मार्क्स-एंगेल्स ने विचारधारा को 'छद्म चेतना' कहा है जबकि ''राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना को योगदान'' नामक पुस्तक में इसे एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ की विशिष्ट सामाजिक चेतना के रूप में परिभाषित किया है। विचारधारा को यथार्थवाद का विरोधी मानने वाले आलोचक अपने मत के समर्थन में मार्क्स-एंगेल्स के 'जर्मन विचारधारा' वाले मत-जिसमें कि विचारधारा को भ्रम, अवास्तविक और यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब कहा गया है—को प्रस्तुत करते हैं। पर वास्तव में इसमें मार्क्स-एंगेल्स ने मुख्य रूप से धर्म और दर्शन की चर्चा की है, साहित्य और कला की नहीं। अर्थात् वे धर्म और दर्शन द्वारा प्रतिपादित, विचारधारा को 'छद्म चेतना' अथवा 'यथार्थ का उल्टा प्रतिबिम्ब' कहते हैं। उनके अनुसार विचारधारा का वास्तविक अर्थ—विशिष्ट सामाजिक चेतना या वर्ग चेतना ही है। इसी चेतना के माध्यम से जनता अपने शोषण को पहचानती एवं उसके विरुद्ध संघर्ष करती है।

मार्क्स का मानना है कि विचारधारा स्वयं ऐतिहासिक होती है। इतिहास प्रक्रिया उसके स्वरूप एवं चरित्र का निर्माण करती है। सामाजिक वास्तविकता तथा अंतर्विरोधों में परिवर्तन के फलस्वरूप विचारधारा में परिवर्तन होता है। एक समय की प्रगतिशील विचारधारा, दूसरे समय में प्रतिक्रियावादी विचारधारा बन जाती है। विचारधारा शाश्वत नहीं होती है। विचारधारा की धारा विकासशील धारा है।

मार्क्स ने विचारधारा को 'छद्म चेतना' के रूप में देखा। 'छद्म चेतना' में धार्मिक, आध्यात्मिक विश्वचेतना की बात की। मार्क्स का मानना है कि 'विचारधारा छद्मचेतना के संदर्भ में उस चीज को इंगित करती है जो उल्टी रूप में है।' पूंजीवाद पर विचार करते हुए मार्क्स का मानना है कि, 'पूंजीवाद उत्पादन की ऐसी व्यवस्था है जिसमें पूंजीपति वर्ग का अधिकार होता है। श्रमिक की स्वतंत्रता है कि वह अपने श्रम को बेच सके। इसके बरवस पूंजीपति की स्वतंत्रता है कि वह इस श्रम को खरीद सके। मुक्त बाजार में हर आदमी को हर जगह, हर तरह की खरीद-बिक्री की छूट होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में श्रम से लेकर आत्मा, परमात्मा सबकी खरीद-बिक्री होती है। मार्क्स का कहना है कि पूंजीवाद में सिर्फ खरीद बिक्री की स्वतंत्रता है, लेकिन उसे इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि मानों वह जीवन का कोई महत्वपूर्ण कार्य हो। शासक वर्ग की विचारधारा पर वे लिखते हैं, हर समय और समाज में शासक वर्ग का विचार ही मुख्य विचार हुआ करते हैं। "The ideas of the ruling class are in every epoch the ruling ideas?"[2]

एंगेल्स ने स्वतंत्र रूप से 'एंटी ड्यूटरिंग' नामक पुस्तक में विचारधारा की चर्चा की है। उनके अनुसार विचारधारा वह है जहां विचार से वस्तुजगत का संबंध होता है। तथ्यों से विचार तक की यात्रा करने के बजाय विचारों से तथ्यों तक पहुंचते हैं। इस यात्रा में जहां अंतराल पड़ता है, उसे कल्पना से पूर्ण करते हैं। 1833 में मेटरिंग को लिखे पत्र से भी एंगेल्स की विचारधारा संबंधी अवधारणा का पता चलता है। यहां वे लिखते हैं ''प्रत्येक विचारधारा जब एक बार पैदा होती है, तो वह पहले से मौजूद धारणाओं से अपना विकास करती है। विचारधारा, विचारों की वस्तुजगत से स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करती है। विचारक के विचार, वस्तुजगत से प्रभावित तो होते हैं, लेकिन इस बारे में वह सचेत नहीं होता।'[3] एंगेल्स ने विचारधारा की दार्शनिक से ज्यादा मनोवैज्ञानिक व्याख्या की। बाद के दिनों में Freud ने जिसे 'रेशनलाइजेशन' कहा उससे यह काफी साम्यता रखता है।

एंगेल्स ने भी विचारधारा को इतिहास के साथ परिवर्तनशील माना है। मध्यकाल में धर्म व आध्यात्मिकता संपूर्ण समाज को आच्छादित करने वाली विचारधारा प्रक्रिया के रूप में की जिसका रूप और अर्थ पूंजीवाद के विकास के साथ बदलता है। पूंजीवाद के विकास के साथ मजदूर वर्ग की विचारधारा भी पैदा होती है। अत: विचारधारा का स्वभाव ऐतिहासिक होता है।

विचारधारा के अर्थ संबंधी इस विमर्श को लेनिन के प्रवेश से एक नया आयाम मिलता है। लेनिन ने जनसंघर्ष के बीच में विचारधारा पर विचार किया। उन्होंने विचार तथा व्यवहार की एकता तथा उनके आपसी संबंध पर विचार किया तथा इससे विचारधारा के सकारात्मक अर्थ का विकास हुआ। लेनिन के विचारधारा को वर्ग तथा वर्ग-चेतना से जोड़कर देखा। अलग-अलग वर्ग की अलग-अलग विचारधारा होती है। एक वर्ग की सामाजिक स्थिति से उसकी विचारधारा का निर्माण होता है।

लेनिन ने समाजवाद को पहली बार एक विचारधारा माना और वैज्ञानिक समाजवाद को सर्वहारा वर्ग की विचारधारा कहा। वर्गों के परस्पर संबंधों के होते हुए भी कोई वर्गहीन विचारधारा नहीं हो सकती। हर विचारधारा ऐतिहासिक स्थिति से तय होती है। मजदूर वर्ग अपनी स्थिति से एवं इतिहास के विश्लेषण से भी विचारधारा का ज्ञान अर्जित करता है। लेनिन के अनुसार 'छद्‌म चेतना' से मुक्ति ही वैज्ञानिक विचारधारा है क्योंकि धार्मिक विचारधारा में छद्‌म चेतना उपस्थित रहती है।

जार्ज लुकाच ने लेनिन की विचारधारा संबंधी अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए मार्क्सवाद को विचारधारा तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद को संघर्षशील मजदूर वर्ग की विचारधारा कहा। बुर्जुवा विचारधारा की छद्‌मता का कारण उसकी ऐतिहासिक स्थिति होती है। विचारधारा में छद्‌म अंश तब ज्यादा होती है, जब वह भाववादी होती है। लुकाच कला तथा साहित्य को भी विचारधारा का एक हिस्सा मानते हैं।

विचारधारा के अर्थ के विकास में इटली के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता 'एन्टोनियो ग्राम्भी' का महत्वपूर्ण स्थान है। विचारधारा के सकारात्मक अर्थ का विकास करते हुए उन्होंने मार्क्सवादी चिंतन की भाषा व दिशा बदल दी। उन्होंने मार्क्सवाद के स्थान पर एक नया शब्द रखा–''व्यवहार तथा अनुभव का दर्शन''। ग्राम्शी के समय में फ्रैंकफर्ट स्कूल का दौर था जहां विचारधारा के 'छद्‌म चेतना' वाली बात महत्वपूर्ण थी। लेकिन ग्राम्शी ने इसे स्वीकार नहीं किया। वे दो तरह की विचारधारा की बात करते हैं–एक आवयविक विचारधारा जो विभिन्न वर्गों की विचारधारा से निर्मित होती है तथा दूसरी ऐच्छिक या यादृच्छिक विचारधारा, जो वैयक्तिक, पीढ़ीगत या कुछ लोगों द्वारा भी निर्मित हो सकती है। ग्राम्शी ने विचारधारा के संदर्भ में वर्चस्वशीलता की अवधारणा प्रस्तुत की। उनकी मान्यता है कि समाज का वास्तविक संघर्ष 'वर्चस्व का संघर्ष' है। विचारधारा वर्चस्व का माध्यम तथा साधन दोनों है तथा यह संघर्ष, प्रतिरोध के बोध का भी माध्यम है। लेनिन से थोड़ा भिन्न दृष्टिकोण रखते हुए ग्राम्शी मानते हैं कि विचारधारा मुक्तिधर्मी ही नहीं होती बल्कि पराधीन भी बनाती है। ग्राम्शी ने अपने चिंतन को विकसित करने का साधन मूल रूप से 'जनता' को बनाते हुए 'लोकमत' संबंधी अवधारणा विकसित की। उनके पूर्व जनचेतना (कॉमनसेंस) शब्द निंदापरक था इसके विपरीत उन्होंने जनचेतना की जगह साधुमत (गुडसेंस) का प्रयोग करते हुए कहा कि लोकमत में ही आम जनता की जिन्दगी के अनुभव होते हैं।

विचारधारा के अर्थ के इस विकास परंपरा में 'लुई अल्यूसेर' का विचारधारा संबंधी चिंतन इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसका उत्तर आधुनिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा। विचारधारा की आलोचना की जो प्रवृत्ति उत्तर आधुनिकता में है, उसके मूल में अल्यूसर का ही चिंतन है। अल्यूसर ने विचारधारा के संबंध में समग्रतावादी प्रकृति की आलोचना की। वे विचारधारा को भौतिकवादी मानते हैं।

गोल्डमान ने विचारधारा के यथार्थ के संदर्भ में 'विश्वदृष्टि' शब्द का प्रयोग किया। 'विश्वदृष्टि' से उनका तात्पर्य आम राय के विकसित रूप से है जिसमें समाज तथा प्रकृति दोनों शामिल हैं। मनुष्य सामाजिक जीवन में जीते हुए दुनिया के बारे में अपनी विशेष रुचि किसी साहित्यिक पाठ की परीक्षा द्वारा यह देखने में है कि किस सीमा तक यह उस सामाजिक वर्ग अथवा समूह की विचार-संरचना (अथवा 'विश्व-दृष्टि') को व्यक्त करता है।[4]

'पियरे माशरे' मुख्य रूप से अर्थ में मौजूद द्वंद्वों पर ध्यान देते हैं। ध्यान रखने की बात है कि अर्थ में द्वंद्व और रूप में द्वंद्व दोनों अलग-अलग होते हैं। मॉशरे के लिए ''कृति जो कहती है उससे कहीं अधिक जो नहीं कहती है उसके कारण विचारधारा से बंधी होती है।''[5]

पूंजीवादी समाज में विचारधारा की क्रियाशीलता की व्याख्या करते हुए अर्डोनो, लावेलस आदि विचारकों ने पूंजीवादी समाज की विचारधारा की आलोचना की। इसकी बुनियादी मान्यता यह है कि पूंजीवादी युग में हर चीज का बाजारीकरण हुआ है। जिसके चलते पूंजीवादी विचारधारा में मूल अभिप्राय को छुपाने की प्रवृत्ति होती है। बाजार की संस्कृति में विचारधारा का वस्तुकरण हो जाता है।

उत्तर आधुनिकतावाद तथा विचारधारा के संबंध के संदर्भ में प्रसिद्ध विचारक देबोर का मानना है कि वस्तुत: उत्तर आधुनिक समाज 'दृश्यों की दुनिया' है। इस प्रक्रिया में विचारधारा केवल विचार के तौर पर ही काम नहीं करती है बल्कि उसका भौतिक

रूप भी दिखाई देता है। उत्तर आधुनिक समाज में प्रस्तुतीकरण वस्तु से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रसिद्ध विचारक ब्रादीला मानते हैं कि विचारधारा ने 'छद्‌म चेतना' का रूप धारण कर लिया है। आगे चलकर उत्तर आधुनिकता के मुख्य प्रतिनिधि चिन्तक फूको विचारधारा के विभेदों को ही अस्वीकार कर देते हैं और 'डेनियल बेल' (1960) विचारधारा के अंत का घोषणा पत्र जारी करते हैं। तर्क का नकार उत्तर आधुनिकता की बुनियादी विशेषताओं में से एक है। उत्तर आधुनिकता के सबसे कठोर आलोचक हाबरमास ने कहा कि तर्क द्वारा तर्क का नकार वास्तव में पद्धतिगत गड़बड़ है। कुछ ऐसी ही पद्धति बेल की भी है। उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात् विचारधारा के अर्थ के संदर्भ में कुछ बातें निर्धारित की जा सकती है। विचारधारा के तीन संदर्भ हैं–रचना, बोध और आलोचना। विचारधारा सिर्फ विचारों की धारा नहीं है। यह रचना की उत्पत्ति व प्रभाव तथा अंतर्वस्तु व रूप दोनों की संघटना में होती है। हर विचार विचारधारा नहीं है। विचार विचारधारा तब होता है जब जीवन जगत का सामान्यीकरण हो, एक विशेष प्रकार का बोध हो। विचारधारा अंतर्विरोधों को ढकने का भी काम करती है। विचारधारा का एक स्वभाव यह भी होता है कि वह अपने को सबसे अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने का प्रयास करती है।

लुई आल्थुशे सेः–प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक विचारक लुई आल्थुशे बीसवीं शताब्दी में बीस वर्षों तक 1970–80 के दशक में यूरोप के मार्क्सवादी चिंतन में महत्वपूर्ण रहे हैं।

उनके लेखन की बुनियादी विशेषता है कि उन्होंने मार्क्सवाद और संरचनावाद को मिलाने की कोशिश की है। संरचनावादी दृष्टि से मार्क्सवाद को पढ़ने की कोशिश भी है। इस प्रक्रिया में उन्होंने यूरोप के दूसरे विचारकों संरचनावादियों के अलावा फ्रायड से भी मदद ली है। विचारधारा और चेतना के बारे में उनके विचार 70 के दशक से 80 के दशक तक अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं।

कला का विचारधारा से संबंध

कला विचारधारा से ही पैदा होती है। वह विचारधारा की ओर संकेत भी करती है। लेकिन वह विचरधारा से अपने को अलग भी करती है। विचारधारा से कला Retreat करती है। कला के जन्म के समय विचारधारा से गहरा संबंध होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विचारधारा और साहित्य–हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, अमृत राय–1984
2. आलोचना का उत्तर-समय–प्रधान संपादक नामवर सिंह, 2005
3. Idiology—David Mclellan, World View, 1998.
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका–हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, मैनेजर पाण्डेय।
5. कक्षा–व्याख्यान।

नागरिकों को सशक्त बनाने में आर.टी.आई. एक महत्वपूर्ण उपकरण

डॉ० अरूणा टाक

कानूनी विभाग, जोधपुर, राजस्थान

सारः-

सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI) 2005 का मुख्य लक्ष्य नागरिको को सशक्त बनाना है, जिससे वे सरकारी कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा दे सके, भ्रष्टाचार को नियंत्रित कर सके और सरकार को लगों के प्रति अधिक जिम्मेदार बना सके, नागरिको को सार्वजनिक प्राधिकरणों जानकारी मांगने, सरकारी दस्तावेजों का निरीक्षण करने और आधिकारिक डेटा की प्रतियां प्राप्त करने का कानूनी अधिकार देकर, आर.टी.आई. उन्हें सूचित रहने और शासन पर नजर रखने में मदद करता है नागरिको को सशक्त बनाने के प्रमुख तरीकेः-

- जानकारी तक पहुंचः
- पारदर्शिता और जवाबदेहीः
- भ्रष्टाचार पर रोकः
- लोकतंत्र को मजबूत करनाः
- जागरूक नागरिकः

आर.टी.आई. का मुख्य उद्देश्य सरकार में पारदर्शिता और खुलेपन को बढ़ावा देना है ताकि नागरिको को अच्छी जानकारी हो और वे जवाबदेही और नागरिक-केन्द्रित विकास को बढ़ावा देने के लिए राज्य के साथ जुड़ सके। आर.टी. अधिनियम की धारा 19 नागरिकों से कुछ मामलों में सीधे केन्द्रिय को बढ़ावा देने के लिए राज्य के साथ जुड़ सके। आर.टी. अधिनियम की धारा 19 नागरिकों से कुछ मामलों में सीधे केन्द्रिय सूचना आयोग (CIC) से सम्पूर्क करने के स्थिति है। यह धारा उन मामलों के लिए है जहां सूचना अधिकारी द्वारा दी गई जानकारी से कोई भी नागरिक सीधे सी.आई.सी. के अपील नहीं कर सकता है।

RTI अधिनियम 2005 एक भारतीय कानून है जो नागरिको को किसी भी सरकारी विभाग या सार्वजनिक प्राधिकरण के पास मौजूद जानकारी तक पहुँचने का अधिकार देता है, जिससे सरकारी कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही बढ़ती है। यह अधिनियम 2005 में पूरे भारत में लागू हुआ, जिसमें जम्मू और कश्मीर को छोड़कर, इसके तहत, नागरिक निर्धारित शुल्क के साथ हिन्दी, अंग्रेजी या किसी अन्य आधिकारिक भाषा में आवेदन कर सकते है। कोई भी भारतीय नागरिक आवेदन कर सकता है। सभी सार्वजनिक प्राधिकरणों से जानकारी मांगी जा सकती है। निर्धारित शुल्क के साथ हिंदी, अंग्रेजी या किसी भी भाषा में लिखित या इलेक्ट्रॉनिक रूप में आवेदन किया जा सकता है।

अतंतः यह अधिनियम भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को सुदृढ़ करता है, जो अनुच्छेद 19 के तहत प्रदान किया गया है।

परिचयः-

आर.टी.आई. नागरिकों को सरकारी अधिकारियों और संस्थानों से उनके कार्य का जवाब मांगने का अधिकार देता है जो कि जवाबदेही को बढ़ावा देता है। यह अधिनियम पारदर्शिता सुनिश्चित करता हैः जो सरकारी विभागों को एक निश्चित समय सीमा के

भीतर मांगी गई जानकारी प्रदान करनी होती है, जिससे सरकारी कामकाज में खुलापन आता है। यह अधिनियम नागरिको को सरकारी नतियों और प्रक्रियाओं के बारे में सूचित करता है, जिससे वे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से सक्रिय रूप से भाग ले सकते है और सवाल पूछ सकते है। एक जागरूक और सूचित नागरिक शासन पर आवश्यक नजर रखने में सक्षम होता है, जो लोकतंत्र को वास्तविक अंर्थो में लोगों के लिए काम करने योग्य बनाता है।

यह एक परिवर्तनकारी कानून है एवंम एक महत्वपूर्ण साधन है। यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति अपनु जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों और कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सके। यह अधिनियम सरकार के सभी कदमों को आम जनता के समक्ष जाँच के दायरे में लाता है। और सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा अनावश्यक गोपनीयता को हटाकर निर्णयन में सुधार करता है। RTI अधिनियम नागरिको को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए सशक्त बनाकर सहभागी लोकतंत्र को बढ़ावा देता है। यह अधिनियम जवाबदेही की अवधारणा को परिभाषित करता है तथा सार्वजनिक प्राधिकारिको को व्यक्तियों या हितों के एक छोटे समूह के बजाय, उस जनता के प्रति जवाबदेह बनाता है जिसकी वे सेवा करते है।

नागरिक सरकारी अनुबंधित निविदाओ और व्यय से संबधित जानकारी प्राप्त कर सकते है। ये आर टी आई अधिनियम नागरिकों को उनके दैनिक जीवन के लिए आवश्यक जानकारी तक पहुंच का अधिकार प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाता है, जैसे:- स्वास्थय, शिक्षा और सामाजिक कल्याण से संबधित जानकारी। इस अधिनियम में नागरिको को सार्वजनिक प्राधिकारियों के कार्ये और निर्णयो की निगरानी में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए सशक्त बनाकर जबाबदेही की अवधारण को पुन: परिभाषित करता है।

अत: यह अधिनियम भ्रष्टाचार को उजागर करने, सुशासन सुनिश्चित करने और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में जनभागीदारी को बढ़ावा देने में सहायक रहा है और नागरिको के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों को जवाबदेही बनाने और सार्वजनिक मामलों में पारदर्शिता और जवाबदेही की मांग करने का एक महत्वपूर्ण, अनिवार्य साधन, उपकरण बन गया है।

सामग्री और तरीके:-

लोगों को सशक्त बनाकर, स्थिर समाजो को बढ़ावा देना।

मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएँ और सुशासन समृद्ध और स्थिर समाजों की नींव हैं। RTI में, हमारा मानना है कि लचीले और शांतिपूर्ण समाज नागरिक सहभागिता, पारदर्शिता और जवाबदेही पर आधारित होते है।

आर.टी.आई. एक अग्रणी अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन और अत्याधुनिक अनुसंधान रहा है। यह नागरिको वास्तविक दुनिया के परिणाम और समाधान तैयार करने में सक्षम बनाता है।

शासन पद्धतियों में सुधार के लिए आर.टी.आई. व्यक्तियों को सशक्त बनाने, संस्थाओ को मजबूत बनाने और अनुकूल वातावरण बनाने पर केन्द्रित है। पत्रकार और कार्यकर्ता आर.टी.आई. का उपयोग खोजी पत्रकारिता के लिए करते है, जिससे वे आधिकारिक रिकार्ड तक पहुंच कर गलत कामों को उजागर कर सके। आर.टी.आई नागरिकों को सूचना और जानकारी तक पहुचाना प्रदान करता है और उन्हें अपने अधिकारों के लिए खड़े होने में सक्षम बनाकर सशक्त बनाता है। यह नागरिको को सूचना प्राप्त करने और प्रश्न पूछने में सक्षम बनाकर, सक्रिय नागरिक वर्ग को बढ़ावा देता है। हाँ, यह सच है कि सूचना का अधिकार (RTI) लोकतंत्र को सशक्ति बनाने वाला एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो नागरिकों को सरकारी कामकाज में पारदर्शिता लाने, भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने और शासन की जवाबदेही बनाने में मदद करता है। आर.टी.आई. के काम करने का तरीका

- भारत में, यह सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के तहत लागू है, जो भारतीय नागरिको को सार्वज्निक प्राधिकरणों से जानकारी मांगने का अधिकार देता है।
- नागरिक एक आवेदन पत्र भरकर और निर्धारित शुल्क का भुगतान करके सार्वज्निक प्राधिकरणों से जानकारी मांग सकते है।
- सार्वज्निक प्राधिकरणों को आमतौर पर 30 दिनों के भीतर या कुछ मामलों में 48 घंटो के भीतर आवेदन का जवाब देना होता है।

सूचना के अधिकार को भागीदारीपूर्ण प्रजातंत्र को सुदृढ़ करने और लोक केन्द्रित अधिशासन की शुरूआत करने की एक कुंजी के रूप में देखा जाता है। सूचना की सुलभता गरीब और समाज के कमजोर वर्गों को सरकारी नीतियां एवं कार्रवाही के विषय में

सूचना की मांग करने तथा उसे प्राप्त करने के लिए सशक्त बना सकती है और इस प्रकार उनका कल्याण हो सकता है। उत्तम शासन के बिना नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो सकता।

अधिनियम की कार्य प्रणाली:-

आर.टी.आई. एक्ट एक इम्प्रूवमेंट उपकरण भी है, ये उन प्रक्रियाओं, रणनीतियों ओर पहलों से है जो अधिनियम के कार्योन्वयन को बेहतर बनाने, सरकारी कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देने, और भ्रष्टाचार को कम करने के लिए अपनाई जाती है। इसमें जनता को सूचना प्राप्त करने के लिए शिक्षित करना, सार्वजनिक प्रातितधकरणें के लिए सक्रिय प्रकटीकरण बढ़ाना, सूचना को अधिकार के लिए राष्ट्रीय पोर्टल जैसे तंत्रों का उपयोग करना और आर.टी.आई. कार्यकर्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित करना शामिल है।

आर.टी.आई. का सबसे नया नियम यह है कि अब सभी ऑनलाईन आर.टी.आई. बावेदनों के लिए ई-मेल के माध्यम से ओ. टी.पी. (वन टाईम पासवर्ड) आधारित सत्यापन अनिवार्य है, जिसका उद्देश्य आर.टी.आई. पोर्टल को अधिक सुरक्षित बनाना और आवेदकों की गोपनीयता की रक्षा करना है। जब तक आप अपने ईमेल को ओ.टी.पी. से सत्यापित नहीं करते, तब तक आप ऑपनलाईन आर.टी.आई. आवेदन जमा नहीं करा पाएगें।

ये आर.टी.आई. पोर्टल की साइबर को मजबूत करना, व्यक्तों की गोपनीयता की रक्षा करना, आवेदन प्रक्रिया को अधिक सुरक्षित और पारदर्शी बनाना आर.टी.आई. अधिनियम का उद्देश्य है।

उपकरण परिणाम:-

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 हमारी अधिशासन प्रणाली में आमूल बदलाव का संकेत देता है तथा यह राज्य की सभी एजेंसियों को स्थायी रूप से प्रभावित करता है। इस कानून का प्रभावी कार्यान्वयन तीन मूलभूत बदलावों पर निर्भर करता है, गुप्तता की विद्यमान पद्धति की और वैयकिक निरंकुशलता से जवाबदेही के साथ प्राधिकार की ओर, और एकपक्षीय निर्णय निर्माण से भागीदारीपूर्ण अधिशासन की ओर। इसे प्रभावी ढ़ंग से लागू करना मुख्य रूप से सृजित संस्थानों, शीघ्रतापूर्ण परंपराओं और प्रथाओं, कानूनों और प्रक्रियाओं में परिणामी परिवर्तनों और लोगों व सहाकारी सेवकों की पर्याप्त भागीदारी पर निर्भर करता है।

सूचना का अधिकार अधिशासन में जवाबदेही पैदा करने की जरूरत है, जिसमें भेद खोलने वालों को संरक्षण प्रदान करना, शक्ति का विकेंद्रीकरण और सभी स्तरों पर जवाबदेही के साथ प्राधिकार का प्रसाद शामिल है फिर भी इस कानून से हमें अधिशासन की प्रक्रिया का विशेष रूप से आधारभूत स्तर, जहाँ नागरिकों की अन्योन्य-क्रिया अधिकतम होती है, पर फिर से गौर करने का बहुमूल्य अवसर प्राप्त होता है। आर.टी.आई. अधिनियम के तहत, सार्वजनिक प्राधिकरण वही जानकारी प्राप्त कर सकते है जो उनके पास पहले से मौजूद है।

उत्तम शासन चर्चा:-

सूचना का अधिकार - सुशासन के लिये मास्टर कुंजी है। उत्तम शासन के बिना नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो सकता। उत्तम शासन के 4 घटक है -

1. पारदर्शिता
2. जवाबदेही
3. पूर्वानुमान
4. भागीदारी

यह एक महत्वपूर्ण विधान है, जो लोगों को सशक्ति बनाता है, और पारदर्शिता को बढावा देता है। ये सुशासन के लिए मास्टर कुंजी द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2 nd ARC) की एक रिर्पोट का शीर्षक है, इसका मतलब (Good Governance) आर टी आई अधिनियम 2005, सुशासन के लिए कितना महत्वपूर्ण है। आज भी आर टी आई को एक मास्टर कुंजी के रूप में देखा जाता है। जिससे नागरिकों को सूचना प्राप्त करने और सरकार की निगरानी करने का अधिकार मिला है।

राष्ट्रीय समन्वय समिति (NCC) का गठन की रिपोर्ट में सुझाव दियागया था कि आर टीआई अधिनियम के प्रभाव कार्यान्वयन के लिए एक राष्ट्रीय समन्वय समिति का गठन किया जाना चाहिए और नागरिकों और लोक प्राधिकारियों के बीच आरटीआई के बारे में जागरूकता फैंलाने के लिए राज्य स्तर पर गैर - सरकारी संगठनों के साथ मिलकर अभियान चलाने की सलाह दी गई।

निष्कर्ष-

आरटीआई को सेंटर फॉर गवर्नेस कहा गया है। यह अधिनियम लोगों को सशक्त बनाकर और संस्थाओं को मजबूत बनाकर मजबूत स्थिर समाजों को बढावा देना ही इसका उद्धेश्य है। मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएं और सुशासन समृद्ध और स्थिर समाजों की नींव है। आरटीआई में हमारा मानना है कि लचीले और शांतिपूर्ण समाज नागरिक सहभागिता पारदर्शिता और जवाबदेही पर आधारित होते है।

दशकों से आरटीआई एक अग्रणी अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन और अत्याधुनिक अनुसंधान संस्थान रहा है। यह हमें वास्तविक दुनिया के परिणाम और समाधान तैयार करने में सक्षम बनाता है। आरटीआई अधिनियम विकेंद्रीकरण प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों के बीच संबंधों को मजबूत करते है। ताकि स्थानीय संस्थाएं नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने और उनका विस्तार करने में सक्षम हो सके। ये लोकतांत्रिक प्रगति और संस्थागत सुधारों का समर्थन करने के लिए स्थानीय अधिकारियों और नागरिकों की क्षमता का निर्माण करते है। नागरिक समाज को उनकी आवश्यकताओं की प्रभावी ढंग से वकालत करने तथा सरकार को जवाबदेह बनाने के लिए प्रेरित करके समावेशी राजनीतिक संवाद को बढावा देते है।

ई-गवर्नेस (इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेस) सूचना प्रौघ्योगिकी का उपयोग करके सरकारी सेवाओं को नागरिकों तक कुशलतापूर्वक पहुंचने में ई-गवर्नेस एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि ऑन लाईन प्लेट फॉर्म और डिजिटल उपकरणों का उपयोग नागरिकों को सरकारी विभागों से जानकारी प्राप्त करने और पारदर्शिता बनाए रखने में मदद करता है। ई-गवर्नेस आरटीआई अधिनियम के सिद्धांतों को प्रभावी ढंग से लागू करने और सुशासन को बढावा देने में महत्वपूर्ण है।

भारत सरकार द्वारा लॉन्च किए गए कुछ ई-गवर्नेस ऐप है आधार मोबाईल ऐप, उमंग, डिजीलॉकर, भीम और एम पासपोर्ट सेवा आदि। आरटीआई अधिनियम ने नागरिकों को सुशक्त बनाया है, उन्हें सरकारी जानकारी तक पहुंच प्रदान की है और पारदर्शिता व जवाबदेही को बढावा दिया है जिससे भ्रष्टाचार कम हुआ है। परन्तु सूचना आयोगों में लंबित मामलों और नौकरशाही बाधाओं जैसी चुनाथ्तयों के कारण अधिनियम की पूरी क्षमता का एहसास होना अभी बाकी है तथा लंबित मामलों का तेजी से निपटाना, सूचना आयोगों को मजबूत करना और नागरिकों के बीच जागरूकता बढाना आवश्यक है।

चुनौतियों के बावजूद, आरटीआई आज भी नागरिकों के सशक्तिकरण और एक मजबूत पारदर्शी शासन व्यवस्था के निर्माण के लिए एक अमूल्य उपकरण है।

संदर्भः-

नागरिकों के सशक्तिकरण से संबंधित ;त्ज्प्द्ध पर कई पुस्तकें उपलब्ध हैंः-

- आर.टी.आई. सूचना का अधिकार (RTI) के मूल सिद्धांत
- सूचना का अधिकारः नागरिक सशक्तिकरण और सुशासन की एक पहल (डॉ. एन.के. जैन)
- NITI Aayog का सूचना का अधिकारी अधिनियम 2005 का संस्करण
- शक्ति सूचना की (सूचना का अधिकार अधिनियम) 2005 का एक हस्तपुस्तिका
- नागरिक अधिकारों के साथ जागरूकता

गुप्तकालीन कृषि एवं जल प्रौद्योगिकी

प्रवीण कुमार तिवारी

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, वीर बहादुर सिंह, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ0 प्र0)

गुप्तकाल तक कृषि व्यवस्था सुनियोजित स्वरूप प्राप्त होता है। इस काल के स्मृतियों से स्पष्ट होता है कि कृषि को वैश्यों एवं शूद्रो का व्यवसाय माना जाता था तथा उनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि इनकों कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। कृषि कर्म के विविध पक्षों पर वराहमिहिर की वृहत्संहिता तथा अमरसिंह की अमरकोश में विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। वृहत्संहिता में ऋतु सम्बन्धी विभिन्न बातों पर विस्तार से विचार किया गया है। इसमें कहा गया है कि इस काल में भारतीय कृषक वर्ग अपन समृद्धि के लिए प्रकृति पर निर्भर थे। इनमें हल की बनावट, खेती के लिए भूमि को तैयार करने की विधियों, कृषि कार्य पर प्रयोग किए जाने वाले औजारों, खाद्यान को साफ करने तथा उसमें से भूसी निकालने की प्रक्रिया, खेत की जुताई, विभिन्न प्रकार के अन्नों एवं फलों की बुवाई और स्थानांतरण रोपण के शुभ मुहूर्त तथा विधियाँ, विभिन्न प्रकार की फसलों के रोगों और उनके उपचार, अच्छे खेत की पहचान तथा अच्छे पैदावार के लिए किए जाने वाले कार्यो की एक लम्बी सूची प्राप्त होती है।

कालिदास ने कृषि को राज्य की समृद्धि का सबसे प्रमुख स्त्रोत माना है। कालिदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि इस काल में ऋषि लोग अपने आश्रम के इर्द - गिर्द के क्षेत्रों में जीवन निर्वाह योग्य कृषि कार्य करते अथवा करवाते थे। चीनी यात्री फहियान के अनुसार कृषि ग्रामीण क्षेत्र का प्रमख व्यवसाय था। इस काल में कृष्य भूमि का लगातार विस्तार देखने को मिलता है। जंगल साफ करके नए खेत बनाए जा रहे थे। इसी प्रकार नीची भूमि से पानी को निकाल कर उनको कृषि भूमि में परिवर्तित किया जा रहा था। राज्य के द्वारा परती भूमि को विकसित कर कृषि के योग्य बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा था।

प्रारम्भ में कृषि शब्द से तात्पर्य केवल भूमि विलेखन अथवा हल चलाने से लिया जाता था, परन्तु इस काल तक आते -आते कृषि शब्द का पर्याप्त विस्तार हो चुका था तथा इसमें न केवल हल चलाने वाले वरन् हल चलवाने वालों को भी कृषक की श्रेणी में रखा जाने लगा था।[1] कृषकों की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड हलों की संख्या से माना जाता था। बड़े किसान स्वयं हल नही चलाते थे, वरन् मजदूरों से हल चलवाते थे। इस काल में कृषक को कृषिबल कहा जाता था। बैलों से हल चलाने का कार्य लिया जाता था। इसे गो, अनड्वान तथा बलीबर्द कहा जाता था। जो बैल हल एवं गाड़ी दोनों को खीच सकते थे, उन्हें श्रेष्ठ माना जाता था। हल तथा गाड़ी में जुता हुआ बैल दम्य के नाम से जाना जाता था। हल चलाने वाले किसान को हलिक अथवा सैरिक तथा हल को सीर के नाम से उल्लखित किया गया है। इस काल में अच्छे हल के लिए सृहल तथा खराब हल के लिए दुर्हल शब्द का प्रयोग किया गया है। जिन किसानों के पास हल नही होता था, उसे अपहल, अहल, अपसीर अथवा अपलांगल जैसे नामों से जाना जाता था। जोती जाने वाली भूमि को हल्या तथा जुती हुई भूमि को सौत्य कहा जाता था। जो भूमि जोतने योग्य होती थी, उसे कर्ष कहते थे।[2]

गुप्तकाल में खेत की जुताई के लिए बड़े फालों का प्रयोग किया जाता था। बृहस्पति स्मृति में वर्णित है कि इस काल में हल के फाल का वजन बारह पल, लम्बाई आठ अंगुल तथा चौडाई चार अंगुल होती थी। यह लोहे का बना हुआ होता था।[3] हल के फाल से खेत में बनाई गई हराई को सीता कहा जाता था। सामान्य रूप से कृषक खेत को दो अथवा तीन बार जोतते थे। दो बार हल से जोतने को शम्बा कहा जाता था। परन्तु अच्छी फसल के लिए खेत की जुताई तीन बार करनी चाहिए। एक हल में कितने बैल जोते जाते थे, इसके सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नही होता है, परन्तु परवर्ती काल में जो प्रमाण प्राप्त होते है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि दो बैलों को ही सामान्य रूप से हल से सम्बद्ध किया जाता था।

बृहद संहिता में इस बात का उल्लेख किया गया है कि बीज बोने के पूर्व बीज को कितने समय तक दूध, पानी तथा चावल, मटर तथा तिल के आटे में मिलाकर रखना चाहिए। इस विधि से उसे बीज का अंकुरण अच्छी तरह से होता था।[4] गुप्तकाल में अनेक विधियों से उर्वरक बनाए जाने का विवरण प्राप्त होता है। गाय, भैस, बकरी, भेड़ इत्यादि के गोबर का प्रयोग भी उर्वरक के रूप में किया जाता था। इससे जिससे फसलों में उचित वृद्धि देखने को मिलती है।

गुप्तकाल में सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास, व्यावहारिक अनुभव तथा विकसित होती तकनीक ने कृषि उपकरणों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया। विभिन्न प्रकार की धातुओं में लौह सबसे मजबूत एवं तीक्ष्ण होने के कारण कृषि कार्य में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इससे सम्बन्धित तकनीकी ज्ञान में अत्यधिक वृद्धि देखने को मिलती है। कृषकों द्वारा लोहे के व्यापक प्रयोग से कृषि के क्षेत्र में आधारभूत परिवर्तन देखने को मिलते है। इस काल के प्रमुख कृषि उपकरण में हल, कुदाल, फावड़ा, हँसिया इत्यादि प्रमुख थे। वैदिक काल से चले आ रहे इन उपकरणों में केवल कुछ ही अंशों में परिस्थितियों एवं समय के अनुसार परिवर्तन किया गया था। इसमे कृषकों ने अपने अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर इस समय तक कुछ नए उपकरणों का निर्माण भी कर लिया था। कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण हल को माना जाता है। इस काल में हल को खीचने का कार्य बैलों के द्वारा किया जाता थां लोहे के उन्नत किस्म के फाल के कारण खेतों में गहरी जुताई होने लगी थी, जिससे उत्पादन में वृद्धि देखने को मिलती है। हल का विवरण देते हुए अमरकोश में कहा गया हे कि हल के निम्न भाग होते थे, जुआ का डण्डा, जुआ का पीन, जुआ का फाड़।[5] हल के बाद दूसरा प्रमुख कृषि उपकरण कुदाल को माना जाता था। कुदाल का प्रयोग सामान्य रूप से कड़ी भूमि को तोड़ने अथवा हल के जोत से बचे हुए कोनों अथवा किनारों को खोदने के लिए किया जाता था।[6] इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से छोटे – छोटे उपकरण थे, जिनका प्रयोग अन्य प्रकार के कार्यो में किया जाता था। घास – पात एवं पकी हुई फसलों को काटने के लिए कृषको के द्वारा हँसिए का प्रयोग किया जाता था। फसलों की कटाई के क्रम में इस उपकरण की चर्चा प्रमुखता से की गई है। इस काल में गड़ासे जैसा उपकरण प्राप्त होता है। कुएँ से बाल्टी के माध्यम के माध्यम से पानी निकालने के लिए तथा बैलों को जुआठा में नाथने के लिए रस्सी की महत्वपूर्ण उपयोगिता इस काल में देखने का मिलती है। इसकों सन से बनाया जाता था। अनाज को साफ करने के लिए सूप की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है।

इस काल में फसलों की बालियों तथा जड़ो दोनों को काटने की परम्परा मिलती है। इस उपकरण के माध्यम से ईख, अरहर अथवा इसी प्रकार की कडी फसलों को काटने का काम किया जाता था। काटी हुई फसल से अनाज को साफ करने के लिए डण्डे का प्रयोग किया जाता था। डण्डे से पीट कर अथवा बैलो के माध्यम से दवाई करके अनाज को भूसे से अलग किया जाता था। बाद में टोकरी के माध्यम से इसे हवा की गति से साफ किया जाता था। साफ अनाज को जूट के बोरे में रखकर इसको अन्नागार में रख दिया जाता था।[7] इस प्रकार पूर्वकाल से चले आ रहे कृषि सम्बन्धी विभिन्न उपकरणें में कोई गुणात्मक परिवर्तन देखने को नही मिलता है।

वराहमिहिर की वृहत्संहिता पांचवी शताब्दी के अंतिम दशक और छठी शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में लिखा गया एक उपयोगी दस्तावेज है। इस ग्रंथ में खगोलीय विषयों जिनमें ग्रह, तारे, नक्षत्र इत्यादि के लक्षणों के आधार पर जलवायु सम्बन्धी तथा कृषि उत्पादों को विभिन्न ऋतुओं में बोने के सम्बन्ध में भविष्यवाणियाँ एवं अनुमान लगाए गए है। अनेक प्रकार के अंधविश्वास के बावजूद वृहत्संहिता समकालीन कृषि का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें खेत को जोतकर उसके चारो तरफ मेड बनाने की बात की गई है, जिससे न केवल खेत का सीमा निर्धारण रहे, वरन उसमें पहुँचने वाला जल भी उसमें स्थिर रहे। हल को बैल से जोता जाना चाहिए। अच्छी फसल के लिए बीज की बुवाई समय के अनुसार तथा वर्षा के अनुरूप किया जाना चाहिए। फसल के तैयार होने के बाद उसकी दँवाई की जाती थी। अनाज के दाने को भूसे से अलग करने के लिए हवा का प्रयोग किया जाता था। इसमें मुख्य रूप से दो प्रकार की फसलों का वर्णन किया गया है। अपरशस्या फसल जाड़े में बोया जाता था, जबकि पूर्वशस्या फसल को वर्षा के समय बोया जाता था। अपरशस्या में गेहूँ एवं जौ प्रमुख था। यह फसल गर्मी में तैयार होती थी। पूर्वशस्या में धान महत्वपूर्ण फसल थी, जिसे शरद ऋतु में काटा जाता था।[8] इन दो फसलों के सम्बन्ध में वराहमिहिर ने भविष्यवाणी की थी। उन्होंने वास्तविक फसल के सम्बन्ध में कहा है कि यह फसले श्रवणा, चित्रा तथा विशाखा नक्षत्र में पकती थी।

वृहत्संहिता में अच्छी फसल के उत्पादन के लिए खेत के चुनाव को महत्वपूर्ण माना गया है। यदि भूमि की ऊपरी मिट्टी के अन्दर पानी का बहाव है तो वह समृद्ध फसलों का भी नाश कर देती है। उन्होंने आगे कहा कि यदि भूमिगत जलस्तर चार हाथ नीचे है तो यह पौधों की वृद्धि को रोकने का कार्य करता है तथा विकसित हुए पौधों को भी गला देगा। इसमें नौ प्रकार के धान

के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इनमें शाली, कलामशाली, यांवका, सुक्रका, शाशतिका, रकतशाली, पंदुका, गौराशाली और निशपावा प्रमुख थे। धान के अतिरिक्त गेहूँ, वारली अर्थात् जौ, कोद्रवा, कंगु इत्यादि अनाजों का विवरण प्राप्त होता है। छह प्रकार के दलहन का वर्णन मिलता है, जिनमें मूंग, माशा, मसूर, कुलथा, कैलय तथा ओन्का थे। तीन प्रकार के तेल बीज होते थे, जो कि तिल, सरसपा तथा सिद्धार्थ थे।[9] इसके अतिरिक्त कपास, पटुआ, अलसी और ईख की खेती भी की जाती थी। कोदो और कंगु गरीब किसानों द्वारा अपने उपयोग के लिए उगाया जाता था, जिसे क्षुद्र धनिया कहा जाता था। यह उस काल की सामाजिक भिन्नता को दिखाता था। इस काल में बहुत से खेत मजदूरों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, जिनके पास स्वयं के खेत नही होते थे।

वराहमिहिर ने कृषि के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की भविष्यवाणियाँ की है, जो कि इनके उपजाने के तरीकों से सम्बन्धित है। कृषक के भाग्य के सम्बन्ध में उनकी अनेक भविष्यवाणियाँ है। यह कृषकों की खुशहाली तथा उनके विनाश से सम्बन्धित है। वराहमिहिर ने अकाल के सम्बन्ध में 55 भविष्यवाणियाँ की है, जिनमें से 45 सुखे की, 63 विनाश की तथा 53 अच्छी फसल के सम्बन्ध में है।

वराहमिहिर ने अत्यधिक वर्षा को अकाल का प्रमुख कारण बताया है। इसका एक अन्य प्रमाण जूनागढ़ शिलालेख से प्राप्त होता है, जिसमें अत्यधिक वर्षा के कारण सुदर्शन झील में दरार पड़ गई थी तथा इसके फलस्वरूप बाढ़ आ गई थी, जिसन बड़े क्षेत्र में फसलों का विनाश कर दिया था। जो कृषक कृषि के लिए पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर रहते थे, उन्हें सूखें एवं अकाल जैसी स्थितियों का अक्सर सामना करना पड़ता था। इससे या तो फसल का विनाश हो जाता था अथवा उत्पादन में कमी हो जाती थी। वराहमिहिर को बारह वर्ष के अकाल की पूरी जानकारी थी।[10] वर्षा में लगातार होने वाली कमी ने भी फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुँचाने का कार्य किया था। इसके कारण जंगलों में लगातार कमी होती जा रही थी। इसमें बड़े पेड़ों के विनाश के अतिरिक्त छोटे पौधों एवं विभिन्न प्रकार की जड़ी - बूटियों की भी चर्चा की गयी है। जंगल के विनाश के प्रसंग में ही शिकारी तथा जंगलों में निवास करने वाले व्यक्तियों के विनाश की भविष्यवाणी की गई है।

वर्षा में कमी तथा इसके प्रभाव से जंगल में पेड़ो की संख्या में लगातार गिरावट का प्रभाव कृषि क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। कृषि भूमि के अपरदन तथा पौधों की कमी के लिए वर्षा के देवता वरूण को जिम्मेदार माना गया है, जिन्हें अंबुपति तथा जलेश्वर की उपाधि दी गई थी। इनकी पूजा इस प्रकार के विपत्ति के समय की जाती थी। इसी प्रकार वराहमिहिर ने अन्न की कमी, भुखमरी तथा अनाजो की कीमत वृद्धि का उल्लेख किया है।

गुप्तकाल में अधिक उत्पादन के लिए सिंचाई का बहुत महत्व दिया गया था। इस काल में प्राकृतिक सिंचाई के साधनों के अन्तर्गत नदियों, झीलों, झरनों तथा वर्षा के जल को रखा जाता था। उत्तर पूर्वी क्षेत्र मानसून के प्रभाव क्षेत्र में आता था, परन्तु मध्य तथा उत्तर पश्चिमी भारत में वर्षा की मात्रा कम होती थी। इन क्षेत्रों मे प्रारम्भ से ही लोग तालाब, कुँआ, नहर, झरना इत्यादि पर सिंचाई के लिए निर्भर रहते थे। कामन्दक के नीतिसार में कहा गया है कि फसल से परिपूर्ण भूमि और खनिज तथा लवणों से धनी भूमि लगातार सिंचित होती है। उनमें कृषि के लिए केवल वर्षा पके जल पर ही निर्भर नही रहा जाता।[11] सिंचाई के महत्व को इस काल के अनेक स्मृति ग्रंथों में भी रेखांकित किया गया है। नारद स्मृति में जल के उपयोग के आधार पर जल स्त्रोतों को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम वह जल जो कि भूमि के अंदर से खोदकर निकाला जाता है, इसे खेया कहा जाता है। द्वितीय जो जल की अधिकता को एक स्थान पर रोककर रखा जाता है, उसे बांध कहा जाता है। इसमें से प्रथम का उपयोग खेत की सिंचाई के लिए किया जाता है तथा द्वितीय खेतों में पानी की अधिकता को रोकने का कार्य करता था।[12]

कालिदास ने अपनी रचनाओं में उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत की प्रमुख नदियो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें कहा गया है कि खेतो से लेकर आश्रमों तक की वाटिकाओं में नहरों के माध्यम से सिंचाई की जाती थी। यह नहरे नदियो से निकाली जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ नहरो का स्त्रोत गहरे तालाब अथवा झील हुआ करते थे। गुप्तकाल में जल संग्राहकों तथा नहरों के निर्माण के लिए अभियंताओं और राजमिस्त्रियों का एक सुसंगठित समूह होता था। इस कार्य के लिए एक स्थायी निधि की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती थी। राज्य के द्वारा इनके कार्यस्थलों में लगातार परिवर्तन किया जाता था। इस प्रकार के समूह को अमरकोष में कर्षस कहा गया है। इन नहरों द्वारा सुदूर एवं विस्तृत क्षेत्र तक फसलों को पानी पहुँचाने का कार्य किया जाता था।[13] सिंचाई के महत्व एवं उसकी उपयोगिता को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसे स्वामित्व का प्रमाण पत्र मिलता हुआ हो, एक सूखें गड्ढे में पानी जमा कर सकता है, परन्तु उसे सूखे तालाब अथवा गड्ढे के स्वामी की अनुमति के बिना इस प्रकार का कार्य नही करना चाहिए। यदि उसके स्वामी की मृत्यु हो गई हो तो यह अनुमति राजा से ली जा सकती है।

वराहमिहिर ने अपने ग्रंथ वृहत्संहिता में एक पूरा अध्याय जल सिंचन के अन्वेषण पर लिखा है। इस अध्याय में कृषि उत्पादन मे वृद्धि के लिए सिंचाई के महत्व को रेखांकित किया गया है। इसमें जल के सौ से अधिक स्त्रोतों के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत किया गया है। जल स्त्रोतों के कारण अर्द्धमरूस्थल क्षेत्रों में कृषि कार्य संभव हो पाता था। वराहमिहिर के अनुसार एक आयताकार जलाशय, जिसका पूर्वी एवं पश्चिमी किनारा लंबा हो, उसमे अधिक समय तक पानी को जमा किया जा सकता था। इसके विपरीत यदि उसका दक्षिणी और उत्तरी किनारा लम्बा हो तो पानी को अधिक समय तक रोका नही जा सकता था। इसका कारण यह है कि हवा के बहाव से यह नष्ट हो जाता हे। इससे बचने का उपाय बताते हुए कहा गया है कि लकड़ी के बड़े बड़े गट्ठर तथा पत्थर के टुकड़े तालाब के किनारे डाल दिए जाने चाहिए।[14]

इस काल में सिंचाई के साधनो के रूप में तालाबों का अधिक निर्माण किया गया था। इसका कारण यह माना जाता है कि नहरों की अपेक्षा तालाबों के निर्माण में व्यय कम लगता है, इस कारण से व्यक्तिगत अथवा सामूहिक स्तर पर लोगों के द्वारा इसका निर्माण करवाया जाता था। व्यक्तिगत तालाबो के माध्यम से भी पाँच से दस एकड़ तक की फसलों की सिंचाई आसानी से किया जा सकता था। इस कारण से अनेक स्थानों पर कुओं की अपेक्षा तालाबों को सिंचाई के साधन के रूप में अधिक महत्व प्रदान किया गया है।

गुप्तकाल में वैपी शब्द का प्रयोग छोटे जलाशयों के लिए किया जाता था। टाडागाह उस समय के बड़े जलाशयों के लिए प्रयोग किया जाता था। दीर्घीका शब्द का प्रयोग बहुत बड़े जलाशयों के लिए व्यहृत किया जाता था। गुप्तकाल में झीलों का प्रयोग भी सिंचाई के साधनों के रूप में किया जाता था। सौराष्ट क्षेत्र में स्थित सुदर्शन झील इस समय भी महत्वपूर्ण थी।[15] 455 ई0 के प्रौष्ठपद अर्थात अगस्त सितम्बर माह में अधिक वर्षा होने के कारण इस झील का बांध टूट गया था, जिससे अत्यधिक जन एवं धन हानि हुई थी तथा जनता को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। स्कन्दगुप्त ने अपने सबसे योग्य कर्मचारी चक्रपालित को इस बांध के पुन:निर्माण के लिए नियुक्त किया था। इस सन्दर्भ में फ्लीट महोदय ने लिखा है कि चक्रपालित द्वारा बनवाया गया बाँध00 घन (क्यूबिक) लम्बा तथा 68 घन (क्यूबिक) ऊँचा था। यद्यपि रूद्रदामन के अभिलेख में जानकारी प्राप्त होती है कि पर्वत के निचले स्थित में यह बाँध इससे भी अधिक लम्बा था। रूद्रदामन के द्वारा जिस बाँध का निर्माण करवाया गया था, वह 420 घन क्षेत्रफल का था।[16] किसी भी स्त्रोत में इस बाँध की लम्बाई चौडाई का विवरण प्राप्त नही होता है, केवल बाढ़ के द्वारा नष्ट क्षेत्र का विवरण प्राप्त होता है। इन सभी कारकों से स्पष्ट होता है कि यह झील बहुत ही बड़ी थी।

गुप्तकाल में सिंचाई के साधन के रूप में कुओं का प्रयोग भी किया जाता था। इसके निर्माण के सम्बन्ध में जानकारी हमें विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त होती है। विश्ववर्मण के गांधार शिलालेख तथा अमरकोश में कुँओ के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। आधुनिक पाकिस्तान के जलालाबाद जिलें में एक कुँए का वर्णन प्राप्त होता है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह जानकारी प्राप्त होती है कि इन कुँओं का उपयोग छोटे भूखण्डों की सिंचाई के लिए किया जाता था। इसके साथ ही इनका उपयोग पीने के पानी के लिए भी किया जाता था। कुँओं के निर्माण में राज्य तथा जनता दोनों ही सहयोग देते थे। विभिन्न अवसरों पर राज्य के द्वारा इसका निर्माण एवं मरम्मत कराने का कार्य करते थे, इसके लिए राजा सदैव तत्पर रहता था।[17]

गुप्तकाल में राज्य के द्वारा कृषि की उन्नति एवं तदर्थ समयानुकूल सिंचाई के साधनों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया गया। इस काल के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सदैव की भाँति इस काल में कृषि राज्य की आय का प्रमुख साधन बना हुआ था तथा इस पर आधारित उद्योगों के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति देखने को मिलती है। इस काल में हमें एक तरफ नगरीकरण की प्रवृत्ति में कमी देखने को मिलती है, तो दूसरी तरफ कृषि व्यवस्था में अधिक संख्या में लोगो की भागीदारी देखने को मिलती है तथा इस काल में स्थानीय स्तर पर उत्पादन की इकाईयां उभरने लगी थी।

सन्दर्भ

1. राय, जयमल राय, प्राचीन भारत में कृषि एवं जल संसाधन, पाठक पब्लिशर्स एडं डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2024 पृ0 सं0 283
2. मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, प्रामानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद (प्रयागराज) 1997, पृ0 सं0 19
3. बृहस्पति स्मृति, 14/24
4. बृहत्संहिता, 19/65

5. अमरकोष, 2/17/48
6. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2007, पृ0 सं0 194
7. सहाय, डॉ0 शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2020, पृ0 सं0 335
8. शास्त्री, अजयमित्र, इंडिया ऐज सीन इन बृहत्संहिता, पृ0 सं0 269
9. बृहत्संहिता, 11/43
10. कृषि पराशरः शास्त्री, द्वरिकानाथ (अनु0), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2017, पृ0 सं0 43
11. बोस, ए0 एन0, सोशल एण्ड रूरल इकोनॉमी ऑफ नार्दन इंडिया, वाल्यूम 3, कोलकाता, 1942, पृ0 सं0 145
12. नारद स्मृति, 12/17
13. गोपाल, लल्लन जी, एस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एंश्येंट इंडिया, वाराणसी, 1980, पृ0 सं0 68
14. मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, प्रामानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद (प्रयागराज) 1997, पृ0 सं0 19
15. राय, जयमल राय, प्राचीन भारत में कृषि एवं जल संसाधन, पाठक पब्लिशर्स एडं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2024 पृ0 सं0 289
16. मिराशी, वा0 वि0, सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रपों का इतिहास और अभिलेख, भाग 2 उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982, पृ0 सं0 9
17. पांडेय, डा0 सुस्मिता, समाज आर्थिक व्यवस्था एव धर्म, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ आकदमी, 1991, पृ0 स0 22

नारी सशक्तिकरण और आर्थिक स्वावलंबन

प्रिया यादव

UGC NET

भूमिका

राष्ट्र के विकास में महिलाओं का महत्त्व और अधिकार के बारे में समाज में जागरुकता लाने के लिये मातृ दिवस, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस आदि जैसे कई सारे कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं। महिलाओं को कई क्षेत्र में विकास की जरुरत है। भारत में, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों और मूल्यों को मारने वाली उन सभी राक्षसी सोच को मारना जरुरी है, जैसे – दहेज प्रथा, अशिक्षा, यौन हिंसा, असमानता, भ्रूण हत्या, महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, वैश्यावृति, मानव तस्करी और ऐसे ही दूसरे विषय। अपने देश में उच्च स्तर की लैंगिक असमानता है। जहाँ महिलाएँ अपने परिवार के साथ ही बाहरी समाज के भी बुरे बर्ताव से पीड़ित है। भारत में अनपढ़ो की संख्या में महिलाएँ सबसे अव्वल है

भारत में महिला सशक्तीकरण

भारत की आधी आबादी महिलाओं की है और विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार अगर महिला श्रम में योगदान दे तो भारत की विकास दर दहाई की संख्या में होगी। फिर भी यह दुर्भाग्य की बात है कि सिर्फ कुछ लोग महिला रोजगार के बारे में बात करते हैं जबकि अधिकतर लोगों को युवाओं के बेरोजगार होने की ज्यादा चिंता है। हाल ही में प्रधानमंत्री की 'आर्थिक सलाहकार परिषद' की पहली बैठक में 10 ऐसे प्रमुख क्षेत्रों की चिह्नित किया गया जहां ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। दुर्भाग्य की बात यह है कि महिलाओं का श्रम जनसंख्या में योगदान तेजी से कम हुआ है। यह लगातार चिंता का विषय बना हुआ है। लेकिन फिर महिला

रोजगार को अलग श्रेणी में नहीं रखा गया है नेशनल सैंपल सर्वे (68 वां राउंड) के अनुसार 2011-12 में महिला सहभागिता दर 25.51% थी जो कि ग्रामीण क्षेत्र में 24.8% और शहरी क्षेत्र में मात्र 14.7% थी। जब रोजगार की कमी है तो आप महिलाओं के लिए पुरुषों के समान कार्य अवसरों की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? एक पुरुष ज्यादा समय तक काम कर सकता है उसे मातृत्व अवकाश की जरूरत नहीं होती है और कहीं भी यात्रा करना उसके लिए आसान होता है निर्माण कार्यों में महिलाओं के लिए पालना घर या शिशुओं के लिए पालन की सुविधा मुहैया कराना जरूरी होता है।

ऐसे कई कारण हैं जिनसे भारत की महिला श्रमिक सहभागिता दर्ज में पिछले कुछ वर्षों में गिरावट आई है और यह दर दक्षिण एशिया में पाकिस्तान के बाद सबसे कम है। नेपाल, भूटान और बांग्लादेश में जनसंख्या के अनुपात के अनुसार महिला रोजगार ज्यादा है। इन क्षेत्रों के पुरुष काम करने के लिए भारत आते हैं और उनके पीछे महिलाएं अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए खेतों में काम करती है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) मैं महिलाएं मात्र 17% का योगदान दे रही है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार क्रिसटीन लगार्डे का कहना है कि ज्यादा से ज्यादा महिलाएं अगर श्रम में भागीदारी करे तो भारत की GDP 27% तक बढ़ सकती है।

आर्थिक सशक्तिकरण

आर्थिक सशक्तिकरण से महिलाओं की एजेंसी, औपचारिक सरकारी कार्यक्रमों तक पहुंच, घर के बाहर गतिशीलता, आर्थिक स्वतंत्रता और क्रय शक्ति बढ़ती है। नीति निर्माताओं को औपचारिक बाजारों में प्रवेश में सहायता के लिए नौकरी प्रशिक्षण का समर्थन

करने का सुझाव दिया जाता है। एक सिफारिश महिलाओं के लिए अधिक औपचारिक शिक्षा के अवसर प्रदान करना है जो घर में उच्च सौदेबाजी की शक्ति प्रदान करेगा। उनके पास घर के बाहर उच्च मजदूरी तक अधिक पहुंच होगी; और परिणामस्वरूप, महिलाओं के लिए बाजार में नौकरी पाना आसान हो जाता है। संपत्ति विरासत और भूमि अधिकारों के लिए महिलाओं की पहुंच को मजबूत करना महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक और तरीका है। इससे उन्हें लिंग असमानताओं को दूर करने के लिए आवश्यक संपत्ति संचय, पूंजी और सौदेबाजी की शक्ति के बेहतर साधन मिलेंगे। अक्सर, विकासशील और अविकसित देशों में महिलाओं को लिंग के आधार पर उनकी भूमि से कानूनी रूप से प्रतिबंधित किया जाता है। अपनी भूमि पर अधिकार होने से महिलाओं को एक तरह की सौदेबाजी की शक्ति मिलती है, जो आमतौर पर उनके पास नहीं होती; बदले में, वे आर्थिक स्वतंत्रता और औपचारिक वित्तीय संस्थानों के लिए अधिक अवसर प्राप्त करते हैं।

भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता

भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता के बहुत से कारण सामने आते हैं। प्राचीन काल के अपेक्षा मध्य काल में भारतीय महिलाओं के सम्मान स्तर में काफी कमी आयी। जितना सम्मान उन्हें प्राचीन काल में दिया जाता था, मध्य काल में वह सम्मान घटने लगा था।

(i) आधुनिक युग में कई भारतीय महिलाएँ कई सारे महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक पदों पर पदस्थ हैं, फिर भी सामान्य ग्रामीण महिलाएँ आज भी अपने घरों में रहने के लिए बाध्य है और उन्हें सामान्य स्वास्थ्य सुविधा और शिक्षा जैसी सुविधएँ भी उपलब्ध नही है।

(ii) शिक्षा के मामले में भी भारत में महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा काफी पीछे हैं। भारत में पुरुषों की शिक्षा दर 81.3 प्रतिशत है, जबकि महिलाओं की शिक्षा दर मात्र 60.6 प्रतिशत ही है।

(iii) भारत के शहरी क्षेत्रों की महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के अपेक्षा अधिक रोजगारशील है, आकड़ो के अनुसार भारत के शहरों में साफ्टवेयर इंडस्ट्री में लगभग 30 प्रतिशत महिलाएँ कार्य करती है, वही ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 90 फीसदी महिलाएँ मुख्यत: कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों में दैनिक मजदूरी करती है।

(iv) भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता का एक और मुख्य कारण भुगतान में असमानता भी है। एक अध्ययन में सामने आया है कि समान अनुभव और योग्यता के बावजूद भी भारत में महिलाओं को पुरुषों के अपेक्षा 20 प्रतिशत कम भुगतान दिया जाता है।

(v) हमारा देश काफी तेजी और उत्साह के साथ आगे बढ़ता जा रहा है, लेकिन इसे हम तभी बरकरार रख सकते है, जब हम लैंगिग असमानता को दूर कर पाए और महिलाओं के लिए भी पुरुषों के तरह समान शिक्षा, तरक्की और भुगतान सुनिश्चित कर सके।

(vi) भारत की लगभग 50 प्रतिशत आबादी केवल महिलाओं की है मतलब, पूरे देश के विकास के लिए इस आधी आबादी की जरुरत है जो कि अभी भी सशक्त नहीं है और कई सामाजिक प्रतिबंधों से बंधी हुई है। ऐसी स्थिति में हम नहीं कह सकते कि भविष्य में बिना हमारी आधी आबादी को मजबूत किए हमारा देश विकसित हो पायेगा।

(vii) महिला सशक्तिकरण की जरुरत इसलिए पड़ी क्योंकि प्राचीन समय से भारत में लैंगिक असमानता थी और पुरुषप्रधान समाज था। महिलाओं को उनके अपने परिवार और समाज द्वार कई कारणों से दबाया गया तथा उनके साथ कई प्रकार की हिंसा हुई और परिवार और समाज में भेदभाव भी किया गया ऐसा केवल भारत में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी दिखाई पड़ता है।

(viii) भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान देने के लिये माँ, बहन, पुत्री, पत्नी के रुप में महिला देवियों को पूजने की परंपरा है लेकिन आज केवल यह एक ढोंग मात्र रह गया है।

(ix) पुरुष पारिवारिक सदस्यों द्वारा सामाजिक राजनीतिक अधिकार (काम करने की आजादी, शिक्षा का अधिकार आदि) को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया।

(x) पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले लैंगिक असमानता और बुरी प्रथाओं को हटाने के लिये सरकार द्वारा कई सारे संवैधानिक और कानूनी अधिकार बनाए और लागू किए गए हैं। हालाँकि ऐसे बड़े विषय को सुलझाने के लिये महिलाओं सहित सभी का लगातार सहयोग की जरुरत है।

(xi) आधुनिक समाज महिलाओं के अधिकार को लेकर ज्यादा जागरुक है जिसका परिणाम हुआ कि कई सारे स्वयं-सेवी समूह और एनजीओ आदि इस दिशा में कार्य कर रहे है।

(xii) महिलाएँ ज्यादा खुले दिमाग की होती है और सभी आयामों में अपने अधिकारों को पाने के लिये सामाजिक बंधनों को तोड़ रही है। हालाँकि अपराध इसके साथ-साथ चल रहा है।

महिला सशक्तीकरण के लिए दिए गए अधिकार

- समान वेतन का अधिकार - समान पारिश्रमिक अधिनियम के अनुसार अगर बात वेतन या मजदूरी की हो तो लिंग के आधार पर किसी के साथ भी भेदभाव नहीं किया जा सकता।
- कार्य-स्थल में उत्पीड़न के खिलाफ कानून - यौन उत्पीड़न अधिनियम के तहत आपको वर्किंग प्लेस पर हुए यौन उत्पीड़न के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने का पूरा हक है। केंद्र सरकार ने भी महिला कर्मचारियों के लिए नए नियम लागू किए हैं, जिसके तहत वर्किंग प्लेस पर यौन शोषण के शिकायत दर्ज होने पर महिलाओं को जांच लंबित रहने तक 90 दिन का पैड लीव दी जाएगी।
- कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ अधिकार - भारत के हर नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह एक महिला को उसके मूल अधिकार 'जीने के अधिकार' का अनुभव करने दें। गर्भाधान और प्रसव से पूर्व पहचान करने की तकनीक लिंग चयन पर रोक अधिनियम (PCPNDT) कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ अधिकार देता है।
- संपत्ति पर अधिकार - हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम के तहत नए नियमों के आधार पर पुश्तैनी संपत्ति पर महिला और पुरुष दोनों का बराबर हक है।
- गरिमा और शालीनता के लिए अधिकार - किसी मामले में अगर आरोपी एक महिला है तो उस पर की जाने वाली कोई भी चिकित्सा जांच प्रक्रिया किसी महिला द्वारा या किसी दूसरी महिला की उपस्थिति में ही की जानी चाहिए।
- महिला सशक्तीकरण - महिलाओं का पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर अपने और अपने देश के बारे में सोचने की क्षमता का विकास होना ही महिला सशक्तीकरण कहलाता है

महिलाओं को सशक्त होने के तरीके

- महिलाओं को सशक्त बनाने के विभिन्न तरीके हैं। इसे करने के लिए व्यक्तियों और सरकार दोनों को साथ आना चाहिए। लड़कियों के लिए शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए ताकि महिलाएं अपने लिए जीवन बनाने के लिए पढ़ी लिखी और सुशिक्षित बन सकें।
- महिलाओं को हर क्षेत्र में समान अवसर दिए जाने चाहिए। उन्हें समान वेतन भी दिया जाना चाहिए। हम बाल विवाह को समाप्त करके महिलाओं को सशक्त बना सकते हैं।
- यदि उन्हें वित्तीय संकट का सामना करना पड़ता है, तो विभिन्न कार्यक्रमों को आयोजित किया जाना चाहिए, जहां उन्हें खुद के लिए कौशल करने के लिए सिखाया जा सकता है।

आर्थिक रूप से सशक्तिकरण

- आर्थिक सशक्तिकरण मतलब महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त और शक्तिशाली बनाना। अगर सभी महिलाएं आर्थिक रूप से सशक्त हो जाएगी, तो उनकी सरकारी कार्यक्रमों तक पहुंच बढ़ती है, घर के बाहर गतिशीलता, आर्थिक स्वतंत्रता और क्रय शक्ति बढ़ती है। जिससे महिलाएं भी पुरुषों की तरह किसी बड़े कंपनियों में बड़े पद पर काम कर सकती है।

- उनकी तरह एक सफल व्यक्ति बन सकती है। संपत्ति विरासत और भूमि अधिकारों को पाने के लिए महिलाओं को अच्छी शिक्षा देकर मजबूत करना, उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए एक अच्छा तरीका है। इस तरह सभी महिलाएं आर्थिक रूप से सशक्त होने के बाद वो भी पुरुषों की तरह स्वतंत्र जिंदगी सकती है।

निष्कर्ष

आर्थिक सशक्तिकरण मतलब महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त और शक्तिशाली बनाना। अगर सभी महिलाएं आर्थिक रूप से सशक्त हो जाएगी, तो उनकी सरकारी कार्यक्रमों तक पहुंच बढ़ती है, घर के बाहर गतिशीलता, आर्थिक स्वतंत्रता और क्रय शक्ति बढ़ती है। जिससे महिलाएं भी पुरुषों की तरह किसी बड़े कंपनियों में बड़े पद पर काम कर सकती है।उनकी तरह एक सफल व्यक्ति बन सकती है। संपत्ति विरासत और भूमि अधिकारों को पाने के लिए महिलाओं को अच्छी शिक्षा देकर मजबूत करना, उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए एक अच्छा तरीका है। इस तरह सभी महिलाएं आर्थिक रूप से सशक्त होने के बाद वो भी पुरुषों की तरह स्वतंत्र जिंदगी सकती है।महिलाओं को सशक्त बनाने के विभिन्न तरीके हैं। इसे करने के लिए व्यक्तियों और सरकार दोनों को साथ आना चाहिए। लड़कियों के लिए शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए ताकि महिलाएं अपने लिए जीवन बनाने के लिए पढ़ी लिखी और सुशिक्षित बन सकें।महिलाओं को हर क्षेत्र में समान अवसर दिए जाने चाहिए। उन्हें समान वेतन भी दिया जाना चाहिए। हम बाल विवाह को समाप्त करके महिलाओं को सशक्त बना सकते हैं। यदि उन्हें वित्तीय संकट का सामना करना पड़ता है, तो विभिन्न कार्यक्रमों को आयोजित किया जाना चाहिए, जहां उन्हें खुद के लिए कौशल करने के लिए सिखाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. कबीर, नैला। "लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण: एक महत्वपूर्ण विश्लेषण ओ तीसरी सहस्राब्दी विकास लक्ष्य 1 है।" लिंग और विकास 13.1 (2005): 13-24।
2. मोसेडेल, सारा (2005-03-01)। "महिला सशक्तिकरण का आकलन: एक वैचारिक ढांचे की ओर"। अंतर्राष्ट्रीय विकास के जर्नल। 17 (2): 243-257। doi: 10-1002 / jid-1212 A ISSN 1099-1328
3. सटन, जे. एंड पोलक, एस. (2000)। "महिला अधिकारों के लिए ऑनलाइन सक्रियता"। साइबरसाइकोलॉजी एंड बिहेवियर। 3 (5): 699-706A doi: 10-1089 / 10949310050191700
4. मेहरा, रेखा (नवंबर 1997)। "महिला, सशक्तीकरण, और आर्थिक विकास"। द एनल्स ऑफ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ पॉलिटिकल एंड सोशल साइंस। 554 (1): 136.149। Doi: 10-1177/0002716297554001009 A S2CID 154974352
5. कैर, ग्लोरिया (फरवरी 2011)। "सशक्तिकरण: अफ्रीकी अमेरिकी दादी में अपने पोते के लिए देखभाल प्रदान करने की वकालत विकसित करने के लिए एक रूपरेखा"। ISRN नर्सिंग। 2011 : 531717. डोई : 10.5402 / 2011/531717। पीएमसी 3169837। PMID 21994894
6. स्बाउम, मार्था सी (2000)। 'परिचय'। महिला और मानव विकास: दृष्टिकोण करने के लिए क्षमताओं। कैम्ब्रिज, यूके: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. पीपी. 1 -33। आईएसबीएन 9781139459358।
7. कोहेन, जॉन (15 जून, 2007)। "बुश ने एड्स से राहत दिलाई: वाहवाही और विराम के कारण"। विज्ञान। 316 (5831): 1552. डोई : 10.1126 / विज्ञान.316.5831.1552। JSTOR 20036459। पीएमआईडी 17569832। S2CID 43219278